श्रीगणेशाय नमः

अथ स्कन्दपुराणे ब्रह्मखण्डान्तर्गत

❋ सेतुमाहात्म्यं सटीकं प्रारभ्यते ❋

दो० । सेतुतीर्थ में न्हाय करि मिलत अहै फल जौन । यहि पहिले अध्याय में कथा कही सब तौन ॥ श्वेत वसन को धारे व चन्द्रमा के समान वर्ण—(रंग) वाले प्रसन्नमुख चतुर्भुज विष्णुजी को सब विघ्नोंकी शान्तिके लिये ध्यान करै ॥ १ ॥ नैमिषारण्य स्थान में शौनक आदिक ऋषिलोग अष्टांगयोग में लगेहुये व ब्रह्मज्ञान में केवल तत्परथे ॥ २ ॥ और मुक्तिको चाहनेवाले व महात्मा तथा ममतारहित व ब्रह्मवादी थे और धर्मको जाननेवाले व ईर्षारहित और सत्यरूपी व्रत में

शुक्लाम्बरधरंविष्णुं शशिवर्णंचतुर्भुजम् ॥ प्रसन्नवदनंध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ॥ नैमिषारण्यनिलये ऋषयः शौनकादयः ॥ अष्टाङ्गयोगनिरताब्रह्मज्ञानैकतत्पराः ॥ २ ॥मुमुक्षवोमहात्मानो निर्ममाब्रह्मवादिनः ॥ धर्मज्ञाअनसूयाश्च सत्यव्रतपरायणाः ॥ ३ ॥ जितेन्द्रियाजितक्रोधाः सर्वभूतदयालवः ॥ भक्त्यापरमयाविष्णुमर्चयन्तःसनातनम् ॥ ४ ॥ तपस्तेपुर्महापुण्ये नैमिषेमुक्तिदायिनि ॥ एकदातेमहात्मानः समाजंचक्रुरुत्तमम् ॥ ५ ॥ कथयन्तोमहापुण्याः कथाःपापप्रणाशिनीः ॥ भुक्तिमुक्तेरुपायश्च जिज्ञासन्तःपरस्परम् ॥ ६ ॥ षड्विंशतिसहस्राणामृषीणांभावितात्मनाम् ॥

परायण थे ॥ ३ ॥ और इन्द्रियों को जीते व क्रोध को जीतेहुये तथा सब प्राणियोंमें दयालु व उत्तम भक्ति से सनातन विष्णुजी को पूजतेहुये उन्होंने ॥ ४ ॥ महा पवित्र व मुक्तिदायक नैमिषमें तपस्या किया और एकसमय उन महात्माओंने उत्तम समाज किया ॥ ५ ॥ व पापों को नाशकरनेवाली महापवित्र कथाओंको कहतेहुये

मुक्ति व मुक्तिके उपायको परस्पर जानने की इच्छा करतेथे ॥ ६ ॥ छब्बिस हज़ार उन शुद्धचित्तवाले ऋषियोंके शिष्यों व प्रशिष्योंकी गिनती नहीं कीजासक्ती है ॥ ७ ॥ इसीअवसर में व्यास के शिष्य महाविद्वान् व पौराणिकोंमें उत्तम महामुनि सूतजी नैमिषारण्य को आगये ॥ ८ ॥ व अग्नि की नाईं जलतेहुये उन सूतमुनि को आये देखकर शौनकादिक मुनियों ने अर्घ्यादिकोंमे पूजन किया ॥ ९ ॥ और उत्तम व शुभआसन पै सुखसे बैठेहुये उन सूतजी से लोकों के ऊपर दयाकी इच्छा से बहुत गुप्त चरित्रको पूंछा ॥ १० ॥ हे धर्म व अर्थके तत्त्वको जाननेवाले, मुनिश्रेष्ठ, सूतजी ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ तुमने सत्यवतीजीके पुत्र व्यासजीसे पुराणों

तेषांशिष्यप्रशिष्याणां संख्यांकर्तुंनशक्यते ॥ ७ ॥ अत्रान्तरेमहाविद्वान्व्यासशिष्योमहामुनिः ॥ अगमन्नैमिषारण्यं सूतःपौराणिकोत्तमः ॥ ८ ॥ तमागतंमुनिंदृष्ट्वा ज्वलन्तमिवपावकम् ॥ अर्घ्याद्यैःपूजयामासुर्मुनयःशौनकादयः ॥ ९ ॥ सुखोपविष्टन्तंसूतमासनेपरमेशुभे ॥ पप्रच्छुःपरमंगुह्यं लोकानुग्रहकाङ्क्षया ॥ १० ॥ सूतधर्मार्थतत्त्वज्ञ स्वागतं मुनिपुङ्गव ॥ श्रुतवांस्त्वंपुराणानि व्यासात्सत्यवतीसुतात् ॥ ११ ॥ अतःसर्वपुराणानामर्थज्ञोसिमहामुने ॥ कानिक्षेत्राणिपुण्यानि कानितीर्थानिभूतले ॥ १२ ॥ कथंवालभ्यतेमुक्तिर्जीवानाम्भवसागरात् ॥ कथंहरेहरौवापि नृणांभक्तिःप्रजायते ॥ १३ ॥ केनसिद्ध्येतत्फलं कर्मणस्त्रिविधात्मनः ॥ एतच्चान्यच्चतत्सर्वं कृपयावदसूतज ॥ १४ ॥ ब्रूयुः स्निग्धाय शिष्याय गुरवोगुह्यमप्युत ॥ इतिपृष्टस्तदासूतो नैमिषारण्यवासिभिः ॥ १५ ॥ वक्तुंप्रचक्रमेनत्वा व्यासंस्वगुरुमादितः ॥

को सुना है ॥ ११ ॥ इसकारण हे महामुने ! सब पुराणों के अर्थों को तुम जानते हो पृथ्वी में कौन पवित्र क्षेत्र व तीर्थ है ॥ १२ ॥ और किसप्रकार संसारसागर से प्राणियोंको मुक्ति मिलती है व महादेव और विष्णुजी में किसप्रकार मनुष्यों की भक्ति होतीहै ॥ १३ ॥ व तीन प्रकारके कर्मका फल किससे सिद्ध होताहै हे सूतजी ! इसको व अन्य उस सब चरितको कृपासे कहिये ॥ १४ ॥ क्योंकि गुरुलोग स्निग्ध शिष्यके लिये गुप्त चरित्रको भी कहते हैं उससमय इसप्रकार नैमिषारण्यमे बसनेवाले मुनियोंसे पूछेहुये सूतजी ने ॥ १५ ॥ अपने गुरु व्यासजीको प्रणामकर पहलेसे कहनेका प्रारम्भ किया श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! तुमलोगोंने इससंसार

के हितको भलीभाति पूंछा ॥ १६ ॥ इस गुप्त चरित्र को मैं तुमलोगों से कहूंगा आदर से सुनिये हे मुनिश्रेष्ठो ! मैंने पहले इसको किसीसे भी नहीं कहाहै ॥ १७ ॥ हे द्विजन्द्रो ! मनको रोंककर भक्तिपूर्वक सुनिये कि रामेश्वरनामक रामसेतु पवित्र है ॥ १८ ॥ जो कि सब क्षेत्रों व तीर्थों के मध्य में भी उत्तम है उससेतु के देखनेही से संसारसागर से मुक्ति होतीहै ॥ १६ ॥ और शिव व विष्णुजी में भक्ति और पुण्यकी समृद्धि होती है व तीनोंप्रकार के भी कर्मकी सिद्धि होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २० ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! जो मनुष्य भक्ति से जन्मके बीच में सेतुको देखताहै उसके पुण्यके फलको कहताहूं सुनिये ॥ २१ ॥ कि माता व पिता से दो कोटिकुलों

श्रीसूत उवाच ॥ सम्यक्पृष्टमिदंविप्रा युष्माभिर्जगतोहितम् ॥ १६ ॥ रहस्यमेतद्युष्माकं वक्ष्यामिशृणुतादरात् ॥ मयानोक्तमिदंपूर्वं कस्यापिमुनिपुङ्गवाः ॥ १७॥ मनोनियम्यविप्रेन्द्राः शृणुध्वंभक्तिपूर्वकम् ॥ अस्तिरामेश्वरं नाम रामसेतुपवित्रितम् ॥ १८ ॥ क्षेत्राणामपिसर्वेषां तीर्थानामपिचोत्तमम् ॥ दृष्टमात्रेणतत्सेतुं मुक्तिःसंसारसागरात् ॥ १९ ॥ हरेहरौचभक्तिःस्यात्तथापुण्यसमृद्धिता ॥ कर्मणास्त्रिविधस्यापि सिद्धिःस्यान्नात्रसंशयः ॥ २० ॥ योनरोजन्ममध्येतु सेतुंभक्त्यावलोकयेत् ॥ तस्यपुण्यफलंवक्ष्ये शृणुध्वंमुनिपुङ्गवाः ॥ २१ ॥ मातृतःपितृतश्चैव द्विकोटिकुलसंयुतः ॥ निर्विश्यशम्भुनाकल्पं ततोमोक्षत्वमश्नुते ॥ २२ ॥ गण्यन्तेपांसवोभूमेर्गण्यन्तेदिवितारकाः ॥ सेतुदर्शनजंपुण्यं शेषेणापिनगण्यते ॥ २३ ॥ समस्तदेवतारूपः सेतुबन्धःप्रकीर्तितः ॥ तद्दर्शनवतःपुंसो कःपुण्यंगणितुंक्षमः ॥ २४ ॥ सेतुंदृष्ट्वानरोविप्राः सर्वयागकरःस्मृतः ॥स्नानश्चसर्वतीर्थेषु तपोतप्यतचाखिलम् ॥ २५ ॥ सेतुंगच्छे

से संयुत वह कल्पपर्यन्त शिवजीके साथ आनन्दकर तदनन्तर मोक्षत्वको भोगताहै ॥ २२ ॥ पृथ्वी के किनका गिनेजाते हैं व आकाशमें नक्षत्र गिनेजाते हैं परन्तु सेतुके दर्शन से उपजाहुआ पुण्य शेषजी से भी नहीं गिनाजाता है ॥ २३ ॥ सब देवताओं का रूप सेतुबन्ध कहागया है और उसके दर्शनवाले पुरुष के पुण्य को गिननेके लिये कौन समर्थहै ॥ २४ ॥ हे ब्राह्मणो ! सेतुको देखकर मनुष्य सब यज्ञोंका कर्ता कहागयाहै और सब तीर्थों में नहाया हुआहै और उसने सब तपस्या किया

है ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणो ! जो मनुष्य जिस किसीभी मनुष्य से सेतुको जाइये यह कहताहै वह भी उस फलको पाता है अन्य बहुत कहने से क्याहै ॥ २६ ॥ और सेतु में स्नानकरनेवाला मनुष्य सातकोटि कुलोंमे संयुत होकर विष्णुमंदिरको प्राप्त होकर वहीं मुक्त होजाताहै ॥ २७ ॥ और सेतु व रामेश्वरलिंग तथा गंधमादनपर्वत को चिन्तवन करता हुआ मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है यह सत्यहै ॥ २८ ॥ और माता व पिता से लक्षकोटि कुलोंसे संयुत वह तीन कल्पोंतक शिवजीके स्थानमें स्थित होकर वहीं मुक्त होजाताहै ॥ २९ ॥ और सेतु में स्नानकरनेवाला मनुष्य मूषावस्था व वसाकूप और वैतरणीनदी व श्वभक्ष और मूत्रपान नरकको नहीं देखता

तियोब्रूयाद् यंकंवापिनरंद्विजाः ॥ सोपितत्फलमाप्नोति किमन्यैर्बहुभाषणैः ॥ २६ ॥ सेतुस्नानकरोमर्त्यः सप्तकोटिकुलान्वितः ॥ संप्राप्यविष्णुभवनं तत्रैवपरिमुच्यते ॥ २७ ॥ सेतुंरामेश्वरंलिङ्गं गन्धमादनपर्वतम् ॥ चिन्तयन्मनुजःसत्यं सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ २८ ॥ मातृतःपितृतश्चैव लक्षकोटिकुलान्वितः ॥ कल्पत्रयंशम्भुपदे स्थित्वातत्रैवमुच्यते ॥ २९ ॥ मूषावस्थांवसाकूपं तथावैतरणींनदीम् ॥ श्वभक्षंमूत्रपानंच सेतुस्नायीनपश्यति ॥ ३० ॥ तप्तशूलंतप्तशिलां पुरीषह्रदमेवच ॥ तथाशोणितकूपंच सेतुस्नायीनपश्यति ॥ ३१ ॥ शल्मल्यारोहणंरक्तभोजनंकृमिभोजनम् ॥ स्वमांसभोजनंचैव वह्निज्वालाप्रवेशनम् ॥ ३२ ॥ शिलावृष्टिंवह्निवृष्टिं नरकंकालसूत्रकम् ॥ क्षारोदकंचोष्णतोयं नयात्सेत्ववलोककः ॥ ३३ ॥ सेतुस्नायीनरोविप्राः पञ्चपातकवानपि ॥ मातृतःपितृतश्चैव शतकोटिकुलान्वितः ॥ ३४ ॥ कल्पत्रयंविष्णुपदे स्थित्वातत्रैवमुच्यते ॥ अधःशिरःशोषणंच नरकंक्षारसेवनम् ॥ ३५ ॥ पाषाणयन्त्रपीडांच मरु

है ॥ ३० ॥ व सेतु में स्नानकरनेवाला मनुष्य तप्तशूल, तप्तशिला, पुरीषह्रद और रक्तकूपको नहीं देखता है ॥ ३१ ॥ और शल्मल्यारोहण, रक्तभोजन, कृमिभोजन, स्वमांसभोजन और वह्निज्वालाप्रवेशन नरकको नहीं देखता है ॥ ३२ ॥ और सेतुको देखनेवाला मनुष्य शिलावृष्टि, वह्निवृष्टि व कालसूत्र नरक और क्षारोदक व उष्णतोय नरकको नहीं जाता है ॥ ३३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! पांचपातकोंवाला भी सेतुस्नायी मनुष्य मातासे व पितासे सौकोटिकुलों से संयुत होकर ॥ ३४ ॥ तीन कल्प तक विष्णुजी के स्थानमें स्थितहोकर वहीं मुक्त होजाता है और अधःशिर, शोषण व क्षारसेवन नरक ॥ ३५ ॥ व पाषाणयंत्रपीडा और मरुत्प्रपतन, पुरीपलेपन और

क्रकचदारण ॥ ३६ ॥ व पुरीषभोजन, रेतःपान और संधियों में दाहन, अंगारशय्याभ्रमण तथा मुसलमर्दन ॥ ३७ ॥ इन नरकोंको सेतुतीर्थ में नहानेवाला मनुष्य नहीं देखताहै मैं सेतुस्नानको करूंगा यह बुद्धि से चिन्तवनकर ॥ ३८ ॥ जो सौ पद जाता है वह महापातकी भी होकर बहुत काष्ठयन्त्रोंके कर्षण व शस्त्रभेदन नरक को नहीं जाताहै ॥ ३९ ॥ व पतनोत्पतन और गदादण्डनिपीडन तथा गजदंतों से हनन व अनेकभांतिके सांपोंका डसना ॥ ४० ॥ और धूमपान, पाशबन्ध व नाना शूलोंसे पीडन और मुखमें व नासिकामें क्षार जलका सिंचन ॥ ४१ ॥ तथा क्षारांबुपान नरक व तप्तायः,सूचिभक्षण इन नरकोंको पापहीन पुरुष नहीं जाताहै ॥ ४२ ॥

त्प्रपतनंतथा ॥ पुरीषलेपनंचैव तथाक्रकचदारणम् ॥ ३६ ॥ पुरीषभोजनंरेतःपानंसन्धिषुदाहनम् ॥ अङ्गारशय्याभ्रमणं तथामुसलमर्द्दनम् ॥ ३७ ॥ एतानिनरकाण्यद्धा सेतुस्नायीनपश्यति ॥ सेतुस्नानंकरिष्येहमितिबुद्ध्याविचिन्तनम् ॥ ३८ ॥ गच्छेच्छतपदंयस्तु समहापातकोपिसन् ॥ बहूनांकाष्ठयन्त्राणां कर्षणंशस्त्रभेदनम् ॥ ३९ ॥ पतनोत्पतनंचैव गदादण्डनिपीडनम् ॥ गजदन्तैश्चहननं नानाभुजगदंशनम् ॥ ४० ॥ धूमपानंपाशबन्धं नानाशूलनिपीडनम् ॥ मुखेचनासिकायांचक्षारोदकनिषेचनम् ॥ ४१ ॥ क्षाराम्बुपाननरकं तप्तायःसूचिभक्षणम् ॥ एतानिनरकाण्यद्धानयाति गतपातकः ॥ ४२ ॥ क्षाराम्बुपूर्णरन्ध्राणां प्रवेशंमेहभोजनम् ॥ स्नायुच्छेदंस्नायुदाहमस्थिभेदनमेवच ॥ ४३ ॥ श्लेष्मादनंपित्तपानं महातिक्तनिषेवणम् ॥ अत्युष्णतैलपानंचपानंक्षारोदकस्यच ॥ ४४ ॥ काषायोदकपानञ्च तप्तपाषाणभोजनम् ॥ अत्युष्णसिकतास्नानंतथादशनमर्दनम् ॥ ४५ ॥ तप्तायःशयनंचैवसन्तप्ताम्बुनिषेचनम् ॥ सूचिप्रक्षेपणं चैव नेत्रयोर्मुखसन्धिषु ॥ ४६ ॥ शिश्नेसवृषणेचैव ह्ययोभारस्यबन्धनम् ॥ वृक्षाग्रात्पतनंचैव दुर्गन्धिपरिपूरिते ॥ ४७ ॥

और क्षार जलमे पूर्ण छिद्रों में प्रवेश, मेहभोजन, स्नायुच्छेद और स्नायुदाह व अस्थिभेदन ॥ ४३ ॥ और श्लेष्मादन, पित्तपान, महातिक्तनिषेवण व अत्युष्ण तैलपान और क्षारोदक का पान ॥ ४४ ॥ व काषायोदकपान, तप्तपाषाणभोजन,अत्युष्ण सिकतास्नान तथा दशनमर्दन ॥ ४५ ॥ व तप्तलोहशयन और सतप्त-जलनिषेचन, सूचिप्रक्षेपण और नेत्रोंमें व मुख तथा संधियों में ॥ ४६ ॥ और अण्डकोशोंसमेत लिंगमें लोहभार का बंधन व वृक्षके अग्रभागसे गिरना और दुर्गंधि

भे पूरित नरक में ॥ ४७ ॥ व पैनी धारवाले अस्त्रोंकी शय्यापै वीर्यपानादिक इत्यादिक भयंकर नरकों को सेतुतीर्थ में नहानेवाला पुरुष नहीं देखता है ॥ ४८ ॥ और हे द्विजोत्तमो ! सेतुकी बालुवों के मध्यमें जो शयन करता है और उसकी धूलिसेगुंठित (वेष्टित) होता है तो उसके अंगमें जितने धूलिके किनुके लगजाते हैं ॥ ४९ ॥ उतनी ब्रह्महत्याओंका नाश होता है इसमें सन्देह नहींहै और सेतुके मध्यमें स्थित पवनसे जिसका सब अंग छुवाजाताहै ॥ ५० ॥ उसके दशहज़ार मदिरापान उसीक्षण नाश होजाते हैं और क्षौरके कारण जिसके बाल सेतुके मध्यमें वर्तमान होते हैं ॥ ५१ ॥ उसके दशहज़ार गुरुशय्यागमनपाप उसीक्षण नाशहोजाते हैं

तीक्ष्णधारास्त्रशय्यांच रेतःपानादिकंतथा ॥ इत्यादिनरकान्घोरान्सेतुस्नायीनपश्यति ॥ ४८ ॥ सेतुसैकतमध्येयः शेतेतत्पांसुकुण्ठितः ॥ यावन्तःपांसवोलग्नास्तस्याङ्गेविप्रसत्तमाः ॥ ४९ ॥ तावतांब्रह्महत्यानां नाशःस्यान्नात्रसंशयः ॥ सेतुमध्यस्थवातेन यस्याङ्गस्पृश्यतेखिलम् ॥ ५० ॥ सुरापानायुतंतस्य तत्क्षणादेवनश्यति ॥ वर्तन्तेयस्यकेशास्तु वपनात्सेतुमध्यतः ॥ ५१ ॥ गुरुतल्पायुतंतस्य तत्क्षणादेवनश्यति ॥ यस्यास्थिसेतुमध्येतु स्थापितंपुत्रपौत्रकैः ॥ स्वर्णस्तेयायुतंतस्य तत्क्षणादेवनश्यति ॥५२॥ स्मृत्वायंसेतुमध्येतु स्नानंकुर्याद्द्विजोत्तमाः ॥ महापातकिसंसर्गाद्दोषस्तस्यलयंव्रजेत् ॥ ५३ ॥ मार्गभेदीस्वार्थपाकी यतिब्राह्मणदूषकः ॥ अन्त्याशीवेदविक्रीतापञ्चैते ब्रह्मघातकाः ॥५४॥ ब्राह्मणान्यःसमाहूयदास्यामीतिधनादिकम् ॥ पश्चान्नास्तीतियोब्रूते ब्रह्महासोपिकीर्तितः ॥ ५५॥ परिज्ञायततोधर्मास्तस्मैयोद्वेषमाचरेत् ॥ अवजानातिवाविप्रा ब्रह्महासोपिकीर्तितः ॥ ५६ ॥ जलपानार्थमायान्तं

और पुत्रों व पौत्रोंसे जिसकी अस्थि सेतुमें स्थापित कीगईहै उसकी दशहज़ार स्वर्णचोरी उसीक्षण नाशहोजाती हैं ॥ ५२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिसको स्मरणकर मनुष्य सेतु के मध्यमें स्नान करताहै महापातकी के संसर्गसे उसका दोष नाशको प्राप्त होताहै ॥ ५३ ॥ और मार्गोंको तोडनेवाला व अपने लिये भोजन बनानेवाला तथा संन्यासी व ब्राह्मणोंको दूषनेवाला व चांडालका अन्न खानेवाला और वेदोंका बेंचनेवाला ये पांच ब्रह्मघाती हैं ॥ ५४ ॥ और जो ब्राह्मणों को बुलाकर यह कहताहै कि धनादिक को दूंगा व पश्चात् यह कहता है कि नहीं है वह भी ब्रह्मघाती कहागयाहै ॥ ५५ ॥ और जिससे धर्मोंको जानकर उसके लिये जो वैर करता है अथवा जो

अपमान करताहै वह भी ब्रह्मघाती कहागया है ॥ ५६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! जलाशयमें जलको पीनेके लिये आयेहुये गौवोंके यूथको जो मना करताहै वह भी ब्रह्मघाती कहा गयाहै ॥ ५७ ॥ और सेतुको प्राप्त होकर वे सब दोषसमूहोंसे छूटजातेहैं व हे द्विजोत्तमो! ब्रह्मघातियोंके समान जो अन्य प्राणी हैं ॥ ५८ ॥ वे सब सेतुको आ-कर मुक्त होजातेहैं इसमें सन्देह नहींहै और उपासनाको त्यागनेवाला व देवान्नको भोजनकरनेवाला ॥ ५९॥ व मदिरापीनेवाला तथा स्त्रीकासंसर्गी व वेश्याके अन्नको खानेवाला व ज्योतिषी के अन्नको भोजनकरनेवाला तथा जो पतितके अन्नमें तत्पर है ॥ ६० ॥ ये सब कर्मोंसे बाहर कियेहुये मदिराको पीनेवाले कहेगयेहैं और सेतु

गोवृन्दन्तुजलाशये ॥ निवारयतियोविप्रा ब्रह्महासोपिकीर्तितः ॥ ५७ ॥ सेतुमेत्यतुतेसर्वे मुच्यन्तेदोषसञ्चयैः ॥ ब्रह्मघातकतुल्याये सन्तिचान्येद्विजोत्तमाः ॥ ५८ ॥ तेसर्वेसेतुमागत्य मुच्यन्तेनात्रसंशयः ॥ औपासनपरित्यागी देवतान्नस्यभोजकः ॥ ५९ ॥ सुरापयोषित्संसर्गी गणिकान्नाशनस्तथा ॥ गणान्नभोजकश्चैव पतितान्नरतश्चयः ॥ ६० ॥ एते सुरापिनःप्रोक्ताः सर्वकर्मबहिष्कृताः ॥ सेतुस्नानेनमुच्यन्ते तेसर्वेहतकिल्बिषाः ॥ ६१ ॥ सुरापतुल्यायेचान्ये मुच्यन्ते सेतुमज्जनात ॥ कन्दमूलफलानाञ्च कस्तूरीपट्टवाससाम् ॥ ६२ ॥ पयश्चन्दनकर्पूरक्रमुकाणांतथैवच ॥ मध्वाज्यताम्रकांस्यानां रुद्राक्षाणांतथैवच ॥ ६३ ॥ चोरकास्तुपरिज्ञेया सुवर्णस्तेयिनस्सदा ॥ तेसेतुक्षेत्रमागत्य मुच्यन्तेनात्रसंशयः ॥ ६४ ॥ अन्येचस्तेयिनःसर्वे सेतुस्नानेनवैद्विजाः ॥ मुच्यन्तेसर्वपापेभ्यो नात्रकार्याविचारणा ॥ ६५ ॥ भगिनींपुत्रभार्याञ्च तथैवचरजस्वलाम् ॥ भ्रातृभार्यांमित्रभार्यां मद्यपांचपरस्त्रियम् ॥ ६६ ॥ हीनस्त्रियंचविश्वस्तां योभिग

के स्नानसे नष्टपातकोंवाले वे सब मुक्त होजातेहैं ॥ ६१ ॥ और जो अन्य मनुष्य मदिरापीनेवाले के बराबर हैं वे सेतु में स्नानसे मुक्तहोजाते हैं व कन्द, मूल, फल, कस्तूरी व रेशमीवस्त्रों के ॥ ६२ ॥ तथा दूध, चन्दन, कपूर व सुपारी और शहद, घी, ताम्र, कांस व रुद्राक्षों के ॥ ६३ ॥ चुरानेवाले सदैव सुवर्णचोर जानने योग्य हैं और वे सेतुक्षेत्रको आकर मुक्त होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६४ ॥ व हे ब्राह्मणो ! अन्य सब चोर सेतुके स्नान से सब पापों से छूटजाते हैं इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ६५ ॥ और बहन व पतोहू, रजस्वला, भाईकी स्त्री, मित्रकी स्त्री व मदिरापीनेवाली तथा पराई स्त्री ॥ ६६ ॥ व हीनजातिकी स्त्री और विश्वास कियेहुई

च्छतिरागतः ॥ गुरुतल्पीसविज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ ६७ ॥ एतेचान्येचयेसन्ति गुरुतल्पगतुल्यकाः ॥ तेसर्वेत्र विमुच्यन्ते सेतुस्नानेनवैद्विजाः ॥ ६८ ॥ एतेसंसर्गिणोविप्रा येचान्येसन्तिपापिनः ॥ सेतुस्नानेनमहता तेपिमोक्षमवाप्नुयुः ॥ ६९ ॥ यागंविनादेवलोके घृताचीमेनकादिभिः ॥ संभोगकामिनोविप्राः स्नातुंसेतावघापहे ॥ ७० ॥ अनिषेव्यरविंवह्निमनुपास्यपरान्सुरान् ॥ शुभकामीजनःसेतौ कुर्यात्स्नानंसभक्तिकम् ॥ ७१ ॥ तिलान्भूमिंसुवर्णंच धान्यं तण्डुलमेवच ॥ अदत्त्वेच्छन्तियेस्वर्गं स्नान्तुसेतौतुतेद्विजाः ॥ ७२ ॥ उपवासैर्व्रतैःकृत्स्नैरसंताप्यनिजांतनुम् ॥ स्वर्गाभिलाषिणःपुंसः स्नान्तुसेतौविमुक्तिदे ॥ ७३ ॥ सेतुस्नानंमोक्षदंच मनःशुद्धिप्रदंतथा ॥ जपाद्धोमात्तथादानाद्यागाच्चतपसोपिच ॥ ७४ ॥ सेतुस्नानंविशिष्टंहि पुराणेपरिपठ्यते ॥ अकामनाकृतंस्नानं सेतौपापविनाशने ॥ ७५ ॥ अपुनर्भवदंप्रोक्तं सत्यमुक्तंद्विजोत्तमाः ॥ यःसम्पदंसमुद्दिश्य स्नातिसेतौनरोमुदा ॥ ७६ ॥ ससम्पदमवाप्नोति विपुलां

स्त्रीके समीप जो स्नेह से जाताहै सब कर्मों मे बाहर कियाहुआ वह गुरुकी शय्यापै बैठनेवाला जानने योग्य है ॥ ६७ ॥ हे ब्राह्मणो ! ये और अन्य जो गुरुकी शय्यापै जानेवालेके बराबरहैं वे सब यहां सेतुस्नानसे मुक्त होजातेहैं ॥ ६८ ॥ हे ब्राह्मणो ! ये और जो संसर्गी अन्य पातकी हैं वे भी बडेभारी सेतुस्नान से मोक्षको पातेहैं ॥ ६९ ॥ हे ब्राह्मणो ! देवलोक में यज्ञके विना घृताची व मेनकादिकों से रतिकी कामनावाले लोग पापनाशक सेतुमें स्नानकेलिये जातेहैं ॥ ७० ॥ सूर्य व अग्निको न सेवनकर और अन्य देवताओंकी न उपासनाकर शुभको चाहनेवाला मनुष्य भक्तिसमेत सेतु में स्नान करै ॥ ७१ ॥ हे द्विजो ! तिल, भूमि, सुवर्ण, धान्य व चावलको न देकर जो स्वर्गको चाहते हैं वे सेतु में नहावै ॥ ७२ ॥ और समस्त उपासों व व्रतों से अपने शरीर को सन्ताप कराकर स्वर्गको चाहनेवाले पुरुष मुक्तिदायक सेतुमें नहावैं ॥ ७३ ॥ सेतुमें स्नान मोक्षको देनेवाला तथा मनकी शुद्धिका दायकहै और जप, होम तथा दान, यज्ञ व तपस्यासे भी ॥ ७४ ॥ सेतुस्नान पुराणों में उत्तम पढ़ा जाताहै और पापनाशक सेतुमे अकामनामे कियाहुआ स्नान ॥ ७५ ॥ अपुनर्जन्मको देनेवाला कहागयाहै हे द्विजोत्तम ! यह सत्य कहागया और जो नर

सम्पत्तिको उद्देशकर सेतु में हर्ष से नहाता है ॥ ७६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वह बहुत लक्ष्मीको पाता है और यदि पवित्रता के लिये सेतुमें नहाता है तो शुद्धिको पाता है ॥ ७७ ॥ और यदि स्वर्ग में रतिके लिये नहाता है तो कुटुम्बियोंसमेत स्वर्गलोक में मनुष्य अप्सराओं से रतिको प्राप्त होताहै ॥ ७८ ॥ और यदि मुक्तिदायक सेतुमें मुक्ति के लिये मनुष्य नहाताहै तो फिर आवृत्ति से रहित मुक्तिको पाताहै ॥ ७९ ॥ सेतुस्नान से धर्म होताहै और सेतुस्नान से पाप नाश होताहै व हे द्विजोत्तमो ! सेतु में स्नान सब कामनाओं के फलको देनेवाला है ॥ ८० ॥ और सब व्रतोंसे अधिक पुण्य होता है व सब यज्ञोंसे उत्तम कहागया और सब योगोंसे अधिक कहा

द्विजपुङ्गवाः ॥ शुद्ध्यर्थंस्नातिचेत्सेतौ तदाशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ ७७ ॥ रत्यर्थंयदिचस्नायादप्सरोभिर्नरोदिवि ॥ तदा रतिमवाप्नोति स्वर्गलोकेपरीजनैः ॥ ७८ ॥ मुक्त्यर्थंयदिचस्नायात्सेतौमुक्तिप्रदायिनि ॥ तदामुक्तिमवाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जिताम् ॥ ७९ ॥ सेतुस्नानेनधर्मःस्यात्सेतुस्नानादघक्षयः ॥ सेतुस्नानंद्विजश्रेष्ठाः सर्वकामफलप्रदम् ॥ ८० ॥ सर्वव्रताधिकंपुण्यं सर्वयज्ञोत्तरंस्मृतम् ॥ सर्वयोगाधिकंप्रोक्तं सर्वतीर्थाधिकंस्मृतम् ॥ ८१ ॥ इन्द्रादिलोकभोगेषु रागोयेषां प्रवर्त्तते ॥ स्नातव्यंतैर्द्विजश्रेष्ठाः सेतौरामकृतेसकृत ॥ ८२ ॥ ब्रह्मलोकेचवैकुण्ठे कैलासेपिशिवालये ॥ रन्तुमिच्छाभवेद्येषां तेसेतौस्नान्तुसादरम् ॥ ८३ ॥ आयुरारोग्यसम्पत्तिमतिरूपगुणाढ्यताम् ॥ चतुर्णामपिवेदानां साङ्गानांपारगामिनाम् ॥ ८४ ॥ सर्वशास्त्राधिगन्तृत्वं सर्वमन्त्रेष्वभिज्ञताम् ॥ समुद्दिश्यतुयःस्नायात्सेतौसर्वार्थसिद्धिदे ॥ ८५ ॥ तत्तत्सिद्धिमवाप्नोति सत्यंस्यान्नात्रसंशयः ॥ दारिद्र्यान्नरकाद्येच बिभ्यन्तिमनुजाभुवि ॥ ८६ ॥ स्नानंकुर्वन्तुतेसर्वे राम

गया है व सब तीर्थों से अधिक कहागया है ॥ ८१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इन्द्रादिकलोकोंके भोगों में जिनका स्नेह वर्तमान होवै उनको रामजी से रचेहुये सेतुतीर्थ में एकबार स्नान करनाचाहिये ॥ ८२ ॥ और ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ व शिवजी के स्थान कैलास में जिनके रमण करनेकी इच्छा होवै वे सेतुतीर्थ में आदरसमेत स्नान करैं ॥ ८३ ॥ और आयुर्बल, निरोगता, लक्ष्मी, बहुतरूप व गुणाढ्यता और पारजानेवाले अंगोंसमेत चारोंवेदों के भी ॥ ८४ ॥ सब शास्त्रों की अधिगमनता व सब मन्त्रों में अभिज्ञता को उद्देशकर जो सब अर्थों के सिद्धिदायक सेतुमें नहाताहै ॥ ८५ ॥ वह उस उस सिद्धिको प्राप्त होताहै यह सत्यहै इसमें सन्देह नहींहै और जो मनुष्य

पृथ्वी में दारिद्र व नरक से डरतेहैं ॥ ८६ ॥ वे सब मुक्तिदायक रामसेतु में स्नानकरैं और श्रद्धासहित व श्रद्धारहित भी मनुष्य ॥ ८७ ॥ सेतुमें स्नानकर इसलोक व परलोक में दुःखका भागी नहीं होता है और सेतुस्नान से सबोंका पापसमूह नाश होजाताहै ॥ ८८ ॥ और धर्मकी राशि बढ़तीहै जैसे कि शुक्लपक्ष में चन्द्रमा बढ़ता है जैसे अनेकभांति के भी रत्न समुद्रमें बढ़ते हैं ॥ ८९ ॥ वैसेही हे ब्राह्मणो ! सेतु में स्नान से पुण्य बढ़ते हैं व जैसे संसार में कामधेनु सब कामनाओं को देतीहै ॥ ९० ॥ व जैसे चिन्तामणि पुरुषों के मनोरथोंको देती है और जैसे कल्पवृक्ष पुरुषोंके मनोरथ को देता है ॥ ९१ ॥ वैसेही सेतुस्नान मनुष्यों के सब मनोरथों को देता

सेतौविमुक्तिदे ॥ श्रद्धयासहितोमर्त्यः श्रद्धयारहितोपिवा ॥ ८७ ॥ इहलोकेपरत्रापि सेतुस्नायीनदुःखभाक् ॥ सेतुस्नाने नसर्वेषां नश्यतेपापसञ्चयः ॥ ८८ ॥ वर्द्धतेधर्मराशिश्च शुक्लपक्षेयथाशशी ॥ यथारत्नानिवर्द्धन्ते समुद्रेविविधान्यपि ॥ ८९ ॥ तथापुण्यानिवर्द्धन्ते सेतुस्नानेनवैद्विजाः ॥ कामधेनुर्यथालोके सर्वान्कामान्प्रयच्छति ॥ ९० ॥ चिन्तामणिर्यथादद्यात्पुरुषाणांमनोरथान् ॥ यथामरतरुर्दद्यात्पुरुषाणामभीप्सितम् ॥ ९१ ॥ सेतुस्नानंतथानृणां सर्वाभीष्टान्प्रदास्यति ॥ अशक्तःसेतुयात्रायां दारिद्र्येणचमानवः ॥ ९२ ॥ याचयित्वाधनंशिष्टात् सेतौस्नानंसमाचरेत् ॥ सेतुस्नानसमंपुण्यं तत्रदातासमश्नुते ॥ ९३ ॥ तथाप्रतिगृहीतापि प्राप्नोत्यविकलंफलम् ॥ सेतुयात्रांसमुद्दिश्य गृह्णीयाद्ब्राह्मणाद्धनम् ॥ ९४ ॥ क्षत्रियादपिगृह्णीयान्नदद्युर्ब्राह्मणायदि ॥ वैश्याद्वाप्रतिगृह्णीयान्नप्रयच्छन्तिचेन्नृपाः ॥ ९५ ॥ शूद्रान्नप्रतिगृह्णीयात्कथञ्चिदपिमानवः ॥ यःसेतुंगच्छतःपुंसो धनंवाधान्यमेववा ॥ ९६ ॥ दत्त्वावस्त्रादिकंवापि प्रवर्तयति

है और दरिद्रताके कारण जो मनुष्य सेतुयात्रा में असमर्थ होवै ॥ ९२ ॥ वह उत्तमजनसे धन को मांगकर सेतु में स्नानकरै और उसविषय में दाता सेतुस्नान के समान पुण्य को भोगताहै ॥ ९३ ॥ वैसेही दानदेनेवाला भी उत्तम फलको प्राप्तहोता है सेतुयात्रा को उद्देशकर ब्राह्मण से धन को लेवै ॥ ९४ ॥ और यदि ब्राह्मण न देवै तो क्षत्रिय से भी ग्रहण करै व यदि क्षत्रिय न देवैं तो वैश्य से भी धनको लेवै ॥ ९५ ॥ और मनुष्य किसीतरह से भी शूद्रसे न लेवै और जो मनुष्य सेतुको जाते

हुये पुरुष को धन या धान्य ॥ ९६ ॥ और वस्त्रादिक को भी देकर प्रवृत्त कराताहै वह अश्वमेधादिक यज्ञों के अति उत्तम फलको प्राप्त होता है ॥ ९७ ॥ और चारों वेदोंके भी पारायण फलको पाताहै व तुलापुरुषमुख्य के दानके फलको पाता है ॥ ९८ ॥ और ब्रह्महत्यादिक पापोंका नाश होताहै इसमें सन्देह नहीं है बहुत कहने से क्या है वह सब कामनाओं को भोगता है ॥ ९९ ॥ इसीप्रकार दान लेनेवाला भी उसी के समान फलको भोगता है व सेतुयात्रा के लिये मागतेहुये मनुष्यको दान लेनेका पाप नहीं होताहै ॥ १०० ॥ और सेतु को जाइये मैं तुमको धन दूंगा ऐसा लुभाकर पश्चात् जो नहीं है ऐसा कहताहै उसको विद्वान्लोग ब्रह्मघाती कहते हैं ॥ १ ॥

मानवः ॥ सोऽश्वमेधादियज्ञानां फलमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ९७ ॥ चतुर्णामपिवेदानां पारायणफलंलभेत् ॥ तुलापुरुषमुख्यस्य दानस्यफलमश्नुते ॥ ९८ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां नाशःस्यान्नात्रसंशयः ॥ बहुनाकिंप्रलापेन सर्वान्कामान्समश्नुते ॥ ९९ ॥ एवंप्रतिगृहीतापि तत्तुल्यफलमश्नुते ॥ याचतःसेतुयात्रार्थं नप्रतिग्रहकल्मषम् ॥ १०० ॥ सेतुंगच्छधनंतेहं दास्यामीतिप्रलोभ्ययः ॥ पश्चान्नास्तीतिचब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ १ ॥ गमिष्येसेतुमितिवै योगृहीत्वाधनंनरः ॥ नयातिसेतुंलोभेन तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ २ ॥ लोभेनसेतुयात्रार्थं सम्पन्नोपिदरिद्रवत् ॥ मानवोयदियाचेत तमाहुःस्तेयिनम्बुधाः ॥ ३ ॥ येनकेनाप्युपायेन सेतुंगच्छेन्नरोमुदा ॥ अशक्तोदक्षिणांदत्त्वा गमयेद्वाद्विजोत्तमम् ॥ ४ ॥ याचित्वायज्ञकरणे यथादोषोनविद्यते ॥ याचित्वासेतुयात्रायां तथादोषोनविद्यते ॥ ५ ॥ याचित्वाप्यन्यतोद्रव्यं सेतुस्नानेप्रवर्तयेत् ॥ ६ ॥ ज्ञानेनमोक्षमभियान्तिकृतेयुगेतु त्रेतायुगेयजनमेवविमुक्तिदायि ॥ श्रेष्ठंतथान्ययुगयोरपिदानमाहुः सर्वत्र

और मैं सेतुको जाऊंगा इसकारण जो मनुष्य धनको लेकर लोभसे सेतुको नहीं जाता है उसको ब्रह्मघाती कहते हैं ॥ २ ॥ और सम्पन्न भी जो मनुष्य लोभ से सेतुयात्रा के लिये दरिद्रकी नाईं यदि मागै तो उसको विद्वान् चोर कहतेहैं ॥ ३ ॥ और जिस किसी भी उपायसे मनुष्य हर्ष से सेतुको जावै व अशक्त मनुष्य दक्षिणा को देकर द्विजोत्तम को यात्रा करावै ॥ ४ ॥ जैसे मागकर यज्ञ करने में दोष नहीं होता है वैसेही मागकर सेतुकी यात्रामें दोष नहीं होताहै ॥ ५ ॥ और अन्य से द्रव्य को मांगकर सेतु के स्नान में प्रवृत्त करावै ॥ ६ ॥ सतयुग में मनुष्य ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होते हैं और त्रेतायुग में यज्ञ करना ही मुक्तिका देनेवाला है वैसेही अन्य

गोंमें याने द्वापर व कलियुग में दानको श्रेष्ठ कहते हैं आर सेतुमें स्नान सब युगों में मनुष्यों को श्रेष्ठ है ॥ १०७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्र रचितायांभाषाटीकायाप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । नल वानरसे रामजी जिमि बँधवायो सेतु। सो दूजे अध्यायमें कह्यो चरित सुखहेतु ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महाभाग, सूतजी ! सहजकर्मी श्रीरामजीने दियों के पति गहरे समुद्र में किसप्रकार सेतु को बाधा है ॥ १ ॥ व हे पौराणिकोत्तम ! गंधमादनपर्वत पै और सेतुमें कितने तीर्थ हैं इसको श्रद्धावान् हमलोगोंसे

सेतवभिषवोहिवरोनराणाम् ॥ १०७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ❋ ॥

ऋषय ऊचुः ॥ कथंसूतमहाभाग रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ सेतुर्बद्धोनदीनाथे ह्यगाधेवरुणालये ॥ १ ॥ सेतौचकतितीर्थानि गन्धमादनपर्वते ॥ एतन्नःश्रद्दधानानां ब्रूहिपौराणिकोत्तम ॥ २ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ रामेणहियथासेतु निबद्धो वरुणालये ॥ तदहंसंप्रवक्ष्यामि युष्माकंमुनिपुङ्गवाः ॥ ३ ॥ आज्ञयाहिपितूरामो न्यवसद्दण्डकानने ॥ सीतालक्ष्मणसंयुक्तः पञ्चवट्यांसमाहितः ॥ ४ ॥ तस्मिन्निवसतस्तस्य राघवस्यमहात्मनः ॥ रावणेनहृताभार्या मारीचच्छद्मनाद्विजाः ॥ ५ ॥ मार्गमाणोवनेभार्यां रामोदशरथात्मजः ॥ पम्पातीरेजगामासौ शोकमोहसमन्वितः ॥ ६ ॥ दृष्टवान्वानरंतत्र कञ्चिद्दशरथात्मजः ॥ वानरेणाथपृष्टोयं कोभवानितिराघवः ॥ ७ ॥ आदितःस्वस्यवृत्तान्तं तस्मैप्रोवाचत

कहिये ॥ २ ॥ श्री सूतजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठो ! जिसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीने समुद्र में सेतुको बांधा है उसको मैं तुमलोगों से कहताहूं ॥ ३ ॥ कि पिताकी आज्ञा से सीतालक्ष्मणसमेत श्रीरामचन्द्रजीने सावधान होकर दंडकवन में पंचवटी में निवास किया है ॥ ४ ॥ व हे ब्राह्मणो ! उसवनमें निवास करतेहुये उनमहात्मा श्रीरामजीकी स्त्री जानकीजी को मारीच के छलसे रावण ने हरलिया ॥ ५ ॥ और वन में स्त्री को ढूंढतेहुये ये दशरथ के पुत्र श्रीरामजी शोक व मोहस मयुत होकर पंपासरके किनारे गये ॥ ६ ॥ और दशरथसूनु श्रीरामचन्द्रजीने वहां किसी वानरको देखा इसके अनन्तर वानर ने श्रीरामजीसे पूछा कि आप कौनहैं ॥ ७ ॥ श्रीरामजी

ने उसवानर से अपने वृत्तान्त को पहिले से यथार्थ कहा इसके उपरान्त श्रीरामजी ने वानर से पूंछा कि आप कौन हो ॥ ८ ॥ उसने भी महात्मा रामचन्द्रजी से बतलाया कि मैं सुग्रीवका मंत्री हनूमान्नामक वानर हूं ॥ ९ ॥ और तुमदोनों से मित्रता को चाहतेहुये उससे पठायाहुआ मैं आयाहूं इसलिये तुमदोनों सुग्रीव के समीप शीघ्रही आइये तुमदोनों का कल्याण होवै ॥ १० ॥ हे मुनीश्वरो ! वैसाही होवै यह कहकर उन श्रीरामजीने भी उसवानर के साथ सुग्रीव के समीप आकर अग्निको साक्षी करके मित्रता किया ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर श्रीरामजीने उनसुग्रीवसे वालि के मारने की प्रतिज्ञा किया व हे ब्राह्मणो ! सुग्रीव ने भी जानकीजी के

त्वतः ॥ अथराघवसम्पृष्टो वानरःकोभवानिति ॥ ८ ॥ सोपिविज्ञापयामास राघवायमहात्मने ॥ अहंसुग्रीवसचिवो हनूमान्नामवानरः ॥ ९ ॥ तेनचप्रेरितोभ्यागां युवाभ्यांसख्यमिच्छता ॥ आगच्छतंतद्भद्रंवां सुग्रीवान्तिकमाशुवै ॥१०॥ तथास्त्वितिसरामोपि तेनसाकंमुनीश्वराः ॥ सुग्रीवान्तिकमागत्य सख्यंचक्रेग्निसाक्षिकः ॥ ११ ॥ प्रतिजज्ञेथरामोपि तस्मैवालिवधम्प्रति ॥ सुग्रीवश्चापिवैदेह्याः पुनरानयनंद्विजाः ॥ १२ ॥ इत्येवंसमयंकृत्वा विश्वस्यचपरस्परम् ॥ मुदापरमयायुक्तौ नरेश्वरकपीश्वरौ ॥ १३ ॥ आमातेब्राह्मणश्रेष्ठा ऋष्यमूकगिरौतथा ॥ सुग्रीवप्रत्ययार्थंच दुन्दुभेःकायमाशुवै ॥ १४ ॥ पादाङ्गुष्ठेनचिक्षेप राघवोवहुयोजनम् ॥ सप्ततालाविनिर्भिन्ना राघवेणमहात्मना ॥ १५ ॥ ततःप्रीतमनावीरः सुग्रीवोराममब्रवीत ॥ इन्द्रादिदेवताभ्योपि नास्तिराघवमेभयम् ॥ १६ ॥ भवान्मित्रंमयालब्धं यस्मादतिपराक्रमः ॥ अहंलङ्केश्वरंहत्वा भार्यामानयितास्मिते ॥ १७ ॥ ततःसुग्रीवसहितो रामचन्द्रोमहावलः ॥ सलक्ष्मणो

फिर लानेकी प्रतिज्ञा किया ॥ १२ ॥ यही प्रतिज्ञाकर परस्पर विश्वासकर नरेश (श्रीरामचन्द्र) और कपीश (सुग्रीव) जी बडे हर्षमे संयुत हुये ॥ १३ ॥ व हे ऋषिश्रेष्ठो ! ऋष्यमूकपर्वत पै वे दोनों स्थित हुये और सुग्रीव के विश्वासके लिये दुंदुभिके शरीर को शीघ्रही ॥ १४ ॥ श्रीरामजीने पावके अंगूठेसे बहुत योजन फेंक दिया और महात्मा राघवजी ने सातताल वृक्षोंको भेदन किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर प्रसन्नमनवाले वीर सुग्रीवजीने श्रीरामजी से कहा कि हे राघव ! मुझको इन्द्रादिक देवताओं से भी डर नहीं है ॥ १६ ॥ जिसलिये मैंने बड़े पराक्रमी आपको मित्र पायाहै उसकारण मैं लंकेश रावणको मारकर तुम्हारी स्त्री को लाऊंगा ॥ १७ ॥ तदनन्तर

सुग्रीवसमेत व लक्ष्मणसहित महाबलवान् रामचन्द्रजी बालि से पालित किष्किन्धापुरी को शीघ्रही गये ॥ १८ ॥ तदनन्तर सुग्रीव बालिके आनेकी इच्छा से गर्जे और अपने छोटे भाई क गर्जनको न सहतेहुये उसबालिने ॥ १९ ॥ रनिवाससे निकलकर छोटे भाई से उसने युद्ध किया और बालि के घूंसा के प्रहारसे मारेहुये बहुत ही विकल ॥ २० ॥ सुग्रीव शीघ्रही वहां निकल गये जहां कि महाबलवान् रामजीथे तदनन्तर महाभुज श्रीरामजीने सुग्रीवके गलेमें ॥ २१ ॥ लतारूपी चिह्नको बांधकर उससमय युद्धके लिये प्रेरणा किया और फिर सुग्रीव ने गर्जनमे बालिको बुलाकर ॥ २२ ॥ श्रीरामजी की प्रेरणासे उसबालि के साथ बाहुयुद्ध किया तदनन्तर

ययौतूर्णं किष्किन्धाम्बालिपालिताम् ॥१८॥ ततोजगर्जसुग्रीवो बाल्यागमनकाङ्क्षया ॥ अमृष्यमाणोबालीच गर्जितंस्वानुजस्यवै ॥ १९ ॥ अन्तःपुराद्विनिष्क्रम्य युयुधेवरजेनसः ॥ बालिमुष्टिप्रहारेण ताडितोभृशविह्वलः ॥ २० ॥ सुग्रीवोनिर्गतस्तूर्णं यत्ररामोमहाबलः ॥ ततोरामोमहाबाहुस्सुग्रीवस्यशिरोधरे ॥ २१ ॥ लतामाबद्ध्यचिह्नन्तु युद्धायाचोदयत्तदा ॥ गर्जितेनसमाहूय सुग्रीवोबालिनंपुनः ॥ २२ ॥ रामप्रेरणयातेन बाहुयुद्धमथाकरोत् ॥ ततोबालिनमाजघ्ने शरेणैकेनराघवः ॥ २३ ॥ हतेबालिनिसुग्रीवः किष्किन्धाम्प्रत्यपद्यत ॥ ततोवर्षास्वतीतासु सुग्रीवोवानराधिपः ॥२४॥ सीतामानयितुंतूर्णं वानराणांमहाचमूम् ॥ समादायसमागच्छदन्तिकंनृपपुत्रयोः ॥ २५ ॥ प्रस्थापयामासकपीन् सीतान्वेषणकाङ्क्षया ॥ विदितायान्तुवैदेह्यां लङ्कायांवायुसूनुना ॥ २६ ॥ दत्तेचूडामणौचापि राघवोहर्षशोकवान् ॥ सुग्रीवेणानुजेनापि वायुपुत्रेणधीमता ॥ २७ ॥ तथान्यैःकपिभिश्चैव जाम्बवन्नलमुख्यकैः ॥ अन्वीयमानोरामोसौ मुहूर्त्ते

श्रीरामचन्द्रजीने एकबाण से बालिको मारा ॥ २३ ॥ और बालिके मरजानेपर सुग्रीव किष्किन्धाको प्राप्तहुये तदनन्तर वर्षा बीतनेपर वानरोंके स्वामी सुग्रीवजी ॥ २४ ॥ जानकीजी को लाने के लिये वानरो की बडीभारी सेनाको लेकर राजपुत्रों के समीप आये ॥ २५ ॥ और जानकीजी के ढूढ़नेकी इच्छा से वानरों को पठाया व जब हनुमान्जी ने लंकापुरी में जानकीजी को जाना ॥ २६ ॥ तब चूड़ामणि के भी देने पर श्रीरामजी हर्ष व शोकवान् हुये और सुग्रीव व छोटे भाई लक्ष्मण तथा बुद्धिमान्

पवनकुमार ॥ २७ ॥ हे ब्राह्मणो ! जाम्बवान् और नलादिक अन्य वानरोंसे पीछे गमन कियेजातेहुये ये रामजी अभिजित मुहूर्त में ॥ २८ ॥ अनेकभांतिके देशोंको नांघ-
कर महेन्द्रपर्वतपै गये तदनन्तर चक्रतीर्थको जाकर उससमय उन्होंने निवास किया ॥ २९ ॥ और वहींपर वे राक्षसेन्द्र रावण के भाई धर्मात्मा विभीषणजी चार मंत्रियों
समेत आये ॥ ३० ॥ और उदारमनवाले श्रीरामचन्द्रजीने उन विभीषणको स्वागत से ग्रहण किया व सुग्रीवको यह शंका हुई कि यह चर (भेदिहा दूत) है ॥ ३१ ॥
और श्रीराघवजी ने उसविभीषण की चेष्टाओं से व भलीभांति उन उत्तम चरित्रों से इनको अदुष्टही जानकर तदनन्तर पूजन किया ॥ ३२ ॥ व सब राक्षसोंके राज्य

भिजितिद्विजाः ॥ २८ ॥ विलङ्घ्यविविधान्देशान्महेन्द्रंपर्वतंययौ ॥ चक्रतीर्थंततोगत्वा निवासमकरोत्तदा ॥ २९ ॥
तत्रैवतुसधर्मात्मा समागच्छद्विभीषणः ॥ भ्रातावैराक्षसेन्द्रस्य चतुर्भिःसचिवैःसह ॥ ३० ॥ प्रतिजग्राहरामस्तं स्वाग
तेनमहामनाः ॥ सुग्रीवस्यतुशङ्काभूत्प्रणिधिःस्यादयन्त्विति ॥ ३१ ॥ राघवस्तस्यचेष्टाभिः सम्यक्सुचरितैर्हितैः ॥ अ
दुष्टमेनंदृष्ट्वैव ततएनमपूजयत् ॥ ३२ ॥ सर्वराक्षसराज्येतमभ्यषिञ्चद्विभीषणम् ॥ चक्रेचमन्त्रिप्रवरं सदृशंरविसूनु
ना ॥ ३३ ॥ चक्रतीर्थंसमासाद्य निवसद्रघुनन्दनः ॥ चिन्तयन्राघवःश्रीमान्सुग्रीवादीनभाषत ॥ ३४ ॥ मध्येवानरमु
ख्यानां प्राप्तकालमिदंवचः ॥ उपायःकोनुभवतामेतत्सागरलङ्घने ॥ ३५ ॥ इयंचमहतीसेना सागरश्चापिदुस्तरः ॥
अम्भोराशिरयंनीलश्चञ्चलोर्म्मिसमाकुलः ॥ ३६ ॥ उद्यन्मत्स्योमहानक्रशङ्खशुक्तिसमाकुलः ॥ क्वचिदौर्वानलाक्रा
न्तः फेनवानतिभीषणः ॥ ३७ ॥ प्रकृष्टपवनाकृष्टनीलमेघसमन्वितः ॥ प्रलयाम्भोधरारावः सारवाननिलोद्धतः ॥३८॥

पै उन विभीषण को अभिषेक किया और सूर्यपुत्र सुग्रीवके समान श्रेष्ठमन्त्री किया ॥ ३३ ॥ व चक्रतीर्थ को प्राप्त होकर रघुनन्दनजी ने निवास किया और विचारतेहुये
श्रीमान् राघवजीने मुख्य वानरोंके मध्यमें प्राप्त समयवाले इसवचनको सुग्रीवादिकों से कहा कि इससमुद्र के नाघने में आपलोगों का क्या उपाय है ॥ ३४ । ३५ ॥
और यह बड़ीभारी सेना व समुद्र भी दुस्तर है और चंचल लहरियों से संयुत यहसमुद्र है और नील वानर है ॥ ३६ ॥ व उठतेहुये मत्स्य और महामकर व शंखों
तथा शुक्तियों से संयुत समुद्र कहीं वड़वानल से आक्रान्त व फेनवान् और बहुत भयंकर है ॥ ३७ ॥ और बड़ेभागी पवनसे खींचेहुये नील मेघोंसे संयुत तथा प्रलय

मेघके समान शब्दवान् और सारांशवान् व पवन से उद्धत है ॥ ३८ ॥ बड़े पराक्रमी वानरों की सेनाओं से घिरेहुये हम सब किसप्रकार क्षोभरहित वरुणालय समुद्रको तरेंगे ॥ ३९ ॥ व उपायों से उसप्रकार चलैं कि जिसप्रकार नदनदियों के स्वामी समुद्र को नांघैं और सेनासमेत हम सब सौ योजन चौड़े व मन से भी दुरासद समुद्र को किसप्रकार यकायक उतरैं इसकारण बड़े विघ्न हैं और जानकीजी कैसे मिलने योग्य हैं ॥ ४० । ४१ ॥ आज आश्रयरहित हमलोग कष्ट से अधिक क्लेश को प्राप्तहुये क्योंकि महापवनवाले व आश्रयरहित महाजलवाले समुद्र में ॥ ४२ ॥ वानरों के उतरने के लिये हम किसउपाय को करें राज्यसे छूटगये व वनको प्राप्त

कथंसागरमक्षोभ्यन्तरामोवरुणालयम् ॥ सैन्यैःपरिवृताःसर्वे वानराणांमहौजसाम् ॥ ३९ ॥ उपायैरधिगच्छामो यथानदनदीपतिम् ॥ कथंतरामःसहसा ससैन्यावरुणालयम् ॥ ४० ॥ शतयोजनमायातं मनसापिदुरासदम् ॥ अतोनुविघ्नाबहवः कथंप्राप्याचमैथिली ॥ ४१ ॥ कष्टात्कष्टतरंप्राप्ता वयमद्यनिराश्रयाः ॥ महाजलेमहावाते समुद्रेहिनिराश्रये ॥ ४२ ॥ उपायंकंविधास्यामस्तरणार्थंवनौकसाम् ॥ राज्याद्भ्रष्टावनंप्राप्ता हृतासीतामृतःपिता ॥ ४३ ॥ इतोपिदुःसहंदुःखं यत्सागरविलङ्घनम् ॥ धिग्धिग्गर्जितमम्भोधे धिग्धिक्तांवारिराशिताम् ॥ ४४ ॥ कथंतद्वचनंमिथ्या महर्षेःकुम्भजन्मनः ॥ हत्वात्वंरावणंपापं पवित्रेगन्धमादने ॥ ४५ ॥ पापोपशमनायाशु गच्छस्वेतियदीरितम् ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इतिरामवचःश्रुत्वा सुग्रीवप्रमुखास्तदा ॥ ४६ ॥ ऊचुःप्राञ्जलयःसर्वे राघवंतंमहाबलम् ॥ नौभिरेनन्तरिष्यामः प्लवैश्चविविधैरिति ॥ ४७ ॥ मध्येवानरकोटीनां ततोवाचविभीषणः ॥ समुद्रंराघवोराजा शरणंगन्तु

हुये और सीता हरी गई व पिताजी मरगये ॥ ४३ ॥ और जो समुद्र का नांघना है वह इससे भी दुःसह दुःख है हे समुद्र ! गर्जने को धिक्कार है २ और उस जलकी राशि होने को धिक्कार है धिक्कार है ॥ ४४ ॥ महर्षि अगस्त्यजी का वचन कैसे व्यर्थ होगा तुम पापी रावणको मारकर पवित्र गंधमादन पै ॥ ४५ ॥ पापके नाशके लिये शीघ्रही जावो जो कि कहागया है श्रीसूतजी बोले कि इसप्रकार श्रीरामजी के वचन को सुनकर उससमय सुग्रीवादिक ॥ ४६ ॥ सबों ने हाथों को जोड़कर उन महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजी से यह कहा कि हमलोग इससमुद्रको अनेकप्रकारकी नौकाओं से उतरजावैंगे ॥ ४७ ॥ तदनन्तर करोड़ों वानरों के बीच में विभीषणजी

बोले कि राजा रामचन्द्रजी समुद्र के शरण जाने योग्यहैं ॥ ४८ ॥ यह वरुणालय समुद्र सगरवंशियों से खोदागया है इसकारण समुद्र उनके कुटुम्बी श्रीरामजी के कार्यको करने योग्यहै ॥ ४९ ॥ इसप्रकार विद्वान् विभीषण राक्षससे कहेहुये राघवजी सब वानरोंको समझाते हुये यह बोले ॥ ५० ॥ कि सौ योजन चौड़े इस बड़े भयंकर समुद्रको उतरने के लिये छोटी व बड़ी नौकाओं से सब वानर असमर्थ हैं ॥ ५१ ॥ हे वानरोत्तमो ! बहुत सेनाके लिये नौकाएं नहीं हैं और हमारे सरीखे मनुष्य कैसे नौकाजीवी मनुष्योंका उपघात करैं ॥ ५२ ॥ व हमारी सेना बहुत है और छिद्रोंमें अन्य पुरुष मारैगा इसकारण इससमुद्रमें नौकाओंसे उतरना हमको नहीं रुचता

मर्हति ॥ ४८ ॥ खनितःसागरैरेष समुद्रोवरुणालयः ॥ कर्तुमर्हतिरामस्य तज्ज्ञातेःकार्यमम्बुधिः ॥ ४९ ॥ विभीषणेनैवमुक्तो राक्षसेनविपश्चिता ॥ सान्त्वयन्राघवःसर्वान्वानरानिदमब्रवीत् ॥ ५० ॥ शतयोजनविस्तारमशक्ताःसर्ववानराः ॥ तर्तुंप्लवैडुपैरेनं समुद्रमतिभीषणम् ॥ ५१ ॥ नावोनसन्तिसेनाया बहवोवानरपुङ्गवाः ॥ वणिजामुपघातंच कथमस्मद्विधश्चरेत् ॥ ५२ ॥ विस्तीर्णंचैवनःसैन्यं हन्याच्छिद्रेषुवापरः ॥ प्लवोडुपप्रतारोतो नैवात्रममरोचते ॥ ५३ ॥ विभीषणोक्तमेवेदं मोददंममवानराः ॥ अहंत्विमंजलनिधिमुपास्येमार्गसिद्धये ॥ ५४ ॥ नोचेद्दर्शयितामार्गं धक्ष्याम्येनमहंतदा ॥ महास्त्रैरप्रतिहतैरत्यग्निपवनोज्ज्वलैः ॥ ५५ ॥ इत्युक्त्वासहसौमित्रिरुपस्पृश्याथराघवः ॥ प्रतिशिश्येजलनिधिं विधिवत्कुशसंस्तरे ॥ ५६ ॥ तदारामःकुशास्तीर्णे तीरेनदनदीपतेः ॥ संविवेशमहाबाहुर्वेद्यामिवहुताशनः ॥ ५७ ॥ शेषभोगनिभम्बाहुमुपधायरघूद्वहः ॥ दक्षिणोदक्षिणंबाहुमुपास्तेमकरालयम् ॥ ५८ ॥ तस्यरामस्यसुप्तस्य

है ॥ ५३ ॥ हे वानरो ! विभीषणने कहाहुआ यह मुझको आनन्ददायकहै और मार्गकी सिद्धिके लिये इससमुद्र की उपासना करूंगा ॥ ५४ ॥ यदि मार्गको न दिखावैगा तो अग्नि व पवनोंको उल्लंघनकरनेवाले उज्ज्वल व वारण न करनेयोग्य बड़ेभारी अस्त्रों से मैं इसको जलादूंगा ॥ ५५ ॥ यह कहकर लक्ष्मणसमेत रघुनाथजीने जलको स्पर्शकर विधिपूर्वक कुशों के बिछौने पै समुद्र के किनारे शयन किया ॥ ५६ ॥ उससमय नदों व नदियोंके पति समुद्रके किनारे कुशों के बिछौने पै वेदी पै अग्नि की नाईं महाभुज श्रीरामचन्द्रजी बैठे ॥ ५७ ॥ और शेषजीके फणके समान दाहिनीभुजाको शिर के नीचे धरकर उदार श्रीरामजीने समुद्र की उपासना किया ॥ ५८ ॥

पृथ्वी में कुशोंके बिछौने पै नियम से सोतेहुये सावधान रामचन्द्रजीकी तीन रातें व्यतीत होगईं ॥ ५९ ॥ वहां तीन रात बसेहुये धर्ममें तत्पर व नीतिको जाननेवाले रामचन्द्रजी ने उससमय मार्ग की सिद्धिके लिये समुद्रकी उपासना किया ॥ ६० ॥ व उससमय मन्द समुद्र ने श्रीरामजी को मार्ग नहीं दिखलाया पवित्र रामजीसे यथायोग्य पूजित भी हुआ ॥ ६१ ॥ तथापि समुद्र श्रीरामजी को अपनाको नहीं दिखाता था तदनन्तर समुद्र के लिये क्रोधित व अरुणलोचनोंवाले श्रीरामजी ॥ ६२ ॥ समीपही वर्तमान लक्ष्मणजी से यह बोले कि आज मेरे बाणोंसे कटेहुये मकरों से वरुणालय समुद्रको ॥ ६३ ॥ मैं हे सौमित्रे ! क्षणभर में निरुद्धजल करूंगा शंख

कुशास्तीर्णेमहीतले ॥ नियमादप्रमत्तस्य निशास्तिस्रोतिचक्रमुः ॥ ५९ ॥ सत्रिरात्रोषितस्तत्र नयज्ञोधर्मतत्परः ॥ उपास्तेस्मतदारामः सागरंमार्गसिद्धये ॥ ६० ॥ नचदर्शयतेमन्दस्तदारामस्यसागरः ॥ प्रयतेनापिरामेण यथार्हमपिपूजितः ॥ ६१ ॥ तथापिसागरोरामं नदर्शयतिचात्मनः ॥ समुद्रायततःक्रुद्धो रामोरक्तान्तलोचनः ॥ ६२ ॥ समीपवर्तिनंचेदं लक्ष्मणंप्रत्यभाषत ॥ अद्यमद्बाणनिर्भिन्नैर्मकरैर्वरुणालयम् ॥ ६३ ॥ निरुद्धतोयंसौमित्रे करिष्यामिक्षणादहम् ॥ सशङ्खशुक्तिजालंहि समीनमकरंशनैः ॥ ६४ ॥ अद्यबाणैरमोघास्त्रैर्वारिधिंपरिशोषये ॥ क्षमयाहिसमायुक्तं मामयंमकरालयः ॥ ६५ ॥ असमर्थंविजानाति धिक्क्षमामीदृशेजने ॥ नदर्शयतिसाम्नामे सागरोरूपमात्मनः ॥ ६६ ॥ चापमानयसौमित्रे शरांश्चाशीविषोपमान् ॥ सागरंशोषयिष्यामि पद्भ्यांयान्तुप्लवङ्गमाः ॥ ६७ ॥ एनंलङ्घितमर्यादं सहस्रोर्मिसमाकुलम् ॥ निर्मर्यादंकरिष्यामि सायकैर्वरुणालयम् ॥ ६८ ॥ महार्णवंक्षोभयिष्ये महादानवसङ्कु

व शुक्तिसमूहोंसमेत और मछलियों व मगरोंसमेत समुद्रको आज मैं धीरे से सफल बाणों से सुखाऊंगा क्योंकि यहसमुद्र क्षमा से संयुत मुझको ॥ ६४ । ६५ ॥ असमर्थ जानता है ऐसे मनुष्य में क्षमाको धिक्कार है समुद्र प्रियवचन से अपने रूपको मुझको नहीं दिखाता है ॥ ६६ ॥ हे सौमित्रे ! धनुष व सर्पोंके समान बाणों को लाइये मैं समुद्र को सुखाऊंगा और वानर पैरों से चलेजावैं ॥ ६७ ॥ हज़ारों लहरियोंसे संयुत इससमुद्रको मैं बाणों से उल्लंघितमर्याद व मर्यादारहित

करूंगा ॥ ६८ ॥ महामकरों से संयुत तथा बड़ीभारी लहरियोंसे युक्त व महादानवोंसे संयुत महासागर को मैं क्षोभित करूंगा ॥ ६९ ॥ ऐसा कहकर क्रोधसे विकललो-चनोंवाले व धनुष को हाथ में लिये श्रीरामजी त्रिपुरविनाशक शिवजीकी नाईं दुर्द्धर्ष हुये ॥ ७० ॥ क्रोधसे धनुषको खींचकर व बाणों से समारको कँपाकर उग्र बाणोंको श्रीरामजीने वैसेही छोड़ा जैसे कि त्रिपुरों में महादेवजी ने छोड़ा था ॥ ७१ ॥ और जोभयंकर व प्रकाशित बाण थे वे दशो दिशाओं को प्रकाशित करतहुये गर्वित दानवों से सयुत समुद्र के जल में पैठगये ॥ ७२ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! डरा व कांपताहुआ अनन्यशरण समुद्र हाथोंको जोडकर आपही से उठा ॥ ७३ ॥ और मोक्षपद

लम् ॥ महामकरनक्राढ्यं महावीचिसमाकुलम् ॥ ६९ ॥ एवमुक्त्वाधनुष्पाणिः क्रोधपर्याकुलेक्षणः ॥ रामोबभूवदुर्धर्षस्त्रिपुरघ्नोयथाशिवः ॥ ७० ॥ आकृष्यचापंकोपेन कम्पयित्वाशरैर्जगत् ॥ मुमोचविशिखानुग्रांस्त्रिपुरेषुयथाभवः ॥ ७१ ॥ दीप्तबाणाश्चयेघोरा भासयन्तोदिशोदश ॥ प्राविशन्वारिधेस्तोयं दृप्तदानवसङ्कुलम् ॥ ७२ ॥ समुद्रस्तुततोभीतो वेपमानःकृताञ्जलिः ॥ अनन्यशरणोविप्राःपातालात्स्वयमुत्थितः ॥ ७३ ॥ शरणंराघवम्भेजे कैवल्यपदकारणम् ॥ तुष्टावराघवंविप्रो भूत्वाशब्दैर्मनोरमैः ॥ ७४ ॥ समुद्र उवाच ॥ नमामितेराघवपादपङ्कजं सीतापतेसौख्यदपादसेविनाम् ॥ नमामितेगौतमदारमोक्षदं श्रीपादरेणुंसुरवृन्दसेव्यम् ॥ ७५ ॥ सुन्दप्रियादेहविदारिणेनमो नमोस्तुतेकौशिकयागरक्षिणे ॥ नमोमहादेवशरासभेदिने नमोनमोराक्षससङ्घनाशिने ॥ ७६ ॥ रामराम नमस्यामि भक्ता

के कारण राघवजी की शरण को भजता भया और ब्राह्मण होकर उसने मनोहर शब्दोंसे श्रीरामजी की स्तुति किया ॥ ७४ ॥ समुद्र बोला कि हे चरणसेवकों को सुखदेनेवाले, सीतापते, राघव ! मैं तुम्हारे चरणकमल को प्रणाम करताहूं और सुरगणोंसे सेवने योग्य तथा गौतमकी स्त्रीको मोक्षदेनेवाली तुम्हारी श्रीचरणधूलि का मैं प्रणाम करता हूं ॥ ७५ ॥ व सुन्दकी स्त्री के शरीरको विदारणकरनेवाले के लिये नमस्कार है व विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करनेवाले तुम्हारे लिये प्रणामहै व महादेवके धनुष को तोड़नेवालके लिये प्रणाम है व राक्षसोंके गणोंको नाशनेवालेके लिये नमस्कारहै ॥ ७६ ॥ हे राम, हे राम ! भक्तों के मनोरथको देनेवाले को मैं

प्रणाम करताहूं व देवताओंके कार्यको करनेकी इच्छासे रघुवंशमें पैदाहुये ॥ ७७ ॥ आदि अन्तसे रहित व मोक्षदायक नारायण व अच्युत शिवजीको मैं प्रणाम करता हूं हे राम, हे राम, हे महाभुज ! शरण में आयेहुये मेरी रक्षा कीजिये ॥ ७८ ॥ हे नृपेन्द्र ! कोपको संहार कीजिये व हे दयालय ! क्षमा कीजिये हे रघूद्वह ! पृथ्वी, पवन, आकाश, जल व अग्नि ये ॥ ७९ ॥ परमेष्ठी ब्रह्माकरके जिस स्वभाववाले रचेगयेहैं उसी स्वभाववाले वे वर्तमानहैं और मेरा स्वभाव गहराईहै ॥ ८० ॥ और गाध (गहराई न होना) विकार होगा इसको मैं सत्य कहताहूं हे रघूद्वह ! लोभ, काम, भय व अनुराग से भी ॥ ८१ ॥ मैं वंश में उपजेहुये गुणको त्याग करने के लिये

नामिष्टदायिनम् ॥ अवतीर्णंरघुकुले देवकार्यचिकीर्षया ॥ ७७ ॥ नारायणमनाद्यन्तं मोक्षदंशिवमच्युतम् ॥ रामराममहाबाहो रक्षमांशरणागतम् ॥ ७८ ॥ कोपंसंहरराजेन्द्र क्षमस्वकरुणालय ॥ भूमिर्वातोवियच्चापो ज्योतींषिचरघूद्वह ॥ ७९ ॥ यत्स्वभावानिसृष्टानि ब्रह्मणापरमेष्ठिना ॥ वर्तन्तेतत्स्वभावानि स्वभावोमेह्यगाधता ॥ ८० ॥ विकारस्तुभवेद्गाधएतत्सत्यंवदाम्यहम् ॥ लोभात्कामाद्भयाद्वापि रागाद्वापिरघूद्वह ॥ ८१ ॥ नवंशजंगुणंहातुमुत्सहेहंकथञ्चन ॥ तत्करिष्येचमाहाय्यं सेनायास्तरणेतव ॥ ८२ ॥ इत्युक्तवन्तंजलधिं रामोवादीन्नदीपतिम् ॥ ससैन्योहंगमिष्यामि लङ्कांरावणपालिताम् ॥ ८३ ॥ तच्छोषमुपयाहित्वं तरणार्थममाधुना ॥ इत्युक्तस्तंपुनःप्राह राघवंवरुणालयः ॥ ८४ ॥ शृणुष्वावहितोराम श्रुत्वाकर्तव्यमाचर ॥ यद्याज्ञयातेशोष्यामि ससैन्यस्ययियासतः ॥ ८५ ॥ अन्येप्याज्ञापयिष्यन्ति मामेवंधनुषोबलात ॥ उपायमन्यंवक्ष्यामि तरणार्थंबलस्यते ॥ ८६ ॥ अस्तिह्यत्रनलोनाम वानरःशिल्पि

किसीप्रकार उत्साह नहीं करताहूं इसलिये तुम्हारी सेना के उतारने में मैं सहायताकरूंगा ॥ ८२ ॥ यह कहतेहुये नदीपति समुद्र से रामजी ने कहा कि सेनासमेत मैं रावण से पालित लंकापुरी को जाऊंगा ॥ ८३ ॥ इसलिये इमसमय मेरे उतारनेके लिये तुम शोषको प्राप्त होवो ऐसा कहेहुये वरुणालय समुद्रने फिर उन रामचन्द्रजी से कहा ॥ ८४ ॥ कि हे रामजी ! सावधान होनेहुये तुम सुनो और सुनकर कर्तव्यता को कीजिये कि यदि सेनासमेत जानेकी इच्छावाले तुम्हारी आज्ञा से मैं सूख जाऊ ॥ ८५ ॥ तो अन्य भी धनुष के बल से मुझको ऐसीही आज्ञा देवेंगे और तुम्हारी सेना के उतरने के लिये मैं अन्य उपायको कहताहूं ॥ ८६ ॥ कि हे काकुत्स्थ !

इस सेना में त्वष्टा विश्वकर्मा का पुत्र नलनामक बलवान् वानर शिल्पियों से सम्मत है ॥ ८७ ॥ वह जिस काठ, तृण व पत्थर को मुझ में फेंकेगा उस सबको
मैं धारण करूंगा और वह तुम्हारा सेतु होगा ॥ ८८ ॥ व उस सेतुसे तुम रावण से पालित लंकापुरीको जावो यह कहकर उससमुद्र के अन्तर्द्धान होनेपर श्रीरामच-
न्द्रजी नलसे बोले ॥ ८९ ॥ कि हे महामते ! तुम समुद्रमें सेतुको बनाओ क्योंकि समर्थ हो उससमय नलने धर्मधारियों में श्रेष्ठ रामजी से कहा ॥ ९० ॥ किमैं गहरे
समुद्र में सेतु बनाऊंगा क्योंकि पिताने मुझको वर दियाहै व सामर्थ्यमें भी मैं उस के बराबरहूं ॥ ९१ ॥ और मंदराचल पै विश्वकर्माने मेरी माताको यह वर दिया

सर्वत सम्मतः ॥ त्वष्टुःकाकुत्स्थतनयो बलवान्विश्वकर्मणः ॥ ८७ ॥ सयत्काष्ठंतृणंवापि शिलांवाक्षेप्स्यतेमयि ॥ सर्वंतद्धारयिष्यामि सतेसेतुर्भविष्यति ॥ ८८ ॥ सेतुनातेनगच्छत्वं लङ्कांरावणपालिताम् ॥ उक्त्वेत्यन्तर्हितेतस्मिन् रामोनलमुवाचह ॥ ८९ ॥ कुरुसेतुंसमुद्रेत्वं शक्तोह्यसिमहामते ॥ तदाब्रवीन्नलोवाक्यं रामंधर्मभृतांवरम् ॥ ९० ॥ अहंसेतुंविधास्यामि ह्यगाधेवरुणालये ॥ पित्रादत्तवरश्चाहं सामर्थ्येचापितत्समः ॥ ९१ ॥ मातुर्ममवरोदत्तो मन्दरेविश्वकर्मणा ॥ शिल्पकर्मणिमत्तुल्यो भवितातेसुतस्त्विति॥९२॥पुत्रोहमौरसस्तस्य तुल्योवैविश्वकर्मणा ॥ अद्यैवकामंबध्नन्तु सेतुंवानरपुङ्गवाः ॥ ९३ ॥ ततोरामविसृष्टास्ते वानराबलवत्तराः ॥ पर्वतान्गिरिशृङ्गाणि लतातृणमहीरुहान् ॥ ९४ ॥ समाजह्रुर्महाकाया गरुडानिलरंहसः ॥ नलश्चक्रेमहासेतुं मध्येनदनदीपतेः ॥ ९५ ॥ दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥ जानकीरमणोरामस्सेतुमेवमकारयत् ॥ ९६ ॥ नलेनवानरेन्द्रेण विश्वकर्मसुतेनवै ॥ तमेवंसेतु

था कि शिल्पियों के काम में मेरे समान तुम्हारे पुत्र होगा ॥ ९२ ॥ विश्वकर्मा के बराबर मैं उसका औरस पुत्रहूं आजही श्रेष्ठ वानरलोग इच्छा से सेतुको बांधै ॥
९३ ॥ तदनन्तर रामजीसे बिदा कियेहुये बड़े बलवान् व बड़े शरीरवाले तथा गरुड़ व पवनके समान वेगवान् वे वानर पर्वतों के शिखर तथा लता, तृण व वृक्षोंको
लेआये और नल ने नदों व नदियों के पति समुद्रके मध्य में महासेतुको किया ॥ ९४। ९५ ॥ इसप्रकार जानकीरमण रामजीने दश योजन चौडे व सौ योजन लम्बे सेतु

को विश्वकर्माके पुत्र नलनामक वानरेन्द्र से बनवाया रामचन्द्रजी से बनवायेहुये सेतुको प्राप्त होकर ॥ ९६। ९७ ॥ सब पातकी मनुष्य सब पातकोंसे छूटजाते हैं व्रत, दान,तपस्या व होमसे उसप्रकार शिवजी नहीं प्रसन्न होते हैं ॥ ९८ ॥ जिसप्रकार कि शिवजी सेतु में स्नानही से प्रसन्न होतेहैं जिसप्रकार सूर्यनारायणके तेज के समान अन्य तेज नहीं विद्यमान है ॥ ९९ ॥ वैसेही सेतुस्नान के समान कहीं स्नान नहीं है वह सेतुका मूल है जहां कि श्रीरामजीने लंका के जाने की इच्छा से ॥ १०० ॥ वानरोंसे पापनाशक व पवित्र सेतुको प्रारंभ किया है वहां नाम से दर्भशयन ऐसा वह लोकोंमें पश्चात् प्रसिद्ध हुआ ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! मैंने इस

मासाद्य रामचन्द्रेणकारितम् ॥ ९७ ॥ सर्वपातकिनोमर्त्या मुच्यन्तेसर्वपातकैः ॥ व्रतदानतपोहोमैर्नतथातुष्यतेशिवः ॥ ९८ ॥ सेतुमज्जनमात्रेण यथातुष्यतिशङ्करः ॥ नतुल्यंविद्यतेतेजो यथासौरेणतेजसा ॥ ९९ ॥ सेतुस्नानेनच तथा नतुल्यंविद्यतेक्वचित ॥ तत्सेतुमूलंलङ्कायां यत्ररामोयियासया ॥ १०० ॥ वानरैस्सेतुमारेभे पुण्यंपापप्रणाशनम् ॥ तद्दर्भशयनंनाम्ना पश्चाल्लोकेषुविश्रुतम् ॥ १ ॥ एवमुक्तंमयाविप्रास्समुद्रेसेतुबन्धनम् ॥ अत्रतीर्थान्यनेकानि सन्तिपुण्यान्यनेकशः ॥ २ ॥ नसंख्यान्नामधेयंवा शेषोगणयितुंक्षमः ॥ किंत्वहंप्रब्रवीम्यद्य तत्रतीर्थानिकानिचित ॥ ३ ॥ चतुर्विंशतितीर्थानि सन्तिसेतौप्रधानतः ॥ प्रथमंचक्रतीर्थंस्याद्वेतालवरदन्ततः ॥ ४ ॥ ततःपापविनाशाख्यं तीर्थंलोकेषुविश्रुतम् ॥ ततस्सीतासरःपुण्यं ततोमङ्गलतीर्थकम् ॥ ५ ॥ ततस्सकलपापघ्नी नाम्नाचामृतवापिका ॥ ब्रह्मकुण्डंततस्तीर्थं ततःकुण्डंहनूमतः ॥ ६ ॥ आगस्त्यंहिततस्तीर्थं रामतीर्थमतःपरम् ॥ ततोलक्ष्मणतीर्थंस्याज्जटाती

प्रकार समुद्र में सेतुबन्धन कहा इसमें अन्य अनेकों पवित्रतीर्थ हैं ॥ २ ॥ और संख्या व नाम को गिनने के लिये शेषजी भी समर्थ नहीं हैं किन्तु इससमय मैं वहां के कुछ तीर्थों को कहताहूं ॥ ३ ॥ कि सेतु में मुख्य चौबीस तीर्थ हैं पहला चक्रतीर्थ तदनन्तर वेतालवरदतीर्थ ॥ ४ ॥ उसके उपरान्त पापविनाशनामक तीर्थ लोकों में प्रसिद्ध है तदनन्तर पवित्र सीतासर उसके उपरान्त मंगलतीर्थ है ॥ ५ ॥ तदनन्तर सर्वपापघ्नी नाम से अमृतवापिका है तदनन्तर ब्रह्मकुण्ड उसके उपरान्त

हनूमान्जी का कुण्ड है ॥ ६ ॥ तदनन्तर अगस्त्यजी का तीर्थ इसके उपरान्त रामतीर्थ है तदनन्तर लक्ष्मणतीर्थ इसके उपरान्त जटातीर्थ है ॥ ७ ॥ उसके उपरान्त लक्ष्मीजीका उत्तम तीर्थ व इसके उपरान्त अग्नितीर्थ है तदनन्तर पवित्र चक्रतीर्थ इसके उपरान्त शिवतीर्थ है ॥ ८ ॥ तदनन्तर शंखनामक तीर्थ उसके उपरान्त यामुनतीर्थ है उसके बाद गंगातीर्थ व इसके उपरान्त गयातीर्थ है ॥ ९ ॥ तदनन्तर कोटितीर्थनामक उसके उपरान्त साध्यों का अमृत तीर्थ है तदनन्तर मानसनामक तीर्थ उसके उपरान्त धनुष्कोटितीर्थ है ॥ १० ॥ हे द्विजोत्तमो ! सेतुके मध्यमें प्राप्त महापापोंको हरनेवाले ये मुख्य तीर्थ कहे गये ॥ ११ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! जिसप्रकार

र्थमतःपरम् ॥ ७ ॥ ततोलक्ष्म्याःपरन्तीर्थमग्नितीर्थमतःपरम् ॥ चक्रतीर्थंततःपुण्यं शिवतीर्थमतःपरम् ॥ ८ ॥ ततश्शङ्खाभिधन्तीर्थं ततोयामुनतीर्थकम् ॥ गङ्गातीर्थंततःपश्चाद्गयातीर्थमनन्तरम् ॥ ९ ॥ ततःस्यात्कोटितीर्थाख्यं साध्यानाममृतन्ततः ॥ मनसाख्यंततस्तीर्थं धनुष्कोटिस्ततःपरम् ॥ १० ॥ प्रधानतीर्थान्येतानि महापापहराणिच ॥ कथितानिद्विजश्रेष्ठास्सेतुमध्यगतानिवै ॥ ११ ॥ यथासेतुश्चबद्धोभूद्रामेणजलधौमहान् ॥ कथितंतच्चविप्रेन्द्राः पुण्यंपापहरंतथा ॥ १२ ॥ यच्छ्रुत्वाचपठित्वाच मुच्यतेमानवोभुवि ॥ १३ ॥ अध्यायमेनंपठतेमनुष्यः शृणोतिवाभक्तियुतोद्विजेन्द्राः ॥ सोनन्तमाप्नोतिजयंपरत्र पुनर्भवक्लेशमसौनगच्छेत् ॥ ११४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषय ऊचुः ॥ चतुर्विंशतितीर्थानि यान्युक्तानित्वयामुने ॥ तेषांप्रधानतीर्थानां मेतौपापविनाशने ॥ १ ॥ आदिम

श्रीरामजीने समुद्रमें बड़ाभारी सेतु बांधाहै वह पवित्र व पापहारक तीर्थ कहागया॥१२॥ जिसको सुनकर व पढ़कर मनुष्य पृथ्वीमें मुक्त होजाता है॥१३॥ हे द्विजेन्द्रो ! जो भक्तिसंयुत मनुष्य इस अध्यायको पढ़ता या सुनताहै वह अनन्त जयको पाता है और परलोक में यह पुनर्जन्मके क्लेशको नहीं प्राप्त होता है ॥ ११४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । धर्म तीर्थकर भयो जिमि चक्रतीर्थ असनाम । सो तिसरे अध्यायमें कह्यो चरित अभिराम ॥ ऋषिलोग बोले कि हे मुने ! तुमने जिन चौबीस तीर्थोंको कहा

है पापविनाशक सेतु पै उन प्रधान तीर्थोंके मध्यमें ॥ १ ॥ पहले तीर्थकी चक्रतीर्थ ऐसी प्रसिद्धि कैसे प्राप्त हुई है हे सूतजी ! उसको पूंछतेहुये हमलोगोंसे कहिये ॥ २ ॥ श्रीसूतजी बोले ! कि हे द्विजोत्तमो ! चौबीस प्रधानतीर्थों के मध्य में सबलोकोंमें प्रसिद्ध जो पहला तीर्थ कहागया है ॥ ३ ॥ उसतीर्थ के स्मरण से गर्भवास नहीं होता है और इसतीर्थ में एकबार स्नान, स्मरण से व कीर्तन से भी लाखजन्मों में कियेहुये पातकभी नाश को प्राप्त होते हैं हे द्विजोत्तमो ! संसारमें उससे अधिक व उसके समान तीर्थ ॥ ४ । ५ ॥ नहीं विद्यमान है हे मुनिश्रेष्ठो ! इसको मैंने सत्य कहा गंगा, सरस्वती, रेवा पंपासर व गोदावरी नदी ॥ ६ ॥ और यमुना,

स्यतुतीर्थस्य चक्रतीर्थमितिप्रथा ॥ कथंसमागतासूत वदास्माकंहिपृच्छताम् ॥ २ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ चतुर्विंशतितीर्थानां प्रधानानांद्विजोत्तमाः ॥ यदुक्तमादिमन्तीर्थं सर्वलोकेषुविश्रुतम् ॥ ३ ॥ स्मरणात्तस्यतीर्थस्य गर्भवासोनविद्यते ॥ विलयंयान्तिपापानि लक्षजन्मकृतान्यपि ॥ ४ ॥ तस्मिंस्तीर्थेसकृत्स्नानात्स्मरणात्कीर्तनादपि ॥ लोकेततोधिकंतीर्थं तत्तुल्यंवाद्विजोत्तमाः ॥ ५ ॥ नविद्यतेमुनिश्रेष्ठाःसत्यमुक्तमिदम्मया ॥ गङ्गासरस्वतीरेवा पम्पागोदावरीनदी ॥ ६ ॥ कालिन्दीचैवकावेरी नर्मदामणिकर्णिका ॥ अन्यानियानितीर्थानि नद्यःपुण्यामहीतले ॥ ७ ॥ अस्यतीर्थस्यविप्रेन्द्राः कोट्यंशेनापिनोसमाः ॥ धर्मतीर्थमितिप्राहुस्तत्तीर्थंहिपुराविदः ॥ ८ ॥ यथासमागतातस्य चक्रतीर्थमितिप्रथा ॥ तदिदानींप्रवक्ष्यामि शृणुध्वंमुनिपुङ्गवाः ॥ ९ ॥ सेतुमूलंहियत्प्रोक्तं तद्दर्भशयनंस्मृतम् ॥ तत्रैवचक्रतीर्थन्तु महापातकमर्दनम् ॥ १० ॥ पुराहिगालवोनाम मुनिर्विष्णुपरायणः ॥ दक्षिणाम्भोनिधेस्तीरे हालास्यादविदू

कावेरी, नर्मदा, मणिकर्णिका व अन्य जो पवित्रतीर्थ तथा पवित्र नदियां पृथ्वीमें हैं ॥ ७ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! वे तीर्थके कोटिवें अंश के समान नहीं हैं पुरातनसमय विद्वान् उसको धर्मतीर्थ ऐसा कहते थे ॥ ८ ॥ और हे मुनिश्रेष्ठो ! जिसप्रकार उसकी चक्रतीर्थ ऐसी प्रसिद्धि प्राप्तहुई है उसको इससमय मैं कहताहूं सुनिये ॥ ९ ॥ कि जो सेतुमूल कहागया है वही दर्भशयन मानागया है और वहींपर महापातकोंको नाशनेवाला चक्रतीर्थ है ॥ १० ॥ पुरातनसमय दक्षिणसमुद्रके किनारे हालास्य के

समीपही जो गालवनामक विष्णुपरायण मुनि थे ॥ ११ ॥ फुल्लग्राम के समीप व क्षीरसरके समीप धर्मपुष्करिणीके किनारे उन्होंने बड़ा तप कियाहै ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मणो ! दशहज़ार युगोंतक सनातन ब्रह्मको कहतेहुये वे दयायुक्त निराहार सत्यवान् और इन्द्रियोंको जीतते भये ॥ १३ ॥ और सब प्राणियोंको अपने नाईं देखतेहुये विषयों मे स्पृहारहित वे सब प्राणियों के हितैषी, दान्त व सब द्वंद्वों से रहित हुये॥ १४ ॥ और कुछ वर्षोंतकये पुरानेपत्तोंको खानेवाले हुये व कुछ समयतक जलाहारी और कुछ वर्षोंतक पवनभक्षी हुये ॥ १५ ॥ इसप्रकार उन महामुनि ने पांच हज़ारवर्षोंतक देवताओं से भी कठिन व भयकर तपस्या किया ॥ १६ ॥ तदनन्तर

रतः ॥ ११ ॥ फुल्लग्रामसमीपेच तथाक्षीरसरोन्तिके ॥ धर्मपुष्करिणीतीरे सोतप्यतमहत्तप· ॥ १२॥ युगानामयुतंब्रह्म गृणन्विप्राम्सनातनम् ॥ दयायुक्तोनिराहारस्सत्यवान्विजितेन्द्रियः ॥ १३॥ आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यन्विषयनिस्पृहः ॥ सर्वभूतहितोदान्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ॥ १४ ॥ वर्षाणिकतिचित्सोयं जीर्णपर्णाशनोभवत् ॥ किञ्चित्कालंजलाहारो वायुभक्षःकियत्समाः ॥ १५ ॥ एवंपञ्चसहस्राणि वर्षाणिसमहामुनिः ॥ अतप्यततपोघोरं देवैरपिसुदुष्करम् ॥ १६ ॥ ततःपञ्चसहस्राणि वर्षाणिमुनिपुङ्गवः ॥ निराहारोनिरालोको निरुच्छ्वासोनिरास्पदः ॥ १७ ॥ वर्षास्वासारसहनं हेमन्तेषुजलेशयः ॥ ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यस्थो विष्णुध्यानपरायणः ॥ १८ ॥ जपन्नष्टाक्षरंमन्त्रं ध्यायन्हृदिजनार्दनम् ॥ ततापसुमहातेजा गालवोमुनिपुङ्गवः ॥ १९ ॥ एवंत्वयुतवर्षाणि समतीतानिवैमुनेः ॥ अथतत्तपसातुष्टो भगवान्कमलापतिः ॥ २० ॥ प्रत्यक्षतामगात्तस्य शङ्खचक्रगदाधरः ॥ विकचाम्बुजपत्राक्षः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ २१ ॥ वि

पांच हज़ार वर्षोंतक मुनिश्रेष्ठ गालवजी आहाररहित व दर्शनरहित तथा उच्छ्वासहीन व स्थानरहित हुये ॥ १७ ॥ और वर्षाऋतुमें धारापान को सहनेवाले व हेमंत मे जलशायी हुये तथा ग्रीष्ममें पचाग्नि के मध्यमें स्थित होकर विष्णुजी के ध्यानमें परायण हुये॥ १८॥ और अष्टाक्षर मंत्रको जपते व हृदयमें विष्णुजीको ध्यानकरते हुये बड़े तेजस्वी मुनिश्रेष्ठ गालवजी ने तप किया ॥ १९ ॥ इसप्रकार मुनिको दशहज़ार वर्ष व्यतीत हुये इसके अनन्तर उनके तप मे लक्ष्मीके पति भगवान् प्रसन्न हुये ॥ २० ॥ और शख, चक व गदाको धारनेवाले विष्णुजी उनकी प्रत्यक्षताको प्राप्तहुये जो कि फूले हुये कमलपत्र के समान लोचनोंवाले और करोड़ों सूर्यों के

समान प्रभावान् थे ॥ २१ ॥ विनतापुत्र गरुड़ के ऊपर चढ़े तथा छत्र, चामरसे शोभित और हार, बजुल्ला व मुकुट और कंकणआदिक भूषणों से भूषित थे ॥ २२ ॥ और विष्वक्सेन व सुनन्दादिक सेवकों से घिरेहुये तथा वीणा, वेणु व मृदंगादिकोंको बजानेवाले नारदादिकों से ॥ २३ ॥ गाये जातेहुये ऐश्वर्यवान् व पीताम्बरसे शोभित थे और लक्ष्मी से शोभित वक्षस्थलवाले व नील मेघोंके समान छविमान् थे ॥ २४ ॥ और एक हाथसे कमलको फेरते हुये मधुसूदनजी दोनों पार्श्वों में सनकादिक महायोगियों से सेवित थे ॥ २५ ॥ और हे ब्राह्मणो ! मंद मुसक्यानसे सब त्रिलोक को मोहतेहुये तथा अपने प्रकाश से सर्वोको व, दशो दिशाओं को प्रका-

नतानन्दनारूढश्छत्रचामरशोभितः ॥ हारकेयूरमुकुटकटकादिविभूषितः ॥ २२ ॥ विष्वक्सेनसुनन्दादिकिङ्करैःपरिवारितः ॥ वीणावेणुमृदङ्गादिवादकैर्नारदादिभिः ॥ २३ ॥ उपगीयमानविभवः पीताम्बरविराजितः ॥ लक्ष्मीविराजितोरस्को नीलमेघसमच्छविः ॥ २४ ॥ धुनानःपद्ममेकेन पाणिनामधुसूदनः ॥ सनकादिमहायोगिसेवितःपार्श्वयोर्द्वयोः ॥ २५ ॥ मन्दस्मितेनसकलं मोहयन्भुवनत्रयम् ॥ स्वभासाभासयन्सर्वान्दिशोदशचभूसुराः ॥ २६ ॥ कण्ठलग्नेनमणिना कौस्तुभेनचशोभितः ॥ सुवर्णवेत्रहस्तैश्च सौविदल्लैरनेकशः ॥ २७ ॥ अनन्यदुर्लभाचिन्त्यगीयमाननिजाद्भुतः ॥ सुभक्तसुलभोदेवो लक्ष्मीकान्तोहरिस्स्वयम् ॥ २८ ॥ सन्निधत्तेपुरस्तस्य गालवस्यमहामुनेः ॥ आविर्भूतंतदादृष्ट्वा श्रीवत्साङ्कितवक्षसम् ॥ २९ ॥ पीताम्बरधरन्देवंतुष्टिंप्रापमहामुनिः॥भक्त्यापरमयायुक्तस्तुष्टावजगदीश्वरम् ॥ ३० ॥ गालव उवाच ॥नमोदेवादिदेवाय,शङ्खचक्रगदाभृते॥ नमोनित्यायशुद्धायसच्चिदानन्दरूपिणे॥३१॥

शित करते हुये ॥ २६ ॥ गले में लगीहुई कौस्तुभ मणिसे शोभित थे और सोनेके बेंतोंको हाथमें लियेहुये अनेक सौविदल्लों (चोपदारों) से शोभित थे ॥ २७ ॥ और अनन्य दुर्लभ व अचिन्त्य व गाये जातेहुये अपने अद्भुत चरित्रवाले व उत्तम भक्तोंके सुलभ व लक्ष्मीपति आपही विष्णुदेवजी ॥ २८ ॥ उन महामुनि गालवजी के आगे स्थितहुये उससमय श्रीवत्स से चिह्नित वक्षस्थलवाले प्रगटहुये पीताम्बरधारी विष्णुदेवको देखकर महामुनि गालवजी प्रसन्नता को प्राप्त हुये और बड़ी भक्तिसे संयुत उन्होंने जगदीश्वरजी की स्तुति किया ॥ २९ । ३० ॥ गालवजी बोले कि शंख, चक्र व गदाको धारनेवाले देवताओं के आदिदेवके लिये नमस्कारहै व नित्य

तथा शुद्ध सच्चिदानन्दरूपवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ३१ ॥ व हव्य, कव्य स्वरूपवाले भक्तदुःखनाशक आपकेलिये नमस्कारहै व सृष्टि, स्थिति, प्रलयको करनेवाले त्रिमूर्ति आपकेलिये नमस्कारहै ॥ ३२ ॥ व परेशके लिये प्रणामहै और विभूमा के लिये नमस्कारहै व लक्ष्मीके पति विधाता के लिये प्रणामहै और सूर्य व चन्द्रमा नेत्रवाले के लिये प्रणाम है तथा ब्रह्मादिकों से प्रणाम कियेहुये आपकेलिये प्रणामहै ॥ ३३ ॥ नाम व जाति आदिकों के भेदमे जो हीन है और जो सब दोषों से रहित है भवसंसार के भयको हरनेवाले उन दैत्यविनाशक विष्णुजीके लिये नमस्कार है ॥ ३४ ॥ व वेदान्त से जानने योग्य परमेश्वर के लिये और वैकुण्ठनिवासी

नमोभक्तार्तिहन्त्रेते हव्यकव्यस्वरूपिणे ॥ नमस्त्रिमूर्तयेतुभ्यं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ॥ ३२ ॥ नमःपरेशायनमोविभूम्ने नमोस्तुलक्ष्मीपतयेविधात्रे ॥ नमोस्तुसूर्येन्दुविलोचनाय नमोविरञ्च्याद्यभिवन्दिताय ॥ ३३ ॥ योनामजात्यादिविकल्पहीनस्समस्तदोषैरपिवर्जितोयः ॥ समस्तसंसारभयापहारिणे तस्मैनमोदैत्यविनाशनाय ॥ ३४ ॥ वेदान्तवेद्यायरमेश्वराय वैकुण्ठवासायविधातृपित्रे ॥ नमोनमस्सद्यजनार्तिहारिणे नारायणायामितविक्रमाय ॥३५॥ नमस्तुभ्यंभगवते वासुदेवायशार्ङ्गिणे ॥ भूयोभूयोनमस्तुभ्यं शेषपर्यङ्कशायिने ॥ ३६ ॥ इतिस्तुत्वाहरिंविप्रास्तूष्णीमास्तेसगालवः ॥ श्रुत्वास्तुतिंश्रुतिसुखां हरिस्तस्यमहात्मनः ॥ ३७ ॥ अवापपरमन्तोषं शङ्खचक्रगदाधरः ॥ अथालिङ्ग्यमुनिंशौरिश्चतुर्भिर्बाहुभिस्तदा ॥ ३८ ॥ बभाषेप्रीतिसंयुक्तो वरंवैव्रियतामिति ॥ तुष्टोस्मितपसातेद्यस्तोत्रेणापिचगालव ॥ ३९ ॥ नमस्कारेणचप्रीतो वरदोहंतवागतः ॥ गालव उवाच ॥ नारायणरमानाथ पीताम्बरजगन्म

तथा विधाता के पिताके लिये नमस्कारहै और शीघ्रही जनोंके दुःखको हरनेवाले अमितपराक्रमी नारायण के लिये प्रणाम ॥ ३५ ॥ व धनुषधारी आप वासुदेव भगवान् के लिये नमस्कार है और शेषशय्या पै सोनेवाले तुम्हारेलिये बार २ प्रणामहै ॥ ३६ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार स्तुतिकर वे गालवजी चुप होरहे और कानोंको सुखदेनेवाली उन महात्मा की स्तुतिको सुनकर विष्णुजीने ॥ ३७ ॥ बड़े हर्षको पाया इसके अनन्तर शंख, चक्र, गदा को धारनेवाले विष्णुजी उससमय गालव मुनिको चारों भुजाओं से लिपटाकर ॥ ३८ ॥ प्रीतिसंयुत होकर यह बोले कि वरदान को मांगिये हे गालवजी ! मैं आज तुम्हारे तपसे व इसस्तोत्रसे प्रसन्न होगया

हूं ॥ ३९ ॥ व नमस्कार से प्रसन्न होकर मैं वरदायक तुम्हारे समीप आयाहूं गालवजी बोले कि हे पीताम्बरधारी, संसारमय, लक्ष्मीनाथ, नारायणजी ! ॥ ४० ॥ हे जगद्धामन्, नरकविनाशक, जनार्दन, गोविन्दजी ! तुम्हारे दर्शनसे मैं सबसे अधिक कृतार्थ होगया ॥ ४१ ॥ अधर्मी मनुष्य तुमको नहीं देखते हैं तुम धर्मपालक हो जिसको शिव और ब्रह्मा नहीं जानते हैं और जिसको वेदत्रयी नहींजानती है ॥ ४२ ॥ उसपरमात्मा को मैं जानताहूं तो इससे अधिक क्या वर है और जिसको योगीलोग नहीं देखते हैं व जिसको कर्मकांडी मनुष्य नहीं देख- हैं ॥ ४३ ॥ उसपरमात्मा को मैं देखताहूं इससे अधिक क्या वर है हे जगत्पते, जनार्दनजी ! मैं इस

य ॥ ४० ॥ जनार्द्दनजगद्धामन् गोविन्दनरक न्तक ॥ त्वद्दर्शनात्कृतार्थोस्मि सर्वस्मादधिकस्तथा ॥ ४१ ॥ त्वांनपश्य न्त्यधर्मिष्ठा यतस्त्वंधर्मपालकः ॥ यन्नवात्तेभवोब्रह्मा यन्नवेत्तित्रयीतथा ॥ ४२ ॥ तंवेद्मिपरमात्मानं किमस्माद धिकंवरम् ॥ योगिनोयन्नपश्यन्ति यन्नपश्यन्तिकर्मठाः ॥ ४३ ॥ तंपश्यामिपरात्मानं किमस्मादधिकंवरम् ॥ एते नचकृतार्थोस्मि जनार्दनजगत्पते ॥ ४४ ॥ यन्नामस्मृतिमात्रेण महापातकिनोपिच ॥ मुक्तिंप्राप्यन्तिमुनयस्तंपश्या मिजनार्दनम् ॥ ४५ ॥ त्वत्पादपद्मयुगले निश्चलाभक्तिरस्तुमे ॥ हरिरुवाच ॥ मयिभक्तिर्दृढातेस्तु निष्कामागालवाधु ना ॥ ४६ ॥ शृणुचाप्यवरंवाक्यमुच्यमानंमयामुने ॥ मदर्थंकर्मकुर्वाणो मद्ध्यानोमत्परायणः ॥ ४७ ॥ एतत्प्रार ब्धदेहान्ते मत्स्वरूपमवाप्स्यसि ॥ अस्मिन्नेवाश्रमेवासं कुरुष्वमुनिपुङ्गव ॥ ४८ ॥ धर्मपुष्करिणीचेयं पुण्यपापवि नाशिनी ॥ अस्यास्तीरेतपःकुर्वंस्तपःसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ४९ ॥ धर्मःपुरासमागत्य दक्षिणस्योदधेस्तटे ॥ तपस्ते

मे कृतार्थ होगया ॥ ४४ ॥ जिसके नाम के स्मरणहीसे महापापी भी मुनिलोग मुक्तिको प्राप्त होते हैं उनविष्णुजीको मैं देखताहूं ॥ ४५ ॥ तुम्हारे दोनों चरणकमलों में मेरी अचल भक्ति होवै विष्णुजी बोले कि हे गालवजी ! इससमय मुझमें तुम्हारी दृढ भक्तिहोवै ॥ ४६ ॥ व हे मुने ! मुझसे कहेजातेहुये अन्य वचनको सुनिये कि मेरे लिये कर्मको करते हुये मेरा ध्यानकरनेवाले मुझ में परायण तुम ॥ ४७ ॥ इसप्रारब्ध शरीर के अन्तमें मेरे स्वरूप को पावोगे हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम इसी पवित्र आश्रम में निवासकरो ॥ ४८ ॥ और यह धर्मपुष्करिणी पुण्यदायिनी व पापनाशिनीहै इसके किनारे तप करता हुआ मनुष्य तपस्या की सिद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ४९ ॥

पुरातनसमय धर्मने दक्षिणसमुद्रके किनारे आकर उससमय मनसे महादेवको चिन्तवन करतेहुये तपस्या किया॥ ५०॥ व हे महामुने ! धर्मने स्नानकेलिये एकतीर्थ किया जिसलिये उनसे वह नदी कीगई है उससे धर्मपुष्करिणी प्रसिद्धहै ॥ ५१ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठ ! इससमय तुमने जिसप्रकार तप कियाहै उसीप्रकार महादेवको सेवने-वाले उसधर्म ने तपस्या किया है ॥ ५२ ॥ व उसकी तपस्यासे प्रसन्न होतेहुये त्रिशूलको हाथमें लिये महादेवजी अपने प्रकाशसे दशो दिशाओंका प्रकाश करते हुये प्रगटहुये ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त आश्रममें प्राप्त दयानिधि परमेश्वर महादेवजीकी बहुत प्रसन्न होतेहुये धर्मने स्तुतिकिया॥ ५४॥ धर्म बोले कि ॐकारात्मक जगदीश

पेमहादेवं चिन्तयन्मनसातदा ॥ ५० ॥ स्नानार्थमेकतीर्थञ्च चक्रेधर्मोमहामुने ॥ धर्मपुष्करिणीतेन प्रसिद्धातत्कृता यतः ॥ ५१ ॥ त्वयायथातपस्तप्तमिदानींमुनिसत्तम ॥ तथातप्तंतपस्तेन धर्मेणहरसेविना ॥ ५२ ॥ तपसातस्यतुष्ट स्समञ्छूलपाणिर्महेश्वरः ॥ प्रादुरासीत्स्वयादीप्त्या दिशोदशविभासयन् ॥ ५३ ॥ अथाश्रममनुप्राप्तं महादेवंकृपा निधिम् ॥ धर्मःपरमसन्तुष्टस्तुष्टावपरमेश्वरम् ॥ ५४ ॥ धर्म उवाच ॥ प्रणमामिजगन्नाथमीशानंप्रणवात्मकम् ॥ समस्तदेवतारूपमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ ५५ ॥ ऊर्ध्वरेतंविरूपाक्षं विश्वरूपंनमाम्यहम् ॥ समस्तजगदाधारमन न्तमजमव्ययम् ॥ ५६ ॥ यमानमन्तियोगीन्द्रास्तंवन्देपुष्टिवर्धनम्॥ नमोलोकाधिनाथाय वञ्चतेपरिवञ्चते ॥५७॥ नमोस्तुनीलकण्ठाय पशूनांपतयेनमः ॥ नमःकल्मषनाशाय नमोमीढुष्टमायच ॥ ५८ ॥ नमोरुद्रायदेवाय कद्रुद्रा यप्रचेतसे ॥ नमःपिनाकहस्ताय शूलहस्तायतेनमः ॥ ५९ ॥ नमश्चैतन्यरूपाय पुष्टीनाम्पतयेनमः ॥ नमःपञ्चास्य

महाशिवजीकोमैं प्रणाम करताहूं व सर्वदेवमय तथा आदि, मध्य व अन्तसे रहित ॥ ५५ ॥ व ऊर्ध्वरेता, विरूपलोचन और समस्तसंसार के आधार, अनन्त, अज व विकाररहित विश्वरूपको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ५६ ॥ जिनको योगीन्द्रलोग प्रणाम करते हैं उन पुष्टिवर्धनको मैं प्रणाम करताहूं और लोकों के स्वामी वंचना व परि-वंचना करनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ५७ ॥ व नीलकण्ठ और पशुओं के पतिके लिये प्रणाम है तथा पापविनाशक के लिये प्रणामहै व मीढुष्टम के लिये नमस्कार है ॥ ५८ ॥ व रुद्रदेव तथा कद्रुद्र व प्रचेता के लिये प्रणाम है और पिनाकको हाथमें लिये व त्रिशूलहाथवाले तुम्हारेलिये नमस्कार है ॥ ५९ ॥ और चैतन्यरूप व

पुष्टियों के पति के लिये नमस्कार है और पंचमुखदेव व क्षेत्रोंके पतिके लिये प्रणामहै ॥ ६० ॥ इसप्रकार स्तुति कियेहुये लोकोंका कल्याणकरनेवाले शंकर महादेव जी धर्म के ऊपर बहुत प्रसन्न हुये व उनसे बोले ॥ ६१ ॥ महादेवजी बोले कि हे महामते, धर्म ! तुम्हारे इसस्तोत्र से मैं प्रसन्नहूं तुम मुझ से वरको मागो विलम्ब मत करो ॥ ६२ ॥ शिवजीसे ऐसा कहेहुये धर्म शिवदेव से बोले कि हे पार्वतीपते! मैं सदैव तुम्हारा वाहन होऊं ॥ ६३ ॥ हे त्रिपुरांतक ! मेरेलिये यही वरदेने योग्य है क्योंकि तुम्हारे वाहनहीसे मैं कृतार्थ हूंगा ॥ ६४ ॥ धर्म से ऐसा कहेहुये शिवदेवजी धर्म से बोले महादेवजी बोले कि हे धर्म ! सदैव मनुष्यों से पूजित तुम मेरे

देवाय क्षेत्राणाम्पतयेनमः ॥ ६० ॥ इतिस्तुतोमहादेवश्शङ्करोलोकशङ्करः ॥ धर्मस्यपरमांतुष्टिमापन्नस्तमुवाचवै ॥ ६१ ॥ महेश्वर उवाच ॥ प्रीतोस्म्यनेनस्तोत्रेण तवधर्ममहामते ॥ वरंमत्तोवृणीष्वत्वं माविलम्बंकुरुष्ववै ॥ ६२ ॥ ईश्वरेणैवमुक्तस्तु धर्मोदेवमथाब्रवीत ॥ वाहनन्तेभविष्यामि सदाहंपार्वतीपते ॥ ६३ ॥ अयमेववरोमह्यं दातव्यस्त्रिपुरान्तक ॥ तवोद्वहनमात्रेण कृतार्थोहंभवामिभो ॥ ६४ ॥ इत्थंधर्मेणकथितो देवोधर्ममथाब्रवीत् ॥ ईश्वर उवाच ॥ वाहनं भवमेधर्म सर्वदालोकपूजितः ॥ ६५ ॥ ममचोद्वहनेशक्तिरमोघातेभविष्यति ॥ त्वत्सेविनांसदाभक्तिर्मयिस्यान्नात्रसंशयः ॥ ६६ ॥ इत्युक्तेशङ्करेणाथ धर्मोवृषरूपधृक् ॥ उवाहपरमेशानं तदाप्रभृतिगालव ॥ ६७ ॥ महादेवस्तमारुह्य धर्मंवैवृषरूपिणम् ॥ शोभमानोभृशंधर्ममुवाचपरमामृतम् ॥ ६८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ त्वयाकृतंहियत्तीर्थं दक्षिणस्योदधेस्तटे ॥ धर्मपुष्करिणीत्येषा लोकेख्याताभविष्यति ॥ ६९ ॥ अस्यास्तीरेजपोहोमो दानंस्वाध्यायमेवच ॥

वाहन होवो ॥ ६५ ॥ और मेरे लेचलने में तुम्हारे अमोघ शक्ति होगी और तुमको सेवनेवाले मनुष्योंकी मुझ में सदैव भक्ति होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६६ ॥ हे गालव ! शिवजी से ऐसा कहनेपर वृषरूपधारी धर्म ने भी तबसे लगाकर परमेश्वर को सवार कराया ॥ ६७ ॥ और वृषरूपधारी उसधर्म के ऊपर चढ़कर बहुतही शोभित महादेवजी उत्तम अमृतके समान वचन बोले ॥ ६८ ॥ महादेवजी बोले कि दक्षिणसमुद्रके किनारे तुमने जो तीर्थ कियाहै यह संसारमें धर्मपुष्करिणीनदी

प्रसिद्ध होगी ॥ ६९ ॥ इसके किनारे जप, होम, दान व वेदपाठ और मनुष्यों से हर्षसे कियेहुये अन्य धर्मसमूह ॥ ७० ॥ अनंत फलको देनेवाले जाननेयोग्य हैं इसे
में विचार न करना चाहिये इसप्रकार उस धर्मतीर्थ के लिये वर देकर शंकरजी ॥७१ ॥ वृषभरूपी धर्म पै सवार होकर कैलासपर्वतको चलेगये इसकारण हे गालव-
॥ । इससमय तुम धर्मपुष्करिणी के किनारे ॥ ७२ ॥ हे मुनिशार्दूल ! सावधानहोकर शरीरपाततक तपस्या करतेहुये तुम बसो पश्चात् निश्चयकर मुझको पावोगे ॥
७३ ॥ और जब तुमको भय होगा तब मुझ से पठायेहुये मेरे चक्र अस्त्र से क्षणभर में मैं उसको नाश करूंगा ॥ ७४ ॥ यह कहकर भगवान् विष्णुजी वहीं अन्त-

अन्येचधर्मनिवहाः क्रियमाणानरैर्मुदा ॥ ७० ॥ अनन्तफलदाज्ञेया नात्रकार्याविचारणा ॥ इतिदत्त्वावरंतस्मै धर्मती
र्थायशङ्करः ॥ ७१ ॥ आरुह्यवृषभंधर्मं कैलासंपर्वतंययौ ॥ धर्मपुष्करिणीतीरे गालवत्वमतोधुना ॥ ७२ ॥ शरीरपात
पर्यन्तं तपःकुर्वन्समाहितः ॥ वसत्वंमुनिशार्दूल पश्चान्मामाप्स्यसेध्रुवम् ॥ ७३ ॥ यदातेजायतेभीतिस्तदातान्नाश
याम्यहम् ॥ ममायुधेनचक्रेण प्रेरितेनमयाक्षणात् ॥ ७४ ॥ इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ श्रीसूत उवा
च ॥ तस्मिन्नन्तर्हितेविष्णौ गालवोमुनिपुङ्गवः ॥ ७५ ॥ धर्मपुष्करिणीतीरे विष्णुध्यानपरायणः ॥ त्रिकालमर्चयन्वि
ष्णुं शालग्रामेविमुक्तिदे ॥ ७६ ॥ उवासमतिमान्धीरो विरक्तोविजितेन्द्रियः ॥ कदाचिन्माघमासेतु शुक्लपक्षेहरेर्दिने ॥
७७ ॥ उपोष्यजागरंकृत्वा रात्रौविष्णुमपूजयत् ॥ स्नात्वापरेद्युर्द्वादश्यां धर्मपुष्करिणीजले ॥ ७८ ॥ सन्ध्यावन्दनपू
र्वाणि नित्यकर्माणिचाकरोत् ॥ ततःपूजांविधातुंस हरेस्समुपचक्रमे ॥ ७९ ॥ तुलस्यादीनिपुष्पाणि समाहृत्यचगा

र्द्धान होगये श्रीसूतजी बोले कि उन विष्णुके अन्तर्द्धान होनेपर मुनिश्रेष्ठ गालवजी ॥ ७५ ॥ धर्मपुष्करिणी के किनारे विष्णुजीके ध्यान में परायणहुये और मुक्तिदा-
यक शालग्राम में विष्णुजीको पूजतेहुये ॥ ७६ ॥ बुद्धिमान्, धीर, विरक्त व इन्द्रियोंको जीते गालवजी बसे व किसीसमय माघ महीने में शुक्लपक्ष में विष्णुके दिन
एकादशी तिथि में ॥ ७७ ॥ उपासकर जागरणकर उन्होंने विष्णुजीको पूजा और उसके बादवाले दिन द्वादशीमें धर्मपुष्करिणीके जलमें नहाकर ॥ ७८ ॥ संध्यावंदन-

पूर्वक नित्यकर्मोंको किया तदनन्तर उन्होंने विष्णुजी के पूजन करनेका प्रारम्भ किया ॥ ७९ ॥ और तुलसी आदिक व पुष्पोंको लाकर गालवमुनि ने कृष्णका पूजन कर इसस्तोत्र को कहा ॥ ८० ॥ गालवजी बोले कि हज़ार मस्तकोंवाले मत्स्यरूपधारी विष्णु व कच्छप और वाराहरूपी हृषीकेश हरिको मैं प्रणामकरताहूं ॥ ८१ ॥ व नारसिंह तथा वामननामक व जामदग्न्य (परशुराम) व राघव और बलभद्र कृष्ण व कल्कि विष्णुको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ८२ ॥ और प्रणतदुःखनाशक, निराधार, वासुदेव व सब प्राणियों के आधार जनार्दनजी को मैं प्रणाम करताहूं ॥ ८३ ॥ और सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सच्चिदानन्दशरीर, तर्करहित व निर्देश न करने योग्य

लवः ॥ विधायपूजांकृष्णस्य स्तोत्रमेतदुदीरयन् ॥ ८० ॥ गालव उवाच ॥ सहस्रशिरसंविष्णुं मत्स्यरूपधरंहरिम् ॥ नमस्यामिहृषीकेशं कूर्मवाराहरूपिणम् ॥ ८१ ॥ नारसिंहंवामनाख्यं जामदग्न्यञ्चराघवम् ॥ बलभद्रंचकृष्णञ्च कल्किविष्णुंनमाम्यहम् ॥ ८२ ॥ वासुदेवमनाधारं प्रणतार्तिविनाशनम् ॥ आधारंसर्वभूतानां प्रणमामिजनार्दनम् ॥ ८३ ॥ सर्वज्ञंसर्वकर्तारं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रणतोस्मिजनार्दनम् ॥ ८४ ॥ एवंस्तुवन्महायोगी गालवोमुनिपुङ्गवः ॥ धर्मपुष्करिणीतीरे तस्थौध्यानपरायणः ॥ ८५ ॥ एतस्मिन्नन्तरेकश्चिद्राक्षसोगालवंमुनिम् ॥ आययौभक्षितुङ्घोरः क्षुधयापीडितोभृशम् ॥ ८६ ॥ गालवंतरसासोयं राक्षसोजगृहेतदा ॥ गृहीतस्तरसातेन गालवो नैर्ऋतेनसः ॥ ८७ ॥ प्रचुक्रोशदयाम्भोधिमापन्नानांपरायणम् ॥ नारायणंचक्रपाणिं रक्षरक्षेतिवैमुहुः ॥ ८८ ॥ परेशपरमानन्द शरणागतपालक ॥ त्राहिमांकरुणासिन्धो रक्षोवशमुपागतम् ॥ ८९ ॥ लक्ष्मीकान्तहरेविष्णो वैकुण्ठ

विष्णुजी को मैं प्रणाम करताहूं ॥ ८४ ॥ इसप्रकार स्तुति करतेहुये मुनिश्रेष्ठ गालवयोगी ध्यानमें परायण होकर धर्मपुष्करिणी के किनारे स्थित हुये ॥ ८५ ॥ इसी अवसर में क्षुधासे बहुतही पीड़ित कोई भयंकर राक्षस गालवमुनि को खानेके लिये आया ॥ ८६ ॥ व उससमय उसी इसराक्षस ने गालव को वेगसे पकडलिया और उसराक्षस करके वेगसे पकड़ेहुये उन गालवजी ने ॥ ८७ ॥ विपत्तियों में प्राप्त पुरुषों के परायण, दयासागर, चक्रपाणि नारायणजी को बार २ इसप्रकार पुकारा कि रक्षाकीजिये रक्षा कीजिये ॥ ८८ ॥ हे परेश, परमानन्द, हे दयासमुद्र,शरणागतपालक ! राक्षसके वश में प्राप्त मेरी रक्षा कीजिये ॥ ८९ ॥ हे लक्ष्मीपते, हरे, विष्णो,

वैकुण्ठ, गरुड़ध्वज ! ग्राहसे पकड़ेहुये गजकी नाईं राक्षससे आक्रान्त मेरी रक्षा कीजिये ॥ ९० ॥ हे दामोदर, जगदीश, हिरण्यकशिपुमर्दन ! राक्षस से बहुतही पीड़ित मुझको प्रह्लादकी नाईं रक्षा कीजिये ॥ ९१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इसप्रकार स्तुति करतेहुये अपने भक्त उनगालव मुनिके भयको जानकर चक्रपाणि विष्णुजी ने ॥ ९२ ॥ भक्तकी रक्षाके लिये अपने चक्रको पठाया और समर्थवान् विष्णुजीसे पठायाहुआ वह विष्णुजीका चक्र ॥ ९३ ॥ धर्मपुष्करिणी के किनारे वेगसे आया और अमित सूर्यों के समान व अग्नियोंके समान प्रभावान् ॥ ९४ ॥ महाज्वाला व महाशब्दवाले तथा महादैत्योंको नाशनेवाले विष्णुजी के सुदर्शनचक्र को देखकर

गरुडध्वज ॥ मांरक्षरक्षसाक्रान्तं ग्राहाक्रान्तंगजंयथा ॥ ९० ॥ दामोदरजगन्नाथ हिरण्यासुरमर्द्दन ॥ प्रह्लादमिव मांरक्षराक्षसेनातिपीडितम् ॥ ९१ ॥ इत्येवंस्तुवतस्तस्य गालवस्यद्विजोत्तमाः ॥ स्वभक्तस्यभयंज्ञात्वा चक्रपाणिर्वृषाकपिः ॥ ९२ ॥ स्वचक्रंप्रेषयामास भक्तरक्षणकारणात ॥ प्रेरितंविष्णुचक्रंतद् विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ ९३ ॥ आजगामाथवेगेन धर्मपुष्करिणीतटम् ॥ अनन्तादित्यसंकाशमनन्ताग्निसमप्रभम् ॥ ९४ ॥ महाज्वालंमहानादं महासुरविमर्दनम् ॥ दृष्ट्वासुदर्शनंविष्णो राक्षसोथप्रदुद्रुवे ॥ ९५ ॥ द्रवमाणस्यतस्याशु राक्षसस्यसुदर्शनम् ॥ शिरश्चकर्त सहसा ज्वालामालादुरासदम् ॥ ९६ ॥ ततस्तुगालवोदृष्ट्वाराक्षसंपतितंभुवि ॥ मुदापरमयायुक्तस्तुष्टावचसुदर्शनम् ॥ ९७ ॥ गालव उवाच ॥ विष्णुचक्रनमस्तेस्तु विश्वरक्षणदीक्षित ॥ नारायणकराम्भोजभूषणायनमोस्तुते ॥ ९८ ॥ युद्धेष्वसुरसंहार कुशलायमहारव ॥ सुदर्शननमस्तुभ्यं भक्तानामार्तिनाशिने ॥ ९९ ॥ रक्षमांभयसंविग्नं सर्वस्माद

इसके अनन्तर राक्षस भगा ॥ ९५ ॥ व भागतेहुये उसराक्षस के मस्तकको ज्वालाओं की माला से असह्य सुदर्शन ने यकायक शीघ्रही काटडाला ॥ ९६ ॥ तदनन्तर पृथ्वी में गिरेहुये राक्षस को गालवजी ने देखकर बड़ी प्रसन्नता से संयुत होकर सुदर्शनचक्र की स्तुति किया ॥ ९७ ॥ गालवजी बोले कि हे संसारकी रक्षामें दीक्षित विष्णुचक्र ! तुम्हारेलिये नमस्कार होवै व विष्णुजी के कमलरूपी हाथ के भूषण, आपके लिये प्रणाम है ॥ ९८ ॥ हे महाशब्दवाले, सुदर्शन ! युद्धों में दैत्यों को

संहारने के लिये प्रवीण व भक्तोंके दुःखविनाशक तुम्हारेलिये नमस्कारहै ॥ ९९ ॥ भयसे ऊबेहुये मेरी सब भी पातकसे रक्षा करो व हे स्वामिन्, विभो, सुदर्शन ! धर्म-तीर्थमें सदैव आप ॥ १०० ॥ मुक्तिको चाहनेवाले संसारके हितके लिये स्थित होवो हे मुनीश्वरो ! गालवजी से ऐसा कहेहुये उस विष्णुचक्रने ॥ १ ॥ स्नेहसे उनगालव मुनिको प्रसन्न करते हुये से कहा सुदर्शन बोले कि हे गालवजी ! यह अति उत्तमधर्मतीर्थ महापवित्र है ॥ २ ॥ इसमें मैं लोकों की हितकी कामना से सदैव बसूंगा दुष्टात्मा राक्षससे तुम्हारी पीड़ाको विचारकर हे ब्राह्मणो ! विष्णुजीमे पठायाहुआ मैं शीघ्रतासे आया और मैंने तुमको पीड़ा करनेवाले इसराक्षसकोभी मारडाला ३।४॥

पिकल्मषात् स्वामिन्सुदर्शनविभो धर्मतीर्थेसदाभवान् ॥ १०० ॥ संनिधेहिहितायत्वं जगतोमुक्तिकाङ्क्षिणः ॥ गालवेनैवमुक्तंतद्विष्णुचक्रंमुनीश्वराः ॥ १ ॥ तंप्राहगालवमुनिं प्रीणयन्निवसौहृदात् ॥ सुदर्शन उवाच ॥ गालवैतन्महापुण्यं धर्मतीर्थमनुत्तमम् ॥ २ ॥ अस्मिन्वसामिसततं लोकानांहितकाम्यया ॥ त्वत्पीडांपरिचिन्त्याहं राक्षसेनदुरात्मना ॥ ३ ॥ प्रेरितोविष्णुनाविप्रास्त्वरयासमुपागतः ॥ त्वत्पीडकोपिनिहतो मयायंराक्षसाधमः ॥ ४ ॥ मोचितस्त्वंभयादस्मात्त्वंहिभक्तोहरेःसदा ॥ पुष्करिण्यामहंत्वस्यां धर्मस्यमुनिपुङ्गव ॥ ५ ॥ सततंलोकरक्षार्थं संनिधानंकरोमिवै ॥ अस्यांमत्संनिधानात्ते तथान्येषामपिद्विज ॥ ६ ॥ इतःपरंनपीडास्याद्भूतराक्षससंभवा ॥ धर्मपुष्करिणीह्येषा सर्वपापविनाशिनी ॥ ७ ॥ देवीपट्टनपर्यन्ता कृताधर्मेणवैपुरा ॥ अत्रसर्वत्रवत्स्यामि सर्वदामुनिपुङ्गव ॥ ८ ॥ अस्यामत्संनिधानात्स्याच्चक्रतीर्थमितिप्रथा ॥ स्नानंयेत्रप्रकुर्वन्ति चक्रतीर्थेविमुक्तिदे ॥ ९ ॥ तेषांपुत्राश्चपौत्राश्च वंशजाःसर्वएवहि ॥

और तुम इसभय से छुड़ायेगये व तुम सदैव विष्णुजीके भक्त होगे व हे मुनिपुंगव ! मैं इसधर्म की पुष्करिणीनदी के समीप ॥ ५ ॥ सदैव संसारकी रक्षा के लिये स्थिति करूंगा हे द्विज ! इसमें मेरी समीपता से तुमको व अन्य मनुष्योंको भी ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त भूतों व राक्षसों से उपजीहुई पीड़ा न होगी और सब पापों को विनाशनेवाली यह धर्मपुष्करिणी ॥ ७ ॥ पुरातनसमय धर्मसे देवीपट्टनतक की गई है हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं इसमें सदैव सब कहीं बसूंगा ॥ ८ ॥ और मेरी समीपतासे इसकी चक्रतीर्थ ऐसी प्रसिद्धि होगी जो मनुष्य मुक्तिदायक इसचक्रतीर्थमें स्नानकरेंगे ॥ ९ ॥ उनके पुत्र व पौत्र और सबही वंशमें पैदाहुये पुरुष पापरहित

होकर उसविष्णुजी के परमपदको प्राप्त होवैंगे ॥ १० ॥ व हे गालवजी ! यहां पितरों को उद्देशकर जो पिंडोंको देते हैं वे सब स्वर्ग को जाते हैं और पितर भी तृप्त होते हैं ॥ ११ ॥ यह कहकर वह विष्णुचक्र हे ब्राह्मणो ! गालव के देखतेहुये व अन्य ब्राह्मणों के भी देखते हुये अचानकही ॥ १२ ॥ उसपापनाशिनी धर्मपुष्करिणी में पैठगया श्रीसूतजीबोले कि हे द्विजेन्द्रो ! धर्मतीर्थ की चक्रतीर्थ ऐसी प्रसिद्धि ॥ १३ ॥ जिसप्रकार प्राप्त हुई है उसको मैंने तुमलोगों से हर्षसे कहा और चक्रतीर्थ के समान तीर्थ न हुआ है न होवैगा ॥ १४ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसचक्रतीर्थ में नहाये हुये मनुष्य मोक्षभागी होते हैं इसमें सन्देह नहीं है इसअध्याय को जो सावधान

विधूतपापायास्यन्ति तद्विष्णोःपरमंपदम् ॥ १० ॥ पितॄनुद्दिश्यपिण्डानांदातारोयेत्रगालव ॥ स्वर्गंप्रयान्तितेसर्वे पितरश्चापितर्पिताः ॥ ११ ॥ इत्युक्त्वाविष्णुचक्रंतद्गालवस्यापिपश्यतः ॥ अन्येषामपिविप्राणां पश्यतांसहसाद्विजाः ॥ १२ ॥ धर्मपुष्करिणींतांतुप्राविशत्पापनाशिनीम् ॥ श्रीसूतउवाच ॥ धर्मतीर्थस्यविप्रेन्द्राश्चक्रतीर्थमितिप्रथा ॥ १३ ॥ प्राप्तायथातत्कथितंयुष्माकंहिमयामुदा ॥ चक्रतीर्थसमन्तीर्थंनभूतंनभविष्यति ॥ १४ ॥ अत्रस्नातानराविप्रा मोक्षभाजोनसंशयः ॥ कीर्तयेदिममध्यायं शृणुयाद्वासमाहितः ॥ १५ ॥ चक्रतीर्थाभिषेकस्य प्राप्नोतिफलमुत्तमम् ॥ इहलोसुखंप्राप्य परत्रापिसुखंलभेत ॥ १६ ॥ योधर्मतीर्थंच तथैवगालवंकुर्वाणमत्युग्रसमाधियोगम् ॥ सुदर्शनंराक्षसनाशनं चस्मरेत्सकृद्वानसपापभाग्जनः ॥ ११७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥

ऋषय ऊचुः ॥ भगवन्राक्षसःकोसौ सूतपौराणिकोत्तम ॥ विष्णुभक्तंमहात्मानं योगालवमबाधत ॥ १ ॥ श्रीसूत

मनुष्य कहता है या सुनता है ॥ १५ ॥ वह चक्रतीर्थ में स्नान के उत्तम फलको पाता है और इसलोक में सुखको पाकर परलोक में भी सुख को पाता है ॥ १६ ॥ और जो मनुष्य धर्मतीर्थ व अति उग्र समाधियोग को करनेवाले गालवमुनिको तथा राक्षसोंके विनाशक सुदर्शनचक्रको एकवार स्मरण करताहै वह नर पापभागी नहीं होता है ॥ ११७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ● ॥ ● ॥ ●

दो० । यथा इन्द्र भयसे गये गिरि सब चक्र मँझार । सो चौथे अध्यायमें कही कथा सुखसार ॥ ऋषिलोग बोले कि हे पौराणिकोत्तम, भगवन्, सूतजी ! यह कौन

राक्षस था कि जिसने विष्णुजी के भक्त महात्मा गालवजी को पीड़ित किया है ॥ १ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! मैं क्रूर राक्षसको कहताहूं तुमलोग उसको आदर से सुनो कि जिसप्रकार वह मुनियों के शापके विवशसे राक्षस हुआ है ॥ २ ॥पुरातनसमय कैलासपर्वत के शिखर पै हालास्य शिवमंदिर पै चौबीसहज़ार ब्रह्मवादी मुनि ॥ ३ ॥ व वसिष्ठ व अत्रि आदिक सब बड़े बलवान् शिवभक्त भस्म को सबअंगों में लपेटे और त्रिपुण्ड्र से मस्तक को चिह्नित कियेहुये ॥ ४ ॥ रुद्राक्षकी माला के गहनों को पहने पंचाक्षरमंत्र के जपमें लगेहुये थे और हालास्यनाथ भूतेश चंद्रभाल उमापतिजी की ॥ ५ ॥ मधुरापुर के निवासी मुनियोंने मुक्तिके लिये उपासना

उवाच ॥ वक्ष्यामिराक्षसंक्रूरं तंविप्राःशृणुतादरात् ॥ यथासराक्षसोजातो मुनीनांशापवैभवात् ॥ २ ॥ पुराकैलास शिखरे हालास्येशिवमन्दिरे ॥ चतुर्विंशतिसाहस्रा मुनयोब्रह्मवादिनः ॥ ३ ॥ वसिष्ठात्रिमुखाःसर्वे शिवभक्तामहौज सः ॥ भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गास्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकाः ॥ ४ ॥ रुद्राक्षमालाभरणाः पंञ्चाक्षरजपेरताः ॥ हालास्यनाथंभूतेशं चन्द्रचूडमुमापतिम् ॥ ५ ॥ उपासांचक्रिरेमुक्त्यै मधुरापुरवासिनः ॥ कदाचित्तत्रगन्धर्वो विश्वावसुसुतोबली ॥ ६ ॥ दुर्द्दमोनामविप्रेन्द्रा विटगोष्ठीपरायणः ॥ ललनाशतसंयुक्तोविवस्त्रःसलिलाशये ॥ ७ ॥ चिक्रीडसविवस्त्राभिः साकंयुवतिभिर्मुदा ॥ हालास्यनाथंतीर्थंतद्वसिष्ठोमुनिभिःसह ॥ ८ ॥ माध्यंदिनंकर्तुमनाययौशङ्करमन्दिरात् ॥ तानृषीनवलोक्याथ रामास्ताभयकातराः ॥ ९ ॥ वासांस्याच्छादयामासुर्दुर्द्दमोनतुसाहसी ॥ ततोवसिष्ठःकुपितः शशापैनङ्गतत्रपम् ॥ १० ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ यस्माद्दुर्द्दमगन्धर्व दृष्ट्वास्माँल्लज्जयात्वया ॥ वासोनाच्छादितंशीघ्रं याहिराक्ष

किया किसीसमय वहां विश्वावसु का पुत्र बलवान् गंधर्व ॥ ६ ॥ जो दुर्दमनामक था हे द्विजेन्द्रो ! धूर्तोंकी गोष्ठी में परायण व सैकड़ों स्त्रियों से संयुत वस्त्रहीन होकर जलाशय में ॥ ७ ॥ वस्त्ररहित स्त्रियों के साथ उसने हर्ष से क्रीड़ा किया और मध्याह्नकर्म करने की इच्छावाले वसिष्ठजी मुनियोंसमेत शंकरजी के मन्दिरसे उस हालास्यनाथ तीर्थको गये इसके अनन्तर उन ऋषियोंको देखकर उनके भयसे डरीहुई स्त्रियों ने ॥ ८ । ९ ॥ कपड़ों को पहनलिया और साहसी दुर्दम ने नहीं पहना तदनन्तर क्रोधित होतेहुये वसिष्ठजीने इस लज्जारहित दुर्दमको शापदिया ॥ १० ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे दुर्दम, गंधर्व ! जिसलिये हमलोगों को देखकर तुमने लज्जा

से वस्त्रको आच्छादन नहीं किया उसकारण शीघ्रही राक्षसताको प्राप्त होवो ॥ ११ ॥ यह कहकर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीने उन स्त्रियों से कहा कि हे उत्तम स्त्रियो ! जिस लिये हमलोगों को देखकर तुम सबों ने वस्त्रको आच्छादन किया ॥ १२ ॥ उसलिये तुम सबों को मैं शाप न दूंगा और उसीकारण तुम सब स्वर्गको जावो वसिष्ठ जी से इसप्रकार कहीहुई स्त्रियोंने हाथों को जोड़कर उससमय ॥ १३ ॥ भक्तिसे नम्र चित्त करके उन वसिष्ठजी को प्रणाम कर मुनियोंके मण्डल के मध्यमे उन वसिष्ठजीसे यह कहा ॥ १४ ॥ स्त्रियां बोलीं कि हे सर्वधर्मज्ञ,भगवन्, चतुराननपुत्र,दयासिंधो ! हम सबोंको देखकर तुम क्रोध करनेके योग्य नहीं हो ॥ १५ ॥ स्त्रियों

सतांततः ॥ ११ ॥ इत्युक्त्वातास्त्रियःप्राह वसिष्ठोमुनिपुङ्गवः ॥ यस्मादाच्छादितंवस्त्रं दृष्ट्वास्माँश्चलनोत्तमाः ॥ १२ ॥ ततो नयुष्माञ्छप्स्यामि गच्छध्वंत्रिदिवन्ततः ॥ एवमुक्तावसिष्ठेन रामाःप्राञ्जलयस्तदा ॥ १३ ॥ प्रणिपत्यवसिष्ठंतं भक्तिनम्रेणचेतसा ॥ मुनिमण्डलमध्येतं वसिष्ठमिदमब्रुवन् ॥ १४ ॥ रामा ऊचुः ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ चतुराननन्दन ॥ दयासिन्धोवलोक्यास्मान्नकोपंकर्तुमर्हसि ॥ १५ ॥ पतिरेवहिनारीणां भूषणंपरमुच्यते ॥ पतिहीनापियानारी शतपुत्रापिसामुने ॥ १६ ॥ विधवेत्युच्यतेलोके तत्स्त्रीणांमरणंस्मृतम् ॥ तत्प्रसादंकुरुमुने पतावस्माकमादरात् ॥ १७ ॥ एकोपराधःक्षन्तव्यो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ क्षमांकुरुदयासिन्धो युष्मच्छिष्येत्रदुर्दमे ॥ १८ ॥ वसिष्ठःप्रार्थितस्त्वेवं दुर्दमस्याङ्गनाजनैः ॥ प्रोवाचवचनंभूयः प्रसन्नःसद्द्विजोत्तमः ॥ १९ ॥ नमेस्याद्वचनंमिथ्या कदाचिदपिसुभ्रुवः ॥ उपायंवःप्रवक्ष्यामि शृणुध्वंश्रद्धयासह ॥ २० ॥ षोडशाब्दावधिःशापो भर्तुर्वोभविताध्रुवम् ॥ षोडशाब्दावधौचैष दुर्द

का पतिही उत्तम गहना कहाजाता है हे मुने ! पतिसे हीन जो स्त्री होवै सौ पुत्रोंवाली भी वह ॥ १६ ॥ संसारमें विधवा ऐसी कहीजाती है और वह स्त्रियोंका मरण कहागयाहै इसलिये हे मुने ! हम सबोंके पतिके ऊपर आदरसे प्रसन्नता कीजिये ॥ १७ ॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंको एक अपराध क्षमा करना चाहिये हे दयासिंधो ! तुम्हारे शिष्य इस दुर्दम के ऊपर क्षमा कीजिये ॥ १८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! दुर्दम की स्त्रियोंसे इसप्रकार प्रार्थना कियेहुये वे वसिष्ठजी प्रसन्न होकर फिर वचन बोले ॥ १९ ॥ कि हे सुभ्रुवो ! मेरा वचन कभी भी मिथ्या न होगा मैं तुम सबोंसे उपाय कहताहूं उसको श्रद्धासमेत सुनो ॥ २० ॥ कि तुमलोगों के पतिको शाप सोलह वर्षकी

अवधितक निश्चयकर होगा और सोलह वर्षकी अवधि में यह राक्षस के आकारवाला दुर्दम ॥ २१ ॥ हे सुरांगनाओ ! अपनी इच्छा से चक्रतीर्थ को जावैगा वहां विष्णुजी में लगे हुये गालवमहायोगी हैं ॥ २२ ॥ वही यह उन मुनिको खानेकेलिये जावैगा तदनन्तर हे स्त्रियो ! गालवकी रक्षा के लिये विष्णुजी से पठायाहुआ उत्तम चक्र इसके शिरको निस्संदेह हरैगा तदनन्तर स्वरूपको पाकर शापसे छूटाहुआ दुर्दम ॥ २३ । २४ ॥ तुमलोगों का पति फिर स्वर्गको जावैगा इसमें सन्देह नहीं है तदनन्तर तुमलोगों का पति यह दुर्दम स्वर्गको पाकर ॥ २५ ॥ हे सुन्दरियो ! सुन्दरवेष धारणकर तुम सबोंको रमावैगा श्रीसूतजी बोले कि उन दुर्दम

मोराक्षसाकृतिः ॥ २१ ॥ यदृच्छयाचक्रतीर्थं गमिष्यतिसुराङ्गनाः ॥ आस्तेतत्रमहायोगी गालवोविष्णुतत्परः ॥ २२ ॥ भक्ष्यार्थंतंमुनिंसोयं राक्षसोभिगमिष्यति ॥ ततोगालवरक्षार्थं प्रेरितंचक्रमुत्तमम् ॥ २३ ॥ विष्णुनास्यशिरोरामा हरिष्यतिनसंशयः ॥ ततःस्वरूपमासाद्य शापान्मुक्तःसुदुर्दमः ॥ २४ ॥ पतिर्वस्त्रिदिवंभूयो गन्तास्त्यत्रनसंशयः ॥ ततस्त्रिदिवमासाद्य दुर्दमोयंपतिर्हिवः ॥ २५ ॥ रमयिष्यतिसुन्दर्यो युष्मान्सुन्दरवेषभृत् ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इत्युक्त्वातुवसिष्ठस्ता दुर्दमस्यवराङ्गनाः ॥ २६ ॥ स्वाश्रमंप्रययौतूर्णं हालास्येश्वरभक्तिमान् ॥ अथरामास्तमालिङ्ग्यदुर्दमंपतिमातुराः ॥ २७ ॥ रुरुदुःशोकसंविग्ना दुःखसागरमध्यगाः ॥ पश्यमानाःसुतास्वेवदुर्दमोराक्षसोभवत ॥ २८ ॥ महादंष्ट्रोमहाकायो रक्तश्मश्रुशिरोरुहः ॥ तन्दृष्ट्वाभयसंविग्ना जग्मूरामास्त्रिविष्टपम् ॥ २९ ॥ ततोराक्षसवेषोयन्दुर्दमोभैरवाकृतिः ॥ भक्षयन्प्राणिनःसर्वान्देशाद्देशंवनाद्वनम् ॥ ३० ॥ भ्रमन्ननिलवेगोसौ धर्मतीर्थंततोययौ ॥

की स्त्रियों से यह कहकर हालास्येश्वर के भक्तिमान् वसिष्ठजी शीघ्रही अपने आश्रम को चलेगये इसके अनन्तर उस दुर्दमपति को लिपटाकर विकल होतीहुई स्त्रियां ॥ २६ । २७ ॥ दुःख के समुद्रमें प्राप्त व दुःख तथा शोकसे ऊबकर रोनेलगीं और उन स्त्रियोंके देखते हुये दुर्दम राक्षस होगया ॥ २८ ॥ जो कि बड़ी दाढ़ोंवाला व बड़ी देहवाला तथा लाल दाढ़ी मूछ व बालोंवाला था उसको देखकर भय से डरीहुई स्त्रिया स्वर्ग को चलीगई ॥ २९ ॥ तदनन्तर भयकर आकार व राक्षसवेषवाला यह दुर्दम सब प्राणियों को खाताहुआ देश से देश व वनसे वनमें ॥ ३० ॥ घूमताहुआ पवन के समान वेगवान् यह तदनन्तर धर्मतीर्थ को गया इसप्रकार उस

समय घूमतेहुये इसके सोलह वर्ष बीतगये ॥ ३१ ॥ तदनन्तर हे मुनीश्वरो ! सोलह वर्षके अन्तमें यह राक्षस धर्मतीर्थ में बसनेवाले गालव मुनि को खाने के लिये ॥ ३२ ॥ पवन के समान वेगवान् होकर दौड़ा और उसने विष्णुजी की स्तुति किया तब गालवजी से स्तुति कियेहुये विष्णुजीने राक्षस से पीड़ित गालव मुनि की रक्षा के लिये चक्रको प्रेरणा किया इसके अनन्तर विष्णु के चक्र ने आकर राक्षस के शिर को हरलिया ॥ ३३।३४ ॥ तदनन्तर राक्षस के शरीर को छोड़कर दिव्यशरीरवाले इस दुर्दमने उत्तम विमान पै चढ़कर पुष्पवर्षित ॥ ३५ ॥ तथा हाथों को जोड़ प्रणाम कर उस सुदर्शनचक्र को प्रणाम किया और आदरसे कानों को मनोहर इन वचनों से स्तुति किया ॥ ३६ ॥

एवंषोडशवर्षाणि भ्रमतोस्यययुस्तदा ॥ ३१ ॥ ततस्तुषोडशाब्दान्ते राक्षसोयंमुनीश्वराः ॥ भक्षितुंगालवमुनिं धर्मतीर्थ निवासिनम् ॥ ३२॥ उपाद्रवद्वायुवेगः सचास्तोषीज्जनार्दनम् ॥ गालवेनस्तुतोविष्णुस्तदाचक्रमचोदयत् ॥ ३३ ॥ रक्षितुङ्गालवमुनिंराक्षसेनप्रपीडितम् ॥ अथागत्यहरेश्चक्रं राक्षसस्यशिरोहरत् ॥ ३४ ॥ ततोयंराक्षसंदेहं त्यक्त्वादिव्यकलेवरः॥ विमानवरमारुह्य दुर्दमःपुष्पवर्षितः ॥ ३५ ॥ प्राञ्जलिःप्रणतोभूत्वा ववन्देतंसुदर्शनम् ॥ तुष्टावश्रुतिरम्याभिरश्रूभिर्वाग्भिरादरात् ॥ ३६ ॥ दुर्दम उवाच ॥ सुदर्शननमस्तेस्तु विष्णुहस्तैकभूषण ॥ नमस्तेसुरसंहर्त्रे सहस्रादित्यतेजसे ॥ ३७ ॥ कृपालेशेनभवतस्त्यक्त्वाहंराक्षसींतनुम् ॥ स्वरूपमभजंविष्णोश्चक्रायुधनमोस्तुते ॥ ३८ ॥ अनुजानीहिमाङ्गन्तुं त्रिदिवंविष्णुवल्लभ ॥ भार्यामेपरिशोचन्ति विरहातुरचेतसः ॥ ३९ ॥ त्वन्मनस्कोभविष्यामि यावज्जीवं यथाह्यहम् ॥ तथाकृपांकुरुष्वत्वं मयिचक्रनमोस्तुते ॥ ४० ॥ एवंस्तुतंविष्णुचक्रं दुर्दमेनसभक्तिकम् ॥ अनुजग्राहसहसा

दुर्दम बोले कि हे विष्णुके हाथ के एकभूषण, सुदर्शन ! तुम्हारे लिये नमस्कार होवै हे असुरसंहारक ! हज़ार सूर्यों के समान तेजवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३७ ॥ आपकी कृपा के लवभाग से मैंने राक्षस के शरीर को छोड़कर विष्णु के स्वरूप को पाया हे विष्णुजी के चक्रायुध ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३८ ॥ हे विष्णु-प्रिय ! मुझको स्वर्ग के जाने के लिये आज्ञा दीजिये क्योंकि वियोग से आतुरचित्तवाली मेरी स्त्रियां शोचती हैं ॥ ३९ ॥ जिसप्रकार मैं जबतक जियों तबतक तुम में मनको लगानेवाला होऊं वैसीही तुम मेरे ऊपर दया करो हे चक्र ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४० ॥ हे मुनीश्वरो ! इसप्रकार दुर्दम से भक्तिसमेत स्तुति कियेहुये विष्णुजी के चक्र

ने वैसाही होवै यह कहकर सहसा दया किया ॥ ४१ ॥ और चक्र अस्त्र से आज्ञा को पायेहुये दुर्दम गन्धर्व गालव मुनि को प्रणाम कर और उनसे आज्ञा को पाकर स्वर्ग को चलेगये ॥४२॥ और दुर्दमके स्वर्ग जानेपर उन मुनिश्रेष्ठ गालवजी ने विष्णुजीके अति उत्तम चक्रायुध की प्रार्थना किया ॥४३॥ कि हे महादैत्यों को मर्दन करनेवाले,चक्रायुध ! मैं तुमको प्रणाम करता हूं देवीपत्तनतक अति उत्तम धर्मतीर्थ में ॥ ४४ ॥ तुम सब पापों को नाशनेवाली समीपता करो और तुम्हारी स्थिति से यहां नहायेहुये सब पापियों के ॥४५॥ पापका नाशकरो और तुम शाश्वत मोक्ष करो और संसारमें इसका चक्रतीर्थ ऐसा नाम करो ॥ ४६ ॥ और इसके उपरान्त तुम्हारी समीपतासे यहांके बसनेवाले मुनियों के

तथास्त्विवतिमुनीश्वराः ॥ ४१ ॥ चक्रायुधाभ्यनुज्ञातो दुर्दमोगालवंमुनिम् ॥ प्रणम्यतेनानुज्ञातो गन्धर्वस्त्रिदिवंययौ ॥ ४२ ॥ दुर्दमेतुगतेस्वर्गं गालवोमुनिपुङ्गवः ॥ सचक्रंप्रार्थयामास विष्णवायुधमनुत्तमम् ॥ ४३ ॥ चक्रायुधनमामित्वां महासुरविमर्द्दन ॥ देवीपत्तनपर्यन्तं धर्मतीर्थेह्यनुत्तमे ॥ ४४ ॥ सन्निधानंकुरुष्वत्वं सर्वपापविनाशनम् ॥ त्वत्सन्निधानात्सर्वेषां स्नातानांपापिनामिह ॥ ४५ ॥ पापनाशंकुरुष्वत्वं मोक्षं च कुरुशाश्वतम् ॥ चक्रतीर्थमितिख्यातिं लोकेस्यपरिकल्पय ॥ ४६ ॥ त्वत्सन्निधानादत्रत्यमुनीनांभयनाशनम् ॥ इतःपरं भवत्वार्य चक्रायुधनमोस्तुते ॥ ४७ ॥ भूतप्रेतपिशाचेभ्यो भयंमाभवतुप्रभो ॥ इतिसंप्रार्थितंचक्रं गालवेनमुनीश्वराः ॥ ४८ ॥ तथैवास्त्विवतिसंभाष्य तस्मिंस्तीर्थेतिरोहितम् ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवंवःकथितोविप्रा राक्षसस्यभवोमया ॥ ४९ ॥ माहात्म्यंचक्रतीर्थस्य कथितं च मलापहम् ॥ यच्छ्रुत्वासर्वपापेभ्यो मुच्यतेमानवोभुवि ॥ ५० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ व्यासशिष्यमहाप्राज्ञ सूतपौराणिकोत्तम ॥

भयका नाश होवै हे आर्य, चक्रायुध! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४७ ॥ हे प्रभो ! भूत, प्रेत व पिशाचों से भय मत होवै हे मुनीश्वरो ! गालव से इसप्रकार प्रार्थना कियाहुआ चक्र ॥ ४८ ॥ वैसाही होवै यह कहकर उस तीर्थ में अन्तर्द्धान होगया श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार मैंने तुमलोगों से राक्षस की उत्पत्ति को कहा ॥ ४९ ॥ और पापों को नाश करनेवाला चक्रतीर्थ का माहात्म्य कहागया जिसको सुनकर मनुष्य पृथ्वी में सब पापों से छूटजाता है ॥ ५० ॥ ऋषिलोग बोले कि हे व्यास शिष्य, पौराणि-

कोत्तम, महाप्राज्ञ, सूतजी ! दर्भशयन से लगाकर देवीपत्तन की अवधितक ॥ ५१ ॥ बहुत लम्बाई से संयुत अति उत्तम चक्रतीर्थ बीच में कैसे विच्छेद को प्राप्त हुआ उसको इससमय कहिये ॥ ५२ ॥ और मनमें टिकेहुयेइस सन्देह को काटनेके योग्य हो श्रीसूतजी बोले कि पहले सब पर्वत उत्पन्नपङ्खवाले व मनके समान वेगवान् थे ॥ ५३ ॥ और समीप के पर्वतोंसमेत वे आकाशगामी पर्वत नगरों में, राज्यों में व गावों और वनों में घूमते थे ॥ ५४ ॥ और कूद कूदकर पर्वत सब ओर पृथ्वी में स्थित होते थे और आक्रमण कर २ जहां जहां पर्वत स्थित होते थे ॥ ५५ ॥ वहां वहां पर्वतों से पीड़ित कियेहुये मनु य,पशु और प्राणियोंके गण यकायक मृत्युको प्राप्त होते थे ॥ ५६ ॥ जब ब्राह्मणादिक वर्ण

आरभ्यदर्भशयनमादेवीपत्तनावधि ॥ ५१ ॥ बहुव्यायामसंयुक्तं चक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ ययौविच्छिन्नतांमध्ये कथंकथय सांप्रतम् ॥ ५२ ॥ एनंमनसिंतिष्ठन्तं संशयंछेत्तुमर्हसि ॥ श्रीसूत उवाच ॥ पुराहिपर्वताःसर्वे जातपक्षामनोजवाः ॥ ५३ ॥ पर्यन्तपर्वतैःसार्द्धं चेरुराकाशमार्गगाः ॥ नगरेषुच राष्ट्रेषु ग्रामेषु च वनेषु च ॥ ५४ ॥ आप्लुत्याप्लुत्यतिष्ठन्ति पर्वताःस र्वतोभुवि ॥ आक्रम्याक्रम्यतिष्ठन्ति यत्रयत्रमहीधराः ॥ ५५ ॥ तत्रतत्रनरागावस्तथान्येप्राणिसञ्चयाः ॥ मरणंसहसा प्रापुःपीड्यमानामहीधरैः ॥ ५६ ॥ ब्राह्मणादिषुवर्णेषु नष्टेषुसमनन्तरम् ॥ यज्ञाद्यभावात्सहसा देवताव्यसनंययुः ॥ ५७ ॥ ततइन्द्रोमहाक्रुद्धो वज्रमादायवेगवान् ॥ चिच्छेदसहसापक्षान् पर्वतानांतरस्विनाम् ॥ ५८ ॥ छिद्यमानच्छदाःसर्वे वासवेनमहीधराः ॥ अनन्यशरणाभूत्वा समुद्रंप्राविशन्भयात् ॥ ५९ ॥ अचलेषु च सर्वेषु पतत्सुलवणार्णवे ॥ निपेतु रर्णवभ्रान्त्या चक्रतीर्थेपि केचन ॥ ६० ॥ पतितैःपर्वतैस्तैस्तु मध्यतःपूरितोदरम् ॥ चक्रतीर्थमहापुण्यं मध्येविच्छेदमा

नष्ट होगये इसके उपरान्त यज्ञादिकों के अभावसे देवता अचानकही दुःख को प्राप्त हुये ॥ ५७ ॥ तदनन्तर वेगवान् इन्द्रजीने बड़े क्रोधित होकर वज्र को लेकर अचानकही वेगवान् पर्वतों के पङ्खों को काटडाला ॥ ५८ ॥ व इन्द्र से काटेजाते हुये पङ्खवाले सब पर्वत अनन्यशरण होकर डर से समुद्र में पैठगये ॥ ५९ ॥ व सब पर्वतों के क्षार-समुद्र में गिरतेहुये कोई पर्वत समुद्र के भ्रमसे चक्रतीर्थ में भी गिरपड़े ॥ ६० ॥ और न गिरेहुये पर्वतों से बीच में पूर्ण उदरवाला महापवित्र चक्रतीर्थ बीच में विच्छेद को

प्राप्त हुआ ॥ ६१ ॥ उस चक्रतीर्थ में पर्वत अपनी इच्छा से दोनों किनारों में नहीं गिरे इसकारण कुशशयन व देवीपुर में भी ॥ ६२ ॥ वह विच्छिन्नमध्यभाग दो खण्ड विभाग कियाहुआ सा देखपड़ता है और मध्य में गिरेहुये पर्वतों से चक्रतीर्थ स्थल कियागया है ॥ ६३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनीन्द्रो ! तुमलोगों से ऐसा कहागया जोकि यह तीर्थ बीच से स्थल कियागया व जिसप्रकार इन्द्र से यकायक कटेहुये पङ्खोंवाले ऊंचे पर्वत इसमें गिरे हैं वह कहागया ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे सेतुमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

ययौ ॥ ६१ ॥ यदृच्छयामहाशैलाः पार्श्वयोस्तत्रनापतन् ॥ अतोवैदर्भशयने तथादेवीपुरेपि च ॥ ६२ ॥ विच्छिन्नमध्यंतद्द्वेधा विभक्तमिवदृश्यते ॥ मध्यतःपतितैःशैलैश्चक्रतीर्थंस्थलीकृतम् ॥ ६३ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ युष्माकमेवंकथितंमुनीन्द्रा यन्मध्यतस्तीर्थमिदंस्थलीकृतम् ॥ यथामहीध्रास्सहसाविडौजसा विभिन्नपक्षाइहपेतुरुन्नताः ॥ ६४ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ प्रस्तुत्यचक्रतीर्थंतु पुण्यंपापविनाशनम् ॥ पुनरप्यद्भुतंकिञ्चित्प्रब्रवीमिमुनीश्वराः ॥ १ ॥ विधूमनामाहिवसुर्देवस्त्रीचाप्यलम्बुसा ॥ ब्रह्मशापान्महाघोरात्पुराप्राप्तौमनुष्यताम् ॥ २ ॥ चक्रतीर्थेमहापुण्ये स्नात्वाशापाद्विमोचितौ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूत सूत महाप्राज्ञ पुराणार्थविशारद ॥ ३ ॥ प्राज्ञत्वाद्व्यासशिष्यत्वादज्ञानं ते न किञ्चन ॥ ब्रह्माकेनापराधेन सहालम्बुसयावसुम् ॥ ४ ॥ पुराविधूमनामानं शप्तवांश्चतुराननः ॥ ब्रह्मशापेन घोरेण कयोस्तौ

दो० । जिमि अलम्बुसा देवतिय अरु विधूम ये दोइ । भये मनुज पांचवें महँ कह्यो चरित सब सोइ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनीश्वरो ! पापविनाशक व पवित्र चक्रतीर्थ को कहकर फिर भी कुछ अद्भुत चरित्रको कहता हूं ॥ १ ॥ कि विधूमनामक वसु व अलम्बुसा देवाङ्गना बड़े घोर ब्रह्मशाप से पुरातनसमय मनुष्यता को प्राप्त हुयेहैं ॥ २ ॥ और बड़े पवित्र चक्रतीर्थ में नहाकर शाप से छूटेहैं ऋषिलोग बोले कि हे पुराणों के अर्थों में चतुर, महाप्राज्ञ, सूत ! हे सूतजी ! ॥ ३ ॥ व्यास के शिष्य होने के कारण व विद्वत्ता के कारण तुम्हारे कुछ अज्ञान नहीं है चतुरानन ब्रह्माजी ने पुरातनसमय किस अपराध से अलम्बुसासमेत विधूमनामक वसुको शाप दिया है व भयङ्कर ब्रह्मशाप

से वे किनकी पुत्रता को प्राप्त हुये हैं ॥ ४।५ ॥ और ब्रह्मा से शापित उन दोनों के शाप का अन्त कैसे हुआ है इसको श्रद्धावान् हमलोगों से विस्तार से कहिये ॥ ६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि पुरातनसमय स्वयम्भू चतुरानन ब्रह्माजी सावित्री व सरस्वती से दोनों बगलों में शोभित थे ॥ ७ ॥ और सनातनमुनि व बुद्धिमान् सनक से तथा सनत्कुमारनामक व महात्मा नारदजी से ॥ ८ ॥ व सनन्दनादिक अन्य मुनियों से सेवा कियेजाते हुये ब्रह्माजी देववृन्दों से सेवित इन्द्रसे स्तुति कियेजाते थे ॥ ९ ॥ व सूर्यादिक ग्रहों से स्तुति कियेजाते हुये चरणकमलवाले ब्रह्मा सिद्धों, साध्यों व मरुतों और किन्नरों से घिरे थे ॥ १० ॥ और किंपुरुषों के गणों से व आठ वसुओं

पुत्रतांगतौ ॥ ५ ॥ शापस्यान्तःकथमभूद्ब्रह्मणाशप्तयोस्तयोः ॥ एतन्नःश्रद्दधानानां विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥ ६ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ पुराहिभगवान्ब्रह्मा स्वयंभूश्चतुराननः ॥ सावित्र्या च सरस्वत्या पार्श्वयोःप्रविराजितः ॥ ७ ॥ सनातनेनमुनिना सनकेन च धीमता ॥ सनत्कुमारनाम्ना च नारदेनमहात्मना ॥ ८ ॥ सनन्दनादिभिश्चान्यैः सेव्यमानोमुनीश्वरैः ॥ सुपर्ववृन्दजुष्टेन स्तूयमानोविडौजसा ॥ ९ ॥ आदित्यादिग्रहैश्चैव स्तूयमानपदाम्बुजः ॥ सिद्धैःसाध्यैर्मरुद्भिश्च किन्नरैश्चसमावृतः ॥ १० ॥ गणैःकिंपुरुषाणाञ्च वसुभिश्चाष्टभिर्वृतः ॥ उर्वशीप्रमुखानाञ्च स्ववेंश्यानांमनोरमम् ॥ ११ ॥ नृत्यंवादित्रसहितं वीक्षमाणोमुहुर्मुहुः ॥ गोष्ठींचक्रेसभामध्ये सत्यलोकेकदाचन ॥ १२ ॥ मेघगर्जितगम्भीरो जनानानन्दयन्मुहुः ॥ वीणावेणुमृदङ्गानां ध्वनिस्तत्रव्यसर्पत ॥ १३ ॥ गङ्गातरङ्गमालानां शीकरस्पर्शशीतलः ॥ पवमानःसुखस्पर्शो मन्दंमन्दंववौतदा ॥ १४ ॥ पर्यायेणतदासर्वा ननृतुर्देवयोषितः ॥ नृत्यश्रमेणखिन्नासु वेश्यास्वन्या

से घिरे तथा उर्वशी आदिक स्वर्ग की वेश्याओं के बाजनोंसमेत सुन्दर नृत्य को बार २ देखतेहुये ब्रह्मा ने किसी समय सत्यलोक में सभा के मध्य में गोष्ठी (समाज) किया ॥ ११।१२ ॥ वहां जनों को बार २ आनन्द करतीहुई मेघगर्जन के समान वीणा, वेणु व मृदङ्गों की ध्वनि फैलगई ॥ १३ ॥ उससमय गङ्गाजी की तरङ्ग की राशियों के जलकणों के स्पर्श से सुखस्पर्शी पवन धीरे २ चलनेलगा ॥ १४ ॥ तब क्रम से सब देवाङ्गनाओं ने नृत्य किया और नाच के परिश्रम से

अन्य वेश्याओं के खिन्न होने पर आदरसमेत ॥ १५ ॥ रूप, यौवन से शोभित अलम्बुसा देवनारी ने सब जनों को आनन्द करतीहुई सभाके बीचमें नृत्य किया ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणो ! उससमय सभा में नाचतीहुई उस अलम्बुसा के भीतरी वसन को पवन ने लीलासे उड़ादिया ॥ १७ ॥ और उस वसन के उड़ने पर जङ्घाका मूल प्रकट देख-पडा और वैसी हुई उस अलम्बुसा को देखकर सब ब्रह्मादिक देवता लज्जा से ॥ १८ ॥ सभा में बैठेहुये नेत्रों को मूंदते भये और विधूमनामक वसु कामदेव के बाण से पीड़ित हुआ ॥ १९ ॥ और ब्रह्मभवन में पवन से हरेहुये वसनवाली उस अलम्बुसा को देखकर तदनन्तर प्रसन्नतासे प्रफुल्लित लोचनोंवाला वह प्रसन्नरोमा हुआ ॥ २० ॥

सुसादरम् ॥ १५ ॥ अलम्बुसादेवनारी रूपयौवनशालिनी ॥ मदयन्तीजनान्सर्वान् सभामध्येननर्तवै ॥१६॥ तस्मिन्नव सरे तस्या नृत्यन्त्याःसंसदिद्विजाः ॥ वस्त्रमाभ्यन्तरंवायुर्लीलयासमुदक्षिपत् ॥१७॥ तरिक्षप्तेवसनेस्पष्टमूरुमूलमदृश्यत ॥ तथाभूतांतुतांदृष्ट्वा सर्वेब्रह्मादयोह्रिया ॥ १८ ॥ सभामध्येसमासीना निमीलितदृशोभवन् ॥ विधूमनामातुवसुः काम बाणप्रपीडितः ॥ १९ ॥ तामेवब्रह्मभवने दृष्ट्वानिलहृतांशुकाम् ॥ हर्षसंफुल्लनयनो हृष्टरोमाततोभवत् ॥ २० ॥ अ लम्बुसायांतस्यांतु जातकामंविलोक्यतम् ॥ वसुंविधूमनामानं शशाप चतुराननः ॥ २१ ॥ यस्मात्त्वमीदृशंकार्यं विधूमकृतवानसि ॥ तस्माद्धिमर्त्यलोकेत्वं मानुषत्वमवाप्स्यसि ॥ २२ ॥ इयंचदेवयोषित्ते तत्रभार्याभविष्यति ॥ एवं सब्रह्मणाशप्तो विधूमःखिन्नमानसः ॥ २३ ॥ प्रसादयामासवसुर्ब्रह्माणं प्रणिपत्य तु ॥ विधूम उवाच ॥ अस्यशापस्यघो रस्य भगवन्भक्तवत्सल ॥ २४ ॥ नाहमर्होस्मिदेवेश रक्षमांकरुणानिधे ॥ एवंप्रसादितस्तेन भारतीपतिरव्ययः ॥ २५ ॥

व उस अलम्बुसा में उत्पन्न कामवाले विधूमनामक वसु को देखकर ब्रह्मा ने शाप दिया ॥ २१ ॥ कि हे विधूम ! जिसलिये तुमने ऐसा कर्म किया उसकारण तुम मृत्यु-लोक में मनुष्यता को पावोगे ॥ २२ ॥ और वहां यह देवाङ्गना तुम्हारी स्त्री होगी इसप्रकार ब्रह्मासे शापित व दुःखितमनवाले विधूम ॥ २३ ॥ वसु ने ब्रह्माको प्रणाम कर प्रसन्न कराया विधूम बोला कि हे भक्तप्रिय, भगवन् ! इस भयङ्कर शाप के ॥ २४ ॥ मैं योग्य नहीं हूं हे दयानिधान, देवेश ! मेरी रक्षा कीजिये इसप्रकार उससे समझायेहुये

सरस्वती के प्रति विकाररहित ब्रह्माजी ॥ २५ ॥ बड़ी दया से संयुत होकर विधूम को समझातेहुये बोले ब्रह्मा बोले कि तुममें यह शाप दियागया मैं झूंठ नहीं कहता हूं ॥ २६ ॥ इसलिये इससमय मैं तुम्हारे इस शाप की विधि को कल्पित करता हूं कि मनुष्यता को प्राप्त होकर इस अलम्बुसासमेत ॥ २७ ॥ वहां महाराज होकर बहुत दिनों तक पृथ्वीको पालन कर इस स्त्री में असमान भूपति पुत्रको पैदा कर ॥ २८ ॥ और राज्य की रक्षा में प्रवीण उसको राज्य पै अभिषेक कर इस शाप की शान्ति के लिये दक्षिणसमुद्र के किनारे फुल्लग्राम के समीप स्थित बड़े भारी चक्रतीर्थ में ॥ २९ ॥ इस स्त्रीसमेत तुम जब स्नान करोगे तब जैसे पुरानी केंचुल को सांप छोडदेता है

॥ २६ ॥ ततो

कृपयापरयायुक्तो विधूमंप्राहसान्त्वयन् ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वयिशापोप्ययंदत्तो नचासत्यंब्रवीम्यहम् ॥ २६ ॥ ततो
विधिंकल्पयामि शापस्यास्यतवाधुना ॥ मर्त्यभावंसमापन्नः सहालम्बुसयानया ॥ २७ ॥ तत्रभूत्वामहाराजः
शासयित्वाचिरंमहीम् ॥ पुत्रमप्रतिमंत्वस्यां जनयित्वामहीपतिम् ॥२८॥ अभिषिच्य च राज्येतं राज्यरक्षाविचक्षणम् ॥
एतच्छापस्यशान्त्यर्थं दक्षिणस्योदधेस्तटे ॥ फुल्लग्रामसमीपस्थे चक्रतीर्थेमहत्तरे ॥ २९ ॥ अनयाभार्ययासार्द्धं
यदास्नानंकरिष्यसि ॥ तदात्वंमानुषंभावं जीर्णत्वचमिवोरगः ॥ ३० ॥ विसृज्यभार्ययासार्द्धं स्वंलोकंप्रतिपत्स्यसे ॥
चक्रतीर्थेविनास्नानं न नश्येच्छापईदृशः ॥ ३१ ॥ इतिब्रह्मवचःश्रुत्वा विधूमोनातिहृष्टवान् ॥ स्ववेश्मप्राविशत्तूर्णं
मामन्त्र्यचतुराननम् ॥ ३२ ॥ चिन्तयामासतत्रासौ मर्त्यतांयास्यतोमम ॥ कोवापिताभवेद्भूमौ कावामाताभविष्य
ति ॥ ३३ ॥ बहुधेत्थंसमालोच्य विधूमोनिश्चिकाय सः ॥ कौशाम्बीनगरे राजा शतानीकइतिश्रुतः ॥ ३४ ॥ अस्तिवी

वैसेही मनुष्यता को तुम ॥ ३० ॥ छोडकर स्त्रीसमेत अपने लोक को प्राप्त होगे विना चक्रतीर्थ के स्नान ऐसा शाप नहीं नाश होवै है ॥ ३१ ॥ यह ब्रह्माका वचन सुनकर बहुत न प्रसन्न विधूम ब्रह्माजी से पूंछकर शीघ्रही अपने घरमें पैठगया ॥ ३२ ॥ और वहां इसने विचार किया कि पृथ्वी में मनुष्यता को प्राप्त होतेहुये मेरा कौन पिता होगा और कौन माता होगी ॥ ३३ ॥ इसप्रकार बहुत भांति विचारकर उस विधूम ने निश्चय किया कि कौशाम्बीनगर में शतानीक ऐसा प्रसिद्ध राजा ॥ ३४ ॥ महाभा-

ग्यवान् व वीर है और उसकी स्त्री भी विष्णुमतीनामक विष्णु की प्यारी लक्ष्मी की नाईं पतिव्रता है ॥ ३५ ॥ उसी को पिता कर व उसी स्त्री को माता बनाकर पृथ्वीलोक में मैं अपने कर्म के फल से उत्पन्न हूंगा ॥ ३६ ॥ तदनन्तर उसने माल्यवान्, पुष्पदन्त व बलोत्कट तीन अपने सेवकों को बुलाकर इस वृत्तान्त को बतलाया ॥३७ ॥ कि हे सेवको ! सुनिये तुमलोगों का कल्याण होवै मैं बडे भारी भयवाले ब्रह्मा के शापसे शतानीक से विष्णुमती स्त्री में पुत्र उत्पन्न हूंगा ॥ ३८ ॥ इस वचनको सुनकर उसके बाहर चलनेवाले प्राणरूप सब सेवक आंसुवों से पूर्णमुख होकर विधूम से यह वचन बोले ॥ ३९ ॥ सेवक बोले कि तुम्हारे वियोग को हम सब तीनों भी नहीं सहैंगे

रोमहाभागो भार्याचापिपतिव्रता ॥ तस्यविष्णुमतीनाम विष्णोःश्रीरिववल्लभा ॥ ३५ ॥ तमेवपितरंकृत्वा मातरञ्च विधाय ताम् ॥ संभविष्यामिभूलोके स्वकर्मपरिपाकतः ॥ ३६ ॥ ततःसमाल्यवन्तं च पुष्पदन्तंबलोत्कटम् ॥ त्रीनाहूया त्मनोभृत्यान्वृत्तमेतन्न्यवेदयत् ॥ ३७ ॥ भृत्याःश्रृणुतभद्रं वो ब्रह्मशापान्महाभयात् ॥ जनिष्यामिशतानीकाद्वि ष्णुमत्यामहंसुतः ॥ ३८ ॥ इतिश्रुत्वावचोभृत्यास्तस्यप्राणाबहिश्चराः ॥ बाष्पपूर्णमुखाःसर्वे विधूमंवाक्यमब्रुवन् ॥ ३९॥ भृत्या ऊचुः ॥ त्वद्वियोगंवयंसर्वे त्रयोपि न सहामहे ॥ तस्मान्मानुषभावंत्वमस्माभिः सह यास्यसि ॥ ४० ॥ शतानी कस्यराजर्षेर्मन्त्रीयोयंयुगंधरः ॥ सेनानीर्विप्रतीकश्च योयंप्राग्रसरोरणे ॥ ४१ ॥ नर्मकर्मसुहृद्विप्रो वल्लभाख्योमहां श्च यः ॥ तेषांपुत्रास्त्रयोप्येते भविष्यामोनसंशयः ॥ ४२ ॥ शतानीकस्यराजर्षेः पुत्रभावंगतस्यते ॥ शुश्रूषांसंविधास्या मस्तेषुतेषु च कर्मसु ॥ ४३ ॥ तानेवंवादिनःसोयं विधूमोवाक्यमब्रवीत् ॥ विधूम उवाच ॥ जानेहंभवतांस्नेहं तादृशंम

इसकारण तुम हमलोगों के समीप मनुजताको प्राप्त होवो ॥ ४० ॥ शतानीक राजर्षिका जो यह युगंधरनामक मन्त्री है और युद्ध में आगे चलनेवाला जो यह विप्रतीक सेनापति है ॥ ४१ ॥ और हँसी के कर्म में मित्र जो यह बडा भारी वल्लभनामक ब्राह्मण है उनके पुत्र ये तीनों भी हमलोग होवैंगे इस मे सन्देह नहीं है ॥ ४२ ॥ और शतानीक राजर्षि की पुत्रता को प्राप्त तुम्हारी हमलोग उन उन कर्मों में सेवा करैंगे ॥ ४३ ॥ ऐसा कहतेहुये उनसे इस विधूमने वचन कहा विधूम बोला कि मुझ

में वैसे अति उत्तम आपलोगों के स्नेह को जानता हूं ॥ ४४ ॥ तौ भी आज मैं तुमसे कहता हूं उस हित वचन को तुमलोग सुनो कि अपने कुकर्मरूप भयङ्कर ब्रह्मशापसे कियेहुये ॥ ४५ ॥ निन्दित मनुजपन को मैं एकही अनुवर्तन करूंगा क्योंकि तुमलोगों को यह शापका अनुवर्तन नहीं कियागया है ॥ ४६ ॥ इसकारण निन्दित मनुजता में इससमय मत मन करो और इसलिये जबतक मेरे शाप की अवधि है तबतक मेरा वियोग सहाजावै ॥ ४७ ॥ उससमय माल्यवान् आदिक वे सब ऐसा कहते व बार २ मस्तक से प्रार्थना करतेहुये उनसे बोले ॥ ४८ ॥ कि हमलोगों को दया से रक्षाकर साहस मत करो आज अपराधरहित हम सब भक्तों को त्यागते

ब्रह्मशापेनघोरेणस्वेनदुष्कर्मणाकृतम् ॥ ४५ ॥ कुत्सितंद्यनुत्तमम् ॥ ४४ ॥ तथापिकथयाम्यद्य तच्छृणुध्वंहितंवचः ॥ जुगुप्सितेतोमानुष्ये मा कुरुध्वमनोमानुषंभावमहमेकोनुवर्तये ॥ विहितंनहियुष्माकमेतच्छापानुवर्तनम् ॥ ४६ ॥ ऊचुःप्रणम्यशिधुना ॥ अतःशापावधिर्यावन्मद्वियोगोविषह्यताम् ॥ ४७ ॥ इत्युक्तवन्तंतेसर्वे माल्यवत्प्रमुखास्तदा ॥ रसा प्रार्थयन्तंपुनःपुनः ॥ ४८ ॥ रक्षित्वाकृपयाह्यस्मान्माकुरुष्व च साहसम् ॥ परित्यजसिनःसर्वान् भक्तानद्यनिरागसः ॥ ४९ ॥ त्वद्वियोगान्महाघोरान्मानुष्यमपिकुत्सितम् ॥ बहुमन्यामहेदेव तस्मान्नस्त्राहिसांप्रतम् ॥ ५० ॥ एवंसयाचमानांस्त्रीनन्वमन्यतभृत्यकान् ॥ तैस्त्रिभिःसहितःसोयं कौशाम्बींगन्तुमैच्छत ॥ ५१ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सोमवंशविवर्द्धनः ॥ अर्जुनाभिजनेजातो जनमेजयसम्भवः ॥ ५२ ॥ शतानीकोमहीपालः पृथिवीमन्वपालयत् ॥ बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी प्रजापालनतत्परः ॥ ५३ ॥ चतुरङ्गबलोपेतो विक्रमैकधनोयुवा ॥ सकौशाम्बींमहाराजो नगरीमध्यु

हो ॥ ४९ ॥ हे देव ! बड़े भयङ्कर तुम्हारे वियोग से मनुजता को भी हमलोग बहुत मानते हैं इसकारण इससमय हमलोगों की रक्षा कीजिये ॥ ५० ॥ इसप्रकार याचना करते हुये उन तीनों सेवकों को आज्ञा दिया और उन तीनोंसमेत उसने कौशाम्बीपुरी को जाने की इच्छा किया ॥ ५१ ॥ इसीसमय में चन्द्रवंश को बढ़ानेवाले जनमेजय से उत्पन्न शतानीक भूपति ने अर्जुनके वंशमें उत्पन्न होकर पृथ्वी को पालनकिया और बुद्धिमान्, नीतिमान्, प्रशस्तवचन व प्रजापालन में तत्पर ॥ ५२।५३ ॥ तथा चतुरङ्गिणी

सेना से संयुत व एक पराक्रमरूप धनवाले उन युवा महाराज ने कौशाम्बीनगरी में निवास किया ॥ ५४ ॥ और उसके मन्त्रों के रहस्य का जाननेवाला युगन्धर मन्त्री उत्पन्न हुआ और युद्ध में आगे चलनेवाला विप्रतकिनामक उसका सेनापति हुआ ॥ ५५ ॥ और नर्म याने हँसी के कर्मों में वल्लभनामक ब्राह्मण उसका मित्र हुआ और विष्णु की प्यारी लक्ष्मी की नाईं उसकी विष्णुमतीनामक स्त्री थी ॥ ५६ ॥ और सब गुणोंसे सम्पन्न वह शतानीक बड़ा बुद्धिमान था उसने उस स्त्री में अपने समान पुत्र को नहीं पाया ॥ ५७ ॥ व अपना को पुत्ररहित जानकर वह बहुत विकल हुआ और मन्त्रविदों में उत्तम उसने युगन्धर मन्त्री को बुलाकर ॥ ५८ ॥ इस कार्य की सम्मति

वासवै ॥ ५४ ॥ तस्यमन्त्ररहस्यज्ञो मन्त्रीजातोयुगंधरः॥ सेनानीर्विप्रतीकश्च तस्यप्राग्रसरोरणे ॥ ५५ ॥ नर्मकर्मसुतस्यासीद्वल्लभाख्यःसखाद्विजः ॥ तस्यविष्णुमतीनाम विष्णोःश्रीरिववल्लभा ॥ ५६ ॥ ससर्वगुणसम्पन्नः शतानीकोमहामतिः ॥ पुत्रमात्मसमंतस्यां भार्यायांनान्वविन्दत ॥ ५७ ॥ आत्मानमसुतंज्ञात्वा सभृशंपर्यतप्यत ॥ सयुगंधरमाहूय मन्त्रिणंमन्त्रवित्तमम् ॥ ५८ ॥ पुत्रलाभःकथंमेस्यादितिकार्यममन्त्रयत्॥ युगंधरोमहीपालं पुत्रालाभेनपीडितम् ॥ ५९ ॥ हर्षयन्वचसास्वेन वाक्यमेतदभाषत ॥ युगंधर उवाच ॥ अस्तिशाण्डिल्यनामा तु महर्षिःसत्यवाक्शुचिः ॥ ६० ॥ शत्रुमित्रसमोदान्तस्तपःस्वाध्यायतत्परः ॥ तमेवमुनिमासाद्य ज्वलन्तमिवपावकम् ॥६१॥ पुत्रमात्मसमं राजन्प्रार्थयेथाविनीतवत् ॥ कृपावान्समहर्षिस्तु पुत्रंतेदास्यतिध्रुवम् ॥ ६२ ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वा हर्षसंफुल्ललोचनः ॥ मन्त्रिणातेनसंयुक्तस्तस्यागादाश्रमंमुनेः ॥ ६३ ॥ तमाश्रमेसमासीनं प्रणनाममहीपतिः ॥ शाण्डिल्यस्तुमहातेजा रा

किया कि मुझको किसप्रकार पुत्रलाभ होगा युगन्धर ने पुत्र के न मिलने से पीड़ित राजा को ॥ ५९ ॥ अपने वचन से प्रसन्न करतेहुये इस वचन को कहा युगन्धर बोला कि पवित्र व सत्यवादी शाण्डिल्यनामक महर्षि हैं ॥६०॥ जोकि शत्रु व मित्र में समान व दान्त और तपस्वी तथा निजवेदपाठ में परायण हैं जलतेहुये अग्नि की नाईं उन्हीं मुनि के समीप जाकर ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! नम्रकी नाईं अपनेसमान पुत्र को मांगो वे दयावान् महर्षि तुमको निश्चय कर पुत्र को देवैंगे ॥ ६२ ॥ इस प्रकार उसका वचन सुनकर हर्ष से प्रफुल्लित नेत्रोंवाले वे राजा उस मन्त्रीसमेत उन मुनि के आश्रम को गये ॥ ६३ ॥ और राजाने आश्रम में बैठेहुये उन मुनि को

प्रणाम किया व बड़े तेजस्वी उन शाण्डिल्य ने राजाको आश्रम में प्राप्त देखकर पाद्यादिकों से पूजकर स्वागत कहा शाण्डिल्य बोले कि हे शतानीक ! तुम मेरे आश्रम को किसलिये प्राप्त हुये हो ॥ ६४ । ६५ ॥ इससमय जो कुछ तुम्हारा करने योग्य कार्य हो उसको कहो मैं करूंगा ऐसा कहतेहुये उन मुनि से युगन्धर ने कहा ॥ ६६ ॥ कि हे भगवन् ! यह राजा पुत्र के न मिलने से दुर्बल है इससमय पुत्र के कारण यह आप के शरण में प्राप्त हुआ है ॥ ६७ ॥ इसके अपुत्र से उत्पन्नहुये दुःख को तुम दूर करने के योग्य हो उसके इस वचन को सुनकर मुनिश्रेष्ठ शाण्डिल्यजी ने ॥ ६८ ॥ उस राजा के लिये पुत्र मिलने के वरकी प्रतिज्ञा किया और राजाको वर

जानंप्राप्तमाश्रमम् ॥ ६४ ॥ दृष्ट्वापाद्यादिभिःपूज्य स्वागतंव्याजहारसः ॥ शाण्डिल्य उवाच ॥ शतानीककिमर्थंत्वमाश्रमंप्राप्तवान्मम ॥ ६५ ॥ यत्कर्तव्यमिदानींते तद्वदस्वकरोम्यहम् ॥ मुनिमेवंवदन्तं तं प्रत्यवादीद्युगंधरः ॥ ६६ ॥ भगवन्नेष वैराजा पुत्रालाभेनकर्शितः ॥ भवन्तंशरणंप्राप्तः सांप्रतंपुत्रकारणात् ॥ ६७ ॥ अस्यापुत्रत्वजंदुःखं त्वमपाकर्तुमर्हसि ॥ इति तस्यवचःश्रुत्वा शाण्डिल्योमुनिसत्तमः ॥ ६८ ॥ पुत्रलाभवरंतस्मै प्रतिजज्ञेनृपायवै ॥ सराज्ञोवरदःश्रीमान्कौशाम्बीमेत्यसादरः ॥ ६९ ॥ पुत्रेष्ट्यांपुत्रकामस्य याजकोभून्महामुनिः ॥ ततोमुनिप्रसादेन राजादशरथोपमः ॥ ७० ॥ यज्वाराममिवप्राप सहस्रानीकमात्मजम् ॥ एवंविधूमःसंजज्ञे शतानीकान्नृपोत्तमात् ॥ ७१ ॥ अत्रान्तरेमन्त्रिवरस्सेनानीस्तुमहीपतेः ॥ द्विजोनर्मवयस्याश्च पुत्रान्प्रापुःकुलोचितान् ॥ ७२ ॥ पुत्रोयुगंधरस्यासीन्माल्यवान्नामभृत्यकः ॥ यौगंधरायणोनाम्ना मन्त्रशास्त्रेषुकोविदः ॥ ७३ ॥ विप्रतीकस्यतनयः पुष्पदन्तोबभूवह ॥ समएवानितिविख्यातः परसैन्यविमर्दनः ॥ ७४ ॥

देनेवाले वे महामुनि श्रीमान् आदरसमेत कौशाम्बीपुरी को आकर पुत्रकी इच्छावाले राजा की पुत्रेष्टि में यज्ञ करानेवाले हुये तदनन्तर मुनिके प्रसाद से दशरथ के समान यज्ञकर्ता राजाने रामचन्द्रकी नाईं सहस्रानीक पुत्र को पाया इसप्रकार शतानीकनामक उत्तम राजा से विधूम उत्पन्न हुये हैं ॥ ६९ । ७० । ७१ ॥ इसी अवसर में राजा के उत्तम मन्त्री सेनानी और ब्राह्मण व नर्मसखा इन्हों ने वंश के योग्य पुत्रों को पाया ॥ ७२ ॥ युगन्धर के माल्यवान्नामक पुत्र सेवक हुआ नाम से यौगन्धरायण वह मन्त्रशास्त्रों में चतुर हुआ ॥ ७३ ॥ और विप्रतीक के पुष्पदन्तनामक पुत्र हुआ समएवान् ऐसा प्रसिद्ध वह शत्रुओं की सेना का मर्दक हुआ ॥ ७४ ॥

उसरुमय वल्लभ के बलोत्कटनामक पुत्र हुआ हँसीके कर्मों में चतुर जोकि वसन्तक ऐसा प्रसिद्ध था ॥ ७५ ॥ इस के अनन्तर राजपुत्रपूर्वक वे सब बढ़े तदनन्तर पांचवर्ष के अन्त में प्राप्त होने पर ॥ ७६ ॥ स्वर्ग की वेश्या अलम्बुसा भी अयोध्या महापुरी में कृतवर्मा राजा के मृगावतीनामक कन्या पैदा हुई ॥ ७७ ॥ इसप्रकार विधूमसुख्य-वाले वे पृथ्वीमण्डल में पैदा हुये इसीसमय में दुष्ट व बलवान् तथा महाउद्योगी और सेवकोंसमेत ॥ ७८ ॥ अहिदंष्ट्र ऐसा प्रसिद्ध बलोत्कट महादैत्य ने युक्तस्थूलशिरोनामक दुष्टात्मा सहायक से ॥ ७९ ॥ सुरनगर को घेरलिया व देवताओं कोभी पीडित किया स्वर्गमें देवताओं व राक्षसोंका बड़ा युद्ध वर्तमान होने पर ॥ ८० ॥ इन्द्रजी सहाय के लिये

वल्लभस्यतदाजज्ञे तनयोवैबलोत्कटः ॥ वसन्तकइतिख्यातो नर्मकर्मसुकोविदः ॥ ७५ ॥ अथतेववृधुःसर्वे राजपुत्र पुरोगमाः ॥ पञ्चहायनतांतेषु यातेषुतदनन्तरम् ॥ ७६ ॥ अलम्बुसापिस्वर्वेश्या भूपतेःकृतवर्मणः ॥ अयोध्यायांम हापुर्यां कन्याजातामृगावती ॥ ७७ ॥ एवंविधूममुख्यास्ते जज्ञिरेक्षितिमण्डले ॥ अत्रान्तरेमहासत्त्वो दुष्टःसानुचरो बली ॥७८। अहिदंष्ट्रइतिख्यातो महादैत्योबलोत्कटः ॥ युक्तस्थूलशिरोनाम्ना सहायेनदुरात्मना ॥७९॥ रुरोधदेवनगरंव बाधेविबुधानपि ॥ वर्तमानेदिवि महासमरेसुररक्षसाम् ॥ ८० ॥ आनिनायशतानीकं सहायार्थंपुरन्दरः ॥ सयौवराज्येतन यंविधायविधिनानृपः ॥ ८१ ॥ प्रतस्थेरथमास्थाय युद्धायदितिजैःसह ॥ नीतोमातलिनाभ्येत्य सादरंसधनुर्धरः ॥ ८२ ॥ विधायप्रेक्षकान्देवाञ्जघानदितिजान्रणे ॥ अथदैत्याधिपःसोपि निहतःसमरेदिवि ॥८३ ॥ ततःशक्रस्यवचसा परेतंनृप पुङ्गवम् ॥ रथमारोप्यसहसा कौशाम्बींमातलिर्ययौ ॥ ८४ ॥ नीत्वामहीतलमसौ तत्सुतायन्यवेदयत् ॥ ततःसहस्रानी

शतानीक को ले आये और वे राजा विधि से युवराजता में पुत्र को करके ॥ ८१ ॥ दैत्यों के साथ युद्ध के लिये रथ पै चढ़कर चले और मातलि सारथी से लायेहुये उन धनुष को धारण किये शतानीक ने आदरसमेत आकर ॥ ८२ ॥ देवताओं को प्रेक्षक कर युद्ध में दैत्यों को मारा इस के उपरान्त स्वर्ग में दैत्यों का स्वामी और वह शतानीक राजा भी रण में मारगया ॥ ८३ ॥ तदनन्तर इन्द्र के वचन से मरेहुये श्रेष्ठ राजा को रथ पै बिठाकर मातलि यकायक कौशाम्बीपुरी को गया ॥ ८४ ॥ व इसने

पृथ्वी को लाकर उसको उसके पुत्र के लिये देदिया तदनन्तर बहुत दुःखित सहस्रानीक ने भी विलाप कर ॥ ८५ ॥ मन्त्रियोंसमेत इकट्ठा होकर प्रेतकार्य को निवृत्त किया और पति को मरा जानकर रानी साथही मरगई ॥ ८६ ॥ स्त्रीसमेत राजा के यशशेषता को प्राप्त होने पर शतानीक के पुत्र ने मन्त्रियों के वचन से राज्य को भजा ॥ ८७ ॥ और युगंधर, विप्रतीक व वल्लभ के मरने पर यौगंधरायण आदिक सबही उनके पुत्रों ने ॥ ८८ ॥ इस शतानीक के पुत्र के उस उस कार्य को किया इसप्रकार उस बलवान् राजपुत्र ने पृथ्वी को पालन किया ॥ ८९ ॥ व समय व्यतीत होने पर नन्दन के बड़े भारी उत्सव में इन्द्र से न्योतेहुये उसने उससे कहीहुई

कोपि विलप्यबहुदुःखितः ॥ ८५ ॥ मन्त्रिभिःसहसंभूय प्रेतकार्यंन्यवर्तयत् ॥ मृतंज्ञात्वापतिंराज्ञी सहैवानुममार च ॥ ८६ ॥ महिष्यासहसम्प्राप्ते भूपालेकीर्तिशेषताम् ॥ भेजेराज्यंशतानीकतनयोमन्त्रिणांगिरा ॥ ८७ ॥ युगन्धरेविप्रतीकेवल्लभे च मृतेसति ॥ यौगंन्धरायणमुखास्तत्पुत्राःसर्वएव हि ॥ ८८ ॥ शतानीकसुतस्यास्य तत्तत्कार्यमकुर्वत ॥ एवंसपालयामास महींराजसुतोबली ॥ ८९ ॥ यातेकालेमहेन्द्रेण सनन्दनमहोत्सवे ॥ निमन्त्रितस्तत्कथितां भाविनीमशृणोत्कथाम् ॥ ९० ॥ स्वर्योषिद्ब्रह्मणःशापादयोध्यायामलम्बुसा ॥ जातामृगावतीकन्या भूपतेःकृतवर्मणः ॥ ९१ ॥ विधूमनामा च वसुस्त्वंनाकललनाम्पुरा ॥ तामेवब्रह्मसदने दृष्ट्वानिलहृतांशुकाम् ॥ ९२ ॥ तदैवमदनाक्रान्तः शापान्मर्त्यत्वमागतः ॥ सैवतेदयिताराजन् भाविनी न चिरात्सखे ॥ ९३ ॥ यदात्वमात्मनःपुत्रं राज्येसंस्थाप्यभूपते ॥ मृगावत्यास्त्रियासार्द्धं दक्षिणस्योदधेस्तटे ॥ ९४ ॥ चक्रतीर्थेमहापुण्ये फुल्लग्रामसमीपतः ॥ स्नानंकरिष्यसितदा शापान्मुक्तोभविष्य

भाविनी कथा को सुना ॥ ९० ॥ कि ब्रह्मा के शाप से स्वर्ग की स्त्री अलम्बुसा अयोध्या में कृतवर्मा राजा की कन्या हुई है ॥ ९१ ॥ और पुरातनसमय तुम विधूम नामक वसु ब्रह्मसदन में पवन से हरेहुये वसनवाली उसी स्वर्गललना को देखकर ॥ ९२ ॥ उसीसमय कामदेव से आक्रमित होकर शाप से मनुजता को प्राप्त हुये हो हे सखे, राजन्! वही शीघ्रही तुम्हारी स्त्री होगी ॥ ९३ ॥ हे भूपते! जब तुम अपने पुत्र को राज्य पै बिठाकर मृगावती स्त्रीसमेत दक्षिणसमुद्र के किनारे ॥ ९४ ॥

फुल्लग्राम के समीप महापवित्र चक्रतीर्थ में स्नान करोगे तब शापसे मुक्त होगे ॥ ९५ ॥ भगवान् ब्रह्माजीने यह सत्यलोक में कहा है इस इन्द्रके वचनको सुनकर सहस्रानीक राजा ॥ ९६ ॥ उसके विवाह का उत्साह कर शचीपति (इन्द्र) से कहकर प्रसन्न होतेहुये वे तिलोत्तमासमेत पृथ्वी में चले ॥ ९७ ॥ और उस स्त्री को स्मरण करते तथा इन्द्र के वचन को विचारतेहुये अनन्यबुद्धि राजाने कुछ भी कहतीहुई उस तिलोत्तमा को नहीं देखा ॥ ९८ ॥ और अनादर से तिरस्कार कीहुई सुन्दर भौंहोंवाली उस तिलोत्तमा ने राजाको शाप दिया कि हे भूपते, सहस्रानीक ! मुझसे बुलायेजाते हुये भी ॥ ९९ ॥ मृगावती को हृदय से ध्यान करतेहुये तुम मुझको क्यों

सि ॥ ९५ ॥ इतिप्रोवाचभगवान् सत्यलोकेपितामहः ॥ इतीन्द्रवचनंश्रुत्वा सहस्रानीकभूपतिः ॥ ९६ ॥ तदुद्वाहकृतोत्साहः समामन्त्र्यशचीपतिम् ॥ कौशाम्बींप्रस्थितोहृष्टः सतिलोत्तमयापथि ॥ ९७ ॥ स्मरन्किमपितांकान्तां भाषमाणामनन्यधीः ॥ ध्यायञ्छतक्रतुवचो नालुलोकेमहीपतिः ॥ ९८ ॥ साशशापनृपंसुभ्रूरनादरतिरस्कृता ॥ आहूयमानोपिमया सहस्रानीकभूपते ॥ ९९ ॥ मृगावतींहृदाध्यायन्किमर्थंमामुपेक्षसे ॥ सौभाग्यमत्तामानिन्यो न सहन्तेवधीरणाम् ॥ १०० ॥ मामवज्ञाययांराजन् हृदाध्यायसिसाम्प्रतम् ॥ तयाचतुर्दशसमा वियुक्तस्त्वंभविष्यसि ॥ १ ॥ इतिशप्तवतींराजा तामुवाचतिलोत्तमाम् ॥ तामेवयदिलभ्येयं तनुजांकृतवर्मणः ॥ २ ॥ चतुर्दशसमादुःखं सहिष्येतद्वियोगजम् ॥ इत्युक्त्वातद्गतमना नृपःप्रायान्निजांपुरीम् ॥ ३ ॥ ततःकालेनतनया भूपतेःकृतवर्मणः ॥ तमाससाददयिता सर्वस्वंपुष्पधन्वनः ॥ ४ ॥ मृगावतींसमासाद्य विलासतरुवल्लरीम् ॥ विभ्रमाम्भोधिलहरीं ननन्दमदनद्युतिः ॥ ५ ॥

छोड़ते हो सौभाग्य से मत्त मानिनी स्त्रियां अनादर को नहीं सहती हैं ॥ १०० ॥ हे राजन् ! मुझको अपमान कर जिसको हृदय से इससमय ध्यान करते हो उससे चौदह वर्ष तक तुम वियुक्त होगे ॥ १ ॥ इसप्रकार शाप दियेहुई उस तिलोत्तमा से राजा ने कहा कि यदि कृतवर्मा की उसी कन्या को मैं पाऊं ॥ २ ॥ तो चौदह वर्ष तक उसके वियोग से उपजेहुये दुःख को सहूंगा यह कहकर उसमें प्राप्तमनवाले राजा अपनी पुरी को गये ॥ ३ ॥ तदनन्तर समय से कृतवर्मा राजा की कन्या पुष्पधनुष (कामदेव) के सर्वस्व उन राजा को प्राप्त हुई ॥ ४ ॥ और विलासरूप वृक्ष की वल्लरीरूपी और विभ्रमरूप समुद्र की लहरीरूपिणी मृगावती को पाकर

कामदेव के समान छविमान् वे प्रसन्न हुये ॥ ५ ॥ और शिवजी से पार्वती की नाई उसने उस राजा से गर्भ को धारण किया और पाण्डुता से वह अमृत में धोईहुई चन्द्र-
लेखा के समान शोभित हुई ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर गर्भ की प्रकटता के कारण वह सुन्दरी राजपत्नी चन्द्रमागर्भवाली ऐन्द्री (पूर्व) दिशा की नाई शोभित
हुई ॥ ७ ॥ गर्भ के अभिलाष के वश से उस रानी ने जिस जिस कामना की इच्छा किया उस उस सब बहुत दुर्लभ भी वस्तु को प्रेमके कारण राजा ने प्राप्त किया ॥ ८ ॥
व पति के अभिलाषकारक होने पर किसीसमय उसने अपनी इच्छासे अरुणबावली के स्नान में बुद्धि किया ॥ ९ ॥ उस राजाने मृगावती के अभिलाष को जा-

सातस्माद्गर्भमाधत्त भवानीवेन्दुशेखरात् ॥ पाण्डिम्नाशशिलेखेव पीयूषक्षालिताबभौ ॥ ६ ॥ सुन्दरीदौर्हृदव्यक्तेरथ
पौरन्दरीवदिक् ॥ रराजराजमहिषी रजनीकरगर्भिणी ॥ ७ ॥ सादौर्हृदवशाद्राज्ञी यंयंकाममकामयत् ॥ सुदुर्लभमपिप्रे
मणा तत्तत्सर्वसमाहरत् ॥ ८ ॥ पत्यौसमीहितकरे साकदाचिन्मृगावती ॥ स्वेच्छयावैमतिंचक्रे रक्तवापीनिमज्जने ॥ ९ ॥
अभिलाषंसविज्ञाय मृगावत्यामहीपतिः ॥ कौसुम्भसलिलैःपूर्णां क्षणाद्वापीमकारयत् ॥ १० ॥ तस्मिन्रक्तजलेराज्ञी
स्नानंसादरमातनोत् ॥ ततस्तांरक्ततोयार्द्रां फुल्लकिंशुकसन्निभाम् ॥ ११ ॥ राजस्त्रीमामिषधिया सुपर्णकुलसम्भवः ॥
महारविटकःपक्षी मुग्धान्दग्धविधेर्वशात् ॥ १२ ॥ नीत्वाविहायसादूरं सतामचलसन्निभः ॥ तत्याजमोहविवशामुद
याचलकन्दरे ॥ १३ ॥ लब्धसंज्ञाशनैःकम्पविलोलतनुवल्लरी ॥ दृग्भ्यामुत्पलतुल्याभ्यां मुहुरश्रूण्यवर्तयत् ॥ १४ ॥
हा नाथ मन्दभाग्याहं त्वद्वियोगेनपीडिता ॥ कागतिःक्व नु गच्छामि द्रक्ष्यामित्वन्मुखंकदा ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वागजसिंहा

नकर क्षणभर में कुसुम के जलों से पूर्ण बावली को बनवाया ॥ १० ॥ व उस लाल जलमें रानी ने आदरसमेत स्नान किया तदनन्तर लाल जल से भीगीहुई व फूले
टेसूके समान उस मृगावती ॥ ११ ॥ मुग्धा राजपत्नी को सुपर्ण के वंश में उपजेहुये महारविटक पक्षी ने दग्धभाग्य के वश से मांस की बुद्धि से ॥ १२ ॥ उस को
आकाश करके दूर लेजाकर पर्वत के समान उसने मोह के वश उसको उदयाचल की कन्दरा में छोडदिया ॥ १३ ॥ व धीरे २ चैतन्यता को पायेहुई कम्प से चञ्चल
शरीररूपी वल्लरी उस स्त्री ने कमल के समान नेत्रों से बार २ आसुवों को बहाया ॥ १४ ॥ व कहा कि हा नाथ ! तुम्हारे वियोग से पीड़ित मैं मन्दभाग्यवती हूं मेरी

क्या दशा होगी और मैं कहां जाऊं व कब मैं तुम्हारे मुखको देखूंगी ॥ १५ ॥ यह कहकर वध को चाहनेवाली वह हाथियों व सिंहों के आगे हुई और सब सिंहों व हाथियों से छोड़ीहुई वह मृत्यु को न प्राप्त हुई ॥ १६ ॥ क्योंकि विपत्ति के समय में मनुष्यों को निश्चय कर मृत्यु नहीं मिलती है और उस के बहुत दीन विलाप को सुनकर ऊपर मुख कियेहुये ॥ १७ ॥ रुकीगतिवाले मृगों ने भी तिनुको को नहीं खाया तदनन्तर वैसी स्थित व रोतीहुई उस रानी को दयासिन्धु मुनिपुत्र ने कृपा से अपने आश्रम को लाकर उस रानी को अपने गुरु जमदग्निजी के लिये निवेदन किया ॥ १८ । १६ ॥ और धर्मात्मा जमदग्निजी ने उस को समीप में समझाया

नां पुरोभूद्वधकाङ्क्षिणी ॥ सासर्वकेसरिगजैस्त्यक्ता न निधनंगता ॥ १६ ॥ आपत्कालेनृणांनूनं मरणंनैवलभ्यते ॥ अतिदीनंसमाकर्ण्य तस्याःक्रन्दितमुन्मुखाः ॥ १७ ॥ मृगानिष्पन्दगतयो न तृणान्यप्यभक्षयन् ॥ ततस्तांकरुणासिन्धु र्मुनिपुत्रस्तथास्थिताम् ॥ १८ ॥ रुदतींकृपयाराज्ञीं समानीयस्वमाश्रमम् ॥ न्यवेदयच्चतांराज्ञीं गुरवेजमदग्नये ॥ १६ ॥ जमदग्निस्तुधर्मात्मा तामाश्वासयदन्तिके ॥ तथाजानीहिमांभद्रे कृतवर्मायथातव ॥ २० ॥ एवमाश्वासितातत्र कृपयाजमदग्निना ॥ चक्रेतत्रैवसावासमाश्रमेमुनिसंकुले ॥ २१ ॥ ततस्स्वल्पेनकालेन विशाखमिवपार्वती ॥ असूत तनयंबाला शौर्यधैर्यगुणान्वितम् ॥ २२ ॥ सूतिकागृहकृत्यानि यानिकार्याणिबन्धुभिः ॥ चक्रिरेमातृवत्तानि मृगावत्यामुनिस्त्रियः ॥ २३ ॥ तंसुजातंनृपसुतं कापिवागशरीरिणी ॥ उदयाचलजातत्वाच्चकारोदयनाभिधम् ॥ २४ ॥ आश्रमेसमुनीन्द्रेण कृतचूडादिकव्रतः ॥ जग्राहसकलाविद्या जमदग्नेर्महामुनेः ॥ २५ ॥ युवान्नृपसुतःसोयं कदाचि

कि हे भद्रे ! मुझ को वैसेही जानिये जैसे कि तुम्हारे पिता कृतवर्मा हैं ॥ २० ॥ वहां जमदग्निजी से इसप्रकार दया से समझाईहुई उस रानी ने मुनियों से संयुत आश्रम में निवास किया ॥ २१ ॥ तदनन्तर थोड़े समय के बाद उस बाला मृगावती ने शूरता व धैर्यगुण से संयुत पुत्र को पैदा किया जैसे कि पार्वतीजी ने स्वामिकार्त्तिकेयजी को पैदा किया है ॥ २२ ॥ जो सूँवरिघर के कार्य बन्धुओं से करने योग्य होते हैं उन मृगावती के कर्मों को माताकी नाईं मुनिनारियों ने किया ॥ २३ ॥ और उदयाचलपै पैदा होने के कारण उन उत्तम पैदा हुये राजपुत्र का किसी भी अशरीरिणी याने आकाशवाणी ने उदयननाम किया ॥ २४ ॥ और मुनीन्द्र से किये

हुये चौलादिकव्रतवाले उन उदयन ने जमदग्नि महामुनि से सब विद्याओं को ग्रहण किया ॥ २५ ॥ किसीसमय शिकार में लगेहुये इस ज्वान राजपुत्र ने व्याध से दृढ़ बांधेहुये एक साप को देखा ॥ २६ ॥ और दयासंयुत उस उदयन ने कहा कि हे व्याध ! साप को छोड़दीजिये तुम इससे क्या करोगे इसको तुम मारने के योग्य नहीं हो ॥ २७ ॥ तदनन्तर व्याध ने उस उदयनसे कहा कि हे पुरुष ! इस सांप से मैं ग्रामों व नगरों में धन धान्यादिक को पाऊंगा ॥ २८ ॥ इसकारण इस जीविका-रूप साप को मैं किसीप्रकार नहीं छोडूँगा, यह कहकर नीच व्याध ने उस सांप को पेटारी में बांधलिया ॥ २९ ॥ और बँधेहुये सांप को देखकर उन उदयन ने धनको

न्मृगयापरः ॥ अपश्यदेकंभुजगं व्याधेनदृढसंयतम् ॥ २६ ॥ उवाचसकृपायुक्तो व्याधमुञ्चभुजङ्गमम् ॥ किंकरिष्यस्यने नत्वं नैनंहिंसितुमर्हसि ॥ २७ ॥ तमुवाचततोव्याधः सर्पेणानेनपूरुष ॥ धनधान्यादिकंलप्स्ये ग्रामेषुनगरेषु च ॥ २८ ॥ अतोहंजीविकामेतं नैवमोक्ष्येकथंचन ॥ इत्युक्त्वापेटिकायान्तं बबन्धशबराधमः ॥ २९ ॥ बद्धमालोक्यभुजगं श बरायधनार्थिने ॥ अमोचयत्स्वजननीदत्तंदत्त्वासकङ्कणम् ॥ ३० ॥ मोचितस्तेनसर्पोसौ नरोभूत्वाकृताञ्जलिः ॥ स्तवं कृत्वा च सहसा तंपातालंनिनाय वै ॥ ३१ ॥ किन्नराख्येननागेन धृतराष्ट्रसुतेनसः ॥ पातालंप्राविशत्तत्र न्यवसत्पू जितस्सुखम् ॥ ३२ ॥ धृतराष्ट्रस्यतनयां भगिनींकिन्नरस्य च ॥ ललिताख्यांगुणोपेतां प्रियांभेजेनृपात्मजः ॥ ३३ ॥ सातस्माज्जनयामास पुत्रमप्रतिमौजसम् ॥ ततःसाललिताप्राह त्वरितोदयनंप्रति ॥ ३४ ॥ ललितोवाच ॥ अहंविद्या धरीपूर्वं सुकर्णीनामनामतः ॥ शापात्सर्पत्वमाप्तास्मि शापान्तोगर्भएषमे ॥ ३५ ॥ ततोमुंप्रतिगृह्णीष्व पुत्रमप्रतिमौ

चाहनेवाले व्याध के लिये अपनी माता से दियेहुये कङ्कण को देकर छुड़ादिया ॥ ३० ॥ और उस से छुड़ायेहुये इस सांप ने मनुष्य होकर हाथों को जोड़कर यकायक पाताल को प्राप्त किया ॥ ३१ ॥ और धृतराष्ट्र के पुत्र किन्नरनामक नाग से उसने पाताल में प्रवेश किया और वहां पूजित होतेहुये उसने सुखपूर्वक निवास किया ॥ ३२ ॥ व राजपुत्र उदयन ने धृतराष्ट्र की कन्या व किन्नर की बहन ललितानामक गुणों से संयुत प्यारी स्त्री को पाया ॥ ३३ ॥ और उस ललिता ने उन उदयन से अतुल्यबलवाले पुत्र को पैदा किया तदनन्तर उस शीघ्रतासंयुत ललिता ने उदयन से कहा ॥ ३४ ॥ ललिता बोली कि नाम से सुकर्णीनामक मैं पहले विद्याधरी थी

और शापसे रूपयोनि को प्राप्त हुई हूं और यह गर्भ मेरे शापका अन्त है ॥ ३५ ॥ इसलिये अतुल्यबलवाले इस पुत्रको तुम लेवो और न कुम्हलाईहुई ताम्बूलकी माला को और शब्दवती वीणा को भी लेवो ॥ ३६ ॥ बहुत अच्छा यह कहकर उस सब को राजकुमार ने ग्रहण किया और सब सांपों के देखतेहुये वह भी आकाश को चली गई ॥ ३७ ॥ तदनन्तर वे उदयन भी वीणा, माला व पुत्र को लेकर दुःखित अपनी माताको देखने की इच्छा करके शीघ्रतासंयुत होकर ॥ ३८ ॥ श्वशुरादिकों से आज्ञा को लेकर सहसा अपने आश्रम को गये और जमदग्नि से समझाईहुई शोचसे संतप्त माताके ॥ ३९ ॥ समीप आकर उन्होंने प्रसन्न कराया व इस से वृत्तान्तको कहा तब

जसम् ॥ ताम्बूलींस्रजमम्लानां वीणांघोषवतीमपि ॥ ३६ ॥ तथेतिप्रतिजग्राह तत्सर्वंनृपनन्दनः ॥ पश्यतांसर्वसर्पाणां साप्यगच्छद्विहायसम् ॥ ३७ ॥ ततःसोपिगृहीत्वातु वीणांमालां च पुत्रकम् ॥ दुःखितामात्मजननीं द्रष्टुकामस्त्वरान्वितः ॥ ३८ ॥ श्वशुरादीननुज्ञाप्य सहसास्वाश्रमंययौ ॥ जननींशोकसंतप्तामाश्वस्तांजमदग्निना ॥ ३९ ॥ समेत्यतोषयामास वृत्तंचास्यैन्यवेदयत् ॥ तदाप्रहृष्टहृदया सावभूवमृगावती ॥ ४० ॥ अत्रान्तरेसशबरः कौशाम्ब्यांवणिजंययौ ॥ सहस्रानीकनामाङ्कं विक्रेतुंमणिकङ्कणम् ॥ ४१ ॥ राजमुद्रांसमालोक्य कङ्कणेसवणिग्वरः ॥ शबरेणसमंगत्वा सर्वंराज्ञेन्यवेदयत् ॥ ४२ ॥ ततःसहस्रानीकोयं तत्प्राप्यमणिकङ्कणम् ॥ मृगावतीविप्रयोगविषाग्निपरिपीडितः ॥ ४३ ॥ तद्बाहुसङ्गपीयूषशीकरासारशीतलम् ॥ कङ्कणंहृदयेन्यस्य विललापसुदुःखितः ॥ ४४ ॥ उवाच च कथंलब्धं कङ्कणंशबरत्वया ॥ सचैवमुक्तस्तत्प्राप्तिक्रमंतस्मैन्यवेदयत् ॥ ४५ ॥ शबरस्यवचःश्रुत्वा सहस्रानीकभूपतिः ॥ प्रतस्थेमन्त्रिभिः

वह मृगावती प्रसन्नमन हुई ॥ ४० ॥ इसी अवसर में वह व्याध कौशाम्बीपुरी में सहस्रानीकनाम से चिह्नित मणि के कङ्कण को बेंचने के लिये बनिये के समीप गया ॥ ४१ ॥ और उस उत्तम बनिये ने कङ्कण में राजा की मुद्रा (चिह्न) को देखकर बहेलिये के साथ जाकर सब वृत्तान्तको राजा से कहा ॥ ४२ ॥ तदनन्तर यह सहस्रानीक उस मणिके कङ्कण को पाकर मृगावती के वियोग की विषरूपी अग्नि से पीड़ित हुआ ॥ ४३ ॥ और उसकी भुजाके सङ्गरूपी अमृतबूंद की धारा से ठण्ढे कङ्कणको हृदय में धरकर बहुत दुःखित उस राजाने विलाप किया ॥ ४४ ॥ व कहा कि हे शबर ! तुमने किसप्रकार कङ्कणको पाया था इसप्रकार, पूंछेहुये उसने उस कङ्कण

के मिलने के क्रम को उस राजा से बतलाया ॥ ४५ ॥ और व्याध के वचन को सुनकर स्त्री के देखने के कौतुकी सहस्रानीक राजा मन्त्रियोंसमेत चले ॥ ४६ ॥ और जहां चन्द्रमा व सूर्य आदिक सहसा उदय को पाते हैं उसी (उदय) पर्वत को उद्देश कर वे अचानकही चले ॥ ४७ ॥ व कुछ मार्ग को नांघकर थकीहुई सेनावाले वे राजा टिकते भये और स्त्री के सङ्गम की चिन्ता में तत्पर उन राजाके निद्रारहित होने पर ॥ ४८ ॥ वसन्त ने विचित्र कथाओं को कहा और उस की कथा के सुननेही से मानो वे राजा उस रानी को लेआये ॥ ४९ ॥ तदनन्तर समय से जम्भशत्रु (इन्द्र) से पालित दिशा को प्राप्त होकर वैररहित सिंह व हाथियोंवाले,

सार्द्धं प्रियालोकनकौतुकी ॥ ४६ ॥ यत्रेन्दुभास्करमुखा लभन्तेसहसोदयम् ॥ तमेवगिरिमुद्दिश्य सहसासोभ्यगच्छ त ॥ ४७ ॥ किंचिन्मार्गसमुल्लङ्घ्य तस्थौविश्रान्तसैनिकः ॥ तस्मिन्विनिद्रेदयिता सङ्गमध्यानतत्परे ॥ ४८ ॥ वसन्त कोविचित्रास्तु कथयामासवैकथाः ॥ तत्कथाश्रवणेनैव तांराज्ञींसनिनायवै ॥ ४९ ॥ ततःकालेनककुभं प्राप्यजम्भारि पालिताम् ॥ जमदग्न्याश्रमंगत्वा निर्वैरहरिकुञ्जरम् ॥ ५० ॥ तपस्यन्तंमुनिंदृष्ट्वा शिरसाप्रणनामसः ॥ आशीर्वादेनसमु निः प्रतिजग्राहतंनृपम् ॥ ५१ ॥ विधिवत्पूजयामास पाद्यार्घ्याचमनीयकैः ॥ उवाच च महीपालं धर्मार्थसहितंवचः ॥ ५२ ॥ नरनाथमृगावत्यां जातोयंतनयस्तव ॥ यशोनिधिर्महातेजा रामचन्द्रइवापरः ॥ ५३ ॥ भविष्यतिदिशांजेता सिंह संहननोप्ययम् ॥ पौत्रएषमहाभाग तथाह्युदयनात्मजः ॥ ५४ ॥ इयंमृगावतीभार्या पातिव्रत्यपरायणा ॥ तदेतांस्त्री न्महाराज प्रतिगृह्णीष्वमाचिरम् ॥ ५५ ॥ उक्त्वैवंमुनिनादत्तां तांगृहीत्वामहीपतिः ॥ प्रियासहायःस्वपुरीं प्रतस्थेम

जमदग्निजी के आश्रम को जाकर ॥ ५० ॥ तपस्या करतेहुये मुनि को देखकर उन्होंने मस्तक से प्रणाम किया और उन मुनि ने आशीर्वादसे उस राजा को ग्रहण किया ॥ ५१ ॥ और पाद्य, अर्घ्य व आचमन से विधिपूर्वक पूजन किया और राजा से धर्म व अर्थसमेत वचन को कहा ॥ ५२ ॥ कि हे नरनाथ! तुम्हारा यह पुत्र मृगावती में पैदा हुआ है जोकि यशोनिधान व बडा तेजस्वी और दूसरे रामचन्द्र की नाई है ॥ ५३ ॥ और सिंह की नाई पुष्टाङ्ग यह दिशाओं को जीतनेवाला होगा वैसेही हे महाभाग ! यह उदयन का पुत्र तुम्हारा पौत्र है ॥ ५४ ॥ और पतिव्रतधर्म में लगीहुई यह मृगावती तुम्हारी स्त्री है इसकारण हे महाराज ! इन तीनों को शीघ्रही ग्रहणकीजिये ॥ ५५ ॥

न्त्रिभिर्वृतः ॥ ५६ ॥ ततःप्रविश्यकौशाम्बीं नगरींसनृपोत्तमः ॥ स्मरञ्छक्रस्यवचनं मानुषंजन्मकुत्सयन् ॥ ५७ ॥ महीमुदयनायैव ददौपुत्रायधीमते ॥ तस्मिन्नुदयनेपुत्रे राज्यपालनदक्षिणे ॥ ५८ ॥ राज्यभारंविनिक्षिप्य सशापविनिवृत्तये ॥ वसन्तकरुमरवद्भ्यां मृगावत्या च भार्यया ॥ ५९ ॥ यौगन्धरायणेनापि मन्त्रिपुत्रेणसंयुतः ॥ चक्रतीर्थेमहापुण्ये दक्षिणस्योदधेस्तटे ॥ ६० ॥ स्नानंकर्तुंययौतूर्णं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमे ॥ वाहनैर्वातरंहोभिरचिराल्लवणोदधिम् ॥ ६१ ॥ सम्प्राप्यचक्रतीर्थे च स्नानंचक्रुर्यथाविधि ॥ तेषु च स्नातमात्रेषु स्वंरूपंप्रतिपेदिरे ॥ ६२ ॥ दिव्याम्बरधराःसर्वे दिव्यमाल्यानुलेपनाः ॥ विमानानिमहार्हाणि समारुह्यविभूषिताः ॥ ६३ ॥ तत्तीर्थंबहुमन्वानाः स्वशापच्छेदकारणम् ॥ पश्यतांसर्वलोकानां स्वर्गलोकंययुस्तदा ॥ ६४ ॥ तदाप्रभृतितेसर्वे ज्ञात्वातत्तीर्थवैभवम् ॥ पावनेचक्रतीर्थेस्मिन् स्नानंकुर्वन्तिसर्वदा ॥ ६५ ॥ एवंप्रभावंतत्तीर्थं येसमागत्यमानवाः ॥ स्नानंसकृच्चकुर्वन्ति तेसर्वेस्वर्गवासिनः ॥ ६६ ॥ एवंवःक

बहुत अच्छा यह कहकर मुनि से दीहुई उस मृगावती को राजा ग्रहण कर प्रियासहाय व मन्त्रियों से संयुत होकर अपनी नगरीको चले ॥ ५६ ॥ तदनन्तर कौशाम्बीपुरी में पैठकर मनुष्यजन्म की निन्दा करते व इन्द्र के वचन को स्मरण करतेहुये उस राजा ने ॥ ५७ ॥ बुद्धिमान् उदयनपुत्र के लिये पृथ्वी को देदिया और राज्यकी पालना में चतुर उस उदयनपुत्र के ऊपर ॥ ५८ ॥ राज्य के भारको धरकर वसन्तक व रुमण्वान् और मृगावती स्त्रीसमेत तथा मन्त्री के पुत्र यौगन्धरायण से भी संयुत वे राजा शाप की निवृत्ति के लिये दक्षिणसमुद्र के किनारे महापवित्र चक्रतीर्थ ॥ ५९ । ६० ॥ जोकि सब तीर्थों में उत्तमोत्तम है उस में नहाने के लिये शीघ्रही गये व पवन के समान वेगवान् घोड़ों से शीघ्रही क्षारसमुद्र ॥ ६१ ॥ व चक्रतीर्थ को प्राप्त होकर विधिपूर्वक स्नान किया और उन में नहाने पर उन्हों ने अपने रूप को पाया ॥ ६२ ॥ और दिव्य वस्त्रों को धारे व दिव्य मालाओं को पहने सब भूषित होकर बड़े उत्तम विमानोंपै चढ़कर ॥ ६३ ॥ अपने शापके नाश के कारणरूप उस तीर्थ को बहुत मानतेहुये वे उससमय सब मनुष्यों के देखतेहुये स्वर्गलोकको चलेगये ॥ ६४ ॥ तबसे लगाकर वे सब उस तीर्थ के ऐश्वर्य को जानकर सदैव इस पवित्र चक्रतीर्थ में स्नान करते हैं ॥ ६५ ॥ जो मनुष्य ऐसे प्रभाववाले उसतीर्थ को आकर एक बार स्नान करते हैं वे सब स्वर्गवासी होते हैं ॥ ६६ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार

तुमलोगों से बड़ाभारी विधूमका चरित्र कहागया सावधान होताहुआ जो मनुष्य इस अध्याय को पढ़ता या सुनता है ॥६७॥ वह जिस २ कामनाकी इच्छा करताहै उस सब को शीघ्रही पाता है ॥ १६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचक्रतीर्थप्रशंसायामलम्बुसाविधूमशापविमोचनंनामपञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

दो० । हन्यो महाहनु दैत्य को जिमि दुर्गा महरानि। सोइ छठें अध्याय में कह्यो चरित सुखखानि ॥ ऋषिलोग बोले कि हे व्यास, विनेय, पौराणिकोत्तम, सूतजी ! अति उत्तम चक्रतीर्थ देवीपत्तन तक है तुमने यह पहले हमलोगों से कहा है इससे मैं कुछ पूंछता हूं कि वह देवीपुर कहां है कि जिस के अन्त तक

थितंविप्रा विधूमचरितंमहत् ॥ यःपठेदिममध्यायं शृणुयाद्वासमाहितः ॥ ६७॥ यंयंकामयतेकामं तंसर्वंशीघ्रमाप्नुया त् ॥१६८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येचक्रतीर्थप्रशंसायामलम्बुसाविधूमशापविमोचनंनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ऋषय ऊचुः ॥ द्वैपायनविनेयत्वं सूतपौराणिकोत्तम ॥ देवीपत्तनपर्यन्तं चक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ १ ॥ इत्यब्रवीःपुरास्मा कमतःपृच्छामिकिंचन ॥ देवीपुरंहितत्कुत्र यदन्तंचक्रतीर्थकम् ॥ २ ॥ देवीपत्तनमित्याख्या कथंतस्याभवत्तथा ॥ श्री रामसेतुमूले च स्नातानाम्पापिनामपि ॥ ३ ॥ कीदृशंवाभवेत्पुण्यं चक्रतीर्थेतथैव च ॥ एतच्चान्यान्विशेषांश्च ब्रूहि पौ राणिकोत्तम ॥ ४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ सर्वमेतत्प्रवक्ष्यामि शृणुध्वंमुनिपुङ्गवाः ॥ पठतांशृण्वतांचैतदाख्यानंपापनाश नम् ॥ ५ ॥ यत्रपाषाणनवकं स्थापयित्वारघूद्वहः ॥ बबन्धप्रथमंसेतुं समुद्रेमैथिलीपतिः ॥ ६ ॥ देवीपुरन्तुतत्रैव यदन्तं चक्रतीर्थकम् ॥ देवीपत्तनमित्याख्या यथातस्यसमागता ॥ ७ ॥ तद्ब्रवीमिमुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वंश्रद्धयासह ॥ पुरादेवा

चक्रतीर्थ है ॥ १ । २ ॥ और उसका देवीपत्तन ऐसा कैसे नाम हुआ है व श्रीरामजी के सेतु के मूल में नहाये हुये पापियों को भी ॥ ३ ॥ कैसा पुण्य होता है व चक्रतीर्थ में क्या पुण्य होता है हे पौराणिकोत्तम ! इसको व अन्य विशेषोंको भी कहिये ॥ ४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठो ! इस सबको मैं कहूंगा सुनिये पढ़ते व सुनतेहुये मनुष्यों का यह चरित्र पापविनाशक है ॥ ५ ॥ जहां कि जानकीनाथ रघूद्वह श्रीरामजी ने पहले समुद्र में नव पत्थरोंको को थापकर सेतु को बांधा है ॥ ६ ॥ वहीं देवीपुर है कि जिसके अन्ततक चक्रतीर्थ है और जिसप्रकार उसका देवीपत्तन ऐसा नाम प्राप्त हुआ है ॥ ७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! उसको मैं कहता हूं

श्रद्धासमेत सुनिये कि पुरातनसमर्थ देवासुरसंग्राम में देवताओं से नाश कियेहुये पुत्रोंवाली ॥ ८ ॥ शोक से मोहित दिति ने अपनी कन्या से कहा दिति बोली कि हे पुत्रि ! अति उत्तम तपोवन को तपस्या करने के लिये जाइये ॥ ९ ॥ हे सुश्रोणि ! नियत व नियत इन्द्रियोंवाली तुम पुत्र के लिये तप करो कि जिस पुत्र से इन्द्रादिक देवता नाश होजावें ॥ १० ॥ मातासे ऐसी कहीहुई कन्याने उसको प्रणाम कर माहिष (भैंसी) के रूप को स्वीकार कर वनमें पञ्चाग्नि के मध्य में प्राप्त होतीहुई ॥ ११ ॥ उसने भयङ्कर तप किया उससे लोक कांप उठे और उसके तप करनेपर त्रिलोक भय से विकल हुआ ॥ १२ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! इन्द्रादिक देवगणों ने मोहको पाया

सुरेयुद्धे देवैर्नाशितपुत्रिणी ॥ ८ ॥ दितिःप्रोवाचतनयामात्मनःशोकमोहिता ॥ दितिरुवाच ॥ याहिपुत्रितपःकर्तुं तपोवनमनुत्तमम् ॥ ९ ॥ पुत्रार्थंतपसुश्रोणि नियतानियतेन्द्रिया ॥ इन्द्रादयोनाशिष्येरन्येनपुत्रेणवैसुराः ॥ १० ॥ उदितातनयाचैवं जनन्याताम्प्रणम्य च ॥ स्वीकृत्यमाहिषंरूपं वनंपञ्चाग्निमध्यगा ॥ ११ ॥ तपोतप्यतसाघोरं तेनलोकाश्चकम्पिरे ॥ तस्यांतपःप्रकुर्वन्त्यां त्रिलोक्यासीद्भयातुरा ॥ १२ ॥ इन्द्रादयःसुरगणा मोहमापुर्द्विजोत्तमाः ॥ सुपार्श्वस्तपसातस्या मुनिःक्षुब्धोवदत्तुताम् ॥ १३ ॥ सुपार्श्व उवाच ॥ परितुष्टोस्मिसुश्रोणि पुत्रस्तवभविष्यति ॥ मुखेनमाहिषाकारो वपुषानररूपवान् ॥ १४ ॥ महिषोनामपुत्रस्ते भविष्यत्यतिवीर्यवान् ॥ पीडयिष्यति यःस्वर्गं देवेन्द्रं च ससैनिकम् ॥ १५ ॥ सुपार्श्वस्त्वेवमुक्त्वातां विनिवार्यतपस्तथा ॥ आगच्छदात्मनोलोकमनुनीयतपस्विनीम् ॥ १६ ॥ अथजज्ञेसमहिषो यथोक्तंब्रह्मणापुरा ॥ व्यवर्द्धतमहावीर्यः पर्वणीवमहोदधिः ॥ १७ ॥ ततःपुत्रोविप्रचित्तेर्विद्युन्माल्य

और उसके तपसे क्षोभित सुपार्श्वमुनि ने उससे कहा ॥ १३ ॥ सुपार्श्व बोले कि हे सुश्रोणि ! मैं तुम से प्रसन्न हूं मुखसे भैंसे के आकार व शरीर से मनुष्य रूपवाला तुम्हारे पुत्र होगा ॥ १४ ॥ तुम्हारे महिषनामक बड़ा पराक्रमी पुत्र होगा जोकि सेनासमेत देवेन्द्र व स्वर्ग को पीड़ा करैगा ॥ १५ ॥ सुपार्श्व उससे ऐसा कहकर व तपस्या को रोंककर तपस्विनी को समझाकर अपने लोक को आये ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर पहले जैसा ब्रह्माने कहा था वैसाही वह माहिष पैदा हुआ और बड़ा पराक्रमी

वह पर्व में समुद्र की नाई बढ़ता भया ॥ १७ ॥ तदनन्तर हे द्विजो ! विप्रचित्ति का पुत्र जो दैत्यों में अग्रणी विद्युन्माली था और अन्य वे श्रेष्ठ दानव जोकि पृथ्वी में थे ॥ १८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! वे सब इस महिषासुर को दियेहुये वरदानको सुनकर प्रसन्नता से आकर महिषासुर से बोले ॥ १९ ॥ कि हे महामते ! पहले स्वर्ग की स्वामिता हमलोगों की थी और देवताओं ने विष्णुजी के आश्रित होकर पराक्रमसे हमलोगों के राज्य को हरलिया ॥ २० ॥ हे महिषासुर ! हमलोगों के उस राज्यको बलसे लाइये और आज अपने वीर्य व प्रभावको प्रकट कीजिये ॥ २१ ॥ और ब्रह्माजी से दियेहुये वरदान करके दुर्धर्ष व अमित बलवाले तुम युद्ध में

सुराग्रणीः ॥ अन्येप्यसुरवर्यास्ते सन्तियेभूतलेद्विजाः ॥ १८ ॥ तेसर्वेमहिषस्यास्य श्रुत्वादत्तंवरम्मुदा ॥ समागम्य मुनिश्रेष्ठाः प्रावदन्महिषासुरम् ॥ १९ ॥ स्वर्गाधिपत्यमस्माकं पूर्वमासीन्महामते ॥ देवैर्विष्णुंसमाश्रित्य राज्यंनोहृतमोजसा ॥ २० ॥ तद्राज्यमानयबलादस्माकंमहिषासुर ॥ वीर्यंप्रकटयस्वाद्य प्रभावमपिचात्मनः ॥ २१ ॥ अतुल्य बलवीर्यस्त्वं ब्रह्मदत्तवरोद्धतः ॥ पुलोमजापतिंयुद्धे जहि देवगणैःसह ॥ २२ ॥ दनुजैरेवमुक्तोसौ योद्धुकामोमरैःसह ॥ महावीर्योथमहिषः प्रययावमरावतीम् ॥ २३ ॥ देवानामसुराणां च संवत्सरशतंरणम् ॥ पुराबभूवविप्रेन्द्रास्तुमुलंरोमहर्षणम् ॥ २४ ॥ देववृन्दंततोभीत्या पुरस्कृत्यपुरन्दरम् ॥ कान्दिशीकमभूद्विप्रा ब्रह्माणं च ययौतदा ॥ २५ ॥ ब्रह्माता नमरान्सर्वान्समादाययययौपुनः ॥ नारायणशिवौयत्र वर्तेतेविश्वपालकौ ॥ २६ ॥ तत्रगत्वानमस्कृत्य स्तुत्वास्तोत्रैरनेकशः ॥ ब्रह्मानिवेदयामास महिषासुरचेष्टितम् ॥ २७ ॥ सुराणामसुरैःपीडां देवयोःशम्भुकृष्णयोः ॥ इन्द्राग्नियम

देवगणोंसमेत पुलोमजा (इन्द्राणी) के पति इन्द्रको मारो ॥ २२ ॥ दैत्यों से इसप्रकार कहाहुआ देवताओं के साथ युद्ध की इच्छावाला यह महाबलवान् महिषासुर अमरावतीपुरी को गया ॥ २३ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! पुरातनसमय सौ वर्ष तक दैत्यों व देवताओं का बड़ाभारी रोमहर्षण युद्ध हुआ ॥ २४ ॥ तदनन्तर हे द्विजो ! इन्द्र को आगे कर भयसे देवताओं का यूथ भगगया व उससमय ब्रह्मा के समीप गया ॥ २५ ॥ और उन सब देवताओं को लेकर फिर ब्रह्मा वहां गये जहां कि संसारके पालन करनेवाले विष्णु व शिवजी वर्त्तमान थे ॥ २६ ॥ और वहां जाकर प्रणाम कर व अनेक स्तोत्रों से स्तुति कर ब्रह्मा ने महिषासुर के वृत्तान्त को व दैत्यों से

देवताओं की पीड़ा को शिव व विष्णुदेवजी से कहा कि इन्द्र, अग्नि, यम, सूर्य, चन्द्रमा, कुबेर व वरुणादिक देवताओं को ॥ २७ । २८ ॥ निकालकर उनके अधिकारों पै यह आपही स्थित है व अन्यभी देवगणों के अधिकार में स्थित हुआ है ॥ २९ ॥ और महिषासुर से पीड़ित वह निकालाहुआ देवगण पृथ्वीतल में मनुष्यों की नाईं घूमता है ॥ ३० ॥ हे देवताओ ! देवगणोंसमेत मैं तुम दोनों से इसको बतलाने के लिये आया हूं और यहां आयेहुये उन देवताओं की रक्षा कीजिये ॥ ३१ ॥ ब्रह्मा के वचन को सुनकर वे लक्ष्मीनाथ व महादेवजी क्रोध से भयङ्करमुख व दुःख से देखने योग्य हुये ॥ ३२ ॥ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! विष्णुजी के व शिव और ब्रह्मा के बड़े

सूर्येन्दुकुबेरवरुणादिकान् ॥ २८ ॥ निराकृत्याधिकारेषु तेषांतिष्ठत्ययंस्वयम् ॥ अन्येषांदेववृन्दानामधिकारेपितिष्ठति॥२९॥ निरस्तंदेववृन्दंतत् स्वर्लोकादवनीतले ॥ मनुष्यवद्विचरते महिषासुरबाधितम्॥३०॥ एतज्ज्ञापयितुंदेवौयुवयो रहमागतः॥ सार्द्धंदेवगणैरत्र रक्षतन्तान्समागतान् ॥ ३१ ॥ ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वा रमेश्वरमहेश्वरौ ॥ कोपात्करालवदनौ दुष्प्रेक्ष्यौतौबभूवतुः ॥ ३२ ॥ अत्यन्तकोपज्वलितान्मुखाद्विष्णोरथद्विजाः ॥ निश्चक्राममहत्तेजः शम्भोःस्रष्टुस्तथैव च ॥ ३३ ॥ अपरेषांसुराणां च देहादिन्द्रशरीरतः ॥ तेजःसमुदभूत्क्रूरं तदेकंसमजायत ॥ ३४ ॥ तेषांतुतेजसां राशिर्ज्वलत्पर्वतसन्निभः ॥ ददृशुर्देववृन्दैस्तैर्ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥ ३५ ॥ तेजसांसमुदायोसौ नारीकाचिदभूत्तदा॥ शिवतेजोमुखमभूद्विष्णुतेजोभुजौद्विजाः ॥ ३६ ॥ ब्रह्मतेजस्तुचरणौ मध्यमैन्द्रेणतेजसा ॥ यमस्यतेजसाकेशाः कुचौचन्द्रस्यतेजसा ॥ ३७ ॥ जङ्घोरूकल्पितौविप्रा वरुणस्यतुतेजसा ॥ नितम्बंपृथिवीतेजः पादाङ्गुल्योर्कतेजसा ॥३८॥

क्रोध से ज्वलितमुख से बड़ाभारी तेज निकला ॥ ३३ ॥ व अन्यदेवताओं के शरीर से व इन्द्रजी के देह सेजो क्रूर तेज उत्पन्न हुआ वह एक होगया ॥ ३४ ॥ और देवगणों ने जलतेहुये पर्वत की नाईं उनके तेजों की राशिको देखा व ज्वालाओं से दिगन्तर व्याप्त होगया ॥ ३५ ॥ तब यह तेजों का समूह कोई स्त्री होगई हे ब्राह्मणो ! शिवजीका तेज मुख हुआ व विष्णुजी का तेज भुजायें हुईं ॥ ३६ ॥ और ब्रह्मा का तेज दोनों चरण हुये व इन्द्रके तेजसे मध्यभाग हुआ और यमराज के तेजसे बाल व चन्द्रमा के तेज से स्तन हुये ॥ ३७ ॥ व हे ब्राह्मणो ! जङ्घा और ऊरु वरुण के तेजसे कल्पित हुये व पृथ्वी का तेज नितम्ब हुआ और सूर्यनारायण के तेज से पांव की अंगुली हुईं ॥ ३८ ॥

और वसुओं के तेजसे हाथकी अङ्गुलियां रचीगईं व हे ब्राह्मणो ! कुबेरके तेज से नासिका बनाईगई ॥ ३९ ॥ और नव प्रजापतियों के तेजसे दांतों की पांति हुई व अग्नि के तेजसे दोनों नेत्र उत्पन्न हुये ॥ ४० ॥ और दोनों सन्ध्या भौंहैं हुईं व पवन के तेज से कान हुये तथा अन्य देवताओं के बड़े भयङ्कर तेजों से ॥ ४१ ॥ अङ्गोंसमेत बहुत प्रकाशित दुर्गा स्त्री रचीगई और सब देवताओं व दैत्यों से भी बहुत दुर्धर्षिणी हुई ॥ ४२ ॥ सब देवगणों के तेजराशि से उपजीहुई उन भगवती को देखकर महिषासुर से पीड़ित वे देवता प्रसन्नताको प्राप्त हुये ॥ ४३ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! शिवादिक देवताओं ने अपने अस्त्र से निकालकर उसके लिये

कराङ्गुल्योवसूनां च तेजसाकल्पितास्तथा ॥ कुबेरतेजसाविप्रा नासिकापरिकल्पिता ॥ ३९ ॥ नवप्रजापतीनां च तेजसादन्तपङ्क्तयः ॥ चक्षुर्द्वयंसमजानि हव्यवाहनतेजसा ॥ ४० ॥ उभेसंध्येभ्रुवौजाते श्रवणेवायुतेजसा ॥ इतरेषां च देवानां तेजोभिरतिदारुणैः ॥ ४१ ॥ कृतासावयवानारी दुर्गापरमभास्वरा ॥ बभूवदुर्धर्षतरा सर्वैरपिसुरासुरैः ॥ ४२ ॥ सर्ववृन्दारकानीकतेजःसङ्घसमुद्भवाम् ॥ तांदृष्ट्वाप्रीतिमापुस्ते देवामहिषबाधिताः ॥ ४३ ॥ ततोरुद्रादयोदेवा विनिष्कृष्यायुधान्निजात् ॥ आयुधानिददुस्तस्यै शूलादीनिद्विजोत्तमाः ॥ ४४ ॥ भूषणानिददुस्तस्यै वस्त्रमाल्यानिचन्दनम् ॥ सापिदेवीतदावस्त्रैर्भूषणैश्चन्दनादिभिः ॥ ४५ ॥ कुसुमैरायुधैर्हारैर्भूषितापरिचारकैः ॥ साट्टहासंप्रमुञ्चन्ती भैरवीभैरवस्वना ॥ ४६ ॥ ननादकम्पयन्तीव रोदसीदेवसेविता ॥ देव्याभैरवनादेन चचालसकलंजगत् ॥ ४७ ॥ सिंहवाहनमारूढां देवींताममरास्तदा ॥ मुनयःसिद्धगन्धर्वास्तुष्टुबुर्जयशब्दतः ॥ ४८ ॥ अतिभीषणनादेन देव्याःक्षुब्धं

त्रिशूलादिक अस्त्रों को दिया ॥ ४४ ॥ व उसके लिये भूषण, वस्त्र, माला व चन्दन को दिया और उससमय वह देवी भी वस्त्रों, भूषणों व चन्दनादिकोंसे ॥ ४५ ॥ व पुष्पों तथा अस्त्रों व हारों और सेवकोंसे भूषित हुई और भयङ्कर शब्दवाली वह देवताओं से सेवित भैरवी अट्टहासको करतीहुई पृथ्वी व आकाश को कँपातीहुईसी गर्जतीभई और देवीजी के भयङ्कर शब्द से सब संसार चलउठा ॥ ४६ । ४७ ॥ उससमय सिंहवाहन पै चढ़ीहुई उस देवीकी देवता, मुनि, सिद्ध व गन्धर्वों ने जय-

शब्दसे स्तुति किया ॥ ४८ ॥ देवीजी के बड़े भयङ्कर शब्द से त्रिलोक को चलायमान देखकर देवताओंके शत्रु दैत्य अस्त्रोंको उठाकर साथही स्थित हुये ॥४९॥ और बड़ेभारी अस्त्र को उठायेहुये देवताओंसे घिरा महिषासुर भी बड़े क्रोधसे उस शब्द को देखकर चलताभया ॥५०॥ तदनन्तर तेजसे व्याप्त त्रिलोकवाली तथा अस्त्रोंसमेत अमितभुजाओं से युक्त और शब्द से कम्पित पृथ्वीवाली उस देवी को उसने देखा ॥५१॥ व सब शेषादिक महानागों की परम्परा को क्षोभित कियेहुई देवी को देखकर अस्त्रों को उठायेहुये दैत्य तैयार हुये ॥ ५२ ॥ तदनन्तर उस देवी के साथ दैत्यों का अस्त्र, शस्त्र, बाण, चक्र, गदा व मुसलों से भी युद्ध हुआ ॥ ५३ ॥ व उससमय

जगत्त्रयम् ॥ दृष्ट्वादेवारयोदैत्याः समंतस्थुरुदायुधाः ॥४९॥ महिषोपिमहाक्रोधात्समुद्यतमहायुधः ॥ तंशब्दमवलक्ष्याथ ययावसुरसंवृतः ॥ ५० ॥ व्यलोकयत्ततोदेवीं तेजोव्याप्तजगत्त्रयीम् ॥ सायुधानन्तबाह्वाढ्यां नादकम्पितभूतलाम् ॥५१॥ क्षोभिताशेषशेषादिमहानागपरंपराम् ॥ विलोक्यदेवीमसुराः समनह्यन्नुदायुधाः ॥ ५२ ॥ ततो देव्यातयासार्द्धमसुराणामभूद्रणम् ॥ अस्त्रैःशस्त्रैःशरैश्चक्रैर्गदाभिर्मुसलैरपि ॥ ५३ ॥ गजाश्वरथपादातैरसंख्येयैर्महाबलः ॥ महिषो युयुधेतत्र देव्यासाकमरिन्दमः ॥ ५४ ॥ लक्षकोटिसहस्राणि प्रधानासुरयूथपाः ॥ एकैकस्य तु सेनायास्तेषांसंख्या न विद्यते ॥ ५५ ॥ तेसर्वेयुगपद्देवीं शस्त्रैरावव्रुरोजसा ॥ सापिदेवीततोभीमदैत्यमुक्तास्त्रसञ्चयम् ॥ ५६ ॥ बिभेदलीलया बाणैः स्वकार्मुकविनिःसृतैः ॥ ससर्जदैत्यकायेषु बाणपूगान्यनेकशः ॥ ५७ ॥ देव्याश्रयबलाद्देवा निर्भयादैत्ययूथपैः ॥ युयुधुःसंयुगेशस्त्रैरस्त्रैरप्यायुधान्तरैः ॥ ५८ ॥ ततोदेवाबलोत्सिक्ता देवीशक्त्युपबृंहिताः ॥ निःशेषमसुरान्सर्वा

महाबलवान् व शत्रुनाशक महिषासुरने वहां हाथी, घोड़े, रथ व असंख्य पैदलों से देवीजी के साथ युद्ध किया ॥ ५४ ॥ लक्षकरोडहज़ार मुख्य दैत्य गणों के नायक थे और उनके मध्य में एक २ की सेना की संख्या नहीं विद्यमान है ॥ ५५ ॥ उन सबों ने एकहीबार पराक्रमसे अस्त्रों करके देवीको आच्छादन किया तदनन्तर भयङ्कर दैत्योंसे छोड़ेहुये अस्त्रसमूहको उस देवी ने भी ॥ ५६ ॥ लीला करके अपने धनुषसे छोड़ेहुये बाणोंसे काटडाला व दैत्यों के शरीरों में अनेक बाणवृन्दों को छोडा ॥५७॥ और देवीजी के आश्रय बलके कारण भयरहित देवताओं ने समर में शस्त्रों, अस्त्रों तथा अन्य आयुधों द्वारा दैत्यों के नायकों से युद्ध किया ॥ ५८ ॥ तदनन्तर देवीजी

शक्ति से बढ़ेहुये, बलसे गर्वित देवताओं ने सब दैत्योंको अस्त्रोंसे सम्पूर्णता करके निर्मूल किया ॥ ५९॥ अपनी सेनाके नाश होने पर क्षोभित महिषासुरने बड़े शब्द वाले धनुषको लेकर वेगसे खींचकर ॥ ६० ॥ व हे ब्राह्मणो ! सन्धान करके देवताओंकी सेनाओंमें बाणोंको छोड़ा इन्द्रके ऊपर दशहज़ार व यमराजके ऊपर पांचहज़ार बाणों को छोड़ा ॥ ६१ ॥ और वरुणके ऊपर आठहज़ार व कुबेरके ऊपर छहहज़ार और सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, वसु व अश्विनीकुमार के ऊपर ॥ ६२ ॥ और अन्य देवताओं के ऊपर प्रत्येक दश दशहज़ार बाणों को बलवानों में श्रेष्ठ दानवेश्वर महिषासुरने छोड़ा ॥ ६३ ॥ तदनन्तर महिषासुरसे मर्दनकियेहुये देवता भगे और रक्षा

नायुधैर्निरमूलयन् ॥ ५९ ॥ स्वसैन्ये तु क्षयंयाते संक्षुब्धोमहिषासुरः ॥ चापमादायवेगेन विकृष्य च महास्वनम् ॥६०॥ संधायमुमुचेबाणान्देवसैन्येषुभूसुराः ॥ इन्द्रेतुदशसाहस्रं यमेपञ्चसहस्रकम् ॥ ६१ ॥ वरुणेचाष्टसाहस्रं कुबेरेषट्सहस्रकम् ॥ सूर्ये चन्द्रे च वह्नौ च वायौवसुषुचाश्विनोः ॥ ६२ ॥ अन्येष्वपि च देवेषु महिषोदानवेश्वरः ॥ प्रत्येकमयुतंबाणान्मुमुचेबलिनांवरः ॥ ६३ ॥ पलायन्तेततोदेवा महिषासुरमर्दिताः ॥ देवींशरणमाजग्मुस्त्राहित्राहीतिवादिनः ॥ ६४ ॥ ततोदेवीगणान्स्वस्य भूतवेतालकादिकान् ॥ यूयंनाशयतक्षिप्रमासुरंबलमित्यगात् ॥ ६५ ॥ अहन्तुमहिषंयुद्धे योधयामिबलोद्धतम् ॥ ततोदेव्यागणैःसर्वमासुरंक्षतमाशुवै ॥ ६६ ॥ ततःसैन्येक्षयंनीते गणैर्देवीप्रचोदितैः ॥ योद्धुकामःसमहिषो गणैस्साकंव्यतिष्ठत ॥ ६७ ॥ अत्रान्तरेमहानादः सुचक्षुश्च महाहनुः ॥ महाचण्डोमहाभक्षो महोदरमहोत्कटौ ॥ ६८ ॥ पञ्चास्यःपादचूडश्च बहुनेत्रःप्रबाहुकः ॥ एकाक्षस्त्वेकपादश्च बहुपादोप्यपादकः ॥ ६९ ॥ एतेचान्ये

कीजिये रक्षा कीजिये ऐसा कहतेहुये वे देवीजी के शरण में गये ॥ ६४ ॥ तदनन्तर देवीजी ने अपने भूत, वेतालादिक गणों से यह कहा कि तुमलोग शीघ्रही दैत्यों की सेना को नाश करो ॥ ६५ ॥ और मैं बलसे उद्धत महिषासुर से युद्ध में लड़ती हूं तदनन्तर देवीजीके गणोंने सब दैत्योंकी सेनाको शीघ्रही नाश किया ॥ ६६ ॥ तदनन्तर देवीजी से प्रेरित गणों से सेना के नाश होनेपर युद्धकी इच्छावाला वह महिषासुर गणों समेत स्थित हुआ ॥ ६७ ॥ इसीअवसरमें महानाद, सुचक्षु, महाहनु, महाचण्ड, महाभक्ष, महोदर व महोत्कट ॥६८॥ और पञ्चास्य, पादचूड, बहुनेत्र, प्रबाहुक, एकाक्ष, एकपाद, बहुपाद व अपादक ॥६९॥ ये और अन्य बहुतसे युद्धकी इच्छावाले

महिषासुर के मन्त्री समर में देवीजी के आगे स्थितहुये ॥७०॥ तदनन्तर मनके समान वेगवान् सिंहवाहनपै चढ़कर देवीजी ने प्रलयपयोद (कल्पान्त मेघ) के समान शब्द वाले भयङ्कर धनुष को लेकर ॥ ७१ ॥ व चढ़ाकर युद्धमें वज्र के समान वेगवाले बाणोंको छोड़ा और दशलाख हाथी व सौलाख घोड़ोंसे ॥७२॥ और सौलाख रथोंसे व दशहज़ारलाख पैदलों से संयुत महाहनु दैत्य को देवीजी ने युद्ध में मारा ॥ ७३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! देवीजी के बाणों से उसकी सेना के नाश होनेपर लक्षकरोड़ मुख्य दैत्यनायक ॥ ७४ ॥ बड़े बली व पराक्रमी महिषासुर के एक २ प्रधान के विद्यमानथे और चतुरङ्गिणी सेना थी ॥ ७५ ॥ हे ब्राह्मणो ! महाहनु की जैसी बड़ीभारी सेना

च बहवो महिषासुरमन्त्रिणः ॥ योद्धुकामारणेदेव्याःपुरतस्त्ववतस्थिरे ॥ ७० ॥ सिंहवाहनमारुह्य ततोदेवीमनोजवम् ॥ प्रलयाम्बुदनिर्घोषञ्चापमादायभैरवम् ॥ ७१ ॥ विस्फोट्यमुमुचेबाणान्वज्रवेगसमान्युधि ॥ दशलक्षगजैश्चापि शतलक्षैश्चवाजिभिः ॥ ७२ ॥ शतलक्षैरथैश्चापि लक्षायुतपदातिभिः ॥ युक्तोमहाहनुर्दैत्यो देव्यायुद्धेनिपातितः ॥७३॥ सैन्ये च तस्यनिहते देव्याबाणैर्द्विजोत्तमाः ॥ लक्षकोटिसहस्राणि प्रधानासुरनायकाः ॥७४॥ महिषस्य हि विद्यन्ते महाबलपराक्रमाः ॥ एकैकस्यप्रधानस्य चतुरङ्गबलंतथा ॥ ७५ ॥ महाहनोर्यथाविप्रास्तथैवास्तिमहद्बलम् ॥ तत्सर्वंनिहतंदेव्या शरैःकाञ्चनपुङ्खितैः ॥ ७६ ॥ याममात्रेणविप्रेन्द्रास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्ये चक्रतीर्थप्रशंसायां देवीपुराभिधानकथनेदेवीमहिषासुरयुद्धोनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ स्वसैन्यमवलोक्याथ महिषोदानवेश्वरः ॥ हतंदेव्यामहाक्रोधाच्चण्डकोपमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ महिष

थी वह सब देवीजी के स्वर्णपुङ्खवाले बाणों से पहरभरमें मारीगई हे द्विजेन्द्रो ! वह आश्चर्य सा होगया ॥७६।७७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायां चक्रतीर्थप्रशंसायादेवीपुराभिधानकथनेदेवीमहिषासुरयुद्धोनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जिमि महिषासुर दैत्यको वध्यो देवि महरानि । कह्यो सातवें में सोई चरित अतिहि सुखदानि ॥ श्रीसूतजी बोले कि इसके अनन्तर देवीजीसे मारीहुई अपनी सेना

को देखकर दानवेश्वर महिषने बड़े क्रोधसे चण्डकोपसे कहा ॥१॥ कि हे महाबलवान्, चण्डकोप! इस दुष्टात्मिकासे युद्ध करो वैसाही होगा यह कहकर प्रतापी चण्डकोप ने ॥ २ ॥ रणशीर्ष में बाणों की वृष्टियों से देवीजी के ऊपर वर्षा किया और शीघ्रही उस चण्डकोप के शरसमूहोंको लीलासे ॥ ३ ॥ उस भगवतीने शस्त्र से नाश किया और इस चण्डकोप के घोड़ों को और सारथी, ध्वजा व धनुषको भी काटडाला ॥ ४ ॥ और रथको भी भङ्ग किया और बाणोंसे उसके भी हृदय में मारा और टूटे धनुष् व नष्ट कियेहुये घोड़े व मरे सारथीवाला वह रथरहित ॥ ५ ॥ चण्डकोप तदनन्तर ढाल व तलवार को धारण कर देवी के समीप आया व उस महादैत्यने देवीजीके

उवाच ॥ चण्डकोपमहावीर्य युद्धयस्वैनांदुरात्मिकाम् ॥ तथास्त्वितिसचोक्त्वाथ चण्डकोपःप्रतापवान् ॥ २ ॥ अवा किरद्बाणवर्षैर्देवींसमरमूर्द्धनि ॥ बाणजालानितस्याशु चण्डकोपस्यलीलया ॥ ३ ॥ छित्त्वाजघानशस्त्रेण चण्डकोप स्यसाम्बिका ॥ चकर्तवाजिनोप्यस्य सारथिं च ध्वजंधनुः ॥ ४ ॥ उन्ममाथरथञ्चापि तम्बाणैर्हृद्यताडयत् ॥ सभग्नध न्वाविरथो हताश्वोहतसारथिः ॥ ५ ॥ चण्डकोपस्ततोदेवींखड्गचर्मधरोभ्यगात् ॥ खड्गेनसिंहमाजघ्ने देव्यावाहम्महा सुरः ॥ ६ ॥ देवीमपिभुजेसव्ये खड्गेनप्रजघानसः ॥ खड्गोदेव्याभुजेसव्ये व्यशीर्यतसहस्रधा ॥ ७ ॥ ततःशूलेनमह ता चण्डकोपन्तदाम्बिका ॥ जघानहृदयेसोपि पपात च ममार च ॥ ८ ॥ चण्डकोपेहतेतस्मिन्महावीर्येमहाबले ॥ चि त्रभानुर्गजारूढो देवींतामभ्यधावत ॥ ९ ॥ दिव्यांशक्तिंससर्जाथ महाघण्टारवाकुलाम् ॥ न्यवारयतहुङ्कारैर्देवीशक्तिं निराकुलाम् ॥ १० ॥ ततःशूलेनसादेवी चित्रभानुंव्यदारयत् ॥ मृतेतस्मिंस्ततोयुद्धे करालोद्रुतमभ्यगात् ॥ ११ ॥

वाहन सिंह को तलवार से मारा ॥ ६ ॥ और उसने तलवार से देवीजीकी भी बाईं भुजा में मारा व देवीजी की वामभुजा में तलवार हजार खण्ड होकर टूटगई ॥७॥ तदनन्तर उससमय भगवतीने बड़े भारी शूल से चण्डकोपके हृदय में मारा और वह चण्डकोप भी गिरपड़ा व मरगया ॥८॥ उस महाप्रभाववान् व महाबलवान् चण्ड-कोप के मरने पर हाथी पै चढ़कर चित्रभानु उन देवीजी के सामने दौड़ा ॥ ९ ॥ इसके बाद उसने बडेभारी घण्टाके शब्दसे संयुत दिव्य शक्तिको छोडा और देवीजीने आकुलतारहित शक्तिको हुङ्कारों से निवारण किया ॥ १० ॥ तदनन्तर उन देवीजी ने शूल से चित्रभानु को विदारण किया तदनन्तर उसके मरने पर कराल

नामक दैत्य शीघ्रही युद्ध में आया ॥ ११ ॥ और देवीजी ने हाथ व घूंसा के प्रहारसे उसको भी मारडाला तदनन्तर देवीजी ने मदोन्मत्त दैत्य को गदासे प्राणविहीन किया ॥ १२ ॥ और हे द्विजोत्तमो ! पट्टिश से वाष्कलिको व चक्रसे अन्तिक को भी दुर्गा देवी ने यमलोक को पठाया ॥ १३ ॥ इसप्रकार अन्य बडे शरीरवाले महिषासुर के मन्त्रियोंको शूल से संहारकर यमस्थान को पठादिया ॥ १४ ॥ इसप्रकार दुर्गाजी से अपनी सेना के नाश होनेपर महिषासुर ने भी भैंसे के रूप से देवीजीके गणों को मारा ॥ १५ ॥ कितेक गणों को मुखसे मारा व अन्यगणों को खुरके प्रहारों से मारा व क्रोधित महिषासुरने अन्य गणोंको श्वासके पवनसे गिरादिया ॥१६॥ इस

करमुष्टिप्रहारेण सोपिदेव्यानिपातितः ॥ ततोदेवीमदोन्मत्तं गदयाव्यसुमातनोत् ॥ १२ ॥ वाष्कलिम्पाट्टिशेनापि चक्रेणापितथान्तिकम् ॥ प्राहिणोद्यमलोकाय दुर्गादेवीद्विजोत्तमाः ॥ १३ ॥ एवमन्यान्महाकायान्मन्त्रिणोमहिषस्य च ॥ शूलेनपोथयित्वाथ प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ १४ ॥ आत्मसैन्येहतेत्वेवं दुर्गयामहिषासुरः ॥ माहिषेणस्वरूपेण गणान्देव्याअभर्त्सयत् ॥ १५ ॥ तुण्डेननिजघानैकान् खुराघातैस्तथापरान् ॥ निश्वासवायुभिश्चान्यान्पातयामासरोषितः ॥ १६ ॥ देव्याभूतगणंत्वेवं निहत्यमाहिषासुरः ॥ सिंहंमारयितुंदेव्याश्चुक्रोध च ननाद च ॥ १७ ॥ ततःसिंहोभवत्क्रुद्धो महावीर्योमहाबलः ॥ खुराभिघातनिर्भिन्नमहीतलमहीधरः ॥ १८ ॥ महिषासुरमायान्तं नखैरेनं व्यदारयत् ॥ चण्डिकापिततःक्रुद्धा वधेतस्याकरोन्मतिम् ॥ १९ ॥ बबन्धपाशैर्महिषं चण्डिकाकोपमूर्च्छिता ॥ मोचयित्वाततःपाशांस्त्यक्त्वामाहिषवेषवान् ॥ २० ॥ सिंहवेषोभवद्दैत्यो महाबलपराक्रमः ॥ देवीतस्यशिरोयावच्छेत्तुंबुद्धि

प्रकार महिषासुर देवीजी के भूतगण को मारकर भगवती के सिंह को मारनेके लिये क्रोध करता भया व गर्जा ॥ १७ ॥ तदनन्तर बडा प्रभाववान् व बड़ा बलवान् सिंह क्रोधित हुआ और खुरों की चोट से पृथ्वी व पर्वतोंको तोडनेवाले सिंहने ॥१८॥ आतेहुये इस महिषासुरको नखोंसे विदारण किया तदनन्तर भगवतीने भी उसके मारनेके लिये बुद्धि किया और क्रोधसे मूर्च्छित चण्डिकाजीने महिषासुर को फँसरियोंसे बांधलिया तदनन्तर फँसरियोंको छुड़ाकर भैंसे के रूपको छोडेहुये वह ॥१९।२०॥ महाबल

व पराक्रमवाला दैत्य सिंहरूप होगया और जबतक देवीजी ने उसके मस्तक को काटने के लिये बुद्धि किया ॥ २१ ॥ तबतक तलवार को हाथ में लिये वह पुरुष होकर देखपड़ा इसके अनन्तर तलवार को हाथ में लियेहुये उस पुरुष को देवीजी ने शत्रुओं के मर्मस्थान को फाड़नेवाले व पैने धाराग्रवाले शरसमूहों से मारा तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! वह पुरुष शुण्ड व दन्तोंवाला हाथी होगया ॥ २२ ॥ २३ ॥ और उस ने दुर्गाजी के वाहन सिंह को सूंड़ से खींचा तदनन्तर सिंह ने उस की सूंड को नखों के अंकुरों से काटडाला ॥ २४ ॥ तब फिर वह महादैत्य भैंसे के रूप को प्राप्तहुआ तदनन्तर क्रोधित होती हुई भद्रकालीजी ने बहुत मद्यपान

मधारयत् ॥ २१ ॥ तावत्सपुरुषोभूत्वा खड्गपाणिरदृश्यत ॥ अथतंपुरुषंदेवी खड्गहस्तंशरोत्करैः ॥ २२ ॥ जघानतीक्ष्णधाराग्रैः परमर्मविदारणैः ॥ ततःसपुरुषोविप्रा गजोभूद्धस्तदन्तवान् ॥ २३ ॥ दुर्गायावाहनंसिंहं करेणविचकर्ष च ॥ ततःसिंहःकरंतस्य विचकर्तनखाङ्कुरैः ॥ २४ ॥ भूयोमहासुरोजातो माहिषंवेषमाश्रितः ॥ ततःक्रुद्धाभद्रकाली महत्पानमसेवत ॥ २५ ॥ ततःपानवशान्मत्ता जहासारुणलोचना ॥ महिषःसोपिगर्वेण शृङ्गाभ्यांपर्वतोत्करान् ॥ २६ ॥ चण्डिकांप्रतिचिक्षेप सा च तानच्छिनच्छरैः ॥ ततोदेवीजगन्माता महिषासुरमब्रवीत् ॥ २७ ॥ देव्युवाच ॥ कुरुगर्वंक्षणम्मूढ मधुयावत्पिबाम्यहम् ॥ निवृत्तमधुपानाहं त्वान्नयिष्येयमक्षयम् ॥ २८ ॥ हतेत्वयिदुराधर्षे मयादैवतकण्टके ॥ स्वंस्वंस्थानंप्रपद्यन्तां सिद्धाःसाध्यामरुद्गणाः ॥ २९ ॥ उक्त्वैवंताडयामास मुष्टिनामहिषासुरम् ॥ ताडितोयंततो

को सेवन किया ॥ २५ ॥ उस के उपरान्त मद्यपान के वश से लाल लोचनोंवाली भगवती हँसी और उस महिषासुर ने भी गर्व से सींगों करके पर्वतसमूहों को ॥ २६ ॥ चण्डिकाजी के ऊपर फेंका और उन भगवती ने भी उन को बाणों से काटडाला तदनन्तर जगदम्बिका देवीजी ने महिषासुर से कहा ॥ २७ ॥ देवीजी बोलीं कि हे मूढ़ ! जबतक मैं मदिरा को पीती हूं तबतक क्षणभर तुम गर्व करो क्योंकि मद्यपान से निवृत्त होकर मैं तुम को यमस्थान को पठाऊंगी ॥ २८ ॥ देवताओं के कण्टकरूप व दुर्धर्ष तुम जब मुझ से मारे जावोगे तब सिद्ध, साध्य व पवनगण अपने २ स्थान को प्राप्त होवेंगे ॥ २९ ॥ ऐसा कहकर देवीजी ने घूंसा से महिषासुर को मारा तदनन्तर देवीजी

से माराहुआ यह महिषासुर बहुत विकल हुआ ॥ ३० ॥ और दक्षिणसमुद्र के किनारे शीघ्रतासंयुत वह भगा व सिंहवाहन पै चढ़कर भगवती जी उसके पीछे दौड़ीं ॥ ३१ ॥ तदनन्तर दुर्गाजी के मारने से विकल दानवेश महिषासुर देवीजी से अनुद्रुत होकर दश योजन चौड़े धर्मपुष्करिणी के जल में पैठकर अन्तर्द्धान होकर स्थित हुआ तदनन्तर दुर्गाजी ने धर्मपुष्करिणी के तट को प्राप्त होकर ॥ ३२ । ३३ ॥ उस समय वहां चण्डिकाजी ने महिषासुर को नहीं देखा तदनन्तर आकाशवाणी ने दुर्गाजी से कहा ॥ ३४ ॥ कि हे भद्रे, महादेवि, महाकालि ! तुम से घूंसा करके माराहुआ भय से विकल महिषासुर इस धर्मपुष्करिणी के जलमें अन्तर्द्धान होकर सोता है उसको

देव्या महिषोभृशविह्वलः ॥३०॥ दक्षिणस्योदधेस्तीरे प्रादुद्रावत्वरान्वितः ॥ अनुदुद्रावतन्देवी सिंहमारुह्यवाहनम् ॥३१॥ अनुद्रुतस्ततोदेव्या महिषोदानवेश्वरः ॥ धर्मपुष्करिणीतोये दशयोजनमायते ॥ ३२ ॥ प्रविश्यान्तर्हितस्तस्थौ दुर्गाताडनाविह्वलः ॥ ततोदुर्गासमासाद्य धर्मपुष्करिणीतटम् ॥ ३३ ॥ नददर्शासुरंतत्र महिषंचण्डिकातदा ॥ अशरीरातोवाणी दुर्गादेवीमभाषत ॥ ३४ ॥ भद्रकालिमहादेवि महिषोदानवस्त्वया ॥ ताडितोमुष्टिनाभद्रे धर्मपुष्करिणीजले ॥ ३५ ॥ अस्मिन्नन्तर्हितःशेते भयार्तोमारयस्वतम् ॥ येनकेनाप्युपायेन चैनंप्राणैर्वियोजय ॥ ३६ ॥ एवंवाचाशरीरिण्या कथिता चण्डिकातदा ॥ प्राहस्ववाहनंसिंहमसुरेन्द्रवधोद्यता ॥ ३७ ॥ मृगेन्द्रसिंहविक्रान्त महाबलपराक्रम ॥ धर्मपुष्करिणीतोयं निःशेषंपीयतांत्वया ॥ ३८ ॥ देव्यैवमुक्तःपञ्चास्यो धर्मपुष्करिणीजलम् ॥ निःशेषंचपपौविप्रा यथापांसुर्भवेत्तथा ॥ ३९ ॥ निरगान्महिषोदीनस्ततस्तस्माज्जलाशयात् ॥ आयान्तमसुरन्देवी पादेनाक्रम्यमूर्द्धनि ॥ ४० ॥

मारो व जिस किसी भी यत्न से इस को प्राणों से रहित करो ॥ ३५ । ३६ ॥ इस प्रकार आकाशवाणी से कही हुई भगवतीजी ने उस समय असुरेन्द्र महिषासुर के मारने में उद्यत होकर अपने वाहन सिंह से कहा ॥ ३७ ॥ कि हे महाबलपराक्रम, मृगेन्द्र, वीर, सिंह ! तुम धर्मपुष्करिणी के समस्त जल को पियो ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मणो ! देवीजी से ऐसा कहे हुये सिंह ने धर्मपुष्करिणी के सब जल को उस प्रकार पीलिया कि जिस भांति धूलि होगई ॥ ३९ ॥ तदनन्तर उदासीन महिषासुर उस जलाशय

से निकला और आते हुये महिषासुर को देवीजी ने मस्तक में दबाकर ॥ ४० ॥ क्रोधित होकर पैने शूल से गले को पीड़न किया तदनन्तर देवीजी ने तलवार को लेकर इस के बड़े भारी शिर को काटडाला ॥४१॥ इसप्रकार हे ब्राह्मणो! दुर्गाजीसे मारा हुआ सेवक, सेना व सवारियोंसमेत वह महिषासुर पृथ्वी में गिरपड़ा व मरगया ॥४२॥ तदनन्तर गन्धर्वोंसमेत देवता, सिद्ध व उत्तम ऋषिलोग प्रसन्न भगवतीजी की स्तोत्रों से स्तुति कर तदनन्तर उस समय प्रसन्न हुये ॥ ४३ ॥ तदनन्तर देवीजी से आज्ञा को पाये हुये देवता जिस प्रकार आये थे वैसेही चलेगये तदनन्तर जगदम्बिका देवीजी ने अपने नाम से उत्तम नगर को ॥ ४४ ॥ उस समय दक्षिणसमुद्र

कण्ठंशूलेनतीक्ष्णेन पीडयामासकोपिता ॥ ततोदेव्यसिमादाय चकर्तास्यशिरोमहत् ॥ ४१ ॥ एवंसमहिषोविप्राः स भृत्यबलवाहनः ॥ दुर्गयानिहतोभूमौ पपात च ममार च ॥ ४२ ॥ ततोदेवाःसगन्धर्वाः सिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ स्तुत्वा देवींततःस्तोत्रैस्तुष्टांजहृषिरेतदा ॥४३॥ अनुज्ञातास्ततोदेव्या देवाजग्मुर्यथागतम् ॥ ततोदेवीजगन्माता स्वनाम्नापुरमु त्तमम् ॥ ४४ ॥ दक्षिणस्यसमुद्रस्य तीरेचक्रेतदोत्तरे ॥ ततोदेव्यनुशिष्टास्ते देवाःशक्रपुरोगमाः ॥ ४५ ॥ पूरयामा सुरमृतैर्धर्मपुष्करिणींतदा ॥ ततोह्यमृततीर्थाख्यां लेभेतत्तीर्थमुत्तमम् ॥ ४६ ॥ ततोदेवीवरमदात्स्वपुरस्यमुदान्वि ता ॥ नीरोगञ्चपशव्यञ्च पुरमेतद्भवत्विति ॥ ४७ ॥ ददौतीर्थायचवरं स्नातानामत्रवैनृणाम् ॥ यथाभिलाषंसिद्धिः स्यादित्युक्त्वासादिवंययौ ॥ ४८ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ यत्स्वनाम्नाचकारेदं देवीपुरमनुत्तमम् ॥ देवीपत्तनमित्युक्तं तेनदेव्याः पुरोत्तमम् ॥ ४९ ॥ देवीपत्तनमारभ्य सुमुहूर्तेदिनेद्विजाः ॥ विघ्नेश्वरं प्रणम्यादौ तिलकस्वामिनं

के उत्तर किनारे पै बनाया तदनन्तर देवीजी से आज्ञा को पायेहुये उन इन्द्रादिक देवताओं ने ॥ ४५ ॥ उस समय धर्मपुष्करिणी को अमृत से पूर्ण किया उसीकारण वह उत्तम तीर्थ अमृततीर्थ नाम को प्राप्त हुआ है ॥ ४६ ॥ तदनन्तर प्रसन्नतासंयुत देवीजी ने अपने नगर को यह वर दिया कि यह नगर रोगरहित व पशुओं के हित के लिये होवै ॥ ४७ ॥ व तीर्थ के लिये भगवती ने इस वर को दिया कि इस तीर्थ में नहायेहुये मनुष्यों की अभिलाष के अनुसार सिद्धि होतीहै यह कहकर वह देवी स्वर्ग को चली गई ॥ ४८ ॥ श्रीसूतजी बोले कि जिसलिये देवीजी ने अपने नाम से इस अतिउत्तम देवीपुर को कियाहै उसकारण देवीजी का उत्तम पुर देवीपत्तन ऐसा कहा गयाहै ॥ ४९ ॥

हे ब्राह्मणो ! उत्तम मुहूर्त्तवाले दिन में देवीपत्तन को प्रारंभकर पहले विश्वेश्वर व तिलकस्वामी को प्रणाम करैं ॥ ५० ॥ महादेवजी से आज्ञा को पाये हुये बड़े धर्मवान् श्रीरामचन्द्रजी ने प्रसन्नतासे नव पत्थरों को अपने हाथ से स्थापित कर ॥ ५१ ॥ हे ब्राह्मणो ! लङ्का तक सेतु को प्रारंभ किया व आलस्यरहित श्रीरामजी ने नल से बनायेहुये उत्तम सिंहासन पै चढ़कर ॥ ५२ ॥ समुद्र में नलादिक वानरों से सेतु को बनवाया और पर्वत व शाखाओंवाले वृक्षों व पत्थरों तथा काष्ठसमूहों को ॥ ५३ ॥ और तिनुकों को वानरलोग वन के मध्य से लाये ॥ ५४ ॥ और नल ने उन को लेकर महासागर में सेतु को बनाया पांचदिनों में लङ्काके समीप तक सेतु बनायागया ॥ ५५ ॥ नल ने समुद्र में

तथा ॥५०॥ महादेवाभ्यनुज्ञातो रामचन्द्रोतिधार्मिकः ॥ स्थापयित्वास्वहस्तेन पाषाणनवकम्मुदा ॥५१॥ सेतुमारब्धवान्विप्रा यावल्लङ्कामतन्द्रितः ॥ सिंहासनम्समारुह्य रामोनलकृतंशुभम् ॥ ५२ ॥ वानरैःकारयामास सेतुमब्धौनलादिभिः॥पर्वताञ्छाखिनोवृक्षान् दृषदःकाष्ठसञ्चयान् ॥ ५३ ॥ तृणानिचसमाजह्रुर्वानरावनमध्यतः ॥ ५४ ॥ नलस्तानिसमादायचक्रेसेतुंमहादधौ ॥ पञ्चभिर्दिवसैःसेतुर्यावल्लङ्कासमीपतः ॥ ५५ ॥ दशयोजनविस्तीर्णश्शतयोजनमायतः ॥ कृतः सेतुर्नलेनाब्धौपुण्यःपापविनाशनः ॥ ५६ ॥ देवीपुरस्यनिकटे नवपाषाणरूपके ॥ सेतुमूलेनरःस्नायात्स्वपापपरिशुद्धये ॥ ५७ ॥ चक्रतीर्थेतथास्नायाद्भजेत्सेत्वधिपंहरिम् ॥ देवीपत्तनमारभ्य यत्कृतंसेतुबन्धनम् ॥ ५८ ॥ तत्सेतुमूलंविप्रेन्द्रा यथार्थम्परिकल्पितम् ॥ सेतोस्तुपश्चिमाकोटिर्दर्भशय्याप्रकीर्तिता ॥ ५९ ॥ देवीपुरीचप्राक्कोटिरुभयंसेतुमूलकम् ॥ उभयंपुण्यमाख्यातम्पवित्रम्पापनाशनम् ॥ ६० ॥ यत्सेतुमूलंगच्छन्ति येनमार्गेणयेनराः ॥ तत्तन्मार्ग

दश योजन चौंडे व सौ योजन लम्बे पवित्र व पापनाशक सेतु को रचाहै ॥ ५६ ॥ देवीपुरके समीप नवपाषाणरूप सेतु के मूल में मनुष्य अपने पातकों की शुद्धि के लिये नहावै ॥ ५७ ॥ वैसेही चक्रतीर्थ में स्नान करै और सेतु के स्वामी विष्णुजी को भजै देवीपत्तन से लगाकर जो सेतुबन्ध कियागयाहै ॥ ५८ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! वह सेतुमूल यथार्थ बनायागया है और सेतु का पश्चिम अग्रभाग याने किनारा दर्भशय्या कहीगई है ॥ ५९ ॥ और पूर्वकोटि देवीपुरी कहीगई है ये दोनों सेतुमूल है और दोनों पुण्यरूप व पवित्र तथा पापविनाशक कहेगये हैं ॥ ६० ॥ जो मनुष्य जिस मार्ग से जिस सेतुमूल को जाते हैं उस उस मार्ग में गये हुये वे वे मनुष्य उस उस मुक्तिदा-

यक ॥ ६१ ॥ सेतुमूल में नहाकर व चक्रतीर्थ में नहाकर पश्चात् संकल्पपूर्वक सेतुबन्धन तीर्थ को जावैं ॥ ६२ ॥ हे ब्राह्मणो ! देवीपुर में व दर्भशय्या में भी और कल्याणदायक चक्रतीर्थ में स्नान पुण्यदायक व पापविनाशक है ॥ ६३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! दोनों के स्मरण से व चक्रतीर्थ के स्मरण से लक्ष जन्मों में भी कियेहुये पाप भस्म होते हैं ॥ ६४ ॥ व जन्मभी नाश को प्राप्त होता है व मुक्तिभी हाथ में स्थित होती है चक्रतीर्थ के समान तीर्थ न हुआ है न होवैगा ॥ ६५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पृथ्वीलोक में जो गङ्गादिक तीर्थ हैं वे साक्षात् चक्रतीर्थ की सोलहवी कला के योग्य नहीं होते हैं ॥ ६६ ॥ पहिले समुद्र में नव पत्थरों के मध्य में स्नान करै तदनन्तर चक्रतीर्थ में क्षेत्रपिण्ड करै ॥ ६७ ॥

गतास्तेते तस्मिंस्तस्मिन्विमुक्तिदे ॥ ६१ ॥ स्नात्वादौसेतुमूलेतु चक्रतीर्थेतथैवच ॥ सङ्कल्पपूर्वकम्पश्चाद्गच्छेयुःसेतुबन्धनम् ॥ ६२ ॥ देवीपुरेतथादर्भशय्यायामपिभूसुराः ॥ चक्रतीर्थेशिवेस्नानं पुण्यम्पापविनाशनम् ॥ ६३ ॥ स्मरणादुभयस्यापि चक्रतीर्थस्यवैद्विजाः ॥ भस्मीभवन्तिपापानि लक्षजन्मकृतान्यपि ॥ ६४ ॥ जन्मापिविलयंयायान्मुक्तिश्चापिकरेस्थिता ॥ चक्रतीर्थसमन्तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ ६५ ॥ भूलोकेयानितीर्थानि गङ्गादीनिद्विजोत्तमाः ॥ चक्रतीर्थस्यतान्यद्धा कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ ६६ ॥ आदौतुनवपाषाणमध्येब्धौस्नानमाचरेत् ॥ क्षेत्रपिण्डंततः कुर्याच्चक्रतीर्थेतथैवच ॥ ६७ ॥ सेतुनाथंहरिंसेवेत्स्वपापपरिशुद्धये ॥ एवंहिदर्भशय्यायां कुर्युस्तन्मार्गतोगताः ॥ ६८ ॥ आरूढंरामचन्द्रेण योनमस्कुरुतेजनः ॥ सिंहासनन्नलकृतन्नतस्यनरकाद्भयम् ॥ ६९ ॥ सेतुमादौनमस्कुर्याद्रामंध्यायन्हृदामुदा ॥ रघुवीरपदन्यासपवित्रीकृतपांसवे ॥ ७० ॥ दशकण्ठशिरश्छेदहेतवेसेतवेनमः ॥ केतवेरामचन्द्रस्य

और अपने पापों की शुद्धि के लिये सेतुनाथ विष्णुजी को सेवन करै इसप्रकार उस मार्ग से गयेहुये पुरुष दर्भशय्या में स्नान करैं ॥ ६८ ॥ जो मनुष्य रामचन्द्रजी से चढ़े हुये नलरचित विमान को नमस्कार करता है उस को नरक से डर नहीं होता है ॥ ६९ ॥ प्रसन्नता पूर्वक हृदय से श्रीरामजी को ध्यान करताहुआ पुरुष पहिले सेतु को प्रणाम करै श्रीरामचन्द्रजी के चरण के धरने से पवित्र कीहुई धूलिवाले ॥ ७० ॥ व दशग्रीव के मस्तकों के नाश के कारणरूप सेतु के लिये नमस्कार है और मोक्षमार्ग

के एककारण रामचन्द्र के केतु के लिये नमस्कार है ॥ ७१ ॥ व सीता के मनरूपी कमल के लिये सूर्यरूपी सेतु के लिये नमस्कार है हे ब्राह्मणो ! पहिले इस मन्त्र से साष्टाङ्ग प्रणाम कर ॥ ७२ ॥ तदनन्तर महाबलवान् वेतालवरदायक तीर्थ को जावै ॥ ७३ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! जो भक्तिसंयुत मनुष्य इस अध्याय को पढ़ता या सुनता है उस को स्वर्गादिक दुर्लभ नहीं होते हैं और मोक्ष भी इसके हाथ में स्थित होता है ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचक्रतीर्थप्रशंसायांदेवीपुराभिधानकथनेमहिषासुरसंहारोनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मोक्षमार्गैकहेतवे ॥ ७१ ॥ सीतायामानसाम्भोजभानवेसेतवेनमः ॥ साष्टाङ्गम्प्रणिपत्यादौ मन्त्रेणानेनवैद्विजाः ॥७२॥ ततोवेतालवरदं तीर्थंगच्छेन्महाबलम् ॥ ७३ ॥ योध्यायमेनम्पठतेमनुष्यः शृणोतिवाभक्तियुतोद्विजेन्द्राः ॥ स्वर्गादयस्तस्यनदुर्लभाःस्युः कैवल्यमप्यस्यकरस्थमेव ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येचक्रतीर्थप्रशंसायांदेवीपुराभिधानकथनेमहिषासुरसंहारोनामसप्तमो ऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषय ऊचुः ॥ भगवन्सूतसर्वज्ञ कृष्णद्वैपायनप्रिय ॥ त्वन्मुखाद्वैकथाःश्रुत्वा श्रोत्रैकामृतवर्षिणीः ॥१॥ तृप्तिर्नजायतेस्माकन्त्वद्वचोमृतपायिनाम् ॥ अतःशुश्रूषमाणानाम्भूयोब्रूहिकथाःशुभाः ॥२॥ वेतालवरदंनाम चक्रतीर्थस्यदक्षिणे ॥ तीर्थमस्तिमहापुण्यमित्यवादीद्भवान्पुरा ॥ ३ ॥ वेतालवरदाभिख्यातीर्थस्यास्यागताकथम् ॥किंप्रभावं च तत्तीर्थमेतश्चोवक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥ श्रीसूतउवाच ॥ साधुपृष्टंहियुष्माभिरतिगुह्यंमुनीश्वराः ॥ शृणुध्वंमनसासार्द्धं ब्रवीम्यत्यद्भुतां

दो० । यथा शाप सों सुदर्शन भयो अहै वेताल । सो अष्टम अध्याय में कह्यो चरित्र रसाल ॥ ऋषिलोग बोले कि हे कृष्णद्वैपायनप्रिय, सर्वज्ञ, भगवन्, सूतजी ! तुम्हारे मुख से कानों को एक अमृत बरसानेवाली कथाओं को सुनकर ॥ १ ॥ तुम्हारे वचनरूपी अमृत को पीनेवाले हमलोगों की तृप्ति नहीं होती है इस कारण सुनने की इच्छावाले हमलोगों से फिर उत्तम कथाओं को कहिये ॥ २ ॥ पहिले आपने यह कहा है कि चक्रतीर्थ के दक्षिण में वेतालवरदनामक महापवित्र तीर्थ है ॥ ३ ॥ और किसप्रकार इस तीर्थ को वेतालवरद नाम प्राप्त हुआ है व किस प्रभाववाला वह तीर्थ है इस को हमलोगों से कहने के योग्यहो ॥ ४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि

हे मुनीश्वरो! तुमलोगों ने बहुतही गुप्त अच्छा पूछा मैं बहुत अद्भुत कथा को कहता हूं मनसमेत सुनिये ॥ ५ ॥ जिस उत्तम कथा को सुनकर नीच मनुष्य भी प्रसन्न होते हैं पुरातनसमय कैलासपर्वत पै इस महापवित्र कथा को ॥ ६ ॥ क्रीडा के समयों में शिवजी ने पार्वतीजी से कहा है उसी इस अत्यन्त अद्भुत कथा को मैं तुमलोगों से कहताहूं ॥ ७ ॥ पुरातनसमय सत्यवादी व पवित्र गालवनामक महर्षि हुये हैं अपने आश्रम में परंब्रह्म को ध्यान करतेहुये उन्हों ने तप किया है ॥ ८ ॥ रूप व यौवन से शोभित उनकी कन्या महाऐश्वर्यवती हुई है नाम से कान्तिमती ऐसी वह बाला पिता के समीप विचरती थी ॥ ९ ॥ उन मुनि की बलि के लिये पुष्पों को लाती व

कथाम् ॥ ५ ॥ पामराअपिमोदन्ते यांवैश्रुत्वाकथांशुभाम् ॥ कथाचेयंमहापुण्या पुराकैलासपर्वते ॥ ६ ॥ केलिकालेषु पार्वत्यै शम्भुनाकथिताद्विजाः ॥ ताम्ब्रवीमिकथामेनामत्यद्भुततरां हि वः ॥ ७ ॥ पुरा हि गालवोनाम महर्षिःसत्यवाक्शुचिः ॥ चिन्तयानःपरम्ब्रह्म तपस्तेपेनिजाश्रमे ॥ ८ ॥ तस्यकन्यामहाभागा रूपयौवनशालिनी ॥ नाम्नाकान्तिमतीबाला व्यचरत्पितुरन्तिके ॥ ९ ॥ आहरन्ती च पुष्पाणि बल्यर्थं तस्य वै मुनेः ॥ वेदिसम्मार्जनादीनि समिदाहरणानि च ॥ १० ॥ कुर्वन्तीपितरंबाला सम्यक्परिचचारह ॥ कदाचित्सातुबल्यर्थं पुष्पाण्याहर्तुमुद्यता ॥ ११ ॥ तस्मिन्वने कान्तिमती सुदूरमगमत्तदा ॥ तत्रपुष्पाणिरम्याणि समाहृत्य च पेटके ॥ १२ ॥ तूर्णंनिववृतेबाला पितृशुश्रूषणेरता ॥ निवर्तमानांताङ्कन्यां विद्याधरकुमारकौ ॥ १३ ॥ सुदर्शनसुकर्णाख्यौविमानस्थौददर्शतुः ॥ तांदृष्ट्वागालवसुतां रूपयौवनशालिनीम् ॥ १४ ॥ कामस्यपत्नींललितां रतिंमूर्तिमतीमिव ॥ सुदर्शनाभिधोज्येष्ठो विद्याधरकुमारकः ॥ १५ ॥

वेदी की भाड़बुहार तथा समिधों को आहरण ॥ १० ॥ करतीहुई उस बाला कन्या ने भलीभांति पिता की सेवा किया किसी समय वह पूजन के लिये फूलों को लाने के लिये उद्यत हुई ॥ ११ ॥ तब उस वन में कान्तिमती बहुत दूरगई और वहां सुन्दर पुष्पों को पिटार में धरकर ॥ १२ ॥ पिताकी सेवा में लगीहुई वह कन्या शीघ्रही लौटपड़ी और लौटीहुई उस कन्या को विद्याधर के पुत्र ॥ १३ ॥ विमानपै बैठे हुये सुदर्शन व सुकर्णनामक ने देखा और कामदेव की सुन्दरी स्त्री मूर्तिमती रतिकी नाईं

रूप व यौवन से शोभित उस गालव की कन्या को सुदर्शननामक विद्याधर के बड़े पुत्र ने देखकर ॥ १४ । १५ ॥ प्रसन्नता से प्रफुल्लित लोचन व काम से मोहित हो कर पूर्णचन्द्रमा के समान मुखवाली उस कन्या को बार २ देखते हुये इच्छा किया ॥ १६ ॥ और उसके साथ रमण करने की इच्छावाला यह विमान के अग्रभाग से उतरा और उस मुनि की कन्या के समीप आकर सुदर्शन ने यह कहा ॥ १७ ॥ सुदर्शन बोला कि हे भद्रे ! तुम कौन हो और रूप व यौवन से शोभित तुम किस की कन्या हो यह असमान रूप मेरे मन को आनन्द करता है ॥ १८ ॥ रति के समान तुम को देखकर कामदेव मुझ को पीडा करता है मैं सुकण्ठनामक विद्याधरपति का ॥ १९ ॥

हर्षसंफुल्लनयनश्चकमे काममोहितः ॥ पूर्णचन्द्राननांतांवै वीक्षमाणोमुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ तयारिरंसुकामोसौ विमानाग्रादवातरत् ॥ तामुपेत्यमुनेःकन्यामित्युवाचसुदर्शनः ॥ १७ ॥ सुदर्शनउवाच ॥ कासिभद्रेसुताकस्य रूपयौवनशालिनी ॥ रूपमप्रतिमंह्येतदाह्लादयतिमेमनः ॥ १८ ॥ त्वांदृष्ट्वारतिसंकाशांवाधतेमांमनोभवः ॥ सुकण्ठनामधेयस्य विद्याधरपतेरहम् ॥ १९ ॥ आत्मजोरूपसम्पन्नो नाम्ना चैव सुदर्शनः ॥ प्रतिगृह्णीष्वमांभद्रे रक्षमांकरुणादृशा ॥ २० ॥ भर्तारंमांसमासाद्य सर्वान्भोगानवाप्स्यसि ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्य विद्याधरसुतस्य सा ॥ २१ ॥ तदाकान्तिमतीवाक्यंधर्मयुक्तमभाषत ॥ सुदर्शनमहाभाग विद्याधरपतेःसुत ॥ २२ ॥ आत्मजांमांविजानीहि गालवस्यमहात्मनः ॥ कन्याचाहमनूढास्मि पितृशुश्रूषणेरता ॥ २३ ॥ बल्यर्थंहिपितुश्चाहं पुष्पाण्याहर्तुमागता ॥ आहरन्त्याश्चपुष्पाणि यामएकोन्यवर्तत ॥ २४ ॥ मद्विलम्बेनसमुनिर्देवतार्चनतत्परः ॥ कोपंविधास्यतेनूनं तपस्वीमुनिपुङ्गवः ॥ २५ ॥ तच्छीघ्रमद्यग

रूप से संयुत सुदर्शननामक पुत्र हूं हे भद्रे ! मुझ को ग्रहण कीजिये व दयादृष्टि से मेरी रक्षा कीजिये ॥ २० ॥ मुझ को पति पाकर तुम सब सुखों को पावोगी उस विद्याधर के पुत्र के इस वचन को सुनकर वह ॥ २१ ॥ कान्तिमती उस समय धर्म से संयुक्त वचन को बोली कि हे विद्याधरपति के पुत्र, महाभाग, सुदर्शन ! ॥ २२ ॥ मुझको महात्मा गालवजी की कन्या जानिये और पिता की सेवा में लगी हुई मैं बिन ब्याही कन्या हूं ॥ २३ ॥ और पिता के पूजन के लिये मैं पुष्पोंको लाने के लिये आई थी और पुष्पों को लेतेहुये मुझ को एक पहर बीतगयाहै ॥ २४ ॥ और देवपूजन में लगेहुये वे मुनिश्रेष्ठ तपस्वी मुनि मेरे विलम्ब से निश्चय कर क्रोध करेंगे ॥ २५ ॥

इस कारण मैं शीघ्रही इससमय जाती हूं और मैं पुष्पों को भी लेचुकी व कन्या पिता के अधीन होती हैं अपने वश कभी नहीं होती हैं ॥ २६ ॥ यदि तुम मुझ को चाहते हो तो आप मेरे पिता से मांगो इसप्रकार विद्याधर के पुत्र से कहकर उस समय कान्तिमती ॥ २७ ॥ पिता से शङ्कित होकर शीघ्रही आश्रम को जाने के लिये उद्यत हुई उसको जातीहुई देखकर विद्याधर के पुत्र ने ॥ २८ ॥ कामदेव से विकल होकर सामने आकर दौडकर शीघ्रही बालों को पकड़लिया और अपने बालों को पकड़तेहुये उसको देखकर वह ॥ २९ ॥ मुनिकन्या कुररी की नाईं यकायक उच्चस्वर से चिल्ला उठी कि हे विभो, जनक ! इस विद्याधर के पुत्र से मेरी

च्छामि पुष्पाण्यप्याहृतानिमे ॥ कन्याश्चपितुराधीना नस्वतन्त्राःकदाचन ॥ २६ ॥ यदिमामिच्छसिभवान्पितरम्मम याचय ॥ इतिविद्याधरसुतमुक्त्वाकान्तिमतीतदा ॥ २७ ॥ पितुराशङ्कितातूर्णमाश्रमङ्गन्तुमुद्यता ॥ गच्छन्तींतांसमालोक्य विद्याधरकुमारकः ॥ २८ ॥ तूर्णंजग्राहकेशेषु धावित्वामदनार्दितः ॥ अभ्येत्यनिजकेशेषु गृह्णन्तन्तंविलोक्य सा ॥ २९ ॥ उच्चैश्चक्रन्दसहसा कुररीवमुनेःसुता ॥ अस्माद्विद्याधरसुताज्जनकत्राहिमांविभो ॥ ३० ॥ बलाद्गृह्णाति दुष्टात्मा विद्याधरसुतोद्यमाम् ॥ इत्थमुच्चैःप्रचुक्रोश स्वाश्रमान्नातिदूरतः ॥ ३१ ॥ तदाक्रन्दितमाकर्ण्य गन्धमादनवासिनः ॥ मुनयस्तु पुरस्कृत्य गालवम्मुनिपुङ्गवम् ॥ ३२ ॥ किमेतदितिविज्ञातुं तन्देशंतूर्णमाययुः ॥ तंदेशन्तुसमागत्य सर्वेतेऋषिपुङ्गवाः ॥ ३३ ॥ विद्याधरगृहीतान्तां ददृशुर्मुनिकन्यकाम् ॥ विद्याधरसुतंचान्यमन्तिकेसमुपस्थितम् ॥ ३४ ॥ एतद्दृष्ट्वामहायोगी गालवोमुनिपुङ्गवः ॥ गतःकोपवशंकिञ्चिद्दुरात्मानंशशापतम् ॥ ३५ ॥ कृतवानीदृशङ्कार्यं

रक्षा कीजिये ॥ ३० ॥ इस समय दुष्टात्मा विद्याधर का पुत्र मुझ को बल से पकड़ता है इसप्रकार अपने आश्रम से थोड़ेही दूरपै उसने उच्चस्वर से पुकारा ॥ ३१ ॥ उसके विलाप को सुनकर गन्धमादनपर्वत पै बसनेवाले मुनिलोग मुनिश्रेष्ठ गालवजी को आगे कर ॥ ३२ ॥ यह क्या है इसको जानने के लिये शीघ्रही उस स्थान को आये और उस स्थान को आकर उन सब श्रेष्ठ मुनियों ने ॥ ३३ ॥ विद्याधर से पकड़ीहुई उस मुनिकन्या को देखा और समीप में स्थित अन्य विद्याधर के पुत्र को देखा ॥ ३४ ॥ इसको देखकर मुनिश्रेष्ठ गालव महायोगी कुछ क्रोध के वश को प्राप्तहुये व उन्होंने उस दुष्ट को शाप दिया ॥ ३५ ॥ कि हे विद्याधराधम ! जिसलिये तुमने ऐसा कार्य कियाहै

इसलिये मानुषीयोनि को प्राप्त होवो और अपने पापकर्म के फलरूप ॥ ३६ ॥ बहुत दुःखों से संयुत मनुष्य के जन्म को पाकर थोड़ेही समय में उसी जन्म में ॥ ३७ ॥ मनुष्यों से भी निन्दनीय उस वेतालयोनि को प्राप्त होगे और मांस व रक्त को सदैव भक्षण करोगे ॥ ३८ ॥ जिसकारण वेताल व राक्षस बल से स्त्रियों को ग्रहण करते हैं इसलिये तुम मनुष्य होकर वेतालता को प्राप्तहोगे ॥ ३९ ॥ और जो यह तुम्हारे दुष्कर्म को माननेवाला छोटा सुकर्ण ऐसा प्रसिद्ध है वह भी मनुष्य होगा ॥ ४० ॥ किन्तु जिस लिये इसने साक्षात् ऐसा कर्म नहीं किया है उसकारण इसको मनुजताही होगी और वेतालता न होगी ॥ ४१ ॥ और जब विज्ञप्तिकौतुकनामक विद्याधरपति को यह तुम से

यत्त्वंविद्याधराधम ॥ तद्याहिमानुषींयोनिं स्वस्यदुष्कर्मणःफलम् ॥ ३६ ॥ सम्प्राप्यमानुषंजन्म बहुदुःखसमाकुलम् ॥ अचिरेणतुकालेन तस्मिन्नेवतुजन्मनि ॥ ३७ ॥ मनुष्यैरपिनिन्द्यन्तद्वेतालत्वम्प्रयास्यसि ॥ मांसानिशोणितं चैव सर्वदाभक्षयिष्यसि ॥ ३८ ॥ वेतालाराक्षसप्रायाबलाद्गृह्णन्तियोषितः ॥ तस्मात्त्वम्मानुषोभूत्वा वेतालत्वमवाप्स्यसि ॥ ३९ ॥ तवदुष्कर्मणोयोसावनुमन्ताकनिष्ठकः ॥ सुकर्णइतिविख्यातो भवितासोपिमानुषः ॥ ४० ॥ किन्तुसाक्षान्नकृतवान्यतोसावीदृशींक्रियाम् ॥ तन्मानुषत्वमेवास्य वेतालत्वन्तुनोभवेत् ॥ ४१ ॥ विज्ञप्तिकौतुकाभिख्यंयदाविद्याधराधिपम् ॥ द्रक्ष्यतेसौकनिष्ठस्ते तदाशापाद्विमोक्ष्यते ॥ ४२ ॥ ईदृशस्यतुयःकर्ता महापापस्यकर्मणः ॥ सत्वंसम्प्राप्यमानुष्यं तस्मिन्नेवतुजन्मनि ॥ ४३ ॥ वेतालजन्मसम्प्राप्य चिरंलोकेचरिष्यसि ॥ इत्युक्त्वागालवःकन्यांगृहीत्वामुनिभिःसह ॥ ४४ ॥ विद्याधरसुतौशप्त्वा स्वाश्रमम्प्रतिनिर्ययौ ॥ ततस्तस्मिन्महाभागे निर्यातेमुनिपुङ्गवे ॥ ४५ ॥ सुदर्शनसुकर्णाख्यौ विद्याधरपतेःसुतौ ॥ मुनिशापेनदुःखार्तौचिन्तयामासतुर्भृशम् ॥ ४६ ॥ कर्तव्यन्तौविनिश्चित्य सुदर्श

छोटा सुकर्ण देखैगा तब शाप से छूटैगा ॥ ४२ ॥ और ऐसे महापापकर्म के जो तुम करनेवाले हो सो तुम उसी जन्म में मनुजता को प्राप्तहोकर ॥ ४३ ॥ और वेतालजन्म को प्राप्त होकर बहुत समयतक संसार में विचरोगे यह कहकर गालवजी कन्या को लेकर मुनियोंसमेत ॥ ४४ ॥ विद्याधर के पुत्रों को शाप देकर अपने आश्रमको चलेगये तदनन्तर उन महाभाग मुनिश्रेष्ठ गालवजी के चलेजाने पर ॥ ४५ ॥ सुदर्शन व सुकर्णनामक विद्याधरपति के पुत्रों ने मुनिके शाप से दुःख से विकल होकर बहुत चिन्तन किया ॥ ४६ ॥

व उन सुदर्शन व सुकर्ण ने कर्तव्यता को निश्चय कर गोविन्दस्वामीनामक यमुनातटवासी ॥ ४७ ॥ शील से संयुत ब्राह्मण को पितृता में रुचि किया और अपने रूप को छोड़कर वे उसके पुत्र हुये ॥ ४८ ॥ और विजय व अशोकदत्तनामक उसके पुत्र हुये विजयदत्तनामक जेठा पुत्र सुदर्शन हुआ ॥ ४९ ॥ और छोटा सुकर्ण अशोकदत्तनामक हुआ व विजय और अशोकदत्तनामक वे दोनों क्रम से युवावस्था को प्राप्त हुये ॥ ५० ॥ इसीसमय में यमुनाके उत्तम किनारेपै अनावृष्टि से बारह वर्षतक दुर्भिक्ष हुआ ॥ ५१ ॥ और गोविन्दस्वामीनामक वह वेदपारगामी ब्राह्मण उससमय दुर्भिक्ष से नष्ट अपनी पुरी को देखकर ॥ ५२ ॥ पुत्रों

नसुकर्णकौ ॥ गोविन्दस्वामिनामानंयमुनातटवासिनम् ॥ ४७ ॥ ब्राह्मणंशीलसम्पन्नं पितृत्वेसमरोचयत् ॥ परित्यज्यस्वकंरूपमजायेतांतदात्मजौ ॥ ४८ ॥ विजयाशोकदत्ताख्यौतस्यपुत्रौबभूवतुः ॥ सुतोविजयदत्ताख्यो ज्येष्ठोजज्ञे सुदर्शनः ॥४९॥ अशोकदत्तनामातु सुकर्णस्तुकनिष्ठकः ॥ विजयाशोकदत्तौतु क्रमाद्यौवनमागतुः ॥५०॥ एतस्मिन्नेव कालेतु यमुनायास्तटेशुभे ॥ अनावृष्ट्यातुदुर्भिक्षमभूद्द्वादशवार्षिकम् ॥ ५१ ॥ गोविन्दस्वामिनामातु ब्राह्मणोवेदपारगः ॥ दुर्भिक्षोपहतांदृष्ट्वा तदानींसनिजांपुरीम् ॥ ५२ ॥ प्रययौकाशीनगरं सपुत्रः सहभार्यया ॥ सप्रयागंसमासाद्य पुण्यंदृष्ट्वामहावटम् ॥ ५३॥ कपालमालाभरणं सोपश्यद्यतिनंपुरः ॥ गोविन्दस्वामिनामातु नमश्चक्रेसतंमुनिम् ॥ ५४ ॥ सपुत्रस्यसभार्यस्य सोवादीदाशिषोमुनिः ॥ इदंचवचनंप्राह गोविन्दस्वामिनंप्रति ॥ ५५ ॥ ज्येष्ठेनानेनपुत्रेण साम्प्रतं ब्राह्मणोत्तम ॥ क्षिप्रंविजयदत्तेन वियोगस्तेभविष्यति ॥ ५६॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा गोविन्दस्वामिनामतः ॥ सूर्येचास्तं

समेत व स्त्रीसहित काशीपुरी को गया और उसने पवित्र प्रयाग को प्राप्त होकर महावट को देखकर ॥ ५३ ॥ कपालों की माला के आभूषणवाले संन्यासी को आगे देखा और उस गोविन्दस्वामीनामक ने उन मुनि को प्रणाम किया ॥ ५४ ॥ और उस मुनि ने पुत्रोंसमेत व स्त्रियोंसमेत उसके आशीर्वादों को कहा व गोविन्दस्वामी से इस वचन को कहा ॥ ५५ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! इससमय इस विजयदत्तनामक बड़े पुत्र से शीघ्रही तुम्हारा वियोग होगा ॥ ५६ ॥ उसके इसप्रकार वचन को सुनकर

गोविन्दस्वामीनामक वहां सूर्य अस्त होजाने पर सन्ध्या के कर्म को समाप्त कर ॥ ५७ ॥ स्त्रीसमेत व पुत्रोंसहित वह ब्राह्मण बहुत दूर मार्ग से विकल हुआ और उस रात में उसने शून्य देवालय में निवास किया ॥ ५८ ॥ तब विकल होते हुये अशोकदत्त व ब्राह्मणी वस्त्र से पृथ्वी को आच्छादन कर रात में निद्रा को प्राप्तहुई ॥ ५९ ॥ तदनन्तर विजयदत्त दूर मार्ग के उल्लङ्घन से अत्यन्तमलिन व बहुतही शीतज्वर से विकल हुआ ॥ ६० ॥ और शीत की बाधाके दूर होने के लिये गोविन्दस्वामीनामक पिता से दृढ़तासमेत लिपटायेहुये भी उसने शीतपीड़ा को नहीं छोड़ा ॥ ६१ ॥ व कहा कि हे तात ! इससमय मुझ को शीतज्वर बहुत पीड़ा करता है इस बाधाके दूर होने के

गते तत्र सान्ध्यंकर्मसमाप्य च ॥ ५७ ॥ सभार्यःससुतोविप्रः सुदूराध्वसमाकुलः ॥ उवासतस्यांशर्वर्य्यां शून्येवैदेवताल ये ॥ ५८ ॥ तदात्वशोकदत्तश्च ब्राह्मणी च समाकुलौ ॥ वस्त्रेणास्तीर्यपृथिवीं रात्रौनिद्रांसमापतुः ॥ ५९ ॥ ततोविजय दत्तस्तु दूरमार्गविलङ्घनात् ॥ बभूवात्यन्तमलसोभृशंशीतज्वरार्दितः ॥ ६० ॥ गोविन्दस्वामिनापित्रा शीतबाधा निवृत्तये ॥ गाढमालिङ्ग्यमानोपि शीतबाधांनसोत्यजत् ॥ ६१ ॥ बाधतेत्यर्थमधुनाताततमांशीतलोज्वरः ॥ एतद्बाधा निवृत्त्यर्थं वह्निमानयमाचिरम् ॥ ६२ ॥ इतिपुत्रवचःश्रुत्वा सर्वत्राग्निंगवेषयन् ॥ अलब्धवह्निःप्रोवाच पुनरभ्येत्य पुत्रकम् ॥ ६३ ॥ नवह्निंपुत्रविन्दामि मार्गमाणोपिसर्वशः ॥ रात्रिमध्येतुसंप्राप्ते द्वारेषुपिहितेषु च ॥ ६४ ॥ निद्रापरव शाःपौरा नैवदास्यन्तिपावकम् ॥ इत्थंविजयदत्तोसावुक्तःपित्राज्वरातुरः ॥ ६५ ॥ ययाचेवह्निमेवासौ पितरंदीनयागि रा ॥ शीतज्वरसमुद्भूतशीतबाधाप्रपीडितम् ॥ ६६ ॥ हिमशीकरवान्वायुर्द्विगुणंबाधतेद्यमाम् ॥ वह्निर्नलब्धइतिवै

लिये शीघ्रही अग्नि को लाइये ॥ ६२ ॥ इसप्रकार पुत्र के वचन को सुनकर सब कहीं अग्नि को ढूंढ़तेहुये उन्हों ने अग्नि को नहीं पाया फिर आकर पुत्र से कहा ॥ ६३ ॥ कि हे पुत्र ! सब कहीं ढूंढ़ताहुआ मैं अग्नि को नहीं पाता हूं और रात्रि के मध्य में द्वारों के बन्द होजाने पर ॥ ६४ ॥ निद्रावश पुरवासी अग्नि को नहीं देवैंगे ज्वर से विकल इस विजयदत्त से पिता ने ऐसा कहा ॥ ६५ ॥ व इसने पिता से दीन वचन करके अग्नि को मांगा कि शीतज्वर से उपजीहुई शीतबाधा से बहुत पीड़ित ॥ ६६ ॥ मुझ को

आज पाला के बुन्दोंवाला पवन दूनी बाधा करता है हे पिताजी ! तुमने यह झूठही कहा कि अग्नि नहीं मिली ॥ ६७ ॥ क्योंकि अग्रभाग में ज्वालाओं के समूह से संयुत और ज्वालाओं से आकाश को बार २ ग्रसतीहुई यह अग्नि दूर से देखपड़ती है इस को देखिये ॥ ६८ ॥ हे तात ! शीत की निवृत्ति के लिये उस अग्नि को लाइये यह कहेहुये उस पुत्र से उस पिता ने यह कहा ॥ ६९ ॥ कि हे पुत्र ! मैं इससमय झूठ नहीं कहताहूं बरन सत्यही कहता हूं और जो यह अग्निवाला स्थान दूरही से देख पडता है ॥ ७० ॥ हे पुत्र ! इससमय उस को श्मशान जानिये और जो आकाश को ग्रसतीहुई ज्वालाओंवाली यह अग्नि आगे जलती

मिथ्यैवोक्तंपितस्त्वया ॥ ६७ ॥ दूरादेषपुरोभागे ज्वालामालासमाकुलः ॥ शिखाभिर्लेलिहानोभ्रं दृश्यतेपश्यपावकः ॥ ६८ ॥ तंवह्निमानयक्षिप्रं तातशीतनिवृत्तये ॥ इत्युक्तवन्तन्तंपुत्रं सपिताप्रत्यभाषत ॥ ६९ ॥ नानृतंवच्मि पुत्राद्य सत्यमेवब्रवीम्यहम् ॥ वह्निमान्योयमुद्देशो दूरादेवविलोक्यते ॥ ७० ॥ पितृकाननदेशन्तं पुत्रजानीहिसांप्रतम् ॥ यद्येषोभ्रंलिहज्वालः पुरस्ताज्ज्वलतेनलः ॥ ७१ ॥ पुत्रवित्रासजनकंतंजानीहिचितानलम् ॥ अमङ्गलो नसेव्योयं चिताग्निःस्पर्शदूषितः ॥ ७२ ॥ तस्यचायुःक्षयंयाति सेवतेयश्चितानलम् ॥ तस्मात्तवायुर्हानिर्माभूयादिति मयासुत ॥ ७३ ॥ अमङ्गलस्तथास्पृश्यो नानीतोयंचितानलः ॥ इत्युक्तवन्तंपितरं सदीनःप्रत्यभाषत ॥ ७४ ॥ अयं शवानलोवास्यादध्वरानलएववा ॥ सर्वथानीयतामेष नोचेन्मेमरणंभवेत् ॥ ७५ ॥ पुत्रस्नेहाभिभूतोथ समाहर्तुं चितानलम् ॥ गोविन्दस्वामिनामातु श्मशानंशीघ्रमभ्यगात् ॥ ७६ ॥ गोविन्दस्वामिनिगते समाहर्तुंचितानलम् ॥

है ॥ ७१ ॥ हे पुत्र ! भय को उत्पन्न करनेवाली उस को चिता की अग्नि जानिये स्पर्श से दूषित यह अमंगल चिताकी अग्नि सेवने योग्य नहीं है ॥ ७२ ॥ क्योंकि जो चिताकी अग्नि को सेवता है उसका आयुर्बल नाश को प्राप्त होता है इसलिये हे पुत्र ! तुम्हारा आयुर्बल मत हीन होवै इसकारण मैं ॥ ७३ ॥ अमंगल व न छूने योग्य इस चिताकी अग्नि को नहीं लाया इसप्रकार कहतेहुये पिता से उस दीन पुत्र ने कहा ॥ ७४ ॥ कि यह मुर्दे की अग्निहो या यज्ञ की अग्निहो सब भांतिसे इस को लावो नहीं तो मेरा मरण होजावैगा ॥ ७५ ॥ इस के अनन्तर पुत्र के स्नेह से तिरस्कृत यह गोविन्दस्वामीनामक चिता की अग्नि को लाने के लिये शीघ्रही श्मशान को गया ॥ ७६ ॥

और चिताग्नि को लाने के लिये गोविन्दस्वामी के जानेपर उस समय विजयदत्त भी शीघ्रही जातेहुये उसके पीछे गया ॥ ७७ ॥ और तापके समीप प्राप्त हो कर पड़ेहुये अस्थि (हड्डी) वाली चिताकी अग्नि को उद्वेगसमेत आलिङ्गन करता हुआ सा वह धीरे २ आनन्द को प्राप्तहुआ ॥ ७८ ॥ इस के अनन्तर उस ने पिता से कहा कि बहुत प्रकाशित व सब ओर से गोल वह अग्नि में लाल कमल के समान यह क्या जानपड़ता है ॥ ७९ ॥ उस पुत्र के इसप्रकार वचन को सुनकर द्विजोत्तम ने उस को चतुर निरूपण कर फिर इस वचन को कहा ॥ ८० ॥ गोविन्दस्वामी बोले कि मज्जा, अस्थि व मांस से संयुत तथा अग्नि की ज्वालाओं से कङ्कण के समान

तूर्णंविजयदत्तोपि तदागच्छन्तमन्वयात् ॥ ७७ ॥ संप्राप्यतापनिकटं विकीर्णास्थिचितानलम् ॥ आलिङ्गन्निवसोद्वेगं शनैर्निर्वृतिमाप्तवान् ॥ ७८ ॥ अथावादीत्सपितरन्तदिदंपरिवर्तुलम् ॥ अतिदीप्तंविभात्यग्नौ किंरक्ताम्बुजसन्निभम् ॥ ७९ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा पुत्रस्यब्राह्मणोत्तमः ॥ निपुणन्तंनिरूप्यैतद्वचनंपुनरब्रवीत् ॥ ८० ॥ गोविन्दस्वाम्युवाच ॥ एतत्कपालमनलज्वालावलयवर्तुलम् ॥ वसाकीकसमांसाढ्यमेतद्रक्ताम्बुजोपमम् ॥ ८१ ॥ द्विजस्यसूनुःश्रुत्वेति काष्ठाग्रेणजघानतत् ॥ येनततस्फुटनोद्गीर्णवसासिक्तमुखोभवत् ॥ ८२ ॥ कपालघट्टनाद्रक्तं यत्संसक्तंमुखेतदा ॥ जिह्वयालेलिहानोसौ मुहुस्तद्रक्तमास्वदत् ॥ ८३ ॥ आस्वाद्यैवंसमादाय तत्कपालंसमाकुलः ॥ पीत्वावसांमहाकायो बभूवातिभयङ्करः ॥ ८४ ॥ सद्योवेतालतांप्राप तीक्ष्णदंष्ट्रस्तदानिशि ॥ तस्याट्टहासघोषेण दिशश्चप्रदिशस्तदा ॥ ८५ ॥ द्यौरन्तरिक्षंभूमिश्च स्फुटिताइवसर्वशः ॥ तस्मिन्वेगात्समाकृष्य पितरंहन्तुमुद्यतः ॥ ८६ ॥ माकृथाः

गोल यह लाल कमल के समान कपाल है ॥ ८१ ॥ ब्राह्मण के पुत्र ने यह सुनकर उस को काष्ठ के अग्रभाग से मारा कि जिससे उसके फूटने से निकलीहुई वसा (मज्जा) उसके मुख में छिड़कगई ॥ ८२ ॥ उससमय कपालके फूटने से जो मुख में रक्त लगगया उस रक्त को जीभ से चाटतेहुये इसने बार २ आस्वादन किया ॥ ८३ ॥ इसप्रकार आस्वादन कर उस कपाल को लेकर वह आकुल विजयदत्त वसा को पीकर बड़ा शरीरवान् व बहुत भयङ्कर हुआ ॥ ८४ ॥ और उस समय तीक्ष्ण दाढ़ोंवाला वह रात्रि में शीघ्रही वेतालता को प्राप्त हुआ और उस समय उस के अट्टहास शब्द से दिशा व विदिशा ॥ ८५ ॥ आर स्वर्ग, आकाश व भूमि सब फूट से गये व

उस समय वेग से पिता को खींचकर वह मारने के लिये उद्यतहुआ ॥ ८६ ॥ और आकाश में यह वचन प्रकट हुआ कि साहसको मतकरो दिव्यवाणी को सुनकर वह बड़ा भयङ्कर वेताल ॥ ८७ ॥ उस पिता को छोड़कर बड़े वेग से संयुत हुआ और शीघ्रही आकाश में प्रवेश कर बिन लरखराती हुई गतिवाला वह चलागया ॥ ८८ ॥ और दूर मार्ग को जाकर वह वेतालों के साथ मिलगया और आयेहुये उस वेताल को देखकर उन सब वेतालों ने ॥ ८९ ॥ जिसलिये यह कपाल के फोड़ने से वेतालता को प्राप्त हुआ उस कारण कपालस्फोट नाम किया ॥ ९० ॥ तदनन्तर सब ओर वेतालों से घिराहुआ यह बड़े बल से संयुत कपालस्फोट वेताल शीघ्रही नरास्थिभूषणनामक

साहसमिति प्रादुरासीद्वचोदिवि ॥ सदिव्याङ्गिरमाकर्ण्य वेतालोतिभयङ्करः ॥ ८७ ॥ पितरन्तंपरित्यज्य महावेग समन्वितः ॥ तूर्णमाकाशमाविश्य प्रययावस्खलद्गतिः ॥ ८८ ॥ सगत्वादूरमध्वानं वेतालैःसहसङ्गतः ॥ तमागतंस मालोक्य वेतालास्सर्वएवते ॥ ८९ ॥ कपालस्फोटनादेष वेतालत्वंयदाप्तवान् ॥ कपालस्फोटनामानमाह्वयंचक्रि रेततः ॥ ९० ॥ ततःकपालस्फोटोसौ वेतालैःसर्वतोवृतः ॥ नरास्थिभूषणाख्यस्य सद्योवेतालभूपतेः ॥ ९१ ॥ अन्तिकं सहसाप्राप महाबलसमन्वितः ॥ नरास्थिभूषणश्चैनं सेनापतिमकल्पयत् ॥ ९२ ॥ तंकदाचित्तुगन्धर्वश्चित्रसेनाभिधो बली ॥ नरास्थिभूषणंसंख्ये न्यवधीत्सोपिसंस्थितः ॥ ९३ ॥ नरास्थिभूषणेतस्मिन् गन्धर्वेणहतेयुधि ॥ तदाकपालस्फो टोसौ तत्पदंसमवाप्तवान् ॥ ९४ ॥ विद्याधरेन्द्रस्यसुतः सुदर्शनो मनुष्यतांवैप्रथमंसगत्वा ॥ वेतालतांप्राप्यमहर्षिशापा त्क्रमाच्चवेतालपतिर्बभूव ॥ ९५ ॥ इति श्रीवेतालवरदतीर्थप्रशंसायांसुदर्शनवेतालत्वप्राप्तंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

वेतालनृप के समीप यकायक प्राप्त हुआ और नरास्थिभूषण ने इसको सेनापति किया ॥ ९१ । ९२ ॥ किसीसमय बलवान् चित्रसेननामक गन्धर्व ने उस नरास्थिभूषण को युद्ध में मारा और वह भी मरगया ॥ ९३ ॥ समर में गन्धर्व से उस नरास्थिभूषण के मारेजाने पर उस समय यह कपालस्फोट उसके स्थान को प्राप्त हुआ ॥ ९४ ॥ विद्याधराधिपतिका पुत्र वह सुदर्शन महर्षि के शापसे पहले मनुजता को प्राप्त होकर वेतालता को पाकर क्रमसे वेतालों का राजा हुआ ॥ ९५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवेतालवरदतीर्थप्रशंसायांसुदर्शनवेतालत्वप्राप्तंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। जिमि सुकर्ण अरु सुदर्शन भये शापसों मुक्त। सोइ नवम अध्याय में चरित अहै शुभ उक्त॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर प्रातःकाल पुत्र के शोक से पीड़ित उस ब्राह्मण ने अशोकदत्तसमेत व स्त्रीसहित विलाप किया॥ १॥ व हे ब्राह्मणो! विलाप करतेहुये गोविन्दस्वामी को देखकर समुद्रदत्तनामक बनिया अपने घर को लेआया॥ २॥ उस को लाकर व समझाकर दयासंयुत श्रेष्ठ बनिया ने सब अपने धनों का रक्षक किया॥ ३॥ महायती के वचन को स्मरण करताहुआ पुत्रदर्शन की लालसावाला वह स्त्री व पुत्रसमेत बनिये के घर में टिकताभया॥ ४॥ और अशोकदत्तनामक दूसरा द्विजपुत्र शस्त्र व शास्त्रमें बड़ा निपुण हुआ॥ ५॥ और अन्य

सूत उवाच॥ ततःसविप्रःप्रत्यूषे पुत्रशोकेनपीडितः॥ अशोकदत्तसंयुक्तो भार्ययाविललाप ह॥ १॥ विलपन्तंसमालोक्य गोविन्दस्वामिनंद्विजाः॥ वणिक्समुद्रदत्ताख्यः समानिन्येनिजंगृहम्॥ २॥ समानीयसमाश्वास्य दयायुक्तो वणिग्वरः॥ स्वधनानांहिसर्वेषां रक्षितारमकल्पयत्॥ ३॥ स्मरन्महायतिवचः पुत्रदर्शनलालसः॥ सतस्थौवणिजो गेहे पुत्रभार्यासमन्वितः॥ ४॥ अशोकदत्तनामातु द्वितीयोविप्रनन्दनः॥ शस्त्रेचैवतथाशास्त्रे बभूवातिविचक्षणः॥ ५॥ तथान्यास्वपिविद्यासु नास्तितत्सदृशोभुवि॥ कृतविद्योद्विजसुतः प्रख्यातोनगरेभवत्॥ ६॥ अत्रान्तरे नरपतिं प्रतापमुकुटाभिधम्॥ काशिदेशाधिपंमल्लः कश्चिदभ्याययौबली॥ ७॥ प्रतापमुकुटोराजा मल्लस्यास्यजयायसः॥ बलिनंद्विजपुत्रन्तमाह्वयामासभृत्यकैः॥ ८॥ तमागतंसमालोक्य प्रतापमुकुटोब्रवीत्॥ अशोकदत्तसहसा मल्लमेनंबलोत्कटम्॥ ९॥ दुर्जयञ्चहिसंग्रामे त्वंवैबलवतांवरः॥ दाक्षिणात्यमहामल्लपतावस्मि

विद्याओं में भी उस के बराबर कोई पृथ्वी में नहीं था विद्याओं को पढ़ाहुआ वह द्विजपुत्र नगर में प्रसिद्ध हुआ॥ ६॥ इसी अवसर में काशीदेशके स्वामी प्रतापमुकुट नामक राजा के समीप कोई बलवान् मल्ल आया॥ ७॥ और उस प्रतापमुकुट राजाने इस मल्ल के जीतने के लिये उस बलवान् द्विजपुत्र को नौकरों से बुलवाया॥ ८॥ और आयेहुये उस को देखकर प्रतापमुकुट ने कहा कि हे अशोकदत्त! इस बल से उग्र व समर में दुर्जय मल्ल को बलवानों में श्रेष्ठ तुम सहसा मारडालो तुम

से इस दाक्षिणात्य महामल्लपति के जीतने पर ॥ ६ । १० ॥ तुम को जो प्रिय होगा उस सब को मैं निस्सन्देह दूंगा उस के इसप्रकार वचन को सुनकर बलवान् द्विज-
पुत्र ने ॥ ११ ॥ दाक्षिणात्य महामल्लपति नृप को मारा और बलवान् द्विजपुत्र से माराहुआ वह बली मल्ल ॥ १२ ॥ शीघ्रही अमितनेत्र व निर्जीव होकर पृथ्वी में
गिरपड़ा और देवताओं से भी कठिन उस द्विजपुत्र के कर्म को ॥ १३ ॥ देखकर प्रतापमुकुट राजा प्रसन्नमन हुआ और बहुत धनवाले ग्रामों को देकर उससमय समीपमें
स्थापित किया ॥ १४ ॥ किसी समय द्विजपुत्रसमेत वह महाराज सन्ध्या में अश्व के द्वारा निर्जन स्थान में भ्रमताभया ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर वहां द्विजपुत्र के मित्र

**ञ्जितेत्वया ॥ १० ॥ यदिष्टंतवतत्सर्वं दास्याम्यहमसंशयः ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा बलवान्द्विजनन्दनः ॥ ११ ॥ दाक्षिणा
त्यंमहामल्लनृपतिंसमताडयत् ॥ ताडितोद्विजपुत्रेण मल्लःसबलिनाबली ॥ १२ ॥ सद्योविवर्तनयनः परासुर्न्यपत
द्भुवि ॥ द्विजपुत्रस्यतत्कर्म देवैरपिसुदुष्करम् ॥ १३ ॥ प्रतापमुकुटोदृष्ट्वा प्रसन्नहृदयोभवत् ॥ दत्त्वाबहुधनान्ग्रामान् स
मीपेस्थापयत्तदा ॥ १४ ॥ सकदाचिन्महाराजः सहितोद्विजसूनुना ॥ सन्ध्यायांविजनेदेशे चचारतुरगेणवै ॥ १५ ॥
द्विजसूनुसखस्तत्र दीनांवाणिमथाशृणोत् ॥ राजन्नल्पापराधोहं शत्रुप्रेरणयासकृत् ॥ १६ ॥ दण्डपालेननिहितः शू
लेनिर्घृणचेतसा ॥ दिनमद्यचतुर्थंमे शूलस्थस्यैवजीवतः ॥ १७ ॥ प्राणाःसुखेननिर्यान्ति नहिदुष्कृतकर्मणाम् ॥ भृशंमा
म्बाधतेतृष्णा तांनिवारयभूपते ॥ १८ ॥ इतिदीनांसमाकर्ण्य वाचंराजाद्विजात्मजम् ॥ अशोकदत्तनामानं धैर्यवन्तम
भाषत ॥ १९ ॥ अस्मैनिरपराधाय शूलप्रोतायजन्तवे ॥ तृष्णार्दितायदातव्यं द्विजसूनोत्वयाजलम् ॥ २० ॥ इत्यादि**

राजा ने दीनवचन को सुना कि हे राजन् ! बार २ शत्रु की प्रेरणा से थोडे अपराधवाला मैं ॥ १६ ॥ निर्दयचित्तवाले दण्डपाल से शूलपै स्थापित कियागया हूं शूलपै
टिके व जीतेहुये मुझ को आज चौथा दिन है ॥ १७ ॥ पापकर्मी मनुष्यों के प्राण सुख से नहीं निकलते है हे राजन् ! मुझ को प्यास बहुत पीड़ा करती है उस को दूर की-
जिये ॥ १८ ॥ इस दीनवचन को सुनकर राजाने अशोकदत्तनामक धैर्यवान् द्विजपुत्र से कहा ॥ १९ ॥ कि हे द्विजपुत्र ! शूल में बेधेहुये इस अपराधरहित व प्यास

से विकल प्राणी के लिये तुम को जल देना चाहिये ॥ २० ॥ इसप्रकार राजा से आज्ञा को पाकर वह ब्राह्मण का पुत्र सहसा जल से भरे हुये कलश को लेकर वेगवान होकर गया ॥ २१ ॥ और भूतों व वेतालों से संयुत उस श्मशान को जाकर शूल में छिदे हुये उसके लिये जल को देने के लिये उत्कण्ठित हुआ ॥ २२ ॥ व नवीन यौवनसे शोभित नीचे स्थित महासुन्दरी स्त्री को मूर्तिमती रति की नाईं ब्राह्मण ने देखा ॥ २३ ॥ उसको देखकर तदनन्तर धैर्यवान् द्विजपुत्र ने कहा कि हे वरारोहे, भद्रे ! तुम निर्जन श्मशान में कौन स्थित हो ॥ २४ ॥ त्रिशूल में छिदे हुये इस पुरुष के नीचे तुम क्यों स्थित हो इसप्रकार उस के वचन को सुनकर उस सुन्दरमुखी ने कहा ॥ २५ ॥

ष्टोनरेन्द्रेण सहसाद्विजनन्दनः ॥ जलपूर्णंसमादाय कलशंवेगवान्ययौ ॥ २१ ॥ तच्छ्मशानंसमासाद्य भूतवेतालसंकुलम् ॥ शूलप्रोतायवैतस्मै जलंदातुंसमुत्सुकः ॥ २२ ॥ ददर्शाधःस्थितांनारीं नवयौवनशालिनीम् ॥ उदैक्षतमहाकान्तिमूर्तामिवरतिंद्विजः ॥ २३ ॥ तामालोक्यततःप्राह धैर्यवान्द्विजनन्दनः ॥ कासिभद्रेवरारोहे श्मशानेविजनेस्थिता ॥ २४ ॥ अस्याधस्तात्किमर्थंत्वं शूलप्रोतस्यतिष्ठसि ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा साप्राहरुचिरानना ॥ २५ ॥ पुरुषोवल्लभोयंमेशूलेराज्ञासमर्पितः ॥ धनंयथातिकृपणः पश्यन्प्राणान्नमुञ्चति ॥ २६ ॥ आसन्नमरणंचैनमनुयातुमिहास्थिता ॥ तृषितोयाचतेवारि मामयंव्यथतेमुहुः ॥ २७ ॥ शूलप्रोतोद्धतग्रीवं मुमूर्षुंप्राणनायकम् ॥ नास्मिपाययितुंशक्ता जलमेनमधःस्थिता ॥ २८ ॥ अशोकदत्तस्तच्छ्रुत्वा करुणावरुणालयः ॥ तत्कालसदृशंवाक्यं तांवधूमब्रवीत्तदा ॥ २९ ॥ अशोकदत्त उवाच ॥ मातर्मत्स्कन्धमारुह्य देह्यस्मैशीतलंजलम् ॥ सातथेतितमाभाष्य तरुणीत्वरयान्विता ॥ ३० ॥ आनम्र

कि इस मेरे प्रिय पुरुष को राजा ने शूलपै समर्पण किया है जैसे धनको देखताहुआ बहुत कृपण मनुष्य प्राणों को नहीं छोड़ता है ॥ २६ ॥ वैसेही मरणके निकट इस पुरुष के पश्चात् जाने के लिये मैं यहां स्थित हूं और प्यासा यह मुझ से जल को मांगता है व बार २ पीड़ित होता है ॥ २७ ॥ शूल में छिदने से उठीहुई ग्रीवावाले व मरने की इच्छावाले इस प्राणपति को नीचे स्थित मैं जल पिलाने के लिये नहीं समर्थ हूं ॥ २८ ॥ दया के समुद्र अशोकदत्त ने उस वचनको सुनकर उस समय उस कालके समान वचन को कहा ॥ २९ ॥ अशोकदत्त बोला कि हे मातः ! मेरे कन्धेपै चढ़कर इसके लिये ठण्ढे जलको देवो बहुत अच्छा ऐसा उस से कहकर शीघ्रता

संयुत वह युवती॥ ३० ॥ कुछ झुकेहुये शरीरवाले उस के कन्धेपै पैरों से चढ़गई इसके अनन्तर द्विजपुत्र ने गिरतेहुये नवीन रुधिर को देखा ॥ ३१ ॥ यह क्या है ऐसा विचारकर उस ने यकायक मुख को ऊपर उठाकर देखा और खायेजाते हुये उस को जानकर उस द्विजपुत्र ॥ ३२॥ अशोकदत्त ने उसके नूपुरसमेत चरण को पकड़लिया तदनन्तर रत्न बँधेहुये उस नूपुर को छोड़कर वह आकाश को चलीगई ॥ ३३ ॥ व गूंथेहुये अनेक रत्नों से संयुत उस नूपुर को लैकर अशोकदत्त उस श्मशान से राजा के समीप गया ॥ ३४ ॥ और उससमय उसने उस सब श्मशान के चरित्र को राजासे कहकर बड़ेमोलवाले रत्नों से गूंथेहुये नूपुर को देदिया ॥ ३५ ॥ अन्य वीरों से बहुत

वपुषस्तस्य स्कन्धंपद्भ्यांरुरोहवै ॥ द्विजसूनुर्ददर्शाथ शोणितंनूतनंपतत् ॥ ३१ ॥ किमेतदितिसोपश्यदुन्नम्यसहसा मुखम् ॥ भक्ष्यमाणंतयातत्स विज्ञायद्विजनन्दनः ॥ ३२ ॥ अशोकदत्तोजग्राह तस्याःपादंसनूपुरम् ॥ ततोगान्नूपुरन्त्यक्त्वा बद्धरत्नंविहायतम् ॥ ३३ ॥ प्रत्युप्तानेकरत्नाढ्यं तदादायचनूपुरम् ॥ अशोकदत्तःप्रययौ तच्छ्मशानान्नृपान्तिकम् ॥ ३४ ॥ श्मशानवृत्तंतत्सर्वं सनृपायनिवेद्यवै ॥ महार्घ्यरत्नप्रत्युप्तं नूपुरञ्चददौतदा ॥ ३५ ॥ ज्ञात्वातद्वीरचरितं वीरैरन्यैःसुदुष्करम् ॥ ददौमदनलेखाख्यां सुतांतस्मैमहीपतिः ॥ ३६ ॥ कदाचिदथतद्दिव्यं नूपुरंवीक्ष्यभूपतिः ॥ अस्यनूपुरवर्यस्य तुल्यंवैनूपुरान्तरम् ॥ ३७ ॥ कुतोवालभ्यतइति सादरंसमचिन्तयत् ॥ अशोकदत्तस्तुतदा विज्ञायनृपकाङ्क्षितम् ॥ ३८॥ नूपुरान्तरसिद्ध्यर्थं चिन्तयामासचेतसा ॥ श्मशानेनूपुरमिदं यतःप्राप्तंमयापुरा ॥ ३९ ॥ तांनूपुरान्तरप्राप्त्यै कुत्रद्रक्ष्यामिसांप्रतम् ॥ इत्थंवितर्क्यबहुधा निश्चिकायमहामतिः ॥ ४० ॥ विक्रेष्यामिमहामांसं समेत्यपितृ

ही कठिन उस वीरचरित को जानकर राजा ने उस अशोकदत्त के लिये मदनलेखा नामक कन्या को दिया ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर किसी समय उस उत्तम नूपुर को देकर इस उत्तम नूपुर के समान अन्य नूपुर ॥ ३७ ॥ कहा मिलैगा इसको आदरसमेत विचार किया और उससमय अशोकदत्त ने राजाके मनोरथ को जानकर ॥ ३८ ॥ अन्य नूपुर की सिद्धि के लिये चित्त से विचार किया कि मैंने पहिले श्मशान में जिससे इस दिव्य नूपुर को पाया है ॥ ३९ ॥ अन्य नूपुर के मिलने के लिये उसको मैं इस समय कहां

देखूंगा इसप्रकार उस महाबुद्धिमान् ने बहुत भांति वितर्क कर निश्चय किया ॥ ४० ॥ कि श्मशान में जाकर मैं महामांस को बेचूं और वहां राक्षस, वेताल व पिशाचादिक सबों के ॥ ४१ ॥ मन्त्रों से बुलाये जानेपर वह राक्षसी भी आवैगी और उस आईहुई राक्षसी को बलसे पकड़कर उस नूपुर को लेलूंगा ॥ ४२ ॥ और हज़ार राक्षस व दश हज़ार पिशाच व करोड़ वेताल मुझ बली के लक्ष्य (निशाना) न होंगे ॥ ४३ ॥ इस प्रकार मन से निश्चयकर वह सहसा श्मशान को चलागया और महामांस को बेचताहुआ वह मन्त्रों से राक्षसोंको बुलाकर ॥ ४४ ॥ लीजिये इसप्रकार उच्चवाणी से दिशाओं को सुनाताहुआ वह भ्रमतारहा महामांस बेचाजाता है लियाजावै लियाजावै

काननम् ॥ तत्रराक्षसवेतालपिशाचादिषुसर्वशः ॥ ४१ ॥ मन्त्रैराहूयमानेषु साप्यायास्यतिराक्षसी ॥ तामागताम्ब लाद्गृह्य तद्ग्रहीष्यामिनूपुरम् ॥ ४२ ॥ राक्षसानांसहस्रंवा पिशाचानांतथायुतम् ॥ वेतालानांतथाकोटिर्नलक्ष्याब लिनोमम ॥ ४३ ॥ इतिनिश्चित्यमनसा श्मशानंसहसाययौ ॥ विक्रीणानोमहामांसं मन्त्रैराहूयराक्षसान् ॥ ४४ ॥ गृ हाणेत्युच्चयावाचा चचारश्रावयन्दिशः ॥ विक्रीयतेमहामांसं गृह्यतांगृह्यतामिति ॥ ४५ ॥ तत्रराक्षसवेतालाः कङ्काला श्चपिशाचकाः ॥ अन्येचभूतनिवहाः समाजग्मुःप्रहर्षिताः ॥ ४६ ॥ भक्षयिष्यामहेसर्वे मांसमिष्टतमन्त्विति ॥ तत्राग च्छत्सुसर्वेषु रक्षःकन्यासमावृता ॥ ४७ ॥ आययौराक्षसीसापि मांसभक्षणलालसा ॥ गवेषयंस्तदाविप्रस्तांसमुद्वी क्ष्यराक्षसीम् ॥ ४८ ॥ सेयंदृष्टापुरेत्येष प्रत्यभिज्ञानमाप्तवान् ॥ तामाहद्विजपुत्रोन्यद्देहिमेनूपुरन्त्विति ॥ ४९ ॥ सातस्य वचनंश्रुत्वा प्रीतावाक्यमथाब्रवीत् ॥ ममैवचत्वयानीतं पुरावीरेन्द्रनूपुरम् ॥ ५० ॥ गृहाणरत्नरुचिरं द्वितीयमपिनूपु

इसप्रकार ॥ ४५ ॥ वहां राक्षस, वेताल, कङ्काल व पिशाच और अन्य भूतगण प्रसन्न होकर आगये ॥ ४६ ॥ व यह कहने लगे कि हमलोग सब बहुत प्रिय मांस को खावैंगे और वहां सबों के आनेपर राक्षसों की कन्याओं से घिरीहुई ॥ ४७ ॥ वह मांस खाने की लालसावाली राक्षसी भी आगई उससमय ढूंढ़तेहुये ब्राह्मण ने उस राक्षसी को देखकर ॥ ४८ ॥ वही यह देखी गई जोकि पहिले देखीगई थी इस पहिचान को पाया और द्विजपुत्र ने उस से यह कहा कि अन्य नूपुर को दीजिये ॥ ४९ ॥ उसके वचन को सुनकर प्रसन्न होतीहुई उसने वचन को कहा कि हे वीरेन्द्र ! पहिले तुम मेरेही नूपुर को लेगये थे ॥ ५० ॥ और रत्नों से सुन्दर दूसरे भी नूपुर को लीजिये

यह कहकर उस राक्षसी ने उसके लिये नूपुर व प्यारी अपनी कन्याको दिया ॥ ५१ ॥ उस समय विद्युत्केशी से दीहुई रूप व यौवन से शोभित विद्युत्प्रभानामक प्यारी स्त्री को पाकर ब्राह्मण प्रसन्न हुआ ॥ ५२ ॥ और उस विद्युत्केशी ने दामाद के लिये सुवर्ण के कमल को भी दिया विद्युत्प्रभा, नूपुर व स्वर्णकमल को भी पाकर वह ॥ ५३ ॥ सासु से कहकर फिर सहसा राजा के समीप गया तदनन्तर नूपुरके मिलने से प्रसन्न प्रतापमुकुट ने ॥ ५४ ॥ शूरता व धैर्य से संयुत द्विजपुत्र की प्रशंसा किया इसके अनन्तर उस ब्राह्मण ने एकान्त में विद्युत्प्रभा प्यारी से कहा ॥ ५५ ॥ कि हे प्रिये ! तुम्हारी माता ने इस सुवर्ण के कमल को कहां से पाया था कि जिस से इसके तुल्य अन्य क-

रम् ॥ इत्युक्त्वानूपुरंतस्मै स्वसुताञ्चददौप्रियाम् ॥ ५१ ॥ विद्युत्केश्यातदादत्तां प्रियांविद्युत्प्रभाभिधाम् ॥ विप्रःस म्प्राप्यमुमुदे रूपयौवनशालिनीम् ॥ ५२ ॥ विद्युत्केशीतुजामात्रे हेमाब्जमपिसाददौ ॥ विद्युत्प्रभांनूपुरञ्च हेमाब्जमपि लब्ध्यसः ॥ ५३ ॥ श्वश्रूमाभाष्यसहसा पुनःप्रायान्नृपान्तिकम् ॥ ततःप्रतापमुकुटो नूपुरप्राप्तिनन्दितः ॥ ५४ ॥ शौर्य धैर्यसमायुक्तं प्रशशंसद्विजात्मजम् ॥ अथविद्युत्प्रभांविप्रः सोब्रवीद्रहसिप्रियाम् ॥ ५५ ॥ मात्रातवकुतोलब्धमेतद्धेमा म्बुजंप्रिये ॥ एतत्तुल्यानिचान्यानि यतःप्राप्स्येवरावने ॥ ५६ ॥ द्विजात्मजंततःप्राह पतिंविद्युत्प्रभारहः ॥ प्रभोकपाल विस्फोटनाम्नोवेतालभूपतेः ॥ ५७ ॥ अस्तिदिव्यंसरःकिञ्चिद्धेमाम्बुजपरिष्कृतम् ॥ तवश्वश्रूजलक्रीडां वितन्व न्त्येदमाहृतम् ॥ ५८ ॥ इतिश्रुतंवचस्तत्र मांनयेतिजगादसः ॥ ततःसासहसाविप्रं निन्येतत्काञ्चनंसरः ॥ ५९ ॥ ततःस हेमपद्मानामाजिहीर्षुर्द्विजात्मजः ॥ तद्विघ्नकारिणःसर्वान्वेतालादींस्ततोवधीत् ॥ ६० ॥ स्वयंकपालविस्फोटं निहता

मलों को मैं भी पाऊं ॥ ५६ ॥ तदनन्तर विद्युत्प्रभा ने एकान्तमें द्विजपुत्र पति से कहा कि हे प्रभो ! कपालविस्फोटनामक वेताल नृपति के ॥ ५७ ॥ स्वर्णकमलों से भूषित कोई दिव्य तड़ाग है उस में जलक्रीड़ा करतीहुई तुम्हारी सासु इस कमल को लाई थी ॥ ५८ ॥ ऐसा वचन सुनागया और उसने कहा कि वहां मुझ को ले चलिये तदनन्तर वह विद्युत्प्रभा ब्राह्मण को सहसा उस कांचनतड़ाग को लेगई ॥ ५९ ॥ तदनन्तर सुवर्ण के कमलों को लेने की इच्छावाले उस द्विजपुत्र ने उसके विघ्न करने-

वाले सब वेतालादिकों को मारा उसके उपरान्त ॥ ६० ॥ मरीहुई सब सेनावाले आपही कपालविस्फोट को देखा और उस वेतालपति को मारने का प्रारम्भकिया ॥ ६१ ॥ इसी अवसर में बड़े तेजस्वी विज्ञप्तिकौतुक नामक विद्याधरपति ने विमान के द्वारा प्राप्तहोकर इस से कहा ॥ ६२ ॥ कि हे द्विजेन्द्र, अशोकदत्त! साहस मतकरो उस वचन को सुनकर ब्राह्मण के पुत्र अशोकदत्त ने उत्तम विमान पै भलीभांति बैठेहुये ॥ ६३ ॥ प्रभासे युक्त विद्याधरों के पति को आकाश में देखा और उसके दर्शनही से शापसे छूटेहुये द्विज-पुत्र ने ॥ ६४ ॥ मनुष्य के रूप को छोड़कर दिव्यरूप को पाया और उत्तम विमान पर चढ़े हुये दिव्य गहनों से भूषित ॥ ६५ ॥ शापसे छूटे हुये उस सुकर्ण से विज्ञप्तिकौ-

शेषसैनिकम् ॥ ददर्शवेतालपतिं तञ्चहन्तुंप्रचक्रमे ॥ ६१ ॥ अत्रान्तरेमहातेजा नाम्नाविज्ञप्तिकौतुकः ॥ विद्याधरपतिः प्राप्य विमानेनैनमब्रवीत् ॥ ६२ ॥ अशोकदत्तविप्रेन्द्र साहसंमाकृथाइति ॥ तदाकर्ण्यद्विजसुतो विमानवरसंस्थितम् ॥ ६३ ॥ ददर्शप्रभयायुक्तं विद्याधरपतिंदिवि ॥ तस्यदर्शनमात्रेण शापान्मुक्तोद्विजात्मजः ॥ ६४ ॥ सन्त्यज्य मानुषंरूपं दिव्यंरूपमवाप्तवान् ॥ विमानवरमारूढं दिव्याभरणभूषितम् ॥ ६५ ॥ शापान्मुक्तंसुकर्णंतं प्राहविज्ञप्तिकौतुकः ॥ अयंसुकर्णतेभ्राता गालवस्यमहामुनेः ॥ ६६ ॥ शापाद्वेतालतांप्राप तत्कन्यास्पर्शपातकी ॥ त्वंचशप्तःपुरा तेन तत्पापस्यानुमोदकः ॥ ६७ ॥ तवायमल्पपापस्य शापोमद्दर्शनावधिः ॥ कल्पितस्तेनमुनिना शापान्तोनास्यकल्पितः ॥ ६८ ॥ तदेहिमुक्तशापोसि सुकर्णस्वर्गमारुह ॥ ततःसुकर्णस्तंप्राह विद्याधरकुलाधिपम् ॥ ६९ ॥ विद्याधरपतेभ्रात्रा विनाज्येष्ठेनसाम्प्रतम् ॥ सर्वभोगयुतंस्वर्गं नैवंगन्तुंसमुत्सहे ॥ ७० ॥ शापस्यान्तोयथाभूयान्ममभ्रातुस्त

तुक ने कहा कि हे सुकर्ण ! यह तुम्हारा भाई गालव महामुनि के ॥ ६६ ॥ शापसे वेतालता को प्राप्त हुआ है जो कि उन गालवजी की कन्या के स्पर्श से पातकी है और उस पाप के अनुमोदन करनेवाले तुम भी पुरातन समय उससे शापित हुयेहो ॥ ६७ ॥ और उन मुनिने थोड़े पापवाले तुम्हारे इस शाप को मेरे दर्शन की अवधि तक कलिपत किया था और इस का शापान्त नहीं किया गया है ॥ ६८ ॥ इसलिये हे सुकर्ण ! आइये शाप से छूटगये हो स्वर्ग को चढ़ो तदनन्तर सुकर्ण ने उस विद्याधरकुल के स्वामी से कहा ॥ ६९ ॥ कि हे विद्याधरपते ! इस समय मैं बड़े भाई के विना सब सुखों से संयुत स्वर्ग को जाने के लिये नहीं

उत्साह करता हूं ॥ ७० ॥ जिस प्रकार मेरे भाई के शाप का अन्त होवै वैसा ही कहो तब बडे तेजस्वी विज्ञप्तिकौतुक ने उससे कहा ॥ ७१ ॥ कि इस दुर्निवार शाप को अन्य कौन निवारण कर सक्ता है परन्तु इस समय मैं तुम से कुछ अतिगुप्त चरित्र को कहता हूं ॥ ७२ ॥ कि पुरातन समय ब्रह्मा ने सनकादिकों से कहा है कि दक्षिण समुद्र के किनारे समस्त तीर्थों के आश्रयरूप पवित्र ॥ ७३ ॥ चक्रतीर्थ के समीप बडाभारी तीर्थ है जिस के दर्शन ही से महापातकों के समूह ॥ ७४ ॥ उसी क्षण नाश होजाते हैं और स्नान से उपजे हुये फल को नहीं जानता हूं वहां जाकर यदि तुम्हारा बड़ा भाई बडेभारी

थावद ॥ तमुवाचमहातेजास्तदाविज्ञप्तिकौतुकः ॥ ७१ ॥ दुर्निवारमिमंशापमन्यःकोवानिवारयेत् ॥ किन्तुगुह्यतमं किञ्चित्तववक्ष्यामिसाम्प्रतम् ॥ ७२ ॥ ब्रह्मणासनकादिभ्यो मुनिभ्यःकथितंपुरा ॥ सर्वतीर्थाश्रयेपुण्ये दक्षिणस्यो दधेस्तटे ॥ ७३ ॥ चक्रतीर्थसमीपेतु तीर्थमस्तिमहत्तरम् ॥ महापातकसङ्घाश्च यस्यदर्शनमात्रतः ॥ ७४ ॥ नश्यन्ति तत्क्षणादेव नजानेस्नानजंफलम् ॥ तत्रगत्वातवज्येष्ठो यदिस्नायान्महत्तरे ॥ ७५ ॥ वेतालत्वंत्यजेन्नूनं तदागालव शापजम् ॥ सुकर्णस्तद्वचःश्रुत्वा भ्रात्रावेतालरूपिणा ॥ ७६ ॥ सहितःसहसाप्रायाद्दक्षिणस्योदधेस्तटम् ॥ दक्षिणं चक्रतीर्थाख्यादुत्तरंगन्धमादनात् ॥ ७७ ॥ ब्रह्मणासनकादिभ्यः कथितंतीर्थमभ्यगात् ॥ तत्तीर्थकूलमासाद्य भ्रातरं चेदमब्रवीत् ॥ ७८ ॥ भ्रातर्गालवशापस्य घोरस्यास्यनिवृत्तये ॥ तीर्थेस्मिन्नचिरात्स्नाहि सर्वतीर्थोत्तमोत्तमे ॥ ७९ ॥ तस्मिन्नवसरेविप्रास्तस्यतीर्थस्यशीकराः ॥ न्यपतंस्तस्यगात्रेषु वायुनावैसमाहृताः ॥ ८० ॥ सतच्छीकरसंस्पर्शात्त्य

तीर्थ में नहावै ॥ ७५ ॥ तो गालव के शाप से उपजे हुये वेतालत्व को निश्चय कर छोड़ैगा उसके वचन को सुनकर सुकर्ण वेतालरूपवाले भाई ॥ ७६ ॥ समेत सहसा दक्षिण समुद्र के किनारे गया चक्रतीर्थ से दक्षिण व गन्धमादन से उत्तर ॥ ७७ ॥ ब्रह्मा करके सनकादिकों से कहे हुये तीर्थ को गया और उस तीर्थ को प्राप्त होकर उसने भाई से यह कहा ॥ ७८ ॥ कि हे भ्रातः ! इस भयंकर गालवशाप की निवृत्ति के लिये सब तीर्थों से उत्तमोत्तम इस तीर्थ में शीघ्रही नहाइये ॥ ७९ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस अवसर में पवन से लाये हुये उस तीर्थ के जलबुन्द उस के अंगों में गिरे ॥ ८० ॥ और उस के जलबुन्दों

के स्पर्श से वह वेतालता को छोड़कर उस समय उसी मनुष्यता व द्विजपुत्रता को प्राप्त हुआ ॥ ८१ ॥ तदनन्तर उस द्विजपुत्र ने सहसा संकल्प कर मनुजता की निवृत्ति के लिये उस तीर्थोत्तमोत्तम में स्नान किया ॥ ८२ ॥ और सहसा उठता हुआ वह दिव्यरूप को प्राप्त हुआ और उत्तम विमान पै चढ़कर देवांगनाओं से घिरा ॥ ८३ ॥ व सब आभूषणों से संयुत सुदर्शन भाई समेत बार २ उस तीर्थ की प्रशंसा व प्रणाम कर ॥ ८४ ॥ विज्ञप्तिकौतुक को भी आगे कर स्वर्ग को चलागया तब से लगाकर वह तीर्थ वेतालवरद नामक हुआ ॥ ८५ ॥ क्योंकि जलबुन्द के स्पर्शही से वेतालता नष्ट होगई चक्रतीर्थ के दक्षिण में जो मनुष्य इस तीर्थ को प्राप्त होकर ॥ ८६ ॥ कभी

कावेतालतांतदा ॥ तदेवमानुषंभावं द्विजपुत्रत्वमाप्तवान् ॥ ८१ ॥ ततःसङ्कल्प्यसहसा तस्मिंस्तीर्थोत्तमोत्तमे ॥ मनुष्यत्वनिवृत्त्यर्थं निममज्जद्विजात्मजः ॥ ८२ ॥ उत्तिष्ठन्नेवसहसा दिव्यंरूपमवाप्तवान् ॥ विमानवरमारूढो देवस्त्रीपरिवारितः ॥ ८३ ॥ सर्वाभरणसंयुक्तः सहभ्रात्रासुदर्शनः ॥ श्लाघमानश्चतत्तीर्थं नमस्कृत्यपुनःपुनः ॥ ८४ ॥ विज्ञप्तिकौतुकञ्चापि पुरस्कृत्यदिवंययौ ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं वेतालवरदाभिधम् ॥ ८५ ॥ वेतालत्वंविनष्टंयच्छीकरस्पर्शमात्रतः ॥ यइदंतीर्थमासाद्य चक्रतीर्थस्यदक्षिणे ॥ ८६ ॥ स्नानंकदाचित्कुर्वन्ति जीवन्मुक्ताभवन्तिते ॥ एतत्तीर्थसमंपुण्यं नभूतंनभविष्यति ॥ ८७ ॥ घोरांवेतालतांत्यक्त्वा दिव्यतांसयदाप्तवान् ॥ ८८ ॥ अत्रसङ्कल्प्यचस्नात्वा वेतालवरदेशुभे ॥ पितृभ्यःपिण्डदानंच कुर्याद्वैनियमान्वितः ॥ ८९ ॥ एवंवःकथितंविप्रास्तस्यतीर्थस्यवैभवम् ॥ वेतालवरदाभिख्या यथाचास्यसमागता ॥९०॥ यःपठेदिममध्यायं शृणुयाद्वासमुच्यते ॥९१॥ इति श्रीस्कान्देनवमोऽध्यायः ॥९॥

स्नान करते हैं वे जीवन्मुक्त होते हैं इस तीर्थ के बराबर पवित्र तीर्थ न हुआ है न होवैगा ॥ ८७ ॥ क्योंकि भयंकर वेतालता को प्राप्त होकर देवत्व को प्राप्त हुआ है ॥ ८८ ॥ इस वेतालवरद नामक उत्तम तीर्थ में संकल्प कर नियम से संयुत मनुष्य पितरों के लिये पिण्डदान करै ॥ ८९ ॥ हे ब्राह्मणो ! तुम लोगो से इस प्रकार उस तीर्थ का ऐश्वर्य कहा गया और जिस प्रकार वेतालवरद नाम इसको प्राप्त हुआ वह कहा गया ॥ ९० ॥ जो मनुष्य इस अध्याय को पढ़ता या सुनता है वह मुक्त होजाता है ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां वेतालवरदतीर्थप्रशंसायांसुदर्शनसुकर्णशापमोक्षणंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥

दो० । तीरथ पापविनाशकर अहै यथा परभाव । सोइ दशम अध्याय में कथा हर्ष उपजाव ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वेतालवरद तीर्थ में नहाकर तदनन्तर धीरे २ मनुष्य गन्धमादन पर्वत को जावै ॥ १ ॥ जो गन्धमादन समुद्र में सेतुरूप से वर्तमान है वह संसार को रचनेवाले ब्रह्मा से ब्रह्मलोक का मार्ग बनाया गया है ॥ २ ॥ और लक्षों व करोड़ों हज़ार तड़ाग व नदियां तथा बड़े पवित्र समुद्र व वन और आश्रम ॥ ३ ॥ व क्षेत्रों से उपजे हुये पवित्र वेदारण्यादिक और वशिष्ठादिक मुनि तथा सिद्ध, चारण व किन्नर ॥ ४ ॥ और लक्ष्मी व पृथ्वी समेत भगवान् मधुसूदन और सावित्री तथा सरस्वती समेत ब्रह्माजी ॥ ५ ॥

श्रीसूत उवाच ॥ वेतालवरदेतीर्थे नरःस्नात्वाद्विजोत्तमाः ॥ ततःशनैःशनैर्गच्छेद्गन्धमादनपर्वतम् ॥ १ ॥ योम्बुधौ सेतुरूपेण वर्ततेगन्धमादनः ॥ समार्गोब्रह्मलोकस्य विश्वकर्त्रांविनिर्मितः ॥ २ ॥ लक्षकोटिसहस्राणि सरांसिसरितस्त था ॥ समुद्राश्चमहापुण्या वनान्यप्याश्रमाणिच ॥ ३ ॥ पुण्यानिक्षेत्रजातानि वेदारण्यादिकानिच ॥ मुनयश्चवशिष्ठाद्याः सिद्धचारणकिन्नराः ॥ ४ ॥ लक्ष्म्यासहधरण्याच भगवान्मधुसूदनः ॥ सावित्र्याचसरस्वत्या सहैवचतुराननः ॥ ५ ॥ हेरम्बःषण्मुखश्चैव देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥ आदित्यादिग्रहाश्चैव तथाष्टौवसवोद्विजाः ॥ ६ ॥ पितरोलोकपालाश्च त थान्येदेवतागणाः ॥ महापातकसङ्घानां नाशनेलोकपावने ॥ ७ ॥ दिवानिशंवसन्त्यत्र पर्वतेगन्धमादने ॥ अत्रगौरीसदा तुष्टा हरेणसहवर्तते ॥ ८ ॥ अत्रकिन्नरकान्तानां क्रीडाजागर्तिनित्यशः ॥ तस्यदर्शनमात्रेण बुद्धिसौख्यंनृणांभवेत् ॥ ९ ॥ तन्मूर्द्धनिकृतावासाः सिद्धचारणयोषितः ॥ पूजयन्तिसदाकालं शङ्करंगिरिजापतिम् ॥ १० ॥ कोटयोब्रह्महत्यानाम

व हे ब्राह्मणो ! गणेश तथा स्वामिकार्त्तिकेय और इन्द्रादिक देवता, सूर्यादिक ग्रह व आठो वसु ॥ ६ ॥ और पितर, लोकपाल व अन्य देवगण महापातकों के समूह को नाशनेवाले व लोकों को पवित्र करनेवाले ॥ ७ ॥ इस गन्धमादन पर्वत पै दिनरात बसते हैं और यहा प्रसन्न होती हुई पार्वतीजी सदैव महादेवजी के साथ वर्तमान रहती हैं ॥ ८ ॥ और यहां किन्नरों की स्त्रियों की क्रीड़ा नित्य जागती है उसके दर्शनही से मनुष्यों की बुद्धि को सुख होता है ॥ ९ ॥ और उनके मस्तक में निवास किये हुई सिद्धों व चारणों की स्त्रिया सब समय में गिरिजापति शंकरजी को पूजती हैं ॥ १० ॥ करोड़ों ब्रह्महत्या

और करोड़ों अगम्यागमन अंग में लगे हुये गन्धमादन पर्वत के पवनों से नाश होजाते हैं ॥ ११ ॥ पुरातन समय ऊपर उठती हुई चंचल लहरियोंवाले महासागर के मध्य में यह गन्धमादन पर्वत मुनिगणों से सेवनीय हुआ है ॥ १२ ॥ तदनन्तर नल से सेतु के बांधने पर उस के बीच में प्राप्त वह श्रीरामजी की आज्ञा से सब मनुष्यों से भी सेवनीय हुआ है ॥ १३ ॥ उस सेतुरूप गन्धमादन पर्वत से प्रार्थना करै कि हे सब देवताओं से नमस्कार किये हुये, महापवित्र, भूमिधर ! ॥ १४ ॥ विष्णु आदिक देवता श्रद्धासमेत जिसको सेवते हैं हे नगोत्तम ! उस आप को मैं चरणों से आक्रमण करता हूं ॥ १५ ॥ व पाप-

गम्यागमकोटयः ॥ अङ्गलग्नैर्विनश्यन्ति गन्धमादनमारुतैः ॥ ११ ॥ असावुल्लोलकल्लोले तिष्ठन्मध्येमहाम्बुधौ ॥ आसीन्मुनिगणैःसेव्यः पुरावैगन्धमादनः ॥ १२ ॥ ततोनलेनसेतौतु बद्धेतन्मध्यगोचरः ॥ रामाज्ञयाखिलैःसेव्यो बभूवमनुजैरपि ॥ १३ ॥ सेतुरूपंगिरिंतन्तु प्रार्थयेद्गन्धमादनम् ॥ क्षमाधरमहापुण्य सर्वदेवनमस्कृत ॥ १४ ॥ विष्णवादयोपियंदेवास्सेवन्तेश्रद्धयासह ॥ तंभवन्तमहंपद्भ्यामाक्रमामिनगोत्तम ॥ १५ ॥ क्षमस्वपादघातम्मे दययापापचेतसः ॥ त्वन्मूर्द्धनिकृतावासं शङ्करंदर्शयस्वमे ॥ १६ ॥ प्रार्थयित्वानरस्त्वेवं सेतुरूपंनगोत्तमे ॥ ततोमृदुपदंगच्छेत्पावनंगन्धमादनम् ॥ १७ ॥ अब्धौतत्रनरस्स्नात्वा पर्वतेगन्धमादने ॥ पिण्डदानंततःकुर्यादपिसर्षपमात्रकम् ॥ १८ ॥ तृप्तिंप्रयान्तिपितरस्तस्ययावद्युगक्षयः॥शमीदलसमानान्वा दद्यात्पिण्डान्पितॄन्प्रति ॥ १९ ॥ स्वर्गस्थामोक्षमायान्ति स्वर्गेनरकवासिनः ॥ ततस्तस्योपरिमहातीर्थंलोकेषुविश्रुतम् ॥ २० ॥ सर्वतीर्थोत्तमंपुण्यं नाम्नापापविनाशनम् ॥ अस्ति

चित्तवाले मेरे चरणघात को दया से क्षमा करो व तुम्हारे मस्तक पै निवास किये हुये शंकरजी को मुझे दिखलावो ॥ १६ ॥ इस प्रकार पवित्रकारक सेतुरूप गंधमादन से प्रार्थना कर तदनन्तर मनुष्य उत्तम पर्वत पै कोमल पग से जावै ॥ १७ ॥ और उस समुद्र में स्नान कर तदनन्तर गन्धमादन पर्वत पै जो सरसों भर भी पिण्डदान करै ॥ १८ ॥ तो जबतक युगों का नाश होवै तबतक उसके पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं अथवा समी के पत्ते के बराबर पिण्डों को पितरों के निमित्त देवै ॥ १९ ॥ तो नरकवासी व स्वर्ग में टिके हुये पितर मोक्ष को प्राप्त होते हैं तदनन्तर उस के ऊपर महातीर्थ लोकों में प्रसिद्ध है ॥ २० ॥ नाम से पापविना-

शक वह पवित्र तीर्थ सब तीर्थों से उत्तम है हे ब्राह्मणो ! पवित्र गन्धमादन पर्वत पै अत्यन्त पवित्र तीर्थ है ॥ २१ ॥ कि जिस के स्मरणही से गर्भवास नहीं होता
है अपनें शरीर के मल को नाशनेवाले उस तीर्थ को पाकर मनुष्य स्नान करै ॥ २२ ॥ क्योंकि उसमें स्नान करने से मनुष्य वैकुंठ को जाते हैं इसमें सन्देह
नहीं है ऋषिलोग बोले कि हे महामुने, सूतजी ! पापविनाशनामक तीर्थ के ऐश्वर्य को कहिये क्योंकि व्यासजी से बोधित तुम सब जानते हो ॥ २३ ॥
श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! हिमाचल के किनारे उत्तम ब्रह्माश्रम स्थान में वर्तमान हुई उत्तम कथा को मैं तुम लोगों से कहता हूं ॥ २४ ॥ हिमवान्

पुण्यतमंविप्राः पवित्रेगन्धमादने ॥ २१ ॥ यस्यसंस्मरणादेव गर्भवासोनविद्यते ॥ तत्प्राप्यतुनरस्स्नायात्स्वदेहमल
नाशनम् ॥ २२ ॥ तत्रस्नानान्नरोयान्ति वैकुण्ठंनात्रसंशयः ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूतपापविनाशाख्यतीर्थस्यब्रूहिवैभ
वम् ॥ व्यासेनबोधितस्त्वंहि वेत्सिसर्वंमहामुने ॥ २३ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ ब्रह्माश्रमपदेवृत्तांपार्श्वेहिमवतःशुभे ॥ वक्ष्या
मिब्राह्मणश्रेष्ठा युष्माकंतुकथांशुभाम् ॥ २४ ॥ अस्याश्रम पदं पुण्यं ब्रह्माश्रमपदेशुभे ॥ नानावृक्षगणाकीर्णं पार्श्वेहि
मवतःशुभे ॥ २५ ॥ बहुगुल्मलताकीर्णं मृगद्विपनिषेवितम् ॥ सिद्धचारणसंघुष्टं रम्यंपुष्पितकाननम् ॥ २६ ॥ यतिभि
र्बहुभिःकीर्णं तापसैरुपशोभितम् ॥ ब्राह्मणैश्चमहाभागैः सूर्यज्वलनसन्निभैः ॥ २७ ॥ नियमव्रतसम्पन्नैः समाकीर्णंत
पस्विभिः ॥ दीक्षितैर्यागहेतोश्च यताहारैःकृतात्मभिः ॥ २८ ॥ वेदाध्ययनसम्पन्नैर्वैदिकैःपरिवेष्टितम् ॥ वर्णिभिश्चगृहस्थै
श्च वानप्रस्थैश्चभिक्षुभिः ॥ २९ ॥ स्वाश्रमाचारनिरतैः सुवर्णोक्तविधायिभिः ॥ बालखिल्यैश्चमुनिभिः सम्प्राप्तैश्चमरी

के उत्तम किनारे पै मंगलमय ब्रह्माश्रमपद पै अनेक भांति के वृक्षसमूहों से पूर्ण पवित्र आश्रमस्थान है ॥ २५ ॥ जो कि बहुत गुल्मों व लताओं से भरा हुआ व मृगों
तथा व्याघ्रों से सेवित और सिद्धों व चारणों से शब्दित व मनोहर तथा फूले हुये वनवाला है ॥२६॥ और बहुतसे यतियों व तपस्वियों से व्याप्त तथा सूर्य व अग्नि के
समान महाऐश्वर्य्यवान् ब्राह्मणों से शोभित है ॥ २७ ॥ और यज्ञ के कारण भोजन कोरोंके व पुण्यवान् तथा नियमों व व्रतों से संयुत दीक्षित तपस्वियोंसे व्याप्त है॥२८॥
व वेदपाठ से संयुत वैदिकों से सब ओर घिरा है और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यासियों से संयुत है ॥ २९ ॥ और उत्तम वर्ण में कहे हुये कर्मों को

करनेवाले व अपने आश्रमों के आचार में परायण पुरुषोंसे व्याप्त है और प्राप्त हुये बालखिल्य मुनियोंसे व मरीचि आदिक ऋषियों से संयुत है ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! पुरातन समय उस आश्रम में कोई दृढबुद्धि व साहसी शूद्र प्रसन्नतासंयुत होकर ब्राह्मणों के समीप आया ॥ ३१ ॥ आश्रमस्थान में आये व तपस्वियों से पूजेहुये दृढबुद्धि नामक शूद्र ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥३२॥ और देवताओंके समान व अनेक भाति के यज्ञों को करते हुये उन बडे पराक्रमी मुनिगणों को देखकर शूद्र प्रसन्न हुआ ॥३३॥ इसके अनन्तर इसके अति उत्तम तप करनेके लिये बुद्धि हुई तदनन्तर कुलपति तपस्वी मुनि के समीप आकर कहा ॥ ३४ ॥ दृढबुद्धि बोला कि हे तपोधन!

चिभिः ॥ ३० ॥ तत्राश्रमेपुराकश्चिच्छूद्रोदृढमतिर्द्विजाः ॥ साहसीब्राह्मणाभ्याशमाजगाममुदान्वितः ॥ ३१ ॥ आगतो ह्याश्रमपदं पूजितश्चतपस्विभिः ॥ नाम्नादृढमतिःशूद्रः साष्टाङ्गंप्रणनामवै ॥ ३२ ॥ तान्सदृष्ट्वामुनिगणान्देवकल्पान्महौजसः ॥ कुर्वतोविविधान्यज्ञान्संप्रहृष्यतशूद्रकः ॥ ३३ ॥ अथास्यबुद्धिरभवत्तपःकर्तुमनुत्तमम् ॥ ततोब्रवीत्कुलपतिं मुनिमागत्यतापसम् ॥ ३४ ॥ दृढमतिरुवाच ॥ तपोधननमस्तेस्तु रक्षमांकरुणानिधे ॥ तवप्रसादादिच्छामि धर्मंचर्तुं द्विजर्षभ ॥ ३५ ॥ तस्मादभिगतंमांत्वं यागेदीक्षयसुव्रत ॥ ब्रह्मन्नवरवर्णोहं शूद्रोजात्यास्मिसत्तम ॥ ३६ ॥ शुश्रूषांकर्तुमिच्छामि प्रपन्नायप्रसीदमे ॥ एवमुक्तेतुशूद्रेण तमाहब्राह्मणस्तदा ॥ ३७ ॥ कुलपतिरुवाच ॥ यागेदीक्षयितुंशक्यो नशूद्रोहीनजन्मभाक् ॥ श्रूयतांयदितेबुद्धिः शुश्रूषानिरतोभव ॥ ३८ ॥ उपदेशोनकर्तव्यो जातिहीनस्यकर्हिचित् ॥ उपदेशेमहान्दोष उपाध्यायस्यविद्यते ॥ ३९ ॥ नाध्यापयेद्बुधःशूद्रं तथानैवचयाजयेत् ॥ नपाठयेत्तथाशूद्रं शास्त्रं

तुम्हारे लिये प्रणाम होवै हे दयानिधे ! मेरी रक्षा कीजिये हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैं धर्म करना चाहता हूं ॥ ३५ ॥ इसलिये हे सुव्रत ! आये हुये मुझको तुम यज्ञ में दीक्षित करो हे सत्तम, ब्रह्मन् ! जाति से शूद्र मैं नीचवर्ण हूं ॥ ३६ ॥ मैं सेवा करना चाहता हूं शरण में आये हुये मेरे ऊपर प्रसन्न होवो शूद्र से ऐसा कहने पर उस समय ब्राह्मण ने उस शूद्र से कहा ॥ ३७ ॥ कुलपति बोले कि हीनजन्मभागी शूद्र यज्ञ में दीक्षित नहीं किया जा सक्ता है यदि तुम्हारे बुद्धि है तो सुनो कि सेवा में तत्पर होवो ॥ ३८ ॥ जातिहीन को किसीप्रकार उपदेश न करना चाहिये क्योंकि उस के उपदेश में उपाध्याय को बड़ा दोष होता है ॥ ३९ ॥ विद्वान् शूद्र

को न पढ़ावै न यज्ञ करावै और न शूद्रको व्याकरणादिक शास्त्र पढ़ावै ॥ ४० ॥ और काव्य, नाटक व अलंकार और पुराण व इतिहासको शूद्रको न पढ़ावै ॥४१॥ यदि ब्राह्मण शूद्र को कदाचित् इन उपर्युक्त वस्तुवों का उपदेश करै तो ब्राह्मणों से संयुत ग्राम से उसको ब्राह्मणलोग छोड़ देवैं ॥ ४२ ॥ और शूद्र के लिये उपदेश करने वाले ब्राह्मण को चाण्डाल की नाईं त्याग करै और अक्षर से संयुत शूद्र को दूरसे छोड़देवै ॥४३॥ इसलिये तुम्हारा कल्याण होवै और श्रद्धा समेत तुम ब्राह्मणोंकी सेवा करो क्योंकि मनु आदिक महर्षियों ने शूद्र को ब्राह्मण की सेवा कहा है ॥ ४४ ॥ तुम नैसर्गिक कर्म को छोड़ने के योग्य नहीं हो मुनि से ऐसा कहे हुये शूद्रने उससमय विचार

व्याकरणादिकम् ॥ ४० ॥ काव्यंवानाटकंवापि तथालङ्कारमेवच ॥ पुराणमितिहासंच शूद्रंनैवतुपाठयेत् ॥४१॥ यदि चोपदिशेद्विप्रः शूद्रस्यैतानिकर्हिचित् ॥ त्यजेयुर्ब्राह्मणाविप्रं तंग्रामाद्ब्रह्मसङ्कुलात् ॥४२॥ शूद्रायचोपदेष्टारं द्विजंचण्डालवत्त्यजेत् ॥ शूद्रंचाक्षरसंयुक्तं दूरतःपरिवर्जयेत् ॥ ४३ ॥ अतःशुश्रूषभद्रन्ते ब्राह्मणाञ्छ्रद्धयासह ॥ शूद्रस्यद्विजशुश्रूषा मन्वादिभिरुदीरिता ॥ ४४ ॥ नहिनैसर्गिकंकर्म परित्यक्तुंत्वमर्हसि ॥ एवमुक्तस्तुमुनिना सशूद्रोचिन्तयत्तदा ॥ ४५ ॥ किंकर्तव्यंमयात्वद्य व्रतेश्रद्धाहिमेपुरा ॥ यथास्यान्ममविज्ञानं यतिष्येहंतथाद्यवै ॥ ४६ ॥ इतिनिश्चित्यमनसा शूद्रोदृढमतिस्तदा ॥ गत्वाश्रमपदाद्दूरं कृतवानुटजंशुभम् ॥ ४७ ॥ तत्रवैदेवतागारं पुण्यान्यायतनानिच ॥ पुष्पारामादिकंचापि तटाकखननादिकम् ॥ ४८ ॥ श्रद्धयाकारयामासतपःसिद्ध्यर्थमात्मनः ॥ अभिषेकांश्चनियमानुपवासादिकानपि ॥ ४९ ॥ बलिंचक्रुत्वाहुत्वाच दैवतान्यभ्यपूजयत् ॥ सङ्कल्पनियमोपेतः फलाहारोजितेन्द्रियः ॥ ५० ॥ नित्यंकन्दै

किया ॥ ४५ ॥ कि इससमय मुझको क्या करना चाहिये पहिले मुझको व्रत में श्रद्धा हुई है और जिसप्रकार मुझको विज्ञान होवै उसी प्रकार मैं इस समय यत्न करूंगा ॥४६॥ उस समय दृढ़मति शूद्र ने इस प्रकार मन से निश्चय कर आश्रमस्थान से दूर जाकर उत्तम कुटी को बनाया ॥ ४७ ॥ और वहां देवालय व पवित्र मन्दिरों को तथा फूलों का बगीचा और तड़ागखनन आदिक ॥ ४८ ॥ अपने तप की सिद्धिकेलिये श्रद्धा से बनवाया और अभिषेक, नियम व उपवासादिक ॥ ४९ ॥ और पूजन

व हवन कर उसने देवताओं को पूजन किया और संकल्प व नियम संयुत फलाहारी व जितेन्द्रिय उस शूद्र ने ॥५०॥ नित्य कन्द, मूल, पुष्प व फलों से आये हुये अतिथियों को यथायोग्य पूजन किया ॥५१॥ इस प्रकार उसका बहुत सा समय व्यतीत हुआ इसके अनन्तर गर्गवंश में उत्पन्न सत्यवादी व जितेन्द्रिय सुमति नामक ब्राह्मण उसके आश्रम को आया उन मुनि को स्वागत से पूजकर व फलादिकों से प्रसन्न कराकर ॥५२। ५३॥ पवित्र कथाओं को कहते हुए शूद्र ने कुशल पूछा इस प्रकार प्रणाम आदिक उपचारों से पूजित वह ब्राह्मण ॥ ५४ ॥ इस शूद्र को आशीर्वादोंसे अभिनन्दन कर सत्कार को ग्रहण कर उस से पूछ कर प्रसन्नमनवाला वह अपने आश्रम

श्रमूलैश्च पुष्पैरपितथाफलैः ॥ अतिथीन्पूजयामास यथावत्समुपागतान् ॥५१॥ एवंहिसुमहाकालो व्यतिचक्रामतस्यवै ॥ अथाश्रममगात्तस्य सुमतिर्नामनामतः ॥ ५२ ॥ द्विजोगर्गकुलोद्भूतः सत्यवादीजितेन्द्रियः ॥ स्वागतेनमुनिंपूज्य तोषयित्वाफलादिकैः॥५३॥ कथयन्वैकथाःपुण्याःकुशलंपर्यपृच्छत॥ इत्थंसप्रणिपाताद्यैरुपचारैस्तुपूजितः॥५४॥ आशीर्भिरभिनन्द्यैनं प्रतिगृह्यचसत्क्रियाम् ॥ तमापृच्छ्यप्रहृष्टात्मा स्वाश्रमंपुनराययौ ॥ ५५ ॥ एवंदिनेदिनेविप्रः शूद्रेस्मिन्पक्षपातवान् ॥ आगच्छदाश्रमंतस्य द्रष्टुंतं शूद्रयोनिजम् ॥ ५६ ॥ वहुकालंद्विजस्याभूत्संसर्गःशूद्रयोनिना ॥ स्नेहस्यवशमापन्नः शूद्रोक्तंनातिचक्रमे ॥ ५७ ॥ अथागतंद्विजंशूद्रः प्राहस्नेहवशीकृतम् ॥ हव्यकव्यविधानंमे कृत्स्नंब्रूहिमुनीश्वर ॥ ५८ ॥ पितृकार्यविधानार्थं देवकार्यार्थमेवच ॥ मन्त्रानुपदिशत्वंमे महालयविधिंतथा ॥ ५९॥ अष्टकाश्राद्धकृत्यंच वैदिकंयच्चकिञ्चन ॥ सर्वमेतद्रहस्यम्मेब्रूहित्वंवैगुरुर्मतः ॥ ६० ॥ एवमुक्तःसशूद्रेण सर्वमेतदुपादि

को आया ॥ ५५ ॥ इस प्रकार प्रतिदिन इस शूद्र में पक्षपातवान् वह ब्राह्मण उस शूद्रयोनि में उत्पन्न मुनि को देखने के लिये उस के आश्रम को आता था ॥ ५६ ॥ और ब्राह्मण का शूद्रयोनिवाले मुनि के साथ बहुत समय तक संसर्ग हुआ व स्नेह के वश प्राप्त ब्राह्मण नें शूद्र से कहे हुये वचन को नहीं उल्लंघन किया ॥ ५७ ॥ इस के अनन्तर स्नेह से वश किये व आये हुये ब्राह्मण से शूद्र ने कहा कि हे मुनीश्वर ! पितृकार्य करने के लिये व देवकार्य के लिये मुझसे सब हव्य, कव्य की विधि को कहो और मुझ से मन्त्रों को कहो व महालय विधि को कहो ॥ ५८ । ५९ ॥ और अष्टकाश्राद्ध का कार्य व जो कुछ वैदिककर्म हो इस सब रहस्य को तुम मुझ से कहो

क्योंकि तुम गुरु माने गये हो ॥ ६० ॥ शूद्र से ऐसा कहे हुये उस ने इस सब को कहा और इसने उस शूद्र को पितृकर्मादिक कराया ॥ ६१ ॥ व पितृकार्य करने पर उस शूद्र से बिदा किया हुआ वह ब्राह्मण चला गया इस के बहुत समय से शूद्रयोनि करके पालित ॥ ६२ ॥ वही यह ब्राह्मण विप्रवृन्दों से छुटा हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ और यमराज के दूतोंने लेजाकर उस को नरकों में डालदिया ॥ ६३ ॥ और करोडों हज़ार कल्प व करोडों सौ कल्पतक क्रम से नरकों को भोग कर उस के बाद स्थावर याने वृक्षादिक हुआ ॥ ६४ ॥ तदनन्तर गदहा पैदाहुआ उस के उपरान्त विड्वराह हुआ इस के उपरान्त कुत्ता हुआ पश्चात् काकत्व को प्राप्त हुआ ॥ ६५ ॥ इसके

शत् ॥ कारयामासतस्यायं पितृकार्यादिकंतथा ॥ ६१ ॥ पितृकार्येकृतेतेन विसृष्टःसद्विजोगतः ॥ अथदीर्घेणकालेन पोषितः शूद्रयोनिना ॥ ६२ ॥ त्यक्तोविप्रगणैःसोयं पञ्चत्वमगमद्द्विजः ॥ वैवस्वतभटैर्नीत्वा पातितोनरकेष्वपि॥६३॥ कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानिच ॥ भुक्त्वाक्रमेणनरकांस्तदन्तेस्थावरोभवत् ॥ ६४ ॥ गर्दभस्तुततोजज्ञे विड्वराहस्ततःपरम् ॥ जज्ञेथसारमेयोसौ पश्चाद्वायसताङ्गतः ॥ ६५ ॥ अथचण्डालतांप्राप शूद्रयोनिमगात्ततः ॥ गतवान्वैश्यतांपश्चात्क्षत्रियस्तदनन्तरम् ॥ ६६ ॥ प्रबलैर्वध्यमानोसौ ब्राह्मणोवैतदाभवत् ॥ उपनीतःसपित्रातु वर्षेगर्भाष्टमे द्विजः ॥ ६७ ॥ वर्तमानःपितुर्गेहे स्वाचाराभ्यासतत्परः ॥ गच्छन्कदाचिद्गहने गृहीतोब्रह्मरक्षसा ॥ ६८ ॥ रुदन्भ्रमन्स्खलन्मूढः प्रहसन्विलपन्नसौ ॥ शश्वद्धाहेतिचवदन्वैदिकंकर्मसोत्यजत् ॥ ६९ ॥ दृष्ट्वासुतंतथाभूतं पितादुःखेनपीडितः ॥ सुतमादायचस्नेहादगस्त्यंशरणंययौ ॥ ७० ॥ भक्त्यामुनिंप्रणम्यासौ पितातस्यसुतस्यवै ॥ तस्मैनिवेदया

अनन्तर चाण्डालताको प्राप्त हुआ तदनन्तर शूद्रयोनि को प्राप्त हुआ पश्चात् वैश्यताको प्राप्त हुआ तदनन्तर क्षत्रिय हुआ ॥ ६६ ॥ और प्रबल क्षत्रियों से मारा गया यह उस समय ब्राह्मण हुआ और पिता ने उस ब्राह्मण का गर्भ से आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत किया ॥ ६७ ॥ और पिता के घर में वर्तमान अपने आचार के अभ्यास में तत्पर हुआ किसी समय वन में जाते हुये उस को ब्रह्मराक्षस ने पकड़ लिया ॥ ६८ ॥ और रोते, घूमते, लरखराते व हँसते और विलाप करते हुये इस ब्राह्मण ने सदैव हाहा ऐसा कहते हुये वैदिक कर्म को छोड दिया ॥ ६९ ॥ पुत्रको वैसे हुये देखकर पिता दुःखसे पीडित हुआ और पुत्र को लेकर स्नेहसे अगस्त्यजी के शरण गया ॥ ७० ॥

और उस पुत्र के इस पिता ने भक्तिसे उन अगस्त्य मुनि को प्रणाम कर उनसे अपने पुत्र का वृत्तान्त कहा ॥ ७१ ॥ और उस समय ब्राह्मण ने ऋषिश्रेष्ठ कुम्भज (अगस्त्य) जी से कहा कि हे ब्रह्मन् ! मेरे इस पुत्र को ब्रह्मराक्षसने पकड़ लिया है ॥ ७२ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह सुख को नहीं पाता है तुम उसको दयादृष्टि से रक्षा करो क्योंकि पितरोंके ऋण की मुक्ति के लिये मेरे अन्य पुत्र भी नहीं है ॥ ७३ ॥ हे कुम्भज ! इसकी पीड़ा के नाशके लिये यत्न को कहिये क्योंकि तीनों लोकों में तुम्हारे समान तपःशील (तपस्वी) नहीं है ॥ ७४ ॥ महर्षियोंने तुम को शिवभक्तों के मध्य में श्रेष्ठ कहाहै और तुम्हारे विना मेरे इस पुत्रकी रक्षा नहीं है ॥ ७५ ॥ तुम पिता के ऊपर दया

मास स्वपुत्रस्यविचेष्टितम् । ७१॥ अब्रवीच्चतदाविप्रः कुम्भजंमुनिपुङ्गवम् ॥एषमेतनयोब्रह्मन् गृहीतोब्रह्मरक्षसा॥७२॥ सुखंनभजतेब्रह्मन् रक्षतंकरुणादृशा ॥ नास्तिमेतनयोप्यन्यः पितॄणामृणमुक्तये ॥ ७३ ॥ अस्यपीडाविनाशार्थमुपायं ब्रूहिकुम्भज ॥ त्वत्समस्त्रिषुलोकेषु तपःशीलोनविद्यते ॥ ७४ ॥ अग्रणीःशिवभक्तानामुक्तस्त्वंहिमहर्षिभिः ॥ त्वांविनास्य परित्राणं नमेपुत्रस्यविद्यते ॥ ७५ ॥ पित्रेकृपांकुरुष्वत्वं दयाशीलाहिसाधवः ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवमुक्तस्तदातेन कुम्भजोध्यानमास्थितः ॥ ७६ ॥ ध्यात्वातुसुचिरङ्कालमब्रवीद्ब्राह्मणंततः ॥ अगस्त्य उवाच ॥ पूर्वजन्मनितेपुत्रोब्राह्मणोयंमहामते ॥ ७७ ॥ सुमतिर्नामविप्रोयं मतिंशूद्रायवैददौ ॥ कर्माणिवैदिकान्येष सर्वाण्युपादिदेशवै ॥ ७८ ॥ अतोयंनरकान्भुक्त्वा कल्पकोटिसहस्रकम् ॥ जातोभुवितदन्तेषु स्थावरादिषुयोनिषु ॥ ७९ ॥ इदानींब्राह्मणोजातः कर्मशेषेणतेसुतः ॥ यमेनप्रेषितेनात्र गृहीतोब्रह्मरक्षसा ॥ ८० ॥ क्रूरेणपातकेनाद्धा पूर्वजन्मकृतेनवै ॥ उपायंतेप्रवक्ष्यामि ब्रह्म

करो क्योंकि साधुलोग दयास्वभाववाले होते हैं श्रीसूतजी बोले कि उस समय उस ब्राह्मण से कहे हुये कुम्भज (अगस्त्य) जी ध्यान में स्थितहुये ॥ ७६ ॥ व बहुत समय तक ध्यान कर तदनन्तर उन्होंने ब्राह्मणसे कहा अगस्त्यजी बोले कि हे महामते ! पहिले जन्म में तुम्हारा यह पुत्र ब्राह्मण था ॥ ७७ ॥ और सुमतिनामक इस ब्राह्मण ने शूद्र के लिये बुद्धि दिया और इस ने सब वैदिककर्मों को उपदेश किया ॥ ७८ ॥ इसकारण यह करोडों हज़ार कल्पों तक नरकों को भोग कर उसके अन्तमें पृथ्वी पर स्थावरादिक योनियों में पैदाहुआ ॥ ७९ ॥ और इस समय बचे हुये कर्मसे तुम्हारा पुत्र ब्राह्मण हुआ व पूर्वजन्म में किये हुये घोर पाप से साक्षात् यमराजसे पठायेहुये ब्रह्म-

राक्षसने यहा इस को पकड़ लिया मैं ब्रह्मराक्षस के विनाश के लिये तुमसे यत्न को कहता हूं ॥ ८० । ८१ ॥ श्रद्धासंयुत तुम मन को सावधान कर सुनो कि हे विप्रजी ! दक्षिणसमुद्र में सेतुरूप महाचल ॥ ८२ ॥ देवताओं से सेवने योग्य पवित्रकारक गन्धमादन है उस के ऊपर नाम से पापविनाशन महातीर्थ है ॥ ८३ ॥ जो कि पवित्र व महापातको का नाशक प्रसिद्ध है और भूत, प्रेत, पिशाच, वेताल व ब्रह्मराक्षसों का ॥ ८४ ॥ और बड़े भारी रोगों का वह तीर्थ नाशक कहा गया है तुम पुत्र को लेकर उस सेतु के मध्य में प्राप्त तीर्थ को जावो ॥ ८५ ॥ और पवित्र होकर पापविनाशक तीर्थ में पुत्र को स्नान करावो उस में तीन दिन स्नान करने से ब्रह्मराक्षस नाश होजाता

रक्षोविनाशने ॥ ८१ ॥ शृणुष्वश्रद्धयायुक्तः समाधायचमानसम् ॥ दक्षिणाम्भोनिधौविप्र सेतुरूपोमहागिरिः ॥ ८२ ॥ वर्ततेदेवतैःसेव्यः पावनोगन्धमादनः ॥ तस्योपरिमहातीर्थं नाम्नापापविनाशनम् ॥ ८३ ॥ अस्तिपुण्यंप्रसिद्धंच महापातकनाशनम् ॥ भूतप्रेतपिशाचानां वेतालब्रह्मरक्षसाम् ॥ ८४ ॥ महताञ्चैवरोगाणां तीर्थंतन्नाशकंस्मृतम् ॥ सुतमादायगच्छत्वं तत्तीर्थंसेतुमध्यगम् ॥ ८५ ॥ प्रयतःस्नापयसुतं तीर्थेपापविनाशने ॥ स्नानेनत्रिदिनंतत्र ब्रह्मरक्षोविनश्यति ॥ ८६ ॥ नैवोपायान्तरंतस्य विनाशेविद्यतेभुवि ॥ तस्माच्छीघ्रंप्रयाहित्वं रामसेतुंविमुक्तिदम् ॥ ८७ ॥ तत्रपापविनाशाख्यतीर्थेस्नापयतंसुतम् ॥ माविलम्बंकुरुष्वात्र त्वरयायाहिवैद्विज ॥ ८८ ॥ इत्युक्तःसद्विजोगस्त्यं प्रणम्यभुविदण्डवत् ॥ अनुज्ञातश्चतेनासौ प्रययौगन्धमादनम् ॥ ८९ ॥ सुतेनसाकंविप्रेन्द्रो गत्वापापविनाशनम् ॥ सङ्कल्पपूर्वंसंस्नाप्य दिनत्रयमसौसुतम् ॥ ९० ॥ सस्नौस्वयञ्चविप्रेन्द्राः पितापापविनाशने ॥ अथतस्यसुतस्तत्र विमुक्तोब्रह्मरक्षसा ॥ ९१ ॥ समजा

है ॥ ८६ ॥ और उसके नाश करने में अन्य उपाय पृथ्वी में नहीं विद्यमान है इसलिये तुम मुक्तिदायक रामसेतु को शीघ्रही जावो ॥ ८७ ॥ और उस पापनाशकनामक तीर्थ में उस पुत्र को स्नान करावो हे द्विज ! इस में देर मत करो शीघ्रता से जावो ॥ ८८ ॥ ऐसा कहाहुआ वह ब्राह्मण पृथ्वी में अगस्त्यजी को दण्डा की नाईं प्रणाम कर उन से आज्ञा को लेकर वह गन्धमादन पर्वत को गया ॥ ८९ ॥ पुत्रसमेत यह द्विजेन्द्र पापविनाशक तीर्थ को जाकर संकल्पपूर्वक पुत्र को तीन दिन नहवा कर ॥ ९० ॥ हे द्विजेन्द्रो ! पिताने आप भी पापनाशक तीर्थ में स्नान किया इसके अनन्तर उसका पुत्र वहां ब्रह्मराक्षस से छूट गया ॥ ९१ ॥ और स्वस्थ

व सुन्दररूपधारी वह नीरोग हुआ व सब संपत्तियों से समृद्ध यह अनेक सुखों को भोगकर ॥ ९२ ॥ पापविनाशन तीर्थ में स्नान से देहान्त में मुक्ति को प्राप्त हुआ और पिता ने भी उस में स्नान से देहान्त में मुक्ति को पाया ॥ ९३ ॥ और उस से उपदेश किया हुआ जो शूद्र था वह क्रम से नरकों को भोग कर अनेकों निन्दित योनियों में उत्पन्न होकर ॥ ९४ ॥ पश्चात् गन्धमादन पर्वत पै गीध जन्मा हुआ किसी समय वह जल पीने के लिये पापविनाशन तीर्थ में ॥ ९५ ॥ आया और उसने जल को पिया व अपने शरीरको छिड़का उसी समय दिव्य शरीर होकर सब आभूषणों से भूषित ॥ ९६ ॥ व दिव्य मालाओं व वसनों को धारण कर लालचन्दन को लगाये हुये वह दिव्य

यतनीरोगः स्वस्थःसुन्दररूपधृक् ॥ सर्वसम्पत्समृद्धोसौ भुक्त्वाभोगाननेकशः ॥ ९२ ॥ देहान्तेप्रययौमुक्तिं स्नानात्पापविनाशने ॥ पितापितत्रस्नानेन देहान्तेमुक्तिमाप्तवान् ॥ ९३ ॥ तेनोपदिष्टोयःशूद्रः सभुक्त्वानरकान्क्रमात् ॥ अनेकेषुजनित्वाच कुत्सितेष्वपियोनिषु ॥ ९४ ॥ गृध्रजन्माभवत्पश्चाद्गन्धमादनपर्वते ॥ सकदाचिज्जलंपातुं तीर्थेपापविनाशने ॥ ९५ ॥ समागतःपपौतोयं सिषिचेचात्मनस्तनुम् ॥ तदैवदिव्यदेहःसन्सर्वाभरणभूषितः ॥ ९६ ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरो रक्तचन्दनरूषितः ॥ दिव्यंविमानमारुह्य शोभितश्छत्रचामरैः ॥ ९७ ॥ उत्तमस्त्रीपरिवृतः प्रययावमरालयम् ॥ एवंप्रभावमेतद्धि तीर्थंपापविनाशनम् ॥ ९८ ॥ स्वर्गदंमोक्षदंपुण्यं प्रायश्चित्तकरन्तथा ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानैः सेवितंसुरसेवितम् ॥ ९९ ॥ पापानांनाशनाद्विप्राः पापनाशाभिधंहितत् ॥ श्रेयोर्थीपुरुषस्तस्मात्स्नायात्पापविनाशने ॥ १०० ॥ इत्थंरहस्यंकथितं मुनीन्द्रास्तद्वैभवंपापविनाशनस्य ॥ यत्राभिषेकात्सहसाविमुक्तौ द्विजश्चशूद्रश्चविनिन्द्य

विमान पै चढ़ कर छत्र व चँवरों से शोभित हुआ ॥ ९७ ॥ और उत्तम स्त्रियों से घिरा हुआ वह स्वर्गको चलागया ऐसा प्रभाववान् यह पापविनाशन तीर्थ है ॥ ९८ ॥ और स्वर्गदायक, मोक्षदायक, पवित्र व प्रायश्चित्तकारक है और देवताओंसे सेवित व ब्रह्मा, विष्णु तथा सदाशिवजी से सेवित है ॥ ९९ ॥ हे ब्राह्मणो ! पापों के नाश करने से वह पापनाशननामक तीर्थ है इस कारण कल्याण को चाहनेवाला पुरुष पापविनाशक तीर्थ में स्नान करे ॥ १०० ॥ हे द्विजेन्द्रो ! इस प्रकार पापविनाशन का वह ऐश्वर्य

व रहस्य कहा गया कि जिसमें स्नान करने से निन्दनीयकर्मवाले ब्राह्मण व शूद्र सहसा मुक्त होगये ॥ १०१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगन्धमादनप्रशंसायांपापविनाशप्रभावकथनंनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । सीतासर में न्हाय भे पापहीन सुरराज । सो गेरहें अध्याय में चरित कह्यो सुखसाज ॥ श्रीसूतजी बोले कि समस्तपापों के नाश करनेवाले पापनाशन तीर्थ में नहाकर तदनन्तर मनुष्य नियमपूर्वक स्नान करने के लिये सीतासर को जावै ॥ १ ॥ ब्रह्माण्ड के बीच में प्राप्त जो कोई पवित्र तीर्थ हैं वे गंगादिक तीर्थ

कृत्यौ॥१०१॥इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येगन्धमादनप्रशंसायांपापविनाशप्रभावकथनन्नामदशमोऽध्यायः॥१०॥

श्रीसूत उवाच ॥ पापनाशेनरःस्नात्वा सर्वपापनिबर्हणे ॥ ततःसीतासरोगच्छेत्स्नातुंनियमपूर्वकम् ॥ १ ॥ यानि कानिचपुण्यानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानिवै ॥ तानिगङ्गादितीर्थानि स्वपापपरिशुद्धये ॥ २ ॥ सीतासरसिवर्तन्ते महापातकनाशने ॥ क्षेत्राण्यपिमहार्हाणि काश्यादीनिदिवानिशम् ॥ ३ ॥ सीतासरोत्रसेवन्ते स्वस्वकल्मषशान्तये ॥ तस्याःसरसिसङ्गीतगुणेनाहृष्यब्राह्मणाः ॥ ४ ॥ पञ्चाननोपिवसते पञ्चपातकनाशनः ॥ तदेतत्तीर्थमागत्य स्नात्वावै श्रद्धयासह ॥ ५ ॥ पुरन्दरःपुराविप्रा मुमुचेब्रह्महत्यया ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ब्रह्महत्याकथमभूद्वासवस्यपुरामुने ॥ ६ ॥ सीतासरसिसस्नायात्कथंमुक्तोभवत्तया ॥ श्रीसूत उवाच ॥ कपालाभरणोनाम राक्षसोभूत्पुराद्विजाः ॥ ७ ॥ अवध्यः

अपने पापों की शुद्धि के लिये ॥ २ ॥ महापातकों को नाश करनेवाले सीतासर में वर्तमान हैं और बड़े उत्तम काशी आदिक तीर्थ दिन रात ॥ ३ ॥ अपने पापों की शान्ति के लिये यहां सीतासर को सेवते हैं हे ब्राह्मणो ! उन सीताजी के तड़ाग में संगीतगुण से प्रसन्न होकर ॥ ४ ॥ पांच पातकों के नाशनेवाले पचानन शिवजी भी बसते हैं इसलिये हे ब्राह्मणो ! इस तीर्थ को आकर श्रद्धा समेत इन्द्रजी नहाकर ब्रह्महत्या से छूटे हैं ऋषिलोग बोले कि हे मुने ! पुरातन समय इन्द्र के कैसे ब्रह्महत्या हुई है ॥ ५ । ६ ॥ और उन्हों ने सीतासर में किस प्रकार स्नान किया व कैसे उस ब्रह्महत्या से छूटे हैं श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! पहिले कपालाभरण

नामक राक्षस हुआ है ॥ ७ ॥ वह ब्रह्मा के वरदान से सब देवताओं के अवध्य हुआ और शवभक्षणनामक उस का श्रेष्ठ मन्त्री हुआ है ॥ ८ ॥ उस के घोडे, हाथी व रथों से संयुत सौ अक्षौहिणी सेना थी और वैजयन्त ऐसा प्रसिद्ध उसका नगर था ॥ ९ ॥ इस नगर में वह बलवान् कपालाभरण बसता था हे ब्राह्मणो ! इसने शवभक्ष मन्त्री को बुलाकर कहा ॥ १० ॥ कि हे मन्त्रशास्त्रों में चतुर, महावीर्य, शवभक्ष ! हमलोग देवनगरी (स्वर्ग) को जाकर युद्ध में देवताओं को जीतकर ॥ ११ ॥ इन्द्र के मनोहर मन्दिर में सेनाओं समेत टिकैंगे और उन के नन्दनवन में रम्भादिक अप्सरागणों के साथ क्रीड़ा करैंगे ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस समय कपालाभरण के

सर्वदेवानां सोभवद्ब्रह्मणोवरात् ॥ शवभक्षणनामातु तस्यासीन्मन्त्रिसत्तमः ॥ ८ ॥ अक्षौहिणीशतंतस्य हयेभरथसङ्कुलम् ॥ अस्तितस्यपुरञ्चापि वैजयन्तमितिश्रुतम् ॥ ९ ॥ वसन्त्यस्मिन्पुरेसोयं कपालाभरणोवली ॥ शवभक्षंसमाहूय बभाषेमन्त्रिणंद्विजाः ॥ १० ॥ शवभक्षमहावीर्य मन्त्रशास्त्रेषुकोविद ॥ वयन्देवपुरींगत्वा विनिर्जित्यसुरान्रणे ॥ ११ ॥ शक्रस्यभवनेरम्ये स्थास्यामस्सैनिकैःसह ॥ रमामोनन्दनेतस्य रम्भाद्याप्सरसाङ्गणैः ॥ १२ ॥ कपालाभरणस्येदं निशम्यवचनंतदा ॥ शवभक्षोब्रवीद्विप्रा वचस्तत्रतथास्त्विति ॥ १३ ॥ ततःकपालाभरणःपुत्रंदुर्मेधसम्बली ॥ प्रतिष्ठाप्यपुरेशूरं सेनयापरिवारितः ॥ १४ ॥ युयुत्सुरमरैःसाकं प्रययावमरावतीम् ॥ गजाश्वरथपादातैरुद्धतैरेणुसञ्चयैः ॥ १५ ॥ शोषयञ्जलधीन्सिन्धूंश्चूर्णयन्पर्वतानपि ॥ निस्साणध्वनिनाविप्रा नादयन्रोदसीतथा ॥ १६ ॥ अश्वानां हेषितरवैर्गजानामपिबृंहितैः ॥ रथनेमिस्वनैरुग्रैः सिंहनादैःपदातिनाम् ॥ १७ ॥ श्रोत्राणिदिग्गजानाञ्च वितन्वन्बधि

इस वचन को सुनकर शवभक्ष ने वहां यह वचन कहा कि वैसाही होवै ॥ १३ ॥ तदनन्तर बलवान् कपालाभरणने दुर्मेधा वीर पुत्रको नगरमें थापकर सेनासे घिराहुआ ॥ १४ ॥ देवताओं के साथ युद्ध की इच्छावाला वह अमरावतीपुरी को गया और हाथी, घोड़े, रथ व पैदलोंसे उठीहुई धूलिराशियों से ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणो ! समुद्रोंको सुखाते व पर्वतों को भी चूर्ण करते हुये तथा निशानों की ध्वनि से पृथ्वी व आकाश को शब्दायमान करते हुये उसने यात्रा किया ॥ १६ ॥ और घोड़ों के हिनहिनान शब्दों से तथा हाथियों के गर्जने से व रथों के पहियों के शब्दों से और पैदलों के उग्र सिंहनादों से ॥ १७ ॥ दिग्गजों के कानों को बधिर करता हुआ वह देवताओं के साथ युद्ध

की इच्छावाला राक्षस देवपुरी को गया ॥ १८ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! सेना के कोलाहल शब्द को सुनकर युद्ध के मनवाले इन्द्रादिक देवता पुरी से निकले ॥ १९ ॥ तदनन्तर राक्षसों के साथ देवताओंका वैसा युद्ध हुआ जैसा कि न पहिले देखा गया और न सुना गया था ॥ २० ॥ तदनन्तर इन्द्रादिक देवताओं ने युद्ध में राक्षसों को मारा और समर में जीत की इच्छावाले राक्षसों ने देवताओं को मारा ॥ २१ ॥ देवताओं व राक्षसों का परस्पर द्वन्द्वयुद्ध हुआ याने बल व वृत्रासुर के मारनेवाले इन्द्र ने समर में कपालाभरण के साथ युद्ध किया ॥ २२ ॥ और यमराज के साथ शवभक्ष ने व वरुण के साथ कैशिक ने युद्ध किया व हे द्विजोत्तमो ! कुबेर ने रुधिराक्ष के

राक्षसः ॥ अगमद्देवनगरीं युयुत्सुरमरैःसह ॥ १८ ॥ ततइन्द्रादयोदेवाः सेनाकलकलध्वनिम् ॥ श्रुत्वाभिनिर्ययुःपुर्या युद्धाभिमनसोद्विजाः ॥ १९ ॥ ततोयुद्धंसमभवद्देवानांराक्षसैःसह ॥ अदृष्टपूर्वंजगति तथैवाश्रुतपूर्वकम् ॥ २० ॥ ततइन्द्रादयोदेवा राक्षसाञ्जघ्नुराहवे ॥ राक्षसाश्चसुराञ्जघ्नुःसमरेविजिगीषवः ॥ २१ ॥ द्वन्द्वयुद्धञ्चसमभूदन्योन्यंसुररक्षसाम् ॥ कपालाभरणेनाजौ युयुधेबलवृत्रहा ॥ २२ ॥ यमेनशवभक्षश्च वरुणेनचकैशिकः ॥ कुबेरोरुधिराक्षेण युयुधेब्राह्मणोत्तमाः ॥ २३ ॥ मांसप्रियोमद्यसेवी क्रूरदृष्टिर्भयावहः ॥ चत्वारएतेविक्रान्ताः कपालाभरणानुजाः ॥ २४ ॥ अश्विभ्यामग्निवायुभ्यां युद्धेयुयुधिरेमिथः ॥ ततोयमोमहावीर्यः कालदण्डेनवेगवान् ॥ २५ ॥ शवभक्षन्निहत्याजावनयद्यमसादनम् ॥ तस्यचाक्षौहिणीस्त्रिंशन्निजघ्नेसमरेयमः ॥ २६ ॥ वरुणःकैशिकस्याजौ प्रासेनप्राहरच्छिरः ॥ कुबेरोरुधिराक्षस्य कुन्तेनाभ्यहरच्छिरः ॥ २७ ॥ अश्विभ्यामग्निवायुभ्यां कपालाभरणानुजाः ॥ निहताःसमरेविप्राः

साथ युद्ध किया ॥ २३ ॥ और कपालाभरण के छोटे भाई मांसप्रिय, मद्यसेवी, क्रूरदृष्टि व भयावह इन चारों पराक्रमी राक्षसों ने ॥ २४ ॥ युद्ध में अश्विनीकुमार व अग्नि और पवन के साथ परस्पर युद्ध किया तदनन्तर महापराक्रमी व वेगवान् यमराज ने कालदण्ड से ॥ २५ ॥ समर में शवभक्ष को मार कर यमस्थान को प्राप्त किया और यमराजने उसकी तीस अक्षौहिणी सेना को समर में मारा ॥ २६ ॥ वरुण ने युद्ध में कैशिक के मस्तक को प्रास (भाला) से हरलिया व कुबेर ने भाला से रुधिराक्ष के शिरको हरण किया ॥ २७ ॥ व हे ब्राह्मणो ! अश्विनीकुमार व अग्नि और पवन से समर में मारे हुये कपालाभरण के छोटे भाई यमराजके स्थान

को गये ॥ २८ ॥ व हे ब्राह्मणो ! समरमें सुरराज से आधे पहरमें माराहुआ सौ अक्षौहिणी दल यमस्थान को चला गया ॥ २९ ॥ तदनन्तर कपालाभरण अपनी सेनाको नष्ट देखकर धनुष व बड़े वेगवाले बाणों को लेकर ॥ ३० ॥ समर में आया व उसने युद्ध में इन्द्र से खड़े हो खड़े हो ऐसा कहा तदनन्तर इन्द्र के मस्तक में पांच बाणों से मारा ॥ ३१ ॥ और वृत्रविनाशक इन्द्र ने समर में उन प्राप्त न हुये बाणोंको बाणों से काट डाला तदनन्तर युद्ध में कपालाभरण ने शूल को लेकर ॥ ३२ ॥ देवेन्द्र के ऊपर चलाया और उन इन्द्रने उसको शक्ति से नाश किया तदनन्तर कपालाभरण ने पांच हज़ार तुलाभारसे बनाई हुई सौ हाथ लम्बी उस गदाको लिया और युद्ध में इन्द्र के

प्रययुर्यमसादनम् ॥ २८ ॥ अक्षौहिणीशतञ्चापि देवेन्द्रेणमृधेद्विजाः ॥ यामार्द्धेनहतंयुद्धे प्रययौयमसादनम् ॥ २९ ॥
ततःकपालाभरणः प्रेक्ष्यसेनांनिजांहताम् ॥ चापमादायनिशिताञ्च्छरांश्चापिमहाजवान् ॥ ३० ॥ अभ्ययात्समरेश
क्रं तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ ततःशक्रस्यशिरसि व्यधमच्छरपञ्चकैः ॥ ३१ ॥ तानप्राप्तान्प्रचिच्छेद शरैर्युद्धेसवृत्रहा ॥
ततःशूलंसमादाय कपालाभरणोमृधे ॥ ३२ ॥ देवेन्द्रायप्रचिक्षेप तंशक्त्यानिजघानसः ॥ ततःकपालाभरणः शतह
स्तायतांगदाम् ॥ ३३ ॥ आयसींपञ्चसाहस्रतुलाभारेणनिर्मिताम् ॥ आददेसमरेशक्रं वक्षोदेशेजघानच ॥ ३४ ॥ ततः
सम्मूर्च्छितःशक्रो रथोपस्थउपाविशत् ॥ मृतसञ्जीविनींविद्यां जपित्वाथबृहस्पतिः ॥ ३५ ॥ पुलोमजापतिंयुद्धे समजीव
यदद्भुतम् ॥ ऐरावतंतदारुह्य कपालाभरणान्तिकम् ॥ ३६ ॥ आजगामशचीभर्ता प्राहर्तुंकुलिशेनतम् ॥ एकप्रहारेण
तदा महेन्द्रःपाकशासनः ॥ ३७ ॥ कपालाभरणंयुद्धे वज्रेणसरथाश्वकम् ॥ सचापंसध्वजंचैव सतूणीरंसवर्मकम् ॥ ३८ ॥

वक्षस्थल में मारा ॥ ३३ । ३४ ॥ तदनन्तर बहुत मूर्च्छित होते हुये इन्द्र रथ के ऊपर लुढ़क गये इस के अनन्तर बृहस्पति ने मृतसंजीविनी विद्या को जप कर ॥ ३५ ॥ युद्ध में पुलोमजा के पति (इन्द्र) को आश्चर्यपूर्वक जिलाया तब ऐरावत पै चढ़कर शचीपति इन्द्रजी उस को वज्र से मारने के लिये कपालाभरण के समीप आये और उस समय पाकशासन महेन्द्रजी ने एक प्रहारसे ॥ ३६ । ३७ ॥ युद्ध में वज्र से रथ व घोड़ों समेत और धनुष सहित तथा ध्वजा समेत व तरकस सहित व कवच समेत कपाला-

भरणको ॥ ३८ ॥ क्रोधित होकर तिल व कणके बराबर चूर्ण करदिया युद्ध में उस बड़े वीर कपालाभरण के मरने पर ॥ ३९ ॥ बहुत दिन से दुःखी सब संसार को सुख हुआ और उस समय दशो दिशाओं को शब्दायमान करती हुई राक्षस के मारने से उपजी भयंकरी ब्रह्महत्या इन्द्र के पीछे दौड़ी ऋषिलोग बोले कि हे मुने, सूतजी ! कपालाभरण राक्षस ब्राह्मण नहीं था ॥ ४० । ४१ ॥ तौ उस के मारने से कैसे ब्रह्महत्या इन्द्र के सामने दौड़ी है श्रीसूतजी बोले कि हे मुनीन्द्रो ! मैं बहुत अद्भुत व अतिगुप्त चरित्र को कहता हूं ॥ ४२ ॥ तुमलोग अपने मन को सावधान कर श्रद्धा समेत सुनो कि पुरातन समय विन्ध्यप्रदेशों में त्रिवक्रनामक राक्षस हुआ है ॥ ४३ ॥

चूर्णयामासकुपितस्तिलशःकणशस्तथा ॥ हतेतस्मिन्महावीरे कपालाभरणेरणे ॥ ३९ ॥ सुखंसर्वस्यलोकस्य बभूवचिरदुःखिनः ॥ राक्षसस्यवधोत्पन्ना ब्रह्महत्यापुरन्दरम् ॥ ४० ॥ अन्वधावत्तदाभीमा नादयन्तीदिशोदश ॥ ऋषय ऊचुः ॥ नविप्रोराक्षसःसूत कपालाभरणोमुने ॥ ४१ ॥ तत्कथंब्रह्महत्येन्द्रं तद्वधात्समुपाद्रवत् ॥ श्रीसूत उवाच ॥ वक्ष्यामिपरमंगुह्यं मुनीन्द्राःपरमाद्भुतम् ॥ ४२ ॥ शृणुतश्रद्धयायूयं समाधायस्वमानसम् ॥ पुराविन्ध्यप्रदेशेषु त्रिवक्रो नामराक्षसः ॥ ४३ ॥ तस्यभार्यागुणोपेता सौन्दर्यगुणशालिनी ॥ सुशीलानामसुश्रोणी सर्वलक्षणलक्षिता ॥ ४४ ॥ साकदाचिन्मनोज्ञाङ्गा सुवेषाचारुहासिनी ॥ विन्ध्यपादवनोद्देशे विचचारविलासिनी ॥ ४५ ॥ तस्मिन्वनेशुचिर्नाम वर्ततेस्ममहामुनिः ॥ तपःसमाधिसंयुक्तो वेदाध्ययनतत्परः ॥ ४६ ॥ तस्याश्रमसमीपंतु साययौवरवर्णिनी ॥ तांदृष्ट्वा समुनिर्धैर्यं मुमोचानङ्गपीडितः ॥ ४७ ॥ तामासाद्यवरारोहां बभाषेमुनिसत्तमः ॥ शुचिरुवाच ॥ ललनेस्वागतंतेस्तु

गुणों से संयुत व सौन्दर्यगुण से शोभित तथा सब लक्षणों से लक्षित व सुन्दर कटिवाली उस की सुशीला नामक स्त्री थी ॥ ४४ ॥ किसी समय वह सुन्दर अंगोंवाली व सुन्दर वेष तथा मनोहर हास्यवाली विलासिनी विन्ध्याचल के समीपवाले पर्वतों के वन के उद्देश में भ्रमती थी ॥ ४५ ॥ उस वन में शुचिनामक महामुनि वर्तमान थे और वे मुनि तपस्या की समाधि से संयुत व वेदपाठ में परायण थे ॥ ४६ ॥ वह उत्तम रंगवाली स्त्री उस मुनि के आश्रम के समीप गई और उस को देख कर कामदेव से पीडित उन मुनि ने धैर्य को छोड दिया ॥ ४७ ॥ और उस उत्तम कटिवाली स्त्री के समीप जाकर मुनिश्रेष्ठ ने कहा शुचि बोले कि हे शुचिस्मिते, ललने !

तुम्हारा आना अच्छा हुआ और तुम किसकी स्त्री हो ॥ ४८ ॥ हे वरारोहे ! इस बहुत भयंकर वन में तुम्हारे आने का क्या कारण है तुम थक गई हो इस मेरी कुटी में बसो ॥ ४९ ॥ उस प्रकार कही हुई उस उत्तम कटिवाली स्त्री ने उस मुनि से कहा कि हे मुने ! सुशीलानामक मैं त्रिवक्र राक्षस की स्त्री हूं ॥ ५० ॥ हे मुने ! मैं फूलों के तोड़ने की इच्छा से इस वन को आई थी पुत्र को चाहते हुये अपुत्र पति ने मुझ को पठाया है ॥ ५१ ॥ कि शुचि मुनि को भलीभांति आराधन कर उन से पुत्र को प्राप्त होवोगी पति से इस प्रकार आज्ञा दी हुई मैं तुम्हारे समीप आई हूं ॥ ५२ ॥ हे मुने ! तुम मेरे ऊपर दया करो व मेरे पुत्र को उत्पन्न करो उस स्त्री से ऐसा

कस्यभार्याशुचिस्मिते ॥ ४८ ॥ किमागमनकृत्यंते वनेस्मिन्नतिभीषणे ॥ श्रान्तासित्वंवरारोहे वसास्मिन्नुटजे मम ॥ ४९ ॥ तथोक्तासातुसुश्रोणी तंमुनिंप्रत्यभाषत ॥ त्रिवक्ररक्षोभार्याहं सुशीलानामतोमुने ॥ ५० ॥ पुष्पोपचयकामेन वनमेतत्समागता ॥ अपुत्राहंमुनेभर्त्रा प्रेरितापुत्रमिच्छता ॥ ५१ ॥ शुचिंमुनिंसमाराध्य तस्मात्पुत्रमवाप्नुहि ॥ इतिप्रतिसमादिष्टा पतिनात्वांसमागता ॥ ५२ ॥ पुत्रमुत्पादयत्वंमे कृपांकुरुमुनेमयि ॥ तथैवमुक्तःसशुचिः सुशीलांतामभाषत ॥ ५३ ॥ शुचिरुवाच ॥ त्वांदृष्ट्वाममचप्रीतिः सुशीलेविद्यतेधुना ॥ मनोरथमहाम्भोधिं त्वमापूरय मामकम् ॥ ५४ ॥ इत्युक्त्वासमुनिस्तत्र तयारेमेदिनत्रयम् ॥ तामुवाचमुनिःप्रीतः सुशीलांसुन्दराकृतिम् ॥ ५५ ॥ तवोदरेमहावीर्यः कपालाभरणाभिधः ॥ भविष्यतिचिरंराज्यं पालयिष्यतिसुन्दरि ॥ ५६ ॥ सहस्रंवत्सराञ्जीवेत्तपसा प्रीणयन्विधिम् ॥ पुरन्दरंविनान्येभ्यो देवेभ्योनास्यवध्यता ॥ ५७ ॥ ईदृशस्तेसुतोभूयादिन्द्रतुल्यपराक्रमः ॥ इत्यु

कहे हुये उन शुचि मुनि ने उस सुशीला स्त्री से कहा ॥ ५३ ॥ शुचि बोले कि हे सुशीले ! इस समय तुम को देखकर मुझ को भी आनन्द होता है तुम मेरे मनोरथ के महासागर को पूर्ण करो ॥ ५४ ॥ यह कहकर उन मुनि ने उस के साथ तीन दिन तक रमण किया और प्रसन्न होते हुये मुनि ने उस सुन्दर आकारवाली स्त्री से कहा ॥ ५५ ॥ कि हे सुन्दरि ! तुम्हारे पेट में बड़ा बलवान् कपालाभरण नामक पुत्र होगा और यह बहुत दिनोंतक राज्य को पालन करैगा ॥ ५६ ॥ और तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न करता हुआ वह हज़ारों वर्षोंतक जियेगा और इन्द्र के विना अन्य देवताओं से इस की मृत्यु न होगी ॥ ५७ ॥ इन्द्र के तुल्य पराक्रमी तुम्हारे ऐसा पुत्र

होगा उस स्त्री से यह कहकर वे मुनि काशी शिवपुरी को चले गये ॥ ५८ ॥ और उस सुशीला ने भी कपालाभरण पुत्र को पैदा किया हे मुनिश्रेष्ठो ! युद्ध में इन्द्र ने उस को वज्र से मारा ॥ ५९ ॥ जिसलिये शुचि के वीर्य से उपजे हुये उसको इन्द्र ने मारा उसी कारण ब्रह्महत्या ने इन्द्र को ग्रहण किया ॥ ६० ॥ उस समय भय से विकल इन्द्रजी सब लोकों को भगे और भगते हुये उन के पीछे दौड़ती हुई ब्रह्महत्या गई ॥ ६१ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! ब्रह्महत्या से पीछे गमन किये जाते हुये बहुतही संतप्तहृदयवाले ये इन्द्रजी ब्रह्मा की सभा में प्राप्त हुये ॥ ६२ ॥ और उन इन्द्र ने ब्रह्मा से ब्रह्महत्या को बतलाया कि हे लोकनाथ, भगवन् ! यह बहुत भयंकरी ब्रह्म-

क्त्वासमुनिर्नारीं काशींशिवपुरंययौ ॥ ५८ ॥ सुशीलासापिसुषुवे कपालाभरणंसुतम् ॥ तंजघानमृधेशक्रो वज्रेणमुनिपुङ्गवाः ॥ ५९ ॥ शुचेर्बीजसमुद्भूतं तमिन्द्रोन्यवधीद्यतः ॥ ततःपुरन्दरःशक्रो जगृहेब्रह्महत्यया ॥ ६० ॥ धावतिस्मतदाशक्रःसर्वाँल्लोकान्भयाकुलः ॥ धावन्तमनुधावन्ती ब्रह्महत्यातमन्वगात् ॥ ६१ ॥ अनुद्रुतोयंविप्रेन्द्राः शक्रोयंब्रह्महत्यया ॥ पितामहसदःप्राप सन्तप्तहृदयोभृशम् ॥ ६२ ॥ न्यवेदयद्ब्रह्महत्यां ब्रह्मणेसपुरन्दरः ॥ भगवँल्लोकनाथेयं ब्रह्महत्यातिभीषणा ॥ ६३ ॥ बाधतेमाम्प्रजानाथ तस्यनाशंब्रवीहिमे ॥ पुरन्दरेणैवमुक्तो ब्रह्माप्राहदिवस्पतिम् ॥ ६४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सीताकुण्डंप्रयाहीन्द्र गन्धमादनपर्वते ॥ सीताकुण्डस्यतीरेत्वमिष्ट्वायागैःसदाशिवम् ॥ ६५ ॥ तस्मिन्सरसिचस्नायात्सर्वपापहरेशुभे ॥ ततःपूतोभवाञ्छक्र ब्रह्महत्याविमोचितः ॥ ६६ ॥ देवलोकंपुनर्यायाः सर्वदुःखविवर्जितः ॥ सर्वपापहरंपुण्यं सीताकुण्डंविमुक्तिदम् ॥ ६७ ॥ महापातकसङ्घानां नाशकंपरमामृतम् ॥ सर्वदुःख

हत्या ॥ ६३ ॥ मुझ को पीड़ा करती है हे प्रजानाथ ! मुझ से उस के नाश को कहिये इन्द्र से ऐसा कहे हुये ब्रह्मा ने इन्द्र से कहा ॥ ६४ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे इन्द्र ! गन्धमादन पर्वत पै तुम सीताकुण्ड को जावो और सीताकुण्ड के किनारे तुम यज्ञों से सदाशिवजी को पूजकर ॥ ६५ ॥ उस सब पापों को हरनेवाले उत्तम तड़ाग में स्नान करो तदनन्तर हे इन्द्रजी ! पवित्र होकर आप ब्रह्महत्या से छूटोगे ॥ ६६ ॥ फिर सब दुःखों से रहित तुम सुरलोक को जावोगे सीताकुण्ड सब पापों को हरने-वाला व पवित्र तथा मुक्तिदायक है ॥ ६७ ॥ और महापापसमूहों को नाश करनेवाला तथा परमअमृतरूप है और सब दुःखों को नाशनेवाला व सब दरिद्रों का

नाशक है ॥ ६८ ॥ और धन, धान्य को देनेवाला व शुद्ध तथा वैकुण्ठादि पद को देनेवाला है इसलिये हे वृत्रविनाशक! उस सीतासर के समीप यज्ञ करो॥ ६९ ॥ ऐसा कहेहुये ये सुरराज गन्धमादन पर्वत को गये व हे ब्राह्मणो! सीतासर को पाकर नहाकर व उसके समीप यज्ञकर ॥ ७० ॥ फिर ब्रह्महत्या से छूटेहुये वे अपनी पुरी को गये इस प्रभाववाला वह सीताजी का उत्तम कुण्ड है ॥ ७१ ॥ श्रीरामचन्द्रजी के विश्वास के लिये जनकनन्दिनी जानकीजी सब देवताओं के समीप अग्नि में पैठकर ॥ ७२॥ फिर सब अंगों से सुन्दरी सीताजी अग्नि से बाहर निकलीं और उन्हों ने लोक की रक्षा के लिये अपने नाम से उत्तम कुण्ड को बनाया ॥ ७३ ॥ और वहां सीताजी ने

प्रशमनं सर्वदारिद्र्यनाशनम् ॥ ६८ ॥ धनधान्यप्रदंशुद्धं वैकुण्ठादिपदप्रदम् ॥ तस्मात्तत्रकुरुष्वेष्टिं सीतासरसिवृत्रहन् ॥ ६९ ॥ इत्युक्तःसुरराजोसौ प्रययौगन्धमादनम् ॥ प्राप्यसीतासरोविप्राः स्नात्वेष्ट्वाचतदन्तिके ॥ ७० ॥ प्रययौस्वपुरींभूयो ब्रह्महत्याविमोचितः ॥ एवंप्रभावंतत्तीर्थं सीतायाःकुण्डमुत्तमम् ॥ ७१ ॥ राघवप्रत्ययार्थंहि प्रविश्य हुतवाहनम् ॥ सन्निधौसर्वदेवानां मैथिलीजनकात्मजा ॥ ७२ ॥ विनिर्गतापुनर्वह्नेः स्थितासर्वाङ्गशोभना ॥ निर्ममे लोकरक्षार्थं स्वनाम्नातीर्थमुत्तमम् ॥ ७३ ॥ तत्रसस्नौस्वयंसीता तेनसीतासरःस्मृतम् ॥ तत्रयोमानवःस्नाति सर्वान्कामाँल्लभेतसः ॥ ७४ ॥ तस्मिन्नुपस्पृश्यनरोद्विजेन्द्रा दत्त्वाचदानानिपृथग्विधानि ॥ कृत्वाचयज्ञान्बहुदक्षिणाभिर्लोकंप्रयायात्परमेश्वरस्य ॥ ७५ ॥ युष्माकमेवंप्रथितंमुनीन्द्राः सीतासरोवैभवमेतदुक्तम् ॥ शृण्वन्पठन्वैतदिहैवभोगान्भुक्त्वापरत्रापिसुखंलभेत ॥७६॥ इतिश्रीस्कान्देसीतासरःप्रशंसायामिन्द्रब्रह्महत्याविमोक्षणन्नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

आपही स्नान किया उसीकारण सीतासर कहा गया है उस में जो मनुष्य नहाता है वह सब कामनाओं को पाता है ॥ ७४ ॥ हे द्विजेन्द्रो! उस सीतासर में नहाकर अनेकप्रकार के दानोंको देकर मनुष्य वहां बहुत दक्षिणाओं से यज्ञों को करके परमेश्वर के लोक को जाता है ॥ ७५ ॥ हे द्विजेन्द्रो! तुम लोगों से इस प्रकार यह सीतासर का प्रसिद्ध ऐश्वर्य कहा गया इस को पढ़ता या सुनता हुआ मनुष्य यहीं सुखों को भोगकर परलोक में भी सुख को पाता है ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसीतासरःप्रशंसायामिन्द्रब्रह्महत्याविमोक्षणंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । मंगल तीर्थ नहाय निज राज्य लह्यो नरपाल । सो बारह अध्याय में कह्यो चरित्र रसाल ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! महापवित्र सीताकुण्डमें नहाकर तदनन्तर सावधान होता हुआ मनुष्य मंगल तीर्थ को जावे ॥ १ ॥ जहां कि विष्णुजी की प्यारी लक्ष्मीजी सदैव स्थित रहती हैं और अलक्ष्मी (निर्धनता) के विनाश के लिये जिस तड़ाग में इन्द्र आदिक सब देवता नित्य आते हैं इस लिये हे ऋषियो ! इस तीर्थ को उद्देशकर लोकोंको पवित्र करनेवाले ॥ २ । ३ ॥ पवित्र व पाप-नाशक इतिहास को कहता हूं पुरातन समय चन्द्रवंश में उत्पन्न मनोजव नामक राजा हुआ है ॥ ४ ॥ उस ने समुद्रमेखलावाली पृथ्वी को धर्म से पालन किया और

श्रीसूत उवाच ॥ सीताकुण्डेमहापुण्ये नरःस्नात्वाद्विजोत्तमाः ॥ ततस्तुमङ्गलंतीर्थमभिगच्छेत्समाहितः ॥ १ ॥ सन्निधत्तेसदायत्र कमलाविष्णुवल्लभा ॥ अलक्ष्मीपरिहाराययस्मिन्सरसिवैसुराः ॥ २ ॥ शतक्रतुमुखाःसर्वे समागच्छन्तिनित्यशः ॥ तदेतत्तीर्थमुद्दिश्य ऋषयोलोकपावनम् ॥ ३ ॥ इतिहासंप्रवक्ष्यामि पुण्यंपापविनाशनम् ॥ पुरामनोजवोनाम राजासोमकुलोद्भवः ॥ ४ ॥ पालयामासधर्मेण धरांसागरमेखलाम् ॥ अयष्टससुरान्यज्ञैर्ब्राह्मणानन्नसञ्चयैः ॥ ५ ॥ तर्पयामासकव्येन प्रत्यब्दंपितृदेवताः ॥ त्रयीमध्येष्टसततमपाठीच्छास्त्रमर्थवत् ॥ ६ ॥ व्यजेष्टशत्रून्वीर्येण प्राणंसीदीशकेशवौ ॥ अरंस्तनीतिशास्त्रेषु तथापाठीन्महामनून् ॥ ७ ॥ एवंसधर्मतोराजा पालयामासमेदिनीम् ॥ रक्षतस्तस्यराज्ञोभूद्राज्यंनिहतकण्टकम् ॥ ८ ॥ अहङ्कारोभवत्तस्य पुत्रसम्पद्विनाशनः ॥ अहङ्कारोभवेद्यत्र तत्रलोभोमदस्तथा ॥ ९ ॥ कामःक्रोधश्चहिंसाच तथासूयाविमोहिनी ॥ भवन्त्येतानिविप्रेन्द्राः सम्पदांनाशहेतवः ॥ १० ॥ एतानि

देवताओं को यज्ञों से पूजा व ब्राह्मणों को अन्नराशियों से ॥ ५ ॥ तृप्त किया और प्रतिवर्ष उसने कव्य से पितर देवताओं को तृप्त किया व सदैव वेदत्रयी को पाठ किया व अर्थपूर्वक शास्त्र को पढ़ा ॥ ६ ॥ व उसने पराक्रम से शत्रुवों को जीता और महादेव और विष्णुजी को प्रणाम किया व नीति शास्त्रों में अभ्यास किया व महामनु शास्त्रोंको पढ़ा ॥ ७ ॥ इस प्रकार उस राजा ने धर्म से पृथ्वी को पालन किया और रक्षा करते हुये उस राजा का राज्य नष्टकण्टक हुआ ॥ ८ ॥ उस राजा के पुत्रों व सम्पत्ति को नाश करनेवाला अहंकार हुआ जहां अहंकार होताहै वहां लोभ व मद और हे द्विजेन्द्रो ! काम, क्रोध, हिंसा व मोहनेवाली ईर्षा सम्पदाओं के नाश का

कारण ये होते हैं ॥ ९ । १० ॥ जिस पुरुष में ये विद्यमान होते हैं वह क्षण भर में पुत्रों व पौत्रों समेत व सब सम्पदा सहित नाश हो जाता है ॥ ११ ॥ उस के मनुष्यों के वैर करनेवाली ईर्षा सदैव हुई और ईर्षा से विकलचित्तवाले व वृथाअहंकारवाले ॥ १२ ॥ लोभी व काम से दुष्ट उस राजाकी ऐसी बुद्धि हुई कि ब्राह्मणों के ग्राम में कर को ग्रहण करूं इस प्रकार निश्चित हुआ ॥ १३ ॥ और उस समय मनसे निश्चयकर वैसाही किया और उस ने लोभ से ब्राह्मणों के धन व धान्य को हर लिया ॥ १४ ॥ और स्नेह से उस ने शिव व विष्णु आदिक देवताओं के धनोंको लिया शिव व विष्णु आदिक देवताओं व महात्मा ब्राह्मणों के ॥ १५ ॥ क्षेत्रों को इस

यत्रविद्यन्ते पुरुषेसविनश्यति ॥ क्षणेनपुत्रपौत्रैश्च सार्द्धंचाखिलसम्पदा ॥ ११ ॥ बभूवतस्यासूयाच जनविद्वेषिणीसदा ॥ असूयाकुलचित्तस्य वृथाहङ्कारिणस्तथा ॥ १२ ॥ लुब्धस्यकामदुष्टस्य मतिरेवंबभूवह ॥ विप्रग्रामेकरादानं करिष्यामीतिनिश्चितः ॥ १३ ॥ अकरोच्चतथाराजा निश्चित्यमनसातदा ॥ धनंधान्यञ्चविप्राणां जहारकिल्लोभतः ॥ १४ ॥ शिवविष्ण्वादिदेवानांवित्तान्यादत्तरागतः ॥ शिवविष्ण्वादिदेवानां विप्राणांचमहात्मनाम् ॥ १५ ॥ क्षेत्राण्यपजहारायमहङ्कारवमूढधीः ॥ एवमन्याययुक्तस्यदेवद्विजविरोधिनः ॥ १६ ॥ दुष्कर्मपरिपाकेन क्रूरेणद्विजपुङ्गवाः ॥ पुरंरुरोधबलवान् रणदेशाधिपोरिपुः ॥ १७ ॥ गोलभोनामविप्रेन्द्राश्चतुरङ्गबलैर्युतः ॥ षाण्मासंयुद्धमभवद्गोलभेनदुरात्मनः ॥ १८ ॥ मनोजवस्यनृपतेरहङ्काररतात्मनः ॥ ततःसगोलभेनाजौजितोराज्यात्परिच्युतः ॥ १९ ॥ वनंसपुत्रदारःसन्प्रपेदेसमनोजवः ॥ गोलभःपालयन्नास्ते मनोजवपुरेचिरम् ॥ २० ॥ चतुरङ्गबलोपेतस्तमुद्वास्यरणेबली ॥ म

अहंकार से मूढ़बुद्धिवाले राजा ने हरलिया इस प्रकार अन्याय से संयुत व देवताओं और ब्राह्मणों के वैरी उस राजा के ॥ १६ ॥ नगर को हे द्विजोत्तमो ! दुष्कर्म के क्रूर फल से बलवान् रणदेश के स्वामी गोलभनामक चतुरंगिणी सेनाओं से संयुत शत्रु ने घेर लिया व हे द्विजेन्द्रो ! गोलभ के साथ उस अहंकार में लगेहुये चित्तवाले मनोजव दुष्टात्मा राजा का छह महीने तक युद्ध हुआ तदनन्तर गोलभने उस को समर में जीत लिया और वह राज्य से अलग करदिया गया ॥ १७ । १८ । १९ ॥ और स्त्री व पुत्रों समेत वह मनोजव राजा वन को प्राप्त हुआ और चतुरंगिणी सेना से संयुत बलवान् गोलभ युद्ध में उस मनोजव को उजाड़ कर पालन करता हुआ बहुत

दिनों तक मनोजवपुर में टिका रहा और हे द्विजेन्द्रो ! स्त्री व पुत्रों समेत शोचताहुआ मनोजव भी ॥ २० । २१ ॥ क्षुधा से दुर्बल व सदैव लरखराता हुआ महावन में पैठगया जोकि झिल्लीगणोंसे शब्दित तथा व्याघ्रों व हिंसक जीवों से भयंकर था ॥ २२ ॥ और मतवाले हाथियों के चीकार शब्द से संयुत और वराह व महिषों से संयुक्त था उस महाभयंकर वन में क्षुधा से पीड़ित ॥ २३ ॥ मनोजव के छोटे पुत्र ने पिता से अन्न को मांगा व हे मातः ! मुझ को तुम अन्न देवो क्योंकि मुझ को क्षुधा बहुत पीड़ा करती है ॥ २४ ॥ इस प्रकार बालक ने अपनी माता से भी प्रार्थना किया और पुत्र का वचन सुन कर वहां उस के माता, पिता ॥ २५ ॥ शोक से तिरस्कृत

नोजवोपिविप्रेन्द्राः शोचन्स्त्रीपुत्रसंयुतः ॥ २१ ॥ क्षुत्क्षामःप्रस्खलञ्छश्वत्प्रविवेशमहावनम् ॥ झिल्लिकागणसंघुष्टं व्याघ्रश्वापदभीषणम् ॥ २२ ॥ मत्तद्विरदचीकारं वराहमहिषाकुलम् ॥ तस्मिन्वनेमहाघोरे क्षुधयापरिपीडितः ॥ २३ ॥ अयाचतान्नंपितरं मनोजवसुतःशिशुः ॥ अम्बमेन्नंप्रयच्छत्वं क्षुधामाम्बाधतेभृशम् ॥ २४ ॥ एवंस्वजननीञ्चापि प्रार्थयामासबालकः ॥ तन्मातापितरौतत्रश्रुत्वापुत्रस्यभाषितम् ॥ २५ ॥ शोकाभिभूतौसहसामोहंसमुपजग्मतुः ॥ भार्यामथाब्रवीद्राजा सुमित्रांनामनामतः ॥ २६ ॥ मुह्यमानश्चसमुहुः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥ सुमित्रेकिङ्करिष्यामिकुत्रयास्यामिकागतिः ॥ २७ ॥ मरिष्यत्यचिरादेष सुतोमेक्षुधयार्दितः ॥ किमर्थंससृजेवेधा दुर्भाग्यंमांवृथाप्रिये ॥ २८ ॥ कोवामोचयितादुःखमेतद्दुष्कर्मजंमम ॥ नपूजितोमयाशम्भुर्हरिर्वापूर्वजन्मसु ॥ २९ ॥ तथान्यादेवताःसूर्यविभावसुमुखाःप्रिये ॥ तेनपापेनचाद्याहमस्मिञ्जन्मनिशोभने ॥ ३० ॥ अहङ्काराभिभूतोस्मि विप्रक्षेत्राण्यपाहरम् ॥ शिव

होकर सहसा मोहको प्राप्त हुये इस के अनन्तर सूखे हुये कण्ठ, ओठ व तालुवाले व बार २ मोहित होते हुये उस राजा ने सुमित्रा नामक स्त्री से कहा कि हे सुमित्रे ! मैं क्या करूं व कहां जाऊं और क्या गति होगी ॥ २६ । २७ ॥ क्षुधा से विकल यह मेरा पुत्र थोड़ी देर में मरजावैगा हे प्रिये ! विधाता ने मुझ दुर्भाग्यवान् को क्यों वृथा सिरजा है ॥ २८ ॥ और दुष्कर्म से उपजे हुये मेरे इस दुःख को कौन छुड़ावैगा मैंने पूर्वजन्मों में शिव व विष्णुजी को नहीं पूजा है ॥ २९ ॥ वैसेही हे शोभने, प्रिये ! सूर्य व अग्नि आदिक देवताओं को मैंने नहीं पूजा है उसी पाप से आज मैं इस जन्म में ॥ ३० ॥ अहंकार से तिरस्कृत होगया हूं और मैंने ब्राह्मणों के क्षेत्रों

को हरलिया व शिव और विष्णु आदिक देवताओं के द्रव्य को हरलिया॥ ३१ ॥ इस प्रकार दुष्कर्म की अधिकता से मुझको गोलभने जीत लिया और तुम्हारे व पुत्रके साथ मैं वनको आयाहूं ॥ ३२ ॥ मैं निरन्न, निर्धन, दुःखी व भूखा और प्यासाहूं क्षुधित पुत्रके लिये मैं अन्न कैसे देऊं ॥ ३३ ॥ हे शुचिस्मिते ! मैंने ब्राह्मणोंकेलिये अन्नोंको नहीं दियाहै और न मैंने शिव,विष्णु या अन्य देवताको पूजनकियाहै ॥ ३४ ॥उस पाप से आज मुझको यह दुःख प्राप्तहुआहै और मैंने पहिले अग्निमें हवन नहीं किया है व तीर्थ को भी नहीं सेवन किया है ॥ ३५ ॥ व हे प्रिये ! उन माता, पिता के क्षयाह दिन में एकोद्दिष्ट विधि से मातृश्राद्ध व पितृश्राद्ध नहीं कियाहै व पार्वण विधिसे

विष्णवादिदेवानां वित्तञ्चापहृतंमया ॥ ३१ ॥ एवंदुष्कर्मबाहुल्याद्गोलभेनपराजितः ॥ वनंयातोस्मिविजनं त्वयासह सुतेनच ॥ ३२ ॥ निरन्नोनिर्धनोदुःखी क्षुधितोहंपिपासितः ॥ कथमन्नंप्रदास्यामि क्षुधितायसुतायमे ॥ ३३ ॥ नम यान्नानिदत्तानि ब्राह्मणेभ्यःशुचिस्मिते ॥ नमयापूजितःशम्भुर्विष्णुर्वादेवतान्तरम् ॥ ३४ ॥ तेनपापेनमेत्वद्य दुःखमे तत्समागतम् ॥ न मयाग्नौहुतंपूर्वं नतीर्थमपिसेवितम् ॥ ३५ ॥ मातृश्राद्धंपितृश्राद्धं मृताहदिवसेतयोः ॥ नैकोद्दिष्ट विधानेन पार्वणेनापिवैप्रिये ॥ ३६ ॥ कृतन्नहिमयाभद्रे भूरिभोजनमेववा ॥ तेनपापेनमेत्वद्य दुःखमेतत्समागत म् ॥ ३७ ॥ चैत्रमासेप्रियेचित्रानक्षत्रेपानकम्मया ॥ पनसानांफलंस्वादु कदलीफलमेववा ॥ ३८॥ तदाछत्रंसदण्डञ्च रम्यंपादुकयोर्द्वयम् ॥ ताम्बूलानिचपुष्पाणि चन्दनंचानुलेपनम् ॥ ३९ ॥ नदत्तंवेदविद्भ्यस्तु चित्रगुप्तस्यतुष्टये ॥ तेनपापेनमेत्वद्य दुःखमेतत्समागतम् ॥ ४० ॥ नाश्वत्थश्चूतवृक्षोवा न्यग्रोधस्तिन्तिणीतथा॥ पिचुमन्दःकपित्थोवा

भी नहीं किया है ॥ ३६ ॥ व हे भद्रे! मैंने कभी बहुत भोजन नहीं किया है उसपापसे इससमय मुझको यह दुःख प्राप्त हुआ है ॥ ३७ ॥ और हे प्रिये ! चैत महीनेमें चित्रा नक्षत्र में मैंने पान व कटहरों का स्वादुफल तथा केलाफल को ॥ ३८ ॥ व उस समय दण्ड समेत छत्र व सुन्दर खड़ाउवों का जोड़ा और ताम्बूल, पुष्प, चन्दन व अनुलेपन को ॥ ३९ ॥ चित्रगुप्त की प्रसन्नता के लिये वेदविदों के निमित्त नहीं दिया है उस पाप से आज मुझको यह दुःख प्राप्तहुआ ॥ ४० ॥ और पीपल,

आम, बरगद, इमली, पिचुमन्द (नीम), कैथा व आँवरा का वृक्ष व नारियल के वृक्ष को मैंने पथिकों के सहँताने के लिये नहीं लगाया है उस पाप से मुझ को यह दुःख प्राप्त हुआ है ॥ ४१ । ४२ ॥ और मैंने शिव व विष्णुजी के मन्दिर में झाड बुहार नहीं किया है और न तड़ाग न कुवां न कुण्ड मुझ से खुदाया गयाहै ॥ ४३ ॥ व हे प्रिये ! मैंने फूलों के वन को व तुलसीवन को नहीं लगाया है और न शिवमन्दिर न विष्णुजी के मन्दिर को बनवाया है ॥ ४४ ॥ उस पाप से आज मुझको यह दुःख प्राप्त हुआ है व हे शोभने ! मैंने पैतृकमास में पितरों को उद्देश कर महालयश्राद्ध व अष्टकाश्राद्ध नहीं किया है ॥ ४५ ॥ व हे प्रिये ! नित्यश्राद्ध और

तथैवामलकीतरुः ॥ ४१ ॥ नारिकेलतरुर्वापि स्थापितोध्वगशान्तये ॥ तेनपापेनमेत्वद्य दुःखमेतत्समागतम् ॥ ४२ ॥ सम्मार्जनञ्चनकृतं शिवविष्णवालयेमया ॥ नखानितंतटाकञ्च नकूपोपिहृदोपिवा ॥ ४३ ॥ नरोपितंपुष्पवनं तथैवतुलसीवनम् ॥ शिवविष्णवालयौवापि निर्मितौनमयाप्रिये ॥ ४४ ॥ तेनपापेनमेत्वद्य दुःखमेतत्समागतम् ॥ नमयापैतृकेमासि पितॄनुद्दिश्यशोभने ॥ महालयंकृतंश्राद्धमष्टकाश्राद्धमेववा ॥ ४५ ॥ नित्यश्राद्धंतथाकाम्यं श्राद्धंनैमित्तिकंप्रिये ॥ नकृताःक्रतवश्चापि विधिवद्भूरिदक्षिणाः ॥ ४६ ॥ मासोपवासोनकृत एकादश्यामुपोषणम् ॥ धनुर्मासेप्युषःकाले शम्भुविष्ण्वादिदेवताः ॥ ४७ ॥ सम्पूज्यविधिवद्भद्रे नैवेद्यंनकृतंमया ॥ तेनपापेनमेत्वद्य दुःखमेतत्समागतम् ॥ ४८ ॥ हरिशङ्करयोर्नाम्नांकीर्तनंनमयाकृतम् ॥ उद्धूलनंत्रिपुण्ड्रञ्च जाबालोक्तैश्चसप्तभिः ॥ ४९ ॥ नधृतंभस्मनाभद्रे रुद्राक्षंनधृतम्मया ॥ जपश्चरुद्रसूक्तानां पञ्चाक्षरजपस्तथा ॥ ५० ॥ तथापुरुषसूक्तानां जपोप्यष्टाक्षरस्यच ॥ नैवाकारिमयाभद्रे

नैमित्तिक श्राद्ध को नहीं किया है व विधिपूर्वक बहुत दक्षिणाओंवाले यज्ञों को नहीं किया है ॥ ४६ ॥ और मासोपवास नहीं किया है व एकादशी तिथि में उपास नहीं किया और पौष महीने में व प्रातःकाल में शिव व विष्णु आदिक देवताओं को ॥ ४७ ॥ भलीभांति पूजकर हे भद्रे ! मैंने नैवेद्य नहीं किया है उस पाप से आज मुझको यह दुःख प्राप्त हुआ है ॥ ४८ ॥ और मैंने विष्णु व शिवजी के नामों का कीर्तन नहीं किया है व हे भद्रे ! जाबाल से कहेहुये सात मन्त्रों से मैंने भस्म से उद्धूलन व त्रिपुण्ड्र को नहीं लगाया है और न मैंने रुद्राक्षको धारण किया है और रुद्रसूक्तों का जप व पंचाक्षर जप नही किया है ॥ ४९ । ५० ॥ वैसेही पुरुष-

सूक्तों का जप व अष्टाक्षरका जप मैंने नहीं किया है व हे भद्रे ! मैंने अन्यधर्म का संचय नहीं किया है ॥ ५१ ॥ उस पाप से आज मुझ को यह दुःख प्राप्त हुआ है इस प्रकार विकलबुद्धिवाला विलाप करता हुआ राजा स्त्री से कहकर ॥ ५२ ॥ हे ब्राह्मणो ! मूर्च्छा को प्राप्तहुआ व पृथ्वीमें गिरपडा व उस सुमित्रा स्त्रीने पतिको पतित देखकर ॥ ५३ ॥ पुत्रों समेत बहुत दुःखित होतीहुई लिपटाकर प्रलापकिया कि हे ममनाथ, महाराज, सोमवंशधुरन्धर ! ॥ ५४ ॥ निर्जन वनमें पुत्र समेत व अनाथ तथा तुम्हारे अनुगत सिंहसे डरीहुई मृगीकी नाईं मुझको छोड़कर तुम कहां गये हो ॥ ५५ ॥ हे नृपेन्द्र ! यदि तुम मरगयेहो तो मैंभी शीघ्रही तुम्हारे पीछे चलूंगी क्योंकि

नैवान्योधर्मसञ्चयः ॥ ५१ ॥ तेनपापेनमेत्वद्य दुःखमेतत्समागतम् ॥ एवंसविलपन्राजा भार्य्यामाभाष्यखिन्न धीः ॥ ५२ ॥ मूर्च्छामुपाययौविप्राः पपातचधरातले ॥ सुमित्रापतितंदृष्ट्वाभार्यासापतिमङ्गना ॥ ५३ ॥ आलिङ्ग्यप्रलला पाथ सपुत्राभृशदुःखिता ॥ ममनाथमहाराज सोमान्वयधुरन्धर ॥ ५४ ॥ मांविहायकयातोसिसपुत्रांविजनेवने ॥ अना थान्त्वामनुगतां सिंहत्रस्तांमृगीमिव ॥ ५५ ॥ मृतोसियदिराजेन्द्र तर्हित्वामहमप्यरम् ॥ अनुव्रजामिविधवा नस्थास्ये क्षणमप्युत ॥ ५६ ॥ पितरंपश्यपतितं चन्द्रकान्तसुतक्षितौ ॥ इत्युक्तश्चन्द्रकान्तोपि सुतोराज्ञःक्षुधार्दितः ॥ ५७ ॥ पितरंप रिरभ्याथ निःशब्दंप्ररुरोदसः ॥ एतस्मिन्नन्तरेविप्रा जटावल्कलसंवृतः ॥ ५८ ॥ भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गस्त्रिपुण्ड्राङ्कितम स्तकः ॥ रुद्राक्षमालाभरणःसितयज्ञोपवीतवान् ॥ ५९ ॥ पराशरोनाममुनिराजगामयदृच्छया ॥ तंशब्दमभिलक्ष्यासौ साधुसज्जनसम्मतः ॥ ६० ॥ ततःसुमित्रातंदृष्ट्वा पराशरमुपागतम् ॥ ववन्देचरणौतस्यसपुत्रासापतिव्रता ॥ ६१ ॥ ततः

विधवा मैं क्षणभर भी नहीं टिकूंगी ॥ ५६ ॥ हे चन्द्रकान्तपुत्र ! पृथ्वी में पड़ेहुये पिताको देखो इस प्रकार कहे हुये क्षुधा से विकल राजा के उस चन्द्रकान्त पुत्रने भी ॥ ५७ ॥ पिताको लिपटकर शब्दपूर्वक रोदन किया इसी अवसर में हे ब्राह्मणो ! जटा व बकलोंसे आच्छादित ॥ ५८ ॥ और भस्मको सब अंगोंमें लगाये तथा त्रिपुण्ड्रसे चिह्नित भालवाले व रुद्राक्ष की मालाका आभूषण किये और श्वेत जनेऊ को पहिने ॥ ५९ ॥ साधुवों व सज्जनों से सम्मत ये पराशर नामक मुनि उस शब्द को सुनकर अपनी इच्छा से आगये ॥ ६० ॥ तदनन्तर समीप आयेहुये उन पराशरजी को देखकर पुत्रसमेत उन पतिव्रता सुमित्रा ने उनके चरणों को प्रणाम किया ॥ ६१ ॥ तदनन्तर

पराशरजीने इस सुमित्राको समझाया मुनिने इसप्रकार उसको समझाया कि हे भामिनि! मत शोचकरो ॥ ६२ ॥ तदनन्तर शक्तिके पुत्र पराशर महामुनिने सुमित्रासे पूछा पराशरजी बोले कि हे सुश्रोणि! तुम कौनहो व यह कौन है जोकि आगे पड़ा है ॥ ६३ ॥ व हे शुभे! यह बालक तुम्हारा कौनहै इसको यथार्थ कहिये मुनिसे इसप्रकार पूछी हुई उस पतिव्रता ने उन महामुनि से कहा ॥ ६४ ॥ सुमित्रा बोली कि हे मुनिश्रेष्ठ! यह मेरा पति है और मैं इसकी स्त्री हूं व हम दोनों से पैदाहुआ यह चन्द्रकान्त नामक पुत्र है ॥ ६५ ॥ और चन्द्रवंशमें उत्पन्न यह मनोजव नामक राजा विक्रमाढ्य का पुत्रहै जोकि शूरता में विष्णु के समान व बलवान् था ॥ ६६ ॥ सुमित्रा नामक मैं

पराशरेणेयं सुमित्रापरिसान्त्विता ॥ आश्वासिताचमुनिना माशोचस्वेतिभामिनि ॥ ६२ ॥ ततःसुमित्रांपप्रच्छश क्तिपुत्रोमहामुनिः ॥ पराशर उवाच ॥ कात्वंसुश्रोणिकश्चासौ यश्चायंपतितोग्रतः ॥ ६३ ॥ अयंशिशुश्चकस्तेस्याद्वदत त्वेनमेशुभे ॥ पृष्टैवंमुनिनासाध्वी तमुवाचमहामुनिम् ॥ ६४ ॥ सुमित्रोवाच ॥ पतिर्ममायमस्याहं भार्यावैमुनिसत्त म ॥ आवाभ्यांजनितश्चायं चन्द्रकान्ताभिधःसुतः ॥ ६५ ॥ अयंमनोजवोनाम राजासोमकुलोद्भवः ॥ विक्रमाढ्यस्यत नयः शौर्येविष्णुसमोबली ॥ ६६ ॥ सुमित्रानामतस्याहंभार्यापतिमनुव्रता ॥ युद्धेविनिर्जितोराजा गोलभेनमनोज वः ॥ ६७ ॥ राज्याद्भ्रष्टोनिरालम्बो मयापुत्रेणचान्वितः ॥ वनंविवेशब्रह्मर्षे क्रूरसत्त्वभयानकम् ॥ ६८ ॥ क्षुधयापीडि तःपुत्रोह्यावामन्नमयाचत ॥ निरन्नोविधुरोराजा दृष्ट्वापुत्रंक्षुधार्दितम् ॥ ६९ ॥ शोकाकुलमनाब्रह्मन्मूर्च्छितःपतितो भुवि ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वा शोकपर्याकुलाक्षरम् ॥ ७० ॥ शक्तिपुत्रोमुनिःप्राह सुमित्रांतांपतिव्रताम् ॥ मनोजवस्य

उसकी स्त्री पतिके अनुकूल कर्म करनेवालीहूं युद्ध में गोलभने मनोजव नामक राजा को जीतलिया ॥ ६७ ॥ हे महर्षे! राज्यसे छूटाहुआ यह अवलम्बरहित राजा मुझसे व पुत्रसे संयुत होकर क्रूर प्राणियों से भयानक वन में प्रवेश करता भया ॥ ६८ ॥ और क्षुधा से पीड़ित पुत्रने हमदोनों से अन्न को मांगा और अन्नसे रहित दुःखित राजा पुत्र को क्षुधा से विकल देखकर ॥ ६९ ॥ हे ब्रह्मन्! शोचसे विकलमनवाला यह राजा मूर्च्छित होकर पृथ्वी पै गिरपड़ा शोच से विकल अक्षरोंवाले उसके इसप्रकार वचनको

सुनकर ॥ ७० ॥ शक्तिके पुत्र पराशरमुनिने अग्नि की ज्वालाके समान मनोजव राजा की उस पतिव्रता सुमित्रा स्त्री से कहा ॥ ७१ ॥ पराशरजी बोले कि हे मनोजवकी नारि ! तुमको किसीप्रकार का भय मत होवै तुमलोगों का अमंगल शीघ्रही नाशको प्राप्त होगा यह सत्यहै ॥ ७२ ॥ हे भद्रे ! मूर्च्छाको छोड़कर क्षणभर में तुम्हारा पति उठैगा तदनन्तर त्रिलोचनदेव को ध्यानकर मन्त्रको जपतेहुये पराशर ब्राह्मणने हाथसे उस राजाको स्पर्श किया तदनन्तर महामुनि के हाथसे छुवाहुआ मनोजव राजा॥ ७३ । ७४ ॥ वहां अज्ञानमयी मूर्च्छा को छोड़कर यकायक उठपड़ा तदनन्तर पराशरमुनि को प्रणामकर भूपति ने ॥ ७५ ॥ हाथों को जोड़ बहुत प्रसन्न होकर द्विजोत्तम पराशरजी से कहा

नृपतेर्भार्यामग्निशिखोपमाम् ॥ ७१ ॥ पराशर उवाच ॥ मनोजवस्यभार्येते माभीर्भूयात्कथञ्चन ॥ युष्माकम शुभंसत्यमचिरान्नाशमेष्यति ॥ ७२ ॥ मूर्च्छांविहायभद्रेते क्षणादुत्थास्यतेपतिः ॥ ततःपराशरोविप्रः पाणिना तन्नराधिपम् ॥ ७३ ॥ पस्पर्शमन्त्रंप्रजपन्ध्यात्वादेवंत्रियम्बकम् ॥ ततोमनोजवोराजा करस्पृष्टोमहामुनेः ॥ ७४ ॥ उत्थितःसहसातत्र त्यक्त्वामूर्च्छांतमोमयीम् ॥ ततःपराशरमुनिं प्रणम्यजगतीपतिः ॥ ७५ ॥ उवाचपरमप्रीतः प्राञ्जलिर्विप्रसत्तमम् ॥ मनोजव उवाच ॥ पराशरमुनेत्वद्य त्वत्पादाब्जनिषेवणात् ॥ ७६ ॥ मूर्च्छामेविगतासद्यः पातकञ्चैवनाशितम् ॥ त्वद्दर्शनमपुण्यानां नैवसिध्येत्कदाचन ॥ ७७ ॥ रक्षमांकरुणादृष्ट्या च्यावितंशत्रुभिःपुरात् ॥ इत्युक्तः समुनिःप्राह राजानन्तंमनोजवम् ॥ ७८ ॥ पराशर उवाच ॥ उपायन्तेप्रवक्ष्यामि राजञ्छत्रुजयायवै ॥ रामसेतौमहापुण्ये गन्धमादनपर्वते ॥ ७९ ॥ विद्यतेमङ्गलंतीर्थं सर्वैश्वर्यप्रदायकम् ॥ सर्वलोकोपकाराय तस्मिन्सरसि

मनोजव बोले कि हे पराशर,मुने ! आज तुम्हारे चरणकमलों की सेवासे ॥ ७६ ॥ मेरी शीघ्रही मूर्च्छा जाती रही व पातकभी नाश होगया आपका दर्शन बिनपुण्यवाले मनुष्यों को किसीप्रकार सिद्ध नहीं होता है ॥ ७७ ॥ शत्रुवों करके नगरसे अलग कियेहुये मुझको दयादृष्टिसे रक्षा कीजिये ऐसा कहेहुये उन मुनिने उस मनोजव राजासे कहा ॥ ७८ ॥ पराशर बोले कि हे राजन् ! शत्रुवों को जीतने के लिये मैं तुम से यत्नको कहता हूं गन्धमादन पर्वत पै महापवित्र रामसेतु पै ॥ ७९ ॥ सब ऐश्वर्योंको देनेवाला मंगलतीर्थ

विद्यमानहै सबलोकों के उपकार के लिये उस तड़ागमें राघवजी ॥ ८० ॥ हे नृपोत्तम ! लक्ष्मीसमेत सदैव स्थित रहते हैं स्त्री व पुत्रसमेत तुम वहां जाकर व भक्तिसमेत स्नानकर ॥ ८१ ॥ हे भूपते ! उसके किनारे पै क्षेत्रश्राद्धादिकभी करो हे राजन् ! तुमसे ऐसा करनेपर क्लेशकारिणी अलक्ष्मी (दरिद्रता) ॥ ८२ ॥ उस तीर्थके माहात्म्यसे निस्सन्देह नाश को प्राप्त होगी व हे राजन् ! शीघ्रही सब मंगलों को पावोगे ॥८३॥ और युद्धमें शत्रुवोंको जीतकर फिर भूमि को पावोगे इसकारण हे मनोजव ! तुम पुत्र व स्त्री समेत ॥ ८४ ॥ गन्धमादनपर्वत पै उस मंगलतीर्थ को जावो और तुम्हारे ऊपर दया की कामना से मैंभी आऊंगा ॥ ८५ ॥ ऐसा कहकर तीनों राजादिकों समेत पराशर

राघवः ॥ ८० ॥ सन्निधत्तेसदालक्ष्म्या सीतयाराजसत्तम ॥ सपुत्रभार्यस्त्वंतत्र गत्वास्नात्वासभक्तिकम् ॥ ८१ ॥ क्षेत्रश्राद्धादिकञ्चापि तत्तीरेकुरुभूपते ॥ एवंकृतेत्वयाराजन्नलक्ष्मीःक्लेशकारिणी ॥ ८२ ॥ वैभवात्तस्यतीर्थस्य नाशंयास्यत्यसंशयम् ॥ मङ्गलानिचसर्वाणि प्राप्स्यसेह्यचिरान्नृप ॥ ८३ ॥ विजित्यशत्रूंश्चरणे पुनर्भूमिंप्रपत्स्यसे ॥ अतस्त्वंभार्ययासार्द्धं पुत्रेणचमनोजव ॥ ८४ ॥ गच्छमङ्गलतीर्थंतद्गन्धमादनपर्वते ॥ अहमप्यागमिष्यामि तवानुग्रहकाम्यया ॥ ८५ ॥ पराशरस्त्वेवमुक्त्वाराजमुख्यैस्त्रिभिःसह ॥ प्रायात्सेतुंसमुद्दिश्यस्नातुंमङ्गलतीर्थके ॥ ८६ ॥ राजादिभिःसह मुनिर्विलङ्घ्यविविधंवनम् ॥ वनप्रदेशदेशांश्च दस्युग्रामाननेकशः ॥ ८७ ॥ प्रययौमङ्गलंतीर्थं गन्धमादनपर्वते ॥ तत्रसङ्कल्प्यविधिवत्सस्नौसमुनिपुङ्गवः ॥ ८८ ॥ तानपिस्नापयामास राजादीन्विधिपूर्वकम् ॥ तत्रश्राद्धञ्चभूपालश्चकारपितृ ९ ॥ तत्रमासत्रयंसस्नौ राजापत्नीसुतस्तथा ॥ ततःपराशरमुनिः सस्नौनियमपूर्वकम् ॥ ९० ॥ एवंमासत्र

[illegible] लिये मंगलतीर्थ में गये ॥ ८६ ॥ और राजादिकों समेत पराशरमुनि अनेकभांतिके वनको नांघकर व वनके प्रदेश व देशोंको तथा अनेक चोरों [illegible] पर्वत पै मंगलतीर्थको गये और वहां उन मुनिश्रेष्ठ ने संकल्प कर विधिपूर्वक स्नान कहा ॥ ८८ ॥ व उन राजादिकों कोभी विधिपूर्वक [illegible] लिये श्राद्ध किया ॥ ८९ ॥ और राजा व स्त्री और पुत्रने उस तीर्थ में तीनमहीनेतक स्नान किया तदनन्तर पराशरमुनिने नियम-

पूर्वक स्नान किया ॥ ९० ॥ इसप्रकार मुनिश्रेष्ठ ने उन समेत तीन महीने तक सब अमंगलों के नाशक मंगल नामक महापवित्र तीर्थ में स्नान किया ॥ ९१ ॥ तदनन्तर उसके अन्तमें पराशरमुनि ने सब अनर्थों को नाशनेवाले रामजी के एकाक्षर मन्त्रका उपदेश किया ॥ ९२ ॥ और इस राजा ने वहां उस तीर्थ में मुनि से कहेहुये मार्ग से चालीस दिनतक एकाक्षर मन्त्र को जपा ॥ ९३ ॥ इसप्रकार हे ब्राह्मणो ! मुनि की प्रसन्नता से एकाक्षर मन्त्र को जपतेहुये उसके आगे पुष्ट धनुष उत्पन्न हुआ ॥ ९४ ॥ और अक्षय तरकस व सोने की मुठिवाली दो तलवारें और एक ढाल, एक गदा व एक उत्तम मुसल उत्पन्न हुआ ॥ ९५ ॥ और बड़े शब्दवाला एक शंख व घोड़ों से संयुत, सारथीसमेत एक रथ व

यंसस्नौ तैःसाकम्मुनिपुङ्गवः ॥ मङ्गलाख्यमहापुण्ये सर्वामङ्गलनाशने ॥ ९१ ॥ ततःपराशरमुनिः सर्वानर्थविनाशनम् ॥ रामस्यैकाक्षरंमन्त्रं तदन्तेसमुपादिशत् ॥ ९२ ॥ चत्वारिंशद्दिनंतत्र मन्त्रमेकाक्षरन्नृपः ॥ तत्रतीर्थेजजापासौ मुन्युक्तेनैववर्त्मना ॥ ९३ ॥ एवमभ्यसतस्तस्य मन्त्रमेकाक्षरन्द्विजाः ॥ मुनिप्रसादात्पुरतो धनुःप्रादुरभूद्दृढम् ॥ ९४ ॥ अक्षयाविषुधीचापि खड्गौचकनकत्सरू ॥ एकञ्चर्मगदाचैकातथैकोमुसलोत्तमः ॥ ९५ ॥ एकःशङ्खोमहानादो वाजियुक्तोरथस्तथा ॥ ससारथिःपताकाच तीर्थादुत्तस्थुरग्रतः ॥ ९६ ॥ कवचंकाञ्चनमयं वैश्वानरसमप्रभम् ॥ प्रादुर्बभूवतत्तीर्थात्प्रसादेनमुनेस्तथा ॥ ९७ ॥ हारकेयूरमुकुटकटकादिविभूषणम् ॥ तीर्थानाम्प्रवरात्तस्मादुत्थितन्नृपतेःपुरः ॥ ९८ ॥ दिव्याम्बरसहस्रञ्च तीर्थात्प्रादुरभूत्तदा ॥ मालाचवैजयन्त्याख्या स्वर्णपङ्कजशोभिता ॥ ९९ ॥ एतत्सर्वंसमालोक्य मुनयेसौन्यवेदयत् ॥ ततः पराशरमुनिर्जलमादायतीर्थतः ॥ १०० ॥ अभ्यषिञ्चन्नरपतिं मन्त्रपूतेनवारिणा ॥ ततोभि

पताका तीर्थ से ऊपर उठताभया ॥ ९६ ॥ और अग्नि के समान प्रभावान् सुवर्णमय कवच मुनि के प्रसाद से उस तीर्थ से प्रकटहुआ ॥ ९७ ॥ और तीर्थों के मध्य में उस उत्तम तीर्थ से राजा के आगे हार,बजुल्ला,मुकुट व कंकण आदिक भूषण उत्पन्न हुआ ॥ ९८ ॥ और उस समय हज़ार दिव्यवस्त्र तीर्थ से उत्पन्न हुये और सोने के कमलों से शोभित वैजयन्ती नामक माला उत्पन्न हुई ॥ ९९ ॥ इस सब को देखकर इसने मुनि से बतलाया तदनन्तर पराशरमुनिने तीर्थ से जलको लेकर ॥ १०० ॥ मन्त्र से पवित्र जल से राजाको

अभिषेक किया तदनन्तर मुनि से अभिषेक कियेहुये राजा शोभित हुये ॥ १ ॥ और कवच व तलवार को धारणकिये तथा धनुष, बाण को धारेहुये सन्नद्ध युवा राजा हार, बजुल्ला, मुकुट व कंकणादिकों से विभूषित हुआ ॥ २ ॥ और दिव्यवसनों को धारेहुये भी घोडों से संयुत रथ पै स्थित राजा मध्याह्न में सूर्यकी नाई बहुतही शोभित हुआ ॥ ३ ॥ और वहां शक्तिपुत्र पराशर महामुनिने सुमित्रा के पति उस राजा के लिये सांग व रहस्यसमेत, उत्सर्गसहित तथा उपसंहार समेत ब्रह्मादिक अस्त्रको दिया इसके अनन्तर मुनि से आशीर्वादपूर्वक मनोजव ॥ ४ । ५ ॥ प्रेरित होकर रथ पै बैठकर मुनिश्रेष्ठजी को प्रणाम कर व प्रदक्षिणाकर उस समय महर्षि से आज्ञाको लेकर ॥ ६ ॥

षिक्तोनृपतिर्मुनिनापरिशोभितः ॥ १ ॥ सन्नद्धःकवचीखड्गीचापबाणधरोयुवा ॥ हारकेयूरमुकुटकटकादिविभूषितः ॥ २ ॥ दिव्याम्बरधरश्चापि वाजियुक्तरथस्थितः ॥ शुशुभेतीवनृपतिर्मध्याह्नइवभास्करः ॥ ३ ॥ तस्मैनृपतयेतत्र ब्रह्माद्यस्त्रं महामुनिः ॥ साङ्गञ्चसरहस्यञ्च सोत्सर्गसोपसंहृतिम् ॥ ४ ॥ उपादिशच्छक्तिपुत्रः सुमित्राजानयेतदा ॥ मनोजवो थमुनिनाह्याशीर्वादपुरःसरम् ॥ ५ ॥ प्रेरितोरथमास्थाय प्रणम्यमुनिपुङ्गवम् ॥ प्रदक्षिणीकृत्यतदाभ्यनुज्ञातोमहर्षिणा ॥ ६ ॥ सार्द्धंपत्न्याचपुत्रेण प्रययौविजयायसः ॥ सगत्वास्वपुरंराजा प्रदध्मौजलजन्तदा ॥ ७ ॥ ततःशङ्खरवंश्रुत्वा गोलभस्तुससैनिकः ॥ युद्धायनिर्ययौतूर्णं मनोजवनृपेणसः ॥ ८ ॥ दिनत्रयंरणंजज्ञेगोलभेननृपस्यवै ॥ ततश्चतुर्थेदिवसेगोलभन्तुससैनिकम् ॥ ९ ॥ मनोजवोनृपोयुद्धे ब्रह्मास्त्रेणव्यनाशयत् ॥ ततःसपुत्रभार्योयं पुरम्प्राप्यनिजन्नृपः ॥ १० ॥ पालयन्पृथिवींसर्वां बुभुजेभार्ययासह ॥ तदाप्रभृतिराजासौ नाहङ्कारञ्चकारवै ॥ ११ ॥ असूयादींस्तथादोषान्वर्जया

स्त्री व पुत्रसमेत वह विजयके लिये चला और उस समय उसने अपने नगर को जाकर शंखको बजाया ॥ ७ ॥ तदनन्तर शंख का शब्द सुनकर सेनासमेत वह गोलभ राजा मनोजव के साथ युद्ध करने के लिये शीघ्र ही गया ॥ ८ ॥ और तीन दिनतक गोलभके साथ राजा का युद्ध हुआ तदनन्तर चौथे दिन सेनासमेत गोलभको ॥ ९ ॥ मनोजव राजाने युद्ध में ब्रह्मास्त्रसे नाश किया तदनन्तर पुत्र व स्त्रीसमेत इस राजा ने अपने नगर को प्राप्त होकर ॥ १० ॥ सब पृथ्वीको पालन करतेहुये स्त्रीसमेत

मासभूपतिः ॥ अहिंसानिरतोदान्तः सदाधर्मपरोभवत् ॥ १२ ॥ सहस्रंवत्सरानेवं ररक्षसमहीपतिः ॥ ततोविरक्तोराजे न्द्रः पुत्रेराज्यंनिधायतु॥ १३॥ जगाममङ्गलंतीर्थं गन्धमादनपर्वते॥ तपश्चचारतत्रासौ ध्यायन्हृदिसदाशिवम्॥ १४॥ ततोचिरेणकालेन त्यक्त्वादेहंमनोजवः ॥ शिवलोकंययौराजा तस्यतीर्थस्यवैभवात् ॥ १५ ॥ तस्यभार्यासुमि त्रापि तस्यालिङ्ग्यतनुंतदा ॥ अन्वारूढाचितांविप्राः प्राप तल्लोकमेव सा ॥ १६ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवंप्रभावंतत्ती र्थं श्रीमन्मङ्गलनामकम् ॥ मनोजवोनृपोयत्र स्नात्वातीर्थेमहत्तरे ॥ १७ ॥ शत्रून्विजित्यदेहान्ते शिवलोकंययौ स्त्रिया॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सेव्यंमङ्गलतीर्थकम् ॥ १८ ॥ तीर्थमेतदतिशोभनंशिवम्भुक्तिमुक्तिफलदन्नृणांसदा ॥ पापराशितृणतूलपावकं सेवतद्विजवराविमुक्तये ॥ ११९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येमङ्गलतीर्थप्रशंसायांमनो जवालक्ष्मीविनाशोनामद्वादशोऽध्यायः॥ १२॥ ※ ॥ ※ ॥ ※ ॥ ※ ॥

भोग किया तब से लगाकर इस राजाने अहंकार नहीं किया॥ ११ ॥ व अहल्यादिक दोषोंको राजाने वर्जित नहीं किया और वह सदैव अहिंसा में तत्पर व दान्त तथा धर्म में परायण हुआ ॥ १२ ॥ इसप्रकार उस भूपतिने हज़ारों वर्षतक पालन किया तदनन्तर विरागी नृपेन्द्र पुत्र को राज्य पै बिठाकर ॥ १३ ॥ गन्धमादनपर्वत पै मंगलतीर्थको गया और वहां हृदयमें सदाशिवजीको ध्यानकरतेहुये इसने तपस्या किया॥ १४ ॥ तदनन्तर थोड़ेही समय में मनोजव राजा देह को छोडकर उस तीर्थ के प्रभाव से शिवलोक को गया ॥१५॥ व हे ब्राह्मणो ! उस समय उसकी स्त्री वह सुमित्राभी उस के शरीर को लिपटकर चिता पै चढ़ी व उसी लोक को प्राप्तहुई ॥ १६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि श्रीमन्मंगल नामक वह तीर्थ ऐसा प्रभाववान् है कि जिस बड़े भारी तीर्थ में नहाकर मनोजव राजा ॥ १७ ॥ शत्रुवोंको जीतकर देहान्त में स्त्रीसमेत शिवलोकको गया इसलिये मंगलतीर्थ सब यत्न से सेवने योग्य है ॥ १८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस अतिउत्तम व कल्याणमय तथा मनुष्योंको सदैव भुक्ति व मुक्तिफल को देनेवाले और पापराशिरूपी तृण व रुई के लिये अग्निरूप तीर्थ को मुक्तिके लिये सेवन करो ॥ ११९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमङ्गलतीर्थप्रशंसायांमनोजवालक्ष्मीविनाशोनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । अमृतबावली न्हाय भय कुम्भज बन्धु विमुक्त । सो तेरहें अध्याय में अहै चरित सब उक्त ॥ श्रीसूतजी बोले कि मंगल नामक महातीर्थ में नहाकर तदनन्तर पापहीन मनुष्य एकान्तरामनाथ नामक क्षेत्र को जावै ॥ १ ॥ वहां हनुमान् आदिक वानरों से घिरेहुये जगदीश रामजी जानकी व लक्ष्मण समेत ॥ २ ॥ हे ब्राह्मणो ! लोकों के ऊपर दयाकी इच्छासे सदैव स्थित रहते हैं वहां नाम से अमृतवापिका पुण्यदायिनी विद्यमान है ॥ ३ ॥ जिस में नहाते हुये लोगों को वृद्धता व काल से उपजाहुआ डर नहीं होता है और श्रद्धासमेत जो मनुष्य इस अमृतबावली में स्नान करता है ॥ ४ ॥ यह शिवजीकी प्रसन्नतासे अमृतत्वको भजताहै महापातकों को नाश कर-

श्रीसूत उवाच ॥ मङ्गलाख्येमहातीर्थे नरःस्नात्वाविकल्मषः ॥ एकान्तरामनाथाख्यं क्षेत्रंगच्छेत्ततःपरम् ॥ १ ॥ तत्ररामोजगन्नाथो जानक्या लक्ष्मणेन च ॥ हनुमत्प्रमुखैश्चापि वानरैःपरिवारितः ॥ २ ॥ सन्निधत्तेसदाविप्रा लोकानुग्रहकाम्यया ॥ विद्यतेपुण्यदातत्र नाम्नाह्यमृतवापिका ॥ ३ ॥ यस्मिन्निमज्जतान्नृणांनजरान्तकजंभयम् ॥ अस्याममृतवाप्यांयः सश्रद्धंस्नातिमानवः ॥ ४ ॥ अमृतत्वंभजत्येष शङ्करस्यप्रसादतः ॥ महापातकनाशिन्यामस्यांवाप्यांनिमज्जताम् ॥ ५ ॥ अमृतत्वंहरोदातुं सन्निधत्तेसदातटे ॥ ऋषय ऊचुः ॥ इयंह्यमृतवापीति कुतोहेतोर्निगद्यते ॥ ६ ॥ अस्माकमेतद्ब्रूहित्वं कृपयाव्यासशासित ॥ तथैवामृतनामिन्या वापिकायाश्चवैभवम् ॥ ७ ॥ तृप्तिर्नजायतेस्माकं त्वद्वचोमृतपायिनाम् ॥ श्रीसूत उवाच ॥ अस्याअमृतनामत्वं वैभवञ्चमनोहरम् ॥ ८ ॥ प्रवक्ष्यामिविशेषेण शृणुतद्विजसत्तमाः ॥ पुराहिमवतःपार्श्वे नानामुनिसमाकुले ॥ ९ ॥ सिद्धचारणगन्धर्वदेवकिन्नरसेविते ॥ सिंहव्याघ्रवराहेभ

नेवाली इस अमृतबावली में स्नान करतेहुये मनुष्यों को ॥ ५ ॥ अमृतत्व देनेके लिये सदाशिवजी सदैव किनारे स्थित रहते हैं ऋषिलोग बोले कि यह किसकारण से अमृतबावली ऐसी कहीजाती है ॥ ६ ॥ हे व्यासशिष्य ! इसको हमलोगोंसे दयासे कहिये व अमृत नामवाली बावली के प्रभावको कहिये ॥ ७ ॥ तुम्हारे वचनरूपी अमृतको पीनेवाले हमलोगों की तृप्ति नहीं होती है श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! इसके अमृतनामत्व व सुन्दर प्रभाव को मैं विशेषकर कहताहूं उसको सुनिये कि पुरातन समय अनेकों मुनियों से संयुत हिमवान् के किनारे ॥ ८ । ९ ॥ व सिद्ध, चारण, गन्धर्व, देवताओं व किन्नरों से सेवित और सिंह, व्याघ्र, वराह, हाथी व

भैंसादिकों से संयुत ॥१०॥ और ताल, तमाल, हिन्ताल, चम्पक व अशोक से विस्तृत तथा हंस, कोकिला, पिक व चक्रवाकादिकों से शोभित ॥११॥ और कमल, इन्दीवर, कह्लार व कुमुदों से संयुत तड़ागों से घिरेहुये हिमाचल के किनारे पै सत्यवान्, शीलवान्, प्रशस्तवचन व सुन्दर अगस्त्यजी के भाई वर्तमान थे ॥ १२ ॥ और वनके मूल व फलादिकों से त्रिकाल शिवजीको पूजते व नित्य तपस्या करतेहुये वे मोक्ष को चाहनेवाले शिवप्रिय टिकेथे ॥ १३ ॥ और अपने आश्रम के समीप आयेहुये पाहुनों को वनके भोजनों से पूजते व अग्नि को पूजतेहुये सन्ध्योपासन में तत्पर थे ॥ १४ ॥ और समय समय में हर्ष से गायत्री आदिक महामन्त्रोंको जपते व निद्रा को त्यागते हुये वे ब्राह्ममुहूर्त में

महिषादिसमाकुले ॥ १० ॥ तमालतालहिन्तालचम्पकाशोकसन्तते ॥ हंसकोकिलदात्यूहचक्रवाकादिशोभिते ॥ ११ ॥ पद्मेन्दीवरकह्लारकुमुदाढ्यसरोवृते ॥ सत्यवाञ्छीलवान्वाग्मी वशीकुम्भजसोदरः ॥ १२ ॥ आस्ते तपश्चरन्नित्यं मोक्षार्थीशङ्करप्रियः ॥ त्रिकालमर्चयञ्छम्भुं वन्यैर्मूलफलादिभिः ॥ १३ ॥ आगतान्स्वाश्रमाभ्याशमतिथीन्वन्यभोजनैः ॥ पूजयन्नर्चयन्नग्निं सन्ध्योपासनतत्परः ॥ १४ ॥ गायत्र्यादीन्महामन्त्रान्कालेकालेजपन्मुदा ॥ निद्रांपरित्यजन्ब्राह्मे मुहूर्तेविष्णुचिन्तकः ॥ १५ ॥ स्नानंकुर्वन्नुषःकाले नमन्सन्ध्याम्प्रसन्नधीः ॥ गायत्रींप्रजपन्विप्राःपूजयन्हरिशङ्करौ ॥ १६ ॥ वेदाध्यायीशास्त्रपाठीमध्याह्नेतिथिपूजकः ॥ श्रोतापुराणपाठानामग्निकार्येष्वतन्द्रितः ॥ १७ ॥ पञ्चयज्ञपरोनित्यं वैश्वदेवबलिप्रदः ॥ प्रत्यब्दंश्राद्धकृत्पित्रोस्तथान्यश्राद्धकृद्द्विजाः ॥ १८ ॥ एवं निनायकालंस नित्यानुष्ठानतत्परः ॥ तस्यैवंवर्तमानस्य तपश्चरतउत्तमम् ॥ १९ ॥ सहस्रवर्षाण्यगमञ्छङ्करासक्त

विष्णुजी को चिन्तन करते थे ॥१५॥ और हे ब्राह्मणो! प्रातःकाल स्नान करते व सन्ध्यावन्दन करतेहुये प्रसन्नबुद्धिवाले वे गायत्रीको जपते व विष्णु और शिवजी को पूजते थे ॥ १६ ॥ और वेदपाठी व शास्त्रपाठी वे मध्याह्न में अतिथियों को पूजते थे और पुराणों के पाठको सुननेवाले वे अग्नि के कर्मों में निरालसी थे ॥ १७ ॥ और सदैव पंचयज्ञ में परायण व वैश्वदेवबलि को देनेवाले थे व हे ब्राह्मणो! प्रतिवर्ष माता, पिताका श्राद्ध करते थे और अन्य श्राद्धों को करते थे ॥ १८ ॥ इसप्रकार नित्य अनुष्ठान में तत्पर उन्होंने समय को व्यतीत किया उत्तम तपस्या करते व इसप्रकार वर्तमान उन ॥ १९ ॥ शंकरजी में लगेहुये चित्तवाले महर्षि के हज़ारों वर्ष बीत गये तथापि

उस समय शंकरजी इसकी प्रत्यक्षता को न प्राप्त हुये ॥ २० ॥ तदनन्तर यह अगस्त्य का भाई ग्रीष्ममें पंचाग्नि के मध्य में प्राप्त होकर सूर्यनारायण में दृष्टि को दिये हुये मौनव्रत से संयुत हुआ ॥ २१ ॥ और अचल वामपाद होकर छोटी अंगुली से खड़ेहोतेहुये ऊर्ध्वबाहु और अवलम्बरहित उन्होंने अतिदारुण तप किया ॥ २२ ॥ इस के अनन्तर उसके ऊपर प्रसन्नचित्तवाले दयानिधान महादेवजी अपने प्रकाशसे दशों दिशाओं को प्रकाशित करतेहुये प्रकटहुये ॥ २३ ॥ तदनन्तर बैल पै चढ़ेहुये पार्वती समेत शिवजी को मुनि ने देखा और पार्वती के पति शिवजी को देख प्रणामकर स्तुति किया ॥ २४ ॥ मुनि बोले कि हे पार्वतीनाथ, नीलकण्ठ, महेश्वरजी !

चेतसः ॥ तथापिशङ्करोनास्यराययौप्रत्यक्षतान्तदा ॥ २० ॥ ततस्त्वगस्त्यभ्रातासौ ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यगः ॥ भास्करेद त्तदृष्टिश्च मौनव्रतसमन्वितः ॥ २१ ॥ तिष्ठन्कनिष्ठिकाङ्गुल्या वामपादश्चनिश्चलः ॥ ऊर्ध्वबाहुर्निरालम्बस्तपस्तेपेतिदारु णम् ॥ २२ ॥ अथतस्यप्रसन्नात्मा महादेवोघृणानिधिः ॥ प्रादुरासीत्स्वयादीप्त्या दिशोदशविभासयन् ॥ २३ ॥ ततो द्राक्षीन्मुनिःशम्भुं साम्बंवृषभसंस्थितम् ॥ दृष्ट्वाप्रणम्यतुष्टाव भवानीपतिमीश्वरम् ॥ २४ ॥ मुनिरुवाच ॥ नमस्तेपा र्वतीनाथ नीलकण्ठमहेश्वर ॥ शिवरुद्रमहादेव नमस्तेशम्भवेविभो ॥ २५ ॥ श्रीकण्ठोमापतेशूलिन्भगनेत्रहराव्य य ॥ गङ्गाधरविरूपाक्ष नमस्तेरुद्रमन्यवे ॥ २६ ॥ अन्तकारेकामशत्रो देवदेवजगत्पते ॥ स्वामिन्पशुपतेशर्व नमस्तेशत धन्विने ॥ २७ ॥ दक्षयज्ञविनाशाय स्तायूनाम्पतयेनमः ॥ निचेरवेनमस्तुभ्यं पुष्टानाम्पतयेनमः ॥ २८ ॥ भूयोभूयोनमस्तु भ्यं महादेवकृपालय ॥ दुस्तराद्भवसिन्धोर्मान्तारयस्वात्रिलोचन ॥ २९ ॥ अगस्त्यसोदरेणैवंस्तुतःशम्भुरभाषत ॥ प्रीण

तुम्हारे लिये प्रणाम है हे शिव, रुद्र, महादेव, विभो ! आप शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ २५ ॥ हे श्रीकण्ठ, पार्वतीपते, शूलिन्, भगनेत्रनाशक, अव्यय, गंगाधर, विरूपाक्ष ! रुद्रमन्यु नामक तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २६ ॥ हे कालशत्रु, कामारे, जगत्पते, देवदेव, स्वामिन्, पशुपते, शर्व ! शतधन्वी नामक आप के लिये नमस्कार है ॥ २७ ॥ व दक्षयज्ञविनाशक के लिये व स्तायुपति के लिये नमस्कार है व निचेरु आप के लिये नमस्कार है और पुष्टों के पति के लिये नमस्कार है ॥ २८ ॥ हे दयालय, महादेव ! आप के लिये बारबार प्रणाम है हे त्रिलोचनजी! दुस्तर संसारसागर से मुझको उतारिये ॥ २९ ॥ अगस्त्यजी के छोटेभाई से इसप्रकार स्तुतिकिये

हुये शिवजी कुम्भज (अगस्त्य) जीके छोटेभाई मुनिको अपने वचन से प्रसन्न करतेहुये बोले ॥ ३० ॥ शिवजी बोले कि हे अनघ, कुम्भजानुज! मैं तुम्हारी मुक्तिके उपाय को कहता हूं कि गन्धमादनपर्वत पै सेतु के मध्य में महातीर्थ है ॥ ३१ ॥ जोकि मंगल नामक तीर्थ के थोड़ीही दूरपै वर्तमानहै वहां जाकर स्नान करो तदनन्तर मुक्ति को पावोगे ॥ ३२ ॥ उस तीर्थ के सेवन से अन्य तुम्हारे मोक्षका थोड़ा उपाय नहीं है और उस तीर्थ की विशेषता को मैं नहीं कहसक्ता हूं ॥ ३३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! इस समय तुमको इस विषय में सन्देह न करना चाहिये इसलिये यदि जन्मोंका नाश चाहते हो तो तुम वहीं जावो ॥ ३४ ॥ यह कहकर भगवान् शिवजी वहीं अन्तर्धान हो-

यन्वचसास्वेन कुम्भजस्यानुजम्मुनिम् ॥ ३० ॥ ईश्वर उवाच ॥ कुम्भजानुजवक्ष्यामि मुक्त्युपायन्तवानघ ॥ सेतु मध्येमहातीर्थेगन्धमादनपर्वते ॥ ३१ ॥ मङ्गलाख्यस्यतीर्थस्य नातिदूरेणवर्तते ॥ तत्रगत्वाकुरुस्नानं ततोमुक्तिम वाप्स्यसि ॥ ३२ ॥ तत्तीर्थसेवनान्नान्यो मोक्षोपायोलघुस्तव ॥ नहितत्तीर्थवैशिष्यं वक्तुंशक्यंमयापि च ॥ ३३ ॥ सन्दे होनात्रकर्तव्यस्त्वयाद्यमुनिसत्तम ॥ तस्मात्तत्रैवगच्छत्वं यदीच्छसिभवक्षयम् ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वाभगवानीशस्तत्रैवा न्तरधीयत ॥ ततोदेवस्यवचनादगस्त्यस्यसहोदरः ॥ ३५ ॥ गत्वासेतुंसमुद्रेतु गन्धमादनपर्वते ॥ ईश्वरेणैवगदितं तीर्थंत च्छीघ्रमासदत् ॥ ३६ ॥ तत्रतीर्थेमहापुण्ये स्नातानांमुक्तिदायिनि ॥ एकान्तरामनाथाख्यक्षेत्रालङ्करणेशुभे ॥ ३७ ॥ सस्नौनियमपूर्वंस त्रीणिवर्षाणिवैद्विजः ॥ ततश्चतुर्थवर्षेतु समाधिस्थोमहामुनिः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मनाड्यांप्राणवायुं मूर्द्ध न्यारोप्ययोगतः ॥ प्राणान्निर्गमयामास ब्रह्मरन्ध्रेणतत्रसः ॥ ३९ ॥ ततोगस्त्यानुजःसोयं परित्यज्यकलेवरम् ॥ अवा

गये तदनन्तर शिवदेवजीके वचनसे अगस्त्यजी के छोटेभाई ॥ ३५ ॥ समुद्रमें सेतुतीर्थको जाकर गन्धमादनपर्वतपै शिवजीसे कहेहुये उस तीर्थको शीघ्रही प्राप्तहुये ॥ ३६ ॥ स्नान करनेवाले मनुष्यों को मुक्ति देनेवाले एकान्तरामनाथ नामक क्षेत्र के अलंकाररूप उस उत्तम व महापवित्र तीर्थ में ॥ ३७ ॥ उस ब्राह्मण ने नियमपूर्वक तीन वर्षतक स्नान किया तदनन्तर चौथे वर्ष में समाधि में स्थित उस महामुनि ने योगसे ब्रह्मनाड़ी में प्राणवायु को मस्तक में आरोपण कर वहां ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा प्राणों

और नष्ट समस्त दुःखोंवाले को निकाला ॥ ३८ । ३९ ॥ तदनन्तर इस अगस्त्य के छोटेभाई ने शरीर को छोडकर उस तीर्थ के प्रभाव से उत्तम मुक्ति को पाया ॥ ४० ॥ अगस्त्यजी के छोटेभाई की जिसलिये उस तीर्थ में स्नान के प्रभाव से मुक्तिता हुई ॥ ४१ ॥ उस कारण हे मुनीश्वरो ! अमृतवापी ऐसी प्रसिद्धि हुई और जो मनुष्य इस तीर्थ में सावधान हाकर तीन वर्षतक ॥ ४२ ॥ स्नान करतेहैं वे सत्यही मोक्ष को प्राप्त होते हैं हे ब्राह्मणो ! तुम लोगों से इसप्रकार अमृतवापी ऐसी प्रसिद्धि व उस का प्रभाव कहागया फिर क्या सुनना चाहतेहो ऋषिलोग बोले कि हे मुने ! उस क्षेत्र को एकान्तरामनाथ नाम ॥ ४३ । ४४ ॥ कैसे प्राप्तहुआ है हे मुनिश्रेष्ठ, सूतजी ! तुम

विनष्टाशेषदुःखस्य तत्तीर्थस्नानवैभवात् ॥ अमृतत्वमभूद्यस्मादगस्त्यस्यानुजन्मनः ॥ ४१ ॥ ततोह्यमृतवापीति प्रथास्यासीन्मुनीश्वराः ॥ अत्रतीर्थेनरायेतु वर्षत्रयमतन्द्रिताः ॥ ४२ ॥ स्नानंकुर्वन्तितेसत्यममृतत्वंप्रयान्तिहि ॥ एवंत्वमृतवापीति प्रथातद्वैभवन्तथा ॥ ४३ ॥ युष्माकंकथितंविप्राः किम्भूयःश्रोतुमिच्छथ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ एकान्तरामनाथाख्या तस्यक्षेत्रस्यवैमुने ॥ ४४ ॥ कथंसमागतासूत वक्तुमेतत्त्वमर्हसि॥ अस्माकंमुनिशार्दूल तच्छुश्रूषातिभूयसी ॥ ४५ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ पुरादाशरथीरामः ससुग्रीवविभीषणः ॥ लक्ष्मणेनयुतोभ्रात्रा मन्त्रज्ञेनहनूमता ॥ ४६ ॥ वानरैर्बध्यमानेतु सेतावम्बुधिमध्यतः ॥ चिन्तयन्मनसासीतामेकान्तेसममन्त्रयत् ॥ ४७ ॥ तेषुमन्त्रयमाणेषु रावणादिवधम्प्रति ॥ उल्लोलतरकल्लोलो जुघोषजलधिर्भृशम् ॥ ४८ ॥ अर्णवस्यमहाभीमे जृम्भमाणेमहाध्वनौ ॥ अन्योन्यकथितांवार्तां नाश्रृण्वंस्तेपरस्परम् ॥ ४९ ॥ ततः किञ्चिदिवक्रुद्धो भृकुटी [बाईं ओर मुद्रित पंक्ति-आरंभ: पमुक्तिपरमान्तस्यतीर्थस्यवैभवात् ॥ ४० ॥]

इसको कहने के योग्य हो क्योंकि हमलोगों को बहुत उसके सुनने की इच्छा है ॥ ४५ ॥ श्रीसूतजी बोले कि पुरातन समय मन्त्र को जाननेवाले हनुमान् व भाई लक्ष्मण से संयुत तथा सुग्रीव व विभीषण समेत दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्रजी ने ॥ ४६ ॥ समुद्र के बीच में वानरों से बांधेहुये सेतु पै मन से सीता को चिन्तते हुये एकान्त में सलाह किया ॥ ४७ ॥ और रावण के मारने के लिये उनके सलाह करतेहुये बड़ी भारी लहरियोंवाले समुद्र ने बहुतही शब्द किया ॥ ४८ ॥ और समुद्र की बड़ी भयंकर व बड़ी भारी ध्वनि के बढ़ने पर उन्होंने परस्पर कहीहुई वार्ता को अन्योन्य नहीं सुना ॥ ४९ ॥ तदनन्तर कुछ क्रोधितसे भौंहों करके कुटिल नेत्रोंवाले श्रीरामजी ने

भौंहों के वक्र करने की लीला से उस समय समुद्र को रोककर ॥ ५० ॥ हे द्विजेन्द्रो ! राक्षसों के मारने के लिये सलाह किया जिसलिये वहां श्रीरघुनाथजी ने एकान्त में उन समेत सम्मति किया ॥ ५१ ॥ उस कारण हे ब्राह्मणो ! वह क्षेत्र एकान्तरामनाथ नामक हुआ और रामजी की भौंहों के भंग की लीला से वही यह समुद्र नियमित किया गया याने रोका गया ॥ ५२ ॥ इस कारण उन स्थानों में आज भी समुद्र निश्चलजल देख पड़ता है वही यह उत्तम क्षेत्र एकान्त रामनाथ नामक है ॥ ५३ ॥ जो मनुष्य आकर नियमपूर्वक अमृतबावली में स्नानकर रामादिकों कोभी सेवते हैं वे सब मुक्ति को प्राप्त होवैंगे ॥ ५४ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! अद्वैतज्ञान व विवेक से रहिततथा

कुटिलेक्षणः ॥ भ्रूभङ्गलीलयारामो नियम्यजलधिन्तदा ॥ ५० ॥ न्यमन्त्रयतविप्रेन्द्रा राक्षसानांवधम्प्रति ॥ एकान्ते मन्त्रयत्तत्र तैःसार्धंराघवोयतः ॥ ५१ ॥ एकान्तरामनाथाख्यं तत्क्षेत्रमभवद्द्विजाः ॥ सोयंनियमितोवार्धी रामभ्रूभङ्गलीलया ॥ ५२ ॥ अद्यापिनिश्चलजलस्तत्प्रदेशेषुदृश्यते ॥ एकान्तरामनाथाख्यं तदेतत्क्षेत्रमुत्तमम् ॥ ५३ ॥ आगत्यामृतवाप्याञ्च स्नात्वानियमपूर्वकम् ॥ रामादीनपिसेवन्ते तेसर्वेमुक्तिमाप्नुयुः ॥ ५४ ॥ अद्वैतविज्ञानविवेकशून्या विरक्तिहीनाश्चसमाधिहीनाः ॥ यागाद्यनुष्ठानविवर्जिताश्च स्नात्वात्रयास्यन्त्यमृतन्द्विजेन्द्राः ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येऽमृतवापीप्रशंसायामगस्त्यभ्रातृविमुक्तिर्नामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ स्नात्वात्वमृतवाप्यांवै सेवित्वैकान्तराघवम् ॥ जितेन्द्रियोनरःस्नातुं ब्रह्मकुण्डंततोव्रजेत् ॥ १ ॥ सेतुमध्येमहातीर्थं गन्धमादनपर्वते ॥ ब्रह्मकुण्डमितिख्यातं सर्वदारिद्र्यभेषजम् ॥ २ ॥ विद्यतेब्रह्महत्यानामयुतायुत

विरागविहीन व समाधि से रहित और यज्ञादिकों के अनुष्ठान से वर्जित मनुष्य इस तीर्थ में नहाकर मोक्ष को प्राप्त होवैंगे ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाममृतवापीप्रशंसायामगस्त्यभ्रातृविमुक्तिर्नामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । ब्रह्मकुण्ड में यज्ञकरि ब्रह्मा भे बिन शाप । सो चौदह अध्याय में कीन्हो चरित अलाप ॥ श्रीसूतजी बोले कि अमृतवापी में नहाकर व एकान्तराघव को सेवन कर तदनन्तर जितेन्द्रिय मनुष्य ब्रह्मकुण्डको नहानेके लिये जावे ॥ १ ॥ सेतु के बीचमें गन्धमादनपर्वतपै ब्रह्मकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध महातीर्थ सब दरिद्रोंकी औषध है ॥ २ ॥

और लाखों ब्रह्महत्याओंका नाश होता है व ब्रह्मकुण्ड का दर्शन सब पापसमूहोंको नाश करनेवाला है ॥ ३ ॥ और ब्रह्मकुण्ड को देखनेवाले उस पुरुष को बहुत तीर्थों से व तपों से और यज्ञोंसे क्याहै व उसको महादानों से क्या है ॥ ४ ॥ और एकबार ब्रह्मकुण्डमें स्नान वैकुण्ठकी प्राप्ति का कारणहै व हे ब्राह्मणो! जिसने ब्रह्मकुण्डसे उपजेहुये भस्म को धारण किया है ॥ ५ ॥ उसके ब्रह्मा, विष्णु व महादेव तीनों देवता अनुगामी होते हैं और ब्रह्मकुण्ड से उपजेहुये भस्म से जो त्रिपुण्ड्र ॥ ६ ॥ करताहै मोक्ष उसके हाथमें स्थित है इसमें सन्देह नहीं है और उस भस्म के परमाणुको जो मस्तक में धारण करता है ॥ ७ ॥ उतनेहीसे इसकी मुक्ति होती है इसमें विचार न

नाशनम् ॥ दर्शनंब्रह्मकुण्डस्य सर्वपापौघनाशनम् ॥ ३ ॥ किन्तस्यबहुभिस्तीर्थैः किन्तपोभिःकिमध्वरैः ॥ महादानैश्चकिन्तस्यब्रह्मकुण्डविलोकिनः ॥ ४ ॥ ब्रह्मकुण्डेसकृत्स्नानं वैकुण्ठप्राप्तिकारणम् ॥ ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतं भस्मयेनधृतन्द्विजाः ॥ ५ ॥ तस्यानुगास्त्रयोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मनायास्त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ६ ॥ करोतितस्य कैवल्यं करस्थंनात्रसंशयः ॥ तद्भस्मपरमाणुर्वा योललाटेधृतोभवत् ॥ ७ ॥ तावतैवास्यमुक्तिःस्यान्नात्रकार्याविचारणा ॥ तत्कुण्डभस्मनामर्त्यः कुर्यादुद्धूलनन्तुयः ॥ ८ ॥ तस्यपुण्यफलंवक्तुं शङ्करोवेत्तिवानवा ॥ ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतं भस्मयोनैवधारयेत् ॥ ९ ॥ रौरवेनरकेसोयं पतेदाचन्द्रतारकम् ॥ उद्धूलनंत्रिपुण्ड्रंवा ब्रह्मकुण्डस्थभस्मना ॥ १० ॥ नराधमोनकुर्याद्यः सुखंनास्यकदाचन ॥ ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मनिन्दारतस्तुयः ॥ ११ ॥ उत्पत्तौतस्यसांकर्यमनुमेयंविपश्चिता ॥ ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतं भस्मैतल्लोकपावनम् ॥ १२ ॥ अन्यभस्मसमंयस्तु नूनंवावक्तिमानवः ॥ उत्पत्तौत

करना चाहिये और जो मनुष्य उस कुण्डके भस्म से उद्धूलन करताहै ॥ ८ ॥ उसके पुण्य के फल को कहने के लिये शंकर जानतेहों या न जानते हों और जो ब्रह्मकुण्डसे उपजेहुये भस्म को नहीं धारण करता है ॥ ९ ॥ वही यह मनुष्य रौरव नरक में जबतक चन्द्रमा व नक्षत्र रहते हैं तबतक रहता है और ब्रह्मकुण्ड में स्थित भस्म से उद्धूलन व त्रिपुण्ड्र ॥ १० ॥ जो नीचनर नहीं करता है इसको कभी सुख नहीं होता है और ब्रह्मकुण्ड से उपजे हुये भस्म की निन्दामें जो परायण होता है ॥ ११ ॥ विद्वान् को उसकी उत्पत्ति में संकरता अनुमान करने योग्य है और ब्रह्मकुण्डसे उपजेहुये इस लोकों को पवित्र करनेवाले भस्म को ॥ १२ ॥ जो अन्य भस्म के समान कहता है निश्चय

कर उसकी उत्पत्ति में विद्वान् को संकरता अनुमान करने योग्य है ॥ १३ ॥ और ब्रह्मकुण्ड से उपजेहुये इस भस्म के जाग्रत् होनेपर जो मनुष्य अन्य भस्मसे त्रिपुण्ड्र को धारण करता है ॥ १४ ॥ विद्वान् को उसकी उत्पत्ति में संकरता अनुमान करने योग्यहै और जो मनुष्य कभी इस भस्म को नहीं धारण करता है ॥ १५ ॥ उसकी उत्पत्तिमें विद्वान्को संकरता अनुमान करने योग्यहै और जो ब्रह्मकुण्डसे उपजेहुये भस्मको ब्राह्मण के लिये देता है ॥१६॥ उसने चारो समुद्रों पर्यन्त पृथ्वीको देदिया इस विषय में सन्देह न करना चाहिये मैं तीनबार शपथ करता हूं ॥१७॥ कि सत्य है सत्य है व फिर सत्यहै यह भुजाको उठाकर कहा जाताहै हे द्विजोत्तमो ! ब्रह्मकुण्डसे उपजे

स्यसांकर्यमनुमेयंविपश्चिता ॥ १३ ॥ ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतेप्यस्मिन्भस्मनिजाग्रति ॥ भस्मान्तरेणमनुजो धारयेद्यस्त्रिपुण्ड्रकम् ॥ १४ ॥ उत्पत्तौतस्यसांकर्यमनुमेयंविपश्चिता ॥ कदाचिदपियोमर्त्यो भस्मैतत्तुनधारयेत् ॥ १५ ॥ उत्पत्तौतस्यसांकर्यमनुमेयंविपश्चिता ॥ ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मदद्याद्द्विजाययः ॥ १६ ॥ चतुरर्णवपर्यन्ता तेनदत्तावसुन्धरा ॥ सन्देहोनात्रकर्तव्यस्त्रिर्वाशपथयाम्यहम् ॥ १७ ॥ सत्यंसत्यंपुनःसत्यमुद्धृत्यभुजमुच्यते ॥ ब्रह्मकुण्डोद्भवंभस्म धारयध्वंद्विजोत्तमाः ॥ १८ ॥ एतद्धिपावनंभस्म ब्रह्मयज्ञसमुद्भवम् ॥ पुराहिभगवान्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ १९ ॥ सन्निधौसर्वदेवानां पर्वतेगन्धमादने ॥ ईशशापनिवृत्त्यर्थं क्रतून्सर्वान्समातनोत् ॥ २० ॥ विधायविधिवत्सर्वानध्वरान्बहुदक्षिणान् ॥ मुमुचेसहसाब्रह्मा शम्भुशापाद्द्विजोत्तमाः ॥ २१ ॥ तदेतत्तीर्थमासाद्य स्नानंकुर्वन्तियेनराः ॥ तेमहादेवसायुज्यं प्राप्नुवन्तिनसंशयः ॥ २२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ व्यासशिष्यमहाप्राज्ञ पुराणार्थविशारद ॥ चतुर्दशानांलो

हुये भस्मको तुमलोग धारण करो ॥ १८ ॥ ब्रह्मा के यज्ञ से उपजा हुआ यह पवित्रकारक भस्म है पुरातन समय सब लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्माजीने ॥ १९ ॥ सब देवताओं के समीप गन्धमादनपर्वत पै शिवजी के शाप की निवृत्ति के लिये सबयज्ञों को किया है ॥ २० ॥ व हे द्विजोत्तमो ! बहुत दक्षिणावाले सब यज्ञों को विधिपूर्वक करके यकायक ब्रह्माजी शिवजी के शाप से छूट गये ॥ २१ ॥ इसलिये इस तीर्थ को प्राप्त होकर जो मनुष्य स्नान करते हैं वे निस्सन्देह महादेव की सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महाप्राज्ञ, व्यासशिष्य, पुराणार्थनिपुण ! चौदहो लोकोंके रचनेवाले सरस्वती के पति चतुर्मुख (ब्रह्मा) जीको शिवजी

ने किस अपराध से शाप दिया है और पुरातन समय शिवजी ने उन ब्रह्मा को कैसा शाप दिया है ॥ २३ । २४ ॥ हे मुने ! इस सब को हमलोगों से आदर से यथार्थ कहिये श्रीसूत जी बोले कि पुरातन समय स्पर्द्धा (डाह) से प्रशंसा करते हुये ब्रह्मा व विष्णु का किसी कारण को उद्देश कर कलह (झगडा) हुआ है संसार में मुझ से अन्य अहंकारी नहीं है॥२५।२६॥ ऐसा ब्रह्माने विष्णुजीसे कहा व विष्णुजी ने ब्रह्मा से कहा इसप्रकार पुरातन समय उन दोनो का बडा विवाद वर्तमान हुआ ॥२७॥ इसी अवसरमें हे ब्राह्मणो ! परस्पर कलह करते हुये उन देवताओंके गर्व के विनाश के लिये व ज्ञान के लिये ॥ २८ ॥ दोनोंके बीच में अनामय व ज्योतिःस्वरूप

कानां स्रष्टारञ्चतुराननम् ॥ २३ ॥ शम्भुःकेनापराधेन शप्तवान्भारतीपतिम् ॥ शापश्चकीदृशस्तस्य पुरादत्तोहरेण वै ॥२४॥ एतत्सर्वम्मुनेब्रूहि तत्त्वतोस्माकमादरात् ॥ श्रीसूत उवाच ॥ पुराबभूवकलहो ब्रह्मविष्ण्वोःपरस्परम् ॥ २५ ॥ कञ्चिद्धेतुंसमुद्दिश्य स्पर्धयाश्लाघमानयोः ॥ अहंकर्त्तानमत्तोन्यः कर्त्तास्तिजगतीतले ॥ २६ ॥ एवमाहहरिंब्रह्मा ब्रह्माणञ्चहरिस्तथा ॥ एवंविवादःसुमहान्प्रावर्त्ततपुरातयोः ॥ २७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेविप्राः कुर्वतोःकलहंमिथः ॥ तयोर्गर्वविनाशाय प्रबोधार्थञ्चदेवयोः ॥ २८ ॥ मध्येप्रादुरभूल्लिङ्गंस्वयंज्योतिरनामयम् ॥ तौदृष्ट्वाविस्मितौलिङ्गं ब्रह्मविष्णूपरस्परम् ॥ २९ ॥ समयञ्चक्रतुर्विप्रा देवानांसन्निधौपुरा ॥ अनाद्यन्तंमहालिङ्गं यदेतद्दृश्यतेपुरः ॥ ३० ॥ अनन्तादित्यसंकाशमनन्ताग्निसमप्रभम् ॥ आवयोरस्यलिङ्गस्ययोन्तमादिञ्चपश्यति ॥ ३१ ॥ सभवेदधिकोल्लोके लोककर्ताचसप्रभुः ॥ अहमूर्ध्वंगमिष्यामि लिङ्गस्यान्तंगवेषयन् ॥ ३२ ॥ गवेषणायमूलस्य त्वमधस्ताद्धरेव्रज ॥ इतितस्यव

लिंग आपही उत्पन्न हुआ और लिंग को देखकर वे ब्रह्मा व विष्णु परस्पर विस्मित हुये ॥ २९ ॥ व हे ब्राह्मणो ! पुरातन समय देवताओं के समीपही उन दोनों ने प्रतिज्ञा किया कि आदि अन्त रहित जो यह महालिंग आगे देखपड़ताहै ॥ ३० ॥ जोकि अमित सूर्यों के समान व अनन्त अग्नियों के समान प्रभावान् है इस लिंग के अन्त व आदि को हम दोनों के मध्य में जो देखै ॥ ३१ ॥ वह संसार में अधिक व लोकों को रचनेवाला और वही प्रभु होगा लिंग के अन्त को ढूंढ़ता हुआ मैं ऊपर जाऊंगा ॥ ३२ ॥

व हे हरे! जड़ को ढूंढ़ने के लिये तुम नीचे जावो इसप्रकार उन ब्रह्मा के वचन को सुनकर लक्ष्मीपति ने यह कहा कि वैसाही होवै ॥ ३३ ॥ इसप्रकार प्रतिज्ञा कर
वे दोनों ढूंढ़ने के लिये निकले विष्णुजी शूकर के रूप से ढूंढ़ने के लिये नीचेगये ॥ ३४ ॥ और सरस्वती के पति ब्रह्माजी हंसता को स्वीकार कर ऊपर गये इसके अ-
नन्तर विष्णुजी बहुत वर्षगणोंतक नीचे के लोकों को ढूंढ़कर ॥ ३५ ॥ यथास्थान को आकर उन्होंने देव के समीप यह कहा विष्णुजी बोले कि मैंने इस लिंगके आदि
को नहीं देखाहै यह सत्य वचन मैं कहताहूं ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर ऊपर ढूंढ़कर वे ब्रह्मा भी यहां आये और ब्रह्माजी ने आकर छलसे वचन कहा ॥ ३७ ॥ ब्रह्माजी

**चःश्रुत्वा तथेत्याहरमापतिः ॥ ३३ ॥ एवंतौसमयंकृत्वा मार्गणायविनिर्गतौ ॥ विष्णुर्वराहरूपेण गतोधस्ताद्गवेषि
तुम् ॥ ३४ ॥ हंसताम्भारतीजानिः स्वीकृत्योपरिनिर्ययौ ॥ अधोलोकान्विचित्याथो विष्णुर्वर्षगणान्बहून् ॥ ३५ ॥
यथास्थानंसमागम्य बभाषेदेवसन्निधौ ॥ विष्णुरुवाच ॥ अहंलिङ्गस्यनाद्राक्षमादिमस्येतिसत्यवाक् ॥ ३६ ॥ ऊर्ध्वङ्ग
वेषयित्वाथ ब्रह्माप्यागच्छदत्रसः ॥ आगत्यचवचःप्राहच्छद्मनाचतुराननः ॥ ३७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अहमद्राक्षमस्यान्तं
लिङ्गस्येतिमृषापुनः ॥ तयोस्तद्वचनंश्रुत्वा ब्रह्मविष्ण्वोर्महेश्वरः ॥ ३८ ॥ मिथ्यावादिनमाहेदं प्रहस्यचतुराननम् ॥
ईश्वर उवाच ॥ असत्यंयदवोचस्त्वं चतुराननमत्पुरः ॥ ३९ ॥ तस्मात्पूजानतेभूयाल्लोकेसर्वत्रसर्वदा ॥ अथविष्णुं
पुनःप्राह भगवान्परमेश्वरः ॥ ४० ॥ यस्मात्सत्यमवोचस्त्वं कमलायाःपतेहरे ॥ तस्मात्तेमत्समापूजा भविष्यतिनसं
शयः ॥ ४१ ॥ ततोब्रह्माविषण्णःसन् शङ्करंप्रत्यभाषत ॥ स्वामिन्ममापराधन्त्वं क्षमस्वकरुणानिधे ॥ ४२ ॥ एकोपराधः**

बोले कि मैंने इस लिंग के अन्त को देखा है यह झूठ कहा फिर उन ब्रह्मा व विष्णु दोनों के वचन को सुनकर महादेवजी ने ॥ ३८ ॥ झूठ कहनेवाले चतुर्मुखजी से यह
कहा महादेवजी बोले कि हे चतुरानन! जिसलिये मेरे आगे तुमने झूठ कहा ॥ ३९ ॥ उस कारण लोक में सब कहीं तुम्हारा सदैव पूजन न होगा इसकेबाद भगवान्
परमेश्वरजी ने फिर विष्णुजीसे कहा ॥ ४० ॥ कि हे लक्ष्मी के पति, विष्णुजी! जिसलिये तुमने सत्य कहा है उस कारण मेरे समान तुम्हारी पूजा होगी इसमें सन्देह
नहीं है ॥ ४१ ॥ तदनन्तर उदासीन होते हुये ब्रह्मा ने शिवजी से कहा कि हे दयानिधे, स्वामिन्! मेरे अपराध को तुम क्षमा करो ॥ ४२ ॥ क्योंकि संसार के नाथ स्वामियों

को एक अपराध क्षमा करना चाहिये तदनन्तर ब्रह्मा को समझाते हुये शिवजी ने कहा ॥ ४३ ॥ महादेवजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! मेरा वचन झूठ न होगा परन्तु मैं तुम से कुछ कहताहूं उसको सुनो कि हे वत्स ! तुम सहसा गन्धमादनपर्वतको जावो ॥ ४४ ॥ और वहां तुम झूठके दोषकी शान्ति के लिये यज्ञोंको करो तदनन्तर तुम पापहीन होवोगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४५ ॥ और उससे हे ब्रह्मन् ! श्रौत व स्मार्त कर्मोंमें तुम्हारी सदैव पूजा होगी और प्रतिमाओं में तुम्हारा पूजन न होगा ॥ ४६ ॥ यह कहकर भगवान् शिवजी वहीं अन्तर्धान होगये तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! ब्रह्माजी गन्धमादनपर्वतको गये ॥ ४७ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठो ! उन्होंने यज्ञकर्ता उमा-

ततोमहेश्वरोवादीद्ब्रह्माणंपरिसान्त्वयन् ॥ ४३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ नमिथ्या क्षन्तव्यः स्वामिभिर्जगदीश्वरैः ॥ गच्छत्वंसहसावत्स गन्धमादनपर्वतम् ॥ ४४ ॥ तत्रक्रतून्कुरुष्वत्वं मिथ्यादोषप्रशान्तये ॥ ततोविधूतपापस्त्वं भविष्यसिनसंशयः ॥ ४५ ॥ तेनश्रौतेषुतेब्रह्मन्स्मार्तेष्वपिचकर्मसु ॥ पूजाभविष्यतिसदा नपूजाप्रतिमासुते ॥ ४६ ॥ इत्युक्त्वाभगवानीशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ततोब्रह्माययौविप्रा गन्धमादनपर्वतम् ॥ ४७ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि वर्षाणिमुनिपुङ्गवाः ॥ ४८ ॥ पौण्डरीकादिभिः सर्वैरध्वरैर्भूरिदक्षिणैः ॥ इन्द्रादिसर्वदेवानां सन्निधावयजच्छिवम् ॥ ४९ ॥ तेनतुष्टोभवच्छम्भुर्वरमस्मैप्रदत्तवान् ॥ ईजे च क्रतुकर्तारं क्रतुभिःपार्वतीपतिम् ॥ वचनम्मेस्याद्ब्रह्मन्वक्ष्यामितेश्रृणु ॥ ईश्वर उवाच ॥ मिथ्योक्तिदोषस्तेनष्टः कृतैरेतैर्मखैरिह ॥ ५० ॥ चतुराननतेपूजा श्रौतस्मार्तेषुकर्मसु ॥ भविष्यत्यमलाब्रह्मन्नपूजाप्रतिमासुते ॥ ५१ ॥ यास्यत्यलमिदंतेद्य ब्रह्मकुण्डमितिप्रथाम् ॥ भविष्यतित्रिलोकेस्मिन्पुण्यंपाप

पति शिवजी को अट्ठासी हज़ार वर्षों तक यज्ञों से पूजन किया ॥ ४८ ॥ ब्रह्माजीने इन्द्रादिक सब देवताओं के समीप बहुत दक्षिणाओंवाले पौण्डरीकादिक सब यज्ञों से शिवजी को पूजन किया ॥ ४९ ॥ उससे शिवजी प्रसन्नहुये और इन ब्रह्मा के लिये वर दिया महादेवजी बोले कि यहां इन किये हुये यज्ञोंसे तुम्हारा झूठ कहने का दोष नाश होगया ॥ ५० ॥ हे चतुरानन ! श्रौतस्मार्तकर्मों में तुम्हारी निर्मल पूजा होगी व हे ब्रह्मन् ! प्रतिमाओं में तुम्हारा पूजन न होगा ॥ ५१ ॥ और तुम्हारा यह कुण्ड

ब्रह्मकुण्ड ऐसी प्रसिद्धिको प्राप्त होगा और इस त्रिलोक में पवित्र व पापनाशक होगा ॥५२॥ व हे ब्रह्मन्! जो एकबार ब्रह्मकुण्डनामक तीर्थमें स्नान करताहै उसकी मुक्तिके द्वार की अर्गला (बेंड़कन) उसी क्षण टूट जाती है ॥ ५३ ॥ और ब्रह्मकुण्डसे उपजे हुये भस्मको मस्तक में धारण करता हुआ पुरुष माया के किंवाड़ को तोड़कर मुक्ति के द्वार को जावैगा ॥ ५४ ॥ और ब्रह्मकुण्ड मे उपजे हुये भस्मको जो मस्तक में नहीं धारण करता है वह माता में अपने पिता के बीजसे उपजाहुआ पुत्र नहीं है ॥५५॥ हे ब्रह्मन्! ब्रह्मकुण्डसे उपजे हुये भस्मके धारणसे दश हजार ब्रह्महत्या व दश हज़ार मदिरापान नाश होते हैं ॥ ५६ ॥ और दश हज़ार गुरुशय्यागमन व दश हज़ार

विनाशनम् ॥ ५२ ॥ ब्रह्मकुण्डाभिधेतीर्थे सकृद्यःस्नानमाचरेत् ॥ मुक्तिद्वारार्गलन्तस्य भिद्यतेतत्क्षणाद्विधे ॥ ५३ ॥ ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतं ललाटेभस्मधारयन् ॥ मायाकपाटंनिर्भिद्य मुक्तिद्वारंप्रयास्यति ॥ ५४ ॥ ब्रह्मकुण्डोत्थितंभस्म ललाटेयोनधारयेत् ॥ स्वपितुर्बीजसम्भूतोनमातरिसुतस्तुसः ॥ ५५ ॥ ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मधारणतोविधे ॥ ब्रह्महत्या युतंनश्येत्सुरापानायुतन्तथा ॥ ५६ ॥ गुरुतल्पायुतंनश्येत्स्वर्णस्तेयायुतन्तथा ॥ तत्संसर्गायुतंनश्येत्सत्यमुक्तंमया विधे ॥ ५७ ॥ ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मधारणवैभवात् ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्या नश्यन्तिक्षणमात्रतः ॥ ५८ ॥ इत्युक्त्वाभगवानीशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ यज्ञेष्वथसमाप्तेषुमुनयश्चजितेन्द्रियाः ॥ ५९ ॥ इन्द्रादिदेवताश्चैव सिद्धचारणकिन्नराः ॥ अन्येचदेवनिवहा गन्धमादनपर्वते ॥ ६० ॥ तान्यज्ञांश्चसमाश्रित्य स्वयंरुद्रेणसेवितान् ॥ निरन्तरमवर्तन्त विदित्वा तस्यवैभवम् ॥ ६१ ॥ यथाविधिततोयज्ञान्समाप्यबहुदक्षिणान् ॥ सत्यलोकमगाद्ब्रह्मा शिवाल्लब्धमनोरथः ॥ ६२ ॥

सुवर्ण की चोरी नाश होजाती हैं व दश हज़ार उसके संसर्गवाले दोष नाश होजातेहैं हे ब्रह्मन्! मैंने इसको सत्य कहाहै ॥ ५७॥ और ब्रह्मकुण्ड से उपजेहुये भस्म धारण के प्रभाव से भूत, प्रेत व पिशाचादिक उसी क्षण नाश होजाते हैं ॥५८॥ यहकहकर भगवान् शिवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और यज्ञों के समाप्त होनेपर जितेन्द्रिय मुनि लोग चलेगये ॥ ५९ ॥ और इन्द्रादिक देवता व सिद्ध, चारण, किन्नर और अन्य देवगण गन्धमादनपर्वत पै ॥ ६० ॥ आपही रुद्रजी से सेवित उन यज्ञों के आश्रित होकर उनके प्रभाव को जानकर सदैव वर्तमान हुये ॥ ६१ ॥ तदनन्तर बहुत दक्षिणाओंवाले यज्ञों को विधिपूर्वक समाप्त कर शिवजी से मनोरथ को पाये हुये ब्रह्मा सत्यलोक

को चले गये ॥ ६२ ॥ तब से लगाकर हे द्विजोत्तमो ! ब्रह्मकुण्डको प्राप्त होकर देवताओं व मुनियों ने विधि से यज्ञों को किया ॥ ६३ ॥ इसलिये यज्ञ की इच्छावाले मनुष्य यहींपर यज्ञोंको करैं ॥ ६४ ॥ हे ब्राह्मणो ! यह उत्तम ब्रह्मकुण्ड मनुष्य, देवताओं व मुनीश्वरोंसे वन्दित तथा समस्त जन्म मरणोंका नाशकारक व सकलपापहारक तथा समस्त मनोरथों का दायक है ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाम्ब्रह्मकुण्डप्रशंसायांब्रह्मशापविमोक्षणंनामचतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

दो० । लह्यो धर्मसख यज्ञ करि जिमि सौ पुत्र भुआल । सो पन्द्रह अध्याय में वरण्यो चरित रसाल ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! महापवित्र ब्रह्मकुण्ड में

तदाप्रभृतिदेवाश्च मुनयश्चद्विजोत्तमाः॥ ब्रह्मकुण्डंसमासाद्य चक्रुर्यागान्विधानतः॥६३॥ तस्माद्दिदृक्षवोमर्त्याः कुर्युर्यज्ञानिहैवहि॥६४॥मनुजदेवमुनीश्वरवन्दितंसकलसंसृतिनाशकरन्द्विजाः ॥ जलजसम्भवकुण्डमिदंशुभंसकलपापहरंसकलार्थदम् ॥ ६५ ॥इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येब्रह्मकुण्डप्रशंसायांब्रह्मशापविमोक्षणन्नामचतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

श्रीसूत उवाच ॥ ब्रह्मकुण्डेमहापुण्ये स्नानंकृत्वासमाहितः ॥ नरोहनुमतःकुण्डमथगच्छेद्द्विजोत्तमाः ॥ १ ॥ पुराहतेषुरक्षःसुसमाप्तेरणकर्मणि ॥ रामादिषुनिवृत्तेषु गन्धमादनपर्वते ॥ २ ॥ सर्वलोकोपकाराय हनूमान्मारुतात्मजः॥ सर्वतीर्थोत्तमञ्चक्रे स्वनाम्नातीर्थमुत्तमम् ॥ ३ ॥ विदित्वावैभवंयस्य स्वयंरुद्रेणसेव्यते ॥ तस्यतीर्थस्यसदृशं नभूतंनभविष्यति ॥ ४ ॥ यत्रस्नातानरायान्ति शिवलोकंसनातनम् ॥ यस्मिंस्तीर्थेमहापुण्ये महापातकनाशने॥५॥ सर्वलोकोपकाराय निर्मितेवायुसूनुना ॥ सर्वाणिनरकाण्यासञ्छून्यान्यथचिरायवै ॥ ६ ॥ वैभवन्तस्यतीर्थस्य शङ्करोवे

स्नानकर इसके अनन्तर सावधान होताहुआ मनुष्य हनुमान्जीके कुण्डको जावै ॥ १ ॥ पुरातन समय राक्षसों के नष्ट होनेपर जब युद्ध का कर्म समाप्त हुआ तब रामादिकों के लौटने पर गन्धमादनपर्वत पै ॥ २ ॥ पवनपुत्र हनुमान्जी ने सब लोकों के उपकार के लिये अपने नामसे समस्त तीर्थों से उत्तम सुन्दर तीर्थ को किया है ॥ ३ ॥ जिसके प्रभावको जानकर आपही शिवजी से सेवन किया जाताहै उस तीर्थके समान अन्य तीर्थ न हुआ है न होवैगा ॥ ४ ॥ क्योंकि जिसमें नहाये हुये मनुष्य सनातन शिवलोकको जाते हैं और जिस महापवित्र व महापातकों के विनाशक तीर्थ के ॥ ५ ॥ पवनपुत्र हनुमान्जी से सब लोकों के उपकार के लिये रचने पर सब नरक शीघ्रही

शून्य होगये ॥ ६ ॥ और उस तीर्थ के प्रभाव को शिवजी जानते हों या न जानते होवैं कि जिस तीर्थ में केकय वंश में उत्पन्न धर्मसखनामक राजाने ॥ ७ ॥ पुरातन समय भक्तिसमेत नहाकर सौ पुत्रों को पायाहै ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! तुम इस समय धर्मसख के चरित्र को कहने के योग्य हो ॥ ८ ॥ कि जिसने हनुमान्जी के कुण्डरूप तीर्थ में नहाकर सौ पुत्रों को पाया है श्रीसूतजी बोले कि हे ऋषियो ! तुमलोग उस राजा के चरित्र को सुनो ॥ ९ ॥ इस समय मैं धर्मसख के चरित्र को संक्षेप से कहताहूं पुरातन समय शत्रुवों को जीतनेवाला व प्रजापालन में तत्पर तथा धर्मवान् व नीतिमान् धर्मसखनामक राजा हुआ है हे ब्राह्मणो ! उसके सौ पतिव्रता

त्तिवानवा ॥ यत्रधर्मसखोनाम राजाकेकयवंशजः ॥ ७ ॥ भवत्यासहपुरास्नात्वा शतंपुत्रानवाप्तवान् ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूतधर्मसखस्याद्य चरितंवक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥ हनूमत्कुण्डतीर्थेयो लेभेस्नात्वाशतंसुतान् ॥ श्रीसूत उवाच ॥ शृणुध्वमृषयोयूयं चरितंतस्यभूपतेः ॥ ९ ॥ अद्यधर्मसखस्याहं प्रवक्ष्यामिसमासतः ॥ राजाधर्मसखोनाम विजितारिःसु धार्मिकः ॥ १० ॥ बभूवनीतिमान्पूर्वं प्रजापालनतत्परः ॥ तस्यभार्याशतंविप्रा बभूवपतिदैवतम् ॥ ११ ॥ सपालयन्महीं राजा सशैलवनकाननाम् ॥ तासुभार्यासुतनयं नाविदद्वंशवर्द्धनम् ॥ १२ ॥ पुत्रार्थंसमहीपालो बहून्यत्नानथाकरोत् ॥ अकरोच्चमहादानं पुत्रार्थंसमहीपतिः ॥ १३ ॥ अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरयजच्चसुरान्प्रति ॥ तुलापुरुषमुख्यानि ददौदाना निभूरिशः ॥ १४ ॥ आमध्यरात्रमन्नानि सर्वेभ्योप्यनिवारितम् ॥ प्रायच्छद्बहुसूपानि सस्योपेतानिभूमिपः ॥ १५ ॥ पितॄनुद्दिश्यचश्राद्धमकरोद्विधिपूर्वकम् ॥ सन्तानदायिनोमन्त्राञ्जजापनियतेन्द्रियः ॥ १६ ॥ एवमादीन्बहून्धर्मान्पु

स्त्रियां हुई हैं ॥ १० । ११ ॥ पर्वत, वन व काननों समेत पृथ्वी को पालन करते हुये उस राजा ने उन स्त्रियों में वंश को बढ़ानेवाले पुत्र को नहीं पाया ॥ १२ ॥ इस के अनन्तर उस राजाने पुत्रों के लिये बहुत यत्नों को किया और उस भूपति ने पुत्र के लिये महादान किया ॥ १३ ॥ और अश्वमेधादिक यज्ञों से देवताओं को पूजन किया व तुलापुरुषादिक बहुत से दानों को दिया ॥ १४ ॥ और अन्नों से संयुत बहुत दालियों व अन्नों को राजाने आधीरात पर्यन्त सबों के लिये निवारणरहित दिया ॥ १५ ॥ और पितरों को उद्देश कर उसने विधिपूर्वक श्राद्ध किया व इन्द्रियों को रोके हुये उसने सन्तानदायक मन्त्रों को जपा ॥ १६ ॥ राजाने पुत्रके लिये इत्यादिक बहुतसे धर्मों को

किया और पुत्र को उद्देश कर सदैव अति उत्तम धर्मों को करता हुआ ॥ १७ ॥ राजा बहुत समय के बाद वृद्धता को प्राप्त हुआ और किसी समय यत्न करते हुये उस वृद्ध राजा के ॥ १८ ॥ सुचन्द्रनामक सुन्दर पुत्र बड़ी स्त्री में पैदा हुआ और विषमता से रहित उन सब माताओंने उपजे हुये पुत्र को दूध आदिक वस्तुवों से साथही बढ़ाया और राजा व सब माता तथा पुरवासी और मन्त्रियों के ॥ १९ । २० ॥ मन व नेत्रोंके आनन्दको पैदा करनेवाला यह पुत्र हुआ और राजा ने बहुत प्यार से बहुतही आनन्द को पाया ॥ २१ ॥ किसी समय पालने में सोते हुये उसके पुत्रके पांव में बिच्छू ने उठी हुई विषाग्निवाली पूंछ से मार दिया ॥ २२ ॥ और बिच्छू के मारने से यह

त्रार्थंकृतवान्नृपः ॥ पुत्रमुद्दिश्यसततं कुर्वन्धर्मानन्नुत्तमान् ॥ १७ ॥ राजादीर्घेणकालेन वृद्धताम्प्रत्यपद्यत ॥ कदाचित्त स्यवृद्धस्य यतमानस्यभूपतेः ॥ १८ ॥ पुत्रस्सुचन्द्रनामाभूज्ज्येष्ठपत्न्यांमनोरमः ॥ जातंपुत्रंजनन्यस्ताः सर्वावैषम्य वर्जिताः ॥ १९ ॥ समंसंवर्द्धयामासुः क्षीरादिभिरनुत्तमाः ॥ राज्ञश्चसर्वमातॄणां पौराणाम्मन्त्रिणान्तथा ॥ २० ॥ मनो नयनसन्तोषजनकोयंसुतोभवत् ॥ लालनात्सुतरांराजा मुदंलेभेपरात्परम् ॥ २१ ॥ आन्दोलिकाशयानस्य सूनो स्तस्यकदाचन ॥ वृश्चिकोकुट्टयेत्पादे पुच्छेनोद्यद्विषाग्निना ॥ २२ ॥ कुट्टनाद्वृश्चिकस्यासावरुदत्तनयोभृशम् ॥ तत स्तन्मातरःसर्वाः प्रारुदञ्छोककातराः ॥ २३ ॥ परिवार्यात्मजंविप्राः सध्वनिःसङ्कुलोभवत् ॥ आर्तध्वनिंसशुश्राव रा जाधर्मसखस्तदा ॥ २४ ॥ उपविष्टःसभामध्ये सहामात्यपुरोहितः ॥ अथप्रातिष्ठिपद्राजा सौविदल्लंसवेदितुम् ॥ २५ ॥ अन्तःपुरबहिर्द्वारं सौविदल्लःसमेत्यसः ॥ षण्ढवृद्धान्समाहूय वाक्यमेतदभाषत ॥ २६ ॥ षण्ढाःकिमर्थमधुना रुदन्त्य

बालक बहुत रोनेलगा तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! पुत्र को घेर कर शोक से विकल उस की सब माताओंने रोदन किया और वह बड़ा भारी शब्द हुआ उस समय धर्मसख राजा ने दुःखित शब्द को सुना ॥ २३ । २४ ॥ और मन्त्री व पुरोहितों समेत वह राजा सभा के बीच में बैठाथा इसके अनन्तर इस राजाने वृत्तान्त को जानने के लिये चोबदार को पठाया ॥ २५ ॥ और उस चोबदारने रनिवासके बाहरी द्वार पै आकर वृद्धषण्ढोंको बुलाकर यह वचन कहा ॥ २६ ॥ कि हे षण्ढो ! रनिवासकी स्त्रियां इस

समय क्यों रोती हैं वहां जाकर वह रोदन का कारण जाना जावै ॥ २७ ॥ सभा में राजाने इसलिये मुझ को पठाया है यह कहे हुये उन्होंने रोने के कारण को जान कर ॥ २८ ॥ रनिवास से निकल कर उस से जैसा वृत्तान्त था उसको कहा और षण्ढों के वचन को सुनकर वह चोबदार सभाको गया ॥ २९ ॥ और उसने राजा से बिच्छू से पीड़ित पुत्र को बतलाया तदनन्तर ऐसे वृत्तान्त को सुनकर धर्मसख राजा ॥ ३० ॥ शीघ्रतासंयुत होकर मन्त्रियों व पुरोहितों समेत और विष को हरनेवाले मन्त्रियों समेत रनिवास में पैठकर ॥ ३१ ॥ अनेकों औषधादिकों से पुत्रकी औषध कराया तदनन्तर स्वस्थताको प्राप्त पुत्रका लालनकर वह राजा ॥ ३२ ॥ रत्न, सुवर्ण व मो-

न्तःपुरस्त्रियः ॥ तत्परिज्ञायतान्तत्र गत्वारोदनकारणम् ॥ २७ ॥ एतदर्थंहिमांराजा प्रेरयामाससंसदि ॥ इत्युक्तास्तुप रिज्ञाय निदानंरोदनस्यते ॥ २८ ॥ निर्गम्यान्तःपुरात्तस्मै यथावृत्तंन्यवेदयत् ॥ सषण्ढकवचःश्रुत्वा सौविदल्लःसभाङ्ग तः ॥ २९ ॥ राज्ञोनिवेदयामास पुत्रंवृश्चिकपीडितम् ॥ ततोधर्मसखोराजा श्रुत्वावृत्तान्तमीदृशम् ॥ ३० ॥ त्वरमाणः स मुत्थाय सामात्यःसपुरोहितः ॥ प्रविश्यान्तःपुरंसार्द्धं मन्त्रिकैर्विषहारिभिः ॥ ३१ ॥ चिकित्सयामाससुतमौषधाद्यैर नेकशः ॥ जातस्वास्थ्यंततःपुत्रं लालयित्वासभूपतिः ॥ ३२ ॥ मानयित्वाचमन्त्रज्ञान् रत्नकाञ्चनमौक्तिकैः ॥ निष्क्र म्यान्तःपुराद्राजा भृशंचिन्तासमाकुलः ॥ ३३ ॥ ऋत्विक्पुरोहितामात्यैस्तांसभांसमुपाविशत् ॥ तत्रधर्मसखोरा जा समासीनोवरासने ॥ ३४ ॥ उवाचेदंवचोयुक्तमृत्विजःसपुरोहितान् ॥ धर्मसख उवाच ॥ दुःखायैवैकपुत्रत्वं भवति ब्राह्मणोत्तमाः ॥ ३५ ॥ एकपुत्रत्वतोनॄणां वराचैवह्यपुत्रता ॥ नित्यंव्यपाययुक्तत्वादरमेवह्यपुत्रता ॥ अहंभार्याशतं

तियों से मन्त्रों के जाननेवाले लोगों का सन्मान कर रनिवास से निकलकर राजा बहुत चिन्ता से विकल हुआ ॥ ३३ ॥ और ऋत्विज्, पुरोहित व मन्त्रियों समेत राजा उस सभा में बैठगया और वहां उत्तम आसन पै बैठे हुये धर्मसख राजाने ॥ ३४ ॥ पुरोहितों समेत ऋत्विजों से इस योग्य वचन को कहा धर्मसख बोले कि हे द्विजोत्तमो ! एक पुत्र का होना दुःखही के लिये होता है ॥ ३५ ॥ मनुष्यों को एक पुत्र होने से अपुत्र होना श्रेष्ठहै और नित्यही नाशयुक्त होने के कारण अपुत्रता श्रेष्ठ

है हे ब्राह्मणो! मैंने विशेषकर चिन्तन कर सौ स्त्रियों को ब्याहा ॥ ३६ ॥ वह हे ब्राह्मणो! स्त्रियों समेत मेरी अवस्था बीत गई और मेरे व स्त्रियों के प्राण इस पुत्रमें स्थित हैं ॥ ३७ ॥ और उस के नाश होनेमें मेरी सब स्त्रियों की निश्चय कर मृत्यु होगी और एक पुत्र के मरने में मेरे भी प्राणों का नाश होगा ॥ ३८ ॥ इस कारण किस उपाय से मेरे बहुत पुत्र होवेंगे हे वेदविदों में श्रेष्ठ, ब्राह्मणो! उस उपाय को मुझ से कहो ॥ ३९ ॥ जिस प्रकार सौ स्त्रियों में मेरे एक एक पुत्र होवै धर्म से शास्त्र को देख कर तुमलोग उस कर्म को कहो ॥ ४० ॥ यद्यपि बड़े या छोटे या कठिन कर्म से वह फल साध्य होवै तथापि मैं उसको करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ मैं तुमलोगों

विप्रा उदवोढंविचिन्त्यतु ॥ ३६ ॥ वयश्चसमतिक्रान्तं सपत्नीकस्यमेद्विजाः ॥ प्राणाममचभार्याणामस्मिन्पुत्रेव्यव स्थिताः ॥ ३७ ॥ तन्नाशेममभार्याणां सर्वासाञ्चमृतिर्ध्रुवा ॥ ममापिप्राणनाशःस्यादेकपुत्रस्यमारणे ॥ ३८ ॥ अतोमे बहुपुत्रत्वं केनोपायेनवैभवेत् ॥ तमुपायंममब्रूत ब्राह्मणावेदवित्तमाः ॥ ३९ ॥ एकैकःशतभार्यासु पुत्रोमेस्याद्यथागु णी ॥ तत्कर्मब्रूतयूयन्तु शास्त्रमालोक्यधर्मतः ॥ ४० ॥ महतालघुनावापि कर्मणादुष्करेणवा ॥ फलंयद्यपितत्साध्यं करिष्येहंनसंशयः ॥ ४१ ॥ युष्माभिरुदितंकर्म करिष्यामिनसंशयः ॥ कृतमेवाहितद्वित्त शपेहंसुकृतैर्मम ॥ ४२ ॥ अ स्तिचेदीदृशंकर्म येनपुत्रशतम्भवेत् ॥ तत्कर्मकुत्रकर्तव्यं मयेतिवदताधुना ॥ ४३ ॥ इतिपृष्टास्तदाराज्ञा ऋत्विजः सपुरोहिताः ॥ सम्भूयसर्वेराजानमिदमूचुःसुनिश्चितम् ॥ ४४ ॥ ऋत्विज ऊचुः ॥ अस्तिराजन्प्रवक्ष्यामो येनपुत्रशत न्तव ॥ भवेद्धर्मेणमहता शतभार्यासुकेकय ॥ ४५ ॥ अस्तिकश्चिन्महापुण्यो गन्धमादनपर्वतः ॥ दक्षिणाम्बुधिमध्ये

से कहे हुये कर्म को निस्सन्देह करूंगा उसको कियाही जानिये मैं अपने पुण्यों से सौगन्द करताहूं ॥ ४२ ॥ यदि ऐसा कर्म होवै कि जिससे सौ पुत्र होवैं तो इस समय मुझ से तुमलोग यह कहो कि वह कर्म मुझको कहां करना चाहिये ॥ ४३ ॥ उस समय राजा से इस प्रकार पूछे हुये पुरोहितों समेत सब ऋत्विजों ने इकट्ठा होकर राजा से इस निश्चित वचन को कहा ॥ ४४ ॥ ऋत्विज् बोले कि हे केकय, राजन्! हमलोग कहते हैं ऐसा कर्म है कि जिस बड़े भारी धर्म से सौ स्त्रियों में तुम्हारे सौ पुत्र

होवेगे ॥ ४५ ॥ कोई महापवित्र गन्धमादनपर्वतहै जो कि दक्षिण समुद्रके बीचमें सेतुरूप से वर्तमान है ॥ ४६ ॥ वह सिद्ध, चारण, गन्धर्व व देवर्षियों के गणों से संयुतहै और दर्शन व स्पर्श करने से मनुष्यों के महापातकों का नाशक है ॥ ४७ ॥ वहां हनुमत्कुण्ड ऐसा लोकों में प्रसिद्ध तीर्थहै जो कि बड़े भारी दुःखोंको नाश करनेवाला व स्वर्ग तथा मोक्ष के फल को देनेवाला है ॥ ४८ ॥ और नरकों के क्लेशको नाश करनेवाला तथा दरिद्रता को छुडानेवाला और बिन पुत्रवाले मनुष्योंको पुत्रदायक तथा स्त्रीविहीन मनुष्योंको स्त्रियों को देनेवाला है ॥ ४९ ॥ उस में स्नान कर पवित्र होते हुये तुम सावधान होकर उस के किनारे सब मनोरथों को देनेवाली

यः सेतुरूपेणावर्तते ॥ ४६ ॥ सिद्धचारणगन्धर्वदेवर्षिगणसङ्कुलः ॥ दर्शनात्स्पर्शनान्नॄणाम्महापातकनाशनः ॥ ४७ ॥ तत्रास्तिहनुमत्कुण्डमितिलोकेषुविश्रुतम् ॥ महादुःखप्रशमनं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥ ४८ ॥ नरकक्लेशशमनं तथादारिद्र्यमोचनम् ॥ पुत्रप्रदमपुत्राणामस्त्रीणांस्त्रीप्रदंनृणाम् ॥ ४९ ॥ तत्रत्वम्प्रयतःस्नात्वा सर्वाभीष्टप्रदायिनीम् ॥ पुत्रीयेष्टिं च तत्तीरे कुरुष्वसुसमाहितः ॥ ५० ॥ तेनतेशतभार्यासु प्रत्येकंतनयोनृप ॥ एकैकस्तुभवेच्छीघ्रम्माकुरुष्वात्रसंशयम् ॥ ५१ ॥ तथोक्तोनृपतिर्विप्रैर्ऋत्विग्भिःसपुरोहितैः ॥ तत्क्षणेनैवऋत्विग्भिर्भार्याभिश्चपुरोधसा ॥ ५२ ॥ वृतोमात्यैश्चभृत्यैश्च यज्ञसम्भारसंयुतः ॥ प्रययौदक्षिणाम्भोधौ गन्धमादनपर्वतम् ॥ ५३ ॥ हनुमत्कुण्डमासाद्य तत्रसस्नौससैनिकः ॥ माससमात्रंसतत्तीरे न्यवसत्स्नानमाचरत् ॥ ५४ ॥ ततोवसन्तेसम्प्राप्ते चैत्रमासिनृपोत्तमः ॥ इष्टिमारब्धवांस्तत्र पुत्रीयांसपुरोहितः ॥ ५५ ॥ सम्यक्कर्माणिचक्रुस्ते ऋत्विजःसपुरोधसः ॥ सपत्नीकस्य

पुत्रेष्टि को करो ॥ ५० ॥ हे राजन्! उससे तुम्हारी सौ स्त्रियोंमें प्रत्येकके एक एक पुत्र शीघ्रही होगा इस में सन्देह न करो ॥ ५१ ॥ पुरोहितों समेत ऋत्विज ब्राह्मणों से वैसा कहा हुआ राजा उसी क्षण ऋत्विजों, स्त्रियों व पुरोहित समेत ॥ ५२ ॥ मन्त्रियों व सेवकों से घिरा हुआ वह यज्ञके सामानसे संयुत राजा दक्षिण समुद्र में गन्धमादन पर्वत को गया ॥ ५३ ॥ और हनुमत्कुण्ड को प्राप्तहोकर सेना समेत राजाने उस में स्नान किया और उस ने महीने भर उस के किनारे निवास किया व स्नान किया ॥५४॥ तदनन्तर बसन्तऋतु प्राप्त होने पर चैत महीने में पुरोहितों समेत नृपोत्तमने वहां पुत्रवाले यज्ञ को प्रारम्भ किया ॥ ५५ ॥ और पुरोहितों समेत ऋत्विजोंने

राजर्षेस्तथाधर्मसखस्यतु ॥ ५६ ॥ इष्टौतस्यसमाप्तायां हनूमत्कुण्डतीरतः ॥ पुरोहितोहुतोच्छिष्टम्प्राशयद्राजयो षितः ॥ ५७ ॥ ततोधर्मसखोराजा हनूमत्कुण्डवारिषु ॥ सम्यक्चकारावभृथस्नानम्भार्याशतान्वितः ॥ ५८ ॥ ऋत्विग्भ्योदक्षिणाःप्रादादसंख्यातास्तुभूरिशः ॥ ग्रामांश्चप्रददौराजा ब्राह्मणेभ्योद्विजोत्तमाः ॥ ५९ ॥ सामात्यःसपरिवारः सपत्नीकःसधार्मिकः ॥ राजाततोनिवृत्ते पुरींस्वांप्रतिनन्दितः ॥ ६० ॥ ततःकतिपयेकाले गतेदशममासि वै ॥ शतम्भार्याःशतम्पुत्रान् सुषुवुर्गुणवत्तरान् ॥ ६१ ॥ अथप्रीतमनाराजा वीरोधर्मसखोमहान् ॥ स्नातःशुद्धश्चसङ्कल्प्य जातकर्माकरोत्तदा ॥ ६२ ॥ गोभूतिलहिरण्यादि ब्राह्मणेभ्योददौबहु ॥ द्वौपुत्रौज्येष्ठभार्यायाः पूर्वजोवरजस्तदा॥ ६३ ॥ सर्वेववृधिरेपुत्रा एकाधिकशतंद्विजाः ॥ प्रौढेषुतेषुराजासौ तेभ्योराज्यंविभज्यतु ॥ ६४ ॥ दत्त्वा चप्रययौसेतुं सभार्योगन्धमादनम् ॥ हनुमत्कुण्डमासाद्य तपोतप्यततत्तटे ॥ ६५ ॥ महान्कालोव्यतीयाय राज्ञस्त

उस धर्मसख राजर्षि का यज्ञ जब हनुमत्कुण्ड के किनारे समाप्त होगया तब पुरोहित ने हवन से उच्छिष्ट हव्यको राजा की स्त्रियों को भोजन कराया ॥ ५६ । ५७ ॥ तदनन्तर सौ स्त्रियों समेत धर्मसख राजाने हनुमत्कुण्ड के जल में भलीभांति यज्ञान्तस्नान किया ॥ ५८ ॥ और ऋत्विजों के लिये बहुत सी असंख्य दक्षिणाओं को दिया व हे ब्राह्मणो ! राजाने ब्राह्मणों के लिये ग्रामों को दिया ॥ ५९ ॥ तदनन्तर मन्त्रियों सहितवपरिवार समेत और स्त्रियों सहित वह धर्मवान् राजा प्रसन्न होकर अपनी पुरी को लौटा ॥ ६० ॥ तदनन्तर कुछ समय बीतने पर दशवें महीने में सौ स्त्रियों ने बड़े गुणवान् सौ पुत्रों को उत्पन्न किया ॥ ६१ ॥ इस के अनन्तर प्रसन्नमनवाले बड़े वीर धर्मसख राजा ने उस समय नहाकर पवित्र होकर संकल्प कर जातकर्म किया ॥ ६२ ॥ और ब्राह्मणोंके लिये उस ने बहुत गऊ, पृथ्वी, तिल व सुवर्णादि धन को दिया उस समय बड़ी स्त्री के दो पुत्र हुये एक पहिले पैदा हुआ और दूसरा छोटा हुआ ॥ ६३ ॥ हे ब्राह्मणो ! सब एक सौ एक पुत्र बढ़ते भये और उन के युवा होने पर यह राजा उन के लिये राज्य को बांट कर ॥ ६४ ॥ व देकर स्त्री समेत सेतुरूप गन्धमादनपर्वत को गया और हनुमत्कुण्ड को प्राप्त

होकर उसने उसके किनारे तप किया ॥ ६५ ॥ त्रिशूलधारी शिवजी को ध्यान करते व तपस्या करते हुये उस धर्मसख राजा का बहुत समय व्यतीत हुआ ॥६६॥ तद-
नन्तर बहुत समय बीतने पर शान्तमनवाला धर्मवान् धर्मसख राजा वह मृत्युको प्राप्त हुआ ॥ ६७ ॥ तब उस राजर्षि की स्त्रियां भी पति के पश्चात् मृत्यु को प्राप्त हुईं
तदनन्तर बडे पुत्र सुचन्द्र ने भी पिताका संस्कारकर ॥ ६८ ॥ श्रद्धा समेत श्राद्धपर्यन्त कर्मों को किया और इस हनुमत्कुण्ड के समीप मरने से स्त्रियों समेत राजा वैकुण्ठ
को चला गया ॥ ६९ ॥ और सुचन्द्र आदिक उन सब बड़े पराक्रमी राजपुत्र बन्धुवोंने ईर्षा को छोड़कर अपने २ राज्य को भोग किया ॥ ७० ॥ हे ब्राह्मणो ! तुम लोगों

स्यतपस्यतः ॥ राज्ञोधर्मसखस्यास्य ध्यायमानस्यशूलिनम् ॥ ६६ ॥ ततोबहुतिथेकाले गतेधर्मसखोनृपः ॥ काल
धर्मंययौतत्र धार्मिकश्शान्तमानसः ॥ ६७ ॥ पत्नयोपितस्यराजर्षेरनुजग्मुःपतिंतदा ॥ ज्येष्ठपुत्रःसुचन्द्रोपि सं
स्कृत्यपितरंततः ॥ ६८ ॥ अकरोच्छ्राद्धपर्यन्तं कर्माणिश्रद्धयासह ॥ राजासभार्योवैकुण्ठम्मरणादत्रजग्मिवान् ॥ ६९ ॥
सुचन्द्रमुख्यास्तेसर्वे राजपुत्रामहौजसः ॥ स्वस्वराज्यम्बुभुजिरे भ्रातरस्त्यक्तमत्सराः ॥ ७० ॥ एवंवःकथितंविप्रा
हनूमत्कुण्डवैभवम् ॥ राज्ञोधर्मसखस्यापि चरित्रम्परमाद्भुतम् ॥ ७१ ॥ तत्सर्वकामसिद्ध्यर्थं स्नायात्कुण्डेहनूम
तः ॥ ७२ ॥ अध्यायमेनम्पठतेमनुष्यः शृणोतिवायःसुसमाहितोद्विजाः ॥ सोनन्तमाप्नोतिसुखम्परत्र क्रीडेत
सार्द्धंदिविदेववृन्दैः ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येहनुमत्कुण्डप्रशंसायांधर्मसखशतपुत्रावाप्तिर्ना
मपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

से इसप्रकार हनुमान्जी के कुण्डका प्रभाव कहागया और धर्मसख राजाका भी बड़ा अद्भुत चरित्र कहागया ॥ ७१ ॥ इसलिये सब कामनाओं की सिद्धि के लिये
मनुष्य हनुमान्जी के कुण्ड में स्नानकरै ॥ ७२ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस अध्यायको सावधान होताहुआ जो मनुष्य पढ़ता या सुनता है वह अमित सुख को पाता है और
परलोकमें वह देवगणों समेत स्वर्गमें क्रीड़ा करता है ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहनुमत्कुण्डप्रशंसायांधर्मसखशतपु-
त्रावाप्तिर्नामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। जिमि अगस्ति के तीर्थ ढिग तप किय कक्षीवान। सोलहवें अध्याय में सोई चरित बखान॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो! आपही रुद्रजी से सेवित हनुमान् जीके कुण्डमें नहाकर तदनन्तर सावधान होताहुआ मनुष्य अगस्तितीर्थ को जावै॥ १॥ इस तीर्थ को साक्षात् कुम्भयोनि (अगस्त्य) जी ने बनाया है पुरातन समय सुमेरु व विन्ध्याचलका कलह वर्तमान होने पर॥ २॥ सब भुवनों को निरोध किये हुये विन्ध्याचल बढ़ता भया तब सब प्राणियों के उच्छ्वासरहित होने पर देवताओं ने॥ ३॥ कैलासपर्वत को जाकर उसको शिवजी से कहा तब पार्वती के विवाह के उत्साह कौतुकवाले उन शिवजी ने॥ ४॥ वशिष्ठादिक मुनियों को पार्वतीजी से

श्रीसूत उवाच॥ कुण्डेहनुमतःस्नात्वा स्वयंरुद्रेणसेविते॥ अगस्तितीर्थंविप्रेन्द्रास्ततोगच्छेत्समाहितः॥ १॥ एतद्विनिर्मितंतीर्थं साक्षाद्वैकुम्भयोनिना॥ प्रवर्त्तमानेकलहे पुरावैमेरुविन्ध्ययोः॥ २॥ निरुद्धभुवनाभोगो ववृधेविन्ध्यपर्वतः॥ तदाप्राणिषुसर्वेषु निरुच्छ्वासेषुदेवताः॥ ३॥ कैलासंपर्वतंगत्वा शम्भवेतद्व्यजिज्ञपन्॥ तदासपार्वतीपाणिग्रहणोत्सवकौतुकी॥ ४॥ प्रेषयित्वावशिष्ठादीन् पार्वतींयाचितुम्मुनीन्॥ कुम्भजत्वंनिगृह्णीष्व विन्ध्याद्रिमितिसोन्वशात्॥ ५॥ ततःसकुम्भजःप्राह भगवन्तम्पिनाकिनम्॥ उद्वाहवेषन्तेदेव नद्रक्ष्येहंकथंविभो॥ ६॥ इतिविज्ञापितःशम्भुः पुनःकुम्भजमब्रवीत्॥ कुम्भजोद्वाहवेषन्ते पार्वत्यासहितोह्यहम्॥ ७॥ वेदारण्येमहापुण्ये दर्शयिष्याम्यसंशयः॥ तद्गच्छशीघ्रंविन्ध्याद्रिं निग्रहीतुंमुनीश्वर॥ ८॥ एवमुक्तस्ततोगस्त्यो विन्ध्याद्रिंसनिगृह्यच॥ पादाक्रमणमात्रेण समीकुर्वन्महीतलम्॥ ९॥ चरित्वादक्षिणान्देशान्गन्धमादनमन्वगात्॥ सविदित्वा

प्रार्थना करनेके लिये पठाकर उन्हों ने अगस्तिजीसे यह कहा कि हे कुम्भज! तुम विन्ध्याचल को निग्रहकरो याने दण्डदेवो॥ ५॥ तदनन्तर उन अगस्तिजीने पिनाकधारी भगवान् शिवजीसे कहा कि हे विभो! मैं तुम्हारे विवाह के वेष को कैसे न देखूंगा॥ ६॥ इस प्रकार कहे हुये शिवजी ने फिर अगस्तिजीसे कहा कि हे कुम्भज! पार्वती समेत मैं तुम को विवाह के वेष को॥ ७॥ महापवित्र वेदारण्य में निस्सन्देह दिखाऊंगा इसलिये हे मुनीश्वर! विन्ध्याचल को निग्रह करने के लिये शीघ्रही जाइये॥ ८॥ तदनन्तर ऐसा कहे हुये वे अगस्त्यजी विन्ध्याचल को निग्रह कर पांव के दबानेही से पृथ्वी के बराबर करतेहुये॥ ९॥ दक्षिणके देशों में जाकर गन्धमा-

दनपर्वतको गये और गन्धमादनके प्रभावको जानकर उन महर्षि अगस्ति मुनिने वहां अपने नामसे महापवित्र तीर्थ किया वहां लोपामुद्राके सखा कुम्भज अगस्तिजी आज भी वर्तमान हैं ॥ १० । ११ ॥ उसमें नहाकर और जलको पीकर फिर मनुष्य जन्मभागी नहीं होताहै हे ब्राह्मणो ! इस लोक में त्रिकाल में भी उस तीर्थ के समान ॥ १२ ॥ मनुष्योंको भुक्ति, मुक्तिके फल को देनेवाला व सब मनोरथों का दायक पवित्र तीर्थ नहीं विद्यमान है कि जिस तीर्थ में स्नान के प्रभाव से ॥ १३ ॥ दीर्घतमाके पुत्र उस कक्षीवान्नामक ने स्वनय की मनोरमानामक कन्या को प्यारी स्त्री पाया है ॥ १४ ॥ कक्षीवान् की वही यह कथा पवित्र व पापों को नाशनेवाली है

महर्षिस्तु गन्धमादनवैभवम् ॥ १० ॥ तत्रतीर्थम्महापुण्यं स्वनाम्नानिर्ममेमुनिः ॥ लोपामुद्रासखस्तत्र वर्ततेद्यापिकुम्भजः ॥ ११ ॥ तत्रस्नात्वाचपीत्वाच नभूयोजन्मभाग्भवेत् ॥ इहलोकेत्रिकालेपि तत्तीर्थसदृशंद्विजाः ॥१२॥ तीर्थंनविद्यतेपुण्यम्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ सर्वाभीष्टप्रदंनृणांयत्तीर्थस्नानवैभवात् ॥ १३ ॥ सदीर्घतमसःपुत्रः कक्षीवान्नामनामतः ॥ लेभेमनोरमांनाम स्वनयस्यसुताम्प्रियाम् ॥ १४ ॥ कक्षीवतःकथासेयम्पुण्यापापविनाशिनी ॥ ताङ्कथांवःप्रवक्ष्यामि तच्छृणुध्वम्मुनीश्वराः ॥ १५ ॥ अस्तिदीर्घतमानाम मुनिःपरमधार्मिकः ॥ तस्यपुत्रःसमभवत्कक्षीवानितिविश्रुतः ॥ १६ ॥ उपनीतःसकक्षीवान्ब्रह्मचारीजितेन्द्रियः ॥ वेदाभ्यासायसगुरोःकुलेवासमकल्पयत् ॥ १७ ॥ उदङ्कस्यगुरोर्गेहे वसन्दीर्घतमःसुतः ॥ सोऽध्यैष्टचतुरोवेदान् साङ्गाञ्छास्त्राणिषट्तथा ॥ १८ ॥ इतिहासपुराणानि तथोपनिषदोपि च ॥ उषित्वाषष्टिवर्षाणि कक्षीवान्गुरुसन्निधौ ॥ १९ ॥ प्रयास्यन्स्वगृहंविप्रा गुरवेदक्षि

हे मुनीश्वरो ! उस कथा को मैं तुम लोगों से कहता हूं उस को सुनिये ॥ १५ ॥ दीर्घतमानामक बड़े धर्मवान् मुनि हुये और उन के कक्षीवान् ऐसा प्रसिद्ध पुत्र हुआ है ॥ १६ ॥ और यज्ञोपवीत किये हुये वे कक्षीवान् ब्रह्मचारी व जितेन्द्रिय थे उन्होंने वेदाभ्यास के लिये गुरु के कुलमें निवास किया ॥ १७ ॥ व उदंक गुरु के घर में बसते हुये दीर्घतमाके पुत्र उन कक्षीवान् ने अंगों समेत चारो वेदों व छहों शास्त्रों को पढ़ा ॥ १८ ॥ व गुरु के समीप साठ वर्ष बसकर कक्षीवान् ने इतिहास, पुराण और

उपनिषदोंको पढ़ा ॥ १९ ॥ व हे ब्राह्मणो ! अपने घर को जाते हुये उन्होंने गुरु के लिये दक्षिणा दिया व ब्रह्मविदोंमें श्रेष्ठ विद्वान् कक्षीवान् ने गुरु से कहा ॥ २० ॥
कक्षीवान् बोले कि हे महामुने ! मैं घर को जाऊंगा आज्ञा कीजिये हे उदंक ! इस समय दयादृष्टि से देखकर मेरी रक्षा कीजिये ॥ २१ ॥ ऐसा कहे हुये उदंकजीने
कक्षीवान् से कहा उदंक बोले कि हे कक्षीवन् ! मैं आज्ञा देताहूं तुम अपने घर को जावो ॥ २२ ॥ हे वत्स ! विवाह के लिये मैं तुम से यत्न को कहताहूं उस को सुनो
कि तुम गन्धमादनपर्वतरूप रामसेतु को जावो ॥ २३ ॥ वहां सब मनोरथोंको देनेवाला अगस्त्यजी से किया हुआ तीर्थ है जो कि मनुष्यों को भुक्ति मुक्ति को देनेवाला

णामदात् ॥ उवाचवैगुरुंविद्वान्कक्षीवान्ब्रह्मवित्तमः ॥ २० ॥ कक्षीवानुवाच ॥ अहंगृहम्प्रयास्यामि कुर्वनुज्ञाम्महामुने ॥
अवलोक्यकृपादृष्ट्या मांरक्षोदङ्कसाम्प्रतम् ॥ २१ ॥ उदङ्कस्त्वेवमुदितः कक्षीवन्तमथाब्रवीत् ॥ उदङ्क उवाच ॥ अ
नुजानामिकक्षीवन् गच्छत्वंस्वगृहम्प्रति ॥ २२ ॥ उद्वाहार्थमुपायन्ते वत्सवक्ष्यामितच्छृणु ॥ रामसेतुम्प्रयाहित्वं ग
न्धमादनपर्वतम् ॥ २३ ॥ तत्रागस्त्यकृतंतीर्थं सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदंपुंसां सर्वपापनिबर्हणम् ॥ २४ ॥
विद्यतेस्नाहितत्रत्वं सर्वमङ्गलसाधने ॥ त्रिवर्षंवसतत्रत्वं नियमाचारसंयुतः ॥ २५ ॥ वर्षेषुत्रिषुयातेषु चतुर्थेवत्सरे
ततः ॥ निर्गमिष्यतिमातङ्गः कश्चित्तीर्थोत्तमात्ततः ॥ २६ ॥ चतुर्दन्तोमहाकायः शरदभ्रसमच्छविः ॥ तंगजंगिरि
सङ्काशं स्नात्वातत्रसमारुह ॥ २७ ॥ आरुह्यतंगजंवत्स स्वनयस्यपुरींव्रज ॥ चतुर्दन्तगजस्थंत्वां दृष्ट्वाशक्रमिवाप
रम् ॥ २८ ॥ राजर्षिःस्वनयोधीमान् हर्षव्याकुललोचनः ॥ स्वकन्यायाःकृतंदुःखं त्यजेदेवहृदिस्थितम् ॥ २९ ॥

व सब पातकों का नाशक ॥ २४ ॥ विद्यमानहै सब मंगलों के साधनरूप उस तीर्थ में तुम स्नान करो व नियम और आचार से संयुत तुम वहां तीन वर्ष बसो ॥ २५ ॥
और तीन वर्ष बीतने पर तदनन्तर चौथे वर्षमें उस उत्तम तीर्थ से कोई हाथी निकलैगा ॥ २६ ॥ चार दांतोंवाला वह बडा शरीरवान् और शरद्ऋतु के मेघों के समान
छविवाला होगा उसमें नहाकर तुम पर्वत के समान उस हाथी पै चढ़ियेगा ॥ २७ ॥ व हे वत्स ! उस हाथी पै चढ़कर तुम स्वनय की पुरी को जाइयेगा चार दांतोंवाले हाथी
के ऊपर बैठे हुये तुम को दूसरे इन्द्र की नाई देखकर ॥ २८ ॥ हर्षसे व्याकुल नेत्रोंवाला स्वनयनामक बुद्धिमान् राजर्षि अपनी कन्या से किये हुये हृदय में स्थित दुःख

को अवश्यकर त्याग करैगा ॥ २६ ॥ क्योंकि पुरातन समय उसकी मनोरमानामक कन्या ने प्रतिज्ञा किया है कि सर्वांग श्वेत व चार दांतोंवाले बड़े शरीरवान् हाथी के ऊपर ॥ ३० ॥ चढ़कर जो आवैगा वह मेरा पति होगा अपनी कन्याकी उस प्रतिज्ञा को सुनकर उस राजा ने ॥ ३१ ॥ दुःख से विकलमन होकर सदैव चिन्तन करता था और इसप्रकार स्वनय के चिन्तन करतेहुये नारदजी आये ॥ ३२ ॥ व आये हुये उन मुनि को देखकर प्रसन्नतासंयुत बड़े धर्मवान् राजर्षि ने आगे जाकर पाद्य व अर्घ्यादिकों से पूजनकिया ॥ ३३ ॥ और नारदजी को प्रणाम कर राजाने यह वचन कहा कि हे देवर्षे! मेरी इस कन्याने पहिले प्रतिज्ञा कियाहै ॥ ३४ ॥ कि सर्वांगश्वेत

पुराहिप्रतिजज्ञेसा तस्यपुत्रीमनोरमा ॥ चतुर्दन्तम्महाकायं गजंसर्वाङ्गपाण्डुरम् ॥ ३० ॥ आरुह्ययःसमागच्छेत्समे भर्ताभवेदिति ॥ स्वकन्यायाःप्रतिज्ञान्तां समाकर्ण्यसभूपतिः ॥ ३१ ॥ दुःखाकुलमनाभूत्वा सततम्पर्यचिन्तयत् ॥ स्वनयेचिन्तयत्येवं नारदःसमुपागमत् ॥ ३२ ॥ तमागतम्मुनिंदृष्ट्वा राजर्षिरतिधार्मिकः ॥ प्रत्युद्गम्यमुदायुक्तः पाद्यार्घ्याद्यैरपूजयत् ॥ ३३ ॥ प्रणम्यनारदंराजा वचनञ्चेदमब्रवीत् ॥ कन्येयम्ममदेवर्षे प्रतिज्ञामकरोत्पुरा ॥ ३४ ॥ चतुर्दन्तंमहाकायं गजंसर्वाङ्गपाण्डुरम् ॥ आरुह्ययःसमागच्छेत्समेभर्ताभवेदिति ॥ ३५ ॥ चतुर्दन्तोमहाकायो गजः सर्वाङ्गपाण्डुरः ॥ सद्मभवेदिन्द्रभवने भूतलेनैवविद्यते ॥ ३६ ॥ इयञ्चदुस्तरामेनाम्प्रतिज्ञांबालिशाकरोत् ॥ इयम्प्रतिज्ञातितरां सततम्बाधतेहिमाम् ॥ ३७ ॥ अनूढाहिपितुःकन्या सर्वदाशोकमावहेत् ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा स्वनयं नारदोऽब्रवीत् ॥ ३८ ॥ माविषीदस्मराजर्षे तस्याईदृग्विधःपतिः ॥ भविष्यत्यचिरादेव पृथिव्याम्ब्राह्मणोत्तमः ॥ ३९ ॥

व चार दांतोंवाले व बड़े डीलवाले हाथी पै चढ़कर जो आवै वह मेरा पति होगा ॥ ३५ ॥ और चार दांतोंवाला व बड़े डीलवाला सर्वांगश्वेत हाथी इन्द्र के मन्दिर में होगा पृथ्वी में नहीं वर्तमानहै ॥ ३६ ॥ और इस मूर्खा कन्या ने यह कठिन प्रतिज्ञा की है और यह प्रतिज्ञा मुझ को सदैव बहुत बाधा करती है ॥ ३७ ॥ क्योंकि बिन ब्याहीहुई कन्या सदैव पिता को शोक देती है उसका ऐसा वचन सुनकर नारदजी स्वनय से बोले ॥ ३८ ॥ कि हे राजर्षे! शोच मत करो उस का ऐसा उत्तम ब्राह्मण

पति पृथ्वी में शीघ्रही होगा॥ ३९ ॥ कक्षीवान् ऐसा प्रसिद्ध तुम्हारा दामाद होगा यह कहकर नारदमुनि आकाशमार्ग से चलेगये ॥ ४० ॥ नारदजी से कहेहुये उस वचन को सुनकर स्वनय दिन रात उसप्रकार के संयोगको चाहता था॥ ४१ ॥ इसलिये हे बालतापस, सौम्य, महाभाग, कक्षीवन् ! शीघ्रतासंयुत तुम इससमय अगस्त्यतीर्थ को जावो॥ ४२ ॥ तुम्हारे सब मंगलोंकी सिद्धि होगी इसमें सन्देह नहीं है उदंकजी से इसप्रकार कहेहुये द्विजोत्तम कक्षीवान् ॥ ४३ ॥ गुरुसे आज्ञाको लेकर गन्धमादन पर्वतको गये और अगस्त्यतीर्थ को प्राप्त होकर जितेन्द्रिय कक्षीवान् ने उसमें स्नान किया ॥ ४४ ॥ व उस मुनीश्वर द्विजने एकदिन क्षेत्रोपवास किया फिर दूसरे दिन नहा-

कक्षीवानितिविख्यातो जामातातेभविष्यति ॥ इत्युक्त्वानारदमुनिर्ययावाकाशमार्गतः ॥ ४० ॥ स्वनयस्तद्वचःश्रुत्वा नारदेनप्रभाषितम् ॥ आकाङ्क्षतेदिवारात्रं तादृग्विधसमागमम् ॥ ४१ ॥ अतःसौम्यमहाभाग कक्षीवन्बालतापस ॥ अगस्त्यतीर्थमद्यत्वं स्नातुंगच्छत्वरान्वितः ॥ ४२ ॥ सर्वमङ्गलसिद्धिस्ते भविष्यतिनसंशयः ॥ उदङ्केनैवमुक्तोथ कक्षीवान्द्विजपुङ्गवः ॥ ४३ ॥ अनुज्ञातश्चगुरुणा प्रययौगन्धमादनम् ॥ सम्प्राप्यागस्त्यतीर्थञ्च तत्रसस्नौजिते न्द्रियः ॥ ४४ ॥ क्षेत्रोपवासमकरोद्दिनमेकम्मुनीश्वरः ॥ अपरेद्युःपुनःस्नात्वा पारणामकरोद्द्विजः ॥ ४५ ॥ रात्रौ तत्रैवसुष्वाप कक्षीवान्धर्मतत्परः ॥ एवंनियमयुक्तस्य तस्यकक्षीवतोमुनेः ॥ ४६ ॥ एकेनदिवसेनोनं वर्षत्रयमथा गमत् ॥ अथवर्षत्रयस्यान्ते तस्मिन्नेवदिनेमुनिः ॥ ४७ ॥ अन्वास्यपश्चिमांसन्ध्यां सुखंसुष्वापतत्तटे ॥ याममात्राव शिष्टायां विभावर्यामहाध्वनिः ॥ ४८ ॥ उदभूत्प्रलयाम्भोधिवीचिकोलाहलोपमः ॥ तेनशब्देनमहता कक्षीवा न्प्रत्यबुध्यत ॥ ४९ ॥ ततस्तुस्वनयोनाम राजासानुचरोबली ॥ मृगयाकौतुकीतत्र मथुरापतिराययौ ॥ ५० ॥

कर पारण किया ॥ ४५ ॥ और धर्म में तत्पर कक्षीवान् रात्रि में वहीं सोरहे इसप्रकार नियम संयुत उन कक्षीवान् मुनि के ॥ ४६ ॥ एकदिन कम तीन वर्ष व्यतीत हुये इसके अनन्तर तीन वर्ष के अन्त में उसी दिन मुनिने ॥ ४७ ॥ सायंकाल की सन्ध्याकी उपासना कर उस के किनारे सुखपूर्वक शयन किया और पहरभर रात बाकी रहने पर बड़ा भारी शब्द ॥ ४८ ॥ प्रलयसमुद्र की लहरियों के कोलाहल के समान हुआ और उस बड़े भारी शब्द से कक्षीवान् जगपड़े ॥ ४९ ॥ तदनन्तर शिकार का

कौतुकवाला मथुरा का स्वामी स्वनयनामक बलवान् राजा सेवको समेत वहां आया ॥ ५० ॥ और हाथी, सिंह, शूकर, महिष व रुरु तथा अन्य मृगविशेषों को मारते हुये उस राजा ने बाणों से वध किया ॥ ५१ ॥ और मन्त्रियों समेत व रथ, घोड़े और हाथियों से संयुत तथा योधाओं से युक्त वह शिकार में लगा हुआ राजा अगस्त्य तीर्थ के समीप गया ॥ ५२ ॥ और वह राजा शिकार से थकगया व थकी हुई सेना से संयुत वह राजा उस तीर्थ के किनारे स्थानों में स्थित हुआ ॥ ५३ ॥ तदनन्तर निर्मल प्रातःकाल में ये मुनिश्रेष्ठ कक्षीवान् अगस्त्यतीर्थ में नहाकर पूर्व सन्ध्योपासन कर ॥ ५४ ॥ उस के किनारे मन्त्रों को जपते हुये नियम से संयुत वे स्थित हुये

विनिघ्नन्सगजान्सिंहान् वराहान्महिषान्रुरून् ॥ अन्यान्मृगविशेषांश्च सराजान्यवधीच्छरैः ॥ ५१ ॥ सामात्यो मृगयासक्तो रथवाजिगजैर्युतः ॥ अगस्त्यतीर्थसविधमाससादभटान्वितः ॥ ५२ ॥ सराजामृगयाश्रान्तः श्रान्तसैनिकसंवृतः ॥ तत्तीर्थतीरप्रान्तेषु निषसादमहीपतिः ॥ ५३ ॥ ततःप्रभातेविमले कक्षीवान्मुनिसत्तमः ॥ अगस्त्यतीर्थेस्नात्वासौ सन्ध्याम्पूर्वामुपास्य च ॥ ५४ ॥ तस्यतीरेजपन्मन्त्रांस्तस्थौनियमसंयुतः ॥ अत्रान्तरेतीर्थवराद्गजएकोविनिर्ययौ ॥ ५५ ॥ चतुर्दन्तोमहाकायः कैलासइवमूर्त्तिमान् ॥ ससमुत्थायतत्तीर्थादगात्कक्षीवदन्तिकम् ॥ ५६ ॥ तमागतमुदङ्कोक्तलक्षणैरुपलक्षितम् ॥ तदानिरीक्ष्यकक्षीवानारोढुंस्नानमातनोत् ॥ ५७ ॥ नमस्कृत्य च तत्तीर्थं श्लाघमानोमुहुर्मुहुः ॥ आरुरोह च कक्षीवांश्चतुर्दन्तंमहागजम् ॥ ५८ ॥ आरुह्यतञ्चतुर्दन्तं रजताचलसन्निभम् ॥ स्वनयस्य पुरीमेव कक्षीवान्गन्तुमैच्छत ॥ ५९ ॥ तमारूढञ्चतुर्दन्तश्वेतदन्ताचलोपमम् ॥ सवीक्ष्यनिश्चिकायैनं कक्षीवानिति

इसी अवसर में उत्तम तीर्थ से एक हाथी निकला ॥ ५५ ॥ और चार दांतोंवाला व बड़े डीलवाला मूर्तिमान् कैलास की नाई वह हाथी उस तीर्थ से ऊपर निकल कर कक्षीवान् के समीप गया ॥ ५६ ॥ और उदंक मुनिसे कहेहुये लक्षणोंसे चिह्नित उस आये हुये हाथी को देखकर उस समय कक्षीवान्ने चढ़नेके लिये स्नान किया ॥ ५७ ॥ व बार बार प्रशंसा करते हुये कक्षीवान् उस तीर्थ को प्रणाम कर चारदांतोंवाले महागज पै सवार हुये ॥ ५८ ॥ व चांदी के पर्वत के समान उस चौदन्ते हाथी पै चढ़कर कक्षीवान् ने स्वनय की पुरी को जाने के लिये इच्छा किया ॥ ५९ ॥ और चौदन्ते व सुफ़ेद दांतोंवाले तथा पर्वत के समान उस हाथी पै चढ़े हुये इन को देखकर उस

भूपति ने ऐसा निश्चय किया कि ये कक्षीवान् हैं ॥ ६० ॥ व प्रसन्नमनवाले राजा उसके समीप आये और निकट आकर राजा ने उस समय कक्षीवान् से कहा ॥ ६१ ॥ स्वनय बोले कि हे ब्रह्मन्! तुम किस के पुत्र हो व तुम्हारा क्या नाम है इस को मुझ से कहो और इस हाथी पै चढ़कर तुम कहा जानेके लिये इच्छा करतेहो ॥ ६२ ॥ स्वनय से ऐसा कहे हुये कक्षीवान् ने वचन कहा कक्षीवान् बोले कि कक्षीवान् ऐसा प्रसिद्ध मैं दीर्घतमा का पुत्रहूं ॥ ६३ ॥ और मैं स्वनय राजर्षि के नगर को जाताहूं व उस की मनोरमा कन्या को ब्याहा चाहताहूं ॥ ६४ ॥ हे नराधिप! उस की प्रतिज्ञा को पूर्ण करता हुआ चौदन्ते हाथी पै सवार मैं स्वनय की कन्या का विवाह

भूपतिः ॥ ६० ॥ प्रसन्नहृदयोराजा तस्यान्तिकमुपागमत् ॥ तदाभ्याशमुपागम्य कक्षीवन्तंनृपोब्रवीत् ॥ ६१ ॥ स्वनय उवाच ॥ त्वम्ब्रह्मन्कस्यपुत्रोसि नामकिंतवमेवद ॥ गजमेनंसमारुह्य कुत्रवागन्तुमिच्छसि ॥ ६२ ॥ स्वनयेनैवमुक्तस्तु कक्षीवान्वाक्यमब्रवीत् ॥ कक्षीवानुवाच ॥ पुत्रोहंदीर्घतमसः कक्षीवानितिविश्रुतः ॥ ६३ ॥ स्वनयस्यतुराजर्षेर्गच्छामिनगरम्प्रति ॥ अहमुद्वोढुमिच्छामि तस्यकन्याम्मनोरमाम् ॥ ६४ ॥ चतुर्दन्तगजारूढस्तत्प्रतिज्ञाञ्चपूरयन् ॥ स्वनयस्यसुतापाणिं ग्रहीष्यामिनराधिप ॥ ६५ ॥ तद्भाषितंसमाकर्ण्य श्रोत्रपीयूषवर्षिणम् ॥ हर्षसम्फुल्लनयनः स्वनयोवाक्यमब्रवीत् ॥ ६६ ॥ कक्षीवन्भोःकृतार्थोस्मि सएवस्वनयोह्यहम् ॥ उद्वोढुमिच्छसिभवान्यस्यकन्याम्मनोरमाम् ॥ ६७ ॥ स्वागतन्तेमुनिश्रेष्ठ कक्षीवन्बालतापस ॥ ममकन्यांगृहाणत्वन्तपोधनमनोरमाम् ॥ ६८ ॥ तयासहचरन्धर्मान् गार्हस्थ्यम्प्रतिपालय ॥ राज्ञोक्तःसतदोवाच कक्षीवान्धर्मतत्परः ॥ ६९ ॥ राजानंस्वनयम्प्री

करूंगा ॥ ६५ ॥ कानों के लिये अमृत बरसानेवाले उस वचन को सुनकर हर्ष से प्रफुल्लित नयनोंवाले स्वनयने वचन कहा ॥ ६६ ॥ कि हे कक्षीवन्! मैं कृतार्थ होगया और मैं वही स्वनयहूं कि जिस की मनोरमा कन्या को आप ब्याहा चाहते हो ॥ ६७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ, बालतापस, कक्षीवन्! तुम्हारा आना अच्छा हुआ हे तपोधन! तुम मेरी मनोरमा कन्या को ग्रहण करो ॥ ६८ ॥ और उस समेत धर्म को करते हुये तुम गृहस्थी को पालन करो राजा से कहे हुये वे धर्म में तत्पर कक्षीवान् उस समय मधुरा-

पुरवासी स्वनयनामक प्रसन्न राजा से बोले कक्षीवान् बोले कि हे प्रभो! दीर्घतमा नामक मेरा पिता वेदारण्य में है ॥ ६९ । ७० ॥ तपस्या करता हुआ वह सौम्य नियम व आचार में तत्पर है हे भूपते! तुम उस के समीप एक ब्राह्मण को पठावो ॥ ७१ ॥ उस समय वैसा कहे हुये प्रसन्नमनवाले उस स्वनय राजा ने अनेक सेना समेत अपने पुरोहित सुदर्शननामक ब्राह्मण को वेदारण्यस्थल को पठाया और स्वनय राजा से आज्ञा दिया हुआ वह सुदर्शन ॥ ७२ । ७३ ॥ बडी सेना समेत वेदारण्य को गया और पुरोहित ने वहां कुटी में बैठे व तप करते हुये तथा वेदारण्यपति को ध्यान करते हुये उन दीर्घतमानामक मुनि को उत्तम मन्त्र जपते हुये देखा ॥ ७४ । ७५ ॥

तम्मथुरापुरवासिनम् ॥ कक्षीवानुवाच ॥ पितादीर्घतमानाम वेदारण्येममप्रभो ॥ ७० ॥ आस्तेतपश्चरन्सौम्यो नियमाचारतत्परः ॥ तस्यान्तिकम्प्रेषयत्वं विप्रमेकंधरापते ॥ ७१ ॥ तथोक्तःसतदाराजा स्वनयोहृष्टमानसः ॥ अनेकसेनयासार्द्धम्प्राहिणोत्स्वपुरोधसम् ॥ ७२ ॥ विप्रंसुदर्शनंनाम वेदारण्यस्थलम्प्रति ॥ सुदर्शनःसमादिष्टः स्वनयेननृपेणसः ॥ ७३ ॥ महत्यासेनयासार्धम्प्रययौवेदकाननम् ॥ तत्रोटजेसमासीनं तंदीर्घतमसम्मुनिम् ॥ ७४ ॥ तपश्चरन्तमासीनंध्यायन्वेदाटवीपतिम् ॥ पुरोहितोददर्शाथ जपन्तम्मन्त्रमुत्तमम् ॥ ७५ ॥ प्रणाममकरोत्तस्मै मुनयेससुदर्शनः ॥ उवाचदीर्घतमसम्मुनिम्प्रह्लादयन्निव ॥ ७६ ॥ सुदर्शन उवाच ॥ कच्चित्तेकुशलम्ब्रह्मन्कच्चित्तेवर्धतेतपः ॥ आश्रमेकुशलंकच्चित्कच्चिद्धर्मेसुखंवद ॥ ७७ ॥ पृष्टःसुदर्शनेनैवं मुनिर्दीर्घतमास्तदा ॥ सुदर्शनमुवाचेदमर्घ्यादिविधिपूर्वकम् ॥ ७८ ॥ दीर्घतमा उवाच ॥ सर्वत्रकुशलम्ब्रह्मन् सुदर्शनमहामते ॥ ममवेदाटवीनाथ कृपयाना

और उस सुदर्शन ने उन मुनि के लिये प्रणाम किया व दीर्घतमा मुनि को आनन्द करते हुये से कहा ॥ ७६ ॥ सुदर्शन बोला कि हे ब्रह्मन्! क्या तुम्हारा कुशल है व तुम्हारी तपस्या क्या बढ़ती है व आश्रम में कुशल है और क्या धर्म में सुख है इस को कहिये ॥ ७७ ॥ उस समय सुदर्शन से ऐसा पूछे हुये दीर्घतमा मुनि ने अर्घ्यादि विधिपूर्वक सुदर्शन से यह कहा ॥ ७८ ॥ दीर्घतमा बोले कि हे महामते, ब्रह्मन्, सुदर्शन! वेदारण्यनाथ की दया से मेरे सब कहीं कुशल है कहीं अमंगल

नहीं है ॥ ७९ ॥ व हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे भी कुशल है और क्या सुख से आना हुआ व हे सुदर्शन ! मेरे आश्रम में तुम्हारे आने का क्या कार्य है ॥ ८० ॥ वेदविदों में
श्रेष्ठ तुम स्वनय के पुरोधाहो और मथुरापुरनिवासी उस महाराज को छोडकर ॥ ८१ ॥ बड़ी सेना समेत तुम किस लिये यहा आये हो उस समय दीर्घतमा से ऐसा कहे
हुये उस सुदर्शन ने ॥ ८२ ॥ ज्वलित तेजवाले उन महात्मा मुनि से कहा कि हे ब्रह्मन् ! आप की दया से मेरे सब कहीं सदैव कुशल है ॥ ८३ ॥ व हे भगवन् !
स्वनय राजा ने साष्टाग प्रणाम कर मेरे मुख से जो तुम से नम्र वचन कहा है उस को सुनो ॥ ८४ ॥ स्वनय बोले कि हे ब्रह्मन् ! इस समय गन्धमादनपर्वतपै अगस्त्य

शुभंकचित् ॥ ७९ ॥ तवापिकुशलंब्रह्मन् किंसुखागमनंतथा ॥ किंवागमनकार्यन्ते सुदर्शनममाश्रमे ॥ ८० ॥
स्वनयस्यपुरोधास्त्वं खलुवेदविदांवरः ॥ तंविहायमहाराजं मथुरापुरवासिनम् ॥ ८१ ॥ महत्यासेनयासार्धं कि
मर्थंत्वमिहागतः ॥ इत्युक्तोदीर्घतमसा तदानींससुदर्शनः ॥ ८२ ॥ उवाचतम्महात्मानम्मुनिंज्वलिततेजसम् ॥
सर्वत्रमेसुखम्ब्रह्मन्भवतःकृपयासदा ॥ ८३ ॥ भगवन्स्वनयोराजा साष्टाङ्गंप्रणिपत्यतु ॥ त्वाम्प्राहप्रश्रितंवाक्यम्म
न्मुखेनश्रृणुष्वतत् ॥ ८४ ॥ स्वनय उवाच ॥ कक्षीवांस्तेसुतोब्रह्मन् गन्धमादनपर्वते ॥ स्नानंकुर्वन्नगस्त्यस्य तीर्थे
सम्प्रतिवर्तते ॥ ८५ ॥ तस्यरूपंतपोधर्ममाचारान्वैदिकांस्तथा ॥ वेदशास्त्रप्रवीणत्वमभिजात्यञ्चतादृशम् ॥ ८६ ॥
लोकोत्तरमिदंसर्वं विज्ञायतवनन्दने ॥ मनोरमांसुतांतस्मै दातुमिच्छाम्यहम्मुने ॥ ८७ ॥ मृगयाकौतुकीचाहं ग
न्धमादनपर्वतम् ॥ आगतोस्मुनिशार्दूल वर्त्तेयुष्मत्सुतान्तिके ॥ ८८ ॥ पित्रनुज्ञांविनानाहमुद्वहेयंसुतान्तव ॥ इति

तीर्थ में स्नान करता हुआ तुम्हारा कक्षीवान् पुत्र वर्तमान है ॥ ८५ ॥ उसका रूप, तप, धर्म, आचार व वैदिक धर्म और वेदशास्त्र में प्रवीणता व वैसी कुलीनता ॥ ८६ ॥
यह सब तुम्हारे पुत्र में संसार से विशेष जानकर हे मुने ! मैं उस के लिये मनोरमा कन्या को देना चाहताहूं ॥ ८७ ॥ और हे मुनिश्रेष्ठ ! शिकार के कौतुक-
वाला मैं गन्धमादनपर्वत पै आया व तुम्हारे पुत्र के समीप वर्तमानहूं ॥ ८८ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारा कक्षीवान् पुत्र यह कहताहै कि पिता की आज्ञा के विना मैं तुम्हारी

कन्या को नहीं व्याहूंगा ॥ ८९ ॥ इस कारण उस के लिये मेरी कन्या को देने के लिये आप मेरे ऊपर दया करो मैंने सेना समेत सुदर्शन को तुम्हारे समीप पठाया है ॥ ९० ॥ सुदर्शन बोला कि हे भगवन् ! राजा ने इस लिये तुम्हारे समीप पठाया है और आप उस राजा के चिकीर्षित (करने की इच्छा) को मानो ॥ ९१ ॥ श्री सूतजी बोले कि यह कहकर स्वनय का पुरोहित चुप होरहा तदनन्तर दीर्घतमा ने स्वनय के पुरोहित से कहा ॥ ९२ ॥ दीर्घतमा बोले कि हे सुदर्शन ! स्वनय ने जो कहा वह वैसाही होवै क्योंकि यह विवाह का मंगल मुझ को भी बहुत प्यारा है ॥ ९३ ॥ हे विप्रजी ! मैं गन्धमादनपर्वत को आऊंगा हे ब्राह्मणो ! ऐसा कहकर

ब्रूतेतवसुतः कक्षीवान्मुनिसत्तम ॥ ८९ ॥ तद्भवान्मत्सुतांतस्मै दातुंमेनुग्रहंकुरु ॥ अप्रेषयंसमीपन्ते सेनयाचसुदर्शनम् ॥ ९० ॥ सुदर्शन उवाच ॥ इतिमाम्भगवन्राजा प्राहिणोत्तवसन्निधिम् ॥ तद्भवाननुमन्यस्व राज्ञस्तस्य चिकीर्षितम् ॥ ९१ ॥ श्रीसूतउवाच ॥ इत्युक्काविररामाथ स्वनयस्यपुरोहितः ॥ ततोदीर्घतमाःप्राह स्वनयस्यपुरोहितम् ॥ ९२ ॥ दीर्घतमा उवाच ॥ सुदर्शनभवत्वेवङ्कथितंस्वनयेनयत् ॥ ममाभीष्टतमंह्येतत्पाणिग्रहणमङ्गलम् ॥ ९३ ॥ आगमिष्याम्यहंविप्र गन्धमादनपर्वतम् ॥ इत्युक्कासमुनिर्विप्राः सचदीर्घतमामुनिः ॥ ९४ ॥ वेदाटवीपतिंनत्वा भक्तिप्रवणचेतसा ॥ सुदर्शनेनसहितः सेतुमुद्दिश्यनिर्ययौ ॥ ९५ ॥ षड्भिर्दिनैर्मुनिःपुण्यं प्रययौगन्धमादनम् ॥ अगस्तितीर्थतीरञ्च गत्वादीर्घतमामुनिः ॥ ९६ ॥ अथपुत्रन्ददर्शाग्रे कक्षीवन्तम्महामुनिः ॥ कक्षीवान्पितरंदृष्ट्वा ववन्दे नामकीर्तयन् ॥ ९७ ॥ ततोदीर्घतमायोगी स्वाङ्कमारोप्यतंसुतम् ॥ मूर्ध्न्युपाघ्रायसस्नेहं सस्वजेपुलकाकुलः ॥ ९८ ॥

वे दीर्घतमा मुनि ॥ ९४ ॥ भक्ति से नम्र चित्त करके वेदारण्यपति को प्रणाम कर सुदर्शन समेत सेतु को उद्देश कर चले ॥ ९५ ॥ और छहदिनों से मुनि पवित्र गन्धमादन को गये और अगस्तितीर्थ के किनारे जाकर दीर्घतमा मुनि ने ॥ ९६ ॥ आगे कक्षीवान् पुत्र को देखा व महामुनि कक्षीवान् ने पिता को देखकर नाम कहते हुये प्रणाम किया ॥ ९७ ॥ तदनन्तर दीर्घतमा योगी ने अपनी गोदी में उस पुत्र को बिठाकर मस्तक में सूंघकर रोमांच से संयुत उसने स्नेह समेत लिपटा लिया ॥ ९८ ॥

व उस समय दीर्घतमा ऋषि ने कुशल पूछा कि हे वत्स, कक्षीवन् ! क्या तुम ने सब वेदों को पढ़ा है ॥ ९९ ॥ व हे वत्स ! तुम ने क्या शास्त्रों को पढ़ा है इस सत्र को
मुझ से कहो अपने पिता से इस प्रकार पूछे हुये उस कक्षीवान् ने सब वृत्तान्त को कहा ॥ १०० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीका
यामगस्तितीर्थप्रशंसायाकक्षीवदुद्वाहोद्योगोनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो० । कुम्भज तीर्थ प्रभाव सन कक्षीवान विवाह । भयो सत्रहें में सोई बरण्यो सहित उछाह ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनीश्वरो ! फिर कक्षीवान् ने उस पिता से यह कहा कि

कुशलम्परिपप्रच्छ तदादीर्घतमाऋषिः ॥ सर्ववेदास्त्वयाधीताः कक्षीवन्किमुवत्सक ॥ ९९ ॥ शास्त्राण्यपाठीःकिं
त्वंवा वत्ससर्ववदस्वमे ॥ इतिपृष्टःस्वपित्रास सर्वनिर्वृत्तमब्रवीत् ॥ १०० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येऽगस्तितीर्थप्रशंसायांकक्षीवदुद्वाहोद्योगोनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥

श्रीसूत उवाच ॥ पुनरित्याहकक्षीवान्पितरन्तंमुनीश्वराः ॥ ततोदङ्केनगुरुणा प्रेषितोहमिहाधुना ॥ १ ॥ समा
गतोस्मितीर्थेस्मिन्नागस्त्येमुनिसत्तम ॥ स्वनयस्यसुतोद्वाहसिद्ध्यर्थंगुरुचोदितः ॥ २ ॥ उपायन्तंनिगदितमत्रकुर्व
न्निवर्तिषम् ॥ वर्षत्रयावसानेमामुद्वाहोपायसंयुतम् ॥ ३ ॥ स्वनयोत्रैवतिष्ठन्तमाससादयदृच्छया ॥ सचमामेत्यक
न्यान्ते दास्यामीतिवचोब्रवीत् ॥ ४ ॥ ततोस्मदनुरोधेन त्वामाह्वयदयन्नृपः ॥ इतीरयित्वापितरं कक्षीवान्विरराम सः ॥ ५ ॥
सुदर्शनोथविप्रेन्द्रः पुरोधाःस्वनयस्यसः ॥ प्रययौराजसविधं स्वनयायानिवेदितुम् ॥ ६ ॥ राजानन्तंसमासाद्य स्व

तदनन्तर इस समय उदंक गुरु ने मुझ को यहां पठाया है ॥ १ ॥ हे मुनिसत्तम ! स्वनय की कन्या के विवाह की सिद्धि के लिये गुरु से प्रेरणा किया हुआ मैं इस अ-
गस्तितीर्थ में आयाहूं ॥ २ ॥ और उस कहे हुये यत्न को यहां करता हुआ मैं वर्तमान हुआ व तीन वर्ष के अन्त में विवाह के यत्न से संयुत यहीं टिके हुये मेरे समीप
स्वनयजी अपनी इच्छा से प्राप्त हुये और मेरे समीप आकर उन्होंने यह वचन कहा कि तुम को मैं कन्या को दूंगा ॥ ३ । ४ ॥ इसलिये हमारे अनुरोध से इस राजा ने
तुम को बुलाया है पिता से ऐ[illegible] वह कक्षीवान् चुप होरहा ॥ ५ ॥ इस के अनन्तर स्वनय का पुरोहित वह सुदर्शन द्विजेन्द्र स्वनय से कहने के लिये राजा के

समीप गया ॥ ६ ॥ और उस स्वनय राजा के समीप जाकर उस सुदर्शन ने उन दीर्घतमा मुनि को प्राप्त बतलाया ॥ ७ ॥ तदनन्तर वह स्वनय राजा पुरोहित से प्राप्त हुये मुनि को सुनकर देखने के लिये यकायक पटमण्डप (तम्बू) से निकला ॥ ८ ॥ और जैसे सुरराज इन्द्र ब्रह्मा को देखैं वैसेही स्वनय राजा ने अगस्त्यतीर्थ के किनारे पुत्र समेत उन श्रेष्ठ ऋषि को देखा ॥ ९ ॥ व हे ब्राह्मणो ! लोकों के कल्याणरूप दीर्घतमा के चरणों को प्रणाम किया तब उन दीर्घतमा मुनि ने राजा को उठाकर ॥ १० ॥ इस के अनन्तर स्वनय राजा के लिये आशीर्वाद युक्त किया इसी अवसर में शिष्यगणों से घिरे उदंक महर्षि भी रामसेतु पै धनुष्कोटि में नहाने के लिये आगये हे मुनी-

नयंससुदर्शनः ॥ प्राप्तंनिवेदयामास तंदीर्घतमसम्मुनिम् ॥ ७ ॥ ततःसराजास्वनयो मुनिंप्राप्तंपुरोहितात् ॥ श्रुत्वावि निर्ययौद्रष्टुं सहसापटमण्डपात् ॥ ८ ॥ अगस्त्यतीर्थतीरेतं सपुत्रमृषिसत्तमम् ॥ ददर्शराजास्वनयो ब्रह्माणमिवदेवरा ट् ॥ ९ ॥ ववन्देदीर्घतमसश्चरणौलोकमङ्गलौ ॥ उत्थाप्यनृपतिंविप्रास्तदादीर्घतमामुनिः ॥ १० ॥ आशिषंप्रयुयोजा थ स्वनयायनृपायसः ॥ अत्रान्तरेसमायात उदङ्कोपिमहानृषिः ॥ ११ ॥ रामसेतौधनुष्कोटौ स्नातुंशिष्यगणैर्वृतः ॥ लक्षसङ्ख्यामुनिगणस्तेनसाकंमुनीश्वराः ॥ १२ ॥ उदङ्कोगस्त्यतीर्थेस्मिन् स्नातुंसम्प्राप्तवान्मुनिः ॥ उदङ्कमागतंदृष्ट्वा कक्षीवान्प्रणनामतम् ॥ १३ ॥ अकरोदाशिषंविप्रः शिष्यायाथगुरुस्तदा ॥ अथदीर्घतमाविप्रस्तमुदङ्कंमहामुनिः॥१४॥ कुशलंपरिपप्रच्छ सप्रीतम्मुनिपुङ्गवम् ॥ उभौतौमुनिशार्दूलौ सर्वलोकेषुविश्रुतौ ॥ १५ ॥ कथयामासतुस्तत्र कथाः पापप्रणाशिनीः ॥ अथराजाततोदङ्कं प्रणनाममुनीश्वरम् ॥ १६ ॥ उदङ्कोप्याशिषन्तस्मै प्रायुङ्क्तस्वनयायवै ॥ राजा

श्वरो ! लक्षसंख्यक मुनिगण थे उन के साथ ॥ ११ । १२ ॥ उदंक मुनि इस अगस्त्यतीर्थ में नहाने के लिये प्राप्त हुये व आये हुये उन उदंक को देखकर कक्षीवान् ने प्रणाम किया ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर विप्र गुरुजी ने शिष्य के लिये आशीर्वाद किया इस के बाद दीर्घतमा महामुनि ब्राह्मण ने उन उदंक ॥ १४ ॥ प्रसन्नता समेत मुनिश्रेष्ठ से कुशल पूछा और सब लोकों में प्रसिद्ध उन दोनों मुनिश्रेष्ठों ने ॥ १५ ॥ वहां पाप की विनाशनेवाली कथाओं को कहा तदनन्तर राजाने उदंक मुनी-

श्वर को प्रणाम किया ॥ १६ ॥ व उदंक ने भी उस स्वनय के लिये आशीर्वाद युक्त किया इसके अनन्तर वहा प्रसन्न होते हुये राजा ने दीर्घतमा मुनि से यह वचन कहा कि विवाह किया जावै तब उन दीर्घतमा मुनि ने यह कहा कि वैसाही होवै ॥ १७।१८॥ हे महामते, राजन्! उत्तम मुहूर्त में कल्ह ही विवाह किया जावै व इसी गन्धमादन पै विवाह किया जावै ॥ १९ ॥ इसलिये यहां शीघ्रही कन्या व रनिवास को लावो यह कहे हुये स्वनय राजा ने अपने तावू को जाकर ॥ २० ॥ वर्षों में बड़े सौ संख्यक वृद्धों को बुलाकर उस समय कन्या व रनिवास को लाने के लिये पठाया ॥ २१ ॥ व स्वनय से प्रेरणा किये हुये वे मुख्य वृद्धलोग मन के समान वेगवाले घोड़ों पै

थस्वनयःप्रीतस्तत्रवाक्यमभाषत ॥ १७॥ मुनिंतंदीर्घतमसं विवाहःक्रियतामिति ॥ तथास्त्वित्यवदत्सोपि तदादीर्घ तमामुनिः ॥ १८ ॥ श्वएवक्रियतांराजन्सुमुहूर्तेमहामते ॥ अत्रैवपाणिग्रहणं क्रियतांगन्धमादने ॥ १९ ॥ तस्मादिहा नयक्षिप्रं कन्यामन्तःपुरन्तथा ॥इत्युक्तःस्वनयोराजा गत्वास्वपटमण्डपम् ॥ २० ॥ आहूयशतसङ्ख्याकान्वृद्धान्वर्षव रांस्तदा ॥ आनेतुंप्रेषयामास कन्यामन्तःपुरन्तथा ॥ २१॥ तेवर्षवरमुख्यास्तु स्वनयेनप्रचोदिताः॥ मनोजवान्समारु ह्य वाजिनोमथुरांययुः ॥ २२॥ गत्वाचान्तःपुरन्तूर्णं वृत्तंसर्वंनिवेद्यच ॥ कन्ययान्तःपुरेणापि सहिताःपुनराययुः ॥२३॥ ततःपरस्मिन्दिवसे शुभेदीर्घतमाऋषिः ॥ गोदानादीनिपुत्रस्य विधिवन्निरवर्तयत् ॥ २४ ॥ निर्वृत्तेष्वथकक्षीवा न्गोदानादिषुकर्मसु ॥ उद्वोढुंराजतनयां पित्राचगुरुणासह ॥ २५ ॥ चतुर्दन्तंमहाकायं गजंसर्वाङ्गपाण्डुरम् ॥ आरुह्यह र्षसंयुक्तो द्वितीयइवदेवराट् ॥ २६ ॥ मनोरमायाःकन्यायाः पूरयंश्चमनोरथम् ॥ ब्राह्मणैर्बहुसाहस्रैः सहितःस्वस्तिवाच

चढ़कर मथुरापुरी को गये ॥ २२ ॥ और शीघ्रही रनिवास को जाकर सब वृत्तान्त को कहकर कन्या व रनिवास समेत फिर आगये ॥ २३ ॥ तदनन्तर अन्य उत्तम दिन में दीर्घतमा ऋषि ने पुत्र के गोदानादिक कर्मों को विधिपूर्वक कराया॥ २४ ॥ इसके अनन्तर गोदानादिक कर्मों के निवृत्त होने पर राजकन्या को व्याहने के लिये कक्षीवान् पिता व गुरु समेत ॥ २५ ॥ सर्वांगश्वेत व बड़ी देहवाले चौदन्ते हाथी पै चढ़कर दूसरे इन्द्र की नाईं हर्षसंयुत हुये ॥ २६ ॥ और मनोरमा कन्या के मनोरथ

को पूर्ण करते हुये बहुत हज़ार स्वस्तिवाचक ब्राह्मणों समेत ॥ २७ ॥ मंगलकार्य किये हुये ये कक्षीवान् प्रसन्न होकर राजर्षि स्वनय के बन्दनवार से शोभित द्वारवाले पटमण्डप (तम्बू) को गये ॥ २८ ॥ तदनन्तर किये हुये मंगल भूषणोंवाली वह स्वनय की कन्या चार दांतोंवाले व बड़े डील तथा श्वेत दांतोंवाले हाथी पै बैठे हुये ॥ २९ ॥ अपने विवाह में उत्कण्ठित आते हुये कक्षीवान् को देखकर इसकारण प्रसन्नता को प्राप्त हुई कि मुझ से कीहुई प्रतिज्ञा इस समय पूर्ण हुई ॥ ३० ॥ और दीर्घतमा व उदंक से संयुत कक्षीवान् क्रम से तम्बू के बाहरी द्वार को आये ॥ ३१ ॥ तदनन्तर आये हुये कक्षीवान् को देखकर स्वनय राजा सुदर्शन समेत आगे गये ॥ ३२ ॥

कैः ॥ २७ ॥ तोरणालङ्कृतद्वारं राजर्षेःपटमण्डपम् ॥ कृतमङ्गलकृत्योसौ कक्षीवान्मुदितोययौ ॥ २८ ॥ ततःस्वनय कन्यासा कृतमङ्गलभूषणा ॥ चतुर्दन्तम्महाकायं श्वेतदन्तगजस्थितम् ॥ २९ ॥ कक्षीवन्तंसमायातं दृष्ट्वास्वोद्वाहनोत्सुकम् ॥ प्रतिज्ञामत्कृतेदानीं निर्वृत्तेतिमुदंययौ ॥ ३० ॥ कक्षीवान्दीर्घतमसा तथोदङ्केनसंयुतः ॥ पटाकारबहिर्द्वारं क्रमाद्राज्ञःसमाययौ ॥ ३१ ॥ स्वनयस्तुततोदृष्ट्वा कक्षीवन्तंसमागतम् ॥ प्रत्युज्जगामसहितः सुदर्शनपुरोधसा ॥ ३२ ॥ कक्षीवतोवरस्याथ कन्यकापरिचारिकाः ॥ राजतैःस्वर्णपात्रैश्च चक्रुर्नीराजनाविधिम् ॥ ३३ ॥ स्वनयेनसमाहूतो ब्राह्मणैःपरिवारितः ॥ प्रविवेशाथलक्ष्मीवान् कक्षीवान्राजमन्दिरम् ॥ ३४ ॥ ततोवरेणसहितं तन्दीर्घतमसम्मुनिम् ॥ सोदङ्कमनयद्राजा स्वगृहंविनयान्वितः ॥ ३५ ॥ उदङ्कदीर्घतमसोरर्घ्यञ्चप्रददौनृपः ॥ अलङ्कृतेप्रपामध्ये वस्त्रचामरतोरणैः ॥ ३६ ॥ वरोदीर्घतमाश्चान्ये सोदङ्कामुनयस्तदा ॥ न्यषीदन्स्वनयश्चापि सामात्यःसपुरोहितः ॥ ३७ ॥ ततोदुहित

इस के अनन्तर कन्या की दासियों ने चांदी व सोने के पात्रों से कक्षीवान् वर की नीराजनविधि को किया ॥ ३३ ॥ और स्वनय से बुलाये हुये ब्राह्मणों से घिरे व लक्ष्मीवान् कक्षीवान् राजमन्दिर में पैठे ॥ ३४ ॥ तदनन्तर विनय से संयुत राजा वर समेत व उदंक सहित उन दीर्घतमा मुनि को अपने घर को ले आया ॥ ३५ ॥ व राजा ने उदंक व दीर्घतमा को अर्घ्य दिया और वस्त्र, चँवर व बन्दनवारों से भूषित प्रपामध्य में ॥ ३६ ॥ उस समय वर व दीर्घतमा और उदंक समेत अन्य मुनिलोग बैठे व मन्त्रियों

समेत व पुरोहितों समेत स्वनय भी बैठे ॥ ३७ ॥ तदनन्तर उस सुन्दर बालोंवाली और अंगों में उत्तम वस्त्रों को धारण किये तथा गहनों से भूषित उस उत्तम मनोरमा
कन्या को ॥ ३८ ॥ जो कि बिम्बफल के समान ओठोंवाली तथा सुन्दरसर्वांगवाली और मोटे व ऊंचे स्तनोंवाली थी राजा उत्तम जनों से संयुत प्रपा के मध्य को ले
आया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर मनुष्यों के बीच में उस उत्तम मनोरमा कन्या ने चम्पकपुष्पों से बनाई हुई माला को वर के गले में डालदिया ॥ ४० ॥ तदनन्तर उदंकजी
ने आकर स्थल में अग्नि को थापकर अग्निमुख तक लाजाहोम आदिक करके ॥ ४१ ॥ उस कन्या के हाथ को वर से ग्रहण कराया और उदंकजी ने वहां सब

रंकन्यां सुकेशींताम्मनोरमाम् ॥ भूषणालङ्कृतांगात्रे दिव्यवस्त्रधरांशुभाम् ॥ ३८ ॥ बिम्बोष्ठींचारुसर्वाङ्गीं पीनोन्नत
पयोधराम् ॥ प्रपायामध्यमनयन्महाजनसमाकुलम् ॥ ३९ ॥ ततोवरस्यकण्ठेसा मालाञ्चम्पकनिर्मिताम् ॥ निवे
शयामासशुभा जनमध्येमनोरमा ॥ ४० ॥ उदङ्कस्ततत्रागत्य प्रतिष्ठाप्यानलंस्थले ॥ कृत्वाग्निमुखपर्यन्तं लाजाहो
मादिकन्तथा ॥ ४१ ॥ पाणिमग्राहयत्तस्याः कन्यायाश्चवरेणतु ॥ उदङ्कःसर्वकर्माणि कारयामासतत्रवै ॥ ४२ ॥ वरव
ध्वोस्तदाविप्राः प्रायुञ्जततदाशिषः ॥ ततःसराजास्वनयो वरंदीर्घतमोमुनिम् ॥ ४३ ॥ उदङ्कंवरपक्षीयान्स्वपक्षीयांस्त
थाद्विजाः ॥ त्रिलक्षंब्राह्मणानन्नैर्भोजयामासषड्रसैः ॥ ४४ ॥ ततःसम्भावयामास ताम्बूलाद्यैरनेकधा ॥ अथामन्त्र्यमु
निश्रेष्ठमुदङ्कःस्वाश्रमंययौ ॥ ४५ ॥ अन्ये च ब्राह्मणाःसर्वे स्वदेशान्प्रययुस्तदा ॥ एवंविवाहेनिर्वृत्ते कक्षीवद्राजकन्य
योः ॥ ४६ ॥ प्रविश्यागस्त्यतीर्थेस तिरोधत्तगजोत्तमः ॥ ततोदीर्घतमाविप्रः पुत्रेणस्नुषयासह ॥ ४७ ॥ अगस्त्यस्य

तदनन्तर उस स्वनय राजा ने वर व दीर्घतमा मुनि को ॥ ४३ ॥ व हे
कर्मों को कराया ॥ ४२ ॥ व हे द्विजो ! उस समय वर व वधू के आशीर्वादों को युक्त किया तदनन्तर उस स्वनय राजा ने वर व दीर्घतमा मुनि को ॥ ४३ ॥ व हे
ब्राह्मणो ! उदंक तथा वरपक्षवाले व अपने पक्षवाले तीन लाख ब्राह्मणों को छहों रसोंवाले अन्नों से भोजन कराया ॥ ४४ ॥ तदनन्तर ताम्बूलादिकों से अनेक प्रकार
सेवा किया इस के अनन्तर मुनिश्रेष्ठजी से पूछकर उदंकजी अपने आश्रम को चले गये ॥ ४५ ॥ व उस समय अन्य सब ब्राह्मण अपने देशों को चले गये इसप्रकार
कक्षीवान् व राजकन्या का विवाह होने पर ॥ ४६ ॥ वह उत्तम हाथी अगस्त्यतीर्थ में पैठकर अन्तर्धान होगया तदनन्तर दीर्घतमा ब्राह्मण ने पुत्र व पतोहू समेत ॥ ४७ ॥

मनोरथों के दायक अगस्त्यजी के महातीर्थ में नहाकर व सब लोकों में प्रसिद्ध उस तीर्थ की प्रशंसा करते हुये ॥ ४८ ॥ अपने पवित्र आश्रम वेदारण्य को जाने के लिये मन किया व उस मुनिश्रेष्ठ ने जाने के लिये उस राजा से पूछा ॥ ४९ ॥ तब प्रसन्नता समेत स्वनय राजा ने अपनी कन्या के लिये एक लक्ष अशर्फी दहेज़ दिया ॥ ५० ॥ और हज़ार गऊ व हज़ार दासियों को दिया व उस कन्याप्रिय राजा ने पांचसौ ग्रामों को भी दिया ॥ ५१ ॥ व दशहज़ार दिव्य वसनों को व सौ गहनों की पिटारियों को दिया व कन्या के स्नेह से हज़ार हार व मालाओं को दिया ॥ ५२ ॥ इस सब को लेकर पुत्र समेत व पतोहू सहित मुनि राजा से आज्ञा को लेकर वेदारण्य

महातीर्थे स्नानंकृत्वेष्टदायिनि ॥ श्लाघमानश्चतत्तीर्थं सर्वलोकेषुविश्रुतम् ॥ ४८ ॥ प्रयातुंस्वाश्रमम्पुण्यं वेदारण्यम्मनो दधे ॥ राजानञ्चतमागन्तुमापृच्छम्मुनिसत्तमः ॥ ४९ ॥ स्वनयोपितदाराजास्वदुहित्रेमुदान्वितः ॥ ददौशतसहस्राणि स्वर्णानिस्त्रीधनन्तदा ॥ ५० ॥ गवांसहस्रंप्रददौ दासीनाञ्चसहस्रकम् ॥ ग्रामम्पञ्चशतञ्चापि ददौदुहितृवत्सलः ॥ ५१ ॥ दिव्यवस्त्रायुतञ्चापि शतंभूषणपेटिकाः ॥ हारमालासहस्रञ्च ददौदुहितृसौहृदात् ॥ ५२ ॥ एतत्सर्वंसमादाय स पुत्रःसस्नुषोमुनिः ॥ राज्ञाचसमनुज्ञातः प्रययौवेदकाननम् ॥ ५३ ॥ वेदारण्यंसमासाद्य तदादीर्घतमामुनिः ॥ उवास ससुखंविप्राः पुत्रेणस्नुषयासह ॥ ५४ ॥ सेवन्वेदाटवीनाथं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ न्यवसत्सचिरंकालं कक्षीवानपिभा र्यया ॥ ५५ ॥ स्वनयोपिसराजर्षिः स्नात्वाकुम्भजनिर्मिते ॥ तत्रतीर्थेमहापुण्ये सहितःसर्वसैनिकैः ॥ ५६ ॥ अन्तःपुरं समादाय मुदितःस्वपुरंययौ ॥ अगस्त्यतीर्थमाहात्म्यादेवंकक्षीवतोमुनेः ॥ ५७ ॥ अनन्यसुलभोविप्रा विवाहःसमजा

को चले गये ॥ ५३ ॥ हे ब्राह्मणो ! तब वेदारण्य को जाकर पुत्र व पतोहू समेत दीर्घतमा मुनि ने सुखपूर्वक निवास किया ॥ ५४ ॥ और भुक्ति व मुक्ति फल को देनेवाले अटवीनाथ को सेवते हुये उन कक्षीवान् ने भी स्त्री समेत बहुत समय तक निवास किया ॥ ५५ ॥ और वे राजर्षि स्वनय भी कुम्भज (अगस्ति) जी से बनाये हुये उस महापवित्र तीर्थ में नहाकर सब सेना समेत ॥ ५६ ॥ रनिवास को लेकर प्रसन्न होकर अपने नगर को गये हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार अगस्त्यतीर्थ के माहात्म्य से कक्षीवान्

मुनि का अनघुरूप को दुर्लभ व्याह हुआ श्री सूतजी बोले कि हे मुनीश्वरो ! यह पवित्र इतिहास वेदसिद्ध है॥ ५७ । ५८ ॥ व धन्य, यशदायक, आयुर्बलदायक व कीर्ति और सौभाग्य को बढ़ानेवालाहै हे ब्राह्मणो ! मनुष्यों को सर्वथा इस स्तोत्र को सुनना व पढ़ना चाहिये ॥ ५९ ॥ इस प्राचीन इतिहास को पढ़ते व सुनते हुये पुरुषों को इस लोक व परलोक में भी क्लेश व दरिद्रता नहीं होती है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांकक्षीवद्विवाहनिष्पत्तिर्नामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

यत ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इतिहासस्त्वयंपुण्यो वेदसिद्धोमुनीश्वराः ॥ ५८ ॥ धन्योयशस्यआयुष्यः कीर्तिसौभाग्यवर्द्धनः ॥ श्रोतव्यःपठितव्योयं सर्वथामानवैर्द्विजाः ॥ ५९ ॥ पठतांशृण्वतांचेममितिहासंपुरातनम् ॥ नेहामुत्रापिवाक्लेशो दारिद्र्यंचापिनोभवेत् ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येकक्षीवद्विवाहनिष्पत्तिर्नामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्रीसूत उवाच ॥ कुम्भसम्भवतीर्थेस्मिन्विधायाभिषवन्नरः ॥ रामकुण्डंततःपुण्यं गच्छेत्पापविमुक्तये ॥ १ ॥ रघुनाथसरःपुण्यं द्विजाःपापहरंतथा ॥ रघुनाथसरस्तीरे कृतोयज्ञोल्पदक्षिणः ॥ २ ॥ सम्पूर्णफलदोभूयात्स्वाध्यायोपिजपस्तथा ॥ रघुनाथसरस्तीरे मुष्टिमात्रमपिद्विजाः ॥ ३ ॥ दत्तञ्चेद्वेदविदुषे तदनन्तगुणंभवेत् ॥ रामतीर्थंसमुद्दिश्य वक्ष्यामिमुनिपुङ्गवाः ॥ ४ ॥ इतिहासंमहापुण्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ सुतीक्ष्णनामाविप्रेन्द्रा मुनिर्नियतमान

दो० । मे असत्य के दोष से मुक्त युधिष्ठिर राज । अठारहें अध्याय में सोइ चरित सुखसाज ॥ श्रीसूतजी बोले कि इस अगस्तितीर्थ से उपजे हुये तीर्थ में स्नान कर तदनन्तर पापों से छूटने के लिये पवित्र रामकुण्ड को जावै ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! रघुनाथजी का पवित्र तीर्थ पापों को हरनेवाला है और रघुनाथतड़ाग के किनारे किया हुआ थोड़ी दक्षिणावाला यज्ञ ॥ २ ॥ व वेदपाठ और जप सम्पूर्ण फल को देनेवाला होता है व हे ब्राह्मणो ! रघुनाथतड़ाग के किनारे मूठीभर भी ॥ ३ ॥ यदि वेदज्ञ के लिये जो दिया गया है वह अमित गुणवाला होता है हे मुनिश्रेष्ठो ! रामतीर्थ को उद्देश कर समस्त पातकों को नाश करनेवाले महा-

पवित्र इतिहास को कहताहूं हे द्विजेन्द्रो ! मन को रोके हुये सुतीक्ष्णनामक मुनि ॥ ४ । ५ ॥ अगस्त्यजी के शिष्य श्रीरामजी के चरणकमल को चिन्तन करते थे और उन्होंने रामचन्द्रतडाग के किनारे बहुत कठिन तप किया है ॥ ६ ॥ व रामचन्द्रतडाग के किनारे रामचन्द्रअधिदेवतावाले षडक्षर मन्त्र को जपते हुये निरालसी उन सुतीक्ष्ण ने रघुनाथतड़ाग के जल में स्नान करते हुये नित्य पांचहज़ार मन्त्रराज को जपा और भिक्षा से भोजन करनेवाला व नियतभोजी तथा क्रोध को जीते व इन्द्रियों को जीते हुये ॥ ७ । ८ ॥ वह सुतीक्ष्ण इसप्रकार बहुत समय तक वर्तमान हुआ तदनन्तर हे द्विजेन्द्रो ! रामजी को सदैव हृदय में ध्यान करते हुये उस मुनि ने किसी

सः ॥ ५ ॥ अगस्त्यशिष्योरामस्य चरणाब्जविचिन्तकः ॥ रामचन्द्रसरस्तीरे तपस्तेपेसुदुष्करम् ॥ ६ ॥ जपन्षडक्षरंमन्त्रं रामचन्द्राधिदैवतम् ॥ नित्यंसपञ्चसाहस्रं मन्त्रराजमतन्द्रितः ॥ ७ ॥ जजापकुर्वन्स्नानञ्च रघुनाथसरोजले ॥ भिक्षाशीनियताहारो जितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ ८ ॥ एवंसुतीक्ष्णोविप्रेन्द्रा बहुकालमवर्तत ॥ ततःकदाचित्समुनीरामंध्यायन्सदाहृदि ॥ ९ ॥ तुष्टावसीतासहितं रामचन्द्रंसभक्तिकम् ॥ सुतीक्ष्ण उवाच ॥ नमस्तेजानकीनाथ नमस्तेहनुमत्प्रिय ॥ १० ॥ नमस्तेकौशिकमुनेर्यागरक्षणदीक्षित ॥ नमस्तेकौशलेयाय विश्वामित्रप्रियायच ॥ ११ ॥ नमस्तेहरकोदण्डभञ्जकामरसेवित ॥ मारीचान्तकराजेन्द्र ताटकाप्राणनाशन ॥ १२ ॥ कबन्धारेहरेतुभ्यं नमोदशरथात्मज ॥ जामदग्न्यजितेतुभ्यं खरविध्वंसिनेनमः ॥ १३ ॥ नमःसुग्रीवनाथाय नमोवालिहरायते ॥ विभीषणभयक्लेशहारिणेम

समय ॥ ९ ॥ सीता समेत रामचन्द्रजी की भक्ति समेत स्तुति किया सुतीक्ष्ण बोले कि हे जानकीनाथ ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे हनुमत्प्रिय ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ १० ॥ हे विश्वामित्रजी के यज्ञ की रक्षा में दीक्षित ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व कौशल्याजी के पुत्र व विश्वामित्रजी के प्यारे आप के लिये प्रणाम है ॥ ११ ॥ हे शिवधनुषभंजक, देवसेवित, मारीचनाशक, ताटकाप्राणनाशक, नृपेन्द्र ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १२ ॥ हे कबन्धशत्रो, विष्णो, दशरथात्मज ! आप के लिये प्रणाम है व परशुराम को जीतनेवाले व खरविध्वंसी आप के लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ व सुग्रीवनाथ के लिये प्रणाम है व बालि को हरनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व विभीषण के

भय के क्लेश को हरनेवाले व मलनाशकके लिये नमस्कार है ॥ १४ ॥ व हे भरताग्रज ! अहल्या के दुःख को हरनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व समुद्र के गर्व को हरनेवाले व उस में सेतु को बनानेवाले के लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ हे तारक ! ब्रह्मारूप आपके लिये प्रणाम है व हे लक्ष्मणाग्रज ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व राक्षसों के संहार करनेवाले व रावण को मर्दनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ १६ ॥ व धनुष को धारनेवाले व रक्षा करनेवाले आप के लिये प्रणाम है इसप्रकार प्रतिदिन रामजी की स्तुति करते हुये इन सुतीक्ष्ण ने ॥ १७ ॥ सदैव रामचन्द्र में बुद्धि को लगाकर समय व्यतीत किया इसप्रकार हे सुव्रती ! षडक्षर रामजी के मन्त्र को अभ्यास करते व इस स्तोत्र से

लहारिणे ॥ १४ ॥ अहल्यादुःखसंहर्त्रे नमस्तेभरताग्रज ॥ अम्भोधिगर्वसंहर्त्रे तस्मिन्सेतुकृतेनमः ॥ १५ ॥ तारकब्रह्मणेतुभ्यं लक्ष्मणाग्रजतेनमः ॥ रक्षःसंहारिणेतुभ्यं नमोरावणमर्द्दिने ॥ १६ ॥ कोदण्डधारिणेतुभ्यं सर्वरक्षाविधायिने ॥ इतिस्तुवन्मुनिःसोयं सुतीक्ष्णोराममन्वहम् ॥ १७ ॥ निनायकालमनिशं रामचन्द्रनिषण्णधीः ॥ एवमभ्यसतस्तस्य राममन्त्रंषडक्षरम् ॥ १८ ॥ स्तुवतोरामचन्द्रञ्च स्तोत्रेणानेनसुव्रताः ॥ तीर्थेचरघुनाथस्य कुर्वतःस्नानमन्वहम् ॥ १९ ॥ अभवन्निश्चलाभक्ती रामचन्द्रेतिनिर्मला ॥ अभूदद्वैतविज्ञानं प्रत्यगात्मैकलक्षणम् ॥ २० ॥ अनधीतत्रयीज्ञानं तथैवाश्रुतवेदनम् ॥ परकायप्रवेशेच सामर्थ्यमभवद्द्विजाः ॥ २१ ॥ आकाशगमनेशक्तिः कलावैदग्ध्यमेवच ॥ अश्रुतानाञ्चशास्त्राणामभिज्ञानंविनागुरुम् ॥ २२ ॥ गमनंसर्वलोकेषु प्रतिघातविवर्जितम् ॥ अतीन्द्रियार्थद्रष्टत्वं देवैःसम्भाषणन्तथा ॥ २३ ॥ पिपीलिकादिजन्तूनां वार्ताज्ञानमपिद्विजाः ॥ ब्रह्मविष्णुमहादेवलोकेषुगमनन्तथा ॥ २४ ॥ चतुर्दशेषु

रामचन्द्रजी की स्तुति करते व प्रतिदिन रघुनाथजी के तीर्थ में स्नान करते हुये उन सुतीक्ष्णजी की ॥ १८।१९ ॥ रामचन्द्र में अतिनिर्मल निश्चल भक्ति हुई व सब ओर केवल आत्मा के लक्षणवाला अद्वैत विज्ञान हुआ ॥ २० ॥ व हे ब्राह्मणो ! बिन पढ़ी हुई वेदत्रयी का ज्ञान व बिन सुनी वस्तु का जानना और पराये शरीर में पैठने की सामर्थ्य हुई ॥ २१ ॥ व आकाश जाने में सामर्थ्य और कलाओं में निपुणता हुई व गुरु के बिना न सुने हुये शास्त्रों का ज्ञान हुआ ॥ २२ ॥ व प्रतिघातरहित याने बिन रोकटोक सब लोकों में गमन और इन्द्रियों के अगोचर वस्तु को देखना व देवताओं के साथ सम्भाषण हुआ ॥ २३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! पिपीलिकादिक प्राणियों की वार्ता

का ज्ञान भी हुआ व ब्रह्मा, विष्णु, महादेव के लोकों में गमन हुआ ॥ २४ ॥ और चौदहो लोकों में बिन रोक के गमन हुआ व हे सत्तमो ! ये और अन्य सब योगियों से मिलने योग्य वस्तुयें ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणो ! रामतीर्थ के सेवन से सुतीक्ष्णजी के हुईं ऐसे प्रभाववाला वह महापातकों को नाश करनेवाला तीर्थ है ॥ २६ ॥ व महासिद्धिकारक, पवित्र तथा अपमृत्युविनाशक है व पुरुषों को भुक्तिमुक्तिदायक तथा नरकों के क्लेश का हारक है ॥ २७ ॥ और नित्य रामजी की भक्ति को देनेवाला व संसार के नाश का कारण है और लोकों के ऊपर अनुग्रह की इच्छा से इस के किनारे बड़ा भारी लिंग है ॥ २८ ॥ महापवित्र रामतीर्थ में नहाकर उस लिंग के दर्शन से

लोकेषु निर्यत्तगमनन्तथा ॥ एतान्यन्यानिसर्वाणि योगिलभ्यानिसत्तमाः ॥ २५ ॥ सुतीक्ष्णस्याभवन्विप्रा रामतीर्थ निषेवणात् ॥ एवंप्रभावंतत्तीर्थं महापातकनाशनम् ॥ २६ ॥ महासिद्धिकरंपुण्यमपमृत्युविनाशनम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं पुंसां नरकक्लेशनाशनम् ॥ २७ ॥ रामभक्तिप्रदंनित्यं संसारोच्छेदकारणम् ॥ अस्यतीरेमहल्लिङ्गं लोकानुग्रहकाम्यया ॥ २८ ॥ रामतीर्थेमहापुण्ये स्नात्वातल्लिङ्गदर्शनात् ॥ नराणांमुक्तिरेवस्यात्किमुतान्याविभूतयः ॥ २९ ॥ तत्रस्नात्वाशिवंदृष्ट्वा धर्मपुत्रःपुराद्विजाः ॥ अनृतोक्तिसमुद्भूतदोषान्मुक्तोभवत्क्षणात् ॥ ३० ॥ ऋषय ऊचुः ॥ असत्यमुदितंकस्माद्धर्मपुत्रेणसूतज ॥ यद्दोषशान्तयेसस्नौ रामतीर्थेतिपावने ॥ ३१ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ युष्माकमृषयोवक्ष्ये यथोक्तमनृतंरणे ॥ छलेनधर्मपुत्रेण यन्नष्टंरामतीर्थके ॥ ३२ ॥ अन्योन्यंपाण्डवाविप्रा धर्मपुत्रादयःपुरा ॥ धृतराष्ट्रस्यपुत्राश्च दुर्योधनमुखास्तदा ॥ ३३ ॥ महान्तंवैरमासाद्य राज्यार्थंविप्रसत्तमाः ॥ महत्यासेनयासार्द्धं कुरुक्षेत्रेसमेत्य च ॥ ३४ ॥

मनुष्यों की मुक्तिही होती है फिर अन्य ऐश्वर्यों को क्या कहना है ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मणो ! पुरातन समय उस तीर्थ में नहाकर व शिवजी को देखकर धर्मपुत्र झूठ कहने से उपजे हुये दोष से उसी क्षण मुक्त होगया ॥ ३० ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतज ! धर्मपुत्र ने किस कारण झूठ कहा कि जिस दोष की शान्ति के लिये अतिपवित्रकारक रामतीर्थ में स्नान किया ॥ ३१ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ऋषियो ! धर्मपुत्र ने युद्ध में छल से जिस प्रकार झूठ कहा जो कि रामतीर्थ में नष्ट होगया उस को तुम लोगों से कहताहूं ॥ ३२ ॥ हे ब्राह्मणो ! पुरातन समय धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) आदिक पाण्डव व धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदिक उस समय परस्पर ॥ ३३ ॥

हे द्विजश्रेष्ठो ! राज्य के लिये बड़े वैर को प्राप्त होकर बड़ी सेना समेत कुरुक्षेत्र में आकर ॥ ३४ ॥ युद्ध में न लौटनेवाले वीरों ने समर में युद्ध किया और दश दिन
युद्ध करके भीष्मजी पृथ्वी में गिरपड़े ॥ ३५ ॥ तदनन्तर फिर पांच दिन बड़े बली व पराक्रमी तथा प्रभाववान् द्रोणाचार्य ने पाच दिन धृष्टद्युम्न से युद्ध किया ॥ ३६ ॥ और
अनेकों अस्त्रों व शस्त्रों को छोड़ते हुये महाबलवान् व प्रभाववान् द्रोणाचार्यजी ने पाण्डवों की सेना को पीड़ित किया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर दिव्य अस्त्रों को जाननेवाले
शूर व महाबली धृष्टद्युम्न ने बाणों की वर्षा से द्रोणाचार्य की सेना को अनेक प्रकार से भिन्न किया ॥ ३८ ॥ तब द्रोणाचार्य ने बाणवृष्टियों से धृष्टद्युम्न के ऊपर आच्छादन

अयुध्यन्समरेवीराः समरेष्वनिवर्तिनः ॥ युद्धंकृत्वादशदिनं गाङ्गेयःपतितोभुवि ॥ ३५ ॥ ततःपञ्चदिनंभूयो धृष्टद्युम्नेनवीर्यवान् ॥ आचार्योयुयुधेद्रोणो महाबलपराक्रमः ॥ ३६ ॥ अनेकास्त्राणिशस्त्राणि द्रोणाचार्योमहाबली ॥ विसृजन्पाण्डवानीकं पीडयामासवीर्यवान् ॥ ३७ ॥ अथदिव्यास्त्रविच्छूरो धृष्टद्युम्नोमहाबलिः ॥ अभिनद्बाणवर्षेण द्रोणसेनामनेकधा ॥ ३८ ॥ धृष्टद्युम्नन्तदाद्रोणः शरवर्षैरवाकिरत् ॥ पार्थसेनातथाद्रोणबाणवर्षातिपीडिता ॥ ३९ ॥ दशदिक्षुभयाक्रान्ता विद्रुताद्विजसत्तमाः ॥ ततोर्जुनोरणेद्रोणं युयुधेरथिनांवरः ॥ ४० ॥ रणप्रवीणयोस्तत्र विजयद्रोणयोरणे ॥ द्रष्टुंसमागतैर्देवैरभूद्व्योमनिरन्तरम् ॥ ४१ ॥ द्रोणफाल्गुनयोर्विप्रा नास्तियुद्धोपमाभुवि ॥ सामर्षयोस्तदाचार्यशिष्ययोरभवद्रणम् ॥ ४२ ॥ द्रोणफाल्गुनयोर्युद्धं द्रोणफाल्गुनयोरिव ॥ बहुमेनेथमनसा द्रोणोर्जुनपराक्रमम् ॥ ४३ ॥ ततोद्रोणोमहावीर्यं प्रियशिष्यंसफाल्गुनम् ॥ विहायपाञ्चालबलं समयुध्यतवीर्यवान् ॥ ४४ ॥ सविंशतिसहस्राणि दशत

किया और बाणों की वर्षा से बहुत ही पीड़ित युधिष्ठिर की सेना ॥ ३९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! भय से विकल होकर दशो दिशाओं में भग गई तदनन्तर रथियों में श्रेष्ठ अर्जुन
ने युद्ध में द्रोणाचार्य से युद्ध किया ॥ ४० ॥ और युद्ध में चतुर अर्जुन व द्रोणाचार्य के उस युद्ध में देखने के लिये आये हुये देवताओं से आकाश पूर्ण होगया ॥ ४१ ॥
हे ब्राह्मणो ! द्रोणाचार्य व अर्जुन के युद्ध की उपमा पृथ्वी में नहीं है उस समय क्रोध समेत द्रोणाचार्य व शिष्य (अर्जुन) का युद्ध हुआ ॥ ४२ ॥ द्रोणाचार्य व अर्जुन का
युद्ध द्रोण व अर्जुनही के युद्ध के समान हुआ इसके अनन्तर द्रोणाचार्यजीने अर्जुन के पराक्रम को बहुत माना ॥ ४३ ॥ तदनन्तर उन पराक्रमी द्रोणाचार्यजीने बड़े बल-

वान् व प्यारे शिष्य अर्जुनजी को छोड़कर पांचाल की सेना से युद्ध किया ॥ ४४ ॥ और उन द्रोणाचार्यजी ने उस युद्ध में एक लाख बीसहज़ार हाथी व घोड़ों समेत राजाओं को मारा ॥ ४५ ॥ इस के अनन्तर क्रोधित धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को बाणों से मारा और द्रोणाचार्य ने भी पट्टिश को लेकर धृष्टद्युम्न को मारा ॥ ४६ ॥ और अग्नि की ज्वाला के समान पैने बाणों से युद्ध में उस धृष्टद्युम्न को मारा और बाणों से मारा हुआ धृष्टद्युम्न उस युद्ध में विमुख हुआ ॥ ४७ ॥ तदनन्तर रथविहीन धृष्टद्युम्न के समीप आकर भीमसेन ने अपने रथपै बिठाकर द्रोणाचार्य से कहा ॥ ४८ ॥ कि अस्त्रों को सीखे हुये अपने कर्मों से असन्तुष्ट व क्रूर, नीच ब्राह्मण यदि युद्ध न करैं

त्रायुतानिच ॥ द्रोणाचार्योवधीराज्ञां युद्धेसगजवाजिनाम् ॥४५॥ धृष्टद्युम्नोथकुपितो द्रोणमभ्यहनच्छरैः ॥ द्रोणश्चपट्टिशं गृह्यधृष्टद्युम्नमताडयत् ॥४६॥ शरैर्विव्याधतंयुद्धे तीक्ष्णैरग्निशिखोपमैः ॥ पराङ्मुखोभवत्तत्र धृष्टद्युम्नःशराहतः ॥ ४७ ॥ ततोविरथमागत्य धृष्टद्युम्नंवृकोदरः ॥ स्वंस्यन्दनंसमारोप्य द्रोणाचार्यमथाब्रवीत् ॥ ४८ ॥ स्वकर्मभिरसन्तुष्टाः शिक्षिताश्चाद्विजाधमाः ॥ नयुध्येरन्यदिक्रूरा ननश्येरन्नृपारणे ॥ ४९ ॥ अहिंसाहिपरोधर्मो ब्राह्मणानांसदास्मृतः ॥ हिंसया दारपुत्रादीन्रक्षन्तेव्याधजातयः ॥ ५० ॥ हिंसित्वमेकपुत्रार्थेयुद्धेस्थित्वाबहून्नृपान् ॥ सचापितेसुतोब्रह्मन्हतःशेतेरणाजिरे ॥ ५१ ॥ तथापिलज्जातेनास्ति शोकोपीहनजायते ॥ वचनंत्वितिभीमस्य सत्यंश्रुत्वायुधिष्ठिरात् ॥ ५२ ॥ निजायुधंसतत्याज पपातस्यन्दनोपरि ॥ योगवित्प्रायमातस्थे द्रोणाचार्यस्तदाद्विजाः ॥ ५३ ॥ तदन्तरम्परिज्ञाय द्रोणाचा

तो रणमें राजा न नाश होवें ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणों को सदैव हिंसा न करना उत्तम धर्म कहा गया है और व्याधजातिवाले लोग हिंसा से स्त्री व पुत्रादिकों की रक्षा करते हैं ॥ ५० ॥ हे ब्रह्मन्! तुम एक पुत्र के लिये युद्ध में स्थित होकर बहुत राजाओं को मारतेहो और युद्धके आंगनमें मारा हुआ वहभी तुम्हारा पुत्र सोताहै ॥ ५१ ॥ तिस पर भी तुम को लाज नहीं है और इसमें शोक भी नहीं होताहै भीम के इस वचन को युधिष्ठिरजी से सत्य सुनकर ॥ ५२ ॥ उन द्रोणाचार्यजी ने अपने अस्त्र को छोड़दिया और वे अपने रथपै गिरपड़े व हे ब्राह्मणो! उस समय योग को जाननेवाले द्रोणाचार्यजी अन्न जल को छोड़कर स्थित होरहे ॥ ५३ ॥ उस समय को जान

कर रुमर के आंगन में तलवार को हाथ में लियेहुये पार्षद (धृष्टद्युम्न) द्रोणाचार्य के मस्तक को काटने के लिये दौड़ा ॥ ५४ ॥ व अर्जुन आदिकों से मना कियाजाता हुआ भी वह उस के मस्तक को काटने के लिये आया और योगवित् होने के कारण द्रोणाचार्य के मस्तक से ज्योति ऊपर स्वर्ग को चलीगई ॥ ५५ ॥ उस को श्रीकृष्ण, अर्जुन, कृपाचार्य व युधिष्ठिर आदिकों ने युद्ध में देखा व उस ने इस द्रोणाचार्य के प्राणरहित शरीर से मस्तक को काटडाला ॥ ५६ ॥ और युद्ध में भारद्वाज (द्रोणाचार्य) के मरने पर कौरव भय से भगे व हे ब्राह्मणो! उससमय धृष्टद्युम्न आदिक प्रसन्न हुये ॥ ५७ ॥ व भगी हुई उस सेना को देखकर द्रोणाचार्य के पुत्र (अश्वत्थामा)

र्यस्यपार्षदः ॥ खड्गपाणिःशिरश्छेत्तुमभ्यधावद्रणाजिरे ॥ ५४ ॥ वार्यमाणोपिपार्थाद्यैस्तच्छिरश्छेत्तुमुद्ययौ ॥ योगवित्त्वाद्द्रोणमूर्ध्नो ज्योतिरूर्ध्वंदिवंययौ ॥ ५५ ॥ दृष्टंकृष्णार्जुनकृपधर्मपुत्रादिभिर्मृधे ॥ द्रोणस्यास्यगतप्राणाच्छरीरादच्छिनच्छिरः ॥ ५६ ॥ भारद्वाजेहतेयुद्धे कौरवाःप्राद्रवन्भयात् ॥ जहृषुःपाण्डवाविप्रा धृष्टद्युम्नादयस्तदा ॥ ५७ ॥ सेनांतां विद्रुतान्दृष्ट्वा द्रौणिरूचेसुयोधनम् ॥ एतद्द्रवतिकिंसैन्यं त्यक्तप्रहरणन्नृप ॥ ५८ ॥ तदादुर्योधनोराजा स्वयंवक्तुमशक्नुवन् ॥ युद्धेद्रोणवधंवक्तुं कृपाचार्यमचोदयत् ॥ ५९ ॥ द्रौणयेथकृपाचार्यो वधमूचेगुरोस्तदा ॥ कृप उवाच ॥ अश्वत्थामंस्तवपिता ब्रह्मास्त्रेणमृधेरिपून् ॥ ६० ॥ हत्वानिनायसदनं यमस्यशतशोबली ॥ दुराधर्षतमंदृष्ट्वा तद्वीर्यंकेशवस्तदा ॥ ६१ ॥ पाण्डवान्प्राहविप्रेन्द्रा वाक्यंवाक्यविशारदः ॥ केशव उवाच ॥ द्रोणञ्जेतुमुपायोस्ति पाण्डवायुधिदुर्जयम् ॥ ६२ ॥

ने दुर्योधन से कहा कि हे राजन् ! अस्त्रों को छोड़े यह सेना क्यों भागती है ॥ ५८ ॥ तब युद्ध में द्रोणाचार्य के वध को आपही कहने के लिये न समर्थ होते हुये दुर्योधन राजा ने कृपाचार्य को प्रेरणा किया ॥ ५९ ॥ इस के अनन्तर उससमय कृपाचार्यजी ने अश्वत्थामा से गुरु का वध कहा कृपाचार्य बोले कि हे अश्वत्थामन् ! तुम्हारे बलवान् पिता ने युद्ध में ब्रह्मास्त्र से सैकड़ों शत्रुवों को मारकर यमराज के स्थान को प्राप्त किया तब बहुतही दुर्धर्ष उन के पराक्रम को देखकर हे द्विजेन्द्रो ! वाक्य में चतुर श्रीकृष्णजी ने पाण्डवों से कहा श्रीकृष्णजी बोले कि हे पाण्डवो ! युद्ध में दुर्जय द्रोणाचार्य को जीतने के लिये उपाय है ॥ ६० । ६१ । ६२ ॥

कि यदि प्रामाणिकसत्यवादी पुरुषऐसा कहै कि हे द्रोण! इससमय तुम्हारा अश्वत्थामा पुत्र युद्ध में मारागया ॥ ६३ ॥ तो उसी क्षण अस्त्र को छोडकर द्रोणाचार्यजी युद्ध से निवृत्त होवैंगे इसलिये इससमय इस झूठी वार्ता को धर्मराज (युधिष्ठिर) कहैं ॥ ६४ ॥ क्योंकि अन्यथा युद्ध में चतुर द्रोणाचार्यजी नहीं जीते जासक्ते हैं यदि धर्म से शत्रु न जीता जासकै तो धर्म को छोड़कर भी शत्रु को जीतै ॥ ६५ ॥ इसप्रकार श्रीकृष्णजी के उस वचन को सुनकर कुन्ती के पुत्र भीमजीने तुम्हारे पिता के समीप आकर असत्यवचन कहा ॥ ६६ ॥ कि हे द्रोण ! इससमय इस युद्ध में माराहुआ अश्वत्थामा गिरगया द्रोणाचार्य ने भी उस वचन को यथार्थ माना ॥ ६७ ॥ फिर

अश्वत्थामातवसुतो हतोद्रोणमृधेधुना ॥ सत्यवादीवदेदेवं यदिप्रामाणिकोजनः ॥ ६३ ॥ द्रोणोनिवर्तेतरणात्तदात्यक्तायुधंक्षणात् ॥ अतएनांमृषांवार्तां धर्मराजोधुनावदेत् ॥ ६४ ॥ नान्यथाशक्यतेजेतुं द्रोणोयुद्धविशारदः ॥ धर्माज्जेतुमशक्यश्चेद्धर्मंत्यक्त्वाप्यरिञ्जयेत् ॥ ६५ ॥ इतिकेशववाक्यंतच्छ्रुत्वाभीमःपृथासुतः ॥ पितरन्तेसमभ्येत्य मिथ्यावाक्यमभाषत ॥ ६६ ॥ अश्वत्थामाहतोद्रोणयुद्धेत्रपतितोधुना ॥ द्रोणाचार्योपितद्वाक्यममन्यतयथार्थतः ॥ ६७ ॥ अविश्वस्यपुनःसोथ धर्मजम्प्राप्यचाब्रवीत् ॥ धर्मात्मजमृधेसूनुरश्वत्थामाममाधुना ॥ ६८ ॥ हतःकिन्त्वंवदस्वाद्य सत्यवादीभवान्मतः ॥ धर्मपुत्रोसत्यभीरुरासीच्चारिजयोत्सुकः ॥ ६९ ॥ किंकर्तव्यंमयाद्येति दोलालोलमनाअभूत् ॥ सदृष्ट्वाभीमनिहतमश्वत्थामाभिधङ्गजम् ॥ ७० ॥ अश्वत्थामाहतोयुद्धे भीमेनाद्यरणेमहान् ॥ इत्थंवचोबभाषेसौ धर्मपुत्रश्छलोक्तितः ॥ ७१ ॥ तच्छ्रुत्वात्वत्पिताशस्त्रं त्यक्त्वायुद्धान्न्यवर्त्तत ॥ अथधर्मसुतःप्राह परवारणइत्यपि ॥ ७२ ॥

उसने विश्वास न कर धर्मज (युधिष्ठिरजी) से कहा कि हे धर्मात्मज! इस समय युद्धमें मेरा पुत्र अश्वत्थामा ॥ ६८ ॥ क्या मारा गया तुम इस समय सत्य कहो क्योंकि आप सत्यवादी माने गये हो धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी असत्य से डरे व शत्रु के जीतने में उत्कण्ठित हुये ॥ ६९ ॥ और इससमय मुझ को क्या करना चाहिये इसकारण दोला (झूले) की नाईं चंचलमनवाले हुये और उन्होंने भीम से मारेहुये अश्वत्थामानामक हाथी को देखकर ॥ ७० ॥ छल की उक्ति से इन धर्मपुत्र (युधिष्ठिरजी) ने ऐसा वचन कहा कि आज युद्ध में भीम से बड़ा भारी अश्वत्थामा मारा गया ॥ ७१ ॥ उस बचन को सुनकर तुम्हारे पिता शस्त्र को छोड़कर युद्ध से निवृत्त हुये

इस के अनन्तर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने यह भी कहा कि शत्रु का हाथी अश्वत्थामा मारागया ॥ ७२ ॥ परन्तु हे वत्स ! पहिले तुम्हारे पिता उन बली द्रोणाचार्यजी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि छोडेहुये अस्त्र को फिर युद्ध में मैं न लूंगा ॥ ७३ ॥ इस कारण प्रतिज्ञाभंग से डरे हुये उन द्रोण ने शस्त्र को नहीं लिया तब तुम्हारे पिता धृष्टद्युम्न को देखकर अपनी मृत्यु ॥ ७४ ॥ मानकर योग को जाननेवाले वे द्रोणाचार्य वचन को रोककर समाधि में स्थित होकर प्राणों को रोककर रथ के ऊपर अन्न जल को छोड़कर सोरहे ॥ ७५ ॥ तदनन्तर क्षणभर में मस्तक को फोड़कर उन के प्राण निकलगये तब हे वत्स! धृष्टद्युम्न ने युद्ध में हाथ से बालों को पकड़ कर मरेहुये

त्यक्तंशस्त्रं न गृह्णीयां युद्धेपुनरितिस्म सः ॥ प्रतिजज्ञेतवपिता वत्सद्रोणोबलीपुरा ॥ ७३ ॥ अतःशस्त्रं न जग्राह प्रतिज्ञा भङ्गकातरः ॥ धृष्टद्युम्नंतदादृष्ट्वा पितातेमृत्युमात्मनः ॥ ७४ ॥ मत्वाप्रायोपवेशेन रथोपस्थेसयोगवित् ॥ अशयिष्टसमाधिस्थः प्राणानायम्यवाग्यतः ॥ ७५ ॥ ततोनिर्भिद्यमूर्धानं तत्प्राणानिर्ययुःक्षणात् ॥ तदामृतस्यद्रोणस्य वत्सखड्गेनतच्छिरः ॥ ७६ ॥ केशान्गृहीत्वाहस्तेन धृष्टद्युम्नोच्छिनद्युधि ॥ मावधीरितिपार्थाद्याः प्रोचुःसर्वे च सैनिकाः ॥ ७७ ॥ सर्वैर्निवार्यमाणोपि त्वत्तातंपार्षदोवधीत् ॥ श्रीसूत उवाच ॥ पितरंनिहतंश्रुत्वा रुदन्द्रौणिश्चिरन्द्विजाः ॥ ७८ ॥ कोपेनमहता तत्र ज्वलन्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ अनृतम्प्रोच्यपितरं न्यस्तशस्त्रञ्चकार यः ॥ ७९ ॥ पितरम्मेद्यतम्पार्थमप्यन्यानथ पाण्डवान् ॥ गृहीत्वाकेशपाशंयस्त्यक्तशस्त्रशिरोहनत् ॥ ८० ॥ छद्मनापार्षदन्तञ्च हनिष्याम्यचिरादहम् ॥ कृष्णेन सहपश्यन्तु पाण्डवामत्पराक्रमम् ॥ ८१ ॥ इतिद्रौणिर्द्विजास्तत्र प्रतिजज्ञेभयङ्करम् ॥ ततोस्तङ्गतआदित्ये राजानःसर्वे

द्रोण के उस शिर को तलवार से काटडाला सब सेनावाले व अर्जुनादिकों ने यह कहा कि मत मारो ॥ ७६ । ७७ ॥ सबों से मना कियेजाते हुये भी पार्षद धृष्टद्युम्न ने तुम्हारे पिता को मारडाला श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! मरेहुये पिता को सुनकर रोते हुये अश्वत्थामा ने ॥ ७८ ॥ बडे क्रोध से वहां ज्वलतेहुये वचन कहा कि पिता से झूठ कहकर जिसने आज मेरे पिता को शस्त्ररहित किया याने शस्त्रों को धरादिया उस पृथा के पुत्र युधिष्ठिर व अन्य पाण्डवों को भी मारूंगा और जिसने छल से केशपाश को पकडकर शस्त्र को छोड़ेहुये द्रोणाचार्य के मस्तक को नाश किया उस धृष्टद्युम्न को मैं शीघ्रही मारूंगा कृष्णसमेत पाण्डव लोग मेरे पराक्रम को देखैं ॥ ७९ । ८० । ८१ ॥

हे ब्राह्मणो ! द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा ने वहां यह भयंकर प्रतिज्ञा की तदनन्तर सूर्य अस्त होने पर वे सभी राजालोग ॥ ८२ ॥ सेनाध्यक्ष द्रोणाचार्य के नाश होने पर तम्बू में पैठगये इसप्रकार अठारह दिनों से युद्ध निवृत्त हुआ ॥ ८३ ॥ तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरजी ने शल्य, कर्ण व दुर्योधन आदिक धृतराष्ट्र के पुत्रों को समर में मारकर ॥ ८४ ॥ हे ब्राह्मणो ! धौम्यादिक ब्राह्मणोंसमेत अपने व पराये मरेहुये लोगों का विधिपूर्वक प्रेतकार्य किया ॥ ८५ ॥ और धृतराष्ट्र को प्रणाम कर धृतराष्ट्र से आज्ञा दियेहुये तथा मरने से बचेहुये उत्तम जनों से घिरे सब पाण्डवलोग इकट्ठा होकर ॥ ८६ ॥ हस्तिनापुर को प्राप्त होकर वे अपने मन्दिर में पैठगये

एव ते ॥ ८२ ॥ सेनपेनिहतेद्रोणे प्राविशन्पटमण्डपम् ॥ अष्टादशदिनैरेवं निवृत्तमभवद्रणम् ॥ ८३ ॥ शल्यंकर्णंतथा न्यांश्च दुर्योधनमुखांस्ततः ॥ धार्तराष्ट्रान्निहत्याजौ धर्मराजोयुधिष्ठिरः ॥ ८४ ॥ स्वीयानां च परेषां च मृतानांसाम्पराियिकम् ॥ अकरोद्विधिवद्विप्राः सार्द्धंधौम्यादिभिर्द्विजैः ॥ ८५ ॥ वन्दित्वाधृतराष्ट्रञ्च सर्वेसम्भूयपाण्डवाः ॥ धृतराष्ट्रा भ्यनुज्ञाता हतशिष्टजनैर्वृताः ॥ ८६ ॥ सम्प्राप्यहस्तिनपुरं प्राविशंस्तेस्वमन्दिरम् ॥ ततःकतिपयाहःसु गतेषुकिलना गराः ॥ ८७ ॥ धौम्यादिंमुनिभिःसार्द्धं धर्मजस्यमहात्मनः ॥ राज्याभिषेचनंकर्तुं प्रारभन्तमुनीश्वराः ॥ ८८ ॥ राज्याभि षेचनेतस्य प्रवृत्तेधर्मजस्य तु ॥ अशरीराततोवाणी बभाषेधर्मनन्दनम् ॥ ८९ ॥ धर्मपुत्रमहाभाग रिपूणामपिवत्सल ॥ राज्याभिषेकं माकार्षीर्नार्हस्त्वंराज्यपालने ॥ ९० ॥ यतस्त्वंछद्मनाचार्यमुक्त्वासत्यंद्विजोत्तमम् ॥ न्यस्तशस्त्रंरणेरा जन्नघातयदलज्जकः ॥ ९१ ॥ अतस्तेपापबाहुल्यं विद्यतेधर्मनन्दन ॥ प्रायश्चित्तमकृत्वास्य राज्यपालनकर्मणि ॥ ९२ ॥

तदनन्तर कुछ दिनों के बीतने पर नगरवासी लोगों ने ॥ ८७ ॥ हे मुनीश्वरो ! धौम्यादिक मुनियों समेत महात्मा धर्मज (युधिष्ठिर जी) के राज्याभिषेक करने का प्रारम्भ किया ॥ ८८ ॥ तदनन्तर धर्मज युधिष्ठिर का राज्याभिषेक वर्तमान होने पर आकाशवाणी ने धर्मपुत्र से कहा ॥ ८९ ॥ कि हे शत्रुवों के भी प्यारे, महाभाग, धर्मपुत्र ! तुम राज्य का अभिषेक मत करो क्योंकि तुम राज्यपालन में योग्य नहीं हो ॥ ९० ॥ हे राजन् ! जिसलिये लज्जारहित तुम ने द्विजोत्तम द्रोणाचार्य से छल से सत्य कहकर व शस्त्र को धरेहुये उनको मरवाडाला ॥ ९१ ॥ इसकारण हे धर्मनन्दन ! तुम्हारे बहुत पाप है जिस लिये प्रायश्चित्त न करके राज्यपालन कर्म में योग्यता नही

है इसकारण प्रायश्चित्त करो यह कहकर वह आकाशवाणी चुप होरही ॥ ९२ । ९३ ॥ तदनन्तर धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) राजा उस वचन से बहुत डरगये कि मूढ़, क्रूर, पिशुन, साहसी व लोभ से मोहित मैंने ॥ ९४ ॥ तुच्छ राज्य के अभिलाष से ऐसा कर्म किया इस पाप की शुद्धि के लिये मैं कहां जाऊं और क्या गति होगी ॥ ९५ ॥ अथवा किस दान को देऊं व फिर कहां जाऊं इसप्रकार उन धर्मज (युधिष्ठिर) राजा के शोकसंयुत होने पर ॥ ९६ ॥ कृष्णद्वैपायन व्यासजी उन के समीप आये तदनन्तर आगे उठकर उन व्यासजी को प्रणामकर हाथों को जोडेहुये युधिष्ठिर ने ॥ ९७ ॥ हे ब्राह्मणो ! भक्ति से संयुत चित्त करके अर्घ्यादिकों से पूजकर जो आकाशवाणी ने

नार्हताविद्यतेयस्मात्प्रायश्चित्तमतश्चर ॥ इत्युक्त्वाविररामाथ सा तु वागशरीरिणी ॥ ९३ ॥ ततोधर्मसुतोराजा तद्वाक्यभृशकातरः ॥ मूढोहंसाहसीक्रूरः पिशुनोलोभमोहितः ॥ ९४ ॥ तुच्छराज्याभिलाषेण कृतवान्पापमीदृशम् ॥ एतत्पापविशुद्ध्यर्थं किङ्करिष्यामिकागतिः ॥ ९५ ॥ किं वा दानंप्रदास्यामि कुत्रयास्यामि वा पुनः ॥ इतिशोकसमाविष्टे तस्मिन्राजनिधर्मजे ॥ ९६ ॥ कृष्णद्वैपायनोव्यासस्समायातस्तदन्तिकम् ॥ ततोभिवन्द्यतंव्यासं प्रत्युत्थायकृताञ्जलिः ॥ ९७ ॥ सम्पूज्यार्घ्यादिनाविप्रा भक्तियुक्तेनचेतसा ॥ अदेहवाचायत्प्रोक्तं तत्सर्वमखिलेनसः ॥ ९८ ॥ व्यासायश्रावयामास दुःखितोधर्मनन्दनः ॥ श्रुत्वातदखिलंवाक्यं धर्मजस्यमहामुनिः ॥ ९९ ॥ ध्यात्वा तु सुचिरंकालं ततोवक्तुंप्रचक्रमे ॥ व्यास उवाच ॥ माकार्षीस्त्वंभयंराजन्नुपायंप्रब्रवीमि ते ॥ १०० ॥ अस्यपापस्यशान्त्यर्थं श्रुत्वानुष्ठीयतान्त्वया ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ किंतद्ब्रूहिमहायोगिन्पाराशर्यकृपानिधे ॥ १ ॥ येनमेपापनाशःस्यादचिरात्तद्वदाधुना ॥ व्यास

कहा था उस सब को उन दुःखित धर्मपुत्र ने सम्पूर्णता से व्यासजी को सुनाया धर्मपुत्र के उस सब वचन को सुनकर महामुनि व्यासजी ने ॥ ९८ । ९९ ॥ बहुत समय तक ध्यान कर तदनन्तर कहने का प्रारम्भ किया व्यासजी बोले कि हे राजन् ! तुम भय मत करो मैं तुम से यत्न को कहता हूं ॥ १०० ॥ उस को सुनकर तुम इस पाप की शान्ति के लिये अनुष्ठान करो युधिष्ठिरजी बोले कि हे दयानिधे, महायोगिन्, पाराशर्य ! वह क्या है उसको कहिये ॥ १ ॥ जिससे शीघ्रही मेरे पाप का नाश होवै उसको इस

समय कहिये व्यासजी बोले कि दक्षिण समुद्र में सेतुरूप गन्धमादनपर्वत पै ॥ २ ॥ हे महाराज ! रामसेतु पै रामतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध सिद्धतड़ाग है जो कि पवित्र व महापातकों का नाशक है ॥ ३ ॥ जिसके दर्शनही से करोड़ों महापातक शीघ्रही नाश को प्राप्त होते हैं जैसे कि सूर्योदय में अन्धकार नाश होजाता है ॥ ४ ॥ आपही रामजी से बनायेहुये रामतीर्थ को जब मनुष्य देखता है तभी ब्रह्महत्या से छूटजाता है इस में सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ हे महाराज ! उस मुक्तिदायक रामतीर्थ में जाकर स्नानकरो तो तुम्हारे पाप की शुद्धि होगी व राज्यपालन की योग्यता भी होगी ॥ ६ ॥ हे युधिष्ठिर ! उस के किनारे तुम गऊ, पृथ्वी, तिल व वस्त्रों का दान करो और सोने व चांदियों

उवाच ॥ दक्षिणाम्भोनिधौसेतौ गन्धमादनपर्वते ॥ २ ॥ रामसेतौमहाराज रामतीर्थमितिश्रुतम् ॥ अस्तिपुण्यंसरःसिद्धं महापातकनाशनम् ॥ ३ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण महापातककोटयः ॥ प्रयान्तिविलयंसद्यस्तमःसूर्योदयेयथा ॥ ४ ॥ रामतीर्थंयदापश्येत्स्वयंरामेणनिर्मितम् ॥ तदैवब्रह्महत्याया मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ५ ॥ तत्रगत्वामहाराज रामतीर्थे विमुक्तिदे ॥ स्नाहि ते पापशुद्धिःस्याद्राज्यरक्षार्हतापि च ॥ ६ ॥ दानंकुरुष्वतत्तीरे गोभूमितिलवाससाम् ॥ सुवर्णरजताभ्यां दानंकुरुयुधिष्ठिर ॥ ७ ॥ अवश्यमेतत्पापानां शुद्धिस्तेनाचिराद्भवेत् ॥ श्रीसूत उवाच ॥ व्यासेनधर्मपुत्रोयमेवमुक्तो द्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥ तत्क्षणेनैवधौम्येन सहितःसानुजस्तदा ॥ सहदेवंप्रतिष्ठाप्य राज्येधर्मात्मजस्तदा ॥ ९ ॥ रामसेतुंसमुद्दिश्य प्रतस्थेवाहनंविना ॥ दिनैःकतिपयैरेव रामसेतुंजगामसः ॥ १० ॥ रामतीर्थंसमासाद्य धौम्येनसहपाण्डवः ॥ पुरोहितोक्तमार्गेण सङ्कल्प्यविधिपूर्वकम् ॥ ११ ॥ सस्नौरामसरस्तीर्थे पुण्येपापविनाशने ॥ स्नात्वाचम्यविशुद्धात्मा

का भी दान करो ॥ ७ ॥ उससे अवश्यही इन पापों की शीघ्रही शुद्धि होगी श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! व्यासजी ने इन धर्मपुत्र (युधिष्ठिरजी) से ऐसा कहा ॥ ८ ॥ तब उसी क्षण धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी सहदेव को राज्यपै बिठाकर धौम्यसमेत व भाइयोंसहित उस समय ॥ ९ ॥ रामसेतु को उद्देश कर बिन सवारी के चले और कुछ दिनों से वे रामसेतु को गये ॥ १० ॥ और धौम्यसमेत पाण्डव युधिष्ठिरजी ने रामसेतु को प्राप्त होकर पुरोहित से कहेहुये मार्ग से विधिपूर्वक संकल्प कर ॥ ११ ॥ पातकों के विनाशक व पवित्र रामसर तीर्थ में स्नान किया और नहाकर व आचमन कर शुद्धचित्तवाले उन युधिष्ठिरजी ने क्षेत्रपिण्ड को देकर व्यासजी से

कहेहुये सब दानों को दिया और उन धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी ने निराहार होकर एक महीने तक स्नान किया ॥ १२ । १३ ॥ व हे ब्राह्मणो! द्रव्य के लोभ के विना प्रतिदिन दान दिया इसप्रकार एक महीना बीतने पर तदनन्तर किसी दिन ॥ १४ ॥ फिर आकाशवाणी ने धर्मपुत्र से कहा कि हे राजन्, युधिष्ठिरजी ! तुम्हारा सब पाप नाश को प्राप्त होगया ॥ १५ ॥ व हे परन्तप! छल के कारण असत्यवचन से और द्रोणाचार्य के वध से जो दोष पहिले तुम को हुआ था वह भी नष्ट होगया ॥ १६ ॥ हे राजन् ! अपने नगर को जाइये व जाकर पृथ्वी को पालन कीजिये और अपना अभिषेक कराइये क्योंकि तुम को राज्यपालन की योग्यता है ॥ १७ ॥ यह कहकर इस के

क्षेत्रपिण्डम्प्रदाय च ॥ १२ ॥ व्यासोक्ताखिलदानानि प्रददौसयुधिष्ठिरः ॥ मासमेकंनिराहारः सस्नौतत्रसधर्मजः ॥ १३ ॥ प्रत्यहं च ददौदानं वित्तलोभंविनाद्विजाः ॥ एकमासेगतेत्वेवं कस्मिंश्चिद्दिवसेततः ॥ १४ ॥ आहधर्मात्मजंवाणी पुनरप्यशरीरिणी ॥ राजंस्तेविलयंयातं सर्वपापंयुधिष्ठिर ॥ १५ ॥ छलेनासत्यवचनादाचार्यस्यवधेनयः ॥ दोषस्तेसमभूत्पूर्वं सोपिनष्टःपरन्तप ॥ १६ ॥ याहिस्वनगरंराजन्गत्वापालयमेदिनीम् ॥ अभिषेचयचात्मानं राज्यरक्षार्हतास्तिते ॥ १७ ॥ इत्युक्त्वाविरराभाथ सापिवागशरीरिणी ॥ ततोधर्मात्मजःप्रीतस्तामुद्दिश्यदिशम्प्रति ॥ १८ ॥ नमस्कृत्वाशरीरिण्यै तस्यैवाचेसहानुजः ॥ प्रययौहस्तिनपुरं सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥ १९ ॥ अभिषिक्तोथराज्येसौ पालयामासमेदिनीम् ॥ इत्थंधर्मात्मजोविप्रा रामतीर्थेनिमज्जनात् ॥ २० ॥ गतपापोविशुद्धात्मा योग्योभूद्राज्यरक्षणे ॥ एवंवःकथितंचित्रं रामतीर्थस्यवैभवम् ॥ २१ ॥ सर्वपापहरंपुण्यं भक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ यत्रस्नानाद्विमुक्तोभून्मिथ्यादोषात्सधर्मजः ॥ २२ ॥

अनन्तर वह आकाशवाणी चुप होगई तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी उस दिशा को उद्देश कर ॥ १८ ॥ उस आकाशवाणी के लिये नमस्कार कर भाइयोंसमेत प्रसन्नचित्त से हस्तिनापुर को गये ॥ १९ ॥ व राज्यपै अभिषेक कियेहुये इन युधिष्ठिरजी ने पृथ्वी को पालन किया हे ब्राह्मणो! इसप्रकार युधिष्ठिरजी रामतीर्थ में स्नान से ॥ २० ॥ पापरहित व शुद्धचित्त होकर राज्य की रक्षा के योग्य हुये इसप्रकार तुमलोगों से रामतीर्थ का विचित्र प्रभाव कहागया ॥ २१ ॥ जो कि

सब पापों को हरनेवाला व पवित्र तथा भक्ति व मुक्ति को देनेवाला है जिसमें स्नान करने से वे धर्मपुत्र असत्य के दोष से छूटगये ॥ २२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जो म॰
इस अध्याय को पढ़ते या जो सुनते हैं वे पापरहित मनुष्य अन्यपुरुषों से दुर्लभ कैलास को जाते हैं और जाकर फिर जन्म को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १२३ ॥ इति
श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामतीर्थप्रशंसायांधर्मपुत्रमिथ्याकथनदोषशान्तिर्नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो॰ । लक्ष्मणतीर्थ नहाय जिमि शुद्ध भये बलभद्र । उनइसवें अध्याय में सोई चरित सुभद्र ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उन तारक ब्रह्म के तीर्थ में नहाकर

पठन्ति येऽध्यायमिमं द्विजोत्तमाः शृण्वन्ति वा ये मनुजा विपातकाः ॥ यास्यन्ति कैलासमनन्यलभ्यं गत्वा न संयान्ति पुनश्च जन्म ॥ १२३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येरामतीर्थप्रशंसायांधर्मपुत्रमिथ्याकथनदोषशान्तिर्नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ तारकब्रह्मणस्तस्य तीर्थेस्नात्वाद्विजोत्तमाः ॥ लक्ष्मणस्यततस्तीर्थमभिगच्छेत्समाहितः ॥ १ ॥ श्रीलक्ष्मणस्यतीर्थे तु स्नात्वापापैर्विमोचितः ॥ मुक्तिंप्रयातिविमलामपुनर्भवलक्षणाम् ॥ २ ॥ स्नानाल्लक्ष्मणतीर्थे तु दारिद्र्यंनश्यतेखिलम् ॥ आयुष्मान्गुणवान्विद्वान्पुत्रश्चैवास्यजायते ॥ ३ ॥ कूलेलक्ष्मणतीर्थस्य तन्मन्त्रंजपतेतु यः ॥ ससर्वशास्त्रवेत्तास्याच्चतुर्वेदविदप्यसौ ॥ ४ ॥ तस्यकूलेमहल्लिङ्गं स्थापयामासलक्ष्मणः ॥ तत्रतीर्थे तु यःस्नात्वा सेवतेलक्ष्मणेश्वरम् ॥ ५ ॥ इहदारिद्र्यरोगाभ्यां संसाराच्च विमुच्यते ॥ स्नात्वालक्ष्मणतीर्थे तु सेवित्वालक्ष्मणेश्व

तदनन्तर सावधान होताहुआ मनुष्य लक्ष्मणजी के तीर्थ को जावै ॥ १ ॥ श्रीलक्ष्मणजी के तीर्थ में नहाकर पापों से छूटाहुआ मनुष्य अपुनर्जन्मलक्षणवाली निर्मल
मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ और लक्ष्मणतीर्थ में स्नान करने से सब दरिद्रता नाश होजाती है और आयुष्मान्, गुणवान् व विद्वान् पुत्र इसके उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥
व लक्ष्मणतीर्थ के किनारे जो उस मन्त्र को जपता है वह सब शास्त्रों का ज्ञाता होता है और यह चारो वेदों का भी जाननेवाला होता है ॥ ४ ॥ लक्ष्मणजी ने उस के
किनारे पै बड़ेभारी लिंग को स्थापन किया है उस तीर्थ में नहाकर जो मनुष्य लक्ष्मणेश्वरजी को भजता है ॥ ५ ॥ वह यहां दरिद्रता व रोग से और संसार से छूटजाता है

लक्ष्मणतीर्थ में नहाकर व लक्ष्मणेश्वरजी को सेवन कर ॥ ६ ॥ हे ब्राह्मणो ! पुरातनसमय बलभद्रजी ब्रह्महत्या से छूटे हैं ऋषिलोग बोले कि हे सूतज ! रौहिणेय बलभद्रजी के किसप्रकार ब्रह्महत्या हुई है ॥ ७ ॥ व हे महामुने ! वह ब्रह्महत्या यहां किसप्रकार नष्ट हुई है उस को हमलोगों से कहिये श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! पुरातनसमय जो शेषावतार भगवान् बलभद्रजी हुये ॥ ८ ॥ कौरवों व पाण्डवों के युद्ध का उद्योग देखकर वे हलायुध बलभद्रजी बन्धुत्रों के वध को सहँने के लिये न समर्थ हुये ॥ ९ ॥ और महाबुद्धिमान् बलभद्रजी ने ऐसा विचार किया कि यदि मैं कुरुराज धृतराष्ट्र की सहायता करूंगा ॥ १० ॥ तो पाण्डुपुत्रों का मेरे ऊपर बड़ा

रम् ॥ ६ ॥ बलभद्रः पुराविप्रा मुमुचेब्रह्महत्यया ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ब्रह्महत्याकथमभूद्रौहिणेयस्यसूतज ॥ ७ ॥ कथं चात्र विनष्टासा तन्नोब्रूहिमहामुने ॥ श्रीसूत उवाच ॥ शेषावतारोभगवान्बलभद्रः पुराद्विजाः ॥ ८ ॥ कुरूणांपाण्डवानाञ्च युद्धोद्योगंविलोक्य तु ॥ बन्धूनांसवधंसोढुमसमर्थोहलायुधः ॥ ९ ॥ विचारमेवमकरोद्बलभद्रोमहामतिः ॥ यद्यहंकुरुराजस्य करिष्यामिसहायताम् ॥ १० ॥ कोपःस्यात्पाण्डुपुत्राणां मय्यवार्यःसुदारुणः ॥ उपकारंकरिष्यामि पाण्डवानामहंयदि ॥ ११ ॥ दुर्योधनस्यकोपःस्यादितिबुद्ध्वाहलायुधः ॥ तीर्थयात्राछलेनासौ मध्यस्थःप्रययौतदा ॥ १२ ॥ प्रभासमभिगम्याथ स्नात्वासङ्कल्पपूर्वकम् ॥ देवानृषीन्पितृगणांस्तर्पयामासवारिणा ॥ १३ ॥ सरस्वतींततःप्रायात्प्रतीच्याभिमुखांहली ॥ पृथूदकंबिन्दुसरो मुक्तिदंब्रह्मतीर्थकम् ॥ १४ ॥ गङ्गां च यमुनां सिन्धुं शतद्रूं च सुदर्शनम् ॥ सम्प्राप्यबलभद्रोयं स्नात्वातीर्थेषुधर्मतः ॥ १५ ॥ प्रपेदेनैमिषारण्यं मुनीन्द्रैरभिसेवितम् ॥ आगतंतंविलोक्याथ नैमिषी

दारुण व मना न करने योग्य क्रोध होगा और यदि मैं पाण्डवों का उपकार करूंगा ॥ ११ ॥ तो दुर्योधन का क्रोध होगा ऐसा जानकर ये हलायुध बलभद्रजी मध्यस्थ होकर उससमय तीर्थयात्रा के छल से चलेगये ॥ १२ ॥ इस के अनन्तर प्रभासक्षेत्र को जाकर संकल्पपूर्वक नहाकर उन्होंने देवताओं, ऋषियों व पितृगणों को जल से तर्पण किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर हली बलभद्रजी पश्चिममुखवाली सरस्वती को गये और पृथूदक, बिन्दुसर व मुक्तिदायक ब्रह्मतीर्थ को गये ॥ १४ ॥ और गंगा, यमुना, सिन्धु, शतद्रू व सुदर्शनतीर्थ को प्राप्त होकर ये बलभद्रजी तीर्थों में धर्म से नहाकर ॥ १५ ॥ मुनीन्द्रों से सेवित नैमिषारण्य को प्राप्त हुये व आयेहुये उन को देखकर

दीर्घयज्ञ में स्थित तथा भलीभांति नियत व धर्म में तत्पर नैमिषारण्य के तपस्वियों ने आसन से उठकर आगे जाकर यदुश्रेष्ठ (बलभद्रजी) को प्रणाम कर ॥ १६ । १७ ॥ उससमय विष्टरादिक व कन्द, मूल, फलों से पूजन किया व आसन को ग्रहण कर अग्रगामियोंसमेत ये पूजित हुये ॥ १८ ॥ और वे बलभद्रजी उच्चासनपै बैठे प्रणाम न करते व न उठेहुये तथा हाथों को न जोड़े व्यासशिष्य सूतजी को बैठेहुये देखकर ॥ १९ ॥ आयेहुये अपना को प्रणाम करतेहुये ब्राह्मणों को देखकर रोहिणी के पुत्र बलभद्रजी पौराणिकों में उत्तम सूतजी के ऊपर क्रोधित हुये ॥ २० ॥ कि मुनियों के मध्य में यह निन्दा के योग्य अनुलोमज सूत (ब्राह्मणी स्त्री में क्षत्रिय से उत्पन्न)

यास्तपस्विनः ॥ १६ ॥ दीर्घसत्रेस्थिताःसम्यङ्नियताधर्मतत्पराः ॥ अभ्युद्गम्ययदुश्रेष्ठं प्रणम्योत्थाय चासनात् ॥ १७ ॥ अपूजयन्विष्टराद्यैः कन्दमूलफलैस्तदा ॥ आसनंपरिगृह्यार्यं पूजितःसपुरःसरः ॥ १८ ॥ उच्चासनेस्थितंसूतमनमन्तमनुत्थितम् ॥ अकृताञ्जलिमासीनं व्यासशिष्यंविलोक्यसः ॥ १९ ॥ विप्रांश्चानमतोदृष्ट्वा विलोक्यात्मानमागतम् ॥ चुक्रोधरोहिणीसूनुः सूतंपौराणिकोत्तमम् ॥ २० ॥ मध्येमुनीनांसूतोयं कस्मान्निन्द्योनुलोमजः ॥ उच्चासनेसमध्यास्ते न युक्तमिदमञ्जसा ॥ २१ ॥ अवमत्यभृशञ्चास्मान्धर्मसंरक्षकानयम् ॥ आस्तेनुत्थायनिर्भीतिर्न च प्रणमतेतथा ॥ २२ ॥ पठित्वायंपुराणानि द्वैपायनसकाशतः ॥ सेतिहासानिसर्वाणि धर्मशास्त्राण्यनेकशः ॥ २३ ॥ नमांदृष्ट्वाप्रणमते नैवत्यजतिचासनम् ॥ द्वैपायनस्यमहतः शिष्याः पैलादयोद्विजाः ॥ २४ ॥ एवंविधमधर्मन्ते नैवकुर्युर्यथात्वयम् ॥ तस्मादेनं वधिष्यामि दुरात्मानमचेतनम् ॥ २५ ॥ दुष्टानांनिग्रहार्थं हि भूर्लोकमहमागतम् ॥ मयाहतो हि दुष्टात्मा शुद्धिमेष्य

किसकारण ऊंचे आसन पै स्थित है यह योग्य नही है ॥ २१ ॥ क्योंकि धर्म की रक्षा करनेवाले हमलोगों का यह बहुतही अपमान कर न उठकर निडर स्थित है और प्रणाम नहीं करता है ॥ २२ ॥ और यह सूत व्यासजी के सकाश से इतिहाससमेत सब पुराणों को व अनेक धर्मशास्त्रों को पढ़कर ॥ २३ ॥ मुझ को देखकर न प्रणाम करता है न आसन को छोड़ता है महात्मा व्यासजी के जो पैलादिक ब्राह्मण शिष्य हैं ॥ २४ ॥ वे ऐसे अधम धर्म को नहीं करते हैं जैसा कि यह करता है इस कारण इस निर्बुद्धि व दुष्टात्मा सूत को मैं मारूं ॥ २५ ॥ क्योंकि दुष्टों के दण्ड के लिये मैं पृथ्वीलोक को आया हूं और मुझ से मारा हुआ यह दुष्टात्मा निस्सन्देह

शुद्धिको प्राप्त होगा ॥ २६ ॥ ऐसा कहकर मुशली, बली व हली भगवान् बलरामजी ने क्रोध से उस के शिरको हाथ में स्थित कुश के अग्रभाग से काटडाला ॥ २७॥ और वहा के सब मुनिलोगो ने यह विलाप किया कि हाय बड़ा कष्ट हुआ व उससमय ब्रह्मवादी मुनियों ने बलरामजीसे कहा ॥२८॥ कि हे प्रभो, संकर्षण,बलरामजी ! तुम ने कठिन अधर्म किया क्योंकि हमलोगों ने इस सूत को बड़ा भारी ब्रह्मासन दिया था ॥ २९ ॥ व हे हलायुध ! हमलोगों ने इस को अक्षय आयुर्बल दिया था और इससमय न जानतेहुये आपने बड़ा भारी ब्रह्मघात किया ॥ ३० ॥ और योगेश्वर आपका कोई दण्डकर्ता नहीं है परन्तु इस ब्रह्महत्या के जो करनेयोग्य कार्य हो उसको

त्यसंशयम् ॥ २६ ॥ इत्युक्त्वाभगवान्रामो मुशलीप्रबलीहली ॥ पाणिस्थेनकुशाग्रेण तच्छिरःप्राच्छिनद्रुषा ॥ २७॥ तत्र त्यामुनयःसर्वे हा कष्टमितिचुक्रुशुः ॥ अवादिषुस्तदारामं मुनयोब्रह्मवादिनः ॥२८ ॥ रामाधर्मःकृतःकष्टस्त्वयासङ्कर्षण प्रभो ॥ अस्यसूतस्य चास्माभिर्दत्तंब्रह्मासनंमहत् ॥ २९ ॥ अक्षयं चायुरस्माभिरस्यदत्तंहलायुध ॥ भवताजानतैवाद्य कृतोब्रह्मवधोमहान् ॥ ३० ॥ योगेश्वरस्यभवतो नास्तिकश्चिन्नियामकः ॥ अस्यास्तुब्रह्महत्याया यत्कर्त्तव्यंविचार्य तत् ॥ ३१ ॥ प्रायश्चित्तंभवानेव लोकसंग्रहणाय तु ॥ कुरुष्वभगवन्राम नान्येनप्रेरितःकुरु ॥ ३२ ॥ इत्युक्तोभगवान्राम स्तानुवाचमुनीन्प्रति ॥ राम उवाच ॥ प्रायश्चित्तंकरिष्यामि पापशोधकमास्तिकाः ॥ ३३ ॥ लोकसंग्रहणार्थाय नान्य कामनयाधुना ॥ यादृशोनियमोस्माभिः कर्तव्यःपापशान्तये ॥ ३४ ॥ तादृशंनियमंत्वद्य भवन्तःप्रब्रुवन्तु नः ॥ भव द्भिरस्यसूतस्य यदायुर्दत्तमक्षयम् ॥ ३५ ॥ इन्द्रियाणि च सत्त्वं च करिष्ये योगमायया ॥ मुनय ऊचुः ॥ पराक्रमस्यतेत्र

विचार कर ॥ ३१ ॥ हे भगवन्, रामजी ! लोक की मर्यादा के लिये आपही प्रायश्चित्त करो और अन्य से न प्रेरणा कियेहुये तुम उस को करो ॥ ३२ ॥ ऐसा कहेहुये भगवान् बलरामजी उन मुनियों से बोले बलरामजी बोले कि हे आस्तिको ! पाप को शोधन करनेवाले प्रायश्चित्त को मैं करूंगा ॥ ३३ ॥ इससमय लोक के संग्रहण के लिये अन्य कामना से नहीं बरन पाप की शान्ति के लिये हमको जैसा नियम करना चाहिये ॥ ३४ ॥ इससमय वैसे नियम को आपलोग हम से कहिये और आपलोगों ने इस सूत को जो अक्षय आयुर्बल दिया था ॥ ३५ ॥ मैं योगमाया से इन्द्रियों को व सत्त्व को करूंगा मुनिलोग बोले कि हे प्रभो ! जिसप्रकार

तुम्हारे अस्त्र के बल का नाश न होवै ॥ ३६ ॥ व हे रामजी! सत्यवचन होवै आप उसको करने के योग्य हो बलभद्रजी बोले कि आत्मा पुत्ररूप से होता है यहश्रुति सदैव ॥ ३७ ॥ उच्चप्रकार से कहती है इसकारण हे द्विजेन्द्रो ! इसके शरीर से सत्त्व, इन्द्रिय व बल से बढ़ाहुआ दीर्घायु पुत्र होगा ॥ ३८ ॥ वह प्रतिदिन तुमलोगों से पुराणादिकों को कहैगा और मेरी योगमाया के बल से यह होगा ॥ ३९ ॥ रोहिणी के पुत्र बलभद्रजी उन मुनियों से यह कहकर फिर नम्रवचन बोले कि मैं तुमलोगों का क्या मनोरथ करूं ॥ ४० ॥ हे मुनियो ! तुमलोग उस को कहो मैं निस्सन्देह करूंगा व हे मुनिश्रेष्ठो ! अज्ञान से मुझ से कियेहुये इस पाप को भी दूर करनेवाले

स्य मृत्योर्नश्ययथाप्रभो ॥ ३६ ॥ स्यात्सत्यवचनंराम तद्भवान्कर्तुमर्हति ॥ राम उवाच ॥ आत्मा वै पुत्ररूपेण भवतीतिश्रुतिस्सदा ॥ ३७ ॥ उद्घोषयतिविप्रेन्द्रास्तस्मादस्यशरीरतः ॥ पुत्रोभवतुदीर्घायुः सत्त्वेन्द्रियबलोर्जितः ॥ ३८ ॥ कथयिष्यतियुष्माकं पुराणादीनिसोन्वहम् ॥ सम्भविष्यतिसर्वज्ञो योगमायाबलान्मम ॥ ३९ ॥ इत्युक्त्वारौहिणेयस्तान्पुनःप्राश्रितमब्रवीत् ॥ मनोभिलषितंकिंवा युष्माकंकरवाण्यहम् ॥ ४० ॥ तद्ब्रूतमुनयोयूयं करिष्यामि न संशयः ॥ अज्ञानान्मत्कृतस्यास्य पापस्यापिनिवर्तकम् ॥ ४१ ॥ प्रायश्चित्तंभवन्तोमे प्रब्रूतमुनिसत्तमाः ॥ मुनय ऊचुः ॥ इल्वलस्यात्मजःकश्चिद्दानवोबल्वलाभिधः ॥ ४२ ॥ सदूषयतिनोयागं रामेहागत्यपर्वणि ॥ दुष्टन्तद्दानवंपापं जहिलोकैककण्टकम् ॥ ४३ ॥ अनेनपूजाह्यस्माकं कृतास्याद्भवताधुना ॥ अस्थिविण्मूत्ररक्तानि सुरामांसानि च क्रतौ ॥ ४४ ॥ सदाभिवर्षतेस्माकमत्रागत्यसदानवः ॥ अस्मिन्भारतभूभागे यानितीर्थानिसन्ति हि ॥ ४५ ॥ तेषुस्नात्वाब्दमेकंत्वं सर्वं

प्रायश्चित्त को भी आपलोग मुझ से कहो मुनिलोग बोले कि इल्वल का पुत्र कोई बल्वलनामक दानव है ॥ ४१ । ४२ ॥ हे बलरामजी ! वह पर्व में यहां आकर हम लोगों के यज्ञ को दूषित करता है इसलिये संसार के एक कण्टकरूप उस दुष्ट व पापी दानव को मारिये ॥ ४३ ॥ इससे इस समय आप से हमलोगों की पूजा कीहुई होगी यज्ञ में अस्थि, विष्ठा, मूत्र, रक्त, मदिरा व मांस को ॥ ४४ ॥ वह दानव हमलोगों के यहां आकर सदैव बरसाता है इस भरतखण्ड के पृथ्वीभाग में जो तीर्थ हैं ॥ ४५ ॥

उन सबों में सावधान होतेहुये तुम एक वर्ष तक स्नान करो उससे तुम्हारे पाप की शान्ति होगी इस में विचार न करना चाहिये ॥ ४६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो! पर्वसमय में मुनियज्ञ वर्तमान होने पर बड़ी भयंकर धूलि की वर्षा व भयानक झंझापवन ॥ ४७ ॥ प्रकट हुआ व हे द्विजेन्द्रो ! पीब और रक्त से वर्षा हुई तदनन्तर बल्वल से कीहुई विष्ठा की वृष्टि भी हुई ॥ ४८ ॥ इस के अनन्तर इन बलभद्रजी ने क्षणभर में बड़े बली व पराक्रमी तथा शूल को हाथ में लियेहुये दैत्य को यज्ञशाला में देखा ॥ ४९ ॥ उससमय जलेहुये पर्वत के समान बड़े शरीरवाले तथा तचेहुये तांबे के समान व दाढ़ी मूंछ और दाढ़ों से भयंकरमुखवाले उस दैत्य को

षुसुससाहितः ॥ तेनतेपापशान्तिःस्यान्नात्रकार्याविचारणा ॥ ४६ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ पर्वकाले तु विप्रेन्द्राः समावृत्तेमुनिक्रतौ ॥ महाभीमोरजोवर्षो झञ्झावातश्चभीषणः ॥ ४७ ॥ प्रादुर्बभूवविप्रेन्द्राः पूयरक्तैश्च वर्षणम् ॥ ततोविष्ठामयावृष्टिर्बल्वलेनकृताप्यभूत् ॥ ४८ ॥ असुरंयज्ञशालायां शूलपाणिमथक्षणात् ॥ अपश्यद्बलभद्रोसौ महाबलपराक्रमम् ॥ ४९ ॥ तमालोक्यमहादेहं दग्धाद्रिप्रतिमन्तदा ॥ प्रतप्तताम्रसंकाशं श्मश्रुदंष्ट्रोत्कटाननम् ॥ ५० ॥ चिन्तयामासमुशलं रामःपरविदारणम् ॥ सीरञ्च दानवहरं गदांदैत्यविदारिणीम् ॥ ५१ ॥ यान्यायुधानितंरामं चिन्तितान्युपतस्थिरे ॥ सीराग्रेणतमाकृष्य बल्वलञ्चेचरन्तदा ॥ ५२ ॥ मुशलेननिजघ्नेसः कुपितोमूर्ध्निवेगतः ॥ पपातभुविसंक्षुण्णललाटोरक्तमुद्वमन् ॥ ५३ ॥ बल्वलोदीर्णवदनो गिरिर्वज्रहतोयथा ॥ स्तुत्वाथमुनयोरामं प्रोचार्यविमलाशिषः ॥ ५४ ॥ अभिषिञ्चञ्छुभैस्तोयैर्वृत्रशत्रुंयथासुराः ॥ मालान्ददुर्वैजयन्तीं श्रीमदम्बुजशोभिताम् ॥ ५५ ॥ माधवायशुभेवस्त्रे भूषणा

देखकर ॥ ५० ॥ बलभद्रजी ने शत्रुवों को विदारनेवाले मुशल व दानवों को नाशनेवाले हलको तथा दैत्यों को विदारनेवाली गदा को ध्यान किया ॥ ५१ ॥ व जो अस्त्र ध्यान कियेगये वे उन बलरामजी के समीप प्राप्त हुये तब हल के अग्रभाग से उस आकाशचारी बल्वल को खींचकर ॥ ५२ ॥ उन बलरामजी ने क्रोधित होकर वेग से मस्तक में मुशल से मारा और वज्र से मारेहुये पर्वत की नाईं रक्त को वमन करताहुआ विदीर्णमुख व फटे मस्तकवाला वह बल्वल दैत्य पृथ्वी में गिरपडा इसके अनन्तर मुनियों ने बलभद्रजी की स्तुति कर व निर्मल आशीर्वादों को कहकर ॥५३। ५४॥ उत्तम जलों से अभिषेक किया जैसे कि देवताओं ने वृत्रासुर के शत्रु इन्द्र का

अभिषेक किया है और शोभायुक्त कमलों से शोभित वैजयन्ती माला को दिया ॥ ५५ ॥ व दो उत्तम वस्त्र तथा उत्तम भूषणों को माधवजी के लिये दिया उन सबों को धारण करतेहुये बड़े बलवान् बलरामजी ॥ ५६ ॥ फूलेहुये वृक्षों से संयुत कैलासपर्वतकी नाईं शोभित हुये इसके अनन्तर हे उत्तमब्राह्मणो! मुनियों से आज्ञा दियेहुये बलभद्रजी नियम व आचार से संयुत होकर एक वर्षतक घूमतेहुये स्नान करतेभये तदनन्तर वर्ष पूर्ण होने पर यमुनाभेदी बलरामजी ने ॥५७।५८॥ तीर्थयात्रा को समाप्त करतेहुये पुरीको जाने के लिये इच्छा किया तदनन्तर पीछे आतीहुई तमोमयी व महाशब्द को करतीहुई दुबली छाया को इन बलभद्रजी ने देखा इसके अनन्तर उस

निशुभानि च ॥ धारयंस्तानिसर्वाणि रौहिणेयोमहाबलः ॥ ५६॥ पुष्पितानोकहोपेतः कैलासइवपर्वतः ॥ अनुज्ञातोथ मुनिभिः सर्वतीर्थेषुसद्द्विजाः ॥ ५७ ॥ एकमब्दञ्चरन्सस्नौ नियमाचारसंयुतः ॥ ततः संवत्सरे पूर्णे कालिन्दीभेदनो बलः ॥ ५८ ॥ समाप्ततीर्थयात्रःसन्पुरींगन्तुंप्रचक्रमे ॥ ततस्तमोमयींछायां पृष्ठतोनुगतांकृशाम् ५९ ॥ अपश्यद्ब लदेवोयं महानादविराविणीम् ॥ अथ वार्तां स शुश्राव समुद्भूतान्तदाम्बरे ॥६०॥ रामराम महाबाहो रौहिणेय सितप्रभ ॥ तीर्थाभिगमनेनाद्याचरितेन त्वयानघ ॥ ६१ ॥ न नष्टा ब्रह्महत्या ते निश्शेषंरोहिणीसुत ॥ इति वार्तांसमाकर्ण्य चिन्तया मास वै बलः ॥ ६२ ॥ प्रायश्चित्तंमयाचीर्णमेकाब्दंतीर्थसेवया ॥ तथापि ब्रह्महत्या नो न नष्टेतिश्रुतंवचः ॥ ६३ ॥ किंकुर्म इति संचिन्त्य नैमिषारण्यमभ्यगात् ॥ तत्रगत्वामुनीनांतन्न्यवेदयदरिन्दमः ॥ ६४ ॥ यच्छ्रुतंगगनेवाक्यं या च दृष्टा तमोमयी ॥ न्यवेदयततत्सर्वं मुनीनांरोहिणीसुतः ॥ ६५ ॥ तच्छ्रुत्वामुनयःसर्वे रामंवाक्यमथाब्रुवन् ॥ मुनय ऊचुः ॥ यदि

समय आकाश में उपजीहुई वार्ता को सुना ॥ ५९।६० ॥ कि हे सितप्रभ, रौहिणेय, अनघ, महाबाहो, राम, ! हे राम ! इससमय तुम्हारे तीर्थ गमन करने से ॥ ६१ ॥ हे रोहिणीसुत! तुम्हारी ब्रह्महत्या सम्पूर्णता से नष्ट नहीं हुई इस वार्ता को सुनकर बलभद्रजी ने चिन्तन किया ॥ ६२ ॥ कि मैंने एक वर्ष तीर्थसेवन से प्रायश्चित्त किया तौ भी ब्रह्महत्या नष्ट नहीं हुई यह वचन सुनागया ॥ ६३ ॥ क्या करैं ऐसा विचारकर बलभद्रजी नैमिषारण्य को आये और वहां जाकर शत्रुवों को दमन करनेवाले उन्होंने उसको मुनियों से बतलाया ॥ ६४ ॥ जो वचन आकाश में सुनागया था और जो अन्धकारमयी छाया देखीगई थी उस सबको रोहिणीसुत बलभद्रजी ने मुनियों से

बतलाया ॥ ६५ ॥ उसको सुनकर इसके अनन्तर सब मुनियों ने बलरामजी से वचन कहा मुनिलोग बोले कि हे बलरामजी ! यदि तुम्हारी ब्रह्महत्या सम्पूर्णता से नष्ट नहीं हुई है ॥ ६६ ॥ तो हे महाभाग ! महादुःखों को नाश करनेवाले व महारोगों को विनाशनेवाले गन्धमादनपर्वत को जावो ॥ ६७ ॥ बड़े पवित्र रामसेतु पै गन्धमादनपर्वत पर लक्ष्मणतीर्थनामक पापविनाशक कुण्ड है ॥ ६८ ॥ उसमें तुम स्नान करो व उस लिंग को प्रणाम करो उस से ब्रह्महत्या सम्पूर्णता से नष्ट होजावैगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६९ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठो ! उससमय ऐसा कहेहुये बलरामजी गन्धमादनपर्वत को जाकर लक्ष्मणतीर्थ को प्राप्त हुये ॥ ७० ॥

राम न नष्टा ते ब्रह्महत्या तु कृत्स्नशः ॥६६॥ तर्हिगच्छमहाभाग गन्धमादनपर्वतम् ॥ महादुःखप्रशमनं महारोगविनाशनम् ॥ ६७ ॥ रामसेतौ महापुण्ये गन्धमादनपर्वते ॥ अस्तिलक्ष्मणतीर्थाख्यं सरःपापविनाशनम् ॥ ६८ ॥ स्नानंकुरुष्वतत्रत्वं तल्लिङ्गं च नमस्कुरु ॥ निःशेषंतेननष्टास्याद्ब्रह्महत्या न संशयः ॥ ६९ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवमुक्तस्तदा रामो गन्धमादनपर्वतम् ॥ गत्वालक्ष्मणतीर्थं च प्राप्तवान्मुनिपुङ्गवाः ॥ ७० ॥ स्नात्वासंकल्पपूर्वं तु तत्रतीर्थेहलायुधः ॥ ब्राह्मणेभ्योददौवित्तं धान्यंगाश्च वसुंधराम् ॥ ७१ ॥ तस्मिन्नवसरेतत्र राममाहाशरीरवाक् ॥ निःशेषंरामनष्टा ते ब्रह्महत्याधुनात्विह ॥ ७२ ॥ सन्देहोनात्रकर्तव्यः सुखंयाहिपुरींनिजाम् ॥ तच्छ्रुत्वाबलभद्रोथ तत्तीर्थंप्रशशंस ह ॥ ७३ ॥ ततस्तत्रत्यतीर्थेषु स्नात्वासर्वेषुमाधवः ॥ धनुष्कोटौतथास्नात्वा रामनाथंनिषेव्य च ॥ ७४ ॥ द्वारकां स्वपुरींयायान्नष्टपातकसंचयः ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवंवःकथितंविप्राः श्रीलक्ष्मणसरोमलम् ॥ ७५ ॥ पुण्यंपवित्रंपापघ्नं ब्रह्महत्यादिशो

और संकल्पपूर्वक उस तीर्थ में नहाकर हलायुध बलभद्रजी ने ब्राह्मणों के लिये धन, धान्य, गऊ व पृथ्वी को दिया ॥ ७१ ॥ उससमय वहां अशरीरिणी आकाशवाणी ने बलभद्रजी से कहा कि हे रामजी ! इससमय यहां तुम्हारी ब्रह्महत्या सम्पूर्णता से नष्ट होगई ॥ ७२ ॥ इसमें सन्देह न करना चाहिये सुखपूर्वक अपनी पुरी को जावो उस वचन को सुनकर बलभद्रजी ने उस तीर्थ की प्रशंसा किया ॥ ७३ ॥ तदनन्तर वहां के सब तीर्थों में नहाकर माधव बलभद्रजी धनुष्कोटि में नहाकर व रामनाथ को सेवन कर ॥ ७४ ॥ नष्टपापराशिवाले वे अपनी द्वारकापुरी को गये श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! तुमलोगों से इसप्रकार निर्मल लक्ष्मणतड़ाग कहागया ॥ ७५ ॥

जोकि पुण्यदायक व पवित्र तथा पापनाशक व ब्रह्महत्यादि को शोधन करनेवाला है सावधान होताहुआ जो मनुष्य इस अध्याय को पढ़ता या सुनता है ॥ ७६ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! वह पुनरावृत्ति से रहित मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांलक्ष्मणतीर्थप्रशंसायांबलभद्रब्रह्महत्याविमोक्षणंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जटातीर्थ में न्हाय जिमि लह्यो ज्ञान शुकदेव । कह्यो बीस अध्याय में सोई सुखद सुभेव ॥ श्रीसूतजी बोले कि ब्रह्महत्या को नाशनेवाले लक्ष्मणजी के

धकम् ॥ यःपठेदिममध्यायं शृणुयाद्वा समाहितः ॥ ७६ ॥ सयातिमुक्तिंविप्रेन्द्राः पुनरावृत्तिवर्जिताम् ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्ये लक्ष्मणतीर्थप्रशंसायांबलभद्रब्रह्महत्याविमोक्षणंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ❀ ॥

श्रीसूत उवाच ॥ लक्ष्मणस्यमहातीर्थे ब्रह्महत्याविनाशने ॥ स्नात्वास्वचित्तशुद्ध्यर्थं जटातीर्थंततोव्रजेत् ॥ १ ॥ जन्ममृत्युजराक्रान्तसंसारातुरचेतसाम् ॥ अज्ञाननाशकंनास्ति जटातीर्थादृते द्विजाः ॥ २ ॥ लोकेमुमुक्षवःकेचिच्चित्तशुद्धिमभीप्सवः ॥ वाचापठन्तिवेदान्तांस्तृष्णीन्नानुभवन्तिते ॥ ३ ॥ पूर्वपक्षमहाग्राहे सिद्धान्तझषसंकुले ॥ वेदान्ताब्धाविहाज्ञानं मुह्यन्ति पतिता द्विजाः ॥ ४ ॥ प्रथमंचित्तशुद्ध्यर्थंवेदान्तान्संपठन्ति ये ॥ विवादंतेपठित्वा हि कलहं च वितन्वते ॥ ५ ॥ चित्तशुद्धिर्न वेदान्ताद्बहुव्यामोहकारणात् ॥ ततोवयं न वेदान्तान्मुनीन्द्राबहुमन्महे ॥ ६ ॥ चित्तशुद्धिंयदीच्छध्वं

महातीर्थ में नहाकर तदनन्तर अपने चित्त की शुद्धि के लिये जटातीर्थ को जावै ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! जन्म, मृत्यु व वृद्धता से घिरेहुये संसार में व्याकुलचित्तवाले पुरुषों के अज्ञान का नाशक जटातीर्थ से अन्य तीर्थ नहीं है ॥ २ ॥ संसार में मुक्ति की इच्छावाले कोई चित्तशुद्धि को चाहनेवाले पुरुष वचन से वेदान्तों को पढ़ते हैं वे तृप नहीं होते हैं ॥ ३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! पूर्वपक्षरूप महाग्राहवाले व सिद्धान्तरूपी मछलियों से संयुत इस वेदान्तरूपी समुद्र में अज्ञान में पड़ेहुये लोग मोहको प्राप्त होते है ॥ ४ ॥ पहिले चित्तशुद्धि के लिये जो वेदान्तों को पढ़ते हैं वे विवाद को पढ़कर कलह (झगड़ा) करते हैं ॥ ५ ॥ बहुत मोहके कारण वेदान्त से चित्त की

शुद्धि नहीं होती है उसकारण हे मुनीन्द्रो ! हमलोग वेदान्तों को बहुत नहीं मानते हैं ॥ ६ ॥ हे तपस्वियो ! यदि थोड़े यत्न से चित्त की शुद्धि को चाहो तो मैं सबों
से उच्चस्वर से कहता हूं कि जटातीर्थ को सेवन करो ॥ ७ ॥ पुरातनसमय सबों के उपकार के लिये साक्षात् शिवजी ने गन्धमादनपर्वत पै इस अज्ञाननाशक तीर्थ को
बनाया है ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मणो ! रावण के मारने पर धर्मवान् रामजी ने जिस जल में जटा को धोया है वह जटातीर्थ कहाजाता है ॥ ९ ॥ साठ हज़ार वर्षतक गंगाजी
के जल में स्नान व बृहस्पति के सिंहराशि में स्थित होने पर एक बार गोदावरी में स्नान ॥ १० ॥ सिंहराशि में बृहस्पति प्राप्त होनेपर उतनेही हज़ार स्नान होते हैं

लघूपायेनतापसाः ॥ उद्घोषयामिसर्वेषां जटातीर्थंनिषेवत ॥ ७ ॥ पुरासर्वोपकारार्थं तीर्थमज्ञाननाशनम् ॥ एत
द्विनिर्मितंसाक्षाच्छम्भुनागन्धमादने ॥ ८ ॥ निहतेरावणेविप्रा जटांरामस्तुधार्मिकः ॥ क्षालयामासयत्तोये तज्जटा
तीर्थमुच्यते ॥ ९ ॥ वर्षाणांषष्टिसाहस्रं जाह्नवीजलमज्जनम् ॥ गोदावर्यांसकृत्स्नानं सिंहस्थे च बृहस्पतौ ॥ १० ॥ ताव
त्सहस्रस्नानानि सिंहंदेवगुरौगते ॥ गोमत्यांलभ्यतेवर्षैस्तज्जटातीर्थदर्शनात् ॥ ११ ॥ जटातीर्थेमनुष्याणां स्नाता
नांद्विजपुङ्गवाः ॥ अन्तःकरणशुद्धिःस्यात्ततोऽज्ञानंविनश्यति ॥ १२ ॥ अज्ञाननाशेज्ञानंस्यात्ततोमुक्तिमवाप्स्यति ॥
अखण्डसच्चिदानन्दः सम्पूर्णःस्यात्ततःपरम् ॥ १३ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासंपुरातनम् ॥ पितुःपुत्रस्यसंवादंव्या
सस्य च शुकस्य च ॥ १४ ॥ पुरामुनिवरंकृष्णं भावितात्मानमच्युतम् ॥ पारम्पर्यविशेषज्ञं सर्वशास्त्रार्थकोविदम् ॥ १५ ॥

और वर्षों मे जो गोमती में स्नान से फल मिलता है वह जटातीर्थ के दर्शन से मिलता है ॥ ११ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जटातीर्थ में नहायेहुये मनुष्यों के अन्तःकरण (चित्त)
की शुद्धि होती है व उस से अज्ञान नाश होजाता है ॥ १२ ॥ और अज्ञान नाश होनेपर ज्ञान होता है तदनन्तर मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होता है तदनन्तर अखण्ड
सच्चिदानन्द सम्पूर्ण होता है ॥ १३ ॥ इस विषय में भी विद्वान्लोग पिता व्यास व पुत्र शुकदेवजी के संवादरूप इस प्राचीन इतिहास को कहते हैं ॥ १४ ॥ कि पुरा-
तनसमय हे ब्राह्मणो ! शुद्धचित्तवाले व पारम्पर्य के विशेष को जाननेहारे तथा सब शास्त्रों के अर्थों में चतुर अच्युत मुनिश्रेष्ठ कृष्ण व्यासजी को मस्तक से प्रणाम कर

शुकदेवजी ने पूछा श्रीशुकदेवजी बोले कि हे तात, भगवन्, सर्वज्ञ ! अतिउत्तम गुप्त चरित्र को कहो ॥ १५।१६ ॥ कि जिस से चित्तकी शुद्धि व अज्ञान का नाश और ज्ञान का उदय व अन्त में सनातनी मुक्ति होवै ॥ १७ ॥ हे महामुने ! उस उपाय को मुझ से इससमय स्नेह से कहो वेदान्त, इतिहास व सब पुराणादिकों को ॥ १८ ॥ मैंने तुम से पढ़ा है परन्तु वे मन को शुद्ध नहीं करते हैं इसकारण हे पिताजी ! जिसप्रकार मेरे चित्त की शुद्धि होवै वैसेही कहिये ॥ १९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! उससमय शुकदेवजी से इसप्रकार पूछेहुये व्यासजी ने गुप्त चरित्र को कहा कि जिस से अज्ञान नाश होजाता है ॥ २० ॥ व्यासजी बोले कि हे शुकदेवजी ! अविद्या की ग्रन्थि को

प्रणम्यशिरसाव्यासं शुकःपप्रच्छ वै द्विजाः ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भगवंस्तातसर्वज्ञ ब्रूहिगुह्यमनुत्तमम् ॥ १६ ॥ अन्तःकरणशुद्धिःस्यात्तथाज्ञानविनाशनम् ॥ ज्ञानोदयश्च येन स्यादन्तेमुक्तिश्च शाश्वती ॥ १७ ॥ तमुपायंवदस्वाद्य स्नेहान्ममहामुने ॥ वेदान्ताश्चेतिहासाश्च पुराणादीनिकृत्स्नशः ॥ १८ ॥ अधीतानि मया त्वत्तः शोधयन्ति न मानसम् ॥ अतो मे चित्तशुद्धिः स्याद्यथा तात तथा वद ॥ १९ ॥ इति पृष्टस्तदाव्यासः शुकेन मुनिसत्तमाः ॥ रहस्यं कथयामास येनाविद्याविनश्यति ॥ २० ॥ व्यास उवाच ॥ शुकवक्ष्यामि ते गुह्यमविद्याग्रन्थिभेदनम् ॥ बुद्धिशुद्धिप्रदं पुंसां जन्मादिभयनाशनम् ॥ २१ ॥ रामसेतौ महापुण्ये गन्धमादनपर्वते ॥ विद्यतेपापसंहारि जटातीर्थमितिश्रुतम् ॥ २२ ॥ जटांस्वांशोधयामास यत्ररामोहरिःस्वयम् ॥ रामोदाशरथिः श्रीमांस्तीर्थाय च वरं ददौ ॥ २३ ॥ स्नान्तियेत्रसमागत्य जटातीर्थेतिपावने ॥ अन्तःकरणशुद्धिश्च तेषां भूयादिति स्म सः ॥ २४ ॥ विना यज्ञं विना ज्ञानं विना जाप्यमुपोषणम् ॥ स्नानमात्रा

तोड़नेवाले व पुरुषों की बुद्धि को शुद्धिदायक तथा जन्मादि भय को नाशनेवाले गुप्त चरित्र को मैं तुम से कहता हूं ॥ २१ ॥ बड़े पवित्र रामसेतु पै गन्धमादनपर्वत पै पापों को नाश करनेवाला जटातीर्थ ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ है ॥ २२ ॥ जहां दशरथ के पुत्र श्रीमान् रघुनाथजी ने अपनी जटा को शोधन किया और तीर्थ के लिये वर दिया है ॥ २३ ॥ कि जो मनुष्य अतिपवित्रकारक जटातीर्थ में आकर स्नान करते हैं उनके चित्त की शुद्धि होती है ॥ २४ ॥ विना यज्ञ व विना ज्ञान और विना जप व उपासके

जटातीर्थ में स्नानही से मनुष्यों की बुद्धि की शुद्धि होती है ॥ २५ ॥ और इसमें स्नान से सब दानों के समान पुण्य होता है व इस से मनुष्य कठिनों को नांघता है और पवित्र लोकों को भोगता है ॥ २६ ॥ और उत्तम जलवाले जटातीर्थ में स्नान से मनुष्य महत्त्व को भोगता है जटातीर्थ के विना चित्त की शुद्धि के लिये अन्य ॥ २७ ॥ नियम, जप व अन्य देवता नहीं हैं हे शुक ! इससमय जटातीर्थ धन्य, यशोदायक, आयुर्बलदायक व सब लोकों में प्रसिद्ध है और पवित्रों के मध्य में पवित्र तथा सब पापों का विनाशक व मंगलों के मध्य में मंगल है ॥ २८ । २९ ॥ हे शुक ! वरुण के पुत्र भृगुजी ने पुरातनसमय वरुण पिता से बुद्धि की शुद्धि को देनेवाले

ज्जटातीर्थे बुद्धिशुद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ २५ ॥ सर्वदानसमम्पुण्यं स्नानादत्रभविष्यति ॥ दुर्गाण्यनेन तरति पुण्यलोका न्समश्नुते ॥ २६ ॥ महत्त्वमश्नुतेस्नानाज्जटातीर्थेशुभोदके ॥ जटातीर्थंविनानान्यदन्तःकरणशुद्धये ॥ २७ ॥ विद्यतेनियमो वापि जपो वाप्यन्यदेवता ॥ धन्यंयशस्यमायुष्यं सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ २८ ॥ पवित्राणांपवित्रं च जटातीर्थंशुकाधुना ॥ सर्वपापप्रशमनं मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥ २९ ॥ भृगुर्वै वारुणिःपूर्वं वरुणं पितरं शुक ॥ बुद्धिशुद्धिप्रदोपायमपृच्छत्पावनंशुभम् ॥ ३० ॥ प्रोवाचवरुणस्तस्मै बुद्धिशुद्धिप्रदंशुभम् ॥ वरुण उवाच ॥ रामसेतौभृगोपुण्ये गन्धमादनपर्वते ॥ ३१ ॥ स्नानमात्राज्जटातीर्थेबुद्धिशुद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ सपितुर्वचनात्सद्यो भृगुर्वै वरुणात्मजः ॥ ३२ ॥ गत्वास्नात्वाजटातीर्थे बुद्धिशुद्धिमवाप्तवान् ॥ विनष्टाज्ञानसन्तानस्तयाशुद्ध्या तदा भृगुः ॥ ३३ ॥ उत्पन्नाद्वैतविज्ञानः स्वपितुर्वरुणादयम् ॥ अखण्डसच्चिदानन्दपूर्णाकारोभवच्छुक ॥ ३४ ॥ शङ्करांशोपि दुर्वासा जटातीर्थेभिषेकतः ॥

पवित्रकारक उत्तम उपाय को पूछा है ॥ ३० ॥ व वरुणजी ने उनसे बुद्धि की शुद्धि को देनेवाले उत्तम उपाय को कहा है वरुणजी बोले कि हे भृगो ! पवित्र रामसेतु पै गन्धमादनपर्वत पर ॥ ३१ ॥ जटातीर्थ में स्नान से निश्चय कर बुद्धि की शुद्धि होती है उसी क्षण पिता के वचन से वरुण के पुत्र भृगुजी ॥ ३२ ॥ जटातीर्थ में जाकर नहाकर बुद्धि की शुद्धि को प्राप्त हुये व उससमय भृगुजी के अज्ञान की सन्तान नष्ट होंगई ॥ ३३ ॥ व हे शुक ! अपने पिता वरुणजी से उत्पन्न अद्वैतज्ञानवाले ये भृगुजी अखण्डसच्चिदानन्द पूर्णाकार होगये ॥ ३४ ॥ और शिवजी के अंश दुर्वासा भी जटातीर्थ में स्नान से शीघ्रही मन की शुद्धि

को पाकर ब्रह्मानन्दमय होगये॥ ३५ ॥ व हे शुक ! विष्णु के अंश दत्तात्रेय भी इस तीर्थ में अभिषेक से शुद्धचित्त होकर ब्रह्माकार होगये॥ ३६ ॥ जो मनुष्य अज्ञान के नाशको चाहै वह समस्त पातकों के विनाशनेवाले व पुण्यदायक तथा अतिपवित्र जटानामक तीर्थ में स्नान करै ॥ ३७ ॥ इसलिये हे महामते, शुक ! तुम जटातीर्थ को जावो व मन को शुद्धिदायक व पुण्यदायक उस तीर्थ में स्नान करो ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मणो ! उससमय पिता व्यासजी से इसप्रकार कहेहुये पुत्र शुकदेवजी महापवित्र रामसेतु पै गन्धमादन पर्वत को ॥ ३९ ॥ गये व शुद्धिदायक जटातीर्थ में नहाने की इच्छा करतेहुये शुकदेव मुनि संकल्पपूर्वक जटातीर्थ में नहाकर ॥ ४० ॥ मन की शुद्धि को पाकर उस

मनश्शुद्धिमवाप्याशु ब्रह्मानन्दमयोभवत् ॥३५॥ दत्तात्रेयोपिविष्णवंशस्तीर्थेस्मिन्नभिषेचनात् ॥ शुद्धान्तःकरणोभूत्वा ब्रह्माकारोभवच्छुक ॥ ३६ ॥ इच्छेदज्ञाननाशंयः सस्नायात्तु जटाभिधे ॥ तीर्थेशुद्धतमेपुण्ये सर्वपापविनाशने ॥ ३७ ॥ जटातीर्थमतस्त्वं च शुकगच्छमहामते ॥ मनःशुद्धिप्रदे तस्मिन्स्नानं च कुरु पुण्यदे ॥ ३८ ॥ पित्रैवमुक्तोव्यासेन शुकःपुत्रस्तदाद्विजाः ॥ रामसेतुंमहापुण्यं गन्धमादनपर्वतम् ॥ ३९ ॥ अगमत्स्नातुकामःसञ्जटातीर्थेविशुद्धिदे ॥ स्नात्वासंकल्पपूर्वं च जटातीर्थेशुकोमुनिः ॥ ४० ॥ मनःशुद्धिमनुप्राप्य तेन चाज्ञाननाशने ॥ सस्वरूपसमापन्नःपरमानन्दरूपकम् ॥ ४१ ॥ येचाप्यन्येमनःशुद्धिकामाः सन्तिद्विजोत्तमाः ॥ जटातीर्थेतु ते सर्वे स्नान्तुभक्तिपुरःसरम् ॥ ४२ ॥ अहोजनाजटातीर्थे कामधेनुसमेशुभे ॥ विद्यमानेपिकिन्तुच्छे रमतेयत्रमोहिताः ॥ ४३ ॥ भुक्तिकामोलभेद्भुक्तिं मुक्तिकामस्तु तां लभेत् ॥ स्नानमात्राज्जटातीर्थे सत्यमुक्तंमयाद्विजाः ॥ ४४ ॥ वेदानुवचनात्पुण्याद्यज्ञाद्दानात्तपोव्रतात् ॥ उप

से अज्ञान नाश होने पर वे शुकदेवजी परमानन्दरूप स्वरूप को प्राप्त हुये ॥ ४१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! अन्य भी जो मनुष्य मन की शुद्धि की इच्छा करनेवाले हैं वे सब भक्ति-पूर्वक स्नान करैं ॥ ४२ ॥ हे मनुष्यो ! कामधेनु के समान उत्तम जटातीर्थ के विद्यमान होने पर तुच्छ में क्यों मन रमता है कि जिसमें मोहित होते हो ॥ ४३ ॥ हे ब्राह्मणो ! जटातीर्थ में स्नानही से भुक्ति की इच्छावाला मनुष्य भुक्ति को पाता है व मुक्ति को चाहनेवाला पुरुष उस मुक्ति को पाता है मैंने इसको सत्य कहा है ॥ ४४ ॥

वेदों के बांचने से व पुण्य, यज्ञ, दान व तपस्या और व्रत से तथा उपास, जप व योग से मनुष्यों के मन की शुद्धि होती है ॥ ४५ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! इनके विना भी अतिपवित्रकारक जटातीर्थ में स्नानही से निश्चय कर ब्राह्मणों के मन की शुद्धि होती है ॥ ४६ ॥ जटातीर्थ का माहात्म्य मुझ से नहीं कहा जासक्ता है उस तीर्थ को शिवजी जानते हैं व विष्णु और ब्रह्मा जानते हैं ॥ ४७ ॥ जटातीर्थ के समान तीर्थ न हुआ है न होवैगा और जटातीर्थ के किनारे जो क्षेत्रपिण्डदान करता है ॥ ४८ ॥ उस को गयाश्राद्ध के समान पुण्य होता है इसमें सन्देह नहीं है जटातीर्थ में नहाकर मनुष्य पाप से लिप्त नही होता है ॥ ४९ ॥ और दरिद्रता को नहीं प्राप्त होता है न

वासाज्जपाद्योगान्मनःशुद्धिर्नृणांभवेत् ॥ ४५ ॥ विनाप्येतानिविप्रेन्द्रा जटातीर्थेतिपावने ॥ स्नानमात्रान्मनःशुद्धिर्ब्राह्मणानांध्रुवंभवेत् ॥ ४६ ॥ जटातीर्थस्यमाहात्म्यं मयावक्तुं न शक्यते ॥ शङ्करोवेत्तितत्तीर्थं हरिर्वेत्तिविधिस्तथा ॥ ४७ ॥ जटातीर्थसमंतीर्थं न भूतं न भविष्यति॥ जटातीर्थस्यतीरे यः क्षेत्रपिण्डंसमाचरेत् ॥ ४८ ॥ गयाश्राद्धसमंपुण्यं तस्य स्यान्नात्रसंशयः ॥ जटातीर्थेनरःस्नात्वा न पापेनविलिप्यते ॥ ४९ ॥ दारिद्र्यं न समाप्नोति नेयाच्च नरकार्णवम् ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवंवःकथितंविप्रा जटातीर्थस्य वैभवम् ॥ ५० ॥ यत्रव्याससुतोयोगी स्नात्वापापविमोचने ॥ अवाप्तवान्मनःशुद्धिमद्वैतज्ञानसाधनम् ॥ ५१ ॥ यस्त्विमंपठतेध्यायं शृणुते वा समाहितः ॥ सविधूयेहपापानि लभतेवैष्णवंपदम् ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येजटातीर्थप्रशंसायांशुकचित्तशुद्धिर्नामविंशोध्यायः ॥ २० ॥ * ॥

नरक के समुद्र को जाता है श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! तुमलोगों से इसप्रकार जटातीर्थ का ऐश्वर्य कहागया ॥ ५० ॥ कि जिस पापमोचन तीर्थ में नहाकर व्यास के पुत्र योगी शुकदेवजीने अद्वैतज्ञान के साधन व मन की शुद्धि को पाया है ॥ ५१ ॥ सावधान होताहुआ जो मनुष्य इस अध्याय को पढ़ता या सुनता है वह इस लोक में पातकों को नाशकर विष्णुजी के स्थान को पाता है ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां जटातीर्थप्रशंसायां शुकचित्तशुद्धिर्नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । लक्ष्मीतीर्थप्रभाव सों धर्मज धन बहु पाय । इकइसवें अध्याय में सोइ चरित सुखदाय ॥ श्रीसूतजी बोले कि समस्त पातकों को नाशनेवाले जटातीर्थनामक तीर्थ में नहाकर तदनन्तर विशुद्धचित्तवाला पुरुष लक्ष्मीतीर्थ को जावै ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिस जिस कामना को उद्देश कर मनुष्य लक्ष्मीतीर्थ में स्नान करता है उस उस मनोरथ को भोग करता है ॥ २ ॥ और वह तीर्थ महादारिद्र्य को नाशनेवाला व महाधान्य की समृद्धि को देनेवाला है और महादुःखों का नाशक तथा महासंपत्ति को बढ़ानेवाला है ॥ ३ ॥ इस तीर्थ में नहाकर पहिले दिल्ली में बसतेहुये व श्रीकृष्णजी से प्रेरित धर्मपुत्र (युधिष्ठिरजी) ने बड़े ऐश्वर्य को पाया है ॥ ४ ॥ ऋषिलोग बोले

श्रीसूत उवाच ॥ जटातीर्थाभिधेतीर्थे सर्वपातकनाशने ॥ स्नानंकृत्वाविशुद्धात्मा लक्ष्मीतीर्थंततोव्रजेत् ॥ १ ॥ यंयंकामंसमुद्दिश्य लक्ष्मीतीर्थेद्विजोत्तमाः ॥ स्नानंसमाचरेन्मर्त्यस्तंतंकामंसमश्नुते ॥ २ ॥ महादारिद्र्यशमनं महाधान्यसमृद्धिदम् ॥ महादुःखप्रशमनं महासम्पद्विवर्धनम् ॥ ३ ॥ अत्रस्नात्वाधर्मपुत्रो महदैश्वर्यमाप्तवान् ॥ इन्द्रप्रस्थेवसन्पूर्वं श्रीकृष्णेनप्रचोदितः ॥ ४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ यथैश्वर्यंधर्मपुत्रो लक्ष्मीतीर्थेनिमज्जनात् ॥ आप्तवान्कृष्णवचनात्तन्नोब्रूहिमहामुने ॥ ५ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इन्द्रप्रस्थेपुराविप्रा धृतराष्ट्रेणचोदिताः ॥ न्यवसन्पाण्डवाःपञ्च महाबलपराक्रमाः ॥ ६ ॥ इन्द्रप्रस्थंययौकृष्णः कदाचित्तान्निरीक्षितुम् ॥ तमागतमभिप्रेक्ष्य पाण्डवास्तेसमुत्सुकाः ॥ ७ ॥ स्वगृहंप्रापयामासुर्मुदापरमयायुताः ॥ कञ्चित्कालमसौकृष्णस्तत्रावात्सीत्पुरोत्तमे ॥ ८ ॥ कदाचित्कृष्णमाहूय पूजयित्वायुधिष्ठिरः ॥ पप्रच्छपुण्डरीकाक्षं वासुदेवंजगत्पतिम् ॥ ९ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महाप्राज्ञ येन धर्मेण

कि हे महामुने ! जिसप्रकार श्रीकृष्णजी के वचन से लक्ष्मीतीर्थ में नहाने से धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी ने ऐश्वर्य को पाया है उसको हमलोगों से कहिये ॥ ५ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! पुरातनसमय धृतराष्ट्र से प्रेरित बड़े बली व पराक्रमी पांचो पाण्डवों ने दिल्ली में निवास किया ॥ ६ ॥ किसीसमय उन पाण्डवों को देखने के लिये श्रीकृष्णजी दिल्ली को गये और आयेहुये उन श्रीकृष्ण को देखकर बडे हर्ष से संयुत उन उत्कण्ठित पाण्डवों ने अपने घर में प्राप्त किया और इन श्रीकृष्णजी ने कुछ समय तक उस उत्तम नगर में निवास किया ॥ ७ । ८ ॥ किसीसमय युधिष्ठिरजीने जगदीश कमललोचन वासुदेव श्रीकृष्णजी को बुलाकर पूजकर पूछा ॥ ९ ॥ युधिष्ठिरजी

बोले कि हे महाप्राज्ञ, कृष्ण ! हे कृष्णजी ! जिस धर्म से मनुष्य बड़े ऐश्वर्य को पाते हैं हे महामते ! उसको हम से कहिये ॥ १० ॥ धर्मपुत्र से ऐसा कहेहुये श्रीकृष्णजी ने युधिष्ठिरजी से कहा श्रीकृष्णजी बोले कि हे महाभाग, धर्मपुत्र ! गन्धमादनपर्वत पै ॥ ११ ॥ ऐश्वर्य का एकही कारण लक्ष्मीतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध है उसमें तुम स्नान करो तो तुम्हारे ऐश्वर्य होगा ॥ १२ ॥ क्योंकि उसमें नहाने से धन, अन्नकी समृद्धियां बढ़ती हैं और इनके सब शत्रु नाश होजाते हैं व क्षेत्र बढ़ता है ॥ १३ ॥ हे धर्मपुत्र ! पुरातनसमय देवताओं ने पुण्यदायक लक्ष्मीनामक तीर्थ में स्नान किया व उस पुण्य से सब ऐश्वर्य को पाया ॥ १४ ॥ और युद्ध में बड़े बलवान् दैत्यों को

धर्मपुत्रमहाभाग गन्धमादनपर्वते ॥ ११ ॥ लक्ष्मीतीर्थमितिख्यातमस्त्यैश्वर्यैककारणम् ॥ तत्रस्नानंकुरुष्वत्वमैश्वर्यंतेभविष्यति ॥ १२ ॥ तत्रस्नानेनवर्धन्ते धनधान्यसमृद्धयः ॥ सर्वेसपत्नानश्यन्ति क्षेत्रमेषांविवर्द्धते ॥ १३ ॥ तीर्थेस्नात्वा पुरादेवा लक्ष्मीनामनि पुण्यदे ॥ अलभन्सर्वमैश्वर्यं तेनपुण्येनधर्मज ॥ १४ ॥ असुरांश्चमहावीर्यान्समरेजघ्नुरञ्जसा ॥ महालक्ष्मीश्चधर्मश्च तत्तीर्थस्नायिनांनृणाम्॥ १५ ॥ भविष्यत्यचिरादेव संशयं मा कृथा इह ॥ तपोभिःक्रतुभिर्दानैराशीर्वादैश्च पाण्डव ॥ १६ ॥ ऐश्वर्यंप्राप्यते यद्वल्लक्ष्मीतीर्थनिमज्जनात् ॥ सर्वपापानिनश्यन्ति विघ्नायान्तिलयंसदा ॥ १७ ॥ व्याधयश्च विनश्यन्ति लक्ष्मीतीर्थनिषेवणात् ॥ श्रेयःसुविपुलंलोके लभ्यते नात्रसंशयः ॥ १८ ॥ स्नानमात्रेणवै लक्ष्म्यास्तीर्थेस्मिन्धर्मनन्दन ॥ रम्भामप्सरसांश्रेष्ठां लब्धवान्नलकूबरः ॥ १९ ॥ स्नात्वात्रतीर्थेपुण्ये तु कुबेरोनर

शीघ्रही मारा उस तीर्थ में नहानेवाले पुरुषों के बड़ी लक्ष्मी व धर्म ॥ १५ ॥ शीघ्रही होगा इसमें सन्देह मत करो हे पाण्डव ! तपस्या, यज्ञ, दान व आशीर्वादों से ॥ १६ ॥ जैसे लक्ष्मी मिलती है वैसेही लक्ष्मीतीर्थ में स्नान से मिलती है सब पाप नाश होजाते हैं व विघ्न सदैव नाश को प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥ और लक्ष्मीतीर्थ के सेवन से रोग नाश होजाते हैं और संसार में बहुत कल्याण मिलता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ हे धर्मनन्दन ! लक्ष्मीजी के इस तीर्थ में स्नानही से नलकूबर ने अप्सराओं

में श्रेष्ठ रम्भा को पाया है ॥ १९ ॥ व इस पवित्र तीर्थ में नहाकर वे नरवाहन कुबेरजी महापद्म है मुख्य जिनमें उन निधियों के स्वामी हुये हैं ॥ २० ॥ इसकारण हे नृपेन्द्र ! भीमादिक छोटे भाइयों से संयुत तुम भी कल्याणदायक लक्ष्मीतीर्थ में नहाकर ॥ २१ ॥ बड़ी लक्ष्मी को पावोगे और शत्रुवों को भी जीतोगे हे पैतृष्वसेय याने पिता की बहिनके पुत्र, धर्मज ! इसमें सन्देह न करना चाहिये ॥ २२ ॥ श्रीकृष्णजी से इसप्रकार कहेहुये ये अद्भुतदर्शनवाले धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी छोटे भाइयो समेत शीघ्रही गन्धमादनपर्वत को गये ॥ २३ ॥ तदनन्तर बड़े ऐश्वर्य के कारण लक्ष्मीतीर्थ को जाकर नियम से संयुत भाइयोंसमेत युधिष्ठिरजी ने उसमें स्नान किया ॥ २४ ॥

वाहनः ॥ सम्महापद्ममुख्यानान्निधीनान्नायकोभवत् ॥ २० ॥ तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र लक्ष्मीतीर्थेशुभप्रदे ॥ स्नात्वावृकोदरमुखैरनुजैरपिसंवृतः ॥ २१ ॥ लप्स्यसे महतीं लक्ष्मीं जेष्यसे च रिपूनपि ॥ सन्देहोनात्रकर्तव्यः पैतृष्वस्रेयधर्मज ॥ २२ ॥ इत्युक्तोधर्मपुत्रोयं कृष्णेनाद्भुतदर्शनः ॥ सानुजःप्रययौशीघ्रं गन्धमादनपर्वतम् ॥ २३ ॥ लक्ष्मीतीर्थंततोगत्वा महदैश्वर्यकारणम् ॥ सस्नौयुधिष्ठिरस्तत्र सानुजोनियमान्वितः ॥ २४ ॥ लक्ष्मीतीर्थस्यतोये स सर्वपातकनाशने ॥ सानुजोमासमेकन्तु सस्नौनियमपूर्वकम् ॥ २५ ॥ गोभूतिलहिरण्यादीन् ब्राह्मणेभ्योददौबहून् ॥ सानुजोधर्मपुत्रोसाविन्द्रप्रस्थंययौततः ॥ २६ ॥ राजसूयक्रतुङ्कर्तुं ततऐच्छद्युधिष्ठिरः ॥ कृष्णंसमाह्वयामास यियक्षुर्धर्मनन्दनः ॥ २७ ॥ कृष्णोधर्मजदूतेन समाहूतःससम्भ्रमः ॥ चतुर्भिरश्वैःसंयुक्तं रथमारुह्यवेगिनम् ॥ २८ ॥ सत्यभामासहचर इन्द्रप्रस्थंसमाययौ ॥ तमागतंसमालोक्य प्रमोदाद्धर्मनन्दनः ॥ २९ ॥ न्यवेदयत्सकृष्णाय राजसूयोद्यमन्तदा ॥ अन्वम

समस्त पातकों को नाशनेवाले लक्ष्मीतीर्थ के जल में छोटे भाइयों समेत उन युधिष्ठिरजी ने नियमपूर्वक एक महीने तक स्नान किया ॥ २५ ॥ व बहुतसी गऊ, पृथ्वी, तिल व सुवर्णादिकों को ब्राह्मणों के लिये दिया तदनन्तर अनुजोंसमेत ये युधिष्ठिरजी इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) को चलेगये ॥ २६ ॥ तदनन्तर युधिष्ठिरजी ने राजसूय यज्ञ करने की इच्छा किया और यज्ञ करने की इच्छावाले धर्मपुत्र ने श्रीकृष्णजी को बुलवाया ॥ २७ ॥ और धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी के दूत से बुलायेहुये श्रीकृष्णजी शीघ्रतासमेत चार घोड़ों से संयुत व वेगवान् रथ पै चढ़कर ॥ २८ ॥ सत्यभामा को साथ लेकर दिल्ली को आये व आयेहुये उन श्रीकृष्णजी को देखकर हर्ष से उन धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी

और धर्मपुत्र से युक्तिसंयुक्तं धर्मपुत्रमभाषत ॥ पैतृष्वसेय धर्मात्मञ्छृणुपथ्यंव

न्यतकृष्णोपि तथैवक्रियतामिति॥ ३० ॥ वाक्यं च युक्तिसंयुक्तं धर्मपुत्रमभाषत ॥ पैतृष्वसेय धर्मात्मञ्छृणुपथ्यंव चोमम ॥ ३१ ॥ दुष्करोराजसूयोयं सर्वैरपिमहीश्वरैः ॥ अनेकशतपादातिरथकुञ्जरवाजिमान् ॥ ३२ ॥ महामतिरिमंयज्ञं कर्तुमर्हतिनेतरः ॥ दिशोदशविजेतव्याः प्रथमंबलिनात्वया ॥ ३३ ॥ पराजितेभ्यः शत्रुभ्यो गृहीत्वाकरमुत्तमम् ॥ तेनकाञ्चनजातेन कर्तव्योयंक्रतूत्तमः ॥ ३४ ॥ रोचयेमुक्तिसदनं न हि त्वांभीषयामिभोः ॥ अतःक्रतुसमारम्भात्पूर्वंदिग्विजयंकुरु ॥ ३५ ॥ ततोधर्मात्मजःश्रुत्वा कृष्णस्यवचनंहितम् ॥ प्रशंसन्देवकीपुत्रमाजुहावनिजानुजान् ॥ ३६ ॥ आहूयचतुरोभ्रातॄन् धर्मजःप्राहहर्षयन् ॥ अयिभीममहाबाहो बहुवीर्यधनञ्जय ॥ ३७ ॥ यमौ च सुकुमाराङ्गौ शत्रुसंहारदीक्षितौ ॥ चिकीर्षामिमहायज्ञं राजसूयमनुत्तमम् ॥ ३८ ॥ स च सर्वान्रणेजित्वा कर्तव्यःपृथिवीपतीन् ॥ अतोविजेतुंभूपालांश्चत्वारोपिससैनिकाः ॥ ३९ ॥ दिशश्चतस्रोगच्छन्तु भवन्तोवीर्यवत्तराः ॥ युष्माभिराहृतैर्द्रव्यैः करिष्या

ने उससमय श्रीकृष्ण के लिये राजसूय का उद्योग निवेदन किया और वैसाही कियाजावै इसप्रकार श्रीकृष्णजी ने भी अनुमोदन किया ॥ २९ । ३० ॥ और धर्मपुत्र से युक्तिसंयुक्त वचन को कहा कि हे पैतृष्वसेय, धर्मात्मन् ! मेरे पथ्य वचन को सुनो ॥ ३१ ॥ कि यह राजसूय सभी राजाओं से क्लेश करके करने योग्य है क्योंकि अनेक सौ पैदल, रथ, हाथी व घोड़ोंवाला ॥ ३२ ॥ महाबुद्धिमान् मनुष्य इसको करने के योग्य है अन्य नहीं है पहिले बलवान् आपको दशो दिशाओं को जीतना चाहिये ॥ ३३ ॥ और हारेहुये शत्रुवों से उत्तम कर लेकर उस सुवर्ण से उपजेहुये द्रव्य से यह उत्तम यज्ञ करने योग्य है ॥ ३४ ॥ हे युधिष्ठिर ! मैं तुम को डरवाता नहीं हूं वरन मुक्तिमन्दिर की रुचि कराता हूं इसकारण यज्ञ आरम्भ के पहिले दिग्विजय करो ॥ ३५ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजी के हितवचन को सुनकर देवकीजी के पुत्र श्रीकृष्णजी की प्रशंसा करतेहुये धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी ने अपने छोटे भाइयों को बुलाया ॥ ३६ ॥ और चारो भाइयों को बुलाकर प्रसन्न करातेहुये धर्मपुत्र ने कहा कि हे महाबाहो, भीम ! हे बहुपराक्रम, अर्जुनजी ! ॥ ३७ ॥ हे शत्रुवों के संहारने में दीक्षित, सुकुमार अंगोंवाले नकुल, सहदेव ! मैं अतिउत्तम राजसूय महायज्ञ को करने की इच्छा करता हूं ॥ ३८ ॥ और वह यज्ञ समर में सब राजाओं को जीतकर करने योग्य है इसकारण राजाओं को जीतने के लिये सेनासमेत चारो भी ॥ ३९ ॥ बड़े बलवान्

...लोग चारो दिशाओं को जावो क्योंकि तुमलोगों से लायेहुये धनों से मैं महायज्ञ को करूंगा ॥ ४० ॥ उससमय इसप्रकार आदरसमेत कहेहुये धर्मपुत्र के छोटे भाई ...मादिक सब प्रसन्नमुख होकर नगरसे ॥ ४१ ॥ सब दिशाओं में राजाओं को जीतने के लिये पाण्डव निकले और वे सब चारो दिशाओं में स्थित बहुत से राजाओं को ...तकर ॥ ४२ ॥ व उन राजाओं को अपने वश में स्थापित कर पाण्डुपुत्र उनसे दियेहुये अनेकभांति के अतिउत्तम असंख्य धनको ॥ ४३ ॥ लेकर श्रीकृष्णाजी के आश्रय पाण्डव ...ग्रही अपने नगर को आये बड़े बली व पराक्रमी भीमजी वहां सौभार सुवर्णो को लेकर उत्तम नगर को आये तदनन्तर हज़ारभार सुवर्णों को लेकर अर्जुनजी ॥ ४४ । ४५ ॥

मिमहाक्रतुम् ॥ ४० ॥ इत्युक्ताःसादरंसर्वे वृकोदरमुखास्तदा ॥ प्रसन्नवदनाभूत्वा धर्मपुत्रानुजाःपुरात् ॥ ४१ ॥ राज्ञो जयायसर्वासु निर्ययुर्दिक्षुपाण्डवाः॥तेसर्वेन्नृपतीञ्जित्वा चतुर्दिक्षुस्थितान्बहून् ॥ ४२ ॥ स्ववशेस्थापयित्वातान्नृपती न्पाण्डुनन्दनाः ॥ तैर्दत्तम्बहुधाद्रव्यमसंख्यातमनुत्तमम् ॥ ४३ ॥ आदायस्वपुरंतूर्णमाययुःकृष्णसंश्रयाः ॥ भीमःस माययौतत्र महाबलपराक्रमः ॥ ४४ ॥ शतभारसुवर्णानि समादायपुरोत्तमम् ॥ सहस्रंभारमादाय सुवर्णानांततोर्जु नः ॥ ४५ ॥ शक्रप्रस्थंसमायातो महाबलपराक्रमः ॥ शतभारंसुवर्णानां प्रगृह्यनकुलस्तथा ॥ ४६ ॥ समागतोमहातेजाः शक्रप्रस्थंपुरोत्तमम् ॥ दत्तान्विभीषणेनाथ स्वर्णतालांश्चतुर्दश ॥ ४७ ॥ दाक्षिणात्यमहीपानां गृहीत्वाधनसञ्चयम् ॥ सहदेवोपिसहसा समादायनिजाम्पुरीम् ॥ ४८ ॥ लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतान्यपि ॥ सुवर्णानिददौकृष्णो धर्मपुत्राययादवः ॥ ४९ ॥ स्वानुजैराहृतैरेवमसङ्ख्यातैर्महाधनैः ॥ कृष्णदत्तैरसङ्ख्यातैर्धनैरपियुधिष्ठिरः ॥ ५० ॥

जोकि बडे बली व पराक्रमी थे इन्द्रप्रस्थ को आये वैसेही सौभार सुवर्ण को लेकर नकुलजी ॥ ४६ ॥ बड़े तेजस्वी उत्तम नगर इन्द्रप्रस्थ को आये और विभीषण से दियेहुये चौदह सुवर्णतालों को लेकर ॥ ४७ ॥ व दक्षिणवाले राजाओं की धनराशि को लेकर सहदेव भी सहसा अपनी पुरी को आये॥ ४८ ॥ व यादव श्रीकृष्णाजी ने धर्मपुत्र युधिष्ठिर के लिये लक्षकोटि हज़ार व लक्षकोटि सौ सुवर्णों को दिया ॥ ४९ ॥ अपने छोटे भाइयों से लायेहुये असंख्य महाधनों से व श्रीकृष्णाजी से दियेहुये असंख्य धनों से भी

१ दो तोले सोने को सुवर्ण कहते हैं।

युधिष्ठिर ॥ ५० ॥ पाण्डव ने हे ब्राह्मणो ! श्रीकृष्णजी के आश्रय होकर राजसूय से पूजन किया व उस यज्ञ में ब्राह्मणों के लिये इच्छा के अनुकूल धनको दिया ॥ ५१ ॥ व उस यज्ञ में युधिष्ठिरजीने ब्राह्मणों के लिये अन्नों को दिया व वस्त्र, गऊ, भूमि और गहनोंको दिया ॥ ५२ ॥ जितने सुवर्णादिक से याचक प्रसन्न होते थे उससे भी दुगुने धन को धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी ने उन ब्राह्मणों के लिये दिलवाया ॥ ५३ ॥ अनेकप्रकार के भी इतने धन याचकों के लिये दियेगये इसका परिमाण करने के लिये करोड़ों ब्रह्मा नहीं समर्थ हैं ॥ ५४ ॥ वहां याचकों से दियेजाते हुये धनों को देखकर मनुष्योंने यह कहा कि राजा ने सब धनको भी देदिया ॥ ५५ ॥ और अनन्तमणि व सुवर्णोंवाले

कृष्णाश्रयोयजद्विप्रा राजसूयेनपाण्डवः ॥ तस्मिन्यागेददौद्रव्यं ब्राह्मणेभ्योयथेष्टतः ॥ ५१ ॥ अन्नानिप्रददौतत्र ब्राह्मणेभ्योयुधिष्ठिरः ॥ वस्त्राणिगाश्चभूमिञ्च भूषणानिददौतथा ॥ ५२ ॥ अर्थिनःपरितुष्यन्ति यावताकाञ्चनादिना ॥ ततोपिद्विगुणन्तेभ्यो दापयामासधर्मजः ॥ ५३ ॥ इयन्तिदत्तान्यर्थिभ्यो धनानिविविधान्यपि ॥ इतीयत्तामपरिच्छेत्तुं न शक्ताब्रह्मकोटयः ॥ ५४ ॥ अर्थिभिर्दीयमानानि दृष्ट्वातत्रधनानि वै ॥ सर्वस्वमप्यहोराज्ञा दत्तमित्यब्रवीज्जनः ॥ ५५ ॥ दृष्ट्वाकोशांस्तथानन्ताननन्तमणिकाञ्चनान् ॥ ५६ ॥ स्वल्पं हि दत्तमर्थिभ्य इत्यवोचञ्जनास्तदा ॥ इष्ट्वैवंराजसूयेन धर्मपुत्रःसहानुजः ॥ ५७ ॥ बहुवित्तःसमृद्धःसन् रेमेतत्रपुरोत्तमे ॥ लक्ष्मीतीर्थस्यमाहात्म्याद्धर्मपुत्रोयुधिष्ठिरः ॥ ५८ ॥ लेभेसर्वमिदंविप्रा अहोतीर्थस्यवैभवम् ॥ इदंतीर्थंमहापुण्यं महादारिद्र्यनाशनम् ॥ ५९ ॥ धनधान्यप्रदंपुंसां महापातकनाशनम् ॥ महानरकसंहर्तृ महादुःखनिवर्तकम् ॥ ६० ॥ मोक्षदंस्वर्गदन्नित्यं महाऋणविमोचनम् ॥ सुकलत्रप्रदंपुंसां

खजानों को देखकर ॥ ५६ ॥ उससमय मनुष्यों ने यह कहा कि याचकों के लिये थोड़ा धन दियागया है इसप्रकार छोटे भाइयों समेत धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी ने राजसूय से पूजन कर ॥ ५७ ॥ बहुत द्रव्यवान् समृद्ध होतेहुये उस उत्तम नगर में रमण किया लक्ष्मीतीर्थ के माहात्म्य से धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी ने ॥ ५८ ॥ इस सबको पाया है हे ब्राह्मणो ! तीर्थ के ऐश्वर्य को आश्चर्य है यह तीर्थ बड़ा पवित्र व महादरिद्रों का नाशक है ॥ ५९ ॥ और धन, धान्यको देनेवाला व मनुष्यों के महापातकों का विनाशक है और बड़े नरकों को संहार करनेवाला व महादुःखों को छुड़ानेवाला है ॥ ६० ॥ और सदैव रहनेवाला व मोक्षदायक तथा स्वर्गदायक व महाऋणों को छुडानेवाला

है और पुरुषों को सुन्दरी स्त्री को देनेवाला व सुन्दर पुत्रों को देनेवाला है॥ ६१ ॥ इस तीर्थ के समान तीर्थ न हुआ है न होवैगा हे ब्राह्मणो ! तुमलोगों से यह लक्ष्मीतीर्थ का ऐश्वर्य कहागया॥ ६२ ॥ जो कि दुःस्वप्न को नाशनेवाला व पवित्र तथा सब मनोरथों का साधक है जो मनुष्य भक्तिसमेत इस अध्याय को पढता या सुनता है ॥ ६३ ॥ वह मनुष्य धन व धान्य से समृद्ध होता है इसमें सन्देह नहीं है और इस संसार में सब सुखों को भोगकर वह देहान्त में मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे सेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांलक्ष्मीतीर्थप्रशंसायांधर्मपुत्रनिरतिशयसम्पदावाप्तिर्नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❁ ॥

सुपुत्रप्रदमेव च ॥ ६१ ॥ एतत्तीर्थसमंतीर्थन्न भूतन्न भविष्यति ॥ एतद्वःकथितंविप्रा लक्ष्मीतीर्थस्यवैभवम् ॥ ६२ ॥ दुस्स्वप्ननाशनंपुण्यं सर्वाभीष्टप्रसाधकम् ॥ यःपठेदिममध्यायं शृणुते वा सभक्तिकम् ॥ ६३ ॥ धनधान्यसमृद्धस्स्यात्सनरोनास्तिसंशयः ॥ भुक्त्वेहसकलान्भोगान्देहान्तेमुक्तिमाप्नुयात् ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येलक्ष्मीतीर्थप्रशंसायांधर्मपुत्रनिरतिशयसम्पदावाप्तिर्नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ लक्ष्मीतीर्थेशुभेपुंसां सर्वैश्वर्यैककारणे ॥ स्नात्वानरस्ततोगच्छेदग्नितीर्थंद्विजोत्तमाः ॥ १ ॥ अग्नितीर्थंमहापुण्यं महापातकनाशनम् ॥ तीर्थानामुत्तमंतीर्थं सर्वाभीष्टैकसाधनम् ॥ २ ॥ तत्रस्नायान्नरोभक्त्या स्वपापपरिशुद्धये ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अग्नितीर्थमितिख्यातिः कथंतस्यमुनीश्वर ॥ ३ ॥ कुत्रेदमग्नितीर्थञ्च कीदृशन्तस्यवैभवम् ॥ एतन्नःश्रद्दधानानां विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ सम्यक्पृष्टं हि युष्माभिः शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ॥

दो० । अग्नितीर्थपरभाव सुन भयो पिशाच सुरूप । बाइसवें अध्याय में सोई चरित अनूप ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! पुरुषों के सब ऐश्वर्यों के एक कारणरूप उत्तम लक्ष्मीतीर्थ में नहाकर तदनन्तर मनुष्य अग्नितीर्थ को जावै ॥ १ ॥ अग्नितीर्थ महापवित्र व महापातकों का विनाशक है और तीर्थों के मध्य में उत्तम तीर्थ व सब मनोरथों का एकही साधन है ॥ २ ॥ उस तीर्थ में मनुष्य अपने पापों की शुद्धि के लिये नहावै ऋषिलोग बोले कि हे मुनीश्वर ! उसका अग्नितीर्थ ऐसा नाम कैसे हुआ ॥ ३ ॥ और यह अग्नितीर्थ कहां है व उसका कैसा ऐश्वर्य है इसको तुम श्रद्धावान् हमलोगों से कहने के योग्य हो ॥ ४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठो ! तुमलोगों ने

भलीभांति पूछा उसको सुनिये कि पुरातनसमय रघुनाथजी सेनादिकसमेत रावण को मारकर ॥ ५ ॥ और लंका में विभीषण को स्वामी स्थापित कर सीता व लक्ष्मणजी से संयुक्त दशरथ के पुत्र श्रीरामजी ॥ ६ ॥ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, देवता व अप्सराओं के गणों से तथा मुनिगणों से स्तुति कियेजाते भये और सत्य आशीर्वादवाले व तीर्थ के कौतुकी तथा न सहने योग्य बलवाले श्रीरामजी लीला से धनुष को धारतेहुये अपनी शुद्धि को प्राप्त होने के लिये व जानकीजी को शुद्ध करने के लिये ॥ ७ । ८ ॥ इन्द्रादिक सुरगणों व मुनियों, तथा पितरोंसमेत और विभीषण व सभी वानरोंसमेत ॥ ९ ॥ सेतु के मार्ग से गन्धमादनपर्वत पै आये और लक्ष्मीतीर्थ के किनारे टिककर

पुरा हि राघवो हत्वा रावणं सपरिच्छदम् ॥ ५ ॥ स्थापयित्वा तु लङ्कायां भर्तारञ्च विभीषणम् ॥ सीतासौमित्रिसंयुक्तो रामोदशरथात्मजः ॥ ६ ॥ सिद्धचारणगन्धर्वैर्देवैरप्सरसाङ्गणैः ॥ स्तूयमानोमुनिगणैः सत्याशीस्तीर्थकौतुकी ॥ ७ ॥ धारयल्लीलयाचापं रामोऽसह्यपराक्रमः ॥ आत्मनःशुद्धिमायातुं जानकींशोधितुन्तथा ॥ ८ ॥ इन्द्रादिदेववृन्दैश्च मुनिभिः पितृभिस्तथा ॥ विभीषणेनसहितः सर्वैरपि च वानरैः ॥ ९ ॥ आययौसेतुमार्गेण गन्धमादनपर्वतम् ॥ लक्ष्मीतीर्थतटे स्थित्वा जानकीशोधनायसः ॥ १० ॥ अग्निमावाहयामासदेवर्षिपितृसन्निधौ ॥ अथोत्तस्थेमहाम्भोधेर्लक्ष्मीतीर्थाद्विदूरतः ॥ ११ ॥ पश्यत्सुसर्वलोकेषु लिहन्नम्भांसिपावकः ॥ आताम्रलोचनःपीतः पीतवासाधनुर्धरः ॥ १२ ॥ सप्तभिश्चैवजिह्वाभिर्लेलिहानोदिशोदश ॥ दृष्ट्वारघुपतिंशूरं लीलामानुषरूपिणम् ॥ १३ ॥ जगादवचनंरम्यं जानकीशुद्धिकारणात् ॥ राम राम महाबाहो राक्षसानांभयावह ॥ १४ ॥ पातिव्रत्येनजानक्या रावणंहतवान्भवान् ॥ सत्यंसत्यंपुनःसत्यं

जानकीजी को शोधन करने के लिये उन श्रीरामजी ने ॥ १० ॥ देवता, ऋषि व पितरों के समीप अग्नि को आवाहन किया इसके अनन्तर लक्ष्मीतीर्थ से थोड़ीही दूर पै अग्निजी महासागर से ऊपर उठे ॥ ११ ॥ व सब मनुष्यों के देखतेहुये जलों को पीतेहुये कुछ लाल लोचनोंवाले व पीतवर्ण तथा पीले वसनोंको पहिने व धनुष को धारण किये अग्निजी ॥ १२ ॥ सातो जिह्वाओं से दशो दिशाओं को चाटतेहुये लीला से मनुजरूपी रघुनाथ वीर को देखकर ॥ १३ ॥ जानकीजीकी शुद्धि के कारण सुन्दर वचन बोले कि हे राक्षसों को भय देनेवाले, महाबाहो, राम ! हे श्रीरामजी ! ॥ १४ ॥ जानकीजी के पतिव्रतधर्म से आपने रावण को मारा है यह सत्य है सत्य है व फिर सत्य है

इसमें विचार न करना चाहिये ॥ १५ ॥ लीला से मनुजरूपिणी ये जगदम्बिकाजी लक्ष्मी हैं और देवत्व में ये देवशरीरिणी हैं व मनुजता में मानुषी हैं ॥ १६ ॥ और ये जानकीजी विष्णुजी के शरीर के अनुसार अपने शरीर को करती हैं हे देवदेव, जगदीश, जनार्दनजी! जब जब ॥१७॥ तुम अवतारों को करते हो तब तब ये जानकीजी तुम्हारी सहायिनी होती हैं जब तुम भार्गव राम हुये तब ये धरणी हुईं ॥ १८ ॥ और इससमय जानकी हुई तदनन्तर रुक्मिणी होवैंगी और अन्य अवतारों में ये जानकीजी विष्णुजी की सहायिनी होती है ॥ १९ ॥ इसकारण हे राघवजी! मेरे वचन से इन जानकीजी को ग्रहण करो अग्नि के उस वचन को सुनकर देवता व महर्षियों ने ॥ २० ॥

नात्रकार्याविचारणा ॥ १५ ॥ कमलेयंजगन्माता लीलामानुषविग्रहा ॥ देवत्वेदेवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी ॥ १६ ॥ विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुम् ॥ यदायदाजगत्स्वामिन्देवदेवजनार्दन ॥ १७ ॥ अवतारान्करोषित्वं तदे यन्त्वत्सहायिनी ॥ यदात्वंभार्गवोरामस्तदाभूद्धरणीत्वियम् ॥ १८ ॥ अधुनाजानकीजाता भवित्रीरुक्मिणीततः ॥ अन्येषुचावतारेषु विष्णोरेषासहायिनी ॥ १९ ॥ तस्मान्मद्वचनादेनां प्रतिगृह्णीष्वराघव ॥ पावकस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वादे वामहर्षयः ॥ २० ॥ विद्याधराश्च गन्धर्वा मानवाःपन्नगास्तथा ॥ अन्ये च भूतनिवहा रामंदशरथात्मजम् ॥ २१ ॥ जान कींमैथिलींचैव प्रशशंसुःपुनःपुनः ॥ रामोग्निवचनात्सीतां प्रतिजग्राहनिर्मलाम् ॥ २२ ॥ एवंसीताविशुद्ध्यर्थं रामेणा क्लिष्टकर्मणा ॥ आवाहनेकृतेवह्निर्लक्ष्मीतीर्थाद्विदूरतः ॥ २३ ॥ यतःप्रदेशादुत्तस्थावम्बुधेर्द्विजसत्तमाः ॥ अग्नितीर्थंवि जानीत तम्प्रदेशमनुत्तमम् ॥ २४ ॥ ततोविनिर्गमादग्नेरग्नितीर्थमितीर्यते ॥ अत्रस्नात्वानरोभक्त्या वह्नेस्तीर्थे

और विद्याधर, गन्धर्व, मनुष्य, नाग व अन्य प्राणिगणों ने दशरथ के पुत्र रामजी की ॥ २१ ॥ व मैथिली जानकीजी की बार २ प्रशंसा किया और श्रीरामजी ने अग्नि के वचन से निर्मल जानकीजी को ग्रहण किया ॥ २२ ॥ इसप्रकार जानकीजी की शुद्धि के लिये सहज कर्मवाले श्रीरामजी से आवाहन करने पर अग्निजी लक्ष्मीतीर्थ से थोड़ाही दूर पै ॥ २३ ॥ हे द्विजोत्तमो! समुद्र से जिस स्थान से ऊपर उठे उस अतिउत्तम स्थान को तुमलोग अग्नितीर्थ जानो ॥ २४ ॥ व उसीकारण

अग्नि के निकलने से वह अग्नितीर्थ ऐसा कहाजाता है इस मुक्तिदायक अग्नि के तीर्थ में भक्ति से नहाकर मनुष्य ॥ २५ ॥ उपास कर वेद के जाननेवाले ब्राह्मणों को भोजन करावै व उनके लिये वस्त्र, धन, भूमि व भूषित कन्या को देवै ॥ २६ ॥ तो सब पापों से छूटाहुआ मनुष्य विष्णुजीकी सायुज्यमुक्ति को पाता है इस अग्नि-तीर्थ के किनारे अन्नदान विशेष होता है ॥ २७ ॥ अग्नितीर्थ के समान तीर्थ न हुआ है न होवैगा कि जिसमें स्नान से महापापी दुष्पण्य भी बड़ी भयंकर पिशाचता को छोड़कर दिव्यरूप को प्राप्त हुआ है पुरातनसमय पाटलिपुत्र याने पटना शहर में पशुमान्नामक बनिया हुआ है ॥ २८ । २९ ॥ सदैव धर्म में परायण वह ब्राह्मणों

विमुक्तिदे ॥ २५ ॥ उपोष्यवेदविदुषो ब्राह्मणानपिभोजयेत् ॥ तेभ्योवस्त्रंधनंभूमिं दद्यात्कन्याञ्च भूषिताम् ॥ २६ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ अग्नितीर्थस्यकूलेस्मिन्नन्नदानंविशिष्यते ॥ २७ ॥ अग्नितीर्थसमन्तीर्थन्न भूतं न भविष्यति ॥ दुष्पण्योपिमहापापो यत्रस्नानात्पिशाचताम् ॥ २८ ॥ परित्यज्यमहाघोरां दिव्यंरूपमवाप्तवान् ॥ पशुमान्नामवैश्योभूत्पुरापाटलिपुत्रके ॥ २९ ॥ स वै धर्मपरोनित्यं ब्राह्मणाराधनेरतः ॥ कृषिन्निरन्तरंकुर्वन्गोरक्षाञ्चैव सर्वदा ॥ ३० ॥ पण्यवीथ्याञ्च विक्रीणन्काञ्चनादीनिधर्मतः ॥ पशुमान्नामधेयस्य वणिक्श्रेष्ठस्यतस्य वै ॥ ३१ ॥ बभूव भार्यात्रितयं पतिशुश्रूषणेरतम् ॥ ज्येष्ठात्रीन्सुषुवेपुत्रान्वैश्यवंशविवर्द्धनान् ॥ ३२ ॥ सुपण्यंपण्यवन्तञ्च चारुपण्यं तथैव च ॥ मध्यमा सुषुवे पुत्रौ सुकोशबहुकोशकौ ॥ ३३ ॥ तृतीयायांत्रयःपुत्रास्तस्यवैश्यस्यजज्ञिरे ॥ महापण्योमहाकोशो दुष्पण्यइतिविश्रुताः ॥ ३४ ॥ एवंपशुमतस्तस्य वैश्यस्यद्विजसत्तमाः ॥ बभूवुरष्टौतनयास्तासुस्त्रीषुतिसृष्व

की सेवा में लगा था और सदैव खेती को करताहुआ वह निरन्तर गौवों की रक्षा करता था ॥ ३० ॥ और बाज़ार में सुवर्णादिक को धर्म से बेचता था उस पशुमान् नामक श्रेष्ठ बनिया के ॥ ३१ ॥ पतिकी सेवा में परायण तीन स्त्रियां हुईं और बड़ी स्त्री ने वैश्यवंश को बढ़ानेवाले तीन पुत्रों को पैदा किया ॥ ३२ ॥ जिनका सुपण्य, पण्यवान् और चारुपण्य नाम हुआ व मध्यमा स्त्री ने सुकोश व बहुकोश दो पुत्रों को उत्पन्न किया ॥ ३३ ॥ और तीसरी स्त्री में उस बनिया के महापण्य, महाकोश व

दुष्पण्य ऐसे प्रसिद्ध तीन पुत्र पैदा हुये ॥ ३४ ॥ इसप्रकार हे द्विजोत्तमो ! उस पशुमान् बनिया के उन तीनों स्त्रियों में आठ पुत्र हुये ॥ ३५ ॥ और सुपण्य आदिक वे सब पुत्र क्रम से बढ़े व धूलि के खेल को करतेहुये वे माता पिता को प्रसन्न करते थे ॥ ३६ ॥ और वे बनिये के पुत्र क्रम से पांच वर्ष के हुये और वैश्यों में श्रेष्ठ पशुमान् ने भी उन पुत्रों को ॥ ३७ ॥ शिशुता से लगाकर सदैव अपने कार्यों में सिखलाया और खेती, गोरक्षा व सौदागरी के कर्मों में वे क्रम से शिक्षित हुये ॥ ३८ ॥ व सुपण्य आदिक सातही पुत्रों ने पिता का वचन सुना और पशुमान् जिस कार्य को कहता था उसको उसी क्षण उन्होंने किया ॥ ३९ ॥ और वे सोने के कार्यों में भी बहुत निपुणता को

पि ॥ ३५ ॥ तेसुपण्यमुखास्सर्वे पुत्रावद्वृधिरेक्रमात् ॥ धूलिकेलिंवितन्वन्तः पितरौतोषयन्तिते ॥ ३६ ॥ पञ्चहाय नताम्प्राप्ताः क्रमात्तेवैश्यनन्दनाः ॥ पशुमानपिवैश्येन्द्रः सर्वानपि च तान्सुतान् ॥ ३७ ॥ बाल्यमारभ्यसततं स्वकृत्येषुव्यशिक्षयत् ॥ कृषिगोत्राणवाणिज्यकर्मसुक्रमशिक्षिताः ॥ ३८ ॥ सुपण्यमुख्याःसप्तैव पितृवाक्यमशृण्वत ॥ पशुमान्वक्तियत्कार्यं तत्क्षणान्निरवर्तयन् ॥ ३९ ॥ नैपुण्यंप्रापुरत्यन्तं ते सुवर्णक्रियास्वपि ॥ दुष्पण्यस्त्वष्टमःपुत्रो बाल्यमारभ्यसन्ततम् ॥ ४० ॥ दुर्मार्गनिरतोभूत्वा नाशृणोत्पितृभाषितम् ॥ धूलिकेलिंसमारभ्य दुर्मार्गनिरतोभवत् ॥ ४१ ॥ सबालएवसन्पुत्रो बालानन्यानबाधत ॥ दुष्कर्मनिरतंदृष्ट्वा तंपितापशुमांस्तथा ॥ ४२ ॥ उपेक्षामेवकृतवान्बालिशोयमितीरयन् ॥ अथाष्टावपिवैश्यस्य प्रापुर्यौवनमात्मजाः ॥ ४३ ॥ ततोयमष्टमःपुत्रो दुष्पण्योबलिनांवरः ॥ गृहीत्वापाणियुगले बालान्नगरवर्तिनः ॥ ४४ ॥ निचिक्षेपसकूपेषु सरित्सु च सरःस्वपि ॥ न कोपितस्यजानाति दुश्चरित्र

प्राप्त हुये व आठवें पुत्र दुष्पण्यने लड़कपन से लगाकर सदैव ॥ ४० ॥ कुमार्ग में परायण होकर पिता का वचन नहीं सुना व धूलि के खेल से लगाकर वह कुमार्ग में तत्पर हुआ ॥ ४१ ॥ और वह पुत्र शिशुताही से अन्य बालकों को पीडित करता था उसको कुमार्ग में तत्पर देखकर पशुमान् पिताने ॥ ४२ ॥ यह बालक है ऐसा कहते हुये उपेक्षा किया याने ध्यान नहीं दिया इसके अनन्तर बनिये के आठो पुत्र भी युवावस्था को प्राप्त हुये ॥ ४३ ॥ तदनन्तर बलवानों में श्रेष्ठ इस आठवें पुत्र दुष्पण्य ने नगरवर्ती बालकों को दोनों हाथों में पकड़कर ॥ ४४ ॥ कूपों में फेंकदिया व उसने नदियों तथा तड़ागों में भी डालदिया उसके इस दुष्टकर्म को कोई भी मनुष्य नहीं

जानता था ॥ ४५ ॥ जबतक वे बालक मरते थे तबतक वह उनको जल में डालता था और उन मरेहुये बालकों के पिता व माता ॥ ४६ ॥ नगरों में सब कहीं उन सबों को ढूंढ़ते थे और उन मरेहुये पुत्रों को न देखकर मनुष्य केवल रोते थे ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर जलों में लाशों को देखकर मनुष्य यथायोग्य कर्म को करते थे इसप्रकार प्रतिदिन नगर में बालकों को मारताहुआ दुष्पण्य ॥ ४८ ॥ जनों से भी नहीं जानागया और बहुत दिनों तक वह इसप्रकार वर्तमान हुआ बनिये के पुत्र के कर्मसे बालकों के मरने पर ॥ ४९ ॥ प्रजाओं की बढ़ती न होने से नगर शून्य होगया तदनन्तर पुरवासियों ने आकर राजा से वृत्तान्त कहा ॥ ५० ॥ उनका वचन सुनकर उस राजाने

मिदञ्जनः ॥ ४५ ॥ यावन्म्रियन्तेतेबालास्तावन्निक्षिप्तवाञ्जले ॥ तेषांमृतानांबालानां पितरोमातरस्तथा ॥ ४६ ॥ गवेष यन्तितान्सर्वान्नगरेषु हि सर्वशः ॥ तानदृष्ट्वामृतान्पुत्रान्केवलंप्रारुदञ्जनाः ॥ ४७ ॥ जलेष्वथशवान्दृष्ट्वा जनाश्चक्रुर्यथो चितम् ॥ एवंप्रतिदिनं बालान्दुष्पण्योमारयन्पुरे ॥ ४८ ॥ जनैरप्यपरिज्ञातश्चिरमेवमवर्तत ॥ म्रियमाणेषुबालेषु वैश्य पुत्रस्यकर्मणा ॥ ४९ ॥ प्रजानांवृद्धिराहित्याच्छून्यप्रायमभूत्पुरम् ॥ ततःसमेत्यपौरास्तु वृत्तंराज्ञेन्यवेदयन् ॥५०॥ श्रुत्वान्नृपस्तद्वचनमाहूयग्रामपालकान् ॥ कारणंबालमरणे चिन्त्यतामितिसोन्वशात् ॥५१॥ ग्रामपालास्तथेत्युक्त्वा तत्रतत्रव्यवस्थिताः ॥ सम्यग्गवेषयामासुः कारणंबालमारणे ॥ ५२ ॥ ते वै गवेषयन्तोपि नाविन्दन्बालमारकम् ॥ तेपुनर्नृपमासाद्य भीतावाक्यमथाब्रुवन् ॥ ५३ ॥ गवेषयन्तोपिवयन्तन्नविन्दामहे नृप । योबालान्नगरेस्थित्वा सन्ततं मारयत्यपि ॥५४॥ पुनश्च नागराःसर्वे राजानंप्राप्यदुःखिताः ॥ पुनःप्रजानांमरणमब्रुवन्बाष्पसङ्कुलाः ॥५५॥ राजातत्का

गांव के रक्षकों को बुलाकर यह आज्ञा दिया कि बालकों के मरने में कारण विचार कियाजावै ॥ ५१ ॥ बहुत अच्छा ऐसा कहकर ग्रामपाल जहां तहां बैठे व उन्होंने बालकों के मारने में भलीभांति कारण को ढूंढ़ा ॥ ५२ ॥ और ढूंढ़तेहुये भी उन्होंने बालकों के मारनेवाले को नहीं पाया इसके अनन्तर डरेहुये वे फिर राजा के समीप जाकर वचन बोले ॥ ५३ ॥ कि हे राजन् ! ढूंढ़तेहुये भी हमलोग उसको नहीं पाते हैं जो कि नगर में टिककर सदैव बालकों को मारता है ॥ ५४ ॥ फिर आंसुवों

से संयुत सब दुःखित नगरवासियोंने फिर बालकों का मरना कहा ॥ ५५ ॥ और उस कारण को न जानने से राजा विचारकर चुप होरहा किसीसमय यह बनिये का पुत्र पांच बालकोंसमेत ॥ ५६ ॥ कमल लेने के छल से तड़ाग के समीप प्राप्त हुआ और क्रूर चित्तवाले दुष्पण्य ने उससमय चिल्लातेहुये बालकों को बलसे पकड़कर गले तक तड़ाग के जलमें डुबादिया और उन बालकों को मरेहुये जानकर दुष्पण्य शीघ्रही अपने घरको चलागया ॥ ५७ । ५८ ॥ व उन पांचो बालकों के पिता नगर में बालकों को ढूंढ़नेलगे व उनके ढूंढ़तेहुये बहुत न छोटे वे पांचो पुत्र ॥ ५९ ॥ स्वच्छन्दता से जल में डुबायेहुये भी नहीं मरे और भीगेहुये शिरवाले वे पांचो भी

रणाज्ञानात्तूष्णीमास्तेविचिन्त्य तु ॥ कदाचिद्वैश्यपुत्रोयं पञ्चभिर्बालकैःसह ॥ ५६ ॥ तटाकान्तिकमापेदे पङ्कजाहरणच्छलात् ॥ बलाद्गृहीत्वातान्बालान्दुष्पण्यःक्रोशतस्तदा ॥ ५७ ॥ क्रूरात्मामज्जयामास कण्ठदघ्नेसरोजले ॥ मृतान्मत्वा च ताञ्शीघ्रं दुष्पण्यःस्वगृहंययौ ॥ ५८ ॥ पञ्चानांपितरस्तेषां मार्गयन्तःसुतान्पुरे ॥ तेषु वै मार्गमाणेषु पञ्चते नातिबालकाः ॥ ५९ ॥ निक्षिप्ताअपितोयेषु नाम्रियन्तयदृच्छया ॥ तेशनैःकूलमासाद्य पञ्चापिक्लिन्नमौलयः ॥ ६० ॥ अशक्तानगरंगन्तुं बाल्यात्तत्रैव बभ्रमुः ॥ दूरादुच्चार्यमाणानि स्वनामानिस्वबन्धुभिः ॥ ६१ ॥ श्रुत्वापञ्चापितेबालाः प्रतिशब्दमकुर्वत ॥ ततस्तात्पितरःश्रुत्वा तत्रागत्यसरस्तटे ॥ ६२ ॥ पुत्रान्दृष्ट्वा तु सप्राणान्प्रहर्षमतुलङ्गताः ॥ किमेतदितिपित्राद्यैः पृष्टास्तेबालकास्तदा ॥ ६३ ॥ दुष्पण्यस्याथदुष्कृत्यं बन्धुभ्यस्तेन्यवेदयन् ॥ ततोविदितवृत्तान्ता राजानंप्राप्यनागराः ॥ ६४ ॥ पञ्चभिःकथितंवृत्तं दुष्पण्यस्यन्यवेदयन् ॥ ततोराजासमाहूय पशुमन्तंवणिग्वरम् ॥ ६५ ॥

धीरे २ किनारे प्राप्त होकर ॥ ६० ॥ नगर को जानेके लिये न समर्थ हुये व लड़कपन से वहीं घूमतेरहे और दूर से अपने बन्धुवों करके कहेजाते हुये अपने नामों को ॥ ६१ ॥ सुनकर उन पांचो भी बालकों ने प्रत्युत्तर किया तदनन्तर उनके पितालोग सुनकर वहां तड़ाग के किनारे आकर ॥ ६२ ॥ प्राणोंसमेत पुत्रों को देखकर बड़े आनन्द को प्राप्त हुये यह क्या है इसप्रकार पितादिकों से पूछेहुये उन बालकों ने उससमय ॥ ६३ ॥ दुष्पण्य के दुष्टकर्म को बन्धुवों से बतलाया तदनन्तर वृत्तान्त को जानेहुये नगरवासियों ने राजा के समीप प्राप्त होकर ॥ ६४ ॥ पांचो से कहेहुये दुष्पण्य के वृत्तान्त को कहा तदनन्तर राजा ने पशुमान्नामक उत्तम

बनिये को बुलाकर ॥ ६५ ॥ पुरवासियों के भी सुनतेहुये इस वचन को कहा राजा बोले कि हे पशुमन् ! दुष्पण्यनामक तुम्हारे दुष्टात्मा पुत्र से बहुत प्रजाओंवाले इस नगर को शून्य कियेहुये देखिये इससमय इन बालकों को जल में डुबादिया था ॥ ६६ । ६७ ॥ और प्राणोंसमेत ये अपनी इच्छा से फिर नगर को आये इस प्रकार इस कार्य के होने पर इससमय क्या करना चाहिये उसको कहिये ॥ ६८ ॥ जिसलिये तुम धर्म में परायण हो उसकारण इससमय तुम्हीं से पूछता हूं इस-प्रकार राजा से कहेहुये धर्म को जाननेवाले पशुमान् ने योग्य वचन कहा ॥ ६९ ॥ पशुमान् बोला कि जिसने नगर को निश्शेष करदिया है यह मारनेही के योग्य है

पौरेष्वपि च शृण्वत्सु वाक्यमेतदभाषत ॥ राजोवाच ॥ दुष्पण्यनाम्नापशुमन्बहुप्रजमिदंपुरम् ॥ ६६ ॥ शून्यप्रायंकृतंपश्य त्वत्पुत्रेणदुरात्मना ॥ इदानींबालकानेतान्मज्जयामास वै जले ॥ ६७ ॥ यदृच्छया च सप्राणाः पुनरप्यागताःपुरम् ॥ अस्मिन्नित्थङ्गतेकार्ये किंकर्तव्यंवदाधुना ॥ ६८ ॥ अद्यत्वामेवपृच्छामि यतस्त्वंधर्मतत्परः ॥ इत्युक्तःपशुमान्राज्ञा धर्मज्ञोयुक्तमब्रवीत् ॥ ६९ ॥ पशुमानुवाच ॥ पुरंनिश्शेषितंयेन वधमेवायमर्हति ॥ न ह्यत्रविषयेकिञ्चित्प्रष्टव्यंविद्यतेनृप ॥ ७० ॥ न ह्ययंममपुत्रःस्याच्छत्रुरेवातिपापकृत् ॥ न ह्यस्यनिष्कृतिं पश्ये येननिश्शेषितंपुरम् ॥ ७१ ॥ वध्यतामेवदुष्टात्मा सत्यमेवब्रवीम्यहम् ॥ श्रुत्वापशुमतोवाक्यं नागरास्सर्व एव हि ॥ ७२ ॥ वणिग्वरंश्लाघमाना राजानमिदमूचिरे ॥ न वध्यतामयंदुष्टस्तूष्णींनिर्वास्यतांपुरात् ॥ ७३ ॥ ततःसराजादुष्पण्यं समाहूयेदमब्रवीत् ॥ अस्माद्देशाद्व्रजाङ्छीघ्रं दुष्टात्मन्गच्छसाम्प्रतम् ॥ ७४ ॥ यदितिष्ठेस्त्वमत्रैव दण्डयेयंवधेन वै ॥ इतिराज्ञाविनिर्भर्त्स्य दूतैर्निर्वासितःपुरात् ॥ ७५ ॥

हे राजन् ! इस विषय में कुछ पूछने योग्य नहीं है ॥ ७० ॥ बहुत पाप को करनेवाला यह मेरा पुत्र नहीं है बरन शत्रुही है मैं इसका प्रायश्चित्त नहीं देखता हूं कि जिसने नगर को निश्शेष करदिया ॥ ७१ ॥ यह दुष्टात्मा माराही जावै मैं सत्यही कहता हूं पशुमान् का वचन सुनकर सबही नगरवासी ॥ ७२ ॥ श्रेष्ठ बनिया की प्रशंसा करतेहुये राजा से यह बोले कि यह दुष्ट मारा न जावै बरन चुपचाप नगर से निकालदिया जावै ॥ ७३ ॥ तदनन्तर उस राजा ने दुष्पण्य को बुलाकर यह कहा कि हे दुष्टात्मन् ! इससमय आप हमारे देश से शीघ्रही चलेजावो ॥ ७४ ॥ यदि तुम यहीं टिकोगे तो मैं वध से दण्ड करूंगा इसप्रकार राजा ने घुड़ककर दूतों से उसको नगर से

निकलवादिया ॥ ७५ ॥ इसके अनन्तर डरसे संयुत दुष्पएय उस देश को छोड़कर उससमय मुनिमण्डल से संकुल वनही को गया ॥ ७६ ॥ वहां भी एक मुनि के पुत्र को उसने जलमें डुबादिया और क्रीड़ा के लिये आयेहुये मुनिपुत्रों ने मरेहुये बालक को देखकर ॥ ७७ ॥ बहुत दुःखित होतेहुये आकर उसके पितासे कहा तदनन्तर उग्रश्रवाने उनसे जलमें मरेहुये पुत्रको सुनकर ॥ ७८ ॥ उसके उपरान्त प्रभाव से उस दुष्पएय के चरित्र को जाना और उग्रश्रवाने इस वैश्य के पुत्र दुष्पएय को शाप दिया ॥ ७९ ॥ उग्रश्रवा बोले कि जिसलिये तुमने मेरे लड़के को जलमें डालकर मारडाला है उसीकारण तुम्हारी भी मृत्यु जलही में डूबने से होवै ॥ ८० ॥

दुष्पएयस्त्वथतंदेशं परित्यज्यभयान्वितः ॥ मुनिमण्डलसंबाधं वनमेवययौतदा ॥ ७६ ॥ तत्राप्येकंमुनिसुतं स तोयेष्वन्यमज्जयत् ॥ केल्यर्थमागताद्दृष्ट्वा मुनिपुत्रामृतंशिशुम् ॥ ७७ ॥ तत्पित्रेकथयामासुरभ्येत्यभृशदुःखिताः ॥ ततउग्रश्रवाश्श्रुत्वा तेभ्यःपुत्रंजलेमृतम् ॥ ७८ ॥ ततोमहिम्नाद्दुष्पएयचरितंतदमन्यत ॥ उग्रश्रवाःशशापैनं दुष्पएयंवैश्यनन्दनम् ॥ ७९ ॥ उग्रश्रवा उवाच ॥ मत्सुतंपयसिक्षिप्य यत्त्वंमारितवानसि ॥ तवापिमरणंभूयाज्जलएव निमज्जनात् ॥ ८० ॥ मृतश्च सुचिरंकालं पिशाचस्त्वंभविष्यसि ॥ इतिशापेश्रुतेसद्यो दुष्पएयःखिन्नमानसः ॥ ८१ ॥ तद्वै वनंपरित्यज्य घोरमन्यद्वनंययौ ॥ सिंहादिक्रूरसत्त्वाढ्ये तस्मिन्प्राप्तेवनान्तरे ॥ ८२ ॥ पांसुवर्षमहद्वर्षं वृक्षानात्रोटयन्मुहुः ॥ वज्रघातसमस्पर्शो ववौझञ्झानिलोमहान् ॥ ८३ ॥ वेगेनगात्रंभिन्दन्ती वृष्टिश्चासीत्सुदुःसहा ॥ तद्दृष्ट्वा स तु दुष्पएयश्चिन्तयन्भृशदुःखितः ॥ ८४ ॥ मृतंशुष्कंमहाकायं गजमेकमपश्यत ॥ महावातंमहावर्षं तदासोढमश-

और मरकर तुम बहुत दिनोंतक पिशाच होगे इस शाप के सुनने पर शीघ्रही दुःखितमनवाला दुष्पएय ॥ ८१ ॥ उस वन को छोडकर सिंहादिक क्रूर जन्तुवों से संयुत अन्य भयंकर वन को चलागया व उस अन्य वनमें प्राप्त होने पर ॥ ८२ ॥ बारबार वृक्षो को तोड़तीहुई बड़ी धूलि की वर्षा हुई और वज्रघात के समान स्पर्शवाला बडा भारी झंझा (वर्षासमेत) पवन चलनेलगा ॥ ८३ ॥ और वेग से शरीर को फाड़तीहुई बड़ी दुस्सह वर्षा हुई उस को देखकर चिन्तन करताहुआ दुष्पएय बहुत दुःखी हुआ ॥ ८४ ॥ और उस ने मरेहुये व सूखे एक बड़े भारी शरीरवाले हाथी को देखा उससमय, बड़े पवन व बड़ी वर्षा को न सहता हुआ

दुष्पण्य ॥ ८५ ॥ हाथी के मुखरूपी बिल से पेट की गुहा में पैठगया व उसमें पैठनेपर बड़ी भारी वर्षा हुई ॥ ८६ ॥ तदनन्तर सब वृष्टि के जलों से बड़ा भारी प्रवाह हुआ और वह प्रवाह उस वनमें कोई नदी होगई ॥ ८७ ॥ इसके अनन्तर उन वृष्टि के जलों से पूर्ण पेटवाला वह हाथी महाप्रवाह में तैरताहुआ निश्छिद्र होगया ॥ ८८ ॥ तदनन्तर जल से पूर्ण पेटवाले इस निश्छिद्र हाथी के पेट से वही यह दुष्पण्य निकलने के लिये न समर्थ हुआ ॥ ८९ ॥ तदनन्तर भयंकर वेगवाले वृष्टि के जलों के प्रवाह ने पेट में बैठेहुये दुष्पण्यवाले हाथी को समुद्र में प्राप्त किया ॥ ९० ॥ और जलमें डूबाहुआ दुष्पण्य क्षणभर में प्राणों से हीन होगया और मराहुआ

क्कवन् ॥ ८५ ॥ गजास्यविवरेणैव विवेशोदरगह्वरम् ॥ तस्मिन्प्रविष्टमात्रे तु वृष्टिरासीत्सुभूयसी ॥ ८६ ॥ ततोवर्षजलैःसर्वैः प्रवाहःसुमहानभूत् ॥ सप्रवाहोवनेतस्मिन्नदीकाचिदजायत ॥ ८७ ॥ अथतैर्वर्षसलिलैः सगजःपूरितोदरः ॥ प्लवमानोमहापूरे नीरन्ध्रःसमजायत ॥ ८८ ॥ ततोनिर्विवरस्यास्य जलपूर्णोदरस्य च ॥ गजस्यजठरात्सोयं निर्गन्तुं न शशाकह ॥ ८९ ॥ ततश्चवृष्टितोयानां प्रवाहोभीमवेगवान् ॥ उदरस्थितदुष्पण्यंसमुद्रंप्रापयद्गजम् ॥ ९० ॥ दुष्पण्यःसलिलेमग्नः क्षणात्प्राणैर्व्ययुज्यत ॥ मृतएवसदुष्पण्यः पिशाचत्वमवाप्तवान् ॥ ९१ ॥ पीडितःक्षुत्पिपासाभ्यां दुर्गमंवनमाश्रितः ॥ घोरेषुघर्मकालेषु बिभ्रद्रूपंभयानकम् ॥ ९२ ॥ अतिष्ठद्गहनेरण्ये दुःखान्यनुभवन्बहु ॥ कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ ९३ ॥ सपिशाचोमहादुःखी न्यवसद्घोरकानने ॥ वनाद्वनान्तरंधावन्देशाद्देशान्तरन्तथा ॥ ९४ ॥ सर्वत्रानुभवन्दुःखमाययौदण्डकान्क्रमात् ॥ अगस्त्यादाश्रमात्पुण्यान्नातिदूरेससञ्चरन् ॥ ९५ ॥ नदन्भैरवनादञ्च

वह दुष्पण्य पिशाचता को प्राप्त हुआ ॥ ९१ ॥ और क्षुधा व प्यास से पीडित वह दुर्गम वन में प्राप्त हुआ और भयंकररूप को धारण करताहुआ वह भयानक गर्मी के समयों में ॥ ९२ ॥ बहुत दुःखों को भोगताहुआ गहन वन में टिकताभया और करोडों हज़ार कल्प व करोड़ों सौ कल्प तक ॥ ९३ ॥ उस बडे दुःखी पिशाच ने भयंकर वन में निवास किया और वन से अन्य वन व देश से अन्य देश में दौड़ताहुआ वह ॥ ९४ ॥ सबकहीं दुःख को भोगताहुआ क्रम से दण्डकवन को गया और

गस्त्यजी के पवित्र आश्रम से थोडींही दूरपै घूमतेहुये उसने ॥ ९५ ॥ भयंकर शब्द को करतेहुये उच्चस्वर से वचन कहा कि हे तपस्वियो ! तुम सब लोग मेरा वचन सुनो ॥ ९६ ॥ कि सब प्राणियों के हित में परायण व दयावान् आपलोग दुःखों से बहुतही पीड़ित मुझ को दयादृष्टि से ग्रहण कीजिये ॥ ९७ ॥ पुरातन समय पटना शहर में पशुमान् के पुत्र मुझ दुष्पण्यनामक बनिये ने बहुत बालकों को मारा ॥ ९८ ॥ तदनन्तर राजा करके उस देश से निकालाहुआ मैं वनको गया उस के उपरान्त मैंने उग्रश्रवा मुनि के पुत्र को जल में मारडाला ॥ ९९ ॥ व उन मुनि ने मुझको भी जल में मरना शाप दिया और बड़े दुःखवाले भयंकर पिशाचत्व

वाक्यमुच्चैरभाषत ॥ भोभोस्तपोधनाःसर्वे शृणुध्वंमामकंवचः ॥ ९६ ॥ भवन्तो हि कृपावन्तः सर्वभूतहितेरताः ॥ कृपा दृष्ट्यानुगृह्णीत मांदुःखैरतिपीडितम् ॥ ९७ ॥ पुरा दुष्पण्यनामाहं वैश्यःपाटलिपुत्रके ॥ पुत्रःपशुमतश्चापि बहून्बाला नमारयम् ॥ ९८ ॥ ततोविवासितोराज्ञा तस्माद्देशाद्वनङ्गतः ॥ अमारयञ्जलेपुत्रं तत्रोग्रश्रवसोमुनेः ॥ ९९ ॥ समुनिर्द त्त्वाञ्च्छापं ममापिमरणञ्जले ॥ पिशाचताञ्च मे घोरां दत्तवान्दुःखभूयसीम् ॥ १०० ॥ कल्पकोटिसहस्राणि कल्पको टिशतान्यपि ॥ पिशाचतानुभूतेयं शून्यकाननभूमिषु ॥ १ ॥ नाहंसोढुंसमर्थोस्मि पिपासांक्षुधमेव च ॥ रक्षध्वंकृपयायूय मतोमाम्बहुदुःखिनम् ॥ २ ॥ यथामुच्येयपैशाच्यात्तथाकुरुततापसाः ॥ इतिश्रुत्वापिशाचस्य वचनन्तेतपोधनाः ॥ ३ ॥ लोपामुद्रासहचरमूचिरेकुम्भसम्भवम् ॥ तापसा ऊचुः ॥ पिशाचस्यास्यभगवन्ब्रूहिनिष्कृतिमुत्तमाम् ॥ ४ ॥ एवंविधा नांपापानां त्वंसमर्थो हि रक्षणे ॥ तेषामगस्त्यःश्रुतवाक्कृपयापरयायुतः ॥ ५ ॥ प्रियशिष्यंसमाहूय सुतीक्ष्णंवाक्यमब्र

को मुझको दिया ॥ १०० ॥ और करोड़ों हज़ार कल्प व करोडों सौ कल्पतक भी मैंने शून्य वनों की भूमियों में इस पिशाचता को भोग किया है ॥ १ ॥ मैं प्यास व भूख को सहने के लिये समर्थ नहीं हूं इसकारण तुमलोग बहुतही दुःखवाले मेरी रक्षा करो ॥ २ ॥ हे तपस्वियो ! मैं जिसप्रकार पिशाचता से छूटजाऊं वैसाही कीजिये पिशाच के इस वचन को सुनकर उन तपस्वियों ने ॥ ३ ॥ लोपामुद्रा के सहचर कुम्भसम्भव (अगस्त्यजी) से कहा तपस्वी बोले कि हे भगवन् ! इस पिशाच के प्रायश्चित्त को कहिये ॥ ४ ॥ क्योंकि इसप्रकार के पापों से रक्षा करने में तुम समर्थ हो उनके वचन को सुनकर अगस्त्यजी बड़ी दया से संयुत हुये ॥ ५ ॥ व प्यारे शिष्य सुतीक्ष्ण

सुतीक्ष्णजी बोले कि हे सुतीक्ष्ण ! तुम शीघ्रही गन्धमादनपर्वत को जावो ॥ ६ ॥ वहां पातकों का विनाशक बड़ा भारी अग्नितीर्थ विद्यमान है
को बुलाकर वचन बोले अगस्त्यजी बोले कि हे सुतीक्ष्ण ! तुम शीघ्रही गन्धमादनपर्वत को जावो ॥ ७ ॥ पिशाच के लिये संकल्पपूर्वक उसमें तुम्हारे स्नान करनेपर यह पिशाचता को छोड़कर दिव्यशरीर
हे महामते ! पिशाच के छूटने के लिये तुम उस तीर्थ में स्नान करो ॥ ७ ॥ पिशाच के लिये संकल्पपूर्वक उसमें तुम्हारे स्नान करनेपर यह पिशाचता को छोड़कर दिव्यशरीर ॥ ६ ॥ अगस्त्यजी से ऐसे
को प्राप्त होगा ॥ ८ ॥ उस तीर्थ के सेवन से अन्य इसके प्रायश्चित्त को मैं नहीं देखता हूं इसकारण हे सुतीक्ष्ण ! दया से इसकी रक्षा कीजिये ॥ ६ ॥ अगस्त्यजी से ऐसे
कहेहुये सुतीक्ष्णजी गन्धमादनपर्वत पै गये व अग्नितीर्थ में प्राप्त होकर पिशाच के लिये संकल्प कर दयानिधान सुतीक्ष्णजी ने ॥ १० ॥ उस तीर्थ में पिशाच के लिये

सुतीक्ष्णगच्छत्वरितं पर्वतंगन्धमादनम् ॥ ६ ॥ तत्राग्नितीर्थंसुमहद्विद्यतेपापनाशनम् ॥
वीत् ॥ अगस्त्य उवाच ॥ सुतीक्ष्णगच्छत्वरितं पर्वतंगन्धमादनम् ॥ पिशाचभावमुन्मुच्य दि
पिशाचमोक्षणार्थाय तत्रस्नाहिमहामते ॥ ७ ॥ पिशाचार्थन्त्वयिस्नाते तत्रसङ्कल्पपूर्वकम् ॥ पिशाचभावमुन्मुच्य दि
व्यतामेषयास्यति ॥ ८ ॥ निष्कृतिर्नास्यपश्यामि विनातत्तीर्थसेवनात् ॥ अतःसुतीक्ष्णकृपया रक्षस्वैनंपिशाचकम् ॥ ६ ॥
अगस्त्येनैवमुक्तस्तु सुतीक्ष्णोगन्धमादनम् ॥ प्राप्याग्नितीर्थंसङ्कल्प्य पिशाचार्थंकृपानिधिः ॥ १० ॥ सस्नौतत्र
पिशाचार्थं नियमेनदिनत्रयम् ॥ रामनाथादिकंसेव्य तत्तीर्थंप्रविगाह्य च ॥ ११ ॥ स्वाश्रमंप्रतिगत्वाथ सुतीक्ष्णोविप्र
सत्तमः ॥ तत्तीर्थप्रोक्षणात्सद्यः सविसृज्यपिशाचताम् ॥ १२ ॥ वैभवात्तस्यतीर्थस्य सद्योदिव्यत्वमाप्तवान् ॥ विमान
वरमारूढो दिव्यस्त्रीपरिवारितः ॥ १३ ॥ सुतीक्ष्णञ्चाप्यगस्त्यञ्च तथान्यांश्च तपोधनान् ॥ पुनःपुनर्नमस्कृत्य तांश्चाम
न्त्र्यप्रहर्षितः ॥ १४ ॥ स्वर्गमेवारुहत्तूर्णं देवैरपिसपूजितः ॥ अग्नितीर्थस्यमाहात्म्याद्दुष्पण्योवैश्यनन्दनः ॥ १५ ॥

नियम से तीन दिन तक स्नान किया और रामनाथादिक को सेवन कर व उस तीर्थ में नहाकर ॥ ११ ॥ श्रेष्ठ ब्राह्मण सुतीक्ष्णजी अपने आश्रम को जाकर प्राप्त हुये और उस
तीर्थ में नहाने से वह उसी क्षण पिशाचता को छोड़कर ॥ १२ ॥ उस तीर्थ के प्रभावसे शीघ्रही दिव्यदेह को प्राप्त हुआ और दिव्यस्त्रियों से घिराहुआ वह उत्तम विमान
पै चढ़कर ॥ १३ ॥ सुतीक्ष्ण व अगस्त्य तथा अन्य तपस्वियों को बार २ प्रणाम कर व उनसे पूछकर प्रसन्न होताहुआ ॥ १४ ॥ वह देवताओं से भी पूजित होकर शीघ्रही

स्वर्ग को चलागया अग्नितीर्थ के माहात्म्य से बनिये का पुत्र दुष्पण्य ॥ १५ ॥ शाप से उपजीहुई पिशाचता को इसप्रकार छोड़कर देवत्व को प्राप्त हुआ हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार तुमलोगों से अग्नितीर्थ का प्रभाव कहागया ॥ १६ ॥ भक्तिसमेत जो मनुष्य इस पिशाचमोचन कथावाले अध्याय को पढ़ता या सुनता है वह सब पापों से छूट जाता है ॥ १७ ॥ और इस संसार में बड़े सुखों को भोगकर परलोक में भी सुख को पाताहै ॥ ११८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे सेतुमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामग्नितीर्थप्रशंसायां दुष्पण्यपैशाच्यमोक्षणंनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

पैशाच्यंशापजंत्यक्त्वा दिव्यतामित्थमाप्तवान् ॥ एवंवःकथितंविप्रा अग्नितीर्थस्यवैभवम् ॥ १६ ॥ यःपठेदिममध्यायं शृणुयाद्वा सभक्तिकम्। पिशाचमोक्षणाख्यानं मुच्यतेसर्वपातकैः॥१७॥इहभुक्त्वामहाभोगान्परत्रापिसुखंलभेत्॥११८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येऽग्नितीर्थप्रशंसायांदुष्पण्यपैशाच्यमोक्षणन्नामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ✻ ॥

श्रीसूत उवाच ॥ अग्नितीर्थाभिधेतीर्थे सर्वपातकनाशने ॥ स्नानंकृत्वाविशुद्धात्मा चक्रतीर्थंततोव्रजेत् ॥ १ ॥ यंयं कामंसमुद्दिश्य चक्रतीर्थेद्विजोत्तमाः ॥ स्नानंसमाचरेन्मर्त्यस्तं तं कामंसमश्नुते ॥ २ ॥ पुराहिर्बुध्न्यनामा तु महर्षिः संशितव्रतः ॥ सुदर्शनमुपास्तेस्मिंस्तपस्वीगन्धमादने ॥ ३ ॥ तपस्यन्तंमुनिंतत्र राक्षसाघोररूपिणः ॥ अबाधन्तसदा विप्रास्तपोविघ्नैकतत्पराः ॥४॥ सुदर्शनंतदागत्य भक्तरक्षणवाञ्छया ॥ यातुधानान्बाधमानान्न्यवधीर्लीलयापुरा ॥ ५ ॥

दो० । चक्रतीर्थ में न्हाय जिमि पायो द्विरज हाथ । तेइसवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ श्रीसूतजी बोले कि समस्त पातकों को नाशनेवाले अग्नितीर्थसंज्ञक तीर्थ में नहाकर तदनन्तर विशुद्धचित्त पुरुष चक्रतीर्थ को जावै ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिस जिस कामना को उद्देश कर मनुष्य चक्रतीर्थ में स्नान करता है उस उस कामना को भोगता है ॥ २ ॥ पुरातनसमय तीक्ष्ण नियमवाले अहिर्बुध्न्यनामक तपस्वी महर्षि इस गन्धमादनपर्वत पै सुदर्शनचक्र की उपासना करते थे ॥ ३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! वहां तपस्या के विघ्न में केवल लगेहुये घोररूपी राक्षस तपस्या करतेहुये उन मुनि को सदैव पीड़ित करते थे ॥ ४ ॥ तब पुरातनसमय भक्त की रक्षा की इच्छा से सुदर्शन

ने आकर पीड़ा करतेहुये राक्षसों को लीला से मारडाला ॥ ५ ॥ तब से लगाकर हे ब्राह्मणो ! भक्त की प्रार्थना से उस चक्र ने अहिर्बुध्न्य से कियेहुये तीर्थ में सदैव
सन्निधि किया ॥ ६ ॥ तब से लगाकर वह तीर्थ चक्रतीर्थ ऐसा कहाजाता है सुदर्शन के प्रसाद से उस तीर्थ में स्नान करने से ॥ ७ ॥ राक्षसों व पिशाचादिकों से कीहुई
पीड़ा कभी नहीं होती है पहिले इस पवित्रकारक तीर्थ में नहाकर कटेहुये हाथोंवाले उन सूर्यनारायणजी ने ॥ ८ ॥ तीर्थ के प्रभाव से सुवर्णमय हाथों को पाया है ऋषि
लोग बोले कि हे सूतनन्दन! सूर्यनारायणजी किसप्रकार छिन्नहस्त हुये हैं ॥ ६ ॥ और जिसप्रकार उन्होंने सोने के हाथों को पाया है उसको हमलोगों से कहिये श्रीसूतजी

तदाप्रभृतितच्चक्रं भक्तप्रार्थनयाद्विजाः ॥ अहिर्बुध्न्यकृतेतीर्थे सन्निधानंसदाकरोत् ॥ ६ ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं चक्रतीर्थमितीर्यते ॥ सुदर्शनप्रसादेन तत्रतीर्थेनिमज्जनात् ॥ ७ ॥ रक्षःपिशाचादिकृता पीडानास्त्येवकर्हिचित् ॥ स्नात्वास्मिन्पावनेतीर्थे छिन्नपाणिःपुरारविः ॥ ८ ॥ सहिरण्यमयौपाणी लब्धवांस्तीर्थवैभवात् ॥ ऋषय ऊचुः ॥ छिन्नपाणिःकथमभूदादित्यःसूतनन्दन ॥ ६ ॥ यथा च लब्धवान्पाणी सौवर्णौ तद्वदस्व नः ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इन्द्रादयःसुराःपूर्वं सततंदैत्यपीडिताः ॥ १० ॥ किंकुर्मइतिसञ्चिन्त्य सम्भूयसममन्त्रयन् ॥ बृहस्पतिंपुरस्कृत्य मन्त्रयित्वाचिरंसुराः ॥ ११ ॥ तुराषाहंपुरोधाय धामस्वायम्भुवंययुः ॥ तेब्रह्माणंसमासाद्य दृष्ट्वास्तुत्वा च भक्तितः ॥ १२ ॥ ततोऽव्यजिज्ञपंस्तस्मै स्वेषामागमकारणम् ॥ सुरा ऊचुः ॥ भगवन्भारतीनाथ दैत्याह्यस्मान्बलोत्कटाः ॥ १३ ॥ बाधन्तेसततन्देव तत्र ब्रूहि प्रतिक्रियाम् ॥ इत्युक्तःससुरैर्ब्रह्मा तानाहकृपयावचः ॥ १४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मा भैष्टयूयंविबुधास्तत्रोपायंब्रवीम्यहम् ॥

बोले कि पुरातनसमय सदैव दैत्यों से पीड़ित होतेहुये इन्द्रादिक देवताओं ने ॥ १० ॥ इकट्ठा होकर हमलोग क्या करैं ऐसा विचारकर सम्मति किया व बहुत दिनों
तक सम्मति कर देवता बृहस्पति को आगे कर ॥ ११ ॥ व इन्द्रजी को आगे करके ब्रह्माके स्थान को गये और ब्रह्मा के समीप जाकर देवताओं ने उनको देखकर भक्ति से
स्तुति कर ॥ १२ ॥ तदनन्तर उनसे अपने आने का कारण कहा देवता बोले कि हे सरस्वतीनाथ, भगवन् ! बलसे उग्र दैत्यलोग हमलोगों को ॥ १३ ॥ सदैव दुःख
देते हैं हे देव ! उसमें प्रतिक्रिया याने करने योग्य कार्य को कहिये देवताओं से ऐसा कहेहुये ब्रह्मा ने उनसे दया से वचन कहा ॥ १४ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे देवताओ !

मलोग मत डरो मैं उस विषय में तुमसे यत्न को कहता हूं कि दैत्यों के विनाश करनेवाले शैव महायज्ञ को ॥ १५ ॥ हे देवताओ! तुमलोग तत्त्वदर्शी मुनियों समेत प्रारम्भ,
रो और सब देवताओं से विधिलोप के बिना याने विधिपूर्वक यह यज्ञ ॥ १६ ॥ जोकि माहेश्वर महायज्ञ है गन्धमादनपर्वत पै कियाजावै हे श्रेष्ठदेवताओ ! यदि अन्यत्र
स यज्ञ को करोगे तो ॥ १७ ॥ उससमय दुष्टात्मा दैत्यलोग यज्ञ में विघ्न करेंगे और जो यह यज्ञ गन्धमादनपर्वत पै कियाजायगा ॥ १८ ॥ तो सुदर्शनचक्र के प्रसाद से
घ्न नहीं होगा गन्धमादनपर्वत पै अहिर्बुध्न्यनामक महर्षि के ऊपर ॥ १९ ॥ दया के लिये जिसकारण उस तीर्थ में सुदर्शनचक्र स्थित है इसलिये तुमलोग गन्धमादन

माहेश्वरंमहायज्ञमसुराणांविनाशनम् ॥ १५ ॥ प्रारभध्वंसुरायूयं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ अयञ्चदैवतैःसर्वैर्विधिलो
पंविनाक्रतुः ॥ १६ ॥ माहेश्वरोमहायज्ञः क्रियतांगन्धमादने ॥ यदिह्यन्यत्रतंयज्ञं कुर्यास्तद्विबुधर्षभाः ॥ १७ ॥ यज्ञ
विघ्नंतदाकुर्युर्दुरात्मानःसुरद्विषः ॥ क्रियतेयद्ययंयज्ञो गन्धमादनपर्वते ॥ १८ ॥ सुदर्शनप्रसादेन नैव विघ्नो भवेत्तदा ॥
अहिर्बुध्न्याभिधानस्य महर्षेर्गन्धमादने ॥ १९ ॥ अनुग्रहायतत्तीर्थे सन्निधत्तेसुदर्शनम् ॥ अतःकुरुध्वंभोयूयं तं यज्ञंग
न्धमादने ॥ २० ॥ नातिदूरे चक्रतीर्थादसुराणांविनाशकम् ॥ ततस्तेब्रह्मवचसा सहसागन्धमादनम् ॥ २१ ॥ बृहस्पतिं
पुरस्कृत्य जग्मुर्यज्ञचिकीर्षया ॥ तेप्रणम्यमहात्मानमहिर्बुध्न्यंमुनीश्वरम् ॥ २२ ॥ अकल्पयन्यज्ञवाटन्नातिदूरेतदा
श्रमात् ॥ यज्ञकर्मसुनिष्णातैः सहितास्तेतपोधनैः ॥ २३ ॥ इष्टिमारेभिरेदेवा असुराणांविनाशिनीम् ॥ तस्मिन्कर्म
णिहोतासीत्स्वयमेवबृहस्पतिः ॥ २४ ॥ बभूवमैत्रावरुणो जयन्तः पाकशासनिः ॥ अच्छावाकोबभूवात्र वसूनामष्टमो

चक्रतीर्थ से थोड़ीही दूर पै दैत्यों को नाश करनेवाले उस यज्ञ को करो तदनन्तर वे देवता ब्रह्मा के वचन से सहसा गन्धमादनपर्वत को ॥ २० । २१ ॥ यज्ञ करने
की इच्छा से बृहस्पति को आगे करके गये और उन देवताओंने महात्मा अहिर्बुध्न्य मुनीश्वर को प्रणाम कर ॥ २२ ॥ उनके आश्रम से थोड़ीही दूर पै यज्ञवाट को बनाया
और यज्ञकर्मों में निपुण तपस्वियोंसमेत उन ॥ २३ ॥ देवताओं ने दैत्यों को विनाशनेवाले यज्ञ का प्रारम्भ किया उस कर्म में आपही बृहस्पतिजी होता हुये ॥ २४ ॥

व इन्द्र के पुत्र जयन्तजी मैत्रावरुण हुये व इस यज्ञ में वसुवों के मध्य में आठवें वसु अच्छावाक हुये ॥ २५ ॥ व उससमय शक्ति के पुत्र पराशरजी उस यज्ञमें ग्राव हुये व बड़े तेजस्वी अष्टावक्र अध्वर्यु (यजुर्वेदी) की धुरके वाहक हुये ॥ २६ ॥ और उस यज्ञ में महामुनि विश्वामित्रजी प्रतिप्रस्थाता हुये और वरुण नेष्टा व धनेश (कुबेरजी) उन्नेता हुये ॥ २७ ॥ और यज्ञकी आधी धुर (भार) को लेचलतेहुये सूर्यनारायणजी ब्रह्मा हुये व द्विजोत्तम वशिष्ठजी ब्राह्मणाच्छंसि हुये ॥ २८ ॥ और शुनःशेप आग्नीध्र हुये व अग्निजी पोता हुये और पवन उद्गाता हुये व यमराज प्रस्तोता हुये ॥ २९ ॥ और घट से उपजेहुये अगस्त्यजी उस यज्ञ में प्रतिहर्ता हुये और विश्वामित्र

वसुः ॥ २५ ॥ ग्रावस्तदाभवत्तत्र शक्तिपुत्रःपराशरः ॥ अष्टावक्रोमहातेजा अध्वर्युधुरमूढवान् ॥ २६ ॥ तत्रप्रतिप्रस्थाताभूद्विश्वामित्रोमहामुनिः ॥ नेष्टा बभूववरुण उन्नेता च धनेश्वरः ॥२७॥ ब्रह्माबभूवसविता यज्ञस्यार्धधुरंवहन् ॥ बभूव ब्राह्मणाच्छंसिवशिष्ठोब्राह्मणोत्तमः॥ २८॥ आग्नीध्रोभूच्छुनःशेपः पोताजातश्च पावकः ॥ उद्गातावायुरभवत्प्रस्तोता च परेतराट् ॥ २९ ॥ प्रतिहर्ता तु तत्रासीदगस्त्यःकुम्भसम्भवः ॥ सुब्रह्मण्योमधुच्छन्दा विश्वामित्रात्मजोमहान् ॥३०॥ यजमानःस्वयमभूद्देवराजःपुरन्दरः ॥ उपद्रष्टाबभूवात्र व्यासपुत्रःशुकोमुनिः ॥ ३१ ॥ ततस्तेऋत्विजःसर्वे देवराजंपुरन्दरम् ॥ विधिवद्दीक्षयांचक्रुस्तत्रमाहेश्वरेक्रतौ ॥ ३२ ॥ प्रावर्ततमहायज्ञ एवं वै गन्धमादने ॥ सुदर्शनप्रभावेण दुःसहेनातिपीडिताः ॥ ३३ ॥ नाविन्दन्नसुरास्तत्र रन्ध्रंयज्ञेप्रवर्तिते ॥ एवंनिरन्तरंयोसौ प्रावर्ततमहाक्रतुः ॥ ३४ ॥ भक्षयंश्च हविस्तत्रजज्वालहुतवाहनः ॥ विधिवत्कर्मजालानि कृत्वाध्वर्युरसंभ्रमात् ॥ ३५ ॥ मन्त्रपूतंपुरोडाशं जुहवामासपावके ॥ हुत

के पुत्र महान् मधुच्छन्दाजी सुब्रह्मण्य हुये ॥ ३० ॥ और आपही सुरराज इन्द्रजी यजमान हुये व इस यज्ञमें व्यासजी के पुत्र शुकदेवमुनि उपद्रष्टा हुये ॥ ३१ ॥ तदनन्तर उन सब ऋत्विजों ने उस माहेश्वर यज्ञ में सुरराज इन्द्रजीको विधिपूर्वक दीक्षित किया ॥ ३२ ॥ इसप्रकार गन्धमादनपर्वत पै बड़ा यज्ञ वर्तमान हुआ और सुदर्शन के असह्य प्रभाव से बहुत पीड़ित ॥ ३३ ॥ दैत्योंने उस होतेहुये यज्ञमें छिद्रको नहीं पाया इसप्रकार निरन्तर जो यह महायज्ञ वर्तमान हुआ ॥ ३४ ॥ उसमें हव्यको भोजन करतेहुये अग्निजी प्रज्वलित हुये और अध्वर्यु ने सावधानता से कर्मसमूहों को करके ॥ ३५ ॥ मन्त्र से पवित्र पुरोडाश को अग्निमें हवन किया और हवन करनेसे

बचेहुये पुरोडाशको अध्वर्यु ने आदर से विभाग कर ॥ ३६ ॥ होताहै मुख्य जिनमें उन ऋत्विजोंके लिये पापनाशक पुरोडाशको दिया बहुतही उग्र तेजवाले प्राशित्रनामक एक पुरोडाश भाग को उस यज्ञमें सूर्यनारायण ब्रह्माके लिये दिया तब सूर्यनारायणने प्राशित्रको दोनों हाथों से ग्रहण किया ॥ ३७ । ३८ ॥ और सूर्यनारायण से छुयेहुये उस दुरासद प्राशित्रने सब ऋत्विजों के देखतेहुये उनके हाथों को काटडाला ॥ ३९ ॥ तदनन्तर उग्र तेजवाले प्राशित्र से कटे हाथोंवाले वे सूर्यनारायणजी इसकारण डरगये व मलिनमुख हुये कि यह क्या हुआ ॥ ४० ॥ और सूर्यनारायणने सब ऋत्विजोंको बुलाकर यह कहा सूर्यनारायण बोले कि मुझको दियेहुये इस पुरोडाश के

शेषंपुरोडाशं विभज्याध्वर्युरादरात् ॥ ३६ ॥ ऋत्विग्भ्योहोतृमुख्येभ्यः प्रददौपापनाशनम् ॥ सवित्रेब्रह्मणेचैक मत्युग्रतरतेजसम् ॥ ३७ ॥ ददौतत्रपुरोडाशभागं प्राशित्रनामकम् ॥ प्रतिजग्राहपाणिभ्यां प्राशित्रंसवितातदा ॥ ३८ ॥ सवितृस्पृष्टमात्रंसत्तत्प्राशित्रंदुरासदम् ॥ तस्यपाणीप्रचिच्छेद पश्यतांसर्वऋत्विजाम् ॥ ३९ ॥ ततःसंछिन्नपाणिःस प्राशित्रेणोग्रतेजसा ॥ किमेतदितिसंत्रस्तो विषण्णवदनोभवत् ॥ ४० ॥ सविताऋत्विजःसर्वान्समाहूयेदमब्रवीत् ॥ सवितोवाच ॥ पुरोडाशस्यभागोयं ममप्राशित्रनामकः ॥ ४१ ॥ दत्तश्छिच्छेदमत्पाणी मिषत्स्वेवभवत्स्वपि ॥ अतोभवन्तः सम्भूय सर्वं एवहि ऋत्विजः ॥ ४२ ॥ कल्पयन्तामिमौपाणी नोचेद्यज्ञंनिहन्म्ययमुम् ॥ सवितुर्वाक्यमाकर्ण्य ते सर्वेसमचिन्तयन् ॥ ४३ ॥ तत्रमध्येमुनीन्द्राणां देवानाञ्चैवसर्वशः ॥ अष्टावक्रोमहातेजा ऋत्विजस्तानभाषत ॥ ४४ ॥ अष्टावक्र उवाच ॥ शृणुध्वमृत्विजःसर्वेममवाक्यंसमाहिताः ॥ मयिजीवतिविप्रेन्द्रा विरिञ्चानांशतङ्गतम् ॥ ४५ ॥ जायन्ते च त्रि

प्राशित्रनामक भागने आपलोगों के देखतेहुये मेरे हाथोंको काटडाला इसकारण आपलोग सभी ऋत्विज् मिलकर ॥ ४१।४२ ॥ इन हाथोंको कल्पित करो नहीं तो मैं इस यज्ञको नाश करताहूं सूर्यनारायणका वचन सुनकर उन सबोंने चिन्तनकिया ॥ ४३ ॥ और वहां मुनीन्द्रों व सब देवताओंके मध्यमें बडे तेजस्वी अष्टावक्रने उन ऋत्विजों से कहा ॥ ४४ ॥ अष्टावक्र बोले कि हे ऋत्विजो ! सावधान होतेहुये तुम सब लोग मेरे वचनको सुनो कि हे द्विजेन्द्रो ! मेरे जीतेहुये सौब्रह्मा बीतगये ॥ ४५ ॥ और करोड़ों ब्रह्मा

पैदा होते हैं व मरजाते हैं व उन सबों को देखताहुआ मैं प्राणों को धारण करतारहा ॥ ४६ ॥ और उन लोकेश्वरनामक ब्रह्मा के वर्तमान होने पर श्यामलापुरमें बसताहुआ हरिहरनामक ब्राह्मण ॥ ४७ ॥ खेलके लिये निशाने को बेधनेवाले जंगलवासी बहेलिया से निशाने के बीच में प्राप्त होकर बाणों से कटेहुये पैरोंवाला होगया ॥ ४८ ॥ तब पुरातनसमय मुनियोंसे पठायाहुआ वह गन्धमादनपर्वत को प्राप्त होकर इस मुनितीर्थ में नहाकर चरणों को प्राप्त हुआ ॥ ४९ ॥ तब यह पवित्र तीर्थ मुनितीर्थ ऐसा कहागया व इससमय चक्रके नाम से उसने चक्रतीर्थ नाम को पाया ॥ ५० ॥ इसलिये यदि तुमलोगों को रुचता हो तो इस मुनितीर्थ में प्राशित्र से कटे हाथोंवाले

यन्ते च चतुराननकोटयः ॥ पश्यन्नेवचतान्सर्वानहंप्राणानधारयम् ॥ ४६ ॥ तत्रलोकेश्वराभिख्ये वर्तमानेप्रजापतौ ॥ विप्रोहरिहरोनाम निवसञ्छ्यामलापुरे ॥ ४७ ॥ व्याधेनारण्यवासेन केल्यर्थंलक्ष्यवेधिना ॥ छिन्नपादोभवद्बाणैर्लक्ष्य मध्यंसमागतः ॥ ४८ ॥ सगन्धमादनंप्राप्य मुनिभिःप्रेरितस्तदा ॥ स्नात्वा च मुनितीर्थेस्मिन्प्राप्तवांश्चरणौपुरा ॥ ४९ ॥ तदापुण्यमिदंतीर्थं मुनितीर्थमितीरितम् ॥ इदानींचक्रतीर्थाख्यं चक्रनाम्नात्वविन्दत ॥ ५० ॥ तदत्रक्रियतांस्नानं प्राशित्रच्छिन्नपाणिना ॥ मुनितीर्थेसवित्रापि युष्माकंयदिरोचते ॥ ५१ ॥ ऋत्विजःकथितास्त्वेवमष्टावक्रमहर्षिणा ॥ सवितारमभाषन्त सर्वएवप्रहर्षिताः ॥ ५२ ॥ सवितःस्नाहितीर्थेस्मिंस्तवपाणीभविष्यतः ॥ अष्टावक्रोयथाप्राह तथा कुरुसमाहितः ॥ ५३ ॥ ततः ससवितागत्वा चक्रतीर्थंमहत्तरम् ॥ सस्नौपाण्योरवाप्त्यर्थमिष्टदायिनितत्रसः ॥ ५४ ॥ उत्तिष्ठन्नेवसतदा तत्रस्नात्वासभक्तिकम् ॥ युक्तोहिरण्मयाभ्यान्तु पाणिभ्यांसमदृश्यत ॥ ५५ ॥ हिरण्यपाणिंतंदृष्ट्वा

सूर्य भी स्नान करैं ॥ ५१ ॥ अष्टावक्र महर्षि से इसप्रकार कहेहुये उन सभी प्रसन्न ऋत्विजों ने सूर्यनारायण से कहा ॥ ५२ ॥ कि हे सवितः ! इस तीर्थ में नहावो तो तुम्हारे हाथ होवैंगे अष्टावक्र ने जैसा कहा है सावधान होकर वैसाही करो ॥ ५३ ॥ तदनन्तर उन सूर्यनारायण ने बड़े भारी चक्रतीर्थ को जाकर हाथों के मिलने के लिये उस मनोरथ को देनेवाले तीर्थ में उन्होंने स्नान किया ॥ ५४ ॥ और उस तीर्थ में भक्तिसमेत नहाकर उससमय उठतेही हुये वे सूर्यनारायण सुवर्णमय हाथों से

संयुत देखपड़े ॥ ५५ ॥ और सोनेके हाथोंवाले उन सूर्यनारायण को देखकर सब ऋत्विज् प्रसन्न हुये तदनन्तर उस यज्ञको समाप्त कर व दैत्यगणोंको जीतकर ॥ ५६ ॥ सुखी होतेहुये सब इन्द्रादिक देवता स्वर्ग को आये इसलिये इस तीर्थको आकर सब मनुष्यों को ॥ ५७ ॥ अपने अपने मनोरथ की सिद्धि के लिये बड़े यत्नसे सेवन करना चाहिये और अन्ध, कुणिक (हथटूटा), बावले, बहरे व कुबरों को भी सेवन करना चाहिये ॥ ५८ ॥ और खंज, लँगड़े व अन्य अंगहीन मनुष्यों को इस तीर्थ को सेवन करना चाहिये और कटेहुये हाथ व पैरवाले तथा कटेहुये अन्य अंगोंवाले ॥ ५९ ॥ अन्य मनुष्यों को विकल अंग के पूर्ण होने के लिये सब मनोरथोंको देनेवाले

जहृषुःसर्वऋत्विजः ॥ ततःसमाप्य तं यज्ञं दैत्यसङ्घान्विजित्य च ॥ ५६ ॥ इन्द्रादयःसुराःसर्वे सुखिताःस्वर्गमाययुः ॥ तस्मादेतत्समागत्य तीर्थंसर्वैश्च मानवैः ॥ ५७॥ सेवनीयं प्रयत्नेन स्वस्वाभीष्टस्यसिद्धये ॥ अन्धैश्च कुणिभिर्मूकैर्बधिरैः कुब्जकैरपि ॥ ५८ ॥ खञ्जैःपङ्गुभिरप्येतदङ्गहीनैस्तथापरैः ॥ संछिन्नपाणिचरणैः संछिन्नान्याङ्गसञ्चयैः ॥ ५९ ॥ मनुष्यैश्च तथान्यैश्च विकलाङ्गस्यपूर्तये ॥ सेवनीयमिदंतीर्थं सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥ ६० ॥ एवंवःकथितंविप्राश्चक्रतीर्थस्यवैभवम् ॥ यत्रस्नात्वापुराछिन्नौ पाणीप्रापप्रभाकरः ॥ ६१ ॥ यःपठेदिममध्यायं शृणुयाद्वा समाहितः ॥ अङ्गानिविकलान्यस्य पूर्णानिस्युर्न संशयः ॥ ६२ ॥ मोक्षकामस्यमर्त्यस्य मुक्तिःस्यान्नात्रसंशयः ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे सेतुमाहात्म्येचक्रतीर्थप्रशंसायामादित्यहिरण्मयपाण्यवाप्तिर्नामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥

इस तीर्थ को सेवन करना चाहिये ॥ ६० ॥ हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार तुमलोगोंसे चक्रतीर्थ का प्रभाव कहागया कि जिसमें पुरातनसमय कटेहुये हाथोंवाले सूर्यनारायण ने नहाकर हाथों को पाया है ॥ ६१ ॥ सावधान होताहुआ जो मनुष्य इस अध्याय को पढ़ैगा या सुनैगा इसके विकल याने टूटेहुये अंग पूर्ण होजावैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६२ ॥ और मोक्ष चाहनेवाले मनुष्यकी निस्सन्देह मुक्ति होवैगी ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचक्रतीर्थप्रशंसायामादित्यहिरण्मयपाण्यवाप्तिर्नामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । शिवतीरथ में न्हाय भे भैरव हत्यामुक्त । चौबिसवें अध्याय में सोइ कथा है उक्त ॥ श्रीसूतजी बोले कि चक्रतीर्थ में नहाकर तदनन्तर शिवतीर्थको जावै कि जिसमें स्नानही करने से करोड़ों महापातक ॥ १ ॥ व उसके संसर्गवाले पाप उसी क्षण नाश होजाते हैं हे तपस्वियो ! कालभैरव ने इस तीर्थ में नहाकर ब्रह्महत्या को त्याग किया है ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महामुने, सूतजी ! कालभैरव शिवजी को किसप्रकार ब्रह्महत्या हुई है उसको यहां तुम हमलोगोंसे कहने के योग्य हो ॥ ३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे सब मुनियो ! मैं पहिलेके मुक्तिदायक वृत्तान्त को कहूंगा कि जिसके सुननेसे मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ४ ॥ पुरातनसमय कुछ कारण

श्रीसूत उवाच ॥ चक्रतीर्थेनरस्स्नात्वा शिवतीर्थंततोव्रजेत् ॥ यत्र हि स्नानमात्रेण महापातककोटयः ॥ १ ॥ तत्संसर्गाश्च नश्यन्ति तत्क्षणादेवतापसाः ॥ अत्रस्नात्वाब्रह्महत्यां मुमुचेकालभैरवः ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कालभैरवरुद्रस्य ब्रह्महत्यामहामुने ॥ किमर्थमभवत्सूत तन्नोवक्तुमिहार्हसि ॥ ३ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ वक्ष्यामिमुनयःसर्वे पुरावृत्तंविमुक्तिदम् ॥ यस्यश्रवणमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ४ ॥ प्रजापतेश्च विष्णोश्च बभूवकलहःपुरा ॥ किञ्चित्कारणमुद्दिश्य समस्तजनसन्निधौ ॥ ५ ॥ अहमेवजगत्कर्ता नान्यःकर्तास्तिकश्चन ॥ अहंसर्वप्रपञ्चानान्निग्रहानुग्रहप्रदः ॥ ६ ॥ मत्तोनान्याधिकः कश्चिन्मत्समो वा सुरेष्वपि ॥ एवंसमनुतेब्रह्मा देवानांसन्निधौपुरा ॥ ७ ॥ तदानारायणःप्राह प्रहसन्द्विजपुङ्गवाः ॥ किमर्थमेवंब्रूषेत्वमहङ्कारेणसाम्प्रतम् ॥ ८ ॥ वाक्यमेवंविधंभूयो वक्तुंनार्हसि वै विधे ॥ अहमेवजगत्कर्ता यज्ञोनारायणो विभुः ॥ ९ ॥ मांविनास्यप्रपञ्चस्य जीवनंदुर्लभंभवेत् ॥ मत्प्रसादाज्जगत्सृष्टं त्वयास्थावरजङ्गमम् ॥ १० ॥ विवादंकुर्व

को उद्देश कर सब लोगों के समीप ब्रह्मा व विष्णु का कलह याने विवाद हुआ ॥ ५ ॥ मैं ही संसारको रचनेवाला हूं अन्य कोई कर्ता नहीं है और मैं सब प्रपंचों के निग्रह व अनुग्रह को देनेवाला हूं ॥ ६ ॥ और देवताओं में भी मुझसे अधिक व मेरे बराबर कोई नहीं है इसप्रकार पहिले देवताओं के समीप वे ब्रह्माजी मानते थे ॥ ७ ॥ तब हे द्विजोत्तमो ! हँसतेहुये विष्णुजी ने कहा कि इससमय अहंकार से तुम क्यों ऐसा कहते हो ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मन् ! ऐसे वचनको तुम फिर कहने के योग्य नहीं हो क्योंकि संसार को रचनेवाला व्यापक व यज्ञरूप नारायण मैंही हूं ॥ ९ ॥ मेरे विना इस प्रपंच (संसार) का जीवन दुर्लभ है मेरी प्रसन्नता से चराचर संसार को तुमने रचा है ॥ १० ॥

इसप्रकार जीत की इच्छावाले ब्रह्मा व विष्णुजी के विवाद करतेहुये वहां देवताओं के आगे चारो वेद आगये ॥ ११ ॥ और उन्हों ने उत्तम अर्थ को प्रकाश करने-वाले इस सत्यवचन को कहा वेद बोले कि हे विष्णो ! तुम संसार के कर्ता नहीं हो व हे प्रजापते, ब्रह्मन् ! तुम भी संसार को रचनेवाले नहीं हो ॥ १२ ॥ बरन परेसे भी परे व्यापक ईश्वर संसार को रचनेवाला है उसकी माया की शक्ति से यह चराचर संसार बना है ॥ १३ ॥ सत्य आदिक लक्षणोंवाले वे साम्ब शिवजी सब देवताओं के प्रणाम करने योग्य हैं क्योंकि वेही प्रभु लोकों के रचनेवाले व पालक और संहारक हैं ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इसप्रकार वेदों से कहेहुये उत्तम अक्षरोंवाले

तोरेवं ब्रह्मविष्ण्वोर्जयैषिणोः ॥ देवानांपुरतस्तत्र वेदाश्चत्वारआगताः ॥११॥ प्रोचुर्वाक्यमिदंतथ्यं परमार्थप्रकाशकम्॥ वेदा ऊचुः॥ न त्वंविष्णोजगत्कर्ता न त्वंब्रह्मन्प्रजापते ॥ १२ ॥ किन्त्वीश्वरोजगत्कर्ता परात्परतरोविभुः ॥ तन्मायाशक्तिसंक्लृप्तमिदंस्थावरजङ्गमम् ॥ १३ ॥ सर्वदेवाभिवन्द्यो हि साम्बःसत्यादिलक्षणः ॥ स्रष्टा च पालको हर्ता सएवजगतां प्रभुः॥ १४ ॥ एवंसमीरितंवेदैः श्रुत्वावाक्यंशुभाक्षरम् ॥ ब्रह्माविष्णुस्तदातत्र प्रोचतुर्द्विजपुङ्गवाः ॥१५॥ ब्रह्मविष्णूऊचतुः॥ पार्वत्यालिङ्गितःशम्भुर्मूर्तिमान्प्रमथाधिपः ॥ कथंभवेत्परंब्रह्म सर्वसङ्गविवर्जितम् ॥ १६ ॥ ताभ्यामितीरितेतत्र प्रणवः प्राहतौतदा॥अरूपोरूपमादाय महताध्वनिनाद्विजाः॥ १७॥ प्रणव उवाच॥असौशम्भुर्महादेवः पार्वत्यास्वातिरिक्तया॥ संक्रीडतेकदाचिन्नो किन्तुस्वात्मस्वरूपया ॥ १८ ॥ असौशम्भुरनीशानः स्वप्रकाशोनिरञ्जनः ॥ विश्वाधिकोमहादेवो विश्वाधिकइतिश्रुतः ॥ १९ ॥ सर्वात्मासर्वकर्तासौ स्वतन्त्रःसर्वभावनः ॥ ब्रह्मन्नयंसृष्टिकालेत्वान्नियुङ्क्तेरजोगुणैः ॥ २० ॥

वचनको सुनकर उससमय वहां ब्रह्मा व विष्णुजी ने कहा ॥ १५ ॥ ब्रह्मा व विष्णुजी बोले कि पार्वतीजीसे आलिंगित गणाधिप मूर्तिमान् शिवजी कैसे सब संगों से रहित परब्रह्म होते हैं ॥ १६ ॥ उन दोनों के ऐसा कहनेपर हे ब्राह्मणो ! उससमय वहां रूपरहित ॐकारने रूपको ग्रहणकर उनदोनोंसे बड़ी ध्वनिसे कहा ॥ १७ ॥ प्रणव बोला कि ये शिव महादेवजी अपनासे अतिरिक्त याने भिन्न पार्वतीसे कभी नहीं क्रीड़ाकरते हैं बरन स्वात्मस्वरूपी पार्वतीसे क्रीड़ा करतेहैं ॥ १८ ॥ अनीशान याने स्वयं स्वामी ये शिवजी स्वप्रकाश व निरंजन हैं और महादेवजी सबसे अधिक हैं इससे विश्वाधिक ऐसे प्रसिद्ध हैं ॥ १९ ॥ और सर्वात्मा व सर्वकर्ता ये स्वाधीन शिवजी सबोंको उत्पन्न

करनेवाले हैं हे ब्रह्मन्! ये शिवजी सृष्टि के समय में तुमको रजोगुणों से नियुक्त करते हैं ॥ २० ॥ व हे केशव! शिवजी सत्त्वगुण से तुमको रक्षा में पठाते हैं और तमोगुण से कालरुद्रनामक को संहार में प्रेरणा करते हैं ॥ २१ ॥ इस कारण हे विष्णो! तुम दोनोंके कभी स्वतन्त्रता नही है और ब्रह्माके भी नहीं है वरन शिवजी के स्वाधीनता है ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मन्! हे विष्णो! तुम दोनों सब लोकों को रचनेवाले विश्वाधिक शिवजी को क्यों नहीं जानते हो ॥ २३ ॥ और वह शक्ति पार्वती देवी सदैव शिवजी से पृथक् नही है वरन वह शिवजी की आनन्दभूत देवी है आगन्तुकी नहीं कहीगई है ॥ २४ ॥ इसकारण भेदरहित व विश्वाधिक शिवजी स्वाधीन हैं और

सत्त्वेनरक्षणेशम्भुस्त्वांप्रेषयतिकेशव ॥ तमसाकालरुद्राख्यं सम्प्रेरयतिसंहृतौ ॥ २१ ॥ अतःस्वतन्त्रताविष्णो युवयोर्न कदाचन ॥ नापि प्रजापतेरस्ति किन्तु शम्भोःस्वतन्त्रता ॥ २२ ॥ ब्रह्मन्विष्णोयुवाभ्यान्तु किमर्थं न महेश्वरः ॥ ज्ञायतेसर्वलोकानां कर्ताविश्वाधिकस्तथा ॥ २३ ॥ सापिशक्तिरुमादेवी न पृथक्शङ्करात्सदा ॥ शम्भोरानन्दभूतासा देवी नागन्तुकीस्मृता ॥ २४ ॥ अतोविश्वाधिकोरुद्रः स्वतन्त्रोनिर्विकल्पकः ॥ सर्वदेवैरयंवन्द्यो युवाभ्यामपिशङ्करः ॥ २५ ॥ कर्ता नास्यास्तिरुद्रस्य नाधिकोस्माच्च विद्यते ॥ न तत्समोपिलोकेषुविद्यतेसर्वदातथा ॥ २६ ॥ अतोमोहं न कुरुतं ब्रह्मविष्णूयुवांवृथा ॥ इत्युक्तंप्रणवेनाथ श्रुत्वाब्रह्मा च केशवः ॥ २७ ॥ माययामोहितौशम्भोर्नैवाज्ञानममुञ्चताम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्मा प्रददर्शमहाद्भुतम् ॥ २८ ॥ व्याप्तवद्गगनंसर्वमनन्तादित्यसन्निभम् ॥ तेजोमण्डलमाकाशमध्यगंविश्वतोमुखम् ॥ २९ ॥ तन्निरूपयितुंब्रह्मा ससर्जोर्ध्वगतंमुखम् ॥ तपोबलविसृष्टेन पञ्चमेनमुखेनसः ॥ ३० ॥

सब देवताओंसे भी प्रणाम करने योग्य ये शिवजी तुम दोनोंसे भी प्रणाम करने योग्य हैं ॥ २५ ॥ इन शिवजीका अन्य कर्ता नहीं है व कोई इनसे अधिक नहीं विद्यमान है और लोकों में सदैव इनके समान भी नहीं विद्यमान है ॥ २६ ॥ इसलिये हे ब्रह्मविष्णू! तुम दोनों वृथा मोहको न करो प्रणव (ॐकार) से ऐसे कहेहुये वचनको सुन कर शिवजी की माया से मोहित ब्रह्मा व विष्णुजीने अज्ञान को नहीं छोडा इसी अवसरमें ब्रह्माजीने बडा आश्चर्य देखा ॥ २७ । २८ ॥ कि अनन्तसूर्योंके समान व सब आकाश को व्याप्त करतेहुये तथा आकाश के मध्य में प्राप्त व सब ओर मुखवाले तेजोमण्डल को देखा ॥ २९ ॥ और उसको निरूपण करने याने देखने के लिये ब्रह्माने

ऊपर को प्राप्त मुखको रचा और तपस्या के बलसे रचेहुये पांचवें मुखसे उन ब्रह्मा ॥ ३० ॥ विभुने उस तेजोमण्डल को बार २ देखा और क्रोध से तेजको देखने से वह मुख जलउठा ॥ ३१ ॥ और अमित सूर्योंके समान जलताहुआ वह पांचवां मुख प्रलय में लोकों को जलानेवाली वड़वाग्नि की नाईं शोभित हुआ ॥ ३२ ॥ और वह तेज नीललोहित पुरुष देखपड़ा उससमय उसको देखकर सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा ने परमेश्वर शिवजीसे कहा ॥ ३३ ॥ कि हे महादेव ! मैं तुमको जानता हूं हे शम्भो ! पुरातन समय आप रुद्रनामक मेरे पुत्र मेरे मस्तक से पैदा हुये हो ॥ ३४ ॥ इसगर्व से संयुत वचन को सुनकर महादेवजीने उससमय कालभैरवनामक पुरुषको पठाया ॥ ३५ ॥

निरूपयामासविभुस्तत्तेजोमण्डलंमुहुः ॥ तत्प्रजज्वालकोपेन मुखन्तेजोविलोकनात् ॥ ३१ ॥ अनन्तादित्यसंकाशं ज्वलत्तत्पञ्चमंशिरः ॥ दिधक्षुःप्रलयेलोकान्वडवाग्निरिवाबभौ ॥ ३२ ॥ व्यदृश्यत च तत्तेजः पुरुषोनीललोहितः ॥ दृष्ट्वा स्रष्टातदाब्रह्मा बभाषेपरमेश्वरम् ॥ ३३ ॥ वेदाहंत्वांमहादेव ललाटान्मेपुराभवान् ॥ विनिर्गतोसिशम्भोत्वं रुद्रनामा ममात्मजः ॥ ३४ ॥ इतिगर्वेणसंयुक्तं वचःश्रुत्वामहेश्वरः ॥ कालभैरवनामानं पुरुषंप्राहिणोत्तदा ॥ ३५ ॥ अयुद्ध्यतचिरं कालं ब्रह्मणाकालभैरवः ॥ महादेवांशसम्भूतः शूलटङ्कगदाधरः ॥ ३६ ॥ युद्ध्वा तु सुचिरंकालं ब्रह्मणाकालभैरवः ॥ वदनं ब्रह्मणःशुभ्रं व्यलोकयतपञ्चमम् ॥ ३७ ॥ विलोक्योर्ध्वगतंवक्त्रं पञ्चमंभारतीपतेः ॥ गर्वेणमहतायुक्तं प्रजज्वालातिकोपितः ॥ ३८ ॥ ततस्तत्पञ्चमंवक्त्रं भैरवःप्राच्छिनद्रुषा ॥ ततोममारब्रह्मासौ कालभैरवहिंसितः ॥ ३९ ॥ ईश्वरस्यप्रसादेन प्रपेदेजीवितं पुनः ॥ ततोविलोकयामास शङ्करंशशिभूषणम् ॥ ४० ॥ वासुक्याद्यष्टभोगीन्द्रविभूषणविभूषितम् ॥

और महादेवजी के अंश से उपजेहुये शूल, टांकी व गदा को धारनेवाले कालभैरवने ब्रह्मा के साथ बहुत समय तक युद्ध किया ॥ ३६ ॥ और बहुत समय तक ब्रह्मा के साथ युद्ध कर कालभैरवने ब्रह्मा के उस उत्तम पांचवें मुखको देखा ॥ ३७ ॥ और सरस्वतीजीके पति ब्रह्माजी के उस ऊपरको प्राप्त पांचवें मुखको बड़े गर्वसे संयुत देख कर बहुत क्रोधित होतेहुये कालभैरवजी जलउठे ॥ ३८ ॥ तदनन्तर भैरवजी ने उस पांचवें शिरको क्रोध से काटडाला तदनन्तर कालभैरवसे मारेहुये ये ब्रह्माजी मरगये ॥ ३९ ॥ और ईश्वर की प्रसन्नता से फिर जीवन को प्राप्त हुये तदनन्तर उन्हों ने चन्द्रभाल शिवजी को देखा ॥ ४० ॥ और वासुकी आदिक आठ नागों के भूषणों से भूषित

व पार्वतीसमेत शंकर महादेवजी को देखकर ब्रह्मा ने ॥ ४१ ॥ महादेवजीकी प्रसन्नता से माहेश्वर ज्ञान को पाया तदनन्तर वरेण्य व वरदायक गिरीश शिवजी की स्तुति किया ॥ ४२ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे चन्द्रमा को मस्तक में किये, शिवजी ! मेरे ऊपर प्रसन्नहोवो हे दयानिधे, शम्भो ! मैंने जो अपकार कियाहै उसको क्षमाकीजिये ॥ ४३ ॥ व हे शंकरजी ! मेरे अहंकार को क्षमा करो इसप्रकार ब्रह्माजी ने चन्द्रार्धमस्तकवाले उन सोम (पार्वतीसमेत शिवजी) को बार २ प्रणाम किया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर शिवदेवजी ने प्रसन्न होकर अपने अंश से उपजेहुये इन ब्रह्माजी से यह कहा कि मत डरो व भैरवजी से कहा ॥ ४५ ॥ महादेवजी बोले कि ये सनातन

दृष्ट्वावेधामहादेवं पार्वत्या सह शङ्करम् ॥ ४१ ॥ लेभेमाहेश्वरंज्ञानं महादेवप्रसादतः ॥ ततस्तुष्टावगिरिशं वरेण्यंवरदंशिवम् ॥ ४२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मह्यं प्रसीदगिरिश शशाङ्ककृतशेखर ॥ यन्मयापकृतंशम्भो तत्क्षमस्वदयानिधे॥४३॥ क्षमस्वममगर्वंत्वं शङ्करेतिपुनःपुनः ॥ नमश्चकारसोमन्तं सोमार्धकृतशेखरम् ॥ ४४ ॥ अथदेवःप्रसन्नोस्मै ब्रह्मणे स्वांशजाय तु ॥ मा भैरित्यब्रवीच्छम्भुर्भैरवञ्चाभ्यभाषत ॥ ४५॥ ईश्वर उवाच ॥ एषसर्वस्यजगतःपूज्योब्रह्मासनातनः ॥ हतस्यास्यविरिञ्चस्य धारयत्वंशिरोधुना ॥ ४६ ॥ ब्रह्महत्याविशुद्ध्यर्थं लोकसंग्रहकाम्यया ॥ भिक्षामटकपालेन भैरवत्वंममाज्ञया ॥ ४७ ॥ उक्त्वैवंशङ्करोविप्रास्तत्रैवान्तरधीयत ॥ नीलकण्ठोमहादेवो गिरिजार्द्धतनुस्ततः ॥४८॥ भैरवंग्राहयामास वदनंवेधसोद्विजाः ॥ चरस्वपापशुद्ध्यर्थं लोकसंग्रहणाय वै ॥४९॥ कपालधारीहस्तेन भिक्षां गृह्णातुभैरव ॥ इतीरयित्वागिरिशः कन्यांकांचिद्भयंकरीम् ॥ ५० ॥ ब्रह्महत्याभिधांक्रूरां वडवानलसन्निभाम् ॥ तांप्रेरयि

ब्रह्माजी सब जगत् के पूजनीय हैं और इससमय तुम मारेहुये इन ब्रह्मा के शिरको धारणकरो ॥ ४६ ॥ व हे भैरव ! लोकों के संग्रह (मर्यादा) की कामना से तुम ब्रह्म-हत्यासे शुद्धिके लिये मेरी आज्ञासे कपालसमेत भिक्षाको जावो ॥ ४७ ॥ हे ब्राह्मणो ! ऐसा कहकर शिवजी वहीं अन्तर्धान होगये तदनन्तर पार्वतीजी के अर्धशरीरवाले नीलकण्ठ महादेवजी ने ॥ ४८ ॥ हे ब्राह्मणो ! भैरवजी को ब्रह्मा के शिर को ग्रहण कराया व कहा कि लोकों की मर्यादा के लिये तुम पापों से शुद्धि के लिये विचरो ॥ ४९ ॥ व हे भैरव ! हाथ से कपाल को धारे हुये तुम भिक्षा को ग्रहण करो ऐसा कहकर शिवजी ने वड़वाग्नि के समान ब्रह्महत्यानामक किसी भयंकरी व उस क्रूर कन्या

को पठाकर फिर शिवजी ने भैरवजी से कहा ॥ ५० । ५१ ॥ महादेवजी बोले कि हे भैरवजी ! ब्रह्महत्या से शुद्धि के लिये तुम वर्षभर तक इस व्रत को करो और सब तीर्थोंमें घूमो व अपनी शुद्धि के लिये स्नान करो ॥ ५२ ॥ तदनन्तर ब्रह्महत्याकी शान्ति के लिये काशीको जावो और तुम्हारे काशी में पैठनेसे अधम ब्रह्महत्या ॥ ५३ ॥ चरणशेष होकर याने चौथाई बचकर नाश होजावैगी और चौथा अंश नहीं नाश होगा हे भैरव ! उसके नाशको मै कहताहूं उसको सुनिये ॥ ५४ ॥ कि दक्षिणसमुद्र के किनारे गन्धमादनपर्वत पै मैंने सब प्राणियों के उपकार के लिये शिवनामक महापवित्र व उत्तम तीर्थ को किया है वहा तुम आदर से जावो क्योंकि यहां पैठनेही से

त्वागिरिशो भैरवंपुनरब्रवीत् ॥ ५१ ॥ ईश्वर उवाच ॥ भैरवैतद्व्रतंत्वब्दं ब्रह्महत्याविशुद्धये ॥ चरत्वंसर्वतीर्थेषु स्नाहिशुद्ध्यर्थमात्मनः ॥ ५२ ॥ ततोवाराणसींगच्छ ब्रह्महत्याप्रशान्तये ॥ वाराणसीप्रवेशेन ब्रह्महत्यातवाधमा ॥ ५३ ॥ पादशेषाविनष्टास्याचतुर्थांशोननश्यति ॥ तस्यनाशंप्रवक्ष्यामितवभैरवतच्छृणु ॥ ५४ ॥ दक्षिणाम्भोनिधेस्तीरे गन्धमादनपर्वते ॥ सर्वप्राण्युपकाराय कृतंतीर्थंमयाशुभम् ॥ ५५ ॥ शिवसंज्ञंमहापुण्यं तत्रयाहित्वमादरात् ॥ तत्प्रवेशनमात्रेण ब्रह्महत्यातवाशुभा ॥ ५६ ॥ शिवतीर्थस्यमाहात्म्यान्निश्शेषंनश्यतिध्रुवम् ॥ उक्त्वैवंभैरवंरुद्रः कैलासंप्रययौक्षणात् ॥ ५७ ॥ ततःकपालपाणिस्तु भैरवःशिवचोदितः ॥ देवदानवयक्षादिलोकेषुविचचारसः ॥ ५८ ॥ तंयान्तमनुयातिस्म ब्रह्महत्यातिभीषणा ॥ भैरवःसर्वतीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥ ५९ ॥ चरित्वालीलयादेवस्ततोवाराणसींययौ ॥ वाराणसीं प्रविष्टेतु भैरवेशङ्करांशजे ॥ ६० ॥ चतुर्थांशं विनानष्टा ब्रह्महत्यातिकुत्सिता ॥ चतुर्थांशोनुदुद्राव भैरवंशङ्करांशजम् ॥ ६१ ॥

तुम्हारी अमंगल ब्रह्महत्या ॥ ५५ । ५६ ॥ शिवतीर्थ के माहात्म्य से निश्चय कर सम्पूर्णतासे नाश होजावैगी भैरवजी से ऐसा कहकर शिवजी क्षणभर में कैलासपर्वतको चले गये ॥ ५७ ॥ तदनन्तर शिवजी से प्रेरणा कियेहुये वे कपालको हाथ में लिये भैरवजी देवता, दानव व यक्षादिकों के लोकों में घूमनेलगे ॥ ५८ ॥ व घूमतेहुये उन भैरवजी के पीछे बहुत भयंकरी ब्रह्महत्या जाती थी तदनन्तर भैरवदेवजी लीला से सब तीर्थों व पवित्र स्थानों में जाकर काशीजी को गये और शिवजी के अंश से पैदा हुये भैरवके काशीमें पैठनेपर ॥ ५९ । ६० ॥ चौथाई भागको छोड़कर अतिनिन्दित ब्रह्महत्या नष्ट होगई और चौथाई अंश शंकरजीके अंशसे उपजेहुये भैरवजी के पीछे दौडा ॥ ६१ ॥

तदनन्तर शूल को हाथ में लिये व कपाल को धारेहुये वे भैरवदेवजी पश्चात् शिवजी की आज्ञा से गन्धमादनपर्वत को गये ॥ ६२ ॥ व हे ब्राह्मणो ! शिवतीर्थ को जाकर तदनन्तर भैरवजी ने स्नान किया और उस बड़ेभारी शिवतीर्थ में इन भैरव के नहाने पर ॥ ६३ ॥ बहुत भयंकरी ब्रह्महत्या सम्पूर्णतासे नष्ट होगई इसी अवसर में उन भैरवजी के आगे शिवजी प्रकट हुये ॥ ६४ ॥ और प्रकट होकर महादेवजी भैरवजीसे वचन बोले शिवजी बोले कि शिवतीर्थ में नहाने से सम्पूर्णता से तुम्हारी ब्रह्महत्या ॥ ६५ ॥ नाश होगई हे सुव्रत, भैरव ! इसमें तुमको सन्देह न करना चाहिये और इस कपालको तुम काशी में किसी स्थल में स्थापित करो ॥ ६६ ॥ यह कह

ततःसभैरवोदेवः शूलपाणिःकपालधृक् ॥ शिवाज्ञयाययौपश्चाद्गन्धमादनपर्वतम् ॥ ६२ ॥ शिवतीर्थंततोगत्वा भैरवः स्नातवान्द्विजाः ॥ स्नानमात्रेणतत्रास्य शिवतीर्थे महत्तरे ॥ ६३ ॥ निश्शेषंविलयंयाता ब्रह्महत्यातिभीषणा ॥ अस्मिन्नवसरेशम्भुः प्रादुरासीत्तदग्रतः ॥ ६४ ॥ प्रादुर्भूतोमहादेवो भैरवंवाक्यमब्रवीत् ॥ ईश्वर उवाच ॥ निश्शेषंब्रह्महत्या तेशिवतीर्थेनिमज्जनात् ॥ ६५ ॥ नष्टाभैरव नास्त्यत्र सन्देहस्तवसुव्रत ॥ इदंकपालंकाश्यांत्वं स्थापयस्वक्वचित्स्थले ॥ ६६ ॥ इत्युक्त्वाभगवाञ्छम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ भैरवोपितदाविप्रा ब्रह्महत्याविमोचितः ॥ ६७ ॥ शिवतीर्थस्यमाहात्म्याद्ययौवाराणसींपुरीम् ॥ कपालंस्थापयामास प्रदेशेकुत्रचिद्द्विजाः ॥ ६८ ॥ कपालतीर्थमित्याख्यामलभत्तत्स्थलन्तदा ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवंप्रभावन्तत्पुण्यं शिवतीर्थंविमुक्तिदम् ॥ ६९ ॥ महादुःखप्रशमनं महापातकनाशनम् ॥ नरकक्लेशशमनं स्वर्गदंमोक्षदन्तथा ॥ ७० ॥ शिवतीर्थस्यमाहात्म्यं मयाप्रोक्तंविमुक्तिदम् ॥ इदंपठन्सदामर्त्यो

कर भगवान् शिवजी वहीं अन्तर्धान होगये तब हे ब्राह्मणो ! ब्रह्महत्या से छूटेहुये भैरव भी ॥ ६७ ॥ शिवजी के तीर्थ के माहात्म्य से काशीपुरीको गये व हे ब्राह्मणो ! उन्हों ने किसी स्थान में कपाल को स्थापित किया ॥ ६८ ॥ तब वह स्थल कपालतीर्थ ऐसे नाम को प्राप्त हुआ श्रीसूतजी बोले कि मुक्ति को देनेवाला वह शिवतीर्थ ऐसे प्रभाववाला है ॥ ६९ ॥ और महादुःखों का नाशक व महापातकों का विनाशक वह तीर्थ नरकों के क्लेशों को दूर करनेवाला तथा स्वर्गदायक व मोक्षदायक है ॥ ७० ॥

मैंने शिवतीर्थ के मुक्तिदायक माहात्म्य को कहा इसको सदैव पढ़ताहुआ मनुष्य दुःखसमूह से छूटजाता है ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायांशिवतीर्थप्रशंसायांभैरवब्रह्महत्याविमोक्षणंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि कृतघ्नतादोष सों वत्सनाभ भे मुक्त । पच्चिसवें अध्याय में कथा सोइ मुदयुक्त ॥ श्रीसूतजी बोले कि ब्रह्महत्या को छुड़ानेवाले शिवतीर्थ में नहाकर तदनन्तर मनुष्य अपने पापगणों की शान्ति के लिये शंखतीर्थ को जावै ॥ १ ॥ जिसमें नहानेहीसे कृतघ्न पुरुष भी मुक्त होजाता है जो मोहित मनुष्य माता पिता व गुरुवों को नहीं

दुःखग्रामाद्विमुच्यते ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येशिवतीर्थप्रशंसायांभैरवब्रह्महत्याविमोक्षणन्नामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ शिवतीर्थेनरस्स्नात्वा ब्रह्महत्याविमोक्षणे ॥ स्वपापजालशान्त्यर्थं शङ्खतीर्थंततोव्रजेत् ॥ १ ॥ यत्र मज्जनमात्रेण कृतघ्नोपिविमुच्यते ॥ मातृःपितृन्गुरूंश्चापि ये न मन्यन्तिमोहिताः ॥ २ ॥ येचाप्यन्येदुरात्मानः कृतघ्नानि रपत्रपाः ॥ तेसर्वेशङ्खतीर्थेस्मिञ्छुद्ध्यन्तिस्नानमात्रतः ॥ ३ ॥ शङ्खनामामुनिःपूर्वं गन्धमादनपर्वते ॥ अवर्ततततपःकुर्वन्विष्णुंध्यायन्समाहितः ॥ ४ ॥ सतत्रकल्पयामास स्नानार्थंतीर्थमुत्तमम् ॥ शङ्खेननिर्मितंतीर्थं शङ्खतीर्थमितीर्यते ॥ ५ ॥ तत्रस्नात्वासकृन्मर्त्यः कृतघ्नोपिविमुच्यते ॥ अत्रेतिहासं वक्ष्यामि पुराणंपापनाशनम् ॥ ६ ॥ यस्यश्रवणमात्रेण नरोमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ पुराबभूवविप्रेन्द्रो वत्सनाभोमहामुनिः ॥ ७ ॥ सत्यवाञ्छीलवान्वाग्मी सर्वभूतदयापरः ॥

मानते हैं ॥ २ ॥ और जो दुष्टचित्तवाले अन्य निर्लज्ज व कृतघ्न हैं वे सब इस शंखतीर्थ में नहाने से शुद्ध होजाते हैं ॥ ३ ॥ पुरातनसमय गन्धमादनपर्वत पै सावधान होकर तपस्या करतेहुये शंखनामक मुनि वर्तमान हुये ॥ ४ ॥ उन्होंने वहां स्नानके लिये उत्तम तीर्थ को बनाया जिसलिये शंख से बनायाहुआ तीर्थ है इसकारण शंखतीर्थ ऐसा कहाजाताहै ॥ ५ ॥ उसमें एकबार नहाकर कृतघ्न भी मनुष्य मुक्त होजाता है इस विषयमें मैं पापनाशक प्राचीन इतिहासको कहता हूं ॥ ६ ॥ कि जिसके सुननेहीसे मनुष्य मुक्ति को पाता है पुरातनसमय ब्राह्मणों में श्रेष्ठ वत्सनाभ महामुनि हुआ है ॥ ७ ॥ जोकि सत्यवान्, शीलवान्, मधुरभाषी व सब प्राणियों के ऊपर

दया में परायण और शत्रु व मित्र में समान तथा दान्त, तपस्वी व इन्द्रियों को जीते था ॥ ८ ॥ और परब्रह्म में परायण व तत्त्वब्रह्ममें केवल आश्रित था ऐसे प्रभाववाले उस मुनि ने अपने आश्रम में तप किया ॥ ९ ॥ और उसी पृथ्वीमें बैठाहुआ अचल अंगोंवाला मुनि अपने स्थानसे परमाणुके अन्तरभर भी नहीं चला ॥ १० ॥ एक स्थान में बैठकर अनेकसौ वर्षों तक तपस्या करतेहुये उस मुनि को बेंबौरिने घेरलिया व अंगों को आच्छादित करदिया ॥ ११ ॥ और बेंबौरि से घिरेहुये शरीरवाले भी इस वत्सनाभ महामुनिने तपही को किया और बेंबौरिको नहीं जाना ॥ १२ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठो ! उनके तप करने पर वेगवान् इन्द्रजीने मेघगणोंको पठाकर वर्षा कराया ॥ १३ ॥

शत्रुमित्रसमोदान्तस्तपस्वीविजितेन्द्रियः ॥ ८ ॥ परब्रह्मणिनिष्णातस्तत्त्वब्रह्मैकसंश्रयः ॥ एवंप्रभावःसमुनिस्तपस्तेपेनिजाश्रमे ॥ ९ ॥ स वै निश्चलसर्वाङ्गस्तिष्ठंस्तत्रैवभूतले ॥ परमाण्वन्तरंवापि नस्वस्थानाच्चचालसः ॥ १० ॥ स्थित्वैकत्रतपस्यन्तमनेकशतवत्सरान् ॥ तमाचक्रामबल्मीकं छादिताङ्गञ्चकार च ॥ ११ ॥ बल्मीकाक्रान्तदेहोपि वत्सनाभोमहामुनिः ॥ अकरोत्तपएवासौ बल्मीकन्नत्वबुध्यत ॥ १२ ॥ तस्मिंश्च तप्यतितपो वासवोमुनिपुङ्गवाः ॥ विसृज्यमेघजालानि वर्षयामासवेगवान् ॥ १३ ॥ एवंदिनानिसप्तार्यं सववर्षनिरन्तरम् ॥ आसारेणातिमहता वृष्यमाणोपि वै मुनिः ॥ १४ ॥ तंवर्षंप्रतिजग्राह निमीलितविलोचनः ॥ महतास्तनितेनाशु तदाबधिरयञ्छ्रुती ॥ १५ ॥ बल्मीकस्योपरिष्टाद्वै निपपातमहाशनिः ॥ तस्मिन्वर्षतिपर्जन्ये शीतवातातिदुःसहे ॥ १६ ॥ बल्मीकशिखरंध्वस्तं बभूवाशनिताडितम् ॥ विशीर्णशिखरेतस्मिन्बल्मीकेशनिताडिते ॥ १७ ॥ सेहेतिदुःसहांवृष्टिं वत्सनाभोविचिन्तयन् ॥ महर्षौवर्ष

इसके अनन्तर उन इन्द्रने निरन्तर सात दिनों तक वर्षा किया और बड़े भारी धारापात से सींचेजाते हुये भी मुनि ने ॥ १४ ॥ आंखों को मूंदकर उस वर्षा को ग्रहण किया तब बड़े शब्द से कानों को बधिर करताहुआ ॥ १५ ॥ महावज्र बेंबौरि के ऊपर गिरा और जाड़ा व पवनसे बहुतही दुस्सह उस मेघके बरसने पर ॥ १६ ॥ वज्रसे ताड़ित बेंबौरि का शिखर (ऊपर का भाग) टूटगया और वज्रसे ताड़ित उस बेंबौरि का शिखर टूटने पर ॥ १७ ॥ विचार करतेहुये वत्सनाभने बहुतही दुस्सह वृष्टि को सहा और

दिन रात वर्षाकी धाराओं से महर्षिके पीड़ित होने पर ॥ १८ ॥ धर्म के चित्तमें बड़ी भारी दया हुई और उस धर्म ने विचार किया कि तपस्या करतेहुये वत्सनाभ के ऊपर ॥ १९ ॥ यह बहुत वर्षा गिरती भी है परन्तु यह तपस्या से नहीं अलग होता है इस वत्सनाभ के केवल धर्म में चित्त लगने को आश्चर्य है ॥ २० ॥ ऐसा विचार करतेहुये उनके ऐसी बुद्धि हुई कि मैं वर्षाके धारानिपातोंको सहनेवाले, कड़ी त्वचा (खाल) वाले बड़े भारी व सुन्दर भैंसेके रूपको स्वीकार कर योगीके ऊपर स्थित होऊं॥ २१ । २२ ॥ तो बड़े वेगसे संयुत भी वर्षा पीड़ा न करैगी इसप्रकार निश्चय कर धाराओं को पीठ से धारतेहुये धर्मजी ॥ २३ ॥ उससमय शरीर को आच्छादन कर वत्सनाभ के

धाराभिः पीड्यमानेदिवानिशम् ॥ १८ ॥ धर्मस्यचेतसिकृपा संबभूवातिभूयसी ॥ सधर्मश्चिन्तयामास वत्सनाभेतपस्यति ॥ १९ ॥ पतत्यप्यतिवर्षेयं. तपसो न निवर्तते ॥ अहोस्यवत्सनाभस्य धर्मैकायतचित्तता ॥ २० ॥ इतिचिन्तयतस्तस्य मतिरेवमजायत ॥ अहं वै माहिषंरूपं सुमहान्तंमनोहरम् ॥ २१ ॥ वर्षधारानिपातानां सोढारंकठिनत्वचम् ॥ स्वीकृत्यमाहिषं रूपं स्थास्याम्युपरियोगिनः ॥ २२ ॥ न हि बाधिष्यतेवर्षं महावेगयुतंत्वपि ॥ धर्मएवंविनिश्चित्य धाराःपृष्ठेनधारयन् ॥ २३ ॥ वत्सनाभोपरितदा गात्रमाच्छाद्यतस्थिवान् ॥ ततःसप्तदिनान्ते तु तद्वै वर्षमुपारमत् ॥ २४ ॥ ततोमाहिषरूपीस धर्मोतिकृपयायुतः ॥ तद्वै वल्मीकमुत्सृज्य नातिदूरेह्यवर्त्तत ॥ २५ ॥ ततोनिवृत्तेवर्षे तु वत्सनाभो महामुनिः ॥ निवृत्तस्तपसस्तूर्णं दिशःसर्वाण्यलोकयन् ॥ २६ ॥ स्थितोहंवृष्टिसम्पाते कुर्वन्नद्यमहत्तपः ॥ पृथिवीसलिलक्लिन्ना दृश्यतेसर्वतोदिशम् ॥ २७ ॥ शिखराणिगिरीणाञ्च वनान्युपवनानि च ॥ आश्रमाणिमहर्षीणामाप्लुतानि

ऊपर स्थित हुये तदनन्तर सात दिनके अन्त में वह वर्षा शान्त हुई ॥ २४ ॥ तदनन्तर बड़ी दयासे संयुत वे भैंसे के रूपवाले धर्मजो उस बँबौरिको छोड कर थोड़ी दूर पै वर्तमान हुये ॥ २५ ॥ तदनन्तर वर्षा के बन्द होने पर सब दिशाओं को देखतेहुये वत्सनाभ महामुनि शीघ्रही तपस्यासे निवृत्त हुये ॥ २६ ॥ व विचारनेलगे कि इस समय वृष्टिसम्पात होने पर बहुत तपको करताहुआ मैं स्थित रहा और सब दिशाओं में जल से भीगीहुई भूमि देखपड़ती है ॥ २७ ॥ व पर्वतों के शिखर, वन, उपवन और

महर्षियों के आश्रम नवीन जलों से डूबेहुये देखपड़ते हैं ॥ २८॥ इत्यादिक सब वस्तुवों को देखकर प्रसन्न हुये व धर्मवान् वत्सनाभ महामुनिने विचार किया ॥ २९ ॥ कि इस महावर्षा में निश्चय कर किसी ने मेरी रक्षा किया है नहीं तो इस महावर्षा के बरसनेपर किस कारण जीवन होता ॥ ३० ॥ ऐसा विचार कर मुनिश्रेष्ठ वत्सनाभ ने सबकहीं देखा तदनन्तर तपस्यारूपी धनवाले वत्सनाभ ने थोड़ीही दूर पै आगे स्थित बड़े डीलवाले तथा नीलरंगवाले भैंसे को देखा व उस भैंसे को उद्देश कर वे मनसे चिन्तन करनेलगे ॥ ३१ । ३२ ॥ कि तिर्य्योनियों में भी कैसे धर्मशीलता देखपड़ती है क्योंकि भैंसे ने बड़ी वर्षा से मेरी रक्षा किया ॥ ३३ ॥ जिसलिये इसने

जलैर्नवैः ॥ २८ ॥ एवमादीनिसर्वाणि दृष्ट्वाप्रमुदितोभवत् ॥ चिन्तयामासधर्मात्मा वत्सनाभोमहामुनिः ॥ २९ ॥ अहमस्मिन्महावर्षे नूनंकेनापिरक्षितः ॥ वर्षत्यस्मिन्महावर्षे जीवितंत्वन्यथाकुतः ॥ ३० ॥ विचिन्त्यैवंमुनिश्रेष्ठः सर्वत्रसमलोकयत् ॥ ततोपश्यन्महाकायमदूरादग्रतःस्थितम् ॥ ३१ ॥ महिषंनीलवर्णञ्च वत्सनाभस्तपोधनः ॥ महिषंतंसमुद्दिश्य मनसासमचिन्तयन् ॥ ३२ ॥ तिर्य्योनिष्वपिकथं दृश्यतेधर्मशीलता ॥ यतोह्यहंमहावर्षान्महिषेणाभिरक्षितम् ॥ ३३ ॥ दीर्घमायुरमुष्यास्तु यन्मांरक्षितवानिह ॥ इत्यादिसंविचिन्त्यैवं तपसेपुनरुद्ययौ ॥ ३४ ॥ तंपुनश्च तपस्यन्तं दृष्ट्वामहिषरूपधृक् ॥ रोमाञ्चावृतसर्वाङ्गः प्रमोदमगमद्भृशम् ॥ ३५॥ वत्सनाभस्य हि मुनेः पुनश्चैवतपस्यतः ॥ मनः पूर्ववदैकाग्र्यं परब्रह्मणिनाभवत् ॥ ३६ ॥ सविषण्णमनाभूत्वा वत्सनाभोऽप्यचिन्तयत् ॥ न भवेद्यदि नैर्मल्यं तदास्याच्चञ्चलंमनः ॥ ३७ ॥ मनश्च पापबाहुल्ये निर्मलं नैव जायते ॥ पापलेशोपि मे नास्ति कथंलोलायतेमनः ॥ ३८ ॥

यहां मेरी रक्षा किया इसकारण इसका बड़ा आयुर्बल होवै इसप्रकार इत्यादिक वस्तुको विचार कर उन्होंने फिर तपस्याके लिये उद्योग किया ॥ ३४ ॥ फिर तपस्या करतेहुये उनको देखकर रोमांच से संयुत सब अंगोंवाले व भैंसेके रूपको धारनेवाले धर्मजी बड़े आनन्द को प्राप्त हुये ॥ ३५ ॥ और फिर तपस्या करतेहुये वत्सनाभ मुनिका मन परब्रह्ममें पहिलेकी नाईं एकाग्र (सावधान) न हुआ ॥ ३६ ॥ और उन वत्सनाभने उदासीनमन होकर विचार किया कि यदि निर्मलता न होवै तो मन चंचल होता है ॥ ३७॥

और पापोंकी अधिकतामें मन निर्मल नहीं होता है मेरे पापका लवमात्र भी नहीं है तो मन कैसे चंचल होता है ॥ ३८ ॥ वत्सनाभने बार २ दोषके कारण को चिन्तन किया और उसने विचार कर व शीघ्रही निश्चय कर अपनी निन्दा किया ॥ ३९ ॥ कि इससमय मुझ दुष्टात्माको धिक्कार है आश्चर्य है कि मैं बड़ा मूर्ख हूं इससमय बड़ा भारी कृतघ्नतादोष मुझको प्राप्त हुआ ॥ ४० ॥ जिसलिये ऐसी बडी वर्षा से रक्षा करनेवाले उत्तम भैंसे को न पूजताहुआ मैं स्थित हूं उसीकारण मुझको कृतघ्नता हुई ॥ ४१ ॥ और कृतघ्नता बड़ाभारी दोष है व कृतघ्नमें प्रायश्चित्त नहीं है और कृतघ्नके लोक नहीं होते हैं व कृतघ्नके बन्धु नहीं होते हैं ॥ ४२ ॥ और

अचिन्तयद्दोषहेतुं वत्सनाभःपुनःपुनः ॥ सविचिन्त्यविनिश्चित्य निनिन्दात्मानमञ्जसा ॥ ३९ ॥ धिङ्मामद्यदुरात्मान महोमूढोस्म्यहं भृशम् ॥ कृतघ्नतामहान्दोषो मामद्यसमुपागतः ॥ ४० ॥ यदीदृशान्महावर्षात्त्रातारंमहिषोत्तमम् ॥ तिष्ठाम्यपूजयन्नेव ततो मेभूत्कृतघ्नता ॥ ४१ ॥ कृतघ्नतामहान्दोषः कृतघ्ने नास्तिनिष्कृतिः ॥ कृतघ्नस्य न वै लोकाःकृतघ्नस्य न बान्धवाः ॥ ४२ ॥ कृतघ्नतादोषबलान्ममचित्तंमलीमसम् ॥ कृतघ्नानरकंयान्ति ये च विश्वस्त घातिनः ॥ ४३ ॥ निष्कृतिंनैवपश्यामि कृतघ्नानांकथञ्चन ॥ ऋतेप्राणपरित्यागाद्धर्मज्ञानांवचोयथा ॥ ४४ ॥ पित्रोरभरणंकृत्वा ह्यदत्त्वागुरुदक्षिणाम् ॥ कृतघ्नताञ्च सम्प्राप्य मरणान्ता हि निष्कृतिः ॥ ४५ ॥ तस्मात्प्राणान्परित्यज्य प्रायश्चित्तंचराम्यहम् ॥ इतिनिश्चित्यमनसा वत्सनाभोमहामुनिः ॥ ४६ ॥ तृणीकृत्यनिजान्प्राणान्निस्सङ्गेनान्तरात्मना ॥ मेरोःशिखरमारूढः प्रायश्चित्तचिकीर्षया ॥ ४७ ॥ सुमेरुशिखरात्तस्मादियेषपतितुंमुनिः ॥ तस्मि

कृतघ्नता के दोषके बलसे मेरा चित्त मलिन है और जो विश्वासघाती है वे और कृतघ्न नरकको प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥ प्राणत्याग के सिवाय मैं किसीप्रकार कृतघ्नों के प्रायश्चित्त को नहीं देखता हूं जैसा धर्मज्ञों का वचन है ॥ ४४ ॥ कि माता, पिताका भरणपोषण न करके और गुरुदक्षिणा को न देकर और कृतघ्नता को प्राप्त होकर मरणान्त प्रायश्चित्त होता है ॥ ४५ ॥ उसकारण प्राणोंको छोड़कर मैं प्रायश्चित्त करूंगा इसप्रकार मनसे निश्चय कर वत्सनाभ महामुनि ॥ ४६ ॥ अपने प्राणों को तिनुका के समान कर संगरहित चित्तसे प्रायश्चित्त को करने की इच्छा से सुमेरुपर्वत के शिखरपै चढ़े ॥ ४७ ॥ और मुनिने उस सुमेरुके शिखर से गिरनेकी इच्छा किया और उन

के गिरने का प्रारम्भ करने पर मत शीघ्रता करो यह कहतेहुये ॥ ४८ ॥ भैंसे के रूप को छोडकर धर्मही ने मना किया धर्म बोले कि हे महाप्राज्ञ, वत्सनाभ ! तुम बहुत वर्षों तक जियो ॥ ४९ ॥ शरीर को त्यागकरने की इच्छा से तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न हूं संसार में धर्म की मर्यादा में तुम्हारे समान कोई नहीं है ॥ ५० ॥ यद्यपि कृतघ्न पुरुष में प्राणों का त्याग करना प्रायश्चित्त होता है तौ भी धर्मशीलता के कारण मैं तुम से अन्य प्रायश्चित्त को कहता हूं ॥ ५१ ॥ कि गन्धमादनपर्वत पै शंखतीर्थनामक तीर्थ है उसमें सावधान होतेहुये तुम इस पाप की शान्ति के लिये स्नान करो ॥ ५२ ॥ इससे पापरहित तुम चित्तकी शुद्धि को प्राप्त होगे तदनन्तर ज्ञान

न्पतितुमारब्धे मा त्वरिष्ठाइतिब्रुवन् ॥ ४८ ॥ त्यक्तमाहिषरूपःसन्धर्मएवन्यवारयत् ॥ धर्म उवाच ॥ वत्सनाभमहा प्राज्ञ जीवत्वं बहुवत्सरान् ॥ ४९ ॥ परितुष्टोस्मिभद्रन्ते देहत्यागचिकीर्षया ॥ न हि ते धर्मकक्ष्यायां लोकेकश्चित्समो स्ति वै ॥ ५० ॥ यद्यपिप्राणसंत्यागः कृतघ्नेनिष्कृतिर्भवेत् ॥ तथापि धर्मशीलत्वात्तवान्यांनिष्कृतिं वदे ॥ ५१ ॥ श ङ्खतीर्थाभिधंतीर्थमस्ति वै गन्धमादने ॥ शान्त्यर्थमस्यपापस्य तत्रस्नाहिसमाहितः ॥ ५२ ॥ प्राप्स्यसेचित्तशुद्धिंत्वम तोविगतकल्मषः ॥ ततश्च लब्धविज्ञानः प्राप्स्यसेशाश्वतंपदम् ॥ ५३ ॥ अहंधर्मोस्मियोगीन्द्र सत्यमेवब्रवीमिते ॥ इतिधर्मवचःश्रुत्वा वत्सनाभोमहामुनिः ॥ ५४ ॥ स्नातुकामःशङ्खतीर्थे गन्धमादनमन्वगात् ॥ शङ्खतीर्थञ्च सम्प्राप्य तत्रसस्नौमहामुनिः ॥ ५५ ॥ ततोविगतपापस्य मनोनिर्मलतांगतम् ॥ ततोचिरेणकालेन ब्रह्मभूयमगान्मुनिः ॥ ५६ ॥ एवंवःकथितंविप्राः शङ्खतीर्थस्यवैभवम् ॥ यत्र हि स्नानमात्रेण कृतघ्नोपि विमुच्यते ॥ ५७ ॥ मातृद्रोहीपितृद्रोही

को पाकर तुम सनातनस्थान को पावोगे ॥ ५३ ॥ हे योगीन्द्र ! मैं धर्म हूं यह तुम से सत्य कहता हूं इसप्रकार धर्म का वचन सुनकर महामुनि वत्सनाभ ॥ ५४ ॥ शंख-तीर्थ में नहाने की इच्छा करके गन्धमादनपर्वत को गये और शंखतीर्थ को प्राप्त होकर महामुनि ने उसमें स्नान किया ॥ ५५ ॥ तदनन्तर पापरहित मुनि का मन निर्मलताको प्राप्त हुआ तदनन्तर थोड़ेही समयसे मुनि ब्रह्मत्वको प्राप्त हुये ॥ ५६ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार तुमलोगोंसे शंखतीर्थका प्रभाव कहागया कि जिसमें स्नान करने

से कृतघ्न पुरुष भी मुक्त होजाता है ॥ ५७॥ मातृद्रोही, पितृद्रोही व गुरुद्रोही और अन्य कृतघ्नगण इस तीर्थ में स्नान करने से मुक्त होजाते हैं ॥ ५८॥ इसकारण सदैव इस तीर्थ को कृतघ्नों को सेवना चाहिये तीर्थके माहात्म्य को आश्चर्य है जोकि कृतघ्नभी मुक्त होजाता है ॥ ५९ ॥ माता, पिताका पालन पोषण न करके व गुरुदक्षिणा को न देकर और कृतघ्नताको प्राप्त होकर मरणान्त प्रायश्चित्त होता है ॥ ६० ॥ और इसमें स्नानही से कृतघ्नका भी प्रायश्चित्त होता है और उस तीर्थ में नहाने से कृतघ्नता नाश होजाती है ॥ ६१ ॥ व इससमय अन्य तुच्छ पापों को क्या कहना है ॥ ६२ ॥ भक्तिसे संयुत जो मनुष्य इस अध्याय को पढ़ता है वह कृतघ्न भी पुरुष पाप से छूटजाता

गुरुद्रोहीतथैव च ॥ अन्येकृतघ्ननिवहा मुच्यन्तेत्र निमज्जनात् ॥ ५८ ॥ अतःकृतघ्नैर्मनुजैः सेवनीयमिदंसदा ॥ अहोतीर्थस्यमाहात्म्यं यत्कृतघ्नोपिमुच्यते ॥ ५९ ॥ अकृत्वाभरणंपित्रोरदत्त्वागुरुदक्षिणाम् ॥ कृतघ्नताञ्च सम्प्राप्य मरणान्ता हि निष्कृतिः ॥ ६० ॥ इह तु स्नानमात्रेण कृतघ्नस्यापिनिष्कृतिः ॥ कृतघ्नतापितत्तीर्थे स्नानमात्राद्विनश्यति ॥ ६१ ॥ अन्येषान्तुच्छपापानां सर्वेषांकिमुताधुना ॥ ६२ ॥ अध्यायमेनंपठेद्भक्तियुक्तः कृतघ्नोपिमर्त्यःसपापाद्विमुक्तः ॥ विशुद्धान्तरात्मा गतःसत्यलोकं समं ब्रह्मणामोक्षमप्याशुगच्छेत् ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येशङ्खतीर्थप्रशंसायांवत्सनाभकृतघ्नदोषशान्तिर्नामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ विधायाभिषवंमर्त्यः शङ्खतीर्थेद्विजोत्तमाः ॥ यमुनाञ्चैवगङ्गाञ्च गयाञ्चापिक्रमाद्व्रजेत् ॥ १ ॥ यमुनाख्यंमहातीर्थं गङ्गातीर्थमनुत्तमम् ॥ गयातीर्थञ्च मर्त्यानां महापातकनाशनम् ॥ २ ॥ एतत्तीर्थत्रयंपुण्यं सर्वलोके

है और शुद्धचित्तवाला वह मनुष्य सत्यलोक को जाकर ब्रह्माके साथ शीघ्रही मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांशङ्खतीर्थप्रशंसायांवत्सनाभकृतघ्नदोषशान्तिर्नामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यमुना गंगा अरु गया भे जिमि तीरथ तीन । छब्बिसवें अध्याय में सोई चरित नवीन ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! शंखतीर्थमें स्नान करके मनुष्य क्रम से यमुना, गंगा व गयातीर्थ को जावै ॥ १ ॥ यमुनानामक महातीर्थ व अति उत्तम गंगातीर्थ और गयातीर्थ मनुष्यों के महापातकों का नाशक है ॥ २ ॥ ये पवित्र तीनों तीर्थ

सब लोकों में प्रसिद्ध हैं और सब विघ्नों के विनाशक व सब रोगोंके नाशक ॥ ३ ॥ ये तीनों तीर्थ सब अज्ञान के नाशक हैं व अज्ञान के नाश होने पर मनुष्यों को ज्ञानदायक हैं ॥ ४ ॥ पुरातनसमय जानश्रुति महाराजने इन तीर्थों में नहाकर रैकनामक श्रेष्ठ ब्राह्मणसे ज्ञानको पाया है ॥ ५ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सब अर्थों को यथार्थ जाननेवाले, व्यासशिष्य, महामते, सूतजी ! यमुना, गंगा व गया ऐसा जो प्रसिद्ध तीर्थ है ॥ ६ ॥ ये तीनों तीर्थ किसकारण गन्धमादनपर्वतपै आये हैं और तीनों तीर्थों में भी नहानेसे जानश्रुति राजर्षि को ॥ ७ ॥ रैकसे कैसे ज्ञान मिला है हे सूतजी ! उसको हमलोगोंसे कहिये श्रीसूतजी बोले कि पुरातनसमय रैकनामक महर्षि ने गन्धमादनपर्वतपै ॥ ८ ॥

षुविश्रुतम् ॥ सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वरोगनिबर्हणम् ॥ ३ ॥ एतद्धि तीर्थत्रितयं सकलाज्ञाननाशनम् ॥ अविद्यायांविनष्टायां तथाज्ञानप्रदंनृणाम् ॥ ४ ॥ जानश्रुतिर्महाराज एषुतीर्थेषु वै पुरा ॥ स्नात्वारैकाद्द्विजश्रेष्ठात्प्राप्तवाञ्ज्ञानमुत्तमम् ॥ ५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूतसर्वार्थतत्त्वज्ञ व्यासशिष्यमहामते ॥ यमुना चैव गङ्गा च गया चैवेति विश्रुतम् ॥ ६ ॥ एतत्तीर्थत्रयंकस्मादागतंगन्धमादने ॥ जानश्रुतेश्च राजर्षेःस्नानात्तीर्थत्रयेपि च ॥ ७ ॥ ज्ञानावाप्तिःकथंरैकादस्माकंसूततद्वद ॥ श्रीसूत उवाच ॥ रैकनामामहर्षिस्तु पुरा वै गन्धमादने ॥ ८ ॥ तपस्सुदुश्चरंकुर्वन्न्यवसत्तपसान्निधिः ॥ दीर्घकालंतपःकुर्वन्स वै रैकोमहामुनिः ॥ ९ ॥ तपोबलेनमहता दीर्घमायुरवाप्तवान् ॥ जन्मनापङ्गुरेवासीद्रैकनामामहामुनिः ॥ १० ॥ पङ्गुत्वादसमर्थोभूद्गन्तुं तीर्थान्यसौमुनिः ॥ सन्तियानि तु तीर्थानि गन्धमादनपर्वते ॥ ११ ॥ तानिगच्छतिसामीप्याच्छकटे नैवसञ्चरन् ॥ सयद्रैकोमुनिवरो युग्वेनसहवर्तते ॥ १२ ॥ तपस्वीवैदिकैर्लोके सयुग्वानभिधीयते ॥ युग्वेतिशकटंप्रोक्तं स

बड़ी कठिन तपस्या करतेहुये निवास किया और बहुत समय तक तपस्या करतेहुये वे तपस्याके निधान रैक महामुनि ॥ ९ ॥ बड़े भारी तपोबलसे दीर्घआयुर्बलको प्राप्त हुये रैकनामक महामुनि जन्म से पंगु (पंगुला) ही हुये हैं ॥ १० ॥ और ये मुनि पंगुला होनेके कारण तीर्थों को जाने के लिये असमर्थ हुये और गन्धमादनपर्वत पै जो तीर्थ हैं ॥ ११ ॥ समीपता के कारण गाड़ी से जाताहुआ वह उन तीर्थों को जाता था जिसलिये वे मुनिश्रेष्ठ रैकजी युग्व से वर्तमान होते थे ॥ १२ ॥ उसीकारण वह

तपस्वी संसार में वैदिकों से सयुग्वान् ऐसा कहाजाता था युग्व यह शकट कहागया है उसके समेत वह वर्तमान होता था ॥ १३ ॥ इसप्रकार पूर्णज्ञानवाले उस सयुग्वान् नामक मुनिश्रेष्ठ मुनि ने गन्धमादनपर्वतपै तप किया ॥ १४ ॥ ग्रीष्मऋतु में पंचाग्निके मध्यमें स्थित उसने बड़ा तप किया और वर्षा में वह गलेतक जलों में वर्तमान हुआ ॥१५॥ और उसके तप से शोषित अंग में खुजली होगई और वह मुनीश्वर दिन रात खुजलीको खुजलाता था ॥ १६ ॥ और खुजली को खुजलातेहुये इसने तपस्याको नहीं छोड़ा और उस सयुग्वान् मुनिका ऐसा मन हुआ ॥ १७ ॥ कि इसीसमय यमुना, गंगा व गया इन तीनों पवित्र तीर्थों में मुझको स्नान करना चाहिये ॥ १८ ॥ ऐसा

तेनसहवर्तते ॥ १३ ॥ सखल्वेवंमुनिश्रेष्ठः सयुग्वान्नाम वै मुनिः ॥ पूर्णज्ञानस्तपस्तेपे गन्धमादनपर्वते ॥ १४ ॥ ग्रीष्मेप ञ्चाग्निमध्यस्थः सोतप्यतमहत्तपः ॥ वर्षायांकण्ठदघ्नेषु जलेषुसमवर्तत ॥ १५ ॥ तपसाशोषितेगात्रे पामातस्यव्यजा यत ॥ कण्डूयतसपामानं दिवारात्रंमुनीश्वरः ॥ १६ ॥ कण्डूयमानएवायं पामानं न तपोत्यजत् ॥ अजायतमनस्त्वे वं तस्यसयुग्वतोमुनेः ॥ १७ ॥ यमुनायां च गङ्गायां गयायां चाधुनैव हि ॥ अस्मिंस्तीर्थत्रयेपुण्ये स्नातव्यं हि मयात्वि ति ॥ १८ ॥ एवंविचिन्त्यसमुनिरन्यांचिन्तामथाकरोत् ॥ अहं हि जन्मनापङ्गुरतःस्नानं हि दुर्लभम् ॥ १९ ॥ अतिदूरंमया गन्तुं शकटेन न शक्यते ॥ किङ्करोम्यधुनेत्येवं सवितर्क्यमहामतिः ॥ २० ॥ तीर्थत्रयेषुस्नानार्थं कर्तव्यंनिश्चिकाय वै ॥ अप्रसह्यमनाधृष्यं विद्यते मे तपोबलम् ॥ २१ ॥ तेनैवावाहयिष्यामि तद्धि तीर्थत्रयन्त्विह ॥ इतिनिश्चित्यमनसा प्राङ्मु खोनियतेन्द्रियः ॥ २२ ॥ त्रिराचम्य च सयुग्वान्दध्यौक्षणमतन्द्रितः ॥ तस्यमन्त्रप्रभावेण यमुनासामहानदी ॥ २३ ॥

विचारकर उस मुनि ने अन्यचिन्ता किया कि मैं जन्म से पंगुला हूं इसकारण स्नान दुर्लभ है ॥ १९ ॥ और मैं बहुत दूरतक गाड़ी से नहीं जासक्ता हूं इससमय क्या करूं ऐसी तर्कणा कर उस महामतिने ॥ २० ॥ निश्चय किया कि तीनों तीर्थों में स्नान करना चाहिये मेरे असह्य व अधृष्य तपोबल है ॥ २१ ॥ उसी से मैं उन तीर्थों को यहां आवाहन करूं मनसे यह निश्चय कर पूर्वमुख बैठकर इन्द्रियोंको रोकेहुये ॥ २२ ॥ उन निरालसी सयुग्वान् मुनिने तीन बार आचमन कर क्षणभर ध्यान किया और उसके

और जह्नुकी कन्या गंगा व पापनाशिनी वह गया तीनों भी भूमि को फोड़कर पाताल से अचानक उत्पन्न हुईं ॥ २४ ॥
मन्त्र के प्रभाव से वह यमुना महानदी ॥ २३ ॥ कि हे सयुग्वन्, रैक्क ! तुम्हारा कल्याण
और मनुष्यरूपको प्राप्त होकर उन मुनिको प्रसन्न करातीहुई वे नदियां सयुग्वान् के समीप आकर बहुत प्रसन्न होकर बोलीं ॥ २५ ॥ इससमय हम सबोंको तुम्हारा क्या कार्य करना चाहिये उसको कहिये
होवै इस ध्यान से शान्त होवो तुम्हारे मन्त्रसे खींचीहुई हम सब यहां आई हैं ॥ २६ ॥ हे मुनीश्वर ! शीघ्रही ध्यान से निवृत्त हुये व उन्होंने आगे स्थित उन नदियों को देखा व उन रैक्क ने विधिपूर्वक उनको
उनके इस वचन को सुनकर सयुग्वान् महामुनि ॥ २७ ॥

मन्त्रेणसमाकृष्टा वयमत्रसमागताः ॥ २६ ॥ किङ्कर्तव्यंतवास्माभिस्तद्वदस्वमुनीश्वर ॥ इतितासांवचःश्रुत्वा सयुग्वान्हि
महामुनिः ॥ २७ ॥ ध्यानादुपारमत्तूर्णं ताश्चापश्यत्पुरःस्थिताः ॥ सताःसम्पूज्यविधिवद्रैक्कोवाचमभाषत ॥ २८ ॥ यमु
नेदेविहेगङ्गे हेगयेपापनाशिनि ॥ सन्निधानंकुरुध्वंमे गन्धमादनपर्वते ॥ २९ ॥ यत्रभूमिंविनिर्भिद्य भवत्यइहनिर्गताः ॥
तानिपुण्यानितीर्थानि भवेयुर्वोऽभिधानतः ॥ ३० ॥ सहसान्तरधीयन्त तथास्त्वित्येवतत्रताः ॥ तदाप्रभृतितीर्थानितानि
त्रीण्यपिभूतले ॥ ३१ ॥ तेनतेनाभिधानेन गीयन्तेसर्वदाजनैः ॥ यत्रभूमिंविनिर्भिद्य यमुनानिर्गतातदा ॥ ३२ ॥ यमु
नातीर्थमिति वै तज्जनैरभिधीयते ॥ यतो वै पृथिवीरन्ध्राज्जाह्नवीसहसोत्थिता ॥ ३३ ॥ गङ्गातीर्थमितिख्यातं तल्लोके

पूजकर वचन कहा ॥ २८ ॥ कि हे यमुने ! हे देवि, गंगे ! हे पापनाशिनि, गये ! तुम सब मेरे गन्धमादनपर्वत पै स्थिति करो ॥ २९ ॥ जहां भूमिको फोड़कर आप सब
यहां निकली हो वे तुम सबोंके नामसे पवित्र तीर्थ होवैं ॥ ३० ॥ वैसाही होगा यह कहकर वे नदियां वहीं यकायक अन्तर्धान होगईं तब से लगाकर वे तीनों भी तीर्थ
पृथ्वी में ॥ ३१ ॥ उस उस नामसे सदैव मनुष्योंसे गायेजाते हैं उससमय पृथ्वीको फोड़कर जहां यमुनाजी निकली हैं ॥ ३२ ॥ वह मनुष्यों से यमुनातीर्थ ऐसा कहाजाता

हैं और जिस पृथ्वी के छिद्र से यकायक गंगाजी निकली हैं ॥ ३३ ॥ संसारमें वह पापनाशक गंगातीर्थ ऐसा प्रसिद्ध है और मनुष्यके रूपको प्राप्त होकर जहां से गया निकली हैं ॥ ३४ ॥ वही भूमिका बिल गयातीर्थ कहाजाता है इसप्रकार ये अति उत्तम तीनों तीर्थ बड़े पवित्र हुये हैं ॥ ३५ ॥ जोकि रैकजी के मन्त्रके प्रभावसे यकायक पृथ्वी से निकले हैं और जो उत्तम मनुष्य इन तीनों तीर्थों में स्नान करते हैं ॥ ३६ ॥ उनके अज्ञानका नाश होता है व ज्ञान भी प्रकाशको पाता है अपने मन्त्रसे खींचेहुये उन तीनों तीर्थों में स्नान करतेहुये उन मुनि ने समयको व्यतीत किया इसीसमयमें बड़े भारी जो जानश्रुति राजा थे ॥ ३७।३८ ॥ वे पुत्रसंज्ञक राजर्षिके पौत्र धर्महीमें केवल

पापनाशनम् ॥ गया हि मानुषंरूपं यतत्रास्थायनिर्ययौ ॥ ३४ ॥ तदेवभूमिविवरं गयातीर्थंप्रचक्ष्यते ॥ एवमेतन्महा पुण्यंतीर्थत्रयमनुत्तमम् ॥ ३५ ॥ रैक्कमन्त्रप्रभावेण पृथिव्याःसहसोत्थितम् ॥ अत्रतीर्थत्रयेस्नानं येकुर्वन्तिनरोत्त माः ॥ ३६ ॥ तेषामज्ञाननाशःस्याज्ज्ञानमप्युदयंलभेत् ॥ स्वमन्त्रेणसमाकृष्टे तत्रतीर्थत्रयेमुनिः ॥ ३७ ॥ स्नानंसमाचर न्नित्यं सकालानत्यवाहयत् ॥ एतस्मिन्नेवकाले तु राजाजानश्रुतिर्महान् ॥ ३८ ॥ पुत्रसंज्ञस्यराजर्षेः पौत्रोधर्मैकतत्प रः ॥ ददावन्नादिसतदा ह्यर्थिभ्यःश्रद्धयैवयत् ॥ ३९ ॥ तदेनंमुनयोलोके श्रद्धादेयंप्रचक्षते ॥ यतोबहुतरंवाक्यमन्नाद्य स्यमहीपतेः ॥ ४० ॥ अर्थिनांक्षुधितानान्तु तृप्त्यर्थंवर्ततेगृहे ॥ अतोयमर्थिभिःसर्वैर्बहुवाक्यइतीर्यते ॥ ४१ ॥ स वै पौ त्रायणोराजा जानश्रुतिसुतोबली ॥ प्रियातिथिर्बभूवासौ बहुदायीतथाभवत् ॥ ४२ ॥ नगरेषु च राष्ट्रेषु ग्रामेषु च वनेषु च ॥ चतुष्पथेषुसर्वेषु महामार्गेषुसर्वशः ॥ ४३ ॥ बह्वन्नपानसंयुक्तं सूपशाकादिसंयुतम् ॥ आतिथ्यंकल्पयामास तृप्तयेर्थि

तत्पर थे उससमय जिसकारण श्रद्धा से उन्होंने याचकों के लिये अन्नादि को दिया ॥ ३९ ॥ उसकारण संसारमें इनको मुनि श्रद्धादेय कहते थे व जिसलिये इस राजाके बहुत अधिक वाक्य व अन्नादिक ॥ ४० ॥ भूखे याचकों की तृप्ति के लिये घर में वर्तमान था इसकारण सब अर्थी (याचक) इनको बहुवाक्यऐसा कहते थे ॥ ४१ ॥ और जानश्रुति के पुत्र वे बलवान् पौत्रायण राजा अतिथिप्रिय हुये व ये बहुत दाता हुये ॥ ४२ ॥ नगर, राज्य, गांव व वनों में और सब चौराहों व सब बड़े भारी मार्गों में ॥ ४३ ॥

उसने याचकजनों की तृप्ति के लिये बहुत अन्न, पान से संयुत व दालि तथा शाक से संयुत अतिथिभोजन को कल्पित किया ॥ ४४ ॥ और जहां तहां जन-स्थानों में इस राजा ने यह कहलादिया कि यहां तुम सब याचकलोग अन्न पानादिक को भोगकरो ॥ ४५ ॥ उस अतिथिप्रिय व याचकों के लिये बहुत दाता तथा दान में प्रवीण राजाके गुण सब कहीं प्रकट हुये ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर इस पौत्रायणके गुणगणों से प्रसन्न करायेहुये महाभाग देवर्षिलोग उसके ऊपर दया की इच्छावाले हुये ॥ ४७ ॥ और गर्मी के समय में रात को हंसरूप को प्राप्त होकर सुन्दरी पंक्ति को बनाकर आकाशमार्ग से ॥ ४८ ॥ मन्दिर के झरोखे में बैठेहुये उस राजा के ऊपर

जनस्य वै ॥ ४४ ॥ अन्नपानादिकंसर्वमुपभुङ्ग्ध्वमिहार्थिनः ॥ इत्यसौघोषयामास तत्रतत्रजनास्पदे ॥ ४५ ॥ तस्यप्रियातिथेरेव नृपस्यबहुदायिनः ॥ अर्थिभ्योदानशौण्डस्य गुणाःसर्वत्रविश्रुताः ॥ ४६ ॥ अथपौत्रायणस्यास्य गुणग्रामेणतोषिताः ॥ देवर्षयोमहाभागास्तस्यानुग्रहकाङ्क्षिणः ॥ ४७ ॥ हंसरूपंसमास्थाय निदाघसमयेनिशि ॥ रमणीयांविधायाशुश्रेणीमाकाशमार्गतः ॥ ४८ ॥ सौधवातायनस्थस्य तस्योपरिमहीपतेः ॥ उड्डीयोड्डीयवेगेन तरसाजग्मुरुच्चकैः ॥ ४९ ॥ तरसापततांतेषां हंसानांपृष्ठतोव्रजन् ॥ एकोहंसस्तु सम्बोध्य हंसमग्रेसरन्तदा ॥ ५० ॥ सोपहासमिदंवाक्यं प्राहशृण्वतिराजनि ॥ भोभोभल्लाक्षभल्लाक्ष पुरोगच्छन्मरालक ॥ ५१ ॥ सौधमध्येपुरस्ताद्वै जानश्रुतिसुतोनृपः ॥ वर्ततेपूजनीयोयं न पश्यसिकिमन्धवत् ॥ ५२ ॥ यस्यतेजोदुराधर्षमाब्रह्मभवनादिदम् ॥ अनन्तादित्यसङ्काशं ज्वलतेपुरतोभृशम् ॥ ५३ ॥ तमतिक्रम्यराजर्षिं मा गास्त्वमुपरिद्रुतम् ॥ यदिगच्छसितत्तेजस्साम्प्रतंत्वांप्रधक्ष्यति ॥ ५४ ॥ इत्युक्त

वेगसे ऊंचे उड़ उड़ कर गये ॥ ४९ ॥ और वेग से उड़तेहुये उन हंसों के पीछे से जातेहुये एक हंसने उससमय आगे चलनेवाले हंसको सम्बोधन कर ॥ ५० ॥ राजा के सुनतेहुये उपहाससमेत इस वचनको कहा कि हे भल्लाक्ष ! हे भल्लाक्ष, हंस ! आगे जातेहुये तुम ॥ ५१ ॥ क्या अन्धकी नाईं नहीं देखते हो कि आगे मन्दिरके मध्यमें जानश्रुति के पुत्र ये पूजने योग्य राजा वर्तमान हैं ॥ ५२ ॥ कि जिनका अमितसूर्यों के समान यह दुर्धर्षतेज ब्रह्मसदन से लगाकर आगे बहुत जलरहा है ॥ ५३ ॥ उन राजर्षि को नांघकर तुम शीघ्रता से ऊपर मत जावो क्योंकि यदि जावोगे तो उनका तेज इससमय तुम को जलावैगा ॥ ५४ ॥ इसप्रकार कहते

हुये उस हंससे अग्रगामी हंसने कहा कि अहो आप जाननेवाले हो व विद्वानों से प्रशंसनीय हो ॥ ५५ ॥ जोकि तुम अप्रशंसनीय व धूर्त इस राजा की प्रशंसा करते हो इस अल्प मनुष्य की तुम किसलिये प्रशंसा करते हो ॥ ५६ ॥ जोकि धौंकनी व पशु की नाईं केवल श्वासधारी है यह राजा धर्मों के रहस्यको नहीं जानता है ॥ ५७ ॥ जैसा कि द्विजोत्तम रैक सयुग्वान् तत्त्वज्ञानी है व देवताओंसे भी अधिक रैक का बडा भारी ज्योतिरहस्य है ॥ ५८ ॥ इस प्राणमात्र याने श्वासधारी राजा का वैसा तेज नहीं है और रैक की पुण्य राशियों की इयत्ता (प्रमाण) नहीं है ॥ ५९ ॥ पृथ्वी के मिट्टी के किनुके गिने जासक्ते हैं व आकाशमें नक्षत्र गिने जासक्ते हैं परन्तु रैक के पुण्यका महामेरु

वन्तंतंहंसमग्रगःप्रत्यभाषत ॥ अहोभवानभिज्ञोसि श्लाघनीयोसिसूरिभिः ॥ ५५ ॥ अश्लाघनीयंकितवं यत्त्वमेनंप्रशंससे ॥ प्रशंससेकिमर्थन्त्वमल्पंसन्तमिमञ्जनम् ॥ ५६ ॥ भस्त्रावत्पशुवच्चैव केवलंश्वासधारिणम् ॥ न ह्ययंवेत्तिधर्माणां रहस्यंपृथिवीपतिः ॥ ५७ ॥ तत्त्वज्ञानीयथारैकः सयुग्वान्ब्राह्मणोत्तमः ॥ रैकस्य हि महज्ज्योतिरहस्यंदैवतैरपि ॥ ५८ ॥ न ह्यस्यप्राणमात्रस्य तेजस्तादृशमस्ति वै ॥ रैकस्यपुण्यराशीनामियत्ता नैव विद्यते ॥ ५९ ॥ गण्यन्तेपांसवोभूमेर्गण्यन्तेदिवितारकाः ॥ रैकपुण्यमहामेरुसमूहोनैवगण्यते ॥ ६० ॥ किञ्चतिष्ठन्त्विमेधर्मा नश्वरास्तस्य वै मुनेः ॥ ब्रह्मज्ञानमबाध्यंयत्तेनसश्लाघ्यतेमुनिः ॥ ६१ ॥ जानश्रुतेस्तु तादृक्षो धर्मएव न विद्यते ॥ दुर्लभंयत्तुयोगीन्द्रैः कुतस्तज्ज्ञानवैभवम् ॥ ६२ ॥ परित्यज्यदुरात्मानं तद्दशाकमिमञ्जनम् ॥ सएवरैकःसयुग्वाञ्श्लाघ्यतांभवतामुनिः ॥ ६३ ॥ जन्मनःपङ्गुरपियः स्वस्यस्नानचिकीर्षया ॥ गङ्गाञ्च यमुनाञ्चापि गयामपिमुनीश्वरः ॥ ६४ ॥ आह्वयामासमन्त्रेण नि

समूह नहीं गिना जासक्ता है ॥ ६० ॥ और ये नश्वर धर्म स्थित होवैं याने नाशवान् धर्मोंको क्या कहना है उस मुनि के जिसकारण अबाधनीय ब्रह्मज्ञान है उससे उस मुनिकी प्रशंसा कीजाती है ॥ ६१ ॥ और जानश्रुति के वैसा धर्म नहीं विद्यमान है जोकि योगीन्द्रोंकोभी दुर्लभ है वह ज्ञान का ऐश्वर्य कहांसे होगा ॥ ६२ ॥ इसकारण इस दुष्टात्मा व तुच्छ मनुष्य को छोड़कर उसी रैक और उसी सयुग्वान् मुनिकी आप प्रशंसा कीजिये ॥ ६३ ॥ क्योंकि जन्म से पंगुल भी जिस मुनीश्वर ने अपने स्नान करने की इच्छा

से गंगा, यमुना व गयाको भी ॥ ६४ ॥ अपने आश्रमके समीप मन्त्रसे आवाहन किया है और उस ब्रह्मज्ञानी रैक्क महर्षि के धर्मसमूह में ॥ ६५ ॥ त्रिलोकमध्य में वर्तमान जनों के धर्मसमूह अन्तर्गत होते हैं और रैक्ककी धर्ममर्यादा त्रिलोकमध्यवर्ती प्राणियोंकी धर्ममर्यादाके मध्य में किसीप्रकार नहीं है इसप्रकार कहकर अग्रगामी हंस के चुप होजाने पर ॥ ६६ । ६७ ॥ वे हंसरूपी मुनीन्द्र फिर ब्रह्मलोकको चलेगये इसके अनन्तर शत्रुदमन पौत्रायण जानश्रुति राजा ॥ ६८ ॥ रैक्कको उत्कर्षकी काष्ठा याने श्रेष्ठतामें सबसे बढ़कर सुनकर बहुत उदासीन हुआ जैसे कि पांसा से जीताहुआ मलिन होवै ॥ ६९ ॥ और बार२ श्वास लेतेहुये उस राजाने चिन्तन किया कि यहां रैक्कको अधिक करते

जाश्रमसमीपतः ॥ तस्यब्रह्मविदोरैक्कमहर्षेर्धर्मसञ्चये ॥ ६५ ॥ अन्तर्भवन्तिधर्मौघास्त्रैलोक्योदरवर्तिनाम् ॥ रैक्कस्यधर्मकक्ष्या तु न हि त्रैलोक्यवर्तिनाम् ॥ ६६ ॥ प्राणिनांधर्मकक्ष्यायामन्तर्भवतिकर्हिचित् ॥ एवमग्रेसरेहंसे कथित्वोपरते सति ॥ ६७ ॥ हंसरूपामुनीन्द्रास्तेब्रह्मलोकंययुःपुनः ॥ अथपौत्रायणोराजा जानश्रुतिररिन्दमः ॥ ६८ ॥ रैक्कंचोत्कर्षकाष्ठायां निशम्यपरमावधिम् ॥ विषण्णोभवदत्यर्थं वराकोक्षजितोयथा ॥ ६९ ॥ चिन्तयामाससनृपः पौनःपुन्येननिःश्वसन् ॥ हंसउत्कर्षयन्रैक्कं निकृष्टंमामिहाब्रवीत् ॥ ७० ॥ अहोरैक्कस्यमाहात्म्यं यंप्रशंसन्तिपक्षिणः ॥ तत्परित्यज्यसंसारं सर्वराज्यमिहाधुना ॥ ७१ ॥ सयुग्वानंमहात्मानं तमेवशरणंव्रजे ॥ कृपानिधिःस वै रैक्कः शरणंमामुपागतम् ॥ ७२ ॥ प्रतिगृह्यात्मविज्ञानं मह्यंसमुपदेक्ष्यति ॥ इत्यसौचिन्तयन्नेव कथंकथमपिद्विजाः ॥ ७३ ॥ जाग्रन्नेवायमुद्वेलां रात्रिंतामत्यवाहयत् ॥ निशावसानेसम्प्राप्ते वन्दिवृन्दप्रवर्तितम् ॥ ७४ ॥ अशृणोन्मङ्गलरवं तूर्यघोषसमन्वितम् ॥ तदाकर्ण्यमहा

हुये हंस ने मुझको नीच कहा ॥ ७० ॥ रैक्कके माहात्म्यको आश्चर्य है कि जिसकी पक्षी प्रशंसा करते हैं इसकारण इससमय सब राज्य व संसारको यहीं छोड़कर ॥ ७१ ॥ उस सयुग्वान् महात्मा के शरण में मैं जाता हूं और वे दयानिधान रैक्कजी शरण में आयेहुये मुझको ॥ ७२ ॥ ग्रहण कर मेरे लिये आत्मज्ञान को उपदेश करेंगे हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार चिन्तन करतेहुये इसने किसी न किसी प्रकार से ॥ ७३ ॥ जागतेहुये इसने उस उद्वेला रात्रि को व्यतीत किया और रात्रि का अन्त प्राप्त होने

पर वन्दिगणों से वर्तमान कियेहुये ॥ ७४ ॥ तुरुही के शब्दसे संयुत मंगलशब्दको सुना उससमय उसको सुनकर शय्याही पै स्थित होतेहुये महाराजने ॥ ७५ ॥ शीघ्रही सारथि को बुलाकर आदरसमेत वचन कहा कि हे सारथे ! शीघ्रही जाकर वेगवान् रथ पै चढ़कर ॥ ७६ ॥ महर्षियों के आश्रमों व पवित्र वनों में और एकान्त स्थानों में व सज्जनों की निवासभूमियों में ॥ ७७ ॥ और तीर्थों के व नदियों के किनारों में व अन्य स्थानों में जहां मुनीश्वरलोग होवैं ॥ ७८ ॥ उन सबों में सब धर्मों के एक आश्रयरूप व गाड़ीपै बैठेहुये रैकनामक पंगुले योगीन्द्र ॥ ७९ ॥ व ब्रह्मज्ञान के एकही स्थान सयुग्वान् को तुम ढूंढ़ो व हे सारथे ! शीघ्रही ढूंढ़कर मेरी प्रीतिके लिये फिर

राजस्तदातल्पस्थएवसन् ॥ ७५ ॥ सारथिंशीघ्रमाहूय बभाषेसादरंवचः ॥ सारथेसत्वरंगत्वा रथमारुह्यवेगवत् ॥ ७६ ॥ आश्रमेषुमहर्षीणां पुण्येषुविपिनेषु च ॥ विविक्तेषुप्रदेशेषु सतामावासभूमिषु ॥ ७७ ॥ तीर्थानां च नदीनां च कूलेषुपुलिनेषु च ॥ अन्येषु च प्रदेशेषु यत्रसन्तिमुनीश्वराः ॥ ७८ ॥ तेषुसर्वेषुयोगीन्द्रं पङ्गुंशकटसंस्थितम् ॥ रैकाभिधानंसर्वेषां धर्माणामेकसंश्रयम् ॥ ७९ ॥ ब्रह्मज्ञानैकनिलयं सयुग्वानंगवेषय ॥ अन्विष्यतूर्णंमत्प्रीत्यै पुनरागच्छसारथे ॥ ८० ॥ सतथेतिविनिर्गत्य वेगवद्रथसंस्थितः ॥ सर्वत्रान्वेषयामास रैकंब्रह्मविदंमुनिम् ॥ ८१ ॥ गुहासुपर्वतानाञ्च मुनीनामाश्रमेषु च ॥ सञ्चारमहींकृत्स्नां तत्रतत्रगवेषयन् ॥ ८२ ॥ अन्विष्यविविधान्देशान्सारथिस्त्वरयासह ॥ क्रमान्महर्षिसम्बाधं गन्धमादनमन्वगात् ॥ ८३ ॥ मार्गमाणःसतत्रापि तन्ददर्शमुनीश्वरम् ॥ कण्डूयमानंपामानं शकटीयस्थलस्थितम् ॥ ८४ ॥ अद्वैतंनिष्कलंब्रह्म चिन्तयन्तंनिरन्तरम् ॥ तंदृष्ट्वासारथिस्तत्र सयुग्वानंमहामुनिम् ॥ ८५ ॥ रैकोयमिति

आइये ॥ ८० ॥ बहुत अच्छा यह कहकर वेगवान् रथ पै बैठकर निकलकर उसने ब्रह्मज्ञानी रैकमुनि को सब कहीं ढूंढ़ा ॥ ८१ ॥ और पर्वतों की गुहाओं व मुनियों के आश्रमों में वहां वहां ढूंढ़तेहुये उसने सब पृथ्वी में भ्रमण किया ॥ ८२ ॥ और अनेक प्रकार के स्थानों को ढूंढ़कर शीघ्रतासमेत सारथि क्रम से महर्षियों से संयुत गन्धमादनपर्वत को गया ॥ ८३ ॥ और उस गन्धमादनपर्वत में ढूंढ़तेहुये उसने खुजली को खुजलातेहुये गाड़ी के स्थल में स्थित उन मुनीश्वर को देखा ॥ ८४ ॥

और अद्वैत निष्कल ब्रह्मको सदैव स्मरण करतेहुये उन महामुनि सयुग्वान्को देखकर ॥ ८५ ॥ यह रैक हैं ऐसा विचारकर उनके समीप आकर व प्रणाम कर उनके समीप बैठकर नम्रतासे उन मुनि से पूछा ॥ ८६ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! रैकनामक सयुग्वान् क्या आपही हो उसके वचनको सुनकर तब उन मुनि ने कहा कि रैकनामक सयुग्वान् मैंही हूं मुनि के इस वचन को सुनकर व बहुत चेष्टाओंसे ॥ ८७ । ८८ ॥ कुटुम्ब के पालनके लिये धनकी इच्छाको जानकर गन्धमादनसे लौटेहुये सारथिने सब वृत्तान्त को राजासे कहा ॥ ८९ ॥ इसके अनन्तर जानश्रुति सारथिके वचन को आदरसे सुनकर छह सौ गौवों को व धनके निष्कभार को ॥ ९० ॥ और ख़च्चरियोंसे संयुत रथ

सञ्चिन्त्य तमासाद्यप्रणम्य च ॥ विनयान्मुनिमप्राक्षीदुपविश्यतदन्तिके ॥ ८६ ॥ सयुग्वान्रैकनामा च ब्रह्मन्किं वै भवा निति ॥ तस्यवाक्यंसमाकर्ण्य समुनिःप्रत्यभाषत ॥ ८७ ॥ अहमेव हि सयुग्वान्रैकनामेति वै तदा ॥ इत्याकर्ण्यमुनेर्वा क्यमिङ्गितैर्बहुभिस्तथा ॥ ८८ ॥ कुटुम्बभरणार्थाय धनेच्छामवगम्य च ॥ सर्वंन्यवेदयद्राज्ञे निवृत्तोगन्धमादनात् ॥ ८९ ॥ जानश्रुतिर्निशम्याथ सारथेर्वाक्यमादरात् ॥ षट्शतानिगवाञ्चापि निष्कभारंधनस्य च ॥ ९० ॥ रथं चाश्वतरी युक्तं समादायत्वरान्वितः ॥ पौत्रायणःसराजर्षिस्तंरैकंप्रतिचक्रमे ॥ ९१ ॥ गत्वा च वचनंप्राह तंरैकंसमहीपतिः ॥ भगव न्रैकसयुग्वन्मद्दत्तंप्रतिगृह्यताम् ॥ ९२ ॥ षट्शतानिगवाञ्चापि निष्कभारन्धनस्य च ॥ रथं चाश्वतरीयुक्तं प्रतिगृह्णीष्व मामकम् ॥ ९३ ॥ गृहीत्वासर्वमेतत्तु भोब्रह्मन्ननुशाधिमाम् ॥ अद्वैतब्रह्मविज्ञानं मह्यंसमुपदिश्यताम् ॥ ९४ ॥ इतितस्य वचःश्रुत्वा सस्पृहञ्च ससंभ्रमम् ॥ रैकःप्रत्याहसयुग्वाञ्जानश्रुतिमरिन्दमम् ॥ ९५ ॥ रैक उवाच ॥ एतागावस्तवैवास्तु

को लेकर शीघ्रतासंयुत वे पौत्रायण राजर्षि उन रैक के समीप चले ॥ ९१ ॥ और जाकर उस राजाने उन रैकजी से वचन कहा कि हे सयुग्वन्, भगवन्, रैक ! मेरी दीहुई वस्तु को ग्रहण कीजिये ॥ ९२ ॥ छह सौ गौवों को और धनका निष्कभार व ख़च्चरियों से संयुत मेरे रथको ग्रहण कीजिये ॥ ९३ ॥ व हे ब्रह्मन् ! इस सबको लेकर मुझ को आज्ञा दीजिये व मेरे लिये अद्वैत ब्रह्मज्ञान को उपदेश कीजिये ॥ ९४ ॥ उसके इस वचन को सुनकर स्पृहासमेत व शीघ्रतासमेत उन सयुग्वान् रैकने

शत्रुदमन जानश्रुति राजासे कहा ॥ ९५ ॥ रैक्व बोले कि ये गौवें और निष्कभार तुम्हींको होवै क्योंकि बहुत कल्पोंतक जीतेहुये मुझको इससे क्या होगा ॥ ९६ ॥ क्योंकि मेरे कुटुम्बके निर्वाहमें यह परिपूर्ण नहीं है और ऐसा सौगुना भी यदि तुमसे मुझको दियाजावै ॥ ९७ ॥ तोभी हे नृपेन्द्र! कुटुम्बपोषणके लिये वह परिपूर्ण न होगा इस रैक्व के वचन को सुनकर जानश्रुतिने कहा ॥ ९८ ॥ जानश्रुति बोले कि हे ब्रह्मन्, मुने! तुमसे उपदेश कियेजाते हुये ब्रह्मज्ञान का यह गऊ, धन व रथ मूल्य नहीं है ॥ ९९ ॥ हे ब्रह्मन्! मेरे इस गवादिक धनको ग्रहण करो या न ग्रहण करो परन्तु निष्कल अद्वैत विज्ञानको मुझसे कहो ॥ १०० ॥ उसके उस वचनको सुनकर सयुग्वान्ने वचन

निष्कभारस्तथारथः ॥ किमल्पेनममानेन बहुकल्पेषुजीवतः ॥ ९६ ॥ न मे कुटुम्बनिर्वाहे पर्याप्तमिदमञ्जसा ॥ एवंशतगुणञ्चापि यदिदत्तन्त्वयामम ॥ ९७ ॥ नालंतदपिराजेन्द्र कुटुम्बभरणाय वै ॥ इतिरैक्ववचःश्रुत्वाजानश्रुतिरभाषत ॥ ९८ ॥ जानश्रुतिरुवाच ॥ त्वयोपदिश्यमानस्य ब्रह्मज्ञानस्य वै मुने ॥ न हि मूल्यमिदंब्रह्मन्गोधनंरथ एव च ॥ ९९ ॥ प्रतिगृह्णीष्व वा नैव ममैतत्तु गवादिकम् ॥ निष्कलाद्वैतविज्ञानं ब्रह्मन्नुपदिशस्वमे ॥ १०० ॥ तदाकर्ण्यवचस्तस्यसयुग्वान्वाक्यमब्रवीत् ॥ रैक्व उवाच ॥ निर्वेदोयस्यसंसारे तथा वै पुण्यपापयोः ॥ १ ॥ प्रारब्धयोर्विनाशश्च स वै ज्ञानोपदेशभाक् ॥ तव यद्यपिसंसारे निर्वेदःसमजायत ॥ २ ॥ तथापिपुण्यपापानां न हि नाशोऽव्यजायत ॥ पुण्यपापौघसङ्घाश्च पुनर्जन्मनिहेतवः ॥ ३ ॥ न हिभोगंविनातेषां नाशोभवतिभूपते ॥ तन्नाशोपायमद्याहं तथापिप्रब्रवीमिते ॥ ४ ॥ यतोमांशरणंप्राप्तस्तच्छृणुष्वसमाहितः ॥ अत्रतीर्थत्रयंपुण्यं वर्ततेभीष्टदायकम् ॥ ५ ॥ मुमुक्षूणां हि सर्वेषां सर्वप्रारब्धनाशनम् ॥ एतद्धि

कहा रैक्व बोले कि संसार में जिसके निर्वेद (वैराग्य) होवै व प्रारब्ध, पुण्य व पापका विनाश होवै वही ज्ञान के उपदेशका भागी है यद्यपि संसार में तुम्हारे निर्वेद उत्पन्न हुआ है ॥ १ । २ ॥ तथापि पुण्य व पापों का नाश नहीं हुआहै और पुण्य व पापके समूह फिर जन्ममें कारणहैं ॥ ३ ॥ हे भूपते! विना भोगके उन पुण्य पापोंका नाश नहीं होताहै तथापि इससमय मैं उनके नाशके उपायकोतुमसे कहताहूं ॥ ४ ॥ जिसलिये मेरे शरणमें प्राप्त हुयेहो उसी कारण सावधान होतेहुये सुनिये कि यहां पर

मनोरथों के देनेवाले तीन पवित्र तीर्थ विद्यमान हैं ॥ ५ ॥ जोकि मोक्ष को चाहनेवाले सब मनुष्यों के सब प्रारब्धकर्मों के विनाशक हैं यह यमुनातीर्थ व गंगा-तीर्थ ॥ ६ ॥ और जो यह गयातीर्थ है इनमें उसकारण शीघ्रही स्नान कीजिये तब सब प्रारब्धकर्मों का विनाश होगा इसमें सन्देह नहीं है॥ ७ ॥ तदनन्तर शुद्धचित्तवाले तुमको मैं ज्ञान दूगा रैक्कमुनि के ऐसा कहनेपर हर्ष से प्रफुल्लित लोचनोंवाले ॥ ८ ॥ उस राजाने शीघ्रतासमेत आकर तीनों तीर्थो में स्नान किया और उस तीर्थमें नहाने से राजा शुद्धचित्त हुआ ॥ ९ ॥ और यह राजा फिर सयुग्वान् गुरु के समीप प्राप्त हुआ और उस सयुग्वान् व उसी रैक्कने मुनीन्द्रोंको भी जो ज्ञान दुर्लभ है ॥ १० ॥ उस

यमुनातीर्थं गङ्गातीर्थंतथैव च ॥ ६ ॥ गयातीर्थमिदं चापि तदेषुस्नाहिमाचिरम् ॥ सर्वप्रारब्धनाशःस्यात्तदा नैवात्रसंशयः ॥ ७ ॥ ततस्तेशुद्धचित्तस्य ज्ञानंतवदिशाम्यहम् ॥ इत्युक्तेरैक्कमुनिना हर्षसम्फुल्ललोचनः ॥ ८ ॥ ससंभ्रममुपागम्य सस्नौतीर्थत्रयेपिसः ॥ तत्तीर्थस्नानमात्रेण शुद्धचित्तोभवन्नृपः ॥ ९ ॥ उपातिष्ठतराजासौ सयुग्वानंगुरुम्पुनः । सयुग्वान्स च रैक्कोपिमुनीन्द्रैरपि दुर्लभम् ॥ १० ॥ तज्ज्ञानश्रुतयेज्ञानं कृपयासमुपादिशत् ॥ तेनोपदिष्टमात्रे तु विज्ञानेब्रह्मरूपिणि ॥ ११ ॥ अबाधितानुभववानभवद्राजसत्तमः ॥ ब्रह्मरूपंगतस्यास्य प्रसादाद्रैक्कयोगिनः ॥ १२ ॥ घटकुड्यकुशूलात्मा न प्रपञ्चस्समस्फुरत् ॥ निर्भिद्यसहसामायामभूद्ब्रह्मैवकेवलम् ॥ १३ ॥ इत्थंतीर्थत्रयेस्नानाज्ज्ञानश्रुतिरहोनृपः ॥ दुर्लभंयोगिवृन्दैश्च ब्रह्मभूयत्वमाप्तवान् ॥ १४ ॥ एवंवःकथितंविप्रास्तत्तीर्थत्रयवैभवम् ॥ यस्त्विमंपठतेध्यायंतीर्थत्रितयवैभवम् ॥ १५ ॥ निर्भिद्याज्ञानतिमिरंब्रह्मभूयायकल्पते ॥ १६ ॥ इति यमुनादितीर्थप्रशंसायांजानश्रुतिज्ञानावाप्तिर्नामषड्विंशोऽध्यायः २६

ज्ञानको जानश्रुति के लिये दयासे उपदेश किया और उस ब्रह्मरूपी विज्ञानके उपदेश करने पर ॥ ११ ॥ नृपश्रेष्ठ बाधारहित ज्ञानवान् हुआ और रैक्क योगीकी प्रसन्नता से ब्रह्मता को प्राप्त इस मुनिको ॥ १२ ॥ घट, भित्ति, कुशूलात्मक प्रपंच नहीं स्फुरित हुआ और वह यकायक माया को नाशकर केवल ब्रह्मही होगया ॥ १३ ॥ इसप्रकार तीनों तीर्थों में स्नान करनेसे जानश्रुति राजाने योगिगणोंसे दुर्लभ ब्रह्मताको पाया ॥ १४ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार तुमलोगों से उन तीन तीर्थोंका प्रभाव कहागया और तीन तीर्थोंके ऐश्वर्यवाले इस अध्यायको जो पढ़ता है ॥ १५ ॥ वह अज्ञानरूपी तिमिरको नाशकर ब्रह्मत्वके लिये समर्थ होताहै ॥ १६ ॥ इति षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

दो०। कोटिनाम इमि तीर्थ कर अहै यथा परभाव। सत्ताइसवें में सोई कह्यो चरित्र सुहाव॥ श्रीसूतजी बोले कि यमुना, गंगा व गयातीर्थ में हर्ष से स्नान करके तदनन्तर मनुष्य कोटितीर्थ को जावै ॥ १ ॥ बड़ा पवित्र कोटितीर्थ सब लोकों में प्रसिद्ध है और सब सम्पत्तियों को करनेवाला व शुद्ध और सब पापों का विनाशक है॥ २॥ और दुःस्वप्न को नाश करनेवाला यह तीर्थ महापातकों का विनाशक व महाविघ्नों का नाशक तथा मनुष्यों की महाशान्तिको करनेवाला है ॥ ३ ॥ जो कि स्मरण करनेही से मनुष्यों के सब पापों का नाशक है और आपही श्रीरामजी ने उसको लीलासे धनुषकी कोटि (किनारे) से बनाया है ॥ ४ ॥ पुरातनसमय दशरथ के

श्रीसूत उवाच॥ यमुनायां च गङ्गायां गयायां च नरो मुदा॥ स्नानंविधायविधिवत्कोटितीर्थंततोव्रजेत्॥ १ ॥ कोटितीर्थम्महापुण्यं सर्वलोकेषुविश्रुतम् ॥ सर्वसम्पत्करंशुद्धं सर्वपापप्रणाशनम्॥ २॥ दुःस्वप्ननाशनंह्येतन्महापातकनाशनम्॥ महाविघ्नप्रशमनम्महाशान्तिकरंनृणाम्॥ ३॥ स्मृतिमात्रेणयत्पुंसां सर्वपापनिषूदकम्॥ लीलयाधनुषःकोटया स्वयंरामेणनिर्मितम् ॥ ४ ॥ पुरादाशरथीरामो निहत्ययुधिरावणम् ॥ ब्रह्महत्याविमोक्षाय गन्धमादनपर्वते ॥ ५ ॥ प्रातिष्ठिपल्लिङ्गमेकं लोकानुग्रहकाम्यया ॥ लिङ्गस्यास्याभिषेकाय शुद्धंवारिगवेषयन् ॥ ६॥ नाविन्दतजलन्तत्र पार्श्वेदशरथात्मजः ॥ लिङ्गाभिषेकयोग्यं च जलंकिमितिचिन्तयन् ॥ ७॥ नवेनवारिणालिङ्गं स्नापनीयंमयेतिसः ॥ निश्चित्यमनसातत्र धनुष्कोटयारघूद्वहः ॥ ८ ॥ बिभेदधरणींशीघ्रं मनसाजाह्नवींस्मरन् ॥ रामकार्मुककोटिःसा तदाप्रापरसातलम् ॥ ९ ॥ ततउद्धारयामास तद्धनुर्धन्विनांवरः ॥ धनुष्युद्ध्रियमाणे तु राघवेणमहीतलात्॥ १० ॥

पुत्र श्रीरामजी ने युद्ध में रावण को मारकर ब्रह्महत्याके छूटने के लिये गन्धमादनपर्वत पै ॥ ५ ॥ लोकों के ऊपर दया की कामना से एक लिंग को स्थापन किया और इस लिंग के स्नान के लिये पवित्र जल को ढूंढ़तेहुये ॥ ६ ॥ दशरथजी के पुत्र श्रीरामजी ने वहा समीप में जल को नहीं पाया और लिंग के स्नान के योग्य कौन जल है ऐसा विचारतेहुये ॥ ७ ॥ उन रघुनायकजी ने वहां मनसे ऐसा निश्चय कर कि नवीन जल से मुझ को लिंग को स्नान कराना चाहिये फिर मनसे गंगाजी को स्मरण करतेहुये श्रीरामजी ने धनुष की कोटि से शीघ्रही पृथ्वीको भेदन किया तब वह श्रीरामजी के धनुष की कोटि रसातल को प्राप्त हुई॥ ८ । ९ ॥ तदनन्तर

धनुर्धारियों में श्रेष्ठ रघुनाथजी ने उस धनुष को ऊपर निकाललिया और जब श्रीरघुनाथजी ने धनुष को पृथ्वी से ऊपर निकाला ॥ १० ॥ तब श्रीरामजी से स्मरण कीहुई गंगाजी बिल से निकलीं और रघुनायकजी ने उस जल से उस लिंग को स्नान कराया ॥ ११ ॥ पुरातनसमय जिसलिये श्रीरामजी के धनुष की कोटिही से वह निर्माण कियागया है इस कारण वह तीर्थ त्रिलोक में कोटितीर्थ ऐसा प्रसिद्ध हुआ ॥ १२ ॥ इस गन्धमादनपर्वत पै जो जो तीर्थ हैं पहिले उन तीर्थों में स्नान कर पापरहित मनुष्य ॥ १३ ॥ तदनन्तर शेष पापके छूटने के लिये कोटितीर्थ में स्नान करै क्योंकि अन्य तीर्थों में स्नान से जो पापसमूह नहीं नाश होता

राघवेणस्मृतागङ्गा निर्ययौविवरात्ततः ॥ वारिणातेनतल्लिङ्गमभ्यषिञ्चद्रघूद्वहः ॥ ११ ॥ रामकार्मुककोटयैव यतस्तन्निर्मितम्पुरा ॥ अतःकोटिरितिख्यातं तत्तीर्थंभुवनत्रये ॥ १२ ॥ यानियानीहतीर्थानि सन्ति वै गन्धमादने ॥ प्रथमं तेषु तीर्थेषु स्नात्वाविगतकल्मषः ॥ १३ ॥ शेषपापविमोक्षाय स्नायात्कोटौनरस्ततः ॥ तीर्थान्तरेषुस्नानेन यः पापौघो न नश्यति ॥ १४ ॥ अनेकजन्मकोटीभिरर्जितोह्यस्थिसंस्थितः ॥ विनश्यतिससर्वोपि कोटिस्नानान्न संशयः ॥ १५ ॥ यदि हि प्रथमंस्नायादत्रकोटौनरोद्विजाः ॥ तस्यमुक्तस्यतीर्थानि व्यर्थान्येवापराणि हि ॥ १६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सूतसर्वार्थतत्त्वज्ञ व्यासशिष्यमुनीश्वर ॥ अस्माकंसंशयंकञ्चिच्छिन्धिपौराणिकोत्तम ॥ १७ ॥ कोटौस्नातस्यमर्त्यस्य यदितीर्थान्तरंवृथा ॥ किमर्थंधर्मतीर्थादितीर्थेषुस्नान्तिमानवाः ॥ १८ ॥ तीर्थानितानिसर्वाणि समतिक्रम्यमानवाः ॥ अत्रैवकोटौकिंस्नानं न कुर्वन्ति हि तद्वद ॥ १९ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ अहोरहस्यंयुष्माभिः पृष्टमे

है ॥ १४ ॥ अनेक करोड़ जन्मों से इकट्ठा कियाहुआ व अस्थियों में स्थित वह सभी पाप कोटितीर्थ के स्नान से निस्सन्देह नाश होजाता है ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणो ! यदि पहिले मनुष्य इस कोटितीर्थ में स्नान करै तो उस मुक्त मनुष्य के अन्य तीर्थ व्यर्थही होते हैं ॥ १६ ॥ ऋषिलोग बोले कि हेसब अर्थोंको यथार्थ जाननेवाले, व्यासशिष्य, मुनीश्वर, पौराणिकोत्तम, सूतजी ! हमलोगों के कुछ सन्देह को नाशकीजिये ॥ १७ ॥ कि यदि कोटितीर्थ में नहायेहुये मनुष्य को अन्य तीर्थ वृथा है तो धर्मतीर्थादिक तीर्थों में मनुष्य किसलिये नहाते हैं ॥ १८ ॥ और उन सब तीर्थोंको नांघकर मनुष्य इसी कोटितीर्थमें क्यों नहीं स्नान करते हैं उसको कहिये ॥ १९ ॥ श्रीसूतजी बोले

कि हे मुनीश्वरो ! तुमलोगोंने इस गुप्त चरित्र को पूछा है पुरातनसमय पूछतेहुये नारदजी से जो शिवजीने कहा है ॥ २० ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! उसको मैं कहता हूं तुमलोग श्रद्धासमेत सुनो कि स्वच्छन्दता से जाताहुआ या तीर्थयात्रामें परायण मनुष्य ॥ २१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मार्ग के बीच में तीर्थ या देवालय को देखकर व सुनकर जो मोह से नहीं सेवन करता है वह अधम मनुष्य है ॥ २२ ॥ और उसका प्रायश्चित्त नहीं है ऐसा महर्षियों ने कहा है उसी कारण सेतु को जाताहुआ मनुष्य यदि अन्य तीर्थों में स्नान न करै ॥ २३ ॥ तो तीर्थों के उल्लंघन के दोषों से वह चाण्डाल की नाईं ब्राह्मणों से बाहर करने योग्य है इसकारण हे ब्राह्मणो ! इन चक्रादि तीर्थों में

तन्मुनीश्वराः ॥ नारदायपुराशम्भुः पृच्छतेयत्किलाब्रवीत् ॥ २० ॥ तद्ब्रवीमिमुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वंश्रद्धयासह ॥ गच्छन्यदृच्छया वापि तीर्थयात्रापरोपि वा ॥ २१ ॥ मार्गमध्येद्विजश्रेष्ठास्तीर्थंदेवालयंतथा ॥ दृष्ट्वाश्रुत्वापि वा मोहान्न सेवेतनराधमः ॥ २२ ॥ निष्कृतिस्तस्यनास्तीति प्राब्रुवन्परमर्षयः ॥ सेतुंगच्छंस्ततोन्येषु न स्नायाद्यदिमानवः ॥ २३ ॥ तीर्थातिक्रमदोषैःस बहिष्कार्योन्त्यवद्द्विजैः ॥ अतःस्नातव्यमेवैषु चक्रतीर्थादिषुद्विजाः ॥ २४ ॥ स्नात्वा चैतेषुतीर्थेषु शेषपापविमुक्तये ॥ प्रयतैर्मनुजैरत्र स्नातव्यंकोटितीर्थके ॥ २५ ॥ कोटौ चाभिषवंकृत्वा न तिष्ठेद्गन्धमादने ॥ निवर्तेत्तत्क्षणादेव निष्पापोगन्धमादनात् ॥ २६ ॥ रामोपि हि पुराकोटितीर्थसम्भूतवारिणा ॥ रामनाथेभिषिक्ते तु स्वयंस्नात्वा च तत्र वै ॥ २७ ॥ ब्रह्महत्याविमुक्तस्संस्तत्क्षणादेवसानुजः ॥ आरूढपुष्पकोयोध्यां प्रययौकपिभिर्वृतः ॥ २८ ॥ अतःकोटौनरःस्नात्वा पापशेषविमोचितः ॥ निवर्तेत्तत्क्षणादेव रामोदाशरथिर्यथा ॥ २९ ॥ एतद्धि

स्नान करना चाहिये ॥ २४ ॥ और इन तीर्थों में नहाकर शेष पापकी निवृत्ति के लिये पवित्र मनुष्यों को इस कोटितीर्थ में नहाना चाहिये ॥ २५ ॥ और कोटितीर्थ में स्नान करके गन्धमादनपै न स्थित होवै बरन पापरहित मनुष्य उसी क्षण गन्धमादन से लौट आवै ॥ २६ ॥ पुरातनसमय तीर्थ से उपजेहुये जल से रामनाथके स्नान करने पर श्रीरामजी आपही उसमें नहाकर ॥ २७ ॥ ब्रह्महत्या से छूटकर उसी क्षण वानरोंसे घिरे व लक्ष्मणजीसमेत श्रीरघुनाथजी पुष्पकविमानपै चढ़कर अयोध्याको चले गये ॥ २८ ॥ इसकारण जैसे दशरथजी के पुत्र श्रीरामजी उसी क्षण लौटे हैं उसीप्रकार कोटितीर्थमें नहाकर शेष पापसे छूटाहुआ मनुष्य उसी क्षण लौट आवै ॥ २९ ॥

यह श्रेष्ठ तीर्थ सब लोकों में प्रसिद्ध है कि जिसको श्रीरामजी ने रामनाथजी के स्नान के लिये निर्माण किया है ॥ ३० ॥ जहां कि आपही भगवती गंगाजी स्थित हैं और जिसमें तारकब्रह्मजी ने आदर से स्नान किया है ॥ ३१ ॥ उस कोटितीर्थ की महिमा किस से कही जासक्ती है कि जिसमें पुरातनसमय श्रीकृष्णजी लोकों की मर्यादा की इच्छा से नहाकर ॥ ३२ ॥ मातुल (मामूं) कंस के मारने के दोष से छूटे हैं उसी कोटितीर्थ की महिमा किस से कहीजावै ॥ ३३ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूत ! यदुनन्दनजी ने मामूं कंस को किसलिये मारा है कि अपने जिस दोषकी शान्ति के लिये उन्हों ने कोटितीर्थ में स्नान किया है ॥ ३४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि

तीर्थप्रवरंसर्वलोकेषुविश्रुतम् ॥ रामनाथाभिषेकाय निर्मितंराघवेणयत् ॥ ३० ॥ स्वयम्भगवतीयत्र सन्निधत्ते च जाह्नवी ॥ तारकब्रह्मणायत्र रामेणस्नानमादरात् ॥ ३१ ॥ तस्य वै कोटितीर्थस्य महिमाकेनकथ्यताम् ॥ यत्रस्नात्वापुराकृष्णो लोकसंग्रहणेच्छया ॥ ३२ ॥ मातुलस्य तु कंसस्य वधदोषाद्विमोचितः ॥ तस्य वै कोटितीर्थस्य महिमाकेनकथ्यते ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ किमर्थमवधीत्कंसं मातुलंयदुनन्दनः ॥ यद्दोषशान्तये सूत सस्नौकोटौसहात्मनः ॥ ३४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ वसुदेवइतिख्यातः शूरपुत्रोयदोःकुले ॥ आसीत्सदेवकसुतां देवकीमितिविश्रुताम् ॥ ३५ ॥ उद्वाह्यरथमारूढः स्वपुरंप्रस्थितःपुरा ॥ अथसूतोबभूवाथ कंसोह्यानकदुन्दुभेः ॥ ३६ ॥ अशरीरातदावाणी कंसंसारथिमब्रवीत् ॥ भगिनीं च तथाभामं वाहयन्तंरथोत्तमे ॥ ३७ ॥ यामिमांवाहयस्यत्र रथेनत्वमरिन्दम ॥ अस्यास्त्वामष्टमोगर्भो वधिष्यति न संशयः ॥ ३८ ॥ इत्याकर्ण्यवचोदिव्यं कंसःखड्गंप्रगृह्य च ॥ स्वसारंहन्तुमुद्योगं चकारद्विजपुङ्गवाः ॥ ३९ ॥

यदु के वंश में शूर के पुत्र वसुदेव ऐसे प्रसिद्ध हुये हैं वे देवकी ऐसी प्रसिद्ध देवक की कन्या को ॥ ३५ ॥ ब्याहकर रथपै चढ़कर पुरातनसमय अपने नगरको चले इस के अनन्तर कंस वसुदेव के सारथि हुये ॥ ३६ ॥ तब उत्तम रथ पै बहिन व बहनोई को लियेजाते हुये सारथि कंससे आकाशवाणी ने कहा ॥ ३७ ॥ कि हे शत्रुदमन ! यहां रथ से जिस इस देवकी को लियेजाते हो इसका आठवां गर्भ तुमको मारैगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस आकाशवाणीको सुनकर कंस ने

तलवारको लेकर बहिनको मारने के लिये उद्योग किया ॥ ३९ ॥ तदनन्तर समझाते हुये उन वसुदेव ने उस कंस से कहा वसुदेवजी बोले कि हे कंस ! इसमें पैदा हुये पुत्रों को मैं तुमको दूंगा ॥ ४० ॥ इस बहिनको मत मारिये क्योंकि इससे तुमको डर नहीं है उस वचनको सुनकर उससमय कंस उसके मारनेसे निवृत्त हुआ ॥ ४१ ॥ और देवकी व वसुदेवसमेत अपने नगर को गया व पांवों में बेड़ियों को डालकर देवकी व वसुदेव को ॥ ४२ ॥ दुष्टात्मा कंस ने उससमय कारागृह में स्थापित किया तदनन्तर बहुत समय के बाद देवकीजी ने वसुदेव से ॥ ४३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! क्रम से छह पुत्रों को पैदा किया और वसुदेवसे दियेहुये उन उत्पन्न पुत्रोंको उस कंसने मारडाला ॥ ४४ ॥

ततःप्रोवाचतंकंसं वसुदेवःससान्त्वयन् ॥ वसुदेव उवाच ॥ अस्यांप्रसूतान्दास्यामि तुभ्यंकंससुतानहम् ॥ ४० ॥ एनांस्वसारं मा हिंसीर्नास्यास्तेभीतिरस्ति हि ॥ श्रुत्वातद्वचनंकंसो निवृत्तस्तद्वधात्तदा ॥ ४१ ॥ देवकीवसुदेवाभ्यां सहितःस्वपुरंययौ ॥ पादावसक्तनिगडौ देवकीवसुदेवकौ ॥ ४२ ॥ स्थापयामासदुष्टात्मा कंसःकारागृहेतदा ॥ ततःकालेनमहता वसुदेवाद्धिदेवकी ॥ ४३ ॥ षट्पुत्राञ्जनयामासक्रमेणमुनिपुङ्गवाः ॥ जातांस्तान्वसुदेवेन दत्तान्कंसोपिसोवधीत् ॥ ४४ ॥ हतेषुषट्सुपुत्रेषु देवक्युदरजन्मसु ॥ कंसेनक्रूरमतिना निष्कृपेणद्विजोत्तमाः ॥ ४५ ॥ शेषोभूत्सप्तमोगर्भो देवक्याजठरे तदा ॥ मायादेवीततोगर्भं तं वै विष्णुप्रचोदिता ॥ ४६ ॥ नन्दगोपगृहस्थायां रोहिण्यांसमवेशयत् ॥ देवक्याःसप्तमो गर्भःपतितोजठरादिति ॥ ४७ ॥ लोकेप्रसिद्धिरभवन्महतीविष्णुलीलया ॥ देवकीजठरेपश्चाद्विष्णुर्गर्भत्वमाप्तवान् ॥ ४८ ॥ ततोदशसुमासेषु गतेषुहरिरव्ययः ॥ देवकीजठराज्जज्ञे कृष्णइत्यभिविश्रुतः ॥ ४९ ॥ शङ्खचक्रगदाखड्गविराजित

हे द्विजोत्तमो ! देवकी के पेट से उत्पन्न छह पुत्रों के क्रूरबुद्धि व निर्दयी कंससे मारनेपर ॥ ४५ ॥ उससमय देवकीजीके पेटमें शेषजी सातवें गर्भहुये तदनन्तर विष्णुजी से प्रेरित माया देवी ने उस गर्भ को ॥ ४६ ॥ नन्दगोप के घर में स्थित रोहिणी में प्रवेश कराया और देवकी का सातवां गर्भ पेट से गिरगया यह ॥ ४७ ॥ बड़ी भारी प्रसिद्धि संसारमें विष्णुजी की लीलासे हुई पश्चात् विष्णुजी देवकी के पेटमें गर्भत्व को प्राप्त हुये ॥ ४८ ॥ तदनन्तर दश महीनोंके बीतनेपर विकाररहित विष्णुजी कृष्ण

और शंख, चक्र, गदा व तलवारसे शोभित चारो भुजाओंवाले, किरीटी व वनमाली वे श्रीकृष्णजी माता, पिता के शोक-
ऐसे प्रसिद्ध देवकीजी के पेटसे पैदा हुये ॥ ४९ ॥ और शंख, चक्र, गदा व तलवारसे शोभित चारो भुजाओंवाले, किरीटी व वनमाली वे श्रीकृष्णजी माता, पिता के शोक- ॥ वसुदेवजी बोले कि हे भगवन् ! आप संसार हो व तुम्हीं जगदीश हो और तुम्हीं
नाशक हुये ॥ ५० ॥ उन ईश्वर विष्णुजी को देखकर वसुदेव ने स्तुति किया ॥ ५१ ॥ वसुदेवजी बोले कि हे भगवन् ! आप संसार हो व तुम्हीं जगदीश हो और तुम्हीं
संसार के उत्पत्तिस्थान हो व तुममें संसार स्थित है और तुम महान्, प्रधान, विराट् व स्वराट् हो और तुम्हीं सम्राट् (चक्रवर्ती) हो व सब कुछ तुम्हीं हो ॥ ५२ ॥ इसप्रकार
हे संसार के कारण ! बहुत तेजस्वी व अमित पराक्रमवाले तथा धनुष, चक्र, तलवार व गदा को धारनेवाले कृत्रिम मनुष्यरूप नारायण के लिये नमस्कार है नमस्कार

चतुर्भुजः ॥ किरीटीवनमाली च पित्रोःशोकविनाशनः ॥ ५० ॥ तंदृष्ट्वाहरिमीशानं तुष्टावानकदुन्दुभिः ॥ ५१ ॥ वसुदेव
उवाच॥ विश्वंभवान्विश्वपतिस्त्वमेव विश्वस्ययोनिस्त्वयिविश्वमास्ते ॥ महान्प्रधानश्च विराट्स्वराट् च सम्राडसित्वं
भगवन्समस्तम् ॥ ५२ ॥ एवंजगत्कारणभूतधाम्ने नारायणायामितविक्रमाय ॥ श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोन
मःकृत्रिममानुषाय ॥ ५३ ॥ स्तुवन्तमेवंशौरिंतं वसुदेवंहरिस्तदा ॥ अवोचत्प्रीणयन्तञ्च देवकीञ्च द्विजोत्तमाः ॥ ५४ ॥
हरिरुवाच ॥ अहंकंसंवधिष्यामि मा भीर्वां पितराविति ॥ नन्दगोपस्यगृहिणी यशोदाजनयत्सुताम् ॥ ममसायांपूर्व
दिने सर्वलोकविमोहिनीम् ॥ ५५ ॥ मान्तस्याःशयनेन्यस्य यशोदायाःसुतां तु ताम् ॥ आदायदेवकीशय्यां प्रापयस्व
यदूत्तम ॥ ५६ ॥ एवमुक्तःसकृष्णेन तथैवह्यकरोद्द्विजाः ॥ रुरोदमायातनया देवकीशयनेस्थिता ॥ ५७ ॥ अथबालध्वनिं
श्रुत्वा कंसःसंकुलमानसः ॥ सूतिकागृहमागम्य तामादाय च दारिकाम् ॥ ५८ ॥ शिलायांपोथयामास निर्दयोनिरपत्रपः ॥

है ॥ ५३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इसप्रकार स्तुति करते व प्रसन्न करातेहुये शूर के पुत्र उन वसुदेव व देवकीजी से कहा ॥ ५४ ॥ विष्णुजी बोले कि हे माता, पिताओ ! मैं कंस
को मारूंगा तुम मत डरो नन्दगोपकी स्त्री यशोदा ने पहिले दिन में सब लोकों को उत्पन्न करनेवाली मेरी मायारूपिणी कन्या को पैदा किया है ॥ ५५ ॥ हे यदूत्तम !
उसकी शय्यापै मुझको धरकर और यशोदाकी उस कन्याको लेकर देवकीकी शय्यापै प्राप्त करो ॥ ५६ ॥ हे ब्राह्मणो ! श्रीकृष्णजीसे ऐसा कहेहुये उन वसुदेवने वैसाही
किया और देवकी की शय्या पै स्थित मायारूपिणी कन्या ने रोदन किया ॥ ५७ ॥ इसके अनन्तर बालक के शब्द को सुनकर विकलमनवाले निर्दयी व निर्लज्ज कंस

ने सँवारि के घरको आकर व उस कन्याको लेकर शिला पै पटकदिया इसके अनन्तर उसके हाथसे छूटकर अस्त्रोंसमेत आठ महाभुजाओंवाली ॥ ५८ । ५९ ॥ अतिक्रोधित महादेवी ने कंस को पुकारकर कहा माया बोली कि अरे पापात्मन्, दुर्बुद्धे ! रे मूढबुद्धे, कंस ! ॥ ६० ॥ प्राणों को हरनेवाला तुम्हारा शत्रु जहां कहीं भी वर्तमान है हे कंस ! उस अपने मृत्युरूप शत्रुको शीघ्रही ढूंढ़ो ॥ ६१ ॥ यह कहकर वह देवी उत्तम स्थानों को पाकर व मनुष्यों से पूजन को पाकर मनोरथ को देनेवाली हुई ॥ ६२ ॥ और वह कंस देवी का वचन सुनकर बहुत विकल हुआ और अपने मृत्युरूप शत्रु को पीड़ा करने के लिये व अन्य बालकों को बाधा करने के लिये उसने पूतनादिक

अथतद्धस्तमाच्छिद्य सायुधाष्टमहाभुजा ॥ ५९ ॥ महादेव्यब्रवीत्कंसं समाहूयातिकोपना ॥ मायोवाच ॥ अरे रे कंसपापात्मन् दुर्बुद्धेमूढचेतन ॥ ६० ॥ यत्रकुत्रापिशत्रुस्ते वर्ततेप्राणहारकः ॥ मार्गयस्वात्मनोमृत्युं तंशत्रुंकंस मा चिरम् ॥ ६१ ॥ इतीरयित्वासादेवी दिव्यस्थानान्यवाप्य च ॥ लब्धपूजामनुष्येभ्यो बभूवाभीष्टदायिनी ॥ ६२ ॥ श्रुत्वासदेवीवचनं कंसोपिभृशमाकुलः ॥ बालग्रहान्पूतनादीन्स्वान्तकंबाधितुंरिपुम् ॥ ६३ ॥ प्रेषयामासदेशेषु शिशून्यांश्च बाधितुम् ॥ ते च बालग्रहाःसर्वे प्रययुर्नन्दगोकुलम् ॥ ६४ ॥ हताश्च कृष्णेनतदा प्रययुर्यमसादनम् ॥ ततःकतिपयाहस्सु गतेषुद्विजपुङ्गवाः ॥ ६५ ॥ रामकृष्णौव्यवर्द्धेतां गोकुलेबालकौतदा ॥ अनेकबालक्रीडाभिश्चिक्रीडतुररिन्दमौ ॥ ६६ ॥ कञ्चित्कालंवत्सपालौ वेणुनादमकुर्वताम् ॥ कञ्चित्कालञ्च गोपालौ गुञ्जातापिच्छभूषितौ ॥ ६७ ॥ रेमातेबहुकालं तौ गोकुलेरामकेशवौ ॥ कंसःकदाचिदक्रूरंगोकुलेरामकेशवौ ॥ ६८ ॥ प्रेषयामासविप्रेन्द्राःसमानयितुमञ्जसा ॥

बालग्रहों को देशों में पठाया और वे सब बालकों के ग्रह नन्द के गोकुल को गये ॥ ६३ । ६४ ॥ और उससमय श्रीकृष्णजी से मारेहुये वे सब यमराज के स्थान को गये तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! कुछ दिनों के बीतने पर ॥ ६५ ॥ उससमय बलभद्र व श्रीकृष्णजी गोकुलमें बढ़तेभये और शत्रुविनाशक उन दोनों ने अनेक बालकों की क्रीड़ाओं से खेल किया ॥ ६६ ॥ व कुछ समय तक बछड़ों के पालक उन दोनोंने वेणुशब्द को किया और कुछ दिनों तक गौवों के पालक होतेहुये वे दोनों घुंघुची व मयूरपंखों से भूषित हुये ॥ ६७ ॥ उन बलराम व श्रीकृष्णजी ने बहुत समय तक गोकुल में क्रीडा किया व किसी समय हे द्विजेन्द्रो ! बलभद्र व श्रीकृष्ण को लिवाने

के लिये कंस ने अक्रूर को गोकुल में पठाया और वे अक्रूरजी कंस की आज्ञा से बलभद्र व श्रीकृष्णजी को गोकुल से सोने के बाहरी द्वार से शोभित मथुरापुरी को लेआये ॥ ६८ । ६९ ॥ तदनन्तर वे अक्रूरजी बलभद्र व श्रीकृष्णजीको लाकर उनसे आगे पुरीको गये और कंसको देखकर उससे कार्यको कहकर पश्चात् अपने घर में प्रवेश करतेभये ॥ ७० ॥ इस के अनन्तर दूसरे दिन दुपहर के बाद वे वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण व बलभद्रजी प्यारे गोपपुत्रोंसमेत शहरपनाह व परिखा से संयुत तथा पुरद्वार व अटारियोंसमेत मथुरापुरी को आये ॥ ७१ ॥ और नगरनारिसमूहों के स्तोत्रों को सुनतेहुये श्रीकृष्णजी ने बलभद्रसमेत यकायक धनुष के स्थान को जाकर

आनयामासचाक्रूरो रामकृष्णौसगोकुलात् ॥ मथुरांकंसनिर्देशात्स्वर्णतोरणराजिताम् ॥ ६९ ॥ ततःसमानीयसराम केशवौ ययौपुरींगान्दिनिजस्तदग्रे ॥ दृष्ट्वा च कंसंविनिवेद्यकार्यं तस्मैस्वगेहंप्रविवेशपश्चात् ॥ ७० ॥ अथापराह्णे वसुदेवपुत्रावन्येद्युरिष्टैःसहगोपपुत्रैः ॥ उपेयतुःसालनिखातयुक्तां सगोपुराट्टांमथुरापुरींतौ ॥ ७१ ॥ स्तोत्राणिशृण्वन्पु रयोषितानि कृष्णस्तु रामेणसहैवगत्वा ॥ धनुर्निवेशंसहसैवतत्र ददर्श चापञ्चमहद्दृढज्यम् ॥ ७२ ॥ विद्राव्यसर्वानपि चापपालान्धनुःसमादायसलीलयाशु ॥ मौर्व्यांनियोक्तुंनमयाञ्चकार तदन्तरेभग्नमभूद्द्विधैव ॥ ७३ ॥ कोदण्डभङ्गोत्थि तशब्दमाशु श्रुत्वाभियातान्बलिनोनिहन्तुम् ॥ निजघ्नतुस्तौप्रतिगृह्यखण्डौ चापस्यपालान्बलिनौद्विजेन्द्राः ॥ ७४ ॥ ततः कुवलयापीडं गजंद्वारिस्थितंक्षणात् ॥ ७५ ॥ निहत्यरामकृष्णौतौ महाबलपराक्रमौ ॥ तस्यदन्तौसमुत्पाट्य दधा नौकरयोर्द्वयोः ॥ ७६ ॥ अंसेनिधायतौदन्तौ रङ्गंप्रययतुःक्षणात् ॥ निहत्यमल्लञ्चाणूरं मुष्टिकंतौबलन्तथा ॥ ७७ ॥ अन्यां

वहां बड़े भारी व पुष्ट पंचवाले धनुष को देखा ॥ ७२ ॥ और सभी धनुष के रक्षकों को भगाकर उन श्रीकृष्णजी ने शीघ्रही पंच में लगाने के लिये लीला से धनुष को लेकर झुकादिया व उसी समय टूटाहुआ धनुष दो खण्ड होगया ॥ ७३ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! धनुष टूटने से उत्पन्न शब्द को सुनकर शीघ्रही आयेहुये धनुष के बलवान् रक्षकोंको उन पराक्रमी श्रीकृष्ण व बलभद्रजी ने धनुषके खण्डों को लेकर मारडाला ॥ ७४ ॥ तदनन्तर द्वारपै स्थित कुवलयापीड हाथी को क्षणभर में ॥ ७५ ॥ उन बड़े बली व पराक्रमी श्रीकृष्ण व बलभद्रजी ने मारकर उस के दांतों को उखाड़कर दोनों हाथों में धारण किया ॥ ७६ ॥ और उन दांतों को कन्धे पै

धरकर क्षणभर में रंगभूमिको गये और उन्होंने चाणूर व मुष्टिक और बल योधा को मारकर ॥ ७७ ॥ अन्य श्रेष्ठ मल्लों को यमस्थान में प्राप्त किया तब वे दोनों शीघ्र ही ऊंचे मंचपै चढ़गये ॥ ७८ ॥ और उस ऊंचे आसन पै बैठेहुये कंस के समीप आकर उसको तिनुका के समान समझकर स्थित हुये जैसे कि दो सिंह क्षुद्र मृग के समीप स्थित होवैं ॥ ७९ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजी ने मंच के ऊपर बैठेहुये कंस को खींचकर पैरों को पकड़कर वेग से आकाश में घुमाया ॥ ८० ॥ तदनन्तर उन श्रीकृष्णजी न प्राणों से रहित उस कंसको पृथ्वी में गिरादिया व हे ब्राह्मणो! बलभद्रजी ने भी कंसके आठ भाइयोको घूंसासे मारा ॥ ८१ ॥ इसप्रकार शत्रुसेना के विना-

श्च मल्लप्रवराञ्जिन्यतुर्यमसादनम् ॥ समारुरोहतुस्तूर्णं तुङ्गमञ्चञ्च तौ तदा ॥ ७८ ॥ तत्रतुङ्गेसमासीनमासनेकंसमेत्यतौ ॥ तस्थतुस्तंतृणीकृत्य सिंहौक्षुद्रमृगंयथा ॥ ७९ ॥ ततःकंसंसमाकृष्य कृष्णोमञ्चोपरिस्थितम् ॥ पादौगृहीत्वावेगेन भ्रामयामासचाम्बरे ॥ ८० ॥ ततस्तंपातयामास सभूमौगतजीवितम् ॥ कंसभ्रातॄन्बलोप्यष्टौ निजघ्नेमुष्टिना द्विजाः ॥ ८१ ॥ एवंनिहत्यतंकंसं कृष्णःपरबलार्दनः ॥ पितरौमोचयामास निगडादर्तिदुःखितौ ॥ ८२ ॥ सर्वानाश्वास यामास बलेनसहमाधवः ॥ श्रीकृष्णेनहतंकंसं श्रुत्वाप्रापुःपुरींतदा ॥ ८३ ॥ बान्धवामथुरायांये पूर्वकंसेनबाधिताः ॥ उग्र सेनंतथाराज्ये स्थापयामासकेशवः ॥ ८४ ॥ असहिष्णुर्द्विजाःपित्रोरेवंकंसकृतागसम् ॥ जघानमातुलंकंसं देवब्राह्मण कण्टकम् ॥ ८५ ॥ ततःकदाचित्कृष्णोयमात्मानंद्रष्टुमागतान् ॥ नारदादीन्मुनीन्सर्वानिदंपप्रच्छसत्तमः ॥ ८६ ॥

शक श्रीकृष्णजी ने उसकंस को मारकर अतिदुःखित माता, पिता को बेड़ियों से छुड़ाया ॥ ८२ ॥ और बलभद्रसमेत श्रीकृष्णजी ने सबों को समझाया और श्रीकृष्ण से मारेहुये कंस को सुनकर वे लोग उससमय मथुरापुरी को प्राप्त हुये ॥ ८३ ॥ जो बन्धु कि पहिले मथुरापुरी में कंस से पीड़ित हुये थे और श्रीकृष्णजी ने उग्रसेन को राज्यपै स्थापित किया ॥ ८४ ॥ हे ब्राह्मणो! इसप्रकार कंस से कियेहुये माता, पिता के अपराध को न सहनेवाले श्रीकृष्णजी ने देवताओं व ब्राह्मणों के कण्टकरूप मातुल कंस को मारडाला ॥ ८५ ॥ तदनन्तर इन अतिश्रेष्ठ श्रीकृष्णजी ने अपना को देखने के लिये आयेहुये नारदादिक सब मुनियों से यह पूछा ॥ ८६ ॥

श्रीकृष्णजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! मैंने इस बड़े पापकारी मातुल कंसको मारा और उत्तम शास्त्रज्ञलोग मामूंके मारने में दोष कहते हैं॥ ८७॥ इसकारण उस दोषसे छूटने के लिये तुमलोग प्रायश्चित्त कहो हे ब्राह्मणो ! वहां नारदजी ने अद्भुतपराक्रमवाले श्रीकृष्णजी से भक्ति व प्रेमपूर्वक मीठी वाणी से कहा नारदजी बोले कि आप सदैव नित्यशुद्ध व मुक्त और बुद्ध हो ॥ ८८ । ८९ ॥ और सच्चिदानन्दरूप व परमात्मा और सनातन हो हे यादवनन्दन, कृष्णजी ! तुम्हारे पुण्य व पाप नहीं है॥ ९०॥ तथापि हे गरुडध्वज, माधव ! लोकों की शिक्षा के लिये आपको इस विधि से प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ९१ ॥ तबतक इससमय आप को लोक की मर्यादा करना चाहिये

कृष्ण उवाच ॥ मयायंमातुलोविप्रा हतःकंसोतिपापकृत्॥ मातुलस्यवधेदोषः प्रोच्यतेशास्त्रवित्तमैः ॥ ८७ ॥ प्रायश्चित्तमतोब्रूत तद्दोषविनिवृत्तये ॥ अवोचन्नारदस्तत्र कृष्णमद्भुतविक्रमम् ॥ ८८ ॥ वाचामधुरयाविप्रा भक्तिप्रणयपूर्वकम् ॥ नारद उवाच ॥ नित्यशुद्धश्च मुक्तश्च बुद्धश्चैव भवान्सदा ॥ ८९ ॥ सच्चिदानन्दरूपश्च परमात्मासनातनः ॥ पुण्यं पापञ्च ते नास्ति कृष्णयादवनन्दन॥ ९० ॥ तथापिलोकशिक्षार्थं भवतागरुडध्वज ॥ प्रायश्चित्तन्तु कर्तव्यं विधिनानेनमाधव ॥ ९१ ॥ लोकसंग्रहणंतावत्कर्तव्यंभवताधुना ॥ रामसेतौमहापुण्ये गन्धमादनपर्वते ॥ ९२ ॥ रामेणस्थापितंलिङ्गं रामनाथाभिधंपुरा ॥ तस्याभिषेकतोयार्थं धनुष्कोट्यारघूद्वहः ॥ ९३ ॥ गांभित्त्वोत्पादयामास तीर्थंकोटीतिविश्रुतम् ॥ तवपूर्वावतारेण रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ ९४ ॥ ब्रह्महत्याविशुद्ध्यर्थं निर्मितंस्वयमेवयत् ॥ तत्रस्नानंकुरुष्वत्वं धर्म्येपापविनाशने ॥ ९५ ॥ तेनतेमातुलवधाद्दोषःशीघ्रंविनश्यति ॥ कोटितीर्थेहरेःस्नानं ब्रह्महत्यादिशोध

रामसेतु में महापवित्र गन्धमादनपर्वत पै ॥ ९२ ॥ पुरातनसमय श्रीरामजी ने रामनाथनामक लिंगको स्थापन किया और उस लिंग के स्नान के निमित्त जल के लिये रघुनायकजी ने धनुषकी कोटि से॥ ९३॥ पृथ्वीको फोड़कर कोटि ऐसे प्रसिद्ध तीर्थको उत्पन्न किया तुम्हारे सहज कर्मवाले पहिले के रामावतार से॥ ९४॥ ब्रह्महत्यादिक से शुद्धि के लिये आपही जो बनायागया है उस पापनाशक व धर्मवान् तीर्थमें तुम स्नानकरो ॥ ९५॥ उससे मामूं के मारनेसे तुम्हारा दोष शीघ्रही नाश होगा विष्णु के कोटितीर्थ

में स्नान ब्रह्महत्यादिकों का शोधक है॥ ९६॥ और स्वर्ग व मोक्ष को देनेवाला तथा पुरुषों के आयुर्बल व नीरोगता को बढ़ानेवाला है इसप्रकार नारदमुनि के वचन को सुनकर वे श्रीकृष्णजी॥ ९७॥ हे ब्राह्मणो! उन सब ब्राह्मणोंको बिदाकर उसी क्षण अपने दोषकी शुद्धि के लिये शीघ्रही रामसेतुपै गये॥ ९८॥ और कुछ दिनोंमें कोटितीर्थ को जाकर यदुनाथ श्रीकृष्णजी संकल्पपूर्वक नहाकर व अनेकों दानों को देकर॥ ९९॥ वे श्रीकृष्णजी मामूं के वध से उपजेहुये दोषोंसे क्षणभर में छूटगये और रामनाथ को सेवन कर अपनी मथुरापुरीको चलेगये॥ १००॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनीश्वरो! ऐसा प्रभाववान् व पवित्र कोटितीर्थ है इसके समान पृथ्वी में अन्य

कम्॥ ९६॥ स्वर्गमोक्षप्रदंपुंसामायुरारोग्यवर्द्धनम्॥ इतिश्रुत्वामुनेर्वाक्यं नारदस्यसमाधवः॥ ९७॥ विसृज्यतानृषीन्सर्वांस्तस्मिन्नेवक्षणेद्विजाः॥ रामसेतौययौतूर्णं स्वदोषपरिशुद्धये॥ ९८॥ दिनैःकतिपयैर्गत्वा कोटितीर्थंयदूद्वहः॥ स्नात्वासङ्कल्पपूर्वं च दत्त्वादानान्यनेकशः॥ ९९॥ समातुलवधोत्पन्नदोषेभ्योमुमुचेक्षणात्॥ निषेव्यरामनाथं च स्वपुरंमथुरांययौ॥ १००॥ श्रीसूत उवाच॥ एवंप्रभावंपुण्यञ्च कोटितीर्थंमुनीश्वराः॥ नानेनसदृशंतीर्थमन्यदस्तिमहीतले॥ १॥ अत्रस्नानात्त्रयोदेवा ब्रह्मविष्णुशिवाद्विजाः॥ प्रीताःस्युरन्येदेवाश्च नात्रकार्याविचारणा॥ २॥ एवंवःकथितंचित्रं कोटितीर्थस्यवैभवम्॥ यच्छ्रुत्वासर्वपापेभ्यो मुच्यतेमानवोभुवि॥ ३॥ श्रुत्वेमंपुण्यमध्यायं पठित्वा च मुनीश्वराः॥ ब्रह्महत्यादिभिःसत्यं मुच्यतेपातकैर्नरः॥ १०४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येकोटितीर्थप्रशंसायां कृष्णस्यमातुलवधदोषशान्तिर्नामसप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥ * ॥ * ॥ * ॥

तीर्थ नहीं है॥ १॥ हे ब्राह्मणो! इस तीर्थ में नहाने से ब्रह्मा, विष्णु व शिव तीनों देवता और अन्य देवता भी प्रसन्न होते हैं इस में विचार न करना चाहिये॥ २॥ इसप्रकार तुमलोगों से कोटितीर्थ का अद्भुत प्रभाव कहागया जिसको सुनकर मनुष्य पृथ्वी में सब पापों से छूटजाता है॥ ३॥ हे मुनीश्वरो! इस पवित्र अध्याय को सुनकर व पढ़कर मनुष्य ब्रह्महत्यादिक पातकों से सत्यही छूटजाता है॥ १०४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकोटितीर्थप्रशंसायां कृष्णस्यमातुलवधदोषशान्तिर्नामसप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो०। साध्यामृत में न्हाय जिमि लह्यो उर्वशिहि भूप। अट्ठाइसवें में सोई बरण्यो चरित अनूप ॥ श्रीसूतजी बोले कि केवल महापवित्र कोटितीर्थ को सेवन कर तद-
नन्तर जितेन्द्रिय मनुष्य नहाने के लिये साध्यामृततीर्थ को जावै ॥ १ ॥ गन्धमादनपर्वतपै साध्यामृत महातीर्थ महापुण्य के फलको देनेवाला व महादुःखोंको नाश करने
वाला है ॥ २ ॥ व मनुष्योंके पातकों का नाशक व सब मनोरथों का दायक है जिसमें भक्तिसे नहाकर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है ॥ ३ ॥ तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ
व दानों से उस गति को मनुष्य नहीं पाता है कि जिसको साध्यामृततीर्थ में मज्जनसे पाता है ॥ ४ ॥ उत्तम साध्यामृत के जलों से जिनके अंग छुयेगये हैं उनके शरीर

श्रीसूत उवाच ॥ कोटितीर्थंमहापुण्यं सेवित्वाकेवलंनरः ॥ स्नातुंजितेन्द्रियस्तीर्थं ततःसाध्यामृतंव्रजेत् ॥ १ ॥ साध्या
मृतंमहातीर्थं महापुण्यफलप्रदम् ॥ महादुःखप्रशमनं गन्धमादनपर्वते ॥ २ ॥ अस्तिपापहरंपुंसां सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥
यत्रस्नात्वानरोभक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ३ ॥ तपसाब्रह्मचर्येण यज्ञैर्दानेन वा पुनः ॥ गतिंतां न लभेन्मर्त्यो यां
साध्यामृतमज्जनात् ॥ ४ ॥ स्पृष्टानियेषामङ्गानि साध्यामृतजलैःशुभैः ॥ तेषांदेहगतंपापं तत्क्षणादेवनश्यति ॥ ५ ॥
साध्यामृतजलेयस्तु साघमर्षणकृन्नरः ॥ सविधूयेहपापानि विष्णुलोकेमहीयते ॥ ६ ॥ पूर्ववयसिपापानि कृत्वाकर्माणि
योनरः ॥ पश्चात्साध्यामृतंसेवेत्पश्चात्तापसमन्वितः ॥ ७ ॥ अन्तेवयसिमुक्तःस्यात्सनरो नात्र संशयः ॥ साध्यामृतेनरः
स्नात्वा देहबन्धाद्विमुच्यते ॥ ८ ॥ साध्यामृतजलेस्नाता मनुष्याःपापकर्मिणः ॥ अनेकक्लेशघोराणि नरकाणि न
यान्ति हि ॥ ९ ॥ साध्यामृतजलेस्नानात्पुंसांयास्याद्गतिर्द्विजाः ॥ न सागतिर्भवेद्यज्ञैर्न वेदैःपुण्यकर्मभिः ॥ १० ॥ याव

में प्राप्त पातक उसी क्षण नाश होजाता है ॥ ५ ॥ जो मनुष्य साध्यामृततीर्थ के जलमें अघमर्षण करता है वह इस संसार में पातकों को नाश करके विष्णुलोक में पूजा
जाता है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य पहिली अवस्था में पापकर्मों को करके पश्चात् अन्तावस्था में पश्चात्तापसे संयुत होकर साध्यामृततीर्थ को सेवता है वह मनुष्य मुक्त होजाता है
इसमें सन्देह नहीं है साध्यामृततीर्थ में नहाकर मनुष्य शरीर के बन्धनसे छूटजाता है ॥ ७ । ८ ॥ साध्यामृततीर्थ के जल में नहायेहुये पापकर्मी मनुष्य अनेकों क्लेशों से
भयंकर नरकों को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणो ! साध्यामृततीर्थ के जलमें नहाने से पुरुषों की जो गति होती है वह गति यज्ञों से व वेदों तथा पुण्यकर्मों से

नहीं होती है ॥ १० ॥ जबतक मनुष्योंकी अस्थि साध्यामृततीर्थ के जलमें स्थित होती है उतने वर्षोंतक वे मनुष्य शिवलोक में सुपूजित होकर स्थित होते हैं ॥ ११ ॥ जैसे तीव्र अन्धकारको नाशकर सूर्यनारायण उदय में शोभित होते हैं वैसेही साध्यामृततीर्थ में नहानेवाला मनुष्य पापों को नाश करके शोभित होता है ॥ १२ ॥ और इस तीर्थ में नहानेवाला मनुष्य सदैव चाहेहुये मनोरथों को पाता है पुरातनसमय जिस महापवित्र तीर्थ में नहाकर पुरूरवा राजा ने ॥ १३ ॥ तुम्बुरु के शाप से उपजेहुये उर्वशी के साथ वियोग को त्याग किया है ऋषिलोग बोले कि हे महाभाग, सूतजी ! देवांगना उर्वशी के साथ किसप्रकार ॥ १४ ॥ पहिले मनुष्य पुरूरवा

दस्थिमनुष्याणां साध्यामृतजलेस्थितम् ॥ तावद्वर्षाणितिष्ठन्ति शिवलोकेसुपूजिताः ॥ ११ ॥ अपहत्यतमस्तीव्रं यथा भात्युदयेरविः ॥ तथासाध्यामृतस्नायी भित्त्वापापानिराजते ॥ १२ ॥ वाञ्छितांल्लँभतेकामानत्रस्नातोनरःसदा ॥ यत्र स्नात्वामहापुण्ये पुराराजापुरूरवाः ॥ १३ ॥ विप्रयोगंसहोर्वश्या जहौतुम्बुरुशापजम् ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथंसूतमहा भाग सहोर्वश्यामरस्त्रिया ॥ १४ ॥ प्रथमंलब्धवान्योगं मर्त्योराजापुरूरवाः ॥ विप्रयोगंसहोर्वश्या जहौतुम्बुरुशाप जम् ॥ १५ ॥ हेतुनाकेनराजानं शशापतुम्बुरुर्मुनिः ॥ एतत्सर्वंसमाचक्ष्व विस्तरान्मुनिपुङ्गव ॥ १६ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ आ सीत्पुरूरवानाम शक्रतुल्यपराक्रमः ॥ राजराजसमोराजा पुराह्यमरपूजितः ॥ १७ ॥ धर्मतःपालयामास मेदिनींसपुरू त्तमः ॥ ईजे च बहुभिर्यज्ञैर्ददौदानानिसर्वदा ॥ १८ ॥ प्रशासतिमहींसर्वां राज्ञितस्मिन्महामतौ ॥ मित्रावरुणशापेन भुवं प्रापोर्वशीद्विजाः ॥ १९ ॥ साचचारोर्वशीतत्र राज्ञस्तस्यपुरान्तिके ॥ कोकिलालापमधुरवीणयोपवनेजगौ ॥ २० ॥

राजाने संयोगको पाया व किसप्रकार तुम्बुरु के शाप से उपजेहुये उर्वशी के साथ वियोग को त्याग किया है ॥ १५ ॥ हे मुनिपुंगव ! तुम्बुरुमुनि ने किसकारण से राजा को शाप दिया है इस सब चरित्र को विस्तार से कहिये ॥ १६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि पुरातनसमय इन्द्र के समान पराक्रमी व देवताओं से पूजित राजराज के समान पुरूरवानामक राजा हुआ है ॥ १७ ॥ उस पुरूरवाने धर्म से पृथ्वी को पालन किया व बहुत यज्ञों से पूजन किया तथा सदैव दानों को दिया ॥ १८ ॥ हे ब्राह्मणो ! जब वह महाबुद्धिमान् राजा सब पृथ्वी को पालन करता था तब मित्रावरुण के शाप से उर्वशी पृथ्वी को प्राप्त हुई ॥ १९ ॥ और वह उर्वशी वहां उस राजा के

नगर के समीप घूमनेलगी और उसने कोकिला के आलाप के समान मधुर वीणा से उपवन में गान किया॥ २० ॥ और सैकड़ों स्त्रियों से घिराहुआ वह राजा किसीसमय उपवन में जाने के लिये कौतुक को धारण कर घोड़ेपै चढ़कर चला ॥ २१ ॥ वहां हाथभर कटिवाली इस वैसी उर्वशी से इस राजा ने यह कहा कि मेरी स्त्री होवो॥ २२ ॥ वहां काम से विकल उस उर्वशी ने राजा से कहा कि हे नरश्रेष्ठ ! यदि आप मेरी प्रतिज्ञा करोगे तो ऐसाही होगा और कौतुक को धारण किये हुई मैं तुम्हारे समीप बसूंगी उस राजा ने भी यह कहा कि हे सुभ्रु ! मैं तुम्हारी प्रतिज्ञाको करूंगा॥ २३ । २४ ॥ इसके अनन्तर उत्कण्ठित उर्वशी ने उस पुरूरवा से कहा

सराजोपवनेगन्तुं कदाचिद्धृतकौतुकः॥आरूढतुरगःप्रायाल्ललनाशतसंवृतः॥ २१॥ तादृशीमुर्वशींतत्र करसम्मितमध्य माम्॥ उवाचचैनांराजासौ भार्याममभवेति वै॥ २२॥ सापिकामातुरातत्र राजानंप्रत्यभाषत॥ भवत्वेवंनरश्रेष्ठ समयं यदिमेभवान्॥ २३॥ करिष्यतितवाभ्याशे वत्स्यामिधृतकौतुका॥ करिष्येसमयंसुभ्रु तवाहमितिसोब्रवीत्॥ २४॥ अ थोर्वशीबभाषेतं पुरूरवसमुत्सुका॥ पुत्रभूतंममयदि रक्षस्युरणकद्वयम्॥ २५॥ न नग्नंददृशेराजन्दृश्यसेयदि वै तथा॥ नोच्छिष्टंममदद्याश्चेत्तदावत्स्येतवान्तिके॥ २६॥ घृतमात्राशनाचाहं भविष्यामिनृपोत्तम॥ एवमस्त्वितिराजोक्ता तां निनायनिजंगृहम्॥ २७॥ अलकायांसभूपालस्तथाचैत्ररथेवने॥ रेमेसरस्वतीतीरे पद्मषण्डमनोरमे॥ २८॥ एकषष्टिं सवर्षाणि रममाणस्तयानयन्॥ तेनोर्वशीप्रतिदिनं वर्धमानानुरागिणी॥२६॥ स्पृहां न देवलोकेपि चकारतनुमध्यमा॥

कि यदि मेरे पुत्रभूत दो भेड़ों की रक्षा करोगे॥ २५॥ व हे राजन्! यदि मैं तुम को नग्न न देखूंगी और यदि वैसेही याने वस्त्रसमेत खेपडादेगे व यदि तुम मुझ को उच्छिष्ट न दोगे तो मैं तुम्हारे समीप बसूंगी॥ २६॥ व हे नृपोत्तम ! मैं केवल घृतही भोजन करूंगी ऐसा होगा यह कहकर राजा उस उर्वशी को अपने घरको लेआया॥२७॥ और उस राजाने अलकापुरी में व चैत्ररथवन में तथा कमलसमूहों से शोभित सरस्वती के किनारे रमण किया ॥ २८॥ और उसके साथ रमण करतेहुये उस पुरूरवा राजा ने इकसठि वर्षों को व्यतीत किया व उस राजा से प्रतिदिन बढ़ेहुये अनुरागवाली ॥ २६ ॥ व सूक्ष्म कटिवाली उर्वशी ने सुरलोक में भी अभिलाष नहीं किया

और उस उर्वशी के बिना यह सुरलोक मनोहर न हुआ ॥ ३० ॥ इसकारण उस उर्वशी को सुरलोक को लाऊंगा हे ब्राह्मणो! विश्वावसु यह विचारकर क्षणभर में पृथ्वीलोक को गया॥ ३१॥ और राजा के साथ उर्वशी की प्रतिज्ञा को जानकर यह विश्वावसु गन्धर्वोंसमेत रात्रि के मध्य में आया॥ ३२॥ और उसने उर्वशी की शय्या के समीप से वेगही से भेंड़े को ग्रहण किया तब आकाश में लियेजाते हुये उसके शब्द को सुनकर उर्वशी ने ॥ ३३ ॥ कहा कि मेरे पुत्र को कौन पकड़े लिये जाता है इस को छोड़देवो बुद्धिरहित व बिन नाथवाली मैं किस मनुष्य की शरण जाऊं ॥ ३४ ॥ पुरूरवा उसके वचन को रात्रि के मध्य में सुनकर इसकारण उससमय नहीं

नाभवद्रमणीयोसौ देवलोकस्तयाविना॥ ३०॥अतस्तामानयिष्यामि देवलोकमितिद्विजाः॥ विश्वावसुर्विचार्यैवं भूलोकमगमत्क्षणात्॥ ३१॥ उर्वश्याःसमयंराज्ञा विश्वावसुरयंसह॥ विदित्वासहगन्धर्वैः समवेतोनिशान्तरे॥ ३२॥ उर्वश्याःशयनाभ्याशाज्जग्राहोरणकञ्जवात्॥ आकाशेनीयमानस्य तस्यश्रुत्वोर्वशीतदा॥ ३३॥ अब्रवीन्मत्सुतःकेन गृह्यतेत्यज्यतामयम्॥ अनाथाशरणंयामि कंनरङ्गतचेतना॥ ३४॥ पुरूरवाःसमाकर्ण्य वाक्यंतस्यानिशान्तरे॥ मां न नग्नं निरीक्षेत देवीति न ययौतदा॥ ३५॥ अथान्यमप्युरणकं गन्धर्वाःप्रतिगृह्यते॥ ययुस्तयोर्द्वयोश्चापि शब्दं श्रुत्वावचोर्वशी॥ ३६॥ अनाथायाममसुतो गृह्यतेतस्करैरिति॥ चुक्रोशदेषीपरुषं कंयामिशरणंनरम्॥ ३७॥ अमर्षवशमापन्नं श्रुत्वातद्वचनंनृपः॥ तिमिरेणावृतंसर्वमितिमत्वासखड्गधृक्॥ ३८॥ दुष्टदुष्टकुतोयासीत्यभ्यधावद्वचोवदन्॥ तावत्सौदामिनींदीप्ता गन्धर्वैर्जनिताभृशम्॥ ३९॥ तत्प्रभामण्डलैर्देवी राजानंविगताम्बरम्॥ दृष्ट्वाप्रवृत्तसमया

गये कि उर्वशी देवी मुझ को नग्न न देखै ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर वे गन्धर्व अन्य भी भेंड़े को पकड़कर चले और उन दोनों के भी शब्द को सुनकर उर्वशी ने यह वचन कहा ॥ ६ ॥ कि मुझ अनाथा के पुत्र को चोर पकड़े लिये जाते हैं उर्वशी देवी चिल्लानेलगी कि मैं किस मनुष्य के शरण में जाऊं ॥ ३७ ॥ क्रोध के वश में ...कार से सब घिरा है यह मानकर वह राजा तलवार को धारण करै ॥ ३८ ॥ इस वचन को कहताहुआ दौड़ा कि हे दुष्ट! हे दुष्ट!! कहां ... कीहुई बिजली बहुतही प्रकाशित हुई ॥ ३९ ॥ व उस के प्रभामण्डलों से उर्वशी देवी राजा को वसनहीन (नग्न) देखकर प्रतिज्ञामें

प्रवृत्त होकर उसी क्षण चलीगई ॥ ४० ॥ और वहीं भेंड़ों को छोड़कर गन्धर्व भी चलेगये व राजा भेंड़ों को लेकर प्रसन्न होकर अपनी शय्या के समीप ॥ ४१ ॥ आये व उन्हों ने वहां विशाललोचनी उर्वशी को नहीं देखा व उस को न देखकर नग्न पुरूरवा उन्मत्त की नाईं पृथ्वी में घूमनेलगे ॥ ४२ ॥ और राजा कुरुक्षेत्र को गये व उन्हों ने कमलों से संयुत तड़ाग में चार अप्सरा स्त्रियोंसमेत खेलतीहुई उस उर्वशी को देखा ॥ ४३ ॥ व हे मनसे भयंकारिणि, जाये ! खड़ी होवो ऐसा बारबार कहते हुये इसभांति बहुत प्रकार से उत्तम उक्तिसमेत राजा बकतेरहे ॥ ४४ ॥ व अप्सरागणोंसमेत खेलतीहुई उर्वशी ने उस राजासे कहा कि हे अनघ, महाराज ! तुम्हारे

तत्क्षणादेवनिर्ययौ ॥ ४० ॥ त्यक्त्वाह्युरणकौतत्र गन्धर्वा अपि निर्ययुः ॥ राजामेषौसमादाय हृष्टःस्वशयनान्तिकम् ॥ ४१ ॥ आगतोनोर्वशींतत्र ददर्शायतलोचनाम् ॥ ताञ्चापश्यद्विवस्त्रश्च बभ्रामोन्मत्तवद्भुवि ॥ ४२ ॥ कुरुक्षेत्रंगतोराजा तटाकेपद्मसंकुले ॥ चतुर्भिरप्सरस्त्रीभिः क्रीडमानांददर्शताम् ॥ ४३ ॥ हेजायेतिष्ठमनसा घोरेतिव्याहरन्मुहुः ॥ एवं बहुप्रकारं वै ससूक्तंप्रलपन्नृपः ॥ ४४ ॥ अब्रवीदुर्वशीतञ्च क्रीडन्तीसाप्सरोगणैः ॥ महाराजालमेतेन चेष्टितेनतवानघ ॥ ४५ ॥ त्वत्तोगर्भिण्यहंपूर्वमब्दान्तेभवतात्र वै ॥ आगन्तव्यंकुमारस्ते भविष्यत्यतिधार्मिकः ॥ ४६ ॥ एकांविभावरीं राजंस्त्वयावत्स्यामि वै तदा ॥ इत्युक्तोनृपतिर्हृष्टः स्वपुरींप्राविशद्द्विजाः ॥ ४७ ॥ तासामप्सरसांसा तु कथयामासतंनृपम् ॥ अयंसपुरुषश्रेष्ठो येनाहंकामरूपिणा ॥ ४८ ॥ एतावन्तंमहाकष्टमनुरागवशातुरा ॥ उषितास्मिसहानेन सख्यो नृपतिनाचिरम् ॥ ४९ ॥ एवमुक्तास्ततःसख्यस्तामूचुःसाधुसाध्विति ॥ अनेनसाकं स्थास्यामः सर्वकालंवयंसखि ॥ ५० ॥

इस कर्म से कुछ न होगा ॥ ४५ ॥ पहिले मैं तुम से गर्भवती हुई हूं और वर्षभर के अन्त में तुम को यहां आना चाहिये व तुम्हारे बड़ा धर्मवान् पुत्र होगा ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! उससमय मैं तुमसमेत एक रात्रि बसूंगी हे ब्राह्मणो ! ऐसा कहाहुआ राजा प्रसन्न होकर अपनी पुरी में पैठगया ॥ ४७ ॥ और उस उर्वशी ने उस राजा को उन अप्सराओं से कहा कि यह वही पुरुषोत्तम है कि जिस कामरूपी से मैंने ॥ ४८ ॥ अनुराग के वश व आतुर होकर इतने बड़े कष्ट को पाया व हे सखियो ! इस राजा के साथ मैंने बहुत दिनों तक निवास किया है ॥ ४९ ॥ तदनन्तर ऐसा कहीहुई सखियों ने उस उर्वशी से यह कहा कि बहुत अच्छा बहुत अच्छा हे सखि ! इसके साथ

हम सब बहुत समय तक स्थित होवैंगी ॥ ५० ॥ उससमयवहां अप्सराओं ने उर्वशी सखी से यह कहा इसके अनन्तर वर्ष पूर्ण होनेपर राजा भी तड़ाग के समीप आया ॥ ५१ ॥ व आयेहुये पुरूरवा राजा को देखकर प्रसन्नमनवाली उर्वशी ने उसके लिये आयुषनामक पुत्र को दिया ॥ ५२ ॥ और उस अनुरागवती उर्वशी ने उस राजासमेत एक रात निवास किया और उस उर्वशी ने पांच पुत्रों को देनेवाले गर्भ को शीघ्रही उस राजा से पाया ॥ ५३ ॥ और उत्तम स्त्री उर्वशी ने इस राजा से कहा कि हे भूपते ! मेरी प्रीति से गन्धर्वलोग तुम को वर देवैंगे ॥५४॥ हे राजर्षिसत्तम ! आप उनसे वरको मांगिये उससे ऐसा कहेहुये राजाने उत्तम गन्धर्वों से कहा ॥ ५५ ॥ कि

इत्यूचुरुर्वशींतत्र सखीमप्सरसस्तदा ॥ अब्देथपूर्णेराजापि तटाकान्तिकमाययौ ॥ ५१ ॥ आगतन्नृपतिंदृष्ट्वा पुरूरवसमुर्वशी ॥ कुमारमायुषंतस्मै ददौसम्प्रीतमानसा ॥ ५२ ॥ तेनसाकंनिशामेकामुषितासानुरागिणी ॥ पञ्चपुत्रप्रदंगर्भं तस्मादापाशुसोर्वशी ॥ ५३ ॥ उवाचचैनंराजानमुर्वशीपरमाङ्गना ॥ वरंदास्यन्तिगन्धर्वा मत्प्रीत्यातवभूपते ॥ ५४ ॥ भवताप्रार्थ्यतान्तेभ्यो वरंराजर्षिसत्तम ॥ इत्युक्तःसतयाराजा प्राहगन्धर्वसत्तमान् ॥ ५५ ॥ अहंसम्पूर्णकोशश्च विजितारातिमण्डलः ॥ सलोकतांविनोर्वश्याः प्राप्तव्यंनान्यदस्तिमे ॥ ५६ ॥ अतस्तयासहोर्वश्या कालंनेतुमहंवृणे ॥ एवमुक्तेनृपेणाथ गन्धर्वास्तुष्टमानसाः ॥ ५७ ॥ अग्निस्थालींप्रदायास्मै प्रोचुश्चैनंनृपन्तदा ॥ गन्धर्वा ऊचुः ॥ अग्निंवेदानुसारीत्वं त्रिधाकृत्वान्नृपोत्तम ॥ ५८ ॥ इष्ट्वायज्ञेन चोर्वश्याः सालोक्यंयाहिभूपते ॥ इतीरितस्तैरादाय स्थालीमग्नेर्ययौनृपः ॥ ५९ ॥ अहोबतातिमूढोहमितिमध्येवनंनृपः ॥ उर्वशी न मयालब्धा वह्निस्थाल्या तु किं फलम् ॥ ६० ॥

सम्पूर्ण ख़ज़ानेवाला मैं शत्रुमण्डल को जीते हूं और उर्वशी की सलोकता के सिवा मुझको अन्य प्राप्त होने योग्य वस्तु नहीं है ॥ ५६ ॥ इसकारण उस उर्वशी के साथ समयको व्यतीत करने के लिये मैं याचना करता हूं राजासे ऐसा कहनेपर प्रसन्नमनवाले गन्धर्वों ने ॥ ५७ ॥ इस के लिये अग्निस्थाली को देकर उससमय उस राजासे कहा गन्धर्वलोग बोले कि हे नृपोत्तम ! वेदके अनुगामी तुम अग्नि के तीन विभाग करके ॥ ५८ ॥ हे भूपते ! यज्ञसे पूजन कर उर्वशी की सलोकता को प्राप्त होवो उनसे इसप्रकार कहेहुये राजा अग्नि की स्थाली को लेकर चलेगये ॥ ५९ ॥ व राजा ने वनके मध्य में यह विचार किया अहो बड़े कष्ट की बात है कि मैं बड़ा मूर्ख हूं

क्योंकि मैंने उर्वशी को नहीं पाया तो अग्निस्थाली से क्या फल हुआ ॥ ६० ॥ वन में अग्निस्थाली को धरकर राजा अपने नगर को चलागया और आधी रात बीतने पर निद्रारहित इसने आपही विचार किया ॥ ६१ ॥ कि उर्वशी के लोक की सिद्धि के लिये मुझ को श्रेष्ठ गन्धर्वों ने अग्निस्थाली को दिया था उसको मैंने वन में त्याग करदिया ॥ ६२ ॥ मैं अग्निस्थाली को फिर लाऊंगा यह विचारकर उठकर वनको गया व उस वन में इस पुरूरवाने अग्निस्थाली को नहीं देखा ॥ ६३ ॥ इस के अनन्तर अग्नि के स्थान में उस राजाने शमीगर्भवाले पीपल को देखकर विचार किया कि मैंने पहिले इस वन में अग्निस्थाली को धरा था ॥ ६४ ॥ और इससमय

निधायैववनेस्थालीं स्वपुरंप्रययौन्नृपः ॥ अर्धरात्रेऽयतीतेसौ विनिद्रोचिन्तयत्स्वयम् ॥ ६१ ॥ उर्वशीलोकसिद्ध्यर्थं मम गन्धर्वपुङ्गवैः ॥ अग्निस्थालीसम्प्रदत्ता सा च त्यक्तामयावने ॥ ६२ ॥ आहरिष्येपुनस्स्थालीमित्युत्थाययययौवनम् ॥ नाग्निस्थालींददर्शासौ वनेतत्रपुरूरवाः ॥ ६३ ॥ शमीगर्भमथाश्वत्थमग्निस्थानेविलोक्यसः ॥ व्यचिन्तयन्मयास्थाली निक्षिप्तात्रवनेपुरा ॥ ६४ ॥ सा चाश्वत्थःशमीगर्भः समभूदधुनात्विह ॥ तस्मादेनंसमादाय वह्निरूपमहंपुरम् ॥ ६५ ॥ गत्वाकृत्वारणींसम्यक् तदुत्पन्नाग्निमादरात् ॥ उपास्यामीतिनिश्चित्य स्वपुरंगतवान्नृपः ॥ ६६ ॥ रमणीयारणीं चक्रे स्वाङ्गुलैःप्रमितामसौ ॥ निर्माणसमयेराजा गायत्रीमजपद्द्विजाः ॥ ६७ ॥ गायत्र्याःपठ्यमानाया यानिसन्त्य क्षराणि हि ॥ तावदङ्गुलिमर्यादामकरोदरणींन्नृपः ॥ ६८ ॥ तत्रनिर्मथनादग्नित्रयमुत्पाद्यभूपतिः ॥ उर्वशीलोकसम्प्राप्ति फलमुद्दिश्यकाङ्क्षितम् ॥ ६९ ॥ वेदानुसारीन्नृपतिर्जुहावाग्नित्रयंमुदा ॥ तेनैवचाग्निविधिना बह्वन्यज्ञानथातनोत् ॥ ७० ॥

वह अग्निस्थाली यहां शमीगर्भवाला पीपल होगया इसकारण इस अग्निरूप वृक्ष को लेकर मैं नगर को ॥ ६५ ॥ जाकर भलीभांति अरणी कर उससे पैदा हुई अग्नि को आदर से उपासना करूंगा ऐसा निश्चय कर राजा अपने नगर को चलागया ॥ ६६ ॥ और इस राजा ने अपने अंगुलों से प्रमाणभर सुन्दरी अरणी किया व हे ब्राह्मणो ! अग्नि के निर्माण के समय में राजा ने गायत्री को जपा ॥ ६७ ॥ और पढ़ीजाती हुई गायत्री के जितने अक्षर थे उतने अंगुलों की प्रमाणभर अरणी को राजाने किया ॥ ६८ ॥ और उसमें मथने से तीन अग्नियों को उत्पन्न कर राजाने चाहेहुये उर्वशी के लोक को मिलनेवाले फल को उद्देश कर ॥ ६९ ॥ वेदों के अनुगामी राजाने उससमय हर्ष

से तीन अग्नियों का आह्वान किया इसके अनन्तर उसी अग्नि की विधि से बहुत यज्ञों को किया ॥ ७० ॥ व हे द्विजोत्तमो ! उससे गन्धर्वों के लोकों को पाकर राजाने बहुत समय तक सुरलोक में उर्वशी के साथ रमण किया ॥ ७१ ॥ इस के अनन्तर किसी समय बल व वृत्रासुर के विनाशक इन्द्रजी सब देवताओंसमेत सभा में अप्सराओं का नृत्य देखते थे ॥ ७२ ॥ उससमय पुरूरवा राजा भी देवताओं के मनको हरनेवाले अप्सराओं के नृत्य को देखने के लिये इन्द्र की सभा को आया ॥ ७३ ॥ उन एक एक अप्सराओं ने इन्द्र के आगे नृत्य किया इस के अनन्तर उर्वशी ने आकर इन्द्र के आगे नृत्य किया ॥ ७४ ॥ तदनन्तर नृत्य के भाव की सामर्थ्य से गर्वसंयुत

तेनगन्धर्वलोकांश्च सम्प्राप्यजगतीपतिः ॥ सहोर्वश्याचिरंरेमे देवलोकेद्विजोत्तमाः ॥ ७१ ॥ अथसर्वामरोपेतः कदाचिद्बलवृत्रहा ॥ नृत्यं सुराङ्गनानां वै व्यलोकयतसंसदि ॥ ७२ ॥ पुरूरवान्नृपोप्यायात्तदादेवेन्द्रसंसदम् ॥ द्रष्टुंसुराङ्गनानृत्यं मनोहारिदिवौकसाम् ॥ ७३ ॥ एकैकशस्ताःशक्रस्य ननृतुःपुरतोङ्गनाः ॥ अथोर्वशीसमागत्य ननर्तपुरतोहरेः ॥ ७४ ॥ नृत्याभिनयसामर्थ्यगर्वयुक्ताततोर्वशी ॥ तंपुरूरवसंदृष्ट्वा जहासातिमनोहरा ॥ ७५ ॥ जहासतत्रराजापि तांविलोक्यततोर्वशीम् ॥ हाससङ्कुपितस्तत्र नाट्याचार्योथतुम्बुरुः ॥ ७६ ॥ शशापतावुभौकोपादुर्वशीञ्च नृपोत्तमम् ॥ तुम्बुरुरुवाच ॥ अनेकदेवसम्पूर्णसभायामत्रयत्कृतम् ॥ ७७ ॥ युवाभ्यांहसितंनृत्यमध्येनिष्कारणंवृथा ॥ तस्माज्झटितिराजेन्द्र वियोगोयुवयोःक्षणात् ॥ ७८ ॥ भूयादितिशशापैनं सर्वदैवतसन्निधौ ॥ अथशप्तोनृपस्तत्र नाट्याचार्येणदुःखितः ॥ ७९ ॥ जगामशरणंतत्र पाहिपाहीतिवज्रिणम् ॥ उवाचदीनयावाचा पुरुहूतंपुरूरवाः ॥ ८० ॥

अत्यन्त मनोहारिणी उर्वशी उन पुरूरवा को देखकर हँसनेलगी ॥ ७५ ॥ तदनन्तर उस उर्वशी को देखकर वहां राजा भी हँसनेलगा इसके अनन्तर नाट्य का आचार्य तुम्बुरु वहां हँसने से क्रोधित हुआ ॥ ७६ ॥ और उसने क्रोध से उर्वशी व उस नृपोत्तम उन दोनों को शाप दिया तुम्बुरु बोला कि अनेक देवताओं से सम्पूर्ण इस सभा में जिसलिये तुम दोनों ने नृत्य के मध्य में बिन कारण वृथा हास्य किया उसकारण हे नृपेन्द्र ! शीघ्रही क्षणभर में तुम दोनों का वियोग ॥ ७७।७८ ॥ होवै इसप्रकार सब देवताओं के समीप तुम्बुरु ने इस राजा को शाप दिया इस के अनन्तर वहां नाट्य के आचार्य तुम्बुरु से शाप दियाहुआ राजा दुःखित होकर ॥ ७९ ॥

वहां इन्द्र के शरण में गया व रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये इसप्रकार पुरूरवा ने दीनवचन से इन्द्र से कहा ॥ ८० ॥ कि हे पाकशासन ! मैंने उर्वशी के साथ सलोकता की सिद्धि के लिये यज्ञ किया है इस कारण उसका वियोग मुझ को असह्य है ॥ ८१ ॥ ऐसा कहतेहुये उन पुरूरवा राजा से इन्द्राणी के पति सहस्रलोचन ने कहा कि हे नृपोत्तम ! मैं तुम से शाप का मोक्ष कहता हूं तुम मत डरो ॥ ८२ ॥ दक्षिणसमुद्र में पवित्र गन्धमादनपै साध्यामृत ऐसा प्रसिद्ध बड़ा भारी तीर्थ है ॥ ८३ ॥ जोकि सब देवताओं से तथा सिद्धों व चारणों और किन्नरों से सेवित है व मनकादिक महायोगी व मुनिगणों से सेवित है ॥ ८४ ॥ मनुष्यों को मुक्ति, मुक्तिदायक

उर्वश्यासहसालोक्यसिद्ध्यर्थमहमिष्टवान् ॥ अतस्तस्यावियोगोमेऽसह्यःस्यात्पाकशासन ॥ ८१ ॥ इत्युक्तवन्तंतंप्राह सहस्राक्षःशचीपतिः ॥ शापमोक्षंप्रवक्ष्यामि मा भैषीस्त्वंनृपोत्तम ॥ ८२ ॥ दक्षिणाम्भोनिधौपुण्ये गन्धमादनपर्वते ॥ साध्यामृतमितिख्यातं तीर्थमस्तिमहत्तरम् ॥ ८३ ॥ सेवितंसर्वदेवैश्च सिद्धचारणकिन्नरैः ॥ सनकादिमहायोगिमुनिवृन्दनिषेवितम् ॥ ८४ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदंपुंसां सर्वशापविमोक्षदम् ॥ अस्तितीर्थंभवांस्तत्र गच्छतुत्वरयानृप ॥ ८५ ॥ सर्वेषाममृतंस्नानादत्रसाध्यंयतस्ततः ॥ साध्यामृतमितिख्यातं सर्वलोकेषुविश्रुतम् ॥ ८६ ॥ तत्रस्नानात्तवोर्वश्याः पुनर्योगोभविष्यति ॥ ममलोकेनिवासश्च भविष्यति न संशयः ॥ ८७ ॥ इतिप्रतिसमादिष्टो नृपःसंप्रीतमानसः ॥ साध्यामृतंमहातीर्थं समुद्दिश्यययौक्षणात् ॥ ८८ ॥ सस्नौसाध्यामृतेतत्र महापातकनाशने ॥ तत्रस्नानान्नरोविप्राः सद्यःशापेनमोचितः ॥ ८९ ॥ स्नानानन्तरमेवासावुर्वश्यासहसङ्गतः ॥ तयासहविमानस्थः प्रययावमरावतीम् ॥ ९० ॥

तथा सब शापों का मोक्षदायक तीर्थ है वहां आप शीघ्रता से जावो ॥ ८५ ॥ जिसलिये इसमें नहाने से सबों को अमृत साध्य है उस कारण साध्यामृत ऐसा तीर्थ सब लोकों में प्रसिद्ध है ॥ ८६ ॥ उसमें नहाने से फिर तुम्हारा व उर्वशी का मिलाप होगा और मेरे लोक में निस्सन्देह निवास होगा ॥ ८७ ॥ ऐसा कहाहुआ राजा प्रसन्नमन हुआ व साध्यामृत महातीर्थ को उद्देश कर क्षणभर में गया ॥ ८८ ॥ व हे ब्राह्मणो ! उस महापातकों के विनाशक साध्यामृततीर्थ में राजाने स्नान किया और उसमें स्नान से उसी क्षण वह शाप से छूटगया ॥ ८९ ॥ और नहाने के बाद यह पुरूरवा उर्वशी के साथ संयोग को प्राप्त हुआ और उसके साथ विमानपै बैठकर

इन्द्रपुरी को चलागया ॥ ६० ॥ फिर उसके साथ देवताओं की नाईं देवमन्दिर में उन्होंने रमण किया ऐसे प्रभाववाला वह अति उत्तम साध्यामृततीर्थ है ॥ ६१ ॥ कि जिसमें स्नान से पुरूरवा राजा उर्वशी के साथ संयोग को प्राप्त हुआ है इसकारण महापातकों के विनाशक इस तीर्थ में जो नहावैगा ॥ ६२ ॥ वह चाहेहुये मनोरथों को पावैगा व उत्तम स्वर्ग को जावैगा व हे ब्राह्मणो! यदि अकाम मनुष्य स्नान करै तो मोक्ष को पावैगा ॥ ६३ ॥ इस पवित्र व पापनाशक अध्याय को जो पढ़ता है या जो सुनता है वह मनुष्य वैकुण्ठ में स्थिति को प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥ हे ब्राह्मणो! इसप्रकार मैंने तुमलोगों से श्रद्धा करके साध्यामृततीर्थ के पापनाशक प्रभाव को

रेमेपुनस्तयासार्द्धं देववद्देवमन्दिरे ॥ एवंप्रभावंतत्तीर्थं साध्यामृतमनुत्तमम् ॥ ६१ ॥ पुरूरवाःसहोर्वश्या यत्रस्नानेन सङ्गतः ॥ अतोत्रतीर्थेयःस्नायान्महापातकनाशने ॥ ६२ ॥ वाञ्छितांल्लभतेकामान् यास्यतिस्वर्गमुत्तमम् ॥ निष्कामः स्नातिचेद्विप्रा मोक्षमाप्नोतिमानवः ॥ ६३ ॥ इमंपवित्रंपापघ्नमध्यायंपठते तु यः ॥ शृणुयाद्वा मनुष्योसौ वैकुण्ठेलभते स्थितिम् ॥ ६४ ॥ एवंवःकथितंविप्रा वैभवंपापनाशनम् ॥ साध्यामृतस्यतीर्थस्य विस्तराच्छ्रद्धयामया ॥ ६५ ॥ यत्पुरा सनकादिभ्यः प्रोक्तवांश्चतुराननः ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येसाध्यामृततीर्थप्रशंसायांपुरूरवश्शापविमोक्षणन्नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ स्नात्वासाध्यामृतेतीर्थे नृपशापविमोक्षणे ॥ सर्वतीर्थंततोगच्छेन्मनुजोनियमान्वितः ॥ १ ॥ सर्व तीर्थंमहापुण्यं महापातकनाशनम् ॥ महापातकयुक्तो वा मुक्तो वा सर्वपातकैः ॥ २ ॥ शुद्ध्येततत्क्षणादेव सर्वतीर्थनिम

विस्तार से कहा ॥ ६५ ॥ जिसको पुरातनसमय चतुर्मुख ब्रह्माजी ने सनकादिकों से कहा है ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसाध्यामृततीर्थप्रशंसायांपुरूरवश्शापविमोक्षणनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दोहा। सर्वतीर्थ में न्हाय जिमि सुचरित लोचन पाय। उन्तिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखदाय ॥ श्रीसूतजी बोले कि राजा के शाप को छुड़ानेवाले साध्यामृततीर्थ में नहाकर तदनन्तर नियमसंयुत मनुष्य सर्वतीर्थ को जावै ॥ १ ॥ सर्वतीर्थ महापवित्र व महापातकों का विनाशक है महापातकों से युक्त या सब पातकों से मुक्त भी

मनुष्य ॥ २ ॥ उसी क्षण सर्वतीर्थ में स्नान से शुद्ध होजाता है हे सुव्रतो ! शरीर में तबतक सब पाप स्थित रहते हैं ॥ ३ ॥ जबतक कि पापी पुरुष सर्वतीर्थ में नहीं नहाता है हे ब्राह्मणो ! इस सर्वतीर्थ में नहाने के लिये आतेहुये पुरुष को देखकर ॥ ४ ॥ इसकारण सब पाप कांपते हैं कि हमलोगों का विनाश होगा पृथ्वी में मनुष्य तबतक गर्भवासादिक दुःखों को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ जबतक कि हे द्विजोत्तमो ! इस सर्वतीर्थ में मनुष्य नहीं नहाता है महायज्ञों का अनुष्ठान करने से व तीर्थों के सेवन से ॥ ६ ॥ और नियमपूर्वक गायत्री आदिक महामन्त्रों के जपों से व चारो वेदों की भी सौ संख्यक आवृत्ति से ॥ ७ ॥ व

ज्जनात् ॥ तावत्सर्वाणिपापानि देहेतिष्ठन्तिसुव्रताः ॥ ३ ॥ न यावत्सर्वतीर्थेस्मिन्निमज्जेत्पापपूरुषः ॥ स्नानार्थंसर्वतीर्थेस्मिन्दृष्ट्वायान्तंद्विजानरम् ॥ ४ ॥ वेपन्तेसर्वपापानि नाशोस्माकंभवेदिति ॥ गर्भवासादिदुःखानि तावद्यातिनरोभुवि ॥ ५ ॥ न स्नायात्सर्वतीर्थेस्मिन्यावद्ब्राह्मणपुङ्गवाः ॥ अनुष्ठितैर्महायागैस्तथातीर्थनिषेवणैः ॥ ६ ॥ गायत्र्यादिमहामन्त्रजपैर्नियमपूर्वकम् ॥ चतुर्णामपिवेदानामावृत्त्याशतसंख्यया ॥ ७ ॥ शिवविष्ण्वादिदेवानां पूजयाभक्तिपूर्वकम् ॥ एकादश्यादितिथिषु तथैवानशनेन च ॥ ८ ॥ यत्फलंलभतेमर्त्यस्तल्लभेदत्रमज्जनात् ॥ ऋषय ऊचुः ॥ सर्वतीर्थमितिख्यातिः सूतास्यकथमागता ॥ ९ ॥ ब्रूह्यस्माकमिदंपुण्यं विस्तराच्छृण्वताम्मुने ॥ श्रीसूत उवाच ॥ पुरा सुचरितोनाम मुनिर्नियमसंयुतः ॥ १० ॥ भृगुवंशसमुद्भूतो जात्यन्धोजरयातुरः ॥ अशक्तस्तीर्थयात्रायां नेत्राभावेनस द्विजः ॥ ११ ॥ सर्वेषामेवतीर्थानां स्नातुकामोमहामुनिः ॥ दक्षिणाम्बुनिधौपुण्यं गन्धमादनपर्वतम् ॥ १२ ॥ गत्वा

भक्तिपूर्वक शिव, विष्णु आदिक देवताओं की पूजा से और एकादशी आदिक तिथियों में भोजन न करने से ॥ ८ ॥ मनुष्य जिस फलको पाता है उसको इसमें स्नान करने से प्राप्त होता है ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! इस तीर्थ की सर्वतीर्थ ऐसी प्रसिद्धि कैसे हुई ॥ ९ ॥ हे मुने ! सुननेवाले हमलोगों से इस पवित्र कथा को विस्तार से कहिये श्रीसूतजी बोले कि पुरातनसमय नियम से संयुत सुचरितनामक मुनि ॥ १० ॥ जोकि भृगुवंश में उत्पन्न थे जन्म से अन्ध व वृद्धता से विकल वह उत्तम ब्राह्मण नेत्रों के न होने से तीर्थयात्रा में असमर्थ था ॥ ११ ॥ सभी तीर्थों के नहाने की इच्छावाले उस महामुनि ने दक्षिणसमुद्र में पवित्र गन्धमादनपर्वत को ॥ १२ ॥ जाकर

शिवजी को उद्देश कर बहुत कठिन तप किया शिवजी को त्रिकाल पूजताहुआ वह उपवासी व जितेन्द्रिय हुआ ॥ १३ ॥ और तीन बार स्नान करने से अतिथियों का पूजक हुआ व शिशिरऋतु में जल के मध्य में स्थित हुआ व ग्रीष्मऋतु में पंचाग्नि के मध्य में स्थित हुआ ॥ १४ ॥ व वर्षाऋतु में धारासम्पात को सहनेवाला व निराहार तथा पवनभोजी हुआ और भस्मोद्धूलन व सदैव भस्म से त्रिपुण्ड्र को धारण करनेवाला हुआ ॥ १५ ॥ वैसेही जाबालोपनिषद् की रीति से रुद्राक्ष को धारनेवाला हुआ इसप्रकार उस ब्राह्मण ने दश वर्ष तक उग्र तपस्या किया ॥ १६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! उस की तपस्या से चन्द्रभाल शिवजी प्रसन्न हुये व उस सुचरितमुनि के आगे

शङ्करमुद्दिश्य तपस्तेपेसुदुष्करम् ॥ त्रिकालमर्चयञ्शम्भुमुपवासीजितेन्द्रियः ॥ १३ ॥ तथात्रिषवणस्नानात्तथैवातिथिपूजकः ॥ शिशिरेजलमध्यस्थो ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यगः ॥ १४ ॥ वर्षास्वासारसहनश्चाभक्षोवायुभोजनः ॥ उद्धूलनन्त्रिपुण्ड्रं च भस्मनाधारयन्सदा ॥ १५ ॥ जाबालोपनिषद्रीत्या तथारुद्राक्षधारकः ॥ एवमुग्रंतपश्चक्रे दशसंवत्सरन्द्विजः ॥ १६ ॥ तपसातस्यसन्तुष्टः शङ्करश्चन्द्रशेखरः ॥ प्रादुरासीन्मुनेस्तस्य द्विजाःसुचरितस्य वै ॥ १७ ॥ समारुह्यमहोक्षाणं भूतवृन्दनिषेवितः ॥ गिरिजार्धवपुःशूली सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ १८ ॥ स्वभासाभासयन्सर्वा दिशोवितिमिरास्तदा ॥ भस्मपाण्डुरसर्वाङ्गो जटामण्डलमण्डितः ॥ १९ ॥ अनन्तादिमहानागविभूषणविभूषितः ॥ प्रादुर्भूतस्ततःशम्भुः प्रादात्तस्यविलोचने ॥ २० ॥ आत्मावलोकनार्थाय शङ्करोगिरिजापतिः ॥ ततः सुचरितोविप्राः शम्भुनादत्तदृग्द्वयः ॥ २१ ॥ आलोक्यपरमेशानं प्रतुष्टावप्रसन्नधीः ॥ सुचरित उवाच ॥ जयदेवमहेशान जयशङ्करधूर्जटे ॥ २२ ॥

प्रकट हुये ॥ १७ ॥ बड़े बैल पर सवार होकर भूतगणों से सेवित व गिरिजा को अर्धांग में धारण किये तथा त्रिशूल को लिये शिवजी कोटिसूर्यों के समान प्रभावान् थे ॥ १८ ॥ और उससमय अपने प्रकाश से सब अन्धकाररहित दिशाओं को प्रकाशित करतेहुये भस्म से श्वेत सर्वांगवाले व जटामण्डल से मण्डित थे ॥ १९ ॥ और अनन्तादिक महानागों के भूषणों से भूषित शिवजी प्रकट हुये तदनन्तर गिरिजा के पति शिवजी ने अपना को देखने के लिये उसको नेत्रों को दिया तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! शिवजी से दियेहुये दो नेत्रोंवाले सुचरित ने ॥ २० । २१ ॥ शिवजी को देखकर प्रसन्नबुद्धि होकर स्तुति किया सुचरित बोले कि हे महेशान, देव ! तुम्हारी जय हो

हे धूर्जटे! आपकी जय हो ॥ २२ ॥ हे ब्रह्मादिकों से पूजने योग्य, त्रिपुरनाशक, यमान्तक! तुम्हारी जय हो हे उमेश, महादेव! आप की जय हो हे कामनाशक, अमल! तुम्हारी जय हो ॥ २३ ॥ हे संसारवैद्य, भूतपाल, अव्यय, शिव! तुम्हारी जय हो हे भक्तरक्षणदीक्षित, त्र्यम्बक! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे व्योमकेश! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे कारुण्यशरीर! तुम्हारी जय हो हे नीलकण्ठ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे संसारमोचक! आपकी जय हो ॥ २५ ॥ हे परमानन्दशरीर, महेश्वर! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे गंगाधर, विश्वेश्वर, मृड, अव्यय! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २६ ॥ भगवान् वासुदेवरूप आपके लिये व शम्भु के लिये

जयब्रह्मादिपूज्यत्वं त्रिपुरघ्न यमान्तक ॥ जयोमेशमहादेव कामान्तकजयामल ॥ २३ ॥ जय संसारवैद्यत्वं भूतपाल शिवाव्यय ॥ त्रियम्बकनमस्तुभ्यं भक्तरक्षणदीक्षित ॥ २४ ॥ व्योमकेशनमस्तुभ्यं जयकारुण्यविग्रह ॥ नीलकण्ठनमस्तुभ्यं जयसंसारमोचक ॥ २५ ॥ महेश्वरनमस्तुभ्यं परमानन्दविग्रह ॥ गङ्गाधरनमस्तुभ्यं विश्वेश्वरमृडाव्यय ॥ २६ ॥ नमस्तुभ्यंभगवते वासुदेवायशम्भवे ॥ शर्वायोग्रायभर्गाय कैलासपतये नमः ॥ २७ ॥ रक्षमांकरुणासिन्धो कृपादृष्ट्यवलोकनात् ॥ ममवृत्तमनालोच्य त्राहिमांकृपयाहर ॥ २८ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इतिस्तुतोमहादेवस्तमेनमिदमभ्यधात् ॥ मुनिंसुचरितंविप्रा दयोदन्वानुमापतिः ॥ २९ ॥ महादेव उवाच ॥ मुनेसुचरिताद्यत्वं वरंवरयकाङ्क्षितम् ॥ वरंदातुंतवायातः पुण्येस्मिन्नाश्रमेशुभे ॥ ३० ॥ इतीरितोमुनिःप्राह महादेवं घृणानिधिम् ॥ सुचरित उवाच ॥ भगवंस्त्वंप्रसन्नोमे यदिस्याचन्द्रशेखर ॥ ३१ ॥ तर्हित्वांप्रवृणोम्यद्धा वरंमदभिकाङ्क्षितम् ॥ जरापलितदेहोहं कुत्र

प्रणाम है व शर्व, उग्र तथा कैलासपति के लिये प्रणाम है ॥ २७ ॥ हे दयासिन्धो! दयादृष्टि के अवलोकन से मेरी रक्षा कीजिये हे हर! मेरे चरित्रको न देखकर दयासे मेरी रक्षा कीजिये ॥ २८ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो! इसप्रकार स्तुति कियेहुये दयासागर उमापति महादेवजी ने उस सुचरितमुनि से यह कहा ॥ २९ ॥ महादेवजी बोले कि हे मुने, सुचरित! इससमय तुम चाहेहुये वरदानको मांगो मैं इस उत्तम व पवित्र आश्रम में तुमको वरदान देने के लिये आया हूं ॥ ३० ॥ ऐसा कहेहुये मुनि ने दयानिधान शिवजी से कहा सुचरित बोले कि हे चन्द्रशेखर, भगवन्! यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ३१ ॥ तो मैं साक्षात् तुमसे अपने चाहेहुये वरको मांगता हूं कि वृद्धतासे

पलित देहवाला मैं कहीं जाने के लिये असमर्थ हूं ॥ ३२ ॥ और सब तीर्थों में नहाने के लिये मेरी इच्छा है इसकारण मनुष्य सब तीर्थों में स्नान से जिस ॥ ३३ ॥ फलको प्राप्त होता है उस फलके मिलने के उपाय को मुझ से कहिये महादेवजी बोले कि मैं श्रीरामजी के सेतु से पवित्र इस गन्धमादनपर्वत पै सब तीर्थों को आवाहन करूंगा यह कहकर उन उत्तम महादेवजी ने मुनिकी प्रीतिके लिये गन्धमादनपर्वत पै तीर्थों को आवाहन किया तदनन्तर दयानिधान शिवजी ने सुचरित से कहा ॥ ३४।३५।३६ ॥ कि हे सुचरित, मुने ! सब तीर्थों की समीपता से यह महापातकों का विनाशक तीर्थ सर्वतीर्थनामक कहागया है ॥ ३७ ॥ और यहां मुझ से मन करके सब तीर्थों के आकर्षण

चिद्गन्तुमक्षमः ॥ ३२ ॥ सर्वतीर्थेषु च स्नातुमाकाङ्क्षाममविद्यते ॥ तस्मात्सर्वेषु तीर्थेषु स्नानेनमनुजो हि यत् ॥ ३३ ॥ फलंप्राप्नोति मे ब्रूहि तत्फलावाप्तिसाधनम् ॥ महादेव उवाच ॥ अहमावाहयिष्यामि तीर्थान्यत्रैवकृत्स्नशः ॥ ३४ ॥ रामस्यसेतुनापूते नगेस्मिन्गन्धमादने ॥ इत्युक्त्वासमहादेवः पर्वतेगन्धमादने ॥ ३५ ॥ तीर्थान्यावाहयामास मुनिप्रीत्यर्थमुत्तमः ॥ ततस्सुचरितंप्राह शङ्करःकरुणानिधिः ॥ ३६ ॥ मुनेसुचरितेदन्तु महापातकनाशनम् ॥ सान्निध्यात्सर्वतीर्थानां सर्वतीर्थाभिधंस्मृतम् ॥ ३७ ॥ मयात्रसर्वतीर्थानां मनसाकर्षणादिदम् ॥ मानसंतीर्थमित्याख्यां लप्स्यतेभुक्तिमुक्तिदम् ॥ ३८ ॥ अतःसुचरितात्रत्वं स्नाहिसद्योविमुक्तये ॥ महापातकसङ्घानां दावानलसमद्युतौ ॥ ३९ ॥ काममोहभयक्रोधलोभरोगादिनाशने ॥ विनावेदान्तविज्ञानं सद्योनिर्वाणकारणे ॥ ४० ॥ जन्ममृत्य्वादिनक्रौघसंसारार्णवतारणे ॥ कुम्भीपाकादिसकलनरकाग्निविनाशने ॥ ४१ ॥ इतीरितःसुचरितः शम्भुनामदनारिणा ॥ सस्नौ

से यह भुक्तिमुक्तिदायक तीर्थ मानसतीर्थ ऐसे नामको प्राप्त होगा ॥ ३८ ॥ इसकारण हे सुचरित ! तुम मुक्ति के लिये शीघ्र ही महापातकसमूहों के लिये दावानल के समान शोभावाले इस तीर्थ में स्नान करो ॥ ३९ ॥ जो तीर्थ कि काम, मोह, भय, क्रोध, लोभ व रोगादिकों का नाशक तथा वेदान्त जानने के विना शीघ्रही मोक्ष का कारण है ॥ ४० ॥ व जन्म मृत्यु आदिक मकरसमूहवाले संसारसमुद्र से उतारनेवाला व कुम्भीपाकादिक सब नरकों की अग्नि का विनाशक है ॥ ४१ ॥ हे ब्राह्मणो !

कामदेव के वैरी शिवजी से ऐसा कहेहुये सुचरित ने महादेवजी के समीपही सर्वतीर्थ में स्नान किया ॥ ४२ ॥ व नहाकर उठेहुये सुचरित को सब मनुष्यों ने वृद्धता व प॰ लित से मुक्त तथा युवा व बहुत सुन्दर देखा ॥ ४३ ॥ तदनन्तर अपनी देहकी सुन्दरता को देखकर सुचरितमुनिने व अन्य तपस्वियों ने उस तीर्थकी बहुत भांति से प्रशंसा किया ॥ ४४ ॥ तदनन्तर महादेवजी ने सुचरित से कहा कि हे सुचरित, द्विज ! इस तीर्थ के किनारे बसतेहुये तुम ॥ ४५ ॥ मुक्तिदायक मुझको स्मरण करतेहुये सदैव स्नान करो व हे द्विजोत्तम ! अन्य देशके तीर्थों में मत जावो ॥ ४६ ॥ इस तीर्थ के माहात्म्य से तुम अन्तमें मुझको निश्चय कर प्राप्त होवोगे व हे द्विज ! अन्य भी जो

विप्राःसर्वतीर्थे महादेवस्यसन्निधौ ॥ ४२ ॥ स्नात्वोत्थितःसुचरितो ददृशेखिलमानवैः ॥ जरापलितनिर्मुक्तस्तरुणो तीवसुन्दरः ॥ ४३ ॥ दृष्ट्वास्वदेहसौन्दर्यं ततःसुचरितोमुनिः ॥ श्लाघयामासतत्तीर्थं बहुधाऽन्ये च तापसाः ॥ ४४ ॥ महादेवःसुचरितं बभाषेतदनन्तरम् ॥ अस्यतीर्थस्यतीरेत्वं वसन्सुचरितद्विज ॥ ४५ ॥ स्नानंकुरुष्वसततं स्मरन्मां मुक्तिदायकम् ॥ देशान्तरीयतीर्थेषु मा व्रजब्राह्मणोत्तम ॥ ४६ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यान्मामन्तेप्राप्स्यसिध्रुवम् ॥ अन्येपियेत्रस्नास्यन्ति तेपिमांप्राप्नुयुर्द्विज ॥ ४७ ॥ इत्युक्त्वाभगवानीशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ तस्मिन्नन्तर्हितेरुद्रे ततःसु चरितोमुनिः ॥ ४८ ॥ अनेककालंनिवसन्सर्वतीर्थस्यतीरतः ॥ स्नानंसमाचरंस्तीर्थे मानसेनियमान्वितः ॥ ४९ ॥ देहान्ते शङ्करंप्राप सर्वबन्धविमोचितः ॥ सायुज्यं चापिसम्प्राप सर्वतीर्थस्य वैभवात् ॥ ५० ॥ एवंवःकथितंविप्राः सर्वतीर्थस्यवैभ वम् ॥ एततपठन्वा शृण्वन्वा मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कान्देसर्वतीर्थकथनन्नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

मनुष्य इसमें नहावैंगे वे भी मुझको प्राप्त होवैंगे ॥ ४७ ॥ यह कहकर भगवान् शिवजी वहीं अन्तर्धान होगये तदनन्तर उन शिवके अन्तर्धान होनेपर सुचरितमुनि ॥४८॥ सर्वतीर्थ के किनारे बहुत समयतक बसते व मानसतीर्थ में स्नान करतेहुये नियमसंयुत हुये ॥ ४९ ॥ और देहान्त में सब बन्धनों से मुक्त होकर वे शंकरजी को प्राप्त हुये व सर्वतीर्थ के प्रभाव से सायुज्यको भी प्राप्त हुये ॥ ५० ॥ हे ब्राह्मणो ! तुमलोगों से इसप्रकार सर्वतीर्थ का प्रभाव कहागया इसको पढ़ता व सुनताहुआ मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतीर्थप्रशंसायांसर्वतीर्थस्वरूपकथनंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

दो० । धनुष्कोटितीरथ यथा कीन्हो श्रीरघुनाथ । सोइ तीस अध्याय में कह्यो मनोहर गाथ ॥ श्रीसूतजी बोले कि अतिपवित्रकारक सर्वतीर्थ में स्नान करके तदन-
न्तर मनुष्य ब्रह्महत्यादिक पापों को नाशनेवाली धनुष्कोटि को जावै ॥ १ ॥ जिसके स्मरणमात्र से मनुष्य पृथ्वी में मुक्त होजाता है जो मनुष्य धनुष्कोटि को देखते हैं
या नहाते व कहते हैं ॥ २ ॥ वे अट्ठाईस भेदवाले नरकों को नहीं भोगते हैं तामिस्र,अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव ॥ ३ ॥ कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, कृमिभक्ष,
अन्धकूप, संदंश व शाल्मली ॥ ४ ॥ सूर्मि, वैतरणी, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, अवीचि व सारमेयादन ॥ ५ ॥ व वज्रकणक, क्षारकर्दमपातन, रक्षोगणाशन व

श्रीसूत उवाच ॥ विहिताभिषवोमर्त्यः सर्वतीर्थेतिपावने ॥ ब्रह्महत्यादिपापघ्नीं धनुष्कोटिंततोव्रजेत् ॥ १ ॥ यस्याः
स्मरणमात्रेण मुक्तःस्यान्मानवोभुवि ॥ धनुष्कोटिंप्रपश्यन्ति स्नान्ति वा कथयन्तिये ॥ २ ॥ अष्टाविंशतिभेदांस्ते
नरकान्नोपभुञ्जते ॥ तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ॥ ३ ॥ कुम्भीपाकंकालसूत्रमसिपत्रवनंतथा ॥ कृमिभक्षोन्ध
कूपश्च संदंशंशाल्मलीतथा ॥ ४ ॥ सूर्मिवैतरणीप्राणरोधोविशसनंतथा ॥ लालाभक्षोप्यवीचिश्च सारमेयादनं
तथा ॥ ५ ॥ तथैववज्रकणकं क्षारकर्दमपातनम् ॥ रक्षोगणाशनञ्चापि शूलप्रान्तवितोदनम् ॥ ६ ॥ दन्दशूकाशनञ्चापि
पर्यावर्तनसञ्ज्ञितम् ॥ तिरोधानाभिधंविप्रास्तथासूचिमुखाभिधम् ॥ ७ ॥ पूयशोणितभक्षञ्च विषाग्निपरिपीडनम् ॥
अष्टाविंशतिसंख्याकमेवं नरकसञ्चयम् ॥ ८ ॥ न यातिमनुजोविप्रा धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ वित्तापत्यकलत्राणां
योन्येषामपहारकः ॥ ९ ॥ सकालपाशनिर्बद्धो यमदूतैर्भयानकैः ॥ तामिस्रनरकेघोरे पात्यतेबहुवत्सरम् ॥ १० ॥
स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौनिपात्यते ॥ योनिहत्य तु भर्तारं भुङ्क्तेतस्यधनादिकान् ॥ ११ ॥ पात्यतेसोन्धता

शूलप्रान्तवितोदन ॥ ६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! दन्दशूकाशन और पर्यावर्तननामक तथा तिरोधाननामक व सूचिमुखसंज्ञक ॥ ७ ॥ और पूयशोणितभक्ष व विषाग्निपरिपीडन ऐसे
अट्ठाईससंख्यक नरकसमूह को ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मणो ! मनुष्य धनुष्कोटि में नहाने से नहीं प्राप्त होता है और जो अन्य मनुष्यों के धन, सन्तान व स्त्रियों को हरता
है ॥ ९ ॥ भयंकर यमदूतों करके कालपाश से बांधाहुआ वह बहुत वर्षों तक भयंकर तामिस्रनरक में डालाजाता है ॥ १० ॥ यदि धनुष्कोटि में मनुष्य नहाता है तो उसमें

यह नहीं डालाजाता है और जो मनुष्य स्वामी को मारकर उसके धनादिकों को भोगता है ॥ ११ ॥ वह महादुःखों से संयुत अन्धतामिस्र नरक में डालाजाता है व यदि धनुष्कोटि में नहाता है तो यह उसमें नहीं डालाजाता है ॥ १२ ॥ व जो मनुष्य प्राणियों के द्रोह से अपने कुटुम्ब को पालता है वह उनको शीघ्रही छोड़कर निश्चय कर विष से उग्र महासर्पों से संयुत रौरव नरक में यमदूतों से डालाजाता है और यदि धनुष्कोटि में नहाता है तो यह उस नरक में नहीं डालाजाता है ॥ १३।१४ ॥ व जो मनुष्य स्त्री व पुत्रादिकों के विना अपने शरीर को पालता है अपने मांस को भोजन करनेवाला वह भयंकर महारौरव नरक में डालाजाता है ॥ १५ ॥ और

मिस्रे महादुःखसमाकुले ॥ स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौनिपात्यते ॥ १२ ॥ भूतद्रोहेणयोमर्त्यः पुष्णातिस्वकुटुम्ब कम् ॥ सतानिहविहायाशु रौरवेपात्यतेध्रुवम् ॥ १३ ॥ विषोल्बणमहासर्पसंकुलेयमपूरुषैः ॥ स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौनिपात्यते ॥ १४ ॥ यःस्वदेहंभरोमर्त्यो भार्यापुत्रादिकंविना ॥ समहारौरवेघोरे पात्यतेनिजमांसभुक् ॥ १५ ॥ स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौनिपात्यते ॥ यःपशून्पक्षिणो वापि सप्राणान्निरुणद्धि वै ॥ १६ ॥ कृपालेशविहीनंतं क्रव्यादैरपिनिन्दितम् ॥ कुम्भीपाकेतप्ततैले पातयन्तियमानुगाः ॥ १७ ॥ स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौनिपात्यते ॥ मातरंपितरंविप्रान्योद्वेष्टिपुरुषाधमः ॥ १८ ॥ सकालसूत्रनरके विस्तृतायुतयोजने ॥ अधस्तादग्निसन्तप्तउपर्यर्क मरीचिभिः ॥ १९ ॥ खलेताम्रमयेविप्राः पात्यतेक्षुधयार्दितः ॥ स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौनिपात्यते ॥ २० ॥ योवेदमार्गमुल्लङ्घ्य वर्ततेकुपथेनरः ॥ सोसिपत्रवनेघोरे पात्यतेयमकिङ्करैः ॥ २१ ॥ स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मि

यदि धनुष्कोटि में नहाता है तो वह उसमें नहीं डालाजाता है और जो प्राणोंसमेत पशुओं व पक्षियों को रोक में रखते हैं ॥ १६ ॥ दया के लेश से रहित उस राक्षसों से भी निन्दित मनुष्य को यमदूत तप्ततैलवाले कुम्भीपाक नरकमें डालते हैं ॥ १७ ॥ और यदि धनुष्कोटितीर्थ में नहाता है तो यह उस नरक में नहीं डालाजाता है व जो अधम पुरुष माता, पिता व ब्राह्मणों से वैर करता है ॥ १८ ॥ हे ब्राह्मणो ! क्षुधासे विकल वह नीचे अग्नि से सन्तप्त व ऊपर सूर्य की किरणों से तप्त दशहज़ार योजन चौड़े ताम्रमय कालसूत्र नरक में डालाजाता है और यदि धनुष्कोटि में नहाता है तो यह उसमें नहीं डालाजाता है ॥ १९ । २० ॥ व जो मनुष्य वेदमार्ग को

उल्लंघन कर कुमार्ग में वर्तमान होता है उसको यमदूत भयंकर असिपत्रवन में डालते हैं ॥ २१ ॥ और यदि धनुष्कोटि में नहाता है तो यह उसमें नहीं डालाजाता है और जो राजा या राजसेवक दण्ड न देने योग्य पुरुष में दण्ड करता है ॥ २२ ॥ या हे ब्राह्मणो ! ब्राह्मण को शरीरदण्ड करता है वह भयंकर नरकमें डालाजाता है व ऊंख की नाईं कलमें पीड़ित होता है ॥ २३ ॥ और यदि धनुष्कोटितीर्थ में नहाता है तो यह उसमें नहीं डालाजाता है और जो मनुष्य ईश्वर के अधीन जीविका वाले प्राणियों की हिंसा करता है ॥ २४ ॥ अपना से पीड़ित उन्हीं जन्तुवों से बाधा कियाजाता हुआ यह पुरुष महाभयंकर अन्धकूप नरक में यमदूतों से डालाजाता

न्नासौनिपात्यते ॥ योराजाराजभृत्यो वा ह्यदण्डेदण्डमाचरेत् ॥ २२ ॥ शरीरदण्डंविप्रे वा सशूकरमुखेद्विजाः ॥ पात्यते नरकेघोरे इक्षुवद्यन्त्रपीडितः ॥ २३ ॥ स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौनिपात्यते ॥ ईश्वराधीनवृत्तीनां हिंसांयःप्राणिनांचरेत् ॥ २४ ॥ तैरेवपीड्यमानोयं जन्तुभिःस्वेनपीडितैः ॥ अन्धकूपेमहाभीमे पात्यतेयमकिङ्करैः ॥ २५ ॥ तत्रान्धकारबहुले विनिद्रोनिर्वृतश्चरेत् ॥ स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौनिपात्यते ॥ २६ ॥ योश्नातिपङ्क्तिभेदेन सस्यसूपादिकन्नरः ॥ अकृत्वापञ्चयज्ञं वा भुङ्क्तेमोहेनसद्द्विजाः ॥ २७ ॥ प्रपात्यतेयमभटैर्नरके कृमिभोजने ॥ भक्ष्यमाणःकृमिशतैर्भक्षयन्कृमिसञ्चयान् ॥ २८ ॥ स्वयञ्च कृमिभूतस्संस्तिष्ठेद्यावदघक्षयम् ॥ स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौनिपात्यते ॥ २९ ॥ योहरेद्विप्रवित्तानि स्तेयेनबलतोपि वा ॥ अन्येषामपि वित्तानि राजातत्पुरुषोपि वा ॥ ३० ॥ अयोमयाग्नि

है ॥ २५ ॥ और उस बहुत अन्धकारवाले नरक में निद्रारहित व दुःखी होकर भ्रमता है और यदि धनुष्कोटितीर्थ में नहाता है तो यह उसमें नहीं डालाजाता है ॥ २६ ॥ हे उत्तम ब्राह्मणो ! जो मनुष्य पंक्ति के भेद से अन्न व दालि आदिक को भोजन करता है या पंचयज्ञ न करके जो मोह से भोजन करता है ॥ २७ ॥ उसको यमदूत कृमिभोजननामक नरक में डालते हैं और सैकड़ों कीटों से खायाजाता हुआ वह कीटसमूहों को भक्षण करताहुआ ॥ २८ ॥ आप भी कीट होताहुआ तब तक उसमें टिकता है कि जबतक पाप का नाश होता है और यदि धनुष्कोटि में नहाता है तो यह उस नरक में नहीं डालाजाता है ॥ २९ ॥ और जो चोरी से या

बल से भी ब्राह्मणों के धनों को हरता है और राजा या राजपुरुष भी औरों के धनों को भी हरता है ॥ ३० ॥ वह लोहमय अग्निकुण्डों में सँगसियों से बहुत पीड़ित होता है और वह संदंशनामक भयंकर नरक में यमदूतों से डालाजाता है ॥ ३१ ॥ और यदि धनुष्कोटि में नहाता है तो यह उस नरक में नहीं डालाजाता है व जो नीच मनुष्य अगम्य स्त्री के समीप जाता है ॥ ३२ ॥ या हे द्विजो ! जो स्त्री अगम्य पुरुष के समीप जाती है वे दोनों तचतेहुये लोहमय स्त्री व लोहमय पुरुष को लिपटकर तबतक स्थित रहते हैं जबतक कि चन्द्रमा व सूर्य रहते हैं और सूर्मिनामक भयंकर नरक में वह डालाजाता है ॥ ३३ । ३४ ॥ और यदि धनुष्कोटितीर्थ में नहाता

कुण्डेषु संदंशैःसोतिपीडितः ॥ संदंशेनरकेघोरे पात्यतेयमपूरुषैः ॥ ३१ ॥ स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौनिपात्यते ॥ अगम्यांयोभिगच्छेत स्त्रियं वै पुरुषाधमः ॥ ३२ ॥ अगम्यंपुरुषं योषिदभिगच्छेत वा द्विजाः ॥ तावयोमयनारीञ्च पुरुषं चाप्ययोमयम् ॥ ३३ ॥ तप्तावालिङ्ग्यतिष्ठन्तौ यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ सूर्म्याख्येनरकेघोरे पात्यतेबहुकण्टके ॥ ३४ ॥ स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौनिपात्यते ॥ बाधतेसर्वजन्तून्यो नानोपायैरुपद्रवैः ॥ ३५ ॥ शाल्मलीनरकेघोरे पात्यते बहुकण्टके ॥ स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौनिपात्यते ॥ ३६ ॥ राजा वा राजभृत्यो वा यःपाखण्डमनुव्रतः ॥ भेदकोधर्मसेतूनां वैतरण्यांनिपात्यते ॥ ३७ ॥ स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौनिपात्यते ॥ वृषलीसङ्गदुष्टोयः शौचाद्या चारवर्जितः ॥ ३८ ॥ त्यक्तलज्जस्त्यक्तवेदः पशुचर्यारतस्तथा ॥ सपूयविष्ठामूत्रासृक्श्लेष्मपित्तादिपूरिते ॥ ३९ ॥ अति

है तो यह उस नरक में नहीं डालाजाता है और जो मनुष्य अनेक प्रकार के यत्नोंवाले उपद्रवों से सब प्राणियों को पीड़ा करता है ॥ ३५ ॥ वह बहुत कांटोंवाले भयंकर शाल्मली नरक में डालाजाता है और यदि धनुष्कोटि में नहाता है तो यह उस नरक में नहीं डालाजाता है ॥ ३६ ॥ और पाखण्ड का अनुगामी जो राजा या राज-सेवक धर्मसेतुवों को तोड़ता है वह वैतरणी में डालाजाता है ॥ ३७ ॥ व यदि धनुष्कोटि में नहाता है तो वह उस नरक में नहीं डालाजाता है और शूद्रा स्त्री के संग से दुष्ट जो पुरुष शौचादिक आचार से रहित होता है ॥ ३८ ॥ लज्जाको छोड़े व वेदोंको त्याग किये जो पशु के समान कर्म में लगा होता है वह पीब,मल, मूत्र, रक्त, श्लेष्मा—

व पित्तादिकों से पूरित ॥ ३९ ॥ बहुतही बीभत्स नरक में यमदूतों से डालाजाता है और यदि धनुष्कोटितीर्थ में नहाता है तो यह उस नरक में नहीं डालाजाता है ॥ ४० ॥ व हे ब्राह्मणो ! विधिपूर्वक अनुष्ठान से रहित जो पाखण्डी मनुष्य यज्ञमें पशुवों को मारता है वह परलोक में वैशसनामक दुःख से संयुत नरक में यमदूतों से काटाजाता हुआ डालाजाता है और यदि धनुष्कोटितीर्थ में नहाता है तो वह उसमें नहीं डालाजाता है ॥ ४१ । ४२ ॥ और समान जातिवाली अपनी स्त्री को जो वीर्य पिलाता है परलोक में वीर्य पीनेवाला होताहुआ वह वीर्य के कुण्ड में डालाजाता है ॥ ४३ ॥ और यदि धनुष्कोटितीर्थ में नहाता है तो वह उसमें नहीं डालाजाता है और

बीभत्सनरके पात्यतेयमकिङ्करैः॥ स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौनिपात्यते ॥४०॥ दाम्भिकोयःपशून्यज्ञे विध्यनुष्ठानवर्जितः ॥ हन्तिसपरलोकेषु वैशसेनरकेद्विजाः ॥ ४१ ॥ कृत्यमानोयमभटैः पात्यतेदुःखसंकुले ॥ स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौनिपात्यते ॥ ४२ ॥ आत्मभार्यासवर्णायो रेतःपाययते तु सः ॥ परत्ररेतःपायी सन् रेतःकुण्डेनिपात्यते ॥ ४३ ॥ स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौनिपात्यते ॥ योदस्युमार्गमाश्रित्य गरदोग्रामदाहकः ॥ ४४ ॥ वणिग्द्रव्यापहारी च सपरत्रद्विजोत्तमाः ॥ वज्रदंष्ट्राहिकाभिख्ये नरकेपात्यतेचिरम् ॥ ४५ ॥ स्नातिचेद्धनुषःकोटौ तस्मिन्नासौनिपात्यते ॥ विद्यन्तेयानि चान्यानि नरकाणिपरत्र वै ॥ ४६ ॥ तानि नाप्नोतिमनुजो धनुष्कोटिनिमज्जनात् ॥ धनुष्कोटौसकृत्स्नानादश्वमेधफलंलभेत् ॥ ४७ ॥ आत्मविद्याभवेत्साक्षान्मुक्तिश्चापिचतुर्विधा ॥ न पापेरमतेबुद्धिर्न भवेद्दुःखमेव वा ॥ ४८ ॥ बुद्धेःप्रीतिर्भवेत्सम्यग्धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ तुलापुरुषदानेन यत्फलंलभ्यतेनरैः ॥ ४९ ॥ तत्फलं

जो चोर के मार्ग के आश्रित होकर विष को देता है या ग्रामों को जलाता है ॥ ४४ ॥ और बनियों के धन को हरलेता है वह हे ब्राह्मणो ! वज्रदंष्ट्राहिकनामक नरक में बहुत दिनों तक डालाजाता है ॥ ४५ ॥ और यदि धनुष्कोटि में नहाता है तो वह उस नरक में नहीं डालाजाता है और परलोक में जो अन्य नरक विद्यमान हैं ॥ ४६ ॥ धनुष्कोटि में स्नान करने से मनुष्य उनको नहीं प्राप्त होता है और धनुष्कोटि में एक वार स्नान करने से मनुष्य अश्वमेधयज्ञ के फल को पाता है ॥ ४७ ॥ और साक्षात् आत्मज्ञान व चार प्रकार की मुक्ति भी होती है और उसकी बुद्धि पाप में नहीं रमती है व दुःख नहीं होता है ॥ ४८ ॥ व धनुष्कोटि में स्नान करनेसे भलीभांति

बुद्धि की प्रीति होती है मनुष्यों को तुलापुरुष के दानसे जो फल मिलता है ॥ ४९ ॥ वह फल मनुष्यों को धनुष्कोटिमें नहाने से मिलता है और गोसहस्र के दान से मनुष्योंको जो फल होता है ॥ ५० ॥ उस फल को मनुष्य धनुष्कोटि में नहाने से पाता है और धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष में जिस जिस पदार्थ की मनुष्य इच्छा करता है ॥ ५१ ॥ धनुष्कोटि में नहाने से शीघ्रही उस उस मनोरथ को पाता है महापातकों से युक्त या सब पातकों से युक्त होवै ॥ ५२ ॥ हे ब्राह्मणो ! धनुष्कोटि में नहाने से शीघ्रही पवित्र होजाता है और बुद्धि, लक्ष्मी, यश, सम्पत्ति व ज्ञान, धर्म और वैराग्य ॥ ५३ ॥ व मन की शुद्धि मनुष्योंके धनुष्कोटि में नहाने से होती है और दशहज़ार

लभ्यतेपुम्भिर्धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ गोसहस्रप्रदानेन यत्पुण्यं हि भवेन्नृणाम् ॥ ५० ॥ तत्पुण्यंलभतेमर्त्यो धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ धर्मार्थकाममोक्षेषु यंयमिच्छतिपूरुषः ॥ ५१ ॥ तंतंसद्यःसमाप्नोति धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥ ५२ ॥ सद्यःपूतोभवेद्विप्रा धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ प्रज्ञालक्ष्मीर्यशःसम्पज्ज्ञानंधर्मोविरक्तता ॥ ५३ ॥ मनःशुद्धिर्भवेन्नृणां धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ ब्रह्महत्यायुतं चापि सुरापानायुतंतथा ॥ ५४ ॥ अयुतंगुरुदाराणां गमनंपापकारणम् ॥ स्तेयायुतंसुवर्णानां तत्संसर्गाश्च कोटिशः ॥ ५५ ॥ शीघ्रंविलयमायान्ति धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ ब्रह्महत्यासमानानि सुरापानसमानि च ॥ ५६ ॥ गुरुस्त्रीगमनेनापि यानितुल्यानि चास्तिकाः ॥ सुवर्णस्तेयतुल्यानि तत्संसर्गसमानि च ॥ ५७ ॥ तानिसर्वाणिनश्यन्ति धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ उक्तेष्वेतेषुसन्देहो न कर्तव्यःकदाचन ॥ ५८ ॥ जिह्वाग्रेपरशुंतप्तं धारयामि न संशयः ॥ अर्थवादमिमंसर्वं ब्रुवन्वै नारकी

ब्रह्महत्या व दशहज़ार मदिरापान ॥ ५४ ॥ और दशहज़ार गुरुस्त्रीगमनपाप का कारण और सुवर्ण की दशहज़ार चोरी व उसके संसर्गवाले करोड़ों पातक ॥ ५५ ॥ धनुष्कोटि में नहाने से शीघ्रही नाश को प्राप्त होते हैं और ब्रह्महत्या के समान व मदिरापान के बराबर ॥ ५६ ॥ व हे आस्तिको ! गुरुस्त्रीगमन के समान भी जो पातक है और सुवर्ण की चोरी के समान व उसके संसर्ग के समान जो पाप हैं ॥ ५७ ॥ वे सब पाप धनुष्कोटि में नहाने से नाश होजाते हैं इन कहीहुई वस्तुवों में कभी न सन्देह करना चाहिये ॥ ५८ ॥ क्योंकि मैं जिह्वा के अग्रभाग पै परशु को धारण करता हूं इसमें सन्देह नहीं है और इस सबको अर्थवाद कहताहुआ मनुष्य नारकी होता

है॥ ५९ ॥ और सब कर्मों से बाहर कियाहुआ वह संकरवर्ण जानने योग्य है हे द्विजोत्तमो ! इस मूर्खता को आश्चर्य है आश्चर्य है आश्चर्य है ॥ ६० ॥ कि समस्त पातकों के नाशक व अद्वैतज्ञानदायक तथा मनुष्योंको भुक्तिमुक्तिदायक व प्रिय कामनाओंको देनेवाले तथा अज्ञानविनाशक धनुष्कोटिनामक तीर्थ के स्थित होने पर भी उसको छोड़कर यह मनुष्य अन्यत्र रमता है ॥ ६१।६२ ॥ आश्चर्य है कि मोह का माहात्म्य मुझ से नहीं कहा जासक्ता है और धनुष्कोटिमें नहायेहुये मनुष्यको काल से भय नहीं होता है ॥ ६३ ॥ जो मनुष्य धनुष्कोटिको देखते हैं व उसमें नहाते हैं और जो स्तुति व प्रशंसा तथा स्पर्श व प्रणाम करते हैं ॥ ६४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वे मनुष्य माताओं

भवेत्॥ ५९ ॥ सङ्करःस हि विज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ अहोमौर्ख्यमहोमौर्ख्यमहोमौर्ख्यंद्विजोत्तमाः ॥ ६० ॥ धनुष्कोट्यभिधेतीर्थे सर्वपातकनाशने॥अद्वैतज्ञानदेपुंसां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि ॥ ६१ ॥ इष्टकाम्यप्रदेनित्यं तथैवाज्ञाननाशने ॥ स्थितेपितद्विहायायं रमतेन्यत्र वै जनः ॥ ६२ ॥ अहोमोहस्यमाहात्म्यं मयावक्तुं न शक्यते ॥ स्नातस्यधनुषःकोटौ नान्तकाद्भयमस्ति वै ६३ ॥ धनुष्कोटिंप्रपश्यन्ति तत्रस्नान्ति च ये नराः ॥ स्तुवन्ति च प्रशंसन्ति स्पृशन्ति च नमन्ति च॥ ६४॥ न पिबन्ति हि तेस्तन्यं मातॄणांद्विजपुङ्गवाः ॥ ऋषय ऊचुः ॥ धनुष्कोट्यभिधातस्य कथंसूतसमागता ॥ ६५ ॥ तत्सर्वंब्रूहितत्त्वेनविस्तरान्मुनिपुङ्गव ॥ इतिपृष्टोनैमिषीयैराहसूतःपुनश्च तान् ॥ ६६ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ रामेणनिहतेयुद्धे रावणेलोककण्टके ॥ विभीषणे च लङ्कायांराजनिस्थापितेततः ॥ ६७ ॥ वैदेहीलक्ष्मणयुतो रामोदशरथात्मजः ॥ सुग्रीवप्रमुखैर्वीरैर्वानरैरपिसंवृतः ॥६८॥ सिद्धचारणगन्धर्वदेवविद्याधरर्षिभिः ॥ अप्सरोभिश्च सततं स्तूयमाननिजाद्भुतः ॥६९॥

के दूध को नहीं पीते हैं ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! उसको धनुष्कोटि नाम कैसे प्राप्त हुआ ॥ ६५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उस सबको यथार्थ विस्तार से कहिये इसप्रकार नैमिषवासी मुनियों से पूछेहुये सूतजी फिर उन मुनियों से बोले ॥ ६६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि लोकों के कण्टकरूप रावण को जब युद्धमें श्रीरामजीने मारा और विभीषण को लंकामें राज्य पै स्थापित किया तदनन्तर ॥ ६७ ॥ जानकी व लक्ष्मणजी से संयुत दशरथके पुत्र रामजी सुग्रीवादिक वीर वानरों से संयुक्त हुये ॥ ६८ ॥ व सिद्ध, चारण,

गन्धर्व, देवता, विद्याधर, ऋषि व अप्सराओंसे सदैव स्तुति कियेजाते हुये अपने अद्भुतकर्मवाले ॥ ६९ ॥ व खेलहीसे धनुषको धारनेवाले श्रीरामजी सबों से घिरकर त्रिपुर-विनाशक शिवजी की नाईं गन्धमादनपर्वत को गये ॥ ७० ॥ और वहां बैठेहुये रावण के विनाशक महात्मा राघवजी से धर्म को जाननेवाले विभीषण ने हाथों को जोड़कर प्रार्थना किया ॥ ७१ ॥ कि हे रामजी ! बलसे गर्वित सभी राजालोग तुम्हारे इस सेतुमार्गसे आकर मेरी पुरी को पीड़ित करेंगे ॥ ७२ ॥ इस कारण हे रघूद्वह ! इस सेतु को धनुष की कोटि (सिरे) से तोड़डालो इसप्रकार उस पौलस्त्य (विभीषण) से प्रार्थना कियेहुये उन राघव ॥ ७३ ॥ रघुनन्दनजी ने धनुष की कोटि से अपने

लीलाविधृतकोदण्डस्त्रिपुरघ्नोयथाशिवः ॥ सर्वैःपरिवृतोरामो गन्धमादनमन्वगात् ॥ ७० ॥ तत्रस्थितंमहात्मानं राघवंरावणान्तकम् ॥ प्राञ्जलिःप्रार्थयामास धर्मज्ञोथविभीषणः ॥ ७१ ॥ सेतुनानेनतेराम राजानःसर्व एव हि ॥ बलोद्रिक्ताःसमभ्येत्य पीडयेयुःपुरीमम ॥ ७२ ॥ अतःसेतुमिमंभिन्धि धनुष्कोटयारघूद्वह ॥ इतिसम्प्रार्थितस्तेन पौलस्त्येनसराघवः ॥ ७३ ॥ बिभेदधनुषःकोटया स्वसेतुंरघुनन्दनः ॥ अतोद्विजास्ततस्तीर्थं धनुष्कोटिरितिश्रुतम् ॥ ७४ ॥ श्रीरामधनुषःकोटया योरेखांपश्यतेकृताम् ॥ अनेकक्लेशसंयुक्तं गर्भवासं न पश्यति ॥ ७५ ॥ धनुष्कोटयाकृतारेखा रामेणलवणाम्बुधौ ॥ तद्दर्शनाद्भवेन्मुक्तिर्न जानेस्नानजंफलम् ॥ ७६ ॥ नर्मदारोधसितपो महापातकनाशनम् ॥ गङ्गातीरे तु मरणमपवर्गफलप्रदम् ॥ ७७ ॥ दानंद्विजाःकुरुक्षेत्रे ब्रह्महत्यादिशोधकम् ॥ तपश्च मरणं दानं धनुष्कोटौकृतंनरैः ॥ ७८ ॥ महापातकनाशाय मुक्त्यैचाभीष्टसिद्धये ॥ भवेत्समर्थंविप्रेन्द्रा नात्रकार्याविचारणा ॥ ७९ ॥ तावत्संपीड्यते

सेतु को तोड़डाला इस कारण हे ब्राह्मणो ! तदनन्तर वह तीर्थ धनुष्कोटि ऐसा प्रसिद्ध हुआ ॥ ७४ ॥ जो मनुष्य श्रीरामजीके धनुष की कोटि से कीहुई रेखा को देखता है वह अनेकों क्लेशों से संयुत गर्भवास को नहीं देखता है ॥ ७५ ॥ श्रीरामजी ने क्षारसमुद्र में धनुष की कोटि से रेखा किया है उसके देखने से मुक्ति होती है और स्नान से उपजेहुये फल को मैं नहीं जानता हूं ॥ ७६ ॥ नर्मदा के किनारे तपस्या महापातकोंको नाशनेवाली है और गंगाके किनारे मरण मोक्ष के फल को देनेवाला है ॥ ७७ ॥ हे ब्राह्मणो ! कुरुक्षेत्र में दान ब्रह्महत्यादिकों का शोधक है और धनुष्कोटि में मनुष्योंसे कियाहुआ तप, मरण व दान ॥ ७८ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! महापातकोंके नाश के लिये

व मुक्ति तथा मनोरथ की सिद्धि के लिये समर्थ होता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ७९ ॥ तबतक प्राणी पातकों व उपपातकों से संयुत होता है जबतक कि मुक्तिदायिनी रामधनुष्कोटि को नहीं देखता है ॥ ८० ॥ और धनुष्कोटि को देखनेवाले मनुष्य के हृदय की ग्रन्थि कटजाती है व सब सन्देह नष्ट होजाते हैं और पाप के कर्म नाश होजाते हैं ॥ ८१ ॥ दक्षिणसमुद्र में सेतुपै विभीषण के हित के लिये रामचन्द्रजी ने धनुष की कोटि से जिस रेखा को बनाया है ॥ ८२ ॥ वही कैलास स्थान है व वैकुण्ठ और ब्रह्मलोक तथा स्वर्गलोक का मार्ग है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ८३ ॥ धनुष्कोटि में स्नान पुण्यदायक यज्ञफलोंके समान है व सब मन्त्रों

जन्तुः पातकैश्चोपपातकैः ॥ यावन्नालोक्यतेरामधनुष्कोटिर्विमुक्तिदा ॥ ८० ॥ भिद्यतेहृदयग्रन्थिश्छिद्यन्तेसर्वसंशयाः ॥ क्षीयन्तेपापकर्माणि धनुष्कोटयवलोकिनः ॥ ८१ ॥ दक्षिणाम्भोनिधौसेतौ रामचन्द्रेणनिर्मिता ॥ यारेखाधनुषः कोटया विभीषणहिताय वै ॥ ८२ ॥ सैवकैलासपदवी वैकुण्ठब्रह्मलोकयोः ॥ मार्गःस्वर्गस्यलोकस्य नात्रकार्याविचारणा ॥ ८३ ॥ तुल्यंयज्ञफलैःपुण्यैर्धनुष्कोटयवगाहनम् ॥ सर्वमन्त्राधिकंपुण्यं सर्वदानफलप्रदम् ॥ ८४ ॥ कायक्लेशकरैः पुंसां किन्तपोभिःकिमध्वरैः ॥ किंवेदैःकिमु वा शास्त्रैर्धनुष्कोटयवलोकिनः ॥ ८५ ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटौ स्नानंचेल्लभ्यते नृणाम् ॥ सितासितसरित्पुण्यवारिभिःकिंप्रयोजनम् ॥ ८६ ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटिदर्शनंलभ्यतेयदि ॥ काश्यान्तु मरणान्मुक्तिः प्रार्थ्यतेकिंवृथानरैः ॥ ८७ ॥ अनिमज्ज्यधनुष्कोटावनुपोष्यदिनत्रयम् ॥ अदत्त्वाकाञ्चनंगाञ्च दरिद्रःस्यान्न संशयः ॥ ८८ ॥ धनुष्कोटयवगाहेन यत्फलंलभ्यतेनरैः ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टयापिबहुदक्षिणैः ॥ ८९ ॥ न तत्फल

से अधिक पुण्यवाला व सब दानों के फलों को देनेवाला है ॥ ८४ ॥ धनुष्कोटिको देखनेवाले मनुष्यको शरीर के क्लेश करनेवाले पुरुषों के तपों से व यज्ञों से क्या है व वेदों तथा शास्त्रों से क्या है ॥ ८५ ॥ यदि मनुष्योंको रामचन्द्र की धनुष्कोटि में स्नान मिलै तो गंगा व यमुनानदीके पवित्र जलों से क्या प्रयोजन है ॥ ८६ ॥ यदि रामचन्द्र की धनुष्कोटि का दर्शन मिलता है तो मनुष्य काशी में मरनेसे मुक्ति की क्यों वृथा प्रार्थना करते हैं ॥ ८७ ॥ धनुष्कोटि में स्नान न कर व तीन दिन उपास न कर और सुवर्ण व गऊ को न देकर निस्सन्देह दरिद्र होता है ॥ ८८ ॥ धनुष्कोटि में स्नानसे मनुष्यों को जो फल मिलता है बहुत दक्षिणावाले अग्निष्टोमादिक यज्ञों से

पूजन करके ॥ ८९ ॥ मनुष्य उस फल को नहीं पाता है यह मैं सत्य सत्य कहता हूं मुनिलोग धनुष्कोटिनामक तीर्थ को सब तीर्थों से अधिक कहते हैं ॥ ९० ॥ हे द्विजोत्तमो ! पृथ्वीमें दशकरोड़ हज़ार तीर्थ हैं उनकी समीपता इस धनुष्कोटिमें है ॥ ९१ ॥ और आठ वसु, आदित्य, रुद्र व मरुत् और गन्धर्वोंसमेत साध्य देवता तथा सिद्ध व विद्याधर ॥ ९२ ॥ ये और अन्य जो देवता हैं वे सदैव इस धनुष्कोटितीर्थ में समीपता करते हैं और नित्यही पितामह ॥ ९३ ॥ शिव, विष्णु, पार्वती, लक्ष्मी व सरस्वतीजी समीपता करती हैं धनुष्कोटिमें तपस्या करके देवता व ऋषिलोग ॥ ९४ ॥ हे मुनीश्वरो ! उसके फलसे बड़ी सिद्धि को प्राप्त हुये हैं और जो मनुष्य उसमें नहाता है व पितरों

मवाप्नोति सत्यंसत्यंवदाम्यहम् ॥ धनुष्कोटयभिधंतीर्थं सर्वतीर्थाधिकंविदुः ॥ ९० ॥ दशकोटिसहस्राणि सन्ति तीर्थानिभूतले ॥ तेषांसान्निध्यमस्त्यत्र धनुष्कोटौद्विजोत्तमाः ॥ ९१ ॥ अष्टौवसवआदित्या रुद्राश्च मरुतस्तथा ॥ साध्याश्च सहगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा ॥ ९२ ॥ एते चान्ये च ये देवाः सान्निध्यंकुर्वतेसदा ॥ तीर्थेत्रधनुषःकोटौ नित्यमेवपितामहः ॥ ९३ ॥ सन्निधत्तेशिवोविष्णुरुमा मा च सरस्वती ॥ धनुष्कोटौतपस्तप्त्वा देवाश्च ऋषयस्तथा ॥ ९४ ॥ विपुलांसिद्धिमगमंस्तत्फलेनमुनीश्वराः ॥ स्नायात्तत्रनरोयस्तु पितृदेवांश्च तर्पयेत् ॥ ९५ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकेमहीयते ॥ अत्रैकम्भोजयेद्विप्रं योनरोभक्तिसंयुतः ॥ ९६ ॥ इहलोकेपरत्रापि सोनन्तसुखमश्नुते ॥ शाकमूलफलेर्वृत्तिं यो न वर्तयतेनरः ॥ ९७ ॥ सनरोधनुषःकोटौ स्नायात्तत्फलसिद्धये ॥ अश्वमेधक्रतुंकर्तुं शक्तिर्यस्य न विद्यते ॥ ९८ ॥ धनुष्कोटौ स हि स्नायात्तेनतत्फलमश्नुते ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यः शूद्रो वापि मुनीश्वराः ॥ ९९ ॥ निन्द्य

तथा देवताओं को तर्पण करता है ॥ ९५ ॥ वह सब पापों से छूटकर ब्रह्मलोक में पूजाजाता है और भक्तिसंयुत जो मनुष्य इस तीर्थ पै एक ब्राह्मण को भोजन कराता है ॥ ९६ ॥ वह इस लोक व परलोक में अमित सुखको भोगता है जो मनुष्य शाक, मूल व फलसे जीविका नहीं करता है ॥ ९७ ॥ वह उस फलकी सिद्धि के लिये धनुष्कोटि में स्नान करै और अश्वमेधयज्ञ करने के लिये जिसकी शक्ति नहीं है ॥ ९८ ॥ वह धनुष्कोटि में स्नान करै क्योंकि उससे उस फलको मनुष्य पाता है

हे मुनीश्वरो! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र भी॥ ९९॥ धनुष्कोटि में स्नान से निन्द्ययोनि में नहीं पैदा होते हैं माघ में सूर्यनारायण के मकरराशिमें स्थित होने पर जो मनुष्य धनुष्कोटि में स्नान करता है॥ १००॥ हे ब्राह्मणो! उसके पुण्यको कहने के लिये मैं नहीं समर्थ हूं जो मनुष्य माघ महीने में धनुष्कोटि में नहाता है॥ १॥ हे मुनीश्वरो! वह गंगादिक सब तीर्थों में नहाचुका और वह अक्षयलोकों को व मोक्षको भी पाता है॥ २॥ और स्त्री व पुरुष का जन्म से लगाकर जो पाप होता है वह सब माघ महीने में इस तीर्थ में स्नान करने से नाश को प्राप्त होता है॥ ३॥ जैसे सब देवताओं के मध्य में रघुनाथजी उत्तम हैं वैसेही धनुष्कोटितीर्थ सब तीर्थों में

योनौ न जायन्ते धनुष्कोटचवगाहनात्॥ मकरस्थेरवौमाघे धनुष्कोटौ तु योनरः॥ १००॥ स्नायात्पुण्यंनिगदितुं तस्याहं न क्षमोद्विजाः॥ माघमासेधनुष्कोटाववगाहेत योनरः॥ १॥ सस्नातःसर्वतीर्थेषु गङ्गादिषुमुनीश्वराः॥ प्राप्नुयादक्षयाँल्लोकान्मोक्षं चापिलभेतसः॥ २॥ जन्मप्रभृतियत्पापं स्त्रियो वा पुरुषस्य वा॥ तत्सर्वंमाघमासेत्र मज्जनाद्विलयंव्रजेत्॥ ३॥ यथासुराणांसर्वेषामुत्तमोरघुनन्दनः॥ तथैव च धनुष्कोटिः सर्वतीर्थोत्तमास्मृता॥ ४॥ तत्रस्नानं माघमासे सर्वाभीष्टप्रदायकम्॥ त्रिंशद्दिनंमाघमासे नियतोपिजितेन्द्रियः॥ ५॥ धनुष्कोटौनरःस्नायादपुनर्भवसिद्धये॥ एकभक्तोजितक्रोधो माघमासेत्रयोनरः॥ ६॥ स्नानंकरोतिविप्रेन्द्रा मुच्यतेब्रह्महत्यया॥ श्रीरामधनुषःकोटौ माघमासेनरस्तु यः॥ ७॥ स्नात्वान्तेशिवरात्रौ च निराहारोजितेन्द्रियः॥ कृत्वाजागरणंरात्रौ प्रतियामंविशेषतः॥ ८॥ रामनाथंमहादेवमभ्यर्च्यविधिपूर्वकम्॥ परेद्युरुदितेसूर्ये धनुष्कोटौनिमज्ज्य च॥ ९॥ अन्येष्वपि च तीर्थेषु

उत्तम कहागया है॥ ४॥ और माघ महीने में उस तीर्थ में स्नान सब मनोरथोंका देनेवाला है माघ महीने में नियत व जितेन्द्रिय मनुष्य फिर जन्म न होने के लिये तीस दिनतक धनुष्कोटिमें स्नान करै व क्रोधको जीतेहुये एक बार भोजन करनेवाला जो मनुष्य माघ महीने में इस तीर्थमें॥ ५। ६॥ हे द्विजेन्द्रो! स्नान करता है वह ब्रह्महत्या से छूटजाता है और माघ महीने में श्रीरामजी की धनुष्कोटि में जो मनुष्य॥ ७॥ नहाकर अन्तमें शिवरात्रिमें निराहार व जितेन्द्रिय पुरुष रात को प्रत्येक पहर में विशेषकर जागरण कर॥ ८॥ रामनाथ महादेवजी को विधिपूर्वक पूजकर दूसरे दिन सूर्य उदय होने पर धनुष्कोटि में नहाकर॥ ९॥ नियतमनवाला मनुष्य अन्य भी

तीर्थों में नहाकर नित्यकर्मोंको करके रामनाथ को सेवन कर॥ १० ॥ हे द्विजोत्तमो ! शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को अन्नों से भोजन कराकर शक्ति से पृथ्वी, गऊ, तिल व धान्य और धनको देकर ॥ ११ ॥ ब्राह्मणों से आज्ञा को लेकर आप भी मौन होकर भोजन करै ऐसा करनेवाले पुरुष के रामनाथ महेश्वरजी ॥ १२ ॥ सब पापों को छुडा कर भुक्ति व मुक्ति को देते हैं इसलिये हे मुनीश्वरो ! सब यत्न से माघ महीने में ॥ १३ ॥ मोक्ष चाहनेवाले मनुष्यों को इस धनुष्कोटि में नहाना चाहिये जो मनुष्य सेतु पै अर्धोदय में धनुष्कोटितीर्थ में स्नान ॥ १४ ॥ करता है हे ब्राह्मणो ! उसके पातक उसी क्षण नाश होजाते हैं इस बड़े प्रभाववाले तीर्थ में स्नान भुक्ति व मुक्ति के फल

स्नात्वानियतमानसः ॥ निर्वृत्यनित्यकर्माणि रामनाथंनिषेव्य च ॥ १० ॥ यथाशक्ति द्विजानन्नैर्भोजयित्वाद्विजोत्तमाः॥ भूमिङ्गाञ्च तिलान्धान्यं दत्त्वावित्तञ्च शक्तितः ॥ ११ ॥ ब्राह्मणैरप्यनुज्ञातःस्वयम्भुञ्जीतवाग्यतः॥ एवंकृतवतः पुंसो रामनाथोमहेश्वरः ॥ १२ ॥ विमोच्यसर्वपापानि भुक्तिम्मुक्तिम्प्रयच्छति ॥ अतःसर्वप्रयत्नेन माघमासेमुनीश्वराः ॥ १३ ॥ स्नातव्यं हि धनुष्कोटौ नरैरत्रमुमुक्षुभिः ॥ धनुष्कोटौनरःस्नानं सेतावर्धोदये तु यः ॥ १४ ॥ करोतितस्यपापानि नश्यन्त्येवक्षणाद्द्विजाः ॥ स्नानंमहोदये चात्र भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १५ ॥ यःस्नायाद्धनुषःकोटावर्द्धोदयमहोदये ॥ तस्यवश्यास्त्रयोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १६ ॥ धनुष्कोटौद्विजाःस्नानमर्द्धोदयमहोदये ॥ विनाप्यद्वैतविज्ञानं सायुज्यप्राप्तिकारणम् ॥ १७ ॥ तत्रस्नानंद्विजाः पुंसामर्द्धोदयमहोदये ॥ मन्वाद्युक्तंविनासत्यं प्रायश्चित्तं हि पापिनाम् ॥ १८ ॥ अत्रसेतौधनुष्कोटावर्द्धोदयमहोदये ॥ स्नाति चेन्मनुजोविप्राः सत्यंयज्ञंविनाप्ययम् ॥ १९ ॥ यज्ञानां

को देनेवाला है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य सूर्यनारायण के अर्धोदय में बडे प्रभाववाले धनुष्कोटितीर्थ में नहाता है उसके ब्रह्मा, विष्णु व महादेव तीनों देवता वश होते हैं ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मणो ! अद्वैतज्ञानके विना भी अर्धोदयमें बड़े प्रभाववाले धनुष्कोटिमें स्नान सायुज्य मोक्षकी प्राप्तिका कारण है ॥ १७ ॥ हे द्विजो ! अर्धोदय में उस बड़े प्रभाववाले तीर्थ में स्नान मन्वादिकों के कहेहुये विना भी सत्यही पापियों का प्रायश्चित्त होता है ॥ १८ ॥ हे ब्राह्मणो ! अर्धोदय में इस सेतु पै बड़े प्रभाववाले

धनुष्कोटितीर्थ में यदि मनुष्य नहाता है तो यह पुरुष सत्यही यज्ञ के विना भी ॥ १९ ॥ यज्ञों के सम्पूर्ण फल को पाता है इसमें सन्देह नहीं है और जो मनुष्य चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहणमें इस तीर्थमें नहाता है ॥ २० ॥ उसके पुण्यके फलको कहने के लिये शेष भी नहीं गिनसक्ते हैं और चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहणों में धनुष्कोटि में स्नान ॥ २१ ॥ ब्रह्महत्यादि पातकों का प्रायश्चित्त कहागया है और चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण में श्रीरामजी के धनुष की कोटि में ॥ २२ ॥ स्नान सायुज्य मोक्षदायक व सब तीर्थों के फल का दायक कहागया है और चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहणों में अर्धोदय में बडे प्रभाववाले ॥ २३ ॥ इस तीर्थ में भुक्ति, मुक्ति के फलको चाहनेवाले मनुष्यों को स्नान

फलमाप्नोति सम्पूर्णं नात्र संशयः ॥ चन्द्रसूर्योपरागेषु यःस्नायादत्रमानवः ॥ २० ॥ तस्यपुण्यफलंवक्तुं शेषेणापि न गण्यते ॥ चन्द्रसूर्योपरागेषु धनुष्कोट्यवगाहनम् ॥ २१ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां प्रायश्चित्तमुदीरितम् ॥ श्रीरामधनुषः कोटौ चन्द्रसूर्योपरागयोः ॥ २२ ॥ स्नानंसायुज्यदंप्रोक्तं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥ चन्द्रसूर्योपरागेषु अर्द्धोदयमहोदये ॥ २३ ॥ स्नातव्यमत्रमनुजैर्भुक्तिमुक्तिफलेच्छुभिः ॥ अतःसर्वंपरित्यज्य गच्छध्वंमुनिपुङ्गवाः ॥ २४ ॥ धनुष्कोटिंमहापुण्यां भुक्तिमुक्तिफलप्रदाम् ॥ तत्रगत्वापितृभ्यश्च कुरुध्वंपिण्डदापनम् ॥ २५ ॥ आकल्पम्पितृतृप्तिः स्यादत्रपिण्डनिवापनात् ॥ पितॄणांतृप्तिदंस्थानत्रयंरामेणनिर्मितम् ॥ २६ ॥ सेतुमूलेधनुष्कोट्यां गन्धमादनपर्वते ॥ पिण्डंदत्त्वा पितृभ्योत्र ऋणान्मुक्तोभविष्यति ॥ २७ ॥ सेतुमूलंधनुष्कोटिर्गन्धमादनमेव च ॥ ऋणमोक्षइतिख्यातं त्रिस्थानं देवनिर्मितम् ॥ २८ ॥ अतःसर्वप्रयत्नेन धनुष्कोटिर्निषेव्यताम् ॥ अत्रागत्यधनुष्कोटौ स्नात्वानियमपूर्वकम् ॥ २९ ॥

करना चाहिये इसकारण हे मुनिश्रेष्ठो ! तुमलोग सब छोड़कर भुक्ति, मुक्ति के फल को देनेवाली महापवित्र धनुष्कोटि को जावो और वहां जाकर पितरों को पिण्डदान करो ॥ २४ । २५ ॥ क्योंकि यहां पिण्डदान से कल्पपर्यन्त पितरों की तृप्ति होती है रामजी ने पितरों के तृप्तिदायक तीन स्थानों को बनाया है ॥ २६ ॥ सेतुमूल में व गन्धमादनपर्वतपै और इस धनुष्कोटिमें मनुष्य पितरोंके लिये पिण्डको देकर ऋण से मुक्त होवैगा ॥ २७ ॥ सेतुमूल, धनुष्कोटि व गन्धमादनपर्वत ये देवनिर्मित तीनों स्थान ऋणमोक्ष ऐसे कहेगये हैं ॥ २८ ॥ इसकारण सब यत्न से धनुष्कोटि को सेवन करो हे मुनीश्वरो ! द्रोणाचार्य के पुत्र श्रीमान् अश्वत्थामा यहां आकर नियमपूर्वक धनु-

ष्कोटि में नहाकर क्षणभर में सोतेहुये को मारने के भयंकर दोष से छूटगये ॥ २९ । ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! तुमलोगों से इसप्रकार मनुष्यों के सब पापों का विनाशक व भुक्ति, मुक्ति के फलको देनेवाला धनुष्कोटिका प्रभाव कहागया ॥ १३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांधनुष्कोटिप्रशंसायां धनुष्कोटिवैभवकथनंनामात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । यथा सुतवधपापसों द्रोणपुत्र भो मुक्त । इकतिसवें अध्याय में सोइ चरित है उक्त ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! अश्वत्थामा ने किसकारण सुप्तमारण किया

द्रोणाचार्यसुतः श्रीमानश्वत्थामामुनीश्वराः ॥ सुप्तमारणदोषेण घोरेणमुमुचेक्षणात् ॥ ३० ॥ एवंवःकथितंविप्रा धनुष्कोटेस्तु वैभवम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदंनॄणां सर्वपापनिवर्हणम् ॥ १३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येधनुष्कोटिप्रशंसायांधनुष्कोटिवैभवकथनंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषय ऊचुः ॥ अश्वत्थामाकथंसूत सुप्तमारणमाचरत् ॥ कथं च मुक्तस्तत्पापाद्धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ १ ॥ एतन्नःश्रद्दधानानां ब्रूहिपौराणिकोत्तम ॥ तृप्तिर्न जायतेस्माकं त्वद्वचोमृतपायिनाम् ॥ २ ॥ इतिपृष्टस्तदासूतो नैमिषारण्यवासिभिः ॥ वक्तुंप्रचक्रमेतत्र व्यासंनत्वागुरुंमुदा ॥ ३ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ राज्यार्थेकलहेजाते पाण्डवानाम्पुराद्विजाः ॥ धार्तराष्ट्रैर्महायुद्धे महदक्षौहिणीयुते ॥ ४ ॥ युद्धंदशदिनंकृत्वा भीष्मेशान्तनवेहते ॥ द्रोणेपञ्चदिनं कृत्वा कर्णे च द्विदिनंतथा ॥ ५ ॥ तथैवैकदिनंयुद्ध्वा शल्ये च निधनङ्गते ॥ अष्टादशदिनेतत्र रणेदुर्योधनेद्विजाः ॥ ६ ॥ भग्नोरौभीमगदया

याने सोतेहुये को मारा और किसप्रकार वह धनुष्कोटि में स्नान से उस पातक से छूटा है ॥ १ ॥ हे पौराणिकोत्तम ! इसको श्रद्धावान् हमलोगों से कहिये क्योंकि तुम्हारे वचनरूपी अमृत को पीनेवाले हमलोगों की तृप्ति नहीं होती है ॥ २ ॥ उससमय इसप्रकार नैमिषारण्यवासी मुनियों से पूछेहुये सूतजीने वहां हर्ष से व्यास गुरु को प्रणाम कर कहने का प्रारम्भ किया ॥ ३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! पुरातनसमय राज्य के लिये धृतराष्ट्र के पुत्रों से पाण्डवों का बखेडा होनेपर बडी अक्षौहिणी से संयुत महायुद्ध में ॥ ४ ॥ दश दिन युद्ध करके शान्तनु के पुत्र भीष्म के मरनेपर व पांच दिन युद्ध करके द्रोण और दो दिन युद्ध कर कर्णके मरनेपर ॥ ५ ॥ वैसेही एक दिन

युद्ध कर शल्य के मरजानेपर हे ब्राह्मणो ! उस अठारहवें दिन समर में दुर्योधन ॥ ६ ॥ नृपोत्तम की जंघा जब भीमकी गदा से तोड़ीगई और वह गिरपड़ा तब हे ब्राह्मणो ! सेना के टिकनेवाले स्थान के लिये शीघ्रता करतेहुये सब राजालोग ॥ ७ ॥ वहां युद्ध शान्त होने पर प्रसन्नमन होकर चलेगये और धृष्टद्युम्न व शिखण्डी आदिक तथा संजय ये सब ॥ ८ ॥ व और भी राजालोग अपने निवेशों को गये इसके उपरान्त कृष्ण व सात्यकिसमेत बड़े वीर कुन्ती के पुत्र युधिष्ठिरादिक ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणो ! दुर्योधन के शून्य शिबिर में पैठगये और वहां स्थित वृद्धमन्त्री व गेरुहे रंग के मलिन वस्त्रों को पहिने स्त्रियों के रक्षक हाथों को जोड़े व झुकेहुये षण्ढों से प्रणाम कियेजाते हुये वे पार्थ

पतितेराजसत्तमे ॥ सर्वेनृपतयोविप्रा निवेशायकृतत्वराः ॥ ७ ॥ युद्धेविरमितेतत्र प्रययुर्हृष्टमानसाः ॥ धृष्टद्युम्नशिखण्ड्याद्याः सृञ्जयाःसर्व एव हि ॥ ८ ॥ अन्ये चापि महीपाला जग्मुःस्वशिबिराण्यथ ॥ अथपार्थामहावीराः कृष्णसात्यकिसंयुताः ॥ ९ ॥ दुर्योधनस्यशिबिरं प्राविशन्निर्जनंद्विजाः ॥ वृद्धैरमात्यैस्तत्रस्थैः षण्ढैःस्त्रीरक्षकैस्तथा ॥ १० ॥ कृताञ्जलिपुटैःप्रह्वैः काषायमलिनाम्बरैः ॥ प्रणम्यमानास्तेपार्थाः कुरुराजस्यवेश्मनि ॥ ११ ॥ तत्रत्यद्रव्यजातानि समादायमहाबलाः ॥ सुयोधनस्यशिबिरे न्यवसन्तसुखेनते ॥ १२ ॥ अथतानब्रवीत्पार्थाञ्च्छ्रीकृष्णःप्रीणयन्निव ॥ मङ्गलार्थाय चास्माभिर्वस्तव्यंशिबिराद्बहिः ॥ १३ ॥ इत्युक्तावासुदेवेन तथेत्युक्त्वाथपाण्डवाः ॥ कृष्णसात्यकिसंयुक्ताः प्रययुःशिबिराद्बहिः ॥ १४ ॥ वासुदेवेनसहिता मङ्गलार्थं हि पाण्डवाः ॥ ओघवत्याःसमासाद्य तीरंनद्यानरोत्तमाः ॥ १५ ॥ ऊषुस्तांरजनीन्तत्र हतशत्रुगणाःसुखम् ॥ कृतवर्माकृपोद्रौणिस्तथादुर्योधनान्तिकम् ॥ १६ ॥ आदित्या

कुरुराज (धृतराष्ट्र) के घर में ॥ १० । ११ ॥ वहां प्राप्त द्रव्योंको लेकर उन बड़े बली पार्थों ने सुखसे दुर्योधन के शिबिर में निवास किया ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर प्रसन्न कराते ऱ्ये से श्रीकृष्ण ने उन पार्थों से, कहा कि मंगल के लिये हमलोगों को शिबिर से बाहर टिकना चाहिये ॥ १३ ॥ वासुदेव श्रीकृष्णजी से ऐसा कहेहुये पाण्डवलोग बहुत अच्छा कहकर कृष्ण व सात्यकिसमेत शिबिर के बाहर गये ॥ १४ ॥ व ओघवती नदी के किनारे जाकर नष्टशत्रुसमूहवाले वे नरोत्तम पाण्डवलोग श्रीकृष्णसमेत उस रात्रि में

वहा मंगल के लिये सुखसे बसतेभये और कृतवर्मा, कृपाचार्य व अश्वत्थामा दुर्योधनके समीप ॥ १५ । १६ ॥ दुपहर के इस पार सूर्यास्त के पहिले आये व उससमय युद्ध की धूलियों में लिपटेहुये व भीमसेनकी भयकर गदा से टूटे ऊरुदण्ड तथा रक्तसे सींचेहुये सब अंगोंवाले व पृथ्वी पै पड़ेहुये दुर्योधन को देखकर ॥ १७ । १८ ॥ उससमय वहां द्रोणपुत्र अश्वत्थामादिक तीनों ने शोच किया और उस दुर्योधन नृपतिने भी युद्ध में उनको देखकर शोच किया ॥ १९ ॥ और आंसुवोंसे विकल लोचनोंवाले राजाको देख कर उससमय क्रोध से फैलायेहुये लोचनोंवाले अश्वत्थामाने क्रोध से जलतीहुई महाअग्नि की नाईं हाथ पै हाथ को दबाकर आंसुवों से विकल वाणी से दुर्योधन

स्तमयात्पूर्वमपराह्णेसमाययुः ॥ सुयोधनंतदादृष्ट्वा रणपांशुषुरूपितम् ॥ १७ ॥ भग्नोरुदण्डङ्गदया भीमसेनस्यभीमया ॥ रुधिरासिक्तसर्वाङ्गञ्चेष्टमानंमहीतले ॥ १८ ॥ अशोचन्ततदातत्र द्रोणपुत्रादयस्त्रयः ॥ शुशोचसोपितान्दृष्ट्वा रणेदुर्योधनोनृपः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वातथा तु राजानं बाष्पव्याकुललोचनम् ॥ अश्वत्थामातदाकोपाज्ज्वलन्निवमहानलः ॥ २० ॥ पाणौपाणिंविनिष्पिष्य क्रोधविस्फारितेक्षणः ॥ अश्रुविक्लवयावाचा दुर्योधनमभाषत ॥ २१ ॥ पितामेपातितःक्षुद्रैश्छलेनैवरणाजिरे ॥ न तथातेनशोचामि यथानिष्पातितेत्वयि ॥ २२ ॥ शृणुवाक्यंममाद्यत्वं यथार्थंवदतोनृप ॥ सुकृतेनशपे चाहं सुयोधनमहामते ॥ २३ ॥ अद्यरात्रौहनिष्यामि पाण्डवान्सहसृञ्जयैः ॥ पश्यतोवासुदेवस्य त्वमनुज्ञांप्रयच्छमे ॥ २४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा द्रौणिंराजातदाब्रवीत् ॥ तथास्त्वितिपुनः प्राह कृपंराजाद्विजोत्तमाः ॥ २५ ॥ आचार्यैनन्द्रोणपुत्रं कलशोत्थेनवारिणा ॥ सेनापत्येभिषिञ्चस्वेत्यथसोपितथाकरोत् ॥ २६ ॥ सोभिषिक्तस्तदा

से कहा ॥ २० । २१ ॥ कि युद्ध के आंगन में क्षुद्रों ने छलही से मेरे पिता को मारा उससे मैं वैसा नहीं शोच करता हूं जैसा कि तुम्हारे गिरनेपर शोच करता हूं ॥ २२ ॥ हे राजन् ! इससमय तुम यथार्थ कहतेहुये मेरे वचन को सुनो हे महामते, सुयोधन ! मैं पुण्य से सौगन्द करता हूं ॥ २३ ॥ कि आज श्रीकृष्ण के देखतेहुये मैं रात को सृंजयोंसमेत पाण्डवों को मारूंगा तुम मुझको आज्ञा देवो ॥ २४ ॥ उससमय उसके उस वचन को सुनकर राजा दुर्योधन ने अश्वत्थामा से यह कहा कि वैसाही होवै फिर हे द्विजोत्तमो ! राजा दुर्योधन ने कृपाचार्य से कहा ॥ २५ ॥ कि हे आचार्य ! इन द्रोणपुत्र अश्वत्थामा को तुम कलश से उपजेहुये जल से सेनाध्यक्षता में अभिषेक करो इस

के अनन्तर उस कृपाचार्य ने वैसाही किया ॥ २६ ॥ उससमय अभिषेक कियाहुआ वह अश्वत्थामा नृपोत्तम दुर्योधन को लिपटकर कृतवर्मा व कृपाचार्यसमेत शीघ्रही गया ॥ २७ ॥ तदनन्तर वे तीनों वीर दक्षिणदिशा के सामने चले और सूर्यास्त के पहिले शिबिर के समीप प्राप्त हुये ॥ २८ ॥ और वहां पार्थों के भयंकर शब्द को सुनकर जीतकी इच्छावाले अश्वत्थामादिक तीनों उससमय पाण्डवों से भगायेहुये डरगये ॥ २९ ॥ और डर से पूर्वमुख होकर वे कुछ दूर भगे व परिश्रम से विकल हुये तदनन्तर मुहूर्तभर वे क्रोध के वश व अनुगामी होकर ॥ ३० ॥ दुर्योधन के मारने से विकल वे वहां क्षणभर स्थित हुये तदनन्तर उन्हों ने अनेक प्रकार के वृक्षों व लताओं से

द्रौणिः परिष्वज्यनृपोत्तमम् ॥ कृतवर्मकृपाभ्यां च सहितस्त्वरितंययौ ॥ २७ ॥ ततस्ते तु त्रयोवीराः प्रयातादक्षिणोन्मुखाः ॥ आदित्यास्तमयात्पूर्वं शिबिरान्तिकमासत ॥ २८ ॥ पार्थानांभीषणंशब्दं श्रुत्वातत्रजयैषिणः ॥ पाण्डवानुद्रुताभीतास्तदाद्रौण्यादयस्त्रयः ॥ २९ ॥ प्राङ्मुखादुद्रुवुर्भीत्या कियद्दूरंश्रमातुराः ॥ मुहूर्तंतेततोभूत्वा क्रोधामर्षवशानुगाः ॥ ३० ॥ दुर्योधनवधार्तास्ते क्षणंतत्रावतस्थिरे ॥ ततोपश्यन्नरण्यं वै नानातरुलतावृतम् ॥ ३१ ॥ अनेकमृगसम्बाधं क्रूरपक्षिगणाकुलम् ॥ समृद्धजलसम्पूर्णतटाकपरिशोभितम् ॥ ३२ ॥ पद्मेन्दीवरकह्लारसरसीशतसंकुलम् ॥ तत्रपीत्वाजलन्ते तु पाययित्वाहयांस्तथा ॥ ३३ ॥ अनेकशाखासंबाधं न्यग्रोधंददृशुस्ततः ॥ सम्प्राप्यतु महावृक्षं न्यग्रोधन्तेत्रयस्तदा ॥ ३४ ॥ अवतीर्यरथेभ्यश्च मोचयित्वातुरङ्गमान् ॥ उपस्पृश्यजलंतत्र सायंसन्ध्यामुपासत ॥ ३५ ॥ अथचास्तगिरिंभानुः प्रपेदे च गतप्रभः ॥ ततश्च रजनीघोरा समभूत्तिमिराकुला ॥ ३६ ॥ रात्रिंचराणिसत्त्वानि सञ्चरन्तित्वितस्ततः ॥

घिरेहुये वन को देखा ॥ ३१ ॥ जोकि अनेक प्रकार के मृगों से संयुत व क्रूर पक्षिगणों से युक्त तथा बहुत जल से भरेहुये तड़ागों से शोभित था ॥ ३२ ॥ और पद्म, नीलकमल व सुर्खकमलोंवाले सैकडों तड़ागों से संयुत था वहां उन्हों ने जल पीकर व घोड़ों को पिलाकर ॥ ३३ ॥ तदनन्तर अनेकों शाखाओं से संयुत बरगद को देखा और उससमय बड़े भारी बरगदवृक्ष को प्राप्त होकर उन तीनों ने ॥ ३४ ॥ रथों से उतरकर व घोड़ों को छोड़कर वहां जल को स्पर्श कर सायंकालसन्ध्योपासन किया ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर प्रकाशहीन सूर्यनारायण अस्ताचल को प्राप्त हुये तदनन्तर अन्धकार से घिरीहुई भयंकर रात होगई ॥ ३६ ॥ और रात्रि में विचरनेवाले प्राणी

इधर उधर घूमनेलगे व दिन में विचरनेवाले प्राणी नींद के वश प्राप्त हुये ॥ ३७ ॥ और शोकसे दुर्बल वे कृतवर्मा, कृपाचार्य, व अश्वत्थामा सायंकाल में बरगद के समीप टिकगये ॥ ३८ ॥ और उससमय बड़े पराक्रमी कृपाचार्य व कृतवर्मा निद्रा को प्राप्त हुये और दुःखके न योग्य व सुख के योग्य वे पृथ्वी में स्थित हुये ॥ ३९ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! क्रोध से उदासीन कियेहुये मनवाला अश्वत्थामा सापकी नाई श्वास लेताहुआ निद्राको न प्राप्त हुआ ॥ ४० ॥ तदनन्तर उससमय उसने भयंकर वनको देखा उसके उपरान्त बहुत कौवों से संयुत बरगद को देखा ॥ ४१ ॥ उस बरगद पै रातमें कौवोंके गण निवास को प्राप्त हुये और वे अलग २ भिन्न शाखाओं पै सुखपूर्वक सोगये ॥ ४२ ॥

दिवाचराणिसत्त्वानि निद्रावशमुपाययुः ॥ ३७ ॥ कृतवर्माकृपोद्रौणिः प्रदोषसमये हि ते ॥ न्यग्रोधस्योपविविशुरन्तिकेशोककर्शिताः ॥ ३८ ॥ कृपभोजौतदानिद्रां भेजातेतिपराक्रमौ ॥ सुखोचितास्त्वदुःखार्हा निषेदुर्धरणीतले ॥ ३९ ॥ द्रोणपुत्रस्तु कोपेन कलुषीकृतमानसः ॥ ययौ न निद्रां विप्रेन्द्रा निश्वसन्नुरगोयथा ॥ ४० ॥ ततोवलोकयाञ्चक्रे तदारण्यंभयानकम् ॥ न्यग्रोधञ्च ततोपश्यद्बहुवायससंकुलम् ॥ ४१ ॥ तत्रवायसवृन्दानि निशायांवासमाययुः ॥ सुखंभिन्नासुशाखासु सुषुपुस्ते पृथक्पृथक् ॥ ४२ ॥ काकेषुतेषुसुप्तेषु विश्वस्तेषुसमन्ततः ॥ ततोपश्यत्समायान्तं भासंद्रौणिर्भयङ्करम् ॥ ४३ ॥ क्रूरशब्दंक्रूरकायं बभ्रुपिङ्गकलेवरम् ॥ सभासोथभृशंशब्दं कृत्वालीयतशाखिनि ॥ ४४ ॥ उत्प्लुत्यतस्यशाखायां न्यग्रोधस्यविहङ्गमः ॥ सुप्तान्काकान्निजघ्नेसावनेकान्वायसान्तकः ॥ ४५ ॥ काकानामभिनत्पक्षान्सकेषाञ्चिद्विहङ्गमः ॥ इतरेषाञ्च चरणाञ्छिरांसिचरणायुधः ॥ ४६ ॥ विचकर्तक्षणेनासावुलूकोवलवान्द्विजाः ॥ सभिन्न

और उन विश्वस्त कौवों के सब ओर सोनेपर तदनन्तर अश्वत्थामा ने आतेहुये भयंकर भास (गोष्ठकुक्कुट) पक्षी को देखा ॥ ४३ ॥ जोकि क्रूरशब्दवाला व क्रूरशरीर और बभ्रु व पिंगलवर्णशरीरवाला था इसके अनन्तर वह भासपक्षी बहुत शब्द करके वृक्षमें लीन होगया ॥ ४४ ॥ और उस बरगद की शाखा पै कूदकर इस वायसान्तक पक्षीने सोतेहुये अनेक कौवोंको मारडाला ॥ ४५ ॥ व उस कुक्कुटपक्षीने कितेक कौवोंके पंखोंको तोडडाला और अन्य कौवोंके पैर व शिरोंको तोड़डाला ॥ ४६ ॥

व हे ब्राह्मणो! इस बलवान् उलूक ने क्षणभर में काटडाला तब कौवों के बहुत से टूटेहुये अंगों करके॥ ४७ ॥ सब बरगद का मण्डल सब ओर से आच्छादित होगया तब उन कौवों को मारकर यह उलूक (घुघुवा) प्रसन्न हुआ॥ ४८ ॥ भासपक्षी से रातमें कियेहुये ऐसे उस कर्म को देखकर इस उपदेश को स्मरण करतेहुये अकेले अश्वत्थामा ने यह विचार किया मैं भी ऐसेही रातमें शत्रुवों का नाश करूंगा क्योंकि सीधे मार्ग से लडनेवाले पुरुषसे वे पाण्डव नहीं जीते जासक्ते हैं॥ ४९। ५०॥ इस कारण आज जीतकी इच्छावाले वे मुझसे छलसे मारने योग्य हैं क्योंकि दुर्योधनके समीप मैंने मारने की प्रतिज्ञा की है॥ ५१॥ और सीधे मार्गसे युद्ध में मेरे प्राणोंका नाश

देहावयवैः काकानाम्बहुभिस्तदा॥ ४७॥ समन्तादावृतंसर्वं न्यग्रोधपरिमण्डलम्॥ वायसांस्तान्निहत्यासावुलूको मुमुदेतदा॥ ४८॥ द्रौणिर्दृष्ट्वा तु तत्कर्म भासेनैवंकृतंनिशि॥ करिष्याम्यहमप्येवं शत्रूणांनिधनंनिशि॥ ४९॥ इत्यचिन्तयदेकःसन्नुपदेशमिमंस्मरन्॥ जेतुं न शक्याःपार्था हि ऋजुमार्गेणयुध्यता॥ ५०॥ मयातच्छद्मनातेद्य हन्तव्याजितकाङ्क्षिणः॥ सुयोधनसकाशे च प्रतिज्ञातोमयावधः॥ ५१॥ ऋजुमार्गेणयुद्धे मे प्राणनाशोभविष्यति॥ छलेन युध्यमानस्य जयश्चास्यरिपुक्षयः॥ ५२॥ यच्चनिन्द्यंभवेत्कार्यं लोकेसर्वजनैरपि॥ कार्यमेव हि तत्कर्म क्षत्रधर्मानुवर्तिना॥५३॥ पार्थैरपिछलेनैव कृतंकर्मसुयोधने॥ अस्मिन्नर्थेपुराविद्भिःप्रोक्ताःश्लोकाभवन्ति हि॥५४॥ परिश्रान्तेविकीर्णे च भुञ्जाने च रिपोर्बले॥ प्रस्थाने च प्रवेशे च प्रहर्तव्यं न संशयः॥५५॥ निद्रार्तमर्धरात्रे च तथात्यक्तायुधंरणे॥ भिन्नयोधंबलंसर्वं प्रहर्तव्यमरातिभिः॥ ५६॥ एवंसनियमंकृत्वा सुप्तमारणकर्मणि॥ प्रबोधयद्द्रोजकृपौ सुप्तौरात्रौस

होगा व छल से युद्ध करतेहुये मेरी जीत होगी व इस दुर्योधन के शत्रुका नाश होगा॥ ५२॥ और संसार में सब लोगोंसे भी जो कर्म निन्दा के योग्य हो क्षत्रियधर्म के अनुगामी पुरुष को वही कर्म करना चाहिये॥ ५३॥ और पार्थों ने दुर्योधन के विषय में छलही से कार्य किया है इस विषय में पुरातन के विद्वानों से कहेहुये श्लोक हैं॥ ५४॥ कि थके व इधर उधर भगेहुये और भोजन करतेहुये शत्रु के बल (सेना) में मारना चाहिये और गमन व प्रवेश में निस्सन्देह मारना चाहिये॥ ५५॥ और आधी रात में निद्रा से विकल व युद्ध में अस्त्र को छोड़ेहुये और भिन्न योधाओंवाली सब सेना को शत्रुवों को मारना चाहिये॥ ५६॥ इसप्रकार सोतेहुये को मारने के कर्म

में नियम करके उस साहसी अश्वत्थामा ने रातमें सोतेहुये भोज व कृपाचार्यजी को जगाया ॥ ५७ ॥ और थोड़ी देरतक विचार करके अश्वत्थामा ने उन दोनों से कहा अश्वत्थामा बोले कि बड़ा बलवान् व पराक्रमी दुर्योधन राजा मरगया ॥ ५८ ॥ क्षुद्रकर्मी बहुत से पार्थों ने शुद्धकर्मी दुर्योधन को मारडाला और अत्यन्त क्रूर भीमसेन ने राजा दुर्योधन के शिर में पैर को मारा ॥ ५९ ॥ उसकारण आज रात में पार्थों के पटमण्डप (तम्बू) को जाकर हमलोग सुखसे सोतेहुये पाण्डवों को अनेक भांति के अस्त्रों से मारेंगे ॥ ६० ॥ हे द्विजोत्तमो ! यह सुनकर वहां कृपाचार्य ने इस अश्वत्थामा से कहा कृपाचार्य बोले कि सोतेहुये लोगोंका मारना संसारमें न धर्म है और न पूजा

साहसी ॥ ५७ ॥ द्रौणिर्ध्यात्वामुहूर्तन्तु तावुभावभ्यभाषत ॥ अश्वत्थामोवाच ॥ मृतःसुयोधनोराजा महाबलपराक्रमः ॥ ५८ ॥ शुद्धकर्माहतःपार्थैर्बहुभिःक्षुद्रकर्मभिः ॥ भीमेनातिनृशंसेन शिरोराज्ञःपदाहतम् ॥ ५९ ॥ ततोद्यरात्रौपार्थानां समेत्यपटमण्डपम् ॥ सुखसुप्तान्हनिष्यामः शस्त्रैर्नानाविधैर्वयम् ॥ ६० ॥ कृपःप्रोवाचतत्रैनमितिश्रुत्वाद्विजोत्तमाः ॥ कृप उवाच ॥ सुप्तानांमारणंलोके न धर्मो न च पूज्यते ॥ ६१ ॥ तथैवत्यक्तशस्त्राणां सन्त्यक्तरथवाजिनाम् ॥ शृणु मे वचनंवत्स मुच्यतांसाहसंत्वया ॥ ६२ ॥ वयन्तु धृतराष्ट्रञ्च गान्धारीं च पतिव्रताम् ॥ पृच्छामोविदुरञ्चापि तदुक्तं करवामहे ॥ ६३ ॥ इत्युक्तःसतदाद्रौणिःकृपंप्रोवाच वै पुनः ॥ अश्वत्थामोवाच ॥ पाण्डवैश्च पुरा यन्मे छलाद्युद्धेपिताहतः ॥ ६४ ॥ तन्मेसर्वाणिमर्माणि निकृन्तति हि मातुल ॥ द्रोणहन्ताहमित्येतद् धृष्टद्युम्नस्ययद्वचः ॥ ६५ ॥ कथंजनसमक्षेतद्वचनंसंशृणोम्यहम् ॥ तैरेवपाण्डवैःपूर्वं धर्मसेतुर्निराकृतः ॥ ६६ ॥ समक्षमेवयुष्माकं सर्वेषामेवभूभृताम् ॥

जाता है ॥ ६१ ॥ वैसेही शस्त्रों को छोडे व रथों और घोडोंको छोड़ेहुये लोगों को मारना धर्म नहीं है हे वत्स ! मेरा वचन सुनिये और तुम साहस को छोड़देवो ॥ ६२ ॥ हम धृतराष्ट्र व पतिव्रता गान्धारी और विदुर से भी पूछेंगे व उनके कहेहुये वचन को करेंगे ॥ ६३ ॥ उससमय ऐसा कहेहुये उस अश्वत्थामाने फिर कृपाचार्य से कहा अश्वत्थामा बोले कि पहिले पाण्डवों ने जो छलसे मेरे पिता को मारा है ॥ ६४ ॥ हे मातुल ! वह मेरे सब सुकुमार अंगों को काटता है मैं द्रोण का मारनेवाला हूं यह जो धृष्टद्युम्न का वचन है ॥ ६५ ॥ उस वचन को मैं मनुष्योंके सामने कैसे सुनूं पहिले उन्हीं पाण्डवों ने धर्मसेतु को निराकरण किया ॥ ६६ ॥ कि तुमलोगों के व

सभी राजाओंके सामने धृष्टद्युम्न ने अस्त्र को छोडेहुये मेरे पिता को मारडाला ॥ ६७ ॥ वैसेही धनुष को छोडेहुये शन्तनु के पुत्र भीष्म को अर्जुनजीने शिखण्डी को आगे करके मारा ॥ ६८ ॥ ऐसेही अन्य भी राजाओं को उन पाण्डवों ने छलसे मारा है वैसे ही मैं भी रात में सोतेहुये पाण्डवों का मारण करूंगा ॥ ६९ ॥ उससमय ऐसा कह कर क्रोध से जलताहुआ अश्वत्थामा जुतेहुये घोड़ोंवाले रथपै चढ़कर शत्रुवों के सामने गया ॥ ७० ॥ और जातेहुये उनके पीछे कृतवर्मा व कृपाचार्य दोनों गये तब सोतेहुये पुरुषोंवाले उनके शिबिर को वे गये ॥ ७१ ॥ और शिबिर के द्वार पै प्राप्त होकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा स्थित हुआ व रात में वहां दयानिधान महादेवजी को

त्यक्तायुधोममपिता धृष्टद्युम्नेनपातितः ॥ ६७ ॥ तथाशान्तनवोभीष्मस्त्यक्तचापोनिरायुधः ॥ शिखण्डिनंपुरोधायनिहतःसव्यसाचिना ॥ ६८ ॥ एवमन्येपिभूपालाश्छलेनैवहतास्तु तैः ॥ तथैवाहंकरिष्यामि सुप्तानांमारणंनिशि ॥ ६९ ॥ एवमुक्त्वातदाद्रौणिः संयुक्ततुरगंरथम् ॥ प्रायादभिमुखःशत्रून्समारुह्यक्रुधाज्वलन् ॥ ७० ॥ तंयान्तमन्वगातान्तौ कृतवर्मकृपावुभौ ॥ ययुश्च शिबिरेतेषां सम्प्रसुप्तजनेतदा ॥ ७१ ॥ शिबिरद्वारमासाद्य द्रोणपुत्रोऽभ्यतिष्ठत ॥ रात्रौतत्रसमाराध्य महादेवं घृणानिधिम् ॥ ७२ ॥ अवापविमलंखड्गं महादेवाद्वरप्रदात् ॥ ततोद्रौणिरवस्थाप्य कृतवर्मकृपावुभौ ॥ ७३ ॥ द्वारदेशेमहावीरः शिबिरान्तःप्रविष्टवान् ॥ प्रविष्टेशिबिरेद्रौणौ कृतवर्मकृपावुभौ ॥ ७४ ॥ द्वारदेशेऽभ्यतिष्ठतां यत्तौपरमधन्विनौ ॥ अथद्रौणिःसुसंक्रुद्धस्तेजसाप्रज्वलन्निव ॥ ७५ ॥ खड्गंविमलमादाय व्यचरच्छिबिरेनिशि ॥ ततस्तु धृष्टद्युम्नस्य शिबिरंमन्दमाययौ ॥ ७६ ॥ धृष्टद्युम्नादयस्तत्र महायुद्धेनकर्शिताः ॥ सुषुपुर्निशिविश्वस्ताः स्वस्व

आराधन कर ॥ ७२ ॥ उसने वरदायक शिवजी से निर्मल तलवारको पाया तदनन्तर अश्वत्थामा महावीर कृतवर्मा व कृपाचार्य दोनों को द्वारदेश पै खड़े करके शिबिर के भीतर पैठगया और शिबिर में अश्वत्थामा के पैठने पर कृतवर्मा व कृपाचार्य दोनों ॥ ७३ । ७४ ॥ उत्तम धनुषों को लिये व कवच को पहिनेहुये द्वार पै खड़ेरहे इसके अनन्तर तेज से जलतेहुये अश्वत्थामाने बहुत क्रोधित होकर ॥ ७५ ॥ निर्मल तलवार को लेकर रात में शिबिर में भ्रमण किया तदनन्तर वह धीरे २ धृष्टद्युम्न के

शिबिर को गया ॥ ७६ ॥ वहां अपनी अपनी सेना से घिरे व महायुद्ध से थकेहुये विश्वस्त (निःशंक) धृष्टद्युम्नादिक रात में सोरहे थे ॥ ७७ ॥ और अस्त्र को जानने वाले अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न के शिबिर में पैठकर उत्तम शय्या पै सोतेहुये उस बड़े बलवान् धृष्टद्युम्न को समीप से देखा ॥ ७८ ॥ और द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने सोते हुये धृष्टद्युम्न को क्रोध से लातसे मारा इसके अनन्तर लातके मारने से वह जगा व शय्या से उठकर ॥ ७९ ॥ उससमय वीर धृष्टद्युम्न ने आगे स्थित द्रोणपुत्र अश्वत्थामा को देखा और शय्या से उठतेहुये उसको द्रोणाचार्य के पुत्र बलवान् अश्वत्थामा ने ॥ ८० ॥ बालोंको पकड़कर भुजाओं से पृथ्वी में पटकदिया तब उस

सैन्यसमावृताः ॥ ७७ ॥ धृष्टद्युम्नस्यशिबिरं प्रविश्यद्रौणिरस्त्रवित् ॥ तंसुप्तंशयनेशुभ्रे ददर्शारान्महाबलम् ॥ ७८ ॥ पादेनाघातयद्रोषात्स्वपन्तंद्रोणनन्दनः ॥ सबुद्धश्चरणाघातादुत्थायशयनादथ ॥ ७९ ॥ व्यलोकयत्तदावीरो द्रोणपुत्रंपुरःस्थितम् ॥ तमुत्पतन्तंशयनाद्द्रोणाचार्यसुतोबली ॥ ८० ॥ केशेष्वाकृष्यबाहुभ्यां निष्पिपेषधरातले ॥ धृष्टद्युम्नस्तदातेननिष्पिष्टःसभयातुरः ॥ ८१ ॥ निद्रान्धःपादघातार्तो न शशाकविचेष्टितुम् ॥ द्रौणिस्त्वाक्रम्यतस्योरः कण्ठं बद्ध्वाधनुर्गुणैः ॥ ८२ ॥ नदन्तं विस्फुरन्तन्तं पशुमारममारयत् ॥ तस्यसैन्यानिसर्वाणि न्यवधीच्च तथैवसः ॥ ८३ ॥ युधामन्युंमहावीर्यमुत्तमौजसमेव च ॥ तथैवद्रौपदीपुत्रानवशिष्टांश्च सोमकान् ॥ ८४ ॥ शिखण्डिप्रमुखानन्यान्खड्गेनामारयद्बहून् ॥ तद्भयाद्द्वारनिर्यातान्सर्वानेव च सैनिकान् ॥ ८५ ॥ प्रापयामासतुर्मृत्युं कृतवर्मकृपावुभौ ॥ एवंनिहतसैन्यन्त

अश्वत्थामा से पटकाहुआ वह भय से विकल धृष्टद्युम्न ॥ ८१ ॥ जोकि निद्रा से अन्ध था पैरके मारने से विकल वह कुछ करने के लिये समर्थ न हुआ और अश्वत्थामा ने उसके वक्षस्थल को दबाकर व धनुष के गुणों से गले को बांधकर ॥ ८२ ॥ शब्द करते व फरकतेहुये उसको पशुमार की नाईं मारडाला और उसने उसकी सब सेनाओं को मारडाला ॥ ८३ ॥ और बड़े पराक्रमी युधामन्यु व उत्तमौजस् को मारा और बचेहुये द्रौपदी के पुत्रों को व सोमकराजाओं को मारा ॥ ८४ ॥ और शिखण्डी आदिक अन्य बहुत से राजाओं को तलवार से मारा व उसके डरसे द्वार पै निकलेहुये सब सेनावाले लोगों को ॥ ८५ ॥ कृतवर्मा व कृपाचार्य दोनों ने मृत्यु को प्राप्त

किया इसप्रकार उन महाबलवानों से मारीहुईसेनावाला वह शिबिर ॥ ८६ ॥ उसी क्षण प्रलय में त्रिलोक की नाईं शून्य होगया इसप्रकार सबों को मारकर तदनन्तर अश्वत्थामादिक तीनों ॥ ८७ ॥ पार्थों से डरकर व डरसे विकल होकर उस शिबिर से निकले और शीघ्र चलनेवाले वे सब अलग २ देशों को भगगये ॥ ८८ ॥ इस के उपरान्त हे ब्राह्मणो ! अश्वत्थामा सुन्दर नर्मदा के किनारे गया वहां वेदवादी अनेक हज़ार ऋषिलोग ॥ ८९ ॥ पवित्र कथाओं को कहतेहुये अति उत्तम तपस्या कररहे थे वहां यह अश्वत्थामा ऋषियों के आश्रमों में गया ॥ ९० ॥ और उसके पैठने पर ब्रह्मवादी मुनियों ने योगबल से अश्वत्थामा के दुष्कर्म को जानकर उससे कहा ॥ ९१ ॥ कि

च्छिबिरन्तैर्महाबलैः ॥ ८६ ॥ तत्क्षणेशून्यमभवत्त्रिजगत्प्रलयेयथा ॥ एवंहत्वाततःसर्वान्द्रोणपुत्रादयस्त्रयः ॥ ८७ ॥ निरगुःशिबिरात्तस्मात्पार्थभीताभयातुराः ॥ सर्वेपृथक्पृथग्देशान्दुद्रुवुःशीघ्रगामिनः ॥ ८८ ॥ अथद्रौणिर्ययौविप्रा रेवातीरंमनोरमम् ॥ तत्रह्यनेकसाहस्रा ऋषयोवेदवादिनः ॥ ८९ ॥ कथयन्तःकथाःपुण्यास्तपश्चक्रुरनुत्तमम् ॥ तत्रायं प्रययौद्रौणिर्ऋषीणामाश्रमेष्वथ ॥ ९० ॥ प्रविष्टमात्रेतस्मिंस्तु मुनयोब्रह्मवादिनः ॥ द्रौणेर्दुश्चरितंज्ञात्वा प्राहुर्योगबलेन तम् ॥ ९१ ॥ सुप्तमारणकृत्पापी द्रौणेत्वंब्राह्मणाधमः ॥ त्वद्दर्शनेनह्यस्माकं पातित्यंभवतिध्रुवम् ॥ ९२ ॥ त्वत्सम्भाषणमात्रेण ब्रह्महत्यायुतंभवेत् ॥ अतोस्मदाश्रमेभ्यस्त्वं निर्गच्छपुरुषाधम ॥ ९३ ॥ इत्यब्रुवंस्तदाद्रौणिं तत्रत्यामुनयोद्विजाः ॥ इतीरितस्ततोद्रौणिर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ९४ ॥ लज्जितोनिरगात्तस्मादाश्रमान्मुनिसेवितात् ॥ एवंकाश्यादितीर्थेषु पुण्येषुप्रययौ च सः ॥ ९५ ॥ तत्रतत्रद्विजैःसर्वैर्निन्दितोसौमहात्मभिः ॥ व्यासंशरणमापेदे प्रायश्चित्तचिकीर्षया ॥ ९६ ॥

हे द्रौणे ! सोतेहुये को मारनेवाले तुम पापी व अधम ब्राह्मण हो तुम्हारे दर्शन से हमलोगों को निश्चय कर पतितत्व होगा ॥ ९२ ॥ और तुम्हारे सम्भाषण से दशहज़ार ब्रह्महत्या होवैंगी इसकारण हे पुरुषाधम ! तुम हमारे आश्रमों से निकलजावो ॥ ९३ ॥ हे ब्राह्मणो ! उससमय वहां के मुनिलोगों ने अश्वत्थामा से यह कहा तदनन्तर ब्रह्मवादी मुनियों से ऐसा कहाहुआ अश्वत्थामा ॥ ९४ ॥ लज्जित होकर मुनियों से सेवित उस आश्रम से निकला और इसप्रकार वह अश्वत्थामा पवित्र काशी आदिक तीर्थों में गया ॥ ९५ ॥ और वहां २ सब ब्राह्मणों व महात्माओं से निन्दित होताहुआ यह अश्वत्थामा प्रायश्चित्त करने की इच्छा से व्यासजी के

शरण में प्राप्त हुआ ॥ ९६ ॥ तदनन्तर बदरिकारण्य में बैठेहुये महामुनि व्यासजी को उसने भक्तिसमेत प्रणाम किया ॥ ९७ ॥ तदनन्तर व्यासमुनि ने इस द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा से यह कहा कि हे द्रौणे ! तुम इस आश्रम से शीघ्रही चलेजावो ॥ ९८ ॥ क्योंकि सोतेहुये को मारने के दोष से आप महापातकी हो इसकारण आप के साथ वार्तालाप करने से मुझ को बड़ा पाप होगा ॥ ९९ ॥ उससमय ऐसा कहेहुये अश्वत्थामा ने मुनि से यह वचन कहा अश्वत्थामा बोला कि हे भगवन् ! सबों से निन्दित होकर मैं तुम्हारे शरण में प्राप्त हुआ हूं ॥ १०० ॥ यदि तुम भी ऐसा कहते हो तो अन्य कौन मेरा शरण (रक्षक) होगा हे ब्रह्मन् ! मेरे ऊपर दया

ततोबदरिकारण्ये समासीनंमहामुनिम् ॥ द्वैपायनंसमागम्य प्रणनामसभक्तिकम् ॥ ९७ ॥ ततोव्यासोब्रवीदेनं द्रोणाचार्यसुतंमुनिः ॥ त्वमस्मदाश्रमाद्द्रौणे निर्याहित्वरया त्विति ॥ ९८ ॥ सुप्तमारणदोषेण महापातकवान्भवान् ॥ अतोमेभवतालापान्महत्पापंभविष्यति ॥ ९९ ॥ इत्युक्तःसतदाद्रौणिः प्रोवाचेदंवचोमुनिम् ॥ अश्वत्थामोवाच ॥ भगवन्निन्दितःसर्वैस्त्वामस्मिशरणंगतः ॥ १०० ॥ ब्रवीषिचेत्त्वमप्येवं कोन्योमेशरणंभवेत् ॥ कृपांकुरुमयिब्रह्मन्साधवोदीनवत्सलाः ॥ १ ॥ सुप्तमारणदोषस्य शान्त्यर्थंभगवन्मम ॥ प्रायश्चित्तंविधेहित्वं सर्वज्ञोसिभवान्यतः ॥ २ ॥ इत्युक्तोद्रौणिनाव्यासश्चिरंध्यात्वातमब्रवीत् ॥ व्यास उवाच ॥ एतत्पापस्यशान्त्यर्थं प्रायश्चित्तंस्मृतौ न हि ॥ ३ ॥ तथाप्युपायंवक्ष्यामि तवैतद्दोषशान्तये ॥ दक्षिणाम्बुनिधौपुण्ये रामसेतौविमुक्तिदे ॥ ४ ॥ धनुष्कोटिरितिख्यातं तीर्थमस्तिमहत्तरम् ॥ अस्तिपुण्यतमंद्रौणे महापातकनाशनम् ॥ ५ ॥ स्वर्गमोक्षप्रदंपुंसां ब्रह्महत्यादिशोध

कीजिये क्योंकि साधुलोग दीनवत्सल होते हैं ॥ १ ॥ हे भगवन् ! सोतेहुये को मारने के दोष की शान्ति के लिये तुम मेरा प्रायश्चित्त करो क्योंकि आप सर्वज्ञ हो ॥ २ ॥ [अश्व]त्थामा से ऐसा कहेहुये व्यासजी ने बहुत देरतक विचार कर उससे कहा व्यासजी बोले कि इस पापकी शान्ति के लिये स्मृति में प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ३ ॥ इस दोष की शान्ति के लिये मैं तुम से उपाय कहता हूं कि दक्षिणसमुद्र में पवित्र व मुक्तिदायक रामसेतु पै ॥ ४ ॥ धनुष्कोटि ऐसा प्रसिद्ध बड़ा भारी तीर्थ है हे द्रौणे !

वह बहुत पवित्र व महापातकों का नाशक है ॥ ५ ॥ व पुरुषों को स्वर्ग तथा मोक्ष का दायक व ब्रह्महत्यादि का शोधक है व सब मंगलोंमें मांगल्य और सब मनोरथों को देनेवाला है ॥ ६ ॥ व पवित्रों के मध्य में पवित्र और तीर्थों के मध्य में उत्तम है और दुःस्वप्ननाशक व पवित्र तथा नरकों के क्लेश का विनाशक है ॥ ७ ॥ और पुरुषों की अकालमृत्यु का नाशक व विजयवर्द्धक है और पुरुषों के दरिद्र का नाशक व आयुर्बल बढ़ाने का कारण है ॥ ८ ॥ व मनुष्यों के चित्त की शुद्धिको देनेवाला और शान्ति व दान्ति आदिका कारण है वहां मुक्तिदायक सेतु पै धनुष्कोटितीर्थ में जाकर ॥ ६ ॥ हे द्रौणे ! तुम एक महीनेतक निरन्तर स्नान करो तो सोतेहुये को मारने के

कम् ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥ ६ ॥ पवित्राणांपवित्रं च तीर्थानां च तथोत्तमम् ॥ दुःस्वप्ननाशनंपुण्यं नरकक्लेशनाशनम् ॥ ७ ॥ अकालमृत्युशमनं पुंसांविजयवर्द्धनम् ॥ दारिद्र्यनाशनंपुंसामायुर्वर्द्धनकारणम् ॥ ८ ॥ चित्तशुद्धिप्रदंनृणां शान्तिदान्त्यादिकारणम् ॥ तत्रगत्वाधनुष्कोटौ रामसेतौविमुक्तिदे ॥ ६ ॥ स्नानंकुरुष्वद्रौणेत्वं मासमात्रंनिरन्तरम् ॥ सुप्तमारणदोषात्त्वं सद्यःपूतोभविष्यसि ॥ १० ॥ कुरुष्ववचनंशीघ्रं ममत्वंद्रोणनन्दन ॥ एवमुक्तस्तदाद्रौणिर्व्यासेनपरमर्षिणा ॥ ११ ॥ रामसेतुंसमासाद्य धनुष्कोटिंपवित्रदाम् ॥ सस्नौसङ्कल्पपूर्वन्तु मासमेकंनिरन्तरम् ॥ १२ ॥ त्रिसन्ध्यंरामनाथञ्च सिषेवेसदिनेदिने ॥ ततस्त्रिंशद्दिनेतोयस्नानाद्द्रोणात्मजस्तदा ॥ १३ ॥ जपं च धनुष्कोट्यां मन्त्रंपञ्चाक्षरंतदा ॥ अकार्षीदुपवासञ्च द्रौणपुत्रस्तु तद्दिने ॥ १४ ॥ अकरोज्जागरंरात्रौ रामनाथस्यसन्निधौ ॥ अपरेद्युर्धनुष्कोटौ स्नात्वासङ्कल्पपूर्वकम् ॥ १५ ॥ सिषेवेरामनाथञ्च स्तुत्वाभक्तिपुरःसरम् ॥ ननर्त

दोष से तुम शीघ्रही पवित्र होगे ॥ १० ॥ हे द्रोणपुत्र ! तुम शीघ्रही मेरे वचनको करो उससमय महर्षि व्यासजीसे ऐसा कहेहुये अश्वत्थामा ने ॥ ११ ॥ रामसेतु पै पवित्रदायिनी धनुष्कोटि को प्राप्त होकर एक महीने तक संकल्पपूर्वक स्नान किया ॥ १२ ॥ और प्रतिदिन उसने तीनों सन्ध्याओंमें रामनाथजीको सेवन किया तदनन्तर उससमय अश्वत्थामा ने तीसवें दिन जल के स्नान से ॥ १३ ॥ धनुष्कोटि में उससमय पंचाक्षर मन्त्रको जपा और उस दिन अश्वत्थामाने उपास किया ॥ १४ ॥ व रामनाथजीके समीप रात्रि में जागरण किया और दूसरे दिन धनुष्कोटि में संकल्पपूर्वक नहाकर ॥ १५ ॥ भक्तिपूर्वक स्तुति कर रामनाथजीकी सेवा किया और आनन्दके आंसुवोंसे डूबेहुये

उसने शिवजी के आगे नृत्य किया ॥ १६ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये भगवान् शिवजी उसके आगे प्रकट हुये और वहां परमेश्वर महादेवजी को देखकर अश्वत्थामाने स्तुति किया ॥ १७ ॥ अश्वत्थामा बोले कि हे करुणाकर, शंकर ! हे विपत्तिरूपी समुद्र में डूबतेहुये पुरुषों के लिये जहाजरूपी चरणकमलवाले, देवदेवेश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे महादेव, दयामूर्ते, धूर्जटे, नीललोहित, उमापते, विरूपलोचन, चन्द्रभाल ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ १९ ॥ हे मृत्युंजय, त्रिलोचन ! तुम दयादृष्टि से मेरी रक्षा करो पार्वतीपति व त्रिपुरविनाशक आप शम्भु के लिये प्रणाम है ॥ २० ॥ व पिनाकपाणि और त्र्यम्बक आपके लिये बार २ प्रणाम है हे अनन्तादि महानागों के

पुरतः शम्भोरानन्दाश्रुपरिप्लुतः ॥ १६ ॥ ततःप्रसन्नोभगवान्प्रादुरासीत्तदग्रतः ॥ दृष्ट्वातत्रमहादेवं तुष्टावपरमेश्वरम् ॥ १७ ॥ द्रौणिरुवाच ॥ नमस्तेदेवदेवेश करुणाकरशङ्कर ॥ आपदाम्बुधिमग्नानां पोतायितपदाम्बुज ॥ १८ ॥ महादेवकृपामूर्ते धूर्जटेनीललोहित ॥ उमाकान्तविरूपाक्ष चन्द्रशेखरतेनमः ॥ १९ ॥ मृत्युञ्जयत्रिनेत्रत्वं पाहिमां कृपयादृशा ॥ पार्वतीपतयेतुभ्यं त्रिपुरघ्नायशम्भवे ॥ २० ॥ पिनाकपाणयेतुभ्यं त्र्यम्बकायनमोनमः ॥ अनन्तादिमहानागहारभूषणभूषित ॥ २१ ॥ शूलपाणेनमस्तुभ्यं गङ्गाधरमृडाव्यय ॥ रक्षमांकृपयादेव पापसङ्घातपञ्जरात् ॥ २२ ॥ इतिस्तुतोमहादेवो द्रौणिंप्रोवाचहर्षितः ॥ महादेव उवाच ॥ सुप्तमारणदोषस्ते धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ २३ ॥ अश्वत्थामन्विनष्टोभूद्वरंवरयसुव्रत ॥ मयिप्रसन्नेलोकेषु किमलभ्यंभवेन्नृणाम् ॥ २४ ॥ अतोभीष्टंवृणीष्वत्वं मत्तोद्रोणात्मजाधुना ॥ इत्युक्तःशम्भुनाद्रौणिः प्राहतंपरमेश्वरम् ॥ २५ ॥ तवाद्यदर्शनेनाहं कृतार्थोस्मि

हारभूषणों से भूषित ! ॥ २१ ॥ हे शूलपाणे, गंगाधर, मृड, अव्यय ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे देव ! पापसमूहरूपी पंजरसे तुम दयासे मेरी रक्षा करो ॥ २२ ॥ इसप्रकार स्तुति कियेहुये महादेवजी प्रसन्न होकर अश्वत्थामा से कहा महादेवजी बोले कि धनुष्कोटि में नहाने से तुम्हारा सोतेहुये के मारने का दोष ॥ २३ ॥ हे सुव्रत, अश्वत्थामन् ! नष्ट होगया तुम वरदान को मांगो लोकोंमें मेरे प्रसन्न होनेपर मनुष्यों को क्या दुर्लभ होता है ॥ २४ ॥ इसकारण हे द्रोणपुत्र ! तुम इससमय मुझसे मनोरथ

को मांगो शिवजी से ऐसा कहेहुये अश्वत्थामा ने उन परमेश्वर शिवजी से कहा ॥ २५ ॥ कि हे महेश्वरजी ! मैं आज तुम्हारे दर्शन से कृतार्थ होगया और विनपुण्य वाले मनुष्यों को तुम्हारा दर्शन करोडों जन्मोंसे भी दुर्लभ है ॥ २६ ॥ इसकारण तुम्हारे चरणकमलमें मेरी अचल भक्ति होवै हे शम्भो ! मुझको यही वरदान दीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २७ ॥ वैसाही होगा यह अश्वत्थामा से कहकर देवदेव महादेवजी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा के देखतेहुये वहीं अन्तर्धान होगये ॥ २८ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! रामचन्द्रजी के धनुष्कोटितीर्थमें स्नानही से उसी क्षण अश्वत्थामा पापरहित व निर्मल होगया ॥ २९ ॥ और पापरहित इस शुद्ध व निर्मल अश्वत्थामा को

महेश्वर ॥ त्वद्दर्शनमपुण्यानामलभ्यंजन्मकोटिभिः ॥ २६ ॥ अतोयुष्मत्पदाम्भोजे निश्चलाभक्तिरस्तुमे ॥ इममेववरं देहि मह्यंशम्भोनमोस्तु ते ॥ २७ ॥ उक्तातथास्त्विविद्रौणिं देवदेवोमहेश्वरः ॥ पश्यतोद्रोणपुत्रस्य तत्रैवान्तरधीयत ॥ २८ ॥ अश्वत्थामापिविप्रेन्द्रा धूतपापोविनिर्मलः ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटौ स्नानमात्रेणतत्क्षणे ॥ २९ ॥ धूतपापमिमन्द्रौणिं सर्वे चापि महर्षयः ॥ शुद्धंप्रत्यग्रहीषुस्ते तदाप्रभृतिनिर्मलम् ॥ ३० ॥ एवंवःकथितंविप्रा द्रौणिपापविमोक्षणम् ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटिस्नानवैभवमात्रतः ॥ ३१ ॥ यःपठेदिममध्यायं शृणुयाद्वा समाहितः ॥ सविधूयेहपापानि शिवलोकेमहीयते ॥ १३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येधनुष्कोटिप्रशंसायामश्वत्थामसुप्तमारणदोषशान्तिर्नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ भूयोपिसम्प्रवक्ष्यामि धनुष्कोटेस्तु वैभवम् ॥ युष्माकमादरेणाहं नैमिषारण्यवासिनः ॥ १ ॥

तब से लगाकर उन सभी महर्षियों ने ग्रहण किया ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार तुमलोगों से रामचन्द्रकी धनुष्कोटि में स्नानके प्रभावही से अश्वत्थामा के पापकी मुक्ति कहीगई ॥ ३१ ॥ सावधान होताहुआ जो मनुष्य इस अध्याय को पढ़ता या सुनता है वह इस लोक में पातकों को नष्ट करके शिवलोक में पूजाजाता है ॥ १३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांधनुष्कोटिप्रशंसायामश्वत्थामसुप्तमारणदोषशान्तिर्नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ⊛ ॥

दो० । धर्मगुप्त नरपाल जिमि भो उन्मादविहीन । वत्तिसवें अध्याय में सोई चरित नवीन ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे नैमिषारण्यवासियो ! मैं तुमलोगों से फिर भी आदर

से धनुःकोटि के प्रभाव को कहता हूं ॥ १ ॥ कि सोमवंश में उत्पन्न नन्दनामक महाराजा ने इस समुद्रअन्तवाली पृथ्वी को धर्मसे पालन किया ॥ २ ॥ उसके धर्मगुप्त ऐसा प्रसिद्ध पुत्र हुआ और राज्यकी रक्षाके भारको अपने पुत्रपै धरकर वह नन्द ॥ ३ ॥ जितेन्द्रिय व जितभोजन होकर तपोवन में पैठगया और पिता के तपोवन जानेपर धर्मगुप्तनामक राजा ने ॥ ४ ॥ पृथ्वी को पालन किया और धर्मज्ञ व नीति में तत्पर उसने अनेक प्रकार के यज्ञोंसे इन्द्रादिक देवताओंका पूजन किया ॥ ५ ॥ और उसने ब्राह्मणोंके लिये धन व बहुत से क्षेत्रोंको दिया उस राजा के राज्य करनेपर सब लोग अपने धर्ममें तत्पर ॥ ६ ॥ हुये और उसके पालन करनेपर चोरादिकों से उपजीहुई

नन्दोनाममहाराजा सोमवंशसमुद्भवः ॥ धर्मेणपालयामास सागरान्तांधरामिमाम् ॥ २ ॥ तस्यपुत्रःसमभवद्धर्मगुप्तइतिश्रुतः ॥ राज्यरक्षाधुरंनन्दो निजपुत्रेनिधायसः ॥ ३ ॥ जितेन्द्रियोजिताहारः प्रविवेशतपोवनम् ॥ तातेतपोवनंयाते धर्मगुप्ताभिधोनृपः ॥ ४ ॥ मेदिनींपालयामास धर्मज्ञोनीतितत्परः ॥ ईजेबहुविधैर्यज्ञैर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ५ ॥ ब्राह्मणेभ्योददौवित्तं क्षेत्राणि च बहूनि सः ॥ सर्वेस्वधर्मनिरतास्तस्मिन्राजनिशासति ॥ ६ ॥ बभूवुर्नाभवन्पीडास्तस्मिंश्चोरादिसम्भवाः ॥ कदाचिद्धर्मगुप्तोयमारूढस्तुरगोत्तमम् ॥ ७ ॥ वनंविवेशविप्रेन्द्रा मृगयारसकौतुकी ॥ तमालताल हिन्तालकुरवाकुलदिङ्मुखे ॥ ८ ॥ विचचारवनेतस्मिन् सिंहव्याघ्रभयानके ॥ मत्तालिकुलसन्नादसम्मूर्च्छितदिगन्तरे ॥ ९ ॥ पद्मकह्लारकुमुदनीलोत्पलवनाकुलैः ॥ तटाकैरपिसम्पूर्णे तपस्विजनमण्डिते ॥ १० ॥ तस्मिन्वनेसञ्चरतो धर्मगुप्तस्यभूपतेः ॥ अभूद्विभावरीविप्रास्तमसावृतदिङ्मुखा ॥ ११ ॥ राजापिपश्चिमांसन्ध्यामुपास्यनियमा

पीडायें न हुईं किसी समय यह धर्मगुप्त उत्तम घोड़े पै चढ़कर ॥ ७ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! वन में पैठगया व शिकार के रसका कौतुकी वह तमाल, ताल, हिन्ताल व कुरव वृक्षों से पूर्ण दिङ्मुखवाले ॥ ८ ॥ तथा सिंहों व व्याघ्रों से भयानक उस वनमें घूमनेलगा और मतवाले भ्रमरगणों की ध्वनि से सम्मूर्च्छितदिगन्तरवाले ॥ ९ ॥ और पद्म, लालकमल, कुमुद व नीलकमलवनों से व्याप्त तड़ागोंसे भी पूर्ण और तपस्वीजनों से शोभित ॥ १० ॥ उस वन में घूमतेहुये उस धर्मगुप्त राजा को हे ब्राह्मणो ! अन्धकारसे घिरेहुये

दिङ्मुखोंवाली रात होगई ॥ ११ ॥ और नियम से संयुत राजाने भी पश्चिमा सन्ध्याकी उपासना कर उस वन में वेदमाता गायत्रीका जप किया ॥ १२ ॥ व उससमय सिंहों व व्याघ्रादिकों के डर से इस राजपुत्रके एक वृक्ष पै स्थित होनेपर सिंह के भय से विकल एक ऋक्ष आगया ॥ १३ ॥ और वनमें घूमनेवाला एक सिंह उस ऋक्ष के पीछे दौड़आया व सिंह से भगायाहुआ वह ऋक्ष वृक्ष पै चढगया ॥ १४ ॥ और उस वृक्ष पै चढ़कर ऋक्ष ने वृक्ष पै स्थित उस बड़े बली व पराक्रमी महात्मा राजाको देखा ॥ १५ ॥ और वनमें रहनेवाले इस ऋक्षने राजाको देखकर कहा कि हे नृपेन्द्र ! तुम डर मत करो यहां हम तुम दोनों रातमें बसैं ॥ १६ ॥ क्योंकि बड़े सत्त्व

न्वितः ॥ जजापतत्र च वने गायत्रींवेदमातरम् ॥ १२ ॥ सिंहव्याघ्रादिभीत्यास्मिन्वृक्षमेकंसमास्थिते ॥ राजपुत्रेतदा भ्यागादृक्षःसिंहभयार्दितः ॥ १३ ॥ अन्वधावततंऋक्षमेकसिंहोवनेचरः ॥ अनुद्रुतःससिंहेन ऋक्षोवृक्षमुपारुहत् ॥ १४ ॥ आरुह्यऋक्षोवृक्षन्तं ददर्शजगतीपतिम् ॥ वृक्षस्थितंमहात्मानं महाबलपराक्रमम् ॥ १५ ॥ उवाचभूपतिंदृष्ट्वा ऋक्षोयंवनगोचरः ॥ माभीतिंकुरुराजेन्द्र वत्स्यावोरजनीमिह ॥ १६ ॥ महासत्त्वोमहाकायो महादंष्ट्रासमाकुलः ॥ वृक्षमूलंसमायातः सिंहोयमतिभीषणः ॥ १७ ॥ रात्र्यर्धंभजनिद्रांत्वं रक्ष्यमाणोमयानृप ॥ ततःप्रसुप्तंमांरक्ष श वर्यर्धंमहामते ॥ १८ ॥ इतितद्वाक्यमादाय सुप्तेनन्दसुतेहरिः ॥ प्रोवाचऋक्षसुप्तोयं नृपश्च त्यज्यतामिति ॥ १९ ॥ तंसिंहमब्रवीदृक्षो धर्मज्ञोद्विजसत्तमाः ॥ भवान्धर्मं न जानीते मृगराजवनेचर ॥ २० ॥ विश्वासघातिनांलोके महा कष्टाभवन्ति हि ॥ न हि मित्रद्रुहांपापं नश्येद्यज्ञायुतैरपि ॥ २१ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां कथञ्चिन्निष्कृतिर्भवेत् ॥

व बड़े डीलवाला तथा बड़ी दाढ़ोंसे संयुत यह बड़ा भयंकर सिंह वृक्षकी जड़में आया है ॥ १७ ॥ हे नृप ! आधीराततक मुझसे रक्षा कियेजाते हुये तुम निद्राको प्राप्तहोवो तदनन्तर हे महामते ! आधीराततक सोतेहुये मेरी तुम रक्षा करो ॥ १८ ॥ उसके इस वचनको लेकर नन्दपुत्र के सोनेपर सिंहने कहा कि हे ऋक्ष ! यह राजा सोगया है इस से तुम छोड़देवो ॥ १९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! धर्मज्ञ ऋक्ष ने उस सिंह से कहा कि हे वनेचर, मृगराज ! आप धर्म को नहीं जानते हो ॥ २० ॥ संसार में विश्वासघाती लोगों को बड़े दुःख होते हैं और मित्रद्रोहीलोगों का पाप दशहज़ार यज्ञोंसे भी नहीं नाश होता है ॥ २१ ॥ और ब्रह्महत्यादिक पापोंका किसी प्रकार प्रायश्चित्त होता है

परन्तु विश्वासघाती लोगोंका पाप करोड़ों जन्मों से नहीं नाश होता है ॥ २२ ॥ हे पंचानन ! पृथ्वी में मैं सुमेरुको महाभार नहीं मानता हूं परन्तु संसार में इस विश्वासघाती को महाभार मानता हूं ॥ २३ ॥ ऋक्षसे ऐसा कहनेपर उससमय सिंह चुप होरहा और धर्मगुप्त के जगनेपर ऋक्ष वृक्ष पै सोरहा ॥ २४ ॥ तदनन्तर सिंहने राजा से कहा कि इस ऋक्ष को मेरेलिये छोड़देवो सिंह से ऐसा कहनेपर निःशंक राजाने सोतेहुए ॥ २५ ॥ व अपने ऊपर शिर को धरेहुए उस ऋक्षको पृथ्वी पै छोड़दिया तदनन्तर राजा से गिरायाहुआ ऋक्ष नखों से वृक्ष का अवलम्बन कर पुण्य के वश से पृथ्वी पै नहीं गिरा और वह ऋक्ष राजा के समीप आकर क्रोध से वचन

विश्वस्तघातिनांपापं ननश्येज्जन्मकोटिभिः ॥ २२ ॥ नाहंमेरुंमहाभारं मन्येपञ्चास्यभूतले ॥ महाभारमिमंमन्ये लोकेविश्वासघातकम् ॥ २३ ॥ एवमुक्तेथऋक्षेण सिंहस्तूष्णीमभूत्तदा ॥ धर्मगुप्तेप्रबुद्धेतु ऋक्षःसुष्वापभूरुहे ॥ २४ ॥ ततःसिंहोब्रवीद्भूपमेनमृक्षन्त्यजस्वमे ॥ एवमुक्तेथसिंहेन राजासुप्तमशङ्कितः ॥ २५ ॥ स्वकन्यस्ताशिरस्कन्तमृक्षं तत्याजभूतले ॥ पात्यमानस्ततोराज्ञा नखालम्बितपादपः ॥ २६ ॥ ऋक्षःपुण्यवशाद्वृक्षान्नपपातमहीतले ॥ सऋक्षोनृपमभ्येत्य कोपाद्वाक्यमभाषत ॥ २७ ॥ कामरूपधरोराजन्नहंभृगुकुलोद्भवः ॥ ध्यानकाष्ठाभिधोनाम्ना ऋक्षरूपमधारयम् ॥ २८ ॥ यस्मादनागसंसुप्तमत्याक्षीन्मांभवान्नृप ॥ मच्छापात्त्वमतःशीघ्रमुन्मत्तश्चरभूपते ॥ २९ ॥ इति शप्त्वामुनिर्भूपं ततःसिंहमभाषत ॥ नृसिंहस्त्वंमहायक्षः कुबेरसचिवःपुरा ॥ ३० ॥ हिमवद्गिरिमासाद्य कदाचित्त्वं वधूसखः ॥ अज्ञानाद्गौतमाभ्यासे विहारमतनोन्मुदा ॥ ३१ ॥ गौतमोप्युटजाद्दैवात्समिदाहरणायवै ॥ निर्गतस्त्वां

बोला॥२६।२७॥ कि हे राजन्! भृगुवंश में उत्पन्न व इच्छाके अनुकूल रूपको धरनेवाले नामसे ध्यानकाष्ठ नामक मैंने ऋक्षके रूपको धारण किया है॥ २८ ॥ हे राजन् ! जिसलिये बिन अपराधी व सोते हुए मुझको आपने छोड़दिया इस कारण हे भूपते! मेरे शाप से शीघ्रही तुम उन्मत्त होकर घूमो ॥ २९ ॥ मुनि ने राजा को इसप्रकार शाप देकर तदनन्तर सिंह से कहा कि तुम सिंह नहीं हो बरन पहले तुम कुबेर के मन्त्री महायक्ष थे ॥ ३० ॥ व किसी समय वधूसख याने स्त्रीसमेत तुम ने हिमाचल पै जाकर अज्ञान से गौतम के समीप हर्ष से विहार किया ॥ ३१ ॥ और दैवयोग से गौतम भी समिधाओं को लाने के लिये कुटी से निकले और उन्हों ने तुम को

नग्न देखकर शाप दिया ॥३२॥ कि जिसलिये इससमय तुम मेरे आश्रम में नग्न स्थित हुए हो इसकारण इसीसमय तुमको सिंहत्व होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥ पुरातन समय इस गौतम के शाप से तुम सिंहत्व को प्राप्त हुए हो और पहले भद्र नामक तुम कुबेर के मन्त्री यक्ष थे ॥ ३४ ॥ कुबेर धर्मशील हैं और उनके सेवक भी वैसेही हैं इसकारण वनमें रहनेवाले मुझ ऋषि को तुम क्यों मारते हो ॥ ३५ ॥ हे मृगाधिप ! इस सब को मैं ध्यान से इससमय जानता हूं ध्यानकाष्ठ से ऐसा कहने पर वह शीघ्रही सिंहत्व को छोड़कर ॥ ३६ ॥ कुबेर के मन्त्रित्वरूप दिव्य यक्षता को प्राप्त हुआ व इसने प्रणामकर व हाथों को जोड़कर ध्यानकाष्ठ मुनि से कहा ॥ ३७ ॥ कि

विवसनं दृष्ट्वाशापमुदाहरत् ॥ ३२ ॥ यस्मान्ममाश्रमेद्यत्वं विवस्त्रःस्थितवानसि ॥ अतःसिंहत्वमद्यैव भवितातेन संशयः ॥ ३३ ॥ इतिगौतमशापेन सिंहत्वमगमत्पुरा ॥ कुबेरसचिवोयक्षो भद्रनामाभवान्पुरा ॥ ३४ ॥ कुबेरोधर्मशीलोहि तद्भृत्याश्चतथैवहि ॥ अतःकिमर्थंत्वंहिंसि मामृषिंवनगोचरम् ॥ ३५ ॥ एतत्सर्वमहंध्यानाज्जानामीहमृगाधिप ॥ इत्युक्तेध्यानकाष्ठेन त्यक्त्वासिंहत्वमाशुसः ॥ ३६ ॥ यक्षरूपंगतोदिव्यं कुबेरसचिवात्मकम् ॥ ध्यानकाष्ठमसावाह प्राञ्जलिःप्रणतोमुनिम् ॥ ३७ ॥ अद्यज्ञातंमयासर्वं पूर्ववृत्तंमहामुने ॥ गौतमःशापकालेमे शापान्तमपिचोक्तवान् ॥ ३८ ॥ ध्यानकाष्ठेनसंवादो ऋक्षरूपेणतेयदा ॥ तदानिर्धूयसिंहत्वं यक्षरूपमवाप्स्यसि ॥ ३९ ॥ इतिमामब्रवीद्ब्रह्मन्गौतमोमुनिपुङ्गवः ॥ अद्यसिंहत्वनाशान्मे जानामित्वांमहामुने ॥ ४० ॥ ध्यानकाष्ठाभिधंशुद्धं कामरूपधरंसदा ॥ इत्युक्त्वातंप्रणम्याथ ध्यानकाष्ठंसयक्षराट् ॥ ४१ ॥ विमानवरमारुह्य प्रययावलकापुरीम् ॥ तस्मिन्गतेतुय

हे महामुने ! इससमय मैंने सब पहले के वृत्तान्त को जाना क्योंकि गौतमजीने मेरे शाप के समय में शापान्त को भी कहा था ॥ ३८ ॥ कि ऋक्षरूपवाले ध्यानकाष्ठ से जब तुम्हारा संवाद होगा तब तुम सिंहत्व को छोड़कर यक्षत्व को प्राप्त होगे ॥ ३९ ॥ हे ब्रह्मन् ! मुनिश्रेष्ठ गौतमजी ने मुझसे यह कहा था हे महामुने ! इस समय मेरे सिंहत्व नाश होने से मैं सदैव शुद्ध व इच्छा के अनुकूल रूप को धरनेवाले ध्यानकाष्ठ नामक तुमको जानता हूं यह कहकर व उस ध्यानकाष्ठ को प्रणाम

कर वह यक्षराज ॥ ४० । ४१ ॥ उत्तम विमान पै चढ़कर अलकापुरीको चलागया व उस यक्षेश के जाने पर ध्यानकाष्ठ महामुनि ॥ ४२ ॥ जोकि अव्याहत यथेच्छ गमन वाला था वह इच्छा के अनुकूल पृथ्वी पै चलागया और उस कामरूपधारी ध्यानकाष्ठ मुनि के चलेजाने पर ॥ ४३ ॥ मुनि के शाप से उन्मत्त होता हुआ धर्मगुप्त पुरी को चलागया और उस उन्मत्तरूपवाले नृपोत्तम को देखकर मन्त्रीलोग ॥ ४४ ॥ सुन्दर नर्मदा के किनारे पिता के समीप ले आये और उन्होंने उससे पुत्रके बुद्धिभ्रंश को कहा ॥ ४५ ॥ और पुत्र के वृत्तान्त को पहले से जानकर शीघ्रता संयुत वह नृपोत्तम पुत्रको लेकर जैमुनि के समीप गया ॥ ४६ ॥ व मुनिश्रेष्ठ जैमुनिजी से उसने वचन

क्षेशे ध्यानकाष्ठोमहामुनिः ॥ ४२ ॥ अव्याहतेष्टगमनो यथेष्टंप्रययौमहीम् ॥ ध्यानकाष्ठेगतेतस्मिन्कामरूपधरे मुनौ ॥ ४३ ॥ धर्मगुप्तोमुनेःशापादुन्मत्तःप्रययौपुरीम् ॥ उन्मत्तरूपंतंदृष्ट्वा मन्त्रिणस्तुनृपोत्तमम् ॥ ४४ ॥ पितुःसकाशमानिन्यूरेवातीरेमनोरमे ॥ तस्मैनिवेदयामासुर्मतिभ्रंशंसुतस्यते ॥ ४५ ॥ ज्ञात्वातुपुत्रवृत्तान्तमादितःसन्नृपोत्तमः ॥ जगामपुत्रमादाय जैमुनिंत्वरयान्वितः ॥ ४६ ॥ उवाचवचनंचैव जैमुनिंमुनिपुङ्गवम् ॥ भगवञ्जैमुनेपुत्रो ममाद्योन्मत्ततांगतः ॥ ४७ ॥ अथोन्मादविनाशाय ब्रूह्युपायंमहामुने ॥ इतिपृष्टश्चिरंदध्यौ जैमुनिर्मुनिपुङ्गवः ॥ ४८ ॥ ध्यात्वातुसुचिरंकालं नृपंनन्दमथाब्रवीत् ॥ ध्यानकाष्ठस्यशापेन ह्युन्मत्तस्तेसुतोभवत् ॥ ४९ ॥ तस्यशापस्यमोक्षार्थमुपायंप्रब्रवीमिते ॥ दक्षिणाम्बुनिधौसेतौ पुण्येपापविनाशने ॥ ५० ॥ धनुष्कोटिरितिख्यातं तीर्थमस्तिमहत्तरम् ॥ पवित्राणांपवित्रञ्च मङ्गलानांचमङ्गलम् ॥ ५१ ॥ श्रुतिसिद्धंमहापुण्यं ब्रह्महत्यादिशोधकम् ॥ नीत्वातत्रसुतन्तेद्य स्ना

कहा कि हे भगवन्, जैमुने ! इससमय मेरा पुत्र उन्मत्तता को प्राप्त हुआ है ॥ ४७ ॥ हे महामुने ! उन्माद के नाश के लिये तुम यत्न को कहो इसप्रकार पूंछे हुए मुनिश्रेष्ठ जैमुनिजी ने बहुत देर तक ध्यान किया ॥ ४८ ॥ व बहुत समय तक ध्यान कर नंद राजा से कहा कि ध्यानकाष्ठ के शाप से तुम्हारा पुत्र उन्मत्त होगया है ॥ ४९ ॥ उसके शाप के छूटने के लिये मैं तुम से यत्न को कहता हूं कि दक्षिण समुद्र में पापविनाशक व पवित्र सेतु पै ॥ ५० ॥ धनुष्कोटि ऐसा प्रसिद्ध बड़ाभारी तीर्थ है जोकि पवित्रों के बीच में पवित्र व मंगलों के मध्य में मंगल है ॥ ५१ ॥ व श्रुतिसिद्ध, महापवित्र तथा ब्रह्महत्यादिकों का शोधक है हे महीपते ! यहां पुत्र को ले

जाकर इससमय स्नान करावो ॥ ५२ ॥ तो उसका उन्माद उसीक्षण नाश होजावैगा इसमें सन्देह नहीं है ऐसा कहा हुआ यह नंद उन मुनिश्रेष्ठ जैमुनिजीको प्रणामकर उससमय पुत्र को लेकर धनुष्कोटि को गया और वहां उसने नियमपूर्वक पुत्र को स्नान कराया ॥ ५३ । ५४ ॥ तदनन्तर स्नानही से पुत्र का उन्माद नष्ट होगया और उस नंद ने भी आपही भक्ति समेत स्नान किया ॥ ५५ ॥ और उससमय पुत्र समेत पिता एक दिन बसकर दयानिधि साम्बमूर्त्ति रामनाथजी को सेवनकर ॥ ५६ ॥ व उस पुत्र से पूंछकर नंद तपस्या के लिये वन को चलागया व हे ब्राह्मणो ! पिता के चलेजाने पर पुत्र धर्मगुप्त राजा ने भी ॥ ५७ ॥ भक्ति से रामनाथजी के लिये

पयस्वमहीपते ॥ ५२ ॥ उन्मादस्तत्क्षणादेव तस्यनश्येन्नसंशयः ॥ इत्युक्तस्तंप्रणम्यासौ जैमुनिंमुनिपुङ्गवम् ॥ ५३ ॥ नन्दःपुत्रंसमादाय धनुष्कोटिंययौतदा ॥ तत्रचस्नापयामास पुत्रंनियमपूर्वकम् ॥ ५४ ॥ स्नानमात्राततःसद्यो नष्टोन्मादोभवत्सुतः ॥ स्वयंसस्नौसनन्दोपि धनुष्कोटौसभक्तिकम् ॥ ५५ ॥ उषित्वादिनमेकन्तु सपुत्रस्तुपितातदा ॥ सेवित्वारामनाथंच साम्बमूर्त्तिघृणानिधिम् ॥ ५६ ॥ पुत्रमापृच्छ्यनन्दस्तं प्रययौतपसेवनम् ॥ गतेपितरिपुत्रोपि धर्मगुप्तोनृपोद्विजाः ॥ ५७ ॥ प्रददौरामनाथाय बहुवित्तानिभक्तितः ॥ ब्राह्मणेभ्योधनंधान्यं क्षेत्राणिचददौतदा ॥ ५८ ॥ प्रययौमन्त्रिभिःसार्धं स्वांपुरींतदनन्तरम् ॥ धर्मेणपालयामास राज्यंनिहतकण्टकम् ॥ ५९ ॥ पितृपैतामहंविप्रा धर्मगुप्तोतिधार्मिकः ॥ उन्मादैरप्यपस्मारैर्ग्रहैर्दुष्टैश्चयेनराः ॥ ६० ॥ ग्रस्ताभवन्तिविप्रेन्द्रास्तेपिचात्रनिमज्जनात् ॥ धनुष्कोटौविमुक्ताःस्युः सत्यंसत्यंवदाम्यहम् ॥ ६१ ॥ परित्यज्यधनुष्कोटिं तीर्थमन्यद्व्रजेत्तुयः ॥ सिद्धंसगोपयस्त्य

बहुत द्रव्यों को दिया और ब्राह्मणों के लिये धन, धान्य व क्षेत्रों को उससमय दिया ॥ ५८ ॥ तदनन्तर वह मंत्रियों समेत अपनी पुरी को चलागया व हे ब्राह्मणो ! बड़े धर्मवान् धर्मगुप्त ने धर्म से पितृ पितामहवाले निष्कंटक राज्य का पालन किया उन्मादों व अपस्मारों से तथा दुष्टग्रहों से जो मनुष्य ॥ ५९ । ६० ॥ ग्रस्त होते हैं हे द्विजेन्द्रो ! वे भी इस धनुष्कोटि में नहाने से मुक्त होजाते हैं यह मैं सत्य २ कहता हूं ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य धनुष्कोटि को छोड़कर अन्यतीर्थ को जाता है वह

सिद्ध गऊ के दूध को छोड़कर सेहुँड़े के दूध को मांगता है ॥ ६२ ॥ हे ब्राह्मणो ! धनुष्कोटि, धनुष्कोटि, धनुष्कोटि ऐसा तीन बार पढ़ते हुए जो मनुष्य जिस किसी भी जलाशय में ॥ ६३ ॥ नहाते हैं वे सब ब्रह्मा के स्थान को प्राप्त होवेंगे हे ब्राह्मणो ! तुमलोगों से इसप्रकार उत्तम धर्मगुप्त की कथा कही गई ॥ ६४ ॥ कि जिसके सुनने से ब्रह्महत्या नाश होजाती है और सुवर्ण की चोरी इत्यादिक अन्य पापसमूह नाश होजाते हैं ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे सेतुमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां धनुष्कोटिप्रशंसायांधर्मगुप्तोन्मादविमोक्षणंनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

क्त्वा स्नुहिक्षीरंप्रयाचते ॥ ६२ ॥ धनुष्कोटिर्धनुष्कोटिर्धनुष्कोटिरितिद्विजाः ॥ त्रिःपठन्तोनरायेतु यत्रकापिजलाशये ॥ ६३ ॥ स्नान्तिसर्वेनरास्तेवै यास्यन्तिब्रह्मणःपदम् ॥ एवंवःकथिताविप्रा धर्मगुप्तकथाशुभा ॥ ६४ ॥ यस्याःश्रवणमात्रेण ब्रह्महत्याविनश्यति ॥ स्वर्णस्तेयादयश्चान्ये नश्येयुःपापसञ्चयाः ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे सेतुमाहात्म्येधनुष्कोटिप्रशंसायांधर्मगुप्तोन्मादविमोक्षणन्नामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ भूयोप्यहंप्रवक्ष्यामि धनुष्कोटेस्तुवैभवम् ॥ अत्यद्भुततरंगुह्यं सर्वलोकैकपावनम् ॥ १ ॥ पुरापरावसुर्नाम ब्राह्मणोवेदवित्तमः ॥ अज्ञानात्पितरंहत्वा ब्रह्महत्यामवाप्तवान् ॥ २ ॥ सोपिस्नात्वाधनुष्कोटौ तद्दोषान्मुमुचेक्षणात् ॥ ऋषय ऊचुः ॥ पितरंहतवान्पूर्वं कथंसूतपरावसुः ॥ ३ ॥ कथंवाधनुषःकोटौ मुक्तिस्तस्याप्यभून्मुने ॥ एतन्नःश्रद्दधानानां विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ आसीद्राजाबृहद्युम्नश्चक्रवर्तीमहाबलः ॥ धर्मेणपालया

दो० । यथा परावसु द्विज भयो ब्रह्मघात सों मुक्त । तेंतिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखयुक्त ॥ श्रीसूतजी बोले कि बहुतही गुप्त व सब लोकों के एकही पवित्रकारक धनुष्कोटि के प्रभाव को मैं फिर भी कहता हूं ॥ १ ॥ पुरातन समय में वेदविदों में उत्तम परावसु नामक ब्राह्मण अज्ञान से पिता को मारकर ब्रह्महत्या को प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥ और वह भी धनुष्कोटि में नहाकर उसके दोष से क्षणभर में छूटगया है ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! पुरातन समय परावसु ने किसप्रकार पिता को मारा है ॥ ३ ॥ व हे मुने ! किसप्रकार धनुष्कोटि में उसकी मुक्ति हुई है इसको श्रद्धावान् हमलोगों से विस्तार से कहने के योग्य हो ॥ ४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि बड़ा बल-

वान् बृहद्युम्न नामक चक्रवर्ती राजा हुआ है उसने समुद्र अन्तवाली पृथ्वी को धर्मसे पालन किया ॥ ५ ॥ और सत्रयाग से इन्द्रादिक देवताओं को पूजा है उसके यज्ञ करानेवाले बड़े धर्मवान् रैभ्य नामक विद्वान् हुए हैं ॥ ६ ॥ उसके अर्वावसु और परावसु दो पुत्र हुए हैं वे षडंगवेदों को जाननेवाले व श्रौत तथा स्मार्त कर्मों में चतुर थे ॥ ७ ॥ और कणादरचित व जैमिनिरचित शास्त्र तथा सांख्य व व्यासरचित तथा गौतमरचित शास्त्र व योगशास्त्र और पाणिनिशास्त्र में चतुर थे ॥ ८ ॥ और मनु आदिक स्मृतियों में प्रवीण व सब शास्त्रों में चतुर थे बृहद्युम्न ने सत्रयाग में सहायता के लिये उन दोनों से प्रार्थना किया ॥ ९ ॥ और अश्विनीकुमार की नाईं

मास सागरान्तांवसुन्धराम् ॥ ५ ॥ अयजत्सत्रयागेन देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ याजकस्तस्यरैभ्योभूद्विद्वान्परमधार्मिकः ॥ ६ ॥ आस्तांपुत्रावुभौतस्याप्यर्वावसुपरावसू ॥ षडङ्गवेदविदुषौ श्रौतस्मार्तेषुकोविदौ ॥ ७ ॥ काणादेजैमिनीयेच सांख्येवैयासिकेतथा ॥ गौतमेयोगशास्त्रेच पाणिनीयेचकोविदौ ॥ ८ ॥ मन्वादिस्मृतिनिष्णातौ सर्वशास्त्रविशारदौ ॥ सत्रयागेसहायार्थं बृहद्युम्नेनयाचितौ ॥ ९ ॥ भ्रातरौसमनुज्ञातौ पित्रारैभ्येणजग्मतुः ॥ बृहद्युम्नस्यसत्रन्तावश्विनाविवरूपिणौ ॥ १० ॥ अतिष्ठदाश्रमेरैभ्यः स्नुषयाज्येष्ठयासह ॥ तौगत्वाभ्रातरौतत्र राज्ञःसत्रमनुत्तमम् ॥ ११ ॥ याजयामासतुस्सत्रे बृहद्युम्नमहीपतेः ॥ नाभवत्स्खलनंभ्रात्रोः सत्रेसाङ्गेषुकर्मसु ॥ १२ ॥ सत्रेसन्तन्यमानेस्मिन् बृहद्युम्नस्यभूपतेः ॥ मुनयोभ्यागमन्सर्वे राज्ञाहूतानिरीक्षितुम् ॥ १३ ॥ वसिष्ठोगौतमश्चात्रिर्जाबालिरथकश्यपः ॥ क्रतुर्दक्षः

रूपवान् वे दोनों रैभ्य पिता से आज्ञा को लेकर बृहद्युम्न के यज्ञ को गये ॥ १० ॥ बड़ी पतोहू समेत रैभ्यजी आश्रम में टिके रहे और वे भाई वहां राजा के उत्तम यज्ञ को जाकर ॥ ११ ॥ बृहद्युम्न राजा के यज्ञ में पूजन कराया और यज्ञ में अंग समेत कर्मों में भाइयों का स्खलन याने स्मृतिलोप नहीं हुआ ॥ १२ ॥ और बृहद्युम्न राजा के इस यज्ञ के विस्तृत होने पर राजा से बुलाये हुए सब मुनिलोग देखने के लिये आये ॥ १३ ॥ वसिष्ठ, गौतम, अत्रि, जाबालि व कश्यप, क्रतु, दक्ष, पुलस्ति, पुलह

और नारदमुनि ॥ १४ ॥ व मार्कंडेय, शतानन्द, विश्वामित्र, पराशर, भृगु, कुत्स, वाल्मीकि व व्यास धौम्यादिक अन्य महर्षि ॥ १५ ॥ बहुत से असंख्य शिष्यों व प्रशिष्यों से घिरकर आये व आये हुए उन मुनियों को देखकर बृहद्द्युम्न राजा ने ॥ १६ ॥ सब मुनियों को आदरसमेत अर्घ्यादिक से पूजन किया और उस समय आदर से यज्ञ को देखने के लिये बुलाये हुए राजालोग चतुरंगिणी सेनाओं से संयुत होकर अनेकों दिशाओं से आये व वैश्य, शूद्र और चारो भी वर्ण आये ॥ १७ । १८ ॥ और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यासी उस बृहद्द्युम्न के यज्ञ को देखने के लिये आये ॥ १९ ॥ उन सबों को नृपोत्तम ने यथायोग्य पूजन किया व सबों के लिये

पुलस्तिश्च पुलहोनारदोमुनिः ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयःशतानन्दो विश्वामित्रःपराशरः ॥ भृगुःकुत्सोथवाल्मीकिर्व्यास धौम्यादयोपरे ॥ १५ ॥ शिष्यैःप्रशिष्यैर्बहुभिरसंख्यातैःसमावृताः ॥ तानागतान्समालोक्यबृहद्युम्नोमहीपतिः ॥१६॥ अर्घ्यादिनामुनीन्सर्वान्पूजयामाससादरम् ॥ नानादिग्भ्यःसमायाताश्चतुरङ्गबलैर्युताः ॥ १७ ॥ उपहूतास्तदाभूपास्स त्रंवीक्षितुमादरात् ॥ वैश्याःशूद्रास्तथावर्णाश्चत्वारोपिसमागताः ॥ १८ ॥ वर्णिनोथगृहस्थाश्च वानप्रस्थाश्चभिक्षवः ॥ सत्रंनिरीक्षितुंतस्य बृहद्युम्नस्यचाययुः ॥ १९ ॥ तान्सर्वान्पूजयामास यथार्हंराजसत्तमः ॥ ददौचान्नानिसर्वेभ्यो घृतसू पादिकांस्तथा ॥ २० ॥ वस्त्राणिचसुवर्णानि हाररत्नान्यनेकशः ॥ एवंसत्कारयामास राजासत्रेसमागतान् ॥ २१ ॥ रैभ्यपुत्रौतदाविप्रा अर्वावसुपरावसू ॥ अध्वरादीनिकर्माणि चक्रतुस्स्खलितंविना ॥ २२ ॥ तद्दृष्ट्वामुनयस्सर्वे कौशलंरैभ्यपुत्रयोः ॥ श्लाघन्तेसशिरःकम्पं वसिष्ठप्रमुखास्तदा ॥ २३ ॥ कर्माणिकानिचित्तत्र कारयित्वापरावसुः ॥ तृतीयसवनस्यान्ते गृहकृत्यंनिरीक्षितुम् ॥ २४ ॥ प्रययौस्वाश्रमंसायं विनैवार्वावसुंद्विजाः ॥ तस्मिन्नवसरेरैभ्यं

अन्न और घृत व दालि आदिक को दिया ॥ २० ॥ और वस्त्र, सुवर्ण व अनेक हारों व रत्नों को दिया इसप्रकार राजा ने यज्ञ में आये हुए लोगों का सत्कार किया ॥ २१ ॥ व हे ब्राह्मणो ! उस समय रैभ्य के पुत्र अर्वावसु व परावसु ने यज्ञादिक कर्मों को सावधानतापूर्वक किया ॥ २२ ॥ उस समय रैभ्य के पुत्रों की उस निपुणता को देखकर वसिष्ठ आदिक सब मुनिलोग शिरकंप समेत प्रशंसा करते थे ॥ २३ ॥ उस यज्ञ में परावसु कुछ कर्मोंको कराकर तीसरे सवन के अन्त में घर के कार्य को देखने के लिये ॥ २४ ॥

हे ब्राह्मणो ! संध्यासमय में अर्वावसु के विना अपने आश्रम को गये व उस समय कृष्णाजिनसे घिरे हुए रैभ्य ॥ २५ ॥ पिता को वनमें घूमते हुए देखकर रात को बड़े भारी अन्धकार में निद्रा से विकल वे परावसु मृग की शंका से ॥ २६ ॥ यह विचारते हुए कि यह मृग अपना को मारने के लिये आता है महावन में उन परावसु ने पिता को मारडाला ॥ २७ ॥ हे ब्राह्मणो ! अपने शरीर की रक्षा करते हुए उस महापापकारी ने रात में पिता को अकामना से मारडाला ॥ २८ ॥ और समीप आकर उसने उस मरे हुए पुत्र को देखा और रात में अपने पिता को जानकर विकल इन्द्रियोंवाले उसने शोच किया ॥ २९ ॥ तदनन्तर परावसु पिता का सब

कृष्णाजिनसमावृतम् ॥ २५ ॥ वनेचरन्तंपितरं दृष्ट्वासमृगशङ्कया ॥ निद्राकलुषितोरात्रौ अन्धेतमसिसंकुले ॥२६॥ आत्मानंहन्तुमायाति मृगोयमितिचिन्तयन् ॥ जघानपितरंसोयं महारण्येपरावसुः ॥ २७ ॥ रिरक्षुणाशरीरंस्वन्ते नाकामनयापिता ॥ रजन्यांहिंसितोविप्रा महापातककारिणा ॥ २८ ॥ अन्तिकंससमागत्य व्यलोकयततंहतम् ॥ ज्ञात्वास्वपितरंरात्रौ शुशोचव्यथितेन्द्रियः ॥ २९ ॥ प्रेतकार्यंततःकृत्वा पितुःसर्वंपरावसुः ॥ भूयोपिनृपतेःसत्रं परावसुरुपाययौ ॥ ३० ॥ स्वचेष्टितन्तुतत्सर्वमनुजायततोब्रवीत् ॥ मृतंस्वपितरंश्रुत्वा सोपिशोकाकुलोभवत् ॥ ३१ ॥ ज्येष्ठोनुजंततःप्राह वचनंद्विजसत्तमाः ॥ महत्सत्रंसमारब्धंबृहद्युम्नस्यभूपतेः ॥ ३२ ॥ वोढुत्वशक्तिर्नास्त्यस्य कर्मणो बालकस्यते ॥ जनकश्चहतोरात्रौ मयापिमृगशङ्कया ॥ ३३ ॥ प्रायश्चित्तंचकर्त्तव्यं ब्रह्महत्याविशुद्धये ॥ मदर्थंव्रतचर्यांत्वंचरतातकनिष्ठक ॥ ३४ ॥ एकाकीधुरमुद्वोढुं शक्तोहंसत्रकर्मणः ॥ अर्वावसुरितिप्रोक्तो ज्येष्ठेनसतमभ्य

प्रेतकार्य करके फिर भी राजा के यज्ञ को परावसु आये ॥ ३० ॥ तदनन्तर उसने अपने सब कर्म को छोटे भाई से कहा और मरे हुए अपने पिता को सुनकर वह भी शोक से विकल हुआ ॥ ३१ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! बड़े भाई ने छोटे भाई से वचन कहा कि बृहद्युम्न राजा का बड़ा भारी यज्ञ प्रारम्भ हुआ है ॥ ३२ ॥ और इस कर्म के समाप्त करने की शक्ति तुझ बालक के नहीं है व रात्रि में मैंने भी मृग की शंका से पिता को मारडाला ॥ ३३ ॥ और ब्रह्महत्या से शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये हे तात, अनुज ! तुम मेरे लिये व्रतचर्या करो ॥ ३४ ॥ मैं अकेले इस यज्ञकर्म के भार को लेजाने के लिये समर्थ हूं बड़े से ऐसा कहे हुए अर्वावसु ने उससे

कहा ॥ ३५ ॥ कि हे ज्येष्ठ ! वैसाही होवै ब्रह्महत्या से शुद्धि के लिये मैं उत्तम व्रत को करूंगा और तुम यज्ञभार को ले चलो ॥ ३६ ॥ बड़े भाई से यह कहकर वह छोटा भाई उस यज्ञ से निकलगया और उसके चलेजाने पर यज्ञ में बड़े भाई ने कर्मों को कराया ॥ ३७ ॥ व हे ब्राह्मणो ! बारह वर्ष तक छोटा भाई भी ब्रह्महत्या का व्रत करके फिर हर्ष से इस सत्रयज्ञ में आया ॥ ३८ ॥ उस भाई को देखकर ज्येष्ठ भाई ने बृहद्युम्न से कहा कि यह अर्वावसु ब्रह्मघाती तुम्हारे यज्ञ को आया है ॥ ३९ ॥ हे नृपोत्तम ! इसको तुम शीघ्रही इस यज्ञ से निकाल दो नहीं तो तुम्हारे सत्रयाग के फल की हानि होगी ॥ ४० ॥ ऐसा कहे हुए उस राजा ने अपने सेवकों से

धात् ॥ ३५ ॥ तथाभवत्वहंज्येष्ठ चरिष्येव्रतमुत्तमम् ॥ ब्रह्महत्याविशुद्ध्यर्थं त्वंसत्रधुरमावह ॥ ३६ ॥ इत्युक्त्वा सोनुजोज्येष्ठं तस्मात्सत्राद्विनिर्ययौ ॥ कारयामासकर्माणिज्येष्ठस्तस्मिन्गतेक्रतौ ॥ ३७ ॥ द्वादशाब्दंकनिष्ठोपि ब्रह्महत्याव्रतंद्विजाः ॥ चरित्वासत्रयागेस्मिन्नाजगामपुनर्मुदा ॥ ३८ ॥ तंदृष्ट्वाभ्रातरंज्येष्ठो बृहद्युम्नमुवाचह ॥ अयन्तेब्रह्महासत्रमर्वावसुरुपागतः ॥ ३९ ॥ एनमुत्सारयाशुत्वमस्मात्सत्रान्नृपोत्तम ॥ अन्यथासत्रयागस्य फलहानिर्भविष्यति ॥ ४० इतीरितःसस्वप्रेष्यैर्यागात्तमुदवासयत् ॥ उद्वास्यमानोराजानमर्वावसुरथाब्रवीत् ॥ ४१ ॥ नमयाब्रह्महत्येयं बृहद्युम्नकृतानघ ॥ किन्तुज्येष्ठेनमेसाहि ब्रह्महत्याकृताविभो ॥ ४२ ॥ ब्रह्महत्याव्रतंचीर्णं तदर्थंचमयाधुना ॥ एवमुक्तोपिराजासौ वचसासपरावसोः ॥ ४३ ॥ अर्वावसुंनिजात्सत्रादुदवासयदाशुवै ॥ धिक्कृतोब्राह्मणैश्चायं ययौतूष्णींवनंतदा ॥ ४४ ॥ मुनिवृन्दसमाकीर्णं तपोवनमुपेत्यसः ॥ अर्वावसुस्तपश्चक्रे देवैरपिसुदुष्करम् ॥ ४५ ॥ तपःकुर्वंस्तथा

उस यज्ञ से उसको निकला दिया और निकाले जाते हुए अर्वावसु ने राजा से कहा ॥ ४१ ॥ कि हे अनघ, बृहद्युम्न ! मैंने इस ब्रह्महत्या को नहीं किया है किन्तु हे विभो ! मेरे बडे भाई ने उस ब्रह्महत्या को किया है ॥ ४२ ॥ उसी के लिये इस समय मैंने ब्रह्महत्या के व्रत को किया है ऐसा कहे हुए भी इस राजा ने परावसु के वचन से ॥ ४३ ॥ अर्वावसु को शीघ्रही उस सत्र से निकाल दिया तब ब्राह्मणों से धिक्कार किया हुआ यह चुपचाप वन को चलागया ॥ ४४ ॥ और मुनिगणों से

व्यास वन को जाकर उस अर्वावसु ने देवताओं से भी कठिन तप को किया है ॥ ४५ ॥ और सावधान होकर तपस्या करते हुए उसने सूर्योपस्थान किया उसके बहुत तप से प्रसन्न बुद्धिवाले आपही सूर्यनारायणजी मूर्त्तिमान् हुए ॥ ४६ ॥ व अपने प्रकाश से पृथ्वी को प्रकाशित करते हुए कर्मसाक्षी व लोकलोचन तथा देवताओं में श्रेष्ठ सूर्यनारायणजी प्रकट हुए ॥ ४७ ॥ व हे ब्राह्मणो ! इन्द्र को आगे कर देवता प्रकट हुए तदनन्तर इन्द्रादिक देवताओं ने अर्वावसु से कहा ॥ ४८ ॥ कि हे अर्वावसो ! तुम तपस्या, ब्रह्मचर्य, आचार, शास्त्र व वेदशास्त्रादिकों की शिक्षा से श्रेष्ठ हो ॥ ४९ ॥ और परावसु ने तुमको बहुत अपमान से निकाल दिया तथापि जिसलिये क्षमा से

दित्यमुपतस्थेसमाहितः ॥ मूर्त्तिमांस्तपसातस्य महतातुष्टधीःस्वयम् ॥ ४६ ॥ आविरासीत्स्वयादीप्त्या भासयञ्जगतीतलम् ॥ कर्मसाक्षीजगच्चक्षुर्भास्करोदेवताग्रणीः ॥ ४७ ॥ आविर्बभूवुर्देवाश्च पुरस्कृत्यशचीपतिम् ॥ इन्द्रादयस्ततो देवाः प्रोचुरर्वावसुंद्विजाः ॥ ४८ ॥ अर्वावसोत्वंप्रवरस्तपसाब्रह्मचर्यतः ॥ आचारेणश्रुतेनापि वेदशास्त्रादिशिक्षया ॥ ४९ ॥ निराकृतोवमानेन त्वंपरावसुनाबहु ॥ तथापिक्षमयायुक्तो नकुप्यतिभवान्यतः ॥ ५० ॥ यस्माज्ज्येष्ठोवधीत्तातं नहिंसित्वंमहामते ॥ ब्रह्महत्याव्रतंयस्मात्तदर्थंचरितंत्वया ॥ ५१ ॥ अतःस्वीकुर्महेत्वान्तु पराकुर्मःपरावसुम् ॥ उक्त्वैवंबलभिन्मुख्याः सर्वेचत्रिदिवालयाः ॥ ५२ ॥ तन्तेप्रवरयामासुर्निरासुश्चपरावसुम् ॥ पुनरिन्द्रादयोदेवाः पुरोधायदिवाकरम् ॥ ५३ ॥ अर्वावसुंप्रोचुरिदं वरंत्वंवरयेतिवै ॥ सचापिप्रार्थयामास जनकस्योत्थितंपुनः ॥ ५४ ॥ वधेचास्मरणंदेवानात्मजोजनकस्यवै ॥ तथास्त्वितिसुराःप्रोचुर्पुनरूचुरिदंवचः ॥ ५५ ॥ वरंचान्यंप्रदास्यामो वरयत्वंमहाम

युक्त आप क्रोध नहीं करते हो ॥ ५० ॥ व हे महामते ! जिसकारण बड़े भाई ने पिता को मारा तुमने नहीं मारा है व जिसकारण उसके लिये तुमने ब्रह्महत्या के व्रत को किया है ॥ ५१ ॥ इसकारण हमलोग तुमको स्वीकार करते हैं व परावसुको निकालते हैं ऐसा कहकर इन्द्रादिक सब देवताओं ने ॥ ५२ ॥ उसको श्रेष्ठ किया व परावसु को न्यून किया फिर सूर्यनारायण को आगेकर उन इन्द्रादिक देवताओं ने ॥ ५३ ॥ अर्वावसु से यह कहा कि वरदान को मांगो और उस पुत्र ने भी देवताओं से पिता का फिर उठना व मारने में पिता को स्मरण न रहना प्रार्थना किया वैसाही होवै यह देवताओं ने कहा व फिर यह वचन कहा ॥ ५४ । ५५ ॥

कि हे महामते ! हम अन्य वर को देवैंगे तुम मांगो देवताओं से ऐसा कहे हुए उस अर्वावसु ने कहा ॥ ५६ ॥ कि हे देवताओ ! मेरे भाई के अदुष्टता होवै याने वह दोष से मुक्त होजावै अर्वावसु के वचन को सुनकर फिर देवताओं ने कहा ॥ ५७ ॥ कि ब्राह्मण पिता को मारने से परावसु के बड़ा भारी दोष है और अन्य के किये हुए पाप की शांति पांच पातकों में दूसरे से किये हुए प्रायश्चित्त से नहीं होती है और ब्राह्मण पिता के मारने से अवश्य कर प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ५८ । ५९ ॥ क्योंकि उसमें अपना से किये हुए भी व्रत से प्रायश्चित्त नही होता है इसकारण तुम्हारे भाई परावसु का प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ६० ॥ इसकारण हमलोग इसके लिये निर्दोषत्व

ते ॥ एवमुक्तःसुरैःसोयमर्वावसुरभाषत ॥ ५६ ॥ ममभ्रातुरदुष्टत्वं भवतुत्रिदशालयाः ॥ अर्वावसोर्वचःश्रुत्वा त्रिदशाः पुनरब्रुवन् ॥ ५७ ॥ ब्राह्मणस्यपितुर्घातान्महान्दोषःपरावसोः ॥ नह्यन्यकृतपापस्य परेणानुष्ठितेनवै ॥ ५८ ॥ प्राय श्चित्तेनशान्तिःस्यान्महापातकपञ्चके ॥ पितुर्ब्राह्मणहन्तुस्तु सुतरांनास्तिनिष्कृतिः ॥ ५९ ॥ आत्मनानुष्ठितेनापि व्रते ननहिनिष्कृतिः ॥ परावसोस्तवभ्रातुरतोनैवास्तिनिष्कृतिः ॥ ६० ॥ अतोस्माभिरदुष्टत्वमस्मैदातुंनशक्यते ॥ अर्वावसुः पुनःप्राह देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ६१ ॥ तथापियुष्मन्माहात्म्यात्प्रसादाद्भवतान्तथा ॥ पितुर्ब्राह्मणहन्तुर्मे भ्रातुस्त्रि दशसत्तमाः ॥ ६२ ॥ यथास्यान्निष्कृतिर्ब्रूततथैवकृपयायुताः ॥ एवमर्वावसोःश्रुत्वा वचस्तेत्रिदशालयाः ॥ ६३ ॥ ध्यात्वातुसुचिरंकालं विनिश्चित्येदमब्रुवन् ॥ उपायन्तेप्रवक्ष्यामस्तत्पातकनिवारणम् ॥ ६४ ॥ दक्षिणाम्बुनिधौपुण्ये रामसेतौविमुक्तिदे ॥ धनुष्कोटिरितिख्यातं तीर्थमस्तिविमुक्तिदम् ॥ ६५ ॥ ब्रह्महत्यासुरापानस्वर्णस्तेयविनाशनम् ॥

को नहीं देसक्ते हैं फिर अर्वावसु ने इन्द्रादिक देवताओं से कहा ॥ ६१ ॥ कि हे सुरोत्तमो ! तथापि तुमलोगों के माहात्म्य से व आपलोगों की प्रसन्नता से पिता ब्राह्मण को मारनेवाले मेरे भाई को ॥ ६२ ॥ जिसप्रकार प्रायश्चित्त होवै वैसेही दया से संयुत तुमलोग कहो इसप्रकार अर्वावसु के वचन को सुनकर उन देवताओं ने ॥ ६३ ॥ बहुत समय तक विचार कर व निश्चय कर यह कहा कि उस पातक को दूर करनेवाले यत्न को मैं तुम से कहता हू ॥ ६४ ॥ कि दक्षिण समुद्र में पवित्र व मुक्तिदायक रामसेतु पै धनुष्कोटि ऐसा प्रसिद्ध मुक्तिदायक तीर्थ है ॥ ६५ ॥ जोकि ब्रह्महत्या, मदिरापान व सुवर्ण की चोरी के दोष को नाशनेवाला और गुरु की शय्या

पै जानेवाले के संसर्गवाले दोषों काभी विनाशक है ॥ ६६ ॥ और जो मनुष्य अकामना से भी नहाता है उसको मोक्षफल का दायक व दुःस्वप्ननाशक, धन्य और नरकों के क्लेश का विनाशक है ॥ ६७ ॥ व कैलासादिक स्थानों के मिलने का कारण व परमार्थदायक तथा सब कामनोंवाला यह तीर्थ मनुष्यों के ऋण व दारिद्र्य का विनाशक है ॥ ६८ ॥ और धनुष्कोटि, धनुष्कोटि व धनुष्कोटि ऐसा कहने से पुरुषों को स्वर्ग व मोक्षदायक और महापुण्य के फलको देनेवाला है ॥ ६९ ॥ वहां जाकर यदि तुम्हारा भाई परावसु स्नान करै तो उसीक्षण तुम्हारा बड़ा भाई ब्रह्महत्यासे छूटैगा ॥ ७० ॥ यह बड़ा भारी गुप्त प्रायश्चित्त कहागया देवतालोग अर्वावसु

गुरुतल्पगसंसर्गदोषाणामपिनाशनम् ॥ ६६ ॥ अकामेनापियःस्नायादपवर्गफलप्रदम् ॥ दुस्वप्ननाशनंधन्यं नरकक्लेशनाशनम् ॥ ६७ ॥ कैलासादिपदप्राप्तिकारणंपरमार्थदम् ॥ सर्वकाममिदंपुंसां ऋणदारिद्र्यनाशनम् ॥ ६८ ॥ धनुष्कोटिर्धनुष्कोटिर्धनुष्कोटिरितीरणात् ॥ स्वर्गापवर्गदंपुंसां महापुण्यफलप्रदम् ॥ ६९ ॥ तत्रगत्वातवभ्राता स्नायाद्यदिपरावसुः ॥ तत्क्षणादेवतेज्येष्ठो मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ ७० ॥ इदंरहस्यंसुमहत्प्रायश्चित्तमुदीरितम् ॥ उक्त्वेत्यर्वावसुंदेवाः प्रययुःस्वपुरींप्रति ॥ ७१ ॥ ततश्चार्वावसुर्ज्येष्ठं समादायपरावसुम् ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटिं प्रययौमुक्तिदायिनीम् ॥ ७२ ॥ सेतौसंकल्पमुक्त्वातु नियमेनपरावसुः ॥ सहभ्रात्राधनुष्कोटौ सस्नौपातकशुद्धये ॥ ७३ ॥ स्नात्वोत्थितंधनुष्कोटौ तम्प्रोवाचाशरीरिणी ॥ परावसोविनष्टाते पितुर्ब्राह्मणघातजा ॥ ७४ ॥ ब्रह्महत्यामहाघोरा नरकक्लेशकारिणी ॥ इत्युक्त्वाविरराभाथ सापिवागशरीरिणी ॥ ७५ ॥ परावसुस्तदाविप्राः कनिष्ठेनसमन्वितः ॥ रामचन्द्र

से यह कहकर अपनी पुरी को चलेगये ॥ ७१ ॥ तदनन्तर अर्वावसु बड़े भाई परावसुको लेकर मुक्तिदायिनी रामचन्द्रकी धनुष्कोटि को गया ॥ ७२ ॥ और सेतु पै संकल्प कहकर पातक से शुद्धि के लिये परावसु ने भाई समेत नियम से धनुष्कोटि में स्नान किया ॥ ७३ ॥ और धनुष्कोटि में नहाकर उठेहुए उससे आकाशवाणी ने कहा कि हे परावसो ! पिता ब्राह्मण के वध से उपजीहुई महाघोर व नरकों के क्लेशों को करनेवाली ब्रह्महत्या नष्ट होगई यह कहकर वह आकाशवाणी चुप होगई ॥ ७४ । ७५ ॥

तव हे ब्राह्मणो ! छोटे भाई समेत परावसु रामचन्द्र की धनुष्कोटि को भक्तिसमेत प्रणामकर ॥ ७६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! रामनाथ महादेवजी को भक्तिपूर्वक प्रणामकर पातक से छूटा हुआ वह पिता के आश्रम को गया ॥ ७७ ॥ तब मरकर उठेहुए रैभ्यमुनि आये हुए पुत्रों को देखकर उससमय अपने आश्रम में पुत्रों समेत संतुष्टचित्त हुए ॥ ७८ ॥ व उससमय रामचन्द्र की धनुष्कोटि में स्नान से नष्टपातकोंवाले इस परावसु को सब मुनियों ने स्वीकार किया ॥ ७९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! इसप्रकार धनुष्कोटि में स्नानही करने से परावसु की ब्रह्महत्या की मुक्ति तुमलोगों से कही गई ॥ ८० ॥ यहां इस तीर्थ में स्नान करने से मदिरापानादिक दोष

धनुष्कोटिं प्रणम्यचसभक्तिकम् ॥ ७६ ॥ रामनाथंमहादेवं नत्वाभक्तिपुरःसरम् ॥ विमुक्तपातकोविप्राः प्रययौपितुराश्रमम् ॥ ७७ ॥ मृत्वोत्थितस्तदारैभ्यो दृष्ट्वापुत्रौसमागतौ ॥ सन्तुष्टहृदयोह्यास्ते पुत्राभ्यांस्वाश्रमेतदा ॥ ७८ ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटौ स्नानेनहतपातकम् ॥ एनंपरावसुंसर्वे स्वीचक्रुर्मुनयस्तदा ॥ ७९ ॥ एवंपरावसोरुक्तं ब्रह्महत्याविमोक्षणम् ॥ स्नानमात्राद्धनुष्कोटौ युष्माकंमुनिपुङ्गवाः ॥ ८० ॥ सुरापानादयोप्यत्र नश्यन्त्येवात्रमज्जनात् ॥ सत्यंसत्यंपुनःसत्यमुद्धृत्यभुजमुच्यते ॥ ८१ ॥ महापातकसंघाश्च नश्येयुर्मज्जनादिह ॥ यइमंपठतेध्यायं ब्रह्महत्याविमोक्षणम् ॥८२॥ ब्रह्महत्याविनश्येत तत्क्षणान्नास्तिसंशयः ॥ सुरापानादयोप्यस्य शान्तिगच्छेयुरञ्जसा ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येधनुष्कोटिप्रशंसायांपरावसोर्ब्रह्महत्याविमोक्षणन्नामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ इतिहासंपुनर्वक्ष्ये धनुष्कोटिप्रशंसनम् ॥ सृगालस्यचसंवादं वानरस्यचसत्तमाः ॥ १ ॥ सृगाल

नष्ट होजाते हैं सत्य है, सत्य है व फिर सत्य है यह भुजा उठाकर कहाजाता है ॥ ८१ ॥ कि इसमें स्नान करने से महापातकों के समूह नाश होजाते हैं ब्रह्महत्या को छुडानेवाले इस अध्याय को जो पढ़ता है ॥ ८२ ॥ उसकी ब्रह्महत्या उसीक्षण नाश होजाती है इसमें सन्देह नहीं है और इसके मदिरापानादिक दोष शीघ्रही शांति को प्राप्त होते हैं ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांधनुष्कोटिप्रशंसायांपरावसोर्ब्रह्महत्याविमोक्षणंनामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

दो० । धनुषकोटि में न्हाय द्विज सुमति पापसों छूट । चौंतिसवें अध्याय में सोइ कथा सुखलूट ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे सत्तमो ! धनुष्कोटि के प्रशंसारूप इतिहास

को मैं फिर कहता हूं व सृगाल और वानर के संवाद को कहता हूं ॥ १ ॥ पुरातन समय सियार व वानर दोनों जाति के स्मरण करनेवाले हुए हैं और वे पहले मनुजता में भी मित्र हुए हैं ॥ २ ॥ हे ब्राह्मणो ! फिर सियार व वानर की अन्य योनि में प्राप्त हुए और सियार व वानर दोनों मित्रता को प्राप्त हुए ॥ ३ ॥ किसी समय पहले की जाति को स्मरण करते हुए वानर ने श्मशान के मध्य में देखकर रुद्रभूमिष्ठ नामक सियार से कहा ॥ ४ ॥ वानर बोला कि हे सृगाल ! तुमने पहले क्या कठिन पाप किया है कि जो तुम श्मशान में दुर्गन्धिवाले निन्दित मुर्दों को ॥ ५ ॥ खाते हो वानर से ऐसा कहे हुए सियार ने उससे कहा सृगाल बोला कि पूर्वजन्म में सब कर्म-

वानरौपूर्वमास्तांजातिस्मरावुभौ ॥ पुरापिमानुषेभावे सहायौतौवभूवतुः ॥ २ ॥ अन्यांयोनिंसमापन्नौ सार्गालींवानरीं तथा ॥ सख्यंसमीयतुरुभौ सृगालोवानरोद्विजाः ॥ ३ ॥ कदाचिद्रुद्रभूमिष्ठं सृगालंवानरोब्रवीत् ॥ श्मशानमध्येसम्प्रेक्ष्य पूर्वजातिमनुस्मरन् ॥ ४ ॥ वानर उवाच ॥ सृगालपातकंपूर्वं किमकार्षीःसुदारुणम् ॥ यस्त्वंश्मशानेमृतकान्पूतिगन्धांश्चकुत्सितान् ॥ ५ ॥ अत्सीत्युक्तोथकपिना सृगालस्तमभाषत ॥ सृगाल उवाच ॥ अहंपूर्वभवेह्यासं ब्राह्मणोवेदपारगः ॥ ६ ॥ वेदशर्माभिधोविद्वान्सर्वकर्मकलापवित् ॥ ब्राह्मणायप्रतिश्रुत्य नमयातत्रजन्मनि ॥ ७ ॥ कपेधनंतदादत्तं सृगालोहंततोभवम् ॥ तस्मादेवंविधंभक्ष्यं भक्षयाम्यतिकुत्सितम् ॥ ८ ॥ प्रतिश्रुत्यदुरात्मानो नप्रयच्छन्तियेनराः ॥ कपेसृगालयोनिन्ते प्राप्नुवन्त्यतिकुत्सिताम् ॥ ९ ॥ योनदद्यात्प्रतिश्रुत्य स्वल्पंवायदिवाबहु ॥ सर्वाशास्तस्यनष्टाःस्युः षण्ढस्यैवप्रजोद्भवः ॥ १० ॥ प्रतिश्रुत्याप्रदानेतु ब्राह्मणायप्लवङ्गम ॥ दशजन्मार्जितंपुण्यं तत्क्षणादेवन

कांडों को जाननेवाला व वेदों का पारगामी वेदशर्मा नामक विद्वान् मैं ब्राह्मण हुआ हूं उस जन्म में मैंने ब्राह्मण के लिये प्रतिज्ञा करके धनको नहीं ॥ ६। ७ ॥ दिया हे कपे ! तब उसीकारण मैं सियार हुआ और उसीकारण ऐसे-निन्दित भक्ष्य को मैं खाता हूं ॥ ८ ॥ हे वानर ! जो दुष्टात्मा पुरुष कहकर नहीं देते हैं वे बड़ी निन्दित सियार की योनि को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥ जो मनुष्य थोड़ा या बहुत कहकर नहीं देता है उसके सब मनोरथ नष्ट होजाते हैं जैसे कि नपुंसकके पुत्र की उत्पत्ति नहीं

होती है ॥ १० ॥ हे प्लवंगम ! ब्राह्मण के लिये कहकर न देने में उसीक्षण दश जन्मों में इकट्ठा किया हुआ पुण्य नष्ट होजाता है ॥ ११ ॥ और कहकर न देने से जो पाप होता है वह पातक सौ अश्वमेधों से भी नहीं शुद्ध होता है ॥ १२ ॥ मैं यह नहीं जानता हूं कि यह पाप कब नष्ट होगा इसलिये विद्वान् को सदैव कही हुई द्रव्य देना चाहिये ॥ १३ ॥ कहकर न देने से निश्चय कर सियार होता है इसलिये चतुर विद्वान् को कही हुई द्रव्य को देना चाहिये ॥ १४ ॥ यह कहकर वह सियार फिर उस वानर से बोला कि तुमने क्या पाप किया है कि जिससे तुम वानरयोनि को प्राप्त हुए हो ॥ १५ ॥ व हे वानर ! अपराध रहित वनचारी पक्षियों को

श्यति ॥ ११ ॥ प्रतिश्रुत्याप्रदानेन यत्पापमुपजायते ॥ नाश्वमेधशतेनापि तत्पापंपरिशुध्यति ॥ १२ ॥ नजानेहमिदंपापं कदानष्टंभवेदिति ॥ तस्मात्प्रतिश्रुतंद्रव्यं दातव्यंविदुषासदा ॥ १३ ॥ प्रतिश्रुत्याप्रदानेन सृगालोभवतिध्रुवम् ॥ तस्मात्प्राज्ञेनविदुषा दातव्यंहिप्रतिश्रुतम् ॥ १४ ॥ इत्युक्त्वाससृगालस्तं वानरंपुनरब्रवीत् ॥ त्वयाहिकिंकृतंपापं येनवानरतामगात् ॥ १५ ॥ अनागसोवनचरान्पक्षिणोहिंसिवानर ॥ तत्पातकंवदस्वाद्य वानरत्वप्रदम्मम ॥ १६ ॥ इत्युक्तःससृगालेन सृगालंवानरोब्रवीत् ॥ वानर उवाच ॥ पुराजन्मन्यहंविप्रो वेदनाथइतिस्मृतः ॥ १७ ॥ विश्वनाथो ममपिता ममाम्बाकमलालया ॥ सृगालसख्यमभवदावयोःप्राग्भवेपिहि ॥ १८ ॥ त्वंनजानासितत्सर्वं वेद्म्यहंपुण्यगौरवात् ॥ तपसाराध्यगिरिशं तत्प्रसादात्पुरामम ॥ १९ ॥ अतीतभाविविज्ञानमस्तिजन्मान्तरेपिच ॥ गोमायो तद्भवेशाकं ब्राह्मणस्यहृतंमया ॥ २० ॥ तत्पापाद्वानरोभूत्वा नरकानुभवात्ततः ॥ नाहर्तव्यंविप्रधनं हरणान्नरकंभ

मारते हो इससमय वानरता को देनेवाले उस पाप को मुझ से कहो ॥ १६ ॥ सियार से ऐसा कहे हुए उस वानर ने सियार से कहा वानर बोला कि पहले जन्म में मैं वेदनाथ ऐसा कहा हुआ ब्राह्मण था ॥ १७ ॥ और मेरा पिता विश्वनाथ व मेरी माता कमलालया थी व हे सृगाल ! पहले जन्म में भी हमारी तुम्हारी दोनों की मित्रता हुई है ॥ १८ ॥ उस सबको तुम नहीं जानते हो परन्तु पुण्य के गौरव से मैं जानता हूं पुरातनसमय तपस्या से शिवजी को आराधन कर उनकी प्रसन्नता से मुझ को ॥ १९ ॥ दूसरे जन्म में भी भूत व भविष्य का ज्ञान है हे गोमायो ! उस जन्म में मैंने ब्राह्मण का शाक हरलिया था ॥ २० ॥ उस पाप से नरक के भोगने से मैं वानर

होकर स्थित हूं इसलिये ब्राह्मण का धन न हरना चाहिये क्योंकि हरने से नरक होता है ॥ २१ ॥ और इसके बाद भी वानरता होगी इसमें सन्देह नहीं है उस कारण विद्वान् को सदैव ब्राह्मण का धन न हरना चाहिये ॥ २२ ॥ क्योंकि ब्राह्मण का धन हरने से अधिक पाप नहीं है विष पीनेवाले को मारता है और ब्राह्मण का धन कुलसमेत जलादेता है ॥ २३ ॥ ब्राह्मण का धन हरनेसे पापी पुरुष कुंभीपाक नरकों में पचता है पश्चात् शेष नरक से वानरीयोनि को भोगता है ॥ २४ ॥ इस कारण ब्राह्मण का धन न हरना चाहिये और उनमें सदा क्षमा करना चाहिये बालक, दरिद्री, कृपण व वेदशास्त्रादिकों से रहित ॥ २५ ॥ ब्राह्मणों का अपमान न करना

वेत् ॥ २१ ॥ अनन्तरंवानरत्वं भविष्यतिनसंशयः ॥ तस्मान्नब्राह्मणस्वन्तु हर्तव्यंविदुषासदा ॥ २२ ॥ ब्रह्मस्वहरणात्पापमधिकंनैवविद्यते ॥ पीतवन्तंविषंहन्ति ब्रह्मस्वंसकुलंदहेत् ॥ २३ ॥ ब्रह्मस्वहरणात्पापी कुम्भीपाकेषुपच्यते ॥ पश्चान्नरकशेषेण वानरींयोनिमश्नुते ॥ २४ ॥ विप्रद्रव्यंनहर्तव्यं क्षन्तव्यन्तेष्वतःसदा ॥ बालादरिद्राःकृपणा वेदशास्त्रादिवर्जिताः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणानावमन्तव्याः क्रुद्धाश्चेदनलोपमाः ॥ अतीतानागतंज्ञानं सृगालाखिलमस्ति मे ॥ २६ ॥ ज्ञानमस्तिनमेत्वेकमेतत्पापविशोधने ॥ जातिस्मरोपिहिभवान्भाविकार्यंनबुध्यते ॥ २७ ॥ अतीतेष्वपि किञ्चिज्ज्ञः प्रतिबन्धवशाद्भवान् ॥ अतोभवान्नाजानीते भाव्यतीतंतथाखिलम् ॥ २८ ॥ कियत्कालंसृगालातो भुजो व्यसनमीदृशम् ॥ आवयोरस्यपापस्य कोवामोचयिताभवेत् ॥ २९ ॥ एवंप्रब्रुवतोस्तत्र प्लवङ्गमसृगालयोः ॥ यदृच्छयादैवयोगात्पूर्वपुण्यवशाद्द्विजाः ॥ ३० ॥ आययौसमहातेजाः सिन्धुद्वीपाह्वयोमुनिः ॥ भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गस्त्रिपु

चाहिये क्योंकि यदि वे क्रोधित होते हैं तो अग्नि के समान होते हैं हे सृगाल ! मुझको भूत व भविष्य सब ज्ञान है ॥ २६ ॥ और इस पाप के शोधन में मुझको केवल ज्ञान नहीं है व जाति को स्मरण करनेवाले भी आप भविष्यकार्य को नहीं जानतेहो ॥ २७ ॥ व प्रतिबंध के वश से आप भूतकार्यों में भी कुछ जानतेहो इस कारण आप भूत व भविष्य सब नहीं जानते हो ॥ २८ ॥ इस कारण हे सृगाल ! कुछ समयतक ऐसी विपत्ति को भोगतेहुए हम तुम दोनों के इस पापको कौन छुड़ानेवाला होगा ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार वहां वानर व सियार के कहतेहुए दैवयोग व पूर्वपुण्य के वशसे अपनी इच्छा से ॥ ३० ॥ वे बड़े तेजवान् सिंधुद्वीप नामक मुनि आये जो

कि सब अंगों में भस्म को लगाये व त्रिपुंड्र से मस्तक को चिह्नित किये थे ॥ ३१ ॥ और शिवजीके नामों को कहतेहुए वे मुनि रुद्राक्ष की मालाका आभूषण पहने थे सियार व वानर सिंधुद्वीप नामक मुनि को देखकर ॥ ३२ ॥ प्रणामकर उस समय प्रसन्नहोकर यह पूंछा सियार व वानर बोले कि हे सर्वधर्मज्ञ, भगवन्, महामुने, सिंधुद्वीप! ॥ ३३ ॥ दयाकी दृष्टि से हम दोनोंकी रक्षा कीजिये व प्रसन्नतासे बार २ देखिये जिससे हम दोनों की वानरता व सृगालता नाश होजावै ॥ ३४ ॥ उस उपाय को तुम इससमय कहो क्योंकि तुम पुण्यवानों में श्रेष्ठहो अनाथ, कृपण, मूर्ख, बालक व रोग से विकल मनुष्यों की ॥ ३५ ॥ अपेक्षारहित साधुलोग नित्यही दया

एड्राङ्कितमस्तकः ॥ ३१ ॥ रुद्राक्षमालाभरणः शिवनामानिकीर्तयन् ॥ सृगालवानरौदृष्ट्वा सिन्धुद्वीपाभिधंमुनिम् ॥ ३२ ॥ प्रणम्यमुदितौभूत्वा पप्रच्छतुरिदन्तदा ॥ सृगालवानरावूचतुः ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ सिन्धुद्वीपमहामुने ॥ ३३ ॥ आवांरक्षकृपादृष्ट्या विलोकयमुहुर्मुदा ॥ कपित्वञ्चसृगालत्वमावयोर्येननश्यति ॥ ३४ ॥ तमुपायंवदस्वाद्य त्वंहिपुण्यवतांवरः ॥ अनाथान्कृपणानज्ञान्बालान्रोगातुराञ्जनान् ॥ ३५ ॥ रक्षन्तिसाधवोनित्यं कृपयानिरपेक्षकाः ॥ ताभ्यामितीरितःप्राज्ञः सिन्धुद्वीपोमहामुनिः ॥ ३६ ॥ प्राहतौकपिगोमायू ध्यात्वातुमनसाचिरम् ॥ सिन्धुद्वीप उवाच ॥ जानाम्यहंयुवांसम्यग् हेसृगालप्लवङ्गमौ ॥ ३७ ॥ सृगालप्राग्भवेत्वंवै वेदशर्माभिधोद्विजः ॥ ब्राह्मणायप्रतिश्रुत्य धान्यानामाढकन्त्वया ॥ ३८ ॥ नदत्तन्तेनपापेन सार्गालींयोनिमाप्तवान् ॥ त्वञ्चवानरपूर्वस्मिन्वेदनाथाभिधोद्विजः ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणस्यगृहाच्छाकं हृतंचौर्यात्त्वयाततः ॥ प्राप्तोसिवानरींयोनिं सर्वपक्षिभयंकरीम् ॥ ४० ॥ युवयोः

से रक्षा करते हैं उन दोनों से ऐसा कहेहुए विद्वान् सिंधुद्वीप महामुनि ने ॥ ३६ ॥ मनसे बहुतदेरतक विचारकर उस वानर व सियार से कहा सिंधुद्वीप बोले कि हे सृगाल, वानर! मैं तुम दोनोंको भलीभांति जानताहूं ॥ ३७ ॥ हे सृगाल! तुम पहले जन्म में वेदशर्मा नामक ब्राह्मण थे और तुमने ब्राह्मण के लिये आढक प्रमाणभर अन्न कहकर ॥ ३८ ॥ नहीं दिया उस पापसे सियारकी योनि को पाया व हे वानर! तुम पूर्वजन्म में वेदनाथनामक ब्राह्मण थे ॥ ३९ ॥ और तुमने चोरीसे ब्राह्मण के

घरसे शाकको हरलिया था उसकारण तुम सब पक्षियो को भय करनेवाली वानरी योनिको प्राप्त हुए हो ॥ ४० ॥ तुम दोनों के पापकी शांति के लिये मैं उपाय को कहताहूं कि तुम दोनों शीघ्रही दक्षिण समुद्र में रामजीकी धनुष्कोटि में ॥ ४१ ॥ जाकर इसमें स्नानकरो तो उस पापसे छूटोगे पुरातन समय किरातिनी के संसर्ग से सुमति ब्राह्मण ने मदिरा को ॥ ४२ ॥ पीलिया और वह धनुष्कोटि में नहाकर पापसे छुटगया सृगाल व वानर बोले कि यह सुमति किसका पुत्र है व उसने कैसे मदिरा पिया था ॥ ४३ ॥ व हे महामते, सिंधुद्वीप ! वह किसप्रकार किरातिनी में आसक्त हुआ था इस समय तुम दया से इसको हम दोनों से विस्तार से कहो ॥ ४४ ॥ सिंधु-

पापशान्त्यर्थमुपायंप्रवदाम्यहम् ॥ दक्षिणाम्बुनिधौरामधनुष्कोटौयुवामरम् ॥ ४१ ॥ गत्वात्रकुरुतंस्नानं तेनपापा द्विमोक्ष्यथः ॥ पुराकिरातिसंसर्गात्सुमतिर्ब्राह्मणःसुराम् ॥ ४२ ॥ पीतवान्सधनुष्कोटौ स्नात्वापापाद्विमोचितः ॥ सृगालवानरावूचतुः ॥ सुमतिःकस्यपुत्रोसौ कथञ्चससुराम्पपौ ॥ ४३ ॥ कथंकिरात्यांसक्तोभूत्सिन्धुद्वीपमहाम ते ॥ आवयोर्विस्तरादेतद्वदत्वंकृपयाधुना ॥ ४४ ॥ सिन्धुद्वीप उवाच ॥ महराष्ट्राभिधेदेशे ब्राह्मणःकश्चिदास्तिकः ॥ यज्ञदेवइतिख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ४५ ॥ दयालुरातिथेयश्च शिवनारायणार्चकः ॥ सुमतिर्नामपुत्रोभूद्यज्ञदेवस्यत स्यवै ॥ ४६ ॥ पितरौसपरित्यज्य भार्य्यामपिपतिव्रताम् ॥ प्रययावुत्कलेदेशे विटगोष्ठिपरायणः ॥ ४७ ॥ काचित्कि रातीतद्देशे वसन्तीयुवमोहिनी ॥ यूनांसमस्तद्रव्याणि प्रलोभ्यजगृहेचिरम् ॥ ४८ ॥ तस्यागृहंसप्रययौ सुमतिर्ब्राह्मणा धमः ॥ सुमतिंसानजग्राह किरातिर्निर्धनंद्विजम् ॥ ४९ ॥ तयात्यक्तोथसुमतिस्तत्संयोगैकतत्परः ॥ इतस्ततश्चोरयित्वा

द्वीप बोले कि महाराष्ट्र नामक देश में वेदों व वेदांगों का पारगामी कोई यज्ञदेव ऐसा प्रसिद्ध आस्तिक ब्राह्मण था ॥ ४५ ॥ जो कि दयावान् व अतिथिपूजक तथा शैव व विष्णुका पूजक था उस यज्ञदेव के सुमति नामक पुत्र हुआ ॥ ४६ ॥ धूर्तों की सभा में परायण वह माता, पिता व पतिव्रता स्त्री को भी छोड़कर उत्कलदेश में गया ॥ ४७ ॥ युवालोगों को मोहनेवाली कोई किराती (म्लेच्छ की स्त्री) उस देश में बसती थी जिसने कि युवा पुरुषों को बहुतदिनोंतक लुभाकर सब द्रव्यों को ले लेया था ॥ ४८ ॥ वह सुमति नामक नीच ब्राह्मण उसके घरको गया और उस किराती ने निर्धन सुमति ब्राह्मण को नहीं ग्रहण किया ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर उससे

छोड़ा हुआ वह उसी के संयोग में केवल तत्पर सुमति सदैव इधर उधर बहुत द्रव्यों को चुराकर ॥ ५० ॥ देकर उसके साथ बहुत दिन तक रमता भया और उसने उसके घर में भी भोजन किया और उसके साथ उसने एकही प्याले से मदिरा को पिया ॥ ५१ ॥ इस प्रकार उसके साथ बहुत समय तक रमते हुए उस विषयातुर सुमति ने माता, पिता व अपनी स्त्री को नहीं स्मरण किया ॥ ५२ ॥ किसी समय किरातों के साथ वह चोरी करने के लिये गया और द्रव्य चुराने के लिये वे किरात लाटों के देश को गये ॥ ५३ ॥ और तलवार को हाथ में लिये व किरातों का वेष धारण किये हुए वह साहसी सुमति भी किसी ब्राह्मण के घर में द्रव्य को चुराने के लिये

बहुद्रव्याणिसन्ततम् ॥ ५० ॥ दत्त्वातयाचिरंरेमे तद्गृहेबुभुजेचसः ॥ एकेनचषकेनासौ तयासहसुरांपपौ ॥ ५१ ॥ एवंसबहुकालंवै रममाणस्तयासह ॥ पितरौनिजपत्नींच नास्मरद्विषयातुरः ॥ ५२ ॥ सकदाचित्किरातैस्तु चौर्यंकर्तुंययौसह ॥ द्रव्यंहर्तुंकिरातास्ते लाटानांविषयंययुः ॥ ५३ ॥ विप्रस्यकस्यचिद्गेहे सोपिकैरातवेषधृक् ॥ ययौचोरयितुंद्रव्यं साहसीखड्गहस्तवान् ॥ ५४ ॥ तद्गृहस्वामिनंविप्रं हत्वाखड्गेनसाहसी ॥ समादायबहुद्रव्यं किरातिभवनंययौ ॥ ५५ ॥ तंयान्तमनुयातिस्म ब्रह्महत्याभयंकरी ॥ नीलवस्त्रधराभीमा भृशंरक्तशिरोरुहा ॥ ५६ ॥ गर्जतीसाट्टहासं सा कम्पयन्तीचरोदसी ॥ अनुद्रुतस्तयासोयं बभ्रामजगतीतले ॥ ५७ ॥ एवंभ्रमन्भुवंसर्वां कदाचित्सुमतिःस्वयम् ॥ स्वग्रामंप्रययौभीत्या हेसृगालप्लवङ्गमौ ॥ ५८ ॥ अनुद्रुतस्तयाभीतः प्रययौस्वगृहम्प्रति ॥ ब्रह्महत्याप्यनुद्रुत्य तेन साकंगृहंययौ ॥ ५९ ॥ पितरंरक्षरक्षेति सुमतिःशरणंययौ ॥ माभैषीरितितंप्रोच्य पितारक्षितुमुद्यतः ॥ ६० ॥ तदानीं

गया ॥ ५४ ॥ और वह साहसी सुमति उस घरके स्वामी ब्राह्मण को तलवारसे मारकर व बहुत द्रव्य को लेकर किराती के घर को गया ॥ ५५ ॥ और जाते हुए उस सुमति के पीछे नीलवस्त्रों को धारण किये तथा भयानक व बहुतही लालबालोंवाली भयंकरी ब्रह्महत्या चली ॥ ५६ ॥ वह अट्टहास समेत गर्जती व भूमि तथा आकाश को कँपा रहीथी उससे भगाया जाता हुआ वह पृथ्वी में घूमता भया ॥ ५७ ॥ हे सृगाल, वानर ! इसप्रकार सब पृथ्वी में घूमता हुआ सुमति किसीसमय आपही डरसे अपने गांव को चलागया ॥ ५८ ॥ व उससे भगाया जाता हुआ वह डराहुआ सुमति अपने घरको गया और ब्रह्महत्या भी दौड़कर उसके साथ घरको चलीगई ॥ ५९ ॥

और रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये यह कहकर सुमति पिता के शरण में गया व मत डरो यह उससे कहकर पिता रक्षा करने के लिये उद्यत हुआ ॥ ६० ॥ उससमय इस ब्रह्महत्या ने उसके पिता से कहा ब्रह्महत्या बोली कि हे द्विजोत्तम, यज्ञदेव ! तुम इसको मत ग्रहण करो ॥ ६१ ॥ क्योंकि यह मदिरा पीनेवाला व चोर, ब्रह्मघाती और बड़ा पापी है व माता का द्रोही व पिता का वैरी तथा स्त्री को छोड़नेवाला व पापकारी है ॥ ६२ ॥ और किराती के संग से दुष्ट है हे द्विज ! मैं इसको नहीं छोड़ूंगी व हे विप्रजी ! यदि इस बड़े पापी पुत्र को तुम ग्रहण करोगे ॥ ६३ ॥ तो हे द्विज ! तुम्हारी स्त्री व इसकी स्त्री और तुमको व इस पुत्र को और वंश को मैं खाजाऊंगी इस कारण

ब्रह्महत्येयं तत्तातंप्रत्यभाषत ॥ ब्रह्महत्योवाच ॥ मैनंत्वंप्रतिगृह्णीष्व यज्ञदेवद्विजोत्तम ॥ ६१ ॥ असौसुरापीस्तेयी च ब्रह्महाचातिपातकी ॥ मातृद्रोहीपितृद्रोही भार्य्यात्यागीचपापकृत् ॥ ६२ ॥ किरातीसङ्गदुष्टश्च नैनंमुञ्चाम्यहंद्विज ॥ गृह्णासिचेदिमंविप्र महापातकिनंसुतम् ॥ ६३ ॥ त्वद्भार्य्यामस्यभार्य्याञ्च त्वांचपुत्रमिमंद्विज ॥ भक्षयिष्यामिवंशंच तस्मान्मुञ्चसुतंत्विमम् ॥ ६४ ॥ इमन्त्यजसिचेत्पुत्रं युष्मान्मोक्ष्यामिसाम्प्रतम् ॥ नैकस्यार्थेकुलंहन्तुमर्हसित्वं महामते ॥ ६५ ॥ इत्युक्तःसतयातत्र यज्ञदेवोब्रवीच्चताम् ॥ यज्ञदेव उवाच ॥ बाधतेमांसुतस्नेहः कथमेनंपरित्यजे ॥ ६६ ॥ ब्रह्महत्यातदाकर्ण्य द्विजोक्तंतमभाषत ॥ ब्रह्महत्योवाच ॥ अयंहिपतितोभूत्ते वर्णाश्रमबहिष्कृतः ॥ ६७ ॥ पुत्रेऽस्मिन्मा कुरुस्नेहं निन्दितंतस्यदर्शनम् ॥ इत्युक्त्वाब्रह्महत्यासा यज्ञदेवस्यपश्यतः ॥ ६८ ॥ तत्तेनप्रजहारास्य पुत्रंसुमतिनाम

तुम इस पुत्र को छोड़ देवो ॥ ६४ ॥ हे महामते ! यदि तुम इस पुत्र को छोड़दोगे तो मैं इस समय तुमलोगों को छोड़दूंगी और एक के लिये तुम वंश को नाश करने के लिये योग्य नहीं हो ॥ ६५ ॥ वहां उससे कहेहुए उस यज्ञदेव ने उससे कहा यज्ञदेव बोले कि पुत्र का स्नेह मुझको बाधा करता है मैं इसको कैसे छोड़देऊं ॥ ६६ ॥ ब्राह्मण से कहेहुए उस वचन को सुनकर ब्रह्महत्या ने उससे कहा ब्रह्महत्या बोली कि वर्ण व आश्रम से अलग किया हुआ यह तुम्हारा पुत्र पतित होगया है ॥ ६७ ॥ तुम इस पुत्र में स्नेह मतकरो क्योंकि उसका दर्शन निन्दित है यह कहकर उस ब्रह्महत्या ने यज्ञदेव के देखते हुए ॥ ६८ ॥ इसके सुमतिनामक पुत्र को चपोटे से

मारा और हे तात हे तात ! ऐसा बार २ पिता से कहता हुआ वह रोनेलगा ॥ ६९ ॥ तब सुमति का पिता, माता व स्त्री भी रोनेलगी इसी अवसर में शिवजी के अंश से पैदा हुए दुर्वासा योगी आनन्द से वहां आगये इसके अनन्तर हे सृगाल, वानर ! यज्ञदेव ने उन शिवावतारवाले मुनिको देखकर ॥ ७० । ७१ ॥ प्रणाम करके स्तुति कर पुत्र के कारण शरण को मांगा कि हे दुर्वासाजी ! साक्षात् शिवजी के अंश से पैदाहुए तुम महायोगी हो ॥ ७२ ॥ और तुम्हारा दर्शन बिन पुण्यवाले पुरुषों को कभी न होगा मेरा पुत्र ब्रह्मघाती व मदिरा पीनेवाला और चोर हुआ है ॥ ७३ ॥ व इसको मारने के लिये ब्रह्महत्या वर्तमान है जिसप्रकार मेरा यह पुत्र महापाप से

कम् ॥ रुरोदताततातेति पितरंप्रब्रुवन्मुहुः ॥ ६९ ॥ रुरुदुर्जनकोमाता भार्यापिसुमतेस्तदा ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र दुर्वासा शंकरांशजः ॥ ७० ॥ दिष्ट्यासमाययौयोगी हेसृगालप्लवङ्गमौ ॥ यज्ञदेवोथतंदृष्ट्वा मुनिंरुद्रावतारकम् ॥ ७१ ॥ स्तुत्वा प्रणम्यशरणं ययाचेपुत्रकारणात् ॥ दुर्वासस्त्वंमहायोगी साक्षाद्वैशंकरांशजः ॥ ७२ ॥ त्वद्दर्शनमपुण्यानां भवितानकदाचन ॥ ब्रह्महाचसुरापीच स्तेयीचाभूत्सुतोमम ॥ ७३ ॥ एनंप्रहर्तुमायाता ब्रह्महत्याविवर्तते ॥ भूयाद्यथामेपुत्रोयं महापातकमोचितः ॥ ७४ ॥ घोराचब्रह्महत्येयं यथाशीघ्रंलयंव्रजेत् ॥ तमुपायंवदस्वाद्यममपुत्रेदयांकुरु ॥ ७५ ॥ अयमेवहिपुत्रोमे नान्योस्तितनयोमुने ॥ अस्मिन्मृतेतुवंशोमे समुच्छिद्येत्समूलतः ॥ ७६ ॥ ततःपितृभ्यःपिण्डानां दातापिनभवेद्ध्रुवम् ॥ अतःकृपांकुरुष्वत्वमस्मासुभगवन्मुने ॥ ७७ ॥ इत्युक्तःसतदोवाच दुर्वासाःशंकरांशजः ॥ ध्यात्वातुसुचिरंकालं यज्ञदेवंद्विजोत्तमम् ॥ ७८ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ यज्ञदेवकृतंपापमतिक्रूरंसुतेनते ॥ नास्यपापस्यशान्तिः स्यात्प्रा

मुक्त होवै ॥ ७४ ॥ और जिसप्रकार यह भयंकरा ब्रह्महत्या शीघ्रही नाश को प्राप्तहोवै उस उपाय को इससमय मुझसे कहो और मेरे पुत्र के ऊपर दया करो ॥ ७५ ॥ हे मुने ! मेरे यही पुत्र है और पुत्र नहीं है इसके मरने पर मेरा वंश जड़ से नाश होजावैगा ॥ ७६ ॥ तदनन्तर हे भगवन्, मुने ! पितरों के लिये कोई पिंडों का देनेवाला निश्चयकर न होगा इसकारण तुम हमारे ऊपर दयाकरो ॥ ७७ ॥ उससमय ऐसा कहेहुए शिवांश से उत्पन्न उन दुर्वासाजी ने बहुत समय तक ध्यानकर यज्ञदेव द्विजोत्तम से कहा ॥ ७८ ॥ दुर्वासाजी बोले कि हे यज्ञदेव ! तुम्हारे पुत्र ने बहुत कठिन पाप किया है इस पापकी शान्ति दश हज़ार प्राय-

शिवत्तों से भी नहीं होसकी है ॥ ७९ ॥ इसपर भी हे द्विज ! मैं तुम्हारे पुत्र के इस पाप की शान्ति के लिये प्रायश्चित्त कहता हूं सावधान मनवाले होकर सुनिये ॥८०॥ कि दक्षिण समुद्र में श्रीरामजी की धनुष्कोटि में यदि तुम्हारा यह पुत्र स्नान करै तो क्षणभर में पाप से छूट जावैगा ॥ ८१ ॥ हे द्विजोत्तम ! जिसमें स्नान करने से दुर्विनीत नामक ब्राह्मण गुरुस्त्रीगमन के पातकों से उसीक्षण छूटगया है ॥ ८२ ॥ वही यह आपही श्रीरामजी के धनुष की कोटि स्नानही से तुम्हारे पुत्र के पापसमूह को नाशकरैगी ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांधनुष्कोटिप्रशंसायां सृगालवानरसंवादे सुमतिमहापातकविमोक्षोपायकथनं

यश्चित्तायुतैरपि ॥ ७९ ॥ अथापितेसुतस्याहमस्यपापस्यशान्तये ॥ प्रायश्चित्तंवदिष्यामि शृणुनान्यमनाद्विज ॥८०॥ श्रीरामधनुषःकोटौ दक्षिणेसलिलार्णवे ॥ स्नातिचेत्तवपुत्रोयं पातकान्मोक्ष्यतेक्षणात् ॥ ८१ ॥ दुर्विनीताभिधोविप्रो यत्रस्नानाद्द्विजोत्तम ॥ गुरुस्त्रीगमपापेभ्यस्तत्क्षणादेवमोचितः ॥ ८२ ॥ सैषाश्रीधनुषःकोटी राघवस्यस्वयंहरेः ॥ स्नानमात्रेणपापौघं नाशयेत्त्वत्सुतस्यसा ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्ये धनुष्कोटिप्रशंसायांसृगालवानरसंवादेसुमतिमहापातकविमोक्षोपायकथनन्नामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥ * ॥

यज्ञदेव उवाच ॥ दुर्वासर्षेमहाप्राज्ञ परावरविचक्षण ॥ दुर्विनीताभिधःकोयं योसौगुर्वङ्गनामगात् ॥ १ ॥ तस्यपुत्रोधनुष्कोटौ स्नानेनसकथंद्विजः ॥ तत्क्षणान्मुमुचेपापाद्गुरुस्त्रीगमसंभवात् ॥ २ ॥ एतन्मेश्रद्दधानस्य विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥ दुर्वासा उवाच ॥ पाण्ड्यदेशेपुराकश्चिद् ब्राह्मणोभूद्बहुश्रुतः ॥ ३ ॥ इध्मबाहोभिधोनाम्ना तस्यभार्यारुचिस्तथा ॥

नामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । धनुष्कोटि में न्हाय जिमि वानर और सृगाल । भये मुक्त पैंतीस महँ सोई चरित रसाल ॥ यज्ञदेव बोले कि हे परावरविचक्षण, ऋषे, दुर्वासाजी ! यह दुर्विनीत नामक कौन है जिसने कि गुरु की स्त्री से भोग किया है ॥ १ ॥ और उसका पुत्र वह ब्राह्मण धनुष्कोटि में स्नान से किसप्रकार उसीक्षण गुरुस्त्रीगमन से उपजे हुए पाप से छूटा है ॥ २ ॥ इसको श्रद्धावान् मुझसे विस्तार से कहने के योग्य हो दुर्वासाजी बोले कि पुरातन समय पांड्यदेश में कोई बहुश्रुत ब्राह्मण हुआ है ॥ ३ ॥

नाम से वह डध्मवाह संज्ञक था उसकी स्त्री रुचि थी उसके दुर्विनीत नामक ब्राह्मण पुत्र हुआ ॥ ४ ॥ और इस पुत्र का पिता बाल्यावस्था में मरगया और वह दुर्विनीत उस पिता का प्रेतकार्य करके ॥ ५ ॥ कुछ समयतक विधवा माता समेत घरमें बसता भया तदनन्तर बारह वर्षतक न वरसने से दुर्भिक्ष हुआ ॥ ६ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तम ! माता समेत वह विदेश को गया और धान्यराशियों से सुभिक्ष गोकर्णक्षेत्र को प्राप्त होकर वह ॥ ७ ॥ विधवा माता समेत कुछ समयतक बसता भया तदनन्तर बहुत तिथियोंवाला समय बीतने पर दुर्विनीत ॥ ८ ॥ पहले के कुकर्म से मूढ़बुद्धि हुआ और कामदेव के बाण से वेधित अंग व स्नेह से विकारयुक्त मनवाले ॥ ९ ॥

बभूवतस्यतनयो दुर्विनीताभिधोद्विजः ॥ ४ ॥ बाल्येवयसिपुत्रस्य ममारजनकोस्यवै ॥ दुर्विनीतःपितुस्तस्य सकृत्वा चौर्ध्वदेहिकम् ॥ ५ ॥ कश्चित्कालंगृहेवात्सीन्मात्राविधवयासह ॥ ततोदुर्भिक्षमभवद्द्वादशाब्दमवर्षणात् ॥ ६ ॥ ततोदेशान्तरमगान्मात्रासाकंद्विजोत्तम ॥ गोकर्णंससमासाद्य सुभिक्षंधान्यसञ्चयैः ॥ ७ ॥ उवाससुचिरंकालं मात्राविधवया सह ॥ ततोबहुतिथेकाले दुर्विनीतोगतेसति ॥ ८ ॥ पूर्वदुष्कर्मपाकेन मूढबुद्धिरहोवत ॥ अनङ्गशरविद्धाङ्गो रागाद्विकृतमानसः ॥ ९ ॥ मामेतिवादिनीमम्बां बलादाकृष्यपातकी ॥ बुभुजेकाममोहात्मा मैथुनेनाद्विजोत्तम ॥ १० ॥ सखिन्नो दुर्विनीतोयं रेतःसेकादनन्तरम् ॥ मनसाचिन्तयन्पापं रुरोदभृशदुःखितः ॥ ११ ॥ अहोतिपापकृदहं महापातकिनां वरः ॥ अगमंजननींयस्मात्कामबाणवशानुगः ॥ १२ ॥ इतिसञ्चिन्त्यमनसा सतत्रमुनिसन्निधौ ॥ जुगुप्समानश्चात्मानं तान्मुनीनिदमब्रवीत् ॥ १३ ॥ गुरुस्त्रीगमपापस्य प्रायश्चित्तंममद्विजाः ॥ वदध्वंशास्त्रतत्त्वज्ञाः कृपयामयिकेवलम् ॥ १४ ॥

तथा कामदेव से मोहित चित्तवाले उस पातकी ने मत ऐसा करो मत ऐसा करो इसप्रकार कहतीहुई माता को बलसे खींचकर मैथुन से भोग किया ॥ १० ॥ और वीर्यसिंचन के बाद वह उदासीन हुआ व मन से पाप को विचारते हुए इस बहुतही दुःखित दुर्विनीत ने रोदन किया ॥ ११ ॥ कि अहो बड़ा पापकारी मैं महापातकियों में श्रेष्ठ हूं क्योंकि कामबाण के वश व अनुगामी मैंने माता से भोग किया ॥ १२ ॥ वहां मनसे ऐसा विचार कर मुनियों के समीप अपना को निन्दता हुआ उन मुनियों से यह बोला ॥ १३ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! शास्त्र के तत्त्व को जाननेवाले तुमलोग मेरे ऊपर केवल कृपा से गुरुस्त्रीगमन के प्रायश्चित्त को मुझसे कहिये ॥ १४ ॥

यदि मरण से प्रायश्चित्त होवै तो मैं निस्सन्देह मरजाऊं व इससमय आपलोग मुझसे जिस प्रायश्चित्त को कहो ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणो ! मरण या अन्य उस प्रायश्चित्त को मैं सत्यही करूंगा उसके उस वचन को सुनकर वहां कितेक मुनीश्वरों ने ॥ १६ ॥ यह निश्चय किया कि इसके साथ वार्तालाप दोष के लिये है और कितेक मुनियों ने बहुतही मौन को धारण किया ॥ १७ ॥ व बहुत द्विजोत्तमों ने इस वचन को कहा कि दुष्टात्मा व मातृगामी तुम महापापियों में श्रेष्ठ हो इससे जावो व चलेजावो ॥ १८ ॥ उनको मनाकर दयाशील व सर्वज्ञ तथा दयानिधान कृष्णद्वैपायन (व्यासजी) वहां दुर्विनीत से बोले ॥ १९ ॥ कि माघ में मकर राशि में सूर्य के स्थित होनेपर

मरणान्निष्कृतिःस्याच्चेन्मरिष्यामिनसंशयः ॥ भवद्भिरुच्यतेयत्तु प्रायश्चित्तंममाधुना ॥ १५ ॥ करिष्येतद्विजाः सत्यं मरणंवान्यदेववा ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य केचित्तत्रमुनीश्वराः ॥ १६ ॥ अनेनसाकंवार्तातु दोषायेतिविनिश्चिताः ॥ मौनित्वंभेजिरेकेचिन्मुनयःकेचिदाभृशम् ॥१७॥ दुष्टात्मामातृगामीत्वं महापातकिनांवरः ॥ गच्छगच्छेति बहुशोवाचमूचुर्द्विजोत्तमाः ॥ १८ ॥ तान्निवार्यकृपाशीलः सर्वज्ञःकरुणानिधिः ॥ कृष्णद्वैपायनस्तत्र दुर्विनीतमभाषत ॥१९॥ गच्छाशुरामसेतौत्वं धनुष्कोटौसहाम्बया ॥ मकरस्थेरवौमाघे मासमेकंनिरन्तरम् ॥ २० ॥ जितेन्द्रियोजितक्रोधः परद्रोहविवर्जितः ॥ एकमासंनिराहारः कुरुस्नानंसहाम्बया ॥ २१ ॥ पूतोभविष्यस्यद्धात्वं गुरुस्त्रीगमदोषतः ॥ यत्पातकंननश्येत सेतुस्नानेनतन्नहि ॥ २२ ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणेषु धनुष्कोटिप्रशंसनम् ॥ बहुधाभण्यते पञ्चमहापातकनाशनम् ॥ २३ ॥ तस्मात्त्वंत्वरयागच्छ धनुष्कोटिंसहाम्बया ॥ प्रमाणंकुरुमद्वाक्यं वेदवाक्यमिवद्विज ॥ २४ ॥

एक महीना निरन्तर माता समेत तुम रामसेतु पै शीघ्रही धनुष्कोटि को जावो ॥ २० ॥ व इन्द्रियों को जीते तथा क्रोध को जीते और पराये द्रोह से रहित तुम निराहार होकर माता समेत निरन्तर एक महीने तक स्नान करो ॥ २१ ॥ तो तुम साक्षात् गुरुस्त्रीगमन के दोष से पवित्र होगे और सेतुस्नान से जो पाप नष्ट न होवै वह पातक नहीं है ॥ २२ ॥ श्रुति, स्मृति व पुराणों में पांच महापातकों को नाशनेवाली धनुष्कोटि की प्रशंसा बहुत भांति से कही गई है ॥ २३ ॥ हे द्विज !

इसकारण तुम माता समेत शीघ्रही धनुष्कोटि को जावो और वेदवचन की नाईं मेरे वाक्य का प्रमाण करो ॥ २४ ॥ हे द्विजपुत्र ! श्रीरामजी के धनुष की कोटि में नहाये हुए पुरुष के करोड़ों महापातक लक्ष्य नहीं होते हैं मानो इसीकारण ॥ २५ ॥ मन्वादिक स्मृतियों से स्मृति में अन्य प्रायश्चित्त कहागया है इसकारण तुम महापातकों को नाशनेवाली धनुष्कोटि को जावो ॥ २६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! व्यासजी से ऐसा कहाहुआ दुर्विनीत व्यासजी को प्रणामकर माता समेत धनुष्कोटि को चला गया ॥ २७ ॥ और माता समेत निराहार व क्रोध को जीते तथा इन्द्रियों को जीतेहुए दुर्विनीत ने सूर्य के मकरराशि में स्थित होने पर महीने भर निरन्तर ॥२८॥ भक्ति

श्रीरामधनुषःकोटौ स्नातस्यद्विजपुत्रक ॥ महापातककोट्योपि नैवलक्ष्याइतीवहि ॥ २५ ॥ प्रायश्चित्तान्तरंप्रोक्तं मन्वादिस्मृतिभिःस्मृतौ ॥ तद्गच्छत्वंधनुष्कोटिं महापातकनाशिनीम् ॥ २६ ॥ इतीरितोथव्यासेन दुर्विनीतोद्विजोत्तमाः ॥ मात्रासाकंधनुष्कोटिं नत्वाव्यासंचनिर्ययौ ॥ २७ ॥ मकरस्थेरवौमाघे मासमात्रंनिरन्तरम् ॥ मात्रासहानिराहारो जितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ २८ ॥ श्रीरामधनुषःकोटौ सस्नौसंकल्पपूर्वकम् ॥ रामनाथंनमस्कुर्वंस्त्रिकालंभक्तिपूर्वकम् ॥ २९ ॥ मासान्तेपारणांकृत्वा मात्रासहविशुद्धधीः ॥ व्यासान्तिकंपुनःप्रायात्तस्मैवृत्तंनिवेदितुम् ॥ ३० ॥ सप्रणम्य पुनर्व्यासं दुर्विनीतोब्रवीद्वचः ॥ दुर्विनीत उवाच ॥ भगवन्करुणासिन्धो द्वैपायनमहत्तम ॥ ३१ ॥ भवतःकृपयारामधनुष्कोटौसहाम्बया ॥ माघमासेनिराहारो मासमात्रमतन्द्रितः ॥ ३२ ॥ अहंत्वकरवंस्नानं नमस्कुर्वन्महेश्वरम् ॥ इतःपरं मयाव्यास भगवन्भक्तवत्सल ॥ ३३ ॥ यत्कर्त्तव्यंमुनेतत्त्वं ममोपदिशतत्त्वतः ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा दुर्विनीतस्यवै

पूर्वक त्रिकाल रामनाथजी को नमस्कार करतेहुए श्रीरामजी की धनुष्कोटि में संकल्पपूर्वक स्नान किया ॥ २९ ॥ और महीने के अन्त में पारणकर माता समेत पवित्र बुद्धिवाला वह उनसे वृत्तान्त को कहने के लिये फिर व्यासजी के समीप आया ॥ ३० ॥ और उस दुर्विनीत ने व्यासजी को प्रणामकर फिर वचन कहा दुर्विनीत बोला कि हे महत्तम, भगवन्, दयासिंधो, द्वैपायनजी ! ॥ ३१ ॥ आप की कृपा से माघ महीने में निराहार व आलस्यरहित होकर माता समेत मैंने महीने भर शिवजी को प्रणाम करतेहुए स्नान किया व इसके उपरान्त हे भक्तवत्सल, व्यासजी ! मुझ से ॥ ३२ । ३३ ॥ जो करने योग्य हो हे मुने ! उसको तुम मुझसे यथार्थ कहो उस

दुर्विनीत के इस वचन को सुनकर विष्णुअंशवाले व्यासमुनि ने उस दुर्विनीत से कहा व्यासजी बोले कि हे दुर्विनीत ! इससमय माता के संग से उपजाहुआ तुम्हारा पाप जातारहा ॥ ३४ । ३५ ॥ और तुम्हारे संगम के कारण से उपजाहुआ माता का पाप नष्ट होगया इसमें सन्देह न करना चाहिये यह मैंने तुमसे सत्य कहा ॥ ३६ ॥ हे दुर्विनीत ! बांधव और सब स्वजन व अन्य जो ब्राह्मण हैं वे सब माता समेत तुमको ग्रहण करेंगे ॥ ३७ ॥ मेरे प्रसाद से तुम धनुष्कोटि में स्नान से शुद्ध होगये और स्त्री का संग्रह करके गृहस्थी का धर्म करो ॥ ३८ ॥ और तुम प्राणियों की हिंसाको छोड़ो व सनातनधर्म करो और भक्तियुक्त चित्त से सदैव स्वजनों को सेवनकरो ॥३९॥

मुनिः ॥ ३४ ॥ बभाषेदुर्विनीतंतं व्यासोनारायणांशकः ॥ व्यास उवाच ॥ दुर्विनीतगतंतेद्य पातकंमातृसङ्गजम् ॥ ३५ ॥ मातुश्चपातकंनष्टं त्वत्सङ्गतनिमित्तजम् ॥ संदेहोनात्रकर्तव्यः सत्यमुक्तंमयातव ॥ ३६ ॥ बान्धवाःस्वजनाःसर्वे तथा न्येब्राह्मणाश्चये ॥ सर्वेत्वांसंग्रहीष्यन्ति दुर्विनीताम्बयासह ॥ ३७ ॥ मत्प्रसादाद्धनुष्कोटौ विशुद्धस्त्वंनिमज्जनात् ॥ दारसंग्रहणंकृत्वा गार्हस्थ्यंधर्ममाचर ॥ ३८ ॥ त्यजत्वंप्राणिहिंसांच धर्मंभजसनातनम् ॥ सेवस्वसज्जनान्नित्यं भक्तियुक्तेनचेतसा ॥ ३९ ॥ सन्ध्योपासनमुख्यानि नित्यकर्माणिनत्यज ॥ निगृहीष्वेन्द्रियग्राममर्चयस्वहरंहरिम् ॥ ४० ॥ परापवादंमाब्रूया मासूयांभजकर्हिचित् ॥ अन्यस्याभ्युदयंदृष्ट्वा सन्तापंकुरुमावृथा ॥४१॥ मातृवत्परदारांश्च त्वन्नित्यमवलोकय ॥ अधीतवेदानखिलान्माविस्मरकदाचन ॥ ४२ ॥ अतिथीन्मावमन्यस्व श्राद्धंपितृदिनेकुरु ॥ पैशुन्यं मावदस्वत्वं स्वप्नेप्यन्यस्यकर्हिचित् ॥ ४३ ॥ इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणिसंततम् ॥ अवलोकयवेदान्तं वेदाङ्गानि

और संध्योपासन मुख्यवाले नित्यकर्मों को न छोड़ो व इन्द्रियगण को रोंको और शिव व विष्णुजी को पूजो ॥ ४० ॥ और पराई निन्दा को मत कहो व कभी ईर्षा को मत करो और दूसरे का ऐश्वर्य देखकर वृथा सन्ताप मत करो ॥ ४१ ॥ व पराईस्त्रियों को तुम सदैव माता की नाईं देखो और पढ़ेहुए सब वेदों को मत भूलो ॥ ४२ ॥ और अतिथियों का अनादर मतकरो घ पिता के क्षयाह में श्राद्ध करो और स्वप्न में भी कभी तुम दूसरे की चुगली को मत कहो ॥४३॥ और सदैव इतिहास, पुराण व धर्म-

शास्त्रों को देखो व वेदांत और फिर वेदांगों को देखो ॥ ४४ ॥ और लज्जा को छोड़कर विष्णु व शिवजीके नामों को कहो व जाबालोपनिषत् के मन्त्रों से त्रिपुंड्र को लगावो ॥ ४५ ॥ व सदैव रुद्राक्षों को धारणकरो और शौच व आचार में परायणहोवो और तुलसीदल व बिल्वपत्रों से विष्णु व शिव दोनों को ॥ ४६ ॥ हे दुर्विनीत ! एक समय या दो समयों में अथवा त्रिकाल पूजनकरो और चरणोदक से सींचेहुए व तुलसीदल से मिश्रित ॥ ४७ ॥ नैवेद्य के अन्न को तुम सदैव शिव व विष्णुजी के आगे भोजनकरो और तुम अन्न की शुद्धि के लिये वैश्वदेव नामक बलिको करो ॥ ४८ ॥ और घरमें आयेहुए ब्रह्मपरायण यतीश्वरों को अन्नों से तृप्तकरो और वृद्ध तथा अन्य

तथापुनः ॥ ४४ ॥ हरिशङ्करनामानि मुक्तलज्जोनुकीर्त्तय ॥ जाबालोपनिषन्मन्त्रैस्त्रिपुण्ड्रोद्धूलनंकुरु ॥ ४५ ॥ रुद्राक्षान्धारयसदा शौचाचारपरोभव ॥ तुलस्याबिल्वपत्रैश्च नारायणहराबुभौ ॥ ४६ ॥ एकंकालंद्विकालंवा त्रिकालंचार्चयस्वभोः ॥ तुलसीदलसंमिश्रं सिक्तंपादोदकेनच ॥ ४७ ॥ नैवेद्यान्नंसदाभुङ्क्ष्व शम्भुनारायणाग्रतः ॥ कुरुत्वंवैश्वदेवाख्यं बलिमन्नविशुद्धये ॥ ४८ ॥ यतीश्वरान्ब्रह्मनिष्ठांस्तर्पयान्नैर्गृहागतान् ॥ वृद्धानन्याननाथांश्च रोगिणोब्रह्मचारिणः ॥ ४९ ॥ कुरुत्वंमातृशुश्रूषामौपासनपरोभव ॥ पञ्चाक्षरंमहामन्त्रं प्रणवेनसमन्वितम् ॥ ५० ॥ तथैवाष्टाक्षरंमन्त्रमन्यमन्त्रानपिद्विज ॥ जपत्वंप्रयतोभूत्वा ध्यायन्मन्त्राधिदेवताः ॥ ५१ ॥ एवमन्यांस्तथाधर्मान् स्मृत्युक्तान्सर्वदाकुरु ॥ एवंकृतवतस्तेस्याद्देहान्तेमुक्तिरप्यलम् ॥ ५२ ॥ इत्युक्तोव्यासमुनिना दुर्विनीतःप्रणम्यतम् ॥ तदुक्तमखिलंकृत्वा देहान्तेमुक्तिमाप्तवान् ॥ ५३ ॥ तन्मातापिमृताकाले धनुष्कोटिनिमज्जनात् ॥ अवापपरमांमुक्तिमपुनर्भवदायिनी

अनाथों को व रोगियों और ब्रह्मचारियों को अन्न से तृप्तकरो ॥ ४९ ॥ और तुम माताकी सेवा करो व उपासनामें तत्पर होवो व ॐकार से संयुत पंचाक्षर महामंत्र ॥ ५० ॥ व हे द्विज ! अष्टाक्षर मंत्र तथा अन्य मंत्रों को भी मंत्र के अधिदेवताओं को ध्यानकरतेहुए तुम पवित्र होकर जप करो ॥ ५१ ॥ ऐसेही स्मृति में कहेहुए अन्यधर्मों को तुम सदैव करो क्योंकि ऐसा करतेहुए तुमको देहान्त में मुक्ति भी होगी ॥ ५२ ॥ व्यासमुनि से ऐसा कहेहुए दुर्विनीत ने उन व्यासजीको प्रणामकर और उनसे कहेहुए सब कर्म को करके देहान्त में मुक्ति को पाया ॥ ५३ ॥ और उसकी माता भी कालमें मरी और उसने धनुष्कोटि में नहाने से फिर जन्म को न देनेवाली मुक्ति को

पाया ॥ ५४ ॥ दुर्वासाजी बोले कि हे यज्ञदेव ! इसप्रकार धनुष्कोटि के स्नान से दुर्विनीत व उसकी माता की मुक्ति को मैंने तुमसे कहा ॥ ५५ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम भी ब्रह्महत्या से शुद्धि के लिये शीघ्रही इस पुत्र को लेकर मुक्तिदायिनी धनुष्कोटि को जावो ॥ ५६ ॥ सिंधुद्वीप बोले कि दुर्वासाजी से ऐसा कहाहुआ यज्ञदेव अपने पुत्र को लेकर मुक्तिदायिनी रामधनुष्कोटि को गया ॥ ५७ ॥ हे सृगाल, वानर ! पुत्रसमेत उस नियत ब्राह्मण ने वहां जाकर छः महीनेतक निवास किया ॥ ५८ ॥ और छः महीनेतक पुत्रसमेत उसने धनुष्कोटि में स्नान किया व छः महीने के बाद यज्ञदेव से आकाशवाणीने कहा ॥५९॥ कि हे यज्ञदेव ! तुम्हारे इसपुत्र की ब्रह्महत्या छूटगई और सुवर्ण की

म् ॥ ५४ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ एवंतेदुर्विनीतस्य तन्मातुश्चाविमोक्षणम् ॥ धनुष्कोट्यभिषेकेण यज्ञदेवमयेरितम् ॥ ५५ ॥ पुत्रमेनंत्वमप्याशु ब्रह्महत्याविशुद्धये ॥ समादायव्रजब्रह्मन्धनुष्कोटिंविमुक्तिदाम् ॥ ५६ ॥ सिन्धुद्वीप उवाच ॥ इतिदुर्वाससाप्रोक्तो यज्ञदेवोनिजंसुतम् ॥ समादाययय़ौरामधनुष्कोटिंविमुक्तिदाम् ॥ ५७ ॥ गत्वानिवासमकरोत्षाण्मासंतत्रसद्विजः ॥ पुत्रेणसाकंनियतो हेसृगालप्लवङ्गमौ ॥ ५८ ॥ ससस्नौचधनुष्कोटौ षण्मासंवैसपुत्रकम् ॥ षाण्मासान्तेयज्ञदेवं प्राहवागशरीरिणी ॥ ५९ ॥ विमुक्तायज्ञदेवास्य ब्रह्महत्यासुतस्यते ॥ स्वर्णस्तेयात्सुरापानात्किरातीसङ्गमात्तथा ॥ ६० ॥ अन्येभ्योपिहिपापेभ्यो विमुक्तोयंसुतस्तव ॥ संशयंमाकुरुष्वत्वं यज्ञदेवद्विजोत्तम ॥ ६१ ॥ इत्युक्त्वाविररामाथ सातुवागशरीरिणी ॥ यदाशरीरिणीवाक्यं यज्ञदेवःसशुश्रुवान् ॥ ६२ ॥ संतुष्टःपुत्रसहितो रामनाथंनिषेव्यच ॥ धनुष्कोटिंनमस्कृत्य पुत्रेणसहितस्तदा ॥ ६३ ॥ स्वदेशंप्रययौहृष्टः स्वग्रामंस्वगृहंतथा ॥ सपुत्रदारःसुचिरं सुखमास्तेसुनिर्वृतः ॥ ६४ ॥ सिन्धुद्वीप उवाच ॥ गोमायुवानरावेवं युवयोः कथितंमया ॥ यज्ञदेवसुतस्यास्य सुमतेःपरिमोक्षणम् ॥ ६५ ॥

चोरी व मद्यपान और किराती के संगम से ॥६०॥ व अन्यपापोंसे भी तुम्हारा यह पुत्र छूटगया हे द्विजोत्तम, यज्ञदेव ! तुम सन्देह मतकरो ॥६१॥ यह कहकर वह आकाशवाणी चुपहोगई जब उस यज्ञदेवने आकाशवाणी को सुना ॥ ६२ ॥ तब पुत्र समेत प्रसन्न होकर रामनाथजी को सेवनकर व धनुष्कोटि को प्रणामकर पुत्रसमेत ॥ ६३ ॥ प्रसन्न होताहुआ वह अपने देश व अपने ग्रामको और अपने घरको गया व पुत्र तथा स्त्रीसमेत वह प्रसन्नहोकर बहुतदिनोंतक प्रसन्नतासे रहा ॥ ६४ ॥ सिन्धुद्वीप बोले कि

हे सृगाल, वानर ! इसप्रकार मैंने तुम दोनों से इस यज्ञदेव के पुत्र सुमति के धनुष्कोटि में नहाने से बड़े पातकों से मुक्तिको कहा इसकारण तुम दोनों पाप से शुद्धि के लिये धनुष्कोटि को जावो ॥ ६५ । ६६ ॥ नहीं तो दश हज़ार प्रायश्चित्तों से भी पाप की शुद्धि न होगी श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! सिन्धुद्वीप के इस वचन को सुनकर ॥ ६७ ॥ शीघ्रही सियार व वानर महामार्ग को नाँघकर परिश्रम से धनुष्कोटि को जाकर व उस जलमें नहाकर ॥ ६८ ॥ सब पापों से छूटेहुए वे उत्तम विमान पै स्थितहुए जोकि देवनाओं से फूलों की वर्षा से वर्षा किये जातेहुए व उत्तम तेजवान् थे ॥ ६९ ॥ और हार, बजुल्ला, मुकुट व कंकणादि भूषणों से भूषित थे और

पातकेभ्योमहद्भ्यश्च धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ युवामतोधनुष्कोटिं गच्छतःपापशुद्धये ॥ ६६ ॥ नान्यथापापशुद्धिः स्यात्प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥ श्रीसूत उवाच ॥ सिन्धुद्वीपस्यवचनमितिश्रुत्वाद्विजोत्तमाः ॥ ६७ ॥ सृगालवानरावाशु विलङ्घितमहापथौ ॥ धनुष्कोटिंप्रयासेन गत्वास्नात्वाचतज्जले ॥ ६८ ॥ विमुक्तौसर्वपापेभ्यो विमानवरसंस्थितौ ॥ देवैः कुसुमवर्षेण कीर्यमाणौसुतेजसौ ॥ ६९ ॥ हारकेयूरमुकुटकटकादिविभूषितौ ॥ देवस्त्रीधूयमानाभ्यां चामराभ्यांविराजितौ ॥ ७० ॥ गत्वादेवपुरींरम्यामिन्द्रस्यार्द्धासनंगतौ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ युष्माकमेवंकथितं सृगालस्यकपेरपि ॥ ७१ ॥ पापाद्विमोक्षणंविप्रा धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ भक्त्यायइममध्यायं शृणोतिपठतेपिवा ॥ ७२ ॥ स्नानजंफलमाप्नोति धनुष्कोटौसमानवः ॥ योगिवृन्दैरसुलभां मुक्तिमप्याशुविन्दति ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येधनुष्कोटिप्रशंसायांसृगालवानरविमोक्षणंनामपञ्चत्रिंशोध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देवांगनाओं से हिलाये जातेहुए चँवरों से शोभित थे ॥ ७० ॥ और वे सुन्दरी देवपुरीको जाकर इन्द्र के आधे आसन पै प्राप्तहुए श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार तुमलोगों से सियार व कपि के धनुष्कोटि में नहाने से पाप से मुक्ति कहीगई जो मनुष्य भक्ति से इस अध्याय को पढ़ता या सुनता है ॥ ७१ । ७२ ॥ वह मनुष्य धनुष्कोटि में नहाने से उपजेहुए फलको पाता है और योगिगणों से दुर्लभमुक्ति को भी शीघ्रही पाता है ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांधनुष्कोटिप्रशंसायांसृगालवानरविमोक्षणंनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । धनुष्कोटिमें न्हाय जिमि दुराचार द्विजनाथ । मुक्तभयो छत्तीसमहँ कह्यो सोइ शुभगाय ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! फिर भी मैं धनुष्कोटि का माहात्म्य कहता हूं कि जिसमें दुराचार नामक नहाकर मुक्त हुआ है ॥ १ ॥ मुनिलोग बोले कि हे यथार्थ जाननेवाले, सूतजी ! यह दुराचार नामक कौन है व हे मुने ! उस दुराचार ने क्या पाप किया था ॥ २ ॥ व धनुष्कोटि में नहाने से किसप्रकार पातक से छूटा है हे मुने ! सुनने की इच्छा करतेहुए हमलोगों से इसको विस्तार से कहिये ॥ ३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनियो ! उस दुराचार के पाप को सुनिये कि जिस प्रकार वह धनुष्कोटि में नहाने से मुक्त हुआ है ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणो ! गौतमी नदी के

श्रीसूत उवाच ॥ धनुष्कोटेस्तुमाहात्म्यं भूयोपिप्रब्रवीम्यहम् ॥ दुराचाराभिधोयत्र स्नात्वामुक्तोभवद्द्विजाः ॥१॥ मुनय ऊचुः ॥ दुराचाराभिधःकोसौ सूततत्त्वार्थकोविद ॥ किंचपापंकृतंतेन दुराचारेणवैमुने ॥ २ ॥ कथंवापातकान्मुक्तो धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ एतच्छुश्रूषमाणानां विस्तराद्वदनोमुने ॥३॥ श्रीसूत उवाच ॥ मुनयःश्रूयतांतस्य दुराचारस्यपातकम् ॥ स्नानेनधनुषःकोटौ यथामुक्तश्चपातकात् ॥ ४ ॥ दुराचाराभिधोविप्रो गौतमीतीरमाश्रितः ॥ कश्चिदस्तिद्विजाः पापी क्रूरकर्मरतःसदा ॥ ५ ॥ ब्रह्मघ्नैश्चसुरापैश्च स्तेयिभिर्गुरुतल्पगैः ॥ सदासंसर्गदुष्टोसौ तैःसाकंन्यवसद्द्विजाः ॥ ६ ॥ महापातकिसंसर्गदोषेणास्यद्विजस्यवै ॥ ब्राह्मण्यंसकलंनष्टं निःशेषेणद्विजोत्तमाः ॥ ७ ॥ महापातकिभिःसार्द्धं दिनमेकन्तुयोद्विजः ॥ निवसेत्सादरंतस्य तत्क्षणाद्वैद्विजन्मनः ॥ ८ ॥ ब्राह्मण्यंस्यतुरीयांशो नश्यत्येवनसंशयः ॥ द्विदिनं सेवनात्स्पर्शाद्दर्शनाच्छयनात्तथा ॥ ९ ॥ भोजनात्सहपङ्क्तौच महापातकिभिर्द्विजाः ॥ द्वितीयभागोनश्येत ब्राह्मणस्य

किनारे टिकाहुआ सदैव क्रूरकर्मों में परायण कोई दुराचार नामक पापी ब्राह्मण था ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मणो ! ब्रह्मघाती, मद्यपी, चोर व गुरु की शय्या पै जानेवाले पुरुषों के सदैव संसर्ग से दुष्ट यह उनके साथ बसता था ॥ ६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! महापातकियों के संसर्ग के दोष से इस ब्राह्मण की सब ब्राह्मणता सम्पूर्णता से नष्ट होगई ॥ ७ ॥ जो ब्राह्मण एकदिन महापापियों के साथ आदर समेत बसता है उसीक्षण उस ब्राह्मण की ॥ ८ ॥ ब्राह्मणता का चौथाई भाग निस्सन्देह नाश होजाता है और दो दिन सेवन, स्पर्श, दर्शन व शयन से ॥ ९ ॥ व हे ब्राह्मणो ! महापापियों के साथ पंक्ति में भोजन से ब्राह्मण का दूसरा भाग निस्सन्देह नष्ट होजाता

है॥ १०॥ और तीनदिन महापापियों के संसर्गसे तीसरा भाग नाश होजाता है इसमें सन्देह नहीं है और चारदिनसे निश्चय कर चौथाभाग नाश होजाता है ॥ ११ ॥ व इसके उपरान्त उन पापियों के साथ शयन, आसन व भोजनसे महापापके सम्भवसे उनके समान पापी होता है ॥१२॥ हे ब्राह्मणो ! उससे ब्राह्मणतासे हीन यह दुराचार नामक ब्राह्मण बलवान् व भयंकर वेताल से ग्रस्त हुआ ॥ १३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! उस वेताल से बहुतही पीड़ित यह पराधीन हुआ व देश से देश व वनसे अन्य वन में घूमताहुआ ॥ १४ ॥ वह ब्राह्मण पहले के पुण्यके फल से दैवयोग से महापातकों को नाशनेवाली रामचन्द्रकी धनुष्कोटि को ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणो ! पिशाच से भगाया

नसंशयः ॥ १० ॥ त्रिदिनाच्चतृतीयांशो नश्यत्येवनसंशयः ॥ चतुर्दिनाच्चतुर्थांशो विलयंयातिहिध्रुवम् ॥ ११ ॥ अतःपरन्तुतैःसाकं शयनासनभोजनैः ॥ तत्तुल्यपातकीभूयान्महापातकसंभवात् ॥ १२ ॥ तेनब्राह्मण्यहीनोयं दुराचाराभिधोद्विजाः ॥ ग्रस्तोभवद्भीषणेन वेतालेनबलीयसा ॥ १३ ॥ असौपरवशस्तेन वेतालेनातिपीडितः ॥ देशाद्देशंभ्रमन्विप्रा वनाच्चैववनान्तरम् ॥ १४ ॥ पूर्वपुण्यविपाकेन दैवयोगेनसद्विजः ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटिं महापातकनाशनीम् ॥ १५ ॥ अनुद्रुतःपिशाचेन तेनाविष्टोययौद्विजाः ॥ न्यमज्जयत्सवेतालो धनुष्कोटिजलेत्वमुम् ॥ १६ ॥ धनुष्कोटिजलेसोयं वेतालेनप्रवेशितः ॥ उदतिष्ठत्क्षणादेव वेतालेनविमोचितः ॥ १७ ॥ उत्थितोसौद्विजोविप्रा धनुष्कोटिजलात्तदा ॥ स्वस्थोव्यचिन्तयत्कोयं देशोजलधितीरतः ॥ १८ ॥ कथंमयागतमिह गौतमीतीरवासिना ॥ इतिचिन्ताकुलःसोयं धनुष्कोटिनिवासिनम् ॥ १९ ॥ दत्तात्रेयंमहात्मानं योगिप्रवरमुत्तमम् ॥ समागम्यप्रणम्यासौ दुरा

जाताहुआ व उससे प्रविष्ट वह गया और उस वेतालने इसको धनुष्कोटि के जलमें नहवाया ॥ १६ ॥ व धनुष्कोटि के जलमें उस वेताल से पैठायाहुआ वही यह क्षणही भरमें वेताल से मुक्त होकर उठ खड़ाहुआ ॥ १७ ॥ व हे ब्राह्मणो ! उससमय धनुष्कोटि के जलसे उठाहुआ यह ब्राह्मण स्वस्थ होकर विचार करता भया कि समुद्र के किनारे यह कौन देश है ॥ १८ ॥ और गौतमी नदी के किनारे बसनेवाला मैं कैसे यहां आया इसप्रकार चिन्ता से विकल वही यह धनुष्कोटि में बसनेवाले ॥ १९ ॥ व

योगियों में श्रेष्ठ तथा उत्तम दत्तात्रेय महात्मा योगी के समीप आकर व प्रणामकर इस दुराचार ने कहा॥ २० ॥ कि हे भगवन् ! मैं नहीं जानता हूं कि यह कौन देश है इससमय इसको कहिये और गौतमी नदी के किनारे रहनेवाला मैं दुराचार नामक हूं॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन् ! मुझमे दया करके कहिये कि मैं यहां कैसे आया इसप्रकार उस दुराचार ने सुव्रत दत्तात्रेय मुनि से पूंछा॥ २२ ॥ और थोड़ीदेर तक विचारकर दयानिधि मुनिने दुराचार से कहा कि पहले महापातकियों के संसर्ग से दुष्कर्म करने पर॥ २३ ॥ ब्राह्मणता नष्ट होगई उसकारण वेताल ने तुमको पकड़ लिया और उससे पैठेहुए विवश व मूढ़ बुद्धिवाले तुम यहां आये॥ २४ ॥ और इस

चारोभ्यभाषत॥ २० ॥ नजानेभगवन्देशः कतमोयंवदाधुना॥ गौतमीतीरनिलयो दुराचाराभिधोह्यहम्॥ २१ ॥ कृपयाब्रूहिमेब्रह्मन्मयात्रकथमागतम्॥ इतिपृष्टोमुनिस्तेन दुराचारेणसुव्रतः॥ २२ ॥ ध्यात्वामुहूर्त्तमवदद्दुराचारंघृणानिधिः॥ महापातकिसंसर्गाद्दुराचारकृतेपुरा॥ २३ ॥ ब्राह्मण्यंनष्टमभवद्वेतालस्त्वांततोग्रहीत्॥ तेनाविष्टस्त्वमायातो विवशोत्रविमूढधीः॥ २४ ॥ न्यमज्जयत्त्वांवेतालो धनुष्कोटिजलेत्रतु॥ तत्रमज्जनमात्रेण विमुक्तःपातकाद्भवान्॥ २५ ॥ धनुष्कोटौतुयेस्नानं पुण्यंकुर्वन्तिमानवाः॥ तेषांनश्यन्तिवैसत्यं पञ्चपातकसञ्चयाः॥ २६ ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटावत्रमज्जनमात्रतः॥ महापातकिसंसर्गदोषस्तेविलयंययौ॥ २७ ॥ तन्नाशादेववेतालस्त्वांमुक्काविलयंगतः॥ त्वामग्रहीद्योवेतालः पुरायंब्राह्मणोभवत्॥ २८ ॥ सोयम्भाद्रपदेमासे कृष्णपक्षेमहालयम्॥ पार्वणेनविधानेन पितॄणांनाकरोन्मुदा॥ २९ ॥ तेनस्वपितृभिःशप्तो वेतालत्वमगादयम्॥ सोपिचास्यधनुष्कोटेरवलोकनमात्रतः॥३०॥

धनुष्कोटि के जलमें वेताल नें तुमको स्नान कराया और उसमें स्नान करनेसे आप पाप से छूटगये॥ २५ ॥ और जो मनुष्य धनुष्कोटि में शुद्ध स्नान करते हैं उनके पांच पातकों के समूह सत्यही नष्ट होजाते हैं॥ २६॥ इस रामचन्द्र की धनुष्कोटिमें स्नानही से तुम्हारा महापातकियों के संसर्गका दोष नाश को प्राप्त हुआ है॥ २७ ॥ व उसके नाशही से वेताल तुमको छोड़कर नाश को प्राप्त होगया और जिस वेताल ने तुमको पकड़ा था यह पहले ब्राह्मण हुआ है॥ २८ ॥ उसी इसने भाद्रपद महीने में कृष्णपक्ष में पार्वणविधि से पितरों का महालयश्राद्ध हर्ष से नहीं किया॥ २९ ॥ उससे अपने पितरों से शाप दियाहुआ यह वेतालत्व को प्राप्त हुआ और वह भी

इस धनुष्कोटि के देखने से ॥ ३० ॥ यहां वेतालता को छोड़कर विष्णुलोक को प्राप्त हुआ इसकारण भाद्रपद महीने में कृष्णपक्ष में महालयश्राद्ध को ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य अपने पितरों को उद्देश कर बड़े लोभ से नहीं करते हैं महालोभ से संयुत वे साक्षात् वेताल होतेहैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३२ ॥ इसकारण भाद्रपद महीने में कृष्णपक्ष में जो मनुष्य महालयश्राद्ध को पितरों का उद्देशकर वेदों के पारगामी ब्राह्मणों को शक्ति से ॥ ३३ ॥ हविष्यान्न से भोजन कराते हैं वे दुर्गति को नहीं प्राप्त होते हैं और जो अकिंचन मनुष्य भाद्रपद महीने में कृष्णपक्ष में महालय को अपने शक्ति के अनुसार गुणवान् एक, दो व तीन ब्राह्मणों को भोजन कराता है उसकी कभी

वेतालत्वंविहायेह विष्णुलोकमवाप्तवान् ॥ अतोभाद्रपदेमासे कृष्णपक्षेमहालयम् ॥ ३१ ॥ उद्दिश्यस्वपितॄन्येतु न कुर्वन्त्यतिलोभतः ॥ महालोभयुतास्तेद्धा वेतालाःस्युर्नसंशयः ॥ ३२ ॥ तस्माद्भाद्रपदेमासे कृष्णपक्षेमहालयम् ॥ पितॄनुद्दिश्यशक्त्याये ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ ३३ ॥ भोजयेयुर्महान्नेननतेविन्दन्तिदुर्गतिम् ॥ यस्तुभाद्रपदेमासे कृष्ण पक्षेमहालयम् ॥ ३४ ॥ स्वशक्त्यानुगुणंविप्रमेकंद्वौत्रीनकिञ्चनः ॥ भोजयेन्नहिदौर्गत्यं भवेत्तस्यकदाचन ॥ ३५ ॥ अयम्भाद्रपदेमासे पितॄणामनुपासनात् ॥ ययौवेतालतांविप्रो यस्त्वांजग्राहपापिनम् ॥ ३६ ॥ कालोभाद्रपदंमाससमा रभ्यवृश्चिकावधि ॥ महालयस्यकथितो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ३७ ॥ मासोभाद्रपदःकालस्तत्रापिहिविशिष्यते ॥ कृष्णपक्षोविशिष्टःस्याद्दुराचारकतत्रवै ॥ ३८ ॥ तस्मिञ्छुभेकृष्णपक्षे प्रथमायांतथातिथौ ॥ श्राद्धंमहालयंकुर्याद्योन रोभक्तिपूर्वकम् ॥ ३९ ॥ तस्यप्रीणातिभगवान्पावकःसर्वपावनः ॥ सवह्निलोकमाप्नोति वह्निनासहमोदते ॥ ४० ॥ तस्मै

दुर्गति नहीं होती है ॥ ३४ । ३५ ॥ और जिसने तुझ पापी को पकड़ा था यह ब्राह्मण भादों महीने में कृष्णपक्ष में पितरों की उपासना न करने से वेतालता को प्राप्त हुआ था ॥ ३६ ॥ भादों महीने से लगाकर वृश्चिकराशि के अन्ततक तत्त्वदर्शी मुनियों से महालय का समय कहागया है ॥ ३७ ॥ और उसमें भी भादों महीने का समय विशेष है व हे दुराचार! उस भादों महीने में भी कृष्णपक्ष विशेष है ॥ ३८ ॥ उस उत्तम कृष्णपक्ष में प्रतिपदा (परेवा) तिथि में जो मनुष्य भक्तिपूर्वक महालयश्राद्ध को करता है ॥ ३९ ॥ उसके ऊपर रुब को पवित्र करनेवाले अग्नि भगवान् प्रसन्न होते हैं और वह अग्निलोक को प्राप्त होता है व अग्नि के साथ आनन्द करता है ॥ ४० ॥

और उसके लिये अग्निदेवजी सब ऐश्वर्य को भी देते हैं और परेवा तिथि में जो मनुष्य महालयश्राद्ध को नहीं करता है ॥ ४१ ॥ अग्निदेवजी उसके घर, लक्ष्मी व क्षेत्रादिक को जलादेते हैं और परेवा तिथि को महालयश्राद्ध में वेदज्ञ ब्राह्मण के भोजन कराने पर ॥ ४२ ॥ दशहज़ार कल्पतक पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं व दुइज तिथि में जो मनुष्य भक्ति से महालयश्राद्ध को करता है ॥ ४३ ॥ उसके ऊपर गिरिजापति ईश्वर भगवान् प्रसन्न होते हैं और वह कैलास को प्राप्त होता है व शिवजी के साथ आनन्द करता है ॥ ४४ ॥ व प्रसन्न होतेहुए शिवजी उसके लिये बहुत लक्ष्मी को देते हैं व दुइज तिथि में जो मनुष्य महालयश्राद्ध को नहीं करता

चज्वलनोदेवः सर्वैश्वर्यंददात्यपि ॥ प्रथमायांतिथौमर्त्यो योनकुर्यान्महालयम् ॥ ४१ ॥ वह्निर्गेहंदहेत्तस्य श्रियंक्षेत्रादिकंतथा ॥ वेदविद्ब्राह्मणेभुक्ते प्रथमायांमहालये ॥ ४२ ॥ दशकल्पसहस्राणि पितरोयान्तितृप्तताम् ॥ द्वितीयायांतुयो भक्त्या कुर्याच्छ्राद्धम्महालयम् ॥ ४३ ॥ तस्यप्रीणातिभगवान्भवानीपतिरीश्वरः ॥ सकैलासमवाप्नोति शिवेनसहमोदते ॥ ४४ ॥ विपुलांसम्पदंतस्मै प्रीतोदद्यान्महेश्वरः ॥ द्वितीयायांतिथौमर्त्यो योनकुर्यान्महालयम् ॥ ४५ ॥ तस्यवै कुपितःशम्भुर्नाशयेद्ब्रह्मवर्चसम् ॥ रौरवंकालसूत्राख्यं नरकंचास्यदास्यति ॥ ४६ ॥ वेदविद्ब्राह्मणेभुक्ते द्वितीयायांमहालये ॥ विंशत्कल्पसहस्राणि पितरोयान्तितृप्तताम् ॥ ४७ ॥ अनुग्रहात्पितृणांच सन्ततिश्चास्यवर्द्धते ॥ तृतीयायांनरो भक्त्या कुर्याच्छ्राद्धम्महालयम् ॥ ४८ ॥ तस्यप्रीणातिभगवाँल्लोकपालोधनाधिपः ॥ महापद्मादिनिधयो वर्तन्तेतस्यवैवशे ॥ ४९ ॥ तस्यानुगास्त्रयोदेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ तृतीयायांतिथौमर्त्यो योनकुर्यान्महालयम् ॥ ५० ॥

है ॥ ४५ ॥ उसके ब्रह्मतेज को क्रोधित शिवजी नाश करते हैं व रौरव और कालसूत्रनामक नरकको इसको देते हैं ॥ ४६ ॥ व दुइजतिथि में महालयश्राद्ध में वेदज्ञ ब्राह्मण के भोजन करने पर बीस हज़ार कल्पतक पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥ व पितरों की दया से इसकी सन्तान बढ़ती है व तीज तिथि में जो मनुष्य भक्ति से महालयश्राद्ध को करता है ॥ ४८ ॥ उसके ऊपर भगवान् लोकपाल कुबेरजी प्रसन्न होते हैं व उसके वशमें महापद्मादिक निधियां वर्तमान होती हैं ॥ ४९ ॥ और ब्रह्मा,

विष्णु व महादेव तीनों देवता उसके अनुगामी होते हैं व तीजतिथि में जो मनुष्य महालयश्राद्ध को नहीं करता है ॥ ५० ॥ भगवान् कुबेरजी उसकी संपदा को क्षण
भर में हरलेते हैं और इसके लिये बहुत दुःखों से संयुत दरिद्रता को देते हैं ॥ ५१ ॥ और तीजतिथि में जो मनुष्य महालयश्राद्ध को करता है उसके पितर तीस हज़ार
कल्पतक तृप्त होते हैं ॥ ५२ ॥ और चौथितिथि में जो मनुष्य भक्ति से महालयश्राद्ध को करता है उसके ऊपर गिरिजासुत भगवान् गणेशजी प्रसन्न होते हैं ॥ ५३ ॥
व गजवदन की प्रसन्नता से उसके विघ्न नाश होते हैं और चौथितिथि में जो मनुष्य महालयश्राद्ध को नहीं करता है ॥ ५४ ॥ भगवान् विघ्ननायक (गणेश) जी

**धनदोभगवांस्तस्य सम्पदंहरतिक्षणात् ॥ दारिद्र्यंचददात्यस्मै बहुदुःखसमाकुलम् ॥ ५१ ॥ तृतीयायांतिथौमर्त्यो यः
करोतिमहालयम् ॥ तृप्यन्तिपितरस्तस्य त्रिंशत्कल्पसहस्रकम् ॥ ५२ ॥ चतुर्थ्यान्तुनरोभक्त्या श्राद्धंकुर्यान्महाल
यम् ॥ तस्यप्रीणातिभगवान्हेरम्बःपार्वतीसुतः ॥ ५३ ॥ तस्यविघ्नाश्चनश्यन्ति गजवक्त्रप्रसादतः ॥ चतुर्थ्यान्तुतिथौ
मर्त्यो योनकुर्यान्महालयम् ॥ ५४ ॥ विघ्नेशोभगवांस्तस्य सदाविघ्नंकरोतिहि ॥ चण्डकोलाहलाभिख्ये नरकेचपत
त्यथ ॥ ५५ ॥ चतुर्थ्यांवैतिथौमर्त्यो यःकरोतिमहालयम् ॥ पितरःकल्पसाहस्रं चत्वारिंशत्प्रहर्षिताः ॥ ५६ ॥ बहू
न्पुत्रान्प्रदास्यन्ति श्राद्धकर्तुर्निरन्तरम् ॥ पञ्चम्यांनतिथौभक्त्या श्राद्धंकुर्यान्महालयम् ॥ ५७ ॥ तस्यलक्ष्मीर्भग
वती परित्यजतिमन्दिरम् ॥ अलक्ष्मीःकलहाधारा तस्यप्रादुर्भवेद्गृहे ॥ ५८ ॥ पञ्चम्यांतुतिथौमर्त्यो यःकरोति
महालयम् ॥ तस्यतृप्यन्तिपितरः पञ्चकल्पसहस्रकम् ॥ ५९ ॥ सन्ततिंचाप्यविच्छिन्नामस्मैदास्यन्तितर्पिताः ॥**

सदैव उसके विघ्न करते हैं व चंडकोलाहल नामक नरक में वह पड़ता है ॥ ५५ ॥ और चौथितिथि में जो मनुष्य महालयश्राद्ध को करता है उसके पितर प्रसन्न
होकर चालीस हज़ार कल्पतक तृप्त रहते हैं ॥ ५६ ॥ और पितरलोग श्राद्धकर्ता को सर्वत्र बहुत पुत्रों को देते हैं व पञ्चमीतिथि में जो मनुष्य भक्ति से महालयश्राद्ध
को नहीं करता है ॥ ५७ ॥ उसके मन्दिर को भगवती लक्ष्मीजी छोड़ देती हैं व कलह आधारवाली अलक्ष्मी उसके घरमें प्रकट होती है ॥ ५८ ॥ व पञ्चमीतिथि में
जो मनुष्य महालयश्राद्ध को करता है उसके पितर पचास हज़ार कल्पतक तृप्त होते हैं ॥ ५९ ॥ व तृप्त होतेहुए पितरलोग इसके लिये नाश न होनेवाली सन्तान

को देते हैं व बड़े ऐश्वर्य को देनेवाली पार्वतीजी उसके ऊपर प्रसन्न होती हैं ॥ ६० ॥ और छठितिथि में जो मनुष्य भक्ति से महालयश्राद्ध को करता है उसके ऊपर पार्वती के पुत्र स्वामिकार्त्तिकेय भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ ६१ ॥ और षडानन की प्रसन्नता से उसके पुत्र व पौत्र कभी बालग्रहों से पीड़ित नहीं होते हैं ॥ ६२ ॥ और छठितिथि में जो मनुष्य भक्ति से महालयश्राद्ध को नहीं करता है उसके महासेन स्वामिकार्त्तिकेयजी निस्सन्देह विमुख होते हैं ॥ ६३ ॥ और गर्भ से निकलतेहीं उसकी सन्तान नाश होजाती है और पूतनादिक ग्रहगणों से वह सदैव पीड़ित कियाजाता है ॥ ६४ ॥ और वह्निज्वालाप्रवेश नामक नरक में वह नीचे गिरता

पार्वतीचप्रसन्नास्यान्महदैश्वर्यदायिनी ॥ ६० ॥ षष्ठ्यांतिथौनरोभक्त्या श्राद्धंकुर्यान्महालयम् ॥ तस्यप्रीणातिभगवान्षण्मुखःपार्वतीसुतः ॥ ६१ ॥ तस्यपुत्राश्चपौत्राश्च षण्मुखस्यप्रसादतः ॥ ग्रहैर्बालग्रहैश्चैव नबाध्यन्तेकदाचन ॥ ६२ ॥ षष्ठ्यांतिथौनरोभक्त्या योनकुर्यान्महालयम् ॥ तस्यस्कन्दोमहासेनो विमुखःस्यान्नसंशयः ॥ ६३ ॥ गर्भान्निर्गतमात्रैव प्रजातस्यविनश्यति ॥ पूतनादिग्रहकुलैर्बाध्यतेचनिरन्तरम् ॥ ६४ ॥ वह्निज्वालाप्रवेशाख्ये नरकेचपतत्यधः ॥ षष्ठ्यांतिथौयःश्रद्धावान्कुर्याच्छ्राद्धम्महालयम् ॥ ६५ ॥ षष्टिकल्पसहस्रन्तु पितरोयान्तितृप्तताम् ॥ पुत्रानपिप्रदास्यन्ति सम्पदंविपुलांतथा ॥ ६६ ॥ सप्तम्यांतुतिथौमर्त्यः श्राद्धंकुर्यान्महालयम् ॥ हिरण्यपाणिर्भगवानादित्यस्तस्यतुष्यति ॥ ६७ ॥ अरोगोदृढगात्रःस्याद्भास्करस्यप्रसादतः ॥ हिरण्यपाणिर्भगवान्हिरण्यंपाणिनास्वयम् ॥ ६८ ॥ महालयश्राद्धकर्त्रे ददातिप्रीतमानसः ॥ सप्तम्यांतुतिथौभक्त्या योनकुर्यान्महालयम् ॥ ६९ ॥ व्याधिभिःक्षयरोगाद्यै

है और छठितिथि में जो श्रद्धावान् मनुष्य महालयश्राद्ध को करता है ॥ ६५ ॥ उसके पितर साठ हज़ार कल्पतक तृप्ति को प्राप्त होते हैं और पुत्रों को भी देते हैं व बहुत सम्पदा देते हैं ॥ ६६ ॥ और सप्तमीतिथि में जो मनुष्य महालयश्राद्ध को करता है उसके ऊपर भगवान् हिरण्यपाणि सूर्यनारायणजी प्रसन्न होते हैं ॥ ६७ ॥ और वह सूर्यनारायण की प्रसन्नता से निरोग व पुष्टशरीरवान् होता है व प्रसन्नमनवाले भगवान् हिरण्यपाणि याने सूर्यनारायणजी आपही हाथ से महालयश्राद्ध करनेवाले पुरुष के लिये सुवर्ण को देते हैं और सप्तमीतिथि में जो मनुष्य भक्ति से महालयश्राद्ध को नहीं करता है ॥ ६८ । ६९ ॥ वह क्षयरोगादिक व्याधियों से

गिरता है॥ ७०॥ और जो मनुष्य सप्तमी तिथि में भक्ति से महालयश्राद्ध को करता है
अहर्निश पीड़ित होता है और तीक्ष्णधारास्त्रशय्या नामक नरक में नीचे
उसके पितर सत्तर हज़ार कल्पतक तृप्त होते हैं॥ ७१॥ और पितरगण सदैव नाश न होनेवाली सन्तान को देते हैं और अष्टमीतिथि में जो मनुष्य महालयश्राद्ध को
करता है॥ ७२॥ उसके ऊपर कृत्तिवासमृत्युंजय शिवजी प्रसन्न होते हैं व शंकरजी के प्रसाद से कैवल्यमुक्ति उसके हाथ में स्थित होती है॥ ७३॥ और महालय
श्राद्ध से साक्षात् त्रिलोचनजी के प्रसन्न होनेपर उसको चौदहों लोकों में क्या दुर्लभ होवै है॥ ७४॥ और मूढबुद्धिवाला जो पुरुष अष्टमीतिथि में महालयश्राद्ध

नरकेचपतत्यधः॥ ७०॥ सप्तम्यांयोनरोभक्त्या श्राद्धंकुर्यान्महा
बाध्यतेसदिवानिशम्॥ तीक्ष्णधारास्त्रशय्याख्ये
लयम्॥ सप्ततिंकल्पसाहस्रं प्रीणन्तिपितरोस्यवै॥ ७१॥ सन्ततिंचाप्यविच्छिन्नां दद्युःपितृगणाःसदा॥ अष्टम्यांतु
तिथौमर्त्यः श्राद्धंकुर्यान्महालयम्॥ ७२॥ मृत्युञ्जयःकृत्तिवासास्तस्यप्रीणातिशङ्करः॥ करस्थंतस्यकैवल्यं शङ्करस्य
प्रसादतः॥७३॥ महालयेन श्राद्धेनतुष्टेसाक्षात्त्रियम्बके॥ चतुर्दशसुलोकेषु दुर्लभंतस्यकिम्भवेत्॥७४॥ महालयंनकुर्या
द्वै योष्टम्यांमूढचेतनः॥ संसारसागरेघोरे सदामज्जतिदुःखितः॥ ७५॥ कदाचिदपितस्येष्टं नैवसिद्ध्यतिभूतले॥ वैत
रिण्याख्यनरके पतत्याचन्द्रतारकम्॥ ७६॥ योष्टम्यांश्रद्धयायुक्तः श्राद्धंकुर्यान्महालयम्॥ अशीतिकल्पसाहस्रं
तृप्यन्तिपितरोस्यवै॥ ७७॥ आशीर्भिर्वर्द्धयन्त्येनं विघ्नश्चास्यव्यपोहति॥ सन्ततिंचाप्यविच्छिन्नां दद्युःपितृगणाः
सदा॥ ७८॥ नवम्यांतुतिथौमर्त्यः श्राद्धंकुर्यान्महालयम्॥ दुर्गादेवीभगवती तस्यप्रीणातिशाम्भवी॥ ७९॥ क्षयाप

को नहीं करता है वह दुःखित पुरुष सदैव भयंकर संसारसागर में डूबता है॥ ७५॥ और पृथ्वी में कभी उसका मनोरथ नहीं सिद्ध होता है और जबतक चन्द्रमा व
नक्षत्र रहते हैं तबतक वह वैतरिणी नामक नरक में गिरता है॥ ७६॥ और अष्टमीतिथि में जो मनुष्य श्रद्धा से युक्त महालयश्राद्ध को करता है इसके पितर अस्सी हज़ार
कल्पतक तृप्त रहते हैं॥ ७७॥ व इसको आशीर्वादों से बढ़ाते हैं व इसका विघ्न नाश होता है और पितरों के गण इसको नाश न होनेवाली सन्तान को
देते हैं॥ ७८॥ और नवमी तिथि में जो मनुष्य महालयश्राद्ध को करता है उसके ऊपर भगवती शैवी दुर्गा देवी प्रसन्न होती हैं॥ ७९॥ और प्रसन्न

होतीहुई महिषासुर को मर्दनेवाली दुर्गाजी उसके क्षय, अपस्मार (मिर्गी) व कुष्ठादिक तथा क्षुद्र प्रेत व पिशाचों को नाश करती हैं ॥ ८० ॥ व जो मनुष्य नवमीतिथि में महालयश्राद्ध को नहीं करता है वह अपस्मार व ब्रह्मराक्षस से पीड़ित होता है ॥ ८१ ॥ और अभिचार (मारणादिप्रयोग) से उपजीहुई कृत्याओं से सदैव पीड़ित होता है और नवमीतिथि में जो मनुष्य महालयश्राद्ध को करताहै ॥ ८२ ॥ इसके पितर नब्बे हज़ार कल्पतक तृप्त रहते हैं और पितरों के गण इसको सदैव नाश न होनेवाली सन्तान को देते हैं ॥ ८३ ॥ और दशमीतिथि में जो मनुष्य महालयश्राद्ध को करताहै उसके ऊपर षोडशात्मक अमृतकलावाला चन्द्रमा तृप्त होता है ॥ ८४ ॥ और

स्मारकुष्ठादीन्क्षुद्रप्रेतपिशाचकान् ॥ नाशयेत्तस्यसन्तुष्टा दुर्गामहिषमर्दिनी ॥ ८० ॥ नवम्यांतुतिथौमर्त्यो योनकुर्यान्महालयम् ॥ अपस्मारेणपीड्येत तथैवब्रह्मरक्षसा ॥ ८१ ॥ अभिचारोस्यकृत्याभिर्बाध्येतचनिरन्तरम् ॥ नवम्यांयस्तिथौमर्त्यः श्राद्धंकुर्यान्महालयम् ॥ ८२ ॥ नवतिंकल्पसाहस्रं तृप्यन्तिपितरोस्यवै ॥ सन्ततिंचाप्यविच्छिन्नां दद्युःपितृगणाःसदा ॥ ८३ ॥ दशम्यांतुतिथौमर्त्यः श्राद्धंकुर्यान्महालयम् ॥ तस्यामृतकलश्चन्द्रः षोडशात्माप्रसीदति ॥ ८४ ॥ ओषधीनामधीशेस्मिञ्छ्राद्धेनानेनतोषिते ॥ व्रीह्यादीनितुधान्यानि दद्युरोषधयःसदा ॥ ८५ ॥ योनकुर्याद्दशम्यांतु महालयमनुत्तमम् ॥ ओषध्योनिष्फलास्तस्य कृषिश्चाप्यस्यनिष्फला ॥ ८६ ॥ दशम्यांयस्तिथौमर्त्यः श्राद्धंकुर्यान्महालयम् ॥ शतकल्पसहस्राणि तृप्यन्तिपितरोस्यवै ॥ ८७ ॥ सन्ततिंचाप्यविच्छिन्नां दद्युःपितृगणाःसदा ॥ एकादश्यांनरोभक्त्या श्राद्धंकुर्यान्महालयम् ॥ ८८ ॥ संहर्तासर्वलोकस्य तस्यरुद्रःप्रसीदति ॥ रुद्रस्यसर्वसंहर्तुः प्रसादेनजगत्प

इस श्राद्ध से औषधियों के स्वामी इस चन्द्रमा के प्रसन्न कराने पर औषधियां इसको सदैव व्रीहि (शाली) आदिक धान्य को देती हैं ॥ ८५ ॥ और जो मनुष्य दशमी तिथि में अति उत्तम महालयश्राद्ध को नहीं करता है उसकी औषधियां निष्फल होती हैं और इसकी खेती भी निष्फल होती है ॥ ८६ ॥ और दशमी तिथि में जो मनुष्य महालयश्राद्ध को करता है इसके पितर सौ हज़ार कल्पतक तृप्त रहते हैं ॥ ८७ ॥ और पितरों के गण इसको नाश न होनेवाली सन्तान को देते हैं व एकादशीतिथि में जो मनुष्य भक्ति से महालयश्राद्ध को करता है ॥ ८८ ॥ उसके ऊपर सबलोकों को संहार करनेवाले शिवजी प्रसन्न होते हैं व सबको संहार करनेवाले

जगदीश शिवजी की प्रसन्नता से ॥ ८६ ॥ यह श्राद्ध करनेवाला पुरुष सदैव शत्रुवोंको पराजित करता है और उसीक्षण उसकी दशहज़ार ब्रह्महत्या नाश होजाती हैं॥ ९० ॥ और अग्निष्टोमादिक यज्ञों के बड़े भारी फल को वह पाता है व जो मनुष्य भक्ति से एकादशी तिथि में महालयश्राद्ध को नहीं करता है ॥ ९१ ॥ उसके विमुख होकर शिवजी कभी प्रसन्न नहीं होते हैं और सब ओर से बढ़े हुए शत्रु इस को पीड़ित करते हैं ॥ ९२ ॥ बहुत दक्षिणावाले कियेहुए अग्निष्टोमादिक यज्ञ उसके भस्म में धरीहुई हव्य की नाईं विफल होते हैं ॥ ९३ ॥ और श्राद्ध न करने के दोष से वह ब्रह्मघाती के तुल्य होता है और जो मनुष्य एकादशी तिथि में महालयश्राद्ध

तेः ॥ ८९ ॥ शत्रून्पराजयत्येष श्राद्धकर्तानिरन्तरम् ॥ ब्रह्महत्यायुतंचापि तस्यनश्यतितत्क्षणात् ॥ ९० ॥ अग्निष्टोमादियज्ञानां फलमाप्नोतिपुष्कलम् ॥ एकादश्यांनरोभक्त्या योनकुर्यान्महालयम् ॥ ९१ ॥ तस्यवैविमुखोरुद्रो न प्रसीदतिकर्हिचित् ॥ सर्वतोवर्धमानाश्च बाधन्तेशत्रवोह्यमुम् ॥ ९२ ॥ अग्निष्टोमादिकायज्ञाः कृताश्चबहुदक्षिणाः ॥ निष्फलाएवतस्यस्युर्भस्मनिन्यस्तहव्यवत् ॥ ९३ ॥ ब्रह्मघातकतुल्यःस्याच्छ्राद्धाकरणदोषतः ॥ एकादश्यांतिथौयस्तु श्राद्धंकुर्यान्महालयम् ॥ ९४ ॥ द्विशतंकल्पसाहस्रं तृप्यन्तिपितरोस्यवै॥ सन्ततिंचाप्यविच्छिन्नां दद्युःपितृगणाःसदा ॥ ९५ ॥ द्वादश्यांतुतिथौमर्त्यः कुर्याच्छ्राद्धंमहालयम् ॥ तस्यलक्ष्मीपतिःसाक्षात्प्रसीदतिजनार्दनः ॥ ९६ ॥ प्रसन्नेसतिदेवेशे देवदेवेजनार्दने ॥ चराचरजगत्सर्वं प्रीतमेवनसंशयः ॥ ९७ ॥ भूमिर्हरिप्रियाचास्य सस्यंसंवर्द्धयत्यपि ॥ लक्ष्मीश्चवर्द्धतेतस्य मन्दिरेहरिवल्लभा ॥ ९८ ॥ गदाकौमोदकीनाम नारायणकरस्थिता ॥ अपस्मारादिभूतानि

को करता है ॥ ९४ ॥ इसके पितर दोसौ हज़ार कल्पतक तृप्त रहते हैं और पितरोंके गण इसको सदैव नाश न होनेवाली सन्तान को देते हैं ॥ ९५ ॥ और द्वादशी तिथि में जो मनुष्य महालयश्राद्ध को करता है उसके ऊपर साक्षात् लक्ष्मी के पति विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ ९६ ॥ व देवदेव देवेश विष्णुजी के प्रसन्न होनेपर सब चराचर संसार निस्सन्देह प्रसन्न होता है ॥ ९७ ॥ और विष्णु की प्यारी भूमि इसके क्षेत्रान्न को बढ़ाती भी है व उसके घरमें विष्णु की प्यारी लक्ष्मी बढ़ती है ॥ ९८ ॥

और विष्णुजीके हाथ में स्थित कौमोदकी नामक गदा सदैव अपस्मारादिक भूतों को नाश करती है ॥ ९९ ॥ और पैनी धारवाला चक्रभी इसके शत्रुवों को जलाता है और शंख इसके राक्षस व पिशाचादिकों को नाश करता है ॥ १०० ॥ इसप्रकार विष्णुजी सब भांति से इसकी पीड़ा को दूर करते हैं और जो अधम मनुष्य द्वादशी तिथि में महालयश्राद्ध को नहीं करता है ॥ १ ॥ उसके क्षेत्र व लक्ष्मी निस्सन्देह नाशहोजाती है और अपस्मारादिक भूत व बड़े बलवान् शत्रु ॥ २ ॥ व राक्षस उस विष्णु से विमुख पुरुष को दुःखित करते हैं और अस्थिभेदन नामक नरक में वह गिरायाजाता है ॥ ३ ॥ व द्वादशी तिथि में भक्ति से संयुत जो मनुष्य महालयश्राद्ध

नाशयत्येवसर्वदा ॥ ९९ ॥ तीक्ष्णधारंतथाचक्रं शत्रूनस्यदहत्यपि ॥ यातुधानपिशाचादींश्छङ्खश्चास्यव्यपोहति॥१००॥ एवंसर्वात्मनापीडां वारयत्यस्यकेशवः ॥ महालयंनकुर्याद्यो द्वादश्यांमनुजाधमः ॥ १ ॥ तस्यक्षेत्राणिसम्पच्च विनश्यन्तिनसंशयः ॥ अपस्मारादिभूतानि शत्रवश्चमहाबलाः ॥ २ ॥ यातुधानाश्चबाधन्ते तंवैविष्णुपराङ्मुखम् ॥ पात्यतेनरकेचापि अस्थिभेदननामके ॥ ३ ॥ द्वादश्यांभक्तियुक्तोयः श्राद्धंकुर्यान्महालयम् ॥ षट्शतंकल्पसाहस्रंप्रीणन्तिपितरोस्यवै ॥ ४ ॥ सन्ततिंचाप्यविच्छिन्नां पितरोस्मैददत्यपि ॥ त्रयोदश्यांनरोभक्त्या श्राद्धंकुर्यान्महालयम् ॥ ५ ॥ प्रसीदत्यस्यभगवान्कन्दर्पोरतिनायकः ॥ स्रक्चन्दनादयोभोगा ललनाश्चमनोरमाः ॥ ६ ॥ कामदेवप्रसादेन तस्यसिद्ध्यन्तिसर्वदा ॥ आजन्ममरणान्तंच सुखमेवसविन्दते ॥ ७ ॥ योनकुर्यात्त्रयोदश्यां भक्त्याश्राद्धम्महालयम् ॥ कामदेवोस्यविमुखः स्त्रियोभोगांश्चनाशयेत् ॥ ८ ॥ अङ्गारशय्याभ्रमणे नरकेपातयत्यमुम् ॥ पितॄनुद्दिश्ययः

को करता है इसके पितर छासौ हज़ार कल्पतक तृप्त रहते हैं ॥ ४ ॥ और इसके पितर नाश न होनेवाली सन्तान को देते हैं व तेरसि तिथि में जो मनुष्य भक्ति से महालयश्राद्ध को करता है ॥ ५ ॥ इसके ऊपर रति के पति भगवान् कामदेवजी प्रसन्न होते हैं और माला व चन्दनादिक सुख तथा सुन्दरी स्त्रियां ॥ ६ ॥ उसके कामदेव की प्रसन्नता से सदैव सिद्ध होती हैं और जन्म से लगाकर मरणान्ततक वह सुखही को प्राप्तहोता है ॥ ७ ॥ और जो मनुष्य तेरसि तिथि में भक्तिसे महालय श्राद्ध को नहीं करता है इसके विमुख कामदेवजी स्त्रियों व सुखों को नाश करतेहैं ॥ ८ ॥ व अंगारशय्याभ्रमण नामक नरक में इसको गिराते हैं और पितरों को

उद्देश कर जो मनुष्य तेरसि तिथि में महालयश्राद्ध को करता है ॥ ६ इसके पितर दशगनी कल्पसहस्र तक तृप्त रहते हैं और पितरों के गण सदैव नाश न होनेवाली सन्तान को देते हैं ॥ १० ॥ और चौदसि तिथि में जो मनुष्य भक्ति से महालयश्राद्ध को करता है उसके मनोरथ को देने के लिये भगवान् सदाशिवजी जागते हैं ॥ ११ ॥ और शिवज्ञान को उपदेशकर सायुज्य मोक्ष को भी देते हैं और दशहज़ार मदिरापान व दशहज़ार सुवर्ण की चोरी ॥ १२ ॥ उसी क्षण चौदसि तिथि में महालयश्राद्ध से नष्ट होजाती हैं और चांडाल व शूद्र की स्त्रियों के संगका दोष भी नाश होजाता है ॥ १३ ॥ और चौदसि में महालयश्राद्ध से हज़ार अश्वमेध व दशहज़ार पौंडरीक

कुर्यात्त्रयोदश्यांमहालयम् ॥ ६ ॥ सहस्रकल्पसाहस्रं प्रीणन्तिपितरोस्यवै ॥ सन्ततिंचाप्यविच्छिन्नां दद्युःपितृगणास्स दा ॥ १० ॥ चतुर्दश्यांनरोभक्त्या श्राद्धंकुर्यान्महालयम् ॥ तस्याभीष्टप्रदानाय जागर्तिभगवाञ्छिवः ॥ ११ ॥ उपदि श्यशिवज्ञानं सायुज्यंचददात्यपि ॥ सुरापानायुतंचापि स्वर्णस्तेयायुतंतथा ॥ १२ ॥ नश्यन्तितत्क्षणादेव चतुर्दश्यां महालयात् ॥ चण्डालवृषलस्त्रीणां सङ्गदोषोपिनश्यति ॥ १३ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य पौण्डरीकायुतस्यच ॥ पुष्क लाफलसिद्धिःस्याच्चतुर्दश्यांमहालयात् ॥ १४ ॥ योनकुर्याच्चतुर्दश्यां श्राद्धमेतन्महालयम् ॥ सकल्पकोटिसाहस्रं कल्पकोटिशतन्तथा ॥ १५ ॥ संसारान्धमहाकूपे पतितःस्यादनिष्कृतिः ॥ अचोरयित्वाकनकमपीत्वापिसुरांत था ॥ १६ ॥ सुरापानादिभिर्दोषैर्लिप्यतेसविमूढधीः ॥ कृताअपिविधानेन यज्ञास्स्युर्निष्फलास्तथा ॥ १७ ॥ चतुर्दश्यां तिथौयस्तु कुर्याच्छ्राद्धंमहालयम् ॥ लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानिच ॥ १८ ॥ कल्पानिपितरस्तस्य तृप्यन्त्ये

यज्ञों की बड़ीभारी फलकी सिद्धि होती है ॥ १४ ॥ और चौदसि तिथि में जो मनुष्य इस महालयश्राद्ध को नहीं करता है वह करोड़हज़ार कल्प व करोड़ सौ कल्प तक ॥ १५ ॥ संसाररूपी अन्धमहाकूप में गिरता है व उसका प्रायश्चित्त नहीं होताहै और सुवर्ण को न चुराकर व मदिरा को भी न पीकर ॥ १६ ॥ मूढबुद्धिवाला वह पुरुष मद्यपानादिक दोषों से युक्त होता है व विधिसे कियेहुए भी यज्ञ निष्फल होते हैं ॥ १७ ॥ व चौदसि तिथिमें जो मनुष्य महालयश्राद्ध को करता है उसके पितर लक्ष

कोटि हज़ार व लक्षकोटि सौकल्पतक निस्सन्देह तृप्तही रहते हैं और नरक में टिकेहुए भी पितर प्रसन्न होकर स्वर्ग को प्राप्त होते हैं॥ १८। १९ ॥ और पितरों के गण इसको सदैव अविनाशिनी सन्तान को देते हैं व अमावस तिथि में जो मनुष्य भक्ति से महालयश्राद्ध को करता है॥ २० ॥ उसके पितरोंकी अनन्ततृप्ति होती है इसमें सन्देह नहीं है और अमृत को पीकर स्वर्ग में देवताओं को जो तृप्ति होती है॥२१॥ वैसीही अनन्ततृप्ति अमावस में महालयश्राद्ध से होती है और महापुण्यवती अमावस पितरों व देवताओं से प्रणाम कीजाती है॥ २२ ॥ और यह उत्तम तिथि शांत व शिवजी को महाप्यारी है और उस अमावस को महालयश्राद्ध में उत्तम वेदवित्

वनसंशयः ॥ नरकस्थाश्चपितरः स्वर्गंयान्तिप्रहर्षिताः ॥ १९ ॥ सन्ततिंचाप्यविच्छिन्नां दद्युःपितृगणास्सदा ॥ अमायान्तुनरोभक्त्या श्राद्धंकुर्यान्महालयम् ॥ २० ॥ पितॄणांतस्यतृप्तिःस्यादनन्तानात्रसंशयः ॥ सुधामास्वाद्य यातृप्तिर्देवानांदिविवैभवेत् ॥ २१ ॥ अनन्तातादृशीतृप्तिरमावास्यांमहालयात् ॥ अमावास्यामहापुण्या पितृदेवन मस्कृता ॥ २२ ॥ शान्ताह्येषातुपरमा शिवस्यचमहाप्रिया ॥ तस्यांमहालयेश्राद्धे भोजयेद्वेदवित्तमान् ॥ २३ ॥ ते नतृप्तिःपितॄणांस्यादनन्तातुष्यतेशिवः ॥ ब्रह्महत्यादयःपञ्च पातकानाशमाप्नुयुः ॥ २४ ॥ कृताश्चस्युर्विधानेन सर्वे यज्ञाःसदक्षिणाः ॥ अनुष्ठितास्स्युर्विधिवत्सर्वेधर्माःसनातनाः ॥ २५ ॥ अमावास्यादिनेयेन कृतंश्राद्धंमहालयम् ॥ प्रत्यग्ब्रह्मैकतांज्ञात्वा सायुज्यंयात्यसंशयम् ॥ २६ ॥ योनकुर्यादमावास्यां महालयमचेतनः ॥ ब्रह्मलोकगताश्चास्य पितरोयान्तिनारकम् ॥ २७ ॥ सन्ततिश्चास्यमूढस्य विच्छिद्यतैवतत्क्षणात् ॥ सएवहिमहानर्थो यदमायान्तिथौ

ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये॥ २३ ॥ क्योंकि उससे पितरों की अनन्ततृप्ति होती है व शिवजी प्रसन्न होते हैं और ब्रह्महत्यादिक पांच पातक नाश को प्राप्त होते हैं॥ २४ ॥ और दक्षिणा समेत सब यज्ञ विधि से किये होते हैं व विधिपूर्वक सब सनातनधर्म कियेहुए होते हैं॥ २५ ॥ और अमावस के दिनमें जिसने महालयश्राद्ध को किया है वह सब ओर ब्रह्म की एकता को जानकर सायुज्य मोक्ष को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है॥ २६ ॥ और जो मूढ़बुद्धि मनुष्य अमावस तिथि में महालयश्राद्ध को नहीं करता है ब्रह्मलोक में प्राप्तभी इसके पितर नरक को प्राप्त होतेहैं॥ २७ ॥ और इस मूढ़की सन्तान उसी क्षण नाश होजाती है और वही बड़ाभारी

प्रयोजन है जोकि अमावस तिथिमें मनुष्य ॥ २८ ॥ महालयश्राद्ध के लिये द्विजेन्द्रोंको विधिपूर्वक भोजन कराते हैं और भादौं महीने में पितर देवता नाचते हैं ॥ २९ ॥ कि मेरे पुत्र हमलोगों को उद्देशकर उत्तम ब्राह्मणों को भोजन करावैंगे उससे हमलोगोंको भयंकर नरक का क्लेश न होगा ॥ ३० ॥ और जबतक चन्द्रमा व नक्षत्र रहैंगे तबतक स्वर्गलोक में निवास होगा पितरों को तृप्ति देनेवाले भादौं महीने में ॥ ३१ ॥ जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक एक एक ब्राह्मण को भोजन करावै तो उसके पिता व माता के वंश में उपजेहुए पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ और कृष्णपक्ष में विद्वान् विशेषकर तैलाभ्यंगपूर्वक घी व दालि आदिक अन्नों से ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ३३ ॥ तो

नरैः ॥ २८ ॥ महालयार्थेविप्रेन्द्रा विधिवच्चैवभोजिताः ॥ मासिभाद्रपदेप्राप्ते नृत्यन्तिपितृदेवताः ॥ २९ ॥ अस्मानु द्दिश्यमत्पुत्रा भोजयेयुर्द्विजोत्तमान् ॥ तेननोनरकक्लेशो नभविष्यतिदारुणः ॥ ३० ॥ वासश्चस्वर्गलोकेस्याद्यावदाच न्द्रतारकम् ॥ मासिभाद्रपदेप्राप्ते पितॄणांतृप्तिदायिनि ॥ ३१ ॥ एकैकंभोजयेद्विप्रं प्रत्यहंभक्तिपूर्वकम् ॥ पितृमातृकुलोद्भू ताः पितरस्तृप्तिमाप्नुयुः ॥ ३२ ॥ कृष्णपक्षेविशेषेण ब्राह्मणान्भोजयेत्सुधीः ॥ घृतसूपादिसस्यैश्च तैलाभ्यङ्गपुरःसर म् ॥ ३३ ॥ सुधांपास्यन्तिपितरस्तस्याकल्पंप्रहर्षिताः ॥ सप्तमींकृष्णपक्षस्य प्रारभ्यप्रत्यहंनरः ॥ ३४ ॥ विप्रान्यावद मावास्या त्रींस्त्रीनभ्यर्च्यभोजयेत् ॥ आरभ्यद्वादशींविप्रांस्त्रीनवश्यन्तुभोजयेत् ॥ ३५ ॥ अन्यथैश्वर्यहानिःस्यान्म हादारिद्र्यभाग्भवेत् ॥ वित्तलोभंपरित्यज्य विप्रान्सूपघृतादिभिः ॥ ३६ ॥ पयसापयसान्नेन दध्नापूपादिभिस्तथा ॥ पेयैर्लेह्यैश्चचोष्यैश्च भक्ष्यैश्चविविधैरपि ॥ ३७ ॥ भोजयेद्वेदविन्मुख्यांस्तृप्तिस्तेषांयथाभवेत् ॥ तेनब्रह्माहरिःशम्भुस्तृ

उसके पितर कल्पपर्यन्त प्रसन्नहोकर अमृत को पीते हैं और कृष्णपक्ष की सप्तमी से लगाकर प्रतिदिन मनुष्य ॥ ३४ ॥ अमावास्या तक तीन तीन ब्राह्मणों को पूजकर भोजन करावै और द्वादशी से लगाकर अवश्यकर तीन ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ३५ ॥ नहीं तो ऐश्वर्य की हानि होती है व दरिद्र का भागी होता है और द्रव्य के लोभ को छोड़कर ब्राह्मणों को दालि व घृतादिक से ॥ ३६ ॥ और दूध व खीर तथा दधि व पुवादिकों से और पीनेवाले, चाटनेवाले व चूंसनेवाले अनेकप्रकार के भोजनों से ॥३७॥

जिसप्रकार उनकी तृप्ति होवै उसप्रकार मुख्य वेदवित् ब्राह्मणों को भोजन करावै उससे ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी तृप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥ और अग्निष्वात्त आदिक पितर व इन्द्रादिक अधिदेवता तृप्त होते हैं व इस विषय में बहुत कहने से क्या है उससे त्रिलोक प्रसन्न होता है ॥ ३९ ॥ और पार्वणविधि से श्राद्ध में महालयश्राद्ध को करै व महालयश्राद्ध में मनुष्य पितृवंशवाले पितरों की नाईं ॥४०॥ कल्याण के लिये प्रसन्नता से मातृवंशवाले पितरों को भी भोजन करावै व धनके अनुसार यथाशक्ति दक्षिणा को देवै ॥ ४१ ॥ और उस महालयश्राद्ध में वित्तशाठ्य न करै और यज्ञों की यह दक्षिणा पहले गऊमें कहीगई है ॥४२॥ जैसे आगे जुतेहुए बैलों से रहित

प्तास्स्युर्नात्रसंशयः ॥ ३८ ॥ अग्निष्वात्तादिपितरस्तथैवेन्द्राधिदेवताः ॥ बहुनात्रकिमुक्तेन तुष्टन्तेनजगत्त्रयम् ॥ ३९ ॥ पार्वणेनविधानेन कुर्याच्छ्राद्धेमहालयम् ॥ नरोमहालयश्राद्धे पितृवंश्यान्पितॄनिव ॥ ४० ॥ मातृवंश्यानपिपितॄन्भोजयेच्छ्रेयसेमुदा ॥ दक्षिणांचयथाशक्ति दद्याद्वित्तानुसारतः ॥ ४१ ॥ तस्मिन्महालयेश्राद्धे वित्तशाठ्यंनकारयेत् ॥ दक्षिणाखलुयज्ञानां कथितेयंपुरोगवि ॥ ४२ ॥ अनःपुरोगवैर्हीनं नरिष्यतियथाध्वनि ॥ अदक्षिणंतथासोयं पितृयज्ञोपरिष्यति ॥ ४३ ॥ तस्माद्यज्ञेषुदातव्या दक्षिणाल्पाहिजानता ॥ विधवाभिरपिस्त्रीभिरपुत्राभिर्महालयः ॥ ४४ ॥ भर्तॄनुद्दिश्यकर्तव्यो भूरिभोजनकर्मणा ॥ अन्यथाधर्महानिःस्यान्नरकंचमहद्भवेत् ॥ ४५ ॥ मासिभाद्रपदेप्राप्ते योनकुर्यान्महालयम् ॥ तत्कुलंनाशमाप्नोति ब्रह्महत्यांश्चविन्दति ॥ ४६ ॥ महालयंप्रकुर्वन्ति श्रद्धावन्तःपितॄन्प्रति ॥ नतेषांसन्ततिच्छेदोभवेत्सम्पदभङ्गुरा ॥ ४७ ॥ आलयंह्यास्पदंप्रोक्तं महःकल्याणमुच्यते ॥ कल्याणानामास्पदत्वान्महा

गाड़ा मार्ग में नहीं चलता है वैसेही दक्षिणारहित यह पितृयज्ञ हीन होता है ॥ ४३ ॥ इसकारण जानते हुए मनुष्य को थोड़ी दक्षिणा भी देना चाहिये और पुत्रहीन विधवा भी स्त्रियों को महालयश्राद्ध ॥ ४४ ॥ पतियों को उद्देशकर बहुत भोजनके कर्म से करना चाहिये नहीं तो धर्म की हानि होती है व बड़ाभारी नरक होता है ॥ ४५ ॥ और भादौं महीना प्राप्त होनेपर जो महालयश्राद्ध को नहीं करता है उसका वंश नाशको प्राप्त होता है और वह ब्रह्महत्या को पाता है ॥ ४६ ॥ और पितरों में श्रद्धावान् जो पुरुष महालयश्राद्ध को करते हैं उनकी सन्तान का नाश नहीं होता है व लक्ष्मीनाश नहीं होती है ॥४७॥ आलय स्थान कहागया है व महः कल्याण कहाजाता है

और कल्याणों का आस्पद होने के कारण महालय कहाजाता है ॥ ४८ ॥ इसकारण कल्याण की सिद्धि के लिये मनुष्य महालय करै यदि महालय को नहीं करता है तो उसको अमंगल होता है ॥ ४९ ॥ और माता, पिता के क्षयाह में यद्यपि श्राद्ध को न करै तो स्मरण करताहुआ बुद्धिमान् मनुष्य महालयश्राद्ध को करै ॥ ५० ॥ यदि महालयश्राद्ध करने के लिये शक्ति न होवै तो मांगकर भी मनुष्य पितरों का महालयश्राद्ध करै ॥ ५१ ॥ उत्तम ब्राह्मणों से धन, धान्य की याचना करै परन्तु कभी पतितों से धन, धान्य को ग्रहण न करै ॥ ५२ ॥ यदि ब्राह्मणों से धान्य व धनादिक न मिलै तो महालयश्राद्ध के करने की इच्छा से श्रेष्ठ क्षत्रियों से याचना करै ॥ ५३ ॥

लयमुदीर्यते ॥ ४८ ॥ तस्मान्महालयंमर्त्यः कुर्यात्कल्याणसिद्धये ॥ अमङ्गलंभवेत्तस्य नकुर्याच्चेन्महालयम् ॥ ४९ ॥ नकुर्याद्यद्यपिश्राद्धं मातापित्रोर्मृतेहनि ॥ कुर्यान्महालयश्राद्धमस्मरन्नेवबुद्धिमान् ॥ ५० ॥ कर्तुंमहालयश्राद्धं यदिशक्तिर्नविद्यते ॥ याचित्वापिनरःकुर्यात्पितॄणांतन्महालयम् ॥ ५१ ॥ ब्राह्मणेभ्योविशिष्टेभ्यो याचेतधनधान्यकम् ॥ पतितेभ्योनगृह्णीयाद्धनधान्यंकदाचन ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणेभ्योनलभ्येत यदिधान्यधनादिकम् ॥ याचेतक्षत्रियश्रेष्ठान्महालयचिकीर्षया ॥ ५३ ॥ दातारश्चेन्नभूपाला वैश्येभ्योपिचयाचयेत् ॥ वैश्याअपिहिदातारो यदिलोकेनसन्तिवै ॥ ५४ ॥ दद्याद्भाद्रपदेमासे गोग्रासंपितृतृप्तये ॥ अथवारोदनंकुर्याद्बहिर्निर्गत्यकानने ॥ ५५ ॥ पाणिभ्यामुदरंस्वीय माहत्याश्रूणिवर्तयन् ॥ तेष्वरण्यप्रदेशेषु उच्चैरेवंवदेन्नरः ॥ ५६ ॥ शृण्वन्तुपितरःसर्वे मत्कुलीनावचोमम ॥ अहं दरिद्रःकृपणोनिर्लज्जःक्रूरकर्मकृत् ॥ ५७ ॥ प्राप्तोभाद्रपदोमासः पितॄणांप्रीतिवर्द्धनः ॥ कर्तुंमहालयश्राद्धं नचमेश

और राजालोग देनेवाले न होवैं तो वैश्यों से भी याचना करै व यदि संसार में वैश्य भी दाता न होवैं ॥ ५४ ॥ तो पितरों की तृप्ति के लिये भादौं महीने में गऊ को ग्रास देवै अथवा बाहर निकलकर वनमें रोदन करै ॥ ५५ ॥ आंसुवों को बहाताहुआ मनुष्य अपने पेट को हाथों से मारकर मनुष्य उन वन स्थानों में ऐसा कहै ॥ ५६ ॥ कि मेरे कुलवाले सब पितर मेरे वचन को सुनैं कि मैं दरिद्री, कृपण, निर्लज्ज व क्रूरकर्म को करनेवाला हूं ॥ ५७ ॥ और पितरों की प्रीति को बढ़ानेवाला भादौं महीना

प्राप्त हुआ परन्तु महालयश्राद्ध को करनेके लिये मेरे शक्ति नहीं है ॥ ५८ ॥ और सब पृथ्वी में घूमकर भी मुझको कुछ नहीं मिलता है इसकारण मैं तुमलोगों के महालयश्राद्ध को नहीं करता हूं ॥ ५९ ॥ तुमलोग मेरे उस कर्म को क्षमा करो क्योंकि आपलोग दयामें तत्पर हो इसप्रकार वनभूमियों में निर्धनी मनुष्य रोदन करै ॥ ६० ॥ उसके रोदन को सुनकर उसके वंश में उपजे हुए पितर प्रसन्न होकर अमृत को पीकर देवता की नाईं तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ६१ ॥ जिसप्रकार महालय के लिये विप्रवृंद के भोजन करनेपर तृप्ति होती है वैसेही गोग्रास व वनमें रोदनकरनेसे पितरों की तृप्ति होती है ॥ ६२ ॥ और भादौं महीने में यदि सूतकादिक से विघ्न

क्तिरस्तिवै ॥ ५८ ॥ बहित्वापिमहींकृत्स्नां नमेकिञ्चिल्लभ्यते ॥ अतोमहालयश्राद्धं नयुष्माकंकरोम्यहम् ॥ ५९ ॥ क्षमध्वंममतद्यूयं भवन्तोहिदयापराः ॥ दरिद्रोरोदनंकुर्यादेवंकाननभूमिषु ॥ ६० ॥ तस्यरोदनमाकर्ण्य पितरस्तत्कुलोद्भवाः ॥ हृष्टास्तृप्तिंप्रयान्त्येव सुधांपीत्वेवनिर्जराः ॥६१॥ महालयार्थेविप्रौघे भुक्तेतृप्तिर्यथाभवेत् ॥ गोग्रासारण्यरुदितैः पितृतृप्तिस्तथाभवेत् ॥ ६२ ॥ मासिभाद्रपदेविघ्नो यदिस्यात्सूतकादिना ॥ यातेषुसूतकाहस्सु कुर्यादावृश्चिकावधि ॥ ६३ ॥ बुधोमहालयस्यार्थे ब्राह्मणान्वृणुयान्नव ॥ पित्रर्थमेकंवृणुयात्पितामहकृतेतथा ॥ ६४ ॥ प्रपितामहमुद्दिश्य तथैकंवृणुयाद्द्विजम् ॥ तथामातामहार्थन्तु एकंवैवृणुयाद्द्विजम् ॥ ६५ ॥ मातुःपितामहार्थञ्च वृणुयाद्द्विजमेककम् ॥ वृणुयादेकमुद्दिश्य मातुश्चप्रपितामहम् ॥ ६६ ॥ तथैवविश्वेदेवार्थे वृणुयाद्द्वौद्विजोत्तमौ ॥ विष्ण्वर्थंब्राह्मणंत्वेकं वृणुयाद्वेदवित्तमम् ॥ ६७॥ एवंमहालयश्राद्धे ब्राह्मणान्वृणुयान्नव ॥ अथवापितृवर्गार्थे वरयेद्विप्रमेककम् ॥ ६८ ॥

होवै तो सूतक के दिन व्यतीत होनेपर वृश्चिक की अवधि तक श्राद्धको करै ॥६३॥ और महालय के लिये विद्वान् नव ब्राह्मणों को वरण करै एकको पिताके लिये वैसेही एक को पितामह के लिये वरण करै ॥ ६४ ॥ और एक ब्राह्मण को प्रपितामह का उद्देश कर वरणकरै वैसेही मातामह (नाना) के लिये एक ब्राह्मण को वरण करै ॥६५॥ और माता के पितामह के लिये एक ब्राह्मण को वरण करै और माता के प्रपितामह को उद्देशकर एक ब्राह्मण को वरण करै ॥ ६६ ॥ वैसेही विश्वेदेव के लिये दो ब्राह्मणों का वरण करै व वेदविदों में श्रेष्ठ एक ब्राह्मण को विष्णु के लिये वरण करै ॥ ६७ ॥ इसप्रकार महालयश्राद्ध में नव ब्राह्मणों को वरण करै अथवा पितरगणों के लिये एक

ब्राह्मण को वरण करै ॥ ६८ ॥ और मातामहादिकों को उद्देशकर एक ब्राह्मण को वरणकरै और एक विश्वेदेवा के लिये व एक विष्णुजी के लिये वरणकरै ॥ ६९ ॥ इसप्रकार महालयश्राद्ध में चार ब्राह्मणों को वरणकरै विद्वान् वेद से संपन्न व सुशील ब्राह्मणों को वरण करै ॥ ७० ॥ और जो दुःशील ब्राह्मणों को वरण करता है वह श्राद्ध का घातकहै व भादौं महीने में विशेषकर कृष्णपक्ष में ॥ ७१ ॥ जो मनुष्य श्रद्धा समेत महालयश्राद्ध को करता है हे महामते, दुराचार ! वह सब तीर्थों में नहाचुका ॥ ७२ ॥ और इसने अग्निष्टोमादिक सौ यज्ञों को किया व तुलापुरुष आदिक दानों को भी किया ॥ ७३ ॥ व उसने निस्सन्देह चांद्रायणादिक कृच्छ्रव्रतों को

एवंवैवरयेद्विप्रांश्चतु मातामहादीन्वोद्दिश्य वरयेद्विप्रमेककम् ॥ विश्वेदेवार्थमेकञ्च विष्ण्वर्थञ्चतथापरम् ॥ ६९ ॥ रस्तुमहालये ॥ ब्राह्मणान्वेदसम्पन्नान्सुशीलान्वरयेत्सुधीः ॥ ७० ॥ दुःशीलान्वरयेद्यस्तु सवैश्राद्धस्यघातकः ॥ मासिभाद्रपदेप्राप्ते कृष्णपक्षेविशेषतः ॥ ७१ ॥ कुर्यान्महालयश्राद्धं योनरःश्रद्धयासह ॥ सस्नातःसर्वतीर्थेषु दुराचार महामते ॥ ७२ ॥ अग्निष्टोमादयोयज्ञाः शतमप्यमुनाकृताः ॥ तुलापुरुषमुख्यानि दानान्यपिकृतानिवै ॥ ७३ ॥ चा न्द्रायणादिकृच्छ्राणि कृतान्येवनसंशयः ॥ चतुर्णांसाङ्गवेदानां पारायणफलंलभेत् ॥ ७४ ॥ गायत्र्यादिमहामन्त्र जपपुण्यंलभेत्तथा ॥ इतिहासपुराणानां पारायणफलंलभेत् ॥ ७५ ॥ महालयसमंपुण्यं वृत्तंनास्तिमहीतले ॥ ब्रह्म विष्णुमहेशानलोकप्राप्तिर्महालयात् ॥ ७६ ॥ महालयादिकंश्राद्धं नित्यंकाम्यमपीष्यते ॥ तस्मादकरणेतस्य प्रत्य वायोमहान्भवेत् ॥ ७७ ॥ करणादिष्टसिद्धिश्च भविष्यतिनसंशयः ॥ महालयस्यकरणाद्भूतवेतालकादयः ॥ ७८ ॥

किया और वह अंगों समेत चारो वेदों के पारायण फल को पाता है ॥ ७४ ॥ व गायत्री आदिक महामन्त्रों के जपके पुण्य को पाता है व इतिहास और पुराणों के पारायण के फल को पाता है ॥ ७५ ॥ पृथ्वी में महालय के समान पुण्य नहीं है और महालय से ब्रह्मा, विष्णु व शिवजीके लोक की प्राप्ति होती है ॥ ७६ ॥ और महालयादिक श्राद्ध नित्य व काम्य भी कहाजाता है उसी कारण उसके न करने में बड़ाभारी प्रायश्चित्त होता है ॥ ७७ ॥ और करने से निस्सन्देह मनोरथ की सिद्धि

होगी और महालय के करने से भूत व वेतालादिक ॥ ७८ ॥ और अपस्मार व ग्रह भी तथा शाकिनी व डाकिनीगण और राक्षस, पिशाच व भयंकर वेताल ॥ ७९ ॥ व अन्य भूत उसी क्षण नाश होजाते हैं और महालय के करने से मनुष्य बहुत लक्ष्मीको भोगता है ॥ ८० ॥ पुरातन समय वसिष्ठ के उपदेश से राजा दशरथ ने भादौं महीने में महालयश्राद्ध करके ॥ ८१ ॥ लोकों के संमत रामादिक चार पुत्रों को पायाहै और सबसे अधिक लक्ष्मी व उत्तम यश को पाया है ॥ ८२ ॥ और महालय के करने से नृपश्रेष्ठ ययाति ने वंश को बढ़ानेवाले यदु हैं मुख्य जिनमें उन महापुत्रोंको पाया है ॥ ८३ ॥ व श्राद्ध के पुण्य से जो अन्य पुरुष को दुर्लभ है उस स्वर्ग को

अपस्मारग्रहाश्चापि शाकिनीडाकिनीगणाः ॥ यातुधानाःपिशाचाश्च वेतालाश्चभयानकाः ॥ ७९ ॥ नश्यन्तितत्क्षणादेव भूतान्यन्यानिवैतथा ॥ महालयस्यकरणाद्विपुलांश्रियमश्नुते ॥ ८० ॥ पुरादशरथोराजा वसिष्ठस्योपदेशतः ॥ मासिभाद्रपदेप्राप्ते कृत्वाश्राद्धंमहालयम् ॥ ८१ ॥ रामादींश्चतुरःपुत्रान्प्राप्तवाँल्लोकसम्मतान् ॥ विश्वातिशायिनींलक्ष्मींप्रपेदेकीर्तिमुत्तमाम् ॥ ८२ ॥ महालयस्यकरणाद्ययातीराजसत्तमः ॥ यदुमुख्यान्महापुत्रान्प्रपेदेवंशवर्द्धनान् ॥ ८३ ॥ अनन्यदुर्लभंस्वर्गं प्रपेदेश्राद्धपुण्यतः ॥ दुष्यन्तोभरतंलेभे महालयविधानतः ॥ ८४ ॥ महालयविधानेन दमयन्तीपतिर्नलः ॥ कृच्छ्रंमहत्तरंतीर्त्वा पुनर्लेभेमहीमिमाम् ॥ ८५ ॥ निजग्राहकलिंघोरं पुष्करंचाप्यरातिनम् ॥ इन्द्रसेनाभिधानञ्च पुत्रंलेभेतिधार्मिकम् ॥ ८६ ॥ हरिश्चन्द्रोमहाराजो महालयविधानतः ॥ विश्वामित्रकृताद्दुःखान्मुक्तःसत्यवतांवरः ॥ ८७ ॥ लेभेचन्द्रवतींभार्यां लोहिताश्वंसुतंपुनः ॥ महालयविधानेन कृतवीर्यसुतोबली ॥ ८८ ॥ अष्टादशा

पाया और महालय के करने से दुष्यन्त ने भरतपुत्र को पाया है ॥ ८४ ॥ और महालय के करने से दमयन्ती के पति नल ने बड़ेभारी क्लेश को उल्लंघन कर फिर इस पृथ्वी को पाया है ॥ ८५ ॥ और भयंकर कलि को व पुष्कर शत्रु को दंड दिया तथा बड़े धर्मवान् इन्द्रसेन नामक पुत्रको पाया है ॥ ८६ ॥ और सत्यवानों में श्रेष्ठ महाराज हरिश्चन्द्र विश्वामित्र से कियेहुए दुःख से छूटे हैं ॥ ८७ ॥ और चन्द्रवती स्त्री व फिर लोहिताश्व पुत्र को प्राप्तहुए हैं व महालय के करने से कृतवीर्य के पुत्र बलवान्

कार्तवीर्य ने ॥ ८८ ॥ अठारहों द्वीपों की स्वामिता को पाया है और श्रीरामचन्द्र नेभी दंडकवन में महालयके करने से ॥ ८९ ॥ युद्ध में रावण को मारकर फिर सीता को पाया हैं और धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने महालय के करने से ॥ ९० ॥ दुःख के समुद्रको उतरकर धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारा है और महालय के करने से मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ जी ॥ ९१ ॥ व अत्रि, भृगु, कुत्स, गौतम व अंगिरा और काश्यप, भरद्वाज, विश्वामित्र व अगस्तिजी ॥ ९२ ॥ तथा पराशर, मृकंड व जो अन्य मुनिश्रेष्ठ हैं वे विधिः पूर्वक अति उत्तम महालयश्राद्ध करके ॥ ९३ ॥ अणिमादिक आठों सिद्धियों व व्रतों और तपों के निवासभूत तथा सबसे अधिक हुए हैं ॥ ९४ ॥ और वे सब मुनिश्रेष्ठ

नांद्वीपानामाधिपत्यमवाप्तवान् ॥ रामोपिदण्डकारण्ये महालयविधानतः ॥ ८९ ॥ हत्वातुरावणंसंख्ये सीतांपुनर वाप्तवान् ॥ महालयस्यकरणाद्धर्मपुत्रोयुधिष्ठिरः ॥ ९० ॥ दुःखसागरमुत्तीर्य धार्तराष्ट्राञ्जघानच ॥ महालयस्यकरणाद्व सिष्ठोमुनिसत्तमः ॥ ९१ ॥ अत्रिर्भृगुश्चकुत्सश्च गौतमश्चाङ्गिरास्तथा ॥ काश्यपश्चभरद्वाजो विश्वामित्रश्चकुम्भजः॥९२॥ पराशरोमृकण्डश्च येचान्येमुनिसत्तमाः ॥ विधायविधिवच्छ्राद्धं महालयमनुत्तमम् ॥ ९३ ॥ अणिमाद्यष्टसिद्धीनां व्रतानांतपसांतथा ॥ निवासभूताःसञ्जातास्तथाविश्वातिशायिनः ॥ ९४ ॥ जीवन्मुक्ताश्चतेसर्वे ह्यभवन्मुनिसत्तमाः ॥ अतोमहालयश्राद्धं कर्तव्यंभूतिमिच्छता ॥ ९५ ॥ अतोद्यापिदुराचार नकुर्याद्योमहालयम् ॥ भूतवेतालकादिभ्यो भूयात्तस्यमहद्भयम् ॥ ९६ ॥ महालयस्याकरणाद्वेतालत्वमवाप्नुयात् ॥ तवाविष्टमिदंभूतं विप्रःसपूर्वजन्मनि ॥ ९७॥ नाम्नावेदनिधिःपुण्यो भरद्वाजस्यचात्मजः ॥ कुशस्थल्यभिधानेच वसन्ग्रामेमहात्मनः ॥ ९८ ॥ नचकारविधानेन

जीवन्मुक्त हुए हैं इसकारण ऐश्वर्य को चाहनेवाले पुरुष को महालयश्राद्ध करनाचाहिये ॥ ९५ ॥ इस कारण हे दुराचार ! आज भी जो मनुष्य महालयश्राद्ध को नहीं करता है उसको भूतों व वेतालादिकों से बड़ा डर होता है ॥ ९६ ॥ और महालय के न करने से मनुष्य वेतालता को प्राप्त होता है यह जो भूत तुम में पैठाथा पहले जन्म में वह ब्राह्मण था ॥ ९७ ॥ और भरद्वाज महात्मा का पुत्र वेदनिधि नामक यह पुण्यरूप था व कुशस्थली नामक ग्राम में बसतेहुए इसने ॥ ९८ ॥ विधि से इस

महालयश्राद्ध को नहीं किया उसी कारण पितरों के शापसे यह वेतालता को प्राप्तहुआ ॥ ९९ ॥ उसी कारण हे दुराचार ! भादौं महीने में पितरों के लिये भक्ति समेत छवों रसवाले अन्नसे ब्राह्मणों को भोजन करावो ॥२००॥ उससे तुम्हारे दरिद्रता न होगी और आप सुखी होगे व इसके उपरान्त महापापियों का संसर्ग मत कीजिये ॥१॥ क्योंकि तुमने वेताल के पकड़ने से उपजेहुए दुःख को भोग किया है मैं आज्ञा देता हूं कि तुम शीघ्रही अपने देश को जावो ॥ २ ॥ दत्तात्रेय योगी मुनि से ऐसा कहा हुआ वह दुराचार उनको प्रणामकर प्रसन्नचित्त से देशको चलागया ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! पातकरूपी कवच से रहित वह दुराचार ब्राह्मण अपने घरको जाकर वेताल

श्राद्धमेतन्महालयम् ॥ ततोयंपितॄणांशापाद्वेतालत्वमवाप्तवान् ॥ ९९ ॥ तस्माद्भाद्रपदेमासे दुराचारपितॄन्प्रति ॥ ब्राह्मणान्भोजयान्नेन षड्रसेनसभक्तिकम् ॥ २०० ॥ दारिद्र्यंतेननतेनस्यात्सुखीचैवभवान्भवेत्॥ महापातकिसंसर्गं माकुरु त्वमितःपरम् ॥ १ ॥ त्वयानुभूतंयद्दुःखं वेतालग्रहणोद्भवम् ॥ गच्छत्वमनुजानामि स्वदेशंप्रतिमाचिरम् ॥ २ ॥ इतीरितःसमुनिना दत्तात्रेयेणयोगिना ॥ तंप्रणम्यययौदेशं कृतार्थेनान्तरात्मना ॥ ३ ॥ गत्वाचस्वगृहंविप्रो दुराचारो द्विजोत्तमाः ॥ विमुक्तवेतालभयो गतपातककञ्चुकः ॥ ४ ॥ दत्तात्रेयेरितेनासौ मार्गेणप्रीतमानसः ॥ त्यक्तपातकिसंसर्गः स्वाश्रमाचारतत्परः ॥ ५ ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटितीर्थमज्जनगौरवात् ॥ देहान्तेपरमांमुक्तिं दुराचारोययौतदा ॥६॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवंवःकथितंपुण्यं दुराचारविमोक्षणम् ॥ सेयंपुण्याधनुष्कोटिर्महापातकनाशिनी ॥ ७ ॥ यत्रहिस्नानमात्रेण दुराचारोविमोचितः ॥ अथवाधनुषःकोटेरियत्ताकिंहिवैभवम् ॥ ८ ॥ यानिष्कृतिविहीनानि पापान्यपिवि

के डरसे छूटगया ॥ ४ ॥ और दत्तात्रेय से कहेहुए मार्ग से प्रसन्नमनवाला वह दुराचार पापियों का संग छोड़कर अपने आश्रम के आचार में तत्पर हुआ ॥ ५ ॥ और रामचन्द्र के धनुष्कोटितीर्थ में स्नान के गौरव से उससमय दुराचार देहान्त में उत्तममुक्ति को प्राप्तहुआ ॥ ६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि तुमलोगों से इसप्रकार पवित्र दुराचार की मुक्ति कहीगई महापापों को नाश करनेवाली वही यह पवित्र धनुष्कोटि है ॥ ७ ॥ कि जिसमें स्नानमात्र से दुराचार मुक्त होगया अथवा धनुष्कोटि का इतना

ऐश्वर्य क्या है ॥ ८ ॥ जो कि प्रायश्चित्तों से रहित भी पापों को नाश करती है जो पाप प्रायश्चित्त से रहित हैं ॥ ९ ॥ वेभी इस धनुष्कोटि में नहाने से नाश होजाते हैं और शूद्र से पूजेहुए लिंग या विष्णुजी को जो प्रणाम करता है ॥ १० ॥ उसका प्रायश्चित्त स्मृतियों व महर्षियों से नहीं कहागया है और उसका वह पाप धनुष्कोटि में नहाने से नाश होजाता है ॥ ११ ॥ और ब्राह्मण की निन्दा करनेवाले मनुष्यों का प्रायश्चित्त नहीं है व विश्वासघाती पुरुषों का प्रायश्चित्त नहीं है ॥ १२ ॥ और भाई की स्त्री से संग करनेवाले लोगों का प्रायश्चित्त नहीं है व शूद्र के अन्न में नियत तथा वेदनिन्दा में लगेहुए पुरुषों का प्रायश्चित्त नहीं है ॥ १३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! कन्या बेंचने

॥ ९ ॥ तान्यप्यत्रविनश्यन्ति धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ शूद्रे नाशयेत् ॥ प्रायश्चित्तविहीनानि यानिपापानिसन्तिवै ॥ ९ ॥ नश्येत्तस्यापितत्पापं धनु णपूजितंलिङ्गं विष्णुंवायोनमेद्द्विजः ॥ १० ॥ प्रायश्चित्तंनतस्योक्तं स्मृतिभिःपरमर्षिभिः ॥ नश्येत्तस्यापितत्पापं धनुष्कोटिनिमज्जनात् ॥ ११ ॥ विप्रनिन्दाकृतांनृणां प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ विश्वासघातकानाञ्च कृतघ्नानांननिष्कृतिः ॥ १२ ॥ भ्रातृभार्यारतानाञ्च प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ शूद्रान्नेनियतानाञ्च श्रुतिनिन्दारतात्मनाम् ॥ १३ ॥ कन्याविक्रयिणांविप्रा हयविक्रयिणान्तथा ॥ देवविक्रयिणांवेदविक्रयेनिरतात्मनाम् ॥ १४ ॥ धर्मविक्रयिणांपुंसां वृत्तिविक्रयिणान्तथा ॥ तीर्थविक्रयिणांपुंसां प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ १५ ॥ तेषांपापानिनश्यन्ति धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ विष्णुनिन्दापराणाञ्च शिवनिन्दारतात्मनाम् ॥ १६ ॥ गुरुनिन्दापराणाञ्च प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ तेषांचात्रधनुष्कोटौ स्नानाच्छुद्धिर्भविष्य मातृद्रोहपितृद्रोहयतिद्रोहरतात्मनाम् ॥ सत्कथादूषकाणाञ्च प्रायश्चित्तंनविद्यते ॥ यतिनिन्दारतात्मनाम् ॥ १७ ॥

और धर्म को बेंचनेवाले व पयों को बेंचनेवाले पुरुषों का वाले तथा घोड़े बेंचनेवाले और देवताओं को बेंचनेवाले व वेद को बेंचनेवाले लोगों का प्रायश्चित्त नहीं है ॥ १४ ॥ और धर्म को बेंचनेवाले व पयों को बेंचनेवाले पुरुषों का तथा तीर्थ बेंचनेवाले पुरुषों का प्रायश्चित्त नहीं है ॥ १५ ॥ और उन मनुष्यों के पाप धनुष्कोटि में नहाने से नाश होजाते हैं और मातृद्रोह व पितृद्रोह तथा संन्यासियों के द्रोह में लगेहुए चित्तवाले लोगों का और विष्णुजी की निन्दा में परायण तथा शिवनिन्दा में निरत चित्तवाले लोगों का प्रायश्चित्त नहीं है ॥ १६ ॥ और गुरुओं की निन्दा में परायण व यतियों की निन्दा में लगेहुए मनवाले मनुष्यों का प्रायश्चित्त नहीं है ॥ १७ ॥ और उत्तम कथा को दूषनेवाले लोगों का प्रायश्चित्त नहीं है और

इस धनुष्कोटि में उनके नहाने से शुद्धि होगी ॥१८॥ हे ब्राह्मणो ! तुमलोगों से इसप्रकार धनुष्कोटि का प्रभाव कहागया कि जिसको सुनकर पृथ्वी में मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ २१९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां धनुष्कोटिप्रशंसायां दुराचारसंसर्गदोषशान्तिर्नामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

दो० । चक्रतीर्थ के ढिग यथा क्षीरकुंड इमि नाम । भयो तीर्थ सैंतीस में सोइ कथा अभिराम ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे नैमिषारण्यवासियो, सब तपस्वियो ! मैंने इस समय चक्रतीर्थ से लगाकर रामजीकी धनुष्कोटि पर्यन्त चौबीस तीर्थों को तुमलोगों से कहा इसके उपरान्त तुमलोग फिर अन्य क्या अद्भुत चारित्र सुनना चाहते

ति ॥ १८ ॥ एवंवःकथितंविप्रा धनुष्कोटेस्तुवैभवम् ॥ यच्छ्रुत्वासर्वपापेभ्यो मुच्यतेमानवोभुवि ॥ २१९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्ये धनुष्कोटिप्रशंसायांदुराचारसंसर्गदोषशान्तिर्नामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ भोभोस्तपोधनाःसर्वे नैमिषारण्यवासिनः ॥ या वद्रामधनुष्कोटिं चक्रतीर्थमुखानिवः ॥ १ ॥ चतुर्विंशतितीर्थानिं कथितानिमयाधुना ॥ इतोन्यमद्भुतंयूयं किंभूयःश्रोतुमिच्छथ ॥ २ ॥ मुनय ऊचुः ॥ क्षीरकुण्डस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामहेमुने ॥ यत्समीपेत्वयाचक्रतीर्थमित्युदितंपुरा ॥ ३ ॥ क्षीरकुण्डञ्चतत्कुत्र कीदृशंतस्यवैभवम् ॥ क्षीरकुण्डमितिख्यातिः कथंवास्यसमागता ॥ ४ ॥ एतन्नःश्रद्दधानानां विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥ श्रीसूत उवाच ॥ ब्रवीमिमुनयःसर्वे शृणुध्वंसुसमाहिताः ॥५॥ देवीपुरान्महापुण्यात्प्रतीच्यांदिश्यदूरतः ॥ फुल्लग्राममितिख्यातं स्थानमस्तिमहत्तरम् ॥६॥ यतआरभ्यरामेण सेतुबन्धोमहार्णवे ॥ तद्धिपुण्यतमंक्षेत्रं फुल्लग्रामाभिधंपुरम् ॥ ७ ॥ क्षीरकुण्डन्तु

हो ॥ १ । २ ॥ मुनिलोग बोले कि हे मुने ! हमलोग क्षीरकुण्ड का माहात्म्य सुनाचाहते हैं कि जिसके समीप पहले तुमने चक्रतीर्थ ऐसा कहा है ॥ ३ ॥ वह क्षीरकुंड कहां है और उसका कैसा प्रभाव है और इसका क्षीरकुंड ऐसा नाम कैसे हुआ ॥ ४ ॥ इसको तुम श्रद्धावान् हमलोगों से कहने के योग्यहो श्रीसूतजी बोले कि हे सब मुनियो ! मैं कहताहूं तुमलोग सावधान होकर उसको सुनो ॥ ५ ॥ कि महापवित्र देवीपुर से समीपही पश्चिम दिशा में फुल्लग्राम ऐसा प्रसिद्ध बड़ाभारी स्थान है ॥ ६ ॥ जहांसेलगाकर श्रीरामजी ने महासागर में सेतुको बांधा है वह फुल्लग्राम नामक नगर अत्यन्त पवित्र क्षेत्र है ॥ ७ ॥ और वहींपर महापातकों को नाशनेवाला क्षीर-

कुंड है वह दर्शन, स्पर्श, ध्यान और कीर्तन से मोक्ष को देता है ॥ ८ ॥ उस पवित्रतीर्थ की क्षीरकुंड ऐसी प्रसिद्धि को आपलोगों से मैं आदर समेत कहताहूं श्रद्धा समेत सुनिये ॥ ९ ॥ पुरातन समय वेदोक्तमार्ग को करनेवाले मुद्गल नामक मुनि दक्षिणसमुद्र के किनारे अतिपवित्रकारक फुल्लग्राम में हुए हैं ॥ १० ॥ उन्होंने विष्णुजी को प्रसन्न करनेवाले उत्तम यज्ञको किया है और उसके ऊपर प्रसन्नचित्तवाले विष्णुजी यज्ञ से प्रसन्न हुए ॥ ११ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! यज्ञवाट में आगे प्रकटहुए मुद्गलजीने लक्ष्मी से शोभित शरीरवाले उन विष्णुजीको देखकर ॥ १२ ॥ व कान्ति से काले मेघों के समान शरीरवाले और पीताम्बर से शोभित तथा विनतापुत्र (गरुड़)

तत्रैव महापातकनाशनम् ॥ दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानात्कीर्तनाच्चापिमोक्षदम् ॥ ८ ॥ तस्यतीर्थस्यपुण्यस्य क्षीरकुण्डमितिप्रथाम् ॥ भवतांसादरंवक्ष्ये शृणुध्वंश्रद्धयासह ॥ ९ ॥ पुराहिमुद्गलोनाम मुनिर्वेदोक्तमार्गकृत ॥ दक्षिणाम्बुनिधेस्तीरे फुल्लग्रामेतिपावने ॥ १० ॥ नारायणप्रीतिकरमकरोद्यज्ञमुत्तमम् ॥ तस्यविष्णुःप्रसन्नात्मा यागेनपरितोषितः ॥ ११ ॥ प्रादुर्बभूवपुरतो यज्ञवाटेद्विजोत्तमाः ॥ तंदृष्ट्वामुद्गलोविष्णुं लक्ष्मीशोभितविग्रहम् ॥ १२ ॥ कालमेघतनुंकान्त्या पीताम्बरविराजितम् ॥ विनतानन्दनारूढं कौस्तुभालंकृतोरसम् ॥ १३ ॥ शङ्खचक्रगदापद्मराजद्बाहुचतुष्टयम् ॥ भक्त्यापरवशोदृष्ट्वा पुलकाङ्कुरमण्डितः ॥ १४ ॥ मुद्गलःपरितुष्टाव शब्दैःश्रोत्रसुखावहैः ॥ मुद्गल उवाच ॥ प्रथमंजगतःस्रष्ट्रे पालकायततःपरम् ॥ १५ ॥ संहर्त्रेचततःपश्चान्नमोनारायणायते ॥ नमःशफररूपाय कमठायचिदात्मने ॥ १६ ॥ नमोवराहवपुषे नमःपञ्चास्यरूपिणे ॥ वामनायनमस्तुभ्यं जमदग्निसुतायते ॥ १७ ॥ राघवाय

के ऊपर सवार व कौस्तुभमणि को वक्षस्थल में पहने हुए ॥ १३ ॥ व शंख, चक्र, गदा व पद्म से शोभित चार भुजाओंवाले विष्णुजी को भक्ति से विवश व रोमांच के अंकुरों से शोभित मुद्गलजीने देखकर कानों को सुखदायक शब्दों से स्तुति किया मुद्गलजी बोले कि पहले संसारको रचनेवाले तदनन्तर पालन करनेवाले आप के लिये प्रणाम है ॥ १४ । १५ ॥ उसके पश्चात् संहार करनेवाले आप नारायण के लिये नमस्कार है व मछलीरूपवाले तथा कच्छपरूपी चैतन्यात्मा के लिये प्रणाम है ॥ १६ ॥ व वराह शरीरवाले के लिये नमस्कार है तथा सिंहरूपी के लिये प्रणाम है व वामनरूपी आप के लिये प्रणाम है तथा जमदग्निपुत्र याने परशुरामरूपी आप

के लिये नमस्कार है ॥ १७ ॥ व श्रीरामचन्द्ररूपी आप के लिये प्रणाम है तथा बलभद्ररूपी तुम्हारे लिये नमस्कार है और कृष्ण व विज्ञानरूपी तथा कल्किरूपधारी तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ १८ ॥ हे दयासिन्धो, नारायण, जगदीश ! तुम मेरी रक्षाकरो व निर्लज्ज, कृपण, क्रूर, चुगुल, पाखण्डी व दुर्बल ॥ १९ ॥ और पराई स्त्री, पराये धन व पराये क्षेत्र में केवल लोभवाले तथा ईर्षा से संयुत चित्तवाले मेरी हे हरे ! दया से रक्षा कीजिये ॥ २० ॥ हे द्विजोत्तमो ! मुद्गलजी से इसप्रकार साक्षात् स्तुति कियेहुए विष्णुजीने मेघके समान गम्भीरवाणी से उन मुद्गल मुनिसे कहा ॥ २१ ॥ विष्णुजी बोले कि हे मुद्गल ! तुम्हारे यज्ञ से व इस स्तोत्र से मैं प्रसन्न हूं

नमस्तुभ्यं बलभद्रायतेनमः ॥ कृष्णायकल्कयेतुभ्यं नमोविज्ञानरूपिणे ॥ १८ ॥ रक्षमांकरुणासिन्धो नारायणजगत्पते ॥ निर्लज्जंकृपणंक्रूरं पिशुनन्दाम्भिकंकृशम् ॥ १९ ॥ परदारपरद्रव्यपरक्षेत्रैकलोलुपम् ॥ असूयाविष्टमनसं मांरक्षकृपयाहरे ॥ २० ॥ इतिस्तुतोहरिःसाक्षान्मुद्गलेनद्विजोत्तमाः ॥ तमाहमुद्गलमुनिं मेघगम्भीरयागिरा ॥ २१ ॥ हरिरुवाच ॥ प्रीतोस्म्यनेनस्तोत्रेण मुद्गलक्रतुनाचते ॥ प्रत्यक्षेणहविर्भोक्तुमहन्तेक्रतुमागतः ॥ २२ ॥ इत्युक्तेहरिणातत्र मुद्गलस्तुष्टमानसः ॥ उवाचाधोक्षजंविप्रो भक्त्यापरमयायुतः ॥ २३ ॥ मुद्गल उवाच ॥ कृतार्थोस्मिहृषीकेश पत्नीमेधन्यतांययौ ॥ अद्यमेसफलंजन्म ह्यद्यमेसफलंतपः ॥ २४ ॥ अद्यमेसफलोवंशो ह्यद्यमेसफलास्सुताः ॥ आश्रमःसफलोद्यैव सर्वंसफलमद्यमे ॥ २५ ॥ यद्भवान्यज्ञवाटम्मे हविर्भोक्तुमिहागतः ॥ योगिनोयोगनिरता हृदयेमृगयन्तियम् ॥ २६ ॥ तमद्यसाक्षात्त्वांपश्ये सफलोयंममक्रतुः ॥ इतीरयित्वातंविष्णुमर्चयित्वासनादिभिः ॥ २७ ॥ चन्दनैःकुसुमैरन्यैर्दत्त्वा

और मैं प्रत्यक्ष से हव्य को भोजन करने के लिये तुम्हारे यज्ञको आयाहूं ॥ २२ ॥ विष्णुजीसे ऐसा कहने पर प्रसन्नमनवाले व बड़ी भक्ति से संयुत मुद्गल विप्रजी विष्णुजीसे बोले ॥ २३ ॥ मुद्गलजी बोले कि हे हृषीकेश ! मैं कृतार्थ होगयाहूं और मेरी स्त्री धन्यता को प्राप्तहुई आज मेरा जन्म सफल होगया और आज मेरा तप सफल होगया ॥ २४ ॥ व आज मेरा वंश सफल हुआ और आज मेरे पुत्र सफल हुए व आजही आश्रम सफल हुआ और आज मेरा सब सफल होगया ॥ २५ ॥ जो कि आप मेरी हव्य को भोजनकरने के लिये यहां यज्ञवाट को आये योग में लगेहुए योगीलोग जिनको हृदय में देखते हैं ॥ २६ ॥ उन्हीं तुमको मैं साक्षात् इस समय

देखता हूं यह मेरा यज्ञ सफल होगया उन विष्णुजीसे यह कहकर व आसनादिकोंसे पूजकर ॥ २७ ॥ चन्दन व अन्य फूलों से पूजकर उन मुद्गलजीने विष्णुजी के लिये अर्घ्य को देकर प्रीति से पुरोडाशादिक हवि को विष्णुजीके लिये दिया ॥ २८॥ और लोकों को उपजानेवाले विष्णुजीने आपही हाथ से लेकर उस मुद्गलसे दीहुई उस हव्य को भोजन किया ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मणो ! समर्थवान् विष्णुजीसे उस हव्यके भोजन करनेपर अग्निसमेत सब देवता तृप्त होगये ॥३०॥ और ऋत्विज, यजमान और वहांके ब्राह्मण तृप्त होगये व इस मनुष्यलोकमें जो कुछ चर या अचर था ॥३१॥ वह सब संसार विष्णुजीसे हव्य के भोजन करनेपर तृप्त होगया तदनन्तर प्रसन्नचित्तवाले

चार्घ्यंसविष्णवे ॥ प्रददौविष्णवेप्रीत्या पुरोडाशादिकंहविः ॥ २८ ॥ स्वयमेवसमादाय पाणिनालोकभावनः ॥ हविस्त द्बुभुजेविष्णुर्मुद्गलेनसमर्पितम् ॥ २९ ॥ तस्मिन्हविषिभुक्तेतु विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ साग्नयस्त्रिदशाःसर्वे तृप्ताःसमभ वन्द्विजाः ॥ ३० ॥ ऋत्विजोयजमानश्च तत्रत्याब्राह्मणास्तथा ॥ यत्किञ्चित्प्राणिलोकेस्मिंश्चरंवायदिवाचरम् ॥ ३१ ॥ सर्वमेवजगत्तृप्तं भुक्तेहविषिविष्णुना ॥ ततोहरिःप्रसन्नात्मा मुद्गलंप्रत्यभाषत ॥ ३२ ॥ प्रीतोहंवरदोस्म्येष वरंवरयसुव्र त ॥ इत्युक्तेकेशवेनाथ महर्षिस्तमभाषत ॥ ३३ ॥ यत्त्वयामेहविर्भुक्तं यागेप्रत्यक्षरूपिणा ॥ अनेनैवकृतार्थोस्मिकिम स्मादधिकंवरम् ॥ ३४ ॥ तथापिभगवन्विष्णो त्वयिमेनिश्चलासदा ॥ भक्तिर्निष्कपटाभूयादिदंमेप्रथमंवरम् ॥३५॥ माधवाहंप्रतिदिनं सायंप्रातरिहाग्नये ॥ त्वद्रूपायतवप्रीत्यै सुरभेःपयसाहरे ॥ ३६ ॥ होतुमिच्छामिवरद तन्मेदेहिवरा न्तरम् ॥ पयसानित्यहोमोहि द्विकालंश्रुतिचोदितः ॥ ३७ ॥ नमेसुरभयःसन्ति तापसस्याधनस्यच ॥ इत्युक्तेमुद्गलेनाथ

विष्णुजीने मुद्गल से कहा ॥३२॥ कि हे सुव्रत ! मैं प्रसन्न व वरदायक हूं इससमय तुम वरको मांगो विष्णुजीसे ऐसा कहनेपर महर्षिने उन विष्णुजी से कहा ॥३३॥ कि यज्ञमें प्रत्यक्ष रूपवाले तुमने जो मेरी हव्य को भोजन किया इसीसे मैं कृतार्थ होगया हूं इससे अधिक अन्य क्या वर होगा ॥३४॥ तथापि हे भगवन्, विष्णो ! तुममें मेरी निष्कपट व अचल भक्ति सदैव होवै यह मेरा पहला वर है ॥ ३५ ॥ व हे हरे, माधव ! मैं प्रतिदिन यहां सायंकाल व प्रातःकाल में तुम्हारी प्रीति के लिये सुरभी के दूध से तुम्हारे रूपवाले अग्नि के लिये ॥ ३६ ॥ हवन करना चाहता हूं हे वरदायक ! मुझको उस अन्य वरको दीजिये दोनों समयों में दूध से नित्य हवन वेदों से कहा

गया है ॥ ३७ ॥ और मुझ निर्धनी तपस्वी के गौवैं नहीं हैं मुद्गलजीसे ऐसा कहनेपर विष्णु नारायणदेवजी ने ॥ ३८ ॥ अमृतको भोजन करनेवाले विश्वकर्मा कारीगर को बुलाकर और उन विश्वकर्मा शिल्पी से एक उत्तम तड़ाग को बनवाकर ॥ ३९ ॥ उसको इन विष्णुजीने उन विश्वकर्मासें स्फटिक आदिक पत्थरों के भेदों से बराबर कराया फिर चारोओर की दीवार से शोभित किया ॥ ४० ॥ तदनन्तर भगवान् विष्णुजीने सुरभी को बुलाकर वचन कहा विष्णुजी बोले कि हे सुरभे ! यह मुद्गल मेरा भक्त प्रतिदिन हर्ष से ॥ ४१ ॥ मेरी प्रीति के लिये इस समय दूध से हवन करना चाहता है हे देवि ! इस कारण मेरी प्रीति के लिये मुझसे पठाईहुई तुम ॥ ४२ ॥

देवोनारायणोहरिः ॥ ३८ ॥ आहूयविश्वकर्माणं त्वष्टारममृताशिनम् ॥ एकंसरःकारयित्वा शिल्पिनातेनशोभनम् ॥ ३९ ॥ स्फटिकादिशिलाभेदैस्तेनासौविश्वकर्मणा ॥ समीचकारचपुनस्तत्प्राकाराद्यलंकृतम् ॥ ४० ॥ ततआहूयभगवान्सुरभिंवाक्यमब्रवीत् ॥ हरिरुवाच ॥ मुद्गलोममभक्तोयं सुरभेप्रत्यहंमुदा ॥ ४१ ॥ मत्प्रीत्यर्थंपयोहोमं कर्तुमिच्छतिसाम्प्रतम् ॥ मत्प्रीत्यर्थमितोदेवि त्वमतोमत्प्रचोदिता ॥ ४२ ॥ सायंप्रातरिहागत्य प्रत्यहंसुरभेशुभे ॥ पयसा त्वत्प्रसूतेन सरएतत्प्रपूरय ॥ ४३ ॥ तेनासौपयसानित्यं सायंप्रातश्चहोष्यति ॥ ॐमित्युक्त्वाथसुरभिरेवंनारायणेरिता ॥ ४४ ॥ अथनारायणोदेवो मुद्गलंप्रत्यभाषत ॥ सुरभेःपयसानित्यमस्मिन्सरसितिष्ठता ॥ ४५ ॥ सायंप्रातःप्रतिदिनं मत्प्रीत्यर्थमिहाग्नये ॥ जुहुधित्वंमहाभाग तेनप्रीणाम्यहन्तव ॥ ४६ ॥ मत्प्रीत्यातेखिलासिद्धिर्भविष्यतिचमुद्गल ॥ इदंक्षीरसरोनाम तीर्थंख्यातंभविष्यति ॥ ४७ ॥ अस्मिन्क्षीरसरस्तीर्थे स्नातानांपञ्चपातकम् ॥ अन्यान्यपिच

हे शुभे, सुरभे ! सायंकाल व प्रातःकाल प्रतिदिन यहां आकर इस तड़ाग को अपना से पैदा कियेहुए दूध से पूर्णकरो ॥ ४३ ॥ उस दूध से यह सायंकाल व प्रातःकाल में हवन करैगा इसप्रकार विष्णुजीसे कहीहुई सुरभी बहुतअच्छा यह कहकर चुप होगई ॥ ४४ ॥ इसके बाद विष्णुदेवजी ने मुद्गलजीसे कहा कि नित्य इस तड़ाग में स्थित सुरभी के दूध से ॥ ४५ ॥ हे महाभाग ! प्रतिदिन यहां मेरी प्रीति के लिये सायंकाल व प्रातःकाल तुम अग्नि में हवन करियेगा उससे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूंगा ॥ ४६ ॥ हे मुद्गल ! मेरी प्रसन्नता से तुम्हारी सब सिद्धि होगी और यह क्षीरसर नामक तीर्थ प्रसिद्ध होगा ॥ ४७ ॥ और इस क्षीरसागर तीर्थ में नहायेहुए पुरुषों के पांच

पातक व औरभी पाप उसी क्षण नाश होजावैंगे ॥ ४८ ॥ व हे मुद्गल ! देहान्त में बन्धनसे छूटेहुए तुम मुझको प्राप्तहोगे भगवान् विष्णुजी यह कहकर व उन मुद्गल को लिपटाकर ॥ ४९ ॥ और उन मुद्गल से प्रणाम कियेहुए ये विष्णुजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और मुद्गलने भी विष्णुजीके चलेजाने पर अनेक सौ वर्षोंतक ॥ ५० ॥ विष्णु की प्रसन्नता के लिये पवित्र होकर अग्नि में सुरभी के दूध से नित्य हवन करतेहुए मुक्तिदायक फुल्लग्राम में निवास किया ॥ ५१ ॥ और देहान्त में वे विष्णु की सायुज्यरूपिणी मुक्तिको प्राप्तहुए श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! इसप्रकार मैंने तुमलोगों से इस चरित्र को कहा ॥ ५२ ॥ कि जिसप्रकार पुरातन समय इस

पापानि नाशंयास्यन्तितत्क्षणात् ॥ ४८ ॥ मुद्गलत्वञ्चमांयाहि देहान्तेमुक्तबन्धनः ॥ इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुस्तंसमा लिङ्ग्यमुद्गलम् ॥ ४९ ॥ नमस्कृतश्चतेनायं तत्रैवान्तरधीयत ॥ मुद्गलोपिगतेविष्णावनेकशतवत्सरम् ॥ ५० ॥ सुरभेः पयसाजुह्वन्नग्नयेहरितुष्टये ॥ उवासप्रयतोनित्यं फुल्लग्रामेविमुक्तिदे ॥ ५१ ॥ देहान्तेमुक्तिमगमद्विष्णुसायुज्यरूपि णीम् ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवमेतद्द्विजवरा युष्माकंकथितंमया ॥ ५२ ॥ यथाक्षीरसरोनाम तीर्थस्यास्यपुराभवत् ॥ इदंक्षीरसरःपुण्यं सर्वलोकेषुविश्रुतम् ॥ ५३ ॥ काश्यपस्यमुनेःपत्नी कद्रूर्यत्रद्विजोत्तमाः ॥ स्नात्वास्वभर्तृवाक्येन चो दितानियमान्विता ॥ ५४ ॥ छलेनमुमुचेसद्यः सपत्नीजयदोषतः ॥ अतोत्रतीर्थेयेस्नान्ति मानवाःशुद्धमानसाः ॥ ५५ ॥ तेषांविमुक्तबन्धानां मुक्तानांपुण्यकर्मिणाम् ॥ किंयागैःकिमुवावेदैः किंवातीर्थनिषेवणैः ॥ ५६ ॥ जपैर्वानियमैर्वापि क्षीरकुण्डविलोकिनाम् ॥ क्षीरकुण्डस्थवातेन स्पृष्टदेहोनरोद्विजाः ॥ ५७ ॥ ब्रह्मलोकमनुप्राप्य तत्रैवपरिमुच्यते ॥

तीर्थ का क्षीरसर नाम हुआ है यह पवित्र क्षीरसर तीर्थ सब लोकों में प्रसिद्ध है ॥ ५३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! काश्यपमुनि की स्त्री कद्रू अपने पति के वचन से प्रेरित व नियम से संयुतहोकर जिस तीर्थ में नहाकर ॥ ५४ ॥ सौति के जीतने के दोष के कारण उसी क्षण छलसे छूटगई है इसकारण इस तीर्थ में शुद्धमनवाले जो पुरुष नहाते हैं ॥ ५५ ॥ बन्धन से छुटेहुए उन मुक्त पुण्यकर्मी मनुष्यों को यज्ञों से व वेदों तथा तीर्थों के सेवन से क्या है ॥ ५६ ॥ व क्षीरकुंड को देखनेवाले पुरुषों को जपों व नियमों से क्या है हे ब्राह्मणो ! क्षीरकुंड में स्थित पवन से छुयेहुए शरीरवाला मनुष्य ॥ ५७ ॥ ब्रह्मलोक को प्राप्तहोकर वहीं मुक्त होजाता है और जो पुरुष इस क्षीरकुंड

में नहाता है उसके मस्तक में अग्नि के समान जलतेहुए सूर्यनारायण स्थित होते हैं और इस क्षीरकुंड में नहायेहुए पुरुषों को वैतरणी नदी शीत होती है ॥ ५८।५९ ॥ और सब नरक व्यर्थ होते हैं कामधेनु के समान इस क्षीरकुंड के स्थित होने पर ॥ ६० ॥ हे द्विजोत्तमो ! जो नहाने के लिये अन्यत्र भ्रमता है वह मनुष्य गऊ का दूध वर्तमान होने पर भी मदार के दूध के लिये जाता है ॥ ६१ ॥ और इस क्षीरकुंड में नहाये हुए पुरुषों को कुछ दुर्लभ नहीं होता है और मुक्ति हाथ में प्राप्तही होती है अन्य बहुत कहने से क्या है ॥ ६२ ॥ मैं भुजा को उठाकर तुमलोगों से सत्य सत्य कहता हूं और सावधान होता हुआ जो मनुष्य इस अध्याय को पढ़ता है

निमग्नःक्षीरकुण्डेस्मिन्यःपुमानपिभास्कराः ॥ ५८ ॥ तस्यमूर्द्धनितिष्ठेयुर्ज्वलन्तःपावकोपमाः ॥ मग्नानांक्षीरकुण्डेस्मिञ्छीतावैतरणीनदी ॥ ५९ ॥ सर्वाणिनरकाण्यद्धा व्यर्थानिचभवन्तिहि ॥ कामधेनुसमेतस्मिन्क्षीरकुण्डेस्थितेप्यहो ॥ ६० ॥ योन्यत्रभ्रमतेस्नातुं सनरोविप्रसत्तमाः ॥ गोक्षीरेविद्यमानेपि ह्यर्कक्षीरायगच्छति ॥ ६१ ॥ स्नातानांक्षीरकुण्डेस्मिन्नालभ्यंकिञ्चिदस्तिहि ॥ करप्राप्तैवमुक्तिःस्यात्किमन्यैर्बहुभाषणैः ॥ ६२ ॥ ब्रवीमिभुजमुद्धृत्य सत्यंसत्यंब्रवीमिवः ॥ यःपठेदिममध्यायं शृणुयाद्वासमाहितः ॥ ६३ ॥ सक्षीरकुण्डस्नानस्य लभतेफलमुत्तमम् ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्ये क्षीरकुण्डप्रशंसायांक्षीरकुण्डस्वरूपकथनन्नामसप्तत्रिंशोध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥

ऋषय ऊचुः ॥ सूतकद्रूःकथंमुक्ता क्षीरकुण्डनिमज्जनात् ॥ छलंकथंकृतवती सपत्न्यांपापनिश्चया ॥ १ ॥ कस्यपुत्रीचसाकद्रूः सपत्नीसाचकस्यवै ॥ किमर्थमजयत्कद्रूः स्वसपत्नींछलेनतु ॥ २ ॥ एतन्नःश्रद्दधानानां ब्रूहिसूतकृपानिधे ॥

या सुनता है ॥ ६३ ॥ वह क्षीरकुंड के स्नान के उत्तम फलको पाता है ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांक्षीरकुण्डप्रशंसायांक्षीरकुण्डस्वरूपकथनंनामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । क्षीरकुंड में न्हाय जिमि कद्रू छल सों मुक्ति । लह्यो सोइ अर्तीस में वर्णित कथा प्रसक्ति ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! क्षीरकुंड में स्नान करने से कद्रू कैसे मुक्त हुई है और उस पापनिश्चयवाली ने सौति में कैसे छल किया है ॥ १ ॥ और किस की कन्या वह कद्रू हुई है व किस की सौति हुई है और किसलिये कद्रू ने

छल से अपनी सौति को जीता है ॥ २ ॥ हे दयानिधे, सूतजी ! इसको श्रद्धावान् हमलोगों से कहिये श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! पुरातन समय सतयुग में प्रजापति की दो कन्या ॥ ३ ॥ कद्रू और विनता बहनैं हुई हैं और वे कद्रू और विनता कश्यप की स्त्रियां हुई हैं ॥ ४ ॥ और विनता ने अरुण व गरुड़ पुत्रको पैदाकिया व पति के सकाश से कद्रू ने बहुत सर्परूपी पुत्रों को पाया ॥ ५ ॥ जोकि विष के अहंकार से संयुत अनन्त व वासुकि आदिक हुए हैं एक समय उन कद्रू व विनता बहनों ने ॥ ६ ॥ समीप आतेहुए उच्चैःश्रवा को देखा और कद्रू ने घोड़े को देखकर विनता से यह कहा ॥ ७ ॥ कि हे विनते ! अश्वका बाल सफ़ेद है कि नील है इसको यथार्थ

श्रीसूत उवाच ॥ पुराकृतयुगेविप्राः प्रजापतिसुतेउभे ॥ ३ ॥ कद्रूश्चविनताचेति भगिन्यौसंबभूवतुः ॥ भार्येतेकश्यपस्यास्तां कद्रूश्चविनतातथा ॥ ४ ॥ विनतासुषुवेपुत्रावरुणंगरुडंतथा ॥ भर्तुःसकाशात्कद्रूश्च लेभेसर्पान्बहून्सुतान् ॥५॥ अनन्तवासुकिमुखान्विषदर्पसमन्वितान् ॥ एकदातुभगिन्यौते कद्रूश्चविनतातथा ॥ ६ ॥ अपश्यतांसमायान्तमुच्चैःश्रवसमन्तिकात् ॥ विलोक्यकद्रूस्तुरगं विनतामिदमब्रवीत् ॥ ७ ॥ श्वेतोश्वबालोनीलोवा विनतेब्रूहितत्त्वतः ॥ इत्युक्ता विनताविप्राः कद्रूंतामिदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ तुरङ्गःश्वेतबालोमे प्रतिभातिसुमध्यमे ॥ किंवात्वंमन्यसेकद्रूमितितांविनताब्रवीत् ॥ ९ ॥ पृष्ट्वैवंविनतांकद्रूर्बभाषेस्वमतञ्जसा ॥ कृष्णबालमहंमन्ये हयमेनमनिन्दिते ॥ १० ॥ ततःपराजये कृत्वा दासीभावंपणंमिथः ॥ व्यतिष्ठेतांमहाभागे सपत्न्यौतेद्विजोत्तमाः ॥ ११ ॥ ततःकद्रूर्निजसुतान्वासुकिप्रमुखानहीन् ॥ तस्यानाहंयथादासी तथाकुरुतपुत्रकाः ॥ १२ ॥ तदभीप्सितसिद्ध्यर्थमित्यवोचद्भृशातुरा ॥ युष्माभिरुच्चैः

कहिये हे ब्राह्मणो ! ऐसा कहीहुई विनता ने उस कद्रू से यह कहा ॥ ८ ॥ कि हे सुमध्यमे ! घोड़ा सफ़ेद बालोंवाला मुझे जानपड़ता है और तुम क्या जानती हो कद्रू से उस विनता ने यह कहा ॥ ९ ॥ इसप्रकार विनता से पूंछकर उस कद्रू ने भी अपने मत को कहा कि हे अनिंदिते ! मैं इस घोड़े को नील बालोंवाला मानती हूं ॥ १० ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! वे दोनों महाऐश्वर्यवती स्त्रियां परस्पर पराजय में दासीभाव को पण (बाजी) करके स्थित हुई ॥ ११ ॥ तदनन्तर कद्रू ने वासुकि आदिक अपने पुत्र सर्पों से कहा कि हे पुत्रो ! मैं जिसप्रकार उसकी स्त्री न होऊं वैसाही कीजिये ॥ १२ ॥ और उस मनोरथ की सिद्धि के लिये बहुतही विकल कद्रू

ने यह कहा कि तुमलोग उच्चैःश्रवा के बाल को आच्छादित कर लीजिये ॥ १३ ॥ उसके मतको नागों ने जब स्वीकार नहीं किया तब क्रोध से मूर्च्छित व जलतीहुई कद्रू ने क्रोधित होकर पुत्रों को शाप दिया ॥ १४ ॥ कि तुम सबलोग परीक्षित के पुत्र जनमेजय के यज्ञ में मरजावोगे माता से ऐसा शाप करने पर उससमय डराहुआ कर्कोटक ॥ १५ ॥ चरणों को प्रणामकर उदासीन होकर कद्रू से वचन बोला कि मैं उच्चैःश्रवा के बाल को अंजन के समान करूंगा ॥ १६ ॥ हे मातः ! तुमको भय न करना चाहिये शाप से विकल कर्कोटक ने यह कहा तदनन्तर कर्कोटक नागने उच्चैःश्रवा के सफ़ेद बाल को ॥ १७ ॥ अपने शरीर से आच्छादित कर अंजन के

श्रवसो बालःप्रच्छाद्यतामिति ॥ १३ ॥ नाङ्गीचक्रुर्मतंतस्या नागाःकद्रूरुषातदा ॥ अशपत्कुपितापुत्राञ्ज्वलन्तीरोषमूर्च्छिता ॥ १४ ॥ पारीक्षितस्यसर्वेद्य यूयंसत्रेमरिष्यथ ॥ इतिशापेकृतेमात्रा त्रस्तःकर्कोटकस्तदा ॥ १५ ॥ प्रणम्य पादयोःकद्रूं दीनोवचनमब्रवीत् ॥ अहमुच्चैःश्रवोबालं विधास्याम्यञ्जनप्रभम् ॥ १६ ॥ माभीरम्बत्वयाकार्येत्यवादीच्छापविक्लवः ॥ श्वेतमुच्चैःश्रवोबालं ततःकर्कोटकोरगः ॥ १७ ॥ छादयित्वास्वभोगेन व्यतनोदञ्जनद्युतिम् ॥ अथते विनताकद्रूदास्येकृतपणेउभे ॥ १८ ॥ देवराजहयंद्रष्टुं संरम्भादभ्यगच्छताम् ॥ शशाङ्कशङ्खमाणिक्यमुक्तैरावतकारणम् ॥ १९ ॥ युगान्तकालशयनं योगनिद्राकृतेहरेः ॥ अतीत्यकद्रूविनते समुद्रंसरितांपतिम् ॥ २० ॥ ददृशतुर्हयंगत्वा देवराजस्यवाहनम् ॥ कृष्णबालंहयंदृष्ट्वा विनतादुःखिताभवत् ॥ २१ ॥ दुःखितांविनतांकद्रूर्दासीकृत्येन्ययुङ्क्तसा ॥ एतस्मिन्नन्तरेतार्क्ष्योप्यण्डमुद्भिद्यवह्निवत् ॥ २२ ॥ प्रादुर्बभूवविप्रेन्द्रा गिरिमात्रशरीरवान् ॥ दृष्ट्वातद्देहमाहात्म्य

समान द्युतिमान् करदिया इसके अनन्तर दासी होने में पण (बाजी) करके वे विनता व कद्रू ॥ १८ ॥ वेग से चन्द्रमा, शङ्ख, माणिक्य, मोती व ऐरावत के कारणरूप सुरराज के घोड़े को देखने के लिये चलीं ॥ १९ ॥ और योगनिद्रा के लिये युगान्तकाल में शय्यारूप नदियों के पति समुद्र को नांघकर कद्रू व विनता ने ॥ २० ॥ जाकर सुरराज (इन्द्र) के वाहनरूप घोड़े को देखा और काले बालवाले घोड़े को देखकर दुःखित होतीहुई विनता ने कहा ॥ २१ ॥ और दुःखित विनता को उस कद्रू ने दासी के कार्य में नियुक्त किया इसी अवसर में गरुड़जी अंडा को फोड़ कर अग्नि की नाईं ॥ २२ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! पर्वत भर शरीरवान् होकर प्रकट हुए

और उनकी देह के माहात्म्य को देखकर त्रिलोक डरगया ॥ २३ ॥ तदनन्तर पक्षियों में श्रेष्ठ उन गरुड़ की देवताओं ने स्तुति किया और मेरी देह के माहात्म्य को देख
कर त्रिलोक डरगया है ॥ २४ ॥ यह देखकर अत्यन्त भयंकर शरीर को संहार कर अरुण को पीठ पै चढ़ाकर गरुड़जी माता के समीप गये ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त
प्रणाम किये व अत्यन्त विकल विनता से कद्रू ने कहा कि हे दासी ! नागस्थान (पाताल) को जाने के लिये मेरा उद्योग है ॥ २६ ॥ इसकारण तुम्हारा पुत्र गरुड़
हमारे पुत्रों को लेजावै तदनन्तर विनता ने गरुड़ पुत्र से कहा ॥ २७ ॥ कि मैं इस कद्रू को लेचलूं और तुम उसके सब पुत्रों को सवार करावो हे ब्राह्मणो! बहुत अच्छा

मभूत्रस्तंजगत्त्रयम् ॥ २३ ॥ ततस्तन्तुष्टुवुर्देवागरुडंपक्षिणांवरम् ॥ दृष्ट्वामद्देहमाहात्म्यं त्रस्तंस्याद्भुवनत्रयम् ॥ २४ ॥ इत्यालोच्योपसंहृत्य देहमत्यन्तभीषणम् ॥ अरुणंपृष्ठमारोप्य मातुरन्तिकमभ्यगात् ॥ २५ ॥ अथाहविनतांकद्रूः प्रणतामतिविह्वलाम् ॥ चेटिनागालयंगन्तुमुद्योगोममवर्तते ॥ २६ ॥ त्वत्पुत्रोगरुडोतोमां मत्पुत्रांश्चवहत्विति ॥ ततश्चविनतापुत्रं गरुडंप्रत्यभाषत ॥ २७ ॥ अहंकद्रूमिमांवक्ष्ये त्वंसर्वान्वहतत्सुतान् ॥ तथेतिगरुडोमातुः प्रत्यगृह्णाद्वचोद्विजाः ॥ २८ ॥ अवहद्विनताकद्रूं सर्वांस्तान्गरुडोवहत् ॥ रविसामीप्यगाःसर्पास्तत्करैराहतास्तदा ॥ २९ ॥ अस्तोषीद्वज्रिणंकद्रूः सुतानांतापशान्तये ॥ सर्वतापंजलासारैर्देवराजोप्यशामयत् ॥ ३० ॥ नीयमानास्तदासर्पा गरुडेनबलीयसा ॥ गत्वातंदेशमचिरादवदन्विनतासुतम् ॥ ३१ ॥ वयंद्वीपान्तरंगन्तुं सर्वेद्रष्टुंकृतत्वराः ॥ वहत्वमस्मान्गरुड चेटीसुतंततःक्षणात् ॥ ३२ ॥ ततोमातरमप्राक्षीद्विनतांगरुडोद्विजाः ॥ अहंकस्माद्वहामीमांस्त्वंचेमांवहसेसदा ॥ ३३ ॥

ऐसा कहकर गरुड़ ने माता का वचन ग्रहण किया ॥ २८ ॥ विनता कद्रू को ले चली और उन सब नागों को गरुड़जी लेचले तब सूर्यों की किरणों के समीप प्राप्त सर्प
उनकी किरणों से तापित हुए ॥ २९ ॥ और कद्रू ने पुत्रों के ताप की शान्ति के लिये इन्द्र की स्तुति किया व सुरराज ने भी जल की धाराओं से सब ताप को शान्त किया ॥ ३० ॥
तब बलवान् गरुड़जी से लियेजातेहुए सर्पों ने शीघ्रही उस स्थान को जाकर विनता के पुत्र (गरुड़) से कहा ॥ ३१ ॥ कि हम सब अन्यद्वीप को जाने के लिये
शीघ्रता किये हैं उसकारण हे दासीपुत्र, गरुड़ ! तुम क्षणभर में हमलोगों को वहां प्राप्त करो ॥ ३२ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! गरुड़जी ने विनता माता से पूछा कि

मैं इन सर्पों को किस कारण ले चलता हूं और तुम क्यों सदैव इसको सवार कराती हो ॥ ३३ ॥ और दासीपुत्र ऐसा मुझको ये सांप क्यों कहते हैं हे मातः ! यथार्थ पूंछतेहुए मुझसे तुम इस सबको कहो ॥ ३४ ॥ उससे इस भांति पूंछीहुई माता ने पुत्र से कहा कि हे पुत्र ! क्रूर बहन ने मुझको छल से हरादिया है ॥ ३५ ॥ उस कारण इससमय मैं उसकी दासी हूं और आप दासीपुत्र हो इसीकारण तुम सांपों को लियेजाते हो और मैं सदैव इसको लिये चलती हूं ॥ ३६ ॥ इत्यादिक सब वृत्तान्त को उसने पहले से इससे बतलाया इसके उपरान्त विनता के पुत्र गरुड़जी ने उस माता से कहा ॥ ३७ ॥ कि इस दासीपन से छूटने के लिये मुझको इस

चेटीपुत्रेतिमामेते किंभणन्तिसरीसृपाः ॥ सर्वमेतद्वदत्वंमे मातस्तत्त्वेनपृच्छतः ॥ ३४ ॥ पृष्टैवंजननीतेन गरुडंप्राब्रवीत्सुतम् ॥ भगिन्याक्रूरयापुत्र छलेनाहंपराजिता ॥ ३५ ॥ तस्यादासीभवाम्यद्य चेटीपुत्रस्ततोभवान् ॥ अतस्त्वंवहसे सर्पान्वहाम्येनामहंसदा ॥ ३६ ॥ इत्यादिसर्ववृत्तान्तमादितोस्मैन्यवेदयत् ॥ अथतांगरुडोवादीन्मातरंविनतासुतः ॥ ३७ ॥ अस्माद्दास्याद्विमोक्षार्थं किंकार्यन्तेमयाधुना ॥ इतिपृष्टासुतेनाथ विनतातमभाषत ॥ ३८ ॥ सर्पान्पृच्छस्व गरुड ममप्रातृविमोक्षणे ॥ युष्माकंमातुःकिंकार्यं मयेतिवदताधुना ॥ ३९ ॥ इतिमात्रासमुदितो गरुडःपन्नगान्प्रति ॥ गत्वापृच्छद्द्विजश्रेष्ठास्तेप्येनमवदंस्तदा ॥४०॥ यदाहरिष्यसेशीघ्रं सुधांत्वममरालयात् ॥ दास्यान्मुक्ताभवेन्माता वैनतेयभवानपि ॥ ४१ ॥ ततोमातरमागम्य गरुडःप्रणतोब्रवीत् ॥ सुधामम्बममानेतुं गच्छतोभक्ष्यमर्पय ॥ ४२ ॥

समय क्या करना चाहिये पुत्र से इसप्रकार पूंछीहुई विनता ने उससे कहा ॥ ३८ ॥ कि हे गरुड़ ! सर्पों से पूंछो कि मेरी माता के छूटने में मुझको तुम्हारी माता का क्या कार्य करना चाहिये इससमय तुमलोग इसको मुझसे कहो ॥ ३९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! माता से ऐसा कहेहुए गरुड़जीने सांपों के समीप जाकर पूंछा और उससमय उन्होंने भी इससे कहा ॥ ४० ॥ कि जब तुम देवस्थान से अमृत को शीघ्रही हर लावोगे तब माता दासीपन से मुक्त होगी और आपभी मुक्त होगे ॥ ४१ ॥ तदनन्तर माता के समीप आकर प्रणाम करके गरुड़जी ने कहा कि हे अम्ब ! अमृत को लाने के लिये जाते हुए मुझ को भोजन दीजिये ॥ ४२ ॥

ऐसा कहीहुई माता ने उन वैनतेय पुत्र से कहा कि हे पुत्र ! समुद्र के मध्य में कितेक शबर हैं ॥ ४३ ॥ उन शबरों को खाकर तुम यहां अमृत को लावो और वहां शबरी के संग में कौतुकवान् कोई कामी ब्राह्मण है ॥ ४४ ॥ ब्रह्मतेज से कंठ को जलातेहुए उस ब्राह्मणको छोड़दीजियेगा और पवन आदिक देवता तुम्हारे पंख आदिक अंगों की रक्षा करें ॥ ४५ ॥ इसप्रकार अपनी माता के आशीर्वादों से बढ़ायेहुए गरुड़जी चले और शबरस्थान को आकर भक्षण करतेहुए उसके फैलायेहुए मुख में पर्वत की कन्दरा में पक्षियों की नाईं शबरलोग पैठगये इसके अनन्तर हे मुनिश्रेष्ठो ! वह ब्राह्मणभी उसके कंठ में आया ॥ ४६ । ४७ ॥ और कंठ को जलाते

इतीरितासुतंप्राह मातातंविनतासुतम् ॥ समुद्रमध्येवर्तन्ते शबराःकतिचित्सुत ॥ ४३ ॥ तान्भक्षयित्वाशबरानमृतंत्व मिहानय ॥ तत्रकश्चिद्द्विजःकामी शबरीसङ्गकौतुकी ॥ ४४ ॥ त्यजतंब्राह्मणंकण्ठं दहन्तंब्रह्मतेजसा ॥ पक्षादीनितवा ङ्गानि पान्तुदेवामरुन्मुखाः ॥ ४५ ॥ इतिस्वमातुराशीर्भिर्गरुडोवर्धितोययौ ॥ शबरालयमभ्येत्य तस्यभक्षयतोमु खम् ॥ ४६ ॥ आवृतंप्राविशन्व्याधा वयांसीवदरीगिरेः ॥ अथसब्राह्मणोप्यागात्तत्कण्ठंमुनिपुङ्गवाः ॥ ४७ ॥ कण्ठंद हन्तंविप्रंतमुवाचविनतासुतः ॥ विप्रःपापोप्यवध्योहि निर्याहित्वमतोबहिः ॥ ४८ ॥ एवमुक्तस्तदाविप्रो गरुडंप्रत्यभा षत ॥ किरातिर्ममभार्यापि निर्गन्तव्यामयासह ॥ ४९ ॥ एवमस्त्वितितंविप्रमुवाचपतगेश्वरः ॥ ततःसगरुडोविप्र मुज्जगारसभार्यकम् ॥ ५० ॥ विप्रोप्यभीप्सितान्देशान्निषाद्यासहनिर्ययौ ॥ शबरान्भक्षयित्वाथ गरुडःपक्षिणांव रः ॥ ५१ ॥ आत्मनःपितरंवेगात्कश्यपंसमुपेयिवान् ॥ कुत्रयासीतितत्पृष्टो गरुडस्तमभाषत ॥ ५२ ॥ मातुर्दास्यविमो

हुए उस ब्राह्मण से गरुडजी ने कहा कि पापी भी ब्राह्मण मारने योग्य नहीं होता है इसकारण तुम बाहर जावो ॥ ४८ ॥ उस समय ऐसा कहेहुए ब्राह्मण ने गरुड़ से कहा कि मेरी स्त्री किराती को भी मेरे साथ निकलना चाहिये ॥ ४९ ॥ उस ब्राह्मणसे गरुड़ ने यह कहा कि ऐसाही होवै तदनन्तर उस गरुड़ ने स्त्री समेत ब्राह्मण को उगिलदिया ॥ ५० ॥ और निषादी (किरातिनी) समेत ब्राह्मण प्रिय देशों को चलागया इसके अनन्तर पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड़जी शबरों को खाकर ॥ ५१ ॥ वेग से अपने पिता कश्यप के समीप आये और कहां जाते हो ऐसा उन कश्यपसे पूंछेहुए गरुड़जी ने उनसे कहा ॥ ५२ ॥ कि माता का दासीपन छुड़ाने के लिये मैं अमृत

को लाने के लिये आया हूं और बहुत शबरों को खाकर भी मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ ५३ ॥ हे ब्रह्मन् ! तृप्ति को न प्राप्त हुई क्षुधा मुझको दिनरात पीड़ित करती है हे तपोधन ! उसकी निवृत्ति को देनेवाले भोजन को मुझे दीजिये ॥ ५४ ॥ हे तात ! जिससे मैं पराक्रम से अमृतको लाने के लिये समर्थ होऊं ऐसा कहेहुए कश्यपजी ने विनता से उपजेहुए पुत्रसे कहा ॥ ५५ ॥ कश्यपजी बोले कि पुरातनसमय विभावसु नामक मुनि हुए हैं और उसका छोटा भाई सुप्रतीक ऐसा हुआ है वे दोनों भाई वंश के वैरी हुए ॥ ५६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! बड़े क्रोध से संयुत उन दोनों ने परस्पर शाप दिया तब सुप्रतीक हाथी हुआ और विभावसु कछुवा हुआ ॥ ५७ ॥ इसप्रकार धन

क्षाय सुधामाहर्तुमागमम् ॥ बह्वन्किरातान्भक्ष्यवापि तृप्तिर्ममनजायते ॥ ५३ ॥ अपर्यन्तक्षुधाब्रह्मन्बाधतेमामहर्निशम् ॥ तन्निवृत्तिप्रदंभक्षममार्पयतपोधन ॥ ५४ ॥ येनाहंशक्नुयांतात सुधामाहर्तुमोजसा ॥ इतीरितःसुतंप्राह कश्यपोविनतोद्भवम् ॥ ५५ ॥ कश्यप उवाच ॥ मुनिर्विभावसुर्नाम्ना पुरासीत्तस्यचानुजः ॥ सुप्रतीकइतिभ्राता तावुभौवंशवैरिणौ ॥ ५६ ॥ अन्योन्यंशेपतुर्विप्रा महाक्रोधसमाकुलौ ॥ गजोभवत्सुप्रतीकः कूर्मोभूच्चविभावसुः ॥ ५७ ॥ एवंवित्तविवादात्तौशेपतुर्भ्रातरौमिथः ॥ गजःषड्योजनोच्छ्रायो द्विगुणायामसंयुतः ॥ ५८ ॥ कूर्मस्त्रियोजनोच्छ्रायो दशयोजनविस्तृतः ॥ बद्धवैरावुभावेतौ सरस्यस्मिन्विहङ्गम ॥ ५९ ॥ पूर्ववैरमनुस्मृत्य युध्येतेजेतुमिच्छया ॥ उभौतौभक्षयित्वात्वं सुधामाहरतृप्तिमान् ॥ ६० ॥ एवंपित्रेरितःपक्षी गत्वातद्गजकच्छपौ ॥ समुद्धृत्यमहाकायौ महाबलपराक्रमौ ॥ ६१ ॥ वहन्नखाभ्यांसंतीर्थं विलम्बाभिधमभ्यगात् ॥ तत्रागतंसमालोक्य पक्षिराजंद्विजोत्तमाः ॥ ६२ ॥ तत्तीरजो

के विवाद से उन दोनों भाइयों ने परस्पर शाप दिया और छः योजन ऊंचा व दुगुना याने बारह योजन चौड़ा हाथी हुआ ॥ ५८ ॥ और तीन योजन ऊंचा व दश योजन चौड़ा कछुवा हुआ हे विहंगम ! इस तड़ाग में वैर को बांधेहुए ये दोनों ॥ ५९ ॥ पहले के वैर को स्मरणकर जीतने की इच्छा से युद्ध करते हैं उन दोनों को खाकर तृप्तिमान् तुम अमृत को लावो ॥ ६० ॥ इसप्रकार पितासे कहेहुए गरुड़ पक्षी उस तड़ाग को जाकर बड़े बली व पराक्रमी तथा बड़े डीलवाले हाथी व कछुवा को उठाकर ॥ ६१ ॥ नखों से लिये जाते हुए विलंबनामक तीर्थ को गये व हे द्विजोत्तमो ! वहां आयेहुए पक्षिराज (गरुड़) जीको देखकर ॥ ६२ ॥ उसके किनारे उपजा

हुआ बडा ऊंचा रोहिण नामक महावृक्ष बड़े बली व पराक्रमी गरुड़जीसे यह बोला ॥ ६३ ॥ कि सौ योजन चौड़ी इस मेरी शाखापै चढ़ो व हे खगोत्तम ! इसपै बैठकर तुम हाथी व कछुवा को भक्षण करो ॥ ६४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वृक्षसे ऐसा कहाहुआ वह मनके समान वेगवान् गरुडपक्षी उसपै बैठगया और उसके बोझसे वह वृक्ष की शाखा टूटगई ॥ ६५ ॥ और नीचे मुखको किये उसमें लटकेहुए बालखिल्य मुनियों को देखकर उसके गिरनेकी शंकावाले गरुड़ने उस शाखा को पकड़ लिया ॥ ६६ ॥ और हाथी, कछुवा व उस शाखा को लेकर आकाश में आतेहुए विनता के पुत्र गरुड़जीको देखकर वहां उसके पिता कश्यपजी ने कहा ॥ ६७ ॥ कि

महावृक्षो रोहिणाख्योमहोच्छ्रयः ॥ वैनतेयमिदंप्राह महाबलपराक्रमम् ॥ ६३ ॥ एनामारुहमच्छाखां शतयोजनमायताम् ॥ स्थित्वात्रगजकूर्मौत्वं भक्षयस्वखगोत्तम ॥ ६४ ॥ इत्युक्तस्तरुणापक्षी सतत्रास्तेमनोजवः ॥ तद्भारात्सातरोः शाखा भग्नाभूद्द्विजसत्तमाः ॥ ६५ ॥ बालखिल्यमुनींस्तस्मिंल्लम्बमानानधोमुखान् ॥ दृष्ट्वातत्पातशङ्कावांस्तांशाखां गरुडोग्रहीत् ॥ ६६ ॥ गजकूर्मौचतांशाखां गृहीत्वायान्तमम्बरे ॥ पितातस्याब्रवीत्तत्र गरुडंविनतासुतम् ॥ ६७ ॥ त्यजेमांनिर्जनेशैले शाखांत्वंविनतोद्भव ॥ इत्युक्तःसतथागत्वा शाखांनिष्पुरुषेनगे ॥ ६८ ॥ विन्यस्याभक्षयत्पक्षी तौतदा गजकच्छपौ ॥ अथोत्पातःसमभवत्तस्मिन्नवसरेदिवि ॥ ६९ ॥ दृष्ट्वोत्पातंबलारातिः पप्रच्छस्वपुरोहितम् ॥ उत्पातकारणंजीव किमत्रेतिपुनःपुनः ॥ ७० ॥ बृहस्पतिस्तदाशक्रं प्रोवाचद्विजसत्तमाः ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ काश्यपोहिमुनिःपूर्वमयजत्क्रतुनाहरे ॥ ७१ ॥ सर्वानृषीन्सुरान्सिद्धान्यक्षान्गन्धर्वकिन्नरान् ॥ यज्ञसम्भारसिद्ध्यर्थं प्रेषयामाससद्विजाः ॥ ७२ ॥

हे विनतोद्भव ! इस शाखा को तुम प्राणियों से रहित पर्वत पै छोड़देवो ऐसा कहेहुए उस गरुड़ ने पुरुषहीन पर्वतपै जाकर शाखाको ॥ ६८ ॥ धरकर उससमय पक्षीने उस हाथी व कछुवा को भक्षण किया इसके अनन्तर उस समय स्वर्ग में उत्पात हुआ ॥ ६९ ॥ और उत्पात को देखकर इन्द्र ने अपने पुरोहित से पूंछा कि हे बृहस्पते ! यहां बार २ क्या उत्पात का कारण है ॥ ७० ॥ हे द्विजोत्तमो ! उससमय बृहस्पतिजी ने इन्द्रजी से कहा बृहस्पतिजी बोले कि हे हरे ! पुरातनसमय काश्यपजी ने यज्ञ से पूजन किया है ॥ ७१ ॥ हे ब्राह्मणो ! उन्हों ने यज्ञ की सामग्री की सिद्धि के लिये सब ऋषि, देवता, सिद्ध, यक्ष, गंधर्व व किन्नरों को पठाया ॥ ७२ ॥

और सामग्रियों समेत अँगूठेभर छोटे बालखिल्य मुनियों को गोष्पदतीर्थ के जल में नहातेहुए देखकर आप हँसे ॥ ७३ ॥ तब हे हरे ! आप से अपमान कियेहुए व क्रोध से ज्वलित मुखवाले उन क्रोधित बालखिल्य मुनियों ने यज्ञ की अग्नि में हवन किया ॥ ७४ ॥ कि काश्यप का पुत्र देवेन्द्र को भय देनेवाला शत्रु होवै आज अमृत के हरने में कौतुकी उनका गरुड़ पुत्र ॥ ७५ ॥ आता है उसकारण यह उत्पात आया है ऐसा कहेहुए उन इन्द्र ने अग्नि आदिक देवताओं से कहा ॥ ७६ ॥ कि गरुड़पक्षी अमृत को लेने के लिये आता है इससे उसकी रक्षाकरो इस प्रकार इन्द्र से पठायेहुए अस्त्रों समेत देवताओं ने अमृत की रक्षा किया ॥ ७७ ॥ तब पक्षिराज गरुड़जी अस्त्रों

बालखिल्यान्ससम्भारान्ह्रस्वानङ्गुष्ठमात्रकान् ॥ मज्जतोगोष्पदजले दृष्ट्वाहसितवान्भवान् ॥ ७३ ॥ भवतावमताः क्रुद्धा बालखिल्यास्तदाहरे ॥ जुहुवुर्यज्ञवह्नौते क्रोधेनज्वलिताननाः ॥ ७४ ॥ देवेन्द्रभयदःशत्रुः काश्यपस्यसुतोस्त्विति ॥ तस्यपुत्रोद्यगरुडः सुधाहरणकौतुकी ॥ ७५ ॥ समागच्छतितद्धेतुरयमुत्पातआगतः ॥ इत्युक्तःसोब्रवीदिन्द्रो देवानग्निपुरोगमान् ॥ ७६ ॥ सुधामाहर्तुमायाति पक्षीसारक्ष्यतामिति ॥ इतीन्द्रप्रेरितादेवा ररक्षुःसायुधाःसुधाम् ॥ ७७ ॥ पक्षिराजस्तदाभ्यागाद्देवानायुधधारिणः ॥ महाबलन्तेगरुडं दृष्ट्वाकम्पन्तवैसुराः ॥ ७८ ॥ गरुडस्यसुराणाञ्च ततोयुद्धमभून्महत् ॥ अखण्डिपक्षितुण्डेन भौवनोमृतपालकः ॥ ७९ ॥ तदानिजघ्नुर्गरुडं देवाःशस्त्रैरनेकशः ॥ वीपतिर्गरुडोदेवैर्बाधितःशस्त्रपाणिभिः ॥ ८० ॥ पक्षाभ्यामाक्षिपद्दूरेदेवानग्निपुरोगमान् ॥ तत्पक्षविक्षितादेवास्तदापरमकोपनाः ॥ ८१ ॥ नाराचान्भिण्डिपालांश्च नानाशस्त्राणिचाक्षिपन् ॥ ततस्तुगरुडोवेगाद्देवदृष्टिविलोपिनीम् ॥ ८२ ॥ धूलि

को धारेहुए देवताओं के समीप आये और बड़े बलवान् गरुड़जी को देखकर वे देवता काँपने लगे ॥ ७८ ॥ तदनन्तर गरुड़ व देवताओं का बड़ाभारी युद्ध हुआ और पक्षी के मुखसे भौवन नामक अमृतरक्षक काटा गया ॥ ७९ ॥ तब देवताओं ने अनेक शस्त्रों से गरुड़ को मारा व शस्त्रों को हाथ में लियेहुए देवताओं ने पक्षियों के स्वामी गरुड़ को मारा ॥ ८० ॥ और गरुड़ ने अग्नि आदिक देवताओं को पंखों से दूर फेंकदिया तब उस के पंखों से फेंकेहुए बड़े क्रोधित देवताओं ने ॥ ८१ ॥ नाराचों, भिन्दिपालों और अनेक शस्त्रों को चलाया तदनन्तर विनता के पुत्र गरुड़जी ने देवताओं की दृष्टि को लोप करनेवाली धूलि को वेग से पंखों से उठाया और

उन धूलियों को देवताओं ने पवन से शान्त किया ॥ ८२ । ८३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! गरुड़जी ने पंख व चोंच से रुद्र, वसु, आदित्य, मरुत् व अन्य देवताओं को व्यथित किया ॥ ८४ ॥ और देवताओं के भगजाने पर उन गरुड़जी ने अग्नि को आगे देखा और सब ओर से जलतीहुई अग्नि को शान्त करने के लिये उद्योग किया ॥ ८५ ॥ और शीघ्रतासंयुत उन गरुड़जी ने हज़ार मुखवाले होकर उनसे अग्नि को पीतेहुए सैकड़ों नदियों को रचा और उन जलों से उस अग्नि को नाश किया ॥ ८६ ॥ और श्वेत धारवाले तथा भ्रमतेहुए चक्रवाले अमृत के रक्षक को समीप देखकर उस शत्रु के छिद्र से संक्षेप अंगोंवाले गरुड़जी भीतर पैठतेभये ॥ ८७ ॥ तदनन्तर गरुड़जी ने

मुत्थापयामास पक्षाभ्यांविनतासुतः ॥ वायुनाशमयामासुस्तान्पांसूंस्त्रिदशोत्तमाः ॥ ८३ ॥ रुद्रान्वसूंस्तथादित्यान्मरुतोन्यान्सुरांस्तथा ॥ गरुडःपक्षतुण्डाभ्यांव्यथितानकरोद्द्विजाः ॥ ८४ ॥ पलायितेषुदेवेषु सोद्राक्षीज्ज्वलनंपुरः ॥ ज्वलन्तं परितस्त्वग्निं शमापयितुमुद्ययौ ॥ ८५ ॥ ससहस्रमुखोभूत्वा तैःपिबञ्छतशोनदीः ॥ तमग्निंनाशयामास तैः पयोभिस्त्वरान्वितः ॥ ८६ ॥ सितधारंभ्रमच्चक्रं सुधारक्षकमन्तिके ॥ दृष्ट्वातदरिरन्ध्रेण संक्षिप्ताङ्गोन्तराविशत् ॥ ८७ ॥ ततोददर्श द्वौसर्पौ व्यात्तास्यौभीषणाकृती ॥ याभ्यांदृष्टोपिभस्मस्यात्तौसर्पौगरुडस्तदा ॥ ८८ ॥ आच्छिद्यपक्षतुण्डाभ्यां गृहीत्वामृतमुद्ययौ ॥ यन्त्रमुत्पाट्यचोद्यन्तं गरुडंप्राहमाधवः ॥ ८९ ॥ तवतुष्टोस्मिपक्षीश वरंवरयसुव्रत ॥ अथपक्षीतमाहस्म कमलानायकंहरिम् ॥ ९० ॥ तवोपरिस्थितिर्मेस्यान्माभूतांचजरामृती ॥ तथास्त्वितिहरिःप्राह वरंदत्तंमयातव ॥ ९१ ॥ इत्युक्त्वातंहरिःप्राह ममत्वंवाहनंभव ॥ स्यन्दनोपरिकेतुश्च ममत्वंविनतासुत ॥ ९२ ॥ तथास्त्वितिखगोप्याह कमला

भयंकर आकार व मुखको फैलायेहुए दो सर्पों को देखा कि जिनसे देखाहुआ भी भस्म होजाता है उन सर्पों को उस समय गरुड़जी ॥८८॥ पंख व मुख से काटकर अमृत को लेकर चले और यंत्रको उखाड़कर जातेहुए गरुड़जी से विष्णुजीने कहा ॥ ८९ ॥ कि हे सुव्रत, पक्षीश ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं वरदान को मांगो इसके अनन्तर पक्षी गरुड़जीने उन लक्ष्मीपति विष्णुजी से कहा ॥ ९० ॥ कि तुम्हारे ऊपर मेरी स्थिति होवै और वृद्धता व मरण मत होवै विष्णुजी ने कहा कि वैसाही होवै मैंने तुमको इस वरको दिया ॥ ९१ ॥ यह कहकर उससे विष्णुजी ने कहा कि तुम मेरा वाहन होवो व हे विनतासुत ! तुम मेरे रथके ऊपर ध्वजा होवो ॥ ९२ ॥ वैसाही

होवै ऐसा गरुड़ पक्षी ने भी लक्ष्मीपति अच्युत विष्णुजी से कहा तदनन्तर अमृत को हरेहुए पक्षी गरुड़जी को सुनकर इन्द्रजी ने वेग से ॥ ९३ ॥ दौड़कर शीघ्रही पक्षी के पंखके ऊपर वज्रको चलाया तदनन्तर गरुड़जी हँसकर इन्द्र से बोले ॥ ९४ ॥ कि हे हरे ! वज्रके गिरने से मेरे कुछभी पीडा नहीं हुई व हे सुरनायक ! तुम्हारा वज्रपात सफल होवै ॥ ९५ ॥ ऐसा कहतेहुए गरुड़जी ने उस समय पंख से एक पत्र को छोड़दिया और इसका वह पत्र सुन्दर था इसकारण वह सुपर्णनामक हुआ ॥ ९६ ॥ और सुवर्ण के समान उस सुपर्ण के होनेपर सब विस्मय को प्राप्त हुए तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! गरुड़जी ने इन्द्र से

पतिमच्युतम् ॥ हृतामृतंखगंश्रुत्वा ततआखण्डलोजवात् ॥ ९३ ॥ अभिद्रुत्याशुकुलिशं पक्षेचिक्षेपपक्षिणः ॥ ततोवि हस्यगरुडः पाकशासनमब्रवीत् ॥ ९४ ॥ कुलिशस्यनिपातान्मे नहरेकापिवेदना ॥ सफलोवज्रपातस्ते भूयाच्चसुरनाय क ॥ ९५ ॥ इतीरयन्पत्रमेकं व्यसृजत्पक्षतस्तदा ॥ शोभनंपर्णमस्येति सुपर्णइतिसोभवत् ॥ ९६ ॥ तस्मिन्सुपर्णेहेमा भे सर्वेविस्मयमाययुः ॥ ततस्तुगरुडःशक्रमब्रवीद्द्विजपुङ्गवाः ॥ ९७ ॥ भवतासाकमखिलं जगदेतच्चराचरम् ॥ देवे न्द्रसततंवोढुममोघाशक्तिरस्तिमे ॥ ९८ ॥ नाखण्डलसहस्रंमे रणेलभ्यंहरेभवेत् ॥ इतिब्रुवाणंगरुडमब्रवीत्पाकशास नः ॥ ९९ ॥ किन्तेमृतेनकार्यंस्याद्दीयताममृतंमम ॥ इमांसुधांभवान्दद्याद्येभ्योहिविनतोद्भव ॥ १०० ॥ तेधुनामृतपा नेन जरामरणवर्जिताः ॥ अस्मद्भ्योधिकवीर्याःस्युर्बाधेरंस्त्रिदशांस्तथा ॥ १ ॥ इतिब्रुवन्तंदेवेन्द्रं गरुडोप्यब्रवीद्द्वि जाः ॥ यत्रैतत्स्थापयिष्यामि तत्रागत्यभवानिदम् ॥ २ ॥ गृह्णातुझटितीत्युक्तो गरुडंप्राहवृत्रहा ॥ प्रीतोहन्तवदास्या

कहा ॥ ९७ ॥ कि हे देवेन्द्र ! तुम समेत इस समस्त स्थावर जङ्गम को सदैव लेचलने के लिये मेरे अमोघ शक्ति है ॥ ९८ ॥ हे हरे ! युद्ध में हज़ार इन्द्र मुझको पाने योग्य नहीं हैं ऐसा कहतेहुए गरुड़ से इन्द्र ने कहा ॥ ९९ ॥ कि तुम्हारे मरने से मेरा क्या कार्य है मुझको अमृत दीजिये हे विनतोद्भव ! आप इस अमृत को जिनके लिये दीजियेगा ॥ १०० ॥ इस समय वे अमृत के पीनेसे वृद्धता व मरण से रहित होवैंगे और हमलोगों से अधिक बलवाले वे देवताओं को पीड़ित करैंगे ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! ऐसा कहतेहुए देवेन्द्र से गरुड़जीने भी कहा कि जहांपर मैं इस अमृत को स्थापित करूंगा वहां आकर आप इसको ॥ २ ॥ शीघ्रही ग्रहण कीजिये ऐसा कहेहुए इन्द्र ने गरुड़

से कहा कि हे महामते ! मैं प्रसन्न हूं तुम वर को मांगो मैं दूंगा ॥ ३ ॥ ऐसा कहतेहुए इन्द्र से गरुड़जी बोले कि मेरी माता को छल से दासीपन में करनेवाले सर्प ॥ ४ ॥ हे वृत्रहन्, पाकशासन ! मेरे सदैव भक्ष्य होवैं उन गरुड़ से ऐसा कहेहुए इन्द्र ने उस से यह कहा कि वैसाहीं होवै ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! अमृत को धारतेहुए गरुड़जी चले और उन जातेहुए गरुड़ के पीछे इन्द्रजी चले ॥ ६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वेगसें अमृत के हरने में कौतुकी वे पक्षिराज गरुड़जी माता के समीप आकर सर्पों से बोले ॥ ७ ॥ कि हे सर्पो ! इस समय मैं अमृत को कुशों के ऊपर धरता हूं उसको नहाकर पवित्र व सावधान होतेहुए तुमलोग भक्षण करो ॥ ८ ॥ व

मि वरंवृणुमहामते ॥ ३ ॥ इत्युक्तवन्तंगरुडः पाकशासनमब्रवीत् ॥ दास्येच्छलप्रयोक्तारो मममातुःसरीसृपाः ॥ ४ ॥ भक्ष्याभवन्तुनित्यंमे पाकशासनवृत्रहन् ॥ इतितेनेरितःशक्रस्तथास्त्वित्यवदच्चतम् ॥ ५ ॥ अथायंगरुडोविप्रा धारयन्नमृतंययौ ॥ यान्तंतमनुयातिस्म गरुडंपाकशासनः ॥ ६ ॥ वेगेनसद्विजश्रेष्ठाः सुधाहरणकौतुकी ॥ मातुरभ्यासमागत्य सर्पान्प्राहसपक्षिराट् ॥ ७ ॥ कुशेषुन्यस्यतेसर्पास्सुधैवमधुनामया ॥ स्नात्वातद्भुङ्ग्ध्वममृतं शुचयःसुसमाहिताः ॥ ८ ॥ मोक्षोपिमममातुःस्याद्दासीभावाद्विपन्नगाः ॥ तथास्त्वित्यवदन्सर्पा गरुडंविनतासुतम् ॥ ९ ॥ मुक्तातदैव विनता दासीभावाद्द्विजोत्तमाः ॥ सर्पास्तेमृतभक्षार्थं स्नातुंसर्वेययुस्तदा ॥ १० ॥ तस्मिन्नवसरेशक्रस्तामादायसुधांययौ ॥ स्नात्वागत्यभुजङ्गास्ते तत्राहष्ट्वातदासुधाम् ॥ ११ ॥ जिह्वाभिर्लिलिहुर्दर्भानेषुन्यस्तासुधेतिहि ॥ तदाप्रभृति सर्पाणां जिह्वादर्भाग्रपाटिता ॥ १२ ॥ द्विधाभवन्मुनिश्रेष्ठा द्विजिह्वास्तेनतेस्मृताः ॥ सुधासंयोगतोदर्भाः प्रययुश्चपवित्र

हे सर्पो ! दासीपन से मेरी माता की मुक्ति होवै सर्पोंने विनता के पुत्र गरुड़ से यह कहा कि वैसाही होवै ॥ ९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसी समय दासीपन से विनता छूटगई तब वे सब सांप अमृत को पीने के लिये नहाने के निमित्त गये ॥ १० ॥ उस अवसर में इन्द्र उस अमृत को लेकर चलेगये तब नहाकर आकर वे सर्प वहां अमृत को न देखकर ॥ ११ ॥ इसकारण जिह्वाओं से कुशों को चाटनेलगे कि इन में अमृत धरागया है तबसें लगाकर कुशाके अग्रभाग मे काटीहुई सर्पों की जिह्वा ॥ १२ ॥ हे मुनि-

श्रेष्ठो ! दो खंड होगई उसी कारण वे द्विजिह्व कहेगये हैं और अमृत के संयोग से कुश पवित्रता को प्राप्त हुए ॥ १३ ॥ गरुड़जी ने अपनी माता को दासीपन से छुड़ाकर क्रोधित होकर छलसे जीतीहुई मातावाली कद्रूको शाप दिया ॥ १४ ॥ कि हे कद्रु ! तुमने जिसकारण मेरी माताको छल से जीता है इसलिये तुम पतिकी सेवा में योग्य न होवोगी ॥ १५ ॥ इसप्रकार वे गरुड़जी कद्रू को शाप देकर इच्छा के अनुकूल चलेगये और कद्रू व विनता दोनों पति के समीप गईं ॥ १६ ॥ वहां विमुख होतेहुए कश्यपजीने क्रोधसे कद्रू से कहा कि जिसकारण हे कद्रु ! तुमने छलसे विनता को जीता है ॥ १७ ॥ इसकारण हे दुरात्मिके ! तुम मेरी सेवा में योग्य नहींहो जो स्त्री या

ताम् ॥ १३ ॥ मोचयित्वाचगरुडो दासीभावात्स्वमातरम् ॥ शशापकुपितःकद्रूं छद्मनाजितमातरम् ॥ १४ ॥ कद्रुत्वं जननींयन्मे छलेनजितवत्यसि ॥ भर्तुस्त्वंपरिचर्यायामतोनार्हाभविष्यसि ॥ १५ ॥ शप्त्वैवंगरुडःकद्रूं प्रययौसयथेच्छया ॥ कद्रूश्चविनताचोभे ययतुर्भर्तुरन्तिकम् ॥ १६ ॥ कश्यपोविमुखस्तत्र कद्रूंकोपादथाब्रवीत् ॥ यस्माच्छलेनविनतां कद्रुर्निर्जितवत्यसि ॥ १७ ॥ अतोमत्परिचर्यायां नयोग्यासिदुरात्मिके ॥ स्त्रियंवापुरुषंवापि नारीवापुरुषोपिवा ॥ १८ ॥ छलाद्विजयतेयोसौ समहापातकीभवेत् ॥ छलाद्विजयिनासार्धं संभाष्यब्रह्महाभवेत् ॥ १९ ॥ स्तेयीसुरापीविज्ञेयो गुरुदाररतश्चसः ॥ संसर्गदोषदुष्टश्च मुनिभिःपरिकीर्त्यते ॥ २० ॥ त्वयासंभाषणाद्दोषो ममस्यान्नरकप्रदः ॥ तस्मात्प्रयाहि कद्रुत्वं मत्समीपाद्धिदारुणे ॥ २१ ॥ छलजेत्रासपङ्क्तौयो भुञ्जीतमनुजोभुवि ॥ तेनसम्भाषणात्सद्यःपतेद्धिनरकार्णवे ॥ २२ ॥ विलोक्यछलजेतारं तस्यपापस्यशान्तये ॥ आदित्यंवाजलंवापि पावकंवाविलो

पुरुष स्त्री या पुरुषको ॥ १८ ॥ छलसे जीतता है वह महापापी होता है और छलसे जीतनेवाले के साथ संभाषण कर ब्रह्मघाती होता है ॥ १९ ॥ और वह चोर, मद्यप व गुरु की स्त्री में रत जानने योग्य है और वह मुनियों से संसर्ग के दोष से दुष्ट कहाजाता है ॥ २० ॥ और तुम्हारे संभाषण से मुझको नरक को देनेवाला दोष होवैगा इसकारण हे दारुणे, कद्रु ! तू मेरे समीप से चलीजा ॥ २१ ॥ पृथ्वी में जो मनुष्य छलसे जीतनेवाले की सपंक्ति में भोजन करता है उससे संभाषण करने से मनुष्य शीघ्रही नरक के समुद्र में गिरता है ॥ २२ ॥ और छलसे जीतनेवाले को देखकर उस पापकी शान्ति के लिये मनुष्य सूर्य या जल अथवा अग्नि को

देखै ॥२३॥ और छलसे जीतनेवाला मनुष्य जिस घरमें या जिस आश्रम में टिकै वहां अन्य पुरुषों को न बसना चाहिये क्योंकि वहां बसताहुआ मनुष्य नरक को भोगता है ॥ २४ ॥ इसकारण तुम मेरे दृष्टिमार्ग से निकलजावो निकलजावो क्योंकि हे कुटिले ! अपने बिन परिश्रम से तुमने इस विनता को जीता है ॥ २५ ॥ इसप्रकार उस समय महाबुद्धिमान् कश्यपजी ने उस कद्रू को यकायक धिक्कारकर पवित्रशीलवाली उस विनता को स्वीकार किया ॥ २६ ॥ और इसप्रकार कठोरता समेत कश्यपजी से कहीहुई वह कद्रू बहुत दुःख से विकल होकर रोतीहुई उनके चरणों में गिरपड़ी ॥ २७ ॥ और चरणों में गिरीहुई कद्रू को देखकर उससे कियेहुए पाप को स्मरण करतेहुए मुनिश्रेष्ठ

कयेत् ॥ २३ ॥ छलजेतायत्रतिष्ठेदाश्रमेपिगृहेपिवा ॥ वस्तव्यंनहितत्रान्यैर्वसन्नरकमश्नुते ॥ २४ ॥ अतोनिर्याहिनिर्याहि ममत्वंदृष्टिमार्गतः ॥ स्वाश्रमात्कुटिलेत्वेनां विनतांजितवत्यसि ॥ २५ ॥ इतिधिकृत्यसहसा कद्रूंतांकश्यपस्तदा ॥ विनतांस्वच्छशीलांतां स्वीचकारमहामतिः ॥ २६ ॥ कद्रूरित्थंसपरुषं कथिताकश्यपेनसा ॥ रुदन्तीभृशदुःखार्ता पादयोस्तस्यचापतत् ॥ २७ ॥ पतितांपादयोर्दृष्ट्वा कश्यपोमुनिपुङ्गवः ॥ नजग्राहैवकद्रूंतां स्मरन्पापंतयाकृतम् ॥ २८ ॥ ततःप्रणम्यविनता कश्यपंवाक्यमब्रवीत् ॥ भगवन्भगिनीमेनां स्वीकुरुष्वकृपानिधे ॥ २९ ॥ अज्ञानान्मुग्धयापापं कद्र्वायदधुनाकृतम् ॥ क्षन्तुमर्हसितत्सर्वं दयाशीलाहिसाधवः ॥ ३० ॥ जनन्यागरुडस्यैवं कथितःकश्यपोमुनिः ॥ उवाच विनतेनैनां विनापापस्यनिष्कृतिम् ॥ ३१ ॥ ग्रहीष्यामिदुराचारां त्रिस्त्वांशपथयाम्यहम् ॥ कश्यपस्यवचःश्रुत्वा विनतापुनरब्रवीत् ॥ ३२ ॥ भगिन्याममपापस्य ब्रह्मंस्त्वंब्रूहिनिष्कृतिम् ॥ येनेयंपरिचर्यायां तवयोग्याभविष्य

कश्यपजी ने उस कद्रू को नहीं ग्रहण किया ॥ २८ ॥ तदनन्तर विनता ने प्रणामकर कश्यपजीसे वचन कहा कि हे दयानिधे, भगवन् ! इस बहन को अंगीकार कीजिये ॥ २९ ॥ इस समय मुग्धा कद्रू ने अज्ञान से जिस पापको किया है उस सबको तुम क्षमा करने के योग्य हो क्योंकि साधुलोग दयाशील होते हैं ॥ ३० ॥ गरुड़की माता से इसप्रकार कहेहुए कश्यप मुनि बोले कि हे विनते ! मैं तुमको तीनबार सौगन्ध दिलाता हूं कि बिना पाप के प्रायश्चित्त इस दुष्ट आचरणवाली कद्रू को मैं ग्रहण न करूंगा कश्यपजी का वचन सुनकर फिर विनता ने कहा ॥ ३१ । ३२ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! मेरी बहन के पाप के प्रायश्चित्त को तुम कहो कि जिस से यह तुम्हारी सेवा

में योग्य होवै ॥ ३३ ॥ हे ब्राह्मणो ! उससे ऐसा कहेहुए मरीचि के पुत्र कश्यपजीने उस समय थोड़ी देरतक मन से ध्यान कर पश्चात् यह कहा ॥ ३४ ॥ कि दक्षिण समुद्र के किनारे मुक्तिदायक फुल्लग्राम में क्षीरसरनामक पापविनाशक तीर्थ है ॥ ३५ ॥ उस तीर्थ के स्नानही से इसको दोष नाश होजावैगा और उस तीर्थ में स्नान के विना दशहजार प्रायश्चित्तों से भी ॥ ३६ ॥ इसका यह दोष न नाश होवैगा इसकारण यह कद्रू उस तड़ाग को जावै पतिसे ऐसा कहनेपर कद्रू उन द्विजोत्तम कश्यपजी को प्रणाम कर ॥ ३७ ॥ उसी क्षण पुत्रसहायिनी होकर क्षीरसर को गई और पुत्रों समेत वह कद्रू कुछ दिनों से जाकर ॥ ३८ ॥ पवित्र क्षीरतड़ाग को प्राप्त होकर पवित्र

ति ॥३३॥ तथैवमुदितोविप्रा मारीचःकश्यपस्तदा ॥ ध्यात्वामुहूर्तंमनसा पश्चादिदमभाषत ॥३४॥ दक्षिणाम्बुनिधेस्तीरे फुल्लग्रामेविमुक्तिदे ॥ अस्तिक्षीरसरोनाम तीर्थंपापविनाशनम् ॥३५॥ तत्तीर्थस्नानमात्रेणदोषश्चास्याविनश्यति ॥ प्रायश्चित्तायुतेनापि तत्तीर्थेमज्जनंविना ॥ ३६ ॥ न नश्यत्येषदोषोस्यास्तदेषायातुतत्सरः ॥ भर्त्रैवमुदितेकद्रूस्तंप्रणम्याद्विजोत्तमम् ॥ ३७ ॥ तत्क्षणात्प्रययौ क्षीरसरःपुत्रसहायिनी ॥ साकद्रूःपुत्रसहिता गत्वाकतिपयैर्दिनैः ॥ ३८ ॥ प्राप्यक्षीरसरःपुण्यं प्रयताविजितेन्द्रिया ॥ सस्नौनियमपूर्वंच संकल्प्यक्षीरकुण्डके ॥ ३९ ॥ उपोष्यत्रिदिनंसस्नौ तस्मिन्क्षीरसरोजले ॥ चतुर्थेदिवसेतस्यां कुर्वत्यांस्नानमादरात् ॥ ४० ॥ अदेहाव्योमगावाणी समुत्तस्थौद्विजोत्तमाः ॥ अशरीरिण्युवाच ॥ कद्रुत्वंमज्जनादत्र छलजेतृत्वदोषतः ॥ ४१ ॥ विमुक्ताभर्तृशुश्रूषायोग्याचासिनसंशयः ॥ शापोपि गरुडोक्तस्ते लयंयातोत्रमज्जनात् ॥ ४२ ॥ गच्छभर्तृसकाशंत्वं सोपित्वांस्वीकरिष्यति ॥ इत्युक्त्वाविररामाथ व्योमवाग

व इन्द्रियों को जीतेहुई उस कद्रू ने संकल्प कर नियमपूर्वक क्षीरकुंड में स्नान किया ॥ ३९ ॥ और तीन दिन उपास कर उसने क्षीरतड़ाग के जलमें स्नान किया व चौथे दिन आदर से उस कद्रू के स्नान करतेहुए ॥ ४० ॥ हे द्विजोत्तमो ! बिन शरीरवाली आकाश में प्राप्त वाणी उत्पन्न हुई आकाशवाणी बोली कि हे कद्रु ! तुम इस तीर्थ में नहाने से छल से जीतने के दोष से ॥ ४१ ॥ छूटगई और पति की सेवा के योग्य हो इसमें सन्देह नहीं है और गरुड़ से कहाहुआ तुम्हारा शाप भी इस में नहाने से नाश को प्राप्त होगया ॥ ४२ ॥ तुम पति के समीप जावो और वह भी तुमको स्वीकार करैगा ऐसा कहकर अशरीरिणी आकाशवाणी

चुप होगई ॥ ४३ ॥ और उस वाणी के लिये नमस्कार कर पुत्रों समेत प्रसन्न मनवाली वह कद्रू तीर्थ की प्रदक्षिणा कर ॥ ४४ ॥ पति के समीप उसकी सेवा के कौतुक से गई और क्षीरसर के जल में नहाकर आईहुई उस कद्रू को देखकर ॥ ४५ ॥ उन कश्यपजी ने समाधि से पापरहित जानकर अपनी सेवाके योग्य उस स्त्री को अंगीकार किया ॥ ४६ ॥ हे ब्राह्मणो ! तुमलोगों से इसप्रकार कद्रू के पापकी मुक्ति कहीगई व पवित्र जलमें स्नान करने से पुरुषों को मुक्तिदायक क्षीरसर कहागया ॥ ४७ ॥ जो मनुष्य इस अध्याय को पढ़ता या सुनता है वह क्षीरकुंड में स्नान के उत्तम फल को पाता है ॥ ४८ ॥ व अश्वमेधादिक यज्ञों के समस्त फल को पाता है और वह गंगादिक सब

शरीरिणी ॥ ४३ ॥ तस्यैवाचेनमस्कृत्य कद्रूःसाप्रीतमानसा ॥ तीर्थंप्रदक्षिणीकृत्य नत्वापुत्रसमन्विता ॥ ४४ ॥ प्रय यौभर्तुरभ्यासं तच्छुश्रूषणकौतुकात् ॥ आगतान्तांसमालोक्य स्नातांक्षीरसरोजले ॥ ४५ ॥ ज्ञात्वाविधूतपापाञ्च कश्य पःससमाधिना ॥ अङ्गीचकारपत्नींतामात्मशुश्रूषणोचिताम् ॥ ४६ ॥ एवंवःकथितंविप्राः कद्रूपापविमोक्षणम् ॥ मज्जना न्मुक्तिदंपुंसां पुण्येक्षीरसरोजले ॥ ४७ ॥ यश्शृणोतीममध्यायं पठतेवापिमानवः ॥ सक्षीरकुण्डस्नानस्य लभतेफ लमुत्तमम् ॥ ४८ ॥ अश्वमेधादियज्ञानां समग्रंफलमश्नुते ॥ गङ्गादिसर्वतीर्थेषु सस्नातोभवतिध्रुवम् ॥ ४९ ॥ यःपठेदि ममध्यायं क्षीरकुण्डप्रशंसनम् ॥ गोसहस्रप्रदातॄणां प्राप्नोत्यविकलंफलम् ॥ १५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहा त्म्येक्षीरकुण्डप्रशंसायांकद्रूछलनन्नामाष्टत्रिंशोध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ अथातःसंप्रवक्ष्यामि कपितीर्थस्यवैभवम् ॥ तत्तीर्थंकपिभिःपूर्वं गन्धमादनपर्वते ॥ १ ॥ सर्वेषामुप

तीर्थों में नहायाहुआ होता है ॥ ४९ ॥ व क्षीरकुंड की प्रशंसावाले इस अध्याय को जो पढ़ता है वह गोसहस्र देनेवालों के उत्तम फल को पाता है ॥ १५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांक्षीरकुण्डप्रशंसायांकद्रूछलनंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । कपितीरथ में शाप से मुक्त घृताची रंभ। भई सोइ उन्तालिसे माहिं चरित सुखलंभ ॥ श्रीसूतजी बोले कि इसके अनन्तर मैं कपितीर्थ के माहात्म्य को कहता हूं पुरातन समय वानरों ने उस तीर्थ को गंधमादन पर्वत पै बनाया है ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! वानरों ने सबों के उपकार के लिये उसको निर्माण किया है रावणादिक

राक्षसों के नाश होनेपर उसके उपरान्त ॥ २ ॥ तीर्थ को बनाकर उन वानरों ने हर्षसे उसीमें स्नान किया और कामरूपी वानरों ने तीर्थ के लिये वर दिया ॥ ३ ॥ कि भक्ति से नम्र चित्तवाले जो मनुष्य इस तीर्थ में स्नान करेंगे महापातकों से छूटेहुए वे सब मुक्तिभागी होवेंगे ॥ ४ ॥ और इस तीर्थ में नहायेहुए पुरुषों को नरक से उपजाहुआ डर नहीं होता है और इसमें नहायेहुए सब मनुष्य दरिद्रता को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ व इस तीर्थ में नहायेहुए पुरुषों को यमराज की पीड़ा भी नहीं होती है और मैं कपितीर्थ को जाऊंगा ऐसा सदैव कहताहुआ जो मनुष्य ॥ ६ ॥ सौ पग जाता है हे ब्राह्मणो ! वह परमपद को प्राप्त होता है इस तीर्थ के समान अन्य

कारायकपिभिर्निर्मितंद्विजाः ॥ रावणादिषुरक्षःसु हतेषुतदनन्तरम् ॥ २ ॥ तीर्थेनिर्मायतत्रैव सस्नुस्तेकपयोमुदा ॥ तीर्थायचवरंप्रादुः कपयःकामरूपिणः ॥३॥ अस्मिंस्तीर्थेनिमग्नाये भक्तिप्रवणचेतसः ॥ तेसर्वेमुक्तिभाजःस्युर्महापातकमोचिताः ॥ ४ ॥ अत्रतीर्थेनिमग्नानां नस्यान्नरकजंभयम् ॥ अत्रस्नातानराःसर्वे दारिद्र्यंनाप्नुवन्तिहि ॥ ५ ॥ अत्रतीर्थेनिमग्नानां यमपीडापिनोभवेत् ॥ कपितीर्थंप्रयास्येहमितियःसततंब्रुवन् ॥ ६ ॥ व्रजेच्छतपदंविप्राः सयायात्परमंपदम् ॥ एतत्तीर्थसमंतीर्थं नभूतंनभविष्यति ॥ ७ ॥ एवंवरन्तुतेदत्त्वा तीर्थायास्मैकपीश्वराः ॥ रामंदाशरथिंसर्वे प्रणम्याथययाचिरे ॥ ८ ॥ स्वामिंस्त्वयास्मैतीर्थाय दीयतांवरमद्भुतम् ॥ कपिभिःप्रार्थितोविप्रा रामचन्द्रोतिहर्षितः ॥ ९ ॥ तत्तीर्थायवरंप्रादात्कपीनांप्रीतिकारणात् ॥ अत्रतीर्थेनिमग्नानां गङ्गास्नानफलंभवेत् ॥ १० ॥ प्रयागस्नानजंपुण्यं सर्वतीर्थफलंतथा ॥ अग्निष्टोमादियागानां फलंभूयादनुत्तमम् ॥ ११ ॥ गायत्र्यादिमहामन्त्रजपपुण्यं

तीर्थ न हुआ है न होवैगा ॥ ७ ॥ इस तीर्थ के लिये ऐसा वरदान देकर उन सब कपीश्वरों ने दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम कर प्रार्थना किया ॥ ८ ॥ कि हे स्वामिन् ! इत तीर्थ के लिये तुम अद्भुत वर को देवो हे ब्राह्मणो ! वानरों से प्रार्थना कियेहुए बड़े प्रसन्न रामचन्द्रजी ने ॥ ९ ॥ वानरों की प्रीति के कारण उस तीर्थ के लिये वर दिया कि इस तीर्थ में नहानेवाले पुरुषों को गंगास्नान का फल होवैगा ॥ १० ॥ व प्रयागस्नान से उपजाहुआ पुण्य तथा सब तीर्थों का फल होगा व अग्निष्टोमादिक यज्ञों का अतिउत्तम फल होवैगा ॥ ११ ॥ व गायत्री आदिक महामंत्रों के जपका पुण्य होगा और वह मनुष्य गोसहस्र देनेवालों के उत्तम फलको

पावैगा ॥ १२ ॥ और चारो वेदों के भी पारायण के फलको पावैगा व ब्रह्मा, विष्णु और शिवादिक देवपूजन के फल को पावैगा ॥ १३ ॥ हे ब्राह्मणो ! इन श्रीरामचन्द्रजी ने कपितीर्थ के लिये ऐसा वर दिया और वहां कौतुक से श्रीरामजीके ऐसा वर देनेपर ॥ १४ ॥ त्रिलोचन व चतुरानन तथा इन्द्र व यमराज, वरुण, अग्नि, पवन, कुबेर व चन्द्रमा ॥ १५ ॥ सूर्य, निर्ऋति, साध्य व वसु देवता तथा अन्य सब देवता और विश्वेदेवादिक ॥ १६ ॥ व अत्रि, भृगु, कुत्स, गौतम व पराशर, कण्व, अगस्त्य, सुतीक्ष्ण व अन्य विश्वामित्रादिक ऋषिलोग ॥ १७ ॥ और सनकादिक योगी व नारदादिक देवर्षि उससमय रामजीसे दियेहुए वरवाले तीर्थ की बहुत प्रकार से

तथाभवेत् ॥ गोसहस्रप्रदातॄणां प्राप्नोत्यविकलंफलम् ॥ १२ ॥ चतुर्णामपिवेदानां पारायणफलंलभेत् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशादिदेवपूजाफलंलभेत् ॥ १३ ॥ कपितीर्थायरामोयं प्रादादेवंवरन्द्विजाः ॥ एवंरामेणदत्तेतु वरेतत्रकुतूहलात् ॥ १४ ॥ षडर्धनयनोब्रह्मा सहस्राक्षोयमस्तथा ॥ वरुणाग्निस्तथावायुः कुबेरश्चन्द्रमाअपि ॥ १५ ॥ आदित्योनिर्ऋतिश्चैव साध्याश्चवसवस्तथा ॥ अन्येपित्रिदशाःसर्वे विश्वदेवादयस्तथा ॥ १६ ॥ अत्रिर्भृगुस्तथाकुत्सो गौतमश्चपराशरः ॥ कण्वोगस्त्यःसुतीक्ष्णश्च विश्वामित्रादयोपरे ॥ १७ ॥ योगिनःसनकाद्याश्च नारदाद्याःसुरर्षयः ॥ रामदत्तवरंतीर्थंश्लाघन्तेबहुधातदा ॥ १८ ॥ सस्नुश्चतत्रतीर्थेते सर्वाभीष्टप्रदायिनि ॥ कपिभिर्निर्मितंयस्मादेतत्तीर्थमनुत्तमम् ॥ १९ ॥ कपितीर्थमितिख्यातिमतोलोकेप्रयास्यति ॥ इत्यप्यवोचंस्तेसर्वे देवाश्चमुनयस्तथा ॥ २० ॥ तस्मादवश्यंगन्तव्यं कपितीर्थंमुमुक्षुभिः ॥ रम्भाकौशिकशापेन शैलीभूतापुराद्विजाः ॥ २१ ॥ तत्रस्नात्वानिजंरूपं प्रपेदेच

प्रशंसा करनेलगे ॥ १८ ॥ और उन्हों ने सब मनोरथों को देनेवाले उस तीर्थमें स्नान किया जिसकारण यह अति उत्तम तीर्थ कपियों से बनायागया है ॥ १९ ॥ इसकारण संसार में कपितीर्थ ऐसी प्रसिद्धि को प्राप्त होगा यह उन सब देवताओं व मुनियों ने कहा ॥ २० ॥ इसकारण मोक्षको चाहनेवाले पुरुषों को अवश्य कपितीर्थ को जाना चाहिये हे ब्राह्मणो ! पुरातनसमय विश्वामित्रजीके शापसे शिला हुई रंभा ने ॥ २१ ॥ उसमें नहाकर अपने रूपको पाया और वह स्वर्गको प्राप्त हुई इस तीर्थ का माहात्म्य

मुझसे नहीं कहा जासक्ता है ॥ २२ ॥ मुनिलोग बोले कि हे सूतपुत्र ! विश्वामित्रजीने रंभा को किसकारण शाप दिया और शिला हुई वह देवांगना कैसे कपितीर्थ को ाई है ॥ २३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! हमलोगों से इस सबको विस्तार से कहिये श्रीसूतजी बोले कि पुरातनसमय कुशिक के वंश में विश्वामित्रनामक राजा हुआ है ॥ २४ ॥ किसी समय राज्य को देखने के कौतुकवाला वह सेनासे घिराहुआ बलवान् महाराज पृथ्वी में घूमताभया ॥ २५ ॥ और बहुत देशों में घूमकर वह वसिष्ठजी के आश्रम को गया और उसी इस राजा को वसिष्ठ महात्मा ने पहुनई के लिये वरण किया ॥ २६ ॥ व दंडाकी नाईं प्रणाम कर उसी इस राजाने यह कहा कि वैसाही होवै और

दिवंययौ ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यं मयावक्तुंनशक्यते ॥ २२ ॥ मुनय ऊचुः ॥ रम्भांकिमर्थमशपत्कौशिकःसूतनन्दन ॥ कथंगताशिलाभूता कपितीर्थेसुराङ्गना ॥ २३ ॥ एतन्नःसर्वमाचक्ष्व विस्तरान्मुनिसत्तम ॥ श्रीसूत उवाच ॥ विश्वामित्राभिधोराजा प्रागभूत्कुशिकान्वये ॥ २४ ॥ सकदाचिन्महाराजः सेनापरिवृतोबली ॥ मेदिनींपरिचक्राम राज्यवीक्षणकौतुकी ॥ २५ ॥ अटित्वासबहून्देशान्वसिष्ठस्याश्रमंययौ ॥ आतिथ्यायवृतःसोयं वसिष्ठेनमहात्मना ॥२६॥तथास्त्वित्यब्रवीत्सोयं दण्डवत्प्रणतोनृपः ॥ कामधेनुप्रभावेण विश्वामित्रायभूभुजे ॥ २७ ॥ आतिथ्यमकरोद्विप्रा वसिष्ठोब्रह्मनन्दनः ॥ कामधेनुप्रभावंवै ज्ञात्वाकुशिकनन्दनः ॥ २८ ॥ वसिष्ठंप्रार्थयामास कामधेनुमभीष्टदाम् ॥ प्रत्याख्यातोवसिष्ठेन प्रचकर्षचतांबलात् ॥ २९ ॥ कामधेनुविसृष्टैस्तु म्लेच्छाद्यैःसपराजितः ॥ महादेवंसमाराध्य तस्मादस्त्राण्यवाप्यच ॥ ३० ॥ वसिष्ठस्याश्रमंगत्वा व्यसृजच्छरसञ्चयान् ॥ सर्वाण्यस्त्राणिमुमुचे ब्रह्मास्त्रंच

कामधेनु के प्रभाव से विश्वामित्र राजा के लिये ॥ २७ ॥ ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठजी ने पहुनई किया व हे ब्राह्मणो ! कुशिक के पुत्र विश्वामित्रजी ने कामधेनुका प्रभाव देखकर ॥ २८ ॥ मनोरथ को देनेवाली कामधेनु को वसिष्ठजी से मांगा और वसिष्ठजीसे जवाब दियेहुए विश्वामित्र ने उसको बलसे खींचा ॥ २९ ॥ और कामधेनु से पैदा कियेहुए म्लेच्छादिकों से वह पराजित हुआ और महादेवजीको आराधन कर व उनसे अस्त्रों को पाकर ॥ ३० ॥ नृपोत्तम विश्वामित्र ने वसिष्ठजी के आश्रम को

जाकर शरसमूहों को चलाया और सब अस्त्रों को व ब्रह्मास्त्र को छोडा ॥ ३१ ॥ और उन सब अस्त्रों को ब्रह्मपुत्र वसिष्ठजी ने अपने तपोबलसे एक ब्रह्मदंड से नाश किया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! हारेहुए विश्वामित्रजी अतिलज्जित हुए और अपना को ब्राह्मणता के पाने के लिये तपस्या करने के निमित्त वनको गये ॥ ३३ ॥ और उन्होंने पूर्व से लगाकर पश्चिम अन्त तक तीनों दिशाओं में तप किया और उन उन दिशाओं में वे विश्वामित्रजी प्रकट महाविघ्नवाले हुए ॥ ३४ ॥ उत्तर दिशा को जाकर हिमाचलपै कौशिकी नदी के पापविनाशक व पवित्र तथा निर्मल किनारेपर ॥ ३५ ॥ देवताओं के हज़ार वर्षतक निराहार व जितेन्द्रिय तथा कुछ न देखतेहुए

नृपोत्तमः ॥ ३१ ॥ तानिसर्वाणिचास्त्राणि वसिष्ठोब्रह्मनन्दनः ॥ एकेनब्रह्मदण्डेन निजब्रह्मतपोबलात् ॥ ३२ ॥ ततः पराजितोविप्रा विश्वामित्रोतिलज्जितः ॥ ब्राह्मण्यावाप्तयेस्वस्य तपःकर्तुंवनंययौ ॥ ३३ ॥ पूर्वादिपश्चिमांतासु त्रिषु दिक्षुतपोचरत् ॥ प्रादुर्भूतमहाविघ्नस्तत्तद्दिक्षुसकौशिकः ॥ ३४ ॥ उत्तरांदिशमासाद्य हिमवत्पर्वतेमले ॥ कौशिक्यास्स रितस्तीरे पुण्येपापविनाशिनि ॥ ३५ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु निराहारोजितेन्द्रियः ॥ निरालोकोजितश्वासो जितक्रोधः सनिश्चलः ॥ ३६ ॥ ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यस्थः शिशिरेवारिषुस्थितः ॥ वर्षास्वाकाशगो नित्यमूर्ध्वबाहुर्निराश्रयः ॥ ३७ ॥ ब्राह्मण्यसिद्धयेत्युग्रं चचारसुमहत्तपः ॥ उद्विग्नमनसस्तस्य त्रिदशास्त्रिदिवालयाः ॥ ३८ ॥ जम्भारिणाचसहिता रम्भां प्रोचुरिदंवचः ॥ देवा ऊचुः ॥ रम्भेत्वंहिमवच्छैले कौशिकीतीरगम्मुनिम् ॥ ३९ ॥ विश्वामित्रंतपस्यन्तं विलोभयवि चेष्टितैः ॥ यथातत्तपसोविघ्नो भविष्यतितथाकुरु ॥ ४० ॥ एवमुक्तायदारम्भा देवैरिन्द्रपुरोगमैः ॥ प्रत्युवाचसुरान्सर्वा

व श्वास को जीते और क्रोध को जीतेहुए उन निश्चल विश्वामित्रजी ने तप किया ॥ ३६ ॥ वे विश्वामित्रजी ग्रीष्म में पञ्चाग्नि के मध्य में स्थित हुए तथा शिशिर ऋतु में जलमें स्थित हुए और वर्षा में सदैव आकाश में प्राप्त हुए और ऊर्ध्वबाहु व निराश्रय रहे ॥ ३७ ॥ और ब्राह्मणता की सिद्धि के लिये उन्होंने बहुत उग्र व बड़ी तपस्या किया और उससे ऊबेहुए मनवाले स्वर्गस्थानवाले देवताओं ने ॥ ३८ ॥ इन्द्र समेत रंभासे इस वचन को कहा देवता बोले कि हे रंभे ! तुम हिमाचलपै कौशिकी नदी के किनारे प्राप्त व तपस्या करतेहुए विश्वामित्रमुनि को चेष्टितों से लुभावो और जिसप्रकार उनकी तपस्या का विघ्नहोवै वैसाही कीजिये ॥ ३९ । ४० ॥ इन्द्रादिक देवताओं

ने जब रंभा से ऐसा कहा तब हाथों को जोड़कर प्रणाम करतीहुई उस रंभा ने सब देवताओं से कहा ॥ ४१ ॥ रंभा बोली कि हे देवताओ ! विश्वामित्र महामुनिजी बड़े क्रूर व बड़े क्रोधी हैं वे क्रोधसे मुझको शाप देवेंगे इस से मैं डरती हूं ॥ ४२ ॥ तुमलोग दया से अपनी दासीरूपिणी मेरी रक्षाकरो रंभा से ऐसा कहेहुए इन्द्र ने उस से कहा ॥ ४३ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे रंभे ! विश्वामित्र तपस्वी से तुमको डर न करना चाहिये तुम्हारा सहायक मैंभी कामदेव समेत आऊंगा ॥ ४४ ॥ और कोकिला के आलाप से मधुर वसंत भी आवैगा बड़े सुन्दर रूपवाली तुम महामुनि को लुभावो ॥ ४५ ॥ इसप्रकार इन्द्र से कहीहुई रंभा विश्वामित्रजी के आश्रम को गई और उन

न्प्राञ्जलिःप्रणतातदा ॥ ४१ ॥ रम्भोवाच ॥ अतिक्रूरोमहाक्रोधो विश्वामित्रोमहामुनिः ॥ सशप्स्यतेमांक्रोधेन विभे म्यस्मादहंसुराः ॥ ४२ ॥ त्रायध्वंकृपयायूयं मांयुष्मत्परिचारिकाम् ॥ इत्युक्तोरम्भयातत्र जम्भारिस्तामभाषत ॥ ४३ ॥ इन्द्र उवाच ॥ रम्भेत्वयानभीःकार्या विश्वामित्रात्तपोधनात् ॥ अहमप्यागमिष्यामि त्वत्सहायःसमन्मथः ॥ ४४ ॥ कोकिलालापमधुरो वसन्तोप्यागमिष्यति ॥ अतिसुन्दररूपात्वं प्रलोभयमहामुनिम् ॥ ४५ ॥ इतीन्द्रकथितारम्भा विश्वामित्राश्रमंययौ ॥ तद्दृष्टिगोचरास्थित्वा ललितंरूपमास्थिता ॥ ४६ ॥ सामुनिंलोभयामास मनोहरविचेष्टितैः ॥ पिकोपितस्मिन्समये चुकूजानन्दयन्मनः ॥ ४७ ॥ श्रुत्वापिकस्वरंरम्भां दृष्ट्वाचमुनिपुङ्गवः ॥ संशयाविष्टहृदयो विदित्वाशक्रकर्मतत् ॥ ४८ ॥ शशापरम्भांक्रोधेन विश्वामित्रस्तपोधनः ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ यस्मात्कोपयसेरम्भे मान्त्वंकोपजयैषिणम् ॥ ४९ ॥ शिलाभवात्रतस्मात्त्वं रम्भेवर्षशतायुतम् ॥ तदन्तरेब्राह्मणेन रक्षितामोक्षमाप्स्यसि ॥५०॥

के दृष्टिगोचर में स्थित होकर सुन्दररूप में स्थित हुई ॥ ४६ ॥ और उसने सुन्दर हाव भावों से मुनिको लोभित किया और मनको आनन्द करतेहुए पिक ने भी उस समय शब्द किया ॥ ४७ ॥ व पिक के शब्द को सुनकर तथा रंभा को देखकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी के हृदय में संशय प्रवेश हुआ और उस इन्द्र के कर्म को जानकर ॥४८॥ तपस्यारूपी धनवाले विश्वामित्र ने क्रोधसे रंभा को शाप दिया विश्वामित्रजी बोले कि हे रंभे ! कोपको जीतनेकी इच्छावाले मुझको तुम जिसलिये क्रोधित करती हो ॥ ४९ ॥ उसकारण हे रंभे ! तुम सैकड़ों व हज़ारों वर्षतक पत्थर होकर यहां स्थित होवो उसी अवसर में ब्राह्मण से रक्षित तुम मोक्ष को पावोगी ॥ ५० ॥

हे ब्राह्मणो ! उसके अन्त में विश्वामित्रजी के शापसे वह रंभा शिला होगई और शिला होतीहुई बहुत दिनोंतक वह उनके आश्रममें स्थितहुई ॥५१॥ फिर धर्मात्मा विश्वामित्रजीने भी बड़ा तपकरके वसिष्ठ के वचन से राजाओं से दुर्लभ ब्राह्मणता को पाया ॥ ५२ ॥ और बहुत समयतक उनके आश्रम में पत्थरहुई रंभा भी स्थितहुई और उसी पवित्र आश्रम में अगस्त्यजी के सम्मत शिष्य ॥ ५३ ॥ श्वेत नामक मुक्ति की इच्छावाले मुनि ने बहुत तप किया और बहुत समयतक उन महामुनि के तप करते हुए ॥ ५४ ॥ अंगारका ऐसी कोई प्रसिद्ध राक्षसी आई और बड़ी क्रूर व मेघके समान शब्द तथा महाध्वनिवाली उस भयंकरी राक्षसी ने उनके आश्रम को मूत्र, रक्त व

विश्वामित्रस्यशापेन तदन्तेसाशिलाभवत् ॥ बहुकालंशिलाभूता तस्थौतस्याश्रमेद्विजाः ॥ ५१ ॥ विश्वामित्रोपिधर्मात्मा पुनस्तप्त्वामहत्तपः ॥ लेभेवसिष्ठवाक्येन ब्राह्मण्यंदुर्लभंनृपैः ॥ ५२ ॥ बहुकालंशिलाभूता रम्भाप्यासीत्तदाश्रमे ॥ तस्मिन्नेवाश्रमेपुण्ये शिष्योगस्त्यस्यसंमतः ॥ ५३ ॥ श्वेतोनाममुनिश्चक्रे मुमुक्षुःपरमंतपः ॥ चिरकालंतपस्तस्मिन्प्रकुर्वतिमहामुनौ ॥ ५४ ॥ अङ्गारकेतिविख्याता राक्षसीकाचिदागता ॥ तस्याश्रममतिक्रूरा मेघस्वनमहाध्वना ॥ ५५ ॥ मूत्ररक्तपुरीषाद्यैर्दूषयामासभीषणा ॥ उपद्रवैस्तथाचान्यैर्बाधयामासतंमुनिम् ॥ ५६ ॥ अथक्रुद्धो मुनिःश्वेतो वायव्यास्त्रेणयोजयन् ॥ शप्ताङ्कुशिकपुत्रेण राक्षस्यैप्राक्षिपच्छिलाम् ॥ ५७ ॥ राक्षसींसाप्रदुद्राव वायव्यास्त्रेणयोजिता ॥ वायव्यास्त्रप्रयुक्तेन दृषतानुद्रुताचसा ॥ ५८ ॥ दक्षिणाम्बुनिधेस्तीरं धावतिस्मभयार्दिताम् ॥ धावन्तीमनुधावन्ती साशिलास्त्रप्रयोजिता ॥ ५९ ॥ पपातोपरिराक्षस्या मज्जन्त्याःकपितीर्थके ॥ मृतासाराक्षसीतत्र शि

विष्ठादिकों से दूषित किया और अन्य उपद्रवों से उन मुनिको पीड़ित किया ॥ ५५।५६ ॥ इसके अनन्तर कुशिकपुत्र (विश्वामित्र) जी से शापित शिलाको वायव्य अस्त्र से योजित करतेहुए क्रोधित श्वेत मुनि ने राक्षसी के लिये चलाया ॥ ५७ ॥ और वायव्य अस्त्र से योजित वह शिला राक्षसी के सामने दौड़ी और वायव्य अस्त्र से प्रयुक्त पत्थर से भगाईहुई वह राक्षसी ॥ ५८ ॥ दक्षिण समुद्र के किनारे भगगई और भयसे विकल व दौडतीहुई राक्षसी के पीछे अस्त्र से चलाईहुई वह शिला दौड़ी ॥ ५९॥ और

कपितीर्थ में डूबतीहुई उस राक्षसी के ऊपर गिरपड़ी और वहां अपने मस्तक पै शिला के गिरने से वह राक्षसी मरगई ॥ ६० ॥ और विश्वामित्रजीसे शापित वह शिला कपितीर्थ में नहाने से शिला के रूपको छोड़कर रंभा के रूप को प्राप्तहुई ॥ ६१ ॥ व देवताओं से फूलों की वृष्टि से वर्षाकीहुई सुन्दरी रंभा दिव्य वसनों से शोभित होकर दिव्य विमानपै चढ़ी ॥ ६२ ॥ और हार, बजुल्ला, कंकण व नासिकाभरण से भूषित वह उर्वशी आदिक अप्सरा सखियों से संयुत हुई ॥ ६३ ॥ और बार २ कपितीर्थ के माहात्म्य की प्रशंसा करतीहुई वह रंभा चन्द्रभूषण रामनाथ शिवजीको सेवनकर ॥ ६४ ॥ सुन्दरी इन्द्रपुरी अमरावती को चलीगई और वह राक्षसी भी बड़े

लापातात्स्वमूर्द्धनि ॥६०॥ विश्वामित्रेणशप्तासा कपितीर्थेनिमज्जनात् ॥ शिलारूपंपरित्यज्य रम्भारूपमुपेयुषी॥६१॥ देवैःकुसुमधाराभिरभिवृष्टामनोरमा ॥ दिव्यंविमानमारूढा दिव्याम्बरविराजिता ॥ ६२ ॥ हारकेयूरकटकनासाभरण भूषिता ॥ उर्वश्याद्यप्सरोभिश्च सखिभिःपरिवारिता ॥ ६३ ॥ कपितीर्थस्यमाहात्म्यं प्रशंसन्तीपुनःपुनः ॥ निषेव्यरा मनाथंच शङ्करंशशिभूषणम् ॥ ६४ ॥ आखण्डलपुरींरम्यां प्रययावमरावतीम् ॥ राक्षसीसापिशापेन कुम्भजस्यम हौजसः ॥ ६५ ॥ घृताचीदेववेश्याहि राक्षसीरूपमागता ॥ साप्यत्रकपितीर्थाप्सु स्नानात्स्वंरूपमाययौ ॥ ६६ ॥ एवं रम्भाघृताच्यौते कपितीर्थेनिमज्जनात् ॥ अगस्त्यशिष्यश्वेतस्य प्रसादाद्द्विजसत्तमाः ॥ ६७ ॥ राक्षसीत्वंशिलात्वञ्च हित्वास्वंरूपमागते ॥ तस्मिन्सर्वप्रयत्नेन स्नातव्यंकपितीर्थके ॥ ६८ ॥ यःशृणोतीममध्यायं पठतेवापिमानवः ॥ प्रा प्नोतिकपितीर्थस्य स्नानजंफलमुत्तमम् ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कान्देरम्भाशापविमोक्षणन्नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३९॥

तेजवान् अगस्त्यजी के शाप से ॥ ६५ ॥ घृताची नामक देवताओंकी वेश्या राक्षसी के रूपको प्राप्त हुई थी वह भी इस कपितीर्थ के जलमें नहाने से अपने रूप को प्राप्तहुई ॥ ६६ ॥ इसप्रकार हे द्विजोत्तमो ! अगस्त्य के शिष्य श्वेतजी के प्रसाद से वे रंभा और घृताची कपितीर्थ में नहाने से ॥ ६७ ॥ राक्षसीपन व शिलापनको छोड़कर अपने रूपको प्राप्त हुईं उस कपितीर्थ में सब यत्न से नहाना चाहिये ॥ ६८ ॥ जो मनुष्य इस अध्याय को पढ़ता या सुनता है वह कपितीर्थ के स्नान से उपजेहुए उत्तम फल को पाता है ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां कपितीर्थप्रशंसायांरम्भाशापविमोक्षणंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

दो॰। जिमि गायत्रि सरस्वति भये तीर्थ ये दोइ। चालिसवें अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनियो! इसके अनन्तर मैं लोकों को पवित्र करनेवाले व मनुष्यों को मुक्ति देनेवाले गायत्री व सरस्वती के माहात्म्य को कहता हूं॥ १॥ जोकि पढ़ते व सुनतेहुए मनुष्यों के महापातकों का विनाशक तथा महापुण्यदायक व नरकों के क्लेश का विनाशक है॥ २॥ जो मनुष्य गायत्री व सरस्वती में हर्ष से नहाते हैं उनको गर्भवास नहीं होता है किन्तु निश्चयकर मुक्ति होती है॥ ३॥ गन्धमादन पर्वतपै ब्रह्मा की स्त्री सरस्वती व गायत्री की स्थिति से उन्हीं के नामसे ये दोनों नदियां कही गई हैं॥ ४॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी!

श्रीसूत उवाच॥ अथातःसम्प्रवक्ष्यामि मुनयोलोकपावनम्॥ गायत्र्याश्चसरस्वत्या माहात्म्यंमुक्तिदंनृणाम्॥१॥ शृण्वतांपठतांचैव महापातकनाशनम्॥ महापुण्यप्रदंपुंसां नरकक्लेशनाशनम्॥ २॥ गायत्र्यांचसरस्वत्यां येस्नान्ति मनुजामुदा॥ नतेषांगर्भवासस्स्यात्किन्तुमुक्तिर्भवेद्ध्रुवम्॥३॥ सरस्वत्याश्चगायत्र्या गन्धमादनपर्वते॥ ब्रह्मपत्न्योः सन्निधानात्तन्नाम्नाकथितेइमे॥ ४॥ ऋषय ऊचुः॥ गायत्र्याश्चसरस्वत्या गन्धमादनपर्वते॥ किमर्थंसन्निधानंवै सूताभूत्तद्वदस्वनः॥ ५॥ सूत उवाच॥ प्रजापतिःपुराविप्राः स्वांवैदुहितरंमुदा॥ वाङ्नाम्नींकामुकोभूत्वा स्पृहयामाससमोहनः॥ ६॥ अथप्रजापतेःपुत्री स्वस्मिन्वैतस्यकामिताम्॥ विलोक्यलज्जिताभूत्वा रोहिद्रूपन्दधारसा॥ ७॥ ब्रह्मापि हरिणोभूत्वा तयारन्तुमनास्तदा॥ गच्छन्तीमनुयातिस्म हरिणीरूपधारिणीम्॥ ८॥ तंदृष्ट्वादेवताःसर्वाः पुत्रीगमन

गन्धमादन पर्वतपै किसलिये गायत्री व सरस्वती का सन्निधान हुआ है उसको हमलोगों से कहिये॥ ५॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो! पुरातनसमय प्रजापति ब्रह्माजी मोहन व कामुक होकर हर्ष से वाणी नामक अपनी कन्या की इच्छा किया॥ ६॥ इसके अनन्तर ब्रह्माकी उस कन्या ने उनकी कामुकता को अपना में देखकर लज्जित होकर मृगी का रूप धारण किया॥ ७॥ तब उसके साथ रमणकरने की इच्छावाले ब्रह्माभी हरिणी के रूपको धारनेवाली उस जातीहुई कन्या के पीछे चले॥ ८॥ और कन्या के गमन में आदर समेत उन ब्रह्माजी को देखकर सब देवता इसप्रकार उनकी निन्दा करनेलगे कि ये ब्रह्मा कन्यागमन के लक्षणवाले अकार्य को करते हैं व

हे ब्राह्मणो ! निषिद्ध कर्ममें लगेहुए उन लोकों के पति व रचनेवाले ब्रह्माको देखकर ॥ ९।१० ॥ व्याधरूपधारी महादेव स्वामी ने पिनाक धनुषको लेकर कानोंतक खींचे हुए पिनाक धनुष से बाण को लगाकर ॥ ११ ॥ उन्होंने उस पैने बाण से ब्रह्माको मारा और त्रिपुरविनाशक शिवजीके बाणसे बेधेहुए ये ब्रह्माजी पृथ्वी में गिरपड़े ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर उनके शरीर से महाप्रभावान् बड़ीभारी ज्योति उठकर उस समय आकाश में मृगशिरा नामक नक्षत्र हुई ॥ १३ ॥ और आर्द्रा नक्षत्ररूपी होतेहुए महादेव भी उसके पीछे गये ब्रह्मारूपी मृगशिरा नामक नक्षत्र को पीड़ित करतेहुए ॥ १४ ॥ त्रिपुरविनाशक शिवजी इससमय भी मृगव्याध के रूपसे आकाश में हे ब्राह्मणो !

सादरम् ॥ करोत्यकार्यंब्रह्मायं पुत्रीगमनलक्षणम् ॥ ९ ॥ इतिनिन्दन्तितंविप्राः स्रष्टारंजगतांपतिम् ॥ निषिद्धकृत्यनिरतं तंदृष्ट्वापरमेष्ठिनम् ॥ १० ॥ हरःपिनाकमादाय व्याधरूपधरःप्रभुः ॥ आकर्णपूर्णकृष्टेन पिनाकधनुषाशरम् ॥ ११ ॥ संयोज्यवेधसन्तेन विव्याधनिशितेनसः ॥ त्रिपुरान्तकबाणेन विद्धोसौन्यपतद्भुवि ॥ १२ ॥ तस्यदेहादथोत्थाय महज्ज्योतिर्महाप्रभम् ॥ आकाशेमृगशीर्षाख्यं नक्षत्रमभवत्तदा ॥ १३ ॥ आर्द्रानक्षत्ररूपीसन्हरोप्यनुजगामतम् ॥ पीडयन्मृगशीर्षाख्यं नक्षत्रंब्रह्मरूपिणम् ॥ १४ ॥ अधुनापिमृगव्याधरूपेणत्रिपुरान्तकः ॥ अम्बरेदृश्यतेस्पष्टं मृगशीर्षान्तिकेद्विजाः ॥ १५ ॥ एवंविनिहितेतस्मिञ्छम्भुनापरमेष्ठिनि ॥ अनन्तरन्तुगायत्रीसरस्वत्यौशुचार्दिते ॥ १६ ॥ भर्तृहीने मुनिश्रेष्ठा भर्तृजीवनकाङ्क्षया ॥ किंकरिष्यावहेह्यावामित्यन्योन्यंविचार्यतु ॥ १७ ॥ स्वपतिप्राणसिद्ध्यर्थं गायत्रीचसरस्वती ॥ सर्वोत्कृष्टंशिवस्थानं गन्धमादनपर्वतम् ॥ १८ ॥ सर्वाभीष्टप्रदंपुंसां तपःकर्तुंसमुद्यते ॥ जग्मतुर्नियमोपेतं

मृगशिरा के समीप स्पष्ट देखपड़ते हैं ॥ १५ ॥ इसप्रकार शिवजीसे उन ब्रह्मा के नष्टहोनेपर इसी अवसर में शोचसे विकल गायत्री व सरस्वती ॥ १६ ॥ पतिहीन होकर हे मुनिश्रेष्ठो ! पतिके जीनेकी इच्छा से परस्पर यह विचारकर कि हम तुम दोनों क्या करैं ॥ १७ ॥ अपने पतिके प्राणों की सिद्धि के लिये गायत्री और सरस्वती सब से उत्तम व मनुष्यों के सब मनोरथों को देनेवाले शिवजी के स्थान गन्धमादन पर्वतपै तपस्या करने के लिये उद्यत हुई और नियमसे संयुत तपस्या करने के लिये शिव

जी के समीप गई ॥ १८ । १६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! अपने स्नान के लिये गायत्री व सरस्वती अपने नाम से पापविनाशक दो तीर्थों को किया ॥ २० ॥ और उन में प्रतिदिन हर्ष से त्रिकाल स्नान किया व बहुत समय तक निराहार व काम, क्रोधादिकों से रहित ॥ २१ ॥ तथा बहुतही उग्र तपस्या से संयुत व शिवजी के ध्यान में परायण व पञ्चाक्षर महामन्त्र के जप में केवल लगीहुई उत्तम ॥ २२ ॥ गायत्री व सरस्वती ने अपने पति के जीने के लिये महादेवजी को उद्देश कर इसप्रकार तपस्या किया ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर उनकी तपस्या से महादेव महेश्वरजी प्रसन्न हुए व तपों के फलको देने की इच्छा से महामूर्तिमान् शिवजी स्थित हुए ॥ २४ ॥ तदनन्तर

तपःकर्तुंशिवंप्रति ॥ १९ ॥ स्नानार्थमात्मनोविप्रा गायत्रीचसरस्वती ॥ तीर्थद्वयंस्वनाम्नावै चक्रतुःपापनाशनम् ॥ २० ॥ तत्रत्रिपवणस्नानं प्रत्यहंचक्रतुर्मुदा ॥ बहुकालमनाहारे कामक्रोधादिवर्जिते ॥ २१ ॥ अत्युग्रनियमोपेते शिवध्यानपरायणे ॥ पञ्चाक्षरमहामन्त्रं जपैकनियतेशुभे ॥ २२ ॥ स्वपतेर्जीवनार्थंवै गायत्रीचसरस्वती ॥ महादेवंसमुद्दिश्य तपएवंप्रचक्रतुः ॥ २३ ॥ तयोरथतपस्तुष्टो महादेवोमहेश्वरः ॥ सन्निधत्तेमहामूर्तिस्तपसांफलदित्सया ॥ २४ ॥ ततः सन्निहितंशम्भुं पार्वतीरमणंशिवम् ॥ गणेशकार्त्तिकेयाभ्यां पार्श्वयोःपरिसेवितम् ॥ २५ ॥ दृष्ट्वासन्तुष्टचित्तेते गायत्रीचसरस्वती ॥ स्तोत्रैस्तुष्टुवतुश्शम्भुं महादेवं घृणानिधिम् ॥ २६ ॥ गायत्रीसरस्वत्यावूचतुः ॥ नमोदुर्वारसंसारध्वान्तध्वंसैकहेतवे ॥ ज्वलज्ज्वालावलीभीमकालकूटविषादिने ॥ २७ ॥ जगन्मोहनपञ्चास्त्रदेहनाशैकहेतवे ॥ जगदन्तकरक्रूर यमान्तकनमोस्तुते ॥ २८ ॥ गङ्गातरङ्गसंपृक्तजटामण्डलधारिणे ॥ नस्मस्तेस्तुविरूपाक्ष बालशीतांशुधा

दोनों बगलों में गणेश व स्वामिकार्त्तिकेयजी से सेवित पार्वतीरमण रुद्रशिवजी को स्थित ॥ २५ ॥ देखकर उन प्रसन्नचित्तवाली गायत्री व सरस्वती ने स्तोत्रों से दयानिधान शिवजी की स्तुति किया ॥ २६ ॥ गायत्री सरस्वती बोलीं कि दुःख से पार होने योग्य संसारके अन्धकार के नाश के लिये एकही कारणरूप आपके लिये नमस्कार है व जलतीहुई ज्वालाओं की पंक्तियोंवाले तथा भयंकर कालकूट विष को खानेवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ २७ ॥ और संसार को मोहनेवाले पंचबाण (कामदेव) के शरीर के नाश के लिये एकही कारणरूप आपके लिये प्रणाम है हे संसारविनाशक, क्रूर, यमान्तक ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २८ ॥ और गङ्गा

की तरंगों से मिले हुए जटामण्डल को धारनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व हे विरूपलोचन ! बालचन्द्रमा को धारनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २९ ॥ व हे विविधाकार ! पिनाकधनुषके भयंकर टङ्कार से त्रिपुरवासियों को डरानेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है व संसार को रचनेवाले ब्रह्मा के मस्तक को काटनेवाले आप के लिये प्रणाम है ॥ ३० ॥ हे निर्मल दयादृष्टि से मार्कण्डेयजी की रक्षाकरनेवाले, गिरिजानाथ ! तुम्हारे लिये प्रणाम है और शरण में आईहुई हम दोनों की रक्षा कीजिये ॥ ३१ ॥ हे महादेव, जगदीश, त्रिपुरान्तक, शङ्कर ! हे वामदेव, महादेव ! शरण में आई हुई हम दोनों की रक्षा कीजिये ॥ ३२ ॥ उन दोनों से इसप्रकार स्तुति

रिणे ॥ २९ ॥ पिनाकभीमटङ्कारत्रासितत्रिपुरौकसे ॥ नमस्तेविविधाकार जगत्स्रष्टृशिरश्छिदे ॥ ३० ॥ शान्तामलकृपादृष्टिसंरक्षितमृकण्डुज ॥ नमस्तेगिरिजानाथ रक्षावांशरणागते ॥ ३१ ॥ महादेवजगन्नाथ त्रिपुरान्तकशङ्कर ॥ वामदेवमहादेव रक्षावांशरणागते ॥ ३२ ॥ इतिताभ्यांस्तुतःशम्भुर्देवदेवोमहेश्वरः ॥ अब्रवीत्प्रीतिसंयुक्तो गायत्रींचसरस्वतीम् ॥ ३३ ॥ महादेव उवाच ॥ भोःसरस्वतिगायत्रि प्रीतोस्मियुवयोरहम् ॥ वरंवरयतंमत्तो यद्वांमनसिवर्तते॥३४॥ इत्युक्तेतुगायत्रीसरस्वत्यौहरेणवै ॥ अब्रूतांपार्वतीकान्तं महादेवंघृणानिधिम् ॥ ३५ ॥ गायत्रीसरस्वत्यावूचतुः ॥ भगवन्नावयोर्देव भर्त्तारंचतुराननम् ॥ सप्राणंकुरुसर्वेश कृपयाकरुणाकर ॥ ३६ ॥ त्वमावयोःपितादेव तवाप्यावांसुतेउभे ॥ रक्षावांपतिदानेन तस्मात्त्वंत्रिपुरान्तक ॥ ३७ ॥ सएवंप्रार्थितःशम्भुस्ताभ्यांब्राह्मणपुङ्गवाः ॥ एवमस्त्वितिसं

कियेहुए देवदेव महेश्वर शिवजी प्रसन्नतासंयुत होकर गायत्री व सरस्वती से बोले ॥ ३३ ॥ महादेवजी बोले कि हे सरस्वति ! हे गायत्रि ! मैं तुम दोनों के ऊपर प्रसन्नहूं मुझसे उस वरदान को मांगो जोकि तुम दोनों के मन में वर्तमान हो ॥ ३४ ॥ शिवजीसे ऐसा कहनेपर उन गायत्री व सरस्वतीजी ने दयानिधान उमापति शिवजी से कहा ॥ ३५ ॥ गायत्री व सरस्वती बोलीं कि हे सर्वेश, दयाकर, भगवन् ! हम दोनोंके पति चतुर्मुखजीको प्राण समेत कीजिये ॥ ३६ ॥ हे देव ! तुम हम दोनोंके पिता हो और हम भी दोनो तुम्हारी कन्या है इसकारण हे त्रिपुरविनाशक ! पतिदानसे हम दोनों की रक्षाकरो ॥ ३७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उन दोनों से इसप्रकार प्रार्थना किये

हुए शिवजी ऐसाही होवै यह गायत्री व सरस्वतीजी से कहकर ॥ ३८ ॥ उसी ब्रह्माके शरीर को मस्तक से जोड़ने के लिये उत्कंठित हुए व हे सुव्रतो ! उस समय शिवजी ने वहीं पर मस्तकों समेत ब्रह्मा के शरीर को नन्दि, भृंगी आदिक भूतों से मंगाया और उन आयेहुए मस्तकों को शिवजी ने शरीर समेत ॥ ३९ । ४० ॥ क्षणभर में सरस्वती व गायत्री के समीपही धारण किया व शिवजी से सन्धान कियेहुए ये जगदीश चतुराननजी ॥ ४१ ॥ हे ब्राह्मणो ! उसी क्षण सोतेहुए से उठपड़े तदनन्तर ब्रह्माजी ने चन्द्रभूषण शिवजीको देखकर ॥ ४२ ॥ स्त्रियोंसमेत उत्तम वाणियों से स्तुति किया ब्रह्मा बोले कि हे देवदेवेश, करुणाकर, शंकर ! तुम्हारे लिये नमस्कार

प्रोच्य गायत्रींचसरस्वतीम् ॥ ३८ ॥ तदेववेधसःकायं शिरसायोक्तुमुत्सुकः ॥ तत्रैववेधसःकायं शिरोभिःसहसुव्रताः ॥ ३९ ॥ भूतैरानाययामास नन्दिभृङ्गिमुखैस्तदा ॥ शिरांसितान्यानीतानि कायेनसहशङ्करः ॥ ४० ॥ क्षणात्सन्धारयामास वाणीगायत्रिसन्निधौ ॥ सन्धितोथहरेणासौ चतुर्वक्त्रोजगत्पतिः ॥ ४१ ॥ उत्तस्थौतत्क्षणादेव सुप्तोत्थितइवद्विजाः ॥ ततःप्रजापतिर्दृष्ट्वा शङ्करंशशिभूषणम् ॥ ४२ ॥ तुष्टाववाग्भिरग्र्याभिर्भार्याभ्यांचसमन्वितः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्तेदेवदेवेश करुणाकरशङ्कर ॥ ४३ ॥ पाहिमांकरुणासिन्धो निषिद्धाचरणात्प्रभो ॥ ममत्वत्कृपयाशम्भो निषिद्धाचरणेक्वचित ॥ ४४ ॥ माप्रवृत्तिर्भवेद्भूयो रक्षमान्त्वंतथासदा ॥ तथैवास्त्वितिसम्प्राह ब्रह्माणंगिरिजापतिः ॥ ४५ ॥ इतःपरंप्रमादन्त्वं माकुरुष्वविधेपुनः ॥ उत्पथप्रातिपन्नानां पुंसांशास्तास्मिसर्वदा ॥ ४६ ॥ एवमुक्त्वाचतुर्वक्त्रं महादेवोद्विजोत्तमाः ॥ सरस्वतींचगायत्रीं प्रोवाचप्रीणयन्गिरा ॥ ४७ ॥ महादेव उवाच ॥ युवयोर्मत्प्रसादेन हेगाय

है ॥ ४३ ॥ हे दयासिंधो, प्रभो ! निषिद्ध आचरण से मेरी रक्षा कीजिये व हे शंभो ! तुम्हारी दया से कभी निषिद्ध आचरण में मेरी ॥ ४४ ॥ फिर प्रवृत्ति मत होवै तुम वैसेही सदैव मेरी रक्षा करो, गिरिजापति ने ब्रह्मा से यह कहा कि वैसाही होवै ॥ ४५ ॥ हे विधे ! इसके उपरान्त तुम फिर प्रमाद न करना मैं कुपथ में प्राप्त प्राणियों को सदैव दंड देनेवाला हूं ॥ ४६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! ब्रह्मा से ऐसा कहकर सरस्वती व गायत्री को वचन से प्रसन्न करतेहुए महादेवजी बोले ॥ ४७ ॥ महादेवजी बोले

कि हे गायत्रि ! हे सरस्वति ! मेरी प्रसन्नता से तुम दोनों के पति ये ब्रह्माजी प्राणों समेत आये हैं ॥ ४८ ॥ तुम दोनों इनके साथ ब्रह्मलोक को जावो विलंब मत होवै और तुम दोनों के स्थित होनेसे सदैव इन दोनों कुण्डों में ॥ ४९ ॥ स्नान करने से मनुष्यों की सायुज्यरूपिणी मुक्ति होगी और तुम्हारे नाम से गायत्री व सरस्वती ऐसे ये दोनों तीर्थ सब संसार में सनातनी प्रसिद्धि को प्राप्त होवैंगे और सब तीर्थों के मध्य में ये दोनों तीर्थ सदैव ॥ ५० । ५१ ॥ शुद्धिदायक व महापातकों के विनाशक और महाशांतिकारक व पुरुषों को सब मनोरथों के दायक होवैंगे ॥ ५२ ॥ और मेरी प्रसन्नता को उत्पन्न करनेवाले तथा विष्णुजीकी प्रीति करनेवाले होवैंगे व इन दोनों

त्रिसरस्वति ॥ अयंभर्तासमायातः सप्राणश्चतुराननः ॥ ४८ ॥ सहानेनब्रह्मलोकं यातंमाभूद्विलम्बता ॥ युवयोःसन्निधानेन सदाकुण्डद्वयेत्र्वै ॥ ४९ ॥ भविष्यतिनृणांमुक्तिः स्नानात्सायुज्यरूपिणी ॥ युष्मन्नाम्नाचगायत्रीसरस्वत्यावितिद्वयम् ॥ ५० ॥ इदंतीर्थंसर्वलोके ख्यातिंयास्यतिशाश्वतीम् ॥ सर्वेषामपितीर्थानामिदंतीर्थद्वयंसदा ॥ ५१ ॥ शुद्धिप्रदन्तथाभूयान्महापातकनाशनम् ॥ महाशान्तिकरंपुंसां सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥ ५२ ॥ ममप्रसादजननं विष्णुप्रीतिकरन्तथा ॥ एतत्तीर्थद्वयसमं नभूतंनभविष्यति ॥ ५३ ॥ अत्रस्नानाद्धिसर्वेषां सर्वाभीष्टंभविष्यति ॥ इदंकुण्डद्वयंलोके भवतीभ्यांकृतंमहत् ॥ ५४ ॥ युष्मन्नाम्नाप्रसिद्धंच भविष्यतिविमुक्तिदम् ॥ गायत्र्युपास्तिरहिता वेदाभ्यासविवर्जिताः ॥ ५५ ॥ औपासनविहीनाश्च पञ्चयज्ञविवर्जिताः ॥ युष्मत्कुण्डद्वयेस्नानात्तत्तत्फलमवाप्नुयुः ॥ ५६ ॥ अन्येचयेपातकिनो नित्यानुष्ठानवर्जिताः ॥ स्नात्वाकुण्डद्वयेतत्र शुद्धाःस्युर्द्विजसत्तमाः ॥ ५७ ॥ सरस्वतींचगाय

तीर्थों के समान अन्य तीर्थ न हुआ है न होवैगा ॥ ५३ ॥ और इसमें स्नान करने से सबोंका सब मनोरथ होगा आप दोनोंसे जो ये दो कुंड कियेगये हैं वे संसार में ॥ ५४ ॥ तुम्हारे नाम से मुक्तिदायक प्रसिद्ध होवैंगे और गायत्री की उपासना से रहित तथा वेदाभ्यास से वर्जित ॥ ५५ ॥ और उपासना से रहित व पंचयज्ञों से विहीन ब्राह्मण तुम्हारे दोनों कुंडों में नहाने से उस उस फलको पावैंगे ॥ ५६ ॥ व नित्यकर्म से रहित जो अन्यपापी द्विजोत्तम हैं वे उन दोनों कुंडों में नहाकर शुद्ध होवैंगे ॥ ५७ ॥ इसप्रकार

शिवजी गायत्री व सरस्वती से कहकर वहां सबों के देखतेहुए क्षणभर में अन्तर्धान होगये ॥ ५८ ॥ व हे ब्राह्मणो ! पतिको पाकर हर्षसे संयुत गायत्री व सरस्वतीजी उन ब्रह्मा समेत ब्रह्मलोक को चलीगई ॥ ५९ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार तुम लोगों से गंधमादन पर्वत पै गायत्री व सरस्वतीजी का कारण समेत सन्निधान (टिकना) कहागया ॥ ६० ॥ जो मनुष्य भक्तिसमेत इस अध्याय को सुनता या पढ़ता है वह इन दोनों तीर्थों में स्नान के फलको निस्सन्देह पाता है ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगायत्रीसरस्वतीतीर्थप्रशंसायांगन्धमादनेगायत्रीसरस्वतीसन्निधानकथनंनाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

त्रीमेवमुक्त्वामहेश्वरः ॥ क्षणादन्तरधात्तत्र सर्वेषामेवपश्यताम् ॥ ५८ ॥ पतिंलब्ध्वाथ गायत्रीसरस्वत्यौमुदान्विते ॥ तेनसाकंब्रह्मलोकं जग्मतुर्द्विजसत्तमाः ॥ ५९ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवंवःकथितंविप्रा गन्धमादनपर्वते ॥ सन्निधानंसरस्वत्या गायत्र्याश्चसहेतुकम् ॥ ६० ॥ यःशृणोतीममध्यायं पठतेवासभक्तिकम् ॥ एतत्तीर्थद्वयस्नानफलमाप्नोत्यसंशयः ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येगायत्रीसरस्वतीतीर्थप्रशंसायांगन्धमादनेगायत्रीसरस्वतीसन्निधानकथनन्नामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ अथातःसम्प्रवक्ष्यामि गायत्रींचसरस्वतीम् ॥ लक्षीकृत्यकथामेकां पवित्रांद्विजसत्तमाः ॥ १ ॥ कश्यपाख्योद्विजःपूर्वमस्मिंस्तीर्थद्वयेशुभे ॥ स्नात्वातिमहतःपापाद्विमुक्तोनरकप्रदात् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ मुने कश्यपनामासावकरोत्किंहिपातकम् ॥ स्नात्वातीर्थद्वयेप्यत्र यस्मान्मुक्तोभवत्क्षणात् ॥ ३ ॥ एतन्नःश्रद्दधानानां

दो० । छूट्यो है पातकन रुन जिमि कश्यप द्विजनाथ । इकतालिसवें में सोई वरण्यो उत्तमगाथ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर गायत्री व सरस्वती को लक्ष्य कर मैं एक पवित्र कथा को कहता हूं ॥ १ ॥ पुरातनसमय कश्यपनामक ब्राह्मण इन दोनों उत्तम तीर्थों में नहाकर नरक को देनेवाले बड़े भारी पाप से छूटा है ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे मुने ! इसकश्यप नामक मुनि ने क्या पाप किया है कि जिससे इन दोनों तीर्थों में भी नहाकर वे क्षणभर में मुक्त होगये ॥ ३ ॥

हे सूतजी ! इसको दया के बल से श्रद्धावान् हम लोगों से कहिये तुम्हारे वचनरूपी अमृत से तृप्त हम लोगों के प्यास नहीं है ॥ ४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि गायत्री व सरस्वती के माहात्म्य को प्रतिपादन करनेवाले तथा सुननेवालों के पापविनाशक इतिहास को मैं कहता हूं ॥ ५ ॥ अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित्‌नामक राजा धर्म से पृथ्वी को पालन करतेहुए हस्तिनापुर को गये ॥ ६ ॥ किसी समय शिकार में लगाहुआ वह राजा वन में घूमता था और साठि वर्ष की अवस्थावाला वह राजा क्षुधा व प्यास से विकल हुआ ॥ ७ ॥ और वनमें भगेहुए एक मृग को आदर से ढूंढ़ते हुए उस राजाने चीरवसनवाले व ध्यान में लगेहुए मुनि से कहा ॥ ८ ॥ कि हे मुने ! इससमय

ब्रूहिसूतकृपाबलात् ॥ त्वद्वचोमृततृप्तानां नपिपासापिविद्यते ॥ ४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ गायत्र्याश्चसरस्वत्या माहात्म्यप्रतिपादकम् ॥ इतिहासंप्रवक्ष्यामि शृण्वतांपापनाशनम् ॥ ५ ॥ अभिमन्युसुतोराजा परीक्षिन्नामना मतः ॥ अध्यास्तेहास्तिनपुरं पालयन्धर्मतोमहीम् ॥ ६ ॥ सराजाजातुविपिने चचारमृगयारतः ॥ षष्टिवर्षवया भूपः क्षुत्तृषापरिपीडितः ॥ ७ ॥ नष्टमेकंसविपिने मार्गयन्मृगमादरात् ॥ ध्यानारूढमुनिंदृष्ट्वा प्राहचीवरवास सम् ॥ ८ ॥ मयाबाणेनविपिने मृगोविद्धोधुनामुने ॥ दृष्टःसकिंत्वयाविद्वन्विद्रुतोभयकातरः ॥ ९ ॥ समाधिनिष्ठो मौनित्वान्नकिञ्चिदपिसोब्रवीत् ॥ ततोधनुरटन्यासौ स्कन्धेतस्यमहामुनेः ॥ १० ॥ निधायमृतसर्पन्तु कुपितःस्वपुरंय यौ ॥ मुनेस्तस्यसुतःकश्चिच्छृङ्गीनामबभूववै ॥ ११ ॥ सखातस्यकृशाख्योभूच्छृङ्गिणोद्विजसत्तमाः ॥ सखायंशृङ्गिणं प्राह कृशाख्यःससखाततः ॥ १२ ॥ पितातवमृतंसर्पं स्कन्धेनवहतेधुना ॥ माभूद्दर्पस्तवसखेमाकृथास्त्वंमदंवृथा ॥ १३ ॥

मैंने बाण से जिस मृगको वनमें वेधन किया है हे विद्वन् ! भयसे डरे व भगेहुए उस मृगको क्या तुम ने देखा है ॥ ९ ॥ समाधि में स्थित उस मुनिने मौनी होने के कारण कुछ भी नहीं कहा तदनन्तर यह राजा उस महामुनि के कन्धे पै धनुष के किनारे से ॥ १० ॥ मरेहुए सांप को धरकर क्रोधित होकर अपने नगर को चलागया उस मुनि का शृंगीनामक कोई पुत्र हुआ है ॥ ११ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! उस शृंगीऋषि का कृशनामक मित्र हुआ है तदनन्तर उस कृशनामक मित्र ने शृंगीजी से कहा ॥ १२ ॥ कि हे सखे ! तुम्हारा पिता इससमय मरेहुए सर्प को कन्धे से धारण किये है तुम्हारे अहंकार न होवै और तुम वृथा गर्व को न करो ॥ १३ ॥

राजा के लिये शाप देने की इच्छावाले उस क्रोधित शृंगीमुनि ने कहा कि जिस मूढ़बुद्धि ने मेरे पिता के ऊपर मरेहुए सांप को धरा है ॥ १४ ॥ तक्षक सर्प से काटाहुआ वह सातवीं रात में मरजावै इसप्रकार मुनि के पुत्र नें सुभद्रा के पुत्र परीक्षितजी को शापदिया ॥ १५ ॥ और शमीकनामक मुनिश्रेष्ठ उसके पिता ने पुत्र से शापित उस राजा को सुनकर शृंगीपुत्र से कहा ॥ १६ ॥ कि सब मनुष्यों की रक्षा करनेवाले राजा को तूने क्यों शाप दिया हम लोग बिन राजावाले संसार में कैसे टि-कैंगे ॥ १७ ॥ क्रोधसे पाप होगया जिससे कि सुख नहीं मिलता है जो पुरुष उपजेहुए क्रोध को क्षमाही से नाश करदेता है ॥ १८ ॥ वह इसलोक व परलोक में

सोवदत्कुपितःशृङ्गी दित्सुश्शापंनृपायवै ॥ मत्तातेशवसर्पंयो न्यस्तवान्मूढचेतनः ॥ १४॥ ससप्तरात्रान्म्रियतां संदष्ट स्तक्षकाहिना ॥ शशापैवंमुनिसुतः सौभद्रेयंपरीक्षितम् ॥ १५ ॥ शमीकाख्यःपितातस्य श्रुत्वाशप्तंसुतेनतम् ॥ नृपं प्रोवाचतनयं शृङ्गिणंमुनिपुङ्गवः ॥ १६ ॥ रक्षकंसर्वलोकानां नृपंकिंशप्तवानसि ॥ अराजकेवयंलोके स्थास्यामः कथमञ्जसा ॥ १७ ॥ क्रोधेनपातकमभूद्येननोप्राप्यतेसुखम् ॥ यःसमुत्पादितंकोपं क्षमयेवनिरस्यति ॥ १८ ॥ इहलो केपरत्रासावत्यन्तंसुखमेधते ॥ क्षमायुक्ताहिपुरुषा लभन्तेश्रेयउत्तमम् ॥ १९ ॥ ततःशमीकःस्वंशिष्यं प्राहगौरमुखा भिधम् ॥ भोगौरमुखगत्वात्वं वदभूपंपरीक्षितम् ॥ २० ॥ इमंशापंमत्सुतोक्तं तक्षकाहिविदंशनम् ॥ पुनरायाहिशीघ्रं त्वं मत्समीपंमहामते ॥ २१ ॥ एवमुक्तःशमीकेन ययौगौरमुखोनृपम् ॥ समेत्यचाब्रवीद्भूपं सौभद्रेयंपरीक्षितम् ॥ २२ ॥ दृष्ट्वासर्पंपितुःस्कन्धे त्वयाविनिहतंमृतम् ॥ शमीकस्यसुतःशृङ्गी शशापत्वांरुषान्वितः ॥ २३ ॥ एतद्दिनात्सप्तमेह्नि

अत्यन्त सुख को पाता है और क्षमा से संयुत मनुष्य उत्तम कल्याण को पाते हैं ॥ १९ ॥ तदनन्तर शमीकमुनि ने गौरमुखनामक अपने शिष्य से कहा कि हे गौरमुख ! तुम जाकर मेरे पुत्र से कहेहुए तक्षक सर्प के दशनरूप इस शाप को राजा परीक्षित् से जाकर कहो फिर हे महामते ! तुम शीघ्रही मेरे समीप आवो ॥ २० । २१ ॥ शमीक से ऐसा कहाहुआ गौरमुख शिष्य राजा के समीप गया और सुभद्रा के पुत्र परीक्षितजी के समीप जाकर उसने कहा ॥ २२ ॥ कि तुमने धरेहुए मरे सांपको पिताके कन्धे पै देखकर क्रोधसंयुत शमीक के पुत्र शृंगी ने तुमको शाप दिया ॥ २३ ॥ कि इस दिनसे सातवें दिन तक्षक महानाग से

काटेहुए अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित्जी शीघ्रही विषकी अग्नि से दग्ध होवेंगे ॥ २४ ॥ उस मुनि के पुत्र शृंगीने तुमको इसप्रकार शाप दिया है और उसके पिताने यह कहने के लिये मुझको तुम्हारे समीप पठाया है ॥ २५ ॥ उस परीक्षित् राजा से यह कहकर गौरमुख शीघ्रही चलागया व गौरमुखके जानेपर पश्चात् राजापरीक्षित्जी शोकसे संयुत हुए ॥ २६ ॥ व नृपोत्तम परीक्षित्ने गंगा के मध्य में आकाश को स्पर्शकरनेवाले व ऊंचे और चौड़े खंभवाले मंडप को बनाया ॥ २७ ॥ और महागरुड़ मंत्र को जाननेवाले तथा औषधों को जाननेवाले वैद्यों से तक्षक के विष को नाश करने के लिये यत्न करतेहुए राजा सावधान हुए ॥ २८ ॥ और अनेक देवता,

तक्षकेणमहाहिना ॥ दष्टोविषाग्निनादग्धो भूयादाश्वभिमन्युजः ॥ २४ ॥ एवंशशापत्वांराजञ्छृङ्गीतस्यमुनेःसुतः ॥ एतदुक्तुंपितातस्य प्राहिणोन्मान्त्वदन्तिकम् ॥ २५ ॥ इतीरयित्वातंभूपमाशुगौरमुखोययौ ॥ गतेगौरमुखेपश्चाद्राजाशोकपरायणः ॥ २६ ॥ अभ्रंलिहमथोत्तुङ्गमेकस्तम्भंसुविस्तृतम् ॥ मध्येगङ्गांव्यतनुतं मण्डपंनृपपुङ्गवः ॥ २७ ॥ महागरुडमन्त्रज्ञैरौषधज्ञैश्चिकित्सकैः ॥ तक्षकस्यविषंहन्तुं यत्नंकुर्वन्समाहितः ॥ २८ ॥ अनेकदेवब्रह्मर्षिराजर्षिप्रवरान्वितः ॥ आस्तेतस्मिन्नृपस्तुङ्गे मण्डपेविष्णुभक्तिमान् ॥ २९ ॥ तस्मिन्नवसरेविप्रः काश्यपोमान्त्रिकोत्तमः ॥ राजानंरक्षितुंप्रायात्तक्षकस्यमहाविषात् ॥ ३० ॥ सप्तमेहनिविप्रेन्द्रो दरिद्रोधनकामुकः ॥ अत्रान्तरेतक्षकोपि विप्ररूपीसमाययौ ॥ ३१ ॥ मध्येमार्गं विलोक्याथ काश्यपंप्रत्यभाषत ॥ ब्राह्मणत्वंकुत्रयासि वद मेद्यमहामुने ॥ ३२ ॥ इतिपृष्टस्तदावादीत्काश्यपस्तक्षकंद्विजाः ॥ परीक्षितंमहाराजं तक्षकोद्यविषाग्निना ॥ ३३ ॥ धक्ष्य

ब्रह्मर्षि व उत्तम राजर्षियों से संयुत विष्णुजीकी भक्तिवाले राजा उस ऊंचे मंडप में बैठे ॥ २९ ॥ उसी अवसर में मंत्रविदों में उत्तम व निर्धनी तथा धनकी इच्छावाले काश्यप द्विजोत्तम ब्राह्मण तक्षक के महाविषसे राजाकी रक्षा करनेके लिये सातवें दिन चले और इसी समय में ब्राह्मणरूपवाला तक्षक भी आगया ॥ ३० । ३१ ॥ और बीच मार्ग में काश्यप को देखकर तक्षक ने कहा कि हे महामुने, ब्राह्मण ! आज तुम कहां जाते हो इसको मुझसे कहिये ॥ ३२ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस समय इसप्रकार पूछेहुए काश्यप ने तक्षक से कहा कि आज परीक्षित्महाराज को तक्षक विषकी आगसे ॥ ३३ ॥ जलावैगा उसको शान्त करने के लिये मैं उसके समीप जाताहूं ऐसा

कहतेहुए उस ब्राह्मण से फिर तक्षक ने कहा ॥ ३४ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! मैं तक्षक हूं और मुझसे काटेहुए प्राणी की औषध करने के लिये तुम हज़ारों महामंत्रों से सौ वर्ष में भी नहीं समर्थ हो ॥ ३५ ॥ और यदि इससमय मुझसे काटेहुए मनुष्यकी औषध करने के लिये तुम्हारे सामर्थ्य है तो मैं अनेक योजन ऊंचे इस बरगद के वृक्ष को ॥ ३६ ॥ काटता हूं और तुम इसको जिलावो तो आप समर्थ हो ऐसा कहकर तक्षक ने उस वृक्ष को काटखाया ॥ ३७ ॥ और अत्यन्त मूर्छित वह वृक्ष भस्म होगया और पहलेही कोई मनुष्य उस वृक्ष के ऊपर चढ़ा था ॥ ३८ ॥ वहभी उससमय तक्षक के विषकी ज्वालाओं से जलगया और उन काश्यप व तक्षक ने उस मनुष्य को

तेतंशमयितुं तत्समीपमुपैम्यहम् ॥ इत्युक्तवन्तंतंविप्रं तक्षकःपुनरब्रवीत् ॥ ३४ ॥ तक्षकोहंद्विजश्रेष्ठ मयादष्टंचिकित्सितुम् ॥ नशक्तोब्दशतेनापि महामन्त्रायुतैरपि ॥ ३५ ॥ चिकित्सितुंचेन्मद्दष्टं शक्तिरस्तितवाधुना ॥ अनेकयोजनोच्छ्रायमिमं वटतरुंत्वहम् ॥ ३६ ॥ दशाम्युज्जीवयैनंत्वं समर्थोस्तिततोभवान् ॥ इतीरयित्वातंवृक्षमदंशत्तक्षकस्तदा ॥ ३७ ॥ अभवद्भस्मसात्सोपि वृक्षोत्यन्तंसमूर्च्छितः ॥ पूर्वमेवनरःकश्चित्तंवृक्षमधिरूढवान् ॥ ३८ ॥ तक्षकस्यविषोल्काभिःसोपिदग्धोभवत्तदा ॥ तंनरंनविजिज्ञाते तौचकाश्यपतक्षकौ ॥ ३९ ॥ काश्यपः प्रतिजज्ञेथ तक्षकस्यापिशृण्वतः ॥ तन्मन्त्रशक्तिंपश्यन्तु सर्वेविप्राहिनोधुना ॥ ४० ॥ इतीरयित्वातंवृक्षं भस्मीभूतंविषाग्निना ॥ अजीवयन्मन्त्रशक्त्या काश्यपोमान्त्रिकोत्तमः ॥ ४१ ॥ नरोपितेनवृक्षेण साकमुज्जीवितोभवत् ॥ अथाब्रवीत्तक्षकस्तं काश्यपंमन्त्रकोविदम् ॥ ४२ ॥ यथानमुनिवाङ्मिथ्या भवेदेवंकुरुद्विज ॥ यत्तेराजाध

नहीं जाना ॥ ३९ ॥ इसके अनन्तर तक्षक के सुनतेहुए काश्यप ने प्रतिज्ञा किया कि इस समय सब ब्राह्मण हमारे उस मंत्रकी शक्ति को देखैं ॥ ४० ॥ यह कहकर मंत्रविदों में उत्तम काश्यपजी ने विषकी अग्नि से भस्महुए उस वृक्षको मंत्रकी शक्ति से जिलादिया ॥ ४१ ॥ और उस वृक्षके साथ मनुष्यभी जीउठा इसके अनन्तर तक्षक ने मंत्रको जाननेवाले उन काश्यपजी से कहा ॥ ४२ ॥ कि हे द्विज ! जिसप्रकार मुनिका वचन झूंठ न होवै वैसाही कीजिये और राजा तुमको जो धन देवैं उससे

भी दूने धनको ॥ ४३ ॥ मैं देताहूं हे द्विजोत्तम ! शीघ्रही लौटजाइये यह कहकर उन काश्यपजी के लिये बड़े मोलवाले रत्नों को देकर उस तक्षक ने ॥ ४४ ॥ मंत्रको जाननेवाले उन ब्राह्मण काश्यपजी को लौटादिया और वे काश्यपजी ज्ञानकी दृष्टि से राजा को अल्पायु जानकर ॥ ४५ ॥ व तक्षक से रत्नको पाकर चुपचाप अपने आश्रम को लौटगये और उस तक्षक ने उसी क्षण सब सर्पों को बुलाकर कहा ॥ ४६ ॥ कि मुनियों के वेषको धारणकर तुमलोग उस राजाको प्राप्तहोकर परीक्षित् के लिये शीघ्रही उपहार के फलों को देवो ॥ ४७ ॥ बहुत अच्छा यह कहकर सब सर्प राजाके लिये इन फलों को दिया और तक्षक भी उससमय किसी बेर के फल में ॥ ४८ ॥

नंदद्यात्ततोपिद्विगुणंधनम् ॥ ४३ ॥ ददाम्यहंनिवर्तस्व शीघ्रमेवद्विजोत्तम ॥ इत्युक्त्वानर्घ्यरत्नानि तस्मैदत्त्वास तक्षकः ॥ ४४ ॥ न्यवर्तयत्काश्यपंतं ब्राह्मणंमन्त्रकोविदम् ॥ अल्पायुषंनृपंमत्वाज्ञानदृष्ट्यासकाश्यपः ॥ ४५ ॥ स्वाश्रमंप्रययौतूष्णीं लब्धरत्नश्चतक्षकात् ॥ सोब्रवीत्तक्षकःसर्वान्सर्पानाहूयतत्क्षणे ॥ ४६ ॥ यूयंतंनृपतिंप्राप्य मुनीनांवेषधारिणः ॥ उपहारफलान्याशु प्रयच्छतपरीक्षिते ॥ ४७ ॥ तथेत्युक्त्वासर्वसर्पाददूराज्ञेफलान्यमी ॥ तक्षकोपितदातत्र कस्मिंश्चिद्बदरीफले ॥ ४८ ॥ कृमीवेषधरोभूत्वा व्यतिष्ठद्दंशितुंनृपम् ॥ अथराजाप्रदत्तानि सर्पैर्ब्राह्मणरूपकैः ॥ ४९ ॥ परीक्षिन्मन्त्रिवृद्धेभ्यो दत्त्वासर्वफलान्यपि ॥ कौतूहलेनजग्राहस्थूलमेकंफलंकरे ॥ ५० ॥ अस्मिन्नवसरेसूर्योप्यस्ताचलमगाहत ॥ मिथ्यामृषिवचोमाभूदितितत्रत्यमानवाः ॥ ५१ ॥ अन्योन्यमवदन्सर्वे ब्राह्मणाश्चनृपास्तथा ॥ एवंवदत्सुसर्वेषु फलेतस्मिन्नदृश्यत ॥ ५२ ॥ फलेरक्तकृमिःसर्वै राज्ञाचापिपरीक्षिता ॥ अयंकिं

कीट का वेष धारणकर राजाको काटने के लिये स्थित हुआ इसके अनन्तर ब्राह्मणरूपवाले सब सर्पों से दियेहुए सब फलोंको भी राजापरीक्षित् वृद्ध मंत्रियों के लिये देकर कौतुकसे एक बड़ेभारी फलको हाथ में लेलिया ॥ ४९ । ५० ॥ इसी अवसर में सूर्य भी अस्ताचल को प्राप्तहुए और ऋषि का वचन भूंठ न होवै वहां के मनुष्य व सब ब्राह्मण और राजा परस्पर यह कहनेलगे इसप्रकार सबों के कहतेहुए उस फलमें सबों ने व राजा परीक्षित् ने लालकीट को देखा और राजा ने यह कहा कि

यह कृमि इस समय क्या मुझको काटैगा ॥ ५१ । ५२ । ५३ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! कीट समेत उस फलको राजा ने कान पै धरलिया और कीटरूपी तक्षक पहलेही उस फल में स्थित था और उससमय ॥ ५४ ॥ उसने उस फलसे निकलकर शीघ्रही राजा के शरीर को लपेट लिया व जब राजा ने तक्षक को लपेट लिया तब समीपही स्थित मनुष्य डरसे भगगये ॥ ५५ ॥ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! मन्दिर समेत राजा तक्षककी बलवान् विषाग्निसे शीघ्रही भस्म होगया ॥ ५६ ॥ और उस राजा का प्रेतकार्य करके पुरोहित समेत मन्त्रियों ने राज्य पै जनमेजय नामक ॥ ५७ ॥ राजा को संसार की रक्षाकी इच्छा से अभिषेक किया और तक्षकसे राजा की रक्षा करने के लिये जो काश्यप नामक

मांदशेदद्य कृमिरित्युक्तवान्नृपः ॥ ५३ ॥ निदधेतत्फलंकर्णे सकृमिद्विजसत्तमाः ॥ तक्षकोस्मिन्स्थितः पूर्वंकृमिरूपीफलेतदा ॥ ५४ ॥ निर्गत्यतत्फलादाशु नृपदेहमवेष्टयत् ॥ तक्षकावेष्टितेभूपे पार्श्वस्थादुद्रुवुर्भयात् ॥ ५५ ॥ अनन्तरंनृपोविप्रास्तक्षकस्यविषाग्निना ॥ दग्धोभूद्भस्मसादाशु सप्रासादोबलीयसा ॥ ५६ ॥ कृत्वौर्ध्वदैहिकंतस्य नृपस्यसपुरोहिताः ॥ मन्त्रिणस्तत्सुतंराज्ये जनमेजयनामकम् ॥ ५७ ॥ राजानमभ्यषिञ्चन्वैजगद्रक्षणवाञ्छया ॥ तक्षकाद्रक्षितुंभूपमायातःकाश्यपाभिधः ॥ ५८ ॥ योब्राह्मणोमुनिश्रेष्ठाः ससर्वैर्निन्दितोजनैः ॥ बभ्रामसकलान्देशाञ्छिष्टैःसर्वैश्चदूषितः ॥ ५९ ॥ अवस्थानंनलेभेसौ ग्रामेवाप्याश्रमेपिवा ॥ यान्यान्देशानसौयातस्तत्रतत्रमहाजनैः ॥ ६० ॥ तत्तद्देशान्निरस्तःसशाकल्यंशरणंययौ ॥ प्रणम्यशाकल्यमुनिं काश्यपोनिन्दितोजनैः ॥ ६१ ॥ इदंविज्ञापयामास शाकल्यायमहात्मने ॥ काश्यप उवाच ॥ भगवन्सर्वधर्मज्ञ शाकल्यहरिवल्लभ ॥ ६२ ॥ मुनयो

ब्राह्मण आया था हे मुनिश्रेष्ठो ! वह सब मनुष्यों से निन्दित हुआ और सब उत्तम जनों से दूषित वह सब देशों में घूमता रहा ॥५८।५९ ॥ और इसने ग्राम व आश्रममें स्थान को नहीं पाया व जहां जहां यह काश्यप गया वहां वहां उत्तमजनों से ॥ ६० ॥ उस उस देश से निकाला हुआ वह शाकल्यमुनि की शरण में गया और मनुष्यों से निन्दित काश्यपजीने शाकल्यमुनिको प्रणामकर ॥ ६१ ॥ शाकल्य महात्मा से यह कहा काश्यपजी बोले कि हे विष्णुवल्लभ, सर्वधर्मज्ञ, भगवन्, शाकल्यजी ! ॥ ६२ ॥

मुनि व ब्राह्मण तथा अन्य मित्रलोग मेरी निन्दा करते हैं और मैं इसका कारण नहीं जानता हूं कि मनुष्य क्यों मेरी निन्दा करते हैं ॥ ६३ ॥ ब्रह्महत्या, मद्य पान व गुरुस्त्रीगमन और चोरी व संसर्ग के दोष को मैंने कभी नहीं किया है ॥ ६४ ॥ व हे मुने ! मैंने अन्य पापों को भी नहीं किया है तथापि बन्धु आदिक लोग मेरी वृथा निन्दा करते हैं ॥ ६५ ॥ हे शाकल्यजी ! तुम यदि जानते हो तो मुझसे किये हुए दोष को कहिये काश्यपजी से ऐसा कहेहुए शाकल्य नामक महामुनि ने ॥ ६६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! क्षणभर ध्यानकर उन काश्यपजी से कहा शाकल्यजी बोले कि तक्षक से परीक्षित् महाराज की रक्षा करने के लिये आप ॥ ६७ ॥ गये

ब्राह्मणाश्चान्ये मांनिन्दन्तिसुहृज्जनाः ॥ नास्याहंकारणंजाने किंमांनिन्दन्तिमानवाः ॥ ६३ ॥ ब्रह्महत्यासुरापानं गुरुस्त्रीगमनंतथा ॥ स्तेयंसंसर्गदोषोवा मयानाचरितःक्वचित् ॥ ६४ ॥ अन्यान्यपिहिपापानि नकृतानिमयामुने ॥ तथापिनिन्दन्तिजना वृथामांबान्धवादयः ॥ ६५ ॥ जानासिचेत्त्वंशाकल्य मयादोषंकृतंवद ॥ उक्तोथकाश्यपेनैवं शाकल्याख्योमहामुनिः ॥ ६६ ॥ क्षणंध्यात्वाबभाषेतं काश्यपंद्विजसत्तमाः ॥ शाकल्य उवाच॥ परीक्षितंमहाराजं तक्षकाद्रक्षितुंभवान् ॥ ६७॥ अयासीदर्द्धमार्गेतु तक्षकेणनिवारितः ॥ चिकित्सितुंसमर्थोपि विषरोगादिपीडितम् ॥ ६८ ॥ योनरक्षतिलोभेन तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ क्रोधात्कामाद्भयाल्लोभान्मात्सर्यान्मोहतोपिवा ॥ ६९ ॥ योनरक्षतिविप्रेन्द्र विषरोगातुरंनरम् ॥ ब्रह्महाससुरापीचस्तेयीचगुरुतल्पगः ॥ ७० ॥ संसर्गदोषदुष्टश्च नापितस्यहिनिष्कृतिः ॥ कन्याविक्रयिणश्चापि हयविक्रयिणस्तथा ॥ ७१ ॥ कृतघ्नस्यापिशास्त्रेषु प्रायश्चित्तंहिविद्यते ॥ विषरोगातुरंय

थे और आधे मार्ग में तक्षक ने तुमको मना किया विष व रोगादिकों से पीड़ित की औषध करने के लिये समर्थ भी ॥ ६८ ॥ जो मनुष्य लोभ से रक्षा नहीं करता है उसको विद्वान् ब्रह्मघाती कहते हैं क्योंकि क्रोध, काम, भय, लोभ, ईर्ष्या व मोह से भी ॥ ६९ ॥ हे द्विजेन्द्र ! जो मनुष्य विष व रोग से विकल मनुष्य की रक्षा नहीं करता है वह ब्रह्मघाती व मद्यपी तथा चोर व गुरु की शय्या पै जानेवाला है ॥ ७० ॥ व संसर्ग के दोष से दुष्ट है और उसका प्रायश्चित्त भी नहीं है कन्या को बेंचने वाले व घोड़ा बेंचनेवाले पुरुष का ॥ ७१ ॥ और कृतघ्न का भी प्रायश्चित्त शास्त्रों में विद्यमान है परन्तु जो समर्थ भी मनुष्य विष व रोग से पीड़ित मनुष्य की रक्षा

नहीं करता है ॥ ७२ ॥ उसकी दश हज़ार प्रायश्चित्तों से भी शुद्धि नहीं कही गई है और पुण्यवान् मनुष्य उसके साथ पंक्ति में भोजन न करै ॥ ७३ ॥ और उसके साथ संभाषण न करै व उस मनुष्य को कभी न देखै क्योंकि उसके संभाषणही से महापातकों का भागी होता है ॥ ७४ ॥ वह परीक्षित् महाराज पवित्र यशवाला व धर्मवान् था तथा विष्णुभक्त, महायोगी और चारोंवर्णों की रक्षा करनेवाला था॥ ७५ ॥ और व्यास के पुत्र शुकदेवजी से उसने भक्तिपूर्वक विष्णु की कथा को सुना था तक्षक के वचन से जिस लिये उस राजा की रक्षा न करके तुम ॥ ७६ ॥ लौट आये उसीकारण द्विजेन्द्रों व बांधवों से भी दूषित होते हो यद्यपि वह परी-

स्तु समर्थोपिनरक्षति ॥ ७२ ॥ नतस्यनिष्कृतिःप्रोक्ता प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥ नतेनसहपङ्क्तौच भुञ्जीतसुकृतीज नः ॥ ७३ ॥ नतेनसहभाषेत नपश्येत्तंनरंकचित् ॥ तत्संभाषणमात्रेण महापातकभाग्भवेत् ॥ ७४ ॥ परीक्षित्सम हाराजः पुण्यश्लोकश्चधार्मिकः ॥ विष्णुभक्तोमहायोगी चातुर्वर्ण्यस्यरक्षिता ॥ ७५ ॥ व्यासपुत्राद्धरिकथां श्रुतवान्भ क्तिपूर्वकम् ॥ अरक्षित्वान्नृपंतन्त्वं वचसातक्षकस्ययत् ॥ ७६ ॥ निवृत्तस्तेनविप्रेन्द्रैर्बान्धवैरपिदूष्यसे ॥ सपरीक्षिन्म हाराजो यद्यपिक्षणजीवितः ॥ ७७ ॥ तथापियावन्मरणंबुधैःकार्यंचिकित्सनम् ॥ यावत्कण्ठगताःप्राणामुमूर्षोर्मा नवस्यहि ॥ ७८ ॥ तावच्चिकित्साकर्तव्याकालस्यकुटिलागतिः ॥ इतिप्राहुःपुराश्लोकं भिषग्विद्याब्धिपारगाः ॥ ७९ ॥ अतश्चिकित्साशक्तोपि यस्मादकृतभेषजः ॥ अर्धमार्गेनिवृत्तस्त्वन्तेनतंहतवानसि ॥ ८० ॥ शाकल्येनैवमुदितः का श्यपःप्रत्यभाषत ॥ काश्यप उवाच ॥ ममैतद्दोषशान्त्यर्थमुपायंवदसुव्रत ॥ ८१ ॥ येनमांप्रतिगृह्णीयुर्बान्धवाःससु

क्षित् महाराज क्षणजीवी था ॥ ७७ ॥ तथापि जबतक मृत्यु होवै तबतक विद्वानों को औषध करना चाहिये जबतक मरनेवाले मनुष्य के प्राण कंठ में प्राप्त होवैं ॥ ७८ ॥ तबतक औषध करना चाहिये क्योंकि कालकी गति कुटिल होती है इस श्लोक को पुरातन समय औषध के विद्यारूपी समुद्र के पारगामियों ने कहा है ॥ ७९ ॥ इसकारण जिसलिये औषध में समर्थ भी तुमने औषध न करके आधेमार्ग में निवृत्त हुए उसीकारण तुमने उनको मारा है ॥ ८० ॥ शाकल्यजी से ऐसा कहे हुए काश्यप ने कहा काश्यपजी बोले कि हे सुव्रत ! मेरे इस दोष की शान्ति के लिये यत्न को कहिये ॥ ८१ ॥ जिससे कि मित्रजनों समेत बन्धु लोग मुझको ग्रहण

करैं ॥ ८२ ॥ हे हरिप्रिय, शाकल्यजी ! तुम मेरे ऊपर दया करो काश्यपजी से ऐसा कहेहुए शाकल्य मुनीश्वर ने भी ॥ ८३ ॥ उससमय क्षणभर ध्यान कर दया से इसप्रकार कहा शाकल्यजी बोले कि इस पाप की शान्ति के लिये मैं तुमसे उपायको कहता हूं ॥ ८४ ॥ हे द्विज ! तुमको शीघ्रही वह करना चाहिये विलम्ब मत कीजिये दक्षिण समुद्र में सेतु पै गन्धमादन पर्वत पर ॥ ८५ ॥ हे विप्रजी ! गायत्री व सरस्वती दो तीर्थ हैं उसमें तुम नहाने से उसीक्षण शुद्ध होगे ॥ ८६ ॥ गायत्री व सरस्वती के जलके पवन को स्पर्श करनेवाले मनुष्य सब पापों को नाशकर निर्मल होकर स्वर्ग को जावैंगे ॥ ८७ ॥ इसकारण हे विप्रजी ! तुम शीघ्रही गायत्री

हृज्जनाः ॥ ८२ ॥ कृपांमयिकुरुष्वत्वं शाकल्यहरिवल्लभ ॥ काश्यपेनैवमुक्तस्तु शाकल्योपिमुनीश्वरः ॥ ८३ ॥ क्षणंध्यात्वाजगादैवं काश्यपंकृपयातदा ॥ शाकल्यउवाच ॥ अस्यपापस्यशान्त्यर्थमुपायंप्रवदामिते ॥ ८४ ॥ तत्कर्त्तव्यंत्वयाशीघ्रं विलम्बंमाकृथाद्विज ॥ दक्षिणाम्बुनिधौसेतौ गन्धमादनपर्वते ॥ ८५ ॥ अस्तितीर्थद्वयंविप्र गायत्रीच सरस्वती ॥ तत्रत्वंस्नानमात्रेण शुद्धोभूयाश्चतत्क्षणे ॥ ८६ ॥ गायत्र्याचसरस्वत्या जलवातस्पृष्टशोनरः ॥ विधूयसर्व पापानि स्वर्गंयास्यन्तिनिर्मलाः ॥ ८७ ॥ तद्याहिशीघ्रंविप्रत्वं गायत्रींचसरस्वतीम् ॥ इत्युक्तःकाश्यपस्तेन शाकल्येनद्विजोत्तमाः॥ ८८ ॥ नत्वामुनिंचशाकल्यं तमापृच्छ्यमुनीश्वरम् ॥ तेनचैवाभ्यनुज्ञातः प्रययौगन्धमादनम् ॥ ८९ ॥ तत्रगत्वाचगायत्रीसरस्वत्यौचकाश्यपः ॥ नत्वातीर्थद्वयंभक्त्या दण्डपाणिंचभैरवम् ॥ ९० ॥ संकल्पपूर्वंतत्तीर्थे सस्नौनियमसंयुतः ॥तीर्थद्वयेस्नानमात्रान्मुक्तपापोथकाश्यपः ॥ ९१ ॥ तीर्थद्वयस्यतीरेसौ किञ्चित्कालन्तुतस्थिवान् ॥

व सरस्वती को जावो हे द्विजोत्तमो ! उन शाकल्यजीसे ऐसा कहेहुए काश्यपजी ॥ ८८ ॥ शाकल्यमुनिको प्रणामकर व उन मुनीश्वर से पूंछकर और उनसे आज्ञा को लेकर गन्धमादन पर्वतको गये ॥ ८९ ॥ और वहां जाकर गायत्री व सरस्वती दोनों तीर्थ और दण्डपाणि भैरवजी को भक्ति से प्रणामकर काश्यपजी ने ॥ ९० ॥ नियम संयुतहोकर संकल्पपूर्वक उस तीर्थ में स्नान किया और दोनों तीर्थों में नहाने से पापसे छुटेहुए ये काश्यपजी ॥ ९१ ॥ दोनों तीर्थोंके किनारे कुछ समयतक स्थित हुए व

हे मुनीश्वरो ! उस समय गायत्री व सरस्वती ॥ ९२ ॥ मूर्तिमती व सब आभूषणों से भूषित होकर प्रकट हुईं और वे काश्यपजी भक्तिपूर्वक उन देवियों को प्रणाम कर ॥ ९३ ॥ प्रसन्नमनवाले काश्यपजी उन दोनों को देखकर यह पूंछा कि रूप से संयुत व सब भूषणों से भूषित तुम दोनों कौनहो ॥ ९४ ॥ उससे पूंछीहुई गायत्री व सरस्वती ने उनसे कहा गायत्री व सरस्वती बोलीं कि हे काश्यप ! हम दोनों गायत्री व सरस्वती ब्रह्मा की स्त्री हैं ॥ ९५ ॥ और यहां इस तीर्थके रूप से हमदोनों वर्तमान हैं इस समय इन दोनों तीर्थों में नहाने से हमदोनों तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं ॥ ९६ ॥ हे काश्यप, द्विज ! जो प्रियहो उस वरदान को तुम मुझसे मांगो क्योंकि इन दोनों

तस्मिन्कालेचगायत्रीसरस्वत्यौमुनीश्वराः ॥ ९२ ॥ प्रादुर्बभूवतुर्मूर्ते सर्वाभरणभूषिते ॥ देव्यौतेसनमस्कृत्य काश्यपोभक्तिपूर्वकम् ॥ ९३ ॥ केयुवांरूपसम्पन्ने सर्वालंकारसंयुते ॥ इतिपप्रच्छदृष्ट्वाते काश्यपोहृष्टमानसः ॥ ९४ ॥ तेनपृष्टेचगायत्रीसरस्वत्यौतमूचतुः ॥ गायत्रीसरस्वत्यावूचतुः ॥ काश्यपावांहिगायत्रीसरस्वत्यौविधिप्रिये ॥ ९५ ॥ एतत्तीर्थस्वरूपेण नित्यंवर्तावहेत्रतु ॥ अत्रतीर्थद्वयेस्नानादावांतुष्टेतवाधुना ॥ ९६ ॥ वरंमत्तोवृणीष्वत्वं यदिष्टंकाश्यपद्विज ॥ स्नान्तितीर्थद्वयेयेत्रदास्यावस्तदभीप्सितम् ॥ ९७ ॥ श्रुत्वावचस्तद्गायत्रीसरस्वत्योःसकाश्यपः ॥ तुष्टाववाग्भिरग्र्याभिस्ते देव्यौवेधसःप्रिये ॥ ९८ ॥ काश्यप उवाच ॥ चतुराननगेहिन्यौ जगद्धात्र्यौनमाम्यहम् ॥ विद्यास्वरूपे गायत्रीसरस्वत्यौशुभेउभे ॥ ९९ ॥ सृष्टिस्थित्यन्तकारिण्यौ जगतांवेदमातरौ ॥ हव्यकव्यस्वरूपेच चन्द्रादित्यविलोचने ॥ १०० ॥ सर्वदेवाधिपेवाणीगायत्र्यौसततंभजे ॥ गिरिजाकमलाचापि युवामेवजगद्धिते ॥ १ ॥ युष्मद्दर्श

तीर्थों में जो नहाते हैं हम दोनों उनके मनोरथ को देती हैं ॥ ९७ ॥ गायत्री व सरस्वती के उस वचन को सुनकर उन काश्यपजी ने उन ब्रह्माकी प्यारी देवियों की उत्तम वचनों से स्तुति किया ॥ ९८ ॥ काश्यपजी बोले कि संसार को धारनेवाली ब्रह्मा की स्त्रियों को मैं प्रणाम करता हूं गायत्री व सरस्वती दोनों उत्तम विद्यारूपवती हैं ॥ ९९ ॥ और सृष्टि, पालन व संहार करनेवाली तथा लोकों व वेदकी माताहैं और हव्य, कव्यरूपवाली व चन्द्रमा, सूर्य लोचनोंवाली हैं ॥ १०० ॥ व सब देवताओं की स्वामिनी सरस्वती और गायत्री को मैं सदैव भजताहूं व संसार की हितकारिणी पार्वती व लक्ष्मी तुम्हीं दोनों हो ॥ १ ॥ तुम दोनों के दर्शनही से

संसार की सृष्टि आदिकी कल्पना होती है और तुम्हारे पलक भौंजने में सदैव लोकोंका प्रलय होता है ॥ २ ॥ व हे गायत्रि, सरस्वति ! तुम्हारे पलक के उघारने में सृष्टि होती है और तुमदोनों के दर्शन से मैं आज शीघ्रही कृतार्थ होगया ॥ ३ ॥ इन दोनों तीर्थों में नहाने से पाप से छुटेहुए मुझको इससमय श्रेष्ठमुनि, ब्राह्मण व बंधुलोग स्वीकार करें ॥ ४ ॥ और इसके उपरान्त मेरी बुद्धि पाप के कार्यमें न लगै और सदैव धर्म में वर्तमान होवै मुझको यही वर ॥ ५ ॥ दियाजावै हे महादेवियो ! मैं अन्य वरको नहीं चाहता हूं हे द्विजोत्तमो ! उन काश्यपजी से इसप्रकार प्रार्थना कीहुई ॥ ६ ॥ लोकों की सदैव माता ब्रह्मा की प्यारी गायत्री व सरस्वती देवी प्रसन्न

न्मात्रेण जगत्सृष्ट्यादिकल्पनम् ॥ युष्मन्निमेषेसततं जगतांप्रलयोभवत् ॥ २ ॥ उन्मेषेसृष्टिरभवद्धोगायत्रिसरस्वति ॥ युवयोर्दर्शनादद्य कृतार्थोभवमाशुवै ॥ ३ ॥ मामद्यपातकान्मुक्तं स्नानात्तीर्थद्वयेत्रतु ॥ स्वीकुर्वन्तुमुनिश्रेष्ठा ब्राह्मणा बान्धवास्तथा ॥ ४ ॥ इतःपरंपापकृत्येमामेवुद्धिःप्रवर्तताम् ॥ धर्मेप्रवर्ततांनित्यमयमेववरोमम ॥ ५ ॥ दीयताम्भो महादेव्यौ नान्यदिच्छाम्यहंवरम् ॥ इतितेप्रार्थितेतेन काश्यपेनद्विजोत्तमाः ॥ ६ ॥ सरस्वतीचगायत्रीद्वेदेव्यौब्रह्मणः प्रिये ॥ काश्यपंप्रोचतुःप्रीते जनन्यौजगतांसदा ॥ ७ ॥ काश्यपैतद्वरंसर्वं प्रार्थितंयत्त्वयाधुना ॥ अनुग्रहादावयोस्त दचिरेणतवास्तुहि ॥ ८ ॥ इत्युक्त्वातंतुगायत्रीसरस्वत्यौक्षणेनवै ॥ तिरोधानंगतोविप्रास्तास्मिंस्तीर्थद्वयेतदा ॥ ९ ॥ काश्यपोपिकृतार्थःसन्स्वदेशंप्रतिनिर्ययौ ॥ बान्धवाब्राह्मणाःसर्वे काश्यपंगतकिल्बिषम् ॥ १० ॥ प्रत्यगृह्णंश्चगायत्री सरस्वत्योर्निमज्जनात् ॥ एवंवःकथितंविप्राःकाश्यपस्यविमोक्षणम् ॥ ११ ॥ पातकेभ्योहिगायत्रीसरस्वत्योर्निमज्ज

होकर बोलीं ॥ ७ ॥ कि हे काश्यपजी ! इससमय तुम से जो यह वर मांगा गया वह सब हम दोनों की अनुग्रह से शीघ्रही तुम को होवै ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मणो ! उनसे यह कहकर उससमय गायत्री व सरस्वती क्षणभर में उन दोनों तीर्थों में अन्तर्द्धान होगईं ॥ ९ ॥ और कृतार्थ होतेहुए काश्यपजी भी अपने देश को चलेगये व सब बन्धु तथा ब्राह्मणों ने पापहीन काश्यपजी को ॥ १० ॥ गायत्री व सरस्वती में नहाने से ग्रहण किया हे ब्राह्मणो ! इसप्रकार गायत्री व सरस्वती में नहाने से काश्यपजी

की पातकों से मुक्ति तुम लोगों से कहीगई सावधान होता हुआ जो मनुष्य इस अध्याय को पढ़ता या सुनता है ॥ ११ । १२ ॥ वह गायत्री व सरस्वती में नहायेहुए के फल को पाता है ॥ ११३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येगायत्रीसरस्वतीतीर्थप्रशंसायांदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांकाश्यपपापशान्तिर्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

दो० । ऋणमोचन आदिक यथा तीरथ भये अनेक । बैयालिसवें में सोई सुखद चरित्र विवेक ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनीश्वरो ! इसके अनन्तर मैं सेतु के मध्य में पैठेहुए बिनकहे सबतीर्थों के माहात्म्य को कहता हूं ॥ १ ॥ कि नाम से ऋणमोचन महापवित्र तीर्थ है इसमें नहाने से मनुष्यों के तीन ऋण नाश होजाते

नात् ॥ पठतेत्विममध्यायं शृणुतेवासमाहितः ॥ १२ ॥ योगायत्र्यांसरस्वत्यां सस्नातफलमश्नुते ॥ ११३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्ये गायत्रीसरस्वततिर्थिप्रशंसायांकाश्यपपापशान्तिर्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

श्रीसूत उवाच ॥ अथातःसर्वतीर्थानां वैभवंप्रवदाम्यहम् ॥ सेतुमध्यनिविष्टानामनुक्तानांमुनीश्वराः ॥ १ ॥ अस्तितीर्थमहापुण्यं नाम्नातुऋणमोचनम् ॥ ऋणानित्रीणिनश्यन्ति नराणामत्रमज्जनात् ॥ २ ॥ द्विजस्यजायमानस्य ऋणानित्रीणिसन्तिहि ॥ ऋषीणांदेवतानांच पितॄणांचद्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥ ब्रह्मचर्याननुष्ठानादृषीणांऋणवान्भवेत् ॥ यज्ञादीनामकरणाद्देवानांचऋणीभवेत् ॥४॥ पुत्रानुत्पादनाच्चैव पितॄणामृणवान्भवेत् ॥ विनापिब्रह्मचर्येणविनायागंविनासुतम् ॥ ५ ॥ ऋणमोक्षाभिधेतीर्थे स्नानमात्रेणमानवाः ॥ ऋषिदेवपितॄणान्तु ऋणेभ्योमुक्तिमाप्नुयुः ॥ ६ ॥ ब्रह्मचर्येणयज्ञेन तथापुत्रोद्भवेनच ॥ नैवतुष्यन्तिऋषयो देवाःपितृगणास्तथा ॥ ७ ॥ ऋणमोक्षेयथास्ना

हैं ॥ २ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पैदाहुए द्विज के ऋषि, देवता व पितरों के तीन ऋणहोते हैं ॥ ३ ॥ ब्रह्मचर्य न करने से ऋषियों का ऋणी होता है व यज्ञादिकों के न करने से देवताओं का ऋणी होता है ॥ ४ ॥ और पुत्रों को न पैदा करने से पितरोंका ऋणी होता है व ब्रह्मचर्य के विना तथा बिन यज्ञ व बिन पुत्र के ॥ ५ ॥ ऋणमोचन नामक तीर्थ में नहाने से मनुष्य ऋषि, देवता व पितरों के ऋणों से मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ उस प्रकार ब्रह्मचर्य, यज्ञ व पुत्र उत्पन्न होने से ऋषि, देवता और पितरों के गण प्रसन्न नहीं होते हैं ॥ ७ ॥ जिस प्रकार ऋणमोचन तीर्थ में नहाने से अतुल प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं और इस तीर्थ में नहाने से ऋणी व

दरिद्री मनुष्य ॥ ८ ॥ सब ऋणों से छूटकर निस्सन्देह धनी होते हैं जिस कारण इस तीर्थ में नहाने से ऋण की मुक्ति होती है ॥ ९ ॥ उसी कारण यह तीर्थ ऋण-मोचन नाम से कहा गया है इसकारण उस से छूटने के लिये सबों को इस तीर्थ में नहाना चाहिये ॥ १० ॥ इस तीर्थ के समान् अन्य तीर्थ न हुआ है न होवैगा और यहां पाण्डवों से किया हुआ भी अन्य बड़ाभारी तीर्थ है ॥ ११ ॥ जहां कि पुरातन समय धर्मपुत्रादिक पांच पाण्डवों ने यज्ञ किया है उसी कारण भुक्ति व मुक्ति के फल को देनेवाले इस तीर्थ को उद्देश कर ॥ १२ ॥ दश करोड़ हज़ार अति उत्तम तीर्थ इस पंचपाण्डव तीर्थ में सदैव समीपता करते हैं ॥ १३ ॥ आदित्य, वसु, रुद्र व

नादतुलांतुष्टिमाप्नुयुः ॥ किञ्चात्रमज्जनात्तीर्थेदरिद्राअधमर्णिनः ॥ ८ ॥ मुक्ताऋणेभ्यःसर्वेभ्यो धनिनःस्युर्नसंशयः ॥ यदत्रमज्जनात्पुंसामृणमुक्तिःप्रजायते ॥ ९ ॥ तस्मादुक्तमिदंतीर्थमृणमोचनसंज्ञया ॥ अतोत्रऋणिभिःसर्वैः स्नातव्यं तद्विमुक्तये ॥ १० ॥ एतत्तीर्थसमंतीर्थं नभूतंनभविष्यति ॥ पाण्डवैःकृतमप्यत्र तीर्थमस्त्यपरंमहत् ॥ ११ ॥ यत्रेष्टंधर्मपुत्राद्यैः पाण्डवैःपञ्चभिःपुरा ॥ तदेतत्तीर्थमुद्दिश्य भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ १२ ॥ दशकोटिसहस्राणि तीर्थान्यनुत्तमानि हि ॥ पञ्चपाण्डवतीर्थेस्मिन्सान्निध्यंकुर्वतेसदा ॥ १३ ॥ आदित्यावसवोरुद्राः साध्याश्चसमरुद्गणाः ॥ पाण्डवानांमहातीर्थे नित्यंसन्निहितास्तथा ॥ १४ ॥ अत्राभिषेकंयःकुर्यात्पितृदेवांश्चतर्पयेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकेसपूज्यते ॥ १५ ॥ अप्येकंभोजयेद्विप्रमेतत्तीर्थतटेमले ॥ तेनासौकर्मणातत्र परत्रापिचमोदते ॥ १६ ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यः शूद्रोवाप्यन्यएववा ॥ अस्मिंस्तीर्थवरेस्नात्वा वियोनिंनप्रयातिवै ॥ १७ ॥ पाण्डवानांमहातीर्थे पुण्ययोगेषुयोनरः ॥

पवनगणों समेत साध्यदेवता पांडवों के महातीर्थ में सदैव स्थित रहते हैं ॥ १४ ॥ जो मनुष्य इस तीर्थ में स्नान करता है व पितरों तथा देवताओं का तर्पण करता है सब पापों से छूटा हुआ वह ब्रह्मलोक में पूजा जाता है ॥ १५ ॥ इस निर्मल तीर्थ के किनारे जो एक ब्राह्मण को भी भोजन कराता है यह मनुष्य उस कर्म से उस परलोक में भी आनन्द करता है ॥ १६ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व अन्य भी पुरुष इस उत्तम तीर्थ में नहाकर अन्य योनि को नहीं प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ जो

मनुष्य पाण्डवों के महातीर्थ में पुण्ययोगों में नहाताहै वह श्रेष्ठ पुरुष नरक को नहीं देखता है ॥ १८ ॥ और सायंकाल व प्रातःकाल जो पुरुष पाण्डवों के महातीर्थ को स्मरण करता है वह गङ्गादिक सब तीर्थों में नहा चुका इसमें सन्देह नहींहै ॥ १९ ॥ और जहां इन्द्रादिक देवताओं ने दैत्यों की शान्ति के लिये यज्ञ किया है वह देवतीर्थ नामक अन्य तीर्थ गन्धमादनपै वर्तमानहै ॥ २० ॥ देवतीर्थ में नहाकर सब पापों से छूटाहुआ पुरुष सब कामनाओं से संयुत अक्षयलोकों को प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ जन्म से लगाकर स्त्री या पुरुष से जो पाप किया होता है वह इस देवकुंड में नहाकर शीघ्रही नाश होजाता है ॥ २२ ॥ जैसे सब देवताओं के आदिभूत विष्णुजी हैं

स्नायात्समनुजःश्रेष्ठो नरकंनैवपश्यति ॥ १८ ॥ पाण्डवानांमहातीर्थे सायंप्रातश्चयःस्मरेत् ॥ सुस्नातःसर्वतीर्थेषु गङ्गादिषुनसंशयः ॥ १९ ॥ इन्द्रादिदेवताभिश्च यत्रेष्टंदैत्यशान्तये ॥ तदन्यद्देवतीर्थाख्यं विद्यतेगन्धमादने ॥ २० ॥ देवतीर्थेनरःस्नात्वा सर्वपापविमोचितः ॥ प्राप्नुयादक्षयाँल्लोकान्सर्वकामसमन्वितान् ॥ २१ ॥ जन्मप्रभृतियत्पापं स्त्रियावापुरुषेणवा ॥ कृतन्तद्देवकुण्डेऽस्मिन् स्नानात्सद्योविनश्यति ॥ २२ ॥ यथासुराणांसर्वेषामादिर्वैमधुसूदनः ॥ तथादिःसर्वतीर्थानां देवकुण्डमनुत्तमम् ॥ २३ ॥ यस्तुवर्षशतंपूर्णमग्निहोत्रमुपासते ॥ यस्त्वेकोदेवकुण्डेऽस्मिन्कदाचित्स्नानमाचरेत् ॥ २४ ॥ सममेवंतयोःपुण्यं नात्रसन्देहकारणम् ॥ दुर्लभंदेवतीर्थेस्मिन्दानंवासश्चदुर्लभः ॥ २५ ॥ देवतीर्थाभिगमनं स्नानंचाप्यतिदुर्लभम् ॥ देवतीर्थेसमासाद्य देवर्षिपितृसेवितम् ॥ २६ ॥ अश्वमेधमवाप्नोति विष्णुलोकंचगच्छति ॥ द्विदिनंत्रिदिनंवापि पञ्चवाथषडेववा ॥ २७ ॥ उषित्वादेवकुण्डस्थतीरेनरकनाशने ॥ नमातृयो

वैसेही अति उत्तम देवकुंड सब तीर्थों का आदि है ॥ २३ ॥ जो मनुष्य पूर्ण सौवर्षतक अग्निहोत्र करता है और जो एक इस देवकुंड में कभी स्नान करता है ॥ २४ ॥ उन दोनों का पुण्य बराबर है इस में सन्देह का कारण नहीं है इस देवतीर्थ में दान दुर्लभ है व निवास दुर्लभ है ॥ २५ ॥ और देवतीर्थ को जाना व स्नान भी अतिदुर्लभ है देवता, ऋषि व पितरों से सेवित देवतीर्थ को प्राप्त होकर ॥ २६ ॥ मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के फल को पाता है व विष्णुलोक को जाता है और दो दिन या तीन दिन व पांच या छः दिन ॥ २७ ॥ नरकों को नाशनेवाले देवकुंड के स्थित किनारेपै बसकर माता की योनि को नहीं प्राप्त होता है और अति उत्तम सिद्धि को

पाता है ॥ २८ ॥ और इस में तीन रात्रि तक स्नान करने से मनुष्य वाजपेय यज्ञके फल को पाता है व देवतीर्थ नामक तीर्थ में नहाकर मनुष्य शीघ्रही पापों से छूट जाता है ॥ २९ ॥ और इस तीर्थ के किनारे मनुष्य पितरों व देवताओं को पूजकर सब कामनाओं से समृद्ध होता है व सब यज्ञों के फल को पाता है ॥ ३० ॥ इस तीर्थ के समान अन्य पवित्र तीर्थ न हुआ है न होवैगा इस कारण मुक्ति की इच्छावाले पुरुषों को देवतीर्थ में अवश्य स्नान करना चाहिये ॥ ३१ ॥ व इस लोक व पर-लोक के फल की प्राप्ति की इच्छावाले मनुष्यों को देवतीर्थ में नहाना चाहिये हे ब्राह्मणो ! मैं ने देवतीर्थ के माहात्म्य को संक्षेपकर कहा ॥ ३२ ॥ और विस्तार से

निमाप्नोति सिद्धिंचाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥ २८ ॥ त्रिरात्रस्नानतोह्यत्र वाजपेयफलंलभेत् ॥ देवतीर्थस्मृतेसद्यः पापेभ्यो मुच्यतेनरः ॥ २९ ॥ अर्चयित्वापितॄन्देवानेतत्तीर्थतटेनरः ॥ सर्वकामसमृद्धःस्यात्सर्वयज्ञफलंलभेत् ॥ ३० ॥ एत त्तीर्थसमंपुण्यं नभूतंनभविष्यति ॥ तस्मादवश्यंस्नातव्यं देवतीर्थेमुमुक्षुभिः ॥ ३१ ॥ ऐहिकामुष्मिकफलप्राप्तिकामै श्रमानवैः ॥ देवतीर्थस्यमाहात्म्यं संक्षिप्यकथितंद्विजाः ॥ ३२ ॥ विस्तरेणास्यमाहात्म्यं मयावक्तुंनपार्य्यते ॥ सुग्रीव तीर्थंवक्ष्यामि रामसेतौविमुक्तिदे ॥ ३३ ॥ अत्रस्नात्वानरोभक्त्या सूर्यलोकंसमश्नुते ॥ सुग्रीवतीर्थस्नानेनहयमेधफलं भवेत् ॥ ३४ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानांनिष्कृतिश्चापिजायते ॥ सुग्रीवतीर्थगमनाद्गोसहस्रफलंलभेत् ॥ ३५ ॥ स्मरणात्त स्यवेदानां पारायणफलंलभेत् ॥ दिनोपवासमात्रेण तस्यतीर्थस्यतीरतः ॥ ३६ ॥ महापातकनाशःस्यात्प्रायश्चित्तं विनाद्विजाः ॥ तत्राभिषेकंकुर्वाणःपितृदेवांश्चतर्पयेत् ॥ ३७ ॥ आप्तोर्यामस्ययज्ञस्य फलमष्टगुणंभवेत् ॥ सुग्रीवतीर्थ

इसका माहात्म्य मुझ से नहीं कहा जासक्ता है और मुक्तिदायक रामसेतु पै मैं सुग्रीवतीर्थ को कहता हूं ॥ ३३ ॥ इस में भक्ति से नहाकर मनुष्य सूर्यलोक को प्राप्त होता है और सुग्रीवतीर्थ में नहाने से अश्वमेधयज्ञ का फल होता है ॥ ३४ ॥ और ब्रह्महत्यादिक पापों का प्रायश्चित्त भी होता है और सुग्रीवतीर्थ को जाने से मनुष्य गोसहस्र के फलको पाता है ॥ ३५ ॥ और उसके स्मरण से मनुष्य वेदों के पारायण के फलको पाता है व उस तीर्थ के किनारे दिन के उपासही मे ॥ ३६ ॥ हे ब्राह्मणो ! विना प्रायश्चित्त के महापातकों का नाश होता है और उसमें स्नान करनेवाला मनुष्य पितरों व देवताओं का तर्पण करै ॥ ३७ ॥ तो आप्तोर्याम यज्ञ का अठ

गुना फल होता है और सुग्रीवतीर्थ में नहाने से मनुष्य नरमेधयज्ञ के फलको पाता है ॥ ३८ ॥ व सुग्रीवतीर्थ में नहाने से मनुष्य जातिका स्मरण करनेवाला होता है हे ब्राह्मणो! मनोरथ की सिद्धि के लिये सुग्रीवतीर्थ को जाइये ॥ ३९ ॥ हे ब्राह्मणो! इसप्रकार तुमलोगों से सुग्रीवतीर्थ का माहात्म्य कहागया और इससमय मैं नलतीर्थ के माहात्म्य को तुमसे कहताहूं ॥ ४० ॥ कि नलतीर्थ में नहाने से मनुष्य स्वर्गलोक को भोगता है और नलतीर्थ में एकबार नहाने से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ४१ ॥ व अग्निष्टोम और अतिरात्रादिक के अति उत्तमफल को पाता है और उस तीर्थ में पितरों व देवताओं को तर्पण करताहुआ जो पुरुष तीन

स्नानेन नरमेधफलंलभेत् ॥ ३८ ॥ सुग्रीवतीर्थस्नानेन नरोजातिस्मरोभवेत् ॥ सुग्रीवतीर्थंभोविप्राःप्रयाताभीष्टसिद्धये ॥ ३९ ॥ सुग्रीवतीर्थमाहात्म्यमेवंवःकथितंद्विजाः ॥ वैभवंनलतीर्थस्य त्विदानींप्रब्रवीमिवः ॥ ४० ॥ नलतीर्थेनरःस्नानात्स्वर्गलोकंसमश्नुते ॥ नलतीर्थेसकृत्स्नानात्सर्वपापविमोचितः ॥ ४१ ॥ अग्निष्टोमातिरात्रादिफलमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ त्रिरात्रमुषितस्तस्मिंस्तर्पयन्पितृदेवताः ॥ ४२ ॥ सूर्यवद्भासतेविप्रा वाजिमेधफलंलभेत् ॥ नीलतीर्थं प्रवक्ष्यामि महापातकनाशनम् ॥ ४३ ॥ अग्निपुत्रेणनीलेन कृतंसेतौविमुक्तिदम् ॥ नीलतीर्थेनरःस्नानात्सर्वपापविमोचितः ॥ ४४ ॥ बहुवर्णस्ययागस्यफलंशतगुणंलभेत् ॥ नीलतीर्थेनरःस्नात्वासर्वाभीष्टप्रदायिनि ॥ ४५ ॥ अग्निलोकमवाप्नोति सर्वकामसमृद्धिमान् ॥ गवाक्षेणकृतंतीर्थं गन्धमादनपर्वते ॥ ४६ ॥ विद्यतेस्नानमात्रेण नरकंनैवयातिसः ॥ अङ्गदेनकृतंतीर्थमस्तिसेतौविमुक्तिदे ॥ ४७ ॥ अत्रस्नानेनमनुजो देवेन्द्रत्वंसमश्नुते ॥ गजेनगवयेनात्र शार

रात्रितक बसता है ॥ ४२ ॥ हे ब्राह्मणो! वह सूर्यकी नाईं शोभित होता है व अश्वमेधयज्ञ के फल को पाता है और महापातकों के नाशक नीलतीर्थ को मैं कहता हूं ॥ ४३ ॥ अग्नि के पुत्र नील से वह मुक्तिदायक तीर्थ सेतुपै कियागया है नीलतीर्थ में नहानेसे मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ४४ ॥ और बहुवर्ण यज्ञके सौगुने फल को पाता है सब मनोरथों को देनेवाले नलतीर्थ में नहाकर मनुष्य ॥ ४५ ॥ सब कामनाओं से समृद्धिमान् होकर अग्निलोकको प्राप्त होताहै और गन्धमादन पर्वत पै गवाक्ष से कियाहुआ तीर्थ ॥ ४६ ॥ विद्यमान है उसमें नहाने से वह मनुष्य नरकको नहीं जाता है और मुक्तिदायक सेतुपै अंगद से कियाहुआ तीर्थ है ॥ ४७ ॥ इसमें

स्नान करनेसे मनुष्य सुरेन्द्रताको पाता है और इस गन्धमादन पर्वतपै गज व गवय और बड़े बलवान् शारण ॥ ४८ ॥ और कुमुद, हर व पराक्रमी पनस तथा अन्य सब वानरों से जो तीर्थ कियेगये हैं ॥ ४६ ॥ रामसेतुपै बड़े पवित्र गन्धमादन पर्वतपर उन तीर्थों में जो नहाता है वह मोक्षत्व को भोगता है ॥ ५० ॥ विभीषण से किया हुआ पातकों का विनाशक तीर्थ है जो कि महादुःखोंको नाश करनेवाला तथा महारोगों को विनाशनेवाला है ॥ ५१ ॥ और महापापसमूहों के लिये अग्नि के समान उत्तम तीर्थ है और कुंभीपाकादिक नरकों के क्लेश के नाशनेका कारण है ॥ ५२ ॥ और दुःस्वप्ननाशक तथा प्रशंसनीय व महादरिद्रों का नाशक है जो मनुष्य उसमें

णेनमहौजसा ॥ ४८ ॥ कुमुदेनहरेणापि पनसेनबलीयसा ॥ कृतानियानितीर्थानि तथान्यैःसर्ववानरैः ॥ ४६ ॥ रामसेतौमहापुण्ये गन्धमादनपर्वते ॥ तेषुतीर्थेषुयःस्नाति सोमृतत्वंसमश्नुते ॥ ५० ॥ विभीषणकृतंतीर्थमस्तिपापविमोचनम् ॥ महादुःखप्रशमनं महारोगनिबर्हणम् ॥ ५१ ॥ महापातकसङ्घानामनलोपममुत्तमम् ॥ कुम्भीपाकादिनरकक्लेशनाशनकारणम् ॥ ५२ ॥ दुःस्वप्ननाशनंधन्यं महादारिद्र्यबाधनम् ॥ तत्रयोमनुजःस्नायात्तस्यनास्तीहपातकम् ॥ ५३ ॥ सवैकुण्ठमवाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ विभीषणस्यसचिवैःकृतंतीर्थचतुष्टयम् ॥ ५४ ॥ तत्रस्नानेन मनुजः सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ सरयूश्चनदीविप्रा गन्धमादनपर्वते ॥ ५५ ॥ रामनाथंमहादेवं सेवितुंवर्ततेसदा ॥ तत्रस्नात्वानराःसर्वे सर्वपातकवर्जिताः ॥ ५६ ॥ सर्वयज्ञतपस्तीर्थसेवाफलमवाप्नुयुः ॥ दशकोटिसहस्राणि तीर्थानिद्विजसत्तमाः ॥ ५७ ॥ वसन्त्यस्मिन्महापुण्ये गन्धमादनपर्वते ॥ गङ्गाद्याःसरितःसर्वास्तथावैसप्तसागराः ॥ ५८ ॥ ऋष्याश्र

स्नान करता है इस संसार में उसके पाप नहीं रहता है ॥ ५३ ॥ और वह पुनरावृत्ति से रहित वैकुंठ को प्राप्तहोताहै और विभीषण के मंत्रियोंने चार तीर्थों को किया है ॥ ५४ ॥ उनमें नहाने से मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है व हे ब्राह्मणो ! गन्धमादन पर्वतपै सरयूनदी ॥ ५५ ॥ रामनाथ महादेवजी को सेवने के लिये सदैव वर्तमान रहती है उसमें नहाकर सब मनुष्य समस्त पातकों से रहित होते हैं ॥ ५६ ॥ और सब यज्ञ, तपस्या व तीर्थकी सेवा के फलको पाता है हे द्विजोत्तमो ! दशकरोड़ हज़ार तीर्थ ॥ ५७ ॥ इस महापवित्र गन्धमादन पर्वतपै बसते हैं और गंगादिक सब नदियां व सात समुद्र ॥ ५८ ॥ और ऋषियों के पवित्र आश्रम व पुण्य वन और

विष्णु व शिवजीके अति उत्तमक्षेत्र ॥ ५९ ॥ सदैव गन्धमादन पर्वत पै समीपता करते हैं ब्रह्माजी ने यज्ञोपवीत के अन्तरभर तीर्थ कहा है ॥ ६० ॥ और सब मुनियों समेत व यक्ष, सिद्ध तथा किन्नरों समेत व पितृगणों समेत तेंतीसकोटि देवता इस गंधमादन पर्वतपै ॥ ६१ ॥ रामचन्द्र देवजी की आज्ञा से सेतुपै बसते हैं श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! मैंने इस प्रकार तीर्थों का माहात्म्य कहा ॥ ६२ ॥ इसको पढ़ता व सुनता हुआ मनुष्य दुःखों के समूहसे छूटजाता है और पुनरावृत्ति से रहित मोक्षको पाता है ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां सकलतीर्थप्रशंसायांद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मानिपुण्यानि तथापुण्यवनानिच ॥ अनुत्तमानिक्षेत्राणि हरिशङ्करयोस्तथा ॥ ५९ ॥ सान्निध्यंकुर्वतेनित्यं गन्धमादनपर्वते ॥ उपवीतान्तरंतीर्थं प्रोक्तवांश्चतुराननः ॥ ६० ॥ त्रयस्त्रिंशत्कोटयोत्र देवाःपितृगणैःसह ॥ सर्वैश्चमुनिभिस्सार्द्धं यक्षसिद्धैश्चकिन्नरैः ॥ ६१ ॥ वसन्तिसेतौदेवस्य रामचन्द्रस्यचाज्ञया ॥ श्रीसूत उवाच॥ एवमुक्तंद्विजश्रेष्ठास्तीर्थानां वैभवंमया ॥ ६२ ॥ इदंपठन्वाशृण्वन्वादुःखसङ्घाद्विमुच्यते ॥ कैवल्यंचसमाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येसकलतीर्थप्रशंसायांद्विचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४२ ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ अथेदानींप्रवक्ष्यामि रामनाथस्यवैभवम् ॥ यच्छ्रुत्वासर्वपापेभ्यो मुच्यतेमानवोभुवि ॥ १ ॥ रामप्रतिष्ठितंलिङ्गं यःपश्यतिनरःसकृत् ॥ सनरोमुक्तिमाप्नोति शिवसायुज्यरूपिणीम् ॥ २ ॥ दशवर्षैस्तुयत्पुण्यं क्रियतेतुकृतेयुगे ॥ त्रेतायामेकवर्षेण तत्पुण्यंसाध्यतेनृभिः ॥ ३ ॥ द्वापरेतच्चमासेन तद्दिनेनकलौयुगे ॥ तत्फलंकोटिगु

दो० । रामनाथ शिव पूजिकै मिलत अहै फल जोइ । तेंतालिस अध्याय में कह्यो चरित सब सोइ ॥ श्रीसूतजी बोले कि इसके अनन्तर मैं इससमय रामनाथजी का प्रभाव कहता हूं कि जिसको सुनकर मनुष्य पृथ्वी में सब पापों से छूटजाता है ॥ १ ॥ जो मनुष्य रामजी से थापे हुए लिंगको एकबार देखता है वह मनुष्य शिवसायुज्यरूपिणी मुक्ति को पाता है ॥ २ ॥ सतयुग में दश वर्षों से जो पुण्य किया जाता है वह पुण्य त्रेतायुग में मनुष्यों से एक वर्ष से साधन किया जाता है ॥ ३ ॥

और द्वापर में वह एक महीने से व कलियुग में वह एक दिन से साधन किया जाता है और वह कोटिगुना फल पल पल भरमें ऐसेही रामनाथ को देखनेवाले मनुष्यों को निस्सन्देह होता है रामेश्वर महालिंग में सब भी तीर्थ ॥ ४।५ ॥ और सब देवता, मनुष्य व पितर विद्यमान हैं एकसमय या दो समय व तीन समयों में तथा सदैवही ॥ ६ ॥ जो मनुष्य मुक्तिदायक रामनाथ महादेवजी को स्मरण करते हैं व हे ब्राह्मणो ! जो कीर्तन करते हैं वे पापपंजर से मुक्त होजाते हैं ॥ ७ ॥ और सच्चिदानन्द, अद्वैत व साम्ब शिव को प्राप्त होते हैं और रामेश्वर नामक जो लिंग रामचन्द्रजीसे पूजागया है ॥ ८ ॥ उसके स्मरणहीसे यमराज की पीडा नहीं होती है और जो मनुष्य

णितं निमिषेनिमिषेनृणाम् ॥ ४ ॥ निस्सन्देहंभवेदेवं रामनाथविलोकिनाम् ॥ रामेश्वरमहालिङ्गे तीर्थानिसकलान्यपि ॥ ५ ॥ विद्यन्तेसर्वदेवाश्च मुनयःपितरस्तथा ॥ एककालंद्विकालंवा त्रिकालंसर्वदैववा ॥ ६ ॥ येस्मरन्तिमहादेवं रामनाथंविमुक्तिदम् ॥ कीर्तयन्त्यथवाविप्रास्तेविमुक्ताघपञ्जराः ॥ ७ ॥ सच्चिदानन्दमद्वैतं साम्बंरुद्रंप्रयान्तिवै ॥ रामेश्वराख्यंयल्लिङ्गं रामचन्द्रेणपूजितम् ॥ ८ ॥ तस्यस्मरणमात्रेण यमपीडापिनोभवेत् ॥ रामेश्वरमहालिङ्गं येर्चयन्तिसकृन्नराः ॥ ९ ॥ नमानुषास्तेविज्ञेयाः किन्तुरुद्रानसंशयः ॥ रामेश्वरमहालिङ्गं नार्चितंयेनभक्तितः ॥ १० ॥ चिरकालंससंसारे संसरेद्दुःखसंकुले ॥ रामेश्वरमहालिङ्गं येपश्यन्तिसकृन्नराः ॥ ११ ॥ किंदानैःकिंव्रतैस्तेषां किंतपोभिःकिमध्वरैः ॥ रामेश्वरमहालिङ्गं योनचिन्तयतिक्षणम् ॥ १२ ॥ अज्ञानीसचपापीस्यात्समूकोबधिरस्तथा ॥ सजडोन्धश्चविज्ञेयश्छिद्रन्तस्यसदाभवेत् ॥ १३ ॥ धनक्षेत्रसुतादीनां तस्यहानिस्तथाभवेत् ॥ रामेश्वरमहालिङ्गे सकृद्

रामेश्वर महालिंग को एकबार पूजते हैं ॥ ९ ॥ वे मनुष्य नहीं हैं किन्तु निस्सन्देह शिव जानने योग्य हैं व जिसने भक्ति से रामेश्वर महालिंग को नहीं पूजा है ॥ १० ॥ वह बहुतदिनों तक दुःख से संयुत संसार में भ्रमता है और जो मनुष्य रामेश्वर महालिंग को एकबार देखते हैं ॥ ११ ॥ उनको दान, व्रत व तपस्या और यज्ञों से क्या है और रामेश्वर महालिंग को जो क्षणभर चिन्तन नहीं करता है ॥ १२ ॥ वह अज्ञानी व पापी होता है और वह गूंगा व बहिरा होता है तथा वह जड़ और अन्ध जानने योग्य है और उसके सदैव छिद्र होता है ॥ १३ ॥ व उसके धन, क्षेत्र व पुत्रादिकों का नाश होता है हे मुनीश्वरो ! एकबार रामेश्वर महालिंग

के देखने पर ॥ १४ ॥ काशी व गया से क्या है और प्रयाग से भी क्या फल है दुर्लभ मनुष्यता को पाकर इस पृथ्वी में जो मनुष्य ॥ १५ ॥ रामनाथ महालिंग को प्रणाम करते व पूजते हैं उनका जन्म सफल है और वे कृतार्थ हैं अन्य नहीं हैं ॥ १६ ॥ रामेश्वर महालिंग के पूजन व स्मरण करने पर भी विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र व समस्त देवताओं से भी क्या है ॥ १७ ॥ जो मनुष्य रामनाथ महालिंग में भक्तिसंयुत हैं उनके प्रणाम स्मरण व पूजन से संयुत जो मनुष्य हैं ॥ १८ ॥ वे दुःखों को नहीं देखते हैं व यमस्थानको नहीं जाते हैं हज़ार ब्रह्महत्या व दशहज़ार मदिरापान ॥ १९ ॥ सब रामेश्वर देवके देखनेपर नाशको प्राप्तहोते हैं और जो सदैव सुख व स्वर्ग

ष्टेमुनीश्वराः ॥ १४ ॥ किंकाश्यागययाकिंवा प्रयागेणापिकिंफलम् ॥ दुर्लभंप्राप्यमानुष्यं मानवायेत्रभूतले ॥ १५ ॥ रामनाथमहालिङ्गं नमस्यन्त्यर्चयन्तिच ॥ जन्मतेषांहिसफलं तेकृतार्थाश्चनेतरे ॥ १६ ॥ रामेश्वरमहालिङ्गे पूजितेवा स्मृतेपिवा ॥ विष्णुनाब्रह्मणाकिंवा शक्रेणाप्यखिलामरैः ॥ १७ ॥ रामनाथमहालिङ्गे भक्तियुक्ताश्चयेनराः ॥ तेषांप्रणामस्मरणपूजायुक्तास्तुयेनराः ॥ १८ ॥ नतेपश्यन्तिदुःखानि नैवयान्तियमालयम् ॥ ब्रह्महत्यासहस्राणि सुरापानायुतानिच ॥ १९ ॥ दृष्टेरामेश्वरेदेवे विलयंयान्तिकृत्स्नशः ॥ येवाञ्छन्तिसदाभोगं राज्यंचत्रिदशालये ॥ २० ॥ रामेश्वरमहालिङ्गं तेनमन्तुसकृन्मुदा ॥ यानिकानिचपापानि जन्मकोटिकृतान्यपि ॥ २१ ॥ तानिरामेश्वरेदृष्टे विलयंयान्तिसद्यतिम् ॥ संपर्कात्कौतुकाल्लोभाद्भयादापिचसंस्मरन् ॥ २२ ॥ रामेश्वरमहालिङ्गं नेहामुत्रचदुःखभाक् ॥ रामेश्वरमहालिङ्गं कीर्तयन्नर्चयन्नपि ॥ २३ ॥ अवश्यंरुद्रसारूप्यं लभतेनात्रसंशयः ॥ यथैधांसिसमिद्धोग्निर्भस्मसात्कुरु

में राज्य को चाहते हैं ॥ २० ॥ वे प्रसन्नता से एकबार रामेश्वर महालिंग को प्रणाम करें और करोड़ों जन्मोंमें भी जो कोई पाप कियेगये हैं ॥ २१ ॥ वे रामेश्वरजी के देखने पर नाश को प्राप्तहोते हैं व उत्तम गति को पाते हैं और मेल, कौतुक, लोभ व भयसे भी रामेश्वर महालिंग को स्मरण करताहुआ मनुष्य इस लोक व परलोक में दुःख का भागी नहीं होता है व रामेश्वर महालिंग को कीर्त्तन व पूजन करता हुआ भी मनुष्य ॥ २२ । २३ ॥ अवश्य कर रुद्रसारूप्य को प्राप्तहोता है इसमें सन्देह

नहीं है जिसप्रकार बढ़ीहुई अग्नि क्षणभर में लकड़ियों को भस्म करती है ॥ २४ ॥ वैसेही रामेश्वर को देखनेवाले मनुष्योंके सब पाप भस्म होजाते हैं रामेश्वर महालिंग की भक्ति आठ प्रकार की कहीगई है ॥ २५ ॥ कि उनके भक्तजनकी वत्सलता व उनका पूजन और प्रसन्न करना तथा भक्ति से आपही उनका पूजन करना व उनके लिये शरीर की चेष्टा ॥ २६ ॥ व उनके माहात्म्य की कथाओं के सुनने में आदर और स्वर, नेत्र व शरीर में विकार का स्फुरण होना ॥ २७ ॥ और सदैव रामेश्वर महालिंग को स्मरण करना तथा रामेश्वर महालिंग के आश्रित होकर जीविका करना ॥ २८ ॥ इस प्रकार आठ भांति की भक्ति जिस म्लेच्छ के भी विद्यमान

तेक्षणात् ॥ २४ ॥ तथापापानिसर्वाणि रामेश्वरविलोकिनाम् ॥ रामेश्वरमहालिङ्गभक्तिरष्टविधास्मृता ॥ २५ ॥ तद्भक्तजनवात्सल्यं तत्पूजापरितोषणम् ॥ स्वयंतत्पूजनंभक्त्या तदर्थेदेहचेष्टितम् ॥ २६ ॥ तन्माहात्म्यकथानांच श्रवणेष्वादरस्तथा ॥ स्वरेनेत्रशरीरेषु विकारस्फुरणंतथा ॥ २७ ॥ रामेश्वरमहालिङ्गस्मरणंसन्ततंतथा ॥ रामेश्वरमहालिङ्गमाश्रित्यैवोपजीवनम् ॥ २८ ॥ एवमष्टविधाभक्तिर्यस्मिन्म्लेच्छेपिविद्यते ॥ सएवमुक्तिक्षेत्राणां दायभाक्परिकीर्त्यते ॥ २९ ॥ भक्त्यात्वनन्ययामुक्तिर्ब्रह्मज्ञानेननिश्चिता ॥ वेदान्तशास्त्रश्रवणाद्यतीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ३० ॥ साचमुक्तिर्विनाज्ञानं दर्शनश्रवणोद्भवम् ॥ यत्राश्रमंविनाविप्राविरक्तिंचविनातथा ॥ ३१ ॥ सर्वेषांचैववर्णानामखिलाश्रमिणामपि ॥ रामेश्वरमहालिङ्गदर्शनाद्देवकेवलात् ॥ ३२ ॥ अपुनर्भवदामुक्तिर्भविष्यत्यविलम्बिता ॥ कृमिकीटाश्चदेवाश्च मुनयश्चतपोधनाः ॥ ३३ ॥ तुल्यारामेश्वरक्षेत्रे रामनाथप्रसादतः ॥ पापंकृतंमयानेकमितिमाक्रियतांभयम् ॥ ३४ ॥

होती है वही मुक्तिक्षेत्रों के दायका भागी कहाजाता है ॥ २९ ॥ अनन्यभक्ति से व ब्रह्मज्ञान से निश्चय कीहुई मुक्ति होती है और ऊर्ध्वरेता संन्यासियों की मुक्ति वेदान्त के श्रवण से होती है ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! वही मुक्ति दर्शन व श्रवण से उपजेहुए ज्ञान के विना होती है और जहां आश्रम के विना व विना वैराग्यके मुक्ति होती है ॥ ३१ ॥ सब वर्णों व सब आश्रमियों की भी केवल रामेश्वर महालिंग के दर्शन से ॥ ३२ ॥ अपुनर्जन्म को देनेवाली शीघ्रही मुक्ति होगी कृमि, कीट, देवता व तपस्यारूपी धनवाले मुनिलोग ॥ ३३ ॥ रामेश्वरजी के क्षेत्र में रामनाथ की प्रसन्नता से समान होते हैं मैंने अनेक पापको किया है यह भय न कियाजावै ॥ ३४ ॥

और मैंने पुण्य कियाहै यह गर्व मनुष्योंसे न कियाजावै साम्बशिव रामेश्वर महालिंगके देखने पर ॥ ३५ ॥ न्यून व अधिक मनुष्य नहीं होते हैं किन्तु सब प्राणी समान होते हैं भक्तिसमेत जो मनुष्य रामेश्वर महालिंग को देखता है ॥ ३६ ॥ पृथ्वी में उसके समान चतुर्वेदी भी नहीं होता है चांडाल होताहुआ भी जो मनुष्य रामेश्वर महालिंग में भक्त है ॥ ३७ ॥ उसके लिये दानों को देना चाहिये अन्य वेदत्रयीवित् के लिये न देना चाहिये योगसे युक्त ऊर्ध्वरेता मुनियों की जो गति होती है ॥ ३८ ॥ रामेश्वर को देखनेवाले सब प्राणियों की वह गति होती है हे ब्राह्मणो ! रामनाथ शिवजी के क्षेत्र में जो लोग बसते हैं ॥ ३९ ॥ चन्द्रमा से भूषित मस्तकवाले वे सब

मागर्वःक्रियतांपुण्यं मयाकारीतिवाजनैः ॥ रामेश्वरमहालिङ्गे साम्बरुद्रेविलोकिते ॥ ३५ ॥ नन्यूनानाधिकाश्चस्युः किन्तुसर्वेजनाःसमाः ॥ रामेश्वरमहालिङ्गं यःपश्यतिसभक्तिकम् ॥ ३६ ॥ नतेनतुल्यतामेतिचतुर्वेद्यपिभूतले ॥ रामेश्वरमहालिङ्गे भक्तोयःश्वपचोपिसन् ॥ ३७ ॥ तस्मैदानानिदेयानि नान्यस्मैचत्रयीविदे ॥ यागतिर्योगयुक्तानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ३८ ॥ सागतिःसर्वजन्तूनां रामेश्वरविलोकिनाम्॥रामनाथशिवक्षेत्रे येवसन्तिनराद्विजाः ॥ ३९ ॥ तेसर्वेपञ्चवक्त्राःस्युश्चन्द्रालङ्कृतमस्तकाः ॥ नागाभरणसंयुक्तास्तथैववृषभध्वजाः ॥ ४० ॥ त्रिनेत्राभस्मदिग्धाङ्गाः कपालकृतशेखराः ॥ साक्षात्साम्बमहादेवा भवेयुर्नात्रसंशयः ॥ ४१ ॥ रामनाथशिवक्षेत्रं येव्रजन्तिनरामुदा ॥ पदेपदेश्वमेधानां प्राप्नुयुःसुकृतानिते ॥ ४२ ॥ रामसेतुंसमाश्रित्य रामनाथस्यतुष्टये ॥ ददातिग्राममेकंयो ब्राह्मणायसभक्तिकम् ॥ ४३ ॥ तेनभूःसकलादत्ता सशैलवनकानना ॥ पत्रंपुष्पंफलंतोयं रामनाथाययोनरः ॥ ४४ ॥ भक्त्याददाति

पंचमुख (शिव) होते हैं और नागों के आभूषणों से संयुत व वृषध्वज ॥ ४० ॥ और भस्म को अंगों में लगाये व कपाल को मस्तक में किये त्रिलोचन साम्बशिव होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ व जो मनुष्य प्रसन्नता से रामनाथ शिवजीके क्षेत्रको जाते हैं वे पग २ पै अश्वमेधों के पुण्यों को प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥ व रामनाथजी की प्रसन्नता के लिये रामसेतु के आश्रित होकर जो एक ग्राम को ब्राह्मणके लिये भक्ति समेत देता है ॥ ४३ ॥ उसने पर्वत, वन व काननों समेत सब पृथ्वी को दिया जो मनुष्य भक्ति से रामनाथजी के लिये पत्र, पुष्प, फल व जल को देता है उसकी रामनाथजी दिनरात रक्षा करते हैं साम्ब रामनाथ महालिंग दयावान्

शिवजी में ॥ ४४ । ४५ ॥ भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है व उनका पूजन भी बहुत दुर्लभ है और स्तोत्र व स्मरण अतिदुर्लभ है ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य भक्तिसंयुत चित्त से महादेव व त्रिलोचन रामनाथेश्वर लिंग की शरणमें प्राप्त होते है ॥ ४७ ॥ उनको इस लोक व परलोक में लाभ व जय होता है और दिन रात रामनाथ महालिंग के विषयवाली जिसकी बुद्धि होती है वह पृथ्वी में बहुतही धन्य है व रामनाथेश्वर शिवलिंग को जो नहीं पूजता है ॥ ४८ । ४९ ॥ यह भुक्ति, मुक्ति व राज्यों का भी पात्र नहीं होता है और जो पुरुष भक्ति से रामेश्वर महालिंग को पूजता है ॥ ५० ॥ यह भुक्ति, मुक्ति व राज्यों का उत्तम पात्र है रामनाथ पूजन के समान व अधिक पुण्य नहीं है ॥ ५१ ॥

तंरक्षेद्रामनाथोह्यहर्निशम् ॥ रामनाथमहालिङ्गे साम्बेकारुणिकेशिवे ॥ ४५ ॥ अत्यन्तदुर्लभाभक्तिस्तत्पूजाप्यतिदुर्लभा ॥ स्तोत्रंचदुर्लभंप्रोक्तं स्मरणंचातिदुर्लभम् ॥ ४६ ॥ रामनाथेश्वरंलिङ्गं महादेवंत्रिलोचनम् ॥ शरणंयेप्रपद्यन्ते भक्तियुक्तेनचेतसा ॥ ४७ ॥ लाभस्तेषांजयस्तेषामिहलोकेपरत्रच ॥ रामनाथमहालिङ्गविषयायस्यशेमुषी ॥ ४८ ॥ दिवारात्रंचभवति सवैधन्यतरोभुवि ॥ रामनाथेश्वरंलिङ्गं योनपूजयतेशिवम् ॥ ४९ ॥ नायंभुक्तेश्चमुक्तेश्च राज्यानामपिभाजनम् ॥ रामेश्वरमहालिङ्गं यःपूजयतिभक्तितः ॥ ५० ॥ भुक्तिमुक्त्योश्च राज्यानामसौपरमभाजनः ॥ रामनाथार्चनसमं नाधिकंपुण्यमस्तिवै ॥ ५१ ॥ रामनाथेश्वरंलिङ्गं द्वेष्टियोमोहमास्थितः ॥ ब्रह्महत्यायुतंतेन कृतंनरककारणम् ॥ ५२ ॥ तत्संभाषणमात्रेण मानवोनरकंव्रजेत् ॥ रामनाथपरादेवा रामनाथपरामखाः ॥ ५३ ॥ रामनाथपराःसर्वे तस्मादन्यन्नविद्यते ॥ अतःसर्वंपरित्यज्य रामनाथंसमाश्रयेत् ॥ ५४ ॥ रामनाथमहालिङ्गं शरणंयातिचेन्नरः ॥ दौर्मत्यंतस्यनास्त्येव शिवलोकंचयास्यति ॥ ५५ ॥ सर्वयज्ञतपोदानतीर्थस्नानेषु यत्फलम् ॥ तत्फलंकोटिगुणितं

और मोह में स्थित जो मनुष्य रामनाथेश्वर लिंग से वैर करता है उसने नरकों के कारण दशहज़ार हत्याओं को किया ॥ ५२ ॥ और उसके संभाषण से मनुष्य नरक को जाता है देवता रामनाथ में परायण हैं व यज्ञ रामनाथपरकहैं ॥ ५३ ॥ व सब रामनाथपर हैं और उनसे अन्य कुछ नहीं है इस कारण सबको छोडकर रामनाथ के आश्रित होवै ॥ ५४ ॥ यदि मनुष्य रामनाथ महादेवजी की शरण में जाता है तो उसके दुर्बुद्धिता नहीं होती है और वह शिवलोक को प्राप्त होगा ॥ ५५ ॥ सब यज्ञ, तपस्या, दान व तीर्थ

स्नानों में जो फल होता है वह कोटिगुना फल रामनाथ जीकी सेवा से होता है ॥ ५६ ॥ दोघडी तक रामनाथेश्वर लिंगको स्मरण करताहुआ मनुष्य इक्कीस पुश्तियों को उधारकर शिवलोक में पूजाजाता है ॥ ५७ ॥ जो मनुष्य एक दिन रामनाथ शिवजीको देखता है वह इसी लोक में धनवान् होकर अन्त में शिव होजाता है ॥ ५८ ॥ और जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर रामनाथ शिवजी को स्मरण करता है वह इसी शरीर से पृथ्वी में शिव वर्तमान है ॥ ५९ ॥ और रामनाथ महालिंग को देखनेवाले पुरुष के दर्शन से अन्य पुरुषों का पाप उसी क्षण नाश होजाता है ॥ ६० ॥ और जो मनुष्य रामनाथेश्वर महालिंग को मध्याह्न में देखता है

रामनाथस्यसेवया ॥ ५६ ॥ रामनाथेश्वरंलिङ्गं चिन्तयन्घटिकाद्वयम् ॥ कुलैकवंशमुद्धृत्य शिवलोकेमहीयते ॥ ५७ ॥ दिनमेकंतुयःपश्येद्रामनाथंमहेश्वरम् ॥ इहैवधनवान्भूत्वा सोन्तेरुद्रश्चजायते ॥ ५८ ॥ यःस्मरेत्प्रातरुत्थाय रामनाथं महेश्वरम् ॥ अनेनैवशरीरेण सशिवोवर्ततेभुवि ॥ ५९ ॥ रामनाथमहालिङ्गद्रष्टृदर्शनमात्रतः ॥ अन्येषांप्राणिनां पापं तत्क्षणादेवनश्यति ॥ ६० ॥ रामनाथेश्वरंलिङ्गं मध्याह्नेयस्तुपश्यति ॥ सुरापानसहस्राणि तस्यनश्यन्तित त्क्षणात् ॥ ६१ ॥ सायंकालेपश्यतियो रामनाथंसभक्तिकम् ॥ गुरुस्त्रीगमनोत्पन्नपातकंतस्यनश्यति ॥ ६२ ॥ सायं कालेमहास्तोत्रैः स्तौतिरामेश्वरंतुयः ॥ स्वर्णस्तेयसहस्राणि तस्यनश्यन्तितत्क्षणात् ॥ ६३ ॥ स्नानंचधनुषःकोटौ रामनाथस्यदर्शनम् ॥ इतिलभ्येतवैपुंसां किंगङ्गाजलसेवया ॥ ६४ ॥ रामनाथमहालिङ्गसेवयायन्नलभ्यते ॥ तदन्य द्धर्मजालेन नैवलभ्येतकर्हिचित् ॥ ६५ ॥ रामनाथंमहालिङ्गं यःकदापिनपश्यति ॥ संकरःसतुविज्ञेयो नपितुर्बीजस

उसके हज़ारों मदिरापान उसी क्षण नाश होजाते हैं ॥ ६१ ॥ व सायंकाल में जो पुरुष भक्ति समेत रामनाथजी को देखता है उसका गुरुस्त्रीगमन से पैदाहुआ पाप नाश होजाता है ॥ ६२ ॥ और सायंकाल में जो महास्तोत्रों से रामेश्वरजी की स्तुति करता है उसकी उसी क्षण हज़ारों सुवर्ण की चोरी नाश होजाती हैं ॥ ६३ ॥ धनुष्कोटि में स्नान व रामनाथजीका दर्शन यह पुरुषों को यदि मिलताहै तो गंगाजलके सेवन से क्या है ॥ ६४ ॥ और रामनाथ महालिंग की सेवा से जो नहीं मिलता है वह अन्य धर्मजाल से कभी नहीं मिलता है ॥ ६५ ॥ व रामनाथ महालिंग को जो कभी नहीं देखता है वह संकरवर्ण जानने योग्य है व पिताके वीर्य से उत्पन्न

नहीं है ॥ ६६ ॥ व प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य रामनाथ ऐसे शब्द को तीनबार पढ़ता है उसका पहले दिनमें उपजाहुआ पाप उसी क्षण नाश होजाता है ॥ ६७ ॥
हे मनुष्यो ! भक्तों की रक्षा में दीक्षित रामनाथ महालिंग के विद्यमान होनेपर याचनाओं को क्यों जातेहो ॥ ६८ ॥ और दयानिधान रामनाथ महालिंग के प्रसन्न होनेपर
सब क्लेश नाश होजाते हैं जैसे कि सूर्योदय में पाला नष्ट होजाता है ॥ ६९ ॥ यदि प्राण निकलने के समय रामनाथजी को स्मरण करै तो फिर यह जन्म के लिये
समर्थ नहीं होता है और शिवत्व को प्राप्त होता है ॥ ७० ॥ हे दयानिधे, रामनाथ, महादेव ! मेरी रक्षा कीजिये ऐसा जो सदैव कहता है यह कलि से पीड़ित नहीं

म्भवः ॥ ६६ ॥ रामनाथेतिशब्दं यस्त्रिःपठेत्प्रातरुत्थितः ॥ तस्यपूर्वदिनोत्पन्नपातकंनश्यतिक्षणात् ॥ ६७ ॥ रामना
थेमहालिङ्गे भक्तरक्षणदीक्षिते ॥ भोजनाविद्यमानेपियाचनाःकिंप्रयास्यथ ॥ ६८ ॥ रामनाथमहालिङ्गे प्रसन्नेकरुणा
निधौ ॥ नश्यन्तिसकलाःक्लेशा यथासूर्योदयेहिमाः ॥ ६९ ॥ प्राणोत्क्रमणवेलायां रामनाथंस्मरेद्यदि ॥ जन्मने
सौनकल्पेत भूयःशङ्करतामियात् ॥ ७० ॥ रामनाथमहादेव मांरक्षकरुणानिधे ॥ इतियःसततंब्रूयात्कलिनासौनबा
ध्यते ॥ ७१ ॥ रामनाथजगन्नाथ धूर्जटेनीललोहित ॥ इतियःसततंब्रूयाद्बाध्यतेसौनमायया ॥ ७२ ॥ नीलकण्ठमहा
देव रामेश्वरसदाशिव ॥ इतिब्रुवन्सदाजन्तुर्नैवकामेनबाध्यते ॥ ७३ ॥ रामेश्वरयमाराते कालकूटविषादन ॥ इती
रयञ्जनोनित्यं नक्रोधेनप्रपीड्यते ॥ ७४ ॥ रामनाथालयंयस्तु दारुभिःकुरुतेनरः ॥ सपुमान्स्वर्गमाप्नोति त्रिकोटिकु
लसंयुतः ॥ ७५ ॥ इष्टकाभिस्तुयःकुर्यात्सवैकुण्ठमवाप्नुयात् ॥ शिलाभिःकुरुतेयस्तु सगच्छेद्ब्रह्मणःपदम् ॥ ७६ ॥

होता है ॥ ७१ ॥ हे रामनाथ, जगदीश ! हे धूर्जटे, नीललोहित ! ऐसा जो सदैव कहता है यह मायासे पीड़ित नहीं होता है ॥ ७२ ॥ हे नीलकण्ठ, हे महादेव,
हे रामेश्वर, हे सदाशिव ! ऐसा सदैव कहता हुआ प्राणी काम से बाधित नहीं होता है ॥ ७३ ॥ हे रामेश्वर, हे यमाराते, हे कालकूट, हे विषादन ! ऐसा सदैव कहता
हुआ मनुष्य क्रोध से पीड़ित नहीं होता है ॥ ७४ ॥ और जो मनुष्य काष्ठों से रामनाथ जी का मन्दिर बनवाता है तीन करोड़ कुलों से संयुत वह पुरुष स्वर्ग को प्राप्त
होता है ॥ ७५ ॥ और जो ईंटों से बनवाता है वह वैकुण्ठ को प्राप्त होता है और जो पत्थरों से बनवाता है यह ब्रह्मा के स्थान को जाता है ॥ ७६ ॥

और स्फटिक आदिक पत्थरों के भेदों से इन रामेश्वर जी के स्थान को बनाता हुआ पुरुष उत्तम विमान पै बैठकर शिवलोक को प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ और भक्तिपूर्वक ताम्र से रामनाथजी का स्थान करता हुआ पुरुष शिवजी के आधे आसन पै स्थित होकर शिवजी की समीपता को प्राप्त होता है ॥ ७८ ॥ और चांदी से रामेश्वरजी के स्थान को प्रसन्नता से करता हुआ पुरुष शिवजी की सरूपता को प्राप्त होता है व सदैव शिवकी नाईं आनन्द करता है ॥ ७९ ॥ और भक्ति समेत जो पुरुष सोने से रामनाथजी का स्थान करता है वह मनुष्य शिवसायुज्यरूपवती मुक्ति को पाता है ॥ ८० ॥ जो धनी पुरुष सुवर्ण से रामनाथजी का स्थान बनवाता है और जो निर्धनी मिट्टी से

स्फटिकादिशिलाभेदैः कुर्वन्नस्यालयञ्जनः ॥ शिवलोकमवाप्नोति विमानवरमास्थितः ॥ ७७ ॥ रामनाथालयंताम्रैःकुर्वन्भक्तिपुरःसरम् ॥ शिवसामीप्यमाप्नोति शिवस्यार्द्धासनस्थितः ॥ ७८ ॥ रामेश्वरालयंरूप्यैःकुर्वन्वैमानवोमुदा ॥ शिवसारूप्यमाप्नोति शिववन्मोदतेसदा ॥ ७९ ॥ रामनाथालयंहेम्ना यःकरोतिसभक्तिकम् ॥ सनरोमुक्तिमाप्नोति शिवसायुज्यरूपिणीम् ॥ ८० ॥ रामनाथालयंहेम्ना धनाढ्यःकुरुतेनरः ॥ मृदादरिद्रःकुरुतेतयोःपुण्यंसमंस्मृतम् ॥ ८१ ॥ रामनाथमहालिङ्गस्नानकालेद्विजोत्तमाः ॥ त्रिसन्ध्यंगेयनृत्तेच मुखवाद्यैश्चकाहलम् ॥ ८२ ॥ वाद्यान्यन्यानिकुरुते यःपुमान्भक्तिपूर्वकम् ॥ समहापातकैर्मुक्तो रुद्रलोकेमहीयते ॥ ८३ ॥ योभिषेकस्यसमये रामनाथस्यशूलिनः ॥ रुद्राध्यायंचचमकं तथापुरुषसूक्तकम् ॥ ८४ ॥ त्रिसुपर्णंपञ्चशान्तिं पावमान्यादिकंतथा ॥ जपेत्प्रीतियुतोविप्रा नरकंनसमश्नुते ॥ ८५ ॥ गवांक्षीरेणदध्नाच पञ्चगव्यैर्घृतैस्तथा ॥ रामनाथमहालिङ्गस्नानंनरकनाशनम् ॥ ८६ ॥

बनवाता है उन दोनों का पुण्य समान है ॥ ८१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! रामनाथ महालिंग के स्नान के समय में व त्रिकाल जो मनुष्य गीत, नृत्य व मुखबाजनों से कोलाहल करता है ॥ ८२ ॥ और जो पुरुष भक्तिपूर्वक अन्य बाजनों को करता है महापापों से छूटाहुआ वह शिवलोक में पूजा जाता है ॥ ८३ ॥ और जो मनुष्य त्रिशूलधारी रामनाथ जी के स्नान के समय में रुद्राध्याय, चमक व पुरुषसूक्त ॥ ८४ ॥ और त्रिसुपर्ण, पंचशान्ति तथा पावमान्यादिक को प्रीतिसंयुत जपता है हे ब्राह्मणो ! वह नरक को नहीं भोगता है ॥ ८५ ॥ और गौवों के दूध से व दही, पंचगव्य और घृत से रामनाथ महालिंग का स्नान नरकों का विनाशक है ॥ ८६ ॥

जो मनुष्य रामनाथ महालिंग को घृत से नहवाता है उसका कल्प जन्मों में इकट्ठा किया हुआ पाप उसी क्षण नाश होजाता है ॥ ८७ ॥ और गऊके दूध से रामनाथ महालिंग को नहवाता हुआ मनुष्य इक्कीस पुश्तियों को उधार कर शिवलोक में पूजा जाता है ॥ ८८ ॥ और रामनाथ महालिंग को दही से नहवाता हुआ पुरुष सब पापों से छूटकर विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ ८९ ॥ और जो मनुष्य तिल के तैल से रामेश्वर जी का भक्ति से एकबार उबटन करता है वह कुबेर के घर में बसता है ॥ ९० ॥ और जो मनुष्य भक्ति से रामनाथ महालिंग को एकबार ऊंख के रस से स्नान कराता है वह चन्द्रलोक को प्राप्त होता है ॥ ९१ ॥ और बडहर व आँब के

रामनाथमहालिङ्गं घृतेनस्नापयेच्चयः ॥ कल्पजन्मार्जितंपापं तत्क्षणादेवनश्यति ॥ ८७ ॥ रामनाथमहालिङ्गं गोक्षीरैःस्नापयन्नरः ॥ कुलैकविंशमुत्तीर्य शिवलोकेमहीयते ॥ ८८ ॥ रामनाथमहालिङ्गं दध्नासंस्नापयन्नरः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकेमहीयते ॥ ८९ ॥ अभ्यङ्गन्तिलतैलेन रामेश्वरशिवस्ययः ॥ करोतिहिसकृद्भक्त्यासकुबेरगृहेवसेत् ॥ ९० ॥ रामनाथमहालिङ्गे स्नानमिक्षुरसेनयः॥सकृदप्याचरेद्भक्त्या चन्द्रलोकंसमश्नुते ॥ ९१ ॥ लिकुचाम्ररसोत्पन्नसारेणस्नापयन्नरः ॥ रामनाथमहालिङ्गं पितृलोकंसमश्नुते ॥ ९२ ॥ नालिकेरजलैःस्नानं रामनाथमहेश्वरे ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां नाशनंपरिकीर्तितम् ॥ ९३ ॥ रामनाथमहालिङ्गं रम्भापक्वैर्विमर्दयन् ॥ विनाश्यसकलंपापं वायुलोकेमहीयते ॥ ९४ ॥ वस्त्रपूतेनतोयेन रामनाथंमहेश्वरम् ॥ स्नापयन्वारुणंलोकमाप्नोतिद्विजसत्तमाः ॥ ९५ ॥ चन्दनोदकधाराभी रामनाथंमहेश्वरम् ॥ स्नापयेत्पुरुषोविप्रा गन्धर्वलोकमाप्नुयात् ॥ ९६ ॥ पुष्पवासिततोयेन

रस से उत्पन्न गोंद से रामनाथ महालिंग को नहवाता हुआ मनुष्य पितृलोक को भोग करता है ॥ ९२ ॥ और नारियल के जलों से रामनाथ महेश्वर को स्नान कराना ब्रह्महत्यादिकों का नाशक कहागया है ॥ ९३ ॥ और केला के पकेहुए फलों से रामनाथ महालिंग को मर्दन करता हुआ मनुष्य सब पाप को नाश कर पवनलोक में पूजा जाता है ॥ ९४ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! वस्त्र से छानेहुए जल से रामनाथ शिवजी को नहवाता हुआ पुरुष वरुण के लोक को प्राप्त होता है ॥ ९५ ॥ व हे ब्राह्मणो ! चन्दन के जल की धाराओं से जो मनुष्य रामनाथ शिवजी को नहवाता है वह गन्धर्वलोक को प्राप्त होता है ॥ ९६ ॥ व सुवर्ण से मिलेहुए जलसे व पुष्पों से

वासित जल से और दूध से मिलेहुए जल से रामेश्वर जी को स्नान कराने से ॥ ९७ ॥ इन्द्र के आसन पै चढ़कर उन्हीं के साथ आनन्द करता है और पाड़र व सफेद कमल तथा लाल कमल व पुन्नाग और कनैर से ॥ ९८ ॥ वासित जलों से रामेश्वर शिवजी को नहवाकर हे ब्राह्मणो ! वह बड़े पातकों से छूटजाता है ॥ ९९ ॥ व जो अन्य बड़ेभारी सुगन्धित पुष्प हैं उनकी सुगन्ध से अधिवासित जलों से दयानिधान रामेश्वर महालिंग को स्नान कराकर शिवलोक में पूजा जाता है व इलायची, कपूर व खस से वासित पवित्र जलों से ॥ १०० । १ ॥ रामेश्वर महालिंग को नहवाकर शुद्धबुद्धिवाला पुरुष अग्नि के लोक को प्राप्त होकर सब कामनाओं को भोगता है ॥ २ ॥

हेमसंपृक्तवारिणा ॥ दुग्धसंपृक्ततोयेन स्नानाद्रामेश्वरस्यतु ॥ ९७ ॥ महेन्द्रासनमारुह्य तेनैवसहमोदते ॥ पाटलोत्पलकह्लारपुन्नागकरवीरकैः ॥ ९८ ॥ वासितैर्वारिभिर्विप्रा रामेश्वरमहेश्वरम् ॥ अभिषिच्यमहद्भिश्च पातकैः सविमुच्यते ॥ ९९ ॥ यानिचान्यानिपुष्पाणि सुरभीणिमहान्तिच ॥ तद्गन्धवासितैस्तोयैरभिषिञ्च्यदयानिधिम् ॥ १०० ॥ रामेश्वरमहालिङ्गं शिवलोकेमहीयते ॥ एलाकर्पूरलामज्जवासितैःशुद्धवारिभिः ॥ १ ॥ रामेश्वरमहालिङ्गमभिषिञ्च्यविशुद्धधीः ॥ आग्नेयंलोकमासाद्य सर्वान्कामान्समश्नुते ॥ २ ॥ रामनाथाभिषेकार्थं मृद्घटान्यःप्रयच्छति ॥ इहलोकेशतायुःस्यात्सर्वकामसमृद्धिमान् ॥ ३ ॥ ताम्रकुम्भप्रदानेन देवेन्द्रत्वमवाप्नुयात् ॥ रौप्यकुम्भप्रदानेन ब्रह्मलोकंसमश्नुते ॥ ४ ॥ हेमकुम्भप्रदानेन शिवलोकेमहीयते ॥ रत्नकुम्भप्रदानेन शिवसामीप्यमश्नुते ॥ ५ ॥ रामनाथाभिषेकार्थं नैवेद्यार्थमपिद्विजाः ॥ योगांपयस्विनींदद्यात्सोश्वमेधफलंलभेत् ॥ ६ ॥ प्राप्नोतिशिवलोकंच देहा

और जो मनुष्य रामनाथ के स्नान के लिये मिट्टी के घडों को देता है वह इस लोक में सौ वर्ष का होकर सब कामनाओं से समृद्धिमान् होता है ॥ ३ ॥ और ताँबे के घडे को देने से मनुष्य सुरेन्द्रता को प्राप्त होता है और चांदी का घडा देने से ब्रह्मलोक को भोगता है ॥ ४ ॥ व सुवर्ण का घडा देने से शिवलोक में पूजा जाता है व रत्नों का घड़ा देने से शिव की समीपता को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मणो ! रामनाथ जी को नहवाने के लिये व नैवेद्य के लिये जो दूधवाली गऊ को देता है वह अश्वमेध के फल को पाता है ॥ ६ ॥ और शिवजी के वेष को धारनेवाला मनुष्य देहान्त में शिवलोक को प्राप्त होता है और रामसेतु पै धनुष्कोटि में

हे रामनाथ ! ऐसा कहकर जो ॥ ७ ॥ जहां कहीं भी स्नान करता है वह सेतुस्नान के फल को पाता है और जो रामनाथजी के शिवालय को चूनसे पोतता है ॥ ८ ॥ उस पुण्य को कहने के लिये मैं सौ वर्ष से भी समर्थ नहीं हूं व जो मनुष्य रामनाथ के शिवालय को नवीन करता है ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस कर्ता के पुण्य के फल को सौगुना जानना चाहिये और जो मनुष्य कटेहुए रामनाथजी के शिवालय को भक्ति से भलीभांति बनाता है वह दश हज़ार ब्रह्महत्याओं को जलाता है और रामनाथके आगे हर्ष से दीपकों को आरोपण करता हुआ मनुष्य ॥ १० । ११ ॥ अविद्या (माया) के पटल को काटकर सनातन ब्रह्मको जाता है और घृत, तैल, मूंग, शक्कर, चावल व गुड़ों को ॥ १२ ॥

न्तेशिववेषभाक् ॥ रामसेतौधनुष्कोटौ रामनाथेत्युदीर्ययः ॥ ७ ॥ यत्रकाप्याचरेत्स्नानं सेतुस्नानफलंलभेत् ॥ सुधाप्रलिप्तंयःकुर्याद्रामनाथशिवालयम् ॥ ८ ॥ तत्पुण्यंगदितुंनाहं शक्तोवर्षशतादपि ॥ नवीकरोतियोमर्त्यो रामनाथशिवालयम् ॥ ९ ॥ कर्तुःशतगुणंज्ञेयं यस्यपुण्यफलंद्विजाः ॥ छिन्नभिन्नंचयःसम्यक् रामनाथशिवालयम् ॥ १० ॥ करोतिभक्त्यापुरुषो ब्रह्महत्यायुतंदहेत् ॥ रामनाथस्यपुरतो दीपानारोपयन्मुदा ॥ ११ ॥ अविद्यापटलंभित्त्वा यातिब्रह्मसनातनम् ॥ घृतंतैलंतथामुद्गं शर्करास्तण्डुलान्गुडान् ॥ १२ ॥ प्रयच्छन्रामनाथाय देवेन्द्रपदमश्नुते ॥ रामनाथमहालिङ्गदर्शनादर्चनात्स्मृतेः ॥ १३ ॥ स्पर्शनादपिपापानि विलयंयान्तितत्क्षणात् ॥ रामनाथाययो दद्यान्महाघण्टांचदर्पणम् ॥ १४ ॥ विमानशतसंभोगैश्चिरंशिवपुरेवसेत् ॥ भेरीमृदङ्गपटहनिस्साणमुरजादिकम् ॥ १५ ॥ वंशकांस्यादिवादित्रं तथावाद्यान्तराणिच ॥ प्रयच्छन्रामनाथाय महादेवायसादरम् ॥ १६ ॥ सविमानैर्म

रामनाथजी के लिये देता हुआ मनुष्य देवेन्द्र के स्थान को भोगता है और रामनाथ महालिंग के दर्शन, पूजन व स्मरण से ॥ १३ ॥ और स्पर्श करने से भी पातक उसी क्षण नाश होजाते हैं और जो मनुष्य रामनाथ जी के लिये बड़ीभारी घण्टा व दर्पण को देता है ॥ १४ ॥ वह सैकड़ों विमानों के संभोग से बहुत दिनों तक शिवलोक में बसता है और भेरी, मृदंग, ढोल, निशान व मुरजादिक ॥ १५ ॥ और बांसुरी व कांस्य आदिक बाजा व अन्य बाजाओं को आदर समेत रामनाथ महादेवजी के लिये देता हुआ ॥ १६ ॥

वह मनुष्य बाजनों की ध्वनि से संयुत महासुखोंवाले विमानों के द्वारा अनेक युगोंतक शिवलोक में पूजा जाता है ॥ १७ ॥ व रामनाथ जी को उद्देश कर आदर से जो थोड़ा भी दिया गया है वह दाता को परलोक में निश्चय कर अनन्त फलदायक होता है ॥ १८ ॥ व रामनाथजी के समीप रामेश्वर महाक्षेत्र में बसता हुआ मनुष्य पुनरावृत्ति से रहित मुक्ति को पाता है ॥ १९ ॥ आयुर्बल शीघ्रही व्यतीत होता है व यौवन शीघ्रही चलाजाता है व संपत्तियां शीघ्र चली जाती हैं और स्त्री तथा पुत्रादिक शीघ्रही चले जाते हैं ॥ २० ॥ व गृह, क्षेत्रादिक और धन राजादिकों से बाधा करने योग्य होता है हे ब्राह्मणो ! घर व सामग्री आदिक सब क्षणस्थायी है ॥ २१ ॥ इस

हाभोगैर्वाद्यघोषसमन्वितैः ॥ अनेकयुगपर्यन्तं शिवलोकेमहीयते ॥ १७ ॥ रामनाथंसमुद्दिश्य यद्दत्तंस्वल्पमाद
रात् ॥ तदनन्तफलंदातुः परत्रभवतिध्रुवम् ॥ १८ ॥ रामेश्वरेमहाक्षेत्रे रामनाथस्यसन्निधौ ॥ वसन्मुक्तिमवाप्नोति
पुनरावृत्तिवर्जिताम् ॥ १९ ॥ आयुःप्रयातित्वरितं त्वरितंयातियौवनम् ॥ त्वरितंसम्पदोयान्ति दारपुत्रादयस्तथा ॥
२० ॥ राजादिभिर्धनंबाध्यं गृहक्षेत्रादिकंतथा ॥ सर्वंचक्षणिकंविप्रा गृहोपकरणादिकम् ॥ २१ ॥ तस्मात्सर्वंपरित्यज्य
संसारस्योपलालनम् ॥ रामेश्वरमहालिङ्गमापन्नार्तिहरंनृणाम् ॥ २२ ॥ श्रोतव्यंकीर्तितव्यंचस्मर्तव्यंच मनीषिभिः ॥
रामेश्वरायदेवाय योवैग्रामान्प्रयच्छति ॥ २३ ॥ सहिप्रारब्धदेहान्ते शिवएवप्रजायते ॥ पात्राणामुत्तमंपात्रं रामनाथो
महेश्वरः ॥ २४ ॥ तस्मैदत्त्वाद्विजाःसत्यमनन्तंसुखमश्नुते ॥ रामनाथमहालिङ्गदर्शनावधिपातकम् ॥ २५ ॥
दत्त्वातस्मैजनःकिञ्चित्सार्वभौमोभवेद्ध्रुवम् ॥ तालवृन्तंध्वजंछत्रं चन्दनंगुग्गुलुंतथा ॥ २६ ॥ ताम्रकांस्यादिर

कारण संसार का सब उपलालन (भोग्य वस्तु) छोड़कर मनुष्यों के मध्य में विपत्ति में प्राप्त पुरुष के दुःख को हरनेवाले रामेश्वर महालिंग को ॥ २२ ॥ बुद्धिमानों को श्रवण कीर्तन व स्मरण करना चाहिये और जो मनुष्य रामेश्वर देवजी के लिये ग्रामों को देता है ॥ २३ ॥ वह प्रारब्ध शरीर के अन्त में शिवही होजाता है और रामेश्वर शिवजी पात्रों के मध्य में उत्तम पात्र हैं ॥ २४ ॥ हे ब्राह्मणो ! उनके लिये देकर सत्यही मनुष्य अनन्त सुखको भोगता है और रामनाथ महालिंग के दर्शन की अवधि तक पाप रहता है ॥ २५ ॥ व उनके लिये व्यजन, ध्वजा, छत्र, चंदन व गुग्गुल या कुछभी देकर मनुष्य निश्चयकर चक्रवर्ती होता है ॥ २६ ॥ और रामनाथजी के स्नान

के लिये जो मनुष्य ताँबा, कांस्यादिक, चांदी व सुवर्ण और रत्नमय घटों को देते हैं ॥ २७ ॥ वे दूसरे जन्म में पृथ्वीमंडल के स्वामी होते हैं व जो मनुष्य रामनाथजी की पूजाके लिये फूलों को उत्पन्न करते हैं ॥ २८ ॥ वे साक्षात् अश्वमेधादिक यज्ञों के फलको पाते हैं और रामेश्वर महालिंग का पूजन, प्रणाम व स्मरण करने पर ॥ २९ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! श्रवण व दर्शन करनेपर कुछ दुर्लभ नहीं होता है व जो मनुष्य रामनाथ महालिंग को सेवन के लिये जा ा है ॥ ३० ॥ उसको देखकर शीघ्रही उसका पापगण भय को प्राप्त होता है यदि मनुष्य रामनाथ महादेवजी को देखते हैं ॥ ३१ ॥ तो वेद, शास्त्र व तीर्थसेवन से क्या है और चन्दन, कुंकुम,

जतहेमरत्नमयान्घटान् ॥ प्रयच्छन्त्यभिषेकार्थं रामनाथस्ययेनराः ॥ २७ ॥ भूमण्डलाधिपतयो जायन्तेतेभवान्तरे ॥ रामनाथस्यपूजार्थं पुष्पाण्युत्पादयन्तिये ॥ २८ ॥ अश्वमेधादियागानां फलान्यद्धाप्नुवन्तिते ॥ रामेश्वरेमहालिङ्गे पूजितेनमितेस्मृते ॥ २९ ॥ श्रुतेदृष्टेचविप्रेन्द्रा दुर्लभंनास्तिकिञ्चन ॥ रामनाथमहालिङ्गं सेवितुंयःपुमान्व्रजेत् ॥ ३० ॥ तंदृष्ट्वाभयमाप्नोति तस्यपापौघमाशुवै ॥ रामनाथोमहादेवो दृष्टोयदिभवेन्नृभिः ॥ ३१ ॥ किंवेदैःकिमुवा शास्त्रैःकिंवातीर्थनिषेवणैः ॥ चन्दनंकुङ्कुमंकोष्ठं कस्तूरींगुग्गुलुंतथा ॥ ३२ ॥ मृगनाभिंचसरलंदद्याद्रामेश्वराययः ॥ सभूमाविहजायेत धनाढ्योवेदपारगः ॥ ३३ ॥ मुक्ताभरणवस्त्राणि महार्हाणिददातियः ॥ रामनाथायदेवाय नासौदौर्गत्यमाप्नुयात् ॥ ३४ ॥ रामनाथमहालिङ्गं गङ्गातोयैःसमाहृतैः ॥ योभिषिञ्चत्यसौपूज्यःशिवस्यापिनसंशयः ॥ ३५ ॥ यावन्नयातिमरणं यावन्नाक्रमतेजरा ॥ यावन्नेन्द्रियवैकल्यं भवत्येवद्विजोत्तमाः ॥ ३६ ॥ तावदेवमहादेवो राम

कोष्ठ, कस्तूरी व गुग्गुल ॥ ३२ ॥ और मृगनाभि व देवदारु को जो रामेश्वर जी के लिये देता है वह इस पृथ्वी में धनाढ्य व वेदों का पारगामी होता है ॥ ३३ ॥ और जो मनुष्य रामनाथ देव के लिये बड़े मोलवाले मुक्ताभूषण के वस्त्रों को देता है यह दुर्गति को नहीं प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ और लायेहुए गंगाजलों से जो रामनाथ महालिंग को नहवाता है यह शिव के भी पूजने योग्य होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जबतक मरण न प्राप्त होवै व जबतक वृद्धता न आक्रमण करै और जबतक इन्द्रियों की विकलता न होवै ॥ ३६ ॥ तभीतक मोक्ष चाहनेवाले मनुष्यों को सदैव रामनाथ

शिव महादेव जीको प्रणाम व पूजन करना चाहिये और मानना चाहिये व स्तुति करना चाहिये ॥ ३७ ॥ रामनाथ महालिंग के पूजन के समान धर्म सब पुराणों व धर्मशास्त्रों में नहीं है ॥ ३८ ॥ और महादयावान् रामनाथेश्वर देव स्वामी को जो भक्तिसे नित्य भजतेहैं वे पृथ्वीलोकमें सुखसे संयुत होते हैं ॥ ३९ ॥ और पुत्रों व स्त्रियों से सयुत वे बहुत सुखवाले भोगों को बहुतही भोगकर इस शरीरपात के अन्त में सनातनी मुक्ति को जावैंगे ॥ ४० ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! तुम लोगोंसे इस प्रकार रामनाथजीका प्रभाव कहा गया इसको जो भक्तिसमेत नित्य सुनता व पढ़ता है ॥ ४१ ॥ वह रामनाथजी की सेवा के अति उत्तम फलको पाता है और वह धनुष्कोटि

नाथोमुमुक्षुभिः ॥ वन्द्यःपूज्यश्चमन्तव्यः स्तुत्यश्चसततंशिवः ॥ ३७ ॥ रामेश्वरमहालिङ्गपूजातुल्योनविद्यते ॥ धर्मः सर्वपुराणेषु धर्मशास्त्रेषुवैतथा ॥ ३८ ॥ रामनाथेश्वरंदेवं महाकारुणिकंप्रभुम् ॥ भक्त्याभजन्तियेनित्यं तेभूलोके सुखान्विताः ॥ ३९ ॥ भुक्त्वाभोगान्बहुसुखान्पुत्रदारयुताभृशम् ॥ एतच्छरीरपातान्ते मुक्तिंयास्यन्तिशाश्वतीम् ॥ ४० ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवंवःकथितंविप्रा रामनाथस्यवैभवम् ॥ यस्त्वेतच्छृणुयान्नित्यं पठतेचसभक्तिकम् ॥ ४१ ॥ सरामनाथसेवायाः फलमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ धनुष्कोटिमहातीर्थस्नानपुण्यञ्चयास्यति ॥ १४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येरामनाथप्रशंसानामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ * ॥ * ॥

ऋषयऊचुः ॥ सर्ववेदार्थतत्त्वज्ञ पुराणार्णवपारग ॥ व्यासपादाम्बुजद्वन्द्वनमस्कारहृताशुभ ॥ १ ॥ पुराणार्थोपदेशेन सर्वप्राण्युपकारक ॥ त्वयाह्यनुगृहीताःस्म पुराणकथनाद्वयम् ॥ २ ॥ अधुनासेतुमाहात्म्यकथनात्सुतरांमुने ॥

महातीर्थ के स्नान के पुण्य को पावैगा ॥ १४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामनाथप्रशंसानामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

दो० । जिमि रामेश्वर लिंग को थाप्यो है श्रीराम । चौवालिसवें में सोई चरित कह्यो अभिराम ॥ ऋषिलोग बोले कि हे व्यासजी के युग चरणकमलों के प्रणाम से नष्ट अमंगलवाले, सर्ववेदार्थतत्त्वज्ञ, पुराणसमुद्र के पारगामी ! ॥ १ ॥ हे पुराणों के अर्थ के उपदेश से सब प्राणियों का उपकार करनेवाले ! तुमने पुराण के कहने से हमलोगों के ऊपर दया किया ॥ २ ॥ हे व्यासशिष्य, महामते, मुने ! इस समय सेतुमाहात्म्य के कहने से हमलोग बहुतही

कृतार्थ होगये ॥ ३ ॥ और दशरथ के पुत्र श्रीरामजी ने जिसप्रकार लिंगको थापा है हमलोग उसको सुना चाहते हैं इस समय तुम हमलोगों से उसको कहो ॥ ४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! श्रीरामचन्द्रजी ने गन्धमादन पर्वत पै जिसलिये लिंग को थापा है उसको मैं तुमलोगों से कहता हूं ॥ ५ ॥ कि बलवान् रावण से वन से हरीहुई स्त्रीवाले व वानरों की सेना से संयुत तथा लक्ष्मण समेत महाबलवान् व वीर श्रीरामचन्द्रजी ने ॥ ६ ॥ महेन्द्र पर्वत पै जाकर समुद्रको देखा व रघुनाथ जी उस अपार समुद्र में सेतुको बनाकर ॥ ७ ॥ उससे रावण से पालित लंकापुरी को जाकर पौर्णमासी तिथि में सूर्यनारायण के अस्त होनेपर सन्ध्यासमय ॥ ८ ॥

वयंकृतार्थाःसञ्जाता व्यासशिष्यमहामते ॥ ३ ॥ यथाप्रातिष्ठिपल्लिङ्गं रामोदशरथात्मजः ॥ तच्छ्रोतुंवयमिच्छामस्त्व मिदानींवदस्वनः ॥ ४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ यदर्थंस्थापितंलिङ्गं गन्धमादनपर्वते ॥ रामचन्द्रेणविप्रेन्द्रास्तदिदानींब्रवीमि वः ॥ ५ ॥ हृतभार्योवनाद्रामो रावणेनबलीयसा ॥ कपिसेनायुतोवीरः ससौमित्रिर्महाबलः ॥ ६ ॥ महेन्द्रंगिरिमासा द्य व्यलोकयतवारिधिम् ॥ तस्मिन्नपारेजलधौ कृत्वासेतुंरघूद्वहः ॥ ७ ॥ तेनगत्वापुरींलङ्कां रावणेनाभिरक्षिताम् ॥ अ स्तङ्गतेसहस्रांशौ पौर्णमास्यांनिशामुखे ॥ ८ ॥ रामःससैनिकोविप्राः सुवेलागिरिमारुहत् ॥ ततःसौधस्थितंरात्रौ दृ ष्ट्वालङ्केश्वरंबली ॥ ९ ॥ सूर्यपुत्रोस्यमुकुटं पातयामासभूतले ॥ राक्षसोभग्नमुकुटः प्रविवेशगृहोदरम् ॥ १० ॥ गृहं प्रविष्टेलङ्केशे रामःसुग्रीवसंयुतः ॥ सानुजःसेनयासार्द्धमवरुह्यगिरेस्तटात् ॥ ११ ॥ सेनांन्यवेशयद्वीरो रामोलङ्कास मीपतः ॥ ततोनिवेशमानांस्तान्वानरान्रावणानुगाः ॥ १२ ॥ अभिजग्मुर्महाकायाः सायुधाःसहसैनिकाः ॥ पर्वणः

हे ब्राह्मणो ! सेनासमेत रामजी सुवेलापर्वत पै चढ़े तदनन्तर रात्रि को मंदिर में बैठेहुए लंकेश (रावण) को देखकर बलवान् ॥ ९ ॥ सूर्यपुत्र (सुग्रीव) ने इसके मुकुट को पृथ्वी में गिरादिया और टूटे मुकुटवाला राक्षस (रावण) घरके भीतर पैठगया ॥ १० ॥ और लंकेश के घरमें पैठनेपर सुग्रीव संयुत व लक्ष्मण समेत श्रीरामजी पर्वत के किनारे से उतरकर ॥ ११ ॥ श्रीरामजी ने लंका के समीप सेना को टिकाया तदनन्तर टिकेहुए उन वानरों के समीप रावण के सेवक ॥ १२ ॥ जोकि बड़े शरीरवाले थे

अस्त्रों समेत व सेना समेत वे आगये याने पर्वण, पूतना, जृंभ, खर, क्रोधवश व हरि ॥ १३ ॥ व प्रारुज, अरुज, प्रहस्त और अन्य राक्षस आये तदनन्तर उन आते हुए अदृश्य दुष्टात्मा राक्षसों का ॥ १४ ॥ वहां विभीषण ने अन्तर्द्धान से वध किया और न देखेजातेहुए वे राक्षस दूर से मारनेवाले बलवान् वानरों से ॥ १५ ॥ मारे गये और प्राणों से रहित ये सब ओर गिरपड़े इसके अनन्तर न सहताहुआ रावण सेना समेत निकला ॥ १६ ॥ और उन सब वानरों को घेरकर रावण ने बाणों से मनाकिया इसके अनन्तर बड़ी सेनावाले श्रीरामजी निकलकर ॥ १७ ॥ वेग से लड़नेलगे उस समय द्वंद्व युद्ध हुआ याने रावण के पुत्र इन्द्रजित् (मेघनाद)

पूतनाजृम्भः खरःक्रोधवशोहरिः ॥ १३ ॥ प्रारुजश्चारुजश्चैव प्रहस्तश्चेतरेतथा ॥ ततोभिपततांतेषामदृश्यानांदुरात्मनाम् ॥ १४ ॥ अन्तर्धानवधंतत्र चकारस्मविभीषणः ॥ तेदृश्यमानाबलिभिर्हरिभिर्दूरपातिभिः ॥ १५ ॥ निहताःसर्वतश्चैते न्यपतन्वैगतासवः ॥ अमृष्यमाणःसबलो रावणोनिर्ययावथ ॥ १६ ॥ व्यूह्यतान्वानरान्सर्वान्न्यवारयतसायकैः ॥ राघवस्त्वथनिर्याय व्यूढानीकोदशाननम् ॥ १७ ॥ प्रत्ययुध्यतवेगेन द्वन्द्वयुद्धमभूत्तदा ॥ युयुधेलक्ष्मणेनाथ इन्द्रजिद्रावणात्मजः ॥ १८ ॥ विरूपाक्षेणसुग्रीवस्तारेयेणापिखर्वटः ॥ पौण्ड्रेणचनलस्तत्र पुढशःपनसेनच ॥ १९ ॥ अन्येपिकपयोवीरा राक्षसैर्द्वन्द्वमेत्यतु ॥ चक्रुर्युद्धंसतुमुलंवीराणांभयवर्द्धनम् ॥ २० ॥ अथरक्षांसिभिन्नानि वानरैर्भीमविक्रमैः ॥ प्रदुद्रुवूरणादाशु लङ्कांरावणपालिताम् ॥ २१ ॥ भग्नेषुसर्वसैन्येषु रावणप्रेरितेनवै ॥ पुत्रेणेन्द्रजितायुद्धे नागास्त्रैरतिदारुणैः ॥ २२ ॥ बद्धौदाशरथीविप्रा उभौतौरामलक्ष्मणौ ॥ मोचितौवैनतेयेन गरुडेनमहात्मना ॥ २३ ॥

ने लक्ष्मण से युद्ध किया ॥ १८ ॥ और विरूपाक्ष से सुग्रीव ने व खर्वट ने अंगद से युद्ध किया और नल ने पौंड्र से व पुढश ने पनस से युद्ध किया ॥ १९ ॥ व अन्य भी धीर वानरों ने राक्षसों से द्वंद्व को प्राप्त होकर वीरों के भय को बढ़ानेवाले द्वंद्व युद्ध को किया ॥ २० ॥ इसके अनन्तर भयंकर बलवाले वानरों से कटेहुए राक्षस शीघ्रही रावण से पालित लंकापुरी को भग गये ॥ २१ ॥ और सब सेना के नष्ट होनेपर रावण से पठायेहुए इन्द्रजित् (मेघनाद) पुत्र ने अतिभयंकर नागास्त्रों से ॥ २२ ॥ हे ब्राह्मणो ! दशरथ के पुत्र उन दोनों राम व लक्ष्मण को बाँध लिया व महात्मा वैनतेय गरुड़ ने उनको छुडाया ॥ २३ ॥

और वहां रणमें कठोर प्रहस्त ने वेग से विभीषण के समीप आकर गरजकर गदा से मारा ॥ २४ ॥ व भयंकर-वेगवाली उस गदा से माराहुआ वह महाबाहु मेघनाद नहीं कँपा बरन हिमवान् की नाईं भलीभांति खड़ारहा ॥ २५ ॥ तदनन्तर आठ घंटाओंवाली बड़ीभारी शक्ति को लेकर विभीषण ने अभिमन्त्रित कर इसके मस्तक के ऊपर चलाया ॥ २६ ॥ और वज्रकी नाईं वेगसे गिरतीहुई उस शक्ति से नष्ट मस्तकवाला वह पवनसे गिरायेहुए वृक्षकी नाईं देखपड़ा ॥ २७ ॥ और युद्धमें मरेहुए उस प्रहस्त निशाचर को देखकर धूम्राक्ष बड़े वेगसे वानरों के सामने दौड़ा ॥ २८ ॥ और पवनकुमार हनुमान्‌जी ने भगीहुई वानरों की सेना को देखकर रणमें शीघ्रही

तत्रप्रहस्तस्तरसा समभ्येत्यविभीषणम् ॥ गदयाताडयामास विनद्यरणकर्कशः ॥ २४ ॥ सतयाभिहतोधीमान्गदयाभीमवेगया ॥ नाकम्पतमहाबाहुर्हिमवानिवसुस्थितः ॥ २५ ॥ ततःप्रगृह्यविपुलामष्टघण्टांविभीषणः ॥ अभिमन्त्र्यमहाशक्तिं चिक्षेपास्यशिरःप्रति ॥ २६ ॥ पतन्त्यासतयावेगाद्राक्षसोशनिनायथा ॥ हृतोत्तमाङ्गोददृशेवातरुग्णइवद्रुमः ॥ २७ ॥ तंदृष्ट्वानिहतंसंख्ये प्रहस्तंक्षणदाचरम् ॥ अभिदुद्रावधूम्राक्षो वेगेनमहताकपीन् ॥ २८ ॥ कपिसैन्यंसमालोक्य विद्रुतंपवनात्मजः ॥ धूम्राक्षमाजघानाशु शरेणरणमूर्धनि ॥ २९ ॥ धूम्राक्षंनिहतंदृष्ट्वा हतशेषानिशाचराः ॥ सर्वेराज्ञेयथावृत्तं रावणायन्यवेदयन् ॥ ३० ॥ ततःशयानंलङ्केशः कुम्भकर्णमबोधयत् ॥ प्रबुद्धंप्रेषयामास युद्धायसचरावणः ॥ ३१ ॥ आगतंकुम्भकर्णंतं ब्रह्मास्त्रेणतुलक्ष्मणः ॥ जघानसमरेक्रुद्धो गतासुर्न्यपतच्चसः ॥ ३२ ॥ दूषणस्यानुजौतत्र वज्रवेगप्रमाथिनौ ॥ हनुमन्नीलनिहतौ रावणप्रतिमौरणे ॥ ३३ ॥ वज्रदंष्ट्रंसमवधीद्विश्वकर्मसुतोनलः ॥

बाण से धूम्राक्ष को मारा ॥ २९ ॥ और धूम्राक्ष को मरेहुए देखकर मारने से बचेहुए निशाचरों ने सब जैसा वृत्तान्त था उसको रावण मे कहा ॥ ३० ॥ तदनन्तर उस लंकेश रावण ने सोतेहुए कुंभकर्ण को जगाया और जगेहुए उसको युद्ध के लिये पठाया ॥ ३१ ॥ और आयेहुए उस कुंभकर्ण को युद्ध में क्रोधित लक्ष्मणजी ने ब्रह्मास्त्र से मारा और वह प्राणों से हीन होकर गिरपड़ा ॥ ३२ ॥ और वहां रावणके समान दूषण के छोटे भाई वज्रवेग व प्रमाथी को युद्ध में हनुमान् व नील ने मारा ॥ ३३ ॥ और विश्वकर्मा

के पुत्र नल ने वज्रदंष्ट्र को मारा व कुमुदनामक श्रेष्ठ वानर ने अकम्पन को मारा ॥ ३४ ॥ तदनन्तर छठि में हाराहुआ राजा रावण पुरी में पैठगया व लक्ष्मणजी ने अतिकाय व त्रिशिरा को मारा ॥ ३५ ॥ और सुग्रीव ने युद्ध में देवान्तक व नरान्तक को मारा व हनुमान् जी ने युद्ध में कुम्भकर्ण के दोनों पुत्रों को मारा ॥ ३६ ॥ और विभीषण ने खर के पुत्र मकराक्ष को मारा तदनन्तर रावण ने इन्द्रजित् पुत्र को पठाया ॥ ३७ ॥ और इन्द्रजित् मेघनाद उन राम, लक्ष्मण भाइयों को मोहित कर अंगदजी के भयंकर बाणों से नष्टवाहन होकर आकाश में स्थित हुआ ॥ ३८ ॥ व उससे मारेहुए कुमुद, अंगद, सुग्रीव, नल व जाम्बवान् आदिकों

अकम्पनंचन्यहनत्कुमुदोवानरर्षभः ॥ ३४ ॥ षष्ठ्यांपराजितोराजा प्राविशच्चपुरींततः ॥ अतिकायोलक्ष्मणेन हत श्चत्रिशिरास्तथा ॥ ३५ ॥ सुग्रीवेणहतौयुद्धे देवान्तकनरान्तकौ ॥ हनूमताहतौयुद्धे कुम्भकर्णसुतावुभौ ॥ ३६ ॥ विभीषणेननिहतो मकराक्षःखरात्मजः ॥ ततइन्द्रजितंपुत्रं चोदयामासरावणः ॥ ३७ ॥ इन्द्रजिन्मोहयित्वातौ भ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ घोरैःशरैरङ्गदेन हतवाहोदिविस्थितः ॥ ३८ ॥ कुमुदाङ्गदसुग्रीवनलजाम्ववदादिभिः ॥ सहितावानराःसर्वे न्यपतंस्तेनघातिताः ॥ ३९ ॥ एवंनिहत्यसमरे ससैन्यौरामलक्ष्मणौ ॥ अन्तर्दधेतदाव्योम्नि मेघनादोमहाबलः ॥ ४० ॥ ततोविभीषणोराममिक्ष्वाकुकुलभूषणम् ॥ उवाचप्राञ्जलिर्वाक्यं प्रणम्यचपुनःपुनः ॥ ४१ ॥ अयमम्भोगृहीत्वातु राजराजस्यशासनात् ॥ गुह्यकोभ्यागतोराम त्वत्सकाशमरिन्दम ॥ ४२ ॥ इदमम्भःकुबेरस्ते महाराज प्रयच्छति ॥ अन्तर्हितानांभूतानां दर्शनार्थंपरंतप ॥ ४३ ॥ अनेनस्पृष्टनयनो भूतान्यन्तर्हितान्यपि ॥ भवान्द्रक्ष्यति

समेत सब वानर गिरपड़े ॥ ३९ ॥ इस प्रकार युद्ध में सेना समेत राम व लक्ष्मण जी को मारकर उस समय महाबलवान् मेघनाद आकाश में अन्तर्द्धान होगया ॥ ४० ॥ तदनन्तर हाथों को जोड़ बारबार प्रणाम कर विभीषण ने इक्ष्वाकुवंश के भूषणरूप श्रीरामजी से वचन कहा ॥ ४१ ॥ कि हे अरिंदम, रामजी ! राजराज कुबेरजी की आज्ञा से यह गुह्यक जल को लेकर तुम्हारे समीप आया है ॥ ४२ ॥ हे परंतप, महाराज ! कुबेरजी अन्तर्द्धान प्राणियों के देखने के लिये इस जल को तुम को देते हैं ॥ ४३ ॥ इस जल

से छुयेहुए नेत्रोंवाले आप अन्तर्हित प्राणियों को देखोगे और आप जिसके लिये इसको दोगे ॥ ४४ ॥ वह भी आकाश में तिरोहित प्राणियों को देखैगा बहुत अच्छा ऐसा कहकर श्रीरामजी ने सत्कार कियेहुए उस जल को लेकर ॥ ४५ ॥ नेत्रों की शुद्धि किया व महाबलवान् लक्ष्मणजी और सुग्रीव, जाम्बवान्, हनुमान् व अंगद ॥ ४६ ॥ और मैंद, द्विविद, नील व अन्य जो वानर थे वे सब श्रीरामजी से दिये हुए जलसे पवित्रलोचन हुए ॥ ४७ ॥ तदनन्तर लक्ष्मणजी ने आकाश में अन्तर्हित रावणकुमार (मेघनाद) वीर को देखा व दृष्टिपथ में प्राप्त उस मेघनाद के सामने लक्ष्मणजी दौड़े ॥ ४८ ॥ तदनन्तर कुबेर के मिश्रित जलों से पवित्र कियेहुए लोचनोंवाले व किये

यस्मैच भवानेतत्प्रदास्यति ॥ ४४ ॥ सोपिद्रक्ष्यतिभूतानि वियत्यन्तर्हितानिवै ॥ तथेतिरामस्तद्वारि प्रतिगृह्याथस त्कृतम् ॥ ४५ ॥ चकारनेत्रयोःशौचं लक्ष्मणश्चमहाबलः ॥ सुग्रीवजाम्बवन्तौच हनुमानङ्गदस्तथा ॥ ४६ ॥ मैन्दद्विवि दनीलाश्च येचान्येवानरास्तथा ॥ तेसर्वेरामदत्तेन वारिणाशुद्धचक्षुषः ॥ ४७ ॥ आकाशेन्तर्हितंवीरमपश्यन्रावणा त्मजम् ॥ ततस्तमभिदुद्राव सौमित्रिर्दृष्टिगोचरम् ॥ ४८ ॥ ततोजघानसंक्रुद्धो लक्ष्मणःकृतलक्षणः ॥ कुबेरमिश्रितज लैः पवित्रीकृतलोचनः ॥ ४९ ॥ ततःसमभवद्युद्धं लक्ष्मणेन्द्रजितोर्महत् ॥ अतीवचित्रमाश्चर्यं शक्रप्रह्लादयोरिव ॥ ५० ॥ ततस्तृतीयदिवसे यत्नेनमहताद्विजाः ॥ इन्द्रजिन्निहतोयुद्धे लक्ष्मणेनबलीयसा ॥ ५१ ॥ ततोमूलबलंसर्वं हतंरामेणधी मता ॥ अथक्रुद्धोदशग्रीवःप्रियपुत्रेनिपातिते ॥ ५२ ॥ निर्ययौरथमास्थाय नगराद्बहुसैनिकः ॥ रावणोजानकींहन्तुमु द्युक्तोविन्ध्यवारितः ॥ ५३ ॥ ततोहर्यश्वयुक्तेन रथेनादित्यवर्चसा ॥ उपतस्थेरणेरामं मातलिःशक्रसारथिः ॥ ५४ ॥

लक्षणवाले लक्ष्मणजी ने क्रोधित होकर मारा ॥ ४९ ॥ तदनन्तर इन्द्र व प्रह्लाद की नाई बहुतही विचित्र व आश्चर्यमय लक्ष्मण व मेघनाद का बड़ाभारी युद्ध हुआ ॥ ५० ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! तीसरे दिन बड़े यत्न से बलवान् लक्ष्मणजी ने युद्ध में मेघनाद को मारा ॥ ५१ ॥ तदनन्तर बुद्धिमान् रामजी ने सब मूल सेना को मारा इसके उपरान्त प्यारे पुत्र के मरने पर दशानन क्रोधित हुआ ॥ ५२ ॥ और बहुत सेनावाला वह रथ पै बैठकर नगर से बाहर निकला और जानकीजी को मारने के लिये उद्योग किये हुए रावण विन्ध्य से मना किया गया ॥ ५३ ॥ तदनन्तर हरित घोड़ों से संयुत व सूर्यके समान तेजवान् रथ समेत इन्द्र का सारथी मातलि युद्धमें श्रीरामजीके समीप गया ॥ ५४ ॥

और धर्मधारियों में श्रेष्ठ श्रीरामजी ने इन्द्र के रथ पै चढ़कर युद्ध में राक्षसेन्द्र रावण के शिरों को ब्रह्मास्त्र से नाश किया ॥ ५५ ॥ तदनन्तर रावण को मारेहुए दशरथ के पुत्र श्रीरामजी की ऋषियों समेत देवताओं ने जय से संयुत आशीर्वादोंसे स्तुति किया ॥ ५६ ॥ वैसेही प्रसन्न होतेहुए सिद्ध व विद्याधरों ने स्तुति किया और फूलों की वृष्टियों से कमललोचन श्रीरामजी के ऊपर झरि किया ॥ ५७ ॥ और सेनाओं से घिरेहुए उन सुरसमूहों समेत श्रीरामजी सीता व लक्ष्मण समेत पुष्पक विमान पै चढ़कर ॥ ५८ ॥ और लंका में राजा विभीषण को अभिषेक कर वानरों की सेना से घिरे श्रीरामजी गन्धमादन पै गये ॥ ५९ ॥ और गन्धमादन पर्वत पै जानकी

ऐन्द्रंरथंसमारुह्य रामोधर्मभृतांवरः ॥ शिरांसिराक्षसेन्द्रस्य ब्रह्मास्त्रेणावधीद्रणे ॥ ५५ ॥ ततोहतदशग्रीवं रामंदशरथात्मजम् ॥ आशीर्भिर्जययुक्ताभिर्देवाःसर्षिपुरोगमाः ॥ ५६ ॥ तुष्टुवुःपरिसन्तुष्टाः सिद्धविद्याधरास्तथा ॥ रामंकमलपत्राक्षं पुष्पवर्षैरवाकिरन् ॥ ५७ ॥ रामस्तैःसुरसंघातैः सहितःसैनिकैर्वृतः ॥ सीतासौमित्रिसहितः समारुह्यचपुष्पकम् ॥ ५८ ॥ तथाभिषिञ्च्यराजानं लङ्कायांचविभीषणम् ॥ कपिसेनावृतोरामो गन्धमादनमन्वगात् ॥ ५९ ॥ परिशोध्यचवैदेहीं गन्धमादनपर्वते ॥ रामंकमलपत्राक्षं स्थितवानरसंवृतम् ॥ ६० ॥ हतलङ्केश्वरंवीरं सानुजंसविभीषणम् ॥ सभार्यंदेववृन्दैश्च सेवितंमुनिपुङ्गवैः ॥ ६१ ॥ मुनयोभ्यागतंद्रष्टुं दण्डकारण्यवासिनः ॥ अगस्त्यन्तेपुरस्कृत्य तुष्टुवुर्मैथिलीपतिम् ॥ ६२ ॥ मुनय ऊचुः ॥ नमस्तेरामचन्द्राय लोकानुग्रहकारिणे ॥ अरावणजगत्कर्तुमवतीर्णाय भूतले ॥ ६३ ॥ ताटिकादेहसंहर्त्रे गाधिजाध्वररक्षिणे ॥ नमस्तेजितमारीच सुबाहुप्राणहारिणे ॥ ६४ ॥ अहल्यामु

जी को शोधनकर देवगणों व मुनिश्रेष्ठों से सेवित व लङ्केश्वर को मारेहुए स्त्री समेत तथा विभीषण सहित और स्थित वानरों से घिरेहुए कमललोचन वीर श्रीरामचन्द्र जी को ॥ ६० । ६१ ॥ देखने के लिये दण्डकवन में बसनेवाले मुनिलोग आये व अगस्त्यजी को आगे कर उन्होंने जानकीनाथ श्रीरामजी की स्तुति किया ॥ ६२ ॥ मुनिलोग बोले कि लोकों के ऊपर दया करनेवाले आप रामचन्द्र के लिये प्रणाम है और संसार को रावणविहीन करने के लिये पृथ्वी में अवतार लेनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ६३ ॥ व हे मारीच को जीतनेवाले! ताड़का की देहको संहारनेवाले व विश्वामित्रकी यज्ञ के रक्षा करनेवाले तथा सुबाहु के प्राणों को हरनेवाले आप के लिये प्रणाम है ॥ ६४ ॥

व अहल्या को मुक्तिदेनेवाली चरणकमल धूलिवाले व शिवजीके धनुष को लीला से भंजन करनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है॥ ६५॥ व जानकीजी के विवाहके उत्सव से शोभित तथा रेणुकापुत्र (परशुराम) जी की पराजय करनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है॥ ६६॥ और कैकेयी के दो वरदानों के कारण पिता का वचन सत्य करने के लिये सीता व लक्ष्मण समेत वन को प्राप्त होनेवाले के लिये नमस्कार है॥ ६७॥ व भरतजी की प्रार्थना से दोनों खड़ाउवों को देनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व शरभंगजी के स्वर्ग की प्राप्ति के एकही कारणरूप आप के लिये प्रणाम है॥ ६८॥ और विराध को मारनेवाले व गृध्रराज के मित्र आपके लिये प्रणाम है व मायामृग महाक्रूर मारीच

क्तिसंदायिपादपङ्कजरेणवे ॥ नमस्तेहरकोदण्डलीलाभञ्जनकारिणे॥ ६५॥ नमस्तेमैथिलीपाणिग्रहणोत्सवशालिने॥ नमस्तेरेणुकापुत्रपराजयविधायिने॥ ६६॥ सहलक्ष्मणसीताभ्यां कैकेय्यास्तुवरद्वयात्॥ सत्यंपितृवचःकर्तुं नमोवनमुपेयुषे॥ ६७॥ भरतप्रार्थनादत्तपादुकायुगलायते॥ नमस्तेशरभङ्गस्य स्वर्गप्राप्त्यैकहेतवे॥ ६८॥ नमो विराधसंहर्त्रे गृध्रराजसखायते॥ मायामृगमहाक्रूरमारीचाङ्गविदारिणे॥ ६९॥ रावणापहृतासीता युद्धत्यक्तकलेवरम्॥ जटायुषंतुसंदह्य तत्कैवल्यप्रदायिने॥ ७०॥ नमःकबन्धसंहर्त्रे शबरीपूजिताङ्घ्रये॥ प्राप्तसुग्रीवसख्याय कृतबालिवधायते॥ ७१॥ नमःकृतवतेसेतुं समुद्रेवरुणालये॥ सर्वराक्षससंहर्त्रे रावणप्राणहारिणे॥ ७२॥ संसाराम्बुधिसंतारपोतपादाम्बुजायते॥ नमोभक्तार्तिसंहर्त्रे सच्चिदानन्दरूपिणे॥ ७३॥ नमस्तेरामभद्राय जगतामृद्धिहेतवे॥

के अंग को विदारण करनेवाले आपके लिये प्रणाम है॥ ६९॥ और रावण से सीता हरीगई- इस कारण युद्ध में शरीर को छोडनेवाले जटायु को जलाकर उसको मुक्ति देनेवाले आपके लिये प्रणाम है॥ ७०॥ और कबन्ध को संहारनेवाले और शबरी से पूजित चरणवाले आपके लिये प्रणाम है व सुग्रीव की मित्रता को प्राप्त तथा बालिका वध करनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है॥७१॥ और वरुणालय समुद्र में सेतु करनेवाले तथा सब राक्षसोंको संहारनेवाले व रावणके प्राणोंको हरनेवाले तुम्हारे लिये प्रणामहै॥७२॥ व संसाररूपी समुद्रसे उतारने के लिये पोत (केवट) रूपी चरणकमलवाले आप के लिये प्रणाम है व भक्तदुःखनाशक तथा सच्चिदानन्दरूपी आप के लिये प्रणाम है॥ ७३॥

व लोकों की ऋद्धि के कारणरूप आप रामभद्र के लिये प्रणाम है और रामादिक पुण्यनामों को जपनेवालों के पापहारी आपके लिये प्रणाम है ॥ ७४ ॥ व सब लोकों की सृष्टि, पालन व नाश करनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व हे दयामूर्ते, भक्त की रक्षा में दीक्षित ! आपके लिये प्रणाम है ॥ ७५ ॥ व हे विभीषण को सुख देनेवाले ! जानकी जी समेत आपके लिये नमस्कार है हे श्रीरामजी ! लङ्केश्वर रावणके मारने से तुमने संसारकी रक्षा किया ॥ ७६ ॥ हे जगदीश ! हे जानकीनाथ ! हमलोगों की रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार स्तुति करके सब मुनिलोग चुपहोकर स्थित हुए ॥ ७७ ॥ श्रीसूतजी बोले कि मुनियों से कहेहुए इस रामचन्द्र

रामादिपुण्यनामानि जपताम्पापहारिणे ॥ ७४ ॥ नमस्तेसर्वलोकानां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ॥ नमस्तेकरुणामूर्ते भक्तरक्षणदीक्षित ॥ ७५ ॥ ससीतायनमस्तुभ्यं विभीषणसुखप्रद ॥ लङ्केश्वरवधाद्रामपालितंहिजगत्त्वया ॥ ७६ ॥ रक्ष रक्षजगन्नाथ पाह्यस्माञ्जानकीपते ॥ स्तुत्वैवंमुनयःसर्वे तूष्णींतस्थुर्द्विजोत्तमाः ॥ ७७ ॥ श्रीसूतउवाच ॥ यइमंराम चन्द्रस्य स्तोत्रंमुनिभिरीरितम् ॥ त्रिसन्ध्यंपठतेभक्त्या भुक्तिमुक्तिंचविन्दति ॥ ७८ ॥ प्रयाणकालेपठतो नभीतिरुपजाय ते ॥ एतत्स्तोत्रस्यपठनाद्भूतवेतालकाइह ॥ ७९ ॥ नश्यन्तिरोगानश्यन्ति नश्यतेपापसञ्चयः ॥ पुत्रकामोलभेत्पुत्रं कन्याविन्दतिसत्पतिम् ॥ ८० ॥ मोक्षकामोलभेन्मोक्षं धनकामोधनंलभेत् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति पठन्भक्त्यात्विमं स्तवम् ॥ ८१ ॥ ततोरामोमुनीन्प्राह प्रणम्यचकृताञ्जलिः ॥ अहंविशुद्धयेप्राप्यः सकलैरपिमानवैः ॥ ८२ ॥ मद्दृष्टिगोच

के स्तोत्र को जो मनुष्य भक्ति से त्रिकाल पढ़ता है वह भुक्ति व मुक्ति को पाता है ॥ ७८ ॥ व यात्रा के समय में पढ़तेहुए मनुष्य को डर नहीं होता है और इस स्तोत्र के पढ़ने से यहां भूत, वेताल ॥ ७९ ॥ नाश होजाते हैं व रोग नाश होजाते हैं और पापसमूह नष्ट होजाता है तथा पुत्रकी इच्छावाला पुरुष पुत्र को पाता है और कन्या उत्तम पतिको पाती है ॥ ८० ॥ व मोक्ष को चाहनेवाला मनुष्य मोक्षको पाता है तथा धनको चाहनेवाला धन को पाता है और भक्ति से इस स्तोत्र को पढ़ताहुआ मनुष्य सब कामनाओं को पाता है ॥ ८१ ॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी ने हाथों को जोड़ प्रणामकर मुनियों से कहा कि मैं विशुद्धि के लिये सब भी मनुष्यों से प्राप्त होनेयोग्यहूं ॥ ८२ ॥

और मेरी दृष्टि के सामने प्राप्त प्राणी सदैव मुक्ति का पात्र होता है तथापि हे मुनियो! सदैव भक्तिसंयुत चित्त से॥ ८३॥ अपनी आत्मा के लाभ से संतुष्ट, साधु व प्राणियों के अत्यन्त मित्र तथा अहंकारहीन व शांत ऊर्ध्वरेता मुनियों को मैं प्रणाम करताहूं॥ ८४॥ जिस लिये मैं ब्रह्मण्यदेव हूं इस कारण सदैव ब्राह्मणों को भजताहूं और मैं तुमलोगों से कुछ पूंछता हूं उसको विचारकर कहिये॥ ८५॥ कि हे ब्राह्मणो! रावण के मारने से जो पाप मेरे वर्तमान है पौलस्त्य (रावण) के वधसे उपजे हुए उस पाप के प्रायश्चित्त को मुझ से कहिये॥ ८६॥ हे मुनिश्रेष्ठो! जिसको करके मैं उस पाप से छूटजाऊं मुनिलोग बोले कि हे संसार की रक्षाकी धुरी को धारनेवाले,

रोजन्तुर्नित्यं मोक्षस्यभाजनम्॥ तथापिमुनयोनित्यं भक्तियुक्तेनचेतसा॥ ८३॥ स्वात्मलाभेनसन्तुष्टान्साधून्भूतसुहृत्तमान्॥ निरहंकारिणःशान्तान्नमस्याम्यूर्ध्वरेतसः॥ ८४॥ यस्माद्ब्रह्मण्यदेवोहमतोविप्रान्भजेसदा॥ युष्मान्पृच्छाम्यहंकिञ्चित्तद्वदध्वंविचार्यतु॥ ८५॥ रावणस्यवधाद्विप्रा यत्पापम्ममवर्तते॥ तस्यमेनिष्कृतिम्ब्रूत पौलस्त्यवधजस्यहि॥ ८६॥ यत्कृत्वातेनपापेन मुच्येहम्मुनिपुङ्गवाः॥ मुनयऊचुः॥ सत्यव्रतजगन्नाथ जगद्रक्षाधुरन्धर॥ ८७॥ सर्वलोकोपकारार्थं कुरुरामशिवार्चनम्॥ गन्धमादनशृङ्गेस्मिन्महापुण्येविमुक्तिदे॥ ८८॥ शिवलिङ्गप्रतिष्ठांत्वं लोकसंग्रहकाम्यया॥ कुरुरामदशग्रीववधदोषापनुत्तये॥ ८९॥ लिङ्गस्थापनजम्पुण्यं चतुर्वक्त्रोपिभाषितुम्॥ नशक्नोतिनरोवक्तुं किम्पुनर्मनुजेश्वर॥ ९०॥ यत्त्वयास्थाप्यतेलिङ्गं गन्धमादनपर्वते॥ अस्यसंदर्शनम्पुंसां काशीलिङ्गावलोकनात्॥ ९१॥ अधिकंकोटिगुणितम्फलवत्स्यान्नसंशयः॥ तवनाम्नात्विदंलिङ्गं लोकेख्यातिंसमश्नुताम्॥ ९२॥ नाश

सत्यव्रत, जगदीश!॥ ८७॥ हे रामजी! सबलोकों के उपकार के लिये शिवपूजन कीजिये इस महापुण्य व मुक्तिदायक गन्धमादन के शिखर पै॥ ८८॥ हे रामजी! दशग्रीव (रावण) के मारने के दोष के दूर होने के लिये तुम लोकों के संग्रह की कामना से शिवलिंग की प्रतिष्ठा करो॥ ८९॥ हे नरेश्वर! लिंगस्थापन से उपजेहुए पुण्य को कहनेके लिये चतुरानन भी समर्थ नहीं हैं फिर मनुष्य को क्या कहना है॥ ९०॥ और गन्धमादन पर्वत पै जो लिंग स्थापन कियाजायगा इसका दर्शन मनुष्यों को काशी के लिंग के देखने से॥ ९१॥ कोटिगुना अधिक फलवान् होगा इसमें सन्देह नहीं है और तुम्हारे नाम से यह लिंग संसार में प्रसिद्धि को प्राप्त होगा॥ ९२॥

और पुण्य व पाप नामक लकड़ियों का अग्नि के समान नाशक है संसार में यह रामेश्वर नामक लिंग प्रसिद्ध होगा ॥ ९३ ॥ इस कारण हे दया से पूर्ण शरीरवाले, महा-लिंग, रामचन्द्रजी ! लिंग के स्थापनकर्म में देर न करो ॥ ९४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनीश्वरो ! मुनियों के इस वचन को सुनकर इसके अनन्तर जगदीश श्रीरामजी ने दो मुहूर्तवाले पुण्यकाल को विचारकर ॥ ९५ ॥ रघुनायकजी ने स्थापन के निमित्त शिवलिंग को लाने के लिये हनुमान्‌जी को शिवस्थान कैलास को पठाया ॥ ९६ ॥ श्रीरामजी बोले कि हे अंजनापुत्र, पवनकुमार, महाबल, हनुमान्‌जी ! शीघ्रही कैलास को जाकर लिंग को लेआवो देर मत करो ॥ ९७ ॥ श्रीरामजी से इस प्रकार

कम्पुण्यपापाख्यकाष्ठानांदहनोपमम् ॥ इदंरामेश्वरंलिङ्गं ख्यातंलोकेभविष्यति ॥ ९३ ॥ माविलम्बंकुरुष्वातो लिङ्गस्थापनकर्मणि ॥ रामचन्द्रमहालिङ्गकरुणापूर्णविग्रह ॥ ९४ ॥ श्रीसूतउवाच ॥ इतिश्रुत्वावचोरामो मुनीनान्तुमुनीश्वराः ॥ पुण्यकालंविचार्याथ द्विमुहूर्तंजगत्पतिः ॥ ९५ ॥ कैलासम्प्रेषयामास हनुमन्तंशिवालयम् ॥ शिवलिङ्गंसमानेतुं स्थापनार्थंरघूद्वहः ॥ ९६ ॥ रामउवाच ॥ हनूमन्नञ्जनासूनो वायुपुत्रमहाबल ॥ कैलासन्त्वरितोगत्वा लिङ्गमानयमाचिर ॥ ९७ ॥ इत्याज्ञप्तस्सरामेण भुजावास्फोटयवीर्यवान् ॥ मुहूर्तद्वितयंज्ञात्वा पुण्यकालंकपीश्वरः ॥ ९८ ॥ पश्यतांसर्वदेवानामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ उत्पपातमहावेगश्चालयन्गन्धमादनम् ॥ ९९ ॥ लङ्घयन्सवियन्मार्गं कैलासम्पर्वतंययौ ॥ नददर्शमहादेवं लिङ्गरूपधरंकपिः ॥ १०० ॥ कैलासेपर्वतेतस्मिन्पुण्येशङ्करपालिते ॥ आञ्जनेयस्तपस्तेपे लिङ्गप्राप्त्यर्थमादरात् ॥ १ ॥ प्रागग्रेषुसमासीनः कुशेषुमुनिपुङ्गवाः ॥ ऊर्ध्वबाहुर्निरालम्बो निरुच्छ्वासोजितेन्द्रियः ॥ २ ॥

आज्ञा दियेहुए वे पराक्रमी हनुमान्‌जी दो मुहूर्त पुण्यकाल जानकर भुजाओं को हिलाकर ॥ ९८ ॥ सब देवताओं व ऋषियों और महात्माओं के देखते हुए महावेगवान् हनुमान्‌जी गंधमादन को कँपाते हुए ऊपर को कूदे ॥ ९९ ॥ और आकाशमार्ग को नाँघते हुए वे हनुमान्‌जी कैलासपर्वत को गये व वानर हनुमान्‌जीने लिंग-रूपधारी शिवजी को नहीं देखा ॥ १०० ॥ और शिवजी से रक्षित उस पवित्र कैलासपर्वत पै अंजनीकुमार हनुमान्‌जी ने लिंग के मिलने के लिये आदर से तप किया ॥ १ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! पूर्व और अग्रभागवाले कुशों पै बैठे व भुजाओं को ऊपर उठायेहुए निरालम्ब व उच्छ्वासरहित तथा जितेन्द्रिय हुए ॥ २ ॥

व महादेव को प्रसन्न करातेहुए उन हनुमान्जी ने लिंग को पाया इसी अवसर में हे ब्राह्मणो ! तत्त्वदर्शी मुनियों ने ॥ ३ ॥ हनुमान्जी को न आयेहुए जानकर व समय को कुछशेष जानकर वहां महाबुद्धिमान् रामजी से कहा ॥ ४ ॥ कि हे महाबाहो, राम ! हे रामजी ! इससमय काल व्यतीत होता है हे विभो ! जानकीजीने खेल से जिस बालू के लिंग को किया है ॥ ५ ॥ उस अतिउत्तम महालिंग को इस समय स्थापन करो इस वचन को सुनकर शीघ्रही श्रीरामजी जानकी समेत ॥ ६ ॥ व मुनियों समेत प्रीति से कौतुकपूर्वक मंगल किये गये और जेठ महीने में शुक्लपक्ष में दशमी तिथि, बुधवार व हस्तनक्षत्र में ॥ ७ ॥ और गरकरण तथा व्यतीपात योग में कन्याराशि में चन्द्रमा

प्रसादयन्महादेवं लिङ्गंलेभेसमारुतिः ॥ एतस्मिन्नन्तरेविप्रा मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ३ ॥ अनागतंहनूमन्तं कालंस्वल्पावशेषितम् ॥ ज्ञात्वाप्रकथितंतत्र रामम्प्रतिमहामतिम् ॥ ४ ॥ रामराममहाबाहो कालोह्यत्येतिसाम्प्रतम् ॥ जानक्यायत्कृतंलिङ्गं सैकतंलीलयाविभो ॥ ५ ॥ तल्लिङ्गंस्थापयस्वाद्य महालिङ्गमनुत्तमम् ॥ श्रुत्वैतद्वचनंरामो जानक्यासहसत्वरम् ॥ ६ ॥ मुनिभिःसहितःप्रीत्या कृतकौतुकमङ्गलः ॥ ज्येष्ठमासेसितेपक्षे दशम्याम्बुधहस्तयोः ॥ ७ ॥ गरानन्देव्यतीपाते कन्याचन्द्रेवृषेरवौ ॥ दशयोगेमहापुण्ये गन्धमादनपर्वते ॥ ८ ॥ सेतुमध्येमहादेवं लिङ्गरूपधरंहरम् ॥ ईशानंकृत्तिवसनं गङ्गाचन्द्रकलाधरम् ॥ ९ ॥ रामोवैस्थापयामास शिवलिङ्गमनुत्तमम् ॥ लिङ्गस्थम्पूजयामास राघवःसाम्बमीश्वरम् ॥ १० ॥ लिङ्गस्थःसमहादेवः पार्वत्यासहशङ्करः ॥ प्रत्यक्षमेवभगवान्दत्तवान्वरमुत्तमम् ॥ ११ ॥ सर्वलोकशरण्याय राघवायमहात्मने ॥ त्वयात्रस्थापितंलिङ्गं येपश्यन्तिरघूद्वह ॥ १२ ॥ महापातकयु

व वृषराशि में सूर्य के स्थित होनेपर दश योगों में बड़े पवित्र गन्धमादन पर्वत पै ॥ ८ ॥ सेतु के मध्य में गंगा व चन्द्रमा की कला को धारनेवाले मृगचर्म को पहने लिंगरूपधारी शिव महादेवजी को ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी ने स्थापन किया व अति उत्तम शिवलिंग को थापकर रघुनाथजी ने लिंग में स्थित साम्ब शिव को पूजन किया ॥ १० ॥ और पार्वती समेत लिंग में स्थित उन महादेव भगवान् ने सब लोकों के शरण्य महात्मा रघुनाथजी के लिये प्रत्यक्षही उत्तम वर को दिया कि हे रघूद्वह ! तुम से यहां

थापेहुए लिंग को महापातकों से संयुत जो पुरुष देखैंगे उनका पाप नाश होजायगा धनुष्कोटि में नहानें से सब भी पाप नाश होजाते हैं ॥ ११ । १२ । १३ ॥ हे राजेन्द्र, रामचन्द्र ! रामेश्वर लिंग के देखने से बड़े भारी भी पातक निस्सन्देह नाश को प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ पार्वती के पति शिवदेवजी ने इस प्रकार श्रीरामजी के लिये वर दिया और श्रीरामजी ने उनके आगे नंदिकेश्वर को स्थापन किया ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! रघुनाथजी ने शिवजी के स्नान के लिये धनुष की कोटि से पृथ्वी को फोड़कर एक कूप को उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ और उससे जल को लेकर शिवजी को स्नान कराया वह उत्तम व पवित्र तीर्थ कोटितीर्थ ऐसा कहागया है ॥ १७ ॥

क्ताश्च तेषाम्पापम्प्रणश्यति ॥ सर्वाण्यपिहिपापानि धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ १३ ॥ दर्शनाद्रामलिङ्गस्य पातकानिम हान्त्यपि ॥ विलयंयान्तिराजेन्द्र रामचन्द्रनसंशयः ॥ १४ ॥ प्रादादेवंहिरामाय वरन्देवोम्बिकापतिः ॥ तदग्रेनन्दिके शंच स्थापयामासराघवः ॥ १५ ॥ ईश्वरस्याभिषेकार्थं धनुष्कोट्याथराघवः ॥ एकंकूपन्धराम्भित्त्वा जनयामासवै द्विजाः ॥ १६ ॥ तस्माज्जलमुपादाय स्नापयामासशङ्करम् ॥ कोटितीर्थमितिप्रोक्तं तत्तीर्थंपुण्यमुत्तमम् ॥ १७ ॥ उक्तं तद्वैभवंपूर्वमस्माभिर्मुनिपुङ्गवाः ॥ देवाश्चमुनयोनागा गन्धर्वाप्सरसांगणाः ॥ १८ ॥ सर्वेपिवानरालिङ्गमेकैकंचक्रुराद रात् ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवंवःकथितंविप्रा यथारामेणधीमता ॥ १९ ॥ स्थापितंशिवलिङ्गंवै भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ इमां लिङ्गप्रतिष्ठांयः शृणोतिपठतेथवा ॥ २० ॥ सरामेश्वरलिङ्गस्य सेवाफलमवाप्नुयात् ॥ सायुज्यंचसमाप्नोति रामनाथ स्यवैभवात् ॥ १२१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्ये रामनाथलिङ्गप्रतिष्ठाविधिर्नामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४४॥

हे मुनिश्रेष्ठो ! हम लोगों ने उसका प्रभाव पहले कहा है और देवता, मुनि, नाग, गन्धर्व व अप्सराओं के गण ॥ १८ ॥ और सब भी वानरों ने आदर से एक एक लिंग को स्थापन किया श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार मैंने तुम लोगों से कहा कि जिस भांति बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजी ने ॥ १९ ॥ भुक्ति, मुक्ति को देनेवाले शिवलिंग को स्थापन किया इस लिंग की प्रतिष्ठा को जो सुनता या पढ़ता है ॥ २० ॥ वह रामेश्वरलिंग की सेवा के फल को पाता है व रामनाथजी के प्रभाव से सायुज्य मोक्ष को पाता है ॥ १२१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामनाथलिङ्गप्रतिष्ठाविधिर्नामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

दो॰। तत्वज्ञान उपदेश जिमि दियं हनुमन्ताहिं राम। पैंतालिसवें में सोई चरित कह्यो अभिराम॥ श्रीसूतजी बोले कि इस प्रकार सहज कर्मवाले श्रीरामजी से लिंग के स्थापन करने पर उत्तम लिंग को लेकर श्रीहनुमान्जी यकायक आगये॥ १॥ व उन पवनकुमार ने दशरथ के पुत्र श्रीरामजी को प्रणामकर पश्चात् जानकी, लक्ष्मण व सुग्रीव को प्रणाम किया॥ २॥ व सीताजी के उस बालू के लिंग को पूजते हुए मुनियों समेत रघुनाथजी को देखकर पवनपुत्र क्रोधित हुए॥ ३॥ और वृथा परिश्रम को किये हुए अंजनाकुमार हनुमान्जी ने बहुतही खेद से दुःखित होकर धर्मज्ञ श्रीरामजी से कहा॥ ४॥ हनुमान्जी बोले कि हे रामजी! मैं संसार

श्रीसूत उवाच॥ एवंप्रतिष्ठितेलिङ्गे रामेणाक्लिष्टकारिणा॥ लिङ्गंवरंसमादाय मारुतिःसहसाययौ॥ १॥ रामंदाशरथिंवीरमभिवाद्यसमारुतिः॥ वैदेहीलक्ष्मणौपश्चात्सुग्रीवंप्रणनामच॥ २॥ सीतासैकतलिङ्गं तत्पूजयन्तंरघूद्वहम्॥ दृष्ट्वाथमुनिभिःसार्द्धं चुकोपपवनात्मजः॥ ३॥ अत्यन्तंखेदखिन्नःसन्वृथाकृतपरिश्रमः॥ उवाचरामंधर्मज्ञं हनूमानञ्जनात्मजः॥ ४॥ हनूमानुवाच॥ दुर्जातोहंवृथाराम लोकेक्लेशायकेवलम्॥ खिन्नोस्मिबहुशोदेव राक्षसैःक्रूरकर्मभिः॥ ५॥ मास्मसीमन्तिनीकाचिज्जनयेन्मादृशंसुतम्॥ यतोनुभूयतेदुःखमनन्तंभवसागरे॥ ६॥ खिन्नोस्मिसेवयापूर्वं युद्धेनापिततोधिकम्॥ अनन्तदुःखमधुना यतोमामवमन्यसे॥ ७॥ सुग्रीवेणचभार्यार्थं राज्यार्थंराक्षसेनच॥ रावणावरजेनत्वं सेवितोसिरघूद्वह॥ ८॥ मयानिर्हेतुकंरामसेवितोसिमहामते॥ वानराणामनेकेषु त्वयाज्ञप्तोहमद्य

मे केवल क्लेश के लिये वृथा उत्पन्न हुआ हूं हे देव! क्रूरकर्मी राक्षसों से मैं बहुतही खेदित हुआ हूं॥ ५॥ कोई स्त्री मेरे सरीखे पुत्र को न पैदा करै जिस कारण कि भवसागर में अमित दुःख भोग किया जाता है॥ ६॥ पहले सेवा से खिन्न हुआथा और फिर युद्ध से, उससे अधिक क्लेशित हुआ और इस समय बहुत दुःख है क्योंकि तुम मेरा अनादर करते हो॥ ७॥ हे रघूद्वह! स्त्री के लिये सुग्रीव ने और राज्य के लिये रावण के छोटे भाई विभीषण राक्षस ने तुम्हारी सेवा किया॥ ८॥ व हे महामते, रामजी! मैंने बिन कारण तुम्हारी सेवा किया और अनेकों वानरों के मध्य में आज तुमने उत्तम कैलासपर्वत से शिवलिंग को लाने के लिये मुझ

को आज्ञा दिया और मैंने शीघ्रही कैलास को जाकर शिवजी को नहीं देखा ॥ ६ । १० ॥ व हे रघुपते ! उन वृषवाहन साम्ब शिवजी को तपस्या से प्रसन्नकर लिंग को प्राप्त होकर मैं शीघ्रही आया ॥ ११ ॥ व हे विभो ! इस समय तुम अन्य बालू के लिंग को थापकर मुनियों व देवताओं तथा गंधर्वों समेत पूजते हो ॥ १२ ॥ मैं कैलासपर्वत से इस लिंग को वृथा लाया अहो मुझ मन्दभाग्य का शरीर पृथ्वी के भार के लिये है हे प्रभो, जानकीरमण, महाराज, रघूद्वह ! मैं इस दुःख को नहीं सहसक्ता हूं ॥ १३ । १४ ॥ इस समय मैं क्या करूं और मेरी उत्तमगति न होगी इस कारण तुमसे अपमान किया हुआ मैं शरीर को त्याग दूंगा ॥ १५ ॥ श्रीसूतजी

वै ॥ ६ ॥ शिवलिङ्गंसमानेतुं कैलासात्पर्वतोत्तमात् ॥ कैलासंत्वरितोगत्वा नचापश्यन्पिनाकिनम् ॥ १० ॥ तपसाप्रीणयित्वातं साम्बंवृषभवाहनम् ॥ प्राप्तलिङ्गोरघुपते त्वरितःसमुपागतः ॥ ११ ॥ अन्यलिङ्गंत्वमधुना प्रतिष्ठाप्यतुसैकतम् ॥ मुनिभिर्देवगन्धर्वैः साकंपूजयसेविभो ॥ १२ ॥ मयानीतमिदंलिङ्गं कैलासात्पर्वताद्वृथा ॥ अहोभारायमेदेहो मन्दभाग्यस्यजायते ॥ १३ ॥ भूतलस्यमहाराज जानकीरमणप्रभो ॥ इदंदुःखमहंसोढुं नशक्नोमिरघूद्वह ॥ १४ ॥ अधुनाकिंकरिष्यामि नमेभवतिसद्गतिः ॥ अतःशरीरंत्यक्ष्यामि त्वयाहमवमानितः ॥ १५ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवंसबहुशोविप्राः क्रुशित्वापवनात्मजः ॥ दण्डवत्प्रणतोभूमौ क्रोधशोकाकुलोभवत् ॥ १६ ॥ तंदृष्ट्वारघुनाथोपि प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ पश्यतांसर्वदेवानां मुनीनांकपिरक्षसाम् ॥ १७ ॥ सान्त्वयन्मारुतिंतत्र दुःखंचास्यप्रमार्जयन् ॥ श्रीराम उवाच ॥ सर्वंजानाम्यहंकार्यमात्मनोपिपरस्यच ॥ १८ ॥ जातस्यजायमानस्य मृतस्यापिसदाकपे ॥ जायतेम्रियते

बोले कि हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार पवनकुमार हनुमान्जी बहुत विलाप कर पृथ्वी पै दंडा की नाईं गिरपड़े व क्रोध और शोक से विकल हुए ॥ १६ ॥ व उनको देखकर हँसते हुए श्रीरामजी ने भी सब देवता, मुनि व वानर और राक्षसों के भी देखते हुए वहां हनुमान्जी को समझाते व इनके दुःख को छुड़ाते हुए यह कहा श्रीरामजी बोले कि मैं अपने व पराये के सब कार्य को जानता हूं ॥ १७ । १८ ॥ हे कपे ! पैदाहुए व पैदा होनेवाले और मरेहुए के भी सब कार्य को मैं जानता हूं एकही प्राणी

अपने कर्म से उत्पन्न होता है व मरता है ॥ १९ ॥ और नरक को भी जाता है व परमात्मा निर्गुण है हे वानर ! ऐसा तत्त्व निश्चय कर शोक मत करो ॥ २० ॥ तीनों लिंगों से मुक्त व एक निरंजनज्योति तथा निराश्रय व निर्विकार अपना को सदैव देखो ॥ २१ ॥ हे वानरसत्तम ! तत्त्वज्ञान के बाधा करनेवाले शोक को क्यों करते हो तुम तत्त्वज्ञान में सदैव निष्ठा करो ॥ २२ ॥ हे कपे ! अपना को स्वयंप्रकाशमान सदैव ध्यान करो और शरीरादिक में तत्त्वज्ञान से वैर करनेवाली ममता को छोड़देवो ॥ २३ ॥ व सदैव धर्म करो और प्राणियों की हिंसा को छोड़देवो और अच्छे पुरुषों का सेवन करो व सब इन्द्रियों को दमन करो ॥ २४ ॥ और अन्य पुरुषों के

जन्तुरेकएवस्वकर्मणा ॥ १९ ॥ प्रयातिनरकंचापि परमात्मातुनिर्गुणः ॥ एवंतत्त्वंविनिश्चित्य शोकंमाकुरुवानर ॥ २० ॥ लिङ्गत्रयविनिर्मुक्तं ज्योतिरेकंनिरञ्जनम् ॥ निराश्रयंनिर्विकारमात्मानंपश्यनित्यशः ॥ २१ ॥ किमर्थंकुरुषेशोकं तत्त्वज्ञानस्यबाधकम् ॥ तत्त्वज्ञानेसदानिष्ठां कुरुवानरसत्तम ॥ २२ ॥ स्वयंप्रकाशमात्मानं ध्यायस्वसततंकपे ॥ देहादौममतांमुञ्च तत्त्वज्ञानविरोधिनीम् ॥ २३ ॥ धर्मंभजस्वसततं प्राणिहिंसांपरित्यज ॥ सेवस्वसाधुपुरुषाञ्जहिसर्वेन्द्रियाणिच ॥ २४ ॥ परित्यजस्वसततमन्येषांदोषकीर्तनम् ॥ शिवविष्ण्वादिदेवानामर्चांकुरुसदाकपे ॥ २५ ॥ सत्यंवदस्वसततं परित्यज्यशुचंकपे ॥ प्रत्यग्ब्रह्मैकताज्ञानं मोहवस्तुसमुद्भवम् ॥ २६ ॥ शोभनाशोभनाभ्रान्तिः कल्पितास्मिन्यथार्थवत् ॥ अध्यास्तेशोभनत्वेन पदार्थेमोहवैभवात् ॥ २७ ॥ रोगोविजायतेनॄणां भ्रान्तानांकपिसत्तम ॥ रागद्वेषबलाद्बद्ध्वा धर्माधर्मवशंगताः ॥ २८ ॥ देवतिर्यङ्मनुष्यादिनिरयंयान्तिमानवाः ॥ चन्दनागरुकर्पूरप्रमु

दोष का कहना छोड़दो व हे कपे ! शिव व विष्णु आदिक देवताओं का सदैव पूजन करो ॥ २५ ॥ व हे कपे ! सदैव सत्य बोलो और मोह वस्तु से उत्पन्न शोच को छोड़दो और प्रत्यक् ब्रह्म की एकता का ज्ञान करो ॥ २६ ॥ क्योंकि मोह के प्रभाव से इस पदार्थ में यथार्थ की नाई शुभ, अशुभ का भ्रम शोभनता से स्थित है ॥ २७ ॥ हे वानरोत्तम ! भ्रमित मनुष्यों के रोग होता है और राग, द्वेष के बल से बाँधकर धर्म व अधर्म के वश में प्राप्त ॥ २८ ॥ मनुष्य देवता, पशु, पक्षी व मनुष्यादि नरक को

प्राप्त होते हैं चंदन, अगरु, कपूर इत्यादिक बहुत उत्तम पदार्थ ॥ २९ ॥ जिसके स्पर्श से मल होते हैं वह शरीर कैसे सुखी है और भक्ष्य, भोज्यादिक सब बहुत उत्तम पदार्थ ॥ ३० ॥ जिसके संग से विष्ठा होते हैं वह शरीर कैसे सुखी है और सुगंधित व ठण्ढा जल जिसके संगम से मूत्र होता है॥ ३१ ॥ वह पिंड कैसे उत्तम होगा हे कपे ! इस समय उसको कहिये और बहुतही सफेद व पवित्र कपड़े जिसके संगम से ॥ ३२ ॥ पसीने के कारण मलिन होजाते हैं वह कैसे उत्तम होगा हे पवनकुमार, हनुमान्जी ! मुझसे परमार्थ को सुनिये ॥ ३३ ॥ कि इस संसाररूपी गड्ढे में कुछ सुख नहीं है क्योंकि पहले प्राणी जन्म को पाता है तदनन्तर शिशुता को प्राप्त

खाअतिशोभनाः ॥ २९ ॥ मलंभवन्तियत्स्पर्शात्तच्छरीरंकथंसुखम् ॥ भक्ष्यभोज्यादयःसर्वे पदार्थाअतिशोभनाः ॥ ३० ॥ विष्ठाभवन्तियत्सङ्गात्तच्छरीरंकथंसुखम् ॥ सुगन्धिशीतलंतोयं मूत्रंयत्सङ्गमाद्भवेत् ॥ ३१ ॥ तत्कथंशोभनंपिण्डं भवेद्ब्रूहिकपेधुना ॥ अतिधवलाःशुद्धाःपटायत्सङ्गमेनहि ॥ ३२ ॥ भवन्तिमलिनाःस्वेदात्तत्कथंशोभनंभवेत् ॥ श्रूयतांपरमार्थोमे हनूमन्वायुनन्दन ॥ ३३ ॥ अस्मिन्संसारगर्तेतु किञ्चित्सौख्यंनविद्यते ॥ प्रथमंजन्तुराप्नोति जन्मबाल्यंततःपरम् ॥ ३४ ॥ पश्चाद्यौवनमाप्नोति ततोवार्द्धक्यमश्नुते ॥ पश्चान्मृत्युमवाप्नोति पुनर्जन्मतदश्नुते ॥ ३५ ॥ अज्ञानवैभवादेव दुःखमाप्नोतिमानवः ॥ तदज्ञाननिवृत्तौतु प्राप्नोतिसुखमुत्तमम् ॥ ३६ ॥ अज्ञानस्यनिवृत्तिस्तु ज्ञानादेवनकर्मणा ॥ ज्ञानंनामपरंब्रह्म ज्ञानंवेदान्तवाक्यजम् ॥ ३७ ॥ तज्ज्ञानंचविरक्तस्य जायतेनेतरस्यहि ॥ मुख्याधिकारिणःसत्यमाचार्यस्यप्रसादतः ॥ ३८ ॥ यदासर्वेप्रमुच्यन्ते कामायस्यहृदिस्थिताः ॥ तदामर्त्योमृतोत्रैव

होता है ॥ ३४ ॥ पश्चात् युवावस्था को पाता है तदनन्तर वृद्धता को प्राप्त होता है उसके पीछे मृत्यु को पाता है और फिर उस जन्म को पाता है मनुष्य अज्ञानके प्रभावही से दुःख को पाता है और उस अज्ञान के निवृत्त होनेपर उत्तम सुख को पाता है ॥ ३५ । ३६ ॥ और अज्ञान की निवृत्ति ज्ञानही से होती है कर्म से नहीं होतीहै व वेदान्त के वाक्यों से उपजा हुआ ज्ञान परब्रह्म के जानने का नाम है ॥ ३७ ॥ और वह ज्ञान विरक्त पुरुष के होता है अन्य के नहीं होता है और मुख्य अधिकारी लोग आचार्य (गुरु) की प्रसन्नता से होते हैं यह सत्य है ॥ ३८ ॥ जब जिसके हृदय में स्थित सब काम छूटजाते हैं तब यहीं मराहुआ मनुष्य परंब्रह्म को

प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ और जागते, सोते, भोजन करते व स्थित इस मनुष्य को सदैव क्रूर काल खींचता है ॥ ४० ॥ और सब संचयों का अन्त नाश है व उन्नत वस्तुवों का अन्त गिरना है और संयोग याने मिलने का अन्त वियोग है व जीने का अन्त मरण है ॥ ४१ ॥ जैसे पकेहुए फलों को गिरने से अन्य भय नहीं है वैसेही पैदाहुए प्राणियों को मरने से अन्य डर नहीं है ॥ ४२ ॥ जैसे पुष्ट खंभोंवाला घर प्राचीन होकर समय में नष्ट होजाता है वैसेही वृद्धता व मृत्यु के वश में प्राप्त मनुष्य नाश होजाते हैं ॥ ४३ ॥ दिन व रात के जाने से मनुष्यों का आयुर्बल नष्ट होजाता है तुम अपना को शोचो और अन्य को क्यों शोचते हो ॥ ४४ ॥ हे कपीश्वर !

परंब्रह्मसमश्नुते ॥ ३९ ॥ जाग्रतंचस्वपन्तञ्च भुञ्जन्तञ्चस्थितंतथा ॥ इमंजनंसदाक्रूरः कृतान्तःपरिकर्षति ॥ ४० ॥ सर्वे क्षयान्तानिचयाः पतनान्ताःसमुच्छ्रयाः ॥ संयोगाविप्रयोगान्ता मरणान्तंचजीवितम् ॥ ४१ ॥ यथाफलानांपकानां नान्यत्रपतनाद्भयम् ॥ तथानराणांजातानां नान्यत्तुमरणाद्भयम् ॥ ४२ ॥ यथागृहंदृढस्तम्भं जीर्णकालेविनश्यति ॥ एवंविनश्यन्तिनरा जरामृत्युवशंगताः ॥ ४३ ॥ अहोरात्रस्यगमनान्नृणामायुर्विनश्यति ॥ आत्मानमनुशोचत्वं कि मन्यमनुशोचसि ॥ ४४ ॥ नश्यत्यायुःस्थितस्यापि धावतोपिकपीश्वर ॥ सहैवमृत्युर्व्रजति सहमृत्युर्निषीदति ॥ ४५ ॥ चरित्वादूरदेशंच सहमृत्युर्निवर्तते ॥ शरीरेवलयोजाताः श्वेताजाताःशिरोरुहाः ॥ ४६ ॥ जीर्यतेजरयादेहः श्वासकासा दिनातथा ॥ यथाकाष्ठं च काष्ठं च समेयातांमहोदधौ ॥ ४७ ॥ समेत्य च व्यपेयातां कालयोगेनवानर ॥ एवंभार्या च पुत्रश्च बन्धुक्षेत्रधनानिच ॥ ४८ ॥ क्वचित्सम्भूयगच्छन्ति पुनरन्यत्रवानर ॥ यथाहिपान्थंगच्छन्तं पथिकश्चित्पथि

बैठें व दौड़तेहुए भी मनुष्य का आयुर्बल नष्ट होता है और मृत्यु साथही जाती है व साथही बैठती है ॥ ४५ ॥ और दूरदेश को घूमकर साथही मृत्यु लौटती है शरीर में सिमटे पड़ जाते हैं व बाल सफेद होजाते हैं ॥ ४६ ॥ और वृद्धता के कारण श्वास कास से देह जीर्ण होजाती है जैसे समुद्र में दो काठ मिलजाते हैं ॥ ४७ ॥ व हे वानर ! मिलकर काल के योग से अलग होजाते हैं इसी प्रकार स्त्री, पुत्र, भाई, क्षेत्र व धन ॥ ४८ ॥ हे वानर ! कहीं मिलकर फिर अन्यत्र चले जाते हैं जैसे मार्ग में स्थित

कोई पथिक किसी जातेहुए पथिक से कहता है ॥ ४९ ॥ कि मैं भी आप के साथ आता हूं इसके अनन्तर वे कुछ समय तक साथ जाते हैं फिर अन्यत्र चले जाते हैं ॥ ५० ॥ इसी प्रकार हे वानर ! स्त्री व पुत्रादिकों का संगम नाशवान् है शरीर के जन्म के साथही निश्चय कर मृत्यु पैदा होती है ॥ ५१ ॥ और अवश्य होनेवाले मरण में कभी यत्न नहीं होती है व इस शरीर के पात होनेपर देही कर्म की गति को प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ व हे वत्स ! अन्य पिंड को प्राप्त होकर यह पहले के पिंड को छोड़ता है हे वानर ! सदैव प्राणियों का एक ठिकाने निवास नहीं होता है ॥ ५३ ॥ क्योंकि अपने अपने कर्म के वश से सब अलग अलग होजाते हैं जिस भांति प्राणियों के

स्थितः ॥ ४९ ॥ अहमप्यागमिष्यामि भवद्भिःसाकमित्यथ ॥ कञ्चित्कालंसमेतौतौ पुनरन्यत्रगच्छतः ॥ ५० ॥ एवंभार्यासुतादीनां सङ्गमोनश्वरःकपे ॥ शरीरजन्मनासाकं मृत्युःसंजायतेध्रुवम् ॥ ५१ ॥ अवश्यम्भाविमरणे नहि जातुप्रतिक्रिया ॥ एतच्छरीरपातेतु देहीकर्मगतिंगतः ॥ ५२ ॥ प्राप्यपिण्डान्तरंवत्स पूर्वपिण्डन्त्यजत्यसौ ॥ प्राणिनांनसदैकत्र वासोभवतिवानर ॥ ५३ ॥ स्वस्वकर्मवशात्सर्वे वियुज्यन्तेपृथक्पृथक् ॥ यथाप्राणिशरीराणि नश्यन्तिचभवन्तिच ॥ ५४ ॥ आत्मनोजन्ममरणे नैवस्तःकपिसत्तम ॥ अतस्त्वमञ्जनासूनो विशोकंज्ञानमद्वयम् ॥ ५५ ॥ सद्रूपममलम्ब्रह्म चिन्तयस्वादिवानिशम् ॥ त्वत्कृतम्मत्कृतंकर्म मत्कृतन्त्वत्कृतन्तथा ॥ ५६ ॥ मल्लिङ्गस्थापनंतस्मात्त्वल्लिङ्गस्थापनंकपे ॥ मुहूर्तातिक्रमाल्लिङ्गं सैकतंसीतयाकृतम् ॥ ५७ ॥ मयात्रस्थापितन्तस्मात्कोपन्दुःखंचमाकुरु ॥ कैलासादागतंलिङ्गं स्थापयास्मिञ्छुभेदिने ॥ ५८ ॥ तवनाम्नात्विदंलिङ्गं यातुलोकत्रयेप्रथाम् ॥ हनूमदीश्वरंदृष्ट्वा

शरीर नाश होजाते हैं और उत्पन्न होते हैं ॥ ५४ ॥ व हे वानरोत्तम ! आत्मा का जन्म व मरण नहीं होता है इस कारण हे अंजनापुत्र ! तुम विशोक व अद्वैत ज्ञान ॥ ५५ ॥ तथा सद्रूप निर्मल ब्रह्म को अहर्निश ध्यान करो और तुम से किया हुआ कर्म मेरा किया है व मुझसे किया हुआ कर्म तुम्हारा किया है ॥ ५६ ॥ इस कारण हे कपे ! मेरा लिंगस्थापन तुम्हारा लिंगस्थापन है मुहूर्त उल्लंघन होने के कारण सीताजी से कियेहुए बालू के लिंग को ॥ ५७ ॥ मैंने यहां स्थापन किया है इस कारण क्रोध व दुःख को मत करो और कैलास से आयेहुए लिंग को इस उत्तम दिन में स्थापित करो ॥ ५८ ॥ और तुम्हारे नाम से यह लिंग तीनों लोकों में

प्रसिद्धि को प्राप्त होगा और हनुमदीश्वर को देखकर रामेश्वरजी देखने योग्य हैं ॥ ५९ ॥ हे कपे ! आपने ब्रह्मराक्षसों के गणों को मारा है इस कारण अपने नाम से लिंग के स्थापन करने से तुम छूटोगे ॥ ६० ॥ सदाशिवजी ने आपही हनुमान् नामक शिवजी को दिया है रामनाथजी को देखता हुआ मनुष्य कृतकृत्य होता है ॥ ६१ ॥ और हज़ार योजन पै भी हनुमान्जी के लिंग को स्मरण कर व रामनाथेश्वरजी को भी स्मरणकर सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ ६२ ॥ जिसने हनुमदीश्वर व रामनाथेश्वर को देखा है उसने सब यज्ञों से पूजन किया व सब तपस्या किया ॥ ६३ ॥ जिस लिंग को हनुमान्जी ने किया है व जिसको मैंने किया है

द्रष्टव्योराघवेश्वरः ॥ ५९ ॥ ब्रह्मराक्षसयूथानि हतानिभवताकपे ॥ अतःस्वनाम्नालिङ्गस्य स्थापनात्त्वम्प्रमोक्षसे॥६०॥ स्वयंहरेणदत्तन्तु हनूमन्नामकंशिवम् ॥ सम्पश्यन्रामनाथंच कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ ६१ ॥ योजनानांसहस्रेपि स्मृत्वा लिङ्गंहनूमतः ॥ रामनाथेश्वरंचापि स्मृत्वासायुज्यमाप्नुयात् ॥ ६२ ॥ तेनेष्टंसर्वयज्ञैश्च तपश्चाकारिकृत्स्नशः ॥ येनदृष्टौमहादेवौ हनूमद्राघवेश्वरौ ॥ ६३ ॥ हनूमताकृतंलिङ्गं यच्चलिङ्गंमयाकृतम् ॥ जानकीयंचयल्लिङ्गं यल्लिङ्गंलक्ष्मणेश्वरम् ॥ ६४ ॥ सुग्रीवेणकृतंयच्च सेतुकर्त्रानलेनच ॥ अङ्गदेनचनीलेन तथाजाम्बवताकृतम् ॥ ६५ ॥ विभीषणेनयच्चापि रत्नलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ इन्द्राद्यैश्चकृतंलिङ्गं यच्छेषाद्यैःप्रतिष्ठितम् ॥ ६६ ॥ इत्येकादशरूपोयं शिवःसाक्षाद्विभासते ॥ सदाह्येतेषुलिङ्गेषु सन्निधत्तेमहेश्वरः ॥ ६७ ॥ तत्स्वपापौघशुद्ध्यर्थं स्थापयस्वमहेश्वरम् ॥ अथचेत्त्वम्महाभाग

और जो जानकीजी का लिंग है व लक्ष्मणेश्वर नामक जो लिंग है ॥ ६४ ॥ और सुग्रीव से जो लिंग किया गया है व सेतु को बनानेवाले नल ने जिस लिंग को किया है व अंगद, नील व जाम्बवान् ने जिस लिंग को किया है ॥ ६५ ॥ और विभीषण ने भी जिस रत्नलिंग को थापा है व इन्द्रादिकों से जो लिंग किया गया है और जो शेषादिकों से थापा गया है ॥ ६६ ॥ ये एकादशरूपी साक्षात् शिवजी प्रकाशित हैं और इन लिंगों में शिवजी सदैव टिके रहते हैं ॥ ६७ ॥ इस कारण अपने पापपुंज की शुद्धि के लिये शिवजी को स्थापन करो और हे वत्स, महाभाग ! यदि तुम सीताजी से कियेहुए व मुझसे यहां थापेहुए इस बालू के लिंग को उखाड़ डालो

तो तुमसे कियेहुए इस लिंग को मैं स्थापित करूं ॥ ६८ । ६९ ॥ और वही यह लिंग पाताल व सुतल को प्राप्त होकर वितल, रसातल व तलातल को फोड़कर स्थित है ॥ ७० ॥ मुझसे थापेहुए लिंग को तोड़ने के लिये किसके बल है हे कपे ! उठो और मुझसे थापेहुए इस लिंग को उखाडकर ॥ ७१ ॥ जो तुमसे लाया गया है उसको शीघ्रही स्थापन करो शोच मत करो ऐसा कहेहुए ज्ञानबलवाले वानर हनुमान्जी ने उन श्रीरामजी को प्रणामकर कहा ॥ ७२ ॥ कि मैं बालू के उत्तम लिंग को उखाड़ता हूं और कैलास से लायेहुए लिंग को आदर से भलीभांति स्थापित करूंगा ॥ ७३ ॥ और बालू के लिंग को उखाड़ने में मुझको क्या भार होगा

लिङ्गमुत्सादयिष्यसि ॥ ६८ ॥ मयात्रस्थापितंवत्स सीतयासैकतंकृतम् ॥ स्थापयिष्यामिचततो लिङ्गमेतत्त्वयाकृतम् ॥ ६९ ॥ पातालंसुतलम्प्राप्य वितलञ्चरसातलम् ॥ तलातलञ्चतदिदं भेदयित्वातुतिष्ठति ॥ ७० ॥ प्रतिष्ठितम्मयालिङ्गं भेत्तुंकस्यबलम्भवेत् ॥ उत्तिष्ठलिङ्गमुद्वास्य मयैतत्स्थापितंकपे ॥ ७१ ॥ त्वयासमाहृतंलिङ्गं स्थापयस्वाशुमाशुचः ॥ इत्युक्तस्तम्प्रणम्याह ज्ञानसत्त्वोथवानरः ॥ ७२ ॥ उद्वासयामिवेगेन सैकतंलिङ्गमुत्तमम् ॥ संस्थापयामिकैलासादानीतंलिङ्गमादरात् ॥ ७३ ॥ उद्वासनेसैकतस्य कियान्भारोभवेन्मम ॥ चेतसैवंविचार्यायं हनूमान्मारुतात्मजः ॥ ७४ ॥ पश्यतांसर्वदेवानां मुनीनांकपिरक्षसाम् ॥ पश्यतोरामचन्द्रस्य लक्ष्मणस्यापिपश्यतः ॥ ७५ ॥ पश्यन्त्या अपिवैदेह्या लिङ्गन्तत्सैकतम्बलात् ॥ पाणिनासर्वयत्नेन जग्राहेतरसाबली ॥ ७६ ॥ यत्नेनमहताचायं चालयन्नपिमारुतिः ॥ नालञ्चालयितुंह्यासीत्सैकतंलिङ्गमोजसा ॥ ७७ ॥ ततःकिलकिलाशब्दं कुर्वन्वानरपुङ्गवः ॥ पुच्छमुद्यम्यपाणिभ्यां

चित्त से ऐसा विचारकर इन पवनकुमार हनुमान्जीने ॥ ७४ ॥ सब देवता, मुनि, वानर व राक्षसों के देखते हुए और रामचन्द्र के देखते व लक्ष्मणजी के देखते हुए ॥ ७५ ॥ व जानकीजी के भी देखतेहुए उस बालू के लिंग को बलवान् हनुमान्जी ने बलसे सब उपाय से वेग करके हाथ से पकड़ा ॥ ७६ ॥ और बड़े यत्न से हिलाते हुए भी ये हनुमान्जी बालू के लिंग को बलसे चलाने के लिये समर्थ न हुए ॥ ७७ ॥ तदनन्तर किलकिला शब्द करके श्रेष्ठ वानर हनुमान्जी पूंछको उठाकर अपने बल

से उस लिंग को दोनों हाथों से हिलाया ॥ ७८ ॥ इस भांति अनेक प्रकार से हिलाते हुए भी पवनकुमार वानर हनुमान्‌जी चलाने के लिये समर्थ न हुए ॥ ७९ ॥ इसके अनन्तर उस लिंग को लांगूल से लपेट कर हाथों से पृथ्वी को छूतेहुए पवनसुत हनुमान् कपि वेग से आकाश में उछले ॥ ८० ॥ और सातों द्वीपोंवाली पर्वतों समेत सब पृथ्वी को कँपातेहुए वे हनुमान्‌जी रक्त को वमन करतेहुए लिंग के कोस भरपर मूर्च्छित होकर ॥ ८१ ॥ हे ब्राह्मणो ! कंपित अंगोंवाले हनुमान्‌जी पृथ्वी पै गिरपड़े और गिरतेहुए पवनकुमार के मुखसे व दोनों नेत्रों से ॥ ८२ ॥ और हे द्विजोत्तमो ! नासिकापुट व कर्णछिद्र तथा गुदा इन्द्रिय से उन हनुमान्‌जी ने रक्त-

निरास्थत्तंनिजौजसा ॥ ७८ ॥ इत्यनेकप्रकारेण चालयन्नपिवानरः ॥ नैवचालयितुंशक्तो बभूवपवनात्मजः ॥ ७९ ॥ तद्वेष्टयित्वापुच्छेन पाणिभ्यांधरणींस्पृशन् ॥ उत्पपाताथतरसा व्योम्निवायुसुतःकपिः ॥ ८० ॥ कम्पयन्सधरांसर्वां सप्तद्वीपांसपर्वताम् ॥ लिङ्गस्यक्रोशमात्रेतु मूर्च्छितोरुधिरंवमन् ॥ ८१ ॥ पपातहनुमान्विप्राः कम्पिताङ्गोधरातले ॥ पततोवायुपुत्रस्य वक्त्राच्चनयनद्वयात् ॥ ८२ ॥ नासापुटाच्छ्रोत्ररन्ध्रादपानाच्चद्विजोत्तमाः ॥ रुधिरौघान्ससुस्राव रक्तकुण्डमभूच्चतत् ॥ ८३ ॥ ततोहाहाकृतंसर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ धावन्तौकपिभिःसार्द्धमुभौतौरामलक्ष्मणौ ॥ ८४ ॥ जानकीसहितौविप्रा ह्यास्तांशोकाकुलौतदा ॥ सीतयासहितौवीरौ वानरैश्चमहाबलौ ॥ ८५ ॥ रुरुचातेतदाविप्रा गन्धमादनपर्वते ॥ यथातारागणयुतौ रजन्यांशशिभास्करौ ॥ ८६ ॥ ददृशतुर्हनूमन्तं चूर्णीकृतकलेवरम् ॥ मूर्च्छितम्पतितंभूमौ वमन्तंरुधिरम्मुखात् ॥ ८७ ॥ विलोक्यकपयःसर्वे हाहाकृत्वापतन्भुवि ॥ कराभ्यांसदयंसीता हनूमन्तंमरुत्सु

प्रवाहों को बहाया और वह रक्तकुंड होगया ॥ ८३ ॥ तदनन्तर देवता दैत्य व वानरों समेत सब संसार में हाहाकार होगया व वानरों समेत दौड़तेहुए वे दोनों राम लक्ष्मण ॥ ८४ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस समय जानकीजी समेत शोक से विकल हुए और वानरों समेत व सीताजी समेत वे महाबली राम व लक्ष्मणजी ॥ ८५ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस समय गन्धमादन पर्वत पै शोभित हुए जैसे कि नक्षत्रगणों से संयुत रात में चन्द्रमा व सूर्य शोभित होवैं ॥ ८६ ॥ और उन्होंने पृथ्वी में गिरे व मुख से रक्त को उगिलते हुए मूर्च्छित व चूर्ण किये अंगोंवाले हनुमान्‌जी को देखा ॥ ८७ ॥ और सब वानर देखकर हाहाकार करके गिरपड़े व सीताजीने दयासमेत पृथ्वी में गिरे

पवनकुमार हनुमान्‌जी को हे तात! हे तात! ऐसा कहकर हाथों से स्पर्श किया और गिरेहुए वानरेश्वर हनुमान्‌जी को देखकर रामजी ने भी ॥ ८८ । ८९ ॥ गोदी में बिठाकर अपने हाथों से शरीर को स्पर्श किया व हे ब्राह्मणो! नेत्र से उपजे हुए जलको छोड़तेहुए उन्होंने पवनकुमार से कहा ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामचन्द्रतत्त्वज्ञानोपदेशोनामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो॰। हनुमदीश्वरहिं लिंग जिमि थाप्यो श्रीहनुमान। छियालिसें अध्याय में कीन्हो सोइ बखान ॥ श्रीरामजी बोले कि हे वानरपुंगव! पंपावन में उदासीन हम

तम् ॥ ८८ ॥ तातताततेतिपस्पर्श पतितन्धरणीतले ॥ रामोपिदृष्ट्वापतितं हनूमन्तंकपीश्वरम् ॥ ८९ ॥ आरोप्याङ्कंस्व पाणिभ्यामाममर्शकलेवरम् ॥ विमुञ्चन्नेत्रजंवारि वायुजंचाब्रवीद्द्विजाः ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्ये रामचन्द्रतत्त्वज्ञानोपदेशोनामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीरामउवाच ॥ पम्पारण्येवयंदीनास्त्वयावानरपुङ्गव ॥ आश्वासिताःकारयित्वा सख्यमादित्यसूनुना ॥ १ ॥ त्वां दृष्ट्वापितरम्बन्धून्कौसल्याञ्जननीमपि ॥ नस्मरामोवयंसर्वान्मेत्वयोपकृतम्बहु ॥ २ ॥ मदर्थंसागरस्तीर्णो भवताबहुयोजनः ॥ तलप्रहाराभिहतो मैनाकोपिनगोत्तमः ॥ ३ ॥ नागमाताचसुरसा मदर्थम्भवताजिता ॥ छायाग्राहमहाक्रूरा मवधीद्राक्षसीम्भवान् ॥ ४ ॥ सायंसुवेलमासाद्य लङ्कामाहत्यपाणिना ॥ अयासीरावणगृहम्मदर्थन्त्वम्महाकपे ॥ ५ ॥ सीतामन्विष्यलङ्कायां रात्रौगतभयोभवान् ॥ अदृष्ट्वाजानकीम्पश्चादशोकवनिकांययौ ॥ ६ ॥ नमस्कृत्यचवैदेही

लोगों को तुमने सूर्यपुत्र सुग्रीव के साथ मित्रता कराकर समझाया था ॥ १ ॥ और तुमको देखकर व पिता, बन्धु व कौसल्या माता सबों को भी हम स्मरण नहीं करते हैं और तुमने मेरा बहुत उपकार किया ॥ २ ॥ आप मेरे लिये बहुत योजनोंवाले समुद्र को उतरे और आपने मैनाक पर्वतोत्तम को भी चपोटेसे मारा ॥ ३ ॥ और मेरे लिये आपने नागों की माता सुरसा को जीत लिया व आपने छाया के पकड़ने में बड़ीक्रूर राक्षसी को मारा ॥ ४ ॥ व हे महाकपे! तुम मेरे लिये सायंकाल में सुवेलपर्वत पै जाकर हाथ से लंका को मारकर रावण के घर को गये ॥ ५ ॥ और रात्रि में भयरहित आप लंका में जानकीजी को ढूंढ़कर व सीता को न देखकर पश्चात् अशोकवाटिका को गये ॥ ६ ॥

श्रौर जानकीजी को प्रणामकर व चीन्ह को देकर मेरे लिये चूडामणि को जानकीजी के हाथ से लेकर ॥ ७ ॥ हे महाकपे! तुमने अशोक के वृक्षों को तोड़डाला तदनन्तर अस्सीहज़ार किंकर नामक राक्षसों को ॥ ८ ॥ जोकि रावण के समान थे पैदल, घोड़े, हाथी व रथों से संयुत व महाबली तथा पराक्रमी राक्षसों को तुमने मेरे लिये युद्ध में मारा ॥ ९ ॥ तदनन्तर आयेहुए प्रहस्त के पुत्र जंबुमाली को तुमने मारा और सूर्य के समान तेजवान् सात मंत्रियों के पुत्रों को मारा ॥ १० ॥ पश्चात् तुमने पांच सेनापतियों को यमस्थान को पठाया तदनन्तर तुमने समरशीर्ष में अक्षकुमार को मारा ॥ ११ ॥ तदनन्तर रावण की उत्तम सभा को मेघनाद से लायेहुए तुमने वहां लंकेश्वर को वचन

मभिज्ञानंप्रदायच ॥ चूडामणिंसमादाय मदर्थंजानकीकरात् ॥ ७ ॥ अशोकवनिकावृक्षानभाङ्क्षीस्त्वम्महाकपे ॥ ततस्त्वशीतिसाहस्रान्किङ्करान्नामराक्षसान् ॥ ८ ॥ रावणप्रतिमान्युद्धे पत्त्यश्वेभरथाकुलान् ॥ अवधीस्त्वम्मदर्थेवै महाबलपराक्रमान् ॥ ९ ॥ ततःप्रहस्ततनयं जम्बुमालिनमागतम् ॥ अवधीन्मन्त्रितनयान्सप्तसप्तार्चिवर्चसः ॥ १० ॥ पञ्चसेनापतीन्पश्चादनयस्त्वंयमालयम् ॥ कुमारमक्षमवधीस्ततस्त्वंरणमूर्धनि ॥ ११ ॥ ततइन्द्रजितानीतो राक्षसेन्द्रसभांशुभाम् ॥ तत्रलङ्केश्वरंवाचा तृणीकृत्यावमन्यच ॥ १२ ॥ अभाङ्क्षीस्त्वम्पुरींलङ्काम्मदर्थंवायुनन्दन ॥ पुनःप्रतिनिवृत्तस्त्वमृष्यमूकम्महागिरिम् ॥ १३ ॥ एवमादिमहादुःखम्मदर्थम्प्राप्तवानसि ॥ त्वमत्रभूतलेशेषे ममशोकमुदीरयन् ॥ १४ ॥ अहम्प्राणान्परित्यक्ष्ये मृतोसियदिवायुज ॥ सीतयाममकिंकार्यं लक्ष्मणेनानुजेनवा ॥ १५ ॥ भरतेनापिकिंकार्यं शत्रुघ्नेनश्रियापिवा ॥ राज्येनापिनमेकार्यं परेतस्त्वंकपेयदि ॥ १६ ॥ उत्तिष्ठहनुमन्वत्स किंशेषेद्यम

से तिनुका के समान करके व अनादर कर ॥ १२ ॥ हे पवनकुमार! तुमने लंकापुरी को भंग किया फिर तुम ऋष्यमूक महापर्वत को लौट आये ॥ १३ ॥ इत्यादिक महादुःख को तुमने मेरे लिये पाया है और इस समस्त संसार में मेरे दुःख को कहतेहुए तुमने भ्रमण किया ॥ १४ ॥ हे पवननन्दन! यदि तुम मरगये तो मैं प्राणों को छोड़ दूंगा सीता व छोटे भाई लक्ष्मण से मेरा क्या कार्य है ॥ १५ ॥ और भरत व शत्रुघ्न तथा लक्ष्मी से भी मेरा क्या कार्य है हे वानर! यदि तुम मरगये तो राज्य से भी मेरा कार्य नहीं है॥१६॥

हे वत्स, हनुमन्! उठो इस समय तुम पृथ्वी पै क्यों सोते हो हे महाबाहो, वानर! तुम मेरे लिये शय्या करो ॥ १७ ॥ और मेरे भोजन के लिये तुम कंद, मूल व फलों को लावो और इस समय मैं नहाने के लिये जाता हूं शीघ्रही कलश को लाइये ॥ १८ ॥ और मृगचर्म, वसन व कुशों को लाइये हे हरे! भाई लक्ष्मण समेत ब्रह्मास्त्र से बँधेहुए मुझको तुमने औषधी के लाने से छुड़ाया हे पौलस्त्यमदनाशन! तुम लक्ष्मण के प्राणों को देनेवाले हो ॥ १९ । २० ॥ और तुम्हारी सहायता से युद्ध में बड़े बली व वीर रावणादिक राक्षसों को मारकर मैंने जानकी स्त्री को पाया ॥ २१ ॥ हे अंजनासूनो, सीताशोकविनाशन, हनूमन्!

हीतले ॥ शय्यांकुरुमहाबाहो निद्रार्थम्ममवानर ॥ १७ ॥ कन्दमूलफलानित्वमाहारार्थम्ममाहर ॥ स्नातुमद्यगमिष्यामि द्रुतंकलशमानय ॥ १८ ॥ अजिनानिचवासांसि दर्भांश्चसमुपाहर ॥ ब्रह्मास्त्रेणावबद्धोहं मोचितश्चत्वयाहरे ॥ १९ ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रा ह्यौषधानयनेनवै ॥ लक्ष्मणप्राणदातात्वं पौलस्त्यमदनाशन ॥ २० ॥ सहायेनत्वया युद्धे राक्षसान्रावणादिकान् ॥ निहत्यातिबलान्वीरानवापमैथिलींगृहम् ॥ २१ ॥ हनूमन्नञ्जनासूनो सीताशोकविनाशन ॥ कथमेवम्परित्यज्य लक्ष्मणम्माञ्चजानकीम् ॥ २२ ॥ अप्रापयित्वायोध्यान्त्वं किमर्थङ्गतवानसि ॥ क्वगतोसि महावीर महाराक्षसकण्टक ॥ २३ ॥ इतिपश्यन्मुखन्तस्यनिर्वाक्यंरघुनन्दनः ॥ प्ररुदन्नश्रुजालेन सेचयामासवायुजम् ॥ २४ ॥ वायुपुत्रस्ततोमूर्च्छामपहायशनैर्द्विजाः ॥ पौलस्त्यभयसन्त्रस्तलोकरक्षार्थमागतम् ॥ २५ ॥ आश्रित्यमानुषम्भावं नारायणमजंविभुम् ॥ जानकीलक्ष्मणयुतं कपिभिःपरिवारितम् ॥ २६ ॥ कालाम्भोधरसङ्काशं रणधूलि

इस प्रकार लक्ष्मण, जानकी व मुझको छोड़कर ॥ २२ ॥ और अयोध्या को न प्राप्त कराकर क्यों चलेगये हे महाराक्षसों के कंटक, महावीर! कहां चलेगये ॥ २३ ॥ इस प्रकार उन हनुमान्जी के मुख को देखतेहुए रघुनाथजी ने चुपचाप रोतेहुए आंसुवों के प्रवाह से पवनकुमार को सींच दिया ॥ २४ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो! पवनसूनु हनुमान्जी ने धीरे से मूर्च्छा को छोड़कर रावण के भय से डरेहुए संसार की रक्षा के लिये आयेहुए ॥ २५ ॥ व मनुजता में स्थित होकर अज व व्यापक नारायण जोकि जानकी व लक्ष्मण से संयुत तथा वानरों से घिरे ॥ २६ ॥ और काले मेघों के समान व समर की धूलि से धूसरित तथा जटाओं के मंडल की शोभा

से संयुत तथा कमल सरीखे चौड़े नेत्रवाले थे ॥ २७ ॥ युद्ध में बहुतही थकेहुए उन रघुनाथजी को देखा व देवता, ऋषि और किन्नरों से स्तुति किये जातेहुए शत्रुविनाशक ॥ २८ ॥ व बहुत दयावान् चित्तवाले दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी को देखकर रघुनाथजी के हाथ के छूने से पूर्ण शरीरवाले उन वानर हनुमान्जीने ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मणो ! पृथ्वी में दंडा की नाईं गिरकर दोनों हाथों को जोड़कर कानों के मनोहर स्तोत्रों से रघुनाथजी की स्तुति किया ॥ ३० ॥ हनूमान्जी बोले कि समर्थवान् विष्णु व हरि श्रीरामजी के लिये प्रणाम है और आदिदेव, देव व पुराण तथा गदाधारी के लिये प्रणाम है ॥ ३१ ॥ और पुष्पक आसन पै सदैव बैठनेवाले महात्मा

सम्मुक्षितम् ॥ जटामण्डलशोभाढ्यं पुण्डरीकायतेक्षणम् ॥ २७ ॥ खिन्नञ्चबहुशोयुद्धे ददर्शरघुनन्दनम् ॥ स्तूयमानममित्रघ्नं देवर्षिपितृकिन्नरैः ॥ २८ ॥ दृष्ट्वादाशरथिंरामं कृपाबहुलचेतसम् ॥ रघुनाथकरस्पर्शपूर्णगात्रःसवानरः ॥ २९ ॥ पतित्वादण्डवद्भूमौ कृताञ्जलिपुटोद्विजाः ॥ अस्तौषीज्जानकीनाथं स्तोत्रैःश्रुतिमनोहरैः ॥ ३० ॥ हनूमानुवाच ॥ नमो रामायहरये विष्णवेप्रभविष्णवे ॥ आदिदेवायदेवाय पुराणायगदाभृते ॥ ३१ ॥ विष्टरेपुष्पकेनित्यं निविष्टायमहात्मने ॥ प्रहृष्टवानरानीकजुष्टपादाम्बुजायते ॥ ३२ ॥ निष्पिष्टराक्षसेन्द्राय जगदिष्टविधायिने ॥ नमःसहस्रशिरसे सहस्रचरणायच ॥ ३३ ॥ सहस्राक्षायशुद्धाय राघवायचविष्णवे ॥ भक्तार्तिहारिणेतुभ्यं सीतायाःपतयेनमः ॥ ३४ ॥ हरयेनारसिंहाय दैत्यराजविदारिणे ॥ नमस्तुभ्यंवराहाय दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धर ॥ ३५ ॥ त्रिविक्रमायभवते बलियज्ञविभेदिने ॥

के लिये प्रणाम है व प्रसन्न वानरसमूहों से सेवित चरणकमलवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३२ ॥ व राक्षसेन्द्र रावण को मारनेवाले और संसार का प्रिय करनेवाले आप के लिये प्रणाम है और हज़ार मस्तक व हज़ार चरणोंवाले आप के लिये प्रणाम है ॥ ३३ ॥ और सहस्रलोचन, शुद्ध, राघव व विष्णुजी के लिये प्रणाम है तथा भक्तदुःखविनाशक आप जानकीनाथ के लिये प्रणाम है ॥ ३४ ॥ और दैत्यराज हिरण्यकशिपु को विदारनेवाले नृसिंहरूपी विष्णु के लिये प्रणाम है व हे दाढ़ से पृथ्वी को उठानेवाले ! वराहरूपी आप के लिये प्रणाम है ॥ ३५ ॥ और बलि के यज्ञ को भेदन करनेवाले आप त्रिविक्रम वामनरूप के लिये प्रणाम है व महामन्दर

को धारनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ३६ ॥ और वेदत्रयी की रक्षा करनेवाले मछली रूपवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व क्षत्रियों का नाश करनेवाले आप परशुराम के लिये प्रणाम है ॥ ३७ ॥ और राक्षसों का नाश करनेवाले व महादेवजी के बड़े भयंकर धनुष को तोड़नेवाले राघवरूपी आप के लिये प्रणाम है ॥ ३८ ॥ और क्षत्रियों का नाश करनेवाले क्रूर परशुरामजी को भय करानेवाले तथा अहल्या के संताप को हरनेवाले तथा धनुष को भंजनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ३९ ॥ और दश हज़ार हाथियों के बल से संयुत ताड़का राक्षसी के शरीर को नाशनेवाले व पत्थर से कठोर व विशाल बालि के वक्षस्थल को विदारनेवाले के लिये प्रणाम

नमोवामनरूपाय महामन्दरधारिणे ॥ ३६ ॥ नमस्तेमत्स्यरूपाय त्रयीपालनकारिणे ॥ नमःपरशुरामाय क्षत्रियान्तकरायते ॥ ३७ ॥ नमस्तेराक्षसघ्नाय नमोराघवरूपिणे ॥ महादेवमहाभीममहाकोदण्डभेदिने ॥ ३८ ॥ क्षत्रियान्तकरक्रूरभार्गवत्रासकारिणे ॥ नमोस्त्वहल्यासन्तापहारिणेचापहारिणे ॥ ३९ ॥ नागायुतबलोपेतताटकादेहहारिणे ॥ शिलाकठिनविस्तारबालिवक्षोविभेदिने ॥ ४० ॥ नमोमायामृगोन्माथकारिणेज्ञानहारिणे ॥ दशस्यन्दनदुःखाब्धिशोषणागस्त्यरूपिणे ॥ ४१ ॥ अनेकोर्मिसमाधूतसमुद्रमदहारिणे ॥ मैथिलीमानसाम्भोजभानवे लोकसाक्षिणे ॥ ४२ ॥ राजेन्द्रायनमस्तुभ्यं जानकीपतयेहरे ॥ तारकब्रह्मणेतुभ्यं नमोराजीवलोचन ॥ ४३ ॥ रामायरामचन्द्राय वरेण्यायसुखात्मने ॥ विश्वामित्रप्रियायेदं नमःखरविदारिणे ॥ ४४ ॥ प्रसीददेवदेवेश भक्तानामभयप्रद ॥

है ॥ ४० ॥ और मायामृग (मारीच) को नाशनेवाले तथा अज्ञान को हरनेवाले और दशरथजी के दुःखरूपी समुद्र के सुखाने के लिये अगस्त्यरूपी आप के लिये प्रणाम है ॥ ४१ ॥ और अनेक लहरियों से कंपित समुद्र के गर्व को हरनेवाले और मैथिलीजी के मनरूपी कमल के लिये सूर्यरूपी लोकसाक्षी के लिये नमस्कार है ॥ ४२ ॥ व हे हरे ! जानकीनाथ तथा नृपेन्द्र आपके लिये प्रणाम है व हे कमललोचन ! तारक ब्रह्मरूपी आपके लिये प्रणाम है ॥ ४३ ॥ और वरेण्य व सुखात्मक राम व रामचन्द्रजी के लिये प्रणाम है तथा खर राक्षस को विदारनेवाले व विश्वामित्रजी के प्यारे के लिये यह प्रणाम है ॥ ४४ ॥ हे भक्तों को अभय देनेवाले, देवदेवेश ! प्रसन्न

होवो हे दयासिन्धो, रामचन्द्र ! मेरी रक्षा कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४५ ॥ हे वेदवचनों के भी अगोचर, राघवजी ! मेरी रक्षा कीजिये हे रामजी ! दयासे मेरी रक्षा कीजिये मैं तुम्हारे शरण में प्राप्त हूं ॥४६॥ हे रघुवीर ! इस समय मेरे महामोह को दूर कीजिये और स्नान, आचमन, भोजन, जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति ॥ ४७॥ सब अवस्थाओं में मेरी रक्षा कीजिये हे रघुनन्दनजी ! त्रिलोक में कौन तुम्हारी महिमा की स्तुति करने के लिये समर्थ है ॥ ४८ ॥ हे रघुनन्दनजी ! तुम्हारी महिमा को तुम्हीं जानते हो इस प्रकार दयानिधान रघुनाथजी की स्तुति करके पवनकुमार हनुमान्जी ने ॥ ४९ ॥ भक्तिसंयुत चित्त से सीताजी की भी स्तुति किया कि हे जानकीजी ! सब

रक्षमांकरुणासिन्धो रामचन्द्रनमोस्तुते ॥ ४५ ॥ रक्षमांवेदवचसामप्यगोचरराघव ॥ पाहिमांकृपयाराम शरणंत्वामुपैम्यहम् ॥ ४६ ॥ रघुवीरमहामोहमपाकुरुममाधुना ॥ स्नानेचाचमनेभुक्तौ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ॥ ४७ ॥ सर्वावस्थासुसर्वत्र पाहिमांरघुनन्दन ॥ महिमानन्तवस्तोतुं कःसमर्थोजगत्त्रये ॥ ४८ ॥ त्वमेवत्वन्महत्त्वंवै जानासिरघुनन्दन ॥ इतिस्तुत्वावायुपुत्रो रामचन्द्रंघृणानिधिम् ॥ ४९ ॥ सीतामप्यभितुष्टाव भक्तियुक्तेनचेतसा ॥ जानकित्वान्नमस्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ ५० ॥ दारिद्र्यरणसंहर्त्रीं भक्तानामिष्टदायिनीम् ॥ विदेहराजतनयां राघवानन्दकारिणीम् ॥ ५१ ॥ भूमेर्दुहितरंविद्यां नमामिप्रकृतिंशिवाम् ॥ पौलस्त्यैश्वर्यसंहर्त्रीम्भक्ताभीष्टांसरस्वतीम् ॥ ५२ ॥ पतिव्रताधुरीणान्त्वां नमामिजनकात्मजाम् ॥ अनुग्रहपरामृद्धिमनघांहरिवल्लभाम् ॥ ५३ ॥ आत्मविद्यात्रयीरूपामुमारू

पापों को नाशनेवाली तुमको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५० ॥ और दरिद्रता के समर को संहारनेवाली तथा भक्तों के मनोरथ को देनेवाली व रघुनाथजी के आनन्द को करनेहारी जनकराजदुलारी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५१ ॥ व पृथ्वी की कन्या तथा विद्या व कल्याणकारिणी प्रकृति को मैं प्रणाम करता हूं व पौलस्त्य (रावण) के ऐश्वर्य को नाश करनेवाली भक्तप्रिया सरस्वतीजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५२ ॥ व पतिव्रताओं में श्रेष्ठ आप जनक की कन्या को मैं प्रणाम करता हूं और दया में परायण व ऋद्धि तथा निष्पापरूपिणी और विष्णुप्रिया ॥ ५३ ॥ तथा आत्मविद्या व वेदत्रयी रूपवाली और पार्वतीरूपिणी को मैं प्रणाम करता हूं व क्षीरसागर की कन्या

प्रसन्न अभिमुखवाली उत्तम लक्ष्मी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५४ ॥ व सब अंगों से सुन्दरी व चन्द्रमा की बहन सीताजी को मैं प्रणाम करता हूं और धर्म में रहने वाली और दयारूपिणी वेदमाता को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५५ ॥ और कमल में स्थानवाली तथा कमल को हाथ में लिये और विष्णुजी के वक्षस्थल में बसनेवाली व चन्द्रमा में रहनेवाली और चन्द्रमा के समान मुखवाली जानकीजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५६ ॥ और आनन्दरूपिणी, सिद्धि, शिवा व कल्याणकारिणी, सती और रामचन्द्र की प्यारी जगदम्बिकाजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५७ ॥ और सब निर्दोष अंगोंवाली सीताजी को मैं सदैव हृदय से भजता हूं श्रीसूतजी बोले कि इस प्रकार

पांनमाम्यहम् ॥ प्रसादाभिमुखींलक्ष्मीं क्षीराब्धितनयांशुभाम् ॥ ५४ ॥ नमामिचन्द्रभागिनीं सीतांसर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥ नमामिधर्मनिलयां करुणांवेदमातरम् ॥ ५५ ॥ पद्मालयांपद्महस्तां विष्णुवक्षस्थलालयाम् ॥ नमामिचन्द्रनिलयां सीतांचन्द्रनिभाननाम् ॥ ५६ ॥ आह्लादरूपिणींसिद्धिं शिवांशिवकरींसतीम् ॥ नमामिविश्वजननीं रामचन्द्रेष्टवल्लभाम् ॥ ५७ ॥ सीतांसर्वानवद्याङ्गीं भजामिसततंहृदा ॥ श्रीसूत उवाच ॥ स्तुत्वैवंहनूमान्सीतारामचन्द्रौसभक्तिकम् ॥ ५८ ॥ आनन्दाश्रुपरिक्लिन्नस्तूष्णीमास्तेद्विजोत्तमाः ॥ यइदंवायुपुत्रेण कथितम्पापनाशनम् ॥ ५९ ॥ स्तोत्रंश्रीरामचन्द्रस्य सीतायाःपठतेन्वहम् ॥ सनरोमहदैश्वर्यमश्नुतेवाञ्छितंसदा ॥ ६० ॥ अनेकक्षेत्रधान्यानि गाश्चदोग्ध्रीः पयस्विनीः ॥ आयुर्विद्याश्चपुत्रांश्च भार्यामपिमनोरमाम् ॥ ६१ ॥ एतत्स्तोत्रंसकृद्विप्राः पठन्नाप्नोत्यसंशयः ॥ एतत्स्तोत्रस्यपाठेन नरकन्नैवयास्यति ॥ ६२ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि नश्यन्तिसुमहान्त्यपि ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो देहान्तेमुक्ति

भक्ति समेत सीता व रामचन्द्रजी की स्तुति करके हनुमान्जी ॥ ५८ ॥ आनन्द के आंसुवों से भीगगये व हे द्विजोत्तमो ! चुप होरहे पवनकुमार से कहेहुए इस सीता व रामचन्द्रजी के पापनाशक स्तोत्र को जो प्रतिदिन पढ़ता है वह मनुष्य सदैव बड़ेभारी ऐश्वर्य व मनोरथ को प्राप्त होता है ॥ ५९ । ६० ॥ और अनेक क्षेत्र व अन्न तथा दूध देनेवाली गौवों को पाता है और आयुर्बल, विद्या, पुत्र व सुन्दरी स्त्री को भी ॥ ६१ ॥ हे ब्राह्मणो ! एकबार इस स्तोत्र को पढ़ता हुआ पुरुष निस्सन्देह पाता है और इस स्तोत्र के पढ़ने से नरक को नहीं जाता है ॥ ६२ ॥ और ब्रह्महत्यादिक बड़ेभारी भी पाप नाश होजाते हैं और शरीर के अन्त में सब पापों से छूटाहुआ

पुरुष मुक्ति को पाता है ॥ ६३ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार पवनपुत्र से स्तुति कियेहुए सीतासमेत जगदीश रघुनाथजी हनुमान्‌जी से बोले ॥ ६४ ॥ श्रीरामजी बोले कि हे वानरश्रेष्ठ ! तुमने अज्ञान से यह साहस किया ब्रह्मा, विष्णु व इन्द्रादिक देवताओं से ॥ ६५ ॥ व मुझ से यह लिंग नहीं उखाड़ा जासक्ता है महादेवजी के अपराध से इस समय तुम मूर्च्छित होकर गिरपड़े ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त तुम त्रिशूलधारी साम्ब शिवजी का द्रोह न करना आज से लगाकर यह कुंड त्रिलोक में तुम्हारे नाम से ॥ ६७ ॥ प्रसिद्धि को प्राप्त होवै जहां कि हे वानरोत्तम ! तुम गिरे हो इसमें नहाने से महापातकों के समूह का नाश होगा ॥ ६८ ॥ नदियों के मध्य में श्रेष्ठ

माप्नुयात् ॥ ६३ ॥ इतिस्तुतोजगन्नाथो वायुपुत्रेणराघवः ॥ सीतयासहितोविप्रा हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ ६४ ॥ श्रीराम उवाच ॥ अज्ञानाद्वानरश्रेष्ठ त्वयेदंसाहसंकृतम् ॥ ब्रह्मणाविष्णुनावापि शक्रादित्रिदशैरपि ॥ ६५ ॥ नेदंलिङ्गंसमुद्धर्तुं शक्यतेस्थापितम्मया ॥ महादेवापराधेन पतितोस्यद्यमूर्च्छितः ॥ ६६ ॥ इतःपरंमाक्रियतान्द्रोहःसाम्बस्यशूलिनः ॥ अद्यारभ्यत्विदंकुण्डं तवनाम्नाजगत्रये ॥ ६७ ॥ ख्यातिंप्रयातुयत्रत्वं पतितोवानरोत्तम ॥ महापातकसङ्घानां नाशः स्यादत्रमज्जनात् ॥ ६८ ॥ महादेवजटाजाता गौतमीसरितांवरा ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलदास्नायिनान्नृणाम् ॥ ६९ ॥ ततःशतगुणागङ्गा यमुनाचसरस्वती ॥ एतन्नदीत्रयंयत्र स्थलेप्रवहतेकपे ॥ ७० ॥ मिलित्वातत्रतुस्नानं सहस्रगुणितं स्मृतम् ॥ नदीष्वेतासुयत्स्नानात्फलम्पुंसाम्भवेत्कपे ॥ ७१ ॥ तत्फलन्तवकुण्डेस्मिन्स्नानात्प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ दुर्लभम्प्राप्यमानुष्यं हनूमत्कुण्डतीरतः ॥ ७२ ॥ श्राद्धन्नकुरुतेयस्तु भक्तियुक्तेनचेतसा ॥ निराशास्तस्यपितरः प्रयान्ति

गौतमीजी महादेवजी के जटा से उत्पन्न हुई हैं जोकि नहानेवाले पुरुषों को हज़ार अश्वमेध यज्ञ के फल को देनेवाली हैं ॥ ६९ ॥ और उससे सौगुनी गंगा, यमुना व सरस्वती जी हैं हे कपे ! ये तीनों नदियां मिलकर जिस स्थल में बहती हैं उसमें स्नान हज़ारगुना कहागया है हे कपे ! इन नदियों में नहाने से पुरुषों को जो फल होता है ॥ ७० । ७१ ॥ उस फल को मनुष्य निस्सन्देह तुम्हारे इस कुंड में नहाने से पाता है दुर्लभ मनुष्यजन्म को पाकर हनुमत्कुंड के किनारे ॥ ७२ ॥ जो भक्तिसंयुत

चित्त से श्राद्ध को नहीं करता है हे कपे ! उसके पितर क्रोधित होकर चलेजाते हैं ॥ ७३ ॥ और इसके लिये मुनि व इन्द्रसमेत तथा चारणों समेत देवता क्रोधित होते हैं और हनुमत्कुंड के किनारे जिसने दान नहीं दिया व हवन नहीं किया है ॥ ७४ ॥ यह वृथा जीवितही है और इस लोक व परलोक में वह दुःख का भागी होता है और हनुमत्कुंड के समीप जिसने तिल व जल को दिया है ॥ ७५ ॥ उसके पितर प्रसन्न होते हैं व घी की नदियों को पीते हैं श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! वे हनुमान्जी श्रीरामजी से कहेहुए इस वचन को सुनकर ॥ ७६ ॥ रामनाथ के उत्तर में अपना से हर्ष से लायेहुए लिंग को पवनसुत हनूमान्जी ने रामचन्द्रजी की आज्ञा से स्थापन

कुपिताःकपे ॥ ७३ ॥ कुप्यन्तिमुनयोप्यस्मै देवाःसेन्द्राःसचारणाः ॥ नदत्तन्नहुतंयेन हनूमत्कुण्डतीरतः ॥ ७४ ॥ वृथाजीवितएवासाविहामुत्रचदुःखभाक् ॥ हनूमत्कुण्डसविधे येनदत्तान्तिलोदकम् ॥ ७५ ॥ मोदन्तेपितरस्तस्य घृतकुल्याःपिबन्तिच ॥ श्रीसूत उवाच ॥ श्रुत्वैतद्वचनंविप्रा रामेणोक्तंसवायुजः ॥ ७६ ॥ उत्तरेरामनाथस्य लिङ्गंस्वेनाहृतम्मुदा ॥ आज्ञयारामचन्द्रस्य स्थापयामासवायुजः ॥ ७७ ॥ प्रत्यक्षमेवसर्वेषां कपिलाङ्गूलवेष्टितम् ॥ हरोपितत्पुच्छजातम्बिभर्तिचवलित्रयम् ॥ तदुत्तरायांककुभि गौरींसंस्थापयेन्मुदा ॥ ७८ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवंवःकथितंविप्रा यदर्थं राघवेणतु ॥ लिङ्गंप्रतिष्ठितंसेतौ भुक्तिमुक्तिप्रदन्नृणाम् ॥ ७९ ॥ यःपठेदिममध्यायं शृणुयाद्वासमाहितः ॥ सविधूयेहपापानि शिवलोकेमहीयते ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येरामनाथलिङ्गप्रतिष्ठाकारणकथनन्नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

किया ॥ ७७ ॥ और सबों के सामनेही शिवजी भी कपि (हनुमान्जी) के लांगूल से घिरीहुई और उनकी पूंछ से उत्पन्न तीन वलियों को धारण करते हैं और उसके उत्तर की दिशा में प्रसन्नता से गौरीजी को स्थापित करै ॥ ७८ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! तुम लोगों से इस प्रकार कहागया कि जिसलिये श्रीरामजी ने सेतु पै मनुष्यों को भुक्ति, मुक्ति देनेवाले लिंग को स्थापन कियाहै ॥७९॥ सावधान होता हुआ जो मनुष्य इस अध्याय को पढ़ता या सुनता है वह इस लोक में पातकों को नाशकर शिवलोक में पूजा जाता है ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामनाथलिङ्गप्रतिष्ठाकारणकथनंनामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

दो॰। मारि रावणहिं रामजी ब्रह्मघात सों युक्त। भे सैंतालिस में सोई चरित अहै शुभउक्त॥ ऋषिलोग बोले कि हे महामुने, सूतजी! रावण राक्षस के मारने से महात्मा रघुनाथजी के ब्रह्महत्या कैसे हुई है॥ १॥ हे मुने, सूतजी! ब्राह्मण के मारने से ब्रह्महत्या होती है और दशानन (रावण) ब्राह्मण न था तो कैसे ब्रह्महत्या हुई उसको हम लोगों से कहिये॥ २॥ बुद्धिमान् रामचन्द्रजी को क्रूर ब्रह्महत्या हुई है इस समय श्रद्धावान् हम लोगों से इसको दया से कहिये॥ ३॥ उस समय नैमिषारण्यनिवासी मुनियों से इस प्रकार पूंछेहुए सूतजी ने प्रश्न के उत्तम उत्तर को कहने के लिये प्रारम्भ किया॥ ४॥ श्रीसूतजी बोले कि ब्रह्मा के पुत्र बड़े

ऋषय ऊचुः॥ राक्षसस्यवधात्सूत रावणस्यमहामुने॥ ब्रह्महत्याकथमभूद्राघवस्यमहात्मनः॥ १॥ ब्राह्मणस्यवधात्सूत ब्रह्महत्याभिजायते॥ नब्राह्मणोदशग्रीवः कथंतद्वदनोमुने॥ २॥ ब्रह्महत्याभवत्क्रूरा रामचन्द्रस्यधीमतः॥ एतन्नःश्रद्दधानानां वदकारुण्यतोधुना॥ ३॥ इतिपृष्टस्ततःसूतो नैमिषारण्यवासिभिः॥ वक्तुम्प्रचक्रमेतेषां प्रश्नस्योत्तरमुत्तमम्॥ ४॥ श्रीसूत उवाच॥ ब्रह्मपुत्रोमहातेजाः पुलस्त्योनामवैद्विजाः॥ बभूवतस्यपुत्रोभूद्विश्रवाइतिविश्रुतः॥ ५॥ तस्यपुत्रःपुलस्त्यस्य विश्रवामुनिपुङ्गवाः॥ चिरकालंतपस्तेपे देवैरपिसुदुष्करम्॥ ६॥ तपःकुर्वतितस्मिंस्तु सुमाली नामराक्षसः॥ पाताललोकाद्भूलोकं सर्ववैविचचारह॥ ७॥ हेमनिष्काङ्गदधरः कालमेघनिभच्छविः॥ समादायसुतांकन्यां पद्महीनामिवश्रियम्॥ ८॥ विचरन्समहीपृष्ठे कदाचित्पुष्पकस्थितम्॥ दृष्ट्वाविश्रवसःपुत्रं कुबेरंवैधनेश्वरम्॥ ९॥ चिन्तयामासविप्रेन्द्राः सुमालीसतुराक्षसः॥ कुबेरसदृशःपुत्रो यद्यस्माकम्भविष्यति॥ १०॥ वयंवर्द्धामहे

तेजस्वी पुलस्त्यजी हुए हैं व उनके पुत्र विश्रवा ऐसे प्रसिद्ध हुए॥ ५॥ हे मुनिश्रेष्ठो! उन पुलस्त्यजी के पुत्र विश्रवा ने बहुत समय तक देवताओं से भी कठिन तप किया है॥ ६॥ और उनके तप करते हुए सुमाली नामक राक्षस पाताललोक से सब भूमिलोक में भ्रमता भया॥ ७॥ और कमल से रहित लक्ष्मी की नाईं कुँवारी कन्या को लेकर सुवर्ण की अशर्फी व बजुल्ला को धारण किये काले मेघों के समान छविवाले॥ ८॥ पृथ्वी में घूमतेहुए उस राक्षस ने किसी समय पुष्पक विमान पै स्थित विश्रवा के पुत्र धनेश्वर कुबेरजी को देखकर॥ ९॥ हे द्विजेन्द्रो! उस सुमाली राक्षस ने विचार किया कि यदि हम लोगों के कुबेर के समान पुत्र होवै॥ १०॥ तो सब

कहीं से निडर होकर हम सब राक्षस लोग वृद्धि को प्राप्त होवें ऐसा विचार कर राक्षसेश्वर सुमाली ने अपनी कन्या से कहा ॥ ११ ॥ कि हे शोभने, सुते, कैकसि ! इस समय तुम्हारे दान का समय है और अब तुमको यौवन प्राप्त हैं इसलिये तुम वरके लिये देने योग्य हो ॥ १२ ॥ क्योंकि कन्याओं के न देने से पिता लोग दुःख को पाते हैं परन्तु हे शुभे, सुते ! सब गुणों से उत्तम व लक्ष्मी की नाईं ॥ १३ ॥ तुमको मनुष्य जवाब देने के भय से नहीं मांगते हैं व हे शुभे ! कन्या मान को चाहनेवाले सब पिताओं के दुःख के लिये होती है ॥ १४ ॥ हे कन्यके ! मैं यह नहीं जानता हूं कि कौन वर तुमको ब्याहैगा सो तुम आपही जाकर ब्रह्मा के वंश

सर्वे राक्षसाह्यकुतोभयाः ॥ विचार्यैवंनिजसुतामब्रवीद्राक्षसेश्वरः ॥ ११ ॥ सुतेप्रदानकालोद्य तवकैकसिशोभने ॥ अद्य तेयौवनम्प्राप्तं तद्देयात्वंवरायहि ॥ १२ ॥ अप्रदानेनपुत्रीणां पितरोदुःखमाप्नुयुः ॥ किञ्चसर्वगुणोत्कृष्टा लक्ष्मीरिवसुतेशुभे॥१३॥प्रत्याख्यानभयात्पुम्भिर्नचत्वंप्रार्थ्यसेशुभे॥कन्यापितॄणांदुःखाय सर्वेषांमानकाङ्क्षिणाम्॥१४॥नजानेहंवरःकोवा वरयेदितिकन्यके ॥ सात्वम्पौलस्त्यतनयं मुनिंविश्रवसंद्विजम् ॥ १५ ॥ पितामहकुलोद्भूतं वरयस्वस्वयंगता ॥ कुबेरतुल्यास्तनया भवेयुस्तेनसंशयः ॥ १६ ॥ कैकसीतद्वचःश्रुत्वा साकन्यापितृगौरवात् ॥ अङ्गीचकारतद्वाक्यं तथास्त्वितिशुचिस्मिता ॥ १७ ॥ पर्णशालांमुनिश्रेष्ठा गत्वाविश्रवसोमुनेः ॥ अतिष्ठदन्तिकेतस्य लज्जमानाह्यधोमुखा ॥ १८ ॥ तस्मिन्नवसरेविप्राः पौलस्त्यतनयःसुधीः ॥ अग्निहोत्रमुपास्तेस्म ज्वलत्पावकसन्निभः ॥ १९ ॥ सन्ध्याकालमतिक्रूरमविचिन्त्यतुकैकसी ॥ अभ्येत्यतंमुनिंसुभ्रूः पितुर्वचनगौरवात् ॥२०॥ तस्थावधोमुखीभूमिंलिखत्यङ्गुष्ठ

में उपजे हुए पौलस्त्य के पुत्र विश्रवा नामक द्विज मुनि को वरण करो तो तुम्हारे कुबेर के समान पुत्र होवैंगे इसमें संदेह नहीं है ॥ १५ । १६ ॥ उस वचन को सुन कर श्वेत हास्यवाली उस कैकसी कन्या ने पिता के गौरव से उस वचन को स्वीकार किया कि वैसाही होवै ॥ १७ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठो ! विश्रवा मुनिकी कुटी को जाकर नीचे मुख किये व लज्जित कैकसी उसके समीप स्थित हुई ॥ १८ ॥ हे ब्राह्मणो ! उससमय जलती हुई अग्नि के समान पौलस्त्यतनय बुद्धिमान् विश्रवाजी अग्निहोत्र की उपासना करते थे ॥१९॥ और अत्यन्त क्रूर सन्ध्या समय को न विचार कर सुन्दरी भौंहोंवाली कैकसी पिता के वचन के गौरव से उन मुनि के समीप आकर ॥२०॥ अंगूठे

के किनारे से पृथ्वी को लिखतीहुई नीचे मुख करके खड़ी होगई इसके अनन्तर सूक्ष्मकटिवाली उस कैकसी को देखकर विश्रवा ने ॥ २१ ॥ हे ब्राह्मणो ! मुसक्यान समेत पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाली कैकसी से कहा विश्रवाजी बोले कि हे शोभने ! तुम किसकी कन्या हो और तुम कहां से यहां आई हो ॥ २२ ॥ व हे शुचिस्मिते ! तुम किस कार्य को उद्देश कर यहां वर्तमान हो हे अनिन्दिते ! इस समय तुम मुझ से सब को यथार्थ कहिये ॥ २३ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार कही हुई वह प्रणाम व विनय से संयुत कैकसी कन्या हाथों को जोड़कर उन मुनि से बोली ॥ २४ ॥ कि हे पौलस्त्यकुलदीपन, मुने ! इस समय तुम मेरे

कोटिना ॥ विश्रवास्तांविलोक्याथ कैकसींतनुमध्यमाम् ॥ २१ ॥ उवाचसस्मितोविप्राः पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥ विश्रवाउवाच ॥ शोभनेकस्यपुत्रीत्वं कुतोवात्वमिहागता ॥ २२ ॥ कार्यंकिंवात्वमुद्दिश्य वर्तसेत्रशुचिस्मिते ॥ यथार्थतोवदस्वाद्य ममसर्वमनिन्दिते ॥२३॥ इतीरिताकैकसीसा कन्याबद्धाञ्जलिर्द्विजाः॥उवाचतम्मुनिंप्रह्वविनयेनसमन्विता ॥२४॥ तपःप्रभावेनमुने मदभिप्रायमद्यतु ॥ वेत्तुमर्हसिसम्यक्त्वं पौलस्त्यकुलदीपन ॥ २५ ॥ अहन्तुकैकसीनाम सुमालीदुहितामुने ॥ मत्तातस्याज्ञयाब्रह्मंस्तवान्तिकमुपागता ॥ २६ ॥ शेषंत्वंज्ञानदृष्ट्याद्य ज्ञातुमर्हस्यसंशयः ॥ क्षणंध्यात्वामुनिः प्राह विश्रवाःसतुकैकसीम् ॥ २७ ॥ मयातेविदितंसुभ्रु मनोगतमभीप्सितम् ॥ पुत्राभिलाषिणीसात्वं मामागात्साम्प्रतंशुभे ॥ २८ ॥ सायङ्कालेधुनाक्रूरे यस्मान्मांत्वमुपागता ॥ पुत्राभिलाषिणीभूत्वा तस्मात्त्वाम्प्रब्रवीम्यहम् ॥ २९ ॥ शृणुष्वाव

प्रयोजन को तपस्या के प्रभाव से भलींभांति जानने के योग्य हो ॥ २५ ॥ हे मुने ! सुमाली की कन्या मैं कैकसी नामक हूं व हे ब्रह्मन् ! अपने पिता की आज्ञा से मैं तुम्हारे समीप आई हूं ॥ २६ ॥ और शेष वस्तु को तुम ज्ञान की दृष्टि से निस्सन्देह जानने योग्य हो उन विश्रवा मुनि ने क्षणभर ध्यानकर कैकसी से कहा ॥ २७ ॥ कि हे सुभ्रु ! मैंने तुम्हारे मनमें प्राप्त मनोरथ को जान लिया कि हे शुभे ! इस समय पुत्र को चाहती हुई तुम मेरे समीप आई हो ॥ २८ ॥ हे क्रूरे ! इस समय जिस कारण पुत्र को चाहनेवाली होकर तुम सायंकाल में मेरे समीप आई हो इस कारण मैं तुमसे कहता हूं ॥ २९ ॥ हे अनिन्दिते, रामे, कैकसि ! सावधान होती

हुई सुनिये कि भयंकर आकारवाले व क्रूरजनप्रिय तथा भयंकर ॥ ३० ॥ और क्रूरकर्मी राक्षसों को तुम पुत्र पैदा करोगी उस वचन को सुनकर वह कैकसी उन विश्रवा को प्रणामकर ॥ ३१ ॥ हे ब्राह्मणो ! पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा से हाथों को जोड़कर बोली कि हे भगवन् ! तुमसे ऐसे पुत्र प्राप्त होने के लिये योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥ ऐसा कहेहुए उन मुनिने उस सुन्दर कटिवाली कैकसी से कहा कि तुम्हारा पिछला पुत्र मेरे वंश के समान होगा ॥ ३३ ॥ और वह धर्मवान् व शास्त्रवेत्ता तथा शान्त होगा राक्षसों के समान कर्मवान् न होगा हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार कहीहुई कैकसी ने कुछ समय बीतने पर ॥ ३४ ॥ दश मस्तक व बीस भुजाओंवाले

हितारामे कैकसित्वमनिन्दिते ॥ दारुणान्दारुणाकारान् दारुणाभिजनप्रियान् ॥ ३० ॥ जनयिष्यसिपुत्रांस्त्वं राक्षसान्क्रूरकर्मणः ॥ श्रुततद्वचनासातु कैकसीप्रणिपत्यतम् ॥ ३१ ॥ पुलस्त्यतनयंप्राह कृताञ्जलिपुटाद्विजाः ॥ भगवन्नीदृशाःपुत्रास्त्वत्तःप्राप्तुंनयुज्यते ॥ ३२ ॥ इत्युक्तःसमुनिःप्राह कैकसींतांसुमध्यमाम् ॥ मद्वंशानुगुणःपुत्रः पश्चिमस्तेभविष्यति ॥ ३३ ॥ धार्मिकःशास्त्रविच्छान्तो नतुराक्षसचेष्टितः ॥ इत्युक्ताकैकसीविप्राः कालेकतिपयेगते ॥ ३४ ॥ सुषुवेतनयंक्रूरंरक्षोरूपंभयङ्करम् ॥ द्विपञ्चशीर्षंकुमतिं विंशद्बाहुम्भयानकम् ॥ ३५ ॥ ताम्रोष्ठंकृष्णवदनंरक्तश्मश्रुशिरोरुहम् ॥ महादंष्ट्रंमहाकायं लोकत्रासकरंसदा ॥ ३६ ॥ दशग्रीवाभिधोसोभूत्तथारावणनामवान् ॥ रावणानन्तरंजातः कुम्भकर्णाभिधःसुतः ॥ ३७ ॥ ततःशूर्पनखानाम्ना क्रूराजज्ञेचराक्षसी ॥ ततोबभूवकैकस्या विभीषणइतिश्रुतः ॥ ३८ ॥ पश्चिमस्तनयोधीमान्धार्मिकोवेदशास्त्रवित् ॥ एतेविश्रवसःपुत्रा दशग्रीवादयोद्विजाः ॥ ३९ ॥ अतोदशग्रीववधात्कुम्भ

तथा कुबुद्धि राक्षसरूपी भयंकर व क्रूर पुत्र को पैदा किया ॥ ३५ ॥ जो कि तांबे के समान ओठोंवाला तथा कृष्णमुख और लाल दाढ़ी मूंछ व बालोंवाला था और बड़ी दाढ़ व बड़े शरीरवाला तथा सदैव लोकों को भय करनेवाला था ॥ ३६ ॥ वह दशग्रीव नामक व रावण नामक हुआ और रावण के बाद कुम्भकर्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३७ ॥ तदनन्तर शूर्पणखा नामक भयंकरी राक्षसी पैदा हुई तदनन्तर कैकसी के विभीषण ऐसा प्रसिद्ध पुत्र हुआ ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मणो ! पिछला पुत्र बुद्धिमान्, धर्मवान् व वेद शास्त्रों का ज्ञाता हुआ ये रावण आदिक विश्रवा के पुत्र हुए ॥ ३९ ॥ इस कारण रावण को मारने से व कुम्भकर्ण को मारने से भी

सहजकर्मी श्रीरामचन्द्रजी के ब्रह्महत्या हुई है ॥ ४० ॥ इस कारण हे द्विजोत्तमो ! उसकी शान्ति के लिये श्रीरामजी ने वैदिक विधि से रामेश्वर लिंग को स्थापन किया ॥ ४१ ॥ इस प्रकार बुद्धिमान् व लोकों में सुन्दर श्रीरामचन्द्रजी के रावण के मारने से ब्रह्महत्या की उत्पत्ति हुई है ॥ ४२ ॥ ब्रह्मघात से उपजा हुआ वह पाप आपलोगों से कारण समेत कहागया कि जिसकी शान्ति के लिये श्रीरामचन्द्रजी ने आपही लिंग को स्थापन किया है ॥ ४३ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार लिंग को थापकर सीता व अनुज समेत अतिधर्मवान् श्रीरामचन्द्रजी ने अपना को कृतार्थ माना ॥ ४४ ॥ जहां राजा रामचन्द्रजी की ब्रह्महत्या गई है वहां ब्रह्महत्यामोचन नामक

कर्णवधादपि ॥ ब्रह्महत्यासमभवद्रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ४० ॥ अतस्तच्छान्तयेरामो लिङ्गंरामेश्वराभिधम् ॥ स्थापयामासविधिना वैदिकेनद्विजोत्तमाः ॥ ४१ ॥ एवंरावणघातेन ब्रह्महत्यासमुद्भवः ॥ समभूद्रामचन्द्रस्य लोककान्तस्यधीमतः ॥ ४२ ॥ तत्सहेतुकमाख्यातं भवताम्ब्रह्मघातजम् ॥ पापंयच्छान्तयेरामो लिङ्गम्प्रातिष्ठिपत्स्वयम् ॥ ४३ ॥ एवंलिङ्गंप्रतिष्ठाप्य रामचन्द्रोतिधार्मिकः ॥ मेनेकृतार्थमात्मानं ससीतावरजोद्विजाः ॥ ४४ ॥ ब्रह्महत्यागतायत्र रामचन्द्रस्यभूपतेः ॥ तत्रतीर्थमभूत्किञ्चिद्ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥ ४५ ॥ तत्रस्नानंमहापुण्यं ब्रह्महत्याविनाशनम् ॥ दृश्यतेरावणोद्यापि छायारूपेणतत्रवै ॥ ४६ ॥ तदग्रेनागलोकस्य बिलमस्तिमहत्तरम् ॥ दशग्रीववधोत्पन्नां ब्रह्महत्याम्बलीयसीम् ॥ ४७ ॥ तद्बिलंप्रापयामास जानकीरमणोद्विजाः ॥ तस्योपरिबिलस्याथ कृत्वा मण्डपमुत्तमम् ॥ ४८ ॥ भैरवंस्थापयामास रक्षार्थंतत्रराघवः ॥ भैरवाज्ञापरित्रस्ता ब्रह्महत्याभयङ्करी ॥ ४९ ॥

कोई तीर्थ हुआ है ॥ ४५ ॥ उसमें स्नान महापुण्यदायक व ब्रह्महत्या का विनाशक है और वहां आज भी रावण छाया के रूप से देख पड़ता है ॥ ४६ ॥ और उसके आगे नागलोक का बड़ाभारी बिल है रावण के मारने से उपजीहुई बलवती ब्रह्महत्या को ॥ ४७ ॥ जानकीरमण रघुनाथजी ने उस बिल में प्राप्त किया है व हे ब्राह्मणो ! उस बिल के ऊपर उत्तम मण्डप करके ॥ ४८ ॥ रक्षा के लिये वहां रघुनाथजी ने भैरवजी को स्थापन किया और भैरवजी की आज्ञा से डरीहुई भयंकरी ब्रह्महत्या ॥ ४९ ॥

हे द्विजोत्तमो ! उसके बल से ऊपर निकलने के लिये समर्थ न हुई और उद्यमरहित ब्रह्महत्या उसी बिल में स्थित हुई ॥ ५० ॥ और परमानन्द शिवजी की अर्धशरीरवाली गिरिजा (पार्वती) जी रामनाथ महालिंग के दक्षिण में हर्ष से वर्तमान हैं ॥ ५१ ॥ और वहां त्रिशूलधारी शिवजी के दोनों पार्श्वों में सूर्य व चन्द्रमा वर्तमान हैं और रामनाथदेवजी के आगे अग्निजी वर्तमान हैं ॥ ५२ ॥ और पूर्व में इन्द्र व आग्नेय में अग्नि तथा दक्षिण में रामनाथजी के सेवक यमराजजी वर्तमान हैं ॥ ५३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! शंकरजी के नैर्ऋत्य में निर्ऋति और पश्चिम में वरुणजी भक्ति से राघवेश्वरजी को सेवते हैं ॥ ५४ ॥ और शिवजी

नाशक्नोत्तद्बलादूर्ध्वं निर्गन्तुंद्विजसत्तमाः ॥ तस्मिन्नेवबिलेतस्थौ ब्रह्महत्यानिरुद्यमा ॥ ५० ॥ रामनाथमहालिङ्गदक्षिणे गिरिजामुदा ॥ वर्ततेपरमानन्दशिवस्यार्धशरीरिणी ॥ ५१ ॥ आदित्यसोमौवर्तेते पार्श्वयोस्तत्रशूलिनः ॥ देवस्यपुरतो वह्नीरामनाथस्यवर्तते ॥ ५२ ॥ आस्तेशतक्रतुःप्राच्यामाग्नेय्यांचतथानलः ॥ आस्तेयमोदक्षिणस्यां रामनाथस्यसेवकः ॥ ५३ ॥ नैर्ऋतेनिर्ऋतिर्विप्रा वर्ततेशङ्करस्यतु ॥ वारुण्यांवरुणोभक्त्या सेवतेराघवेश्वरम् ॥ ५४ ॥ वायव्येतुदिशोभागे वायुरास्तेशिवस्यतु ॥ उत्तरस्याञ्चधनदो रामनाथस्यवर्तते ॥ ५५ ॥ ईशान्यस्यचदिग्भागे महेशोवर्ततेद्विजाः ॥ विनायककुमारौच महादेवसुतावुभौ ॥ ५६ ॥ यथाप्रदेशंवर्तेते रामनाथालयेधुना ॥ वीरभद्रादयःसर्वे महेश्वरगणेश्वराः ॥ ५७ ॥ यथाप्रदेशंवर्तन्ते रामनाथालयेसदा ॥ मुनयःपन्नगाःसिद्धा गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः ॥ ५८ ॥ सन्तुष्यमाणहृदया यथेष्टंशिवसन्निधौ ॥ वर्तन्तेरामनाथस्य सेवार्थंभक्तिपूर्वकम् ॥ ५९ ॥ रामनाथस्यपूजार्थं श्रोत्रियान्ब्राह्मणा

के वायव्य दिशा के भाग में पवनजी स्थित हैं व रामनाथजी के उत्तर दिशा में कुबेरजी वर्तमान हैं ॥ ५५ ॥ व हे ब्राह्मणो ! ईशानदिशा के भाग में शिवजी वर्तमान हैं और महादेवजी के दोनों पुत्र गणेश व स्वामिकार्त्तिकेयजी ॥ ५६ ॥ इस समय रामनाथजी के मन्दिर में इच्छा के अनुकूल स्थान में वर्तमान होते हैं और वीरभद्र आदिक सब महेशजी के गणनायक ॥ ५७ ॥ रामनाथजी के मन्दिर में सदैव जिस स्थान में चाहते हैं वहां वर्तमान होते हैं और मुनि, नाग, सिद्ध, गंधर्व व अप्सराओं के गण ॥ ५८ ॥ प्रसन्नहृदय होकर शिवजी के समीप इच्छा के अनुकूल भक्तिपूर्वक रामनाथजी की सेवा के लिये वर्तमान होते हैं ॥ ५९ ॥ और

रघुनाथजी ने रामनाथजी की पूजा के लिये बहुत से वेदपात्र ब्राह्मणों को रामेश्वर में पूजक स्थापित किया ॥ ६० ॥ और रामजी से थापेहुए ब्राह्मणों को हव्य, कव्यादिक से पूजन करै क्योंकि वे और पितरों समेत सब देवता प्रसन्न कराये गये हैं ॥ ६१ ॥ और उन ब्राह्मणों के लिये जानकीनाथजी ने बहुत धनों व ग्रामों को दिया है व हे ब्राह्मणो ! रामनाथ महादेवजी की नैवेद्य के लिये भी ॥ ६२ ॥ लक्ष्मण के बड़े भाई श्रीरामजी ने बहुत ग्रामों व बहुत धन को दिया है और हार, बजुल्ला, कंकण व अशर्फी आदिक भूषणों को ॥ ६३ ॥ और अनेक पट वस्त्र व अनेक भांति के रेशमी वस्त्रों को दशरथकुमार श्रीरामजीने रामनाथदेवजी के लिये दिया है ॥ ६४ ॥

न्बहून् ॥ रामेश्वरेरघुपतिः स्थापयामासपूजकान् ॥ ६० ॥ रामप्रतिष्ठितान्विप्रान्हव्यकव्यादिनार्चयेत् ॥ तुष्टास्तेतोषिताःसर्वाः पितृभिःसहदेवताः ॥ ६१ ॥ तेभ्योबहुधनान्ग्रामान्प्रददौजानकीपतिः ॥ रामनाथमहादेव नैवेद्यार्थमपिद्विजाः ॥ ६२ ॥ बहून्ग्रामान्बहुधनं प्रददौलक्ष्मणाग्रजः ॥ हारकेयूरकटकनिष्काद्याभरणानिच ॥ ६३ ॥ अनेकपटवस्त्राणि क्षौमाणिविविधानिच ॥ रामनाथायदेवाय ददौदशरथात्मजः ॥ ६४ ॥ गङ्गाचयमुनापुण्या सरयूचसरस्वती ॥ सेतौरामेश्वरंदेवं भजन्तेस्वाघशान्तये ॥ ६५ ॥ एतदध्यायपठनाच्छ्रवणादपिमानवः ॥ विमुक्तःसर्वपापेभ्यः सायुज्यंलभतेहरेः ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येरामस्यब्रह्महत्योत्पत्तिहेतुनिरूपणंनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

श्रीसूत उवाच ॥ रामनाथं समुद्दिश्य कथाम्पापविनाशिनीम् ॥ प्रवक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वं सुसमाहि

और गंगा, यमुना व पवित्र सरयू तथा सरस्वतीजी अपने पाप की शान्ति के लिये सेतु पै रामेश्वरदेव को भजती हैं ॥ ६५ ॥ इस अध्याय के पढ़ने व सुनने से भी मनुष्य सब पापों से छूटकर विष्णुजी की सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामस्यब्रह्महत्योत्पत्तिहेतुनिरूपणंनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । ब्रह्मघात सों मुक्त भो शंकर नाम नृपाल । अर्तालिसवें में सोई कह्यो चरित्र रसाल ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठो ! रामनाथजी को उद्देश कर पाप विना-

रानवाला कथा को कहता हूं तुम लोग सावधान होकर सुनो ॥ १ ॥ पुरातन समय पांड्यदेश का स्वामी शंकर नामक राजा हुआ है जोकि ब्रह्मण्य व सत्यप्रतिज्ञ वाला तथा यज्ञकारक और धर्मवान् था ॥ २ ॥ और वेदों व वेदाङ्गों के तत्त्व को जाननेवाला तथा शत्रु की सेना को विदारनेवाला था और चारो वर्णों व आश्रमों को भी धर्म से पालन करता हुआ वह ॥ ३ ॥ वैदिक आचार में तत्पर तथा पुराणों व स्मृतियों का पारगामी था और सदैव शिव व विष्णु को पूजनेवाला तथा अन्य देवताओं का पूजक था ॥ ४ ॥ और सदैव महात्माओं व ब्राह्मणों को महादान देता था किसी समय वह बुद्धिमान् राजा शिकार के लिये तपोवन को गया ॥ ५ ॥ और

ताः ॥ १ ॥ पाण्ड्यदेशाधिपोराजा पुरासीच्छंकराभिधः ॥ ब्रह्मण्यःसत्यसङ्घश्च यायजूकश्चधार्मिकः ॥ २ ॥ वेदवेदाङ्ग तत्त्वज्ञः परसैन्यविदारणः ॥ चतुरोप्याश्रमान्वर्णान्धर्मतःपरिपालयन् ॥ ३ ॥ वैदिकाचारनिरतः पुराणस्मृतिपारगः ॥ शिवविष्णवर्चकोनित्यमन्यदैवतपूजकः ॥४॥ महादानप्रदोनित्यं ब्राह्मणानांमहात्मनाम् ॥ मृगयार्थययौधीमान्सक दाचित्तपोवनम् ॥ ५ ॥ सिंहव्याघ्रेभमहिषक्रूरसत्त्वंभयङ्करम् ॥ झिल्लिकाभीषणरवं सरीसृपसमाकुलम् ॥ ६ ॥ भी मश्वापदसम्पूर्णं दावानलभयंकरम् ॥ महारण्यम्प्रविश्याथ शंकरोराजशेखरः ॥ ७॥ अनेकसैनिकोपेत आखेटिकुल संकुलः ॥ पादुकागूढचरणो रक्तोष्णीषोहरिच्छदः ॥ ८ ॥ बद्धगोधांगुलित्राणो धृतकोदण्डसायकः ॥ कक्ष्याबद्धमहा खड्गः श्वेताश्ववरमास्थितः ॥ ९ ॥ सुवेषधारीसन्नद्धः पत्तिसङ्घसमावृतः ॥ कान्तारेषुचरम्येषु पर्वतेषुगुहासुच ॥ १० ॥

सिंह, व्याघ्र, हाथी व भैंसे आदिक क्रूर जन्तुओंवाले तथा भयंकर व झिल्ली के भयंकर शब्दवारे तथा सर्पों से संयुत ॥ ६ ॥ और भयानक हिंसक जीवों से पूर्ण व दावानल से भयंकर महावन में पैठकर राजवर शंकर ॥ ७ ॥ अनेक सैनिकों से संयुत तथा शिकारीजनों से युक्त व पांव में पनहियों को पहने व लाल पगड़ी को बांधे व हरित वसनों को पहने था ॥ ८ ॥ और गोह की खाल के दस्तानों को बांधे व धनुषबाण को धारण किये था और पेटी में बड़ी भारी तलवार को बांधे और सफेद घोड़े पै सवार था ॥ ९ ॥ व पैदल के गणों से घिराहुआ व सन्नद्ध और उत्तम वेष को धारनेवाला वह सुन्दर वनों व पर्वतों और गुहाओं में घूमता था ॥ १० ॥

और बड़े भारी सोत को नांघकर युवा व सिंह के समान बलवान् वह सेनाओं समेत गुहाओं में मृगों को ढूंढ़ता हुआ घूमता रहा ॥ ११॥ यह माराजावै माराजावै क्योंकि वेग से वन में मृग जाता है सैनिकों के ऐसा कहने पर आपही कूदकर शंकर ॥ १२ ॥ महाराज वनस्थली में ढूंढ़कर मृग को मारता था सिंह, वराह, भैंसे व हाथी और शरभ ॥ १३ ॥ तथा अन्य वन के मृगों को मारता हुआ शंकर राजा कहीं वनस्थली में कंदरा के मध्य में बसनेवाले ॥ १४ ॥ व नियत मनवाले तथा व्याघ्रचर्मधारी शान्त मुनिको व्याघ्र की बुद्धि से कुछ झुकीहुई गांठियोंवाले बाण से शीघ्रही मारता भया ॥ १५ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! उस बाण ने पति के समीप बैठीहुई पति में

समुत्तीर्णमहास्रोतो युवासिंहपराक्रमः ॥ विचचारबलैःसाकं दरीषुमृगयन्मृगान् ॥ ११ ॥ वध्यतांवध्यतामेष याति वेगान्मृगोवने ॥ एवंवदत्सुसैन्येषु स्वयमुत्प्लुत्यशंकरः ॥ १२ ॥ मृगंहन्तिमहाराजो विगाह्यविपिनस्थलीम् ॥ सिंहान्वराहान्महिषान्कुञ्जराञ्छरभांस्तथा ॥ १३ ॥ विनिघ्नन्समृगानन्यान्वन्याञ्छंकरभूपतिः ॥ कुत्रचिद्विपिनोद्देशे दरीमध्यनिवासिनम् ॥ १४ ॥ व्याघ्रचर्मधरंशान्तं मुनिंनियतमानसम् ॥ व्याघ्रबुद्ध्याजघानाशु शरेणानतपर्वणा ॥ १५ ॥ अतिवेगेनविप्रेन्द्रास्तत्पत्नींचससायकः ॥ निजघानपतिप्राणां निविष्टांपत्युरन्तिके ॥ १६ ॥ विलोक्य मातापितरौ तत्पुत्रोनिहतौवने ॥ रुरोदभृशदुःखार्तो विललापचकातरः ॥ १७ ॥ भोस्तातमातर्मांहित्वा युवांयातौक्वाधुना ॥ अहंकुत्रगमिष्यामि कोवामेशरणम्भवेत् ॥ १८ ॥ कोमामध्यापयेद्वेदाञ्छास्त्रंवापाठयेत्पितः ॥ अम्बमेभोजनंकावादास्यतेसोपदेशकम् ॥ १९ ॥ आचाराञ्छिक्षयेत्को वा तातत्वयिमृतेधुना ॥ अम्बबालंप्रकुपितं कावामामुपला

प्राणोंवाली उसकी स्त्री को भी बड़े वेग से मारा ॥ १६ ॥ और माता, पिता को मरे हुए देखकर बहुतही दुःख से विकल व भयभीत उसका पुत्र वनमें रोनेलगा ॥ १७ ॥ कि हे पिता व हे माता ! इस समय मुझको छोड़कर तुम दोनों कहां चलेगये मैं कहां जाऊं और मेरा कौन रक्षक होगा ॥ १८ ॥ हे पिताजी ! मुझको वेदों व शास्त्र को कौन पढ़ावैगा व हे माता ! मुझको शिक्षा समेत कौन स्त्री भोजन देवैगी ॥ १९ ॥ व हे पिताजी ! इससमय तुम्हारे मरने पर कौन आचारों को सिखावैगा व हे माता !

क्रोध कियेहुए मेरा कौन प्यार करैगी ॥ २० ॥ इस समय तपस्या में परायण व मेरे प्राणरूप विना अपराधी तुम दोनों मेरे माता पिता वन में किस पाप से बाणों करके मारेगये ॥ २१ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार उन दोनों के पुत्र ने बहुत चिल्लाकर रोदन किया इसके अनन्तर प्रलाप को सुनकर बनमें घूमता हुआ वह शंकर राजा शीघ्रही उस शब्द के सामने गुहा को गया और वहां के मुनिलोग भी शीघ्रही उस आश्रम को आये ॥ २२ । २३ ॥ हे ब्राह्मणो ! वे सब मुनिलोग बाण से मारेहुए मुनिको व नष्ट हुई उसकी स्त्री को देखकर और धनुषधारी राजा को देखकर ॥ २४ ॥ व विलाप करतेहुए पुत्रको भी देखकर बहुत विकल हुए और उन्होंने डरेहुए पुत्रको

लयेत् ॥ २० ॥ युवांनिरागसावद्य केनपापेनसायकैः ॥ निहतौवैतपोनिष्ठौ मत्प्राणौमद्गुरूवने ॥ २१ ॥ एवंतयोःसुतो विप्रा मुक्तकण्ठंरुरोदवै ॥ अथप्रलपितंश्रुत्वा शंकरोविपिनेचरन् ॥ २२ ॥ तच्छब्दाभिमुखः सद्यः प्रययौसदरीमुखम् ॥ तत्रत्यामुनयोप्याशु समागच्छंस्तमाश्रमम् ॥ २३ ॥ तेदृष्ट्वामुनयःसर्वे शरेणनिहतंमुनिम् ॥ तत्पत्नींचहतांविप्रा रा जानंचधनुर्धरम् ॥ २४ ॥ विलपन्तंसुतंचापि विलोक्यभृशविह्वलाः ॥ पुत्रमाश्वासयामासुर्मारोदीरितिकातरम् ॥ २५ ॥ मुनय ऊचुः ॥ आढ्येवापिदरिद्रेवा मूर्खेवापण्डितेपिवा ॥ पीनेवाथकृशेवापि समवर्तीपरेतराट् ॥ २६ ॥ वनेवानगरे ग्रामे पर्वतेवास्थलान्तरे ॥ मृत्योर्वशेप्रयातव्यं सर्वैरपिहिजन्तुभिः ॥ २७ ॥ वत्सनित्यंचगर्भस्थैर्जातैरपिचजन्तुभिः ॥ युवभिःस्थविरैःसर्वैर्यातव्यंयमपत्तनम् ॥ २८ ॥ वर्णिभिश्चगृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्चभिक्षुभिः ॥ कालेप्राप्तेत्वयंदेहस्त्यक्त व्योद्विजपुत्रक ॥ २९ ॥ ब्राह्मणैःक्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरपिचसंकरैः ॥ यातव्यःप्रेतनिलये द्विजपुत्रमहामते ॥ ३० ॥ देवाश्च

यह समझाया कि मत रोवो ॥ २५ ॥ मुनिलोग बोले कि धनी, निर्धनी व मूर्ख या पंडित और मोटे व दुबले में भी यमराज समवर्ती हैं ॥ २६ ॥ वन, नगर, ग्राम, पर्वत या अन्य स्थल में सबभी प्राणियों को मृत्यु के वश में जाना है ॥ २७ ॥ हे वत्स ! गर्भ में स्थित व उत्पन्न और युवा व वृद्ध सबभी प्राणियों को यमपुर को जाना है ॥ २८ ॥ हे द्विजपुत्र ! ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यासियों को भी काल प्राप्त होनेपर यह शरीर छोड़ना है ॥ २९ ॥ हे महामते, द्विजपुत्र ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व संकरवर्णों को भी प्रेतस्थान में जाना है ॥ ३० ॥ देवता, मुनि, यक्ष, गंधर्व, नाग व राक्षस और ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक अन्य सब

प्राणी॥ ३१ ॥ नाश को प्राप्त होंगे तुम शोचने के योग्य नहीं हो और अद्वय र.चिदानन्द ब्रह्म जो उपनिषदों में प्राप्त है ॥३२॥ हे सत्तम ! उर.का नाश, जन्म व वृद्धि नहीं होती है मल के पात्र व नवद्वारोंवाले और पीब व रुधिर के स्थान रूप ॥३३॥ तथा कीट गणों से संयुत व बुल्ले के समान और काम, क्रोध, भय, द्रोह, मोह व मत्सरता करनेवाले इस शरीर में ॥३४॥ और पराई स्त्री व पराये क्षेत्र तथा पराये धन में केवल लोभ करनेवाले और हिंसा, ईर्ष्या व अशुद्धि से पूर्ण तथा मल, मूत्र के एकही पात्ररूप शरीर में ॥ ३५ ॥ जो उत्तम बुद्धि करताहै वह मूढ़ है और वह दुर्बुद्धि है क्योंकि सदैव अपवित्र व बहुत छिद्रों व घटके समान आकारवाले इस शरीर में ॥ ३६ ॥ हे द्विज !

मुनयोयक्षा गन्धर्वोरगराक्षसाः ॥ अन्येचजन्तवःसर्वे ब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ ३१ ॥ सर्वेयास्यन्तिविलयं नत्वंशोचितु मर्हसि ॥ अद्वयंसच्चिदानन्दं यद्ब्रह्मोपनिषद्गतम् ॥ ३२ ॥ न तस्यविलयोजन्म वर्धनंचापिसत्तम ॥ मलभाण्डेनवद्वारे पूयासृक्शोणितालये ॥ ३३ ॥ देहेस्मिन्बुद्बुदाकारे कृमियूथसमाकुले॥ कामक्रोधभयद्रोहमोहमात्सर्यकारिणि॥३४॥ परदारपरक्षेत्रपरद्रव्यैकलोलुपे ॥ हिंसासूयाशुचिव्याप्ते विष्ठामूत्रैकभाजने ॥ ३५ ॥ यःकुर्याच्छोभनधियं समूढःस चदुर्मतिः ॥ बह्वच्छिद्रघटाकारे देहेस्मिन्नशुचौसदा ॥ ३६ ॥ वायोरवस्थितिःकिंस्यात्प्राणाख्यस्यचिरंद्विज ॥ अतो माकुरुशोकंत्वं जननींपितरंप्रति ॥ ३७ ॥ तौस्वकर्मवशाद्यातौ गृहंत्यक्त्वात्विदंक्वचित् ॥ तवकर्मवशात्त्वंच तिष्ठस्य स्मिन्महीतले ॥ ३८ ॥ यदाकर्मक्षयस्तेस्यात्तदात्वंचमरिष्यसि ॥ मरिष्यमाणप्रेतोहि मृतप्रेतस्यशोचति ॥ ३९ ॥ यस्मिन्कालेसमुत्पन्नौ तवमातापितातथा ॥ नतस्मिंस्त्वंसमुत्पन्नस्ततोभिन्नागतिर्हिवः ॥ ४० ॥ यदितुल्यागतिस्ते

प्राण नामक पवन की कैसे बहुत दिन स्थिति होवै इस कारण तुम माता व पिता के लिये मत शोच करो ॥ ३७ ॥ क्योंकि वे दोनों अपने कर्म के वश से इस घरको छोड़कर कहीं चलेगये और अपने कर्म के वश से तुम इस पृथ्वी में स्थित हो ॥ ३८ ॥ और जब तुम्हारे कर्म का नाश होगा तब तुम भी मरजावोगे और मरनेवाला प्रेत मरेहुए प्रेतका शोच करता है ॥ ३९ ॥ जिस समय तुम्हारे माता, पिता पैदाहुए थे उस समय तुम नहीं पैदाहुए थे उसी कारण तुम लोगों की गति भिन्न होगई ॥ ४० ॥

हे महामते ! उन दोनों समेत यदि तुम्हारी गति समान होवै तो जहां मरेहुए वे गये हैं वहां तुमको भी जाना चाहिये ॥४१॥ और मरेहुए प्राणियों के जो बन्धुलोग हैं वे पृथ्वी में जिन आंसुवों को छोड़ते हैं उन आंसुवों को परलोक में मरेहुए प्रेत पीते हैं ॥ ४२ ॥ इस कारण शोच को छोड़ धैर्य कर सावधान होतेहुए तुम इन दोनोंके वैदिक प्रेतकार्यों को करो ॥ ४३ ॥ जिस कारण तुम्हारे ये माता, पिता बाण के मारने से मरगये इस कारण उस दोष की शांति के लिये उन दोनों की अस्थियों को लेकर ॥ ४४ ॥ मुक्तिदायक रामसेतु पै रामनाथ शिवक्षेत्र में स्थापन करो और सपिंडीकरणादिक श्राद्ध को ॥ ४५ ॥ हे द्विजपुत्र ! वहींपर उन दोनों की शुद्धि के लिये करो उससे दुः

स्यात्ताभ्यांसहमहामते ॥ तर्हित्वयापियातव्यं मृतौयत्रहितौगतौ ॥ ४१ ॥ मृतानांबान्धवायेतु मुञ्चन्त्यश्रूणिभूतले ॥ पास्यन्त्यश्रूणितान्यद्धा मृताःप्रेताःपरत्रवै ॥ ४२ ॥ अतःशोकंपरित्यज्य धृतिंकृत्वासमाहितः ॥ अनयोःप्रेतकार्याणि कुरुत्वंवैदिकानितु ॥ ४३ ॥ शरघातान्मृतावेतौ यस्मात्तेजननीपिता ॥ अतस्तद्दोषशान्त्यर्थमस्थीन्यादायवैतयोः ॥ ४४ ॥ रामनाथशिवक्षेत्रे रामसेतौविमुक्तिदे ॥ स्थापयस्वतथाश्राद्धं सपिण्डीकरणादिकम् ॥ ४५ ॥ तत्रैवकुरुशुद्ध्यर्थं तयोर्ब्राह्मणपुत्रक ॥ तेनदुर्मृत्युदोषस्य शान्तिर्भवतिनान्यथा ॥ ४६ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवमुक्तःसमुनिभिः शाकल्यस्यसुतोद्विजाः ॥ जाङ्गलाख्यस्तयोःसर्वं पितृमेधंचकारवै ॥ ४७ ॥ अन्येद्युरस्थीन्यादाय हालास्यंप्रययौचसः ॥ तस्माद्रामेश्वरंसद्यो गत्वायंजाङ्गलोद्विजः ॥ ४८ ॥ मुनिप्रोक्तप्रकारेण तस्मिन्रामेश्वरस्थले ॥ निधाय पित्रोरस्थीनि श्राद्धादीन्यकरोत्तथा ॥ ४९ ॥ प्रथमाब्दिकपर्यन्तं कार्यंतत्राकरोच्चसः ॥ स्थित्वाब्दंसमुनेःपुत्र एकोजाङ्ग

मृत्यु की शांति होगी अन्यथा न होगी ॥ ४६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! मुनियों से इस प्रकार कहेहुए उस जांगल नामक शाकल्य के पुत्र ने उन दोनों के सब पितृयज्ञ को किया ॥ ४७ ॥ और दूसरे दिन वह अस्थियों को लेकर हालास्य क्षेत्र को गया और वहां से शीघ्रही इस जांगल नामक ब्राह्मणने रामेश्वर को जाकर ॥ ४८ ॥ उस रामेश्वर स्थल में मुनियों से कहीहुई विधि से माता, पिता की अस्थियों को स्थापित कर श्राद्धादिकों को किया ॥ ४९ ॥ और वहां उसने प्रथम वार्षिकपर्यन्त कार्य

किया और अकेला जांगल नामक वह मुनि का पुत्र वर्षभर टिककर ॥ ५० ॥ वार्षिक श्राद्ध के अन्तवाले दिन में वह ब्राह्मण रात्रि में अपनी माता व पिता को स्वप्न में शङ्ख, चक्र व गदाधारी देखकर ॥ ५१ ॥ व गरुड़ के ऊपर बैठेहुए तथा कमलों की माला से भूषित व तुलसी की माला से शोभित तथा चमकतेहुए मकराकृति कुंडलोंवाले ॥ ५२ ॥ और कौस्तुभमणि से भूषित वक्षस्थलवाले व पीताम्बर से शोभित इस प्रकार माता, पिता को देखकर मुनिपुत्र जांगल ने प्रसन्नमन होकर ॥ ५३ ॥ हे द्विजो ! फिर अपने आश्रमको आकर सुख से निवास किया और उस जांगल ने स्वप्न में देखेहुए माता, पिता के वृत्तान्त को ॥ ५४ ॥ बहुत प्रसन्न होकर उन ब्राह्मणों

लसंज्ञकः ॥ ५० ॥ आब्दिकान्तेदिनेविप्रो रात्रौस्वप्नेविलोक्यतु ॥ स्वमातरंचपितरं शङ्खचक्रगदाधरौ ॥ ५१ ॥ गरुडोपरिसंविष्टौ पद्ममालाविभूषितौ ॥ शोभितौतुलसीदाम्ना स्फुरन्मकरकुण्डलौ ॥ ५२ ॥ कौस्तुभालंकृतोरस्कौ पीताम्बरविराजितौ ॥ एवंदृष्ट्वामुनिसुतो जाङ्गलःसुप्रसन्नधीः ॥ ५३ ॥ स्वाश्रमंपुनरागत्य सुखेनन्यवसद्द्विजाः ॥ स्वप्नदृष्टंचवृत्तान्तं मातापित्रोःसजाङ्गलः ॥ ५४ ॥ तेभ्योन्यवेदयत्सर्वं ब्राह्मणेभ्योतिहर्षितः ॥ श्रुत्वातेमुनयोवृत्तमासन्सं प्रीतमानसाः ॥ ५५ ॥ अथराजानमालोक्य सर्वेतेपिमहर्षयः ॥ अवदन्कुपिताविप्राः शपन्तःशङ्करंनृपम् ॥ ५६ ॥ पाण्ड्यभूपमहामूर्ख क्रौर्याद्ब्राह्मणघातक ॥ स्त्रीहत्याब्रह्महत्याच कृतायस्मात्त्वयाधुना ॥ ५७ ॥ अतःशरीरसंत्यागं कुरुत्वंहव्यवाहने ॥ नोचेत्तवनशुद्धिःस्यात्प्रायश्चित्तशतैरपि ॥ ५८ ॥ त्वत्संभाषणमात्रेण ब्रह्महत्यायुतंभवेत् ॥ अस्मत्सकाशाद्गच्छत्वं पाण्ड्यानांकुलपांसन ॥ ५९ ॥ इत्युक्तोमुनिभिःपाण्ड्यः शङ्करोद्विजपुङ्गवाः ॥ तथास्तुदेहसंत्यागं

से सब निवेदन किया और वे मुनि वृत्तान्त को सुनकर प्रसन्नमन हुए ॥ ५५ ॥ इसके उपरान्त हे ब्राह्मणो ! राजा को देखकर क्रोधित होकर शंकर राजा की निन्दा करतेहुए उन सब भी महर्षियों ने कहा ॥ ५६ ॥ कि हे ब्रह्मघाती, महामूर्ख, पांड्यभूप ! जिसलिये तूने क्रूरता से इस समय स्त्रीहत्या व ब्रह्महत्या की है ॥ ५७ ॥ इस कारण तुम अग्नि में देह का त्यागकरो नहीं तो सैकड़ों प्रायश्चित्तों से भी तुम्हारी शुद्धि न होगी ॥ ५८ ॥ हे पांड्यों के मध्य में वंशनाशक ! तुम्हारे वार्तालापही से दश हजार ब्रह्महत्या होती है इससे तुम हमलोगों के समीप से चलेजावो ॥ ५९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मुनियों से ऐसा कहेहुए पांड्यदेश के राजा शंकर ने कहा कि वैसाही

होगा मैं आपलोगों के समीप ब्रह्महत्या से शुद्धि के लिये अग्नि में शरीर को त्याग करूंगा हे मुनिश्रेष्ठो ! आपलोग मेरे ऊपर दया कीजिये ॥ ६० । ६१ ॥ कि जिस प्रकार शरीर को छोड़ने से मेरा पाप नाश होजावै सब मुनियों से ऐसा कहकर पाण्ड्यदेश के राजा शंकर ने ॥ ६२ ॥ अपने मंत्रियों को बुलाकर यह वचन कहा कि हे मंत्रियो ! मैंने बिन विचार से ब्रह्महत्या की है ॥ ६३ ॥ व महानरक की देनेवाली स्त्रीहत्या की है और मुनियों के वचन से मैं इस पाप से शुद्धि के लिये ॥ ६४ ॥ बड़ी ज्वालाओंवाली जलतीहुई अग्नि में शरीर को त्याग करूंगा तुमलोग शीघ्रही लकड़ियों को लावो और उनसे अग्नि को जलावो ॥ ६५ ॥ और मेरे पुत्र सुरुचि को

करिष्येहव्यवाहने ॥ ६० ॥ ब्रह्महत्याविशुद्ध्यर्थं भवतांसन्निधावहम् ॥ अनुग्रहंमेकुर्वन्तु भवन्तोमुनिसत्तमाः ॥ ६१ ॥ यथाशरीरसंत्यागात्पातकंमेलयंव्रजेत् ॥ एवमुक्त्वामुनीन्सर्वाञ्छङ्करःपाण्ड्यभूपतिः ॥ ६२ ॥ स्वान्मन्त्रिणःसमाहूय बभाषेवचनंत्विदम् ॥ भोमन्त्रिणोब्रह्महत्या मयाकार्यविचारतः ॥ ६३ ॥ स्त्रीहत्याचतथाक्रूरा महानरकदायिनी ॥ एतत्पातकशुद्ध्यर्थं मुनीनांवचनादहम् ॥ ६४ ॥ प्रदीप्तेग्नौमहाज्वाले परित्यक्ष्येकलेवरम् ॥ काष्ठान्यानयताक्षिप्रं तैरग्निश्च समिध्यताम् ॥ ६५ ॥ ममपुत्रंचसुरुचिं राज्येस्थापयताचिरात् ॥ माशोकंकुरुतामात्या दैवतंदुरतिक्रमम् ॥ ६६ ॥ इतीरितान्नृपतिना मन्त्रिणोरुरुदुस्तदा ॥ पाण्ड्यनाथमहाराज रिपूणामपिवत्सल ॥ ६७ ॥ वयंहिभवतानित्यं पुत्रवत्परिपालिताः ॥ त्वांविनानप्रवेक्ष्यामः पुरींदेवपुरोपमाम् ॥ ६८ ॥ हव्यवाहंप्रवेक्ष्यामो महाकाष्ठसमेधितम् ॥ तेषांप्रलपितं श्रुत्वा पाण्ड्यःशङ्करभूपतिः ॥ ६९ ॥ प्रोवाचमन्त्रिणःसर्वान्वचनंसान्त्वपूर्वकम् ॥ शङ्कर उवाच ॥ किंकरिष्यथभोमा

शीघ्रही राज्य पै स्थापित करो हे मंत्रियो ! शोच मत करो क्योंकि दैव उल्लंघन नहीं किया जासक्ता है ॥ ६६ ॥ उस समय राजा से ऐसा कहेहुए मंत्री लोग रोनेलगे कि हे शत्रुवों को भी प्यारे, पांड्यनाथ, महाराज ! ॥ ६७ ॥ आप ने हमलोगों का सदैव पुत्रकी नाईं पालन किया है इससे सुरपुर के समान पुरी में हमलोग तुम्हारे विना नहीं पैठैंगे ॥ ६८ ॥ बरन महाकाष्ठों से बढ़ी हुई अग्नि में पैठजावैंगे उनके विलाप को सुनकर पांड्यदेश के शंकर राजा ने ॥ ६९ ॥ प्रिय वचनपूर्वक सब मंत्रियों

से वचन कहा शंकर बोले कि हे मंत्रियो ! तुमलोग महापातकी मुझसे क्या करोगे ॥ ७० ॥ क्योंकि यह खेद है कि सिंहासन पै बैठकर चारों समुद्रों तक पृथ्वी का पालन करना मुझको अयोग्य है ॥ ७१ ॥ इस कारण तुमलोग मेरे पुत्र सुरुचि को शीघ्रही राज्यासन पै बिठालो और अग्नि में पैठने के लिये शीघ्रही लकड़ियों को लाइये ॥ ७२ ॥ तुमलोग मेरे श्रेष्ठ मंत्री हो इससे इस समय देरको छोड़ दीजिये ऐसा कहेहुए वे मंत्री लोग क्षणभर में लकड़ियों को लेआये ॥ ७३ ॥ और लकड़ियों से जलतीहुई अग्नि को देखकर उस समय शुद्धचित्तवाले शंकर राजा ने मुनियों के समीप स्नान व आचमन कर ॥ ७४ ॥ शीघ्रता समेत अग्नि व उन मुनियों की

त्या महापातकिनामया ॥ ७० ॥ सिंहासनंसमारुह्य नकर्तुंयुज्यतेबत ॥ चतुरर्णवपर्यन्तधरापालनमञ्जसा ॥ ७१ ॥ मत्पुत्रंसुरुचिंशीघ्रमतःस्थापयतासने ॥ काष्ठान्यानयतक्षिप्रं प्रवेष्टुंहव्यवाहनम् ॥ ७२ ॥ मममन्त्रिवरायूयं विलम्बन्त्यजताधुना ॥ इत्युक्तामन्त्रिणःकाष्ठं समानिन्युःक्षणेनते ॥ ७३ ॥ अग्निंप्रज्वलितंकाष्ठैर्दृष्ट्वाशङ्करभूपतिः ॥ स्नात्वाचम्यविशुद्धात्मा मुनीनांसन्निधौतदा ॥ ७४ ॥ अग्निंप्रदक्षिणीकृत्य तान्मुनीनपिसत्वरम् ॥ अग्निंमुनीन्नमस्कृत्य ध्यात्वादेवमुमापतिम् ॥ ७५ ॥ अग्नौपतितुमारेभे धैर्यमालम्ब्यभूपतिः ॥ तस्मिन्नवसरेविप्रा मुनीनामपिशृण्वताम् ॥ ७६ ॥ अशरीरासमुदभूद्वाणीभैरवनादिनी ॥ भोःशङ्करमहीपाल मानलंप्रविशाधुना ॥ ७७ ॥ ब्रह्महत्यानिमित्तन्ते भयंमाभून्महामते ॥ तवोपदेशंवक्ष्यामि रहस्यंवेदसम्मितम् ॥ ७८ ॥ शृणुष्वावहितोराजन्मदुक्तंक्रियतान्त्वया ॥ दक्षिणाम्बुनिधेस्तीरे गन्धमादनपर्वते ॥ ७९ ॥ रामसेतौमहापुण्ये महापातकनाशने ॥ रामप्रतिष्ठितंलिङ्गं

भी प्रदक्षिणा कर और अग्नि व मुनियों को प्रणामकर पार्वतीपति सदाशिवजी को ध्यानकर ॥ ७५ ॥ राजा ने धीरज धरकर अग्नि में गिरने का प्रारम्भ किया हे मुनियो ! उस समय मुनियों के भी सुनतेहुए ॥ ७६ ॥ भयंकरशब्दवाली अशरीरिणी वाणी उत्पन्न हुई कि हे शंकर राजन् ! इस समय तुम अग्नि में मत पैठो ॥ ७७ ॥ और ब्रह्महत्या के कारण तुमको डर न होवै क्योंकि मैं वेदों से सम्मित गुप्त उपदेश को तुम से कहती हूं ॥ ७८ ॥ हे राजन् ! सावधान होकर सुनो और तुम को मेरा कहना करना चाहिये कि दक्षिण समुद्र के किनारे गन्धमादन पर्वत पै ॥ ७९ ॥ महापापों को नाशनेवाले व महापवित्र रामसेतु पै श्रीरामजी से

स्थापित रामनाथ शिवजी को ॥ ८० ॥ तुम एक वर्ष भरतक त्रिकाल सेवन करो और प्रदक्षिणा परिक्रमा व प्रणाम करो ॥ ८१ ॥ और तुम रामनाथजी का महाभिषेक करो व हे राजन्! प्रतिदिन अनेक प्रकार की नैवेद्य करो ॥ ८२ ॥ और चन्दन, अगरु व कपूर से श्रीरामलिंग को पूजो और दो भार गऊ के घी से तुम स्नान करावो ॥ ८३ ॥ और प्रतिदिन दोभार प्रमाणभर गौवों के दूध से भी नहवावो व हे प्रभो! द्रोण प्रमाणभर शहद से प्रतिदिन उस लिंग को नहवावो ॥ ८४ ॥ व हे भूपते! प्रतिदिन हविष्यान्न से नैवेद्य करो और प्रतिदिन तिलके तैल से दीपाराधन करो ॥ ८५ ॥ हे नृपेन्द्र! त्रिशूलधारी रामनाथजी के इस कर्म से उसीक्षण

रामनाथंमहेश्वरम् ॥ ८० ॥ सेवस्ववर्षमेकंत्वं त्रिकालंभक्तिपूर्वकम् ॥ प्रदक्षिणप्रक्रमणं नमस्कारंचवैकुरु ॥ ८१ ॥ महाभिषेकःक्रियतां रामनाथस्यवैत्वया ॥ नैवेद्यंविविधंराजन् क्रियतांचदिनेदिने ॥ ८२ ॥ चन्दनागरुकर्पूरैरामलिङ्गं प्रपूजय ॥ भारद्वयेनगव्येन ह्याज्येनत्वभिषेचय ॥ ८३ ॥ प्रत्यहंचगवांक्षीरैर्द्विभारपरिसम्मितैः ॥ मधुद्रोणेनतल्लिङ्गं प्रत्यहंस्नापयप्रभो ॥ ८४ ॥ प्रत्यहंपायसान्नेन नैवेद्यंकुरुभूपते ॥ प्रत्यहंतिलतैलेन दीपाराधनमाचर ॥ ८५ ॥ एतेनतवराजेन्द्र रामनाथस्यशूलिनः ॥ स्त्रीहत्याब्रह्महत्याच तत्क्षणादेवनश्यतः ॥ ८६ ॥ दर्शनाद्रामनाथस्य भ्रूणहत्याशतानिच ॥ अयुतंब्रह्महत्यानां सुरापानायुतंतथा ॥ ८७ ॥ स्वर्णस्तेयायुतंराजन् गुरुस्त्रीगमनायुतम् ॥ एतत्संसर्गदोषाश्च विनश्यन्तिक्षणाद्विभो ॥ ८८ ॥ महापातकतुल्यानि यानिपापानिसन्तिवै ॥ तानिसर्वाणिनश्यन्ति रामनाथस्यसेवया ॥ ८९ ॥ महतीरामनाथस्य सेवालभ्येतचेन्नृणाम् ॥ किंगङ्गयाचगयया प्रयागेणाध्व

तुम्हारी स्त्रीहत्या व ब्रह्महत्या नाश होजावैगी ॥ ८६ ॥ क्योंकि रामनाथजी के दर्शन से सैकड़ों बालहत्या व दशहज़ार ब्रह्महत्या तथा दशहज़ार मदिरापान ॥ ८७ ॥ व हे विभो, राजन्! दशहज़ार सुवर्ण की चोरी व दशहज़ार गुरुस्त्रीगमन और इनके संसर्गवाले दोष क्षणभर में नाश होजाते हैं ॥ ८८ ॥ और महापातकों के समान जो अन्य पाप हैं वे सब रामनाथजी की सेवा से नाश होजाते हैं ॥ ८९ ॥ यदि मनुष्यों को रामनाथजी की बड़ी भारी सेवा मिलै तो गंगा, गया व प्रयाग

श्रौर यज्ञ से क्या है ॥ ९० ॥ इस कारण हे विभो ! तुम रामसेतु पै जाओ श्रौर रुदैव रामनाथजी को भजो देर मत करो वरन जाने में शीघ्रता करो ॥ ९१ ॥ यह कहकर वह अशरीरिणी वाणी चुप होगई श्रौर उसको सुनकर सब मुनियों ने राजा को शीघ्रता कराया ॥ ९२ ॥ कि हे महाराज ! मुक्तिदायक रामसेतु को शीघ्रही जाओ क्योंकि रामनाथजी के प्रभाव को न जानकर हमलोगों ने यह कहा था ॥ ९३ ॥ कि इस समय जलतीहुई अग्नि में देह का त्याग करो मुनीश्वरों से इस प्रकार आज्ञा दियाहुआ वह शंकर राजा ॥ ९४ ॥ शीघ्रता संयुत होकर चतुरंगिणी सेना को पुरी में पठाकर सब मुनियों को प्रणामकर प्रसन्नचित्त से ॥ ९५ ॥ कुछ

रेणवा ॥ ९० ॥ तद्गच्छरामसेतुंत्वं रामनाथंभजानिशम् ॥ विलम्बंमाकुरुविभो गमनेचत्वरांकुरु ॥ ९१ ॥ इत्युक्त्वाविररामाथ सापिवागशरीरिणी ॥ तच्छ्रुत्वामुनयःसर्वे त्वरयन्तिस्मभूपतिम् ॥ ९२ ॥ गच्छशीघ्रंमहाराज रामसेतुंविमुक्तिदम् ॥ रामनाथस्यमाहात्म्यमज्ञात्वास्माभिरीरितम् ॥ ९३ ॥ देहत्यागंकुरुष्वेति वह्नौप्रज्वलितेधुना ॥ अनुज्ञातोमुनिवरैरितिराजा सशङ्करः ॥ ९४ ॥ चतुरङ्गबलंपुर्यां प्रापयित्वात्वरान्वितः ॥ नमस्कृत्यमुनीन्सर्वान्प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ९५ ॥ वृतःकतिपयैःसैन्यैः समादायधनंबहु ॥ रामनाथस्यसेवार्थमायासीद्गन्धमादनम् ॥ ९६ ॥ उवासवर्षमेकंच रामसेतौविशुद्धिदे ॥ एकभुक्तोजितक्रोधो विजितेन्द्रियसञ्चयः ॥ ९७ ॥ त्रिसन्ध्यंरामनाथंच सेवमानःसभक्तिकम् ॥ प्रददौरामनाथाय दशभारंधनंमुदा ॥ ९८ ॥ प्रत्यहंरामनाथस्य महापूजामकारयत् ॥ अकरोच्चधनुष्कोटौ प्रत्यहंभक्तिपूर्वकम् ॥ ९९ ॥ स्नानंप्रतिदिनंचान्नं ब्राह्मणेभ्योददौमुदा ॥ अशरीरावचःप्रोक्तमखिलंपूजनंतथा ॥ १०० ॥ एवंकृतवत

सेना से घिरकर व बहुत धनको लेकर रामनाथजी की सेवा के लिये गन्धमादन पर्वत को गया ॥ ९६ ॥ श्रौर उसने शुद्धिदायक रामसेतु पै एक वर्ष भरतक निवास किया श्रौर एक बार भोजनकर क्रोध को जीते व इन्द्रियगण को जीतेहुए वह राजा ॥ ९७ ॥ भक्तिसमेत त्रिकाल रामनाथजी की सेवा करता रहा श्रौर उसने हर्ष से रामनाथजी के लिये दश भार धनको दिया ॥ ९८ ॥ श्रौर प्रतिदिन रामनाथजी की बड़ीभारी पूजा किया श्रौर प्रतिदिन धनुष्कोटि में भक्तिपूर्वक स्नान किया श्रौर प्रतिदिन ब्राह्मणों के लिये अन्न दिया श्रौर अशरीरिणी वाणी से कहाहुआ सब पूजन किया ॥ ९९ । १०० ॥ हे ब्राह्मणो ! ऐसा करतेहुए उसको एक वर्ष

व्यतीत होगया और वर्ष के अन्त में पवित्र होकर उस प्रसन्नमनवाले शंकर ने ॥ १ ॥ दयानिधान रामनाथ शिवजी की स्तुति किया शंकर बोले कि पार्वती के पति रुद्र रामनाथ शिवजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ २ ॥ हे देव ! दया से मेरी रक्षाकरो और शीघ्रही मेरी ब्रह्महत्या को जलावो हे त्रिपुरविनाशक ! हे कालकूट विष को खानेवाले, महादेवजी ! ॥ ३ ॥ हे दयासिन्धो ! तुम मेरी रक्षा करो व मेरी स्त्रीहत्या को छुड़ावो हे गंगाधर, विरूपनयन, त्रिलोचन, रामनाथजी ! ॥ ४ ॥ हे विभो ! दयादृष्टि से मेरी रक्षा कीजिये व मेरे पाप को काटिये हे कामशत्रु ! हे भक्तों के मनोरथ को देनेवाले, राघवेश्वर ! ॥ ५ ॥ हे मार्कंडेयजी को भय

स्तस्य वर्षमेकंगतंद्विजाः ॥ वर्षान्तेसशुचिर्भूत्वा शङ्करस्तुष्टमानसः ॥ १ ॥ तुष्टावपरमेशानं रामनाथंघृणानिधिम् ॥ शङ्कर उवाच ॥ नमामिरुद्रमीशानं रामनाथमुमापतिम् ॥ २ ॥ पाहिमांकृपयादेव ब्रह्महत्यांदहाशुमे ॥ त्रिपुरघ्नमहादेव कालकूटविषादन ॥ ३ ॥ रक्षमांत्वंदयासिन्धो स्त्रीहत्यांमेविमोचय ॥ गङ्गाधरविरूपाक्ष रामनाथत्रिलोचन ॥ ४ ॥ मांपालयकृपादृष्ट्या छिन्धिमत्पातकंविभो ॥ कामारेकामसंदायिन्भक्तानांराघवेश्वर ॥ ५ ॥ कटाक्षंपातयमयि शुद्धंमांकुरुधूर्जटे ॥ मार्कण्डेयभयत्राण मृत्युञ्जयशिवाव्यय ॥ ६ ॥ नमस्तेगिरिजार्धाय निष्पापंकुरुमांसदा ॥ रुद्राक्षमालाभरण चन्द्रशेखरशङ्कर ॥ ७ ॥ वेदोक्तसम्यगाचारयोग्यंमांकुरुतेनमः ॥ सूर्यदन्तभिदेतुभ्यं भारतीनासिकाच्छिदे ॥ ८ ॥ रामेश्वरायदेवाय नमोमेशुद्धिदोभव ॥ आनन्दंसच्चिदानन्दं रामनाथवृषध्वजम् ॥ ९ ॥ भूयोभूयोनमस्या

से रक्षा करनेवाले, मृत्युंजय, अव्यय, शिव ! हे धूर्जटे ! मेरे ऊपर दृष्टिपात कीजिये व मुझको शुद्ध कीजिये ॥ ६ ॥ गिरिजार्धशरीरवाले आप के लिये प्रणाम है मुझको सदैव पापरहित कीजिये हे रुद्राक्ष की माला के आभूषणवाले, चन्द्रशेखर, शंकरजी ! ॥ ७ ॥ मुझको वेदों में भलीभांति कहेहुए आचार के योग्य कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है व सूर्यनारायण के दन्तों को तोड़नेवाले व सरस्वतीजी की नासिका को काटनेवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ८ ॥ व रामेश्वर देवजी के लिये नमस्कार है मुझको शुद्धिदायक होवो आनन्द सच्चिदानन्द व रामनाथ वृषध्वजजी को ॥ ९ ॥ मैं बारबार प्रणाम करता हूं मेरा पातक नाश

होजावै इस प्रकार भक्ति से रामनाथ शिवजी की स्तुति करतेहुए उस ॥ १० ॥ राजाके मुख से बहुत भयंकरी ब्रह्महत्या निकली जोकि नील वसनों को धारे व क्रूर और बहुत लाल बालोंवाली थी ॥ ११ ॥ राजा के मुख से निकली हुई उस बीभत्सब्रह्महत्या को शिवजी की आज्ञा से भैरवजी ने त्रिशूल से मारा ॥ १२ ॥ और शिवजी की आज्ञा से भैरव से ब्रह्महत्या के नाश होनेपर उसकी स्तुति से प्रसन्न बुद्धिवाले रामनाथजी ने राजा से कहा ॥ १३ ॥ श्रीरामनाथजी बोले कि हे पाण्ड्य भूप, महाराज! तुम्हारे इस स्तोत्र से मैं प्रसन्न हूं तुम चाहेहुए वरको मांगो मैं उसको तुम्हारे लिये दूंगा ॥ १४ ॥ और स्त्रीहत्या व ब्रह्महत्या से जो तुम्हारे दोष

मि पातकंमेविनश्यतु ॥ भक्त्यैवंस्तुवतस्तस्य रामनाथंमहेश्वरम् ॥ १० ॥ निर्जगाममुखाद्राज्ञो ब्रह्महत्यातिभीषणा ॥ नीलवस्त्रधराक्रूरा महारक्तशिरोरुहा ॥ ११ ॥ तांब्रह्महत्यांबीभत्सां नृपवक्त्राद्विनिर्गताम् ॥ निजघानत्रिशूलेन भैरवो रुद्रशासनात् ॥ १२ ॥ हतायांब्रह्महत्यायां भैरवेणशिवाज्ञया ॥ रामनाथोनृपंप्राह स्तुत्यातस्यप्रसन्नधीः ॥ १३ ॥ श्री रामनाथ उवाच ॥ पाण्ड्यभूपमहाराज स्तोत्रेणानेनतेनघ ॥ प्रसन्नोहंवरंदास्ये तुभ्यंवरयचेप्सितम् ॥ १४ ॥ स्त्रीहत्या ब्रह्महत्याभ्यां यस्तेदोषःसनिर्गतः ॥ शुद्धोविधूतपापोसि राज्यंपालयपूर्ववत् ॥ १५ ॥ येमामत्रनिषेवन्ते भक्तियुक्ते नचेतसा ॥ नाशयामिनृणांतेषां ब्रह्महत्यायुतान्यपि ॥ १६ ॥ सुरापानायुतंभूप गुरुस्त्रीगमनायुतम् ॥ स्वर्णस्तेया युतमपि तत्संसर्गायुतंतथा ॥ १७ ॥ अन्यान्यपिचपापानि नाशयामिनसंशयः ॥ मत्सेविनोनराराजन्नभूयःसंसरन्ति ते ॥ १८ ॥ किन्तुसायुज्यरूपांमे मुक्तियास्यन्त्यसंशयम् ॥ स्तुवन्त्यनेनस्तोत्रेण येमांभक्तिपुरःसरम् ॥ १९ ॥ नाश

था वह निकल गया तुम शुद्ध व पापरहित हो इससे पहले की नाईं राज्य को पालन करो ॥ १५ ॥ जो मनुष्य भक्तिसंयुत चित्त से यहां मुझको सेवते हैं उन मनुष्यों की दशहज़ार ब्रह्महत्याओं को भी मैं नाश करता हूं ॥ १६ ॥ व हे राजन्! दशहज़ार मद्यपान और दशहज़ार गुरुस्त्रीगमन और दशहज़ार सुवर्ण की चोरी व उसके संसर्गवाले दशहज़ार पापों को ॥ १७ ॥ व अन्य भी पापों को निस्सन्देह नाश करता हूं व हे राजन्! मेरी सेवा करनेवाले वे लोग फिर संसार में नहीं उत्पन्न होते हैं ॥ १८ ॥ किन्तु मेरी सायुज्य मुक्ति को पावैंगे इसमें सन्देह नहीं है और जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करते हैं ॥ १९ ॥ इनके मैं

महापातकों के समूह को नाश करता हूं हे मनुजेश्वर ! भक्ति से तुम्हारे इस स्तोत्र से मैं प्रसन्न हूं ॥ २० ॥ हे राजन् ! मुझ वरदायक से तुम यथेष्ट (प्रिय) वरको मांगो शिवजी से ऐसा कहेहुए नृपश्रेष्ठ शंकर ने ॥ २१ ॥ उन करुणानिधान रामनाथ शिवजी से कहा राजा बोले कि हे महेश्वर ! मैं तुम्हारे दर्शन से कृतार्थ होगया ॥ २२ ॥ और इस समय मुझको इससे अधिक नहीं मांगने योग्य है और मृकण्डुजी के भय व संताप को हरनेवाले तुम्हारे युगल चरण को ॥ २३ ॥ मैंने देखा इसलिये हे विभो, महादेव ! कुछ मांगने योग्य नहीं है तुम्हारे युगल चरणकमलों में मेरी अचल भक्ति होवै ॥ २४ ॥ और माताओं के अशुद्ध उदर

याम्यहमेतेषां महापातकसञ्चयम् ॥ प्रीतोहंतवभक्त्याच स्तोत्रेणमनुजेश्वर ॥ २० ॥ यथेष्टंप्रार्थयवरं मत्तस्त्वंवरदान्नृप ॥ एवमुक्तःशिवेनाथ शङ्करोनृपपुङ्गवः ॥ २१ ॥ रामनाथंबभाषेतं शङ्करंकरुणानिधिम् ॥ नृप उवाच ॥ तवसंदर्शनेनाहं कृतार्थोस्मिमहेश्वर ॥ २२ ॥ इतःपरंप्रार्थनीयं ममनास्त्यधुनाधिकम् ॥ मृकण्डुभयसन्तापहारिपादयुगं तव ॥ २३ ॥ दृष्टंमयामहादेव नातःप्रार्थ्यंविभोस्तिवै ॥ त्वत्पादपद्मयुगले निश्चलाभक्तिरस्तुमे ॥ २४ ॥ नपुनर्जन्ममेभूयान्मातॄणामुदरेशुचौ ॥ येमत्कृतमिदंस्तोत्रं कीर्तयन्तितवप्रभो ॥ २५ ॥ तेनराःपापनिर्मुक्तास्त्वत्सेवाफलमाप्नुयुः ॥ श्रीसूत उवाच ॥ तथास्त्वित्यनुगृह्यैनं रामनाथोद्विजोत्तमाः ॥ २६ ॥ नीलकण्ठोविरूपाक्षो लिङ्गरूपेतिरोहितः ॥ राजापिरामनाथेन विहितानुग्रहस्ततः ॥ २७ ॥ रामनाथंनमस्कृत्य कृतार्थेनान्तरात्मना ॥ स्वसेनासंवृतःप्रीतः प्रययावात्मनःपुरीम् ॥ २८ ॥ वृत्तान्तमेतदवदन्मुनीनांवनवासिनाम् ॥ तेभ्यषिञ्चन्नृपंराज्ये मुनयःप्रीतमानसाः ॥ २९ ॥

में फिर मेरा जन्म न होवै व हे प्रभो ! जो मनुष्य मुझसे कियेहुए तुम्हारे स्तोत्र को कीर्तन करैं ॥ २५ ॥ पापों से छूटेहुए वे पुरुष तुम्हारी सेवा के फल को पावैं श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वैसाही होगा इस प्रकार इस राजा के ऊपर दयाकर रामनाथ ॥ २६ ॥ विरूपलोचन नीलकण्ठजी लिंगरूप में अन्तर्द्धान होगये तदनन्तर रामनाथजी से दया कियाहुआ राजा भी ॥ २७ ॥ रामनाथजी को प्रणाम कर अपनी सेना से युक्त हो प्रसन्न होकर प्रसन्न चित्त से अपनी पुरी को चलागया ॥ २८ ॥ और इस वृत्तान्त को उसने वनवासी मुनियों से कहा व प्रसन्न मनवाले उन मुनियों ने राजा को राज्य पै अभिषेक किया ॥ २९ ॥

महापातकों के समूह को नाश करता हूं हे मनुजेश्वर ! भक्ति से तुम्हारे इस स्तोत्र से मैं प्रसन्न हूं ॥ २० ॥ हे राजन् ! मुझ वरदायक से तुम यथेष्ट (प्रिय) वरको मांगो शिवजी से ऐसा कहेहुए नृपश्रेष्ठ शंकर ने ॥ २१ ॥ उन करुणानिधान रामनाथ शिवजी से कहा राजा बोले कि हे महेश्वर ! मैं तुम्हारे दर्शन से कृतार्थ होगया ॥ २२ ॥ और इस समय मुझको इससे अधिक नहीं मांगने योग्य है और मृकण्डुजी के भय व संताप को हरनेवाले तुम्हारे युगल चरण को ॥ २३ ॥ मैंने देखा इसलिये हे विभो, महादेव ! कुछ मांगने योग्य नहीं है तुम्हारे युगल चरणकमलों में मेरी अचल भक्ति होवै ॥ २४ ॥ और माताओं के अशुद्ध उदर

याम्यहमेतेषां महापातकसञ्चयम् ॥ प्रीतोहंतवभक्त्याच स्तोत्रेणमनुजेश्वर ॥ २० ॥ यथेष्टंप्रार्थयवरं मत्तस्त्वंवरदान्नृप ॥ एवमुक्तःशिवेनाथ शङ्करोनृपपुङ्गवः ॥ २१ ॥ रामनाथंबभाषेतं शङ्करंकरुणानिधिम् ॥ नृप उवाच ॥ तवसंदर्शनेनाहं कृतार्थोस्मिमहेश्वर ॥ २२ ॥ इतःपरंप्रार्थनीयं ममनास्त्यधुनाधिकम् ॥ मृकण्डुभयसन्तापहारिपादयुगं तव ॥ २३ ॥ दृष्टंमयामहादेव नातःप्रार्थ्यंविभोस्तिवै ॥ त्वत्पादपद्मयुगले निश्चलाभक्तिरस्तुमे ॥ २४ ॥ नपुनर्जन्ममेभूयान्मातॄणामुदरेशुचौ ॥ येमत्कृतमिदंस्तोत्रं कीर्तयन्तितवप्रभो ॥ २५ ॥ तेनराःपापनिर्मुक्तास्त्वत्सेवाफलमाप्नुयुः ॥ श्रीसूत उवाच ॥ तथास्त्वित्यनुगृह्यैनं रामनाथोद्विजोत्तमाः ॥ २६ ॥ नीलकण्ठोविरूपाक्षो लिङ्गरूपेतिरोहितः ॥ राजापिरामनाथेन विहितानुग्रहस्ततः ॥ २७ ॥ रामनाथंनमस्कृत्य कृतार्थेनान्तरात्मना ॥ स्वसेनासंवृतःप्रीतः प्रययावात्मनःपुरीम् ॥ २८ ॥ वृत्तान्तमेतदवदन्मुनीनांवनवासिनाम् ॥ तेभ्यषिञ्चन्नृपंराज्ये मुनयःप्रीतमानसाः ॥ २९ ॥

में फिर मेरा जन्म न होवै व हे प्रभो ! जो मनुष्य मुझसे कियेहुए तुम्हारे स्तोत्र को कीर्तन करैं ॥ २५ ॥ पापों से छूटेहुए वे पुरुष तुम्हारी सेवा के फल को पावैं श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वैसाही होगा इस प्रकार इस राजा के ऊपर दयाकर रामनाथ ॥ २६ ॥ विरूपलोचन नीलकण्ठजी लिंगरूप में अन्तर्द्धान होगये तदनन्तर रामनाथजी से दया कियाहुआ राजा भी ॥ २७ ॥ रामनाथजी को प्रणाम कर अपनी सेना से युक्त हो प्रसन्न होकर प्रसन्न चित्त से अपनी पुरी को चलागया ॥ २८ ॥ और इस वृत्तान्त को उसने वनवासी मुनियों से कहा व प्रसन्न मनवाले उन मुनियों ने राजा को राज्य पै अभिषेक किया ॥ २९ ॥

व हे ब्राह्मणो ! पुत्रों व स्त्रियों से संयुत तथा मंत्रियों समेत राजा ने निष्कण्टक राज्य को पाकर बहुत दिनों तक पृथ्वी की रक्षा किया ॥ ३० ॥ तदनन्तर मृत्युसमय प्राप्त होने पर रामेश्वर शिवजी को ध्यान करताहुआ राजा देहान्त में रामनाथ की उत्तम सायुज्य मुक्ति को प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार तुमलोगों से रामनाथ का प्रभाव व शंकर नामक राजाका पवित्र चरित्र व आख्यान कहागया ॥ ३२ ॥ इस अध्याय को आदर से पढ़ता व सुनता हुआ मनुष्य सब पापों से छूटकर रामनाथजी को प्राप्त होता है ॥३३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामनाथप्रशंसायांशाकल्यदुर्मरणदोषशान्तिर्नामाष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

पुत्रदारयुतोराजा प्राप्यराज्यमकण्टकम् ॥ मन्त्रिभिःसहितोविप्रा ररक्षपृथिवींचिरम् ॥ ३० ॥ ततोन्तकाले सम्प्राप्ते ध्यायन्रामेश्वरंशिवम् ॥ देहान्तेरामनाथस्य सायुज्यंप्रययौशुभम् ॥ ३१ ॥ एवंवःकथितंविप्रा रामनाथस्यवैभवम् ॥ चरितंपुण्यमाख्यानं शङ्कराख्यनृपस्यच ॥ ३२ ॥ शृण्वन्पठन्वामनुजस्त्विममध्यायमादरात् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो रामनाथंसमश्नुते ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्ये रामनाथप्रशंसायांशाकल्यदुर्मरणदोषशान्तिशङ्करस्त्रीहत्याब्रह्महत्यादोषशान्तिर्नामाष्टाचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४८ ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ अथातःसम्प्रवक्ष्यामि रामनाथस्यशूलिनः ॥ स्तोत्राध्यायंमहापुण्यं शृणुतश्रद्धयाद्विजाः ॥ १ ॥ रामःप्रतिष्ठितेलिङ्गे तुष्टावपरमेश्वरम् ॥ लक्ष्मणोजानकीसीता सुग्रीवाद्याःकपीश्वराः ॥ २ ॥ ब्रह्मप्रभृतयोदेवाः कुम्भजाद्यामहर्षयः ॥ अस्तुवन्भक्तिसंयुक्ताः प्रत्येकंराघवेश्वरम् ॥ ३ ॥ तद्वक्ष्याम्यानुपूर्व्येण शृणुतादरपूर्वकम् ॥ एत

दो० । रामनाथ की स्तुति यथा किय देवादि अपार । उंचसवें अध्याय में सोई चरित सुखार ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! इसके उपरान्त मैं त्रिशूलधारी रामनाथ जी के महापवित्र स्तोत्राध्यायको कहताहूं उसको श्रद्धा से सुनिये ॥ १ ॥ लिंग स्थापित करनेपर श्रीरामजी ने शिवजी की स्तुति किया और लक्ष्मण व सीता जानकीजी और सुग्रीवादिक कपीश्वरों ने ॥ २ ॥ व ब्रह्मादिक देवता तथा अगस्त्यादिक महर्षियों ने भक्तिसंयुत होकर प्रत्येक रघुनाथजी की स्तुति किया है ॥ ३ ॥ उसको मैं क्रम से कहताहूं

आदरपूर्वक सुनिये हे ब्राह्मणो ! इसको सुननेही से मनुष्य मुक्त होजाता है ॥ ४ ॥ श्रीरामजी बोले कि आप त्रिशूलधारी व महाभाग महात्मा के लिये प्रणाम है और अपने चरणकमलों के भक्त के दुःख को हरनेवाले तथा सर्पों के हारवाले आप के लिये प्रणाम है ॥ ५ ॥ व देवताओं के आदिदेवता रामनाथ साक्षी के लिये प्रणाम है तथा वेदांतों से जानने योग्य व योगियों को तत्त्वदेनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ६ ॥ और सदैव आनंद से पूर्ण तथा भक्तों के भयको नाशने के कारणरूप चरणकमलवाले विश्वनाथ शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ ७ ॥ और सबों के साक्षी आप के लिये प्रणाम है व साक्षात् परमात्मा के लिये प्रणाम है तथा महापातकों को

च्छ्रवणमात्रेण मुक्तःस्यान्मानवोद्विजाः ॥ ४ ॥ श्रीराम उवाच ॥ नमोमहात्मनेतुभ्यं महाभागायशूलिने ॥ स्वपदाम्बुजभक्तार्तिहारिणेसर्पहारिणे ॥ ५ ॥ नमोदेवादिदेवाय रामनाथायसाक्षिणे ॥ नमोवेदान्तवेद्याय योगिनांतत्त्वदायिने ॥ ६ ॥ सर्वदानन्दपूर्णाय विश्वनाथायशम्भवे ॥ नमोभक्तभयच्छेदहेतुपादाब्जरेणवे ॥ ७ ॥ नमस्तेखिलनाथाय नमःसाक्षात्परात्मने ॥ नमस्तेद्भुतवीर्याय महापातकनाशिने ॥ ८ ॥ कालकालायकालाय कालातीतायतेनमः ॥ नमोविद्यानिहन्त्रेते नमःपापहराय च ॥ ९ ॥ नमःसंसारतप्तानां तापनाशैकहेतवे ॥ नमोमद्ब्रह्महत्याविनाशिने चविषाशिने ॥ १० ॥ नमस्तेपार्वतीनाथ कैलासनिलयाव्यय ॥ गङ्गाधरविरूपाक्ष मांरक्षसकलापदः ॥ ११ ॥ तुभ्यं पिनाकहस्ताय नमोमदनहारिणे ॥ भूयोभूयोनमस्तुभ्यं सर्वावस्थासुसर्वदा ॥ १२ ॥ लक्ष्मण उवाच ॥ नमस्तेराम

नाशनेवाले व अद्भुतबलवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ८ ॥ और काल के भी काल व कालातीत कालरूप तुम्हारे लिये प्रणाम है और पातकों को नाशनेवाले के लिये प्रणाम है व माया को नाशनेवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ९ ॥ और संसार से तप्त प्राणियों के ताप नाश के लिये एकही कारणरूप आपके लिये प्रणाम है और मेरी ब्रह्महत्या को नाशनेवाले व विषको खानेवाले के लिये प्रणाम है ॥ १० ॥ हे कैलासनिलय, अव्यय, पार्वतीनाथ ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे विरूपलोचन, गंगाधर ! सब विपत्ति से मेरी रक्षा कीजिये ॥ ११ ॥ व पिनाक को हाथ में लियेहुए कामदेव को नाशनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है और सब अवस्थाओं में सदैव आप के लिये बार २ नमस्कार है ॥ १२ ॥

लक्ष्मणजी बोले कि आप त्रिपुरविनाशक व शंभु रामनाथजी के लिये प्रणाम है और पार्वतीजीके जीवन के स्वामी और गणेश व स्वामिकार्तिकेय पुत्रवाले आप के लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ और सूर्य, चन्द्रमा व अग्निनेत्रोंवाले जटाधारी आप के लिये प्रणाम है व सोम और मार्कंडेय के भय को नाशनेवाले शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥ व सब संसार की सृष्टि, पालन व नाश के कारणरूप आप के लिये प्रणाम है व उग्र, भीम तथा साक्षी महादेवजी के लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ और सर्वज्ञ, वरेण्य, वरदायक व श्रेष्ठ आप के लिये प्रणाम है तथा पांच पातकों को नाशनेवाले तुम श्रीकंठ के लिये प्रणाम है ॥१६॥ व परमानन्द सत्य व विज्ञानरूपी आप के लिये

नाथाय त्रिपुरघ्नायशम्भवे ॥ पार्वतीजीवितेशाय गणेशस्कन्दसूनवे ॥ १३ ॥ नमस्तेसूर्यचन्द्राग्निलोचनायकपर्दिने ॥ नमःशिवायसोमाय मार्कण्डेयभयच्छिदे ॥ १४ ॥ नमःसर्वप्रपञ्चस्य सृष्टिस्थित्यन्तहेतवे ॥ नमउग्रायभीमाय महादेवायसाक्षिणे ॥ १५ ॥ सर्वज्ञायवरेण्याय वरदायवरायते ॥ श्रीकण्ठायनमस्तुभ्यं पञ्चपातकभेदिने ॥ १६ ॥ नमस्तेस्तुपरानन्दसत्यविज्ञानरूपिणे ॥ नमस्तेभवरोगघ्न स्तायूनांपतयेनमः ॥ १७ ॥ पतयेतस्कराणान्ते वनानांपतयेनमः ॥ गणानांपतयेतुभ्यं विश्वरूपायसाक्षिणे ॥ १८ ॥ कर्मणाप्रेरितःशम्भो जनिष्येयत्रयत्रतु ॥ तत्रतत्रपदद्वन्द्वे भवतोभक्तिरस्तुमे ॥ १९ ॥ असन्मार्गेरतिर्माभूद्भवतःकृपयामम ॥ वैदिकाचारमार्गेच रतिःस्याद्भवतेनमः ॥ २० ॥ सीतोवाच ॥ परमकारणशङ्करधूर्जटे गिरिसुतास्तनकुङ्कुमशोभित ॥ ममपतौपरिदेहिमतिंसदा नविषमांपरपूरुषगोचराम् ॥ २१ ॥

नमस्कार है हे भवरोगविनाशक ! आप स्तायुवों के पति के लिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ व तस्करों के पति तथा वनों के पति आप के लिये प्रणाम है और गणों के स्वामी व विश्वरूप तथा साक्षी आप के लिये प्रणाम है ॥ १८ ॥ हे शंभो ! मैं कर्म से जहां जहां उत्पन्न होऊं वहां वहां आप के दोनों चरणों में मेरी भक्ति होवै ॥ १९ ॥ और आप की दया से असत्मार्ग में मेरी प्रीति न होवै और वैदिक आचार व मार्ग में प्रीति होवै आप के लिये नमस्कार है ॥ २० ॥ सीताजी बोलीं कि हे गिरिजा के स्तनों के कुंकुम से शोभित, परमकारण, धूर्जटे, शंकरजी ! मेरी बुद्धि को सदैव पति में दीजिये और परपुरुष में गोचर न होवै व विषम न होवै ॥ २१ ॥

हे विरूपलोचन, गंगाधर, नीललोहित, शंकरजी ! हे दयाकर, रामनाथ ! तुम्हारे लिये नमस्कार है मेरी रक्षाकीजिये ॥ २२ ॥ हे देवदेवेश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे दयालय ! तुम्हारे लिये प्रणाम है व हे संसार से डरेहुए प्राणियों की भवभीति को मर्दन करनेवाले ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २३ ॥ हे नाथ, शंभो ! तुम्हारे चरणकमलों के ध्यान से वे मृकंडु के पुत्र मार्कंडेयजी सूर्यपुत्र (यमराज) से भयको नाशकर शीघ्रही नित्यता को प्राप्त हुए हे परेश ! तुम्हारे आश्रय से क्या नहीं सिद्ध होता है याने सब कुछ सिद्ध होजाता है ॥ २४ ॥ हे परेश, परमानंद, शरणागतपालक ! मुझको सदैव पतिव्रतत्व दीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है

गङ्गाधरविरूपाक्ष नीललोहितशङ्कर ॥ रामनाथनमस्तुभ्यं रक्षमांकरुणाकर ॥ २२ ॥ नमस्तेदेवदेवेश नमस्ते करुणालय ॥ नमस्तेभवभीतानां भवभीतिविमर्दन ॥ २३ ॥ नाथत्वदीयचरणाम्बुजचिन्तनेन निर्धूयभास्करसुताद्भयमाशुशम्भो ॥ नित्यत्वमाशुगतवान्समृकण्डुपुत्रः किंवानसिध्यतितवाश्रयणात्परेश ॥ २४ ॥ परेशपरमानन्द शरणागतपालक॥ पातिव्रत्यंममसदा देहितुभ्यंनमोनमः ॥ २५ ॥ हनूमानुवाच॥ देवदेवजगन्नाथ रामनाथ कृपानिधे ॥ त्वत्पादाम्भोरुहगता निश्चलाभक्तिरस्तुमे ॥ २६ ॥ यंविनानजगत्सत्ता तद्भानमपिनोभवेत् ॥ नमःसद्भानरूपाय रामनाथायशम्भवे ॥ २७ ॥ अङ्गद उवाच ॥ यस्यभासाजगद्भानं यत्प्रकाशंविनाजगत् ॥ नभासतेनमस्तस्मै रामनाथायशम्भवे ॥ २८ ॥ जाम्बवानुवाच ॥ सर्वानन्दोयदानन्दो भासतेपरमार्थतः ॥ नमोरामेश्वरायास्मै परमानन्दरूपिणे ॥ २९ ॥ नील उवाच ॥ यद्देशकालदिग्भेदैरभिन्नंसर्वदाद्वयम् ॥ तस्मैरामेश्वरायास्मै नमोभिन्नस्व

नमस्कार है ॥ २५ ॥ हनूमान्जी बोले कि हे देवदेव, जगन्नाथ, दयानिधे, रामनाथ ! तुम्हारे चरणकमलों में मेरी अचल भक्ति होवै ॥ २६ ॥ जिनके विना संसार की सत्ता व उसका भान भी नहीं होता है उन सद्भानरूपी रामनाथ शंभुजी के लिये प्रणाम है ॥ २७ ॥ अंगदजी बोले कि जिनके प्रकाश से संसार का प्रकाश होता है व जिसके प्रकाश के विना संसार नहीं प्रकाशित होता है उन रामनाथ शिवजी के लिये नमस्कार है ॥ २८ ॥ जाम्बवान् बोले कि जिससे यथार्थ सर्वानन्द व आनन्द भासित होता है इन परमानन्दरूपी रामेश्वरजी के लिये नमस्कार है ॥ २९ ॥ नील बोले कि जो अद्वय सदैव देश, काल व दिशाओं के भेदों से अभिन्न है उन

अभिन्नरूपी इन रामेश्वरजी के लिये नमस्कार है ॥ ३० ॥ नल बोले कि ब्रह्मा, विष्णु व महेश जिसकी माया से रचित हैं उन मायाहीन आप रामेश्वरजी के लिये प्रणाम है ॥ ३१ ॥ कुमुद बोले कि जिसके स्वरूप के न जानने से कारणता से प्रधान रचागया इन कारणरूप रामनाथ शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ ३२ ॥ पनस बोले कि जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति आदिक अवस्था जिसकी माया से रचित हैं इस जाग्रत आदिक अवस्थाओं से रहित ज्ञानरूपी रामनाथजी के लिये प्रणाम है ॥ ३३ ॥ गज बोले कि जिनके स्वरूप के न जानने से अधम तार्किकों से कारणत्व से कार्यों के परमाणु वृथा कल्पित होते हैं ॥ ३४ ॥ उन सर्वसाक्षी परमानंद

रूपिणे ॥ ३० ॥ नल उवाच ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाना यदविद्याविजृम्भिताः ॥ नमोविद्याविहीनाय तस्मैरामेश्वराय ते ॥ ३१ ॥ कुमुद उवाच ॥ यत्स्वरूपापरिज्ञानात्प्रधानंकारणत्वतः ॥ कल्पितंकारणायास्मै रामनाथायशम्भवे॥३२॥ पनस उवाच ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादियदविद्याविजृम्भितम् ॥ जागृतादिविहीनाय नमोस्मैज्ञानरूपिणे ॥ ३३ ॥ गज उवाच ॥ यत्स्वरूपापरिज्ञानात्कार्याणांपरमाणवः ॥ कल्पिताःकारणत्वेन तार्किकापसदैर्वृथा ॥ ३४ ॥ तमहंपरमानन्दं रामनाथंमहेश्वरम् ॥ आत्मरूपतयानित्यमुपास्येसर्वसाक्षिणम् ॥ ३५ ॥ गवाक्ष उवाच ॥ अज्ञानपाशबद्धानां पशूनांपाशमोचकम् ॥ रामेश्वरंशिवंशान्तमुपैमिशरणंसदा ॥ ३६ ॥ गवय उवाच ॥ स्वाध्यस्तंजगदाधारं चन्द्रचूडमुमापतिम् ॥ रामनाथशिवंवन्दे संसारामयभेषजम् ॥ ३७ ॥ शरभ उवाच ॥ अन्तःकरणमात्मेति यदज्ञानाद्विमोहितैः ॥ भण्यतेरामनाथंतमात्मानंप्रणमाम्यहम् ॥ ३८ ॥ गन्धमादन उवाच ॥ रामनाथमुमानाथं गणनाथंचत्र्यम्बकम् ॥

रामनाथ शिवजी की मैं आत्मरूपता से सदैव उपासना करता हूं ॥ ३५ ॥ गवाक्ष बोले कि अज्ञानरूपी फँसरी से बँधेहुए पशुवों के पाश को छुड़ानेवाले शांत रामेश्वर शिवजी की शरण में मैं सदैव प्राप्त होताहूं ॥ ३६ ॥ गवय बोले कि संसार के आधाररूप उन निराश्रय चंद्रचूड़ उमापति को मैं प्रणाम करता हूं व संसाररूपी रोग की औषधिरूप रामनाथ शिवजी को मैं प्रणाम करताहूं ॥ ३७ ॥ शरभ बोले कि अज्ञान से मोहित पुरुषों से जो अंतःकरण व आत्मा ऐसा कहाजाता है उन रामनाथ आत्मा को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३८ ॥ गन्धमादन बोले कि समस्त पातकों से शुद्धि के लिये उमापति व गणनायक तथा त्रिलोचन जगदीश रामनाथजी की मैं

उपासना करता हूं ॥ ३९ ॥ सुग्रीवजी बोले कि पुत्र, स्त्री, धन व क्षेत्ररूपी तरंगसमूहों से संयुत तथा जन्म व मृत्युरूपी जलवाले संसाररूपी समुद्र के मध्य में ॥ ४० ॥ डूबतेहुए ब्रह्माण्डसमूह में गिरे और पार न पाये व चिल्लातेहुए तथा विवश, दुःखी व विषयरूपी सर्पों से डरेहुए ॥ ४१ ॥ और रोगरूपी मकरों से उद्विग्न तथा तीनताप रूपी मछलियों से विकल मेरी रक्षा कीजिये हे पार्वतीनाथ, रामनाथ ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४२ ॥ विभीषणजी बोले कि रोगरूपी चोर व पापरूपी सिंह तथा जन्मरूपी व्याघ्र और नाशरूपी सर्पवाले व भूलेहुए अपने मार्गवाले संसाररूपी वनके मध्य में मुझको ॥ ४३ ॥ जो वन कि बाल्यावस्था व युवावस्था तथा वृद्धता

सर्वपातकशुद्ध्यर्थमुपास्येजगदीश्वरम् ॥ ३९ ॥ सुग्रीव उवाच ॥ संसाराम्भोधिमध्येमां जन्ममृत्युजलेभये ॥ पुत्रदार धनक्षेत्रवीचिमालासमाकुले ॥ ४० ॥ मज्जद्ब्रह्माण्डषण्डेच पतितंनाप्तपारकम् ॥ क्रोशन्तमवशंदीनं विषयव्यालकात रम् ॥ ४१ ॥ व्याधिनक्रसमुद्विग्नं तापत्रयझषार्दितम् ॥ मांरक्षगिरिजानाथ रामनाथनमोस्तुते ॥ ४२ ॥ विभीषण उवाच ॥ संसारवनमध्येमां विनष्टनिजमार्गके ॥ व्याधिचौरेघसिंहेच जन्मव्याघ्रेलयोरगे ॥ ४३ ॥ बाल्ययौवनवा र्धक्यमहाभीमान्धकूपके ॥ क्रोधेर्ष्यालोभवह्नौच विषयक्रूरपर्वते ॥ ४४ ॥ त्रासभूकण्टकाढ्येच सीदन्तंरामनाथक ॥ शोभनांपदवींशम्भो नयरामेश्वराधुना ॥ ४५ ॥ सर्वेवानरा ऊचुः ॥ निन्द्यानिन्द्येषुसर्वत्र जनित्वायोनिषुप्रभो ॥ कु म्भीपाकादिनरके पतित्वाचपुनस्तथा ॥ ४६ ॥ जनित्वाचपुनर्योनौ कर्मशेषेणकुत्सिते ॥ संसारेपतितानस्मान् राम नाथदयानिधे ॥ ४७ ॥ अनाथान्विवशान्दीनान्क्रोशतःपाहिशङ्कर ॥ नमस्तेस्तुदयासिन्धो रामनाथमहेश्वर ॥ ४८ ॥

रूपी बड़े भयंकर अंधकूपवाला व क्रोध, ईर्ष्या तथा लोभरूपी अग्निवाला और विषयरूपी क्रूर पर्वतोंवाला है ॥ ४४ ॥ उस डररूपी पृथ्वी व कांटोंवाले वनमें विकल मुझको हे रामनाथ ! हे शंभो ! हे रामेश्वर ! इस समय उत्तम पदवी पै प्राप्त कीजिये ॥ ४५ ॥ सब वानर बोले कि हे प्रभो ! सब कहीं निन्द्य व अनिन्द्य योनियों में उत्पन्न होकर व फिर कुंभीपाकादिक नरक में गिरकर ॥ ४६ ॥ हे दयानिधान, रामनाथ ! फिर बचेहुए कर्म से योनि में उत्पन्न होकर निन्दित संसार में गिरेहुए अनाथ, विवश, दीन व चिल्लाते हुए हमलोगों की रक्षा कीजिये हे शंकर, दयासागर, रामनाथ, महेश्वरजी ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४७ । ४८ ॥

ब्रह्मा बोले कि लोकों के स्वामी तुम्हारे रामनाथ शिवजी के लिये प्रणाम है हे सर्वेश ! मेरे ऊपर प्रसन्न होवो व मेरी माया को नाश कीजिये ॥ ४६ ॥ इन्द्रजी बोले कि जगदम्बिका व वेदत्रयीमयी पार्वती देवी जिनकी शक्ति हैं उन पार्वती के पति रामनाथ शिवजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५० ॥ यमराज बोले कि गणेश व स्वामिकार्त्तिकेयजी जिनके पुत्र हैं व बैल जिनकी सवारी है सब अज्ञानों के नाश के लिये उन रामनाथजी को मैं सेवन करता हूं ॥ ५१ ॥ वरुणजी बोले कि जिनकी पूजा के प्रभाव से मृकण्डु के पुत्र मार्कंडेयजी ने मृत्यु को जीतलिया उन मृत्युंजय रामनाथजी की मैं हृदय से उपासना करता हूं ॥ ५२ ॥ कुबेरजी बोले कि शोभित

ब्रह्मोवाच ॥ नमस्तेलोकनाथाय रामनाथायशम्भवे ॥ प्रसीदममसर्वेश मदविद्यांविनाशय ॥ ४९ ॥ इन्द्र उवाच ॥ यस्य शक्तिरुमादेवी जगन्मातात्रयीमयी ॥ तमहंशङ्करंवन्दे रामनाथमुमापतिम् ॥ ५० ॥ यम उवाच ॥ पुत्रौगणेश्वरस्कन्दौ वृषोयस्यचवाहनम् ॥ तंवैरामेश्वरंसेवे सर्वाज्ञाननिवृत्तये ॥ ५१ ॥ वरुण उवाच ॥ यस्यपूजाप्रभावेन जितमृत्युर्मृकण्डुजः ॥ मृत्युञ्जयमुपास्येहं रामनाथंहृदातुतम् ॥ ५२ ॥ कुबेर उवाच ॥ ईश्वरायलसत्कर्णकुण्डलाभरणायते ॥ लाक्षारुणशरीराय नमोरामेश्वरायवै ॥ ५३ ॥ आदित्य उवाच ॥ नमस्तेस्तुमहादेव रामनाथत्रियम्बक ॥ दक्षाध्वरविनाशाय नमस्तेपाहिमांशिव ॥ ५४ ॥ सोम उवाच ॥ नमस्तेभस्मदिग्धाय शूलिनेसर्पमालिने ॥ रामनाथदयाम्भोधे श्मशाननिलयायते ॥ ५५ ॥ अग्निरुवाच ॥ इन्द्राद्यखिलदिक्पालसंसेवितपदाम्बुज ॥ रामनाथायशुद्धाय नमोदिग्वाससे

कर्णकुण्डल आभूषणवाले आप ईश्वर के लिये प्रणाम है और लाख के समान लाल शरीरवाले रामेश्वरजी के लिये नमस्कार है ॥ ५३ ॥ सूर्यनारायण बोले कि हे त्रिलोचन, रामनाथ, महादेव, शिव ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है मेरी रक्षा कीजिये ॥ ५४ ॥ चन्द्रमा बोले कि भस्म को लगाये व त्रिशूलधारी तथा सर्पों की मालावाले आप के लिये प्रणाम है व हे दयासागर, रामनाथ ! श्मशानमें रहनेवाले तुम्हारे लिये प्रणामहै ॥५५॥ अग्निजी बोले कि हे इन्द्रादिक समस्त दिक्पालों से भलीभांति सेवित चरणकमलवाले ! शुद्ध व सदैव दिग्वसन (नग्न) रामनाथजी के लिये नमस्कार

है ॥ ५६ ॥ पवन बोले कि हरिरूप व व्याघ्रचर्म वसनवाले आप शिवजीके लिये प्रणाम है हे रामनाथ ! मेरे मनोरथ के दायक होवो ॥ ५७ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि अहंता व साक्षी तथा सदैव प्रत्यक् अद्वय वस्तु वाले आप के लिये प्रणाम है हे रामनाथ ! मेरे अज्ञान को शीघ्रही नाश कीजिये ॥५८॥ शुक्रजी बोले कि वंचकों के अलभ्य व महामंत्रार्थरूपी आप के लिये प्रणाम है और द्वैतसे हीन व रामनाथ शिवजीके लिये प्रणाम है ॥ ५९ ॥ अश्विनीकुमार बोले कि हे राघवेश्वर ! सदैव आत्मरूपतासे योगियों के हृदय में भासित होनेवाले व अनन्य शोभा से जानने योग्य तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ६० ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे आदिदेव, महादेव, विश्वेश्वर, शिव, अव्यय !

सदा ॥ ५६ ॥ वायुरुवाच ॥ हरायहरिरूपाय व्याघ्रचर्माम्बरायच ॥ रामनाथनमस्तुभ्यं ममाभीष्टप्रदोभव ॥ ५७ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ अहन्तासाक्षिणेनित्यं प्रत्यगद्वयवस्तुने ॥ रामनाथममाज्ञानमाशुनाशयतेनमः ॥ ५८ ॥ शुक्र उवाच ॥ वञ्चकानामलभ्याय महामन्त्रार्थरूपिणे ॥ नमोद्वैतविहीनाय रामनाथायशम्भवे ॥ ५९ ॥ अश्विनावूचतुः ॥ आत्मरूपतयानित्यं योगिनांभासतेहृदि ॥ अनन्यभानवेद्याय नमस्तेराघवेश्वर ॥ ६० ॥ अगस्त्य उवाच ॥ आदिदेवमहादेव विश्वेश्वरशिवाव्यय ॥ रामनाथाम्बिकानाथ प्रसीदवृषभध्वज ॥ ६१ ॥ अपराधसहस्रंमे क्षमस्वविधुशेखर ॥ ममाहमितिपुत्रादावहन्तांमममोचय ॥ ६२ ॥ सुतीक्ष्ण उवाच ॥ क्षेत्राणिरत्नानिधनानिदारामित्राणिवस्त्राणिगवाश्वपुत्राः ॥ नैवोपकारायहिरामनाथ मह्यंप्रयच्छत्वमतोविरक्तिम् ॥ ६३ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ श्रुतानिशास्त्राण्यपिनिष्फलानि त्रय्यप्यधीताविफलैवनूनम् ॥ त्वयीश्वरेचेन्नभवेद्धिभक्तिः श्रीरामनाथेशिवमानुषस्य ॥ ६४ ॥

हे वृषध्वज, पार्वतीनाथ, रामनाथ ! प्रसन्न होवो ॥ ६१ ॥ हे चन्द्रभाल ! मेरे हज़ार अपराधों को क्षमाकीजिये और मम व अहं इस पुत्रादिकों में मेरे अहंकार को छुड़ादीजिये ॥ ६२ ॥ सुतीक्ष्ण बोले कि हे रामनाथ ! क्षेत्र, रत्न, धन, स्त्रियां, मित्र, वस्त्र व गऊ, घोड़े और पुत्र उपकारके लिये नहीं होते हैं इसकारण तुम मेरे लिये विरागको देवो ॥६३॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे शिव ! यादि आप रामनाथ ईश्वरमें मनुष्यकी भक्ति न होवै तो सुनेहुए भी शास्त्र निष्फलहैं और पढ़ीहुई भी वेदत्रयी निश्चयकर विफलहै ॥ ६४ ॥

गालवजी बोले कि तुम रामेश्वरजी को जो प्रणाम नहीं करते हैं उनके दान, यज्ञ, यम, तपस्या और गंगादिक तीर्थों में स्नान व्यर्थ है इसमें यह निश्चय है ॥ ६५ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे रामेश्वर! समस्त पातकों को करके जो भक्तिसंयुत मनुष्य तुमको प्रणाम करै तो वे सब पाप नाश को प्राप्त होवैंगे जैसे कि सूर्यनारायण के तेज से अन्धकार नाश होजाते हैं ॥ ६६ ॥ अत्रिजी बोले कि एक समय भी आप रामेश्वर शिवजी को देखकर व स्पर्शकर तथा प्रणामकर वह मनुष्य फिर गर्भ को नहीं प्राप्त होता है किन्तु तुम्हारे अद्वय स्वरूप को पाता है ॥ ६७ ॥ अंगिराजी बोले कि जो मनुष्य आप रामनाथजी के समीप आकर बंधुवों को प्रणाम करताहुआ

गालव उवाच ॥ दानानियज्ञानियमास्तपांसि गङ्गादितीर्थेषुनिमज्जनानि ॥ रामेश्वरंत्वांननमन्तियेतु व्यर्थानितेषामितिनिश्चयोत्र ॥ ६५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ कृत्वापिपापान्यखिलानिलोकस्त्वामेत्यरामेश्वरभक्तियुक्तः ॥ नमेतचेत्तानिलयंव्रजेयुर्यथान्धकाराश्रवितेजसाद्धा ॥ ६६ ॥ अत्रिरुवाच ॥ दृष्ट्वातुरामेश्वरमेकदापि स्पृष्ट्वानमस्कृत्यभवन्तमीशम् ॥ पुनर्नगर्भंसनरःप्रयायात्किन्त्वद्वयन्तेलभतेस्वरूपम् ॥ ६७ ॥ अङ्गिरा उवाच ॥ योरामनाथंमनुजोभवन्तमुपेत्यबन्धून्प्रणमन्स्मरेत् ॥ सन्तारयेत्तानपिसर्वपापात्किमद्भुतंतस्यकृतार्थतायाम् ॥ ६८ ॥ गौतम उवाच ॥ श्रीरामनाथेश्वरगूढमेतद्रहस्यभूतंपरमंविशोकम् ॥ त्वत्पादमूलंभजतांनृणांये सेवांप्रकुर्वन्तिहितेपिधन्याः ॥ ६९ ॥ शतानन्द उवाच ॥ वेदान्तविज्ञानरहस्यविद्भिर्विज्ञेयमेतद्धिमुमुक्षुभिस्तु ॥ शास्त्राणिसर्वाणिविहायदेव त्वत्सेवनंयद्रघुवीरनाथ ॥ ७० ॥ भृगुरुवाच ॥ रामनाथतवपादपङ्कजद्वन्द्वचिन्तनविधूतकल्मषः ॥ निर्भयंव्रजतिसत्सुखाद्वयं त्वांस्वयंप्रथममोहचिद्घनम् ॥ ७१ ॥

स्मरण करता है उनको भी आप सब पापों से तारते हैं तो उसकी कृतार्थता में क्या आश्चर्य है ॥ ६८ ॥ गौतमजी बोले कि हे श्रीरामनाथेश्वर! यह गुप्तभूत चरित्र बहुतही शोकरहित है कि तुम्हारे चरणमूल को भजतेहुए पुरुषों की जो सेवा करते हैं वेभी धन्य हैं ॥ ६९ ॥ शतानन्दजी बोले कि वेदान्त के विज्ञान के रहस्य को जाननेवाले मुक्ति की इच्छावाले पुरुषों से यह जानने योग्य है जो कि हे रघुवीरनाथ, देव! सब शास्त्रों को छोड़कर तुम्हारी सेवा है ॥ ७० ॥ भृगुजी बोले कि हे रामनाथ! तुम्हारे दोनों चरणकमलों के ध्यान से पापरहित मनुष्य आपही प्रथम मोह व चिद्घन तथा सत्सुख व निडर तथा अद्वय तुमको प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥

कुत्सजी बोले कि हे रामनाथ ! तुम्हारे चरणों की सेवा मनुष्यों को सदैव भोग, मोक्ष व वरदायक है और रौरवादिक नरकों की नाशक है उसको रसग्राही कौन पुरुष नहीं भजता है ॥ ७२ ॥ काश्यपजी बोले कि हे रामनाथ ! तुम्हारे चरणोंकी सेवा करनेवाले पुरुषों को व्रत, तपस्या व यज्ञों से क्या है और वेद शास्त्र व जपकी चिन्तासे क्या है और स्वर्गनदी (गंगाजी) के जलसे भी क्या फल है ॥ ७३ ॥ हे श्रीरामनाथ ! मेरे मरण समय में पार्वतीजी समेत शीघ्रही आकर तुम मुझको शोकरहित व मोहहीन तथा चित्स्वरूप व सुखमय अपने चरणारविन्द को प्राप्त कीजिये ॥ ७४ ॥ गंधर्व बोले कि हे रामनाथ ! अपार दुःखरूपी बड़ी भारी लहरियोंवाले भवसागरमें डूबते

कुत्स उवाच ॥ रामनाथतवपादसेवनं भोगमोक्षवरदंनृणांसदा ॥ रौरवादिनरकप्रणाशनं कःपुमान्नभजतेरसग्रहः ॥ ७२ ॥ काश्यप उवाच ॥ रामनाथतवपादसेविनां किंव्रतैस्ततपोभिरध्वरैः ॥ वेदशास्त्रजपचिन्तयाचकिं स्वर्गसिन्धुपयसापिकिंफलम् ॥ ७३ ॥ श्रीरामनाथत्वमागत्यशीघ्रं ममोत्क्रान्तिकालेभवान्याचसाकम् ॥ मांप्रापयस्वात्मपादारविन्दं विशोकंविमोहंसुखंचित्स्वरूपम् ॥ ७४ ॥ गन्धर्वा ऊचुः ॥ रामनाथत्वमस्माकं मज्जतांभवसागरे ॥ अपारदुःखकल्लोले नत्वत्तोन्यागतिर्हिनः ॥ ७५ ॥ किन्नरा ऊचुः ॥ रामनाथभवारण्ये व्याधिव्याघ्रभयानके ॥ त्वामन्तरेण नास्माकं पदवीदर्शकोभवेत् ॥ ७६ ॥ यक्षा ऊचुः ॥ रामनाथेन्द्रियारातिबाधानोदुःसहासदा ॥ तान्विजेतुंसहायस्त्वमस्माकंभवधूर्जटे ॥ ७७ ॥ नागा ऊचुः ॥ अचिन्त्यमहिमानंत्वां रामनाथवयंकथम् ॥ स्तोतुमल्पधियःशक्ता भविष्यामोम्बिकापते ॥ ७८ ॥ किंपुरुषा ऊचुः ॥ नानायोनौचजननं मरणंचाप्यनेकशः ॥ विनाशयतथाज्ञानं रामनाथन

हुए हमलोगों की तुम्हीं गति हो क्योंकि तुम से अन्य हमलोगों की गति नहीं है ॥ ७५ ॥ किन्नर बोले कि हे रामनाथ ! रोगरूपी व्याघ्रों से भयानक संसाररूपी वन में तुम्हारे विना हमलोगों को कोई मार्गदर्शक नहीं है ॥ ७६ ॥ यक्ष बोले कि हे धूर्जटे, रामनाथ ! सदैव इन्द्रियरूपी शत्रुवों की बाधा हमको दुःसह है इससे उनको जीतने के लिये तुम हमलोगों के सहायक होवो ॥ ७७ ॥ नाग बोले कि हे पार्वतीपते, रामनाथ ! थोड़ी बुद्धिवाले हमलोग अचिन्तनीय महिमावाले तुम्हारी स्तुति करने के लिये कैसे समर्थ होवैंगे ॥ ७८ ॥ किंपुरुष बोले कि हे रामनाथ ! अनेक योनियों में उत्पन्न होना व अनेकबार मरण तथा अज्ञान को नाश कीजिये तुम्हारे

लिये नमस्कार है ॥ ७९ ॥ विद्याधर बोले कि हे वृषध्वज ! पार्वती के पति आप निस्संग महात्मा के लिये नमस्कार है व आप रामनाथजी के लिये प्रणाम है प्रसन्न होवो ॥ ८० ॥ वसु बोले कि हे रामनाथ ! गणसमूहों से पूजित चरणवाले आप गणेश व गुह्य तथा गंगाधर के लिये प्रणाम है तुम सदैव हमलोगों की रक्षा करो ॥ ८१ ॥ विश्वेदेवता बोले कि हे शंकरजी ! केवल ज्ञान में लगेहुए उत्तम योगियों को मुक्ति देनेवाले सांब रामनाथजी के लिये प्रणाम है हमारी रक्षा कीजिये ॥ ८२ ॥ मरुत् बोले कि तत्त्वों के मध्य में परतत्त्व और वस्तु से तत्त्वभूत आप के लिये नमस्कार है व स्वयंप्रकाशमान और रामनाथ शंभुजीके लिये प्रणाम

मोस्तुते ॥ ७९ ॥ विद्याधरा ऊचुः ॥ अम्बिकापतयेतुभ्यमसङ्गायमहात्मने ॥ नमस्तेरामनाथाय प्रसीदवृषभध्वज ॥ ८० ॥ वसव ऊचुः ॥ रामनाथगणेशाय गणवृन्दार्चिताङ्घ्रये ॥ गङ्गाधरायगुह्याय नमस्तेपाहिनःसदा ॥ ८१ ॥ विश्वेदेवा ऊचुः ॥ ज्ञप्तिमात्रैकनिष्ठानां मुक्तिदायसुयोगिनाम् ॥ रामनाथायसाम्बाय नमोस्मान्रक्षशङ्कर ॥ ८२ ॥ मरुत ऊचुः ॥ परतत्त्वायतत्त्वानां तत्त्वभूतायवस्तुतः ॥ नमस्तेरामनाथाय स्वयंभानायशम्भवे ॥ ८३ ॥ साध्या ऊचुः ॥ स्वातिरिक्तविहीनाय जगत्सत्ताप्रदायिने ॥ रामेश्वरायदेवाय नमोविद्याविभेदिने ॥ ८४ ॥ सर्वेदेवा ऊचुः ॥ सच्चिदानन्दसम्पूर्णद्वैतवस्तुविवर्जितम् ॥ ब्रह्मात्मानंस्वयंभानमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ ८५ ॥ अविक्रियमसङ्गञ्च परिशुद्धंसनातनम् ॥ आकाशादिप्रपञ्चानां साक्षिभूतंपरामृतम् ॥ ८६ ॥ प्रमातीतंप्रमाणानामपिबोधप्रदायिनम् ॥ आविर्भावतिरोभावसंकोचरहितंसदा ॥ ८७ ॥ स्वस्मिन्नध्यस्तरूपस्यप्रपञ्चस्यास्यसाक्षिणम् ॥ निर्लेपंपरमानन्दं निरस्तसकलक्रियम् ॥ ८८ ॥

है ॥ ८३ ॥ साध्य बोले कि अपना से अधिकसे रहित और संसार की सत्ताको देनेवाले व माया को नाशनेवाले रामेश्वरदेवजी के लिये प्रणाम है ॥ ८४ ॥ सब देवता बोले कि सच्चिदानन्द संपूर्ण व द्वैतवस्तु से रहित ब्रह्मात्मक तथा स्वयंप्रकाशमान और आदि, मध्य व अन्त से रहित ॥ ८५ ॥ व विकारहीन तथा निस्संग व शुद्ध, सनातन और आकाशादिक प्रपंचों के साक्षीभूत तथा परमामृत ॥ ८६ ॥ और प्रमाणों की प्रमाण से परे व बोध देनेवाले तथा सदैव प्रकट व अन्तर्द्धान और संकोच से रहित ॥ ८७ ॥ व अपने में अध्यस्तरूपवाले और इस प्रपंच (संसार) के साक्षी तथा गर्वरहित व परमानन्द तथा समस्त कर्मों से रहित ॥ ८८ ॥

और बहुत आनन्दमय, भोगों से रहित व चिद्रूप रामनाथ महात्मा को अपने पापों की शुद्धि के लिये अपने आत्मानन्द को जानने की इच्छावाले हमलोग सदैव चित्त में ध्यान करते हैं ॥ ८९ । ९० ॥ व संसार को संहारनेवाले रामनाथ रुद्रजी के लिये नमस्कार है और अपनी माया से ब्रह्मा व विष्णुआदिक रूपसे भिन्न शिवजीके लिये प्रणाम है ॥ ९१ ॥ विभीषण के मंत्री बोले कि वरदायक, वरेण्य, त्रिनेत्र व त्रिशूलधारी तथा योगियों से ध्यान करनेयोग्य व नित्य तुम रामनाथके लिये नमस्कार है ॥ ९२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार रामआदिक सबों से स्तुति कियेहुए रामेश्वर शिवजी ने रामादिक सबों को बुलाकर कहा ॥ ९३ ॥ कि हे महाभाग, राम, राम, जानकीरमण,

भूमानन्दंमहात्मानं चिद्रूपंभोगवर्जितम् ॥ रामनाथंवयंसर्वे स्वपातकविशुद्धये ॥ ८९ ॥ चिन्तयामःसदाचित्ते स्वात्मानन्दबुभुत्सवः ॥ रक्षास्मान्करुणासिन्धो रामनाथनमोस्तुते ॥ ९० ॥ रामनाथायरुद्राय नमःसंसारहारिणे ॥ ब्रह्मविष्णवादिरूपेण विभिन्नायस्वमायया ॥ ९१ ॥ विभीषणसचिवाऊचुः ॥ वरदायवरेण्याय त्रिनेत्रायत्रिशूलिने ॥ योगिध्येयायनित्याय रामनाथायतेनमः ॥ ९२ ॥ इतिरामादिभिःसर्वैःस्तुतोरामेश्वरःशिवः ॥ प्राहसर्वान्समाहूय रामादीन्द्विजसत्तमाः ॥ ९३ ॥ रामराममहाभाग जानकीरमणप्रभो ॥ सौमित्रेजानकिशुभे हेसुग्रीवमुखास्तदा ॥ ९४ ॥ अन्येब्रह्ममुखायूयं शृणुध्वंसुसमास्थिताः ॥ स्तोत्राध्यायमिमंपुण्यं युष्माभिःकृतमादरात् ॥ ९५ ॥ येपठन्तिचशृण्वन्तिश्रावयन्तिचमानवाः ॥ मदर्चनफलंतेषां भविष्यतिनसंशयः ॥ ९६ ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटिस्नानपुण्यंचवैभवेत् ॥ वर्षमेकंरामसेतौ वासपुण्यंभविष्यति ॥ ९७ ॥ गन्धमादनमध्यस्थसर्वतीर्थाभिमज्जनात् ॥ यत्पुण्यंतद्भवेत्तेन

प्रभो ! हे लक्ष्मण ! हे शुभे, जानकि ! हे सुग्रीवादिक ! ॥ ९४ ॥ व हे ब्रह्मादिक अन्य देवताओ ! सावधान होतेहुए तुमलोग सुनो कि तुमलोगों से आदर से किये हुए इस पवित्र स्तोत्राध्याय को ॥ ९५ ॥ जो मनुष्य सुनते, सुनाते व पढ़ते हैं उनको मेरे पूजन का फल होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९६ ॥ और रामचन्द्र की धनुष्कोटि में स्नान का पुण्य होगा व एक वर्षतक रामसेतुपै निवास का पुण्य होगा ॥ ९७ ॥ और गन्धमादन के मध्य में स्थित सब तीर्थों के नहाने से जो पुण्य होता है वह

उससे होता है इसमें सन्देह का कारण नहीं है ॥ ६८ ॥ और वृद्धता व मरण से छूटाहुआ मनुष्य जन्म के दुःख से रहित होकर निस्सन्देह रामनाथजी की सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामादिभीरामनाथस्तोत्रकथनंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४६ ॥
दो० । कियो पुण्यनिधि नृपति जिमि लक्ष्मिहिं पुत्री थान । सो पचास अध्याय में कीन्हो चरित बखान ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनियो ! इसके उपरान्त मैं सेतुमाधव के प्रभाव को कहताहूं उस पवित्र व पापहारक तथा उत्तम माहात्म्य को सुनिये ॥ १ ॥ कि पुरातन समय चन्द्रवंश में उत्पन्न पुण्यनिधि नामक राजाने हालास्येश्वर से

नात्रसंशयकारणम् ॥ ९८ ॥ जरामरणनिर्मुक्तो जन्मदुःखविवर्जितः ॥ रामनाथस्यसायुज्यमुक्तिप्राप्नोत्यसंशयः ॥ ९९ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येरामादिभीरामनाथस्तोत्रकथनन्नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ * ॥
श्रीसूत उवाच ॥ अथातःसम्प्रवक्ष्यामि सेतुमाधववैभवम् ॥ शृणुध्वंमुनयोभक्त्या पुण्यंपापहरंशुभम् ॥ १ ॥ पुरापुण्यनिधिर्नाम राजासोमकुलोद्भवः ॥ मथुरांपालयामास हालास्येश्वरभूषिताम् ॥ २ ॥ कदाचित्समहीपालश्च तुरङ्गबलान्वितः ॥ सोन्तःपुरपरीवारो मथुरायांनिजंसुतम् ॥ ३ ॥ स्थापयित्वारामसेतुं प्रययौस्नानकौतुकी ॥ तत्रग त्वाधनुष्कोटौ स्नात्वासङ्कल्पपूर्वकम् ॥ ४ ॥ अन्येष्वपिचतीर्थेषु तत्रत्येषुनृपोत्तमः ॥ सस्नौरामेश्वरंदेवं सिषेवेचस भक्तिकम् ॥ ५ ॥ एवंसबहुकालंवै तत्रैवन्यवसत्सुखम् ॥ रामसेतौवसन्पुण्ये गन्धमादनपर्वते ॥ ६ ॥ विष्णुप्रीतिकरं यज्ञं कदाचिदकरोन्नृपः ॥ यज्ञावसानेराजासौमुदावभृथकौतुकी ॥ ७ ॥ सस्नौरामधनुष्कोटौ सदारःसपरिच्छदः ॥

भूषित मथुरापुरी को पालन किया ॥ २ ॥ किसी समय चतुरंगिणी सेनासमेत व रनिवास तथा कुटुंब समेत वह राजा मथुरापुरी में अपने पुत्रको ॥ ३ ॥ स्थापितकर स्नान के कौतुकवाला वह रामसेतु को गया और वहां जाकर संकल्पपूर्वक धनुष्कोटि में नहाकर ॥ ४ ॥ वहां के अन्यभी तीर्थों में नृपोत्तम ने स्नान किया व भक्तिसमेत रामेश्वर देव की सेवा किया ॥ ५ ॥ इसी प्रकार बहुत समयतक उसने वहां सुखपूर्वक निवास किया और पवित्र रामसेतु पै गन्धमादन पर्वतपै बसतेहुए ॥ ६ ॥ राजा ने किसी समय विष्णुजी की प्रीति को करनेवाला यज्ञ किया और यज्ञके अन्तमें स्त्री समेत व परिवार समेत अवभृथ स्नान के कौतुकवाले इस राजाने हर्ष से रामजीकी धनुष्कोटि

में स्नान किया व हे ब्राह्मणो! रामनाथजी की सेवाकर वह राजा घरको चलागया॥ ७। ८॥ इस प्रकार इस पुण्यनिधि राजाके निवास करतेहुए उस समय किसी काल में विष्णुजी ने क्रीड़ा कलह के कारण लक्ष्मी को पठाया॥ ९॥ याने राजाकी भक्ति की परीक्षा करने के लिये विष्णुभगवान् ने प्रतिज्ञाकर वैकुंठ से कमलस्थानवाली लक्ष्मी को पठाया॥ १०॥ और आठवर्ष की अवस्था व रूपवाली लक्ष्मीजी गन्धमादन पर्वतपै गईं और उस धनुष्कोटि में जाकर वे कमलालया लक्ष्मीजी टिकीं॥११॥ हे ब्राह्मणो! उस समय स्त्रीसमेत व सेना समेत पुण्यनिधि राजा रामजी की धनुष्कोटि में नहाने के लिये गया॥१२॥ और वहां जाकर नियमपूर्वक इस राजा ने स्नानकर

सेवित्वारामनाथंच सवेश्मप्रययौद्विजाः॥ ८॥ एवंनिवसमानेस्मिन् राज्ञिपुण्यनिधौतदा॥ कदाचिद्धरिणालक्ष्मी विनोदकलहाकुलात्॥ ९॥ हरिणासमयंकृत्वा नृपभक्तिपरीक्षितुम्॥ विष्णुनाप्रेषितालक्ष्मीर्वैकुण्ठात्कमलाल या॥ १०॥ अष्टवर्षवयोरूपा प्रययौगन्धमादने॥ तत्रागत्यधनुष्कोटौ तस्थौसाकमलालया॥ ११॥ तस्मिन्नवस रेराजा ययौपुण्यनिधिर्द्विजाः॥ स्नातुंरामधनुष्कोटौ सदारःसहसैनिकः॥ १२॥ तत्रगत्वासराजायं स्नात्वानियमपूर्व कम्॥ तुलापुरुषमुख्यानि कृत्वादानानिकृत्स्नशः॥ १३॥ प्रयातुकामोभवनंकन्यांकाञ्चिद्ददर्शसः॥ अतीवरूप सम्पन्नामष्टवर्षांशुचिस्मिताम्॥ १४॥ दृष्ट्वानृपस्तांपप्रच्छ कन्यांचारुविलोचनाम्॥ चारुस्मितांचारुदतींबिम्बोष्ठीं तनुमध्यमाम्॥ १५॥ पुण्यनिधिरुवाच॥ कात्वंकन्येसुताकस्य कुतोवात्वमिहागता॥ अत्रागमनेकिंकार्यं तववत्से शुचिस्मिते॥ १६॥ एवंनृपस्तांपप्रच्छ कन्यामुत्पललोचनाम्॥ एवंपृष्टातदाकन्या नृपंतमवदद्विजाः॥ १७॥ नमे

तुलापुरुष आदिक सम्पूर्ण दानों को करके॥ १३॥ घरको जानेकी इच्छावाले उस राजाने किसी कन्या को देखा और अत्यन्तरूप से संयुत आठवर्षवाली व पवित्र हास्य वाली॥ १४॥ उस सुन्दर नयनोंवाली कन्या को देखकर सुन्दर मुसक्यान व सुन्दर दांतोंवाली तथा बिंबाफल के समान ओंठोंवाली व सूक्ष्म कटिवाली उस कन्या से पूंछा॥ १५॥ पुण्यनिधि बोले कि हे कन्ये! तुम कौन हो व किसकी कन्याहो और कहां से यहां आई हो व हे शुचिस्मिते, वत्से! यहां आने से तुम्हारा क्या कार्य है॥ १६॥ राजा ने कमललोचनोंवाली उस कन्या से इस प्रकार पूंछा व हे ब्राह्मणो! उस समय इस प्रकार पूंछीहुई कन्या ने उस राजा से कहा॥ १७॥ कि हे

महाराज ! मेरे न माता है न पिता है और न मेरे बन्धु हैं वरन मैं अनाथ हूं और तुम्हारी कन्या हूंगी ॥ १८ ॥ हे तात ! तुमको सदैव देखतीहुई मैं तुम्हारे घर में बसूंगी और हठसे जो मुझको खींचैगा अथवा जो हाथ से मुझको पकड़ैगा ॥ १९ ॥ हे भूप ! यदि तुम उसको शासन करोगे तो हे गुणनिधे, पिताजी ! तुम्हारी कन्याहोकर मैं बहुतदिनोंतक तुम्हारे घरमें बसूंगी ॥ २० ॥ इस प्रकार कहेहुए पुण्यनिधि राजाने कन्यासे कहा कि हे शुभे, कन्यके ! मैं तुमसे कहेहुए सब वचन को करूंगा ॥ २१ ॥ क्योंकि मेरे भी कन्या नहीं है और कुलको उन्नति में प्राप्त करनेवाला एक पुत्र है हे भद्रे ! जिसमें तुम्हारी रुचि होगी उसको मैं तुमको दूंगा ॥ २२ ॥ हे अनिन्दिते,

मातापितानास्ति नचमेबान्धवास्तथा ॥ अनाथाहंमहाराज भविष्यामिचतेसुता ॥ १८ ॥ त्वद्गृहेहंनिवत्स्यामि तां त्वांपश्यतीसदा ॥ हठात्कृष्यतियोवामां ग्रहीष्यतिकरेणतम् ॥ १९ ॥ यदिशासिष्यसेभूप तदाहंतवमन्दिरे ॥ वत्स्यामितेसुताभूत्वा पितुर्गुणनिधेचिरम् ॥ २० ॥ एवमुक्तस्तदाप्राह कन्यांपुण्यनिधिर्नृपः ॥ अहंसर्वंकरिष्यामि त्वदुक्तंकन्यकेशुभे ॥ २१ ॥ ममापिदुहितानास्ति पुत्रोस्त्येकःकुलोद्वहः ॥ तवयस्मिन्रुचिर्भद्रे त्वांतस्मैप्रददाम्यहम् ॥ २२ ॥ आगच्छमद्गृहंकन्ये ममचान्तःपुरेवस ॥ मद्भार्यायाःसुताभूत्वा यथाकाममनिन्दिते ॥ २३ ॥ इत्युक्तासानृपेणाथ कन्याकमललोचना ॥ तथास्त्वितिनृपंप्रोच्य तेनसार्कंययौगृहम् ॥ २४ ॥ राजास्वभार्याहस्तेतां प्रददौकन्यकांशुभाम् ॥ अब्रवीचस्वकांभार्यां राजाविन्ध्यावलींतदा ॥ २५ ॥ आवयोःकन्यकाचेयं राज्ञिविन्ध्यावलेशुभे ॥ रक्षेमांसर्वथात्वंवै पुरुषान्तरतःप्रिये ॥ २६ ॥ इतीरितानृपेणासौ भार्याविन्ध्यावलिस्तदा ॥ ॐमित्युक्त्वाथतांकन्यां पुत्रींजग्राह

कन्ये ! मेरे घरको आइये व मेरे रनिवास में मेरी स्त्री की कन्या होकर इच्छा के अनुकूल बासिये ॥ २३ ॥ राजा से इस प्रकार कहीहुई कमल समान लोचनोंवाली वह कन्या वैसाही होवै यह राजा से कहकर उसके साथ घरको चलीगई ॥ २४ ॥ और राजा ने उस उत्तम कन्या को अपनी स्त्री के हाथ में दिया व उस समय राजाने अपनी विन्ध्यावली रानीसे कहा ॥ २५ ॥ कि हे प्रिये, शुभे, विन्ध्यावलि, राज्ञि ! हम तुम दोनों की यह कन्या है इसकी अन्य पुरुष से सब प्रकार से रक्षा कीजिये ॥ २६ ॥ उस समय

राजा से इस प्रकार कहीहुई इस विंध्यावलि स्त्री ने बहुत अच्छा यह कह कर उस कन्या को हाथ से पकड़ लिया ॥ २७ ॥ और राजा से पुत्रकी नाईं पालन व पोषण कीहुई उस कन्या ने सदैव प्यारी होकर राजा के घरमें सुखपूर्वक निवास किया ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! जगदीश विष्णुजी आदर से लक्ष्मी को ढूंढ़ने के लिये विनतातनय (गरुड़) के ऊपर चढ़कर वैकुंठसे निकले ॥ २९ ॥ और वैकुंठ से निकलकर आकाशमार्ग को नांघकर उन्हों ने बहुत देशों में भ्रमण किया और वहां लक्ष्मीजी को नहीं देखा ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त वे विष्णुजी रामसेतु को गये और गन्धमादन पै लक्ष्मीजी को ढूंढ़कर रामसेतु के सबओर घूमते रहे ॥ ३१ ॥

पाणिना ॥ २७ ॥ पोषितापालिताराज्ञा सुतवत्कन्यकाचसा ॥ न्यवात्सीत्समुखंराज्ञो भवनेलालितासदा ॥ २८ ॥ अथविष्णुर्जगन्नाथो लक्ष्मीमन्वेष्टुमादरात् ॥ आरूढविनतानन्दो वैकुण्ठान्निर्ययौद्विजाः ॥ २९ ॥ विनिर्गत्यसवैकुण्ठाद्विलङ्घितवियत्पथः ॥ बभ्रामचबहून्देशाल्लँलक्ष्मींतत्रनदृष्टवान् ॥ ३० ॥रामसेतुमथागच्छद्गन्धमादनपर्वते ॥ अन्विष्यसर्वतोरामसेतुंबभ्रामचेन्दिराम् ॥ ३१ ॥ एतस्मिन्नेवकालेसा पुष्पावचयकौतुकात् ॥ सखीभिःकन्यकायासीद्वनोद्यानपादपान् ॥ ३२ ॥ पुष्पाण्यपचिनोतिस्म सखीभिःसहकानने ॥ तत्रागत्यततोविष्णुर्विप्ररूपधरोद्विजाः ॥ ३३ ॥ गङ्गाम्भोविदधत्स्कन्धे वहञ्छत्रंकरेणच ॥ गङ्गास्नायीद्विजस्येवरचयन्वेषमात्मनः ॥ ३४ ॥ धारयन्दक्षिणेपाणौ कुशग्रन्थिपवित्रकम् ॥ भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गस्त्रिपुण्ड्रावलिशोभितः ॥ ३५ ॥ प्रजपञ्छिवनामानि धृतरुद्राक्षमालिकः ॥

इसी अवसर में फूलों के तोड़ने के कौतुक से सखियों से घिरीहुई वह कन्या गृह के समीप बगीचे के वृक्षों को गई ॥ ३२ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! जहां सखियों के साथ वह फूलों को तोड़ती थी वहां ब्राह्मण के रूपको धारनेवाले विष्णुजी जाकर ॥ ३३ ॥ गंगाजी के जल को कंधे पै धरे व छत्रको हाथ से लिये अपने वेषको गंगाजीके नहानेवाले ब्राह्मण की नाईं रचतेहुए स्थित हुए ॥ ३४ ॥ और कुशकी ग्रंथिपूर्वक पवित्री को दाहिने हाथ में धारण किये तथा भस्मको सर्वांग में लगाये और त्रिपुंड्रकी अवली से शोभित ॥ ३५ ॥ व हे ब्राह्मणो ! शिवजी के नामों को जपतेहुए व रुद्राक्ष की माला को धारण किये उत्तरीय (दुपट्टे) समेत पवित्र

विष्णुजी आगये ॥ ३६ ॥ व आयेहुए उस ब्राह्मणको देखकर ढीठ कन्या खड़ी होगई और आठवर्षवाली उस फूलों को तोड़नेवारी प्यारी कन्या को विष्णुजी ने देखा ॥ ३७ ॥ व मधुर बोलनेवाली कन्या को देखकर इन विप्ररूपी विष्णुजीने शीघ्रता से हठकरके खींचकर हाथ से पकड़ लिया ॥ ३८ ॥ तब सखियों समेत वह कन्या चिल्लानेलगी और उस चिल्लाने के शब्दको सुनकर वह राजा आगया ॥ ३९ ॥ और कितेक योधाओं से घिराहुआ वह घरके समीप बगीचे को गया और जाकर राजा ने उस कन्यासे व उसकी सखियों से भी पूंछा ॥ ४० ॥ कि हे कन्ये ! इस समय गृहोद्यान में सखियों समेत तुम क्यों चिल्लाउठी उस विषय में कारणको कहिये ॥४१॥

सोत्तरीयःशुचिर्विप्रः समायातोजनार्दनः ॥ ३६ ॥ तमागतंद्विजंदृष्ट्वास्तब्धातिष्ठतकन्यका ॥ अपश्यदष्टवर्षान्तांव ल्लभांपुष्पहारिणीम् ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वासत्वरयाविप्रः कन्यांमधुरभाषिणीम् ॥ हठात्कृष्यकरेणासौ जग्राहगरुडध्व जः ॥ ३८ ॥ तदाचुक्रोशसाकन्या सखीभिःसहकानने ॥ तमाक्रोशंसमाकर्ण्य राजासतुसमागतः ॥ ३९ ॥ प्रययौभ वनोद्यानं वृतःकतिपयैर्भटैः ॥ गत्वापप्रच्छतांकन्यां तत्सखीरपिभूपतिः ॥ ४० ॥ किमर्थमधुनाक्रुष्टं सखीभिःसहक न्यके ॥ त्वयातुभवनोद्याने तत्रकारणमुच्यताम् ॥ ४१ ॥ केनत्वंपरिभूतासि हठात्कृष्यसुतेमम ॥ इतिपृष्टातमाचष्ट कन्यागुणनिधिंनृपम् ॥ ४२ ॥ बाष्पपूर्णाननाखिन्नारुषिताभृशकातरा ॥ कन्योवाच ॥ अयंविप्रोहठात्कृष्य जगृहेपा ण्ड्यनाथमाम् ॥ ४३ ॥ तातात्रवृक्षमूलेसौ सतिष्ठत्यकुतोभयः ॥ तदाकर्ण्यवचस्तस्या राजागुणनिधिःसुधीः ॥ ४४ ॥ जग्राहतरसाविप्रमविद्वांस्तद्बलंहठात् ॥ रामनाथालयंनीत्वा निगृह्यचहठात्तदा ॥ ४५ ॥ बद्ध्वानिगडपाशाभ्यामन

हे ममसुते ! हठसे खींचकर किसने तुम्हारा अनादर किया इस प्रकार पूंछीहुई कन्या ने उस गुणनिधि राजा से कहा ॥ ४२ ॥ जोकि आंसुवों से पूर्णमुखवाली तथा उदासीन व क्रोधित और बहुतही डरी थी कन्या बोली कि हे पांड्यनाथ ! इस ब्राह्मण ने हठ से खींचकर मुझको पकड़लिया ॥ ४३ ॥ व हे पिताजी ! सबकहीं से निडर वही यह वृक्षकी जड़में खड़ा है उस कन्या के उस वचन को सुनकर उत्तम बुद्धिवाले गुणनिधि राजाने ॥ ४४ ॥ उसके बलको न जानते हुए हठकरके शीघ्रता से उस ब्राह्मण को पकड़लिया और उस समय रामनाथजी के मंदिर को लेजाकर हठसे दंड देकर ॥ ४५ ॥ व बेड़ी और फँसरियों से बांधकर उरु.को राजा मंडप में लाया और अपनी

कन्या को समझाकर रनिवास को लाया ॥ ४६ ॥ और नृपोत्तम आप सुन्दर मन्दिरको चलागया तदनन्तर रात्रि में सोतेहुए राजाने स्वप्न में उस ब्राह्मण को देखा ॥ ४७ ॥ जो विष्णु कि शंख, चक्र, गदा, कमल व वनमाला से भूषित तथा कौस्तुभमणि से भूषित व वक्षस्थलवाले और पीताम्बरधारी थे ॥ ४८ ॥ और काले मेघों के समान छविवाले व सुन्दर तथा गरुड़ के ऊपर बैठे और सुन्दर मुसक्यान व मनोहर दंतोंवारे तथा शोभित मकराकृत कुण्डलों को पहने थे ॥ ४९ ॥ और विष्वक्सेन आदिक पार्षदों से सेवित तथा शेषशय्या पै सोनेवाले और नारदादिक मुनियों से स्तुति कियेजाते थे ॥ ५० ॥ और कमल को हाथ में धारण किये व नीले तथा घुंघुवारे

ततोरा यन्मण्डपंचतम् ॥ आत्मपुत्रींसमाश्वास्य शुद्धान्तमनयन्नृपः ॥ ४६ ॥ स्वयंचप्रययौरम्यं भवनंनृपपुङ्गवः ॥ त्रौस्वपन्राजा स्वप्नेविप्रंददर्शतम् ॥ ४७ ॥ शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥ कौस्तुभालंकृतोरस्कं पीताम्ब रधरंहरिम् ॥ ४८ ॥ कालमेघच्छविंकान्तं गरुडोपरिसंस्थितम् ॥ चारुस्मितंचारुदन्तं लसन्मकरकुण्डलम् ॥ ४९ ॥ विष्वक्सेनप्रभृतिभिः किङ्करैरुपसेवितम् ॥ शेषपर्यङ्कशयनं नारदादिमुनिस्तुतम् ॥ ५० ॥ ददर्शचस्वकांकन्यां विकासि कमलस्थिताम् ॥ धृतपङ्कजहस्तांतां नीलकुञ्चितमूर्धजाम् ॥ ५१ ॥ विष्णुवक्षस्थलावासां समुन्नतपयोधराम् ॥ दिग्ग जैरभिषिक्ताङ्गीं श्यामांपीताम्बरावृताम् ॥ ५२ ॥ स्वर्णपङ्कजसंक्लृप्तमालालङ्कृतमूर्धजाम् ॥ दिव्याभरणशोभाढ्यां चारुहारविभूषिताम् ॥ ५३ ॥ अनर्घरत्नसंक्लृप्तनासाभरणशोभिताम् ॥ सुवर्णनिष्काभरणां काञ्चिनूपुरराजि ताम् ॥ ५४ ॥ महालक्ष्मींददर्शासौ राजारात्रौस्वकांसुताम् ॥ एवंदृष्ट्वानृपःस्वप्ने विप्रंतंस्वसुतामपि ॥ ५५ ॥ उत्थितः

बालोंवाली व फूले कमल पै बैठी हुई उस अपनी कन्या को देखा ॥ ५१ ॥ और विष्णुजी के वक्षस्थल में निवास करनेवाली तथा ऊंचे कुचोंवारी और दिग्गजों से अभिषिक्त अंगोंवारी तथा श्यामा व पीताम्बर को पहने ॥ ५२ ॥ और सोने के कमलों से बनी हुई माला से भूषित बालोंवाली व दिव्य आभूषणों की शोभा से संयुत व सुन्दर हारों से भूषित ॥ ५३ ॥ और बड़े मोलवाले रत्नों से बनेहुए नासिकाभरण से शोभित तथा सोने की अशर्फियों के गहनेवाली व क्षुद्रघण्टिका तथा नूपुरों से शोभित ॥ ५४ ॥ अपनी महालक्ष्मी कन्या को रात्रि में इस राजा ने स्वप्न में देखा इस प्रकार राजा उस ब्राह्मण व अपनी कन्या को भी देखकर ॥ ५५ ॥ यकायक

शय्या से उठा व और कन्या के घर में प्राप्तहुआ व उसने वैसेही कन्या को देखा जिस प्रकार कि स्वप्न में देखा था ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर सूर्यनारायण के उदय होने पर राजा कन्या को लेकर रामनाथ के मन्दिर में प्राप्त हुआ जहां कि ब्राह्मण को टिकाया था ॥ ५७ ॥ और उस राजा ने जिस प्रकार स्वप्न में वनमालादिकों से चिह्नित उस ब्राह्मण को देखा था वैसेही उत्तम मंडप में विष्णुरूपी ब्राह्मण को देखा ॥ ५८ ॥ और विष्णुजी को जानकर राजा ने मनुष्यों के स्वामी विष्णुजी की स्तुति किया पुण्यनिधि बोले कि हे लक्ष्मीकांत, गरुड़ध्वज ! तुम्हारे लिये नमस्कार है प्रसन्न होवो ॥ ५९ ॥ हे शार्ङ्गपाणे ! तुम्हारे लिये नमस्कार है मेरे अपराध को क्षमा कीजिये

सहसातल्पात्कन्यागृहमवापच ॥ तथैवदृष्टवान्कन्यां यथास्वप्नेददर्शताम् ॥ ५६ ॥ अथोदितेसवितरि कन्यामादायभूमिपः ॥ रामनाथालयंप्राप ब्राह्मणंन्यस्तवान्यतः ॥ ५७ ॥ समण्डपवरेविप्रं ददर्शहरिरूपिणम् ॥ यथाददर्शस्वप्नेतं वनमालादिचिह्नितम् ॥ ५८ ॥ विष्णुंविज्ञायतुष्टाव नृपतिर्नृपतिंहरिम् ॥ पुण्यनिधिरुवाच ॥ नमस्तेकमलाकान्त प्रसीदगरुडध्वज ॥ ५९ ॥ शार्ङ्गपाणेनमस्तुभ्यमपराधंक्षमस्वमे ॥ नमस्तेपुंडरीकाक्ष चक्रपाणेश्रियःपते ॥ ६० ॥ कौस्तुभालंकृताङ्काय नमःश्रीवत्सलक्ष्मणे ॥ नमस्तेब्रह्मपुत्राय दैत्यसङ्घविदारिणे ॥ ६१ ॥ अशेषभुवनावास नाभिपङ्कजशालिने ॥ मधुकैटभसंहर्त्रे रावणान्तकरायते ॥६२॥ प्रह्लादरक्षिणेतुभ्यं धरित्रीपतयेनमः ॥ निर्गुणायाप्रमेयाय विष्णवे बुद्धिसाक्षिणे ॥ ६३ ॥ नमस्तेश्रीनिवासाय जगद्धात्रेपरात्मने ॥ नारायणायदेवाय कृष्णायमधुविद्विषे ॥ ६४ ॥ नमः

हे लक्ष्मीपते, चक्रपाणे, कमललोचन ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ६० ॥ और कौस्तुभमणि से भूषित वक्षस्थलवाले व श्रीवत्सचिह्न तथा दैत्यगणों को विदारनेवाले आप ब्रह्मपुत्र के लिये प्रणाम है ॥ ६१ ॥ हे समस्तलोकों के निवासभूत ! नाभि के कमल से शोभित व मधु कैटभ को संहारनेवाले तथा रावण को नाशनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ६२ ॥ और प्रह्लाद की रक्षा करनेवाले आप पृथ्वीपति के लिये प्रणाम है व निर्गुण अप्रमेय तथा बुद्धि के साक्षी विष्णुजी के लिये प्रणाम है ॥ ६३॥ और संसारको धारनेवाले परमात्मा व श्रीनिवास आपके लिये नमस्कार है और मधु दैत्यके वैरी नारायण कृष्णदेव के लिये प्रणाम है ॥ ६४ ॥ कमलनाभिवाले के

इच्छा से मुझ से पठाई हुई यह ॥ ८३ ॥ मेरी प्यारी लक्ष्मी हे राजन् ! इस समय तुम से रक्षितहुई उससे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं और यह सदैव मेरी स्वरूपवती है ॥ ८४ ॥ और संसार में जो इसमें भक्तिमान् है वह मेरा भक्त कहाजाता है व हे राजन् ! जो इसमें विमुख है वह सदैव मेरा वैरी कहागया है ॥ ८५ ॥ जिसलिये भक्ति से संयुत तुमने इसको पूजा है उस कारण मेरा भी पूजन कियागया क्योंकि यह मुझ से अभिन्न है ॥ ८६ ॥ इस कारण हे नरेश्वर ! तुमने मेरा अपराध नहीं किया है बरन उसको पूजतेहुए तुमने मेरा पूजनही किया है ॥ ८७ ॥ जिसलिये पुरातन समय तुमने मेरी स्त्री के साथ संकेत किया और उसके संकेत के छिपाने के

त्किंज्ञातुकामेन मयासंप्रेरितात्वियम् ॥ ८३ ॥ लक्ष्मीर्ममप्रियाराजंस्त्वयासंरक्षिताधुना ॥ तेनाहंतवतुष्टोस्मि मत्स्व रूपात्वियंसदा ॥ ८४ ॥ अस्यांयोभक्तिमाल्लोके समद्भक्तोभिधीयते ॥ अस्यांयोविमुखोराजन्समद्द्वेषीस्मृतःस दा ॥ ८५ ॥ त्वमिमांभक्तिसंयुक्तो यस्मात्पूजितवानसि ॥ मत्पूजापिकृतातस्मान्मदभिन्नात्वियंयतः ॥ ८६ ॥ अत स्त्वयानापराधः कृतोमयिनरेश्वर ॥ किन्तुपूजेवविहिता तांत्वयार्चयताम्मम ॥ ८७ ॥ त्वयामद्भार्ययासाकं सङ्केतो कारियत्पुरा ॥ तत्सङ्केताभिगुप्तार्थं मांयद्बन्धितवानसि ॥ ८८ ॥ तेनप्रीतोस्मितेराजल्लँक्ष्मीःसंरक्षिताधुना ॥ मत्स्व रूपाचसालक्ष्मीर्जगन्मातात्रयीमयी ॥ ८९ ॥ तद्रक्षांकुर्वताभूप त्वयायद्बन्धनंमम ॥ तत्प्रियंममराजेन्द्र माभयंक्रि यतांत्वया ॥ ९० ॥ इयंलक्ष्मीस्तवसुता सत्यमेवनसंशयः ॥ इतीरितेथहरिणा लक्ष्मीःप्रोवाचभूपतिम् ॥ ९१ ॥ लक्ष्मी रुवाच ॥ राजन्प्रीतास्मितेचाहं रक्षितायद्गृहेत्वया ॥ त्वद्भक्तिशोधनार्थंवै अहंविष्णुरुभावपि ॥ ९२ ॥ विनोदकलह

लिये तुमने जिस कारण मुझ को बाँधा है ॥ ८८ ॥ हे राजन् ! उससे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं इस समय जो लक्ष्मी रक्षित हुई है वह मेरे स्वरूपवाली लक्ष्मी संसार की माता व वेदत्रयीमयी है ॥ ८९ ॥ हे राजन् ! उसकी रक्षा करतेहुए तुमने जो मेरा बन्धन किया है हे नृपेन्द्र ! वह मुझको प्रिय है तुम डर न करो ॥ ९० ॥ और यह लक्ष्मी सत्यही तुम्हारी कन्या है इसमें सन्देह नहीं है विष्णुजी से यह कहने पर लक्ष्मी ने राजासे कहा ॥ ९१ ॥ लक्ष्मीजी बोलीं कि हे राजन् ! जिसलिये तुमने घर में मेरी रक्षा किया उस कारण मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं और तुम्हारी भक्ति के शोधन के लिये मैं और विष्णु दोनों भी ॥ ९२ ॥ हे राजन् !

तुम्हारे लिये बार २ नमस्कार है इस प्रकार महालक्ष्मीजी की स्तुति कर राजा ने विष्णुजीकी प्रार्थना किया ॥७४॥ कि हे विष्णो ! इस समय मैंने अज्ञानसे पैर में बेड़ी के बन्धन से तुम में जो दोष किया है वह द्रोह तुमको क्षमा करना चाहिये ॥७५॥ हे हरे ! वे सब लोक तुम्हारे बालक हैं और लोकों के तुम पिता हो हे मधुसूदन ! पिताओं को पुत्र का अपराध क्षमा करना चाहिये ॥ ७६ ॥ हे विष्णो ! आपने अपराधी दैत्यों को अपना रूप दिया है इससे मेरे भी इस अपराध को क्षमा करो ॥ ७७ ॥ हे भगवन् ! मारने की इच्छा से भी आईहुई पूतना को तुम ने अपने चरण कमल में प्राप्त किया इसलिये हे दयानिधे ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ ७८ ॥ हे लक्ष्मीपते,

भूयोनमस्तुभ्यं ब्रह्ममात्रेमहेश्वरि ॥ इतिस्तुत्वामहालक्ष्मीं प्रार्थयामासमाधवम् ॥ ७४ ॥ यदज्ञानान्मयाविष्णो त्वयिदोषःकृतोधुना ॥ पादेनिगडबन्धेन सद्रोहःक्षम्यतांत्वया ॥ ७५ ॥ लोकास्तेशिशवःसर्वे त्वंपिताजगतांहरे ॥ सुतापराधःपितृभिः क्षन्तव्योमधुसूदन ॥ ७६ ॥ अपराधिनांचदैत्यानां स्वरूपमपिदत्तवान् ॥ भवान्विष्णोम मापीममपराधंक्षमस्ववै ॥ ७७ ॥ जिघांसयापिभगवन्नागतांपूतनांभवेत् ॥ अनयत्स्वपदाम्भोजं तन्मांरक्षकृपा निधे ॥ ७८ ॥ लक्ष्मीकान्तकृपादृष्टिं मयिपातयकेशव ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इतिसंप्रार्थितोविष्णू राज्ञातेनद्विजोत्त माः ॥ ७९ ॥ प्राहगम्भीरयावाचा नृपंपुण्यनिधिंततः ॥ विष्णुरुवाच ॥ राजन्नभीस्त्वयाकार्या मद्बन्धननिमित्त जा ॥ ८० ॥ भक्तवश्यत्वमधुना तवप्रतिहितम्मया ॥ ममप्रीतिकरंयज्ञमकरोयद्भवानिह ॥ ८१ ॥ अतस्त्वंममभक्तोसि राजन्पुण्यनिधेधुना ॥ तेनाहंतववश्योस्मि भक्तिपाशेनयन्त्रितः ॥ ८२ ॥ भक्तापराधंसततं क्षमाम्यहमरिन्दम ॥ त्वद्भ

केशव ! मुझ में दयादृष्टि को धरिये श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उस राजा से इस प्रकार प्रार्थना कियेहुए विष्णुजी ने ॥ ७९ ॥ तदनन्तर गम्भीर वचन से पुण्यनिधि राजा से कहा विष्णुजी बोले कि हे राजन् ! मेरे बन्धन के निमित्त से उपजाहुआ डर तुमको न करना चाहिये ॥ ८० ॥ इस समय मैंने तुमको भक्तवश्यता दिया और जिसलिये आपने यहां मेरी प्रीतिकारक यज्ञ किया है ॥ ८१ ॥ इस कारण हे राजन्, पुण्यनिधे ! तुम मेरे भक्त हो और उसीकारण भक्तिकी फँसरी से बँधाहुआ मैं तुम्हारे वश हूं ॥ ८२ ॥ हे अरिन्दम ! मैं सदैव भक्त का अपराध क्षमा करता हूं और तुम्हारी भक्ति को जानने की

इच्छा से मुझ से पठाई हुई यह ॥ ८३ ॥ मेरी प्यारी लक्ष्मी हे राजन्! इस समय तुम से रक्षितहुई उससे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं और यह सदैव मेरी स्वरूपवती है ॥ ८४ ॥ और संसार में जो इसमें भक्तिमान् है वह मेरा भक्त कहाजाता है व हे राजन्! जो इसमें विमुख है वह सदैव मेरा वैरी कहागया है॥ ८५ ॥ जिसलिये भक्ति से संयुत तुमने इसको पूजा है उस कारण मेरा भी पूजन कियागया क्योंकि यह मुझ से अभिन्न है ॥ ८६ ॥ इस कारण हे नरेश्वर! तुमने मेरा अपराध नहीं किया है वरन उसको पूजतेहुए तुमने मेरा पूजनही किया है ॥ ८७ ॥ जिसलिये पुरातन समय तुमने मेरी स्त्री के साथ संकेत किया और उसके संकेत के छिपाने के

त्किंज्ञातुकामेन मयासंप्रेरितात्वियम् ॥ ८३ ॥ लक्ष्मीर्ममप्रियाराजंस्त्वयासंरक्षिताधुना ॥ तेनाहंतवतुष्टोस्मि मत्स्वरूपात्वियंसदा ॥ ८४ ॥ अस्यांयोभक्तिमाल्लोके समद्भक्तोभिधीयते ॥ अस्यांयोविमुखोराजन्समद्वेषीस्मृतःसदा ॥ ८५ ॥ त्वमिमांभक्तिसंयुक्तो यस्मात्पूजितवानसि ॥ मत्पूजापिकृतातस्मान्मदभिन्नात्वियंयतः ॥ ८६ ॥ अतस्त्वयानापराधः कृतोमयिनरेश्वर ॥ किन्तुपूजैवविहिता तांत्वयार्चयताम ॥ ८७ ॥ त्वयामद्भार्ययासाकं सङ्केतोकारियत्पुरा ॥ तत्सङ्केताभिगुप्तार्थं मांयद्बन्धितवानसि ॥ ८८ ॥ तेनप्रीतोस्मितेराजल्ँलक्ष्मीःसंरक्षिताधुना ॥ मत्स्वरूपाचसालक्ष्मीर्जगन्मातात्रयीमयी ॥ ८९ ॥ तद्रक्षांकुर्वताभूप त्वयायद्बन्धनंमम ॥ तत्प्रियंममराजेन्द्र माभयंक्रियतांत्वया ॥ ९० ॥ इयंलक्ष्मीस्तवसुता सत्यमेवनसंशयः ॥ इतीरितेथहरिणा लक्ष्मीःप्रोवाचभूपतिम् ॥ ९१ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ राजन्प्रीतास्मितेचाहं रक्षितायद्गृहेत्वया ॥ त्वद्भक्तिशोधनार्थंवै अहंविष्णुरुभावपि ॥ ९२ ॥ विनोदकलह

लिये तुमने जिस कारण मुझ को बाँधा है ॥ ८८ ॥ हे राजन्! उससे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं इस समय जो लक्ष्मी रक्षित हुई है वह मेरे स्वरूपवाली लक्ष्मी संसार की माता व वेदत्रयीमयी है ॥ ८९ ॥ हे राजन्! उसकी रक्षा करतेहुए तुमने जो मेरा बन्धन किया है हे नृपेन्द्र! वह मुझको प्रिय है तुम डर न करो ॥ ९० ॥ और यह लक्ष्मी सत्यही तुम्हारी कन्या है इसमें सन्देह नहीं है विष्णुजी से यह कहने पर लक्ष्मी ने राजासे कहा ॥ ९१ ॥ लक्ष्मीजी बोलीं कि हे राजन्! जिसलिये तुमने घर में मेरी रक्षा किया उस कारण मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं और तुम्हारी भक्ति के शोधन के लिये मैं और विष्णु दोनों भी ॥ ९२ ॥ हे राजन्!

क्रीड़ा कलह के बहाने से यहां आये हैं व हे परन्तप ! तुम्हारे योग व भक्ति से हम दोनों प्रसन्न हैं ॥ ९३ ॥ हे राजन् ! हम दोनों की दया से तुमको सदैव सुख होगा और सदैव तुमको निश्चय कर सब पृथ्वीमण्डल का ऐश्वर्य होगा ॥ ९४ ॥ और हम दोनों के युगल चरणों में तुम्हारी अचल भक्ति होवै और देहान्त में पुनरावृत्ति से रहित मेरी सायुज्य मुक्ति ॥ ९५ ॥ सदैव होगी व हे राजन् ! तुम्हारे पापकी बुद्धि मत होवै व विष्णुजी की भक्ति से संयुत तुम्हारी बुद्धि सदैव धर्म में होवै ॥ ९६ ॥ इस प्रकार लक्ष्मीजी राजा से कहकर विष्णुजी के वक्षस्थल में प्राप्तहुई इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! विष्णुजी ने राजासे यह कहा ॥ ९७ ॥ कि हे नृपोत्तम !

व्याजादागताविहभूपते ॥ तवयोगेनभक्तयाच तुष्टावावांपरंतप ॥ ९३ ॥ आवयोःकृपयाराजन्सुखन्तेभवतात्सदा ॥ सर्वभूमण्डलैश्वर्यं सदातेभवतुध्रुवम् ॥ ९४ ॥ आवयोःपादयुगले भक्तिर्भवतुतेध्रुवा ॥ देहान्तेममसायुज्यं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ९५ ॥ नित्यंभवतुतेराजन्माभूत्तेपापधीस्तथा ॥ सदाधर्मेभवतुधीर्विष्णुभक्तियुतातव ॥ ९६ ॥ एवमुक्त्वानृपं लक्ष्मीर्विष्णोर्वक्षस्थलंययौ ॥ अथविष्णुरुवाचेदं राजानंद्विजपुङ्गवाः ॥ ९७ ॥ यथात्वयात्रबद्धोहं निगडेननृपोत्तम ॥ तद्रूपेणैववत्स्यामि सेतुमाधवसंज्ञितः ॥ ९८ ॥ मयैवकारितःसेतुस्तद्रक्षार्थमहंनृप ॥ भूतराक्षससङ्घेभ्यो भयानामुपशान्तये ॥ ९९ ॥ ब्रह्मापिसेतुरक्षार्थं वसत्यत्रदिवानिशम् ॥ शङ्करोरामनाथाख्यो नित्यंसेतौवसत्यथ ॥ १०० ॥ इन्द्रादिलोकपालाश्च वसन्त्यत्रमुदान्विताः ॥ अतोहमत्रवत्स्यामि सेतुमाधवसंज्ञया ॥ १ ॥ सेतुसंरक्षणार्थंवै सर्वोपद्रवशान्तये ॥ सर्वेषामिष्टसिद्ध्यर्थं सर्वपापोपशान्तये ॥ २ ॥ त्वयानिगडबद्धंमां सेवन्तेयेत्रमानवाः ॥ तेयान्तिममसायुज्यं सर्वा

जिसप्रकार तुमने मुझको यहां बेड़ियों से बांधा है उसी रूप से सेतुमाधव संज्ञक मैं सेतु पै बसूंगा ॥ ९८ ॥ हे राजन् ! मैंनेही सेतु को किया है और उसकी रक्षा के लिये मैं भूतों व राक्षसों के गणों से भयों की शान्ति के लिये बसूंगा ॥ ९९ ॥ और सेतु की रक्षा के लिये ब्रह्माभी यहां दिन रात बसते हैं और रामनाथ नामक शंकरजी सदैव सेतु पै बसते हैं ॥ १०० ॥ और हर्ष से संयुत इन्द्रादिक लोकपाल यहां बसते हैं इसकारण सेतुमाधवसंज्ञा से मैं यहां बसता हूं ॥ १ ॥ सेतु की रक्षा के लिये व सब उपद्रवों की शांति के लिये तथा सबों की इष्टसिद्धि के लिये व सब पापों की शांति के लिये मैं यहां बसता हूं ॥ २ ॥ हे राजन् ! तुमसे निगड़ से बँधे हुए मुझको

जो मनुष्य यहा सेवते हैं वे मेरी सायुज्यमुक्ति व सब मनोरथको प्राप्त होते हैं॥ ३ ॥ और मेरे व लक्ष्मीजी के स्तोत्र व चरित को जो पढ़ते हैं वे दरिद्रता को नहीं प्राप्त होते हैं किन्तु वे ऐश्वर्य को पाते हैं ॥ ४ ॥ हे विशापते ! तुमसे किये हुए मेरे व लक्ष्मीजी के इस स्तोत्र को जो हर्षसंयुत मनुष्य पढ़ते, सुनते व लिखते हैं ॥ ५ ॥ मेरे लोक से उनकी पुनरावृत्ति कभी नहीं होती है उससमय वहा राजा पुण्यनिधि से यह कहकर वे विष्णुजी ॥ ६ ॥ सदैव पूर्णरूप से वहीं स्थित रहते हैं व हे ब्राह्मणो ! पुण्यनिधि राजा सेतुमाधवरूपी ॥ ७ ॥ विष्णुजी को भक्ति से प्रणामकर व महापूजन कर और रामनाथजी की सेवा करके अपने घर को चलागया ॥ ८ ॥ और जबतक जिया

भीष्टंतथानृप ॥ ३ ॥ ममलक्ष्म्यास्तवतथा चरितंयेपठन्तिवै ॥ नतेयास्यन्तिदारिद्र्यं किंत्वैश्वर्यंव्रजन्तिते ॥ ४ ॥ त्वत्कृतंयदिदंस्तोत्रं ममलक्ष्म्याविशाम्पते ॥ येपठन्तिचशृण्वन्ति लिखन्तिचमुदान्विताः ॥ ५ ॥ नतेषांपुनरावृत्तिर्ममलोकात्कदाचन ॥ इत्युक्त्वासहरिस्तत्र नृपंपुण्यनिधिंतदा ॥ ६ ॥ तत्रैवपूर्णरूपेण संनिधत्तेस्मसर्वदा ॥ नृपःपुण्यनिधिर्विप्राः सेतुमाधवरूपिणम् ॥ ७ ॥ विष्णुंप्रणम्यभक्त्यातु महापूजांविधायच ॥ सेवित्वारामनाथञ्च स्वमेवभवनंययौ ॥ ८ ॥ यावज्जीवमसौतत्र सेतौन्यवसदुत्तमे ॥ मथुरायांनिजंपुत्रं स्थापयामासपालकम् ॥ ९ ॥ तत्रैवनिवसन्राजा देहान्तेमुक्तिमाप्तवान् ॥ विन्ध्यावलिश्चतत्पत्नी तमेवानुममारसा ॥ १० ॥ पतिव्रतापतिप्राणा प्रययौसापिसद्गतिम् ॥ श्रीसूत उवाच ॥ येत्रभक्तियुतानित्यं सेवन्तेसेतुमाधवम् ॥ ११ ॥ नतेषांपुनरावृत्तिः कैलासाज्जातुजायते ॥ सेतुमाधवसेवांये नकुर्वन्त्यत्रमानवाः ॥ १२ ॥ नतेषांरामनाथस्य सेवाफलवतीभवेत् ॥ गृहीत्वासैकतंसेतोर्गङ्गायांनिःक्षिपे

तबतक इसने उस उत्तम सेतु पै निवास किया और मथुरापुरी में अपने पुत्र को रक्षक स्थापित किया ॥ ९ ॥ और वहीं बसतेहुए राजा ने देहान्त में मुक्ति को पाया और उसकी स्त्री वह विन्ध्यावलि उसी के पीछे मरगई ॥ १० ॥ और पतिव्रता व पति में प्राणोंवाली वह भी उत्तम गति को प्राप्तहुई श्रीसूतजी बोले कि भक्तिसंयुत जो मनुष्य यहा सदैव सेतुमाधवजी को सेवते हैं॥ ११ ॥ उनकी कभी कैलास से पुनरावृत्ति नहीं होती है और यहां जो मनुष्य सेतुमाधव की सेवा नहीं करते हैं ॥ १२ ॥ उनकी

रामनाथजी की सेवा फलवती नहीं होती है और सेतुकी बालू को लेकर यदि गङ्गाजी में डालता है ॥ १३ ॥ वह मनुष्य मरकर माधवपुर वैकुण्ठ में बसता है व हे ब्राह्मणो ! गङ्गाजी को जानेकी इच्छावाला मनुष्य सेतुमाधवके समीप ॥ १४ ॥ संकल्प कर गङ्गाजी को जाता है तो वह यात्रा सफल होती है और गङ्गाजी का जल लाकर रामेश्वरजी को स्नान कराकर ॥ १५ ॥ सेतु पै उसके भार को घर कर निस्सन्देह ब्रह्म को प्राप्त होता है हे ब्राह्मणो ! तुम लोगों से यह सेतुमाधव का प्रभाव कहागया ॥ १६ ॥ इसको पढ़ता व सुनता हुआ मनुष्य वैकुण्ठ में गति को पाता है ॥ ११७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां

द्यदि ॥ १३ ॥ प्रेत्यवैमाधवपुरे वैकुण्ठेसवसेन्नरः ॥ गङ्गांजिगमिषुर्विप्राः सेतुमाधवसन्निधौ ॥ १४ ॥ सङ्कल्प्यगङ्गांनिर्ग च्छेत्सायात्रासफलाभवेत् ॥ आनीयगङ्गासलिलं रामेशमभिषिच्यच ॥ १५ ॥ सेतौनिक्षिप्यतद्भारं ब्रह्मप्राप्नोत्यसंश यः॥ इतिवःकथितंविप्राः सेतुमाधववैभवम् ॥ १६॥ एतत्पठन्वाशृण्वन्वा वैकुण्ठेलभतेगतिम् ॥ ११७॥ इति श्रीस्कन्दपु राणेसेतुमाहात्म्येसेतुमाधवप्रशंसायांपुण्यनिधिचरितकथनंनामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ अथातःसम्प्रवक्ष्यामि सेतुयात्राक्रमंद्विजाः ॥ यंश्रुत्वासर्वपापेभ्यो मुच्यतेमानवःक्षणात् ॥ १ ॥ स्नात्वाचम्यविशुद्धात्मा कृतनित्यविधिःसुधीः ॥ रामनाथस्यतुष्ट्यर्थं प्रीत्यर्थंराघवस्यच ॥ २ ॥ भोजयित्वायथाशक्ति ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गस्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकः ॥ ३ ॥ गोपीचन्दनलिप्तोवा स्वभालेप्यूर्ध्वपुण्ड्रकः ॥

भाषाटीकायांसेतुमाधवप्रशंसायांपुण्यनिधिचरितकथनन्नामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

सेतुयात्राक्रमहुं अरु अहै यथा सुविधान । इक्यावन अध्याय में सोई कियो बखान ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! इसके उपरान्त मैं सेतुयात्रा के क्रम को कहताहूं कि जिसको सुनकर मनुष्य क्षणभर में सब पापों से छूटजाता है ॥ १ ॥ शुद्धचित्त व उत्तम बुद्धिवाला पुरुष रामनाथजी की प्रसन्नता के लिये व रघुनाथजी की प्रीति के लिये नहाकर आचमन कर नित्य विधि को करै ॥ २ ॥ और शक्ति के अनुसार वेदों के पारगामी ब्राह्मणों को भोजन कराकर सब अंगों में भस्म को लगा कर मस्तक में त्रिपुण्ड्र को लगावै ॥ ३ ॥ अथवा गोपीचन्दन को लगावै या अपने मस्तक में ऊर्ध्वपुण्ड्र को लगावै और रुद्राक्ष की माला का आभूषण किये पैंतियों समेत

हाथवाला पवित्र मनुष्य ॥ ४ ॥ मैं सेतुयात्रा करूंगा यह भक्ति से संकल्प कर अष्टाक्षर मन्त्र को जपताहुआ मनुष्य मौन होकर अपने घर से चलै ॥ ५ ॥ और मन को
रोंकेहुए मनुष्य पञ्चाक्षर मन्त्र को जपताहुआ एकबार हविष्य को भोजन करै और क्रोध को जीतेहुए जितेन्द्रिय मनुष्य ॥ ६ ॥ पादुका व छत्र से रहित होकर तांबूल
को वर्जित करै और तैलाभ्यंग से रहित होकर स्त्रीसंगादिक से रहित होवै ॥ ७ ॥ और शौच आदिक आचार से संयुत व सन्ध्योपासन में परायण होकर गायत्री की
उपासना करता हुआ मनुष्य त्रिकाल श्रीरामजी को ध्यान करै ॥ ८ ॥ और मार्ग के मध्य में नित्य आदर से सेतुमाहात्म्य को पढ़ताहुआ या रामायण व अन्य पुराण

रुद्राक्षमालाभरणः सपवित्रकरःशुचिः ॥ ४ ॥ सेतुयात्रांकरिष्येहमितिसङ्कल्प्यभक्तितः ॥ स्वगृहात्प्रव्रजेन्मौनी
जपन्नष्टाक्षरंमनुम् ॥ ५ ॥ पञ्चाक्षरंनाममन्त्रं जपेन्नियतमानसः ॥ एकवारंहविष्याशी जितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ ६ ॥ पा
दुकाछत्ररहितस्ताम्बूलपरिवर्जितः ॥ तैलाभ्यङ्गविहीनश्च स्त्रीसङ्गादिविवर्जितः ॥ ७ ॥ शौचाद्याचारसंयुक्तः सन्ध्योपास्ति
परायणः ॥ गायत्र्युपास्तिंकुर्वाणस्त्रिसन्ध्यंरामचिन्तकः ॥ ८ ॥ मध्येमार्गेपठन्नित्यं सेतुमाहात्म्यमादरात् ॥ पठन्रा
मायणंवापि पुराणान्तरमेववा ॥ ९ ॥ व्यर्थवाक्यानिसंत्यज्य सेतुंगच्छेद्विशुद्धये ॥ प्रतिग्रहंनगृह्णीयान्नाचारांश्चपरि
त्यजेत् ॥ १० ॥ कुर्यान्मार्गेयथाशक्ति शिवविष्ण्वादिपूजनम् ॥ वैश्वदेवादिकर्माणि यथाशक्तिसमाचरेत् ॥ ११ ॥
ब्रह्मयंज्ञमुखान्धर्मान्प्रकुर्याच्चाग्निपूजनम् ॥ अतिथिभ्योन्नपानादि सम्प्रदद्याद्यथाबलम् ॥ १२ ॥ दद्याद्भिक्षांयतिभ्यो
पि वित्तशाठ्यंपरित्यजन् ॥ शिवविष्ण्वादिनामानि स्तोत्राणिचपठेत्पथि ॥ १३ ॥ धर्ममेवसदाकुर्यान्निषिद्धानिपरि

को पढ़ताहुआ मनुष्य ॥ ९ ॥ शुद्धिके लिये व्यर्थवाक्यों को छोड़कर सेतु को जावै और प्रतिग्रह (दान) को न लेवै व आचारोंको न छोड़ै ॥ १० ॥ और मार्ग में यथा
शक्ति शिव व विष्णु आदि का पूजन करै व यथाशक्ति वैश्वदेवादिक कर्मों को करै ॥ ११ ॥ व ब्रह्मयज्ञ आदिक धर्म व अग्नि का पूजनकरै व शक्तिके अनुसार अतिथियों
के लिये अन्न, पानादिक देवै ॥ १२ ॥ व वित्तशाठ्य को छोड़ताहुआ पुरुष संन्यासियों के लिये भोजन देवै व मार्गमें शिव, विष्णु आदिक नामोंको व स्तोत्रोंको पढ़ै ॥ १३ ॥ और

निषिद्ध कर्मों को छोड़ै व सदैव धर्म ही करै इत्यादिक नियमों से संयुत होकर तदनन्तर सेतुमूल को जावै ॥ १४ ॥ और वहां जाकर सावधान होताहुआ मनुष्य पहले पत्थर को देवै और वहां समुद्र को आवाहन कर तदनन्तर प्रणाम करै ॥ १५ ॥ और समुद्र के लिये अर्घ्य देवै उसके उपरान्त प्रार्थना करै तदनन्तर अनुज्ञा करै उसके उपरान्त समुद्र में स्नान करै ॥ १६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! मन से विष्णुजी को स्मरण करताहुआ मनुष्य मुनि, देवता, वानर व पितरों का तर्पण करै ॥ १७ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! सात पत्थर या एक पत्थर को देवै क्योंकि पाषाण के दान से स्नान सफल होता है अन्यथा नहीं होता है ॥ १८ ॥ पत्थर

त्यजेत् ॥ इत्यादिनियमोपेतः सेतुमूलंततोव्रजेत् ॥ १४ ॥ पाषाणंप्रथमंदद्यात्तत्रगत्वासमाहितः ॥ तत्रावाह्यसमुद्रञ्च प्रणमेत्तदनन्तरम् ॥ १५ ॥ अर्घ्यंदद्यात्समुद्राय प्रार्थयेत्तदनन्तरम् ॥ अनुज्ञांचततःकुर्यात्ततः स्नायान्महोदधौ ॥ १६ ॥ मुनीनामथदेवानां कपीनांपितॄणांतथा ॥ प्रकुर्यात्तर्पणंविप्रा मनसासंस्मरन्हरिम् ॥ १७ ॥ पाषाणसप्तकंदद्यादेकंवा विप्रपुङ्गवाः ॥ पाषाणदानात्सफलं स्नानम्भवतिनान्यथा ॥ १८ ॥ पाषाणदानमन्त्रः ॥ पिप्पलादसमुत्पन्ने कृत्येलोक भयङ्करे ॥ पाषाणन्तेमयादत्तमाहारार्थंप्रकल्प्यताम् ॥ १९ ॥ सान्निध्यमन्त्रः ॥ विश्वाचित्वंघृताचित्वं विश्वयोने विशाम्पते ॥ सान्निध्यंकुरुमेदेव सागरेलवणाम्भसि ॥ २० ॥ नमस्कारमन्त्रः ॥ नमस्तेविश्वगुप्ताय नमोविष्णोह्यपाम्पते ॥ नमोहिरण्यश्रृङ्गाय नदीनाम्पतयेनमः ॥ २१ ॥ समुद्रायवयूनाय प्रोचार्यप्रणमेत्तथा ॥ अर्घ्यमन्त्रः ॥ सर्वरत्नमयश्रीमान् सर्वरत्नाकराकर ॥ २२ ॥ सर्वरत्नप्रधानस्त्वं गृहाणार्घ्यंमहोदधे ॥ अनुज्ञापनमन्त्रः ॥ अशेषजगदाधार शङ्ख

देने का यह मन्त्र है कि हे पिप्पलाद से उत्पन्न, लोकों को भय करनेवाली, कृत्ये ! मुझसे दियेहुए पत्थर को आहार के लिये कल्पित कीजिये ॥ १९ ॥ सान्निध्य का यह मन्त्र है कि हे विश्वाचि ! तुम व हे घृताचि ! तुम और हे विशाम्पते, विश्वयोने ! हे देव ! क्षार जलवाले समुद्र में मेरी समीपता कीजिये ॥ २० ॥ नमस्कार का यह मन्त्र है कि हे अपापते, विष्णो ! तुम विश्वगुप्त के लिये प्रणाम है व हिरण्यश्रृङ्ग तथा नदियों के पति के लिये नमस्कार है ॥ २१ ॥ और समुद्र व वयूनके लिये नमस्कार है ऐसा कहकर प्रणाम करै यह अर्घ्य का मन्त्र है कि हे सर्वरत्नाकराकर, सर्वरत्नमय ! तुम श्रीमान् हो ॥ २२ ॥ व हे महोदधे ! तुम सब रत्नों में प्रधान हो

अर्घ्य को ग्रहण कीजिये यह अनुज्ञापन का मन्त्र है कि हे सब संसार के आधार, शङ्खचक्रगदाधर ! ॥ २३ ॥ हे देव ! तुम्हारे तीर्थ सेवन में मुझ को आज्ञा दीजिये यह प्रार्थना का मन्त्र है कि पूर्वदिशा में सुग्रीव व दक्षिण में नल को स्मरण करै ॥ २४ ॥ और पश्चिम में मैंद नामक वानर व उत्तर में द्विविद को स्मरण करै और राम, लक्ष्मण व यशस्विनी सीताजी को ॥ २५ ॥ और अङ्गद व पवननन्दन तथा विभीषणजी को मध्य में स्मरण करै हे महोदधे ! पृथ्वी में जो तीर्थ हैं वे तुम में पैठे हैं ॥ २६ ॥ मुझ को स्नान का फल दीजिये और सब पापसे मेरी रक्षा कीजिये और हिरण्यशृङ्ग इन दो मन्त्रों से नाभि में नारायण को स्मरण करै ॥ २७ ॥

चक्रगदाधर ॥ २३ ॥ देहिदेवममानुज्ञां युष्मत्तीर्थनिषेवणे ॥ प्रार्थनामन्त्रः ॥ प्राच्यांदिशिचसुग्रीवं दक्षिणस्यांनलंस्मरेत् ॥ २४ ॥ प्रतीच्यांमैन्दनामानमुदीच्यांद्विविदंतथा ॥ रामश्चलक्ष्मणश्चैव सीतामपियशस्विनीम् ॥ २५ ॥ अङ्गदंवायुतनयं स्मरेन्मध्येविभीषणम् ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि प्राविशंस्त्वामहोदधे ॥ २६ ॥ स्नानस्यमेफलंदेहि सर्वस्मात्राहिमांहसः ॥ हिरण्यशृङ्गमित्याभ्यां नाभ्यांनारायणंस्मरेत् ॥ २७ ॥ ध्यायन्नारायणंदेवं स्नानादिषुचकर्मसु ॥ ब्रह्मलोकमवाप्नोति जायतेनेहवैपुनः ॥ २८ ॥ सर्वेषामपिपापानां प्रायश्चित्तंभवेत्ततः ॥ प्रह्लादंनारदंव्यासमम्बरीषंशुकंतथा ॥ २९ ॥ अन्यांश्चभगवद्भक्तांश्चिन्तयेदेकमानसः ॥ स्नानमन्त्रः ॥ वेदादिर्योवेदवसिष्ठयोनिः सरित्पतिःसागररत्नयोनिः ॥ ३० ॥ अग्निश्चतेयोनिरिडाचदेहोरेतोधाविष्णोरमृतस्यनाभिः ॥ इदंतेअन्याभिरस्यमानमद्भिर्याःकाश्चसिन्धुंप्रविशन्त्यापः ॥

स्नानादिक कर्मों में नारायण देव को ध्यान करताहुआ मनुष्य ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है व फिर इस संसार में नहीं उत्पन्न होता है ॥ २८ ॥ और उससे सब पापों का भी प्रायश्चित्त होता है प्रह्लाद, नारद, व्यास, अम्बरीष, शुकदेव ॥ २९ ॥ व अन्य भगवद्भक्तों को सावधान मनवाला मनुष्य ध्यान करै यह स्नान का मन्त्र है कि जो वेदादि है व जो वेद वसिष्ठ की योनि है और नदियों का पति व जो समुद्र रत्नयोनि है ॥ ३० ॥ अग्नि तुम्हारा उत्पत्ति स्थान है व इडा (यज्ञ) शरीर है और तुम विष्णुजी के जीव को धारनेवाले हो और मोक्ष का साधन हो व जो कोई जल समुद्र में पैठते हैं उन में मस्तक से स्नान कर मैं वैसेही शरीर से पातक को

छोड़देऊं जैसे कि पुरानी खाल को सर्प छोड़ता है ॥ ३१ ॥ हे ब्राह्मणो ! फिर नदियों के पति सर्वतीर्थमय शुद्ध वयून समुद्र के लिये नमस्कार करै ॥ ३२ ॥ फिर द्वौ समुद्रौ ऐसा कहकर स्नानकरै व यह मन्त्र कहै कि हे रवे ! ब्रह्माण्डके बीचमें जो तीर्थ तुम्हारी किरणों से छुयेगये हैं ॥ ३३ ॥ हे दिवाकर ! उस सत्य से मुझको सेतु में तीर्थ दीजिये और पूर्वदिशा में सुग्रीव को स्मरण करै इत्यादिक क्रम के योगसे ॥ ३४ ॥ हे ब्राह्मणो ! स्मरण कर फिर सेतु में तीसरा स्नान करै यदि मनुष्य देवीपत्तन से लगाकर चलै ॥ ३५ ॥ तो अपने पापसमूह की शान्ति के लिये नवपाषाण के मध्य में मुक्तिदायक सेतु पै समुद्र में स्नान करै ॥ ३६ ॥ और कुश की शय्या के

सर्पोजीर्णामिवत्वचंजहामिपापंशरीरात् सशिरस्को अभ्युपेत्य ॥ ३१ ॥ समुद्रायवयूनाय नमस्कुर्यात्पुनर्द्विजाः ॥ सर्व तीर्थमयंशुद्धं नदीनांपतिमम्बुधिम् ॥ ३२ ॥ द्वौसमुद्राविंतिपुनः प्रोच्चार्यस्नानमाचरेत् ॥ ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि कर स्पृष्टानितेरवे ॥ ३३ ॥ तेनसत्येनमेसेतौ तीर्थंदेहिदिवाकर ॥ प्राच्यांदिशिचसुग्रीवमित्यादिक्रमयोगतः ॥ ३४ ॥ स्मृत्वाभूयोद्विजाःसेतौ तृतीयंस्नानमाचरेत् ॥ देवीपत्तनमारभ्य प्रव्रजेद्यदिमानवः ॥३५॥ तदातुनवपाषाणमध्येसे तौविमुक्तिदे ॥ स्नानमम्बुनिधौकुर्यात्स्वपापौघापनुत्तये ॥ ३६ ॥ दर्भशय्यापदव्याचेद्गच्छेत्सेतुंविमुक्तिदम् ॥ तदात त्रोदधावेव स्नानंकुर्याद्विमुक्तये ॥ ३७ ॥ तर्पणविधिः ॥ पिप्पलादंकविंकण्वं कृतान्तंजीवितेश्वरम् ॥ मन्युञ्चकाल रात्रिञ्च विद्याञ्चाहर्गणेश्वरम् ॥ ३८ ॥ वसिष्ठंवामदेवञ्च पराशरमुमापतिम् ॥ बाल्मीकिंनारदञ्चैव बालखिल्यान्मुनीं स्तथा ॥ ३९ ॥ नलंनीलंगवाक्षंच गवयंगन्धमादनम् ॥ मैन्दञ्चद्विविदञ्चैव शरभंऋषभंतथा ॥ ४० ॥ सुग्रीवञ्चहनूमन्तं

मार्ग से यदि मुक्तिदायक सेतु को जावै तो उस समुद्र में मुक्ति के लिये स्नान करै ॥ ३७ ॥ अब तर्पण की विधि कही जाती है कि पिप्पलाद, कवि, कण्व, कृतान्त, जीवितेश्वर, मन्यु, कालरात्रि, विद्या व अहर्गणेश्वर को तर्पणकरै ॥ ३८ ॥ और वसिष्ठ, वामदेव, पराशर, उमापति, बाल्मीकि, नारद व बालखिल्य मुनियों को तर्पण करै ॥ ३९ ॥ और नल, नील, गवाक्ष, गवय, गन्धमादन, मैंद, द्विविद, शरभ व ऋषभको तर्पण करै ॥ ४० ॥ और सुग्रीव, हनूमान्, वेगदर्शन, राम, लक्ष्मण व महा-

ऐश्वर्यवती तथा यशस्विनी सीताजी को ॥ ४१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इन मन्त्रों को कहकर क्रमपूर्वक तीनबार करके तर्पण करै और विभुके चतुर्थी विभक्ति अन्तवाले उन उन नामों को कहकर तर्पण करै ॥ ४२ ॥ व हे ब्राह्मणो ! द्वितीयान्तनामों को कहकर विधिपूर्वक तिल व जल से देवता, ऋषि व पितरों को तर्पणकरै ॥ ४३ ॥ प्रसन्न बुद्धि मनुष्य पैंतियों समेत जलमें स्थित होकर तर्पणकरै क्योंकि तर्पण से सब तीर्थों में स्नान के फल को पाता है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार इनको तर्पण कर व प्रणाम कर जलसे ऊपर निकलै और भीगे वसन को छोड़कर सूखे वसन को पहनकर ॥ ४५ ॥ आचमन कर पैंतियों समेत मनुष्य विधिपूर्वक

वेगदर्शनमेवच ॥ रामञ्चलक्ष्मणंसीतां महाभागांयशस्विनीम् ॥ ४१ ॥ त्रिःकृत्वातर्पयेदेतान्मन्त्रानुक्त्वायथा क्रमम् ॥ विभोश्चतत्तन्नामानि चतुर्थ्यन्तानिवैद्विजाः ॥ ४२ ॥ देवानृषीन्पितॄंश्चैव विधिवच्चतिलोदकैः ॥ द्वितीयान्तानि नामानि चोक्त्वातर्पयेद्विजाः ॥ ४३ ॥ तर्पयेत्सपवित्रस्तु जलेस्थित्वाप्रसन्नधीः ॥ तर्पणात्सर्वतीर्थेषु स्नानस्यफल माप्नुयात् ॥ ४४ ॥ एवमेतांस्तर्पयित्वा नमस्कृत्योत्तरेज्जलात् ॥ आर्द्रवस्त्रंपरित्यज्य शुष्कवासःसमावृतः ॥ ४५ ॥ आ चम्यसपवित्रश्च विधिवच्छ्राद्धमाचरेत् ॥ पिण्डान्पितृभ्योदद्याच्च तिलतण्डुलकैस्तथा ॥ ४६ ॥ एतच्छ्राद्धमशक्तस्य मयाप्रोक्तंद्विजोत्तमाः ॥ धनाढ्योन्नेनवैश्राद्धं षड्रसेनसमाचरेत् ॥ ४७ ॥ गोभूतिलहिरण्यादिदानंकुर्यात्समृद्धि मान् ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटावेवमेवसमाचरेत् ॥ ४८ ॥ पाषाणदानपूर्वाणि तर्पणान्तानिवैद्विजाः ॥ सेतुमूलेयथैता नि विधिवद्दयतनोद्विजाः ॥ ४९ ॥ चक्रतीर्थंततोगत्वा तत्रापिस्नानमाचरेत् ॥ पश्येच्चसेत्वधिपतिं देवंनारायणं

श्राद्ध करै और पितरों के लिये तिल व चावलों से पिंडों को देवै ॥ ४६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मैंने असमर्थ मनुष्य को यह श्राद्ध कहा और धनी पुरुष छा रसोंवाले अन्नसे श्राद्ध करै ॥ ४७ ॥ और समृद्धिमान् पुरुष गऊ, पृथ्वी, तिल व सुवर्णादिक दान करै इसीप्रकार रामचन्द्रजी की धनुष्कोटि में करै ॥ ४८ ॥ हे ब्राह्मणो ! सेतु-मूल में जिसप्रकार विधिपूर्वक इनको किया है वैसेही हे द्विजो ! पाषाणदानपूर्वक व तर्पणान्त करै ॥ ४९ ॥ तदनन्तर चक्रतीर्थ को जाकर उसमें भी स्नान करै और

सेतु के स्वामी नारायण विष्णुदेवजी को देखै ॥ ५० ॥ और पश्चिम मार्ग से जाता हुआ मनुष्य वहां के चक्रतीर्थ में स्नान कर भक्तिपूर्वक दर्भशयदेवजी को देखै ॥५१॥ तदनन्तर कपितीर्थ को प्राप्तहोकर उसमें भी स्नान करै उसके उपरान्त सीताकुण्ड को प्राप्तहोकर उसमें भी स्नान करै ॥ ५२ ॥ तदनन्तर बड़े फलवाले ऋणमोचन तीर्थ को प्राप्तहोकर स्नान करके जानकीरमण श्रीरामचन्द्र स्वामी को प्रणामकर ॥ ५३ ॥ कण्ठ से ऊपर क्षौर कराकर लक्ष्मणतीर्थ को जावै और पापों को चिन्तन करता हुआ मनुष्य उसमें भी स्नान करै ॥ ५४ ॥ तदनन्तर रामतीर्थ में नहाकर उसके उपरान्त देवालय को जावै और पापविनाशक व गंगा, यमुना में नहाकर ॥ ५५ ॥

हरिम् ॥ ५० ॥ गच्छन्पश्चिममार्गेण तत्रत्येचक्रतीर्थके ॥ स्नात्वादर्भशयंदेवं प्रपश्येद्भक्तिपूर्वकम् ॥ ५१ ॥ कपितीर्थंततःप्राप्य तत्रापिस्नानमाचरेत् ॥ सीताकुण्डंततःप्राप्य तत्रापिस्नानमाचरेत् ॥ ५२ ॥ ऋणमोचनतीर्थन्तु ततःप्राप्यमहाफलम् ॥ स्नात्वाप्रणम्यरामञ्च जानकीरमणंप्रभुम् ॥ ५३ ॥ गच्छेल्लक्ष्मणतीर्थंतु कण्ठादुपरिवापनम् ॥ कृत्वास्नायाच्चतत्रापि दुष्कृतान्यपिचिन्तयन् ॥ ५४ ॥ ततःस्नात्वारामतीर्थे ततोदेवालयंव्रजेत् ॥ स्नात्वापापविनाशेच गङ्गायमुनयोस्तथा ॥ ५५ ॥ सावित्र्यांचसरस्वत्यां गायत्र्यांचद्विजोत्तमाः ॥ स्नात्वाचहनुमत्कुण्डे ततःस्नायान्महाफले ॥ ५६ ॥ ब्रह्मकुण्डंततःप्राप्य स्नायाद्विधिपुरःसरम् ॥ नागकुण्डंततःप्राप्य सर्वपापविनाशनम् ॥ ५७ ॥ स्नानंकुर्यान्नरोविप्रा नरकक्लेशनाशनम् ॥ गङ्गाद्याःसरितःसर्वास्तीर्थानिसकलान्यपि ॥ ५८ ॥ सर्वदानागकुण्डेतु वसन्तिस्वाघशान्तये ॥ अनन्तादिमहानागैरष्टाभिरिदमुत्तमम् ॥ ५९ ॥ कल्पितंमुक्तिदंतीर्थं रामसेतौशिवंकरम् ॥ अगस्त्यकुण्डं

हे द्विजोत्तमो ! सावित्री, सरस्वती व गायत्री में और हनुमत्कुण्ड में नहाकर तदनन्तर महाफल तीर्थ में नहावै ॥ ५६ ॥ उसके उपरान्त ब्रह्मकुण्ड को प्राप्त होकर विधिपूर्वक स्नान करै तदनन्तर सब पापों के विनाशक नागकुण्डको प्राप्त होकर ॥ ५७ ॥ हे ब्राह्मणो ! नरकों के क्लेश को नाश करनेवाली स्नान करै गङ्गादिक सब नदियां व सब भी तीर्थ ॥ ५८ ॥ अपने पापकी शान्ति के लिये सदैव नागकुण्ड में बसते हैं अनन्तादिक आठ महानागों से यह उत्तम ॥ ५९ ॥ व कल्याणकारक तथा

मुक्तिदायक तीर्थ रामसेतु तीर्थ पै निर्माण कियागया है तदनन्तर अतिउत्तम अगस्त्यतीर्थ को प्राप्तहोकर स्नान करै ॥ ६० ॥ इसके उपरान्त सब पापों को नाशनेवाले अग्नितीर्थ को प्राप्त होकर पितरों को स्मरण करताहुआ मनुष्य नहाकर तर्पण कर विधिपूर्वक श्राद्ध करै ॥ ६१ ॥ और अग्नितीर्थ के किनारे ब्राह्मणों के लिये अपनी शक्ति से गऊ, भूमि, सुवर्ण व धान्यादिक को देकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ६२ ॥ अथवा हे द्विजेन्द्रो ! चक्रतीर्थ आदिक जो तीर्थ हैं सब पातकों को हरनेवाले वे सब क्रम से कहेगये ॥ ६३ ॥ और उस क्रम से यथारुचि स्नान करै इसप्रकार सब तीर्थों में नहाकर श्राद्धादिक करै ॥ ६४ ॥ पश्चात् रामेश्वरजी को प्राप्तहोकर परमेश्वर

सम्प्राप्य ततःस्नायादनुत्तमम् ॥ ६० ॥ अथाग्नितीर्थमासाद्य सर्वदुष्कर्मनाशनम् ॥ स्नात्वासन्तर्प्यविधिवच्छ्राद्धं कुर्यात्पितॄन्स्मरन् ॥ ६१ ॥ गोभूहिरण्यधान्यादि ब्राह्मणेभ्यःस्वशक्तितः ॥ दत्त्वाग्नितीर्थतीरेतु सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ६२ ॥ अथवायानितीर्थानि चक्रतीर्थमुखानिवै ॥ अनुक्रान्तानिविप्रेन्द्राः सर्वपापहराणितु ॥ ६३ ॥ स्नायात्तदनुपूर्वेण स्नायाद्वापियथारुचि ॥ स्नात्वैवंसर्वतीर्थेषु श्राद्धादीनिसमाचरेत् ॥ ६४ ॥ पश्चाद्रामेश्वरंप्राप्य निषेव्यपरमेश्वरम् ॥ सेतुमाधवमागम्य तथारामञ्चलक्ष्मणम् ॥ ६५ ॥ सीतांप्रभञ्जनसुतं तथान्यान्कपिसत्तमान् ॥ तत्रत्यसर्वतीर्थेषु स्नात्वानियमपूर्वकम् ॥ ६६ ॥ प्रणम्यरामनाथञ्च रामचन्द्रंतथापरान् ॥ नमस्कृत्यधनुष्कोटिं ततःस्नातुंव्रजेन्नरः ॥ ६७ ॥ तत्रपाषाणदानादिपूर्वोक्तनियमंचरेत् ॥ धनुष्कोटौचदानानि दद्याद्वित्तानुसारतः ॥ ६८ ॥ क्षेत्रंगाश्चतथान्यानि वस्त्राण्यन्यानिचादरात् ॥ ब्राह्मणेभ्योवेदविद्भ्यो दद्याद्वित्तानुसारतः ॥ ६९ ॥ कोटितीर्थंततःप्राप्य स्नायान्नि

को सेवन कर सेतुमाधव, राम व लक्ष्मणजी को आकर ॥ ६५ ॥ और सीता व पवनसुत और अन्य उत्तम वानरों के समीप जाकर नियमपूर्वक वहां के सब तीर्थों में नहाकर ॥ ६६ ॥ रामनाथ, रामचन्द्र व अन्य देवताओं को प्रणाम कर तदनन्तर मनुष्य नहाने के लिये धनुष्कोटि को जावै ॥ ६७ ॥ और वहां पाषाणदानादिक पूर्वोक्त नियम करै व द्रव्य के अनुसार धनुष्कोटि में दानों को देवै ॥ ६८ ॥ और वेदज्ञ ब्राह्मणों के लिये द्रव्यके अनुसार क्षेत्र, गऊ व अन्य वस्त्रों को आदर से देवै ॥ ६९ ॥ तदनन्तर

यमपूर्वकम् ॥ ततोरामेश्वरंदेवं प्रणमेद्वृषभध्वजम् ॥ ७० ॥ विभवेसतिविप्रेभ्यो दद्यात्सौवर्णदक्षिणाम् ॥ तिलंधान्यञ्चगांक्षेत्रं वस्त्राण्यन्यानितण्डुलान् ॥ ७१ ॥ दद्याद्वित्तानुसारेण वित्तलोभविवर्जितः ॥ धूपंदीपञ्चनैवेद्यं पूजोपकरणानिच ॥ ७२ ॥ रामेश्वरायदेवाय दद्याद्वित्तानुसारतः ॥ स्तुत्वारामेश्वरंदेवं प्रणम्यचसभक्तिकम् ॥ ७३ ॥ अनुज्ञाप्यततोगच्छेत्सेतुमाधवसन्निधिम् ॥ तस्मैदत्त्वाचधूपादीननुज्ञाप्यचमाधवम् ॥ ७४ ॥ पूर्वोक्तनियमोपेतः पुनरायात्स्वकंगृहम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेदन्नैः षड्रसैःपरिपूरितैः॥ ७५ ॥ तेनैवरामनाथोस्मै प्रीतोभीष्टम्प्रयच्छति ॥ नारकंचास्यनास्त्येव दारिद्र्यंचविनश्यति ॥ ७६ ॥ सन्ततिर्वर्धतेतस्य पुरुषस्यद्विजोत्तमाः ॥ संसारमवधूयाशु सायुज्यमपियास्यति ॥७७॥ अत्रागन्तुमशक्तश्चेच्छ्रुतिस्मृत्यागमेषुयत् ॥ ग्रन्थजातंमहापुण्यं सेतुमाहात्म्यसूचकम् ॥ ७८ ॥ तंग्रन्थंपाठयेद्विप्रा महापातकनाशनम् ॥ इदंवासेतुमाहात्म्यं पठेद्भक्तिपुरःसरम् ॥ ७९ ॥ सेतुस्नानफलम्पुण्यं तेनाप्नोतिनसंशयः ॥

कोटितीर्थ को प्राप्तहोकर नियमपूर्वक स्नान करै उसके उपरान्त वृषध्वज रामेश्वर देव को प्रणाम करै ॥ ७० ॥ और ऐश्वर्य होने पर ब्राह्मणों के लिये सुवर्ण की दक्षिणा को देवै और तिल, अन्न, गऊ, क्षेत्र, अन्य वस्त्र व चावलों को ॥ ७१ ॥ द्रव्य लोभसे रहित मनुष्य धन के अनुसार देवै और धूप, दीप, नैवेद्य व पूजन की सामग्रियों को ॥ ७२ ॥ द्रव्य के अनुसार रामेश्वरदेवजी के लिये देवै और रामेश्वरदेवजी की स्तुति कर भक्ति समेत प्रणाम कर ॥ ७३ ॥ आज्ञा को लेकर तदनन्तर सेतुमाधव के समीप जावै और उनके लिये धूप, दीपको देकर माधवजी से आज्ञा को लेकर ॥ ७४ ॥ पूर्वोक्त नियमों से संयुत पुरुष फिर अपने घर को आवै और छः रसोंवाले परिपूरित-अन्नों से ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ७५ ॥ उसी से प्रसन्न रामनाथजी इसके लिये मनोरथ को देते हैं व इसको नरक नहीं होता है और दरिद्रता नाश होजाती है ॥ ७६ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! उस पुरुष की सन्तान बढ़ती है और शीघ्रही संसार को नाशकर सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ और यदि यहां आने के लिये असमर्थ होवै तो श्रुति, स्मृति व शास्त्रों में जो सेतु के माहात्म्य का सूचक महापुण्यवान् ग्रन्थ होवै ॥ ७८ ॥ हे ब्राह्मणो ! महापातकों को नाश करनेवाले उस ग्रन्थ को पढ़ावै अथवा भक्तिपूर्वक इस सेतुमाहात्म्य को पढ़ै ॥ ७९ ॥ तो उससे सेतुस्नान के फल को निस्सन्देह प्राप्त होता है विद्वानों ने इस

को अन्ध व पंगु आदिकों के विषय में कहा है ॥ ८० ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! तुम लोगों से इसप्रकार सेतुयात्राका क्रम कहागया इसको पढ़ता व सुनता हुआ मनुष्य सब दुःख से छूटजाता है ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां यात्राक्रमोनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

दो० । अहै अमित परभाव युत यथा सेतुमाहात्म्य । बावनवें अध्याय में सोइ चरित याथात्म्य ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठो ! सेतु को उद्देश कर मैं तुम लोगों से फिर भी आदर से सेतु के प्रभाव को कहताहूं उसको आदर से सुनिये ॥ १ ॥ कि सब स्थानों के मध्य में भी यह बड़ाभारी स्थान है और यहां जप, हवन व तपस्या

अन्धपङ्ग्वादिविषयमेतत्प्रोक्तम्मनीषिभिः ॥ ८० ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवंवःकथितोविप्राः सेतुयात्राक्रमोद्विजाः ॥ एतत्पठन्वाशृण्वन्वा सर्वदुःखाद्विमुच्यते ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येयात्राक्रमोनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ भूयोप्यहम्प्रवक्ष्यामि सेतुमुद्दिश्यवैभवम् ॥ युष्माकमादरेणाहं शृणुध्वम्मुनिपुङ्गवाः ॥ १ ॥ स्थानानामपिसर्वेषामेतत्स्थानंमहत्तरम् ॥ अत्रजप्तंहुतंतप्तं दत्तंचाक्षयमुच्यते ॥ २ ॥ अस्मिन्नेवमहास्थाने धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ वाराणस्यांदशसमा वासपुण्यफलम्भवेत् ॥ ३ ॥ तस्मिन्स्थलेधनुष्कोटौ स्नात्वारामेश्वरंशिवम् ॥ दृष्ट्वानरोभक्तियुक्तो त्रिदिनानिवसेद्द्विजाः ॥ ४ ॥ पुण्डरीकपुरेतेन दशवत्सरवासजम् ॥ पुण्यम्भवतिविप्रेन्द्रा महापातकनाशनम् ॥ ५ ॥ अष्टोत्तरसहस्रंतु मन्त्रमाद्यंषडक्षरम् ॥ अत्रजप्त्वानरोभक्त्या शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ६ ॥ मध्यार्जु

और दियाहुआ दान अक्षय कहाजाता है ॥ २ ॥ और इसी महास्थान में धनुष्कोटि में नहाने से दश वर्षतक काशी में वास का पुण्य फल होता है ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस स्थल में धनुष्कोटि में नहाकर भक्तिसंयुत मनुष्य रामेश्वर शिवजी को देखकर तीन दिन बसै ॥ ४ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! उससे पुण्डरीक नगरमें दश वर्षसे उपजा हुआ महापातकों का विनाशक पुण्यहोताहै ॥ ५ ॥ और एक हज़ार एक सौ आठ आदि षडक्षर मन्त्रको यहां भक्तिसे जपकर मनुष्य शिवजी की सायुज्य मुक्तिको पाताहै ॥ ६ ॥

और मध्यार्जुन, कुम्भकोण, मायूर, श्वेतवन, हालास्य, गजारण्य, वेदारण्य व नैमिष में ॥ ७ ॥ और श्रीपर्वत, श्रीरंग व श्रीमद्वृद्धिपर्वत और चिदम्बर, वल्मीक, शेषाद्रि व अरुणाचल पै ॥ ८ ॥ और श्रीमान् दक्षिणकैलास, वेङ्कटाद्रि, हरिस्थल, कांचीपुर, ब्रह्मपुर व वैद्येश्वरपुर में ॥ ९ ॥ व हे सत्तमो ! अन्य भी शिवस्थान व विष्णुस्थान में वर्षभर निवास के पुण्य को निस्सन्देह मनुष्य प्राप्त होता है यदि माघमहीने में धनुष्कोटि में हर्ष से स्नान करै और इस सेतु को उद्देश कर द्वौ समुद्रौ ऐसी श्रुति ॥ १० । ११ ॥ हे द्विजोत्तमो ! सनातनी व माताकी नाईं विद्यमान है व हे मुनिश्रेष्ठो ! जहां अदोयद्दारु ऐसी अन्य श्रुति है ॥ १२ ॥ वहां मनुष्य

नेकुम्भकोणे मायूरेश्वेतकानने ॥ हालास्येचगजारण्ये वेदारण्येचनैमिषे ॥ ७ ॥ श्रीपर्वतेचश्रीरङ्गे श्रीमद्वृद्धगिरौतथा ॥ चिदम्बरेचवल्मीके शेषाद्रावरुणाचले ॥ ८ ॥ श्रीमद्दक्षिणकैलासे वेङ्कटाद्रौहरिस्थले ॥ काञ्चीपुरेब्रह्मपुरे वैद्येश्वरपुरेतथा ॥ ९ ॥ अन्यत्रापिशिवस्थाने विष्णुस्थानेचसत्तमाः ॥ वर्षवासभवम्पुण्यं धनुष्कोटौनरोमुदा ॥ १० ॥ माघमासेयदिस्नायादाप्नोत्येवनसंशयः ॥ इमंसेतुंसमुद्दिश्य द्वौसमुद्रावितिश्रुतिः ॥ ११ ॥ विद्यतेब्राह्मणश्रेष्ठा मातृभूतासनातनी ॥ अदोयद्दारुरित्यन्या यत्रास्तिमुनिपुङ्गवाः ॥ १२ ॥ विष्णोःकर्माणिपश्यन्ते सेतुवैभवशंसिनी ॥ श्रुतिरस्तितथान्यापि तद्विष्णोरितिचापरा ॥ १३ ॥ इतिहासपुराणानि स्मृतयश्चतपोधनाः ॥ एकवाक्यतयासेतुमाहात्म्यंप्रब्रुवन्तिहि ॥ १४ ॥ चन्द्रसूर्योपरागेषु कुर्वन्सेत्ववगाहनम् ॥ अविमुक्तेदशाब्दन्तु गङ्गास्नानफलंलभेत् ॥ १५ ॥ कोटिजन्मकृतंपापं तत्क्षणेनैवनश्यति ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ १६ ॥ विषुवायनसंक्रान्तौ

विष्णु के कर्मों को देखते हैं और सेतुके प्रभाव को कहनेवाली तद्विष्णोः ऐसी अन्य श्रुति है ॥ १३ ॥ हे तपस्वियो ! इतिहास, पुराण व स्मृतियां एकवाक्यता से सेतु के माहात्म्य को कहती हैं ॥ १४ ॥ चन्द्रमा व सूर्यके ग्रहणों में सेतुका स्नान करताहुआ मनुष्य अविमुक्तक्षेत्र में दश वर्षतक गङ्गास्नान के फल को पाता है ॥ १५ ॥ और उसी क्षण कोटि जन्मों में किया हुआ पाप नाश होजाता है व हज़ार अश्वमेध यज्ञों के अति उत्तम फल को वह पाता है ॥ १६ ॥ और विषुवायन संक्रांति में

व सोमवार और पर्व में सेतुके दर्शनही से सात जन्मों का इकट्ठा हुआ पाप ॥ १७ ॥ नाश होजाता है व हे द्विजोत्तमो ! स्वर्ग की गति को प्राप्त होताहै और माघ में
सूर्यनारायण के मकरराशि में स्थित होने पर कुछ सूर्योदय होने पर ॥ १८ ॥ तीन दिन धनुष्कोटि में नहाकर पापविहीन होता है व गंगादिक सब तीर्थों में नहाने
के पुण्य को पाता है ॥ १९ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! जो मनुष्य पांच दिन धनुष्कोटि में स्नान करता है वह अश्वमेधादिक यज्ञ के पुण्य को पाता है ॥ २० ॥ और चान्द्रा-
यणादिक कृच्छ्रों के अनुष्ठान के फल को पाता है व चारों वेदों के पारायणफल को पाता है ॥ २१ ॥ और माघ महीने में जो मनुष्य पंद्रह दिन धनुष्कोटि में स्नान करता

मकरस्थे शशिवारेचपर्वणि ॥ सेतुदर्शनमात्रेण सप्तजन्मार्जिताशुभम् ॥ १७ ॥ नश्यतेस्वर्गतिश्चैव प्रयातिद्विजपुङ्गवाः ॥ मकरस्थे रवौमाघे किञ्चिदभ्युदितेरवौ ॥ १८ ॥ स्नात्वादिनत्रयंमर्त्यो धनुष्कोटौविपातकः ॥ गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नानपुण्यमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ धनुष्कोटौनरःकुर्यात्स्नानम्पञ्चदिनेषुयः ॥ अश्वमेधादिपुण्यञ्च प्राप्नुयाद्ब्राह्मणोत्तमाः ॥ २० ॥ चान्द्रायणादिकृच्छ्राणामनुष्ठानफलंलभेत् ॥ चतुर्णामपिवेदानां पारायणफलंतथा ॥ २१ ॥ माघमासेधनुष्कोटौ दश पञ्चदिनानियः ॥ स्नानंकरोतिमनुजः सवैकुण्ठमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥ माघमासेरामसेतौ स्नानंविंशद्दिनञ्चरन् ॥ शिवसामीप्यमाप्नोति शिवेनसहमोदते ॥ २३ ॥ पञ्चविंशद्दिनंस्नानं कुर्वन्सारूप्यमाप्नुयात् ॥ स्नानंत्रिंशद्दिनंकुर्वन्सायुज्यंलभतेध्रुवम् ॥ २४ ॥ अतोवश्यंरामसेतौ माघमासेद्विजोत्तमाः ॥ स्नानंसमाचरेद्विद्वान्किञ्चिदभ्युदितेरवौ ॥ २५ ॥ चन्द्रसूर्योपरागेच तथैवार्द्धोदयेद्विजाः ॥ महोदयेरामसेतौ स्नानंकुर्वन्नरोत्तमाः ॥ २६ ॥ अनेकक्लेशसंयुक्त

है वह वैकुंठ को पाता है ॥ २२ ॥ और माघ महीने में बीस दिन रामसेतु में स्नानकरता हुआ मनुष्य शिवजी की सायुज्य मुक्ति को पाता है और शिवजी के साथ
आनन्द करता है ॥ २३ ॥ व पचीस दिन स्नान करता हुआ मनुष्य सारूप्य मुक्तिको पाता है और तीस दिन उस में स्नान करता हुआ पुरुष निश्चय कर सायुज्य
मुक्ति को पाता है ॥ २४ ॥ इस कारण हे द्विजोत्तमो ! माघ महीने में कुछ सूर्यनारायण उदय होने पर अवश्य कर विद्वान् रामसेतु में स्नान करै ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणो !
चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण में व अर्द्धोदय में बड़े प्रभाववाले रामसेतु में स्नान करता हुआ मनुष्य ॥ २६ ॥ अनेक क्लेशों से संयुत गर्भवास को नहीं देखता

है और वह ब्रह्महत्यादिक पातकों का नाशक कहागया है ॥ २७ ॥ व सब नरकों का बाधक कहागया है और सब संपदाओं का आदिकारण कहागया है ॥ २८ ॥ व हे ब्राह्मणो ! इन्द्रादिक सब लोकों की सालोक्य मुक्ति का दायक कहागया है व हे ब्राह्मणो ! चन्द्रमा तथा सूर्य के ग्रहण में व अर्द्धोदययोग में ॥ २९ ॥ व महोदययोग में धनुष्कोटि तीर्थ में स्नान करना अत्यन्त निश्चित हैं पुरातन समय श्रीरामजी ने उस तीर्थ को रावण के नाश के लिये निर्माण किया है ॥ ३० ॥ जो कि सिद्ध, चारण, गंधर्व, किन्नर व नागों से सेवित तथा ब्रह्मर्षि, देवर्षि व राजर्षि तथा पितृगणों से सेवित है ॥ ३१ ॥ व ब्रह्मादि सुरगणों से भक्तिपूर्वक सेवित है हे ब्राह्मणो !

गर्भवासंनपश्यति ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां नाशकञ्चप्रकीर्तितम् ॥ २७ ॥ सर्वेषांनरकाणाञ्च बाधकम्परिकीर्तितम् ॥ सम्पदामपिसर्वासां निदानम्परिकीर्तितम् ॥ २८ ॥ इन्द्रादिसर्वलोकानां सालोक्यादिप्रदंतथा ॥ चन्द्रसूर्योपरागेच तथैवार्द्धोदयेद्विजाः ॥ २९ ॥ महोदयेधनुष्कोटौ मज्जनंत्वतिनिश्चितम् ॥ रावणस्यविनाशार्थं पुरारामेणनिर्मितम् ॥ ३० ॥ सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरोरगसेवितम् ॥ ब्रह्मदेवर्षिराजर्षिपितृसङ्घनिषेवितम् ॥ ३१ ॥ ब्रह्मादिदेवतावृन्दैस्सेवितम्भक्तिपूर्वकम् ॥ पुण्यंयोरामसेतुंवै संस्मरन्पुरुषोद्विजाः ॥ ३२ ॥ स्नायाच्चयत्रकुत्रापि तटाकादौजलान्विते ॥ नतस्यदुष्कृतंकिञ्चिद्भविष्यतिकदाचन ॥ ३३ ॥ सेतुमध्यस्थतीर्थेषु मुष्टिमात्रप्रदानतः ॥ नश्यन्तिसकलारोगा भ्रूणहत्यादयस्तथा ॥ ३४ ॥ रामेणधनुषःपुण्यां योरेखांपश्यतेकृताम् ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्वैकुण्ठात्स्यात्कदाचन ॥ ३५ ॥ धनुष्कोटिरितिख्याता यालोकेपापनाशिनी ॥ विभीषणप्रार्थनया कृतारामेणधीमता ॥ ३६ ॥ धनुष्कोटिर्महापुण्या

पवित्र रामसेतुको स्मरण करता हुआ जो मनुष्य ॥ ३२ ॥ जल से संयुत जहां कहीं भी तडागादिकों में स्नान करता है उसको कभी कुछ पाप न होगा ॥ ३३ ॥ और सेतु के मध्य में स्थित तीर्थों में मुट्ठी भर अन्न देनेसे सब रोग व गर्भहत्यादिक नाश होजाते हैं ॥ ३४ ॥ व रामजी से धनुष से कीहुई पवित्र रेखा को जो देखताहै कभी वैकुण्ठ से उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ३५ ॥ संसार में जो पापविनाशिनी धनुष्कोटि ऐसी प्रसिद्धहै उसको बुद्धिमान् श्रीरामजी ने विभीषणकी प्रार्थना से कियाहै ॥ ३६ ॥ और

जो महापवित्र धनुष्कोटि है उसमें भक्ति समेत नहाकर द्रव्य, क्षेत्र व गौवों का दान देवै ॥ ३७ ॥ और तिल, तण्डुल, धान्य, दूध, वस्त्र, भूषण व उड़द और भात ॥ ३८ ॥ व दही, घृत, जल, शाक, मठा और शुद्ध शक्कर व अन्न, शहद ॥ ३९ ॥ तथा लड्डू व पुवों का दान व अन्य वस्तुवोंका दान हे ब्राह्मणो! रामसेतु पै सब मनोरथों का दायक कहागया है ॥ ४० ॥ इस कारण द्रव्य लोभ से रहित मनुष्य रामसेतु पै दान को देवै क्योंकि श्रीरामजी की धनुष्कोटि में दान, हवन, तप, जप व नियमादिक अनन्त फलदायक होता है और उससे देवता प्रसन्न होते हैं व पितर प्रसन्न होते हैं ॥ ४१ । ४२ ॥ और सब मुनि व ब्रह्मा, विष्णु

तस्यांस्नात्वासभक्तिकम् ॥ दद्याद्दानानिवित्तानां क्षेत्राणाञ्चगवांतथा ॥ ३७ ॥ तिलानांतण्डुलानाञ्च धान्यानांपयसांतथा ॥ वस्त्राणाम्भूषणानाञ्च माषाणामोदनस्यच ॥ ३८ ॥ दध्नांघृतानांवारीणां शाकानामप्युदश्विताम् ॥ शुद्धानांशर्कराणाञ्च सस्यानांमधुनांतथा ॥ ३९ ॥ मोदकानामपूपानामन्येषांदानमेवच ॥ रामसेतौद्विजाःप्रोक्तं सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥ ४० ॥ अतोदद्याद्रामसेतौ वित्तलोभविवर्जितः ॥ दत्तंहुतञ्चतप्तञ्च जपश्चनियमादिकम् ॥ ४१ ॥ श्रीरामधनुषःकोटावनन्तफलदम्भवेत् ॥ तेनदेवाश्चतुष्यन्ति तुष्यन्तिपितरस्तथा ॥ ४२ ॥ तुष्यन्तिमुनयःसर्वे ब्रह्माविष्णुःशिवस्तथा ॥ नागाःकिम्पुरुषायक्षाः सर्वेतुष्यन्तिनिश्चितम् ॥ ४३ ॥ स्वयञ्चपूतोभवति धनुष्कोटयवलोकनात् ॥ स्ववंशजान्नरान्सर्वान्पावयेच्चपितामहान् ॥ ४४ ॥ तारयेच्चकुलंसर्वं धनुष्कोटयवलोकनात् ॥ रामस्यधनुषःकोटया कृतरेखावगाहनात् ॥ ४५ ॥ पञ्चपातककोटीनां नाशःस्यात्तत्क्षणेध्रुवम् ॥ श्रीरामधनुषःकोटया रेखांयःपश्य

और शिवजी प्रसन्न होते हैं और नाग, किंपुरुष व यक्ष सब निश्चय कर प्रसन्न होते हैं ॥ ४३ ॥ और धनुष्कोटि के देखने से आप पवित्र होता है व अपने वंश में पैदाहुए सब पितामह पुरुषों को भी पवित्र करता है ॥ ४४ ॥ और धनुष्कोटि को देखने से मनुष्य सब वंश को तारता है व रामजी के धनुष की कोटि से कीहुई रेखा में स्नान करने से ॥ ४५ ॥ उसी क्षण पांच करोड़ पातकों का नाश होजाता है व श्रीरामजी के धनुष की कोटि से कीहुई रेखा को जो देखता

है ॥ ४६ ॥ वह अनेक क्लेशों से संपूर्ण गर्भवास को नहीं देखता है और जहां सीताजी अग्निमें प्राप्तहुई हैं उस कुंड में नहाने से ॥ ४७ ॥ हे ब्राह्मणो ! सैकड़ों गर्भहत्या क्षण भर में नाश होजाती हैं जैसे रामजी हैं वैसाही सेतु है और जैसी गंगाजी हैं वैसेहीं विष्णुजी हैं ॥ ४८ ॥ इसकारण हे गंगे ! हे हरे ! हे राम ! हे सेतो ! ऐसा कहता हुआ मनुष्य जहां कहीं भी बाहर स्नान करै उससे उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ गंधमादन पर्वत पै सेतु में अर्द्धोदय योग में नहाकर जो पितरों को उद्देशकर सरसों भर पिंडों को देता है ॥ ५० ॥ उसके पितर जब तक चंद्रमा व सूर्य रहते हैं तबतक तृप्ति को प्राप्त होते हैं पितरों को उद्देश कर भक्ति से शमीपत्र के प्रमाण

तेकृताम् ॥ ४६ ॥ अनेकक्लेशसम्पूर्णं गर्भवासंनपश्यति ॥ यत्रसीतानलम्प्राप्ता तस्मिन्कुण्डेनिमज्जनात् ॥ ४७ ॥ भ्रूणहत्याशतंविप्रा नश्यन्तिक्षणमात्रतः ॥ यथारामस्तथासेतुर्यथागङ्गातथाहरिः ॥ ४८ ॥ गङ्गेहरेरामसेतो त्वितिसंकीर्तयन्नरः ॥ यत्रकापिबहिःस्नायात्तेनयातिपराङ्गतिम् ॥ ४९ ॥ सेतावर्धोदयेस्नात्वा गन्धमादनपर्वते ॥ पितॄनुद्दिश्ययः पिण्डान्दद्यात्सर्षपमात्रकम् ॥ ५० ॥ पितरस्तृप्तिमायान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ शमीपत्रप्रमाणन्तु पितॄनुद्दिश्यभक्तितः ॥ ५१ ॥ द्विजेनपिण्डंदत्तंचेत्सर्वपापविमोचितः ॥ स्वर्गस्थोमुक्तिमायाति नरकस्थोदिवंव्रजेत् ॥ ५२ सेतौचपद्मनाभेच गोकर्णेपुरुषोत्तमे ॥ उदन्वदम्भसिस्नानं सार्वकालिकमीप्सितम् ॥ ५३ ॥ शुक्राङ्गारकसौरीणां वारेषुलवणाम्भसि ॥ सन्तानकामीनस्नायात्सेतोरन्यत्रकर्हिचित् ॥ ५४ ॥ अकृतप्रेतकार्योवा गर्भिणीपतिरेववा ॥ नस्नायादुदधौविद्वान्सेतोरन्यत्रकर्हिचित् ॥ ५५ ॥ नकालापेक्षणंसेतोर्नित्यस्नानंप्रशस्यते ॥ वारतिथ्यृक्षनियमाः सेतोरन्यत्रहि

भर ॥ ५१ ॥ यदि ब्राह्मणों से पिंड दिया जाताहै तो सब पापोंसे छूटकर स्वर्ग में टिका हुआ पुरुष मुक्ति को प्राप्त होताहै और नरक में टिका हुआ मनुष्य स्वर्ग को जाता हैं ॥ ५२ ॥ और सेतु, पद्मनाभ, गोकर्ण व पुरुषोत्तम तथा समुद्र के जल में स्नान सब समयों में प्रिय है ॥ ५३ ॥ और शुक्र, मंगल व शनैश्चर के दिन सेतु से अन्यत्र क्षारसमुद्र में कहीं संतान को चाहनेवाला पुरुष स्नान न करै ॥ ५४ ॥ व प्रेतकार्य को न किये तथा गर्भिणी का पति विद्वान् पुरुष सेतु से अन्यत्र कहीं समुद्र में स्नान न करै ॥ ५५ ॥ समय की अपेक्षा नहीं है किन्तु सेतु का स्नान सदैव उत्तम है हे ब्राह्मणो ! दिन, तिथि व नक्षत्र के नियम सेतु से अन्यत्र

हैं॥ ५६ ॥ जीतेहुए पुरुषोंको उद्देश कर नहावै और मरेहुए लोगों को उद्देश कर न स्नान करै बरन कुशों से प्रतिमाको बनाकर इस मंत्र को कहकर प्रसन्न इन्द्रिय व मन वाला पुरुष तीर्थ के जलसे स्नान करावै कि तुम कुश हो व पवित्र हो और पुरातन समय विष्णुजी से धारण कियेगये हो ॥ ५७ । ५८ ॥ और तुम्हारे नहाने पर वह नहाया हुआ होगा कि जिसका यह ग्रन्थिबन्धन है सदैव पर्व पर्व में समुद्र पुण्यरूप होता है ॥ ५९ ॥ सेतु व नदी तथा समुद्र के संगम में और गंगा सागर के संगम में व गोकर्ण तथा पुरुषोत्तम में सदैव स्नान कहागया है ॥ ६० ॥ और बिन पर्व में अन्यत्र कहीं समुद्र को स्पर्श न करै क्योंकि पितरों व सब देवताओं तथा

द्विजाः ॥ ५६ ॥ उद्दिश्यजीवतःस्नायान्नतुस्नायान्मृतान्प्रति ॥ कुशैःप्रतिकृतिंकृत्वा स्नापयेत्तीर्थवारिभिः॥ ५७॥ इमं मन्त्रंसमुच्चार्य प्रसन्नेन्द्रियमानसः ॥ कुशोसित्वंपवित्रोसि विष्णुनाविधृतःपुरा ॥ ५८ ॥ त्वयिस्नातेसचस्नातो यस्यै तद्ग्रन्थिबन्धनम् ॥ सर्वत्रसागरःपुण्यः सदापर्वणिपर्वणि ॥ ५९ ॥ सेतौसिन्ध्वब्धिसंयोगे गङ्गासागरसङ्गमे ॥ नित्य स्नानंहिनिर्दिष्टं गोकर्णेपुरुषोत्तमे ॥ ६० ॥ नापर्वणिसरिन्नाथं स्पृशेदन्यत्रकर्हिचित् ॥ पितॄणांसर्वदेवानां मुनीनामपि शृण्वताम् ॥६१॥ प्रतिज्ञामकरोद्रामः सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥ मयाह्यत्रकृतेसेतौ स्नानंकुर्वन्तियेनराः ॥६२॥ मत्प्रसादे नतेसर्वे नयास्यन्तिपुनर्भवम् ॥ नश्यन्तिसर्वपापानि मत्सेतोरवलोकनात् ॥ ६३ ॥ रामनाथस्यमाहात्म्यं मत्सेतोरपिवै भवम् ॥ नाहंवर्णयितुंशक्तो वर्षकोटिशतैरपि ॥ ६४ ॥ इतिरामस्यवचनं श्रुत्वादेवमहर्षयः ॥ साधुसाध्वितिसन्तुष्टाः प्रशशंसुश्चतद्वचः ॥ ६५ ॥ सेतुमध्येचतुर्वक्त्रः सर्वदेवसमन्वितः ॥ अध्यास्तेतस्यरक्षार्थमीश्वरस्याज्ञयासदा ॥६६॥ रक्षा

मुनियों के भी सुनते हुए ॥ ६१ ॥ सीता व लक्ष्मण समेत श्रीरामजी ने प्रतिज्ञा किया कि मुझ से कियेहुए इस सेतु में जो स्नान करेंगे ॥ ६२ ॥ मेरी प्रसन्नता से वे सब फिर जन्म को न पावैंगे और मेरे सेतु को देखने से सब पाप नाश होजाते हैं ॥ ६३ ॥ रामनाथ का माहात्म्य व मेरे सेतुके भी प्रभाव को करोड़ सौ वर्षों से भी मैं कहने के लिये नहीं समर्थ हूं ॥ ६४ ॥ श्रीरामजी के इस वचनको सुनकर प्रसन्न होतेहुए देवता व महर्षियों ने बहुत अच्छा बहुत अच्छा इस प्रकार उस वचन की प्रशंसा किया ॥ ६५ ॥ और ईश्वर की आज्ञा से उसकी रक्षा के लिये सब देवताओं से संयुत ब्रह्माजी सदैव सेतु के मध्य में स्थित रहते हैं ॥ ६६ ॥ बेड़ियों से

ंधेहुए महाविष्णुजी रक्षा के लिये रामसेतु पै सेतुमाधव की संज्ञा से स्थित रहते हैं ॥ ६७ ॥ धर्मशास्त्र के प्रवर्तक महर्षि व पितर और किन्नरों व महानागों समेत तथा गन्धर्वों समेत देवता ॥ ६८ ॥ विद्याधर, चारण, यक्ष व किंपुरुष और अन्य सब प्राणी इस पै दिनरात बसते हैं ॥ ६९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वही यह देखा, सुना व स्मरण किया तथा स्पर्श किया व नहायाहुआ रामसेतु सब पातक से रक्षा करता है ॥ ७० ॥ अर्द्धोदय में सेतु में स्नान करना आनन्दके मिलने का कारण व मुक्तिदायक तथा महापुण्यदायक और महानरकों का नाशक है ॥ ७१ ॥ पौष महीने में जब सूर्यनारायण श्रवण नक्षत्र में स्थित होवैं तब रविवार में कुछ सूर्यनारायणके उदय होने

र्थेरामसतौहि सेतुमाधवसंज्ञया ॥ महाविष्णुःसमध्यास्ते निबद्धोनिगडेनवै ॥ ६७ ॥ महर्षयश्चापितरो धर्मशास्त्र प्रवर्तकाः ॥ देवाश्चसहगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥ ६८ ॥ विद्याधराश्चारणाश्च यक्षाःकिम्पुरुषास्तथा ॥ अन्यानिसर्वभूतानि वसन्त्यस्मिन्नहर्निशम् ॥ ६९ ॥ सोयंदृष्टःश्रुतोवापि स्मृतःस्पृष्टोवगाहितः ॥ सर्वस्माद्दुरितात्पाति रामसेतुर्द्विजोत्तमाः ॥ ७० ॥ सेतावर्धोदयेस्नानमानन्दप्राप्तिकारणम् ॥ मुक्तिप्रदम्महापुण्यं महानरकनाशनम् ॥ ७१ ॥ पौषेमासेविष्णुभस्थेदिनेशे भानोर्वारेकिञ्चिदुद्यद्दिनेशे ॥ युक्तामाचेन्नागहीनातुपाते विष्णोर्ऋक्षेपुण्यमर्धोदयंस्यात् ॥ ७२ ॥ तस्मिन्नर्धोदयेसेतौ स्नानंसायुज्यकारणम् ॥ व्यतीपातसहस्रेण दर्शमेकंसमंस्मृतम् ॥ ७३ ॥ दर्शायुतसमंपुण्यं भानुवारोभवेद्यदि ॥ श्रवणर्क्षंयदिभवेद्भानुवारेणसंयुतम् ॥ ७४ ॥ पुण्यमेवतुविज्ञेयमन्योन्यस्यैवयोगतः ॥ एकैकमध्यमृतदं स्नानदानजपार्चनात् ॥ ७५ ॥ पञ्चस्वपिचयुक्तेषु किमुवक्तव्यमत्रहि ॥ श्रवणंज्योतिषांश्रेष्ठममा

पर यदि नाग करण से हीन अमावस युक्त होवै तो व्यतीपात योग व श्रवण नक्षत्र में अर्द्धोदय योग पुण्यदायक होताहै ॥ ७२ ॥ उस अर्द्धोदय योग में सेतु में स्नान सायुज्य मुक्ति का कारण है हज़ार व्यतीपात के बराबर एक अमावस कहीगई है ॥ ७३ ॥ और यदि रविवार होवै तो दश हज़ार अमावस के समान पुण्यवान् होता है और यदि रविवार से संयुत श्रवण नक्षत्र होवै ॥ ७४ ॥ तो परस्पर के योग से पुण्यही जानने योग्य हैं और स्नान, दान, जप व पूजन से एक एक भी मोक्षदायक है ॥ ७५ ॥ और पांचों के भी युक्त होने पर इस विषय में क्या कहना है नक्षत्रों के मध्य में श्रवण श्रेष्ठ है और तिथियों में अमावस

श्रेष्ठ है ॥ ७६ ॥ और योगों के मध्य में व्यतीपात तथा दिनों के मध्य में रविवार श्रेष्ठ है मकरराशि में सूर्यनारायण के स्थित होने पर जो चारों का भी योग है ॥ ७७ ॥ उस समय यदि मनुष्य रामसेतु में स्नान करै तो माता के गर्भ को नहीं प्राप्त होता है बरन सायुज्य मुक्तिको पाता है ॥ ७८ ॥ अर्द्धोदय योग के समान समय न हुआ है न होवैगा इस प्रकार महोदय समय धर्मकाल कहागया है ॥ ७९ ॥ इन पुण्यसमयों में सेतु पै दान कहागया है और आचार, तप, वेद व वेदान्त का श्रवण ॥ ८० ॥ और शिव व विष्णु आदिक देवताओं का पूजन व पुराणों के अर्थों का कहना जिस ब्राह्मण में विद्यमान होवै वह दानपात्र कहाजाता है ॥ ८१ ॥ सेतु पै उस पात्ररूप

श्रेष्ठातिथिष्वपि ॥ ७६ ॥ व्यतीपातन्तुयोगानां वारंवारेषुवैरवेः ॥ चतुर्णामपियोयोगो मकरस्थेरवौभवेत् ॥ ७७ ॥ तस्मिन्कालेरामसेतौ यदिस्नायात्तुमानवः ॥ गर्भंनमातुराप्नोति किन्तुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ७८ ॥ अर्धोदयसमः कालो नभूतोनभविष्यति ॥ एवम्महोदयःकालो धर्मकालःप्रकीर्तितः ॥ ७९ ॥ एतेषुपुण्यकालेषु सेतौदानम्प्रकीर्तितम् ॥ आचारश्चतपोवेदो वेदान्तश्रवणंतथा ॥ ८० ॥ शिवविष्ण्वादिपूजापि पुराणार्थप्रवक्तृता ॥ यस्मिन्विप्रेतुविद्यते दानपात्रंतदुच्यते ॥ ८१ ॥ पात्रायतस्मैदानानि सेतौदद्याद्द्विजातये ॥ यदिपात्रंनलभ्येत सेतावाचारसंयुतम् ॥ ८२ ॥ संकल्प्योद्दिश्यसत्पात्रं प्रदद्याद्ग्राममागतः ॥ अतोनाधमपात्राय दातव्यम्फलकाङ्क्षिभिः ॥ ८३ ॥ अत्रेतिहासंवक्ष्यामि वसिष्ठोक्तमनुत्तमम् ॥ दिलीपायमहाराज्ञे दानपात्रविवित्सवे ॥ ८४ ॥ दिलीप उवाच ॥ दानानिकस्मैदेयानि ब्रह्मपुत्रपुरोहित ॥ एतन्मेतत्त्वतोब्रूहि त्वच्छिष्यस्यमहामुने ॥ ८५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ पात्राणामुत्तमंपात्रं वेदाचारपरा

ब्राह्मण के लिये दानों को देवै और यदि सेतु पै आचार से संयुत पात्र न मिलै ॥८२॥ तो गांव में आकर सत्पात्र को उद्देश कर संकल्प करके देवै इस कारण फल को चाहनेवाले पुरुषों को नीचपात्र के लिये न देनाचाहिये ॥ ८३ ॥ इस विषय में दानपात्र को जानने की इच्छावाले दिलीप महाराजाके लिये वसिष्ठजी से कहेहुए अतिउत्तम इतिहास को मैं कहताहूं ॥ ८४ ॥ दिलीपजी बोले कि हे पुरोहित, ब्रह्मपुत्र, महामुने ! किसके लिये दानों को देना चाहिये अपने शिष्य मुझ से इसको तुम यथार्थ कहो ॥८५॥ वसिष्ठजी बोले

कि वेद व आचार में लगाहुआ ब्राह्मण पात्रों के मध्य में उत्तम पात्र है और जिसके पेट में शूद्र का अन्न न होवै वह उससे भी अधिक पात्र है॥ ८६ ॥ और वेद व पुराण के मन्त्र तथा शिव व विष्णु आदि का पूजन तथा वर्णों व आश्रमादिकों का अनुष्ठान जिसके सदैव वर्तमान होवै॥ ८७ ॥ और जो निर्धनी व कुटुम्बी होवै वह श्रेष्ठ पात्र कहाजाता है उस पात्र में दियाहुआ दान धर्म, काम, अर्थ व मोक्षदायक है ॥ ८८ ॥ व पुण्यस्थल में विशेष कर सत्पात्र में प्राप्त दान हित है नहीं तो दश जन्मों तक गिरगिट होगा ॥ ८९ ॥ और तीन जन्म तक गधा व दो जन्मों में मेंढक और एक जन्म में चाण्डाल तदनन्तर शूद्र होगा ॥ ९० ॥ तदनन्तर क्रमसे क्षत्रिय, वैश्य

यणः ॥ तस्मादप्यधिकम्पात्रं शूद्रान्नंयस्यनोदरे ॥ ८६ ॥ वेदाःपुराणमन्त्राश्च शिवविष्ण्वादिपूजनम् ॥ वर्णाश्रमाद्यनुष्ठानं वर्ततेयस्यसन्ततम् ॥ ८७ ॥ दरिद्रश्चकुटुम्बीच तत्पात्रंश्रेष्ठमुच्यते ॥ तस्मिन्पात्रेप्रदत्तंवै धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥ ८८ ॥ पुण्यस्थलेविशेषेण दानंसत्पात्रगंहितम् ॥ अन्यथादशजन्मानि कृकलासोभविष्यति ॥ ८९ ॥ जन्मत्रयंरासभःस्यान्मण्डूकश्चद्विजन्मनि ॥ एकजन्मनिचण्डालस्ततःशूद्रोभविष्यति ॥ ९० ॥ ततश्चक्षत्रियोवैश्यः क्रमाद्विप्रश्चजायते ॥ दरिद्रश्चभवेत्तत्र बहुरोगसमन्वितः ॥ ९१ ॥ एवम्बहुविधादोषा दुष्टपात्रप्रदानतः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्पात्रेषुप्रदापयेत् ॥ ९२ ॥ नलभ्यतेचेत्सत्पात्रं तदासङ्कल्पपूर्वकम् ॥ एकंसत्पात्रमुद्दिश्य प्रक्षिपेदुदकम्भुवि ॥ ९३ ॥ उद्दिष्टपात्रस्यमृतौ तत्पुत्रायसमर्पयेत् ॥ तस्यापिमरणेप्राप्ते महादेवेसमर्पयेत् ॥ ९४ ॥ अतोनाधमपात्राय दद्यात्तीर्थेविशेषतः ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवमुक्तोवसिष्ठेन दिलीपःसद्विजोत्तमाः ॥ ९५ ॥ तदाप्रभृतिसत्पात्रे प्रायच्छद्दानमु

और ब्राह्मण होता है व उसमें निर्धनी तथा बहुत रोगों से संयुत होता है ॥ ९१ ॥ इस प्रकार दुष्टपात्र को देने से बहुत भांति के दोष होते हैं उस कारण सब यत्न से सत्पात्रों में देवै ॥ ९२ ॥ यदि सत्पात्र न मिलै तो संकल्पपूर्वक एक सत्पात्र को उद्देशकर पृथ्वी में जल को फेंक देवै ॥ ९३ ॥ और उद्दिष्ट पात्र के मरने पर उसके पुत्रके लिये देवै और उसका भी मरण प्राप्तहोने पर महादेव में अर्पण करै ॥ ९४ ॥ इस कारण तीर्थ में विशेष कर अधम पात्र के लिये न देवै श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वसिष्ठजी से इस प्रकार कहेहुए उन दिलीप ने ॥ ९५ ॥ तब से लगाकर सत्पात्र में उत्तम दान दिया इस कारण हे मुनिश्रेष्ठो ! इस

पुण्यस्थल सेतु में भी ॥ ९६ ॥ यदि उत्तम पात्र मिलै तो धनादिक देवै नहीं तो संकल्पपूर्वक उत्तम विशिष्ट पात्र को ॥ ९७ ॥ उद्देश कर पात्र से संयुत पुरुष जल को पृथ्वी में डाल देवै और पश्चात् अपने गाव को आकर पूर्व संकल्पित द्रव्य को उस पात्र में अर्पण करै नहीं तो धर्म का लोप होता है और फिर दुःख को नहीं पाता है बरन सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ ९८ । ९९ ॥ अर्द्धोदययोग के समान समय न हुआ है न होवैगा कुम्भकोण, सेतुमूल, गोकर्ण व नैमिष ॥ १०० ॥ और अयोध्या, दण्डकारण्य, विरूपाक्ष, वेंकट, सालिग्राम, प्रयाग, काची व द्वारकापुरी ॥ १ ॥ और मधुरा, पद्मनाभ और शिवस्थान काशी और सब नदियां व समुद्र तथा जो

त्तमम् ॥ अतःपुण्यस्थलेसेतावत्रापिमुनिपुङ्गवाः ॥ ९६ ॥ यदिलभ्येतसत्पात्रं तदादद्याद्धनादिकम् ॥ नोचेत्सङ्कल्पपूर्वन्तु विशिष्टम्पात्रमुत्तमम् ॥ ९७ ॥ समुद्दिश्यजलम्भूमौ प्रक्षिपेत्पात्रसंयुतः ॥ स्वग्राममागतःपश्चात्तस्मिन्पात्रेसमर्पयेत् ॥ ९८ ॥ पूर्वसङ्कल्पितंवित्तं धर्मलोपोन्यथाभवेत् ॥ नदुःखंपुनराप्नोति किन्तुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ९९ ॥ अर्धोदयसमःकालो नभूतोनभविष्यति ॥ कुम्भकोणंसेतुमूलं गोकर्णंनैमिषंतथा ॥ १०० ॥ अयोध्यादण्डकारण्यं विरूपाक्षंचवेङ्कटम् ॥ सालिग्रामंप्रयागञ्च काञ्चीद्वारावतीतथा ॥ १ ॥ मधुरापद्मनाभञ्च काशीविश्वेश्वरालया ॥ नद्यःसर्वाःसमुद्राश्च पर्वतंभास्करंस्मृतम् ॥ २ ॥ मुण्डनञ्चोपवासश्च क्षेत्रेष्वेषुप्रकीर्तितम् ॥ लोभान्मोहादकृत्वायः स्वगृहंयातिमानवः ॥ ३ ॥ सहैवयान्तितद्गेहे पातकानिचतेनवै ॥ चतुर्विंशतितीर्थानि पर्वतेगन्धमादने ॥ ४ ॥ तत्रलक्ष्मणतीर्थंतु वपनंमुनिभिःस्मृतम् ॥ तीरेलक्ष्मणतीर्थस्य लोमवर्ज्यंशिवाज्ञया ॥ ५ ॥ शिरोमात्रस्यवपनं कृत्वादत्त्वाचदक्षिणाम् ॥

भास्कर पर्वत कहागया है ॥ २ ॥ इन क्षेत्रों में मुण्डन व उपवास कहागया है और लोभ व मोह से जो मनुष्य मुण्डन व उपवास न करके अपने घर को जाता है ॥ ३ ॥ उसके साथही पातक उसके घर में चलेजाते हैं गन्धमादन पर्वत पै चौबीस तीर्थ हैं ॥ ४ ॥ और वहां लक्ष्मणतीर्थ में मुनियों से मुंडन कहागया है और लक्ष्मणतीर्थ के किनारे शिवजी की आज्ञा से लोम रहित क्षौर करना चाहिये ॥ ५ ॥ केवल शिर भर का क्षौर कर लक्ष्मणतीर्थ में नहाकर व दक्षिणा को

देकर लक्ष्मण शंकरजी को देखकर ॥ ६ ॥ सब पापों से छूटाहुआ मनुष्य शंकरजी को प्राप्त होता है इसप्रकार अर्द्धोदययोग में सदैव सेतु में स्नानकरै ॥ ७ ॥ सेतुतीर्थ के समान अन्य तीर्थ नहीं है व सेतुतीर्थ के समान तप नहीं है व सेतुतीर्थ के समान पुण्य नहीं है और सेतुतीर्थ के समान गति नहीं है ॥ ८ ॥ हज़ार ग्रहणों के समान अर्द्धोदययोग कहागया है और अर्द्धोदययोग के समान संसार से छुड़ानेवाला तीर्थ नहीं है ॥ ९ ॥ और उस अर्द्धोदययोग में यदि रामसेतु में स्नान होवै तो सब शास्त्रों में सदैव उसके समान पुण्य नहीं है ॥ १० ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! साठ हज़ार वर्ष गंगाजी में स्नान से जो पुण्य ऋषियों से कहागया है वह

स्नात्वालक्ष्मणतीर्थेच दृष्ट्वालक्ष्मणशङ्करम् ॥ ६ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शङ्करंयातिमानवः ॥ अर्धोदयेसदास्नानं सेतावेवंसमाचरेत् ॥ ७ ॥ नास्तिसेतुसमंतीर्थं नास्तिसेतुसमंतपः ॥ नास्तिसेतुसमम्पुण्यं नास्तिसेतुसमागतिः ॥ ८ ॥ उपरागसहस्रेण सममर्धोदयंस्मृतम् ॥ अर्धोदयसमःकालो नास्तिसंसारमोचकः ॥ ९ ॥ तस्मिन्नर्धोदयेरामसेतौस्नानं तुयद्भवेत् ॥ नतत्तुल्यंभवेत्पुण्यं सर्वशास्त्रेषुसर्वदा ॥ १० ॥ षष्टिर्वर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहनात् ॥ यत्पुण्यमृषिनिर्दिष्टं तत्पुण्यम्मुनिपुङ्गवाः ॥ ११ ॥ एकवारंरामसेतौ स्नानात्सिध्यतिनिश्चितम् ॥ अर्द्धोदयेविशेषेण तथैवचमहोदये ॥ १२ ॥ मकरस्थेरवौमाघे प्रयागेपापमोचने ॥ माघस्नानसहस्रेण यत्पुण्यंलभतेनरः ॥ १३ ॥ तस्मिन्नर्धोदये विप्रा रामसेतौ निमज्जनात् ॥ एकवारेणतत्पुण्यं लभतेनात्रसंशयः ॥ १४ ॥ त्रैलोक्यस्थेषुतीर्थेषु स्नातानांयत्फलंभवेत् ॥ सकृदर्द्धोदयेसेतौ स्नात्वातत्पुण्यभाग्भवेत् ॥ १५ ॥ ब्रह्मज्ञानविहीनानां कृतघ्नानांदुरात्मनाम् ॥ पापिनामित

पुण्य ॥ ११ ॥ एकबार रामसेतु में नहाने से निश्चय कर सिद्ध होता है और अर्द्धोदय व महोदययोग में विशेषकर सिद्ध होता है ॥ १२ ॥ और माघ महीने में मकर राशि में सूर्यनारायण के स्थित होनेपर पापमोचक प्रयाग तीर्थ में मनुष्य हज़ार माघस्नान से जिस पुण्य को पाता है ॥ १३ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस अर्द्धोदय योग में एकबार रामसेतु में नहाने से मनुष्य उस पुण्य को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥ त्रिलोक में स्थित तीर्थों में नहायेहुए लोगों को जो फल होता है अर्द्धोदययोग में एकबार सेतु में नहाकर उस पुण्य का भागी होता है ॥ १५ ॥ ब्रह्मज्ञान से विहीन व कृतघ्न तथा दुष्टात्मक पापी व अन्य महा-

पापियों की ॥ १६ ॥ अर्द्धोदययोग में सेतु में नहाने से निश्चय कर शुद्धि होती है और अन्यस्थल में किसी प्रकार कृतघ्नों का प्रायश्चित्त नहीं होता है ॥ १७ ॥ व अर्द्धोदययोग में नहाने से उनका भी प्रायश्चित्त होता है अर्द्धोदययोग में जो मनुष्य मोह से सेतु में स्नान नहीं करते हैं ॥ १८ ॥ वे संसार में डूबते हैं जैसे कि अन्ध नीचे गिरते हैं अर्द्धोदययोग में सेतु में नहाकर मनुष्य सूर्यमण्डल को फोड़ कर ॥ १९ ॥ ब्रह्मलोक को जावैंगे इसमें विचार न करना चाहिये अर्द्धोदय प्राप्त होने पर मुक्तिदायक सेतु में नहाकर ॥ २० ॥ सीतासमेत जगदीश रघुनाथजी को भलीभांति प्रणामकर व रामेश्वर महादेव तथा सुग्रीवादिक वानरों को प्रणामकर ॥ २१ ॥

रेषांच महापातकिनांतथा ॥ १६ ॥ सेतावर्द्धोदयेस्नानाद्विशुद्धिरितिनिश्चिता ॥ स्थलान्तरेकृतघ्नानां निष्कृतिर्नास्ति कर्हिचित् ॥ १७ ॥ सेतावर्द्धोदयेस्नानात्तेषामपिहिनिष्कृतिः ॥ सेतावर्द्धोदयेस्नानं येनकुर्वन्तिमोहतः ॥ १८ ॥ संसारेषुनिमज्जन्ति तेयथान्धाःपतन्त्यधः ॥ सेतावर्द्धोदयेस्नात्वा भित्त्वाभास्करमण्डलम् ॥ १९ ॥ ब्रह्मलोकम्प्रयास्यन्ति नात्रकार्याविचारणा ॥ अर्द्धोदयेतुसम्प्राप्ते स्नात्वासेतौविमुक्तिदे ॥ २० ॥ नत्वासम्यग्जगन्नाथं राघवंसीतयासह ॥ रामेश्वरम्महादेवं सुग्रीवादिमुखान्कपीन् ॥ २१ ॥ ध्यात्वादेवानृषींश्चापि तथापितृगणानपि ॥ तर्पयेदपितान्सर्वान्स्वदारिद्र्यविमुक्तये ॥ २२ ॥ अर्द्धोदयाख्यममलं जगन्नाथंसमर्चयेत् ॥ सेतावर्द्धोदयेकाले तेनप्रीणातिकेशवः ॥ २३ ॥ दिवाकरनमस्तेस्तु तेजोराशेजगत्पते ॥ अत्रिगोत्रसमुत्पन्न लक्ष्मीदेव्याःसहोदर ॥ २४ ॥ अर्घंगृहाणभगवन्सुधाकुम्भ नमोस्तुते ॥ व्यतीपातमहायोगिन्महापातकनाशन ॥ २५ ॥ सहस्रबाहोसर्वात्मन् गृहाणार्घ्यंनमोस्तुते ॥ तिथिनक्षत्र

देवता, ऋषि व पितृगणों को ध्यानकर अपनी दरिद्रता के छूटने के लिये उन सबों को भी तर्पण करै ॥ २२ ॥ और सेतु पै अर्द्धोदय समय में अर्द्धोदय नामक निर्मल जगदीशजी को पूजै उससे विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ २३ ॥ हे जगत्पते, तेजोराशे, दिवाकरजी ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे अत्रिगोत्र में उत्पन्न, लक्ष्मीदेवी के सहोदर ! ॥ २४ ॥ अमृतकुम्भ, भगवन् ! अर्घ को ग्रहण कीजिये तुम्हारे लिये प्रणाम है व हे महापातकविनाशक, व्यतीपात, महायोगिन् ! ॥२५॥ हे सहस्रभुज, सर्वात्मन् !

अर्घ्य को ग्रहण कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है हे तिथि, नक्षत्र व वारों के स्वामी, परमेश्वर ! ॥ २६ ॥ हे कालरूप, मासरूप ! अर्घ्य को ग्रहण कीजिये तुम्हारे लिये प्रणाम है इस प्रकार महोदययोग में मनुष्य अलग २ मन्त्रों से अर्घ्य को देकर ॥ २७ ॥ द्रव्य के अनुसार ब्राह्मणों के लिये भेंटदेवै और चौदह, बारह, आठ, सात, छः या पांच ब्राह्मणों को ॥ २८ ॥ शक्ति के अनुसार अलग २ मन्त्रों से अन्न पानादिकों से पूजनकरै और नवीन कांस्यका पात्र या लकड़ी का पात्र लेकर ॥ २९ ॥ जल से पूर्ण उस पात्र को ब्राह्मणों के आगे धरकर फल समेत व गुड़ सहित और घी समेत तथा तांबूल व दक्षिणा समेत उस पात्र

वाराणामधीशपरमेश्वर ॥ २६ ॥ मासरूपगृहाणार्घ्यं कालरूपनमोस्तुते ॥ इतिदत्त्वापृथङ्मन्त्रैरर्घ्यमर्द्धोदये नरः ॥ २७ ॥ उपायनानिविप्रेभ्यो दद्याद्वित्तानुसारतः ॥ चतुर्दशद्वादशाष्टौ सप्तषट्पञ्चवाद्विजान् ॥ २८ ॥ यथाशक्त्य न्नपानाद्यैः पृथङ्मन्त्रैःसमर्चयेत् ॥ कांस्यपात्रंसमादाय नूतनंदारवन्तुवा ॥ २९ ॥ विप्राणाम्पुरतःस्थाप्य पयसापरिपू रितम् ॥ सफलंसगुडंसाज्यं सताम्बूलंसदक्षिणम् ॥ ३० ॥ दद्याद्यज्ञोपवीतञ्च गांसवत्सांपयस्विनीम् ॥ अलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो यथाशक्तिवदेदिदम् ॥ ३१ ॥ श्रवणर्क्षेजगन्नाथजन्मर्क्षेतवकेशव ॥ यन्मयादत्तमर्थिभ्यस्तदक्षयमिहास्तु ते ॥ ३२ ॥ नक्षत्राणामधिपते देवानाममृतप्रद ॥ त्राहिमांरोहिणीकान्त कलाशेषनमोस्तुते ॥ ३३ ॥ दीननाथजग न्नाथ कालनाथकृपाकर ॥ त्वत्पादपद्मयुगलभक्तिरस्त्वचलाामम ॥ ३४ ॥ व्यतीपातनमस्तेस्तु सोमसूर्यसुतप्रभो ॥ यद्दा नादिकृतंकिञ्चित्तदक्षयमिहास्तुते ॥ ३५ ॥ अर्थिनांकल्पवृक्षोसि वासुदेवजनार्दन ॥ मासर्त्वयनकालेश पापंशमय

को ॥ ३० ॥ और यज्ञोपवीत व बछड़ा समेत दूध देनेवाली गऊ को शक्ति के अनुसार भूषित ब्राह्मणों के लिये देवै और यह कहै ॥ ३१ ॥ कि हे जगदीश, केशवजी ! तुम्हारे जन्मवाले नक्षत्र श्रवण नक्षत्र में यहां जो मैंने अर्थियो के लिये दिया वह तुमको अक्षय होवै ॥ ३२ ॥ हे देवताओं को अमृतदायक, नक्षत्रेश, रोहिणी-पते, कलाशेष ! मेरी रक्षा कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३३ ॥ हे दीननाथ, जगन्नाथ, कालनाथ, दयाकर ! तुम्हारे दोनो चरणकमलों में मेरी अचल भक्ति होवै ॥ ३४ ॥ हे सोमसूर्यसुत, व्यतीपात, प्रभो ! तुम्हारे लिये नमस्कार है यहा जो कुछ दानादिक किया गया है वह तुमको अक्षय होवै ॥ ३५ ॥ हे जनार्दन,

वासुदेव ! तुम अर्थियों के कल्पवृक्ष हो हे मास, ऋतु, अयन व काल के स्वामी, विष्णुजी ! मेरे पाप को नाश कीजिये ॥ ३६ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! इस प्रकार पूजकर तदनन्तर श्राद्ध करै हिरण्यश्राद्ध या आमश्राद्ध अथवा पाकश्राद्ध करै ॥ ३७ ॥ तदनन्तर पार्वणश्राद्ध करै और वित्तशाठ्य न करै पश्चात् वस्त्र, भूषण व कुंडलों से आचार्य को पूजै ॥ ३८ ॥ और उसके लिये मूर्ति, गऊ, छत्र व पनही को देवै हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार सेतु पै अर्द्धोदययोग में व्रतकरै ॥ ३९ ॥ उसी से मनुष्य कृतकृत्य होता है और कुछ करने योग्य नहीं होता है इसी प्रकार अर्द्धोदययोग में अन्यस्थल में भी व्रतकरै ॥ ४० ॥ गन्धमादन पर्वत पै श्रीरामजी

मेहरे ॥ ३६ ॥ इत्यर्चयित्वाविप्रेन्द्रास्ततःश्राद्धंसमाचरेत् ॥ हिरण्यश्राद्धमामंवा पाकश्राद्धमथापिवा ॥ ३७ ॥ पार्वणंच ततःकुर्याद्वित्तशाठ्यंनकारयेत् ॥ आचार्यंपूजयेत्पश्चाद्वस्त्रभूषणकुण्डलैः ॥ ३८ ॥ प्रतिमामर्पयेत्तस्मै गांचछत्रमुपानहम् ॥ एवमर्द्धोदयेसेतौ व्रतंकुर्याद्द्विजोत्तमाः ॥ ३९ ॥ तेनैवकृतकृत्यःस्यात्कर्तव्यंनास्तिकिञ्चन ॥ स्थलान्तरेप्येवमेतद्व्रतमर्धोदयेचरेत् ॥ ४० ॥ सेतुःसमुद्रेरामेण निर्मितोगन्धमादने॥ सेतुःसेतुरितिप्रोच्चैस्तस्यनाम्नःप्रकीर्तनात् ॥ ४१ ॥ स्नानकालेमनुष्याणां पातकानान्तुकोटयः ॥ तत्क्षणादेवनश्यन्ति यास्यन्त्यप्यच्युतम्पदम् ॥ ४२ ॥ निमिषंनिमिषार्द्धंवा सेतौतिष्ठतियोनरः ॥ तद्दृष्टिगोचरङ्गन्तुं नशक्तायमकिङ्कराः ॥ ४३ ॥ रामसेतुंधनुष्कोटिं रामंसीतांचलक्ष्मणम् ॥ रामनाथंहनूमन्तं सुग्रीवादिमुखान्कपीन् ॥ ४४ ॥ विभीषणंनारदञ्च विश्वामित्रंघटोद्भवम् ॥ वसिष्ठंवामदेवञ्च जाबालिमथकाश्यपम् ॥ ४५ ॥ रामभक्तस्तथाचान्यश्चिन्तयन्मनसातदा ॥ सर्वदुःखाद्विमुच्येत प्रयातिपरमम्पदम् ॥ ४६ ॥

ने समुद्र में सेतु को बनाया है सेतु सेतु ऐसा उच्च प्रकार से उसके नाम को कहने से ॥ ४१ ॥ स्नान के समय में मनुष्यों के करोड़ों पातक उसीक्षण नाश होजाते हैं और वे अच्युतस्थान को पाते हैं ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य निमेष या आधे निमेष भर सेतु पै टिकता है उसके दृष्टिगोचर में जाने के लिये यमदूत समर्थ नहीं होते हैं ॥ ४३ ॥ रामसेतु, धनुष्कोटि, राम, सीता, लक्ष्मण, रामनाथ, हनूमान् व सुग्रीवादिक वानरों को ॥ ४४ ॥ और विभीषण, नारद, विश्वामित्र, अगस्ति, वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि व काश्यपजी को ॥ ४५ ॥ उससमय चिन्तन करता हुआ अन्य रामभक्त सब दुःख से छूट जाता है व परमपद को प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

और सत्यक्षेत्र, हरिक्षेत्र, कृष्णक्षेत्र, नैमिष, सालग्राम, बदरिकाश्रम, हस्तिशैल व वृषाचल में ॥ ४७ ॥ और शेषाद्रि, चित्रकूट, लक्ष्मीक्षेत्र, कुरंगक, कांचिक, कुम्भकोण और मोहिनीनगर में ॥ ४८ ॥ और ऐन्द्र, श्वेताचल व पवित्र पद्मनाभ महास्थल में और फुल्लनामक ग्राम व घटिकादि, सारक्षेत्र और हरिस्थल में ॥ ४९ ॥ और श्रीनिवास महाक्षेत्र, भक्तनाथ महास्थल, अलिंद नामक महाक्षेत्र व शुकक्षेत्र और वारुणक्षेत्र में ॥ ५० ॥ व मथुरा, हरिक्षेत्र, श्रीगोष्ठी, पुरुषोत्तम, श्रीरंग, पुंडरीकाक्ष व अन्य विष्णुस्थल में ॥ ५१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! नहाने से जो पाप नाश होजाते हैं वे सब निश्चय कर सेतु में स्नान से नाश होजाते हैं ॥ ५२ ॥

सत्यक्षेत्रेहरिक्षेत्रे कृष्णक्षेत्रेचनैमिषे ॥ सालग्रामेबदर्य्यांच हस्तिशैलेवृषाचले ॥ ४७ ॥ शेषाद्रौचित्रकूटेच लक्ष्मीक्षेत्रेकुरङ्गके ॥ काञ्चिकेकुम्भकोणेच मोहिनीपुरएवच ॥ ४८ ॥ ऐन्द्रेश्वेताचलेपुण्ये पद्मनाभेमहास्थले ॥ फुल्लाख्येघटिकाद्रौच सारक्षेत्रेहरिस्थले ॥ ४९ ॥ श्रीनिवासेमहाक्षेत्रे भक्तनाथमहास्थले ॥ अलिन्दाख्येमहाक्षेत्रे शुकक्षेत्रेचवारुणे ॥ ५० ॥ मधुरायांहरिक्षेत्रे श्रीगोष्ठ्यांपुरुषोत्तमे ॥ श्रीरङ्गेपुण्डरीकाक्षे तथान्यत्रहरिस्थले ॥ ५१ ॥ स्नानेनयानिपापानि नश्यन्तिचद्विजोत्तमाः ॥ तानिसर्वाणिनश्यन्ति सेतुस्नानेननिश्चितम् ॥ ५२ ॥ रघुनाथकृतेसेतौ महामुनिनिषेविते ॥ नस्नान्तियेनरास्तेषां नसंसारनिवर्त्तनम् ॥ ५३ ॥ येवानमःशिवायेति मन्त्रंपञ्चाक्षरंशुभम् ॥ नवदन्तिनश्रृण्वन्ति नस्मरन्तिमुनीश्वराः ॥ ५४ ॥ नमोनारायणायेति प्रणवेनसमन्वितम् ॥ मन्त्रमष्टाक्षरंवापि नजपन्तिस्मरन्तिवा ॥ ५५ ॥ एवंश्रीरामचन्द्रस्य षडक्षरमनुंतथा ॥ नजपन्तिनश्रृण्वन्ति नस्मरन्तिचसत्तमाः ॥ ५६ ॥

महामुनियों से सेवित रघुनाथजी से कियेहुए सेतु में जो मनुष्य नहीं नहाते हैं उनकी संसार से निवृत्ति नहीं होती है ॥ ५३ ॥ अथवा हे मुनीश्वरो ! जो मनुष्य नमः शिवाय ऐसे उत्तम पंचाक्षर मन्त्र को न कहते हैं न सुनते हैं और न स्मरण करते हैं ॥ ५४ ॥ और ॐकार से संयुत नमोनारायणाय ऐसे अष्टाक्षर मन्त्र-को जो न जपते हैं न स्मरण करते हैं ॥ ५५ ॥ व हे सत्तमो ! इसीप्रकार श्रीरामचन्द्रजी के षडक्षर मन्त्र को जो न जपते हैं न सुनते न स्मरण करते हैं ॥ ५६ ॥

उनके पाप रामसेतु में नहाने से नाश होजाते हैं अथवा जो उत्तम हरिदिन (द्वादशीतिथि) में उपवास नहीं करते हैं ॥ ५७ ॥ और जो सात जाबालोपनिषत् के मन्त्रों से मस्तकादिक में त्रिपुंड् के उद्धूलन आदि से भस्म को नहीं धारण करते हैं ॥ ५८ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! शिव व विष्णु तथा अन्य देवताओं को जो वेदोक्तमार्ग से नहीं पूजते है ॥ ५९ ॥ उनके पाप रामसेतु में नहाने से नाश होजाते हैं और शिव व विष्णु आदिक देवताओं के लिये धूप, दीप, चन्दन ॥ ६० ॥ व हे द्विजोत्तमो ! पुष्पों को भक्तिपूर्वक जो नहीं देते हैं और जो मनुष्य शिव व विष्णु आदिक देवताओं का श्रीरुद्र व चमक ॥ ६१ ॥ तथा श्रीमत्पुरुषसूक्त व पावमान्यादिक सूक्त

तेषांपापानिनश्यन्ति रामसेतौनिमज्जनात् ॥ उपोषणंनकुर्वन्ति येवाहरिदिनेशुभे ॥ ५७ ॥ नधारयन्तियेभस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनादिना ॥ जाबालोपनिषन्मन्त्रैस्सप्तभिर्मस्तकादिके ॥ ५८ ॥ शिवंवाकेशवंवापि तथान्यानपिवैसुरान् ॥ नपूजयन्तिवेदोक्तमार्गेणद्विजपुङ्गवाः ॥ ५९ ॥ तेषांपापानिनश्यन्ति रामसेतौनिमज्जनात् ॥ शिवविष्ण्वादिदेवेभ्यो धूपंदीपंचचन्दनम् ॥ ६० ॥ पुष्पाणिनप्रयच्छन्ति भक्तिपूर्वंद्विजोत्तमाः ॥ शिवविष्ण्वादिदेवानां श्रीरुद्रैश्चमकैस्तथा ॥ ६१ ॥ श्रीमत्पुरुषसूक्तेन पावमान्यादिसूक्तकैः ॥ त्रिमधुत्रिसुपर्णैश्च पञ्चशान्त्यादिनातथा ॥ ६२ ॥ नाभिषेकम्प्रकुर्वन्ति येनराःपापचेतसः ॥ तेषांपापानिनश्यन्ति धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ ६३ ॥ शिवविष्ण्वादिदेवानां नमस्कारप्रदक्षिणे ॥ नप्रकुर्वन्तिभक्त्याये पापोपहतबुद्धयः ॥ ६४ ॥ धनुर्मासेप्युषःकाले नपूजाञ्चप्रकुर्वते ॥ शिवविष्ण्वादिदेवानां महानैवेद्यपूर्वकम् ॥ ६५ ॥ तेषांपापानिनश्यन्ति रामसेतौनिमज्जनात् ॥ कीर्तयन्तिनयेविष्णोर्नामानितुहरस्य

तथा त्रिमधु, त्रिसुपर्ण और पंचशीति आदिक सूक्त से ॥ ६२ ॥ जो पापचित्तवाले पुरुष अभिषेक नहीं करते हैं उनके पातक धनुष्कोटि में नहाने से नाश होजाते हैं ॥ ६३ ॥ व पाप से नष्टबुद्धिवाले जो पुरुष भक्ति से शिव, विष्णु आदिक देवताओं का प्रणाम व प्रदक्षिणा नहीं करतेहैं ॥ ६४ ॥ और पौष महीने में प्रातःकाल जो मनुष्य महानैवेद्यपूर्वक शिव व विष्णु आदिक देवताओं का पूजन नहीं करते हैं ॥ ६५ ॥ उनके पाप रामसेतु में नहाने से नाश होजाते हैं और जो मनुष्य

विष्णु व शिवजी के नामों को नहीं कहते हैं ॥ ६६ ॥ और जो मनुष्य शालग्रामशिला के चक्र को व शिवनाभ तथा द्वारकाचक्र को मोह से नहीं पूजते हैं ॥ ६७ ॥ व हे ब्राह्मणो ! जो मूढ़ मनुष्य श्रीगंगाजी की मिट्टी व तुलसी की मिट्टी और गोपीचन्दन को मस्तक व वक्षस्थल में नहीं धारण करते हैं ॥ ६८ ॥ और जो मनुष्य सब पापसमूहों की शान्ति के लिये दोनों भुजाओं व गले में रुद्राक्ष व तुलसीकाष्ठ को नहीं धारण करता है ॥ ६९ ॥ उसके पातक धनुष्कोटि में नहाने से नाश होजाते हैं और ब्राह्ममुहूर्त प्राप्त होनेपर जो प्रसन्नबुद्धिवाला पुरुष निद्रा को छोड़कर ॥ ७० ॥ हे ब्राह्मणो ! विष्णु व शिवजी के नामों को व उनके स्तोत्रों

वा ॥ ६६ ॥ शालग्रामशिलाचक्रं शिवनाभंचयेनराः ॥ नपूजयन्तिमोहेन द्वारकाचक्रमेववा ॥ ६७॥ गङ्गामृदञ्चतुलसीमृत्तिकांगोपिचन्दनम् ॥ नधारयन्तियेमूढा ललाटेचोरसिद्विजाः ॥ ६८॥ दोर्द्वन्द्वेचगलेसम्यक्सर्वपापौघशान्तये ॥ रुद्राक्षंतुलसीकाष्ठं योनधारयतेनरः ॥ ६९ ॥ तस्यपापानिनश्यन्ति धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ ब्राह्मेमुहूर्त्तेसम्प्राप्ते निद्रांत्यक्त्वाप्रसन्नधीः ॥ ७० ॥ हरिशङ्करनामानि तत्स्तोत्राण्यथवाद्विजाः ॥ योनचिन्तयतेनित्यं विशिष्टंमन्त्रमेववा ॥ ७१ ॥ तस्यपापानिनश्यन्ति धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ प्रातर्जलाशयंगत्वा स्नात्वाचम्यविशुद्धधीः ॥ ७२ ॥ प्रसन्नात्मामुनिश्रेष्ठाः सन्ध्योपासनपूर्वकम् ॥ नोपास्तेचनरोयस्तु गायत्रींवेदमातरम् ॥ ७३ ॥ नोपासनंवाकुर्वन्ति सायम्प्रातरतन्द्रिताः ॥ माध्याह्निकन्नकुर्वन्ति येवापापहताशयाः ॥ ७४ ॥ ब्रह्मयज्ञंवैश्वदेवं मध्याह्नेतिथिपूजनम् ॥ नाचरन्तिचसायंये पूजामतिथिसम्मताम् ॥ ७५ ॥ तेषांपापानिनश्यन्ति धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ भिक्षांयतीनांमध्याह्ने

को व उत्तम मन्त्र को नित्य चिन्तन नहीं करता है ॥ ७१ ॥ उसके पातक धनुष्कोटि में नहाने से नाश होजाते हैं और प्रातःकाल जलाशय को जाकर नहाकर आचमन कर शुद्धबुद्धि ॥ ७२ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठो ! प्रसन्नमनवाला जो पुरुष संध्योपासनपूर्वक वेदमाता गायत्री की उपासना नहीं करता है ॥ ७३ ॥ अथवा पाप से नष्ट आशयवाले जो पुरुष निरालसी होकर सायंकाल व प्रातःकाल संध्योपासन नहीं करते हैं अथवा जो मध्याह्न संध्योपासन नहीं करते हैं ॥ ७४ ॥ और जो ब्रह्मयज्ञ, वैश्वदेव व मध्याह्न में अतिथिपूजन और सायंकाल में अतिथि से संमत पूजन को नहीं करता है ॥ ७५ ॥ उनके पाप धनुष्कोटि में नहाने से नाश होजाते हैं

व जो पुरुष मध्याह्न में यतियों को भिक्षा नहीं देते हैं ॥ ७६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! जो कुबुद्धि पुरुष पढ़ीहुई वेदत्रयी को भूल जाते हैं व फिर जो वेदत्रयी और वेदांगों को नहीं पढ़ते हैं ॥ ७७ ॥ और जो प्रत्येक वर्ष में माता, पिता का श्राद्ध नहीं करते हैं व जो महालय में नित्यश्राद्ध और अष्टकाश्राद्ध ॥ ७८ ॥ तथा अन्य नैमित्तिकश्राद्ध को जो लोभ से नहीं करते हैं और चैत की पौर्णमासी तिथि में चित्रगुप्त की प्रसन्नता के लिये जो ॥ ७९ ॥ पान, केला के पके फल व शक्कर समेत और गुड सहित व आम के फलों समेत तथा कटहर के फलों से संयुत खीर ॥ ८० ॥ व तांबूल, खड़ाऊं, छत्र, वस्त्र, पुष्प व चन्दन को लोभ से नष्ट बुद्धिवाले पुरुष ब्राह्मणों के

नप्रयच्छन्तियेनराः ॥ ७६ ॥ येप्यधीतांत्रयींविप्रा विस्मरन्तिकुबुद्धयः ॥ नाधीयतेत्रयींवापि वेदाङ्गानितथापुनः ॥ ७७ ॥ प्रत्याब्दिकम्मातृपित्रोः श्राद्धंयेनाचरन्तिवै ॥ श्राद्धंमहालयेनित्यमष्टकाश्राद्धमेववा ॥ ७८ ॥ अन्यंनैमित्तिकंश्राद्धं येनकुर्वन्तिलोभतः ॥ येचैत्रेतुपौर्णमास्यां चित्रगुप्तस्यतुष्टये ॥ ७९ ॥ पानकंकदलीपक्वं पायसान्नंसशर्करम् ॥ सगुडंमाम्रफलकं पनसादिफलैर्युतम् ॥ ८० ॥ ताम्बूलंपादुकेछत्रं वस्त्रपुष्पाणिचन्दनम् ॥ विप्रेभ्योनप्रयच्छन्ति लोभोपहतबुद्धयः ॥ ८१ ॥ तेषाम्पापानिनश्यन्ति धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ दुर्वृत्तोवासुवृत्तोवा योधनुष्कोटिसेवकः ॥ ८२ ॥ तस्यसंसारविच्छित्तिः पुनर्जन्मविनाभवेत् ॥ संसारसागरंतर्तुं यइच्छेन्मुनिपुङ्गवाः ॥ ८३ ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटिंसगच्छेदविलम्बितम् ॥ सत्यंवच्मिहितंवच्मि सारंवच्मिहितम्पुनः ॥ ८४ ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटिं गच्छध्वम्मुक्तिसिद्धये ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटौ मुक्त्वास्नानंविमुक्तये ॥ ८५ ॥ नास्त्युपायान्तरंविप्रा भूयोभूयोवदाम्यहम् ॥ रामचन्द्र

लिये नहीं देते हैं ॥ ८१ ॥ उनके पातक धनुष्कोटि में नहाने से नाश होजाते हैं और जो दुराचारी या उत्तम आचारवाला पुरुष धनुष्कोटि का सेवक होता है ॥ ८२ ॥ उसके फिर जन्म के बिना संसार का विनाश होता है हे मुनिश्रेष्ठो ! जो मनुष्य संसारसागर को उतरना चाहै ॥ ८३ ॥ वह शीघ्रही रामचन्द्र की धनुष्कोटि को जावै मैं सत्य व हित कहताहूं और फिर सारांश व हित को कहताहूं ॥ ८४ ॥ कि तुमलोग मुक्ति की सिद्धि के लिये रामचन्द्र की धनुष्कोटि को जावो क्योंकि रामचन्द्र की धनुष्कोटि में स्नान को छोड़कर मुक्ति के लिये ॥ ८५ ॥ हे ब्राह्मणो ! अन्य उपाय नहीं है यह मैं बार २ कहताहूं कि जो मनुष्य रामचन्द्र की धनुष्कोटि में

उतने मद्यसेवन ॥ ६ ॥ और उतनी सुवर्ण की चोरी व उतनी गुरुकी स्त्रियों में गमन तथा उतनेही संसर्ग के दोष उसी क्षण नाश होजाते हैं ॥ ७ ॥ इस महापवित्र माहात्म्य में जितने अक्षरगण वर्तमान हैं उतने बार चौबीस तीर्थों में स्नान से उपजाहुआ फल होता है ॥ ८ ॥ और सेतु के मध्य में प्राप्त अन्य भी तीर्थों में नहाने से जो फल होता है उस फलको मनुष्य इसके पढ़ने व सुनने से पाता है ॥ ९ ॥ व जो मनुष्य भक्ति से इस उत्तम सेतुमाहात्म्य को लिखता है अज्ञान की सन्तति को नाश कर वह शिवजी की सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ १० ॥ और जिसके घर में यह लिखाहुआ उत्तम माहात्म्य वर्तमान होवे वहां भूतों व वेतालादिकों

हि ॥ तावन्त्योब्रह्महत्याश्च तावन्मद्यनिषेवणम् ॥ ६ ॥ तावत्सुवर्णस्तेयंच तावान्गुर्वङ्गनागमः ॥ तावत्संसर्गदोषाश्च नश्यन्त्येवहितत्क्षणात् ॥ ७ ॥ यावन्तोस्मिन्महापुण्ये वर्तन्तेवर्णराशयः ॥ तावत्कृत्वश्चतुर्विंशत्तीर्थेषुस्नानजम्फलम् ॥ ८ ॥ तथान्येष्वपितीर्थेषु सेतुमध्यगतेषुवै ॥ तत्फलंसमवाप्नोति पाठेनश्रवणेनवा ॥ ९ ॥ येनेदंलिखितम्भक्त्या सेतुमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ विनष्टाज्ञानसन्तानः शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ १० ॥ यस्येदंवर्ततेगेहे माहात्म्यंलिखितंशुभम् ॥ भूतवेतालकादिभ्यो भीतिस्तत्रनविद्यते ॥ ११ ॥ व्याधिपीडानतत्रास्ति नास्तिचोरभयंतथा ॥ शन्यङ्गारकमुख्यानां ग्रहाणांनास्तिपीडनम् ॥ १२ ॥ यद्गृहेवर्ततेपुण्यमिदमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ रामसेतुंविजानीत तद्गृहम्मुनिपुङ्गवाः ॥ १३ ॥ चतुर्विंशतितीर्थानि तत्रैवनिवसन्तिहि ॥ तत्रैववर्ततेपुण्यो गन्धमादनपर्वतः ॥ १४ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च वर्तन्तेतत्रसादरम् ॥ किम्पुनर्बहुनोक्तेन वसत्यत्रजगत्त्रयम् ॥ १५ ॥ श्रावयेच्छ्राद्धकालेयो ह्येकमध्यायमत्रवै ॥

से डर नहीं होता है ॥ ११ ॥ और वहां रोगोंकी पीड़ा नहीं होती है व चोरों का डर नहीं होता है और शनैश्चर व मंगल आदिक ग्रहों की पीडा नहीं होती है ॥ १२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! यह पुण्यरूप उत्तम माहात्म्य जिसके घर में वर्तमान होवै उस घर को तुमलोग रामसेतु जानो ॥ १३ ॥ और वहीं चौबीस तीर्थ बसते हैं और वहीं पर पवित्र गन्धमादन पर्वत है ॥ १४ ॥ और वहां आदर समेत ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी वर्तमान होते हैं फिर बहुत कहने से क्या है क्योंकि इस घरमें त्रिलोक बसता है ॥ १५ ॥ और

इस माहात्म्य के एक अध्याय को जो श्राद्धसमय में सुनाता है उसके श्राद्ध की न्यूनता नाश होजाती है और पितर भी बहुत प्रसन्न होते हैं ॥ १६ ॥ और पर्वसमय प्राप्तहोने पर जो पुरुष इस माहात्म्य को ब्राह्मणों को सुनाता है अथवा एक अध्याय या एक श्लोक को जो सुनाता है इसकी गौवैं उपद्रवरहित होती हैं ॥ १७ ॥ और इसके बहुत दूधवाली व वत्सों समेत भैंसियां होतीं हैं इस पुण्यदायक माहात्म्य को मठ व देवालय में पढ़ना चाहिये ॥ १८ ॥ अथवा नदी या तड़ाग के किनारे व पवित्र वनभूमि में या वेदपात्रों के घर में इसको पढ़ना चाहिये अन्यत्र कहीं न पढ़ना चाहिये ॥ १९ ॥ और विषुवायन समय व पुण्यदायक हरिवासर और अष्टमी व चौदसि तिथि में

नश्येच्छ्राद्धस्यवैकल्यं पितरोप्यतिहर्षिताः ॥ १६ ॥ यःपर्वकालेसम्प्राप्ते ब्राह्मणाञ्छ्रावयेदिदम् ॥ अध्यायमेकंश्लोकं वा गावोस्यनिरुपद्रवाः ॥ १७ ॥ बहुक्षीराःसवत्साश्च महिष्योस्यभवन्तिहि ॥ पठनीयमिदम्पुण्यं मठेदेवालयेपि वा ॥ १८ ॥ नदीतटाकतीरेषु पुण्येवारण्यभूतले ॥ श्रोत्रियाणांगृहेवापि नैवान्यत्रतुकर्हिचित् ॥ १९ ॥ विषुवायन कालेषु पुण्येचहरिवासरे ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यां पठनीयंविशेषतः ॥ २० ॥ इदंहिपाठ्यंश्रावण्यां मासिभाद्रपदेतथा ॥ धनुर्मासेचपाठ्यंस्यात्पाठ्यंचैवोत्तरायणे ॥ २१ ॥ नियतेनैवमाहात्म्यं पठनीयमिदंद्विजाः ॥ श्रोतारोनियमैर्युक्ताः शृणुयुश्चेदमुत्तमम् ॥ २२ ॥ कीर्त्यन्तेपुण्यतीर्थानि माहात्म्येस्मिन्बहूनिवै ॥ कीर्त्यन्तेपुण्यशीलाश्च तथाराजर्षिसत्तमाः ॥ २३ ॥ ऋषयश्चमहाभागाः कीर्त्यन्तेस्मिन्ननुत्तमे ॥ धर्माधर्मौचकीर्त्येते पुण्येस्मिन्द्विजपुङ्गवाः ॥ २४ ॥ ब्रह्मा

इसको विशेष कर पढ़ना चाहिये ॥ २० ॥ और श्रावणी व भाद्रपद में इसको पढ़ना चाहिये और पौष महीने में पढ़ना चाहिये व उत्तरायण में पढ़ना चाहिये ॥ २१ ॥ हे ब्राह्मणो ! नियत मनुष्य को यह माहात्म्य पढ़ना चाहिये और नियमों से संयुत मनुष्य इस उत्तम माहात्म्य को सुनैं ॥ २२ ॥ इस माहात्म्य में बहुत पवित्र तीर्थ कहे जाते हैं व हे द्विजोत्तमो ! पवित्र स्वभाववाले उत्तम राजर्षिलोग कहे जाते हैं ॥ २३ ॥ और इस अति उत्तम माहात्म्य में महाभाग ऋषि लोग कहे जाते हैं तथा हे द्विजोत्तमो ! इस पवित्र माहात्म्य में धर्म व अधर्म कहे जाते हैं ॥ २४ ॥ और इस में तीनों मूर्तियोंवाले ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी

कहे जाते हैं यह पवित्र व पापनाशक माहात्म्य श्रुतियों के अर्थों से बढ़ा है ॥ २५ ॥ और स्मृति रचनेवालों के संमत व व्यासजी को प्रिय है और अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुष को यह सुनना व पढ़ना चाहिये ॥ २६ ॥ और सुनानेवाले के लिये जो कुछ सुवर्ण आदिक होवै उसको अपनी अपनी शक्ति के अनुसार देना चाहिये और वित्तशाठ्य न करै ॥ २७ ॥ और वसन, सुवर्ण, अन्न, पृथ्वी व गऊ को यथाशक्ति देकर श्रोतालोगों को इस सुनानेवाले का सन्मान करना चाहिये ॥ २८ ॥ क्योंकि उस सुनानेवाले के पूजित होने पर तीनों मूर्तियां पूजित होती हैं और त्रिलोक पूजित होने पर व तीनों मूर्तियों के पूजित होने पर ॥ २९ ॥

विष्णुश्चरुद्रश्च कीर्त्यन्तेत्रत्रिमूर्तयः ॥ इदंपवित्रम्पापघ्नं श्रुत्यर्थैरुपबृंहितम् ॥ २५ ॥ संमतंस्मृतिकर्तॄणांद्वैपायनमुनिप्रियम् ॥ श्रोतव्यम्पठितव्यञ्च आत्मनःश्रेयइच्छता ॥ २६ ॥ श्रावकायचदातव्यं यत्किञ्चित्काञ्चनादिकम् ॥ स्वस्वशक्त्यनुरोधेन वित्तशाठ्यंनकारयेत् ॥ २७ ॥ वस्त्रंहिरण्यंधान्यंवा भूमिंगांचयथाबलम् ॥ दत्त्वासम्भावनीयोयं श्रावकःश्रोतृभिर्जनैः ॥ २८ ॥ पूजितेश्रावकेतस्मिन्पूजिताःस्युस्त्रिमूर्तयः ॥ जगत्त्रयंपूजितंस्यात्पूजितासुत्रिमूर्तिषु ॥ २९ ॥ अवतीर्णोमहींसाक्षाद्रामोदाशरथिर्हरिः ॥ ससीतालक्ष्मणोनित्यं श्रोतृभ्यःश्रावकायच ॥ ३० ॥ दत्त्वेहलोके भोगांश्च मुक्तिंचान्तेप्रयच्छति ॥ द्वैपायनमुखाम्भोजान्निःसृतंशुभदंशुभम् ॥ ३१ ॥ इदंवैसेतुमाहात्म्यं धर्मराजोयुधिष्ठिरः ॥ भीमसेनादिभिःसर्वैरनुजैरपिसंवृतः ॥ ३२ ॥ निहताचारसंयुक्तः ससैन्यश्चदिनेदिने ॥ शृणोतिपठतोधौम्य महर्षेःस्वपुरोधसः ॥ ३३ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ भोभोस्तपोधनाःसर्वे नैमिषारण्यवासिनः ॥ मत्सकाशादिदंगुह्यं माहात्म्यंश्रु

दशरथकुमार साक्षात् विष्णु श्रीरामजी पृथ्वी में अवतार लेकर सीता व लक्ष्मण समेत सदैव श्रोता व सुनानेवाले के लिये ॥ ३० ॥ इस लोक में सुखों को देकर अन्त में मुक्ति को देते हैं व्यासजी के मुखकमल से निकले हुए शुभदायक व उत्तम ॥ ३१ ॥ इस सेतुमाहात्म्य को भीमसेनादिक सब छोटे भाइयों से घिरे हुए धर्मराज युधिष्ठिरजी ॥ ३२ ॥ उत्तम आचार से संयुत व सेना समेत प्रतिदिन पढ़ते हुए अपने पुरोहित धौम्य महर्षि से सुनते हैं ॥ ३३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे नैमिषारण्य-

वासियो, सब तपस्वियो ! मेरे सकाश से इस श्रुतिसंमत गुप्त माहात्म्य को ॥ ३४ ॥ नियम से संयुत आप लोगों ने सुना है इस को नित्य आदर समेत पढ़िये और सदैव अपने नियत शिष्यों को पढ़ाइये ॥ ३५ ॥ उन मुनियों से यह कहकर रोमांचित अंगवाले सूतजी अपने गुरु व्यासजी को हृदय से स्मरण करते हुए आँसुओं को बहाते हुए नाचने लगे ॥ ३६ ॥ इसी अवसर में महाविद्वान् व्यास महामुनि वहां शिष्य के ऊपर दया करने की इच्छा से शीघ्रही प्रकट हुए ॥ ३७ ॥ उन आये हुए सत्यवती-सुत व्यास मुनि को देखकर नैमिषारण्यनिवासी सब मुनियों समेत सूतजी ने ॥ ३८ ॥ व्यासजी के चरणकमल को दंडा की नाईं प्रणाम कर वहां आनन्द से उपजे हुए

तिसंमितम् ॥ ३४ ॥ श्रुतंभवद्भिर्नियतैर्नित्यंपठतसादरम् ॥ पाठयध्वंस्वशिष्येभ्यो नियतेभ्योनिरन्तरम् ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वातान्मुनीन्सूतो रोमाञ्चितकलेवरः ॥ गुरुंहृदास्मरन्व्यासं ननर्ताश्रूणिवर्तयन् ॥ ३६ ॥ अत्रान्तरेमहाविद्वान्पाराशर्योमहामुनिः ॥ आशुप्रादुरभूत्तत्र शिष्यानुग्रहकाङ्क्षया ॥ ३७ ॥ तमागतंविलोक्याथ मुनिंसत्यवतीसुतम् ॥ सूतःसर्वैश्चसहितो नैमिषारण्यवासिभिः ॥ ३८ ॥ व्यासस्यचरणाम्भोजे दण्डवत्प्रणिपत्यतु ॥ जलमानन्दजंतत्र नेत्राभ्यांपर्यवर्तयत् ॥ ३९ ॥ प्रणतम्प्रियशिष्यन्तं दोर्भ्यामुत्थाप्यवैमुनिः ॥ आशीर्भिरभिनन्द्यैनमालिङ्ग्यचमुहुर्मुहुः ॥ ४० ॥ नैमिषारण्यमुनिभिरानीतेपरमासने ॥ द्वैपायनोमहातेजा निषसादतपोधनः ॥ ४१ ॥ मुनिष्वप्युपविष्टेषु सूतेपिचनिजाज्ञया ॥ शौनकादीन्मुनीन्सर्वाञ्छक्तेःपौत्रोभ्यभाषत ॥ ४२ ॥ मयाज्ञातमिदंसर्वं नैमिषारण्यवासिनः ॥ ममशिष्येणसूतेन सेतुमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ कथितम्भवतामद्य महापातकनाशनम् ॥ ४३ ॥ श्रुतीनाञ्चस्मृतीनाञ्च

जल को नेत्रों से बहाया ॥ ३९ ॥ और प्रणाम किये हुए उन प्यारे शिष्य सूतजी को भुजाओं से उठाकर व्यास मुनि इन सूतजी को आशीर्वादों से आनन्द कर व बार २ लिपटा कर ॥ ४० ॥ नैमिषारण्यनिवासी मुनियों से लाये हुए उत्तम आसन पै बड़े तेजस्वी व तपस्या के निधान व्यासजी बैठगये ॥ ४१ ॥ और अपनी आज्ञा से मुनियों व सूतजी के भी बैठने पर शक्ति के पुत्र व्यासजी शौनकादिक सब मुनियों से बोले ॥ ४२ ॥ कि हे नैमिषारण्यनिवासियो ! मैंने इस सब को जाना कि मेरे शिष्य सूत ने इस समय आपलोगों से महापातकों के विनाशक उत्तम सेतुमाहात्म्य को कहा ॥ ४३ ॥ और श्रुति, स्मृति, पुराण व शास्त्रों और अन्य सब

इतिहासों का भी ॥ ४४ ॥ यह परिणाम अर्थ है जो कि यह बड़ा भारी माहात्म्य है और सब पुराणों में भी यह मुझको बहुत संमत है ॥ ४५ ॥ और मेरी आज्ञासे धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी इस को धौम्य से नित्य सुनते हैं इस कारण आपलोग भी सदैव उत्तम सेतुमाहात्म्य को ॥ ४६ ॥ पढ़ो, सुनो व शिष्यों को भी पढ़ाओ उन व्यासजी के उस वचन को सुनकर मुनियों ने भी उन से बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ ४७ ॥ तदनन्तर सूत शिष्य से संयुत व्यास मुनि भी सब मुनियों से कहकर कैलास पर्वत को चलेगये ॥ ४८ ॥ और प्रसन्न होकर नैमिषारण्यनिवासी ऋषिलोग प्रतिदिन सेतु का माहात्म्य सुनते व पढ़ते हैं ॥ २४९ ॥

पुराणानांतथैवच ॥ शास्त्राणांचेतिहासानामन्येषामपिकृत्स्नशः ॥ ४४ ॥ एषपर्यवसानोर्थमाहात्म्यंयत्त्विदंमहत् ॥ सर्वेष्वपिपुराणेषु इदंबहुमतंमम ॥ ४५ ॥ शृणोतिधर्मजोधौम्यादिदंनित्यंममाज्ञया ॥ अतोभवन्तोऽपिसदा सेतुमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४६ ॥ पठन्तुशृण्वन्तुतथा शिष्याणांपाठयन्तुच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य तंप्राहुर्बाढमित्यपि ॥ ४७ ॥ ततोव्यासोऽपिसूतेन शिष्येणचसमन्वितः ॥ अनुज्ञाप्यमुनीन्सर्वान्कैलासंपर्वतंययौ ॥ ४८ ॥ ऋषयोनैमिषारण्यनिलयास्तुष्टिमागताः ॥ प्रत्यहंसेतुमाहात्म्यं शृण्वन्तिचपठन्तिच ॥ २४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ श्रीरामेश्वरार्पणमस्तु ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सेतुमाहात्म्यं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ समाप्तमिदं सेतुमाहात्म्यम् ॥ ❀ ॥

दो० कियो सेतुमाहात्म्य कर यह टीका सुखकारि। भूलचूक जो होय सो लेवैं सुजन सुधारि ॥ १ ॥
जो जन याको हर्षयुत पढ़ै सुनै चित लाय। देहिं सदाशिव त्याहिं सकल सुख संपति समुदाय ॥ २ ॥

प्रथमबार

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव बी. ए., के प्रबन्ध से मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेखाने में छपा—सन् १९१२ ई०

॥ इति स्कन्दपुराण सेतुमाहात्म्य ॥

स्कन्दपुराणान्तर्गतब्रह्मखण्ड ॥

॥ अथ स्कन्दपुराण धर्मारण्यमाहात्म्य ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ ब्रह्मखण्डान्तर्गतधर्मारण्यमाहात्म्यम् ॥

दोहा। पूंछ्यो धर्मज व्याससन धर्मारण्य चरित्र। सोइ प्रथम अध्याय में वर्णित कथा विचित्र ॥ तीनों लोकों में संसाररूपी समुद्र के उतरने के लिये जिन विष्णुजी का नाम नौकारूप है व जिनसे उत्पन्न और स्थित यह सब संसार सदैव शोभित है और जो चैतन्यघन व प्रमाणरहित है व जो व्यापक तथा वेदान्तों से जानने योग्य है उन स्वभावही से प्रकाशवान् व निर्मल उत्तम श्रीरामचन्द्रजी को मैं प्रणाम करता हूं (॥ १ ॥) स्त्रियां, पुत्र, धन व कुटुंब समेत बंधुवर्ग, प्रिय, माता, भ्राता,

श्रीगणेशाय नमः ॥ तर्तुं संसृतिवारिधिं त्रिजगतां नौर्नाम यस्य प्रभोर्येनेदं सकलं विभाति सततं जातं स्थितं संसृतम् ॥ यश्चैतन्यघनप्रमाणविधुरो वेदान्तवेद्यो विभुस्तं वन्दे सहजप्रकाशममलं श्रीरामचन्द्रं परम् (॥ १ ॥) दाराः पुत्रा धनं वा परिजनसहितो बन्धुवर्गः प्रियो वा माता भ्राता पिता वा श्वशुरकुलजना भृत्य ऐश्वर्य्यवित्ते ॥ विद्यारूपं विमलभवनं यौवनं यौवतं वा सर्वं व्यर्थं मरणसमये धर्म एकः सहायः (॥ २ ॥) नैमिषे निमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ॥ सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥ १ ॥ एकदा सूतमायान्तं दृष्ट्वा तं शौनकादयः ॥ परं

पिता व श्वशुरवंश के लोग, सेवक, ऐश्वर्य, धन, विद्या, रूप, निर्मल मन्दिर, यौवन व स्त्रीगण यह सब व्यर्थ है क्योंकि मरण के समय में केवल धर्मही सहायक होता है (॥ २ ॥) नैमिषसंज्ञक अनिमिष क्षेत्र में शौनकादिक ऋषि लोग हज़ारों वर्षों तक स्वर्गलोक के लिये यज्ञ करते रहे ॥ १ ॥ एक समय आतेहुए सूतजी को देख

कर बड़े हर्ष से संयुत शौनकादिक ऋषियों ने उत्तम चित्त से नेत्रों से पान किया और वहां विचित्र कथाओं को सुनने के लिये तपस्वियों ने उन सूतजी को सब ओर से घेर लिया ॥ २ ॥ इसके उपरान्त उन तपस्वी महात्माओं के बैठने पर विनय से बतलाये हुए आसन पै सूतजी बैठगये ॥ ३ ॥ और सुख से बैठे हुए उन सूतजी को देखकर व विश्रान्त को देखकर उन ऋषियों ने कुछ प्रस्ताविक कथाओं को पूंछा ॥ ४ ॥ कि हे तात ! तुम्हारे पिता ने पहले सब पुराण को पढ़ा था हे लोमहर्षणे ! क्या तुमने भी उस सब को पढ़ा है ॥ ५ ॥ हे सूत ! पापों को नाशनेवाली व पवित्र कथा को कहिये कि जिसको सुनकर सौ जन्मों में उपजा हुआ पाप नाश हो

हर्षं समाविष्टाः पपुर्नेत्रैः सुचेतसा ॥ चित्राः श्रोतुं कथास्तत्र परिवव्रुस्तपस्विनः ॥ २ ॥ अथ तेषूपविष्टेषु तपस्विषु महात्मसु ॥ निर्दिष्टमासनं भेजे विनयाल्लोमहर्षणिः ॥ ३ ॥ सुखासीनं च तं दृष्ट्वा विश्रान्तमुपलक्ष्य च ॥ अथापृच्छंस्त ऋषयः काश्चित्प्रास्ताविकीः कथाः ॥ ४ ॥ पुराणमखिलं तात पुरा तेऽधीतवान्पिता ॥ कच्चित्त्वयापि तत्सर्वमधीतं लोमहर्षणे ॥ ५ ॥ कथयस्व कथां सूत पुण्यां पापनिषूदिनीम् ॥ श्रुत्वा यां याति विलयं पापं जन्मशतोद्भवम् ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ श्रीभारत्यङ्घ्रियुगलं गणनाथपदद्वयम् ॥ सर्वेषां चैव देवानां नमस्कृत्य वदाम्यहम् ॥ ७ ॥ शक्तींश्चैव वसूंश्चैव ग्रहान्यज्ञादिदेवताः ॥ नमस्कृत्य शुभान्विप्रान्कविमुख्यांश्च सर्वशः ॥ ८ ॥ अभीष्टदेवताश्चैव प्रणम्य गुरुसत्तमम् ॥ नमस्कृत्य शुभान्देवान् रामादींश्च विशेषतः ॥ ९ ॥ यान्स्मृत्वा त्रिविधैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ तेषां प्रसादाद्वक्ष्येऽहं तीर्थानां फलमुत्तमम् ॥ सर्वेषां च नियन्तारं धर्मात्मानं प्रणम्य च ॥ १० ॥ धर्मारण्यपतिस्त्रिविष्टपपतिर्नित्यं

जावै ॥ ६ ॥ सूतजी बोले कि श्रीसरस्वतीजी के दोनों चरण व गणनायक के युगचरण को प्रणामकर तथा सब देवताओंके दोनों चरणों को प्रणाम कर मैं कहताहूं ॥७॥ और शक्ति, वसु, ग्रह व यज्ञादि देवता तथा उत्तम ब्राह्मणों व सब मुख्य कवियों को प्रणाम कर ॥ ८ ॥ व इष्ट देवता तथा उत्तम गुरु को और विशेष कर रामादिक उत्तम देवताओं को प्रणाम कर ॥ ९ ॥ जिनको स्मरणकर मनुष्य तीन प्रकार के पापों से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है और सबों के नियामक धर्मात्मा विष्णुजी को प्रणामकर उनके प्रसाद से मैं तीर्थों के उत्तम फल को कहता हूं ॥ १० ॥ धर्मारण्य के स्वामी व स्वर्ग के स्वामी तथा स्थिर भोग व योग से सुलभ वे पार्वती

के पति धर्मेश्वर देवजी सदैव तुमलोगों की रक्षा करैं जोकि जीव की कला से सबों के हृदयों को व्याप्तकर स्थित हैं व सदैव जिनको देखकर मनुष्य फिर संसाररूपी कारागृह में नहीं प्रवेश करते हैं ॥ ११ ॥ सूतजी बोले कि एक समय वे धर्मराज ब्रह्मा की सभामें गये तब उस सभा को देखकर वे धर्मराज ज्ञान में निष्ठहुए ॥ १२ ॥ और देवताओं व उत्तम मुनियों से घिरी सभा को देखकर विस्मित हुए व देवता, यक्ष, नाग, पन्नग, असुर ॥ १३ ॥ ऋषि, सिद्ध व गंधर्वों से बैठे हुए उचित आसन वाली सुख समेत वह सभा हे ब्रह्मन्! न शीत थी न उष्णदायक थी ॥ १४ ॥ जिसमें बैठनेवाले लोग क्षुधा, प्यास व ग्लानि को नहीं पाते हैं अनेक रूप की

सर्वेषां हृदयानि जीवकलया व्याप्य स्थितः सर्वदा ध्यात्वा यं न पुनर्विशन्ति मनुजाः संसारकारागृहम् ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥ एकदा तु स धर्म्मो वै जगाम ब्रह्मसदि ॥ तां सभां स समालोक्य ज्ञाननिष्ठोऽभवत्तदा ॥ १२ ॥ देवैर्मुनिवरैः क्रान्तां सभामालोक्य विस्मितः ॥ देवैर्यक्षैस्तथा नागैः पन्नगैश्च तथाऽसुरैः ॥ १३ ॥ ऋषिभिः सिद्धगन्धर्वैः समाक्रान्तोचितासना ॥ ससुखा सा सभा ब्रह्मन्न शीता न च धर्म्मदा ॥ १४ ॥ न क्षुधं न पिपासां च न ग्लानिं प्राप्नुवन्त्युत ॥ नानारूपैरिव कृता मणिभिः सा सभा वरैः ॥ १५ ॥ स्तम्भैश्च विधृता सा तु शाश्वती न च सक्षया ॥ दिव्यैर्नानाविधैर्भावैर्भासद्भिरमितप्रभा ॥ १६ ॥ अति[1] चन्द्रं च सूर्य्यं च शिखिनं च स्वयम्प्रभा ॥ दीप्यते नाकपृष्ठस्था भर्त्सयन्तीव भास्करम् ॥ १७ ॥ तस्यां स भगवाञ्छास्ति विविधान्देवमानुषान् ॥ स्वयमेकोऽनिशं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ १८ ॥ उपतिष्ठन्ति चाप्येनं प्रजानां प

भवानीपतिः पायाद्वः स्थिरभोगयोगसुलभो देवः स धर्मेश्वरः ॥

उत्तम मणियों से कीहुई सी वह सभा ॥ १५ ॥ स्तंभों से धारण कीहुई वह सभा सदैव रहती है जिसका नाश नहीं होता है व अनेक प्रकार के प्रकाशमान भावों से वह अमित प्रभाववान् थी ॥ १६ ॥ और चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि को उल्लंघन कर आपही प्रकाशमान स्वर्गपृष्ठ में स्थित वह सभा सूर्य को निन्दती हुई सी शोभित है ॥ १७ ॥ व उस सभा में अनेक भाँति के देवताओं व मनुष्यों को एक सबलोकों के पितामह ब्रह्माजी आपही सदैव शासन करते हैं ॥ १८ ॥ और इन ब्रह्मा प्रभु की

१ अति—अतिक्रम्य—दीप्यत इत्युत्तरेण सबन्धः ।

प्रजापतिलोग सेवा करते हैं और दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि व कश्यप प्रभु ॥ १९ ॥ और भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, अंगिरा, पुलस्त्य, क्रतु, प्रह्लाद व कर्दम ॥ २० ॥ और अथर्वा, अंगिरा व किरणों को पीनेवाले बालखिल्य महर्षि, मन, आकाश, विद्या, पवन, तेज, जल व पृथ्वी ॥ २१ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, प्रकृति, विकार व सत् और असत् का कारण ॥ २२ ॥ व बड़े तेजस्वी अगस्त्य तथा बलवान् मार्कण्डेय, जमदग्नि, भरद्वाज, संवर्त, च्यवन ॥ २३ ॥ व महाभाग दुर्वासा और धर्मवान् ऋष्यशृंग तथा योगाचार्य व बड़े तपस्वी भगवान् सनत्कुमारजी ॥ २४ ॥ और असित, देवल व तत्त्ववित् जैगीषव्य और अष्टांग आयुर्वेद व गान्धर्ववेद वहां

तयः प्रभुम् ॥ दक्षः प्रचेताः पुलहो मरीचिः कश्यपः प्रभुः ॥ १९ ॥ भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमोऽथ तथाङ्गिराः ॥ पुलस्त्यश्च क्रतुश्चैव प्रह्लादः कर्दमस्तथा ॥ २० ॥ अथर्वाङ्गिरसश्चैव वालखिल्या मरीचिपाः ॥ मनोन्तरिक्षं विद्याश्च वायुस्तेजो जलं मही ॥ २१ ॥ शब्दस्पर्शौ तथा रूपं रसो गन्धस्तथैव च ॥ प्रकृतिश्च विकारश्च सदसत्कारणं तथा ॥ २२ ॥ अगस्त्यश्च महातेजा मार्कण्डेयश्च वीर्यवान् ॥ जमदग्निर्भरद्वाजः संवर्त्तश्च्यवनस्तथा ॥ २३ ॥ दुर्वासाश्च महाभाग ऋष्यशृङ्गश्च धार्मिकः ॥ सनत्कुमारो भगवान्योगाचार्य्यो महातपाः ॥ २४ ॥ असितो देवलश्चैव जैगीषव्यश्च तत्त्ववित् ॥ आयुर्वेदस्तथाष्टाङ्गो गान्धर्वश्चैव तत्र हि ॥ २५ ॥ चन्द्रमाः सह नक्षत्रैरादित्यश्च गभस्तिमान् ॥ वायवस्तन्तवश्चैव सङ्कल्पः प्राण एव च ॥ २६ ॥ मूर्तिमन्तोमहात्मानो महाव्रतपरायणाः ॥ एते चान्ये च बहवो ब्रह्माणं समुपासिरे ॥ २७ ॥ अर्थो धर्मश्च कामश्च हर्षो द्वेषः शमो दमः ॥ आयान्ति तस्यां सहिता गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ २८ ॥ शुक्राद्याश्च ग्रहाश्चैव ये चान्ये तत्समीपगाः ॥ मन्त्रा रथन्तरं चैव हरिमान्वसुमानपि ॥ २९ ॥ महितो विश्वकर्मा

आया ॥ २५ ॥ और नक्षत्रों समेत चन्द्रमा व किरणवान् सूर्य, पवन, तंतु, संकल्प व प्राण ॥ २६ ॥ महाव्रतों में परायण इन व अन्य बहुत से मूर्तिमान् महात्माओं ने ब्रह्मा की उपासना किया ॥ २७ ॥ और अर्थ, धर्म, काम, हर्ष, द्वेष, शम, दम और गंधर्व व अप्सराओं के गण उस सभा में साथही आते थे ॥ २८ ॥ और शुक्रादिक ग्रह व जो अन्य उनके समीप में प्राप्त थे वे और मंत्र व रथंतर, हरिमान् व वसुमान् भी ॥ २९ ॥ और पूजित विश्वकर्मा व सब वसु तथा सब पितरों के गण व सब

हव्य ॥ ३० ॥ और ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद व अथर्वणवेद और सब शास्त्र ॥ ३१ ॥ और इतिहास, उपवेद व सब वेदांग, मेधा, धैर्य, स्मृति, प्रज्ञा, बुद्धि, यश व सम ॥ ३२ ॥ और वह सदैव अक्षय व अव्यय कालचक्र और जितनी देवस्त्रियां थीं मन के समान वेगवाली वे सब ॥ ३३ ॥ और गार्हपत्य, स्वर्गचारी व लोकों में प्रसिद्ध सोमप पितर तथा एकशृंग व सब तपस्वी ॥ ३४ ॥ और नाग, सुपर्ण व पशु ब्रह्मा की उपासना करते थे और चर, अचर व अन्य महाभूत ॥ ३५ ॥ व देवताओं के राजा इन्द्र, वरुण, कुबेर व पार्वती समेत सर्वदायक शिवजी सदैव इस सभा में आते थे ॥ ३६ ॥ व सदैव देवता, नारायण व ऋषिलोग जाते थे और बालखिल्य

च वसवश्चैव सर्वशः ॥ तथा पितृगणाः सर्वे सर्वाणि च हवींष्यथ ॥ ३० ॥ ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्तथैव च ॥ अथर्ववेदश्च तथा सर्वशास्त्राणि चैव ह ॥ ३१ ॥ इतिहासोपवेदाश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥ मेधा धृतिः स्मृतिश्चैव प्रज्ञाबुद्धिर्यशः समाः ॥ ३२ ॥ कालचक्रं च तद्दिव्यं नित्यमक्षयमव्ययम् ॥ यावन्त्यो देवपत्न्यश्च सर्वा एव मनोजवाः ॥ ३३ ॥ गार्हपत्या नाकचराः पितरो लोकविश्रुताः ॥ सोमपा एकशृङ्गाश्च तथा सर्वे तपस्विनः ॥ ३४ ॥ नागाः सुपर्णाः पशवः पितामहमुपासते ॥ स्थावरा जङ्गमाश्चापि महाभूतास्तथापरे ॥ ३५ ॥ पुरन्दरश्च देवेन्द्रो वरुणो धनदस्तथा ॥ महादेवः सहोमोऽत्र सदा गच्छति सर्वदः ॥ ३६ ॥ गच्छन्ति सर्वदा देवा नारायणस्तथर्षयः ॥ ऋषयो बालखिल्याश्च योनिजायोनिजास्तथा ॥ ३७ ॥ यत्किञ्चित्त्रिषु लोकेषु दृश्यते स्थाणु जङ्गमम् ॥ तस्यां सहोपविष्टायां तत्र ज्ञात्वा स धर्मवित् ॥ ३८ ॥ देवैर्मुनिवरैः क्रान्तां समालोक्यातिविस्मितः ॥ हर्षेण महता युक्तो रोमाञ्चिततनूरुहः ॥ ३९ ॥ तत्र धर्मो महातेजाः कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ वाच्यमानां तु शुश्राव व्यासेनामिततेजसा ॥ ४० ॥ धर्मारण्यकथां

ऋषि व योनिज और अयोनिज प्राणी ॥ ३७ ॥ व तीनों लोकों में जो कुछ चराचर देख पड़ता है वह सब उस सभा में जानकर वे धर्मज्ञ धर्मराजजी ॥ ३८ ॥ देवताओं व मुनिवरों से आक्रमित सभा को देखकर बड़े हर्ष से युक्त हुए और उनके शरीर में रोमाच होगया ॥ ३९ ॥ और अमित तेजवाले व्यासजी से उस सभा में पढ़ी जाती हुई पापनाशिनी कथा को महातेजस्वी धर्म ने सुना ॥ ४० ॥ वैसेही धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की फलदायिनी सुन्दरी व दिव्य धर्मारण्य की कथा को

सुना ॥ ४१ ॥ धारने, सुनने, पढ़ने व कीर्तन करने से पुत्र, पौत्र व प्रपौत्रादिक फल को देनेवाली ॥ ४२ ॥ उस ब्रह्माण्ड से उपजी हुई विस्तारित कथा को सुनकर हर्ष से प्रफुल्लित लोचनोंवाले धर्मात्मा धर्मराजजी उस समय ब्रह्मा से सम्मतिकर जाने की इच्छा करते भये और उस समय वे धर्मराजजी पितामह ब्रह्माजी को प्रणाम कर ॥ ४३ । ४४ ॥ व उनसे आज्ञा को लेकर तब ये धर्मराजजी यमपुरी को गये ब्रह्मा के प्रसाद से पुण्यदायिनी ॥ ४५ ॥ व पापनाशिनी दिव्य तथा पवित्र धर्मारण्य की कथा को सुनकर तदनन्तर दूतों समेत वे यमपुरी को चलेगये ॥ ४६ ॥ जब मंत्री व दूतों समेत यमराज अपनी पुरीमें बैठे तब उसी अवसरमें मुनिश्रेष्ठ नारदजी ॥४७॥

दिव्यां तथैव सुमनोहराम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदात्रीं तथैव च ॥ ४१ ॥ पुत्रपौत्रप्रपौत्रादि फलदात्रीं तथैव च ॥ धारणाच्छ्रवणाच्चापि पठनाच्चावलोकनात् ॥ ४२ ॥ तां निशम्य सुविस्तीर्णां कथां ब्रह्माण्डसम्भवाम् ॥ प्रमोदोत्फुल्लनयनो ब्रह्माणमनुमत्य च ॥ ४३ ॥ कृतकार्योऽपि धर्मात्मा गन्तुकामस्तदाभवत् ॥ नमस्कृत्य तदा धर्मो ब्रह्माणं स पितामहम् ॥ ४४ ॥ अनुज्ञातस्तदा तेन गतोऽसौ यमशासनम् ॥ पितामहप्रसादाच्च श्रुत्वा पुण्यप्रदायिनीम् ॥ ४५ ॥ धर्मारण्यकथां दिव्यां पवित्रां पापनाशिनीम् ॥ स गतोऽनुचरैः सार्द्धं ततः संयमिनीं प्रति ॥ ४६ ॥ अमात्यानुचरैः सार्धं प्रविष्टः स्वपुरं यमः ॥ तत्रान्तरे महातेजा नारदो मुनिपुङ्गवः ॥ ४७ ॥ दुर्निरीक्ष्यः कृपायुक्तः समदर्शी तपोनिधिः ॥ तपसा दग्धदेहोऽपि विष्णुभक्तिपरायणः ॥ ४८ ॥ सर्वगः सर्वविच्चैव नारदः सर्वदा शुचिः ॥ वेदाध्ययनशीलश्च त्वागतस्तत्र संसदि ॥ ४९ ॥ तं दृष्ट्वा सहसा धर्मो भार्यया सेवकैः सह ॥ सम्मुखो हर्षसंयुक्तो गच्छन्नेव स सत्वरः ॥ ५० ॥ अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं कुलम् ॥ अद्य मे सफलो धर्मस्त्वय्यायाते तपोधने ॥ ५१ ॥

जोकि दुर्दर्श व दयायुक्त और समदर्शी तथा तपस्या के निधान थे और तपस्या से भस्म शरीरवाले व विष्णुजी की भक्ति में परायण थे ॥ ४८ ॥ सर्वत्रगामी व सर्वज्ञ और सदैव पवित्र तथा वेदपाठ करनेवाले वे नारदजी उस सभा में आये ॥ ४९ ॥ उनको देखकर स्त्री व सेवकों समेत हर्ष से संयुत वे धर्मराजजी शीघ्रता समेत चलते हुए सामने गये ॥ ५० ॥ व यह बोले कि आज मेरा जन्म सफल होगया व आज मेरा कुल सफल होगया और आज तपोधन आपके आनेपर मेरा धर्म सफल होगया ॥५१॥

समान उनको प्रणामकर रत्नों व सुवर्ण से भूषित अपने महादिव्य आसन पै बिठाया
इसक उपरान्त अर्घ्य व पाद्यादि की विधिसे विधिपूर्वक पूजन कर व दंडा के समान उनको प्रणामकर रत्नों व सुवर्ण से भूषित अपने महादिव्य आसन पै बिठाया
तब सब सभा खिंची हुई तसवीर की नाई होगई और वहा के मनुष्य निर्वात स्थान में प्राप्त दीपक के समान निश्चल होगये ॥ ५२ । ५३ ॥ और कुशल पूंछकर
स्वागत से उनको अभिनंदनकर धर्मारण्य की कथा को स्मरण करते हुए उन्हों ने प्रसन्नचित्त से नारदजी को पूजकर बहुत आनन्द पाया व यमराज को प्रसन्न
देखकर नारदजी विस्मययुक्त मुख से उपलक्षित हुए ॥ ५४ । ५५ ॥ व उन्हों ने मन से विचार किया कि यह क्या है कि जो यमराजजी प्रसन्न हैं व यमराज-

अर्घ्यपाद्यादिविधिना पूजां कृत्वा विधानतः ॥ दण्डवत्तं प्रणम्याथ विधिना चोपवेशितः ॥ ५२ ॥ आसने स्वे महा
दिव्ये रत्नकाञ्चनभूषिते ॥ चित्रार्पिता सभा सर्वा दीपा निर्वातगा इव ॥ ५३ ॥ विधाय कुशलप्रश्नं स्वागतेनाभिनन्द्य
तम् ॥ प्रहर्षमतुलं लेभे धर्मारण्यकथां स्मरन् ॥ ५४ ॥ नारदं पूजयित्वा तु प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ हर्षितं तु यमं
दृष्ट्वा नारदो विस्मिताननः ॥ ५५ ॥ चिन्तयामास मनसा किमिदं हर्षितो हरिः ॥ अतिहर्षं च तं दृष्ट्वा यमराजस्व
रूपिणम् ॥ आश्चर्यमनसं चैव नारदः पृष्टवांस्तदा ॥ ५६ ॥ नारद उवाच ॥ किं दृष्टं भवताश्चर्यं किं वा लब्धं म
हत्पदम् ॥ दुष्टस्त्वं दुष्टकर्मा च दुष्टात्मा क्रोधरूपधृक् ॥ ५७ ॥ पापिनां यमनं चैवमेतद्रूपं महत्तरम् ॥ सौम्यरूपं
कथं जातमेतन्मे संशयः प्रभो ॥ ५८ ॥ अद्य त्वं हर्षसंयुक्तो दृश्यसे केन हेतुना ॥ कथयस्व महाकाय हर्षस्यैव हि
कारणम् ॥ ५९ ॥ धर्मराज उवाच ॥ श्रूयतां ब्रह्मपुत्रैतत्कथयामि न संशयः ॥ पुराहं ब्रह्मसदनं गतवानभिवन्दि

स्वरूपी उन धर्म को बड़े प्रसन्न व आश्चर्ययुक्त मनवाले देखकर उस समय नारदजी ने पूंछा ॥ ५६ ॥ नारदजी बोले कि आपने क्या आश्चर्य देखा व किस
बड़े स्थान को पाया क्योंकि दुष्ट व दुष्कर्मी और दुष्टचित्त तुम थे ॥ ५७ ॥ और पापियों को दंड देनेवाला जो यह बड़ाभारी रूप था हे प्रभो ! वह सौम्यरूप कैसे
होगया यह मुझको सन्देह है ॥ ५८ ॥ हे महाकाय ! आज तुम किस कारण हर्ष से संयुत देख पड़ते हो इस हर्ष के कारण को कहो ॥ ५९ ॥ धर्मराज बोले कि हे

ब्रह्मपुत्र ! सुनिये मैं इसको कहता हूं इसमें सन्देह नहीं है कि पहले मैं प्रणाम करने के लिये ब्रह्मस्थान को गया ॥ ६० ॥ व सब लोकों में एकही पूजित उस सभा के बीच में मैं बैठगया और धर्मवर्ग से संयुत अनेक भांति की कथाओं को मैंने वहीं सुना ॥ ६१ ॥ और धर्म, काम व अर्थ से संयुत तथा सब पापौघ को नाशने वाली, धर्म से संयुत सुन्दरी कथाओं को मैंने व्यासजी के मुख से सुना ॥ ६२ ॥ हे मुने ! जिन कथाओं को सुनकर मनुष्य सब पापों से व ब्रह्महत्या से छूट जाते हैं और एक सौ एक पितृगणों को तारते हैं ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले कि उसकी कथा कैसी है उसको मुझसे कहिये हे महाबाहो, यम ! आपसे सुनी हुई उस कथा को

तुम् ॥ ६० ॥ तत्रासीनःसभामध्ये सर्वलोकैकपूजिते ॥ नानाकथाः श्रुतास्तत्र धर्म्मवर्गसमन्विताः ॥ ६१ ॥ कथाः पुण्या धर्मयुता रम्या व्यासमुखाच्छ्रुताः ॥ धर्मकामार्थसंयुक्ताः सर्वाघौघविनाशिनीः ॥ ६२ ॥ याः श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यन्ते ब्रह्महत्यया ॥ तारयन्ति पितृगणाञ्छतमेकोत्तरं मुने ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ कीदृशी तत्कथा मे तां प्रशंस भवता श्रुताम् ॥ कथां यम महाबाहो श्रोतुकामोस्म्यहं च ताम् ॥ ६४ ॥ यम उवाच ॥ एकदा ब्रह्मलोकेऽहं नमस्कर्तुं पितामहम् ॥ गतवानस्मि तं देशं कार्याकार्यविचारणे ॥ ६५ ॥ मया तत्राद्भुतं दृष्टं श्रुतं च मुनिसत्तम ॥ धर्म्मारण्यकथां दिव्यां कृष्णद्वैपायनेरिताम् ॥ ६६ ॥ श्रुत्वा कथां महापुण्यां ब्रह्मन्ब्रह्माण्डगां शुभाम् ॥ गुणपूर्णां सत्ययुक्तां तेन हर्षेण हर्षितः ॥ ६७ ॥ अन्यच्चैव मुनिश्रेष्ठ तवागमनकारणम् ॥ शुभाय च सुखायैव क्षेमाय च जयाय हि ॥ ६८ ॥ अद्यास्मि कृतकृत्योऽहमद्याहं सुकृती मुने ॥ धर्मोनामाद्य जातोऽहं तव पद्युग्मदर्शनात् ॥ ६९ ॥ पूज्यो

मैं सुना, चाहता हूं ॥ ६४ ॥ यमराज बोले कि एक समय ब्रह्मलोक में कर्तव्याकर्तव्य के विचार में ब्रह्माजी को प्रणाम करने के लिये मैं उस स्थान को गया ॥ ६५ ॥ हे मुनिसत्तम ! मैंने वहां अद्भुत चरित्र को देखा व सुना कि व्यासजी से कहीहुई महापवित्र व ब्रह्माण्ड में प्राप्त तथा गुणों से पूर्ण व सत्यसंयुत उत्तम व दिव्य धर्मारण्य की कथा को सुनकर उस हर्ष से मैं प्रसन्न हुआ ॥ ६६ । ६७ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठ ! अन्य तुम्हारे आने का कारण शुभ व सुख और कल्याण व जय के लिये है ॥ ६८ ॥ हे मुने ! आज मैं कृतकृत्य होगया व आज मैं पुण्यवान् हुआ और तुम्हारे चरणयुगल के दर्शन से मैं आज धर्म नामक हुआ ॥ ६९ ॥ व हे नारद !

आज मैं पूज्य व कृतार्थ और धन्य होगया व तुम्हारे चरण के प्रसाद से मैं त्रिलोक में प्रसिद्ध हुआ ॥ ७० ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार के वचनों से प्रसन्न होते हुए मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने बड़ी भक्ति से धर्मारण्य की उत्तम कथा को पूछा ॥ ७१ ॥ नारदजी बोले कि हे धर्म ! व्यासजी के मुख से धर्मारण्य की उत्तम कथा जो सुनी गई उस सब विस्तीर्ण कथा को मुझसे यथार्थ कहिये ॥ ७२ ॥ यमराज बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैं सुख व दुःखवाले प्राणियों को उस उस कर्म के अनुसार क्लेशित गति को देने के लिये सदैव व्यग्र रहता हूं ॥ ७३ ॥ तथापि सज्जनों का संग धर्महीं के लिये होता है और इस लोक व परलोक में भी कल्याण व सुख के लिये होता

ऽहं च कृतार्थोहं धन्योहं चाद्य नारद ॥ युष्मत्पादप्रसादाच्च पूज्योऽहं भुवनत्रये ॥ ७० ॥ सूत उवाच ॥ एवंविधैर्व चोभिश्च तोषितो मुनिसत्तमः ॥ पप्रच्छ परया भक्त्या धर्मारण्यकथां शुभाम् ॥ ७१ ॥ नारद उवाच ॥ श्रुता व्यास मुखाद्धर्म्म धर्मारण्यकथा शुभा ॥ तत्सर्वं हि कथय मे विस्तीर्णं च यथातथम् ॥ ७२ ॥ यम उवाच ॥ व्यग्रोऽहं सत तं ब्रह्मन्प्राणिनां सुखदुःखिनाम् ॥ तत्तत्कर्मानुसारेण गतिं दातुं सुखेतराम् ॥ ७३ ॥ तथापि साधुसङ्गो हि धर्मायैव प्रजायते ॥ इह लोके परत्रापि क्षेमाय च सुखाय च ॥ ७४ ॥ ब्रह्मणः सन्निधौ यच्च श्रुतं व्यासमुखेरितम् ॥ तत्सर्वं कथयिष्यामि मानुषाणां हिताय वै ॥ ७५ ॥ सूत उवाच ॥ यमेन कथितं सर्वं यच्छ्रुतं ब्रह्मसंसदि ॥ आदिमध्यावसानं च सर्वं नैवात्र संशयः ॥ ७६ ॥ कलिद्वापरयोर्मध्ये धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ गतोऽसौ नारदो मर्त्ये राज्यं धर्मसुतस्य वै ॥ ७७ ॥ आगतः श्रीहरेरंशो नारदः प्रत्यदृश्यत ॥ ज्वलिताग्निप्रतीकाशो बालार्कसदृशेक्षणः ॥ ७८ ॥ सव्याप

है ॥ ७४ ॥ ब्रह्मा के समीप व्यासजी से कहे हुए जिस चरित्र को मैंने सुना है मनुष्यों के हित के लिये मैं उस सब को कहता हूं ॥ ७५ ॥ सूतजी बोले कि ब्रह्मा की सभा में यमराज ने जो सुना था आदि, मध्य व अन्त तक वह सब चरित्र कहा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७६ ॥ और कलियुग व द्वापर के मध्य में धर्मपुत्र युधिष्ठिर के राज्य में ये नारदजी मृत्युलोक में धर्मसुत युधिष्ठिर के समीप गये ॥ ७७ ॥ व आये हुए श्रीविष्णुजी के अंश नारदजी देख पड़े जो कि जलती हुई अग्निके समान व बाल सूर्य के समान नेत्रवान् थे ॥ ७८ ॥ और बायें ओर से घूमे हुए बड़े भारी जटामंडल को धारते हुए तथा चन्द्रमा की किरणों के समान दो वसनों को पहने

और सुवर्ण के भूषणों से भूषित थे ॥ ७९ ॥ और बगल में लगी हुई सखी की नाईं बड़ी भारी वीणा को लेकर कृष्णाजिन का दुपट्टा लिये और सुवर्ण के समान जनेऊ पहने थे ॥ ८० ॥ व दण्ड को लिये और कमण्डलु को हाथ में धारण किये साक्षात् दूसरी अग्नि की नाईं जो गुप्त विग्रहों के भेदन करनेवाले व स्वामिकार्त्तिकेय के समान थे ॥ ८१ ॥ व महर्षिगणों से संसिद्ध, विद्वान् और गंधर्व वेद को जाननेवाले तथा वैर की क्रीड़ा करनेवाले जो विप्र दूसरी ब्राह्मय कलि की नाईं थे ॥ ८२ ॥ व देवताओं और गंधर्वलोकों के आदि वक्ता व इन्द्रियों को भलीभांति जीते हुए और चारों वेदों के गानेवाले तथा विष्णुजी के उत्तम गुणों के गानेवाले थे ॥ ८३ ॥

वृत्तं विपुलं जटामण्डलमुद्वहन् ॥ चन्द्रांशुशुक्ले वसने वसानो रुक्मभूषणः ॥ ७९ ॥ वीणां गृहीत्वा महतीं कक्षासक्तां सखीमिव ॥ कृष्णाजिनोत्तरासङ्गो हेमयज्ञोपवीतवान् ॥ ८० ॥ दण्डी कमण्डलुकरः साक्षाद्वह्निरिवापरः ॥ भेत्ता जगति गुह्यानां विग्रहाणां गुहोपमः ॥ ८१ ॥ महर्षिगणसंसिद्धो विद्वान्गान्धर्ववेदवित् ॥ वैरकेलिकलो विप्रो ब्राह्मः कलिरिवापरः ॥ ८२ ॥ देवगन्धर्वलोकानामादिवक्ता सुनिग्रहः ॥ गाता चतुर्णां वेदानामुद्गाता हरिसद्गुणान् ॥ ८३ ॥ स नारदोऽथ विप्रर्षिर्ब्रह्मलोकचरोऽव्ययः ॥ आगतोऽथ पुरीं हर्षाद्धर्मराजेन पालिताम् ॥ ८४ ॥ अथ तत्रोपविष्टेषु राजन्येषु महात्मसु ॥ महत्सु चोपविष्टेषु गन्धर्वेषु च तत्र वै ॥८५॥ लोकाननुचरन्सर्व्वानागतः स महर्षिराट् ॥ नारदः सुमहातेजा ऋषिभिः सहितस्तदा ॥ ८६ ॥ तमागतमृषिं दृष्ट्वा नारदं सर्वधर्मवित् ॥ सिंहासनात्समुत्थाय प्रययौ सम्मुखस्तदा ॥ ८७ ॥ अभ्यवादयत प्रीत्या विनयावनतस्तदा ॥ तदर्हमासनं तस्मै सम्प्रदाय यथाविधि ॥ ८८ ॥ गां चैव

ब्रह्मलोक तक जानेवाले वे अव्यय नारद ब्रह्मर्षिजी धर्मराज से पालित पुरी को हर्ष से आये ॥ ८४ ॥ वहां राजगण व महात्माओं के बैठने पर तथा बहुत गंधर्वों के वहां बैठने पर ॥ ८५ ॥ सब लोकों में घूमते हुए वे महर्षिराज व बड़े तेजस्वी नारदजी उस समय ऋषियों समेत आये ॥ ८६ ॥ तब उन आये हुए नारद ऋषि को देखकर सब धर्मों के जाननेवाले युधिष्ठिरजी सिंहासन से उठकर सामने चले ॥ ८७ ॥ व उस समय विनय से झुके हुए युधिष्ठिरजी ने प्रीति से प्रणाम किया व विधिपूर्वक उनके लिये उनके योग्य आसन को देकर ॥ ८८ ॥ व गऊ, मधुपर्क और अर्घ को देकर धर्मज्ञ युधिष्ठिरजी ने रत्नों से व सब मनोरथों से पजन

किया॥ ८९ ॥ और यथायोग्य पूजन को पाकर वे धर्मज्ञ प्रसन्न हुए व युधिष्ठिरजी ने यह पूंछा कि हे महाभाग ! तुम कुशल समेत हो और तुम्हारे तप की कुशल है ॥ ९० ॥ और कोई दुष्ट स्वर्ग के राजा इन्द्र को पीड़ित नहीं करता है व हे मुने, ब्रह्मपुत्र, दयानिधे ! देवताओं व दैत्यों से प्रणाम किये हुए कल्याणरूप तुम सर्वत्र जानेवाले व सर्वज्ञ हो ॥ ९१ ॥ नारदजी बोले कि हे महाभाग, धर्मपुत्र, युधिष्ठिर ! ब्रह्मा की प्रसन्नता से इस समय मेरे सब ओर से कुशल है व तुम सदैव कुशलपूर्वक रहते हो ॥ ९२ ॥ हे राजेन्द्र ! भाइयों समेत तुम्हारा मन धर्मों में लगता है व स्त्री, पुत्र, सेवक और चतुर गज, वाजियों समेत ॥ ९३ ॥ हे धर्मज ! प्रजाओं को औरस

मधुपर्कं च सम्प्रदायार्घमेव च ॥ अर्चयामास रत्नैश्च सर्वकामैश्च धर्मवित् ॥ ८९ ॥ तुतोष च यथावच्च पूजां प्राप्य च धर्मवित् ॥ कुशली त्वं महाभाग तपसः कुशलं तव ॥ ९० ॥ न कश्चिद्बाधते दुष्टो दैत्यो हि स्वर्गभूपतिम् ॥ मुने कल्याणरूपस्त्वं नमस्कृतः सुरासुरैः ॥ सर्व्वगः सर्व्ववेत्ता च ब्रह्मपुत्र कृपानिधे ॥ ९१ ॥ नारद उवाच ॥ सर्वतः कुशलं मेद्य प्रसादाद्ब्रह्मणः सदा ॥ कुशली त्वं महाभाग धर्मपुत्र युधिष्ठिर ॥ ९२ ॥ भ्रातृभिः सह राजेन्द्र धर्मेषु रमते मनः ॥ दारैः पुत्रैश्च भृत्यैश्च कुशलैर्गजवाजिभिः ॥ ९३ ॥ औरसानिव पुत्रांश्च प्रजा धर्मेण धर्मज ॥ पालयसि किमाश्चर्यं त्वया धन्या हि सा प्रजा ॥ ९४ ॥ पालनात्पोषणान्नृणां धर्मो भवति वै ध्रुवम् ॥ तत्तद्धर्मस्य भोक्ता त्वमित्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ९५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कुशलं मम राष्ट्रं च भवतामङ्घ्रिदर्शनात् ॥ दर्शनेन महाभाग जातोऽहं गतकिल्बिषः ॥ ९६ ॥ धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सभाग्योऽहं धरातले ॥ अद्याहं सुकृती जातो ब्रह्मपुत्रे गृहागते ॥ ९७ ॥

पुत्रों की नाईं पालन करते हो तो क्या आश्चर्य है और वह प्रजा आप से धन्य है ॥ ९४ ॥ मनुष्यों को पालन व पोषण करने से अचल धर्म होता है और उस उस धर्म के तुम भोक्ता हो ऐसा मनु ने कहा ॥ ९५ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि आप के चरणों के दर्शन से मेरा राज्य कुशल है व हे महाभाग ! आप के दर्शन से मैं पापरहित होगया ॥ ९६ ॥ व मैं धन्य और कृतार्थ व सभाग्य होगया और ब्रह्मपुत्र आपके घर आने पर आज मैं पृथ्वी में पुण्यवान् होगया ॥ ९७ ॥

हे मुनिसत्तम, ब्रह्मन् ! साधुवो के ऊपर दया के लिये या किसी कार्य से आज आपका कहां से आगमन होता है ॥ ९८ ॥ नारदजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! ब्रह्मा के आगे व्यासजी से कही हुई धर्मारण्य के आश्रित व समस्त संताप को हरनेवाली पुराण की दिव्य व उत्तम कथा को सुनकर मैं यमराज के समीप से आया हूं कि जिसको सुनकर मनुष्य सब पापों से व ब्रह्महत्या से छूट जाता है ॥ ९९ । १०० ॥ व दश हज़ार हत्याओं को नाशनेवाली तथा तीनों तापों को नाशनेवाली जिस कथा को बड़ी भक्ति से सुनकर कठिन पुरुष कोमलता को धारण करता है ॥ १ ॥ मेरे आगे धर्मराज से कही हुई उस कथा को सुनकर मैं यहां आया हूं अमित

कुत आगमनं ब्रह्मन्नद्य ते मुनिसत्तम ॥ अनुग्रहार्थं साधूनां किं वा कार्येण केन च ॥ ९८ ॥ नारद उवाच ॥ आगतोऽहं नृपश्रेष्ठ सकाशाच्छमनस्य च ॥ व्यासेनोक्तां ब्रह्मणोग्रे कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ ९९ ॥ धर्मारण्याश्रितां दिव्यां सर्वसंतापहारिणीम् ॥ यां श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ १०० ॥ हत्यायुतप्रशमनीं तापत्रयविनाशिनीम् ॥ यां वै श्रुत्वातिभक्त्या च कठिनो मृदुतां भजेत् ॥ १ ॥ धर्मराजेन तां श्रुत्वा ममाग्रे च निवेदिताम् ॥ तमपृच्छदमेयात्मा कथां धर्मविनोदिनीम् ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ धर्मारण्याश्रितां पुण्यां कथां मे द्विजसत्तम ॥ कथयस्व प्रसादेन लोकानां हितकाम्यया ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ स्नानकालोयमस्माकं न कथावसरो मम ॥ परन्तु श्रूयतां राजन्नुपदेशं ददाम्यहम् ॥ ४ ॥ मासानामुत्तमो माघः स्नानदानादिके तथा ॥ तस्मिन्माघे च यः स्नाति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥ स्नानार्थं याहि शीघ्रं त्वं गङ्गायां नृपतेऽधुना ॥ व्यासस्यागमनं चाद्य भविष्यति

बुद्धिवाले ब्रह्माजी ने उन नारदजी से धर्मकेलिवाली कथा को पूंछा ॥ २ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! लोकों के हित की इच्छा से धर्मारण्य के आश्रित पवित्र कथा को मुझ से प्रसन्नता से कहिये ॥ ३ ॥ नारदजी बोले कि यह हमारा स्नान का समय है मुझको कथा का अवकाश नहीं है परन्तु हे राजन् ! सुनिये मैं उपदेश देता हूं ॥ ४ ॥ कि स्नान व दानादिक कार्य में मासों के मध्य में माघ महीना श्रेष्ठ होता है और उस माघ महीने में जो गंगाजी में नहाता है वह सब पापों से छूट जाता है ॥ ५ ॥ हे नृपोत्तम, नृपते ! इस समय तुम गंगाजी में नहाने के लिये शीघ्रही जावो क्योंकि आज वहां व्यासजी का आगमन

होगा ॥ ६ ॥ हे महाभाग ! तुम उनसे पूंछोगे तो वे व्यासजी सब तीर्थों का जो अद्भुत फल है उस उत्तम फल को तुम्हें सुनावैंगे ॥ ७ ॥ भूत, भव्य, भविष्य और उत्तम, मध्यम, अधम इतिहास से उपजे हुए उस सब चरित्र को व्यासजी कहैंगे ॥ ८ ॥ और धर्मारण्य का जो जो प्राचीन वृत्तान्त है उस सबको सत्यवतीसुत व्यासजी तुमसे कहैंगे ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि ऐसा कहकर ब्रह्मा के पुत्र नारदजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और उनके जाने पर नृपति युधिष्ठिरजी मंत्रियों समेत क्रीड़ा करनेलगे ॥ १० ॥ इसी अवसर में वहा सत्यवती के पुत्र व्यासजी प्राप्त हुए तब विदुरने युधिष्ठिरजी को बतलाया ॥ ११ ॥ सूतजी बोले कि उन आये हुए व्यास मुनि को सुनकर धर्मराज

नृपोत्तम ॥ ६ ॥ तं पृच्छस्व महाभाग श्रावयिष्यति ते शुभम् ॥ तीर्थानां चैव सर्वेषां फलं पुण्यं यदद्भुतम् ॥ ७ ॥ भूतं भव्यं भविष्यं च उत्तमाधममध्यमाः ॥ वाचयिष्यति तत्सर्वमितिहाससमुद्भवम् ॥ ८ ॥ धर्मारण्यस्य सकलं वृत्तं यद्यत्पुरातनम् ॥ व्यासः सत्यवतीपुत्रो वदिष्यति च तेऽखिलम् ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा विधेः पुत्रस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ तस्मिन्गते स नृपतिः क्रीडते सचिवैः सह ॥ १० ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र प्राप्तः सत्यवतीसुतः ॥ विज्ञापयामास तदा विदुरः पाण्डवस्य हि ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥ आगतं तु मुनिं श्रुत्वा सर्वे हर्षसमाकुलाः ॥ समुत्तस्थुर्हि भीमाद्याः सह धर्मेण सर्वशः ॥ १२ ॥ तदा हि सम्मुखो भूत्वा मुमुदे नतकन्धरः ॥ दण्डवत्तं प्रणम्याथ भ्रातृभिः सहितस्तदा ॥ १३ ॥ मधुपर्केण विधिना पूजां कृत्वा सुशोभनाम् ॥ सिंहासने समावेश्य पप्रच्छानामयं तदा ॥ १४ ॥ ततः पुण्यां कथां दिव्यां श्रावयामास धर्मवित् ॥ कथान्ते मुनिशार्दूलं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥

समेत हर्ष से संयुत सब भीमादिक उठ पड़े ॥ १२ ॥ तब सामने होकर झुकेहुए कन्धेवाले युधिष्ठिरजी भाइयों समेत उन व्यासजी को दंडवत् प्रणामकर प्रसन्न हुए ॥ १३ ॥ व विधि समेत मधुपर्क से उत्तम पूजनकर सिंहासन पै बिठाकर तब उन्होंने कुशल पूंछा ॥ १४ ॥ तदनन्तर धर्मज्ञ व्यासजी ने पवित्र व दिव्य कथा को सुनाया, और कथा के अन्त में युधिष्ठिरजी ने मुनिश्रेष्ठ व्यासजी से यह वचन कहा ॥ १५ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैंने उत्तम

कथाओं को सुना और विपत्ति धर्म, राजधर्म व अनेक मोक्षधर्म ॥ १६ ॥ और पुराणों के धर्म, व्रत व अनेक भांति के बहुत से तीर्थ व सब स्थानों को मैंने सुना ॥ १७ ॥ इस समय मैं धर्मारण्य की उत्तम कथा को सुना चाहता हूं जिसको सुनकर ब्रह्मघातादिक पाप नाश होजाता है ॥ १८ ॥ मैं धर्मारण्य में स्थित तीर्थों को यथार्थ सुना चाहता हूं कि किसका यह स्थान स्थापित है व किसलिये यह बनाया गया है ॥ १९ ॥ और किससे यह रक्षित व पालित है और किस समय यह बनाया गया है और यहां पहले क्या क्या हुआ है इसको पूंछतेहुए मुझसे कहिये ॥ २० ॥ और उस स्थान में भूत, भव्य व भविष्य जो होवै और जिस भांति तीर्थों की स्थिति होवै

त्वत्प्रसादान्मया ब्रह्मञ्छ्रुतास्तु प्रवराः कथाः ॥ आपद्धर्म्मा राजधर्मा मोक्षधर्म्मा ह्यनेकशः ॥ १९ ॥ पुराणानां च धर्माश्च व्रतानि बहुशस्तथा ॥ तीर्थान्यनेकरूपाणि सर्वाण्यायतनानि च ॥ १७ ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि धर्मारण्य कथां शुभाम् ॥ श्रुत्वा यां हि विनश्येत पापं ब्रह्मवधादिकम् ॥ १८ ॥ धर्म्मारण्यस्थतीर्थानां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ कस्येदं स्थापितं स्थानं कस्मादेतद्विनिर्मितम् ॥ १९ ॥ रक्षितं पालितं केन कस्मिन्कालेऽथ निर्मितम् ॥ किं किं त्वत्राभवत्पूर्वं शंसैतत्पृच्छतो मम ॥ २० ॥ भूतं भव्यं भविष्यच्च तस्मिन्स्थाने च यद्भवेत् ॥ तत्सर्वं कथयस्वाद्य तीर्थानां च यथा स्थितिः ॥ १२१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येयुधिष्ठिरप्रश्नवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

व्यास उवाच ॥ पृथ्वीपुरन्ध्र्यास्तिलकं ललाटे लक्ष्मीलतायाः स्फुटमालवालम् ॥ वाग्देवताया जलकेलिरम्यं धर्माटवीं सम्प्रति वर्णयामि ॥ १ ॥ साधु पृष्टं त्वया राजन्वाराणस्यधिकाधिकम् ॥ धर्मारण्यं नृपश्रेष्ठ शृणुष्वावहि

उस सबको इस समय मुझसे कहिये ॥ १२१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयुधिष्ठिरप्रश्नवर्णनंनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दो० । धर्मारण्य द्विजन कर पूंछ्यो धर्म हवाल । यहि दूजे अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ व्यासजी बोले कि पृथ्वीरूपी पुरंध्री (स्त्री) के मस्तक में तिलकरूप और लक्ष्मीरूपिणी लता के प्रकटही आलवाल (थालहा) रूप व सरस्वतीजी के सुन्दर जलक्रीड़ारूप धर्मारण्य को मैं इस समय वर्णन करता हूं ॥ १ ॥ हे नृपश्रेष्ठ,

राजन् ! तुम ने बहुत अच्छा पूंछा काशी से बहुतही अधिक धर्मारण्यक्षेत्र को सावधान होकर सुनिये ॥ २ ॥ कि वहीं पर सब तीर्थ हैं उससे वह ऊपर कहा जाता है और ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक व इन्द्रादिक देवताओं से वह सेवित है ॥ ३ ॥ और लोकपाल, दिक्पाल व मातृका शिवशक्ति तथा गंधर्व, अप्सरा व यज्ञ कर्मों से सेवित है ॥ ४ ॥ और शाकिनी, भूत, वेताल, ग्रह देवता व अधिदेवता और ऋतु, मास, पक्ष व सुरासुरों से सेवित है ॥ ५ ॥ हे नृप ! वह श्रेष्ठ स्थान सब सुखों को देनेवाला है और बहुत यज्ञों व मुनिश्रेष्ठों से सेवित है ॥ ६ ॥ और सिंह, व्याघ्र, हाथी व अनेक भांति के पक्षी तथा गऊ, भैंसी आदिक व सारस, मृग और शूकरों

तो भृशम् ॥ २ ॥ सर्वतीर्थानि तत्रैव ऊपरं तेन कथ्यते ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैरिन्द्राद्यैः परिसेवितम् ॥ ३ ॥ लोकपालैश्च दिक्पालैर्मातृभिः शिवशक्तिभिः ॥ गन्धर्वैश्चाप्सरोभिश्च सेवितं यज्ञकर्मभिः ॥ ४ ॥ शाकिनीभूतवेतालग्रहदेवाधिदेवतैः ॥ ऋतुभिर्मासपक्षैश्च सेव्यमानं सुरासुरैः ॥ ५ ॥ तदाद्यं च नृप स्थानं सर्वसौख्यप्रदं तथा ॥ यज्ञैश्च बहुभिश्चैव सेवितं मुनिसत्तमैः ॥ ६ ॥ सिंहव्याघ्रैर्द्विपैश्चैव पक्षिभिर्विविधैस्तथा ॥ गोमहिष्यादिभिश्चैव सारसैर्मृगशूकरैः ॥ ७ ॥ सेवितं नृपशार्दूल श्वापदैर्विविधैरपि ॥ तत्र ये निधनं प्राप्ताः पक्षिणः कीटकादयः ॥ ८ ॥ पशवः श्वापदाश्चैव जलस्थलचराश्च ये ॥ खेचरा भूचराश्चैव डाकिन्यो राक्षसास्तथा ॥ ९ ॥ एकोत्तरशतैः सार्द्धं मुक्तिस्तेषां हि शाश्वती ॥ ते सर्वे विष्णुलोकांश्च प्रयान्त्येव न संशयः ॥ १० ॥ सन्तारयति पूर्वज्ञान्दश पूर्वान्दशापरान् ॥ यवव्रीहितिलैः सर्पिर्बिल्वपत्रैश्च दूर्वया ॥ ११ ॥ गुडैश्चैवोदकैर्नाथ तत्र पिण्डं करोति यः ॥ उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ १२ ॥

से ॥ ७ ॥ व हे नृपोत्तम ! अनेक प्रकार के हिंसकजीवों से वह धर्मारण्य सेवित है और वहां जो पक्षी व कीटादिक मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ और पशु, हिंसक प्राणी व जो जलचारी व जो स्थलचारी हैं और आकाशचारी, भूमिचारी, डाकिनी व राक्षस ॥ ९ ॥ उन सबों की एक सौ एक पुश्त समेत शाश्वती मुक्ति होती है और वे सब विष्णुलोकों को जाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ १० ॥ और दश पहले व दश पीछे की पुश्तियों को वह तारता है जो कि यव, धान, तिल, घी, बिल्वपत्र व दूर्वा से ॥ ११ ॥ व हे नाथ ! जो गुड़ और जल से वहां पिण्ड करता है वह सात गोत्रों को व एक सौ एक पुश्तियों को तारता है ॥ १२ ॥

वृक्षैरनेकधा युक्तं लतागुल्मैः सुशोभितम् ॥ सदा पुण्यप्रदं तच्च सदा फलसमन्वितम् ॥ १३ ॥ निर्वैरं निर्भयं चैव धर्मारण्यं च भूपते ॥ गोव्याघ्रैः क्रीड्यते तत्र तथा मार्जारमूषकैः ॥ १४ ॥ भेकोऽहिना क्रीडते च मानुषा राक्षसैः सह ॥ निर्भयं वसते तत्र धर्म्मारण्यं च भूतले ॥ १५ ॥ महानन्दमयं दिव्यं पावनात्पावनं परम् ॥ कलकण्ठः कलोत्कण्ठमनुगुञ्जति कुञ्जगः ॥ १६ ॥ ध्यानस्थः श्रोष्यति तदा पारावत्येति वार्य्यते ॥ कोकः कोकीं परित्यज्य मौनं तिष्ठति तद्भयात् ॥ १७ ॥ चकोरश्चन्द्रिकाभोक्ता नक्तव्रतमिवास्थितः ॥ पठन्ति सारिकाः सारं शुकं सम्बोधयन्त्यहो ॥ १८ ॥ अपारवारसंसारसिन्धुपारप्रदः शिवः ॥ आलस्येनापि यो यायाद् गृहाद्धर्मवनम्प्रति ॥ १९ ॥ अश्वमेधाधिको धर्मस्तस्य स्याच्च पदे पदे ॥ शापानुग्रहसंयुक्ता ब्राह्मणास्तत्र सन्ति वै ॥ २० ॥ अष्टादशसहस्राणि पुण्यकार्येषु निर्मिताः ॥ षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि भृत्यास्ते वणिजो भुवि ॥ २१ ॥ द्विजभक्तिसमायुक्ता ब्रह्मण्यास्ते

वह धर्मारण्य अनेक प्रकार के वृक्षों से संयुत व लताओं तथा गुल्मों से शोभित है और वह सदैव पुण्यदायक व सदैव फलों से संयुतहै॥१३॥ व हे भूपते ! धर्मारण्य वैर रहित व निर्भय है वहां गऊ व्याघ्रों से क्रीड़ा करती है व बिलार मूसों से क्रीड़ा करते हैं ॥ १४ ॥ और मेढक सांप के साथ व मनुष्य राक्षसों के साथ क्रीड़ा करते हैं उस पृथ्वीतल में निर्भय धर्मारण्य बसता है ॥ १५ ॥ और वह धर्मारण्य महानन्दमय, दिव्य व पावन से भी अधिक पावन है और कुंज में प्राप्त कबूतर मधुर व अव्यक्त शब्द की उत्कण्ठा से जब गूंजता है ॥ १६ ॥ तब कबूतरी इस कारण उसको मना करती है कि ध्यान में स्थित कोक (चकवा) उसको सुनता है और चकई को छोड़कर वह उसके भय से चुपचाप स्थित होता है ॥ १७ ॥ और चंद्रिका को भोगनेवाला चकोर रात्रि के व्रत में सा स्थित है और सारिका सारांश को पढ़ती हैं व शुक को संबोधन करती हैं ॥ १८ ॥ कि बिन पारवाले संसाररूपी समुद्र से पार उतारनेवाले शिवजी हैं जो मनुष्य आलस्य से भी घर से धर्मारण्य को जाता है ॥ १९ ॥ उसको पग २ पै अश्वमेध यज्ञ का फल होता है और वहां ब्राह्मणलोग शाप व अनुग्रह में समर्थ हैं ॥ २० ॥ और पुण्य के कार्यों में अठारह हज़ार ब्राह्मण बनाये गये हैं व छत्तीस हज़ार जो सेवक हैं वे पृथ्वी में बनिया हैं ॥ २१ ॥ और ब्राह्मणों की भक्ति से संयुत वे ब्रह्मण्य अयोनिज हैं जो कि पुराण

के जाननेवाले, सदाचार, धार्मिक व शुद्धबुद्धि हैं स्वर्ग में देवता भी धर्मारण्यनिवासी जनों की प्रशंसा करते हैं ॥ २२ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि धर्मारण्य ऐसा नाम कब देवताओं से किया गया है व उन धर्म से बनाया हुआ यह धर्मारण्य किस कारण पृथ्वी में पवित्रकारक हुआ ॥ २३ ॥ व किस कारण वह तीर्थभूत है उसको मुझसे कहिये और कितने संख्यक ब्राह्मण पहले किससे स्थापित कियेगये हैं ॥ २४ ॥ और अठारह हज़ार ब्राह्मण किस लिये स्थापित किये गये व किस वंश में श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं ॥ २५ ॥ और सब विद्याओं में प्रवीण व वेद वेदांगों के पारगामी हैं और ऋग्वेद में चतुर व यजुर्वेद में परिश्रम किये हैं ॥ २६ ॥ व सामवेद

त्वयोनिजाः ॥ पुराणज्ञाः सदाचारा धार्मिकाः शुद्धबुद्धयः ॥ स्वर्गे देवाः प्रशंसन्ति धर्म्मारण्यनिवासिनः ॥ २२ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ धर्मारण्येति त्रिदशैः कदा नाम प्रतिष्ठितम् ॥ पावनं भूतले जातं कस्मात्तेन विनिर्मितम् ॥ २३ ॥ तीर्थभूतं हि कस्माच्च कारणात्तद्वदस्व मे ॥ ब्राह्मणाः कतिसंख्याकाः केन वै स्थापिताः पुरा ॥ २४ ॥ अष्टादशसहस्राणि किमर्थं स्थापितानि वै ॥ कस्मिन्वंशे समुत्पन्ना ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तमाः ॥ २५ ॥ सर्वविद्यासु निष्णाता वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ऋग्वेदेषु च निष्णाता यजुर्वेदकृतश्रमाः ॥ २६ ॥ सामवेदाङ्गपारज्ञास्त्रैविद्या धर्मवित्तमाः ॥ तपोनिष्ठाः शुभाचाराः सत्यव्रतपरायणाः ॥ २७ ॥ मासोपवासैः कृशितास्तथा चान्द्रायणादिभिः ॥ सदाचाराश्च ब्रह्मण्याः केन नित्योपजीविनः ॥ तत्सर्वमादितः कृत्स्नं ब्रूहि मे वदतां वर ॥ २८ ॥ दानवास्तत्र दैतेया भूतवेतालसम्भवाः ॥ राक्षसाश्च पिशाचाश्च उद्वेजन्ते कथं न तान् ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येयुधिष्ठिरप्रश्नवर्णनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

के अंगों का पार जाननेवाले तथा वेदत्रयी के पढ़नेवाले व बड़े धर्मवान् हैं और तपस्या में निष्ठ व उत्तम आचारवाले तथा सत्य के व्रत में परायण हैं ॥ २७ ॥ और मासोपवास से दुर्बल व चांद्रायणादिकों से कृशित व उत्तम आचारवाले वे ब्राह्मण किस कर्म से नित्य जीविका करते हैं हे वदतांवर ! पहले से लगाकर उस सब को कहिये ॥ २८ ॥ और वहां दानव, दैत्य व भूतों, वेतालों से उपजे हुए प्राणी और राक्षस व पिशाच उनको क्यों नहीं दुःखित करते हैं ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयुधिष्ठिरप्रश्नवर्णनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । धर्मराज तप भंग हित वेश्यावर्द्धिनि नाम । गई तीसरे में सोई वर्णित चरित ललाम ॥ व्यासजी बोले कि हे नृपोत्तम ! पुराण की उत्तम कथा को सुनिये कि जिसको सुनकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १ ॥ एक समय ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों के कारण जल वर्षा व आतप (धूप) आदि को सहनेवाले धर्मराज ने बड़ा कठिन तप किया है ॥ २ ॥ हे राजन् ! पहले त्रेतायुग में तीस हज़ार वर्ष तक अशोक वृक्ष के मूल में प्राप्त मध्यवन में तप करते हुए ॥ ३ ॥ सूखी नसों से बँधे हुए अस्थिसमूहवाले व अचल आकारवान् तथा बँबौरि के करोड़ों कीटों से शोषित समस्त रक्तवाले ॥ ४ ॥ व मांसरहित अस्थि

व्यास उवाच ॥ श्रूयतां नृपशार्दूल कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ यां श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥ एकदा धर्मराजो वै तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैर्जलवर्षातपादिषाट् ॥ २ ॥ आदौ त्रेतायुगे राजन्वर्षाणामयुतत्रयम् ॥ मध्ये वनं तपस्यन्तमशोकतरुमूलगम् ॥ ३ ॥ शुष्कस्नायुपिनद्धास्थिसञ्चयं निश्चलाकृतिम् ॥ वल्मीककीटिकाकोटिशोषिताशेषशोणितम् ॥ ४ ॥ निर्मांसकीकसचयं स्फटिकोपलनिश्चलम् ॥ शङ्खकुन्देन्दुतुहिनमहाशङ्खलसच्छ्रियम् ॥ ५ ॥ सत्त्वावलम्बितप्राणमायुःशेषेण रक्षितम् ॥ निश्वासोच्छ्वासपवनवृत्तिसूचितजीवितम् ॥ ६ ॥ निमेषोन्मेषसञ्चारपिशुनीकृतजन्तुकम् ॥ पिशङ्गितस्फुरद्रश्मिनेत्रदीपितदिङ्मुखम् ॥ ७ ॥ तत्तपोग्निशिखादावचुम्बितम्लानकाननम् ॥ तच्छान्त्युदसुधावर्षसंसिक्ताखिलभूरुहम् ॥ ८ ॥ साक्षात्तपस्यन्तामिव तपो

समूहवाले तथा स्फटिकशिला के समान निश्चल और शंख, कुंद, चन्द्रमा, पाला व महाशंख के समान शोभित लक्ष्मीवाले ॥ ५ ॥ व सत्त्व में अवलम्बित प्राणोंवाले तथा शेष आयुर्बल से रक्षित व निश्वास, ऊर्ध्वश्वास की पवनवृत्ति से सूचित जीवनवाले ॥ ६ ॥ व पलकों के मूंदने उघारने से सूचित प्राणीवाले व पीले रंग की चमकती हुई किरणों के समान नेत्रों से प्रकाशित दिशामुखवाले ॥ ७ ॥ और उनकी तपस्या की अग्निज्वाला के दाव से चुंबित होने के कारण मलिन वनवाले व उनकी शांतिरूपी जल व अमृत की वर्षा से सींचे हुए समस्त वृक्षोंवाले ॥ ८ ॥ व नराकार धारण कर तप करते हुए साक्षात् तप की नाई व भक्ति करके इच्छारहित

मनुष्य के आकारवाले सुवर्ण की नाईं ॥ ९ ॥ व घूमते हुए मृगबालकों के गणों से घिरेहुए व शब्द से भयंकर मुखवाले वनजन्तुओं से रक्षित ॥ १० ॥ व सबों को अभय देनेवाले महादेवजी को ध्यान करते हुए ऐसे बड़े भयंकर धर्मराज को देखकर इन्द्र समेत सब देवता ॥ ११ ॥ और ब्रह्मादिक सब देवता कैलास पर्वत पै पारिजात वृक्ष की छाया में पार्वती समेत बैठेहुए शिवजी के समीप गये ॥ १२ ॥ और नंदि, भृंगि, महाकाल व अन्य महागण और स्वामिकार्त्तिकेय स्वामी व भगवान् गणेशजी और इन्द्रादिक देवता वहां अपने २ स्थानों में बैठगये ॥ १३ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे नीलकण्ठ ! अनन्तरूपी आप के लिये नमस्कार है व अज्ञात

धृत्वा नराकृतिम् ॥ नराकृतिं निराकाङ्क्षं कृत्वा भक्तिं च काञ्चनम् ॥ ९ ॥ कुरङ्गशावैर्गणशो भ्रमद्भिः परिवारितम् ॥ निनादभीषणास्यैश्च वनजैः परिरक्षितम् ॥ १० ॥ एतादृशं महाभीमं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ॥ ध्यायन्तं च महादेवं सर्वेषां चाभयप्रदम् ॥ ११ ॥ ब्रह्माद्या देवताः सर्वे कैलासं प्रति जग्मिरे ॥ पारिजाततरुच्छायामासीनं च सहोमया ॥ १२ ॥ नन्दिर्भृङ्गिर्महाकालस्तथान्ये च महागणाः ॥ स्कन्दस्वामी च भगवान्गणपश्च तथैव च ॥ तत्र देवाः सब्रह्माद्याः स्वस्वस्थानेषु तस्थिरे ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमोस्त्वनन्तरूपाय नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते ॥ अविज्ञातस्वरूपाय कैवल्यायामृताय च ॥ १४ ॥ नान्तं देवा विजानन्ति यस्य तस्मै नमोनमः ॥ यं न वाचः प्रशंसन्ति नमस्तस्मै चिदात्मने ॥ १५ ॥ योगिनो यं हृदः कोशे प्रणिधानेन निश्चलाः ॥ ज्योतीरूपं प्रपश्यन्ति तस्मै श्रीब्रह्मणे नमः ॥ १६ ॥ कालातपराय कालाय स्वेच्छया पुरुषाय च ॥ गुणत्रयस्वरूपाय नमः प्रकृतिरूपिणे ॥ १७ ॥ विष्णवे सत्त्वरूपाय

स्वरूपवाले तथा कैवल्य मोक्षरूप के लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥ जिसका अन्त देवता नहीं जानते हैं उनके लिये नमस्कार है नमस्कार है व वचन जिनकी प्रशंसा नहीं करते हैं उन चैतन्यात्मक शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ सावधानता से निश्चल योगी लोग जिनको हृदय के कमल में ज्योतिरूप देखते हैं उन श्रीब्रह्म के लिये प्रणाम है ॥ १६ ॥ और काल से परे काल के लिये व अपनी इच्छा से जीवरूप के लिये तथा त्रिगुणस्वरूपी व प्रकृतिरूपी आप के लिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ सत्त्वगुणी

विष्णु व रजोगुणरूपी ब्रह्मा और तमोगुणरूपी रुद्र के लिये व पालन, सृष्टि तथा संहार करनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ १८ ॥ व बुद्धिस्वरूप आप के लिये और तीन प्रकार के अहंकाररूपी तथा पांच तन्मात्रारूप व प्रकृतिरूपी के लिये प्रणाम है ॥ १९ ॥ व पांच ज्ञानेन्द्रियात्मस्वरूपी आप के लिये नमस्कार है नमस्कार है व पृथ्वी आदिक पांचरूपोंवाले व विषयात्मक तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २० ॥ व ब्रह्माण्डरूपी और उसके मध्य में वर्तमान होनेवाले के लिये प्रणाम है व अर्वाचीन, पराचीन आप विश्वरूपजी के लिये नमस्कार है ॥ २१ ॥ व अनित्य तथा नित्यरूपी व कार्य, कारणरूपवाले आप के लिये प्रणाम है व हे भक्त के ऊपर दया

रजोरूपाय वेधसे ॥ तमोरूपाय रुद्राय स्थितिसर्गान्तकारिणे ॥ १८ ॥ नमो बुद्धिस्वरूपाय त्रिधाहङ्काररूपिणे ॥ पञ्च तन्मात्ररूपाय नमः प्रकृतिरूपिणे ॥ १९ ॥ नमो नमः स्वरूपाय पञ्चबुद्धीन्द्रियात्मने ॥ क्षित्यादिपञ्चरूपाय नमस्ते विषयात्मने ॥ २० ॥ नमो ब्रह्माण्डरूपाय तदन्तर्वर्तिने नमः ॥ अर्वाचीनपराचीनविश्वरूपाय ते नमः ॥ २१ ॥ अनित्यनित्यरूपाय सदसत्पतये नमः ॥ नमस्ते भक्तकृपया स्वेच्छाविष्कृतविग्रह ॥ २२ ॥ तव निश्वसितं वेदास्तव वेदोऽखिलं जगत् ॥ विश्वाभूतानि ते पादः शिरो द्यौः समवर्तत ॥ २३ ॥ नाभ्या आसीदन्तरिक्षं लोमानि च वनस्पतिः ॥ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यस्तव प्रभो ॥ २४ ॥ त्वमेव सर्वं त्वयि देव सर्वं सर्वस्तुतिस्तव्य इह त्वमेव ॥ ईश त्वया वास्यमिदं हि सर्वं नमोऽस्तु भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ २५ ॥ इति स्तुत्वा महादेवं निपेतुर्दण्डवत्क्षितौ ॥ प्रत्यु

से अपनी इच्छा से शरीर को धारनेवाले ! आप के लिये प्रणाम है ॥ २२ ॥ वेद तुम्हारा श्वास हैं और सब संसार वेद हैं व संसार के प्राणी तुम्हारा चरण हैं और तुम्हारा शिर स्वर्ग है ॥ २३ ॥ व आकाश तुम्हारी नाभि है और वनस्पति रोम हैं व हे प्रभो ! तुम्हारे मन से चन्द्रमा पैदा हुआ है और तुम्हारे नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुए हैं ॥ २४ ॥ हे देव ! सब तुम्हीं हो व तुम्हीं में सब वर्तमान है और इस संसार में सब स्तुतियों से स्तुति करने योग्य तुम्हीं हो हे ईश ! तुम से यह सब वासित है तुम्हारे लिये नमस्कार है व बार २ आप के लिये प्रणाम है ॥ २५ ॥ इस प्रकार महादेवजी की स्तुतिकर सब देवता पृथ्वी में दण्ड की नाईं गिरपड़े तब शिवजी

बोले कि मैं वरदायक हूं तुम लोग क्या चाहते हो ॥ २६ ॥ महादेवजी बोले कि हे ब्रह्मन्! बृहस्पति आदिक सब देवता क्यों विकल हैं उसको कहो जोकि आप लोगों के दुःख का कारण होवै ॥ २७ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे दुःखनाशक, अभयदायक, नीलकण्ठ, महादेव! तुम हम लोगों का दुःख सुनो जो कि आप से हम कहते हैं ॥ २८ ॥ कि धर्मात्मा धर्मराज ने बड़ा दुस्सह तप किया मैं यह नहीं जानता हूं कि ये देवताओं का कौन उत्तम स्थान चाहते हैं ॥ २९ ॥ उस कारण उसके तप से इन्द्र आदिक सब देवता डर गये हैं उसी से बहुत दिनों से आपके चरणों में मन लगाया गया हे देवेश! उसको उठाइये वे धर्मराज क्या चाहते हैं ॥ ३० ॥

वाच तदा शम्भुर्वरदोऽस्मि किमिच्छथ ॥ २६ ॥ महादेव उवाच ॥ कथं व्यग्राः सुराः सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ तत्स माचक्ष्व मां ब्रह्मन्भवतां दुःखकारणम् ॥ २७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नीलकण्ठ महादेव दुःखनाशाभयप्रद ॥ शृणु त्वं दुःख मस्माकं भवतो यद्ददाम्यहम् ॥ २८ ॥ धर्मराजोऽपि धर्मात्मा तपस्तेपे सुदुःसहम् ॥ न जानेऽसौ किमिच्छति देवानां पदमुत्तमम् ॥ २९ ॥ तेन त्रस्तास्तत्तपसा सर्व इन्द्रपुरोगमाः ॥ भवतोङ्घ्रौ चिरेणैव मनस्तेन समर्पितम् ॥ तमुत्था पय देवेश किमिच्छति स धर्मराट् ॥ ३० ॥ ईश्वर उवाच ॥ भवतां नास्ति नु भयं धर्मात्सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ ३१ ॥ तत उत्थाय ते सर्वे देवाः सह दिवौकसः ॥ रुद्रं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्वा पुनःपुनः ॥ ३२ ॥ इन्द्रेण सहिताः सर्वे कैलासात्पुनरागताः ॥ स्वस्वस्थाने तदा शीघ्रं गताः सर्वे दिवौकसः ॥ ३३ ॥ इन्द्रोऽपि वै सुधर्मायां गतवान्प्रभुरी श्वरः ॥ न निद्रां लब्धवांस्तत्र न सुखं न च निर्वृतिम् ॥ ३४ ॥ मनसा चिन्तयामास विघ्नं मे समुपस्थितम् ॥ अवाप

महादेवजी बोले कि धर्मराज से आप लोगों को भय नहीं है यह मैं सत्य कहता हूं ॥ ३१ ॥ तदनन्तर वे सब देवता साथही उठकर शिवजी की प्रदक्षिणा कर व बार २ प्रणाम कर ॥ ३२ ॥ इन्द्र समेत सब देवता फिर कैलास से आये और उस समय सब देवता शीघ्रही अपने अपने स्थान में गये ॥ ३३ ॥ और इन्द्र स्वामी भी सुधर्मा सभा में गये व उन इन्द्रजी ने वहां निद्रा, सुख व आनन्द को नहीं पाया ॥ ३४ ॥ व मन से यह विचार किया कि मुझको विघ्न प्राप्त हुआ

तब इन्द्राणी के पति इन्द्रदेवजी बड़ी चिन्ता को प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥ कि मेरा स्थान हरने के लिये धर्मराज ने बडा कठिन तप किया है सब देवताओं को बुलाकर उन इन्द्र ने यह वचन कहा ॥ ३६ ॥ इन्द्रजी बोले कि सब देवता लोग मेरे दुःख का कारण सुनैं कि मैंने जिसको दुःख से पाया है क्या यमराज उसी की प्रार्थना करते हैं इसके उपरान्त बृहस्पतिजी ने देखकर सब देवताओं से कहा ॥ ३७ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि हे देवताओ ! तपस्या के लिये सामर्थ्य नहीं है इस कारण विघ्न करने के लिये वहां उर्वशी आदिक अप्सरा बुलाकर पठाई जावैं ॥ ३८ ॥ उनको बुलाने के लिये द्वारपालक गया और वह जाकर उन अप्सराओं को लाकर

महतीं चिन्तां तदा देवः शचीपतिः ॥ ३५ ॥ मम स्थानं पराहर्तुं तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥ सर्वान्देवान्समाहूय इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ इन्द्र उवाच ॥ शृण्वन्तु देवताः सर्वा मम दुःखस्य कारणम् ॥ दुःखेन मम यल्लब्धं तत्किं वा प्रार्थयेद्यमः ॥ बृहस्पतिः समालोक्य सर्वान्देवानथाब्रवीत् ॥ ३७ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ तपसे नास्ति सामर्थ्यं विघ्नं कर्तुं दिवौकसः ॥ उर्वश्याद्याः समाहूय सम्प्रेष्यन्तां च तत्र वै ॥ ३८ ॥ तासामाकारणार्थाय प्रतिहारः प्रतास्थितवान् ॥ स गत्वा ताः समादाय सभायां शीघ्रमाययौ ॥ ३९ ॥ आगतास्ता हरिः प्राह महत्कार्यमुपस्थितम् ॥ गच्छन्तु त्वरितः सर्वा धर्मारण्यं प्रति द्रुतम् ॥ ४० ॥ यत्र वै धर्मराजोसौ तपश्चक्रे सुदुष्करम् ॥ हास्यभावकटाक्षैश्च गीतनृत्यादिभिस्तथा ॥ ४१ ॥ तं लोभयध्वं यमिनं तपःस्थानाच्च्युतिर्भवेत् ॥ देवस्य वचनं श्रुत्वा तथा अप्सरसां गणाः ॥ ४२ ॥ मिथः संरेभिरे कर्तुं विचार्यं च परस्परम् ॥ धर्मारण्यं प्रतस्थेसावुर्वशी स्वर्वराङ्गना ॥ ४३ ॥ तुष्टुवुः पुष्पवर्षांश्च स

शीघ्रही सभा में आया ॥ ३९ ॥ व उन आई हुई अप्सराओं से इन्द्र ने कहा कि बड़ाभारी कार्य उपस्थित हुआ है इस लिये तुम सब शीघ्रही धर्मारण्य को जावो ॥ ४० ॥ जहां ये धर्मराजजी बहुत कठिन तप करते हैं वहां हाव, भाव संयुत कटाक्षों से व गीतों और नृत्यादिकों से ॥ ४१ ॥ उन यमराज को लुभावो कि जिस से तपस्या से पृथक्का होवै इन्द्रदेवजी के उस प्रकार वचन को सुनकर अप्सराओं के गणों ने ॥ ४२ ॥ आपस में करने का विचार किया व परस्पर विचार कर वह स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी धर्मारण्य को चली ॥ ४३ ॥ तब इन देवताओं ने इसकी स्तुति की व उसके शिर पै फूलों की वृष्टि की तदनन्तर देवताओं व ब्राह्मणों से सब ओर

स्तुति कीजाती हुई वह उर्वशी ॥ ४४ ॥ बडी प्रीति से बेल, मदार व खैर के वृक्षों से आकीर्ण व कैथा व धव के वृक्षोंसे व्याप्त परमपवित्रकारक वनको गई ॥ ४५ ॥ वहां सूर्य प्रकाश नहीं करते थे उस महाधकार से संयुत व निर्जन, मनुष्यरहित तथा बहुत योजन चौड़े वन को गई ॥ ४६ ॥ जो कि मृगों व सिंहों से तथा अन्य वनचारी जन्तुवों से घिरा था और फूलेहुए वृक्षोंसे व्याप्त व बहुत सुन्दर घाससे हरित था ॥ ४७ ॥ और बड़ाभारी व मीठे शब्दवाले पक्षियों से शब्दायमान था और पुरुषकोकिल के शब्द से संयुत तथा झिल्लीक गणों से नादित था ॥ ४८ ॥ व बढ़े हुए विकट तथा सुखदायिनी छायावाले वृक्षों से घिरा था और वृक्षोंसे ढकी हुई नीचे की भूमिवाला

सृजुस्तच्छिरस्यमी ॥ ततस्तु देवैर्विप्रैश्च स्तूयमाना समन्ततः ॥ ४४ ॥ निर्ययौ परमप्रीत्या वनं परमपावनम् ॥ बिल्वार्कखदिराकीर्णं कपित्थधवसंकुलम् ॥ ४५ ॥ न सूर्यो भाति तत्रैव महान्धकारसंयुतम् ॥ निर्जनं निर्मनुष्यं च बहुयोजनमायतम् ॥ ४६ ॥ मृगैः सिंहैर्वृतं घोरैरन्यैश्चापि वनेचरैः ॥ पुष्पितैः पादपैः कीर्णं सुमनोहरशाद्वलम् ॥ ४७ ॥ विपुलं मधुरानादैर्नादितं विहगैस्तथा ॥ पुंस्कोकिलनिनादाढ्यं झिल्लीकगणनादितम् ॥ ४८ ॥ प्रवृद्धविकटैर्वृक्षैः सुखच्छायैः समावृतम् ॥ वृक्षैराच्छादिततलं लक्ष्म्या परमया युतम् ॥ ४९ ॥ नापुष्पः पादपः कश्चिन्नाफलो नापि कण्टकी ॥ षट्पदैरप्यनाकीर्णं नास्मिन्वै कानने भवेत् ॥ ५० ॥ विहङ्गैर्नादितं पुष्पैरलंकृतमतीव हि ॥ सर्वर्तुकुसुमैर्वृक्षैः सुखच्छायैः समावृतम् ॥ ५१ ॥ मारुताकम्पितास्तत्र द्रुमाः कुसुमशाखिनः ॥ पुष्पवृष्टिं विचित्रां तु विसृजन्ति च पादपाः ॥ ५२ ॥ दिवस्पृशोऽथ संघुष्टाः पक्षिभिर्मधुरस्वनैः ॥ विरेजुः पादपास्तत्र सुगन्धकुसुमैर्वृताः ॥ ५३ ॥

वह वन बडी लक्ष्मी से संयुत था ॥ ४९ ॥ और इस वन में कोई वृक्ष बिन फूल व बिन फल का और कांटों से युक्त नहीं है व भ्रमरों से वियुक्त नहीं है ॥ ५० ॥ और पक्षियों से नादित व पुष्पों से बहुतही भूषित था व सब ऋतुवोंवाले फूलों से संयुत तथा सुखद छायावाले वृक्षों से घिरा था ॥ ५१ ॥ और वहां पवन से कंपाये हुए पुष्प शाखावाले वृक्ष विचित्र पुष्पवृष्टि करते थे ॥ ५२ ॥ और वहां सुगन्धित पुष्पों से संयुत व मीठे शब्दवाले पक्षियों से कूजित आकाश को छूनेवाले वृक्ष शोभित थे ॥ ५३ ॥

और पुष्पों के भार से नीचे झुके हुए नवीन पत्तों में मधु को चाहनेवाले व मीठे शब्दवाले भ्रमर बैठे थे व शब्द करते थे ॥ ५४ ॥ और वहां सुगन्धित अंकुरों से शोभित व लताग्रहों से आच्छादित तथा मन की प्रीतिको बढ़ानेवाले बहुत से स्थानों को ॥ ५५ ॥ देखती हुई वह बड़ी तेजवती अप्सरा उस समय प्रसन्न हुई और फूलों से व्याप्त तथा परस्पर मिली हुई शाखावाले इन्द्रध्वज के समान वृक्षों से वह वन शोभित था और वहां सुखदायक व शीतल सुगन्ध तथा पुष्पों की धूलि को लेजानेवाला पवन चलता था ॥ ५६।५७ ॥ ऐसे गुणोंसे संयुत वन को उस उर्वशी ने उस समय देखा तब वहां सब ओर शोभित व पवित्र यमुनाजी को देखा ॥ ५८ ॥ और वहां मुनिगणोंसे

तिष्ठन्ति च प्रवालेषु पुष्पभारावनामिषु ॥ रुवन्ति मधुरालापाः षट्पदा मधुलिप्सवः ॥ ५४ ॥ तत्र प्रदेशांश्च बहूना मोदाङ्कुरमण्डितान् ॥ लतागृहपरिक्षिप्तान्मनसः प्रीतिवर्द्धनान् ॥ ५५ ॥ सम्पश्यन्ती महातेजा बभूव मुदिता तदा ॥ परस्पराश्लिष्टशाखैः पादपैः कुसुमाचितैः ॥ ५६ ॥ अशोभत वनं तत्तु महेन्द्रध्वजसन्निभैः ॥ सुखशीतसुगन्धी च पुष्परेणुवहोऽनिलः ॥ ५७ ॥ एवं गुणसमायुक्तं सा ददर्श वनं तदा ॥ तदा सूर्योद्भवां तत्र पवित्रां परिशोभिताम् ॥ ५८ ॥ आश्रमप्रवरं तत्र ददर्श च मनोरमम् ॥ यतिभिर्बालखिल्यैश्च वृतं मुनिगणावृतम् ॥ ५९ ॥ अग्न्यगारैश्च बहुभिर्वृक्ष शाखावलम्बितैः ॥ धूम्रपानकणैस्तत्र दिग्वासोयतिभिस्तथा ॥ ६० ॥ पाल्या वन्या मृगास्तत्र सौम्या भूयो बभूविरे ॥ मार्जारा मूषकैस्तत्र सर्पैश्च नकुलास्तथा ॥ ६१ ॥ मृगशावैस्तथा सिंहाः सत्त्वरूपा बभूविरे ॥ परस्परं चिक्रीडुस्ते यथा चैव सहोदराः ॥ दूराद्ददर्श च वनं तत्र देवोऽब्रवीत्तदा ॥ ६२ ॥ इन्द्र उवाच ॥ अयं च धर्मराजो वै तपस्युग्रे

आच्छादित तथा यतियों व बालखिल्य मुनियों से घिरे हुए सुन्दर व श्रेष्ठ आश्रम को देखा ॥ ५९ ॥ और वृक्षों की शाखामें लटके हुए मुनियों व बहुत से अग्निमन्दिरों से वह वन संयुत था और वहां धुवां के पीनेके किनुकों से व नग्न यतियोंसे वह वन संयुत था ॥ ६० ॥ व वनवाले पालने योग्य मृग वहां फिर सौम्य होगये और वहां बिलार मूसों के साथ व नेउला सर्पों के साथ ॥ ६१ ॥ तथा सिंह मृगबच्चों के साथ सत्त्वरूप हुए और एकही पेट से पैदा हुए की नाईं वे परस्पर खेलते थे दूरसे इन्द्र देवजीने वनको देखा तब वहां यह वचन कहा ॥ ६२ ॥ इन्द्रजी बोले कि ये धर्मराज उग्र तपस्या में स्थितहैं व मेरे राज्य की ये इच्छा करते हैं इस कारण इनके लिये

यहां यत्न कीजावै ॥ ६३ ॥ कि आप सब तपस्या का विघ्न करो व मेरी आज्ञा से वहां जावो इन्द्र का वचन सुनकर उर्वशी, तिलोत्तमा ॥ ६४ ॥ सुकेशी, मंजुघोषा, घृताची, मेनका, विश्वाची, रम्भा व सुन्दर भाषण करनेवाली प्रम्लोचा ॥ ६५ ॥ व सुन्दररूपवाली पूर्वचित्ति और यशस्विनी अनुम्लोचा ये और अन्य बहुतसी अप्सरा वहां बैठ कर विचारनेलगीं ॥ ६६ ॥ और परस्पर देखकर भय से शंकित हुई कि यमराज व इन्द्र ये दोनों तुम लोगों का स्थान हैं ॥ ६७ ॥ हे भारत ! इस प्रकार बहुत भांति से विचार कर जो वर्द्धनी नामक थी सब अप्सराओं के मध्य में श्रेष्ठ वह सब आभूषणों से भूषित थी ॥ ६८ ॥ उसने वहां उर्वशी से कहा कि हे वरानने ! तुम क्यों

वतिष्ठते ॥ मम राज्याभिकाङ्क्षोऽसावतोर्थे यत्यतामिह ॥ ६३ ॥ तपोविघ्नं प्रकुर्वन्तु ममाज्ञा तत्र गम्यताम् ॥ इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा उर्वशी च तिलोत्तमा ॥ ६४ ॥ सुकेशी मञ्जुघोषा च घृताची मेनका तथा ॥ विश्वाची चैव रम्भा च प्रम्लोचा चारुभाषिणी ॥ ६५ ॥ पूर्वचित्तिः सुरूपा च अनुम्लोचा यशस्विनी ॥ एताश्चान्याश्च बहुशस्तत्र संस्था व्यचिन्तयन् ॥ ६६ ॥ परस्परं विलोक्यैव शङ्कमाना भयेन हि ॥ यमश्चैव तथा शक्र उभौ वायतनं हि वः ॥ ६७ ॥ एवं विचार्य बहुधा वर्द्धनीनाम भारत ॥ सर्वासामप्सरसां श्रेष्ठा सर्वाभरणभूषिता ॥ ६८ ॥ उवाचैवोर्वशीं तत्र किं खिद्यसि शुभानने ॥ देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं मायारूपबलेन च ॥ वर्णधर्मो यथा भूयात्करिष्ये पाकशासन ॥ ६९ ॥ इन्द्र उवाच ॥ साधु साधु महाभागे वर्द्धनीनाम सुव्रता ॥ शीघ्रं गच्छ स्वयं भद्रे कुरु कार्यं कृशोदरि ॥ ७० ॥ धीराणामवने शक्ता नान्या सुभ्रु त्वया विना ॥ वर्द्धनी च तथेत्युक्त्वा गता यत्र स धर्मराट् ॥ ७१ ॥ महता भूषणेनैव

खेद करती हो व हे पाकशासन ! देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये माया के रूपके बलसे जिस प्रकार वर्णधर्म होगा मैं वैसाही करूंगी ॥ ६९ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे महाभागे ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा वर्द्धनी नामक तुम उत्तमव्रतवाली हो हे कृशोदरि, भद्रे ! तुम शीघ्रही जावो व आपही कार्य करो ॥ ७० ॥ हे सुभ्रु ! तुम्हारे विना धीरों की रक्षा में अन्य समर्थ नहीं है बहुत अच्छा यह कहकर वह वर्द्धनी वहां गई जहां कि धर्मराज थे ॥ ७१ ॥ बड़े भूषण से सुन्दर रूप करके कुंकुम, कज्जल,

वस्त्र व भूषणों से भूपित हुई ॥ ७२ ॥ व कुसुम से रंगे हुए वसन को उसने धारण किया और क्षुद्रघंटिका को कटि में पहन कर शोभित हुई व दोनों चरणों में बाजते हुए भूषणोंसे भूषित हुई ॥ ७३ ॥ और अनेक प्रकार के भूषणों की शोभा से संयुत व अनेक भाति के चन्दनों से चर्चित व अनेक भांति के पुष्पमालाओं से संयुत वह उत्तम अप्सरा रेशमी वस्त्र को पहनकर ॥ ७४ ॥ हाथ में शुद्ध वीणा को लेकर सब अंगों से सुन्दरी उस अप्सरा ने वहां मनुष्यों के मन को रमानेवाला तीन भांति का नृत्य किया ॥ ७५ ॥ व तारस्वर से और वंशनाद से मिश्रित व मूर्च्छना तथा मालाओं से युक्त और तंत्री के लय से युक्त नृत्य किया तब हे नृपात्मज ! जो धर्मराज

रूपं कृत्वा मनोरमम् ॥ कुङ्कुमैः कज्जलैर्वस्त्रैर्भूषणैश्चैव भूषिता ॥ ७२ ॥ कुसुमं च तथा वस्त्रं किङ्किणीकटिराजिता ॥ झणत्कारैस्तथा कष्टैर्भूषिता च पदद्वये ॥ ७३ ॥ नानाभूषणभूषाढ्या नानाचन्दनचर्चिता ॥ नानाकुसुममालाढ्या दुकूलेनावृता शुभा ॥ ७४ ॥ प्रगृह्य वीणां संशुद्धां करे सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ नर्तनं त्रिविधं तत्र चक्रे लोकमनोरमम् ॥ ७५ ॥ तारस्वरेण मधुरैर्वंशनादेन मिश्रितम् ॥ ७६ ॥ मूर्च्छनातालसंयुक्तं तन्त्रीलयसमन्वितम् ॥ क्षणेन सहसा देवो धर्मराजो जितात्मवान् ॥ विमनाः स तदा जातो धर्मराजो नृपात्मज ॥ ७७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ आश्चर्यं परमं ब्रह्म ज्ञातं मे ब्रह्मसत्तम ॥ कथं ब्रह्मोपपन्नस्य तपश्छेदो बभूव ह ॥ ७८ ॥ धर्मे धरा च नाकश्च धर्मे पातालमेव च ॥ धर्मे चन्द्रार्कमापश्च धर्मे च पवनोऽनलः ॥ ७९ ॥ धर्मे चैवाखिलं विश्वं स धर्मो व्यग्रतां कथम् ॥ गतः स्वामिंस्तद्वैयग्र्यं तथ्यं कथय सुव्रत ॥ ८० ॥ व्यास उवाच ॥ पतनं साहसानां च नरकस्यैव कारणम् ॥ योनिकुण्डमिदं सृष्टं कुम्भी

जितेन्द्रिय थे वे यकायक क्षण भर में क्षुभितमानस हुए ॥ ७६ । ७७ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे ब्रह्मसत्तम ! मुझको बड़ा आश्चर्य हुआ कि ब्रह्म में युक्त उन यमराज का कैसे तपोभंग हुआ ॥ ७८ ॥ धर्म में पृथ्वी व स्वर्ग है और धर्म में पाताल है और धर्म में चन्द्रमा, सूर्य व जल हैं और धर्म में पवन व अग्नि हैं ॥ ७९ ॥ और धर्म में सब संसार है वह धर्म कैसे व्यग्रता को प्राप्त हुआ हे स्वामिन्, सुव्रत ! उसकी व्यग्रता को सत्य कहिये ॥ ८० ॥ व्यासजी बोले कि साहसों का पतन नरकही

का कारण है और पृथ्वी में यह योनिकुण्ड कुम्भीपाक के समान रचा गया है ॥ ८१ ॥ और नेत्ररूपी रस्सी से दृढ़ बांधकर स्त्रियां मनस्वी पुरुषों की घर्षणा करती हैं और कुचरूपी महादण्डों से ताड़ित पुरुष को निश्चेत ॥ ८२ ॥ करके हे नृपोत्तम ! वे स्त्रिया शीघ्रही नरक में गिराती हैं व सब प्राणियों को मोहनेवाली स्त्री बनाई गई है ॥ ८३ ॥ तबतक मन की स्थिरता, शास्त्र, सत्य व निराकुलता होती है जबतक कि सुन्दरचित्तवाले पुरुषों के आगे जाल की नाईं मत्त स्त्री नहीं होती है ॥ ८४ ॥ व तबतक तपस्या की वृद्धि होती है व तबतक दान, दया व दम होता है और तबतक वेद पढ़ने का आचार व तबतक शौच, धैर्य व व्रत होता है ॥ ८५ ॥ जबतक

पाकसमं भुवि ॥ ८१ ॥ नेत्ररज्ज्वा दृढं बद्धा धर्षयन्ति मनस्विनः ॥ कुचरूपैर्महादण्डैस्ताड्यमानमचेतसम् ॥ ८२ ॥ कृत्वा वै पातयन्त्याशु नरकं नृपसत्तम ॥ मोहनं सर्वभूतानां नारी चैवं विनिर्मिता ॥ ८३ ॥ तावद्धन्त मनःस्थैर्यं श्रुतं सत्यमनाकुलम् ॥ यावन्मत्ताङ्गनाग्रे न वागुरेव सुचेतसाम् ॥ ८४ ॥ तावत्तपोभिवृद्धिस्तु तावद्दानं दया दमः ॥ तावत्स्वाध्यायवृत्तं च तावच्छौचं धृतं व्रतम् ॥ ८५ ॥ यावत्त्रस्तमृगीदृष्टिं चपलां न विलोकयेत् ॥ तावन्माता पिता तावद् भ्राता तावत्सुहृज्जनः ॥ ८६ ॥ तावल्लज्जा भयं तावत्स्वाचारस्तावदेव हि ॥ ज्ञानमौदार्यमैश्वर्यं तावदेव हि भासते ॥ यावन्मत्ताङ्गनापाशैः पातितो नैव बन्धनैः ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये इन्द्रभयकथनन्नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

कि डरी हुई मृगी की नाईं चंचलदृष्टि को मनुष्य नहीं देखता है और तबतक माता, पिता, भाई व तबतक मित्रजन होते हैं ॥ ८६ ॥ और तबतक लज्जा व तबतक भय और तभी तक उत्तम आचार होता है व तबतक ज्ञान, उदारता और ऐश्वर्य प्रकाशित होता है जबतक कि मनुष्य मत्त स्त्री के पाशरूपी बन्धनों से नहीं गिराया जाता है ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामिन्द्रभयकथनन्नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

स्थिरता दीजिये॥ १९ ॥ यमराज बोले कि ऐसाही होवै व उससे उन्होंने यह कहा कि शीघ्रही अन्य वर को मांगिये क्योंकि गान से मैं प्रसन्न हुआ हूं और उत्तम वर को दूंगा ॥ २० ॥ वर्द्धनी बोली कि हे महामते ! इस महाक्षेत्र स्थान में मेरे नाम से प्रसिद्ध सब पापों का नाशक तीर्थ होवै ॥ २१ ॥ और उस में दान, हवन, तप व पठित अक्षय होवै व जो मनुष्य वर्द्धमान नामक तडाग को पांच रात्रि तक सेवन करै ॥ २२ ॥ प्रतिदिन तृप्त किये हुए उसके पूर्वज पितर तृप्त होवैं बहुत अच्छा यह उससे कहकर धर्मराजजी चुप होकर स्थित हुए व उन धर्म की तीन प्रदक्षिणा कर व प्रणाम करके वह स्वर्ग को चली गई ॥ २३ ॥ वर्द्धनी बोली कि हे देवेश !

भृतां श्रेष्ठ लोकानां च हिताय वै ॥ १९ ॥ यम उवाच ॥ एवमस्त्विति तां प्राह चान्यं वरय सत्वरम् ॥ ददामि वर मुत्कृष्टं गानेन तोषितोस्म्यहम् ॥ २० ॥ वर्द्धन्युवाच ॥ अस्मिन्स्थाने महाक्षेत्रे मम तीर्थं महामते ॥ भूयाच्च सर्व पापघ्नं मन्नाम्नेति च विश्रुतम् ॥ २१ ॥ तत्र दत्तं हुतं तप्तं पठितं वाऽक्षयं भवेत् ॥ पञ्चरात्रं निषेवेत वर्द्धमानं सरोवर म् ॥ २२ ॥ पूर्वजास्तस्य तुष्येरंस्तर्प्यमाणा दिनेदिने ॥ तथेत्युक्त्वा तु तां धर्मो मौनमाचष्ट संस्थितः ॥ त्रिः परिक्र म्य तं धर्मं नमस्कृत्य दिवं ययौ ॥ २३ ॥ वर्द्धन्युवाच ॥ मा भयं कुरु देवेश यमस्यार्कसुतस्य च ॥ अयं स्वार्थपरो धर्मं यशसे च समाचरेत् ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ वर्द्धनी पूजिता तेन शक्रेण च शुभानना ॥ साधु साधु महाभागे देवकार्यं कृतं त्वया ॥ २५ ॥ निर्भयत्वं वरारोहे सुखवासश्च ते सदा ॥ यशः सौख्यं श्रियं रम्यां प्राप्स्यासि त्वं शुभान ने ॥ २६ ॥ तथेति देवास्तामूचुर्निर्भयानन्दचेतसा ॥ नमस्कृत्य च शक्रं सा गता स्थानं स्वकं शुभम् ॥ २७ ॥ व्यास

सूर्य के पुत्र यमराज का तुम भय न करो क्योंकि स्वार्थ में परायण ये धर्मराज यश के लिये तप करते हैं ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले कि उन इन्द्र ने उस उत्तम मुखवाली वर्द्धनी का पूजन किया व यह कहा कि हे महाभागे ! तुमको साधुवाद है क्योंकि तूने देवताओं का कार्य किया ॥ २५ ॥ व हे शुभानने, वरारोहे ! तुमको सदैव अभयता होवै व सुखपूर्वक तुम्हारा निवास होवै और तुम यश, सुख व सुन्दरी लक्ष्मी को पावोगी ॥ २६ ॥ देवताओं ने निर्भय व आनन्द चित्त से उससे यह कहा कि वैसाही होगा और वह वर्द्धनी अप्सरा इन्द्रजी को प्रणामकर अपने उत्तम स्थान को चलीगई ॥ २७ ॥ व्यासजी बोले कि हे राजेन्द्र ! अप्सरा के चलेजाने

पर धर्मराज विधिपूर्वक स्थित हुए व उन्होंने संसार को दुःखदायक बड़ा भयंकर तप किया ॥ २८ ॥ कि हे राजन्! सूर्य से तापित ज्येष्ठ महीने में उन्होंने देवताओं से भी दुस्सह व दुरासद पंचाग्नि साधन किया ॥ २९ ॥ तदनन्तर सौ वर्ष पूर्ण होने पर यमराज मौन होकर स्थित हुए व सैकड़ों बँबौरि से घिरे हुए वे काठ की नाईं स्थित हुए ॥ ३० ॥ व हे राजन्! अनेक प्रकार के पक्षियों से वहां घोंसला करने पर उन धर्मराज ने व्रत किया और वे कहीं देख नहीं पड़ते थे ॥ ३१ ॥ इस के अनन्तर अनिन्दित उमापति देवेश शिवजी को स्मरण करते हुए गन्धर्वों समेत देवता व यक्ष उद्विग्नमानस हुए और फिर शिवजी के समीप कैलास पर्वत के शिखर

उवाच ॥ गतेप्सरसि राजेन्द्र धर्मस्तस्थौ यथाविधि ॥ तपस्तेपे महाघोरं विश्वस्योद्वेगदायकम् ॥ २८ ॥ पञ्चाग्निसाधनं शुक्रे मासि सूर्येण तापिते ॥ चक्रे सुदुःसहं राजन्देवैरपि दुरासदम् ॥ २९ ॥ ततो वर्षशते पूर्णे अन्तको मौनमास्थितः ॥ काष्ठभूत इवातस्थौ वल्मीकशतसंवृतः ॥ ३० ॥ नानापक्षिगणैस्तत्र कृतनीडे स धर्मराट् ॥ उपविष्टे व्रतं राजन्दृश्यते नैव कुत्रचित् ॥ ३१ ॥ संस्मरन्तोऽथ देवेशमुमापतिमनिन्दितम् ॥ ततो देवाः सगन्धर्वा यक्षाश्चोद्विग्नमानसाः ॥ कैलासशिखरं भूय आजग्मुः शिवसन्निधौ ॥ ३२ ॥ देवा ऊचुः ॥ त्राहि त्राहि महादेव श्रीकण्ठ जगतः पते ॥ त्राहि नो भूतभव्येश त्राहि नो वृषभध्वज ॥ दयालुस्त्वं कृपानाथ निर्विघ्नं कुरु शंकर ॥ ३३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ केनापराधिता देवाः केन वा मानमर्दिताः ॥ मर्त्ये स्वर्गेऽथवा नागे शीघ्रं कथयताचिरम् ॥ ३४ ॥ अनेनैव त्रिशूलेन खट्वाङ्गेनाथवा पुनः ॥ अथ पाशुपतेनैव निहनिष्यामि तं रणे ॥ शीघ्रं वै वदतास्माकमत्रागमन

पै आये ॥ ३२ ॥ देवता बोले कि हे श्रीकण्ठ, जगत्पते, देवदेव! रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये हे भूतभव्येश! हम लोगों की रक्षा कीजिये हे वृषभध्वज! हमारी रक्षा कीजिये हे दयानाथ, शंकर! तुम दयालु हो निर्विघ्न कीजिये ॥ ३३ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवताओ! किसने तुमलोगों का अपराध किया है व किसने मानमर्दन किया है मृत्युलोकमें या स्वर्ग में या पातालमें होवै उसको शीघ्रही कहिये देर मत कीजिये ॥ ३४ ॥ क्योंकि इसी त्रिशूल से या खट्वाङ्ग से अथवा पाशुपत अस्त्र से मैं

उसको युद्ध में मारूंगा तुमलोग शीघ्रही हम से यहां आने का कारण कहो॥ ३५ ॥ देवता बोले कि हे दयासिन्धो, जगदानन्ददायक, देवेश ! इस समय मनुष्य से व नाग से और देवता व दानव से भय नहीं है ॥ ३६ ॥ बरन हे महादेव ! मृत्युलोकमें बड़ेभारी शरीरवाले यमराजजी बड़े भयंकर अपने शरीर को क्लेशित करते हैं यह निश्चय है ॥ ३७ ॥ व हे सदाशिव ! उग्र तपस्या करके आत्मा से आत्मा क्लेशित होता है उससे हे सदाशिव ! हम सब देवता दुःखित होकर तुम्हारे शरण में प्राप्त हुए हैं जो चाहो उसको करो ॥ ३८ ॥ सूतजी बोले कि देवताओं का वचन सुनकर बैल पै चढ़े हुए वृषध्वज शिवजी अस्त्रों को लेकर व सुन्दर कवच को पहनकर उस

कारणम् ॥ ३५॥ देवा ऊचुः ॥ कृपासिन्धो हि देवेश जगदानन्दकारक॥ न भयं मानुषादद्य न नागाद्देवदानवात् ॥ ३६॥ मर्त्यलोके महादेव प्रेतनाथो महाकृतिः ॥ आत्मकायं महाघोरं क्लेशयेदिति निश्चयः॥ ३७ ॥ उग्रेण तपसा कृत्वा क्लिश्येदात्मानमात्मना॥ तेनात्र वयमुद्विग्ना देवाः सर्वे सदाशिव ॥ शरणं त्वामनुप्राप्ता यदिच्छसि कुरुष्व तत् ॥ ३८॥ सूत उवाच ॥ देवानां वचनं श्रुत्वा वृषारूढो वृषध्वजः ॥ आयुधान्परिसंगृह्य कवचं सुमनोहरम् ॥ गतवानथ तं देशं यत्र धर्मो व्यवस्थितः ॥ ३९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अनेन तपसा धर्म संतुष्टं मम मानसम् ॥ वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि वरं ब्रूहीत्युवाच ह ॥ ४० ॥ इच्छसे त्वं यथा कामान्यथा ते मनसि स्थितान् ॥ यं यं प्रार्थयसे भद्र ददामि तव सांप्रतम् ॥ ४१ ॥ व्यास उवाच॥ एवं संभाषमाणं तु दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥ वल्मीकादुत्थितो राजन्गृहीत्वा करसंपुटम् ॥ तुष्टाव वचनैः शुद्धैर्लोकनाथमरिंदमम् ॥ ४२॥ धर्म उवाच॥ ईश्वराय नमस्तुभ्यं नमस्ते योगरूपिणे॥ नमस्ते तेजो

स्थान को गये जहां कि धर्मराजजी टिके थे ॥ ३९ ॥ महादेवजी बोले कि हे धर्म ! इस तप से मेरा मन प्रसन्न होगया वरदान को कहो ऐसा तीन बार उन शिवजी ने कहा ॥ ४० ॥ जैसे कामों को तुम चाहते हो व जैसे तुम्हारे मन में स्थित हैं हे भद्र ! जिस जिस मनोरथ को तुम चाहते हो उसको इस समय दूंगा ॥ ४१ ॥ व्यास जी बोले कि इस प्रकार कहते हुए लोकनाथ व शत्रुनाशक महेश्वरदेवजी को देखकर बँबौरि से उठे हुए धर्मराज ने हाथों को जोड़कर शुद्ध वचनों से स्तुति किया ॥ ४२ ॥ धर्म बोले कि आप ईश्वर के लिये नमस्कार है व योगरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है तेजोरूपी आपके लिये प्रणाम है व हे नीलकण्ठ ! तुम्हारे लिये प्रणाम

है ॥ ४३ ॥ व ध्यान करनेवालों के अनुरूप भक्ति से गम्य आपके लिये प्रणाम है व ब्रह्मरूपी आपके लिये नमस्कार है हे विष्णुरूप ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४४ ॥ व स्थूल, सूक्ष्म व अणुरूप आपके लिये प्रणाम है व कामरूपी आप सृष्टि, स्थिति तथा संहार करनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ४५ ॥ व नित्य, सौम्य, मृड व हरि के लिये प्रणाम है व आतपरूप आपके लिये प्रणाम है तथा शीतकर आपके लिये नमस्कार है ॥ ४६ ॥ हे सृष्टिरूप ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे लोकपाल ! आपके लिये नमस्कार है और उग्र, भीम व शांतरूप आपके लिये नमस्कार है ॥ ४७ ॥ अनंतरूप आपके लिये प्रणाम है व विश्वरूप तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे चन्द्रशेखर ! भस्म

रूपाय नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते ॥ ४३ ॥ ध्यातॄणामनुरूपाय भक्तिगम्याय ते नमः ॥ नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूप नमोऽस्तु ते ॥ ४४ ॥ नमः स्थूलाय सूक्ष्माय अणुरूपाय वै नमः ॥ नमस्ते कामरूपाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ॥ ४५ ॥ नमो नित्याय सौम्याय मृडाय हरये नमः ॥ आतपाय नमस्तुभ्यं नमः शीतकराय च ॥ ४६ ॥ सृष्टिरूप नमस्तुभ्यं लोकपाल नमोऽस्तु ते ॥ नम उग्राय भीमाय शान्तरूपाय ते नमः ॥ ४७ ॥ नमश्चानन्तरूपाय विश्वरूपाय ते नमः ॥ नमो भस्माङ्गलिप्ताय नमस्ते चन्द्रशेखर ॥ नमोऽस्तु पञ्चवक्त्राय त्रिनेत्राय नमोऽस्तु ते ॥ ४८ ॥ नमस्ते व्यालभूषाय काष्ठापटधराय च ॥ नमोऽन्धकविनाशाय दक्षपापापहारिणे ॥ कामनिर्दाहिने तुभ्यं त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते ॥ ४९ ॥ चत्वारिंशच्च नामानि मयोक्तानि च यः पठेत् ॥ शुचिर्भूत्वा त्रिकालं तु पठेद्वा शृणुयादपि ॥ ५० ॥ गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च सुरापो गुरुतल्पगः ॥ ब्रह्महा हेमहारी च ह्यथवा वृषलीपतिः ॥ ५१ ॥ स्त्रीबालघातकश्चैव पापी चा

को अंगमें लगाये हुए आपके लिये नमस्कारहै व पंचमुख तथा त्रिनेत्र आपके लिये प्रणाम है ॥ ४८ ॥ व सर्पों का भूषण करनेवाले व दिशारूपी वसनों को धारनेवाले आपके लिये प्रणाम है व अन्धक को नाशनेवाले और दक्ष के पाप को नाशनेवाले आपके लिये प्रणाम है हे त्रिपुरारे ! कामदेव को जलानेवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ४९ ॥ मुझ से कहेहुए चालीस नामोंको जो पढ़ता है और पवित्र होकर जो त्रिकाल पढ़ता या सुनता है ॥ ५० ॥ गोघाती, कृतघ्न, मद्यपी, गुरु की शय्या पै बैठनेवाला, ब्रह्मघाती, सुवर्णहारी या शूद्रा का पति ॥ ५१ ॥ व स्त्री और बालक को मारनेवाला, पापी, असत्यवादी, दुराचारी, चोर व पराई स्त्री से संगम करने

वाला ॥ ५२ ॥ और दूसरे को कलंक लगानेवाला, वैरी व जीविका को लोप करनेवाला तथा अकार्यकारी, कार्यनाशक, ब्रह्मशत्रु व नीच ब्राह्मण वह सब पापों से छूटजाता है और कैलास को जाता है ॥ ५३ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार बहुत वचनों से जब धर्मराजने आपही मस्तक से प्रणाम कर बड़ी भक्ति से शिवजी की स्तुति की ॥ ५४ ॥ तब प्रसन्न होतेहुए शिवजी ने उन धर्म से यह उत्तम वचन कहा कि हे महाभाग ! जो तुम्हारे मनमें वर्त्तमान हो उस वरदान को मांगो ॥ ५५ ॥ यमराज बोले कि हे महाभाग, देवेश ! यदि प्रसन्न हो तो मेरे ऊपर दयाकर चराचर त्रिलोक को कीजिये ॥ ५६ ॥ और यह स्थान संसार में मेरे नाम से प्रसिद्ध होवै और अच्छेद्य, अभेद्य व

नृतभाषणः ॥ अनाचारी तथा स्तेयी परदाराभिगस्तथा ॥ ५२ ॥ परापवादी द्वेषी च वृत्तिलोपकरस्तथा ॥ अकार्यकारी कृत्यघ्नो ब्रह्मद्विड्डाडवाधमः ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यः कैलासं स च गच्छति ॥ ५३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं बहुभिर्वाक्यैर्धर्मराजेन वै मुहुः ॥ ईडितोऽपि महद्भक्त्या प्रणम्य शिरसा स्वयम् ॥ ५४ ॥ तुष्टः शम्भुस्तदा तस्मा उवाचेदं वचः शुभम् ॥ वरं वृणु महाभाग यत्ते मनसि वर्त्तते ॥ ५५ ॥ यम उवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि देवेश दयां कृत्वा ममोपरि ॥ तत्कुरुष्व महाभाग त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ५६ ॥ मन्नाम्ना स्थानमेतद्धि ख्यातं लोके भवेदिति ॥ अच्छेद्यं चाप्यभेद्यं च पुण्यं पापप्रणाशनम् ॥ ५७ ॥ स्थानं कुरु महादेव यदि तुष्टोऽसि मे भव ॥ व्यास उवाच ॥ शिवेन स्थानकं दत्तं काशीतुल्यं तदा नृप ॥ तद्दत्त्वा च पुनः प्राह अन्यं वरय सत्तम ॥ ५८ ॥ धर्म उवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि देवेश दयां कृत्वा ममोपरि ॥ तं कुरुष्व महाभाग त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ वरेणैवं यथा ख्यातिं गमिष्यामि युगे युगे ॥ ५९ ॥ ईश्वर

पवित्र तथा पापनाशक ॥ ५७ ॥ स्थान को कीजिये यदि हे महादेव, भव ! मेरे ऊपर आप प्रसन्न हो व्यासजी बोले कि हे राजन् ! तब शिवजी ने काशी के समान स्थान को दिया व उसको देकर फिर कहा कि हे सत्तम ! अन्य वरदान को मांगो ॥ ५८ ॥ धर्मराज बोले कि हे महाभाग, देवेश ! यदि प्रसन्न हो तो मेरे ऊपर दया करके उस चराचर समेत त्रिलोक को कीजिये कि जिस प्रकार ऐसे वर से यह स्थान युग युग में प्रसिद्धि को प्राप्त होवै ॥ ५९ ॥ महादेवजी बोले कि हे कीनाश ! कहिये मैं उस सब

तुम्हारे मनोरथ को करूंगा। मैं तपस्या से प्रसन्न हूं इससे चाहेहुए वर को दूंगा ॥ ६० ॥ यमराज बोले कि हे शंकर, देव ! यदि मुझको वांछित देते हो तो इस स्थान में तुम सदैव मेरे नाम से होवो ॥ ६१ ॥ व हे महेश्वर, देव ! जिस प्रकार चराचर समेत त्रिलोक में धर्मारण्य ऐसी प्रसिद्धि होवै वैसाही कीजिये ॥ ६२ ॥ महादेवजी बोले कि हे देव ! धर्मारण्य ऐसा तुम्हारे नाम से स्थापित यह स्थान सदैव युग युग में प्रसिद्ध होगा व और जो कुछ कहिये उसको इस समय मैं करूं ॥ ६३ ॥ यमराज बोले कि दो योजन चौड़ा मेरे नाम से उत्तम तीर्थ होवै जोकि मुक्ति का शाश्वतस्थान व सब प्राणियों को पवित्रकारक होवै ॥ ६४ ॥ और मक्षिका, कीट, पशु, पक्षी,

उवाच ॥ ब्रूहि कीनाश तत्सर्वं प्रकरोमि तवेप्सितम् ॥ तपसा तोषितोऽहं वै ददामि वरमीप्सितम् ॥ ६० ॥ यम उवाच ॥ यदि मे वाञ्छितं देव ददासि तर्हि शङ्कर ॥ अस्मिन्स्थाने महाक्षेत्रे मन्नाम्ना भव सर्वदा ॥ ६१ ॥ धर्मारण्यमिति ख्यातिस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ यथा संजायते देव तथा कुरु महेश्वर ॥ ६२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ धर्मारण्यमिदं ख्यातं सदा भूयाद्युगे युगे ॥ त्वन्नाम्ना स्थापितं देव ख्यातिमेतद्गमिष्यति ॥ अथान्यदपि यत्किञ्चित्करोम्येष वदस्व तत् ॥ ६३ ॥ यम उवाच ॥ योजनद्वयविस्तीर्णं मन्नाम्ना तीर्थमुत्तमम् ॥ मुक्तेश्च शाश्वतं स्थानं पावनं सर्वदेहिनाम् ॥ ६४ ॥ मक्षिकाः कीटकाश्चैव पशुपक्षिमृगादयः ॥ पतङ्गा भूतवेतालाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ ६५ ॥ नारी वाथ नरो वाथ मत्क्षेत्रे धर्मसंज्ञके ॥ त्यजते यः प्रियान्प्राणान्मुक्तिर्भवतु शाश्वती ॥ ६६ ॥ एवमस्त्विति सर्वोपि देवा ब्रह्मादयस्तथा ॥ पुष्पवृष्टिं प्रकुर्वाणाः परं हर्षमवाप्नुयुः ॥ ६७ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुर्गन्धर्वपतयो जगुः ॥ ववुः पुण्यास्तथा वाता ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ६८ ॥ सूत उवाच ॥ यमेन तपसा भक्त्या तोषितो हि सदाशिवः ॥ उवाच वचनं देवं

मृगादिक, पतंग, भूत, वेताल, पिशाच, नाग व राक्षस ॥ ६५ ॥ स्त्री व पुरुष जो धर्मनामक मेरे क्षेत्र में प्रिय प्राणों को छोड़े उसकी अविनाशिनी मुक्ति होवै ॥ ६६ ॥ ऐसाही होवै यह शिवजी ने कहा और पुष्पवृष्टि को करते हुए ब्रह्मादिक देवता बड़े हर्ष को प्राप्त हुए ॥ ६७ ॥ और देवताओं की दुन्दुभी बजनेलगीं व गंधर्वपति गाने लगे और पवित्र पवन चलने लगे व अप्सराओं के गण नाचनेलगे ॥ ६८ ॥ सूतजी बोले कि यमराज की तपस्या व भक्ति से प्रसन्न होतेहुए सदाशिवजी ने धर्मराज

देवजी से उत्तम व सुन्दर वचन को कहा ॥ ६९ ॥ कि हे तात ! मुझको आज्ञा दीजिये कि जिस प्रकार देवताओं के हित की कामना से मैं शीघ्रही कैलास नामक श्रेष्ठ पर्वत को जाऊं ॥ ७० ॥ यमराज बोले कि हे महेश्वर ! तुम को मेरा स्थान छोड़ना न चाहिये हे देव ! तुम्हारे वचन से यह स्थान कैलास से अधिक होवै ॥ ७१ ॥ शिवजी बोले कि तुमने बहुत अच्छा व योग्य कहा कि एक अंश से मेरी यहां स्थिति होगी और तुम्हारे निर्मल व उत्तम स्थान को मैं नहीं छोड़ूंगा ॥ ७२ ॥ मेरे नाम से यहां विश्वेश्वर नामक लिंग होगा ऐसा कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ७३ ॥ तब शिवजी के वचन से वहां वह अद्भुत लिंग हुआ व उसको देखकर

रम्यं साधुमनोरमम् ॥ ६९ ॥ अनुज्ञां देहि मे तात यथा गच्छामि सत्वरम् ॥ कैलासं पर्वतश्रेष्ठं देवानां हितकाम्यया ॥ ७० ॥ यम उवाच ॥ न मे स्थानं परित्यक्तुं त्वया युक्तं महेश्वर ॥ कैलासादधिकं देव जायते वचनादिदम् ॥ ७१ ॥ शिव उवाच ॥ साधु प्रोक्तं त्वया युक्तमेकांशेनात्र मे स्थितिः ॥ न मया त्यजितं साधु स्थानं तव सुनिर्मलम् ॥ ७२ ॥ विश्वेश्वरं महालिङ्गं मन्नाम्नात्र भविष्यति ॥ एवमुक्त्वा महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७३ ॥ शिवस्य वचनात्तत्र तदा लिङ्गं तदद्भुतम् ॥ तं दृष्ट्वा च सुरैस्तत्र यथानामानुकीर्त्तनम् ॥ ७४ ॥ स्वं स्वं लिङ्गं तदा सृष्टं धर्मारण्ये सुरोत्तमैः ॥ यस्य देवस्य यल्लिङ्गं तन्नाम्ना परिकीर्तितम् ॥ ७५ ॥ स्मरणात्पूजनात्तस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७६ ॥ सूत उवाच ॥ धर्मेण स्थापितं लिङ्गं धर्मेश्वरमुपस्थितम् ॥ यद्ब्रह्म योगिनां गम्यं सर्वेषां हृदये स्थितम् ॥ तिष्ठते यस्य लिङ्गं तु स्वयम्भुवमिति स्मृतम् ॥ ७७ ॥ भूतनाथं च सम्पूज्य व्याधिभिर्मुच्यते जनः ॥ धर्मवापीं ततश्चैव

वहां उत्तम देवताओंने जिसका जैसा नाम कहाजाता था उसने वैसेही अपने अपने लिंग को उस समय बनाया और जिस देवता का जो लिंगहुआ वह उसके नाम से कहा गया ॥ ७४।७५ ॥ सूतजी बोले कि धर्मजी से स्थापित धर्मेश्वरलिंग उपस्थित हुआ उसके स्मरण व पूजन से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ७६ ॥ और योगियों के प्राप्त होने योग्य जो ब्रह्म सबोंके हृदयमें स्थित है व जिनका स्वयंभुव ऐसा कहा हुआ लिंग स्थित है ॥ ७७ ॥ उन भूतनाथजी को पूजकर मनुष्य रोगों से छूटजाता है

तदनन्तर वहींपर धर्मराजजी ने सुन्दरी धर्मवापी को किया ॥ ७८ ॥ और करोडों तीर्थों का जल लाकर बावली में छोड़दिया सुन्दर यमतीर्थस्वरूप में स्नान करके ॥ ७९ ॥ व शुद्ध चित्तवाले ऋषियों तथा देवताओं के नहाने के लिये उसमें नहाकर व जलको पीकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ८० ॥ और धर्मवापी में नहाकर व धर्मेश्वर शिवजीको देखकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है और माता के गर्भ में नहीं प्रवेश करता है ॥ ८१ ॥ और उसमें नहाकर व्याधि दोष के नाश के लिये व क्लेश दोष की शांति के लिये जो मनुष्य यमतर्पण करता है ॥ ८२ ॥ कि यम, धर्मराज, मृत्यु, अंतक, वैवस्वत, काल, दध्न, परमेष्ठी के लिये ॥ ८३ ॥ व वृकोदर, वृक

चक्रे तत्र मनोरमाम् ॥ ७८ ॥ आहत्य कोटितीर्थानां जलं वाप्यां मुमोच ह ॥ यमतीर्थस्वरूपे च स्नानं कृत्वा मनोरमम् ॥ ७९ ॥ स्नानार्थं देवतानां च ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ तत्र स्नात्वा च पीत्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८० ॥ धर्मवाप्यां नरः स्नात्वा दृष्ट्वा धर्मेश्वरं शिवम् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो न मातुर्गर्भमाविशेत् ॥ ८१ ॥ तत्र स्नात्वा नरो यस्तु करोति यमतर्पणम् ॥ व्याधिदोषविनाशार्थं क्लेशदोषोपशान्तये ॥ ८२ ॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ॥ वैवस्वताय कालाय दध्नाय परमेष्ठिने ॥ ८३ ॥ वृकोदराय वृकाय दक्षिणेशाय ते नमः ॥ नीलाय चित्रगुप्ताय चित्र वैचित्र ते नमः ॥ ८४ ॥ यमार्थं तर्पणं यो वै धर्मवाप्यां करिष्यति ॥ साक्षतैर्नामभिश्चैतैस्तस्य नोपद्रवो भवेत् ॥ ८५ ॥ एकान्तरस्तृतीयस्तु ज्वरश्चातुर्थिकस्तथा ॥ वेलायां जायते यस्तु ज्वरः शीतज्वरस्तथा ॥ ८६ ॥ पीडयन्ति न चैतस्य यस्यैव मतिरीदृशी ॥ रेवत्यादिग्रहा दोषा डाकिनी शाकिनी तथा ॥ ८७ ॥ धनधान्यसमृद्धिः स्यात्सं

और दक्षिणेश तुम्हारे लिये नमस्कार है व नील तथा चित्रगुप्त के लिये व हे चित्र, वैचित्र ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ८४ ॥ इस प्रकार धर्मवापी में जो मनुष्य अक्षतों समेत इन नामों से यमराज के लिये तर्पण करता है उसके उपद्रव नहीं होता है ॥ ८५ ॥ और एकांतर, तृतीय व चातुर्थिक ज्वर और जो समय में ज्वर व शीतज्वर होता है ॥ ८६ ॥ ये इस मनुष्य को पीडित नहीं करते हैं जिसकी ऐसी बुद्धि होती है व रेवती आदिक ग्रहदोष डाकिनी व शाकिनी नहीं होती हैं ॥ ८७ ॥ व धन, धान्य

की समृद्धि होती है और सदैव सन्तान बढ़ती है और स्नान कर जितेन्द्रिय मनुष्य भूतेश्वरजीको पूजकर ॥ ८८ ॥ व अंग समेत रुद्रजप कर व्याधि के दोषों से छुटजाता है अमावस, सोमदिन, व्यतीपात, वैधृति, संक्रांति व ग्रहण में वहां मनुष्यों को श्राद्ध कहा गया है ॥ ८९ ॥ व जो प्रसिद्ध मनुष्य तिलों से मिश्रित जल को देता है उसने हज़ारों वर्ष तक श्राद्ध किया पितर लोग इस रहस्य को कहते हैं ॥ ९० ॥ व इक्कीस बार गया में पिंडदान से व धर्मेश्वर में पितरों को एक बार दियाहुआ श्राद्ध अक्षय होता है ॥ ९१ ॥ धर्मेश्वर से पश्चिम भाग में विश्वेश्वर के मध्य में धर्मवापी ऐसी प्रसिद्ध वह स्वर्गसोपान को देनेवाली है ॥ ९२ ॥ धर्मबुद्धिवाले धर्मराज ने

ततिर्वर्धते सदा ॥ भूतेश्वरं तु सम्पूज्य सुस्नातो विजितेन्द्रियः ॥ ८८ ॥ साङ्गं रुद्रजपं कृत्वा व्याधिदोषात्प्रमुच्यते ॥ अमावास्यां सोमदिने व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ संक्रान्तौ ग्रहणे चैव तत्र श्राद्धं स्मृतं नृणाम् ॥ ८९ ॥ श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति ॥ पानीयमेवापि तिलैर्विमिश्रितं ददाति यो वै प्रथितो मनुष्यः ॥ ९० ॥ एक विंशतिवारैस्तु गयायां पिण्डदानतः ॥ धर्मेश्वरे सकृद्दत्तं पितॄणां चाक्षयं भवेत् ॥ ९१ ॥ धर्मेशात्पश्चिमे भागे विश्वे श्वरान्तरेऽपि वा ॥ धर्मवापीति विख्याता स्वर्गसोपानदायिनी ॥ ९२ ॥ धर्मेण निर्मिता पूर्वं शिवार्थं धर्मबुद्धिना ॥ तत्र स्नात्वा च पीत्वा च तर्पिताः पितृदेवताः ॥ ९३ ॥ शमीपत्रप्रमाणं तु पिण्डं दद्याच्च यो नरः ॥ धर्मवाप्यां महा पुण्यां गर्भवासं न चाप्नुयात् ॥ ९४ ॥ कुम्भीपाकान्महारौद्राद्रौरवान्नरकात्पुनः ॥ अन्धतामिस्रकाद्राजन्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ९५ ॥ व्यास उवाच ॥ नैकवर्णं च पानीयं धर्मवाप्यां नरोत्तम ॥ ऋतौ मासे च पक्षे च विपरीतं च जायते ॥ ९६ ॥

पुरातन समय शिवजी के लिये उसको बनाया है उसमें नहाकर व जल को पीकर पितर और देवता तृप्त होते हैं ॥ ९३ ॥ जो मनुष्य महापवित्र धर्मबावली में शमी के पत्ते के प्रमाण भर पिंडको देता है वह गर्भवास को नहीं पाता है ॥ ९४ ॥ और महाभयंकर कुंभीपाक से व रौरव नरक से व हे राजन् ! अंधतामिस्र नरक से मुक्त होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९५ ॥ व्यासजी बोले कि हे नरोत्तम ! धर्मबावली में अनेक रंगका-जल होता है और ऋतु, मास व पक्ष में बदलता है ॥ ९६ ॥

बर्हिषदोऽग्निष्वात्ताश्च आज्यपाः सोमपास्तथा ॥ तृप्तिं प्रयान्ति परमां वाप्यां वै तर्पणेन तु ॥ ९७ ॥ कुरुक्षेत्रादि क्षेत्राणि अयोध्यादिपुरस्तथा ॥ पुष्करादीनि सर्वाणि मुक्तिस्थानानि सन्ति वै ॥ ९८ ॥ तानि सर्वाणि तुल्यानि धर्मकूपोऽधिको भवेत् ॥ मन्त्रो वेदास्तथा यज्ञा दानानि च व्रतानि च ॥ ९९ ॥ अक्षयाणि प्रजायन्ते दत्त्वा जप्त्वा नरेश्वर ॥ अभिचाराश्च ये चान्ये सुसिद्धाथर्ववेदजाः ॥ १०० ॥ ते सर्वे सिद्धिमायान्ति तस्मिन्स्थाने कृता अपि ॥ आदितीर्थं नृपश्रेष्ठ काजेशैरुपसेवितम् ॥ १ ॥ सिद्धिस्थानं सुसौम्यं च ब्रह्माद्यैरपि सेवितम् ॥ कृते तु युग पर्यन्तं त्रेतायां लक्षपञ्चकम् ॥ २ ॥ द्वापरे लक्षमेकं तु दिनैकेन फलं कलौ ॥ एतदुक्तं मया ब्रह्मन्धर्मारण्यस्य वर्ण नम् ॥ फलं चैवात्र सर्वं हि उक्तं द्वैपायनेन तु ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मवाक्यं मनोरमम् ॥ दे वानां हितकामाय आज्ञाप्य च यदुक्तवान् ॥ ४ ॥ धर्म उवाच ॥ अस्मिन्क्षेत्रे प्रकुर्वन्ति विष्णुमायाविमोहिताः ॥ पार दार्यं महादुष्टं स्वर्णस्तेयादिकं तथा ॥ ५ ॥ अन्यच्च विकृतं सर्वं कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ॥ अन्यक्षेत्रे कृतं पापं धर्मारण्ये

और बर्हिषद, अग्निष्वात्त, आज्यप व सोमपसंज्ञक पितर बावली में तर्पण करने से उत्तम तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ९७ ॥ कुरुक्षेत्रादिक क्षेत्र व अयोध्यादि नगर व सब पुष्करादिक जो मुक्तिस्थान हैं ॥ ९८ ॥ वे सब तुल्य हैं और धर्मकूप अधिक है मंत्र, वेद, यज्ञ, दान व व्रत ॥ ९९ ॥ हे नरेश्वर ! वहा देकर व जपकर ये अक्षय होते हैं और अथर्ववेदसे उपजेहुए जो अभिचार हैं वे भलीभांति सिद्ध होते हैं ॥ १०० ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! उस स्थान में कियेहुए भी वे सब सिद्धि को प्राप्त होते हैं और वह आदि तीर्थ ब्रह्मा, विष्णु व महेश से सेवित है ॥ १ ॥ व बहुत सौम्य सिद्धिस्थान ब्रह्मादिक देवताओं से सेवित है सतयुगमें युगभर तक व त्रेतायुग में पांचलाख वर्षतक ॥ २ ॥ और द्वापर में एकलाख वर्ष से जो फल होता है वह कलियुग में एक दिन से फल होता है हे ब्रह्मन् ! यह धर्मारण्य का वर्णन किया गया और इसमें व्यासजी से सब फल कहा गया है ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त मैं सुन्दर धर्म वचन को कहता हूं जोकि हित की कामना के लिये देवताओं को आज्ञा देकर कहा है ॥ ४ ॥ धर्म बोले कि विष्णुजी की माया से मोहित जो मनुष्य इस क्षेत्र में महादुष्ट पराई स्त्री से उपजेहुए व सुवर्ण की चोरी आदिक पाप को करते हैं ॥ ५ ॥ व अन्य सब

विकृत कर्म को करताहुआ मनुष्य नरक को जाता है और अन्य क्षेत्रमें किया हुआ पाप धर्मारण्य में नाश होजाता है ॥ ६ ॥ व धर्मारण्य में किया हुआ पाप वज्रलेप होजाता है जैसे पुण्य वैसेही पाप किया हुआ जो कुछ शुभ, अशुभ पाप है ॥ ७ ॥ वह सब सौ बरस तक नित्य बढ़ता है और कामियों को वह पवित्र क्षेत्र कामदायक है व योगियों को मुक्तिदायक है ॥ ८ ॥ व सदैव धर्मारण्यक्षेत्र सिद्धों को सिद्धिदायक कहा गया है पुत्ररहित मनुष्य पुत्रों को पाता है व निर्धनी धनवान् होता है ॥ ९ ॥ पुरातन समय इस पवित्र कथा को धर्मराजने कहा है जो मनुष्य या स्त्री भक्ति से सुनती है व जो इसको सुनाता है उसको हज़ार गऊ का फलहोता है और

विनश्यति ॥ ६ ॥ धर्मारण्ये कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ॥ यथा पुण्यं तथा पापं यत्किञ्चिच्च शुभाशुभम् ॥ ७ ॥ तत्सर्वं वर्द्धते नित्यं वर्षाणि शतमित्युत ॥ कामिनां कामदं पुण्यं योगिनां मुक्तिदायकम् ॥ ८ ॥ सिद्धानां सिद्धिदं प्रोक्तं धर्मारण्यं तु सर्वदा ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो धनवान्भवेत् ॥ ९ ॥ एतदाख्यानक पुण्यं धर्मेण कथितं पुरा ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या नारी वा श्रावयेत्तु यः ॥ गोसहस्रफलं तस्य अन्ते हरिपुरं व्रजेत् ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येक्षेत्रस्थापनन्नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यनिवासिना ॥ यत्कार्यं पुरुषेणेह गार्हस्थ्यमनुतिष्ठता ॥ १ ॥ धर्मारण्येषु ये जाता ब्राह्मणाः शुद्धवंशजाः ॥ अष्टादशसहस्राश्च काजेशैश्च विनिर्मिताः ॥ २ ॥ सदाचाराः पवित्राश्च ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ॥ तेषां दर्शनमात्रेण महापापैर्विमुच्यते ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ पाराशर्य समाख्याहि सदा

अन्त में वह विष्णुपुर को जाता है ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांक्षेत्रस्थापनन्नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ⊛ ॥

दो० । करै गृहस्थाश्रमी जिमि सदाचार को कर्म। सोइ पांच अध्याय महँ कह्यो चरित्र सुपर्म ॥ व्यासजी बोले कि इसके उपरान्त धर्मारण्यनिवासी गृहस्थाश्रमी पुरुष को इस संसार में जो करना चाहिये उसको मैं कहता हूं ॥ १ ॥ कि धर्मारण्यमें ब्रह्मा, विष्णु व महेशजी से रचेहुए शुद्ध वंश में उत्पन्न जो अठारह हज़ार ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥ वे उत्तम आचारवाले व पवित्र तथा ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं और उनके दर्शनही से मनुष्य महापापों से छूटजाता है ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर

जी बोले कि हे पाराशर्य ! मुझ से उत्तम आचार को कहिये क्योंकि आचार से मनुष्य धर्म को पाता है व आचार से फल को पाता है और आचार से लक्ष्मी को पाता है इससे आचार को मुझ से कहिये ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले कि स्थावर, कीट, जलजन्तु, पक्षी, पशु व मनुष्य ये क्रम से धर्मवान् हैं और इनसे देवता धर्मवान् हैं ॥ ५ ॥ हज़ार भाग से पहले व दूसरे क्रमवाले ये सब पाप से मुक्ति में स्थित होकर बड़े ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥ ६ ॥ चार प्रकारके भी जन्तुवोंमें प्राणधारी उत्तम हैं व हे नृप ! प्राणधारियों से भी सब बुद्धि से कार्य करनेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ७ ॥ व बुद्धिमानों से मनुष्य श्रेष्ठ हैं व उनसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं और ब्राह्मणों से भी विद्वान् श्रेष्ठ हैं व विद्वानों से

चारं च मे प्रभो ॥ आचाराद्धर्ममाप्नोति आचाराल्लभते फलम् ॥ आचाराच्छ्रियमाप्नोति तदाचारं वदस्व मे ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ स्थावराः कृमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नराः ॥ क्रमेण धार्मिकास्त्वेत एतेभ्यो धार्मिकाः सुराः ॥ ५ ॥ सहस्रभागात्प्रथमे द्वितीयानुक्रमास्तथा ॥ सर्व एते महाभागाः पापान्मुक्तिसमाश्रयाः ॥ ६ ॥ चतुर्णामपि भूतानां प्राणिनोतीव चोत्तमाः ॥ प्राणिभ्योपि नृपश्रेष्ठाः सर्वे बुद्ध्युपजीविनः ॥ ७ ॥ मतिमद्भ्यो नराः श्रेष्ठास्तेभ्यः श्रेष्ठास्तु वाडवाः ॥ विप्रेभ्योऽपि च विद्वांसो विद्वद्भ्यः कृतबुद्धयः ॥ ८ ॥ कृतधीभ्योऽपि कर्तारः कर्तृभ्यो ब्रह्मतत्पराः ॥ न तेभ्योऽभ्यधिकः कश्चित्त्रिषु लोकेषु भारत ॥ ९ ॥ अन्योन्यपूजकास्ते वै तपोविद्याविशेषतः ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मणा सृष्टः सर्वभूतेश्वरो यतः ॥ १० ॥ अतो जगत्स्थितं सर्वं ब्राह्मणोऽर्हति नापरः ॥ सदाचारो हि सर्वार्होनाचाराद्विच्युतः पुनः ॥ ११ ॥ तस्माद्विप्रेण सततं भाव्यमाचारशीलिना ॥ विद्वेषरागरहिता अनुतिष्ठन्ति यं मुने ॥ १२ ॥ सद्भिस्तं

प्रवीण बुद्धिवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ८ ॥ व कृतबुद्धियों से कर्त्ता व कर्त्ताजनों से भी ब्रह्ममें तत्पर मनुष्य श्रेष्ठ हैं व हे भारत ! तीनों लोकों में उनसे अधिक कोई नहीं है ॥ ९ ॥ और तपस्या व विद्या की अधिकता से वे परस्पर पूजक होते हैं क्योंकि ब्राह्मण ब्रह्मा से सब प्राणियोंका स्वामी बनाया गया है ॥ १० ॥ इस कारण संसार में स्थित सब वस्तु के ब्राह्मण योग्य है अन्य नहीं है और उत्तम आचारवाला ब्राह्मण सब कार्य के योग्य होता है व आचार से रहित योग्य नहीं होता है ॥ ११ ॥ इस कारण सदैव ब्राह्मण को आचार में अभ्यास करना चाहिये हे मुने ! विद्वेष व अनुराग से रहित मनुष्य जिस कार्य को करते हैं ॥ १२ ॥ उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् लोग उस धर्म

के मूल को सदाचार करते हैं क्योंकि लक्षणों से हीन भी भलीभांति आचार में तत्पर ॥ १३ ॥ श्रद्धालु व ईर्षारहित मनुष्य सैकड़ों वर्षतक जीता है व अपने अपने कर्मों में श्रुति, स्मृति से कहेहुए ॥ १४ ॥ धर्ममूल सदाचार को निरालसी पुरुष सेवन करै और संसार में दुराचारपरायण पुरुष निन्दनीय होता है ॥ १५ ॥ और रोगों से तिरस्कृत होता है व सदैव अल्पायु व दुःखी होता है और पराधीन कर्म छोड़ना चाहिये व सदैव अपने वश कार्य को करना चाहिये ॥ १६ ॥ क्योंकि पराधीन दुःखी होता है व अपने वश सुखी होताहै जिस कर्म के करने पर चित्त प्रसन्न होताहै ॥ १७ ॥ वही कर्म करना चाहिये विपरीत कभी न करै जिसलिये नियम व यम पहला धर्म सर्वस्व

सदाचारं धर्ममूलं विदुर्बुधाः ॥ लक्षणैः परिहीनोऽपि सम्यगाचारतत्परः ॥ १३ ॥ श्रद्धालुरनसूयुश्च नरो जीवेत्समाः शतम् ॥ श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं स्वेषु स्वेषु च कर्मसु ॥ १४ ॥ सदाचारं निषेवेत धर्ममूलमतन्द्रितः ॥ दुराचाररतो लोके गर्हणीयः पुमान्भवेत् ॥ १५ ॥ व्याधिभिश्चाभिभूयेत सदाल्पायुः सुदुःखभाक् ॥ त्याज्यं कर्म पराधीनं कार्यमात्मवशं सदा ॥ १६ ॥ दुःखी यतः पराधीनः सदैवात्मवशः सुखी ॥ यस्मिन्कर्मण्यन्तरात्मा क्रियमाणे प्रसीदति ॥ १७ ॥ तदेव कर्म कर्त्तव्यं विपरीतं न च क्वचित् ॥ प्रथमं धर्म्मसर्वस्वं प्रोक्तं यन्नियमा यमाः ॥ १८ ॥ अतस्तेष्वेव वै यत्नः कर्त्तव्यो धर्ममिच्छता ॥ सत्यं क्षमार्जवं ध्यानमानृशंस्यमहिंसनम् ॥ १९ ॥ दमः प्रसादो माधुर्यं मृदुतेति यमा दश ॥ शौचं स्नानं तपो दानं मौनेज्याध्ययनं व्रतम् ॥ २० ॥ उपोषणोपस्थदण्डो दशैते नियमाः स्मृताः ॥ कामं क्रोधं दमं मोहं मात्सर्यं लोभमेव च ॥ २१ ॥ अमून्षड्वैरिणोजित्वा सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ शनैः सञ्चिनुयाद्धर्मं वल्मीकं

कहा गया है ॥ १८ ॥ इस कारण धर्म की इच्छावाले पुरुष को उन्हीं में यत्न करना चाहिये और सत्य, क्षमा, ऋजुता, ध्यान, अक्रूरता, अहिंसन ॥ १९ ॥ इन्द्रियनिग्रह, प्रसाद, माधुर्य, मृदुता ये दश यम हैं और पवित्रता, स्नान, तप, दान, मौन, यज्ञ, पठन व व्रत ॥ २० ॥ उपवास व योनि और लिंग को दंडदेना ये दश नियम कहे गये हैं और काम, क्रोध, दम, मोह, मत्सरता व लोभ ॥ २१ ॥ इन छो वैरियोंको जीतकर मनुष्य सब कहीं विजयी होता है और जैसे बेंबौरि बनानेवाला कीट बेंबौरि

को इकट्ठा करता है वैसेही धीरे २ धर्म को इकट्ठा करै ॥ २२ ॥ और पराई पीड़ा को न करता हुआ पुरुष परलोक में सहाय करनेवाले धर्म को करै क्योंकि रक्षाकिया हुआ धर्मही परलोक में सहायी होता है ॥ २३ ॥ पिता, माता, पुत्र, भाई, स्त्री व बन्धुजनों से अधिक प्राणी अकेला पैदा होता है व अकेलाही मरता है ॥ २४ ॥ और अकेला पुण्य को भोगता है व अकेलाही पाप को भोगता है और शरीर मर जानेपर काठ व ढेले के समान अकेले प्राणी को छोड़कर ॥ २५ ॥ बन्धुलोग विमुख होजाते हैं व धर्म जातेहुए जीव के पीछे जाता है इस कारण इस लोक व परलोक में सहायता करनेवाले धर्म को इकट्ठा करै ॥ २६ ॥ क्योंकि धर्म को सहायक पाकर

शृङ्गवान्यथा ॥ २२ ॥ परपीडामकुर्वाणः परलोकसहायिनम् ॥ धर्म एव सहायी स्यादमुत्र परिरक्षितः ॥ २३ ॥ पितृमातृसुतभ्रातृयोषिद्बन्धुजनाधिकः ॥ जायते चैकलः प्राणी म्रियते च तथैकलः ॥ २४ ॥ एकलः सुकृतं भुङ्क्ते भुङ्क्ते दुष्कृतमेकलः ॥ देहे पञ्चत्वमापन्ने त्यक्त्वैकं काष्ठलोष्टवत् ॥ २५ ॥ बान्धवा विमुखा यान्ति धर्मो यान्तमनुव्रजेत् ॥ अतः सञ्चिनुयाद्धर्ममत्राऽमुत्र सहायिनम् ॥ २६ ॥ धर्मं सहायिनं लब्ध्वा सन्तरेदुस्तरं तमः ॥ सम्बन्धानाचरेन्नित्यमुत्तमैरुत्तमैः सुधीः ॥ २७ ॥ अधमानधमांस्त्यक्त्वा कुलमुत्कर्षतां नयेत् ॥ उत्तमानुत्तमानेव गच्छेद्धीनांश्च वर्जयेत् ॥ ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥ २८ ॥ अनध्ययनशीलं च सदाचारविलङ्घिनम् ॥ सालसं च दुरन्नादं ब्राह्मणं बाधतेऽन्तकः ॥ २९ ॥ अतोऽभ्यस्येत्प्रयत्नेन सदाचारं सदा द्विजः ॥ तीर्थान्यप्यभिलष्यन्ति सदाचारिसमागमम् ॥ ३० ॥ रजनी

मनुष्य कठिन अन्धकार को नॉघजाता है व विद्वान् मनुष्य नित्य उत्तम उत्तम मनुष्यों से सम्बन्ध करै ॥ २७ ॥ और नीच नीच पुरुषों को छोड़कर वंश को उन्नति में प्राप्त करै और उत्तम उत्तम जनों के समीप जावै व हीनजनों को वर्जित करै तो ब्राह्मण श्रेष्ठताको प्राप्त होता है व पाप से शूद्रता को प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ और वेदपाठ न करनेवाले व सदाचार को उल्लंघन करनेवाले तथा आलसी व दुष्ट अन्न को खानेवाले ब्राह्मण को यमराज बाधा करते हैं ॥ २९ ॥ इस कारण सदैव ब्राह्मण बड़े यत्न से उत्तम आचार का अभ्यास करै क्योंकि उत्तम आचारवाले प्राणी के समागम की तीर्थ भी अभिलाष करते हैं ॥ ३० ॥ रात्रि के अन्त में आधा पहर ब्राह्म समय कहा

जाता है उस समय उठकर विद्वान् सदैव अपने हित को चिन्तन करै ॥ ३१ ॥ पहले गणेशजी को स्मरण करै उसके उपरान्त पार्वती समेत शिवजी को व लक्ष्मी समेत श्रीरंग और कमल से उपजेहुए ब्रह्मा को स्मरण करै ॥ ३२ ॥ व इन्द्रादिक सब देवता व वसिष्ठादिक मुनियों को स्मरण करै और गंगादिक सब नदी व श्रीशैलादिक समस्त पर्वतों को स्मरण करै ॥ ३३ ॥ और क्षीरोदादिक समुद्र व मानसादिक तड़ागों को स्मरण करै और नंदनादिक वन व कामदुघादिक गौवों को स्मरण करै ॥ ३४ ॥ और कल्पवृक्षादिक वृक्ष व सुवर्णादिक धातु तथा उर्वशी आदिक देवांगना व प्रह्लादादिक विष्णु के भक्तोंको स्मरण करै ॥ ३५ ॥ व सब तीर्थों से उत्तमोत्तम

प्रान्तयामार्द्धं ब्राह्मः समय उच्यते ॥ स्वहितं चिन्तयेत्प्राज्ञस्तस्मिंश्चोत्थाय सर्वदा ॥ ३१ ॥ गजास्यं संस्मरेदादौ तत ईशं सहाम्बया ॥ श्रीरङ्गं श्रीसमेतं तु ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥ ३२ ॥ इन्द्रादीन्सकलान्देवान्वसिष्ठादीन्मुनीनपि ॥ गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः श्रीशैलाद्यखिलान्गिरीन् ॥ ३३ ॥ क्षीरोदादीन्समुद्रांश्च मानसादिसरांसि च ॥ वनानि नन्दनादीनि धेनूः कामदुघादयः ॥ ३४ ॥ कल्पवृक्षादिवृक्षांश्च धातून्काञ्चनमुख्यतः ॥ दिव्यस्त्रीरुर्वशीमुख्याः प्रह्लादाद्यान्हरेः प्रियान् ॥ ३५ ॥ जननीचरणौ स्मृत्वा सर्वतीर्थोत्तमोत्तमौ ॥ पितरं च गुरुंश्चापि हृदि ध्यात्वा प्रसन्नधीः ॥ ३६ ॥ ततश्चावश्यकं कर्तुं नैर्ऋतीं दिशमाव्रजेत् ॥ ग्रामाद्धनुःशतं गच्छेन्नगराच्च चतुर्गुणम् ॥ ३७ ॥ तृणैराच्छाद्य वसुधां शिरः प्रावृत्य वाससा ॥ कर्णोपवीत उदग्वक्त्रो दिवसे सन्ध्ययोरपि ॥ ३८ ॥ विण्मूत्रे विसृजेन्मौनी निशायां दक्षिणामुखः ॥ न तिष्ठन्नाशु नो विप्रगोवह्न्यनिलसम्मुखः ॥ ३९ ॥ न फालकृष्टे भूभागे न रथ्यासेव्यभू

माता के चरणों को स्मरण कर पिता व गुरु को हृदय में ध्यानकर प्रसन्नबुद्धि मनुष्य ॥ ३६ ॥ उसके उपरान्त आवश्यक कार्य करने के लिये नैर्ऋत्य दिशा को जावै ग्राम से सौ धनुष व नगर से चार सौ धनुष जावै ॥ ३७ ॥ व तृणों से पृथ्वी को आच्छादित कर और वसन से मस्तक को आच्छादन कर दिन में व प्रातःकाल और संध्या में उत्तर मुख बैठकर यज्ञोपवीत को कर्ण के ऊपर चढ़ाकर ॥ ३८ ॥ मौन होकर मल, मूत्र त्याग करै और रात्रि में दक्षिण मुख होकर मल मूत्रको त्याग करै और न उठकर न शीघ्र न विप्र, गऊ, अग्नि व पवन के सामने मल, मूत्र को त्याग करै ॥ ३९ ॥ न फाल से जोतेहुए भूमिभाग में न चौराहे में मल, मूत्र त्याग करै

और दिशाओंके भागों को न देखै न ज्योतिश्चक्र, न आकाश न मल को देखै ॥ ४० ॥ और बायें हाथ से लिंग को उठाकर यत्नवान् मनुष्य उठै इसके उपरान्त मनुष्य कीटों व कंकड़ों से रहित मिट्टी को लेवै ॥ ४१ ॥ परन्तु मूस से खोदी व उच्छिष्ट और बालों से संयुत मिट्टी को न लेवै फिर एक मिट्टी को गुदा में देवै तदनन्तर जल से धोकर ॥ ४२ ॥ फिर पाच बार बायें हाथ से गुदा को धोवै व चरणों में एक एक मिट्टी को देवै और हाथों में तीन मिट्टियोंको देवै ॥ ४३ ॥ इस प्रकार गंधलेप के नाश होनेतक गृहस्थ शौच करै और ब्रह्मचर्यादिक तीनों आश्रमों में क्रम से दूना शौच करै ॥ ४४ ॥ और दिन में कहेहुए शौच से रात्रि में आधा शौच करै और पराये ग्राम

तले ॥ नालोकयेद्दिशो भागाञ्ज्योतिश्चक्रं नभो मलम् ॥ ४० ॥ वामेन पाणिना शिश्नं धृत्वोत्तिष्ठेत्प्रयत्नवान् ॥ अथो मृदं समादद्याज्जन्तुकर्कर्वर्जिताम् ॥ ४१ ॥ विहाय मूषकोत्खातां चोच्छिष्टां केशसंकुलाम् ॥ गुह्ये दद्यान्मृदं चैकां प्रक्षाल्य चाम्बुना ततः ॥ ४२ ॥ पुनर्वामकरेणेति पञ्चधा क्षालयेद्गुदम् ॥ एकैकपादयोर्दद्यात्तिस्रः पाण्योर्मृद स्तथा ॥ ४३ ॥ इत्थं शौचं गृही कुर्याद्गन्धलेपक्षयावधि ॥ क्रमाद्द्वैगुण्यतः कुर्याद्ब्रह्मचर्यादिषु त्रिषु ॥ ४४ ॥ दिवावि हितशौचाच्च रात्रावर्द्धं समाचरेत् ॥ परग्रामे तदर्धं च पथि तस्यार्धमेव च ॥ ४५ ॥ तदर्धं रोगिणां चापि सुस्थे न्यूनं न कारयेत् ॥ अपि सर्वनदीतोयैर्मृत्कूटैश्चाप्यगोपमैः ॥ ४६ ॥ आपातमाचरेच्छौचं भावदुष्टो न शुद्धिभाक् ॥ आर्द्रधात्रीफलोन्माना मृदः शौचे प्रकीर्तिताः ॥ ४७ ॥ सर्वाश्चाहुतयोऽप्येवं ग्रासाश्चान्द्रायणेपि च ॥ प्रागास्य उद गास्यो वा सूपविष्टः शुचौ भुवि ॥ ४८ ॥ उपस्पृशेद्द्विहीनाभिस्तुषाङ्गारास्थिभस्मभिः ॥ अतिस्वच्छाभिरद्भिश्च याव

में उसका आधा व मार्ग में उसका आधा शौच करै ॥ ४५ ॥ और उसका आधा रोगियों को शौच करना चाहिये व सुस्थ प्राणी में न्यून शौच न करै और सब नदियों के जल से व पर्वत के समान मिट्टी की राशियों से ॥ ४६ ॥ मरण पर्यन्त शौच करै परन्तु स्वभाव से दुष्ट पुरुष शुद्धि का भागी नहीं होता है व बिन सूखे आँवरों के समान मिट्टी शौच में कही गई हैं ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार सब आहुति व ग्रास भी चान्द्रायण में कहेगये हैं व पूर्व मुख व उत्तर मुख होकर पवित्र भूमि में बैठकर ॥ ४८ ॥ भूसी,

अंगार, अस्थि व भस्म से रहित तथा बहुतही निर्मल व हृदय पर्यन्त गयेहुए जलों से शीघ्रतारहित पुरुष आचमन करै ॥ ४९ ॥ और दृष्टि से पवित्र जलों से ब्राह्मण ब्रह्मतीर्थ से आचमन करै और कंठ में प्राप्त जलों से राजा शुद्ध होता है व तालु में प्राप्त जल से वैश्य शुद्ध होता है ॥ ५० ॥ और स्त्री व शूद्र स्पर्शही करने से पवित्र होते हैं और शिर, शब्द व सकंठ और जल में शिखा को छोड़नेवाला मनुष्य ॥ ५१ ॥ और दोनों चरणों को न धोनेवाला मनुष्य आचमन करके भी अशुद्ध माना गया है और पवित्रता के लिये तीन बार जल को पीकर तदनन्तर इन्द्रियों को पवित्र करै ॥ ५२ ॥ व अँगूठा के मूलस्थान से ओठों को धोवै व जलसे हृदय को

हृद्गाभिरत्वरः ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मतीर्थेन दृष्टिपूताभिराचमेत् ॥ कण्ठगाभिर्नृपः शुध्येत्तालुगाभिस्तथोरुजः॥५०॥ स्त्रीशूद्रावथ संस्पर्शमात्रेणापि विशुध्यतः ॥ शिरः शब्दं सकण्ठं वा जले मुक्तशिखोऽपि वा ॥ ५१ ॥ अक्षालितपद द्वन्द्व आचान्तोऽप्यशुचिर्म्मतः ॥ त्रिः पीत्वाम्बु विशुद्ध्यर्थं ततः खानि विशोधयेत् ॥ ५२ ॥ अङ्गुष्ठमूलदेशेन ह्यधरो ष्ठौ परिमृजेत् ॥ स्पृष्ट्वा जलेन हृदयं समस्ताभिः शिरः स्पृशेत् ॥ ५३ ॥ अङ्गुल्यग्रैस्तथा स्कन्धौ साम्बु सर्व्वत्र संस्पृ शेत् ॥ आचान्तः पुनराचामेत्कृत्वा रथ्योपसर्पणम् ॥ ५४ ॥ स्नात्वा भुक्त्वा पयः पीत्वा प्रारम्भे शुभकर्मणाम् ॥ सु प्त्वा वासः परीधाय दृष्ट्वा तथाप्यमङ्गलम् ॥ ५५ ॥ प्रमादादशुचिः स्पृत्वा द्विराचान्तः शुचिर्भवेत् ॥ दन्तधावनं प्रकु र्वीत यथोक्तं धर्मशास्त्रतः ॥ आचान्तोऽप्यशुचिर्यस्मादकृत्वा दन्तधावनम् ॥ ५६ ॥ प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्यां रविवा

स्पर्शकर सब अंगुलियों से मस्तक को स्पर्शकरै ॥ ५३ ॥ व अंगुली के अग्रभागों से कन्धों को स्पर्श करै और जल समेत सब कहीं स्पर्श करै और आचमन कियेहुए मनुष्य गांव के भीतरी मार्ग में जाकर फिर आचमन करै ॥ ५४ ॥ और नहाकर, भोजनकर, जल को पीकर व शुभ कर्मों के प्रारंभ में और सोकर, वसन को पहनकर व अमंगल वस्तु को देखकर ॥ ५५ ॥ व असावधानता से अशुद्ध वस्तु को छूकर दो बार आचमन कर मनुष्य शुद्ध होता है और धर्मशास्त्र में जैसा कहा है वैसेही दंतधावन करै क्योंकि दंतधावन न करके आचमन कियेहुए भी पुरुष अपवित्र होता है ॥ ५६ ॥ परेवा, अमावस, छठि, नवमी व रविवार में दांतों का काष्ठसंयोग सात

पुरितयों तक जलाता है ॥ ५७ ॥ व दतून के न मिलनेपर और निषिद्ध दिन में मुख की शुद्धि के लिये बारह कुल्ला करना चाहिये ॥ ५८ ॥ व छोटी अंगुली के प्रमाणभर व बकला समेत और बिन कटीहुई बारह अंगुल की प्रमाणभर बिन सूखी हुई दतून करना चाहिये ॥ ५६ ॥ व एक एक अंगुल प्रमाण भर दतून को चबावै और शुद्धि के लिये विशेष कर तीर्थ में प्रातःकाल स्नान कर नित्यकर्म करै ॥ ६० ॥ क्योंकि प्रातःकाल स्नान से सदैव मलिन यह शरीर शुद्ध होता है जो मल दिन रात नव छिद्रों से बहताहै ॥ ६१ ॥ उत्साह, मेधा, सौभाग्य, रूप व संपत्ति को बढ़ानेवाला व महापापों का नाशक वह प्राजापत्य के समान कहागया है ॥ ६२ ॥

दहेदासप्तमं कुलम् ॥ ५७ ॥ अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धे वाथ वासरे ॥ गण्डूषा द्वादश ग्राह्या मुखस्य परिशुद्धये ॥ ५८ ॥ कनिष्ठाग्रपरीमाणं सत्वचं निर्व्रणारुजम् ॥ द्वादशाङ्गुलमानं च सार्द्रं स्याद्दन्तधावनम् ॥ ५६ ॥ एकैकाङ्गुलमानं तच्चर्वयेद्दन्तधावनम् ॥ प्रातः स्नानं चरित्वा च शुद्ध्यै तीर्थे विशेषतः ॥ ६० ॥ प्रातः स्नानाद्यतः शुद्ध्येत्कायोऽयं मलिनः सदा ॥ यन्मलं नवभिश्छिद्रैः स्रवत्येव दिवानिशम् ॥ ६१ ॥ उत्साहमेधासौभाग्यरूपसम्पत्प्रवर्द्धकम् ॥ प्राजापत्यसमं प्राहुस्तन्महाघविनाशकृत् ॥ ६२ ॥ प्रातः स्नानं हरेत्पापमलक्ष्मीं ग्लानिमेव च ॥ अशुचित्वं च दुःस्वप्नं तुष्टिं पुष्टिं प्रयच्छति ॥ ६३ ॥ नोपसर्प्पन्ति वै दुष्टाः प्रातःस्नायिजनं क्वचित् ॥ दृष्टादृष्टफलं यस्मात्प्रातःस्नानं समाचरेत् ॥ ६४ ॥ प्रसङ्गतः स्नानविधिं प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम ॥ विधिस्नानं यतः प्राहुः स्नानाच्छतगुणोत्तरम् ॥ ६५ ॥ विशुद्धां मृदमादाय बर्हिषस्तिलगोमयम् ॥ शुचौ देशे परिस्थाप्य ह्याचम्य स्नानमा

व तुष्टि और पुष्टि को देता है ॥ ६३ ॥ व प्रातःकाल नहानेवाले और प्रातः स्नान पाप, दरिद्रता व उदासीनता को हरता है व अशुद्धि और दुस्स्वप्न को नाशता है मनुष्य के समीप कभी दुष्ट नहीं जाते हैं व जिसलिये देखा व बिन देखा हुआ फल होता है उसी कारण प्रातः स्नान करै ॥ ६४ ॥ हे नृपोत्तम ! मैं प्रसंग से स्नान की विधि को कहता हूं क्योंकि विद्वान् लोगों ने सामान्य स्नान से विधिस्नान को सौगुना कहा है ॥ ६५ ॥ पवित्र मिट्टी को लेकर और कुश, तिल, गोमय को शुद्ध

स्नान में स्थापन करके आचमन कर तदनन्तर स्नान करै ॥ ६६ ॥ और कुशों को लेकर शिखा को बाँधकर मनुष्य जल के मध्य में पैठे और अपनी शाखा में कही हुई विधि से विधिपूर्वक स्नान करै ॥ ६७ ॥ व इस प्रकार नहाकर वसन को निचोड़ कर धौतवस्त्रों को ग्रहण करै व आचमन कर तदनन्तर कुशों को लियेहुए मनुष्य प्रातःकाल की संध्या करै ॥ ६८ ॥ मन को दृढ़ता से रोंककर प्राणायामों को करता हुआ ब्राह्मण दिन रात में कियेहुए पापों से उसी क्षण मुक्त होजाता है ॥ ६९ ॥ मन को रोंककर यदि जिसने दश या बारह संख्यक प्राणायामों को किया उसने बड़ा तप किया है ॥ ७० ॥ और प्रतिदिन कियेहुए व्याहृती व ॐकार समेत

चरेत् ॥ ६६ ॥ उपग्रही बद्धशिखो जलमध्ये समाविशेत् ॥ स्वशाखोक्तविधानेन स्नानं कुर्याद्यथाविधि ॥ ६७ ॥ स्नात्वेत्थं वस्त्रमापीड्य गृह्णीयाद्धौतवाससी ॥ आचम्य च ततः कुर्यात्प्रातःसन्ध्यां कुशान्वितः ॥ ६८ ॥ प्राणायामांश्चरन्विप्रो नियम्य मानसं दृढम् ॥ अहोरात्रकृतैः पापैर्मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥ ६९ ॥ दश द्वादशसंख्या वा प्राणायामाः कृता यदि ॥ नियम्य मानसं तेन तदा तप्तं महत्तपः ॥ ७० ॥ सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ॥ अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहःकृताः ॥ ७१ ॥ यथा पार्थिवधातूनां दह्यन्ते धमनान्मलाः ॥ तथेन्द्रियैः कृता दोषा ज्वाल्यन्ते प्राणसंयमात् ॥ ७२ ॥ एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ॥ गायत्र्यास्तु परं नास्ति पावनं च नृपोत्तम ॥ ७३ ॥ कर्मणा मनसा वाचा यद्रात्रौ कुरुते त्वघम् ॥ उत्तिष्ठन्पूर्वसन्ध्यायां प्राणायामैर्विशोधयेत् ॥ ७४ ॥ यदह्ना कुरुते पापं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ आसीनः पश्चिमां सन्ध्यां प्राणायामैर्व्यपोहति ॥ पश्चिमां तु समासीनो मलं

सोलह प्राणायाम महीनेभर में गर्भघाती पुरुष को भी पवित्र करते हैं ॥ ७१ ॥ हे राजन्! जैसे अग्नि के संयोग से धातुवों के मल जलजाते हैं वैसेही इन्द्रियों से किये हुए दोष प्राणायाम से जलजाते हैं ॥ ७२ ॥ एकाक्षर (ॐकार) परब्रह्म है व प्राणायाम उत्तम तप है व हे नृपोत्तम! गायत्री से परे अन्य पवित्रकारक वस्तु नहीं है ॥ ७३ ॥ मन, वचन व कर्म से मनुष्य रात्रि में जो पाप करता है प्रातःकाल की संध्या में उठता हुआ मनुष्य उसको प्राणायामों से शोधन करता है ॥ ७४ ॥ और दिन में मनुष्य मन, वचन, शरीर व कर्म से जिस पाप को करता है सायं संध्योपासन करके मनुष्य उसको प्राणायामों से नाश करता है और सायं संध्योपासन

करके दिन में कियेहुए पाप को नाश करता है ॥ ७५ ॥ और जो प्रातःसंध्या व सायंसंध्या की उपासना नहीं करता है वह सब द्विजकर्म से शूद्र की नाईं बाहर करने योग्य है ॥ ७६ ॥ जल के समीप जाकर मनुष्य नित्य कर्म को करै तदनन्तर विधिपूर्वक आचमन करै ॥ ७७ ॥ तदनन्तर आपोहिष्ठा ऐसी तीन ऋचाओं से पृथ्वी, शिर, आकाश व आकाश, पृथ्वी और मस्तक में मार्जन करै ॥ ७८ ॥ और मस्तक, आकाश व भूमि में नव स्थानों में फेंक देवै भूमिशब्द से चरण व आकाश हृदय कहागया है व शिर में शिरशब्द है उनसे मार्जन करै ॥ ७९ ॥ और पश्चिम दिशा व आग्नेय, वायव्य व पूर्व से लगाकर यह ब्राह्मस्नान मंत्रस्नान से भी श्रेष्ठ है क्यों

हन्ति दिवाकृतम् ॥ ७५ ॥ नोपतिष्ठेत्तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ॥ स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ ७६ ॥ अपां समीपमासाद्य नित्यकर्म समाचरेत् ॥ तत आचमनं कुर्याद्यथाविध्यनु पूर्वशः ॥ ७७ ॥ आपोहिष्ठेति तिसृभिर्मार्जनं तु ततश्चरेत् ॥ भूमौ शिरसि चाकाश आकाशे भुवि मस्तके ॥ ७८ ॥ मस्तके च तथाकाशे भूमौ च नवधा क्षिपेत् ॥ भूमिशब्देन चरणावाकाशं हृदयं स्मृतम् ॥ शिरस्येव शिरःशब्दो मार्जनं तैरुदाहृतम् ॥ ७९ ॥ वारुणादपि चाग्नेयाद्वायव्यादपि चेन्द्रतः ॥ मन्त्रस्नानादपि परं ब्राह्मं स्नानमिदं परम् ॥ ब्राह्मस्नानेन यः स्नातः स बाह्याभ्यन्तरं शुचिः ॥ ८० ॥ सर्वत्र चार्हतामेति देवपूजादिकर्मणि ॥ नक्तंदिनं निमज्ज्याप्सु कैवर्ताः किमु पावनाः ॥ ८१ ॥ शतशोऽपि तथा स्नाता न शुद्धा भावदूषिताः ॥ अन्तःकरणशुद्धांश्च तान्विभूतिः पवित्रयेत् ॥ ८२ ॥ किं पावनाः प्रकीर्त्यन्ते रासभा भस्मधूसराः ॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु मलैः सर्वैर्विवर्जितः ॥ ८३ ॥ तेन क्रतुशतैरिष्टं

कि जिसने ब्राह्मस्नान से नहाया है वह बाहर व भीतरसे पवित्र होजाता है ॥ ८० ॥ और देवपूजनादिक कर्म में सब कहीं वह पूज्यता को प्राप्त होता है क्योंकि दिन रात जल में डूबकर धीवर क्या पवित्र होते हैं ॥ ८१ ॥ और भाव से दूषित सैकड़ों भांति से नहाकर मनुष्य पवित्र नहीं होते हैं और चित्त से शुद्ध उन मनुष्यों को विभूति पवित्र करती है ॥ ८२ ॥ और भस्म को लपेटे हुए गधे क्या पवित्र कहेजाते हैं उसने सब तीर्थों में नहाया और वह सब मलों से रहित होताहै ॥ ८३ ॥ व उसने

सैकड़ों यज्ञों से पूजन किया कि जिसका चित्त इस संसार में निर्मल है हे मुने ! वही चित्त जिस प्रकार निर्मल होता है उसको सुनिये ॥ ८४ ॥ कि यदि विश्वेश्वर
जी प्रसन्न होते हैं तो वह मन कभी अन्यथा नहीं होता है इसलिये चित्त की शुद्धि के लिये विश्वनाथजी के आश्रित होवै ॥ ८५ ॥ तो इस शरीर को छोड़कर मनुष्य पर-
ब्रह्म को प्राप्त होता है तदनन्तर द्रुपदांत ऋचा तक जपकर जल को हाथ से लेकर ॥ ८६ ॥ विधि को जाननेवाला मनुष्य ऋतंच इस मंत्र से अघमर्षण करै और जल
में स्नान कर जो मनुष्य तीन बार अघमर्षण मंत्र को जपता है ॥ ८७ ॥ व जल में या स्थलमें जो अघमर्षण करता है उसका पापसमूह वैसेही नाश होजाता है जैसे कि

चेतो यस्येह निर्मलम् ॥ तदेव निर्मलं चेतो यथा स्यात्तन्मुने शृणु ॥ ८४ ॥ विश्वेशश्चेत्प्रसन्नः स्यात्तदा स्यान्ना
न्यथा कचित् ॥ तस्माच्चेतोविशुद्ध्यर्थं काशीनाथं समाश्रयेत् ॥ ८५ ॥ इदं शरीरमुत्सृज्य परंब्रह्माधिगच्छति ॥
द्रुपदान्तं ततो जप्त्वा जलमादाय पाणिना ॥ ८६ ॥ कुर्यादृतं च मन्त्रेण विधिज्ञस्त्वघमर्षणम् ॥ निमज्ज्याप्सु च
यो विद्वाञ्जपेत्त्रिरघमर्षणम् ॥ ८७ ॥ जले वापि स्थले वापि यः कुर्यादघमर्षणम् ॥ तस्याघौघो विनश्येत यथा सूर्यो
दये तमः ॥ ८८ ॥ गायत्रीं शिरसा हीनां महाव्याहृतिपूर्विकाम् ॥ प्रणवाद्यां जपंस्तिष्ठन्क्षिपेदम्भोञ्जलित्रयम् ॥ ८९ ॥
तेन वज्रोदकेनाशु मन्देहानाम राक्षसाः ॥ सूर्यतेजः प्रलोपन्ते शैला इव विवस्वतः ॥ ९० ॥ सहायार्थं च सूर्यस्य यो
द्विजो नाञ्जलित्रयम् ॥ क्षिपेन्मन्देहनाशाय सोपि मन्देहतां व्रजेत् ॥ ९१ ॥ प्रातस्तावज्जपंस्तिष्ठेद्यावत्सूर्यस्य दर्श
नम् ॥ उपविष्टो जपेत्सायमृक्षाणामाविलोकनात् ॥ ९२ ॥ काललोपो न कर्त्तव्यो द्विजेन स्वहितेप्सुना ॥ अर्द्धोदया

सूर्योदय में अन्धकार नाश होजाता है ॥ ८८ ॥ व शिरहीन गायत्री को महाव्याहृतियों पूर्वक व ॐकारपूर्वक जपता व खड़ा हुआ मनुष्य जल की तीन अंजलियों को
फेंकै ॥ ८९ ॥ क्योंकि उस वज्र के समान जल से मंदेहा नामक राक्षस शीघ्रही नाश होजाते हैं जोकि पर्वतों के समान सूर्यनारायणके तेजको आच्छादित करते हैं ॥ ९० ॥
व सूर्यनारायण की सहायता के लिये और मंदेहा नामक राक्षसों के विनाश के लिये जो ब्राह्मण तीन अंजलियों को नहीं फेंकता है वह भी मंदेहों के समान होजाता
है ॥ ९१ ॥ प्रातःकाल तबतक गायत्री को जपता हुआ मनुष्य खड़ा रहै जबतक कि सूर्य का दर्शन होवै व सायंकाल बैठाहुआ मनुष्य नक्षत्र देखनेतक जपै ॥ ९२ ॥ व अपना

हित चाहनेवाले ब्राह्मण को समय का लोप न करना चाहिये इस कारण अर्धोदय व अर्धास्त के समय में वज्रोदक को फेंकै ॥ ९३ ॥ व समय व्यतीत होनेपर विधि से कीगई भी संध्या विफल होती है यही दृष्टान्त बन्ध्या स्त्री के मैथुन के समान है ॥ ९४ ॥ व जल में बायें हाथ को करके ब्राह्मण लोग जिस संध्या को करते हैं वह वृषली संध्या राक्षसगणों को आनन्ददायिनी जानने योग्य है ॥ ९५ ॥ तदनन्तर शाखा में कही हुई विधि से उपस्थान करै उसके उपरान्त हज़ारबार व सौबार गायत्री को जपकर ॥ ९६ ॥ व दशबार गायत्री को जपकर देवीजी के लिये सूर्योपस्थान करै व हज़ार उत्तम, सौ मध्यम व दश अधम ॥ ९७ ॥ गायत्री को जो ब्राह्मण

स्तसमये तस्माद्वज्रोदकं क्षिपेत् ॥ ९३ ॥ विधिनापि कृता सन्ध्या कालातीताऽफला भवेत् ॥ अयमेव हि दृष्टान्तो बन्ध्यास्त्रीमैथुनं यथा ॥ ९४ ॥ जले वामकरं कृत्वा या सन्ध्याऽऽचरिता द्विजैः ॥ वृषली सा परिज्ञेया रक्षोगणमुदावहा ॥ ९५ ॥ उपस्थानं ततः कुर्याच्छाखोक्तविधिना ततः ॥ सहस्रकृत्वो गायत्र्याः शतकृत्वोथवा पुनः ॥ ९६ ॥ दशकृत्वोऽथ देव्यै च कुर्यात्सौरीमुपस्थितिम् ॥ सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ॥ ९७ ॥ गायत्रीं यो जपेद्विप्रो न स पापैः प्रलिप्यते ॥ रक्तचन्दनमिश्राभिरद्भिश्च कुसुमैः कुशैः ॥ ९८ ॥ वेदोक्तैरागमोक्तैर्वा मन्त्रैरर्घं प्रदापयेत् ॥ अर्चितः सविता येन तेन त्रैलोक्यमर्चितम् ॥ ९९ ॥ अर्चितः सविता दत्ते सुतान्पशुवसूनि च ॥ व्याधीन्हरेद्ददात्यायुः पूरयेद्वाञ्छितान्यपि ॥ १०० ॥ अयं हि रुद्र आदित्यो हरिरेष दिवाकरः ॥ रविर्हिरण्यरूपोऽसौ त्रयीरूपोऽयमर्यमा ॥ १ ॥ ततस्तु तर्पणं कुर्यात्स्वशाखोक्तविधानतः ॥ ब्रह्मादीनखिलान्देवान्मरीच्यादींस्तथा मुनीन् ॥ २ ॥ चन्दना

जपता है वह पापों से लिप्त नहीं होता है व लालचंदन मिले हुए जल से व पुष्पों और कुशों से ॥ ९८ ॥ वेदोक्त व शास्त्रोक्त मंत्रों के द्वारा अर्घ को देवै जिसने सूर्य को पूजन किया उसने त्रिलोक को पूजा ॥ ९९ ॥ और पूजे हुए सूर्यनारायणजी पुत्र, पशु व धनों को देते हैं व रोगों को हरते हैं और आयुर्बल को देते हैं व मनोरथों को पूर्ण करते हैं ॥ १०० ॥ व ये सूर्यनारायण रुद्र हैं और ये सूर्य विष्णु हैं व ये सूर्य ब्रह्मरूप हैं और ये सूर्य त्रयीमय हैं ॥ १ ॥ उसके उपरान्त अपनी शाखा में कही हुई विधिसे ब्रह्मादिक सब देवता व मरीचि आदिक मुनियों को तर्पण करै ॥ २ ॥ चंदन, अगुरु, कपूर व सुगंधित पुष्पों व पवित्र जलों से तर्पण करै और तृप्यन्तु यह

कहै ॥ ३ ॥ व यज्ञोपवीत को गले में पहनकर सीधे कुशोंको दोनों अँगूठों के मध्य में करके ब्राह्मण यवों से सनकादिक मनुष्यों को तर्पण करै ॥ ४ ॥ व अपसव्य होकर दूने कुशोंसे तिलमिश्रित जलों से कव्यवाडनलादिक दिव्य पितरों को तर्पण करै ॥ ५ ॥ व रविवार तथा शुक्लपक्ष की तेरसि, सप्तमी, रात्रि व संध्या में कल्याण को चाहनेवाला ब्राह्मण कभी तिलों से तर्पण न करै ॥ ६ ॥ व यदि करै तो श्वेतही तिलों से पुण्यवान् ब्राह्मण तर्पण करै पश्चात् नाम कहकर चौदह यमों को तर्पण करै ॥ ७ ॥ तदनन्तर अपने गोत्र को कहकर हर्ष से अपने पितरों को वाम जंघ को झुकाकर पितृतीर्थ से मौनी ब्राह्मण तर्पण करै ॥ ८ ॥ देवता एक एक अंजली व

गुरुकर्पूरगन्धवत्कुसुमैरपि ॥ तर्पयेच्छुचिभिस्तोयैस्तृप्यन्त्विति समुच्चरेत् ॥ ३ ॥ सनकादीन्मनुष्यांश्च निवीती तर्पयेद्यवैः ॥ अङ्गुष्ठद्वयमध्ये तु कृत्वा दर्भानृजून्द्विजः ॥ ४ ॥ कव्यवाडनलादींश्च पितॄन्दिव्यान्प्रतर्प्पयेत् ॥ प्राचीनावीतिको दर्भैर्द्विगुणैस्तिलमिश्रितैः ॥ ५ ॥ रवौ शुक्लेत्रयोदश्यां सप्तम्यां निशि सन्ध्ययोः ॥ श्रेयोर्थी ब्राह्मणो जातु न कुर्यात्तिलतर्प्पणम् ॥ ६ ॥ यदि कुर्यात्ततः कुर्याच्छुक्लैरेव तिलैः कृती ॥ चतुर्दश यमान्पश्चात्तर्पयेन्नामउच्चरन् ॥ ७ ॥ ततः स्वगोत्रमुच्चार्य तर्पयेत्स्वान्पितॄन्मुदा ॥ सव्यजानुनिपातेन पितृतीर्थेन वाग्यतः ॥ ८ ॥ एकैकमञ्जलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादिकाः ॥ पितरस्त्रीन्प्रवाञ्छन्ति स्त्रिय एकैकमञ्जलिम् ॥ ९ ॥ अङ्गुल्यग्रेण वै दैवमार्षमङ्गुलिमूलगम् ॥ ब्राह्ममङ्गुष्ठमूले तु पाणिमध्ये प्रजापतेः ॥ १० ॥ मध्येङ्गुष्ठप्रदेशिन्योः पित्र्यं तीर्थं प्रचक्षते ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ॥ ११ ॥ तृप्यन्तु सर्व्वे पितरो मातृमातामहादयः ॥ अन्ये च मन्त्राः प्रोक्ता ये वेदोक्ताः

सनकादिक दो दो अंजली व पितर तीन तीन व स्त्रियां एक एक अंजली को चाहती हैं ॥ ९ ॥ अंगुलियों के अग्रभाग से दैवतीर्थ है व अंगुलियों के मूल में ऋषियों का तीर्थ है व हाथ के बीच में प्रजापति का तीर्थ है व अँगूठा के मूल में ब्रह्मा का तीर्थ है ॥ १० ॥ व अँगूठा और प्रदेशिनी के मध्य में पितरों का तीर्थ कहा जाता है ब्रह्मा से लगाकर स्तंब पर्यन्त देवता, ऋषि, पितर व मनुष्य ॥ ११ ॥ माता व मातामहादिक सब पितर तृप्त होते हैं व वेदोक्त व पुराणों से उपजे हुए जो

मंत्र हैं ॥ १२ ॥ उनसे पितरों को सुखदायक अंगों समेत तर्पण करै तदनन्तर अग्निकार्य (हवन) करके उसके उपरान्त वेदाभ्यास करै ॥ १३ ॥ वेदाभ्यास पांच प्रकार का है एक स्वीकार दूसरा अर्थचिन्तन तीसरा वेदपाठ चौथा तप पांचवां शिष्यों के लिये पढ़ाना है ॥ १४ ॥ हे नृपोत्तम ! मिली वस्तु की रक्षा के लिये व बिन मिली हुई वस्तु के मिलने के लिये यह द्विजों का प्रातःकाल कार्य कहा गया है ॥ १५ ॥ अथवा प्रातःकाल उठकर आवश्यक कार्यकर शौच व आचमन करके दतून को लेकर चर्वण करै ॥ १६ ॥ व सब अंगों को शोधकर प्रातःकाल की संध्या करै और अनेक भांति के शास्त्र व वेदार्थों को पढ़ै ॥ १७ ॥ व बुद्धिसंयुत तथा

पुराणसम्भवाः ॥१२॥ साङ्गं च तर्पणं कुर्यात्पितॄणां च सुखप्रदम् ॥ अग्निकार्यं ततः कृत्वा वेदाभ्यासं ततश्चरेत्॥१३॥ श्रुत्यभ्यासः पञ्चधा स्यात्स्वीकारोऽर्थविचारणम् ॥ अभ्यासश्च तपश्चापि शिष्येभ्यः प्रतिपादनम्॥ १४॥ लब्धस्य प्रतिपालार्थमलब्धस्य च लब्धये ॥ प्रातःकृत्यमिदं प्रोक्तं द्विजातीनां नृपोत्तम॥ १५ ॥ अथवा प्रातरुत्थाय कृत्वा वश्यकमेव च ॥ शौचाचमनमादाय भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥ १६ ॥ विशोध्य सर्वगात्राणि प्रातःसन्ध्यां समाचरेत्॥ वेदार्थानधिगच्छेद्वै शास्त्राणि विविधान्यपि ॥ १७॥ अध्यापयेच्छुचीञ्छिष्यान्हितान्मेधासमन्वितान् ॥ उपेयादीश्वरं चापि योगक्षेमादिसिद्धये ॥ १८॥ ततो मध्याह्नसिद्ध्यर्थं पूर्वोक्तं स्नानमाचरेत् ॥ स्नात्वा माध्याह्निकीं सन्ध्यामुपासीत विचक्षणः ॥ १९ ॥ देवतां परिपूज्याथ विधिं नैमित्तिकं चरेत्॥ पवनाग्निं समुज्ज्वाल्य वैश्वदेवं समाचरेत्॥ २०॥ निष्पावान्कोद्रवान्माषान्कलायांश्चणकांस्त्यजेत् ॥ तैलपक्वमपक्वान्नं सर्वं लवणयुक्तत्यजेत् ॥ २१ ॥ आढक्यन्नं

हित व पवित्र शिष्यों को पढ़ावै और योगक्षेमादि की सिद्धि के लिये ईश्वर के समीप जावै ॥ १८ ॥ तदनन्तर मध्याह्न की सिद्धि के लिये पूर्वोक्त स्नान करै व नहाकर विद्वान् मध्याह्नसंध्योपासन करै ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त देवता को पूजकर नैमित्तिक विधि करै व पवनाग्निको जलाकर वैश्वदेव कर्म करै ॥ २० ॥ और निष्पाव, कोदौ, उड़द, मटर व चना को त्याग करै व तैल से पक्व और बिन पका हुआ अन्न व नमक से संयुत सब वस्तु को छोड़ देवै ॥ २१ ॥ और अरहर, मसूर व गोलधान्य से उत्पन्न

तथा भोजन से शेष व पर्युषित को वैश्वदेव कर्म में त्याग करै ॥ २२ ॥ कुशों को हाथ में लेकर आचमन व प्राणायाम करके पृषोदिवि इस मंत्रसे अभ्युक्षण करै ॥ २३ ॥ प्रदक्षिण ओर से जल को सब ओर दो बार घुमाकर कुशों को चारों ओर बिछाकर रापोर्द्धदेव इस मंत्र से अग्नि को अपने सामने करै ॥ २४ ॥ व अग्नि को चन्दन, पुष्प और अक्षतों से पूजकर विद्वान् अपनी शाखा में कही हुई विधि से होम करै ॥ २५ ॥ मार्ग चलनेवाला व क्षीण जीविकावाला तथा विद्यार्थी व गुरु को पोषण करने वाला, संन्यासी व ब्रह्मचारी ये छः धर्म के भिक्षुक हैं ॥ २६ ॥ मार्गगामी अतिथि जानने योग्य है व वेदपारगामी अनूचान है ब्रह्मलोक को चाहनेवाले गृहस्थों

मसूरान्नं वर्तुलधान्यसम्भवम् ॥ भुक्तशेषं पर्युषितं वैश्वदेवे विवर्जयेत् ॥ २२ ॥ दर्भपाणिः समाचम्य प्राणायामं विधाय च ॥ पृषोदिवीति मन्त्रेण पर्य्युक्षणमथाचरेत् ॥ २३ ॥ प्रदक्षिणं च पर्य्युक्ष्य द्विः परिस्तीर्य वै कुशान् रापोर्द्धदेवमन्त्रेण कुर्याद्वह्निं स्वसम्मुखे ॥ २४ ॥ वैश्वानरं समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतैस्तथा ॥ स्वशाखोक्तप्रकारेण होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥ २५ ॥ अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च विद्यार्थी गुरुपोषकः ॥ यतिश्च ब्रह्मचारी च षडेते धर्मभिक्षुकाः ॥ २६ ॥ अतिथिः पान्थिको ज्ञेयोऽनूचानः श्रुतिपारगः ॥ मान्यावेतौ गृहस्थानां ब्रह्मलोकमभीप्सताम् ॥ २७ ॥ अपि श्वपाके शुनि वा नैवान्नं निष्फलं भवेत् ॥ अन्नार्थिनि समायाते पात्रापात्रं न चिन्तयेत् ॥ २८ ॥ शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ॥ काकानां च कृमीणां च बहिरन्नं किरेद्भुवि ॥ २९ ॥ ऐन्द्रवारुणवायव्याः सौम्या वै नैर्ऋताश्च ये ॥ प्रतिगृह्णन्त्विमं पिण्डं काका भूमौ मयार्पितम् ॥ ३० ॥ इत्थं भूतबलिं कृत्वा कालं गोदोहमात्रकम् ॥

के ये दोनों मान्य हैं ॥ २७ ॥ और चाण्डाल व कुत्ते में भी अन्न निष्फल नहीं होता है व इस बलिवैश्वदेव कर्म में याचक आने पर पात्र व अपात्र को न विचारै ॥ २८ ॥ कुत्ता, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, कौवा व कीटों को बाहर भूमि में अन्न को फेंक देवै ॥ २९ ॥ ऐन्द्र (पूर्व) वारुण (पश्चिम) वायव्य व नैर्ऋत्य दिशा में जो वर्तमान होवैं वे काक पृथ्वी में मुझ से दिये हुए इस पिंड को ग्रहण करैं ॥ ३० ॥ इस प्रकार भूतबलि करके गोदोहन समय तक आते हुए अतिथि का मार्ग देख

कर तदनन्तर भोजनागार में पैठे ॥ ३१ ॥ काकबलि को न देकर नित्यश्राद्ध करै व नित्यश्राद्ध में अपनी सामर्थ्य से तीन, दो व एक ब्राह्मण को ॥ ३२ ॥ भोजन क-
रावै व पितृयज्ञ के लिये जल को भरकर देवै और नित्यश्राद्ध नियमादिकों से रहित व विश्वेदेव रहित करै ॥ ३३ ॥ व दक्षिणा से रहित यह श्राद्धदाता व भोजन-
कर्ता को तृप्तिकारक है इस प्रकार पितृयज्ञ को करके स्वस्थबुद्धि व अनातुर पुरुष ॥ ३४ ॥ उत्तम आसन पै बैठ कर बालकों समेत भोजन करै उत्तम गन्धि,
उत्तम मनवाला मनुष्य माला व शुद्ध दो वसनों से संयुत ॥ ३५ ॥ पूर्व मुख या उत्तर मुख बैठ कर पितृसेवित अन्न को भोजन करै और उसके ऊपर व नीचे अन्न

प्रतीक्ष्यातिथिमायातं विशेद्भोज्यगृहं ततः ॥ ३१ ॥ अदत्त्वा वायसबलिं नित्यश्राद्धं समाचरेत् ॥ नित्यश्राद्धेस्व
सामर्थ्यात्रीन्द्वावेकमथापि वा ॥ ३२ ॥ भोजयेत्पितृयज्ञार्थं दद्यादुद्धृत्य वारि च ॥ नित्यश्राद्धं दैवहीनं नियमादि
विवर्जितम् ॥ ३३ ॥ दक्षिणारहितं त्वेतद्दातृभोक्तृसुतृप्तिकृत् ॥ पितृयज्ञं विधायेत्थं स्वस्थबुद्धिरनातुरः ॥ ३४ ॥
अदुष्टासनमध्यास्य भुञ्जीत शिशुभिः सह ॥ सुगन्धिः सुमनाः स्रग्वी शुचिवासोद्वयान्वितः ॥ ३५ ॥ प्रागास्य उद
गास्यो वा भुञ्जीत पितृसेवितम् ॥ विधायान्नमनग्नं तदुपरिष्टादधस्तथा ॥ ३६ ॥ आपोशानविधानेन कृत्वाश्नीया
त्सुधीर्द्विजः ॥ भूमौ बलित्रयं कुर्यादपो दद्यात्तदोपरि ॥ ३७ ॥ सकृच्चाप उपस्पृश्य प्राणाद्याहुतिपञ्चकम् ॥ दद्याज्जठरकु
ण्डाग्नौ दर्भपाणिः प्रसन्नधीः ॥ ३८ ॥ दर्भपाणिस्तु यो भुङ्क्ते तस्य दोषो न विद्यते ॥ केशकीटादिसम्भूतस्तदश्नीया
त्सदर्भकः ॥ ३९ ॥ ततो मौनेन भुञ्जीत न कुर्याद्दन्तघर्षणम् ॥ प्रक्षालितव्यहस्तस्य दक्षिणाङ्गुष्ठमूलतः ॥ ४० ॥ रौरवेऽ

को आच्छादित करके ॥ ३६ ॥ आपोशान विधि से करके विद्वान् ब्राह्मण भोजन करै और पृथ्वी में तीन बलि करै व उसके ऊपर जलको देवै ॥ ३७ ॥ और एक बार
जलको आचमन कर प्रसन्नबुद्धि मनुष्य कुशों को हाथ में लेकर उदररूपी कुण्ड की अग्नि में प्राणादिक पांच आहुतियों को देवै ॥ ३८ ॥ कुशों को हाथ में लियेहुए जो
मनुष्य भोजन करता है उसको केश कीटादिकों से उपजा हुआ दोष नहीं होता है इस कारण कुशों समेत मनुष्य भोजन करै ॥ ३९ ॥ तदनन्तर मौन भोजन करै व
दन्तघर्षण न करै और धोने योग्य हाथवाला मनुष्य दाहिने अंगूठा के मूल से ॥ ४० ॥ पापस्थानवाले रौरव नरक में अधोलोकनिवासी उच्छिष्ट जल को चाहनेवाले

पितरों को अक्षय्योदक देवै ॥ ४१ ॥ फिर आचमन कर बुद्धिमान् बड़े यत्न से पवित्र होकर तदनन्तर मुखशुद्धि करके पुराणश्रवणादिकों से ॥ ४२ ॥ शेष दिनको व्यतीत कर तदनन्तर संध्या करै गृहों में सामान्य संध्या होती है व गोशाला में दशगुनी कही गई है ॥ ४३ ॥ व नदी में दश हज़ार संख्यक होती है और शिवजी के समीप अनन्त संध्या होती है असत्य, मदिरा की गन्ध व दिनमें मैथुन और शूद्रस्थान को गांव बाहर कीहुई संध्या पवित्र करती है ॥ ४४ ॥ उद्देशसे यह नित्य विधि कहीगई इस प्रकार करता हुआ द्विज कभी दुःखी नहीं होता है ॥ १४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसदाचारवर्णनन्नामपञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

पुण्यनिलये अधोलोकनिवासिनाम् ॥ उच्छिष्टोदकमिच्छूनामक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ ४१ ॥ पुनराचम्य मेधावी शुचिर्भूत्वा प्रयत्नतः ॥ मुखशुद्धिं ततः कृत्वा पुराणश्रवणादिभिः ॥ ४२ ॥ अतिवाह्य दिवाशेषं ततः सन्ध्यां समाचरेत् ॥ गृहेषु प्राकृता सन्ध्या गोष्ठे दशगुणा स्मृता ॥ ४३ ॥ नद्यामयुतसंख्या स्यादनन्ता शिवसन्निधौ ॥ अनृतं मद्यगन्धं च दिवामैथुनमेव च ॥ पुनाति वृषलस्थानं सन्ध्या बहिरुपासिता ॥ ४४ ॥ उद्देशतः समाख्यात एष नित्यतनो विधिः ॥ इत्थं समाचरन्विप्रो नावसीदति कर्हिचित् ॥ १४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये सदाचारवर्णनंनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ उपकाराय साधूनां गृहस्थाश्रमवासिनाम् ॥ यथा च क्रियते धर्मो यथावत्कथयामि ते ॥ १ ॥ वत्स गार्हस्थ्यमास्थाय नरः सर्वमिदं जगत् ॥ पुष्णाति तेन लोकांश्च स जयत्यभिवाञ्छितान् ॥ २ ॥ पितरो मुनयो देवा भूतानि मनुजास्तथा ॥ कृमिकीटपतङ्गाश्च वयांसि पितरोऽसुराः ॥ ३ ॥ गृहस्थमुपजीवन्ति ततस्तृप्तिं प्रयान्ति

दो० । धर्मारण्यनिवासिकर यथा धर्म आचार । सोइ छठें अध्याय में कह्यो चरित्र सुखार ॥ व्यासजी बोले कि गृहस्थाश्रमनिवासी साधुवों के उपकार के लिये जिस प्रकार धर्म किया जाता है उसको मैं यथायोग्य कहता हूं ॥ १ ॥ कि हे वत्स ! गृहस्थाश्रम में प्राप्त होकर मनुष्य इस सब संसार को पुष्ट करता है उससे मनुष्य लोकों को जीतता है व मनोरथों को पाता है ॥ २ ॥ पितर, मुनि, देवता, भूत, मनुष्य, कृमि, कीट व पतंग, पक्षी, पितर व दैत्य ॥ ३ ॥ ये गृहस्थ ही से जीते हैं व उसी

से तृप्ति को प्राप्त होते हैं व इसका मुख देखते हैं कि यह हमको जल देवैगा ॥ ४ ॥ हे वत्स ! यह त्रयीमयी धेनु सब की आधारभूत है इसमें संसार प्रतिष्ठित है
जोकि संसार का कारण है ॥ ५ ॥ व इस धेनु की पृष्ठ (पीठ) ऋग्वेद है व यजुर्वेद मध्यभाग है और सामवेद कुक्षि व स्तन हैं व इष्टापूर्त शृंग हैं और उत्तम सूक्त
रोम हैं ॥ ६ ॥ और शान्ति व पुष्टि के कर्म उस धेनु का मल मूत्र है व अक्षररूपी चरणों से प्रतिष्ठित है और पदक्रमरूपी जटाघनों से लोकों की उपजीविका है ॥ ७ ॥
व हे पुत्र ! स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार व अन्य हन्तकार उस धेनु के चारों स्तनहैं ॥ ८ ॥ स्वाहाकाररूपी स्तन को देवता व स्वधामय स्तन को पितर व मुनि और

च ॥ मुखं वास्य निरीक्षन्ते अपो नो दास्यतीति च ॥ ४ ॥ सर्वस्याधारभूतेयं वत्स धेनुस्त्रयीमयी ॥ अस्यां प्रतिष्ठितं
विश्वं विश्वहेतुश्च या मता ॥ ५ ॥ ऋक्पृष्ठासौ यजुर्मध्या सामकुक्षिपयोधरा ॥ इष्टापूर्तविषाणा च साधुसूक्ततनूरु
हा ॥ ६ ॥ शान्तिपुष्टिशकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता ॥ उपजीव्यमाना जगतां पदक्रमजटाघनैः ॥ ७ ॥ स्वाहाकारस्वधा
कारौ वषट्कारश्च पुत्रक ॥ हन्तकारस्तथैवान्यस्तस्याःस्तनचतुष्टयम् ॥ ८ ॥ स्वाहाकारस्तनं देवाः पितरश्च स्वधा
मयम् ॥ मुनयश्च वषट्कारं देवभूतसुरेश्वराः ॥ ९ ॥ हन्तकारं मनुष्याश्च पिबन्ति सततं स्तनम् ॥ एवमाप्यायते
ह्येषा देवादीनखिलांस्त्रयी ॥ १० ॥ तेषामुच्छेदकर्त्ता यः पुरुषोऽनन्तपापकृत् ॥ स तमस्यन्धतामिस्रे नरके हि निमज्ज
ति ॥ ११ ॥ यस्त्वेनां मानवो धेनुं स्वैर्वत्सैरमरादिभिः ॥ पाययत्युचिते काले स स्वर्गायोपपद्यते ॥ १२ ॥ तस्मात्पुत्र
मनुष्येण देवर्षिपितृमानवाः ॥ भूतानि चानुदिवसं पोष्याणि स्वतनुर्यथा ॥ १३ ॥ तस्मात्स्नातः शुचिर्भूत्वा देवर्षि

देवता, भूत व सुरेश्वर वषट्काररूपी स्तन को पीते हैं ॥ ९ ॥ और हन्तकाररूपी स्तनको सदैव मनुष्य पीते हैं इस प्रकार सब देवादिकों को यह वेदत्रयी तृप्त करती
है ॥ १० ॥ व उनको नाश करनेवाला जो बहुत पापकारी मनुष्य है वह अन्धतामिस्र नामक अन्ध नरक में मग्न होता है ॥ ११ ॥ जो मनुष्य इस गऊ को उचित समय
में अपने देवादिक बछड़ों से पिलाता है वह स्वर्ग के लिये सिद्ध होता है ॥ १२ ॥ इस कारण हे पुत्र ! प्रतिदिन मनुष्य को अपने शरीर की नाईं देवता, ऋषि,
पितर, मनुष्य व भूतों को पोषण करना चाहिये ॥ १३ ॥ उस कारण नहाये हुए सावधान मनुष्य पवित्र होकर ब्रह्मयज्ञ के अन्त समय में जल से देवता, ऋषि व

पितरों का तर्पण करै ॥ १४ ॥ और पुष्प, चन्दन व धूप से देवताओं को पूजकर मनुष्य अग्नि को तृप्त करै तदनन्तर बलियों को देवै ॥ १५ ॥ राक्षसों व भूतों को आकाश में बलि देवै तदनन्तर वैसेही दक्षिण मुख होकर पितरों को बलि देवै ॥ १६ ॥ तदनन्तर सावधानमनवाला विद्वान् गृहस्थ तत्पर होकर जल को लेकर नाम से देवताओं को उद्देश कर उन स्थानों में आचमन कार्य के लिये फेंक देवै इस प्रकार पवित्र होकर गृहस्थ गृह में गृहबलि करके ॥ १७ । १८ ॥ तदनन्तर आचमन करके विद्वान् द्वार को देखै तदनन्तर मुहूर्त याने कच्ची दो घड़ी के आठवें भाग तक अतिथि को देखै ॥ १९ ॥ और वहां प्राप्तहुए अतिथि को अर्घ्य, पाद्य जल से

पितृतर्पणम् ॥ यज्ञस्यान्ते तथैवाद्भिः काले कुर्यात्समाहितः ॥ १४ ॥ सुमनोगन्धधूपैश्च देवानभ्यर्च्य मानवः ॥ ततोग्नेस्तर्पणं कुर्याद्दद्याच्चापि बलींस्तथा ॥ १५ ॥ नक्तञ्चरेभ्यो भूतेभ्यो बलिमाकाशतो हरेत् ॥ पितॄणां निर्वपेत्तद्द्दक्षिणाभिमुखस्ततः ॥ १६ ॥ गृहस्थस्तत्परो भूत्वा सुसमाहितमानसः ॥ ततस्तोयमुपादाय तेष्वेवाचमनक्रियाम् ॥ १७ ॥ स्थानेषु निक्षिपेत्प्राज्ञो नाम्ना तूद्दिश्य देवताः ॥ एवं गृहबलिं दत्त्वा गृहे गृहपतिः शुचिः ॥ १८ ॥ आचम्य च ततः कुर्यात्प्राज्ञो द्वारावलोकनम् ॥ मुहूर्तस्याष्टमं भागमुदीक्षेतातिथिं ततः ॥ १९ ॥ अतिथिं तत्र संप्राप्तमर्घ्यपाद्योदकेन च ॥ बुभुक्षुमागतं श्रान्तं याचमानमकिंचनम् ॥ २० ॥ ब्राह्मणं प्राहुरतिथिं संपूज्य शक्तितो बुधैः ॥ न पृच्छेत्तत्राचरणं स्वाध्यायं चापि पण्डितः ॥ २१ ॥ शोभनाशोभनाकारं तं मन्येत प्रजापतिम् ॥ अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ २२ ॥ तस्मै दत्त्वा तु यो भुङ्क्ते स तु भुङ्क्तेऽमृतं नरः ॥ अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रति नि

पूजै क्षुधित, आयेहुए थके व मांगते हुए-अकिंचन ॥ २० ॥ ब्राह्मण को अतिथि कहते हैं उस अतिथि को शक्ति के अनुसार विद्वानों को पूजना चाहिये उस अतिथि में विद्वान् स्वाध्याय व आचरण को न पूंछै ॥ २१ ॥ बरन उत्तम व अनुत्तम आकारवाले उस अतिथि को ब्रह्मा मानै जिस लिये वह नित्य नहीं स्थित होता है उसी कारण वह अतिथि कहाजाता है ॥ २२ ॥ उसके लिये देकर जो मनुष्य भोजन करता है वह अमृत भोजन करता है और जिसके घर से भंग आश होकर

अतिथि लौट जाता है ॥ २३ ॥ वह उसको पाप देकर व पुण्य को लेकर चला जाता है इस कारण शाकदान या जलदान से भी उसको मनुष्य शक्ति के अनुसार पूजे तो उसीसे वह मुक्त होजाता है ॥ २४ ॥ युधिष्ठिर जी बोले कि ब्राह्म, दैव व आर्षविवाह व प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस व आठवां पैशाच कहाजाता है ॥ २५ ॥ इनकी विधि व कार्य को यथार्थ कहिये और विशेष कर तुम मुझ से गृहस्थों के धर्मों को कहो ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले कि वर को बुलाकर अलंकार कीहुई कन्या जिस में दीजाती है वह ब्राह्म विवाह है उसका पुत्र इक्कीस पुश्तियों को तारता है ॥ २७ ॥ और यज्ञ में स्थित ऋत्विज् के लिये जो कन्यादान है वह

वर्तते ॥ २३ ॥ स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥ अपि वा शाकदानेन यद्वा तोयप्रदानतः ॥ पूजयेत्तं नरः शक्त्या तेनैवातो विमुच्यते ॥ २४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ विवाहा ब्राह्मदैवार्षाः प्राजापत्यासुरौ तथा ॥ गान्धर्वो राक्षसश्चापि पैशाचोष्टम उच्यते ॥ २५ ॥ एतेषां च विधिं ब्रूहि तथा कार्यं च तत्त्वतः ॥ गृहस्थानां तथा धर्मान्ब्रूहि मे त्वं विशेषतः ॥ २६ ॥ व्यास उवाच ॥ स ब्राह्मो वरमाहूय यत्र कन्या स्वलंकृता ॥ दीयते तत्सुतः पूयात्पुरुषानेकविंशतिम् ॥ २७ ॥ यज्ञस्थायर्त्विजे दैवस्तज्जः पाति चतुर्दश ॥ वरादादाय गोद्वन्द्वमार्षस्तज्जः पुनाति षट् ॥ २८ ॥ सहोभौ चरतां धर्मं प्राजापत्यः स ईरितः ॥ वरवध्वोः स्वेच्छया च गान्धर्वोऽन्योन्यमैत्रतः ॥ प्रसह्य कन्याहरणाद्राक्षसो निन्दितः सताम् ॥ २९ ॥ छलेन कन्याहरणात्पैशाचो गर्हितोष्टमः ॥ प्रायः क्षत्रविशोरुक्ता गान्धर्वासुरराक्षसाः ॥ ३० ॥ अष्टम

दैवविवाह है उससे पैदाहुआ पुत्र चौदह पुश्तियों की रक्षा करता है और वर से एक गऊ व एक बैल को लेकर जो विवाह होता है वह आर्ष है उससे पैदाहुआ पुत्र छा पुश्तियों को तारता है ॥ २८ ॥ और तुम दोनों साथही धर्म करो यह कहकर जो कियाजावै वह प्राजापत्य विवाह कहागया है और परस्पर मैत्री से अपनी इच्छा से वर, वधू का विवाह गान्धर्व है और हठ से कन्या को हरने से राक्षसविवाह सज्जनों को निन्दित है ॥ २९ ॥ और छलसे कन्या को हरने से आठवां पैशाचविवाह निन्दित है प्रायः क्षत्रिय व वैश्यों को गान्धर्व, आसुर व राक्षस विवाह कहेगये हैं ॥ ३० ॥ और यह आठवां पिशाचविवाह पापिष्ठ है व पापिष्ठों

को उत्पन्न करनेवाला है समानजातिवाली (ब्राह्मणी) कन्या को हाथ पकड़ना चाहिये और क्षत्रिया को बाण लेना चाहिये ॥ ३१ ॥ व वैश्या स्त्री को चाबुक व शूद्रा को वस्त्रान्तभाग धारण करना चाहिये असवर्णा स्त्रियों के विषय में यह विधि स्मृति व वेद में कहीगई है ॥ ३२ ॥ और सब सवर्णा स्त्रियों को हाथ पकड़ना चाहिये यह विधि है व धर्म्यविवाह में सौ वर्ष आयुर्बलवाले व धर्मवान् पुत्र पैदा होते हैं ॥ ३३ ॥ व अधर्म्यविवाह से धर्मरहित व मन्दभाग्य तथा निर्धनी व अल्पायु होते हैं और ऋतुसमय में स्त्री का संग करना यह गृहस्थ का उत्तम धर्म है ॥ ३४ ॥ या स्त्रियों के वर को स्मरण कर इच्छा के अनुकूल होवै और दिन में

स्त्वेष पापिष्ठः पापिष्ठानां च सम्भवः ॥ सवर्णया करो ग्राह्यो धार्यः क्षत्रियया शरः ॥ ३१ ॥ प्रतोदो वैश्यया धार्यो वासोन्तः शूद्रया तथा ॥ असवर्णास्वेष विधिः स्मृतौ दृष्टश्च वेदने ॥ ३२ ॥ सवर्णाभिस्तु सर्वाभिः पाणिर्ग्राह्य स्त्वयं विधिः ॥ धर्म्ये विवाहे जायन्ते धर्म्याः पुत्राः शतायुषः ॥ ३३ ॥ अधर्म्याद्धर्म्मरहिता मन्दभाग्यधनायुषः ॥ ऋतुकालाभिगमनं धर्मोयं गृहिणः परः ॥ ३४ ॥ स्त्रीणां वरमनुस्मृत्य यथाकाम्यथवा भवेत् ॥ दिवाभिगमनं पुंसा मनायुष्यं परं मतम् ॥ ३५ ॥ श्राद्धाहःसर्वपर्वाणि न गन्तव्यानि धीमता ॥ तत्र गच्छन्स्त्रियं मोहाद्धर्मात्प्रच्यवते प रात् ॥ ३६ ॥ ऋतुकालाभिगामी यः स्वदारनिरतश्च यः ॥ स सदा ब्रह्मचारी हि विज्ञेयः स गृहाश्रमी ॥ ३७ ॥ आर्षे वि वाहे गोद्वन्द्वं यदुक्तं तन्न शस्यते ॥ शुल्कमण्वपि कन्यायाः कन्याविक्रयपापकृत् ॥ ३८ ॥ अपत्यविक्रयात्कल्पं वसेद्विट्

स्त्री का संग करना पुरुषों को बहुतही अनायुष्य मानागया है ॥ ३५ ॥ और श्राद्धदिन में व सब पर्वों में बुद्धिमान् मनुष्य को स्त्री का संग न करना चाहिये क्योंकि उसमें मोह से स्त्री के समीप जाताहुआ पुरुष उत्तम धर्म से च्युत होजाता है ॥ ३६ ॥ और ऋतुसमय में जो स्त्री के समीप जाता है व जो अपनीही स्त्री से स्नेह करता है वह सदैव ब्रह्मचारी व गृहस्थ जानने योग्य है ॥ ३७ ॥ आर्षविवाह में जो दो गौवों का देना कहा है वह उत्तम नहीं होता है क्योंकि कन्या का थोड़ा भी शुल्क (मूल्य धन) कन्याविक्रय का पापकारी होता है ॥ ३८ ॥ और सन्तान को बेंचने से मनुष्य कल्पपर्यन्त विष्ठा व कृमि के भोजन में बसता है इस कारण थोड़ा भी

कन्या का धन मनुष्यों से जीविका के योग्य नहीं होता है ॥ ३९ ॥ वहां विष्णु समेत महालक्ष्मी जी प्रसन्न होकर बसती हैं वाणिज्य, नीचसेवा व वेदोंका न पढ़ना ॥ ४० ॥ निन्दित ब्याह व कर्म का लोप ये वंश में हीनता का कारण हैं और विवाहकी अग्नि में गृहस्थ प्रतिदिन गृह्यकर्म करै ॥ ४१ ॥ व पंचयज्ञ कर्म और प्रतिदिन पाक करै व गृहस्थाश्रमी को प्रतिदिन पंचसूना का कर्म होता है ॥ ४२ ॥ ओखली, चक्की, चुल्ही, जल का घट व मार्जनी (भाडू) उन पांचों वधस्थानों के निकालने के कारणरूप पांच यज्ञ गृहस्थाश्रम के कल्याण को बढ़ानेवाले कहेगये हैं ॥ ४३ ॥ पढ़ना ब्रह्मयज्ञ है व तर्पण पितृयज्ञ है होम दैवयज्ञ है व बलि भूतयज्ञ है और अतिथि

क्रमिभोजने ॥ अतो नाण्वपि कन्याया उपजीव्यं नरैर्धनम् ॥ ३९ ॥ तत्र तुष्टा महालक्ष्मीर्निवसेद्दानवारिणा ॥ वाणिज्यं नीचसेवा च वेदानध्ययनं तथा ॥ ४० ॥ कुविवाहः क्रियालोपः कुले पतनहेतवः ॥ कुर्याद्वैवाहिके चाग्नौ गृह्यकर्म्मान्वहं गृही ॥ ४१ ॥ पञ्चयज्ञक्रियां चापि पक्तिं दैनन्दिनीमपि ॥ गृहस्थाश्रमिणः पञ्चसूनाकर्म दिने दिने ॥ ४२ ॥ कुण्डनी पेषणी चुल्ली ह्युदकुम्भी तु मार्जनी ॥ तासां च पञ्चसूनानां निराकरणहेतवः ॥ क्रतवः पञ्च निर्दिष्टा गृहिश्रेयोभिवर्द्धनाः ॥ ४३ ॥ पठनं ब्रह्मयज्ञः स्यात्तर्पणं च पितृक्रतुः ॥ होमो दैवो बलिर्भौत आतिथ्यं नृक्रतुः क्रमात् ॥ ४४ ॥ वैश्वदेवान्तरे प्राप्तः सूर्योढो वातिथिः स्मृतः ॥ अतिथेरादितोप्येते भोज्या नात्र विचारणा ॥ ४५ ॥ पितृदेवमनुष्येभ्यो दत्त्वाश्नात्यमृतं गृही ॥ अदत्त्वान्नं च यो भुङ्क्ते केवलं स्वोदरम्भरिः ॥ ४६ ॥ वैश्वदेवेन ये हीना आतिथ्येन विवर्जिताः ॥ सर्वे ते वृषला ज्ञेयाः प्राप्तवेदा अपि द्विजाः ॥ ४७ ॥ अकृत्वा वैश्वदेवं तु भु

को भोजन देना नरयज्ञ है ये क्रमसे हैं ॥ ४४ ॥ व वैश्वदेवकर्म के मध्य में प्राप्त व सूर्य से लायाहुआ अतिथि कहागया है और अतिथि के पहले भी ये भोजन के योग्य हैं इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ४५ ॥ पितर, देवता व मनुष्यों के लिये देकर गृहस्थ अमृत को भोजन करता है व इनको न देकर जो अन्न भोजन करता है वह केवल अपने पेट को भरनेवाला है ॥ ४६ ॥ जो वैश्वदेव से हीन व जो आतिथ्य से रहित हैं वेदों को पढ़ेहुए भी वे द्विज शूद्र जानने योग्य हैं ॥ ४७ ॥ व

वैश्वदेवको न करके जो नीच द्विज भोजन करते हैं इस लोक में वे अन्नहीन होते हैं इसके उपरान्त काकयोनि को प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥ निरालसी पुरुष वेदोक्त विदित कर्म को नित्य करै यदि शक्ति के अनुसार उसको करता है तो उत्तम गति को पाता है ॥ ४९ ॥ छठि व अष्टमी में पाप क्रम से तैल व मांस में बसता है वैसेही चौदसि व अमावस में क्रमसे क्षुर व योनि में बसता है ॥ ५० ॥ और उदय व अस्त होतेहुए सूर्य को न देखै और मस्तक पै व राहु से ग्रस्त तथा अण्डस्थ सूर्यनारायण को न देखै ॥ ५१ ॥ और जल में अपने रूप को न देखै न कीचड़ में दौड़े और नग्न स्त्री को न देखै न नग्न होकर जल में प्रवेश करै ॥ ५२ ॥ और देवमन्दिर,

ञ्जते ये द्विजाधमाः ॥ इह लोकेन्नहीनाः स्युः काकयोनिं व्रजन्त्यथो ॥ ४८ ॥ वेदोक्तं विदितं कर्म्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ॥ यदि कुर्याद्यथाशक्ति प्राप्नुयात्सद्गतिं पराम् ॥ ४९ ॥ षष्ठ्यष्टम्योर्वसेत्पापं तैले मांसे सदैव हि ॥ चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां तथैव च क्षुरे भगे ॥ ५० ॥ उदयन्तं न वीक्षेत नास्तं यन्तं न मस्तके ॥ न राहुणोपसृष्टं च नाण्डस्थं वीक्षयेद्रविम् ॥ ५१ ॥ न वीक्षेतात्मनो रूपमप्सु धावेन्न कर्दमे ॥ न नग्नां स्त्रियमीक्षेत न नग्नो जलमाविशेत् ॥ ५२ ॥ देवतायतनं विप्रं धेनुं मधु मृदं तथा ॥ जातिवृद्धं वयोवृद्धं विद्यावृद्धं तथैव च ॥ ५३ ॥ अश्वत्थं चैत्यवृक्षं च गुरुं जलभृतं घटम् ॥ सिद्धान्नं दधि सिद्धार्थं गच्छन्कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ ५४ ॥ रजस्वलां न सेवेत नाश्नीयात्सह भार्यया ॥ एकवासा न भुञ्जीत न भुञ्जीतोत्कटासने ॥ ५५ ॥ नाशुचिं स्त्रियमीक्षेत तेजस्कामो द्विजोत्तमः ॥ असन्तर्प्य पितॄन्देवान्नाद्यादन्नं च कुत्रचित् ॥ ५६ ॥ पक्वान्नं चापि नो मांसं दीर्घकालं जिजीविषुः ॥ न मूत्रणं व्रजे कुर्यान्न [illegible]मीके न

ब्राह्मण, गऊ, शहद, मिट्टी, जाति में वृद्ध, अवस्था में वृद्ध व विद्या में वृद्ध ॥ ५३ ॥ व पीपल, यज्ञस्थानवृक्ष, गुरु और जल से भरेहुए घट, स[illegible] [illegible]सिद्धि के लिये जाताहुआ मनुष्य प्रदक्षिणा करै ॥ ५४ ॥ व रजस्वला स्त्री को न सेवन करै और न स्त्री के साथ भोजन करै व एकवसन होकर भोज[illegible] [illegible]न पै भोजन न करै ॥ ५५ ॥ व तेजको चाहनेवाला द्विजोत्तम अशुद्ध स्त्री को न देखै और पितरों व देवताओं को न तृप्त करके कभी अन्[illegible]

दीर्घ काल तक जीने की इच्छावाला मनुष्य पक्वान्न व मांस को न खावै और गोरस्थान, बेंबौरि व भस्म में मूत्र न करै ॥ ५७ ॥ और जीव समेत गढ़ों में मूत्र न करै व खड़ा और चलताहुआ भी मनुष्य पेशाब न करै और ब्राह्मण, सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, नक्षत्र व गुरुवों को ॥ ५८ ॥ सामने देखताहुआ मनुष्य मल, मूत्र त्याग न करै और मुख से अग्नि को न फूंकै और नग्न स्त्री को न देखै ॥ ५९ ॥ और चरणों को अग्नि में न तपावै न अशुद्ध वस्तु को फेंकै व प्राणियों की हिंसा न करै और दोनों सन्ध्याओं में भोजन न करै ॥ ६० ॥ व प्रातःकाल और सायंकाल सन्ध्या में विद्वान् कभी शयन न करै और पिलाती हुई गऊ को न कहै न इन्द्रधनुष

भस्मनि ॥ ५७ ॥ न गर्त्तेषु ससत्त्वेषु न तिष्ठन्न व्रजन्नपि ॥ ब्राह्मणं सूर्यमग्निं च चन्द्रर्क्षगुरूनपि ॥ ५८ ॥ अभिपश्यन्न कुर्वीत मलमूत्रविसर्जनम् ॥ मुखेनोपधमेन्नाग्निं नग्नां नेक्षेत योषितम् ॥ ५९ ॥ नाङ्घ्री प्रतापयेदग्नौ न वस्तु अशुचि क्षिपेत् ॥ प्राणिहिंसां न कुर्वीत नाश्नीयात्सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥ ६० ॥ न संविशेच्च सन्ध्यायां प्रातः सायं कचिद् बुधः ॥ नाचक्षीत धयन्तीं गां नेन्द्रचापं प्रदर्शयेत् ॥ ६१ ॥ नैकः सुप्यात्कचिच्छून्ये न शयानं प्रबोधयेत् ॥ पन्थानं नैकलो यायान्न वार्य्यञ्जलिना पिबेत् ॥ ६२ ॥ न दिवोद्धृतसारं च भक्षयेद्दधि नो निशि ॥ स्त्रीधर्मिणीं नाभिवदेन्नाद्यादातृप्ति रात्रिषु ॥ ६३ ॥ तौर्यत्रिकप्रियो न स्यात्कांस्ये पादौ न धावयेत् ॥ श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे योऽश्नीयाज्ज्ञानवर्जितः ॥ ६४ ॥ दातुः श्राद्धफलं नास्ति भोक्ता किल्बिषभुग्भवेत् ॥ न धारयेदन्यभुक्तं वासश्चोपानहावपि ॥ ६५ ॥ न भिन्नभाजनेऽश्नीयान्नासीताग्न्यादिदूषिते ॥ आरोहणं गवां पृष्ठे प्रेतधूमं

को दिखावै ॥ ६१ ॥ व अकेला कभी शून्यस्थान में शयन न करै और न सोतेहुए मनुष्य को जगावै व अकेला मार्ग में न जावै और जल को अंजलि से न पियै ॥ ६२ ॥ और दिन में मठा व रात्रि में दही को न खावै और रजस्वला स्त्री से संभाषण न करै व रात्रियों में तृप्ति पर्यन्त भोजन न करै ॥ ६३ ॥ और नृत्य, गीत व बाजन ये तीनों प्रिय न होवैं व कांस्यपात्र में चरणों को न धुलावै और ज्ञान से वर्जित जो मनुष्य श्राद्ध करके पराये श्राद्ध में भोजन करता है ॥ ६४ ॥ तो दाता को श्राद्ध का फल नहीं होता है व भोजनकर्ता पापभोगी होता है और अन्य से पहनेहुए वसन व पनही को धारण न करै ॥ ६५ ॥ और फूटे बर्तन में न खावै व अग्नि आदि से

दूषित आसन पै न बैठे व गौवों की पीठ पै चढ़ना, प्रेत का धुवां और नदी का किनारा ॥ ६६ ॥ व बालातप और दिन में शयन बहुत दीर्घ समय तक जीने की इच्छावाला पुरुष वर्जित करै और स्नान करके अंग को न पोंछै व मार्ग में चोटी को न छोड़ै ॥ ६७ ॥ और हाथों व पैरों को न कँपावै व पैर से आसन को न खींचै और हाथ से शरीर को न पोंछै न स्नानवाले वस्त्रसे पोंछै ॥ ६८ ॥ और जो शरीर कुत्ता से उच्छिष्ट होता है वह फिर स्नान से शुद्ध होता है और दांत से कभी रोम व नख को न काटै ॥ ६९ ॥ व शुभके लिये नखों से नख का छेदन न करै और जिसको विपत्ति में छोड़ देवै उस कर्म को वड़े यत्न से भी न करै ॥ ७० ॥ और अपने घर

सरित्तटम् ॥ ६६ ॥ बालातपं दिवास्वापं त्यजेद्दीर्घं जिजीविषुः ॥ स्नात्वा न मार्जयेद्गात्रं विसृजेन्न शिखां पथि ॥ ६७ ॥ हस्तौ शिरो न धुनुयान्नाकर्षेदासनं पदा ॥ करेण नो मृजेद्गात्रं स्नानवस्त्रेण वा पुनः ॥ ६८ ॥ शुनोच्छिष्टं भवेद्गात्रं पुनः स्नानेन शुध्यति ॥ नोत्पाटयेल्लोमनखं दशनेन कदाचन ॥ ६९ ॥ करजैः करजच्छेदं विवर्जयेच्छुभाय तु ॥ यदापत्स्यां त्यजेत्तन्न कुर्यात्कर्म प्रयत्नतः ॥ ७० ॥ अद्वारेण न गन्तव्यं स्ववेश्मापि कदाचन ॥ क्रीडेन्नाज्ञैः सहासीत न धर्म्मघ्नैर्न रोगिभिः ॥ ७१ ॥ न शयीत क्वचिन्नग्नः पाणौ भुञ्जीत नैव च ॥ आर्द्रपादकरास्योऽश्नन्दीर्घकालं च जीवति ॥ ७२ ॥ संविशेन्नार्द्रचरणो नोच्छिष्टः क्वचिदाव्रजेत् ॥ शयनस्थो न चाश्नीयान्न पिबेच्च जलं द्विजः ॥ ७३ ॥ सोपानत्को नोपविशेन्न जलं चोत्थितः पिबेत् ॥ सर्व्वमम्लमयं नाद्यादारोग्यस्याभिलाषुकः ॥ ७४ ॥ न निरीक्षेत विण्मूत्रे नोच्छिष्टः संस्पृशेच्छिरः ॥ नाधितिष्ठेत्तुषाङ्गारभस्मकेशकपालिकाः ॥ ७५ ॥

को भी कभी बिन द्वार न जावै और मूर्खों के साथ व धर्मनाशक तथा रोगियों के साथ क्रीड़ा न करै ॥ ७१ ॥ कभी नग्न न सोवै और हाथ में कभी भोजन न करै व भीगे चरण हाथ व मुखवाला मनुष्य भोजन करता हुआ बहुत समय तक जीता है ॥ ७२ ॥ और भीगे चरणोंवाला मनुष्य कभी शयन न करै व उच्छिष्ट होकर कहीं न जावै व शय्या पै बैठा हुआ द्विज न भोजन करै न जल को पियै ॥ ७३ ॥ और पनहियों समेत न बैठे न उठकर जल को पियै व नीरोगता का अभिलाषी मनुष्य सब खट्टी वस्तु को न खावै ॥ ७४ ॥ व मल, मूत्र को न देखै और उच्छिष्ट होकर शिर को न छुवै व भूसी, अंगार, भस्म, बाल व कपाल के ऊपर न बैठै ॥ ७५ ॥

और धर्म से भ्रष्ट मनुष्यों के साथ निवास पतनही के लिये होता है और कभी शूद्र के लिये ऊंचा आसन व पलँग न देवै ॥ ७६ ॥ क्योंकि ब्राह्मण ब्राह्मणता से हीन होजाता है व शूद्र धर्म से हीन होजाता है और शूद्रों को धर्म का उपदेश अपने कल्याण को नाश करता है ॥ ७७ ॥ और द्विजों की सेवा शूद्रों का परम धर्म माना गया है व हाथों से शिर का खुजलाना उत्तम नहीं मानागया है ॥ ७८ ॥ वैदिक मन्त्र को कभी शूद्र के लिये न उपदेश करै क्योंकि ब्राह्मण ब्राह्मणता से हीन होजाता है व शूद्र धर्म से रहित होजाता है ॥ ७९ ॥ हाथों से मारना व निन्दा करना और बाल काटना व शास्त्र के विपरीत बर्ताव करना और लोभी से दान को लेकर ॥ ८० ॥

पतितैः सह संवासः पतनायैव जायते ॥ दद्यादूर्ध्वासनं मञ्चं न शूद्राय कदाचन ॥ ७६ ॥ ब्राह्मण्याद्धीयते विप्रः शूद्रो धर्माच्च हीयते ॥ धर्मोपदेशः शूद्राणां स्वश्रेयः प्रतिघातयेत् ॥ ७७ ॥ द्विजशुश्रूषणं धर्म्मः शूद्राणां हि परो मतः ॥ कण्डूयनं हि शिरसः पाणिभ्यां न शुभं मतम् ॥ ७८ ॥ आदिशेद्वैदिकं मन्त्रं न शूद्राय कदाचन ॥ ब्राह्मण्याद्धीयते विप्रः शूद्रो धर्म्माच हीयते ॥ ७९ ॥ आताडनं कराभ्यां च क्रोशनं केशलुञ्चनम् ॥ अशास्त्रवर्तनं भूयो लुब्धात्कृत्वा प्रतिग्रहम् ॥ ८० ॥ ब्राह्मणः स च वै याति नरकानेकविंशतिम् ॥ अकालमेघस्तनिते वर्षतौ पांसुवर्षणे ॥ ८१ ॥ महा बालध्वनौ रात्रावनध्यायाः प्रकीर्तिताः ॥ उल्कापाते च भूकम्पे दिग्दाहे मध्यरात्रिषु ॥ ८२ ॥ सन्ध्ययोर्वृषलोपा न्ते राज्यहारे च सूतके ॥ दशाष्टकासु भूतायां श्राद्धाहे प्रतिपद्यपि ॥ ८३ ॥ पूर्णिमायां तथाष्टम्यां श्वरुते राष्ट्रविप्लवे ॥ उपाकर्मणि चोत्सर्गे कल्पादिषु युगादिषु ॥ ८४ ॥ आरण्यकमधीत्यापि बाणसाम्नोरपि ध्वनौ ॥ अनध्यायेषु चैतेषु

वह ब्राह्मण इक्कीस नरकों को जाता है व बिन समय मेघशब्द होने पर और वर्षा ऋतु में धूलि बरसने पर ॥ ८१ ॥ व रात्रि में महाबालध्वनि में अनध्याय कहेगये हैं और उल्कापात, भूकम्प, दिग्दाह व मध्य रात्रियों में ॥ ८२ ॥ और संध्या व शूद्रके समीप तथा राज्यहरण और सूतक में व दश अष्टकाओं में व चतुर्दशी तथा श्राद्धदिन और परेवा में ॥ ८३ ॥ व पूर्णिमा, अष्टमी व कुत्ता के शब्द में और राज्यभंग में व उपाकर्म और मलमूत्र त्याग और कल्पादिक व युगादिक तिथियों में ॥ ८४ ॥ व वनपर्व

कहार, नाई, गोपाल, कुलमित्र, अर्धसीरी (अपनी भूमिका कृषीकर्ता) और आत्मनिवेदक (अपने आश्रित) शूद्रवर्ग में भी ये सम्बन्ध के कारण भोजन करने योग्य अन्नवाले कहेगये हैं ॥ ३ ॥ हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार धर्मारण्यनिवासी जनों का यह श्रुतियों व स्मृतियों में कहा हुआ धर्म कहा गया ॥ १०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसदाचारलक्षणवर्णनंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा पितर सब मनुज के तृप्त होत ततकाल । कह्यो सात अध्याय में सोइ चरित्र रसाल ॥ व्यासजी बोले कि धर्मबावली में प्राप्त होकर जो पितरों का

गोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः ॥ भोज्यान्नाः शूद्रवर्गेमी तथात्मविनिवेदकः ॥ ३ ॥ इत्थमाचारधर्मोयं धर्मारण्यनिवासिनाम् ॥ श्रुतिस्मृत्युक्तधर्मोऽयं युधिष्ठिर निवेदितः ॥ १०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येसदाचारलक्षणवर्णनन्नामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ सम्प्राप्य धर्मवाप्यां च यः कुर्यात्पितृतर्पणम् ॥ तृप्तिं प्रयान्ति पितरो यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ १ ॥ पितरश्चात्र पूज्याश्च स्वर्गता ये च पूर्वजाः ॥ पिण्डांश्च निर्वपेत्तेषां प्राप्येमां मुक्तिदायिकाम् ॥ २ ॥ त्रेतायां पञ्चदिवसैर्द्वापरे त्रिदिनेन तु ॥ एकचित्तेन यो विप्राः पिण्डं दद्यात्कलौयुगे ॥ ३ ॥ लोलुपा मानवा लोके सम्प्राप्ते तु कलौयुगे ॥ परदाररता लोकाः स्त्रियोऽतिचपलाः पुनः ॥ ४ ॥ परद्रोहरताः सर्वे नरनारीनपुंसकाः ॥ परनिन्दापरा नित्यं परच्छि

तर्पण करता है उसके पितर तबतक तृप्ति को प्राप्त होते हैं जबतक कि चौदह इन्द्र रहते हैं ॥ १ ॥ और यहां पितर पूजने योग्य हैं व जो पूर्वज पितर स्वर्ग में प्राप्त होते हैं उनको इस मुक्तिदायिनी बावली को प्राप्त होकर पिण्ड देवै ॥ २ ॥ त्रेता में पांच दिन व द्वापर में तीन दिनों से जो फल होता है हे ब्राह्मणो ! जो मनुष्य कलियुग में सावधानचित्त से पिण्ड को देता है उसको वही फल होता है ॥ ३ ॥ कलियुग प्राप्त होने पर संसार में मनुष्य लोभी होते हैं व पराई स्त्रियों में मनुष्य स्नेह करते हैं और फिर स्त्रियां बहुत चंचल होती हैं ॥ ४ ॥ और पुरुष, स्त्री व नपुंसक सब पराये द्रोह में परायण होते हैं और सदैव पराई निन्दा में परायण व पराये छिद्र के

देखनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥ व जो अन्य को दुःख करते हैं और जो कलही व मित्रभेदी होते हैं वे सब शुद्धता को प्राप्त होते हैं ऐसा आपही ब्रह्मा, विष्णु व महेश ने कहा है ॥ ६ ॥ हे महाभाग ! यह धर्मारण्य का वर्णन कहागया व शिवजी ने इस में जो फल कहा है वह कहागया ॥ ७ ॥ कि वचन, मन व शरीर से शुद्ध और पराई स्त्री से विमुख होते हैं व द्रोहरहित, समदर्शी, शुद्ध और माता, पिता में परायण होते हैं ॥ ८ ॥ व अचंचल, लोभरहित व दान धर्म में परायण होते हैं और जो आस्तिक, धर्मज्ञ व स्वामी की भक्ति में परायण होते हैं ॥ ९ ॥ और जो स्त्री पतिव्रता होती है व जो पति की सेवा में परायण होती है व जो मनुष्य अहिंसक,

द्रोपदर्शकाः ॥ ५ ॥ परोद्वेगकरा नूनं कलहा मित्रभेदिनः॥ सर्वे ते शुद्धतां यान्ति काजेशाः स्वयमब्रुवन् ॥ ६ ॥ एत दुक्तं महाभाग धर्मारण्यस्य वर्णनम् ॥ फलं चैवात्र सर्वं हि यदुक्तं शूलपाणिना ॥ ७ ॥ वाङ्मनःकायशुद्धाश्च परदारपराङ्मुखाः ॥ अद्रोहाश्च समाः शुद्धा मातापितृपरायणाः ॥ ८ ॥ अलौल्या लोभरहिता दानधर्मपरायणाः ॥ आस्तिकाश्चैव धर्मज्ञाः स्वामिभक्तिरताश्च ये ॥ ९ ॥ पतिव्रता तु या नारी पतिशुश्रूषणे रता॥ अहिंसका आतिथेयाः स्वधर्मनिरताः सदा ॥ १० ॥ शौनक उवाच ॥ शृणु सूत महाभाग सर्वधर्मविदांवर ॥ गृहस्थानां सदाचारः श्रुतश्च त्वन्मुखान्मया ॥ ११ ॥ एकं मनेप्सितं मेद्य तत्कथयस्व सूतज ॥ पतिव्रतानां सर्वासां लक्षणं कीदृशं वद ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ पतिव्रता गृहे यस्य सफलं तस्य जीवनम् ॥ यस्याङ्गच्छायया तुल्या यत्कथा पुण्यकारिणी ॥ १३ ॥ पतिव्रतास्त्वरुन्धत्या सावित्र्याप्यनसूयया॥ शाण्डिल्या चैव सत्या च लक्ष्म्या च शतरूपया ॥ १४ ॥ मेनया च

अतिथिपूजक और सदैव अपने धर्म में परायण होते हैं ॥ १० ॥ शौनकजी बोले कि हे सब धर्मज्ञों में श्रेष्ठ, महाभाग, सूतजी ! मैंने तुम्हारे मुखसे गृहस्थों का र दाचार सुना ॥ ११ ॥ परन्तु इस समय मेरा एक मनोरथ है उसको कहिये कि हे सूतज ! सब पतिव्रताओं का कैसा लक्षण है उसको कहिये ॥ १२ ॥ सूतजी बोले कि जिसके घर में पतिव्रता होती है उसका जीवन सफल होता है और जिसके अंग की छायाके समान जिसकी कथा पुण्यकारिणी होती है ॥ १३ ॥ और पतिव्रता स्त्रियां अरुन्धती, सावित्री, अनसूया, शाण्डिली, सती, लक्ष्मी व शतरूपा के समान होती हैं ॥ १४ ॥ और मेना, सुनीति, संज्ञा व स्वाहा के समान होती हैं मुनि ने

पतिव्रताओं के धर्मों को कहा है ॥ १५ ॥ कि स्वामी के भोजन करने पर जो भोजन करती है व स्वामी के स्थित होने पर जो स्थित होती है व सोने पर जो सोती है और पहले जो जागती है ॥ १६ ॥ व पति के विदेश में स्थित होनेपर जो अपना अलंकार नहीं करती है और कार्य के लिये कहीं भी जाने पर जो सब भूषणों से वर्जित होती है ॥ १७ ॥ व इसके आयुर्बल के बढ़ने के लिये जो पति का नाम नहीं लेती है व कभी अन्य पुरुष का नाम भी जो नहीं लेती है ॥ १८ ॥ और खींची हुई भी जो गाली नहीं देती है व मारेजाने पर भी जो प्रसन्न होती है व इस कर्म को करो ऐसा कहने पर जो यह कहती है कि हे स्वामिन् ! मैंने इस कार्य

सुनीत्या च संज्ञया स्वाहया समाः ॥ पतिव्रतानां धर्मा हि मुनिना च प्रकीर्तिताः ॥ १५ ॥ भुङ्क्ते भुक्ते स्वामिनि च तिष्ठति त्वनुतिष्ठति ॥ विनिद्रिते या निद्राति प्रथमं परिबुध्यति ॥ १६ ॥ अनलङ्कृतमात्मानं देशान्ते भर्तरि स्थिते ॥ कार्यार्थं प्रोषिते क्वापि सर्व्वमण्डनवर्जिता ॥ १७ ॥ भर्तुर्नाम न गृह्णाति ह्यायुषोऽस्य हि वृद्धये ॥ पुरुषान्तरनामापि न गृह्णाति कदाचन ॥ १८ ॥ आकृष्टापि च नाक्रोशेत्ताडितापि प्रसीदति ॥ इदं कुरु कृतं स्वामिन्मन्यतामिति वक्ति च ॥ १९ ॥ आहूता गृहकार्याणि त्यक्त्वा गच्छति सत्वरम् ॥ किमर्थं व्याहृता नाथ स प्रसादो विधीयताम् ॥ २० ॥ न चिरं तिष्ठति द्वारि न द्वारमुपसेवते ॥ अदातव्यं स्वयं किञ्चित्कर्हिचिन्न ददात्यपि ॥ २१ ॥ पूजोपकरणं सर्वमनुक्ता साधयेत्स्वयम् ॥ नियमोदकबर्हींषि पत्रपुष्पाक्षतादिकम् ॥ २२ ॥ प्रतीक्षमाणा च वरं यथाकालोचितं हि यत् ॥ तदुपस्थापयेत्सर्वमनुद्विग्नातिहृष्टवत् ॥ २३ ॥ सेवते भर्तुरुच्छिष्टमिष्टमन्नं फलादिकम् ॥ दूरतो वर्जये

को किया ऐसा जानिये ॥ १९ ॥ और बुलाई हुई जो घर के कार्यों को छोड़कर शीघ्रता समेत जाती व यह कहती है कि हे नाथ ! मैं किस लिये बुलाई गई उस प्रसाद को कीजिये ॥ २० ॥ और बहुत देर तक जो द्वार पै खड़ी नहीं होती है व द्वार को जो नहीं सेवती है और न देने योग्य किसी वस्तु को जो स्वयं कभी नहीं देती है ॥ २१ ॥ व न कहने पर नियम जल, कुश व पत्र, पुष्प और अक्षतादिक उस सब पूजन के सामान को जो स्त्री आपही इकट्ठा करती है ॥ २२ ॥ व वर की इच्छा करती हुई जो निरालसी स्त्री समय के अनुकूल जो कुछ होता है उस सब को बड़ी प्रसन्नता से स्थापित करती है ॥ २३ ॥ व पति के उच्छिष्ट प्रिय अन्न व

फलादिक को जो सेवती है और यह समाज व उत्साह के दर्शन को जो दूर से वर्जित करती है ॥ २४ ॥ और तीर्थयात्रादिक व विवाहादि के देखने के लिये जो नहीं जाती है व सुखसे सोते व सुखसे बैठे और इच्छा के अनुकूल रमण करते हुए ॥ २५ ॥ पति को जो विघ्न में भी कभी नहीं उठाती है व रजस्वला होकर तीन रात्रियों तक जो अपना मुख नहीं दिखाती है ॥ २६ ॥ और जबतक नहाकर शुद्ध न होवै तबतक जो अपने वचन को नहीं सुनाती है व भलीभांति नहाई हुई जो पति का मुख देखती है अन्य किसी के मुखको नहीं देखती है अथवा मन में पति को ध्यान कर सूर्यनारायण को जो देखती है ॥ २७ ॥ व हरिद्रा, कुंकुम, सिन्दूर,

देषा समाजोत्सवदर्शनम् ॥ २४ ॥ न गच्छेत्तीर्थयात्रादिविवाहप्रेक्षणादिषु ॥ सुखसुप्तं सुखासीनं रममाणं यदृच्छया ॥ २५ ॥ अन्तरायेऽपि कार्येषु पतिं नोत्थापयेत्कचित् ॥ स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं तु स्वमुखं नैव दर्शयेत् ॥ २६ ॥ स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्नात्वा न शुध्यति ॥ सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेतान्यस्य न कचित् ॥ अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं विलोकयेत् ॥ २७ ॥ हरिद्रां कुङ्कुमं चैव सिन्दूरं कज्जलं तथा ॥ कूर्पासकं च ताम्बूलं माङ्गल्याभरणं शुभम् ॥ २८ ॥ केशसंस्कारकं चैव करकर्णादिभूषणम् ॥ भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेन्न पतिव्रता ॥ २९ ॥ भर्तृविद्वेषिणीं नारीं नैषा सम्भाषते कचित् ॥ नैकाकिनी कचिद्भूयान्न नग्ना स्नाति च कचित् ॥ ३० ॥ नोलूखले न मुशले न वर्द्धन्यां दृषद्यपि ॥ न यन्त्रके न देहल्यां सती चोपविशेत्कचित् ॥ ३१ ॥ विना व्यवायसमयात्प्रागल्भ्यं न कचिच्चरेत् ॥ यत्र यत्र रुचिर्भर्तुस्तत्र प्रेमवती सदा ॥ ३२ ॥ इदमेव व्रतं स्त्रीणामयमेव परो वृषः ॥ इयमेव च पूजा च भर्तु

कज्जल, वसन, ताम्बूल व उत्तम मांगल्य का आभरण ॥ २८ ॥ व बालों का संस्कार और हाथ व कान आदि का भूषण पति का आयुर्बल चाहती हुई वह पतिव्रता स्त्री दूर न करै ॥ २९ ॥ और यह स्त्री पति से वैर करनेवाली स्त्री से कभी वार्तालाप न करै व कभी अकेली न होवै व नग्न होकर कभी स्नान न करै ॥ ३० ॥ और पतिव्रता स्त्री कभी उलूखल, मूसल व करछुलि पै न बैठै और पत्थर, यन्त्र व देहली पै न बैठै ॥ ३१ ॥ व मैथुन समय के सिवा कभी धृष्टता न करै और जहां जहां पति की रुचि होवै वहां सदैव प्रेम करै ॥ ३२ ॥ स्त्रियों का यही व्रत है व यही परम धर्म है और यही पूजा है कि पति का वचन उल्लंघन न

करै ॥ ३३ ॥ व नपुंसक और दुष्टदशा में प्राप्त तथा रोगी व वृद्ध और सुस्थिर व दुःस्थिर भी एक पति को उल्लंघन न करै ॥ ३४ ॥ और घी, नमक व हींग आदिक न होने पर भी पतिव्रता स्त्री पति से यह न कहै कि नहीं है और लोहे के पात्रों में भोजन न करै ॥ ३५ ॥ और तीर्थ स्नान की इच्छावाली स्त्री पति के चरणोदक को पियै और शिव व विष्णुजीसे भी अधिक स्त्री को पति होताहै ॥ ३६ ॥ जो स्त्री पति को उल्लंघनकर व्रत व उपवासका नियम करती है वह पति का आयुर्बल हरती है व मरकर नरक को जाती है ॥ ३७ ॥ और क्रोधमें तत्पर जो स्त्री कहने पर प्रत्युत्तर देती है वह गांव में कुत्ती होती है व निर्जन वन में शृगाली होती है ॥ ३८ ॥ और स्त्रियों को

वाक्यं न लङ्घयेत् ॥ ३३ ॥ क्लीबं वा दुरवस्थं वा व्याधितं वृद्धमेव वा ॥ सुस्थिरं दुःस्थिरं वापि पतिमेकं न लङ्घयेत् ॥ ३४ ॥ सर्पिर्लवणहिङ्ग्वादिक्षयेऽपि च पतिव्रता ॥ पतिं नास्तीति न ब्रूयादायसीषु न भोजयेत् ॥ ३५ ॥ तीर्थस्नानार्थिनी चैव पतिपादोदकं पिबेत् ॥ शङ्करादपि वा विष्णोःपतिरेवाधिकः स्त्रियः ॥ ३६ ॥ व्रतोपवासनियमं पतिमुल्लङ्घ्य या चरेत् ॥ आयुष्यं हरते भर्तुर्मृता निरयमृच्छति ॥ ३७ ॥ उक्ता प्रत्युत्तरं दद्यान्नारी या क्रोधतत्परा ॥ सरमा जायते ग्रामे शृगाली निर्जने वने ॥ ३८ ॥ स्त्रीणां हि परमश्चैको नियमः समुदाहृतः ॥ अभ्यर्च्य चरणौ भर्तुर्भोक्तव्यं कृतनिश्चया ॥ ३९ ॥ उच्चासनं न सेवेत न व्रजेत्परवेश्मसु ॥ तत्र पारुष्यवाक्यानि ब्रूयान्नैव कदाचन ॥ ४० ॥ गुरूणां सन्निधौ वापि नोच्चैर्ब्रूयान्न वाह्वयेत् ॥ ४१ ॥ या भर्तारं परित्यज्य रहश्चरति दुर्मतिः ॥ उलूकी जायते क्रूरा वृक्षकोटरशायिनी ॥ ४२ ॥ ताडिता ताडयेच्चेत्तं सा व्याघ्री वृषदंशिका ॥ कटाक्षयति याऽन्यं वै केकराक्षी तु सा

एक उत्तम नियम कहागया है कि पति के चरणों को पूजकर भोजन करना चाहिये व निश्चय कियेहुई स्त्री ॥ ३९ ॥ ऊंचे आसन पै न बैठै व पराये घरों को न जावै और वहां कठोरवचनों को कभी न कहै ॥ ४० ॥ और गुरुवों के समीप उच्चस्वर से न बोलै और न किसी को पुकारै ॥ ४१ ॥ और जो निर्बुद्धिनी स्त्री पति को छोड़कर एकान्त में जाती है वह क्रूरा वृक्ष के खोढ़र में सोनेवाली उलूकिनी होती है ॥ ४२ ॥ व मारी हुई जो स्त्री उस पति को मारती है वह वृषदंशिका (बिलारी) व व्याघ्री

होती है और जो अन्य पुरुष को कटाक्ष से देखती है वह केकराक्षी (कुदृष्टिवाली) होती है ॥ ४३ ॥ और जो पति को छोड़कर केवल मीठी वस्तु को खाती है वह ग्राम में सूकरी होती है या बगुली व विष्ठा को खानेवाली होती है ॥ ४४ ॥ और जो स्त्री हुंकार व त्वंकार कर अप्रिय बोलती है वह निश्चय कर गूंगी होती है व जो सदैव सौति से ईर्षा करती है वह बार २ दुर्भगा होती है और जो पति से दृष्टि को छिपाकर अन्य किसी को देखती है ॥ ४५ ॥ वह कानी, विमुख व कुरूपिणी होती है और बाहर से आतेहुए पति को शीघ्रता समेत जो स्त्री जल, आसन, तांबूल, व्यजन व पादसंवाहनादिक ॥ ४६ ॥ व सुन्दर वचन तथा पसीना को दूर करने से

भवेत् ॥ ४३ ॥ या भर्तारं परित्यज्य मिष्टमश्नाति केवलम् ॥ ग्रामे सा सूकरी भूयाद्वल्गुली वाथ विड्भुजा ॥ ४४ ॥ हुन्त्वङ्कृत्याप्रियं ब्रूते मूका सा जायते खलु ॥ या सपत्नीं सदेर्ष्येत दुर्भगा सा पुनः पुनः ॥ दृष्टिं विलुप्य भर्तुर्या कञ्चिदन्यं समीक्षते ॥ ४५ ॥ काणा च विमुखा वापि कुरूपापि च जायते ॥ बाह्यादायान्तमालोक्य त्वरिता च जलासनैः ॥ ताम्बूलैर्व्यजनैश्चैव पादसंवाहनादिभिः ॥ ४६ ॥ तथैव चारुवचनैः स्वेदसन्नोदनैः परैः ॥ या प्रियं प्रीणयेत्प्रीता त्रिलोकी प्रीणिता तया ॥ मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ॥ ४७ ॥ अमितस्य हि दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥ भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च ॥ तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत् ॥ ४८ ॥ जीवहीनो यथा देहः क्षणादशुचितां व्रजेत् ॥ भर्तृहीना तथा योषित्सुस्नाताप्यशुचिः सदा ॥ ४९ ॥ अमङ्गलेभ्यः सर्वेभ्यो विधवा स्यादमङ्गला ॥ विधवादर्शनात्सिद्धिः कापि जातु न जायते ॥ ५० ॥ विहाय मातरं चैकां सर्वा मङ्गल

जो प्रसन्न होती हुई स्त्री पति को प्रसन्न करती है उसने त्रिलोक को प्रसन्न किया पिता व भाई और पुत्र प्रमाणभर वस्तु को देता है ॥ ४७ ॥ और अमित के देनेवाले पति को कौन स्त्री नहीं पूजती है पतिही देवता है व पति गुरु है और पतिही धर्म, तीर्थ व व्रत हैं इस कारण सब को छोड कर केवल पति को पूजै ॥ ४८ ॥ जैसे जीव से रहित शरीर क्षणभर में अशुद्ध होजाता है वैसेही पति से रहित स्त्री भली भांति नहाई हुई भी सदैव अशुद्ध होती है ॥ ४९ ॥ व सब अमंगलों से विधवा अमगल होती है और विधवा के दर्शन से कहीं भी सिद्धि नहीं होती है ॥ ५० ॥ एक माता को छोड़कर सब विधवा स्त्रियां मंगल से रहित होती हैं इससे विद्वान्

सर्प के समान उनका आशीर्वाद भी छोड़देवे ॥ ५१ ॥ कन्या के विवाह समय में ब्राह्मण यह कहाते हैं कि जीते व मरेहुए भी पतिकी स्त्री सहचरी होवे ॥ ५२ ॥ घरसे श्मशान को जातेहुए पति के पीछे जो स्त्री हर्ष से जाती है वह पग २ पै निस्सन्देह अश्वमेध यज्ञ का फल पाती है ॥ ५३ ॥ सर्प को पकड़नेवाला मनुष्य जैसे बिल से सर्प को बल से ऊपर खींचलेता है वैसेही पतिव्रता स्त्री यमदूतों से पति को लेकर स्वर्ग को जाती है ॥ ५४ ॥ और उस पतिव्रता स्त्री को देखकर यमदूत भगजाते हैं व सूर्य तपते हैं व अग्नि भी जलती है ॥ ५५ ॥ और पतिव्रता का तेज देखकर सब तेज कॉपते हैं जितनी अपने रोमों की संख्या होती है उतने

वर्जिताः॥तदाशिषमपि प्राज्ञस्त्यजेदाशीर्विषोपमाम्॥५१॥कन्याविवाहसमये वाचयेयुरिति द्विजाः॥ भर्तुः सहचरी भूयाज्जीवतोऽजीवतोपि वा ॥ ५२ ॥ अनुव्रजन्ती भर्तारं गृहात्पितृवनं मुदा ॥ पदेपदेश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ५३ ॥ व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् ॥ एवमुत्क्रम्य दूतेभ्यः पतिं स्वर्गं व्रजेत्सती ॥ ५४ ॥ यमदूताः पलायन्ते तामालोक्य पतिव्रताम् ॥ तपनस्तप्यते नूनं दहनोपि च दह्यते ॥ ५५ ॥ कम्पन्ते सर्वतेजांसि दृष्ट्वा पातिव्रतं महः॥ यावत्स्वलोमसंख्यास्ति तावत्कोटयुतानि च ॥ ५६ ॥ भर्त्रा स्वर्गसुखं भुङ्क्ते रममाणा पतिव्रता ॥ धन्या सा जननी लोके धन्योऽसौ जनकः पुनः॥५७॥ धन्यः स च पतिः श्रीमान्येषां गेहे पतिव्रता ॥ पितृवंश्या मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः ॥ पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गसौख्यानि भुञ्जते ॥ ५८ ॥ शीलभङ्गेन दुर्वृत्ताः पातयन्ति कुलत्रयम्॥ पितुर्मातुस्तथा पत्युरिहामुत्र च दुःखिताः॥५९॥पतिव्रतायाश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद्भुवम्॥सा तीर्थभूमिर्म्मा

करोड़ दशहज़ार वर्षोंतक ॥ ५६ ॥ पति के साथ रमण करती हुई पतिव्रता स्त्री स्वर्ग का सुख भोगती है संसार में वह माता धन्य है व यह पिता धन्य है ॥ ५७ ॥ और वह श्रीमान् धन्य है कि जिनके घर में पतिव्रता स्त्री होती है व पतिव्रता के प्रभाव से तीन पुश्तियां पिताके वंश की व तीन माता के वंश की और तीन पति के वंश की स्वर्ग के सुखों को भोगती हैं ॥ ५८ ॥ और शीलभंग से दुष्टचरित्रवाली स्त्रियां पिता, माता व पति की तीन पुश्तियों को नरक में डालती हैं व इस लोक और परलोक में दुःखित होती हैं ॥ ५९ ॥ और जहां जहां पतिव्रता का चरण पृथ्वी को छूता है वह तीर्थ की भूमि मानने योग्य है व इसमें पृथ्वी को भार नहीं होता है बरन पवित्र-

सर्प के समान उनका आशीर्वाद भी छोड़देवे ॥ ५१ ॥ कन्या के विवाह समय में ब्राह्मण यह कहाते हैं कि जीते व मेरेहुए भी पतिकी स्त्री सहचरी होवे ॥ ५२ ॥ घरसे श्मशान को जातेहुए पति के पीछे जो स्त्री हर्ष से जाती है वह पग २ पै निस्सन्देह अश्वमेध यज्ञ का फल पाती है ॥ ५३ ॥ सर्प को पकड़नेवाला मनुष्य जैसे बिल से सर्प को बल से ऊपर खींचलेता है वैसेही पतिव्रता स्त्री यमदूतों से पति को लेकर स्वर्ग को जाती है ॥ ५४ ॥ और उस पतिव्रता स्त्री को देखकर यम-दूत भगजाते हैं व सूर्य तपते हैं व अग्नि भी जलती है ॥ ५५ ॥ और पतिव्रता का तेज देखकर सब तेज कॉपते हैं जितनी अपने रोमों की संख्या होती है उतने

वर्जिताः॥तदाशिषमपि प्राज्ञस्त्यजेदाशीविषोपमाम्॥५१॥कन्याविवाहसमये वाचयेयुरिति द्विजाः॥भर्तुः सहचरी भूयाज्जीवतोऽजीवतोपि वा ॥ ५२ ॥ अनुव्रजन्ती भर्तारं गृहात्पितृवनं मुदा ॥ पदेपदेश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ५३ ॥ व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् ॥ एवमुत्क्रम्य दूतेभ्यः पतिं स्वर्गं व्रजेत्सती ॥ ५४ ॥ यमदूताः पलायन्ते तामालोक्य पतिव्रताम् ॥ तपनस्तप्यते नूनं दहनोपि च दह्यते ॥ ५५ ॥ कम्पन्ते सर्वतेजांसि दृष्ट्वा पातिव्रतं महः॥ यावत्स्वलोमसंख्यास्ति तावत्कोटययुतानि च ॥ ५६ ॥ भर्त्रा स्वर्गसुखं भुङ्क्ते रममाणा पतिव्रता ॥ धन्या सा जननी लोके धन्योऽसौ जनकः पुनः॥५७॥ धन्यः स च पतिः श्रीमान्येषां गेहे पतिव्रता ॥ पितृवंश्या मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः ॥ पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गसौख्यानि भुञ्जते ॥ ५८ ॥ शीलभङ्गेन दुर्वृत्ताः पातयन्ति कुलत्रयम्॥ पितुर्मातुस्तथा पत्युरिहामुत्र च दुःखिताः॥५९॥पतिव्रतायाश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद्भुवम्॥ सा तीर्थभूमिर्म्मा

करोड़ दशहज़ार वर्षोंतक ॥ ५६ ॥ पति के साथ रमण करती हुई पतिव्रता स्त्री स्वर्ग का सुख भोगती है संसार में वह माता धन्य है व यह पिता धन्य है ॥ ५७ ॥ और वह श्रीमान् धन्य है कि जिनके घर में पतिव्रता स्त्री होती है व पतिव्रता के प्रभाव से तीन पुश्तियां पिताके वंश की व तीन माता के वंश की और तीन पति के वंश की स्वर्ग के सुखों को भोगती हैं ॥ ५८ ॥ और शीलभंग से दुष्टचरित्रवाली स्त्रियां पिता, माता व पति की तीन पुश्तियों को नरक में डालती हैं व इस लोक और पर-लोक में दुःखित होती हैं ॥ ५९ ॥ और जहां जहां पतिव्रता का चरण पृथ्वी को छूता है वह तीर्थ की भूमि मानने योग्य है व इसमें पृथ्वी को भार नहीं होता है बरन पवित्र-

कारक होताहै ॥ ६० ॥ व सूर्यनारायण भी डरतेहुए पतिव्रता का स्पर्श करते हैं और चन्द्रमा व गन्धर्व भी अपनी पवित्रता के लिये पतिव्रता का स्पर्श करते हैं अन्यथा नहीं स्पर्श करते हैं ॥ ६१ ॥ और जल सदैव पतिव्रता का स्पर्श चाहते हैं व हमारा पापनाश होगा इस कारण गायत्री पतिव्रता का स्पर्श करती है और वह गायत्री पापनाशिनी होती है ॥ ६२ ॥ रूप व लावण्य से गर्वित स्त्रियां क्या घर घरमें नहीं हैं परन्तु विश्वेश्वरजी की भक्तिही से पतिव्रता स्त्री मिलती है ॥ ६३ ॥ स्त्री गृहस्थ की जड़ है व स्त्री सुख की मूल है और स्त्री धर्म के फल के लिये होती है व स्त्री संतान की वृद्धि के लिये होती है ॥ ६४ ॥ और स्त्री से परलोक व यह लोक दोनों जीतेजाते हैं और

न्येति नात्र भारोऽस्ति पावनः ॥ ६० ॥ बिभ्यत्पतिव्रतास्पर्शं कुरुते भानुमानपि ॥ सोमो गन्धर्व एवापि स्वपावित्र्याय नान्यथा ॥ ६१ ॥ आपः पतिव्रतास्पर्शमभिलष्यन्ति सर्वदा ॥ गायत्र्यघविनाशो नो पातिव्रत्येन साऽघनुत् ॥ ६२ ॥ गृहेगृहे न किं नार्य्यो रूपलावण्यगर्विताः ॥ परं विश्वेशभक्त्यैव लभ्यते स्त्री पतिव्रता ॥ ६३ ॥ भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च ॥ भार्या धर्मफलायैव भार्या सन्तानवृद्धये ॥ ६४ ॥ परलोकस्त्वयं लोको जीयते भार्यया द्वयम् ॥ देवपित्रतिथीनां च तृप्तिः स्याद्भार्यया गृहे ॥ गृहस्थः स तु विज्ञेयो गृहे यस्य पतिव्रता ॥ ६५ ॥ यथा गङ्गावगाहेन शरीरं पावनं भवेत् ॥ तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सदनं पावनं भवेत् ॥ ६६ ॥ पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम् ॥ तस्माद्भूशयनं कार्य्यं पतिसौख्यसमीहया ॥ ६७ ॥ नैवाङ्गोद्वर्त्तनं कार्य्यं स्त्रिया विधवया क्वचित् ॥ गन्धद्रव्यस्य सम्भोगो नैव कार्य्यस्तया क्वचित् ॥ ६८ ॥ तर्प्पणं प्रत्यहं कार्य्यं भर्तुः कुशतिलोदकैः ॥ तत्पि

स्त्री से घर में देवता, पितर व अतिथियों की तृप्ति होती है और जिसके घर में पतिव्रता होती है वह गृहस्थ जानने योग्य है ॥ ६५ ॥ जैसे गङ्गास्नान से शरीर पवित्र होता है वैसेही पतिव्रता को देखकर मन्दिर पवित्र होताहै ॥ ६६ ॥ और पलंग पर सोनेवाली विधवा स्त्री पति को नरक में डालती है इस कारण पति के सुखकी इच्छावाली स्त्री को पृथ्वी में शयन करना चाहिये ॥ ६७ ॥ विधवा स्त्री को कभी अंग में उबटन न लगाना चाहिये और उसको कभी सुगन्धित वस्तु का संभोग न करना चाहिये ॥ ६८ ॥ और प्रतिदिन कुश व तिलोदक से पति को तर्पण करना चाहिये और उसके पति को व उसके भी पति को नामगोत्रादिपूर्वक तर्पण करना

चाहिये ॥ ६९ ॥ और पति की बुद्धि से विष्णु का पूजन करना चाहिये अन्यथा न करना चाहिये व विष्णुरूपधारी पति को विष्णु ध्यान करै ॥ ७० ॥ और संसार में जो जो पति को बहुत प्रिय होवै पति की तृप्ति की इच्छा से उस उस वस्तु को गुणवान् ब्राह्मण के लिये देना चाहिये ॥ ७१ ॥ और वैशाख व कातिक महीने में विशेष नियमों को करै कि स्नान, दान व तीर्थयात्रा और बार २ पुराण का श्रवण करै ॥ ७२ ॥ वैशाख में जल के घट व कार्त्तिक में घृत के दिया देना चाहिये व माघ में धान्य और तिलों का दान स्वर्गलोक में विशेष होता है ॥ ७३ ॥ और विष्णुदेवजी के निमित्त वैशाख में पौशाला करना चाहिये व झारी देना चाहिये और खस, व्यजन,

तुस्तत्पितुश्चापि नामगोत्रादिपूर्वकम् ॥ ६९ ॥ विष्णोः सम्पूजनं कार्यं पतिबुद्ध्या न चान्यथा ॥ पतिमेव सदा ध्यायेद्विष्णुरूपधरं हरिम् ॥ ७० ॥ यद्यदिष्टतमं लोके यद्यत्पत्युः समीहितम् ॥ तत्तद्गुणवते देयं पतिप्रीणनकाम्यया ॥ ७१ ॥ वैशाखे कार्त्तिके मासे विशेषनियमांश्चरेत् ॥ स्नानं दानं तीर्थयात्रां पुराणश्रवणं मुहुः ॥ ७२ ॥ वैशाखे जलकुम्भाश्च कार्त्तिके घृतदीपिकाः ॥ माघे धान्यतिलोत्सर्गः स्वर्गलोके विशिष्यते ॥ ७३ ॥ प्रपा कार्या च वैशाखे देवे देया गलन्तिका ॥ उशीरं व्यजनं छत्रं सूक्ष्मवासांसि चन्दनम् ॥ ७४ ॥ सकर्पूरं च ताम्बूलं पुष्पदानं तथैव च ॥ जलपात्राण्यनेकानि तथा पुष्पगृहाणि च ॥ ७५ ॥ पानानि च विचित्राणि द्राक्षारम्भाफलानि च ॥ देयानि द्विजमुख्येभ्यः पतिर्मे प्रीयतामिति ॥ ७६ ॥ ऊर्ज्जे यवान्नमश्नीयादेकान्नमथवा पुनः ॥ वृन्ताकं सूरणं चैव शूकशिम्बीं च वर्जयेत् ॥ ७७ ॥ कार्त्तिके वर्ज्जयेत्तैलं कांस्यं चापि विवर्जयेत् ॥ कार्त्तिके मौननियमे चारुघण्टां प्रदापयेत् ॥ ७८ ॥

छत्र व रेशमी वस्त्र व चंदन देना चाहिये ॥ ७४ ॥ और कर्पूर समेत, ताम्बूल व पुष्पदान तथा अनेक जलपात्र व अनेक पुष्पगृह ॥ ७५ ॥ व विचित्र पान और मुनक्का व केला के फल इस लिये मुख्य ब्राह्मणों के लिये देना चाहिये कि मेरा पति प्रसन्न होवै ॥ ७६ ॥ कार्त्तिक में यवान्न व एक अन्न को खावै और वृन्ताक (भांटा), ज़िमींक़न्द व केंवाच को वर्जित करै ॥ ७७ ॥ और कार्त्तिक में तैल व कांस्य को भी वर्जित करै और कार्त्तिक में मौन के नियम में सुन्दर घण्टा को देवै ॥ ७८ ॥

और पत्ते में खानेवाला मनुष्य घृत से पूर्ण कांस्यपात्र को देवै व भूमिशय्या के व्रत में रजाई समेत नम्रशय्या को देना चाहिये ॥ ७९ ॥ व फल के त्याग में फल देना चाहिये और रस के त्याग में वही रस देना चाहिये और अन्न के त्याग में वही धान्य देवै अथवा शाली कहेगये हैं और अलंकार समेत व सुवर्ण समेत गऊ को यत्न से देवै ॥ ८० ॥ एक ओर सब दान व एक ओर दीपदान होता है और कार्त्तिक में दीपदान के फल के अन्य कर्म सोलहवीं कला के योग्य नहीं होते हैं ॥ ८१ ॥ इत्यादिक विधवाओं के नियम कहेगये हैं हे राजन्! उनको यह फल होता है अन्य जनों को किसी प्रकार नहीं होता है ॥ ८२ ॥ धर्मवापी को प्राप्त

पत्रभोजी कांस्यपात्रं घृतपूर्णं प्रयच्छति ॥ भूमिशय्याव्रते देया शय्या श्लक्ष्णा सतूलिका ॥ ७९ ॥ फलत्यागे फलं देयं रसत्यागे च तद्रसः ॥ धान्यत्यागे च तद्धान्यमथवा शालयः स्मृताः ॥ धेनुं दद्यात्प्रयत्नेन सालङ्कारां सकाञ्चनाम् ॥ ८० ॥ एकतः सर्वदानानि दीपदानं तथैकतः ॥ कार्त्तिके दीपदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ८१ ॥ इत्यादिविधवानां च नियमाः सम्प्रकीर्तिताः ॥ तेषां फलमिदं राजन्नान्येषां च कदाचन ॥ ८२ ॥ धर्मवापीं समासाद्य दानं दद्याद्विचक्षणः ॥ कोटिधा वर्द्धते नित्यं ब्रह्मणो वचनं यथा ॥ ८३ ॥ तिलधेनुं च यो दद्याद्धर्मेश्वरपुरः स्थितः ॥ तिलसंख्यानि वर्षाणि स्वर्गे लोके महीयते ॥ ८४ ॥ धर्मक्षेत्रे तु सम्प्राप्य श्राद्धं कुर्यादतन्द्रितः ॥ तस्य संवत्सरं यावत्तृप्ताः स्युः पितरो ध्रुवम् ॥ ८५ ॥ ये चान्ये पूर्वजाः स्वर्गे ये चान्ये नरकौकसः ॥ ये च तिर्यक्त्वमापन्ना ये च भूतादिसंस्थिताः ॥ ८६ ॥ तान्सर्वान्धर्मकूपे वै श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ॥ अत्र प्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि ॥ तेन ते

होकर चतुर मनुष्य दान देवै तो नित्य कोटिगुना बढ़ता है जैसा कि ब्रह्मा का वचन है ॥ ८३ ॥ व धर्मेश्वरपुर में स्थित जो मनुष्य तिल की गऊ को देता है वह तिल संख्यक वर्षोंतक स्वर्गलोक में पूजा जाता है ॥ ८४ ॥ व धर्मक्षेत्र में प्राप्त होकर जो निरालसी पुरुष श्राद्ध को देवै उसके पितर वर्षभरतक निश्चयकर तृप्त होते हैं ॥ ८५ ॥ व जो अन्य पूर्वज पितर स्वर्ग में होवैं और जो अन्य नरकगामी होवैं व जो तिर्यक्ता को प्राप्त हुए हैं और जो भूतादिकों में स्थित हैं ॥ ८६ ॥ उन सबों को विधिपूर्वक

धर्मकूप के समीप श्राद्ध देवै और इस श्राद्ध में मनुष्य पृथ्वी में जो अन्न डालते हैं उससे वे पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं जो कि पिशाचत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ८७ ॥ व हे पुत्र ! जिन मनुष्यों का स्नानवस्त्र से उपजाहुआ जल पृथ्वी में गिरता है उस जल से उनकी तृप्ति होती है जो कि वृक्षत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ८८ ॥ और जो यवों के किनुका पृथ्वी में गिरते हैं उनसे उनकी तृप्ति होती है जो कि देवत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ८९ ॥ व पिंडों के उठाने पर जो यवों के किनुका पृथ्वी में गिरते हैं उनसे उनकी तृप्ति होती है जोकि पाताल को प्राप्त हुए हैं ॥ ९० ॥ और वर्ण, आश्रम के आचार व कर्म से रहित व संस्कारहीन जो पुरुष मरे हैं वे इस श्राद्ध में

तृप्तिमायान्ति ये पिशाचत्वमागताः ॥ ८७॥ येषां तु स्नानवस्त्रोत्थं भूमौ पतति पुत्रक ॥ तेन ये तरुतां प्राप्तास्तेषां तृप्तिः प्रजायते ॥ ८८ ॥ या वै यवानां कणिकाः पतन्ति धरणीतले ॥ ताभिराप्यायनं तेषां ये तु देवत्वमागताः॥८९॥ उद्धृतेष्वथ पिण्डेषु यवान्नकणिका भुवि ॥ ताभिराप्यायनं तेषां ये च पातालमागताः ॥ ९०॥ ये वा वर्णाश्रमाचारक्रियालोपा ह्यसंस्कृताः॥ विपन्नास्ते भवन्त्यत्र सम्मार्जनजलाशिनः ॥ ९१ ॥ भुक्त्वा वाचमनं यच्च जलं पतति भूतले ॥ ब्राह्मणानां तथैवान्ये तेन तृप्तिं प्रयान्ति वै ॥ ९२ ॥ एवं यो यजमानश्च यच्च तेषां द्विजन्मनाम् ॥ कचिज्जलान्नविक्षेपः शुचिरस्पृष्ट एव च ॥ ९३ ॥ ये चान्ये नरके जातास्तत्र योन्यन्तरं गताः॥ प्रयान्त्याप्यायनं वत्स सम्यक्छ्राद्धक्रियावताम् ॥ ९४॥ अन्यायोपार्जितैर्द्रव्यैः श्राद्धं यत्क्रियते नरैः ॥ तृप्यन्ति तेन चण्डालपुल्कसादिषु योनिषु॥९५॥एव

शुद्धि करने के जल को पीते हैं ॥ ९१ ॥ और भोजन करके जो द्विजों के आचमन का जल पृथ्वी में गिरता है उससे वे अन्य पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ९२ ॥ इस प्रकार जो यजमान होता है व उन ब्राह्मणों का जो कहीं शुद्ध या अशुद्ध जल डाला जाता है ॥ ९३ ॥ हे वत्स ! उससे उस श्राद्ध में वे तृप्त होते हैं जोकि भली भाति श्राद्ध कर्मवाले जनों के अन्य पितर नरक में प्राप्त है व जो अन्य योनियों में प्राप्त हैं ॥ ९४ ॥ व मनुष्य अन्याय से इकट्ठा किये हुए द्रव्यों से जो श्राद्ध करते हैं उससे चाण्डाल व पुल्कसादिक योनियों में तृप्त होते हैं ॥ ९५ ॥ हे वत्स ! इस प्रकार उससे अनेक बन्धु लोग तृप्त होते हैं और यदि श्राद्ध करने की असामर्थ्य होवै

तो शाकों से भी श्राद्ध होता है ॥ ९६ ॥ इस लिये मनुष्य भक्ति से विधिपूर्वक जो श्राद्ध करता है तो श्राद्ध करते हुए उस मनुष्य का वंश कभी दुःखित नहीं होता है ॥ ९७ ॥ यदि सब पाप किया गया है तो निश्चय कर पाप बढ़ता है और पाप करता हुआ मनुष्य भयंकर नरकमें पचताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९८ ॥ हे नृपोत्तम ! जैसे पुण्य वैसेही पाप धर्मारण्यमें किया हुआ वह सब शुभाशुभ कर्म निश्चयकर बढ़ता है ॥ ९९ ॥ कामिक व कामदायक तथा योगियों को मुक्तिदायक देव व सिद्धों को सदैव सिद्धिदायक धर्मारण्य कहा गया है ॥ १०० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांधर्माचारवर्णनंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

माप्यायिता वत्स तेन चानेकबान्धवाः ॥ श्राद्धं कर्तुमशक्तिश्चेच्छाकैरपि हि जायते ॥ ९६ ॥ तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि ॥ कुरुते कुर्वतः श्राद्धं कुलं कश्चिन्न सीदति ॥ ९७ ॥ पापं यदि कृतं सर्वं पापं च वर्द्धते ध्रुवम् ॥ कुर्वाणो नरके घोरे पच्यते नात्र संशयः ॥ ९८ ॥ यथा पुण्यं तथा पापं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ तत्सर्वं वर्द्धते नूनं धर्मारण्ये नृपोत्तम ॥ ९९ ॥ कामिकं कामदं देवं योगिनां मुक्तिदायकम् ॥ सिद्धानां सिद्धिदं प्रोक्तं धर्मारण्यं तु सर्वदा ॥ १०० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येधर्माचारवर्णनन्नामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ धर्मारण्यकथां पुण्यां श्रुत्वा तृप्तिर्न मे विभो ॥ यदा यदा कथयसि तदा प्रोत्सहते मनः ॥ अतः परं किमभवत्परं कौतूहलं हि मे ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु पार्थ महापुण्यां कथां स्कन्दपुराणजाम् ॥ स्थाणुनोक्तां च स्कन्दाय धर्मारण्योद्भवां शुभाम् ॥ २ ॥ सर्वतीर्थस्य फलदां सर्वोपद्रवनाशिनीम् ॥ कैलासशिखरासीनं देवदेवं

दो० । धर्मारण्य क्षेत्र कहँ देवन कीन पयान । सोइ आठ अध्यायमें अहै चरित सुखदान ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे विभो ! धर्मारण्य की पवित्र कथा को सुनकर मेरी तृप्ति नहीं होती है और ज्यों ज्यों तुम कहते हो वैसेही मेरा मन उत्साह करता है इसके उपरान्त क्या हुआ है यह मुझ को बड़ा आश्चर्य है ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे पार्थ ! स्कन्दपुराण से उपजी हुई महापवित्र कथा को सुनिये शिवजी ने जिस धर्मारण्य से उपजीहुई उत्तम कथाको स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहा है ॥ २ ॥ वह सब तीर्थ के फल को देनेवाली व सब उपद्रवों को नाशनेवाली है कैलास पर्वत के शिखर पै बैठे हुए जगद्गुरु देवदेव, पञ्चमुख, दशभुज, त्रिशूलधारी व

त्रिनेत्र ॥ ३ ॥ और कपाल व खट्वांग को हाथ में लिये तथा नागों का यज्ञोपवीत पहने और गणों से घिरे हुए वहां देवताओं व दैत्यों से नमस्कृत ॥ ४ ॥ और अनेक प्रकार के रूप व गुणों से गीत तथा नारदादिकों से संयुत और गंधर्वों व अप्सराओं से सेवित वहां बैठे हुए उन महादेवजी को प्रणाम कर पुत्र ने कहा ॥ ५ ॥ स्कन्द जी बोले कि हे स्वामिन् ! इन्द्रादिक व ब्रह्मादिक सब देवता केवल तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे तुम्हारे द्वार पै आये हैं हे देव ! मुझको क्या आज्ञा देतेहो उसको मैं तुम्हारे आगे करूं ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले कि स्वामिकार्त्तिकेयजी का वचन सुनकर शिवजी आसन से उठे और बैल पर न चढ़े व उस समय उन्होंने जाने की इच्छा

जगद्गुरुम् ॥ पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं शूलपाणिनम् ॥ ३ ॥ कपालखट्वाङ्गकरं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥ गणैः परिवृतं तत्र सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ४ ॥ नानारूपगुणैर्गीतं नारदप्रमुखैर्युतम् ॥ गन्धर्वैश्चाप्सरोभिश्च सेवितं तमुमापतिम् ॥ तत्रस्थं च महादेवं प्रणिपत्याब्रवीत्सुतः ॥ ५ ॥ स्कन्द उवाच ॥ स्वामिन्निन्द्रादयो देवा ब्रह्माद्याश्चैव सर्वशः ॥ तव द्वारे समायातास्त्वद्दर्शनैकलालसाः ॥ किमाज्ञापयसे देव करवाणि तवाग्रतः ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ स्कन्दस्य वचनं श्रुत्वा आसनादुत्थितो हरः ॥ वृषभं न समारूढो गन्तुकामोऽभवत्तदा ॥ ७ ॥ गन्तुकामं शिवं दृष्ट्वा स्कन्दो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ८ ॥ स्कन्द उवाच ॥ किं कार्यं देव देवानां यत्त्वमाहूयसे त्वरम् ॥ वृषं त्यक्त्वा कृपासिन्धो कृपास्ति यदि मे वद ॥ ९ ॥ देवदानवयुद्धं वा किं कार्यं वा महत्तरम् ॥ १० ॥ शिव उवाच ॥ शृणुष्वैकाग्रमनसा येनाहं व्यग्रचेतसः ॥ अस्ति स्थानं महापुण्यं धर्म्मारण्यं च भूतले ॥ ११ ॥ तत्रापि गन्तुकामोऽहं देवैः सह षडानन ॥ १२ ॥ स्कन्द

किया ॥ ७ ॥ व जाने की इच्छावाले शिवजी को देखकर स्वामिकार्त्तिकेयजी ने यह वचन कहा ॥ ८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले कि हे देव ! देवताओं का क्या कार्य है जोकि तुम बैलको छोड़कर शीघ्रता से बुलाये जाते हो हे दयासिन्धो ! यदि मेरे ऊपर दया होवै तो उसको कहिये ॥ ९ ॥ कि देवताओं या दानवों का युद्धहै अथवा बड़ा भारी क्या कार्य है ॥ १० ॥ शिवजी बोले कि जिससे मैं व्यग्रचित्त हूं उस को सावधान मन से सुनिये कि पृथ्वी में महापवित्र धर्मारण्य स्थान है ॥ ११ ॥ हे षडानन ! देवताओं समेत मैं वहां जाना चाहता हूं ॥ १२ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले कि हे महादेव ! तुम वहां जाकर इस समय क्या करोगे हे जगन्नाथ ! उस सब

कार्य को मुझ से संपूर्णता से कहिये ॥ १३ ॥ शिवजी बोले कि हे पुत्र ! मन के आनन्द का कारण व सृष्टि व पालन करनेवाले सब वृत्तान्तरूप वचन को पहले से सुनिये ॥ १४ ॥ कि प्रलय होने पर जब सब संसार अन्धकार से घिरगया तब निर्गुण व अव्यय एक ब्रह्मबीज हुआ है ॥ १५ ॥ और पहले गुणोंसे वह बनाया गया जोकि महद्द्रव्य कहा जाता है ॥ १६ ॥ चराचर नाश होने पर जब महाकल्प प्राप्त हुआ तब जलरूपी जगन्नाथजी लीला से रमण करने लगे ॥ १७ ॥ और बहुत समय बीतने पर उनने पृथ्वी आदिक तत्त्वों से दश हज़ार शाखाओं से सुन्दर वृक्षको उत्पन्न किया ॥ १८ ॥ जोकि बड़े भारी फलों से पूर्ण व स्कन्धों तथा कांडादिकों से

उवाच ॥ तत्र गत्वा महादेव किं करिष्यसि साम्प्रतम् ॥ तन्मे ब्रूहि जगन्नाथ कृत्यं सर्वमशेषतः ॥ १३ ॥ शिव उवाच ॥ श्रूयतां वचनं पुत्र मनसोह्लादकारणम् ॥ आदितः सर्ववृत्तानां सृष्टिस्थितिकरं महत् ॥ १४ ॥ परन्तु प्रलये जाते सर्वतस्तमसा वृतम् ॥ आसीदेकं तदा ब्रह्म निर्गुणं बीजमव्ययम् ॥ १५ ॥ निर्मितं वै गुणैरादौ महद्द्रव्यं प्रचक्ष्यते ॥ १६ ॥ महाकल्पे च सम्प्राप्ते चराचरे क्षयं गते ॥ जलरूपी जगन्नाथो रममाणस्तु लीलया ॥ १७ ॥ चिरकाले गते सोपि पृथिव्यादिसुतत्त्वकैः ॥ वृक्षमुत्पादयामासायुतशाखामनोरमम् ॥ १८ ॥ फलैर्विशालैराकीर्णं स्कन्धकाण्डादिशोभितम् ॥ फलौघाढ्यो जटायुक्तो न्यग्रोधो विटपो महान् ॥ १९ ॥ बालभावं ततः कृत्वा वासुदेवो जनार्दनः ॥ शेतेऽसौ वटपत्रेषु विश्वं निर्मातुमुत्सुकः ॥ २० ॥ स नाभिकमले विष्णोर्जातो ब्रह्मा हि लोककृत् ॥ सर्वं जलमयं पश्यन्नानाकारमरूपकम् ॥ २१ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोद्वेगाद्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ इदमाह तदा पुत्र किं करोमीति

शोभित था वह फलसमूह से संयुत और जटायुक्त बड़ाभारी बरगद का वृक्ष हुआ ॥ १९ ॥ तब संसार को रचने की उत्कंठावाले ये जनार्दन विष्णुजी बालक होकर बरगद के पत्तों पै सोने लगे ॥ २० ॥ और विष्णुजी की नाभि से उपजे हुए कमल में लोकों को रचनेवाले वे ब्रह्मा उत्पन्न हुए व सब जलमय देखकर और अनेक प्रकार के आकारवाले व अरूप ॥ २१ ॥ उन विष्णुजी को यकायक देखकर हे पुत्र ! लोकों के पितामह ब्रह्मा ने उद्वेग से इस निश्चित वचन को कहा कि मैं क्या

करूं ॥ २२॥ तब आकाशमें दैवसे वह आकाशवाणी उत्पन्न हुई कि हे विधे, धातः! जिस प्रकार मेरा दर्शन होवै उसी प्रकार तप करो ॥ २३ ॥ वहां उस वचन को सुन कर लोकों के पितामह ब्रह्माने बहुत कठिन व भयंकर तप किया ॥ २४ ॥ तब बाल रूप से हँसते हुए उन दयालु लक्ष्मीपति विष्णुजी ने बाललीला से मधुरवचन को कहा ॥ २५ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि हे पुत्र! इस समय तुम ब्रह्माण्डगोलक करो और पाताल, पृथ्वी, सिंधु, सागर व वन को बनावो ॥ २६ ॥ और जो वृक्ष व पर्वत हैं और द्विपद, पशु, पक्षी, गंधर्व, सिद्ध, यक्ष व राक्षसों को रचो ॥ २७ ॥ और व्याघ्रादिक जो जीव हैं उन चौरासी लक्ष योनियों को बनावो उद्भिज्ज, स्वेदज, जरायुज

निश्चितम् ॥ २२ ॥ खे जजान ततो वाणी दैवात्सा चाशरीरिणी ॥ तपस्तप विधे धातर्यथा मे दर्शनं भवेत् ॥ २३ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तत्र ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ प्रातप्यत तपो घोरं परमं दुष्करं महत् ॥ २४ ॥ प्रहसन्स तदा बालरूपेण कमलापतिः ॥ उवाच मधुरां वाचं कृपालुर्बाललीलया ॥ २५ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ पुत्र त्वं विधिना चाद्य कुरु ब्रह्माण्डगोलके ॥ पातालं भूतलं चैव सिन्धुसागरकाननम् ॥ २६ ॥ वृक्षाश्च गिरयो ये वै द्विपदाः पशवस्तथा ॥ पक्षिणश्चैव गन्धर्वाः सिद्धा यक्षाश्च राक्षसाः ॥ २७ ॥ श्वापदाद्याश्च ये जीवाश्चतुराशीतियोनयः ॥ उद्भिज्जाः स्वेदजाश्चैव जरायुजास्तथाण्डजाः ॥ २८ ॥ एकविंशतिलक्षाणि एकैकस्य च योनयः ॥ कुरु त्वं सकलं चाशु इत्युक्त्वान्तरधीयत ॥ ब्रह्मणा निर्मितं सर्वं ब्रह्माण्डं च यथोदितम् ॥ २९ ॥ यस्मिन्पितामहो जज्ञे प्रभुरेकः प्रजापतिः ॥ स्थाणुः सुरगुरुर्भानुः प्रचेताः परमेष्ठिनः ॥ ३० ॥ यथा दक्षो दक्षपुत्रास्तथा सप्तर्षयश्च ये ॥ ततः प्रजानां पतयः प्राभवन्नेकविंशतिः ॥ ३१ ॥ पुरुषश्चा

व अंडज ॥ २८ ॥ एक एक की इक्कीस इक्कीस लक्ष जो योनि हैं उन सबको तुम शीघ्रही बनावो यह कहकर विष्णुजी अन्तर्द्धान होगये और जैसा कहा गया वैसे ही सब ब्रह्माण्ड को ब्रह्मा ने बनाया ॥ २९ ॥ कि जिसमें एक प्रभु ब्रह्माजी व सुरगुरु सदाशिव, सूर्य और प्रचेता ये सब ब्रह्मा से उत्पन्न हुए ॥ ३० ॥ जिस प्रकार दक्ष व दक्षपुत्र उत्पन्न हुए वैसेही जो सप्तर्षि हैं वे पैदा हुए तदनन्तर इक्कीस प्रजापति हुए ॥ ३१ ॥ और अप्रमेय पुरुष उत्पन्न हुआ इस प्रकार वंशवाले ऋषि लोग कहते

हैं और विश्वेदेवा, आदित्य, वसु व अश्विनीकुमार ॥ ३२ ॥ और यक्ष, पिशाच, साध्य, पितर, गुह्यक उत्पन्न हुए तदनन्तर आठ निर्मल विद्वान् उत्पन्न हुए ॥ ३३ ॥ व सब गुणों से संयुत बहुतसे राजर्षि उत्पन्न हुए और स्वर्ग, जल, पृथ्वी, पवन और दिशा ॥ ३४ ॥ व संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष और दिन रात क्रमसे पैदा हुए व कला, काष्ठा, मुहूर्त्तादिक, निमेषादिक व लवादिक ॥ ३५ ॥ और नक्षत्रों समेत ग्रहचक्र युग व मन्वन्तरादिक और अन्य भी जो था वह सब लोक का साक्षी उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ और जो कुछ यह चराचर चक्र देख पडता है हे पुत्र ! युग का नाश प्राप्त होनेपर वह संसार फिर नाश होजाता है ॥ ३७ ॥ हे वत्स ! जैसे ऋतु में ऋतुके चिह्न और

प्रमेयश्च एवं वंश्यर्षयो विदुः ॥ विश्वेदेवास्तथादित्या वसवश्चाश्विनावपि ॥ ३२ ॥ यक्षाः पिशाचाः साध्याश्च पितरो गुह्यकास्तथा ॥ ततः प्रसूता विद्वांसो ह्यष्टौ ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ३३ ॥ राजर्षयश्च बहवः सर्वे समुदिता गुणैः ॥ द्यौरापः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा ॥ ३४ ॥ संवत्सरार्तवो मासाः पक्षाहोरात्रयः क्रमात् ॥ कलाकाष्ठामुहूर्ता दिनिमेषादिलवास्तथा ॥ ३५ ॥ ग्रहचक्रं सनक्षत्रं युगा मन्वन्तरादयः ॥ यच्चान्यदपि तत्सर्वं सम्भूतं लोकसाक्षिकम् ॥ ३६ ॥ यदिदं दृश्यते चक्रं किञ्चित्स्थावरजङ्गमम् ॥ पुनः संक्षिप्यते पुत्र जगत्प्राप्ते युगक्षये ॥ ३७ ॥ यथर्तावृतुलिङ्गानि नामरूपाणि पर्यये ॥ दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा वत्सयुगादिकम् ॥ ३८ ॥ शिव उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ ब्रह्मणश्च तथा पुत्र वंशस्यैवानुकीर्तनम् ॥ ३९ ॥ ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः ॥ मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ ४० ॥ मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपाच्चरमाः प्रजाः ॥ प्रजज्ञिरे महाभागा दक्षकन्यास्त्रयोदश ॥ ४१ ॥ अदितिर्दितिर्दनुः काला दनायुः सिंहिका तथा ॥ क्रोधा प्रोवा वसिष्ठा

नाम व रूप देख पड़ते हैं वेही वे और युगादिक सब युग प्राप्त होने पर होताहै ॥ ३८ ॥ शिवजी बोले कि हे पुत्र ! इसके उपरान्त मैं पुराण की उत्तम कथा को कहता हूं व ब्रह्मा के वंश के वंश को कहता हूं ॥ ३९ ॥ कि ब्रह्माके छः मानसी पुत्र महर्षिलोग उत्पन्नहुए कि मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह व क्रतुजी उत्पन्न हुए ॥ ४० ॥ व मरीचि के कश्यप पुत्र हुए और कश्यप की पिछली प्रजा बड़े ऐश्वर्यवाली तेरह कन्या उत्पन्न हुईं ॥ ४१ ॥ कि अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, क्रोधा,

प्रोवा, वसिष्ठा, विनता व कपिला ॥ ४२ ॥ और कण्डू व सुनेत्रा इन तेरह कन्याओं को उस समय कश्यपजी के लिये दिया व अदितिमें उत्तम मुखवाले बारह आदित्य उत्पन्न हुए ॥ ४३ ॥ और सूर्य से धर्मराज उत्पन्न हुए व उन्होंने पहले इस स्थान को बनाया है हे स्कन्द ! धर्मराज से बनाये हुए अति उत्तम धर्मारण्य को देखकर मैं ने धर्मारण्य ऐसा कहा जोकि पुण्यदायक है ॥ ४४ ॥ स्कन्दजी बोले कि हे महेश्वर ! धर्मारण्य के परमपावन कथानक को मैं सुना चाहताहूं उस सब को कहिये ॥ ४५ ॥ महादेव जी बोले कि इन्द्रादिक सब देवता ब्रह्मा के साथ चलैं और मैं वहां पापनाशक क्षेत्र को जाऊंगा ॥ ४६ ॥ स्कन्दजी बोले कि हे शशिशेखर ! मैं भी उसको

च विनता कपिला तथा ॥ ४२ ॥ कण्डूश्चैव सुनेत्रा च कश्यपाय ददौ तदा ॥ अदित्यां द्वादशादित्याः सञ्जाता हि शुभाननाः ॥ ४३ ॥ सूर्याद्वै धर्मराड् जज्ञे तेनेदं निर्मितं पुरा ॥ धर्मेण निर्मितं दृष्ट्वा धर्मारण्यमनुत्तमम् ॥ धर्मारण्यमिति प्रोक्तं यन्मया स्कन्द पुण्यदम् ॥ ४४ ॥ स्कन्द उवाच ॥ धर्मारण्यस्य चाख्यानं परमं पावनं तथा ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं कथयस्व महेश्वर ॥ ४५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इन्द्राद्याः सकला देवा अन्वयुर्ब्रह्मणा सह ॥ अहं वै तत्र यास्यामि क्षेत्रं पापनिषूदनम् ॥ ४६ ॥ स्कन्द उवाच ॥ अहमप्यागमिष्यामि तं द्रष्टुं शशिशेखर ॥ ४७ ॥ सूत उवाच ॥ ततः स्कन्दस्तथा रुद्रः सूर्यश्चैवानिलोऽनलः ॥ सिद्धाश्चैव सगन्धर्वास्तथैवाप्सरसः शुभाः ॥ ४८ ॥ पिशाचा गुह्यकाः सर्व इन्द्रो वरुण एव च ॥ नागाः सर्वाः समाजग्मुः शुक्रो वाचस्पतिस्तथा ॥ ४९ ॥ ग्रहाः सर्वे सनक्षत्रा वसवोऽष्टौ ध्रुवादयः ॥ अन्तरिक्षचराः सर्वे ये चान्ये नगवासिनः ॥ ५० ॥ ब्रह्मादयः सुराः सर्वे वैकुण्ठं परया मुदा ॥ मन्त्रणार्थं तदा राजन् विष्णवेऽमिततेजसे ॥ ५१ ॥ गत्वा तस्मिंश्च वैकुण्ठे ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ध्यात्वा मुहूर्तमाचष्ट विष्णुं प्रति

देखने के लिये जाऊंगा ॥ ४७ ॥ सूतजी कहते हैं कि तदनन्तर स्कन्द, रुद्र, सूर्य, पवन व अग्नि, सिद्ध व गन्धर्वों समेत उत्तम अप्सरा ॥ ४८ ॥ और पिशाच व सब गुह्यक, इन्द्र, वरुण और सब नाग आये व शुक्र और बृहस्पतिजी आये ॥ ४९ ॥ और नक्षत्रों समेत सब ग्रह व आठ वसु और ध्रुवादिक व सब आकाशचारी और जो अन्य पर्वतनिवासी थे ॥ ५० ॥ वे और सब ब्रह्मादिक देवता हे राजन् ! बड़े हर्ष से अमित तेजवाले विष्णुजी के बुलाने के लिये उस समय वैकुंठ को गये ॥ ५१ ॥ व उस

वैकुंठ में जाकर लोकपितामह ब्रह्माजी ने थोड़ी देर तक विचारकर प्रसन्न होकर विष्णुजी से कहा ॥ ५२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे कृष्ण, कृष्ण, महाबाहो, दयालो, परमेश्वर ! तुम्हीं संसार को रचनेवाले व तुम्हीं हरनेवाले और तुम्हीं संसार के पिता हो ॥ ५३ ॥ हे सौम्य ! विष्णुरूपी आप के लिये नमस्कार है हे गरुडध्वज ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे कमलाकान्त ! ब्रह्मरूपी आप के लिये प्रणाम है ॥ ५४ ॥ व मत्स्यरूपी विश्वरूप आप के लिये नमस्कार है व दैत्यों को नाशनेवाले तथा भक्तों को अभय देनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ५५ ॥ व कंस को नाशनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है और बल दैत्य को जीतनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है

सुहर्षितः ॥ ५२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो कृपालो परमेश्वर ॥ स्रष्टा त्वं चैव हर्ता त्वं त्वमेव जगतः पिता ॥ ५३ ॥ नमस्ते विष्णवे सौम्य नमस्ते गरुडध्वज ॥ नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ॥ ५४ ॥ नमस्ते मत्स्यरूपाय विश्वरूपाय वै नमः ॥ नमस्ते दैत्यनाशाय भक्तानामभयाय च ॥ ५५ ॥ कंसघ्नाय नमस्तेऽस्तु बलदैत्यजिते नमः ॥ ब्रह्मणैवं स्तुतश्चासीत्प्रत्यक्षोऽसौ जनार्दनः ॥ ५६ ॥ पीताम्बरो घनश्यामो नागारिकृतवाहनः ॥ चतुर्भुजो महातेजाः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ५७ ॥ स्तूयमानः सुरैः सर्वैः स देवोऽमितविक्रमः ॥ विद्याधरैस्तथा नागैः स्तूयमानश्च सर्वशः ॥ ५८ ॥ उत्तस्थौ स तदा देवो भास्करामितदीप्तिमान् ॥ कोटिरत्नप्रभाभास्वन्मुकुटादिविभूषितः ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येविष्णुसमागमोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मा से इस प्रकार स्तुति कियेहुए ये विष्णुजी नेत्रों के सामने प्राप्त हुए ॥ ५६ ॥ पीताम्बर व मेघों के समान श्याम तथा गरुड़जी पै सवार, चतुर्भुज व महातेजस्वी और शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले ॥ ५७ ॥ उन अमित पराक्रमी विष्णुदेवजी की सब देवताओं ने स्तुति की व विद्याधरों और सब नागों ने स्तुति की ॥ ५८ ॥ तब अमित सूर्यों के समान प्रकाशमान, व करोड़ों रत्नों की प्रभा से प्रकाशमान मुकुटादिकों से भूषित वे विष्णुदेवजी उठपड़े ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविष्णुसमागमोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जौन गोत्र देवी अहैं और प्रवर के नाम । सोइ नवें अध्याय में अहै चरित अभिराम ॥ व्यासजी बोले कि हे राजशार्दूल ! पवित्र व उत्तम कथानक को सुनिये कि स्तुति कियेहुए जगदीशजी ने इस वचन को कहा ॥ १ ॥ विष्णुजी बोले कि हे ब्रह्मादिक सुरश्रेष्ठो ! तुम सबलोग किस लिये आये हो क्या पृथ्वी में कुशल है और तुमलोगों को कहां से भय प्राप्तहुआ ॥ २ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होते हुए ब्रह्मा ने उन विष्णुजी से यह वचन कहा कि चराचर समेत त्रिलोक में हम लोगों को भय नहीं है ॥ ३ ॥ मैं कुछ कहने के लिये केवल तुम्हारे समीप आया हूं उसको मैं तुमसे कहता हूं इस मेरे वचन को सुनिये ॥ ४ ॥ कि पुरातनसमय

व्यास उवाच ॥ श्रूयतां राजशार्दूल पुण्यमाख्यानमुत्तमम् ॥ स्तूयमानो जगन्नाथ इदं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ विष्णुरुवाच ॥ किमर्थमागताः सर्वे ब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः ॥ पृथिव्यां कुशलं कच्चित्कुतो वो भयमागतम् ॥ २ ॥ ततः प्रोवाच वै हृष्टो ब्रह्मा तं केशवं वचः ॥ न भयं विद्यतेऽस्माकं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ३ ॥ एकविज्ञापनार्थाय आगतोऽहं तवान्तिके ॥ तदहं सम्प्रवक्ष्यामि तदेतच्छृणु मे वचः ॥ ४ ॥ परं तु पूर्वं धर्मेण स्थापितं तीर्थमुत्तमम् ॥ तद्द्रष्टुकामोऽहं देव त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ ५ ॥ तत्र त्वं देवदेवेश गमने कुरु मानसम् ॥ यथा सत्तीर्थतां याति धर्मारण्यमनुत्तमम् ॥ ६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ साधुसाधु महाभाग त्वर्य्यतां तत्र माचिरम् ॥ ममापि चित्तं तत्रैव तद्दर्शनेस्ति लालसम् ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ तार्क्ष्यमारुह्य गोविन्दस्तत्रागाच्छीघ्रमेव हि ॥ ततो धर्मेण ते देवाः सेन्द्राः सर्षिगणास्तथा ॥ ८ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या दृष्टा दूरान्मुमोद च ॥ धर्मराजोपि तान्दृष्ट्वा देवान्विष्णुपुरोगमान् ॥ ९ ॥ आगतः स्वाश्रमात्तत्र

धर्म ने उत्तम तीर्थ को स्थापित किया है हे जनार्दन, देव ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैं उसको देखना चाहताहूं ॥ ५ ॥ हे देवदेवेश ! वहां जाने के लिये तुम मन करो जिस भांति कि अति उत्तम धर्मारण्य उत्तम तीर्थता को प्राप्त होवै ॥ ६ ॥ विष्णुजी बोले कि हे महाभाग ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा वहां जाने के लिये शीघ्रता कीजिये व मेरा भी चित्त वहीं उसके दर्शन में लालची है ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले कि गरुड़ पै चढ़कर विष्णुजी वहां शीघ्रही गये तदनन्तर धर्मराज ने इन्द्र समेत उन देवताओं व ऋषिगणों को ॥ ८ ॥ और ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक देवताओं को दूर से देखा व प्रसन्नहुए और विष्णु आदिक उन देवताओं को देखकर धर्मराज भी ॥ ९ ॥ पूजनको लेकर

अपने आश्रम से वहां उन देवताओं के सामने आये व पूजनादिक को लेकर शीघ्र ही आसन से उठे व उन्होंने पृथक् पृथक् एक एक की पूजा किया ॥ १० ॥ और वहां सूर्यपुत्र धर्मराज ने विधिपूर्वक उन देवताओं का पूजन किया व आसनों पै बिठाकर बड़ीभारी पूजाकरके उन्हों ने यह कहा ॥ ११ ॥ यमराज बोले कि हे देवकीसुत! तुम्हारी प्रसन्नता की विधि से व शिवजी की दया से यह क्षेत्र तीर्थरूप होगया ॥ १२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु व महेशजी के आने से आज मेरा जन्म सफल होगया व आज मेरा तप सफल हुआ व आज मेरा स्थान सफल होगया ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले कि उस समय इस प्रकार स्तुति कियेहुए विष्णुजी मधुर वचन को

पूजां प्रगृह्य तत्पुरः॥ आसनादुत्थितः शीघ्रं सपर्याद्यं प्रगृह्य च॥ एकैकस्य चकाराथ पूजां चैव पृथक्पृथक्॥ १०॥ चकार पूजां विधिवत्तेषां तत्रार्कनन्दनः॥ आसनेषूपवेश्याथ पूजां कृत्वा गरीयसीम्॥ ११॥ यम उवाच॥ तीर्थरूपमिदं क्षेत्रं प्रसादाद्देवकीसुत॥ त्वत्तोषविधिना चाद्य कृपया च शिवस्य च॥ १२॥ अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः॥ अद्य मे सफलं स्थानं काजेशानां समागमात्॥१३॥ व्यास उवाच॥ एवं स्तुतस्तदा विष्णुः प्रोवाच मधुरं वचः॥ तुष्टोऽस्मि धर्मराजेन्द्र अहं स्तोत्रेण ते विभो॥ १४॥ किञ्चित्प्रार्थय मत्तोऽहं करोमि तव वाञ्छितम्॥ यत्तेऽस्त्यभीप्सितं तुभ्यं तद्ददामि न संशयः॥ १५॥ यम उवाच॥ यदि तुष्टोऽसि देवेश वाञ्छितं कुरुषे यदि॥ धर्मारण्ये महापुण्ये ऋषीणामाश्रमान्कुरु॥ १६॥ वसन्ति वाडवा यत्र यजन्ति चैव याज्ञिकाः॥ वेदनिर्घोषसंयुक्तं भाति तत्तीर्थमुत्तमम्॥ १७॥ अब्राह्मणमिदं तीर्थं पीडयिष्यन्ति जन्तवः॥ तस्मात्त्वं वाडवाञ्छौरे समानय ऋषीन्बहून्॥ धर्मारण्यं

बोले कि हे धर्मराजेन्द्र, विभो! मैं तुम्हारे स्तोत्र से प्रसन्न होगया हूं ॥ १४ ॥ मुझ से कुछ मांगिये मैं तुम्हारा मनोरथ करूंगा जो तुमको प्रिय होगा उसको मैं दूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ यमराज बोले कि हे देवेश! यदि तुम प्रसन्न हो व यदि मनोरथ करते हो तो महापवित्र धर्मारण्य में ऋषियों के आश्रमों को कीजिये ॥ १६ ॥ जहां कि ब्राह्मण बसते हैं व यज्ञकर्ता यज्ञ करते हैं वेद शब्द से संयुत यह उत्तम तीर्थ शोभित है ॥ १७ ॥ बिन ब्राह्मणवाले इस तीर्थ को प्राणी

पीड़ित करेंगे इस कारण हे शौरे ! तुम बहुत से ब्राह्मणों व ऋषियों को लावो जिस प्रकार कि धर्मारण्य तीर्थ चराचर समेत त्रिलोक में शोभित होवै ॥ १८ ॥ तदनन्तर सहस्रलोचन व सहस्रमस्तक तथा सहस्रचरणोंवाले धर्मप्रिय विष्णुजी ने उस समय हज़ारों रूप किया और जिस स्थान में उत्तम आचार व उत्तम नियम वाले जो ब्राह्मण थे ॥ १६ ॥ और जो सब धर्मों में प्रवीण तथा सब शास्त्रों में चतुर थे और तपस्या व ज्ञान में जो बहुत प्रसिद्ध थे और जो ब्रह्मयज्ञ में परायण थे वे सब अठारह हज़ार ऋषिलोग स्थापित कियेगये ॥ २० ॥ और वहां ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से बनायेहुए बहुत आश्रमों में उन देवताओं ने अनेक देशों से लाकर

यथा भाति त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ १८ ॥ ततो विष्णुः सहस्राक्षः सहस्रशीर्षः सहस्रपात् ॥ सहस्रशस्तदा रूपं कृतवा न्धर्मवत्सलः ॥ यस्मिन्स्थाने च ये विप्राः सदाचाराः शुभव्रताः ॥ १६ ॥ अशेषधर्मकुशलाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ तपोज्ञाने महाख्याता ब्रह्मयज्ञपरायणाः ॥ स्थापिता ऋषयः सर्वे सहस्राण्यष्टादशैव तु ॥ २० ॥ नानादेशात्समा नीय स्थापितास्तत्र तैः सुरैः ॥ आश्रमांश्च बहूंस्तत्र काजेशैरपि निर्मितान् ॥ २१ ॥ धर्मोपदेशात्कृष्णेन ब्रह्मणा च शिवेन च ॥ स्वेस्वे स्थाने यथायोग्ये स्थापयामास केशवः ॥२२॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कस्मिन्वंशे समुत्पन्ना ब्राह्मणा वे दपारगाः ॥ स्थापिताः सपरीवाराः पुत्रपौत्रसमावृताः ॥ २३ ॥ शिष्यैश्च बहुभिर्युक्ता अग्निहोत्रपरायणाः ॥ तेषां स्था नानि नामानि यथावच्च वदस्व मे ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रूयतां नृपशार्दूल धर्मारण्यनिवासिनाम् ॥ २५ ॥ महा त्मनां ब्राह्मणानामृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥ तेषां वै पुत्रपौत्राणां नामानि च वदाम्यहम् ॥ २६ ॥ चतुर्विंशतिगोत्राणि

स्थापित किया ॥ २१ ॥ धर्मोपदेश के लिये कृष्ण, ब्रह्मा व शिवजी से बनायेहुए अपने अपने यथायोग्य स्थान में विष्णुजी ने उन ब्राह्मणों को स्थापित किया ॥ २२ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि किस वंश में उपजेहुए वेदपारगामी ब्राह्मण परिवार समेत व पुत्रों और पौत्रों से संयुत स्थापित कियेगये ॥ २३ ॥ जो कि बहुत से शिष्यों से संयुत व अग्निहोत्र में परायण थे उनके स्थानों व नामों को मुझसे यथायोग्य कहिये ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले कि हे नृपोत्तम ! धर्मारण्यनिवासी लोगों को सुनिये ॥ २५ ॥ उन ऊर्ध्वरेता ऋषियों व महात्मा ब्राह्मणों के पुत्रों व पौत्रों के नामों को मैं कहताहूं ॥ २६ ॥ हे पांडवर्षभ ! ब्राह्मणों के चौबीस गोत्र हुए उनकी शाखा

चौबीस मुख्य गोत्रों के नामों को मैं तुमसे कहताहूं और ब्राह्मणों के जो ऋषि कहे गये हैं उन प्रवरों को सुनिये ॥ २८ ॥ कि भारद्वाज, वत्स, कौशिक, कुश, शांडिल्य, काश्यप, गौतम व छांधन ॥ २९ ॥ और जातूकर्ण्य, वत्स, वसिष्ठ, धारण, आत्रेय, भाडिल व इसके उपरान्त लौकिक ॥ ३० ॥ कृष्णायन, उपमन्यु, गार्ग्य, मुद्गल, मौषक, पुण्यासन, पराशर व उसके उपरान्त कौंडिन्य ॥ ३१ ॥ और गांगासन ये चौबीस प्रवर हैं जामदग्न्य गोत्र के पांचही प्रवर हैं ॥ ३२ ॥ कि भार्गव, च्यवन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हे राजन्! ये पांच प्रवर लोकों में प्रसिद्ध हैं ॥ ३३ ॥

व प्रशाखा और पुत्र, पौत्रादिक हुए ॥ २७ ॥ और सैकड़ों व हज़ारों पुत्र पैदा हुए

जज्ञिरे बहवः पुत्राः शतशोऽथ सहस्र
द्विजानां पाण्डवर्षभ ॥ तेषां शाखाः प्रशाखाश्च पुत्रपौत्रादयस्तथा ॥ २७ ॥
शः ॥ चतुर्विंशतिमुख्यानां नामानि प्रवदामि ते ॥ द्विजानामृषयः प्रोक्ताः प्रवराणि तथा शृणु ॥ २८ ॥ भारद्वाज
स्तथा वत्सः कौशिकः कुश एव च ॥ शाण्डिल्यः काश्यपश्चैव गौतमश्छान्धनस्तथा ॥ २९ ॥ जातूकर्ण्यस्तथा
वत्सो वसिष्ठो धारणस्तथा ॥ आत्रेयो भाण्डिलश्चैव लौकिकाश्च इतः परम् ॥ ३० ॥ कृष्णायनोपमन्युश्च गार्ग्यमु
द्गलमौषकाः ॥ पुण्यासनः पराशरः कौण्डिन्यश्च ततः परम् ॥ ३१ ॥ तथा गाङ्गासनश्चैव प्रवराणि चतुर्विंशतिः ॥ जाम
दग्न्यस्य गोत्रस्य प्रवराः पञ्च एव हि ॥ ३२ ॥ भार्गवश्च्यवनाप्नुवानौर्वश्च जमदग्निकः ॥ पञ्चैते प्रवरा राजन्विख्याता
लोकविश्रुताः ॥ ३३ ॥ एवं गोत्रसमुत्पन्ना वाडवा वेदपारगाः ॥ द्विजपूजाक्रियायुक्ता नानाक्रतुक्रियापराः ॥ ३४ ॥ गुणेन
संहिता आसन् षट्कर्मनिरताश्च ये ॥ एवंविधा महाभागा नानादेशभवा द्विजाः ॥ ३५ ॥ गाङ्गासनं द्वितीयं च प्रवराः
पञ्च एव हि ॥ भार्गवच्यावनाप्नुवानौर्वजामदग्न्यसंयुताः ॥ आत्रेयोऽर्चनानसश्च श्यावास्येति तृतीयकः ॥ ३६ ॥ अ

इस प्रकार गोत्रों में उत्पन्न ब्राह्मण वेदों के पारगामी हुए और ब्राह्मणों के पूजनकर्म से संयुक्त व अनेक भांति के यज्ञकर्म में परायण हुए ॥ ३४ ॥ जो छः कर्मों में परायणहुए वे गुण से संयुक्तहुए इस प्रकार के अनेक देशों में उत्पन्न ब्राह्मण बड़े ऐश्वर्यवान् हुए ॥ ३५ ॥ और दूसरा गांगासन गोत्रहै उसके पांचही प्रवर हैं भार्गव, च्यावन, आप्नुवान, और्व व जामदग्न्य हैं व आत्रेय, अर्चनानस व तीसरा श्यावास्य है ॥ ३६ ॥ इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण दुष्ट व कुटिलगामी होते हैं और धनी

वाल ते
और काले

व धर्मनिष्ठ तथा वेदों व वेदांगों के पारगामी होते हैं ॥ ३७ ॥ व सब दान और भोग में परायण और श्रौत, स्मार्त कर्म से संमत होते हैं और मांडव्य गोत्र में पांच प्रवरों से संयुत जानने योग्य हैं ॥ ३८ ॥ कि भार्गव, च्यावन, अत्रि, आप्नुवान् व और्व हैं इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण श्रुतियों व स्मृतियों में परायण होते हैं ॥ ३९ ॥ और रोगी, लोभी, दुष्ट और यज्ञ करने व कराने में परायण होते हैं व हे कुरुसत्तम ! मांडव्य गोत्रवाले सब वेदकर्म में परायण होते हैं ॥ ४० ॥ और गार्ग्य के वंश में जो पैदा हुए उनके तीन प्रवर हुए अंगिरा, अम्बरीष और तीसरे यौवनाश्व हुए ॥ ४१ ॥ व इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण उत्तम आचारवाले और सत्यवादी हुए और शांत,

स्मिन्गोत्रे भवा विप्रा दुष्टाः कुटिलगामिनः ॥ धनिनो धर्मनिष्ठाश्च वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ३७ ॥ दानभोगरताः सर्वे श्रौतस्मार्तेषु सम्मताः ॥ माण्डव्यगोत्रे विज्ञेयाः प्रवरैः पञ्चभिर्युताः ॥ ३८ ॥ भार्गवश्च्यावनोऽत्रिश्चाप्नुवानौर्वस्तथैव च ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः श्रुतिस्मृतिपरायणाः ॥ ३९ ॥ रोगिणो लोभिनो दुष्टा यजने याजने रताः ॥ ब्रह्मक्रियापराः सर्वे माण्डव्याः कुरुसत्तम ॥ ४० ॥ गार्ग्यस्य गोत्रे ये जातास्तेषां तु प्रवरास्त्रयः ॥ अङ्गिराश्चाम्बरीषश्च यौवनाश्वस्तृतीयकः ॥ ४१ ॥ अस्मिन्गोत्रे समुत्पन्नाः सद्वृत्ताः सत्यभाषिणः ॥ शान्ताश्च भिन्नवर्णाश्च निर्द्धनाश्च कुचैलिनः ॥ ४२ ॥ सङ्गवात्सल्ययुक्ताश्च वेदशास्त्रेषु निश्चलाः ॥ वत्सगोत्रे द्विजा भूप प्रवराः पञ्च एव हि ॥ ४३ ॥ भार्गवश्च्यवनाप्नुवानौर्वश्च जमदग्निकः ॥ एभिस्तु पञ्चभिः ख्याता द्विजा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥ ४४ ॥ शान्ता दान्ताः सुशीलाश्च धर्मपुत्रैः सुसंयुताः ॥ वेदाध्ययनहीनाश्च कुशलाः सर्वकर्मसु ॥ ४५ ॥ सुरूपाश्च सदाचाराः सर्वधर्मेषु निष्ठिताः ॥

भिन्नवर्ण, निर्धनी व कुवस्त्र को धारनेवाले हुए ॥ ४२ ॥ और संग व वत्सलता से संयुत और वेद शास्त्रों में निश्चल हैं व हे राजन् ! वत्सगोत्र में जो ब्राह्मण हुए उनके भी पांचही प्रवर हुए ॥ ४३ ॥ भार्गव, च्यवन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हुए और इन पांचों से ब्रह्मस्वरूपी ब्राह्मण प्रसिद्ध हुए ॥ ४४ ॥ जो कि शांत, दांत, सुशील व धर्मपुत्रोंसे संयुत हुए और वेदपाठसे हीन व सब कर्मोंमें प्रवीण हुए ॥ ४५ ॥ और स्वरूपवान् तथा उत्तम आचारवाले व सब धर्मों में निष्ठित हुए और सब

ब्राह्मण दानधर्म में परायण व अन्नदायक तथा जलदायक हुए ॥ ४६ ॥ और दयालु, सुशील व सब प्राणियों के हित में तत्पर हुए व हे राजन्! कश्यपगोत्रवाले ब्राह्मण तीन प्रवरों से संयुत हुए ॥ ४७ ॥ कि काश्यप, आपवत्सार व तीसरा नैध्रुव हुआ और वे वेदों को जाननेवाले, गौर रंग, नैष्ठिक व यज्ञकारक हुए ॥ ४८ ॥ और कश्यप वे प्रिय निवासवाले तथा महाप्रवीण और सदैव गुरुवों की भक्ति में परायण हुए व प्रतिष्ठा और मानवान् व सब प्राणियों के हित में परायण हुए ॥ ४९ ॥ और इस गोत्र वंशवाले ब्राह्मण महायज्ञों को करते हैं व धारीणसगोत्रमें उपजे हुए ब्राह्मण तीन प्रवरों से संयुत हुए ॥ ५० ॥ कि अगस्ति, दर्विश्वेता व दध्यवाहन संज्ञक हैं और इस गोत्र

दानधर्मरताः सर्वे अन्नदा जलदा द्विजाः ॥ ४६ ॥ दयालवः सुशीलाश्च सर्वभूतहिते रताः ॥ काश्यपा ब्राह्मणा राजन्प्रवरत्रयसंयुताः ॥४७॥ काश्यपश्चापवत्सारो नैध्रुवश्च तृतीयकः ॥ वेदज्ञा गौरवर्णाश्च नैष्ठिका यज्ञकारकाः॥ ४८ ॥ प्रियवासा महादक्षा गुरुभक्तिरताः सदा ॥ प्रतिष्ठामानवन्तश्च सर्वभूतहिते रताः ॥ ४९ ॥ यजन्ते च महायज्ञान्काश्यपेया द्विजातयः ॥ धारीणसगोत्रजाश्च प्रवरैस्त्रिभिरन्विताः ॥ ५० ॥ अगस्तिदर्विश्वेताश्वदध्यवाहनसंज्ञकाः ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता धर्मकर्मसमाश्रिताः ॥ ५१ ॥ कर्मक्रूराश्च ते सर्वे तथैवोदरिणस्तु ते ॥ लम्बकर्णा महादंष्ट्रा द्विजा धनपरायणाः ॥ ५२ ॥ क्रोधिनो द्वेषिणश्चैव सर्वसत्त्वभयङ्कराः ॥ लौगाक्षसोद्भवा ये वै वाडवाः सत्यसंश्रिताः ॥ ५३ ॥ प्रवराश्च त्रयस्तेषां तत्त्वज्ञानस्वरूपकाः ॥ कश्यपश्चैव वत्सश्च वसिष्ठश्च तृतीयकः ॥ ५४ ॥ सदाचारास्तु विख्याता वैष्णवा बहुवृत्तयः ॥ रोमभिर्बहुभिर्व्याप्ताः कृष्णवर्णास्तु वाडवाः ॥ ५५ ॥ शान्ता दान्ताः सुशीलाश्च

में जो उत्पन्न हुए वे धर्म के कर्म में आश्रित हुए ॥ ५१ ॥ और कर्म से क्रूर वे सब ब्राह्मण बड़े पेटवाले और लंबे कान तथा बड़ी डाढ़ोंवाले व धन से संयुत होते हैं ॥ ५२ ॥ और क्रोधी, वैरी व सब प्राणियों को भयकारक होते हैं और लौगाक्षसगोत्र में जो ब्राह्मण उत्पन्न हुए वे सत्य में स्थितहुए ॥ ५३ ॥ उनके तत्त्वज्ञान स्वरूप वाले तीन प्रवर हुए कश्यप, वत्स व तीसरा वसिष्ठ है ॥ ५४ ॥ और वे ब्राह्मण उत्तम आचारवाले तथा वैष्णव और बहुत जीविकाओंवाले होते हैं व बहुतरोमों से व्याप्त और काले रंग के होते हैं ॥ ५५ ॥ और शांत, दांत, सुशील व सदैव अपनी स्त्रियों में परायण होते हैं और जो कुशिक गोत्र में उत्पन्नहुए वे तीन प्रवरों से संयुत

हुए॥ ५६॥ विश्वामित्र, देवरात और औदल ये तीन प्रवर हुए और इस गोत्र में जो उत्पन्न हुए वे दुर्बल व दीनमानस हुए॥ ५७॥ व हे नृपोत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व सुरूपवान् हुए और वे श्रेष्ठ ब्राह्मण सब विद्याओं में चतुर हुए॥ ५८॥ व उपमन्यु के गोत्रमें उपजेहुए ब्राह्मण तीन प्रवरों से संयुत हुए वसिष्ठ, भरद्वाज व इन्द्रप्रमद ये तीन प्रवर हैं॥५९॥ व इस गोत्र में जो ब्राह्मण हुए वे क्रूर व कुटिलगामी हुए और दूषण व वैरी तथा तुच्छ व सब के संग्रह में तत्पर हुए॥ ६०॥ व झगड़ा उत्पन्न करने में प्रवीण और धनी व मानी हुए व सदैवही दुष्ट और दुष्टों का संग करनेवाले हुए॥ ६१॥ और रोगी, दुर्बल व वृत्ति के उपकल्प से रहित हुए और वात्स्य गोत्र में उपजेहुए

स्वदारनिरताः सदा ॥ कुशिकसगोत्रे ये जाताः प्रवरैस्त्रिभिरन्विताः ॥ ५६ ॥ विश्वामित्रो देवरात औदलश्च त्रयश्च ये ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ ५७ ॥ असत्यभाषिणो विप्राः सुरूपा नृपसत्तम ॥ सर्व्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तमाः ॥ ५८ ॥ उपमन्युसगोत्रेयाः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ वसिष्ठश्च भरद्वाजस्त्विन्द्रप्रमद एव वा ॥ ५९ ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये विप्राः क्रूराः कुटिलगामिनः ॥ दूषणा द्वेषिणस्तुच्छाः सर्वसंग्रहतत्पराः ॥ ६० ॥ कलहोत्पादने दक्षा धनिनो मानिनस्तथा ॥ सर्वदैव प्रदुष्टाश्च दुष्टसङ्गरतास्तथा ॥ ६१ ॥ रोगिणो दुर्बलाश्चैव वृत्त्युपकल्पवर्जिताः ॥ वात्स्यगोत्रे भवा विप्राः प्रवरैः पञ्चभिर्युताः ॥ ६२ ॥ भार्गवच्यावनाप्नुवानौर्वश्च जमदग्निकः ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः स्थूलाश्च बहुबुद्धयः ॥ ६३ ॥ सर्वकर्मरताश्चैव सर्वधर्मेषु निश्चलाः ॥ वेदशास्त्रार्थनिपुणा यजने याजने रताः ॥६४॥ सदाचाराः सुरूपाश्च बुद्धितो दीर्घदर्शिनः॥ वात्स्यायनसगोत्रेयाः प्रवरैः पञ्चभिर्युताः ॥ ६५ ॥ भार्ग

ब्राह्मण पांच प्रवरों से संयुत हुए ॥ ६२ ॥ भार्गव, च्यवन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हुए हैं और इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण मोटे व बहुत बुद्धिवाले हुए ॥ ६३ ॥ व सबकर्मों में परायण तथा सब धर्मों में निश्चल हुए और वेद शास्त्रार्थ में निपुण व यज्ञकरने और यज्ञ कराने में रत हैं॥ ६४॥ व उत्तम आचारवाले और स्वरूपवान् तथा बुद्धि से दीर्घदर्शी होते हैं और वात्स्यायन गोत्रवाले ब्राह्मण पांच प्रवरों से संयुत होते हैं ॥ ६५ ॥ कि भार्गव, च्यावन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हुए हे भारत ! इनके

पूर्वोक्त प्रवर तुमसे कहेगये ॥ ६६ ॥ व इस गोत्र में जो उत्पन्न हुए वे सदैव पाकयज्ञ में परायण हुए और लोभी, क्रोधी व बहुत प्रजाओंवाले उत्पन्न होते हैं ॥ ६७ ॥ और स्नान, दानादि में परायण तथा सदैव जितेंद्रिय होते हैं व हजारों बावली, कूप और तड़ागों के करनेवाले हुए व व्रतशील, गुणज्ञ, मूर्ख और वेदों से रहित हुए ॥ ६८ ॥ और कौशिकवंश में जो उत्पन्न हुए वे तीन प्रवरों से संयुत हुए कि विश्वामित्र, अघमर्षी व तीसरा कौशिक हुआ ॥ ६९ ॥ और इस गोत्र में जो ब्राह्मण उत्पन्न हुए वे ब्रह्मज्ञ हुए और शांत, दांत, सुशील व सब धर्मों में परायण हुए ॥ ७० ॥ और वे द्विजोत्तम पुत्ररहित, रूक्ष व तेजसे हीन हुए और भारद्वाज गोत्रवाले ब्राह्मण

वच्यावनाप्नुवानौर्वश्च जमदग्निकः ॥ पूर्वोक्ताः प्रवराश्चास्य कथितास्तव भारत ॥ ६६ ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाताः पाकयज्ञरताः सदा ॥ लोभिनः क्रोधिनश्चैव प्रजायन्ते वहुप्रजाः ॥ ६७ ॥ स्नानदानादिनिरताः सर्वदा च जितेन्द्रियाः ॥ वापीकूपतडागानां कर्तारश्च सहस्रशः ॥ व्रतशीला गुणज्ञाश्च मूर्खा वेदविवर्जिताः ॥ ६८ ॥ कौशिकवंशे ये जाताः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ विश्वामित्रोऽघमर्षी च कौशिकश्च तृतीयकः ॥ ६९ ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता ब्राह्मणा ब्रह्मवेदिनः ॥ शान्ता दान्ताः सुशीलाश्च सर्वधर्मपरायणाः ॥ ७० ॥ अपुत्रिणस्तथा रूक्षास्तेजोहीना द्विजोत्तमाः ॥ भारद्वाजसगोत्रेयाः प्रवरैः पञ्चभिर्युताः ॥ ७१ ॥ आङ्गिरसो बार्हस्पत्यो भारद्वाजस्तु सैन्यसः ॥ गार्ग्यश्चैवेति विज्ञेयाः प्रवराः पञ्च एव च ॥ ७२ ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता वाडवा धनिनः शुभाः ॥ वस्त्रालङ्करणोपेता द्विजभक्तिपरायणाः ॥ ७३ ॥ ब्रह्मभोज्यपराः सर्वे सर्वधर्मपरायणाः ॥ काश्यपगोत्रे ये जाताः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ ७४ ॥ काश्यप

पांच प्रवरों से संयुत हुए ॥ ७१ ॥ कि आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, सैन्यस व गार्ग्य ये पांच प्रवर जानने योग्य हैं ॥ ७२ ॥ और इस गोत्र में जो ब्राह्मण पैदाहुए वे धनी व उत्तमहुए और वस्त्रों व भूषणों से संयुत तथा द्विजों की भक्ति में परायण हुए ॥ ७३ ॥ और सब ब्रह्मभोज्य में परायण तथा सब धर्मों में तत्पर हुए और जो काश्यपगोत्र में पैदा हुए वे तीन प्रवरों से संयुत हुए ॥ ७४ ॥ काश्यप, आपवत्सार व रैभ्य ये तीनों प्रसिद्ध हैं और इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण लाल नेत्रोंवाले व क्रूर

दृष्टि होते हैं ॥ ७५ ॥ व सब जिह्वाकी चंचलता में रत होते हैं और वे सब परमार्थ करनेवाले होते हैं और ये निर्धनी, रोगी व चोर और असत्यवादी होते हैं ॥ ७६ ॥ और सब शास्त्रार्थ को जाननेवाले व वेदों और स्मृतियों से रहित होते हैं और शुनकवंशों में जो उत्पन्न हुए वे ब्राह्मण ध्यान में परायण हुए ॥ ७७ ॥ और तपस्वी, योगी व वेदों तथा वेदांगों के पारगामी हुए और साधु व उत्तम आचारवाले तथा विष्णुजी की भक्ति में परायण हुए ॥ ७८ ॥ व छोटे शरीरवाले और भिन्न रंग व बहुत स्त्रियोंवाले द्विजोत्तम दयालु, उदार, शांत व ब्रह्मभोज्य में परायण हुए ॥ ७९ ॥ व शौनकवंशों में जो उत्पन्न हैं वे तीन प्रवरों से संयुत हैं भार्गव, शौनहोत्र व

श्चापवत्सारो रैभ्येति विश्रुतास्त्रयः ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा विप्रा रक्ताक्षाः क्रूरदृष्टयः ॥ ७५ ॥ जिह्वालौल्यरताः सर्वे सर्वे ते पारमार्थिनः ॥ निर्धना रोगिणश्चैते तस्करानृतभाषिणः ॥ ७६ ॥ शास्त्रार्थवेदिनः सर्वे वेदस्मृतिविवर्जिताः ॥ शुनकेषु च ये जाता विप्रा ध्यानपरायणाः ॥ ७७ ॥ तपस्विनो योगिनश्च वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ साधवश्च सदाचारा विष्णुभक्तिपरायणाः ॥ ७८ ॥ ह्रस्वकाया भिन्नवर्णा बहुरामा द्विजोत्तमाः ॥ दयालाः सरलाः शान्ता ब्रह्मभोज्यपरायणाः ॥ ७९ ॥ शौनकसेषु ये जाताः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ भार्गवशौनहोत्रेति गात्स्यंप्रमद इति त्रयः ॥ ८० ॥ अस्मिन्वंशे समुत्पन्ना वाडवा दुःसहा नृप ॥ महोत्कटा महाकायाः प्रलम्बाश्च मदोद्धताः ॥ ८१ ॥ क्लेशरूपाः कृष्णवर्णाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ बहुभुजो मानिनो दक्षा रागद्वेषोपवर्जिताः ॥ ८२ ॥ सुवस्त्रभूषारूपा वै ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ वसिष्ठगोत्रे ये जाताः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ ८३ ॥ वसिष्ठो भारद्वाजश्च इन्द्रप्रमद एव च ॥ अस्मिन्गोत्रे

गात्स्यंप्रमद ये तीनों प्रवर हैं ॥ ८० ॥ हे राजन्! इस वंश में उपजे हुए ब्राह्मण दुस्सह हैं और बड़े उग्र व बड़े शरीरवाले तथा लंबे व मदसे उद्धत हैं ॥ ८१ ॥ और क्लेशरूप व कालेरंगवाले तथा सब शास्त्रों में प्रवीण और बहुत भोजन करनेवाले, मानी, दक्ष और राग, द्वेष से रहित हैं ॥ ८२ ॥ व सुवस्त्र भूषणरूपी वे ब्राह्मण ब्रह्मवादी हुए और जो वसिष्ठगोत्र में उत्पन्न हुए वे तीन प्रवरों से संयुत हुए ॥ ८३ ॥ जो कि वसिष्ठ, भारद्वाज व इन्द्रप्रमद हैं व इस वंश में उपजे हुए ब्राह्मण वेदों व

वेदांगों के पारगामी हुए ॥ ८४ ॥ और याज्ञिक, यज्ञशील, सुस्वर व सुखी, वैरी, धनवान् और पुत्रवान् व गुणवान् हुए ॥ ८५ ॥ व हे राजन्! विशालहृदय व शूर और शत्रुनाशक हुए व गौतम के गोत्र में जो पैदाहुए वे पाचही प्रवर हुए ॥ ८६ ॥ कि कौत्स, गार्ग्य, प्रवाह, देवल और असित हुए व इस गोत्र में जो उत्पन्नहुए वे बड़े पावन ब्राह्मण हुए ॥ ८७ ॥ और सब परोपकारी व श्रुतियों तथा स्मृतियों में परायण हुए और बगुले की नाईं बैठनेवाले और कुटिल व छल की वृत्ति में तत्पर हुए ॥ ८८ ॥ व अनेकप्रकार के शास्त्रार्थ में निपुण तथा अनेकभांति के आभूषणों से भूषित हुए और वृक्षादिकों के कर्म में प्रवीण व बहुत क्रोधवाले और रोगी

त्रवा विप्रा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ८४ ॥ याज्ञिका यज्ञशीलाश्च सुस्वराः सुखिनस्तथा ॥ द्वेषिणो धनवन्तश्च पुत्रिणो गुणिनस्तथा ॥ ८५ ॥ विशालहृदया राजञ्छूराः शत्रुनिबर्हणाः ॥ गौतमसगोत्रे ये जाताः प्रवराः पञ्च एव हि ॥ ८६ ॥ कौत्सगार्ग्यप्रवाहाश्च असितो देवलस्तथा॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता विप्राः परमपावनाः ॥ ८७ ॥ परोपकारिणः सर्वे श्रुतिस्मृतिपरायणाः ॥ बकासनाश्च कुटिलाश्छद्मवृत्तिपरास्तथा ॥ ८८ ॥ नानाशास्त्रार्थनिपुणा नानाभरणभूषिताः ॥ वृक्षादिकर्मकुशला दीर्घरोषाश्च रोगिणः ॥ ८९ ॥ आङ्गिरसगोत्रे ये जाताः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ आङ्गिरसोम्बरीषश्च यौवनाश्वस्तृतीयकः ॥ ९० ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाताः सत्यसम्भाषिणस्तथा ॥ जितेन्द्रियाः सुरूपाश्च अल्पाहाराः शुभाननाः ॥ ९१ ॥ महाव्रताः पुराणज्ञा महादानपरायणाः ॥ निर्द्वेषिणो लोभयुता वेदाध्ययनतत्पराः ॥ ९२ ॥ दीर्घदर्शिमहातेजोमहामायाविमोहिताः ॥ शाण्डिलसगोत्रे ये जाताः प्रवरत्रयसंयु

हुए ॥ ८९ ॥ व जो आंगिरस गोत्र में उत्पन्न हुए वे तीन प्रवरोंसे संयुत हुए आंगिरस, अंबरीष व तीसरा यौवनाश्व है ॥ ९० ॥ और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे सत्यवादी हैं और जितेन्द्रिय व स्वरूपवान् तथा थोड़ा भोजन करनेवाले और उत्तम मुखवाले हैं ॥ ९१ ॥ और महाव्रतवाले व पुराणों के जाननेवाले तथा महादानों में परायण हुए और वैररहित व लोभ से संयुत व वेदपाठ में तत्परहुए ॥ ९२ ॥ और दूरदर्शी तथा बड़ी तेजोवती महामाया से मोहित हुए और जो शाडिलस गोत्र में

ताः ॥ ९३ ॥ असितो देवलश्चैव शाण्डिलस्तु तृतीयकः ॥ अस्मिन्गोत्रे महाभागाः कुब्जाश्च द्विजसत्तमाः ॥ ९४ ॥
नेत्ररोगी महादुष्टा महात्यागा अनायुषः ॥ कलहोत्पादने दक्षाः सर्वसंग्रहतत्पराः ॥ ९५ ॥ मलिना मानिनश्चैव ज्यो
तिःशास्त्रविशारदाः ॥ आत्रेयसगोत्रे ये जाताः पञ्चप्रवरसंयुताः ॥ ९६ ॥ आत्रेयोऽर्चनानसश्यावाश्वावाङ्गिरसोऽत्रिकः ॥
अस्मिन्वंशे च ये जाता द्विजास्ते सूर्यवर्चसः ॥ ९७ ॥ चन्द्रवच्छीतलाः सर्वे धर्मारण्ये व्यवस्थिताः ॥ सदाचारा
महादक्षाः श्रुतिशास्त्रपरायणाः ॥ ९८ ॥ याज्ञिकाश्च शुभाचाराः सत्यशौचपरायणाः ॥ धर्मज्ञा दानशीलाश्च नि
र्मलाश्च महोत्सुकाः ॥ ९९ ॥ तपःस्वाध्यायनिरता न्यायधर्मपरायणाः ॥ १०० ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथयस्व महा
बाहो धर्मारण्यकथामृतम् ॥ यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापाद्घोराद्ब्रह्मवधादपि ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि
कथामेतां सुदुर्लभाम् ॥ २ ॥ यक्षरक्षःपिशाचाद्या उद्वेजयन्ति वाडवान् ॥ जृम्भकोनाम यक्षोऽभूद्धर्मारण्यसमी

उत्पन्नहुए वे तीन प्रवरों से संयुत हैं ॥ ९३ ॥ असित, देवल व तीसरा शांडिल है इस गोत्र में द्विजोत्तम बड़े ऐश्वर्यवान् व कूबरे होते हैं ॥ ९४ ॥ और नेत्ररोगी, बड़े दुष्ट, बडे दानी व आयुर्बल से हीन होते हैं और झगड़ा पैदा करने में प्रवीण तथा सबके संग्रह में तत्पर होते हैं ॥ ९५ ॥ और मलीन, मानी व ज्योतिःशास्त्र में चतुर होते हैं और जो आत्रेय गोत्र में उत्पन्न हैं वे पाच प्रवरों से संयुत हैं ॥ ९६ ॥ कि आत्रेय, अर्चनानस, श्यावाश्व, आंगिरस और अत्रि हैं व इस वंश में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण सूर्य के समान तेजस्वी हैं ॥ ९७ ॥ और धर्मारण्य में टिकेहुए वे सब चन्द्रमा की नाईं शीतल हैं और उत्तम आचारवाले तथा महाप्रवीण व श्रुतियों और शास्त्रों में प्रवीण हैं ॥ ९८ ॥ और यज्ञकर्ता तथा उत्तम आचारवाले और सत्य व शौच में परायण हैं और धर्मज्ञ व दानी, निर्मल और बडे उत्कंठित होतेहैं ॥ ९९ ॥ और तपस्या व निज वेदपाठ में परायण तथा न्याय धर्म में तत्पर हैं ॥ १०० ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाबाहो ! धर्मारण्य के कथारूपी अमृत को कहिये कि जिसको सुनकर मनुष्य भयङ्कर ब्रह्मघात पाप सेभी छूटजाता है ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन् ! सुनिये मैं इस दुर्लभ कथा को कहता हूं ॥ २ ॥ कि यक्ष,

राक्षस व पिशाचादिक ब्राह्मणों को पीडित करते थे धर्मारण्य के समीप जृंभकनामक यक्ष हुआ है ॥ ३ ॥ वह नित्य धर्मारण्य में बसनेवाले द्विजों को पीड़ित करताथा तदनन्तर उन द्विजोत्तमों ने देवताओं से कहा ॥ ४ ॥ कि हे देवताओ! यक्ष व राक्षसादिकों से हमलोग दुःखित कियेजाते हैं इस कारण उनके भयसे हमलोग इस समय उत्तम स्थान को त्यागदेवैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ तदनन्तर गन्धर्वों समेत देवताओं ने वहां सिद्धों और श्रीमातृ आदिक उत्तम योगिनियों को स्थापित किया ॥ ६ ॥ लोकों के हितकी कामना से ब्राह्मणों की रक्षा के लिये उस समय गोत्रों में एक एक योगिनी स्थापित कीगई ॥ ७ ॥ जिस गोत्र के रक्षण व पालन में जो

पतः ॥ ३ ॥ उद्वेजयति नित्यं स धर्मारण्यनिवासिनः ॥ ततस्तैश्च द्विजाग्र्यैस्तु देवेभ्यो विनिवेदितम् ॥ ४ ॥ यक्षरक्षादिना चैव परिभूता वयं सुराः ॥ त्यक्ष्यामोऽद्य वरं स्थानं तद्भयान्नात्र संशयः ॥ ५ ॥ ततो देवैः सगन्धर्वैः स्थापितास्तत्र भूमिषु ॥ सिद्धाश्च वरयोगिन्यः श्रीमातृप्रभृतयस्तथा ॥ ६ ॥ रक्षणार्थं हि विप्राणां लोकानां हितकाम्यया ॥ गोत्रान्प्रति तथैकैका स्थापिता योगिनी तदा ॥ ७ ॥ यस्य गोत्रस्य या शक्ती रक्षणे पालने क्षमा ॥ सा तस्य कुलदेवीति साक्षात्तत्र बभूव ह ॥ ८ ॥ श्रीमाता तारणी देवी आशापूरी च गोत्रपा ॥ इच्छाऽऽर्तिनाशिनी चैव पिप्पली विकरावशा ॥ ९ ॥ जगन्माता महामाता सिद्धा भट्टारिका तथा ॥ कदम्बा विकरा मीठा सुपर्णा वसुजा तथा ॥ १० ॥ मातङ्गी च महादेवी वाणी च मुकुटेश्वरी ॥ भद्री चैव महाशक्तिः संहारी च महाबला ॥ ११ ॥ चामुण्डा च महादेवी इत्येता गोत्रमातरः ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैः स्थापितास्तत्र रक्षणे ॥ १२ ॥ ताः पूजयन्ति विप्रेन्द्राः स्वधर्मनिर

शक्ति समर्थ हुई वह वहां उस गोत्र की साक्षात् कुलदेवी हुई ॥ ८ ॥ श्रीमाता व तारणी देवी और गोत्र की रक्षा करनेवाली आशापूरी तथा इच्छार्तिनाशिनी, पिप्पली, विकरावशा ॥ ९ ॥ व जगन्माता, महामाता, सिद्धा, भट्टारिका, कदंबा, विकरा, मीठा, सुपर्णा व वसुजा ॥ १० ॥ और मातंगी, महादेवी, वाणी, मुकुटेश्वरी व भद्री, महाशक्ति, संहारी और महाबला ॥ ११ ॥ चामुंडा और महादेवी ये गोत्रमातृका वहां ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों से रक्षा करने में स्थापित कीगई ॥ १२ ॥ अपने

धर्म में तत्पर द्विजेन्द्र सदैव उनको पूजते हैं तबसे लगाकर योगिनियों से अपने अपने समय में सुरक्षित ॥ १३ ॥ पुत्रों व पौत्रों से घिरेहुए ब्राह्मण स्वस्थता को प्राप्तहुए तदनन्तर हर्ष से पूर्ण मनवाले गंधर्वों समेत अमृतभोजी देवता उत्तम विमानों पै चढ़कर वैकुंठ में चलेगये ॥ १४ ॥ व हे राजन्! सौ वर्ष बीतने पर ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी धर्मारण्य को देखने के लिये कौतुक से स्मरण कर ॥ १५ ॥ हे राजन्! प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर उत्तम विमानपै चढ़कर अप्सरागणों से सेवित व गंधर्वों से गायेजाते हुए व वंदियों से स्तुति कियेजातेहुए वे आये हे राजन्! उस स्थान में ब्राह्मण लोग बहुत से समिधा, पुष्प व कुशों को लेने के लिये ॥ १६ । १७ ॥ उन

ताः सदा ॥ ततः प्रभृति योगिनीभिः स्वेस्वे काले सुरक्षिताः ॥ १३ ॥ वाडवाः स्वस्थतां जग्मुः पुत्रपौत्रैः समावृताः ॥ ततो देवाः सगन्धर्वा हर्षनिर्भरमानसाः ॥ विमानवरमारूढा जग्मुर्नाकेऽमृताशनाः ॥ १४ ॥ गते वर्षशते राजन्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ स्मृत्वा तु धर्मारण्यस्य प्रेक्षणार्थं कुतूहलात् ॥ १५ ॥ समाजग्मुस्तदा राजन्प्रभाते उदिते रवौ ॥ विमानवरमारुह्य अप्सरोगणसेविताः ॥ १६ ॥ गन्धर्वैर्गीयमानास्ते स्तूयमानाः प्रवोधकैः ॥ तत्र स्थाने द्विजा राजन्समित्पुष्पकुशान्वहून् ॥ १७ ॥ आश्रमांस्तान्परित्यज्य गताः सर्वे दिशो दश ॥ तमाश्रमपदं दृष्ट्वा शून्यं चैव महेश्वरः ॥ १८ ॥ उवाच वाक्यं धर्मज्ञः क्लिश्यन्ते वाडवा विभो ॥ शुश्रूषार्थं हि शुश्रूषून्कल्पयामीति मे मतिः ॥ १९ ॥ श्रुत्वा तु वचनं शम्भोर्देवदेवो जनार्दनः ॥ सत्यं सत्यमिति प्रोच्य ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ॥ २० ॥ भोभो ब्रह्मन्द्विजातीनां शुश्रूषार्थं प्रकल्पय ॥ सृष्टिर्हि शाश्वतीवाद्य द्विजौघोपि सुखी भवेत् ॥ विष्णोर्वाक्यमभिश्रुत्य ब्रह्मा

आश्रमों को छोडकर सब दशो दिशाओं को चले गये तब उस आश्रम स्थान को शून्य देखकर महेश्वर ॥ १८ ॥ धर्मज्ञ ने विष्णुजी से यह वचन कहा कि हे विभो! ब्राह्मण दुःखी होते हैं इस कारण सेवा के लिये सेवकों को कल्पित करूं ऐसी मेरी बुद्धि है ॥ १९ ॥ शिवजीका वचन सुनकर देवदेव विष्णुजीने सत्य है सत्य है यह कहकर ब्रह्मा से यह कहा ॥ २० ॥ कि हे ब्रह्मन्! ब्राह्मणों की सेवा के लिये इस समय सनातनी सृष्टि की नाई कल्पित करो कि जिस से द्विजगण भी सुखी होवै

विष्णुजी का वचन सुनकर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने ॥ २१ ॥ कामधेनु को स्मरण किया और स्मरणही से उसी क्षण वह कामधेनु उस पवित्र धर्मारण्य में आ-
गई ॥ १२२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगोत्रप्रवरगोत्रदेवीकथनन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ❀ ॥
दो० । कामधेनु से प्रकट भे यथा वणिज सबलोग । सोइ दशम अध्याय में कह्यो चरित सुखभोग ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन् ! धर्मारण्य में जैसा उत्तम वृत्तान्त
हुआ है उसको सुनिये मैं कहताहूं जो यह कि सब पापराशियों का नाशक है ॥ १ ॥ हे राजन् ! ब्रह्मा से प्रेरित विष्णु व शिवजी ने कामधेनु को बुलाया व उससे

लोकपितामहः ॥ २१ ॥ सस्मार कामधेनुं वै स्मरणेनैव तत्क्षणे ॥ आगता तत्र साधेनुर्धर्मारण्ये पवित्रके ॥ १२२ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येगोत्रप्रवरगोत्रदेवीकथनन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥
व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्यथावृत्तं धर्म्मारण्ये शुभं गतम् ॥ यदिदं कथयिष्यामि अशेषाघौघनाशनम् ॥ १ ॥
अजेशेन तदा राजन्प्रेरितेन स्वयम्भुवा ॥ कामधेनुः समाहूता कथयामास तां प्रति ॥ २ ॥ विप्रेभ्योऽनुचरान्देहि
एकैकस्मै द्विजातये ॥ द्वौ द्वौ शुद्धात्मकौ चैवं देहि मातः प्रसीद मे ॥ ३ ॥ तथेत्युक्त्वा महाधेनुः खुरेणोल्लेखयद्धराम् ॥
हुङ्कारात्तस्या निष्क्रान्ताः शिखासूत्रधरा नराः ॥ ४ ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि वणिजश्च महाबलाः ॥ सोपवीता महा
दक्षाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ ५ ॥ द्विजभक्तिसमायुक्ता ब्रह्मण्यास्ते तपोन्विताः ॥ पुराणज्ञाः सदाचारा धार्मिका
ब्रह्मसेवकाः ॥ ६ ॥ स्वर्गे देवाः प्रशंसन्ति धर्मारण्यनिवासिनः ॥ तपोऽध्ययनदानेषु सर्वकालेप्यतीन्द्रियाः ॥ ७ ॥

कहा ॥ २ ॥ कि हे मातः ! ब्राह्मणों के लिये सेवकों को दीजिये याने एक एक ब्राह्मण के लिये शुद्धचित्तवाले दो दो सेवकों को दीजिये मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये ॥ ३ ॥
बहुत अच्छा यह कहकर महाधेनु ने खुर से पृथ्वी को लिखा और उसके हुंकार से शिखासूत्रधारी छत्तीसहज़ार बड़े बलवान् वणिज् निकले जोकि यज्ञोपवीत समेत व बड़े
प्रवीण और सब शास्त्रों में चतुर थे ॥ ४ । ५ ॥ और ब्राह्मणों की भक्ति से संयुत वे ब्रह्मण्य और तपस्या से संयुत व पुराणों के जाननेवाले तथा उत्तम आचारवाले और
धार्मिक व ब्रह्मसेवक थे ॥ ६ ॥ स्वर्ग में देवता भी धर्मारण्यनिवासी ब्राह्मणों की प्रशंसा करते हैं कि तपस्या, पठन व दान में वे सबसमय में भी इन्द्रियों को जीते हैं॥ ७ ॥

हे राजन्! एक एक ब्राह्मण के लिये दो दो सेवक दिये गये और जिस ब्राह्मण का पहले जो गोत्र कहागया है ॥ ८ ॥ उसके सेवक का भी परस्पर वह गोत्र हुआ इस व्यवस्था को करके वहा भूमियों में द्विजोंने निवास किया ॥ ९ ॥ तदनन्तर पृथ्वी में देवताओं ने सेवकों को शिष्यता दी और ब्रह्मा ने उनके हित के लिये सब कहा ॥ १० ॥ कि तुम लोग इनका वचन करो और जो मनोरथ हो उसको देवो व प्रतिदिन समिधा, पुष्प और कुशादिकों को लेआवो ॥ ११ ॥ और इनकी आज्ञा से वर्तमान होवो कभी अपमान मत करो और जातक, नामकरण व उत्तम अन्नप्राशन ॥ १२ ॥ व मुंडन, यज्ञोपवीत और महानाम्न्यादिक जो क्रिया कर्मादिक व व्रत, दान

एकैकस्मैद्विजायैव दत्तं ह्यनुचरद्वयम् ॥ वाडवस्य च यद्गोत्रं पुरा प्रोक्तं महीपते ॥ ८ ॥ परस्परं च तद्गोत्रं तस्य चानुचरस्य च ॥ इति कृत्वा व्यवस्थां च न्यवसंस्तत्र भूमिषु ॥ ९ ॥ ततश्च शिष्यता देवैर्दत्ता चानुचरान्भुवि ॥ ब्रह्मणा कथितं सर्वं तेषामनुहिताय वै ॥ १० ॥ कुरुध्वं वचनं चैषां ददध्वं च यदिच्छितम् ॥ समित्पुष्पकुशादीनि आनयध्वं दिने दिने ॥ ११ ॥ अनुज्ञयैषां वर्तध्वं मावज्ञां कुरुत कर्हिचित् ॥ जातकं नामकरणं तथान्नप्राशनं शुभम् ॥ १२ ॥ क्षौरं चैवोपनयनं महानाम्न्यादिकं तथा ॥ क्रियाकर्मादिकं यच्च व्रतं दानोपवासकम् ॥ १३ ॥ अनुज्ञयैषां कर्तव्यं काजेशा इदमब्रुवन् ॥ अनुज्ञया विनैषां यः कार्यमारभते यदि ॥ १४ ॥ दर्शं वा श्राद्धकार्यं वा शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ दारिद्र्यं पुत्रशोकं च कीर्तिनाशं तथैव च ॥ १५ ॥ रोगैर्निपीड्यते नित्यं न कचित्सुखमाप्नुयुः ॥ तथेति च ततो देवाः शक्राद्याः सुरसत्तमाः ॥ १६ ॥ स्तुतिं कुर्वन्ति ते सर्वे कामधेनोः पुरः स्थिताः ॥ कृतकृत्यास्तदा देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १७ ॥

और उपवास ॥ १३ ॥ इनकी आज्ञा से करना चाहिये ब्रह्मा, विष्णु व महेशाने ऐसा कहा और बिन इनकी आज्ञा जो कार्य का प्रारंभ करैगा ॥ १४ ॥ दर्श श्राद्धकार्य या शुभ व अशुभ जो कार्य करैगा वह दारिद्र्य, पुत्रशोक व कीर्तिनाश को पावैगा ॥ १५ ॥ और वह नित्य रोगों से निपीडित होगा व कभी वे सुखको न पावैंगे बहुत अच्छा ऐसा उन्होंने कहा तदनन्तर इन्द्रादिक वे सुरश्रेष्ठ सब देवता कामधेनु के आगे स्थित होकर स्तुति करनेलगे व उस समय ब्रह्मा, विष्णु व शिवदेवता कृतार्थ हुए ॥१६।१७॥

हे अनघे ! तुम सब देवताओं की माता हो व तुम यज्ञका कारण हो और सब तीर्थों के मध्य में तुम तीर्थ हो हे अनघे । तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १८ ॥ जिसके मस्तक में चन्द्रमा, सूर्य, अरुण व शिवजी हैं व जिसके हुंकार में सरस्वती है व सब नाग जिसके कंबल स्थान में हैं ॥ १९ ॥ और जिस के खुर के पिछले भाग में गंधर्व व चारों वेद हैं और मुख के अग्रभाग में सब तीर्थ व स्थावर और जंगम हैं ॥ २० ॥ ऐसे बहुत वचनों से प्रसन्न कीहुई वह कामधेनु हर्षित हुई तब उसने यह कहा कि मैं क्या करूं ॥ २१ ॥ देवता बोले कि हे मातः ! आप भगवती ने इन सब उत्तम सेवकों को रचा व हे महाभागे ! तुम्हारी प्रसन्नता से ब्राह्मण

त्वं माता सर्वदेवानां त्वं च यज्ञस्य कारणम् ॥ त्वं तीर्थं सर्वतीर्थानां नमस्तेऽस्तु सदानघे ॥ १८ ॥ शशिसूर्यारुणा य स्या ललाटे वृषभध्वजः ॥ सरस्वती च हुङ्कारे सर्वे नागाश्च कम्बले ॥ १९ ॥ खुरपृष्ठे च गन्धर्वा वेदाश्चत्वार एव च ॥ मुखाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च ॥ २० ॥ एवंविधैश्च बहुशो वचनैस्तोषिता च सा ॥ सुप्रसन्ना तदा धेनुः किं करोमीति चाब्रवीत् ॥ २१ ॥ देवा ऊचुः ॥ सृष्टाः सर्वे त्वया मातर्देव्यैतेऽनुचराः शुभाः ॥ त्वत्प्रसादान्महाभागे ब्राह्मणाः सुखिनोऽभवन् ॥ २२ ॥ ततोऽसौ सुरभी राजन्गता नाकं यशस्विनी ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यास्तत्रैवान्तरधु स्ततः ॥ २३ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अभार्यास्ते महातेजा गोजा अनुचरास्तथा ॥ उद्वाहिताः कथं ब्रह्मन्सुतास्तेषां कदाऽभवन् ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ परिग्रहार्थं वै तेषां रुद्रेण च यमेन च ॥ गन्धर्वकन्या आहृत्य दारास्तत्रोपक ल्पिताः ॥ २५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ को वा गन्धर्वराजासौ किन्नामा कुत्र वा स्थितः ॥ कियन्मात्रास्तस्य कन्याः कि

लोग सुखी हुए ॥ २२ ॥ व हे राजन् ! तदनन्तर कामधेनु स्वर्ग को चलीगई और ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक देवता वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे महातेजा, ब्रह्मन् ! गऊ से उपजे हुए वे अनुचर (वैश्य) स्त्रीविहीन थे फिर कैसे ब्याहेगये और किस समय उनके पुत्र हुए ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले कि उन वैश्यों के विवाह के लिये रुद्र व यमराज ने गंधर्वों की कन्याओं को हरकर वहां स्त्रियों को कल्पित किया ॥ २५ ॥ युधिष्ठिरजी बोले यह कौन गंधर्वराज था व इस

का क्या नाम था और यह कहां स्थित था और किस आचारवाली उसकी कितनी कन्या थीं इसको मुझसे कहिये ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले कि हे नृप ! विश्वावसु ऐसा प्रसिद्ध गंधर्वों का राजा था उसके मन्दिर में साठहज़ार कन्या थीं ॥ २७ ॥ उसका आकाश में घर था और उत्तम गंधर्वनगर था व गंधर्व से उपजी हुई उत्तम कन्या स्वरूपवती और युवावस्था में स्थित थीं ॥ २८ ॥ हे राजन् ! शिवजी के गण उत्तम मुखवाले नन्दी व भृंगी ने पहले देखी हुई उन कन्याओं को शिवजी से कहा ॥ २९ ॥ कि हे विभो, महादेव ! पुरातन समय गंधर्वनगर में विश्वावसु के घर में मैंने हज़ारों कन्याओं को देखा है ॥ ३० ॥ हे शिवजी ! उनको बलसे

माचारा ब्रवीहि मे ॥ २६ ॥ व्यास उवाच ॥ विश्वावसुरितिख्यातो गन्धर्वाधिपतिर्नृप ॥ षष्टिकन्यासहस्राणि आसते तस्य वेश्मनि ॥ २७ ॥ अन्तरिक्षे गृहं तस्य गन्धर्वनगरं शुभम् ॥ यौवनस्थाः सुरूपाश्च कन्या गन्धर्वजाः शुभाः ॥ २८ ॥ रुद्रस्यानुचरौ राजन्नन्दी भृङ्गी शुभाननौ ॥ पूर्वदृष्टाश्च ताः कन्याः कथयामासतुः शिवम् ॥ २९ ॥ दृष्टाः पुरा महादेव गन्धर्वनगरे विभो ॥ विश्वावसुगृहे कन्या असंख्याताः सहस्रशः ॥ ३० ॥ ता आनीय बलादेव गोभुजेभ्यः प्रयच्छ भोः ॥ एवं श्रुत्वा ततो देवस्त्रिपुरघ्नः सदाशिवः ॥ ३१ ॥ प्रेषयामास दूतं तु विजयं नाम भारत ॥ स तत्र गत्वा यत्रास्ते विश्वावसुररिन्दमः ॥ ३२ ॥ उवाच वचनं चैव पथ्यं चैव शिवेरितम् ॥ धर्मारण्ये महाभाग काजेशेन विनिर्मिताः ॥ ३३ ॥ स्थापिता वाडवास्तत्र वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ तेषां वै परिचर्यार्थं कामधेनुश्च प्रार्थिता ॥ ३४ ॥ तया कृताः शुभाचारा वणिजस्ते त्वयोनिजाः ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि कुमारास्ते महाबलाः ॥ ३५ ॥ शिवेन प्रेषितोऽहं

लाकर वैश्यों को दीजिये ऐसा सुनकर तदनन्तर त्रिपुरविनाशक सदाशिवजी ने ॥ ३१ ॥ हे भारत ! विजय नामक दूतको पठाया और जहां शत्रुनाशक विश्वावसु था वहां उसने जाकर ॥ ३२ ॥ शिवजी से कहे हुए पथ्य वचन को कहा कि हे महाभाग ! धर्मारण्य में ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से रचेहुए ॥ ३३ ॥ वेदवेदांग के पारगामी ब्राह्मण वहां स्थापित हैं और उनकी सेवा के लिये कामधेनु की प्रार्थना कीगई ॥ ३४ ॥ व उसने उत्तम आचारवाले अयोनिज बनियों को बनाया है वे बड़े बलवान् छत्तीस हज़ार कुमार हैं ॥ ३५ ॥ शिवजी से पठाया हुआ मैं तुम्हारे समीप कन्या के लिये आया हूं हे महाभाग ! कन्या को दीजिये दीजिये ऐसा उसने

कहा॥ ३६॥ गंधर्व बोला कि हे महामते! संसार में सब देवताओं व गंधर्वोंको छोड़कर कैसे मनुष्यों को कन्या देऊं ॥ ३७ ॥ उसका वचन सुनकर उस समय विजय लौट आया व उसने बड़े भारी गंधर्वचरित्र को कहा ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर भगवान् सदाशिवजी क्रोधित हुए और त्रिशूल को हाथ में लिये हुए सदाशिवजी बैलपै सवार हुए ॥ ३९ ॥ व हज़ारों भूत, प्रेत और पिशाचादिकों से घिरे तदनन्तर देवता, नाग, भूत, वेताल व खेचर ॥ ४० ॥ बड़े क्रोध से संयुत होकर वे हज़ारों लोग आये और उस सेना के चलने पर बड़ाभारी हाहाकार हुआ ॥ ४१ ॥ और पृथ्वी देवी कॉपनेलगी व दिक्पाल भय से विकल हुए तब भयंकर व अशांत पवन चलनेलगे

वै त्वत्समीपमुपागतः ॥ कन्यार्थं हि महाभाग देहि देहीत्युवाच ह ॥ ३६ ॥ गन्धर्व उवाच ॥ देवानां चैव सर्वेषां गन्धर्वाणां महामते ॥ परित्यज्य कथं लोके मानुषाणां ददामि वै ॥ ३७ ॥ श्रुत्वा तु वचनं तस्य निवृत्तो विजयस्तदा ॥ कथयामास तत्सर्वं गन्धर्वचरितं महत् ॥ ३८ ॥ व्यास उवाच ॥ ततः कोपसमाविष्टो भगवाँल्लोकशङ्करः ॥ वृषभे च समारूढः शूलहस्तः सदाशिवः ॥ ३९ ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्यैः सहस्रैरावृतः प्रभुः ॥ ततो देवास्तथा नागा भूतवेतालखेचराः ॥ ४० ॥ क्रोधेन महताविष्टाः समाजग्मुः सहस्रशः ॥ हाहाकारो महानासीत्तस्मिन्सैन्ये विसर्पति ॥ ४१ ॥ प्रकम्पिता धरादेवी दिशापाला भयातुराः ॥ घोरा वातास्तदाऽशान्ताः शब्दं कुर्वन्ति दिग्गजाः ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ तदागतं महासैन्यं दृष्ट्वा भयविलोलितम् ॥ गन्धर्वनगरात्सर्वे विनेशुस्ते दिशो दश ॥ ४३ ॥ गन्धर्वराजो नगरं त्यक्त्वा मेरुं गतो नृप ॥ ताः कन्या यौवनोपेता रूपौदार्यसमन्विताः ॥ ४४ ॥ गृहीत्वा प्रददौ सर्वा वणिग्भ्यश्च तदा नृप ॥ वेदोक्तेन विधानेन तथा वै देवसन्निधौ ॥ ४५ ॥ आज्यभागं तदा दत्त्वा गन्धर्वाय गवात्मजाः ॥ देवानां पूर्व

और दिग्गज शब्द करनेलगे ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले कि भय से चंचल व आई हुई सब सेना को देखकर गंधर्वनगर से वे सब दशो दिशाओं को भगगये ॥ ४३ ॥ व हे राजन्! गंधर्वों का राजा विश्वावसु नगर को छोड़कर सुमेरुगिरि पै चलागया तब हे राजन्! यौवन से युक्त व रूप, उदारता से संयुत उन सब कन्याओं को लेकर बनियों के लिये देदिया तब शिवदेवजी के समीप वेदोक्त विधि से ॥ ४४ । ४५ ॥ गंधर्व के लिये आज्यभाग को देकर गऊ के पुत्र वणिजों ने पूर्वज देवता व सूर्य और

चन्द्रमा को ॥ ४६ ॥ व यमराज और मृत्यु के लिये घृतभाग को दिया और घृतभागों को देकर विधिपूर्वक उन वणिजों ने उत्तम व्रतवाली कन्याओं का व्याह किया ॥ ४७ ॥ तबसे लगाकर गांधर्व विवाह प्राप्त होनेपर आजभी सब देवादिक आज्य (घृत) भाग को ग्रहण करते हैं ॥ ४८ ॥ और छत्तीसहज़ार जो कुमार कहे गये हैं उनके सैकड़ों व हज़ारों पुत्र, पौत्र हुए ॥ ४९ ॥ इसी कारण वे सब दासत्व में कियेगये व बड़े वीर क्षत्रिय सेवकता में कियेगये ॥ ५० ॥ तदनन्तर हे राजन्! सब देवता जैसे आये थे वैसेही चलेगये व देवताओं के जानेपर वे सब ब्राह्मण इस स्थान में बसने लगे ॥ ५१ ॥ हे राजन्! पुत्रों व पौत्रों से संयुत व सबकहीं से निडर ब्राह्मण

जानां च सूर्याचन्द्रमसोस्तथा ॥ ४६ ॥ यमाय मृत्यवे चैव आज्यभागं तदा ददुः ॥ दत्त्वाज्यभागान्विधिवद्वव्रिरे ते शुभव्रताः ॥ ४७ ॥ ततः प्रभृति गान्धर्वविवाहे समुपस्थिते ॥ आज्यभागं प्रगृह्णन्ति अद्यापि सर्वतो भृशम् ॥ ४८ ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि कुमारा ये निवेदिताः ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४९ ॥ अत एव हि ते सर्वे दासत्वे हि विनिर्मिताः ॥ क्षत्रियाश्च महावीराः किङ्करत्वे हि निर्मिताः ॥ ५० ॥ ततो देवास्तदा राजञ्जग्मुः सर्वे यथातथा ॥ गते देवे द्विजाः सर्वे स्थानेऽस्मिन्निवसन्ति ते ॥ ५१ ॥ पुत्रपौत्रयुता राजन्निवसन्त्यकुतोभयाः ॥ पठन्ति वेदान्वेदज्ञाः कचिच्छास्त्रार्थमुद्गिरन् ॥ ५२ ॥ केचिद्विष्णुं जपन्तीह शिवं केचिज्जपन्ति हि ॥ ब्रह्माणं च जपन्त्येके यमसूक्तं हि केचन ॥ ५३ ॥ यजन्ति याजकाश्चैव अग्निहोत्रमुपासते ॥ स्वाहाकारस्वधाकारवषट्कारैश्च सुव्रत ॥ ५४ ॥ शब्दैरापूर्यते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ वणिजश्च महादक्षा द्विजशुश्रूषणोत्सुकाः ॥ ५५ ॥ धर्मारण्ये शुभे दिव्ये ते

बसते हैं व वेदों को जाननेवाले वे वेदों को पढ़ते हैं और कभी शास्त्रार्थ को कहते हैं ॥ ५२ ॥ यहां कोई शिवजी को जपते हैं व कोई विष्णुजी को जपते हैं और कोई ब्रह्मा को जपते हैं व कोई यमसूक्त को जपते हैं ॥ ५३ ॥ और याजक लोग यज्ञ करते हैं व अग्निहोत्र की उपासना करते हैं व हे सुव्रत! स्वाहाकार, स्वधाकार और वषट्कार शब्दों से चराचर समेत सब त्रिलोक पूर्ण होता है और ब्राह्मणों की सेवा में उत्कंठित जो बड़े दक्ष वणिज् हैं ॥ ५४ । ५५ ॥ भलीभांति निष्ठित वे लोग उत्तम व दिव्य

धर्मारण्य में बसते हैं और अन्न, पानादिक व समिधा, कुश और फलादिक सब वस्तु को ॥ ५६ ॥ गऊ के पुत्र उन वणिजों ने ब्राह्मणों के लिये पूर्ण किया ॥ ५७ ॥ और पुष्पोपहार का इकट्ठा करना व स्नान और वस्त्रादिकों का धोना तथा पत्थरआदिक का निर्माण और मार्जनादिक उत्तम कर्मों को ॥ ५८ ॥ और कुट्टन व पीसना आदिक काम को वणिजों की स्त्रियां करनेलगीं व ब्रह्मा, विष्णु व महेशजी के वचन से वे उन ब्राह्मणों की सेवा करनेलगे ॥ ५९ ॥ तब हर्ष में तत्पर सब ब्राह्मण स्वस्थ हो गये और दिन, रात्रि व सन्ध्याओं में ब्रह्मा, विष्णु और शिवादिकों की उपासना करनेलगे ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां

वसन्ति सुनिष्ठिताः ॥ अन्नपानादिकं सर्वं समित्कुशफलादिकम् ॥ ५६ ॥ आपूरयन्द्विजातीनां वणिजस्ते गवात्मजाः ॥ ५७ ॥ पुष्पोपहारनिचयं स्नानवस्त्रादिधावनम् ॥ उपलादिकनिर्माणं मार्जनादिशुभक्रियाः ॥ ५८ ॥ वणिक्स्त्रियः प्रकुर्वन्ति कण्डनं पेषणादिकम् ॥ शुश्रूषन्ति च तान्विप्रान्काजेशवचनेन हि ॥ ५९ ॥ स्वस्था जातास्तदा सर्वे द्विजा हर्षपरायणाः ॥ काजेशादीनुपासन्ते दिवारात्रौ हि सन्ध्ययोः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये वणिक्परिग्रहवर्णनन्नामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ अतः परं किमभवद्ब्रवीतु द्विजसत्तम ॥ त्वद्वचनामृतं पीत्वा तृप्तिर्नास्ति मम प्रभो ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ अथ किञ्चिद्गते काले युगान्तसमये सति ॥ त्रेतादौ लोलजिह्वाक्ष अभवद्राक्षसेश्वरः ॥ २ ॥ तेन विद्रा

भाषाटीकायांवणिक्परिग्रहवर्णनन्नामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । लोलजिह्व राक्षसहिं जिमि हन्यो विष्णु सुरनाथ । गेरहनें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे द्विजोत्तम, प्रभो! इसके उपरान्त क्या हुआ उसको कहिये तुम्हारे वचनरूपी अमृत को पीकर मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि इसके उपरान्त कुछ समय बीतने पर जब युगांत समय हुआ तब त्रेतायुग के आदि में लोलजिह्वाक्ष नामक राक्षसेश्वर हुआ ॥ २ ॥ उसने चराचर समेत सब त्रिलोक को भगादिया व सबलोकों को जीतकर वह धर्मारण्य में

आया ॥ ३ ॥ और ब्राह्मणों से सेवित उस पवित्र व सुंदर धर्मारण्य को देखकर ब्राह्मणों के वैर से उसी ने उत्तम पुर को जलादिया ॥ ४ ॥ और जलते हुए नगर को देखकर द्विजोत्तम लोग भग गये और वे धर्मारण्यनिवासी लोग जैसे आये थे वैसेही चले गये ॥ ५ ॥ तब श्रीमातादिक देवियां राक्षस से क्रोधित हुईं और शब्द से डरवाकर राक्षस को मारनेलगीं ॥ ६ ॥ तब उत्तम त्रिशूल को धारनेवाली व शंख, चक्र और गदा को धारनेवाली सैकड़ों व हज़ारों देवियां प्राप्तहुईं ॥ ७ ॥ कोई कमंडलु को धारे थीं व अन्य चाबुक और तलवार को धारण किये थी और कोई फसरी व अंकुश को धारे थी और कोई तलवार व खेटक अस्त्र को धारण किये थी ॥ ८ ॥ कोई

वितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ जित्वा स सकलाँल्लोकान्धर्मारण्ये समागतः ॥ ३ ॥ तद्दृष्ट्वा सकलं पुण्यं रम्यं द्विजनिषेवितम् ॥ ब्रह्मद्वेषाच्च तेनैव दाहितं च पुरं शुभम् ॥ ४ ॥ दह्यमानं पुरं दृष्ट्वा प्रणष्टा द्विजसत्तमाः ॥ यथागतं प्रजग्मुस्ते धर्मारण्यनिवासिनः ॥ ५ ॥ श्रीमाताद्यास्तदा देव्यः कोपिता राक्षसेन वै ॥ घातयन्त्येव शब्देन तर्जयित्वा च राक्षसम् ॥ ६ ॥ समुच्छ्रितास्तदा देव्यः शतशोऽथसहस्रशः ॥ त्रिशूलवरधारिण्यः शङ्खचक्रगदाधराः ॥ ७ ॥ कमण्डलुधराः काश्चित्कशाखड्गधराः पराः ॥ पाशाङ्कुशधरा काचित्खड्गखेटकधारिणी ॥ ८ ॥ काचित्परशुहस्ता च दिव्यायुधधरा परा ॥ नानाभरणभूषाढ्या नानारत्नाभिशोभिताः ॥ ९ ॥ राक्षसानां विनाशाय ब्राह्मणानां हिताय च ॥ आजग्मुस्तत्र यत्रास्ते लोलजिह्वो हि राक्षसः ॥ १० ॥ महादंष्ट्रो महाकायो विद्युज्जिह्वो भयङ्करः ॥ दृष्ट्वा ता राक्षसो घोरं सिंहनादमथाकरोत् ॥ ११ ॥ तेन नादेन महता त्रासितं भुवनत्रयम् ॥ आपूरिता दिशः सर्वाः

परशु को हाथ में लिये थी व अन्य दिव्य अस्त्र को धारण किये थी अनेक प्रकार के आभूषणों से भूषित व अनेकभांति के रत्नों से शोभित देवियां ॥ ९ ॥ राक्षसों के नाश व ब्राह्मणों के हित के लिये वहां आईं जहां कि लोलजिह्व राक्षस था ॥ १० ॥ बड़ी दाढ़ोंवाले व बड़े शरीर तथा भयंकर व बिजली के समान जिह्वावाले उस राक्षस ने उन देवियों को देखकर भयंकर सिंहनाद किया ॥ ११ ॥ उस बड़ेभारी शब्द से त्रिलोक डरगया और सब दिशा पूर्ण होगईं व अनेक समुद्र क्षोभित

होगये ॥ १२ ॥ हे राजन् ! उस समय धर्मारण्य में बड़ा कोलाहल हुआ उसको सुन कर इन्द्रजी ने कुबेर को पठाया ॥ १३ ॥ कि यह क्या है तुम जाकर देखकर उस को मुझसे कहिये उनके उस वचन को सुनकर कुबेरजी गये ॥ १४ ॥ और वहां श्रीमाता व लोलजिह्व का बड़ाभारी युद्ध देखकर जैसा देखा व जैसाहुआ था वैसा उन कुबेर ने इन्द्रजी के आगे कहा ॥ १५ ॥ कि यहां से गया हुआ लोलजिह्व तीनों लोकों को पीड़ित करता है उस वचन को सुनकर इन्द्रजी ने विष्णुजी से कहकर पृथ्वी को आये ॥ १६ ॥ व देवताओं को भी दुर्लभ वह सुन्दर नगर जला दियागया और वहां ब्राह्मण न देखपड़े क्योंकि वे दशो दिशाओं को चलेगये ॥ १७ ॥ और

क्षुभितानेकसागराः ॥ १२ ॥ कोलाहलो महानासीद्धर्मारण्ये तदा नृप ॥ तच्छ्रुत्वा वासवेनाथ प्रेषितो नलकूबरः ॥ १३ ॥ किमिदं पश्य गत्वा त्वं दृष्ट्वा मह्यं निवेदय॥ तत्तस्य वचनं श्रुत्वा गतो वै नलकूबरः ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा तत्र महायुद्धं श्रीमातालोलजिह्वयोः ॥ यथादृष्टं यथाजातं शक्राग्रे स न्यवेदयत् ॥ १५ ॥ उद्वेजयति लोकांस्त्रीन्धर्मारण्यमितो गतः ॥ तच्छ्रुत्वा वासवो विष्णुं निवेद्य क्षितिमागमत् ॥ १६ ॥ दाहितं तत्पुरं रम्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥ न दृष्टा वाडवास्तत्र गताः सर्वे दिशो दश ॥ १७ ॥ श्रीमाता योगिनी तत्र कुरुते युद्धमुत्तमम्॥ हाहाभूता प्रजा सर्वा इतश्चेतश्च धावति ॥ १८ ॥ तच्छ्रुत्वा वासुदेवो हि गृहीत्वा च सुदर्शनम् ॥ सत्यलोकात्तदा राजन्समागच्छन्महीतले ॥ १९ ॥ धर्मारण्यं ततो गत्वा तच्चक्रं प्रमुमोच ह ॥ लोलजिह्वस्तदा रक्षो मूर्च्छितो निपपात ह ॥ २० ॥ त्रिशूलेन ततो भिन्नः शक्तिभिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ हन्यमानस्तदा रक्षः प्राणांस्त्यक्त्वा दिवं गतः ॥ २१ ॥ ततो देवाः सग

श्रीमाता योगिनी वहां उत्तम युद्ध को करती है और सब प्रजा हाहाभूत होगई व इधर उधर दौड़ती है ॥ १८ ॥ हे राजन् ! तब उस वचन को सुनकर विष्णुजी सुदर्शन चक्र को लेकर सत्यलोक से पृथ्वी में आये ॥ १९ ॥ तदनन्तर धर्मारण्य में जाकर विष्णुजी ने उस चक्र को छोड़ा तब लोलजिह्व राक्षस मूर्च्छित होकर गिरपडा ॥ २० ॥ तदनन्तर त्रिशूल से भिन्न व शक्तियों से माराहुआ वह क्रोध से मूर्च्छित राक्षस उस समय प्राणों को छोड़कर स्वर्ग को चलागया ॥ २१ ॥ तदनन्तर हर्ष से पूर्ण मन

वाले गंधर्वों समेत देवता सत्यलोक से आकर उन जगदीश विष्णुजी की स्तुति किया ॥ २२ ॥ और उस नगर को उजड़ाहुआ देखकर विष्णुजी वचन बोले कि ऋषियों के आश्रम में वे सब ब्राह्मण कहां हैं ॥ २३ ॥ तदनन्तर हे राजन्! गंधर्वों समेत देवताओं ने वेग से इधर उधर भगेहुए ब्राह्मणों को ढूंढ़कर यह कहा ॥ २४ ॥ कि हे ब्राह्मणो! हमलोगों का वचन सुनिये कि अधम राक्षस को विष्णुदेवजी ने मारा व चक्र से काटडाला ॥ २५ ॥ उस वचन को सुनकर बड़े हर्ष से प्रफुल्लित लोचनोंवाले सब ब्राह्मण उस समय आये व हे राजन्! अपने अपने स्थान में पैठ गये ॥ २६ ॥ तब श्रीपति विष्णुजी के लिये सुन्दर वचन कहागया कि जिसलिये

न्धर्वा हर्षनिर्भरमानसाः ॥ तुष्टुवुस्तं जगन्नाथं सत्यलोकात्समागताः ॥ २२ ॥ उद्वसं तत्समालोक्य विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥ क्व च ते ब्राह्मणाः सर्वे ऋषीणामाश्रमे पुनः ॥ २३ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वा इतस्ततः पलायितान् ॥ संशोध्य तरसा राजन्ब्राह्मणानिदमब्रुवन् ॥ २४ ॥ श्रूयतां नो वचो विप्रा निहतो राक्षसाधमः ॥ वासुदेवेन देवेन चक्रेण निरकृन्तत ॥ २५ ॥ तच्छ्रुत्वा वाडवाः सर्वे प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः ॥ समाजग्मुस्तदा राजन्स्वस्वस्थाने समाविशन् ॥ २६ ॥ श्रीकान्ताय तदा राजन्वाक्यमुक्तं मनोरमम् ॥ यस्मात्त्वं सत्यलोकाच्च आगतोऽसि जगत्प्रभुः ॥ स्थापितं च पुरं चेदं हिताय च द्विजात्मनाम् ॥ २७ ॥ सत्यमन्दिरमिति ख्यातं ततो लोके भविष्यति ॥ कृते युगे धर्मारण्यं त्रेतायां सत्यमन्दिरम् ॥ २८ ॥ तच्छ्रुत्वा वासुदेवेन तथेति प्रतिपद्य च ॥ ततस्ते वाडवाः सर्वे पुत्रपौत्रसमन्विताः ॥ २९ ॥ सपत्नीकाः सानुचरा यथापूर्वं न्यवात्सिषुः ॥ तपोयज्ञक्रियाद्येषु वर्तन्तेऽध्ययनादिषु ॥ ३० ॥ एवं ते सर्वमाख्यातं धर्म वै सत्य

संसार के स्वामी तुम सत्यलोक से आये व ब्राह्मणों के हित के लिये यह पुर स्थापित कियागया ॥ २७ ॥ उस कारण संसार में सत्यमंदिर ऐसा प्रसिद्ध होगा सतयुग में धर्मारण्य व त्रेता में सत्यमन्दिर नाम होगा ॥ २८ ॥ उस वचन को सुनकर विष्णुजी बहुत अच्छा यह कहकर चलेगये तदनन्तर पुत्रों व पौत्रों से संयुत उन सब ब्राह्मणों ने ॥ २९ ॥ स्त्रियों समेत व सेवकों समेत पहले की नाईं निवास किया और वे तपस्या व यज्ञ कर्मादिकों में और पठनादिक कर्मों में वर्तमान हुए ॥ ३० ॥ हे धर्म!

इस प्रकार तुमसे सत्यमंदिर के विषय में सब वृत्तान्त कहागया ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांलोलजिह्वासुरवधपूर्वकंसत्यमन्दिरसंस्थापनवर्णनन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । जिमि गणेश उत्पत्ति किय पारवती महरानि । सो बरहें अध्याय में कह्यो चरित सुखदानि ॥ व्यासजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर देवताओं ने रक्षा के लिये सत्यमन्दिर को स्थापन किया उसी कारण वह आदि पुरी सत्य नामक है ॥ १ ॥ उसके पूर्व में धर्मेश्वर देव व दक्षिण में गणाधिप और पश्चिम में सूर्य व उत्तर में

मन्दिरे ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येलोलजिह्वासुरवधपूर्वकंसत्यमन्दिरसंस्थापनवर्णनन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ ततो देवैर्नृपश्रेष्ठ रक्षार्थं सत्यमन्दिरम् ॥ स्थापितं तत्तदाद्यैव सत्याभिख्या हि सा पुरी ॥ १ ॥ पूर्वे धर्मेश्वरो देवो दक्षिणेन गणाधिपः ॥ पश्चिमे स्थापितो भानुरुत्तरे च स्वयम्भुवः ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ गणेशः स्थापितः केन कस्मात्स्थापितवानसौ ॥ किन्नामासौ महाभाग तन्मे कथय माचिरम् ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ अधुनाहं प्रवक्ष्यामि गणेशोत्पत्तिकारणम् ॥ ४ ॥ समये मिलिताः सर्वे देवता मातरस्तथा ॥ धर्मारण्ये महाराज स्थापितश्चण्डिकासुतः ॥ ५ ॥ आदौ देवैर्नृपश्रेष्ठ भूमौ वै सत्ययोषिताम् ॥ प्राकारश्चाभवत्तत्र पताकाध्वजशोभितः ॥ ६ ॥ ब्राह्मणायत

स्वयंभुवजी स्थापित हैं ॥ २ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाभाग ! गणेश को किस ने स्थापित किया व इसने किस कारण स्थापित किया व इनका क्या नाम है इसको मुझसे शीघ्रही कहिये ॥ ३ ॥ व्यासजी बोले कि इस समय मैं गणेशजी की उत्पत्ति का कारण कहता हूं ॥ ४ ॥ कि हे महाराज ! किसी समय सब देवता व मातृका मिलीं तब हे नृपश्रेष्ठ ! पहले देवताओं ने पृथ्वी में सत्यमंदिर की स्त्रियों के लिये धर्मारण्य में चंडिकाजी के पुत्र गणेशजी को थापा और वहां पताकाओं व ध्वजों से शोभित प्राकार (छहरदिवाली) हुआ ॥ ५ । ६ ॥ और वहां उस ब्राह्मणों के निवासस्थान के मध्य प्राकारमंडल के बीच में ईंटों से बहुत शोभित पीठ बनाया

गया ॥ ७ ॥ और बाहरी द्वारों समेत शुद्ध चार गांव के भीतरी मार्ग बनायेगये पूर्व में धर्मेश्वर व दक्षिण में गणनायक ॥ ८ ॥ व पश्चिम में सूर्यनारायण और उत्तर में स्वयंभुवजी स्थापित कियेगये वह धर्मेश्वर की उत्पत्ति का चरित्र तुम्हारे आगे कहागया ॥ ९ ॥ इस समय मैं गणेशजीकी उत्पत्ति का कारण कहताहूं कि किसी समय पार्वतीजी ने शरीर में उबटन लगाया ॥ १० ॥ व उससे उत्पन्न मलको देखकर और अपने अंग से उपजेहुए मल को हाथ में धरकर तदनन्तर मूर्ति को बनाकर स्वरूप को देखा ॥ ११ ॥ व उस मूर्ति में जीवको प्राप्त करके पार्वतीजी ने जब देखा तब वह उनके आगे उठ खड़ाहुआ और उसने माता से कहा कि मैं तुम्हारी आज्ञा

ने तत्र प्राकारमण्डलान्तरे ॥ तन्मध्ये रचितं पीठमिष्टकाभिः सुशोभितम् ॥ ७ ॥ प्रतोल्यश्च चतस्रो वै शुद्धा एव सतोरणाः ॥ पूर्वे धर्मेश्वरो देवो दक्षिणे गणनायकः ॥ ८ ॥ पश्चिमे स्थापितो भानुरुत्तरे च स्वयम्भुवः ॥ धर्मेश्वरोत्पत्तिवृत्तमाख्यातं तत्तवाग्रतः ॥ ९ ॥ अधुनाहं प्रवक्ष्यामि गणेशोत्पत्तिहेतुकम् ॥ कदाचित्पार्वती गात्रोद्वर्त्तनं कृतवत्यभूत् ॥ १० ॥ मलं तज्जनितं दृष्ट्वा हस्ते धृत्वा स्वगात्रजम् ॥ प्रतिमां च ततः कृत्वा सुरूपं च ददर्श ह ॥ ११ ॥ जीवं तस्यां च सञ्चार्य उदतिष्ठत्तदग्रतः ॥ मातरं स तदोवाच किं करोमि तवाज्ञया ॥ १२ ॥ पार्वत्युवाच ॥ यावत्स्नानं करिष्यामि तावत्त्वं द्वारि तिष्ठ मे ॥ आयुधानि च सर्वाणि परश्वादीनि यानि तु ॥ १३ ॥ त्वयि तिष्ठति मद्वारे कोऽपि विघ्नं करोतु न ॥ एवमुक्तो महादेव्या द्वारेऽतिष्ठत्स सायुधः ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवो महादेवो जगाम ह ॥ आभ्यन्तरे प्रवेष्टुं च मतिं दध्रे महेश्वरः ॥ १५ ॥ द्वारस्थेन गणेशेन प्रवेशोदायि तस्य न ॥ ततः क्रुद्धो महादेवः परस्परमयु

से क्या करूं ॥ १२ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि फरसा आदिक जो अस्त्र हैं उनको लेकर तुम जबतक मैं स्नानकरूं तबतक तुम मेरे द्वार पै स्थित होवो ॥ १३ ॥ और मेरे द्वार पै तुम्हारे स्थित होनेपर कोई विघ्न न करै महादेवी से ऐसा कहाहुआ वह पुत्र अस्त्रों समेत द्वारपै खड़ाहुआ ॥ १४ ॥ इसी अवसर में सदाशिवदेवजी आये और उन महादेवजी ने भीतर पैठने की इच्छा किया ॥ १५ ॥ और द्वारपै खड़ेहुए गणेशजीने उन शिवजी को पैठने न दिया तदनन्तर क्रोधित महादेवजी परस्पर युद्ध करने

वणिज् बड़े बलवान् होवैं ॥ ३५ ॥ व हे देव ! जब तक चन्द्रमा, सूर्य व पृथ्वी रहै तबतक तुमको इनकी रक्षा करना चाहिये ऐसाही होगा यह उन गणनायक महेश्वरजी ने कहा ॥ ३६ ॥ और हर्ष को प्राप्त देवता गणेशजी को पूजनेलगे तदनन्तर देवता प्रसन्नता से संयुत होकर पुष्प, धूपादिक व तर्पण से पूजन किया ॥ ३७ ॥ व संसार में जो अन्य मनुष्य थे उन्होंने विघ्न न होने के लिये पूजन किया ॥ ३८ ॥ और विवाह, उत्सव व यज्ञों में पहले वे पूजित होते हैं और धर्मारण्य में उपजेहुए सब ब्राह्मणों के ऊपर वे सदा प्रसन्न होत हैं ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगणेशप्रस्थापनावर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सततं वणिजश्च महाबलाः ॥ ३५ ॥ रक्षितव्यास्त्वया देव यावच्चन्द्रार्कमेदिनी ॥ एवमस्त्विति सोवादीद्गणनाथो महेश्वरः ॥ ३६ ॥ देवाश्च हर्षमापन्नाः पूजयन्ति गणाधिपम् ॥ ततो देवा मुदा युक्ताः पुष्पधूपादितर्पणैः ॥ ३७ ॥ ये चान्ये मनुजा लोके निर्विघ्नार्थं ह्यपूजयन् ॥ ३८ ॥ विवाहोत्सवयज्ञेषु पूर्वमाराधितो भवेत् ॥ धर्मारण्योद्भवानां च प्रसन्नः स्यात्स सर्वदा ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येगणेशप्रस्थापनावर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

व्यास उवाच ॥ शम्भोश्च पश्चिमे भागे स्थापितः कश्यपात्मजः ॥ तत्रास्ति तन्महाभाग रविक्षेत्रं तदुच्यते ॥ १ ॥ तत्रोत्पन्नौ महादिव्यौ रूपयौवनसंयुतौ ॥ नासत्यावश्विनौ देवौ विख्यातौ गदनाशनौ ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ पितामह महाभाग कथयस्व प्रसादतः ॥ उत्पत्तिरश्विनोश्चैव मृत्युलोके च तत्कथम् ॥ ३ ॥ रविलोकात्कथं सूर्यो धरायामवतारितः ॥ एतत्सर्वं प्रयत्नेन कथयस्व प्रसादतः ॥ ४ ॥ यच्छ्रुत्वा हि महाभाग सर्वपापैः

दो० । जिमि अश्विनीकुमार की भई अहै उत्पत्ति । सो तेरहें अध्याय में कह्यो चरित व्युत्पत्ति ॥ व्यासजी बोले कि हे महाभाग ! शिवजी के पश्चिम भाग में कश्यपजी के पुत्र सूर्यनारायणजी थापे गये हैं वहा पर वह रविक्षेत्र कहा जाता है ॥ १ ॥ वहां महादिव्य व रूप, यौवन से संयुत अश्विनीकुमार देवजी उत्पन्न हुए जोकि रोगनाशक प्रसिद्ध हैं ॥ २ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाभाग, पितामह ! अश्विनीकुमार की जो उत्पत्ति हुई वह मृत्युलोक में कैसे हुई इसको प्रसन्नता से कहिये ॥ ३ ॥ सूर्यलोक से सूर्यनारायणजी ने कैसे पृथ्वी में अवतार लिया इस सब को बड़े यत्न से प्रसन्नता से कहिये ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! जिसको सुनकर

क्रिये॥ २६ ॥ और हाथ में कमल को लिये, समस्त विघ्नों के नाशक व लोकों की रक्षा के लिये नगर से दक्षिण और टिके हुए ॥ २७ ॥ बहुतही प्रसन्न और सिद्धि, बुद्धि से पूजित, सिंदूर की शोभा के समान व पैने अंकुश को धारण किये और उत्तम कमलपुष्पों से पूजित उन उत्तम गणेशजी को इन्द्रजी ने प्रणाम कर तदनन्तर देवताओं ने बड़ी भक्ति से स्तुति किया ॥ २८ । २६ ॥ देवता बोले कि सुरेश्वर आपके लिये नमस्कार है व गणों के स्वामी के लिये प्रणाम है हे महादेवाधिदैवत, गजानन ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३० ॥ हे गणाध्यक्ष ! भक्तिप्रिय देव तुम्हारे लिये प्रणाम है इन उत्तम स्तोत्रों से जब गणेशजी की स्तुति कीगई तब प्रसन्न होते हुए इन

कार्यं करध्वजकुठारकम् ॥ २६ ॥ दधानं कमलं हस्ते सर्वविघ्नविनाशनम् ॥ रक्षणाय च लोकानां नगराद्दक्षिणाश्रितम् ॥ २७ ॥ सुप्रसन्नं गणाध्यक्षं सिद्धिबुद्धिनमस्कृतम् ॥ सिन्दूराभं सुरश्रेष्ठं तीव्राङ्कुशधरं शुभम् ॥ २८ ॥ शतपुष्पैः शुभैः पुष्पैरर्चितं ह्यमराधिपः ॥ प्रणम्य च महाभक्त्या तुष्टुवुस्तं सुरास्ततः ॥ २९ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्तेस्तु सुरेशाय गणानां पतये नमः ॥ गजानन नमस्तुभ्यं महादेवाधिदैवत ॥ ३० ॥ भक्तिप्रियाय देवाय गणाध्यक्ष नमोस्तु ते ॥ इत्येतैश्च शुभैः स्तोत्रैः स्तूयमानो गणाधिपः ॥ सुप्रीतश्च गणाध्यक्षः तदाऽसौ वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ गणाध्यक्ष उवाच ॥ तुष्टोऽहं वः सुरा ब्रूत वाञ्छितं च ददामि वः ॥ ३२ ॥ देवा ऊचुः ॥ त्वमत्रस्थो महाभाग कुरु कार्यं च नः प्रभो ॥ धर्मारण्ये च विप्राणां वणिग्जननिवासिनाम् ॥ ३३ ॥ ब्रह्मचर्यादियुक्तानां धार्मिकाणां गणेश्वर ॥ वर्णाश्रमेतराणां च रक्षिता भव सर्वदा ॥ ३४ ॥ त्वत्प्रसादान्महाभाग धनसौख्ययुता द्विजाः ॥ भवन्तु सर्वे

गणेशजी ने यह वचन कहा ॥ ३१ ॥ गणेशजी बोले कि हे देवताओ ! मैं तुमलोगों के ऊपर प्रसन्न हूं कहिये मैं तुम लोगों को वांछित दूंगा ॥ ३२ ॥ देवता बोले कि हे महाभाग, प्रभो ! यहां टिके हुए तुम हमलोगों का कार्य करो और धर्मारण्य में ब्राह्मणों व वणिग्जन निवासियों के ॥ ३३ ॥ व हे गणेश्वर ! ब्रह्मचर्यादि से संयुत धार्मिकों के व वर्णों और आश्रमों के इतर लोगों के सदैव रक्षक होवो ॥ ३४ ॥ व हे महाभाग ! तुम्हारी प्रसन्नता से ब्राह्मण सदैव धन व सुख से संयुत होवैं और

वणिज् बडे बलवान् होवैं ॥ ३५ ॥ व हे देव ! जब तक चन्द्रमा, सूर्य व पृथ्वी रहै तबतक तुमको इनकी रक्षा करना चाहिये ऐसाही होगा यह उन गणनायक महेश्वरजी ने कहा ॥ ३६ ॥ और हर्ष को प्राप्त देवता गणेशजी को पूजनेलगे तदनन्तर देवता प्रसन्नता से संयुत होकर पुष्प, धूपादिक व तर्पण से पूजन किया ॥ ३७ ॥ व संसार में जो अन्य मनुष्य थे उन्होंने विघ्न न होने के लिये पूजन किया ॥३८॥ और विवाह, उत्सव व यज्ञों में पहले वे पूजित होते हैं और धर्मारण्य में उपजेहुए सब ब्राह्मणों के ऊपर वे सदा प्रसन्न होते हैं ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगणेशप्रस्थापनावर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

सततं वणिजश्च महाबलाः ॥ ३५ ॥ रक्षितव्यास्त्वया देव यावच्चन्द्रार्कमेदिनी ॥ एवमस्त्विति सोवादीद्गणनाथो महेश्वरः ॥ ३६ ॥ देवाश्च हर्षमापन्नाः पूजयन्ति गणाधिपम् ॥ ततो देवा मुदा युक्ताः पुष्पधूपादितर्पणैः ॥ ३७ ॥ ये चान्ये मनुजा लोके निर्विघ्नार्थं ह्यपूजयन् ॥ ३८ ॥ विवाहोत्सवयज्ञेषु पूर्वमाराधितो भवेत् ॥ धर्मारण्योद्भवानां च प्रसन्नः स्यात्स सर्वदा ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येगणेशप्रस्थापनावर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

व्यास उवाच ॥ शम्भोश्च पश्चिमे भागे स्थापितः कश्यपात्मजः ॥ तत्रास्ति तन्महाभाग रविक्षेत्रं तदुच्यते ॥ १ ॥ तत्रोत्पन्नौ महादिव्यौ रूपयौवनसंयुतौ ॥ नासत्यावश्विनौ देवौ विख्यातौ गदनाशनौ ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ पितामह महाभाग कथयस्व प्रसादतः ॥ उत्पत्तिरश्विनोश्चैव मृत्युलोके च तत्कथम् ॥ ३ ॥ रविलोकात्कथं सूर्यो धरायामवतारितः ॥ एतत्सर्वं प्रयत्नेन कथयस्व प्रसादतः ॥ ४ ॥ यच्छ्रुत्वा हि महाभाग सर्वपापैः

दो० । जिमि अश्विनीकुमार की भई अहै उत्पत्ति । सो तेरहें अध्याय में कह्यो चरित व्युत्पत्ति ॥ व्यासजी बोले कि हे महाभाग ! शिवजी के पश्चिम भाग में कश्यपजी के पुत्र सूर्यनारायणजी थापे गये हैं वहां पर वह रविक्षेत्र कहा जाता है ॥ १ ॥ वहां महादिव्य व रूप, यौवन से संयुत अश्विनीकुमार देवजी उत्पन्न हुए जोकि रोगनाशक प्रसिद्ध हैं ॥ २ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाभाग, पितामह ! अश्विनीकुमार की जो उत्पत्ति हुई वह मृत्युलोक में कैसे हुई इसको प्रसन्नता से कहिये ॥ ३ ॥ सूर्यलोक से सूर्यनारायणजी ने कैसे पृथ्वी में अवतार लिया इस सब को बड़े यत्न से प्रसन्नता से कहिये ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! जिसको सुनकर

मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले कि हे नरशार्दूल, भूप ! तुमने ऊर्ध्वलोक के कथानक को बहुत अच्छा पूंछा जिसको सुनकर मनुष्य सब रोग से छूट जाता है विश्वकर्मा की कन्या संज्ञा को सूर्यनारायण ने ब्याहा ॥ ६ ॥ और सूर्यनारायण को देखकर संज्ञा जिस लिये सदैव अपने नेत्रों को मूंद लेती थी उस कारण क्रोध संयुत सूर्यनारायणजी ने संज्ञा से यह वचन कहा ॥ ७ ॥ सूर्यनारायण बोले कि जिस लिये मुझ को देख कर तुम सदैव अपने नेत्रों को मूंदती हो उस कारण हे मूढे ! तुम्हारे प्रजाओं को दंड देनेवाले यमराज उत्पन्न होवेंगे॥ ८ ॥ तदनन्तर उन संज्ञा ने भय से विकल व चंचलता से सूर्यनारायणजी को देखा फिर

प्रमुच्यते ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया भूप ऊर्ध्वलोककथानकम् ॥ यच्छ्रुत्वा नरशार्दूल सर्वरोगात्प्रमुच्यते॥ विश्वकर्म्मसुता संज्ञा अंशुमद्रविणा वृता ॥ ६ ॥ सूर्यं दृष्ट्वा सदा संज्ञा स्वाक्षिसंयमनं व्यधात् ॥ यतस्ततः सरोषोऽर्कः संज्ञां वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ सूर्य उवाच ॥ मयि दृष्टे सदा यस्मात्कुरुषे स्वाक्षिसंयमम् ॥ तस्माज्जनिष्यते मूढे प्रजासंयमनो यमः ॥ ८ ॥ ततः सा चपलं देवी ददर्श च भयाकुलम् ॥ विलोलितदृशं दृष्ट्वा पुनराह च तां रविः ॥ ९ ॥ यस्माद्विलोलिता दृष्टिर्मयि दृष्टे त्वयाधुना ॥ तस्माद्विलोलितां संज्ञे तनयां प्रसविष्यसि ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ ततस्तस्यास्तु संजज्ञे भर्तृशापेन तेन वै ॥ यमश्च यमुना येयं विख्याता सुमहानदी ॥ ११ ॥ सा च संज्ञा रवेस्तेजो महद्दुःखेन भामिनी ॥ असहन्तीव सा चित्ते चिन्तयामास वै तदा ॥ १२ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि क्व गतायाश्च निर्वृतिः ॥ भवेन्मम कथं भर्तुः कोपमर्कस्य नश्यति ॥ १३ ॥ इति सञ्चिन्त्य बहुधा प्रजापतिसुता तदा ॥ साधु मेने महाभागा पितृ

चंचल नेत्रोंवाली उस संज्ञा को देखकर सूर्यनारायणजी ने कहा ॥ ९ ॥ कि जिस लिये तुमने इस समय मुझ को देखने पर चंचल दृष्टि किया उस कारण हे संज्ञे ! चंचल कन्या को पैदा करोगी ॥ १० ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर उस पति के शाप से उस संज्ञा के यमराज व यमुनाजी उत्पन्न हुई जो कि यह महानदी प्रसिद्ध है ॥ ११ ॥ सूर्यनारायण के तेज को बड़े दुःख से न सहती हुई सी उस संज्ञा ने उस समय चित्त में विचार किया ॥ १२ ॥ कि क्या करूं और कहां जाऊं व कहां जाने से मुझको सुख होगा और सूर्यनारायण का क्रोध कैसे नाश होगा ॥ १३ ॥ इस प्रकार बहुतभांति से विचार कर तब प्रजापति की कन्या महाऐश्वर्यवती संज्ञा ने

पिता का आश्रय उत्तम माना व उसने उस पिता के आश्रय को माना ॥ १४ ॥ तदनन्तर पिता के घर को जाने के लिये बुद्धि करके वह यशस्विनी सूर्यनारायण की स्त्री ने अपनी छाया को बुलाकर ॥ १५ ॥ उससे यह कहा कि तुमको सूर्यनारायण के यहां मेरे समान टिकना चाहिये और लड़कों व सूर्यनारायण में भलीभांति वर्तमान होना चाहिये ॥ १६ ॥ व तुम दुष्ट वचन को न कहना जैसा कि मेरा बहुत संमत है व हे अनघे ! तुम इस प्रकार यह कहना कि मैं वही संज्ञा हूं॥१७॥ छायासंज्ञा बोली कि बाल पकड़ने तक व शाप देने तक मैं वैसा वचन करूंगी और जब तक बालों को न खींचैंगे तबतक मैं वैसाही कहूंगी ॥ १८ ॥ ऐसा कही

संश्रयमाप सा ॥ १४ ॥ ततः पितृगृहं गन्तुं कृतबुद्धिर्यशस्विनी ॥ छायामाहूयात्मनस्तु सा देवी दयिता रवेः ॥१५॥ तां चोवाच त्वया स्थेयमत्र भानोर्यथा मया ॥ तथा सम्यगपत्येषु वर्तितव्यं तथा रवौ ॥ १६ ॥ न दुष्टमपि वाच्यं ते यथा बहुमतं मम ॥ सैवास्मि संज्ञाहमिति वाच्यमेवं त्वयानघे ॥ १७ ॥ छायासंज्ञोवाच ॥ आकेशग्रहणाच्चाहमा शापाच्च वचस्तथा ॥ करिष्ये कथयिष्यामि यावत्केशापकर्षणात् ॥ १८ ॥ इत्युक्ता सा तदा देवी जगाम भवनं पितुः ॥ ददर्श तत्र त्वष्टारं तपसा धूतकिल्बिषम् ॥ १९ ॥ बहुमानाच्च तेनापि पूजिता विश्वकर्म्मणा ॥ तस्थौ पितृगृहे सा तु किञ्चित्कालमनिन्दिता ॥ २० ॥ ततः प्राह स धर्मज्ञः पिता नातिचिरोषिताम् ॥ विश्वकर्मा सुतां प्रेम्णा बहुमानपुरःसरम् ॥ २१ ॥ त्वां तु मे पश्यतो वत्से दिनानि सुबहून्यपि ॥ मुहूर्त्तेन समानि स्युः किं तु धर्मो विलुप्यते ॥ २२ ॥ बान्धवेषु चिरं वासो न नारीणां यशस्करः ॥ मनोरथो बान्धवानां भार्या पतिगृहे स्थिता ॥ २३ ॥ सा त्वं त्रैलोक्य

हुई वह देवी पिता के घर को चली गई और वहां उसने तपसे नष्ट पापोंवाले विश्वकर्माजी को देखा ॥ १९ ॥ और उन विश्वकर्मा ने भी बहुत आदर से पूजन किया और कुछ समय तक वह अनिन्दित संज्ञा पिता के घर में टिकी ॥ २० ॥ तदनन्तर उस धर्मज्ञ पिता विश्वकर्मा ने बहुत दिन न बसी हुई कन्या से बहुत मानपूर्वक प्रेम से यह कहा ॥ २१ ॥ कि हे वत्से ! तुम को देखते हुए मेरे बहुत से दिन मुहूर्त के समान होते हैं परन्तु धर्म लुप्त होता है ॥ २२ ॥ क्योंकि बंधुवों में स्त्रियों का बहुत दिन बसना यशकारक नहीं होता है और बन्धुवों का यह मनोरथ होता है कि स्त्री पति के घर में स्थित होवै ॥ २३ ॥ हे पुत्रिके ! सो तुम त्रिलोकनाथ सूर्य पति

के साथ समागम को प्राप्त हुई हो इससे पिता के घर में बहुत दिन बसने के योग्य नहीं हो ॥ २४ ॥ इस लिये तुम पति के घर को जावो मैं देखा गया व मुझ से तुम पूजी गई हे शुभेक्षणे ! देखने के लिये तुम फिर आइयेगा ॥ २५ ॥ व्यासजी बोले कि हे मुने ! यह कही हुई वह संज्ञा बहुत अच्छा यह कहकर व पिता को पूजकर उत्तरकुरुवों को चली गई ॥ २६ ॥ और सूर्य के ताप को न चाहती व उनके तेज से डरती हुई उस संज्ञा ने वहां भी घोड़ी का रूप धारण कर तप किया ॥ २७ ॥ और संज्ञा है यही मानते हुए सूर्यनारायण ने दूसरी स्त्री में दो पुत्र व एक सुन्दरी कन्या को उत्पन्न किया ॥ २८ ॥ और छाया ने जिस प्रकार अपने पुत्रों में प्रेम से

नाथेन भर्त्रा सूर्येण सङ्गता॥ पितुर्गृहे चिरं कालं वस्तुं नार्हसि पुत्रिके ॥ २४ ॥ अतो भर्तृगृहं गच्छ दृष्टोऽहं पूजिता च मे ॥ पुनरागमनं कार्यं दर्शनाय शुभेक्षणे ॥ २५ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता सा तदा क्षिप्रं तथेत्युक्त्वा च वै मुने॥ पूजयित्वा तु पितरं सा जगामोत्तरान्कुरून् ॥ २६ ॥ सूर्यतापमनिच्छन्ती तेजसस्तस्य बिभ्यती ॥ तपश्चचार तत्रापि वडवारूपधारिणी ॥ २७ ॥ संज्ञामित्येव मन्वानो द्वितीयायां दिवस्पतिः ॥ जनयामास तनयौ कन्यां चैकां मनोरमाम् ॥ २८ ॥ छाया स्वतनयेष्वेव यथा प्रेम्णाध्यवर्तत ॥ तथा न संज्ञाकन्यायां पुत्रयोश्चाप्यवर्तत ॥ लालनासु च भोज्येषु विशेषमनुवासरम् ॥ २९ ॥ मनुस्तत्क्षान्तवानस्या यमस्तस्या न चाक्षमत् ॥ ताडनाय ततः कोपात्पादस्तेन समुद्यतः ॥ तस्याः पुनः क्षान्तमना नतु देहे न्यपातयत् ॥ ३० ॥ ततः शशाप तं कोपाच्छायासंज्ञा यमं नृप॥ किञ्चित्प्रस्फुरमाणोष्ठी विचलत्पाणिपल्लवा ॥ ३१ ॥ पत्न्यां पितुर्मयि यदि पादमुद्यच्छसे बलात् ॥ भुवि तस्मादयं पादस्तवा

वर्तमान हुई उस प्रकार संज्ञा की कन्या व पुत्रों में प्यार व भोज्यादिक में विशेषता से प्रतिदिन न वर्तमान हुई ॥ २९ ॥ इसके उस कर्म को मनु ने सहलिया परन्तु यमराज ने उस का कर्म नहीं सहा तब उन यमराज ने मारने के लिये पैर को उठाया फिर क्षमा मनवाले उन्हों ने उसके शरीर में नहीं मारा ॥ ३० ॥ तदनन्तर हे राजन् ! कुछ कांपते हुए ओंठ व चलते हुए हस्तरूपी पल्लवोंवाली छाया संज्ञा ने क्रोध से उन यमराज को शापदिया ॥ ३१ ॥ कि यदि पिता की स्त्री मुझ में तुम बल

से पैर को उठाते हो तो उस कारण आजही तुम्हारा यह पांव पृथ्वी में गिरपड़े ॥ ३२॥ इस शाप को सुनकर यमराज माता में बहुत शंकित हुए और पिता के समीप जाकर उन्हों ने प्रणामपूर्वक कहा ॥ ३३ ॥ कि हे पिताजी ! यह बड़ाभारी आश्चर्य कहीं नहीं देखा गया है कि माता पुत्र में प्यार को छोड़ कर शाप देती है ॥ ३४ ॥ जैसा कि मेरी माता ने कहा है यह मेरी माता नहीं है क्योंकि निर्गुणी भी पुत्रों में माता निर्गुणी नहीं होती है ॥ ३५ ॥ यमराज का यह वचन सुनकर अन्धकार नाशक भगवान् सूर्यनारायण ने छायासंज्ञा को बुलाकर यह पूंछा कि वह संज्ञा कहां गई ॥ ३६ ॥ उसने कहा कि हे विभावसो ! मैं विश्वकर्मा की संज्ञा नामक कन्या

द्यैव पतिष्यति ॥ ३२ ॥इत्याकर्ण्य यमः शापं मातर्यतिविशङ्कितः ॥ अभ्येत्य पितरं प्राह प्रणिपातपुरस्सरम् ॥३३॥ तातैतन्महदाश्चर्यमदृष्टमिति च क्वचित् ॥ माता वात्सल्यमुत्सृज्य शापं पुत्रे प्रयच्छति ॥ ३४ ॥ यथा माता ममाचष्ट नेयं माता तथा मम ॥ निर्गुणेष्वपि पुत्रेषु न माता निर्गुणा भवेत् ॥ ३५ ॥ यमस्यैतद्वचः श्रुत्वा भगवांस्तिमिरापहः ॥ छायासंज्ञामथाहूय पप्रच्छ क्व गतेति च ॥ ३६ ॥ सा चाह तनया त्वष्टुरहं संज्ञा विभावसो ॥ पत्नी तव त्वयापत्यान्येतानि जनितानि मे ॥ ३७ ॥ इत्थं विवस्वतस्तां तु बहुशः पृच्छतो यदा ॥ नाचचक्षे तदा क्रुद्धो भास्वांस्तां शप्तुमुद्यतः ॥ ३८ ॥ ततः सा कथयामास यथावृत्तं विवस्वते ॥ विदितार्थश्च भगवाञ्जगाम त्वष्टुरालयम् ॥ ३९ ॥ ततः सम्पूजयामास त्वष्टा त्रैलोक्यपूजितम् ॥ भास्वन्किं रहितः शक्त्या निजगेहमुपागतः ॥ ४० ॥ संज्ञां पप्रच्छ तं

हूं और तुम्हारी स्त्री हूं व तुमसे मैंने इन पुत्रों व कन्याओं को पैदा किया है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार उससे बहुत पूंछते हुए सूर्यनारायणजी से जब उसने नहीं कहा तब क्रोधित होते हुए सूर्यनारायण उसको शाप देने के लिये उद्यत हुए ॥ ३८ ॥ तब उसने सूर्यनारायण से जैसा वृत्तान्त था वैसा कहा और प्रयोजन को जानकर भगवान् सूर्यनारायणजी विश्वकर्मा के घर को गये ॥ ३९ ॥ तदनन्तर त्वष्टा ने त्रिलोकपूजित सूर्यनारायण की पूजा किया व कहा कि हे भास्वन् ! क्या संज्ञा शक्ति से रहित तुम अपने घर को आये हो ॥ ४० ॥ सूर्य ने उन विश्वकर्मा से संज्ञा को पूंछा व यथार्थ जाननेवाले उन्हों ने उनसे कहा कि हे रवे ! आप से

पठाई हुई वह संज्ञा यहां मेरे घर को आई थी ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त समाधि में स्थित सूर्यनारायणजी ने उत्तरकुरुवों में घोड़ी के रूप को धारनेवाली तप करतीहुई संज्ञा को देखा ॥ ४२ ॥ कि सूर्य के तेज को न सहती हुई व उससे बहुतही पीड़ित संज्ञा अग्नि के समान अपने छायारूपी रूप को छोड़ कर ॥ ४३ ॥ उसने धर्मारण्य में आकर बड़ा कठिन तप किया व हे राजन् ! छाया के पुत्र शनैश्चर व अन्य यमराज को देखकर ॥ ४४ ॥ उसी समय सूर्यनारायण दुष्ट पुत्रों को देखकर विस्मित हुए व उसको जानने के लिये क्षण भर ध्यान कर व उस कारण को जानकर ॥ ४५ ॥ कि किरणों की उष्णता से जले हुए शरीरवाली उस पतिव्रता ने तपस्या किया है

तस्मै कथयामास तत्त्ववित् ॥ आगता सेह मे वेश्म भवतः प्रेषिता रवे ॥ ४१ ॥ दिवाकरः समाधिस्थो वडवारूपधारिणीम् ॥ तपश्चरन्तीं ददृशे उत्तरेषु कुरुष्वथ ॥ ४२ ॥ असह्यमाना सूर्यस्य तेजस्तेनातिपीडिता ॥ वह्न्याभनिजरूपं तु छायारूपं विमुच्य च ॥ ४३ ॥ धर्मारण्ये समागत्य तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ छायापुत्रं शनिं दृष्ट्वा यमं चान्यं च भूपते ॥ ४४ ॥ तदैव विस्मितः सूर्यो दुष्टपुत्रौ समीक्ष्य च ॥ ज्ञातुं दध्यौ क्षणं ध्यात्वा विदित्वा तच्च कारणम् ॥ ४५ ॥ घृणयौष्ण्याद्दग्धदेहा सा तपस्तेपे पतिव्रता ॥ येन मां तेजसा सह्यं द्रष्टुं नैव शशाक ह ॥ ४६ ॥ पञ्चाशद्वायनेऽतीते गत्वा कौ तप आचरत् ॥ प्रद्योतनो विचार्यैवं गतः शीघ्रं मनोजवः ॥ ४७ ॥ धर्मारण्ये वरे पुण्ये यत्र संज्ञा स्थिता तपः ॥ आगतं तं रविं दृष्ट्वा वडवा समजायत ॥ ४८ ॥ सूर्यपत्नी यदा संज्ञा सूर्यश्चाश्वस्ततोऽभवत् ॥ ताभ्यां सहाभूत्संयोगो घ्राणे लिङ्गं निवेश्य च ॥ ४९ ॥ तदा तौ च समुत्पन्नौ युगलावश्विनौ भुवि ॥ प्रादुर्भूतं जलं तत्र दक्षिणेन खु

क्योंकि तेज से असह्य मुझ को वह देखने के लिये समर्थ न हुई ॥ ४६ ॥ और पचास वर्ष बीतने पर पृथ्वी में जाकर उसने तप किया ऐसा विचार कर मन के समान वेगवाले सूर्यनारायणजी शीघ्रही वहां गये ॥ ४७ ॥ जहां कि पवित्र व श्रेष्ठ धर्मारण्यपुर में संज्ञा तपस्या करने के लिये स्थित थी और आये हुए उन सूर्य को देखकर सूर्य की स्त्री संज्ञा जब घोड़ी होगई तब सूर्यनारायण अश्व होगये और नासिका में लिंग को प्रवेश कर उन दोनों का समागम हुआ ॥ ४८ । ४९ ॥ तब

वे दोनों अश्विनीकुमार पृथ्वी में उत्पन्न हुए और दाहिने खुर से वहां जल उत्पन्न हुआ ॥ ५० ॥ पृथ्वी का भाग विदीर्ण होने पर वहां कुंड उत्पन्न हुआ और फिर दूसरा कुंड पिछले अर्ध चरण से उत्पन्न हुआ ॥ ५१ ॥ इस कुंड में मुनि ने उत्तरवाहिनी काशी का व कुरुक्षेत्रादि का फल कहा है व गंगा और सात पुरियों का फल कहा है ॥ ५२ ॥ और तप्तकुंड में मनुष्य उस फल को पाता है इसमें सन्देह नहीं है और उसी में स्नान करके मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ५३ ॥ और फिर शरीर कुष्ठादिरोगों से पीडित नहीं होता है हे भूप ! यह तुम से अश्विनीकुमार की उत्पत्ति का कारण कहा गया ॥ ५४ ॥ हे भूपते ! तब वहां ब्रह्मादिक देवता

रेण च ॥ ५० ॥ भूमिभागे विदलिते तत्र कुण्डं समुद्भौ ॥ द्वितीयं तु पुनः कुण्डं पश्चार्धचरणोद्भवम् ॥ ५१ ॥ उत्तरवाहिन्याः काश्याः कुरुक्षेत्रादि वै तथा ॥ गङ्गापुरीसप्तफलं कुण्डेऽत्र मुनिनोदितम् ॥ ५२ ॥ तत्फलं समवाप्नोति तप्तकुण्डे न संशयः ॥ स्नानं विधाय तत्रैव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५३ ॥ न पुनर्जायते देहः कुष्ठादिव्याधिपीडितः ॥ एतत्ते कथितं भूप दस्रांशोत्पत्तिकारणम् ॥ ५४ ॥ तदा ब्रह्मादयो देवा आगतास्तत्र भूपते ॥ दत्त्वा संज्ञावरं शुभ्रं चिन्तितादधिकं हि तैः ॥ ५५ ॥ स्थापयित्वा रविं तत्र बकुलाख्यवनाधिपम् ॥ आनर्चुस्ते तदा संज्ञां पूर्वरूपाऽभवत्तदा ॥ ५६ ॥ स्थापिता तत्र राज्ञी च कुमारौ युगलौ तदा ॥ एतत्तीर्थफलं वक्ष्ये शृणु राजन्महामते ॥ ५७ ॥ आदिस्थानं कुरुश्रेष्ठ देवैरपि सुदुर्लभम् ॥ रविकुण्डे नरः स्नात्वा श्रद्धायुक्तो जितेन्द्रियः ॥ ५८ ॥ तारयेत्स पितॄन्सर्वान्महानरकगानपि ॥ श्रद्धया यः पिबेत्तोयं सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥ ५९ ॥ स्वल्पं वापि बहुवापि सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥ सप्तम्यां रविवारेण

आये और चिन्तित से अधिक संज्ञा को उत्तम वर को उन्हों ने देकर ॥ ५५ ॥ और वहां बकुल नामक वन के स्वामी सूर्यनारायण को थापकर उस समय उन्हों ने संज्ञा को पूजा तब वह पहले के समान रूपवती हुई ॥ ५६ ॥ व उस समय वहां रानी और दोनों कुमार थापे गये हे महामते, राजन् ! इस तीर्थ के फल को मैं कहता हूं सुनिये ॥ ५७ ॥ कि हे कुरुश्रेष्ठ ! आदिस्थान देवताओं को भी दुर्लभ है और रविकुंड में श्रद्धायुक्त व जितेन्द्रिय मनुष्य नहाकर ॥ ५८ ॥ वह मनुष्य महा नरक में प्राप्त भी सब पितरों को तारता है और पितरों व देवताओं को श्रद्धा से भलीभांति तर्पण कर जो जल को पीता है ॥ ५९ ॥ थोड़ा या बहुत वह सब कोटि

गुना होता है और रविवार सप्तमी में चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण में ॥ ६० ॥ जिन्हों ने रविकुंड में स्नान किया है वे गर्भगामी नहीं होते हैं और संक्रान्ति, व्यतीपात व वैधृत योग व पर्वों में ॥ ६१ ॥ और शुक्ल व कृष्णपक्ष में पूर्णमोसी और अमावस में जो रविकुंड में नहाता है वह करोड़ यज्ञों के फल को पाता है ॥ ६२ ॥ व सावधान चित्त से जो मनुष्य बकुलार्कजी को पूजता है वह उत्तम स्थान को तबतक पाता है जबतक कि सूर्यनारायण तपते है ॥ ६३ ॥ और उसकी लक्ष्मी निश्चयकर स्थिर होती है व संतान और सुख को वह पाता है और सूर्यनारायण के प्रसाद से शत्रुवर्ग नाश को प्राप्त होताहै ॥ ६४ ॥ और अग्नि से व व्याघ्र और हाथी से उसको

ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ६० ॥ रविकुण्डे च ये स्नाता न ते वै गर्भगामिनः ॥ संक्रान्तौ च व्यतीपाते वैधृतेषु च पर्वसु ॥ ६१ ॥ पूर्णमास्याममावास्यां चतुर्दश्यां सितासिते ॥ रविकुण्डे च यः स्नातः क्रतुकोटिफलं लभेत् ॥ ६२ ॥ पूजयेद्बकुलार्कं च एकचित्तेन मानवः ॥ स याति परमं धाम स यावत्तपते रविः ॥ ६३ ॥ तस्य लक्ष्मीः स्थिरा नूनं लभते सन्ततिं सुखम् ॥ अरिवर्गः क्षयं याति प्रसादाच्च दिवस्पतेः ॥ ६४ ॥ नाग्नेर्भयं हि तस्य स्यान्न व्याघ्रान्न च दन्तिनः ॥ न च सर्पभयं क्वापि भूतप्रेतादिभिर्न हि ॥ ६५ ॥ बालग्रहाश्च सर्वेऽपि रेवती वृद्धरेवती ॥ ते सर्वे नाशमायान्ति बकुलार्के नमस्कृते ॥ ६६ ॥ गावस्तस्य विवर्द्धन्ते धनं धान्यं तथैव च ॥ अविच्छेदो भवेद्वंशो बकुलार्के नमस्कृते ॥ ६७॥ काकबन्ध्या च या नारी अनपत्या मृतप्रजा ॥ बन्ध्या विरूपिता चैव विषकन्याश्च याः स्त्रियः ॥६८॥ एवं दोषैः प्रमुच्यन्ते स्नात्वा कुण्डे च भूपते ॥ सौभाग्यस्त्रीसुतांश्चैव रूपं चाप्नोति सर्वशः ॥ ६९ ॥ व्याधिग्रस्तोपि यो

भय नहीं होती है व कभी सर्प का डर नहीं होता है और भूत, प्रेतादिकों की भय नहीं होती है ॥ ६५ ॥ और सब बालग्रह व रेवती तथा वृद्धरेवती वे सब बकुलार्कजी का नमस्कार करने पर नाश होजाते हैं ॥ ६६ ॥ और उसके गऊ बढ़ती हैं और धन व धान्य बढ़ती है व बकुलार्कजी का प्रणाम करने पर वंश नहीं नाश होता है ॥ ६७ ॥ और जो स्त्री काकबन्ध्या व संतानहीन और मृतवत्सा होती है व जो बन्ध्या और कुरूपिणी होती है व जो स्त्रियां विषकन्या होती हैं ॥ ६८ ॥ हे भूपते ! कुंड में नह कर वे ऐसे दोषों से छूट जाती हैं और सौभाग्य स्त्री व सुख इस सब को मनुष्य पाता है ॥ ६९ ॥ और जो मनुष्य रोगग्रस्त भी होता है वह कुंड में नहाकर

छा महीने में सब रोग से छूट जाता है ॥ ७० ॥ और रविक्षेत्र में जो नीलोत्सर्ग विधि को करता है उस के पितर कल्प पर्यन्त तृप्त रहते हैं ॥ ७१ ॥ व हे पुत्र ! इस क्षेत्र में जो कन्यादान करता है विवाह से पवित्र चित्तवाला वह ब्रह्मलोक में पूजा जाता है ॥ ७२ ॥ व गोदान, शय्या, मूंगा, अश्व, दासी, भैंसी व सुवर्ण से संयुत तिल को इस क्षेत्र में देवै ॥ ७३ ॥ व हे भारत ! इस क्षेत्र में तिलों की गऊ, पनही, छतुरी और शीतत्राणादिक वस्तु को देवै ॥ ७४ ॥ और लक्ष होम व रुद्र तथा रुद्रातिरुद्र जो कुछ श्रद्धा से संयुत मनुष्य उस स्थान में देता है ॥ ७५ ॥ हे तात ! एक एक का फल कहता हूं उसको यथार्थ सुनिये कि दान से मनुष्य इस लोक व पर-

मर्त्यः षण्मासाच्चैव मानवः ॥ रविकुण्डे च सुस्नातः सर्वरोगात्प्रमुच्यते ॥ ७० ॥ नीलोत्सर्गविधिं यस्तु रविक्षेत्रे करोति वै ॥ पितरस्तृप्तिमायान्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ७१ ॥ कन्यादानं च यः कुर्यादस्मिन्क्षेत्रे च पुत्रक ॥ उद्वाह परिपूतात्मा ब्रह्मलोके महीयते ॥ ७२ ॥ धेनुदानं च शय्यां च विद्रुमं च हयं तथा ॥ दासीं च महिषीञ्चैव तिलं काञ्चन संयुतम् ॥ ७३ ॥ धेनुं तिलमयीं दद्यादस्मिन्क्षेत्रे च भारत ॥ उपानहौ च छत्रं च शीतत्राणादिकं तथा ॥ ७४ ॥ लक्ष होमं तथा रुद्रं रुद्रातिरुद्रमेव च ॥ तस्मिन्स्थाने च यत्किंचिद्ददाति श्रद्धयान्वितः ॥ ७५ ॥ एकैकस्य फलं तात वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः ॥ दानेन लभते भोगानिह लोके परत्र च ॥ ७६ ॥ राज्यं च लभते मर्त्यः कृत्वोद्वाहं तु मानुषाः ॥ जायातो धर्मकामार्थाः प्राप्यन्ते नात्र संशयः ॥ ७७ ॥ पूजया लभते सौख्यं भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ सप्तम्यां रवियुक्तायां बकुलार्कं स्मरेत्तु यः ॥ ७८ ॥ ज्वरादेः शत्रुतश्चैव व्याधेस्तस्य भयं न हि ॥ ७९ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ बकु

लोक में सुखों को पाता है ॥ ७६ ॥ व राज्य को मनुष्य पाता है और विवाह करके स्त्री से धर्म, काम व अर्थ मिलते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७७ ॥ और पूजन से सुख को पाता है व जन्म जन्म में सुख होता है और रविवार संयुत सप्तमी तिथि में जो बकुलार्कजी को स्मरण करता है ॥ ७८ ॥ उसको ज्वरादिक से व शत्रु और व्याधि से भय नहीं होती है ॥ ७९ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे कहनेवालों में श्रेष्ठ, मुने ! सूर्य का बकुलार्क ऐसा नाम कैसे हुआ इसको तुम यथार्थ कहने के योग्य

हो ॥ ८० ॥ व्यासजी बोले कि हे राजेन्द्र ! जब संज्ञा ने एक चित्त से सूर्य के लिये बकुल (मौलसिरी) वृक्ष के नीचे पति के तेज की शांति के लिये तप किया है ॥ ८१ ॥ तब सूर्यनारायण को प्रकट देख कर वह घोड़ी होगई और बकुल के समीप सूर्यनारायणजी बहुतही शांत होगये ॥ ८२ ॥ और तब रानी संज्ञा ने दो दिव्य व सुंदर पुत्रों को पैदा किया उसी से इन सूर्यनारायण का बकुलार्क ऐसा नाम प्रसिद्ध हुआ ॥ ८३ ॥ वहां जो स्नान करता है उसको रोग पीडित नहीं करता है और वह धर्म, अर्थ व काम को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८४ ॥ और छः महीने में वह मनुष्य सिद्धि को पाता है व मोक्ष को पाता है हे महाराज ! यह

लार्केति वै नाम कथं जातं रवेर्मुने ॥ एतन्मे वदतां श्रेष्ठ तत्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥ ८० ॥ व्यास उवाच ॥ यदा संज्ञा च राजेन्द्र सूर्यार्थे चैकचेतसा ॥ तेपे बकुलवृक्षाधः पत्युस्तेजः प्रशान्तये ॥ ८१ ॥ प्रादुर्भावं रवेर्दृष्ट्वा वडवा समजायत ॥ अत्यन्तं गोपतिः शान्तो बकुलस्य समीपतः ॥ ८२ ॥ सुषुवे च तदा राज्ञी सुतौ दिव्यौ मनोहरौ ॥ तेनास्य प्रथितं नाम बकुलार्केति वै रवेः ॥ ८३ ॥ यस्तत्र कुरुते स्नानं व्याधिस्तस्य न पीडयेत् ॥ धर्ममर्थं च कामं च लभते नात्र संशयः ॥ ८४ ॥ षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति मोक्षं च लभते नरः ॥ एतदुक्तं महाराज बकुलार्कस्य वैभवम् ॥ ८५ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येबकुलार्कमाहात्म्यकथनंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ कृपासिन्धो महाभाग सर्वव्यापिन्सुरेश्वर ॥ कदा ह्यत्र तपस्तप्तं विष्णुनामिततेजसा ॥ १ ॥ स्कन्दाय कथितं चैव शर्वेण च महात्मना ॥ आनुपूर्व्येण सर्वं हि कथयस्व त्वमेव हि ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु

बकुलार्क का प्रभाव कहा गया ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबकुलार्कमाहात्म्यकथनेनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दो० । तप संयुत श्रीविष्णु ढिग गये देव मिलि साथ । चौदहवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाभाग, दयासिंधो, सर्वव्यापिन्, सुरेश्वर ! यहां पर अमित तेजवाले विष्णुजीने कब तप किया है ॥ १ ॥ व महात्मा शिवजी ने स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहा है उस सब को तुम क्रम से कहो ॥ २ ॥ व्यासजी

बोले कि हे वत्स, नृपोत्तम ! मैं जो कहता हूं उसको सुनिये कि इस धर्मारण्य में एक समय अमित तेजवाले विष्णुजी ने तप किया है ॥ ३ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि देवसर नामक कैसे हुआ व पंपा, चंपा, गया कैसे काशी से अधिक हुई व विष्णुजी कैसे अश्वमुख हुए हैं ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि यहां नारायणदेवजी ने देवताओं के तीन सौ वर्ष तक बहुत कठिन तप किया है तब वे उत्तम मुखवाले हुए हैं ॥ ५ ॥ हे पुत्र ! उस महाप्रकाशवान् सिद्धस्थान में अश्वमुखवाले महाविष्णु देवजी ने स्वरूप के लिये तप किया है ॥ ६ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि इस समय तुम मुझ से उस कारण को कहो कि जिस से महाशत्रु हयशीर्षा नामक दैत्य

वत्स प्रवक्ष्यामि धर्म्मारण्ये नृपोत्तम ॥ एकदात्र तपस्तप्तं विष्णुनाऽमिततेजसा ॥ ३ ॥ स्कन्द उवाच ॥ कथं देव सरोनाम पम्पा चम्पा गया तथा ॥ वाराणस्यधिका चैव कथमश्वमुखो हरिः ॥ ४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अत्र नारायणो देवस्तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ दिव्यवर्षशतं त्रीणि जातः सुष्ठाननश्च सः ॥ ५ ॥ तपस्तेपे महाविष्णुः सुरूपार्थं च पुत्रक ॥ वाजिमुखो हरिस्तत्र सिद्धस्थाने महाद्युते ॥ ६ ॥ स्कन्द उवाच ॥ कारणं ब्रूहि नोद्य त्वमश्वाननः कथं हरिः ॥ महारिपोश्च हन्ता च देवदेवो जगत्पतिः ॥ ७ ॥ यस्य नाम्ना महाभाग पातकानि बहून्यपि ॥ विलीयन्ते तु वेगेन तमः सूर्योदये यथा ॥ ८ ॥ श्रूयन्ते यस्य कर्माणि अद्भुतान्यद्भुतानि वै ॥ सर्वेषामेव जीवानां कारणं परमेश्वरः ॥ ९ ॥ प्राणरूपेण यो देवो हयरूपः कथं भवेत् ॥ सर्वेषामपि तन्त्राणामेकरूपः प्रकीर्तितः ॥ १० ॥ भक्तिगम्यो धर्मभाजां सुखरूपः सदा शुचिः ॥ गुणातीतोऽपि नित्योऽसौ सर्वगो निर्गुणस्तथा ॥ ११ ॥ स्रष्टासौ पालको हन्ता अव्यक्तः

को मारकर देवदेव जगदीशजी अश्वमुख हुए हैं ॥ ७ ॥ व हे महाभाग ! जैसे सूर्योदय में अन्धकार नाश होजाता है वैसेही बहुत से भी पाप जिनके नाम से शीघ्रही नाश होजाते हैं ॥ ८ ॥ व जिसके कर्म बहुत अद्भुत सुने जाते हैं और जो परमेश्वर सबही जीवों का कारण हैं ॥ ९ ॥ और जो प्राणरूप से हैं वे विष्णु देवजी कैसे अश्वरूप हुए और सब तंत्रों के भी जो एक रूप कहे गये हैं ॥ १० ॥ और जो भक्तिगम्य व धर्म करनेवालों के सदैव सुखरूप व पवित्र हैं और गुणों से परे भी जो ये विष्णुजी नित्य व सर्वव्यापी और निर्गुणी हैं ॥ ११ ॥ और रचनेवाले व पालक तथा नाशक व अव्यक्त हैं ये सब प्राणियों के अनुकूल व महातेजस्वी विष्णु

जी किस कारण अश्वमुख हुए ॥ १२ ॥ और देवता, वृक्षादिक, नाग व पर्वत जिन के रोम से उत्पन्न हुए हैं और प्रत्येक कल्प में जिनके शरीर से सब संसार उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥ वही संसार को उत्पन्न करनेवाले और वही अत्यन्त कारण हैं जो कि नाश को प्राप्त सब विद्याओं व यज्ञों को फिर ले आये ॥ १४ ॥ और उन्होंने वेद के लिये उद्यम किया व इस हयग्रीव नामक दुष्ट दैत्य को मारा है ऐसे महाविष्णुजी कैसे अश्वमुख हुए हैं ॥ १५ ॥ और जिन्हों ने पीठ पै लीला से रत्नगर्भा (पृथ्वी) को धारण किया और जिन्हों ने चराचर संसार को कार्य से स्थापित किया ॥ १६ ॥ वे विश्वरूप देवजी कैसे अश्वमुख हुए और वाराहरूप करके जिन्हों

सर्वदेहिनाम् ॥ अनुकूलो महातेजाः कस्मादश्वमुखोऽभवत् ॥ १२ ॥ यस्य रोमोद्भवा देवा वृक्षाद्याः पन्नगा नगाः ॥ कल्पे कल्पे जगत्सर्वं जायते यस्य देहतः ॥ १३ ॥ स एव विश्वप्रभवः स एवात्यन्तकारणम् ॥ येनानीताः पुनर्विद्या यज्ञाश्च प्रलयं गताः ॥ १४ ॥ घातितो दुष्टदैत्योऽसौ वेदार्थं कृत उद्यमः ॥ एवमासीन्महाविष्णुः कथमश्वमुखोऽभवत् ॥ १५ ॥ रत्नगर्भा धृता येन पृष्ठदेशे च लीलया ॥ कृत्या व्यवस्थितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ १६ ॥ स देवो विश्वरूपो वै कथं वाजिमुखोऽभवत् ॥ हिरण्याक्षस्य हन्ता यो रूपं कृत्वा वराहजम् ॥ १७ ॥ सुपवित्रं महातेजाः प्रविश्य जलसागरे ॥ उद्धृता च मही सर्वा ससागरमहीधरा ॥ १८ ॥ उद्धृता च मही नूनं दंष्ट्राग्रे येन लीलया ॥ कृत्वा रूपं वराहं च कपिलं शोकनाशनम् ॥ १९ ॥ स देवः कथमीशानो हयग्रीवत्वमागतः ॥ प्रह्लादार्थे स चेशानो रूपं कृत्वा भयावहम् ॥ २० ॥ नारसिंहं महादेवं सर्वदुष्टनिवारणम् ॥ पर्वताग्निसमुद्रस्थं ररक्ष भक्तसत्तमम् ॥ २१ ॥

ने हिरण्याक्ष को मारा ॥ १७ ॥ और बहुत पवित्र वाराहरूप को करके बड़े तेजस्वी वे विष्णुजी समुद्रों व पर्वतों समेत सब पृथ्वी को ऊपर ले आये ॥ १८ ॥ और जिन्हों ने वराहरूप करके लीला से दाढ़ के अग्रभाग से पृथ्वी को उठा लिया व शोकनाशक कपिलरूप को किया ॥ १९ ॥ वे विष्णुदेवजी कैसे हयग्रीव हुए और प्रह्लाद के लिये उन विष्णुजी ने सब दुष्टों को मना करनेवाले व भयनाशक नारसिंह महादेवरूप करके पर्वत, अग्नि व समुद्र में भी स्थित उत्तम भक्त की रक्षा की ॥ २० । २१ ॥

और दुष्ट हिरण्यकशिपु को जिन्हों ने संध्या में मारा व इन्द्रासन पै इन्द्रजी को बिठाल कर प्रह्लाद को सुख देनेवाले ॥ २२ ॥ नृसिंहरूप को वे विष्णुजी निश्चय कर प्रह्लाद के लिये प्राप्त हुए व ये विष्णुजी उस समय विरोचन के पुत्र बलि के आगे याचक हुए ॥ २३ ॥ और अश्वमेध यज्ञ में जो बलि से पूजे गये और जिन्हों ने तीन पग करके भूर्लोक व भुवर्लोक और स्वर्गलोक को हरलिया ॥ २४ ॥ और जिन्हों ने विश्वरूप से बलि को पाताल में पठाया और जिन्हों ने पृथ्वीतल में इक्कीस बार क्षत्रियों को मारकर ॥ २५ ॥ बड़े पराक्रम से पृथ्वी को ब्राह्मणों के लिये दिया व जिन्हों ने हैहय राजा को व माता को मारडाला ॥ २६ ॥ व विश्वामित्रजी

हिरण्यकशिपुं दुष्टं जघान रजनीमुखे ॥ इन्द्रासने च संस्थाप्य प्रह्लादस्य सुखप्रदम् ॥ २२ ॥ प्रह्लादार्थे च वै नूनं नृसिंहत्वमुपागतः ॥ विरोचनसुतस्याग्रे याचकोऽसावभूत्तदा ॥ २३ ॥ यज्ञे चैवाश्वमेधे वै बलिना यः समर्चितः ॥ हृता वसुमती तस्य त्रिपदीकृतरोदसी ॥ २४ ॥ विश्वरूपेण वै येन पाताले क्षपितो बलिः ॥ त्रिःसप्तवारं येनैव क्षत्रियानवनीतले ॥ २५ ॥ हत्वाऽददाच्च विप्रेभ्यो महीमतिमहौजसा ॥ घातितो हैहयो राजा येनैव जननी हता ॥ २६ ॥ येन वै शिशुनोर्व्यां हि घातिता दुष्टचारिणी ॥ राक्षसी ताडका नाम्नी कौशिकस्य प्रसादतः ॥ २७ ॥ विश्वामित्रस्य यज्ञे तु येन लीलानृदेहिना ॥ चतुर्दशसहस्राणि घातिता राक्षसा बलात् ॥ २८ ॥ हता शूर्पणखा येन त्रिशिराश्च निपातितः ॥ सुग्रीवं बालिनं हत्वा सुग्रीवेण सहायवान् ॥ २९ ॥ कृत्वा सेतुं समुद्रस्य रणे हत्वा दशाननम् ॥ धर्म्मारण्यं समासाद्य ब्राह्मणानन्वपूजयत् ॥ ३० ॥ शासनं द्विजवर्येभ्यो दत्त्वा ग्रामान्बहूंस्तथा ॥ स्नात्वा चैव धर्म्मवाप्यां सुदानान्यद

के प्रसाद से जिन बालकने दुष्ट काम करनेवाली ताड़का नामक राक्षसी को मारा ॥ २७ ॥ और लीला से मनुजशरीरधारी जिन विष्णुजी ने विश्वामित्रजी के यज्ञ में चौदह हज़ार राक्षसों को बल से मारा ॥ २८ ॥ और जिन्हों ने शूर्पणखा को मारा व त्रिशिरा को मारा और सुन्दरी ग्रीवावाले बालि को मारकर सुग्रीव के साथ सहायवान् होकर ॥ २९ ॥ समुद्र के मध्य में सेतु बनाकर समर में दशानन (रावण) को मारकर जिन्हों ने धर्मारण्य को आकर ब्राह्मणों को पूजन किया ॥ ३० ॥ और

जी किस कारण अश्वमुख हुए ॥ १२ ॥ और देवता, वृक्षादिक, नाग व पर्वत जिन के रोम से उत्पन्न हुए हैं और प्रत्येक कल्प में जिनके शरीर से सब संसार उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥ वही संसार को उत्पन्न करनेवाले और वही अत्यन्त कारण हैं जो कि नाश को प्राप्त सब विद्याओं व यज्ञों को फिर ले आये ॥ १४ ॥ और उन्होंने वेद के लिये उद्यम किया व इस हयग्रीव नामक दुष्ट दैत्य को मारा है ऐसे महाविष्णुजी कैसे अश्वमुख हुए हैं ॥ १५ ॥ और जिन्हों ने पीठ पै लीला से रत्नगर्भा (पृथ्वी) को धारण किया और जिन्हों ने चराचर संसार को कार्य से स्थापित किया ॥ १६ ॥ वे विश्वरूप देवजी कैसे अश्वमुख हुए और वाराहरूप करके जिन्हों

सर्वदेहिनाम् ॥ अनुकूलो महातेजाः कस्मादश्वमुखोऽभवत् ॥ १२ ॥ यस्य रोमोद्भवा देवा वृक्षाद्याः पन्नगा नगाः ॥ कल्पे कल्पे जगत्सर्वं जायते यस्य देहतः ॥ १३ ॥ स एव विश्वप्रभवः स एवात्यन्तकारणम् ॥ येनानीताः पुनर्विद्या यज्ञाश्च प्रलयं गताः ॥ १४ ॥ घातितो दुष्टदैत्योऽसौ वेदार्थे कृत उद्यमः ॥ एवमासीन्महाविष्णुः कथमश्वमुखोऽभवत् ॥ १५ ॥ रत्नगर्भा धृता येन पृष्ठदेशे च लीलया ॥ कृत्या व्यवस्थितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ १६ ॥ स देवो विश्वरूपो वै कथं वाजिमुखोऽभवत् ॥ हिरण्याक्षस्य हन्ता यो रूपं कृत्वा वराहजम् ॥ १७ ॥ सुपवित्रं महातेजाः प्रविश्य जलसागरे ॥ उद्धृता च मही सर्वा ससागरमहीधरा ॥ १८ ॥ उद्धृता च मही नूनं दंष्ट्राग्रे येन लीलया ॥ कृत्वा रूपं वराहं च कपिलं शोकनाशनम् ॥ १९ ॥ स देवः कथमीशानो हयग्रीवत्वमागतः ॥ प्रह्लादार्थे स चेशानो रूपं कृत्वा भयावहम् ॥ २० ॥ नारसिंहं महादेवं सर्वदुष्टनिवारणम् ॥ पर्वताग्निसमुद्रस्थं ररक्ष भक्तसत्तमम् ॥ २१ ॥

ने हिरण्याक्ष को मारा ॥ १७ ॥ और बहुत पवित्र वाराहरूप को करके बड़े तेजस्वी वे विष्णुजी समुद्रों व पर्वतों समेत सब पृथ्वी को ऊपर ले आये ॥ १८ ॥ और जिन्हों ने वराहरूप करके लीला से दाढ़ के अग्रभाग से पृथ्वी को उठा लिया व शोकनाशक कपिलरूप को किया ॥ १९ ॥ वे विष्णुदेवजी कैसे हयग्रीव हुए और प्रह्लाद के लिये उन विष्णुजी ने सब दुष्टों को मना करनेवाले व भयनाशक नारसिंह महादेवरूप करके पर्वत, अग्नि व समुद्र में भी स्थित उत्तम भक्त की रक्षा की ॥ २० । २१ ॥

और दुष्ट हिरण्यकशिपु को जिन्हों ने संध्या में मारा व इन्द्रासन पै इन्द्रजी को बिठाल कर प्रह्लाद को सुख देनेवाले ॥ २२ ॥ नृसिंहरूप को वे विष्णुजी निश्चय कर प्रह्लाद के लिये प्राप्त हुए व ये विष्णुजी उस समय विरोचन के पुत्र बलि के आगे याचक हुए ॥ २३ ॥ और अश्वमेध यज्ञ में जो बलि से पूजे गये और जिन्हों ने तीन पग करके भूर्लोक व भुवर्लोक और स्वर्गलोक को हरलिया ॥ २४ ॥ और जिन्हों ने विश्वरूप से बलि को पाताल में पठाया और जिन्हों ने पृथ्वीतल में इक्कीस बार क्षत्रियों को मारकर ॥ २५ ॥ बडे पराक्रम से पृथ्वी को ब्राह्मणों के लिये दिया व जिन्हों ने हैहय राजा को व माता को मारडाला ॥ २६ ॥ व विश्वामित्रजी

हिरण्यकशिपुं दुष्टं जघान रजनीमुखे ॥ इन्द्रासने च संस्थाप्य प्रह्लादस्य सुखप्रदम् ॥ २२ ॥ प्रह्लादार्थे च वै नूनं नृसिंहत्वमुपागतः ॥ विरोचनसुतस्याग्रे याचकोऽसावभूत्तदा ॥ २३ ॥ यज्ञे चैवाश्वमेधे वै बलिना यः समर्चितः ॥ हृता वसुमती तस्य त्रिपदीकृतरोदसी ॥ २४ ॥ विश्वरूपेण वै येन पाताले क्षपितो बलिः ॥ त्रिःसप्तवारं येनैव क्षत्रियानवनीतले ॥ २५ ॥ हत्वाऽददाच्च विप्रेभ्यो महीमतिमहौजसा ॥ घातितो हैहयो राजा येनैव जननी हता ॥ २६ ॥ येन वै शिशुनोर्व्यां हि घातिता दुष्टचारिणी ॥ राक्षसी ताडका नाम्नी कौशिकस्य प्रसादतः ॥ २७ ॥ विश्वामित्रस्य यज्ञे तु येन लीलानृदेहिना ॥ चतुर्दशसहस्राणि घातिता राक्षसा बलात् ॥ २८ ॥ हता शूर्पणखा येन त्रिशिराश्च निपातितः ॥ सुग्रीवं बालिनं हत्वा सुग्रीवेण सहायवान् ॥ २९ ॥ कृत्वा सेतुं समुद्रस्य रणे हत्वा दशाननम् ॥ धर्म्मारण्यं समासाद्य ब्राह्मणानन्वपूजयत् ॥ ३० ॥ शासनं द्विजवर्येभ्यो दत्त्वा ग्रामान्बहूंस्तथा ॥ स्नात्वा चैव धर्म्मवाप्यां सुदानान्यद

के प्रसाद से जिन बालकने दुष्ट काम करनेवाली ताड़का नामक राक्षसी को मारा ॥ २७ ॥ और लीला से मनुजशरीरधारी जिन विष्णुजी ने विश्वामित्रजी के यज्ञ में चौदह हज़ार राक्षसों को बल से मारा ॥ २८ ॥ और जिन्हों ने शूर्पणखा को मारा व त्रिशिरा को मारा और सुन्दरी ग्रीवावाले बालि को मारकर सुग्रीव के साथ सहायवान् होकर ॥ २९ ॥ समुद्र के मध्य में सेतु बनाकर समर में दशानन (रावण) को मारकर जिन्हों ने धर्मारण्य को आकर ब्राह्मणों को पूजन किया ॥ ३० ॥ और

श्रेष्ठ ब्राह्मणों के लिये शिक्षा व बहुत से ग्रामों को देकर व धर्मवापी में नहाकर उत्तम दान व गौवों को दिया ॥ ३१ ॥ व साधुवों का पालन कर दुष्टों को दंड देने के लिये जिन के अन्य भी ऐसेही कर्म पृथ्वी में सुने गये हैं ॥ ३२ ॥ वे विष्णुदेवजी लीला से कर्म करके कैसे अश्वमुख हुए हैं और यादववंश में उत्पन्न होकर जिन्हों ने पूतना व शकटादिक को मारा ॥ ३३ ॥ और अरिष्टासुर, केशी, वृकासुर व बकासुर, शकटासुर, तृणावर्त व धेनुकासुर को जिन्हों ने मारा है ॥ ३४ ॥ और मल्ल, कंस व जरासंध को जिन्हों ने मारा है वे कालयवन को मारनेवाले विष्णुजी कैसे अश्वमुख हुए और समर में तारकासुर को मारकर व अयुतषट्पुर को नाश

दाद्गवाम् ॥ ३१ ॥ साधूनां पालनं कृत्वा निग्रहाय दुरात्मनाम् ॥ एवमन्यानि कर्म्माणि श्रुतानि च धरातले ॥ ३२॥ स देवो लीलया कृत्वा कथं चाश्वमुखोऽभवत् ॥ यो जातो यादवे वंशे पूतनाशकटादिकम् ॥ ३३ ॥ अरिष्टदैत्यः केशी च वृकासुरबकासुरौ ॥ शकटासुरो महासुरस्तृणावर्तश्च धेनुकः ॥ ३४ ॥ मल्लश्चैव तथा कंसो जरासन्धस्तथैव च ॥ कालयवनस्य हन्ता च कथं वै स हयाननः ॥ तारकासुरं रणे जित्वा अयुतषट्पुरं तथा ॥ ३५ ॥ कन्याश्चोद्वाहिता येन सहस्राणि च षड् दश ॥ अमानुषाणि कृत्वेत्थं कथं सोऽश्वमुखोऽभवत् ॥ ३६ ॥ त्राता यः सर्वभक्तानां हन्ता सर्वदुरात्मनाम् ॥ धर्मस्थापनकृत्सोऽपि कल्किर्विष्णुपदे स्थितः ॥ ३७ ॥ एतद्वै महदाश्चर्य्यं भवता यत्प्रकाशितम् ॥ एतदाचक्ष्व मे सर्वं कारणं त्रिपुरान्तक ॥ ३८ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ साधु पृष्टं महाबाहो कारणं तस्य वच्म्यहम् ॥ हयग्रीवस्य कृष्णस्य शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ ३९ ॥ व्यास उवाच ॥ पुरा देवैः समारब्धो यज्ञो नूनं धरातले ॥ वेदमन्त्रैराह्व

कर ॥ ३५ ॥ जिन्हों ने सोलह हज़ार कन्याओं का व्याह किया इस प्रकार अमानुष कर्मों को करके विष्णुजी कैसे अश्वमुख हुए ॥ ३६ ॥ व सब भक्तों के जो रक्षक हैं और सब दुष्टों के जो नाशक हैं धर्म को स्थापन करनेवाले वे कल्किजी विष्णुपद में स्थित हुए ॥ ३७ ॥ हे त्रिपुरान्तक ! आपने जो इस बड़े भारी आश्चर्य को प्रकाशित किया इस सब कारण को मुझ से कहिये ॥ ३८ ॥ श्रीशिवजी बोले कि हे महाबाहो ! तुम ने बहुत अच्छा पूंछा मैं उसका कारण कहता हूं तुम सावधान मन होकर हयग्रीव विष्णुजी का चरित्र सुनो ॥ ३९ ॥ व्यासजी बोले कि पुरातन समय पृथ्वी में देवताओं ने यज्ञ का प्रारंभ किया और वेदमंत्रों से बुलाने के लिये

सब रुद्रादिक देवता ॥ ४० ॥ अपने स्थान क्षीरसागर में व वैकुंठ में गये और पाताल में भी फिर जाकर उन्हों ने श्रीकृष्ण का दर्शन नहीं पाया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर मोह से संयुत सब देवता इधर उधर दौडनेलगे तब उन्हों ने ब्रह्मरूपी विष्णुजी को नहीं देखा ॥ ४२ ॥ और इन्द्रादिक वे सब देवता विचारनेलगे कि ये महाविष्णु जी कहा गये और किस यत्न से देख पड़ैंगे ॥ ४३ ॥ बृहस्पति देवजी को मस्तक से प्रणामकर देवताओं ने आदर से कहा कि हे देवदेव ! महाविष्णुजी को प्रसन्नता से कहिये ॥ ४४ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि मैं यह नहीं जानता हूं कि किस कार्य से योगीश व अच्युत महात्मवान् विष्णुजी योगारूढ़ हुए हैं ॥ ४५ ॥ क्षण भर अपने

यितुं सर्वे रुद्रपुरोगमाः ॥ ४० ॥ वैकुण्ठे च गताः सर्वे क्षीराब्धौ च निजालये॥ पातालेऽपि पुनर्गत्वा न विदुः कृष्णद र्शनम् ॥४१॥ मोहाविष्टास्ततः सर्वे इतश्चेतश्च धाविताः ॥ नैव दृष्टस्तदा तैस्तु ब्रह्मरूपो जनार्दनः ॥ ४२ ॥ विचारयन्ति ते सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ क्व गतोऽसौ महाविष्णुः केनोपायेन दृश्यते ॥ ४३ ॥ प्रणम्य शिरसा देवं वागीशं प्रोचुरा दरात् ॥ देवदेव महाविष्णुं कथयस्व प्रसादतः ॥ ४४ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ न जाने केन कार्येण योगारूढो महात्म वान् ॥ योगरूपोऽभवद्विष्णुर्योगीशो हरिरच्युतः ॥ ४५ ॥ क्षणं ध्यात्वा स्वमात्मानं धिषणेन ख्यापितो हरिः ॥ तत्र सर्वे गता देवा यत्र देवो जगत्पतिः ॥ ४६ ॥ तदा दृष्टो महाविष्णुर्ध्यानस्थोऽसौ जनार्दनः ॥ ध्यात्वा कृत्यसमा कारं सशरं दैत्यसूदनम् ॥४७॥ समाधिस्थं ततो दृष्ट्वा बोधोपायं प्रचक्रमे ॥ आह तांश्च तदा वम्र्यो धनुर्गुणं प्रयत्न तः॥ छेत्स्यन्ति चेत्तच्छब्देन प्रबुध्येत हरिः स्वयम् ॥ ४८ ॥ देवा ऊचुः ॥ गुणभक्षं कुरुध्वं वै येनासौ बुध्यते हरिः ॥

चित्त में ध्यान करके बृहस्पतिजी ने विष्णुजी को कहा और वहां सब देवता गये जहां कि जगदीश देवजी थे ॥ ४६ ॥ तब ध्यान में स्थित इन महाविष्णु जनार्दन जी को देखा और कार्य के समान आकारवाले बाण समेत दैत्यसूदन विष्णुजी को ॥ ४७ ॥ समाधि में स्थित देखकर बोध करने का यत्न किया व उन से तब कहा कि वंम्री[1] नामक कीट यदि बडे यत्न से धनुष के गुण को काटैं तो उसके शब्द से आपही विष्णुजी जगपड़ैंगे ॥ ४८ ॥ देवता बोले कि हे वम्रियो ! तुम धनुष के

१ पुस्तक व वस्त्रादि को काटनेवाला कीट।

गुण को भक्षण करो कि जिस से ये विष्णुजी बोधित होवैं क्योंकि यज्ञ के चाहनेवाले हमलोग विष्णु प्रभु को बोध कराते हैं ॥ ४९ ॥ वम्री बोलीं कि निद्राभंग, कथाछेद व स्त्री पुरुषों की मित्रता का भंग करना और बालक व माता का भेद करनेवाला मनुष्य नरक को जाता है ॥ ५० ॥ बड़े बलवान् जगदीश विष्णुजी समाधि में स्थित हैं व योग में आरूढ़ हैं उन श्रीविष्णुजी का हम विघ्न न करैंगी ॥ ५१ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे वम्रियो ! यदि देवकार्य किया जावै तो आप सबों को सर्वभक्षत्व होगा इससे वैसा करना चाहिये कि जिस प्रकार यज्ञ की सिद्धि होवै हे वत्स ! तब वह वम्रीशा फिर बोली ॥ ५२ ॥ वम्री बोली कि हे ब्रह्मन् ! मलय पवन

क्रत्वर्थिनो वयं वम्रयः प्रभुं विज्ञापयामहे ॥ ४९ ॥ वम्र्यश्च ऊचुः ॥ निद्राभङ्गं कथाच्छेदं दम्पत्योर्मैत्रभेदनम् ॥ शिशुमातृविभेदं वा कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ॥ ५० ॥ योगारूढो जगन्नाथः समाधिस्थो महाबलः ॥ तस्य श्रीजगदीशस्य विघ्नं नैव तु कुर्महे ॥ ५१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भवतां सर्वभक्षत्वं देवकार्यं क्रियेत चेत् ॥ कर्तव्यं च ततो वम्र्यो यज्ञसिद्धिर्यथा भवेत् ॥ वम्रीशा सा तदा वत्स पुनरेवमुवाच ह ॥ ५२ ॥ वम्र्युवाच ॥ दुःखसाध्यो जगन्नाथो मलयानिलसन्निभः ॥ कथं वा बोध्यतां ब्रह्मन्नस्माभिः सुरपूजितः ॥ ५३ ॥ नैव यज्ञेन मे कार्यं सुरैश्चैव तथैव च ॥ सर्वेषु यज्ञकार्येषु भागं ददतु मे सुराः ॥ ५४ ॥ देवा ऊचुः ॥ प्रदास्यामो वयं वम्र्यै भागं यज्ञेषु सर्वदा ॥ यज्ञाय दत्तमस्माभिः कुरुष्वैवं वचो हि नः ॥ ५५ ॥ तथेति विधिनाप्युक्तं वम्री चोद्यममाश्रिता ॥ गुणभक्षादिकं कर्म तया सर्वं कृतं नृप ॥ ५६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अशक्या बोधने देवा गुणभङ्गे समाधिषु ॥ एतदाश्चर्यं विप्रर्षे सत्यं सत्यवतीसुत ॥ ५७ ॥ व्यास उवाच ॥

के समान विष्णुजी दुःख से साधन करने योग्य हैं तो वे देवपूजित विष्णुजी कैसे हम से बोधित किये जावैं ॥ ५३ ॥ यज्ञोंसे व देवताओं से मेरा कार्य नहीं है हे देवताओ ! सब यज्ञकार्यों में मुझको भाग दीजिये ॥ ५४ ॥ देवता बोले कि वम्री के लिये हमलोग सदैव यज्ञों में भाग देवैंगे व यज्ञ के लिये हम सबों ने भाग दिया इस प्रकार तुम हमारा वचन करो ॥ ५५ ॥ वम्री ने भी बहुत अच्छा ऐसा कहा और वह उद्यम में आश्रित हुई व हे राजन् ! उसने गुणभक्षादिक सब कर्म को किया ॥ ५६ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे सत्यवतीसुत, ब्रह्मर्षे ! इन विष्णुजी की समाधियों में बोधन और गुणभंग में जो देवता समर्थ न हुए यह सत्य आश्चर्य है ॥ ५७ ॥ व्यासजी

सुरेशान ! प्रथम तुम्हीं हो व सदैव रक्षक तुम्हीं हो ॥१३॥ और यज्ञ, यज्ञपति, यज्वा, द्रव्य, होता व हवन तुम्हीं हो व हे देव ! तुम्हारे लिये हवन किया जाता है और रक्षक व मित्र तुम्हीं हो ॥१४॥ और करालरूपी काल तुम्हीं हो और सूर्य व चन्द्रमा तुम्हीं हो और अग्नि व वरुण तुम्हीं हो व काल को नाशनेवाले तुम्हीं हो ॥ १५ ॥ और तीनों गुण तुम्हीं हो व गुणों से रहित तुम्हीं हो और गुणों का स्थान तुम्हीं हो व सब जंतुवों में रक्षक तुम्हीं हो ॥ १६ ॥ और स्त्री व पुरुष में दो भांति तुम्हीं हो व पशु, पक्षी और मनुष्यों समेत चौरासी लक्षणोंवाला चार प्रकार का कुल तुम्हीं हो ॥ १७ ॥ व हे हरे ! दिनान्त, पक्षान्त, मासान्त, वर्ष व युग तुम्हीं हो और

व शरणं सदा ॥ १३ ॥ यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा द्रव्यं होता हुतस्तथा ॥ त्वदर्थं हूयते देव त्वमेव शरणं सखा ॥ १४ ॥ कालः करालरूपस्त्वं त्वं वार्कः शीतदीधितिः ॥ त्वमग्निर्वरुणश्चैव त्वं च कालक्षयङ्करः ॥ १५ ॥ गुणत्रयं त्वमेवेह गुणहीनस्त्वमेव हि ॥ गुणानामालयस्त्वं च गोप्ता सर्वेषु जन्तुषु ॥ १६ ॥ स्त्रीपुंसोश्च द्विधा त्वं च पशुपक्ष्यादिमानवैः ॥ चतुर्विधं कुलं त्वं हि चतुराशीतिलक्षणम् ॥ १७ ॥ दिनान्तश्चैव पक्षान्तो मासान्तो हायनं युगम् ॥ कल्पान्तश्च महान्तश्च कालान्तस्त्वं च वै हरे ॥ १८ ॥ एवंविधैर्महादिव्यैः स्तूयमानः सुरैर्नृप ॥ सन्तुष्टः प्राह सर्वेषां देवानां पुरतः प्रभुः ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किमर्थमिह सम्प्राप्ताः सर्वे देवगणा भुवि ॥ किमेतत्कारणं देवाः किं नु दैत्यप्रपीडिताः ॥ २० ॥ देवा ऊचुः ॥ न दैत्यस्य भयं जातं यज्ञकर्मोत्सुका वयम् ॥ त्वद्दर्शनपराः सर्वे पश्यामो वै दिशो दश ॥ २१ ॥ त्वन्मायामोहिताः सर्वे व्यग्रचित्ता भयातुराः ॥ योगारूढस्वरूपं च दृष्टं तेऽस्माभिरुत्तमम् ॥ २२ ॥ वम्री च नोदिता

कल्पान्त, महान्त व कालान्त तुम्हीं हो ॥ १८ ॥ हे नृप ! ऐसे महादिव्य स्तोत्रों से स्तुति कियेहुए प्रभु विष्णुजी ने प्रसन्न होकर सब देवताओं के आगे कहा ॥ १९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे देवताओ ! यहा पृथ्वी में तुमलोग सब देवताओं के गण किसलिये प्राप्त हुए हो यह क्या कारण है क्या दैत्यों से पीड़ित हुए हो ॥ २० ॥ देवता बोले कि दैत्य का भय नहीं हुआ है हमलोग यज्ञकर्म के उत्कंठित हैं और तुम्हारे दर्शन में परायण हम सब दशो दिशाओं को देखते हैं ॥ २१ ॥ और हम सब तुम्हारी माया से मोहित हैं व व्यग्रचित्तवाले तथा भय से विकल हैं और हमलोगों ने तुम्हारे योगारूढस्वरूप को देखा ॥ २२ ॥ व हे ईश्वर ! तुम्हारे जागरण के

विश्वकर्माजी कमल से उपजेहुए ब्रह्मा से बड़ी भक्ति से बोले कि अनेक भांति के देवता यह कहते हैं कि अश्व का शिर शीघ्रही काटो ॥ ४ ॥ यज्ञ भाग से रहित मुझ से बार २ क्यों मांगा जाता है हे देव ! देवताओं समेत मैं यज्ञभाग को पाऊं ॥५॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सुरवर्द्धके ! मैं सब यज्ञों में तुमको भाग दूंगा व हे वीर ! वेदों को जाननेवालों से तुम पहले पूजे जावोगे ॥ ६ ॥ हे अमरवर्द्धके ! तब तक उन विष्णुजी के शिर को लगाइये विश्वकर्मा ने देवताओं से यह कहा कि शिर को लाइये ॥ ७ ॥ व हे नृपोत्तम ! सब देवता यह कहनेलगे कि वह नहीं है और मध्याह्न होने पर सूर्यनारायण आकाश में रथ पै स्थित थे ॥ ८ ॥ तब सब देवता,

ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥ अश्वकायं निकृन्ताशु वदन्ति विविधाः सुराः ॥ ४ ॥ यज्ञभागविहीनं मां याच्यते किं पुनः पुनः ॥ यज्ञभागमहं देव लभेयैवं सुरैः सह ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दास्यामि सर्वयज्ञेषु विभागं सुरवर्द्धके ॥ सोमे त्वं प्रथमं वीर पूज्यसे श्रुतिकोविदैः ॥ ६ ॥ तद्विष्णोश्च शिरस्तावत्सन्धत्स्वामरवर्द्धके ॥ विश्वकर्माब्रवीद्देवानानयध्वं शिर स्त्विति ॥ ७ ॥ तन्नास्तीति सुराः सर्वे वदन्ति नृपसत्तम ॥ मध्याह्ने तु समुद्भूते रथस्थो दिवि चांशुमान् ॥ ८ ॥ दृष्टं तदा सुरैः सर्वैं रथादश्वमथानयन् ॥ छित्त्वा शीर्षं महीपाल कबन्धाद्वाजिनो हरेः ॥ ९ ॥ कबन्धे योजयामास विश्व कर्मातिचातुरः ॥ दृष्ट्वा तं देवदेवेशं सुराः स्तुतिमकुर्वत ॥ १० ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्तेऽस्तु जगद्बीज नमस्ते कमला पते ॥ नमस्तेऽस्तु सुरेशान नमस्ते कमलेक्षण ॥ ११ ॥ त्वं स्थितिः सर्वभूतानां त्वमेव शरणं सताम् ॥ त्वं हन्ता सर्वदुष्टानां हयग्रीव नमोऽस्तु ते ॥ १२ ॥ त्वमोङ्कारो वषट्कारः स्वधा स्वाहा चतुर्विधा ॥ आद्यस्त्वं च सुरेशान त्वमे

देखे हुए अश्व को रथ से ले आये व हे भूपाल ! मस्तक को काटकर सूर्यनारायण के अश्व के कबंध से ॥ ९ ॥ बड़े चतुर विश्वकर्मा ने विष्णुजी के शिररहित शरीर में युक्त किया और उन देवदेवेश विष्णुजी को देखकर स्तुति करनेलगे ॥ १० ॥ देवता बोले कि हे जगद्बीज ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे लक्ष्मीपते ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे सुरेशान ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे कमलेक्षण ! आप के लिये प्रणाम है ॥ ११ ॥ सब प्राणियों की स्थिति तुम्हीं हो व सज्जनों के रक्षक तुम्हीं हो व हे हयग्रीव ! सब दुष्टों को मारनेवाले तुम्हीं हो तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १२ ॥ और ॐकार, वषट्कार, स्वाहा व स्वधा चार प्रकार के तुम्हीं हो व हे

सुरेशान ! प्रथम तुम्हीं हो व सदैव रक्षक तुम्हीं हो ॥१३॥ और यज्ञ, यज्ञपति, यज्वा, द्रव्य, होता व हवन तुम्हीं हो व हे देव ! तुम्हारे लिये हवन किया जाता है और रक्षक व मित्र तुम्हीं हो ॥१४॥ और करालरूपी काल तुम्हीं हो और सूर्य व चन्द्रमा तुम्हीं हो और अग्नि व वरुण तुम्हीं हो व काल को नाशनेवाले तुम्हीं हो ॥ १५ ॥ और तीनों गुण तुम्हीं हो व गुणों से रहित तुम्हीं हो और गुणों का स्थान तुम्हीं हो व सब जंतुओं में रक्षक तुम्हीं हो ॥ १६ ॥ और स्त्री व पुरुष में दो भांति तुम्हीं हो व पशु, पक्षी और मनुष्यों समेत चौरासी लक्षणोंवाला चार प्रकार का कुल तुम्हीं हो ॥ १७ ॥ व हे हरे ! दिनान्त, पक्षान्त, मासान्त, वर्ष व युग तुम्हीं हो और

व शरणं सदा ॥ १३ ॥ यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा द्रव्यं होता हुतस्तथा ॥ त्वदर्थं हूयते देव त्वमेव शरणं सखा ॥ १४ ॥
कालः करालरूपस्त्वं त्वं वार्कः शीतदीधितिः ॥ त्वमग्निर्वरुणश्चैव त्वं च कालक्षयङ्करः ॥ १५ ॥ गुणत्रयं त्वमेवेह गुण
हीनस्त्वमेव हि ॥ गुणानामालयस्त्वं च गोप्ता सर्वेषु जन्तुषु ॥ १६ ॥ स्त्रीपुंसोश्च द्विधा त्वं च पशुपक्ष्यादिमानवैः ॥ चतु
र्विधं कुलं त्वं हि चतुराशीतिलक्षणम् ॥ १७ ॥ दिनान्तश्चैव पक्षान्तो मासान्तो हायनं युगम् ॥ कल्पान्तश्च महान्तश्च
कालान्तस्त्वं च वै हरे ॥ १८ ॥ एवंविधैर्महादिव्यैःस्तूयमानः सुरैर्नृप ॥ सन्तुष्टःप्राह सर्वेषां देवानां पुरतः प्रभुः ॥ १९ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ किमर्थमिह सम्प्राप्ताः सर्वे देवगणा भुवि ॥ किमेतत्कारणं देवाः किं नु दैत्यप्रपीडिताः ॥ २० ॥
देवा ऊचुः ॥ न दैत्यस्य भयं जातं यज्ञकर्मोत्सुका वयम् ॥ त्वद्दर्शनपराः सर्वे पश्यामो वै दिशो दश ॥ २१ ॥
त्वन्मायामोहिताः सर्वे व्यग्रचित्ता भयातुराः ॥ योगारूढस्वरूपं च दृष्टं तेऽस्माभिरुत्तमम् ॥ २२ ॥ वम्री च नोदिता

कल्पान्त, महान्त व कालान्त तुम्हीं हो ॥ १८ ॥ हे नृप ! ऐसे महादिव्य स्तोत्रों से स्तुति कियेहुए प्रभु विष्णुजी ने प्रसन्न होकर सब देवताओं के आगे कहा ॥ १९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे देवताओ ! यहा पृथ्वी में तुमलोग सब देवताओं के गण किसलिये प्राप्त हुए हो यह क्या कारण है क्या दैत्यों से पीड़ित हुए हो ॥ २० ॥ देवता बोले कि दैत्य का भय नहीं हुआ है हमलोग यज्ञकर्म के उत्कंठित हैं और तुम्हारे दर्शन में परायण हम सब दशो दिशाओं को देखते हैं ॥ २१ ॥ और हम सब तुम्हारी माया से मोहित हैं व व्यग्रचित्तवाले तथा भय से विकल हैं और हमलोगों ने तुम्हारे योगारूढ़स्वरूप को देखा ॥ २२ ॥ व हे ईश्वर ! तुम्हारे जागरण के

लिये हमलोगों ने वम्री नामक कीट को पठाया तदनन्तर तुम्हारा अपूर्व शिर कट गया ॥ २३ ॥ हे प्रभो, विष्णो ! बड़े चतुर विश्वकर्मा ने सूर्य के घोड़े का शिर लाकर लगाया है इस कारण हयग्रीव हो ॥ २४ ॥ विष्णुजी बोले कि हे सब देवताओ ! मैं प्रसन्न हूं तुमलोगों को प्रिय वर दूंगा और संसार का स्वामी मैं हयग्रीव देवदेव हूं ॥ २५ ॥ और यह रूप न भयङ्कर है न कुरूप है बरन देवताओं से भी सेवित है व हे देवताओ ! प्रसन्न कराया हुआ हयानन ऐसा मैं वरदायक हुआ हूं ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले कि यज्ञ करनेपर तदनन्तर ब्रह्माजी प्रसन्नचित्त से वम्री व विश्वकर्माजी के लिये यज्ञभाग को देकर ॥ २७ ॥ व यज्ञान्त में सुरश्रेष्ठ विश्वकर्माजी को प्रणाम

स्माभिर्जागराय तवेश्वर ॥ ततश्चापूर्वमभवच्छिरश्छिन्नं बभूव ते ॥ २३ ॥ सूर्याश्वशीर्षमानीय विश्वकर्मातिचातुरः ॥ समधत्त शिरो विष्णो हयग्रीवोऽस्यतः प्रभो ॥ २४ ॥ विष्णुरुवाच ॥ तुष्टोऽहं नाकिनः सर्वे ददामि वरमीप्सितम् ॥ हयग्रीवोऽस्म्यहं जातो देवदेवो जगत्पतिः ॥ २५ ॥ न रौद्रं न विरूपं च सुरैरपि च सेवितम् ॥ जातोऽहं वरदो देवा हयाननेति तोषितः ॥ २६ ॥ व्यास उवाच ॥ कृते सत्रे ततो वेधा धीमान्सन्तुष्टचेतसा ॥ यज्ञभागं ततो दत्त्वा वम्रीभ्यो विश्वकर्मणे ॥ २७ ॥ यज्ञान्ते च सुरश्रेष्ठं नमस्कृत्य दिवं ययौ ॥ एतच्च कारणं विद्धि हयाननो यतो हरिः ॥ २८ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ येनाक्रान्ता मही सर्वा क्रमेणैकेन तत्त्वतः ॥ विवरे विवरे रोम्णां वर्तन्ते च पृथक्पृथक् ॥ २९ ॥ ब्रह्माण्डानि सहस्राणि दृश्यन्ते च महाद्युते ॥ न वेत्ति वेदो यत्पारं शीर्षघातो हि वै कथम् ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु त्वं पाण्डवश्रेष्ठ कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ ईश्वरस्य चरित्रं हि नैव वेत्ति चराचरे ॥ ३१ ॥ एकदा ब्रह्मसभायां

कर स्वर्ग को चलेगये इस कारण को जानिये कि जिससे विष्णुजी हयग्रीव हुए हैं ॥ २८ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि जिन्होंने एक पग से सब पृथ्वी को नापलिया व हे महाद्युते ! जिनके रोमों के प्रत्येक छिद्र में हज़ारों ब्रह्माण्ड वर्तमान हैं व पृथक् २ देख पड़ते हैं व वेद भी जिनका पार नहीं पाता है उनके शिरश्छेद को कैसे जानें ॥ २९।३० ॥ व्यासजी बोले कि हे पाण्डवश्रेष्ठ ! तुम पुराण की उत्तम कथाको सुनो ईश्वरके चरित्रको चराचर संसार में कोई नहीं जानता है ॥ ३१ ॥ एक समय

ब्रह्मा की सभा में इन्द्र समेत देवता गये सब भूर्लोकादिक व स्थावर और जङ्गम ॥ ३२ ॥ व देवता और सब ब्रह्मर्षि ब्रह्मा को प्रणाम करने के लिये गये और उस सभा में सम्मति के कारण विष्णु भी आगये ॥ ३३ ॥ तब विशेषकर गर्वित ब्रह्माने भी यह वचन कहा कि हे देवताओ ! सुनिये कि तीनों देवताओं के मध्य में कौन बड़ा भारी कारण है ॥ ३४ ॥ हे देवताओ ! ब्रह्मा, शिव व विष्णुजी के मध्य में सत्य कहिये उस वचन को सुनकर देवता विस्मय को प्राप्तहुए ॥ ३५ ॥ तदनन्तर देवताओं ने कहा कि हमलोग देवता यह नहीं जानते हैं तब सुरेश्वर विष्णुजी से ब्रह्मा की स्त्री ने कहा कि तीनों देवताओं के मध्य में मुझ से श्रेष्ठ को कहिये ॥ ३६॥

गता देवाः सवासवाः ॥ भूर्लोकाद्याश्च सर्वे हि स्थावराणि चराणि च ॥ ३२ ॥ देवा ब्रह्मर्षयः सर्वे नमस्कर्त्तुं पितामहम् ॥ विष्णुरप्यागतस्तत्र सभायां मन्त्रकारणात् ॥ ३३ ॥ ब्रह्माचापि विगर्विष्ठ उवाचेदं वचस्तदा ॥ भो भो देवाः शृणुध्वं कस्त्रयाणां कारणं महत् ॥ ३४ ॥ सत्यं ब्रुवन्तु वै देवा ब्रह्मेशविष्णुमध्यतः ॥ तां वाचं च समाकर्ण्य देवा विस्मयमागताः ॥ ३५ ॥ ऊचुश्चैव ततो देवा न जानीमो वयं सुराः ॥ ब्रह्मपत्नी तदोवाच विष्णुं प्रति सुरेश्वरम् ॥ त्रयाणामपि देवानां महान्तं च वदस्व मे ॥ ३६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ विष्णुमायाबलेनैव मोहितं भुवनत्रयम् ॥ ततो ब्रह्मोवाच चेदं न त्वं जानासि भो विभो ॥ ३७ ॥ नैव मुह्यन्ति ते मायाबलेन नैवमेव च ॥ गर्वहिंसापरो देवो जगद्भर्ता जगत्प्रभुः ॥ ३८ ॥ ज्येष्ठं त्वां न विदुः सर्वे विष्णुमायावृताः खिलाः ॥ ततो ब्रह्मा स रोषेण क्रुद्धः प्रस्फुरिताननः ॥ ३९ ॥ उवाच वचनं कोपाद्धे विष्णो शृणु मे वचः ॥ सभायां येन वक्त्रेण वचनं समुदीरितम् ॥ ४० ॥ तच्छीर्षं पततादाशु चाल्प

विष्णुजी बोले कि विष्णुजी की माया के बल से त्रिलोक मोहित है तदनन्तर ब्रह्माने कहा कि हे विभो ! तुम यह नहीं जानतेहो ॥ ३७ ॥ और तुम्हारी माया के बल से देवता नहीं मोहित होते हैं इस प्रकार गर्व की हिंसा में तत्पर न होवो कि संसार का स्वामी व संसार का पालन करनेवाला देवता मैं हूं ॥ ३८ ॥ और विष्णु की माया से घिरेहुए सब देवता तुमको ज्येष्ठ नहीं जानते हैं तदनन्तर रोष से कंपित मुखवाले उन क्रोधित ब्रह्मा ने ॥ ३९ ॥ कोप से यह वचन कहा कि हे विष्णो ! मेरा वचन सुनिये कि सभा में जिस मुख से वचन कहा गया ॥ ४० ॥ वह मस्तक थोड़ेही समय में शीघ्रही गिरपड़े तदनन्तर सब हाहाकार होगया और इन्द्र समेत व ऋषियों

सहित ॥ ४१ ॥ सुरोत्तमों ने विष्णुजी से क्षमापन कराया और विष्णुजी उस वचनको सुनकर यह बोले कि सत्य सत्य यह होगा ॥ ४२ ॥ तदनन्तर बड़े तेजस्वी सुरेश्वर विष्णुजी ने तीर्थ को उत्पन्न करने के कारण उस धर्मारण्य में तप किया और अश्वशिरवाले मुख को देखकर हयग्रीव विष्णुजी ने ॥ ४३ ॥ हे महाभाग, भारत! ब्रह्मा समेत ऐसा तप किया कि जिस को अन्य कोई नहीं करसक्ता है तब अपनाही से स्वयं प्रसन्न होगये ॥ ४४ ॥ और विष्णुकी माया से मोहित व विष्णुजी के आगे खड़े हुए तप से संयुत ब्रह्मा ने भी तीन सौ वर्षतक तप किया ॥ ४५ ॥ और देवदेव जगदीशजी ने यज्ञ के लिये प्रसन्न होकर कहा कि हे ब्रह्मन्! इस समय तुम्हारी

कालेन वै पुनः ॥ ततो हाहाकृतं सर्वे सेन्द्राः सर्षिपुरोगमाः ॥ ४१ ॥ ब्रह्माणं क्षमयामासुर्विष्णुं प्रति सुरोत्तमाः ॥ विष्णुश्च तद्वचः श्रुत्वा सत्यं सत्यं भविष्यति ॥ ४२ ॥ ततो विष्णुर्महातेजास्तीर्थस्योत्पादनेन च ॥ तपस्तेपे तु वै तत्र धर्मारण्ये सुरेश्वरः ॥ अश्वशीर्षं मुखं दृष्ट्वा हयग्रीवो जनार्दनः ॥ ४३ ॥ तपस्तेपे महाभाग विधिना सह भारत ॥ न शक्यं केनचित्कर्त्तुमात्मनात्मैव तुष्टवान् ॥ ४४ ॥ ब्रह्मापि तपसा युक्तस्तेपे वर्षशतत्रयम् ॥ तिष्ठन्नेव पुरो विष्णोर्विष्णुमायाविमोहितः ॥ ४५ ॥ यज्ञार्थमवदत्तुष्टो देवदेवो जगत्पतिः ॥ ब्रह्मंस्ते मुक्तताद्यास्ति मम मायाप्यदुःसहा ॥४६॥ ततो लब्धवरो ब्रह्मा हृष्टचित्तो जनार्दनः ॥ उवाच मधुरां वाचं सर्वेषां हितकारणात् ॥ ४७ ॥ अत्राभवन्महाक्षेत्रं पुण्यं पापप्रणाशनम् ॥ विधिविष्णुमयं चैतद्भवत्वेतन्न संशयः ॥ ४८ ॥ तीर्थस्य महिमा राजन्हयशीर्षस्तदा हरिः ॥ शुभाननो हि संजातः पूर्वेणैवाननेन तु ॥ ४९ ॥ कन्दर्पकोटिलावण्यो जातः कृष्णस्तदा नृप ॥ ब्रह्मापि तपसा युक्तो

मुक्तता है और मेरी माया भी तुमको दुस्सह म होगी ॥ ४६ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी ने वरको पाया व प्रसन्नचित्तवाले विष्णुजी ने सबों के हित के कारण मधुर वचन को कहा ॥ ४७ ॥ कि यहां पुण्यरूप पापनाशक महाक्षेत्र हुआ और ब्रह्मा व विष्णुमय यह तीर्थ होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ व तीर्थ की महिमा होगी हे राजन्! उस समय हयग्रीव विष्णुजी पहले के मुखके समान उत्तम मुखवाले होगये ॥ ४९ ॥ व हे नृप! श्रीकृष्णजी उस समय करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर होगये और देवताओं

के तीन सौ वर्षतक ब्रह्मा भी तपसे संयुत हुए ॥ ५० ॥ और सावित्री ने वहां तप किया जहां कि विष्णुजी की माया बाधा नहीं करती है और माया से ब्रह्मा का जो पांचवा शिर शार्दूल (व्याघ्र) का सा किया गया था ॥ ५१ ॥ वह धर्मारण्य में सुन्दर किया गया जिस को पुरातन समय शिवजी ने काटा था विष्णुजी उन के लिये वरको देकर तदनन्तर अन्तर्द्धान होगये ॥ ५२ ॥ व हे अरिंदम ! ब्रह्माजी वहा मुक्तेश नामक शिवदेवजी के मोक्षतीर्थ को व त्रिलोचनजी को थापकर ॥ ५३ ॥ देवताओं में श्रेष्ठ वे ब्रह्मा भी देवताओं से सेवित अपने स्थान को चलेगये और वहां तर्पण से तृप्त कियेहुए प्रेत स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ ५४ ॥ और उसके स्नान

दिव्यं वर्षशतत्रयम् ॥ ५० ॥ सावित्र्या च कृतं यत्र विष्णुमाया न बाधते ॥ मायया तु कृतं शीर्षं पञ्चमं शार्दुलस्य वा ॥ ५१ ॥ धर्मारण्ये कृतं रम्यं हरेण च्छेदितं पुरा ॥ तस्मै दत्त्वा वरं विष्णुर्जगामादर्शनं ततः ॥ ५२ ॥ स्थापयित्वा विधिस्तत्र तीर्थं चैव त्रिलोचनम् ॥ मुक्तेशंनाम देवस्य मोक्षतीर्थमरिंदम ॥ ५३ ॥ गतः सोऽपि सुरश्रेष्ठः स्वस्थानं सुरसेवितम् ॥ तत्र प्रेता दिवं यान्ति तर्पणेन प्रतर्पिताः ॥ ५४ ॥ अश्वमेधफलं स्नाने पाने गोदानजं फलम् ॥ पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ॥ ५५ ॥ स्नानार्थमत्रागच्छन्ति देवताः पितरस्तथा ॥ कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगे मुक्तेशं पूजयेत्तु यः ॥ ५६ ॥ स्नात्वा देवसरे रम्ये नत्वा देवं जनार्द्दनम् ॥ यः करोति नरो भक्त्या सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५७ ॥ भुक्त्वा भोगान्यथाकामं विष्णुलोकं स गच्छति ॥ अपुत्रा काकवन्ध्या च मृतवत्सा मृतप्रजा ॥ ५८ ॥ एकाम्बरेण सुस्नातौ पतिपत्न्यौ यथाविधि ॥ तद्दोषं नाशयेन्नूनं प्रजाप्तिप्रतिबन्धकम् ॥ ५९ ॥ मोक्षेश्वरप्रसादेन

में अश्वमेध यज्ञ का फल है व जल पीने में गोदान से उपजा हुआ फल है और पुष्करादिक तीर्थ व गंगादिक नदियां ॥ ५५ ॥ व देवता और पितर स्नान के लिये यहा आते हैं कार्त्तिकी पौर्णमासी में कृत्तिका नक्षत्र योग में जो मुक्तेशजी को पूजताहै ॥ ५६ ॥ व सुन्दर देवसर में नहाकर तथा जनार्दनजी को प्रणामकर जो मनुष्य भक्ति से ऐसा करता है वह सब पापों से छूटजाता है ॥ ५७ ॥ और चाहे हुए सुखों को भोगकर वह विष्णुलोक को जाता है और यदि अपुत्रिणी, काकवंध्या, मृतवत्सा व मृतप्रजा स्त्री होवै ॥ ५८ ॥ तो विधिपूर्वक एकवसन स्त्री पुरुष नहाकर पुत्रप्राप्ति के प्रतिबन्धकरूप उस दोषको निश्चयकर नाश करता है ॥ ५९ ॥ और मोक्षेश्वर के

प्रसाद से पुत्रों व पौत्रादिकों को बढ़ाता है अथवा सत्य से संयुत स्त्री भी यदि एक चित्त से वांसे के पात्र में फलों को धरकर देती है तो वह दोष से छूटजाती है व हे नृप ! देवता अग्निष्टोम के फल को पाते हैं ॥ ६० । ६१ ॥ और ब्रह्मा, विष्णु व महेश धर्मारण्य में देवसर में त्रिकाल स्नानकर उत्तम तपस्या करते हैं ॥ ६२ ॥ तदनन्तर वहां देवताओं ने मोक्षेश्वर शिवजी को स्थापन किया है और वहां सांग जप करके फिर स्तन को पीनेवाला नहीं होता है ॥ ६३ ॥ हे महाराज ! ऐसा क्षेत्र त्रिलोक में प्रसिद्ध है और श्रद्धा से संयुत जो मनुष्य पितरों का श्राद्ध करता है ॥ ६४ ॥ वह सात गोत्रों को व एक सौ एक पुश्तियों को तारता है और बड़ा सुन्दर देवसर

पुत्रपौत्रादि वर्द्धयेत् ॥ दद्यादेकेन चित्तेन फलानि सत्यसंयुता ॥ ६० ॥ निधाय वंशपात्रेऽपि नारी दोषात्प्रमुच्यते ॥ प्राप्नुवन्ति च देवाश्च अग्निष्टोमफलं नृप ॥ ६१ ॥ वेधा हरिर्हरश्चैव तप्यन्ते परमं तपः ॥ धर्मारण्ये त्रिसन्ध्यं च स्नात्वा देवसरस्यथ ॥ ६२ ॥ तत्र मोक्षेश्वरः शम्भुः स्थापितो वै ततः सुरैः ॥ तत्र साङ्गं जपं कृत्वा न भूयः स्तनपो भवेत् ॥६३॥ एवं क्षेत्रं महाराज प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥ यस्तत्र कुरुते श्राद्धं पितॄणां श्रद्धयान्वितः ॥ ६४॥ उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ देवसरो महारम्यं नानापुष्पैः समन्वितम् ॥ श्यामं सकलकह्लारैर्विविधैर्जलजन्तुभिः ॥ ६५ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैः सेवितं सुरमानुषैः ॥ सिद्धैर्यक्षैश्च मुनिभिः सेवितं सर्वतः शुभम् ॥ ६६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कीदृशं तत्सरः ख्यातं तस्मिन्स्थाने द्विजोत्तम ॥ तस्य रूपं प्रकारं च कथयस्व यथातथम् ॥ ६७ ॥ व्यास उवाच ॥ साधु साधु महाप्राज्ञ धर्मपुत्र युधिष्ठिर ॥ यस्य संकीर्तनान्नूनं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६८ ॥ अतिस्वच्छतरं शीतं गङ्गोदकसमप्रभम् ॥

अनेक भांति के पुष्पों से संयुत है व सब कमल और जलजन्तुओं से श्याम है ॥ ६५ ॥ और ब्रह्मा, विष्णु व महेशादिकों से तथा देवताओं व मनुष्यों से सेवित है व सिद्धों, यक्षों तथा मुनियों से सेवित और सब ओर से उत्तम है ॥ ६६ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! उस स्थान में वह तड़ाग कैसा प्रसिद्ध है उसका रूप व प्रकार यथायोग्य कहिये ॥ ६७ ॥ व्यासजी बोले कि हे महाप्राज्ञ, धर्मपुत्र, युधिष्ठिर ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा आपने पूंछा जिसका कीर्तन करने से मनुष्य निश्चय कर सब पापों से छूटजाता है ॥ ६८ ॥ हे नृपोत्तम ! उसका जल बहुतही निर्मल, ठण्ढा व गंगाजल के समान प्रभावान् और पवित्र, मधुर तथा स्वादिष्ठ

है ॥ ६९ ॥ और वह महाविशाल, गंभीर व मनोहर देवखात है और वह गंभीर लहरीं आदिकों से व फेन और भँवरों से संयुत है ॥ ७० ॥ व मछली, मेढक, कछुवा और मकरों से संयुत है और शंख व शुक्ति आदिकों से युक्त तथा राजहंसों से शोभित है ॥ ७१ ॥ और बरगद व पकरिया के वृक्षों से युक्त व पीपल और आम्रों से घिरा है और चकई, चकवा से संयुत तथा बगुला, सारस व टिट्टिभ पक्षियों से युक्त है ॥ ७२ ॥ और सुन्दर व बहुत सुगन्ध से युक्त तथा कमलों से शोभित है और सब पक्षियों से सेवित तथा सारस आदिकों से सुशोभित है ॥ ७३ ॥ व हे राजन् ! देवताओं समेत मुनियों और ब्राह्मणों व मनुष्यों से सेवित तथा दुःखनाशक

पवित्रं मधुरं स्वादु जलं तस्य नृपोत्तम ॥ ६९ ॥ महाविशालं गम्भीरं देवखातं मनोरमम् ॥ लहर्यादिभिर्गम्भीरैः फेनावर्तसमाकुलम् ॥ ७० ॥ झषमण्डूककमठैर्मकरैश्च समाकुलम् ॥ शङ्खशुक्त्यादिभिर्युक्तं राजहंसैः सुशोभितम् ॥ ७१ ॥ वटप्लक्षैः समायुक्तमश्वत्थाम्रैश्च वेष्टितम् ॥ चक्रवाकसमोपेतं बकसारसटिट्टिभैः ॥ ७२ ॥ कमनीयप्रगन्धाढ्यं शतपत्रैः सुशोभितम् ॥ सेव्यमानं द्विजैः सर्वैः सारसाद्यैः सुशोभितम् ॥ ७३ ॥ सदेवैर्मुनिभिश्चैव विप्रैर्मर्त्यैश्च भूमिप ॥ सेवितं दुःखहं चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ७४ ॥ अनादिनिधनोपेतं सेवितं सिद्धमण्डलैः ॥ स्नानादिभिः सर्वदैव तत्सरो नृपसत्तम ॥ ७५ ॥ विधिना कुरुते यस्तु नीलोत्सर्गं च तत्तटे ॥ प्रेता नैव कुले तस्य यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ७६ ॥ कन्यादानं च ये कुर्युर्विधिना तत्र भूपते ॥ ते तिष्ठन्ति ब्रह्मलोके यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ७७ ॥ महिषीं गृहदासीं च सुरभीं सुतसंयुताम् ॥ हेम विद्यां तथा भूमिं रथांश्च गजवाससी ॥ ७८ ॥ ददाति श्रद्धया तत्र सोऽक्षय्यं स्वर्गमश्नुते ॥ देवखातस्य मा

व समस्त पातकों का विनाशक है ॥ ७४ ॥ और हे नृपोत्तम ! आदि अन्त रहित तथा सिद्ध मंडलों से सदैव ही वह तड़ाग स्नानादिकों से सेवित है ॥ ७५ ॥ जो मनुष्य उसके किनारे पै विधि से नीलोत्सर्ग करता है उसके कुल में चौदह इन्द्र पर्यन्त प्रेत नहीं होते हैं ॥ ७६ ॥ व हे भूपते ! वहां विधि से जो कन्यादान करते हैं वे प्रलय पर्यन्त ब्रह्मलोक में स्थित होते हैं ॥ ७७ ॥ और भैंसी, गृह, दासी और बछड़ा से संयुत गऊ, सुवर्ण, विद्या, भूमि, रथ और हाथी व वस्त्रों को ॥ ७८ ॥ जो वहां

श्रद्धा से देता है वह अक्षय स्वर्ग को पाता है और इस देवखात (बिन खोदे हुए तड़ाग) का माहात्म्य जो शिवजी के समीप पढ़ता है वह दीर्घ आयुर्बल व सुखको पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७९ ॥ व हे युधिष्ठिर ! जो स्त्री या पुरुष इस अद्भुत माहात्म्य को सुनता है उस के वंश में कल्पान्त में भी कल्याण होता है ॥ ८० ॥ यह सब हयग्रीव का कारण कहा गया व सब पापों के नाश के लिये उस तीर्थ का प्रभाव कहा गया ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायांहयग्रीवस्याख्यानवर्णनंनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

हात्म्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ॥ दीर्घमायुस्तथा सौख्यं लभते नात्र संशयः ॥ ७९ ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या नारी वा त्विदमद्भुतम् ॥ कुले तस्य भवेच्छ्रेयः कल्पान्तेऽपि युधिष्ठिर ॥ ८० ॥ एतत्सर्वं मयाख्यातं हयग्रीवस्य कारणम् ॥ प्रभावस्तस्य तीर्थस्य सर्वपापापनुत्तये ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्ये हयग्रीवस्याख्यानवर्णनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ रक्षसां चैव दैत्यानां यक्षाणामथ पक्षिणाम् ॥ भयनाशाय काजेशैर्धर्मारण्यनिवासिनाम् ॥ १ ॥ शक्तिः संस्थापिता नूनं नानारूपा ह्यनेकशः ॥ तासां स्थानानि नामानि यथारूपाणि मे वद ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु पार्थ महाबाहो धर्ममूर्ते नृपोत्तम ॥ स्थाने वै स्थापिता शक्तिः काजेशैश्चैव गोत्रपा ॥ ३ ॥ श्रीमाता मदारिका यां शान्ता नन्दापुरे वरे ॥ रक्षार्थं द्विजमुख्यानां चतुर्दिक्षु स्थिताश्च ताः ॥ ४ ॥ युक्ताश्चैव सुरैः सर्वैः स्वस्वस्थाने

दो० । धर्मारण्य क्षेत्र में जिमि आनन्दा शक्ति । थपी सोलहें में सोई अहै चरित की उक्ति ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि राक्षस, दैत्य, यक्ष व पक्षियों के सकाश से धर्मारण्यनिवासियों के भय के नाश के लिये ब्रह्मा, विष्णु व महेश ने ॥ १ ॥ निश्चय कर अनेक रूपवाली अनेक शक्तियों को स्थापन किया है उनके स्थान व नामों को जैसे रूप हों वैसे कहिये ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि हे महाबाहो, धर्ममूर्ते, नृपोत्तम, पार्थ ! उस स्थान में ब्रह्मा, विष्णु व महेश से गोत्रपा शक्ति थापी गई है ॥ ३ ॥ और मदारिका में श्रीमाता व उत्तम नंदापुर में शांता है मुख्य ब्राह्मणों की रक्षा के लिये वे चारों दिशाओं में स्थित हैं ॥ ४ ॥ व हे नृपोत्तम ! सब

देवताओं ने अपने अपने स्थान में युक्त किया है और वन के मध्य में ब्राह्मणों की रक्षा के लिये सब शक्तियां स्थित हैं ॥ ५ ॥ व हे महाराज! सावित्री ऐसी प्रसिद्ध वह शिवा हुई है और दैत्यों के विनाश के लिये देवताओं ने ज्ञानजा शक्ति को स्थापित किया है ॥ ६ ॥ और गात्रायी व पक्षिणी देवी और छत्रजा, द्वारवासिनी, शीहोरी व जो चूटसंज्ञक है और पिप्पलाशापुरी व अन्य बहुतसी शक्तियां भय से रक्षा करने में स्थापित कीगई हैं ॥ ७ ॥ और पश्चिम, उत्तर व दक्षिण में देवताओं ने उस शक्ति को स्थापन किया है और वह अनेक प्रकार के अस्त्रों को धारण किये व अनेक आभूषणों से भूषित है ॥ ८ ॥ और वह अनेक प्रकार की सवा-

नृपोत्तम ॥ वनमध्ये स्थिताः सर्वा द्विजानां रक्षणाय वै ॥ ५ ॥ सा बभूव महाराज सावित्रीतिप्रथा शिवा ॥ असुराणां व धार्थाय ज्ञानजा स्थापिता सुरैः ॥ ६ ॥ गात्रायी पक्षिणी देवी छत्रजा द्वारवासिनी ॥ शीहोरी चूटसंज्ञा या पिप्पला शापुरी तथा ॥ अन्याश्च बह्वश्चैव स्थापिता भयरक्षणे ॥ ७ ॥ प्रतीच्योदीच्यां याम्यां वै विबुधैः स्थापिता हि सा ॥ नानायुधधरा सा च नानाभरणभूषिता ॥ ८ ॥ नानावाहनमारूढा नानारूपधरा च सा ॥ नानाकोपसमायुक्ता नाना भयविनाशिनी ॥ ९ ॥ स्थाप्या मातर्यथास्थाने यथायोग्या दिशोदश ॥ गरुडेन समारूढा त्रिशूलवरधारिणी ॥ १० ॥ सिंहारूढा शुद्धरूपा वारुणी पानदर्पिता ॥ खड्गखेटकबाणाढ्यैः करैर्भाति शुभानना ॥ ११ ॥ रक्तवस्त्रावृता चैव पीनोन्नतपयोधरा ॥ उद्यदादित्यबिम्बाभा मदाघूर्णितलोचना ॥ १२ ॥ एवमेषा महादिव्या काजेशैः स्थापिता

रियों पै सवार व अनेक भांति के रूपों को धारण किये है व अनेक भांति के क्रोध से संयुत व अनेक भांति के भय को नाशनेवाली है ॥ ९ ॥ और यथायोग्य स्थान व यथायोग्य दशो दिशाओं में मातृका स्थापन करने योग्य हैं व उत्तम त्रिशूल को धारण किये वे गरुड़ पै चढ़ी हैं ॥ १० ॥ व शुद्धरूपवाली वह शक्ति सिंह पै सवार और मदिरा पीने से गर्वित है व खड्ग, खेटक और बाण से संयुत हाथों से उत्तम मुखवाली वह शोभित है ॥ ११ ॥ और लाल वसन को पहने व कठोर तथा ऊंचे स्तनोंवाली है और उदय होते हुए सूर्यबिम्ब के समान तथा मद से घूर्णित नेत्रोंवाली है ॥ १२ ॥ उस समय यह महादिव्य शक्ति सत्यमंदिर में बसनेवाले

सब जंतुवों की रक्षा के लिये स्थापित कीगई है ॥ १३ ॥ हे नृपोत्तम ! स्तुति कीहुई व पूजीहुई वह देवी सदैव सब चाहे हुए मनोरथों को देती है ॥ १४ ॥ और धर्मारण्य से पश्चिम में उत्तम छत्रजा शक्ति स्थापित कीगई है और कितेक शक्तियों से संयुत वहां स्थित वह शक्ति ब्राह्मणों की रक्षा करती है ॥ १५ ॥ भयंकर रूप में स्थित होकर वे शक्तियां राक्षसों के मारने के लिये व ब्राह्मणों के अभय के लिये इस प्रकार के अस्त्रों को धारण करती हैं॥ १६ ॥ हे महाभाग ! उसके आगे जल से पूर्ण उत्तम तड़ाग को उसने किया है इस तड़ाग में स्नानादिक व तर्पण करके ॥ १७ ॥ पिंडदानादिक सब कर्म अक्षय होता है और पृथ्वी में जो दिव्य जलांजलियों को

तदा ॥ रक्षार्थं सर्वजन्तूनां सत्यमन्दिरवासिनाम् ॥ १३ ॥ सा देवी नृपशार्दूल स्तुता संपूजिता सदा ॥ ददाति सकलान्कामान्वाञ्छितान्नृपसत्तम ॥ १४ ॥ धर्मारण्यात्पश्चिमतः स्थापिता छत्रजा शुभा ॥ तत्रस्था रक्षते विप्रान्कियच्छक्तिसमन्विता ॥ १५ ॥ भैरवं रूपमास्थाय राक्षसानां वधाय च ॥ धारयन्त्यायुधानीत्थं विप्राणामभयाय च ॥ १६ ॥ सरश्चकार तस्याग्रे उत्तमं जलपूरितम् ॥ सरस्यस्मिन्महाभाग कृत्वा स्नानादितर्पणम् ॥ १७ ॥ पिण्डदानादिकं सर्वमक्षयं चैव जायते ॥ भूमौ क्षिप्ताञ्जलीन्दिव्यान्धूपदीपादिकं सदा ॥ १८ ॥ तस्य नो बाधते व्याधिः शत्रूणां नाश एव च ॥ बलिदानादिकं तत्र कुर्याद्भूयः स्वशक्तितः ॥ १९ ॥ शत्रवो नाशमायान्ति धनं धान्यं विवर्धते ॥ आनन्दा स्थापिता राजञ्छक्त्यंशा च मनोरमा ॥ २० ॥ रक्षणार्थं द्विजातीनां माहात्म्यं शृणु भूपते ॥ शुक्लाम्बरधरा दिव्या हेमभूषणभूषिता ॥ २१ ॥ सिंहारूढा चतुर्हस्ता शशाङ्ककृतशेखरा ॥ मुक्ताहारलतोपेता पीनोन्नतपयोधरा ॥ २२ ॥ अक्ष

देता है व जो सदैव धूप दीपादिक करता है ॥ १८ ॥ उसको रोग पीडा नहीं करता है और शत्रुवों का नाशही होता है फिर अपनी शक्ति से वहां जो बलिदानादिक कर्म करता है ॥ १९ ॥ उसके शत्रु नाश होते हैं और धन व धान्य बढ़ता है हे राजन् ! सुन्दरी आनंदा नामक शक्तयंश ब्राह्मणों की रक्षा के लिये स्थापित कीगई है हे भूपते ! उसका माहात्म्य सुनिये कि श्वेत वसन को धारण किये व सुवर्ण के भूषण से भूषित वह दिव्य शक्ति ॥ २० । २१ ॥ जिसके चार हाथ हैं व चन्द्रमा को जो मस्तक में धारण किये है वह सिंह पै सवार व मुक्ताहार की लता से संयुत तथा कठोर व ऊंचे स्तनोंवाली है ॥ २२ ॥ और रुद्राक्ष की माला व तल-

वार को हाथ में लिये तथा गुण व तोमर अस्त्र को धारण किये है व सुगंधित तथा दिव्य वसनों को पहने और दिव्य मालाओं से भूषित है ॥ २३ ॥ हे राजन् ! उस नगर में पहले आनंदा नामक सात्त्विकी शक्ति स्थित हुई है उस को कपूर व लाल चन्दन से पूजै ॥ २४ ॥ और शहद, घी व शक्कर समेत उत्तम खीर से भोजन करावै हे राजन् ! पार्वतीजी की प्रीति के लिये कुमारी का पूजनकरै ॥ २५ ॥ हे नृपोत्तम ! वहां जप, हवन, दान व ध्यान वह सब अक्षय होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ व हे नृपोत्तम ! उस स्थान में त्रिगुण करने पर तिगुनी वृद्धि होती है और निश्चय कर साधक के धन व स्त्री आदिक संपदा होती हैं ॥ २७ ॥ और न हानि होती है

मालासिहस्ता च गुणतोमरधारिणी ॥ दिव्यगन्धाम्बरधरा दिव्यमालाविभूषिता ॥ २३ ॥ सात्त्विकी शक्तिरानन्दा स्थिता तस्मिन्पुरे पुरा ॥ पूजयेत्तां च वै राजन्कर्पूरारक्तचन्दनैः ॥ २४ ॥ भोजयेत्पायसैः शुभ्रैर्मध्वाज्यसितया सह ॥ भवान्याः प्रीतये राजन्कुमार्याः पूजनं तथा ॥ २५ ॥ तत्र जप्तं हुतं दत्तं ध्यातं च नृपसत्तम ॥ तत्सर्वं चाक्षयं तत्र जायते नात्र संशयः ॥ २६ ॥ त्रिगुणे त्रिगुणा वृद्धिस्तस्मिन्स्थाने नृपोत्तम ॥ साधकस्य भवेन्नूनं धनदारादि सम्पदः ॥ २७ ॥ न हानिर्न च रोगश्च न शत्रुर्न च दुष्कृतम् ॥ गावस्तस्य विवर्द्धन्ते धनधान्यादिसङ्कुलम् ॥ २८ ॥ न शाकिन्या भयं तस्य न च राज्ञश्च वैरिणः ॥ न च व्याधिभयं चैव सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ २९ ॥ विद्याश्चतुर्दशा स्यैव भासन्ते पठिता इव ॥ सूर्यवद्द्योतते भूमावानन्दामाश्रितो नरः ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येआनन्दास्थापनवर्णनन्नामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

न रोग होता है न शत्रु और न पाप होता है और उसके गाइयां बढ़ती हैं व धन, धान्यादि से संयुत होता है ॥ २८ ॥ और उसको शाकिनी की भय नहीं होती व राजा और शत्रु व रोग की भय नहीं होती है और वह सब कहीं विजयवान् होता है ॥ २९ ॥ और इसको पढ़ी हुई सी चौदह विद्या भासित होती हैं और आनन्दा के आश्रित मनुष्य पृथ्वी में सूर्य के समान प्रकाशित होता है ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामानन्दास्थापनवर्णनं नामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । थापित है देवी यथा श्रीमाता-इमि नाम । सत्रहवें अध्याय में सोई चरित ललाम ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन् ! दक्षिण में बड़ी बलवती शांता देवी स्थापित है वह विचित्र वसन को धारण किये व वनमाला से भूषित है ॥ १ ॥ हे महाराज ! मधुकैटभ को नाशनेवाली वह तामसी शक्ति है हे नृपोत्तम ! विष्णुजी ने वहां शिवजी की स्त्री को स्थापित किया है ॥ २ ॥ और आठ भुजाओंवाली वह सुन्दरी मेघों के समान श्याम व मनोहारिणी है और काले वसन को पहने हुई वह देवी व्याघ्र की सवारी पै स्थित है ॥ ३ ॥ और व्याघ्र के चर्म को पहने व दिव्य भूषणों से भूषित है और वह उत्तम देवी घंटा, त्रिशूल, रुद्राक्षमाला व कमंडलु

व्यास उवाच ॥ दक्षिणे स्थापिता राजञ्छान्ता देवी महाबला ॥ सा विचित्राम्बरधरा वनमालाविभूषिता ॥ १ ॥ तामसी सा महाराज मधुकैटभनाशिनी ॥ विष्णुना तत्र वै न्यस्ता शिवपत्नी नृपोत्तम ॥ २ ॥ सा चैवाष्टभुजा रम्या मेघश्यामा मनोरमा ॥ कृष्णाम्बरधरा देवी व्याघ्रवाहनसंस्थिता ॥ ३ ॥ द्वीपिचर्मपरीधाना दिव्याभरणभूषिता ॥ घण्टात्रिशूलाक्षमालाकमण्डलुधरा शुभा ॥ ४ ॥ अलङ्कृतभुजा देवी सर्वदेवनमस्कृता ॥ धनं धान्यं सुतान्भोगान्स्वभक्तेभ्यः प्रयच्छति ॥ ५ ॥ पूजयेत्कमलैर्दिव्यैः कर्पूरागरुचन्दनैः ॥ तदुद्देशेन तत्रैव पूजयेद्द्विजसत्तमान् ॥ ६ ॥ कुमारीर्भोजयेदन्नैर्विविधैर्भक्तिभावतः ॥ धूपैर्दीपै फलैः रम्यैः पूजयेच्च सुरादिभिः ॥ ७ ॥ मांसैस्तु विविधैर्दिव्यैरथवा धान्यपिष्टजैः ॥ अन्यैश्च विविधैर्धान्यैः पायसैर्वटकैस्तथा ॥ ८ ॥ ओदनैः कृशरापूपैः पूजयेत्सुसमाहितः ॥ स्तुतिपाठेन तत्रै

को धारण किये है ॥ ४ ॥ और भूषित भुजाओंवाली वह देवी सब देवताओं से नमस्कृत है और अपने भक्तों के लिये वह धन, धान्य, पुत्र व सुखों को देती है ॥ ५ ॥ और दिव्य कमलों से व कपूर, अगुरु और चंदन से पूजै व उनके उद्देश से वहीं द्विजोत्तमों को पूजै ॥ ६ ॥ व अनेक भांति के अन्नों से भक्ति, भाव से कुमारियों को पूजै और धूप, दीप व सुन्दर फलों से और मदिरादिकों से पूजै ॥ ७ ॥ व अनेक भांति के दिव्य मांसों से व धान्य के पिसान से उपजे हुए व्यंजनों से और अनेक प्रकार के अन्य धान्यों से व पायस और वटक (बरा नामक व्यंजन) से पूजै ॥ ८ ॥ और सावधान होता हुआ मनुष्य भात व तिलौदन और पुवों से पूजै और स्तुतिपाठ

से वहाँ सुन्दर शक्ति के स्तोत्रों से जो आराधन करै ॥ ९ ॥ उस के शत्रु नाश होजाते हैं और वह सब कहीं विजयी होता है और समर, राजकुल व द्यूत में जय व मंगल को पाता है ॥ १० ॥ व हे महाराज! सौम्य व शांत जो कुलमातृका थापी गई है वह श्रीमाता प्रसिद्ध है हे भूपते! उसका माहात्म्य सुनिये ॥ ११ ॥ कि हे नृपसत्तम! वहा जो कुलमाता महाशक्ति है उस कुमारी ब्रह्मपुत्री को ब्रह्माने रक्षा के लिये किया है ॥ १२ ॥ और वह स्थानमाता नाम से श्रीमाता देवी प्रसिद्ध है और वह त्रिरूपा ब्राह्मणों की रक्षा के लिये निर्माण कीगई है ॥ १३ ॥ और कमंडलु को धारण किये वह देवी घंटा के आभूषण से भूषित है व हे राजन्! रुद्राक्ष

व शक्तिस्तोत्रैर्मनोहरैः ॥ ९ ॥ रिपवस्तस्य नश्यन्ति सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ रणे राजकुले द्यूते लभते जयमङ्गलम् ॥ १० ॥ सौम्या शान्ता महाराज स्थापिता कुलमातृका ॥ श्रीमाता सा प्रसिद्धा च माहात्म्यं शृणु भूपते ॥ ११ ॥ कुलमाता महाशक्तिस्तत्रास्ते नृपसत्तम ॥ कुमारी ब्रह्मपुत्री सा रक्षार्थं विधिना कृता ॥ १२ ॥ स्थानमाता च सा देवी श्रीमाता साभिधानतः ॥ त्रिरूपा सा द्विजातीनां निर्मिता रक्षणाय च ॥ १३ ॥ कमण्डलुधरा देवी घण्टाभरणभूषिता ॥ अक्षमालायुता राजञ्छुभा सा शुभरूपिणी ॥ १४ ॥ कुमारी चादिमाता च स्थानत्राणकरापि च ॥ दैत्यघ्नी कामदा चैव महामोहविनाशिनी ॥ १५ ॥ भक्तिगम्या च सा देवी कुमारी ब्रह्मणः सुता ॥ रक्ताम्बरधरा साधुरक्तचन्दनचर्चिता ॥ १६ ॥ रक्तमाल्या दशभुजा पञ्चवक्त्रा सुरेश्वरी ॥ चन्द्रावतंसिका माता सुरासुरनमस्कृता ॥ १७ ॥ साक्षात्स

की माला से संयुत वह उत्तम शक्ति कल्याणरूपिणी है ॥ १४ ॥ और कुमारी व आदिमाता वह स्थान की रक्षा करनेवाली है और दैत्यों को नाशनेवाली व कामदायिनी तथा महामोह को नाशनेवाली है ॥ १५ ॥ और वह भक्ति से सुलभ कुमारी देवी ब्रह्मा की कन्या लाल वसन को धारण किये व उत्तम लाल चन्दन से पूजित है ॥ १६ ॥ और लाल मालाओं को पहने दश भुजाओंवाली सुरेश्वरी देवी पांच मुखोंवाली है और चन्द्रमा का शिरोभूषण किये वह माता देवताओं व दैत्यों से नमस्कृत है ॥ १७ ॥ और साक्षात् सरस्वतीरूपिणी वह ब्रह्मा से रक्षा के लिये कीगई है और महापवित्र वह ॐकारा ब्रह्मा, विष्णु व शिव जी से बनाई गई

है ॥ १८ ॥ और ऋषियों से व सिद्ध, यक्षादिक, देवता, नाग व मनुष्यों से प्रणाम करने योग्य दोनों चरणोंवाली वह उनके लिये मन से चाहे हुए पदार्थ को देती है ॥ १९ ॥ और ब्राह्मणों के हित के लिये स्थान की रक्षा करती है और जैसे औरस पुत्रों की माता रक्षा करती है वैसेही वह उत्तम गुणों से रक्षा करती है ॥ २० ॥ और श्रीमाता कुलदेवता देवी पालन करती है व स्तुति कीहुई वह शक्ति सदैव सब उपद्रवों को नाश करती है ॥ २१ ॥ और विवाह, यज्ञोपवीत, सीमंत व शुभकर्म में श्रीमाता स्मरण से सब विघ्नों को नाश करनेवाली है ॥ २२ ॥ सब भक्तकार्यों में श्रीमाता सदैव पूजी जाती हैं और जैसे गणेश देव को पूजकर कर्म को प्रारंभ

रस्वतीरूपा रक्षार्थं विधिना कृता ॥ ॐकारा सा महापुण्या काजेशेन विनिर्मिता ॥ १८ ॥ ऋषिभिः सिद्धयक्षादिसुरप न्नगमानवैः ॥ प्रणम्याङ्घ्रियुगा तेभ्यो ददाति मनसेप्सितम् ॥ १९ ॥ पालयन्ती च संस्थानं द्विजातीनां हिताय वै ॥ यथौरसान्सुतान्माता पालयन्तीह सद्गुणैः ॥ २० ॥ अथ पालयती देवी श्रीमाता कुलदेवता ॥ उपद्रवाणि सर्वाणि नाशयेत्सततं स्तुता ॥ २१ ॥ सर्वविघ्नोपशमनी श्रीमाता स्मरणेन हि ॥ विवाहे चोपवीते च सीमन्ते शुभकर्मणि ॥ २२ ॥ सर्वेषु भक्तकार्येषु श्रीमाता पूज्यते सदा ॥ यथा लम्बोदरं देवं पूजयित्वा समारभेत् ॥ २३ ॥ कार्यं शुभं सर्वमपि तथा श्रीमातरं नृप ॥ यत्किञ्चिद्भोजनं त्वत्र ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ॥ २४ ॥ अथवा विनिवेद्यं च क्रियते यत्परस्परम् ॥ अनिवेद्य च तां राजन्कुर्वाणो विघ्नमेष्यति ॥ २५ ॥ तस्मात्तस्यै निवेद्याथ ततः कर्म समारभेत् ॥ तद्वरेणाखिलं कर्म अविघ्नेन हि सिध्यति ॥ हेमन्ते शिशिरे प्राप्ते पूजयेद्धर्मपुत्रिकाम् ॥ २६ ॥ हेमपत्रे समालिख्य

करै ॥ २३ ॥ वैसेही हे नृप ! श्रीमाताजी को पूजकर कार्य को प्रारंभ करै और जो कुछ भोजन यहां ब्राह्मणों के लिये मनुष्य देता है ॥ २४ ॥ अथवा जो परस्पर निवेदन किया जाता है हे राजन् ! उसको न देकर कर्म करता हुआ मनुष्य विघ्न को प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ इसलिये उसके लिये निवेदन करके तदनन्तर कर्म को प्रारंभ करै और उसके वर से सब कर्म निर्विघ्नता से सिद्ध होता है और हेमंत व शिशिर प्राप्त होने पर धर्मपुत्रिका को पूजै ॥ २६ ॥ और सुवर्ण के पत्र या चांदी के पत्र में

लिखकर पूजन करावै व हे राजन् ! श्रीमाता के लिये उत्तम पादुका को निवेदन करै ॥ २७ ॥ और तिल व आमलों से मिश्रित जलों से नहाकर पवित्र होकर वस्त्रों व पुष्पों से तथा सुन्दर दुकूलों से पूजन करै ॥ २८ ॥ और उत्तम चंदन, कुंकुम व सिंदूरादिकों से लेपन करै और कपूर, अगुरु व कस्तूरी से मिले हुए कीचड़ से लेपन करै ॥ २९ ॥ और कर्णिकार व सुर्ख कर्मूल और श्वेत तथा लाल कनेर के पुष्पों से और चंपक, केतकी व दुपहरी के पुष्पों से ॥ ३० ॥ और यक्षकर्दम व संपूर्ण बिल्व-पत्रों से तथा पलाश व चमेली के पुष्पों से और उड़द से उपजे हुए बरों से व पुवा, भात, दालि व शाकसमूहों से प्रसन्न करै ॥ ३१ ॥ व धूप, दीपादिपूर्वक जगदम्बिका

राजते वाथ कारयेत् ॥ पादुकां चोत्तमां राजञ्छ्रीमातायै निवेदयेत् ॥ २७ ॥ स्नात्वा चैव शुचिर्भूत्वा तिलामलक मिश्रितैः ॥ वासोभिः सुमनोभिश्च दुकूलैः सुमनोहरैः ॥ २८ ॥ लेपयेच्चन्दनैः शुभ्रैः कुङ्कुमैः सिन्दुरादिकैः ॥ कर्पूरागुरुकस्तूरीमिश्रितैः कर्दमैस्तथा ॥ २९ ॥ कर्णिकारैश्च कह्लारैः करवीरैः सितारुणैः ॥ चम्पकैः केतकीभिश्च जपाकुसुमकैस्तथा ॥ ३० ॥ यक्षकर्दमकैश्चैव बिल्वपत्रैरखण्डितैः ॥ पालाशजातिपुष्पैश्च वटकैर्माषसम्भवैः ॥ पूपभक्तादिदालीभिस्तोषयेच्छाकसञ्चयैः ॥ ३१ ॥ धूपदीपादिपूर्वं तु पूजयेज्जगदम्बिकाम् ॥ तद्धियैव कुमारीर्वै विप्रानपि च भोजयेत् ॥ पायसैर्घृतयुक्तैश्च शर्करामिश्रितैर्नृप ॥ ३२ ॥ पक्वान्नैर्मोदकाद्यैश्च तर्पयेद्भक्तिभावतः ॥ तर्प्यमाणे द्विजैकस्मिन्सहस्रफलमश्नुते ॥ ३३ ॥ दैत्यानां घातकं स्तोत्रं वाचयेच्च पुनः पुनः ॥ एकाग्रमानसो भूत्वा स्तौति श्रीमातरं तु यः ॥ ३४ ॥ तस्य तुष्टा वरं दद्यात्स्नापिता पूजिता स्तुता ॥ अनिष्टानि च सर्वाणि नाशयेद्धर्मपुत्रिका ॥ ३५ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रा

जी को पूजै व हे नृप ! उन्हीं की बुद्धि से कुमारी व ब्राह्मणों को भी घृतसंयुत व शर्करा से मिश्रित खीर से भोजन करावै ॥ ३२ ॥ और पक्वान्न व लड्डू आदिकों से भक्तिभाव से तृप्त करै तो एक ब्राह्मण को तृप्त करने से मनुष्य हज़ार ब्राह्मणों के फल को पाता है ॥ ३३ ॥ और दैत्यों के घातक (सप्तशती) स्तोत्र को बार २ पाठ करावै और एकाग्रमन होकर जो श्रीमाताजी की स्तुति करता है ॥ ३४ ॥ उसको स्नान, पूजन व स्तुति कीहुई प्रसन्न देवी वर देती हैं और धर्म की कन्या वह सब अरिष्टों को नाश करती है ॥ ३५ ॥ पुत्रहीन मनुष्य पुत्रों को पाता है व निर्धनी धनी होता है व राज्य को चाहनेवाला मनुष्य राज्य को पाता है और विद्यार्थी उस विद्या

को पाता है ॥ ३६ ॥ व लक्ष्मी को चाहनेवाला मनुष्य लक्ष्मी को पाता है व स्त्री की इच्छा करनेवाला पुरुष उस स्त्री को पाता है सरस्वती जी के प्रसाद से इस सब को मनुष्य पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३७ ॥ और सरस्वती जी के प्रसाद से पुरुष अन्त में जो देवताओं को भी दुर्लभ है उस सनातन स्थान को पाता है ॥ ३८॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीमातामाहात्म्यवर्णनंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । मातंगीकर चरित अरु कर्णाटक वृत्तान्त । अठरहवें अध्यायमें सोइ चरित सुखदान्त ॥ शिवजी बोले कि हे महाप्राज्ञ, स्कन्द ! सुनिये जोकि उसने अद्भुत किया है धर्मारण्य में कर्णाटक नामक महादुष्ट दैत्य था ॥ १ ॥ वह सदैव स्त्री पुरुषों के समीप आकर विघ्न करता था उसको देखकर मनुष्य सदैव उसके भय से भगता था ॥ २ ॥ और स्थान को छोड़कर सब वणिज् व ब्राह्मणादिक चले गये व हे पुत्र ! इस श्रीमाता ने हथिनी का रूप धरकर ॥ ३ ॥ कर्णाटक नामक द्विजघाती राक्षस को मारडाला तब वे सब ब्राह्मण उस कर्म से प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ व भक्ति में तत्पर वणिजों ने उनकी स्तुति व पूजन किया और प्रतिवर्ष में वे उत्तम श्रीमाता

न्निर्धनो धनवान्भवेत् ॥ राज्यार्थी लभते राज्यं विद्यार्थी लभते च ताम् ॥ ३६ ॥ श्रियोर्थी लभते लक्ष्मीं भार्यार्थी लभते च ताम् ॥ प्रसादाच्च सरस्वत्या लभते नात्र संशयः॥ ३७ ॥ अन्ते च परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥ प्राप्नोति पुरुषो नित्यं सरस्वत्याः प्रसादतः ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येश्रीमातामाहात्म्यवर्णनन्नामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

रुद्र उवाच ॥ शृणु स्कन्द महाप्राज्ञ ह्यद्भुतं यत्कृतं तया ॥ धर्मारण्ये महादुष्टो दैत्यः कर्णाटकाभिधः ॥ १ ॥ सततं हि समागत्य दम्पत्योर्विघ्नमाचरत ॥ तं दृष्ट्वा तद्भयाल्लोकः प्रदुद्राव निरन्तरम् ॥ २ ॥ त्यक्त्वा स्थानं गताः सर्वे वणिजो वाडवादयः ॥ मातङ्गीरूपमास्थाय श्रीमात्रा त्वनया सुत ॥ ३ ॥ हतः कर्णाटकोनाम राक्षसो द्विजघातकः ॥ तदा सर्वेऽपि वै विप्रा हृष्टास्ते तेन कर्मणा ॥ ४॥ स्तुवन्ति पूजयन्ति स्म वणिजो भक्तितत्पराः ॥ वर्षे वर्षे प्रकु

का पूजन करते हैं ॥ ५ ॥ सब उत्तम कर्मों में जो पहले उसको पूजता है हे पुत्र ! तब से लगाकर वह विघ्न को नहीं देखता है ॥ ६ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि यह दुष्ट महादैत्य कौन है व किस वंश में पैदा हुआ है व हे सुव्रत, तात ! उसने क्या क्या कर्म किया है उस सब को कहिये ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन् ! सुनिये मैं कर्णाटक का कर्म कहता हूं जोकि देवताओं व दानवों को दुस्सह था और बल से गर्वित था ॥ ८ ॥ वह दुष्टकर्मी व दुराचारी और बड़ी दाढ़ों व बड़ी भुजाओंवाला था और सब लोकों को जीतकर वह त्रिलोक में जाता आता था ॥ ९ ॥ हे नृप ! जहां देवता व ऋषिलोग थे वहां जाकर वह महादैत्य छल से या बल से विघ्न

र्वन्ति श्रीमातापूजनं शुभम् ॥ ५ ॥ शुभकार्येषु सर्वेषु प्रथमं पूजयेत्तु ताम् ॥ न स विघ्नं प्रपश्येत तदाप्रभृति पुत्रक ॥ ६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कोऽसौ दुष्टो महादैत्यः कस्मिन्वंशे समुद्भवः ॥ किं किं तेन कृतं तात सर्वं कथय सुव्रत ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कर्णाटकविचेष्टितम् ॥ देवानां दानवानां यो दुःसहो वीर्यदर्पितः ॥ ८ ॥ दुष्टकर्मा दुराचारो महादंष्ट्रो महाभुजः ॥ जित्वा च सकलाँल्लोकांस्त्रैलोक्ये च गतागतः ॥ ९ ॥ यत्र देवाश्च ऋषयस्तत्र गत्वा महासुरः ॥ छद्मना वा बलेनैव विघ्नम्प्रकुरुते नृप ॥ १० ॥ न वेदाध्ययनं लोके भवेत्तस्य भयेन च ॥ कुर्वते वाडवा देवा न च सन्ध्याद्युपासनम् ॥ ११ ॥ न क्रतुर्वर्तते तत्र न चैव सुरपूजनम् ॥ देश देशे च सर्वत्र ग्रामे ग्रामे पुरे पुरे ॥ १२ ॥ तीर्थे तीर्थे च सर्वत्र विघ्नं प्रकुरुतेऽसुरः ॥ परन्तु शक्यते नैव धर्मारण्ये प्रवेशितुम् ॥ १३ ॥ भयाच्छक्त्याश्च श्रीमातुर्दानवो विक्लवस्तदा ॥ केनोपायेन तत्रैव गम्यते त्विति चिन्तयन् ॥ १४ ॥ विघ्नं करिष्ये

करता था ॥ १० ॥ उसके भय से संसार में वेदपाठ नहीं होता था और ब्राह्मण देवता संध्यादिकों की उपासना नहीं करते थे ॥ ११ ॥ और वहां न यज्ञ होता था न देवपूजन होता था और देश देश व ग्राम ग्राम और पुर पुर में सब कहीं ॥ १२ ॥ और प्रत्येक तीर्थ में वह दैत्य सर्वत्र विघ्न करताथा परन्तु धर्मारण्य में नहीं पैठसक्ता था ॥ १३ ॥ तब श्रीमाता शक्ति के भयसे वह दानव विकल हुआ और यह चिन्तन करता रहा कि किस यत्न से वहां जाना होगा ॥ १४ ॥ और यज्ञ में कर्मों के अधि-

छाता व वेदाध्ययन करनेवाले महात्मा ब्राह्मणों का मैं किस प्रकार विघ्न करूं ॥ १५ ॥ दूर से वेदपाठ से उपजे हुए शब्द को सुनकर वह दानव वज्र से मारे हुए हाथी की नाईं व्यथित होता था ॥ १६ ॥ और कोप से दांतों से दांतों को घिसता हुआ वह श्वासों को छोड़ता था और दोनों हाथों को पीसता व अपने ओठों को काटता हुआ वह ॥ १७ ॥ हे मारिष ! इधर उधर उन्मत्त की नाईं घूमता था जैसे सन्निपात के दोष से मनुष्य भयंकर होता है ॥ १८ ॥ वैसेही धर्मारण्य के समीप में प्राप्त वह दानव भयंकर था और भय से संयुत वह दूरही से घूमता व भगता था ॥ १९ ॥ और ब्राह्मणों के विवाहसमय में ब्राह्मण का रूप धरकर वह दुर्धर्ष-दानव वहां जाकर

हि कथं ब्राह्मणानां महात्मनाम् ॥ वेदाध्ययनकर्तॄणां यज्ञे कर्माधितिष्ठताम् ॥ १५ ॥ वेदाध्ययनजं शब्दं श्रुत्वा दूरात्स दानवः ॥ विव्यथे स यथा राजन्वज्राहत इव द्विपः ॥ १६ ॥ निःश्वासान्मुमुचे रोषाद्दन्तैर्दन्तांश्च घर्षयन् ॥ दशमानो निजावोष्ठौ पेषयंश्च करावुभौ ॥ १७ ॥ उन्मत्तवद्विचरत इतश्चेतश्च मारिष ॥ सन्निपातस्य दोषेण यथा भवति मानवः ॥ १८ ॥ तथैव दानवो घोरो धर्मारण्यसमीपगः ॥ भ्रमते द्रवते चैव दूरादेव भयान्वितः ॥ १९ ॥ विवाहकाले विप्राणां रूपं कृत्वा द्विजन्मनः ॥ तत्रागत्य दुराधर्षो नीत्वा दाम्पत्यमुत्तमम् ॥ २० ॥ उत्पपात मही पृष्ठाद्गगने सोऽसुराधमः ॥ स्वयं च रमते पापो द्वेषाज्जातिस्वभावतः ॥ २१ ॥ एवं च बहुशः सोऽथ धर्मारण्याच्च दम्पतीं ॥ गृहीत्वा कुरुते पापं देवानामपि दुःसहम् ॥ २२ ॥ विघ्नं करोति दुष्टोऽसौ दम्पत्योः सततं भुवि ॥ महाघोरतरं कर्म कुर्वंस्तस्मिन्पुरे वरे ॥ २३ ॥ तत्रोद्विग्ना द्विजाः सर्वे पलायन्ते दिशो दश ॥ गताः सर्वे भूमिदेवास्त्यक्त्वा स्थानं

उत्तम स्त्री, पुरुषों को लेकर ॥ २० ॥ वह नीच दानव पृथ्वी से आकाश में उड़जाता था और वैर से व जाति के स्वभाव से वह पापी आपही रमण करता था ॥ २१ ॥ इस प्रकार वह धर्मारण्य से बहुत से स्त्री पुरुषों को पकड़कर देवताओं के भी दुस्सह पाप को करता था ॥ २२ ॥ और सदैव पृथ्वी में यह दुष्ट स्त्री पुरुषों का विघ्न करता था और उस श्रेष्ठ नगर में बहुतही भयंकर कर्म करता था ॥ २३ ॥ और दुःखित होते हुए सब ब्राह्मण वहां भगने लगे और सब ब्राह्मण सुन्दर स्थान को छोड़कर

चले गये ॥ २४ ॥ व जहां जहा महातीर्थ था वहां वहां ब्राह्मण चले गये हे नृपोत्तम ! उस समय वह नगर उजाड़ होगया ॥ २५ ॥ और वहां वेदपाठ व यज्ञ नहीं होता था और कर्णाट के भयसे विकल मनुष्य वहां नहीं टिकते थे ॥ २६ ॥ हे महायशाः, राजन् ! तदनन्तर यथायोग्य रुम्मति कहने के लिये सब ब्राह्मण और वणिज् एक ठिकाने मिले ॥ २७ ॥ और श्रेष्ठ ब्राह्मणलोग कर्णाट के मारने के यत्न की सम्मति करने लगे और उनके विचार करने पर दैव से आकाशवाणी उत्पन्न हुई ॥ २८ ॥ कि सब दैत्यों को नाश करनेवाली व सब उपद्रवों को नाशनेवाली तथा सब दुःखों को हरनेवाली श्रीमाता को आराधन करो ॥ २९ ॥ उसको

मनोरमम् ॥ २४ ॥ यत्र यत्र महत्तीर्थं तत्र तत्र गता द्विजाः ॥ उद्वसं तत्पुरं जातं तस्मिन्काले नृपोत्तम ॥ २५ ॥ न वेदाध्ययनं तत्र न च यज्ञः प्रवर्तते ॥ मनुजास्तत्र तिष्ठन्ति न कर्णाटभयार्दिताः ॥ २६ ॥ द्विजाः सर्वे ततो राजन्वणिजश्च महायशाः ॥ एकत्र मिलिताः सर्वे वक्तुं मन्त्रं यथोचितम् ॥ २७ ॥ कर्णाटस्य वधोपायं मन्त्रयन्ति द्विजर्षभाः ॥ विचार्यमाणे तैर्दैवाद्वाग्जाता चाशरीरिणी ॥ २८ ॥ आराधयत श्रीमातां सर्वदुःखापहारिणीम् ॥ सर्वदैत्यक्षयकरीं सर्वोपद्रवनाशनीम् ॥ २९ ॥ तच्छ्रुत्वा वाडवाः सर्वे हर्षव्याकुललोचनाः ॥ श्रीमातां तु समागत्य गृहीत्वा बलिमुत्तमम् ॥ ३० ॥ मधु क्षीरं दधि घृतं शर्करा पञ्चधारया ॥ धूपं दीपं तथा चैव चन्दनं कुसुमानि च ॥ ३१ ॥ फलानि विविधान्येव गृहीत्वा वाडवा नृप ॥ धान्यं तु विविधं राजन्भक्तापूपा घृताचिताः ॥ ३२ ॥ कुल्माषा वटकाश्चैव पायसं घृतमिश्रितम् ॥ सोहालिका दीपिकाश्च सार्द्राश्च वटकास्तथा ॥ ३३ ॥ राजिकाभिश्च संलिप्ता नवच्छिद्रसमन्विताः ॥

सुनकर सब ब्राह्मणलोग हर्ष से विकल नयनोंवाले हुए और श्रीमाता के समीप जाकर व उत्तम बलि को लेकर ॥ ३० ॥ शहद, दूध, दधि, घी, शक्कर इस पंचधारा समेत व धूप, दीप, चन्दन और पुष्पों को लेकर ॥ ३१ ॥ व हे राजन् ! अनेक प्रकार के फलों को लेकर ब्राह्मण लोग अनेक प्रकार का अन्न व घृत से पूर्ण भात व पुवा ॥ ३२ ॥ और कुल्माष (खिचड़ी), बरा व घी से मिली हुई खीर, सोहारी, दीपिका और भीगे बरा ॥ ३३ ॥ जोकि राई से संलिप्त व नव छिद्रों से संयुत तथा

चंद्रबिम्बके समान गोल वहां बनायेगये थे ॥ ३४ ॥ पंचामृत व सुगंधित जलसे नहवाकर उन ब्राह्मणोंने धूप, दीप व नैवेद्यों से भगवती को प्रसन्न किया ॥ ३५ ॥ हे राजन्! कपूर समेत नीराजन पुष्प, दीप व उत्तम चंदनों से सब उपद्रवों को नाशनेवाली श्रीमाता प्रसन्न कराई गई ॥ ३६ ॥ संसार की माता वे सौम्य और वरदायिनी ब्राह्मी श्रीमाता तीन रूपों को धरकर त्रिलोक को पालन करती हैं ॥ ३७ ॥ व हे धर्मात्मन्! त्रयीरूप से वे भगवतीजी सत्यमंदिर की रक्षा करती हैं जितेन्द्रिय व चित्त को जीते हुए जो द्विजोत्तम लोग इकट्ठा हुए ॥ ३८ ॥ उन सबोंने माता को पूजन किया व चंदनादिक से प्रसन्न किया और उन्होंने ब्रह्मकन्या के आगे स्थित होकर

चन्द्रबिम्बप्रतीकाशा मण्डकास्तत्र कल्पिताः ॥ ३४ ॥ पञ्चामृतेन स्नपनं कृत्वा गन्धोदकेन च ॥ धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यै स्तोषयांमासुरीश्वरीम् ॥ ३५ ॥ नीराजनैः सकर्पूरैः पुष्पैर्दीपैः सुचन्दनैः ॥ श्रीमाता तोषिता राजन्सर्वोपद्रवनाशनी ॥ ३६ ॥ श्रीमाता च जगन्माता ब्राह्मी सौम्या वरप्रदा ॥ रूपत्रयं समास्थाय पालयेत्सा जगत्त्रयम् ॥ ३७ ॥ त्रयीरूपेण धर्मात्मन्रक्षते सत्यमन्दिरम् ॥ जितेन्द्रिया जितात्मानो मिलितास्ते द्विजोत्तमाः ॥ ३८ ॥ तैः सर्वैरर्चिता माता चन्दनाद्येन तोषिता ॥ स्तुतिमारेभिरे तत्र वाङ्मनःकायकर्मभिः ॥ एकचित्तेन भावेन ब्रह्मपुत्र्याः पुरः स्थिताः ॥ ३९ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ नमस्ते ब्रह्मपुत्र्यास्तु नमस्ते ब्रह्मचारिणि ॥ नमस्ते जगतां मातर्नमस्ते सर्वगे सदा ॥ ४० ॥ क्षुन्निद्रा त्वं तृषा त्वं च क्रोधतन्द्रादयस्तथा ॥ त्वं शान्तिस्त्वं रतिश्चैव त्वं जया विजया तथा ॥ ४१ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यै स्त्वं प्रपन्ना सुरेश्वरि ॥ सावित्री श्रीरुमा चैव त्वं च माता व्यवस्थिता ॥ ४२ ॥ ब्रह्मविष्णुसुरेशानास्त्वदाधारे

भक्ति से सावधान चित्त करके वचन, मन, शरीर व कर्म से स्तुति करनेका प्रारंभ किया ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि आप ब्रह्मकन्या को प्रणाम है व हे ब्रह्मचारिणि! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे लोकों की माता! तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे सर्वगे! तुम्हारे लिये सदैव नमस्कार है ॥ ४० ॥ क्षुधा व निद्रा तुम्हींहो और तृषा (प्यास) तुम्हीं हो व क्रोध और आलस्यादिक तुम्हीं हो और तुम शांति हो व तुम्हीं रति हो और जया व विजया तुम्हीं हो ॥ ४१ ॥ हे सुरेश्वरि! ब्रह्मा, विष्णु व महेशादिक तुम्हारी शरण में प्राप्त होते हैं और सावित्री, लक्ष्मी, उमा तुम्हीं हो व माता तुम्हीं हो ॥ ४२ ॥ और ब्रह्मा, विष्णु व इन्द्र तुम्हारे ही आधार में स्थित हैं हे धृति, पुष्टि-

स्वरूपिणि, जगन्मातः ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ४३ ॥ हे ज्योतिःस्वरूपिणि ! रति, क्रोधा, महामाया व छाया तुम्हीं हो व हे देवि ! सदैव कार्य व कारण को देने
वाली तुम सृष्टि, पालन व संहार करनेवाली हो ॥ ४४ ॥ हे महाविद्ये, महाज्ञानमये, अनघे ! पृथ्वी, अग्नि, पवन, जल व आकाश तुम्हीं हो तुम्हारे लिये प्रणाम
है ॥ ४५ ॥ हे महाद्युते ! देवरूपिणी ह्रींकारी तुम्हीं हो व क्लींकारी तुम्हीं हो और आदि, मध्य व अन्तवाली तुम्हीं हो हम सबों की इस महाभयसे रक्षा करिये ॥ ४६ ॥
यह महापापी दुष्टात्मा दैत्य इस समय बाधा करता है रक्षारूपिणी तुम एकही हमलोगों की कुलदेवता हो ॥ ४७ ॥ हे महादेवि ! रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये हे महे-

ठ्यवस्थिताः ॥ नमस्तुभ्यं जगन्मातर्धृतिपुष्टिस्वरूपिणि ॥ ४३ ॥ रतिः क्रोधा महामाया छाया ज्योतिःस्वरूपिणि ॥
सृष्टिस्थित्यन्तकृद्देवि कार्यकारणदा सदा ॥ ४४ ॥ धरा तेजस्तथा वायुः सलिलाकाशमेव च ॥ नमस्तेऽस्तु महाविद्ये
महाज्ञानमयेऽनघे ॥ ४५ ॥ ह्रींकारी देवरूपा त्वं क्लींकारी त्वं महाद्युते ॥ आदिमध्यावसाना त्वं त्राहि चास्मान्महा
भयात् ॥ ४६ ॥ महापापो हि दुष्टात्मा दैत्योऽयं बाधतेऽधुना ॥ त्राणरूपा त्वमेका च अस्माकं कुलदेवता ॥ ४७ ॥
त्राहि त्राहि महादेवि रक्ष रक्ष महेश्वरि ॥ हन हन दानवं दुष्टं द्विजानां विघ्नकारकम् ॥ ४८ ॥ एवं स्तुता तदा देवी
महामाया द्विजन्मभिः ॥ कर्णाटस्य वधार्थाय द्विजातीनांहिताय च ॥ प्रत्यक्षा साऽभवत्तत्र वरं ब्रूहीत्युवाच ह ॥ ४९ ॥
श्रीमातोवाच ॥ केन वै त्रासिता विप्राः केन वोद्वेजिताः पुनः ॥ तस्याहं कुपिता विप्रा नयिष्ये यमसादनम् ॥ ५० ॥
क्षीणायुषं नरं वित्त येन यूयं निपीडिताः ॥ ददामि वो द्विजातिभ्यो यथेष्टं वक्तुमर्हथ ॥ ५१ ॥ भक्त्या हि भवतां

श्वरि ! रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ब्राह्मणों का विघ्न करनेवाले दुष्ट दानव को मारिये मारिये ॥ ४८ ॥ उस समय ब्राह्मणों से इस प्रकार स्तुति कीहुई महामाया
देवी कर्णाट के वध के लिये व ब्राह्मणों के हित के लिये वहां प्रत्यक्ष हुई और वरदान मांगिये यह बोली ॥ ४९ ॥ श्रीमाता बोली कि हे ब्राह्मणो ! किससे तुम भीत हुए
हो व किसने तुम लोगों को दुःख दिया है हे ब्राह्मणो ! क्रोधित होकर मैं उसको यममन्दिर को पठाऊं ॥ ५० ॥ जिसने तुमलोगों को पीडित किया है उस मनुष्य
को क्षीण आयुर्बलवाला जानिये मैं आप तुमलोगों ब्राह्मणों को उसको दूंगी जैसा प्रिय हो वैसा वर मांगिये ॥ ५१ ॥ हे ब्राह्मणो ! आपलोगों की भक्ति से मैं उसको

करूंगी इस में सन्देह नहीं है ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणलोग बोले कि कर्णाट नामक महारौद्र दानव अहंकार से गर्वित है और वह सत्यमंदिर में बसनेवाले लोगों का सदैव विघ्न करता है ॥ ५३ ॥ हे महामते ! वह द्वेषी दैत्य सत्यशील व वेदपाठ में परायण ब्राह्मणों से सदैव द्वेष से वैर करता है और वेदों से वैर करनेवाला व दुष्ट है हे महाद्युते ! इसको मारिये ॥ ५४ ॥ व्यासजी बोले कि बहुत अच्छा यह कहकर वह कुलदेवता देवी हँसकर भक्तों की रक्षा के लिये इसके मारने का उपाय विचार कर ॥ ५५ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! श्रीमाता क्रोध से संयुत हुई और क्रोध से भौंह को लाल नेत्रांतभागवाले लोचनोंवाली करके ॥ ५६ ॥ बड़े क्रोध से संयुत हुई

विप्राः करिष्ये नात्र संशयः ॥ ५२ ॥ द्विजा ऊचुः ॥ कर्णाटाख्यो महारौद्रो दानवो मदगर्वितः ॥ विघ्नं प्रकुरुते नित्यं सत्यमन्दिरवासिनाम् ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणान्सत्यशीलांश्च वेदाध्ययनतत्परान् ॥ द्वेषाद्द्वेष्टि द्वेषणस्तान्नित्यमेव महामते ॥ वेदविद्वेषणो दुष्टो घातयैनं महाद्युते ॥ ५४ ॥ व्यास उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा तु सा देवी प्रहस्य कुलदेवता ॥ वधोपायं विचिन्त्यास्य भक्तानां रक्षणाय वै ॥ ५५ ॥ ततः कोपपरा जाता श्रीमाता नृपसत्तम ॥ कोपेन भृकुटीं कृत्वा रक्तनेत्रान्तलोचनाम् ॥ ५६ ॥ कोपेन महताऽऽविष्टा वमन्ती पावकं तथा ॥ महाज्वाला मुखान्नेत्रान्नासाकर्णाच्च भारत ॥ ५७ ॥ तत्तेजसा समुद्भूता मातङ्गी कामरूपिणी ॥ काली करालवदना दुर्दर्शवदनोज्ज्वला ॥ ५८ ॥ रक्तमाल्याम्बरधरा मदाघूर्णितलोचना ॥ न्यग्रोधस्य समीपे सा श्रीमाता संश्रिता तदा ॥ ५९ ॥ अष्टादशभुजा सा तु शुभा माता सुशोभना ॥ धनुर्बाणधरा देवी खड्गखेटकधारिणी ॥ ६० ॥ कुठारं क्षुरिकां बिभ्रत्त्रिशूलं पानपात्रकम् ॥ गदां

व अग्नि को मुख से उगिलने लगी व हे भारत ! मुख से नेत्र से व नासिका और कर्ण से महाज्वलित हुई ॥ ५७ ॥ उसके तेज से कामरूपिणी मातंगी उत्पन्न हुई जो कि काली व करालमुखी और दुःख से देखने योग्य मुख से उज्ज्वल थी ॥ ५८ ॥ और लाल माला व वसनों को धारण किये तथा मद से घूर्णित नेत्रोंवाली थी उस समय वह श्रीमाता बरगद के समीप स्थित हुई ॥ ५९ ॥ और अठारह भुजाओंवाली वह अति उत्तम माता धनुष बाण को धारनेवाली व तलवार तथा खेटक अस्त्र को धारनेवाली थी ॥ ६० ॥ और वह कुठार, छुरी, त्रिशूल व मदिरा पीनेके पात्रको लिये थी और गदा, सर्प, परिघ, धनुष व फँसरी को धारण किये

थीं ॥ ६१ ॥ व हे राजन् ! रुद्राक्ष की माला को धारनेवाली वह मदिरा के घट को लिये थी और शक्ति व उग्र मुशल तथा कर्तरी व खप्पर को लिये थी ॥ ६२ ॥ और काटोंसे संयुत बदरी को वह बड़ेभारी मुखवाली देवी लिये थी हे नृपोत्तम ! वहां कर्णाट दानव के साथ मातंगी का रोमों को खड़ा करनेवाला बड़ा युद्ध हुआ ॥६३।६४॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे मारिष, धर्मज्ञ ! कैसे युद्ध हुआ है व कैसे निवृत्त हुआ और किसने जीता है उसको मुझ से कहिये ॥ ६५ ॥ व्यासजी बोले कि हे राजेंद्र ! दैत्य के युद्धमें एक समय जो हुआ है उसको सुनिये मैं उस सब को शीघ्रही कहता हूं कि जिस प्रकार पहले हुआ है ॥ ६६ ॥ हे नृपोत्तम ! जिन ब्राह्मणों व वणिजों की स्त्रियां

सर्पं च परिघं पिनाकं चैव पाशकम् ॥ ६१ ॥ अक्षमालाधरा राजन्मद्यकुम्भानुधारिणी ॥ शक्तिं च मुशलं चोग्रं कर्त्तरीं खर्परं तथा ॥ ६२ ॥ कण्टकाढ्यां च बदरीं बिभ्रती तु महानना ॥ तत्राभवन्महायुद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ ६३ ॥ मातङ्ग्याः सह कर्णाटदानवेन नृपोत्तम ॥ ६४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथं युद्धं समभवत्कथं चैवापवर्तत ॥ जितं केनैव धर्मज्ञ तन्ममाचक्ष्व मारिष ॥ ६५ ॥ व्यास उवाच ॥ एकदा शृणु राजेन्द्र यज्जातं दैत्यसङ्गरे ॥ तत्सर्वं कथयाम्याशु यथावृत्तं हि तत्पुरा ॥ ६६ ॥ प्रणष्टयोषा ये विप्रा वणिजश्चैव भारत ॥ चैत्रमासे तु सम्प्राप्ते धर्मारण्ये नृपोत्तम ॥ ६७ ॥ गौरीमुद्वाहयामासुर्विप्रास्ते संशितव्रताः ॥ स्वस्थानं सुशुभं ज्ञात्वा तीर्थराजं तथोत्तमम् ॥ ६८ ॥ विवाहं तत्र कुर्वन्तो मिलितास्ते द्विजोत्तमाः ॥ कोटिकन्याकुलं तत्र एकत्रासीन्महोत्सवे ॥ धर्मारण्ये महाप्राज्ञ सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ६९ ॥ चतुर्थ्यामपररात्रेऽभ्यन्तरतोऽग्निमादधुः ॥ आसनं ब्रह्मणे दत्त्वा अग्निं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ७० ॥

नष्ट होगई थीं चैत्र महीना प्राप्त होनेपर धर्मारण्य में ॥ ६७ ॥ उन तीक्ष्ण व्रतोंवाले ब्राह्मणों ने उत्तम तीर्थराज व अपने स्थान को शुभ जानकर गौरी कन्याका विवाह किया ॥ ६८ ॥ और हे महाप्राज्ञ ! वहां विवाह करते हुए वे द्विजोत्तम मिले और उस बड़े भारी उत्सव में धर्मारण्य में करोड़ कन्याओं का गण इकट्ठा हुआ यह मैं सत्य सत्य कहता हूं ॥ ६९ ॥ और अन्य रात्रि में चौथि को उन्होंने भीतर अग्न्याधान किया व ब्रह्मा के लिये आसन को देकर तथा अग्नि की प्रदक्षिणाकर ॥ ७० ॥

उस समय स्थालीपाक व चार हाथ की उत्तम वेदियों को करके कलश समेत व नागपाश से संयुत किया ॥ ७१ ॥ तदनन्तर ब्राह्मणलोग उत्तम वेदमंत्र से आमंत्रण करनेलगे व चलते हुए स्त्री पुरुषों को यथायोग्य बिठालकर ॥ ७२ ॥ वहा ब्रह्मा समेत वे ब्राह्मणलोग प्रसन्न हुए और ॐकार स्वर से शब्दायमान वेदध्वनि करने लगे ॥ ७३ ॥ व उस बड़े भारी शब्द से समस्त आकाश पूर्ण होगया और ब्राह्मणों से कही हुई उस वेदध्वनि को सुनकर भयंकर दानव ॥ ७४ ॥ सेना समेत वह निर्बुद्धि शीघ्रही आसन से ऊपर उछला और जो अन्य सब सेवक थे दौड़ते हुए उन से उसने कहा ॥ ७५ ॥ कि सुनिये यह ब्राह्मणों का शब्द कहां उत्पन्न हुआ है उस

स्थालीपाकं च कृत्वाथ कृत्वा वेदीः शुभास्तदा ॥ चतुर्हस्ताः सकलशा नागपाशसमन्विताः ॥ ७१ ॥ वेदमन्त्रेण शुभ्रेण मन्त्रयन्ते ततो द्विजाः ॥ चरतां दम्पतीनां हि परिवेश्य यथोचितम् ॥ ७२ ॥ ब्रह्मणा सहितास्तत्र वाडवास्ते सुहर्षिताः ॥ कुर्वते वेदनिर्घोषं तारस्वरनिनादितम् ॥ ७३ ॥ तेन शब्देन महता कृत्स्नमापूरितं नभः ॥ तां श्रुत्वा दानवो घोरो वेदध्वनिं द्विजेरितम् ॥ ७४ ॥ उत्पपातासनात्तूर्णं ससैन्यो गतचेतनः ॥ धावतः सर्वभृत्यांस्तु ये चान्ये तानुवाच सः ॥ ७५ ॥ श्रूयतां कुत्र शब्दोऽयं वाडवानां समुत्थितः ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दैतेयाः सत्वरं ययुः ॥ ७६ ॥ विभ्रान्तचेतसः सर्वे इतश्चेतश्च धाविताः ॥ धर्मारण्ये गताः केचित्तत्र दृष्टा द्विजातयः ॥ ७७ ॥ उद्गिरन्तो हि निगमान्विवाहसमये नृप ॥ सर्वं निवेदयामासुः कर्णाटाय दुरात्मने ॥ ७८ ॥ तच्छ्रुत्वा रक्तताम्राक्षो द्विजद्विट् कोपपूरितः ॥ अभ्यधावन्महाभाग यत्र ते दम्पती नृप ॥ ७९ ॥ खमाश्रित्य तदा दैत्यमायां कुर्वन्स राक्षसः ॥ अहरद्दम्पती राजन्स

के उस वचन को सुनकर दैत्यलोग शीघ्रही गये ॥ ७६ ॥ और भ्रमितचित्तवाले सब इधर उधर दौड़े कोई वहां धर्मारण्यमें गये और उन्होंने ब्राह्मणोंको देखा ॥ ७७ ॥ कि हे नृप ! विवाह के समय में ब्राह्मणलोग वेदों को उच्चारण करते हैं इस सब वृत्तान्त को उन्होंने कर्णाटक दुष्ट से कहा ॥ ७८ ॥ उसको सुनकर क्रोध से लाल लोचनोंवाला द्विजवैरी वह कर्णाटक क्रोध से पूर्ण होगया व हे नृप ! वहां दौड़ा जहां कि वे स्त्री पुरुष थे ॥ ७९ ॥ तब हे राजन् ! आकाश में स्थित होकर दैत्यों

की माया करता हुआ वह राक्षस सब अलंकारों से संयुत स्त्री, पुरुषों को हरता भया ॥ ८० ॥ तदनन्तर बुम्बा शब्द करतेहुए वे सब ब्राह्मण भुवनेश्वरीजी के समीप गये और रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये यह बोले ॥ ८१ ॥ उसको सुनकर जगदम्बिका भुवनेश्वरी मातंगीजी उत्तम त्रिशूल को धारणकर सिंहनाद करतीहुई आई ॥ ८२ ॥ तदनन्तर देवी व कर्णाट का युद्ध वर्तमान हुआ और ऋषियों के देखते हुए व वणिजों तथा ब्राह्मणों के देखते हुए वहा ॥ ८३ ॥ रोमों को खड़ा करनेवाला बड़ाभारी युद्ध हुआ और मातंगी ने मद से विह्वल शत्रुको अस्त्रोंसे भेदन किया ॥ ८४ ॥ तदनन्तर उस मातंगी ने एक बाण से उस दैत्य के भी वक्षस्थल में मारा और त्रिशूल से

र्वालङ्कारसंयुतान् ॥ ८० ॥ ततस्ते वाडवाः सर्वे सङ्गता भुवनेश्वरीम् ॥ बुम्बारवं प्रकुर्वाणास्त्राहि त्राहीति चोचिरे ॥ ८१ ॥ तच्छ्रुत्वा विश्वजननी मातङ्गी भुवनेश्वरी ॥ सिंहनादं प्रकुर्वाणा त्रिशूलवरधारिणी ॥ ८२ ॥ ततः प्रववृते युद्धं देवीकर्णाटयोस्तथा ॥ ऋषीणां पश्यतां तत्र वणिजां च द्विजन्मनाम् ॥ ८३ ॥ पश्यतामभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ अस्त्रैश्चिच्छेद मातङ्गी मदविह्वलितं रिपुम् ॥ ८४ ॥ सोऽपि दैत्यस्ततस्तस्या बाणेनैकेन वक्षसि ॥ असावपि त्रिशूलेन घातितः कश्मलं गतः ॥ ८५ ॥ मुष्टिभिश्चैव तां देवीं सोऽपि ताडयतेऽसुरः ॥ सोऽपि देव्या ततः शीघ्रं नागपाशेन यन्त्रितः ॥ ८६ ॥ ततस्तेनैव दैत्येन गरुडास्त्रं समादधे ॥ तया नारायणास्त्रं तु सन्दधे शरपातनम् ॥ ८७ ॥ एवमन्योन्यमाकृष्य युध्यमानौ जयेच्छया ॥ ततः परिघमादाय आयसं दैत्यपुङ्गवः ॥ ८८ ॥ मातङ्गीं प्रति संक्रुद्धो जघान परवीरहा ॥ देवी क्रुद्धा मुष्टिपातैश्चूर्णयामास दानवम् ॥ ८९ ॥ तेन मुष्टिप्रहारेण मूर्च्छितो निपपात ह ॥ ततस्तु सहसो

मारा हुआ यह भी दुःख को प्राप्त हुआ ॥ ८५ ॥ और वह भी दैत्य उस देवी को घूंसों से मारा तदनन्तर देवीजी ने शीघ्रही उसको नागपाश से बाँध लिया ॥ ८६ ॥ तदनन्तर उस दैत्य ने गरुडास्त्र को धारण किया और उसने बाणों को गिरानेवाले नारायणास्त्र को धारण किया ॥ ८७ ॥ इस प्रकार जीत की इच्छा से परस्पर खींच कर दोनों युद्ध करनेलगे तदनन्तर लोहे का परिघ अस्त्र लेकर वह श्रेष्ठ दानव ॥ ८८ ॥ जोकि वीर शत्रुवों का नाशक था उसने क्रोधित होकर मातंगी को मारा और क्रोधित होती हुई देवीजी ने घूंसों से दानव को मारा ॥ ८९ ॥ और उस घूंसे के मारने से वह मूर्च्छित होकर गिरपड़ा तदनन्तर यकायक उठकर हर्ष से हाथ में शक्ति को

लेकर ॥ ९० ॥ दानव ने उस देवीके ऊपर शतघ्नी (बंदूक़) को चलाया और उत्तम मुखवाली उस मातंगी देवी ने शक्ति को काटडाला ॥ ९१ ॥ और वह उत्तम भौंहोंवाली देवी शतघ्नी को हँसनेलगी इस प्रकार परस्पर शस्त्रसमूहों से अन्योन्य विकल करनेलगे ॥ ९२ ॥ तदनन्तर त्रिशूल से हृदय में मारा हुआ दैत्य गिरपड़ा और यह दैत्य मूर्च्छा को छोड़कर व राक्षसी माया को करके ॥ ९३ ॥ उनके देखते हुए वह महासुर वहां अन्तर्द्धान होगया तदनन्तर अरुण लोचनोंवाली देवी ने मद्य पान किया व हास्य किया ॥ ९४ ॥ व चराचर समेत त्रिलोक में सब कहीं जानेवाले उससे ॥ ९५ ॥ वह देवी कहनेलगी कि कहां जावोगे यह तुम मुझसे कहो हे महा-

त्थाय शक्तिं धृत्वा करे मुदा ॥ ९० ॥ शतघ्नीं पातयामास तस्या उपरि दानवः ॥ शक्तिं चिच्छेद सा देवी मातङ्गी च शुभानना ॥ ९१ ॥ जहासोच्चैस्तु सा सुभ्रूः शतघ्नीं वज्रसन्निभाम् ॥ एवमन्योन्यशस्त्रौघैरर्दयन्तौ परस्परम् ॥ ९२ ॥ ततस्त्रिशूलेन हतो हृदये निपपात ह ॥ मूर्च्छां विहाय दैत्योऽसौ मायां कृत्वा च राक्षसीम् ॥ ९३ ॥ पश्यतां तत्र तेषां तु अदृश्योऽभून्महासुरः ॥ पपौ पानं ततो देवी जहासारुणलोचना ॥ ९४ ॥ सर्वत्रगं तं सा देवी त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ९५ ॥ क्व यास्यसीति ब्रूते सा ब्रूहि त्वं साम्प्रतं हि मे ॥ कर्णाटक महादुष्ट एहि शीघ्रं हि युध्यताम् ॥ ९६ ॥ ततोऽभवन्महायुद्धं दारुणं च भयानकम् ॥ पपौ देवी तु मैरेयं वधार्थं सुमहाबला ॥ ९७ ॥ मातङ्गी च ततः क्रुद्धा वक्त्रे चिक्षेप दानवम् ॥ ततोऽपि दानवो रौद्रो नासारन्ध्रेण निर्गतः ॥ ९८ ॥ युध्यते स पुनर्दैत्यः कर्णाटो मदपूरितः ॥ ततो देवी प्रकुपिता मातङ्गी मदपूरिता ॥ ९९ ॥ दशनैर्मथयित्वा च चर्वयित्वा पुनः पुनः ॥ शवास्थि मेदसा युक्तं

दुष्ट, कर्णाटक ! शीघ्रही आइये युद्ध कीजिये ॥ ९६ ॥ तदनन्तर दारुण व भयानक बड़ाभारी युद्ध हुआ और बड़ी बलवती देवी ने उसके मारने के लिये मदिरा को पान किया ॥ ९७ ॥ तदनन्तर क्रोधित होती हुई मातंगी ने दानवको मुखमें डाललिया उसके उपरान्त भयंकर दानव नासिका के छिद्र से निकला ॥ ९८ ॥ फिर मद से पूरित वह कर्णाटक दैत्य युद्ध करनेलगा तदनन्तर मद से पूरित क्रोधित मातंगी देवी ॥ ९९ ॥ दांतों से पीसकर व बार २ चर्वणकर अस्थि व मेदा से संयुत तथा

मज्जा व मांसादिसे पूरित ॥ १०० ॥ और नखों व रोमोंसे संयुत दैत्यको पेट में डालकर एक हाथ से मुख को आच्छादन किया व एक हाथ से नासिका को आच्छादन किया ॥ १ ॥ तदनन्तर बड़ा बलवान् दैत्य कान के छिद्र से निकला तदनन्तर उस महादेवी ने उस समय पृथ्वी में वह नाम किया ॥ २ ॥ कि कान के छिद्र से यह पैदा हुआ है इसलिये विद्वान् उसको कर्णाटक ऐसा कहते हैं फिर बल से गर्वित दैत्य युद्ध के लिये आया ॥ ३ ॥ और गर्जता हुआ अस्त्र समेत दानव युद्ध में स्थित हुआ उस दुस्सह दैत्य को देखकर व बार २ विचारकर ॥ ४ ॥ हे भारत ! मातंगी ने वध का उपाय विचार किया जब मदसे पूरित मातंगी देवी विचारनेलगी ॥ ५ ॥

मज्जामांसादिपूरितम् ॥ १०० ॥ नखरोमाभिसंयुक्तं प्रक्षिप्य चोदरेऽसुरम् ॥ करैकेण मुखं रुद्ध्वा करेणैकेन नासिकाम् ॥ १ ॥ ततो महाबलो दैत्यः कर्णरन्ध्रेण निर्गतः ॥ ततस्तया महादेव्या नाम चक्रे तदा भुवि ॥ २ ॥ कर्णरन्ध्रप्रसूतोऽयं कर्णाटेति विदुर्बुधाः ॥ पुनर्युद्धार्थमायातो दैत्यो हि बलदर्पितः ॥ ३ ॥ गर्जमानोऽसुरस्तत्र सायुधो युधि संस्थितः ॥ तं दृष्ट्वा दुःसहं दैत्यं विमृश्य च पुनः पुनः ॥ ४ ॥ वधोपायं हि मातङ्गी चिन्तयामास भारत ॥ यदा चिन्तयते देवी मातङ्गी मदपूरिता ॥ ५ ॥ मायारूपं समास्थाय कर्णाटः कुसुमायुधः ॥ गौरश्चाम्बुजपत्राक्षस्तथा षोडशवार्षिकः ॥ ६ ॥ अभ्येत्य देवीं ब्रूते स्म मां त्वं वरय शोभने ॥ ७ ॥ श्रीमातोवाच ॥ साधु चेदं त्वया प्रोक्तं दैत्यराज सुनिश्चितम् ॥ रूपेण सदृशो नान्यो विद्यते भुवनत्रये ॥ ८ ॥ प्रतिज्ञा मे कृता पूर्वं श्रुता किमसुरोत्तम ॥ ममानुजा शुभा श्यामा विवाहे विघ्नकारिणी ॥ ९ ॥ पित्रा मे स्थापिता दैत्य रक्षार्थं हि द्विजन्मनाम् ॥ केवलं श्यामलाङ्गी

तब मायारूपमें स्थित होकर कामदेव के समान व गौर और कमल के समान नेत्रोंवाला तथा सोलहवर्षवाला कर्णाटक ॥ ६ ॥ देवीजी के समीप आकर कहनेलगा कि हे शोभने ! तुम मुझ को पति करो ॥ ७ ॥ श्रीमाता बोलीं कि हे दैत्यराज ! तुमने यह अच्छा निश्चित कहा त्रिलोक में अन्य तुम्हारे रूप के समान नहीं है ॥ ८ ॥ हे असुरोत्तम ! पहले मुझसे कीहुई प्रतिज्ञा को क्या तुम ने सुना है कि मेरी श्यामला छोटी बहन विवाह में विघ्न करनेवाली है ॥ ९ ॥ व हे दैत्य ! मेरे पिताने ब्राह्मणों

की रक्षा के लिये उसको स्थापन किया है केवल श्यामांगी वह सब लोकों का हित करनेवाली है ॥ १० ॥ कोई कन्या को नहीं व्याहै यह कहकर वह स्थापित कीगई है इससे शीघ्रही कहिये तो तुम्हारा उत्तम उपाय सुनकर मैं करूं ॥ ११ ॥ हे दैत्येन्द्र ! मेरी श्यामला बहन कुँवारी है व हे शूर ! तुम्हारे लिये वह रक्षितहै पहले उसको व्याहिये ॥ १२ ॥ हे महावीर ! वह पिता उस उत्तम कन्या को तुमको देवैगा, तुम जावो और क्रोध से संयुत श्यामला को व्याहो ॥ १३ ॥ तदनन्तर क्रोधित होता हुआ दुष्टात्मा कर्णाटक बड़ी भारी शक्ति को लेकर श्यामला को मारने की इच्छा से दौड़ा ॥ १४ ॥ और आये हुए दैत्य को देखकर बड़ी मनस्विनी श्यामला दुष्ट चित्त

सा सर्वलोकहितावहा ॥ १० ॥ न कश्चिद्वरयेत्कन्यामित्युक्त्वा स्थापिता तु सा ॥ कथयाशु तव शुभं श्रुत्वोपायं करोम्यहम् ॥ ११ ॥ भगिनी मेऽस्ति दैत्येन्द्र श्यामला ह्यपरिग्रहा ॥ तवार्थे रक्षिता शूर तां च पूर्वेण चोद्वह ॥ १२ ॥ स पिता तां महावीर दास्यते वै शुभामिमाम् ॥ गच्छ त्वं व्रियतां ह्येव श्यामला कोपसंयुता ॥ १३ ॥ ततः कर्णाटकः क्रुद्धो गृहीत्वा शक्तिमूर्जिताम् ॥ अभ्यधावत दुष्टात्मा श्यामलानिधनेच्छया ॥ १४ ॥ आगतं चासुरं दृष्ट्वा श्यामला सुमहामनाः ॥ विवाहार्थं परं ज्ञात्वाऽभिप्रायं दुष्टचेतसः ॥ १५ ॥ महायुद्धमभूत्तत्र श्यामलाऽसुरवर्ययोः ॥ मासत्रयं ततो राजंश्चाभवत्तुमुलं क्षितौ ॥ १६ ॥ माघे कृष्णतृतीयायां धर्मारण्ये महारणे ॥ मध्याह्नसमये भूप कर्णाटाख्यो निपातितः ॥ १७ ॥ कर्णाटः पतितस्तत्र यत्र देव्या निपातितः ॥ तच्छैलशृङ्गप्रतिमं पपात शिर उत्तमम् ॥ १८ ॥ चचाल सकला पृथ्वी साब्धिद्वीपा सपर्वता ॥ ततो विप्राः प्रहृष्टास्ते जय मातरुदैरयन् ॥ १९ ॥ जगुर्ग

वाले दैत्य का विवाह के लिये अधिक प्रयोजन जानकर ॥ १५ ॥ श्यामला व श्रेष्ठ दानव का बड़ाभारी युद्ध हुआ तदनन्तर हे राजन् ! पृथ्वी में तीन महीने तक लोमहर्षण युद्ध हुआ ॥ १६ ॥ हे भूप ! माघ में कृष्णपक्ष की तीज में धर्मारण्य में दुपहर के समय कर्णाट नामक दैत्य महायुद्ध में मारा गया ॥ १७ ॥ जहां देवी जी से गिराया हुआ वह कर्णाटक गिरा वहां वह पर्वत के शिखर के समान उत्तम शिर गिरपड़ा ॥ १८ ॥ और समुद्रों व द्वीपों समेत तथा पर्वतों समेत सब पृथ्वी कांप उठी तदनन्तर प्रसन्न होतेहुए उन ब्राह्मणोंने यह कहा कि हे मातः ! तुम्हारी जय हो ॥ १९ ॥ और गंधर्वों के स्वामी गानेलगे व अप्सराओंके गण नाचनेलगे तदनन्तर कल्याण-

न्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ततोत्सवं प्रकुर्वन्तो गीतं नृत्यं शुभप्रदम् ॥ २० ॥ पायसैर्वटकैश्चैव नैवेद्यैर्मोदकै स्तथा ॥ तुष्टुवुः शुभवाण्या ते स्थाने मोटेरके वरे ॥ २१ ॥ श्रीमती पूजिता सा च सुतसौख्यधनप्रदा ॥ महोत्सवे च सम्प्राप्ते मातङ्गीपूजनं हितम् ॥ २२ ॥ येऽर्चयन्ति स्थापयित्वा धनपुत्रार्थसिद्धये ॥ सुखं कीर्तिं तथायुष्यं यशः पुण्यं समाप्नुयुः ॥ २३ ॥ व्याधयो नाशमायान्ति चादित्याद्या ग्रहाः शुभाः ॥ भूतवेतालशाकिन्यो जम्भाद्याः पीड यन्ति न ॥ २४ ॥ न जायते तथा कापि प्रेतादीनां प्रपीडनम् ॥ ततो विप्राः प्रहृष्टाश्च स्तुतिं कर्तुं समुद्यताः ॥ २५ ॥ श्रीमातां चैव शक्तीश्च मातङ्गीमस्तुवंस्तदा ॥ श्यामलां च महादेवीं हर्षेण महता युताः ॥ २६ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ मात स्त्वमेवमस्माकं रक्षिका स्थानके भव ॥ दम्पतीनां हितार्थाय स्थातव्यं स्थानके सदा ॥ २७ ॥ मातङ्ग्युवाच ॥ तुष्टा हं वो- महाभागाः स्तवेनानेन वो द्विजाः ॥ वरयध्वं वरं यद्वो मनसा समभीप्सितम् ॥ २८ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ दा

दायक गीत व नृत्य और उत्सव करनेलगे ॥ २० ॥ व खीर, बरा और लड्डुवों की नैवेद्यों से पूजन किया व उत्तम मोटेरक स्थान में उन्होंने उत्तम वाणी से स्तुति किया ॥ २१ ॥ क्योंकि पूजी हुई वे मातंगी सुत, सुख व धन को देती हैं और महोत्सव प्राप्त होनेपर मातंगी का पूजन हित है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य उसको थाप कर धन व पुत्रार्थ की सिद्धि के लिये पूजते हैं वे सुख, यश, आयुर्बल व कीर्ति और पुण्य को पाते हैं ॥ २३ ॥ और रोग नाश होजाते हैं व सूर्यादिक ग्रह शुभ होते हैं और भूत, वेताल, शाकिनी व जंभादिक ग्रह पीडित नहीं करते हैं ॥ २४ ॥ और कभी प्रेतादिकों की पीड़ा नहीं होती है तदनन्तर प्रसन्न होते हुए ब्राह्मण स्तुति करने के लिये उद्यत हुए ॥ २५ ॥ तब श्रीमाता और शक्तियों की व मातंगी की स्तुति किया और बड़े हर्ष से संयुत उन्होंने श्यामला महादेवी की स्तुति किया ॥ २६ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे मातः ! इस स्थान में स्त्री पुरुषों के हित के लिये तुम्हीं हमलोगों की रक्षिका होवो और सदैव तुम को इस स्थानमें स्थित होना चाहिये ॥ २७ ॥ मातंगी बोली कि हे महाभागो ! इस स्तोत्र से मैं तुमलोगों के ऊपर प्रसन्न हूं जो मन से तुमलोगोंको प्रियहो उस वरको मांगिये ॥ २८ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे देवि ! तुम्हारे

मन में जो वर्तमान है उस बलि को हम देवैंगे और हमलोगों की स्त्री पुरुषों की रक्षा के लिये स्थिर होवो ॥ २९ ॥ देवीजी बोलीं कि सब ब्राह्मण स्वस्थ होवैं क्योंकि मेरे स्थित होनेपर पीड़ा न होगी और दुर्धर्ष दैत्य व जो अन्य राक्षस हैं ॥ ३० ॥ व शाकिनी, भूत, प्रेत व जंभादिक ग्रह और शाकिनी आदिक ग्रह व सर्प और व्याघ्रादिक ॥ ३१ ॥ मेरी आज्ञामें स्थित मनुष्योंको कभी पीड़ा नहीं करैंगे और विवाह प्राप्त होनेपर जो महोत्सव करता है ॥ ३२ ॥ व स्त्री पुरुषोंके हितके लिये जो मनुष्य र.दैव मुझको पूजता है उसकी सब पीड़ाको मैं निस्सन्देह नाश करती हूं ॥ ३३ ॥ और मानसी व्यथा व रोग और क्लेश व संभ्रम नहीं होता है और बहुत सुख, यश,

स्यामहे बलिं देवि यस्ते मनसि वर्तते॥ अस्माकं चैव दम्पत्यो रक्षार्थं त्वं स्थिरा भव ॥ २९ ॥ देव्युवाच ॥ स्वस्थाः सन्तु द्विजाः सर्वे न च पीडा भविष्यति ॥ मयि स्थितायां दुर्धर्षा दैत्या येऽन्ये च राक्षसाः ॥ ३० ॥ शाकिनीभूतप्रेताश्च जम्भाद्याश्च ग्रहास्तथा ॥ शाकिन्यादिग्रहाश्चैव सर्पा व्याघ्रादयस्तथा ॥ ३१ ॥ पीडयिष्यन्ति न कापि स्थितानां मम शासने ॥ महोत्सवं यः कुरुते विवाहे समुपस्थिते ॥ ३२ ॥ दम्पत्योश्च हितार्थे हि पूजयेन्मां सदा नरः ॥ तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ ३३ ॥ नाधयो व्याधयश्चैव न क्लेशो न च सम्भ्रमः ॥ प्राप्यते परमं सौख्यं यशः पुण्यं धनं सदा ॥ नाकाले मरणं तस्य वातपित्तादिकं न हि ॥ ३४ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ केन वा विधिना पूजा नैवेद्यं कीदृशं भवेत् ॥ धूपं च कीदृशं मातः कथं पूजां प्रकल्पयेत् ॥ ३५ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ श्रूयतां मे वचो विप्राः पत्रे चैव हिरण्मये ॥ लिखित्वा पूजयेद्यस्तु चिरायुर्दम्पती भवेत् ॥ ३६ ॥ अथवा राजते पत्रे कांसपत्रेऽथवा पुनः ॥

पुण्य व धन सदैव मिलता है व उसका अकाल में मरण नहीं होता है और वात, पित्तादिक नहीं होताहै ॥ ३४ ॥ ब्राह्मण बोले कि किस विधिसे पूजन करना चाहिये व कैसी नैवेद्य होवै व हे मातः ! कैसी धूप होवै और कैसी पूजा करै ॥ ३५ ॥ श्रीदेवी बोलीं कि हे ब्राह्मणो ! मेरा वचन सुनिये कि सोनेके पत्रमें लिखकर जो मनुष्य पूजन करता है उसके स्त्री पुरुष बड़े आयुर्बलवान् होते हैं ॥ ३६ ॥ अथवा चांदी के पत्र में व कांस के पत्र में लिखकर अठारह भुजाओंवाली देवी चंदन से पूजित

होती है ॥ ३७ ॥ और हाथों से सूप, बाण, कुत्ता व उत्तम कमल और एक कैंची को बनावै व तरकस और धनुष ॥ ३८ ॥ व ढाल, पाश, मुद्गर, कांसाल, तोमर, शंख, चक्र व उत्तम गदा और मुशल व उत्तम परिघ ॥ ३९ ॥ और खट्वांग, बदरी व सुन्दर अंकुश इन अठारह अस्त्रों से भुवनेश्वरी-संयुत हैं ॥ ४० ॥ बहुत नूपुरों से भूषित व कुंडल समेत और बजुल्ला व मोती के कमलोंसे तथा मुंडमालाओं से संयुत देवी को लिखै ॥ ४१ ॥ और मातृका के अक्षरों से घिरी व अंगूठी से संयुत तथा अनेक भाति के आभूषणों की शोभा से संयुत मातंगी ऐसी प्रसिद्ध भुवनेश्वरीजी को प्रतिष्ठा के लिये लिखकर सुन्दर चन्दन व पुष्पों से पूजै ॥ ४२ । ४३ ॥ और यक्ष-

अष्टादशभुजा देवी चन्दनेन विचर्चिता ॥ ३७ ॥ शूर्पं शरं करैः श्वानं पद्मं तु परमं पुनः ॥ कर्त्तरीं कारयेदेकां तूणीरं च धनूंषि च ॥ ३८ ॥ चर्म पाशं मुद्गरं च कांसालं तोमरं तथा ॥ शङ्खं चक्रं गदां शुभ्रां मुशलं परिघं शुभम् ॥ ३९ ॥ खट्वाङ्गं बदरीं चैव अङ्कुशं च मनोरमम् ॥ अष्टादशायुधैरेभिः संयुता भुवनेश्वरी ॥ ४० ॥ लिखेत्सकुण्डलां देवीं बहुनूपुरभूषिताम् ॥ केयूरमुक्तापद्मैश्च मुण्डमालाभिरन्विताम् ॥ ४१ ॥ मातृकाक्षरपरिवृतामङ्गुलीयकसंयुताम् ॥ नानाभरणशोभाढ्यां लिखित्वा भुवनेश्वरीम् ॥ ४२ ॥ मातङ्गीमिति विख्यातां प्रतिष्ठार्थं द्विजोत्तमाः ॥ चन्दनेन च हृद्येन पुष्पैश्चैव प्रपूजयेत् ॥ ४३ ॥ यक्षकर्दममानीय मातङ्गीं पूजयेत्सुधीः ॥ घृतेन बोधयेद्दीपं सप्तवर्तियुतं शुभम् ॥ ४४ ॥ धूपयेद्गुग्गुलेनाथ साज्येनाति सुगन्धिना ॥ नालिकेरेण शुभ्रेण दद्यादर्घं च दम्पती ॥ ४५ ॥ प्रदक्षिणाः प्रकुर्वीत चतुरः सुमनोरमम् ॥ वस्त्रांशुकं गुण्ठयित्वा अग्रे कृत्वा च दम्पती ॥ ४६ ॥ प्रोक्षणीकृत्य मातङ्ग्याः प्राश्य माध्वीकमुत्तमम् ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैर्मातङ्गीं पूजयेत्सुधीः ॥ ४७ ॥ सुवासिनीस्तु तद्रूपा मातङ्गीसम्भवा इति ॥ नृत्य

कर्दम को लाकर विद्वान् मातंगी को पूजै और सात बत्तियों से संयुत उत्तम दीप को घृत से संयुत करै ॥ ४४ ॥ व घी समेत बड़े सुगंधित गुग्गुल से धूप देवै और स्त्री पुरुष उत्तम नारियल से अर्घ को देवैं ॥ ४५ ॥ और चार सुन्दर प्रदक्षिणा करै व वस्त्र को पहनाकर स्त्री पुरुष आगे करके ॥ ४६ ॥ छिड़क कर मातंगी जी के उत्तम मदिरा को पीकर विद्वान् गाने, बजाने के शब्दों से मातंगीको पूजै ॥ ४७ ॥ और सौभाग्यवती स्त्रियां उसी रूपवाली व मातंगी से उत्पन्न होती हैं इस कारण स्त्री पुरुष

सब उपद्रवों की शांति के लिये उनके आगे नृत्य करै ॥ ४८ ॥ और अनेक भांति के अन्न से अठारह भांति की उत्तम नैवेद्य निवेदन करै उत्तम बरा व पुवा और शक्कर से संयुत दूध की नैवेद्य निवेदन करै ॥ ४९ ॥ और बल्लाकर, बरा, पुवा व क्षिप्तकुल्माष तथा सोहारी, भिन्नवटा, लप्सी और पद्मचूर्ण ॥ ५० ॥ और वहां निर्मल सेवई और पापड़ व शालकादिक और उस मांस को सुन्दर पूर्ण करै ॥ ५१ ॥ व स्त्री पुरुष वहां भली भांति लोबिया को पकावै और वहां सुन्दर फेनी व रोपिका करै ॥ ५२ ॥ शाक समूहों से संयुत व घी, शक्करसे संयुत इन अन्य अठारह पक्वान्नों को बनावै ॥ ५३ ॥ व रात्रि में जागरण करना चाहिये और सुवासिनी (सौभाग्यवती) को पूजै और स्त्री

न्ती दम्पती चाग्रे सर्वोपद्रवशान्तये ॥ ४८ ॥ नैवेद्यं विविधान्नेन अष्टादशविधं शुभम् ॥ वटकापूपिकाः शुभ्राः क्षीरं शर्करया युतम् ॥ ४९ ॥ बल्लाकरं वरं पूपाः क्षिप्तकुल्माषकं तथा ॥ सोहालिका भिन्नवटा लाप्सिका पद्मचूर्णकम् ॥ ५० ॥ शैवेया विमलास्तत्र पर्पटाः शालकादयः ॥ पूरणं तस्य मांसस्य कुर्याच्छुभ्रं मनोरमम् ॥ ५१ ॥ राजमाषाः सूपचिताः कल्पयेत्तत्र दम्पती ॥ फेणिका रोपिकास्तत्र कुर्याच्चैव मनोरमाः ॥ ५२ ॥ एतान्यष्टादशान्यानि पक्वान्नानि प्रकल्पयेत् ॥ आज्यशर्करायुक्तानि युक्तानि शाकसञ्चयैः ॥ ५३ ॥ रात्रौ जागरणं कार्यं पूजयेच्च सुवासिनीम् ॥ मुखावलोकनं चाज्ये कुर्वीयातां च दम्पती ॥ ५४ ॥ परस्परं हि कुर्वीत उत्पातपरिशान्तये ॥ एवंविधं मयाख्यातं मातङ्गीपूजनं शुभम् ॥ ५५ ॥ न पूजयति यो मूढस्तस्य विघ्नं करोति सा ॥ दम्पत्योर्मरणं चाथ धननाशं महाभयम् ॥ ५६ ॥ क्लेशं रोगं तथा वह्नेः प्रादुर्भावं प्रपश्यति ॥ एतस्मात्कारणाद्विप्रा मातङ्गीं पूजयेत्सुधीः ॥ ५७ ॥ दम्पतीनां च सर्वेषां द्विजातीनां च शासने ॥ वणिजां च महादेवी निर्विघ्नं कुरुते सदा ॥ ५८ ॥ तथेति चैव तैरुक्ते पुनर्वचनमब्रवीत् ॥

पुरुष घी में मुख को देखै ॥ ५४ ॥ उत्पात की शांति के लिये परस्पर ऐसा करै मैंने इस प्रकार का उत्तम मातंगीपूजन कहा ॥ ५५ ॥ और जो मूढ़ नहीं पूजता है उसका वह मातंगी विघ्न करती है व स्त्री पुरुषों का मरण व धन का नाश और महाभय होती है ॥ ५६ ॥ और क्लेश, रोग व अग्नि की प्रकटता को वह देखता है हे ब्राह्मणो ! इस कारण विद्वान् मातंगी को पूजै ॥ ५७ ॥ सब स्त्री पुरुषों व ब्राह्मणों तथा वणिजों के शासन में महादेवी सदैव निर्विघ्न करती हैं ॥ ५८ ॥ बहुत अच्छा

यह उनसे कहनेपर फिर वचन बोली कि हे सब ब्राह्मणो ! सुनिये कि विवाहादिक बड़े भारी उत्सव में ॥ ५९ ॥ मेरा वचन सुनकर वैसी विधि कीजिये कि विवाह समय प्राप्त होने पर स्त्री, पुरुषोंके सुखके लिये ॥ ६० ॥ निर्विघ्न के लिये अपने सेवकों समेत करना चाहिये कि सब संबन्धियों के नेत्रों में अंजन करै ॥ ६१ ॥ भौंहों के मध्य स अर्द्धचन्द्रमा के समान आकार करना चाहिये व हे ब्राह्मणो ! उसके ऊपर सुन्दर बिन्दु करै ॥ ६२ ॥ हे ब्राह्मणो ! ऐसा करने पर उस समय शांति होती है अन्यथा नहीं होती यह अर्द्धविम्ब तिलक पुत्रों की वृद्धि करनेवाला है और सब विघ्नों को हरनेवाला व सब दुर्गति और रोगों का विनाशक है ॥ ६३ ॥ व्यासजी

श्रूयतां ब्राह्मणाः सर्वे विवाहादिमहोत्सवे ॥ ५९ ॥ मदीयवचनं श्रुत्वा तथा कुरुत वै विधिम् ॥ विवाहकाले सम्प्राप्ते दम्पत्योः सौख्यहेतवे ॥ ६० ॥ निर्विघ्नार्थं तु कर्तव्यं निजैश्च सह सेवकैः ॥ अञ्जनं नयने कुर्यात्संबन्धिनां च सर्व शः ॥६१॥ भ्रूमध्यात्तु प्रकर्त्तव्यमर्द्धचन्द्रसमाकृति ॥ बिन्दुं तु कारयेद्विप्रास्त योपरि मनोहरम् ॥ ६२ ॥ एवं कृते तदा विप्राः शान्तिर्भवति नान्यथा ॥ पुत्रवृद्धिकरं चैतत्तिलकं चार्द्धविम्बकम् ॥ सर्वविघ्नहरं सर्वदौःस्थ्यव्याधिविनाश नम् ॥ ६३ ॥ व्यास उवाच ॥ ततः शान्ताः प्रजाः सर्वा धर्मारण्ये नराधिप ॥ प्रसादाच्चैव मातङ्ग्या देव्या वै सत्यम न्दिरे ॥ ६४ ॥ ततो हृष्टहृदा विप्राः प्रत्यूचुस्ते विधेः सुताम् ॥ मातङ्ग्याश्च प्रकर्त्तव्यं वर्षे वर्षे च पूजनम् ॥ ६५ ॥ माघा सिते तृतीयायां भक्ष्यभोज्यादिभिस्तथा ॥ कर्णाटस्य तथोत्पत्तिः पुनर्जाता तु भूतले ॥ ६६ ॥ भयाच्चैव हि तत्स्थानं त्यक्त्वा याम्यमगात्ततः ॥ गच्छमानस्तदा दैत्यो यक्षमरूपो ह्यभाषत ॥ ६७ ॥ श्रूयतां भो द्विजाः सर्वे धर्मारण्यनि

बोले कि हे नराधिप ! तदनन्तर मातंगी देवी के प्रसाद से सब प्रजा धर्मारण्य सत्यमंदिर में शांत होगये ॥ ६४ ॥ तदनन्तर उन ब्राह्मणों ने प्रसन्नहृदय से ब्रह्मा की कन्या से कहा कि प्रतिवर्ष में माघ महीने के कृष्णपक्ष में तीज तिथि में भक्ष्य, भोज्यादिकों से मातंगी का पूजन करना चाहिये फिर पृथ्वी में कर्णाट की उत्पत्ति हुई ॥ ६५ । ६६ ॥ और वह भय से उस स्थान को छोड़कर तदनन्तर दक्षिण दिशा को चला गया तब जाता हुआ वह यक्ष्मरूपी दैत्य बोला ॥ ६७ ॥ कि हे धर्मारण्य-

निवासी, सब ब्राह्मणो व वणिजो! सुनिये व इस मेरे बड़े भारी वचन को परिपालन कीजिये ॥ ६८ ॥ कि सदैव पृथ्वी में मेरी प्रीति से निर्विघ्न के लिये माघ महीने में त्रिदल धान से व विशेषकर मूली से ॥ ६९ ॥ व तिल के तैल से दृढ़व्रत पुरुष व्रत को करै और यक्ष्म की प्रीति के लिये सदैव एक बार भोजन करै ॥ ७० ॥ बालक से लगाकर युवा व वृद्ध पुरुष को भी सदैव प्रति वर्ष में यक्ष्मा का उत्तम व्रत करना चाहिये ॥ ७१ ॥ और जिस घर में जितने पुरुषाकाररूपी होवैं एकभक्त में परायण वे सदैव उसका व्रत करैं ॥ ७२ ॥ और बालक के लिये माता उत्तम व्रत करै पिता या भाई जिसके लिये व्रतको करै ॥ ७३ ॥ उसको कहीं भय नहीं होती और व्याधि व बंधन

वासिनः ॥ वणिजश्च महच्चेदं मद्वाक्यं परिपाल्यताम् ॥ ६८ ॥ माघमासे हि मत्प्रीत्या निर्विघ्नार्थं सदा भुवि ॥ त्रिदलेन च धान्येन मूलकेन विशेषतः ॥ ६९ ॥ तिलतैलेन वा कुर्यात्पुरुषो नियतव्रतः ॥ एकाशनं हि कुरुते यक्ष्मप्रीत्यै निरन्तरम् ॥ ७० ॥ आबालयौवनेनैव वृद्धेनापीह सर्वदा ॥ वर्षे वर्षे प्रकर्त्तव्यं यक्ष्मणो व्रतमुत्तमम् ॥ ७१ ॥ यस्मिन्गृहे हि यावन्तः पुरुषाकाररूपिणः ॥ तस्य व्रतं प्रकुर्युस्त एकभक्तरताः सदा ॥ ७२ ॥ बालस्यार्थे तु जननी कुरुते व्रतमुत्तमम् ॥ पिता वाप्यथवा भ्राता यन्निमित्तं व्रतं चरेत् ॥ ७३ ॥ न च तस्य भयं क्वापि न व्याधिर्न च बन्धनम् ॥ भर्तुर्निमित्ते स्त्री कुर्यादशक्ते त्वितरेण च ॥ ७४ ॥ एवं समादिशन्दैत्यः सत्यमन्दिरमुत्सृजन् ॥ गतोऽसौ याम्यदिग्भाग उदधेस्तीर उत्तमे ॥ ७५ ॥ विपुलं देहमासाद्य कर्णाटः स नराधिप ॥ स्वनाम्ना चैव तं देशं स्थापयामास चोत्तमम् ॥ ७६ ॥ यस्मिंश्च सर्ववस्तूनि धनधान्यानि भूरिशः ॥ कर्णाटदेशं तं राजन्परिवार्य चिरं स्थितः ॥ ७७ ॥ धर्मार

नहीं होता है पति के लिये स्त्री व्रत को करै और अशक्त होने पर अन्य से व्रत कराना चाहिये ॥ ७४ ॥ सत्यमंदिर को छोड़तेहुए दैत्य ने ऐसा कहा और यह दक्षिण दिशा के भाग में समुद्र के उत्तम किनारे पै चला गया ॥ ७५ ॥ हे नराधिप! बड़े भारी शरीर को प्राप्त होकर उस कर्णाट ने अपने नाम से उस उत्तम देश को स्थापित किया ॥ ७६ ॥ जिसमें सब वस्तुवें व बहुत धन, धान्य हैं हे राजन्! उस कर्णाट देश को घेर कर वह कर्णाट बहुत दिनोंतक स्थित रहा ॥ ७७ ॥ हे नरसत्तम! कही

हुई धर्मारण्य की पवित्र कथा व श्रीमाता का उत्तम माहात्म्य जो सुनते या सुनाते हैं ॥ ७८ ॥ उनके वंश में कभी अरिष्ट नहीं होता है पुत्र रहित मनुष्य पुत्रों को पाता है व धनहीन संपत्तियों को पाता है व आयुर्बल, नीरोगता और ऐश्वर्य को श्रीमाता के प्रसाद से प्राप्त होता है ॥ ७९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमातङ्गीकर्णाटकोपाख्यानवर्णनन्नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जयंतेश इन्द्रेश जिमि थाप्यो इन्द्र जयन्त । उन्निसवें अध्यायमें सोइ चरित सुखवन्त ॥ व्यासजी बोले कि इन्द्रसर में नहाकर व इन्द्रेश्वर शिवजी को देखकर

ण्यकथां पुण्यां कथितां नरसत्तम ॥ श्रीमातुश्चैव माहात्म्यं शृण्वन्ति श्रावयन्ति ये ॥ ७८ ॥ तेषां कुले कदाचित्तु अरिष्टं नैव जायते ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्धनहीनस्तु सम्पदः ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं श्रीमातुश्च प्रसादतः ॥ १७९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येमातङ्गीकर्णाटकोपाख्यानवर्णनन्नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ नर इन्द्रसरे स्नात्वा दृष्ट्वा चेद्रेश्वरं शिवम् ॥ सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ केन चादौ निर्मितं तत्तीर्थं सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ यथावद्वर्णय त्वं मे भगवन्द्विजसत्तम ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ इन्द्रेणैव महाराज तपस्तप्तं सुदुष्करम् ॥ ग्रामादुत्तरदिग्भागे शतवर्षाणि तत्र वै ॥ ३ ॥ शिवोद्देशं महाघोरमेकाङ्गुष्ठेन भारत ॥ उर्द्ध्वबाहुर्महातेजाः सूर्यस्याभिमुखोऽभवत् ॥ ४ ॥ वृत्रस्य वधतो जातं यत्पापं तस्य नुत्तये ॥ एकाग्रः प्रयतो भूत्वा शिवस्याराधने रतः ॥ ५ ॥ तपसा च तदा शम्भुस्तोषितः शशिशेखरः ॥ तत्राऽऽजगाम जटि

मनुष्य सात जन्मों में किये हुए पाप से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि उस सब तीर्थों में उत्तमोत्तम तीर्थ को किसने पहले बनाया है हे द्विजोत्तम, भगवन् ! तुम इसको यथायोग्य वर्णन करो ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि हे महाराज, भारत ! गांव से उत्तर दिशा के भाग में इन्द्र ने शिवजी को उद्देश कर तीन सौ बरस तक एक अंगूठे से बड़ा भयंकर व कठिन तप किया और ऊर्ध्वबाहु व बड़े तेजस्वी इन्द्रजी सूर्य के सामने हुए ॥ ३ । ४ ॥ वृत्रासुर के वध से जो पाप उत्पन्न हुआ था उसको दूर करने के लिये एकाग्र व पवित्र होकर इन्द्रजी शिवजी के आराधन में परायण हुए ॥ ५ ॥ तब तपस्या से चन्द्रभाल शिवजी प्रसन्न हुए और

भस्म को अंग में लगाये हुए जटाधारी शिवजी वहां आये ॥ ६ ॥ खट्वांग नामक अस्त्र को लिये दशभुज, त्रिलोचन, पंचमुख, गंगाधर, भूत, प्रेतादिकोंसे वेष्टित शिव जी बैलपर चढ़कर ॥ ७ ॥ बहुत प्रसन्न, सुरश्रेष्ठ, दयालु, वरदायक व प्रसन्न मनवाले शिवदेवजी ने उस समय इन्द्रजी से यह कहा ॥ ८ ॥ शिवजी बोले कि हे देव ! जो तुम मांगते हो उसको मैं तुम को दूंगा ॥ ९ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे दयासिंधो, देवेश, महेशजी ! यदि मेरे ऊपर तुम प्रसन्न हो तो मुझ को ब्रह्महत्या नित्य दुःख देती है ॥ १० ॥ हे सुरोत्तम ! वृत्रासुर के मारने में जो पाप हुआ है हे विभो ! मुझको सदैव दुःखदायक उस पाप को नाश कीजिये ॥ ११ ॥ शिवजी बोले कि हे

तो भस्माङ्गो वृषभध्वजः ॥ ६ ॥ खट्वाङ्गी पञ्चवक्त्रश्च दशबाहुस्त्रिलोचनः ॥ गङ्गाधरो वृषारूढो भूतप्रेतादिवेष्टितः ॥ ७ ॥ सुप्रसन्नः सुरश्रेष्ठः कृपालुर्वरदायकः ॥ तदा हृष्टमना देवो देवेन्द्रमिदमूचिवान् ॥ ८ ॥ हर उवाच ॥ यत्त्वं याचयसे देव तदहं प्रददामि ते ॥ ९ ॥ इन्द्र उवाच ॥ यदि तुष्टोसि देवेश कृपासिन्धो महेश्वर ॥ ब्रह्महत्या हि मां देव उद्वेजयति नित्यशः ॥ १० ॥ वृत्रासुरस्य हनने जातं पापं सुरोत्तम ॥ तत्पापं नाशय विभो मम दुःखप्रदं सदा ॥ ११ ॥ हर उवाच ॥ धर्मारण्ये सुरपते ब्रह्महत्या न पीडयेत् ॥ हत्या गवां द्विजातीनां बालस्य योषितामपि ॥ १२ ॥ वचनान्मम देवेन्द्र ब्रह्मणः केशवस्य च ॥ यमस्य वचनाज्जिष्णो हत्या नैवात्र तिष्ठति ॥ प्रविश्य त्वं महाराज अतोत्र स्नानमाचर ॥ १३ ॥ इन्द्र उवाच ॥ यदि त्वं मम तुष्टोऽसि कृपासिन्धो महेश्वर ॥ मन्नाम्ना च महादेव स्थापितो भव शङ्कर ॥ १४ ॥ तथेत्युक्त्वा महादेवः सुप्रसन्नो हरस्तदा ॥ दर्शयामास तत्रैव लिङ्गं पापप्रणाश

सुरपते ! धर्मारण्य में ब्रह्महत्या दुःख नहीं देवैगी क्योंकि गौवों की हत्या व बालक की हत्या और स्त्रियों की भी जो हत्या है ॥ १२ ॥ हे देवेन्द्र, जिष्णो ! मेरे और ब्रह्मा व विष्णुजी के वचन से और यमराज के वचन से वह हत्या यहां स्थित नहीं होती है हे महाराज ! इस कारण तुम इसमें पैठकर स्नान करो ॥ १३ ॥ इन्द्र जी बोले कि हे दयासिंधो, महेश्वर ! यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो हे शंकर, महादेव ! मेरे नाम से स्थापित होवो ॥ १४ ॥ तब बहुत अच्छा यह कहकर महादेवजी प्रसन्न हुए और पापनाशक लिंगको कूर्म की पीठ से शिवजीने अपने योगसे उत्पन्न करके दिखलाया और शिवजी वहीं स्थित हुए ऐसा त्रिकालके जानने

वाले कहते हैं ॥ १५ । १६ ॥ हे नृप ! तब वृत्रासुर की हत्या से डरे हुए इन्द्र के समीप इन्द्रेश्वरजी उस धर्मारण्य में लोकों की हितकी इच्छासे सब पापों की शुद्धि के लिये स्थित हुए हे नृपेन्द्र ! जो मनुष्य सदैव पुष्प व धूपादिकों से इन्द्रेश्वरजी को ॥ १७ । १८ ॥ भक्तिसे पूजता है वह मनुष्य सब पापों से छूटजाता है और माघ महीने में विशेषकर अष्टमी व चौदसि में ॥ १९ ॥ जो सब पापों की शुद्धि के लिये पूजता है वह शिवलोक में पूजा जाता है और उन इन्द्रेश्वरजी के आगे जो नीलोत्सर्ग करता है ॥ २० ॥ वह सात गोत्रोंको व एक सौ एक पुरितयोंको उधारताहै और जो चौदसि तिथि में सांग रुद्र जप करता है ॥ २१ ॥ सब पापोंसे शुद्ध चित्त

नम् ॥ १५ ॥ कूर्मपृष्ठात्समुत्पाद्य आत्मयोगेन शम्भुना ॥ स्थितस्तत्रैव श्रीकण्ठःकालत्रयविदो विदुः ॥ १६ ॥ वृत्रहत्यासमुत्रस्तदेवराजस्य सन्निधौ ॥ इन्द्रेश्वरस्तदा तत्र धर्मारण्ये स्थितो नृप ॥ १७ ॥ सर्वपापविशुद्ध्यर्थं लोकानां हितकाम्यया ॥ इन्द्रेश्वरं तु राजेन्द्र पुष्पधूपादिकैः सदा ॥ १८ ॥ पूजयेच्च नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां माघमासे विशेषतः ॥ १९ ॥ सर्वपापविशुद्ध्यर्थं शिवलोके महीयते ॥ नीलोत्सर्गं तु यो मर्त्यः करोति च तदग्रतः ॥ २० ॥ उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ साङ्गरुद्रजपं यस्तु चतुर्दश्यां करोति वै ॥ २१ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा लभते परमं पदम् ॥ २२ ॥ सौवर्णनयनं कृत्वा मध्ये रत्नसमन्वितम् ॥ यो ददाति हि जातिभ्य इन्द्रतीर्थे तथोत्तमे ॥ २३ ॥ अन्धता न भवेत्तस्य जन्मानि षष्टिसंख्यया ॥ निर्मलत्वं सदा तेषां नयनेषु प्रजायते ॥ महारोगास्तथा चान्ये स्नात्वा यान्ति तदग्रतः ॥ २४ ॥ पूजिते चैकचित्तेन सर्वरोगात्प्रमुच्यते ॥ स्नात्वा कुण्डे नरो यस्तु सन्तर्पयति यः पितॄन् ॥ २५ ॥ तस्य तृप्ताः सदा भूप पितरश्च पितामहाः ॥ ये वै ग्रस्ता महारो

वाला वह परमपद को पाता है ॥ २२ ॥ और उत्तम इन्द्रतीर्थ में मध्य में रत्नसंयुत करके जो सोने का नेत्र ब्राह्मणों के लिये देता है ॥ २३ ॥ साठ संख्यक जन्मोंतक उसके अन्धता नहीं होती है और उनके नेत्रों में सदैव निर्मलता होती है और उनके आगे नहाकर अन्य महारोग नाश होजाते हैं ॥ २४ ॥ और सावधान चित्त से पूजन करनेपर मनुष्य सब रोगसे छूट जाता है और कुंडमें नहाकर जो मनुष्य पितरों को तर्पण करता है ॥ २५ ॥ हे भूप ! उसके पितर व पितामह सदैव तृप्त रहते हैं

और जो मनुष्य कुष्ठादिक महारोगों से ग्रस्त होते हैं ॥ २६ ॥ वे नहाने ही से शुद्ध होकर दिव्यशरीर होजाते हैं और ज्वरादिक के कष्ट में प्राप्त मनुष्य अपने हित के लिये ॥ २७ ॥ स्नानही से शुद्ध होकर दिव्यशरीर होजाते हैं और स्नान करके जो इन्द्रेश्वरदेव को पूजता है वह ज्वरके बन्धन से छूट जाता है ॥ २८ ॥ और एकाहिक, द्याहिक, चातुर्थिक व तृतीयक और विषमज्वर की पीड़ा व मास, पक्षादिक ज्वर ॥ २९ ॥ इन्द्रेश्वरजी के प्रसाद से नाश होजाता है इस में सन्देह नहीं है व हे भूपते ! वह सत्य सत्य ज्वररहित होजाता है ॥ ३० ॥ और जो बन्ध्या, दुर्भगा, काकबन्ध्या व मृतप्रजा और जो मृतवत्सा व महादुष्टा स्त्री शिवजी के आगे कुण्ड

गैः कुष्ठाद्यैश्चैव देहिनः ॥ २६ ॥ स्नानमात्रेण संशुद्धा दिव्यदेहा भवन्ति ते ॥ ज्वरादिकष्टमापन्ना नराः स्वात्महिताय वै ॥ २७ ॥ स्नानमात्रेण संशुद्धा दिव्यदेहा भवन्ति ते ॥ स्नात्वा च पूजयेद्देवं मुच्यते ज्वरबन्धनात् ॥ २८ ॥ एकाहिकं द्वयाहिकं च चातुर्थं वा तृतीयकम् ॥ विषमज्वरपीडा च मासपक्षादिकं ज्वरम् ॥ २९ ॥ इन्द्रेश्वरप्रसादाच्च नश्यते नात्र संशयः ॥ विज्वरो जायते नूनं सत्यं सत्यं च भूपते ॥ ३० ॥ बन्ध्या च दुर्भगा नारी काकबन्ध्या मृतप्रजा ॥ मृतवत्सा महादुष्टा स्नात्वा कुण्डे शिवाग्रतः ॥ पूजयेदेकचित्तेन स्नानमात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३१ ॥ एवंविधांश्च बहुशो वरान्दत्त्वा पिनाकधृक् ॥ गतोऽसौ स्वपुरं पार्थ सेव्यमानः सुरासुरैः ॥ ३२ ॥ ततः शक्रो महातेजा गतो वै स्वपुरं प्रति ॥ जयन्तेनापि तत्रैव स्थापितं लिङ्गमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ जयन्तस्य हरस्तुष्टस्तस्मिँल्लिङ्गे स्तुतः सदा ॥ त्रिकालं पुत्रसंयुक्तः पूजनार्थं सुरेश्वर ॥ ३४ ॥ आयाति च महाबाहो त्यक्त्वा स्थानं स्वकं हि वै ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं सर्व

में नहाकर सावधान चित्त से पूजती है वह नहानेही से पवित्र होजाती है ॥ ३१ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकार बहुत से वरदानों को देकर देवताओं व दैत्यों से सेवित पिनाकधारी शिवजी अपने लोक को चले गये ॥ ३२ ॥ तदनन्तर बड़े तेजस्वी इन्द्रजी अपने लोक को चलेगये और वहीं पर जयन्तने भी उत्तम लिंगको थापा है ॥ ३३ ॥ उस लिंगमें स्तुति किये हुए शिवजी सदैव जयंत के ऊपर प्रसन्न रहते हैं सुरेश्वर इन्द्रजी पुत्र समेत पूजन के लिये त्रिकाल ॥ ३४ ॥ हे महाबाहो ! अपने स्थान को

छोड़कर आतेहैं सब सुखोंको देनेवाला यह सब चरित्र कहा गया ॥ ३५ ॥ जो पुण्य इन्द्रेश्वरमें होताहै जयंतेशजी के पूजन से उसी पुण्य को मनुष्य सत्य सत्य पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! उस कुंड में नहाकर व पूजन करके सावधान मनवाला मनुष्य सब पापों से शुद्धचित्त होकर इन्द्रलोक में पूजा जाता है ॥ ३७ ॥ और जो मनुष्य भक्ति से सुनता है वह सब पापों से छूट जाता है और जयंतेशजी के प्रसाद से वह सब कामनाओं को पाता है ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामिन्द्रेश्वरजयन्तेश्वरमहिमवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ❀ ॥ ● ॥ ❀ ॥

सौख्यप्रदायकम् ॥ ३५ ॥ इन्द्रेश्वरे तु यत्पुण्यं जयन्तेशस्य पूजनात् ॥ तदेवाप्नोति राजेन्द्र सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ३६ ॥ स्नात्वा कुण्डे महाराज सम्पूज्यैकाग्रमानसः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा इन्द्रलोके महीयते ॥ ३७ ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति जयन्तेशप्रसादतः ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येइन्द्रेश्वरजयन्तेश्वरमहिमवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि शिवतीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्रासौ शंकरो देवः पुनर्जन्मधरोऽभवत् ॥ १ ॥ कीलितो देवदेवेशः शंकरश्च त्रिलोचनः ॥ गिरिजया महाभाग पातितो भूमिमण्डले ॥ २ ॥ छलितो मुह्यमानस्तु दिवा रात्रिं न वेत्ति च ॥ पुंस्त्रीनपुंसकांश्चैव जडीभूतस्त्रिलोचनः ॥ ३ ॥ कल्पान्तमिव सञ्जातं तदा तस्मिंश्च कीलिते ॥ पार्वत्या सहसा तस्य कृतं कीलनकं तदा ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ एतदाश्चर्यमतुलं वचनं यत्त्वयोदितम् ॥ यो गुरुः

दो० । धराक्षेत्रकर है यथा अतिहीं अतुल प्रभाव । सोइ बीस अध्याय में कह्यो चरित्र सुहाव ॥ व्यासजी बोले कि इसके उपरान्त मैं अतिउत्तम शिवतीर्थ को कहता हूं जहां कि ये शिवदेवजी फिर जन्मधारी हुए हैं ॥ १ ॥ हे महाभाग ! पार्वतीजी ने देवदेवेश त्रिलोचन शिवजी को कीलन किया व भूमंडल में पातित किया है ॥ २ ॥ छलित व मोहित वे दिन, रात को नहीं जानते हैं और जड़ीभूत त्रिलोचनजी पुरुष, स्त्री व नपुंसक को नहीं जानते हैं ॥ ३ ॥ तब उन शिवजी के कीलने पर कल्पान्त सा होगया उस समय यकायक पार्वतीजी ने उन शिवजी का कीलन कियाहै ॥ ४ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि यह बड़ाभारी आश्चर्य है जो वचन कि तुमने कहा है सब

देवताओं व योगियों के जो सदैव गुरु हैं ॥ ५ ॥ नष्टवृत्तिवाले वे शिवजी किस कारण पार्वतीजी से कीलित हुए इस कारण को कहिये उसमें मुझको बड़ा आश्चर्य है ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन्, महाराज ! अथर्वण उपवेद से उपजे हुए अनेक प्रकारके मंत्रसमूहोंको शिवजी ने पार्वतीजी के आगे प्रकाशित कियाहै ॥ ७ ॥ और शाकिनी, डाकिनी, काकिनी, हाकिनी, एकिनी व लाकिनी ये छः भेद वहां कहे गये ॥ ८ ॥ व हे नृपोत्तम ! उनसे बीजों को उद्धारकर शिवजी ने पार्वतीजी के आगे एकवृता माला किया है व कहा है ॥ ६ ॥ व हे अनघ ! उस समय अन्य आठ बीजों से मंत्रोद्धार किया गया है और वह महादुष्टा शाकिनी प्रमदा साधन

सर्वदेवानां योगिनां चैव सर्वदा ॥ ५ ॥ पार्वत्या कीलितः कस्मान्नष्टवृत्तिः शिवः कथम् ॥ कारणं कथ्यतां तत्र परं कौतूहलं हि मे ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ मन्त्रौघा विविधा राजञ्छंकरेण प्रकाशिताः ॥ पार्वत्यग्रे महाराज अथर्वणोपवेदजाः ॥ ७ ॥ शाकिनी डाकिनी चैव काकिनी हाकिनी तथा ॥ एकिनी लाकिनी ह्येताः षड् भेदास्तत्र कीर्तिताः ॥ ८ ॥ बीजान्युद्धृत्य वै ताभ्यो माला चैकवृता कृता ॥ शम्भुना कथिता चैव पार्वत्यग्रे नृपोत्तम ॥ ६ ॥ अन्यैश्चैवाष्टभिर्बीजैर्मन्त्रोद्धारः कृतस्तदा ॥ साधयेत्सा महादुष्टा शाकिनी प्रमदानघा ॥ १० ॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥ प्रकाशितास्त्वया नाथ भेदा ह्येते षडेव हि ॥ षड्विधाः शक्तयो नाथ अगम्या योगमालिनीः ॥ षड्विधोक्तं त्वयैकेन कूटात्कृतं वदस्व माम् ॥ ११ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ अप्रकाश्यो महादेवि देवासुरैस्तु मानवैः ॥ १२ ॥ पार्वत्युवाच ॥ नमस्ते सर्वरूपाय नमस्ते वृषभध्वज ॥ जटिलेश नमस्तुभ्यं नीलकण्ठ नमोस्तु ते ॥ १३ ॥ कृपासिन्धो नमस्तुभ्यं नमस्ते कालरूपिणे ॥

करती है ॥ १० ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि हे नाथ ! तुमने इन छाही भेदों को प्रकाशित किया है व हे नाथ ! छः प्रकार की शक्तियां अगम्य व योगमालिनी हैं व तुम एकने छः प्रकार के उस शक्तिसमूह को कहा है इससे कूट से कियेहुए उसको मुझ से कहिये ॥ ११ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे महादेवि ! वह देवता, दैत्य व मनुष्यों से प्रकाश करने योग्य नहीं है ॥ १२ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि सब रूपी आप के लिये नमस्कार है व हे वृषभध्वज ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे जटिल, ईश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे नीलकण्ठ ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ हे दयासिन्धो ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व कालरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है इन बहुत से

कोमल वचनों से दयानिधान शिवजी को ॥ १४ ॥ प्रसन्न कराकर पार्वतीजी ने दण्डवत् प्रणामकर दोनों चरणों को प्रणाम किया और दया में तत्पर शिवजी ने उन पार्वतीजी से कहा ॥ १५ ॥ कि हे भद्रे ! तुम किस लिये स्तुति करती हो मन में प्रिय वरदान को मांगो ॥ १६ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि यदि मैं तुम को प्यारी हूं तो ध्यान समेत सब समाहार को विस्तार समेत निस्सन्देह कहिये ॥ १७ ॥ श्रीशिवजी बोले कि समाहार से उपजा हुआ फल तुमको प्रकाश न करना चाहिये मैं सब तत्त्व व मंत्र कूटादिक को कहता हूं ॥ १८ ॥ कि हे वरानने ! सब कूटों का माया बीज है और सबों का मध्यम वर्ण बिंदुनाद से आदि में शोभित होताहै ॥ १९ ॥ व

एतैश्च बहुभिर्वाक्यैः कोमलैः करुणानिधिम् ॥ १४ ॥ तोषयित्वाद्रितनया दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥ जग्राह पादयुगलं तां प्रोवाच दयापरः ॥ १५ ॥ किमर्थं स्तूयसे भद्रे याच्यतां मनसीप्सितम् ॥ १६ ॥ पार्वत्युवाच ॥ समाहारं च सध्यानं कथयस्व सविस्तरम् ॥ असन्देहमशेषं च यद्यहं वल्लभा तव ॥ १७ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ न प्रकाश्यं त्वया देवि समाहारोद्भवं फलम् ॥ सर्वं तत्त्वमहं वक्ष्ये मन्त्रकूटाद्यमेव हि ॥ १८ ॥ मायाबीजं तु सर्वेषां कूटानां हि वरानने ॥ सर्वेषां मध्यमो वर्णो बिन्दुनादादिशोभितः ॥ १९ ॥ वह्निबीजं सवातं च कूर्मबीजसमन्वितम् ॥ आदित्यप्रभवं बीजं शक्तिबीजोद्भवं सदा ॥ २० ॥ एतत्कूटं चाद्यबीजं द्वितीयं च विभोर्मतम् ॥ तृतीयं चाग्निबीजं तु संयुक्तं बिन्दुनेन्दुना ॥ २१ ॥ चतुर्थं तु विशेषेण ब्रह्मबीजमृषिस्तथा ॥ पञ्चमं कालबीजं च षष्ठं पार्थिवबीजकम् ॥ २२ ॥ सप्तमे चाष्टमे बाह्यं नृसिंहेन समन्वितम् ॥ नवमे द्वितीयमेकं च दशमे चाष्टकूटकम् ॥ २३ ॥ विपरीतं तयोर्बीजं रुद्राख्ये वरव

पवन समेत अग्निबीज और कूर्मबीज से संयुत सूर्य से उपजा हुआ बीज सदैव शक्तिबीज से उत्पन्न होता है ॥ २० ॥ यह कूट प्रथम बीज व दूसरा बीज विभु का माना गया है और तीसरा अग्निबीज बिंदु व चंद्रमासे संयुक्त है ॥ २१ ॥ और विशेषकर चौथा ब्रह्मबीज व ऋषि है और पांचवां कालबीज व छठां पृथ्वीबीज है ॥ २२ ॥ और सातवें व आठवें में बाहर नृसिंहबीज से संयुत है और नवम में दूसरा व पहला तथा दशम में अष्टकूट है ॥ २३ ॥ व हे वरवर्णिनि ! गेरहवें में उनका

बीज उलटा होता है और चौदहवें में चौथा पृथ्वीबीज से संयुत होता है ॥ २४ ॥ व हे मेनकात्मजे ! कितेक कूट शेष अक्षर रक्षित हैं हे नृप ! जब वे शिवजी की स्त्री पार्वतीजी पृथ्वी में प्राप्त हुईं तब ॥ २५ ॥ वहां रामचन्द्रजी ने समझाया और हँसते हुए शिवजी ने कहा कि हे भद्रे ! तुम किस लिये आपत्ति में प्राप्त हो तुम्हारे मारण, मोहन, वशीकरण, आकर्षण व उच्चाटन में शक्ति होगी और जिस जिस वस्तु की इच्छा करोगी वह वह सिद्धि होगी ॥ २६ । २७ ॥ यह सुनकर उस समय पवित्र हास्यवाली पार्वतीजी का चित्त प्रसन्न हुआ तदनन्तर हे वीर ! शिवजी ने शेष कूटोंको पार्वतीजी से कहा ॥ २८ ॥ और दयासिंधु शिवजी यह बोले कि विधिपूर्वक साधन

र्णानि ॥ चतुर्दशे चतुर्थाख्यं पृथ्वीबीजेन संयुतम् ॥ २४ ॥ कूटाः शेषाक्षराः केचिद्रक्षिता मेनकात्मजे ॥ सा पपात य दोर्व्यां हि शिवपत्नी तदा नृप ॥ २५ ॥ रामेणाश्वासिता तत्र प्रहसंस्त्रिपुरान्तकः ॥ भद्रे कस्मात्त्वमापन्ना तव शक्ति र्भविष्यति ॥ २६ ॥ मारणे मोहने वश्ये आकर्षणे च क्षोभणे ॥ यं यं कामयसे नूनं तत्तत्सिद्धिर्भविष्यति ॥ २७ ॥ इति श्रुत्वा तदा देवी हृष्टचित्ता शुचिस्मिता ॥ कूटशेषास्ततो वीर प्रोक्तास्तस्यै तु शम्भुना ॥ २८ ॥ उवाच च कृपासिन्धुः साधयस्व यथाविधि ॥ कैलासात्तु हरस्तत्र धर्मारण्ये गतोभृशम् ॥ २९ ॥ ज्ञात्वा देवी ययौ तत्र यत्रासौ वृषभध्व जः ॥ तत्क्षणात्पतितो भूमौ धर्मारण्ये नृपोत्तम ॥ ३० ॥ जटा चन्द्रोरगाः शूलं वृषभाद्यायुधानि वै ॥ मुण्डमाला च कौपीनं कपालं ब्रह्मणस्तु वै ॥ ३१ ॥ गता गणाश्च सर्वत्र भूतप्रेता दिशो दश ॥ विसंज्ञं च स्वमात्मानं ज्ञात्वा देवो महे श्वरः ॥ ३२ ॥ स्वेदजास्तु समुत्पन्ना गणाः कूटादयस्तथा ॥ पञ्चकूटान्समुत्पाद्य तदा तस्मै च शूलिने ॥ ३३ ॥ साध

करो और शिवजी कैलास से उस धर्मारण्य में गये ॥ २९ ॥ और पार्वती देवीजी जानकर वहां गईं जहां कि हे नृपोत्तम ! ये वृषध्वज शिवजी उसी क्षण धर्मारण्य में पृथ्वी में गिरे थे ॥ ३० ॥ और जटा, चंद्रमा, नाग, त्रिशूल व वृषभादिक और अस्त्र तथा मुंडमाला, कौपीन व ब्रह्माका कपाल ॥ ३१ ॥ और भूत, प्रेतादिक गण सब कहीं दशो दिशाओं को चले गये और अपने चित्त को मोहित जानकर शिवदेवजी ने विचार किया ॥ ३२ ॥ व स्वेदज उत्पन्न हुए और कूटादिक गण पैदा हुए पांच कूटों को उत्पन्न करके उस समय उन शिवजी के लिये ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! वे साधक जप व होम में परायण हुए और प्रेतासनवाले वे सब गण कालकूट

के ऊपर स्थित हुए ॥ ३४ ॥ व अपने चित्तसे ऐसा कहने लगे कि जिससे शिवजी को मोक्ष होवै तदनन्तर अग्नि की भय से विकल पार्वतीजी कष्ट में प्राप्तहुईं ॥ ३५ ॥ और उन्होंने शिवजी को पूजन किया व शिवजी की आज्ञा करनेवाली नीचे मुख किये लज्जित होकर वहां स्थित पार्वतीजी ने तप किया ॥ ३६ ॥ और पंचाग्निसेवन व धूमपान करके पार्वतीजी नीचे मुख करके स्थित हुई और उन कूटाक्षरों से स्तुति किये हुए शिवजी प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! यह धराक्षेत्र पातकों का विनाशक व सब कामनाओं का दायक है और इस स्थान में देवमज्जनक नामक उत्तम तड़ाग शोभित है ॥ ३८ ॥ हे नृप ! कुँवार के कृष्णपक्ष में चौदसि के दिन उस में नहाकर

कास्ते महाराज जपहोमपरायणाः ॥ प्रेतासनास्तु ते सर्वे कालकूटोपरिस्थिताः ॥ ३४ ॥ कथयन्ति स्वमात्मानं येन मोक्षः पिनाकिनः ॥ ततः कष्टसमाविष्टा गौरी वह्निभयातुरा ॥ ३५ ॥ समर्चितः शिवस्तैश्च गौरी हीणा त्वधोमुखी ॥ तपस्तेपे च तत्रस्था शंकरादेशकारिणी ॥ ३६ ॥ पञ्चाग्निसेवनं कृत्वा धूम्रपानमधोमुखी ॥ कूटाक्षरैः स्तुतस्तैस्तु तोषितो वृषभध्वजः ॥ ३७ ॥ धराक्षेत्रमिदं राजन्पापघ्नं सर्वकामदम् ॥ देवमज्जनकं शुभ्रं स्थानकेऽस्मिन्विराजते ॥ ३८ ॥ आश्विने कृष्णपक्षे च चतुर्दश्या दिने नृप ॥ तत्र स्नात्वा च पीत्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३९ ॥ पूजयित्वा च देवेशमुपोष्य च विधानतः ॥ शाकिनी डाकिनी चैव वेतालाः पितरो ग्रहाः ॥ ४० ॥ ग्रहा धिष्ण्या न पीड्यन्ते सत्यं सत्यं वरानने ॥ साङ्गं रुद्रजपं तत्र कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥ ४१ ॥ नश्यन्ति विविधा रोगाः सत्यं सत्यं च भूपते ॥ एतत्सर्वं मया ख्यातं देवमज्जनकं शुभम् ॥ ४२ ॥ अश्वमेधसहस्रैस्तु कृतैस्तु भूरिदक्षिणैः ॥ तत्फलं समवा

व जल को पीकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ३९ ॥ और देवेश शिवजी को पूजकर व विधिसे उपासकर शाकिनी, डाकिनी, वेताल, पितर व ग्रह ॥ ४० ॥ और नक्षत्र ग्रह पीडित नहीं करते हैं हे वरानने ! यह सत्य सत्य है और वहां साग रुद्रजप करके मनुष्य पापोंसे छूट जाता है ॥ ४१ ॥ व हे राजन् ! अनेक भांति के रोग सत्य सत्य नाश होजाते हैं यह सब मैंने उत्तम देवमज्जनक तड़ाग कहा ॥ ४२ ॥ बहुत दक्षिणावाले हज़ार अश्वमेध यज्ञ करने से जो फल होता है उस फल को इस

को सुनने व सुनानेवाला मनुष्य पाता है ॥ ४३ ॥ व पुत्ररहित मनुष्य पुत्रों को पाता है और निर्धनी धन को पाता है और आयुर्बल, आरोग्य व ऐश्वर्य को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४४ ॥ और मन, वचन व शरीर से उपजा हुआ जो तीन प्रकार का पापहै हे नृप ! वह सब स्मरण व कीर्तन से नाश होजाताहै ॥ ४५ ॥ और वह धन्य, यशदायक, आयुर्बलदायक व सुख और सन्तान को देनेवाला है हे वत्स ! जो इस माहात्म्य को सुनता है वह सब सुखों से संयुत होताहै ॥ ४६ ॥ हे नृप ! सब तीर्थों में जो पुण्य होता है व सब दानों में जो फल होता है और सब यज्ञों से जो पुण्य होताहै वह इसको सुनने से होताहै ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमा

प्नोति श्रोता श्रावयिता नरः ॥ ४३ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो धनमाप्नुयात् ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं लभते नात्र संशयः ॥ ४४ ॥ मनोवाक्कायजनितं पातकं त्रिविधं च यत् ॥ तत्सर्वं नाशमायाति स्मरणात्कीर्तनान्नृप ॥ ४५ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं सुखसन्तानदायकम् ॥ माहात्म्यं शृणुयाद्वत्स सर्वसौख्यान्वितो भवेत् ॥ ४६ ॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् ॥ सर्वयज्ञैश्च यत्पुण्यं जायते श्रवणान्नृप ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येधराक्षेत्रवर्णनंनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ तया चोत्पादिता राजञ्छरीरात्कुलदेवताः ॥ भट्टारिकी १ तथा छत्रा २ ओविका ३ ज्ञानजा तथा ४ ॥ १ ॥ भद्रकाली च ५ माहेशी ६ सिंहोरी ७ धनमर्द्दनी ८ ॥ गात्रा ९ शान्ता १० शेषदेवी ११ वाराही १२ भद्रयोगिनी १३ ॥ २ ॥ योगेश्वरी १४ मोहलज्जा १५ कुलेशी १६ शकुलाचिता १७ ॥ तारणी १८ कनकानन्दा १९

हात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांधराक्षेत्रवर्णनंनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जौन गोत्र देवी अहै गोत्र प्रवर हैं जौन । इक्किसवें अध्याय में कह्यो चरित सब तौन ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन् ! उसने शरीर से कुलदेवताओं को उत्पन्न किया है कि भट्टारिका, छत्रा, ओविका व ज्ञानजा ॥ १ ॥ और भद्रकाली, माहेशी, सिंहोरी, धनमर्दिनी, गात्रा, शांता, शेषदेवी, वाराही व भद्रयोगिनी ॥ २ ॥ योगेश्वरी,

मोहलज्जा, कुलेशी, शकुलाचिता, तारणी, कनकानंदा, चामुण्डा व सुरेश्वरी ॥ ३ ॥ और दारभट्टारिकादिक फिर प्रत्येक सौप्रकार की उत्तम शक्तियां उसमें अनेक रूपों से संयुत उत्पन्न हुई इसके उपरान्त मैं प्रवरों व देवताओं को कहता हूं ॥ ४ ॥ कि औपमन्यवसगोत्र के प्रवर तीन ३ हैं और गोत्रदेव्या गात्रावासिष्ठ १ भरद्वाज २ इन्द्रप्रमद ३ और काश्यपसगोत्र की सगोत्रदेव्या ज्ञानजा २ व प्रवर ३ तीन हैं काश्यप १ अवत्सार २ व रैभ्य ३ और मांडव्यसगोत्र ३ गोत्रजा दारभट्टारिका ३ व प्रवर ५ पांच हैं भार्गव, च्यवन, अत्रि, और्व और जमदग्नि व कुशिकसगोत्र में उत्पन्न तारणी ६ व महाबला है और प्रवर ३ तीन हैं विश्वामित्र, देवराज, उद्दालक ६

चामुण्डा २० च सुरेश्वरी २१ ॥ ३ ॥ दारभट्टारिकेत्या २२ द्या प्रत्येका शतधा पुनः ॥ उत्पन्नाः शक्तयस्तस्मिन्नानारूपान्विताः शुभाः ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रवराण्यथ देवताः ॥ ४ ॥ औपमन्यवसगोत्रप्रवर ३ गोत्रदेव्यागात्रावासिष्ठ १ भरद्वाज २ इन्द्रप्रमद ३ काश्यपसगोत्रसगोत्रदेव्याज्ञानजा २ प्रवर ३ काश्यपः १ अवत्सारः २ रैभ्यः ३ माण्डव्यसगोत्र ३ गोत्रजा दारभट्टारिका ३ प्रवर ५ भार्गवच्यवनात्रिऔर्वजमदग्निः ५ कुशिकसगोत्रजातारणी ६ महाबला प्रवर ३ विश्वामित्रदेवराजउद्दालक ६ शौनकसगोत्र ७ गोत्रदेवी ७ शान्ता प्रवर ३ भार्गवाग्णैनहोत्रगार्त्समद ३ कृष्णात्रेयसगोत्रवीगोत्रदेव्याभद्रयोगिनी ८ प्रवर ३ आत्रेयअर्चनानसश्यावाश्व ३ गार्ग्यायणसगोत्र गोत्रजा शान्ता प्रवर ५ भार्गवच्यवनआप्नुवान्और्वजमदग्निः १० गार्गायणगोत्रगोत्रजाज्ञानजा प्रवर ५ काश्यपअवत्सारशाण्डिलअसितदेवलगाङ्गेयसगोत्रदेवी शान्ता द्वारवासिनी प्रवर ३ गार्ग्यगार्गि शङ्ख लिखित १२ पैङ्ग्यसगोत्रजाज्ञानजा

और शौनक के सगोत्र ७ सात हैं व गोत्र देवी ७ सात हैं और शांता के प्रवर ३ तीन हैं भार्गव, अग्णैनहोत्र व गार्त्समद ३ और कृष्णात्रेयस गोत्रवी गोत्रदेवी की भद्रयोगिनी है ८ और प्रवर ३ आत्रेय, अर्चनानस और श्यावाश्व ३ और गार्ग्यायणसगोत्र की गोत्रजा देवी शांता है प्रवर ५ पाच हैं भार्गव, च्यवन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हैं १० और गार्गायण गोत्रकी गोत्रजा देवी ज्ञानजा है व प्रवर ५ पांच हैं काश्यप, अवत्सार, शाडिल, असित व देवल हैं और गांगेयस की गोत्रदेवी शांता द्वारवासिनी है और प्रवर ३ गार्ग्यगार्गि, शंख व लिखित हैं १२ व पैंग्यसगोत्र की गोत्रजा देवी ज्ञानजा है व प्रवर ३ तीन हैं आंगिरस, आंबरीष व

यौवनाश्व १३ और वत्ससगोत्र की गोत्रजा देवी ज्ञानजा है व प्रवर ५ पांच हैं भार्गव, च्यावन, आप्नुवान्, और्व व पुरोधस हैं १४ व वात्ससगोत्र की गोत्रजा देवी ज्ञानजा है और प्रवर ५ पांच हैं भार्गव, च्यावन, आप्नुवान्, और्व व पुरोधस १५ व वात्स्यसगोत्र की गोत्रजा देवी शीहरी है प्रवर ५ पांच हैं भार्गव, च्यावन, आप्नुवान्, और्व व पुरोधस हैं १६ और श्यामायनसगोत्र की गोत्रजा देवी शीहरी है और प्रवर पांच हैं भार्गव, च्यावन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हैं १७ व धारणसगोत्र की गोत्रजा देवी छत्रजा है प्रवर ३ तीनहैं अगस्त्य, दार्वच्युत व दध्यवाहन हैं १८ और काश्यप गोत्र की गोत्रजा देवी चामुण्डा है प्रवर ३ तीन हैं काश्यप, स्यावत्सार व नैध्रुव

प्रवर ३ आङ्गिरसआम्बरीषयौवनाश्व १३ वत्ससगोत्रगोत्रजाज्ञानजाप्रवर ५ भार्गवच्यावनआप्नुवान् और्वपुरोधसः १४वात्ससगोत्रगोत्रजाज्ञानजाप्रवर५भार्गवच्यावन आप्नुवान् और्वपुरोधसः १५ वात्स्यसगोत्रस्य गोत्रजा शीहरी प्रवर ५ भार्गवच्यावनआप्नुवान् और्वपुरोधसः १६ श्यामायनसगोत्रस्य गोत्रजा शीहरी प्रवर ५ भार्गवच्यावनआप्नुवान् और्व जमदग्निः १७ धारणसगोत्रस्य गोत्रजा छत्रजा प्रवर ३ अगस्त्यदार्वच्युतदध्यवाहन १८ काश्यपगोत्रस्य गोत्रजा चामुण्डा प्रवर ३ काश्यपस्यावत्सार नैध्रुव १९ भरद्वाजगोत्रस्य गोत्रजा पक्षिणी प्रवर ३ आङ्गिरस बार्हस्पत्यभारद्वाज २२ माण्डव्यसगोत्रस्य वत्ससवात्स्यसवात्स्यायनस ४ सामान्यलौगाक्षसगोत्रस्य गोत्रजा भद्रयोगिनी प्रवर ३ काश्यपवसिष्ठ अवत्सार २० कौशिकसगोत्रस्य गोत्रजा पक्षिणी प्रवर ३ विश्वामित्र अथर्व भारद्वाज २१ सामान्यप्रवर १ पैङ्ग्यसभरद्वाज २ समानप्रवरा २ लौगाक्षसगार्ग्यायनसकाश्यपकश्यप ४ समानप्रवर ३

हैं १९ और भरद्वाज गोत्र की गोत्रजा पक्षिणी देवी है प्रवर ३ तीन हैं आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज २२ व मांडव्यसगोत्र के वत्स, सवात्स्यस, वात्स्यायनस ये तीन प्रवर हैं ४ और सामान्य लौगाक्षस गोत्र की गोत्रजा देवी भद्रयोगिनी है प्रवर ३ तीन हैं काश्यप, वसिष्ठ, अवत्सार २० कौशिकसगोत्र की गोत्रजा देवी पक्षिणी है प्रवर ३ तीन हैं विश्वामित्र, अथर्व व भरद्वाज २१ सामान्य प्रवर १ पैंग्यस भरद्वाज २ समानप्रवरा २ लौगाक्षस, गार्ग्यायनस, काश्यप, कश्यप ४ समान प्रवर ३ तीन

हैं कौशिक, कुशिकसाः २ समानप्रवरः ४ औपमन्यु, लौगाक्षस २ समानप्रवराः ५ पांच हैं ॥ जितने गोत्रों के प्रवरों में एक विश्वामित्रजी वर्तमान हैं उतने गोत्रों का सगोत्र होने के कारण परस्पर विवाह नही होता है ॥ ५ ॥ समान प्रवर व समानगोत्रवाली तथा माता के सपिण्ड (सातपुश्तियों के इसपार) वाली व जिसकी औषधि न होसकै ऐसे रोगवाली व अजातलोम्नी तथा पहले अन्य की ब्याही व पुत्ररहित की कन्या व बहुतही काली कन्या को त्याग करै ॥ ६ ॥ और जिन प्रवरों में एकही ऋषि वर्तमान हैं भृगु व अंगिरा गण को छोड़कर उतने में सगोत्रता होती है ॥ ७ ॥ और सामान्य से पांच व तीन प्रवरों में और तीन व दो में और ऐसेही भृगु

कौशिककुशिकसाः २ समानप्रवरः ४ औपमन्युर्लौगाक्षस २ समानप्रवराः ५ ॥ यावतां प्रवरेष्वेको विश्वामित्रोऽनुवर्तते ॥ न तावतां सगोत्रत्वाद्विवाहः स्यात्परस्परम् ॥ ५ ॥ त्यजेत्समानप्रवरां सगोत्रां मातुः सपिण्डामचिकित्स्यरोगाम् ॥ अजातलोम्नीं च तथान्यपूर्वां सुतेन हीनस्य सुतां सुकृष्णाम् ॥ ६ ॥ एक एव ऋषिर्यत्र प्रवरेष्वनुवर्तते ॥ तावत्समानगोत्रत्वमृते भृग्वङ्गिरोगणात् ॥ ७ ॥ पञ्चसु त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः ॥ भृग्वङ्गिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोपि वारयेत् ॥ ८ ॥ समानगोत्रप्रवरां कन्यामूढ्वोपगम्य च ॥ तस्यामुत्पाद्य चाण्डालं ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥ ९ ॥ कात्यायनः ॥ परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरां तथा ॥ त्यागं कृत्वा द्विजस्तस्यास्ततश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ १० ॥ उत्सृज्य तां ततो भार्यां मातृवत्परिपालयेत् ॥ ११ ॥ याज्ञवल्क्यः ॥ अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम् ॥ पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ॥ १२ ॥ असमानप्रवरैर्विवाह इति गौतमः ॥ यद्येकं प्रवरं भिन्नं मातृगोत्र

व अंगिरा गणों में तथा शेष प्रवरों में एक को भी त्याग करै ॥ ८ ॥ और समान गोत्र व प्रवरवाली कन्या को ब्याह कर व संगम कर उसमें चांडाल पुत्र को पैदाकरके मनुष्य ब्राह्मणताही से हीन होजाता है ॥ ९ ॥ कात्यायन ने कहा है कि समान गोत्र व समान प्रवरवाली कन्या को ब्याह कर ब्राह्मण उसको त्याग कर तदनन्तर चान्द्रायण व्रत करै ॥ १० ॥ उसके उपरान्त उसको त्यागकर माता की नाईं पालन करै ॥ ११ ॥ याज्ञवल्क्य ने कहा है कि बिन रोगवाली व भाइयोंवाली तथा असमान ऋषि व गोत्र में उपजी हुई कन्या को ब्याहै और माता से पांच व सात पुश्तियों के उपरान्त तथा पिता से ॥ १२ ॥ असमान गोत्र व प्रवरों से विवाह करना

चाहिये ऐसा गौतम ने कहा है ॥ व यदि माता के गोत्र व प्रवर का एकही प्रवर पृथक् हो तो उसमें विवाह न करना चाहिये क्योंकि वह कन्या बहन मानी गई है ॥ १३ ॥ और जो बड़ा भाई स्थित होनेपर स्त्री व अग्नि का संयोग करता है वह परिवेत्ता जानने योग्य है और जेठा भाई परिवित्त होताहै ॥ १४ ॥ और उद्दरी स्त्री में उपजी हुई नीचकुलवाली स्त्री सदैव वर्जित करने योग्य है वचन व मन से दी हुई और कौतुक से जिसका मंगल कर्म किया गया है ॥ १५ ॥ और जिसका जल से संकल्प हुआ है व जिसका पाणिग्रहण हुआ है व जिसने अग्नि की प्रदक्षिणा की है व जिसके संतान पैदा होचुकी है वह उद्दरी है ॥ १६ ॥ ये वंश को अग्नि की

वरस्य च ॥ तत्रोद्वाहो न कर्तव्यः सा कन्या भगिनी भवेत् ॥ १३ ॥ दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते ॥ परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ १४ ॥ सदा पौनर्भवा कन्या वर्जनीया कुलाधमा ॥ वाचा दत्ता मनोदत्ता कृतकौतुक मङ्गला ॥ १५ ॥ उदकस्पर्शिता या च या च पाणिगृहीतका ॥ अग्निं परिगता या च पुनर्भूः प्रसवा च या ॥ १६ ॥ इत्येताः काश्यपेनोक्ता दहन्ति कुलमग्निवत् ॥ १७ ॥ अथावटङ्काः कथ्यन्ते गोत्र १ पात्र २ दात्र ३ त्राशयत्र ४ लडकात्र १५ मण्डकीयात्र १६ विडलात्र १७ रहिला १८ भादिल १९ वालूश्रा २० पोकीया २१ वाकीया २२ मकाल्या २३ लाडश्रा २४ माणवेदा २५ कालीया २६ ताली २७ वेलीया २८ पांवलएडीया २९ मूडा ३० पीतूला ३१ धिगमघ ३२ भूतपादवादी ३४ होफोया ३५ शेवार्दत ३६ वपार ३७ वथार ३८ साधका ३९ बहुधिया ४० ॥ १८ ॥ मातुलस्य

नाईं जलाती हैं ऐसा काश्यपजी ने कहा है ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त अवटंक कहेजाते हैं कि गोत्र १ पात्र २ दात्र ३ त्राशयत्र ४ लडकात्र १५ मंडकीयात्र १६ विडलात्र १७ रहिला १८ भादिल १९ वालूश्रा २० पोकीया २१ वाकीया २२ मकाल्या २३ लाडश्रा २४ माणवेदा २५ कालीया २६ ताली २७ वेलीया २८ पांवलएडीया २९ मूडा ३० पीतूला ३१ धिगमघ ३२ भूतपादवादी ३४ होफोया ३५ शेवार्दत ३६ वपार ३७ वथार ३८ साधका ३९ बहुधिया ४० ॥ १८ ॥ और मामा की कन्या व माता

के गोत्र की कन्या को ब्याह कर और समानप्रवरवाली कन्या को ब्याह करके उसको छोड़कर चान्द्रायण करै ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालु मिश्रविरचितायाम्भाषाटीकायांश्रीमाताकथितनामगोत्रप्रवरकृतदेव्यवटङ्ककथनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । धर्मारण्य स्थान में जौन जौन हैं देवि । बाइसवें अध्याय में सोइ चरित सुखसेवि ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि स्थानवासिनी योगिनियों को ब्रह्मा, विष्णु व शिवजीने निर्माण किया है तो किस स्थान में कौनसी व कैसी देवियां हैं उनको मुझ से कहिये ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे युधिष्ठिर! तुम सर्वज्ञ व कुलीन हो और बहुत

सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च ॥ समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये श्रीमाताकथितनामगोत्रप्रवरकृतदेव्यवटङ्ककथनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ योगिन्यः स्थानवासिन्यो काजेशेन विनिर्मिताः ॥ कस्मिन्स्थाने हि का देव्यः कीदृश्यस्ता वदस्व मे ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ सर्वज्ञोसि कुलीनोसि साधु पृष्टं त्वयानघ ॥ कथयिष्याम्यहं सर्वमखिलेन युधिष्ठिर ॥ २ ॥ नानाभरणभूषाढ्या नानारत्नोपशोभिताः ॥ नानावसनसंवीता नानायुधसमन्विताः ॥ ३ ॥ नानावाहनसंयुक्ता नानास्वरनिनादिनीः ॥ भयनाशाय विप्राणां काजेशेन विनिर्मिताः ॥ ४ ॥ प्राच्यां याम्यामुदीच्यां च प्रतीच्यां स्थापिता हि ताः ॥ आग्नेय्यां नैर्ऋते देशे वायव्येशानयोस्तथा ॥ ५ ॥ आशापुरी च गात्रायी छत्रायी ज्ञानजा तथा ॥ पिप्पलाम्बा तथा शान्ता सिद्धा भट्टारिका तथा ॥ ६ ॥ कदम्बा विकटा मीठा सुपर्णा वसुजा तथा ॥ मातङ्गी

अच्छा तुमने पूंछा मैं सब को सम्पूर्णता से कहता हूं ॥ २ ॥ कि अनेक भांति के आभूषणोंसे संयुत तथा अनेक भांति के रत्नों से शोभित और अनेक भांति के वसनों को पहने व अनेक प्रकार के अस्त्रों से वे देवियां संयुत हैं ॥ ३ ॥ और अनेक भांति की सवारियों से युक्त व अनेक भांति के शब्दों से बोलनेवाली वे ब्राह्मणों की भय के नाश लिये ब्रह्मा, विष्णु व महेशजी से बनाई गई हैं ॥ ४ ॥ और वे पूर्व, दक्षिण, उत्तर व पश्चिम में स्थापित कीगई हैं और आग्नेय व नैर्ऋत्य स्थान में और वायव्य व ईशान में स्थापित हैं ॥ ५ ॥ आशापुरी, गात्रायी, छत्रायी व ज्ञानजा, पिप्पलाम्बा, शांता व सिद्धा और भट्टारिका ॥ ६ ॥ कदम्बा, विकटा, मीठा, सुपर्णा, वसुजा व मातंगी

महादेवी, वाराही और मुकुटेश्वरी ॥ ७ ॥ और भद्रा महाशक्ति व महाबलवती सिंहारा ये व अन्य बहुतसी वे देवियां कही नहीं जासक्ती हैं॥ ८ ॥ वे देवियां अनेक भांति के रूप को धारण करनेवाली व अनेक प्रकार के वेषों में आश्रित देवियां स्थान से उत्तरदिशा के भागमें आशापूर्णा के समीप हैं॥ ९ ॥ पूर्व में आनन्द को देनेवाली आनन्दा देवी है और उत्तर में बसंती है व हर्ष से अनेक प्रकार के रूपों को वे धारण करती हैं॥ १० ॥ और जलदान से तृप्त कीहुई ये देवियां प्रिय कामनाओं को देती हैं व नैर्ऋत्य दिशा के भाग में शांति को देनेवाली शांता देवी है ॥ ११ ॥ वरदायिनी व चार भुजाओंवाली वह देवी सिंह के ऊपर बैठी है और फिर भट्टारी महाशक्ति

च महादेवी वाराही मुकुटेश्वरी॥ ७॥ भद्रा चैव महाशक्तिः सिंहारा च महाबला॥ एताश्चान्याश्च बह्व्यस्ताः कथितुं नैव शक्यते॥ ८॥ नानारूपधरा देव्यो नानावेषसमाश्रिताः॥ स्थानादुत्तरदिग्भागे आशापूर्णासमीपतः॥ ९॥ पूर्वे तु विद्यते देवी आनन्दानन्ददायिनी॥ वसन्ती चोत्तरे देव्यो नानारूपधरा मुदा॥ १०॥ इष्टान्कामान्ददत्येता जलदानेन तर्पिताः॥ स्थाने नैर्ऋतिदिग्भागे शान्ता शान्तिप्रदायिनी॥ ११॥ सिंहोपरि समासीना चतुर्हस्ता वरप्रदा॥ भट्टारी च महाशक्तिः पुनस्तत्रैव तिष्ठति॥ १२॥ संस्तुता पूजिता भक्त्या भक्तानां भयनाशिनी॥ स्थानात्तु सप्तमे क्रोशे क्षेमलाभा व्यवस्थिता॥ १३॥ सा विलेपमयी पूज्या चिन्तिता सिद्धिदायिनी॥ पूर्वस्यां दिशि लोकैस्तु बलिदानेन तर्पिता॥ परिवारेण संयुक्ता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी॥ १४॥ अचिन्त्यरूपचरिता सर्वशत्रुविनाशनी॥ सन्ध्यायास्त्रिषु कालेषु प्रत्यक्षैव हि दृश्यते॥ १५॥ स्थानात्तु सप्तमे क्रोशे दक्षिणे विन्ध्यवासिनी॥ सायुधा

वहीं पर स्थित है ॥ १२ ॥ भक्ति से स्तुति कीहुई व पूजी हुई वह भक्तों के भयको नाशनेवाली है और स्थान से सात कोसपर क्षेमलाभा देवी स्थित है ॥ १३ ॥ लेपमयी वह पूजने योग्य है और स्मरण कीहुई वह सिद्धि को देती है और पूर्व दिशा में परिवार समेत लोगों से तृप्त कीहुई वह भुक्ति, मुक्ति को देती है ॥ १४ ॥ और वह अचिन्तनीय रूप व चारित्रवाली है व सब शत्रुवों को नाशनेवाली है और संध्या के तीनों समयों में वह प्रत्यक्षही देखपड़ती है ॥ १५ ॥ और स्थान से

दक्षिण में सात कोसपर विन्ध्यवासिनी देवी है अस्त्रों समेत व रूप से संयुत वह भक्तों के भय को नाशनेवाली है ॥ १६ ॥ और पश्चिम में उतनीही भूमि में निम्बजा देवी स्थित है बहुत बलवती वह देखनेपर भी नयनों को आनन्द देती है ॥ १७ ॥ और स्थान से उत्तर दिशा के भाग में उतनीही भूमि पै बहुसुवर्णाक्ष नामक शक्ति स्थित है पूजीहुई वह सुवर्ण को देती है ॥ १८ ॥ और स्थान से वायव्यकोण में कोसभर पर समय में छाग को धारनेवाली क्षेत्रधरा महादेवी स्थित है ॥ १९ ॥ और नगर से उत्तर दिशा के भाग में कोसभरपर सब के उपकार में परायण व स्थान के उपद्रव को नाशनेवाली कर्णिका देवी है ॥ २० ॥ और स्थान से नैर्ऋत्य दिशा

रूपसम्पन्ना भक्तानां भयहारिणी ॥ १६ ॥ पश्चिमे निम्बजा देवी तावद्भूमिसमाश्रिता ॥ महाबला सा दृष्टापि नयनानन्ददायिनी ॥ १७ ॥ स्थानादुत्तरदिग्भागे तावद्भूमिसमाश्रिता ॥ शक्तिर्बहुसुवर्णाक्षा पूजिता सा सुवर्णदा ॥ १८ ॥ स्थानाद्वायव्यकोणे च क्रोशमात्रमिते श्रिता ॥ क्षेत्रधरा महादेवी समये छागधारिणी ॥ १९ ॥ पुरादुत्तरदिग्भागे क्रोशमात्रे तु कर्णिका ॥ सर्वोपकारनिरता स्थानोपद्रवनाशनी ॥ २० ॥ स्थानान्निर्ऋतिदिग्भागे ब्रह्माणीप्रमुखास्तथा ॥ नानारूपधरा देव्यो विद्यन्ते जलमातरः ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवतास्थापनंनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा यत्कृतं पुरा ॥ तत्सर्वं कथयाम्यद्य शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ १ ॥ देवा

के भाग में अनेक प्रकार के रूपों को धारनेवाली ब्रह्माणी आदिक जलमातृका देवी स्थित हैं ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदेवतास्थापनंनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । धर्मारण्य क्षेत्र में यज्ञ देवतन कीन । तेइसवें अध्याय में सोइ चरित्र नवीन ॥ व्यासजी बोले कि इसके उपरान्त मैं कहता हूं कि पुरातन समय ब्रह्मा ने जो किया है उस सबको मैं इस समय कहताहूं सावधान मन होकर सुनिये ॥ १ ॥ कि देवताओं व दानवों का वैर से युद्ध हुआ और उस महादुष्ट युद्ध में देवताओं का मन

दुःखित हुआ ॥ २ ॥ और उस युद्धमें वे दुःखित हुए व ब्रह्माकी शरण में गये ॥ ३ ॥ देवता बोले कि हे ब्रह्मन् ! हम किस प्रकार दैत्यों का वध करेंगे उस यत्न को इस समय मुझ से शीघ्रही कहिये ॥ ४ ॥ ब्रह्मा बोले कि पुरातन समय यमराज की तपस्या से प्रसन्न होतेहुए मैंने व शिवजी ने और विष्णुजी ने धर्मारण्यको बनाया है ॥ ५ ॥ वहां जो दान दिया जाता है अथवा जो उत्तम यज्ञ या तप कियाजाता है वह सब कोटिगुना होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६ ॥ हे देवताओ ! पाप या पुण्य सब कोटिगुना होता है उसी कारण दैत्यों से वह स्थान कभी धर्षित नहीं होता है ॥ ७ ॥ ब्रह्मा का वचन सुनकर आश्चर्य समेत सब देवता ब्रह्मा को आगे करके धर्मारण्य

नां दानवानां च वैराद्युद्धं बभूव ह ॥ तस्मिन्युद्धे महादुष्टे देवाः संक्लिष्टमानसाः ॥ २ ॥ बभूवुस्तत्र सोद्वेगा ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ३ ॥ देवा ऊचुः ॥ ब्रह्मन्केन प्रकारेण दैत्यानां वधमेव च ॥ कुर्मश्चाद्य उपायं हि कथ्यतां शीघ्रमेव मे ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मया हि शंकरेणैव विष्णुना हि तथा पुरा ॥ यमस्य तपसा तुष्टैर्धर्मारण्यं विनिर्मितम् ॥ ५ ॥ तत्र यद्दीयते दानं यज्ञं वा तप उत्तमम् ॥ तत्सर्वं कोटिगुणितं भवेदिति न संशयः ॥ ६ ॥ पापं वा यदि वा पुण्यं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥ तस्माद्दैत्यैर्धर्षितं न कदाचिदपि भोः सुराः ॥ ७ ॥ श्रुत्वा तु ब्रह्मणो वाक्यं देवाः सर्वे सविस्मयाः ॥ ब्रह्माणं त्वग्रतः कृत्वा धर्मारण्यमुपाययुः ॥ ८ ॥ सत्रं तत्र समारभ्य सहस्राब्दमनुत्तमम् ॥ वृत्वाऽऽचार्यं चाङ्गिरसं मार्कण्डेयं तथैव च ॥ ९ ॥ अत्रिं च कश्यपं चैव होतारं समकल्पयन् ॥ जमदग्निं गौतमं च अध्वर्युत्वं न्यवेदयन् ॥ १० ॥ भरद्वाजं वसिष्ठं तु प्रत्यध्वर्युत्वमादिशन् ॥ नारदं चैव बाल्मीकिं नोदनायाकरोत्तदा ॥ ११ ॥ ब्रह्मासने च ब्रह्माणं स्थापयामासुरादरात् ॥ क्रोशचतुष्कमात्रां च वेदिं कृत्वा सुरैस्ततः ॥ १२ ॥ द्विजाः सर्वे समाहूता यज्ञस्यार्थे हि जाप

को आये ॥ ८ ॥ और वहां हजार वर्षका अति उत्तम यज्ञ प्रारंभ करके आंगिरस व मार्कण्डेयजी को आचार्य वरण करके ॥ ९ ॥ अत्रि व कश्यपजी को होता किया और जमदग्नि व गौतमजी को अध्वर्यु का कर्म दिया ॥ १० ॥ और भरद्वाज व वसिष्ठजी को प्रत्यध्वर्यु का कार्य दिया व उस समय नारद और बाल्मीकिजी को प्रेरणा के लिये किया ॥ ११ ॥ और ब्रह्मासन पै आदर से ब्रह्माजी को स्थापित किया तदनन्तर देवताओं ने चार कोस की वेदी बनाकर ॥ १२ ॥ यज्ञ के लिये जप करनेवाले सब

ब्राह्मणों को बुलाया जोकि ऋग्, यजुः, साम व अथर्वण वेदों को कहते थे ॥ १३ ॥ और शिवजी के पुत्र गणेश व स्वामिकार्त्तिकेयजी को बुलाया और वज्रधारी इन्द्र व इन्द्र के पुत्र जयंत को बुलाया ॥ १४ ॥ और चार शूर देवता द्वारपाल बनाये गये तदनन्तर रक्षोघ्न इस मंत्र से अग्नि में हवन होनेलगा ॥ १५ ॥ और हे नरेश्वर ! यव से मिश्रित व शहद तथा घी से मिश्रित तिलों को उससमय उन देवताओं ने वेदमंत्रों से हवन किया ॥ १६ ॥ तदनन्तर आघार व आज्यभाग को हवन कर मुनक्का, ऊंख, सुपारी, नारंगी, जंभीरी व बिजौरा निंबू को हवन किया ॥ १७ ॥ और उत्तर से नारियल व अनार को क्रम से हवन किया और दूध से संयुत शहद व घी और शक्कर

काः ॥ ऋग्यजुःसामाथर्वान्वै वेदानुद्गिरयन्ति ये ॥ १३ ॥ गणनाथं शम्भुसुतं कार्त्तिकेयं तथैव च ॥ इन्द्रं वज्रधरं चैव जयन्तं चेन्द्रसूनुकम् ॥ १४ ॥ चत्वारो द्वारपालाश्च देवाः शूरा विनिर्मिताः ॥ ततो रक्षोघ्नमन्त्रेण हूयते हव्यवाहनः ॥ १५ ॥ तिलांश्च यवमिश्रांश्च मध्वाज्येन च मिश्रितान् ॥ जुहुवुस्ते तदा देवा वेदमन्त्रैर्नरेश्वर ॥ १६ ॥ आघारावाज्यभागौ च हुत्वा चैव ततः परम् ॥ द्राक्षेक्षुपूगनारिङ्गजम्बीरं बीजपूरकम् ॥ १७ ॥ उत्तरतो नालिकेरं दाडिमं च यथाक्रमम् ॥ मध्वाज्यं पयसा युक्तं कृशरं शर्करायुतम् ॥ १८ ॥ तण्डुलैः शतपत्रैश्च यज्ञे वाचं नियम्य च ॥ विचिन्त्य च महाभागाः कृत्वा यज्ञं सदक्षिणम् ॥ १९ ॥ उत्तमं च शुभं स्तोमं कृत्वा हर्षमुपाययुः ॥ अवारितान्नमददन्दीनान्धकृपणेष्वपि ॥ २० ॥ ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण दत्तमन्नं यथेप्सितम् ॥ पायसं शर्करायुक्तं साज्यशाकसमन्वितम् ॥ २१ ॥ मण्डका वटकाः पूपास्तथा वै वेष्टिकाः शुभाः ॥ सहस्रमोदकाश्चापि फेणिका घुर्घुरादयः ॥ २२ ॥ ओदनश्च तथा

समेत तिल, चावल को हवन किया ॥ १८ ॥ और यज्ञ में वचन को रोंककर चावलों व कमलों से हवन करके महाभाग देवता लोग विचार कर यज्ञ को दक्षिणा समेत करके ॥ १९ ॥ उत्तम व शुभ स्तोत्र करके हर्ष को प्राप्त हुए व उन्हों ने बिन मना कियेहुए अन्न को दीन, अन्ध और कृपणों के लिये दिया ॥ २० ॥ व विशेषकर ब्राह्मणों के लिये इच्छा के अनुकूल अन्न दियागया और शक्कर समेत व घी और शाक से संयुत खीर दीगई ॥ २१ ॥ और मंडक, बरा, पुवा और उत्तम वेष्टिका दीगई व हज़ारों लड्डू व फेनी और घुर्घुरादिक दियेगये ॥ २२ ॥ और भात व अरहर से उपजी हुई उत्तम दालि दीगई और वैसेही मूंगकी दालि व पापड़ और बरिया

दीगई॥ २३॥ व विचित्र चाटने योग्य पदार्थ दियेगये और लवंग, मिर्च व पिप्पली की राशियोंसे संयुत कुल्माप, वेल्लक व कोमल और उत्तम वालक दियेगये ॥ २४ ॥ व मिर्च समेत तथा अदरख से संयुत ककड़ियां दीगई इस प्रकार के अन्न व अनेक भांति के शाकों को ॥२५॥ हे नृप ! पुत्रों समेत अठारह हज़ार सब धर्मारण्यनिवासी द्विजोंको उस समय भोजन कराकर ॥ २६ ॥ तब वे देवता प्रतिदिन भोजन करते थे इस प्रकार उस समय हज़ार वर्षतक यज्ञ करके ॥ २७ ॥ हे राजन् ! दैत्यका वध करके वे सुखको प्राप्त हुए और सब पवनगण व देवता यकायक स्वर्ग को चलेगये ॥ २८ ॥ वैसेही सब अप्सरा और ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी मनोहर कैलास पर्वतके शिखर पै व

दाली आढकीसम्भवा शुभा ॥ तथा वै मुद्गदाली च पर्पटा वटिका तथा ॥ २३ ॥ प्रलेह्यानि विचित्राणि युक्तास्त्र्यूषणसञ्चयैः ॥ कुल्माषा वेल्लकाश्चैव कोमला वालकाः शुभाः ॥ २४ ॥ कर्कटिकाश्चार्द्रयुता मरिचेन समन्विताः ॥ एवंविधानि चान्नानि शाकानि विविधानि च ॥ २५ ॥ भोजयित्वा द्विजान्सर्वान्धर्मारण्यनिवासिनः ॥ अष्टादशसहस्राणि सपुत्रांश्च तदा नृप ॥ २६ ॥ तदा देवाः प्रतिदिनं ते कुर्वन्तिस्म भोजनम् ॥ एवं वर्षसहस्रं वै कृत्वा यज्ञं तदामराः ॥ २७ ॥ कृत्वा दैत्यवधं राजन्निर्भयत्वमवाप्नुयुः ॥ स्वर्गं जग्मुश्च सहसा देवाः सर्वे मरुद्गणाः ॥ २८ ॥ तथैवाप्सरसः सर्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ कैलासशिखरं रम्यं वैकुण्ठं विष्णुवल्लभम् ॥ २९ ॥ ब्रह्मलोकं महापुण्यं प्राप्य सर्वे दिवौकसः ॥ परं हर्षमुपाजग्मुः प्राप्य नन्दनमुत्तमम् ॥ ३० ॥ स्वे स्वे स्थाने स्थिरीभूत्वा तस्थुः सर्वे हि निर्भयाः ॥ ३१ ॥ ततः कालेन महता कृताख्ययुगपर्यये ॥ लोहासुरो मदोन्मत्तो ब्रह्मवेषधरः सदा ॥ ३२ ॥ आगत्य सर्वान्विप्रांश्च धर्षयेद्धर्मवित्तमान् ॥ शूद्रांश्च वणिजश्चैव दण्डघातेन ताडयेत् ॥ ३३ ॥ विध्वंसयेच्च यज्ञादीन्होमद्रव्याणि भक्षयेत् ॥

विष्णु प्रिय वैकुंठ को ॥ २९ ॥ और महापुण्य ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर व सब देवता उत्तम नंदनवन को प्राप्त होकर बड़े आनन्द को प्राप्तहुए ॥ ३० ॥ और अपने अपने स्थान में स्थिर होकर सब निडर होतेहुए स्थित हुए ॥ ३१ ॥ तदनन्तर बहुत समय के बाद सतयुग नामक युग के बीतने पर सदैव ब्राह्मण का वेष धारनेवाला मद से उन्मत्त लोहासुर ॥ ३२ ॥ आकर धर्मविदों में श्रेष्ठ सब ब्राह्मणों की धर्षणा करनेलगा और शूद्रों व वणिजों को दंडघात से मारता था ॥ ३३ ॥ और यज्ञादिकों को

विध्वंस करता था व होम की वस्तुवों को खाता था और बडी भारी वेदियों को देखकर मोह से दूषित करता था ॥ ३४ ॥ और पवित्र भूमियों को मूत्रोत्सर्ग व मल से दूषित करता था व हे राजन्! वह वन से स्त्रियों को दूषित करता था ॥ ३५ ॥ तदनन्तर लोहासुर के डर से विकल वे सब ब्राह्मण परिवार समेत भगकर दशो दिशाओं को चले गये ॥ ३६ ॥ व हे नृप! भय से दुःखित वे बनिया ब्राह्मणों के पीछे चले और बड़े डर से भीत होतेहुए वे दूर जाकर व विचार कर ॥ ३७ ॥ तब शूद्रों व ब्राह्मणों समेत सब मिलकर चलेगये और निर्जन तथा बहुतही पवित्र मुक्तावन को वे गये ॥ ३८ ॥ व हे नरेश्वर! थोड़ेही दूर पै उन्हों ने निवास कराया और उन्हों ने वजिङ्

वेदिका दीर्घिका दृष्ट्वा कश्मलेन प्रदूषयेत् ॥ ३४ ॥ मूत्रोत्सर्गपुरीषेण दूषयेत्पुण्यभूमिकाः ॥ गहनेन तथा राजन्स्त्रियो दूषयते हि सः ॥ ३५ ॥ ततस्ते वाडवाः सर्वे लोहासुरभयातुराः ॥ प्रणष्टाः सपरीवारा गतास्ते वै दिशो दश ॥ ३६ ॥ वणिजस्ते भयोद्विग्ना विप्राननुययुर्नृप ॥ महाभयेन सम्भीता दूरं गत्वा विमृश्य च ॥ ३७ ॥ सह शूद्रैर्द्विजैः सर्वे एकीभूत्वा गतास्तदा ॥ मुक्तारण्यं पुण्यतमं निर्जनं हि ययुश्च ते ॥ ३८ ॥ निवासं कारयामासुर्नातिदूरे नरेश्वर ॥ वजिङ्नाम्ना हि तद्ग्रामं वासयामासुरेव ते ॥ ३९ ॥ लोहासुरभयाद्राजन्विप्रनाम्ना विनिर्मितम् ॥ शम्भुना वणिजो यस्मात्तस्मात्तन्नामधारणम् ॥ ४० ॥ शम्भुग्राममिति ख्यातं लोके विख्यातिमागतम् ॥ अथ केचिद्भयान्नष्टा वणिजः प्रथमं तदा ॥ ४१ ॥ ते नातिदूरे गत्वा वै मण्डलं चक्रुरुत्तमम् ॥ विप्रागमनकाङ्क्षास्ते तत्र वासमकल्पयन् ॥४२॥ मण्डलेति च नाम्ना वै ग्रामं कृत्वाऽन्यवीवसन् ॥ विप्रसार्थपरिभ्रष्टाः केचित्तु वणिजस्तदा ॥ ४३ ॥ अन्यमार्गे

नाम से उस ग्राम को बसाया ॥ ३९ ॥ व हे राजन्! लोहासुर के भय से विप्रों के नाम से शिवजी से बनाया गया जिस लिये उसमें वणिज् बसते हैं उस कारण उस नाम को धारनेवाला है ॥ ४० ॥ व शंभुग्राम ऐसा वह संसार में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ और उस समय कितेक वणिज् लोग पहले भय से भगगये ॥ ४१ ॥ उन्हों ने थोडीदूर जाकर उत्तम मंडल किया व ब्राह्मणों के आने की इच्छावाले उन्हों ने वहा निवास किया ॥ ४२ ॥ और मंडल ऐसे नाम से ग्राम करके उन्हों ने निवास किया और उस समय ब्राह्मणों के गण से अलग होकर कितेक वणिज् लोग ॥ ४३ ॥ लोहासुर के डर से विकल होकर जो अन्य मार्ग में गये और धर्मारण्य से थोड़ीदूर

जाकर चिंता को प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥ कि हम लोग किस मार्ग में प्राप्त हैं व ब्राह्मण लोग किस मार्ग में प्राप्तहुए इस बड़ी भारी चिन्ता को प्राप्त उन्हों ने वहां निवास किया ॥ ४५ ॥ जिस लिये वे अन्य मार्ग में गये थे उस कारण उन्हों ने उस नाम से उपजेहुए अडालंज ऐसे पृथ्वी में प्रसिद्ध ग्राम को बसाया ॥ ४६ ॥ हे भूपते ! जिस नाम का जो वणिज् जिस ग्राम में निवासी हुआ उस ग्रामका वह नाम हुआ ॥ ४७ ॥ व हे राजन् ! भय से विकल वणिज् और ब्राह्मण जिसलिये मोह को प्राप्त हुए उसी कारण उन सबों ने मोह ऐसी संज्ञा को कहा ॥ ४८ ॥ इस प्रकार वे सब भगकर दशो दिशाओं को चले गये और ब्राह्मण व वणिज् भी धर्मारण्य में नहीं स्थित

गता ये वै लोहासुरभयार्दिताः ॥ धर्मारण्यान्नातिंदूरे गत्वा चिन्तामुपाययुः ॥ ४४ ॥ कस्मिन्मार्गे वयं प्राप्ताः कस्मिन्प्राप्ता द्विजातयः ॥ इति चिन्तां परां प्राप्ता वासं तत्र त्वकारयन् ॥ ४५ ॥ अन्यमार्गे गता यस्मात्तस्मात्तन्नामसम्भवम् ॥ ग्रामं निवासयामासुरडालञ्जमिति क्षितौ ॥४६॥ यस्मिन्ग्रामे निवासी यो यत्संज्ञश्च वणिग्भवेत् ॥ तस्य ग्रामस्य तन्नाम ह्यभवत्पृथिवीपते ॥ ४७ ॥ वणिजश्च तथा विप्रा मोहं प्राप्ता भयार्दिताः ॥ तस्मान्मोहेतिसंज्ञां ते राजन्सर्वे निरब्रुवन् ॥ ४८ ॥ एवं प्रनषणं नष्टास्ते गताश्च दिशो दश ॥ धर्मारण्ये न तिष्ठन्ति वाडवा वणिजोऽपि वा ॥ ४९ ॥ उद्वसं हि तदा जातं धर्मारण्यं च दुर्लभम् ॥ भूषणं सर्वतीर्थानां कृतं लोहासुरेण तत् ॥ ५० ॥ नष्टद्विजं नष्टतीर्थं स्थानं कृत्वा हि दानवः ॥ परां मुदमवाप्यैव जगाम स्वालयं ततः ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येज्ञातिभेदवर्णनंनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

९ ॥ तब सब तीर्थों का भूषण धर्मारण्य उजाड़ होगया और लोहासुर ने उसको दुर्लभ करदिया ॥ ५० ॥ उस स्थान को ब्राह्मणों से रहित व तीर्थों से रहित आनन्द को प्राप्त होकर तदनन्तर अपने स्थान को चला गया ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकाया मत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । धर्मारण्य क्षेत्रकर अहै यथा माहात्म्य । चौबिसवें अध्याय में सोइ चरित याथात्म्य ॥ व्यासजी बोले कि हे भूपते ! अनेक पूर्व जन्मों के पातकों का नाशक इस तीर्थ का माहात्म्य मैंने तुम्हारे आगे कहा ॥ १ ॥ स्थानों के मध्य में वह उत्तम स्थान बड़ा भारी कल्याणकारक है पुरातन समय बुद्धिमान् महारुद्रजी ने स्वामि-कार्त्तिकेयजी के आगे कहा है ॥ २ ॥ हे पार्थ ! उसमें नहाकर तुम सब पाप से छूट जावोगे शिवजी बोले कि हे तात ! व्यासजी के उस वचन को सुनकर साधुवों के पालन में तत्पर धर्म के पुत्र धर्मराज युधिष्ठिरजी ने उस समय महापातकों के नाश के लिये धर्मारण्य में प्रवेश किया और उन्हों ने इच्छा के अनुकूल वहां तीर्थों में

व्यास उवाच ॥ एतत्तीर्थस्य माहात्म्यं मया प्रोक्तं तवाग्रतः ॥ अनेकपूर्वजन्मोत्थपातकघ्नं महीपते ॥ १ ॥ स्थानानामुत्तमं स्थानं परं स्वस्त्ययनं महत् ॥ स्कन्दस्याग्रे पुरा प्रोक्तं महारुद्रेण धीमता ॥ २ ॥ त्वं पार्थ तत्र स्नात्वा हि मोक्ष्यसे सर्वपातकात् ॥ शिव उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा व्यासवाक्यं हि धर्म्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥ धर्मात्मजस्तदा तात धर्मारण्यं समाविशत् ॥ महापातकनाशाय साधुपालनतत्परः ॥ ४ ॥ विगाह्य तत्र तीर्थानि देवतायतनानि च ॥ इष्टापूर्तादिकं सर्वं कृतं तेन यथेप्सितम् ॥ ५ ॥ ततः पापविनिर्मुक्तः पुनर्गत्वा स्वकं पुरम् ॥ इन्द्रप्रस्थं महासेन शशास वसुधातलम् ॥ ६ ॥ इदं हि स्थानमासाद्य ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ॥ तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः ॥ ७ ॥ भुक्त्वा भोगान्पार्थिवांश्च परं निर्वाणमाप्नुयुः ॥ श्राद्धकाले च सम्प्राप्ते ये पठन्ति द्विजातयः ॥ ८ ॥ उद्धृताः पितरस्तैस्तु यावच्चन्द्रार्कमेदिनी ॥ द्वापरे च युगे भूत्वा व्यासेनोक्तं महात्मना ॥ ९ ॥ वारिमात्रेण धर्मवाप्यां गया

नहाकर व देवस्थानों को जाकर सब इष्टापूर्तादिक कर्म किया ॥ ३ । ४ । ५ ॥ तदनन्तर फिर हे महासेन ! पातकों से छूटेहुए उन्हों ने अपने नगर इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) को जाकर पृथ्वी को पालन किया ॥ ६ ॥ इस स्थान को आकर जो उत्तम मनुष्य इसको सुनते हैं उनकी भुक्ति व मुक्ति होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ और राजाओं के सुखों को भोगकर वे उत्तम मोक्ष को पाते हैं व श्राद्ध का समय प्राप्त होनेपर जो ब्राह्मण इसको पढ़ते हैं ॥ ८ ॥ उन्हों ने चन्द्रमा व सूर्य और पृथ्वी जबतक रहेगी तबतक पितरोंको उधारा है द्वापरयुग में उत्पन्न होकर महात्मा व्यासजी ने यह कहा है ॥ ९ ॥ कि धर्मवापी में जलही से मनुष्य गयाश्राद्ध का फल पाता है और

यहां आयेहुए मनुष्य का पाप यमराज के स्थान में स्थित होता है याने नाश होजाता है॥ १० ॥ लोकों के हित की इच्छा से धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी ने कहा है कि विना अन्न व विना कुश और विना आसन के ॥ ११ ॥ जल से कोटि जन्मों में किया हुआ पाप नाश होजाताहै कुरु जांगल में सुवर्णशृंगवाली हज़ार गौवों को सूर्यग्रहण में देकर जो पुण्य होता है वही धर्मवापी में तर्पण से होता है ॥ १२ ॥ तुमलोगों से यह सब धर्मारण्य का कार्य कहागया जिसको सुनकर ब्रह्मघाती व गोघाती मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ १३ ॥ गया में इकीसबार पिंडपातन से जो फल होता है उस फल को मनुष्य एकबार इसको सुनने पर पाता है ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांधर्मारण्यतीर्थमाहात्म्यप्रभावकथनंनामचतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४ ॥

श्राद्धफलं लभेत् ॥ अत्रागतस्य मर्त्यस्य पापं यमपदे स्थितम् ॥ १० ॥ कथितं धर्मपुत्रेण लोकानां हितकाम्यया ॥ विना अन्नैर्विना दर्भैर्विना चासनमेव वा ॥ ११ ॥ तोयेन नाशमायाति कोटिजन्मकृतं त्वघम् ॥ सहस्ररुक्मशृङ्गीणां धेनूनां कुरुजाङ्गले ॥ दत्त्वा सूर्यग्रहे पुण्यं धर्मवाप्यां च तर्पणात् ॥ १२ ॥ एतद्वः कथितं सर्वं धर्मारण्यस्य चेष्टितम् ॥ यच्छ्रुत्वा ब्रह्महा गोघ्नो मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १३ ॥ एकविंशतिवारैस्तु गयायां पिण्डपातने ॥ तत्फलं समवाप्नोति सकृदस्मिञ्छ्रुते सति ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कान्देधर्मारण्यतीर्थमाहात्म्यप्रभावकथनंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

सूत उवाच ॥ अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ धर्मारण्ये यथाऽऽनीता सत्यलोकात्सरस्वती ॥१॥ मार्कण्डेयं सुखासीनं महामुनिनिषेवितम् ॥ तरुणादित्यसंकाशं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ २ ॥ सर्वतीर्थमयं दिव्यमृषीणां प्रवरं द्विजम् ॥ आसनस्थं समायुक्तं धन्यं पूज्यं दृढव्रतम् ॥ ३ ॥ योगात्मानं परं शान्तं कमण्डलुधरं विभुम्॥

दो० । यथा सरस्वति नदीकर है अति अतुल प्रभाव । पच्चिसवें अध्याय में सोइ चरित सरसाव ॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त मैं अन्य उत्तम तीर्थ का माहात्म्य कहताहूं कि जिस प्रकार धर्मारण्यमें सत्यलोक से सरस्वतीजी लाईगई हैं ॥ १ ॥ सुख से बैठे हुए व महामुनियों से सेवित तथा तरुणसूर्य के समान व सब शास्त्रों में प्रवीण मार्कंडेयजी ॥ २ ॥ जोकि समस्त तीर्थमय व ऋषियों के मध्य में श्रेष्ठ व दिव्य द्विज, आसन पै बैठे, धन्य, पूज्य व दृढव्रत ॥ ३ ॥ और योगात्मक व बहुतही शान्त, कमंडलु

को धारण किये व्यापक, रुद्राक्ष सूत्रधारी, शान्त व कल्पान्तवासी ॥ ४ ॥ और क्षोभरहित, ज्ञानी, स्वस्थ व पितामह के समान प्रकाशवान् इस प्रकार समाधि में स्थित व हर्ष से प्रफुल्लित लोचनोंवाले ॥ ५ ॥ मार्कंडजी को स्तुतियों से भक्ति करके प्रणाम कर मुनियों ने कहा कि हे भगवन् ! नैमिषारण्य में बारह वर्ष के यज्ञ में ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम ने जिस ब्रह्मा की कन्या को उतारा है व पृथ्वी में वहीं गंगाका अवतरण कराया है ॥ ७ ॥ कुलपति शौनक मुनि के आगे अन्य मुनियों के भी सुनतेहुए सूत मुनि से जो गाया व कहागया है ॥ ८ ॥ उस बड़े भारी आख्यानको सुनकर हमलोगों के हृदय में स्थित है कि दर्शन से भी सरस्वतीजी प्राणियों के

अक्षसूत्रधरं शान्तं तथा कल्पान्तवासिनम् ॥ ४ ॥ अक्षोभ्यं ज्ञानिनं स्वस्थं पितामहसमद्युतिम् ॥ एवं दृष्ट्वा समाधिस्थं प्रहर्षोत्फुल्ललोचनम् ॥ ५ ॥ प्रणम्य स्तुतिभिर्भक्त्या मार्कण्डं मुनयोऽब्रुवन् ॥ भगवन्नैमिषारण्ये सत्रे द्वादशवार्षिके ॥ ६ ॥ त्वयावतारिता ब्रह्मन्नदी या ब्रह्मणः सुता ॥ तथा कृतं च तत्रैव गङ्गावतरणं क्षितौ ॥ ७ ॥ गीयमानं कुलपतेः शौनकस्य मुनेः पुरः ॥ सूतेन मुनिना ख्यातमन्येषामपि शृण्वताम् ॥ ८ ॥ तच्छ्रुत्वा महदाख्यानमस्माकं हृदि संस्थितम् ॥ पापघ्नी पुण्यजननी प्राणिनां दर्शनादपि ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ धर्मारण्ये मया विप्राः सत्यलोकात्सरस्वती ॥ समानीता सुरेन्द्राद्यैः शरण्या शरणार्थिनाम् ॥ १० ॥ भाद्रपदे सिते पक्षे द्वादशी पुण्यसंयुता ॥ तत्र द्वारावतीतीर्थे मुनिगन्धर्वसेविते ॥ ११ ॥ तस्मिन्दिने च तत्तीर्थे पिण्डदानादि कारयेत् ॥ तत्फलं समवाप्नोति पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ १२ ॥ महदाख्यानमखिलं पापघ्नं पुण्यदं च यत् ॥ पवित्रं यत्पवित्राणां महापातकनाश

पाप को नाशनेवाली व पुण्य को पैदा करनेवाली हैं ॥ ९ ॥ मार्कंडेयजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! शरण चाहनेवालोंके शरण योग्य सरस्वतीजी को मैं व सुरेन्द्रादिक लोग धर्मारण्य में भादौं के शुक्लपक्ष में जो पुण्यसंयुत द्वादशी तिथि है उसमें मुनियों व गन्धर्वों से सेवित द्वारावतीतीर्थ में ले आये हैं ॥ १० । ११ ॥ उस दिन जो मनुष्य उस तीर्थ में पिंडदानादिक कर्म करता है वह उस फल को पाता है और पितरों को दिया हुआ अक्षय होता है ॥ १२ ॥ यह बड़ा भारी समस्त आख्यान जो पातकों का

विनाशक व पुण्यदायक है और जो पवित्रों के मध्यमें पवित्र व महापापों का विनाशक है ॥ १३ ॥ और सरस्वतीजी का जल सर्व मंगलों का मंगलदायक व पवित्र है और जो पुण्य प्रभास के मध्य में स्थित है क्या वह ऊपर स्वर्ग में है याने नहीं है ॥ १४ ॥ और सरस्वतीजी का जल मनुष्यों की ब्रह्महत्या को नाश करता है व सरस्वतीजी में नहाकर और पितरों व देवताओं को तर्पण कर पश्चात् पिंड को देनेवाले मनुष्य दूध पीनेवाले नहीं होते हैं ॥ १५ ॥ जैसे कामधेनु गऊ प्रिय फलको देनेवाली होती हैं वैसेही स्वर्ग व मोक्ष को एकही कारणभूत सरस्वतीजी हैं ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसरस्वतीमाहा

नम् ॥ १३ ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं पुण्यं सारस्वतं जलम् ॥ ऊर्ध्वं किं दिवि यत्पुण्यं प्रभासान्ते व्यवस्थितम् ॥ १४ ॥ सारस्वतजलं नृणां ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ सरस्वत्यां नराः स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥ पश्चात्पिण्डप्रदातारो न भवन्ति स्तनन्धयाः ॥ १५ ॥ यथा कामदुघा गावो भवन्तीष्टफलप्रदाः ॥ तथा स्वर्गापवर्गैकहेतुभूता सरस्वती ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येसरस्वतीमाहात्म्यवर्णनंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ मार्कण्डेयोद्घाटितं वै स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥ तत्र ये देहसंत्यागं कुर्वन्ति फलकाङ्क्षया ॥ १ ॥ लभन्ते तत्फलं ह्यन्ते विष्णोः सायुज्यमाप्नुयुः ॥ अतः किं बहुनोक्तेन द्वारवत्यां सदा नरैः ॥ २ ॥ देहत्यागः प्रकर्त्तव्यो विष्णोर्लोकजिगीषया ॥ अनाशके जले वाग्नौ ये वसन्ति नरोत्तमाः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः पुरीं

त्म्यवर्णनंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा द्वारकापुरी में अनशन से फल होत । छब्बिसवें अध्याय में सोई चरित उदोत ॥ व्यासजी बोले कि मार्कंडेयजी ने मूंदेहुए स्वर्गद्वार को खोलदिया है क्योंकि उस सरस्वती नदी के समीप जो मनुष्य फल की इच्छा से शरीर को त्याग करते हैं ॥ १ ॥ वे उस फल को पाते हैं कि अन्त में विष्णुजी की सायुज्य मुक्ति को पाते हैं इससे बहुत कहने से क्या है द्वारका में सदैव मनुष्यों को ॥ २ ॥ विष्णुलोक के जीतने की इच्छा से शरीर को त्याग करना चाहिये और जो उत्तम मनुष्य अनशन

व्रत और जल व अग्नि में बसते हैं सब पापों से छूटेहुए वे सदैव विष्णुपुरी को प्राप्तहोते हैं ॥ ३ ॥ व रोगरहित अन्य भी जो पुरुष अनशन व्रत को प्राप्त होता है सब पापोंसे छूटाहुआ वह मनुष्य विष्णुजी की पुरीको जाता है ॥ ४ ॥ और सैकड़ों व हज़ारों वर्षतक वह ब्राह्मण अन्त में स्वर्ग में बसता है पृथ्वी में ब्राह्मणों से अधिक पवित्र व पावन नहीं है ॥ ५ ॥ और उपासों के समान तपस्या का कर्म नहीं है व वेद से अधिक अन्य शास्त्र नहीं है व माता के समान गुरु नहीं है ॥ ६ ॥ व अनशन धर्म से अधिक यहा अन्य तप नहीं है इसमें नहाकर जो श्राद्ध व पिंडोदक कर्म को करता है ॥ ७ ॥ उसके पितर तबतक तृप्त रहते हैं जबतक कि ब्रह्मा का दिन व राति

सदा ॥ ३ ॥ अन्योपि व्याधिरहितो गच्छेदनशनं तु यः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः पुरीं नरः ॥ ४ ॥ शतवर्षसहस्राणां वसेदन्ते दिवि द्विजः ॥ ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति पवित्रं पावनं भुवि ॥ ५ ॥ उपवासैस्तथा तुल्यं तपः कर्म्म न विद्यते ॥ नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातृसमो गुरुः ॥ ६ ॥ न धर्मात्परमस्तीह तपो नानशनात्परम् ॥ स्नात्वा यः कुरुतेऽत्रापि श्राद्धं पिण्डोदकक्रियाम् ॥ ७ ॥ तृप्यन्ति पितरस्तस्य यावद्ब्रह्मदिवानिशम् ॥ तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा केशवं यस्तु पूजयेत् ॥ ८ ॥ समुक्तः पातकैः सर्वैर्विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ तीर्थानामुत्तमं तीर्थं यत्र सन्निहितो हरिः ॥ ९ ॥ हरते सकलं पापं तस्मिंस्तीर्थे स्थितस्य सः ॥ मुक्तिदं मोक्षकामानां धनदं च धनार्थिनाम् ॥ आयुर्दं सुखदं चैव सर्वकामफलप्रदम् ॥ १० ॥ किमन्येनात्र तीर्थेन यत्र देवो जनार्दनः ॥ स्वयं वसति नित्यं हि सर्वेषामनुकम्पया ॥ ११ ॥ तत्र यद्दीयते किञ्चिद्दानं श्रद्धासमन्वितम् ॥ अक्षयं तद्भवेत्सर्वमिह लोके परत्र च ॥ १२ ॥ यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च यत्फ

होती है उस तीर्थ में नहाकर जो मनुष्य विष्णुजीको पूजता है ॥ ८ ॥ सब पापों से छूटकर वह विष्णुलोक को प्राप्त होता है जहांपर विष्णुजी स्थित हैं तीर्थों के मध्य में वह उत्तम तीर्थ ॥ ९ ॥ उस तीर्थ में स्थित मनुष्य के सब पापको हरता है मोक्ष चाहनेवालों को वह मुक्तिदायक व धन की इच्छावाले मनुष्यों को धनदायक है व आयुर्दायक और सुखदायक व सब कामनाओं के फल को देनेवाला है ॥ १० ॥ यहां अन्य तीर्थ से क्या है जहां कि सबों के ऊपर दया से आपही जनार्दन देवजी नित्य बसते हैं ॥ ११ ॥ वहा श्रद्धा से संयुत जो कुछ दान दिया जाता है इस लोक व परलोक में वह सब अक्षय होता है ॥ १२ ॥ विद्वानों को यज्ञ, दान व तपसे जो

फल मिलता है वह यहां उत्तम सेवकों शूद्रोंको भी मिलता है ॥ १३ ॥ व एकादशीमें उपास करके जो मनुष्य वहां श्राद्ध करताहै वह नरक से सब पितरों को उधारता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥ और परमात्मा जनार्दनजी अक्षय तृप्ति को प्राप्त होते हैं और उनको उद्देश कर यहां जो दियाजाता है वह अक्षय कहा गया है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांद्वारकामाहात्म्यवर्णनन्नामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । भयो लिङ्ग उत्पन्न जिमि गोवत्सक इमि नाम । सत्ताइसवें में सोई कह्यो चरित्र ललाम ॥ सूतजी बोले कि वहां उसके समीप में स्थित व मार्कंडजी से उपल-

लं प्राप्यते बुधैः ॥ तदत्र स्नानमात्रेण शूद्रैरपि सुसेवकैः ॥ १३ ॥ तत्र श्राद्धं च यः कुर्यादेकादश्यामुपोषितः ॥ स पितॄनुद्धरेत्सर्वान्नरकेभ्यो न संशयः ॥ १४ ॥ अक्षय्यां तृप्तिमाप्नोति परमात्मा जनार्द्दनः ॥ दीयतेऽत्र यदुद्दिश्य तदक्षय्यमुदाहृतम् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येद्वारकामाहात्म्यवर्णनन्नामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सूत उवाच ॥ तत्र तस्य समीपस्थं मार्कण्डेनोपलक्षितम् ॥ तीर्थं गोवत्ससंज्ञं तु सर्वत्र भुवि विश्रुतम् ॥ १ ॥ तत्रावतीर्य गोवत्सस्वरूपेणाम्बिकापतिः ॥ स्वयम्भूलिङ्गरूपेण संस्थितो जगतां पतिः ॥ २ ॥ आसीद्बलाहकोनाम रुद्रभक्तो महाबलः ॥ आखेटकसमायुक्तो नृपः परपुरञ्जयः ॥ ३ ॥ मृगयूथे स्थितं दृष्ट्वा गोवत्सं तत्पदातिना ॥ उक्तो राजा मया दृष्टं कौतुकं नृपसत्तम ॥ ४ ॥ गोवत्सो मृगयूथस्य दृष्टो मध्यस्थितो मया ॥ तेषामेवानुरक्तोऽसौ जनन्या रहितस्तथा ॥ ५ ॥ द्रष्टुं तु कौतुकं राजा तं पदातिं पुरः स्थितम् ॥ उवाच दर्शयस्वेति गोवत्सं त्वं समाविश ॥ ६ ॥

क्षित गोवत्स नामक तीर्थ सबकहीं पृथ्वी में प्रसिद्ध है ॥ १ ॥ वहां लोकों के स्वामी शिवजी गऊ के बछड़ा के स्वरूपसे अवतार लेकर स्वयंभू लिङ्ग के रूप से स्थितहैं ॥ २ ॥ बलाहक नामक बड़ा बलवान् शिवजीका भक्त हुआ है और शत्रुपुरोंको जीतनेवाला वह राजा शिकारी था ॥ ३ ॥ उसके पैदल नौकर ने मृगयूथ में स्थित गऊ का बछड़ा देखकर राजा से कहा कि हे नृपोत्तम ! मैंने एक कौतुक देखा है ॥ ४ ॥ कि मृगयूथ में स्थित गऊ के बछड़ा को मैंने देखा और माता से रहित यह उन्हीं मृगों में स्नेह करता है ॥ ५ ॥ राजा ने उस कौतुक को देखने के लिये आगे खड़े हुए उस पैदल नौकर से यह कहा कि गऊ के बछड़ा को तुम दिखाओ और वन में प्रवेश करो ॥ ६ ॥

तब वन को जाकर पैदल सेवक ने राजा को उसको दिखाया और जब पैदलों से डरवाया हुआ मृगयूथ भर्गा ॥ ७ ॥ और पीलु वृक्षों के गुल्म में चला गया तब गऊका बछड़ा भी चला और उसके पकड़ने की इच्छावाला राजा भी उस गुल्म में पैठ गया ॥ ८ ॥ और वहां स्थित गऊ के बछड़े को उस राजा ने आपही देखा और जब तक राजा उसको ग्रहण करै तब तक वह उज्ज्वल लिङ्ग होगया ॥ ९ ॥ उसको देखकर राजा विस्मित हुआ व उसने यह चिंतन किया कि यह क्या है जब तक ऐसा विचार करता रहा तब तक शरीर को छोड़कर वह स्वर्ग को चला गया ॥ १० ॥ इसी अवसर में आकाश में सब ओर देवताओं के जय करने का गर्जित शब्द सुनपड़ा और

गत्वाटवीं तदा राज्ञो दर्शितः स पदातिना ॥ पदातिभिर्मृगानीकं दुद्राव त्रासितं यदा ॥ ७ ॥ पीलुगुल्मं प्रति गतं गोवत्सः प्रस्थितस्तदा ॥ राजा तद्धरणाकाङ्क्षो प्राविशद् गुल्ममादरात् ॥ ८ ॥ तत्र स्थितं स गोवत्समपश्यन्नृपतिः स्वयम् ॥ यावद् गृह्णाति तं तावल्लिङ्गं जातं समुज्ज्वलम् ॥ ९ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मितो राजा किमेतदित्यचिन्तयत् ॥ यावच्चिन्तयते ह्येवं देहं त्यक्त्वा दिवं गतः ॥ १० ॥ अत्रान्तरे गगनतले समन्ततः श्रूयते सुरजयकारगर्जितम् ॥ पपात पुष्पवृष्टिरम्बराद्राजा गतः शिवभुवनं च तत्क्षणात् ॥ ११ ॥ तावत्पश्यति तन्नाभ्यां गोवत्सं बालकं स्थितम् ॥ नूनमेष महादेवो वत्सरूपी महेश्वरः ॥ १२ ॥ तमानेतुं समुद्युक्तो राजा तमुज्जहार च ॥ यदा तद्देवलिङ्गं तु नोत्तिष्ठति कथंचन ॥ तदा देवाः सहानेन प्रार्थयामासुरीश्वरम् ॥ १३ ॥ देवा ऊचुः ॥ भगवन्सर्वदेवेश स्थातव्यं भवता विभो ॥ शुक्लेन लिङ्गरूपेण सर्वलोकहितैषिणा ॥ १४ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ स्थास्याम्यहं सदैवात्र लिङ्गरूपेण देवताः ॥ यस्मा

आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुई और उसी क्षण राजा शिवलोक को चला गया ॥ ११ ॥ तब तक उसके मध्य में गऊ के बछड़ारूपी बालक को स्थित देखा व यह विचार किया कि निश्चयकर ये बछड़ारूपी महेश्वर देवजी हैं ॥ १२ ॥ उसको लाने के लिये राजा उद्यत हुआ व राजा ने उसको उठाया जब वह देवलिङ्ग किसी प्रकार न उठा तब इस राजा समेत देवताओं ने शिवजी की प्रार्थना की ॥ १३ ॥ देवता बोले कि हे सर्वदेवेश, भगवन्, विभो ! सब लोकों का हित करनेवाले आप को सफेद लिङ्ग के रूप से स्थित होना चाहिये ॥ १४ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे देवताओ ! मैं यहां लिङ्गरूप से सदैव टिकूंगा जिस लिये भादों महीने में कृष्णपक्ष में अमावस

के दिन में मैं स्थित हुआ ॥ १५ ॥ उस कारण उस दिन उसमें स्नान करके जो विधि से उस लिङ्ग को पूजैंगे उसको भय न होगी ॥ १६ ॥ और पिंडदान करने से जो पूर्वज पितर सैकड़ों बरस से भयंकर रौरव व कुंभीपाक नरक में प्राप्त हैं ॥ १७ ॥ व जो अनेक नरकों में स्थित हैं और जो पशु, पक्षियों की योनि में प्राप्त हैं एक बार पिंड देने से उनकी अक्षय गति होती है ॥ १८ ॥ तदनन्तर सब देवताओं से संयुत बलाहक राजा ने सब देवताओं के समीप उस लिङ्ग को स्थापन किया ॥ १९ ॥ और लोकों के हित की कामना से बहुत दानों को किया जब तक वे पूजन करैं तब तक आपही शिवजी भी आगये ॥ २० ॥ शिवजी बोले कि इस रात्रि में श्रद्धा

भाद्रपदे मासि कृष्णपक्षे कुहूदिने ॥ १५ ॥ तस्मात्तद्दिवसे तत्र स्नानं कृत्वा विधानतः ॥ लिङ्गं ये पूजयिष्यन्ति न तेषां विद्यते भयम् ॥ १६ ॥ कृतेन पिण्डदानेन पूर्वजाः शाश्वतीः समाः ॥ रौरवे नरके घोरे कुम्भीपाके च ये गताः ॥१७॥ अनेकनरकस्थाश्च तिर्यग्योनिगताश्च ये ॥ सकृत्पिण्डप्रदानेन स्यात्तेषामक्षया गतिः ॥ १८ ॥ ततो बलाहको राजा सर्वदेवसमन्वितः ॥ स्थापयामास तल्लिङ्गं सर्वदेवसमीपतः ॥ १९ ॥ चकार बहुदानानि लोकानां हितकाम्यया ॥ यावदर्चयते ह्येवं रुद्रोऽपि स्वयमागतः ॥ २० ॥ रुद्र उवाच ॥ अस्यां रात्रौ तु मनुजाः श्रद्धाभक्तिसमन्विताः ॥ येऽर्चयिष्यन्ति देवेशं तेषां पुण्यमनन्तकम् ॥ २१ ॥ जागरं ये करिष्यन्ति गीतशास्त्रपुरःसरम् ॥ उद्धरिष्यन्ति ते मर्त्याः कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ २२ ॥ तावद्गर्जन्ति तीर्थानि नैमिषं पुष्करं गया ॥ प्रयागं च प्रभासं च द्वारका मथुराऽर्बुदः ॥ २३ ॥ यावन्न दृश्यते लिङ्गं गोवत्सं परमाद्भुतम् ॥ यदा हि कुरुते भावं गोवत्सगमनं प्रति ॥ २४ ॥ स्ववंशजास्तदा सर्वे नृत्य

व भक्ति से संयुत जो मनुष्य देवेश शिवजी को पूजैंगे उनको अनन्त पुण्य होगा ॥ २१ ॥ और गीतशास्त्रपूर्वक जो जागरण करैंगे वे मनुष्य एक सौ एक पुश्तियों को उधारैंगे ॥ २२ ॥ तब तक तीर्थ, नैमिष, पुष्कर व गया और प्रयाग, प्रभास, द्वारका, मथुरा और अर्बुद ये तीर्थ गर्जते हैं ॥ २३ ॥ जब तक कि बहुतही अद्भुत गोवत्स नामक लिङ्ग नहीं देखा जाता है जब मनुष्य गोवत्सजी के गमन में भक्ति करता है ॥ २४ ॥ तब निश्चय कर हर्षित होते हुए सब अपने वंश में

उपजे हुए पितर नाचते हैं ॥ २५ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजो ! वहां जो अन्य अद्भुत वृत्तान्त हुआ है उसको सुनिये कि जिस के सुनने से सब पापों का नाश होता है ॥ २६ ॥ जब सब देवताओं ने प्राचीन लिङ्ग को स्थापन किया तब विष्णुजी के व सब देवताओं के स्थापन के गुण से ॥ २७ ॥ वह प्रतिदिन अणु प्रमाण भर से बढ़नेलगा तदनन्तर डरे हुए वे मनुष्य व देवता उन शिवजी की शरण में गये ॥ २८ ॥ देवता बोले कि हे देवेश ! वृद्धि को संहार कीजिये तो लोकों का कल्याण होवै ऐसा कहने पर तदनन्तर लिङ्ग से आकाशवाणी बोली ॥ २९ ॥ शिववाणी बोली कि हे लोगो ! तुमलोगों को भय मत होवै इस यत्न को सुनिये कि किसी चांडाल

न्ति हर्षिता ध्रुवम् ॥ २५ ॥ सूत उवाच ॥ यच्चान्यदद्भुतं तत्र वृत्तान्तं शृणुत द्विजाः ॥ येन वै श्रुतमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ २६ ॥ यदा वै स्थापितं लिङ्गं सर्वदेवैः पुरातनम् ॥ विष्णोः प्रतिष्ठानगुणात्सर्वेषां च दिवौकसाम् ॥ २७ ॥ अणुमात्रप्रमाणेन प्रत्यहं समवर्द्धत ॥ ततस्ते मनुजा देवा भीतास्तं शरणं ययुः ॥ २८ ॥ देवा ऊचुः ॥ वृद्धिं संहर देवेश लोकानां स्वस्ति तद्भवेत् ॥ एवमुक्ते ततो लिङ्गाद्वाणवाचाशरीरिणी ॥ २९ ॥ शिववाण्युवाच ॥ हे लोका माभयं वोऽस्तु उपायः श्रूयतामयम् ॥ कश्चिच्चण्डालमानीय मत्पुरः स्थाप्यतां ध्रुवम् ॥ ३० ॥ चण्डालांश्च समानीय दधुर्देवस्य ते पुरः ॥ तथापि तस्य वृद्धिस्तु नैव निवर्तते पुनः ॥ ३१ ॥ वाण्युवाच ॥ कर्म्मणा यस्तु चण्डालः सोऽग्रे मे स्थाप्यतां जनाः ॥ तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं मतिं चक्रुश्च वीक्षणे ॥ ३२ ॥ मार्गमाणास्तदा ते तु ग्रामाणि च पुराणि च ॥ कश्चित्कर्मरतं पापं ददृशुर्ब्राह्मणब्रुवम् ॥ ३३ ॥ वृषभान्भारसंयुक्तान्मध्याह्नेवाहयत्तु सः ॥ क्षुत्तृट्श्रमपरीतांश्च दुर्ब

को लेकर निश्चय कर मेरे आगे स्थापन कीजिये ॥ ३० ॥ उन्होंने चांडालों को लेकर शिव देवजी के आगे धारण किया तथापि उसकी वृद्धि फिर निवृत्त न हुई ॥ ३१ ॥ आकाशवाणी बोली कि हे लोगो ! जो कर्म से चांडाल होवै उसको मेरे आगे स्थापन कीजिये उस बड़े भारी आश्चर्य को सुनकर उन्हों ने ढूंढ़ने में बुद्धि किया ॥ ३२ ॥ तब गावों व पुरों को ढूंढ़ते हुए उन्हों ने कर्म में लगे व ब्राह्मण कहते हुए किसी पापी को देखा ॥ ३३ ॥ क्रूर मनवाला वह दुपहर में भी क्षुधा,

प्यास व परिश्रम से संयुत तथा बोझ से संयुत दुर्बल बैलों को चलाता था॥ ३४ ॥ और बिन नहाकर भी वह ब्राह्मण पर्युषित अन्न को भोजन करता था उसको लेकर वे देवेश विष्णुजी के समीप गये जहां कि जगद्गुरु विष्णुजी थे ॥ ३५ ॥ और देवालय के आगेवाली भूमि में उसको उन्हों ने आदर से स्थापन किया और गोवत्स जी के आगे स्थापित वह यकायक भस्म होगया ॥ ३६ ॥ इससे पृथ्वी में यह चांडालस्थल ऐसा प्रसिद्ध हुआ वहां स्थित मनुष्यों को आज भी वह मन्दिर नहीं देखपड़ता है ॥ ३७ ॥ तब से लगाकर वह लिङ्ग समता को प्राप्त हुआ और लिङ्ग को देखने से पापरहित वह ब्राह्मण स्वर्ग को चलागया ॥ ३८ ॥ व पापरहित उस

लान्क्रूरमानसः ॥ ३४ ॥ अस्नात्वापि पर्युषितं भक्षयेच्चैव वै द्विजः ॥ तं समादाय देवेशं जग्मुर्यत्र जगद्गुरुः ॥ ३५ ॥ देवालयाग्रभूमौ तं स्थापयामासुराहृताः ॥ भस्मीबभूव सहसा गोवत्साग्रे निरूपितः ॥ ३६ ॥ चण्डालस्थल इत्येष प्रसिद्धः सोऽभवत्क्षितौ ॥ तत्र स्थितैर्न चाद्यापि प्रासादो दृश्यते हि सः ॥ ३७ ॥ तदाप्रभृति तल्लिङ्गं साम्यभावमुपागतम् ॥ धौतपाप्मा गतः स्वर्गं द्विजो लिङ्गनिरीक्षणात् ॥ ३८ ॥ प्रत्यहं पूजयामास गोवत्सं गतकिल्बिषः ॥ विशेषात्कृष्णपक्षस्य चतुर्दश्यां समागतः ॥ ३९ ॥ एतत्तदद्भुतं तस्य देवस्य च त्रिशूलिनः ॥ शृणुयाद्यो नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४० ॥ सूत उवाच ॥ गोवत्समिति विख्यातं नराणां पुण्यदं परम् ॥ अनेकजन्मपापघ्नं मार्कण्डेयेन भाषितम् ॥ ४१ ॥ तत्र तीर्थे सकृत्स्नानं रुद्रलोकप्रदं नृणाम् ॥ पापदेहविशुद्ध्यर्थं पापेनोपहतात्मनाम् ॥ ४२ ॥ कूपे तर्पणतश्चैव श्राद्धतश्चैव तृप्तता ॥ भाद्रपदे विशेषेण पक्षस्यान्ते भवेत्कलौ ॥ ४३ ॥ एकविंशतिवारांस्तु गयायां

ने प्रतिदिन गोवत्स का पूजन किया और कृष्णपक्ष की चौदसि में आकर उसने विशेष कर पूजन किया ॥ ३९ ॥ उन त्रिशूलधारी शिवजी के इस चरित्र को जो मनुष्य भक्ति से सुनता है वह सब पापों से छूटजाता है ॥ ४० ॥ सूतजी बोले कि गोवत्स ऐसा प्रसिद्ध लिङ्ग मनुष्यों को बहुतही पुण्यदायक व अनेक जन्मों का पापनाशक मार्कंडेयजी से कहा गया है ॥ ४१ ॥ पाप से नष्टचित्तवाले मनुष्यों के पापसंयुत शरीर की शुद्धि के लिये उस तीर्थ में एक बार स्नान शिवलोकदायक है ॥ ४२ ॥ व विशेष कर भाद्रपद महीने में पक्ष के अन्त में कलियुग में कूप में तर्पण व श्राद्ध से तृप्तता होती है ॥ ४३ ॥ गया में इक्कीस बार तर्पण करने पर पितरों

की उत्तम तृप्ति होती है व गंगकूप में एक बार तर्पण करने से तृप्ति होती है ॥ ४४ ॥ और उस गोवत्स के समीप गंगकूप स्थित है उसमें तिलोदक से भी तृप्त किये हुए पितर नरक से छूट कर उत्तम गति को पाते हैं और उस तीर्थ में मुनीश्वर लोग गोदान की प्रशंसा करते हैं ॥ ४५ । ४६ ॥ और ब्राह्मण के लिये सुवर्ण का दान मनुष्य को शिवलोक में प्राप्त करता है सरस्वती, शिवक्षेत्र और गंगाजी गंगकूप में स्थित हैं ॥ ४७ ॥ स्वर्ग व मोक्ष का कारण ये तीनों एकत्र स्थित हैं और सब कहीं प्रसिद्ध वह तीर्थ ऋषियों व सिद्धों से सेवित है ॥ ४८ ॥ और वहा दो पीलु के वृक्ष स्थित हैं व मुनियों से सेवित वह तीर्थ स्नान से स्वर्गदायक और पान से

तर्प्पणे कृते ॥ पितॄणां परमा तृप्तिः सकृद्वै गङ्गकूपके ॥ ४४ ॥ तस्मिन्गोवत्ससामीप्ये तिष्ठते गङ्गकूपकः ॥ तस्मिंस्तिलोदकेनापि सन्तृप्तिं यान्ति तर्प्पिताः ॥ ४५ ॥ पितरो नरकाद्वापि सुपुण्येन सुमेधसा ॥ गोप्रदानं प्रशंसन्ति तस्मिंस्तीर्थे मुनीश्वराः ॥ ४६ ॥ विप्राय स्वर्णदानं तु रुद्रलोके नयेन्नरम् ॥ सरस्वतीशिवक्षेत्रे गङ्गा च गङ्गकूपके ॥ ४७ ॥ एकस्थमेतत्त्रितयं स्वर्गापवर्गकारणम् ॥ सेवितं चर्षिभिः सिद्धैस्तीर्थं सर्वत्र विश्रुतम् ॥ ४८ ॥ पीलुयुग्मं स्थितं तत्र तत्तीर्थं मुनिसेवितम् ॥ स्नानात्स्वर्गप्रदं चैव पानात्पापविशुद्धिदम् ॥ ४९ ॥ कीर्त्तनात्पुण्यजननं सेवनान्मुक्तिदं परम् ॥ तद्वै पश्यन्ति ये भक्त्या ब्रह्महा यदि मातृहा ॥ ५० ॥ बालघाती च गोघ्नश्च ये च स्त्रीशूद्रघातकाः ॥ गरदाश्चाग्निदाश्चैव गुरुद्रोहरताश्च ये ॥ ५१ ॥ तपस्विनिन्दकाश्चैव कूटसाक्ष्यं करोति यः ॥ वक्ता च परदोषस्य परस्य गुणलोपकः ॥ ५२ ॥ सर्वपापमयोऽप्यत्र मुच्यते लिङ्गदर्शनात् ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कान्देबलाहकोपाख्यानवर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

पाप की शुद्धि को देनेवाला है ॥ ४९ ॥ और कीर्तन करने से पुण्य को पैदा करनेवाला व सेवन से बहुतही मुक्तिदायक है उसको भक्ति से जो मनुष्य देखते हैं ब्रह्मघाती और यदि मातृघाती होवै ॥ ५० ॥ और बालघाती व जो स्त्री और शूद्रों को मारनेवाले हैं व विषदायक तथा अग्निदायक व जो गुरुवों के द्रोह में परायण हैं ॥ ५१ ॥ और तपस्वियों के निन्दक व जो झूंठी गवाही देता है और पराये दोष का कहनेवाला व अन्य के गुणों को लोप करनेवाला ॥ ५२ ॥ सब पापमय भी यहां लिङ्गके दर्शन से मुक्त होजाता है ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबलाहकोपाख्यानवर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

दो० । लोहयष्टि के तीर्थ महँ पिंड दिये फल जौन । अट्ठाइसयें में सोई कह्यो चरित सब तौन ॥ व्यासजी बोले कि गोवत्स से नैर्ऋत्य दिशा के भाग में लोहयष्टि देखपड़ती है वहा स्वयंभू लिङ्ग के रूप से आपही शिवजी स्थित हैं ॥ १ ॥ श्रीमार्कंडेयजी बोले कि सरस्वती के मोक्षतीर्थ में भाद्रपद में अमावस के दिन ब्राह्मणों को पूजकर विधिपूर्वक उनके लिये दक्षिणा देकर ॥ २ ॥ भक्ति से इक्कीस बार पिंड का जो फल गया में पुरुषों को मिलता है वह निश्चय कर यहां तर्पण से मिलता है ॥ ३ ॥ भादौं में अमावस के दिन लोहयष्टि तीर्थ में श्राद्ध करने पर प्रेतयोनि से छूटे हुए पितर स्वर्ग में क्रीडा करते है ॥ ४ ॥ पितरलोग यह

व्यास उवाच ॥ गोवत्सान्नैर्ऋते भागे दृश्यते लोहयष्टिका ॥ स्वयम्भुलिङ्गरूपेण रुद्रस्तत्र स्थितः स्वयम् ॥ १ ॥ श्रीमार्कण्डेय उवाच ॥ मोक्षतीर्थे सरस्वत्या नभस्ये चन्द्रसंक्षये ॥ विप्रान्सम्पूज्य विधिवत्तेभ्यो दत्त्वा च दक्षिणाम् ॥ २ ॥ एकविंशतिवारांस्तु भक्त्या पिण्डस्य यत्फलम् ॥ गयायां प्राप्यते पुंसां ध्रुवं तदिह तर्पणात् ॥ ३ ॥ लोहयष्ट्यां कृते श्राद्धे नभस्ये चन्द्रसंक्षये ॥ प्रेतयोनिविनिर्मुक्ताः क्रीडन्ति पितरो दिवि ॥ ४ ॥ अपि नः स कुले भूयाद्यो वै दद्यात्तिलोदकम् ॥ पिण्डं वाप्युदकं वापि प्रेतपक्षे विधूदये ॥ ५ ॥ लोहयष्ट्याममावस्यां कार्यं भाद्रपदे जनैः ॥ श्राद्धं वै मुनयः प्राहुः पितरो यदि वल्लभाः ॥ ६ ॥ क्षीरेण तु तिलैः श्वेतैः स्नात्वा सारस्वते जले ॥ पितॄंस्तर्पयते यस्तु तृप्तास्तत्पितरो ध्रुवम् ॥ ७ ॥ तत्र श्राद्धानि कुर्वीत सक्तुभिः पयसा सह ॥ अमावास्यादिनं प्राप्य पितॄणां मोक्षमिच्छुकः ॥ ८ ॥ रुद्रतीर्थे ततो धेनुं दद्याद्वस्त्रादिभूषिताम् ॥ विष्णुतीर्थे हिरण्यं च प्रदद्यान्मोक्षमिच्छुकः ॥ ९ ॥ गयायां

कहते हैं कि वह हम लोगों के वंश में उत्पन्न होवै जो कि प्रेतपक्ष में अमावस तिथि में पिंड या जल देवै ॥ ५ ॥ मुनियों ने ऐसा कहा है कि यदि पितर प्रिय होवैं तो भाद्रपद में अमावस तिथि को मनुष्यों को श्राद्ध करना चाहिये ॥ ६ ॥ सरस्वती के जल में नहाकर दूध से व श्वेततिलों से जो पितरों को तर्पण करता है उसके पितर निश्चय कर तृप्त होते हैं ॥ ७ ॥ वहां अमावस दिन को पाकर पितरों की मुक्ति चाहनेवाले मनुष्य को दूध समेत सत्तुवों से श्राद्ध करना चाहिये ॥ ८ ॥ तदनन्तर रुद्र तीर्थ में वस्त्रादि से भूषित गऊ को देवै और मोक्ष चाहनेवाला मनुष्य विष्णुतीर्थ में सुवर्ण को देवै ॥ ९ ॥ गया में आपही विष्णुजी पितरों के रूप से

स्थित हैं उन कमललोचन विष्णुजी को ध्यान कर मनुष्य तीनों ऋणों से छूटजाता है ॥ १० ॥ वहां जाकर देवदेव विष्णुजी से प्रार्थना करै कि हे देव ! पितरों को पिंडदेने की इच्छा से मैं गया को आया हूं व हे जनार्दनजी ! मैंने तुम्हारे हाथ में इस पिंड को दिया ॥ ११ ॥ क्योंकि परलोक में गये हुए पितरों के लिये तुम दाता होगे इसी मंत्र से वहां विष्णुजी के हाथ में पिंड को देवै ॥ १२ ॥ भादों में चौदसि व अमावस-तिथि में यदि पिंड को देवै तो पितरों की अक्षय तृप्ति होगी इस में सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥ गया में इक्कीसबार पिंड देने से और लोहयष्टि तीर्थ में भक्ति से तर्पण करने पर तृप्ति को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ जल को देनेवाला तृप्ति

पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः ॥ तं ध्यात्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते च ऋणत्रयात् ॥ १० ॥ प्रार्थयेत्तत्र गत्वा तं देव देवं जनार्दनम् ॥ आगतोऽस्मि गयां देव पितृभ्यः पिण्डदित्सया ॥ एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन ॥११॥ परलोकगतेभ्यश्च त्वं हि दाता भविष्यसि ॥ अनेनैव च मन्त्रेण तत्र दद्याद्धरेः करे ॥ १२ ॥ चन्द्रे क्षीणे चतुर्दश्यां नभस्ये पिण्डमाहरेत् ॥ पितॄणामक्षया तृप्तिर्भविष्यति न संशयः ॥ १३ ॥ एकविंशतिवारांश्च गयायां पिण्ड पातनैः ॥ भक्त्या तृप्तिमवाप्नोति लोहयष्ट्यां च तर्प्पणे ॥ १४ ॥ वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ॥ फलप्रदः सुतान्भक्तानारोग्यमभयप्रदः ॥ १५ ॥ वित्तं न्यायार्जितं दत्तं स्वल्पं तत्र महाफलम् ॥ स्नानेनापि हि तत्तीर्थे रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येसंक्षेपतस्तीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टा विंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

को पाता है व अन्न को देनेवाला मनुष्य अक्षय सुख को पाता है व फल देनेवाला भक्त पुत्रों को पाता है और अभय को देनेवाला आरोग्य को पाता है ॥ १५ ॥ वहां न्याय से इकट्ठा किया थोड़ा धन दिया हुआ महाफलवान् होता है और उस तीर्थ में स्नान से भी शिवजी का सेवक होता है ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्य माहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायासंक्षेपतस्तीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । लोहासुर के नाम से भयो तीर्थ जिमि ख्यात । उन्तिसवें अध्याय में सोइ चरित्र सुहात ॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त लोहासुर के चरित्र को सुनिये और बलि के सौ पुत्रों का भी पराक्रम कहूंगा ॥ १ ॥ जब वे दोनों वृद्ध भाई उत्तम स्थान को प्राप्त हुए तब से लगाकर लोहासुर दैत्य ने वैराग्य को धारण किया ॥ २ ॥ मैं क्या करूं व कहां जाऊं और किस उत्तम स्थान को सेवन करूं देवता, मनुष्य व मुनिलोग जिसका अन्त नहीं जानते हैं ॥ ३ ॥ ऐसे किस देवता का मैं आराधन करूं ऐसा हृदय में बहुत ही चिन्तन करता रहा इस प्रकार विचारते हुए उस महात्मा की यह बुद्धि हुई ॥ ४ ॥ कि जिसने अपने मस्तक से गंगा को धारण किया

सूत उवाच ॥ अतः परं शृणुध्वं हि लोहासुरविचेष्टितम् ॥ बलेः पुत्रशतस्यापि कथयिष्यामि विक्रमम् ॥ १ ॥ यदा तौ भ्रातरौ वृद्धौ प्रापतुः स्थानमुत्तमम् ॥ तदाप्रभृति वैराग्यं दैत्यो लोहासुरो दधौ ॥ २ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि किं सेवे स्थानमुत्तमम् ॥ यस्य पारं न जानन्ति देवता मुनयो नराः ॥ ३ ॥ कोमयाऽऽराध्यतां देवो हृदि चिन्तयते भृशम् ॥ इति चिन्तयतस्तस्य मतिर्जाता महात्मनः ॥ ४ ॥ दधौ गङ्गां स्वशीर्षेण पुष्पवन्तौ च नेत्रयोः ॥ हृदा नारायणं देवं ब्रह्माणं कटिमण्डले ॥ ५ ॥ इन्द्राद्या देवताः सर्वे यद्देहे प्रतिबिम्बिताः ॥ प्रपश्यन्ति सदात्मानं भास्करः सलिले यथा ॥ ६ ॥ तमेवाराधयिष्यामि निरञ्जनमकल्मषम् ॥ एवं कृत्वा मतिं दैत्यस्तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ भीतो जन्मभयाद्घोराद्दुष्करं यन्महात्मभिः ॥ ७ ॥ अम्बुभक्षो वायुभक्षः शीर्णपर्णाशनस्तथा ॥ दिव्यं वर्षशतं साग्रं यदा तेपे महत्तपः ॥ ततस्तुतोष भगवांस्त्रिशूलवरधारकः ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ वरं वृणीष्व भद्रं ते मनसा यदभीप्सितम् ॥

है व नेत्रों में सूर्य और चन्द्रमा को धारण किया और हृदय से नारायणदेव व कटिमंडल में ब्रह्मा को धारण किया है ॥ ५ ॥ इन्द्रादिक सब देवता जिसके शरीर में प्रतिबिम्बित हैं व रुदैव अपना को देखते हैं जैसे कि सूर्यनारायण जल में प्रतिबिम्बित हैं ॥ ६ ॥ उन्हीं निष्पाप निरंजन को मैं आराधन करूंगा ऐसी बुद्धि करके महात्माओं को भी जो कठिन है भयंकर जन्म के भय से डरे हुए उसने उस कठिन तप को किया ॥ ७ ॥ जलभक्षी व पवनभक्षी और गिरे हुए पत्तों को खानेवाले उस ने जब कुछ अधिक सौ वर्षों तक बड़ा भारी तप किया तब उत्तम त्रिशूल को धारनेवाले भगवान् शिवजी प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ शिवजी बोले कि हे लोहासुर ! तुम्हारा

कल्याण होवै और मन से जो प्रिय होवै उस वर को मांगो तुम्हारे तपोबल से मुझ को कुछ न देने योग्य नहीं है ॥ ९ ॥ ऐसा कहे हुए दानव ने वहां शिवजी के आगे वचन कहा ॥ १० ॥ लोहासुर बोला कि हे देवेश ! यदि तुम प्रसन्न हो तो मैं तुम से एक वर को मागता हूं कि शरीर की वृद्धता न होवै और मृत्यु से भी मुझ को डर ॥ ११ ॥ इस जन्म में न होवै व हे प्रभो ! मेरे हृदय में स्थित होना चाहिये ऐसाही होवै वहां उस दानवेश्वर से शिवजी ने ऐसा कहा ॥ १२ ॥ शिवदेवजी से इस प्रकार वर को पाकर उसने फिर सुन्दर सरस्वतीजी के किनारे संसारसागर से तरने के लिये बड़ा तप किया ॥ १३ ॥ हज़ारों व लाखों और अर्बुदों वर्ष तक जब

लोहासुर मयादेयं तव नास्ति तपोबलात् ॥ ९ ॥ इत्युक्तो दानवस्तत्र शङ्कराग्रे वचोऽब्रवीत् ॥ १० ॥ लोहासुर उवाच ॥ यदि तुष्टोसि देवेश वरमेकं वृणोम्यहम् ॥ शरीरस्याजरत्वं च मा मृत्योरपि मे भयम् ॥ ११ ॥ जन्मन्यस्मिन्प्रभो भूयात्स्थातव्यं हृदये मम ॥ एवमस्तु शिवः प्राह तत्र तं दानवेश्वरम् ॥ १२ ॥ एवं लब्धवरो दैवात्पुनस्तेपे महत्तपः ॥ रम्ये सरस्वतीतीरे तरणाय भवार्णवात् ॥ १३ ॥ वत्सराणां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥ शङ्कते भगवानिन्द्रो भीतस्तस्य तपोबलात् ॥ १४ ॥ मा मे पदच्युतिर्भूयाद्दैत्याल्लोहासुरात्कचित् ॥ मघवा गुप्तरूपेण समेत्याश्रमकाननम् ॥ १५ ॥ तपोभङ्गं प्रकुरुते कोपयित्वा महासुरम् ॥ ताडयन्ति शरीरे तं मुष्टिभिस्तीक्ष्णकर्कशैः ॥ १६ ॥ अथ तेन च दैत्येन ध्यानमुत्सृज्य वीक्षितम् ॥ इन्द्रेण तत्कृतं सर्वं तपोबलविनाशनम् ॥ १७ ॥ तस्य तैरभवद्युद्धमिन्द्राद्यैरथ कर्कशैः ॥ एकस्य बहुभिः सार्द्धं देवास्ते तेन संयुगे ॥ १८ ॥ रुधिराक्लिन्नदेहा वै प्रहारैर्जर्जरीकृताः ॥ के

उसने तप किया तब उसके तपोबल से डरे हुए भगवान् इन्द्रजी शंकित हुए ॥ १४ ॥ कि लोहासुर दैत्य से कहीं मेरे स्थान की पृथक्ता न होवै और गुप्तरूप से आश्रम के वन को आकर इन्द्रजी ॥ १५ ॥ महादैत्य को क्रोधित कराकर तपस्या का भंग करनेलगे और तीक्ष्ण व कठोर घूंसों से उसके शरीर में मारनेलगे ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त उस दैत्य ने ध्यान को छोड़कर देखा कि इन्द्र ने उस सब तपोबल को नाश किया है ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त उन कठोर बहुत से इन्द्रादिकों का उस एक दैत्य के साथ युद्ध हुआ और युद्ध में उस दैत्य ने उन देवताओं को ॥ १८ ॥ प्रहारों से जर्जर किया और रक्त से भीगे हुए शरीरवाले वे देवता रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये

ऐसा कहते हुए विष्णुजी की शरण में प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि देवताओं का वचन सुनकर वासुदेव जनार्दन विष्णुजी ने उसके साथ युद्ध में सौ बरस तक समर किया ॥ २० ॥ तदनन्तर वरदान से बढ़े हुए उसने उस युद्ध में विष्णुजी को जीतलिया इसके उपरान्त लोहासुर से जीते हुए नारायण देवजी ने ॥ २१ ॥ शिव व ब्रह्माजी से बार २ सम्मति किया और तीनों देवताओं ने विचार कर फिर युद्ध का उद्यम किया ॥ २२ ॥ फिर लोहासुर दैत्य का शरीर नवीन देखकर तदनन्तर विष्णु व दैत्य का फिर बड़ा भारी युद्ध हुआ ॥ २३ ॥ जब सामर्थ्यवान् विष्णुजी से वह दैत्य न मरा तब उसको विष्णुजी ने वेग से पृथ्वी में गिरा दिया ॥ २४ ॥

शर्वं शरणं प्राप्तास्त्राहि त्राहीति भाषिणः ॥ १६ ॥ सूत उवाच ॥ देवानां वाक्यमाकर्ण्य वासुदेवो जनार्दनः ॥ युयुधे केशवस्तेन युद्धे वर्षशतं किल ॥ २० ॥ ततो नारायणं तत्र जिगाय स वरोर्जितः ॥ अथ नारायणो देवो जितो लोहासुरेण तु ॥ २१ ॥ मन्त्रयामास रुद्रेण ब्रह्मणा च पुनः पुनः ॥ मीमांसित्वा त्रयो देवाः पुनर्युद्धसमुद्यमम् ॥ २२ ॥ लोहासुरस्य दैत्यस्य वपुर्दृष्ट्वा पुनर्नवम् ॥ महदासीत्पुनर्युद्धं दैत्यकेशवयोस्ततः ॥ २३ ॥ न ममार यदा दैत्यो विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ तरसा तं केशवोऽपि पातयामास भूतले ॥ २४ ॥ उत्तानं पतितं दृष्ट्वा पिनाकी परमेश्वरः ॥ दधार हृदये तस्य स्वरूपं रूपवर्जितः ॥ २५ ॥ कण्ठे तस्थौ ततो ब्रह्मा तस्य लोहासुरस्य च ॥ चरणौ पीडयामास स्वस्थित्या पुरुषोत्तमः ॥ २६ ॥ अथ दैत्यः समुत्तस्थौ भृशं बद्धोपि भूतले ॥ दृष्ट्वोत्थितं ततो दैत्यं पातयन्तं सुरोत्तमान् ॥ २७ ॥ उवाच दिव्यया वाचा विरञ्चिः कमलासनः ॥ २८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ लोहासुर सदा रक्ष वाचोधर्ममभीक्ष्ण

और उतान गिरे हुए उस दैत्य को देख कर रूप से रहित परमेश्वर शिवजी ने उसके हृदय में अपने स्वरूप को धारण किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर उस लोहासुर के कण्ठ में ब्रह्माजी स्थित हुए और पुरुषोत्तम विष्णुजी ने अपनी स्थिति से चरणों को पीड़ित किया ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर बहुतही बाँधा हुआ भी वह दैत्य उठपड़ा तदनन्तर सुरोत्तमों को गिराते हुए दैत्य को उत्थित देख कर ॥ २७ ॥ कमलासन ब्रह्माजी ने दिव्य वाणी से कहा ॥ २८ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे लोहासुर ! वचन के

पृथ्वी में शिवरूप के अन्तर्गत धर्मारण्य में यहां पितरों के पिंडदान से अक्षय तृप्ति होगी ॥ ४९ ॥ और श्राद्ध, पिंड व जलक्रिया श्रद्धाही से करना चाहिये व हे असुरोत्तम ! हमलोगों के मध्यदेश में व तुम्हारे शरीर में विशेष कर श्राद्ध पिंड करने योग्य होगा ब्रह्मा का वचन सुनकर तदनन्तर शिवजी ने उस दैत्य से कहा ॥ ५० । ५१ ॥ कि हे लोहासुर ! तुम को चिन्ता न करना चाहिये व हे सुव्रत ! तुम सत्य हो और तीनों लोकों में दुर्लभ तुम्हारी स्वर्गस्थिति सत्यही होगी ॥ ५२ ॥ व हे असुरसत्तम ! हमारे सत्य वचन से पृथ्वी में तुम्हारा तीर्थ गया से अधिक होगा ॥ ५३ ॥ और तुम्हारे शरीर में हमारी अव्यग्र स्थिति होगी इसमें सन्देह नहीं है व हे अनघ !

पितॄणां पिण्डदानेन अक्षय्या तृप्तिरस्त्विह ॥ शिवरूपान्तराले वै धर्मारण्ये धरातले ॥ ४९ ॥ श्रद्धयैव हि कर्त्तव्याः श्राद्धपिण्डोदकक्रियाः ॥ तथान्तराले चास्माकं श्राद्धपिण्डो विशेषतः ॥ ५० ॥ तथा शरीरे कर्तव्यो भविष्यत्यसुरोत्तम ॥ ब्रह्मणो वाक्यमाकर्ण्य रुद्रः प्राह ततोऽसुरम् ॥ ५१ ॥ लोहासुर न ते कार्या चिन्ता सत्योऽसि सुव्रत ॥ त्रिषु लोकेषु दुष्प्रापं सत्यं ते दिवि संस्थितम् ॥ ५२ ॥ अस्मद्वाक्येन सत्येन तत्तथाऽसुरसत्तम ॥ गयासमधिकं तीर्थं तव जातं धरातले ॥ ५३ ॥ अस्माकं स्थितिरव्यग्रा तव देहे न संशयः ॥ सत्यपाशेन बद्धाः स्म दृढमेव त्वयाऽनघ ॥५४॥ विष्णुरुवाच ॥ गयाप्रयागकस्याऽपि फलं समधिकं स्मृतम् ॥ चतुर्द्दश्याममावास्यां लोहयष्ट्यां पिण्डदानतः ॥ ५५ ॥ बलिपुत्रस्य सत्येन महती तृप्तिरत्र हि ॥ मा कुरुष्वात्र सन्देहं तव देहे स्थिता स्वयम् ॥ ५[illegible] ॥ सरस्वती पुण्यतोया ब्रह्मलोकात्प्रयात्युत ॥ प्लावयिष्यन्ति देहाङ्गं मया सह सुसङ्गता ॥ ५७ ॥ यत्र वै द्वारकावासो देवस्तत्र

तुम ने सत्यरूपी पाश से हमलोगों को दृढ़ता से बाँध लिया ॥ ५४ ॥ विष्णुजी बोले कि गया व प्रयाग से भी यहां अधिक फल कहा गया है और चौदसि व अमावस में लोहयष्टि तीर्थ में पिंडदान से ॥ ५५ ॥ बलिपुत्र (लोहासुर) के सत्य से यहां बड़ी तृप्ति होगी इसमें सन्देह न करो हमलोग तुम्हारे शरीर में आपही स्थित हैं ॥ ५६ ॥ और ब्रह्मलोक से चलती हुई पवित्र जलवाली सरस्वतीजी मेरे साथ आकर शरीर को डुबावैंगी ॥ ५७ ॥ और जहां द्वारकाजी का निवास है वहां शिवदेवजी

आपलोगों के बल में नहीं स्थित हूंगा ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी ये तीनों उत्तम देवता ॥ ३९ ॥ यदि मेरे शरीर में टिकैंगे तो मैंने क्या नहीं पाया और तीनों देवताओं से आक्रमित (दबाया हुआ) यह मेरा शरीर ॥ ४० ॥ हे सुरोत्तमो ! पृथ्वी में मेरे प्रभाव से प्रसिद्ध होवै ॥ ४१ ॥ लोहासुर के वचन से प्रसन्न होते हुए ब्रह्मा, विष्णु व शिव तीनों देवताओं ने उसको प्रत्युत्तर दिया ॥ ४२ ॥ कि जिसलिये तुम सत्यवचनरूपी पाश से नहीं चले उस सत्य से प्रसन्न होते हुए हमलोग तुम्हारे मनोरथ को देवैंगे ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे दैत्य ! जैसे गया स्थान में स्नान, ब्रह्मज्ञान व शरीर त्याग होता है वैसेही धर्मेश्वरजी के आगे स्थित धर्मारण्य में होता है ॥ ४४ ॥

वाक्पाशबद्धस्तिष्ठामि न पुनर्भवतां बले ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयोऽमी सुरसत्तमाः ॥ ३९ ॥ स्थास्यन्ति चेच्छरीरे मे किं न लब्धं मया ततः ॥ इदं कलेवरं मे हि समारूढं त्रिभिः सुरैः ॥ ४० ॥ भूम्यां भवतु विख्यातं मत्प्रभावात्सुरोत्तमाः ॥ ४१ ॥ लोहासुरस्य वाक्येन हर्षितास्त्रिदशास्त्रयः ॥ ददुः प्रत्युत्तरं तस्मै ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ४२ ॥ सत्यवाक्पाशतो दैत्यो न सत्याच्चलितो यतः ॥ तेन सत्येन सन्तुष्टा दास्यामस्ते हृदीप्सितम् ॥ ४३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यथा स्नानं ब्रह्मज्ञानं देहत्यागो गयातले ॥ धर्मारण्ये तथा दैत्य धर्म्मेश्वरपुरःस्थिते ॥ ४४ ॥ कूपे तर्प्पणकं श्राद्धं शंसन्ति पितरो दिवि ॥ सन्तुष्टाः पिण्डदानेन गयायां पितरो यथा ॥ ४५ ॥ वाञ्छन्ति तर्प्पणं कूपे धर्मारण्ये विशुद्धये ॥ दानवेन्द्र शरीरं तु तीर्थं तव भविष्यति ॥ ४६ ॥ एकविंशतिवारांस्तु गयायां तर्प्पणे कृते ॥ पितॄणां या परा तृप्तिर्जायते दानवाधिप ॥ ४७ ॥ धर्मेश्वरपुरस्तात्सा त्वेकदा पितृतर्पणात् ॥ स्याद्वै दशगुणा तृप्तिः सत्यमेव न संशयः ॥ ४८ ॥

और कूप के समीप तर्पण व श्राद्ध की पितरलोग स्वर्ग में प्रशंसा करते हैं और जैसे गया में पिंडदान से पितर प्रसन्न होते हैं ॥ ४५ ॥ वैसेही धर्मारण्य में शुद्धि के लिये पितरलोग कूप के समीप तर्पण की इच्छा करते हैं व हे दानवेन्द्र ! तुम्हारा शरीर तीर्थ होगा ॥ ४६ ॥ हे दानवाधिप ! गया में इक्कीसबार तर्पण करने से पितरों की जो उत्तम तृप्ति होती है ॥ ४७ ॥ धर्मेश्वरजी के आगे एकबार पितरों के तर्पण से उससे दशगुनी तृप्ति होती है यह सत्य है इस में सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥

पृथ्वी में शिवरूप के अन्तर्गत धर्मारण्य में यहां पितरों के पिंडदान से अक्षय तृप्ति होगी ॥ ४९ ॥ और श्राद्ध, पिंड व जलक्रिया श्रद्धाही से करना चाहिये व हे असुरोत्तम ! हमलोगों के मध्यदेश में व तुम्हारे शरीर में विशेष कर श्राद्ध पिंड करने योग्य होगा ब्रह्मा का वचन सुनकर तदनन्तर शिवजी ने उस दैत्य से कहा ॥ ५० । ५१ ॥ कि हे लोहासुर ! तुम को चिन्ता न करना चाहिये व हे सुव्रत ! तुम सत्य हो और तीनों लोकों में दुर्लभ तुम्हारी स्वर्गस्थिति सत्यही होगी ॥ ५२ ॥ व हे असुरसत्तम ! हमारे सत्य वचन से पृथ्वी में तुम्हारा तीर्थ गया से अधिक होगा ॥ ५३ ॥ और तुम्हारे शरीर में हमारी अव्यग्र स्थिति होगी इसमें सन्देह नहीं है व हे अनघ !

पितॄणां पिण्डदानेन अक्षय्या तृप्तिरस्त्विह ॥ शिवरूपान्तराले वै धर्मारण्ये धरातले ॥ ४९ ॥ श्रद्धयैव हि कर्त्तव्याः श्राद्धपिण्डोदकक्रियाः ॥ तथान्तराले चास्माकं श्राद्धपिण्डो विशेषतः ॥ ५० ॥ तथा शरीरे कर्तव्यो भविष्यत्यसुरोत्तम ॥ ब्रह्मणो वाक्यमाकर्ण्य रुद्रः प्राह ततोऽसुरम् ॥ ५१ ॥ लोहासुर न ते कार्या चिन्ता सत्योऽसि सुव्रत ॥ त्रिषु लोकेषु दुष्प्रापं सत्यं ते दिवि संस्थितम् ॥ ५२ ॥ अस्मद्वाक्येन सत्येन तत्तथाऽसुरसत्तम ॥ गयासमधिकं तीर्थं तव जातं धरातले ॥ ५३ ॥ अस्माकं स्थितिरव्यग्रा तव देहे न संशयः ॥ सत्यपाशेन बद्धाः स्म दृढमेव त्वयाऽनघ ॥ ५४ ॥ विष्णुरुवाच ॥ गयाप्रयागकस्याऽपि फलं समधिकं स्मृतम् ॥ चतुर्दश्याममावास्यां लोहयष्ट्यां पिण्डदानतः ॥ ५५ ॥ बलिपुत्रस्य सत्येन महती तृप्तिरत्र हि ॥ मा कुरुष्वात्र सन्देहं तव देहे स्थिता स्वयम् ॥ ५[illegible] ॥ सरस्वती पुण्यतोया ब्रह्मलोकात्प्रयात्युत ॥ प्लावयिष्यन्ति देहाङ्गं मया सह सुसङ्गता ॥ ५७ ॥ यत्र वै द्वारकावासो देवस्तत्र

तुम ने सत्यरूपी पाश से हमलोगों को दृढ़ता से बाँध लिया ॥ ५४ ॥ विष्णुजी बोले कि गया व प्रयाग से भी यहां अधिक फल कहा गया है और चौदसि व अमावस में लोहयष्टि तीर्थ में पिंडदान से ॥ ५५ ॥ बलिपुत्र (लोहासुर) के सत्य से यहां बड़ी तृप्ति होगी इसमें सन्देह न करो हमलोग तुम्हारे शरीर में आपही स्थित हैं ॥ ५६ ॥ और ब्रह्मलोक से चलती हुई पवित्र जलवाली सरस्वतीजी मेरे साथ आकर शरीर को डुबावैंगी ॥ ५७ ॥ और जहां द्वारकाजी का निवास है वहां शिवदेवजी

स्थित होते हैं व जहां ब्रह्मा होते हैं वहां पृथ्वी में ये तीनों तीर्थ होते हैं ॥ ५८ ॥ व हे असुरश्रेष्ठ ! पितरों की तृप्ति के लिये ये तीर्थ पाताल, स्वर्गलोक व यमस्थान में प्रसिद्ध होवेंगे ॥ ५९ ॥ हे अनघ ! पुत्रों के लिये आज्ञारूपिणी पितरों से कीहुई उत्तम गाथा को कहता हूं उसको मुझ से सुनिये ॥ ६० ॥ पितरलोग बोले कि पाप से नष्टशरीरवाले मनुष्यों के पापसंयुत शरीर की शुद्धि के लिये शंकरजी के आगे स्थान शिवलोक का दायक है ॥ ६१ ॥ उसमें उत्तम बुद्धिवाले पुत्र से तिलोदक से भी तृप्त किये हुए पितर नरक से छूटकर उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ॥ ६२ ॥ इसी कारण वहां पितरों की मुक्ति के लिये विद्वान् गोदान की प्रशंसा करते हैं और

महेश्वरः ॥ विरञ्चिर्यत्र तीर्थानि त्रीण्येतानि धरातले ॥ ५८ ॥ भविष्यन्ति च पाताले स्वर्गलोके यमक्षये ॥ विख्यातान्यसुरश्रेष्ठ पितॄणां तृप्तिहेतवे ॥ ५९ ॥ अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि गाथां पितृकृतां पराम् ॥ आज्ञारूपां हि पुत्राणां तां शृणुष्व ममानघ ॥ ६० ॥ पितर ऊचुः ॥ शङ्करस्याग्रतः स्थानं रुद्रलोकप्रदं नृणाम् ॥ पापदेहविशुद्ध्यर्थं पापेनोपहतात्मनाम् ॥ ६१ ॥ तस्मिंस्तिलोदकेनापि सद्गतिं यान्ति तर्पिताः ॥ पितरो नरकाद्वापि सुपुत्रेण सुमेधसा ॥ ६२ ॥ गोप्रदानं प्रशंसन्ति तत्तत्र पितृमुक्तये ॥ पित्रादिकान्समुद्दिश्य दृष्ट्वा रुद्रं च केशवम् ॥ ६३ ॥ तिलपिण्याकपिण्डे न तृप्तिं यास्यामहे पराम् ॥ चतुर्दश्याममावास्यां तथा च पितृतर्पणम् ॥ ६४ ॥ अज्ञातगोत्रजन्मानस्तेभ्यः पिण्डांस्तु निर्वपेत् ॥ तेऽपि यान्ति दिवं सर्वे पिण्डे दत्त इति श्रुतिः ॥ ६५ ॥ सर्वकार्याणि सन्त्यज्य मानवैः पुण्यमीप्सुभिः ॥ प्राप्ते भाद्रपदे मासे गन्तव्या लोहयष्टिका ॥ ६६ ॥ अज्ञातगोत्रनाम्नां तु पिण्डमन्त्रमिमं शृणु ॥ ६७ ॥ पितृवंशे

शिव व विष्णुजी को देखकर पिता आदिकों को उद्देश कर ॥ ६३ ॥ तिल के पीना के पिंड से हमलोग उत्तम तृप्ति को प्राप्त होवेंगे और चौदसि व अमावस में पितरों को तर्पण करना चाहिये ॥ ६४ ॥ और जिनका गोत्र व जन्म नहीं जाना गया है उनके लिये पिंडों को देवै तो पिंड देने पर वे भी स्वर्ग को जाते हैं ऐसा श्रुति ने कहा है ॥ ६५ ॥ पुण्य को चाहनेवाले मनुष्यों को सब कर्मों को छोड़कर भादौं महीना प्राप्त होने पर लोहयष्टितीर्थ में जाना चाहिये ॥ ६६ ॥ और बिन जाने हुए गोत्र व नामवाले पितरों के इस पिंडमंत्र को सुनिये ॥ ६७ ॥ कि बिन जाने हुए गोत्र में उत्पन्न जो पिता के वंश में व माता के वंश में मरे हैं उनके लिये यह पिंड

प्राप्त होवै ॥ ६८ ॥ विष्णुजी बोले कि हे असुरसत्तम ! भादों में अमावस व चौदसि तिथि में इसी मंत्र से मेरे आगे पिंड को देवै ॥ ६९ ॥ तो पितरों की अक्षय तृप्ति होगी इस में सन्देह नहीं है और तिल के पीना के पिंड से पितर मोक्ष को पाते हैं ॥ ७० ॥ और लोहयष्टितीर्थ में तिलों से तर्पण करने पर मनुष्य पृथ्वी में तीनों ऋणों से मुक्त होवैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७१ ॥ और यहां स्नान करके जो पितरों को पिंड व जलदान कर्म करते हैं उसके पितर ब्रह्मा के दिन रात्रि तक तृप्त रहते हैं ॥ ७२ ॥ व हे असुर ! भादों महीने में अमावस दिन को पाकर ब्रह्मा की यष्टिका में जो पितरों का तर्पण करता है ॥ ७३ ॥ उसके पितर कल्पपर्यन्त तृप्त रहते

मृता ये च मातृवंशे तथैव च ॥ अज्ञातगोत्रजास्तेभ्यः पिण्डोऽयमुपतिष्ठतु ॥ ६८ ॥ विष्णुरुवाच ॥ अनेनैव तु मन्त्रेण ममाग्रेऽसुरसत्तम ॥ क्षीणे चन्द्रे चतुर्दश्यां नभस्ये पिण्डमाहरेत् ॥ ६९ ॥ पितॄणामक्षया तृप्तिर्भविष्यति न संशयः ॥ तिलपिण्याकपिण्डेन पितरो मोक्षमाप्नुयुः ॥ ७० ॥ ऋणत्रयविनिर्मुक्ता मानवा जगतीतले ॥ भविष्यन्ति न सन्देहो लोहयष्ट्यां तिलतर्पणे ॥ ७१ ॥ स्नात्वा यः कुरुते चात्र पितृपिण्डोदकक्रियाः ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावद्ब्रह्मदिवानिशम् ॥ ७२ ॥ अमावास्यादिनं प्राप्य मासि भाद्रपदेऽसुर ॥ ब्रह्मणो यष्टिकायां तु यः कुर्यात्पितृतर्पणम् ॥ ७३ ॥ पितरस्तस्य तृप्ताः स्युर्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ तेषां प्रसन्नो भगवानादिदेवो महेश्वरः ॥ ७४ ॥ अस्य तीर्थस्य यात्रायां मतिर्येषां भविष्यति ॥ गोक्षीरेण तिलैः श्वेतैः स्नात्वा सारस्वते जले ॥ ७५ ॥ तर्पयेदक्षया तृप्तिः पितॄणां तस्य जायते ॥ श्राद्धं चैव प्रकुर्वीत सक्तुभिः पयसा सह ॥ ७६ ॥ अमावास्यादिनं प्राप्य पितॄणां मोक्षमिच्छुकः ॥ धेनुं दद्याद्रुद्रतीर्थे वस्त्राणि यमतीर्थके ॥ ७७ ॥ विष्णुतीर्थे हिरण्यं च पितॄणां मोक्षमिच्छुकः ॥ विनाक्षतैर्विना दर्भैर्वि

हैं और भगवान् आदिदेव महेश्वरजी उनके ऊपर प्रसन्न होते हैं ॥ ७४ ॥ जिन की बुद्धि इस तीर्थ की यात्रा में होगी और सरस्वतीजी के जल में नहाकर जो गऊ के दूध व सफ़ेद तिलों से ॥ ७५ ॥ तर्पण करता है उसके पितरों की अक्षय तृप्ति होती है और पितरों की मुक्ति को चाहनेवाला मनुष्य अमावास्या दिन को प्राप्त होकर वहां दूध समेत सत्तुवों से श्राद्ध करना चाहिये और रुद्रतीर्थ में गऊ देवै व यमतीर्थ में वस्त्रों को देवै ॥ ७६ । ७७ ॥ और पितरों की मुक्ति चाहनेवाला

मनुष्य विष्णुतीर्थ में सुवर्ण को देवै अक्षतों के विना व कुशों के विना और आसन के विना लोहयष्टि में जलही से मनुष्य गयाश्राद्ध का फल पाता है ॥ ७८ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! यह लोहासुर का वृत्तान्त तुमलोगों से कहागया जिसको सुनकर ब्रह्मघाती व गोघाती मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ७९ ॥ गया में इक्कीसबार पिंडदान से जो फल होताहै उस फल को मनुष्य इस चरित्र के एकबार सुनने से पाता है ॥ ८० ॥ और जो इस माहात्म्य को सुनता है उसने चार करोड़ दो लाख एक हज़ार सौ गौवों को दिया ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांलोहासुरमाहात्म्यसम्पूर्तिर्नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

ना चासनमेव च ॥ वारिमात्राल्लोहयष्ट्यां गयाश्राद्धफलं लभेत् ॥ ७८ ॥ सूत उवाच ॥ एतद्वः कथितं विप्रा लोहासुर विचेष्टितम् ॥ यच्छ्रुत्वा ब्रह्महा गोघ्नो मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ७९ ॥ एकविंशतिवारन्तु गयायां पिण्डपातने ॥ तत्फलं समवाप्नोति सकृदस्मिञ्छ्रुते सति ॥ ८० ॥ चतुष्कोटिद्विलक्षं च सहस्रं शतमेव च ॥ धेनवस्तेन दत्ताः स्युर्माहात्म्यं शृणुयात्तु यः ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येलोहासुरमाहात्म्यसम्पूर्तिर्नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

व्यास उवाच ॥ पुरा त्रेतायुगे प्राप्ते वैष्णवांशो रघूद्वहः ॥ सूर्यवंशे समुत्पन्नो रामो राजीवलोचनः ॥ १ ॥ स रामो लक्ष्मणश्चैव काकपक्षधरावुभौ ॥ तातस्य वचनात्तौ तु विश्वामित्रमनुव्रतौ ॥ २ ॥ यज्ञसंरक्षणार्थाय राज्ञा दत्तौ कुमारकौ ॥ धनुःशरधरौ वीरौ पितुर्वचनपालकौ ॥ ३ ॥ पथि प्रव्रजतोर्यावत्ताडकानाम राक्षसी ॥ तावदागम्य पुरतस्तस्थौ वै विघ्नकारणात् ॥ ४ ॥ ऋषेरनुज्ञया रामस्ताडकां समघातयत् ॥ प्रादिशच्च धनुर्वेदविद्यां रामाय

दो॰ । रावण राक्षस को हन्यो यथा देव रघुनाथ । सोइ तीस अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ ॥ व्यासजी बोले कि पुरातनसमय त्रेतायुग प्राप्त होने पर विष्णुजी के अंश रघुनायक कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी सूर्यवंश में उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ और काकपक्षधारी श्रीराम व लक्ष्मणजी वे दोनों पिता के वचन से विश्वामित्रजी के अनुगामी हुए ॥ २ ॥ यज्ञ की रक्षा के लिये राजा दशरथ ने उन दोनों कुमारों को दिया और धनुष व बाण को धारनेवाले वे वीर पिता वचन के पालक हुए ॥ ३ ॥ जब मार्ग में जाते थे तब तक ताड़का नामक राक्षसी आकर विघ्न के कारण आगे स्थित हुई ॥ ४ ॥ और ऋषि की आज्ञा से श्रीरामजी ने ताड़का को मारा और

विश्वामित्रजी ने श्रीरामजी के लिये धनुर्वेदविद्या को बतलाया ॥ ५ ॥ और इन्द्र के संयोग से गौतमकी स्त्री अहल्या शिला उन श्रीरामचन्द्रजी के चरणतलों के स्पर्श से फिर स्वरूपवती होगई ॥ ६ ॥ और विश्वामित्र का यज्ञ वर्तमान होने पर रघूत्तम रघुनाथजी ने उत्तम बाणों से मारीच व सुबाहु को मारा ॥ ७ ॥ और जनक के घर में धरा हुआ शिवजी का धनुष तोड़डाला और श्रीरामचन्द्रजी ने पन्द्रहवें वर्ष में छः वर्ष की मैथिली ॥ ८ ॥ व अयोनिजा सुन्दरी सीताजी को जब ब्याहा तब हे राजन् ! सीताजी को पाकर श्रीरामजी कृतार्थ हुए ॥ ९ ॥ व जब अयोध्याजी को गये तब हे राजन् ! परशुरामजी को देखकर देवताओं को भी दुस्सह समर

गाधिजः ॥ ५ ॥ तस्य पादतलस्पर्शाच्छिला वासवयोगतः ॥ अहल्या गौतमवधूः पुनर्जाता स्वरूपिणी ॥ ६ ॥ विश्वामित्रस्य यज्ञे तु सम्प्रवृत्ते रघूत्तमः ॥ मारीचं च सुबाहुं च जघान परमेषुभिः ॥ ७ ॥ ईश्वरस्य धनुर्भग्नं जनकस्य गृहे स्थितम् ॥ रामः पञ्चदशे वर्षे षड्वर्षां चैव मैथिलीम् ॥ ८ ॥ उपयेमे यदा राजन्रम्यां सीतामयोनिजाम् ॥ कृतकृत्यस्तदा जातः सीतां सम्प्राप्य राघवः ॥ ९ ॥ अयोध्यामगमन्मार्गे जामदग्न्यमवेक्ष्य च ॥ संग्रामोऽभूत्तदा राजन्देवानामपि दुःसहः ॥ १० ॥ ततो रामं पराजित्य सीतया गृहमागतः ॥ ततो द्वादशवर्षाणि रेमे रामस्तया सह ॥ ११ ॥ सप्तविंशतिमे वर्षे यौवराज्यप्रदायकम् ॥ राजानमथ कैकेयी वरद्वयमयाचत ॥ १२ ॥ तयोरेकेन रामस्तु ससीतः सहलक्ष्मणः ॥ जटाधरः प्रव्रजतां वर्षाणीह चतुर्दश ॥ १३ ॥ भरतस्तु द्वितीयेन यौवराज्याधिपोस्तु मे ॥ मन्थरावचनान्मूढा वरमेतमयाचत ॥ १४ ॥ जानकीलक्ष्मणसखं रामं प्राव्राजयन्नृपः ॥ त्रिरात्रमुदकाहारश्चतुर्थेह्नि

हुआ ॥ १० ॥ तदनन्तर परशुरामजी को जीतकर श्रीरामजी सीता समेत घर को आये तदनन्तर श्रीरामजी ने उन जानकीजी समेत बारह वर्ष तक रमण किया ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर सत्ताईसवें वर्ष में युवराजता को देनेवाले राजा दशरथ से कैकेयी ने दो वरों को मांगा ॥ १२ ॥ उन दोनों में से एक वर से सीता समेत व लक्ष्मण सहित श्रीरामजी जटाओं को धारण कर चौदह वर्ष तक वन को जावैं ॥ १३ ॥ और मेरे दूसरे वरदान से भरतजी युवराजता के स्वामी होवैं मंथरा के वचन से मूढ़ कैकेयी ने इस वर को मांगा ॥ १४ ॥ और राजा दशरथ ने जानकी व लक्ष्मण सखावाले श्रीरामजी को वनवास दिया और तीन रात्रि तक जलाहारी व चौथे दिन

फल को भोजन करनेवाले ॥ १५ ॥ श्रीरामजी ने पांचवें दिन चित्रकूट में निवास किया तब हा राम ! ऐसा कहते हुए दशरथजी स्वर्ग को चलेगये ॥ १६ ॥ वे दशरथजी ब्राह्मण का शाप सफल कर स्वर्ग को गये तदनन्तर भरत व शत्रुघ्न चित्रकूट में आये ॥ १७ ॥ व हे राजन् ! रामजी से पिता को स्वर्ग में प्राप्त बतलाकर भरतजी इन श्रीरामजी के लौटने के लिये समझा कर ॥ १८ ॥ तदनन्तर भरत व शत्रुघ्नजी नंदिग्राम को आये और वहां राज्य को धारण किये दोनों पादुका पूजन में परायण हुए ॥ १९ ॥ और श्रीरामजी महात्मा अत्रिजी को देखकर दण्डकारण्य को आये व राक्षसगणों के मारने के प्रारंभ में विराध के मारने पर ॥ २० ॥ साढ़े तेरह वर्ष

फलाशनः ॥ १५ ॥ पञ्चमे चित्रकूटे तु रामो वासमकल्पयत् ॥ तदा दशरथः स्वर्गं गतो राम इति ब्रुवन् ॥ १६ ॥ ब्रह्मशापं तु सफलं कृत्वा स्वर्गं जगाम सः ॥ ततो भरतशत्रुघ्नौ चित्रकूटे समागतौ ॥ १७ ॥ स्वर्गतं पितरं राजन् रामाय विनिवेद्य च ॥ सान्त्वनं भरतश्चास्य कृत्वा निवर्तनं प्रति ॥ १८ ॥ ततो भरतशत्रुघ्नौ नन्दिग्रामं समागतौ ॥ पादुकापूजनरतौ तत्र राज्यधरावुभौ ॥ १९ ॥ अत्रिं दृष्ट्वा महात्मानं दण्डकारण्यमागमत् ॥ रक्षोगणवधारम्भे विराधे विनिपातिते ॥ २० ॥ अर्द्धत्रयोदशे वर्षे पञ्चवट्यामुवास ह ॥ ततो विरूपयामास शूर्पणखां निशाचरीम् ॥ वने विचरतस्तस्य जानकीसहितस्य च ॥ २१ ॥ आगतो राक्षसो घोरः सीतापहरणाय सः ॥ ततो माघासिताष्टम्यां मुहूर्ते वृन्दसंज्ञके ॥२२॥ राघवाभ्यां विना सीतां जहार दशकन्धरः ॥ मारीचस्याश्रमं गत्वा मृगरूपेण तेन च ॥ २३॥ नीत्वा दूरं राघवं च लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥ ततो रामो जघानाशु मारीचं मृगरूपिणम् ॥ २४ ॥ पुनः प्राप्याश्रमं

पंचवटी में बसे तदनन्तर उन्हों ने शूर्पणखा राक्षसी को विरूप किया और जानकी समेत वन में घूमते हुए उन श्रीरामजी के ॥ २१ ॥ वह भयंकर रावण राक्षस सीता जी के हरने के लिये आया तदनन्तर माघ की कृष्ण पक्षवाली अष्टमी में वृन्दसंज्ञक मुहूर्त में ॥ २२ ॥ रावण ने मारीच के आश्रम को जाकर श्रीराम व लक्ष्मणजी के बिना सीताजी को हरलिया और उस मृगरूपधारी मारीच ने ॥ २३ ॥ लक्ष्मण समेत श्रीरामजी को दूर ले जाकर माया किया तदनन्तर मृगरूपी मारीच को श्रीराम जी ने शीघ्रही मारा ॥ २४ ॥ फिर आश्रम को प्राप्त होकर श्रीरामजी ने सीता के बिना आश्रम को देखा और वहां हरी जाती हुई वे सीताजी कुररी पक्षिणी की नाईं

रोनेलगीं ॥ २५ ॥ कि हे राम ! हे राम ! राक्षस से हरी हुई मेरी रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये जैसे क्षुधा से संयुत बाजपक्षी चिल्लाती हुई वर्तिका (बटेर) को लेजाता है ॥ २६ ॥ वैसेही कामदेव के वश में प्राप्त यह राक्षस रावण जनक की कन्या (जानकी) जी को लिये जाता है तब उस वचन को सुनकर पक्षिराज गीध ने ॥ २७ ॥ राक्षसेन्द्र रावण से युद्ध किया व रावण से मारा हुआ वह गिरपड़ा और माघ के कृष्णपक्ष की नवमी में रावण के मन्दिर में बसती हुई जानकीजी को ॥ २८ ॥ ढूंढ़ते हुए वे राम, लक्ष्मण दोनों भाई उस समय ॥ २९ ॥ जटायु को देखकर व राक्षस से हरी हुई सीता को जानकर तदनन्तर उन श्रीरामजी ने पक्षी गृध्रराज का दाहा-

रामो विना सीतां ददर्श ह ॥ तत्रैव ह्रियमाणा सा चक्रन्द कुररी यथा ॥ २५ ॥ रामरामेति मां रक्ष रक्ष मां रक्षसा हृताम् ॥ यथा श्येनः क्षुधायुक्तः क्रन्दन्तीं वर्तिकां नयेत् ॥ २६ ॥ तथा कामवशं प्राप्तो राक्षसो जनकात्मजाम् ॥ नयत्येष जनकजां तच्छ्रुत्वा पक्षिराट् तदा ॥ २७ ॥ युयुधे राक्षसेन्द्रेण रावणेन हतोऽपतत् ॥ माघासितनवम्यां तु वसन्तीं रावणालये ॥ २८ ॥ मार्गमाणौ तदा तौ तु भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ २९ ॥ जटायुषं तु दृष्ट्वैव ज्ञात्वा राक्षससंहृताम् ॥ सीतां ज्ञात्वा ततः पक्षी संस्कृतस्तेन भक्तितः ॥ ३० ॥ अग्रतः प्रययौ रामो लक्ष्मणस्तत्पदानुगः ॥ पम्पाभ्याशमनुप्राप्य शबरीमनुगृह्य च ॥ ३१ ॥ तज्जलं समुपस्पृश्य हनुमद्दर्शनं कृतम् ॥ ततो रामो हनुमता सह सख्यं चकार ह ॥ ३२ ॥ ततः सुग्रीवमभ्येत्य अहनद्वालिवानरम् ॥ प्रेषिता रामदेवेन हनुमत्प्रमुखाः प्रियाम् ॥ ३३ ॥ अङ्गुलीयकमादाय वायुसूनुस्तदा गतः ॥ सम्पातिर्दशमे मासि आचख्यौ वानराय ताम् ॥ ३४ ॥ ततस्त

दिक कर्म किया ॥ ३० ॥ आगे श्रीरामजी चले व उनके पीछे लक्ष्मणजी चले और पंपासर के समीप प्राप्त होकर शबरी के ऊपर दयाकर ॥ ३१ ॥ उस पंपासर के जल को स्पर्श कर उन्हों ने हनुमान्जी का दर्शन किया तदनन्तर श्रीरामजी ने हनुमान्जी के साथ मित्रता की ॥ ३२ ॥ तदनन्तर सुग्रीव के समीप जाकर बालि वानर को मारा और श्रीरामदेवजी ने हनुमान् आदिक वानरों को सीताजी के समीप पठाया ॥ ३३ ॥ तब हनुमान्जी अँगूठी को लेकर गये और दशवें महीने में संपाति वानर ने हनुमान् वानर से उन जानकीजी को कहा ॥ ३४ ॥ तदनन्तर उस संपाति के वचन से हनुमान्जी सौ योजन समुद्र को नांघगये व उन्होंने उस रात में लंका में

जानकीजी को सब ओर ढूंढ़ा ॥ ३५ ॥ और उसी रात के शेष रहने पर हनुमान्‌जीको सीताजी का दर्शन हुआ और द्वादशी में हनुमान्‌जी शशिम के वृक्षपै चढ़े ॥ ३६ ॥ और उस रातमें उन्होंने जानकीजी के विश्वास के लिये कथा को कहा तदनन्तर तेरसि तिथि में अक्षकुमार आदिकों के साथ युद्ध वर्तमान हुआ ॥ ३७ ॥ और तेरसि में मेघनादने हनुमान्‌जी को ब्रह्मास्त्र से बांध लिया और हनुमान्‌जी ने कठोर व रूखे वचनों को राक्षसाधिप रावण से कहा व ब्रह्मास्त्र से संयुत तथा बँधेहुए उन्होंने पुच्छ से संयुत आग से लंका को जलादिया ॥ ३८।३९ ॥ और पौर्णमासी में हनुमान्‌जी का महेन्द्र पर्वत पै आगमन हुआ व मार्गशीर्ष की परेवा से पांच दिनों से मार्गमें ॥ ४० ॥

द्वचनादब्धिं पुप्लुवे शतयोजनम् ॥ हनुमान्निशि तस्यां तु लङ्कायां परितोऽचिनोत् ॥ ३५ ॥ तद्रात्रिशेषे सीताया दर्शनं तु हनूमतः ॥ द्वादश्यां शिंशपावृक्षे हनुमान्पर्यवस्थितः ॥ ३६ ॥ तस्यां निशायां जानक्या विश्वासायाह संकथाम् ॥ अक्षादिभिस्त्रयोदश्यां ततो युद्धमवर्त्तत ॥ ३७ ॥ ब्रह्मास्त्रेण त्रयोदश्यां बद्धः शक्रजिता कपिः ॥ दारुणानि च रूक्षाणि वाक्यानि राक्षसाधिपम् ॥ ३८ ॥ अब्रवीद्वायुसूनुस्तं बद्धो ब्रह्मास्त्रसंयुतः ॥ वह्निना पुच्छयुक्तेन लङ्काया दहनं कृतम् ॥ ३९ ॥ पूर्णिमायां महेन्द्राद्रौ पुनरागमनं कपेः ॥ मार्गशीर्षप्रातिपदः पञ्चभिः पथि वासरैः ॥ ४० ॥ पुनरागत्य वर्षेऽह्नि ध्वस्तं मधुवनं किल ॥ सप्तम्यां प्रत्यभिज्ञानदानं सर्वनिवेदनम् ॥ ४१ ॥ मणिप्रदानं सीतायाः सर्वं रामाय शंसयत् ॥ अष्टम्युत्तरफाल्गुन्यां मुहूर्त्ते विजयाभिधे ॥ ४२ ॥ मध्यं प्राप्ते सहस्रांशौ प्रस्थानं राघवस्य च ॥ रामः कृत्वा प्रतिज्ञां हि प्रयातुं दक्षिणां दिशम् ॥ ४३ ॥ तीर्त्वाहं सागरमपि हनिष्ये राक्षसेश्वरम् ॥ दक्षिणाशां

फिर आकर वर्ष दिनमें मधुवनको विध्वंस किया और सप्तमीमें चीन्ह को दिया व सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ४१ ॥ हनुमान्‌जी ने सीताजी के मणि प्रदान आदि समस्त वृत्तान्तको श्रीरामजी से निवेदन किया और अष्टमीमें उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में विजय संज्ञक मुहूर्त्त में ॥ ४२ ॥ सूर्यनारायण के मध्य में प्राप्त होनेपर श्रीरामजी का प्रस्थान हुआ व श्रीरामजी दक्षिण दिशा को जाने के लिये प्रतिज्ञा करके ॥ ४३ ॥ यह कहा कि मैं समुद्र को भी उतरकर रावण को मारूंगा और दक्षिण दिशा को जातेहुए उन

चार दिनों तक युद्ध किया ॥ ६२ । ६३ ॥ व श्रीरामजी ने युद्ध में बहुत वानरों को खानेवाले कुंभकर्ण को मारा और अमावस के दिन शोकाभ्यवहार हुआ ॥ ६४ ॥ और फाल्गुन की प्रतिपदा से लगाकर चौथि तक चार दिनों में नरांतक आदिक पांच राक्षस मारे गये ॥ ६५ ॥ और पंचमी से सप्तमी तक तीन दिन में अतिकाय का वध हुआ व अष्टमी से द्वादशी तक पाच दिन में निकुंभ व कुंभ ये दोनों मारे गये और मकराक्ष चार दिनों में मारा गया व फाल्गुन के कृष्णपक्ष की दुइज के दिन मेघनाद जीता गया ॥ ६६ । ६७ ॥ और तीज से लगाकर सप्तमी तक पांच दिन तक ओषधी लाने की व्यग्रता से युद्ध बन्द रहा ॥ ६८ ॥ और अष्टमी में

ऽभ्यवहारं चतुर्दिनम् ॥ कुम्भकर्णोकरोद्युद्धं नवम्यादिचतुर्दिनैः ॥ ६३ ॥ रामेण निहतो युद्धे बहुवानरभक्षकः ॥ अमावास्यादिने शोकाऽभ्यवहारो बभूव ह ॥ ६४ ॥ फाल्गुनप्रतिपदादौ चतुर्थ्यन्तैश्चतुर्दिनैः ॥ नरान्तकप्रभृतयो निहताः पञ्च राक्षसाः ॥ ६५ ॥ पञ्चम्याः सप्तमीं यावदतिकायवधस्त्र्यहात् ॥ अष्टम्या द्वादशीं यावन्निहतौ दिनपञ्चकात् ॥ ६६ ॥ निकुम्भकुम्भौ द्वावेतौ मकराक्षश्चतुर्दिनैः ॥ फाल्गुनासितद्वितीयाया दिने वै शक्रजिज्जितः ॥ ६७ ॥ तृतीयादौ सप्तम्यन्तदिनपञ्चकमेव च ॥ ओषध्यानयवैयग्र्यादवहारो बभूव ह ॥ ६८ ॥ अष्टम्यां रावणो मायामैथिलीं हतवान्कुधीः ॥ शोकावेगात्तदा रामश्चक्रे सैन्यावधारणम् ॥ ६९ ॥ ततस्त्रयोदशीं यावद्दिनैः पञ्चभिरिन्द्रजित् ॥ लक्ष्मणेन हतो युद्धे विख्यातबलपौरुषः ॥ ७० ॥ चतुर्दश्यां दशग्रीवो दीक्षामापावहारतः ॥ अमावास्यांदिने प्रागाद्युद्धाय दशकन्धरः ॥ ७१ ॥ चैत्रशुक्लप्रतिपदः पञ्चमीं दिनपञ्चके ॥ रावणो युध्यमानोऽभूत्प्रचुरो रक्षसां वधः ॥ ७२ ॥

कुबुद्धि रावण ने मायारूपिणी जानकीजी को मारा तब शोक के वेग से श्रीरामजी ने सेना का निश्चय किया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर त्रयोदशी से पांच दिनों में प्रसिद्ध बल व पौरुषवाला मेघनाद युद्ध में लक्ष्मणजी से मारा गया ॥ ७० ॥ और चौदसि में युद्ध बंद होने के कारण रावण यज्ञदीक्षा को प्राप्त हुआ व अमावस दिन में रावण युद्ध के लिये गया ॥ ७१ ॥ और चैत के शुक्लपक्ष की परेवा से पंचमी तक पांच दिन रावण युद्ध करता रहा और राक्षसों का बहुत वध हुआ ॥ ७२ ॥

जानकीजी को सब ओर ढूंढा ॥ ३५ ॥ और उसी रात के शेष रहने पर हनुमान्‌जीको सीताजी का दर्शन हुआ और द्वादशी में हनुमान्‌जी शीशम के वृक्षपै चढ़े ॥ ३६ ॥ और उस रातमें उन्होंने जानकीजी के विश्वास के लिये कथा को कहा तदनन्तर तेरसि तिथि में अक्षकुमार आदिकों के साथ युद्ध वर्तमान हुआ ॥ ३७ ॥ और तेरसि में मेघनादने हनुमान्‌जी को ब्रह्मास्त्र से बांध लिया और हनुमान्‌जी ने कठोर व रूखे वचनों को राक्षसाधिप रावण से कहा व ब्रह्मास्त्र से संयुत तथा बँधेहुए उन्होंने पुच्छ से संयुत आग से लंका को जलादिया ॥ ३८।३९ ॥ और पौर्णमासी में हनुमान्‌जी का महेन्द्र पर्वत पै आगमन हुआ व मार्गशीर्ष की परेवा से पांच दिनों से मार्गमें ॥ ४० ॥

द्वचनादब्धिं पुप्लुवे शतयोजनम् ॥ हनुमान्निशि तस्यां तु लङ्कायां परितोऽचिनोत् ॥ ३५ ॥ तद्रात्रिशेषे सीताया दर्शनं तु हनूमतः ॥ द्वादश्यां शिंशपावृक्षे हनुमान्पर्यवस्थितः ॥ ३६ ॥ तस्यां निशायां जानक्या विश्वासायाह संकथाम् ॥ अक्षादिभिस्त्रयोदश्यां ततो युद्धमवर्त्तत ॥ ३७ ॥ ब्रह्मास्त्रेण त्रयोदश्यां बद्धः शक्रजिता कपिः ॥ दारुणानि च रूक्षाणि वाक्यानि राक्षसाधिपम् ॥ ३८ ॥ अब्रवीद्वायुसूनुस्तं बद्धो ब्रह्मास्त्रसंयुतः ॥ वह्निना पुच्छयुक्तेन लङ्काया दहनं कृतम् ॥ ३९ ॥ पूर्णिमायां महेन्द्राद्रौ पुनरागमनं कपेः ॥ मार्गशीर्षप्रतिपदः पञ्चभिः पथि वासरैः ॥ ४० ॥ पुनरागत्य वर्षेऽह्नि ध्वस्तं मधुवनं किल ॥ सप्तम्यां प्रत्यभिज्ञानदानं सर्वनिवेदनम् ॥ ४१ ॥ मणिप्रदानं सीतायाः सर्वं रामाय शंसयत् ॥ अष्टम्युत्तरफाल्गुन्यां मुहूर्त्ते विजयाभिधे ॥ ४२ ॥ मध्यं प्राप्ते सहस्रांशौ प्रस्थानं राघवस्य च ॥ रामः कृत्वा प्रतिज्ञां हि प्रयातुं दक्षिणां दिशम् ॥ ४३ ॥ तीर्त्वाहं सागरमपि हनिष्ये राक्षसेश्वरम् ॥ दक्षिणाशां

फिर आकर वर्ष दिनमें मधुवनको विध्वंस किया और सप्तमीमें चीन्ह को दिया व सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ४१ ॥ हनुमान्‌जी ने सीताजी के मणि प्रदान आदि समस्त वृत्तान्तको श्रीरामजी से निवेदन किया और अष्टमीमें उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में विजय संज्ञक मुहूर्त्त में ॥ ४२ ॥ सूर्यनारायण के मध्य में प्राप्त होनेपर श्रीरामजी का प्रस्थान हुआ व श्रीरामजी दक्षिण दिशा को जाने के लिये प्रतिज्ञा करके ॥ ४३ ॥ यह कहा कि मैं समुद्र को भी उतरकर रावण को मारूंगा और दक्षिण दिशा को जातेहुए उन

श्रीरामजी के सुग्रीव मित्र हुए ॥ ४४ ॥ और सात दिनों में समुद्र के किनारेपर सेनाका ठिकाश्रय हुआ व पौष के शुक्लपक्ष की परेवा से तीज तिथितक सेना समेत श्रीरामजी समुद्र के समीप टिकेरहे ॥ ४५ ॥ और चौथि तिथि में विभीषणजी श्रीरामचन्द्रजी को मिले व पंचमी तिथि में समुद्र को उतरने के लिये सलाह हुई ॥ ४६ ॥ और श्रीरामजी ने चार दिन अन्न जल को छोड़कर व्रत किया तब समुद्र से वर मिला व यत्न दिखलाया गया ॥ ४७ ॥ और दशमी तिथि में सेतु का प्रारम्भ हुआ व तेरसि में समाप्तहुआ और चौदसि तिथि में श्रीरामजी ने सुवेल पर्वत पै सेना को टिकाया ॥ ४८ ॥ व पौर्णमासी तिथि से दुइज तक तीन दिनों से सेना उतरी और वीर

प्रयातस्य सुग्रीवोऽथाभवत्सखा ॥ ४४ ॥ वासरैः सप्तभिः सिंधोस्तीरे सैन्यनिवेशनम् ॥ पौषशुक्लप्रतिपदस्तृतीयां यावदम्बुधौ ॥ उपस्थानं ससैन्यस्य राघवस्य बभूव ह ॥ ४५ ॥ विभीषणश्चतुर्थ्यां तु रामेण सह सङ्गतः ॥ समुद्रतरणार्थाय पञ्चम्यां मन्त्र उद्यतः ॥ ४६ ॥ प्रायोपवेशनं चक्रे रामो दिनचतुष्टयम् ॥ समुद्राद्वरलाभश्च सहोपायप्रदर्शनः ॥ ४७ ॥ सेतोर्दशम्यामारम्भस्त्रयोदश्यां समापनम् ॥ चतुर्दश्यां सुवेलाद्रौ रामः सेनां न्यवेशयत् ॥ ४८ ॥ पूर्णिमास्या द्वितीयायां त्रिदिनैः सैन्यतारणम् ॥ तीर्त्वा तोयनिधिं रामः शूरवानरसैन्यवान् ॥ ४९ ॥ रुरोध च पुरीं लङ्कां सीतार्थं शुभलक्षणः ॥ तृतीयादिदशम्यन्तं निवेशश्च दिनाष्टकः ॥ ५० ॥ शुकसारणयोस्तत्र प्राप्तिरेकादशीदिने ॥ पौषासिते च द्वादश्यां सैन्यसंख्यानमेव च ॥ ५१ ॥ शार्दूलेन कपीन्द्राणां सारासारोपवर्णनम् ॥ त्रयोदश्याद्यमान्ते च लङ्कायां दिवसैस्त्रिभिः ॥ ५२ ॥ रावणः सैन्यसंख्यानं रणोत्साहं तदाऽकरोत् ॥ प्रययावङ्गदो

वानरों की सेनावाले श्रीरामजी ने समुद्र को उतरकर ॥ ४९ ॥ सीता के लिये उत्तम लक्षणोंवाले श्रीरामजी ने लंकापुरी को घेरलिया और तीज से लगाकर दशमीतक आठ दिन सेना टिकी रही ॥ ५० ॥ और वहां एकादशी तिथि में शुक व सारण मंत्री का मिलाप हुआ, व पौष के कृष्णपक्ष में द्वादशी तिथि में सेना की गिनती हुई ॥ ५१ ॥ व कपीन्द्रों के मध्य में श्रेष्ठ सुग्रीव ने सारांश व असारांश का वर्णन किया और तेरसि से लगाकर अमावस तक लंका में तीन दिनों से ॥ ५२ ॥ रावण

ने सेना की गिनती की तब युद्ध करने का उत्साह किया व माघशुक्ल की प्रतिपदा तिथि में अंगद दूतता में गये ॥ ५३ ॥ तब माघशुक्ल द्वितीया तिथि में सीताजी को पति का माया से मस्तकादि का दर्शन कराया गया और सात दिनों में अष्टमी पर्यन्त ॥ ५४ ॥ राक्षसों व वानरों का बड़ा भारी युद्ध हुआ व माघशुक्ल नवमी तिथि में रात्रि को युद्ध में मेघनाद ने ॥ ५५ ॥ श्रीराम व लक्ष्मणजी को नागपाश से बाँध लिया व वानरेशों के विकल होने पर व सबों की आशा टूटने पर ॥ ५६ ॥ उस समय श्रीरामजी ने पवन के उपदेश से गरुड़ को स्मरण किया और दशमी में नागपाश से छुडाने के लिये गरुड़जी आये ॥ ५७ ॥ व माघशुक्ल

दौत्ये माघशुक्लाद्यवासरे ॥ ५३ ॥ सीतायाश्च तदा भर्तुर्मायामूर्धादिदर्शनम् ॥ माघशुक्लद्वितीयायां दिनैः सप्तभिर ष्टमीम् ॥ ५४ ॥ रक्षसां वानराणां च युद्धमासीच्च संकुलम् ॥ माघशुक्लनवम्यां तु रात्राविन्द्रजिता रणे ॥ ५५ ॥ रामलक्ष्मणयोर्नागपाशबन्धः कृतः किल ॥ आकुलेषु कपीशेषु हताशेषु च सर्वशः ॥ ५६ ॥ वायूपदेशाद्गरुडं स स्मार राघवस्तदा ॥ नागपाशविमोक्षार्थं दशम्यां गरुडोऽभ्यगात् ॥ ५७ ॥ अवहारो माघशुक्लस्यैकादश्या दिनद्वय म् ॥ द्वादश्यामाञ्जनेयेन धूम्राक्षस्य वधः कृतः ॥ ५८ ॥ त्रयोदश्यां तु तेनैव निहतोऽकम्पनो रणे ॥ मायासीतां दर्श यित्वा रामाय दशकन्धरः ॥ ५९ ॥ त्रासयामास च तदा सर्वान्सैन्यगतानपि ॥ माघशुक्लचतुर्दश्या यावत्कृष्णादि वासरम् ॥ ६० ॥ त्रिदिनेन प्रहस्तस्य नीलेन विहितो वधः ॥ माघकृष्णद्वितीयायाश्चतुर्थ्यन्तं त्रिभिर्दिनैः ॥ ६१ ॥ रामेण तुमुले युद्धे रावणो द्रावितो रणात् ॥ पञ्चम्या अष्टमी यावद्रावणेन प्रबोधितः ॥ ६२ ॥ कुम्भकर्णस्तदा चक्रे

की एकादशी से दो दिन तक फिर युद्ध हुआ व द्वादशी तिथि में हनुमान्जी ने धूम्राक्ष को मारा ॥ ५८ ॥ व तेरसि तिथि में उन्हीं ने समर में अकंपन को मारा व रावण ने श्रीरामजी को माया की सीता को दिखलाकर ॥ ५९ ॥ उस समय सेना में प्राप्त सब लोगों को डरवाया व माघशुक्ल की चौदसि से कृष्णपक्ष की परेवा तक ॥ ६० ॥ तीन दिन में नील वानर ने प्रहस्त का वध किया व माघकृष्ण की द्वितीया से चौथि तक तीन दिनों में ॥ ६१ ॥ श्रीरामजी ने बड़े युद्ध में रावण को युद्ध से भगा दिया व पंचमी से लगाकर अष्टमी तक रावण ने कुंभकर्ण को जगाया तब कुंभकर्ण ने चार दिन तक भोजन किया और कुंभकर्ण ने नवमी से लगाकर

चार दिनों तक युद्ध किया ॥ ६२ । ६३ ॥ व श्रीरामजी ने युद्ध में बहुत वानरों को खानेवाले कुंभकर्ण को मारा और अमावस के दिन शोकाभ्यवहार हुआ ॥ ६४ ॥ और फाल्गुन की प्रतिपदा से लगाकर चौथि तक चार दिनों में नरांतक आदिक पांच राक्षस मारे गये ॥ ६५ ॥ और पंचमी से सप्तमी तक तीन दिन में अतिकाय का वध हुआ व अष्टमी से द्वादशी तक पांच दिन में निकुंभ व कुंभ ये दोनों मारे गये और मकराक्ष चार दिनों में मारा गया व फाल्गुन के कृष्णपक्ष की दुइज के दिन मेघनाद जीता गया ॥ ६६ । ६७ ॥ और तीज से लगाकर सप्तमी तक पांच दिन तक ओषधी लाने की व्यग्रता से युद्ध बन्द रहा ॥ ६८ ॥ और अष्टमी में

ऽभ्यवहारं चतुर्दिनम् ॥ कुम्भकर्णोकरोद्युद्धं नवम्यादिचतुर्दिनैः ॥ ६३ ॥ रामेण निहतो युद्धे बहुवानरभक्षकः ॥ अमावास्यादिने शोकाऽभ्यवहारो बभूव ह ॥ ६४ ॥ फाल्गुनप्रतिपदादौ चतुर्थ्यन्तैश्चतुर्दिनैः ॥ नरान्तकप्रभृतयो निहताः पञ्च राक्षसाः ॥ ६५ ॥ पञ्चम्याः सप्तमीं यावदतिकायवधस्त्र्यहात् ॥ अष्टम्या द्वादशीं यावन्निहतौ दिनपञ्चकात् ॥ ६६ ॥ निकुम्भकुम्भौ द्वावेतौ मकराक्षश्चतुर्दिनैः ॥ फाल्गुनासितद्वितीयाया दिने वै शक्रजिज्जितः ॥ ६७ ॥ तृतीयादौ सप्तम्यन्तदिनपञ्चकमेव च ॥ ओषध्यानयवैयग्रयादवहारो बभूव ह ॥ ६८ ॥ अष्टम्यां रावणो मायामैथिलीं हतवान्कुधीः ॥ शोकावेगात्तदा रामश्चक्रे सैन्यावधारणम् ॥ ६९ ॥ ततस्त्रयोदशीं यावद्दिनैः पञ्चभिरिन्द्रजित् ॥ लक्ष्मणेन हतो युद्धे विख्यातबलपौरुषः ॥ ७० ॥ चतुर्दश्यां दशग्रीवो दीक्षामापावहारतः ॥ अमावास्यादिने प्रागाद्युद्धाय दशकन्धरः ॥ ७१ ॥ चैत्रशुक्लप्रतिपदः पञ्चमीं दिनपञ्चके ॥ रावणो युध्यमानोऽभूत्प्रचुरो रक्षसां वधः ॥ ७२ ॥

कुबुद्धि रावण ने मायारूपिणी जानकीजी को मारा तब शोक के वेग से श्रीरामजी ने सेना का निश्चय किया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर त्रयोदशी से पांच दिनों में प्रसिद्ध बल व पौरुषवाला मेघनाद युद्ध में लक्ष्मणजी से मारा गया ॥ ७० ॥ और चौदसि में युद्ध बंद होने के कारण रावण यज्ञदीक्षा को प्राप्त हुआ व अमावस दिन में रावण युद्ध के लिये गया ॥ ७१ ॥ और चैत के शुक्लपक्ष की परेवा से पंचमी तक पांच दिन रावण युद्ध करता रहा और राक्षसों का बहुत वध हुआ ॥ ७२ ॥

व चैत के शुक्लपक्ष की अष्टमी तक रथ व अश्वादिकों का नाश हुआ और चैत के शुक्लपक्ष की नवमी में लक्ष्मणजी के शक्ति का भेदन होने पर ॥ ७३ ॥ क्रोध से संयुत श्रीरामजी ने रावण को भगा दिया और विभीषण के उपदेश से हनुमान्जी का युद्ध हुआ ॥ ७४ ॥ और हनुमान्जी लक्ष्मणजी के लिये ओषधी लाने के कारण द्रोणाचल को आये व विशल्यकरणी ओषधी को लाकर उसको लक्ष्मणजी को पिला दिया ॥ ७५ ॥ व दशमी में युद्ध शांत रहा और रात्रि में राक्षसों का युद्ध हुआ और एकादशी में श्रीरामजी के लिये रथ व मातलि सारथी प्राप्त हुआ और द्वादशी से लगाकर कृष्णपक्ष की चौदसि तक अठारह दिनों में श्रीरामजी ने रावण को

चैत्रशुक्लाष्टमीं यावत्स्यन्दनाश्वादिसूदनम् ॥ चैत्रशुक्लनवम्यां तु सौमित्रेः शक्तिभेदने ॥ ७३ ॥ कोपाविष्टेन रामेण द्रावितो दशकन्धरः ॥ विभीषणोपदेशेन हनुमद्युद्धमेव च ॥ ७४ ॥ द्रोणाद्रेरोषधीं नेतुं लक्ष्मणार्थमुपागतः ॥ विशल्यां तु समादाय लक्ष्मणं तामपाययत् ॥ ७५ ॥ दशम्यामवहारोऽभूद्रात्रौ युद्धं तु रक्षसाम् ॥ एकादश्यां तु रामाय रथो मातलिसारथिः ॥ ७६ ॥ प्राप्तो युद्धाय द्वादश्या यावत्कृष्णां चतुर्द्दशीम् ॥ अष्टादशदिने रामो रावणं द्वैरथेऽवधीत् ॥ ७७ ॥ संस्कारा रावणादीनाममावास्यादिनेऽभवन् ॥ संग्रामे तुमुले जाते रामो जयमवाप्तवान् ॥७८॥ माघशुक्लद्वितीयादिचैत्रकृष्णचतुर्द्दशीम् ॥ सप्ताशीतिदिनान्येवं मध्ये पञ्चदशाहकम् ॥ ७९ ॥ युद्धावहारः संग्रामो द्वासप्ततिदिनान्यभूत् ॥ वैशाखादितिथौ राम उवास रणभूमिषु ॥ अभिषिक्तो द्वितीयायां लङ्काराज्ये विभीषणः ॥ ८० ॥ सीताशुद्धिस्तृतीयायां देवेभ्यो वरलम्भनम् ॥ दशरथस्यागमनं तत्र चैवानुमोदनम् ॥ ८१ ॥ हत्वा

द्वैरथ युद्ध में मारा ॥ ७६ । ७७ ॥ और अमावस के दिन रावणादिकों के संस्कार हुए व बड़ाभारी संग्राम होने पर श्रीरामजी ने जीत को पाया ॥ ७८ ॥ इस प्रकार माघ महीने के शुक्लपक्ष की द्वितीया से लगाकर चैत महीने की कृष्णपक्षवाली चौदसि तक सत्तासी दिन हुए और बीच में पंद्रह दिन ॥ ७९ ॥ युद्ध बंद हुआ और बहत्तरि दिन युद्ध हुआ व वैशाख की प्रतिपदा तिथि में श्रीरामजी ने युद्धभूमियों में निवास किया और दुइज तिथि में लंका के राज्य पै विभीषण का अभिषेक किया गया ॥ ८० ॥ और तीज तिथि में सीताजी की शुद्धि हुई व देवताओं से वरदान मिला और वहां दशरथ का आगमन हुआ व अनुमोदन हुआ ॥ ८१ ॥ और

लक्ष्मण के बड़े भाई व्यापक श्रीरामजी शीघ्रता से लंकेश रावण को मारकर राक्षस से दुःखित पवित्र जानकीजी को लेकर ॥ ८२ ॥ वैशाख की चौथि में श्रीरामजी पुष्पक विमान पै बैठकर व बड़ी प्रीति से जानकीजी को लेकर लौटे ॥ ८३ ॥ फिर आकाश के द्वारा अयोध्यापुरी को लौटे और चौदह वर्ष पूर्ण होने पर वैशाख की पंचमी में ॥ ८४ ॥ गणों समेत श्रीरामजी भारद्वाजजी के आश्रम में पैठे और छठि तिथि में वे पुष्पक विमान के द्वारा नंदिग्राम में आये ॥ ८५ ॥ और सप्तमी तिथि में इन रघुनाथजी का अयोध्यापुरी में अभिषेक किया गया दश अधिक चौदह महीने तक जानकीजी ने ॥ ८६ ॥ श्रीरामजी से रहित होकर रावण के घर

त्वरेण लङ्केशं लक्ष्मणस्याग्रजो विभुः ॥ गृहीत्वा जानकीं पुण्यां दुःखितां राक्षसेन तु ॥ ८२ ॥ आदाय परया प्रीत्या जानकीं स न्यवर्तत ॥ वैशाखस्य चतुर्थ्यां तु रामः पुष्पकमाश्रितः ॥ ८३ ॥ विहायसा निवृत्तस्तु भूयोऽयोध्यां पुरीं प्रति ॥ पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां माधवस्य च ॥ ८४ ॥ भारद्वाजाश्रमे रामः सगणः समुपाविशत् ॥ नन्दिग्रामे तु षष्ठ्यां स पुष्पकेण समागतः ॥ ८५ ॥ सप्तम्यामभिषिक्तोसावयोध्यायां रघूद्वहः ॥ दशाहाधिकमासांश्च चतुर्दश हि मैथिली ॥ ८६ ॥ उवास रामरहिता रावणस्य निवेशने ॥ द्वाचत्वारिंशके वर्षे रामो राज्यमकारयत् ॥ ८७ ॥ सीता यास्तु त्रयस्त्रिंशद्वर्षाणि तु तदाभवन् ॥ स चतुर्दशवर्षान्ते प्रविष्टः स्वां पुरीं प्रभुः ॥ ८८ ॥ अयोध्यांनाम मुदितो रामो रावणदर्पहा ॥ भ्रातृभिः सहितस्तत्र रामो राज्यमकारयत् ॥ ८९ ॥ दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ रामो राज्यं पालयित्वा जगाम त्रिदिवालयम् ॥ ९० ॥ रामराज्ये तदा लोका हर्षनिर्भरमानसाः ॥ बभूवुर्धनधान्याढ्याः पुत्रपौत्रयुता नराः ॥ ९१ ॥ कामवर्षी च पर्जन्यः सस्यानि गुणवन्ति च ॥ गावस्तु घटदोहिन्यः पादपाश्च सदा

में निवास किया बयालीसवें वर्ष में श्रीरामजी ने राज्य किया ॥ ८७ ॥ तब सीताजी के तेंतीस वर्ष हुए और रावण का गर्व नाशनेवाले वे प्रभु श्रीरामजी प्रसन्न होकर चौदह वर्ष के अन्त में अयोध्या नामक अपनी पुरी में पैठे और वहां भाइयों समेत श्रीरामजी ने राज्य किया ॥ ८८ । ८९ ॥ गेरह हज़ार वर्ष तक श्रीरामजी राज्य को पालन कर स्वर्ग को चलेगये ॥ ९० ॥ उस श्रीरामजी के राज्य में मनुष्यों के मन हर्ष से पूर्ण हुए व पुत्रों और पौत्रों से संयुत मनुष्य धन व धान्य से युक्त हुए॥ ९१ ॥ और

मेघ इच्छा के अनुकूल बरसते थे व अन्न गुणवान् होते थे और गौवें घड़ाभर दूध देनेवाली थीं व वृक्ष सदैव फलते थे ॥ ९२ ॥ व हे नराधिप ! श्रीरामजी के राज्य में मानसी व्यथा व रोग न हुए और स्त्रियां पतिव्रता हुईं व मनुष्य पितरों की भक्ति में परायण हुए ॥ ९३ ॥ और ब्राह्मणलोग सदैव वेद में परायण हुए व क्षत्रिय ब्राह्मणों के सेवक हुए और वैश्य जातिवाले लोग सदैव ब्राह्मणों व गौवों की भक्ति को करते थे ॥ ९४ ॥ व उस राज्य में संकरवर्ण व संकर आचरण नहीं हुआ है और स्त्री बंध्या व दुर्भाग्यवती तथा काकबध्या और मृतवत्सा नहीं होती थी ॥ ९५ ॥ और कोई भी स्त्री विधवा न हुई व पतिसंयुत स्त्री विलाप नहीं करती थी और कोई मनुष्य माता, पिता व गुरु का अपमान नहीं करते थे ॥ ९६ ॥ और कोई पुण्यकारी मनुष्य वृद्धों का वचन उल्लंघन नहीं करता

फलाः ॥ ९२ ॥ नाधयो व्याधयश्चैव रामराज्ये नराधिप ॥ नार्यः पतिव्रताश्चासन्पितृभक्तिपरा नराः ॥ ९३ ॥ द्विजा वेदपरा नित्यं क्षत्रिया द्विजसेविनः ॥ कुर्वते वैश्यवर्णाश्च भक्तिं द्विजगवां सदा ॥ ९४ ॥ न योनिसङ्करश्चासीत्तत्र नाचारसङ्करः ॥ न बन्ध्या दुर्भगा नारी काकबन्ध्या मृतप्रजा ॥ ९५ ॥ विधवा नैव काप्यासीत्क्लप्यते न सभर्तृका ॥ नावज्ञां कुर्वते केपि मातापित्रोर्गुरोस्तथा ॥ ९६ ॥ न च वाक्यं हि वृद्धानामुल्लङ्घयति पुण्यकृत् ॥ न भूमिहरणं तत्र परनारीपराङ्मुखाः ॥ ९७ ॥ नापवादपरो लोको न दरिद्रो न रोगभाक् ॥ न स्तेयो द्यूतकारी च मैरेयी पापिनो न हि ॥ ९८ ॥ न हेमहारी ब्रह्मघ्नो न चैव गुरुतल्पगः ॥ न स्त्रीघ्नो न च बालघ्नो न चैवानृतभाषणः ॥ ९९ ॥ न वृत्तिलोपकश्चासीत्कूटसाक्षी न चैव हि ॥ न शठो न कृतघ्नश्च मलिनो नैव दृश्यते ॥ १०० ॥ सदा सर्वत्र पूज्यन्ते ब्राह्मणा

था व उस राज्य में पृथ्वी का हरण नहीं होता था और मनुष्य पराई स्त्रियों से विमुख होते थे ॥ ९७ ॥ व मनुष्य कलंक में तत्पर नहीं होता था और निर्धनी व रोगी नहीं होता था और चोर, जुँवारी व मदिरा पीनेवाला और पापी मनुष्य नहीं होते थे ॥ ९८ ॥ और सुवर्ण को चुरानेवाला, ब्रह्मघाती व गुरु की शय्या पै जानेवाला नहीं हुआ और न स्त्री को मारनेवाला तथा न बालघाती और न असत्यवादी हुआ ॥ ९९ ॥ और जीविका को लोप करनेवाला व झूंठी गवाही देनेवाला मनुष्य नहीं हुआ और न शठ न कृतघ्न न मलीन देख पड़ता था ॥ १०१ ॥ व हे राजन् ! बहुतही प्रसिद्ध श्रीरामजी के राज्य में सदैव सब कहीं वेदों के पार-

गामी ब्राह्मण पूजे जाते थे और कोई अवैष्णव व व्रतविहीन न था ॥ १ ॥ और उन श्रीरामजी के राज्य करते हुए बड़े ऐश्वर्यवान् व तपस्या के निधान ब्रह्मपुत्र वसिष्ठजी मुनियों समेत अनेक तीर्थों को करके आये और श्रीरामजी ने मुनियों समेत गुरु वसिष्ठजी को अभ्युत्थान व अर्घ, पाद्य और मधुपर्कादि पूजा से पूजन किया व मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी ने श्रीरामजी से कुशल पूंछा ॥ २ । ३ । ४ ॥ कि हे राम ! राज्य, घोड़ा, हाथी, ख़ज़ाना, देश व उत्तम बन्धु तथा सेवकों में कुशल है उस समय मुनि के ऐसा पूंछने पर ॥ ५ ॥ रामजी बोले कि आप की प्रसन्नता से इस समय व सदैव सब कहीं मेरे कुशल है और श्रीरामजी ने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी से

वेदपारगाः ॥ नावैष्णवोऽव्रती राजन् रामराज्येऽतिविश्रुते ॥ १ ॥ राज्यं प्रकुर्वतस्तस्य पुरोधा वदतां वरः ॥ वसिष्ठो मुनिभिः सार्द्धं कृत्वा तीर्थान्यनेकशः ॥ २ ॥ आजगाम ब्रह्मपुत्रो महाभागस्तपोनिधिः ॥ रामस्तं पूजयामास मुनिभिः सहितं गुरुम् ॥ ३ ॥ अभ्युत्थानार्घपाद्यैश्च मधुपर्कादिपूजया ॥ पप्रच्छ कुशलं रामं वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः ॥ ४ ॥ राज्ये चाश्वे गजे कोशे देशे सद्भ्रातृभृत्ययोः ॥ कुशलं वर्त्तते राम इति पृष्टे मुनेस्तदा ॥ ५ ॥ राम उवाच ॥ सर्वत्र कुशलं मेऽद्य प्रसादाद्भवतः सदा ॥ पप्रच्छ कुशलं रामो वसिष्ठं मुनिपुङ्गवम् ॥ ६ ॥ सर्वतः कुशली त्वं हि भार्यापुत्रसमन्वितः ॥ स सर्वं कथयामास यथा तीर्थान्यशेषतः ॥ ७ ॥ सेवितानि धरापृष्ठे क्षेत्राण्यायतनानि च ॥ रामाय कथयामास सर्वत्र कुशलं तदा ॥ ८ ॥ ततः स विस्मयाविष्टो रामो राजीवलोचनः ॥ पप्रच्छ तीर्थमाहात्म्यं यत्तीर्थे षूत्तमोत्तमम् ॥ १०९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येरामचरित्रवर्णनंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ❋ ॥

कुशल पूंछा ॥ ६ ॥ कि स्त्री व पुत्र समेत तुम सब ओर से कुशल समेत हो तब उन वसिष्ठजी ने श्रीरामजी से सब कहीं कुशल कही व जिस प्रकार पृथ्वी में सब तीर्थ और क्षेत्र व स्थान जिस प्रकार सेवन किये गये उस सब को कहा ॥ ७ । ८ ॥ तदनन्तर विस्मय से संयुत कमललोचन श्रीरामजी ने उस तीर्थ के माहात्म्य को पूंछा जो कि तीर्थों में उत्तमोत्तम था ॥ १०९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांरामचरित्रवर्णनंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

दो॰ । धर्मारण्यक्षेत्र को गये यथा श्रीराम । इकतिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ श्रीरामजी बोले कि हे मानद, भगवन्, विभो ! तुम ने जिन तीर्थों को सेवन किया है इनके मध्य में जो उत्तम तीर्थ हो उसको मुझ से कहिये ॥ १ ॥ और मैंने सीताजी के हरने में ब्रह्मराक्षसों को मारा है उस पाप की शुद्धि के लिये उत्तम तीर्थों में भी उत्तम तीर्थ को कहिये ॥ २ ॥ वसिष्ठजी बोले कि गंगा, नर्मदा, तापी, यमुना, सरस्वती, गंडकी, गोमती व पूर्णा ये नदियां भलीभांति पवित्रकारक हैं॥ ३॥ और इन नदियों के मध्य में त्रिपथगामिनी गंगाजी श्रेष्ठ हैं हे राघव ! ये गंगाजी दर्शनही से पाप को जलाती हैं ॥ ४ ॥ और कलियुग में नर्मदा नदी देखकर सौ

श्रीराम उवाच ॥ भगवन्यानि तीर्थानि सेवितानि त्वया विभो ॥ एतेषां परमं तीर्थं तन्ममाचक्ष्व मानद ॥ १ ॥ मया तु सीताहरणे निहता ब्रह्मराक्षसाः ॥ तत्पापस्य विशुद्ध्यर्थं वद तीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ २ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ गङ्गा च नर्मदा तापी यमुना च सरस्वती ॥ गण्डकी गोमती पूर्णा एता नद्यः सुपावनाः ॥ ३ ॥ एतासां नर्मदा श्रेष्ठा गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥ दहते किल्बिषं सर्वं दर्शनादेव राघव ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा जन्मशतं पापं गत्वा जन्मशतत्रयम् ॥ स्नात्वा जन्मसहस्रं च हन्ति रेवा कलौ युगे ॥ ५ ॥ नर्मदातीरमाश्रित्य शाकमूलफलैरपि ॥ एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिभोजफलं लभेत् ॥ ६ ॥ गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ७ ॥ फाल्गुनान्ते कुहूं प्राप्य तथा प्रौष्ठपदेऽसिते ॥ पक्षे गङ्गामधि प्राप्य स्नानं च पितृतर्पणम् ॥ ८ ॥ कुरुते पिण्डदानानि सोऽक्षयं फलमश्नुते ॥ शुचौ मासे च सम्प्राप्ते स्नानं वाप्यां करोति यः ॥ ९ ॥ चतुरशीतिनरकान्न

जन्मों का पाप व जाकर तीन सौ जन्मों का पाप और नहाकर हज़ार जन्मों का पाप नाश करती है ॥ ५ ॥ नर्मदा के किनारे प्राप्त होकर शाक, मूल व फलों से भी एक ब्राह्मण को भोजन कराने पर मनुष्य कोटि ब्राह्मणों के भोजन का फल पाता है ॥ ६ ॥ और सौ योजनों से भी जो गंगा गंगा ऐसा कहता है वह सब पापों से छूट जाता है व विष्णुलोक को जाता है ॥ ७ ॥ फागुन के अन्त में अमावस को प्राप्त होकर व भादों के कृष्णपक्ष में गंगा के समीप प्राप्त होकर जो स्नान व पितरों का तर्पण करता है ॥ ८ ॥ व जो पिंडदान करता है वह अक्षय फल को भोगता है और आषाढ़ महीना प्राप्त होने पर जो बावली में स्नान करता है ॥ ९ ॥ हे राजन् !

वह चौरासी नरकों को नहीं देखता है व हे राम ! तपती के स्मरण में महापातकियों के भी ॥ १० ॥ सात गोत्रों को व एक सौ एक पुरितयों को वह उधारता है व यमुना में नहाकर मनुष्य समस्त पातकों से छूट जाता है ॥ ११ ॥ और बड़े पापों से युक्त भी वह उत्तम गति को प्राप्त होता है व कृत्तिका नक्षत्र के योग में कार्त्तिकी पौर्णमासी में जो सरस्वतीजी में नहाता है ॥ १२ ॥ उत्तम देवताओं से स्तुति किया जाता हुआ वह गरुड़ पै चढ़कर स्वर्ग को जाता है और जहां प्राची सरस्वती है वहां कातिक महीने में जो नहाकर ॥ १३ ॥ प्राची सरस्वती व माधवजी की स्तुति करता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है और गंडकी नामक पवित्र तीर्थ में जो

पश्यति नरो नृप ॥ तपत्याः स्मरणे राम महापातकिनामपि ॥ १० ॥ उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ यमुनायां नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ११ ॥ महापातकयुक्तोऽपि स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगे सरस्वत्यां निमज्जयेत् ॥ १२ ॥ गच्छेत्स गरुडारूढः स्तूयमानः सुरोत्तमैः ॥ स्नात्वा यः कार्त्तिके मासि यत्र प्राची सरस्वती ॥ १३ ॥ प्राचीं च माधवं स्तौति स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ गण्डकीपुण्यतीर्थे हि स्नानं यः कुरुते नरः ॥ १४ ॥ शालग्रामशिलामर्च्य न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ गोमतीजलकल्लोलैर्मज्जयेत्कृष्णसन्निधौ ॥ १५ ॥ चतुर्भुजो नरो भूत्वा वैकुण्ठे मोदते चिरम् ॥ चर्मण्वतीं नमस्कृत्य अपः स्पृशति यो नरः ॥ १६ ॥ स पूर्वजांस्तारयति दश पूर्वान्दशापरान् ॥ द्वयोश्च सङ्गमं दृष्ट्वा श्रुत्वा वा सागरध्वनिम् ॥ १७ ॥ ब्रह्महत्यायुतो वापि पूतो गच्छेत्परां गतिम् ॥ माघमासे प्रयागे तु मज्जनं कुरुते नरः ॥ १८ ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा अन्ते विष्णुपदं व्रजेत् ॥ प्रभासे ये

मनुष्य स्नान करता है ॥ १४ ॥ वह शालग्रामशिला को पूजकर फिर दूध पीनेवाला नहीं होता है और श्रीकृष्णजी के समीप जो गोमतीजल की बड़ी भारी लहरियों से नहाता है ॥ १५ ॥ वह मनुष्य चतुर्भुज होकर वैकुंठ में बहुत दिनों तक आनन्द करता है व चर्मण्वती नदी को प्रणाम कर जो मनुष्य जल को स्पर्श करता है ॥ १६ ॥ वह दश पहले व दश पीछे के पितरों को तारता है और दोनों के संगम को देखकर व समुद्र की ध्वनि को सुनकर ॥ १७ ॥ ब्रह्महत्या से संयुत भी मनुष्य पवित्र होकर उत्तम गति को प्राप्त होता है और माघ महीने में जो मनुष्य प्रयाग में स्नान करता है ॥ १८ ॥ वह इस लोक में सुख को भोगकर अन्त में

विष्णुजी के स्थान को जाता है व हे राम ! प्रभासक्षेत्र में जो मनुष्य तीन रात्रि तक ब्रह्मचारी होते हैं ॥ १९ ॥ वे यमलोक व कुंभीपाकादिक को नहीं देखते हैं और जो मनुष्य नैमिषारण्यवासी होता है वह देवत्व को प्राप्त होता है ॥ २० ॥ जिस कारण देवताओं का स्थान है उसी कारण वह पृथ्वी में दुर्लभ है व हे राम ! कुरुक्षेत्र तीर्थ में चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण में ॥ २१ ॥ हे नृपेन्द्र ! सुवर्ण के दान से फिर मनुष्य स्तन पीनेवाला नहीं होताहै और श्रीस्थल में दर्शन करके मनुष्य पाप से छूट जाता है ॥ २२ ॥ और सब दुःखों के विनाशक विष्णुलोक में वह पूजा जाता है व हे राघव ! पृथ्वी में जो मनुष्य कपिला गऊ को स्पर्श करता है ॥ २३ ॥ वह

नरा राम त्रिरात्रं ब्रह्मचारिणः ॥ १९ ॥ यमलोकं न पश्येयुः कुम्भीपाकादिकं तथा ॥ नैमिषारण्यवासी यो नरो देवत्वमाप्नुयात् ॥ २० ॥ देवानामालयं यस्मात्तदेव भुवि दुर्लभम् ॥ कुरुक्षेत्रे नरो राम ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ २१ ॥ हेमदानाच्च राजेन्द्र न भूयःस्तनपो भवेत् ॥ श्रीस्थले दर्शनं कृत्वा नरः पापात्प्रमुच्यते ॥ २२ ॥ सर्वदुःखविनाशे च विष्णुलोके महीयते ॥ कपिलां स्पर्शयेद्यो गां मानवो भुवि राघव ॥ २३ ॥ सर्वकामदुघावासमृषिलोकं स गच्छति ॥ उज्जयिन्यां तु वैशाखे शिप्रायां स्नानमाचरेत् ॥ २४ ॥ मोचयेद्रौरवाद् घोरात्पूर्वजांश्च सहस्रशः ॥ सिन्धुस्नानं नरो राम प्रकरोति दिनत्रयम् ॥ २५ ॥ सर्पपापविशुद्धात्मा कैलासे मोदते नरः ॥ कोटितीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वरं शिवम् ॥ २६ ॥ ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्लिप्यते न च स कचित् ॥ अज्ञानामपि जन्तूनां महाऽमेध्ये तु गच्छताम् ॥ २७ ॥ पादोद्भूतं पयः पीत्वा सर्वपापं प्रणश्यति ॥ वेदवत्यां नरो यस्तु स्नाति सूर्योदये शुभे ॥२८॥

सब कामनाओं को देनेवाले ऋषिलोक स्थान को जाता है और वैशाख में उज्जयिनीपुरी में जो शिप्रा नदी में स्नान करता है ॥ २४ ॥ वह हज़ारों पूर्वजों को भयंकर रौरव नरक से छुड़ाता है व हे राम ! जो मनुष्य तीन दिन तक समुद्रस्नान करता है ॥ २५ ॥ वह मनुष्य सब पापों से शुद्धचित्त होकर कैलास में आनन्द करता है और कोटितीर्थ में नहाकर मनुष्य कोटीश्वर शिवजी को देखकर ॥ २६ ॥ वह कभी ब्रह्महत्यादिक पापों से लिप्त नहीं होता है और बहुतही अशुद्ध स्थान में जानेवाले मूर्ख भी प्राणियो का ॥ २७ ॥ सब पातक विष्णुजी के चरण से उपजे हुए जल को पीकर नाश हो जाता है और उत्तम सूर्योदय में जो मनुष्य वेदवती नदी में नहाताहै ॥२८॥

वह सब रोग से छूट जाता है व उत्तम सुख को पाता है हे राम ! सब कहीं तीर्थस्नान, पान व अवगाहन से ॥ २९ ॥ मनुष्यों के सब पापों को लीला से नाश करते हैं तीर्थों के मध्य में धर्मारण्य उत्तम तीर्थ कहा जाता है ॥ ३० ॥ जो कि पुरातन समय में पहले ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों से स्थापित किया गया है सब वनों व तीर्थों के मध्य में विशेष कर ॥ ३१ ॥ धर्मारण्य से श्रेष्ठ मुक्ति, मुक्ति को देनेवाला तीर्थ नहीं है स्वर्ग में देवता धर्मारण्यनिवासी जनों की प्रशंसा करते हैं ॥ ३२ ॥ हे रामदेव ! वे पवित्र और वे पुण्यकारी मनुष्य हैं जो कि कलियुग में सब पातकों को नाशनेवाले धर्मारण्य में बसते हैं ॥ ३३ ॥ और ब्रह्महत्यादिक पाप

सर्वरोगात्प्रमुच्येत परं सुखमवाप्नुयात् ॥ तीर्थानि राम सर्वत्र स्नानपानावगाहनैः ॥ २९ ॥ नाशयन्ति मनुष्याणां
सर्वपापानि लीलया ॥ तीर्थानां परमं तीर्थं धर्मारण्यं प्रचक्ष्यते ॥ ३० ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैर्यदादौ संस्थापितं पुरा ॥
अरण्यानां च सर्वेषां तीर्थानां च विशेषतः ॥ ३१ ॥ धर्मारण्यात्परं नास्ति भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ स्वर्गे देवाः प्रशं
सन्ति धर्मारण्यनिवासिनः ॥ ३२ ॥ ते पुण्यास्ते पुण्यकृतो ये वसन्ति कलौ नराः ॥ धर्मारण्ये रामदेव सर्वकिल्बि
षनाशने ॥ ३३ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि सर्वस्तेयकृतानि च ॥ परदारप्रसङ्गादि अभक्ष्यभक्षणादि वै ॥ ३४ ॥ अगम्या
गमनाद्यानि अस्पर्शस्पर्शनादि च ॥ भस्मीभवन्ति लोकानां धर्मारण्यावगाहनात् ॥ ३५ ॥ ब्रह्मघ्नश्च कृतघ्नश्च बा
लघ्नोऽनृतभाषणः ॥ स्त्रीगोघ्नश्चैव ग्रामघ्नो धर्मारण्ये विमुच्यते ॥ ३६ ॥ नातः परं पावनं हि पापिनां प्राणिनां भुवि ॥
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं वाञ्छितार्थप्रदं शुभम् ॥ ३७ ॥ कामिनां कामदं क्षेत्रं यतीनां मुक्तिदायकम् ॥ सिद्धानां सि

व सब चोरियों से किये हुए पाप और पराई स्त्री के प्रसंगादिक व अभक्ष्य वस्तु के खाने से उत्पन्न ॥ ३४ ॥ और न संग करने योग्य स्त्रियों के संगमादिक से उत्पन्न व न छूने योग्य वस्तुओं के स्पर्शादिक से उपजे हुए मनुष्यों के पाप धर्मारण्य के अवगाहन से भस्म होजाते हैं ॥ ३५ ॥ और ब्रह्मघाती, कृतघ्न, बालघाती, असत्यवादी व स्त्री और गऊ को मारनेवाला व ग्रामनाशक मनुष्य धर्मारण्य में मुक्त होता है ॥ ३६ ॥ पृथ्वी में इससे अधिक पापी प्राणियों को पवित्रकारक व स्वर्गदायक, यशदायक तथा आयुर्बलदायक व चाहे हुए प्रयोजन को देनेवाला उत्तम तीर्थ नहीं है ॥ ३७ ॥ और कामियों को धर्मारण्यक्षेत्र कामनादायक व

संन्यासियों को मुक्तिदायक तथा सिद्धों को प्रत्येक युग में सिद्धिदायक कहा गया है ॥ ३८ ॥ ब्रह्माजी बोले कि वसिष्ठजी का वचन सुन कर धर्मधारियों में श्रेष्ठ श्रीरामजी हृदय को आनन्द करनेवाले बड़े भारी हर्ष को प्राप्त होकर ॥ ३९ ॥ उत्तम नियमोंवाले, प्रफुल्लित हृदय व रोमांचसंयुत श्रीरामजी ने धर्मारण्य में जाने के लिये बुद्धि की ॥ ४० ॥ जिस धर्मारण्य में तीन रात्रि के सेवन से कीट, पतंगादिक, मनुष्य व पशु सब पापों से छूट जाते हैं ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! जिस प्रकार द्वारकापुरी व काशी और त्रिशूलपाणि शिव व भैरवजी मुक्तिदायक हैं वैसेही धर्मारण्य उत्तम है ॥ ४२ ॥ तदनन्तर बड़े भारी धनुषवाले तथा बड़े हर्ष से संयुत श्रीरामजी

द्धिदं प्रोक्तं धर्मारण्यं युगे युगे ॥ ३८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वसिष्ठवचनं श्रुत्वा रामो धर्मभृतां वरः ॥ परं हर्षमनुप्राप्य हृदयानन्दकारकम् ॥ ३९ ॥ प्रोत्फुल्लहृदयो रामो रोमाञ्चिततनूरुहः ॥ गमनाय मतिं चक्रे धर्मारण्ये शुभव्रतः ॥४०॥ यस्मिन्कीटपतङ्गादिमानुषाः पशवस्तथा ॥ त्रिरात्रसेवनेनैव मुच्यन्ते सर्वपातकैः ॥ ४१ ॥ कुशस्थली यथा काशी शूलपाणिश्च भैरवः ॥ यथा वै मुक्तिदो राम धर्मारण्यं तथोत्तमम् ॥ ४२ ॥ ततो रामो महेष्वासो मुदा परमया युतः ॥ प्रस्थितस्तीर्थयात्रायां सीतया भ्रातृभिः सह ॥ ४३ ॥ अनुजग्मुस्तदा रामं हनुमांश्च कपीश्वरः ॥ कौशल्या च सुमित्रा च कैकेयी च मुदान्विता ॥ ४४ ॥ लक्ष्मणो लक्षणोपेतो भरतश्च महामतिः ॥ शत्रुघ्नः सैन्यसहितोप्ययोध्यावासिनस्तथा ॥ ४५ ॥ नरव्याघ्र प्रकृतयो धर्मारण्ये विनिर्ययुः ॥ अनुजग्मुस्तदा रामं मुदा परमया युताः ॥ ४६ ॥ तीर्थयात्राविधिं कर्तुं गृहात्प्रचलितो नृपः ॥ वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमिदमाह महीपते ॥ ४७ ॥ श्रीराम उवाच ॥ एत

सीता व भाइयों समेत तीर्थयात्रा के लिये चले ॥ ४३ ॥ तब कपिनायक हनुमान्जी और हर्ष से संयुत कौशल्या, सुमित्रा व कैकेयी श्रीरामजी के पीछे चलीं ॥ ४४ ॥ और लक्षणों से संयुत लक्ष्मणजी व महाबुद्धिमान् भरतजी और सेना समेत शत्रुघ्न व अयोध्यानिवासीलोग ॥ ४५ ॥ व हे नरव्याघ्र ! सब प्रजालोग धर्मारण्य को चले और बड़ी प्रसन्नता से संयुत वे उस समय श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ४६ ॥ हे महीपते ! तीर्थयात्रा की विधि को करने के लिये घर से चले हुए राजा रामजी ने अपने वंश के आचार्य वसिष्ठजी से यह कहा ॥ ४७ ॥ श्रीरामजी बोले कि हे वसिष्ठजी ! यह बड़ा भारी आश्चर्य है कि पहले क्या द्वारका हुई है और कितने

समय से यह उत्पन्न है इसको मुझ से कहिये ॥ ४८ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे महाराज ! मैं यह नहीं जानता हूं कि कितने समय से यह क्षेत्र हुआ है लोमश और जाम्बवान्जी इस कारण को जानते हैं ॥ ४९ ॥ और अनेक भांति के जन्मों के मध्य में शरीर में जो पाप किया गया है उन सबों का यह क्षेत्र उत्तम प्रायश्चित्त (पापनाशक कर्म) कहा गया है ॥ ५० ॥ उन वसिष्ठजी के इस वचन को सुन कर ज्ञानियों में श्रेष्ठ श्रीरामजी ने तीर्थ को जाने के लिये बुद्धि करके यात्रा की विधि कियाँ ॥ ५१ ॥ और पुरश्चरण की विधि करके श्रीरामजी वसिष्ठजी को आगे कर महामांडलिक राजाओं के साथ उत्तर दिशा को चले ॥ ५२ ॥ और वसिष्ठजी को

दाश्चर्यमतुलं किमादौ द्वारकाभवत् ॥ कियत्कालसमुत्पन्ना वसिष्ठेदं वदस्व मे ॥ ४८ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ न जानामि महाराज कियत्कालादभूदिदम् ॥ लोमशो जाम्बवांश्चैव जानातीति च कारणम् ॥ ४९ ॥ शरीरे यत्कृतं पापं नाना जन्मान्तरेष्वपि ॥ प्रायश्चित्तं हि सर्वेषामेतत्क्षेत्रं परं स्मृतम् ॥ ५० ॥ श्रुत्वेति वचनं तस्य रामो ज्ञानवतां वरः ॥ गन्तुं कृतमतिस्तीर्थं यात्राविधिमथाचरत् ॥ ५१ ॥ वसिष्ठं चाग्रतः कृत्वा महामाण्डलिकैर्नृपैः ॥ पुरश्चरणविधिं कृत्वा प्रस्थितश्चोत्तरां दिशम् ॥ ५२ ॥ वसिष्ठं चाग्रतः कृत्वा प्रतस्थे पश्चिमां दिशम् ॥ ग्रामाद्ग्राममतिक्रम्य देशाद्देशं व नाद्वनम् ॥ ५३ ॥ विमुच्य निर्ययौ रामः ससैन्यः सपरिच्छदः ॥ गजवाजिसहस्रौघै रथैर्यानैश्च कोटिभिः ॥ ५४ ॥ शिबिकाभिश्चासंख्याभिः प्रययौ राघवस्तदा ॥ गजारूढः प्रपश्यंश्च देशान्विविधसौहृदान् ॥ ५५ ॥ श्वेतातपत्रं वि धृत्य चामरेण शुभेन च ॥ वीजितश्च जनौघेन रामस्तत्र समभ्यगात् ॥ ५६ ॥ वादित्राणां स्वनैर्घोरैर्नृत्यगीतपुरः

आगे कर पश्चिम दिशा को चले और एक ग्राम से दूसरे ग्राम को व देश से देश को और वन से वन को ॥ ५३ ॥ छोड़कर सेना समेत व सामान समेत श्रीरामजी निकले और हज़ारों हाथी घोड़े व करोड़ों रथों व सवारियों से ॥ ५४ ॥ और असंख्य पालकियों समेत उस समय अनेक प्रकार के प्रिय देशों को देखते हुए श्रीरामजी हाथी के ऊपर चढ़कर चले ॥ ५५ ॥ और जनों के गण से उत्तम चँवर से वीजित श्रीरामजी श्वेत छत्र को धारण कर वहां गये ॥ ५६ ॥ और नृत्य, गीतपूर्वक बाजनों

के घोर शब्दों समेत सूतों से प्रशंसा किये जाते हुए भी हर्षसंयुत श्रीरामजी चले ॥ ५७ ॥ और दशवें दिन अति उत्तम धर्मारण्य मिला तदनन्तर समीप में माण्डलिक नगर को देखकर श्रीरामजी ने ॥ ५८ ॥ वहां सेना समेत टिककर रात्रि को उस पुरी में निवास किया और क्षेत्र को उजड़ा हुआ व भयानक तथा मनुष्यों से रहित सुनकर ॥ ५९ ॥ और उस धर्मारण्य को लोगों के मुख से व्याघ्रों तथा सिंहों से पूर्ण तथा यक्षों व राक्षसों से सेवित सुनकर श्रीरामदेवजी ने सबों से यह कहा कि चिन्ता न कीजिये ॥ ६० ॥ व उस समय श्रीरामजी ने अपने उद्योग में प्रवीण तथा शूर व बड़े बलवान् व पराक्रमी और बड़े शरीरवाले वहां टिके हुए

सरैः ॥ स्तूयमानोपि सूतैश्च ययौ रामो मुदान्वितः ॥ ५७ ॥ दशमेऽहनि सम्प्राप्तं धर्मारण्यमनुत्तमम् ॥ अदूरे हि ततो रामो दृष्ट्वा माण्डलिकं पुरम् ॥ ५८ ॥ तत्र स्थित्वा ससैन्यस्तु उवास निशि तां पुरीम् ॥ श्रुत्वा तु निर्जनं क्षेत्र मुद्वसं च भयानकम् ॥ ५९ ॥ व्याघ्रसिंहाकुलं तच्च यक्षराक्षससेवितम् ॥ श्रुत्वा जनमुखाद्रामो धर्मारण्यमरण्यकम् ॥ उवाच रामदेवस्तु न चिन्ता क्रियतामिति ॥ ६० ॥ तत्रस्थान्वणिजः शूरान्दक्षान्स्वव्यवसायके ॥ ६१ ॥ समर्थान्हि महाकायान्महाबलपराक्रमान् ॥ समाहूय तदा काले वाक्यमेतदथाब्रवीत् ॥ ६२ ॥ शिबिकां सुसुवर्णां मे शीघ्रं वाहयताचिरम् ॥ यथा क्षणेन चैकेन धर्मारण्यं व्रजाम्यहम् ॥ ६३ ॥ तत्र स्नात्वा च पीत्वा च सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥ एवं ते वणिजः सर्वे रामेण प्रेरितास्तदा ॥ ६४ ॥ तथेत्युक्त्वा च ते सर्वे ऊहुस्तच्छिबिकां तदा ॥ क्षेत्रमध्ये यदा रामः प्रविष्टः सहसैनिकः ॥ ६५ ॥ तद्यानस्य गतिर्मन्दा संजाता किल भारत ॥ मन्दशब्दानि वाद्यानि मातङ्गा

समर्थ वैश्यों को बुलाकर यह वचन कहा ॥ ६१।६२ ॥ कि मेरी सोने की पालकी को तुमलोग शीघ्रही ले चलो जिस प्रकार कि एक क्षण में मैं धर्मारण्य को जाऊं ॥ ६३ ॥ क्योंकि उस धर्मारण्य में नहाकर व जल को पीकर मनुष्य पापों से छूट जाता है उस समय श्रीरामजी से इस प्रकार प्रेरित वणिज्लोग ॥ ६४ ॥ बहुत अच्छा यह कहकर वे सब उस समय उन श्रीरामजी की पालकी को ले चले और जब सेना समेत श्रीरामजी क्षेत्र के मध्य में पैठे ॥ ६५ ॥ तब हे भारत ! उस सवारी की गति मंद

होगई और ध्वजनों के शब्द मन्द होगये व हाथियों की चाल मंद होगई ॥ ६६ ॥ और घोड़े भी वैसेही होगये तब श्रीरामजी आश्चर्य को प्राप्त हुए और विनय से उन्हों ने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ गुरु से पूंछा ॥ ६७ ॥ कि हे मुनीश्वर ! यह क्या है जो कि ये मंदगति होगये और हृदय में आश्चर्य है त्रिकाल के जाननेवाले मुनि ने कहा कि धर्मक्षेत्र आगया ॥ ६८ ॥ हे राम ! इस प्राचीन तीर्थ में पैदल चलिये क्योंकि ऐसा करने पर तदनन्तर पश्चात् सेना को सुख होगा ॥ ६९ ॥ तदनन्तर सेना समेत श्रीरामजी पैदल चलकर बहुतही पवित्र मधुवासनक ग्राम में प्राप्त हुए ॥ ७० ॥ और गुरु से कहे हुए मार्ग से श्रीरामजी ने प्रतिष्ठा की विधिपूर्वक अनेक भांति के

मन्दगामिनः ॥ ६६ ॥ हयाश्च तादृशा जाता रामो विस्मयमागतः ॥ गुरुं पप्रच्छ विनयाद्वसिष्ठं मुनिपुङ्गवम् ॥ ६७ ॥ किमेतन्मन्दगतयश्चित्रं हृदि मुनीश्वर ॥ त्रिकालज्ञो मुनिः प्राह धर्मक्षेत्रमुपागतम् ॥ ६८ ॥ तीर्थे पुरातने राम पादचारेण गम्यताम् ॥ एवं कृते ततः पश्चात्सैन्यसौख्यं भविष्यति ॥ ६९ ॥ पादचारी ततो रामः सैन्येन सह संयुतः ॥ मधुवासनके ग्रामे प्राप्तः परमपावने ॥ ७० ॥ गुरुणा चोक्तमार्गेण मातॄणां पूजनं कृतम् ॥ नानोपहारैर्विविधैः प्रतिष्ठाविधिपूर्वकम् ॥ ७१ ॥ ततो रामो हरिक्षेत्रं सुवर्णादक्षिणे तटे ॥ निरीक्ष्य यज्ञयोग्याश्च भूमीर्वै बहुशस्तथा ॥ ७२ ॥ कृतकृत्यं तदात्मानं मेने रामो रघूद्वहः ॥ धर्मस्थानं निरीक्ष्याथ सुवर्णाक्षोत्तरे तटे ॥ ७३ ॥ सैन्यसङ्घं समुत्तीर्य्य बभ्राम क्षेत्रमध्यतः ॥ तत्र तीर्थेषु सर्वेषु देवतायतनेषु च ॥ ७४ ॥ यथोक्तानि च कर्माणि रामश्चक्रे विधानतः ॥ श्राद्धानि विधिवच्चक्रे श्रद्धया परया युतः ॥ ७५ ॥ स्थापयामास रामेशं तथा कामेश्वरं पुनः ॥ स्थानाद्वायुप्रदेशे तु सु

उपहारों से मातृकाओं का पूजन किया ॥ ७१ ॥ तदनन्तर श्रीरामजी सुवर्णा नदी के दक्षिण किनारे पै हरिक्षेत्र को देखकर व यज्ञ के योग्य बहुतसी भूमियों को देखकर ॥ ७२ ॥ उस समय रघुनायक श्रीरामजी ने अपना को कृतार्थ माना और सुवर्णाक्षा के उत्तर किनारे पै धर्मस्थान को देखकर ॥ ७३ ॥ सेनासमूह को उतार कर श्रीरामजी क्षेत्र के मध्य में घूमनेलगे और वहां सब तीर्थों व देवमन्दिरों में ॥ ७४ ॥ श्रीरामजी ने जैसे कहे हैं वैसेही कर्मों को विधि से किया व बड़ी श्रद्धा से संयुत श्रीरामजी ने विधिपूर्वक श्राद्धों को किया ॥ ७५ ॥ और स्थान से वायव्यकोण में सुवर्णा के दोनों किनारों में रामेश्वर व कामेश्वरजी को स्थापन

किया ॥ ७६ ॥ ऐसा करके दशरथ के पुत्र श्रीरामजी कृतार्थ हुए और सब विधि करके स्त्री समेत श्रीरामजी स्थित हुए ॥ ७७ ॥ और वे रघुनाथजी उस रात को नदी के किनारे सो रहे तदनन्तर आधीरात होने पर उस समय धर्मप्रिय व कमललोचन श्रीरामजी अकेले जागते रहे व उस क्षण में श्रीरामजी ने स्त्री का रोना सुना ॥७८॥७९॥ रात में दीनवचनों से कुररी की नाईं रोती हुई उस स्त्री को श्रीरामजी ने बड़ी शीघ्रता से गुप्त दूतों से देखा ॥ ८० ॥ तब हे अनघ ! करुण शब्दों से रोती हुई बहुत ही विकल स्त्री को देखकर श्रीरामजी के दूतों ने उस दुःखित स्त्री से पूंछा ॥ ८१ ॥ दूत बोले कि हे सुभगे, नारि ! तुम कौन हो देवपत्नी हो या दानवी हो और किस

वर्णोभयतस्तटे ॥ ७६ ॥ कृत्वैवं कृतकृत्योऽभूद्रामो दशरथात्मजः ॥ कृत्वा सर्वविधिं चैव सभार्यः समुपाविशत् ॥ ७७ ॥ तां निशां स नदीतीरे सुष्वाप रघुनन्दनः ॥ ततोऽर्द्धरात्रे संजाते रामो राजीवलोचनः ॥ ७८ ॥ जागर्ति स्म तदा काल एकाकी धर्मवत्सलः ॥ अश्रौषीच्च क्षणे तस्मिन् रामो नारीविरोदनम् ॥ ७९ ॥ निशायां करुणैर्वाक्यै रुदन्तीं कुररीमिव ॥ चारैर्विलोकयामास रामस्तामतिसम्भ्रमात् ॥ ८० ॥ दृष्ट्वातिविक्लवां नारीं क्रन्दन्तीं करुणैः स्वरैः ॥ पृष्टा सा दुःखिता नारी रामदूतैस्तदानघ ॥ ८१ ॥ दूता ऊचुः ॥ कासि त्वं सुभगे नारि देवी वा दानवी नु किम् ॥ केन वा त्रासितासि त्वं मुष्टं केन धनं तव ॥ ८२ ॥ विकला दारुणाञ्छब्दानुद्गिरन्ती मुहुर्मुहुः ॥ कथयस्व यथातथ्यं रामो राजाभिपृच्छति ॥ ८३ ॥ तयोक्तं स्वामिनं दूताः प्रेषयध्वं ममान्तिकम् ॥ यथाहं मानसं दुःखं शान्त्यै तस्मै निवेदये ॥ ८४ ॥ तथेत्युक्त्वा ततो दूता राममागत्य चाब्रुवन् ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये दूतागमनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ने तुम को दुःखित किया है व किस ने तुम्हारा धन चुराया है ॥ ८२ ॥ बार २ कठोर शब्दों को कहती हुई विकल तुम यथार्थ कहो इसको राजा रामजी पूंछते हैं ॥ ८३ ॥ उस ने कहा कि हे दूतो ! मेरे समीप स्वामी को पठाइये कि जिस प्रकार मैं मानसी दुःख को उनसे शांति के लिये कहूं ॥ ८४ ॥ बहुत अच्छा यह कहकर तदनन्तर दूतों ने श्रीरामजी के समीप आकर कहा ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदूतागमनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

दो० । उजड़े धर्मारण्य को फेरि बसायो राम । बत्तिसवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर श्रीरामजी के उन दूतों ने श्रीरामजी को प्रणाम कर कहा कि हे महाबाहो, राम, राम! वह उत्तम मुखवाली स्त्री है ॥ १ ॥ और सुन्दर वस्त्र व भूषणोंवाली तथा कोमलवचनों में परायण उस रोती हुई अकेली स्त्री को देखकर हमलोग विस्मित होगये ॥ २ ॥ और समीप वर्तमान होकर हम लोगों ने उस देवपत्नी से पूंछा कि हे वरारोहे, देवि! तुम कौन हो देवी हो या दानवी हो ॥ ३ ॥ हे देवि! श्रीरामजी तुम को पूंछते हैं तुम सब यथायोग्य कहो उस वचन को सुनकर उस स्त्री ने मधुरवचन को कहा ॥ ४ ॥ कि मेरे दुःख को

व्यास उवाच ॥ ततश्च रामदूतास्ते नत्वा राममथाब्रुवन् ॥ रामराम महाबाहो वरनारी शुभानना ॥ १ ॥ सुवस्त्र भूषाभरणां मृदुवाक्यपरायणाम् ॥ एकाकिनीं क्रन्दमानां दृष्ट्वा तां विस्मिता वयम् ॥ २ ॥ समीपवर्तिनो भूत्वा पृष्टा सा सुरसुन्दरी ॥ का त्वं देवि वरारोहे देवी वा दानवी नु किम् ॥ ३ ॥ रामः पृच्छति देवि त्वां ब्रूहि सर्वं यथातथम् ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं रामा सोवाच मधुरं वचः ॥ ४ ॥ रामं प्रेषयत भद्रं वो मम दुःखापहं परम् ॥ ५ ॥ तदाकर्ण्य ततो रामः सम्भ्रमात्त्वरितो ययौ ॥ दृष्ट्वा तां दुःखसन्तप्तां स्वयं दुःखमवाप सः ॥ उवाच वचनं रामः कृताञ्जलि पुटस्तदा ॥ ६ ॥ श्रीराम उवाच ॥ का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा केनावधूता विजने निरस्ता ॥ मुष्टं धनं केन च तावकीनमाचक्ष्व मातः सकलं ममाग्रे ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वा चातिदुःखार्तो रामो मतिमतां वरः ॥ प्रणामं दण्डवच्चक्रे चक्रपाणिरिवापरः ॥ ८ ॥ तयाभिनन्दितो रामः प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ तुष्टया परया प्रीत्या स्तुतो मधुरया

नाश करनेवाले श्रेष्ठ श्रीरामजी को पठाइये तुम लोगों का कल्याण होवै ॥ ५ ॥ उस वचन को सुनकर तदनन्तर शीघ्रता समेत श्रीरामजी संभ्रम से गये और दुःख से तची हुई उस स्त्री को देखकर वे श्रीरामजी आप भी दुःख को प्राप्त हुए और उस समय हाथों को जोड़कर श्रीरामजी वचन बोले ॥ ६ ॥ श्रीरामजी बोले कि हे शुभे! तुम कौन हो व किस की स्त्री हो और किसने दुःखित तुम को निर्जन स्थान में निकाल दिया है व हे मातः! किसने तुम्हारा धन चुरा लिया है इस सब को मेरे आगे कहिये ॥ ७ ॥ यह कह कर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ बहुतही दुःख से विकल श्रीरामजी ने दूसरे चक्रपाणि की नाईं दंडवत् प्रणाम किया ॥ ८ ॥ और बड़ी प्रीति से

प्रसन्न उस स्त्री ने बार २ प्रणाम कर श्रीरामजी की प्रशंसा किया व बार २ स्तुति किया ॥ ९ ॥ कि हे परमात्मन्, परेशान, दुःखहारिन्, सनातन ! जिस लिये तुम्हारा अवतार हुआ है उस कार्य को तुम नें किया ॥ १० ॥ कि रावण, कुम्भकर्ण व इन्द्रजीत (मेघनाद) आदिक खर, दूषण, त्रिशिरा, मारीच व अक्षकुमार ॥ ११ ॥ व असंख्य भयंकर राक्षस युद्ध के आंगन में जीते गये ॥ १२ ॥ हे लोकेश ! इस समय मैं तुम्हारे यश को क्या कहूं कि तुम्हारे अंग से उत्पन्न कमल से उपजे हुए ब्रह्मा ने तुम्हारे उदर में स्थित संसार को देखा जैसे कि बरगद के बीज में बरगद का वृक्ष माना गया है ॥ १३ ॥ हे जगदीश, गोविन्द ! संसार में दशरथ व तुम्हारी

गिरा ॥ ९ ॥ परमात्मन्परेशान दुःखहारिन्सनातन ॥ यदर्थमवतारस्ते तच्च कार्यं त्वया कृतम् ॥ १० ॥ रावणः कुम्भकर्णश्च शक्रजित्प्रमुखास्तथा ॥ खरदूषणत्रिशिरोमारीचाक्षकुमारकाः ॥ ११ ॥ असंख्या निर्जिता रौद्रा राक्षसाः समराङ्गणे ॥ १२ ॥ किं वच्मि लोकेश सुकीर्त्तिमद्य ते वेधास्त्वदीयाङ्गजपद्मसम्भवः ॥ ददर्श विश्वं च तवोदरस्थं वटस्य बीजे हि यथा वटो मतः ॥ १३ ॥ धन्यो दशरथो लोके कौशल्या जननी तव ॥ ययोर्जातोसि गोविन्द जगदीश परः पुमान् ॥ १४ ॥ धन्यं च तत्कुलं राम यत्र त्वमा तः स्वयम् ॥ धन्याऽयोध्यापुरी राम धन्यो लोकस्त्वदाश्रयः ॥ १५ ॥ धन्यः सोऽपि हि बाल्मीकिर्येन रामायणं कृतम् ॥ कविना विप्रमुख्येभ्य आत्मबुद्ध्या ह्यनागतम् ॥ १६ ॥ त्वत्तोऽभवत्कुलं चेदं त्वया देव सुपावितम् ॥ १७ ॥ नरपतिरिति लोकैः स्मर्यते वैष्णवांशः स्वयमसि रमणीयैस्त्वं गुणैर्विष्णुरेव ॥ किमपि भुवनकार्यं यद्विचिन्त्यावतीर्य तदिह घटयतस्ते वत्स निर्विघ्नमस्तु ॥ १८ ॥ स्तुत्वो वाचाथ

माता कौशल्या धन्य हैं कि जिन दोनों के तुम परमपुरुष उत्पन्न हुए हो ॥ १४ ॥ व हे राम ! वह वंश धन्य है कि जिस में तुम आपही आये हो व हे राम ! अयोध्यापुरी धन्य है और तुम्हारे आश्रित मनुष्य धन्य है ॥ १५ ॥ और वे बाल्मीकि भी धन्य हैं कि जिन कवि ने अपनी बुद्धि से मुख्य ब्राह्मणों के लिये भविष्य रामायण को बनाया है ॥ १६ ॥ व हे देव ! तुम से यह वंश भली भांति पवित्र होगया ॥ १७ ॥ हे वत्स ! मनुष्यों से नृपति विष्णुजी का अंश कहा जाता है और तुम सुन्दर गुणों से आपही विष्णु हो व कोई भी लोक का कार्य है कि जिस को विचार कर अवतार लेकर उस को करते हुए तुम को इस संसार में विघ्न न होवै ॥ १८ ॥ इस प्रकार

स्तुतिकर इसके अनन्तर उसने श्रीरामजी से कहा कि इस समय तुम्हारे स्वामी होने पर मैं बहुत दिनों से जिस लिये शून्य वर्तमान हूं उस कारण तुम्हीं को दोष है॥ १९ ॥ मुझ को धर्मारण्य क्षेत्र की अधिदेवता जानो और यहां मुझको बारह वर्ष बीते हैं तब से मैं दुःखित हूं ॥ २० ॥ हे महामते ! आज तुम मेरी शून्यता को हरलो हे रामजी ! लोहासुर के डर से सब ब्राह्मण दशो दिशाओं को चले गये ॥ २१ ॥ व दुःखित होते हुए सब बनिया स्थानों के अनुसार चले गये व हे रामजी ! यहां बड़े भारी मायावी व दुर्धर्ष और दुःख से नाश होने योग्य उस सुरभयंकर दैत्य को ब्रह्मा, विष्णु व शिव देवताओं ने दबाकर मारडाला है परन्तु उसके डर से बहुत ही शंकित

रामं हि त्वयि नाथे नु साम्प्रतम् ॥ शून्यावर्तें चिरं कालं यतो दोषस्तवैव हि ॥ १९ ॥ धर्मारण्यस्य क्षेत्रस्य विद्धि मामधिदेवताम् ॥ वर्षाणि द्वादशैहैव जातानि दुःखितास्म्यहम् ॥ २० ॥ निर्जनत्वं ममाद्य त्वमुद्धरस्व महामते ॥ लोहासुरभयाद्राम विप्राः सर्वे दिशो दश ॥ २१ ॥ गताश्च वणिजः सर्वे यथास्थानं सुदुःखिताः ॥ स दैत्यो घातितो राम देवैः सुरभयङ्करः ॥ २२ ॥ आक्रम्यात्र महामायो दुराधर्षो दुरत्ययः ॥ न ते जनाः समायान्ति तद्भयादतिशङ्किताः ॥ २३ ॥ अद्य वै द्वादश समाः शून्यागारमनाथवत् ॥ यस्यां हि दीर्घिकायां मे स्नानदानोद्यतो जनः ॥ २४॥ राम तस्यां दीर्घिकायां निपतन्ति च शूकराः ॥ यत्राङ्गना भर्तृयुता जलक्रीडापरायणाः ॥ २५ ॥ चिक्रीडुस्तत्र महिषा निपतन्ति जलाशये ॥ यत्र स्थाने सुपुष्पाणां प्रकारः प्रचुरोऽभवत् ॥ २६ ॥ तद्रुद्धं कण्टकैर्वृक्षैः सिंहव्याघ्रसमाकुलैः ॥ संचिक्रीडुः कुमाराश्च यस्यां भूमौ निरन्तरम् ॥ २७ ॥ कुमाराश्चित्रकाणां च तत्र क्रीडन्ति हर्षिताः ॥

वे लोग नहीं आते हैं ॥ २२।२३ ॥ आज शून्य मंदिर व अनाथवान् धर्मक्षेत्र को बारह वर्ष हुए और मेरी जिस बावली में मनुष्य स्नान, दान के लिये उद्यत था ॥ २४॥ हे राम ! उस बावली में सुवर गिरते हैं और जिसमें पतियों से संयुत स्त्रियां जलक्रीड़ा करती थीं ॥ २५ ॥ उस जलाशय में भैंसे गिरते हैं व खेलते हैं और जिस स्थानमें बहुत उत्तम पुष्पों के भेद थे ॥ २६ ॥ वह स्थान सिंहों व व्याघ्रों से संयुत कँटीले वृक्षों से रुँध गया है और जिस भूमि में सदैव कुमार लोग क्रीड़ा करते थे ॥२७॥ वहां

प्रसन्न होते हुए चीता बाघों के बच्चे खेलते हैं और जहां सदैव ब्राह्मण लोग वेदगान करते थे ॥ २८ ॥ वहां बड़े भयंकर सियारियोंके फेत्कार शब्द सुनपड़ते हैं और जहां घर घर में अग्निहोत्रों का धुवाँ देख पड़ता था ॥ २९ ॥ वहां बहुतही उग्र व धुवाँ समेत दौरहा देख पड़ते हैं और ब्राह्मणों के आगे जहां प्रसन्न होकर नर्तक लोग नाचते थे ॥ ३० ॥ वहीं पर मोहित होते हुए भूत, वेताल व प्रेत नाचते हैं व जिस सभा में मंत्रोंको जपने हुए ब्राह्मण लोग बैठते थे ॥ ३१ ॥ उस स्थान में सुरहगाय, ऋक्ष व साही नामक जन्तु बैठते हैं और जहा ब्राह्मणों व वैश्यों के निवासस्थान देख पड़ते थे ॥ ३२ ॥ हे राम ! बाँधी हुई भूमिवाले वे स्थान यहां बिल देख पड़ते हैं और यहां

अकुर्वन्वाडवा यत्र वेदगानं निरन्तरम् ॥ २८ ॥ शिवानां तत्र फेत्काराः श्रूयन्तेऽतिभयङ्कराः ॥ यत्र धूमोग्निहोत्राणां दृश्यते वै गृहे गृहे ॥ २९ ॥ तत्र दावाः सधूमाश्च दृश्यन्तेऽत्युल्बणा भृशम् ॥ नृत्यन्ते नर्त्तका यत्र हर्षिता हि द्विजाग्रतः ॥ ३० ॥ तत्रैव भूतवेतालाःप्रेता नृत्यन्ति मोहिताः ॥ नृपा यत्र सभायां तु न्यषीदन्मन्त्रतत्पराः ॥ ३१ ॥ तस्मिन्स्थाने निषीदन्ति गवया ऋक्षशल्लकाः ॥ आवासा यत्र दृश्यन्ते द्विजानां वणिजां तथा ॥ ३२ ॥ कुट्टिमप्रतिमा राम दृश्यन्तेत्र बिलानि वै ॥ कोटराणीव वृक्षाणां गवाक्षाणीह सर्वतः ॥ ३३ ॥ चतुष्का यज्ञवेदिर्हि सोच्छ्रायाह्यभवत्पुरा ॥ तेऽत्र वल्मीकनिचयैर्दृश्यन्ते परिवेष्टिताः ॥ ३४ ॥ एवंविधं निवासं मे विद्धि राम नृपोत्तम ॥ शून्यं तु सर्वतो यस्मान्निवासाय द्विजा गताः ॥ ३५ ॥ तेन मे सुमहद्दुःखं तस्मात्त्राहि नरेश्वर ॥ एतच्छ्रुत्वा वचो राम उवाच वदतां वरः ॥ ३६ ॥ श्रीराम उवाच ॥ न जाने तावकान्विप्रांश्चतुर्दिक्षु समाश्रितान् ॥ न तेषां वेद्म्यहं संख्यां नाम

सब ओर झरोखा वृक्षों के खोड़र से देख पड़ते हैं ॥ ३३ ॥ और पुरातन समय चौकोर यज्ञवेदी जो उँचाई समेत हुई है वे स्थान बँबौरि समूहों से घिरे देखपड़ते हैं ॥ ३४ ॥ हे नृपोत्तम, राम ! मेरे इस प्रकार के निवास को सब ओर से शून्य जानिये जिस लिये ब्राह्मण लोग निवास के लिये चले गये ॥ ३५ ॥ हे नरेश्वर ! उससे मुझको बड़ा दुःख है उसी कारण रक्षा कीजिये इस वचन को सुनकर कहनेवालों में श्रेष्ठ श्रीरामजी ने वचन को कहा ॥ ३६ ॥ श्रीरामजी बोले कि चारों दिशाओं में टिके हुए

तुम्हारे ब्राह्मणों को मैं नहीं जानता हूं और उन ब्राह्मणों की संख्या व नाम और गोत्र को नहीं जानता हूं ॥ ३७ ॥ जैसा कुटुंब व जैसा गोत्र हो उसको यथार्थ कहिये तो उन सबों को लाकर मैं उन सबों को अपने स्थान में बसाऊं ॥ ३८ ॥ श्रीमाता बोली कि हे नरेश्वर ! ब्रह्मा, विष्णु व शिवजीने जिनको स्थापन किया है वे अठारह हज़ार वेदों के पारगामी ब्राह्मण हैं ॥ ३९ ॥ व हे अमितद्युते ! इस संसार में वे वेदत्रयी की विद्याओं में प्रवीण हैं और चौंसठि गोत्रों के मध्य में जो ब्राह्मण प्रतिष्ठित हैं ॥ ४० ॥ उनको श्रीमाता ने त्रयीविद्या को दिया है और संसार में वे सब द्विजोत्तम हैं व छत्तीस हज़ार धर्म में परायण वैश्य हैं ॥ ४१ ॥ व ब्राह्मणों की सेवा में परायण वे

गोत्रे द्विजन्मनाम् ॥ ३७ ॥ यथा ज्ञातिर्यथा गोत्रं याथातथ्यं निवेदय ॥ तत आनीय तान्सर्वान्स्वस्थाने वासयाम्य हम् ॥ ३८ ॥ श्रीमातोवाच ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशैश्च स्थापिता ये नरेश्वर ॥ अष्टादशसहस्राणि ब्राह्मणा वेदपार गाः ॥ ३९ ॥ त्रयीविद्यासु विख्याता लोकेऽस्मिन्नमितद्युते ॥ चतुष्षष्टिकगोत्राणां वाडवा ये प्रतिष्ठिताः ॥ ४० ॥ श्री मातादात्रयीविद्यां लोके सर्वे द्विजोत्तमाः ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि वैश्या धर्मपरायणाः ॥ ४१ ॥ आर्यवृत्तास्तु वि ज्ञेया द्विजशुश्रूषणे रताः ॥ बकुलार्को नृपो यत्र संज्ञया सह राजते ॥ ४२ ॥ कुमारावश्विनौ देवौ धनदो व्ययपूरकः ॥ अधिष्ठात्री त्वहं राम नाम्ना भट्टारिका स्मृता ॥ ४३ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ स्थानाचाराश्च ये केचित्कुलाचारास्तथैव च ॥ श्रीमात्रा कथितं सर्वं रामस्याग्रे पुरातनम् ॥ ४४ ॥ तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा रामो मुदमवाप ह ॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं हि भाषितं त्वया ॥ ४५ ॥ यस्मात्सत्यं त्वया प्रोक्तं तन्नाम्ना नगरं शुभम् ॥ वासयामि जगन्मातः सत्य

श्रेष्ठ आचरणवाले हैं जहां कि संज्ञा समेत बकुलार्क राजा शोभित हैं ॥ ४२ ॥ वहीं अश्विनीकुमार देव व व्यय (ख़र्च) को पूर्ण करनेवाले कुबेरजी हैं व हे राम ! मैं अधिष्ठात्री देवता नाम से भट्टारिका कही गई हूं ॥ ४३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि जो कोई स्थान के आचार व कुल के आचार थे श्रीरामजी के आगे उस सब पुराने चरित्र को श्रीमाता ने कहा ॥ ४४ ॥ व उसका वचन सुनकर रामजी हर्ष को प्राप्त हुए और यह बोले कि तुमने सत्य, सत्य व फिर सत्य को कहा है ॥ ४५ ॥ हे जगदम्बिके !

जिस लिये तुम ने सत्य कहा है उसी कारण उस नाम से सत्यमंदिर नामक उत्तम नगर को बसाऊंगा ॥ ४६ ॥ और उत्तम सत्यमंदिर तीनों लोकों में प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ ४७ ॥ यह कहकर तदनन्तर श्रीरामजी ने ब्राह्मणों को लाने के लिये लक्ष संख्यक अपने सेवकों को पठाया ॥ ४८ ॥ व कहा कि जिस देश व प्रदेश और वन में व नदी के किनारे और पर्वत के समीप व जैसे स्थानवाले उस उस ग्राम में ॥ ४९ ॥ जहां धर्मारण्य के निवासी द्विजोत्तम गये हों वहां उन को अर्घ व पाद्यों से पूजकर शीघ्रही लाइये ॥ ५० ॥ जब यहां मैं उन द्विजोत्तमों को देखूंगा तब भोजन करूंगा ॥ ५१ ॥ और जो इन ब्राह्मणों को न मानकर यहां आवैगा

मन्दिरमेव च ॥ ४६ ॥ त्रैलोक्ये ख्यातिमाप्नोतु सत्यमन्दिरमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ एतदुक्त्वा ततो रामः सहस्रशतसंख्यया ॥ स्वभृत्यान्प्रेषयामास विप्रानयनहेतवे ॥ ४८ ॥ यस्मिन्देशे प्रदेशे वा वने वा सरितस्तटे ॥ पर्यन्ते वा यथास्थाने ग्रामे वा तत्र तत्र च ॥ ४९ ॥ धर्मारण्यनिवासाश्च याता यत्र द्विजोत्तमाः ॥ अर्घपाद्यैः पूजयित्वा शीघ्रमानयतात्र तान् ॥ ५० ॥ अहमत्र तदा भोक्ष्ये यदा द्रक्ष्ये द्विजोत्तमान् ॥ ५१ ॥ विमान्य च द्विजानेतानागमिष्यति यो नरः ॥ स मे वध्यश्च दण्ड्यश्च निर्वास्यो विषयाद्बहिः ॥ ५२ ॥ तच्छ्रुत्वा दारुणं वाक्यं दुःसहं दुष्प्रधर्षणम् ॥ रामाज्ञाकारिणो दूता गताः सर्वे दिशो दश ॥ ५३ ॥ शोधिता वाडवाः सर्वे लब्ध्वा सर्वे सुहर्षिताः ॥ यथोक्तेन विधानेन अर्घपाद्यैरपूजयन् ॥ ५४ ॥ स्तुतिं चक्रुश्च विधिवद्विनयाचारपूर्वकम् ॥ आमन्त्र्य च द्विजान्सर्वान् रामवाक्यं प्रकाशयन् ॥५५॥ सर्वे द्विजाः सेवकसंयुताः ॥ गमनायोद्यताः सर्वे वेदशास्त्रपरायणाः ॥ ५६ ॥ आगता रामपार्श्वे च बहु

। दंड देने योग्य व देश से बाहर निकालने योग्य होगा ॥ ५२ ॥ उस दुःसह व दुर्धर्ष और कठोर वचन को सुनकर श्रीरामजी की आज्ञा दशों दिशाओं को चले गये ॥ ५३ ॥ सब ब्राह्मण ढूंढ़े गये और उन को पाकर प्रसन्न होते हुए दूतों ने यथोक्त विधि से अर्घ व पाद्य से पूजन आचारपूर्वक विधि से स्तुति किया व सब ब्राह्मणों को बुलाकर श्रीरामजी के वचन को प्रकाश किया ॥ ५५ ॥ तब वेदों व शास्त्रों में त जाने के लिये तैयार हुए ॥ ५६ ॥ और बहुत मानपूर्वक वे श्रीरामजी के समीप आये और आये हुए ब्राह्मणों को देखकर रोमांच

संयुत ॥ ५७ ॥ दशरथकुमार श्रीराम राजा ने अपना को कृतार्थ सा माना और वे शीघ्रता से उठकर आगे पैदल चले ॥ ५८ ॥ और हाथों को जोड़कर हर्ष से आँसुवों को छोड़ते हुए श्रीरामजी ने घुटुनुवों से पृथ्वी को प्राप्त होकर यह वचन कहा ॥ ५९ ॥ कि ब्राह्मणों की प्रसन्नतासे मैं लक्ष्मीपति हूं व ब्राह्मणों की प्रसन्नता से मैं पृथ्वी को धारण किये हूं और ब्राह्मणों की प्रसन्नता से मैं पृथ्वी का स्वामी हूं व ब्राह्मणों की प्रसन्नता से मेरा राम नाम है ॥ ६० ॥ श्रीरामजी से ऐसा कहे हुए वे ब्राह्मण प्रसन्न हुए व उन्होंने जय के आशीर्वादों से पूजकर दीर्घायु होवो यह कहा ॥ ६१ ॥ और श्रीरामजी ने उनको पाद्य, अर्घ्य व विष्टरादिक दिया व दंडा की नाईं

मानपुरःसराः ॥ समागतान्द्विजान्दृष्ट्वा रोमाञ्चिततनूरुहः ॥ ५७ ॥ कृतकृत्यमिवात्मानं मेने दाशरथिर्नृपः ॥ स सं भ्रमात्समुत्थाय पदातिः प्रययौ पुरः ॥ ५८ ॥ करसम्पुटकं कृत्वा हर्षाश्रु प्रतिमुञ्चयन् ॥ जानुभ्यामवनिं गत्वा इदं व चनमब्रवीत् ॥ ५९ ॥ विप्रप्रसादात्कमलावरोऽहं विप्रप्रसादाद्धरणीधरोऽहम् ॥ विप्रप्रसादाज्जगतीपतिश्च विप्रप्रसा दान्मम रामनाम ॥ ६० ॥ इत्येवमुक्ता रामेण वाडवास्ते प्रहर्षिताः ॥ जयाशीर्भिः प्रपूज्याथ दीर्घायुरिति चाब्रु वन् ॥ ६१ ॥ आवर्जितास्ते रामेण पाद्यार्घ्यविष्टरादिभिः ॥ स्तुतिं चकार विप्राणां दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥ ६२ ॥ कृता ञ्जलिपुटः स्थित्वा चक्रे पादाभिवन्दनम् ॥ आसनानि विचित्राणि हेमान्याभरणानि च ॥ ६३ ॥ समर्पयामास ततो रामो दशरथात्मजः ॥ अङ्गुलीयकवासांसि उपवीतानि कर्णकान् ॥ ६४ ॥ प्रददौ विप्रमुख्येभ्यो नानावर्णाश्च धेनवः ॥ एकैकशतसंख्याका घटोध्नीश्च सवत्सकाः ॥ ६५ ॥ सवस्त्रा बद्धघण्टाश्च हेमशृङ्गविभूषिताः ॥ रूप्यखुरास्ताम्र

प्रणाम करके स्तुति किया ॥ ६२ ॥ और हाथों को जोड़कर स्थित होकर चरणों को प्रणाम किया व विचित्र आसन व सुवर्ण के गहनों को दिया ॥ ६३ ॥ तदनन्तर दशरथ के पुत्र श्रीरामजी ने अँगूठी, वसन, यज्ञोपवीत व कर्णाभरणों को दिया ॥ ६४ ॥ व मुख्य ब्राह्मणों के लिये अनेक प्रकार के रंगवाली तथा घड़ा के समान ऐनवाली बछड़ा समेत एक एक सौ गौवों को मुख्य ब्राह्मणों के लिये दिया ॥ ६५ ॥ और बँधेहुए घंटोंवाली तथा सुवर्ण के शृंगों से भूषित व चांदी के खुर और ताँबे की पीठवाली

कांस्य पात्रों से संयुत वस्त्र समेत गौवों को दिया ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां ब्रह्मनारदसंवादेसत्यमन्दिरस्था पनवर्णनोनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । धर्मारण्यक राम किय यथा जीर्ण उद्धार । तेंतिसवें अध्याय में सोई चरित सुखार ॥ श्रीरामजी बोले कि श्रीमाता के वचन से मैं जीर्णोद्धार करूंगा मेरे लिये आज्ञा को दीजिये कि जिस प्रकार मैं तुमलोगों को दान देऊं ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! उत्तम यज्ञ करके पात्र में दान देना चाहिये अपात्र में कुछ नहीं दिया जाता है क्योंकि

पृष्ठीः कांस्यपात्रसमन्विताः ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येब्रह्मनारदसंवादे सत्यमन्दिरस्थापन वर्णनोनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

राम उवाच ॥ जीर्णोद्धारं करिष्यामि श्रीमातुर्वचनादहम् ॥ आज्ञा प्रदीयतां मह्यं यथादानं ददामि वः ॥ १ ॥ पात्रे दानं प्रदातव्यं कृत्वा यज्ञवरं द्विजाः ॥ नापात्रे दीयते किञ्चिद्दत्तं न तु सुखावहम् ॥ २ ॥ सुपात्रं नौरिव सदा तारये दुभयोरपि ॥ लोहपिण्डोपमं ज्ञेयं कुपात्रं भञ्जनात्मकम् ॥ ३ ॥ जातिमात्रेण विप्रत्वं जायते न हि भो द्विजाः ॥ क्रिया बलवती लोके क्रियाहीने कुतः फलम् ॥ ४ ॥ पूज्यास्तस्मात्पूज्यतमा ब्राह्मणाः सत्यवादिनः ॥ यज्ञकार्ये समुत्पन्ने कृपां कुर्वन्तु सर्वदा ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ततस्तु मिलिताः सर्वे विमृश्य च परस्परम् ॥ केचिद्रूचुस्तदा रामं शिलोञ्छजीविका वयम् ॥ ६ ॥ सन्तोषं परमास्थाय स्थिता धर्मपरायणाः ॥ प्रतिग्रहप्रयोगेण न चास्माकं प्रयो

दिया हुआ वह सुखदायक नहीं होता है ॥ २ ॥ और नाव की नाईं सुपात्र सदैव दोनों को भी तारता है व कुपात्र लोहपिंड के समान नाशक जानने योग्य है ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! केवल जातिही से ब्राह्मणता नहीं होती है वरन संसार में कर्म बलवान् होता है और कर्महीन में फल कहां से होगा ॥ ४ ॥ इस कारण सत्यवादी ब्राह्मण पूजने योग्य व अधिक पूजनीय हैं और यज्ञकार्य उत्पन्न होने पर ब्राह्मण सदैव कृपा करैं ॥ ५ ॥ ब्रह्मा बोले कि तदनन्तर सब मिलकर व परस्पर विचार कर उस समय कुछ ब्राह्मणों ने श्रीरामजी से कहा कि हमलोग शिलोञ्छ जीविकावाले हैं ॥ ६ ॥ और बड़े संतोष में स्थित हमलोग धर्म में लगे हुए हैं हमलोगों का दान

के प्रयोग से प्रयोजन नहीं है ॥ ७ ॥ दश वधस्थानों के समान कुम्हार होता है व दश कुम्हारों के बराबर तेली होता है और दश तेलियों के समान वेश्या होती है व दश वेश्याओं के समान राजा होता है ॥ ८ ॥ व हे रामजी ! राजा का दान भयंकर होता है यह निस्सन्देह सत्य है उसी कारण हमलोग भयदायक दान की इच्छा नहीं करते हैं ॥ ९ ॥ कोई एकाहिक व्रतवाले ब्राह्मण थे व कोई अमृत (अयाचित) जीविकावाले थे और कोई ब्राह्मण कुंभीधान्य व्रतवाले व कोई छः कर्मों में तत्पर थे ॥ १० ॥ और कोई तीन मूर्तियों को स्थापन करनेवाले थे इस प्रकार सब पृथक् भाववाले व पृथक् गुणोंवाले थे और कितेक ब्राह्मणों ने यह कहा कि बिन त्रिमूर्ति

जनम् ॥७॥ दशसूनासमश्चक्री दशचक्रिसमो ध्वजः ॥ दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः ॥ ८ ॥ राजप्रतिग्रहो घोरो राम सत्यं न संशयः॥ तस्माद्वयं न चेच्छामः प्रतिग्रहं भयावहम् ॥ ९ ॥ एकाहिका द्विजाः केचित्केचित्स्वामृत वृत्तयः ॥ कुम्भीधान्या द्विजाः केचित् केचित्षट्कर्मतत्पराः ॥ १० ॥ त्रिमूर्तिस्थापिताः सर्वे पृथग्भावाः पृथग्गुणाः ॥ केचिदेवं वदन्तिस्म त्रिमूर्त्याज्ञां विना वयम् ॥ ११ ॥ प्रतिग्रहस्य स्वीकारं कथं कुर्याम ह द्विजाः ॥ न ताम्बूलं स्वीकृतं नो यावद्देवैर्नभाषितम् ॥ १२ ॥ विमृश्य स तदा रामो वसिष्ठेन महात्मना ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां सस्मार गुरुणा सह ॥ १३ ॥ स्मृतमात्रास्ततो देवास्तं देशं समुपागमन् ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशविमानावलिसंवृताः ॥ १४ ॥ रामेण ते यथान्यायं पूजिताः परया मुदा ॥ निवेदितं तु तत्सर्वं रामेणातिसुबुद्धिना ॥ १५ ॥ अधिदेव्या वचनतो जीर्णोद्धारं करोम्यहम् ॥ धर्मारण्ये हरिक्षेत्रे धर्मकूपसमीपतः ॥ १६ ॥ ततस्ते वाडवाः सर्वे त्रिमूर्त्तीः प्रणिपत्य च ॥ महता हर्ष

की आज्ञा से हमलोग ॥ ११ ॥ ब्राह्मण कैसे दान को स्वीकार करें क्योंकि जबतक देवता नहीं कहते हैं तबतक हमलोग ताम्बूल को नहीं खाते हैं ॥ १२ ॥ तब महात्मा वसिष्ठ गुरु समेत श्रीरामजी ने विचार कर ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक देवताओं को स्मरण किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर स्मरण किये हुए वे विमानों की पांतियों से घिरेहुए करोड़ों सूर्यों के समान देवता उस स्थान को आये ॥ १४ ॥ और श्रीरामजी ने उनको बड़े हर्ष से यथायोग्य पूजन किया और उत्तम बुद्धिवाले श्रीरामजी ने उस सब वृत्तान्त को बतलाया ॥ १५ ॥ धर्मारण्य विष्णुक्षेत्र में धर्मकूप के समीप से मैं अधिदेवी के वचन से जीर्णोद्धार करता हूं ॥ १६ ॥ तदनन्तर वे सब बड़े हर्षगण

से पूर्ण वे सब ब्राह्मण तीनों मूर्तियों को प्रणाम कर मनोरथ को प्राप्त हुए ॥ १७ ॥ और उन्हों ने अर्घ्य, पाद्यादि की विधि से उन को श्रद्धा से पूजा व क्षण भर विश्राम कर उन ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक देवताओं ने ॥ १८ ॥ विनय से हाथों को जोड़े हुए बड़े शक्तिमान् श्रीरामजी से कहा ॥ १९ ॥ देवता बोले कि हे सूर्यवंशभूषण, श्रीरामजी ! तुम ने देवताओं के शत्रु जिन रावणादिकों को मारा है उस से हम सब प्रसन्न हैं ॥ २० ॥ और बड़े भारी स्थान का जीर्णोद्धार कीजिये तो बड़े भारी यश को प्राप्त होवोगे ॥ २१ ॥ उन देवताओं की आज्ञा को पाकर वे दशरथकुमार श्रीरामजी प्रसन्न हुए व जीर्णोद्धार में अनन्त गुण को चाहते हुए लक्ष्मीपति श्रीरामजी

वृन्देन पूर्णाः प्राप्तमनोरथाः ॥ १७ ॥ अर्घ्यपाद्यादिविधिना श्रद्धया तानपूजयन् ॥ क्षणं विश्रम्य ते देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ १८ ॥ ऊचू रामं महाशक्तिं विनयात्कृतसम्पुटम् ॥ १९ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवद्रुहस्त्वया राम ये हता रावणादयः ॥ तेन तुष्टा वयं सर्वे भानुवंशविभूषण ॥ २० ॥ उद्धरस्व महास्थानं महतीं कीर्तिमाप्नुहि ॥ २१ ॥ लब्ध्वा स तेषामाज्ञां तु प्रीतो दशरथात्मजः ॥ जीर्णोद्धारेऽनन्तगुणं फलमिच्छन्निलापतिः ॥ २२ ॥ देवानां सन्निधौ तेषां कार्यारम्भमथाकरोत् ॥ स्थण्डिलं पूर्वतः कृत्वा महागिरिसमं शुभम् ॥ २३ ॥ तस्योपरि बहिःशाला गृहशाला ह्यनेकशः ॥ ब्रह्मशालाश्च बहुशो निर्ममे शोभनाकृतीः ॥ २४ ॥ निधानैश्च समायुक्ता गृहोपकरणैर्वृताः ॥ सुवर्णकोटिसम्पूर्णा रसवस्त्रादिपूरिताः ॥ २५ ॥ धनधान्यसमृद्धाश्च सर्वधातुयुतास्तथा ॥ एतत्सर्वं कारयित्वा ब्राह्मणेभ्यस्तदा ददौ ॥ २६ ॥ एकैकशो दश दश ददौ धेनूः पयस्विनीः ॥ चत्वारिंशच्छतं प्रादाद् ग्रामाणां चतुराधिकम् ॥ २७ ॥ त्रैविद्यद्विजविप्रेभ्यो

ने ॥ २२ ॥ उन देवताओं के समीप कार्य का प्रारंभ किया पूर्व और बड़े पर्वत के समान चौतरा को बनाकर ॥ २३ ॥ उसके ऊपर उत्तम स्वरूपवाली अनेक बहिश्शाला व गृहशाला और ब्रह्मशालाओं को बनाया ॥ २४ ॥ जो कि घर की सामग्रियों से संयुत तथा खज़ानों से युक्त और करोड़ों अशर्फियों से पूर्ण व रस और वस्त्रादिकों से पूर्ण थे ॥ २५ ॥ और धन, धान्य से पूर्ण व सब धातुओं से संयुत थे इस सब को बनवाकर तब श्रीरामजी ने ब्राह्मणों के लिये देदिया ॥ २६ ॥ और एक एक ब्राह्मण को दश दश दूधवाली गाइयों को दिया व दशरथ के पुत्र श्रीरामजी ने त्रैविद्य ब्राह्मणों के लिये चार अधिक चार सौ ग्रामों को दिया जिस लिये

ब्रह्मा, विष्णु व महेश तीनों ने द्विजोत्तमों को स्थापित किया है ॥ २७ । २८ ॥ उसी कारण त्रैविद्य ऐसी प्रसिद्धि संसार में हुई ब्राह्मणों के लिये इस प्रकार का बड़ा अद्भुत दान देकर ॥ २९ ॥ उन श्रीरामनरेशजी ने अपना को कृतार्थ माना पहले ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से जो स्थापन किये गये थे ॥ ३० ॥ वे जीर्णोद्धार करने पर श्रीरामजी से पूजे गये और छत्तीस हज़ार जो गोभुज श्रेष्ठ वैश्य थे ने सेवा के लिये विष्णु व शिवादिक देवताओं से दिये गये और प्रसन्न शिवजी ने उनके लिये नौकरी दिया ॥ ३१ । ३२ ॥ और सफेद घोडे व चँवर दिये गये और निर्मल तलवार दीगई तब ब्राह्मणों की सेवा के लिये वे समझाये गये ॥ ३३ ॥ कि विवाहादिकों में सदैव

रामो दशरथात्मजः ॥ काजेशेन त्रयेणैव स्थापिता द्विजसत्तमाः ॥ २८ ॥ तस्मात्त्रयीविद्य इति ख्यातिर्लोके बभूव ह ॥ एवंविधं द्विजेभ्यः स दत्त्वा दानं महाद्भुतम् ॥ २९ ॥ आत्मानं चापि मेने स कृतकृत्यं नरेश्वरः ॥ ब्रह्मणा स्थापिताः पूर्वं विष्णुना शङ्करेण ये ॥ ३० ॥ ते पूजिता राघवेण जीर्णोद्धारे कृते सति ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि गोभुजा ये वणिग्वराः ॥ ३१ ॥ शुश्रूषार्थं प्रदत्ता वै देवैर्हरिहरादिभिः ॥ सन्तुष्टेन तु शर्वेण तेभ्यो दत्तं तु वेतनम् ॥ ३२ ॥ श्वेताश्वचामरौ दत्तौ खड्गं दत्तं सुनिर्मलम् ॥ तदा प्रबोधितास्ते च द्विजशुश्रूषणाय वै ॥ ३३ ॥ विवाहादौ सदा भाव्यं चामरैर्मङ्गलं वरम् ॥ खड्गं शुभं तदा धार्य्यं मम चिह्नं करे स्थितम् ॥ ३४ ॥ गुरुपूजा सदा कार्या कुलदेव्या पुनः पुनः ॥ वृद्ध्यागमेषु प्राप्तेषु वृद्धिदायकदक्षिणा ॥ ३५ ॥ एकादश्यां शनेर्वारे दानं देयं द्विजन्मने ॥ प्रदेयं बालवृद्धेभ्यो मम रामस्य शासनात् ॥ ३६ ॥ मण्डलेषु च ये शूद्रा वणिग्वृत्तिरताः पराः ॥ सपादलक्षास्ते दत्ता रामशासन

चँवर से उत्तम मंगल होना चाहिये और तब मेरे हाथ में स्थित चिह्न व उत्तम तलवार को धारण करना चाहिये ॥३४॥ और सदैव गुरुपूजन व कुलदेवी का पूजन बार २ करना चाहिये व वृद्धि आगमवाले कार्यों के प्राप्त होने पर वृद्धि देनेवाली दक्षिणा चाहिये ॥ ३५ ॥ और शनिवार एकादशी में ब्राह्मण के लिये दान देना चाहिये और मेरी रामजी की आज्ञा से बालकों व वृद्धों के लिये देना चाहिये ॥३६॥ और मंडलों में जो उत्तम शूद्र वैश्यों की जीविका में परायण थे श्रीरामजी की आज्ञा

के पालक वे सवालक्ष दिये गये ॥ ३७ ॥ वे मांडलीक राजा मंडलेश्वर जानने योग्य हैं व श्रीरामजी से श्रेष्ठ वैश्यलोग ब्राह्मणों की सेवा में दिये गये ॥ ३८ ॥ और श्रीरामजी ने दो चँवर व तलवार को दिया और प्रतिष्ठा की विधिपूर्वक कुल के स्वामी सूर्य को स्थापित किया ॥ ३९ ॥ और चारों वेदों से संयुत ब्रह्मा को स्थापित किया और श्रीमाता महाशक्ति व शून्य के स्वामी विष्णुजी को स्थापित किया ॥ ४० ॥ व विघ्नों के नाश के लिये दक्षिण द्वार पै टिके हुए गण को स्थापित किया और अन्य देवताओं को स्थापित किया ॥ ४१ ॥ और उन वीर श्रीरामजी ने सात भूमियोंवाले मन्दिरों को बनवाया जो कुछ मंगलरूप उत्तम कार्य को मनुष्य करता है॥४२॥

पालकाः ॥ ३७ ॥ माण्डलीकास्तु ते ज्ञेया राजानो मण्डलेश्वराः ॥ द्विजशुश्रूषणे दत्ता रामेण वणिजां वराः ॥ ३८ ॥ चामरद्वितयं रामो दत्तवान्खड्गमेव च ॥ कुलस्य स्वामिनं सूर्यं प्रतिष्ठाविधिपूर्वकम् ॥ ३९ ॥ ब्रह्माणं स्थापयामास चतुर्वेदसमन्वितम् ॥ श्रीमातरं महाशक्तिं शून्यस्वामिहरिं तथा ॥ ४० ॥ विघ्नापध्वंसनार्थाय दक्षिणद्वारसंस्थितम् ॥ गणं संस्थापयामास तथान्याश्चैव देवताः ॥ ४१ ॥ कारितास्तेन वीरेण प्रासादाः सप्तभूमिकाः ॥ यत्किञ्चित्कुरुते कार्यं शुभं माङ्गल्यरूपकम् ॥ ४२ ॥ पुत्रे जाते जातके वान्नाशने मुण्डनेऽपि वा ॥ लक्षहोमे कोटिहोमे तथा यज्ञक्रियासु च ॥ ४३ ॥ वास्तुपूजाग्रहशान्त्योः प्राप्ते चैव महोत्सवे ॥ यत्किञ्चित्कुरुते दानं द्रव्यं वा धान्यमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ वस्त्रं वा धेनवो नाथ हेम रूप्यं तथैव च ॥ विप्राणामथशूद्राणां दीनानाथान्धकेषु च ॥ ४५ ॥ प्रथमं वकुलार्कस्य श्रीमातुश्चैव मानवः ॥ भागं दद्याच्च निर्विघ्नकार्यसिद्ध्यै निरन्तरम् ॥ ४६ ॥ वचनं मे समुल्लंघ्य कुरुते योऽन्यथा नरः ॥

और पुत्र उत्पन्न होने पर जातक कर्म या अन्नप्राशन व मुंडन में भी और यज्ञ कार्यों में लक्ष होम व कोटि होम में ॥ ४३ ॥ और वास्तुपूजन व ग्रह की शांति में महोत्सव प्राप्त होने पर मनुष्य जिस किसी दान व द्रव्य और उत्तम धान्य को देता है ॥ ४४ ॥ व हे नाथ ! वस्त्र व गऊ और सुवर्ण व चांदी को जो ब्राह्मणों व शूद्रों तथा दीन, अनाथ और अन्धों के लिये देवै ॥ ४५ ॥ वह मनुष्य सदैव निर्विघ्न कार्य की सिद्धि के लिये पहले बकुलार्कजी को व श्रीमाताजी को भाग देवै ॥ ४६ ॥ व जो

मनुष्य मेरे वचन को उल्लंघन करके अन्यथा करता है उसके उस कर्म का विघ्न होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४७ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर श्रीरामजी ने प्रसन्न चित्त से देवताओं की बावली व किला की सामग्रियों से युक्त उत्तम प्राकारों (छहर दिवाली) को बनाया. और बड़े लंबे चौड़े गाव के भीतरी मार्गों को व कुंड और तडाग व छोटे तालाबों को बनाया ॥ ४८ । ४९ ॥ और धर्म बावली व देवताओं से रचित अन्य कूपों को बनाया सुन्दर धर्मारण्य में इस सब को विस्तार कर ॥ ५० ॥ फिर श्रीरामजी ने बड़ी श्रद्धा से मुख्य त्रैविद्य ब्राह्मणों के लिये दिया तांबे के पट्ट (तख्ते) में स्थित श्रीरामजी की आज्ञा को जो लोप करता है ॥ ५१ ॥ उसके पहले

तस्यतत्कर्मणो विघ्नं भविष्यति न संशयः ॥ ४७ ॥ एवमुक्त्वा ततो रामः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ देवानामथ वापीश्च प्राकारांस्तु सुशोभनान् ॥ ४८ ॥ दुर्गोपकरणैर्युक्तान्प्रतोलीश्च सुविस्तृताः ॥ निर्ममे चैव कुण्डानि सरांसि सरसीस्तथा ॥ ४९ ॥ धर्मवापीश्च कूपांश्च तथान्यान्देवनिर्मितान् ॥ एतत्सर्वं च विस्तार्य धर्मारण्ये मनोरमे ॥ ५० ॥ ददौ त्रैविद्यमुख्येभ्यः श्रद्धया परया पुनः ॥ ताम्रपट्टस्थितं रामशासनं लोपयेत्तु यः ॥ ५१ ॥ पूर्वजास्तस्य नरके पतन्त्यग्रे न सन्ततिः ॥ वायुपुत्रं समाहूय ततो रामोऽब्रवीद्वचः ॥ ५२ ॥ वायुपुत्र महावीर तव पूजा भविष्यति ॥ अस्य क्षेत्रस्य रक्षार्थे त्वमत्र स्थितिमाचर ॥ ५३ ॥ आञ्जनेयस्तु तद्वाक्यं प्रणम्य शिरसा दधौ ॥ जीर्णोद्धारं तदा कृत्वा कृतकृत्यो बभूव ह ॥ ५४ ॥ श्रीमातरं तदाभ्यर्च्य प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ श्रीमातरं नमस्कृत्य तीर्थान्यन्यानि राघवः ॥ ५५ ॥ तेऽपि देवाः स्वकं स्थानं ययुर्ब्रह्मपुरोगमाः ॥ ५६ ॥ दत्त्वाशिर्षं तु रामाय वाञ्छितं ते भविष्यति ॥

पैदा हुए पितर नरक में पडते हैं और आगे सन्तान नहीं होती है पवनपुत्र हनुमान्‌जी को बुलाकर तदनन्तर श्रीरामजी ने यह वचन कहा ॥ ५२ ॥ कि हे महावीर, पवनपुत्र ! तुम्हारी यहा पूजा होगी और इस क्षेत्र की रक्षा के लिये तुम यहां स्थिति को प्राप्त होवो ॥ ५३ ॥ अंजनीकुमार हनुमान्‌जी ने प्रणामकर उस वचन को मस्तक से धारण किया और उस समय जीर्णोद्धार करके श्रीरामजी कृतार्थ हुए ॥५४॥ व उस समय श्रीरघुनाथजी प्रसन्नचित्त से श्रीमाता को प्रणामकर व पूजकर अन्य तीर्थों को चलेगये ॥ ५५ ॥ और ब्रह्मा आदिक वे देवता भी तुम्हारा मनोरथ होगा श्रीरामजी के लिये इस आशीर्वाद को देकर अपने स्थान को चले गये हे राम ! तुम

ने ब्राह्मणों का सुन्दर स्थापनादिक कर्म किया ॥ ५६ । ५७ ॥ और तुम पुण्यवान् ने हमलोगों का भी स्नेह किया इस प्रकार स्तुति करते हुए देवता अपने स्थानों को चले गये ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां श्रीरामचन्द्रस्यपुरप्रत्यागमनवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ❀ ॥

दो० । धर्मारण्य द्विजन को दिय शासन जिमि राम। चौंतिसवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ व्यासजी बोले कि हे धर्मज्ञ ! पुरातन समय इस प्रकार श्रीरामजी ने ब्राह्मणों के हित के लिये श्रीमाता के वचन से जीर्णोद्धार किया है ॥ १ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! त्रेता में श्रीरामजी ने सत्यमन्दिर में कैसा शासन (शिक्षा)

रम्यं कृतं त्वया राम विप्राणां स्थापनादिकम् ॥ ५७ ॥ अस्माकमपि वात्सल्यं कृतं पुण्यवता त्वया ॥ इति स्तुवन्तस्ते देवाः स्वानि स्थानानि भेजिरे ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येश्रीरामचन्द्रस्यपुरप्रत्यागमनवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ एवं रामेण धर्मज्ञ जीर्णोद्धारः पुरा कृतः ॥ द्विजानां च हितार्थाय श्रीमातुर्वचनेन च ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कीदृशं शासनं ब्रह्मन् रामेण लिखितं पुरा ॥ कथयस्व प्रसादेन त्रेतायां सत्यमन्दिरे ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ धर्मारण्ये वरे दिव्ये बकुलार्के स्वधिष्ठिते ॥ शून्यस्वामिनि विप्रेन्द्र स्थिते नारायणे प्रभौ ॥ ३ ॥ रक्षणाधिपतौ देवे सर्वज्ञे गणनायके ॥ भवसागरमग्नानां तारिणी यत्र योगिनी ॥ ४ ॥ शासनं तत्र रामस्य राघवस्य च नामतः ॥ शृणु ताम्राश्रयं तत्र लिखितं धर्मशास्त्रतः ॥ ५ ॥ महाश्चर्यकरं तच्च ह्यनेकयुगसंस्थितम् ॥ सर्वो धातुः क्षयं

लिखा है उसको प्रसन्नता से कहिये ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि हे द्विजेन्द्र ! उत्तम व दिव्य धर्मारण्य में बकुलार्कजी के स्थित होनेपर व शून्यस्वामी नारायण प्रभु के स्थित होने पर ॥ ३ ॥ और सर्वज्ञ गणेशदेवजी के रक्षा के स्वामी होने पर संसाररूपी समुद्र में मग्न मनुष्यों के तारने के लिये जहां योगिनीजी हैं ॥ ४ ॥ वहां राघवजी के नाम से श्रीरामजी के शासन को सुनिये कि धर्मशास्त्र से ताम्रपत्र के आश्रय जो शासन लिखा गया है ॥ ५ ॥ अनेकों युगों से स्थित वह बड़ा भारी आश्चर्य

करनेवाला है सब धातु क्षय होती है और सुवर्ण नाश को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ व हे पुत्र ! द्विजशासन प्रत्यक्ष अक्षय देख पड़ता है और वहां ताँबे के नाश न होनेवाला कारण विद्यमान है ॥ ७ ॥ हे भारत ! जिस लिये विष्णुही सब वेदोक्त कहे जाते हैं व पुराणों में और वेदों तथा धर्मशास्त्रों में ॥ ८ ॥ अनेक प्रकार के भावों में आश्रित विष्णुजी सब कहीं गाये जाते हैं और अनेक प्रकार के देशों व धर्मों में अनेक भांति के धर्मों को सेवनेवाले मनुष्यों से ॥ ९ ॥ अनेक प्रकार के भेदों से सर्वत्र जो विष्णुही ध्यान किये जाते हैं वे ही साक्षात् पुराण पुरुषोत्तम विष्णुजी अवतार करते भये हैं ॥ १० ॥ हे पुत्र ! उन्हों ने देवताओं के वैरियों के नाश के लिये व

याति सुवर्णं क्षयमेति च ॥ ६ ॥ प्रत्यक्षं दृश्यते पुत्र द्विजशासनमक्षयम् ॥ अविनाशो हि ताम्रस्य कारणं तत्र विद्यते ॥ ७ ॥ वेदोक्तं सकलं यस्माद्विष्णुरेव हि कथ्यते ॥ पुराणेषु च वेदेषु धर्मशास्त्रेषु भारत ॥ ८ ॥ सर्वत्र गीयते विष्णुर्नानाभावसमाश्रयः ॥ नानादेशेषु धर्मेषु नानाधर्मनिषेविभिः ॥ ९ ॥ नानाभेदैस्तु सर्वत्र विष्णुरेवेति चिन्त्यते ॥ अवतीर्णः स वै साक्षात्पुराणपुरुषोत्तमः ॥ १० ॥ देववैरिविनाशाय धर्मसंरक्षणाय च ॥ तेनेदं शासनं दत्तमविनाशात्मकं सुत ॥ ११ ॥ यस्य प्रतापाद्दृषदस्तारिता जलमध्यतः ॥ वानरैर्वेष्टिता लङ्का हेलया राक्षसा हताः ॥ १२ ॥ मुनिपुत्रं मृतं रामो यमलोकादुपानयत् ॥ दुन्दुभिर्निहतो येन कबन्धोऽभिहतस्तथा ॥ १३ ॥ निहता ताडका चैव सप्ततालाविभेदिताः ॥ खरश्च दूषणश्चैव त्रिशिराश्च महासुरः ॥ १४ ॥ चतुर्दशसहस्राणि जवेन निहता रणे ॥ तेनेदं शासनं दत्तमक्षयं न कथं भवेत् ॥ १५ ॥ स्ववंशवर्णनं तत्र लिखित्वा स्वयमेव तु ॥ देशकालादिकं सर्वं लिलेख विधिपूर्वं

धर्म की रक्षा के लिये इस अविनाशी शासन को दिया है ॥ ११ ॥ जिन के प्रताप से पत्थर जल के मध्य में ऊपर प्राप्त हुए और वानरों से लंका घेरी गई व हेला से राक्षस मारे गये ॥ १२ ॥ और मरे हुए मुनिपुत्र को श्रीरामजी यमलोक से ले आये और जिन्होंने कबंध को मारा व दुन्दुभि को नाश किया ॥ १३ ॥ और जिन्होंने ताड़का राक्षसी को मारा व सात ताल वृक्षों को काट डाला और खर, दूषण व त्रिशिरा महादैत्य को जिन्हों ने मारा ॥ १४ ॥ और युद्ध में चौदह हज़ार राक्षस वेग से मारेगये उन्हों ने यह अक्षय शासन दिया है वह कैसे न होवै ॥ १५ ॥ उसमें आपही श्रीरामजी ने अपने वंश का वर्णन लिखकर विधिपूर्वक सब देश काला-

दिक लिखा ॥ १६ ॥ और वहां अपनी छाप से चिह्नित उस लेख को त्रैविद्य ब्राह्मणों के लिये चवालीस वर्ष के दशरथकुमार श्रीरामजी ने दिया ॥ १७ ॥ व हे भारत ! उसी समय में बड़ा भारी आश्चर्य दिया गया कि वहां सुवर्ण के समान व चांदी के समान ॥ १८ ॥ देवता, ऋषि व पितरों की तृप्तिदायक जल को श्रीरामजी ने तीर्थ में प्राप्त किया और अपने वंश के स्वामी श्रीरामजी के आगे सूर्य ने उसको किया ॥ १९ ॥ उस बड़े भारी आश्चर्य को देखकर पवित्र श्रीरामजी ने विष्णुजी को पूजकर विद्यामयी त्रयी को देकर ब्रह्म में मन को लगाया व रामजी के विचित्र लेखों से धर्म की आज्ञा लिखी गई ॥ २० ॥ जिसको देखकर जिस लिये सब

कम् ॥ १६ ॥ स्वमुद्राचिह्नितं तत्र त्रैविद्येभ्यस्तथा ददौ ॥ चतुश्चत्वारिंशवर्षो रामो दशरथात्मजः ॥ १७ ॥ तस्मिन्काले महाश्चर्यं संदत्तं किल भारत ॥ तत्र स्वर्णोपमं चापि रौप्योपममथापि च ॥ १८ ॥ उवाह सलिलं तीर्थे देवर्षिपितृतृप्तिदम् ॥ स्ववंशनायकस्याग्रे सूर्येण कृतमेव तत् ॥ १९ ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं रामो विष्णुं प्रपूज्य च ॥ त्रयीं विद्यामयीं दत्त्वा ब्रह्मार्पणमनाः शुचिः ॥ रामलेखविचित्रैस्तु लिखितं धर्मशासनम् ॥ २० ॥ यद्दृष्ट्वाथ द्विजाः सर्वे संसारभयबन्धनम् ॥ कुर्वते नैव यस्माच्च तस्मान्निखिलरक्षकम् ॥ २१ ॥ ये पापिष्ठा दुराचारा मित्रद्रोहरताश्च ये ॥ तेषां प्रबोधनार्थाय प्रसिद्धिमकरोत्पुरा ॥ २२ ॥ रामलेखविचित्रैस्तु विचित्रे ताम्रपट्टके ॥ वाक्यानीमानि श्रूयन्ते शासने किल नारद ॥ २३ ॥ आस्फोटयन्ति पितरः कथयन्ति पितामहाः ॥ भूमिदोऽस्मत्कुले जातः सोऽस्मान्सन्तारयिष्यति ॥ २४ ॥ बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः पृथिवी त्वियम् ॥ यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥ २५ ॥ षष्टिवर्ष

ब्राह्मण संसार के भय के बंधन को नहीं करते हैं उसी कारण वह सबों का रक्षक है ॥ २१ ॥ और जो पापी व दुराचारी और जो मित्र के द्रोह में परायण हैं उन के ज्ञान के लिये प्राचीन समय में उन्हों ने प्रसिद्धि किया है ॥ २२ ॥ हे नारद ! रामजी के विचित्र लेखों से विचित्र ताम्रपट्ट में शिक्षा में ये वचन सुन पड़ते हैं ॥ २३ ॥ कि पितर गरजते हैं व पितामह यह कहते हैं कि जो भूमिदायक हमारे वंश में पैदा होगा वह हमलोगों को तारैगा ॥ २४ ॥ बहुत से राजाओं ने द्रव्य को धारनेवाली इस पृथ्वी को भोग किया है जब जिस जिस की पृथ्वी होती है तब उस उस को फल होता है ॥ २५ ॥ और पृथ्वी को देनेवाला मनुष्य साठ हज़ार वर्ष तक

स्वर्ग मे बसता है और मना करनेवाला व उसको अनुमोदन करनेवाला उन्हीं साठ हजार वर्षों तक नरक को जाता है ॥ २६ ॥ और मुद्गरों से मार कर संगसियों से क्लेशित व फँसरियों से बांधा जाता हुआ वह बड़े भारी शब्द से रोता है ॥ २७ ॥ और दंडों से मस्तक में मारा हुआ व छुरी से काटा जाता हुआ वह अग्नि को लिपट कर बडे शब्द से रोता है ॥ २८ ॥ और ब्राह्मण की जीविका को हरनेवाले उन पुरुषों को ऐसे बड़े दुष्ट महागण यमदूतलोग पीडित करते हैं ॥ २९ ॥ तदनन्तर वह पशु या पक्षी की योनि को पाता है या राक्षसी व कुत्ते की योनि को प्राप्त होता है अथवा बड़े प्राणियों को भी भय-करनेवाली सर्प, सियार व पिशाच की योनि

सहस्राणि स्वर्गे वसति भूमिदः ॥ आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरकं व्रजेत् ॥ २६ ॥ सन्दंशैस्तुद्यमानस्तु मुद्गरैर्विनिहत्य च ॥ पाशैः सुवध्यमानस्तु रोरवीति महास्वरम् ॥ २७ ॥ ताड्यमानः शिरे दण्डैः समालिङ्ग्य विभावसुम् ॥ छिद्यमानः क्षुरिकया रोरवीति महास्वनम् ॥ २८ ॥ यमदूतैर्महाघोरैर्ब्रह्मवृत्तिविलोपकाः ॥ एवंविधैर्महादुष्टैः पीड्यन्ते ते महागणैः ॥ २९ ॥ ततस्तिर्यक्त्वमाप्नोति योनिं वा राक्षसीं शुनीम् ॥ व्यालीं शृगालीं पैशाचीं महाभूतभयङ्करीम् ॥ ३० ॥ भूमेरङ्गुलहर्त्ता हि स कथं पापमाचरेत् ॥ भूमेरङ्गुलदाता च स कथं पुण्यमाचरेत् ॥ ३१ ॥ अश्वमेधसहस्राणां राजसूयशतस्य च ॥ कन्याशतप्रदानस्य फलं प्राप्नोति भूमिदः ॥ ३२ ॥ आयुर्यशः सुखं प्रज्ञा धर्मो धान्यं धनं जयः ॥ सन्तानं वर्द्धते नित्यं भूमिदः सुखमश्नुते ॥ ३३ ॥ भूमेरङ्गुलमेकं तु ये हरन्ति खला नराः ॥ विन्ध्याटवीष्वतोयासु शुष्ककोटरवासिनः ॥ कृष्णसर्पाः प्रजायन्ते दत्तदायापहारकाः ॥ ३४ ॥ तडागानां सहस्रेण

को प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ और जो अंगुल भर पृथ्वी को हरता है वह क्यों पाप करता है व अंगुल भर पृथ्वी को जो देता है वह क्यों पुण्य करता है ॥ ३१ ॥ क्यों कि पृथ्वी को देनेवाला मनुष्य हज़ार अश्वमेध व सौ राजसूय और सौ कन्यादान के फल को पाता है ॥ ३२ ॥ और आयुर्बल, यश, सुख, बुद्धि, धर्म, धान्य, धन, जय व सन्तान सदैव बढ़ती हैं और पृथ्वी को देनेवाला मनुष्य सुख को पाता है ॥ ३३ ॥ और जो दुष्ट मनुष्य पृथ्वी का एक अंगुल हरते हैं वे बिन जलवाले विन्ध्याचल के वनों में व सूखे वृक्षों के खोड़रों में बसते हैं और दिये हुए धन को हरनेवाले मनुष्य काले साप होते हैं ॥ ३४ ॥ और हज़ार तड़ाग व सौ अश्वमेध

तथा करोड़ गौवों के देने से पृथ्वी को हरनेवाला मनुष्य पवित्र होता है॥ ३५॥ इस संसार में उदारता से जो धर्म; अर्थ व यश को करनेवाले धन दान दिये गये फिर ब्राह्मण को दिये हुए उनको कौन सज्जन पुरुष ले लेता है ॥ ३६ ॥ सब संसार के सुखवाले और तिनुका के अणु प्रमाण भर छोटे सारांशवाले इस मेघों के समान चलायमान जीवलोक में जो दुष्ट आशावाला पुरुष ब्राह्मणों की जीविका को हरता है वह कठिन नरककुंड के भँवर में गिरने का उत्कंठित होताहै॥ ३७॥ जो राजालोग इस पृथ्वी को पालन करैंगे वे सब पृथ्वी को भोगकर चलेजावैंगे परन्तु किसी के साथ भी पृथ्वी न गई है न जाती है न जावैगी और जो कुछ पृथ्वी में है वह सब

अश्वमेधशतेन वा ॥ गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्त्ता विशुध्यति ॥ ३५ ॥ यानीह दत्तानि पुनर्धनानि दानानि धर्मार्थयशस्कराणि ॥ औदार्यतो विप्रनिवेदितानि को नाम साधुः पुनराददीत ॥ ३६ ॥ इह हि जलदलीलाचञ्चले जीवलोके तृणलवलघुसारे सर्वसंसारसौख्ये ॥ अपहरति दुराशः शासनं ब्राह्मणानां नरकगहनगर्त्तावर्तपातोत्सुकोयः ॥ ३७ ॥ ये पास्यन्ति महीभुजः क्षितिमिमां यास्यन्ति भुक्त्वाखिलां नो याता न तु याति यास्यति न वा केनापि सार्द्धं धरा ॥ यत्किञ्चिद्भुवि तद्विनाशि सकलं कीर्तिः परं स्थायिनी त्वेवं वै वसुधापि यैरुपकृता लोप्या न सत्कीर्तयः ॥ ३८ ॥ एकैव भगिनी लोके सर्वेषामेव भूभुजाम् ॥ न भोज्या न करग्राह्या विप्रदत्ता वसुंधरा ॥ ३९ ॥ दत्त्वा भूमिं भाविनः पार्थिवेशान्भूयो भूयो याचते रामचन्द्रः॥सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नृपाणां स्वे स्वे काले पालनीयो भवद्भिः॥४०॥ अस्मिन्वंशे क्षितौ कोपि राजा यदि भविष्यति ॥ तस्याहं करलग्नोस्मि मद्दत्तं यदि पाल्यते ॥ ४१ ॥ लिखित्वा

नाशवान् है परन्तु यश स्थित होनेवाला है ऐसेही जिसने पृथ्वी को दिया है उसके उत्तम यश नाश नहीं होते हैं ॥ ३८ ॥ संसार में सब राजाओं की एकही बहन है याने ब्राह्मण को दीहुई पृथ्वी न भोग करने योग्य है और न हाथ पकड़ने के योग्य है ॥ ३९ ॥ पृथ्वी को देकर होनेवाले राजाओं से रामचन्द्रजी बार २ प्रार्थना करते हैं कि राजाओं का यह साधारण धर्मसेतु आपलोगों से अपने अपने समय में पालन करने योग्य है ॥ ४० ॥ यदि मेरा दिया हुआ पालन किया जाता है तो पृथ्वी में यदि इस वंश में कोई भी राजा होगा तो उसके हाथ में मैं प्राप्त हूंगा ॥ ४१ ॥ इस शासन (शिक्षा) को लिखकर बुद्धिमान् श्रीमान्जी ने वसिष्ठजी के सामने

चतुर्वेदी द्विजोत्तमों को पूजकर दे दिया ॥ ४२ ॥ और उन ब्राह्मणों ने सुवर्ण के अक्षरों से संयुत व धर्मभूषण उस धर्मसंयुत उत्तम ताँबे के पट्ट को लेकर ॥ ४३ ॥ पूजन के लिये भक्ति की इच्छावाले उन्हों ने उसकी रक्षा किया और दिव्यचंदन व सुगंधित पुष्प से ॥ ४४ ॥ और सोने के पुष्प व चादी के पुष्प से वे ब्राह्मण प्रतिदिन उत्तम पूजन करनेलगे ॥ ४५ ॥ व हे राजन् ! निर्मल घी से संयुत व सात बत्तियों से युक्त दीपक को उसके आगे ब्राह्मणलोग अर्घ्य करते हैं ॥ ४६ ॥ व भक्तिपूर्वक ब्राह्मण लोग नित्य नैवेद्य करते हैं और राम, राम व राम ऐसा मंत्र कहते हैं ॥ ४७ ॥ और भोजन, शयन, जलपान, गमन व आसन और सुख या दुःख में जो राम-

शासनं रामश्चातुर्वेद्यद्विजोत्तमान् ॥ सम्पूज्य प्रददौ धीमान्वसिष्ठस्य च सन्निधौ ॥ ४२ ॥ ते वाडवा गृहीत्वा तं पट्टं रामाज्ञया शुभम् ॥ ताम्रं हैमाक्षरयुतं धर्म्यं धर्मविभूषणम् ॥ ४३ ॥ पूजार्थं भक्तिकामार्थास्तद्रक्षणमकुर्वत ॥ चन्दनेन च दिव्येन पुष्पेण च सुगन्धिना ॥ ४४ ॥ तथा सुवर्णपुष्पेण रूप्यपुष्पेण वा पुनः ॥ अहन्यहनि पूजां ते कुर्वते वाडवाः शुभाम् ॥ ४५ ॥ तदग्रे दीपकं चैव घृतेन विमलेन हि ॥ सप्तवर्तियुतं राजन्नर्घ्यं प्रकुर्वते द्विजाः ॥४६॥ नैवेद्यं कुर्वते नित्यं भक्तिपूर्वं द्विजोत्तमाः ॥ रामरामेति रामेति मन्त्रमप्युच्चरन्ति हि ॥ ४७ ॥ अशने शयने पाने गमने चोपवेशने ॥ सुखे वाप्यथवा दुःखे राममन्त्रं समुच्चरेत् ॥ ४८ ॥ न तस्य दुःखदौर्भाग्यं नाधिव्याधिभयं भवेत् ॥ आयुः श्रियं बलं तस्य वर्द्धयन्ति दिने दिने ॥ ४९ ॥ रामेति नाम्ना मुच्येत पापाद्वै दारुणादपि ॥ नरकं नहि गच्छेत गतिं प्राप्नोति शाश्वतीम् ॥ ५० ॥ व्यास उवाच ॥ इति कृत्वा ततो रामः कृतकृत्यममन्यत ॥ प्रदक्षिणीकृत्य तदा प्रणम्य च द्विजान्बहून् ॥ ५१ ॥ दत्त्वा दानं भूरितरं गवाश्वमहिषीरथम् ॥ ततः सर्वान्निजांस्तांश्च वाक्यमे

मन्त्र को कहता है ॥ ४८ ॥ उसको दुःख, दुर्भाग्यता व आधि, व्याधि का डर नहीं होता है व प्रतिदिन उसका आयुर्बल, लक्ष्मी व पराक्रम बढ़ता है ॥ ४९ ॥ और राम ऐसे नाम से मनुष्य कठिन पाप से भी छूटजाता है और नरक को नहीं जाता है व अविनाशिनी गति को पाता है ॥ ५० ॥ ऐसा करके तदनन्तर श्रीरामजी ने कृतार्थ माना और उस समय बहुत से ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा कर व प्रणाम करके ॥ ५१ ॥ गऊ, घोड़े, भैंसी व रथ बहुत सा दान देकर तदनन्तर श्रीरामजी ने

उन सब अपने ब्राह्मणों मे यह वचन कहा ॥ ५२ ॥ कि जब तक चन्द्रमा व सूर्य रहैं तबतक तुम सबों को यहां टिकना चाहिये और जबतक पृथ्वी में सुमेरु व सातों समुद्र रहैं ॥ ५३ ॥ तबतक निस्सन्देह आपलोगों को यहीं टिकना चाहिये व हे ब्राह्मणो ! पृथ्वी में जब राजालोग मेरी शिक्षा को न मानैं ॥ ५४ ॥ अथवा गर्व व माया से मोहित वे वणिज् व शूद्रलोग मेरी आज्ञा को न करैं ॥ ५५ ॥ तब हे ब्राह्मणो ! तुमलोग पवनपुत्र हनुमान्जी को स्मरण कीजियेगा क्योंकि स्मरण किये हुए हनुमान्जी आकर मेरे वचन से यकायक उनको भस्म करैंगे यह निस्सन्देह सत्य है और जो राजा मेरी इस सुन्दरी शिक्षा को पालैगा ॥ ५६ । ५७ ॥ पवनपुत्र

तदुवाचह ॥ ५२ ॥ अत्रैव स्थीयतां सर्वैर्यावचन्द्रदिवाकरौ ॥ यावन्मेरुर्महीपृष्ठे सागराः सप्त एव च ॥ ५३ ॥ तावदत्रैव स्थातव्यं भवद्भिर्हि न संशयः ॥ यदाहि शासनं विप्रा न मन्यन्ते नृपा भुवि ॥ ५४ ॥ अथवा वणिजः शूद्रा मदमायाविमोहिताः ॥ मदाज्ञां न प्रकुर्वन्ति मन्यन्ते वा न ते जनाः ॥ ५५ ॥ तदा वै वायुपुत्रस्य स्मरणं क्रियतां द्विजाः ॥ स्मृतमात्रो हनूमान्वै समागत्य करिष्यति ॥ ५६ ॥ सहसा भस्म तान्सत्यं वचनान्मे न संशयः ॥ य इदं शासनं रम्यं पालयिष्यति भूपतिः ॥ ५७ ॥ वायुपुत्रः सदा तस्य सौख्यमृद्धिं प्रदास्यति ॥ ददाति पुत्रान्पौत्रांश्च साध्वीं पत्नीं यशो जयम् ॥ ५८ ॥ इत्येवं कथयित्वा च हनुमन्तं प्रबोध्य च ॥ निर्वर्तितो रामदेवःससैन्यः सपरिच्छदः ॥ ५९ ॥ वादित्राणां स्वनैर्विष्वक्सूच्यमानशुभागमः ॥ श्वेतातपत्रयुक्तोऽसौ चामरैर्वीजितो नरैः ॥ अयोध्यां नगरीं प्राप्य चिरं राज्यं चकार ह ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येब्रह्मनारदसंवादेश्रीरामेणब्राह्मणेभ्यः शासनपट्टप्रदानवर्णनंनामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥

हनुमान्जी सदैव उसको सुख व ऐश्वर्य देवैंगे और पुत्रों व पौत्रों को तथा पतिव्रता स्त्री और यश व जीत को देवैंगे ॥ ५८ ॥ यह कहकर वे हनुमान्जी को समझाकर सेना समेत व सामान समेत श्रीरामजी लौट आये ॥ ५९ ॥ सब ओर बाजनों के शब्दों से सूचित उत्तम आगमनवाले ये सफ़ेद छत्र से संयुत व मनुष्यों से वीजित श्रीरामजी ने अयोध्या नगरी को प्राप्त होकर बहुत दिनों तक राज्य किया ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां ब्रह्मनारदसंवादेश्रीरामेणब्राह्मणेभ्यः शासनपट्टप्रदानवर्णनंनामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । धर्मारण्यक्षेत्र में कियो यज्ञ श्रीराम । पैंतिसवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ नारदजी बोले कि हे सृष्टिसंहारकारक, देवदेवेश, भगवन् ! गुणों से रहित व गुणों से युक्त तथा मुक्तियों के उत्तम साधनरूप ॥ १ ॥ रघुनाथजी विधिपूर्वक सत्यमंदिर में द्विजोत्तमों को थापकर फिर जब अयोध्यापुरी में गये तब उन्हों ने क्या किया है ॥ २ ॥ और वहां अपने स्थान में ब्राह्मणों ने किन कर्मों को किया है ब्रह्माजी बोले कि इष्टापूर्तकर्मों में लगे हुए वे शांत ब्राह्मण दान से विमुख हुए ॥ ३ ॥ और द्विजोत्तम वसिष्ठ पुरोहित ने इस वन की राज्य किया और श्रीरामजी के आगे उत्तम तीर्थ का माहात्म्य कहा ॥ ४ ॥ और प्रयाग का माहात्म्य व त्रिवेणी का उत्तम

नारद उवाच ॥ भगवन्देवदेवेश सृष्टिसंहारकारक ॥ गुणातीतो गुणैर्युक्तो मुक्तीनां साधनं परम् ॥ १ ॥ संस्थाप्य वेदभवनं विधिवद् द्विजसत्तमान् ॥ किं चक्रे रघुनाथस्तु भूयोऽयोध्यां गतस्तदा ॥ २ ॥ स्वस्थाने ब्राह्मणास्तत्र कानि कर्माणि चक्रिरे ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इष्टापूर्तरताः शान्ताः प्रतिग्रहपराङ्मुखाः ॥ ३ ॥ राज्यं चक्रुर्वनस्यास्य पुरोधा द्विजसत्तमः ॥ उवाच रामपुरतस्तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४ ॥ प्रयागस्य च माहात्म्यं त्रिवेणीफलमुत्तमम् ॥ प्रयागतीर्थमहिमा शुक्लतीर्थस्य चैव हि ॥ ५ ॥ सिद्धक्षेत्रस्य काश्याश्च गङ्गाया महिमा तथा ॥ वसिष्ठः कथयामास तीर्थान्यन्यानि नारद ॥ ६ ॥ धर्मारण्ये सुवर्णाया हरिक्षेत्रस्य तस्य च ॥ स्नानदानादिकं सर्वं वाराणस्या यवाधिकम् ॥ ७ ॥ एतच्छ्रुत्वा रामदेवः स चमत्कृतमानसः ॥ धर्मारण्ये पुनर्यात्रां कर्त्तुकामः समभ्यगात् ॥ ८ ॥ सीतया सह धर्मज्ञो गुरुसैन्यपुरःसरः ॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा भरतेन सहायवान् ॥ ९ ॥ शत्रुघ्नेन परिवृतो गतो मोहेरके पुरे ॥ तत्र गत्वा

फल कहा और प्रयागतीर्थ की महिमा व शुक्लतीर्थ की महिमा को उन्हों ने कहा ॥ ५ ॥ व हे नारद ! सिद्ध क्षेत्र की महिमा व काशी और गंगा की महिमा और अन्य तीर्थों को वसिष्ठजी ने कहा ॥ ६ ॥ और धर्मारण्य में सुवर्णा नदी व इस हरिक्षेत्र के सब स्नान दानादिक को कहा और काशी से यव भर अधिक धर्मारण्य को कहा ॥ ७ ॥ इस वचन को सुनकर चमत्कृत मनवाले वे श्रीरामजी फिर धर्मारण्य में तीर्थयात्रा करने के लिये गये ॥ ८ ॥ और सीता समेत बड़ी भारी सेना अग्रगामीवाले धर्मज्ञ व भरत सहायवाले श्रीरामजी लक्ष्मण भाई समेत ॥ ९ ॥ शत्रुघ्न से घिरकर मोहेरक पुर में गये और वहां जाकर ये उदार मनवाले श्रीरामजी

वसिष्ठजी से पूछने लगे ॥ १० ॥ श्रीरामजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! धर्मारण्य महाक्षेत्र में क्या दान, नियम, स्नान व उत्तम तप करना चाहिये ॥ ११ ॥ और ध्यान, यज्ञ, होम व उत्तम जप, दान, नियम, स्नान व कौन उत्तम तप करना चाहिये ॥ १२ ॥ हे द्विजोत्तम ! इस तीर्थ में जिसके करने से मनुष्य ब्रह्महत्यादिक पापों से छूट जाता है उसको मुझ से कहिये ॥ १३ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे महाभाग ! तुम प्रतिदिन कोटि गुने उत्तम यज्ञ को सौ बरस तक कीजिये ॥ १४ ॥ गुरु से उसको सुनकर उन श्रीरामजी ने यज्ञ का प्रारंभ किया और उस समय में श्रीरामजी से सीताजी ने हर्ष से कहा ॥ १५ ॥ कि हे स्वामिन् ! तुम ने पहले

वसिष्ठं तु पृच्छतेऽसौ महामनाः ॥ १० ॥ राम उवाच ॥ धर्मारण्ये महाक्षेत्रे किं कर्त्तव्यं द्विजोत्तम ॥ दानं वा नियमो वाथ स्नानं वा तप उत्तमम् ॥११॥ ध्यानं वाथ क्रतुं वाथ होमं वा जपमुत्तमम् ॥ दानं वा नियमं वाथ स्नानं वा तप उत्तमम् ॥ १२ ॥ येन वै क्रियमाणेन तीर्थेऽस्मिन्द्विजसत्तम ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते तद्ब्रवीहि मे ॥ १३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ यज्ञं कुरु महाभाग धर्मारण्ये त्वमुत्तमम् ॥ दिनेदिने कोटिगुणं यावद्वर्षशतं भवेत् ॥ १४ ॥ तच्छ्रुत्वा चैव गुरुतो यज्ञारम्भं चकार सः॥ तस्मिन्नवसरे सीता रामं व्यज्ञापयन्मुदा ॥ १५ ॥ स्वामिन्पूर्वं त्वया विप्रा वृता ये वेदपारगाः ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशेन निर्मिता ये पुरा द्विजाः ॥ १६ ॥ कृते त्रेतायुगे चैव धर्मारण्यनिवासिनः ॥ विप्रांस्तान्वै वृणुष्व त्वं तैरेव सार्थकोऽध्वरः ॥ १७ ॥ तच्छ्रुत्वा रामदेवेन आहूता ब्राह्मणास्तदा ॥ स्थापिताश्च यथापूर्वमस्मिन्मोहेरके पुरे ॥ १८ ॥ तैस्त्वष्टादशसंख्याकैस्त्रैविद्यैर्मोहिवाडवैः ॥ यज्ञं चकार विधिवत्तैरेवायतबुद्धिभिः ॥ १९ ॥

जिन वेदों के पारगामी ब्राह्मणों को वरण किया था और जो ब्राह्मण पुरातन समय ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से बनाये गये हैं ॥ १६ ॥ सतयुग व त्रेतायुग में धर्मारण्य में बसनेवाले उन ब्राह्मणों को तुम वरण करो क्योंकि उन्हीं से यज्ञ सार्थक होगा ॥ १७ ॥ उसको सुनकर श्रीरामदेवजी ने उस समय ब्राह्मणों को बुलाया और इस मोहेरक पुर में पहले की नाईं स्थापित किया ॥ १८ ॥ और विशाल बुद्धिवाले उन अठारह संख्यक त्रैविद्य मोहेरकपुर निवासी ब्राह्मणों से उन्होंने यज्ञ किया ॥ १९ ॥

कुशिक, कौशिक, वत्स, उपमन्यु,काश्यप, कृष्णात्रेय, भरद्वाज, धारिण व श्रेष्ठ शौनकजी ॥ २० ॥ और मांडव्य, भार्गव,पैंग्य,वात्स्य, लौगाक्ष, गांगायन, गांगेय, शुनक व शौनकजी ने यज्ञ कराया ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि इन ब्राह्मणों से राजा श्रीरामजी ने विधिपूर्वक यज्ञ को समाप्तकर ब्राह्मणों को भक्ति से पूजकर अवभृथ (यज्ञान्त स्नान) किया ॥ २२ ॥ और यज्ञ के अन्तमें बहुतही नम्र सीताजी ने श्रीरामजी से विनय किया कि हे सुव्रत ! इस यज्ञ की सिद्धि में दक्षिणाको दीजिये ॥ २३ ॥ और मेरे नाम से वहां शीघ्रही नगर को स्थापन कीजिये सीताजी का वचन सुनकर श्रीरामजी ने वैसाही किया ॥ २४ ॥ और सीताजी की प्रसन्नता के लिये श्रीरामराजा ने

कुशिकः कौशिको वत्स उपमन्युश्च काश्यपः ॥ कृष्णात्रेयो भरद्वाजो धारिणः शौनको वरः ॥ २० ॥ माण्डव्यो भार्गवः पैङ्ग्यो वात्स्यो लौगाक्ष एव च ॥ गाङ्गायनोथ गाङ्गेयः शुनकः शौनकस्तथा ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एभिर्विप्रैः क्रतुं रामः समाप्य विधिवन्नृपः ॥ चकारावभृथं रामो विप्रान्सम्पूज्य भक्तितः ॥ २२ ॥ यज्ञान्ते सीतया रामो विज्ञप्तः सुविनीतया ॥ अस्याध्वरस्य सम्पत्तौ दक्षिणां देहि सुव्रत ॥ २३ ॥ मन्नाम्ना च पुरं तत्र स्थाप्यतां शीघ्रमेव च ॥ सीताया वचनं श्रुत्वा तथा चक्रे नृपोत्तमः ॥ २४ ॥ तेषां च ब्राह्मणानां च स्थानमेकं सुनिर्भयम् ॥ दत्तं रामेण सीतायाः सन्तोषाय महीभृता ॥ २५ ॥ सीतापुरमिति ख्यातं नाम चक्रे तदा किल ॥ तस्याधिदेव्यौ वर्त्तेते शान्ता चैव सुमङ्गला ॥ २६ ॥ मोहेरकस्य पुरतो ग्रामद्वादशकं पुरः ॥ ददौ विप्राय विदुषे समुत्थाय प्रहर्षितः ॥ २७ ॥ तीर्थान्तरं जगामाशु काश्यपीसरितस्तटे ॥ वाडवाः केऽपि नीतास्ते रामेण सह धर्मवित् ॥ २८ ॥ धर्मालये गतः सद्यो यत्र मूलार्क

उन ब्राह्मणों को एक निडर स्थान दिया ॥ २५ ॥ व तब उन्हों ने उसका सीतापुर ऐसा प्रसिद्ध नाम किया और उस नगर की शांता व मंगला ये दो अधिदेवियां वर्तमान हैं ॥ २६ ॥ और मोहेरक नगर के आगे बारह ग्रामों को प्रसन्न होतेहुए श्रीरामजी ने उठकर विद्वान् ब्राह्मण के लिये दिया ॥ २७ ॥ व हे धर्मवित् ! श्रीरामजी काश्यपी नदी के किनारे शीघ्रही अन्य तीर्थ को गये और श्रीरामजी साथही कितेक ब्राह्मणों को भी ले आये ॥ २८ ॥ और शीघ्रही धर्मालय में गये जहां कि मूलार्क

जीका मण्डप है व हे मुने ! जहां पहले धर्मराज ने बड़ाभारी तप किया है ॥ २९ ॥ तबसे लगाकर वह धर्मालय ऐसा प्रसिद्ध स्थान विख्यात हुआ और वहां दशरथ-
कुमार श्रीरामजी ने सोलह महादानों को दिया ॥ ३० ॥ और उस समय सीतापुर समेत जो सत्यमन्दिर तक पचास ग्राम थे उनको रघुनाथजी ने ॥ ३१ ॥ सीताजी
के वचन से व गुरु के वचन से अपने वंश की वृद्धि के लिये व सब प्रयोजनों की सिद्धि के लिये दिया ॥ ३२ ॥ वहां अठारह हज़ार ब्राह्मणों का वंश हुआ है वात्स्या-
यन, उपमन्यु, जातूकर्ण्य व पिंगल ॥ ३३ ॥ व भारद्वाज, वत्स, कौशिक, कुश, शाण्डिल्य, कश्यप, गौतम व छांधन ॥ ३४ ॥ कृष्णात्रेय, वत्स, वसिष्ठ, धारण,

मण्डपः ॥ पुरा धर्मेण सुमहत्कृतं यत्र तपो मुने ॥ २९ ॥ तदारभ्य सुविख्यातं धर्मालयमिति श्रुतम् ॥ ददौ दाशर
थिस्तत्र महादानानि षोडश ॥ ३० ॥ ये पञ्चाशत्तदा ग्रामाः सीतापुरसमन्विताः ॥ सत्यमन्दिरपर्यन्ता रघुनाथेन
वै तदा ॥ ३१ ॥ सीताया वचनात्तत्र गुरुवाक्येन चैव हि ॥ आत्मनो वंशवृद्ध्यर्थं दत्तास्सर्वार्थसिद्धये ॥ ३२ ॥ अष्टादश
सहस्राणां द्विजानामभवत्कुलम् ॥ वात्स्यायन उपमन्युर्जातूकर्ण्योऽथ पिङ्गलः ॥ ३३ ॥ भारद्वाजस्तथा वत्सः कौ
शिकः कुश एव च ॥ शाण्डिल्यः कश्यपश्चैव गौतमश्छान्धनस्तथा ॥ ३४ ॥ कृष्णात्रेयस्तथा वत्सो वसिष्ठो धार
णस्तथा ॥ भाण्डिलश्चैव विज्ञेयो यौवनाश्वस्ततः परम् ॥ ३५ ॥ कृष्णायनोपमन्यू च गार्ग्यमुद्गलमौखकाः ॥ पुशिः
पराशरश्चैव कौण्डिन्यश्च ततः परम् ॥ ३६ ॥ पञ्चपञ्चाशद्ग्रामाणां नामान्येवं यथाक्रमम् ॥ सीतापुरं श्रीक्षेत्रं च
मुशली मुद्गली तथा ॥ ३७ ॥ ज्येष्ठला श्रेयस्थानं च दन्ताली वटपत्रका ॥ राज्ञः पुरं कृष्णवाटं देहं लोहं चनस्थ
नम् ॥ ३८ ॥ कोहेचं चन्दनक्षेत्रं थलं च हस्तिनापुरम् ॥ कर्पटं कंनजह्वी वनोडफनफावली ॥ ३९ ॥ मोहोधं शमो

भांडिल व तदनन्तर यौवनाश्व जानने योग्य हैं ॥ ३५ ॥ और कृष्णायन, उपमन्यु, गार्ग्य, मुद्गल व मौखक, पुशि, पराशर तदनन्तर कौण्डिन्य हैं ॥ ३६ ॥ व ऐसेही
पचपन ग्रामों के नाम क्रम से हैं सीतापुर, श्रीक्षेत्र, मुशली, मुद्गली ॥ ३७ ॥ ज्येष्ठला, श्रेयस्थान, दन्ताली, वटपत्रका, राजापुर, कृष्णवाट, देह, लोह व चन-
स्थन ॥ ३८ ॥ और कोहेच, चन्दनक्षेत्र, थल व हस्तिनापुर, कर्पट, कंनजह्वी, बनोडफ व नफावली ॥ ३९ ॥ और मोहोघ, शमोहोरली, गोविन्दण, थलत्यज, चारण

सिद्ध, सोद्दीत्राभाज्यज व वटमालिका ॥ ४० ॥ और गोधर, मारणज, मात्रमध्य व मातर, बलवती, गन्धवती, ईआम्ली व राज्यज ॥ ४१ ॥ और रूपावली, बहुधन, छत्रीट व वंशज और जायासंरण, गोतिकी व चित्रलेख ॥ ४२ ॥ दुग्धावली, हंसावली, वैहोल, चैल्लज, नालावली, आसावली और इसके उपरान्त सुहालीका है ॥ ४३ ॥ श्रीरामजी ने पचपन ग्रामों को आपही बनाकर बसने के लिये उन ब्राह्मणों के लिये दे दिया ॥ ४४ ॥ और श्रीरामजी ने उनकी सेवा के लिये छत्तीस हज़ार वैश्यों को दिया व उनसे चौगुने शूद्रों को दिया ॥ ४५ ॥ व उनके लिये बड़े हर्ष से गऊ, घोड़े, वस्त्र, सुवर्ण, चांदी व ताँबा इन दानों को बड़ी भक्ति से

होरली गोविन्दणं थलत्यजम् ॥ चारणसिद्धं सोद्दीत्राभाज्यजं वटमालिका ॥ ४० ॥ गोधरं मारणजं चैव मात्रमध्यं च मातरम् ॥ बलवती गन्धवती ईआम्ली च राज्यजम् ॥ ४१ ॥ रूपावली बहुधनं छत्रीटं वंशजं तथा ॥ जायासंरणं गोतिकी च चित्रलेखं तथैव च ॥ ४२ ॥ दुग्धावली हंसावली च वैहोलं चैल्लजं तथा ॥ नालावली आसावली सुहालीकामतः परम् ॥ ४३ ॥ रामेण पञ्चपञ्चाशद्ग्रामाणि वसनाय च ॥ स्वयं निर्माय दत्तानि द्विजेभ्यस्तेभ्य एव च ॥ ४४ ॥ तेषां शुश्रूषणार्थाय वैश्यान्रामो न्यवेदयत् ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि शूद्रांस्तेभ्यश्चतुर्गुणान् ॥ ४५ ॥ तेभ्यो दत्तानि दानानि गवाश्ववसनानि च ॥ हिरण्यं रजतं ताम्रं श्रद्धया परया मुदा ॥ ४६ ॥ नारद उवाच ॥ अष्टादशसहस्रास्ते ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ कथं ते व्यभजन्ग्रामान् ग्रामोत्पन्नं तथा वसु ॥ वस्त्राद्यं भूषणाद्यं च तन्मे कथय सुव्रत ॥ ४७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यज्ञान्ते दक्षिणा यावत्सर्त्विग्भिः स्वीकृता सुत ॥ महादानादिकं सर्वं तेभ्य एव समर्पितम् ॥ ४८ ॥ ग्रामाः साधारणा दत्ता महास्थानानि वै तदा ॥ ये वसन्ति च यत्रैव तानि तेषां भवन्त्विति ॥ ४९ ॥

दिया ॥ ४६ ॥ नारदजी बोले कि हे सुव्रत ! उन अठारह हज़ार वेदोंके पारगामी ब्राह्मणों ने ग्रामों को व ग्रामों में उत्पन्न धन को कैसे बाँटा और वस्त्रादिक व भूषणादिक को कैसे बाँटा है उसको मुझ से कहिये ॥ ४७ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे पुत्र ! ऋत्विजों समेत जितने ब्राह्मणों ने यज्ञ के अन्त में जितनी दक्षिणा को पाया है उन्हीं के लिये सब महादानादिक दिया गया है ॥ ४८ ॥ और उस समय साधारण ग्राम व महास्थान दिये गये जो जिसमें बसैं उनके वे ग्राम होवैं ॥ ४९ ॥

इस वसिष्ठजी के वचन से वहां वे ग्राम ब्राह्मणों के अधीन किये गये और जिस प्रकार ब्राह्मण न उजड़ैं वैसेही बुद्धिमान् रघुनायकजी ने ॥ ५० ॥ उन ब्राह्मणों को बहुत साधन व धान्य दिया तदनन्तर हाथों को जोड़कर श्रीरामजी ने ब्राह्मणों से यह कहा ॥ ५१ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! जैसे सतयुग व जैसे त्रेतायुग में तुम लोग वर्तमान थे वैसेही इससमय भी मेरे राज्यमें निस्सन्देह वर्तमान होना चाहिये ॥ ५२ ॥ और जो कुछ धन, धान्य, वाहन व वसन, मणि, सुवर्णादिक और धन ॥ ५३ ॥ और ताँवा आदिक व चांदी आदिक मुझ से इससमय मांगिये और इस समय व भविष्य समय में यथायोग्य प्रार्थना करनेयोग्य ॥ ५४ ॥ वाचिक हे द्विजोत्तमो ! मैं सदैव पठाऊंगा

वसिष्ठवचनात्तत्र ग्रामास्ते विप्रसात्कृताः ॥ रघूद्वहेन धीरेण नोद्वसन्ति यथा द्विजाः ॥ ५० ॥ धान्यं तेषां प्रदत्तं हि विप्राणां चामितं वसु ॥ कृताञ्जलिस्ततो रामो ब्राह्मणानिदमब्रवीत् ॥ ५१ ॥ यथा कृतयुगे विप्रास्त्रेतायां च यथा पुरा ॥ तथा चाद्यैव वर्त्तव्यं मम राज्ये न संशयः ॥ ५२ ॥ यत्किञ्चिद्धनधान्यं वा यानं वा वसनानि वा ॥ मणयः काञ्चनादींश्च हेमादींश्च तथा वसु ॥ ५३ ॥ ताम्राद्यं रजतादींश्च प्रार्थयध्वं ममाधुना ॥ अधुना वा भविष्ये वाभ्यर्थनीयं यथोचितम् ॥ ५४ ॥ प्रेषणीयं वाचिकं मे सर्वदा द्विजसत्तमाः ॥ यं यं कामं प्रार्थयध्वं तं तं दास्याम्यहं सदा ॥ ५५ ॥ ततो रामः सेवकादीनादरात्प्रत्यभाषत ॥ विप्राज्ञा नोल्लङ्घनीया सेवनीया प्रयत्नतः ॥ ५६ ॥ यं यं कामं प्रार्थयन्ते कारयध्वं ततस्ततः ॥ एवं नत्वा च विप्राणां सेवनं कुरुते तु यः ॥ ५७ ॥ स शूद्रः स्वर्गमाप्नोति धनवान्पुत्रवान्भवेत् ॥ अन्यथा निर्धनत्वं हि लभते नात्र संशयः ॥ ५८ ॥ यवनोम्लेच्छजातीयो दैत्यो वा राक्षसोपि वा ॥ योत्र विघ्नं करो

व जिस जिस कामनाकी प्रार्थना करियेगा उस उसको मैं सदैव दूंगा ॥ ५५ ॥ तदनन्तर श्रीरामजी ने आदर से सेवकादिकों से कहा कि ब्राह्मणों की आज्ञा उल्लंघन करने योग्य नहीं है बरन बड़े यत्न से सेवने योग्य है ॥ ५६ ॥ और जिस जिस काम की वे प्रार्थना करैं उस उसको तुम लोग करो इस प्रकार प्रणाम कर जो ब्राह्मणों की सेवा करता है ॥ ५७ ॥ वह शूद्र सुख को पाता है और धनवान् व पुत्रवान् होताहै नहीं तो दरिद्रता को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५८ ॥ और यवन व म्लेच्छ

जातिवाला मनुष्य तथा दैत्य व राक्षस जो यहां विघ्न करताहै वह उसी क्षण भस्म होजाता है ॥ ५९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि तदनन्तर बड़े प्रसन्न श्रीरामजी ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणों से आशीर्वादों को पाकर यात्राके सामने हुए ॥ ६० ॥ और हद्दतक पीछे जाकर स्नेहसे विकल लोचनोंवाले सब मोहित ब्राह्मण धर्मारण्य में लौट आये ॥ ६१ ॥ ऐसा करके तदनन्तर श्रीरामजी अपनी पुरी को चले और दृढ़ व्रतवाले काश्यप व गर्ग गोत्रवाले ब्राह्मण कृतार्थ हुए ॥ ६२ ॥ और उस समय बड़ी सेना से संयुत स्त्री समेत व मित्र पुत्रों समेत श्रीरामजी गुणों से संयुत अयोध्यापुरी को प्राप्त हुए ॥ ६३ ॥ और श्रीरघुनाथजी को देखकर सब मनुष्य प्रसन्न हुए

त्येव भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ ५९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्य द्विजान्रामोऽतिहर्षितः ॥ प्रस्थानाभिमुखो विप्रैराशीर्भिरभिनन्दितः ॥ ६० ॥ आसीमान्तमनुव्रज्य स्नेहव्याकुललोचनाः ॥ द्विजाः सर्वे विनिर्वृत्ता धर्मारण्ये विमोहिताः ॥ ६१ ॥ एवं कृत्वा ततो रामः प्रतस्थे स्वां पुरीं प्रति ॥ काश्यपाश्चैव गर्गाश्च कृतकृत्या दृढव्रताः ॥ ६२ ॥ गुरुसेनासमाविष्टः सभार्यः ससुहृत्सुतः ॥ राजधानीं तदा प्राप रामोऽयोध्यां गुणान्विताम् ॥ ६३ ॥ दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वे लोकाः श्रीरघुनन्दनम् ॥ ततो रामः स धर्मात्मा प्रजापालनतत्परः ॥ ६४ ॥ सीतया सह धर्मात्मा राज्यं कुर्वंस्तदा सुधीः ॥ जानक्यां गर्भमाधत्त रविवंशोद्भवाय च ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येश्रीरामचन्द्रकृतधर्मारण्यतीर्थक्षेत्रजीर्णोद्धारवर्णनंनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

तदनन्तर वे धर्मात्मा श्रीरामजी प्रजाओं के पालन में तत्पर हुए ॥ ६४ ॥ तब बुद्धिमान् श्रीरामजी ने सीता समेत राज्य करते हुए सूर्यवंश की उत्पत्ति के लिये जानकी जी में गर्भ को धारण किया ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीरामचन्द्रकृतधर्मारण्यतीर्थक्षेत्रजीर्णोद्धारवर्णनंनाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰। धर्मारण्य द्विजन जिमि सेतुबंध गम कीन। छत्तिसवें अध्याय में सोई चरित नवीन॥ नारदजी बोले कि हे सुव्रत! इसके उपरान्त क्या हुआ है उसको मुझ से कहिये हे कहनेवालों में श्रेष्ठ! पहले उसको मुझ से संपूर्णता से कहिये॥ १॥ और कितने समयतक वह स्थान स्थिर हुआ व हे प्रभो! किससे वह रक्षित हुआ व किसकी आज्ञा वर्तमान हुई इसको मुझ से कहिये॥ २॥ ब्रह्माजी बोले कि त्रेता से द्वापर के अन्त तक जबतक कलियुग का आगम हुआ तबतक एक पवनपुत्र हनुमान् जी भलीभांति रक्षा करने में॥ ३॥ समर्थ हैं व हे पुत्र! विना हनुमान्जी के अन्यथा कोई भी समर्थ नहीं है जिन्होंने लंका को विध्वंस किया व प्रबल राक्षसों को मार

नारद उवाच॥ अतः परं किमभवत्तन्मे कथय सुव्रत॥ पूर्वं च तदशेषेण शंस मे वदतां वर॥ १॥ स्थिरीभूतं च तत्स्थानं कियत्कालं वदस्व मे॥ केन वै रक्ष्यमाणं च कस्याज्ञा वर्तते प्रभो॥ २॥ ब्रह्मोवाच॥ त्रेतातो द्वापरान्तं च यावत्कलिसमागमः॥ तावत्संरक्षणे चैको हनूमान्पवनात्मजः॥ ३॥ समर्थो नान्यथा कोपि विना हनुमता सुत॥ लङ्का विध्वंसिता येन राक्षसाः प्रबला हताः॥ ४॥ स एव रक्षते तत्र रामादेशेन पुत्रक॥ द्विजस्याज्ञा प्रवर्तेत श्रीमातायास्तथैव च॥ ५॥ दिनेदिने प्रहर्षोभूज्जनानां तत्र वासिनः॥ पठन्ति स्म द्विजास्तत्र ऋग्यजुःसामलक्षणान्॥ ६॥ अथर्वणं चापि तत्र पठन्ति स्म दिवानिशम्॥ वेदनिर्घोषजः शब्दस्त्रैलोक्ये सचराचरे॥ ७॥ उत्सवास्तत्र जायन्ते ग्रामे ग्रामे पुरे पुरे॥ नाना यज्ञाः प्रवर्तन्ते नानाधर्मसमाश्रिताः॥ ८॥ युधिष्ठिर उवाच॥ कदापि तस्य स्थानस्य भङ्गो जातोथ वा नवा॥ दैत्यैर्जितं कदा स्थानमथवा दुष्टराक्षसैः॥ ९॥ व्यास उवाच॥ साधु पृष्टं त्वया राजन्ध

डाला॥ ४॥ हे पुत्र! वही हनुमान्जी श्रीरामजी की आज्ञा से रक्षा करते हैं और ब्राह्मण वसिष्ठजी की व श्रीमाताजी की आज्ञा वर्तमान है॥ ५॥ और प्रतिदिन वहां के लोगों को बड़ा हर्ष हुआ व वहां के बसनेवाले ब्राह्मण ऋग्, यजुः व साम लक्षणोंवाले वेदों को पढ़ते थे॥ ६॥ और दिन रात अथर्वण वेद को भी पढ़ते थे व चराचर समेत त्रिलोक में वेदों से उपजा हुआ शब्द होता था॥ ७॥ और वहां गांव गांव व नगर नगर में उत्साह होते थे और अनेक प्रकार के धर्मों में आश्रित अनेक भांति के यज्ञ होते थे॥ ८॥ युधिष्ठिरजी बोले कि कभी उस स्थान का भंग हुआ या नहीं हुआ है व कभी दैत्यों ने व दुष्ट राक्षसों ने उस स्थान को जीत लिया है॥ ९॥ व्यासजी

बोले कि हे राजन् ! तुम ने बहुत अच्छा पूंछा व तुम सदैव पवित्र व धर्मज्ञ हो पहले कलियुग प्राप्त होने पर जो वृत्तान्त हुआ है उसको सुनिये ॥ १० ॥ हे राजन् ! लोकों के हित के लिये व मनोरथ और सुख के लिये मैं जो कहूंगा उस सब को सुनिये ॥ ११ ॥ कि इससमय कलियुग प्राप्त होने पर नाम से श्राम नामक कान्यकुब्ज देश का स्वामी श्रीमान्, धर्मज्ञ व नीति में परायण हुआ है ॥ १२ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! जोकि शांत, दांत, सुशील व सत्यधर्म में तत्पर था द्वापर के अन्त में कलियुग न आने पर ॥ १३ ॥ कलियुग के विशेष भय से व अधर्म के भयादिकों से सब देवता पृथ्वी को छोड़कर नैमिषारण्यमें टिके ॥ १४ ॥

र्मज्ञस्त्वं सदा शुचिः ॥ आदौ कलियुगे प्राप्ते यद्वृत्तं तच्छृणुष्व भोः ॥ १० ॥ लोकानां च हितार्थाय कामाय च सुखाय च ॥ यदहं कथयिष्यामि तत्सर्वं शृणु भूपते ॥ ११ ॥ इदानीं च कलौ प्राप्त आमो नाम्ना बभूव ह ॥ कान्यकुब्जाधिपः श्रीमान्धर्मज्ञो नीतितत्परः ॥ १२ ॥ शान्तो दान्तः सुशीलश्च सत्यधर्मपरायणः ॥ द्वापरान्ते नृपश्रेष्ठ अनागते कलौयुगे ॥ १३ ॥ भयात्कलिविशेषेण अधर्मस्य भयादिभिः ॥ सर्वे देवाः क्षितिं त्यक्त्वा नैमिषारण्यमाश्रिताः ॥ १४ ॥ रामोपि सेतुबन्धं हि ससहायो गतो नृप ॥ १५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कीदृशं हि कलौ प्राप्ते भयं लोके सुदुस्तरम् ॥ यस्मिन्सुरैः परित्यक्ता रत्नगर्भा वसुन्धरा ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणुष्व कलिधर्मांस्त्वं भविष्यन्ति यथा नृप ॥ असत्यवादिनो लोकाः साधुनिन्दापरायणाः ॥ १७ ॥ दस्युकर्मरताः सर्वे पितृभक्तिविवर्जिताः ॥ स्वगोत्रदाराभिरता लौल्यध्यानपरायणाः ॥ १८ ॥ ब्रह्मविद्वेषिणः सर्वे परस्परविरोधिनः ॥ शरणागतहन्तारो भविष्यन्ति कलौयुगे ॥ १९ ॥

व हे राजन् ! सहायकों समेत श्रीरामजी सेतुबंध तीर्थ को गये ॥ १५ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि कलियुग प्राप्त होने पर संसार में कैसा बहुत कठिन डर है कि जिसमें देवताओं ने रत्नगर्भवाली पृथ्वी को छोड़ दिया ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले कि हे नृप ! तुम कलियुग के धर्मों को सुनो कि जिस प्रकार झूंठ कहनेवाले लोग सज्जनों की निन्दा में परायण होंगे ॥ १७ ॥ और सब चोर के कर्म में परायण होते हैं व पितरों की भक्ति से रहित तथा अपने वंश की स्त्रियों में अनुरागी और चंचलता के ध्यान में परायण होते हैं ॥ १८ ॥ और ब्राह्मणों से वैर करनेवाले सब आपस में विरोधी व शरणमें आये हुए लोगोंको मारनेवाले मनुष्य कलियुगमें होवैंगे ॥ १९ ॥

वैश्याचाररता विप्रा वेदभ्रष्टाश्च मानिनः ॥ भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते सन्ध्यालोपकरा द्विजाः ॥ २० ॥ शान्तौ शूरा भये दीनाः श्राद्धतर्पणवर्जिताः ॥ असुराचारनिरता विष्णुभक्तिविवर्जिताः ॥ २१ ॥ परवित्ताभिलाषाश्च उत्कोचग्रहणे रताः ॥ अस्नातभोजिनो विप्राः क्षत्रिया रणवर्जिताः ॥ २२ ॥ भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते मलिना दुष्टवृत्तयः ॥ मद्यपानरताः सर्वेऽप्ययाज्यानां हि याजकाः ॥ २३ ॥ भर्तृद्वेषकरा रामाः पितृद्वेषकराः सुताः ॥ भ्रातृद्वेषकराः क्षुद्रा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ २४ ॥ गव्यविक्रयिणस्ते वै ब्राह्मणा वित्ततत्पराः ॥ गावो दुग्धं न दुह्यन्ते सम्प्राप्ते हि कलौ युगे ॥ २५ ॥ फलन्ते नैव वृक्षाश्च कदाचिदपि भारत ॥ कन्याविक्रयकर्त्तारो गोजाविक्रयकारकाः ॥ २६ ॥ विषविक्रयकर्त्तारो रसविक्रयकारकाः ॥ वेदविक्रयकर्त्तारो भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ २७ ॥ नारी गर्भं समाधत्ते हायनैकादशेन हि ॥ एकादश्युपवासस्य विरताः सर्वतो जनाः ॥ २८ ॥ न तीर्थसेवनरता भविष्यन्ति च

और कलियुग प्राप्त होनेपर ब्राह्मण वैश्यों के आचार में तत्पर तथा वेदों से भ्रष्ट व अहंकारी होवैंगे और ब्राह्मण संध्या को लोप करनेवाले होवैंगे ॥ २० ॥ व शांति में शूर तथा भय में दीन व श्राद्ध और तर्पण से रहित होवैंगे व दैत्यों के आचार में परायण और विष्णुजी की भक्ति से रहित होवैंगे ॥ २१ ॥ और पराये धन की इच्छा करनेवाले व घूस लेने में परायण होवैंगे और ब्राह्मण बिन नहाये भोजन करैंगे व क्षत्रिय युद्ध से रहित होवैंगे ॥ २२ ॥ और कलियुग प्राप्त होनेपर सब ब्राह्मण दुष्ट जीविका करनेवाले तथा मलिन व मदिरा पीने में परायण व यज्ञ न कराने योग्य पुरुषों को यज्ञ करानेवाले होवैंगे ॥ २३ ॥ और स्त्रियां पतियों से वैर करनेवाली व पुत्र पिता से वैर करनेवाले होवैंगे व कलियुग प्राप्त होनेपर नीच पुरुष भाइयों से वैर करनेवाले होवैंगे ॥ २४ ॥ और धन में तत्पर वे ब्राह्मण कलियुग प्राप्त होनेपर गऊ का दूध, दही व घी आदिकके बेंचनेवाले होवैंगे व गाइयां दूध न देवैंगी ॥ २५ ॥ व हे भारत ! कभी वृक्ष नहीं फलतेहैं और कन्याको बेंचनेवाले तथा गऊ व छगड़ी को बेंचनेवाले होवैंगे ॥ २६ ॥ और कलियुग प्राप्त होनेपर ब्राह्मण विष को बेंचनेवाले तथा रस को बेंचनेवाले और वेदों को बेंचनेवाले होवैंगे ॥ २७ ॥ और स्त्री गेरहवर्षमे गर्भको धारण करैगी और सबलोग एकादशी व्रत से रहित होवैंगे ॥ २८ ॥ और ब्राह्मणलोग तीर्थसेवा में परायण न होवैंगे और बहुत भोजन करनेवाले तथा

बहुत निद्रा से व्याकुल होवैंगे ॥ २९ ॥ और सब कुटिल जीविका करनेवाले तथा वेदों की निन्दामें परायण व संन्यासियों की निन्दा करनेवाले व आपसमें छल करने वाले होंगे ॥ ३० ॥ और कलियुग में स्पर्श के दोष का भय न होगा व क्षत्रिय राज्य से हीन होवैंगे और म्लेच्छ राजा होगा ॥ ३१ ॥ व सब विश्वासघाती तथा गुरुवों के द्रोह में परायण होंगे व हे राजन्! मित्रों के द्रोह में तत्पर तथा लिंग व उदर में परायण होवैंगे ॥ ३२ ॥ व हे महाराज! कलियुग प्राप्त होनेपर चारों वर्ण एकही वर्ण होजावेंगे मेरा वचन अन्यथा नहीं है ॥ ३३ ॥ गुरु से यह सुनकर कान्यकुब्ज देश का स्वामी आम नामक उस पृथ्वी में राज्य करने लगा ॥ ३४ ॥ और

वाडवाः॥ बह्वाहारा भविष्यन्ति बहुनिद्रासमाकुलाः ॥ २९ ॥ जिह्मवृत्तिपराः सर्वे वेदनिन्दापरायणाः ॥ यतिनिन्दापराश्चैवच्छद्मकाराः परस्परम् ॥ ३० ॥ स्पर्शदोषभयं नैव भविष्यति कलौ युगे ॥ क्षत्रिया राज्यहीनाश्च म्लेच्छो राजा भविष्यति ॥ ३१ ॥ विश्वासघातिनः सर्वे गुरुद्रोहरतास्तथा ॥ मित्रद्रोहरता राजञ्छिश्नोदरपरायणाः ॥ ३२ ॥ एकवर्णा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वार एव च ॥ कलौ प्राप्ते महाराज नान्यथा वचनं मम ॥ ३३ ॥ एतच्छ्रुत्वा गुरोरेष कान्यकुब्जाधिपो बली ॥ राज्यं प्रकुरुते तत्र आमो नाम्ना हि भूतले ॥ ३४ ॥ सार्वभौमत्वमापन्नः प्रजापालनतत्परः ॥ प्रजानां कलिना तत्र पापे बुद्धिरजायत ॥ ३५ ॥ वैष्णवं धर्ममुत्सृज्य बौद्धधर्ममुपागताः ॥ प्रजास्तमनुवर्तिन्यः क्षपणैः प्रतिबोधिताः ॥ ३६ ॥ तस्य राज्ञो महादेवी मामानाम्न्यतिविश्रुता ॥ गर्भं दधार सा राज्ञो सर्वलक्षणसंयुता ॥ ३७ ॥ सम्पूर्णे दशमे मासि जाता तस्याः सुरूपिणी ॥ दुहिता समये राज्ञ्याः पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ ३८ ॥ रत्नगङ्गे

प्रजाओं के पालन में तत्पर वह चक्रवर्तित्व को प्राप्तहुआ और कलियुगसे उस समय प्रजाओं की बुद्धि पाप में होगई ॥ ३५ ॥ व वैष्णवधर्म को छोड़कर प्रजा बौद्धधर्म को प्राप्त हुए और उनके अनुगामी प्रजालोग बौद्धधर्मानुगामी लोगों से प्रबोधित होगये ॥ ३६ ॥ और बहुतही प्रसिद्ध जो मामा नामक उस राजा की महादेवी थी सब लक्षणों से संयुत उसने राजा से गर्भ को धारण किया ॥ ३७ ॥ और दशम महीना पूर्ण होनेपर समय में उस रानी के पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाली स्वरूपवती कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३८ ॥ मणि व माणिक्य से भूषित वह नाम से रत्नगंगा ऐसी प्रसिद्ध हुई एक समय इन्द्रसूरि नामक राजा दैवयोगसे इस कान्यकुब्ज देश

में अन्य देश से आया और सोलह वर्ष की वह राजकुमारी कन्या नहीं ब्याही गई थी ॥ ३९ । ४० ॥ और दासी के विना वह मिली व हे भारत ! जीविक इन्द्रसूरिजी शाबरी मंत्रविद्या का कहा ॥ ४१ ॥ और शूली के कर्म से मोहित वह एकचित्त हुई तदनन्तर उस उस वाक्य में परायण वह मोह को प्राप्तहुई ॥ ४२ ॥ व हे वत्स ! जैनधर्म में परायण वह बौद्धमतानुगामी लोगों से समझाई गई और उस बड़े बलवान् राजा ने रत्नगंगा महादेवी को ब्रह्मावर्त के स्वामी बुद्धिमान् कुंभीपाल राजा के लिये दिया व दैव से मोहित उसने विवाह में उसके लिये मोहेरक को दिया ॥ ४३ । ४४ ॥ तब धर्मारण्य को आकर राजधानी की गई और उसने जैन-

ति नाम्ना सा मणिमाणिक्यभूषिता ॥ एकदा दैवयोगेन देशान्तराढुपागतः ॥ ३९ ॥ नाम्ना चैवेन्द्रसूरिर्वै देशेस्मिन्कान्यकुब्जके ॥ षोडशाब्दा च सा कन्या नोपनीता नृपात्मजा ॥ ४० ॥ दास्यान्तरेण मिलिता इन्द्रसूरिश्च जीविकः ॥ शाबरीं मन्त्रविद्यां च कथयामास भारत ॥ ४१ ॥ एकचित्ताभवत्सा तु शूलिकर्मविमोहिता ॥ ततः सा मोहमापन्ना तत्तद्वाक्यपरायणा ॥ ४२ ॥ क्षपणैर्बोधिता वत्स जैनधर्मपरायणा ॥ ब्रह्मावर्ताधिपतये कुम्भीपालाय धीमते ॥ ४३ ॥ रत्नगङ्गां महादेवीं ददौ तामतिविक्रमी ॥ मोहेरकं ददौ तस्मै विवाहे दैवमोहितः ॥ ४४ ॥ धर्मारण्यं समागत्य राजधानी कृता तदा ॥ देवांश्च स्थापयामास जैनधर्मप्रणीतकान् ॥ ४५ ॥ सर्वे वर्णास्तथाभूता जैनधर्मसमाश्रिताः ॥ ब्राह्मणा नैव पूज्यन्ते न च शान्तिकपौष्टिकम् ॥ ४६ ॥ न ददाति कदा दानमेवं कालः प्रवर्तते ॥ लब्धशासनका विप्रा लुप्तस्वाम्या अहर्निशम् ॥ ४७ ॥ समाकुलितचित्तास्ते नृपमामं समाययुः ॥ कान्यकुब्जास्थितं शूरं पाखण्डैः परिवेष्टितम् ॥ ४८ ॥ कान्यकुब्जपुरं प्राप्य कतिभिर्वासरैर्नृप ॥ गङ्गोपकण्ठे न्यवसञ्छ्रांतास्ते मोढ

धर्म प्रतिपादन करनेवाले देवताओं को स्थापित किया ॥ ४५ ॥ और जैनधर्म में आश्रित सब वर्ण वैसेही होगये और ब्राह्मण नहीं पूजे जाते हैं व शांतिक, पौष्टिक कर्म नहीं होता है ॥ ४६ ॥ व कभी कोई दान नहीं देताहै ऐसा समय वर्तमान है और शासन को पाये हुए लुप्त स्वामितावाले ब्राह्मण दिनरात ॥ ४७ ॥ विकल चित्तवाले वे पाखण्डों से घिरे हुए व कान्यकुब्ज देश में स्थित शूर आम राजा के समीप आये ॥ ४८ ॥ व हे राजन् ! कुछ दिनों से कान्यकुब्ज नगर को प्राप्त होकर थके

हुए वे मूढ़ ब्राह्मण गंगाजी के समीप बसे ॥ ४९ ॥ और गुप्त दूतोंने राजा के आगे उन आये हुए ब्राह्मणों को कहा व प्रातःकाल बुलाये हुए वे ब्राह्मण राजा की सभा में आये ॥ ५० ॥ तदनन्तर राजा ने आदर समेत प्रत्युत्थान व प्रणामादिक नहीं किया और यह राजा खड़ेहुए सब ब्राह्मणों से पूंछने लगा ॥ ५१ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! तुम लोग किस लिये आये हो और क्या कार्य है उसको कहिये ॥ ५२ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे नराधिप ! हम लोग धर्मारण्य से यहां तुम्हारे समीप आये हैं क्योंकि हे राजन् ! तुम्हारी कन्या का पति जो कुमारपालक है ॥ ५३ ॥ इन्द्रसूरि से प्रेरित व जैनधर्म से वर्तमान उसने बड़े अद्भुत ब्राह्मणों के शासन (आज्ञा) को लुप्तकर

बाडवाः ॥ ४९ ॥ चारैश्च कथितास्ते च नृपस्याग्रे समागताः ॥ प्रातराकारिता विप्रा आगता नृपसंसदि ॥ ५० ॥ प्रत्युत्थानाभिवादादीन्न चक्रे सादरं नृपः ॥ तिष्ठतो ब्राह्मणान्सर्वान्पर्यपृच्छदसौ ततः ॥ ५१ ॥ किमर्थमागता विप्राः किंस्वित्कार्यं ब्रुवन्तु तत् ॥ ५२ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ धर्मारण्यादिहायातास्त्वत्समीपं नराधिप ॥ राजंस्तव सुतायास्तु भर्ता कुमारपालकः ॥ ५३ ॥ तेन प्रलुप्तं विप्राणां शासनं महदद्भुतम् ॥ वर्तता जैनधर्मेण प्रेरितेनेन्द्रसूरिणा ॥ ५४ ॥ राजोवाच ॥ केन वै स्थापिता यूयमस्मिन्मोहेरकेपुरे ॥ एतद्धि बाडवाः सर्वं ब्रूत वृत्तं यथातथम् ॥ ५५ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ काजेशैः स्थापिताः पूर्वं धर्मराजेन धीमता ॥ कृता चात्र शुभे स्थाने रामेण च ततः पुरी ॥ ५६ ॥ शासनं रामचन्द्रस्य दृष्ट्वाऽन्यैश्चैव राजभिः ॥ पालितं धर्मतो ह्यत्र शासनं नृपसत्तम ॥ ५७ ॥ इदानीं तव जामाता विप्रान्पालयते न हि ॥ तच्छ्रुत्वा विप्रवाक्यं तु राजा विप्रानथाब्रवीत् ॥ ५८ ॥ यान्तु शीघ्रं हि भो विप्राः कथयन्तु ममा

दिया है ॥ ५४ ॥ राजा बोले कि हे ब्राह्मणो ! इस मोहेरक पुरमें तुम लोगों को किसने स्थापित किया है इस सब वृत्तान्तको तुमलोग यथार्थ कहो ॥ ५५ ॥ ब्राह्मण बोले कि पुरातन समय में ब्रह्मा, विष्णु व शिवजीने स्थापित किया तदनन्तर बुद्धिमान् धर्मराज ने व श्रीरामजी ने इस उत्तम स्थान में पुरी को बनाया है ॥ ५६ ॥ व हे नृपोत्तम ! रामचन्द्र के शासन को देखकर अन्य राजाओं ने यहां धर्म से उस शासन को पालन किया ॥ ५७ ॥ इससमय तुम्हारा दामाद ब्राह्मणों को पालन नहीं करता है उस ब्राह्मणों के वचन को सुनकर राजा ने ब्राह्मणों से कहा ॥ ५८ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! शीघ्रही जाओ व मेरी आज्ञा से कुमारपाल राजा से कहो कि तुम ब्राह्मणों

के स्थान को दे दीजिये ॥ ५९ ॥ इस वचन को सुनकर तदनन्तर ब्राह्मण बड़े हर्षको प्राप्त हुए उसके बाद बड़े प्रसन्न होकर चले गये और वहां वचन को कहा ॥ ६० ॥ श्वसुर का वचन सुनकर राजा ने वचन कहा कुमारपाल बोले कि हे ब्राह्मणो ! श्रीरामजी के शासन को मैं पालन न करूंगा ॥ ६१ ॥ व हे ब्राह्मणो ! यज्ञ में पशु की हिंसा में लगे हुए ब्राह्मणों को मैं छोड़ता हूं उस कारण हिंसा करनेवालों की मेरे भक्ति न होगी ॥ ६२ ॥ ब्राह्मण बोले कि पाखंड के धर्म से कैसे आप शासन के लोपकर्त्ता होगे हे नृपश्रेष्ठ ! उसको पालन कीजिये पापमें मन न कीजिये ॥ ६३ ॥ राजा बोले कि अहिंसा बड़ा भारी धर्म है व हिंसा न करना उत्तम तप है और अ-

ज्ञया ॥ राज्ञे कुमारपालाय देहि त्वं ब्राह्मणालयम् ॥ ५९ ॥ श्रुत्वा वाक्यं ततो विप्राः परं हर्षमुपागताः ॥ जग्मुस्ततोऽतिमुदिता वाक्यं तत्र निवेदितम् ॥ ६० ॥ श्वशुरस्य वचः श्रुत्वा राजा वचनमब्रवीत् ॥ कुमारपाल उवाच ॥ रामस्य शासनं विप्राः पालयिष्याम्यहं नहि ॥ ६१ ॥ त्यजामि ब्राह्मणान्यज्ञे पशुहिंसापरायणान् ॥ तस्माद्धि हिंसकानां तु न मे भक्तिर्भवेद्द्विजाः ॥ ६२ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ कथं पाखण्डधर्मेण लुप्तशासनको भवान् ॥ पालयस्व नृपश्रेष्ठ मा स्म पापे मनः कृथाः ॥ ६३ ॥ राजोवाच ॥ अहिंसा परमो धर्मो अहिंसा च परन्तपः ॥ अहिंसा परमं ज्ञानम हिंसा परमं फलम् ॥ ६४ ॥ तृणेषु चैव वृक्षेषु पतङ्गेषु नरेषु च ॥ कीटेषु मत्कुणाद्येषु अजाश्वेषु गजेषु च ॥ ६५ ॥ लूतासु चैव सर्पेषु महिष्यादिषु वै तथा ॥ जन्तवः सदृशा विप्राः सूक्ष्मेषु च महत्सु च ॥ ६६ ॥ कथं यूयं प्रवर्तध्वे विप्रा हिंसापरायणाः ॥ तच्छ्रुत्वा वज्रतुल्यं हि वचनं च द्विजोत्तमाः ॥ ६७ ॥ प्रत्यूचुर्वाडवाः सर्वे क्रोधरक्तेक्षणास्तदा ॥ ६८ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ अहिंसा परमो धर्मः सत्यमेतत्त्वयोदितम् ॥ परं तथापि धर्मोस्ति शृणुष्वैकाग्रमा

हिंसा परम ज्ञान है व अहिंसा बड़ाभारी फल है ॥ ६४ ॥ तृणों में और वृक्ष, पतंग, मनुष्य, कीट, खटमलादिक और छाग, घोड़ा व हाथियों में ॥ ६५ ॥ और मकड़ी व सर्प तथा भैंसी आदिकों में हे ब्राह्मणो ! छोटे व बड़े प्राणियों में सब जंतु बराबर हैं ॥ ६६ ॥ और हिंसा में परायण तुम लोग ब्राह्मण कैसे वर्तमान हो वज्र के समान उस वचनको सुनकर उस समय क्रोधसे लाल लोचनोंवाले सब द्विजोत्तम ब्राह्मणों ने प्रत्युत्तर दिया ॥ ६७ । ६८ ॥ ब्राह्मण बोले कि तुमने यह सत्य कहा कि अहिंसा

बड़ा उत्तम धर्म है परन्तु तौ भी धर्म है उसको एकाग्र मन होकर सुनिये ॥ ६९ ॥ कि जो हिंसा वेद में कही गई है वह हिंसा नहीं है ऐसा निर्णय है क्योंकि जो शस्त्र से मारा जाता है और प्राणियों में जो पीड़ा होती है ॥ ७० ॥ हे धर्मज्ञों में श्रेष्ठ ! संसार में वही अधर्म है और विना शस्त्रके जो प्राणी वेदमंत्रों से मारेजाते हैं ॥ ७१ ॥ वह हिंसा प्राणियों को पीड़ा करनेवाली नहीं होती है बरन सुखदायिनी होती है और पराया उपकार पुण्य के लिये है व पराई पीड़ा पाप के लिये है ॥ ७२ ॥ और वेदों में कही हुई हिंसा को करके भी मनुष्य पाप से युक्त नहीं होता है ब्राह्मणों का वचन सुनकर राजाने फिर वचन कहा ॥ ७३ ॥ राजा बोले कि अति उत्तम धर्मारण्य

नमः॥ ६९ ॥ या वेदविहिता हिंसा सा न हिंसेति निर्णयः ॥ शस्त्रेणाहन्यते यच्च पीडा जन्तुषु जायते ॥ ७० ॥ स एवा धर्म एवास्ति लोके धर्मविदां वर ॥ वेदमन्त्रैर्विहन्यन्ते विना शस्त्रेण जन्तवः ॥ ७१ ॥ जन्तुपीडाकरा नैव सा हिंसा सुखदायिनी ॥ परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥ ७२ ॥ वेदोदितां विधायापि हिंसां पापैर्न लिप्यते ॥ विप्राणां वचनं श्रुत्वा पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ ७३ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मादीनां परं क्षेत्रं धर्मारण्यमनुत्तमम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या नेदानीमत्र सन्ति ते ॥ ७४ ॥ न धर्मो विद्यते वात्र उक्तो रामः स मानुषः ॥ क्व वापि लम्बपुच्छोऽसौ यो मुक्तो रक्षणाय वः ॥ ७५ ॥ शासनं चेन्न दृष्टं वो नैव तत्पालयाम्यहम् ॥ द्विजाः कोपसमाविष्टा ददुः प्रत्युत्तरं तदा ॥ ७६ ॥ द्विजा ऊचुः ॥ रे मूढ त्वं कथं वेत्थं भाषसे मदलोलुपः ॥ स दैत्यानां विनाशाय धर्मसंरक्षणाय च ॥ ७७ ॥ रामश्चतुर्भुजः साक्षान्मानुषत्वं गतो भुवि ॥ अगतीनां च गतिदः स वै धर्मपरायणः ॥ दयालुश्च कृपालुश्च जन्तूनां

ब्रह्मादिक देवताओं का उत्तम क्षेत्र है और इससमय ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक वे देवता नहीं हैं ॥ ७४ ॥ और यहां धर्म नहीं है तथा वे श्रीरामजी मनुष्य कहे गयेहैं और जो तुमलोगों की रक्षा के लिये छोड़े गये थे वे लम्बी पूंछवाले हनुमान्जी कहां हैं ॥ ७५ ॥ यदि शासन न देखा जायगा तो मैं तुमलोगों को पालन न करूंगा तब क्रोध से संयुत ब्राह्मणों ने प्रत्युत्तर दिया ॥ ७६ ॥ ब्राह्मण बोले कि रेमूढ ! मद से लोभी तुम कैसे ऐसा कहते हो क्योंकि दैत्यों के नाश के लिये व धर्म की रक्षा के लिये वे ॥ ७७ ॥ चतुर्भुज साक्षात् रामजी पृथ्वी में मनुजता को प्राप्तहुए हैं और अगतिवालों को गति देनेवाले श्रीरामजी धर्म में परायण हैं और दयालु, कृपालु

घ जंतुवों के पालक हैं ॥ ७८ ॥ राजा बोले कि आज श्रीरामजी कहां वर्तमान हैं व पवनपुत्र कहां हैं वे सब फूटेहुए बादल की नाईं होगये क्योंकि श्रीराम व हनुमान्जी कहां हैं ॥ ७९ ॥ परन्तु यदि श्रीराम व हनुमान्जी सर्वत्र वर्तमान हैं तो इस समय ब्राह्मणों की सहायता में आवैंगे ऐसी मेरी बुद्धि है ॥ ८० ॥ हे ब्राह्मणो ! हनुमान् व श्रीराम और लक्ष्मणजी को दिखलाइये यदि कोई विश्वास है तो वह हमलोगों को दिखलाइये ॥ ८१ ॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् ! हनुमान्जी को दूत करके श्रीरामजी ने एक सौ चवालीस ग्रामों को दिया है ॥ ८२ ॥ फिर इस स्थान में आकर तेरह ग्रामों को दिया और काश्यपी व श्रीगंगाजी के समीप सोलह महादानों

परिपालकः ॥ ७८ ॥ राजोवाच ॥ कुतोऽद्य वर्त्तते रामः कुतो वै वायुनन्दनः ॥ अष्टाभ्रमिव ते सर्वे क रामो हनुमानिति ॥ ७९ ॥ परन्तु रामो हनुमान्यदि वर्त्तेत सर्वतः ॥ इदानीं विप्रसाहाय्य आगमिष्यति मे मतिः ॥ ८० ॥ दर्शयध्वं हनूमन्तं रामं वा लक्ष्मणं तथा ॥ यद्यस्ति प्रत्ययः कश्चित्स नो विप्राः प्रदर्श्यताम् ॥ ८१ ॥ उक्तं तै रामदेवेन दूतं कृत्वाञ्जनीसुतम् ॥ चतुश्चत्वारिंशदधिकं दत्तं ग्रामशतं नृप ॥ ८२ ॥ पुनरागत्य स्थानेऽस्मिन्दत्ता ग्रामास्त्रयोदश ॥ काश्यप्यां चैव गङ्गायां महादानानि षोडश ॥ ८३ ॥ दत्तानि विप्रमुख्येभ्यो दत्ता ग्रामाः सुशोभनाः ॥ पुनः सङ्कल्पिता वीर षट्पञ्चाशकसंख्यया ॥ ८४ ॥ षट्त्रिंशचसहस्राणि गोभुजा जज्ञिरे वराः ॥ सपादलक्षा वणिजो दत्ता माण्डलिकाभिधाः ॥ ८५ ॥ तेनोक्तं वाडवाः सर्वे दर्शयध्वं हि मारुतिम् ॥ यस्याभिज्ञानमात्रेण स्थितिं पूर्वां ददाम्यहम् ॥ ८६ ॥ विप्रवाक्यं करिष्यामि प्रत्ययो दर्श्यते यदि ॥ ततः सर्वे भविष्यन्ति वेदधर्मपरायणाः ॥ ८७ ॥ अन्यथा

को ॥ ८३ ॥ मुख्य ब्राह्मणों के लिये दिया और बहुतही उत्तम ग्रामों को दिया और फिर छप्पन संख्यक ग्रामों को संकल्प किया ॥ ८४ ॥ और छत्तिस हज़ार श्रेष्ठ गोभुज वैश्य उत्पन्न हुए व मांडलिक नामक सवालाख वैश्य दिये गये ॥ ८५ ॥ उस राजा ने सब ब्राह्मणों से कहा कि हनुमान्जी को दिखलाइये कि जिनके जाननेही से मैं पहली मर्यादा को दूंगा ॥ ८६ ॥ और यदि विश्वास देख पड़ैगा तो मैं ब्राह्मणों का वचन करूंगा और तदनन्तर सब वेदधर्म में तत्पर होवैंगे ॥ ८७ ॥ नहीं तो तुम

सब जैनधर्म से वर्तमान होवो राजा का वचन सुनकर वे ब्राह्मण अपने २ स्थान को आये ॥ ८८ ॥ और क्रोध से अन्ध किये व दुःखित मनवाले वे ब्राह्मण पृथ्वी में श्वासों को छोड़ते हुए हाहा ऐसा कहने लगे ॥ ८९ ॥ और दांतोंको घिसते व हाथों से हाथों को पीसते हुए वे परस्पर कहनेलगे कि हम लोग इससे क्या करैं ॥ ९० ॥ और उन सब ब्राह्मणों ने मिलकर उत्तम सम्मति किया व हृदय में श्रीराम व हनुमान्जी को ध्यान कर ॥ ९१ ॥ बालक व वृद्ध भी ब्राह्मणों ने मेल किया तब उनके मध्य में बहुतही वृद्ध ब्राह्मण ने उत्तम वचन कहा ॥ ९२ ॥ कि चौंसठि गोत्रोंवाले हम लोगों के मध्य में जो बहत्तरि अपने अपने गोत्र के अवटंकवाले तथा एक ग्राम

जिनधर्मेण वर्त्तयध्वं हि सर्वशः ॥ नृपवाक्यं तु ते श्रुत्वा स्वेस्वे स्थाने समागताः ॥ ८८ ॥ वाडवाः खिन्नमनसः क्रोधेनान्धीकृता भुवि ॥ निश्वासान्मुञ्चमानास्ते हाहेति प्रवदन्ति च ॥ ८९ ॥ दन्तान्प्राघर्षयन्सर्वान्न्यपीडंश्च करैः करान् ॥ परस्परं भाषमाणाः कथं कुर्मो वयं त्वितः ॥ ९० ॥ मिलित्वा वाडवाः सर्वे चक्रुस्ते मन्त्रमुत्तमम् ॥ रामवाक्यं हृदि ध्यात्वा ध्यात्वा चैवाञ्जनीसुतम् ॥ ९१ ॥ द्विजा मेलापकं चक्रुर्बाला वृद्धतमा अपि ॥ तेषां वृद्धतमो विप्रो वाक्यमूचे शुभं तदा ॥ ९२ ॥ चतुःषष्टिश्च गोत्राणामस्माकं ये द्विसप्ततिः ॥ स्वस्वगोत्रस्यावटङ्का एकग्रामाभिलाषिणः ॥ ९३ ॥ प्रयातु स्वस्ववर्गस्य एको ह्येको द्विजः सुधीः ॥ रामेश्वरं सेतुबन्धं हनूमांस्तत्र विद्यते ॥ ९४ ॥ सर्वे प्रयान्तु तत्रैव रामपार्श्वे निरामयाः ॥ नि ाहारा जितक्रोधा मायया वर्जिताः पुनः ॥ ९५ ॥ एकाग्रमानसाः सर्वे स्तुत्वा ध्यात्वा जपन्तु तम् ॥ ततो दाशरथी रामो दयां कृत्वा द्विजन्मसु ॥ ९६ ॥ शासनं च प्रदास्यति अचलं च

के अभिलाषी हैं ॥ ९३ ॥ उनमें से अपने अपने वर्ग का एक एक विद्वान् ब्राह्मण रामेश्वर व सेतुबंध तीर्थ को जावें वहां हनुमान्जी विद्यमान हैं ॥ ९४ ॥ और व्याधि रहित सबलोग वहीं श्रीरामजी के समीप चलैं और निराहार व क्रोधको जीतनेवाले व फिर माया से रहित ॥ ९५ ॥ सावधान मनवाले सब उन की स्तुति कर व ध्यान कर जप करैं तदनन्तर दशरथकुमार श्रीरामजी ब्राह्मणों के ऊपर दयाकर ॥ ९६ ॥ युग युग में अचल शासन को देवैंगे और बड़े तप से प्रसन्न होकर वे मनोरथ को

देवैंगे ॥ ६७ ॥ और जिस वर्ग का जो ब्राह्मण वहां न जावैगा वह वर्ग से व स्थान के धर्मसे परित्याग करने योग्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६८ ॥ और वह वणिग्वृत्त वाले सम्बंध तथा विवाह व ग्रामवृत्त में सम्बंध न होगा और सब स्थान में वे बाहर किये जावैंगे ॥ ६६ ॥ सभा के उस वचन को सुनकर उनके मध्य में उत्तम वचन व उत्तम शब्दवाला पवित्र तथा प्रवीण ब्राह्मण तीन शब्दों से ब्राह्मणों को सुनाता ॥ १०० ॥ व खड़ा होता हुआ दिये हुए तालवाले इस प्रत्युत्तर को कहा कि असत्य-वादियों को और पराई निन्दा करनेवाले में जो पाप होता है और पराई स्त्री के समीप जाने में व पराये द्रोह में परायण पुरुष में जो पाप होताहै ॥ १ ॥ और मदिरा

युगेयुगे ॥ महता तपसा तुष्टः प्रदास्यति समीहितम्॥६७॥ यस्य वर्गस्य यो विप्रो न प्रयास्यति तत्र वै॥ स च वर्गा त्परित्याज्यः स्थानधर्मान्न संशयः ॥ ६८ ॥ वणिग्वृत्ते न सम्बन्धे न विवाहे कदाचन ॥ ग्रामवृत्ते न सम्बन्धः सर्व स्थाने बहिष्कृताः ॥ ६६ ॥ सभावाक्यं च तच्छ्रुत्वा तन्मध्ये वाडवः शुचिः ॥ वाग्मी दक्षः सुशब्दश्च त्रिरवैः श्रावय न्द्विजान् ॥ १०० ॥ प्रतिवाक्यं दत्ततालं तिष्ठन्नेतद्वचोऽब्रवीत् ॥ असत्यवादिनां यच्च पातकं परनिन्दके ॥ परदारा भिगमने परद्रोहरते नरे ॥ १ ॥ मद्यपेषु च यत्पापं यत्पापं हेमहारिषु ॥ तत्पापं च भवेत्तस्य गमने यः पराङ्मुखः ॥ अथ किं बहुनोक्तेन यान्तु सत्यं द्विजोत्तमाः ॥ २ ॥ तच्छ्रुत्वा दारुणं वाक्यं गमनाय मनोदधे ॥ गच्छतस्तान्द्विजा ञ्छ्रुत्वा कुमारपालको नृपः ॥ ३ ॥ समाहूय कृषेः कर्म भिक्षाटनमथापि वा ॥ नानागोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः प्राप यिष्ये न संशयः ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा व्यथिताः सर्वे किं भविष्यत्यतः परम् ॥ तथा त्रीणि सहस्राणि प्रबन्धं चक्रिरे

पीनेवालों में व सोना चुरानेवालों में जो पाप होताहै वह पाप उसको होवै जोकि वहां जाने में विमुख होवै अथवा बहुत कहनेसे क्याहै सत्यही द्विजोत्तम लोग जावैं॥ २ ॥ उस कठिन वचन को सुनकर उसने जानेके लिये मन धारण किया और उन जाते हुए ब्राह्मणों को सुनकर कुमारपालक राजा ने कहा ॥ ३ ॥ कि उन सबों को बुला कर कृषी कर्म या भिक्षाटन को अनेक गोत्रोंवाले ब्राह्मणों के लिये प्राप्त कराऊंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥ उसको सुनकर सब दुःखित हुए कि इसके उपरान्त

क्या होगा तब तीन हज़ार ब्राह्मणों ने यह प्रबंध किया ॥ ५ ॥ कि हम सब श्रीरामजी के समीप जावैंगे इसमें सन्देह नहीं है और आपस में ब्राह्मणों ने हस्ताक्षर दान किया ॥ ६ ॥ व हाथों को जोड़कर ब्राह्मणों ने इस वचन को कहा कि यहां त्रयीविद्या नाश होजावैगी और त्रयीमूर्त्ति याने ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी क्रोधित होवैंगे ॥ ७ ॥ इस कारण अठारह हज़ार ब्राह्मणों को वहीं जाना चाहिये तदनन्तर उस श्रेष्ठ राजा ने सब श्रेष्ठ गोभुज वणिजों को बुलाकर यह वचन कहा कि ब्राह्मणों को मना कीजिये ॥ ८ । ९ ॥ व्यासजी बोले कि जो उत्तम वणिज् जैनधर्म में लिप्त नहीं थे उन्होंने वहां जीविका नाश होने के डर से मौन धारण

तदा ॥ ५ ॥ गमिष्यामो वयं सर्वे रामं प्रति न संशयः ॥ हस्ताक्षरप्रदानं वै अन्योन्यं तु कृतं द्विजैः ॥ ६ ॥ कृताञ्जलिपुटा विप्रा वाक्यमेतदथाब्रुवन् ॥ नश्यतेऽत्र त्रयी विद्या त्रयीमूर्तिः प्रकुप्यति ॥ ७ ॥ तस्मात्तत्रैव गन्तव्यमष्टादशसहस्रकैः ॥ ततः स वणिजः सर्वान्समाहूय च गोभुजान् ॥ ८ ॥ वाक्यमूचे नृपश्रेष्ठो वारयध्वं द्विजानिति ॥ ९ ॥ व्यास उवाच ॥ न जैनधर्मे ये लिप्ता गोभुजा वणिगुत्तमाः ॥ वृत्तिभङ्गभयात्तत्र मौनमेव समाचरन् ॥ १० ॥ वारयाम कथं विप्रान्वह्निरूपान्दहन्ति ते ॥ शापाग्निना नरपते द्विजा मृत्युपरायणाः ॥ ११ ॥ अडालयेषु ये जाताः शूद्रा आहूय तान्नृपः ॥ निवार्यन्तामिति प्राह वाडवा गमनोद्यताः ॥ १२ ॥ तेषां मध्ये कतिपया जैनधर्मसमाश्रिताः ॥ गता वाडवपुञ्जेषु राजादेशान्निवारणे ॥ १३ ॥ केचिच्छूद्रा ऊचुः ॥ क्व रामो लक्ष्मणोपेतः क्व च वायुसुतो बली ॥ वर्तमानेन कालेन वक्तव्यं द्विजसत्तमाः ॥ १४ ॥ व्याघ्रसिंहाकुले दुर्गे वने वनगजाश्रिते ॥ परित्यज्य प्रियान्प्राणान्पुत्रान्दारान्निकेत

किया ॥ १० ॥ कि अग्निरूपी ब्राह्मणों को मैं कैसे मना करूं क्योंकि हे राजन् ! मृत्यु में परायण ब्राह्मण शापरूपी अग्नि से जलावैंगे ॥ ११ ॥ तब जो अडालय में शूद्र पैदाहुए थे उनको बुलाकर राजा ने कहा कि जाने के लिये तैयार ब्राह्मणों को मना कीजिये ॥ १२ ॥ उनके मध्य में जैनधर्म में आश्रित कुछ शूद्र राजा की आज्ञा से ब्राह्मणों के गणों में मना करने के लिये गये ॥ १३ ॥ कितेक शूद्र बोले कि लक्ष्मण से संयुत श्रीरामजी कहां हैं व पवनकुमार बलवान् हनुमान् जी कहां हैं हे द्विजोत्तमो ! वर्तमान समय से यह कहना चाहिये ॥ १४ ॥ व्याघ्रों व सिंहों से पूर्ण तथा वनके हाथियों से संयुत कठिन वन में प्यारे प्राणों को व पुत्रों, स्त्रियों और मन्दिरों

को छोड़कर ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणो ! दुष्ट शासनवाले राज्य में क्यों जाते हो उस वचन को सुनकर कितेक ब्राह्मणों ने वचन व मन से स्मरण किया ॥ १६ ॥ और पंद्रह हज़ार उन ब्राह्मणों ने श्रेष्ठ राजा के सकाश से भय, लोभ व दान के कारण यह कहा कि वह सब होगा ॥ १७ ॥ और हम लोग जीविका की कल्पना कभी न करैंगे या कृषीकर्म करैंगे अथवा भिक्षाटन करैंगे ॥ १८ ॥ तदनन्तर उन पंद्रहहज़ार द्विजोत्तमों ने उनसे यह कठिन वचन कहा कि अन्य ब्राह्मण यथायोग्य चले जावैं ॥ १९ ॥ और आपलोगों को श्रीरामजी से दिया हुआ शासन होवै और त्रयी विद्यावाले सब प्रसिद्ध द्विजोत्तम ॥ २० ॥ तीनहज़ार निश्चयकर त्रैविद्य हुए ॥ २१ ॥

नान् ॥ १५ ॥ किमर्थं गम्यते विप्रा राज्ये वै दुष्टशासने ॥ तच्छ्रुत्वा वाडवाः केचिद्वाक्येन मनसाऽस्मरन् ॥ १६ ॥ पञ्चदशसहस्रास्ते वाडवा नृपसत्तमात् ॥ भयाल्लोभाच्च दानाच्च तत्सर्वं भवतामिति ॥ १७ ॥ वृत्त्योपकल्पनं नैव करिष्यामः कदाचन ॥ कृषिकर्म करिष्यामो भिक्षाटनमथापि वा ॥ १८ ॥ ततश्च ते पञ्चदशसहस्रा द्विजसत्तमाः ॥ दारुणं वाक्यमूचुस्तान्यान्तु चान्ये यथोचितम् ॥ १९ ॥ शासनं भवतामस्तु रामदत्तं न संशयः ॥ त्रयीविद्यास्तु विख्याताः सर्वे वाडवपुङ्गवाः ॥ २० ॥ सहस्राणि च त्रीण्येव त्रैविद्या अभवन्ध्रुवम् ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ चतुर्थांशेन राज्यं च किञ्चिद्दत्ता वसुन्धरा ॥ तस्माच्चतुर्विधेत्येवं ज्ञातिबन्धमतः परम् ॥ २२ ॥ च्यवनो दास्यते कन्यां यूयं कन्यामवाप्नुत ॥ न वृत्तिर्न च सम्बन्धो भवतां स्यात्कदापि वा ॥ २३ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयीविद्याश्च वाडवाः ॥ स्वे स्वे स्थाने गताः सर्वे सङ्केतादनिवृत्त्य च ॥ २४ ॥ पञ्चदशसहस्राणि ततस्तु द्विजपुङ्गवाः ॥ यथागतं गताः सर्वे चातुर्विद्या द्विजोत्तमाः ॥ २५ ॥ तद्दिनं ह्यतिवाह्याथ चिन्ताविष्टेन चेतसा ॥ वार्यमाणाः स्वपुत्रैस्ते दारैश्च विन

राजा बोले कि चौथाई अंश से कुछ राज्य व पृथ्वी दीगई उस कारण इसके उपरान्त चारही प्रकार का ज्ञातिप्रबन्ध होगा ॥ २२ ॥ और च्यवनजी कन्या को देवैंगे व तुमलोग कन्या को पावोगे और आपलोगों की कभी जीविका व सम्बन्ध न होगा ॥ २३ ॥ उस राजा के इस वचन को सुनकर त्रयी विद्यावाले सब ब्राह्मण संकेत से न लौटकर अपने स्थान में चले गये ॥ २४ ॥ तदनन्तर पंद्रह हज़ार सब चातुर्विद्य द्विजोत्तमलोग जिसप्रकार आये थे वैसेही चले गये ॥ २५ ॥ और चिन्ता से संयुत

चित्त करके उस दिन को व्यतीत कर विनय से संयुत पुत्रों व स्त्रियों से वे ब्राह्मण मना किये गये ॥ २६ ॥ व सावधान मनवाले सब ब्राह्मण निद्रा को न प्राप्त हुए और ब्राह्ममुहूर्त में उठकर संसार की माया को छोड़कर ॥ २७ ॥ और स्थान समेत प्यारे पुत्रों व स्त्रियों को छोड़कर ग्राम के समीप सब श्रेष्ठ ब्राह्मण मिले ॥ २८ ॥ तब नित्य के दिनवाले कर्मों को करके तीन हज़ार ब्राह्मणों ने ब्राह्मणों के लिये दक्षिणा को देकर व कुलमाता को पूजकर ॥ २९ ॥ विघ्नसमूहों के नाश के लिये दक्षिण द्वारपै स्थित गणेशजी को सिंदूर व पुष्प की मालाओंसे पूजन किया ॥ ३० ॥ व सब प्रयोजनों को सिद्ध करनेवाले वकुलस्वामी सूर्यनारायण को पूजा और आदर से

यान्वितैः ॥ २६ ॥ एकाग्रमानसाः सर्वे न निद्रामुपलेभिरे ॥ ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय मायां त्यक्त्वा हि लौकिकीम् ॥ २७ ॥ परित्यज्य प्रियान्पुत्रान्दारान्सनिलयानपि ॥ ग्रामोपान्तेषु मिलिताः सर्वे वाडवपुङ्गवाः ॥ २८ ॥ सहस्राणि तदा त्रीणि कृतनित्याह्निकक्रियाः ॥ विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा सम्पूज्य कुलमातरम् ॥ २९ ॥ विघ्नसङ्घविनाशाय दक्षिणद्वारसंस्थितः ॥ सिन्दूरपुष्पमालाभिः पूजितो गणनायकः ॥ ३० ॥ पूजितो वकुलस्वामी सूर्यः सर्वार्थसाधकः ॥ आदराच्च महाशक्तिः श्रीमाता पूजिता तथा ॥ ३१ ॥ शान्तां चैव नमस्कृत्य ज्ञानजां गोत्रमातरम् ॥ गमनेनोद्यमानास्ते परं हर्षमुपाययुः ॥ ३२ ॥ चातुर्विद्या द्विजाश्चैव पुनरामन्त्र्य तान्प्रति ॥ पप्रच्छुश्च मुहुः सर्वं समागमनकारणम् ॥ ३३ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ न गन्तव्यं भवद्भिर्वै गत्वा वाऽऽयान्तु सत्वराः ॥ ३४ ॥ यथा रामप्रदत्तं हि उपकल्पयसेऽचिरात् ॥ श्रुत्वा पुनरथोचुस्ते चातुर्विद्या द्विजोत्तमाः ॥ ३५ ॥ न स्थानेन द्विजैर्वापि न च वृत्त्या कथंचन ॥ वयं

श्रीमाता महाशक्ति को पूजन किया ॥ ३१ ॥ और शान्ता व ज्ञानजा गोत्रमाता को प्रणामकर गमन के लिये प्रेरित वे बड़े हर्ष को प्राप्त हुए ॥ ३२ ॥ फिर चातुर्विद्य ब्राह्मणों ने उनको बुलाकर सब आनेके कारण को पूंछा ॥ ३३ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि आप लोगों को जाना न चाहिये या जाकर शीघ्रही आइयेगा ॥ ३४ ॥ और रामजीने जैसी आज्ञा दियाहै वैसाही शीघ्रही कीजियेगा यह सुनकर फिर उन चातुर्विद्य ब्राह्मणों ने कहा ॥ ३५ ॥ कि स्थान से व ब्राह्मणों से और जीविका से किसी प्रकार

हम लोग न आवैंगे और फिर न कहना चाहिये ॥ ३६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! रघुनायकजीने हम सबों को जो जीविका दिया है उस जीविका को हम लोग जप, होम व पूजनादिकों से प्राप्त होवैंगे ॥ ३७ ॥ फिर उन पंद्रह हज़ार ब्राह्मणोंने उनसे आदर से कहा कि अग्निकी सेवा में तत्पर हम सबों को यहां टिकना चाहिये ॥ ३८ ॥ सबोंके कार्य की सिद्धि के लिये तुम लोगों को वहां जाना चाहिये और आपस में सब सहायवाले हम लोग जीविका को प्राप्त होवैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३९ ॥ और अपने वचनको छोड़नेवाले तुम लोग जीविका से रहित होवोगे तदनन्तर उनके मध्य में किसी चातुर्विंद्य ब्राह्मण ने कहा ॥ ४० ॥ चातुर्विंद्य बोला कि हे ब्राह्मणो ! श्रीरामजी

नैवागमिष्यामः कथनीयं न वै पुनः ॥ ३६ ॥ रघूद्वहेन दत्ता वै वृत्तिर्नो द्विजसत्तमाः ॥ तां वृत्तिं प्रति यास्यामो जप होमार्चनादिभिः ॥ ३७ ॥ ते पञ्चदशसाहस्राः पुनस्तानूचुरादरात् ॥ अस्माभिरत्र स्थातव्यमग्निसेवार्थतत्परैः ॥ ३८ ॥ युष्माभिस्तत्र गन्तव्यं सर्वेषां कार्यसिद्धये ॥ अन्योन्यं सर्वसाहाया वृत्तिं याम न संशयः ॥ ३९ ॥ त्यक्तस्वकीयवचना वृत्तिहीना भविष्यथ ॥ ततस्तन्मध्यतः कश्चिच्चातुर्विंद्य उवाच ह ॥ ४० ॥ चातुर्विंद्य उवाच ॥ पूर्वं हि वृत्तिमस्माकं रामो वै दत्तवान्द्विजाः ॥ चातुर्विंद्या महासत्त्वाः स्वधर्मप्रतिपालकाः ॥ ४१ ॥ याजनाध्ययनायुक्ताः काजेशेन विनिर्मिताः ॥ दानं दत्त्वा तु रामेण उक्तं हि भवतां पुनः ॥ ४२ ॥ स्थानं त्यक्त्वा न गन्तव्यमित्थं हि नियमः कृतः ॥ आपत्काले तु स्मर्तव्यो वायुपुत्रो महाबलः ॥ ४३ ॥ इति रामेण पूर्वं हि स्वे स्थाने स्थापितास्तदा ॥ अन्यथा रामवाक्यं तत्कृत्वा गच्छेत्कथं पुनः ॥ ४४ ॥ तस्माद्युष्मान्वयं ब्रूमो गच्छतः कार्यसिद्धये ॥ भवतां कार्यसिद्ध्यर्थं वयं

ने पहले हमलोगों को जीविका दिया है व अपने धर्म के पालक बड़े सत्त्ववाले चातुर्विंद्य ब्राह्मण ॥ ४१ ॥ यज्ञ कराने व वेद पाठसे संयुत ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से बनाये गये और श्रीरामजीने आप लोगों को दान देकर फिर कहा ॥ ४२ ॥ कि स्थान को छोड़कर जाना न चाहिये ऐसा नियम किया गया और विपत्ति समय में बड़े बल॰ पवनकुमार को स्मरण करना चाहिये ॥ ४३ ॥ उस समय इस प्रकार श्रीरामजी ने पहले अपने स्थान में स्थापित किया और उस रामजी के वचन को अन्यथा क॰ फिर कैसे जावै ॥ ४४ ॥ उसी कारण हमलोग कार्य की सिद्धि के लिये जाते हुए तुमलोगों से कहते हैं कि आपलोगों की कार्यसिद्धि के लिये हमलोग होम व पू॰

दिकोंसे प्राप्त हैं ॥ ४५ ॥ और शीघ्रही कार्य की सिद्धि है यह सत्य सत्य है इसमें सन्देह नहीं है इस वचनको सुनकर तदनन्तर उन ब्राह्मणों ने गमनके लिये ॥ ४६ ॥ पहले प्रस्थान करके जानेके लिये मनको धारण किया तब तीनहज़ार उत्तम ब्राह्मण वहां से गये ॥ ४७ ॥ और देशसे अन्य देश व वन से अन्य वन को जाकर पूर्वजों को तृप्त करके उन्होंने प्रत्येक तीर्थ में श्राद्ध किया ॥ ४८ ॥ व राम राम और हनुमंत ऐसा ध्यान करते हुए उत्तम आचार व एक बार भोजन करनेवाले वे ब्राह्मण धीरे धीरे गये ॥ ४९ ॥ और सत्य के व्रत में परायण व प्रतिग्रह (दान लेना) छोड़े हुए वे हनुमान्जी के दर्शन की इच्छावाले ब्राह्मण दूर मार्गको चलेगये ॥ ५० ॥ और

होमार्चनादिभिः ॥ ४५ ॥ झटिति कार्यसिद्धिः स्यात्सत्यं सत्यं न संशयः ॥ इति वाक्यं ततः श्रुत्वा ते द्विजा गमनं प्रति ॥ ४६ ॥ प्रस्थानं च विधायादौ गमनाय मनो दधुः ॥ त्रिसाहस्रास्तदा तस्मात्प्रस्थिता द्विजसत्तमाः ॥ ४७ ॥ देशाद्देशान्तरं गत्वा वनाच्चैव वनान्तरम् ॥ तीर्थेतीर्थे कृतश्राद्धाः सुसन्तर्पितपूर्वजाः ॥ ४८ ॥ ध्यायन्तो रामरामेति हनुमन्तेति वै पुनः ॥ एकाशनाः सदाचारा द्विजा जग्मुः शनैःशनैः ॥ ४९ ॥ त्यक्तप्रतिग्रहाः शान्ताः सत्यव्रतपरायणाः ॥ ते गता दूरमध्वानं हनुमद्दर्शनार्थिनः ॥ ५० ॥ सन्ध्यामुपासते नित्यं त्रिकालं चैकमानसाः ॥ एवं तु गच्छतां तेषां शकुना अभवञ्छुभाः ॥ ५१ ॥ एवं तु गच्छतां तेषां पाथेयं त्रुटितं तदा ॥ श्रान्ता ग्लानिं गताः सर्वे पदं परममास्थिताः ॥ ५२ ॥ क्रमित्वा कियतीं भूमिं पदं गन्तुं न तु क्षमाः ॥ मनसा निश्चयं कृत्वा दृढीकृत्य स्वमानसम् ॥ ५३ ॥ हनूमन्तमदृष्ट्वैव न यास्यामो वयं गृहान् ॥ त्रैविद्यास्तु गतास्तत्र यत्र रामेश्वरो हरिः ॥ ५४ ॥

सावधान मनवाले वे नित्य त्रिकाल संध्योपासन करते थे इस प्रकार जाते हुए उन को उत्तम शकुन हुए ॥ ५१ ॥ और इस प्रकार जाते हुए उनका मार्गव्यय चुक गया तब बडे स्थान में प्राप्त वे सब थकगये और बड़े उदासीन होगये ॥ ५२ ॥ और कितनी पृथ्वी को नाँघकर पगभर चलने के लिये न समर्थ हुए तब मनसे निश्चय कर व अपने मन को दृढ़ करके ॥ ५३ ॥ कि हनुमान्जी को न देखकर हम लोग घरको न जावैंगे और वे त्रैविद्य ब्राह्मण वहां गये जहां कि रामेश्वर हरि थे ॥ ५४ ॥

और दृढ़व्रत व सत्य में परायण तथा कन्द, मूल व फलों को खानेवाले वे राम राम व हनूमंत ऐसा ध्यान करते हुए ॥ ५५ ॥ वे नियम को ग्रहणकर और अन्न व जल को छोड़कर प्यास से विकल व क्षुधा से व्याकुल व्रतमें परायण वे गये ॥ ५६ ॥ इस प्रकार दुःखित ब्राह्मणों के भक्तिपात्र श्रीरामजी उचाट मन होकर हनुमान्जी से बोले ॥ ५७ ॥ कि हे पवनकुमार ! धर्म को जाननेवाले तुम ब्राह्मणों के लिये शीघ्रही जावो क्योंकि धर्मारण्य में बसनेवाले सब ब्राह्मण दुःखित होतेहैं ॥ ५८ ॥ और मेरा मन जलता है अन्यथा मेरी शांति न होगी व ब्राह्मणों को दुःख करनेवाला दण्ड देने योग्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५९ ॥ हे कपे ! जिससे ब्राह्मण दुःखित

दृढव्रताः सत्यपराः कन्दमूलफलाशनाः ॥ ध्यायन्तो रामरामेति हनूमन्तेति वै पुनः ॥ ५५ ॥ गृहीत्वा नियमं तेऽपि त्यक्त्वा चान्नं तथोदकम् ॥ तृषार्ताश्च क्षुधार्त्ताश्च ययुर्व्रतपरायणाः ॥ ५६ ॥ एवं तु क्लिश्यमानानां द्विजानां भक्तिभाजनः ॥ उद्विग्नमानसो रामो हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ ५७ ॥ शीघ्रं गच्छ द्विजार्थे त्वं पवनात्मज धर्मवित् ॥ क्लिश्यन्ते वाडवाः सर्वे धर्मारण्यनिवासिनः ॥ ५८ ॥ दह्यते मानसं मेऽद्य नान्यथा शान्तिरस्ति मे ॥ विप्राणां दुःखकर्त्ता च शास्तव्यो नात्र संशयः ॥ ५९ ॥ येन वै दुःखिता विप्रास्तेनाहं दुःखितः कपे ॥ याहि शीघ्रं हि मां त्यक्त्वा विप्राणां परिपालने ॥ ६० ॥ रामस्य वचनं श्रुत्वा नमस्कृत्य च राघवम् ॥ कृपया परयाविष्टः प्रादुरासीद्धरीश्वरः ॥ ६१ ॥ वृद्धब्राह्मणरूपेण परीक्षार्थं द्विजन्मनाम् ॥ उवाच परया भक्त्या ब्राह्मणाञ्छ्रमदुर्बलान् ॥ ६२ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा करान्मुक्त्वा कमण्डलुम् ॥ सर्वान्प्रत्यभिवाद्याथ वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६३ ॥ कुतः स्थानादिह प्राप्ता गन्तु

हैं उसी से मैं दुःखित हूं तुम मुझ को छोड़कर शीघ्रही ब्राह्मणों के पालन के लिये जाइये ॥ ६० ॥ श्रीरामजी का वचन सुनकर व श्रीरघुनाथजी को प्रणामकर बड़ी दया से संयुत कपीश्वर हनुमान्जी ब्राह्मणों की परीक्षा के लिये बूढ़े ब्राह्मण के रूप से प्रकटहुए और परिश्रम से दुर्बल ब्राह्मणों से बड़ी भक्ति से बोले ॥ ६१ । ६२ ॥ हाथ से कमंडलु को छोड़कर व हाथों को जोड़कर हनुमान्जी सबों को प्रणामकर इसके उपरान्त यह वचन बोले ॥ ६३ ॥ कि आप लोग किस स्थान से यहां प्राप्त

हुए हो और कहां को जाने की इच्छा करतेहो व किस लिये आप लोग भयंकर वन में जातेहो ॥ ६४ ॥ ब्राह्मण बोले कि हम लोग ब्राह्मण अपना दुःख कहने के लिये धर्मारण्य से आये हैं और हमलोग श्रीरामजी के दर्शन के लिये सब कामनाओं को देनेवाले सेतुबंध महातीर्थ को जानेकी इच्छा करते हैं और नियममें स्थित व दुर्बल शरीरवाले हमलोग श्रीरामजी को देखने के लिये उत्कंठित हैं ॥ ६५ । ६६ ॥ जहां कि रामेश्वरदेव व साक्षात् पवनकुमार वानर (हनुमान्जी) हैं उसको सुनकर उस ब्राह्मण ने कहा कि श्रीरामजी कहां हैं व हनुमान्जी कहां हैं ॥ ६७ ॥ व हे ब्राह्मणो ! दूर से भी अधिक दूर सेतुबंध रामेशजी कहां हैं और व्याघ्रों व सिंहों

कामाश्च वै कुतः ॥ किमर्थं वै भवद्भिश्च गम्यते दारुणं वनम् ॥ ६४ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ धर्मारण्यात्समायाता निजदुःखं निवेदितुम् ॥ रामस्य दर्शनार्थं हि गन्तुकामा वयं द्विजाः ॥ ६५ ॥ सेतुबन्धं महातीर्थं सर्वकामप्रदायकम् ॥ नियमस्थाः क्षीणदेहा रामं द्रष्टुं समुत्सुकाः ॥ ६६ ॥ यत्र रामेश्वरो देवः साक्षाद्वायुसुतः कपिः ॥ तच्छ्रुत्वा स द्विजः प्राह क रामः क च वायुजः ॥ ६७ ॥ क सेतुबन्धरामेशो दूराद्दूरतरो द्विजाः ॥ व्याघ्रसिंहाकुलं चोग्रं वनं घोरतरं महत् ॥६८॥ गत्वा यस्मान्न वर्तन्ते तदुग्रमनुजीविनः ॥ निवर्तध्वं महाभागा यदि कार्यं हि मद्वचः ॥ ६९ ॥ अथवा गम्यतां विप्राश्चिरं जीव सुखी भव ॥ वृद्धस्य वाक्यं तच्छ्रुत्वा वाडवाश्चैकमानसाः ॥ ७० ॥ विप्र गच्छामहे सर्वे रामपार्श्वमसंशयः ॥ म्रियेत यदि मार्गेऽस्मिन् रामलोकमवाप्नुयात् ॥ ७१ ॥ जीवन्वृत्तिमवाप्नोति रामादेव न संशयः ॥ अन्यथा शरणं नास्ति अस्माकं राघवं विना ॥ ७२ ॥ इत्युक्त्वा निर्गताः सर्वे रामदर्शनतत्पराः ॥ दिनान्तमतिवाह्याथ प्रभाते

से संयुत उग्र वन बड़ा भारी व बहुत भयंकर है ॥ ६८ ॥ व जिस में जाकर जीविकावाले प्राणी नहीं वर्तमान होते हैं वह उग्र वन है हे महाभागो ! यदि मेरा वचन करनाहै तो लौटिये ॥ ६९ ॥ अथवा हे ब्राह्मणो ! जाइये और बहुत दिनोंतक जियो व सुखी होवो वृद्धके उस वचनको सुनकर सावधान मनवाले ब्राह्मणोंने कहा ॥७०॥ कि हे विप्रजी ! हम सब श्रीरामजी के समीप जावेंगे इसमें सन्देह नहीं है यदि इस मार्ग में कोई मरजाता है तो वह श्रीरामजी के लोकको पाता है ॥ ७१ ॥ और जीता हुआ वह श्रीरामहीसे जीविका को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है अन्यथा हमलोगों की श्रीरामजी के विना शरण नहीं है ॥ ७२ ॥ यह कहकर श्रीरामजी के

दर्शन में तत्पर सब लोग चले और दिनके अन्त को व्यतीत कर फिर निर्मल प्रातःकाल होने पर ॥ ७३ ॥ पहले के गुणों से संयुत वे ब्राह्मणरूपी वृद्ध बुद्धिमान् हनुमान्जी ने कमंडलु को धारण कर प्रणाम किया ॥ ७४ ॥ व कहा कि किस स्थान से तुम सब ब्राह्मणलोग यहां प्राप्त हुए हो कहीं बड़ा लाभ है या बड़ा भारी उत्सव है ॥ ७५ ॥ उसके इस वचन को सुनकर ब्राह्मणलोग विस्मय को प्राप्त हुए और प्रणामपूर्वक उन्हों ने आदर समेत विनय कहा ॥ ७६ ॥ कि हे भूमिदेव ! बड़े आश्चर्यकारक हमलोगों के पहले के वृत्तान्त को सुनिये क्योंकि तुम दयालु देख पड़ते हो ॥ ७७ ॥ पहले सृष्टि के प्रारंभ में हमलोगों को विष्णु, शिव व ब्रह्माजी

विमले पुनः ॥ ७३ ॥ हनुमान्ब्रह्मरूपी स वृद्धः पूर्वगुणान्वितः ॥ कमण्डलुधरो धीमानभिवादनतत्परः ॥ ७४ ॥ कुत्र स्थानादिह प्राप्ताः सर्वे यूयं हि वाडवाः ॥ कुत्रास्ति वा महालाभो विवाहोत्सव एव वा ॥ ७५ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा वाडवा विस्मयं गताः ॥ प्रणामपूर्वां विज्ञप्तिं कथयामासुरादृताः ॥ ७६ ॥ अस्माकं तु पुरा वृत्तं महदाश्चर्यकारकम् ॥ भूमिदेव शृणुष्व त्वं दयालुर्दृश्यसे यतः ॥ ७७ ॥ आदौ सृष्टिसमारम्भे स्थापिताः केशवेन च ॥ शिवेन ब्रह्मणा चैव त्रिमूर्तिस्थापिता वयम् ॥ ७८ ॥ श्रीरामेण ततः पश्चाज्जीर्णोद्धारेण स्थापिताः ॥ ग्रामाणां वेतनं दत्तं हरिराजेन चादरात् ॥७९॥ चतुश्चत्वारिंशदधिकचतुःशतमितात्मनाम् ॥ ग्रामास्त्रयोदशार्चार्थं सीतापुरसमन्विताः ॥८०॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि वणिजो द्विजपालने ॥ गोभूजसंज्ञास्ते शूद्रास्तेभ्यः सपादलक्षकाः ॥ ८१ ॥ ते च जातास्त्रिधा तात गोभूजाडालजास्तथा ॥ माण्डलीयास्तथा चैते त्रिविधाश्च मनोरमाः ॥ ८२ ॥ वृत्त्यर्थं तेन दत्ता वै ह्यनर्घ्या

ने स्थापन किया है इससे हमलोग तीनों मूर्तियों से स्थापित हैं ॥ ७८ ॥ तदनन्तर पश्चात् श्रीरामजी ने जीर्णोद्धार से स्थापित किया है और हनुमान्जी ने आदर से ग्रामों को वेतन (नौकरी) दिया है ॥ ७९ ॥ और पूजन के लिये सीतापुर समेत चार सौ चवालीस व तेरह ग्रामों को दिया ॥ ८० ॥ और ब्राह्मणों के पालन में छत्तीस हजार वैश्य दिये गये और उनके लिये सवालाख गोभुजसंज्ञक वे शूद्र दिये गये ॥ ८१ ॥ हे तात ! वे तीन प्रकार के हुए याने गोभुज, अडालज, मांडलीय ये तीनों प्रकार के मनोहर हैं ॥ ८२ ॥ और जीविका के लिये उन्हों ने अमूल्य करोड़ों रत्नों को दिया है तब वे मोढ, गोभूज, मांडलीय और अडालज संज्ञक

हुए ॥ ८३ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इस समय दुर्बुद्धि आम नामक राजा श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा को नहीं मानताहै ॥ ८४ ॥ व उसका दामाद कुमारपालक नामक सदैव पाखंडों से व्याप्त व कलियुग के धर्म से संमत है ॥ ८५ ॥ और बौद्धधर्मवाले इन्द्रसूत्र जैनी ने उसकी प्रेरणा किया व उसने श्रीरामजी के दिये हुए शासन को लुप्त किया है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८६ ॥ और कितेक वैसेही वणिज्लोग उसी मनवाले होगये वे श्रीराम व बड़े बुद्धिमान् हनुमान्जी को मना करते हैं ॥ ८७ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! विना विश्वास के मैं निश्चयकर न दूंगा उसको जानकर ये ब्राह्मण श्रीरामजी की शरण में आये ॥ ८८ ॥ व श्रीरामजी की आज्ञा को पालन करनेवाले

रत्नकोटयः ॥ तदा ते मोढ १८००० गोभूजा १८००० माण्डलीया १२५००० अडालजाः १८००० ॥ ८३ ॥ अधुना वाडवश्रेष्ठ आमोनाम महीपतिः ॥ शासनं रामचन्द्रस्य न मानयति दुर्मतिः ॥ ८४ ॥ जामाता तस्य दुष्टो वै नाम्ना कुमारपालकः ॥ पाखण्डैर्वेष्टितो नित्यं कलिधर्मेणसंमतः ॥ ८५ ॥ इन्द्रसूत्रेण जैनेन प्रेरितो बौद्धधर्मिणा ॥ शासनं तेन लुप्तं हि रामदत्तं न संशयः ॥ ८६ ॥ वणिजस्तादृशाः केऽपि तन्मनस्का बभूविरे ॥ निषेधयन्ति रामं ते हनुमन्तं महामतिम् ॥ ८७ ॥ प्रत्ययं तु विना विप्रा न दास्यामीति निश्चितम् ॥ तं ज्ञात्वा तु इमे विप्रा रामं शरणमाययुः ॥ ८८ ॥ हनुमन्तं महावीरं रामशासनपालकम् ॥ तस्माद्गच्छामहे सर्वे रामं प्रति महामते ॥ ८९ ॥ आञ्जनेयो यदस्माकं न दास्यति समीहितम् ॥ अनाहारव्रतेनैव प्राणांस्त्यक्ष्यामहे वयम् ॥ ९० ॥ अस्माभिस्ते विशेषेण कथितं परिपृच्छितम् ॥ स्नेहभावं विचिन्त्याशु निजवृत्तिं प्रकाशय ॥ ९१ ॥ हनुमानुवाच ॥ प्राप्ते कलियुगे

महावीर हनुमान्जी की शरण में आये उसी कारण हे महामते ! हम सब श्रीरामजी के समीप जाते हैं ॥ ८९ ॥ और यदि हनुमान्जी हमलोगों को मनोरथ न देवेंगे तो हम सब निराहार व्रत से प्राणों को छोड़देवेंगे ॥ ९० ॥ हमलोगों ने तुम से विशेष कर पूंछे हुए वृत्तान्त को कहा तुम स्नेह के भाव को विचारकर शीघ्रही अपनी वृत्ति को प्रकाशित करो ॥ ९१ ॥ हनुमान्जी बोले कि हे ब्राह्मणो ! कलियुग प्राप्त होने पर कहां देवदर्शन होगा हे द्विजेन्द्रो ! यदि बहुत सुख चाहते हो तो

लौट आइये ॥ ६२ ॥ क्योंकि व्याघ्रों व सिंहों से पूर्ण तथा वन के हाथियों से आश्रित व बहुत से वनाग्नियों से संयुत शून्य वन में प्रवेश नहीं किया जा सक्ता है ॥ ९३ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे विप्र ! दिन बीतने पर आपने इस एक वृत्तान्त को कहा और तुम आजही आकर तुम ऐसा कहते हो ॥ ९४ ॥ विप्र के रूप से तुम कौन हो श्रीराम हो व हनुमान्जी हो हे महाद्विज ! दया करके हमलोगों से सत्य कहिये ॥ ९५ ॥ हनुमान्जी ने जो गुप्त था उसको ब्राह्मणों के आगे कहा कि हे ब्राह्मणो ! मैं हनुमान्जी हूं ऐसा निश्चयकर तुमलोग मुझ को जानो ॥ ९६ ॥ और स्वरूप को प्रकटकर बड़े भारी लांगूल (पुच्छ) को दिखाते हुए ॥ ९७ ॥ हनुमान्जी बोले

विप्राः क्व देवदर्शनं भवेत् ॥ निवर्त्तध्वं हि विप्रेन्द्रा यदीच्छथ सुखं महत् ॥ ९२ ॥ व्याघ्रसिंहाकुले शून्ये वने वनगजाश्रिते ॥ बहुदावसमाविष्टे प्रवेष्टुं नैव शक्यते ॥ ९३ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ अतीते दिवसे विप्र एकं कथितवानिदम् ॥ अद्यैव त्वं समागम्य एवमेव प्रभाषसे ॥ ९४ ॥ कस्त्वं वाडवरूपेण रामो वाप्यथ वायुजः ॥ सत्यं कथय न स्वास्मिन्दयां कृत्वा महाद्विज ॥ ९५ ॥ हनुमान्कथयामास गोपितं यद्द्विजाग्रतः ॥ हनुमानित्यहं विप्रा बुध्यध्वं निश्चिता हि माम् ॥९६॥ स्वरूपं प्रकटीकृत्य लाङ्गूलं दर्शयन्महत् ॥ ९७ ॥ हनुमानुवाच ॥ अयमम्भोनिधिः साक्षात्सेतुबन्धो मनोरमः ॥ अयं रामेश्वरो देवो गर्भवासविनाशकृत् ॥ ९८ ॥ इयं तु नगरी श्रेष्ठा लङ्कानामेति विश्रुता ॥ यत्र सीता मया प्राप्ता रामशोकापहारिणी ॥ ९९ ॥ तर्जन्यग्रे द्विजश्रेष्ठा अगम्या मां विना परैः ॥ सा सुवर्णमयी भाति यस्यां राज्ये विभीषणः ॥ २०० ॥ स्थापितो रामदेवेन सेयं लङ्का महापुरी ॥ नियमस्थैः साधुवृन्दैस्तीर्थयात्राप्रसङ्गतः ॥ १ ॥ आनीय

कि यह साक्षात् समुद्र है व सुन्दर सेतुबंध है और गर्भवास को विनाशनेवाले ये रामेश्वर देवजी हैं ॥ ९८ ॥ और लंका नाम ऐसी प्रसिद्ध यह उत्तम नगरी है जहां कि श्रीरामजी के शोक को हरनेवाली सीताजी को मैंने पाया था ॥ ९९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! तर्जनी अंगुली के आगे यह पुरी मुझ को छोड़कर अन्यलोगों से जाने योग्य नहीं है और वह लंकापुरी सुवर्णमयी शोभित है व जिसमें राज्य पै विभीषणजी को ॥ २०० ॥ श्रीराम देवजी ने स्थापित किया है वही यह लंका महापुरी है और नियम में स्थित साधुगणों से तीर्थयात्रा के प्रसंग से ॥ १ ॥ श्रीगंगाजी का जल मंगाकर रामेश्वरजी को अभिषेक करके ये बड़े भाग्यवान् समुद्र के मध्य में डाले

हुए देख पड़ते हैं ॥ २ ॥ उस से वे दृढ़ नियमोंवाले साधुलोग पापरहित होगये पुण्य के उदय में निश्चय कर वृद्धि होती है व पाप में न्यूनता होती है ॥ ३ ॥ पहले चातुर्विद्य ब्राह्मणलोग स्थान से भ्रष्ट किये गये फिर श्रीरामजी से जीर्णोद्धार से स्थापित किये गये हे ब्राह्मणो ! पूर्व जन्म में मैंने विष्णुजी का पूजन किया है ॥ ४ ॥ व इस समय आपलोगों के निश्चल भक्ति देखपड़ती है उस पुण्य के प्रभाव से प्रसन्न होकर मैं तुमलोगों को वर दूंगा ॥ ५ ॥ और पृथ्वी में मैं धन्य हूं व कृतार्थ हूं और उत्तम भाग्यवान् हूं व आज मेरा जन्म सफल होगया व जीवन भलीभांति जीवित हुआ ॥ ६ ॥ जो कि मैंने ब्राह्मणों के चरणों के समीप को

गङ्गासलिलं रामेशमभिषिच्य च ॥ क्षिप्ता एते महाभागा दृश्यन्ते सागरान्तरे ॥ २ ॥ निष्पापास्तेन संजाताः साधवस्ते दृढव्रताः ॥ नूनं पुण्योदये वृद्धिः पापे हानिश्च जायते ॥ ३ ॥ स्थानभ्रष्टाः कृताः पूर्वं चातुर्विद्या द्विजातयः ॥ जीर्णोद्धारेण रामेण स्थापिताः पुनरेव हि ॥ पूर्वजन्मनि भो विप्रा हरिपूजा कृता मया ॥ ४ ॥ साम्प्रतं निश्चला भक्तिर्भवत्स्वेव हि दृश्यते ॥ तेन पुण्यप्रभावेण तुष्टो दास्यामि वो वरम् ॥ ५ ॥ धन्योहं कृतकृत्योहं सुभाग्योहं धरातले ॥ अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ॥ ६ ॥ यदहं ब्राह्मणानां च प्राप्तवांश्चरणान्तिकम् ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ दृष्ट्वैव हनुमन्तं ते पुलकाङ्कितविग्रहाः ॥ सगद्गदमथोचुस्ते वाक्यं वाक्यविशारदाः ॥ २०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येहनुमत्समागमोनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे प्रत्यूचुः पवनात्मजम् ॥ अधुना सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ॥ १ ॥ अद्य नो

पाया ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले कि इस प्रकार हनुमान्जी को देखकर रोमांचित शरीरवाले उन वाक्य में चतुर ब्राह्मणों ने गद्गद समेत वचन को कहा ॥ २०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहनुमत्समागमोनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । धर्मारण्य क्षेत्र को पुनि आये जिमि विप्र । सैंतिसवें अध्याय में सोई सुभग चरित्र ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर उन सब ब्राह्मणों ने हनुमान्जी से कहा कि इस समय हम सबों का जन्म सफल होगया व जीवित सुजीवित हुआ ॥ १ ॥ और आज हम सब मोढलोगों का धर्म व घर धन्य हैं और सब पृथ्वी धन्य है

जहां कि अनेक प्रकार के धर्म हैं ॥ २ ॥ श्रीरामजी के भक्त और अक्षकुमार को नाशनेवाले के लिये प्रणाम है और राक्षसों की पुरी को जलानेवाले तथा वज्र को धारनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ३ ॥ और जानकीजी के हृदय की रक्षा करनेवाले दयात्मक के लिये तथा सीताजी के विरह से संतप्त श्रीरामजी के प्यारे हनुमान्जी के लिये प्रणाम है ॥ ४ ॥ हे महावीर ! तुम्हारे लिये प्रणाम है पृथ्वी में डूबते हुए हमलोगों की रक्षा कीजिये व ब्राह्मण देवजी के लिये प्रणाम है और पवन के पुत्र आप के लिये प्रणाम है ॥ ५ ॥ व श्रीरामजी के भक्त तथा गऊ व ब्राह्मणों का हित करनेवाले के लिये प्रणाम है और रुद्ररूपी व कृष्णमुखवाले आप के लिये प्रणाम

मोदलोकानां धन्यो धर्मश्च वै गृहाः ॥ धन्या च सकला पृथ्वी यत्र धर्मा ह्यनेकशः ॥ २ ॥ नमः श्रीरामभक्ताय अक्षविध्वंसनाय च ॥ नमो रक्षःपुरीदाहकारिणे वज्रधारिणे ॥ ३ ॥ जानकीहृदयत्राणकारिणे करुणात्मने ॥ सीताविरहतप्तस्य श्रीरामस्य प्रियाय च ॥ ४ ॥ नमोऽस्तु ते महावीर रक्षास्मान्मज्जतः क्षितौ ॥ नमो ब्राह्मणदेवाय वायुपुत्राय ते नमः ॥ ५ ॥ नमोऽस्तु रामभक्ताय गोब्राह्मणहिताय च ॥ नमोस्तु रुद्ररूपाय कृष्णवक्राय ते नमः ॥ ६ ॥ अञ्जनीसूनवे नित्यं सर्वव्याधिहराय च ॥ नागयज्ञोपवीताय प्रबलाय नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥ स्वयं समुद्रतीर्णाय सेतुबन्धनकारिणे ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ स्तोत्रेणैवामुना तुष्टो वायुपुत्रोऽब्रवीद्वचः ॥ वृणुध्वं हि वरं विप्रा यद्वोमनसि रोचते ॥ ९ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ यदि तुष्टोऽसि देवेश रामाज्ञापालक प्रभो ॥ स्वरूपं दर्शयस्वाद्य लङ्कायां यत्कृतं हरे ॥ १० ॥ तथा विध्वंसयाद्य त्वं राजानं पापकारिणम् ॥ दुष्टं कुमारपालं हि आमं चैव न सं

है ॥ ६ ॥ व अंजनीकुमार के लिये तथा सदैव सब रोगों को हरनेवाले के लिये प्रणाम है व सर्पों का जनेऊ पहने और प्रबल आप के लिये प्रणाम है ॥ ७ ॥ और आपही समुद्र को नाँघनेवाले व सेतु को बाँधनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले कि इस स्तोत्र से प्रसन्न पवनकुमार ने यह वचन कहा कि हे ब्राह्मणो ! तुमलोगों के मन में जो रुचता हो उस वर को माँगिये ॥ ९ ॥ ब्राह्मणलोग बोले कि हे श्रीरामजी की आज्ञा को पालन करनेवाले, देवेश, प्रभो, हरे ! यदि तुम प्रसन्न हो तो तुमने लंका में विध्वंस करने के लिये जिस रूप को दिखाया था उसको वैसेही आज तुम पापकारी व दुष्ट कुमारपाल और आम राजा को निस्सन्देह दिखलाइये

व उसको इस समय नाश कीजिये ॥ १० । ११ ॥ और जिस प्रकार वह जीविका के लोप के फल को इसी क्षण पावै तुम वैसाही करो व हे महाबाहो ! विश्वास के लिये हमलोगों को कुछ चिह्न दीजिये ॥ १२ ॥ कि जिस चिह्न के देने से वह राजा पुण्यभागी होवै और विश्वास दिखलाने पर वह शासन को पालैगा ॥ १३ ॥ और वेदत्रयी का धर्म विस्तार को प्राप्त करावैगा हे धर्मधीर, महावीर ! हमलोगों को स्वरूप को दिखलाइये ॥ १४ ॥ हनुमान्जी बोले कि हे ब्राह्मणो ! बड़े शरीरवाला व तेजपुंजमय मेरा दिव्यस्वरूप कलियुग में नेत्रों के सामने प्राप्त होने योग्य नहीं है आपलोग ऐसा जानिये ॥ १५ ॥ तथापि मैं बड़ी भक्ति व स्तोत्रादिकों से प्रसन्न

शयः ॥ ११ ॥ वृत्तिलोपफलं सद्यः प्राप्नुयात्त्वं तथा कुरु ॥ प्रतीत्यर्थं महाबाहो किञ्चिच्चिह्नं ददस्व नः ॥ १२ ॥ येन चिह्ने न दत्तेन स राजा पुण्यभाग्भवेत् ॥ प्रत्यये दर्शिते वीर शासनं पालयिष्यति ॥ १३ ॥ त्रयीधर्म्मः पृथिव्यां तु विस्तारं प्रापयिष्यति ॥ धर्मधीर महावीर स्वरूपं दर्शयस्व नः ॥ १४ ॥ हनुमानुवाच ॥ मत्स्वरूपं महाकायं न चक्षुर्विषयं कलौ ॥ तेजोराशिमयं दिव्यमिति जानन्तु वाडवाः ॥ १५ ॥ तथापि परया भक्त्या प्रसन्नोऽहं स्तवादिभिः ॥ वसनान्तरितं रूपं दर्शयिष्यामि पश्यत ॥ १६ ॥ एवमुक्तास्तदा विप्राः सर्वकार्यसमुत्सुकाः ॥ महारूपं महाकायं महापुच्छसमाकुलम् ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा दिव्यस्वरूपं तं हनुमन्तं जहर्षिरे ॥ कथंचिद्धैर्यमालम्ब्य विप्राः प्रोचुः शनैः शनैः ॥ १८ ॥ यथोक्तं तु पुराणेषु तत्तथैव हि दृश्यते ॥ उवाच स हि तान्सर्वांश्चक्षुः प्रच्छाद्य संस्थितान् ॥ १९ ॥ फलानीमानि गृह्णीध्वं भक्षणार्थं मृषीश्वराः ॥ एभिस्तु भक्षितैर्विप्रा ह्यतितृप्तिर्भविष्यति ॥ २० ॥ धर्मारण्यं विना चाद्य क्षुधा वः शाम्यति ध्रुवम् ॥ २१ ॥

हूं इस से वस्त्र से आच्छादितरूप को दिखलाता हूं देखिये ॥ १६ ॥ तब ऐसा कहे हुए सब कार्यों में उत्कंठित ब्राह्मण बड़ी भारी पूंछ से संयुत और बड़े शरीरवाले महारूप ॥ १७ ॥ व दिव्य स्वरूपवाले उन हनुमान्जी को देखकर प्रसन्नहुए और किसी प्रकार धीरज धरकर ब्राह्मणलोग धीरे धीरे बोले ॥ १८ ॥ कि पुराणों में जैसा कहा है वह वैसाही देख पड़ता है उन हनुमान्जी ने नेत्रों को मूंदकर स्थित उन सब ब्राह्मणों से कहा ॥ १९ ॥ कि हे ऋषीश्वरो ! खाने के लिये इन फलों को लीजिये हे ब्राह्मणो ! इन के खाने से बडी तृप्ति होगी ॥ २० ॥ और बिन धर्मारण्य के आज तुमलोगों की क्षुधा निश्चयकर शांत होजावैगी ॥ २१ ॥

व्यासजी बोले कि उस समय क्षुधा से संयुत ब्राह्मणोंने फलों का भक्षण किया और अमृत भोजनके समान उनकी तृप्ति हुई ॥ २२ ॥ हे राजन् ! न प्यास और न क्षुधा रही बरन यकायक वे ब्राह्मण प्रसन्न मन व विस्मय से संयुत चित्तवाले हुए ॥ २३ ॥ तदनन्तर हनुमान्जी बोले कि हे ब्राह्मणो ! कलियुग प्राप्त होने पर मैं रामेश्वर शिवजी को छोड़कर यहां न आऊंगा ॥ २४ ॥ मुझ से दिये हुए चिह्न को लेकर तुम वहां जावो तो उस राजा को यह सत्य प्रतीत होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ यह कहकर भुजा को उठाकर दोनों भुजाओं के अलग अलग रोमों को लेकर दो पोटली किया ॥ २६ ॥ और भूर्जपत्र से लपेटकर उन दोनों को ब्राह्मण की बगल

व्यास उवाच ॥ क्षुधाक्रान्तैस्तदा विप्रैः कृतं वै फलभक्षणम् ॥ अमृतप्राशनमिव तृप्तिस्तेषामजायत ॥ २२ ॥ न तृषा नैव क्षुच्चैव विप्राः संहृष्टमानसाः ॥ अभवन्सहसा राजन्विस्मयाविष्टचेतसः ॥ २३ ॥ ततः प्राहाञ्जनीपुत्रः सम्प्राप्ते हि कलौ द्विजाः ॥ नागमिष्याम्यहं तत्र मुक्त्वा रामेश्वरं शिवम् ॥ २४ ॥ अभिज्ञानं मया दत्तं गृहीत्वा तत्र गच्छत ॥ तथ्यमेतत्प्रतीयेत तस्य राज्ञो न संशयः ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वा बाहुमुद्धृत्य भुजयोरुभयोरपि ॥ पृथग्रोमाणि संगृह्य चकार पुटिकाद्वयम् ॥ २६ ॥ भूर्जपत्रेण संवेष्ट्य ते अदाद्विप्रकक्षयोः ॥ वामे तु वामकक्षोत्थां दक्षिणोत्थां तु दक्षिणे ॥ २७ ॥ कामदां रामभक्तस्य अन्येषां क्षयकारिणीम् ॥ उवाच च यदा राजा ब्रूते चिह्नं प्रदीयताम् ॥ २८ ॥ तदा प्रदीयतां शीघ्रं वामकक्षोद्भवा पुटी ॥ अथवा तस्य राज्ञस्तु द्वारे तु पुटिकां क्षिप ॥ २९ ॥ ज्वालयति च तत्सैन्यं गृहं कोशं तथैव च ॥ महिष्यः पुत्रकाः सर्वे ज्वलमानं भविष्यति ॥ ३० ॥ यदा तु वृत्तिं ग्रामांश्च वणि

में देदिया याने बायें बगल से रचित पोटली को बाईं बगल में व दाहिने बगल से उत्पन्न पोटली को दाहिनी बगल में दिया ॥ २७ ॥ जो कि श्रीरामजी के भक्त को मनोरथ को देनेवाली व अन्यलोगों का नाश करनेवाली थी और यह कहा कि जब राजा कहै कि चिह्न को दीजिये ॥ २८ ॥ तब शीघ्रही बायें बगल में उपजी हुई पोटली को दीजियेगा अथवा उस राजा के द्वार पै पोटली को फेंक दीजियेगा ॥ २९ ॥ तो वह उसकी सेना, घर व कोश (खज़ाना) को जलावैगी और स्त्रियां व पुत्र सब जल जावैगा ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! जब जीविका, ग्राम व वणिजों की बलि और जो कुछ पहले स्थित था उस उस वस्तु को

देवैगा ॥ ३१ ॥ याने लिखकर व निश्चयकर वह राजा जब पहले की नाईं देदेवै और हाथों को जोड़कर प्रणाम करै ॥ ३२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! तब श्रीरामजी से पहले दीहुई जीविका को पाकर तदनन्तर दाहिनी बगल में स्थित बालों की इस पोटली को ॥ ३३ ॥ फेंक दीजियेगा तब पहले की नाईं सेना होजावैगी और घर, ख़ज़ाना व पुत्र, पौत्रादिक ॥ ३४ ॥ अग्नि से छोड़े हुए वे उसी क्षण देख पड़ैंगे हनुमान्‌जी से कहे हुए अमृत के समान उत्तम वचन को सुनकर ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणों ने हर्ष को पाया, और नृत्य किया व बहुत गरजनेलगे और कोई जय कहनेलगे व परस्पर हँसनेलगे ॥ ३६ ॥ व सब शरीर में रोमांच संयुत वे बार २ स्तुति करनेलगे और कितेक

जां च बलिं तथा ॥ पूर्वं स्थितं तु यत्किञ्चित्तत्तद्दास्यति वाडवाः ॥ ३१ ॥ लिखित्वा निश्चयं कृत्वाप्यथ दद्यात्स पूर्व वत् ॥ करसम्पुटकं कृत्वा प्रणमेच्च यदा नृपः ॥ ३२ ॥ सम्प्राप्य च पुरावृत्तिं रामदत्तां द्विजोत्तमाः ॥ ततो दक्षिणकक्षा स्थकेशानां पुटिका त्वियम् ॥ ३३ ॥ प्रक्षिप्यतां तदा सैन्यं पुरावच्च भविष्यति ॥ गृहाणि च तथा कोशः पुत्रपौत्रादय स्तथा ॥ ३४ ॥ वह्निना मुच्यमानास्ते दृश्यन्ते तत्क्षणादिति ॥ श्रुत्वाऽमृतमयं वाक्यं वायुजेनोदितं परम् ॥ ३५ ॥ अलभन्त मुदं विप्रा ननृतुः प्रजगुर्भृशम् ॥ जयं चोदैरयन्केऽपि प्रहसन्ति परस्परम् ॥ ३६ ॥ पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः स्तुवन्ति च मुहुर्मुहुः ॥ पुच्छं तस्य च संगृह्य चुचुम्बुः केचिदुत्सुकाः ॥ ३७ ॥ ब्रूतेऽन्यो मम यत्नेन कार्यं नियतमेव हि ॥ अन्यो ब्रूते महाभाग मयेदं कृतमित्युत ॥ ३८ ॥ ततः प्रोवाच हनुमांस्त्रिरात्रं स्थीयतामिह ॥ रामतीर्थस्य च फलं यथा प्राप्स्यथ वाडवाः ॥ ३९ ॥ तथेत्युक्त्वाथ ते विप्रा ब्रह्मयज्ञं प्रचक्रिरे ॥ ब्रह्मघोषेण महता तद्वनं बधिरं कृतम् ॥ ४० ॥

हर्षित ब्राह्मणलोग उन हनुमान्‌जी की पूंछ को पकड़कर चूमनेलगे ॥ ३७ ॥ व अन्य कोई कहनेलगा कि मेरे उपाय से कार्य निश्चयकर होगया और कोई अन्य कहता था कि हे महाभाग ! मैंने इसको किया है ॥ ३८ ॥ तदनन्तर हनुमान्‌जी ने कहा कि हे ब्राह्मणो ! आपलोग यहां तीन रात्रि तक टिकिये कि जिस प्रकार श्रीरामतीर्थ का फल पाइयेगा ॥ ३९ ॥ बहुत अच्छा यह कहकर उन ब्राह्मणों ने ब्रह्मयज्ञ किया और बड़ी भारी वेदध्वनि से वह वन बहरा करदिया गया ॥ ४० ॥

रात्रि तक टिककर जाने की बुद्धि करके उन ब्राह्मणों ने रात्रि में हनुमान्‌जी के आगे उत्तम भक्ति से यह कहा ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे तात ! हमलोग प्रातः-
बहुतही निर्मल धर्मारण्य को जावैंगे और हमको भूलना न चाहिये व क्षमा कीजिये क्षमा कीजियेगा ॥ ४२ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! पवनकुमार ने पर्वत से दश
न चौड़ी और चार शालाओंवाली बड़ी भारी शिलाको ॥ ४३ ॥ बिछाकर उन ब्राह्मणों से कहा कि हे द्विजोत्तमो, द्विजो ! मुझसे रक्षा किये हुए तुमलोग शोक
त होकर शिला पै शयन करो ॥ ४४ ॥ यह सुनकर तदनन्तर सब ब्राह्मण सुखदायिनी निद्रा को प्राप्त हुए इस प्रकार वे कृतार्थ होकर संध्यासमय में सो गये ॥ ४५ ॥

स्थित्वा त्रिरात्रं ते विप्रा गमने कृतबुद्धयः ॥ रात्रौ हनुमतोऽग्रे त इदमूचुः सुभक्तितः ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ वयं प्रातर्गमिष्यामो धर्मारण्यं सुनिर्मलम् ॥ न विस्मार्या वयं तात क्षम्यतां क्षम्यतामिति ॥ ४२ ॥ ततो वायुसुतो राजन्पर्वतान्महतीं शिलाम् ॥ बृहतीं च चतुःशालां दशयोजनमायतीम् ॥ ४३ ॥ आस्तीर्य प्राह तान्विप्राञ्छिलायां द्विजसत्तमाः ॥ रक्ष्यमाणा मया विप्राः शयीध्वं विगतज्वराः ॥ ४४ ॥ इति श्रुत्वा ततः सर्वे निद्रामापुः सुखप्रदाम् ॥ एवं ते कृतकृत्यास्तु भूत्वा सुप्ता निशामुखे ॥ ४५ ॥ कृपालुः स च रुद्रात्मा रामशासनपालकः ॥ रक्षणार्थं हि विप्राणामतिष्ठच्च धरातले ॥ ४६ ॥ व्यास उवाच ॥ अर्द्धरात्रे तु सम्प्राप्ते सर्वे निद्रामुपागताः ॥ तातं सम्प्रार्थयामास कृतानुग्रहको भवान् ॥ ४७ ॥ समीरण द्विजानेतान्स्थानं स्वं प्रापयस्व भोः ॥ ततो निद्राभिभूतांस्तान्वायुः पुत्रप्रणोदितः ॥ ४८ ॥ समुद्धृत्य शिलां तां तु पिता पुत्रेण भारत ॥ निशीथे यापयामास स्वस्थानं द्विजसत्त

श्रीरामजी का शासन पालन करनेवाले वे रुद्रात्मक दयालु हनुमान्‌जी ब्राह्मणों की रक्षा के लिये पृथ्वी में स्थित हुए ॥ ४६ ॥ व्यासजी बोले कि आधी रात प्राप्त
पर जब सब निद्रा को प्राप्त हुए तब हनुमान्‌जी ने पिता (पवन) जी से प्रार्थना किया कि आप दया करनेवाले हो ॥ ४७ ॥ हे पवन ! इन ब्राह्मणों को
ने स्थान में प्राप्त कीजिये तदनन्तर हे भारत ! पुत्र से प्रेरित पवन पिता ने शिला को उठाकर निद्रा से तिरस्कृत उन द्विजोत्तमों ब्राह्मणों को आधी रात में अपने स्थान

को प्राप्त किया ॥ ४८ । ४९ ॥ जिस मार्ग को ब्राह्मणलोग छः महीने में नाँघे थे उसको द्विजोत्तमलोग तीन मुहूर्त में प्राप्त हुए ॥ ५० ॥ और घूमती हुई शिला को जानकर वात्स्यगोत्र में उत्पन्न एक ब्राह्मण ने ब्राह्मणों के आगे लोगों से मधुर व अप्रकट गान किया ॥ ५१ ॥ और गायक से गाये हुए गीतों को सुनकर ब्राह्मण लोग विस्मय को प्राप्त हुए और प्रातःकाल होने पर वे उठपड़े और आपस में ॥ ५२ ॥ विस्मय को प्राप्त उन सब ब्राह्मणों ने कहा कि यह स्वप्न है व भ्रम है और शीघ्रता समेत उन ब्राह्मणों ने उठकर सत्यमंदिर को देखा ॥ ५३ ॥ और भीतर की बुद्धि से हनुमान्जी के प्रभाव को देखकर व वेदध्वनि को सुनकर ब्राह्मणलोग बड़े हर्ष

भ्रम मान् ॥४९॥ षड्भिर्मासैश्च यः पन्था अतिक्रान्तो द्विजातिभिः ॥ त्रिभिरेव मुहूर्तैस्तु तं च प्रापुर्द्विजर्षभाः ॥५०॥ भ्रम माणां शिलां ज्ञात्वा विप्र एको द्विजाग्रतः ॥ वात्स्यगोत्रसमुत्पन्नो लोकान्सङ्गीतवान्कलम् ॥ ५१ ॥ गीतानि गाय नोक्तानि श्रुत्वा विस्मयमाययुः ॥ प्रभाते सुप्रसन्ने तु उदतिष्ठन्परस्परम् ॥ ५२ ॥ ऊचुस्ते विस्मिताः सर्वे स्वप्नोऽयं वाथ विभ्रमः ॥ ससम्भ्रमाः समुत्थाय ददृशुः सत्यमन्दिरम् ॥ ५३ ॥ अन्तर्बुद्ध्या समालोक्य प्रभावं वायुजस्य च ॥ श्रुत्वा वेदध्वनिं विप्राः परं हर्षमुपागताः ॥ ५४ ॥ ग्रामीणाश्च ततो लोका दृष्ट्वा तु महतीं शिलाम् ॥ अद्भुतं मेनिरे सर्वे किमिदं किमिदं त्विति ॥ ५५ ॥ गृहे गृहे हि ते लोकाः प्रवदन्ति तथाद्भुतम् ॥ ब्राह्मणैः पूर्यमाणा सा शिला च महती शुभा ॥ ५६ ॥ अशुभा वा शुभा वापि न जानीमो वयं किल ॥ संवदन्ते ततो लोकाः परस्परमिदं वचः ॥५७॥ व्यास उवाच ॥ ततो द्विजानां ते पुत्राः पौत्राश्चैव समागताः ॥ ऊचुश्च दिष्ट्या भो विप्रा आगताः पथिका द्विजाः ॥५८॥

को प्राप्त हुए ॥ ५४ ॥ तदनन्तर सब ग्रामीणलोगों ने बड़ी भारी शिला को देखकर अद्भुत माना कि यह क्या है यह क्या है ॥ ५५ ॥ और घर घर में वे लोग वैसे आश्चर्य को कहते थे कि ब्राह्मणों से पूर्ण वह बड़ी भारी शिला ॥ ५६ ॥ अशुभ है या शुभ है इसको हमलोग नहीं जानते हैं उसी कारण लोग परस्पर यह वचन कहते थे ॥ ५७ ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर ब्राह्मणों के वे पुत्र व पौत्र आये व बोले कि हे ब्राह्मणो ! आपलोग पथिक ब्राह्मण आगये यह आनन्द है ॥ ५८ ॥

तीन रात्रि तक टिककर जाने की शुद्धि करके उन ब्राह्मणों ने रात्रि में हनुमान्जी के आगे उत्तम भक्ति से यह कहा ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे तात ! हमलोग प्रातःकाल बहुतही निर्मल धर्मारण्य को जावैंगे और हमको भूलना न चाहिये व क्षमा कीजिये क्षमा कीजियेगा ॥ ४२ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! पवनकुमार ने पर्वत से दश योजन चौड़ी और चार शालाओंवाली बड़ी भारी शिलाको ॥ ४३ ॥ बिछाकर उन ब्राह्मणों से कहा कि हे द्विजोत्तमो, द्विजो ! मुझसे रक्षा किये हुए तुमलोग शोक रहित होकर शिला पै शयन करो ॥ ४४ ॥ यह सुनकर तदनन्तर सब ब्राह्मण सुखदायिनी निद्रा को प्राप्त हुए इस प्रकार वे कृतार्थ होकर संध्यासमय में सो गये ॥ ४५ ॥

स्थित्वा त्रिरात्रं ते विप्रा गमने कृतबुद्धयः ॥ रात्रौ हनुमतोऽग्रे त इदमूचुः सुभक्तितः ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ वयं प्रातर्गमिष्यामो धर्मारण्यं सुनिर्मलम् ॥ न विस्मार्या वयं तात क्षम्यतां क्षम्यतामिति ॥ ४२ ॥ ततो वायुसुतो राजन्पर्वतान्महतीं शिलाम् ॥ बृहतीं च चतुःशालां दशयोजनमायतीम् ॥ ४३ ॥ आस्तीर्य प्राह तान्विप्राञ्छिलायां द्विजसत्तमाः ॥ रक्ष्यमाणा मया विप्राः शयीध्वं विगतज्वराः ॥ ४४ ॥ इति श्रुत्वा ततः सर्वे निद्रामापुः सुखप्रदाम् ॥ एवं ते कृतकृत्यास्तु भूत्वा सुप्ता निशामुखे ॥ ४५ ॥ कृपालुः स च रुद्रात्मा रामशासनपालकः ॥ रक्षणार्थं हि विप्राणामतिष्ठच्च धरातले ॥ ४६ ॥ व्यास उवाच ॥ अर्द्धरात्रे तु सम्प्राप्ते सर्वे निद्रामुपागताः ॥ तातं सम्प्रार्थयामास कृतानुग्रहको भवान् ॥ ४७ ॥ समीरण द्विजानेतान्स्थानं स्वं प्रापयस्व भोः ॥ ततो निद्राभिभूतांस्तान्वायुः पुत्रप्रणोदितः ॥ ४८ ॥ समुद्धृत्य शिलां तां तु पिता पुत्रेण भारत ॥ निशीथे यापयामास स्वस्थानं द्विजसत्त

और श्रीरामजी का शासन पालन करनेवाले वे रुद्रात्मक दयालु हनुमान्जी ब्राह्मणों की रक्षा के लिये पृथ्वी में स्थित हुए ॥ ४६ ॥ व्यासजी बोले कि आधी रात प्राप्त होने पर जब सब निद्रा को प्राप्त हुए तब हनुमान्जी ने पिता (पवन) जी से प्रार्थना किया कि आप दया करनेवाले हो ॥ ४७ ॥ हे पवन ! इन ब्राह्मणों को अपने स्थान में प्राप्त कीजिये तदनन्तर हे भारत ! पुत्र से प्रेरित पवन पिता ने शिला को उठाकर निद्रा से तिरस्कृत उन द्विजोत्तमों ब्राह्मणों को आधी रात में अपने स्थान

को प्राप्त किया ॥ ४८ । ४९ ॥ जिस मार्ग को ब्राह्मणलोग छः महीने में नाँघे थे उसको द्विजोत्तमलोग तीन मुहूर्त में प्राप्त हुए ॥ ५० ॥ और घूमती हुई शिला को जानकर वात्स्यगोत्र में उत्पन्न एक ब्राह्मण ने ब्राह्मणों के आगे लोगों से मधुर व अप्रकट गान किया ॥ ५१ ॥ और गायक से गाये हुए गीतों को सुनकर ब्राह्मण लोग विस्मय को प्राप्त हुए और प्रातःकाल होने पर वे उठपड़े और आपस में ॥ ५२ ॥ विस्मय को प्राप्त उन सब ब्राह्मणों ने कहा कि यह स्वप्न है व भ्रम है और शीघ्रता समेत उन ब्राह्मणों ने उठकर सत्यमंदिर को देखा ॥ ५३ ॥ और भीतर की बुद्धि से हनुमान्‌जी के प्रभाव को देखकर व वेदध्वनि को सुनकर ब्राह्मणलोग बड़े हर्ष

भ्रममान् ॥४९॥ षड्भिर्मासैश्च यः पन्था अतिक्रान्तो द्विजातिभिः ॥ त्रिभिरेव मुहूर्तैस्तु तं च प्रापुर्द्विजर्षभाः ॥५०॥ गीतानि गायमाणां शिलां ज्ञात्वा विप्र एको द्विजाग्रतः ॥ वात्स्यगोत्रसमुत्पन्नो लोकान्सङ्गीतवान्कलम् ॥ ५१ ॥ गीतानि गायनोक्तानि श्रुत्वा विस्मयमाययुः ॥ प्रभाते सुप्रसन्ने तु उदतिष्ठन्परस्परम् ॥ ५२ ॥ ऊचुस्ते विस्मिताः सर्वे स्वप्नोऽयं वाथ विभ्रमः ॥ ससम्भ्रमाः समुत्थाय ददृशुः सत्यमन्दिरम् ॥ ५३ ॥ अन्तर्बुद्ध्या समालोक्य प्रभावं वायुजस्य च ॥ श्रुत्वा वेदध्वनिं विप्राः परं हर्षमुपागताः ॥ ५४ ॥ ग्रामीणाश्च ततो लोका दृष्ट्वा तु महतीं शिलाम् ॥ अद्भुतं मेनिरे सर्वे किमिदं किमिदं त्विति ॥ ५५ ॥ गृहे गृहे हि ते लोकाः प्रवदन्ति तथाद्भुतम् ॥ ब्राह्मणैः पूर्यमाणा सा शिला च महती शुभा ॥ ५६ ॥ अशुभा वा शुभा वापि न जानीमो वयं किल ॥ संवदन्ते ततो लोकाः परस्परमिदं वचः ॥५७॥

व्यास उवाच ॥ ततो द्विजानां ते पुत्राः पौत्राश्चैव समागताः ॥ ऊचुश्च दिष्ट्या भो विप्रा आगताः पथिका द्विजाः ॥५८॥

को प्राप्त हुए ॥ ५४ ॥ तदनन्तर सब ग्रामीणलोगों ने बड़ी भारी शिला को देखकर अद्भुत माना कि यह क्या है यह क्या है ॥ ५५ ॥ और घर घर में वे लोग वैसे आश्चर्य को कहते थे कि ब्राह्मणों से पूर्ण वह बड़ी भारी शिला ॥ ५६ ॥ अशुभ है या शुभ है इसको हमलोग नहीं जानते हैं उसी कारण लोग परस्पर यह वचन कहते थे ॥ ५७ ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर ब्राह्मणों के वे पुत्र व पौत्र आये व बोले कि हे ब्राह्मणो ! आपलोग पथिक ब्राह्मण आगये यह आनन्द है ॥ ५८ ॥

और वे ब्राह्मण प्रसन्न मन से हर्ष से प्रत्युत्थान व प्रणाम से गये और मिलकर ॥ ५९ ॥ व सूंघकर और यथायोग्य पूजकर विस्तार करके सब अपने आगमन को शीघ्रही कहा ॥ ६० ॥ तदनन्तर चन्दन, ताम्बूल व कुंकुम से उन सबों को पूजकर शांतिपाठ को पढ़ते हुए वे प्रसन्न होकर अपने घरों को गये ॥ ६१ ॥ और प्रातःकाल उठ कर उत्कंठा समेत व हर्ष से पूर्ण उन पथिकलोगों ने आनंदा के महास्थान में बड़े भारी स्थान को देखा ॥ ६२ ॥ और वे बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुए कि यह कौन उत्तम स्थान है और यहां दक्षिण द्वार पै शातिपाठ पढ़ा जाता है ॥ ६३ ॥ और इन्द्र के घर के समान सुन्दर घर देख पड़ते हैं व अग्नि के समान सुन्दर कुलमातृ-

ते तु सन्तुष्टमनसा सन्मुखाः प्रययुर्मुदा ॥ प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां परिरम्भणकं तथा ॥ ५९ ॥ आघ्राणकादींश्च कृत्वा यथायोग्यं प्रपूज्य च ॥ सर्वं विस्तार्य कथितं शीघ्रमागममात्मनः ॥ ६० ॥ ततः सम्पूज्य तान्सर्वान्गन्ध ताम्बूलकुङ्कुमैः ॥ शान्तिपाठं पठन्तस्ते हृष्टा निजगृहान्ययुः ॥ ६१ ॥ आनन्दाया महापीठे प्रातः पान्थाः समुत्थिताः ॥ ददृशुस्ते महास्थानं सोत्कण्ठा हर्षपूरिताः ॥ ६२ ॥ आश्चर्यं परमं प्रापुः किमेतत्स्थानमुत्तमम् ॥ अयं तु दक्षिणद्वारे शान्तिपाठोऽत्र पठ्यते ॥ ६३ ॥ गृहा रम्याः प्रदृश्यन्ते शचीपतिगृहोपमाः ॥ प्रासादाः कुलमातृ णां दृश्यन्ते चाग्निशोभनाः ॥ ६४ ॥ एवं ब्रुवत्सु विप्रेषु महाशक्तिप्रपूजने ॥ आगतो ब्राह्मणोऽपश्यत्तत्र विप्रक दम्बकम् ॥ ६५ ॥ हर्षितो धावितस्तत्र यत्र विप्राः सभासदः ॥ उवाच दिष्ट्या भो विप्रा ह्यागताः पथिका द्वि जाः ॥ ६६ ॥ प्रत्युत्तस्थुस्ततो विप्राः पूजां गृह्य समागताः ॥ प्रत्युत्थानाभिवादौ चाकुर्वंस्ते च परस्परम् ॥ ६७ ॥ तेते

काओं के घर देख पड़ते हैं ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणों के ऐसा कहने पर महाशक्ति के पूजन में वहां आये हुए ब्राह्मण ने ब्राह्मणों के समूह को देखा ॥ ६५ ॥ और वहां ब्राह्मण प्रसन्न होकर गया जहां कि ब्राह्मण थे व सभासद ब्राह्मण ने कहा कि हे ब्राह्मणो ! आनन्द है जो कि आपलोग पथिक ब्राह्मण आगये ॥ ६६ ॥ तदनन्तर आये हुए ब्राह्मण पूजन को लेकर उठे और उन्हों ने परस्पर प्रत्युत्थान व प्रणाम किया ॥ ६७ ॥ और उन्हों ने यथायोग्य विधिपूर्वक पूजकर जो हनुमानजी का वृत्तान्त था उसको

ब्राह्मण के आगे प्रकाशित किया ॥ ६८॥ पथिकों का वचन सुनकर द्विजोत्तमलोग हर्ष से पूर्ण हुए व शांतिपाठ को पढ़ते हुए वे प्रसन्न होकर अपने घरों को चले गये ॥ ६९ ॥ व प्रातःकाल प्रतिष्ठित ब्राह्मणलोग विचारकर ज्योतिषियों से मिले और ब्राह्मय मुहूर्त में उठकर ब्राह्मणलोग कान्यकुब्जदेश को गये ॥ ७० ॥ कितेक दोलाओं के ऊपर सवार हुए व कितेक ब्राह्मण घोड़ों व रथों के ऊपर सवार हुए और कितेक पालकियों के ऊपर सवार हुए और वे ब्राह्मण अनेक प्रकार की सवारियों पै प्राप्त हुए ॥ ७१ ॥ और उस नगर को जाकर श्रीगंगाजी के उत्तम किनारे बुद्धिमान् ब्राह्मणों ने निवास किया व स्नान और दानादिक कर्म किया ॥ ७२ ॥ और

सम्पूज्य वेगात्तु यथायोग्यं यथाविधि ॥ हरीश्वरस्य यद्वृत्तं विप्राग्रे सम्प्रकाशितम् ॥ ६८ ॥ पथिकानां वचः श्रुत्वा हर्षपूर्णा द्विजोत्तमाः ॥ शान्तिपाठं पठन्तस्ते हृष्टा निजगृहान्ययुः ॥ ६९ ॥ विमृश्य मिलिताः प्रातर्ज्योतिर्विद्भिः प्रतिष्ठिताः ॥ ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय कान्यकुब्जं गता द्विजाः ॥ ७० ॥ दोलाभिर्वाहिताः केचित्केचिदश्वैः रथैस्तथा ॥ केचित्तु शिबिकारूढा नानावाहनगाश्च ते ॥ ७१ ॥ तत्पुरं तु समासाद्य गङ्गायाः शोभने तटे ॥ अकुर्वन्वसतिं धीराः स्नानदानादिकर्म्म च ॥ ७२ ॥ चरेण केनचिद्दृष्टाः कथिता नृपसन्निधौ ॥ अश्वाश्च बहुशो दोला रथाश्च बहुशो वृषाः ॥ ७३ ॥ विप्राणामिह दृश्यन्ते धर्मारण्यनिवासिनाम् ॥ नूनं ते च समायाता नृपेणोक्तं ममाग्रतः ॥ ७४ ॥ अभिज्ञानाय मे पूर्वं प्रेषिताः कपिसन्निधौ ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये ब्राह्मणानांप्रत्यागमनवर्णनं नामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

किसी गुप्त दूत ने देखा व राजा के समीप कहा कि बहुत से घोड़ा, दोला, रथ और बहुत से बैल ॥ ७३ ॥ यहां धर्मारण्यनिवासी ब्राह्मणों के देख पड़ते हैं राजा ने कहा कि वे निश्चयकर मेरे आगे आवैंगे ॥ ७४ ॥ क्योंकि पहले मैंने उनको चिह्न के लिये हनुमान्जी के समीप पठाया था ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांब्राह्मणानांप्रत्यागमनवर्णनंनामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ❀ ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । दियो वृत्ति जिमि द्विजन पुनि रामपाल भूपाल । अर्तिसवें अध्याय में सोइ चरित्र रसाल ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर निर्मल प्रातःकाल होने पर दिन के पूर्वभाग का कार्य करके उत्तम वस्त्रों को पहने हुए उन ब्राह्मणों ने पृथक् २ फलों को हाथ में लिया ॥ १ ॥ और रत्न के बजुल्ला को भुजदंडों में पहने तथा अँगूठियों से भूषित और कर्णों के आभूषणों से संयुत वे ब्राह्मण प्रसन्न होकर आये ॥ २ ॥ और राजद्वार को प्राप्त होकर वे ब्रह्मवादी ब्राह्मण स्थित हुए व उनको देखकर बलवान् राजपुत्र ने कुछ हास्य किया ॥ ३ ॥ व कहा कि हे सब मंत्रियो ! सुनिये कि श्रीराम व हनुमान्जी के समीप जाकर व देखकर आये हैं उन द्विजोत्तमों को

व्यास उवाच ॥ ततः प्रभाते विमले कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः ॥ शुभवस्त्रपरीधानाः फलहस्ताः पृथक्पृथक् ॥ १ ॥ रत्नाङ्गदाढ्यदोर्दण्डा अङ्गुलीयकभूषिताः ॥ कर्णाभरणसंयुक्ताः समाजग्मुः प्रहर्षिताः ॥ २ ॥ राजद्वारं तु सम्प्राप्य सन्तस्थुर्ब्रह्मवादिनः ॥ तान्दृष्ट्वा राजपुत्रस्तु ईषत्प्रहसितो वली ॥ ३ ॥ रामं च हनुमन्तं च गत्वा विप्राः समागताः ॥ श्रूयतां मन्त्रिणः सर्वे पश्यत द्विज सत्तमान् ॥ ४ ॥ एतदुक्त्वा तु वचनं तूर्ष्णीं भूत्वा स्थितो नृपः ॥ ततो द्वित्रा द्विजाः सर्वे उपविष्टाः क्रमात्ततः ॥ ५ ॥ क्षेमं पप्रच्छुर्नृपतिं हस्तिरथपदातिषु ॥ ततः प्रोवाच नृपतिर्विप्रान्प्रति महामनाः ॥ ६ ॥ अर्हन्देवप्रसादेन सर्वत्र कुशलं मम ॥ सा जिह्वा या जिनं स्तौति तौ करौ यौ जिनार्चनौ ॥ ७ ॥ सा दृष्टिर्या जिने लीना तन्मनो यज्जिने रतम् ॥ दया सर्वत्र कर्तव्या जीवात्मा पूज्यते सदा ॥ ८ ॥ योगशाला हि गन्त

देखिये ॥ ४ ॥ यह वचन कहकर राजा चुप होकर स्थित हुआ तदनन्तर दो तीन व सब ब्राह्मण क्रम से बैठे ॥ ५ ॥ व उन्हों ने राजा से हाथी, रथ और पैदलों में कुशल पूंछा तदनन्तर उदार मनवाले राजा ने ब्राह्मणों से कहा ॥ ६ ॥ कि अर्हन्देव की प्रसन्नता से मेरे सब कहीं कुशल है और वह जिह्वा है कि जो जिन देवता की स्तुति करती हैं और वे हाथ हैं कि जो जिन देवता के पूजक हैं ॥ ७ ॥ और वह दृष्टि है जो कि जिन में लीन है व मन वही है जो कि जिन में अनुरागी है और सब में दया करना चाहिये व जीवात्मा सदैव पूजा जाता है ॥ ८ ॥ और योगशाला में जाना चाहिये व गुरु का प्रणाम करना चाहिये और नवकार मंत्र दिन

रात जपना चाहिये ॥ ९ ॥ व पंचूषण करना चाहिये और सदैव श्रमण देना चाहिये उसका वचन सुनकर तदनन्तर ब्राह्मणलोग दांतों को पीसनेलगे ॥ १० ॥ और बडे श्वास को छोड़कर उन्हों ने राजा से कहा कि हे राजन्! श्रीराम व हनुमान्जी ने कहा है ॥ ११ ॥ कि ब्राह्मणों की जीविका को देदीजिये क्योंकि पृथ्वी में तुम धर्मिष्ठ हो और तुम्हारी दीहुई जानी जाती है मुझ से नहीं दीगई है ॥ १२ ॥ श्रीरामजी के वचन की तुम रक्षा करो कि जिसको करके तुम सुखी होवो ॥ १३ ॥ राजा बोले कि हे ब्राह्मणो! जहां श्रीराम व हनुमान्जी हैं वहां आप सब जावो श्रीरामजी सर्वस देवैंगे यहां तुमलोग क्यों प्राप्त हुए हो ॥ १४ ॥

व्या कर्त्तव्यं गुरुवन्दनम् ॥ नचकारं महामन्त्रं जपितव्यमहर्निशम् ॥ ९ ॥ पञ्चूषणं हि कर्त्तव्यं दातव्यं श्रमणं सदा ॥ श्रुत्वा वाक्यं ततो विप्रास्तस्य दन्तानपीडयन् ॥ १० ॥ विमुच्य दीर्घनिश्वासमूचुस्ते नृपतिं प्रति ॥ रामेण कथितं राजन्धीमता च हनूमता ॥ ११ ॥ दीयतां विप्रवृत्तिं च धर्मिष्ठोऽसि धरातले ॥ ज्ञायते तव दत्ता स्यान्मद्दत्ता नैव नैव च ॥ १२ ॥ रक्षस्व रामवाक्यं त्वं यत्कृत्वा त्वं सुखी भव ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ यत्र रामहनूमन्तौ यान्तु सर्वेऽपि तत्र वै ॥ रामो दास्यति सर्वस्वं किं प्राप्ता इह वै द्विजाः ॥ १४ ॥ न दास्यामि न दास्यामि एकां चैव वराटिकाम् ॥ न ग्रामं नैव वृत्तिं च गच्छध्वं यत्र रोचते ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वा दारुणं वाक्यं द्विजाः कोपाकुलास्तदा ॥ सहस्व रामकोपं हि साम्प्रतञ्च हनूमतः ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वा हनुमद्दत्ता वामकक्षोद्भवा पुटी ॥ प्रक्षिप्ता चास्य निलये व्यावृत्ता द्विजसत्तमाः ॥ १७ ॥ गते तदा विप्रसङ्घे ज्वालामालाकुलं त्वभूत् ॥ अग्निज्वालाकुलं सर्वं सञ्जातं चैव तत्र

मैं एक कौडी को न दूंगा न दूंगा और ग्राम व जीविका को नहीं दूंगा जहां रुचि होवै वहां जाइये ॥ १५ ॥ उस कठिन वचन को सुनकर उस समय क्रोध से विकल ब्राह्मणों ने कहा कि इस समय श्रीराम व हनुमान्जी के कोप को सहिये ॥ १६ ॥ यह कहकर हनुमान्जी से दीहुई बाईं बगल से उपजी पोटली को इसके स्थान में उन्हों ने फेंक दिया व द्विजोत्तम लोग लौटपड़े ॥ १७ ॥ तब द्विजगण चले जाने पर सब स्थान ज्वालाओं की माला से व्याप्त होगया और सब स्थान वहां अग्नि

की ज्वालाओं से युक्त हुआ ॥ १८ ॥ और राजा की वस्तुवें छत्र और चँवर जलने लगे व ख़ज़ाने के सब घर व शस्त्रों के घर जलनेलगे ॥ १९ ॥ और स्त्रियां, राजपुत्र, हाथी व अनेक घोड़े, विमान और सवारी जलनेलगीं ॥ २० ॥ और विचित्र पालकी व हज़ारों रथ जलनेलगे और सब कहीं जलती हुई वस्तु को देखकर राजा भी दुःखी हुआ ॥ २१ ॥ और उसका कोई भी रक्षक न हुआ व मनुष्य भय से विकल हुए और वह अग्नि मंत्रों व यंत्रों और जड़ों से शान्त न हुई ॥ २२ ॥ जहां करोडों कुटिलताओं को नाशनेवाले श्रीरामजी क्रोधित होते हैं वहां सब नाश होजाते हैं तो कुमारपालक को क्या कहना है ॥ २३ ॥ तब उस जलतीहुई सब वस्तु को देख

हि ॥ १८ ॥ दह्यन्ते राजवस्तूनिच्छत्राणि चामराणि च ॥ कोशागाराणि सर्वाणि आयुधागारमेव च ॥ १९ ॥ महिष्यो राजपुत्राश्च गजा अश्वा ह्यनेकशः ॥ विमानानि च दह्यन्ते दह्यन्ते वाहनानि च ॥ २० ॥ शिबिकाश्च विचित्रा वै रथाश्चैव सहस्रशः ॥ सर्वत्र दह्यमानं च दृष्ट्वा राजापि विव्यथे ॥ २१ ॥ न कोपि त्राता तस्यास्ति मानवा भयविक्लवाः ॥ न मन्त्रयन्त्रैर्वह्निः स साध्यते न च मूलिकैः ॥ २२ ॥ कौटिल्यकोटिनाशी च यत्र रामः प्रकुप्यते ॥ तत्र सर्वे प्रणश्यन्ति किं तत्कुमारपालकः ॥ २३ ॥ सर्वं तज्ज्वलितं दृष्ट्वा नग्नक्षपणकास्तदा ॥ धृत्वा करेण पात्राणि नीत्वा दण्डाञ्छुभानपि ॥ २४ ॥ रक्तकम्बलिका गृह्य वेपमाना मुहुर्मुहुः ॥ अनुपानहिकाश्चैव नष्टाः सर्वे दिशो दश ॥ २५ ॥ कोलाहलं प्रकुर्वाणाः पलायध्वमिति ब्रुवन् ॥ दाहिता विप्रमुख्यैश्च वयं सर्वे न संशयः ॥ २६ ॥ केचिच्च भग्नपात्रास्ते भग्नदण्डास्तथापरे ॥ प्रणष्टाश्च विवस्त्रास्ते वीतरागमितिब्रुवन् ॥ २७ ॥ अर्हन्तमेव केचिच्च पलायनपरायणाः ॥

कर बौद्धलोग हाथ से पात्रों को धारणकर व उत्तम दंडों को भी लेकर ॥ २४ ॥ और लाली कम्बलियों को लेकर बार २ कॉपने लगे और विन पनहियों को पहने हुए वे सब दशो दिशाओं को भगगये ॥ २५ ॥ कोलाहल करतेहुए उन्होंने ऐसा कहा कि भागिये क्योंकि मुख्य ब्राह्मणों ने हम सबों को जला दिया इसमें सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ कितेक लोगों के पात्र फूट गये व अन्य मनुष्यों के दंड टूट गये और भागने में तत्पर कितेक नग्न वे जैनी उन अर्हन्जी को स्नेहरहित ऐसा कहते हुए

भग गये तदनन्तर अग्नि को बढ़ाता हुआ सा पवन उत्पन्न हुआ ॥ २७ । २८ ॥ जिसको ब्राह्मणों की प्रिय कामना से हनुमान्‌जी ने पठाया था पश्चात् उस समय इधर उधर दौड़ता हुआ वह राजा ॥ २९ ॥ पैदल अकेला रोता व यह कहता हुआ भगा कि ब्राह्मण कहां हैं तदनन्तर लोगों से सुनकर वह राजा वहां गया जहां कि ब्राह्मण थे ॥ ३० ॥ व हे राजन्! उस समय जाकर वह राजा यकायक ब्राह्मणों के पैरों को पकड़कर तब मूर्च्छित होकर पृथ्वी में गिरपड़ा ॥ ३१ ॥ व हे राम राम! ऐसा बारबार दशरथकुमार श्रीरामजी को जपते हुए व विनय में तत्पर राजा ने ब्राह्मणों से यह कहा ॥ ३२ ॥ कि उन श्रीरामजी के दास का भी मैं दास हूं व

ततो वायुः समभवद्वह्निमान्दोलयन्निव ॥ २८ ॥ प्रेषितो वै हनुमता विप्राणां प्रियकाम्यया ॥ धावन्स नृपतिः पश्चादितश्चेतश्च वै तदा ॥ २९ ॥ पदातिरेकः प्ररुदन्क विप्रा इति जल्पकः ॥ लोकाच्छ्रुत्वा ततो राजा गतस्तत्र यतो द्विजाः ॥ ३० ॥ गत्वा तु सहसा राजन्गृहीत्वा चरणौ तदा ॥ विप्राणां नृपतिर्भूमौ मूर्च्छितो न्यपतत्तदा ॥ ३१ ॥ उवाच वचनं राजा विप्रान्विनयतत्परः ॥ जपन्दाशरथिं रामं रामरामेति वै पुनः ॥ ३२ ॥ तस्य दासस्य दासोहं रामस्य च द्विजस्य च ॥ अज्ञानतिमिरान्धेन जातोस्म्यन्धो हि सम्प्रति ॥ ३३ ॥ अञ्जनं च मया लब्धं रामनाममहौषधम् ॥ रामं मुक्त्वा हि ये मर्त्या ह्यन्यं देवमुपासते ॥ दह्यन्ते तेऽग्निना स्वामिन्यथाहं मूढचेतनः ॥ ३४ ॥ हरिर्भागीरथी विप्रा विप्रा भागीरथी हरिः ॥ भागीरथी हरिर्विप्राः सारमेकं जगत्त्रये ॥ ३५ ॥ स्वर्गस्य चैव सोपानं विप्रा भागीरथी हरिः ॥ रामनाममहारज्ज्वा वैकुण्ठे येन नीयते ॥ ३६ ॥ इत्येवं प्रणमन् राजा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ वह्निः प्रशा

ब्राह्मण का सेवक हूं इस समय अज्ञानरूपी बड़े भारी अन्धकार से मैं अन्ध होगया ॥ ३३ ॥ और रामनामरूपी बड़ीभारी औषध को मैंने पाया जो मनुष्य श्रीरामजी को छोड़कर अन्य देवता की उपासना करते हैं हे स्वामिन्! वे मुझ मूर्ख की नाईं अग्नि से जलाये जाते हैं ॥ ३४ ॥ विष्णु व गंगाजी ब्राह्मण हैं और ब्राह्मण गंगा व विष्णुजी हैं त्रिलोक में गंगा, विष्णु व ब्राह्मण केवल सारांश हैं ॥ ३५ ॥ और ब्राह्मण, गंगा व विष्णु स्वर्ग की सीढ़ी हैं कि जिस रामनामरूपी बड़ी भारी रस्सी से मनुष्य वैकुण्ठ में प्राप्त किया जाता है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार प्रणाम करते हुए राजा ने हाथों को जोड़कर यह वचन कहा कि हे ब्राह्मणो! अग्नि को शान्त कीजिये मैं

तुमलोगों को जीविका दूंगा ॥ ३७ ॥ हे ब्राह्मणो ! मैं इस समय दास हूं और मेरा वचन अन्यथा नहीं होताहै पराई स्त्री से भोग करनेवाले मनुष्योंको व ब्रह्महत्या का जो पाप होता है ॥ ३८ ॥ और सुवर्ण चुरानेवाले व मदिरा पीनेवालों को जो पाप होताहै और गुरुको मारनेवालों को जो पाप होता है वही पाप मुझको होवै ॥ ३९ ॥ और जो जिस जिस मनोरथ की इच्छा करैगा उसको मैं उस उस अभिलाष को दूंगा और सदैव ब्राह्मणों की भक्ति व श्रीरामजी की भक्ति करना चाहिये ॥ ४० ॥ हे द्विजोत्तमो ! अन्यथा मैं कभी न करूंगा ॥ ४१ ॥ व्यासजी बोले कि हे भूप ! उस समय ब्राह्मणलोग दयालु होगये और जो दूसरी पोटली थी उसको शाप की शान्ति के लिये

म्यतां विप्राः शासनं वो ददाम्यहम् ॥ ३७ ॥ दासोऽस्मि साम्प्रतं विप्रा न मे वागन्यथा भवेत् ॥ यत्पापं ब्रह्महत्यायाः परदाराभिगामिनाम् ॥ ३८ ॥ यत्पापं मद्यपानां च सुवर्णस्तेयिनां तथा ॥ यत्पापं गुरुघातानां तत्पापं वा भवेन्मम ॥ ३९ ॥ यं यं चिन्तयते कामं तं तं दास्याम्यहं पुनः ॥ विप्रभक्तिः सदा कार्या रामभक्तिस्तथैव च ॥ ४० ॥ अन्यथा करणीयं मे न कदाचिद् द्विजोत्तमाः ॥ ४१ ॥ व्यास उवाच ॥ तस्मिन्नवसरे विप्रा जाता भूप दयालवः ॥ अन्या या पुटिका चासीत्सा दत्ता शापशान्तये ॥ ४२ ॥ जीवितं चैव तत्सैन्यं जातं क्षिप्तेषु रोमसु ॥ दिशः प्रसन्नाः सञ्जाताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः ॥ ४३ ॥ प्रजा स्वस्थाऽभवतत्र हर्षनिर्भरमानसा ॥ अवतस्थे यथापूर्वं पुत्रपौत्रादिकं तथा ॥ ४४ ॥ विप्राज्ञाकारिणो लोकाः सञ्जाताश्च यथा पुरा ॥ विष्णुधर्मं परित्यज्य नान्यं जानन्ति ते नृपम् ॥ ४५ ॥ नवीनं शासनं कृत्वा पूर्ववद्विधिपूर्वकम् ॥ निष्कासितास्तु पाखण्डाः कृतशास्त्रप्रयोजकाः ॥ ४६ ॥

देदिया ॥ ४२ ॥ और रोमों के फेंकने पर वह सैना जीउठी और दिशाएं निर्मल होगईं व दिशाओं में उपजे हुए शब्द शांत होगये ॥ ४३ ॥ और वहां हर्ष से पूर्ण मनवाले प्रजालोग स्वस्थ होगये व पुत्र, पौत्रादिक पहले की नाईं स्थित हुआ ॥ ४४ ॥ और पहले की नाईं मनुष्य ब्राह्मणों की आज्ञा को करनेवाले हुए व विष्णुजी के धर्म को छोड़कर वे अन्य धर्म को न जाननेलगे ॥ ४५ ॥ और शासन को नवीन करके पहले की नाईं विधिपूर्वक शास्त्रों के प्रयोगकर्त्ता हुए और पाखण्ड निकाल दियेगये ॥ ४६ ॥

और वेदसे बाहर-कियेहुए वे उत्तम, मध्यम व नीच नष्ट होगये और पहले जो छत्तीस हज़ार गोभुज हुए थे ॥ ४७ ॥ उनके मध्यसे अढबीज वणिज् लोग उत्पन्न हुए और राजा ने उन सबों को ब्राह्मणों की सेवाके लिये निरूपण किया ॥ ४८ ॥ और पाखण्ड के मार्ग को छोड़कर वे उत्तम आचारवाले तथा अत्यन्त निपुण व देवताओं और ब्राह्मणों के पूजक वे विष्णुजी की भक्ति में परायण हुए ॥ ४९ ॥ राजाने गंगाजी के किनारे जाकर त्रैविद्य ब्राह्मणों के लिये जीविका को दिया जब उनको भक्तिपूर्वक शासन (वृत्ति) दिया गया ॥ ५० ॥ तब स्थान के धर्म से चले हुए वे ब्राह्मण आये और क्लेश करनेवाले उन ब्राह्मणों ने राजा से यह कहा ॥ ५१ ॥

वेदबाह्याः प्रणष्टास्ते उत्तमाधममध्यमाः ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि येऽभूवन्गोभुजाः पुरा ॥ ४७ ॥ तेषां मध्यात्तु सञ्जाता अढबीजा वणिग्जनाः ॥ शुश्रूषार्थं ब्राह्मणानां राज्ञा सर्वे निरूपिताः ॥ ४८ ॥ सदाचाराः सुनिपुणा देवब्राह्मणपूजकाः ॥ त्यक्त्वा पाखण्डमार्गं तु विष्णुभक्तिपरास्तु ते ॥ ४९ ॥ जाह्नवीतीरमासाद्य त्रैविद्येभ्यो ददौ नृपः ॥ शासनं तु यदा दत्तं तेषां वै भक्तिपूर्वकम् ॥ ५० ॥ स्थानधर्मात्प्रचलिता वाडवास्ते समागताः ॥ नृपो विज्ञापितो विप्रैस्तैरेवं क्लेशकारिभिः ॥ ५१ ॥ ये त्यक्तवाचो विप्रेन्द्रास्तान्निःसारय भूपते ॥ परस्परं विवादास्तु सञ्जाता दत्तवृत्तये ॥ ५२ ॥ न्यायप्रदर्शनार्थं च कारितास्तु सभासदः ॥ हस्ताक्षरेषु दृष्टेषु पृथक्पृथक् प्रपादितम् ॥ ५३ ॥ एतच्छ्रुत्वा ततो राजा तुलादानं चकार ह ॥ दीयमाने तदा दाने चातुर्विद्या बभाषिरे ॥ ५४ ॥ अस्माभिर्हारिता जातिः कथं कुर्मः प्रतिग्रहम् ॥ निवारितास्तु ते सर्वे स्थानान्मोहेरका द्विजाः ॥ ५५ ॥ दशपञ्च सहस्राणि वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ततस्तेन तदा राजन्

कि हे भूपते ! जिन्हों ने तुम्हारे वचनको छोड़दिया उनको निकाल दीजिये परस्पर दीहुई जीविका के लिये विवाद हुए ॥ ५२ ॥ और योग्य दिखलाने के लिये सभासद् कियेगये व हस्ताक्षरों के देखनेपर अलग २ सिद्ध कियागया ॥ ५३ ॥ इस वचन को सुनकर तदनन्तर राजा ने तुलादान किया तब दान देनेपर चातुर्विद्य ब्राह्मण बोले ॥ ५४ ॥ कि हम सबों से जाति हारगई तो हमलोग कैसे दान को लेवैंगे और वे सब मोहेरक ब्राह्मण स्थान से मना किये गये ॥ ५५ ॥ जो कि पंद्रह

हज़ार ब्राह्मण वेदों व वेदांगों के पारगामी थे तदनन्तर हे राजन् ! उस समय श्रीरामजी के आज्ञानुवर्ती उस राजा ने ॥ ५६ ॥ उन ब्राह्मणों को बुलाकर ज्ञाति का भेद किया कि जो त्रयीविद्य ब्राह्मण सेतुबंध स्वामी को ॥ ५७ ॥ गये थे वे जीविका के भागी हुए और अन्य जीविका के भागी न हुए और जो वहां नहीं गये वे चातुर्वैद्यता को प्राप्तहुए ॥ ५८ ॥ व उनके साथ वणिजों से संबन्ध व विवाह नहीं हुआ और ज्ञातिभेद करने पर ग्राम की जीविका में संबन्ध न हुआ ॥ ५९ ॥ और ब्राह्मणों की भक्ति में परायण जो शूद्र पाखण्डों से लोपित न हुए जैन धर्म से निवृत्त वे गोभुज उत्तम हुए ॥ ६० ॥ और पाखण्ड में तत्पर जो श्रीरामजी के शासन को लोप

राज्ञा रामानुवर्तिना ॥ ५६ ॥ आहूय वाडवांस्तांस्तु ज्ञातिभेदं चकार सः ॥ त्रयीविद्या वाडवा ये सेतुबन्धं प्रति प्रभुम् ॥ ५७ ॥ गतास्ते वृत्तिभाजः स्युर्नान्ये वृत्त्यभिभागिनः ॥ तत्र नैव गता ये वै चातुर्विद्यत्वमागताः ॥ ५८ ॥ वणिग्भिर्न च सम्बन्धो न विवाहश्च तैः सह ॥ ग्रामवृत्तौ न सम्बन्धो ज्ञातिभेदे कृते सति ॥ ५९ ॥ द्विजभक्तिपराः शूद्रा ये पाखण्डैर्न लोपिताः ॥ जैनधर्मात्परावृत्तास्ते गोभूजास्तथोत्तमाः ॥ ६० ॥ ये च पाखण्डनिरता रामशासनलोपकाः ॥ सर्वे विप्रास्तथा शूद्राः प्रतिबन्धेन योजिताः ॥ ६१ ॥ सत्यप्रतिज्ञां कुर्वाणास्तत्रस्थाः सुखिनोऽभवन् ॥ चातुर्विद्या बहिर्ग्रामे राज्ञा तेन निवासिताः ॥ ६२ ॥ यथा रामो न कुप्येत तथा कार्यं मया ध्रुवम् ॥ पराङ्मुखा ये रामस्य सन्मुखा न गताः किल ॥ ६३ ॥ चातुर्विद्यास्ते विज्ञेया वृत्तिबाह्याः कृतास्तदा ॥ कृतकृत्यस्तदा जातो राजा कुमारपालकः ॥६४॥ विप्राणां पुरतः प्राह प्रश्रयेण वचस्तदा ॥ ग्रामवृत्तिर्न मे लुप्ता एतद्धै देवनिर्मितम् ॥ ६५ ॥ स्वयं

करनेवाले हुए वे सब ब्राह्मण व शूद्र प्रतिबन्धसे युक्त हुए ॥ ६१ ॥ और सत्यप्रतिज्ञा को करते हुए वहां स्थित ब्राह्मण सुखी हुए और चातुर्विद्य ब्राह्मणों को उस राजा ने गाँव के बाहर बसाया ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार श्रीरामजी क्रोध न करैं मुझको निश्चयकर वैसाही करना चाहिये व श्रीरामजी से जो विमुख हैं और सामने नहीं प्राप्त हुए हैं ॥६३॥ वे चातुर्विद्य उस समय जीविका से बाहर किये गये जानने योग्य हैं तब कुमारपालक राजा कृतार्थ होगया ॥ ६४ ॥ और उसने उस समय नम्रता से ब्राह्मणोंके आगे यह वचन कहा कि मैंने ग्राम की वृत्ति को लुप्त नहीं किया बरन यह देवता से किया गया है ॥ ६५ ॥ व आपही किये हुए अपराधों का दोष किसीको नहीं दिया

जाताहै जैसे वनमें काष्ठ के घिसने से अग्नि दैवयोगसे उत्पन्न होजाती है ॥ ६६ ॥ आपलोगों ने श्रीरामजी का शासन करके हनुमान्जी के लिये चिह्न के कारण पण (वादद्यूत याने बाजी लगाना) किया था ॥ ६७ ॥ और तुमलोग ब्राह्मण लौट आये तो वह दोष किसको दिया जाताहै अन्तमें विष्णुजी को स्मरणकर बड़े पातकों से संयुत भी पुरुष ॥ ६८ ॥ शीघ्रही विष्णुलोक को जाता है तो कैसे सन्देह होवै और बड़े भारी पुण्य के उदय में मनुष्यों की बुद्धि कल्याण में होतीहै ॥ ६९ ॥ और पाप के उदय समय में वह बुद्धि उलटी होजाती है धर्म से जो इस त्रिलोक को एकही साथ पालन करता है ॥ ७० ॥ व जो प्राणियों का जीवात्मा है उसमें संशय

कृतापराधानां दोषो कस्य न दीयते ॥ यथा वने काष्ठघर्षाद्वह्निः स्याद्दैवयोगतः ॥ ६६ ॥ भवद्भिस्तु पणः प्रोक्तोह्य भिज्ञानस्य हेतवे ॥ रामस्य शासनं कृत्वा वायुपुत्रस्य हेतवे ॥ ६७ ॥ व्यावृत्ता वाडवा यूयं स दोषः कस्य दीयते ॥ अवसाने हरिं स्मृत्वा महापापयुतोऽपि वा ॥ ६८ ॥ विष्णुलोकं व्रजत्याशु संशयस्तु कथं भवेत् ॥ महत्पुण्योदये नृणां बुद्धिः श्रेयसि जायते ॥ ६९ ॥ पापस्योदयकाले च विपरीता हि सा भवेत् ॥ सकृत्पालयते यस्तु धर्मेणैतज्जग त्रयम् ॥ ७० ॥ योन्तरात्मा च भूतानां संशयस्तत्र नो हितः ॥ इन्द्रादयोऽमराः सर्वे सनकाद्यास्तपोधनाः ॥ ७१ ॥ मुक्त्यर्थमर्चयन्तीह संशयस्तत्र नो हितः ॥ सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनामेति गीयते ॥ ७२ ॥ तस्मिन्ननिश्चयं कृत्वा कथं सिद्धिर्भवेदिह ॥ मम जन्मकृतात्पुण्यादभिज्ञानं ददौ हरिः ॥ ७३ ॥ पाखण्डाद्यत्कृतं पापं मृष्टं तद्वः प्रणामतः ॥ प्रसीदन्तु भवन्तश्च त्यक्त्वा क्रोधं ममाधुना ॥ ७४ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ राजन्धर्मो विलुप्तस्ते प्रापितश्च तथा

हित नहीं होता है और इन्द्रादिक सब देवता व सनकादिक तपस्वी लोग ॥ ७१ ॥ जिसको मुक्ति के लिये पूजते हैं उसमें सन्देह हित नहीं होताहै और वह राम नाम सहस्रनाम के तुल्य कहा जाता है ॥ ७२ ॥ उसमें निश्चय न करके इस संसार में कैसे सिद्धि होतीहै मेरे जन्म में कियेहुए पुण्य से विष्णुजी ने चिह्नको दिया ॥ ७३ ॥ और पाखण्ड से मैंने जो पाप किया था वह तुमलोगों के प्रणाम से शुद्ध होगया आप लोग इस समय क्रोध को छोड़कर मेरे ऊपर प्रसन्न होवो ॥ ७४ ॥ ब्राह्मण बोले

पुनः ॥ अवश्यं भाविनो भावा भवन्ति महतामपि ॥ ७५ ॥ नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिशयनं हरेः ॥ एतद्दैवकृतं सर्वं प्रभुर्यः सुखदुःखयोः ॥ ७६ ॥ सत्यप्रतिज्ञास्त्रैविद्या भजन्तु रामशासनम् ॥ अस्माकं तु परं देहि स्थानं यत्र वसामहे ॥ ७७ ॥ तेषां तु वचनं श्रुत्वा सुखमिच्छुर्द्विजन्मनाम् ॥ तेषां स्थानं च प्रददौ सुखवासं तु नामतः ॥ ७८ ॥ हिरण्यं रत्नवासांसि गावः कामदुघा नृप ॥ स्वर्णालङ्करणं सर्वं नानावस्तुचयं तथा ॥ ७९ ॥ श्रद्धया परया दत्त्वा मुदं लेभे नराधिपः ॥ त्रयीविद्यास्तु ते ज्ञेयाः स्थापिता ये त्रिमूर्तिभिः ॥ ८० ॥ चतुर्थेनैव भूपेन स्थापिताः सुखवासने ॥ ते बभूवुर्द्विजश्रेष्ठाश्चातुर्विद्याः कलौ युगे ॥ ८१ ॥ चातुर्विद्याश्च ते सर्वे धर्मारण्ये प्रतिष्ठिताः ॥ वेदोक्ता आशिषो दत्त्वा तस्मै राज्ञे महात्मने ॥ ८२ ॥ रथैरश्वैरुह्यमानाः कृतकृत्या द्विजातयः ॥ महत्प्रमोदयुक्तास्ते प्रापुर्मोहेरकं महत् ॥ ८३ ॥ पौषशुक्लत्रयोदश्यां लब्धं शासनकं द्विजैः ॥ बलिप्रदानं तु कृतमुद्दिश्य कुलदेवताम् ॥ ८४ ॥ वर्षे वर्षे

कि हे राजन् ! तुमने धर्म को लुप्त किया व फिर प्राप्त किया और अवश्य होनेवाले कार्य बड़े लोगों के भी होते हैं ॥ ७५ ॥ शिवजी का नग्न होना व विष्णुजी का शेषजी पै सोना यह सब दैव से किया गया है जोकि सुख व दुःख के स्वामी हैं ॥ ७६ ॥ सत्यप्रतिज्ञावाले त्रैविद्य ब्राह्मण श्रीरामजी के शासन को करें और हम लोगों को उत्तम स्थान दीजिये जहां कि बसैं ॥ ७७ ॥ उन ब्राह्मणों का वचन सुनकर ब्राह्मणों के सुख को चाहनेवाले राजा ने उन ब्राह्मणों को सुखवास नामक स्थान को दिया ॥ ७८ ॥ व हे राजन् ! सुवर्ण व रत्न, वसन और कामदुघा गऊ तथा सुवर्ण का भूषण और सब अनेक प्रकारके वस्तुसमूह को ॥ ७९ ॥ बड़ी श्रद्धा से देकर राजा ने आनन्द को पाया और जो तीन मूर्तियों से स्थापित किये गये वे त्रयीविद्य जानने योग्य हैं ॥ ८० ॥ और चौथे भूप से जो सुखवासन नामक स्थान में स्थापित किये गये वे द्विजोत्तम कलियुग में चातुर्विद्य हुए ॥ ८१ ॥ और वे सब चातुर्विद्य ब्राह्मण धर्मारण्य में स्थित हुए और उस महात्मा राजा के लिये वेदोक्त आशीर्वादों को देकर ॥ ८२ ॥ रथों व घोड़ों पै चढ़कर ब्राह्मण लोग कृतार्थ हुए और बड़े आनन्द से संयुत वे बड़े भारी मोहेरक स्थान को प्राप्त हुए ॥ ८३ ॥ पौष शुक्ल तेरसि में ब्राह्मणों ने शासन को पाया और कुलदेवता को उद्देशकर बलिप्रदान किया ॥ ८४ ॥ महात्मा पुरुष को प्रत्येक वर्ष में विधिपूर्वक बलिदान व मंगल स्नान

करना चाहिये ॥ ८५ ॥ और उस दिन अवश्यकर गीत, नृत्य व बाजन करै व जिसप्रकार जीविकाका नाश न होवै उसप्रकार उस महीने व उस दिनमें करै ॥ ८६ ॥ और जब दैवयोग से व्यतीत समय में वृद्धि प्राप्त होवै तब पहले उसको करके पश्चात् वृद्धि कीजाती है ॥ ८७ ॥ और मोढवंश में उत्पन्न जो त्रैविद्य व चातुर्विद्य अन्य तिथि में प्राप्त होते हैं ॥ ८८ ॥ वे वर्ष के मध्यमें व विष्णुजी के शयनमें बलिप्रदान करते हैं और पौष महीने में जो बलि को न करके श्रौत, स्मार्त कर्म को करता है ॥ ८९ ॥ उसको क्रोधसे संयुत कुलदेवता नाश करती हैं और विवाह व उत्सव के समयमें तथा यज्ञोपवीतादिक कर्म में और सब वृद्धिके समयों में विद्वान्

प्रकर्त्तव्यं बलिदानं यथाविधि ॥ कार्यं च मङ्गलस्नानं पुरुषेण महात्मना ॥ ८५ ॥ गीतं नृत्यं तथा वाद्यं कुर्वीत तद्दिने ध्रुवम् ॥ तन्मासे तद्दिने नैव वृत्तिनाशो भवेद्यथा ॥ ८६ ॥ दैवादतीतकाले चेद् वृद्धिरापद्यते यदा ॥ तदा प्रथमतः कृत्वा पश्चाद्वृद्धिर्विधीयते ॥ ८७ ॥ ये च भिन्नतिथौ प्राप्तास्त्रैविद्या मोढवंशजाः ॥ तथा चातुर्वेदिनश्च कुर्वन्ति गोत्रपूजनम् ॥ ८८ ॥ वर्षमध्ये प्रकुर्वन्ति तथा सुप्ते जनार्दने ॥ पौषे बलिमकृत्वा च श्रौतं स्मार्त्तं करोति यः ॥ ८९ ॥ तन्तु क्रोधसमाविष्टा निघ्नन्ति कुलदेवताः ॥ विवाहोत्सवकाले च मौञ्जीबन्धादिकर्मणि ॥ सर्वेषु वृद्धिकालेषु मातङ्गीं पूजयेद्बुधः ॥ ९० ॥ पूजनं गणनाथस्य ततः प्रभृति शोभनम् ॥ ९१ ॥ मोहेरकस्य भङ्गो हि फाल्गुन्याश्च दिने कृतः ॥ मलस्नानं तदा वर्ज्यं त्रिविधैर्मोढवाडवैः ॥ ९२ ॥ अत्राश्चर्यमभूदेकं तच्छृणुष्व महामते ॥ आसीत्कश्चित्पुरा रक्षो रुद्राल्लब्धवरो मुने ॥ ९३ ॥ मोहेरकादुत्तरतो वटवृक्षसमाश्रयः ॥ पाणिग्रहणकाले स जहार वरकन्यके ॥ ९४ ॥

मातंगीजी को पूजै ॥ ९० ॥ और तब से लगाकर गणेशजी का उत्तम पूजन करै ॥ ९१ ॥ और फाल्गुनी पौर्णमासी के दिन मोहेरक का भंग किया गया है तब त्रिविध मोढब्राह्मणों को मलस्नान न करना चाहिये ॥ ९२ ॥ हे महामते ! इस विषय में जो एक आश्चर्य हुआ है उसको सुनिये कि हे मुने ! पुरातन समय शिवजी से वरको पाये हुए कोई राक्षस हुआ है ॥ ९३ ॥ मोहेरक से उत्तर में बरगद के वृक्ष के समीप स्थित वह विवाह के समय में वर व कन्या को हरलेता था ॥ ९४ ॥

इस प्रकार उस दुष्ट आशयवाले राक्षसने बहुत से वरों व कन्याओं को हरलिया तदनन्तर कुछ समय के बाद उस समय ब्राह्मणों ने बहुत पूजनपूर्वक भट्टारिका देवी से कहा तदनन्तर प्रसन्न होतीहुई उस भट्टारिका देवीने ब्राह्मणों से कहा॥ ९५।९६॥ भट्टारिका बोली कि दुःखित मनवाले तुम लोग किस लिये यहां आये हो व आप लोगों का क्या कार्य है इसको शीघ्रही कहिये॥ ९७॥ ब्राह्मण बोले कि हे मातः! हमारे स्त्री पुरुष विवाह के योग से हरे जाते हैं उसको हम नहीं जानते हैं तुम उस से रक्षा करने के योग्य हो॥ ९८॥ बहुत अच्छा यह कहकर उस समय वह देवी वहां अन्तर्द्धान होगई व फिर विवाह प्राप्त होने पर वह राक्षस उस समय वेदी पै

एवं बहून्वरान्कन्या जहार स दुराशयः॥ ततः कालेन कियता देवीं भट्टारिकांतदा॥ ९५॥ द्विजा विज्ञापयामासुर्बहुपूजापुरःसरम्॥ ततस्तुष्टा तु सा देवी द्विजान्भट्टारिकाब्रवीत्॥ ९६॥ भट्टारिकोवाच॥ उद्विग्नमनसो यूयं किमर्थमिहचागताः॥ किञ्च कार्यं हि भवतां कथ्यतामविलम्बितम्॥ ९७॥ द्विजा ऊचुः॥ अस्माकं दम्पती मातः पाणिग्रहणयोगतः॥ ह्रियेते तु न जानीमस्तद्रक्षां कर्तुमर्हसि॥ ९८॥ तथेत्युक्त्वा तदा देवी तत्रैवान्तरधीयत॥ पुनर्विवाहे सम्प्राप्ते तद्रक्षो दम्पती तदा॥ आवेदिकां गतो हृत्वा तत्रैवान्तरधीयत॥ ९९॥ ततः सुदुःखिता विप्राः पुनर्देवीमुपस्थिताः॥ आवेदयन् स्ववृत्तान्तं दम्पतीहरणादिकम्॥ १००॥ ततः क्रोधसमाविष्टा देवी शूलं समाददे॥ युयुधे रक्षसा तेन दिनानि सुबहून्यपि॥ १॥ ततो भट्टारिका श्रान्ता चिरं युद्धसमाकुला॥ निद्रां प्राप्ता तथा ग्लाना सुष्वाप वटसन्निधौ॥ २॥ तदातद्देहसम्भूता मातङ्गी रक्तलोचना॥ मदाघूर्णितलोलाक्षी रक्तपुष्पाम्बरावृता॥ ३॥ तद्रक्षः

प्राप्त होकर स्त्री पुरुष को हरकर वहीं अन्तर्द्धान होगया॥ ९९॥ तदनन्तर बहुत दुःखित ब्राह्मण फिर देवीजी के समीप प्राप्त हुए और उन्होंने स्त्री पुरुष का हरण आदिक अपने वृत्तान्तको कहा॥ १००॥ तदनन्तर क्रोधसे संयुत देवीजीने त्रिशूल को लिया और बहुत दिनों तक उस राक्षस से युद्ध किया॥ १॥ तदनन्तर बहुत दिनों तक युद्ध से विकल भट्टारिका देवी थकगई व थककर नींद को प्राप्त हुई व बरगद के समीप सो गई॥ २॥ तब लाल लोचनोंवाली मातंगी उसके शरीर से उत्पन्न हुई और मद से घूर्णित नेत्रोंवाली तथा लाल पुष्पों व वसनोंको धारण करनेवाली मातंगी ने॥ ३॥ हे मुने! बड़ी सेना से उस राक्षस को पीड़ित किया और

उस राक्षस को शीघ्रही मारकर वह मातंगी बरगद के वृक्ष के नीचे बैठ गई ॥ ४ ॥ तदनन्तर निद्रा को छोड़कर वह आदियोगिनी शीघ्रही जाग पड़ी और राक्षस को मरे हुए देखकर भट्टारिका देवी हर्षसंयुत हुई ॥ ५ ॥ और उसने विचार किया कि किसने बल से गर्वित राक्षस को मारा है ध्यान के प्रभाव से भट्टारिका देवीने मातंगी से मारे हुए राक्षस को जानकर ॥ ६ ॥ ब्राह्मणों से कहा कि तुमलोगों का कल्याण होवै राक्षस का नाश होगया है द्विजेन्द्रो ! आज से लगाकर आपलोग अपने घरों में ॥ ७ ॥ विवाह व उत्सव के समयों में तथा यज्ञोपवीत व मुंडनादिक कर्मों में और सब महोत्सवों में हे द्विजो ! मातंगी को पूजियेगा ॥ ८ ॥ श्वेत वस्त्रको पहने

पीडयामास बलेन महता मुने ॥ सा तद्रक्षो निहत्याशु वटवृक्षमुपाश्रिता ॥ ४ ॥ ततो निद्रां विहायाशु प्रबुद्धा आदियोगिनी ॥ देवी भट्टारिका दृष्ट्वा हतं रक्षो मुदान्विता ॥ ५ ॥ अचिन्तयत् केन हतो राक्षसो बलगर्वितः ॥ मातङ्ग्या निहतं ज्ञात्वा देवी ध्यानप्रभावतः ॥ ६ ॥ उवाच विप्रान् भद्रं वो जातं रक्षोविनाशनम् ॥ अद्यप्रभृति विप्रेन्द्रा भवद्भिस्स्वगृहेषु च ॥ ७ ॥ विवाहोत्सवकालेषु मौञ्जीचूडादिकर्मसु ॥ महोत्सवेषु सर्वेषु मातङ्गी पूज्यतां द्विजाः ॥ ८ ॥ श्वेतवस्त्रपरीधाना पानपात्रधरा वरा ॥ योत्रं कलशसूर्पादिशिरसा बिभ्रती शुभा ॥ ९ ॥ अष्टादशभुजा देवी सा रमेयकरा तथा ॥ पूजनीया द्विजवरा मातङ्गी मदविह्वला ॥ १० ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी तत्रैवान्तरधीयत ॥ अतः पूज्या द्विजैर्देवी मातङ्गी वटसन्निधौ ॥ ११ ॥ विवाहादिषु कालेषु कुलरक्षणकारिणी ॥ मांतङ्गीं मदघूर्णाक्षीं सूर्पयोत्रादिधारिणीम् ॥ १२ ॥ यो नैव पूजयेद्वृद्धौ तत्कुलं याति संक्षयम् ॥ अतएव सदा पूज्या मातङ्गी वृद्धि

व मद्यपान के पात्र को धारण किये और जोत नामक रस्सी व कलश तथा सूपादि को शिर से धारण करनेवाली व श्रेष्ठ ॥ ९ ॥ और कुत्ता को हाथ में लिये वह अठारह भुजाओंवाली मद से विह्वल मातंगी देवी हे द्विजोत्तमो ! तुमलोगों से पूजने योग्य है ॥ १० ॥ यह कहकर उस समय वह भट्टारिका देवी वहीं अन्तर्द्धान होगई इस कारण बरगद के समीप मातंगीजी ब्राह्मणों से पूजने योग्य हैं ॥ ११ ॥ व विवाहादिक समयों में कुल की रक्षा करनेवाली मातंगी पूजने योग्य है व मद से भ्रमित नेत्रोंवाली तथा सूप व जोत आदि को धारनेवाली मातंगी को ॥ १२ ॥ जो वृद्धि में नहीं पूजता है उसका वंश नाश होजाता है इसी कारण वृद्धि के लिये

मातंगी सदैव पूजने योग्य है ॥ १३ ॥ अनेक प्रकार के बलिप्रदानों से मोढों की कुलदेवता को पूजना चाहिये तदनन्तर ब्राह्मणलोग गान व बाजन के शब्दों से मोढों की कुलदेवता उस मातंगी को वेदध्वनिपूर्वक पूजकर मनोरथ को पाये हुए उन प्रसन्न ब्राह्मणों ने धर्मारण्य में प्रवेश किया ॥ १४ । १५ ॥ और आमराजा ने अपनी आज्ञा से जिन ब्राह्मणों को निकाल दिया वे पंद्रहहज़ार ब्राह्मण सुखवासक नामक स्थान को चले गये ॥ १६ ॥ श्रीरामजी ने पहले आपही पचपन ग्रामों को दिया है और वहां टिके हुए वणिजों ने उनकी जीविका को कल्पित किया ॥ १७ ॥ और वे अडालज, माण्डलीय व पवित्र गोभुज ब्राह्मणों की जीविका के दायक हुए व ब्राह्मणों

हेतवे ॥ १३ ॥ नानाबलिप्रदानेन मोढानां कुलदेवता ॥ ततो द्विजास्तां सम्पूज्य मोढानां कुलदेवताम् ॥ १४ ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैर्वेदध्वनिपुरःसरम् ॥ धर्मारण्यं प्रविविशुर्हृष्टाः प्राप्तमनोरथाः ॥ १५ ॥ निर्वासितास्तु ये विप्रा आमराज्ञा स्वशासनात् ॥ पञ्चदशसहस्राणि ययुस्ते सुखवासकम् ॥ १६ ॥ पञ्चपञ्चाशतो ग्रामान्ददौ रामः पुरा स्वयम् ॥ तत्रस्था वणिजश्चैव तेषां वृत्तिमकल्पयन् ॥ १७ ॥ अडालजा माण्डलीया गोभुजाश्च पवित्रकाः ॥ ब्राह्मणानां वृत्तिदास्ते ब्रह्मसेवासु तत्पराः ॥ ११८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये ब्राह्मणानांशासनवृत्तिप्राप्तिवर्णनंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमं मतम् ॥ एते ब्रह्मविदः प्रोक्ताश्चातुर्विद्या महाद्विजाः ॥ १ ॥ स्वाध्यायाश्च वषट्काराः स्वधाकाराश्च नित्यशः ॥ रामाज्ञापालकाश्चैव हनुमद्भक्तितत्पराः ॥ २ ॥ एकदा तु ततो देवा

की सेवा में तत्पर हुए ॥ ११८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांब्राह्मणानांशासनवृत्तिप्राप्तिवर्णनंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

दो० । धर्मारण्य द्विजन के जिमि कह भेद अनेक ॥ उन्तालिसवें में सोई कह्यो चरित्र सुनेक ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे पुत्र ! सुनिये मैं उत्तम रहस्य को कहता हूं कि ये चातुर्विद्य ब्राह्मण लोग ब्रह्मज्ञानी कहे गये हैं ॥ १ ॥ और नित्य स्वाध्याय व वषट्कार तथा स्वधाकार करनेवाले वे श्रीरामजी की आज्ञा को पालनेवाले व हनुमान् जी की भक्ति में तत्पर थे ॥ २ ॥ तदनन्तर एक समय देवता ब्रह्माजी के समीप गये व ब्राह्मणों को देखने की इच्छावाले वे ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवता वहां

गये ॥ ३ ॥ व उन आये हुए देवताओं को देखकर वे ब्राह्मण अर्घ, पाद्य व मधुपर्क को आगे कर अपने स्थान से चले ॥ ४ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा आदिक देवताओं को पूजकर वे ब्राह्मण ब्रह्मा के आगे बैठकर वेदों को उच्चारण करने लगे ॥ ५ ॥ और संहिता, पद, क्रम व घन और ऋचाओं को व ऋग्वेद की संहिता को उच्चस्वर से कहने लगे ॥ ६ ॥ और सामको गानेवाले वे अनेकप्रकार के स्तोत्रों को करनेलगे व याज्य लोग शास्त्रों को और पुरोनुवाक्यों को पढ़ने लगे ॥ ७ ॥ और चतुरक्षर व परम-चतुरक्षर, द्व्यक्षर, पंचाक्षर व द्व्यक्षर इस यज्ञस्वरूप को जो ज्ञानपूर्वक जपता है ॥ ८ ॥ उसको अन्त में ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है यह मैं सत्य सत्य कहता हूं सब सावधान

ब्रह्माणं समुपागताः ॥ ब्राह्मणान्द्रष्टुकामास्ते ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ ३ ॥ तान्देवानागतान्दृष्ट्वा स्वस्थानाच्चलितास्तु ते ॥ अर्घपाद्यं पुरस्कृत्य मधुपर्कं तथैव च ॥ ४ ॥ पूजयित्वा ततो विप्रा देवान्ब्रह्मपुरोगमान् ॥ ब्रह्माग्र उपविष्टास्ते वेदानुच्चारयन्ति हि ॥ ५ ॥ संहितां च पदं चैव क्रमं घनं तथैव च ॥ उच्चैः स्वरेण कुर्वीत ऋचामृग्वेदसंहिताम् ॥ ६ ॥ सामगाश्च प्रकुर्वन्ति स्तोत्राणि विविधानि च ॥ शास्त्राणि च तथा याज्याःपुरोनुवाक्यांस्तथा ॥ ७ ॥ चतुरक्षरं परं चैव चतुरक्षरमेव च ॥ द्व्यक्षरं च तथा पञ्चाक्षरं द्व्यक्षरमेव च ॥ एतद्यज्ञस्वरूपं च यो जपेज्ज्ञानपूर्वकम् ॥ ८ ॥ अन्ते ब्रह्मपदप्राप्तिः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ एकाग्रमानसाः सर्वे वेदपाठरता द्विजाः ॥ ९ ॥ तेषामङ्गणदेशेषु कण्डूयन्ते कचान्मृगाः ॥ ब्राह्मणा वेदमातां च जपन्ति विधिपूर्वकम् ॥ १० ॥ हस्ते धृतांश्च तैर्दर्भान्भक्षन्ते मृगपोतकाः ॥ निर्वैरं तं तदा दृष्ट्वा आश्रमं गृहमेधिनाम् ॥ ११ ॥ तुतुषुः परमं देवा ऊचुस्ते च परस्परम् ॥ त्रेतायुगमिदानीं च सर्वे धर्मप

मनवाले ब्राह्मण वेदपाठ में परायण थे ॥ ९ ॥ और उनके आंगन के स्थानों में मृग बालों को खुजलाते थे और ब्राह्मणलोग विधिपूर्वक वेदमाता (गायत्री) को जपते थे ॥ १० ॥ व उनसे हाथ में धरे हुए अक्षतों को मृगों के बच्चे खाते थे उस समय गृहस्थों के आश्रम को वैररहित देखकर ॥ ११ ॥ देवतालोग बहुत प्रसन्न हुए और

१ यजामहे २ अस्तु श्रौषट् ३ यजे ४ ये यजामहे ५ वौषट् ये पांच यज्ञसमय में अध्वर्यु आदिकों से कहने योग्य वचन हैं ॥

उन्होंने परस्पर कहा कि इस समय त्रेतायुग है और सब धर्म में परायण हैं॥ १२॥ व कलियुग दुष्ट कहागया है तो वह पापी दुष्ट क्या करैगा चातुर्विद्य ब्राह्मणों को बुला-
कर उन तीनों ने कहा ॥ १३ ॥ कि आप लोगों के व त्रैविद्य ब्राह्मणों की जीविका के लिये हम तुमलोगों को विभाग देवैंगे उसको यथायोग्य पालन कीजिये॥ १४॥
पहले जो छत्तीस हज़ार वणिज् कहे गये हैं वे और तीन हज़ार त्रैविद्य तथा पंद्रह हज़ार ॥ १५ ॥ चातुर्विद्य परस्पर वृत्ति में आश्रित हुए कि त्रिभाग समेत त्रैविद्य व
चौथाई भागवाले चातुर्विद्य लोग ॥ १६ ॥ नित्य वणिजोंके घरको जाकर पुरोहिती के भाग को बाँटकर ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से बनाये हुए ब्राह्मणलोग उस को

रायणाः ॥ १२ ॥ कलिर्दुष्टस्तथा प्रोक्तः किं करिष्यति पापकः ॥ चातुर्विद्यान्समाहूय ऊचुस्ते त्रय एव च ॥ १३ ॥
वृत्त्यर्थं भवतां चैव त्रैविद्यानां तथैव च ॥ विभागं वः प्रदास्यामो यथावत्प्रतिपाल्यताम् ॥ १४ ॥ ये वणिजः पुरा
प्रोक्ताः षट्त्रिंशच्च सहस्रकाः ॥ त्रिसहस्रास्तु त्रैविद्या दशपञ्चसहस्रकाः ॥ १५ ॥ चातुर्विद्यास्तथा प्रोक्ता अन्योन्यं
वृत्तिमाश्रिताः ॥ सत्रिभागास्तु त्रैविद्याश्चतुर्भागास्तु चात्रिणः ॥ १६ ॥ वणिजां गृहमागत्य पौरोहित्यस्य नित्यशः ॥
भागं विभज्य सम्प्रापुः काजेशेन विनिर्मिताः ॥ १७ ॥ परस्परं न विवाहश्चातुर्विद्यत्रिविद्ययोः ॥ चातुर्विद्या मया
प्रोक्तास्त्रिविद्यास्तु तथैव च ॥ १८ ॥ त्रैविभागेन त्रैविद्याश्चतुर्भागेन चात्रिणः ॥ एवं ज्ञातिविभागस्तु काजेशेन विनि
र्मितः ॥ १९ ॥ कृतकृत्यास्तु ते विप्राः प्रणेमुस्तान्सुरोत्तमान् ॥ वृत्तिं दत्त्वा ततो देवाः स्वस्थानं च प्रतस्थिरे ॥ २० ॥
पञ्चपञ्चाशद्ग्रामाणां ते द्विजाश्च निवासिनः ॥ चतुर्विद्यास्तु ते प्रोक्तास्तदादि तु त्रिविद्यकाः ॥ २१ ॥ चातुर्विद्यस्य

प्राप्त हुए ॥ १७ ॥ और चातुर्विद्य व त्रिविद्यलोगों का परस्पर विवाह नहीं होता है मैंने चातुर्विद्य व त्रिविद्य ब्राह्मणोंको कहा ॥ १८ ॥ और तिहाई भाग से त्रैविद्य व चौथाई
भागसे चातुर्विद्य ब्राह्मण हुए ब्रह्मा, विष्णु व शिवजीसे इस प्रकार जाति का विभाग हुआ ॥ १९ ॥ व उन कृतार्थ ब्राह्मणों ने उन सुरोत्तमों को प्रणाम किया और जीविका
को देकर तदनन्तर देवता अपने स्थान को चलेगये ॥ २० ॥ और वे ब्राह्मण पचपन ग्रामों में निवासी हुए और तब से लगाकर वे चातुर्विद्य और त्रिविद्य कहेगये ॥ २१ ॥

और चातुर्विद्य के पंद्रह गोत्र हैं भारद्वाज, वत्स, कौशिक व कुश ॥ २२ ॥ और शांडिल्य, कश्यप, गौतम, छादन, जातूकर्ण्य, कुंत, वशिष्ठ व धारण ॥ २३ ॥ और आत्रेय, मांडिल व उसके उपरान्त लौगाक्ष है और स्वस्थानों के नामों को मैं क्रम से कहता हूं ॥ २४ ॥ कि सीतापुर, श्रीक्षेत्र, मगोड़ी, ज्येष्ठलोज व उसके उपरान्त शेरथा कहा गया है ॥ २५ ॥ और छेदे, ताली, वनोडी व गोव्यंदली, कंटाचोपली, कोहेच व चंदन ॥ २६ ॥ और थलग्राम, सोह, हाथंज व कपडवाणक,

गोत्राणि दशपञ्च तथैव च ॥ भारद्वाजस्तथा वत्सः कौशिकः ८ कुश एव च ॥ २२ ॥ शाण्डिल्यः ५ कश्यपश्चैव गौतमश्छादनस्तथा ८॥ जातूकर्ण्यस्तथा कुन्तो वशिष्ठो ११ धारणस्तथा ॥ २३ ॥ आत्रेयोर्माण्डिलश्चैव १४ लौगाक्षश्च १५ ततः परम् ॥ स्वस्थानानां च नामानि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ २४ ॥ सीतापुरं च श्रीक्षेत्रं २ मगोडी च ३ तथा स्मृता ॥ ज्येष्ठलोजस्तथा चैव शेरथा च ततः परम् ॥ २५ ॥ छेदे ताली वनोडी च गोव्यन्दली तथैव च ॥ कण्टाचोपली चैव कोहेचं चन्दनस्तथा ॥ २६ ॥ थलग्रामश्च सोहं च हाथञ्जं कपडवाणकम् ॥ व्रजन्होरी च वनोडी च फीणां वगोलं द्दणस्तथा ॥ २७ ॥ थलजा चारणं सिद्धा भालजाश्च ततः परम् ॥ महोवी आईया मलीआ गोधरीग्राम ततः परम् ॥ २८ ॥ वाठसुहाली तथा चैव माणजा सानदीयास्तथा ॥ आनन्दीया पाटडीश्चटीकोलीया ततः परम् ॥ २९ ॥ गम्भी धणीआ मात्रा च नातमोरास्तथैव च ॥ वलोला रान्त्यजाश्चैव रूपोला बोधणी च वै ॥ ३० ॥ छत्रोटा अलुएवा च वासतडीग्रामतः परम् ॥ जाषासणा गोतीया च चरणीया दुधीयास्तथा ॥ ३१ ॥ हालोला वै

व्रजन्होरी, वनोड़ी, फीणा, वगोल व द्दण ॥ २७ ॥ और थलजा, चारण, सिद्धा तदनन्तर भालजा, महोवी, आईया, मलीआ व इसके उपरान्त गोधरीग्राम् ॥ २८ ॥ और वाठसुहाली, माणजा, सानदीया, आनन्दीया, पाटडीश्च तदनन्तर टीकोलीआ ॥ २९ ॥ और गंभी, धणीआ, मात्रा व नातमोरा, वलोला, रांत्यजा, रूपोला व बोधणी ॥ ३० ॥ और छत्रोटा, अलुएवा, वासतडीग्राम व इसके उपरान्त जाषासणा, गोतीया, चरणीया और दुधीया ॥ ३१ ॥ हालोला, वैहोला, असाला, नालाडा,

देहोलो, सौहासीया और संहालीया ॥ ३२ ॥ व स्वस्थान इन पचपन ग्रामों को क्रम से श्रीरामजी ने विधिपूर्वक करके ब्राह्मणों के लिये दिया है ॥३३॥ इसके उपरान्त स्वस्थान के गोत्र में उपजे हुए ब्राह्मणों को व प्रवरों को यथायोग्य विधिपूर्वक कहता हूं ॥ ३४ ॥ क्योंकि गोत्रदेवी व प्रवर को जानकर स्वस्थान होता है और ब्राह्मण अपने स्थान में बसते हैं ॥ ३५ ॥ नारदजी बोले कि गोत्र कैसे जाना जाता है व कुल कैसे जाना जाता है ? और देवी कैसे जानी जाती है ? उसको यथार्थ कहिये ॥३६॥ ब्रह्माजी

होला च असाला नालाडास्तथा ॥ देहोलोसौहासीया च संहालीयास्तथैव च ॥ ३२ ॥ स्वस्थानं पञ्चपञ्चाशद्ग्रामा एते ह्यनुक्रमात् ॥ दत्ता रामेण विधिवत्कृत्वा विप्रेभ्य एव च ॥ ३३ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि स्वस्थानस्य च गोत्रजान् ॥ तथा हि प्रवरांश्चैव यथावद्विधिपूर्वकम् ॥ ३४ ॥ ज्ञात्वा तु गोत्रदेवीं च तथा प्रवरमेव च ॥ स्वस्थानं जायते चैव द्विजाः स्वस्थानवासिनः ॥ ३५ ॥ नारद उवाच ॥ कथं च ज्ञायते गोत्रं कथं तु ज्ञायते कुलम् ॥ कथं वा ज्ञायते देवी तद्वदस्व यथार्थतः ॥ ३६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सीतापुरं तु प्रथमं प्रवरद्वयमेव च ॥ कुशवत्सौ तथा चात्र मया ते परिकीर्त्तितौ ॥ ३७ ॥ १ द्वितीयं चैव श्रीक्षेत्रं गोत्राणां त्रयमेव च ॥ छान्दनसस्तथा वत्सस्तृतीयं कुशमेव च ॥ ३८ ॥ तृतीयं मुद्गलं चैव कुशभारद्वाजमेव च ३ ॥ शोहोली च चतुर्थं वै कुशप्रवरमेव च ॥ ३९ ॥ ज्येष्ठला पञ्चमश्चैव कुशवत्सौ प्रकीर्त्तितौ ५ ॥ श्रेयस्थानं हि षष्ठं वै भारद्वाजः कुशस्तथा ६ ॥ ४० ॥ दन्ताली सप्तमं चैव भारद्वाजः कुशस्तथा ७ ॥ वटस्थानमष्टमं च निबोध सुतसत्तम ॥ ४१ ॥ तत्र गोत्रं कुशं कुत्सं भारद्वाजं तथैव च ॥ राज्ञः पुरं नवमं च भारद्वाज

बोले कि पहला सीतापुर और कुश व वत्स दो प्रवरों को मैंने यहां तुमसे कहा है ॥ ३७ ॥ और दूसरा श्रीक्षेत्र है व तीन गोत्र हैं छांदनस, वत्स व तीसरा कुश है ॥ ३८ ॥ और तीसरा मुद्गल है व कुश और भारद्वाज प्रवर हैं और चौथा शोहोली ग्राम है व कुशप्रवर है ॥ ३९ ॥ और पांचवां ज्येष्ठला ग्राम है व वत्स और कुशप्रवर कहे गये हैं ॥५॥ और छठां श्रेयस्थान है व भारद्वाज और कुश प्रवर हैं ॥ ४० ॥ और सातवां दंताली ग्राम है व भारद्वाज और कुश प्रवर हैं व हे उत्तम सुत ! आठवां वटस्थान जानिये ॥४१॥ वहां

कुश, कुत्स व भारद्वाजगोत्र है और नवां राजापुर है व भारद्वाज प्रवर है ॥ ४२ ॥ और दशवां कृष्णवाट नगर है व कुश प्रवर है और गेरहवां दहलोटपुर है व वत्स प्रवर है ॥ ४३ ॥ और बारहवां चेखलीपुर है व पौककुश प्रवर है ॥ ४४ ॥ और चांचोदखे, देहोलोडी, आत्रय, वत्स व कुत्सक प्रवर हैं और भारद्वाजी, कोणायाग्राम हैं व भारद्वाज, गोलंदणा और शकु प्रवर हैं ॥ ४५ ॥ और थलत्यजाद्दय ग्राम में कुश व धारण प्रवर हैं और नारणसिद्धा स्वस्थान है व कुत्सगोत्र कहागया है ॥४६॥ और भालजाग्राम में कुत्स व वत्स प्रवर हैं और मोहोवी व आकुश हैं तथा ईयाश्लीआ, शाडिल और गोधरीपात्र हैं ॥ ४७ ॥ व आनंदीयाग्राम है और

प्रवरमेव च ९ ॥ ४२ ॥ कृष्णवाटं दशमं चैव कुशप्रवरमेव च ॥ दहलोडमेकादशं वत्सप्रवरमेव हि ॥ ४३ ॥ चेखली द्वादशं पौककुशप्रवरमेव च ॥ ४४ ॥ चाञ्चोदखे देहोलोडी आत्रयश्च वत्सकुत्सकश्चैव ॥ भारद्वाजीकोणाया च भारद्वाजगोलंदणाशकुस्तथा ॥ ४५ ॥ थलत्यजाद्दये चैव कुशधारणमेव च ॥ नारणसिद्धा च स्वस्थानं कुत्सं गोत्रं प्रकीर्तितम् ॥ ४६ ॥ भालजां कुत्सवत्सौ च मोहोवी आकुशस्तथा ॥ ईयाश्लीआ शाण्डिलश्च गोधरीपात्रमेव च ॥ ४७ ॥ आनन्दीया द्वे चैव भारद्वाजशाण्डिलश्चैवपाटडीआ कुशमेव च ॥ ४८ ॥ वांसडीआश्चैव जास्वा कौत्समणा वत्स आत्रेयौ गीता आकुशगौतमौ ॥ ४९ ॥ चरणीआ भारद्वाजः दुधी आधारणसा हि अहोसोन्ना शाण्डिलयस्तथा ॥ ५० ॥ वैलोला हुशश्चैवा असाला कुशश्चैव धारणा च द्वितीयकम् ॥ ५१ ॥ नालोला वत्सधारणिया च देलोला कुत्समेव च ॥ सोहासीया भारद्वाजकुशवत्समेव च ॥ ५२ ॥ सुहालीआ वत्सं वै प्रोक्तं गोत्राणि यथाक्रमम् ॥

उसमें दो गोत्र हैं भारद्वाज व शांडिल और पाटडीआ ग्राम है व कुश गोत्र है ॥ ४८ ॥ और बॉसडीआ, जास्वा, कौत्समणा ग्राम हैं व इनमें वत्स और आत्रेय गोत्र है व गीता ग्राम है और आकुश व गौतम प्रवर हैं ॥ ४९ ॥ और चरणीआ ग्राम है व भारद्वाज गोत्र है और दुधीआ धारणसा, अहोसोन्ना ग्राम है व शांडिल्यगोत्र है ॥ ५० ॥ व वैलोला, हुशश्चैवा, असाला ग्राम हैं और कुश व दूसरा धारणागोत्र है ॥ ५१ ॥ और नालोला ग्राम है व वत्स और धारणीय गोत्र हैं व देलोला ग्राम है और कुत्स गोत्र है और सोहासीया ग्राम है उसमें भारद्वाज, कुश व वत्स गोत्र हैं ॥ ५२ ॥ और जो सुहालीआ ग्राम है उसमें वत्स गोत्र है मैंने यहां क्रम से गोत्रों व स्वस्थानों को

कहा ॥ ५३ ॥ और शीतवाडिया ग्राम है उसमें जो गोत्र कहे गये वे ये हैं कि कुश, वत्स और विश्वामित्र, देवरात और तीसरा दल गोत्र है ॥५४॥ और भार्गव, च्यवन, आप्नवान्, और्व व जमदग्नि ये गोत्र हैं और वचा, अर्दशेषा व वुटला ये गोत्रदेवियां कही गई हैं ॥ ५५॥ यह प्रथम गोत्र समाप्त हुआ ॥१॥ दूसरा श्रीक्षेत्र कहा गया है और दो गोत्र हैं छान्दनस व वत्स और दो देवियां हैं ॥ ५६ ॥ और आंगिरस, अम्बरीष, यौवनाश्व, भृगु, च्यवन, आप्नवान्, और्व व जमदग्नि ये प्रवर हैं ॥ ५७ ॥ व हे मुनिसत्तम ! एक भट्टारिका व दूसरी शेपलादेवी कही गई है और जो इस वंश में उत्पन्न हैं उनको सुनिये ॥ ५८ ॥ कि वे क्रोधसमेत व उत्तम आचारवाले

मया प्रोक्तानि चैवात्र स्वस्थानानि यथाक्रमम् ॥ ५३ ॥ शीतवाडिया ये प्रोक्ताः कुशो वत्सस्तथैव च ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दलमेव च ॥ ५४ ॥ भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वजमदग्निरेव हि ॥ वचार्द्दशेषावुटला गोत्रदेव्यः प्रकीर्तिताः ॥ ५५ ॥ इति प्रथमं गोत्रम् ॥ १ ॥ श्रीक्षेत्रं द्वितीयं प्रोक्तं गोत्रद्वितयमेव च ॥ छान्दनसस्तथा वत्सं देवी द्वितयमेव च ॥ ५६ ॥ आङ्गिरसाम्बरीषश्च यौवनाश्वस्तथैव च ॥ भृगुच्यवनआप्नवानौर्वजमदग्निमेव च ॥ ५७ ॥ देवी भट्टारिका प्रोक्ता द्वितीया शेपला तथा ॥ एतद्वंशोद्भवा ये च शृणु तान्मुनिसत्तम ॥ ५८ ॥ सक्रोधनाः सदाचाराः श्रौतस्मार्तक्रियापराः ॥ पञ्चयज्ञरता नित्यंस्वसम्बन्धसमाश्रिताः ॥ कृतज्ञाः क्रतुजाश्चैव ते सर्वे द्विजसत्तमाः ॥ ५९ ॥ इति द्वितीयगोत्रम् ॥ २ ॥ तृतीयं मगोडोआ वै गोत्रद्वितयमेव च ॥ भारद्वाजस्तथा कुत्सं देवीद्वितयमेव च ॥ ६० ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजस्तथैव च ॥ विश्वामित्रदेवरातौ प्रवरत्रयमेव च ॥ ६१ ॥ शेषला बुधला प्रोक्ताधारशान्तिस्तथैव च ॥ अस्मिन्ग्रामे च ये जाता ब्राह्मणाः सत्यवादिनः ॥ ६२ ॥ द्विजपूजाक्रियायुक्ता नानायज्ञक्रिया

और श्रौत, स्मार्त कर्मों में परायण हैं व नित्य पञ्चयज्ञों में परायण तथा अपने संबन्ध में आश्रित हैं और वे सब नृपोत्तम कृतज्ञ व यज्ञ से उत्पन्न हैं ॥ ५९ ॥ यह दूसरा गोत्र समाप्त हुआ ॥ २ ॥ और तीसरा मगोडोआ नगर है व दो गोत्र हैं भारद्वाज व कुत्स और दो देवी हैं ॥ ६० ॥ आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, विश्वामित्र व देवरात ये तीन प्रवरहैं ॥ ६१ ॥ और शेषला, बुधला व धारशान्ति कहीगई है और इस ग्राम में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण सत्यवादी हैं ॥ ६२ ॥ और ब्राह्मणों की पूजा व कर्म में

युक्त हैं तथा अनेक प्रकार के यज्ञकर्मों में परायण हैं व इस गोत्र में उत्पन्न सब ब्राह्मण मुनीश्वर हैं ॥ ६३ ॥ यह तीसरा गोत्र समाप्त हुआ ॥३॥ चौथा शीहोलिया ग्राम है और दो गोत्र हैं विश्वामित्र, देवरात व तीसरा-दल्ल है ॥ ६४ ॥ और उनकी चचाई देवी गोत्रदेवी कही गई है व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे दुर्बल व उदासीनमन हैं ॥ ६५ ॥ व हे नृपोत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी हैं व हे ब्रह्मसत्तम ! वे ब्राह्मण सब विद्याओं में प्रवीण हैं ॥ ६६ ॥ यह चौथा स्थान समाप्त हुआ ॥ ४ ॥ और ज्येष्ठलोजा पाचवां स्वस्थान है व वत्सशीया और कुत्सशीया ये दो प्रवर कहेगये हैं ॥६७॥ और आवरिवृवाप्र, यौवनाश्व, भृगु, च्यवन, आप्र, और्व, जमदग्नि ये गोत्र

पराः ॥ अस्मिन्गोत्रे समुत्पन्ना द्विजाः सर्वे मुनीश्वराः ॥ ६३ ॥ इति तृतीयगोत्रम् ॥ ३ ॥ चतुर्थं शीहोलियाग्रामं गोत्रद्वितयमेव च ॥ विश्वामित्रदेवरातस्तृतीयो दलमेव च ॥ ६४ ॥ देवी चचाई वै तेषां गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ ६५ ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ॥ सर्व्वविद्याप्रवीणाश्च ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तम ॥ ६६ ॥ इति चतुर्थं स्थानम् ॥ ४ ॥ ज्येष्ठलोजा पञ्चमं च स्वस्थानं परिकीर्तितम् ॥ वत्सशीया कुत्सशीया प्रवरद्वितयं स्मृतम् ॥ ६७ ॥ आवरिवृवाप्रःयौवनाश्वभृगुच्यवनआप्रौर्वजमदग्निस्तथैव हि ॥ ६८ ॥ चचाई वत्सगोत्रस्य शान्ता च कुत्सगोत्रजा ॥ एतैस्त्रिभिः पञ्चभिश्च द्विजा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥ ६९ ॥ शान्ता दान्ताः सुशीलाश्च धनपुत्रैश्च संयुताः ॥ वेदाध्ययनहीनाश्च कुशलाः सर्वकर्मसु ॥ ७० ॥ सुरूपाश्च सदाचाराः सर्वधर्मेषु निष्ठिताः ॥ दानधर्म्मरताः सर्वे अत्रजा जलदा द्विजाः ॥ ७१ ॥ इति पञ्चमं स्थानम् ॥ ५ ॥ शेरथाग्रामेषु वै जाताः प्रवर

हैं ॥ ६८ ॥ और वत्स गोत्र की चचाई देवी है व कुत्सगोत्र में उत्पन्न शांता देवी है और इन तीनों व पांचों से ब्राह्मण ब्रह्मस्वरूपी होते हैं ॥ ६९ ॥ और वे शान्त, दान्त, सुशील व धन और पुत्रों से संयुत होते हैं व वेदपाठ से संयुत और सब कर्मों में प्रवीण होते हैं ॥ ७० ॥ और उत्तम रूपवान् तथा अच्छे आचरणवाले व सब धर्मों में परायण होते हैं और इसमें पैदा हुए सब ब्राह्मण दान धर्म में परायण व जलदायक होते हैं ॥ ७१ ॥ यह पांचवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५ ॥ और शेरथा ग्रामों में जो

उत्पन्न हैं वे दो प्रवरों से संयुत हैं कुश व भारद्वाज और दो देवी हैं ॥ ७२ ॥ विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल है और आंगिरस, बार्हस्पत्य व भारद्वाज ये गोत्र हैं ॥७३॥ और कमला महालक्ष्मी व दूसरी यक्षिणी है और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे श्रौत स्मार्त कर्मों में परायण व विद्वान् होते हैं ॥ ७४ ॥ और वेदपाठ करनेवाले व तपस्वी तथा शत्रुमर्दक होते हैं और क्रोधी, लोभी, दुष्ट व यज्ञ करने और यज्ञ कराने में परायण हैं और सब वेदकर्म में तत्पर होते हैं वे ब्राह्मण मुझसे कहेगये ॥ ७५ ॥ यह छठा स्थान समाप्त हुआ ॥ ६ ॥ और दन्तालीया ग्राम में भारद्वाज, कुत्स व शाय, आंगिरस, बार्हस्पत्य व भारद्वाज गोत्र हैं ॥ ७६ ॥ और यक्षिणी व दूसरी कर्मलादेवी

द्वयसंयुताः ॥ कुशभारद्वाजाश्चैव देवीद्वयं तथैव च ॥ ७२ ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दल एव च ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च ॥ ७३ ॥ कमला च महालक्ष्मीर्द्वितीया यक्षिणी तथा ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाताः श्रौतस्मार्त्तरता बुधाः ॥ ७४ ॥ वेदाध्ययनशीलाश्च तापसाश्चारिमर्द्दनाः ॥ रोषिणो लोभिनो दुष्टा यजने याजने रताः ॥ ब्रह्मक्रियापराः सर्वे ब्राह्मणास्ते मयोदिताः ॥ ७५ ॥ इति षष्ठं स्थानम् ॥ ६ ॥ दन्तालीया भारद्वाजकुत्सशायास्तथैव च ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च ॥ ७६ ॥ देवी च यक्षिणी प्रोक्ता द्वितीया कर्मला तथा ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता वाडवा धनिनः शुभाः ॥ ७७ ॥ वस्त्रालङ्करणोपेता द्विजभक्तिपरायणाः ॥ ब्रह्मभोज्यपराः सर्वे सर्वे धर्मपरायणाः ॥ ७८ ॥ इति सप्तमं स्थानम् ॥ ७ ॥ वडोद्रीयान्वये जाताश्चत्वारः प्रवराः स्मृताः ॥ कुशः कुत्सश्च वत्सश्च भारद्वाजस्तथैव च ॥ ७९ ॥ तत्प्रवराण्यहं वक्ष्ये तथा गोत्राण्यनुक्रमात् ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयोदल एव च ॥ ८० ॥ आङ्गिरसाम्बरीषश्च यौवनाश्व

कही गई है और इस गोत्र में जो ब्राह्मण उत्पन्न हैं वे धनी व शुभ होते हैं ॥ ७७ ॥ और वस्त्रों व भूषणों से संयुत तथा ब्राह्मणों की भक्ति में परायण हैं और सब ब्रह्मभोज में परायण व सब धर्म में परायण हैं ॥ ७८ ॥ यह सातवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ७ ॥ और जो वडोद्रीय के वंश में उत्पन्न हैं उनके चार प्रवर कहे गये हैं कुश, कुत्स, वत्स व भारद्वाज हैं ॥ ७९ ॥ और उनके प्रवरों व गोत्रों को मैं क्रम से कहता हूं कि विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल है ॥ ८० ॥ और आङ्गिरस, अम्बरीष व तीसरे यौवनाश्व

हैं और भार्गव, च्यावन, आप्नवान्, और्व व जमदग्नि हैं ॥ ८१ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज ये गोत्र हैं और कर्मला, क्षेमला और धारभट्टारिका ॥ ८२ ॥ और चौथी क्षेमला कही गई है ये क्रम से गोत्रमाता हैं व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे सदैव पञ्चयज्ञ में परायण हैं ॥ ८३ ॥ और लोभी, क्रोधी व बहुत प्रजाओंवाले और स्नान, दानादि में परायण व सदैव इन्द्रियों को जीतनेवाले होते हैं ॥ ८४ ॥ और हज़ारों बावली, कुँआ व तडागों के बनानेवाले होते हैं और व्रत करनेवाले व गुणज्ञ तथा मूर्ख व वेदों से रहित होते हैं ॥ ८५ ॥ यह आठवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ८ ॥ और उस गोदणीय नामक ग्राम में दो गोत्र टिके हैं पहला वत्स गोत्र है दूसरा

स्तृतीयकः ॥ भार्गवश्च्यावनाप्नवानौर्वजमदग्निस्तथैव च ॥ ८१ ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च ॥ कर्मला क्षेमलाचैव धारभट्टारिका तथा ॥ ८२ ॥ चतुर्थी क्षेमला प्रोक्ता गोत्रमाता अनुक्रमात् ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाताः पञ्चयज्ञरताः सदा ॥ ८३ ॥ लोभिनः क्रोधिनश्चैव प्रजायन्ते बहुप्रजाः ॥ स्नानदानादि निरताः सदा वै निर्जितेन्द्रियाः ॥ ८४ ॥ वापीकूपतडागानां कर्त्तारश्च सहस्रशः ॥ व्रतशीला गुणज्ञाश्च मूर्खा वेदविवर्जिताः ॥ ८५ ॥ इत्यष्टमं स्थानम् ॥ ८ ॥ गोदणीयाभिधे ग्रामे गोत्रौ द्वौ तत्र संस्थितौ ॥ वत्सगोत्रं प्रथमकं भारद्वाजं द्वितीयकम् ॥ ८६ ॥ भृगुच्यवनाप्नवानौर्वपुरोधसमेव च ॥ शीहरी प्रथमा ज्ञेया द्वितीया यक्षिणी तथा ॥ ८७ ॥ अस्मिन्गोत्रोद्भवा विप्रा धनधान्यसमन्विताः ॥ सामर्षा लौल्यहीनाश्च द्वेषिणः कुटिलास्तथा ॥ ८८ ॥ हिंसिनो धनलुब्धाश्च मया प्रोक्तास्तु भूपते ॥ ८९ ॥ इति नवमं स्थानम् ॥ ९ ॥ कण्टवाडीआ ग्रामे विप्राः कुशगोत्र समुद्भवाः ॥ प्रवरं तस्य वक्ष्यामि शृणु त्वं च नृपो

भारद्वाज है ॥ ८६ ॥ और भृगु, च्यवन, आप्नवान्, और्व व पुरोधस ये प्रवर हैं और प्रथम देवी शीहरी व दूसरी यक्षिणी जानने योग्य है ॥ ८७ ॥ और इस गोत्र में उत्पन्न ब्राह्मण धन, धान्य से संयुत होते हैं और क्रोध समेत व चंचलता रहित तथा द्वेषी व कुटिल होते हैं ॥ ८८ ॥ व हे भूपते ! मुझसे वे हिंसक व धन के लोभी कहे गये ॥ ८९ ॥ यह नवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ९ ॥ व हे नृपोत्तम ! कराटवाडीआ ग्राम में ब्राह्मण कुश गोत्र में उत्पन्न हैं उसका प्रवर मैं कहता हूं तुम

सुनो ॥९० ॥ कि विश्वामित्र, देवरात व उदल ये तीन प्रवर कहेगये हैं व हे नृपोत्तम ! वह चचाई देवी कहां गई तुम सुनो ॥ ९१ ॥ और वहां प्रसन्न चित्त व सावधान मनवाले वे यज्ञों से पूजते हैं और वे ब्राह्मण सब विद्याओं में प्रवीण तथा सत्यवादी होते हैं ॥ ९२ ॥ यह दशवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १० ॥ और मैंने जो वेखलोया ग्राम कहा है उसमें कुशवंश में उपजेहुए ब्राह्मण बसते हैं व हे नृपोत्तम ! वे तीन प्रवरों से संयुत होते हैं उनको सुनो ॥ ९३ ॥ कि विश्वामित्र, देवराज और औदल ये तीन प्रवर कहे गये हैं और उनके कुल की रक्षा करनेवाली चचाई देवी कहीगई है ॥ ९४ ॥ और ब्राह्मण महात्मा, सत्त्ववान् व गुण से संयुत होते हैं और तपस्वी,

त्तम ॥ ९० ॥ विश्वामित्रो देवरात उदलश्च त्रयः स्मृताः ॥ चचाई देवी सा प्रोक्ता शृणु त्वं नृप सत्तम ॥ ९१ ॥ यजन्ते क्रतुभिस्तत्र हृष्टचित्तैकमानसाः ॥ सर्वविद्यासु कुशला ब्राह्मणाः सत्यवादिनः ॥९२॥ इति दशमं स्थानम् ॥ १० ॥ वेखलोया मया प्रोक्ता कुत्सवंशे समुद्भवाः ॥ प्रवरत्रयसंयुक्ताः शृणु त्वं च नृपोत्तम ॥ ९३ ॥ विश्वामित्रो देवराजौदलश्चेति त्रयः स्मृताः ॥ चचाई देवी तेषां वै कुलरक्षाकरी स्मृता ॥ ९४ ॥ ब्राह्मणाश्च महात्मानः सत्त्ववन्तो गुणान्विताः ॥ तपस्वियोगिनश्चैव वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ९५ ॥ साधवश्च सदाचारा विष्णुभक्तिपरायणाः ॥ स्नानसन्ध्यापरा नित्यं ब्रह्मभोज्यपरायणाः ॥ ९६ ॥ अस्मिन्वंशे मया प्रोक्ताः शृणु त्वं च अतः परम् ॥ ९७॥ इत्येकादशं स्थानम् ॥११॥ देहलोडीआ ये प्रोक्ताः कुत्सप्रवरसंयुताः ॥ आङ्गिरस आम्बरीषो युवनाश्वस्तृतीयकः ॥ ९८ ॥ गोत्रदेवी मया प्रोक्ता श्रीशेषदुर्बलेति च ॥ कुत्सवंशे च ये जाताः सद्वृत्ताः सत्यभाषिणः ॥ ९९ ॥ वेदाध्ययनशीलाश्च परच्छिद्रैकद

योगी व वेदों और वेदांगोंके पारगामी होते हैं ॥ ९५ ॥ और साधु व उत्तम आचार वाले तथा विष्णुजी की भक्ति में परायण होते हैं और स्नान व संध्या में तत्पर तथा नित्य ब्रह्मभोज में परायण होते हैं ॥ ९६ ॥ इस वंश में जो उत्पन्न हैं वे मुझसे कहे गये व इसके उपरान्त तुम सुनो ॥ ९७ ॥ यह गेरहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ११ ॥ और देहलोडीआ ग्राम में जो ब्राह्मण कहेगये हैं वे कुत्स प्रवर से संयुत हैं और आंगिरस, आम्बरीष व तीसरा युवनाश्व प्रवर है ॥ ९८ ॥ व मैंने श्रीशेष दुर्बला ऐसी गोत्रदेवी कहा है और जो कुत्सवंश में उत्पन्न हैं वे उत्तम चरित्रवाले व सत्यवादी होते हैं ॥ ९९ ॥ और वेदपाठ से रहित व पराये छिद्र को देखनेवाले तथा क्रोधसहित

व चंचलता से रहित और द्वेषी व कुटिल होते हैं ॥ १०० ॥ व जो कुत्सवंश में उत्पन्न हैं वे हिंसक और धन के लोभी होते हैं ॥ १ ॥ यह बारहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १२ ॥ और कोह ग्राम में तीन गोत्रों से संयुत ब्राह्मण कहेगये हैं भारद्वाज, वत्स व तीसरा कुश है ॥ २ ॥ और गोत्र के क्रम से मैं प्रवरों को कहता हूं कि भार्गव,च्यवन,आप्नवान्,और्व व जमदग्नि हैं ॥ ३ ॥ और तीसरा कुश प्रवर है व उसमें तीन प्रवर हैं विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल है ॥ ४ ॥ और पहली यक्षिणी व दूसरी शीहुरी देवी कहीगई है और क्रमपूर्वक गोत्र में उत्पन्न तीसरी चचाईदेवी है ॥ ५ ॥ व इस गोत्र में उत्पन्न ब्राह्मण श्रौतस्मार्त कर्मों में परायण व विद्वान् होते हैं और

शिनः ॥ सामर्षा लौल्यतो हीना द्वेषिणः कुटिलास्तथा ॥ १०० ॥ हिंसिनो धनलुब्धाश्च ये च कुत्ससमुद्भवाः ॥ १ ॥ इति द्वादशं स्थानम् ॥ १२ ॥ कोहे च ब्राह्मणाः प्रोक्ता गोत्र त्रितयसंयुताः ॥ भारद्वाजस्तथा वत्सस्तृतीयः कुश एव च ॥ २ ॥ प्रवराण्यहं तथा वक्ष्ये यथा गोत्रक्रमेण हि ॥ भार्गवच्यवनाप्नवानौर्वजमदग्निस्तथैव च ॥ ३ ॥ कुशप्रवरं तृतीयं तु प्रवरत्रयमेव च ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दलमेव च ॥ ४ ॥ यक्षिणी प्रथमा प्रोक्ता द्वितीया शीहुरी तथा ॥ तृतीया चचाई प्रोक्ता यथानुक्रमगोत्रजा ॥ ५ ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः श्रौतस्मार्त्तरता बुधाः ॥ वेदाध्ययनशीलाश्च तापसाश्चारिमर्द्दनाः ॥ ६ ॥ रोषिणो लोभिनो दुष्टा यजने याजने रताः ॥ ब्रह्मकर्मपराः सर्वे मया प्रोक्ता द्विजोत्तमाः ॥ ७ ॥ इति त्रयोदशं स्थानम् ॥ १३ ॥ चान्दणखेडे ये जाता भारद्वाजसमुद्भवाः ॥ आङ्गिरसो बार्हस्पत्यस्तृतीयो भारद्वाजस्तथा ॥ ८ ॥ यक्षिणी चास्य वै देवी प्रोक्ता व्यासेन धीमता ॥ भारद्वाजास्तु ये जाता द्विजा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥ ९ ॥ शान्ता दान्ताः सुशीलाश्च धनपुत्रसमन्विताः ॥ धर्मारण्ये द्विजाः श्रेष्ठाः क्रतुकर्मणि को

वेदपाठ करनेवाले व तपस्वी और शत्रुमर्दक होते हैं ॥ ६ ॥ और क्रोधी, लोभी,दुष्ट व यज्ञ करने और यज्ञ कराने में परायण हैं व मैंने सब द्विजोत्तमों को ब्रह्मकर्म में परायण कहा है ॥ ७ ॥ यह तेरहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १३ ॥ और चांदड़खेड़ में जो उत्पन्न हैं वे भारद्वाज से उत्पन्न हैं और आंगिरस,बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज प्रवर है ॥ ८ ॥ और बुद्धिमान् व्यासजी ने इस गोत्र की यक्षिणी देवी कहा है और भारद्वाज गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण ब्रह्मस्वरूपी हैं ॥ ९ ॥ और शांत, दांत, सुशील व धन

विदाः॥ १०॥ गुरुभक्तिरताः सर्वे भासयन्ति स्वकं कुलम् ॥ ११ ॥ इति चतुर्दशं स्थानम् ॥ १४॥ थलग्रामे च ये जाता भारद्वाजसमुद्भवाः ॥ आङ्गिरसो बार्हस्पत्यो भारद्वाजस्तृतीयकः ॥ १२ ॥ अस्मिन् गोत्रे च ये जाता वाडवा धनिनः शुभाः॥ वस्त्रालङ्करणोपेता द्विजभक्तिपरायणाः॥१३॥ ब्रह्मभोज्यपराः सर्वे सर्वे धर्मपरायणाः ॥ गोत्रदेवी मया ख्याता यक्षिणी नाम रक्षिणी ॥ १४॥ इति पञ्चदशं स्थानम् ॥१५॥मोऊत्रीयाश्च ये जाता द्वौ गोत्रौ तत्र कीर्तितौ ॥ भारद्वाजः कश्यपश्च देवीद्वितयमेव च ॥ १५ ॥ चामुण्डा यक्षिणीचैव देवी चात्र प्रकीर्त्तिता ॥ कश्यपाऽवत्सारश्चैव नैध्रुवश्च तृतीयकः ॥ १६ ॥ आङ्गिरसो बार्हस्पत्यो भारद्वाजस्तृतीयकः ॥ प्रियवाक्या महादक्षा गुरुभक्ति रताः सदा ॥ १७ ॥ सदा प्रतिष्ठावन्तश्च सर्वभूतहिते रताः ॥ यजन्ति ते महायज्ञान्काश्यपा ये द्विजातयः ॥ १८ ॥ सर्वेषां याजनकरा याज्ञिकाः परमाः स्मृताः॥१९॥इति षोडशं स्थानम् ॥१६॥ हाथीजणे च ये जाता वात्सा भारद्वाजास्तथा॥ज्ञानजा यक्षि

और पुत्रों से संयुत होते हैं और धर्मारण्य में श्रेष्ठ ब्राह्मण यज्ञ कर्म में परायण हैं ॥ १० ॥ और गुरुवों की भक्ति में परायण सब अपने कुलको प्रकाशित करते हैं ॥ ११ ॥ यह चौदहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १४ ॥ और थल ग्राम में जो उत्पन्न हैं वे भारद्वाज से उत्पन्न हैं और आंगिरस, बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज प्रवर हैं ॥ १२ ॥ और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण उत्तम व धनी होते हैं और वस्त्रों व भूषणों से संयुत तथा ब्राह्मणों की भक्ति में परायण होते हैं॥ १३ ॥ और सब ब्रह्म भोज में परायण व सब धर्म में तत्पर होते हैं और गोत्र की देवी यक्षिणी नामक रक्षा करनेवाली मुझसे कहीगई ॥ १४ ॥ यह पंद्रहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

और जो मोऊत्रीया ग्राममें उत्पन्न हैं उनमें दो गोत्र कहे गये हैं भारद्वाज व कश्यप और दो देवी हैं ॥ १५ ॥ चामुण्डा और यक्षिणी ये दो देवी इसमें कहीगई हैं और कश्यप अवत्सार व तीसरा नैध्रुव प्रवर है ॥ १६ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज है और वे सब प्रियवचनवाले व बडे प्रवीण तथा सदैव गुरुवों की भक्ति में परायण होते हैं ॥ १७ ॥ और सदैव प्रतिष्ठावाले व सब प्राणियों के हित में परायण होते हैं और जो कश्यपगोत्रवाले ब्राह्मण हैं वे महायज्ञों को करते हैं ॥ १८ ॥ और वे सबों को यज्ञ करानेवाले व उत्तम यज्ञकर्ता कहे गये हैं ॥ १९ ॥ यह सोलहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १६ ॥ और जो हाथी जड ग्राम में उत्पन्न हैं वे वात्स व भार

द्वाजगोत्रवाले हैं और ज्ञानजा व यक्षिणी गोत्र देवी कही गई हैं॥ २० ॥ और जो इस गोत्र में उत्पन्न हैं वे सदैव पञ्चयज्ञों में परायण होते हैं व लोभी, क्रोधी और पुत्रवान् व बहुत शास्त्रों को पढ़नेवाले होतेहैं ॥ २१ ॥ और स्नान, दानादि में तत्पर व विष्णुजी की भक्ति में परायण होते हैं और व्रत करनेवाले तथा गुण व ज्ञान से मूर्ख और वेदों से रहित होते हैं ॥ २२ ॥ यह सत्रहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १७ ॥ और कपड्वाण ग्राम में उत्पन्न ब्राह्मण भारद्वाज व कुशगोत्रवाले हैं और यक्षिणी व दूसरी चचाईदेवी कही गई है ॥ २३ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज गोत्र है और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल प्रवर है ॥ २४ ॥ और इस

णी चैव गोत्रदेव्यौ प्रकीर्तिते ॥ २० ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाताः पञ्चयज्ञरताः सदा ॥ लोभिनः क्रोधिनश्चैव प्रजाव
न्तो बहुश्रुताः ॥ २१ ॥ स्नानदानादिनिरता विष्णुभक्तिपरायणाः ॥ व्रतशीला गुणज्ञानमूर्खा वेदविवर्जिताः ॥ २२ ॥
इति सप्तदशं स्थानम् ॥ १७ ॥ कपड्वाणजा ब्राह्मणास्तु भारद्वाजाः कुशास्तथा ॥ देवी च यक्षिणी प्रोक्ता द्वितीया च
चाई तथा ॥ २३ ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यौ भारद्वाजस्तृतीयकः ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दल एव च ॥ २४ ॥ अस्मि
न्गोत्रे च ये जाताः सत्यवादिजितव्रताः ॥ जितेन्द्रियाः सुरूपाश्च अल्पाहाराः शुभाननाः ॥ २५ ॥ सदोद्यताः पुराणज्ञा
महादानपरायणाः ॥ निर्द्वेषिणो लोभयुता वेदाध्ययनतत्पराः ॥ २६ ॥ दीर्घदर्शिनो महातेजा महामाया विमोहि
ताः ॥ २७ ॥ इत्यष्टादशं स्थानम् ॥ १८ ॥ जन्होरीवाडवाः प्रोक्ताः कुशप्रवरसंयुताः ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयोदल
एव च ॥ २८ ॥ तारणी च महामाया गोत्रदेवी प्रकीर्त्तिता ॥ अस्मिन्वंशे समुत्पन्ना वाडवा दुःसहा नृप ॥ २९ ॥ महो

गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे सत्यवादी व व्रतों को जीतनेवाले तथा जितेन्द्रिय व स्वरूप वान् और थोड़ा भोजन करनेवाले व उत्तम मुखवाले होते हैं ॥ २५ ॥ और सदैव उद्यत व पुराणों को जाननेवाले तथा महादानों में परायण और वैररहित, लोभ संयुत व वेदपाठ में परायण रहते हैं ॥ २६ ॥ और बड़े तेजस्वी व महामाया से मोहित होते हैं ॥ २७ ॥ यह अट्ठारहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १८ ॥ और जन्होरी ग्राम के ब्राह्मण कुश के प्रवर से संयुत होते हैं और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल प्रवर है ॥ २८ ॥ और तारणी महादेवी गोत्रदेवी कही गई है व हे राजन् ! इस वंश में उपजे हुए ब्राह्मण दुस्सह होते हैं ॥ २९ ॥ और बड़े उग्र व बड़े शरीर

वाले तथा लम्बे व बड़े गर्वित होते हैं और क्लेशरूप व काले रंग वाले तथा सब शास्त्रों में चतुर होते हैं ॥ ३० ॥ और बहुत भोजन करनेवाले तथा प्रवीण व वैर और पाप से रहित व उत्तम वस्त्र और भूषण व रूपवाले व ब्रह्मवादी ब्राह्मण होते हैं ॥ ३१ ॥ यह उन्नीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १९ ॥ और वनोडीया ग्राम में जो ब्राह्मण उत्पन्नहैं उनके तीन गोत्र हैं कुश व कुत्सप्रवर और तीसरा भारद्वाज है ॥ ३२ ॥ और विश्वामित्र,देवरात व तीसरा औदल है और आंगिरस, आम्बरीष व तीसरा युवनाश्वहै ॥ ३३ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य व भारद्वाज हैं और पहली देवी शेषला व दूसरी शांता कही गई है ॥ ३४ ॥ और तीसरी धारशांति है ये क्रम से गोत्रदेवियां

त्कटा महाकायाः प्रलम्बाश्च महोद्धताः ॥ क्लेशरूपाः कृष्णवर्णाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ ३० ॥ बहुभुग्धनिनो दक्षा द्वेषपापविवर्जिताः ॥ सुवस्त्रभूषा वै रूपा ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ ३१ ॥ इत्येकोनविंशतितमं स्थानम् ॥ १९ ॥ वनोडीयाश्च ये जाता गोत्राणां त्रयमेव च ॥ कुशकुत्सौ च प्रवरौ तृतीयो भारद्वाजस्तथा ॥ ३२ ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदल एव च ॥ आङ्गिरस आम्बरीषो युवनाश्वस्तृतीयकः ॥ ३३ ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च ॥ शेषला प्रथमा प्रोक्ता तथा शान्ता द्वितीयका ॥ ३४ ॥ तृतीया धारशान्तिश्च गोत्रदेव्यो ह्यनुक्रमात् ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ ३५ ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ॥ सर्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ॥ ३६ ॥ इति विंशतितमं स्थानम् ॥ २० ॥ कीणावाचनकं स्थानं यदेकाधिकविंशतिः ॥ भारद्वाजाश्च विप्रेन्द्राः कथिता ब्राह्मणाः शुभाः ॥ ३७ ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च ॥ यक्षिणी च तथा देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता वाडवा धनिनः शुभाः ॥ वस्त्रालंकरणोपेता द्विजभक्ति

हैं व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे दुर्बल व दीनमनवाले होते हैं ॥ ३५ ॥ व हे नृपोत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी होते हैं और वे ब्राह्मण सब विद्याओं में प्रवीण व ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ होते हैं ॥ ३६ ॥ यह बीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २० ॥ और कीणावाचनक नामक जो इक्कीसवां स्थान है उसमें भारद्वाज गोत्रवाले उत्तम द्विजेन्द्र द्विज कहे गये हैं ॥ ३७ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य व भारद्वाज प्रवर हैं व यक्षिणीदेवी गोत्रदेवी कहीगई है ॥ ३८ ॥ व इस गोत्रमें जो ब्राह्मण उत्पन्न हैं

वे धनी व उत्तम होते हैं और वस्त्रों व भूषणों से संयुत तथा ब्राह्मणों की भक्ति में परायण होते हैं ॥ ३९ ॥ और सब ब्रह्मभोज में परायण व सब धर्म में परायण होते हैं ॥ ४० ॥ यह इक्कीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २१ ॥ और गोविंदणा स्वस्थान में जो उत्पन्न हैं वे श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं और कुश गोत्र कहागया है व तीन प्रवर हैं ॥ ४१ ॥ विश्वामित्र, देवरात व औदल प्रवर है और चचाई महादेवी गोत्रदेवी कही गई है ॥ ४२ ॥ और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानी होते हैं और वहां प्रसन्न चित्त व सावधान मनवाले वे यज्ञों से पूजते हैं ॥ ४३ ॥ और वे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ व ब्रह्मण्य ब्राह्मण सब विद्याओं में चतुर होतेहैं ॥ ४४ ॥ यह बाईसवा स्थान

परायणाः ॥ ३९ ॥ ब्रह्मभोज्यपराः सर्वे सर्वे धर्म्मपरायणाः ॥ ४० ॥ इत्येकविंशतितमं स्थानम् ॥ २१ ॥ गोविन्दणा च स्वस्थाने ये जाता ब्रह्मसत्तमाः ॥ कुशगोत्रं च वै प्रोक्तं प्रवरत्रयमेव च ॥ ४१ ॥ विश्वामित्रो देवरातौदलप्रवरमेव च ॥ चचाई च महादेवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ ४२ ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता ब्राह्मणा ब्रह्मवेदिनः ॥ यजन्ते क्रतुभिस्तत्र हृष्टचित्तैकमानसाः ॥ ४३ ॥ सर्वविद्यासु कुशला ब्रह्मण्या ब्रह्मवित्तमाः ॥ ४४ ॥ इति द्वाविंशतितमं स्थानम् ॥ २२ ॥ थलत्यजा हि विप्रेन्द्रा द्वौ गोत्रौ चाप्यधिष्ठितौ ॥ धारणं संकुशं चैव गोत्रद्वितयमेव च ॥ ४५ ॥ अगस्त्यो दार्ढ्यच्युतश्च रथ्यवाहनमेव च ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदल एव च ॥ ४६ ॥ देवी च छत्रजा प्रोक्ता द्वितीया थलजा तथा ॥ धारणसगोत्रे ये जाता ब्रह्मण्या ब्रह्मवित्तमाः ॥ ४७ ॥ त्रिप्रवराश्चैव विख्याता सत्त्ववन्तो गुणान्विताः ॥ तदन्वये च ये जाता धर्मकर्म्मसमाश्रिताः ॥ ४८ ॥ धनिनो ज्ञाननिष्ठाश्च तपोयज्ञक्रियादिषु ॥ त्रयोविंशं प्रोक्तमेतत्स्थानं

समाप्त हुआ ॥ २२ ॥ और थलत्यजा ग्राम में जो द्विजेन्द्र हैं उनमें दो गोत्र स्थित हैं धारण और संकुश ये दो गोत्रहैं ॥ ४५ ॥ और अगस्त्य, दार्ढ्यच्युत व रथ्यवाहन और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल प्रवर है ॥ ४६ ॥ और छत्रजा देवी व दूसरी थलजा देवी है और जो धारणस गोत्र में उत्पन्न हैं वे ब्रह्मण्य व ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं ॥ ४७ ॥ और तीन प्रवरवाले वे सत्त्ववान् व गुणों से संयुत होते हैं और उसके वंश में जो उत्पन्न हैं वे धर्म व कर्म से आश्रित होतेहैं ॥ ४८ ॥ और धनी व

ज्ञान में तत्पर तथा तपस्या व यज्ञ कार्यादिकों में परायण होतेहैं मोढ ज्ञातिवालों का यह तेईसवां स्थान है ॥ ४९ ॥ यह तेईसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २३ ॥ और ज्ञानियों में श्रेष्ठ जो वारण सिद्ध ब्राह्मण कहे गये हैं व इस गोत्र में जो ब्राह्मण हैं वे सत्यवादी व व्रतों को जीतनेवाले हैं ॥ ५० ॥ और जितेन्द्रिय व स्वरूपवान् तथा थोड़े भोजन व उत्तम मुखवाले हैं और सदैव उद्यत व पुराणोंको जाननेवाले तथा महादानों में परायण हैं ॥ ५१ ॥ और निश्शत्रु व भिन्नलोभसे संयुत तथा वेदपाठ में तत्पर होते हैं और विद्वान् व बड़े तेजस्वी तथा महामायासे मोहित होतेहैं ॥ ५२ ॥ यह चौबीसवां स्वस्थान कहागया जोकि श्रेष्ठ माना गया है ॥ ५३ ॥ यह चौबीसवां

मोढकजातिनाम् ॥ ४९ ॥ इति त्रयोविंशतितमं स्थानम् ॥ २३ ॥ वारणसिद्धाश्च ये प्रोक्ता ब्राह्मणा ज्ञानवित्तमाः ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये विप्राः सत्यवादिजितव्रताः ॥ ५० ॥ जितेन्द्रियाः सुरूपाश्च अल्पाहाराः शुभाननाः ॥ सदोद्यताः पुराणज्ञा महादानपरायणाः ॥ ५१ ॥ निर्द्वेषिणोऽलोभयुता वेदाध्ययनतत्पराः ॥ दीर्घदर्शिनो महातेजा महामायाविमोहिताः ॥ ५२ ॥ चतुर्विंशतितमं प्रोक्तं स्वस्थानं परमं मतम् ॥ ५३ ॥ इति चतुर्विंशतितमं स्थानम् ॥ २४ ॥ भालजाश्चात्र वै प्रोक्ता ब्राह्मणाः सत्यवादिनः ॥ ५४ ॥ वत्सगोत्रं कुशं चैव गोत्रद्वितयमेव च ॥ तेषां प्रवराण्यहं वक्ष्ये पञ्चत्रितयमेव च ॥ भृगुश्च्यवनाप्नवानौर्वजमदग्निस्तथैव च ॥ ५५ ॥ आङ्गिरसोम्बरीषश्च यौवनाश्वस्तृतीयकः ॥ शान्ता च शेषला चात्र देवीद्वितयमेव च ॥ ५६ ॥ अस्मिन्वंशे समुत्पन्ना सद्वृत्ताः सत्यभाषिणः ॥ शान्ताश्च भिन्नवर्णाश्च निर्धनाश्च कुचैलिनः ॥ ५७ ॥ सगर्वा लौल्य युक्ताश्च वेदशास्त्रेषु निश्चलाः ॥ पञ्चविंशतिमं प्रोक्तं

स्थान समाप्त हुआ ॥ २४ ॥ और यहां भालज व सत्यवादी ब्राह्मण कहेगयेहैं ॥ ५४ ॥ और वत्स गोत्र व कुश ये दो गोत्र कहे गये हैं उनके पांच व तीन प्रवरों को मैं कहता हूं कि भृगु, च्यवन, आप्नवान, और्व व जमदग्नि ॥ ५५ ॥ और आंगिरस, अम्बरीष व तीसरा युवनाश्व है और इसमें शांता व शेषला दो देवी हैं ॥ ५६ ॥ और इस वंश में उपजे हुए ब्राह्मण उत्तमचरित्रवाले व सत्यवादी होते हैं और शांत व भिन्न रंगवाले तथा निर्धनी व मलिनवस्त्रोंवाले होते हैं ॥ ५७ ॥ और अहंकार

समेत व चंचलतायुक्त तथा वेद व शास्त्रों में निश्चल होते हैं यह मोढ जातिवालों का पच्चीसवां स्वस्थान कहागयाहै ॥ ५८ ॥ यह पच्चीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २५॥ और महोवीश्रा ग्राम में जो ब्राह्मण हैं वे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ होते हैं और कुश सञ्ज्ञक एकही पवित्रगोत्र है ॥ ५९ ॥ और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल प्रवर है इसमें रक्षारूप चचाई देवी स्थित है ॥ ६० ॥ व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे सत्यवादी व जितेन्द्रिय होते हैं और सत्यव्रत, स्वरूपवान् व थोड़े भोजन तथा उत्तम ले होते हैं ॥ ६१ ॥ और दयालु, सुशील व सब प्राणियों के हित में परायण होते हैं यह ब्रह्मवादियों का छब्बीसवां स्वस्थान कहा गया ॥ ६२ ॥ जोकि छोटे

थानं मोढज्ञातिनाम्॥५८॥ इति पञ्चविंशतितमं स्थानम्॥ २५॥ महोवीश्राश्च ये सन्ति ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः॥
व च वै गोत्रं कुशसंज्ञं पवित्रकम्॥ ५९ ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदल एव च ॥ देवी चचाई चैवात्र रक्षा
॥ ६० ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाताः सत्यवादिजितेन्द्रियाः॥ सत्यव्रताः सुरूपाश्च अल्पाहाराः शु
१ ॥ दयालवः सुशीलाश्च सर्वभूतहिते रताः॥ षड्विंशतितमं प्रोक्तं स्वस्थानं ब्रह्मवादिनाम्॥६२॥ रामेण
व सानुजेन तथैव च ॥ ६३ ॥ इति षड्विंशतितमं स्थानम्॥ २६ ॥ तियाश्रीयामथो वक्ष्ये स्वस्थानं स
अस्मिन्स्थाने च ये जाता ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ ६४ ॥ शाण्डिल्यगोत्रं चैवात्र कथितं वेदसत्तमैः ॥
प्रोक्तं ज्ञानजा चात्र देवता ॥ ६५ ॥ काश्यपावत्सारश्चैव शाण्डिलोसित एव च ॥ पञ्चमो देवलश्चैव
क्रमात्॥ज्ञानजा च तथा देवी कथिता स्थानदेवता॥६६॥ अस्मिन्वंशे च ये जातास्ते द्विजाः सूर्यवर्चसः॥

जी से स्तुति किये गये हैं ॥ ६३ ॥ यह छब्बीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त तियाश्री में सत्ताईसवें स्वस्थान को कहता हूं हैं वे ब्राह्मण वेदों के पारगामी होतेहैं ॥ ६४ ॥ और इस में श्रेष्ठ ज्ञानियों ने शांडिल्य गोत्र कहा है और इसमें पांच प्रवर व ज्ञानजा देवता प, अवत्सार, शाडिल, असित व पांचवां देवल ये क्रमसे प्रवर कहे गये हैं और ज्ञानजा देवी स्थानदेवता कही गई है ॥ ६६ ॥ व इस वंशमें

महा ॥ ८५ ॥ और यहा व९

जो उत्पन्न हुए हैं वे ब्राह्मण सूर्य के समान तेजस्वी हैं और धर्मारण्य में टिके हुए वे सब चन्द्रमा के समान शीतल हैं ॥ ६७ ॥ व हे महाराज! उत्तम आचारवाले तथा वेदों व शास्त्रों में परायण हैं और यज्ञ करनेवाले तथा उत्तम आचार व सत्य तथा शुद्धता में परायण हैं ॥ ६८ ॥ और धर्मज्ञ व दान करनेवाले तथा निर्मल व गर्व से उत्कंठित हैं और तपस्या व निज वेद पाठ में परायण और न्याय धर्म में लगे हुए हैं उत्तम ब्रह्मज्ञानियों ने यह सत्ताईसवां स्थान कहा है ॥ ६९ ॥ यह सत्ताईसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २७ ॥ और गोधरीय ग्राम मे जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण ज्ञान में श्रेष्ठ होते हैं इसके उपरान्त क्रम से मैं तीन गोत्रों को कहता हूं ॥ ७० ॥ पहला धारणस

चन्द्रवच्छीतलाः सर्वे धर्मारण्ये व्यवस्थिताः ॥ ६७ ॥ सदाचारा महाराज वेदशास्त्रपरायणाः ॥ याज्ञिकाश्च शुभाचाराः सत्यशौचपरायणाः ॥ ६८ ॥ धर्मज्ञा दानशीलाश्च निर्मला हि मदोत्सुकाः ॥ तपःस्वाध्यायनिरता न्यायधर्मपरायणाः ॥ सप्तविंशतिमं स्थानं कथितं ब्रह्मवित्तमैः ॥ ६९ ॥ इति सप्तविंशं स्थानम् ॥ २७ ॥ गोधरीयाश्च ये जाता ब्राह्मणा ज्ञानसत्तमाः ॥ गोत्रत्रयमथोवक्ष्ये यथा चैवाप्यनुक्रमात् ॥ ७० ॥ प्रथमं धारणसं चैव जातूकर्णं द्वितीयकम् ॥ तृतीयं कौशिकं चैव यथा चैवाप्यनुक्रमात् ॥ ७१ ॥ धारणसगोत्रे ये जाताः प्रवरैस्त्रिभिरन्विताः ॥ अगस्तिश्च दार्ढच्युत इध्मवाहनसंज्ञकः ॥७२॥ वसिष्ठश्च तथात्रेयो जातूकर्णस्तृतीयकः ॥ विश्वामित्रो मधुच्छन्दसस्तृतीयो ह्यघमर्षणः ॥७३॥ महाबला च मालेया द्वितीया चैव यक्षिणी॥तृतीया च महायोगी गोत्रदेव्यः प्रकीर्तिताः ॥७४॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता ब्राह्मणाः सत्यवादिनः ॥ अलौल्याश्च महायज्ञा वेदाज्ञाप्रतिपालकाः ॥ ७५ ॥ इत्यष्टाविंशं

दूसरा जातूकर्ण तीसरा कौशिक ये क्रम से हैं ॥ ७१ ॥ और जो धारणस गोत्र में उत्पन्न हैं वे तीन प्रवरों से संयुत होते है अगस्ति, दार्ढच्युत व इध्मवाहन संज्ञक ॥ ७२ ॥ और वसिष्ठ, आत्रेय व तीसरा जातूकर्ण है और विश्वामित्र, मधुच्छंदस व तीसरा अघमर्षण है ॥७३॥ और बड़ी बलवती मालेया व दूसरी यक्षिणी और तीसरी महायोगी ये गोत्रदेवियां कही गई हैं ॥ ७४ ॥ व इस वंश में जो ब्राह्मण उत्पन्न हैं व सत्यवादी होते है और चंचलताहीन व महायज्ञों को करनेवाले तथा वेदों की आज्ञा के पालक होते हैं ॥ ७५ ॥ यह अट्ठाईसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २८ ॥ और जो वाटस्त हाल में उत्पन्न हैं उनके तीन गोत्र है पहला धारण व दूसरा वत्स

संज्ञक जानने योग्य है ॥ ७६ ॥ और तीसरा कुत्ससंज्ञक है ये गोत्रदेवियां कही हैं और गोत्र देवियां हैं व पहला धारणस गोत्र व तीन प्रवर हैं ॥ ७७ ॥ व अगस्ति, दार्ढच्युत व इध्मवाहन और दूसरा वत्ससंज्ञक व पांच प्रवर हैं ॥ ७८ ॥ भृगु, च्यवन, आप्नवान्, और्व व जमदग्नि हैं और तीसरा कुत्ससंज्ञक व तीन प्रवर हैं ॥ ७९ ॥ आंगिरस, अम्बरीप व तीसरा यौवनाश्व है और देवी छत्रजा व दूसरी शेषला है ॥ ८० ॥ और तीसरी ज्ञानजा देवी हैं ये क्रम से गोत्र की देवियां हैं और इस गोत्र में जो ब्राह्मण हैं वे सत्यवादी व जितेन्द्रिय होते हैं ॥ ८१ ॥ और स्वरूपवान् व थोड़े भोजन वाले तथा महादानों में परायण होते हैं और बिन द्वेषी व लोभ से संयुत तथा वेद

स्थानम् ॥ २८ ॥ वाटस्रहाले ये जाता गोत्रत्रितयमेव च ॥ धारणं प्रथमं ज्ञेयं वत्ससंज्ञं द्वितीयकम् ॥ ७६ ॥ तृतीयं कुत्ससंज्ञं च गोत्रदेव्यस्तथैव च ॥ प्रथमं धारणसगोत्रं प्रवरत्रयमेव च ॥ ७७ ॥ अगस्तिदार्ढच्युतश्चैव इध्म वाहन एव च ॥ द्वितीयं वत्ससंज्ञं हि प्रवराणि च पञ्च वै ॥ ७८ ॥ भृगुच्यवनाप्रवानौर्वजमदग्निस्तथैव च ॥ तृतीयं कुत्ससंज्ञं हि प्रवरत्रयमेव च ॥ ७९ ॥ आङ्गिरसाम्बरीषौ च यौवनाश्वस्तृतीयकः ॥ देवी चच्छत्रजा चैव द्वितीया शेषला तथा ॥ ८० ॥ ज्ञानजा चैव देवी च गोत्रदेव्यो ह्यनुक्रमात् ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये विप्राः सत्यवादिजितेन्द्रियाः ॥ ८१ ॥ सुरूपाश्चाल्पाहाराश्च महादानपरायणः ॥ निर्द्वेषिणो लोभयुता वेदाध्ययनतत्पराः ॥ ८२ ॥ दीर्घदर्शिनो महातेजा महोत्काः सत्यवादिनः ॥ ८३ ॥ इत्येकोनत्रिंशं स्थानम् ॥ २९ ॥ माणजा च महास्थानं गोत्रद्वितयमेव च ॥ शाण्डिल्यश्च कुशश्चैव गोत्रद्वयमितीरितम् ॥ ८४ ॥ काश्यपोऽवत्सारश्च शाण्डिल्योऽसित एव च ॥ पञ्चमो देवलश्चैव एकगोत्रं प्रकीर्तितम् ॥ ८५ ॥ ज्ञानजा च तथा देवी कथिता चात्र सैव च ॥ द्वितीयं च कुशं गोत्रं प्रवरत्रयमेव च ॥ ८६ ॥ विश्वामित्रो

पाठ में तत्पर होते हैं ॥ ८२ ॥ और विद्वान् व बड़े तेजस्वी तथा बड़े उत्कंठित व सत्यवादी होते हैं ॥ ८३ ॥ यह उन्तीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २९ ॥ और माणजा महास्थान में दो गोत्र हैं शांडिल्य व कुश ये दो गोत्र कहे गये हैं ॥ ८४ ॥ और काश्यप, अवत्सार, शांडिल्य, असित व पांचवां देवल है और एक गोत्र कहा गया है ॥ ८५ ॥ और यहां वह ज्ञानजा देवी कही है व दूसरा कुश गोत्र है और तीन प्रवर हैं ॥ ८६ ॥ विश्वामित्र, देवराज व तीसरा औदल है और यहां ज्ञानदा देवी

कही गई है ॥ ८७ ॥ व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे दुर्बल तथा दीन मनवाले होते हैं व हे नृपसत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी होते हैं ॥ ८८ ॥ और वे श्रेष्ठ ब्राह्मण सब विद्याओं में चतुर होते हैं ॥ ८९ ॥ यह तीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ३० ॥ और साणदा नामक उत्तम स्थान बहुत पवित्र मानागया है और वहां टिके हुए ब्राह्मण पवित्रकारक कहे गये हैं ॥ ९० ॥ और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल कहा गया है और ज्ञानदा महादेवी गोत्र देवी कही गई है ॥ ९१ ॥ व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे दुर्बल व दीनमनवाले होते हैं व हे नृपश्रेष्ठ ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी होते हैं ॥ ९२ ॥ और सब विद्या में प्रवीण वे ब्राह्मण ब्रह्मज्ञा-

देवराजस्तृतीयौदलमेव च ॥ ज्ञानदा चात्र वै देवी द्वितीया संप्रकीर्तिता ॥ ८७ ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ॥ ८८ ॥ सर्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तमाः ॥ ८९ ॥ इति त्रिंशं स्थानम् ॥ ३० ॥ साणदा च परं स्थानं पवित्रं परमं मतम् ॥ कुशप्रवरजा विप्रास्तत्रस्थाः पावनाः स्मृताः ॥ ९० ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दल एव च ॥ ज्ञानदा च महादेवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ ९१ ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ॥ ९२ ॥ सर्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ॥ ९३ ॥ इत्येकत्रिंशं स्थानम् ॥ ३१ ॥ आनन्दीया च संस्थानं गोत्रद्वितयमेव च ॥ भारद्वाजं नाम चैकं शाण्डिल्यं च द्वितीयकम् ॥ ९४ ॥ आङ्गिरसो बार्हस्पत्यो भारद्वाजस्तृतीयकः ॥ चचाई चात्र या देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ ९५ ॥ काश्यपावत्सारश्च शाण्डिल्योऽसित एव च ॥ पञ्चमो देवलश्चैव प्रवराणि यथाक्रमम् ॥ ९६ ॥ ज्ञानजा च तथा देवी कथिता गोत्रदेवता ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता निर्लोभाः शुद्धमानसाः ॥ ९७ ॥ यदृच्छालाभसंतुष्टा ब्राह्मणा

नियों में श्रेष्ठ होते हैं ॥ ९३ ॥ यह इकतीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ३१ ॥ और आनन्दीया संस्थान में दो गोत्र हैं एक भारद्वाज नामक व दूसरा शांडिल्य है ॥ ९४ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज है और यहां जो गोत्रदेवी है वह चचाई कही गई है ॥ ९५ ॥ और काश्यप, अवत्सार, शांडिल्य, असित व पांचवां देवल है ये प्रवर क्रम से कहे गये हैं ॥ ९६ ॥ और ज्ञानजा देवी गोत्रदेवता कही गई है व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे निर्लोभ व शुद्धमनवाले होते हैं ॥ ९७ ॥ और

स्वच्छंद लाभ से संतोषवाले ब्राह्मण बड़े ब्रह्मज्ञानी होते हैं॥९८॥ यह बत्तीसवां स्थान समाप्त हुआ॥ ३२॥ और पाटडीआ नामक उत्तम पवित्र स्थान कहा गया है इस में तीन प्रवरों से संयुत कुश गोत्र है ॥९९॥ विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल है और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे वेद शास्त्रों में परायण होते हैं ॥ २००॥ और वे ब्राह्मण गर्व से उद्धत व न्यायमार्ग में प्रवृत्त होते हैं ॥ १॥ यह तेंतीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ३३॥ और टीकोलिया नामक उत्तमस्थान है उसमें कुशगोत्र है विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल है॥ २॥ व इसमें चचाई देवी गोत्रदेवी कही गई है और इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण श्रुतियों व स्मृतियों में परायण हैं॥ ३॥ और रोगी,

ब्रह्मवित्तमाः ॥ ९८ ॥ इति द्वात्रिंशं स्थानम् ॥ ३२ ॥ पाटडीया परं स्थानं पवित्रं परिकीर्तितम् ॥ कुशगोत्रं भवेदत्र प्रवरत्रयसंयुतम्॥९९॥विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदलमेव हि ॥अस्मिन्गोत्रे च ये जाता वेदशास्त्रपरायणाः॥२००॥ मदोद्धुराश्च ते विप्रा न्यायमार्गप्रवर्तकाः ॥ १॥ इति त्रयस्त्रिंशं स्थानम् ॥ ३३ ॥ टीकोलिया परं स्थानं कुशगोत्रं तथैव च ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदलमेव च॥ २॥चचाई चात्र वै देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः श्रुतिस्मृतिपरायणाः ॥ ३ ॥ रोगिणो लोभिनो दुष्टा यजने याजने रताः ॥ ब्रह्मक्रियापराः सर्वे मोढाः प्रोक्ता मयात्र वै ॥ ४ ॥ इति चतुस्त्रिंशं स्थानम् ॥ ३४ ॥ गमीधाणीयं परमं स्थानं प्रोक्तं वै पञ्चत्रिंशकम् ॥ गोत्रं धारणसं चैव देवी चात्र महाबला ॥ ५ ॥ अगस्तिदार्ढच्युतइध्मवाहनसंज्ञकाः ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता ब्राह्मणा ब्रह्मतत्पराः॥६॥ अलौल्याश्च महाप्राज्ञा वेदाज्ञाप्रतिपालकाः ॥७॥ इति पञ्चत्रिंशं स्थानम्॥३५॥ मात्रा च परमं स्थानं पवित्रं

लोभी, दुष्ट व यज्ञ करने और यज्ञ कराने में तत्पर होते हैं मैंने यहां वेद कर्म में परायण सब मोढा ब्राह्मणों को कहा ॥ ४॥ यह चौतीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ३४॥ पैंतीसवां गमीधाणीय नामक उत्तम स्थान कहा गया है इसमें धारणसगोत्र व महाबला गोत्रदेवी है ॥ ५॥ और अगस्ति दार्ढच्युत व इध्मवाहन संज्ञक प्रवर है और इस वंश में जो ब्राह्मण उत्पन्न हैं वे ब्रह्म में तत्पर होते हैं ॥ ६॥ और अचंचल व बड़े बुद्धिमान् तथा वेद की आज्ञा के प्रतिपालक होते हैं ॥ ७॥ यह पैंतीसवां स्थान

समाप्त हुआ ॥ ३५ ॥ और मात्रा नामक पवित्र व उत्तम सब देहधारियों का स्थान है इसमें पवित्र कुश गोत्र स्थित है ॥ ८॥ व विश्वामित्र, देवरात और तीसरा दल प्रवर है व इसमें ज्ञानदा महादेवी सब लोकों की एक रक्षा करनेवाली है ॥६॥ और इस वंश में उपजेहुए ब्राह्मण देवताओं में तत्पर होते हैं और वेद पठन व वषट्कारों समेत तथा वेदों व शास्त्रों के प्रवर्तक होते हैं ॥ १० ॥ यह छत्तीसवा स्थान समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥ और नातमोरा नामक उत्तम तथा पवित्र व शुभ स्थान मानागया है उसमें तीन प्रवरों से संयुत कुश गोत्र है ॥ ११ ॥ विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल प्रवर है और इसमें ज्ञानजादेवी गोत्रदेवी कहीगई है ॥ १२ ॥ और इस वंश में जो उत्पन्न हैं वे

सर्वदेहिनाम् ॥ कुशगोत्रं पवित्रं तु परमं चात्र धिष्ठितम् ॥ ८ ॥ विश्वामित्रो देवरातो दलश्चैव तृतीयकः ॥ ज्ञानदा च महादेवी सर्वलोकैकरक्षिणी ॥ ९ ॥ अस्मिन्वंशे समुद्भूता ब्राह्मणा देवतत्पराः ॥ सस्वाधायवषट्कारा वेदशास्त्रप्रवर्तकाः ॥१०॥ इति षट्त्रिंशं स्थानम् ॥ ३६ ॥ नातमोरापरं स्थानं पवित्रं परमं शुभम् ॥ कुशगोत्रं च तत्रास्ति प्रवरत्रयसंयुतम् ॥ ११ ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदलमेव च ॥ ज्ञानजा चात्र वै देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ १२ ॥ अस्मिन्वंशे भवा ये च ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ॥ धर्मज्ञाः सत्यवक्तारो व्रतदानपरायणाः ॥ १३ ॥ इति सप्तत्रिंशं स्थानम् ॥३७॥ बलोला च महास्थानं पवित्रं परमाद्भुतम् ॥ कुशगोत्रं समाख्यातं प्रवरत्रयमेव च ॥१४॥ पूर्वोक्तं प्रवरं चैव देवी चैवात्र मानदा ॥ वंशेऽस्मिन्परमाः प्रोक्ताः काजेशेन विनिर्मिताः ॥ १५ ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ॥ सर्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तमाः ॥१६॥ इत्यष्टत्रिंशं स्थानम् ॥ ३८ ॥ राज्यजा च महास्थानं लौगा

ब्राह्मण बड़े ब्रह्मज्ञानी होते हैं और धर्मज्ञ व सत्यवादी तथा व्रत व दानों में परायण होते हैं ॥१३॥ यह सैंतीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥३७॥ और बलोला नामक महास्थान बड़ा अद्भुत व पवित्र है और कुशगोत्र व तीन प्रवर कहेगये हैं ॥ १४॥ इसमें पहले कहा हुआ प्रवर व मानदादेवी है और इस वंश में ब्रह्मा, विष्णु व महेशजी से बनाये हुए ब्राह्मण श्रेष्ठ कहेगये हैं ॥ १५ ॥ व हे नृपोत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी होते हैं और सब विद्याओं में चतुर व श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी होते हैं ॥१६॥ यह अर्तीसवां स्थान

समाप्त हुआ ॥३८॥ और राज्यजा महास्थान में लौगाक्षा प्रवर है और काश्यप, अवत्सार, वाशिष्ठ ये तीन प्रवर हैं ॥ १७ ॥ और भद्रायोगिनी गोत्रदेवी कहीगई है व इस वंश में उपजेहुए ब्राह्मण वेदों में तत्पर होते हैं ॥ १८ ॥ और नित्य स्नान, नित्य होम व नित्य दान में परायण होते हैं और नित्य धर्म में तत्पर तथा नित्य नैमित्त कर्मों में परायण होते हैं ॥ १९ ॥ यह उन्तालीसवा स्थान समाप्त हुआ ॥ ३९ ॥ और रूपोला नामक उत्तम स्थान पवित्र व बड़ा पुण्यदायक है और इन तीनों गोत्रों में तीन देवियाँ हैं ॥ २० ॥ पहला कुत्स व वत्स नामक और तीसरा भारद्वाज है और आंगिरस, अम्बरीष व तीसरा यौवनाश्व है ॥ २१ ॥ भृगु, च्यवन, आप्नवान्, और्व व जम-

क्षाप्रवरं तथा॥ काश्यपावत्सारवाशिष्ठं प्रवरत्रयमेव च॥ १७॥ भद्रा च योगिनी चैव गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ अस्मिन्वंशे समुद्भूता ब्राह्मणा वेदतत्पराः ॥ १८ ॥ नित्यस्नाननित्यहोमनित्यदानपरायणाः ॥ नित्यधर्मरताश्चैव नित्यनैमित्त तत्पराः ॥ १९ ॥ इत्येकोनचत्वारिंशं स्थानम् ॥ ३९ ॥ रूपोला परमं स्थानं पवित्रमतिपुण्यदम् ॥ अस्मिन्गोत्रत्रये चैव देवीत्रितयमेव च ॥ २० ॥ प्रथमं कुत्सवत्साख्यौ भारद्वाजस्तृतीयकः ॥ आङ्गिरसोम्बरीषश्च यौवनाश्वस्तृतीयकः ॥ २१ ॥ भृगुच्यवनाप्नवानौर्वजमदग्निस्तथैव च ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजस्तथैव च ॥ २२ ॥ क्षेमला चैव वै देवी धारभट्टारिका तथा ॥ तृतीया क्षेमला प्रोक्ता गोत्रमाता ह्यनुक्रमात् ॥ २३ ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता पञ्चयज्ञरताः सदा ॥ लोभिनः क्रोधिनश्चैव प्रजायन्ते बहुप्रजाः ॥ २४ ॥ स्नानदानादिनिरताः सदा च विजितेन्द्रियाः ॥ वापीकूपतडागानां कर्त्तारश्च सहस्रशः ॥ २५ ॥ इति चत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४० ॥ बोधणी परमं स्थानं

दग्नि हैं और आंगिरस, बार्हस्पत्य व भारद्वाज हैं ॥ २२ ॥ और क्षेमला व धारभट्टारिकादेवी हैं और तीसरी क्षेमला है ये क्रम से गोत्रमाता हैं ॥ २३ ॥ व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे सदैव पञ्चयज्ञ में परायण होते हैं और लोभी, क्रोधी व बहुत पुत्रोंवाले होते हैं ॥ २४ ॥ व स्नान दानादिकों में परायण तथा सदैव जितेन्द्रिय होते हैं और हज़ारों बावली, कूप व तड़ागों के निर्माणकर्ता होते हैं ॥ २५ ॥ यह चालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४० ॥ और बोधणीनामक उत्तम स्थान पवित्र व पापनाशक

कहा गया है और कुश व कौशिक दो गोत्र कहेगये हैं ॥ २६ ॥ और पहला विश्वामित्र व दूसरा देवरात और तीसरा दल है व विश्वामित्र, अघमर्षण तथा कौशिक ऐसा प्रवर है ॥ २७ ॥ और पहली यक्षिणीदेवी व दूसरी तारणी है और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे दुर्बल व दीन मनवाले होते हैं ॥ २८ ॥ व हे नृपोत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी होते हैं और सब विद्याओं में प्रवीण वे ब्राह्मणश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी होते हैं ॥ २९ ॥ यह इकतालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४१ ॥ और छत्रोटा नामक उत्तम स्थान सब लोकों में एकही पूजित है और कुशगोत्र कहागया है व तीन प्रवर हैं ॥ ३० ॥ विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल है और इसमें चचाईदेवी गोत्रदेवी

पवित्रं पापनाशनम् ॥ कुशं च कौशिकं चैव गोत्रद्वितयमेव च ॥ २६ ॥ विश्वामित्रश्च प्रथमो देवरातो दलेति च ॥ विश्वामित्राघमर्षणकौशिकेति तथैव च ॥ २७ ॥ यक्षिणी प्रथमा चैव द्वितीया तारणी तथा ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ २८ ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ॥ सर्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्म सत्तमाः ॥ २९ ॥ इत्येकचत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४१ ॥ छत्रोटा च परं स्थानं सर्वलोकैकपूजितम् ॥ कुशगोत्रं समाख्यातं प्रवरत्रयमेव हि ॥ ३० ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दलमेव वै ॥ चचाई चात्र वै देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ ३१ ॥ अस्मिन्वंशे भवाश्चैव वेदशास्त्रपरायणाः ॥ महोदयाश्च ते विप्रा न्यायमार्गप्रवर्तकाः ॥ ३२ ॥ इति द्विचत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४२ ॥ खल एवात्र संस्थानं त्रयश्चत्वारिंशमेव हि ॥ वत्सगोत्रोद्भवा विप्राः कृषिकर्मप्रवर्तकाः ॥ ३३ ॥ गोत्रजा ज्ञानजा देवी प्रवराः पञ्च एव हि ॥ भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वजामदग्न्येति चैव हि ॥ ३४ ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः

ई है ॥ ३१ ॥ व इस वंश में उपजेहुए ब्राह्मण वेदों व शास्त्रों में परायण होते हैं और बड़े ऐश्वर्यवाले वे ब्राह्मण न्यायमार्ग के प्रवर्तक होते हैं ॥ ३२ ॥ यह बयासवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४२ ॥ और यहां तेंतालीसवां खलस्थान है व वत्सगोत्र में उपजे हुए ब्राह्मण खेती के कर्म में प्रवृत्त होते हैं ॥ ३३ ॥ और गोत्रजा ज्ञानजा देवी है व पांच प्रवर हैं भार्गव, च्यावन, आप्नवान्, और्व व जामदग्न्य प्रवर हैं ॥ ३४ ॥ और इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण श्रौत अग्नियों के सेवक होते हैं और

वेदपाठ करनेवाले व तपस्वी तथा शत्रुमर्दक होते हैं ॥ ३५ ॥ और क्रोधी, लोभी, प्रसन्न व यज्ञ करने और यज्ञ कराने में परायण होते हैं और सब प्राणियों के ऊपर दया करनेवाले व परोपकारी होते हैं ॥३६॥ यह तेंतालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥ और वासंतडी में ब्राह्मणों का कुशगोत्र कहागया है और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल प्रवर हैं ॥३७॥ और इसमें चचाईदेवी गोत्रदेवी कहीगई है और इस वंश में जो पूर्वोक्त ब्राह्मण उत्पन्न हैं वे ब्रह्म में तत्पर होते हैं ॥३८॥ और पराया उपकार करनेवाले व पराये चित्तके अनुवर्ती होते हैं और पराये द्रव्य से विमुख तथा पराये मार्ग के प्रवर्तक होते हैं ॥ ३९ ॥ यह चवालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त

श्रौताग्निसुनिषेवकाः ॥ वेदाध्ययनशीलाश्च तापसाश्चारिमर्दनाः ॥ ३५ ॥ रोषिणो लोभिनो हृष्टा यजने याजने रताः ॥ सर्वभूतदयाविष्टास्तथा परोपकारिणः ॥ ३६ ॥ इति त्रयश्चत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४३ ॥ वासंतड्यां च विप्राणां कुशगोत्रमुदाहृतम् ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदलमेव हि ॥ ३७ ॥ चचाई चात्र वै देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाताः पूर्वोक्ता ब्रह्मतत्पराः ॥ ३८ ॥ परोपकारिणश्चैव परचित्तानुवर्तिनः ॥ परस्वविमुखाश्चैव परमार्गप्रवर्त्तकाः ॥ ३९ ॥ इति चतुश्चत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४४ ॥ अतः परं च संस्थानं जाखासणमुदाहृतम् ॥ गोत्रं वै वात्स्यसंज्ञं तु गोत्रजा शीहुरी तथा ॥ प्रवराणि च पञ्चैव मया तव प्रकाशितम् ॥ ४० ॥ भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वपुरोधसः स्मृताः ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता वाडवाः सुखवासिनः ॥ विप्राः स्थूलाश्च ज्ञातारः सर्वकर्मरताश्च वै ॥ ४१ ॥ सर्वे धर्मैकविश्वासाः सर्वलोकैकपूजिताः ॥ वेदशास्त्रार्थनिपुणा यजने याजने रताः ॥ ४२ ॥ सदाचाराः सुरूपाश्च तुन्दिला दीर्घ

जाखासण स्थान कहागया है और वात्स्यसंज्ञकगोत्र है व शीहुरी गोत्रजादेवी है और पांचही प्रवरों को मैंने तुमसे प्रकाशित किया ॥ ४० ॥ भार्गव, च्यावन, आप्नवान्, और्व व पुरोधस कहेगये हैं और इस वंश में जो उत्पन्नहैं वे ब्राह्मण सुखवासी होते हैं और स्थूल व बुद्धिमान् ब्राह्मण सब कर्मों में परायण होते हैं ॥ ४१ ॥ और सब धर्महीं में केवल विश्वास करनेवाले तथा सब लोकों में एकही पूजित और वेदों व शास्त्रार्थों में निपुण और यज्ञ करने व यज्ञ कराने में तत्पर हैं ॥ ४२ ॥ और उत्तम

आचारवाले व स्वरूपवान् तथा तोंदवाले व विद्वान् होते हैं और यहां शीहुरीदेवी कुलदेवी कहीगई है ॥ ४३ ॥ यह पैंतालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४५ ॥ और छियालीसवां स्थान मोट ब्राह्मणों का प्रकाशित कियागया है जो कि गोतीआ नाम संज्ञक है और इसमें कुशगोत्र है ॥ ४४ ॥ और पहला विश्वामित्र व दूसरा देवरात और तीसरा औदल है ये तीन प्रवर हैं ॥ ४५ ॥ और यहां राक्षसों को नाशनेवाली यक्षिणीदेवी है और इस वंश में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण ब्रह्म में परायण होते हैं ॥ ४६ ॥ और उनकी बुद्धि धर्म में प्रवृत्त होती है व धर्मशास्त्रों में वे स्थित होते हैं ॥ ४७ ॥ यह छियालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४६ ॥ और सैंतालीसवां

दर्शिनः ॥ शीहुरी चात्र वै देवी कुलदेवी प्रकीर्तिता ॥ ४३ ॥ इति पञ्चचत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४५ ॥ षट्चत्वारिंशकं स्थानं मोटानां तु प्रकाशितम् ॥ गोतीआनामसंज्ञा तु कुशगोत्रमिहास्ति च ॥ ४४ ॥ विश्वामित्रं प्रथमं चैव द्वितीयं देवरातकम् ॥ तृतीयमौदलं चैव प्रवरत्रितयन्त्विदम् ॥ ४५ ॥ यक्षिणी चात्र वै देवी राक्षसानां प्रभञ्जनी ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता ब्राह्मणा ब्रह्मतत्पराः ॥ ४६ ॥ धर्मे मतिप्रवृत्ताश्च धर्मशास्त्रेषु निष्ठिताः ॥ ४७ ॥ इति षट्चत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४६ ॥ सप्तचत्वारिंशकं च संस्थानं परिकीर्तितम् ॥ वरलीयाख्यसंस्थानं पवित्रं परमं मतम् ॥ ४८ ॥ भारद्वाजं तथा गोत्रं प्रवराणि तथैव च ॥ यक्षिणी चात्र वै देवी कुलदेवी प्रकीर्तिता ॥ ४९ ॥ आङ्गिरसं बार्हस्पत्यं भारद्वाजं तृतीयकम् ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता ब्राह्मणा पूतमूर्तयः ॥ ५० ॥ येषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति पापिनो नराः ॥ ५१ ॥ इति सप्तचत्वारिंशकं स्थानम् ॥ ४७ ॥ दुधीयाख्यं परं स्थानं गोत्रद्वितयमेव च ॥ धारणसं तथा गोत्रमाङ्गिरसकमेव च ॥ ५२ ॥

स्थान कहागया है व वरलीयनामक स्थान वह बड़ा पवित्र मानागया है ॥ ४८ ॥ और भारद्वाज गोत्र व प्रवर हैं व इसमें यक्षिणीदेवी कुलदेवी कही गई है ॥ ४९ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज गोत्र है और इस वंश में जो ब्राह्मण उत्पन्न होते हैं वे पवित्रमूर्ति होते हैं ॥ ५० ॥ कि जिनके वचनरूपी जलही से पापी मनुष्य शुद्ध होजाते हैं ॥ ५१ ॥ यह सैंतालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४७ ॥ और दुधीयनामक जो उत्तम स्थान है उस में दो गोत्र हैं धारणस व आंगिरस है ॥ ५२ ॥

और अगस्ति, दार्ढ्यच्युत व इध्मवाहनसंज्ञक प्रवर है और छत्राई महादेवी हैं व दूसरा प्रवर सुनिये ॥ ५३ ॥ कि आंगिरस, अम्बरीष व तीसरा यौवनाश्व है और ज्ञानदा व शेषलादेवी सब प्राणियों को ज्ञान देनेवाली है ॥ ५४ ॥ व हे राजन् ! इस वंश में उपजेहुए ब्राह्मण दुस्सह होते हैं और मद से उग्र व बड़े शरीरवाले तथा छली व मद से उद्धृत होते हैं ।।५५॥ और क्लेशरूपी व कालेरंगवाले तथा समस्त शास्त्रों में चतुर होते हैं और बहुत खानेवाले व प्रवीण और द्वेष व पाप से रहित होते हैं॥५६॥ यह अर्तालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४८ ॥ और यहां प्रसिद्ध हासोल्लास स्वस्थान को मैं कहता हूं इसमें पांच गोत्रों से संयुक्त शांडिल्यगोत्र है ॥ ५७ ॥ भार्गव,

अगस्तिदार्ढच्युतइध्मवाहनसंज्ञकम् ॥ छत्राई च महादेवी द्वितीयं प्रवरं शृणु ॥५३॥ आङ्गिरसाम्बरीषौ च यौवनाश्वस्तृतीयकः॥ ज्ञानदा शेषला चैव ज्ञानदा सर्वदेहिनाम् ॥ ५४ ॥ अस्मिन्वंशे समुत्पन्ना वाडवा दुस्सहा नृप॥ मदोत्कटा महाकायाः प्रलम्भाश्च मदोद्धताः ॥ ५५ ॥ क्लेशरूपाः कृष्णवर्णाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ बहुभुग्धनिनो दक्षा द्वेषपापविवर्जिताः ॥ ५६ ॥ इत्यष्टाचत्वारिंशकं स्थानम् ॥ ४८ ॥ हासोल्लासं प्रवक्ष्यामि स्वस्थानं चात्र संश्रुतम् ॥ शाण्डिल्यगोत्रं चैवात्र प्रवरैः पञ्चभिर्युतम् ॥ ५७ ॥ भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वं वै जामदग्न्यकम् ॥ यक्षिणी चात्र वै देवी पवित्रा पापनाशिनी ॥ ५८ ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता ब्राह्मणाः स्थूलदेहिनः ॥ लम्बोदरा लम्बकर्णा लम्बहस्ता महाद्विजाः ॥ ५९ ॥ अरोगिणः सदा देव सत्यव्रतपरायणाः ॥ ६० ॥ इत्येकोनपञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥४९॥ वैहालाख्यं च संस्थानं पञ्चाशत्तममेव हि ॥ कुशगोत्रं तथा चैव देवी चात्र महाबला ॥ ६१ ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा

च्यावन, आप्नवान्, और्व व जामदग्न्य प्रवर हैं और इसमें पापनाशिनी व पवित्र यक्षिणीदेवी हैं ॥ ५८ ॥ और इस वंश में जो ब्राह्मण उत्पन्न हैं वे मोटे शरीरवाले होते हैं और वे महाब्राह्मण लम्बे पेट व लम्बे कान तथा लम्बे हाथोंवाले होते हैं॥ ५९ ॥ और वे सदैव अरोग व देवता और सत्य के व्रत में परायण होते हैं ॥६०॥ यह उंचासवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४९ ॥ और बैहाल नामक पचासवां स्थान है व इसमें कुशगोत्र और बड़ी महाबलादेवी है ॥६१ ॥ और इस वंश में उपजे हुए ब्राह्मण

दुष्ट व कुटिलगामी होते हैं और धनी व धर्म में परायण तथा वेदों व वेदांगों के पारगामी होते हैं॥ ६२ ॥ और सब दान व भोग में तत्पर तथा श्रौत कर्ममें बुद्धि को लगानेवाले होते हैं ॥ ६३ ॥ यह पचासवां स्थान समाप्त हुआ॥ ५० ॥ और असालानामक उत्तम स्थान दो प्रवरोंवाला है और क्रम से कुश व धारण दो प्रवर हैं ॥ ६४ ॥ और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा देवल प्रवर हैं और ज्ञानजादेवी गोत्रदेवी कहीगई है ॥ ६५ ॥ यह इक्यावनवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५१ ॥ और बावनवां नालोला नामक उत्तम स्थान है और एक वत्सगोत्र व दूसरा धारणस गोत्र है ॥ ६६ ॥ और पूर्वोक्त प्रवर हैं व पहलेही कहीहुई देवी हैं व इस वंश में जो उत्पन्न हैं वे बड़े पवित्र

विप्रा दुष्टाः कुटिलगामिनः ॥ धनिनो धर्मनिष्ठाश्च वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ६२ ॥ दानभोगरताः सर्वे श्रौते च कृतबुद्धयः ॥ ६३ ॥ इति पञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥ ५० ॥ असालापरमं स्थानं प्रवरद्वयमेव हि ॥ कुशं च धारणं चैव प्रवराणि क्रमेण तु ॥ ६४ ॥ विश्वामित्रो देवरातो देवलस्तु तृतीयकः ॥ ज्ञानजा च तथा देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥६५॥ इत्येकपञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥ ५१ ॥ नालोला परमं स्थानं द्विपञ्चाशत्तमं किल ॥ वत्सगोत्रं तथा ख्यातं द्वितीयं धारणसं तथा ॥ ६६ ॥ प्रवराश्चैव पूर्वोक्ता देव्युक्ता पूर्वमेव हि ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाताः पवित्राः परमा मताः ॥ ६७ ॥ बहुनोक्तेन किं विप्राः सर्व एवात्र सत्तमाः ॥ सर्वे शुद्धा महात्मनः सर्वे कुलपरम्पराः ॥ ६८ ॥ इति द्वापञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥ ५२ ॥ देहोलं परमं स्थानं ब्राह्मणानां परंतप ॥ कुशवंशोद्भवा विप्रास्तत्र जाता नृसत्तम ॥ पूर्वोक्तप्रवराण्येव देवी पूर्वोदिता मया ॥ ६९ ॥ तस्मिन्गोत्रे द्विजा जाताः पूर्वोक्तगुणशालिनः ॥ ७० ॥ इति त्रिपञ्चाशत्तमं स्था

मानेगये हैं ॥ ६७ ॥ बहुत कहने से क्या है यहां सबही ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं और सब शुद्ध व महात्मा तथा सब कुल की परंपरावाले होते हैं ॥ ६८ ॥ यह बावनवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५२ ॥ व हे परंतप ! ब्राह्मणों का देहोल नामक उत्तम स्थान है हे नृपसत्तम ! वहां कुश वंश में उपजे हुए ब्राह्मण हैं और पूर्वोक्त प्रवर हैं व मुझसे पहले कहीहुई देवी है ॥ ६९ ॥ और उस गोत्र में पैदा हुए ब्राह्मण पूर्वोक्त गुण से शोभित होते हैं ॥ ७० ॥ यह तिरपनवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५३ ॥ और सोहासीयानामक

उत्तम स्थान तीन गोत्रोंवाला है और भारद्वाज व वत्सगोत्र कहागया है ॥ ७१ ॥ और ज्ञानजा व सिहोली यक्षिणी क्रमसे है हे नृपोत्तम ? इस वंश की परीक्षा पहले कहीगई है ॥ ७२ ॥ यह चौवनवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५४ ॥ इस समय मैं तुम से पचपनवें स्थान को कहता हूं कि पुरातन समय श्रीरामजीने संहालियानामक स्थान को दिया है ॥ ७३ ॥ उसमें कुत्स गोत्र में स्थित ब्राह्मण हैं और वे सदैव अपने धर्म में परायण व अपने कर्म में तत्पर होते हैं ॥ ७४ ॥ और आंगिरस, अम्बरीष व इसके उपरान्त यौवनाश्व प्रवर है और इसमें शांतिकर्म में शांति को देनेवाली शांता देवी है ॥ ७५ ॥ यह पचपनवा स्थान समाप्त हुआ ॥ ५५ ॥ हे परंतप ! मैंने यहां इस

नम् ॥ ५३ ॥ सोहासीयापुरं स्थानं गोत्रत्रितयमेव हि ॥ भारद्वाजस्तथा ख्यातं गोत्रं वत्सं तथैव च ॥ ७१ ॥ यक्षिणी ज्ञानजा चैव सिहोली च यथाक्रमम् ॥ एतद्वंशपरीक्षा च पूर्वोक्ता नृपसत्तम ॥ ७२ ॥ इति चतुःपञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥ ५४ ॥ पञ्चपञ्चाशकं स्थानं प्रवक्ष्यामि तवाधुना ॥ नाम्ना संहालियास्थानं दत्तं रामेण वै पुरा ॥ ७३ ॥ तत्र वै कुत्सगोत्रस्था ब्राह्मणा ब्रह्मवर्चसः ॥ स्वधर्मनिरता नित्यं स्वकर्म्मनिरताश्च ते ॥ ७४ ॥ आङ्गिरसाम्बरीषे च यौवनाश्वमतः परम् ॥ शान्ता चैवात्र वै देवी शान्तिकर्म्मणि शान्तिदा ॥ ७५ ॥ इति पञ्चपञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥ ५५ ॥ एवं मया ते गोत्राणि स्थानान्यपि तथैव च ॥ प्रवराणि तथैवात्र ब्राह्मणानां परंतप ॥ ७६ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि त्रैविद्यानां परंतप ॥ स्वस्थानं हि मया प्रोक्तं यथाचानुक्रमेण तु ॥ ७७ ॥ शीलायाः प्रथमं स्थानं मण्डोरा च द्वितीयकम् ॥ एवडी च तृतीयं हि गुन्दराणा चतुर्थकम् ॥ ७८ ॥ पञ्चमं कल्याणीया देगामा षष्ठकं तथा ॥ नायकपुरा सप्तमं च डलीआ चाष्टमं तथा ॥ ७९ ॥ कडोव्या नवमं चैव कोहाटोया दशमं तथा ॥ हरडीयैकादशं चैव भदुकीया द्वादशं तथा ॥ ८० ॥

प्रकार तुमसे ब्राह्मणों के गोत्र, स्थान व प्रवरों को कहा ॥ ७६ ॥ व हे परन्तप ! इसके उपरान्त त्रैविद्यों के स्थानों को कहूंगा और क्रम से मैंने स्वस्थान को कहा ॥ ७७ ॥ पहला शीला का स्थान है व दूसरा मंडोरा स्थान है और तीसरा एवडी व चौथा गुंदराणा स्थान है ॥ ७८ ॥ और पांचवां कल्याणीया व छठां देगामा स्थान है और सातवां नायकपुरा व आठवा डलीआ स्थान है ॥ ७९ ॥ और कडोव्या नवां स्थान है व दशवां कोहाटोया स्थान है और गेरहवां हरडीया व बारहवां भदुकीया स्थान है ॥ ८० ॥

और यहां संप्राणावा व कंदरावा स्थान कहागया है और तेरहवां वासरोवा व चौदहवां शरंडावा स्थान है ॥ ८१ ॥ और पंद्रहवां लोलासणा, सोलहवां वारोला स्थान है व मैंने यहा सत्रहवां नागलपुरा स्थान कहा है ॥ ८२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि जो चातुर्विद्य ब्राह्मण नहीं आये थे वे फिर आये और उस सुन्दर स्थान में उन्होंने निवास किया ॥ ८३ ॥ और चौबीस संख्यक वे श्रीरामजी के शासन (आज्ञा) की मिलने की इच्छा से हनुमान्जी के समीप गये और फिर लौट आये ॥ ८४ ॥ व उनके दोष से वे सब स्थान च्युति को प्राप्तहुए और कुछ समय बीतनेपर उनका वैर हुआ ॥ ८५ ॥ और भिन्न आचार व भिन्न भाषावाले वे वेष के सन्देह को प्राप्त हुए व पंद्रह हज़ार

संप्राणावा तथा चात्र कन्दरावा प्रकीर्तितम् ॥ वासरोवा त्रयोदशं शरण्डावा चतुर्दशम् ॥ ८१ ॥ लोलासणा पञ्चदशं वारोला षोडशं तथा ॥ नागलपुरा मया चात्र उक्तं सप्तदशं तथा ॥ ८२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ चातुर्विद्यास्तु ये विप्रा नागताः पुनरागताः ॥ वसतिं तत्र रम्ये च चक्रिरे ते द्विजोत्तमाः ॥ ८३ ॥ चतुर्विंशतिसंख्याका रामशासनलिप्सया ॥ हनूमन्तं प्रति गता व्यावृत्ताः पुनरागताः ॥ ८४ ॥ तेषां दोषात्समस्तास्ते स्थानभ्रंशत्वमागताः ॥ कियत्काले गते तेषां विरोधः समपद्यत ॥ ८५ ॥ भिन्नाचारा भिन्नभाषा वेशसंशयमागताः ॥ पञ्चदशसहस्राणां मध्ये ये के च वाडवाः ॥ ८६ ॥ कृषिकर्मरता आसन्केचिद्यज्ञपरायणाः ॥ केचिन्मल्लाश्च सञ्जाताः केचिद्वै वेदपाठकाः ॥ ८७ ॥ आयुर्वेदरताः केचित्केचिद्रजकयाजकाः ॥ सन्ध्यास्नानपराः केचिन्नीलीकर्तृप्रयाजकाः ॥ ८८ ॥ तन्तुकृद्याजनरतास्तन्तुवायादियाचकाः ॥ कलौ प्राप्ते द्विजा भ्रष्टा भविष्यन्ति न संशयः ॥ ८९ ॥ शूद्रेषु जातिभेदः स्यात्कलौ प्राप्ते नराधिप ॥

ब्राह्मणों के मध्य में कोई ब्राह्मण ॥ ८६ ॥ खेती के कर्म में परायण हुए व कोई यज्ञों में तत्पर हुए तथा कोई मल्ल और कोई वेदपाठी हुए ॥ ८७ ॥ और कोई वैद्यक करनेवाले तथा कोई धोबियों को यज्ञ करानेवाले हुए और कोई संध्या व स्नान में परायण तथा कोई नील करनेवालों को यज्ञ करानेवाले हुए ॥ ८८ ॥ और कलियुग प्राप्त होनेपर कोई वस्त्र बुननेवालों को यज्ञ कराने में परायण व कोई उनसे मांगनेवाले और भ्रष्ट होवेंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८९ ॥ व हे नराधिप ! कलियुग प्राप्त होने

पर शूद्रों में जाति का भेद होगा और बहुतही भ्रष्ट आचारवाले लोगों को जानकर कुटुम्ब के बन्ध से पीड़ित ॥ ९० ॥ कोई ब्राह्मण हे राजन् ! भोजन व आच्छादन में स्वजनों से छोड़ दिये जावैंगे और कोई भी मेल होने से कभी कन्या को न व्याहैगा तदनन्तर हे राजन् ! कलियुग में वे वणिज् तेली होवैंगे ॥९१॥ और कोई कुम्हार व कोई चावलों के बनानेवाले होवैंगे और कलियुग प्राप्त होनेपर कोई वणिज राजपुत्रों के आश्रय व कोई अनेक जातियों के आश्रित होवैंगे व कोई पृथ्वी में भ्रष्ट होवैंगे ॥ ९२ ॥ और उनके पृथक् आचार व पृथक् सम्बन्ध कियेगये और कितेक ब्राह्मणों का सीतापुर में निवास हुआ ॥ ९३ ॥ और कोई साभ्रमती के किनारे जहां कहीं

भ्रष्टाचारान् परं ज्ञात्वा ज्ञातिबन्धेन पीडिताः ॥ ९० ॥ भोजनाच्छादने राजन्परित्यक्ता निजैर्जनैः ॥ न कोऽपि कन्यां विवहेत्संसर्गेण कदाचन ॥ ततस्ते वणिजो राजंस्तैलकाराः कलौ किल ॥ ९१ ॥ केचिच्च कुम्भकाराश्च केचित्तन्दुलकारिणः ॥ राजपुत्राश्रिताः केचिन्नानावर्णसमाश्रिताः ॥ कलौ प्राप्ते तु वणिजो भ्रष्टाः केऽपि महीतले ॥ ९२ ॥ तेषां तु पृथगाचाराः सम्बन्धाश्च पृथक्कृताः ॥ सीतापुरे च वसतिः केषांचित्समजायत ॥ ९३ ॥ साभ्रमत्यास्तटे केचिद्यत्र कुत्र व्यवस्थिताः ॥ सीतापुरात्तु ये पूर्वं भयभीताः समागताः ॥ ९४ ॥ साभ्रमत्युत्तरे कूले श्रीक्षेत्रे ते व्यवस्थिताः ॥ यदा तेषां परं स्थानं दत्तं वै सुखवासकम् ॥ ९५ ॥ पुनस्तेऽपि गताः सद्यस्तस्मिन्सीतापुरे स्वयम् ॥ पञ्चपञ्चाशद्ग्रामाश्च दत्तास्तु पुनरागमे ॥ ९६ ॥ रामेण मोढविप्राणां निवासांस्तेषु चक्रिरे ॥ वृत्तिबाह्यास्तु ये विप्रा धर्मारण्यान्तरस्थिताः ॥ ९७ ॥ नास्माकं वणिजां वृत्तौ ग्रामवृत्तौ न किञ्चन ॥ प्रयोजनं हि विप्रेन्द्रा वासोऽस्माकं तु

स्थितहुए और जो कोई सीतापुर से पूर्व भयभीत होकर आये ॥ ९४ ॥ वे साभ्रमती के उत्तर किनारे में श्रीक्षेत्रनगर में स्थित हुए जब उनको सुखवासक नामक उत्तम स्थान दियागया ॥ ९५ ॥ तब फिर वे उसीक्षण उस सीतापुर में आपही स्थित हुए और फिर आनेपर श्रीरामजी ने मोढ ब्राह्मणों को पचपन ग्राम दिये और उन ग्रामों में उन्होंने निवास किया व जीविका के बाहर जो ब्राह्मण धर्मारण्य के मध्य में स्थित हुए ॥ ९६ । ९७ ॥ उन्होंने कहा कि हे द्विजेन्द्रो ! वणिजों की जीविका व ग्राम की जीविका

में हमलोगों का कुछ प्रयोजन नहीं है बरन हमलोगों को यहां निवास रुचता है ॥ ९८ ॥ यह कहने पर उन त्रैविद्य ब्राह्मणों ने उन चातुर्विद्य ब्राह्मणों को आज्ञा दिया और उन ग्रामों में वे चातुर्विद्य द्विजोत्तम ब्राह्मण ॥ ९९ ॥ अपने कर्मों में परायण व शान्त और कृषीकर्म में लगेहुए थे और धर्मारण्य से थोड़ेही दूर पै वे गौवों को चराते थे ॥ ३०० ॥ वहां बहुत से ब्राह्मणों के पुत्र गोपाल हुए और चातुर्विद्य बालकों ने उनकी गौवों को चराया और उनके भोजन के लिये भलीभांति बनायेहुए अन्न पानादिको ॥ १ ॥ विधवा स्त्रियां व बालकलोग भी ले आते थे ॥२॥ हे राजन्! कुछ समय के बाद परस्पर उनकी प्रीति हुई और प्रेम से गोपाल व बालकों की कन्याओं

रोचते ॥ ९८ ॥ इत्युक्ते समनुज्ञातास्त्रैविद्यैस्तैर्द्विजोत्तमैः ॥ तेषु ग्रामेषु ते विप्राश्चातुर्विद्या द्विजोत्तमाः ॥ ९९ ॥ स्वकर्मनिरताः शान्ताः कृषिकर्मपरायणाः ॥ धर्मारण्यान्नातिदूरे धेनूः सञ्चारयन्ति ते ॥ ३०० ॥ बहवस्तत्र गोपाला बभूवुर्द्विजबालकाः ॥ चातुर्विद्यास्तु शिशवस्तेषां धेनूरचारयन् ॥ तेषां भोजनकामाय अन्नपानादिसत्कृतम् ॥ १ ॥ अनयन्वै युवतयो विधवा अपि बालकाः ॥ २ ॥ कालेन कियता राजंस्तेषां प्रीतिरभून्मिथः ॥ गोपाला बुभुजुः प्रेम्णा कुमार्यो द्विजबालिकाः ॥ ३ ॥ जाताः सगर्भास्ताः सर्वा दृष्टास्तैर्द्विजसत्तमैः ॥ परित्यक्ताश्च सदनाद्धिक्कृताः पापकर्मणा ॥ ४ ॥ ताभ्यो जाताः कुमारा ये कातीभा गोलकास्तथा ॥ धेनुजास्ते धरालोके ख्यातिं जग्मुर्द्विजोत्तमाः ॥ ५ ॥ वृत्तिबाह्यास्तु ते विप्रा भिक्षां कुर्वन्ति नित्यशः ॥ अन्यच्च श्रूयतां राजंस्त्रैविद्यानां द्विजन्मनाम् ॥ ६ ॥ कुष्ठी कोऽपि तथा पङ्गुर्मूर्खो वा बधिरोऽपि वा ॥ काणो वाप्यथ कुब्जो वा बद्धवागथवा पुनः ॥ ७ ॥ अप्राप्तकन्यका ह्येते

ने भोजन किया ॥३॥ और उन द्विजोत्तमों से देखी हुई वे सब स्त्रियां गर्भिणी हुईं और पापकर्म से धिक्कार कीहुई वे घर से छोड़ दीगईं ॥४॥ और उनसे जो बालक उत्पन्न हुए वे कातीभ और गोलक संज्ञक हुए व वे द्विजोत्तम लोग पृथ्वीलोक में धेनुक ऐसे प्रसिद्ध हुए ॥ ५ ॥ और जीविका से बाहर वे ब्राह्मण नित्य भिक्षा करते थे व हे राजन्! त्रैविद्य ब्राह्मणों के अन्य चारित्र को सुनिये ॥ ६ ॥ कि कोई कुष्ठी व लँगड़ा, मूर्ख, बहरा, काना व कूबरा और बंधे वचनवाला पुरुष ॥ ७ ॥ कन्याओं को न पाये

हुए ये चातुर्विद्य ब्राह्मणों के आश्रित हुए व हे राजन्! बडे द्रव्य के कारण उनकी कुँवारी कन्या ॥ ८ ॥ उस समय हे राजन्! व्याही गईं और उससे जो लड़के उत्पन्न हुए वे पृथ्वीलोकमें उसी से त्रिदलज उत्पन्न हुए॥९॥ व मेलसे उपजे हुए उन ब्राह्मणोंने परस्पर जीविका किया व हे राजन्! त्रैविद्य ब्राह्मणोंका अन्य चरित्र सुनिये ॥१०॥ कि श्रीरामजी से दिये हुए ग्राम से कर लेने के कारण सब ब्राह्मणों ने इकट्ठा होकर उस ग्राम को भेंट लेकर ॥ ११ ॥ आधा निवेदन किया व आधे की रक्षा किया और यह मिला ऐसा मानते हुए वे ब्राह्मण चांचल्यभागी हुए ॥ १२ ॥ और जो महास्थान को गये वे विस्मय को प्राप्त हुए व उनके मध्य में किसी ब्राह्मण ने क्रोधित होकर

चातुर्विद्यान्समाश्रिताः॥ वित्तेन महता राजन्सुतास्तेषां कुमारिकाः ॥ ८ ॥ उद्वाहितास्तदा राजंस्तस्माज्जातार्भकास्तु ये ॥ त्रिदलजास्ते विख्याताः क्षितिलोकेऽभवंस्ततः ॥ ९ ॥ वृत्तिं चक्रुर्ब्राह्मणास्तेऽन्योन्यं मिश्रसमुद्भवाः ॥ अन्यच्च श्रूयतां राजंस्त्रैविद्यानां द्विजन्मनाम् ॥ १० ॥ रामदत्तेन ग्रामेण करग्रहणहेतवे ॥ एकीभूय द्विजैः सर्वैर्ग्रामं प्रादाय तं बलिम् ॥ ११ ॥ अर्द्धं निवेदयामासुरर्द्धं चैवोपरक्षितम् ॥ एतल्लब्धं हि मन्वानास्ते द्विजा लौल्यभागिनः ॥ १२ ॥ महास्थानगता ये च ते हि विस्मयमाययुः ॥ तन्मध्ये कोऽपि विप्रस्तानुवाच कुपितो वचः ॥ १३ ॥ विप्र उवाच॥ अनृतं चैव भाषन्ते लौल्येन महता वृताः ॥ पुत्रपौत्रविनाशाय ब्रह्मस्वेष्वतिलोलुपाः ॥ १४ ॥ न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ॥ विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् ॥ १५ ॥ ब्रह्मस्वेन च दग्धेषु पुत्रदारगृहादिषु ॥ न च ते ह्यपि तिष्ठन्ति ब्रह्मस्वेन विनाशिताः ॥ १६ ॥ न नाकं लभते सोऽथ सदा ब्रह्मस्वहारकः ॥ यदा वराटिकां

उनसे वचन कहा ॥१३॥ ब्राह्मण बोला कि बडी चंचलता से घिरेहुए और ब्राह्मणों के धनों में बहुत ही लोभी मनुष्य पुत्रों व पौत्रों के नाश के लिये झूंठ बोलते हैं ॥१४॥ विष को विद्वान्लोग विष नहीं कहते हैं बरन ब्राह्मण का धन विष कहाजाता है क्योंकि विष एकही को मारता है और ब्राह्मण का धन पुत्रों व पौत्रों को नाश करता है ॥ १५ ॥ और ब्राह्मण के धन से पुत्र, स्त्री व घर आदि के जलजाने पर ब्रह्मधन से नाश किये हुए वे भी नहीं स्थित होते हैं ॥ १६ ॥ और सदैव ब्राह्मण का

धन हरनेवाला वह मनुष्य स्वर्ग को नहीं पाता है और ब्राह्मण की कौड़ी को जब जो मनुष्य हरते हैं ॥ १७ ॥ तदनन्तर हरनेवाला मनुष्य तीन जन्मों तक नरक को जाता है और उससे दिये हुए जल को पूर्वज लोग कभी नहीं ग्रहण करते हैं ॥ १८ ॥ और क्षयाह में उसके पिंड व जलदान कर्म को पितर नहीं भोजन करते हैं और वह सन्तान को नहीं पाता है व मिलीहुई सन्तान जीती नहीं है ॥ १९ ॥ और यदि दैवयोग से सन्तान जीती है तो भ्रष्ट आचारवाली होती है ॥ २० ॥ गेरह ब्राह्मण बोले कि हे विप्र ! झूंठ नहीं कहागया हमलोगों को तुम क्यों दूषित करते हो और अपराध के विना किस को कडुई उक्ति योग्य होती है ॥ २१ ॥ हे पार्थ ! उस

चैव ब्राह्मणस्य हरन्ति ये ॥ १७ ॥ ततो जन्मत्रयाण्येव हर्त्ता निरयमाव्रजेत् ॥ पूर्वजा नोपभुञ्जन्ति तत्प्रदत्तं जलं क्वचित् ॥ १८ ॥ क्षयाहे नोपभुञ्जन्ति तस्य पिण्डोदकक्रियाः ॥ सन्ततिं नैव लभते लभ्यमाना न जीवति ॥ १९ ॥ यदि जीवति दैवाच्चेद्भ्रष्टाचारा भवेदिति ॥ २० ॥ एकादशविप्रा ऊचुः ॥ नासत्यं भाषितं विप्र कथं दूषयसे हि नः ॥ अपराधं विना कस्य कटूक्तिर्युज्यते किल ॥ २१ ॥ तच्छ्रुत्वा तैर्द्विजैः पार्थ ग्रामग्राहयिता वणिक् ॥ परिपृष्टः स तत्सर्वं कथयामास कारणम् ॥ २२ ॥ वणिजैरेव मे दत्तो बलिश्च द्विजसत्तमाः ॥ तत्सर्वं शुद्धभावेन कथितं तु द्विजन्मसु ॥ २३ ॥ ततोऽर्द्धदलं ज्ञात्वा ते कुपिता द्विजपुत्रकाः ॥ वृत्तेर्बहिष्कृतास्ते वै एकादश द्विजास्ततः ॥ २४ ॥ एकादशसमा ज्ञातिर्विख्याता भुवनत्रये ॥ न तेषां सह संबन्धो न विवाहश्च जायते ॥ २५ ॥ एकादशसमा ये च बहिर्ग्रामे वसन्ति ते ॥ एवं भेदाः समभवन्नाना मोढद्विजन्मनाम् ॥ युगानुसारात्कालेन ज्ञातीनां च

वचन को सुनकर उन ब्राह्मणों ने ग्राम को ग्रहण करनेवाले वणिज् से पूंछा और उसने उस सब कारण को कहा ॥ २२ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! वणिजों ने मुझको बलि दिया है वह सब ब्राह्मणों से शुद्धभाव से कहागया ॥ २३ ॥ तदनन्तर आधा भाग जान कर वे ब्राह्मणों के पुत्र क्रोधित हुए तदनन्तर जीविका से बाहर किये हुए गेरह ब्राह्मण ॥ २४ ॥ त्रिलोक में कुटुम्ब से एकादशसमा ऐसे प्रसिद्ध हुए व उनके साथ संबन्ध व विवाह नहीं होता है ॥ २५ ॥ और जो एकादशसमा

संज्ञक ब्राह्मण हैं वे गॉव के वाहर बसते हैं इस प्रकार समय से युग के अनुसार मोढ ब्राह्मणों के वंशों के व धर्म के अनेक भेद हुए ॥ ३२६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां ज्ञातिभेदवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । धर्मारण्यमहात्म के, सुने मिलै फल जौन । चालिसवें अध्याय में, कह्यो चरित सब तौन ॥ नारदजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! उस मोहेरकपुर में जाति का भेद होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणों ने क्या किया है उसको पूंछते हुए मुझसे कहिये ॥ १॥ ब्रह्मा बोले कि अपने स्थान में सब ब्राह्मण हर्ष से पूर्ण मन वाले थे और कोई अग्निहोत्र में

वृषस्य वा ॥ ३२६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्ये ज्ञातिभेदवर्णनंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥
नारद उवाच ॥ ज्ञातिभेदे तु संजाते तस्मिन्मोहेरके पुरे ॥ त्रैविद्यैः किं कृतं ब्रह्मंस्तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ स्वस्थाने वाडवाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः ॥ अग्निहोत्रपराः केऽपि केऽपि यज्ञपरायणाः ॥२॥ केऽपि चाग्निसमाधानाः केऽपि स्मार्ता निरन्तरम् ॥ पुराणन्यायवेत्तारो वेदवेदाङ्गवादिनः ॥ ३ ॥ सुखेन स्वान्सदाचारान्कुर्वन्तो ब्रह्मवादिनः ॥ एवं धर्मसमाचारान्कुर्वतां कुशलात्मनाम् ॥ ४ ॥ स्थानाचारान्कुलाचारानधिदेव्याश्च भाषितान् ॥ धर्मशास्त्रस्थितं सर्वं काजेशैरुदितं च यत् ॥ ५ ॥ परम्परागतं धर्ममूचुस्ते वाडवोत्तमाः ॥ ६ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ यस्याभिधानं लिखितं रक्तपादैस्तु वाडवाः ॥ ज्ञातिश्रेष्ठः स विज्ञेयो बहिर्ज्ञेयस्ततः परम् ॥७॥ रक्तं पदं नाम साध्यं प्र

परायण व कोई यज्ञोंमें परायण थे ॥ २ ॥ और कोई अग्न्याधान करनेवाले व कोई सदैव स्मार्त थे और कोई पुराणों व न्याय के जाननेवाले तथा वेदों व वेदांगोंके कहनेवाले थे ॥३॥ और वे ब्रह्मवादी सुखसे अपने उत्तम आचारोंको करते थे इसप्रकार अधिदेवी से कहेहुए धर्माचार, स्थानाचार व कुलाचारों को करते हुए निपुण चित्तवाले उन ब्राह्मणों का वह सब धर्मशास्त्र में स्थित कर्म हुआ जोकि ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से कहागया था ॥ ४।५॥ और उन द्विजोत्तमों ने परंपरा मे प्राप्त धर्म को कहा ॥ ६ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे ब्राह्मणो ! रक्तपादों से जिसका नाम लिखा गया है वह जाति में श्रेष्ठ जानने योग्य है व उसके उपरान्त बाहर जानने योग्य है ॥ ७ ॥ और रक्तपद

साध्य नाम है व अपने वंश की प्रसिद्धि के लिये चन्दन व पुष्पादिकों से पूजित उन कुंकुम से कुछ लाल चरणोंवाले द्विजों से ॥ ८ ॥ मिलकर जो लिखा गया है वह रक्तपाद कहाजाता है और वे सब सावधान होकर श्रीरामजी के लेखको पूजन करैं ॥ ९ ॥ व सदैव ब्राह्मणलोग श्रीरामजी के हाथ की मुद्रा (छाप) को पूजन करैं और यदि जिनके उत्तम आचार में व्यभिचार आदिक दोष होवैंगे ॥ १० ॥ उनको वह दण्ड करने योग्य होगा जोकि विधिपूर्वक ब्राह्मणों से कहा गया है और जबतक दण्ड (बलि) नहीं देता है तबतक श्रीरामजी की मुद्रा का चिह्न नहीं होता है ॥ ११ ॥ क्योंकि बलि देने के विना मुद्रा का चिह्न नहीं

सिद्ध्यै स्वकुलस्य वै ॥ कुङ्कुमारक्तपादैस्तैर्गन्धपुष्पादिचर्चितैः ॥ ८ ॥ संभूय लिखितं यच्च रक्तपादं तदुच्यते ॥ रामस्य लेख्यं ते सर्वे पूजयन्तु समाहिताः ॥ ९ ॥ रामस्य करमुद्रां च पूजयन्तु द्विजाः सदा ॥ येषां दोषाः सदाचारे व्यभिचारादयो यदि ॥ १० ॥ तेषां दण्डो विधेयस्तु य उक्तो विधिवद्द्विजैः ॥ चिह्नं न राममुद्राया यावद्दण्डं ददाति न ॥ ११ ॥ विना दण्डप्रदानेन मुद्राचिह्नं न धार्यते ॥ मुद्राहस्ताश्च विज्ञेया वाडवा नृपसत्तम ॥ १२ ॥ पुत्रे जाते पिता दद्याच्छ्रीमात्रे तु बलिं सदा ॥ पलानि विंशतिः सर्पिर्गुडः पञ्चपलानि च ॥ १३ ॥ कुङ्कुमादिभिरभ्यर्च्यो जातमात्रः सुतस्तदा ॥ षष्ठे च दिवसे राजन्षष्ठीं पूजयते सदा ॥ १४ ॥ दद्यात्तत्र बलिं साज्यं कुर्याद्धि बलिपञ्चकम् ॥ पञ्चप्रस्थान्बलीन्दद्यात्सवस्त्राञ्छ्रीफलैर्युतान् ॥ १५ ॥ कुङ्कुमादिभिरभ्यर्च्य श्रीमात्रे भक्तिपूर्वकम् ॥ वित्तशाठ्यं न कुर्वीत कुले सन्ततिवृद्धये ॥ १६ ॥ तद्धि चार्पयता द्रव्यं वृद्धौ यद्भाषितं पुनः ॥ जन्मनोऽनन्तरं कार्यं जातकर्म

धारण किया जाता है व हे नृपोत्तम ! मुद्रा हाथवाले ब्राह्मण जानने योग्य हैं ॥ १२ ॥ पुत्र पैदा होनेपर पिता सदैव श्रीमाताजी के लिये बलि को देवै बीसपल घी और पांच पल गुड देवै ॥ १३ ॥ और पैदा हुआ पुत्र उस समय कुंकुमादिकों से पूजने योग्य है और हे राजन् ! सदैव छठें दिन छठी को पूजै ॥ १४ ॥ और उसमें घी समेत बलि को देवै व पांच बलियों को देवै और श्रीफलों से संयुत व वस्त्रोंसमेत पांच प्रस्थ-प्रमाणभर बलियों को देवै ॥ १५ ॥ और भक्तिपूर्वक श्रीमाता के लिये कुंकुम आदि से पूजकर वंश में सन्तान की वृद्धि के लिये वित्तशाठ्य न करै ॥ १६ ॥ और वृद्धि में जो कहा गया है उस धनको देते हुए पिता को जन्म के बाद

विधिपूर्वक जातकर्म करना चाहिये ॥ १७ ॥ और इसमें जो वृत्ति ब्राह्मणों से कहीगई है वह विभाग कीजाती है कि पहली जितनी वृत्ति मिलै ॥ १८ ॥ उस जीविका का आधाभाग गोत्रदेवी के लिये देवै और पुत्र उत्पन्न होनेपर वणिज् को दूना होता है ॥ १९ ॥ और जो मांडलीय शूद्र हैं उनका यह आधा कर होता है और अडालजों का तिगुना व गोभुजों को चौगुना होता है ॥ २० ॥ यह व अन्य सब शूद्रजातियों में कहागया है और दैव के वश से जिसके हत्या का दोप उत्पन्न हुआ है ॥ २१ ॥ उसका वेदशास्त्री लोगों से विधिपूर्वक दण्ड करना चाहिये और अगम्यास्त्री के गमन से जब जिसको दोष उत्पन्न होवै तब त्रैविद्य जातिवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणों को फिर उसका

यथाविधि ॥ १७ ॥ विप्रानुकीर्तिता याऽत्र वृत्तिः सापि विभज्यते ॥ प्रथमा लभ्यमाना च वृत्तिर्वै यावती पुनः ॥ १८ ॥ तस्या वृत्तेरर्द्धभागो गोत्रदेव्यै तु कल्प्यताम् ॥ द्विगुणं वणिजां चैव पुत्रे जाते भवेदिति ॥ १९ ॥ माण्डलीयाश्च ये शूद्रास्तेषामर्धकरं त्विदम् ॥ अडालजानां त्रिगुणं गोभुजानां चतुर्गुणम् ॥ २० ॥ इत्येतत्कथितं सर्वमन्यच्च शूद्रजातिषु ॥ यस्य दोषस्तु हत्यायाः समुद्भूतो विधेर्वशात् ॥ २१ ॥ दण्डस्तु विधिवत्तस्य कर्त्तव्यो वेदशास्त्रिभिः ॥ अगम्या गमनाद्य स्य दोष उत्पद्यते यदा ॥ तस्य दण्डः पुनः कार्य आर्यैस्त्रैविद्यजातिभिः ॥ २२ ॥ पङ्क्तिभेदस्य कर्त्ता च गोसहस्रवधः स्मृतः ॥ वृत्तिभागविभजनं तथा न्यायविचारणम् ॥ श्रीरामदूतकस्याग्रे कर्त्तव्यमिति निश्चयः ॥ २३ ॥ तस्य पूजां प्रकुर्वीत तदा कालेऽथवा सदा ॥ तैलेन लेपयेत्तस्य देहे वै विघ्नशान्तये ॥ २४ ॥ धूपं दीपं फलं दद्यात्पुष्पैर्नानाविधैः किल ॥ पूजितो हनुमा नेव ददाति तस्य वाञ्छितम् ॥ २५ ॥ प्रतिपुत्रं तु तस्याग्रे कुर्यान्नान्यत्र कुत्रचित् ॥ श्रीमातावकुलस्वामिभागधेयं तु

दण्ड करना चाहिये ॥ २२ ॥ और जो पंक्तिभेद का करनेवाला है वह हज़ार गऊ का वधकर्ता कहा गया है और जीविका के अंश का विभाग व न्याय का विचार श्रीरामजी के दूत हनुमान्जी के आगे करना चाहिये यह निश्चय है ॥ २३ ॥ और उस समय या सदैव उन हनुमान्जी का पूजन करै व विघ्न की शान्ति के लिये तैलसे उनके शरीर में लेपन करै ॥ २४ ॥ और धूप, दीप व फलको देवै क्योंकि अनेक भांति के पुष्पों से पूजे हुए हनुमान्जी उसको मनोरथ देते हैं ॥ २५ ॥ उन हनुमान्जी के

आगे प्रत्येक पुत्र में ऐसा करै अन्यत्र कहीं न करै और पहले श्रीमाता व बकुलस्वामी को बलि देवै ॥ २६ ॥ पश्चात् ब्राह्मणों को प्रतिग्रह (दान) करना चाहिये और ब्राह्मणों के समाजों में न्याय व अन्याय के निर्णय में ॥ २७ ॥ हृदय में निर्णयको धरकर वहां बैठे हुए ब्राह्मणों को केवल धर्म की बुद्धि से निर्णय को सुनावै और पक्षपात वर्जित करै ॥२८॥ और सबों का सम्मत करना चाहिये क्योंकि वह विकाररहित होता है यदि बुलाया हुआ ब्राह्मण सभा में उससे भय को प्राप्त होवै ॥२९॥ तो निर्णय किये हुए अर्थ के विचार में उसका वचन न सुनना चाहिये और सब ब्राह्मण मिलकर जिसको वर्जित करैं ॥ ३० ॥ उसके साथ अन्न पानादिक

पूर्वतः ॥ २६ ॥ पश्चात्प्रतिग्रहं विप्रैः कर्त्तव्यमिति निश्चितम् ॥ समागमेषु विप्राणां न्यायान्यायविनिर्णये ॥ २७ ॥ निर्णयं हृदये धृत्वा तत्रस्थाञ्छ्रावयेद्द्विजान् ॥ केवलं धर्मबुद्ध्या च पक्षपातं विवर्जयेत् ॥ २८ ॥ सर्वेषां संमतं कार्यं तद्व्यविकृतमेव च ॥ आकारितस्ततो विप्रः सभायां भयमेति चेत् ॥ २९ ॥ न तस्य वाक्यं श्रोतव्यं निर्णीतार्थविचारणे ॥ यस्य वर्जस्तु क्रियते मिलित्वा सर्ववाडवैः ॥३०॥ अन्नपानादिकं सर्वं कार्यं तेन विवर्जयेत् ॥ तस्य कन्या न दातव्या तत्संसर्गी च तादृशः ॥ ३१ ॥ ततो दण्डं प्रकुर्वीत सर्वैरेव द्विजोत्तमैः ॥ भोजनं कन्यकादानमिति दाशरथेर्मतम् ॥ ३२ ॥ यत्किंचित्कुरुते पापं लघुस्थूलमथापि वा ॥ शुष्कार्द्रं वसते चान्ने तस्मादन्नं परित्यजेत् ॥ ३३ ॥ कुर्वंस्तत्पापभागी स्यात्तस्य दण्डो यथाविधि ॥ न्यायं न पश्यते यस्तु शक्तौ सत्यां सदा यतः ॥ ३४ ॥ पापभागी स

सब कार्य वर्जित करै और उसको कन्या न देना चाहिये व उसका मेल करनेवाला भी वैसाही होताहै ॥ ३१ ॥ उसी कारण सब द्विजोत्तमों से दण्ड करना चाहिये और भोजन व कन्यादान करना चाहिये यह श्रीरामजी का सम्मत है ॥ ३२ ॥ और जो कुछ छोटा या बड़ा व सूखा या भीगा पाप मनुष्य करताहै वह सब उसके अन्न में बसता है इस कारण अन्न को त्याग देवै ॥ ३३ ॥ क्योंकि करता हुआ मनुष्य उसके पाप का भागी होता है और उसका विधिपूर्वक दण्ड करना चाहिये और शक्ति होने पर जो सदैव जिससे न्याय को नहीं देखता है ॥ ३४ ॥ उसी कारण वह पाप भागी जानने योग्य है यह सत्य है इसमें सन्देह नहीं है और जो दुष्टकर्मी

पापियों की घूस लेता है उनका सब पाप उसको होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ और उसका अन्न व कन्या को भी कभी न ग्रहण करै व जो मनुष्य पुत्रों का भी हित करै ॥ ३६ ॥ वह इन सब नियमों को पालन करै इसमें सन्देह नहीं है ऐसा पत्र लिखकर वे ब्राह्मण प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार भयंकर कलियुग प्राप्त होने पर मनुष्य पाप न करैं ऐसा जानकर उन सबों ने न्यायधर्म को किया ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले कि कलियुग प्राप्त होने पर जिस लिये सब ब्राह्मण स्थान से भ्रष्ट होवैंगे उससे उत्कृष्ट पक्ष को ग्रहण करैंगे और पक्षपाती होवैंगे ॥ ३९ ॥ और म्लेच्छों के ग्राम कोलाविध्वंसियों से भोग किये जावैंगे और कलियुग में वे ब्राह्मण वेदोंसे भ्रष्ट

विज्ञेय इति सत्यं न संशयः ॥ उत्कोचं यस्तु गृह्णाति पापिनां दुष्टकर्मिणाम् ॥ सकलं च भवेत्तस्य पापं नैवात्र संशयः ॥ ३५ ॥ तस्यान्नं नैव गृह्णीयात् कन्यापि न कदाचन ॥ हितमाचरते यस्तु पुत्राणामपि वै नरः ॥ ३६ ॥ स एतान्नियमान्सर्वान्पालयेन्नात्र संशयः ॥ एवं पत्रं लिखित्वा तु वाडवास्ते प्रहर्षिताः ॥ ३७ ॥ प्राप्ते कलियुगे घोरे यथा पापं न कुर्वते ॥ इति ज्ञात्वा तु सर्वे ते न्यायधर्मं प्रचक्रिरे ॥ ३८ ॥ व्यास उवाच ॥ कलौ प्राप्ते द्विजाः सर्वे स्थानभ्रष्टा यतस्ततः ॥ ग्रहीष्यन्त्युत्कलं पक्षं तथा स्युः पक्षपातिनः ॥ ३९ ॥ भोक्ष्यन्ते म्लेच्छकग्रामान्कोलाविध्वंसिभिः किल ॥ वेदभ्रष्टाश्च ते विप्रा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ ४० ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ देशे देशे गमिष्यन्ति ते विप्रा वणिजस्तथा ॥ ज्ञायन्ते वै कथं सर्वैः केन चिह्नेन मारिष ॥ ४१ ॥ यस्मिन्गोत्रे समुत्पन्ना वाडवा ये महाबलाः ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ ज्ञायते गोत्रसंज्ञाऽथ केचिच्चैव पराक्रमैः ॥ यस्य यस्य च यत्कर्म तस्य तस्यावटङ्ककः ॥ ४३ ॥ अवटङ्कैर्हि ज्ञायन्ते

होवैंगे ॥ ४० ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे मारिष ! वे ब्राह्मण व वणिज् देश, देश में जावैंगे तो किस चिह्न से सबों से वे जानेजाते हैं ॥ ४१ ॥ जो कि बड़े बलवान् ब्राह्मण जिस गोत्र में उत्पन्न हैं ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले कि गोत्र की संज्ञा जानीजाती है और कोई ब्राह्मण पराक्रम से जानेजाते हैं और जिस जिसका जो कर्म है उस उसका वह अवटंक होताहै ॥ ४३ ॥ और अवटंकों से वे जानेजाते हैं और अन्यथा कभी नहीं जानेजाते हैं व हे नृपात्मज, राजन् ! गोत्रों से और प्रवरों तथा

अवटंकों से श्रेष्ठ मोढसंज्ञक ब्राह्मण जानेजाते हैं ॥ ४४ । ४५ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि तुम्हारे मुख से गोत्रों और प्रवरों से ये सुने गये हैं व किस शाखा के वे पढ़नेवाले हैं हे पितामहजी ! उसको मुझसे कहिये ॥ ४६ ॥ व्यासजी बोले कि जहां तहां स्थित बड़े बलवान् माध्यंदिनी शाखावाले ब्राह्मण जानेजाते हैं और गुणों से संयुत कोई ब्राह्मण कौथमी शाखा के आश्रित होकर स्थित होते हैं ॥ ४७ ॥ व हे महामते ! ऋग्वेद व अथर्वण वेद से उपजी हुई वह शाखा नष्ट होगई है इस प्रकार धर्मारण्य में धर्म से उपजे हुए वे बड़े ऐश्वर्यवान् ब्राह्मण पुत्रों व पौत्रों से संयुत हुए और बड़े ऐश्वर्यवान् सब शूद्र पुत्रों व पौत्रों से संयुत हुए ॥ ४८ । ४९ ॥

ज्ञायन्ते नान्यथा क्वचित् ॥ गोत्रैश्च प्रवरैश्चैव अवटङ्कैर्नृपात्मज ॥ ४४ ॥ ज्ञायन्ते हि द्विजा राजन्मोढब्राह्मणसत्तमाः ॥ ४५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ गोत्रैश्च प्रवरैश्चैव श्रुता एते तवाननात् ॥ कां वा शाखामधीयानास्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ४६ ॥ व्यास उवाच ॥ ज्ञायन्ते यत्र तत्रस्था माध्यन्दिनीया महाबलाः ॥ कौथमीं च समाश्रित्य केचिद्विप्रा गुणान्विताः ॥ ४७ ॥ ऋगथर्वणजा शाखा नष्टा सा च महामते ॥ एवं वै वर्तमानास्ते वाडवा धर्मसंभवाः ॥ ४८ ॥ धर्मारण्ये महाभागाः पुत्रपौत्रान्विताऽभवन् ॥ शूद्राः सर्वे महाभागाः पुत्रपौत्रसमावृताः ॥ ४९ ॥ धर्मारण्ये महातीर्थे सर्वे ते द्विजसेवकाः ॥ अभवन्रामभक्ताश्च रामाज्ञां पालयन्ति च ॥ ५० ॥ आज्ञामत्याऽऽदरेणेह हनूमन्तश्च वीर्यवान् ॥ पालयेत्सोऽपि चेदानीं संप्राप्ते वै कलौ युगे ॥ ५१ ॥ अदृष्टरूपी हनुमांस्तत्र भ्रमति नित्यशः ॥ त्रैविद्या वाडवा यत्र चातुर्विद्यास्तथैव च ॥ ५२ ॥ सभायामुपविष्टा येऽन्यायात्पापं प्रकुर्वते ॥ जयो हि न्यायकर्तॄणामजयोऽन्याय

व धर्मारण्य महातीर्थ में वे सब ब्राह्मणों के सेवक हुए और रामजी के भक्त वे श्रीरामजी की आज्ञा को पालन करते हैं ॥ ५० ॥ और पराक्रमी हनुमान्जी बड़े आदर से आज्ञा को पालन करते हैं इस समय कलियुग प्राप्त होनेपर वे ॥ ५१ ॥ हनुमान्जी अदृष्टरूप होकर वहां नित्य घूमते हैं और जिस कलियुग में त्रैविद्य व चातुर्विद्य ब्राह्मण ॥ ५२ ॥ जो सभा में बैठे हैं वे अन्याय से पापको करते हैं न्याय करनेवालों की जय होती है व अन्याय करनेवालों की पराजय

होती है ॥ ५३ ॥ और अपराध समेत पुत्र, पिता व भाई में जो पक्षपात करता है उसके ऊपर हनुमान्जी क्रोधित होते हैं ॥ ५४ ॥ और ये क्रोधित हनुमान्जी धन का नाश करते हैं व पुत्रनाश करते हैं और घर को नाश करतेहैं ॥ ५५ ॥ और सेवाके लिये बनाया हुआ जो शूद्र ब्राह्मणों की सेवा नहीं करता है व जो जीविकाको नहीं देता है उसके ऊपर हनुमान्जी क्रोधित होते हैं ॥ ५६ ॥ व श्रीरामजी का वचन स्मरण करते हुए हनुमान्जी धननाश, पुत्रनाश व स्थाननाश करते हैं ॥ ५७ ॥ व हे नृपोत्तम ! श्रीरामजी की प्रसन्नता से जहां कहीं भी स्थित वे ब्राह्मण या शूद्र धनहीन नहीं होते हैं ॥ ५८ ॥ और जो मूर्ख व अधर्मी पाप और पाषण्डमें स्थित होकर अपने

कारिणाम् ॥ ५३ ॥ सापराधे यस्तु पुत्रे ताते भ्रातरि चापि वा ॥ पक्षपातं प्रकुर्वीत तस्य कुप्यति वायुजः ॥ ५४ ॥ कुपितो हनुमानेष धननाशं करोति वै ॥ पुत्रनाशं करोत्येव धामनाशं तथैव च ॥ ५५ ॥ सेवार्थं निर्मितः शूद्रो न विप्रान्परिषेवते ॥ वृत्तिं वा न ददात्येव हनुमांस्तस्य कुप्यति ॥ ५६ ॥ अर्थनाशं पुत्रनाशं स्थाननाशं महाभयम् ॥ कुरुते वायुपुत्रो हि रामवाक्यमनुस्मरन् ॥ ५७ ॥ यत्र कुत्र स्थिता विप्राः शूद्रा वा नृपसत्तम ॥ न निर्द्धना भवेयुस्ते प्रसादाद्राघवस्य च ॥ ५८ ॥ यो मूढश्चाप्यधर्मात्मा पापपाषण्डमाश्रितः ॥ निजान्विप्रान्परित्यज्य परज्ञातींश्च मन्यते ॥ ५९ ॥ तस्य पूर्वकृतं पुण्यं भस्मीभवति नान्यथा ॥ अन्येषां दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥ ६० ॥ वृथा भवति वै पूर्वं ब्रह्मविष्णुशिवैः स्मृतम् ॥ तस्य देवा न गृह्णन्ति हव्यं कव्यं च पूर्वजाः ॥ ६१ ॥ वञ्चयित्वा निजान्विप्रानन्येभ्यः प्रददेत्तु यः ॥ तस्य जन्मार्जितं पुण्यं भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ ६२ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवैश्चैव पूजिता ये

ब्राह्मणों को छोड़कर पराये कुटुम्बों को मानता है ॥ ५९ ॥ उसका पहले किया हुआ पुण्य भस्म होजाता है अन्यथा नहीं होता है और अन्य लोगों को थोड़ा या बहुत जो दान दियाजाता है ॥ ६० ॥ वह वृथा होजाता है ऐसा ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से कहागया है और पूर्वज पितरलोग उसके हव्य व कव्य को नहीं ग्रहण करते हैं ॥ ६१ ॥ और अपने ब्राह्मणों को छलकर जो अन्यलोगोंके लिये दान देता है उसका जन्म में इकट्ठा कियाहुआ पुण्य उसी क्षण भस्म होजाता है ॥ ६२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु

व शिवजी से जो ब्राह्मण पूजेगये हैं उनसे जो विमुख होते हैं वे रौरव नरक में बसते हैं ॥ ६३ ॥ और जो चंचलता से कुल का आचार व गोत्र का आचार लोप करता है और जो मोहित मनुष्य अपने आचार को नहीं करता है ॥ ६४ ॥ उसका सब नाश होजाता है और उसी क्षण भस्म होजाता है इस लिये सब कुल का आचार व स्थान का आचार ॥ ६५ ॥ और गोत्र का आचार धन के अनुसार पालन करनेयोग्य है हे राजन् ! इसप्रकार तुमसे प्राचीन धर्मारण्य कहागया ॥ ६६ ॥ सतयुग में ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों से धर्मारण्य स्थापित कियागया है और त्रेता में सत्यमन्दिर व द्वापर में, वेदभवन और कलियुग में मोहेरक कहागया है ॥ ६७ ॥ ब्रह्माजी बोले

द्विजोत्तमाः ॥ तेषां ये विमुखाः शूद्रा रौरवे निवसन्ति ते ॥ ६३ ॥ यो लौल्याच्च कुलाचारं गोत्राचारं प्रलोपयेत् ॥ स्वाचारं यो न कुर्वीत कदाचिद्दै विमोहितः ॥ ६४ ॥ सर्वनाशो भवेत्तस्य भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ तस्मात्सर्वः कुलाचारः स्थानाचारस्तथैव च ॥ ६५ ॥ गोत्राचारः पालनीयो यथावित्तानुसारतः ॥ एवं ते कथितं राजन्धर्मारण्यं पुरातनम् ॥ ६६ ॥ स्थापितं देवदेवैश्च ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ॥ धर्मारण्यं कृतयुगे त्रेतायां सत्यमन्दिरम् ॥ द्वापरे वेदभवनं कलौ मोहेरकं स्मृतम् ॥ ६७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ य इदं शृणुयात्पुत्र श्रद्धया परया युतः ॥ धर्मारण्यस्य माहात्म्यं सर्वकिल्बिषनाशनम् ॥ ६८ ॥ मनोवाक्कायजनितं पातकं त्रिविधं च यत् ॥ तत्सर्वं नाशमायाति श्रवणात्कीर्तनात्सकृत् ॥ ६९ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं सुखसंतानदायकम् ॥ माहात्म्यं शृणुयाद्वत्स सर्वसौख्याप्तये नरः ॥ ७० ॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वक्षेत्रेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति धर्मारण्यस्य सेवनात् ॥ ७१ ॥ नारद उवाच ॥ धर्मारण्यस्य

कि हे पुत्र ! बड़ी श्रद्धा से संयुत जो मनुष्य सब पातकों को नाशनेवाले धर्मारण्य के इस माहात्म्य को सुनता है ॥ ६८ ॥ उसका मन, वचन व शरीर से उपजाहुआ जो तीन प्रकार का पाप होता है वह सब एक बार सुनने व कहने से नाश को प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ हे वत्स ! धनदायक व यशदायक तथा सुख व संतान को देने वाले माहात्म्य को सब सुखों के मिलने के लिये मनुष्य सुनै ॥ ७० ॥ सब तीर्थों में जो पुण्य होता है व सब क्षेत्रों मे जो फल होता है उस फलको मनुष्य धर्मारण्य के सेवन से प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ नारदजी बोले कि धर्मारण्य का जो माहात्म्य है वह तुम्हारे मुख से सुनागया और जहां धर्मबावली में धर्मराज ने कठिन

तप कियाहै ॥ ७२ ॥ उस क्षेत्र की महिमा को मैंने तुमसे सुना तुम्हारा कल्याण होवै मैं धर्मारण्य को देखने की इच्छा से जाऊंगा ॥ ७३ ॥ हे चतुर्मुख ! तुम्हारे वचनरूपी जलके प्रवाह से मैं पवित्र होगया ॥ ७४ ॥ व्यासजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन ! यह सब कथानक कहागया जिसको सुनकर मनुष्य गोसहस्र का फल पाता है ॥ ७५ ॥ और पुत्ररहित मनुष्य पुत्रों को पाता है व निर्धनी धनवान् होता है और रोगी रोग से छूटजाता है व बँधुवा मनुष्य बन्धन से छूटजाता है ॥ ७६ ॥ और विद्यार्थी कर्म को साधन करनेवाली उत्तम विद्या को पाता है और उसको तीर्थयात्रा का फल होता है व करोड़ कन्यादान के फल को पाता है ॥ ७७ ॥ व हे नरोत्तम ! जो स्त्री या

माहात्म्यं यच्छ्रुतं त्वन्मुखाम्बुजात् ॥ धर्मवाप्यां यत्र धर्म्मस्तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ ७२ ॥ तस्य क्षेत्रस्य महिमा मया त्वत्तोऽवधारितः ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि धर्मारण्यदिदृक्षया ॥ ७३ ॥ तव वाक्यजलौघेन पावितोऽहं चतुर्मुख ॥ ७४ ॥ व्यास उवाच ॥ इदमाख्यानकं सर्वं कथितं पाण्डुनन्दन ॥ यच्छ्रुत्वा गोसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ७५ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्द्धनो धनवान्भवेत् ॥ रोगी रोगात्प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ ७६ ॥ विद्यार्थी लभते विद्यामुत्तमां कर्मसाधनाम् ॥ तीर्थयात्राफलं तस्य कोटिकन्याफलं लभेत् ॥ ७७ ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या नारी वाथ नरोत्तम ॥ निरयं नैव पश्येत्स एकोत्तरशतैः सह ॥ ७८ ॥ शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्रादिभिस्तथा ॥ पुराणपुस्तकं राजन्प्रयतः शिष्टसंमतः ॥ ७९ ॥ अर्चयेच्च यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक्पृथक् ॥ समाप्तौ नृप ग्रन्थस्य वाचकस्यानुपूजनम् ॥ ८० ॥ दानादिभिर्यथान्यायं सम्पूर्णफलहेतवे ॥ मुद्रिकां कुण्डले चैव ब्रह्मसूत्रं हिरण्मयम् ॥ ८१ ॥ वस्त्राणि च विचित्राणि गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥ देववत्पूजनं कृत्वा गां च दद्यात्पय

पुरुष भक्ति से इसको सुनता है वह एक सौ एक पुश्तियों समेत नरक को नहीं देखता है ॥ ७८ ॥ व हे राजन् ! सज्जनों से संमत पवित्र मनुष्य पुराण की पुस्तक को उत्तम स्थान में धरकर रेशमी वस्त्रादिकों से ॥ ७९ ॥ और अलग २ चन्दन व मालाओं से यथायोग्य पूजन करै व हे राजन् ! ग्रंथ की समाप्ति में बांचनेवाले को पूजै ॥ ८० ॥ और संपूर्ण फल के लिये यथायोग्य दानादिकों से पूजै और मुंदरी व कुंडल और सुवर्ण का यज्ञोपवीत देवै ॥ ८१ ॥ और विचित्र वस्त्रों को देवै व चन्दन,

माला और अनुलेपनों से देवता के समान पूजन कर दूधवाली गऊ को देवै ॥ ८२ ॥ इस प्रकार विधि से धर्मारण्य की कथा को सुनकर मनुष्य धर्मारण्य के निवास का फल पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांधर्मारण्यनिवासिव्यवस्थावर्णनपूर्वक धर्मारण्यश्रवणमाहात्म्यवर्णनंनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

स्विनीम् ॥ ८२ ॥ एवं विधानतः श्रुत्वा धर्मारण्यकथानकम् ॥ धर्मारण्यनिवासस्य फलमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्ये धर्मारण्यनिवासिव्यवस्थावर्णनपूर्वकधर्मारण्य श्रवणमाहात्म्यवर्णनंनाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इति धर्मारण्यमाहात्म्यं समाप्तम् ॥

दो० । श्रीगणेश के पदकमल, युग को करिकै ध्यान। धर्मारण्यमहात्मकर, तिलक कियो सुखदान ॥ १ ॥

पढ़ै सुनै प्रत्येक दिन, जो याको चित लाय। ताकोधनअरुधान्यसब, मिलत बहुत सरसाय ॥ २ ॥

प्रथम वार

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव बी. ए., के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेख़ाने में छपा ॥

॥ इति स्कन्दपुराण धर्मारण्यमाहात्म्य ॥

॥ अथ स्कन्दपुराण चातुर्मास्यमाहात्म्य ॥

नीलको जातेहुए देखकर ॥ ७२ ॥ ब्राह्मणों ने कुछ क्रोधसे संयुत उस बैल को चिह्नित किया कि वाम भागोंमें चक्र व दाहिने भाग में त्रिशूल किया ॥ ७३ ॥ तब देवताओं से रक्षित उस बैल को उन्होंने गौवोंके मध्य में छोड़ दिया तदनन्तर सब देवताओं के गण व महर्षियों के गण और ईर्षारहित वे मुनिलोग अपने स्थानों को चलेगये ॥ ७४ ॥ इसप्रकार ऋषियों की स्त्रियों में आसक्त व कामदेव से विकलचित्तवाले शिव भी श्रेष्ठ मुनियों का शाप पाकर भक्तिसे नर्मदाके जलमें शिलामयत्व को प्राप्त हुए ॥७५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां वृषस्तुतिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥ पुनरेव तु सर्पन्तं दृष्ट्वा नीलं महावृषम् ॥ ७२ ॥ स्वल्पक्रोधसमाविष्टं द्विजाश्चक्रुस्तमङ्कितम् ॥ चक्रं च वामभागेषु शूलं पार्श्वे च दक्षिणे ॥ ७३ ॥ उत्ससृजुर्गवां मध्ये तं देवैर्गोपितं तदा ॥ ततो देवगणाः सर्वे महर्षीणां गणाः पुनः ॥ स्वानि स्थानानि ते जग्मुर्मुनयो वीतमत्सराः ॥ ७४ ॥ एवंऋषीणां दयितासु सक्तः कामार्त्तचित्तो मुनिपुङ्गवानाम् ॥ शापं समासाद्य शिवोपि भक्त्या रेवाजलेऽगात्सुशिलामयत्वम् ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये वृषस्तुतिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥

गालव उवाच ॥ इति ते कथितं सर्वं शालग्रामकथानकम् ॥ महेश्वरस्य चोत्पत्तिर्यथालिङ्गत्वमाप सः ॥ १ ॥ तस्माद्धरं लिङ्गरूपं शालग्रामगतं हरिम् ॥ येऽर्चयन्ति नरा भक्त्या न तेषां दुःखयातनाः ॥ २ ॥ चातुर्मास्ये समायाते विशेषात्पूजयेच्च तौ ॥ अर्चितौ यावभेदेन स्वर्गमोक्षप्रदायकौ ॥ ३ ॥ देवौ हरिहरौ भक्त्या विप्रवह्नि

दो० । यथा विष्णु शिव पूजिकै मिलत अहै फल जौन ॥ अट्ठाइसवें में सुभग कह्यो चरित सब तौन ॥ गालवजी बोले कि यह सब शालग्राम की कथा तुमसे कहीगई व शिवजीकी उत्पत्ति कहीगई कि जिस प्रकार वे शिवजी लिङ्गत्व को प्राप्त हुए ॥ १ ॥ इसलिये लिङ्गरूपी शिव व शालग्राम शिलामें प्राप्त विष्णुजी को जो मनुष्य भक्तिसे पूजतेहैं उनको दुःख की पीड़ा नहीं होती हैं ॥ २ ॥ और चातुर्मास्य आनेपर विशेषता से उन शिव व विष्णुजी को पूजै अभेद से पूजेहुए जोकि स्वर्ग व मोक्षको देनेवाले हैं ॥ ३ ॥ हे महाशूद्र ! ब्राह्मण, अग्नि व गऊ के मध्य में प्राप्त विष्णु व शिवदेवजीको जो भक्ति से पूजते हैं विष्णुजी उनको

मोक्ष देते हैं ॥ ४ ॥ और वेदों में परायण मनुष्य वेदोक्त पूर्त व इष्ट कर्म को करै और पञ्चायतन पूजन व सत्यवचन तथा अचंचलता ॥ ५ ॥ और विवेकादिक गुणों से संयुत वह शूद्र उत्तम गति को प्राप्त होताहै और द्वादशाक्षर के ध्यान से अन्य ब्रह्मचर्य व तप नहीं है ॥ ६ ॥ और मंत्रों के विना सोलह उपचारों से नरकादिकोंकी नाशनेवाले विष्णुजीका जिस प्रकार पूजन करना चाहिये वैसे ही हे महाशूद्र ! महापातकों को नाशनेवाली शिवजीकी पूजा करना चाहिये ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले कि इस प्रकार कहते हुए उन दोनों की यह रात्रि व्यतीत होगई और वह शूद्र व शिष्यों से घिरेहुए गालवजी स्थित हुए ॥ ८ ॥ और उससे पूजित

गवांगतौ ॥ येऽर्चयन्ति महाशूद्र तेषां मोक्षप्रदो हरिः ॥ ४ ॥ वेदोक्तं कारयेत्कर्म पूर्तेष्टं वेदतत्परः ॥ पञ्चायतनपूजा च सत्यवादोह्यलोलता ॥ ५ ॥ विवेकादिगुणैर्युक्तः स शूद्रो याति सद्गतिम् ॥ ब्रह्मचर्यं तपो नान्यद् द्वादशाक्षर चिन्तनात् ॥ ६ ॥ मन्त्रैर्विना षोडशसोपचारैः कार्या सुपूजानरकादिहन्तुः ॥ यथा तथा वै गिरिजापतेश्च कार्या महाशूद्र महाघहन्त्री ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं कथयतोरेषा रजनी क्षयमाययौ ॥ सच्छूद्रो गालवश्चैव शिष्यैश्च परिवारितः ॥ ८ ॥ स तेन पूजितो विप्रो ययौ शीघ्रं निजाश्रमम् ॥ ९ ॥ य इमं शृणुयान्मर्त्यो वाचयेच्छ्रावयेच्च वा ॥ श्लोकं वा सर्वमपि च तस्य पुण्यक्षयो न हि ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्यानो नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ कथं नित्या भगवती हरपत्नी यशस्विनी ॥ योगसिद्धिं सुमहतीं प्राप मासचतुष्टये ॥ १ ॥

वे ब्राह्मण गालवजी शीघ्रही अपने आश्रमको चलेगये ॥ ९ ॥ जो मनुष्य इसको सुनता है या श्लोक व सबको पढ़ता व सुनाता है उसके पुण्य का नाश नहीं होता है ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पैजवनोपाख्यानोनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

दो० । कह्यो उमासन शिव यथा द्वादशअक्षर ध्यान । उन्तिसवें अध्यायमें सोई कियो बखान ॥ नारदजी बोले कि शिवजीकी स्त्री यशस्विनी व अविनाशिनी

पार्वती भगवती ने चातुर्मास्य में द्वादशाक्षर से उपजे हुए इस मंत्रराजको जपकर कैसे बड़ी भारी योगसिद्धि को पाया है इसको तुम विस्तार से यथायोग्य कहो ॥ १ । २ ॥ ब्रह्माजी बोले कि चातुर्मास्य में विष्णुजी के सोनेपर दृढ़व्रतोंवाली पार्वतीजी मन, वचन व कर्म से विष्णुजी की भक्तिमें परायण हुईं ॥ ३ ॥ और पिताके मनोहर शिखर पै सदैव टिकीहुई वे तपस्यामें स्थितहुईं और देवता, ब्राह्मण, अग्नि, गऊ, पीपल व अतिथि के पूजन में परायण हुईं ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर चातुर्मास्य प्राप्त होनेपर निर्मल विष्णुवासर में जैसा शिवजी ने कहा था वैसाही उन्होंने जप किया ॥ ५ ॥ और शंखचक्रधारी, किरीटधारी, चतुर्भुज, मेघों

मन्त्रराजमिमं जप्त्वा द्वादशाक्षरसंभवम् ॥ एतन्मे विस्तरेण त्वं कथयस्व यथातथम् ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते पार्वती नियतव्रता ॥ मनसा कर्मणा वाचा हरिभक्तिपरायणा ॥ ३ ॥ चारुशृङ्गे पितुर्नित्यं तिष्ठन्ती तपसि स्थिता ॥ देवद्विजाग्निगोश्वत्थातिथिपूजापरायणा ॥ ४ ॥ चातुर्मास्येथ संप्राप्ते विमले हरिवासरे ॥ जजाप परमं मन्त्रं यथादिष्टं पिनाकिना ॥ ५ ॥ शङ्खचक्रधरो विष्णुश्चतुर्हस्तः किरीटधृक् ॥ मेघश्यामोम्बुजाक्षश्च सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ ६ ॥ गरुडाधिष्ठितो हृष्टो वसन् व्याप्य जगत्त्रयम् ॥ श्रीवत्सकौस्तुभयुतः पीतकौशेयवस्त्रकः ॥ ७ ॥ सर्वाभरणशोभाभिरभिदीप्तमहावपुः ॥ बभाषे पार्वतीं विष्णुः प्रसन्नवदनः शुभाम् ॥ देवि तुष्टोऽस्मि भद्रन्ते कथयस्व त्वमीप्सितम् ॥ ८ ॥ पार्वत्युवाच ॥ तज्ज्ञानममलं देहि येन नावर्त्तनं भवेत् ॥ इत्युक्तः स महाविष्णुः प्रत्युवाच हरप्रियाम् ॥ ९ ॥ स एव देवदेवेशस्तव वक्ष्यत्यसंशयम् ॥ स एव भगवान्साक्षी देहान्तरबहिः

के समान श्याम, कमललोचन व करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावान् विष्णुजी ॥ ६ ॥ गरुड़ पै स्थित व त्रिलोक में व्याप्त होकर बसते हुए व श्रीवत्स तथा कौस्तुभ से संयुत और पीत रेशमी वस्त्रों को पहने हुए ॥ ७ ॥ व सब आभूषणों की शोभाओंसे प्रकाशित महाशरीरवाले प्रसन्नमुखवाले विष्णुजी ने उत्तम पार्वतीजी से यह कहा कि हे देवि ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हू व तुम्हारा कल्याण होवै तुम मनोरथ को कहो ॥ ८ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि उस निर्मल ज्ञान को दीजिये कि जिससे फिर आगमन न होवै ऐसा कहेहुए उन महाविष्णुजी ने पार्वतीजी से कहा ॥ ९ ॥ कि वेही देवदेवेश विष्णुजी तुमसे निरसन्देह कहैंगे और वेही साक्षी भगवान्

देह के भीतर व बाहर स्थित हैं ॥ १० ॥ और संसारको रचनेवाले व रक्षक और पवित्रों के भी पवित्रकारक हैं और आदि अन्त से रहित व धर्म तथा धर्मादिकों के वे स्वामी हैं ॥ ११ ॥ और जो तीनों अक्षरों से सेवने योग्य हैं वही अखण्ड ब्रह्म है और मूर्ति व अमूर्ति के स्वरूप से जो जो जन्मधारी है वह वही है ॥ १२ ॥ और तुमसे कहनेके लिये मेरा अधिकार नहीं है इसमें सन्देह नहीं है यह कहकर भगवान् विष्णुजी प्रसन्न होगये व चुप होरहे ॥ १३ ॥ इसी अवसरमें सब भूतगणों से संयुत शिवजी सब मनोरथोंवाले विमान के ऊपर चढ़कर पार्वतीजी के आश्रम को गये ॥ १४ ॥ व उन पार्वतीजी ने सखियों के सामने भी परमेश्वर

स्थितः ॥ १० ॥ विश्वस्रष्टा च गोप्ता च पवित्राणां च पावनः ॥ अनादिनिधनो धर्मो धर्मादीनां प्रभुर्हि सः ॥ ११ ॥ अक्षरत्रयसेव्यं यत्सकलं ब्रह्म एव सः ॥ मूर्त्तामूर्त्तस्वरूपेण यो यो जन्मधरो हि सः ॥ १२ ॥ ममाधिकारो नैवास्ति वक्तुं तव न संशयः ॥ इत्युक्त्वा भगवानीशो विरराम प्रहृष्टवान् ॥ १३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्गिरिजाश्रममभ्यगात् ॥ सर्वभूतगणैर्युक्तो विमाने सार्वकामिके ॥ १४ ॥ तया वै भगवान् देवः पूजितः परमेश्वरः ॥ सखीनामपि प्रत्यक्षमाश्चर्यं समजायत ॥ १५ ॥ स्तुत्वाऽथ तं महादेवं विष्णुर्देहे लयं ययौ ॥ अथोवाच महेशानः पार्वतीं परमेश्वरः ॥ १६ ॥ विमानवरमारोह तुष्टोऽहं तव सुव्रते ॥ गत्वैकान्तप्रदेशन्ते कथये परमं महः ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वा भगवतीं करे गृह्य मुदान्वितः ॥ विमानवरमारोप्य लीलया प्रययौ तदा ॥ १८ ॥ नानाधातुमयानद्रीन् नानारत्नविचित्रितान् ॥ नदीनिर्झरकुञ्जांश्च नदान्कोकिलकूजितान् ॥ १९ ॥ अखातान् देवखातांश्च गङ्गाद्याः सरित

विष्णुदेव जी को पूजा व वह आश्चर्य हुआ ॥ १५ ॥ कि उन महादेवजी की स्तुति कर विष्णुजी शरीर में मिलगये इसके उपरान्त शिवजी ने पार्वतीजी से कहा ॥ १६ ॥ कि हे सुव्रते ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं इस उत्तम विमान के ऊपर चढ़ो मैं एकान्तस्थान में जाकर तुमसे उत्तम तेजको कहूंगा ॥ १७ ॥ ऐसा पार्वतीजी से कहकर उस समय हर्षसंयुत शिवजी हाथ में पकड़ कर उत्तम विमान पै चढ़ाकर लीलासे चलेगये ॥ १८ ॥ और अनेक प्रकार के धातुमय तथा अनेक रत्नों से चित्रित पर्वतों को व नदी, झरना और कुञ्जों को व कोकिलों से शब्दित नदोंको दिखाते हुए ॥ १९ ॥ और विन खोदेहुए देवखातों (जलाशयों)

व गंगादिक नदियों तथा हज़ारों पत्तों के पिंजरवाले सुगन्धित कमलों को दिखाते हुए ॥ २० ॥ और बड़े भारी कर्णिकार व कोविदार, ताल, तमाल, हिंताल, प्रियंगु व कटहलों के वृक्षों को दिखाते हुए ॥ २१ ॥ व फूलेहुए बहुत से तिलक व मौलसिरी के वृक्षों को व विष्णुजी के पिंजरमय क्षेत्रों को दिखाते हुए ॥ २२ ॥ शिवजी श्रीगंगाजी के किनारे गये व फूलेहुए काशोंवाले स्वर्णमय तथा शरस्तम्ब के गणों से संयुत बड़े भारी शरवन याने नरकुल के वनको गये ॥ २३ ॥ जो कि सोने की भूमिके विभाग में स्थित तथा अग्नि के समान शोभावाले मृगों व पक्षियों से संयुत था और वहां किनारे पै प्राप्त ऊर्ध्वरेता मुनियों के ॥ २४ ॥

स्तथा ॥ सौगन्धिकांश्च कह्लारान् सहस्रदलपिञ्जरान् ॥ २० ॥ दर्शयन् कर्णिकारांश्च कोविदारान् महाद्रु मान् ॥ तालांस्तमालान् हिन्तालान् प्रियङ्गून् पनसानपि ॥ २१ ॥ तिलकान् बकुलांश्चैव बहूनपि च पुष्पितान् ॥ क्षेत्राणि पद्मनाभस्य पिञ्जराणि विदर्शयन् ॥ २२ ॥ ययौ देवनदीतीरे गतं शरवणं महत् ॥ फुल्लकाशं स्वर्णमयं शरस्तम्बगणान्वितम् ॥ २३ ॥ हेमभूमिविभागस्थं वह्निकान्तिमृगद्विजम् ॥ तत्र तीरगतानां च मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ २४ ॥ आश्रमान् स विमानाग्रे तिष्ठन् पत्न्यै ह्यदर्शयत् ॥ षट्कृत्तिकाश्च ददृशे पार्वत्या वनसन्निधौ ॥ २५ ॥ स्नाताः स्वलंकृताश्चन्द्रपत्न्यस्ता विरजाम्बराः ॥ ऊचुस्ता योजितकराः क्व त्वं पुत्राय गच्छसि ॥ २६ ॥ तत्कथ्यतां महाभागे स च ते दर्शनं गतः ॥ २७ ॥ पार्वत्युवाच ॥ ममभाग्यवशात्पुत्रः कथमुत्सङ्गमाहरेत् ॥ २७ ॥ नह्यभाग्यवशात्पुंसां क्वापि सौख्यं निरन्तरम् ॥ २८ ॥ सुतनाम्नाप्यहं पृष्टा भवतीनां च दर्शनात् ॥ किमर्थमि

आश्रमों को विमान के अग्रभाग पै बैठेहुए उन शिवजी ने स्त्रीके लिये दिखाया और पार्वतीजी ने वनके समीप छह कृत्तिकाओं को देखा ॥ २५ ॥ और स्नान किये व निर्मल वस्त्रों को पहने उन बहुतही भूषित चन्द्रमा की स्त्रियों ने हाथों को जोडकर कहा कि पुत्र के लिये तुम कहाँ जाती हो ॥ २६ ॥ हे महाभागे ! उसको कहिये क्योंकि वह पुत्र तुम्हारे दर्शन को प्राप्त हुआ है ॥ २७ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि मेरे भाग्यके वशसे कैसे पुत्र गोदीमें प्राप्त होगा क्योंकि पुरुषों के अभाग्यके वश से कहीं भी सदैव सुख नहीं होता है ॥ २८ ॥ और आप सबों के दर्शन से मैं पुत्र के नाम से पूंछीगई और तुम सब किसलिये यहां प्राप्तहुई हो

इसको शीघ्रही कहिये ॥ २९ ॥ कृत्तिकाएं बोलीं कि हे सुंदरि ! यहां धरेहुए तुम्हारे पुत्रको देनेके लिये व सूर्यनारायण के चातुर्मास्य में प्राप्त होनेपर श्रीगंगाजी में नहाने के लिये हम सब यहाँ आई हैं ॥ ३० ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे सखियो ! हास्य का समय नहीं है सत्यही कहिये क्योंकि एकान्त के समय में परस्पर हास्य होता है ॥ ३१ ॥ कृत्तिकाएं बोलीं कि हे त्रैलोक्यशोभिते, देवि ! हम सब सत्य कहती हैं कि इस स्तंब (गुच्छे) के समूह के मध्य में स्थित बालक को ग्रहण कीजिये ॥ ३२ ॥ कृत्तिकाओं का वचन सुनकर उस समय पार्वतीजी शंकित हुईं व उन्होंने अग्निके समान व प्रकाशित तेजवाले षड़ानन बालकको देखा ॥३३॥

ह संप्राप्ताः कथ्यतामविलम्बितम् ॥ २९ ॥ कृत्तिका ऊचुः ॥ वयं तव सुतं न्यस्तं प्रदातुमिह सुन्दरि ॥ चातुर्मास्ये रवौ स्नातुमागता देवनिम्नगाम् ॥ ३० ॥ पार्वत्युवाच ॥ न हास्यावसरः सख्यः सत्यमेवहि कथ्यताम् ॥ एकान्तावसरे हास्यं जायते चेतरेतरम् ॥ ३१ ॥ कृत्तिका ऊचुः ॥ सत्यं वदामहे देवि तव त्रैलोक्यशोभिते ॥ अस्य स्तम्बसमूहस्य मध्यस्थं बालकं वृणु ॥ ३२ ॥ कृत्तिकानां वचः श्रुत्वा शङ्किता पार्वती तदा ॥ ददर्श बालं दीप्ताभं षण्मुखं दीप्तवर्चसम् ॥ ३३ ॥ तडित्कोटिप्रतीकाशं रूपदिव्यश्रियायुतम् ॥ वह्निपुत्रं च गाङ्गेयं कार्त्तिकेयं महाबलम् ॥ ३४ ॥ सावत्सेति गृहीत्वा तं कुमारं पाणिना मुदा ॥ विमानमध्यमादाय कृत्वोत्सङ्गे ह्युवाच ह ॥३५॥ चिरंजीव चिरं नन्द चिरं नन्दय बान्धवान् ॥ इत्युक्त्वा गाढमालिङ्ग्य मूर्ध्नि चाघ्राय तं सुतम् ॥ ३६ ॥ संहृष्टा परमोदारं भा

व करोड़ बिजलियों के समान व रूपकी उत्तम लक्ष्मी से संयुत अग्निपुत्र व गंगासुत तथा कृत्तिकाओं के बालक महाबलवान् स्वामिकार्त्तिकेयजी को देखा ॥३४॥ व हे वत्स ! ऐसा कहकर उस बालक को हर्ष से लेकर हाथ से पकड़ कर विमान के बीच में लाकर उन पार्वतीजी ने गोद में करके यह कहा ॥ ३५ ॥ कि बहुत दिनतक जियो व बहुत समय तक प्रसन्न रहो और बहुत दिनोंतक बन्धुओं को आनन्द कीजिये यह कहकर दृढ़ता से लिपटा कर व उस पुत्र को मस्तक में सूंघकर ॥ ३६ ॥ प्रसन्नमनवाले व प्रकाशमान तथा बड़े उदार स्वामिकार्त्तिकेयजी को देखकर पार्वतीजी प्रसन्न हुईं और स्वामिकार्त्तिकेयजी बड़े प्रेमसे

शिवजीको प्रणाम कर ॥ ३७ ॥ तदनन्तर हाथोंको जोड़कर प्रसन्न चित्तसे सावधान हुए और वह विमान नदों व समुद्रोंको नाँघकर शीघ्रही चला ॥ ३८ ॥ और लाखों योजन चौड़े जम्बूद्वीप व उससे दूने क्षारसमुद्र को नाँघकर गया ॥ ३९ ॥ और उत्तरकुरुवों को नाँघकर सूर्यके समान तेजवाले विमानके द्वारा समुद्र से दूने कुश नाम से कहेहुए द्वीपको नाँघ गये ॥ ४० ॥ और दिव्यलोकों से घिरे व दिव्यपर्वतों से संयुत इक्षुसमुद्र से दूने द्वीप को व उस द्वीप से फिर दूने ॥ ४१ ॥ उस समुद्र को नाँघकर व उस समुद्र से दूने क्रौंचसंज्ञक द्वीपको नाँघगये और उससे भी दूना मदिरा का समुद्र यक्षों से सेवित है ॥ ४२ ॥ और उससे दूना

स्वरं हृष्टमानसम् ॥ कार्त्तिकेयो महाप्रेम्णा प्रणिपत्य महेश्वरम् ॥ ३७ ॥ ततः प्राञ्जलिरव्यग्रः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ तद्विमानं ययौ शीघ्रं तीर्त्वा नदनदीपतीन् ॥ ३८ ॥ जम्बूद्वीपमतिक्रम्य लक्षयोजनमायतम् ॥ ततः समुद्रं द्विगुणं लवणोदं तथैवच ॥ ३९ ॥ उत्तरांश्च कुरून्नीत्वा विमानेनार्कतेजसा ॥ समुद्राद्द्विगुणं द्वीपं कुशनामेति कीर्तितम् ॥ ४० ॥ दिव्यलोकसमाक्रान्तं दिव्यपर्वतसंकुलम् ॥ इक्षूदाद्द्विगुणं द्वीपं तद्द्वीपाद् द्विगुणं पुनः ॥ ४१ ॥ तमतिक्रम्य तत्सिन्धोर्द्विगुणं क्रौञ्चसंज्ञितम् ॥ ततोऽपि द्विगुणं सिन्धुः सुरोदो यक्षसेवितः ॥ ४२ ॥ ततोऽपि द्विगुणं द्वीपं शाकद्वीपेतिसंज्ञितम् ॥ अर्णवद्विगुणं तस्मादाज्यरूपं सुनिर्मितम् ॥ ४३ ॥ परमस्वादुसंपूर्णं यत्र सिद्धाः समन्ततः ॥ तस्माच्च द्विगुणं द्वीपं शाल्मलीवृक्षसंज्ञितम् ॥ ४४ ॥ समुद्रो द्विगुणस्तत्र दधिमण्डोदसंभवः ॥ साध्या वसन्ति नियतं महत्तपसि संस्थिताः ॥ ४५ ॥ ततोऽपि द्विगुणं द्वीपं प्लक्षनामेति विश्रुतम् ॥ क्षीरोदो द्विगुणस्तत्र यत्र सन्ति महर्षयः ॥ ४६ ॥ षडिमानि सुदिव्यानि भौमाः स्वर्गा उदाहृताः ॥ तत्र स्वर्णमयी भूमिस्तथा रजतसं

शाकद्वीपसंज्ञक द्वीप है व उससे दूना घृतरूप बनाहुआ समुद्र है ॥ ४३ ॥ जोकि उत्तम स्वादु से पूर्ण है जहा कि सब ओर सिद्ध हैं और उससे दूना शाल्मली (सेमर) वृक्षसञ्ज्ञक द्वीप है ॥ ४४ ॥ और वहां दधिमंडोद से उपजा हुआ उससे दूना समुद्र है और वहा बड़े तप में स्थित साध्य देवता सदैव बसते हैं ॥ ४५ ॥ व उससे भी दूना प्लक्ष नामक प्रसिद्ध द्वीप है वहां क्षीरोद समुद्र है जहां कि महर्षिलोग बसते हैं ॥ ४६ ॥ और ये छह द्वीप पृथ्वी के स्वर्ग कहे गये

हैं व उनमें चांदी से संयुत व सुनहली पृथ्वी है ॥ ४७ ॥ और शहद के समान स्वादुवाले वृक्षों से सब कामनाओं को देनेवाली है और जहां स्त्री व पुरुषों के घरमें कल्पवृक्ष स्थित हैं ॥ ४८ ॥ वे वस्त्रों और भूषणों के समूहों को बरसाते हैं हे मुनिसत्तम ! इन देखेहुए चिह्नोंवाले द्वीपों को ॥ ४९ ॥ शिवजी आकाशमार्ग से विमान के द्वारा नाँघगये और लक्षद्वीप के अन्त में उससे दुगुना क्षीरसागर है ॥ ५० ॥ और उसके मध्य में श्वेत नामक निश्चय कियाहुआ बड़ा भारी द्वीप है वहां सैकड़ों शिखरों व अनेकों वृक्षोंवाला रम्यकनामक पर्वत है ॥ ५१ ॥ उसके बड़े भारी दिव्य शिखर पै जब विमान स्थापित किया गया तब अमृत

युता ॥ ४७ ॥ वृक्षैर्मधूपमस्वादैः सर्वकामप्रदायिका ॥ यत्र स्त्रीपुरुषाणां च कल्पवृक्षा गृहे स्थिताः ॥ ४८ ॥ वासांसि भूषणानां च समूहान् वर्षयन्ति च ॥ एतानि दृष्टचिह्नानि द्वीपानि मुनिसत्तम ॥ ४९ ॥ महेश्वरो विमानेन न्यत्यक्रामद्विहायसा ॥ प्लक्षद्वीपस्य च प्रान्ते द्विगुणः क्षीरसागरः ॥ ५० ॥ तन्मध्ये सुमहद्द्वीपं श्वेतं नाम सुनिश्चितम् ॥ रम्यकःपर्वतस्तत्र शतशृङ्गोमितद्रुमः ॥ ५१ ॥ तस्य शृङ्गे महद्दिव्ये विमानं स्थापितं यदा ॥ तदामृतफलैर्वृक्षैः सेविते हेमबालुके ॥ ५२ ॥ क्षीरस्कन्देन विहृते शिलातलसुसंवृते ॥ विविक्ते सर्वसुभगे मणिरत्नसमन्विते ॥ ५३ ॥ उमायै कथयामास देवदेवः पिनाकधृक् ॥ कार्त्तिकेयोऽपि शुश्राव गुह्याद्गुह्यतरं महत् ॥ ५४ ॥ ध्यानयोगं मन्त्ररूपं द्वादशाक्षरसंज्ञितम् ॥ प्रणवेन युतं साग्र्यं सरहस्यं श्रुतेः परम् ॥ ५५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अक्षरत्रयसंयुक्तो मन्त्रोयं सकृदक्षरः ॥ माघमासहितश्चायममायो विश्वपावनः ॥ ५६ ॥ विष्णुरूपो विष्णुमध्यो मन्त्रत्रयसमन्वितः ॥

के समान फलोंवाले वृक्षों से सेवित व सुवर्णरूपी बालूवाले ॥ ५२ ॥ तथा दुग्ध के प्रभावसे विहारवाले व शिलातलों से आच्छादित और मणियों व रत्नों से संयुत व सब से सुन्दर एकान्त में ॥ ५३ ॥ पिनाकधारी देवदेव शिवजीने पार्वतीजी से द्वादशाक्षर मत्र को कहा और स्वामिकार्त्तिकेयजी ने भी गुप्त से भी बहुत गुप्त उस बड़े भारी ध्यान योग व ॐकारसे संयुत तथा श्रेष्ठता युक्त व रहस्यसमेत और वेद से परे द्वादशाक्षरसंज्ञक मंत्ररूप को सुना ॥ ५४ । ५५ ॥ महादेवजी बोले कि तीन अक्षरों से संयुत यह एकाक्षरमंत्र है और मायारहित व संसार को पवित्र करनेवाला यह माघ महीनेमें हितकारी है ॥ ५६ ॥

और विष्णु मध्यवाला यह विष्णुरूपी मन्त्र तीन मन्त्रों से संयुत है और चौथी कला से समस्त ब्रह्माण्डगणों से सेवित है ॥ ५७ ॥ और अकाममुनियोंसे सेवन करने योग्य तथा महाविद्यादिकों से सेवित है और नाभि (तोंदी) से शिर पर्यन्त व्याप्त है व सबको सुखदायक है ॥ ५८ ॥ और ॐकार ऐसी प्रिय उक्तिवाला मन्त्र तुम्हारे महादुःखोंको नाशनेवाला है पहले ज्ञानरूपी व सुखके आश्रय उस ॐकारको ध्यान कर ॥ ५९ ॥ व सर्वव्यापी ब्रह्मको जानकर शरीर के शोधन में तत्पर व ज्ञाननेत्रोंवाला मनुष्य कमलासनमें परायण होकर भलीभाति पूजकर ॥ ६० ॥ नेत्रोंको मूंदकर व हाथोंको जोड़कर चित्तमें ध्यानरूपसे मंगलरूप शिवजी

तुरीयकलयाशेषब्रह्माण्डगणसेवितः ॥ ५७ ॥ निष्कामैर्मुनिभिः सेव्यो महाविद्यादिसेवितः ॥ नाभितः शिरसि व्याप्त अखण्डसुखदायकः ॥ ५८ ॥ ॐकारेति प्रियोक्तिस्ते महादुःखविनाशनः ॥ तं पूर्वं प्रणवं ध्यात्वा ज्ञानरूपं सुखाश्रयम् ॥ ५९ ॥ ज्ञात्वा सर्वगतं ब्रह्म देहशोधनतत्परः ॥ पद्मासनपरो भूत्वा संपूज्य ज्ञानलोचनः ॥ ६० ॥ नेत्रे मुकुलिते कृत्वा करौ कृत्वा तु संहतौ ॥ चेतसि ध्यानरूपेण चिन्तयेच्छिवमङ्गलम् ॥ ६१ ॥ तडित्कोटिप्रतीकाशं सूर्यकोटिसमच्छविम् ॥ चन्द्रलक्षसमाच्छन्नं पुरुषं द्योतिताखिलम् ॥ ६२ ॥ मूर्त्तामूर्त्तविराजन्तं सदसद्रूपमव्ययम् ॥ चिन्तयित्वा विराड्रूपं न भूयःस्तनपो भवेत् ॥ चातुर्मास्ये सकृदपि ध्यानात्कल्मषसंक्षयः ॥ ६३ ॥ एवं च मद्रूपमिदं मुरारेरमोघवीर्यं गुणतोप्यपारम् ॥ विलोकयेद्योऽघविनाशनाय क्षणं प्रभुर्जन्मशतोद्भवाय ॥ ६४ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्येध्यानयोगोनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ * ॥

को ध्यानकरै ॥ ६१ ॥ और करोड़ों बिजलियोंके समान व करोड़ सूर्योंके समान छविवान् तथा लाखों चन्द्रमाको आच्छादित करनेवाले व सबको प्रकाश करनेवाले पुरुषरूप ॥ ६२ ॥ व मूर्ति तथा अमूर्ति से विराजित व कार्य कारणरूप अव्यय, विराट्रूप परमेश्वर को ध्यान कर फिर स्तन पीनेवाला नहीं होता है और चातुर्मास्य में एक वार भी ध्यान से पातकों का नाश होता है ॥ ६३ ॥ इस प्रकार विष्णुजी के इस सफल प्रभाववाले व गुण से अपार मेरेरूप को जो क्षणभर पातकों के नाश के लिये देखता है वह सैकड़ों जन्मोंकी उत्पत्ति के लिये समर्थ होता है ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेचातुर्मास्यमाहात्म्येएकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

दो०। ध्यान योगको उमासन कह्यो यथा शिवनाथ। सोइ तीस अध्यायमें वर्णित उत्तम गाथ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे देवेश ! मैं ध्यानयोग को पाकर जिस प्रकार ज्ञान योग को पाऊं वैसाही कीजिये कि जिस प्रकार मैं देवी हो जाऊं॥ १॥ शिवजी बोले कि हे सुकुमाराङ्गि! द्वादशाक्षरसंज्ञक जो यह मन्त्रराज कहा गया वेदमें सारांश व सनातन वह जपना चाहिये॥२॥ और ॐकार सब वेदोंका आदि व सब ब्रह्माण्डों का याजक है तथा सब कार्यों में प्रथम व सब सिद्धियों का दायक है॥ ३॥ और सफ़ेदरंग व मधुच्छंदा ऋषि हैं तथा ब्रह्मादेवता व गायत्री परमात्मा हैं और सब कर्मों में विनियोग है॥ ४॥ यह ब्रह्ममयबीज है व इसमें

पार्वत्युवाच॥ ध्यानयोगमहं प्राप्य ज्ञानयोगमवाप्नुयाम्॥ तथा कुरुष्व देवेश यथाहममरीभवे॥ १॥ ईश्वर उवाच॥ प्रत्युक्तोऽयं मन्त्रराजो द्वादशाक्षरसंज्ञितः॥ जप्तव्यः सुकुमाराङ्गि वेदे सारः सनातनः॥ २॥ प्रणवः सर्ववेदाद्यः सर्वब्रह्माण्डयाजकः॥ प्रथमः सर्वकार्येषु सर्वसिद्धिप्रदायकः॥ ३॥ सितवर्णो मधुच्छन्दा ऋषिर्ब्रह्मा तु देवता॥ परमात्मा तु गायत्री नियोगः सर्वकर्मसु॥ ४॥ एतद्ब्रह्ममयं बीजं विश्वमत्रसमन्वितम्॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वाख्यं सदसद्रूपमव्ययम्॥ ५॥ नकारः पीतवर्णस्तु जलबीजः सनातनः॥ बीजं पृथ्वी मनश्छन्दो विषहा विनियोगतः॥ ६॥ मोकारः पृथिवीबीजो विश्वामित्रसमन्वितः॥ रक्तवर्णो महातेजा धनदो विनियोजितः॥ ७॥ भकारः पञ्चवर्णस्तु जलबीजः सनातनः॥ मरीचिना समायुक्तः पूजितः सर्वभोगदः॥ ८॥ गकारो हेमरक्ताभो भरद्वाजसमन्वितः॥ वायुबीजो विनियोगं कुर्वतां सर्वभोगदः॥ ९॥ वकारः कुन्दधवलो व्योमबीजो महाबलः॥

संसार संयुक्त है और वेद, वेदांगतत्त्व नामक व कार्य, कारण रूप तथा अविकारी है॥ ५॥ और नकार पीलेरंग का है व सनातन जलबीज है और पृथ्वी बीज व मन छंद है और विषहा विनियोग है॥ ६॥ और मोकार का पृथ्वीबीज है व विश्वामित्र ऋषि से संयुत हैं और लालरंग व बड़े तेजस्वी कुबेर देवता नियुक्त हैं॥ ७॥ और भकार पांचरंग का है व सनातन जलबीज है और मरीचि ऋषिसे संयुक्त पूजा हुआ वह सब सुखों को देनेवाला है॥ ८॥ और गकार भरद्वाज ऋषि से संयुत सुवर्ण के समान अरुणरंग है व पवन बीज है और विनियोग करनेवालों को सब सुखों का दायक है॥ ९॥ और कुन्द के समान सफेद

बकार बड़ा बलवान् है और उसका आकाश बीज है और अत्रि ऋषि को आगे कर युक्त किया हुआ वह मोक्षदायक है ॥ १० ॥ और तेकार बिजली का विकार है व बड़ा भारी चन्द्रमा बीज कहा गया है व अंगिराजी श्रेष्ठ ऋषि हैं और कामनाओंवाला कर्म वर्जित है ॥ ११ ॥ और वाकार धूम्ररंग है और मनके समान वेगवान् सूर्यबीज है तथा पुलस्ति ऋषि से संयुत नियुक्त किया हुआ वह सब सुखों का देनेवाला है ॥ १२ ॥ और सुकार अक्षर सदैव दुपहरी के फूल के समान प्रकाशवान् है और दुःख से सहने योग्य मनबीज है व पुलह ऋषि से आश्रित वह अर्थ को देनेवाला है ॥ १३ ॥ और देकार अक्षर का रंग हंस रूप के समान

ऋषिमत्त्रिपुरस्कृत्य योजितो मोक्षदायकः ॥ १० ॥ तेकारो विद्युद्विकारः सोमबीजं महत्स्मृतम् ॥ आङ्गिरा मुनिशार्दूलो वर्जितं कर्मकामिकम् ॥ ११ ॥ वाकारो धूम्रवर्णश्च सूर्यबीजं मनोजवम् ॥ पुलस्त्यर्षिसमायुक्तं नियुक्तं सर्वसौख्यदम् ॥ १२ ॥ सुकारश्चाक्षरोनित्यं जपाकुसुमभास्वरः ॥ मनोबीजं दुर्विषह्यं पुलहाश्रितमर्थदम् ॥ १३ ॥ देकाराक्षरकं वर्णं हंसरूपं च कर्बुरम् ॥ सिद्धिबीजं महासत्त्वं क्रतौ कृतनियोजितम् ॥ १४ ॥ वाकारो निर्मलो नित्यं यजमानस्तु बीजभृत् ॥ प्रचेतात्रृषिमाश्रेयं मोक्षे मोक्षप्रदायकम् ॥ १५ ॥ यकारस्य महाबीजं पिङ्गवर्णश्च खेचरी ॥ भूचरी च महासिद्धिः सर्वदा भवचिन्तनम् ॥ १६ ॥ भृगुयन्त्रे समाभ्यर्च्य नियोगे सर्वकर्मकृत् ॥ गायत्रीछन्द एतेषां देहन्यासक्रमो भवेत् ॥ १७ ॥ ॐकारं सर्वदा न्यस्यन्नकारं पादयोर्द्वयोः ॥ मोकारं गुह्यदेशे तु भकारं नाभि

व कबरा है और बड़ा प्रभाववान् सिद्धि बीज है व यज्ञ में नियोग किया गया है ॥ १४ ॥ और वाकार नित्य निर्मल है व बीज को धारनेवाला यजमान है और प्रचेता ऋषि आश्रय करने योग्य हैं तथा मोक्ष में मोक्ष का दायक है ॥ १५ ॥ और यकार का महाबीज है व पिंगल वर्ण है और खेचरी व भूचरी महासिद्धि देवता है तथा सदैव संसार का ध्यान होता है ॥ १६ ॥ और भृगुयन्त्र में पूजकर नियोग में सब कर्मों को करनेवाला है और इन अक्षरों की गायत्री छंद है व शरीर में न्यास का क्रम होता है ॥ १७ ॥ कि सदैव ॐकार को न्यास करता हुआ मनुष्य नकार को दोनों चरणों में न्यास करै और मोकार को गुह्य इन्द्रिय में व भकार

को नाभि के कमल में न्यास करै ॥ १८ ॥ और गकार को हृदय में न्यास कर वकार कण्ठ के मध्य में प्राप्त होवै और तेकार को दाहिने हाथ में न्यास करै और वाकार बाँये हाथ में प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ और सुकार को मुख की जिह्वा में न्यास करै व देकार को दोनों कानों में तथा वाकार को दोनों नेत्रों में और यकार को मस्तकमें न्यास करै ॥ २० ॥ और लिङ्गमुद्रा, योनिमुद्रा व धेनुमुद्रा ये सब तीनों अक्षरों के विना मन्त्र के रूप में किये गये हैं ॥२१॥ हे देवि ! प्रतिदिन जो इसको जपता है वह पापों से लिप्त नहीं होता है यह द्वादश लिङ्गरूपी आरोंवाला द्वादशाक्षर मन्त्र कूर्म में स्थित है ॥ २२ ॥ और पूजी हुई बारह ही शाल-

पङ्कजे ॥ १८ ॥ गकारं हृदये न्यस्य वकारः कण्ठमध्यगः ॥ तेकारं दक्षिणे हस्ते वाकारो वामहस्तगः ॥ १६ ॥ सुकारं मुखजिह्वायां देकारः कर्णयोर्द्वयोः ॥ वाकारश्चक्षुषोर्द्वन्द्वे यकारं मस्तकं न्यसेत् ॥ २० ॥ लिङ्गमुद्रा योनिमुद्रा धेनुमुद्रा तथा त्रयम् ॥ सकलं कृतमेताद्धि मन्त्ररूपे विनाक्षरम् ॥ २१ ॥ यो जपेत्प्रत्यहं देवि न स पापैः प्रलिप्यते ॥ एतद्द्वादशलिङ्गारं कर्मस्थं द्वादशाक्षरम् ॥ २२ ॥ शालग्रामशिलाश्चैव द्वादशैव हि पूजिताः ॥ ताभिः सहाक्षरैरेभिः प्रत्यक्षैः सह संपदि ॥ २३ ॥ यथा वर्णमनुध्यानैर्मुनिबीजसमन्वितैः ॥ विनियोगेन सहितैश्छन्दोभिः समलंकृतैः ॥ २४ ॥ ध्यानैर्जपैः पूजितैश्च भक्तानां मुनिसत्तम ॥ मोक्षो भवति बन्धेभ्यः कर्मजेभ्यो न संशयः ॥ २५ ॥ अयं हि ध्यानकर्माख्यो योगो दुष्प्राप्य एव हि ॥ ध्यानयोगं पुनर्वच्मि शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ २६ ॥ ध्यानयोगे न पापानां क्षयो भवति नान्यथा ॥ जपध्यानमयो योगः कर्मयोगो न संशयः ॥ २७ ॥ शब्दब्रह्मसमुद्भूतो वेदेन

ग्राम शिला हैं व उन समेत इन प्रत्यक्ष अक्षरों से संपत्ति में पूजै ॥ २३ ॥ और विनियोग समेत व भूषित छंदों से तथा मुनि व बीज से संयुत अक्षरों के अनुकूल ध्यानों से ॥ २४ ॥ हे मुनिसत्तम ! और जप, पूजन व ध्यानों से भक्तों का कर्म से उपजे हुए बन्धनों से मोक्ष होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ और ध्यानकर्मनामक यह योग दुर्लभ है फिर ध्यानयोग को मैं कहता हूं उसको सावधान मन होकर सुनिये ॥ २६ ॥ कि ध्यानयोग से पापों का नाश होता है अन्यथा नहीं होता है और जप व ध्यानमय योग कर्मयोग है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २७ ॥ और शब्द ब्रह्म से उपजा हुआ द्वादशाक्षर वेद के समान है व

ध्यान से मनुष्य सबको पाताहै और ध्यान से शुद्धताको प्राप्त होताहै ॥ २८ ॥ व ध्यानसे परं ब्रह्म को पाता है और मूर्ति में ध्यानसे उपजा हुआ योग होताहै तथा अवलम्ब समेत ध्यान योग है कि जिससे नारायण का दर्शन होताहै ॥ २९ ॥ और दूसरा समस्त अवलम्बवाला योग ज्ञान योग से कहा गया है जोकि अरूप व अमेय सदैव सब शरीरों वाला तेजहै ॥ ३० ॥ और करोड़ों बिजलियों के समान सदैव उदय व पूर्ण, निष्कल और सकल है जोकि निरंजनमय है ॥ ३१ ॥ और वह स्वरूप सुखरूप तथा तुरीय अवस्था से परे व उपमारहित तथा अमित इन्द्रियों वाला, मूर्तिमान् और मायामें स्थित व सनातन है ॥ ३२ ॥ और दृश्य, अदृश्य,

द्वादशाक्षरः ॥ ध्यानेन सर्वमाप्नोति ध्यानेनाप्नोति शुद्धताम् ॥ २८ ॥ ध्यानेन परमं ब्रह्ममूर्तौ योगस्तु ध्यानजः ॥ सावलम्बो ध्यानयोगो यन्नारायणदर्शनम् ॥ २९ ॥ द्वितीयो निखिलालम्बो ज्ञानयोगेन कीर्त्तितः ॥ अरूपमप्रमेयं यत्सर्वकायं महः सदा ॥ ३० ॥ तडित्कोटिसमप्रख्यं सदोदितमखण्डितम् ॥ निष्कलं सकलं वापि निरञ्जन मयं वियत् ॥ ३१ ॥ तत्स्वरूपं भोगरूपं तुर्यातीतमनूपमम् ॥ विभ्रान्तकरणं मूर्त्तं प्रकृतिस्थं च शाश्वतम् ॥ ३२ ॥ दृश्यादृश्यमजं चैव वैराजं सन्ततोज्ज्वलम् ॥ वहुलं सर्वजं धर्म्यं निर्विकल्पमनीश्वरम् ॥ ३३ ॥ अगोत्रं निर्मलं वापि ब्रह्माण्डशतकारणम् ॥ निरीहं निर्ममं बुद्धिशून्यरूपं च निर्मलम् ॥ ३४ ॥ तदीशरूपं निर्देहं निर्द्वन्द्वं साक्षि मात्रकम् ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं ध्यातृध्येयविवर्जितम् ॥ नोपमेयमगाधं त्वं स्वीकुरुष्व स्वतेजसा ॥ ३५ ॥ पार्वत्यु

अज, विराज व सदैव उज्ज्वल, बहुल व सबों से उत्पन्न तथा धर्मवान् व भेदरहित और असमर्थहै ॥ ३३ ॥ और गोत्ररहित व निर्मल तथा सैकड़ों ब्रह्माण्डोंका कारण है और चेष्टारहित, ममताहीन व बुद्धिसे शून्यरूप और निर्मल है ॥ ३४ ॥ व ईश्वर रूप वह शरीररहित व द्वन्द्वरहित तथा साक्षीमात्र और शुद्ध स्फटिक के समान व ध्याता और ध्यान के योग्य से रहित व अपने तेज से उपमा रहित और अगाध विष्णुजीको तुम स्वीकारकरो ॥ ३५ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे प्रभो! वे ज्ञान योग स्वरूपवाले अमूर्तिमान् नारायणजी किस प्रकार भलीभांति मिलते हैं और उनका कैसे स्थान मिलता है उसको कहिये महादेवजी बोले कि

अंगों में शिर प्रधान है और शिरसे बड़ी भारी वस्तु धारण की जाती है ॥ ३६ । ३७ ॥ और मस्तक से देवता पूजित होता है व सब संसार पूजित होता है और मस्तक से योग धारण कियाजाता है व मस्तक से बल धारण किया जाता है ॥ ३८ ॥ व शिरसे तेज धारण कियाजाता है और जीव शिर में स्थित है और अमूर्त व मूर्तिमान् विष्णुजी का सूर्यनारायण शिर हैं ॥ ३९ ॥ और पृथ्वी लोक हृदय हैं व रसातल चरण हैं और ब्रह्माण्ड के रूपमें मूर्ति व अमूर्ति के स्वरूप से ये ॥ ४० ॥ ब्रह्मरूपी विष्णुही आपही ज्ञानयोग के आश्रय हैं और सब प्राणियों को रचते व सबोंको पालते हैं ॥ ४१ ॥ और सर्वदेवमय ये विष्णुजी सबको नाश

वाच ॥ तत्कथं प्राप्यते सम्यग्ज्ञानयोगस्वरूपकम् ॥३६॥ नारायणममूर्त्तं च स्थानं तस्य वद प्रभो ॥ ईश्वर उवाच ॥ शिरःप्रधानं गात्रेषु शिरसा धार्यते महान् ॥ ३७ ॥ शिरसा पूजितो देवः पूजितं सकलं जगत् ॥ शिरसा धार्यते योगः शिरसा ध्रियते बलम् ॥ ३८ ॥ शिरसा ध्रियते तेजो जीवितं शिरसि स्थितम् ॥ सूर्यः शिरो ह्यमूर्त्तस्य मूर्त्तस्यापि तथैव च ॥ ३९ ॥ उरस्तु पृथिवीलोकः पादश्चैव रसातलम् ॥ अयं ब्रह्माण्डरूपे च मूर्त्तामूर्त्तस्वरूपतः ॥ ४० ॥ विष्णुरेव ब्रह्मरूपो ज्ञानयोगाश्रयः स्वयम् ॥ सृजते सर्वभूतानि पालयत्यपि सर्वशः ॥ ४१ ॥ विनाशयति सर्वं हि सर्वदेवमयो ह्ययम् ॥ सर्वमासेष्वाधिपत्यं येन विष्णोः सनातनम् ॥ ४२ ॥ तस्मात्सर्वेषु मासेषु सर्वेषु दिवसेष्वपि ॥ सर्वेषु यामकालेषु संस्मरन् मुच्यते हरिम् ॥ ४३ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण ध्यानमात्रात्प्रमुच्यते ॥ अमूर्त्तसेवनं गङ्गातीर्थध्यानाद्वरं परम् ॥ ४४ ॥ सर्वदानोत्तरं चैव चातुर्मास्ये न संशयः ॥ सर्वमेव कृतं पापं चातुर्मास्ये शुभा

करते हैं और जिससे सदैव विष्णुजी की सब महीनों में स्वामिता है ॥ ४२ ॥ उस कारण सब महीनों व सब दिनों में भी तथा सब प्रहरों के समयों में विष्णुजी को स्मरण करता हुआ मुक्त होताहै ॥ ४३ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर ध्यान करनेसे मनुष्य मुक्त होजाता है और अमूर्त (विष्णुजी) का सेवन गंगा तीर्थ के ध्यान से उत्तम व श्रेष्ठ है ॥ ४४ ॥ और चातुर्मास्य में वह सब दानोंसे भी श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं है और चातुर्मास्य में सब भी कियाहुआ जो शुभाशुभ कर्म

है ॥ ४५ ॥ हे देवि ! वह अक्षय होताहै इसमें विचार न करना चाहिये व उस कारण सब यत्न से ज्ञानयोग बहुत उत्तम है ॥ ४६ ॥ और विष्णुरूप से सेवन किया हुआ वह ब्रह्म व मोक्ष को देनेवाला है हे शुभे ! सावधान होती हुई तुम मूर्तिमान् व अमूर्तिमान् में स्थिति को सुनो ॥ ४७ ॥ और यह कथा जिस किसीसे व अवश पुत्रसे भी न कहना चाहिये और अदान्त, दुष्ट, चलचित्त व पाखण्डी से न कहना चाहिये ॥ ४८ ॥ और अपने वचन से भ्रष्ट तथा निन्दा के योग्य पुरुष से यह योग से उपजी हुई कथा न कहना चाहिये और नित्य भक्त व जितेन्द्रिय तथा शमादिक गुणोंवाले पुरुष से कहना चाहिये ॥ ४९ ॥ और विष्णुजी के भक्त ब्राह्मण

शुभम् ॥ ४५ ॥ अक्षय्यं तद्भवेद्देवि नात्र कार्या विचारणा ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ज्ञानयोगो वहूत्तमः ॥ ४६ ॥ सेवितो विष्णुरूपेण ब्रह्ममोक्षप्रदायकः ॥ शृणुष्वावहिता भूत्वा मूर्त्तामूर्त्ते स्थितिं शुभे ॥ ४७ ॥ न कथेयं यस्य कस्य सुतस्याप्यवशस्य च ॥ अदान्तायाथ दुष्टाय चलचित्ताय दाम्भिके ॥ ४८ ॥ स्ववाक्च्युताय निन्द्याय न वाच्या योगजा कथा ॥ नित्यभक्ताय दान्ताय शमादिगुणिने तथा ॥ ४९ ॥ विष्णुभक्ताय दातव्या शूद्रायापि द्विजन्मने ॥ अभक्तायाप्यशुचये ब्रह्मस्थानं न कथ्यते ॥ ५० ॥ मद्भक्त्या योगसिद्धिं त्वं गृहाणाशु तपोधने ॥ अभूतं ज्ञानगम्यं तं विद्धि नारायणं परम् ॥ ५१ ॥ नादरूपेण शिरसि तिष्ठन्तं सर्वदेहिनाम् ॥ स एव जीव शिरसि वर्त्तते सूर्यबिम्बवत् ॥ ५२ ॥ सदोदितः सूक्ष्मरूपो मूर्त्तो मूर्त्या प्रणीयते ॥ अभ्यासेन सदा देवि प्राप्यते परमात्मकः ॥ ५३ ॥ शरीरे सकला देवा योगिनो निवसन्ति हि ॥ कर्णे तु दक्षिणे नद्यो निवसन्ति तथापराः ॥ ५४ ॥

व शूद्रके लिये भी कहना चाहिये क्योंकि अभक्त व अशुद्ध पुरुष से ब्रह्मस्थान नहीं कहा जाता है ॥ ५० ॥ हे तपोधने ! मेरी भक्ति से तुम योगसिद्धि को शीघ्रही ग्रहण कीजिये व योग से प्राप्त होने योग्य उन अभूत नारायण को श्रेष्ठ जानिये ॥ ५१ ॥ व नादरूप से सब प्राणियों के शिरमें स्थित जानिये और वही प्राणियों के मस्तक में सूर्यनारायण के बिम्ब के समान वर्तमान है ॥ ५२ ॥ व हे देवि ! सदैव वह सूक्ष्मरूप कहागया है और मूर्तिमान् वह मूर्ति से प्राप्त कियाजाता है व सदैव वह परमात्मा अभ्यास से प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ और उनके शरीर में सब देवता व योगी लोग बसते हैं तथा दाहिने कान में अन्य नदियाँ बसती हैं ॥ ५४ ॥

और हृदयमें ईश्वर शिवजी व नाभिमें सनातन ब्रह्माजी हैं और पृथ्वी चरणतलके अग्रभाग में व जल सब कहीं प्राप्त है ॥ ५५ ॥ और अग्नि, पवन व आकाश मस्तकके मध्य में वर्तमान है व दाहिने हाथमें पाच तीर्थ हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५६ ॥ और सूर्य जिनका दाहिना नेत्र है व चन्द्रमा बायाँ नेत्र कहा गया है और मंगल व बुध दोनों नासिका कही गई हैं ॥ ५७ ॥ और बृहस्पति दाहिने कान में व बायें कान में शुक्रजी हैं और मुखमें शनैश्चर व गुदा इन्द्रिय में राहु कहा गया है ॥ ५८ ॥ और केतु इन्द्रियों में प्राप्त कहा गया है व सब ग्रह शरीर में प्राप्त हैं और योगी लोग शरीर को प्राप्त होकर चौदह लोकों

हृदये चेश्वरः शम्भुर्नाभौ ब्रह्मा सनातनः ॥ पृथ्वीपादतलाग्रे तु जलं सर्वगतं तथा ॥ ५५ ॥ तेजो वायुस्तथा काशं विद्यते भालमध्यतः ॥ हस्ते च पञ्च तीर्थानि दक्षिणेनात्र संशयः ॥ ५६ ॥ सूर्यो यद्दक्षिणं नेत्रं चन्द्रो वाममुदाहृतम् ॥ भौमश्चैव बुधश्चैव नासिके द्वे उदाहृते ॥ ५७॥ गुरुश्च दक्षिणे कर्णे वामकर्णे तथा भृगुः ॥ मुखे शनैश्चरः प्रोक्तो गुदे राहुः प्रकीर्तितः ॥ ५८ ॥ केतुरिन्द्रियगः प्रोक्तो ग्रहाः सर्वे शरीरगाः ॥ योगिनो देहमासाद्य भुवनानि चतुर्दश ॥ ५९ ॥ प्रवर्त्तन्ते सदा देवि तस्माद्योगं सदाभ्यसेत् ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण योगी पापं निकृन्तति ॥ ६० ॥ मुहूर्त्तमपि यो योगी मस्तके धारयेन्मनः ॥ कर्णौ पिधाय पापेभ्यो मुच्यतेऽसौ न संशयः ॥ ६१ ॥ अन्तरं नैव पश्यामि विष्णोर्योगपरस्य वा ॥ एकोपि योगी यद्गेहे ग्रासमात्रं भुनक्ति च ॥ ६२ ॥ कुलानि त्रीणि सोऽवश्यं तारयेदात्मना सह ॥ यदि विप्रो भवेद्योगी सोऽवश्यं दर्शनादपि ॥ ६३ ॥ सर्वेषां प्राणिनां देवि पापराशिनिषूदकः ॥ सत्क्रियो

में ॥ ५९ ॥ सदैव वर्तमान होते हैं इस कारण हे देवि ! सदैव योग को अभ्यास करै और चातुर्मास्य में विशेषकर योगी पापको नाश करता है ॥ ६० ॥ व कानों को मूंदकर मुहूर्त भर भी जो योगी मस्तक में मनको धारण करता है यह मुक्त होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६१ ॥ और विष्णु व योग में तत्पर मनुष्य का भेद नहीं देखता हूं और एक भी योगी जिसके घरमें कवल भर खाता है ॥ ६२ ॥ वह अपना समेत तीन पुश्तियों तक अवश्य कर तारता है और यदि ब्राह्मण योगी होता है तो वह दर्शन से भी ॥ ६३ ॥ हे देवि ! सब प्राणियों के पापों की राशि का नाशक है व ब्रह्म में परायण उत्तम कर्मोंवाला उत्तम शूद्र यदि योगका

भागी होवै ॥ ६४ ॥ या जो उत्तम गुरुवों का भक्त होवै वह भी अमूर्त के फल को पाता है और नियत आहारवाला जो योगी परब्रह्म की समाधि को करता है ॥ ६५ ॥ वह चातुर्मास्य में विशेषकर विष्णुजी के लय का भागी होता है जैसे सिद्ध पुरुष के हाथ के स्पर्श से लोह सुवर्ण होजाता है ॥ ६६ ॥ वैसेही विष्णु जी की प्रीति से मनुष्य अमूर्त (परब्रह्म) में लीन होजाता है जैसे गंगाजी से गिराहुआ मार्ग का जल देवताओं से भी ॥ ६७ ॥ सेवित व सब फलोंको देने वाला है वैसेही योगी मुक्ति को देता है जैसे गोमय से सदैव अग्नि जलती है ॥ ६८ ॥ और वह सदैव यज्ञकर्ता मनुष्यों से देवताओं का मुख कहा जाता है

ब्रह्मनिरतः सच्छूद्रो योगभाग्यदि ॥ ६४ ॥ भवेत्सद्गुरुभक्तो वा सोप्यमूर्त्तफलं लभेत् ॥ यो योगी नियताहारः परब्रह्मसमाधिमान् ॥ ६५ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण हरौ स लयभाग्भवेत् ॥ यथा सिद्धकरस्पर्शाल्लोहं भवति काञ्चनम् ॥ ६६ ॥ तथा मूर्त्ते हरिप्रीत्या मनुष्यो लयमाव्रजेत् ॥ यथा मार्गजलं गङ्गापतितं त्रिदशैरपि ॥ ६७ ॥ सेवितं सर्वफलदं तथा योगी विमुक्तिदः ॥ यथा गोमयमात्रेण वह्निर्दीप्यति सर्वदा ॥ ६८ ॥ देवतानां मुखं तद्धि कीर्त्यते याज्ञिकैः सदा ॥ एवं योगी सदाभ्यासाज्जायते मोक्षभाजनम् ॥ ६९ ॥ योगोऽयं सेव्यते देवि ज्ञानसिद्धिप्रदः सदा ॥ सनकादिभिराचार्यैर्मुमुक्षुभिरधीश्वरैः ॥ ७० ॥ प्रथमं ज्ञानसम्पत्तिर्जायते योगिनां सदा ॥ तेषां गृहीतमात्रस्तु योगी भवति पार्वति ॥ ७१ ॥ ततस्तु सिद्धयस्तस्य त्वणिमाद्याः पुरोगताः ॥ भवन्ति तत्रापि मनो न दद्याद्योगिनां वरः ॥ ७२ ॥ सर्वदानक्रतुभवं पुण्यं भवति योगतः ॥ योगात्सकलकामाप्तिर्न योगाद्भुवि प्राप्यते ॥ ७३ ॥ यो

ऐसेही योगी सदैव अभ्यास से मोक्ष का पात्र होता है ॥ ६९ ॥ हे देवि ! सदैव ज्ञान की सिद्धि को देनेवाला यह योग मोक्ष की इच्छावाले सनकादिक स्वामी आचार्यों से सेवन किया जाता है ॥ ७० ॥ हे पार्वति ! पहले सदैव योगियों को ज्ञान की संपत्ति होती है और उनसे ग्रहण किया हुआ योगी होता है ॥ ७१ ॥ तदनन्तर अणिमादिक सिद्धियाँ उसके आगे प्राप्त होती हैं और योगियों में श्रेष्ठ पुरुष उनमें भी मनको नहीं देताहै ॥ ७२ ॥ और योग से सब दान व यज्ञों से उपजा हुआ पुण्य होता है और योग से सब कामनाओं की प्राप्ति होती है व योग से पृथ्वी में नहीं प्राप्त होता है ॥ ७३ ॥ और योग से हृदय की ग्रंथि नहीं

होती है व योग से ममतारूप शत्रु नहीं होता है व योग से सिद्ध मनुष्य के मनको कोई भी नहीं हरसक्ता है ॥ ७४ ॥ और वही निर्मल योगी है कि जिसका स्थिर हुई व्यथावाला चित्त सदैव दशम द्वार संपुटवाले शिर में स्थित होता है ॥ ७५ ॥ व कानों को मूंदकर नादरूप को ढूंढ़ते हुए मनुष्य का वही ॐकार का अग्रभाग और वही सनातन ब्रह्म है ॥ ७६ ॥ और वही अनंतरूप नामक है व वही उत्तम अमृत है और नासिका के पवन में यह शब्द होता है व जठराग्नि का यह बड़ा भारी स्थान है ॥ ७७ ॥ और पञ्चभूत निवास जो यह ज्ञानरूप स्थान है उस पदको प्राप्त होकर जन्मरूपी संसार के बन्धन से मुक्ति होती है ॥ ७८ ॥

गान्न हृदयग्रन्थिर्न योगान्ममतारिपुः ॥ न योगसिद्धस्य मनो हर्तुं केनापि शक्यते ॥ ७४ ॥ स एव विमलो योगी य चित्तं शिरसि स्थितम् ॥ स्थिरीभूतव्यथं नित्यं दशमद्वारसंपुटे ॥ ७५ ॥ कर्णौ पिधाय मर्त्यस्य नादरूपं विचिन्वतः ॥ तदेव प्रणवस्याग्रं तदेव ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ७६ ॥ तदेवानन्तरूपाख्यं तदेवामृतमुत्तमम् ॥ घ्राणवायौ प्रघोषोऽयं जठराग्नेर्महत्पदम् ॥ ७७ ॥ पञ्चभूतं निवासं यज्ज्ञानरूपमिदं पदम् ॥ पदं प्राप्य विमुक्तिः स्याज्जन्मसंसारबन्ध नात् ॥ ७८ ॥ पदाप्तिर्दुर्लभा लोके योगसिद्धिप्रदायिका ॥ ७९ ॥ एवं ब्रह्ममयं विभाति सकलं विश्वं चरं स्थावरं विज्ञानाख्यमिदं पदं स भगवान् विष्णुः स्वयं व्यापकः ॥ ज्ञात्वा तं शिरसि स्थितं बहुवरं योगेश्वराणां परं प्राणी मुञ्चति सर्पवज्जगतिजां निर्मोकमायाकृतिम् ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चातुर्मास्यमाहात्म्ये ज्ञानयोगकथनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

संसारमें योगकी सिद्धिको देनेवाली पद की प्राप्ति दुर्लभ है ॥७९॥ इस प्रकार सब चराचर संसार ब्रह्ममय शोभितहै और विज्ञान नामक यह पद है और वे भगवान् विष्णुजी आपही व्यापक हैं योगीश्वरोंके मध्य में श्रेष्ठ व बहुतही उत्तम उन विष्णुजी को मस्तक में स्थित जानकर प्राणी संसार में उत्पन्न केंचुलरूपी माया के आकार को सर्प की नाईं छोड़ देता है ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां ज्ञानयोगकथनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

दो० । कह्यो उमासन शिव यथा ज्ञानयोगको हाल । इकतिसवें अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ महादेवजी बोले कि जब चित्त तामसकर्म को छोड़कर कर्मों में लगता है तब ज्ञानमय योगी जीनेवालों को मोक्षदायक होता है ॥ १ ॥ और जब शरीर में ममता नहीं होती व जब चित्त निर्मल होता है और जब विष्णु में भक्तियोग होता है तब कर्म से बन्धन नहीं होता है ॥ २ ॥ और जब कर्मों को करता हुआ मनुष्यों का मन शान्त होता है तब योगमयी सिद्धि होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥ और बड़ा बुद्धिमान् मनुष्य गुरुत्व स्थान को बार बार भोगकर जीताहुआ विष्णुत्वको प्राप्त होकर कर्म के संगसे छूटजाताहै ॥ ४ ॥

ईश्वर उवाच ॥ यदा चित्तामसं कर्म त्यक्त्वा कर्मसु जायते ॥ तदा ज्ञानमयो योगी जीवतां मोक्षदायकः ॥ १ ॥ यदा निर्ममता देहे यदा चित्तं सुनिर्मलम् ॥ यदा हरौ भक्तियोगस्तदा बन्धो न कर्मणा ॥ २ ॥ कुर्वन्नेवहि कर्माणि मनः शान्तं नृणां यदा ॥ तदा योगमयी सिद्धिर्जायते नात्र संशयः ॥ ३ ॥ गुरुत्वं स्थानमसकृदनुभूय महामतिः ॥ जीवन्विष्णुत्वमासाद्य कर्मसङ्गात्प्रमुच्यते ॥ ४ ॥ कर्माणि नित्यजातानि नित्यनैमित्तिकानि च ॥ इच्छया नैव सेव्यानि दुःखतापविवृद्धये ॥ ५ ॥ कर्मणामीशितारं च विष्णुं विद्धि महेश्वरि ॥ तस्मिन्संत्यज्य सर्वाणि संसारान्मुच्यतेऽखिलात् ॥ ६ ॥ एतदेव परं ज्ञानमेतदेव परं तपः ॥ एतदेव परं श्रेयो यत्कृष्णे कर्मणोर्पणम् ॥ ७ ॥ अयं हि निर्मलो योगो निर्गुणः स उदाहृतः ॥ तद्विष्णोः कर्मजनितं शुभत्वप्रतिपादनम् ॥ ८ ॥ तावद्भ्रमन्ति संसारे पितरः पिण्डतत्पराः ॥ यावत्कुले भक्तियुतः सुतो नैव प्रजायते ॥ ९ ॥ तावद् द्विजाश्च गर्जन्ति तावद्गर्जति पातकम् ॥

और नित्य उत्पन्न नित्य व नैमित्तिक कर्म दुःख व संतापकी वृद्धिके लिये इच्छासे सेवने योग्य नहीं हैं ॥ ५ ॥ व हे महेश्वरि ! कर्मों के स्वामी विष्णुजी को जानिये और उनमें सब कर्मोंको छोड़कर मनुष्य सब संसार से छूट जाताहै ॥ ६ ॥ यही उत्तम ज्ञान है व यही उत्तम तप है और यही उत्तम कल्याण है जोकि श्रीकृष्णजी में कर्म का अर्पण है ॥ ७ ॥ और यह निर्मल योग वह निर्गुण कहा गया है व कर्म से उपजा हुआ शुभत्व को प्रतिपादन करनेवाला कर्म से उपजा हुआ वह विष्णुजी का चरित्र है ॥ ८ ॥ और पिण्ड में तत्पर पितर लोग तबतक संसार में भ्रमते हैं जबतक कि वंशमें भक्तिसंयुत पुत्र नहीं होता है ॥ ९ ॥ और तबतक

ब्राह्मण गर्जते हैं व तबतक पाप गर्जता है और तबतक अनेक तीर्थ हैं जबतक कि मनुष्य भक्तिको नहीं पाता है ॥ १० ॥ और संसार में वही ज्ञानी है व योगियों के मध्य में वही श्रेष्ठ है और वही महायज्ञों को हरनेवाला है जोकि विष्णुजी की भक्ति से संयुत है ॥ ११ ॥ व पलक को मूंदने व उघारने के जयसे योग होता है और वाणी के जयमें गोमेध कहा गया है ॥ १२ ॥ व मनकी विजय में मनुष्य सदैव अश्वमेध यज्ञके फलको पाता है और संकल्प के विजय से मनुष्य नित्य सौत्रामणि यज्ञके फलको पाता है ॥ १३ ॥ और शरीर के त्याग से नित्य नरयज्ञ कहा गया है व अग्निरहित मस्तकरूपी कुंडमें गुरु के उपदेश की विधि

तावत्तीर्थान्यनेकानि यावद्भक्तिं न विन्दति ॥ १० ॥ स एव ज्ञानवाँल्लोके योगिनां प्रथमो हि सः ॥ महाक्रतूनां माहर्त्ता हरिभक्तियुतो हि सः ॥ ११ ॥ निमिषं निर्जयन्मेषं योगः समभिजायते ॥ वाणीजये योगिनस्तु गोमेधश्च प्रकीर्तितः ॥ १२ ॥ मनसो विजये नित्यमश्वमेधफलं लभेत् ॥ कल्पनाविजयान्नित्यं यज्ञं सौत्रामणिं लभेत् ॥ १३ ॥ देहस्योत्सर्जनान्नित्यं नरयज्ञः प्रकीर्तितः ॥ पञ्चेन्द्रियपशून्हत्वानग्नौ शीर्षे च कुण्डके ॥ १४ ॥ गुरूपदेशविधिना ब्रह्मभूतत्वमश्नुते ॥ स योगी नियताहारो दण्डत्रितयधारकः ॥ १५ ॥ त्रिदण्डी स तु विज्ञेयो ज्ञाते देवे निरञ्जने ॥ मनोदण्डः कर्मदण्डो वाग्दण्डो यस्य योगिनः ॥ १६ ॥ स योगी ब्रह्मरूपेण जीवन्नेव समाप्यते ॥ अज्ञानी बध्यते नित्यं कर्मभिर्बन्धनात्मकैः ॥ १७ ॥ कुर्वन्नेव हि कर्माणि ज्ञानी मुक्तिं प्रयाति हि ॥ यदा हि गुरुभिः स्थानं ब्रह्मणः प्रतिपाद्यते ॥ १८ ॥ तदैव मुक्तिमाप्नोति देहस्तिष्ठति केवलम् ॥ यावद्ब्रह्मफलावाप्त्यै प्रयाति

से पांच इन्द्रियरूपी पशुवों को मारकर ब्रह्मभूतत्व को पाता है ॥ १४ ॥ याने ब्रह्म में मिलजाता है और थोड़ा भोजन करनेवाला वह योगी तीन दंडोंको धारनेवाला होता है ॥ १५ ॥ और निरंजन विष्णु देवजी के जानने पर वह त्रिदंडी जानने योग्य है और मनका दंड व कर्म का दंड तथा वचन का दंड जिस योगी को होता है ॥ १६ ॥ जीताहुआ वह योगी ब्रह्मरूप से मिलता है और अज्ञानी सदैव बन्धनरूपी कर्मों से बाँधा जाता है ॥ १७ ॥ और कर्मों को करता हुआ ज्ञानी मुक्ति को पाता है व जब गुरुवों से ब्रह्मका स्थान सिद्ध किया जाता है ॥ १८ ॥ तब वह मुक्तिको पाता है और केवल शरीर स्थित रहता है और जबतक

ब्रह्मरूपी फलकी प्राप्ति के लिये उत्तम पुरुष जाता है ॥ १९ ॥ तबतक कर्ममयी वृत्ति रोंक ब्रह्मरूपी वृक्षके मध्य में होतीहै और सदैव मुनियों को ग्रन्थियों के अन्तर्गत ग्रन्थियां जानने योग्य हैं ॥ २० ॥ व ब्राह्मणों को मोक्षमार्ग श्रुतियों और स्मृतियों के समुच्चयसे होता है और यह मोक्ष चार द्वारों से संयुत नगर के समानहै ॥ २१ ॥ और उसमें शम आदिक चार द्वारपाल सदैव रहते हैं पहले मनुष्यों को मोक्षदायक वेही सेवने के योग्य हैं ॥ २२ ॥ और शान्ति व उत्तम विचार तथा संतोष और साधुवों का समागम ये जिसके हाथ में प्राप्त होते हैं उसको सिद्धि समीपही होती है ॥ २३ ॥ और हे देवि ! मनुष्यों को विष्णुजी की भक्ति से उत्तम धर्म के

पुरुषोत्तमः ॥ १९ ॥ तावत्कर्ममयी वृत्तिर्ब्रह्मवृक्षान्तरा भवेत् ॥ अवान्तराणि पर्वाणि ज्ञेयानि मुनिभिः सदा ॥ २० ॥ मोक्ष मार्गो द्विजानां च श्रुतिस्मृतिसमुच्चयात् ॥ मोक्षोऽयं नगराकारश्चतुर्द्वारसमाकुलः ॥ २१ ॥ द्वारपालास्तत्र नित्यं चत्वा रस्तु शमादयः ॥ तएव प्रथमं सेव्या मनुजैर्मोक्षदायकाः ॥ २२ ॥ शमश्च सद्विचारश्च सन्तोषः साधुसंगमः ॥ एते वै हस्तगा यस्य तस्य सिद्धिर्न दूरतः ॥ २३ ॥ योगसिद्धिर्विष्णुभक्त्या सद्धर्माचरणेन च ॥ प्राप्यते मनुजैर्देवि एतज्ज्ञान मलं विदुः ॥ २४ ॥ ज्ञानार्थं च भ्रमन्मर्त्यो विद्यास्थानेषु सर्वशः ॥ सद्यो ज्ञानं सद्गुरुतो दीपार्चिरिव निर्मला ॥ २५ ॥ मुहूर्त्तमात्रमपि यो लयं चिन्तयति ध्रुवम् ॥ तस्य पापसहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ २६ ॥ रागद्वेषौ परित्य ज्य क्रोधलोभविवर्जितः ॥ सर्वत्र समदर्शी च विष्णुभक्तस्य दर्शनम् ॥ २७ ॥ सर्वेषामपि जीवानां दया यस्य हृदि स्थिरा ॥ शौचाचारसमायुक्तो योगी दुःखं न विन्दति ॥ २८ ॥ मायादिपटलैर्हीनो मिथ्यावस्तुविरागवान् ॥

आचरण से योग की सिद्धि मिलती है यह पूर्ण ज्ञान विद्वानोंने कहा है ॥ २४ ॥ और सब विद्या के स्थानों में ज्ञान के लिये घूमता हुआ मनुष्य उत्तम गुरु से निर्मल दीपक की ज्वाला के समान शीघ्रही ज्ञान को पाता है ॥ २५ ॥ और जो मुहूर्त भर भी लय को चिन्तन करता है उसके निश्चय कर उसीक्षण हज़ारों पाप नाश होजाते हैं ॥ २६ ॥ और राग व द्वेषको छोड़कर क्रोध व लोभ से रहित तथा सब कहीं समदर्शी और विष्णुभक्तका दर्शन ॥ २७ ॥ और जिसके हृदय में सब प्राणियोंके ऊपर दया स्थिर होती है शौच व आचार से संयुत वह योगी दुःख को नहीं पाता है ॥ २८ ॥ व मायादिक के पटलों से रहित तथा मिथ्या

वस्तु से विरागी तथा निन्दित संसर्ग से हीन योगसिद्धि का लक्षण है ॥ २९ ॥ और ममताकी अग्नि का संयोग मनुष्यों को सन्तापदायक है और उस योगी का शान्ति करना उत्पन्न कर्मों का नाशक है ॥ ३० ॥ और इन्द्रियों को रोककर मनुष्य मनही से निषेध करै जैसे कि लोह से घिसा हुआ लोह बहुत पैन होजाता है ॥ ३१ ॥ और शरीर में पवित्र को देनेवाली दो प्रकार की बुद्धि है एक त्याग करने योग्य व दूसरी ग्रहण करने योग्य है और संसारविषयवाली बुद्धि त्याग करने योग्य है व परब्रह्म में वह उत्तम होती है ॥ ३२ ॥ हे देवि ! जैसे कि अहंकार पाप व पुण्य को देनवाला है वैसेही तत्त्व जानने पर उत्तम फलके लिये होता

कुसंसर्गविहीनश्च योगसिद्धेश्च लक्षणम् ॥ २९ ॥ ममतावह्निसंयोगो नराणां तापदायकः ॥ उत्पन्नं शमनं तस्य योगिनः शान्तिचारणम् ॥ ३० ॥ इन्द्रियाणामथोद्धृत्य मनसैव निषेधयेत् ॥ यथा लोहेन लोहं च घर्षितं तीक्ष्णतां व्रजेत् ॥३१॥ बुद्धिर्हि द्विविधा देहे हेया ग्राह्या विशुद्धिदा ॥ संसारविषया त्याज्या परब्रह्मणि सा शुभा ॥ ३२ ॥ अहंकारो यथा देवि पापपुण्यप्रदायकः ॥ ज्ञाते तत्त्वे शुभफलकृते संधाय नान्यथा ॥ ३३ ॥ श्यामलं च उपस्थं च रूपातीतान्नराः शिवम् ॥ हृदिस्थं शिरसिस्थं च द्वयं बद्धविमुक्तये ॥ ३४ ॥ एतदक्षरमव्यक्तममृतं सकलं तव ॥ रूपारूपविष्णुरूपरूपे मूर्त्तं निवेदितम् ॥ ३५ ॥ एवं ज्ञात्वा विमुच्येत योगी संसारबन्धनात् ॥ गुरूपदेशाद्गृहस्थो लभते नान्यथा क्वचित् ॥ ३६ ॥ यदा गुरुः प्रसन्नात्मा तस्य विश्वं प्रसीदति ॥ गुरुश्च तोषितो येन संतुष्टः पितृदेवताः ॥ ३७ ॥ गुरूपदेशः

है और अन्यथा संधान कर नहीं होता है ॥ ३३ ॥ और रूपसे अतिक्रान्त होनेके कारण समीपही प्राप्त श्यामरूप हृदय में स्थित व शरीर में स्थित दोनों रूपवाले शिवजी को बँधेहुएकी मुक्ति के लिये ध्यान करै ॥ ३४ ॥ रूप व अरूप विष्णुरूप के रूपमें यह अक्षर, अव्यक्त, अमृत व अखण्ड यह मूर्त तुमसे कहा गया ॥३५॥ ऐसा जानकर योगी संसार के बन्धन से छूट जाता है और गुरुके उपदेश से गृहस्थ इसको पाता है अन्यथा कहीं नहीं पाता है ॥ ३६ ॥ और जब उसके ऊपर गुरु प्रसन्नचित्त होता है तब संसार भर प्रसन्न होता है और जिसने गुरुको प्रसन्न किया उससे पितर व देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ३७ ॥ और गुरुका उपदेश व प्रतिमा

में उत्तम विचार तथा शान्ति में मन व ज्ञान समेत कर्म यह मोक्ष का सिद्ध लक्षण है ॥ ३८ ॥ और क्रियाओं के स्वामी विष्णुही हैं व आप निष्कर्म हैं और प्राणों के विरूप के लिये वह द्वादशाक्षर बीज है ॥ ३९ ॥ और द्वादशाक्षर चक्र सब पापों का नाशक है व दुष्टों का विनाशक तथा परब्रह्म का दायक है ॥ ४० ॥ हे देवि ! द्वादशाक्षररूपधारी यही निर्मल परब्रह्म मैंने आपही तुमसे प्रकाशित किया ॥ ४१ ॥ भक्ति से ग्रहण करने योग्य व योगियों के ध्यानरूप इसको जो चातुर्मास्य में ध्यान करै तो करोड़ों जन्मों में उपजेहुए पापको जलाकर विष्णुजी मुक्तिदायक होते हैं ॥ ४२ ॥ ब्रह्मा बोले कि उसी अवसर में वहां क्षीरसागर के

प्रतिमा सद्विचारः शमे मनः ॥ क्रिया च ज्ञानसहिता मोक्षसिद्धं हि लक्षणम् ॥ ३८ ॥ क्रियापतिर्विष्णुरेव स्वयमेव हि निष्क्रियः ॥ स च प्राणविरूपाय द्वादशाक्षरबीजकः ॥ ३९ ॥ द्वादशाक्षरकं चक्रं सर्वपापनिवर्हणम् ॥ दुष्टानां दमनं चैव परब्रह्मप्रदायकम् ॥ ४० ॥ एतदेव परं ब्रह्म द्वादशाक्षररूपधृक् ॥ मया प्रकाशितं देवि स्वयं हि विमलं तव ॥ ४१ ॥ एतल्लोके योगिनां ध्यानरूपं भक्तिग्राह्यं श्रद्धया चिन्तयेच्च ॥ चातुर्मास्ये जन्मकोट्यां च जातं पापं दग्ध्वा मुक्तिदः कैटभारिः ॥ ४२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तस्मिन्नवसरे तत्र क्षीरसागरमध्यतः ॥ निर्गतश्च विमानाग्रे तेजोभाराभिपीडितः ॥ ४३ ॥ उरोबाहुकृतिं कुर्वन् सान्निध्यं समुपागतः ॥ महामत्स्योऽज्ञातपूर्वः सन्निधानेऽनहंकृतिः ॥ ४४ ॥ हुंकारगर्भे मत्स्यं च दृष्ट्वा तं स महेश्वरः ॥ तेजसा स्तम्भयामास वाक्यमेतदुवाचह ॥ ४५ ॥ कस्त्वं मत्स्योदरस्थश्च देवो यक्षोऽथ मानुषः ॥ कथं जीवस्य देहान्तर्गतो मम वद प्रभो ॥ ४६ ॥ मत्स्य उवाच ॥ अहं

मध्य से तेजपुञ्ज से पीड़ित मत्स्य (मछली) विमान के अग्रभाग में निकली ॥ ४३ ॥ और हृदय को बाहुके समान करती हुई वह मछली समीप आई व पहले न जानी हुई अहंकाररहित बड़ीभारी मछली समीप में प्राप्त हुई ॥ ४४ ॥ और हुंकार के गर्भ में उस मछली को देखकर उन शिवजी ने तेज से स्तम्भित किया व यह वचन कहा ॥ ४५ ॥ कि मछली के पेटमें स्थित तुम देवता या यक्ष या मनुष्य कौन हो व शरीर के मध्य में प्राप्त तुम कैसे जीतेहो हे प्रभो ! इसको कहिये ॥ ४६ ॥

मछली बोली कि क्षीर से उपजे हुए समुद्र में पिता के वचन से माताने वंशनाशके भयसे मुझको मछली के पेट में डालदिया है यह मेरे कुलसे संयुत नहीं है उससे अपने वंश का नाश होगया गण्डान्तयोग में पैदाहुआ बालक घर का कार्य नहीं करता है ॥ ४७। ४८ ॥ इस कारण सुनिये कि वंशमें पैदाहुआ मैं दुःखित माता से निकाल दियागया और मछली ने मुझको पकड लिया व यहां मुझको बहुतसा समय होगया ॥ ४९ ॥ तुम्हारे इन वचनरूपी अमृतों से बड़ाभारी ज्ञान-योग हुआ उससे मूर्तिमें प्राप्त तथा कलाओं समेत अमूर्त तुमको मैंने जाना ॥५०॥ हे देवेश ! मुझको निकलनेके लिये आज्ञा दीजिये कि जिस प्रकार हे ब्रह्मन्!

मत्स्योदरे क्षिप्तः समुद्रे क्षीरसम्भवे ॥ मात्रा तु पितृवाक्येन नायं मम कुलान्वितः ॥ ४७ ॥ कुलक्षयभयात्तेन जातं स्वकुलनाशनम् ॥ गण्डान्तयोगजनितो बालो न गृहकर्मकृत् ॥ ४८ ॥ इति मात्रा दुःखितया निरस्तः शृणु वंशजः॥ झषेणापि गृहीतोस्मि कालो मेत्र महानभूत् ॥ ४९ ॥ तव वाक्यामृतैरेभिर्ज्ञानयोगोमहानभूत् ॥ तेन त्वं सकलो ज्ञातो मया मूर्त्तोथ मूर्त्तगः ॥५०॥ अनुज्ञां मम देवेश देहि निष्क्रमणाय च ॥ यथाहं पितृपो ब्रह्मन् भवाम्याशु विवृद्धये ॥५१॥ हरउवाच ॥ विप्रोसि सुतरूपोसि पूज्योस्यपि स्वभावतः ॥ वहिर्निष्क्रमवेगेन स्तम्भितोसि महाझषः ॥ ५२ ॥ ततोऽसौ शिरसा जातउत्क्लेशान्मत्स्ययोजितः ॥ ततो हि विकृतं वक्त्रं क्षणाद्बहिरुपागतः ॥ ५३ ॥ रूपवान् प्रतिमायुक्तो मत्स्य गन्धेन संयुतः ॥ सोमकान्तिसमस्तत्र अभवद्दिव्यगन्धभाक् ॥ ५४ ॥ उमापि प्रणतं चामुं सुतं स्वोत्सङ्गभाजनम् ॥ च कार तस्य नामापि हरः परमहर्षितः ॥ ५५ ॥ यस्मान्मत्स्योदराज्जातो योगिनां प्रवरोह्ययम् ॥ तस्मात्त्वं मत्स्यना

मैं शीघ्रही वृद्धि के लिये पितरों का स्वामी होऊं ॥ ५१ ॥ शिवजी बोले कि ब्राह्मण हो व पुत्ररूप हो और स्वभावही से पूजने योग्य भी हो बाहर वेग से निकलो और महामीन तुम स्तम्भित कियेगये हो ॥ ५२ ॥ तदनन्तर मत्स्य से योजित यह बड़े क्लेशसे मस्तक से उत्पन्न हुआ उसी कारण मुख विकृत होगया और क्षणभर में बाहर आगया ॥ ५३ ॥ और रूपवान् व प्रतिमा से संयुत तथा मछली की गन्ध से संयुक्त, चन्द्रमा के समान गधवान् वह वहां सुन्दर सुगन्ध का भागी हुआ ॥ ५४ ॥ और पार्वतीजी ने भी इस पुत्रको अपने गोदका भाजन किया और बड़े प्रसन्न शिवजी ने उसका नाम भी किया ॥ ५५ ॥ कि जिसलिये

योगियों के मध्य में श्रेष्ठ यह मछली के पेट से पैदाहुआ उस कारण तुम मत्स्यनाथ ऐसे संसार में प्रसिद्ध होगे ॥ ५६ ॥ और न भेदन करने योग्य मनुष्यशरीर वाले तुम ज्ञानयोग के पारगामी होगे और ईर्षारहित तथा सुख, दुःख हीन व आशारहित और ब्रह्मके सेवक ॥ ५७ ॥ आप चौदहों भुवनों में जीवन्मुक्त होगे ऐसा कहेहुए वे शिवजी को बारबार प्रणाम करतेहुए ॥५८॥ शिवजी समेत मंदराचलको आये ब्रह्माजी बोले कि पार्वती देवीकी प्रदक्षिणा कर और स्वामिकार्त्तिकेय जी को लिपटा कर वह चलागया ॥ ५६ ॥ तदनन्तर वे पार्वतीजी ॐकार के पात्ररूप अति उत्तम ज्ञान को पाकर, प्रसन्न हुईं इस प्रकार लोकों की माता

थेति लोके ख्यातो भविष्यसि ॥ ५६ ॥ अच्छेद्यः स्यान्नरतनुर्ज्ञानयोगस्य पारगः ॥ निर्मत्सरोऽपि निर्द्वन्द्वो निराशो ब्रह्मसेवकः ॥ ५७ ॥ जीवन्मुक्तश्च भविता भुवनानि चतुर्दश ॥ इत्युक्तश्च महेशानं प्रणमंश्च पुनःपुनः ॥ ५८ ॥ महेश्वरेण सहितो मन्दराचलमाययौ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं देवीं स्कन्दमालिङ्ग्य सोगमत् ॥ ५६ ॥ ततः सा पार्वती हृष्टा प्राप्य ज्ञानमनुत्तमम् ॥ एवं सा परमां सिद्धिं प्रणवस्य प्रभाजनम् ॥ ६० ॥ संप्राप्य जगतां माता द्वादशाक्षरजामुमा ॥ इमां मत्स्येन्द्रनाथस्य चोत्पत्तिं यः शृणोति च ॥ ६१ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये मत्स्येन्द्रनाथोत्पत्तिकथनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ कार्त्तिकेयश्च पार्वत्याः प्राणेभ्यश्चातिवल्लभः ॥ संक्रीडति समीपस्थो नानाचेष्टाभिरुद्य

वे पार्वतीजी द्वादशाक्षर से उपजीहुई उत्तम सिद्धि को पाकर प्रसन्न हुईं मत्स्येन्द्रनाथ की इस उत्पत्ति को जो सुनता है ॥ ६० । ६१ ॥ वह अश्वमेध यज्ञके फल को पाता है और चातुर्मास्य में विशेष कर उस फलको प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां मत्स्येन्द्रनाथोत्पत्तिकथनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा षडानन देवजी मार्यो दैत्यसमूह । सो बत्तिस अध्याय में कह्यो चरित्र सुव्यूह ॥ ब्रह्माजी बोले कि स्वामिकार्त्तिकेयजी पार्वतीजी को प्राणों

से भी अधिक प्यारे थे और समीप में स्थित वे उद्यत स्वामिकार्त्तिकेयजी अनेक प्रकारकी चेष्टाओं से खेलते थे ॥ १ ॥ और अरुण छवि तथा अद्भुत पराक्रमवाले बड़े तेजस्वी षडाननजी कभी बहुत गाते थे और कभी अपनी इच्छा से नाचते थे ॥ २ ॥ और कभी माता व पिता को देखकर नम्रता से नीचे झुक जाते थे व कभी श्रीगंगाजी के किनारे बालू के लेपन की रुचि करते थे ॥ ३ ॥ और कभी गणोंसमेत अनेक प्रकार के वनके वृक्षोंको ढूंढ़ते थे इस प्रकार खेलतेहुए उनको पांच दिन व्यतीत हुए ॥ ४ ॥ तदनन्तर इन्द्रादिक सब देवता तारकासुर के डरसे भगकर तारक के मारने की इच्छा से शिवजी की स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥ और

तः॥१॥ रक्तकान्तिर्महातेजाः षण्मुखोद्भुतविक्रमः ॥ क्वचिद्गायति चात्यर्थं क्वचिन्नृत्यति स्वेच्छया ॥ २ ॥ मातरं पितरं दृष्ट्वा विनयावनतः क्वचित् ॥ क्वचिच्च गङ्गापुलिने सिक्तालेपनारुचिः ॥ ३ ॥ गणैः सह विचिन्वानो विविधान् वनभूरुहान् ॥ एवं प्रक्रीडतस्तस्य दिवसाः पञ्च वै गताः ॥ ४ ॥ ततो देवा महेन्द्राद्यास्तारकत्रासविद्रुताः ॥ स्तुवन्तः शङ्करं सर्वे तारकस्य जिघांसया ॥ ५ ॥ चक्रुः कुमारं सेनान्यं जाह्नव्याः स्वगणैः सुराः ॥ सस्वनुर्देववाद्यानि पु ष्पवर्षं पपात ह ॥ ६ ॥ वह्निस्तु स्वां ददौ शक्तिं हिमवान् वाहनं ददौ ॥ सर्वदेवसमुद्भूतगणकोटिसमावृतः ॥ ७ ॥ प्रणम्य मुनिसङ्घेभ्यः प्रययौ रिपुपत्तने ॥ ताम्रवत्यां नगर्यां च शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ ८ ॥ ततस्तारक सैन्यस्य दैत्यदानवकोटयः ॥ समाजग्मुस्तस्य पुराच्छङ्खनादभयातुराः ॥ ९ ॥ स्ववाहनसमारूढाः संयता बल

अपने गणों समेत देवताओं ने गंगाजी के कुमार स्वामिकार्त्तिकेयजी को सेनापति किया और देवताओं के बाजन बाजने लगे व पुष्पवृष्टि झरनेलगी ॥ ६ ॥ और अग्नि ने अपनी शक्ति दिया व हिमाचल ने सवारी दिया और सब देवताओं से उपजेहुए करोड़ों गणोंसे घिरेहुए स्वामिकार्त्तिकेयजी ॥ ७ ॥ मुनिगणों के लिये प्रणाम कर शत्रुके नगर में गये और ताम्रवती नगरी में प्रतापी स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शंखको बजाया ॥ ८ ॥ तदनन्तर उस तारकासुर की सेना के करोड़ों दैत्य दानव शंख के शब्द के भय से विकल होकर उसके पुरसे आये ॥ ९ ॥ और अपनी सवारियों पै चढ़ेहुए बलसे गर्वित तथा स्वामिकार्त्तिकेयजी के तेजसे

बढ़ेहुए तैयार होकर वे सब भी देवता युद्ध करने लगे ॥ १० ॥ और तब उन देवताओं ने सब दानवों की सेनाओं को मारा और विष्णुजी के चक्र से कटेहुए वे हज़ारों दैत्य पृथ्वी में गिरपड़े ॥ ११ ॥ तदनन्तर उस समय सैकड़ों दानव भगगये व मारेगये व हे मुने ! रक्त से उपजी हुई अनेक प्रकार की नदियां उत्पन्न हुईं ॥ १२ ॥ और उस दानवों की सेनाको नष्ट देखकर उसने समर में युद्ध किया और देवेश स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शीघ्रही अनेक प्रकार के बाणगणों से मारा ॥१३॥ और श्रीकृष्णजी से प्रेरित गंगाजी के पुत्र स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शक्तिसे युद्ध करके फेंकदिया व सारथी समेत उस तारकासुरको क्षणभर में भस्म

दर्पिताः ॥ देवाः सर्वेपि युयुधुः स्कन्दतेजोपबृंहिताः ॥ १० ॥ तदा दानवसैन्यानि निजघान च सर्वशः ॥ विष्णुचक्रेण ते छिन्नाः पेतुरुर्व्यां सहस्रशः ॥ ११ ॥ ततो भग्नाश्च शतशो दानवा निहतास्तदा ॥ नद्यः शोणितसम्भूता जाता बहुविधा मुने ॥ १२ ॥ तद्भग्नं दानवबलं दृष्ट्वा स युयुधे रणे ॥ बभञ्ज सद्यो देवेशो बाणजालैरनेकधा ॥ १३ ॥ शक्तिनायुध्य गाङ्गेयश्चिक्षेप कृष्णप्रेरितः ॥ तारकं च सयन्तारं चक्रे तं भस्मसात्क्षणात् ॥ १४ ॥ शेषाः पातालमगमन् हतं दृष्ट्वाथ तारकम् ॥ ततो देवगणाः सर्वे शशंसुस्तस्य विक्रमम् ॥ १५ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिस्तथाऽभवत् ॥ ते लब्धविजयाः सर्वे महेश्वरपुरोगमाः ॥ १६ ॥ सिषिचुः सर्वदेवानां सेनापत्ये षडाननम् ॥ ततः स्कन्दं समालिङ्ग्य पार्वती हर्षगद्गदा ॥ १७ ॥ माङ्गल्यानि तदा चक्रे स्वसखीभिः समावृता ॥ एवं च तारकं हत्वा सप्तमेहानि बालकः ॥ १८ ॥ मन्दराचलमासाद्य पितरौ संप्रहर्षयन् ॥ उवाच सकलं स्कन्दः पर

करदिया ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त तारकासुरको नष्ट देखकर शेष दैत्यलोग पातालको चलेगये तदनन्तर सब देवताओंके गणों ने उनके पराक्रम की प्रशंसा किया ॥ १५ ॥ और देवताओं के नगाड़ा बजने लगे व फूलोंकी वृष्टि हुई और जीत को पाकर उन सब शिवादिक देवताओं ने ॥ १६ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी को सब देवताओंकी स्वामिता में अभिषेक किया तदनन्तर अपनी सखियों से घिरी हुई हर्ष से गद्गद पार्वतीजी ने उस समय स्वामिकार्त्तिकेयजी को लिपटा कर मंगल कार्यों को किया इस प्रकार सातवें दिन तारकासुर को मारकर बालक ॥ १७ । १८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी ने बड़े आनन्द से पूर्ण होकर मंदराचल को

जाकर माता, पिता को प्रसन्न करते हुए सब वृत्तान्त कहा ॥ १९ ॥ और शिवजी ने समय में उन स्वामिकार्त्तिकेयजी के विवाह का चिन्तन किया और प्रसन्न
चित्त वाले उन शिवजी ने अमित शोभावाले स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहा ॥ २० ॥ कि हे विभो ! तुम्हारा विवाह का समय प्राप्त हुआ है और स्त्रियों को कीजिये
क्योंकि उनको प्राप्त होकर उनके साथ वह संमत धर्म होता है ॥ २१ ॥ और मनोरथों को देनेवाले अनेक प्रकार के सब विमानोंसे क्रीडा कीजिये उस वचन
को सुनकर भगवान् स्वामिकार्त्तिकेयजी ने पिता से यह वचन कहा ॥ २२ ॥ कि सब गणों में मैंही सबकहीं देख पड़ता हूं और दृश्य व अदृश्य पदार्थोंमें मैं क्या

मानन्दनिर्भरः ॥ १९ ॥ काले दारक्रियां तस्य चिन्तयामास शङ्करः ॥ स उवाच प्रसन्नात्मा गाङ्गेयममितद्युतिम् ॥ २० ॥ प्राप्तकालस्तव विभो पाणिग्रहणसम्मतः ॥ कुरु दारान् समासाद्य धर्मस्ताभिस्स सम्मतः ॥ २१ ॥ क्रीडस्व विविधैर्भोगैर्विमानैः सह कामिकैः ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान् स्कन्दः पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥ अहमेव हि सर्वत्र दृश्यः सर्वगणेषु च ॥ दृश्यादृश्यपदार्थेषु किं गृह्णामि त्यजामि किम् ॥ २३ ॥ याः स्त्रियः सकला विश्वे पार्वत्या ताः समा हि मे ॥ नराः सर्वेपि देवेश भवद्वृत्तान् विलोकये ॥ २४ ॥ त्वं गुरुर्मां च रक्षस्व पुनर्नरकमज्जनात् ॥ येन ज्ञातमिदं ज्ञानं त्वत्प्रसादादखण्डितम् ॥ २५ ॥ पुनरेव महाघोरसंसाराब्धौ न मज्जये ॥ दीपहस्तो यथा वस्तु दृष्ट्वा तत्करणं त्यजेत् ॥ २६ ॥ तथाज्ञानमवप्राप्य योगी त्यजति संसृतिम् ॥ ज्ञात्वा सर्वगतं ब्रह्म सर्वज्ञ परमेश्वर ॥ २७ ॥ निवर्त्तन्ते क्रियाः सर्वा यस्य तं योगिनं विदुः ॥ विषये लुब्धचित्तानां वनेपि जा

ग्रहण करूं और क्या त्याग करूं ॥ २३ ॥ और संसार में जो सब स्त्रियां हैं वे सब मुझको पार्वतीजी के समान हैं व हे देवेश ! जो सब मनुष्य हैं उन सबों
को मैं आपके समान देखता हूं ॥ २४ ॥ और तुम गुरुहो व फिर नरक के मज्जन से मेरी रक्षा कीजिये जिससे मैंने तुम्हारी प्रसन्नता से इस सम्पूर्ण ज्ञानको जाना
है ॥ २५ ॥ उस कारण बडे भयंकर संसाररूपी समुद्र में फिर न पड़ूं जैसे दीपक को हाथ में लिये हुए मनुष्य वस्तु को देखकर उस करण (दीपक) को छोड़
देता है ॥ २६ ॥ वैसेही ज्ञानको पाकर योगी संसार को छोड़देता है हे सर्वज्ञ, परमेश्वर ! सर्वव्यापी ब्रह्मको जानकर ॥ २७ ॥ जिसके सब कर्म निवृत्त होजाते

यते रतिः ॥ २८ ॥ सर्वत्र समदृष्टीनां गेहे मुक्तिर्हि शाश्वती ॥ ज्ञानमेव महेशान मनुष्याणां सुदुर्लभम् ॥ २९ ॥ लब्धं ज्ञानं कथमपि पण्डितो नैव पातयेत् ॥ नाहमस्मि न माता मे न पिता न च बान्धवः ॥ ३० ॥ ज्ञानं प्राप्य पृथग्भावमापन्नो भुवनेष्वहम् ॥ प्राप्यं भागमिदं दैवात् प्रभावात्तव नार्हसि ॥ ३१ ॥ वक्तुमेवंविधं वाक्यं मुमुक्षो मे न संशयः ॥ यदाग्रहपरा देवी पुनः पुनरभाषत ॥ ३२ ॥ तदा तौ पितरौ नत्वा गतोसौ क्रौञ्चपर्वतम् ॥ तत्राश्रमे महापुण्ये चचार परमं तपः ॥ ३३ ॥ जजाप परमं ब्रह्म द्वादशाक्षरबीजकम् ॥ पूर्वं ध्यानेन सर्वाणि वशीकृत्येन्द्रियाणि च ॥ ३४ ॥ मनो मासं प्रयुज्याथ ज्ञानयोगमवाप्तवान् ॥ सिद्धयस्तस्य निर्विघ्ना अणिमाद्या यदागताः ॥ ३५ ॥ तदा तासां गुहः क्रुद्धो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ममापि दुष्टभावेन यदि यूयमुपागताः ॥ ३६ ॥ तदास्मत्समशान्तानां नाभिभूतं करिष्यथ ॥ एवं ज्ञात्वा महेशोपि यतोज्ञानमहोदयम् ॥ ३७ ॥ मत्तोपि ज्ञानयोगेन स्कन्दोप्यधि

हैं उसको विद्वान् योगी कहते हैं और विषयमें लोभी चित्तवाले मनुष्यों का वन में भी अनुराग होता है ॥ २८ ॥ और सबकहीं समदृष्टिवाले मनुष्यों की घर में सनातनी मुक्ति होती है हे महेशान ! मनुष्यों को ज्ञानही बहुत दुर्लभ है ॥ २९ ॥ और पायेहुए ज्ञानको पण्डित किसी भाति से भी नहीं अलग करता है न मैं हू और न मेरे माताहै न पिताहै न भाई है ॥ ३० ॥ बरन ज्ञान को पाकर मैं लोकों में भिन्नता को प्राप्त हूं और यह ज्ञान दैवसे व तुम्हारे प्रभाव से मिलने योग्य है और तुम मुक्ति की इच्छावाले मुझसे ऐसा वचन निस्सन्देह कहने के योग्य नहीं हो जब हठसे सयुत पार्वती देवी ने बार बार यह कहा ॥ ३१ । ३२ ॥ तब उन माता, पिताको प्रणाम कर ये स्वामिकार्त्तिकेयजी क्रौंच पर्वतको चलेगये और उन्होंने उस बड़े पवित्र आश्रम में बड़ा भारी तप किया ॥ ३३ ॥ और द्वादशाक्षर बीजवाला परम ब्रह्म का जप किया पहले ध्यानसे सब इन्द्रियोंको वशकर ॥ ३४ ॥ व महीने भर मनको योग में लगाकर उन्होंने ज्ञानयोग को पाया और जब अणिमादिक विघ्नरहित सिद्धिया उनके सामने आई ॥ ३५ ॥ तब क्रोधित स्वामिकार्त्तिकेयजी ने उनसे यह वचन कहा कि यदि तुम सब मेरा भी अनादर कर दुष्टता से मेरे समीप आई हो तो हमारे समान शान्त लोगोंका तुम तिरस्कार न करोगी ऐसा जानकर जिनसे ज्ञानका ऐश्वर्य होताहै उन शिवजीने भी ॥ ३६।३७ ॥

विस्मय संयुत चित्त होकर पुत्रशोक में परायण पार्वतीजीको अमृत के समान उत्तम वचनों से समझाया कि स्वामिकार्त्तिकेयजी मुझसे भी ज्ञानयोग करके अधिक भावधारी हैं चातुर्मास्यका माहात्म्य सब पातकोंका नाशकहै ॥ ३८।३९ ॥ ध्यानमय व अद्वितीय शिव व विष्णु भी जिसके हृदय में स्थित होते हैं उस

कभावभृत् ॥ विस्मयाविष्टहृदयः पार्वतीमनुशिष्टवान् ॥ ३८ ॥ पुत्रशोकपरां चोमां शुभैर्वाक्यामृतैर्हरः ॥ चातुर्मासस्य माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३९ ॥ महेश्वरो वा मधुकैटभारिर्हृद्याश्रितो ध्यानमयोऽद्वितीयः ॥ अभेद बुद्ध्या परमार्त्तिहन्ता रिपुः स एवातिप्रियो भवेत्ततः ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये तारकासुरवधो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ इति चातुर्मास्यमाहात्म्यम् ॥ * ॥ * ॥

कारण बहुत दुःखों का नाशक वह शत्रु भी बिन भेद की दृष्टि से बहुत प्रिय होता है ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां तारकासुरवधो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ इति शुभम् ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

प्रथम बार

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव बी. ए., के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेखाने में छपा

सन् १९१५ ई० ।

॥ इति स्कन्दपुराण चातुर्मास्यमाहात्म्य ॥

॥ अथ स्कन्दपुराण ब्रह्मोत्तरखण्ड ॥

स्कन्दपुराणान्तर्गत ब्रह्मखण्ड का सूचीपत्र ।

सेतुमाहात्म्य ।

चातुर्मास्यमाहात्म्य।

ब्रह्मोत्तरखण्ड।

इति प्रश्नोत्तरखण्ड का सूचीपत्र।

इति।

अथ ब्रह्मखण्डान्तर्गतब्रह्मोत्तरखण्डप्रारम्भः ॥

दो॰। गर्ग नाम मुनिसों यथा लियो मंत्र भूपाल । सोइ प्रथम अध्याय में वर्णित चरित रसाल ॥ ज्योतिमात्र स्वरूपवाले तथा निर्मल ज्ञानरूपी नेत्रों वाले शान्त तथा लिङ्गमूर्तिवाले ब्रह्मरूपी शिवजीके लिये प्रणाम है ॥ १ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! आपने समस्त पातकों को हरनेवाले व पवित्र विष्णु जीके उत्तम माहात्म्य को संक्षेपसे कहा और हमलोगोंने सुना ॥ २ ॥ इस समय त्रिपुरविनाशक शिवजी के माहात्म्य को हमलोग सुना चाहते हैं और सब पातकों

ॐनमः शिवाय ॥ ज्योतिर्मात्रस्वरूपाय निर्मलज्ञानचक्षुषे ॥ नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये ॥ १ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ आख्यातं भवता सूत विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ समस्ताघहरं पुण्यं समासेन श्रुतं च नः ॥ २ ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं त्रिपुरद्विषः ॥ तद्भक्तानां च माहात्म्यमशेषाघहरं परम् ॥ ३ ॥ तन्मन्त्राणां च माहात्म्यं तथैव द्विजसत्तम ॥ तत्कथायाश्च तद्भक्तेः प्रभावमनुवर्णय ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ एतावदेव मर्त्यानां परं श्रेयः सनातनम् ॥ यदीश्वरकथायां वै जाता भक्तिरहैतुकी ॥ ५ ॥ अतस्तद्भक्तिलेशस्य माहात्म्यं वर्ण्यते मया ॥

के नाशनेवाले व उत्तम उनके भक्तों का माहात्म्य सुना चाहते हैं ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम ! उन शिवजी के मंत्रों के माहात्म्य को व उनकी कथा और उनकी भक्ति के प्रभाव को कहिये ॥ ४ ॥ सूतजी बोले कि मनुष्यों को इतनाही उत्तम व सनातन कल्याण है जोकि ईश्वरकी कथा में फलकी इच्छा से रहित भक्ति होवै ॥ ५ ॥ इस कारण मैं उन शिवजीकी भक्तिके लवमात्र का माहात्म्य वर्णन करता हूं क्योंकि विस्तार से कभी कल्पपर्यन्त आयुर्बलवाला मनुष्य नहीं कह

सक्ता है ॥ ६ ॥ सब पुण्य व सब कल्याणों के मध्यमें और सबभी यज्ञोंके मध्यमें जपयज्ञ उत्तम कहागयाहै ॥ ७ ॥ उनमें पहले जपयज्ञके वडे भारी कल्याणकारक फलको शिवजीके दिव्य षडक्षर मंत्रको महर्षियोंने कहा है ॥ ८ ॥ जैसे देवताओं के मध्य में शिवजी उत्तम देवताहैं वैसेही मंत्रों के मध्यमें शिवजीका षडक्षर मंत्र उत्तम है ॥ ९ ॥ जपनेवालोंको मोक्ष देनेवाला यह पंचाक्षर मंत्र सिद्धि को चाहनेवाले सब श्रेष्ठ मुनियों से सेवन किया जाताहै ॥ १० ॥ और इसी मन्त्रके अक्षरों के माहात्म्यको ब्रह्माजी नहीं कहसक्ते हैं कि जिसमें अत्यन्त गुप्त श्रुतिया सिद्धान्त को प्राप्त हुई हैं ॥ ११ ॥ और शिवजीके जिस उत्तम पंचाक्षर मंत्रमें सच्चिदानन्द

अपि कल्पायुषा नालं वक्तुं विस्तरतः क्वचित् ॥ ६ ॥ सर्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि ॥ सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः ॥ ७ ॥ तत्रादौ जपयज्ञस्य फलं स्वस्त्ययनं महत् ॥ शैवं षडक्षरं दिव्यं मन्त्रमाहुर्महर्षयः ॥ ८ ॥ देवानां परमो देवो यथा वै त्रिपुरान्तकः ॥ मन्त्राणां परमो मन्त्रस्तथा शैवः षडक्षरः ॥ ९ ॥ एष पञ्चाक्षरो मन्त्रो जप्तॄणां मुक्तिदायकः ॥ संसेव्यते मुनिश्रेष्ठैरशेषैः सिद्धिकाङ्क्षिभिः ॥ १० ॥ अस्यैवाक्षरमाहात्म्यं नालं वक्तुं चतुर्मुखः ॥ श्रुतयो यत्र सिद्धान्तं गताः परमनिर्वृताः ॥ ११ ॥ सर्वज्ञः परिपूर्णश्च सच्चिदानन्दलक्षणः ॥ स शिवो यत्र रमते शैवे पञ्चाक्षरे शुभे ॥ १२ ॥ एतेन मन्त्रराजेन सर्वोपनिषदात्मना ॥ लेभिरे मुनयः सर्वे परंब्रह्म निरामयम् ॥ १३ ॥ नमस्कारेण जीवत्वं शिवेऽत्र परमात्मनि ॥ ऐक्यं गतमतो मन्त्रः परब्रह्ममयो ह्यसौ ॥ १४ ॥ भवपाशनिबद्धानां देहिनां हितकाम्यया ॥ आहोंनमः शिवायेति मन्त्रमाद्यं शिवः स्वयम् ॥ १५ ॥ किं तस्य बहु

लक्षणवाले सर्वज्ञ व अखण्ड शिवजी रमण करते हैं ॥ १२ ॥ समस्त उपनिषदात्मक इस मन्त्रराज से सब मुनियों ने विकाररहित परब्रह्म को पाया है ॥ १३ ॥ इस परमात्मा शिव में नमस्कार से जीवत्व एकता को प्राप्त हुआ है इस कारण यह मंत्र परब्रह्ममय है ॥ १४ ॥ संसाररूपी फँसरी से बँधेहुए प्राणियों के हितकी कामना से आपही शिवजीने ॐनमः शिवाय ऐसा आदिमंत्र कहा है ॥ १५ ॥ - उसको बहुतसे मंत्रों और तीर्थों तथा तपस्या व यज्ञोंसे क्या है कि जिसके हृदय

गोचर ॐनमःशिवाय ऐसा मंत्र है ॥ १६ ॥ दुःख से संयुत व भयानक संसार में तबतक प्राणी घूमते हैं जबतक कि एकबार इस मंत्र को नहीं कहते हैं ॥ १७ ॥ और मंत्राधिराजों का राजा यह मंत्र सब वेदान्तों का मस्तकभूत है और वही यह षडक्षर मंत्र सब ज्ञानोंका निधान है ॥ १८ ॥ और यह मोक्षमार्ग का दीपक है व मायारूपी समुद्र का बड़वानल है और वही यह षडक्षर मंत्र बड़े पातकों के लिये दावानल है ॥ १९ ॥ इस कारण वही यह पंचाक्षर मंत्र सब कुछ देनेवाला है और मुक्ति की इच्छावाले शूद्रों व संकर वर्णों तथा स्त्रियों से धारण किया जाता है ॥ २० ॥ और इस मंत्रकी न दीक्षा है न होम है न सरकार है न तर्पण है

भिर्मन्त्रैः किं तीर्थैः किं तपोऽध्वरैः ॥ यस्योंनमः शिवायेति मन्त्रो हृदयगोचरः ॥ १६ ॥ तावद्भ्रमन्ति संसारे दारुणे दुःखसंकुले ॥ यावन्नोच्चारयन्तीमं मन्त्रं देहभृतः सकृत् ॥ १७ ॥ मन्त्राधिराजराजोऽयं सर्ववेदान्तशेखरः ॥ सर्वज्ञाननिधानं च सोऽयं चैव षडक्षरः ॥ १८ ॥ कैवल्यमार्गदीपोऽयमविद्यासिन्धुवाडवः ॥ महापातकदावाग्निः सोऽयं मन्त्रः षडक्षरः ॥ १९ ॥ तस्मात्सर्वप्रदो मन्त्रःसोऽयं पञ्चाक्षरः स्मृतः ॥ स्त्रीभिः शूद्रैश्च संकीर्णैर्धार्यते मुक्तिकाङ्क्षिभिः ॥ २० ॥ नास्य दीक्षा न होमश्च न संस्कारो न तर्पणम् ॥ न कालो नोपदेशश्च सदा शुचिरयं मनुः ॥ २१ ॥ महापातकविच्छित्त्यै शिव इत्यक्षरद्वयम् ॥ अलं नमस्क्रियायुक्तो मुक्तये परिकल्पते ॥ २२ ॥ उपदिष्टः सद्गुरुणा जप्तः क्षेत्रे च पावने ॥ सद्यो यथेप्सितां सिद्धिं ददातीति किमद्भुतम् ॥ २३ ॥ अतः सद्गुरुमाश्रित्य ग्राह्योऽयं मन्त्रनायकः ॥ पुण्यक्षेत्रेषु जप्तव्यः सद्यः सिद्धिं प्रयच्छति ॥ २४ ॥ गुरवो निर्मलाः शान्ताः साधवो मितभाषिणः ॥ कामक्रोध

और न समय है न उपदेश है बरन यह मंत्र सदैव पवित्र है ॥ २१ ॥ व शिव ऐसे दो अक्षर महापातकों के नाश के लिये समर्थ हैं व नमस्कार से सयुत वह मुक्ति के लिये समर्थ है ॥ २२ ॥ और उत्तम गुरुसे उपदेश दिया व पवित्रकारक क्षेत्रमें जपाहुआ यह मंत्र शीघ्रही चाहीहुई सिद्धि को देता है यह क्या आश्चर्य है ॥ २३ ॥ इस कारण उत्तम गुरुके समीप जाकर यह मंत्रराज ग्रहण करने योग्यहै और पवित्र क्षेत्रोंमें जपने योग्यहै क्योंकि शीघ्रही सिद्धि को देता है ॥ २४ ॥ और जो गुरु

निर्मल, शांत, साधु तथा थोड़ा बोलनेवाले होवैं और काम व क्रोध से रहित तथा उत्तम आचारवाले और जितेन्द्रिय होवैं ॥ २५ ॥ इनसे दयासे दिया हुआ मंत्र शीघ्रही सिद्ध होता है और जपके योग्य क्षेत्रों को मैं संक्षेप से कहता हूं ॥ २६ ॥ कि प्रयाग, पुष्कर व सुन्दर केदार और सेतुबन्ध, गोकर्ण व नैमिषारण्य शीघ्रही मनुष्यों की सिद्धिकारक हैं ॥ २७ ॥ इस विषय में विद्वानोंसे प्राचीन इतिहास वर्णन किया जाता है जोकि बहुत बार या एकबार भी सुनने वालों को मंगलदायक है ॥ २८ ॥ मथुरापुरी में बड़े उत्साहवाला व महाबलवान् तथा बुद्धिमान् दाशार्ह ऐसा प्रसिद्ध यदुवों में श्रेष्ठ राजा हुआ है ॥ २९ ॥

विनिर्मुक्ताः सदाचारा जितेन्द्रियाः॥ २५ ॥ एतैः कारुण्यतो दत्तो मन्त्रः क्षिप्रं प्रसिध्यति ॥ क्षेत्राणि जपयोग्यानि समासात्कथयाम्यहम्॥ २६ ॥ प्रयागं पुष्करं रम्यं केदारं सेतुबन्धनम् ॥ गोकर्णं नैमिषारण्यं सद्यः सिद्धिकरं नृणाम् ॥ २७॥ अत्रानुवर्ण्यते सद्भिरितिहासः पुरातनः ॥ असकृद्वा सकृद्वापि शृण्वतां मङ्गलप्रदः ॥ २८ ॥ मथुरायां यदुश्रेष्ठो दाशार्ह इति विश्रुतः॥ बभूव राजा मतिमान्महोत्साहो महाबलः ॥ २९ ॥ शास्त्रज्ञो नयवाक्छूरो धैर्यवानमितद्युतिः ॥ अप्रधृष्यः सुगम्भीरः संग्रामेष्वनिवर्त्तितः ॥ ३० ॥ महारथो महेष्वासो नानाशास्त्रार्थकोविदः ॥ वदान्यो रूपसंपन्नो युवा लक्षणसंयुतः ॥ ३१ ॥ स काशिराजतनयामुपयेमे वराननाम् ॥ कान्तां कलावतीं नाम रूपशीलगुणान्विताम् ॥३२॥ कृतोद्वाहः स राजेन्द्रः संप्राप्य निजमन्दिरम् ॥ रात्रौ तां शयनारूढां संगमाय समाह्वयत् ॥ ३३ ॥ सा

और वह शास्त्रों को जाननेवाला तथा नीतिमान् व शूर और धैर्यवान् तथा अमित प्रकाशवान् था और दुर्धर्ष व बहुतही गम्भीर तथा युद्धों में नहीं लौटता था ॥ ३० ॥ और वह महारथी व बड़े धनुषवाला तथा अनेक प्रकार के शास्त्रार्थों में चतुर था और सुन्दर वचनवाला तथा रूपसे संयुत व युवा और लक्षणों से सयुत था ॥ ३१ ॥ उसने रूप, शील व गुणों से संयुत व सुन्दरी तथा उत्तम मुखवाली कलावती नामक काशी के राजाकी कन्या का ब्याह किया ॥ ३२ ॥ और विवाह करके उस नृपेन्द्र ने अपने घरमें प्राप्त होकर रात्रि में पलँग पै प्राप्त उस स्त्री को समागम के लिये बुलाया ॥ ३३ ॥ अपने पति से बुलाई व बहुत

प्रार्थना कीहुई उस स्त्रीने मनको उसमें नहीं लगाया और वह उसके समीप नहीं आई ॥ ३४ ॥ जब रतिके लिये बुलाई हुई अपनी स्त्री नहीं आई तब बलसे उस को लानेकी इच्छावाला वह राजा उठपड़ा ॥ ३५ ॥ रानी बोली कि हे महाराज ! व्रत में स्थित व कारण को जाननेवाली मुझको मत छुवो तुम धर्म व अधर्म को जानते हो मुझमें साहस को मत करो ॥ ३६ ॥ क्योंकि कभी प्रियसे जो भोग किया जाता है वह बुद्धिमानोंको रुचताहै और स्त्री पुरुष के प्रेम के सयोगसे समागम प्रीति को बढ़ानेवाला है ॥ ३७ ॥ और जब मेरे प्रीति पैदा होगी तब मुझमें तुम्हारा संग होगा क्योंकि बलसे स्त्रियों को भोगने से पुरुषों को क्या प्रीति

स्वभर्त्रा समाहूता बहुशः प्रार्थिता सती ॥ न बबन्ध मनस्तस्मिन्न चागच्छत्तदन्तिकम् ॥ ३४ ॥ संगमाय यदाहूता नागता निजवल्लभा ॥ बलादाहर्तुकामस्तामुदतिष्ठन्महीपतिः ॥ ३५ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ मा मां स्पृश महाराज कारणज्ञां व्रते स्थिताम् ॥ धर्माधर्मौ विजानासि मा कार्षीः साहसं मयि ॥ ३६ ॥ कच्चित्प्रियेण भुक्तं यद्रोचते तु मनीषिणाम् ॥ दम्पत्योःप्रीतियोगेन संगमः प्रीतिवर्द्धनः ॥ ३७ ॥ प्रियं यदा मे जायेत तदा सङ्गस्तु ते मयि ॥ का प्रीतिः किं सुखं पुंसां बलाद्भोगेन योषिताम् ॥ ३८ ॥ अप्रीतां रोगिणीं नारीमन्तर्वत्नीं धृतव्रताम् ॥ रजस्वलामकामां च न कामेत बलात्पुमान् ॥ ३९ ॥ प्रीणनं लालनं पोषं रञ्जनं मार्दवं दयाम् ॥ कृत्वा वधूमुपगमेद्युवतीं प्रेमवान्पतिः ॥ युवतौ कुसुमे चैव विधेयं सुखमिच्छता ॥ ४० ॥ इत्युक्तोऽपि तया साध्व्या स राजा स्मरविह्वलः ॥ बलादाकृष्य तां हस्ते परिरेभे रिरंसया ॥ ४१ ॥ तां स्पृष्टमात्रां सहसा तप्तायःपिण्डसन्निभाम् ॥ निर्दहन्तीमिवात्मानं तत्याज भयविह्वलः ॥ ४२ ॥

होती है और कौन सुख होता है ॥ ३८ ॥ और बिन स्नेहवती, रोगिणी तथा व्रत को धारण किये और गर्भिणी व रजस्वला तथा न चाहतीहुई स्त्री को पुरुष बल से इच्छा नहीं करता है ॥ ३९ ॥ और तृप्ति, प्यार, पोषण, स्नेह, कोमलता व दया करके ज्वानी स्त्रीके समीप प्रेमवान् पति जावै और पुष्पसमय में सुखको चाहनेवाले पुरुष को रति करना चाहिये ॥ ४० ॥ उस स्त्री से ऐसा कहेहुए उस कामदेव से विकल राजा ने रति की इच्छा से बलसे हाथ में पकड़ कर लिपटा लिया ॥ ४१ ॥ और तचते हुए लोहे के गोले के समान अपना को जलाती हुई सी यकायक छुई हुई उसको भयसे विकल राजा ने छोडदिया ॥ ४२ ॥

राजा बोले कि हे प्रिये ! यह बड़ाभारी आश्चर्य देखा गया कि कोमल पत्तेके समान तुम्हारा शरीर कैसे अग्निके समान होगया ॥४३॥ इस प्रकार बहुतही विस्मित राजा, डरगया और पवित्र मुसक्यानवाली वह रानी विहँस कर उस राजा से बोली ॥ ४४ ॥ रानी बोली कि हे राजन् ! पुरातन समय मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाजी ने दया से बाल्यावस्था में शिवजी की पञ्चाक्षरी विद्या को मुझे उपदेश दिया था ॥ ४५ ॥ उसी मंत्र के प्रभाव से पापरहित मेरा अङ्ग दैवसे रहित व पाप समेत मनुष्यों से नहीं छुवा जासक्ता है ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! तुम स्वभावही से मदिरा पीने में परायण कुलटा व वेश्यादिक स्त्रियों को सदैव सेवन करतेहो ॥ ४७॥

राजोवाच॥ अहो सुमहदाश्चर्यमिदं दृष्टं तव प्रिये ॥ कथमग्निसमं जातं वपुः पल्लवकोमलम् ॥ ४३ ॥ इत्थं सुविस्मितो राजा भीतःसा राजवल्लभा ॥ प्रत्युवाच विहस्यैनं विनयेन शुचिस्मिता ॥ ४४ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ राजन्मम पुरा बाल्ये दुर्वासा मुनिपुङ्गवः ॥ शैवीं पञ्चाक्षरीं विद्यां कारुण्येनोपदिष्टवान् ॥ ४५ ॥ तेन मन्त्रानुभावेन ममाङ्गं कलुषोज्झितम् ॥ स्प्रष्टुं न शक्यते पुम्भिः सपापैर्दैववर्जितैः ॥४६ ॥ त्वया राजन्प्रकृतिना कुलटागणिकादयः ॥ मदिरास्वादनिरता निषेव्यन्ते सदा स्त्रियः ॥ ४७ ॥ न स्नानं क्रियते नित्यं न मन्त्रो जप्यते शुचिः ॥ नाराध्यते त्वयेशानः कथं मां स्प्रष्टुमर्हसि ॥ ४८ ॥ राजोवाच ॥ तां समाख्याहि सुश्रोणि शैवीं पञ्चाक्षरीं शुभाम् ॥ विद्याविध्वस्तपापोऽहं त्वयेच्छामि रतिं प्रिये ॥ ४९ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ नाहं तवोपदेशं वै कुर्यां मम गुरुर्भवान् ॥ उपातिष्ठ गुरुं राजन्गर्गं मन्त्रविदांवरम् ॥ ५० ॥ सूत उवाच ॥ इति संभाषमाणौ तौ दम्पती गर्गसन्निधिम् ॥ प्राप्य तच्चरणौ मूर्ध्ना ववन्दाते कृताञ्जली ॥ ५१ ॥ अथ

और तुम नित्य स्नान नहीं करतेहो व पवित्र मंत्र नहीं जपते हो और शिवजी को आराधन नहीं करतेहो तो कैसे मुझको छूनेके योग्य हो ॥ ४८ ॥ राजा बोले कि हे सुश्रोणि ! उस उत्तम शिवजी की पञ्चाक्षरी विद्याको कहिये हे प्रिये ! विद्या से पापरहित मैं तुम्हारे साथ रतिको चाहता हूं ॥ ४९ ॥ रानी बोली कि मैं तुमको उपदेश न करूंगी क्योंकि आप मेरे गुरुहो हे राजन् ! मंत्र जाननेवालों में श्रेष्ठ गर्गाचार्य गुरुके समीप जावो ॥ ५० ॥ सूतजी बोले कि इसप्रकार कहते हुए उन दोनों स्त्री पुरुषों ने गर्गजी के समीप प्राप्त होकर हाथों को जोड़ कर उनके चरणों को मस्तक से प्रणाम किया ॥ ५१ ॥ इसके उपरान्त प्रसन्न

गुरुको बारबार पूजकर नम्रचित्तवाले राजाने एकान्त में अपना मनोरथ कहा ॥ ५२ ॥ राजा बोले कि हे गुरो ! दया से संयुत चित्तवाले तुम प्राप्त हुए मुझको कृतार्थ कीजिये और शिवजीकी पञ्चाक्षरी विद्याको तुम उपदेश करने के योग्य हो ॥ ५३ ॥ हे गुरो ! राजा के कर्मसे जो अज्ञात या ज्ञात पाप किया गयाहो वह पाप जिससे शुद्ध होजावै उस मन्त्रको मुझे दीजिये ॥ ५४ ॥ इसप्रकार राजा से प्रार्थना कियेहुए द्विजोत्तम गर्गाचार्यजी उन दोनों को यमुनाजीके महापवित्र व उत्तम किनारे पै लेगये ॥ ५५ ॥ और वहां पवित्र वृक्ष की जड़में आपही गुरुजी बैठ गये और पवित्र तीर्थ के जलमें नहाये हुए व उपवास किये राजाको ॥ ५६ ॥

राजा गुरुं प्रीतमभिपूज्य पुनःपुनः ॥ समाचष्ट विनीतात्मा रहस्यात्ममनोरथम् ॥ ५२ ॥ राजोवाच ॥ कृतार्थं मां कुरु गुरो संप्राप्तं करुणार्द्रधीः ॥ शैवीं पञ्चाक्षरीं विद्यामुपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥ ५३ ॥ अनाज्ञातं यदाज्ञातं यत्कृतं राजकर्मणा ॥ तत्पापं येन शुध्येत तन्मन्त्रं देहि मे गुरो ॥ ५४ ॥ एवमभ्यर्थितो राज्ञा गर्गो ब्राह्मणपुङ्गवः ॥ तौ निनाय महापुण्यं कालिन्द्यास्तटमुत्तमम् ॥ ५५ ॥ तत्र पुण्यतरोर्मूले निषण्णोथ गुरुः स्वयम् ॥ पुण्यतीर्थजले स्नातं राजानं समुपोषितम् ॥ ५६ ॥ प्राङ्मुखं चोपवेश्याथ नत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ तन्मस्तके करं न्यस्य ददौ मन्त्रं शिवात्मकम् ॥ ५७ ॥ तन्मन्त्रधारणादेव तद्गुरोर्हस्तसंगमात् ॥ निर्ययुस्तस्य वपुषो वायसाः शतकोटयः ॥ ५८ ॥ ते दग्धपक्षाः क्रोशन्तो निपतन्तो महीतले ॥ भस्मीभूतास्ततः सर्वे दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ॥ ५९ ॥ दृष्ट्वा तद्वायसकुलं दह्यमानं सुविस्मितौ ॥ राजा च राजमहिषी तं गुरुं पर्यपृच्छताम् ॥ ६० ॥ भगवन्निदमाश्चर्यं कथं जातं

पूर्व मुख बिठा कर और शिवजी के चरण कमल को प्रणाम कर व उनके माथे पै हाथ को धरकर शिवजी का मंत्र दिया ॥ ५७ ॥ और उस मंत्रके धारणही से व उस गुरुके हाथ के स्पर्श से उस राजा के शरीर से सैकड़ों करोड़ कौवा निकले ॥ ५८ ॥ और जले हुए पंखोंवाले वे चिल्लाते हुए पृथ्वी में गिरपडे तदनन्तर वे सब हज़ारों कौवा भस्म हुए देख पड़े ॥ ५९ ॥ उस कौवा के समूह को जलता हुआ देखकर बहुतही विस्मित राजा व रानी ने उन गुरुजी से पूछा ॥ ६० ॥ कि हे भगवन् ! शरीर से यह आश्चर्य कैसा है कि शरीर मे उपजा हुआ कौवों का कुल देख पड़ा यह क्या है इसको भली भांति

कहिये ॥ ६१ ॥ श्रीगुरुजी बोले कि हे राजन्! हज़ारों जन्मों में भ्रमते हुए आपसे इकट्ठा किये हुए अशुभ परिणामवाले अनेकों पाप हैं ॥ ६२ ॥ और उन हज़ारों जन्मों में जो तुम्हारे पुण्य हैं उनकी अधिकता से आप कभी पवित्र योनियों में पैदा होते हो ॥ ६३ ॥ वैसेही पाप से कभी बहुत पापवाली योनिको प्राप्त होते हो और पुण्य व पाप की समता में आपने मनुष्ययोनि को पाया है ॥ ६४ ॥ जब शिवजी की पंचाक्षरी विद्या तुम्हारे हृदय में प्राप्त हुई तब तुम्हारे करोड़ों पाप कौवा के रूप से निकले ॥ ६५ ॥ और करोड़ों ब्रह्महत्या व करोड़ों अगम्यागमन व करोड़ों सुवर्ण की चोरी, मदिरापान व बालहत्या

शरीरतः ॥ वायसानां कुलं दृष्टं किमेतत्साधु भण्यताम् ॥ ६१ ॥ श्रीगुरुरुवाच॥राजन्भवसहस्रेषु भवता परिधावता॥ संचितानि दुरन्तानि सन्ति पापान्यनेकशः ॥ ६२ ॥ तेषु जन्मसहस्रेषु यानि पुण्यानि सन्ति ते ॥ तेषामाधिक्यतः क्वापि जायते पुण्ययोनिषु ॥ ६३ ॥ तथा पापीयसीं योनिं क्वचित्पापेन गच्छति ॥ साम्ये पुण्यान्ययोश्चैव मानुषीं योनिमाप्तवान् ॥ ६४ ॥ शैवी पञ्चाक्षरी विद्या यदा ते हृदयं गता ॥ अघानां कोटयस्त्वत्तः काकरूपेण निर्गताः ॥६५॥ कोटयो ब्रह्महत्यानामगम्यागम्यकोटयः ॥ स्वर्णस्तेयसुरापानभ्रूणहत्यादिकोटयः ॥ भवकोटिसहस्रेषु येऽन्ये पातकराशयः ॥ ६६ ॥ क्षणाद्भस्मीभवन्त्येव शैवे पञ्चाक्षरे धृते ॥ आसंस्तवाद्य राजेन्द्र दग्धाः पातककोटयः ॥ ६७ ॥ अनया सह पूतात्मा विहरस्व यथासुखम् ॥ इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठस्तं मन्त्रमुपदिश्य च ॥ ६८ ॥ ताभ्यां विस्मित चित्ताभ्यां सहितः स्वगृहं ययौ ॥ गुरुवर्यमनुज्ञाप्य मुदितौ तौ च दम्पती ॥ ६९ ॥ ततः स्वभवनं प्राप्य रेजतुः स्म

और करोड़ों हज़ार जन्मों में जो अन्य पापों की राशियां हैं ॥ ६६ ॥ वे शिवजी का पंचाक्षर मंत्र धारण करने पर क्षणभर में भस्म होजाते हैं हे राजेन्द्र! इस समय तुम्हारे करोड़ों पाप जल गये ॥ ६७ ॥ और इस स्त्री के साथ पवित्र चित्तवाले तुम सुखपूर्वक विहार करो यह कहकर मुनिश्रेष्ठ गर्गजी उस मंत्र को उपदेश कर ॥ ६८ ॥ विस्मितचित्तवाले उन दोनों समेत अपने घरको चले गये और श्रेष्ठ गुरु से आज्ञा को लेकर तदनन्तर प्रसन्न होते हुए वे महा-

प्रकाशमान स्त्री पुरुष अपने घरको प्राप्त होकर शोभित हुए और चन्दन के समान शीतल स्त्री को दृढ़ता से लिपटा कर राजा ने ॥ ६९ । ७० ॥ बड़े हर्ष को पाया जैसे कि निर्धनी धन को पाकर हर्ष को पाता है ॥ ७१ ॥ सम्पूर्ण वेद, उपनिषत्, पुराण व शास्त्रों का शिरोमणि यह पापनाशक पंचाक्षरही मंत्र का बड़ा भारी व श्रेष्ठ प्रभाव मैंने संक्षेप से कहा ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मोत्तरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चाक्षरमन्त्रमाहात्म्यवर्णनंनामप्रथमोऽध्यायः १ ॥

दो॰ । यथा मित्रसह भूपको दिय वशिष्ठमुनि शाप । सो दूजे अध्याय में कह्यो चरित आलाप ॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त मैं शिवजीके अन्य भी माहात्म्य

महाद्युती ॥ राजा दृढं समाश्लिष्य पत्नीं चन्दनशीतलाम् ॥७०॥ संतोषं परमं लेभे निःस्वः प्राप्य यथा धनम् ॥७१॥ अशेषवेदोपनिषत्पुराणशास्त्रावतंसोऽयमघान्तकारी ॥ पञ्चाक्षरस्यैव महाप्रभावो मया समासात्कथितो वरिष्ठः ॥७२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे पञ्चाक्षरमन्त्रमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ अथान्यदपि वक्ष्यामि माहात्म्यं त्रिपुरद्विषः ॥ श्रुतमात्रेण येनाशुच्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥ १ ॥ अतः परतरं नास्ति किंचित्पापविशोधनम् ॥ सर्वानन्दकरं श्रीमत्सर्वकामार्थसाधकम् ॥ २ ॥ दीर्घायुर्विजयारोग्यभुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ यदनन्येन भावेन महेशाराधनं परम् ॥ ३ ॥ आर्द्राणामपि शुष्काणामल्पानां महतामपि ॥ एतदेव विनिर्दिष्टं प्रायश्चित्तमथोत्तमम् ॥ ४ ॥ सर्वकालेऽप्यभेद्यानामघानां क्षयकारणम् ॥ महामुनिविनिर्दिष्टैः प्रायश्चित्तैरथोत्तमैः ॥ ५ ॥ इदमेव परं श्रेयः सर्वशास्त्रविनिश्चितम् ॥ यद्भक्त्या परमेशस्य पूजनं परमोदयम् ॥६॥ जानताऽजानता

को कहताहूं कि जिसके सुनने से शीघ्रही सब सन्देह कट जाते हैं ॥ १ ॥ इससे अधिक उत्तम कुछ पापशोधक व सबोंको आनन्दकारक तथा श्रीमान् व सब कामनाओं व अर्थों का साधक नहीं है ॥ २ ॥ और यह दीर्घ आयुर्बल, विजय, आरोग्य व भुक्ति मुक्ति के फल का दायक है जो कि अनन्यभाव से शिवजी का उत्तम आराधन है ॥३ ॥ और भीगे व सूखे तथा छोटे व बड़े भी पापों का यही उत्तम प्रायश्चित्त कहा गया है ॥४॥ व महामुनियों से कहे हुए उत्तम प्रायश्चित्तोंसे सब समयमें भी अभेदनीय पापों के क्षय का कारण है ॥५॥ सब शास्त्रों में निश्चय किया हुआ यही उत्तम कल्याण है जो कि भक्ति से परमेश्वर का बड़े ऐश्वर्यवाला पूजन है ॥ ६ ॥ जिस

किसी भी कारण से जानते व न जानते हुए भी मनुष्य से जो कुछ देवता के लिये कर्म किया जाता है वह मुक्तिदायक होता है ॥ ७ ॥ और माघ में कृष्णपक्ष की चौदसि में उपास बहुत दुर्लभ है व उसमें भी मनुष्यों को रात्रिमें जागरण दुर्लभ मानताहूं ॥ ८ ॥ और शिवलिंग का दर्शन बहुतही दुर्लभ मानता हूं व परमेश्वर का पूजन बहुतही दुर्लभ मानताहूं ॥ ९ ॥ फिर उसमें भी करोडों सौ जन्मों में उत्पन्न पुण्यसमूहों के फल से शिवजी का विल्वपत्र से पूजन मिलता है ॥ १० ॥ दश हज़ार वर्षतक जिसने गंगाजी के जलमें स्नान किया है उस फलको मनुष्य एक बार विल्वपत्र के पूजन से पाता है ॥ ११ ॥ और जो जो

वापि येन केनापि हेतुना ॥ यत्किंचिदपि देवाय कृतं कर्म विमुक्तिदम् ॥७॥ माघे कृष्णचतुर्दश्यामुपवासोतिदुर्लभः ॥ तत्रापि दुर्लभं मन्ये रात्रौ जागरणं नृणाम् ॥ ८ ॥ अतीव दुर्लभं मन्ये शिवलिङ्गस्य दर्शनम् ॥ सुदुर्लभतरं मन्ये पूजनं परमेशितुः ॥ ९ ॥ भवकोटिशतोत्पन्नपुण्यराशिविपाकतः ॥ लभ्यते वा पुनस्तत्र बिल्वपत्रार्चनं विभोः ॥ १० ॥ वर्षाणामयुतं येन स्नातं गङ्गासरिज्जले ॥ सकृद्बिल्वार्चनेनैव तत्फलं लभते नरः ॥ ११ ॥ यानि यानि तु पुण्यानि लीनानीह युगे युगे ॥ माघेऽसितचतुर्दश्यां तानि तिष्ठन्ति कृत्स्नशः ॥ १२ ॥ एतामेव प्रशंसन्ति लोके ब्रह्मादयः सुराः ॥ मुनयश्च वशिष्ठाद्या माघेऽसितचतुर्दशीम् ॥ १३ ॥ अत्रोपवासः केनापि कृतः क्रतुशताधिकः ॥ रात्रौ जागरणं पुण्यं कल्पकोटितपोऽधिकम् ॥ १४ ॥ एकेन बिल्वपत्रेण शिवलिङ्गार्चनं कृतम् ॥ त्रैलोक्ये तस्य पुण्यस्य को वा सादृश्यमिच्छति ॥ १५ ॥ अत्रानुवर्ण्यते गाथा पुण्या परमशोभना ॥ गोपनीयापि कारुण्याद्गौतमे

पुण्य युग युग में लीन होगये हैं वे सब माघ में कृष्णपक्ष की चौदसि में स्थित होते हैं ॥ १२ ॥ लोक में ब्रह्मादिक देवता व वशिष्ठादिक मुनि माघमें कृष्णपक्ष-वाली इस चौदसि की प्रशंसा करते हैं ॥ १३ ॥ इस चौदसि में किसीसे भी किया हुआ उपवास सौ यज्ञों से अधिक होता है और रात्रि में जागरण पवित्रहै व करोड़ कल्पों के तप से अधिकहै ॥ १४ ॥ जिसने एक बिल्वपत्र से शिवलिंग का पूजन किया है त्रिलोक में उसके पुण्य की समानताको कौन चाहताहै ॥ १५ ॥

इस विषय में बहुतही उत्तम व पवित्र कथा वर्णन कीजाती है गुप्त करने योग्य भी वह गौतमजी से प्रकाशित कीगई है ॥ १६ ॥ कि इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न सब धनुर्धारियों में श्रेष्ठ व बड़ा धर्मवान् मित्रसह नामक श्रीमान् राजा हुआ है ॥ १७ ॥ वह राजा सब अस्त्रों को जाननेवाला व शास्त्र का ज्ञाता तथा श्रुतियों का पारगामी व वीर और अत्यन्त बल के उत्साहवाला तथा नित्य उद्योगी व दयानिधान था ॥ १८ ॥ और जिसका शरीर पुण्यों की राशि की नाईं व तेजों के पंजर के समान तथा आश्चर्यों के क्षेत्र की नाईं शोभित था ॥ १९ ॥ और उसका हृदय दया से घिरा था व लक्ष्मी से

न प्रकाशिता ॥ १६ ॥ इक्ष्वाकुवंशजः श्रीमान् राजा परमधार्मिकः ॥ आसीन्मित्रसहोनाम श्रेष्ठः सर्वधनुर्भृताम् ॥ १७ ॥ स राजा सकलास्त्रज्ञः शास्त्रज्ञः श्रुतिपारगः ॥ वीरोऽत्यन्तबलोत्साहो नित्योद्योगी दयानिधिः ॥ १८ ॥ पुण्यानामिव संघातस्तेजसामिव पञ्जरः ॥ आश्चर्याणामिव क्षेत्रं यस्य मूर्तिर्विराजते ॥ १९ ॥ हृदयं दययाक्रान्तं श्रियाक्रान्तं च तद्वपुः ॥ चरणौ यस्य सामन्तचूडामणिमरीचिभिः ॥ २० ॥ एकदा मृगयाकेलिलोलुपः स महीपतिः ॥ विवेश गह्वरं घोरं बलेन महतावृतः ॥ २१ ॥ तत्र विव्याध विशिखैः शार्दूलान्गवयान्मृगान् ॥ रुरून्वराहान्महिषान्मृगेन्द्रानपि भूरिशः ॥ २२ ॥ स रथी मृगयासक्तो गहनं दंशितश्चरन् ॥ कमपि ज्वलनाकारं निजघान निशाचरम् ॥ २३ ॥ तस्यानुजः शुचाविष्टो दृष्ट्वा दूरे तिरोहितः ॥ भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा चिन्तयामास चेतसा ॥ २४ ॥

उसका शरीर आक्रमित था और जिसके चरण छोटे राजाओं की चूडामणियों की किरणों से घिरे थे ॥ २० ॥ एक समय शिकार खेलने का लोभी वह राजा बड़ी सेना से संयुत होकर भयकर वन में पैठ गया ॥ २१ ॥ वहा उसने बहुतसे व्याघ्र, गवय, मृग व रुरुसंज्ञक हिरनों को तथा वनवराहों व जगली भैंसों व सिंहों को भी बाणों से मारा ॥ २२ ॥ और रथ पै चढ़ व कवच को पहने घूमते हुए उस शिकार में लगे हुए राजाने अग्नि के समान किसी निशाचर को मारा ॥ २३ ॥ और शोच से सयुत उसका छोटा भाई देखकर दूर छिप गया और भाई को मारा हुआ देखकर उसने चित्त से विचार किया ॥ २४ ॥

कि देवताओं व राक्षसोंको भी दुर्धर्ष यह मेरा शत्रु राजा छलहीसे जीतने योग्यहै अन्यथा जीतने योग्य नहीं है ॥ २५ ॥ यह विचार कर मनुज के समान आकार वाला वह पापी राक्षस श्रेष्ठ राजा के समीप देहधारी उत्पात के समान प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥ सेवकाई करने के लिये आये हुए उसको नम्र आकारवाला देखकर उस राजाने अज्ञान से रसोईंदार किया ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर उस वन में वह राजा कुछ समय तक विहार करके लौटा और शिकार को छोडकर फिर अपनी पुरी को आया ॥ २८ ॥ उस राजा की मदयन्ती नामक पतिव्रता प्यारी स्त्री थी जैसे कि नल की स्त्री दमयन्ती थी ॥ २९ ॥ इसी समय में पितरों

नन्वेष राजा दुर्द्धर्षो देवानां रक्षसामपि ॥ छद्मनैव प्रजेतव्यो मम शत्रुर्न चान्यथा ॥ २५ ॥ इति व्यवसितः पापो राक्षसो मनुजाकृतिः ॥ आससाद नृपश्रेष्ठमुत्पात इव मूर्तिमान् ॥ २६ ॥ तं विनम्राकृतिं दृष्ट्वा भृत्यतां कर्तुमागतम् ॥ चक्रे महानसाध्यक्षमज्ञानात्स महीपतिः ॥ २७ ॥ अथ तस्मिन्वने राजा किंचित्कालं विहृत्य सः ॥ निवृत्तो मृगयां हित्वा स्वपुरीं पुनराययौ ॥ २८ ॥ तस्य राजेन्द्रमुख्यस्य मदयन्तीतिनामतः ॥ दमयन्ती नलस्येव विदिता वल्लभा सती ॥ २९ ॥ एतस्मिन्समये राजा निमन्त्र्य मुनिपुङ्गवम् ॥ वशिष्ठं गृहमानिन्ये संप्राप्ते पितृवासरे ॥ ३० ॥ रक्षसा सूदरूपेण संमिश्रितनरामिषम् ॥ शाकामिषं पुरः क्षिप्तं दृष्ट्वा गुरुरथाब्रवीत् ॥ ३१ ॥ धिग्धिङ्नरामिषं राजंस्त्वयै तच्छद्मकारिणा ॥ खलेनोपहृतं मेऽद्य अतो रक्षो भविष्यसि ॥ ३२ ॥ रक्षःकृतमविज्ञाय शप्त्वैवं स गुरुस्ततः ॥ पुन र्विमृश्य तं शापं चकार द्वादशाब्दिकम् ॥ ३३ ॥ राजापि कोपितः प्राह यदिदं मे न चेष्टितम् ॥ न ज्ञातंच वृथा शप्तो

का क्षयाह प्राप्त होने पर राजा मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी को न्योत कर घरको ले आया ॥ ३० ॥ और रसोईंदाररूपी राक्षस से आगे परोसे हुए मनुष्य के मांस से मिश्रित शाकमांस को देखकर गुरु वशिष्ठजी बोले ॥ ३१ ॥ कि हे राजन् ! तुझको धिक्कार है धिक्कार है तुझ छलकारी दुष्टने आज इस मनुष्य के मास को मेरे आगे परोसदिया इस कारण तुम राक्षस होगे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार शाप देकर तदनन्तर राक्षस से किया हुआ कर्म जानकर उस गुरुने विचार कर उस शाप को बारह वर्षवाला किया ॥ ३३ ॥ और क्रोधित होकर राजाने भी कहा कि तुमने जो इस मेरे कर्म को नहीं जाना और मुझको वृथा शाप दिया

इससे मैं गुरुको शाप देता हूं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार अजलि से जलको लेकर राजा गुरुको शाप देने के लिये तैयार हुआ और उनके चरणों में गिरकर मदयन्ती ने मना किया ॥ ३५ ॥ तदनन्तर उसके वचन के गौरव से राजा शाप से निवृत्त हुआ और उसने जल को पैरों के ऊपर छोड़ दिया और चरण कल्मषता (मलिनता) को प्राप्त हुए ॥ ३६ ॥ तब से लगाकर राजा कल्माषाङ्घ्रि ऐसा प्रसिद्ध हुआ और गुरु के शाप से वन में रहनेवाला राक्षस हुआ ॥ ३७ ॥ और काल व यमराज के समान भयंकररूप को धारनेवाले उस वनचारी राक्षस ने मनुष्य आदिक अनेक प्रकार के प्राणियों को खाडाला ॥ ३८ ॥

गुरुं चैव शपाम्यहम् ॥ ३४ ॥ इत्यपोञ्जलिनादाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥ पतित्वा पादयोस्तस्य मदयन्ती न्यवारयत् ॥ ३५ ॥ ततो निवृत्तः शापाच्च तस्या वचनगौरवात् ॥ तत्याज पादयोरम्भः पादौ कल्मषतां गतौ ॥ ३६ ॥ कल्माषाङ्घ्रिरिति ख्यातस्ततःप्रभृति पार्थिवः ॥ बभूव गुरुशापेन राक्षसो वनगोचरः ॥ ३७ ॥ स बिभ्रद्राक्षसं रूपं घोरं कालान्तकोपमम् ॥ चखाद विविधाञ्जन्तून्मानुषादीन्वनेचरः ॥ ३८ ॥ स कदाचिद्वने क्वापि रममाणौ किशोरकौ ॥ अपश्यदन्तकाकारो नवोढौ मुनिदम्पती ॥ ३९ ॥ राक्षसो मानुषाहारः किशोरं मुनिनन्दनम् ॥ जग्धुं जग्राह शापार्तो व्याघ्रो मृगशिशुं यथा ॥ ४० ॥ रक्षोगृहीतं भर्त्तारं दृष्ट्वा भीताथ तत्प्रिया ॥ उवाच करुणं बाला क्रन्दन्ती भृशवेपिता ॥ ४१ ॥ भो भो मामा कृथाः पापं सूर्यवंश यशोधर ॥ मदयन्तीपतिस्त्वं हि राजेन्द्रो न तु राक्षसः ॥ ४२ ॥

किसी समय कालके समान उसने रमण करते हुए नवीन ब्याहे किशोर अवस्थावाले मुनियों के स्त्री, पुरुष को देखा ॥ ३९ ॥ और शाप से विकल मनुष्यभोजनवाले उस राक्षस ने किशोर अवस्थावाले मुनिपुत्र को खाने के लिये पकड़ लिया, जैसे कि व्याघ्र मृग के बच्चे को पकड़ लेवै ॥ ४० ॥ राक्षस से पकडे हुए पतिको देखकर उसकी स्त्री डरगई और बहुत कांपती व चिल्लाती हुई वह स्त्री करुणापूर्वक बोली ॥ ४१ ॥ कि हे सूर्यवंशयशोधर ! पाप को मत कीजिये मत कीजिये क्योंकि मदयन्ती के पति तुम नृपेन्द्र हो राक्षस नहीं हो ॥ ४२ ॥ हे प्रभो ! प्राण से भी अधिक प्यारे मेरे पतिको न खाइये क्योंकि शरण में

आये हुए दुःखी लोगों की तुम्हीं गति हो ॥ ४३ ॥ महात्मा पति के विना बड़े बोझवाले शरीर व पापों के समूह की नाईं दुष्ट व जड प्राणों से मेरा क्या प्रयोजन है याने कुछ नहीं ॥ ४४ ॥ और बहुत ही मलिन व पंचभूतोंवाले तथा पापी शरीर से क्या सुख होगा और यह बालक वेदों को जाननेवाला तथा शान्त व तपस्वी और बहुत शास्त्रों को जाननेवाला है ॥ ४५ ॥ इस कारण इसके प्राणदान से तुमने संसार की रक्षा किया हे महाराज ! बाला व ब्राह्मण की स्त्री के ऊपर दया कीजिये ॥ ४६ ॥ क्योंकि अनाथ, कृपण व दुःखी लोगों के ऊपर साधु लोग दयासमेत होते हैं इस प्रकार प्रार्थना किये हुए भी उस

न खाद मम भर्त्तारं प्राणात्प्रियतमं प्रभो ॥ आर्त्तानां शरणार्त्तानां त्वमेव हि यतो गतिः ॥ ४३ ॥ पापानामिव संघातैः किं मे दुष्टैर्जडासुभिः ॥ देहेन चातिभारेण विना भर्त्रा महात्मना ॥ ४४ ॥ मलीमसेन पापेन पाञ्चभौतेन किं सुखम् ॥ बालोयं वेदविच्छान्तस्तपस्वी बहुशास्त्रवित् ॥ ४५ ॥ अतोऽस्य प्राणदानेन जगद्रक्षा त्वया कृता ॥ कृपां कुरु महाराज बालायां ब्राह्मणस्त्रियाम् ॥ ४६ ॥ अनाथकृपणार्तेषु सघृणाः खलु साधवः ॥ इत्थमभ्यर्थितः सोऽपि पुरुषादः स निर्घृणः ॥ ४७ ॥ चखाद शिर उत्कृत्य विप्रपुत्रं दुराशयः ॥ अथ साध्वी कृशा दीना विलप्य भृशदुःखिता ॥ ४८ ॥ आहृत्य भर्तुरस्थीनि चितां चक्रे तथोल्बणाम् ॥ भर्तारमनुगच्छन्ती संविशन्ती हुताशनम् ॥ ४९ ॥ राजानं राक्षसाकारं शापास्त्रेण जघान तम् ॥ रे रे पार्थिव पापात्मंस्त्वया मे भक्षितः पतिः ॥ ५० ॥ अतः पतिव्रतायास्त्वं शापं भुङ्क्ष्व यथोल्बणम् ॥ अद्यप्रभृति नारीषु यदा त्वमपि संगतः ॥ तदा मृतिस्तवेत्युक्त्वा

दुष्ट आशयवाले निर्दयी राक्षस ने मस्तक को काटकर ब्राह्मण के पुत्र को खा डाला इसके अनन्तर बहुत ही दुःखित उस दीन व दुबली पतिव्रता स्त्री ने विलाप करके ॥ ४७ । ४८ ॥ पति के अस्थियों को इकट्ठा कर उग्र चिता को बनाया व पति के पीछे जाती तथा अग्नि में पैठती हुई उसने ॥ ४९ ॥ राक्षस आकारवाले उस राजाको शाप के अस्त्र से मारा कि हे पापात्मन्, राजन् ! तुमने मेरे पतिको खा लिया ॥ ५० ॥ इस कारण तुम पतिव्रता के उग्र शाप को

भोग करो कि आज से लगाकर जब तुम भी स्त्रियो में समागम करोगे तब तुम्हारी मृत्यु होगी यह कहकर वह पतिव्रता स्त्री अग्नि में पैठ गई ॥ ५१ ॥ और वह राजा भी अवधि किये हुए गुरु के शाप को भोगकर फिर अपने स्वरूप को प्राप्त होकर प्रसन्न होकर घर को चला गया ॥ ५२ ॥ ब्राह्मण की पतिव्रता स्त्री का शाप जानकर उस राजा की स्त्री ने वैधव्यता से बहुत डरकर रति की इच्छावाले पति को मना किया ॥ ५३ ॥ और राज्य के सुखों में विरक्त वह सन्तानरहित राजा सब लक्ष्मी को छोड़कर फिर भी वनको चला गया ॥ ५४ ॥ और मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी ने सूर्यवंश की स्थिति के लिये उस मदयन्ती स्त्री में

विवेश ज्वलनं सती ॥ ५१ ॥ सोऽपि राजा गुरोः शापमुपभुज्य कृतावधिम् ॥ पुनः स्वरूपमादाय स्वगृहं मुदितो ययौ ॥ ५२ ॥ ज्ञात्वा विप्रसतीशापं तत्पत्नी रतिलालसम् ॥ पतिं निवारयामास वैधव्यादतिबिभ्यती ॥ ५३ ॥ अनपत्यः स निर्विण्णो राज्यभोगेषु पार्थिवः ॥ विसृज्य सकलां लक्ष्मीं ययौ भूयोऽपि काननम् ॥ ५४ ॥ सूर्यवंशप्रतिष्ठित्यै वशिष्ठो मुनिसत्तमः ॥ तस्यामुत्पादयामास मदयन्त्यां सुतोत्तमम् ॥ ५५ ॥ विसृष्टराज्यो राजापि विचरन्सकलां महीम् ॥ आयान्तीं पृष्ठतोऽपश्यत्पिशाचीं घोररूपिणीम् ॥ ५६ ॥ सा हि मूर्त्तिमती घोरा ब्रह्महत्या दुरत्यया ॥ यदसौ शापविभ्रष्टो मुनिपुत्रमभक्षयत् ॥ ५७ ॥ तेनात्मकर्मणा यान्तीं ब्रह्महत्यां स पृष्ठतः ॥ बुबुधे मुनिवर्याणामुपदेशेन भूपतिः ॥ ५८ ॥ तस्या निर्वेशमन्विच्छन् राजा निर्विण्णमानसः ॥ नानाक्षेत्राणि तीर्थानि चचार बहुवत्सरम् ॥ ५९ ॥ यदा सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वापि च मुहुर्मुहुः ॥ न निवृत्ता ब्रह्महत्या मिथिलामाययौ तदा ॥ बाह्यो

उत्तम पुत्रको पैदा किया ॥ ५५ ॥ और राज्यको छोड़कर सब पृथ्वी में घूमते हुए राजाने भी पीछे से आती हुई भयंकर रूपवाली पिशाची को देखा ॥ ५६ ॥ वह दुःख से उल्लंघन करने योग्य भयकरी मूर्तिमती ब्रह्महत्या थी शाप से भ्रष्ट इसने जिस लिये मुनि के पुत्रको भक्षण किया था ॥ ५७ ॥ उसी अपने कर्म से पीछे आती हुई ब्रह्महत्या को उस राजाने श्रेष्ठ मुनियों के उपदेश से जाना ॥ ५८ ॥ और उसके प्रवेश को न चाहते हुए निर्वेद मन वाले राजाने बहुत वर्षों तक अनेक प्रकार के क्षेत्रों व तीर्थों में भ्रमण किया ॥ ५९ ॥ जब सब तीर्थों में बार बार नहाकर भी ब्रह्महत्या न निवृत्त हुई तब वह राजा जनकपुरी को

आया और बाहरी बगीचे में प्राप्त वह बड़ी चिन्ता से विकल हुआ ॥ ६० ॥ और उसने सब तपस्वी लोगों से सेवित अग्नि की नाईं आते हुए निर्मल आशयवाले गौतममुनि को देखा ॥ ६१ ॥ और सूर्य के समान व बहुतही मेघों के दोष से अन्धकार को नाशनेवाले तथा निर्मल गुणों से उदय निःशंक चन्द्रमा के समान ॥ ६२ ॥ और शोभासंयुत चन्द्रमा की कलाओं को धारनेवाले शिवजी के समान शात तथा शिष्यगणों से संयुत व तपों के एक पात्ररूप गौतमजी के ॥ ६३ ॥ समीप जाकर उस नृपेन्द्र ने वार वार प्रणाम किया और मुनिश्रेष्ठ गौतम भी सूर्यवश में उत्पन्न राजाको ॥ ६४ ॥ आशीर्वाद देकर मुनि

ध्यानगतस्तस्याश्चिन्तया पर्यार्दितः ॥ ६० ॥ ददर्श मुनिमायान्तं गौतमं विमलाशयम् ॥ हुताशनमिवाशेष तपस्विजनसेवितम् ॥ ६१ ॥ विवस्वन्तमिवात्यन्तं घनदोषतमोनुदम् ॥ शशाङ्कमिव निःशङ्कमवदातगुणोदयम् ॥ ६२ ॥ महेश्वरमिव श्रीमद्द्विजराजकलाधरम् ॥ शान्तं शिष्यगणोपेतं तपसामेकभाजनम् ॥ ६३ ॥ उपसृत्य स राजेन्द्रः प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥ गौतमोऽपि मुनिश्रेष्ठो राजानं रविवंशजम् ॥ ६४ ॥ अभिनन्द्य मुनिः प्रीत्या सस्मितं समभाषत ॥ ६५ ॥ गौतम उवाच ॥ कच्चित्ते कुशलं राजन्कच्चित्ते पदमव्ययम् ॥ ६६ ॥ कुशलिन्यः प्रजाः कच्चिदवरोधजनोपि वा ॥ किमर्थमिह संप्राप्तो विसृज्य सकलां श्रियम् ॥ ६७ ॥ किं च ध्यायसि भो राजन्दीर्घमुष्णं च निःश्वसन् ॥ ६८ ॥ राजोवाच ॥ सर्वे कुशलिनो ब्रह्मन्वयं त्वदनुकम्पया ॥ राज्ञामुत्तमवंश्यानां ब्रह्मायत्ता हि सम्पदः ॥ किं नु मां बाधते त्वेषा पिशाची घोररूपिणी ॥ ६९ ॥ अलक्षिता मदपरैर्भर्त्सयन्ती पदे पदे ॥

ने मुसक्यान पूर्वक प्रीति से कहा ॥ ६५ ॥ गौतमजी बोले कि हे राजन् ! क्या तुम्हारा कुशल है व क्या तुम्हारा स्थान विकाररहित है ॥ ६६ ॥ क्या प्रजा कुशलपूर्वक हैं और क्या स्त्रीजन कुशल से हैं और सब लक्ष्मी को छोड़कर तुम यहां किसलिये प्राप्त हुए हो ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! बहुत लम्बी व गरम श्वास लेतेहुए तुम क्या चिन्तन करते हो ॥ ६८ ॥ राजा बोले कि तुम्हारी दयासे हम सबलोग कुशल समेत हैं और उत्तम वंशवाले राजाओं की सम्पदा ब्राह्मणों के आधीन होती है परन्तु भयंकर रूपवाली यह पिशाची हमको दुःख देती है ॥ ६९ ॥ और पग पग पै घुड़कती हुई वह मुझसे अन्य लोगों को

नहीं देखपडती है शाप से जले हुए मैंने जो बडा कठिन पाप किया है हज़ारों उपायों से भी उसकी शान्ति नहीं होती है॥ ७० ॥ खज़ाने के सर्वस दक्षिणावाले यज्ञ कियेगये और पृथ्वी में जो पूजने योग्य हैं वे नदी और तड़ाग नहाये गये व घूमते हुए मैंने सब क्षेत्रों को सेवन किया॥ ७१ ॥ और सब मंत्र जपे गये व सब देवताओं का ध्यान किया गया और पत्र, मूल व फलों को खानेवाले मैंने व्रतों को किया है॥ ७२ ॥ वे सब मुझको किसी प्रकार स्वस्थ नहीं करते हैं परन्तु आज मेरे जन्म की सफलता प्राप्त हुई सी देख पड़ती है॥ ७३ ॥ क्योंकि तुम्हारे दर्शनही से मेरा चित्त आनन्दभागी होता है और चाहता हुआ

यन्मया शापदग्धेन कृतमंहो दुरत्ययम् ॥ न शान्तिर्जायते तस्य प्रायश्चित्तसहस्रकैः ॥ ७० ॥ इष्टाश्च विविधा यज्ञाः कोशसर्वस्वदक्षिणाः ॥ सरित्सरांसि स्नातानि यानि पूज्यानि भूतले ॥ निषेवितानि सर्वाणि क्षेत्राणि भ्रमता मया ॥ ७१ ॥ जप्तान्यखिलमन्त्राणि ध्याताः सकलदेवताः ॥ मया व्रतानि चीर्णानि पर्णमूलफलाशिना ॥ ७२ ॥ तानि सर्वाणि कुर्वन्ति स्वस्थं मां न कदाचन ॥ अद्य मे जन्मसाफल्यं संप्राप्तमिव लक्ष्यते ॥ ७३ ॥ यतस्त्वद्दर्शनादेव ममात्मानन्दभागभूत् ॥ अन्विच्छल्लँभते क्कापि वर्षपूगैर्मनोरथम् ॥ ७४ ॥ इत्येवं जनवादोऽपि संप्राप्तो मयि सत्यताम् ॥ आजन्मसंचितानां तु पुण्यानामुदयोदये ॥ ७५ ॥ यद्भवान्भवभीतानां त्राता नयनगोचरः ॥ कस्माद्देशादिहायातो भवान्भवभयापहः ॥ ७६ ॥ दूरभ्रमणविश्रान्तं शङ्के त्वामिह चागतम् ॥ दृष्ट्वाश्चर्यमिवात्यर्थं मुदितोसि मुखश्रिया ॥ ७७ ॥ आनन्दयसि मे चेतः प्रेम्णा संभाषणादिव ॥ अद्य मे तव पादाब्जशरणस्य कृतैनसः ॥ शान्ति

मनुष्य कभी वर्षगणों से मनोरथ को प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥ यह मनुष्यों की वार्त्ता मुझ में भी सत्यता को प्राप्त हुई क्योंकि जन्मसे लगाकर इकट्ठा किये हुए पुण्यों के उदय के ऐश्वर्य में ॥ ७५ ॥ जो कि संसार से डरे हुए मनुष्यों के रक्षक आप नेत्रों के सामने प्राप्त हुए हो और संसार के डरको नाशनेवाले आप किस देश से यहां आये हो ॥ ७६ ॥ और यहां आये हुए तुमको मैं दूर घूमने से थका हुआ शंका करता हूं और बहुतही आश्चर्य को देखकर तुम मुख की शोभा से प्रसन्न हो ॥ ७७ ॥ और प्रेम समेत संभाषण से तुम मेरे चित्त को आनन्द करते हो हे महाभाग ! आज तुम्हारे चरणकमलशरणवाले मुझ पापकारी

की शांति कीजिये कि जिससे मैं सुखको प्राप्त होऊं ॥ ७८ ॥ इस प्रकार उनसे कहे हुए दयानिधान गौतमजी ने भयंकर पापों का प्रायश्चित्त भलीभांति बतलाया ॥ ७९ ॥ गौतमजी बोले कि हे नृपेन्द्र ! तुमको साधुवाद है व तुम धन्य हो और महापापों से भयको छोड दीजिये ॥ ८० ॥ शिवजी के रक्षक होने पर शरण को चाहनेवाले भक्तों को भय कहां से होता है हे महाभाग, राजन् ! अन्य प्रतिष्ठित क्षेत्रको सुनिये ॥ ८१ ॥ कि गोकर्णनामक सुन्दर क्षेत्र महापापों को नाश करनेवाला है जहा कि बड़ेसे भी बड़े पातकों की स्थिति नहीं होती है ॥ ८२ ॥ जहां कि समस्त पातकों को नाशनेवाले शिवजी

कुरु महाभाग येनाहं सुखमाप्नुयाम् ॥ ७८ ॥ इति तेन समादिष्टो गौतमः करुणानिधिः ॥ समादिदेश घोराणामघानां साधु निष्कृतिम् ॥ ७९ ॥ गौतम उवाच ॥ साधु राजेन्द्र धन्योऽसि महाघेभ्यो भयं त्यज ॥ ८० ॥ शिवे त्रातरि भक्तानां क भयं शरणैषिणाम् ॥ शृणु राजन्महाभाग क्षेत्रमन्यत्प्रतिष्ठितम् ॥ ८१ ॥ महापातकसंहारि गोकर्णाख्यं मनोरमम् ॥ यत्र स्थितिर्न पापानां महद्भ्योमहतामपि ॥ ८२ ॥ स्मृतो ह्यशेषपापघ्नो यत्र संनिहितः शिवः ॥ यथा कैलासशिखरे यथा मन्दारमूर्द्धनि ॥ ८३ ॥ निवासो निश्चितः शम्भोस्तथा गोकर्णमण्डले ॥ नाग्निना न शशाङ्केन न ताराग्रहनायकैः ॥ ८४ ॥ तमो निस्तीर्यते सम्यग्यथा सवितृदर्शनात् ॥ तथैव नेतरैस्तीर्थैर्न च क्षेत्रैर्मनोरमैः ॥ ८५ ॥ सद्यः पापविशुद्धिः स्याद्यथा गोकर्णदर्शनात् ॥ अपि पापशतं कृत्वा ब्रह्महत्यादि मानवः ॥ ८६ ॥ सकृत्प्रविश्य गोकर्णं न बिभेति ह्यघात्क्वचित् ॥ तत्र सर्वे महात्मानस्तपसा शान्तिमागताः ॥ ८७ ॥ इन्द्रो

कहे गये हैं जैसे कैलास पर्वत के शिखर पै व जैसे मंदराचल के ऊपर ॥ ८३ ॥ शिवजी का निवास निश्चित है वैसेही गोकर्णक्षेत्र के मण्डल में है न अग्नि से न चन्द्रमा से और न तारा व ग्रहों के स्वामियों से ॥ ८४ ॥ भलीभांति अन्धकार दूर होता है जैसा कि सूर्यके दर्शन से नाश होता है वैसेही न अन्य तीर्थों से और न सुन्दर क्षेत्रों से ॥ ८५ ॥ शीघ्रही पापकी शुद्धि होती है जैसी कि गोकर्ण के दर्शन से होती है और ब्रह्महत्यादिक सैकडों पापों को भी करके ॥ ८६ ॥ एक बार गोकर्णक्षेत्र में प्रवेशकर कहीं पापसे मनुष्य नहीं डरता है और वहा सब महात्मा लोग तपस्या से शान्ति को प्राप्त हुए हैं ॥ ८७ ॥ और

और वहां एक दिन से भी जो उत्तम व्रत किया गया है ॥ ८८ ॥ सिद्धिको चाहनेवाले इन्द्र, उपेन्द्र व ब्रह्मादिक देवताओं से वह स्थान सेवन किया जाता है वह अन्यत्र लाख वर्ष करने पर उसके बराबर होता है और जहां इन्द्र, ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवताओं के हित की इच्छा से ॥ ८९ ॥ महाबलनाम से आपही शिवदेवजी स्थित हैं रावण नामक राक्षस ने भयंकर तप से जिस लिंग को पाया था ॥ ९० ॥ उस लिंगको गणेशजीने गोकर्णक्षेत्र में स्थापित किया है और इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, विश्वेदेवता व मरुद्गण ॥ ९१ ॥ और आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, चन्द्रमा व सूर्य पार्षदों समेत ये विमान गतिवाले

तत्रैकेन दिनेनापि यत्कृतं व्रतमुत्तमम् ॥ ८८ ॥ तदन्यत्राब्दलक्षेण कृतं भवति तत्समम् ॥ सेन्द्रविरिञ्च्याद्यैः सेव्यते सिद्धिकाङ्क्षिभिः ॥ यत्रेन्द्रब्रह्मविष्ण्वादिदेवानां हितकाम्यया ॥ ८९ ॥ महाबलाभिधानेन देवः संनिहितः स्वयम् ॥ घोरेण तपसा लब्धं रावणाख्येन रक्षसा ॥ ९० ॥ तल्लिङ्गं स्थापयामास गोकर्णे गणनायकः ॥ इन्द्रो ब्रह्मा मुकुन्दश्च विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥ ९१ ॥ आदित्या वसवो दस्रौ शशाङ्कश्च दिवाकरः ॥ एते विमानगतयो देवास्ते सह पार्षदैः ॥ ९२ ॥ पूर्वद्वारं निषेवन्ते देवदेवस्य शूलिनः ॥ योऽन्यो मृत्युः स्वयं साक्षाच्चित्रगुप्तश्च पावकः ॥ ९३ ॥ पितृभिः सह रुद्रैश्च दक्षिणद्वारमाश्रितः ॥ वरुणः सरितां नाथो गङ्गादिसरितां गणैः ॥ ९४ ॥ आसेवते महादेवं पश्चिमद्वारमाश्रितः ॥ तथा वायुः कुबेरश्च देवेशी भद्रकर्णिका ॥ ९५ ॥ मातृभिश्चण्डिकाद्याभिरुत्तरद्वारमाश्रिता ॥ विश्वावसुश्चित्ररथश्चित्रसेनो महाबलः ॥ ९६ ॥ सह गन्धर्ववर्गैश्च पूजयन्ति महाबलम् ॥

देवता ॥ ९२ ॥ त्रिशूलधारी देवदेव शिवजी के पूर्व द्वारको सेवन करते हैं और जो अन्य आपही काल व साक्षात् चित्रगुप्त और अग्नि ॥ ९३ ॥ पितरों व रुद्रों समेत दक्षिणद्वार पै टिके हुए हैं और गंगादिक नदियोंके गणों समेत नदियों के स्वामी वरुणजी ॥ ९४ ॥ पश्चिम द्वार पै टिककर महादेवजी को सेवते हैं वैसेही पवन, कुबेर व भद्रकर्णिका देवेशी ॥ ९५ ॥ चंडिकादिक मातृकाओं समेत उत्तर के द्वार पै टिकी हैं और विश्वावसु, चित्ररथ, चित्रसेन व महाबल ॥ ९६ ॥

गंधर्व गणों समेत ये महाबल संज्ञक शिवजी को पूजते हैं और रंभा, घृताची, मेना, पूर्वचित्ति, तिलोत्तमा ॥ ९७ ॥ और उर्वशी आदिक देवांगना शिवजी के आगे नाचती हैं और वशिष्ठ, कश्यप, कण्व व बड़े तपस्वी विश्वामित्रजी ॥ ९८ ॥ व हे राजेन्द्र ! जैमिनि, भरद्वाज, जाबालि, क्रतु व अंगिरा ये और हम सब निर्मल ब्रह्मर्षिलोग ॥ ९९ ॥ महाबलदेवजी की भक्ति से सब ओर से उपासना करतेहैं और मरीचि समेत अत्रिजी व दक्षादिक मुनीश्वर ॥ १०० ॥ और सनकादिक महात्मालोग बैठकर उपासना करते हैं वैसेही मृगचर्मरूपी वसन को धारनेवाले मुनि व साध्यलोग ॥ १ ॥ और व्रतसे मुंडी दंडी लोग

रम्भा घृताची मेना च पूर्वचित्तिस्तिलोत्तमा ॥ ९७ ॥ नृत्यन्ति पुरतः शम्भोरुर्वश्याद्याः सुरस्त्रियः ॥ वशिष्ठः कश्यपः कण्वो विश्वामित्रो महातपाः ॥ ९८ ॥ जैमिनिश्च भरद्वाजो जाबालिः क्रतुरङ्गिराः ॥ एते वयं च राजेन्द्र सर्वे ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ९९ ॥ देवं महाबलं भक्त्या समन्तात्पर्युपास्महे ॥ मरीचिना सहात्रिश्च दक्षाद्याश्च मुनीश्वराः ॥ १०० ॥ सनकाद्या महात्मान उपविष्टा उपासते ॥ तथैव मुनयः साध्या अजिनाम्बरधारिणः ॥ १ ॥ दण्डिनो व्रतमुण्डाश्च स्नातका ब्रह्मचारिणः ॥ त्वगस्थिमात्रावयवास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ २ ॥ सेवन्ते परया भक्त्या देवदेवं पिनाकिनम् ॥ तथा देवाः सगन्धर्वाः पितरः सिद्धचारणाः ॥ ३ ॥ विद्याधराः किंपुरुषाः किन्नरा गुह्यकाः खगाः ॥ नागाः पिशाचा वेताला दैतेयाश्च महाबलाः ॥ ४ ॥ नानाविभवसम्पन्ना नानाभूषणवाहनाः ॥ विमानैः सूर्यसंकाशैरग्निवर्णैः शशिप्रभैः ॥ ५ ॥ विद्युत्पुञ्जनिभैरन्यैः समन्तात्परिवारितम् ॥ प्रस्तुवन्ति प्रगायन्ति

व स्नातक ब्रह्मचारी त्वचा व अस्थिमात्र अंगोंवाले सब तपसे पातकों को जलानेवाले ॥ २ ॥ देवदेव शिवजी को उत्तम भक्ति से सेवते हैं वैसेही गंधर्वों समेत देवता, पितर और सिद्ध व चारण लोग ॥ ३ ॥ और विद्याधर, किंपुरुष, किन्नर, गुह्यक, ग्रह, नाग, पिशाच, वेताल व बड़े बलवान् दैत्य लोग ॥ ४ ॥ अनेकों प्रकार के भूषणों व वाहनों समेत तथा अनेक प्रकार के ऐश्वर्य से संयुत हैं और सूर्यके समान व अग्नि के रंगवाले तथा चन्द्रमा के समान विमानों से ॥ ५ ॥ व बिजली की राशियों के समान अन्य विमानों से वह क्षेत्र सब ओर घिरा है और ये लोग स्तुति करते हैं व गाते हैं और पढ़ते व

प्रणाम करते हैं ॥ ६ ॥ व हे भूपते ! गोकर्णक्षेत्र में नाचते व प्रसन्न होते हैं और चाहे हुए मनोरथों को पाते हैं व सुखपूर्वक रमण करते हैं ॥ ७ ॥ ब्रह्मा-ण्डगोलक में गोकर्ण के समान क्षेत्र नहीं है और वहा महात्मा अगस्त्यजी ने घोर तप किया है ॥ ८ ॥ व हे राजन् ! सनत्कुमार ने और प्रियव्रत के पुत्रों ने तथा देवताओं में श्रेष्ठ अग्नि ने व कामदेव ने वहा तप किया है ॥ ९ ॥ वैसेही भद्रकाली देवी ने व बुद्धिमान् शिशुमार ने और दुर्मुख व मणिनाग नामक सर्पराज ने तप किया है ॥ १० ॥ और इलावर्तादिक नागों ने व बलवान् गरुड़जी ने और कुंभकर्ण नामक राक्षस व रावण ने ॥ ११ ॥ व पवित्र

पठन्ति प्रणमन्ति च ॥ ६ ॥ प्रनृत्यन्ति प्रहृष्यन्ति गोकर्णे पृथिवीपते ॥ लभन्तेऽभीप्सितान्कामान्रमन्ते च यथासुखम् ॥ ७ ॥ गोकर्णसदृशं क्षेत्रं नास्ति ब्रह्माण्डगोलके ॥ तत्र घोरं तपस्तप्तमगस्त्येन महात्मना ॥ ८ ॥ तथा सनत्कुमारेण प्रियव्रतसुतैरपि ॥ अग्निना देववर्येण कन्दर्पेण च पार्थिव ॥ ९ ॥ तथा देव्या भद्रकाल्या शिशुमारेण धीमता ॥ दुर्मुखेन फणीन्द्रेण मणिनागाह्वयेन च ॥ १० ॥ इलावर्तादिभिर्नागैर्गरुडेन बलीयसा ॥ रक्षसा रावणेनापि कुम्भकर्णाह्वयेन तु ॥ ११ ॥ विभीषणेन पुण्येन तपस्तप्तं महात्मना ॥ एते चान्ये च गीर्वाणाः सिद्धदानवमानवाः ॥ १२ ॥ गोकर्णे देवदेवेशं शिवमाराध्य भक्तितः ॥ स्वनामाङ्कानि लिङ्गानि स्थापयित्वा सहस्रशः ॥ १३ ॥ लेभिरे परमां सिद्धिं तथा तीर्थानि चक्रिरे ॥ अत्र स्थानानि सर्वेषां देवानां सन्ति पार्थिव ॥ १४ ॥ विष्णोश्च देवदेवस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ कार्त्तिकेयस्य वीरस्य गजवक्त्रस्य चानघ ॥ १५ ॥ धर्मस्य क्षेत्रपालस्य दुर्गायाश्च महामते ॥

तथा महात्मा विभीषण ने वहां तप किया है ये और अन्य देवता तथा सिद्ध दानव व मनुष्यों ने ॥ १२ ॥ गोकर्णक्षेत्र में देवदेवेश शिवजी को भक्ति से आराधन कर अपने नाम से चिह्नित हज़ारों लिंगों को थापकर ॥ १३ ॥ उत्तम सिद्धिको पाया व तीर्थों को किया है हे राजन् ! यहां सब देवताओं के स्थान हैं ॥ १४ ॥ व हे अनघ ! देवदेव विष्णुजी का व परमेष्ठी ब्रह्माजी का और कार्त्तिकेय वीर व गणेशजी का स्थान है ॥ १५ ॥ व हे महामते ! धर्मराज, क्षेत्र-

पाल व दुर्गाजी का स्थान है और गोकर्णक्षेत्र में करोड़ों शिवलिङ्ग हैं ॥ १६ ॥ और पग पग पै असंख्य तीर्थ हैं हे पार्थिव ! इस विषय में बहुत कहने से क्या है गोकर्णक्षेत्र में स्थित ॥ १७ ॥ सब पत्थरके लिङ्ग हैं व सब तीर्थ और जल गोकर्ण में स्थित हैं व हे राजन् ! गोकर्ण में बहुतसे शिवलिङ्गों व तीर्थों की महिमा पुराणों में महर्षियों से गान कीजाती है और गोकर्णक्षेत्र में कोटितीर्थ तीर्थों की मुख्यता को प्राप्त है ॥ १८ । १९ ॥ और महाबल शिवजी सब शिवलिङ्गों के चक्रवर्ती राजा हैं सतयुग में महाबल शिवजी श्वेतरंग व त्रेता में बहुतही लालरंग होते हैं ॥ २० ॥ और द्वापर में पीलेरंग के व कलियुग में श्यामवर्ण

गोकर्णे शिवलिङ्गानि विद्यन्ते कोटिकोटिशः ॥ १६ ॥ असंख्यातानि तीर्थानि तिष्ठन्ति च पदे पदे ॥ बहुनात्र कि मुक्तेन गोकर्णस्थानि पार्थिव ॥ १७ ॥ सर्वाण्यश्मानि लिङ्गानि तीर्थान्यम्भांसि सर्वशः ॥ गोकर्णे शिवलिङ्गानां तीर्थानामपि भूरिशः ॥ १८ ॥ गीयते महिमा राजन्पुराणेषु महर्षिभिः ॥ गोकर्णे कोटितीर्थं च तीर्थानां मुख्यतां गतम् ॥ १९ ॥ सर्वेषां शिवलिङ्गानां सार्वभौमो महाबलः ॥ कृते महाबलः श्वेतस्त्रेतायामतिलोहितः ॥ २० ॥ द्वापरे पीतवर्णश्च कलौ श्यामो भविष्यति ॥ आक्रान्तं सप्तपातालं कुर्वन्नपि महाबलः ॥ २१ ॥ प्राप्ते कलियुगे घोरे मृदुतामुपयास्यति ॥ पश्चिमाम्बुधितीरस्थं गोकर्णक्षेत्रमुत्तमम् ॥ २२ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि दहतीति किम द्भुतम् ॥ ये चात्र ब्रह्महन्तारो ये च भूतद्रुहः शठाः ॥ २३ ॥ ये सर्वगुणहीनाश्च परदाररताश्च ये ॥ ये दुर्वृत्ता दुराचारा दुःशीलाः कृपणाश्च ये ॥ २४ ॥ लुब्धाः क्रूराः खला मूढाः स्तेनाश्चैवातिकामिनः ॥ ते सर्वे प्राप्य गोकर्णं स्नात्वा

होवैंगे और सातों पातालों को आक्रान्त करते हुए भी महाबल शिवजी ॥ २१ ॥ भयंकर कलियुग प्राप्त होनेपर कोमलता को प्राप्त होवैंगे पश्चिम समुद्र के किनारे पै स्थित उत्तम गोकर्णक्षेत्र ॥२२॥ ब्रह्महत्यादिक पापों को जलाताहै तो क्या आश्चर्य है और यहां जो ब्रह्मघाती व जो प्राणियोंसे वैर करनेवाले और शठ हैं ॥ २३ ॥ और जो सब गुणोंसे हीन व जो पराई स्त्रियों से स्नेह करनेवाले हैं और जो दुश्चरित्र, दुराचारी व जो दुष्ट स्वभाववाले तथा जो कृपण हैं ॥ २४ ॥

और जो लोभी, क्रूर, दुष्ट, मूढ़, चोर व बड़े कामी हैं वे सब गोकर्णक्षेत्र को प्राप्त होकर व तीर्थजलों में नहाकर ॥ २५ ॥ महाबल शिवदेवजी को देखकर शिवजी के स्थान को प्राप्त हुए हैं और उस क्षेत्र में पुण्य तिथियों तथा पुण्य नक्षत्र व पवित्र दिन में ॥ २६ ॥ जो शिवजी को पूजते हैं वे शिव होते हैं इसमें सन्देह नहीं है और जब कभी जो कोई मनुष्य गोकर्णक्षेत्र में ॥ २७ ॥ पैठकर शिवजी को पूजता है वह ब्रह्मा के स्थान को प्राप्त होता है और रविवार, सोमवार व बुध इन दिनों में जब अमावस होगी ॥ २८ ॥ तब समुद्र में स्नान, दान व पितरों को तर्पण, शिवपूजन, जप, होम, व्रत

तीर्थजलेषु च ॥ २५ ॥ देवं महाबलं दृष्ट्वा प्रयाताः शाङ्करं पदम् ॥ तत्र पुण्यासु तिथिषु पुण्यर्क्षे पुण्यवासरे ॥ २६ ॥ येऽर्चयन्ति महेशानं ते रुद्राः स्युर्न संशयः ॥ यदाकदाचिद्गोकर्णे यो वा को वापि मानवः ॥ २७ ॥ प्रविश्य पूजयेदीशं स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥ रवीन्दुसौम्यवारेषु यदादर्शो भविष्यति ॥ २८ ॥ तदा जलनिधौ स्नानं दानं च पितृतर्पणम् ॥ शिवपूजा जपो होमो व्रतचर्या द्विजार्चनम् ॥ २९ ॥ यत्किंचिद्वा कृतं कर्म तदनन्तफलप्रदम् ॥ व्यतीपातादियोगेषु रविसंक्रमणेषु च ॥ ३० ॥ महाप्रदोषवेलासु शिवपूजा विमुक्तिदा ॥ अथैकां ते प्रवक्ष्यामि तिथिं पार्थिव मुक्तिदाम् ॥ ३१ ॥ यस्यां किल महाव्याधो लेभे शम्भोः परं पदम् ॥ माघमासे महापुण्या या सा कृष्ण चतुर्दशी ॥ ३२ ॥ शिवलिङ्गं बिल्वपत्रं दुर्लभं हि चतुष्टयम् ॥ अहो बलवती माया यया शैवी महातिथिः ॥ ३३ ॥

करना और ब्राह्मणों का पूजन ॥ २९ ॥ या जो कुछ कर्म किया जाता है वह अमित फल को देता है और व्यतीपातादिक योगों में व सूर्य की संक्रान्तियों में ॥ ३० ॥ व महाप्रदोष की वेलाओं में शिवजी का पूजन मुक्तिदायक है इसके उपरान्त हे राजन् ! मैं तुमसे एक मुक्तिदायिनी तिथि को कहता हूं ॥ ३१ ॥ कि जिसमें महाव्याध (बहेलिया) ने शिवजी के उत्तम स्थानको पाया है माघ महीने में जो महापवित्र कृष्णपक्ष की चौदसि है वह ॥ ३२ ॥ और शिवलिङ्ग व बिल्वपत्र ये चार वस्तुवें दुर्लभ हैं आश्चर्य है कि माया बलवती है जिससे शिवजी की महातिथि को ॥ ३३ ॥ मूढ़ मनुष्य उपवास नहीं करते हैं जैसे

कि गूंगे वेदत्रयी को नहीं पढ़ते हैं और उपवास, जागरण व शिवजी के समीप स्थिति ॥ ३४ ॥ और गोकर्णक्षेत्र मनुष्यों के लिये शिवलोक की सोपानपद्धति (ज़ीना) है हे राजन्! सुनिये कि मैं भी इस समय इस शिवतिथि का उपवास करके व बड़ा भारी उत्साह देखकर गोकर्णक्षेत्र से आया हूं इस शिवजी की तिथि में महोत्सव को देखनेवाले सब ॥ ३५ । ३६ ॥ चारों वर्णवाले महात्मा लोग सब देशों से आये थे और स्त्रिया, बालक व वृद्ध तथा चारों आश्रमों के निवासी लोग ॥ ३७ ॥ आकर देवेश शिवजी को देखकर कृतार्थता को प्राप्त हुए हैं इसके अनन्तर मैं भी और ये शिष्य व अन्य ऋषि

नोपोष्यते जनैर्मूढैर्महामूकैरिव त्रयी ॥ उपवासो जागरणं सन्निधिः परमेशितुः ॥ ३४ ॥ गोकर्णं शिवलोकस्य नृणां सोपानपद्धतिः ॥ शृणु राजन्नहमपि गोकर्णादधुनागतः ॥ ३५ ॥ उपास्यैनां शिवतिथिं विलोक्य च महोत्सवम् ॥ अस्यां शिवतिथौ सर्वे महोत्सवदिदृक्षवः ॥ ३६ ॥ आगताः सर्वदेशेभ्यश्चातुर्वर्ण्या महाजनाः ॥ स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च चतुराश्रमवासिनः ॥ ३७॥ आगत्य दृष्ट्वा देवेशं लेभिरे कृतकृत्यताम् ॥ अथाहमप्यमी शिष्या ऋषयश्च तथाऽपरे ॥ ३८ ॥ राजर्षयश्च राजेन्द्र सनकाद्याः सुरर्षयः ॥ स्नात्वा सर्वेषु तीर्थेषु समुपास्य महाबलम् ॥ ३९ ॥ लब्ध्वा च जन्मसाफल्यं प्रयाताः सर्वतोदिशम् ॥ अधुनाद्य नरेन्द्रेण जनकेन यियक्षुणा ॥ ४० ॥ निमन्त्रितोऽहं संप्राप्तो गोकर्णाच्छिवमन्दिरात् ॥ प्रत्यागमं किमप्यङ्ग दृष्ट्वाश्चर्यमहं पथि ॥ महानन्देन मनसा कृतार्थोऽस्मि महीपते ॥ १४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे गोकर्णमहिमानुवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २॥

लोग ॥ ३८ ॥ व हे राजेन्द्र ! राजर्षिलोग और सनकादिक देवर्षिलोग सब तीर्थों में नहाकर व महाबलजी की उपासना कर ॥ ३९ ॥ जन्म की सफलता को पाकर सब दिशाओं को चले गये और आज इस यज्ञ करने की इच्छावाले राजा जनक से ॥ ४० ॥ न्योता हुआ मैं गोकर्ण शिवमन्दिर से प्राप्त हुआ हूं व हे राजन्! मैं मार्ग में किसी आश्चर्य को देखकर बड़े आनन्द मन से आया व कृतार्थ होगया हूं ॥ १४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां गोकर्णमहिमानुवर्णननाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि गोकर्ण प्रभाव सन गइ शिवलोकहिं वृद्ध । सो तीजे अध्याय में कह्यो चरित्र समृद्ध ॥ राजा बोले कि हे ब्रह्मन् ! आपने मार्ग में कहां क्या आश्चर्य देखा है उसको मुझसे कहिये कि जिससे मैं कृतार्थता को प्राप्त होऊं ॥ १ ॥ गौतमजी बोले कि हे विशापते ! गोकर्ण से आते हुए मैंने किसी देश में दुपहर का समय होने पर निर्मल तड़ाग को पाया ॥ २ ॥ और उसमें जल को पीकर व मार्ग के परिश्रम को दूर कर मैं सचिक्कण व शीतल छाया वाले बरगद के नीचे बैठ गया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर थोडी दूर पै मैंने सूखते हुए मुखवाली और बहुत रोगों से दुःखित व दुर्बल आकारवाली बुड्ढी व

राजोवाच ॥ किं दृष्टं भवता ब्रह्मन्नाश्चर्यं पथि कुत्र वा ॥ तन्ममाख्याहि येनाहं कृतकृत्यत्वमाप्नुयाम् ॥ १ ॥ गौतम उवाच ॥ गोकर्णादहमागच्छन्कापि देशे विशाम्पते ॥ जाते मध्याह्नसमये लब्धवान्विमलं सरः ॥ २ ॥ तत्रोपस्पृश्य सलिलं विनीय च पथिश्रमम् ॥ सुस्निग्धशीतलच्छायं न्यग्रोधं समुपाश्रयम् ॥ ३ ॥ अथाविदूरे चाण्डालीं वृद्धामन्धां कृशाकृतिम् ॥ शुष्यन्मुखीं निराहारां बहुरोगनिपीडिताम् ॥ ४ ॥ कुष्ठव्रणपरीताङ्गीमुद्यत्कृमिकुलाकुलाम् ॥ पूयशोणितसंसक्तजरत्पटलसत्कटीम् ॥ ५ ॥ महायक्ष्मगलस्थेन कण्ठसंरोधविह्वलाम् ॥ विनष्टदन्तामव्यक्तां विलुठन्तीं मुहुर्मुहुः ॥ ६ ॥ चण्डार्ककिरणस्पृष्टखरोष्णरजसाप्लुताम् ॥ विण्मूत्रपूयदिग्धाङ्गीमस्रगन्धदुरासदाम् ॥ ७ ॥ कफरोगबहुश्वासश्लथन्नाडीबहुव्ययाम् ॥ विध्वस्तकेशावयवामपश्यं मरणोन्मुखीम् ॥ ८ ॥

अन्धी चाण्डाली को देखा ॥ ४ ॥ व कुष्ठ के घावों से घिरे अंगोंवाली व उठते हुए कीटगणों से संयुत तथा पीब व रक्त लगे हुए पुराने वस्त्र को कमर में पहने ॥ ५ ॥ व महायक्ष्मा के गले में स्थित होने से कंठरोध से विकल और नष्ट दातोंवाली व बार बार लोटती हुई ॥ ६ ॥ और प्रचण्ड सूर्यनारायण की किरणों के लगने से तीक्ष्ण व गरम धूलि से लपेटी व विष्ठा, मूत्र तथा पीब लगे हुए देहवाली और रक्त की दुर्गंध से दुर्धर्ष ॥ ७ ॥ और कफरोग से बहुत श्वास व शिथिल नाडी से बहुत व्यथावाली और अंगों में छिटके हुए केशोंवाली मरती हुई सी उस स्त्री को मैंने देखा ॥ ८ ॥ और वैसी पीड़ावाली उसको

देखकर मैं दया से संयुत हुआ और उसका मरण परखता हुआ मैं क्षण भर वहीं स्थित रहा ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त शिवगणों से लाये व किरणों से आकाशमार्ग को सींचते हुए से दिव्य विमान को मैंने देखा ॥ १० ॥ और सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि के तेजों के पींजरे की नाई उस विमान पै सूर्य के समान शिवगणों को मैंने देखा ॥ ११ ॥ और अर्धचन्द्रमा को भूषण किये तथा चन्द्रमा व कुंद के समान बहुत तेजवाले वे शिवगण त्रिशूल, खट्वाग, टंक, ढाल व तलवार को हाथों में लिये थे ॥ १२ ॥ और किरीट व कुंडल से शोभित तथा महानागों के कंकण से श्वेत व उत्तम लक्षणोंवाले चार शिवदूतों को मैंने

तादृग्व्यथां च तां वीक्ष्य कृपयाहं परिप्लुतः ॥ प्रतीक्षन्मरणं तस्याः क्षणं तत्रैव संस्थितः ॥ ९ ॥ अथान्तरिक्षप दवीं सिञ्चन्तमिव रश्मिभिः ॥ दिव्यं विमानमानीतमद्राक्षं शिवकिङ्करैः ॥ १० ॥ तस्मिन्रवीन्दुवह्नीनां तेजसामिव प ञ्जरे ॥ विमाने सूर्यसंकाशानपश्यं शिवकिङ्करान् ॥ ११ ॥ ते वै त्रिशूलखट्वाङ्गटङ्कचर्मासिपाणयः ॥ चन्द्रार्धभूषणाः सान्द्रचन्द्रकुन्दोरुवर्चसः ॥ १२ ॥ किरीटकुण्डलभ्राजन्महाहिवलयोज्ज्वलाः ॥ शिवानुगा मया दृष्टाश्चत्वारः शुभलक्षणाः ॥ १३ ॥ तानापतत आलोक्य विमानस्थान्सुविस्मितः ॥ उपसृत्यान्तिके वेगादपृच्छं गगने स्थितान् ॥ १४ ॥ नमोनमोवस्त्रिदशोत्तमेभ्यस्त्रिलोचनश्रीचरणानुगेभ्यः ॥ त्रिलोकरक्षाविधिमावहद्भ्यस्त्रिशूलचर्मासिगदाध रेभ्यः ॥ १५ ॥ विदिता हि मया यूयं महेश्वरपदानुगाः ॥ इयं वो लोकरक्षार्था गतिराहो विनोदजा ॥ १६ ॥ उत

देखा ॥ १३ ॥ और विमान पै स्थित उन आते हुए शिवगणों को देखकर मैं विस्मित हुआ व वेग से समीप जाकर मैंने आकाश में स्थित उन शिवगणों से पूछा ॥ १४ ॥ कि देवताओं में उत्तम व त्रिलोचनजी के श्रीचरण युगलों के अनुगामी आप लोगों के लिये नमस्कार है व त्रिलोक की रक्षाविधि को करने वाले और त्रिशूल, ढाल, तलवार व गदा को धारनेवाले तुमलोगों के लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ मैंने शिवजी के चरणानुगामी तुम लोगों को जान लिया क्या यह गति लोकों की रक्षा के लिये है या क्रीड़ा से उपजी हुई गति है ॥ १६ ॥ अथवा सब लोगों के पापसमूह के जीतने के लिये तुमलोगों ने उद्योग किया

है तुमलोग मुझसे दया से कहो कि जिस लिये यहां आये हो॥ १७ ॥ शिवदूत बोले कि यह आगे मरती हुई सी जो बुड्ढी चाण्डाली देख पडती है स्वामी से आज्ञा पाये हुए हम लोग इसको लेने के लिये आये हैं ॥ १८ ॥ उन शिवदूतों से ऐसा कहने पर हाथों को जोड़ कर स्थित व विस्मय से संयुत चित्तवाले मैंने फिर भी उनसे पूछा॥ १९ ॥ कि अहो यज्ञमण्डप को कुतिया की नाई यह पापिनी व भयंकरी चाण्डाली कैसे दिव्य विमान पै चढ़ने के योग्य है॥ २० ॥ जन्म से लगा कर अशुद्ध व पापों की अनुगामिनी इस दुष्ट आचरणवाली पापिनी को क्यों शिवलोक को लिये जाते हो ॥ २१ ॥ इसके

सर्वजनाघौघविजयाय कृतोद्यमाः॥ ब्रूत कारुण्यतो मह्यं यस्माद्यूयमिहागताः॥ १७॥ शिवदूता ऊचुः॥ एषाग्रे दृश्यते वृद्धा चाण्डाली मरणोन्मुखी ॥ एतामानेतुमायाताःसंदिष्टाः प्रभुणा वयम्॥ १८॥ इत्युक्ते शिवदूतैस्तैरपृच्छं पुनरप्यहम् ॥ विस्मयाविष्टचित्तस्तान्कृताञ्जलिरवस्थितः॥ १९॥ अहो पापीयसी घोरा चाण्डाली कथमर्हति॥ दिव्यं विमानमारोढुं शुनीवाध्वरमण्डलम् ॥ २० ॥ आजन्मतोऽशुचिप्रायां पापां पापानुगामिनीम् ॥ कथमेनां दुराचारां शिवलोकं निनीषथ॥ २१ ॥ अस्या नास्ति शिवज्ञानं नास्ति घोरतरं तपः॥ सत्यं नास्ति दया नास्ति कथमेनां निनीषथ ॥ २२॥ पशुमांसकृताहारां वारुणीपूरितोदराम्॥ जीवहिंसारतां नित्यं कथमेनां निनीषथ॥ २३ ॥ न च पञ्चाक्षरी जप्ता न कृतं शिवपूजनम्॥ न ध्यातो भगवाञ्छम्भुः कथमेनां निनीषथ ॥ २४॥ नोपोषिता शिवतिथिर्न कृतं शिवपूजनम् ॥ भूतसौहृदं न जानाति न च बिल्वशिवार्पणम् ॥ नेष्टापूर्तादिकं वापि कथ

शिवजी का ज्ञान नहीं है व बहुत कठिन तप नहीं है और सत्य व दया नहीं है इसको क्यों लिये जाते हो॥ २२॥ और पशुओं का मांस खानेवाली व मदिरा से भरे हुए पेटवाली तथा नित्य-जीवहिंसा में परायण इसको क्यों लिये जाते हो॥ २३॥ इसने शिवजी का पचाक्षर मंत्र नहीं जपा व शिवजी का पूजन नहीं किया और भगवान् शिवजी का ध्यान नहीं किया है इसको क्यों लिये जाते हो॥ २४॥ और इसने शिवजी की तिथि का उपवास नहीं किया व शिवपूजन

नहीं किया और यह प्राणियों की मैत्री को नहीं जानती है व शिवजी के ऊपर बिल्वपत्र को इसने नहीं चढ़ाया है और इष्टापूर्तादिक कर्म को नहीं किया है तो क्यों इसको लिये जाते हो ॥ २५ ॥ और तीर्थ नहीं नहाये गये व दान नहीं किये गये व व्रत नहीं किये गये तो इसको क्यों लियेजातेहो ॥ २६ ॥ और संभाषण आदिकों में क्या कहना है दर्शन में भी यह त्याग करने योग्य है तो सत्संग से रहित व चण्डा इस स्त्री को क्यों लिये जाते हो ॥ २७ ॥ या यदि अन्य जन्म में इकट्ठा किया हुआ इसका कुछ पुण्य है तो कैसे कुष्ठरोग से व कीटों से दुःखित होती ॥ २८ ॥ अहो यह ईश्वरका चरित्र प्राणियों से नहीं जाना जासक्ता

मेनां निनीषथ ॥ २५ ॥ न च स्नातानि तीर्थानि न दानानि कृतानि च ॥ न च व्रतानि चीर्णानि कथमेनां निनीषथ ॥ २६ ॥ ईक्षणे परिहर्त्तव्या किमु संभाषणादिषु ॥ सत्सङ्गरहितां चण्डां कथमेनां निनीषथ ॥ २७ ॥ जन्मान्तरार्जितं किंचिदस्याः सुकृतमस्ति वा ॥ तत्कथं कुष्ठरोगेण कृमिभिः परिभूयते ॥ २८ ॥ अहो ईश्वरचर्येयं दुर्विभाव्या शरीरिणाम् ॥ पापात्मानोऽपि नीयन्ते कारुण्यात्परमं पदम् ॥ २९ ॥ इत्युक्तास्ते मया दूता देवदेवस्य शूलिनः ॥ प्रत्यूचुर्मामथ प्रीत्या सर्वसंशयभेदिनः ॥ ३० ॥ शिवदूता ऊचुः ॥ ब्रह्मन्सुमहदाश्चर्यं शृणु कौतूहलं यदि ॥ इमामुद्दिश्य चाण्डालीं यदुक्तं भवताधुना ॥ ३१ ॥ आसीदियं पूर्वभवे काचिद्ब्राह्मणकन्यका ॥ सुमित्रानामसंपूर्णसोमबिम्बसमानना ॥ ३२ ॥ उत्फुल्लमल्लिकादामसुकुमाराङ्गलक्षणा ॥ कैकेयद्विजमुख्यस्य कस्यचित्तनया सती ॥३३॥

है कि पापी भी मनुष्य दया से परम पद में प्राप्त किये जाते हैं ॥ २९ ॥ मुझसे ऐसा कहे हुए त्रिशूलधारी देवदेव शिवजी के संशयभेदी दूतोंने मुझसे प्रीति से कहा ॥ ३० ॥ शिवदूत बोले कि हे ब्रह्मन् ! इस समय आपने इस चाण्डाली को उद्देश कर जो कहा है और यदि कौतुक है तो बड़े भारी आश्चर्य को सुनिये ॥ ३१ ॥ कि पूर्व जन्म में पूर्ण चन्द्रमा के बिम्ब के समाम मुखवाली यह सुमित्रा नामक कोई ब्राह्मण की कन्या हुई है ॥ ३२ ॥ और फूले हुए चमेली के समान सुकुमार अंग लक्षणोंवाली वह कैकेय नामक किसी मुख्य ब्राह्मण की कन्या हुई है ॥ ३३ ॥ व सब लक्षणों से संयुत दूसरी रति की मूर्ति की नाईं

पिता के घरमें बढ़ती हुई उसको देखकर लोग विस्मित हुए ॥ ३४ ॥ और बन्धुवों से बहुत ही प्यार कीगई व दिन दिन बढ़ती हुई वह धीरे धीरे कामदेव के बड़े भारी धनुष की नाईं युवावस्था को प्राप्त हुई ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर पिता समेत बन्धुगणों ने उसको किसी द्विजपुत्र के लिये विधि से देदिया ॥ ३६ ॥ और नवीन यौवन से शोभित व उत्तम आचरणवाला तथा बन्धुओं से संयुत उसने पति को पाकर कुछ समय तक रमण किया ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त हे मुने ! बड़े कठिन रोग से विकल उसका रूप व यौवन से सुन्दर भी पति काल के वश से मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ व पति के मरने पर दुःख से जले हृदय-

तां सर्वलक्षणोपेतां रतेर्मूर्तिमिवापराम् ॥ वर्द्धमानां पितुर्गेहे वीक्ष्यासन्विस्मिता जनाः ॥ ३४ ॥ दिने दिने वर्धमाना बन्धुभिर्लालिता भृशम् ॥ सा शनैर्यौवनं भेजे स्मरस्येव महाधनुः ॥ ३५ ॥ अथ सा बन्धुवर्गेश्च समेतेन कुमारिका ॥ पित्रा प्रदत्ता कस्मैचिद्विधिना द्विजसूनवे ॥ ३६ ॥ सा भर्त्तारमनुप्राप्य नवयौवनशालिनी ॥ कंचित्कालं शुभाचारा रेमे बन्धुभिरावृता ॥ ३७ ॥ अथ कालवशात्तस्याः पतिस्तीव्ररुजार्दितः ॥ रूपयौवनकान्तोपि पञ्चत्वमगमन्मुने ॥ ३८ ॥ मृते भर्त्तरि दुःखेन विदग्धहृदया सती ॥ उवास कतिचिन्मासान्सुशीला विजितेन्द्रिया ॥ ३९ ॥ अथ यौवनभारेण जृम्भमाणेन नित्यशः ॥ बभूव हृदयं तस्याः कन्दर्पपरिकम्पितम् ॥ ४० ॥ सा गुप्ता बन्धुवर्गेण शासितापि महोत्तमैः ॥ न शशाक मनो रोद्धुं मदनाकृष्टमङ्गना ॥ ४१ ॥ सा तीव्रमन्मथाविष्टा रूपयौवनशालिनी ॥ विधवापि विशेषेण जारमार्गरताभवत् ॥ ४२ ॥ न ज्ञाता केनचिदपि जारिणीति विच

वाली होती हुई इन्द्रियों को जीते वह सुन्दर शीलवती स्त्री कुछ महीनों तक वहां बसती भई ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त नित्य बढ़ते हुए यौवन के भार से उसका हृदय कामदेव से कंपित हुआ ॥ ४० ॥ व बन्धुगण से रक्षित और महासज्जनों से शिक्षित भी वह स्त्री कामदेव से खींचे हुए मन को रोंकने के लिये न समर्थ हुई ॥ ४१ ॥ और तीव्र कामदेव से संयुत वह रूप व यौवन से शोभित विधवा भी स्त्री जारमार्ग में रत हुई याने कुलटा होगई ॥ ४२ ॥ और उस चतुर स्त्री

को कोई यह नहीं जाना कि यह कुलटा है और उस दुष्टा स्त्री ने कुछ समय तक अपने दुष्ट आचरण को छिपाया ॥ ४३ ॥ और मेघों के समान श्याम स्तनों वाली व विटों (कामी जनों) से दूषित उस स्त्री को समय से बन्धुवर्ग ने भी गर्भ के अभिलाषों से घिरी हुई जाना ॥ ४४ ॥ व इस प्रकार महाक्लेश से डरा हुआ बन्धुवर्ग बड़ी कठिन चिन्ता को प्राप्त हुआ कि स्त्रियां काम से नाश होजाती हैं व ब्राह्मण हीन की सेवा से नष्ट होजाते हैं ॥ ४५ ॥ और राजा ब्राह्मण के दण्ड से व संन्यासी भोगों के संग्रह से नाश होजाते हैं वैसेही कुत्ता से खाया हुआ अन्न व मदिरा से मिश्रित दूध नाश होजाता है ॥ ४६ ॥ और कुष्ठरोग से व्याप्त रूप

क्षणा ॥ जुगूहात्मदुराचारं कंचित्कालमसत्तमा ॥ ४३ ॥ तां दोहदसमाक्रान्तां घननीलमुखस्तनीम् ॥ कालेन ब न्धुवर्गोपि बुबोध विटदूषिताम् ॥ ४४ ॥ इति भीतो महाक्लेशाच्चिन्तां लेभे दुरत्ययाम् ॥ स्त्रियः कामेन नश्यन्ति ब्राह्मणा हीनसेवया ॥ ४५ ॥ राजानो ब्रह्मदण्डेन यतयो भोगसंग्रहात् ॥ लीढं शुना तथैवान्नं सुरया वार्पितं पयः ॥ ४६ ॥ रूपं कुष्ठरुजाविष्टं कुलं नश्यति कुस्त्रिया ॥ इति सर्वे समालोच्य समेताः पतिसोदराः ॥ ४७ ॥ तत्यजुर्गो त्रतो दूरं गृहीत्वा सकचग्रहम् ॥ सघटोत्सर्गमुत्सृष्टा सा नारी सर्वबन्धुभिः ॥ ४८ ॥ विचरन्ती च शूद्रेण रममाणा रतिप्रिया ॥ सा ययौ स्त्री बहिर्ग्रामादृष्टा शूद्रेण केनचित् ॥ ४९ ॥ स तां दृष्ट्वा वरारोहां पीनोन्नतपयोधराम् ॥ गृहं नि नाय साम्ना च विधवां शूद्रनायकः ॥ सा नारी तस्य महिषी भूत्वा तेन दिवानिशम् ॥ ५० ॥ रममाणा क्वचिद्देशे

व दुष्टा स्त्री से वंश नाश होजाता है इस प्रकार पति के सगे सब भाइयों ने मिलकर विचार कर ॥ ४७ ॥ बालों को पकड कर वंश से दूर छोड दिया और सब बन्धुवों ने अशुचि घड़े की नाईं उस स्त्री को त्याग दिया ॥ ४८ ॥ और घूमती हुई वह रति के समान प्यारी स्त्री किसी शूद्र से विहार करने लगी और गाँव के बाहर गई व किसी शूद्र ने उसको देखा ॥ ४९ ॥ और मोटे व ऊंचे स्तनोंवाली उस सुन्दर कटिवाली विधवा स्त्री को देखकर वह शूद्रनायक प्रिय वचन से घर को ले आया और वह स्त्री उसकी भार्या होकर उसके साथ दिन रात ॥ ५० ॥ रमण करनेलगी व गृहप्यारी उसने किसी स्थान में निवास किया

और वहा मास को खानेवाली उसने नित्य मदिरा को पिया ॥ ५१ ॥ और शूद्र से रमण करती हुई उस रतिप्रिया ने पुत्र को पाया व किसी समय पति के कहीं चले जाने पर मदिरा को पीकर उस ॥ ५२ ॥ मदिरा के नशेसे विकल स्त्री ने मांसभोजन की इच्छा किया इसके उपरान्त बाहर गोंड़ा मे जहां गौवों समेत भेंड़ा बँधे थे ॥ ५३ ॥ वहां बडे अन्धकार में वह सन्ध्या के समय तलवार को लेकर गई और नशे के प्रवेश से न विचार कर उस मांसप्रिया स्त्री ने भेंडा की बुद्धि से ॥ ५४ ॥ रात में एक चिल्लाते हुए गऊ के बछड़े को मारडाला और उस दुष्टा स्त्रीने मरे हुए गऊ के बछडे को घर लाकर व जान कर ॥ ५५ ॥ डरी

व्यवसद् गृहवल्लभा ॥ तत्र सा पिशिताहारा नित्यमापीतवारुणी ॥ ५१ ॥ लेभे सुतं च शूद्रेण रममाणा रतिप्रिया ॥ कदाचिद्भर्त्तरि क्वापि याते पीतसुरा तु सा ॥ ५२ ॥ इयेष पिशिताहारं मदिरामदविह्वला ॥ अथ मेषेषु बद्धेषु गोभिः सह बहिर्व्रजे ॥ ५३ ॥ ययौ कृपाणमादाय सा तमोन्धे निशामुखे ॥ अविमृश्य मदावेशान्मेषबुद्ध्यामिषप्रिया ॥ ५४ ॥ एकं जघान गोवत्सं क्रोशन्तं निशि दुर्भगा ॥ निहतं गृहमानीय ज्ञात्वा गोवत्समङ्गना ॥ ५५ ॥ भीता शिवशिवेत्याह केनचित्पुण्यकर्मणा ॥ सा मुहूर्त्तमिति ध्यात्वा पिशितासवलालसा ॥ ५६ ॥ छित्त्वा तमेव गोवत्सं चकाराहारमीप्सितम् ॥ गोवत्सार्धशरीरेण कृताहाराथ सा पुनः ॥ ५७ ॥ तदर्धदेहं निक्षिप्य बहिश्चुक्रोश कैतवात् ॥ अहो व्याघ्रेण भग्नोऽयं जग्धो गोवत्सको व्रजे ॥ ५८ ॥ इति तस्याः समाक्रन्द्रः सर्वगेहेषु शुश्रुवे ॥ अथ सर्वे शूद्रजनाः समागम्यान्तिके स्थिताः ॥ ५९ ॥ हतं गोवत्समालोक्य व्याघ्रेणेति शुचं ययुः ॥ गतेषु तेषु सर्वेषु व्युष्टायां

हुई उसने किसी पुण्यकर्म से शिव शिव ऐसा कहा और मास व मदिरा की इच्छावाली उसने कुछ समय तक विचार कर ॥ ५६ ॥ और उसी गऊके बछड़े को काटकर प्रिय भोजन किया इसके उपरान्त गऊके बछड़ेके आधे शरीर से भोजन करके फिर वह ॥ ५७ ॥ उसके आधे शरीर को बाहर फेंक कर छलसे चिल्लानेलगी कि अहो व्याघ्रने इस गऊके बछडे को व्रजमें मारडाला व खालिया ॥ ५८ ॥ इस प्रकार उसका रोनेका शब्द सब घरोंमें सुन पड़ा इसके उपरान्त सब शूद्र लोग आकर समीप स्थित हुए ॥ ५९ ॥ और व्याघ्रसे मारे हुए गऊके बछड़े को देखकर शोच को प्राप्त हुए तदनन्तर रात्रिमें उन सबों के जाने पर व

प्रातःकाल होने पर ॥ ६० ॥ उसके पतिने घर को आकर घरमें वैश्य मनुष्य को देखा इस प्रकार बहुत समय वीतने पर वह शूद्र की स्त्री ॥ ६१ ॥ कालके वश को प्राप्त हुई और यमराजके मन्दिर में गई व यमराजने भी उसके पहले के कर्म को देखकर ॥ ६२ ॥ नरकनिवास से निवृत्त करके चाण्डाल जातिवाली किया और यमपुरसे भ्रष्ट होकर वह भी चाण्डालीके गर्भ में प्राप्त हुई ॥ ६३ ॥ तदनन्तर शान्त अग्नि की नाईं काली व जन्मसे अंधी हुई और उसका पिता भी कोई चाण्डाल किसी देश में स्थित था ॥ ६४ ॥ उसने वैसी भी उस कन्या को दया से कुत्ते से आस्वादित व दुर्गंधयुक्त तथा अभोजनीय निन्दित अन्नसे पोषण

च ततो निशि ॥ ६० ॥ तद्भर्ता गृहमागत्य दृष्टवान्गृहविड्नरम् ॥ एवं बहुतिथे काले गते सा शूद्रवल्लभा ॥ ६१ ॥ कालस्य वशमापन्ना जगाम यममन्दिरम् ॥ यमोपि धर्ममालोक्य तस्याः कर्म च पौर्विकम् ॥ ६२ ॥ निर्वर्त्य निरयावासाच्चक्रे चण्डालजातिकाम् ॥ सापि भ्रष्टा यमपुराच्चाण्डालीगर्भमाश्रिता ॥ ६३ ॥ ततो बभूव जात्यन्धा प्रशान्ताङ्गारमेचका ॥ तत्पिता कोपि चाण्डालो देशे कुत्रचिदास्थितः ॥ ६४ ॥ तां तादृशीमपि सुतां कृपया पर्यपोषयत् ॥ अभोज्येन कदन्नेन शुना लीढेन पूतिना ॥ ६५ ॥ अपेयैश्च रसैर्मात्रा पोषिता सा दिने दिने ॥ जात्यन्धा सापि कालेन बाल्ये कुष्ठरुजार्दिता ॥ ६६ ॥ ऊढा न केनचिद्वापि चाण्डालेनातिदुर्भगा ॥ अतीतबाल्ये सा काले विध्वस्तपितृमातृका ॥ ६७ ॥ दुर्भगेति परित्यक्ता बन्धुभिश्च सहोदरैः ॥ ततः क्षुधार्दिता दीना शोचन्ती विगतेक्षणा ॥ ६८ ॥ गृहीतयष्टिः कृच्छ्रेण संचचाल सलोष्टिका ॥ पत्तनेष्वपि सर्वेषु याचमाना दिने दिने ॥ ६९ ॥ चाण्डालो

किया ॥ ६५ ॥ और न पीने योग्य रसों से प्रतिदिन माता से पोषण कीहुई वह जाति से अन्ध भी समय से बाल्यावस्थामें कुष्ठरोग से विकल हुई ॥ ६६ ॥ और बड़ी दुर्भाग्यवती उसको किसी भी चाण्डाल ने नहीं ब्याहा और बाल्यावस्था वीतने पर समय में जब उसके माता, पिता मरगये ॥ ६७ ॥ तब सगे भाइयों ने उसको इस कारण छोड़ दिया कि यह अभागिनी है तदनन्तर नेत्रों से रहित व क्षुधासे विकल शोचती हुई वह दीन चाण्डाली ॥ ६८ ॥ दण्डे को लेकर दुःख से चली और सब नगरों में प्रतिदिन मागती हुई उस चाण्डाली ने ॥ ६९ ॥ चाण्डालों के जूंठे भोजनसे जठराग्नि को तृप्त किया इस प्रकार बड़े दुःख से

बहुतसा समय व्यतीत कर॥ ७० ॥ वृद्धता से संयुत सब अंगोंवाली उसने बड़े कठिन दुःख को पाया और किसी समय अन्न, पान व वसन से रहित उसने आने वाली शिवतिथि (शिवरात्रि) में जाते हुए मार्ग में प्राप्त महात्मा लोगों को जाना और उस देवयात्रा में देश देशातर से जानेवाले ॥ ७१ । ७२ ॥ स्त्रियों समेत व अग्निहोत्रों समेत महात्मा ब्राह्मणों के व हाथी, रथ और घोड़ों समेत तथा रनिवासों समेत और सवारी व छत्रादिकों से शोभित तथा परिवार समेत शब्दवाले राजाओं के और अन्य हज़ारों वैश्य, शूद्र व संकरवर्णवाले ॥ ७३ । ७४ ॥ हँसते, गाते, नाचते व दौड़ते हुए तथा सूंघते, पीते व इच्छा से जाते व

च्छिष्टपिण्डेन जठराग्निमतर्पयत् ॥ एवं कृच्छ्रेण महता नीत्वा सुबहुलं वयः ॥७०॥ जरया ग्रस्तसर्वाङ्गी दुःखमाप दुरत्ययम् ॥ निरन्नपानवसना सा कदाचिन्महाजनान् ॥ ७१ ॥ आयास्यन्त्यां शिवतिथौ गच्छतो बुबुधेऽध्व गान् ॥ तस्यां तु देवयात्रायां देशदेशान्तयायिनाम् ॥ ७२ ॥ विप्राणां साग्निहोत्राणां सस्त्रीकाणां महात्मनाम् ॥ राज्ञां च सावरोधानां सहस्तिरथवाजिनाम् ॥ ७३ ॥ सपरीवारघोषाणां यानच्छत्रादिशोभिनाम् ॥ तथान्येषां च विट्शूद्र संकीर्णानां सहस्रशः ॥ ७४ ॥ हसतां गायतां कापि नृत्यतामथ धावताम् ॥ जिघ्रतां पिबतां कामाद्गच्छतां प्रतिग र्जताम् ॥ ७५ ॥ संप्रयाणे मनुष्याणां संभ्रमः सुमहानभूत् ॥ इति सर्वेषु गच्छत्सु गोकर्णे शिवमन्दिरम् ॥ ७६ ॥ पश्यन्ति दिविजाः सर्वे विमानस्थाः सकौतुकाः ॥ अथेयमपि चाण्डाली वसनाशनतृष्णया ॥ ७७ ॥ महा जनान्याचयितुं चचाल च शनैःशनैः ॥ करावलम्बेनान्यस्याः प्राग्जन्मार्जितकर्मणा ॥ दिनैः कतिपयैर्यान्ती गोकर्णक्षेत्रमाययौ ॥ ७८ ॥ ततो विदूरे मार्गस्य निषण्णा विवृताञ्जलिः ॥ याचमाना मुहुः पान्थान्नभाषे

गर्जते हुए ॥ ७५ ॥ मनुष्यों की यात्रामें बड़ा भारी संभ्रम हुआ इस प्रकार गोकर्ण शिवमंदिर को सबों के जाते हुए ॥ ७६ ॥ विमानों पै बैठे हुए कौतुक समेत सब देवता लोग देखते थे और यह चाण्डाली भी वसन, भोजन के लालच से ॥ ७७ ॥ महाजनों से मागने के लिये धीरे धीरे चली और पूर्वजन्म में इकट्ठाकिये हुए कर्म से अन्य स्त्री के हाथ को पकड़कर जाती हुई कुछ दिनों में गोकर्णक्षेत्र को आई ॥ ७८ ॥ तदनन्तर मार्ग के समीपही वह हाथों को फैलाकर बैठगई और

पथिकों से बारबार मांगती हुई वह दीनवचन को कहती थी ॥ ७९ ॥ कि हे लोगो ! पूर्वजन्म में इकट्ठा किये हुए पापसमूहों से पीडित मुझको केवल भोजन के दान से दया कीजिये ॥ ८० ॥ हे लोगो ! बहुत दुःखित जनों के रक्षक व उत्तम आशिषों के देनेवाले तथा बहुत पुण्यों के करनेवाले तुमलोग दया करो ॥ ८१ ॥ हे लोगो ! वसन व भोजन से रहित तथा पृथ्वी में पड़ी और बड़ी धूलि में डूबी हुई मेरे ऊपर दया कीजिये ॥ ८२ ॥ हे लोगो ! बडे भारी जाड व घाम से विकल तथा महारोग से पीड़ित मुझ बुड्ढी अन्धी के ऊपर दया कीजिये ॥ ८३ ॥ हे लोगो ! बहुत दिनों के उपवास से जली हुई और जठराग्नि

कृपणं वचः ॥ ७९ ॥ प्राग्जन्मार्जितपापौघैः पीडितायाश्चिरं मम ॥ आहारमात्रदानेन दयां कुरुत भो जनाः ॥ ८० ॥ त्रातारः परमार्तानां दातारः परमाशिषाम् ॥ कर्त्तारो बहुपुण्यानां दयां कुरुत भो जनाः ॥ ८१ ॥ वसनाशनहीनायां स्वपितायां महीतले ॥ महापांसुनिमग्नायां दयां कुरुत भो जनाः ॥ ८२ ॥ महाशीतातपार्त्तायां पीडितायां महारुजा ॥ अन्धायां मयि वृद्धायां दयां कुरुत भो जनाः ॥ ८३ ॥ चिरोपवासदीप्तायां जठराग्निविवर्धनैः ॥ सन्दह्यमानसर्वाङ्ग्यां दयां कुरुत भो जनाः ॥ ८४ ॥ अनुपार्जितपुण्यायां जन्मान्तरशतेष्वपि ॥ पापायां मन्दभाग्यायां दयां कुरुत भो जनाः ॥ ८५ ॥ एवमभ्यर्थयन्त्यास्तु चाण्डाल्याः प्रसृतेऽञ्जलौ ॥ एकः पुण्यतमः पान्थः प्राक्षिपद्बिल्वमञ्जरीम् ॥ ८६ ॥ तामञ्जलौ निपतितां सा विमृश्य पुनः पुनः ॥ अभक्ष्येत्येव मत्वाथ दूरे प्राक्षिपदातुरा ॥ ८७ ॥ तस्याः करेण निर्मुक्ता रात्रौ सा बिल्वमञ्जरी ॥ पपात कस्यचिद्दिष्ट्या शिवलिङ्गस्य मस्तके ॥ ८८ ॥ सैवं शिवचतुर्दश्यां

के बढ़ने से जलते हुए सब अंगोंवाली मेरे ऊपर दया कीजिये ॥ ८४ ॥ हे लोगो ! सैकड़ों जन्मों में भी पुण्य न इकट्ठा करनेवाली व मंदभागिनी मुझ पापिनी के ऊपर दया कीजिये ॥ ८५ ॥ इस प्रकार मांगती हुई चाण्डालीकी फैली हुई अंजली में एक अत्यन्त पुण्यकारी पथिक ने बिल्व की मंजरी को फेंकदिया ॥ ८६ ॥ और अंजली में गिरी हुई उस मंजरीको बारबार विचार कर उस दुःखित चाण्डाली ने न खाने योग्य जानकर दूर फेंकदिया ॥ ८७ ॥ और रात्रि में उसके हाथ से छूटी हुई वह बिल्व मंजरी किसी शिवलिंग के मस्तक पै गिरपड़ी ॥ ८८ ॥ और पथिक लोगों से बारबार मांगती हुई भी उसने शिव चतुर्दशी की रात्रि मे दैवयोग

से कुछ नहीं पाया ॥ ८९ ॥ और वहां इसने भद्रकालीजी के पीछे कुछ उत्तर और उसके आधे दूर पै समीपही स्थान में उस रात्रि को निवास किया ॥ ९० ॥ तदनन्तर प्रातःकाल में आशारहित व बड़े शोक से सयुत यह उदासीन चाण्डाली अकेली अपने देशके लिये धीरे धीरे लौटी ॥ ९१ ॥ और बहुत दिनों के उपाससे पग पग पै गिरती व थकी हुई यह बहुत ही विकल चाण्डाली बहुत रोगसे विकल होकर चिल्लाती व कांपती थी ॥ ९२ ॥ व सूर्य के ताप से जलती हुई तथा नंगे शरीरवाली यह दण्ड समेत चाण्डाली इतनी भूमि को नांघकर मूर्च्छित होकर गिरपड़ी ॥ ९३ ॥ इसके उपरान्त दयारूपी अमृत के समुद्र जगदीश्वर शिवजी

रात्रौ पान्थजनान्मुहुः ॥ याचमानापि यत्किंचिन्न लेभे दैवयोगतः ॥ ८९ ॥ तत्रोषितानया रात्रिर्भद्रकाल्यास्तु पृष्ठतः ॥ किंचिदुत्तरतः स्थानं तदर्धेनातिदूरतः ॥ ९० ॥ ततःप्रभाते भ्रष्टाशा शोकेन महताप्लुता ॥ शनैर्निवृत्ते दीना स्वदेशायैव केवला ॥ ९१ ॥ श्रान्ता चिरोपवासेन निपतन्ती पदे पदे ॥ क्रन्दन्ती बहुरोगार्ता वेपमाना भृशातुरा ॥ ९२ ॥ दह्यमानार्कतापेन नग्नदेहा सयष्टिका ॥ अतीत्यैतावतीं भूमिं निपपात विचेतना ॥ ९३ ॥ अथ विश्वेश्वरः शम्भुः करुणामृतवारिधिः ॥ एनामानयतेत्यस्मान्युयुजे सविमानकान् ॥ ९४ ॥ एषा प्रवृत्तिश्चाण्डाल्यास्तवेह परिकीर्त्तिता ॥ तथा सन्दर्शिता शम्भोः कृपणेषु कृपालुता ॥ ९५ ॥ कर्मणः परिपाकोत्थां गतिं पश्य महामते ॥ अधमापि परं स्थानमारोहति निरामयम् ॥ ९६ ॥ यदेतया पूर्वभवे नान्नदानादिकं कृतम् ॥ क्षुत्पिपासादिभिः क्लेशैस्तस्मादिह निपीड्यते ॥ ९७ ॥ यदेषा मदवेगान्धा चक्रे पापं महोल्बणम् ॥ कर्मणा तेन जात्यन्धा बभू

ने इसको लाइये इस प्रकार विमान समेत हमलोगों को आज्ञा दिया ॥ ९४ ॥ तुमसे इस विषय में यह चाण्डाली का वृत्तान्त कहा गया और दीनों के ऊपर शिवजी की दयालुता दिखाई गई ॥ ९५ ॥ हे महामते ! कर्म के फल से उपजी हुई गति को देखिये कि नीच चाण्डाली भी व्याधिरहित स्थान पै चढ़ती है॥ ९६ ॥ और जिस लिये इसने पूर्वजन्म में अन्न दानादिक नहीं किया है उस कारण यह इस जन्ममें क्षुधा व प्यासादिक क्लेशों से पीड़ित होतीहै ॥ ९७ ॥ और जो मद के

वेग से अन्धी इसने बडा उग्र पाप कियाहै उस कर्मसे यह इसी जन्म में अन्धी हुई॥ ९८॥ और गऊ के बछडाको जानकर भी इसने जो पहले खालिया उस कर्म से इस जन्म में यह निन्दित चाण्डाली हुई ॥ ९९ ॥ और जो यह उत्तम मार्ग को छोडकर पहले जारमार्ग में परायण हुई उस किसी पाप से दुराचारिणी व दुर्भाग्यवती हुई ॥ १०० ॥ और पहले विधवा भी मद से संयुत इसने जो जार (परपति) से आलिंगन किया उस बड़े भारी पाप से बहुत कुष्ठ के घावों से सयुत हुई ॥ १ ॥ और जो कामसे विकल इसने अपनी इच्छा से पूर्वजन्म में शूद्रके साथ रमण किया है उस पाप से महारक्त, पीव व कीटों से पीडित होती है ॥ २ ॥

वात्रैव जन्मनि ॥ ९८ ॥ अपि विज्ञाय गोवत्सं यदेषाऽभक्षयत्पुरा ॥ कर्मणा तेन चाण्डाली बभूवेह विगर्हिता ॥ ९९ ॥ यदेषार्यपथं हित्वा जारमार्गरता पुरा ॥ तेन पापेन केनापि दुर्वृत्ता दुर्भगापि वा ॥ १०० ॥ यदाश्लिक्षन् मदाविष्टा जारेण विधवा पुरा ॥ तेन पापेन महता बहुकुष्ठव्रणान्विता ॥ १ ॥ कामार्त्ता यदियं स्वैरं शूद्रेण रमिता पुरा ॥ महासृक्पूयकृमिभिः पीडयते तेन पाप्मना ॥ २ ॥ सुव्रतानि न चीर्णानि नेष्टापूर्तादिकं कृतम् ॥ सर्वभोगविहीनेयं दूयते तेन पाप्मना ॥ ३ ॥ यदेतया पूर्वभवे सुरा पीता विमूढया ॥ महायक्ष्मार्तिहृच्छूलैः पीडयते तेन पाप्मना ॥ ४ ॥ अत्रैव सर्वमर्त्येषु पापचिह्नानि कृत्स्नशः ॥ लक्ष्यन्ते मुनिशार्दूल सविवेकैर्महात्मभिः ॥ ५ ॥ अत्र ये बहुरोगार्त्ता ये पुत्रधनवर्जिताः ॥ ६ ॥ ये च दुर्लक्षणक्लिष्टा याचका विगतह्रियः ॥ वासोन्नपानशयनभूषणाभ्यञ्जनादिभिः ॥ ७ ॥ हीना विरूपा निर्विद्या विकलाङ्गाः कुभोजनाः ॥ ये दुर्भाग्या निन्दिताश्च ये चान्ये परसेव

और उत्तम व्रत नहीं किये गये व इष्टापूर्तादिक कर्म नहीं किया गयाहै उस पाप से यह सब सुखों से रहित है ॥ ३ ॥ व पूर्वजन्म में इस मूर्खिणी स्त्री ने जो मदिरा पिया है उस पाप से महायक्ष्मा के दुःख से व हृदय के शूलों से पीडित होती है ॥ ४ ॥ हे मुनिशार्दूल ! ज्ञान समेत मुनिलोग यहीं पर सब मनुष्यों में सम्पूर्ण पापों के चिह्नों को देखते हैं ॥ ५ ॥ इस संसार में जो बहुत रोगों से विकल हैं और जो पुत्र व धन से रहित है ॥ ६ ॥ और जो दुष्टलक्षणों से क्लेशित तथा याचक व लज्जारहित हैं और जो वसन, अन्न, पान, पलँग, भूषण व उबटन आदिकों से ॥ ७ ॥ रहित हैं और जो कुरूप व विद्यारहित

तथा विकल अंगोंवाले व निन्दित भोजनोंवाले हैं और जो दुर्भाग्यवान्, निन्दित व जो अन्य दूसरों के नौकर हैं ॥ ८ ॥ ये सब पूर्वजन्म में बडे पापकारी हुए हैं इस प्रकार यत्न से विचारकर व संसार के लोगों की स्थिति को देखकर ॥ ९ ॥ विद्वान् पाप को नहीं करता है और यदि करै तो वह आत्मघाती होता है यह मनुष्य का शरीर बहुतसे कर्मों का एकही पात्र है ॥ १० ॥ इस कारण सदैव मनुष्य उत्तम कर्म को करै व दुष्ट कर्मको सदा त्याग करै व सुख को चाहने वाला मनुष्य पुण्य करै और दुःखकी इच्छा करनेवाला पाप करै ॥ ११ ॥ और दोनों में से एक को ग्रहण करने पर मनुष्य ससार मे प्रवीण होता है इस बहुतही

काः ॥ ८ ॥ एते पूर्वभवे सर्वे सुमहत्पापकारिणः ॥ एवं विमृश्य यत्नेन दृष्ट्वा लोकजनस्थितिम् ॥ ९ ॥ बुधो न कुरुते पापं यदि कुर्यात्स आत्महा ॥ देहोऽयं मानुषो जन्तोर्बहुकर्मैकभाजनम् ॥ १० ॥ सदा सत्कर्म सेवेत दुष्कर्म सततं त्यजेत् ॥ पुण्यं सुखार्थी कुर्वीत दुःखार्थी पापमाचरेत् ॥ ११ ॥ द्वयोरेकतरे लोके गृहीते कुशलो जनः ॥ इमं मानुषमाश्रित्य देहं परमदुर्लभम् ॥ १२ ॥ य आत्महितवान्कश्चिद्देवमेकं समाश्रयेत् ॥ अथ पापानि सर्वाणि कुर्वन्नपि सदा नरः ॥ १३ ॥ शिवमेकमतिर्ध्यायेत्स सन्तरति पातकम् ॥ मृता पूर्वभवे त्वेषा यदा प्राप्ता यमालये ॥ १४ ॥ तदा वितर्कः सुमहानासीद्यमसभासदाम् ॥ यद्यपि ब्राह्मणी त्वेषा सत्कुलाचारदूषिता ॥ १५ ॥ अतोऽस्माभिरिहानीता निरयं यातु वा न वा ॥ अनया साधितो बाल्ये पुण्यलेशोऽस्ति वा न वा ॥ १६ ॥ अथापि सुविमृश्यैवं धार्यो दण्डोऽत्र नान्य

दुर्लभ मनुष्य के शरीर को पाकर ॥ १२ ॥ जो कोई अपना हित करनेवाला मनुष्य एक देवता के आश्रित होवै अथवा सदैव सब पापों को करता हुआ भी मनुष्य ॥ १३ ॥ एकबुद्धि होकर शिवजी को ध्यान करै वह पाप को नाघ जाता है, पूर्वजन्म में मरकर यह जब यमराज के स्थान में प्राप्त हुई ॥ १४ ॥ तब यमराज की सभा में बैठनेवाले लोगों को बडी भारी तर्कणा हुई कि यद्यपि यह ब्राह्मणी उत्तम कुल के आचार से दूषित है ॥ १५ ॥ इस कारण हमलोगों से यहा लाई हुई यह नरक को जावै या न जावै इसने बाल्यावस्था में पुण्य का अंश किया है या नहीं किया है ॥ १६ ॥ और भलीभाति विचार कर इसमें दड

धारण करना चाहिये अन्यथा न चाहिये बहुत हज़ार जन्मों में किये हुए पुण्य के फलसे ॥ १७ ॥ मनुष्यों को ब्राह्मण के वंश में जन्म मिलता है अन्यथा किसी प्रकार नहीं मिलता है इस कारण पहलेवाले जन्मों में इसका किया हुआ पाप नहीं है ॥ १८ ॥ क्योंकि अन्यथा यह उत्तम कुल में कैसे जन्म को प्राप्त होती इसी जन्म में इसने बड़ा कठिन पाप किया है ॥ १९ ॥ तथापि यह नरक में वास के योग्य नहीं है बरन गऊ के बछड़ा को मारकर भयको प्राप्त इसने विचार कर पूर्वजन्म में इकट्ठा किये हुए कर्म से शिव शिव ऐसा कहा है यदि यह पापों के नाश के लिये एक बार भी बहुत मंगलवाले ॥ २० । २१ ॥

था ॥ बहुजन्मसहस्रेषु कृतपुण्यविपाकतः ॥ १७ ॥ नृणां ब्रह्मकुले जन्म लभ्यते हि कथंचन ॥ अतोस्याः पूर्वपूर्वेषु कृताघं नास्ति जन्मसु ॥ १८ ॥ अन्यथा सत्कुले जन्म कथमेषा प्रपद्यते ॥ अत्रैव जन्मन्यनया कृतमंहो दुरत्ययम् ॥ १९ ॥ अथापि नरकावासं प्रायशो नेयमर्हति ॥ किं तु गोवत्सकं हत्वा विमृश्यागतसाध्वसा ॥ २० ॥ एषा शिवशिवेत्याह प्राग्जन्मार्जितकर्मणा ॥ यद्येषा पापविच्छित्त्यै सकृदप्युरुमङ्गलम् ॥ २१ ॥ शिवनाम वदेद्भक्त्या तर्हि गच्छेत्परं पदम् ॥ एकजन्मकृतस्यास्य दारुणस्यापि यत्फलम् ॥ २२ ॥ क्रमेणानुभवत्वेषा भूत्वा चाण्डालजातिका ॥ अस्मादन्यतमः को वा नरकोऽस्ति नृणामिह ॥२३॥ अनेकक्लेशसंघातैर्मुहुः परिपीडनम् ॥ दुष्कुले जन्म दारिद्र्यं महाव्याधिर्विमूढता ॥ २४ ॥ एकैक एव नरकः सर्वे वा चाथ किं पुनः ॥ प्राग्जन्मपुण्यभारेण यन्नाम विवशाऽब्रवीत् ॥ २५ ॥ तेनैषान्यभवे भूरि पुण्यमन्ते करिष्यति ॥ तेन पुण्येन महता निस्तीर्णाघौघयातना ॥ २६ ॥ नीता

शिवजी के नाम को भक्ति से कहती तो परमपद को प्राप्त होती एक जन्म में किये हुए इस कठिन पाप का भी जो फल है ॥ २२ ॥ उसको यह चाण्डाल जाति होकर क्रमसे भोग करै क्योंकि इससे अन्य कौन यहां मनुष्यों का नरक है ॥ २३ ॥ कि जो अनेक क्लेशराशियों से बारबार पीडित होता है दुष्ट वंश में जन्म, निर्धनता, महारोग व मूर्खता ॥ २४ ॥ एकही एक नरक है फिर सबों को क्या कहना है पूर्व जन्म के पुण्यपुंज से जो इसने विवश होकर शिवजी का नाम कहा है ॥ २५ ॥ उससे अन्य जन्म में यह अन्त में बड़ाभारी पुण्य करैगी और उस बड़े भारी पुण्य से पापराशियों के दुःखों को भोग कर ॥ २६ ॥ उन

यमदूतों से लाई हुई यह अन्त में परमपद को प्राप्त होगी और ऐसे मनुष्यों के हमलोग कभी दण्डदायक नहीं हैं किन्तु जो स्वामी है वह विचार कर जो योग्य होगा उसको आपही करैगा ॥ २७ ॥ इस प्रकार यमराज़के पुर में यमराजपूर्वक सब चित्रगुप्तादिकों ने विचार कर इसको पृथ्वी में छोड़दिया और यह पृथ्वी में गिरपड़ी ॥ २८ ॥ पहले जो इस दुराचारिणी स्त्री ने असावधानता से भी शिवजी का नाम कहा है फिर उस पुण्य मे विल्वपत्र के आराधन का पुण्य पाया है ॥ २९ ॥ और श्रीगोकर्णक्षेत्र में शिवतिथि (शिवरात्रि) में उपास करके रातको जागरण कर शिवजी के मस्तक पै इसने विल्वपत्र को चढ़ाया

तत्पुरुषैरन्ते प्रयास्यति परं पदम् ॥ एतादृशानां मर्त्यानां शास्तारो न वयं क्वचित् ॥ विचार्य स्वयमेवेशो यद्युक्तं तत्करोतु सः ॥ २७ ॥ एवं वैवस्वतपुरे सर्वैर्यमपुरोगमैः ॥ विमृश्य चित्रगुप्ताद्यैरियं मुक्ताऽपतद्भुवि ॥ २८ ॥ आदौ य देषा शिवनाम नारी प्रमादतो वाप्यसती जगाद ॥ तेनेह भूयः सुकृतेन शम्भोर्विल्वाङ्कुराराधनपुण्यमाप ॥ २९ ॥ श्रीगोकर्णे शिवतिथावुपोष्य शिवमस्तके ॥ कृत्वा जागरणं ह्येषा चक्रे विल्वार्पणं निशि ॥ ३० ॥ अकामतः कृत स्यास्य पुण्यस्यैव च यत्फलम् ॥ अद्यैव भोक्ष्यते सेयं पश्यतस्तव नो मृषा ॥ ३१ ॥ गौतम उवाच ॥ इत्युक्त्वा शिव दूतास्ते तस्याश्चाण्डालयोनितः ॥ जीवलेशं समाकृष्य युयुजुर्दिव्यतेजसा ॥ ३२ ॥ तां दिव्यदेहसंक्रान्तां तेजोरा शिसमुज्ज्वलाम् ॥ विमाने स्थापयामासुः प्रीतास्ते शिवकिङ्कराः ॥ ३३ ॥ अथ सा परमोदाररूपलावण्यशालि नी ॥ दिव्यभूषणदीप्ताङ्गी दिव्याम्बरविधारिणी ॥ ३४ ॥ देहेन दिव्यगन्धेन दिव्यतेजोविकाशिना ॥ दिव्यमाल्या

है ॥ ३० ॥ अकामना से किये हुए इस पुण्य का जो फलहै उसको आजही तुम्हारे देखते हुए वही यह भोग करैगी इसमे झूठ नहीं है ॥ ३१ ॥ गौतमजी बोले कि यह कहकर उन शिवदूतों ने उसके जीव के अंश को चाण्डाल की योनि से खींचकर दिव्य तेज से युक्त किया ॥ ३२ ॥ और दिव्य देह से आक्रमित व तेज की राशि से उज्ज्वल उस स्त्री को उन प्रसन्न शिवदूतों ने विमान पै स्थापित किया ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त वड़े उदाररूप की सुन्दरता से शोभित व दिव्य भूषणों से प्रकाशित अगोंवाली वह दिव्य वसनों को धारण करती भई ॥ ३४ ॥ इसके उपरान्त दिव्य तेज को प्रकाश करनेवाले तथा दिव्य सुगंधयुक्त शरीर

से व दिव्य मालाओं के शिरोभूषण से विमान पै प्राप्त वह शोभित हुई ॥ ३५ ॥ और रत्नसंयुत छत्र व पताकादिकों से तथा गाने, बजाने के शब्दों से वह उत्तम मुखवाली स्त्री शिवदूतों के मध्य में प्रसन्न हुई ॥ ३६ ॥ और पिछले उत्पन्न हुए जन्मों को वारवार स्मरण कर डरगई और दृढ़ आश्चर्य को डरी हुई वह स्वप्न के समान देखकर उठ पड़ी ॥ ३७ ॥ कि मैं कौन हूं व ये महासिद्ध कौन हैं और यह कौन सुन्दर लोक है व प्रचण्ड चाण्डाल के गोत्र में उपजा हुआ मेरा क्लेशित शरीर कहां गया ॥ ३८ ॥ माया के विलास से उपजा हुआ बड़ा भारी आश्चर्य देखा गया जोकि हज़ारों जन्मों में मैंने वारवार भ्रमण

वतंसेन विरराज विमानगा ॥ ३५ ॥ रत्नच्छत्रपताकाद्यैर्गीतवादित्रनिस्वनैः ॥ मध्ये सा शिवदूतानां मोदमाना वरानना ॥ ३६ ॥ अनुभूतानि जन्मानि स्मृत्वा स्मृत्वा पुनःपुनः ॥ भीता त्रस्ता दृढाश्चर्यं दृष्ट्वा स्वप्नमिवोत्थिता ॥ ३७ ॥ काहं केऽमी महासिद्धाः कोयं लोको मनोरमः ॥ क्व गतं मे वपुः कष्टं चण्डचाण्डालगोत्रजम् ॥ ३८ ॥ अहो सुमहदाश्चर्यं दृष्टं मायाविलासजम् ॥ यन्मे भवसहस्रेषु भ्रान्तं भ्रान्तं पुनःपुनः ॥ ३९ ॥ अहो ईश्वरपूजाया माहात्म्यं विस्मयावहम् ॥ पत्रमात्रेण सन्तुष्टो यो ददाति निजं पदम् ॥ ४० ॥ इति तां जातनिर्वेदां स्मरन्तीं भगवत्पदम् ॥ दिव्यं विमानमारोप्य ते महेश्वरकिङ्कराः ॥ ४१ ॥ आलोकयत्सु सर्वेषु लोकेशेषु सविस्मयम् ॥ आमन्त्र्य तामथानिन्युः परमेश्वरसन्निधिम् ॥ ४२ ॥ राजन्सुमहदाश्चर्यमाख्यातं गिरिजापतेः ॥ माहात्म्यं भक्तिलेशस्य सर्वाघौघविनाशनम् ॥ ४३ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्परमेशस्य कीदृशो लोक उत्तमः ॥ तस्य मे लक्षणं ब्रूहि यद्यस्ति मयि

किया ॥ ३९ ॥ और शिवजी के पूजन का माहात्म्य आश्चर्यदायक है कि केवल पत्र से प्रसन्न होकर जो अपने स्थान को देते हैं ॥ ४० ॥ इस प्रकार शिवजी के चरण को स्मरण करती हुई उस उत्पन्न वैराग्यवाली स्त्री को दिव्य विमान पै चढ़ाकर वे शिवदूत ॥ ४१ ॥ विस्मय समेत सब लोकपालों के देखते हुए उससे पूछकर इसके उपरान्त उसको शिवजी के समीप लेगये ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! उमापति शिवजी के भक्तिलेश का बहुत आश्चर्यसंयुत व सब पापसमूहों का नाशक माहात्म्य कहा गया ॥ ४३ ॥ राजा बोले कि हे भगवन् ! परमेश्वर शिवजी का कैसा उत्तम लोक है यदि मेरे ऊपर दया होवै तो मुझसे उसका लक्षण

कहिये ॥ ४४ ॥ गौतमजी बोले कि लोकों के मध्यमें जो ब्रह्मादिक देवेशोंको बहुत दुर्लभ है और जहा सदैव आनन्द रहताहै वह शिवजी का लोकहै ॥ ४५ ॥ और सबको नाँघकर जहां गमन होता है व जहा प्रकाश स्थित है और कहीं अन्धकार का योग नहीं है वह शिवजी का लोक है ॥ ४६ ॥ और गुणों की वृत्ति को नाँघ कर योगी लोग जहां प्राप्त होते हैं और वे सब जहा से फिर नहीं गिरते हैं वह शिवजीका लोक है ॥ ४७ ॥ और क्रोध, लोभ व मद आदिक जहा निवास नहीं करते हैं और जहा जन्म आदिक अवस्था नहीं होती हैं वह शिवजी का लोक है ॥ ४८ ॥ और सब वेदों का जो मुख्यक्षेत्र कहा जाता है व जिससे अधिक

ते दया ॥ ४४ ॥ गौतम उवाच ॥ ब्रह्मादिसुरनाथानां लोकेष्वपि सुदुर्लभः ॥ य आनन्दः सदा यत्र स लोकः पारमेश्वरः ॥ ४५ ॥ सर्वातिगमनं यत्र ज्योतिर्यत्र प्रतिष्ठितम् ॥ क्वापि नास्ति तमोयोगः स लोकः पारमेश्वरः ॥ ४६ ॥ गुणवृत्तिं विनिस्तीर्य संप्राप्ता यत्र योगिनः ॥ न पतेयुः पुनः सर्वे स लोकः पारमेश्वरः ॥ ४७ ॥ यत्र वासं न कुर्वन्ति क्रोधलोभमदादयः ॥ यत्रावस्था न जन्माद्याः स लोकः पारमेश्वरः ॥ ४८ ॥ सर्वेषां निगमानां च यदेकं क्षेत्रमुच्यते ॥ यस्मान्नास्ति परं वित्तं तत्पदं पारमेश्वरम् ॥ ४९ ॥ प्रत्याहारासनध्यानप्राणसंयमनादिभिः ॥ यत्र योगपथैः प्राप्तुं यतन्ते योगिनः सदा ॥ ५० ॥ यत्र देवः सदानन्दनिर्मलज्ञानरूपया ॥ अस्ति देव्या सह क्रीडन्स लोकः पारमेश्वरः ॥ ५१ ॥ जन्मानेकसहस्रेषु संभूतैः पुण्यराशिभिः ॥ आरूढाः पुरुषा नार्यः क्रीडन्ते यत्र संगताः ॥ ५२ ॥ तेजोराशौ समालीना दुर्विभाव्ये मनोरमे ॥ अहोरात्रादिसंस्थानं न विन्दन्ति कदाचन ॥ ५३ ॥ स

धन नहीं है वह शिवजी का स्थान है ॥ ४९ ॥ और जहा प्राप्त होने के लिये योगी लोग सदैव प्रत्याहार, आसन, ध्यान व प्राणों के संयम आदिक योग-मार्गों से यत्न करते हैं ॥ ५० ॥ और जहां सदैव आनन्द व निर्मल ज्ञान रूपिणी पार्वती देवी के साथ क्रीडा करते हुए शिवदेवजी रहते है वह शिवजी का लोक है ॥ ५१ ॥ व अनेक जन्मों में इकट्ठा कीहुई पुण्यराशियों से जहा चढ़े हुए पुरुष व स्त्रिया मिलकर क्रीड़ा करती हैं ॥ ५२ ॥ व प्रकट न करने योग्य तथा सुन्दर तेजराशि में लीन पुरुष जहा दिन व रात्रि की स्थिति को कभी नहीं जानते हैं ॥ ५३ ॥ वह शिवजी का लोक कुयोगी को दुर्लभ है और इन शिवजी की

भक्ति से जो पूर्ण हैं वे उस लोक को प्राप्त होते हैं ॥ ५४ ॥ और जो उन शिवजी की कथा के सुनने व कहने से प्रसन्न होते हैं और जो सब प्राणियों के मित्र हैं तथा केवल शान्ति में स्थित रहते हैं मोहरहित वे संसार के भ्रमण को नाँघकर शिवजी का स्थान पाकर सुखपूर्वक रमण करते हैं ॥ ५५ ॥ वैसेही हे राजेन्द्र ! तुमभी गोकर्णनामक शिवजी के स्थान को जाकर पापगणों से रहित होकर कृतार्थता को प्राप्त होगे ॥ ५६ ॥ और वहा सब समयो मे नहाकर महाबल शिवजी को पूजकर सावधान होते हुए तुम शिवचतुर्दशी में उपास करके ॥ ५७ ॥ और रात्रि में जागरण कर व बिल्वपत्रों से शिवजी को पूजकर सब पापों से छूटे

लोकः परमेशस्य दुर्लभो हि कुयोगिनः ॥ एतद्भक्तिसुपूर्णा ये तैरेव प्रतिपद्यते ॥ ५४ ॥ ये तत्कथाश्रवणकीर्तनजात हर्षा ये सर्वभूतसुहृदः प्रशमैकनिष्ठाः ॥ संसारचक्रमतिवाह्य निरस्तमोहास्ते शाङ्करं पदमवाप्य सुखं रमन्ते ॥ ५५ ॥ तथा त्वमपि राजेन्द्र गोकर्णं गिरिशालयम् ॥ गत्वा प्रशमिताघौघः कृतकृत्यत्वमाप्नुहि ॥ ५६ ॥ तत्र स र्वेषु कालेषु स्नात्वाभ्यर्च्य महाबलम् ॥ कृत्वा शिवचतुर्दश्यामुपवासं समाहितः ॥ ५७ ॥ कृत्वा जागरणं रात्रौ बिल्वैरभ्यर्च्य शङ्करम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकमवाप्स्यसि ॥ ५८ ॥ एष ते विमलो राजन्नुपदेशो मया कृ तः ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि मिथिलाधिपतेः पुरीम् ॥ ५९ ॥ इत्यामन्त्र्य मुनिः प्रीत्या गौतमो मिथिलां ययौ ॥ सोऽपि हृष्टमना राजा गोकर्णं प्रत्यपद्यत ॥ ६० ॥ तत्र दृष्ट्वा महादेवं स्नात्वाभ्यर्च्य महाबलम् ॥ निर्धूताशेषपा पौघो लेभे शम्भोः परं पदम् ॥ ६१ ॥ य इमां शृणुयान्नित्यं कथां शैवीं मनोहराम् ॥ श्रावयेद्वा जनो भक्त्या

हुए तुम शिवलोक को पावोगे ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! मैंने तुमको यह निर्मल उपदेश किया तुम्हारा कल्याण होवै मैं जनकपुरी को जाऊंगा ॥ ५९ ॥ इस प्रकार कह कर गौतम मुनि प्रीतिसे मिथिलापुरी को गये और वह प्रसन्नमन राजा भी गोकर्णक्षेत्र को प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥ और वहां महाबल शिवजी को देखकर नहा कर व पूजकर समस्त पातकों से रहित उसने शिवजीके परम पद को पाया ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य इस सुन्दरी शिवजी की कथा को नित्य भक्ति से सुनता या सुनाता

है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ और जो श्रद्धावान् पुरुष एक बार भी इस कथा को सुनता है वह इक्कीस पुश्तियों समेत शिवलोक को प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ कल्याणों का आदिबीज व सैकड़ों जन्मों के पापों का नाशक तथा मोहरूपी अन्धकार का विनाशक शिवजी का यह सब चरित्र कहा गया और देवताओं से गाने योग्य यह चरित्र कल्याणवान् पुरुषों से सेवन करने योग्य है ॥ १६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां शिवचतुर्दशीगोकर्णमाहात्म्यवर्णननाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

स याति परमां गतिम् ॥ ६२ ॥ श्रद्दधानः सकृद्वापि य इमां शृणुयात्कथाम् ॥ त्रिःसप्तकुलजैः सार्धं शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ ६३ ॥ इति कथितमशेषं श्रेयसामादिबीजं भवशतदुरितघ्नं ध्वस्तमोहान्धकारम् ॥ चरितममरगेयं मन्मथारेरुदारं सततमपि निषेव्यं स्वस्तिमद्भिश्च लोकैः ॥ १६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे शिवचतुर्दशीगोकर्णमाहात्म्यवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ भूयोपि शिवमाहात्म्यं वक्ष्यामि परमाद्भुतम् ॥ शृण्वतां सर्वपापघ्नं भवपाशविमोचनम् ॥ १ ॥ दुस्तरे दुरिताम्भोधौ मज्जतां विषयात्मनाम् ॥ शिवपूजां विना कश्चित्प्लवो नास्ति निरूपितः ॥ २ ॥ शिवपूजां सदा कुर्याद्बुद्धिमानिह मानवः ॥ अशक्तश्चेत्कृतां पूजां पश्येद्भक्तिविनम्रधीः ॥ ३ ॥ अश्रद्धयापि यः कुर्याच्छिवपूजां विमुक्तिदाम् ॥ पश्येद्वा सोपि कालेन प्रयाति परमं पदम् ॥ ४ ॥ आसीत्किरातदेशेषु नाम्ना राजा विमर्दन ॥ शूरः परमदु

दो० । शिवपूजन को देखिकै श्वान भयो नरपाल । सो चौथे अध्याय में बरणत चरित रसाल ॥ सूतजी बोले कि सुननेवालों के सब पापों का नाशक व संसाररूपी फँसरी से छुडानेवाला शिवजी का माहात्म्य फिर भी कहता हूं ॥ १ ॥ दुस्तर पापरूपी समुद्र में डूबते हुए विषयी पुरुषों के लिये शिवपूजन के विना कोई नौका नहीं बनाई गई है ॥ २ ॥ इस संसार में बुद्धिमान् मनुष्य सदैव शिवपूजन करै और यदि असमर्थ होवै तो भक्ति से नम्रबुद्धिवाला वह कीहुई पूजा को देखै ॥ ३ ॥ जो बिन श्रद्धा से भी मुक्तिदायक शिवपूजन को करता है वा देखता है वह भी काल से परमपद को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ किरात

देशों में शत्रुओं को जीतनेवाला व बहुतही दुर्धर्ष तथा प्रतापी व शूरविमर्दन नामक राजा हुआ है ॥ ५ ॥ सदैव शिकार में लगा हुआ वह बलवान् राजा कृपण व निर्दयी था और सब मांसों को खानेवाला वह क्रूर व सब जाति की स्त्रियों से घिरा था ॥ ६ ॥ तथापि निरालसी वह नित्य शिवपूजन करता था व शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में चौदसि तिथि में विशेष कर ॥ ७ ॥ महाऐश्वर्य से संयुत पूजन करके वह प्रसन्न होता था और बडे हर्षसे सयुत वह नाचता, स्तुति करता व गाता था ॥ ८ ॥ इस प्रकार वर्तमान उस सर्वभक्षी व दुराचारी राजा की स्त्री उसके कर्म मे संतप्त हुई ॥ ९ ॥ व शील और गुणों से सयुत उस

र्द्धर्षो जितशत्रुः प्रतापवान् ॥ ५ ॥ सर्वदा मृगयासक्तः कृपणो निर्घृणो बली ॥ सर्वमांसाशनः क्रूरः सर्ववर्णाङ्गनावृतः ॥ ६ ॥ तथापि कुरुते शम्भोः पूजां नित्यमतन्द्रितः ॥ चतुर्दश्यां विशेषेण पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ ७ ॥ महाविभवसंपन्नां पूजां कृत्वा स मोदते ॥ हर्षेण महताविष्टो नृत्यति स्तौति गायति ॥ ८ ॥ तस्यैवं वर्तमानस्य नृपतेः सर्वभक्षिणः ॥ दुराचारस्य महिषी चेष्टितेनान्वतप्यत ॥ ९ ॥ सा वै कुमुद्वतीनाम राज्ञी शीलगुणान्विता ॥ एकदा पतिमासाद्य रहस्येतदपृच्छत ॥ १० ॥ एतत्ते चरितं राजन्महदाश्चर्यकारणम् ॥ क्व ते महान्दुराचारः क्व भक्तिः परमेश्वरे ॥ ११ ॥ सर्वदा सर्वभक्षस्त्वं सर्वस्त्रीजनलालसः ॥ सर्वहिंसापरः क्रूरः कथं भक्तिस्तवेश्वरे ॥ १२ ॥ इति पृष्टः स भूपालो विमृश्य सुचिरं ततः ॥ त्रिकालज्ञः प्रहस्यैनां प्रोवाच सुकुतूहलः ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ अहं पूर्वभवे कश्चित्सारमेयो वरानने ॥ पम्पानगरमाश्रित्य पर्यटामि समन्ततः ॥ १४ ॥ एवं कालेषु गच्छत्सु तत्रैव नगरो

कुमुद्वती नामक रानीने एक समय पति को प्राप्त होकर एकान्त में उस वृत्तान्त को पूछा ॥ १० ॥ कि हे राजन् ! तुम्हारा यह चरित्र बडा आश्चर्यकारक है कि कहां तुम्हारा बड़ा भारी दुराचार और कहा परमेश्वर में भक्ति ॥ ११ ॥ सदैव तुम सर्वभक्षी हो व सब स्त्रियों की इच्छा करते हो और सबों की हिंसा में परायण व क्रूर हो तो कैसे तुम्हारी ईश्वर में भक्ति है ॥ १२ ॥ इस प्रकार पूछे हुए उस राजा ने बहुत देर तक विचार कर तदनन्तर त्रिकालज्ञ व कौतुक समेत राजा ने हँसकर इस स्त्री से कहा ॥ १३ ॥ राजा बोले कि हे वरानने ! पूर्वजन्म में मैं कोई कुत्ता हुआ हूं और पपानगर में टिककर सब ओर घूमता था ॥ १४ ॥ इस

प्रकार उसी उत्तम नगर में समय व्यतीत होने पर किसी समय- वही मै सुन्दर शिवमन्दिर को गया ॥ १५ ॥ और बाहर द्वारपै बैठे हुए मैंने चतुर्दशी महातिथि में पूजन वर्तमान होने पर दूरसे उत्सव को देखा ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त दंडों को हाथ में लिये हुए बडे क्रोधित मनुष्यों से भगाया हुआ मैं प्राणों की रक्षा में परायण होकर उस स्थान से निकल गया ॥ १७ ॥ तदनन्तर सुन्दर शिवमन्दिर की प्रदक्षिणा कर फिर द्वार देश को प्राप्त होकर मैं फिर मना किया गया ॥ १८ ॥ और फिर उसी शिवमन्दिर की प्रदक्षिणा कर बलि के पिण्डादिकों के लोभ से मैं फिर द्वार को आया ॥ १९ ॥ इस प्रकार बारबार वहां प्रदक्षिणा कर कर द्वार

त्तमे ॥ कदाचिदागतः सोहं मनोज्ञं शिवमन्दिरम् ॥ १५ ॥ पूजायां वर्त्तमानायां चतुर्दश्यां महातिथौ ॥ अपश्यमुत्सवं दूराद्वहिर्द्वारं समाश्रितः ॥ १६ ॥ अथाहं परमक्रुद्धैर्दण्डहस्तैः प्रधावितः ॥ तस्माद्देशादपक्रान्तः प्राणरक्षापरायणः ॥ १७ ॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्य मनोज्ञं शिवमन्दिरम् ॥ द्वारदेशं पुनः प्राप्य पुनश्चैव निवारितः ॥ १८ ॥ पुनः प्रदक्षिणीकृत्य तदेव शिवमन्दिरम् ॥ बलिपिण्डादिलोभेन पुनर्द्वारमुपागतः ॥ १९ ॥ एवं पुनःपुनस्तत्र कृत्वा कृत्वा प्रदक्षिणाम् ॥ द्वारदेशे समासीनं निजघ्नुर्निशितैः शरैः ॥ २० ॥ स विद्धगात्रः सहसा शिवद्वारि गतासुकः ॥ जातोऽस्म्यहं कुले राज्ञां प्रभावाच्छिवसन्निधेः ॥ २१ ॥ दृष्टा चतुर्दशीपूजां दीपमाला विलोकिताः॥ तेन पुण्येन महता त्रिकालज्ञोऽस्मि भामिनि ॥ २२ ॥ प्राग्जन्मवासनाभिश्च सर्वभक्षोऽस्मि निर्घृणः ॥ विदुषामपि दुर्लङ्घ्या प्रकृतिर्वासनामयी ॥ २३ ॥ अतोऽहमर्चयामीशं चतुर्दश्यां जगद्गुरुम् ॥ त्वमपि श्रद्धया भद्रे भज देवं पिनाकिनम् ॥ २४ ॥

स्थान में बैठे हुए मुझको मनुष्यों ने पैने बाणों से मारा ॥ २० ॥ और कटे हुए अंगोंवाला मैं यकायक शिवजी के द्वारपै मरगया और शिवजी की समीपता के प्रभाव से मैं राजाओं के वश में पैदा हुआ हूं ॥ २१ ॥ हे भामिनि ! चतुर्दशी में पूजन को देखकर मैंने दीपमालाओं को देखा है उस बडे भारी पुण्य से मै तीनों समयों का जाननेदाला हूं ॥ २२ ॥ और पहले जन्म की वासनाओं से मैं सर्वभक्षी व निर्दयी हू क्योंकि वासनावाले स्वभाव को विद्वान् लोग भी नहीं नॉघसक्ते हैं ॥ २३ ॥ इस कारण मैं चौदसि में ससार के गुरु शिवजीको पूजता हूं घ हे भद्रे ! तुम भी श्रद्धा से पिनाकी (शिव) देवजी को भजो ॥ २४ ॥ रानी

बोली कि हे नृपेन्द्र ! शिवजीके प्रसाद से तुम त्रिकालज्ञ हो इस कारण मेरे पहले जन्मके चरित्र को यथार्थ कहने के योग्य हो ॥ २५ ॥ राजा बोले कि पूर्व जन्म में तुम कोई आकाशगामिनी कबूतरी थी और कभी तुमने स्वच्छन्दता से किसी मांसपिंड को पाया ॥ २६ ॥ और तुमसे लिये हुए मांस को देखकर मांस रहित कोई बलवान् व भयंकर गीध वेग से आपही दौड़ा ॥ २७ ॥ तदनन्तर हे वरानने ! उसको देखकर डरी हुई तुम भगी और वह भयंकर गीध्र मांसपिण्ड के लेने की इच्छा से तुम्हारे पीछे दौड़ा ॥ २८ ॥ और श्रीगिरि को प्राप्त होकर थकी हुई तुम शिवालय की प्रदक्षिणा कर ध्वजा के अग्रभाग पै बैठ गई ॥ २९ ॥

राज्ञ्युवाच ॥ त्रिकालज्ञोऽसि राजेन्द्र प्रसादाद्गिरिजापतेः ॥ मत्पूर्वजन्मचरितं वक्तुमर्हसि तत्त्वतः ॥ २५ ॥ राजोवाच ॥ त्वं तु पूर्वभवे काचित्कपोती व्योमचारिणी ॥ क्वापि लब्धवती किञ्चिन्मांसपिण्डं यदृच्छया ॥ २६ ॥ त्वद्गृहीतमथालोक्य गृध्रः कोप्यामिषं बली ॥ निरामिषः स्वयं वेगादभिदुद्राव भीषणः ॥ २७ ॥ ततस्तं वीक्ष्य वित्रस्ता विद्रुतासि वरानने ॥ तेनानुयाता घोरेण मांसपिण्डजिघृक्षया ॥ २८ ॥ दिष्ट्या श्रीगिरिमासाद्य श्रान्ता तत्र शिवालयम् ॥ प्रदक्षिणं परिक्रम्य ध्वजाग्रे समुपस्थिता ॥ २९ ॥ अथानुसृत्य सहसा तीक्ष्णतुण्डो विहंगमः ॥ त्वां निहत्य निपात्याधो मांसमादाय जग्मिवान् ॥ ३० ॥ प्रदक्षिणप्रक्रमणाद्देवदेवस्य शूलिनः ॥ तस्याग्रे मरणाच्चैव जातासीह नृपाङ्गना ॥ ३१ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ श्रुतं सर्वमशेषेण प्राग्जन्मचरितं मया ॥ जातं च महदाश्चर्यं भक्तिश्च मम चेतसि ॥ ३२ ॥ अथान्यच्छ्रोतुमिच्छामि त्रिकालज्ञ महामते ॥ इदं शरीरमुत्सृज्य चास्यावः कां गतिं

इसके उपरान्त पैनी चोंचवाला गीध यकायक पीछे आकर तुझको मारकर नीचे गिराकर और मांस को लेकर चला गया ॥ ३० ॥ त्रिशूलधारी देवदेव शिवजी की दक्षिण परिक्रमा से व उनके आगे मरने से तुम इस जन्म में राजा की कन्या हुई हो ॥ ३१ ॥ रानी बोली कि मैंने संपूर्णता से पहले के जन्म के चरित्र को सुना और मेरे हृदय में बड़ा आश्चर्य व भक्ति उत्पन्न हुई ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त हे महामते, त्रिकालज्ञ ! अन्य चरित्र को सुना चाहती हूं कि इस

शरीर को छोड़कर हम तुम दोनों फिर किस गति को प्राप्त होवैंगी ॥ ३३ ॥ राजा बोले कि इसके उपरान्त दूसरे जन्ममें मैं सैंधव राजा उत्पन्न हूंगा ॥ ३४ ॥ और सृंजयदेश के राजा की कन्या तुम मुझही को प्राप्त होगी और तीसरे जन्म में मैं सौराष्ट्रदेश में राजा हूंगा ॥ ३५ ॥ और कलिंगदेश के राजा की कन्या तुम मेरी स्त्री होगी और चौथे जन्म में मैं गाधारदेश का राजा हूगा ॥ ३६ ॥ व उसमें मगधदेश के राजा की कन्या तुम मेरी स्त्री होगी और पाचवें जन्म के मध्य में मैं अवन्तीदेश का राजा हूंगा ॥ ३७ ॥ और दाशार्हदेश के राजा की कन्या तुम्हीं मेरी स्त्री होगी व इससे छठें जन्म में मैं आनर्तदेश में राजा हूगा ॥ ३८ ॥

पुनः ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ अतो भवे जनिष्येहं द्वितीये सैन्धवो नृपः ॥ ३४ ॥ सृञ्जयेशसुता त्वं हि मामेव प्रतिपत्स्य से ॥ तृतीये तु भवे राजा सौराष्ट्रे भविताऽस्म्यहम् ॥ ३५ ॥ कलिङ्गराजतनया त्वं मे पत्नी भविष्यसि ॥ चतुर्थे तु भवि ष्यामि भवे गान्धारभूमिपः ॥ ३६ ॥ मागधी राजतनया तत्र त्वं मम गेहिनी ॥ पञ्चमेऽवन्तिनाथोऽहं भविष्यामि भवान्तरे ॥ ३७ ॥ दाशार्हराजतनया त्वमेव मम वल्लभा ॥ अस्माज्जन्मनि षष्ठेऽहमानर्ते भविता नृपः ॥ ३८ ॥ य यातिवंशजा कन्या भूत्वा मामेव यास्यसि ॥ पाण्ड्यराजकुमारोऽहं सप्तमे भविता भवे ॥ ३९ ॥ तत्र मत्सदृशो नान्यो रूपौदार्यगुणादिभिः ॥ सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो बलवान्दृढविक्रमः ॥ ४० ॥ सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वलोकमनो रमः ॥ पद्मवर्ण इति ख्यातः पद्ममित्रसमद्युतिः ॥ ४१ ॥ भविता त्वं च वैदर्भी रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ नाम्ना वसुमती ख्याता रूपावयवशोभिनी ॥ ४२ ॥ सर्वराजकुमाराणां मनोनयननन्दिनी ॥ सा त्वं स्वयंवरे सर्वान्विहाय नृप

और ययाति के वंश मे उत्पन्न कन्या होकर तुम मुझही को प्राप्त होगी व सातवें जन्ममें मैं पाण्ड्य देश के राजा का पुत्र हूंगा ॥ ३९ ॥ और उस जन्म में रूप व उदारतादिक गुणों से अन्य मेरे बराबर न होगा और सब शास्त्रार्थों को यथार्थ जाननेवाला तथा बलवान् व दृढ़ पराक्रमी हूंगा ॥ ४० ॥ और सब लक्षणों से संयुत व सब लोकों में सुन्दर पद्मवर्ण ऐसा प्रसिद्ध मैं सूर्य के समान कान्तिमान् हूंगा ॥ ४१ ॥ और पृथ्वी में सब से बढ़कर रूपवती तुम विदर्भदेश की कन्या वसुमती नामक प्रसिद्ध होकर रूपवान् अगों से शोभित होगी ॥ ४२ ॥ और सब राजपुत्रों के मन व नेत्रों को आनन्द बढ़ानेवाली वही तुम स्वयंवर में सब

राजपुत्रों को छोडकर ॥ ४३ ॥ मुझहीको वर पावोगी जैसे कि दमयन्ती ने नल को पाया है सो मैं सब राजाओं को जीतकर व उत्तमवर्णवाली तुमको पाकर ॥ ४४ ॥ अपनी राज्य में स्थित मैं बहुत वर्षसमूहों तक समस्त सुखों को भोगूंगा और अश्वमेधादिक अनेक प्रकारके उत्तम यज्ञों से पूजकर ॥ ४५ ॥ और पितरों, देवताओं व ऋषियोंको तर्पण कर तथा दानों से उत्तम ब्राह्मणों को तृप्त कर लोकों का कल्याण करनेवाले देवदेवेश शिवजी को पूजकर ॥ ४६ ॥ पुत्रके ऊपर राज्य का भार धरकर तपस्या के लिये वन को जाऊंगा वहां मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्यजी से ब्रह्मज्ञान को पाकर ॥ ४७ ॥ तुम समेत शिवजी के परमपद को

नन्दनान् ॥ ४३ ॥ वरं प्राप्स्यसि मामेव दमयन्तीव नैषधम् ॥ सोहं जित्वा नृपान्सर्वान्प्राप्य त्वां वरवर्णिनीम् ॥ ४४ ॥ स्वराष्ट्रस्थोऽखिलान्भोगान्भोक्ष्ये वर्षगणान्बहून् ॥ इष्ट्वा च विविधैर्यज्ञैर्वाजिमेधादिभिःशुभैः ॥ ४५ ॥ सन्तर्प्य पितृदेवर्षीन्दानैश्च द्विजसत्तमान् ॥ संपूज्य देवदेवेशं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥ ४६ ॥ पुत्रे राज्यधुरं न्यस्य गन्तास्मि तपसे वनम् ॥ तत्रागस्त्यान्मुनिवराद्ब्रह्मज्ञानमवाप्य च ॥ ४७ ॥ त्वया सह गमिष्यामि शिवस्य परमं पदम् ॥ चतुर्दश्यां चतुर्दश्यामेवं संपूज्य शङ्करम् ॥ ४८ ॥ सप्तजन्मसु राजत्वं भविष्यति वरानने ॥ इत्येतत्सुकृतं लब्धं पूजादर्शनमात्रतः ॥ क्व सारमेयो दुष्टात्मा केदृशी बत सद्गतिः ॥ ४९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ता निजनाथेन सा राज्ञी शुभलक्षणा ॥ ५० ॥ परं विस्मयमापन्ना पूजयामास तं मुदा ॥ सोऽपि राजा तया सार्द्धं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ ५१ ॥ जगाम सप्तजन्मान्ते शम्भोस्तत्परमं पदम् ॥ य एतच्छिवपूजाया माहात्म्यं परमाद्भुतम् ॥ शृणुयात्कीर्तये

प्राप्त हूंगा इस प्रकार चौदसि चौदसि में शंकरजी को पूजकर ॥ ४८ ॥ हे वरानने ! सात जन्मों में नृपता होगी यह पुण्य पूजाके देखनेही से मिला है क्योंकि कहां दुष्टात्मा कुत्ता और कहा ऐसी उत्तम गति ॥ ४९ ॥ सूतजी बोले कि अपने पति से ऐसा कही हुई उस उत्तम लक्षणोंवाली रानी ने ॥ ५० ॥ बडे आश्चर्य को प्राप्त होकर उसका हर्ष से पूजन किया और वह राजा भी उसके साथ इच्छा के अनुसार सुखों को भोग कर ॥ ५१ ॥ सात जन्मों के अन्त में शिवजीके उस

परमपद को प्राप्त हुआ जो मनुष्य इस शिवपूजन के बड़े अद्भुत माहात्म्य को सुनता या कहता है वह परमपद को प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचिताया भाषाटीकाया चतुर्दशीमाहात्म्यवर्णननाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥
दो० । चन्द्रसेन अरु गोपसुत पायो शिवपद दोउ । यहि पंचम अध्याय में कहत चरित सब सोउ ॥ सूतजी बोले कि शिव गुरु हैं व शिव देवता हैं और शिवजी प्राणियों के बन्धु हैं व शिव आत्मा हैं तथा शिव जीव हैं और शिवजी से अन्य कुछ नहीं है ॥ १ ॥ व शिवजी को उद्देश कर जो कुछ दान, जप या

द्वापि स गच्छेत्परमं पदम् ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे चतुर्दशीमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ शिवो गुरुः शिवो देवः शिवो बन्धुः शरीरिणाम् ॥ शिव आत्मा शिवो जीवः शिवादन्यन्न किञ्चन ॥ १ ॥ शिवमुद्दिश्य यत्किंचिद्दत्तं जप्तं हुतं कृतम् ॥ तदनन्तफलं प्रोक्तं सर्वागमविनिश्चितम् ॥ २ ॥ भक्त्या निवेदितं शम्भोः पत्रं पुष्पं फलं जलम् ॥ अल्पादल्पतरं वापि तदानन्त्याय कल्पते ॥ ३ ॥ विहाय सकलान्धर्मान्सकलागमनिश्चितान् ॥ शिवमेकं भजेद्यस्तु मुच्यते सर्वबन्धनात् ॥ ४ ॥ या प्रीतिरात्मनः पुत्रे या कलत्रे धनेऽपि सा ॥ कृता चेच्छिवपूजायां त्रायतीति किमद्भुतम् ॥ ५ ॥ तस्मात्केचिन्महात्मानः सकलान्विषयासवान् ॥ त्यजन्ति शिवपूजार्थे स्वदेहमपि दुस्त्यजम् ॥ ६ ॥ सा जिह्वा या शिवं स्तौति तन्मनो ध्यायते शिवम् ॥ तौ कर्णौ तत्कथा

हवन किया जाता है वह अमित फलवाला कहा गया है यह सब शास्त्रों में निश्चित है ॥ २ ॥ भक्ति से शिवजी को दिया हुआ पत्र, पुष्प, फल या जल थोड़ा से भी थोड़ा वह अमित होने के लिये समर्थ होता है ॥ ३ ॥ और सब शास्त्रों में निश्चय किये हुए समस्त धर्मों को छोड़कर जो एक शिवजी को भजता है वह सब बन्धनसे छूट जाता है ॥ ४ ॥ और जो प्रीति अपने पुत्र, स्त्री या धन में कीजाती है वह यदि शिवपूजन में कीजावै तो रक्षा करती है यह क्या आश्चर्य है ॥ ५ ॥ इस कारण शिवपूजा के लिये कोई महात्मा लोग सब विषयरूपी मद्यों को व अपने दुस्त्यज शरीर को भी छोड़ देते हैं ॥ ६ ॥ जो शिवजी

की स्तुति करै वह जिह्वाहै और जो शिवजीको ध्यान करै वह मन है व जो उनकी कथा के लोभी हैं वे कान हैं और जो उन शिवजी की पूजा करते हैं वे हाथ हैं ॥ ७ ॥ और जो शिवजी का पूजन देखते हैं वे नेत्र हैं और जिसने शिवजी को प्रणाम किया वह शिर है व भक्ति से जो सदैव शिवक्षेत्र को जाते हैं वे पाँव हैं ॥ ८ ॥ और जिसकी सब इन्द्रियां शिवजीके कर्मों में वर्तमान होतीहैं वह सुख व मुक्ति को पाता है ॥ ९ ॥ व शिवजी की भक्तिसे संयुत जो चाण्डाल या पुल्कस भी होवै या जो स्त्री, पुरुष और नपुंसक होवै वह उसी क्षण संसार से छूट जाता है ॥ १० ॥ कुल से क्या है व आचारों से क्या है और शील या गुण से भी

लोलौ तौ हस्तौ तस्य पूजकौ ॥ ७ ॥ ते नेत्रे पश्यतः पूजां तच्छिरः प्रणतं शिवे ॥ तौ पादौ यौ शिवक्षेत्रं भक्त्या पर्यटतः सदा ॥ ८ ॥ यस्येन्द्रियाणि सर्वाणि वर्त्तन्ते शिवकर्मसु ॥ स निस्तरति संसारं भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥ ९ ॥ शिवभक्तियुतो मर्त्यश्चाण्डालः पुल्कसोपि च ॥ नारी नरो वा षण्ढो वा सद्यो मुच्येत संसृतेः ॥ १० ॥ किं कुलेन किमाचारैः किं शीलेन गुणेन वा ॥ भक्तिलेशयुतः शम्भोः स वन्द्यः सर्वदेहिनाम् ॥ ११ ॥ उज्जयिन्यामभूद्राजा चन्द्रसेनसमाह्वयः ॥ जातो मानवरूपेण द्वितीय इव वासवः ॥ १२ ॥ तस्मिन्पुरे महाकालं वसन्तं परमेश्वरम् ॥ संपूजयत्यसौ भक्त्या चन्द्रसेनो नृपोत्तमः ॥ १३ ॥ तस्याभवत्सखा राज्ञः शिवपारिषदाग्रणीः ॥ मणिभद्रो जिताभद्रः सर्वलोकनमस्कृतः ॥ १४ ॥ तस्यैकदा महीभर्त्तुः प्रसन्नः शङ्करानुगः ॥ चिन्तामणिं ददौ दिव्यं मणिभद्रो महामतिः ॥ १५ ॥ स मणिः कौस्तुभ इव द्योतमानोर्कसन्निभः ॥ दृष्टः श्रुतो वा ध्यातो वा नृणां यच्छति

क्या है जो शिवजी की भक्ति के कुछ अंश से भी संयुत होता है वह सब प्राणियों के प्रणाम करने योग्य है ॥ ११ ॥ उज्जयिनी पुरी में चन्द्रसेन नामक राजा हुआ है वह दूसरे इन्द्र की नाईं मनुष्यरूप से पैदा हुआ था ॥ १२ ॥ उस नगर में बसते हुए महाकाल नामक शिवजी को यह चन्द्रसेन नामक उत्तम राजा भक्ति से पूजता था ॥ १३ ॥ और अमंगलों को जीतनेवाला तथा सब लोगों से प्रणाम किया हुआ व शिवजी के पार्षदों में श्रेष्ठ मणिभद्र नामक उस राजा का मित्र हुआ है ॥ १४ ॥ उस राजा के ऊपर प्रसन्न होकर महाबुद्धिमान् मणिभद्र नामक शिवजी के पार्षदने एक समय दिव्य चिन्तामणिको दिया ॥ १५ ॥

देखी, सुनी व ध्यान कीहुई वह सूर्य के समान प्रकाशमान मणि कौस्तुभ की नाई मनुष्यों के मनोरथको देतीहै ॥ १६ ॥ और उसकी कान्ति के लेशमात्र से छुवा हुआ कांस्य, ताम्र, लोह, राँग, पत्थर आदिक या और वस्तु उसी क्षण सुवर्ण होजाती है ॥ १७ ॥ उस चिन्तामणि को गले में पहने हुए राजासनपै बैठा हुआ वह आपही राजा देवताओं के मध्यमें सूर्यनारायण की नाई शोभित हुआ ॥ १८ ॥ सदैव चिन्तामणिकण्ठवाले उस उत्तम नृपति को सुनकर बढ़ी हुई ईर्षावाले सब राजा लोगों के हृदय क्षोभित हुए ॥ १९ ॥ और भाग्यसे मिली हुई मणि को न जानते हुए कोई ईर्षावान् राजा लोगों ने स्नेह से मांगा व कितेक दुर्मद

चिन्तितम् ॥ १६ ॥ तस्य कान्तिलवस्पृष्टं कांस्यं ताम्रमयस्त्रपु ॥ पाषाणादिकमन्यद्वा सद्यो भवति काञ्चनम् ॥ १७ ॥ स तं चिन्तामणिं कण्ठे बिभ्रद्राजासनं गतः ॥ रराज राजा देवानां मध्ये भानुरिव स्वयम् ॥ १८ ॥ सदा चिन्तामणि ग्रीवं तं श्रुत्वा राजसत्तमम् ॥ प्रवृद्धतर्षा राजानः सर्वे क्षुब्धहृदोऽभवन् ॥ १९ ॥ स्नेहात्केचिदयाचन्त धाष्ट्यात्केचन दुर्मदाः ॥ दैवलब्धमजानन्तो मणिं मत्सरिणो नृपाः ॥ २० ॥ सर्वेषां भूभृतां याञ्चा यदा व्यर्थीकृतामुना ॥ राजानः सर्वदेशानां संरम्भं चक्रिरे तदा ॥ २१ ॥ सौराष्ट्राः कैकयाः शाल्वाः कलिङ्गशकमद्रकाः ॥ पाञ्चालावन्ति सौवीरा मागधा मत्स्यसृञ्जयाः ॥ २२ ॥ एते चान्ये च राजानः सहाश्वरथकुञ्जराः ॥ चन्द्रसेनं मृधे जेतुमुद्यमं चक्रुरोजसा ॥ २३ ॥ ते तु सर्वे सुसंरब्धाः कम्पयन्तो वसुन्धराम् ॥ उज्जयिन्याश्चतुर्द्वारं रुरुधुर्बहुसैनिकाः ॥ २४ ॥ संरुध्यमानां स्वपुरीं दृष्ट्वा राजभिरुद्धतैः ॥ चन्द्रसेनो महाकालं तमेव शरणं ययौ ॥ २५ ॥ निर्विकल्पो निराहारः

राजाओं ने ढिठाई से मांगा ॥ २० ॥ जब इस राजा ने सब राजाओं की याचना को व्यर्थ करदिया तब सब देशों के राजाओं ने क्रोध किया ॥ २१ ॥ सौराष्ट्र, केकय, शाल्व, कालिंग, शक, मद्रक, पांचाल, उज्जैन, सौवीर, मागध, मत्स्य व सृंजय देशवाले ॥ २२ ॥ घोड़ा, रथ व हाथियों समेत इन व अन्य राजा लोगों ने पराक्रम से चन्द्रसेन राजा को युद्ध में जीतने के लिये उद्योग किया ॥ २३ ॥ व पृथ्वी को कँपाते हुए बहुत सेनावाले उन सब क्रोधित राजाओं ने उज्जयिनी के चारों द्वारों को घेर लिया ॥ २४ ॥ और गर्वित राजा लोगों से घेरी हुई अपनी पुरी को देखकर चन्द्रसेन राजा उन्हीं महाकालजी की शरण में गया ॥ २५ ॥

भेदरहित व निराहार तथा दृढ़ निश्चयवाले उस अनन्य (एकाग्र) बुद्धि राजा ने दिन रात शिवजी को पूजन किया ॥ २६ ॥ इसी समय में उस नगर में रहनेवाली पतिरहित व एक पुत्रसे संयुत कोई बुड्ढी गोपी वहीं बैठी थी ॥ २७॥ और पांच वर्ष के पुत्र को लिये उस विधवा गोपी ने शिवजी की कीहुई पूजा को देखा ॥ २८ ॥ और शिवजी की पूजा के प्रभाव व सब आश्चर्य को देखकर वह गोपी प्रणाम कर फिर अपने स्थान को प्राप्त हुई ॥ २९ ॥ इस सब चरित्र को संपूर्णता से देखकर उस गोपी के पुत्रने कौतुक से वैराग्य को देनेवाली शिवपूजा को किया ॥ ३० ॥ कि शून्य उस उत्तम निवासस्थान में सुन्दर पत्थर को

स राजा दृढनिश्चयः ॥ अर्चयामास गौरीशं दिवा नक्तमनन्यधीः ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे गोपी काचित्तत्पुरवासिनी ॥ एकपुत्रा भर्तृहीना तत्रैवासीच्चिरंतना ॥ २७॥ सा पञ्चहायनं बालं वहन्ती गतभर्तृका ॥ राज्ञा कृतां महापूजां ददर्श गिरिजापतेः ॥ २८ ॥ सा दृष्ट्वा सर्वमाश्चर्यं शिवपूजामहोदयम् ॥ प्रणिपत्य स्वशिबिरं पुनरेवाभ्यपद्यत ॥ २९ ॥ एतत्सर्वमशेषेण स दृष्ट्वा बल्लवीसुतः ॥ कुतूहलेन विदधे शिवपूजां विरक्तिदाम् ॥ ३० ॥ आनीय हृद्यं पाषाणं शून्ये तु शिबिरोत्तमे ॥ नातिदूरे स्वशिबिराच्छिवलिङ्गमकल्पयत् ॥ ३१ ॥ यानि कानि च पुष्पाणि हस्तलभ्यानि चात्मनः ॥ आनीय स्नाप्य तल्लिङ्गं पूजयामास भक्तितः ॥ ३२ ॥ गन्धालंकारवासांसि धूपदीपाक्षतादिकम् ॥ विधाय कृत्रिमैर्दिव्यैर्नैवेद्यं चाप्यकल्पयत् ॥ ३३ ॥ भूयो भूयः समभ्यर्च्य पत्रैः पुष्पैर्मनोरमैः ॥ नृत्यं च विविधं कृत्वा प्रणनाम पुनःपुनः ॥ ३४॥ एवं पूजां प्रकुर्वाणं शिवस्यानन्यमानसम् ॥ सा पुत्रं प्रणयाद्गोपी भोजनाय समाह्वय

लेकर अपने टिकाश्रय से थोडी दूर पै शिवजी का लिङ्ग कल्पित किया ॥ ३१ ॥ और जो कोई पुष्प अपने हाथ से मिलने योग्य थे उनको लाकर भक्ति से उस लिङ्ग को नहवाकर पूजन किया ॥ ३२ ॥ और चन्दन, अलंकार, वसन, धूप, दीप व अक्षतादिक चढ़ाकर बनाई हुई दिव्य वस्तुवों से नैवेद्य लगाया ॥ ३३ ॥ और बारबार सुन्दर पत्रों व पुष्पों से पूजकर अनेक भांति का नृत्य कर बारबार प्रणाम किया ॥ ३४ ॥ इस प्रकार शिवजी का पूजन करते हुए उस एकाग्रमन-

वाले पुत्रको गोपी ने भोजन के लिये स्नेह से बुलाया ॥ ३५ ॥ व बहुत बार माता से बुलाये हुए व पूजा में लगे मनवाले उस बालक ने भी भोजन की इच्छा न किया तब माता आपही गई ॥ ३६ ॥ और आँखों को मूदे शिवजीके आगे बैठे हुए उस पुत्र को देखकर हाथ पकड़कर खींचा व क्रोधसे मारा ॥ ३७ ॥ जब खींचा व मारा हुआ भी वह अपना पुत्र नहीं आया तब उस गोपी ने लिंग को दूर फेंककर उस पूजा को नाश करदिया ॥ ३८ ॥ व हाय हाय ऐसा रोते हुए उस अपने पुत्र को घुड़क कर उस समय क्रोध समेत गोपी फिर अपने घरमें पैठ गई ॥ ३९ ॥ त्रिशूलधारी शिवजी का पूजन माता से नष्ट किया हुआ देख

त् ॥ ३५ ॥ मात्राहूतोपि बहुशः स पूजासक्तमानसः ॥ बालोपि भोजनं नैच्छत्तदा माता स्वयं ययौ ॥ ३६ ॥ तं विलोक्य शिवस्याग्रे निषण्णं मीलितेक्षणम् ॥ चकर्ष पाणिं संगृह्य कोपेन समताडयत् ॥ ३७ ॥ आकृष्टस्ताडितो वापि नागच्छ त्स्वसुतो यदा ॥ तां पूजां नाशयामास क्षिप्त्वा लिङ्गं विदूरतः ॥ ३८ ॥ हाहेति रुदमानं तं निर्भर्त्स्य स्वसुतं तदा ॥ पुनर्विवेश स्वगृहं गोपी रोषसमन्विता ॥ ३९ ॥ मात्रा विनाशितां पूजां दृष्ट्वा देवस्य शूलिनः ॥ देवदेवेति चुक्रो श निपपात स बालकः ॥ ४० ॥ प्रणष्टसंज्ञः सहसा बाष्पपूरपरिप्लुतः ॥ लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन चक्षुषी उदमीलयत् ॥ ४१ ॥ ततो मणिस्तम्भविराजमानं हिरण्मयद्वारकपाटतोरणम् ॥ महार्हनीलामलवज्रवेदिकं तदेव जातं शिबिरं शिवालयम् ॥ ४२ ॥ सन्तप्तहेमकलशैर्बहुभिर्विचित्रैः प्रोद्भासितस्फटिकसौधतलाभिरामम् ॥ रम्यं च तच्छिव पुरं वरपीठम ध्ये लिङ्गं च रत्नसहितं स ददर्श बालः ॥ ४३ ॥ स दृष्ट्वा सहसोत्थाय भीतविस्मितमानसः ॥ निमग्न इव

कर वह बालक हे देव ! हे देव ! ऐसा कह रोनेलगा व गिर पड़ा ॥ ४० ॥ और आँसुवों के प्रवाह से संयुत वह यकायक मूर्च्छित होगया व थोड़ी देरमें चैतन्यता को पाकर उसने नेत्रों को खोला ॥ ४१ ॥ तदनन्तर वही निवासस्थान मणियों के खभों से शोभित तथा सुवर्णमय द्वार, किवाड़ व बाहरी द्वारवाला और बड़े मोलवाली नील मणि व निर्मल हीरों की वेदीवाला शिवालय होगया ॥ ४२ ॥ और तचे हुए सुवर्ण के बहुत विचित्र घटों से चमकीले स्फटिक राजमन्दिरों की नीचेवाली भूमि से सुन्दर उस शिवनगर को उस बालक ने देखा और उत्तम पीठ के मध्य में रत्नों समेत लिंग को देखा ॥ ४३ ॥ और देखकर वह यकायक

उठकर डर गया व उसका मन आश्चर्य में प्राप्त हुआ और हर्षसे वह बड़े भारी आनन्द के समुद्र में मग्नसा होगया ॥ ४४ ॥ और शिवपूजन का माहात्म्य जानकर उसके प्रभाव से उस बालक ने अपनी माता के पाप की शान्ति के लिये भूमि में प्रणाम किया ॥ ४५ ॥ कि हे उमापते, देव ! मेरी माता के अपराध को क्षमा कीजिये व हे शंकर ! मूर्खिणी और तुमको न जानती हुई उसके ऊपर प्रसन्न हूजिये ॥ ४६ ॥ हे शिवजी ! यदि तुम्हारी भक्ति से उपजा हुआ जो कुछ पुण्य मुझमें होवै उससे भी मेरी माता तुम्हारी दया को प्राप्त होवै ॥ ४७ ॥ इस प्रकार शिवजी को प्रसन्न कराकर व बारबार प्रणाम कर सूर्यनारायण अस्त

सन्तोषात्परमानन्दसागरे ॥ ४४ ॥ विज्ञाय शिवपूजाया माहात्म्यं तत्प्रभावतः ॥ ननाम दण्डवद्भूमौ स्वमातुरघ शान्तये ॥ ४५ ॥ देव क्षमस्व दुरितं मम मातुरुमापते ॥ मूढायास्त्वामजानन्त्याः प्रसन्नो भव शङ्कर ॥ ४६ ॥ यद्यस्ति मयि यत्किंचित्पुण्यं त्वद्भक्तिसंभवम् ॥ तेनापि शिव मे माता तव कारुण्यमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥ इति प्रसाद्य गिरिशं भूयोभूयः प्रणम्य च ॥ सूर्ये चास्तं गते बालो निर्जगाम शिवालयात् ॥ ४८ ॥ अथापश्यत्स्वशिबिरं पुरन्दरपुरोपमम् ॥ सद्यो हिरण्मयीभूतं विचित्रविभवोज्ज्वलम् ॥ ४९ ॥ सोन्तः प्रविश्य भवनं मोदमानो निशामुखे ॥ महामणिगणाकीर्णं हेमराशिसमुज्ज्वलम् ॥ ५० ॥ तत्रापश्यत्स्वजननीं स्मरन्तीमकुतोभयाम् ॥ महार्हरत्नपर्यङ्के सितशय्यामधिश्रिताम् ॥ ५१ ॥ रत्नालङ्कारदीप्ताङ्गीं दिव्याम्बरविराजिनीम् ॥ दिव्यलक्षणसम्पन्नां साक्षात्सुरवधूमिव ॥ ५२ ॥ जवेनोत्थापयामास संभ्रमोत्फुल्ललोचनः ॥ अम्ब जागृहि भद्रं ते पश्येदं महदद्भु

होने पर बालक शिवालय से निकला ॥ ४८ ॥ इसके उपरान्त उसने अपने स्थान को उसी क्षण सुवर्णमय हुए व विचित्र ऐश्वर्यों से युक्त इन्द्र के नगर के समान देखा ॥ ४९ ॥ और सन्ध्यासमय में महामणिगणों से व्याप्त तथा सुवर्ण की राशियों से उज्ज्वल मन्दिर के भीतर पैठकर वह प्रसन्न हुआ ॥ ५० ॥ और उस मन्दिर में उसने बड़े मोलवाले रत्नों के पलँग पै श्वेत शय्या पै बैठी सब कहीं से निडर व अपना को याद करती हुई अपनी माताको देखा ॥ ५१ ॥ व रत्नभूषणों से प्रकाशित अंगोंवाली तथा दिव्यवस्त्रों से भूषित और दिव्यलक्षणों से संयुत साक्षात् इन्द्राणी की नाईं उस माता को ॥ ५२ ॥ संभ्रम से प्रफुल्लित

लोचनोंवाले उस बालक ने वेग से उठाया कि हे अम्ब! जागिये तुम्हारा कल्याण होवै इस बड़े आश्चर्य को देखिये ॥ ५३ ॥ अपने महात्मा पुत्र से इस प्रकार समझाई हुई वह मुकुट से उज्ज्वल अपनी माता गोपी विस्मयको प्राप्त हुई ॥ ५४ ॥ व शीघ्रता समेत उठकर उसने उस सबको देखा और अपूर्व की नाईं अपनाको व अपूर्वसा अपने पुत्र को देखा ॥ ५५ ॥ और अपने मन्दिर को पहले के समान न देखकर वह सुखसे विह्वल हुई और पुत्र के मुख से शिवजी की सब प्रसन्नता को सुनकर ॥ ५६ ॥ राजा से कहा जो कि सदैव शिवजी को भजता था समाप्त नियमवाले उस राजाने रातमें यकायक आकर ॥ ५७ ॥ शिवजी की प्रसन्नता से

तम् ॥ ५३ ॥ इति प्रबोधिता गोपी स्वपुत्रेण महात्मना ॥ ततोऽपश्यत्स्वजननी स्मयन्ती मुकुटोज्ज्वला ॥ ५४ ॥ ससंभ्रमं समुत्थाय तत्सर्वं प्रत्यवैक्षत ॥ अपूर्वमिव चात्मानमपूर्वमिव बालकम् ॥ ५५ ॥ अपूर्वं च स्वसदनं दृष्ट्वासीत्सुखविह्वला ॥ श्रुत्वा पुत्रमुखात्सर्वं प्रसादं गिरिजापतेः ॥ ५६ ॥ राज्ञे विज्ञापयामास यो भजत्यनिशं शिवम् ॥ स राजा सहसागत्य समाप्तनियमो निशि ॥ ५७ ॥ ददर्श गोपिकासूनोः प्रभावं शिवतोषजम् ॥ हिरण्मयं शिवस्थानं लिङ्गं मणिमयं तथा ॥ ५८ ॥ गोपवध्वाश्च सदनं माणिक्यवरकोज्ज्वलम् ॥ दृष्ट्वा महीपतिः सर्वं सामात्यः सपुरोहितः ॥ ५९ ॥ मुहूर्तं विस्मितधृतिः परमानन्दनिर्भरः ॥ प्रेम्णा बाष्पजलं मुञ्चन्परिरेभे तमर्भकम् ॥ ६० ॥ एवमत्यद्भुताकाराच्छिवमाहात्म्यकीर्त्तनात् ॥ पौराणां संभ्रमाच्चैव सा रात्रिः क्षणतामगात् ॥ ६१ ॥ अथ प्रभाते युद्धाय

उपजे हुए गोपीपुत्र के प्रभाव को देखा और सुवर्णमय शिवजी का स्थान व मणिमय लिंग देखा ॥ ५८ ॥ व उत्तम माणिक्य से उज्ज्वल गोप की स्त्री के सब मन्दिर को देखकर मंत्रियों समेत व पुरोहित समेत राजा ॥ ५९ ॥ थोड़ी देर तक धैर्यरहित होकर बड़े आनन्द में मग्न होगया व प्रेम से आँसुवों के जल को छोड़ते हुए उस राजा ने उस बालक को लिपटा लिया ॥ ६० ॥ इस प्रकार अद्भुत आकारवाले शिवमाहात्म्य के कीर्तन से व संभ्रम से पुरवासियों को वह रात क्षणभर की सी होगई ॥ ६१ ॥ इसके उपरान्त प्रातःकाल जो राजा लोग पुरको घेरकर टिके थे उन्होंने चारों गुप्तदूतों के मुखों से बहुत आश्चर्यवाले चरित्र को

सुना ॥ ६२ ॥ और सहसा वैर को छोड़कर बहुतही चाकित उन राजा लोग ोंने शस्त्रों को धरकर चन्द्रसेन के अनुसार प्रसन्न होकर नगर में प्रवेश किया ॥ ६३ ॥ उस सुन्दरी पुरी में पैठकर व महाकालजी को प्रणाम कर सब राजा लोग उस गोपी के घर को गये ॥ ६४ ॥ और वहा चन्द्रसेन राजाने आगे आकर उनका पूजन किया व बड़े क़ीमती आसनों पै बैठे हुए वे बहुत विस्मित होकर प्रीति से आनन्दित हुए ॥ ६५ ॥ और गोपपुत्रकी प्रसन्नता के लिये प्रकट हुए शिवालय व बड़े भारी लिंग को देखकर उन्होंने शिवजी में उत्तम बुद्धि किया ॥ ६६ ॥ व प्रसन्न होकर उन सब राजाओं ने उस गोपपुत्रके लिये वसन, सुवर्ण, रत्न, गऊ व भैंसी

पुरं संरुध्य संस्थिताः ॥ राजानश्चारवक्रेभ्यः शुश्रुवुः परमाद्भुतम् ॥ ६२ ॥ ते त्यक्तवैराः सहसा राजानश्चकिता भृशम् ॥ न्यस्तशस्त्रा निविविशुश्चन्द्रसेनानुमोदिताः ॥ ६३ ॥ तां प्रविश्य पुरीं रम्यां महाकालं प्रणम्य च ॥ तद्गोपवनितागेहमाजग्मुः सर्वभूभृतः ॥ ६४ ॥ ते तत्र चन्द्रसेनेन प्रत्युद्गम्याभिपूजिताः ॥ महार्हविष्टरगताः प्रीत्यानन्दन्सुविस्मिताः ॥ ६५ ॥ गोपसूनोः प्रसादाय प्रादुर्भूतं शिवालयम् ॥ लिङ्गं च वीक्ष्य सुमहच्छिवे चक्रुः परां मतिम् ॥ ६६ ॥ तस्मै गोपकुमाराय प्रीतास्ते सर्वभूभुजः ॥ वासोहिरण्यरत्नानि गोमहिष्यादिकं धनम् ॥ ६७ ॥ गजानश्वान्रथान्रौक्माञ्छत्रयानपरिच्छदान् ॥ दासान्दासीरनेकाश्च ददुः शिवकृपार्थिनः ॥ ६८ ॥ ये ये सर्वेषु देशेषु गोपास्तिष्ठन्ति भूरिशः ॥ तेषां तमेव राजानं चक्रिरे सर्वपार्थिवाः ॥ ६९ ॥ अथास्मिन्नन्तरे सर्वैस्त्रिदशैरभिपूजितः ॥ प्रादुर्बभूव तेजस्वी हनूमान्वानरेश्वरः ॥ ७० ॥ तस्याभिगमनादेव राजानो जातसंभ्रमाः ॥ प्रत्युत्थाय नमश्चक्रुर्भक्तिनम्रा

आदिक धन को दिया ॥ ६७ ॥ व शिवजी की दया को चाहनेवाले उन राजाओं ने हाथी, घोड़ा व सुनहले रथ, छत्र, सवारी और सामान व अनेक दासों तथा दासियों को दिया ॥ ६८ ॥ और सब देशों में जो जो बहुत से गोप स्थित थे सब राजाओं ने उन गोपों का राजा उसी गोपपुत्र को किया ॥ ६९ ॥ इसके उपरान्त इसी अवसर में सब देवताओं से पूजित तेजस्वी हनुमान् कपीश्वरजी प्रकट हुए ॥ ७० ॥ और उनके आनेही से राजाओं के संभ्रम उत्पन्न हुआ व भक्ति से नम्र

देहवाले उन्होंने उठकर प्रणाम किया ॥ ७१ ॥ उनके मध्य में पूजित कपीश्वरजी बैठे व गोप के पुत्र को लिपटाकर और राजा को देखकर यह कहा ॥ ७२ ॥ कि हे राजाओ! व जो देहधारी हो वे सब सुनिये कि तुमलोगों का कल्याण होवै और शिवपूजन को छोड़कर प्राणियों की अन्य गति नहीं है ॥ ७३ ॥ आनन्द है कि इस गोपबालक ने शनिवार प्रदोष में बिन मंत्रसे भी शिवजी को पूजकर शिवको पायाहै ॥ ७४ ॥ और शनैश्चर के दिन यह प्रदोष सब प्राणियों को दुर्लभ है व उसमें भी कृष्णपक्ष आने पर बहुतही दुर्लभ है ॥ ७५ ॥ संसार में गोपों का यश बढ़ानेवाला यह बहुत पवित्र है और इसके वश में आठवा नन्दनामक गोप

त्ममूर्त्तयः ॥ ७१ ॥ तेषां मध्ये समासीनः पूजितः प्लवगेश्वरः ॥ गोपात्मजं समाश्लिष्य राज्ञो वीक्ष्येदमब्रवीत् ॥ ७२ ॥ सर्वे शृणुत भद्रं वो राजानो ये च देहिनः ॥ शिवपूजामृते नान्या गतिरस्ति शरीरिणाम् ॥ ७३ ॥ एष गोपसुतो दिष्ट्या प्रदोषे मन्दवासरे ॥ अमन्त्रेणापि संपूज्य शिवं शिवमवाप्तवान् ॥ ७४ ॥ मन्दवारे प्रदोषोऽयं दुर्लभः सर्वदेहिनाम् ॥ तत्रापि दुर्लभतरः कृष्णपक्षे समागते ॥ ७५ ॥ एष पुण्यतमो लोके गोपानां कीर्तिवर्धनः ॥ अस्य वंशेऽष्टमो भावी नन्दोनाम महायशाः ॥ प्राप्स्यते तस्य पुत्रत्वं कृष्णो नारायणः स्वयम् ॥ ७६ ॥ अद्यप्रभृति लोकेस्मिन्नेष गोपालनन्दनः ॥ नाम्ना श्रीकर इत्युच्चैर्लोके ख्यातिं गमिष्यति ॥ ७७ ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वाञ्जनीसूनुस्तस्मै गोपकसूनवे ॥ उपदिश्य शिवाचारं तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७८ ॥ ते च सर्वे महीपालाः संहृष्टाः प्रतिपूजिताः ॥ चन्द्रसेनं समामन्त्र्य प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥ ७९ ॥ श्रीकरोऽपि महातेजा उपदिष्टो हनूमता ॥ ब्राह्मणैः

बडा यशस्वी होगा उसकी पुत्रता को आपही नारायण कृष्णजी प्राप्त होवैंगे ॥ ७६ ॥ व आजसे लगाकर इस संसार में यह गोपबालक श्रीकर ऐसे ऊंचे नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ ७७ ॥ ऐसा कहकर अंजनीसुत हनुमान्जी उस गोपपुत्रके लिये शिवजी का आचार उपदेश कर वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ७८ ॥ और वे सब पूजित राजा लोग प्रसन्न होकर चन्द्रसेन से पूछकर जैसेही आये थे वैसे चले गये ॥ ७९ ॥ और हनुमान्जी से उपदेशित बडे तेजस्वी श्रीकर ने भी धर्म

को जाननेवाले ब्राह्मणोंके साथ शिवजीका पूजन किया ॥ ८० ॥ व काल से वह श्रीकर और चन्द्रसेन राजा भी दोनो शिवजीको भक्ति से आराधन कर परमपदको प्राप्त हुए ॥ ८१ ॥ यह यशकारक व बहुतही पवित्र तथा बहुत लक्ष्मी को बढ़ानेवाला चरित्र कहा गया जो कि पापराशियों का नाशक व शिवजी के चरणकमलों की भक्तिको बढ़ानेवाला है ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां गोपकुमारचरित्रवर्णनंनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥
दो० । जिमि प्रदोषमें पूजि शिव मिलत अहैं फल भूरि । सोइ छठें अध्याय में कह्यो चरित सुखमूरि ॥ ऋषि लोग बोले कि हे सूतजी ! आपने जो बड़ा भारी

सह धर्मज्ञैश्चक्रे शम्भोः समर्हणम् ॥ ८० ॥ कालेन श्रीकरः सोऽपि चन्द्रसेनश्च भूपतिः ॥ समाराध्य शिवं भक्त्या प्रापतुः परमं पदम् ॥ ८१ ॥ इदं रहस्यं परमं पवित्रं यशस्करं पुण्यमहर्द्धिवर्धनम् ॥ आख्यानमाख्यातमघौघनाशनं गौरीशपादाम्बुजभक्तिवर्धनम् ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे गोपकुमारचरितवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषय ऊचुः ॥ यदुक्तं भवता सूत महदाख्यानमद्भुतम् ॥ शम्भोर्माहात्म्यकथनमशेषाघहरं परम् ॥ १ ॥ भूयोपि श्रोतुमिच्छामस्तदेव सुसमाहिताः ॥ प्रदोषे भगवाञ्छम्भुः पूजितस्तु महात्मभिः ॥ २ ॥ संप्रयच्छति कां सिद्धिमेतन्नो ब्रूहि सुव्रत ॥ श्रुतमप्यसकृत्सूत भूयस्तृष्णा प्रवर्धते ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ साधु पृष्टं महाप्राज्ञा भवद्भिर्लोकविश्रुतैः ॥ अतोऽहं संप्रवक्ष्यामि शिवपूजाफलं महत् ॥ ४ ॥ त्रयोदश्यां तिथौ सायं प्रदोषः परिकी

अद्भुत चरित्र था उसको कहा और शिवजी के माहात्म्यका वर्णन समस्त पातकों का नाशक व उत्तमहै ॥ १ ॥ सावधान होकर हमलोग फिर भी उसीको सुना चाहते हैं कि प्रदोष में महात्माओं से पूजे हुए भगवान् शिवजी ॥ २ ॥ किस सिद्धि को देते हैं हे सुव्रत ! यह हमलोगों से कहिये हे सूतजी ! कईबार सुना भी गया है परन्तु फिर तृष्णा बढ़ती है ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि हे महाप्राज्ञो ! मनुष्यों में प्रसिद्ध आपलोगों ने बहुत अच्छा पूंछा इस कारण मैं शिवपूजन के बड़े भारी फल को कहूंगा ॥ ४ ॥ तेरसि तिथि में सन्ध्या का समय प्रदोष कहा गया है उसमें फल की इच्छावाले मनुष्यो को शिवदेवजी का पूजन करना चाहिये

अन्य देवता को न पूजना चाहिये ॥ ५ ॥ प्रदोष पूजन का माहात्म्य कहने के लिये कौन समर्थ है कि जिसमे सब भी देवता शिवजीके समीप स्थित होते हैं ॥ ६ ॥ व प्रदोष समय में देवताओं से स्तुति किये हुए गुणों के प्रभाववाले शिवदेवजी कैलास पर्वत पै चादी के स्थान में नृत्य करते हैं ॥ ७ ॥ इस कारण धर्म, अर्थ, काम व मोक्षके फल को चाहनेवाले मनुष्यों को निश्चय कर पूजन, जप, होम व उन शिवजी की कथा और उनके गुणों की स्तुति करना चाहिये ॥ ८ ॥ दरिद्रतारूपी तिमिर से अन्ध व संसार से डरे हुए और भवसागर में मग्न मनुष्यों के लिये यह पार को दिखलानेवाली नौका है ॥ ९ ॥ और दुःख,

र्त्तितः ॥ तत्र पूज्यो महादेवो नान्यो देवः फलार्थिभिः ॥ ५ ॥ प्रदोषपूजामाहात्म्यं को नु वर्णयितुं क्षमः ॥ यत्र सर्वेऽपि विबुधास्तिष्ठन्ति गिरिशान्तिके ॥ ६ ॥ प्रदोषसमये देवः कैलासे रजतालये ॥ करोति नृत्यं विबुधैरभिष्टुतगुणोदयः ॥ ७ ॥ अतः पूजा जपो होमस्तत्कथास्तद्गुणस्तवः ॥ कर्त्तव्यो नियतं मर्त्यैश्चतुर्वर्गफलार्थिभिः ॥ ८ ॥ दारिद्र्यतिमिरान्धानां मर्त्यानां भवभीरुणाम् ॥ भवसागरमग्नानां प्लवोऽयं पारदर्शनः ॥ ९ ॥ दुःखशोकभयार्त्तानां क्लेशनिर्वाणमिच्छताम् ॥ प्रदोषे पार्वतीशस्य पूजनं मङ्गलायनम् ॥ १० ॥ दुर्बुद्धिरपि नीचोऽपि मन्दभाग्यः शठोऽपि वा ॥ प्रदोषे पूज्य देवेशं विपद्भ्यः स प्रमुच्यते ॥ ११ ॥ शत्रुभिर्हन्यमानोऽपि दश्यमानोपि पन्नगैः ॥ शैलैराक्रम्यमाणोऽपि पतितोऽपि महाम्बुधौ ॥ १२ ॥ आविद्धकालदण्डोऽपि नानारोगहतोऽपि वा ॥ न विनश्यति मर्त्योऽसौ प्रदोषे गिरिशार्चनात् ॥ १३ ॥ दारिद्र्यं मरणं दुःखमृणभारं नगोपमम् ॥ सद्यो विधूय सम्पद्भिः

शोक व भयसे विकल तथा क्लेश का अन्त चाहनेवाले लोगों को प्रदोष में शिवजी का पूजन मगल का स्थान है ॥ १० ॥ जो दुर्बुद्धि, नीच, मन्दभाग्य या शठ भी होता है वह प्रदोष में देवेश शिवजी को पूजकर विपत्तियों से छूट जाता है ॥ ११ ॥ व शत्रुओं से मारा तथा सर्पों से काटा जाता हुआ भी और पर्वतों से दबाया व महासागर में गिरा हुआ भी ॥ १२ ॥ और कालदण्ड से मारा व अनेक भांति के रोगों से नाश किया हुआ भी यह मनुष्य प्रदोष मे शिवपूजन से नाश नहीं होता है ॥ १३ ॥ और शिवपूजन से मनुष्य दरिद्रता, मृत्यु व पर्वत के समान ऋण के भार को शीघ्रही नाश कर सपदाओं से पूजा जाता

है ॥ १४ ॥ इस विषयमें मैं बड़े पवित्र व प्राचीन इतिहासको कहता हूं कि जिसको सुनकर सब मनुष्य कृतार्थता को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥ विदर्भदेश में सत्यरथ नामक राजा हुआ है जो कि सब धर्मों में परायण, बुद्धिमान्, सुशील व सत्यप्रतिज्ञावान् था ॥ १६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! धर्म से पृथ्वीको पालते हुए उस महाबुद्धिमान् राजा का बहुतसा समय सुखसे व्यतीत होगया ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त गर्वित सेनावाले दुर्मर्षण आदिक शाल्वदेश के राजा लोग उस राजा के शत्रु हुए ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त किसी समय बहुत सेनावाले लोगों को तैयार कर जीत की इच्छावाले उन शाल्वदेश के राजाओं ने विदर्भनगरी को प्राप्त होकर घेर लिया ॥ १९ ॥

पूज्यते शिवपूजनात् ॥ १४ ॥ अत्र वक्ष्ये महापुण्यमितिहासं पुरातनम् ॥ यं श्रुत्वा मनुजाः सर्वे प्रयान्ति कृतकृत्यताम् ॥ १५ ॥ आसीद्विदर्भविषये नाम्ना सत्यरथो नृपः ॥ सर्वधर्मरतो धीरः सुशीलः सत्यसंगरः ॥ १६ ॥ तस्य पालयतो भूमिं धर्मेण मुनिपुङ्गवाः ॥ व्यतीयाय महान्कालः सुखेनैव महामतेः ॥ १७ ॥ अथ तस्य महीभर्तुर्बभूवुः शाल्वभूभुजः ॥ शत्रवश्चोद्धतबला दुर्मर्षणपुरोगमाः ॥ १८ ॥ कदाचिदथ ते शाल्वाः संनद्धबहुसैनिकाः ॥ विदर्भनगरीं प्राप्य रुरुधुर्विजिगीषवः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा निरुद्ध्यमानां तां विदर्भाधिपतिः पुरीम् ॥ योद्धुमभ्याययौ तूर्णं बलेन महता वृतः ॥ २० ॥ तस्य तैरभवद्युद्धं शाल्वैरपि बलोद्धतैः ॥ पाताले पन्नगेन्द्रस्य गन्धर्वैरिव दुर्मदैः ॥ २१ ॥ विदर्भनृपतिः सोऽथ कृत्वा युद्धं सुदारुणम् ॥ प्रणष्टोरुबलैः शाल्वैर्निहतो रणमूर्धनि ॥ २२ ॥ तस्मिन्महारथे वीरे निहते मन्त्रिभिः सह ॥ दुद्रुवुः समरे भग्ना हतशेषाश्च सैनिकाः ॥ २३ ॥ अथ युद्धेऽभिविरते नदत्सु रिपु

व उस पुरी को घेरी हुई देखकर बड़ी सेना से संयुत वह विदर्भदेश का राजा शीघ्रही युद्ध करने के लिये आया ॥ २० ॥ और बल से उग्र उन शाल्वदेश के राजाओं से उसका युद्ध हुआ जैसे कि पाताल में दुष्टमदवाले गंधर्वों से शेषजीका युद्ध हुआ है ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त वह विदर्भ देश का राजा बड़ा भयकर युद्ध करके समरमें नष्ट हुई बहुत सेनावाले शाल्वदेश के राजाओंसे मारा गया ॥ २२ ॥ और मंत्रियों समेत उस महारथी वीर के मरने पर समर में मारने से बचे हुए सेनावाले लोग भगगये ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त युद्ध बन्द होजाने पर जब शत्रुवों के मंत्री लोग युद्ध होती हुई नगरी में गर्जने लगे और कोलाहल शब्द

होने लगा ॥ २४ ॥ तब विदर्भदेश के राजा सत्यरथ की एक बड़े शोक से संयुत स्त्री यत्न से कहीं निकल गई ॥ २५ ॥ और रात्रि के समय में शोक से तची हुई वह गर्भिणी राजा की स्त्री यत्न से निकल गई व पश्चिम दिशा को चली गई ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त प्रातःकाल धीरे धीरे मार्ग से जाती हुई उस पतिव्रता स्त्री ने दूर मार्ग को नाँघकर निर्मल तड़ाग को देखा ॥ २७ ॥ वहां आकर बड़े ताप से सतत वह स्त्री तडाग के किनारे शोभित वृक्ष के नीचे बैठ गई ॥ २८ ॥ और भाग्य के वश से निर्जन उस वृक्ष की चट्टान में पतिव्रता रानी ने उत्तम गुणों से संयुत मुहूर्त में पुत्र को उत्पन्न किया ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त बहुत प्यास से

मन्त्रिषु ॥ नगर्यां युद्ध्यमानायां जाते कोलाहले रवे ॥ २४ ॥ तस्य सत्यरथस्यैका विदर्भाधिपतेः सती ॥ भूरि शोकसमाविष्टा कचिद्यत्नाद्विनिर्ययौ ॥ २५ ॥ सा निशासमये यत्नादन्तर्वत्नी नृपाङ्गना ॥ निर्गता शोकसन्तप्ता प्रतीचीं प्रययौ दिशम् ॥ २६ ॥ अथ प्रभाते मार्गेण गच्छन्ती शनकैः सती ॥ अतीत्य दूरमध्वानं ददर्श विमलं सरः ॥ २७ ॥ तत्रागत्य वरारोहा तप्ता तापेन भूयसा ॥ विलसन्तं सरस्तीरे छायावृक्षं समाश्रयत् ॥ २८ ॥ तत्र दैव वशाद्राज्ञी विजने तरुकुट्टिमे ॥ असूत तनयं साध्वी मुहूर्ते सद्गुणान्विते ॥ २९ ॥ अथ सा राजमहिषी पिपासाभिह ता भृशम् ॥ सरोऽवतीर्णा चार्वङ्गी ग्रस्ता ग्राहेण भूयसा ॥ ३० ॥ जातमात्रः कुमारोऽपि विनष्टपितृमातृकः ॥ रुरोदो च्चैः सरस्तीरे क्षुत्पिपासार्दितोऽबलः ॥ ३१ ॥ तस्मिन्नेवं क्रन्दमाने जातमात्रे कुमारके ॥ काचिदभ्याययौ शीघ्रं दिष्ट्या विप्रवराङ्गना ॥ ३२ ॥ साप्येकहायनं बालमुद्वहन्ती निजात्मजम् ॥ अधना भर्तृरहिता याचमाना गृहे गृहे ॥ ३३ ॥

विकल वह सुन्दर अंगोंवाली राजा की स्त्री तड़ाग में पैठी और बड़े भारी ग्राह ने उसको पकड लिया ॥ ३० ॥ व उसी क्षण पैदा हुआ वह माता पिता से रहित निर्बल बालक क्षुधा, प्यास से विकल होकर उच्चस्वर से रोने लगा ॥ ३१ ॥ उस पैदा हुए लडके के इस प्रकार रोने पर शीघ्रही कोई उत्तम स्त्री आगई ॥ ३२ ॥ और एक वर्ष के अपने पुत्र को लिये वह भी पतिरहित निर्धनी स्त्री घर घर में मांगती थी ॥ ३३ ॥ व याचना के मार्गवश में प्राप्त एक पुत्रवाली उस बन्धुरहित

उमा नामक ब्राह्मण की स्त्री ने राजा के पुत्र को देखा ॥ ३४ ॥ और गिरे हुए सूर्यबिम्ब की नाईं इस अनाथ रोते हुए राजकुमार को देखकर बहुत विचार किया ॥ ३५ ॥ कि इस समय मैंने यह बड़ा-आश्चर्य देखा कि बिन कटे नालवाला यह पुत्र है और इसकी माता कहा गई ॥ ३६ ॥ न पिता है न अन्य कोई है न बन्धुजन है और यह अनाथ बिचारा बालक केवल पृथ्वी मे सो रहा है ॥ ३७॥ यह चाण्डाल का पुत्र है अथवा शूद्र से उत्पन्न है या वैश्य से उपजा व ब्राह्मण से उपजा हुआ तथा राजा से उपजा हुआ बालक है यह कैसे जाना जासक्ता है ॥ ३८ ॥ इस पुत्रको उठाकर मैं निश्चय कर सगे पुत्रकी नाईं पालन करूंगी

एकात्मजा बन्धुहीना याच्ञामार्गवशं गता ॥ उमानाम द्विजसती ददर्श नृपनन्दनम् ॥ ३४ ॥ सा दृष्ट्वा राजतनयं सूर्यबिम्बमिव च्युतम् ॥ अनाथमेनं क्रन्दन्तं चिन्तयामास भूरिशः ॥ ३५ ॥ अहो सुमहदाश्चर्यमिदं दृष्टं मयाधुना ॥ अच्छिन्ननाभिसूत्रोऽयं शिशुर्माता क वा गता ॥ ३६ ॥ पिता नास्ति न चान्योस्ति नास्ति बन्धुजनोऽपि वा ॥ अनाथः कृपणो बालः शेते केवलभूतले ॥ ३७ ॥ एष चाण्डलजो वापि शूद्रजो वैश्यजोपि वा ॥ विप्रात्मजो वा नृपजो ज्ञायते कथमर्भकः ॥ ३८ ॥ शिशुमेनं समुद्धृत्य पुष्णाम्यौरसवद्ध्रुवम् ॥ किं त्वविज्ञातकुलजं नोत्सहे स्प्रष्टुमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ इति मीमांसमानायां तस्यां विप्रवरस्त्रियाम् ॥ ४० ॥ कश्चित्समाययौ भिक्षुः साक्षाद्देवः शिवः स्वयम् ॥ तामाह भिक्षुवर्योथ विप्रभामिनि मा खिदः ॥ ४१ ॥ रक्षैनं बालकं सुभ्रूर्विसृज्य हृदि संशयम् ॥ अनेन परमं श्रेयः प्राप्स्यसे ह्यचिरादिह ॥ ४२ ॥ एतावदुक्त्वा त्वरितो भिक्षुः कारुणिको ययौ ॥ अथ तस्मिन्

परन्तु न जाने हुए वंश में उत्पन्न इस पुत्र को नहीं छूसक्ती हूं ॥ ३९ ॥ इस प्रकार उस ब्राह्मण की उत्तम स्त्री के विचार करने पर ॥ ४० ॥ कोई भिक्षुक आया जो कि आपही शिवदेवजी थे इसके उपरान्त उस उत्तम भिक्षुक ने उस स्त्री से कहा कि हे द्विजभामिनि ! खेद मत करिये ॥ ४१ ॥ हृदय में सन्देह को छोडकर सुन्दर भौंहोंवाली तुम इस बालक की रक्षा करो इससे शीघ्रही तुम उत्तम कल्याण को पावोगी ॥ ४२ ॥ इतना कहकर शीघ्रता सयुत वह दयावान् भिक्षुक

चला गया इसके उपरान्त उस भिक्षुक के जाने पर ब्राह्मण की स्त्री ने विश्वास किया ॥ ४३ ॥ और वह उस बालक को लेकर अपने घर को चली गई और भिक्षुक के वचन से विश्वास किये उस स्त्री ने राजा के पुत्र को ॥ ४४ ॥ दया से अपने पुत्रके समान पोषण किया और उस स्त्री ने एकचक्र नामक सुन्दर नगर में स्थान किया ॥ ४५ ॥ अपने पुत्र व राजपुत्र को भिक्षान्न से बढ़ाया और ब्राह्मणी का पुत्र तथा वह राजा का पुत्र ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणों से संस्कार किये हुए व पूजित ये दोनों बढ़ते भये व समय में यज्ञोपवीत किये हुए दोनों बालक नियम में स्थित हुए ॥ ४७ ॥ और माता के साथ वहा प्रतिदिन वे भिक्षा के लिये

गते भिक्षौ विश्रब्धा विप्रभामिनी ॥ ४३ ॥ तमर्भकं समादाय निजमेव गृहं ययौ ॥ भिक्षुवाक्येन विश्रब्धा सा राज तनयं सती ॥ ४४ ॥ आत्मपुत्रेण सदृशं कृपया पर्यपोषयत् ॥ एकचक्राह्वये रम्ये ग्रामे कृतनिकेतना ॥ ४५ ॥ स्वपुत्रं राजपुत्रं च भिक्षान्नेन व्यवर्धयत् ॥ ब्राह्मणीतनयश्चैव स राजतनयस्तथा ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणैः कृतसंस्कारौ ववृधाते सुपूजितौ ॥ कृतोपनयनौ काले बालकौ नियमे स्थितौ ॥ ४७ ॥ भिक्षार्थं चेरतुस्तत्र मात्रा सह दिने दिने ॥ ताभ्यां कदाचिद्बालाभ्यां सा विप्रवनिता सह ॥ ४८ ॥ भैक्ष्यं चरन्ती दैवेन प्रविष्टा देवतालयम् ॥ तत्र वृद्धैः समाकीर्णे मुनिभिर्देवतालये ॥ ४९ ॥ तौ दृष्ट्वा बालकौ धीमाञ्छाण्डिल्यो मुनिरब्रवीत् ॥ अहो दैवबलं चित्रमहो कर्म दुरत्ययम् ॥ ५० ॥ एष बालोऽन्यजननीं श्रितो भैक्ष्येण जीवति ॥ इमामेव द्विजवधूं प्राप्य मातरमुत्तमाम् ॥ ५१ ॥ सहैव द्विजपुत्रेण द्विजभावं समाश्रितः ॥ इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं शाण्डिल्यस्य द्विजाङ्गना ॥ ५२ ॥ सा प्रणम्य सभा

जाते थे किसी समय उन बालकों समेत वह ब्राह्मण की स्त्री ॥ ४८ ॥ भिक्षा मांगती हुई दैवयोग से देवालय में पैठगई व वृद्ध मुनियों से परिपूर्ण उस देवालय में ॥ ४९ ॥ उन दोनों बालकों को देखकर बुद्धिमान् शाण्डिल्य मुनिने कहा कि अहो भाग्य का बल विचित्र है व कर्म उल्लंघन नहीं किया जासक्ता है ॥ ५० ॥ क्योंकि अन्य माता के आश्रित यह बालक भिक्षा से जीता है और इसी ब्राह्मण की स्त्री को उत्तम माता पाकर ॥ ५१ ॥ ब्राह्मणपुत्र के साथही ब्राह्मणता को प्राप्त है शाण्डिल्य मुनि के इस वचन को सुनकर विस्मय समेत उस ब्राह्मण की स्त्री ने सभा के मध्य में प्रणाम करके पूंछा कि हे ब्रह्मन् ! मैं भिक्षु के वचन से इस बालक

को घर लाई हूं ॥ ५२ । ५३ ॥ और बिन जाने हुए वंशवाला यह आज भी पुत्र की नाईं पोषण किया जाता है यह किस वंश में उत्पन्न है व इसकी कौन माता और कौन पिता है ॥ ५४ ॥ ज्ञानरूपी नेत्रोंवाले आपसे यह सब मैं जानना चाहती हूं ॥ ५५ ॥ ब्राह्मण की स्त्री से इस प्रकार पूंछे हुए ज्ञानदृष्टिवाले उन मुनि ने उस बालक के पहलेवाला जन्म व कर्म कहा ॥ ५६ ॥ कि यह विदर्भदेश के राजा का पुत्र है और उन मुनिने उसके पिता का समर में मरण व उसकी माता का ग्राह से हरण सम्पूर्णता से बतलाया ॥ ५७ ॥ इसके बाद उस विस्मित स्त्री ने फिर उन मुनिसे पूंछा कि वह राजा सब सुखों को छोड़कर कैसे युद्ध में मरा

मध्ये पर्यपृच्छत्सविस्मया ॥ ब्रह्मन्नेषोऽर्भको नीतो मया भिक्षोगिरा गृहम् ॥ ५३ ॥ अविज्ञातकुलोद्योपि सुतवत्परिपोष्य ते ॥ कस्मिन्कुले प्रसूतोऽयं का माता जनकोऽस्य कः ॥ ५४ ॥ सर्वं विज्ञातुमिच्छामि भवतो ज्ञानचक्षुषः ॥ ५५ ॥ इति पृष्टो मुनिः सोथ ज्ञानदृष्टिर्द्विजस्त्रिया ॥ आचख्यौ तस्य बालस्य जन्म कर्म च पौर्विकम् ॥ ५६ ॥ विदर्भराजपुत्रस्तु तत्पितुः समरे मृतिम् ॥ तन्मातुर्नक्रहरणं साकल्येन न्यवेदयत् ॥ ५७ ॥ अथ सा विस्मिता नारी पुनः पप्रच्छ तं मुनिम् ॥ स राजा सकलान्भोगान्हित्वा युद्धे कथं मृतः ॥ ५८ ॥ दारिद्र्यमस्य बालस्य कथं प्राप्तं महामुने ॥ दारिद्र्यं पुनरुद्धूय कथं राज्यमवाप्स्यति ॥ ५९ ॥ अस्यापि मम पुत्रस्य भिक्षान्नेनैव जीवतः ॥ दारिद्र्यशमनोपायमुपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥ ६० ॥ शाण्डिल्य उवाच ॥ अमुष्य बालस्य पिता स विदर्भमहीपतिः ॥ पूर्वजन्मनि पाण्ड्येशो बभूव नृपसत्तमः ॥ ६१ ॥ स राजा सर्वधर्मज्ञः पालयन्सकलां महीम् ॥ प्रदोषसमये शम्भुं कदाचित्प्र

है ॥ ५८ ॥ व हे महामुने ! इस बालक को दरिद्रता कैसे मिली है और फिर दरिद्रता को नाश करके कैसे राज्य को पावैगा ॥ ५९ ॥ और भिक्षामही से जीते हुए इस मेरे पुत्र के भी दरिद्र नाशने के उपाय को तुम कहने के योग्य हो ॥ ६० ॥ शाण्डिल्यजी बोले कि इस बालक का पिता जो विदर्भदेश का राजा था वह पूर्व जन्म में पाण्ड्य देश का स्वामी व उत्तम राजा हुआ है ॥ ६१ ॥ सब पृथ्वी को पालते हुए उस सब धर्मों को जाननेवाले राजा ने किसी समय प्रदोष के समय

में शिवपूजन किया ॥ ६२ ॥ और त्रिभुवनेश्वर शिवदेवजी को भक्ति से उस राजा के पूजते हुए नगरमें सब कहीं बड़ाभारी कोलाहल शब्द हुआ ॥ ६३ ॥ उस उग्र शब्द को सुनकर नगर के क्षोभ की शंका से पूजन छोड़कर वह राजा राजमन्दिर से निकला ॥ ६४ ॥ इसी समय में उसका बड़ा बलवान् मंत्री सामंत (छोटा राजा) शत्रु को पकड़कर राजा के समीप आया ॥ ६५ ॥ और मंत्री से लाये हुए गर्वित शत्रु को देखकर राजा ने क्रोध से मस्तक को काट डाला ॥ ६६ ॥ और वैसेही बिन समाप्त नियमवाले उस राजा ने शिवपूजन को छोड़कर रात में भोजन किया ॥ ६७ ॥ व उसके पुत्रने भी वैसाही किया कि वह मूढ़ात्मा व दुर्मद

त्यपूजयत् ॥ ६२ ॥ तस्य पूजयतो भक्त्या देवं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ आसीत्कलकलारावः सर्वत्र नगरे महान् ॥ ६३ ॥ श्रुत्वा तमुत्कटं शब्दं राजा त्यक्तशिवार्चनः ॥ निर्ययौ राजभवनान्नगरक्षोभशङ्कया ॥ ६४ ॥ एतस्मिन्नेव समये तस्यामात्यो महाबलः ॥ शत्रुं गृहीत्वा सामन्तं राजान्तिकमुपागमत् ॥ ६५ ॥ अमात्येन समानीतं शत्रुं सामन्तमुद्धतम् ॥ दृष्ट्वा क्रोधेन नृपतिः शिरश्छेदमकारयत् ॥ ६६ ॥ स तथैव महीपालो विसृज्य शिवपूजनम् ॥ असमाप्तात्मनियमश्चकार निशि भोजनम् ॥ ६७ ॥ तत्पुत्रोपि तथा चक्रे प्रदोषसमये शिवम् ॥ अनर्चयित्वा मूढात्मा भुक्त्वा सुष्वाप दुर्मदः ॥ ६८ ॥ जन्मान्तरे स नृपतिर्विदर्भक्षितिपोऽभवत् ॥ शिवार्चनान्तरायेण परैर्भोगान्तरे हतः ॥ ६९ ॥ तत्पुत्रो यः पूर्वभवे सोस्मिञ्जन्मनि तत्सुतः ॥ भूत्वा दारिद्र्यमापन्नः शिवपूजाव्यतिक्रमात् ॥ ७० ॥ अस्य माता पूर्वभवे सपत्नीं छद्मनाहनत् ॥ तेन पापेन महता ग्राहेणास्मिन्भवे हता ॥ ७१ ॥ एषा प्रवृत्तिरेतेषां भव

राजपुत्र प्रदोष के समय में शिवजी को न पूजकर भोजन करके सोगया ॥ ६८ ॥ अन्य जन्ममें वह राजा विदर्भदेशका राजा हुआ और शिवपूजनके विघ्नसे शत्रुओं उसको सुख के मध्य में मारडाला ॥ ६९ ॥ व पूर्वजन्म में जो उसका पुत्र था वही इस जन्म में उसका पुत्र हुआ और शिवपूजन के उल्लंघन से वह जन्म लेकर ा को प्राप्त हुआ ॥ ७० ॥ व इसकी माता ने पूर्व जन्म में छल से सौति को मारडाला था उस बड़े भारी पाप से इस जन्म में वह ग्राहसे मारी गई ॥ ७१ ॥

इन लोगों की यह प्रवृत्ति (वार्त्ता) आपसे कही गई और शिवजी को न पूजनेवाले लोग दरिद्रता को प्राप्त होते हैं ॥ ७२ ॥ सत्य कहता हूं व परलोक का हित कहता हूं और साराश व उपनिषदों का हृदय कहता हूं कि भयंकर व असार (साराशरहित) संसार को पाकर शिवजी के चरणकमलों की सेवा यही सारांश है ॥ ७३ ॥ प्रदोषसमय में जो शिवजी को नहीं पूजते हैं व पूजे हुए शिवजी को जो अन्य मनुष्य प्रणाम नहीं करते हैं व इन शिवजी की कथा को जो कर्णपुटों से नहीं पीते हैं वे मूढ़ मनुष्य प्रत्येक जन्म में दरिद्री होते हैं ॥ ७४ ॥ और प्रदोषसमय में सावधान मनवाले जो लोग शिवजी के चरणकमलों की पूजा करते हैं

त्यै समुदाहृता ॥ अनर्चितशिवा मर्त्याः प्राप्नुवन्ति दरिद्रताम् ॥ ७२ ॥ सत्यं ब्रवीमि परलोकहितं ब्रवीमि सारं ब्रवीम्युपनिषद्धृदयं ब्रवीमि ॥ संसारमुल्बणमसारमवाप्य जन्तोः सारोयमीश्वरपदाम्बुरुहस्य सेवा ॥ ७३ ॥ ये नार्चयन्ति गिरिशं समये प्रदोषे ये नार्चितं शिवमपि प्रणमन्ति चान्ये ॥ एतत्कथां श्रुतिपुटैर्न पिबन्ति मूढास्ते जन्मजन्मसु भवन्ति नरा दरिद्राः ॥ ७४ ॥ ये वै प्रदोषसमये परमेश्वरस्य कुर्वन्त्यनन्यमनसोऽङ्घ्रिसरोजपूजाम् ॥ नित्यं प्रवृद्धधनधान्यकलत्रपुत्रसौभाग्यसम्पदधिकास्त इहैव लोके ॥ ७५ ॥ कैलासशैलभवने त्रिजगज्जनित्रीं गौरीं निवेश्य कनकाञ्चितरत्नपीठे ॥ नृत्यं विधातुमभिवाञ्छति शूलपाणौ देवाः प्रदोषसमयेऽनुभजन्ति सर्वे ॥ ७६ ॥ वाग्देवी धृतवल्लकी शतमखो वेणुं दधत्पद्मजस्तालोन्निद्रकरो रमा भगवती गेयप्रयोगान्विता ॥ विष्णुः सान्द्रमृदङ्गवादनपटुर्देवाः समन्तात्स्थिताः ॥ सेवन्ते तमनु प्रदोषसमये देवं मृडानीपतिम् ॥ ७७ ॥ गन्धर्वयक्षपतगोरग

वे इसी संसार में नित्य बढ़े हुए धन, धान्य, स्त्री, पुत्र व सौभाग्य की संपत्ति से अधिक होते हैं ॥ ७५ ॥ कैलास पर्वत के मन्दिर में त्रिलोक की माता पार्वतीजी को सुवर्ण से रचित आसन पै बिठाकर जब शिवजी नृत्य करने की इच्छा करते हैं तब सब देवता प्रदोषसमय में शिवजी की सेवा करते हैं ॥ ७६ ॥ सरस्वतीजी वीणा को लेती हैं व इन्द्रजी वेणु को धारण करते हैं और ब्रह्माजी ताल से जगाते हैं तथा भगवती लक्ष्मीजी गान करती हैं और निरन्तर मृदंग के बजाने में प्रवीण विष्णुजी व अन्य देवता उन शिवजी के सब ओर स्थित होकर पार्वती के पति शिवदेवजी को सेवते हैं ॥ ७७ ॥ व गंधर्व, यक्ष, पक्षी, नाग, सिद्ध,

साध्य, विद्याधर व श्रेष्ठ देवता तथा अप्सराओं के गण और त्रिलोक में रहनेवाले जो अन्य प्राणीगण हैं वे साथही प्रदोषसमय प्राप्त होने पर शिवजी के समीप स्थित होते हैं ॥ ७८ ॥ इस कारण प्रदोष में एक शिवही पूजने योग्य हैं अन्य विष्णु व ब्रह्मादिक देवता नहीं हैं क्योंकि विधि से उन शिवजी का पूजन करने पर सब देवेश प्रसन्न होजाते हैं ॥ ७९ ॥ और यह तुम्हारा पुत्र पूर्वजन्म में उत्तम ब्राह्मण था इसने दान लेने से अवस्था को व्यतीत किया यज्ञादिक सुकर्मों से नहीं व्यतीत किया है ॥ ८० ॥ इस कारण हे द्विजभामिनि ! तुम्हारा पुत्र निर्धनता को प्राप्त हुआ है उस दोष के छूटने के लिये यह शिवजी की शरण में

सिद्धसाध्या विद्याधरामरवराप्सरसां गणाश्च ॥ येऽन्ये त्रिलोकनिलयाः सह भूतवर्गाः प्राप्ते प्रदोषसमये हरपार्श्व संस्थाः ॥ ७८ ॥ अतः प्रदोषे शिव एक एव पूज्योऽथ नान्ये हरिपद्मजाद्याः ॥ तस्मिन्महेशे विधिनेज्यमाने सर्वे प्रसीदन्ति सुराधिनाथाः ॥ ७९ ॥ एष ते तनयः पूर्वजन्मनि ब्राह्मणोत्तमः ॥ प्रतिग्रहैर्वयो निन्ये न यज्ञाद्यैः सुकर्म भिः ॥ ८० ॥ अतो दारिद्र्यमापन्नः पुत्रस्ते द्विजभामिनि ॥ तद्दोषपरिहारार्थं शरणं यातु शङ्करम् ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे प्रदोषमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ इत्युक्का मुनिना साध्वी सा विप्रवनिता पुनः ॥ तं प्रणम्याथ पप्रच्छ शिवपूजाविधेः क्रमम् ॥ १ ॥ शाण्डिल्य उवाच ॥ पक्षद्वये त्रयोदश्यां निराहारो भवेद्यदा ॥ घटीत्रयादस्तमयात्पूर्वं स्नानं समाचरेत् ॥ २ ॥

जावै ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां प्रदोषमाहात्म्यवर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दो० । जिमि प्रदोष शिवपूज कर महिमा अमित अपार । सो सप्तम अध्याय में कह्यो चरित्र उदार ॥ सूतजी बोले कि मुनि से इस प्रकार कही हुई उस ब्राह्मण की पतिव्रता स्त्री ने उन शाण्डिल्य मुनि को प्रणाम कर फिर शिवपूजन की विधि का क्रम पूंछा ॥ १ ॥ शाण्डिल्यजी बोले कि दोनों पक्षों में तेरसि तिथि में निराहार होवै तब सूर्यास्त होने से तीन घड़ी पहले स्नान करै ॥ २ ॥ और सफ़ेद वसनों को पहनकर मौन होकर नियम से संयुत विद्वान् मनुष्य संध्योपासन

के जप की विधि को करके शिवपूजन को प्रारम्भ करै॥ ३॥ और शिवदेवजी के आगे नवीन जल से भली भांति लीप कर विद्वान् धोती आदिको से सुन्दर मण्डल को बनाकर ॥ ४ ॥ चँदोवा आदिक व फल, पुष्प तथा नवीन अंकुरों से भूषित कर पांच रंगों से संयुत विचित्र कमलासन को लेकर ॥ ५ ॥ उस अति उत्तम व स्थिर आसन पै बैठकर पवित्र मनुष्य पूजन की सब सामग्री को इकट्ठा करै ॥ ६ ॥ और शास्त्रोक्त मंत्र से बुद्धिमान् मनुष्य आसन को आमंत्रित करै तदनन्तर क्रम से आत्मशुद्धि व बुद्धिशुद्धि आदिक करके ॥ ७ ॥ अनुस्वार समेत बीज के अक्षरों से तीन प्राणायामों को करके विधिपूर्वक मातृकाओं को न्यास

शुक्लाम्बरधरो धीरो वाग्यतो नियमान्वितः ॥ कृतसन्ध्याजपविधिः शिवपूजां समारभेत् ॥ ३ ॥ देवस्य पुरतः सम्यगुपलिप्य नवाम्भसा ॥ विधाय मण्डलं रम्यं धौतवस्त्रादिभिर्बुधः ॥ ४ ॥ वितानाद्यैरलंकृत्य फलपुष्पनवाङ्कुरैः ॥ विचित्रपद्ममुद्धृत्य वर्णपञ्चकसंयुतम् ॥ ५ ॥ तत्रोपविश्य सुशुभे भक्तियुक्तः स्थिरासने ॥ सम्यक्संपादिताशेषपूजोपकरणः शुचिः ॥ ६ ॥ आगमोक्तेन मन्त्रेण पीठमामन्त्रयेत्सुधीः ॥ ततः कृत्वात्मशुद्धिं च भूतशुद्ध्यादिकं क्रमात् ॥ ७ ॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा बीजवर्णैः सबिन्दुकैः ॥ मातृका न्यस्य विधिवद्ध्यात्वा तां देवतां पराम् ॥ ८ ॥ समाप्य मातृका भूयो ध्यात्वा चैव परं शिवम् ॥ वामभागे गुरुं नत्वा दक्षिणे गणपं नमेत् ॥ ९ ॥ अंसोरुयुग्मे धर्मादीन्न्यस्य नाभौ च पार्श्वयोः ॥ अधर्मादीननन्तादीन्हृदि पीठे मनुं न्यसेत् ॥ १० ॥ आधारशक्तिमारभ्य ज्ञानात्मानमनुक्रमात् ॥ उक्तक्रमेण विन्यस्य हृत्पद्मे साधुभाविते ॥ ११ ॥ नवशक्तिमये रम्ये ध्यायेद्देवमुमापतिम् ॥

कर उस उत्तम देवता को ध्यान कर ॥ ८ ॥ फिर मातृकाओं को समासकर उत्तम शिवजी को ध्यानकर बायें ओर गुरु को प्रणाम कर दाहिने ओर गणेशजी को प्रणाम करै ॥ ९ ॥ और दोनों कन्धों व जंघों में धर्मादिकों को न्यासकर नाभि व इधर उधर बगलों मे अधर्मादिकों को तथा अनन्तादिको को हृदय में न्यास कर पीठ (आसन) पै मन्त्रको न्यासकरै ॥ १० ॥ व आधार शक्ति से लगाकर ज्ञानात्मक तक क्रमसे कहे हुए क्रम करके भली भांति शुद्ध हृदयकमल मे न्यासकर ॥ ११ ॥

नवशक्तिमय सुन्दर हृदयकमल में शिवदेवजी को ध्यान करै और करोड़ों चन्द्रमा के समान, त्रिलोचन व चन्द्रभाल ॥ १२ ॥ तथा कुछ पीले रंग के जटाजूटवाले व रत्नमौलि से शोभित, नीलकण्ठ, उदार अंगोंवाले व नागों के हार से शोभित ॥ १३ ॥ और वरदायक व अभय हाथोंवाले तथा परश्वध नामक अस्त्र को धारण किये व नागों का कंकण, बजुल्ला और मुंदरी को धारण किये ॥ १४ ॥ और व्याघ्रचर्म को पहने व रत्नों के सिंहासन पै बैठे हुए शिवजी को ध्यानकर उनके बायें ओर पार्वतीजी को ध्यान करै ॥ १५ ॥ चमकीले दुपहरी के फूल के समान प्रभावती व उदय सूर्यनारायण के समान शोभा-

चन्द्रकोटिप्रतीकाशं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥ १२ ॥ आपिङ्गलजटाजूटं रत्नमौलिविराजितम् ॥ नीलग्रीवमुदाराङ्गं नागहारोपशोभितम् ॥ १३ ॥ वरदाभयहस्तं च धारिणं च परश्वधम् ॥ दधानं नागवलयकेयूराङ्गदमुद्रिकम् ॥ १४ ॥ व्याघ्रचर्मपरीधानं रत्नसिंहासने स्थितम् ॥ ध्यात्वा तद्वामभागे च चिन्तयेद्गिरिकन्यकाम् ॥ १५ ॥ भास्वज्जपाप्रसूनाभामुदयार्कसमप्रभाम् ॥ विद्युत्पुञ्जनिभां तन्वीं मनोनयननन्दिनीम् ॥ १६ ॥ बालेन्दुशेखरां स्निग्धां नीलकुञ्चितकुन्तलाम् ॥ भृङ्गसंघातरुचिरां नीलालकविराजिताम् ॥ १७ ॥ मणिकुण्डलविद्योतन्मुखमण्डलविभ्रमाम् ॥ नवकुङ्कुमपङ्काङ्ककपोलदलदर्पणाम् ॥ १८ ॥ मधुरस्मितविभ्राजदरुणाधरपल्लवाम् ॥ कम्बुकण्ठीं शिवामुद्यत्कुचपङ्कजकुड्मलाम् ॥ १९ ॥ पाशाङ्कुशाभयाभीष्टविलसत्सुचतुर्भुजाम् ॥ अनेकरत्नविलसत्कङ्कणा

वाली तथा बिजली की राशि के समान व सूक्ष्म अंगोंवाली और मन व नेत्रों को आनन्द करनेवाली ॥ १६ ॥ व बाल चन्द्रमा को मस्तक में धारण किये, सचिक्कण व नील तथा घुंघुवारे बालोंवाली व भ्रमरसमूह से सुन्दरी तथा नील केशपाश से शोभित ॥ १७ ॥ व मणिजटित कुंडलों से शोभित मुखमण्डल के विभ्रमवाली और नवीन कुंकुम के पंक से चिह्नित कपोलदलरूपी दर्पणवाली ॥ १८ ॥ और मधुर मुसक्यान से शोभित अरुण ओष्ठ पल्लवोंवाली व शंख के समान ग्रीवा तथा निकलते हुए कुचकमलकलीवाली ॥ १९ ॥ व पाश, अंकुश, अभय व मनोरथ से शोभित चार भुजाओंवाली तथा अनेक रत्नों से

शोभित कंकण व चिह्नित मुद्रिकावाली ॥ २० ॥ व तीन वलियों से शोभित सुवर्ण की क्षुद्रघंटिका (कर्धनी) के गुणोंसे संयुत व लाल माला और चन्दन को धारण किये तथा दिव्य चन्दन से चर्चित ॥ २१ ॥ और दिक्पालों की स्त्रियोंके मस्तकों से प्रणाम किये हुए चरणकमलोंवाली व नागराज से वेष्टित और रत्नजटित सिंहासन पै बैठी हुई पार्वतीजी को ध्यान करै ॥ २२ ॥ इस प्रकार शिवजी व पार्वतीजी को ध्यानकर न्यास के क्रम से शिवदेवजी को क्रम से चन्दन आदिकों से पूजकर ॥ २३ ॥ पांच वेदमंत्रों से कहे हुए स्थानों में व हृदय में करै और शरीर में पृथक् पुष्पाञ्जली को व मूल मंत्र से तीन बार हृदय में पूजन करै ॥ २४ ॥

ङ्कितमुद्रिकाम् ॥ २० ॥ वलित्रयेण विलसद्धेमकाञ्चीगुणान्विताम् ॥ रक्तमाल्याम्बरधरां दिव्यचन्दनचर्चिताम् ॥ २१ ॥ दिक्पालवनितामौलिसन्नताङ्घ्रिसरोरुहाम् ॥ रत्नसिंहासनारूढां सर्पराजपरिच्छदाम् ॥ २२ ॥ एवं ध्यात्वा महादेवं देवीं च गिरिकन्यकाम् ॥ न्यासक्रमेण संपूज्य देवं गन्धादिभिः क्रमात् ॥ २३ ॥ पञ्चभिर्ब्रह्मभिः कुर्यात्प्रोक्तस्थानेषु वा हृदि ॥ पृथक्पुष्पाञ्जलिं देहे मूलेन च हृदि त्रिधा ॥ २४ ॥ पुनः स्वयं शिवो भूत्वा मूलमन्त्रेण साधकः ॥ ततः संपूजयेद्देवं बाह्यपीठे पुनः क्रमात् ॥ २५ ॥ संकल्पं प्रवदेत्तत्र पूजारम्भे समाहितः ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा चिन्तयेद्धृदि शङ्करम् ॥ २६ ॥ ऋणपातकदौर्भाग्यदारिद्र्यविनिवृत्तये ॥ अशेषाघविनाशाय प्रसीद मम शङ्कर ॥ २७ ॥ दुःखशोकाग्निसन्तप्तं संसारभयपीडितम् ॥ बहुरोगाकुलं दीनं त्राहि मां वृषवाहन ॥ २८ ॥ आगच्छ देवदेवेश महादेवाभयङ्कर ॥ गृहाण सह पार्वत्या तव पूजां मया कृताम् ॥ २९ ॥ इति संकल्प्य विधि

फिर मूल मंत्र से साधक आपही शिव होकर तदनन्तर बाहर पीठ में फिर क्रम से शिवदेवजी को पूजन करै ॥ २५ ॥ और सावधान होकर मनुष्य उस पूजन के प्रारंभ में संकल्प कहै व हाथों को जोड़ कर हृदय में शिवजी को ध्यान करै ॥ २६ ॥ हे शंकरजी ! ऋण, पाप, दुर्भाग्य व दरिद्रता के दूर होने के लिये और समस्त पातकों के नाश के लिये मेरे ऊपर प्रसन्न होवो ॥ २७ ॥ हे वृषवाहन ! दुःख व शोक की अग्नि से संतप्त तथा संसार के भय से पीडित व बहुत रोगों से विकल मुझ दीन की रक्षा कीजिये ॥ २८ ॥ हे देवदेवेश, अभयंकर, महादेव ! आइये मुझसे कीहुई तुम्हारी पूजा को पार्वती समेत ग्रहण कीजिये ॥ २९ ॥ इस प्रकार

संकल्प करके विधिपूर्वक बाहर पूजन करै और बायें व दाहिने ओर गुरु व गणेशजी को पूजै ॥ ३० ॥ व ईशानकोण में क्षेत्रेशजी को पूजै और क्रम से बृहस्पति को पूजै तदनन्तर वहा पर सरस्वतीजी को पूजै व कात्यायनीजी को पूजै ॥ ३१ ॥ और नमःअन्तवाले स्वरों से ईशान आदिक कोणों में धर्म, ज्ञान, वैराग्य व ऐश्वर्य को पूजै और क्रम से पीठपादों को पूजै व बिन्दु (अनुस्वार) और विसर्ग समेत अकार से अधर्मादिकों को पूजै ॥ ३२ ॥ व सत्त्वरूपों से चार दिशाओं में पूजै और मध्य में ॐकार समेत अनन्तजी को पूजै और तागरूपी सत्त्वादिक तीन गुणों को पीठों में न्यास करै ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त ऊपर के पत्र में लक्ष्मी

वद्बाह्यपूजां समाचरेत् ॥ गुरुं गणपतिं चैव यजेत्सव्यापसव्ययोः ॥ ३० ॥ क्षेत्रेशमीशकोणे तु यजेद्वास्तोष्पतिं क्रमात् ॥ वाग्देवीं च यजेत्तत्र ततः कात्यायनीं यजेत् ॥ ३१ ॥ धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च नमोऽन्तकैः ॥ स्वरैरीशादिकोणेषु पीठपादाननुक्रमात् ॥ आभ्यां बिन्दुविसर्गाभ्यामधर्मादीन्प्रपूजयेत् ॥ ३२ ॥ सत्त्वरूपैश्चतुर्दिक्षु मध्येऽनन्तं सतारकम् ॥ सत्त्वादींस्त्रिगुणांस्तन्तुरूपान्पीठेषु विन्यसेत् ॥ ३३ ॥ अत ऊर्ध्वच्छदे मायां सह लक्ष्म्या शिवेन च ॥ ३४ ॥ तदन्ते चाम्बुजं भूयः सकलं मण्डलत्रयम् ॥ पत्रकेसरकिञ्जल्कव्याप्तं ताराक्षरैः क्रमात् ॥ ३५ ॥ पद्मत्रयं तथाभ्यर्च्य मध्ये मण्डलमादरात् ॥ वामां ज्येष्ठां च रौद्रीं च भागाद्यैर्दिक्षु पूजयेत् ॥ ३६ ॥ वामाद्या नव शक्तीश्च नवस्वरयुता यजेत् ॥ हृदि बीजत्रयाद्येन पीठमन्त्रेण चार्चयेत् ॥ ३७ ॥ आवृत्तैः प्रथमाङ्गैश्च पञ्चभिर्मूर्त्तिशक्तिभिः ॥ त्रिशक्तिमूर्त्तिभिश्चान्यैर्निधिद्वयसमन्वितैः ॥ ३८ ॥ अनन्ताद्यैः परीताश्च मातृभिश्च वृषादि

व शिव समेत माया को पूजै ॥ ३४ ॥ व उसके अन्तमें कमलको पूजै फिर क्रमसे ॐकार के अक्षरों से पत्र, केसर व धूलि से व्याप्त सब तीनों मण्डलों को पूजै ॥ ३५ ॥ व तीन कमलों को पूजकर बीच में आदर से मण्डल को पूजै और दिशाओं में भागादिकों से वामा, ज्येष्ठा व रौद्री शक्तिको पूजै ॥ ३६ ॥ व नवस्वरों से संयुत वामादिक नव शक्तियों को पूजै और पहले तीन बीजोंवाले पीठमंत्र से हृदय में पूजन करै ॥ ३७ ॥ और प्रथम अंगोंवाले आवृत्तोंसे व पांच मूर्ति शक्तियों से तथा त्रिशक्ति मूर्तियों से और दो निधियोंसे संयुत ॥ ३८ ॥ अनंतादिकों से घिरी व वृषादिक मातृकाओं से युक्त और अणिमादिक सिद्धियों व अस्त्रों समेत इन्द्रादिकों से

संयुत नव शक्तियों को पूजै ॥ ३९ ॥ और वृष, क्षेत्रचण्डेश, दुर्गा व स्वामिकार्त्तिकेय तथा नन्दीजी को पूजै और गणेश व सेनाध्यक्ष ये सब अपने अपने लक्षणों से लक्षित हैं ॥ ४० ॥ और अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, ईशिता, वशिता, प्राप्ति और प्राकाम्य ॥ ४१ ॥ ये आठ ऐश्वर्य केवल तेजरूप कहेगये हैं व क्रम से पहले पांच ब्रह्मों से और हृल्लेखादिक ॥ ४२ ॥ अंगोंसे व उमादिकों से तथा उन इन्द्रादिकों से व मुनियों से पूजन कहा गया है और उत्तर से लगाकर उमा व चण्डेश्वरादिकों को पूजै ॥ ४३ ॥ इस प्रकार आवरणों से संयुत पार्वती समेत तेजोरूप सदाशिवदेवजी को उपचारों से पूजै ॥ ४४ ॥ व सावधान होता हुआ मनुष्य

भिः ॥ सिद्धिभिश्चाणिमाद्याभिरिन्द्राद्यैश्च सहायुधैः ॥ ३९ ॥ वृषभक्षेत्रचण्डेशदुर्गाश्च स्कन्दनन्दिनौ ॥ गणेशः सैन्यपश्चैव स्वस्वलक्षणलक्षिताः ॥ ४० ॥ अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा ॥ ईशित्वं च वशित्वं च प्राप्तिः प्राकाम्यमेव च ॥ ४१ ॥ अष्टैश्वर्याणि चोक्तानि तेजोरूपाणि केवलम् ॥ पञ्चभिर्ब्रह्मभिः पूर्वं हृल्लेखाद्यादिभिः क्रमात् ॥ ४२ ॥ अङ्गैरुमाद्यैरिन्द्राद्यैः पूजोक्ता मुनिभिस्तु तैः ॥ उमाचण्डेश्वरादींश्च पूजयेदुत्तरादितः ॥ ४३ ॥ एवमावरणैर्युक्तं तेजोरूपं सदाशिवम् ॥ उमया सहितं देवमुपचारैः प्रपूजयेत् ॥ ४४ ॥ सुप्रतिष्ठितशङ्खस्य तीर्थैः प ञ्चामृतैरपि ॥ अभिषिच्य महादेवं रुद्रसूक्तैः समाहितः ॥ ४५ ॥ कल्पयेद्विविधैर्मन्त्रैरासनाद्युपचारकान् ॥ आसनं कल्पयेद्धैमं दिव्यवस्त्रसमन्वितम् ॥ ४६ ॥ अर्घ्यमष्टगुणोपेतं पाद्यं शुद्धोदकेन च ॥ तेनैवाचमनं दद्यान्मधुपर्कं मधू त्तरम् ॥ ४७ ॥ पुनराचमनं दत्त्वा स्नानं मन्त्रैः प्रकल्पयेत् ॥ उपवीतं तथा वासो भूषणानि निवेदयेत् ॥ गन्ध

रुद्रसूक्तों से प्रतिष्ठित शंख के तीर्थजलों से व पंचामृतों से महादेवजी को नहवाकर ॥ ४५ ॥ अनेक प्रकार के मंत्रों से आसनादिक उपचारों को कल्पित करै और दिव्य वस्त्रों से संयुत सुवर्ण का आसन कल्पित करै ॥ ४६ ॥ व आठ गुणों से संयुत अर्घ्य और शुद्धोदक से पाद्य तथा उसीसे आचमन व मधुपर्क को देवै और मधुपर्क के उपरान्त ॥ ४७ ॥ फिर आचमन देकर मंत्रों से स्नान कल्पित करै और यज्ञोपवीत, वसन व भूषणों को निवेदन करै व आठ अंगों से संयुत

पवित्र चन्दन को चढ़ावै ॥ ४८ ॥ तदनन्तर बिल्व, मदार व लाल कमल, धतूर, कर्णिकार और सन का फूल व चमेली को चढ़ावै ॥ ४९ ॥ और कुश, लटजीरा, तुलसी, जूही व चंपकादिक को चढ़ावै व साधक मनुष्य भटकटैया और कनैर के फूलों को जैसे मिलैं वैसे चढ़ावै ॥ ५० ॥ और अनेक प्रकार के सुगंधित मालाओं को चढ़ावै व कालागरु से उत्पन्न धूप और निर्मल व उत्तम दीप को देवै ॥ ५१ ॥ और पकान्न समेत तथा लड्डू व पुवा से संयुक्त और शक्कर व गुड़ से सयुत तथा घृत समेत खीर की नैवेद्य देवै ॥ ५२ ॥ व दही से संयुत और शहद से मिश्रित व जल पान से सयुत नैवेद्य को देवै और उसी खीर से मंत्रों से शुद्ध अग्नि में

मष्टाङ्गसंयुक्तं सुपूतं विनिवेदयेत् ॥ ४८ ॥ ततश्च बिल्वमन्दारकह्लारसरसीरुहम् ॥ धत्तूरकं कर्णिकारं शणपुष्पं च मल्लिकाम् ॥ ४९ ॥ कुशापामार्गतुलसीमाधवीचम्पकादिकम् ॥ बृहतीकरवीराणि यथालब्धानि साधकः ॥ ५० ॥ निवेदयेत्सुगन्धीनि माल्यानि विविधानि च ॥ धूपं कालागरूत्पन्नं दीपं च विमलं शुभम् ॥ ५१ ॥ विशेषकम् ॥ अथ पायसनैवेद्यं सघृतं सोपदंशकम् ॥ मोदकापूपसंयुक्तं शर्करागुडसंयुतम् ॥ ५२ ॥ मधुनाक्तं दधियुतं जलपानसमन्वितम् ॥ तेनैव हविषा वह्नौ जुहुयान्मन्त्रभाविते ॥ ५३ ॥ आगमोक्तेन विधिना गुरुवाक्यनियन्त्रितः ॥ नैवेद्यं शम्भवे भूयो दत्त्वा ताम्बूलमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ धूपं नीराजनं रम्यं छत्रं दर्पणमुत्तमम् ॥ समर्पयित्वा विधिवन्मन्त्रैर्वैदिकतान्त्रिकैः ॥ ५५ ॥ यद्यशक्तः स्वयं निःस्वो यथाविभवमर्चयेत् ॥ भक्त्या दत्तेन गौरीशः पुष्पमात्रेण तुष्यति ॥ ५६ ॥ अथाङ्गभूतान्सकलान्गणेशादीन्प्रपूजयेत् ॥ स्तवैर्नानाविधैः स्तुत्वा साष्टाङ्गं प्रणमे

शास्त्रोक्त विधि से गुरु के वचन में बँधा हुआ मनुष्य हवन करै और शिवजीके लिये नैवेद्य देकर फिर उत्तम तांबूल को देवै ॥ ५३ । ५४ ॥ और धूप व नीराजन तथा सुन्दर छत्र व उत्तम दर्पण को विधिपूर्वक वैदिक व तांत्रिक मंत्रों से देकर पूजन करै ॥ ५५ ॥ और यदि आप निर्धनी व असमर्थ होवै तो ऐश्वर्य के अनुसार क्योंकि भक्ति से दिये हुए पुष्पही से शिवजी प्रसन्न होजाते हैं ॥ ५६ ॥ और विद्वान् मनुष्य अंगभूत सब गणेशादिक देवताओं को पूजै व अनेक प्रकार के

स्तोत्रों से स्तुति करके साष्टांग प्रणाम करै ॥ ५७ ॥ तदनन्तर वृष व चण्डेश्वरादिकों की प्रदक्षिणा करके और पूजन करके शिवजी की प्रार्थना करै ॥ ५८ ॥ कि हे जगदीश, देव ! तुम्हारी जय हो व हे शाश्वत, शंकर ! तुम्हारी जय हो हे समस्तसुरनायक ! तुम्हारी जय हो व हे सर्वदेवपूजित ! तुम्हारी जय हो ॥ ५९ ॥ हे सर्वगुणातीत ! तुम्हारी जय हो व हे सर्ववरप्रद ! तुम्हारी जय हो हे नित्य, निराधार ! तुम्हारी जय हो व हे विश्वंभर, अव्यय ! तुम्हारी जय हो ॥ ६० ॥ हे संसार के एकही जानने योग्य, ईश ! तुम्हारी जय हो हे शेषभूषण ! तुम्हारी जय हो हे गौरीपते, शंभो ! तुम्हारी जय हो हे चन्द्रार्धशेखर ! तुम्हारी

हुधः ॥ ५७ ॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्य वृषचण्डेश्वरादिकान् ॥ पूजां समर्प्य विधिवत्प्रार्थयेद्गिरिजापतिम् ॥ ५८ ॥ जय देव जगन्नाथ जय शङ्कर शाश्वत ॥ जय सर्वसुराध्यक्ष जय सर्वसुरार्चित ॥ ५९ ॥ जय सर्वगुणातीत जय सर्ववरप्रद ॥ जय नित्य निराधार जय विश्वंभराव्यय ॥ ६० ॥ जय विश्वैकवेद्येश जय नागेन्द्रभूषण ॥ जय गौरीपते शम्भो जय चन्द्रार्धशेखर ॥ ६१ ॥ जय कोट्यर्कसङ्काश जयानन्तगुणाश्रय ॥ ६२ ॥ जय रुद्र विरूपाक्ष जयाचिन्त्य निरञ्जन ॥ जय नाथ कृपासिन्धो जय भक्तार्तिभञ्जन ॥ जय दुस्तरसंसारसागरोत्तारण प्रभो ॥ ६३ ॥ प्रसीद मे महादेव संसारार्त्तस्य खिद्यतः ॥ सर्वपापभयं हृत्वा रक्ष मां परमेश्वर ॥ ६४ ॥ महादारिद्र्यमग्नस्य महापापहतस्य च ॥ महाशोकविनष्टस्य महारोगातुरस्य च ॥ ६५ ॥ ऋणभारपरीतस्य दह्यमानस्य कर्मभिः ॥ ग्रहैः प्रपीड्यमानस्य

जय हो ॥ ६१ ॥ हे कोटिसूर्यसमान ! तुम्हारी जय हो हे अनन्तगुणाश्रय ! तुम्हारी जय हो ॥ ६२ ॥ हे विरूपलोचन, रुद्र ! तुम्हारी जय हो हे अचिन्त्य, निरंजन ! तुम्हारी जय हो हे दयासिन्धो, नाथ ! तुम्हारी जय हो हे भक्तदुःखनाशक ! तुम्हारी जय हो हे दुस्तर संसारसागर से उतारनेवाले, प्रभो ! तुम्हारी जय हो ॥ ६३ ॥ हे महादेवजी ! संसार से दुःखी व खेदित मेरे ऊपर तुम प्रसन्न होवो हे परमेश्वर ! सब पापों के भय को हर कर मेरी रक्षा कीजिये ॥ ६४ ॥ व बड़े दारिद्र्य में मग्न तथा महापापोंसे नष्ट व महाशोकों से नष्ट और बड़े रोगों से आतुर ॥ ६५ ॥ व हे शंकरजी ! ऋण के भार से घिरे तथा कर्मोंसे

जलते व ग्रहों से पीड़ित मेरे ऊपर प्रसन्न होवो ॥ ६६ ॥ इस प्रकार निर्धन मनुष्य पूजन के अन्त में शिवदेवजी की प्रार्थना करै और धनाढ्य व राजा भी शिवदेवजी की प्रार्थना करै ॥ ६७ ॥ कि हे शंकरजी ! तुम्हारी प्रसन्नता से मेरा दीर्घ आयुर्बल व सदैव नीरोगता तथा ख़ज़ाने की बढ़ती और बलकी अधिकता व नित्य आनन्द होवै ॥ ६८ ॥ और शत्रुलोग नाश को प्राप्त होवैं व ग्रह प्रसन्न होवैं और चोरलोग राज्य में नाश होजावैं तथा मनुष्य विपत्तिरहित होवैं ॥ ६९ ॥ और पृथ्वी में दुर्भिक्ष व महामारी के दुःख शान्त होवैं तथा सब अन्नों की वृद्धि होवै व दिशा सुखमयी होवैं ॥ ७० ॥ इस प्रकार सन्ध्यासमय

प्रसीद मम शङ्कर ॥ ६६ ॥ दरिद्रः प्रार्थयेदेवं पूजान्ते गिरिजापतिम् ॥ अर्थाढ्यो वापि राजा वा प्रार्थयेद्देवमीश्वरम् ॥ ६७ ॥ दीर्घमायुः सदारोग्यं कोशवृद्धिर्बलोन्नतिः ॥ ममास्तु नित्यमानन्दः प्रसादात्तव शङ्कर ॥ ६८ ॥ शत्रवः संक्षयं यान्तु प्रसीदन्तु मम ग्रहाः ॥ नश्यन्तु दस्यवो राष्ट्रे जनाः सन्तु निरापदः ॥ ६९ ॥ दुर्भिक्षमारीसन्तापाः शमं यान्तु महीतले ॥ सर्वसस्यसमृद्धिश्च भूयात्सुखमया दिशः ॥ ७० ॥ एवमाराधयेद्देवं प्रदोषे गिरिजापतिम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ॥ ७१ ॥ सर्वपापक्षयकरी सर्वदारिद्र्यनाशिनी ॥ शिवपूजा मया ख्याता सर्वाभीष्टवरप्रदा ॥ ७२ ॥ महापातकसंघातमधिकं चोपपातकम् ॥ शिवद्रव्यापहरणादन्यत्सर्वं निवारयेत् ॥ ७३ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां पुराणेषु स्मृतिष्वपि ॥ प्रायश्चित्तानि दृष्टानि न शिवद्रव्यहारिणाम् ॥ ७४ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन

में शिवदेवजी की प्रार्थना करै पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन करावै व दक्षिणाओं से प्रसन्न करावै ॥ ७१ ॥ मैंने सब पापों को नाश करनेवाली व सब दरिद्रों को नाशनेवाली तथा सब प्रिय वरों को देनेवाली शिवजी की पूजा को कहा ॥ ७२ ॥ शिवजी के द्रव्यको हरने से अन्य सब महापापसमूह को व अधिक उपपातक को शिवपूजन नाश करता है ॥ ७३ ॥ पुराणों व स्मृतियों में ब्रह्महत्यादिक पापों के प्रायश्चित्त देखे गये हैं और शिवजी की द्रव्यको हरने वालों के प्रायश्चित्त नहीं देखे गये हैं ॥ ७४ ॥ इस विषय में बहुत कहने से क्या है मैं आधे श्लोक से कहता हूं कि सैकड़ों ब्रह्महत्याओं को शिव-

पूजन नाश करता है ॥ ७५ ॥ मैंने प्रदोषसमय में तुमसे इस शिवपूजन को कहा इसमें सब प्राणियों का रहस्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७६ ॥ इस प्रकार इन बालकों से पूजन किया जावै तो इसी वर्षभर से उत्तम सिद्धि को तुम सब पावोगी ॥ ७७ ॥ इस प्रकार शाण्डिल्य का वचन सुनकर उन बालकों समेत ब्राह्मण की स्त्री ने मुनि के चरणों को प्रणाम किया ॥ ७८ ॥ ब्राह्मण की स्त्री बोली कि आज मैं तुम्हारे दर्शनही से कृतार्थ होगई हे भगवन्! ये बालक तुम्हारी ही शरण में प्राप्त हुए हैं ॥ ७९ ॥ हे ब्रह्मन्! यह मेरा पुत्र शुचिव्रत ऐसा कहा गया है और यह राजा का पुत्र मुझसे धर्मगुप्त नामक किया गया है ॥ ८० ॥

श्लोकार्धेन ब्रवीम्यहम् ॥ ब्रह्महत्याशतं वापि शिवपूजा विनाशयेत् ॥ ७५ ॥ मया कथितमेतत्ते प्रदोषे शिवपूजनम् ॥ रहस्यं सर्वजन्तूनामत्र नास्त्येव संशयः ॥ ७६ ॥ एताभ्यामपि बालाभ्यामेवं पूजा विधीयताम् ॥ अतः संवत्सरादेव परां सिद्धिमवाप्स्यथ ॥ ७७ ॥ इति शाण्डिल्यवचनमाकर्ण्य द्विजभामिनी ॥ ताभ्यां तु सह बालाभ्यां प्रणनाम मुनेः पदम् ॥ ७८ ॥ विप्रस्त्र्युवाच ॥ अहमद्य कृतार्थास्मि तव दर्शनमात्रतः ॥ एतौ कुमारौ भगवंस्त्वामेव शरणं गतौ ॥ ७९ ॥ एष मे तनयो ब्रह्मञ्छुचिव्रत इतीरितः ॥ एष राजसुतो नाम्ना धर्मगुप्तः कृतो मया ॥ ८० ॥ एतावहं च भगवन्भवच्चरणकिंकराः ॥ समुद्धरास्मिन्पतितान्घोरे दारिद्र्यसागरे ॥ ८१ ॥ इति प्रपन्नां शरणं द्विजाङ्गनामाश्वास्य वाक्यैरमृतोपमानैः ॥ उपादिदेशाथ तयोः कुमारयोर्मुनिः शिवाराधनमन्त्रविद्याम् ॥ ८२ ॥ अथोपदिष्टौ मुनिना कुमारौ ब्राह्मणी च सा ॥ तं प्रणम्य समामन्त्र्य जग्मुस्ते शिवमन्दिरात् ॥ ८३ ॥

हे भगवन्! ये दोनों व मैं आपके चरण की दासी हूं इस भयंकर दरिद्र के समुद्र में गिरे हुए हमलोगों को ऊपर निकालिये ॥ ८१ ॥ इस प्रकार शरण में प्राप्त ब्राह्मण की स्त्री को अमृत के समान वचनों से समझाकर शाण्डिल्य मुनि ने उन बालकों को शिवाराधन की मंत्रविद्या का उपदेश किया ॥ ८२ ॥ इसके उपरान्त मुनि से उपदेश दिये हुए वे दोनों कुमार और वह ब्राह्मणी उन मुनि को प्रणाम कर व उनसे पूंछकर वे सब शिवमन्दिर से चले गये ॥ ८३ ॥

तब से लगाकर मुनिश्रेष्ठ शाण्डिल्यजी के उपदेश से वे बालक प्रदोषमें शिवजी का पूजन करने लगे ॥ ८४ ॥ इस प्रकार उन ब्राह्मण व राजकुमारको शिवदेवजी का पूजन करते हुए चार महीने सुखही से बीत गये ॥ ८५ ॥ किसी समय राजपुत्र के विना यह ब्राह्मण का पुत्र नहाने के लिये गया और बहुत लीलासे नदी के किनारे घूमने लगा ॥ ८६ ॥ और वहां उसने झरने के गिरने से टूटी हुई परिखाधार की भूमि में चमकते हुए बड़े भारी ख़ज़ाना के घडे को देखा ॥ ८७ ॥ यकायक उसको देखकर व आकर हर्ष के कौतुक से विह्वल वह भाग्य से प्राप्त घटको मानता हुआ शिर के ऊपर धरकर चला गया ॥ ८८ ॥ शीघ्रता

ततः प्रभृति तौ बालौ मुनिवर्योपदेशतः ॥ प्रदोषे पार्वतीशस्य पूजां चक्रतुरञ्जसा ॥ ८४ ॥ एवं पूजयतोर्देवं द्विजराजकुमारयोः ॥ सुखेनैव व्यतीयाय तयोर्मासचतुष्टयम् ॥ ८५ ॥ कदाचिद्राजपुत्रेण विनासौ द्विजनन्दनः ॥ स्नातुं गतो नदीतीरे चचार बहुलीलया ॥ ८६ ॥ तत्र निर्झरनिर्घातनिर्भिन्ने वप्रकुट्टिमे ॥ निधानकलशं स्थूलं प्रस्फुरन्तं ददर्श ह ॥ ८७ ॥ तं दृष्ट्वा सहसागत्य हर्षकौतुकविह्वलः ॥ दैवोपपन्नं मन्वानो गृहीत्वा शिरसा ययौ ॥ ८८ ॥ ससंभ्रमं समानीय निधानकलशं बलात् ॥ निधाय भवनस्यान्ते मातरं समभाषत ॥ ८९ ॥ मातर्मातरिमं पश्य प्रसादं गिरिजापतेः ॥ निधानं कुम्भरूपेण दर्शितं करुणात्मना ॥ ९० ॥ अथ सा विस्मिता साध्वी समाहूय नृपात्मजम् ॥ स्वपुत्रं प्रतिनन्द्याह मानयन्ती शिवार्चनम् ॥ ९१ ॥ शृणुतां मे वचः पुत्रौ निधानकलशीमिमाम् ॥ समं विभज्य गृह्णीतं मम शासनगौरवात् ॥ ९२ ॥ इति मातुर्वचः श्रुत्वा तुतोष द्विजनन्दनः ॥ प्रत्याह राजपुत्रस्तां विस्रब्धः

समेत ख़ज़ाना के घडे को बलसे लाकर व घर के भीतर धरकर उसने माता से कहा ॥ ८९ ॥ कि हे मातः, हे मातः ! इस शिवजी की प्रसन्नता को देखिये कि दयाचित्तवाले शिवजी ने घडे के स्वरूप से ख़ज़ाना दिखला दिया ॥ ९० ॥ इसके उपरान्त शिवपूजन को मानती हुई विस्मय को प्राप्त उस पतिव्रता द्विजपत्नी ने राजा के पुत्रको बुलाकर अपने पुत्रकी प्रशंसा करके कहा ॥ ९१ ॥ कि हे पुत्रो ! मेरा वचन सुनिये कि इस ख़ज़ाना के घडे को मेरी आज्ञा के गौरव से बराबर बॅाट कर ग्रहण करो ॥ ९२ ॥ इस प्रकार माता का वचन सुनकर ब्राह्मण का पुत्र प्रसन्न हुआ और शिवजी के पूजन में विश्वास करनेवाले राज-

पुत्रने उससे कहा ॥ ९३ ॥ कि हे मातः ! तुम्हारे पुत्रही के पुण्य से प्राप्त ख़ज़ाने को बाँटकर मैं नहीं लेना चाहता हूं ॥ ९४ ॥ क्योंकि अपने पुण्य से पाये हुए ख़ज़ाने को यह आपही भोग करै और वही भगवान् शिवजी मेरे ऊपर कृपा करैंगे ॥ ९५ ॥ इस प्रकार बड़े हर्ष से फिर शिवजी को पूजते हुए उन दोनों का एक वर्ष उसी घरमें व्यतीत होगया ॥ ९६ ॥ इसके उपरान्त वसन्त समय प्राप्त होने पर एक समय उस ब्राह्मण समेत वह राजपुत्र वनके मध्य में विहार करता था ॥ ९७ ॥ इसके बाद वनमें कहीं दूर गये हुए उन द्विजकुमार व राजकुमार ने खेलती हुई सैकड़ों गन्धर्वकन्याओं को देखा ॥ ९८ ॥

शंकरार्चने ॥ ९३ ॥ मातस्तव सुतस्यैव सुकृतेन समागतम् ॥ नाहं ग्रहीतुमिच्छामि विभक्तं धनसंचयम् ॥ ९४ ॥ आत्मनः सुकृताल्लब्धं स्वयमेव भुनक्त्वसौ ॥ स एव भगवानीशः करिष्यति कृपां मयि ॥ ९५ ॥ एवमर्चयतोः शम्भुं भूयोपि परया मुदा ॥ संवत्सरो व्यतीयाय तस्मिन्नेव गृहे तयोः ॥ ९६ ॥ अथैकदा राजसूनुः सह तेन द्विजन्मना ॥ वसन्तसमये प्राप्ते विजहार वनान्तरे ॥ ९७ ॥ अथ दूरं गतौ क्वापि वने द्विजनृपात्मजौ ॥ गन्धर्वकन्याः क्रीडन्तीः शतशस्ता व्यपश्यताम् ॥ ९८ ॥ ताः सर्वाश्चारुसर्वाङ्ग्यो विहरन्त्यो मनोहरम् ॥ दृष्ट्वा द्विजात्मजो दूरादुवाच नृपनन्दनम् ॥ ९९ ॥ इतः पुरो न गन्तव्यं विहरन्त्यग्रतः स्त्रियः ॥ स्त्रीसन्निधानं विबुधास्त्यजन्ति विमलाशयाः ॥ १०० ॥ एताः कैतवकारिण्यो घनयौवनदुर्मदाः ॥ मोहयन्त्यो जनं दृष्ट्वा वाचानुनयकोविदाः ॥ १ ॥ अतः परित्यजेत्स्त्रीणां सन्निधिं सहभाषणम् ॥ निजधर्मरतो विद्वन्ब्रह्मचारी विशेषतः ॥ २ ॥ अतोऽहं नोत्सहे गन्तुं क्रीडास्थानं मृगीदृशाम् ॥ इत्युक्त्वा

व सुन्दरता से खेलती हुई सब सुन्दर अंगोंवाली उन सब स्त्रियों को दूर से देखकर ब्राह्मण के पुत्रने राजपुत्र से कहा ॥ ९९ ॥ कि इसके आगे जाने योग्य नहीं है क्योंकि आगे स्त्रियां विहार करती हैं और निर्मल आशयवाले विद्वान्लोग स्त्री की समीपता को त्याग करते हैं ॥ १०० ॥ क्योंकि ये स्त्रियां छल करनेवाली तथा मेघ के समान चंचल यौवन से गर्वित होती हैं और वचन से समझाने में चतुर व मनुष्य को देखकर मोहित करती हैं ॥ १ ॥ इस कारण अपने धर्म में तत्पर व विशेष कर ब्रह्मचारी स्त्रियों की समीपता व उनके साथ संभाषण को त्याग करै ॥ २ ॥ इसलिये मैं मृगनयनियों के क्रीड़ास्थान को

जाने के लिये उत्साह नहीं करता हूं यह कहकर ब्राह्मण का पुत्र लौट पड़ा व दूर स्थित हुआ ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त कौतुक से संयुत मनवाला यह निर्भय राजपुत्र अकेलाही उन स्त्रियों के विहारस्थान को गया ॥ ४ ॥ वहां गन्धर्वकन्याओं के मध्य में एक स्त्री ने आते हुए राजकुमार को देखकर चित्त से विचार किया ॥ ५ ॥ कि अहो उदार अंग तथा सब सुन्दर अंगोंवाला व मत्त हाथी के समान चालवाला यह सुन्दरतारूपी अमृत का समुद्र कौन ज्वान है ॥ ६ ॥ और लीला से चंचल व विशाल लोचनोंवाला व मधुर मुसक्यान से सुन्दर और कामदेव के समान रूप की लक्ष्मीवाला तथा सुकुमार अंगों के लक्षणवाला यह

द्विजपुत्रस्तु निवृत्तो दूरतः स्थितः ॥ ३ ॥ अथासौ राजपुत्रस्तु कौतुकाविष्टमानसः ॥ तासां विहारपदवीमेक एवाभयो ययौ ॥ ४ ॥ तत्र गन्धर्वकन्यानां मध्ये त्वेका वरानना ॥ दृष्ट्वाऽऽयान्तं राजपुत्रं चिन्तयामास चेतसा ॥ ५ ॥ अहो कोयमुदाराङ्गो युवा सर्वाङ्गसुन्दरः ॥ मत्तमातङ्गगमनो लावण्यामृतवारिधिः ॥ ६ ॥ लीलालोलविशालाक्षो मधुरस्मितपेशलः ॥ मदनोपमरूपश्रीः सुकुमाराङ्गलक्षणः ॥ ७ ॥ इत्याश्चर्ययुता बाला दूराद् दृष्ट्वा नृपात्मजम् ॥ सर्वाः सखीः समालोक्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ इतो विदूरे हे सख्यो वनमस्त्येकमुत्तमम् ॥ विचित्रचम्पकाशोकपुन्नागबकुलैर्युतम् ॥ ९ ॥ तत्र गत्वा वनं सर्वाः संचीय कुसुमोत्करम् ॥ भवत्यः पुनरायान्तु तावत्तिष्ठाम्यहं त्विह ॥ १० ॥ इत्यादिष्टः सखीवर्गो जगाम विपिनान्तरम् ॥ सापि गन्धर्वजा तस्थौ न्यस्तदृष्टिर्नृपात्मजे ॥ ११ ॥ तां समालोक्य तन्वङ्गीं नवयौवनशालिनीम् ॥ बालां स्वरूपसंपत्त्या परिभूततिलोत्तमाम् ॥ १२ ॥ राजपुत्रः समागम्य कौतुकोत्फुल्ललो

कौन है ॥ ७ ॥ इस प्रकार आश्चर्य से संयुत स्त्री ने दूर से राजकुमार को देखकर सब सखियों को देखकर यह वचन कहा ॥ ८ ॥ कि हे सखियो ! यहां से थोड़ी दूर पै विचित्र चंपक, अशोक, पुन्नाग व मौलसिरी के वृक्षों से संयुत एक उत्तम वन है ॥ ९ ॥ वहां वन को जाकर आप सब बहुत पुष्पों को तोडकर फिर आइये तबतक मैं यहां स्थित हूं ॥ १० ॥ इस प्रकार आज्ञा दिया हुआ सखियों का गण वन के मध्य में गया और वह गन्धर्व की कन्या भी राजकुमार में दृष्टि को लगा कर खडी होगई ॥ ११ ॥ अपने रूप की लक्ष्मी से तिलोत्तमा को तिरस्कार करनेवाली व नवीन यौवन से शोभित उस सूक्ष्म अंगोंवाली स्त्री को देखकर ॥ १२ ॥

कौतुक से प्रफुल्लित लोचनोंवाला राजपुत्र आकर दैवयोग से कामदेव के बाण की पीड़ा को प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ और उस गन्धर्व की कन्या ने भी शीघ्रता से उठकर उस प्राप्त राजकुमार के लिये पत्तों का आसन दिया ॥ १४ ॥ व पूजित बैठे हुए उस राजकुमार के समीप प्राप्त होकर उसके रूपके गुणों से ध्वस्त धीरज व विकल इन्द्रियोंवाली उस स्त्री ने पूंछा ॥ १५ ॥ कि हे कमलपत्रलोचन! तुम कौन हो व किस स्थान से यहां आये हो और किसके पुत्र हो इस प्रकार प्रेम से पूंछे हुए उसने सब वृत्तान्त को कहा ॥ १६ ॥ व नष्ट माता, पिता तथा शत्रुवों से हरे हुए स्थानवाले अपना को पराये राज्य में प्राप्त विदर्भनरेश का पुत्र बत-

चनः ॥ अवाप दैवयोगेन मदनस्य शरव्यथाम् ॥ १३ ॥ गन्धर्वतनया सापि प्राप्ताय नृपसूनवे ॥ उत्थाय तरसा तस्मै प्रददौ पल्लवासनम् ॥ १४ ॥ कृतोपचारमासीनं तमासाद्य सुमध्यमा ॥ पप्रच्छ तद्रूपगुणैर्ध्वस्तधैर्याकुलेन्द्रिया ॥ १५ ॥ कस्त्वं कमलपत्राक्ष कस्माद्देशादिहागतः ॥ कस्य पुत्र इति प्रेम्णा पृष्टः सर्वं न्यवेदयत् ॥ १६ ॥ विदर्भराजतनयं विध्वस्तपितृमातृकम् ॥ शत्रुभिश्च हृतस्थानमात्मानं परराष्ट्रगम् ॥ १७ ॥ सर्वमावेद्य भूयस्तां पप्रच्छ नृपनन्दनः ॥ का त्वं वामोरु किं चात्र कार्यं ते कस्य चात्मजा ॥ १८ ॥ किमवध्यायसि हृदा किं वा वक्तुमिहेच्छसि ॥ इत्युक्ता सा पुनः प्राह शृणु राजेन्द्रसत्तम ॥ १९ ॥ अस्त्येको द्रविको नाम गन्धर्वाणां कुलाग्रणीः ॥ तस्याहमस्मि तनया नाम्ना चांशुमती स्मृता ॥ २० ॥ त्वामायान्तं विलोक्याहं त्वत्संभाषणलालसा ॥ त्यक्त्वा सखीजनं सर्वमेकैवास्मि महामते ॥ २१ ॥ सर्वसंगीतविद्यासु न मत्तोऽन्यास्ति काचन ॥ मम योगेन तुष्यन्ति सर्वा अपि

लाया ॥ १७ ॥ व सब कहकर फिर राजकुमार ने उस स्त्री से पूंछा कि हे वामोरु! तुम कौन हो और यहां तुम्हारा क्या कार्य है व तुम किसकी कन्या हो ॥ १८ ॥ और हृदय से तुम क्या ध्यान करती हो व यहा तुम क्या कहना चाहती हो ऐसा कही हुई उसने फिर कहा कि हे नृपेन्द्रसत्तम! सुनिये ॥ १९ ॥ कि गन्धर्बों के वंश में श्रेष्ठ एक द्रविक नामक है मैं उसकी कन्या हूं और अंशुमती मेरा नाम है ॥ २० ॥ हे महामते! तुमको आते हुए देखकर मैं तुम्हारे संभाषण में बडी लालसा किये हू और सब सखीवर्ग को छोडकर अकेली ही हूं ॥ २१ ॥ और सब संगीतविद्याओं में कोई मुझसे अधिक नहीं है व मेरे योग (मिलने) से

सभी देवताओं की स्त्रियां प्रसन्न होती हैं ॥ २२ ॥ सब कलाओं को जाननेवाली वही मैं सब लोगों के मनोरथों को जानती हूं और मैं तुम्हारा अभिलाष जानती हूं कि तुम्हारा मन मुझमें लगा है ॥ २३ ॥ और वैसेही मेरी भी उत्कण्ठा दैव से सिद्ध कीगई है व इसके उपरान्त हम तुम दोनों का स्नेहभेद कम न होगा ॥ २४ ॥ उस राजकुमार से इस प्रकार प्रेम से संभाषण करके उस गन्धर्व की कन्या ने उसके लिये अपने स्तनों का भूषण मुक्ताहार शीघ्रही देदिया ॥ २५ ॥ उस अद्भुतहार को लेकर उसके प्रेम से विकल राजकुमार ने बड़े हर्ष के प्रवाह से सींची हुई गन्धर्वकन्या से यह कहा ॥ २६ ॥ कि हे भीरु ! तुमने सत्य कहा तथापि मैं एक

सुरस्त्रियः ॥ २२ ॥ साहं सर्वकलाभिज्ञा ज्ञातसर्वजनेङ्गिता ॥ तवाहमीप्सितं वेद्मि मयि ते संगतं मनः ॥ २३ ॥ तथा ममापि चौत्सुक्यं दैवेन प्रतिपादितम् ॥ आवयोः स्नेहभेदोऽत्र नाभिभूयादितः परम् ॥ २४ ॥ इति संभाष्य तेनाशु प्रेम्णा गन्धर्वनन्दिनी ॥ मुक्ताहारं ददौ तस्मै स्वकुचान्तरभूषणम् ॥ २५ ॥ तमादायाद्भुतं हारं स तस्याः प्रणयाकुलः ॥ गाढहर्षभरोत्सिक्तामिदमाह नृपात्मजः ॥ २६ ॥ सत्यमुक्तं त्वया भीरु तथाप्येकं वदाम्यहम् ॥ त्यक्तराज्यस्य निःस्वस्य कथं मे भवसि प्रिया ॥ २७ ॥ सात्वं पितृमती बाला विलङ्घ्य पितृशासनम् ॥ स्वच्छन्दाचरणं कर्तुं मूढेव कथमर्हसि ॥ २८ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा तं प्रत्याह शुचिस्मिता ॥ अस्तु नाम तथैवाहं करिष्ये पश्य कौतुकम् ॥ २९ ॥ गच्छ स्वभवनं कान्त परश्वः प्रातरेव तु ॥ आगच्छ पुनरत्रैव कार्यमस्ति च नो मृषा ॥ ३० ॥ इत्युक्त्वा तं नृपसुतं सा संगतसखीजना ॥ अपाक्रामत चार्वङ्गी सचापि नृपनन्दनः ॥ ३१ ॥ स समभ्येत्य हर्षेण द्विजपुत्रस्य

बात कहता हूं कि राज्यरहित मुझ निर्धनी की तुम कैसे स्त्री होगी ॥ २७ ॥ और जीते हुए पितावाली तुम कन्या पिता की आज्ञा को उल्लंघन कर मूर्खिणी की नाईं कैसे अपनी इच्छा के अनुसार आचरण किया चाहती हो ॥ २८ ॥ उस राजकुमार का यह वचन सुनकर पवित्र हास्यवाली उस स्त्री ने उससे कहा कि पिता जीता है परन्तु मैं वैसाही करूंगी तुम कौतुक देखो ॥ २९ ॥ हे कान्त ! अपने घरको जाइये परसों प्रातःकालही फिर यहीं आइयेगा कुछ कार्य है झूठ नहीं है ॥ ३० ॥ उस राजकुमार से यह कहकर सुन्दर अंगोंवाली वह सखीजनों समेत चली गई और वह राजकुमार भी चला गया ॥ ३१ ॥ और वह हर्ष से द्विज-

पुत्रके समीप आकर व सब वृत्तान्त को कहकर उसीके साथ अपने घर को चला गया ॥ ३२ ॥ फिर उस ब्राह्मण की स्त्री को प्रसन्न कराकर तीसरे दिन उस द्विज-कुमार के साथ वनको गया ॥ ३३ ॥ और उस स्त्री से पहले बतलाये हुए स्थान को प्राप्त होकर उस राजकुमार ने अपनी **कन्या समेत** गन्धर्बराज को देखा ॥ ३४ ॥ और उस गन्धर्बराज ने प्राप्त हुए कुमारों को प्रणाम कर व सुन्दर आसन पै बिठा कर राजपुत्र से कहा ॥ ३५ ॥ गन्धर्व बोला कि हे राजेन्द्रपुत्र ! मैं कल कैलास को गया था वहां मैंने पार्वती समेत महादेव स्वामी को देखा ॥ ३६ ॥ और दयारूपी अमृत के समुद्र उन देवेश सदाशिव भगवान् ने सब देवताओं के समीप

सन्निधिम् ॥ सर्वमाख्याय तेनैव सार्धं स्वभवनं ययौ ॥ ३२ ॥ तां च विप्रसतीं भूयो हर्षयित्वा नृपात्मजः ॥ परश्वो द्विजपुत्रेण सार्धं तेन वनं ययौ ॥ ३३ ॥ स तया पूर्वनिर्दिष्टं स्थानं प्राप्य नृपात्मजः ॥ गन्धर्वराजमद्राक्षीत्स्वदुहित्रा समन्वितम् ॥ ३४ ॥ स गन्धर्वपतिः प्राप्तावभिनन्द्य कुमारकौ ॥ उपवेश्यासने रम्ये राजपुत्रमभाषत ॥ ३५ ॥ गन्धर्व उवाच ॥ राजेन्द्रपुत्र पूर्वेद्युः कैलासं गतवानहम् ॥ तत्रापश्यं महादेवं पार्वत्या सहितं प्रभुम् ॥ ३६ ॥ आहूय मां स देवेशः सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् ॥ सन्निधावाह भगवान्करुणामृतवारिधिः ॥ ३७ ॥ धर्मगुप्ताह्वयः कश्चिद्राजपुत्रोऽस्ति भूतले ॥ अकिञ्चनो भ्रष्टराज्यो हृतदेशश्च शत्रुभिः ॥ ३८ ॥ स बालो गुरुवाक्येन मदर्चायां रतः सदा ॥ अद्य तत्पितरः सर्वे मां प्राप्तास्तत्प्रभावतः ॥ ३९ ॥ तस्य त्वमपि साहाय्यं कुरु गन्धर्वसत्तम ॥ अथासौ निजराज्यस्थो हतशत्रुर्भविष्यति ॥ ४० ॥ इत्याज्ञप्तो महेशेन संप्राप्तो निजमन्दिरम् ॥ अनया मद्दुहित्रा च बहुशोऽभ्यर्थितस्तथा ॥ ४१ ॥ ज्ञात्वेमं सकलं

मुझको बुलाकर कहा ॥ ३७ ॥ कि पृथ्वी में धर्म गुप्तनामक कोई राजपुत्र है जो कि अकिंचन (धनरहित) व राज्यविहीन है और शत्रुवों ने उसका देश हर लिया है ॥ ३८ ॥ और वह बालक गुरुके वचन से सदैव मेरे पूजन में परायण है उसके प्रभाव से आज सब उसके पितरलोग मुझको प्राप्त हुए हैं ॥ ३९ ॥ हे गन्धर्वसत्तम ! तुमभी उसकी सहायता करो तो इसके उपरान्त शत्रुवों से रहित यह अपनी राज्य पै स्थित होगा ॥ ४० ॥ शिवजी से इस प्रकार आज्ञा को पाकर मैं अपने घर में प्राप्त हुआ और इस मेरी कन्या ने भी मुझसे वैसीही बहुत प्रार्थना की ॥ ४१ ॥ दयावान् शिवजी की इस सब आज्ञा को जानकर मैं इस कन्या को

लेकर इस वनके बीच में प्राप्त हुआ हूं ॥ ४२ ॥ इस कारण मैं इस अंशुमती कन्या को तुमको देता हूं और शत्रुवों को मारकर मैं तुमको शिवजी की आज्ञा से अपने राज्य पै स्थापित करूंगा ॥ ४३ ॥ व उस नगर में तुम इसके साथ इच्छाके अनुकूल सुखों को भोग कर दश हज़ार वर्षके बाद शिवजीके स्थान को जावोगे ॥ ४४ ॥ वहा भी मेरी यह कन्या इसी दिव्य देहसे शिवजी के समीप तुम्हीं को प्राप्त होगी ॥ ४५ ॥ इस प्रकार गन्धर्वराजने उस राजपुत्र से कह कर उस वन में अपनी कन्याका ब्याह कराया ॥ ४६ ॥ व उसके लिये बड़े उज्ज्वल रत्नभारों को दहेज़ दिया और चन्द्रमा के समान चूडामणि व चमकीले मुक्ताहारोंको दिया ॥ ४७ ॥

शम्भोर्नियोगं करुणात्मनः ॥ आदायेमां दुहितरं प्राप्तोऽस्मीदं वनान्तरम् ॥ ४२ ॥ अत एनां प्रयच्छामि कन्या मंशुमतीं तव ॥ हत्वा शत्रून्स्वराष्ट्रे त्वां स्थापयामि शिवाज्ञया ॥ ४३ ॥ तस्मिन्पुरे त्वमनया भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ दशवर्षसहस्रान्ते गन्तासि गिरिशालयम् ॥ ४४ ॥ तत्रापि मम कन्येयं त्वामेव प्रतिपत्स्यते ॥ अनेनैव स्वदेहेन दिव्येन शिवसन्निधौ ॥ ४५ ॥ इति गन्धर्वराजस्तमाभाष्य नृपनन्दनम् ॥ तस्मिन्वने स्वदुहितुः पाणिग्रहमकारयत् ॥ ४६ ॥ पारिबर्हमदात्तस्मै रत्नभारान्महोज्ज्वलान् ॥ चूडामणिं चन्द्रनिभं मुक्ताहारांश्च भासुरान् ॥ ४७ ॥ दिव्यालङ्कारवासांसि कार्त्तस्वरपरिच्छदान् ॥ गजानामयुतं भूयो नियुतं नीलवाजिनाम् ॥ ४८ ॥ स्यन्दनानां सहस्राणि सौवर्णानि महन्ति च ॥ पुनरेकं रथं दिव्यं धनुश्चेन्द्रायुधोपमम् ॥ ४९ ॥ अस्त्राणां च सहस्राणि तूणी चाक्षय्यसायकौ ॥ अभेद्यं वर्म सौवर्णं शक्तिं च रिपुमर्दिनीम् ॥ ५० ॥ दुहितुः परिचर्यार्थं दासीपञ्चसहस्रकम् ॥ ददौ प्रीत

व दिव्य भूषण, वसन तथा सोने की सामग्री को दिया. फिर दश हज़ार हाथी व एक लाख नील घोड़ों को दिया ॥ ४८ ॥ और बड़े भारी सोने के हज़ारों रथों को दिया फिर एक दिव्य रथ व इन्द्र के वज्र के समान एक धनुप को दिया ॥ ४९ ॥ व हज़ारों अस्त्र और बाण न नाश होनेवाले दो तरकसों को दिया व न कटने योग्य सोने की कवच और शत्रुवों को संहार करनेवाली शक्ति को दिया ॥ ५० ॥ व कन्या की सेवा के लिये पाच हज़ार दासियों को दिया और उस प्रसन्न

...भांति के धनों को दिया ॥ ५१ ॥ फिर उस गंधर्बराज ने उसकी सहाय के लिये बड़ी उग्र चतुरंगिणी गंधर्बसेना को दिया ॥ ५२ ॥ इस प्रकार उत्तम लक्ष्मी को प्राप्त राजेन्द्र का पुत्र प्यारी स्त्री समेत अपनी संपदा से प्रसन्न हुआ ॥ ५३ ॥ और समय के योग्य अपनी कन्या का विवाह कराकर गंधर्बों का राजा विमान पै चढ़कर स्वर्ग को चला गया ॥ ५४ ॥ और विवाह करके धर्मगुप्त ने गंधर्बों की सेना समेत फिर अपने नगर को प्राप्त होकर शत्रुओं की सेना को मारडाला ॥ ५५ ॥ और युद्ध में शक्ति से दुर्धर्षण शत्रु को मारकर शत्रुसेना से रहित राजपुत्र ने अपने नगर में प्रवेश किया ॥ ५६ ॥

मनास्तस्मै धनानि विविधानि च ॥ ५१ ॥ गन्धर्वसैन्यमत्युग्रं चतुरङ्गसमन्वितम् ॥ पुनश्च तत्सहायार्थे गन्धर्वाधिपतिर्ददौ ॥ ५२ ॥ इत्थं राजेन्द्रतनयः संप्राप्तः श्रियमुत्तमाम् ॥ अभीष्टजायासहितो मुमुदे निजसम्पदा ॥ ५३ ॥ कारयित्वा स्वदुहितुर्विवाहं समयोचितम् ॥ ययौ विमानमारुह्य गन्धर्वाधिपतिर्दिवम् ॥ ५४ ॥ धर्मगुप्तः कृतोद्वाहः सह गन्धर्वसेनया ॥ पुनः स्वनगरं प्राप्य जघान रिपुवाहिनीम् ॥ ५५ ॥ दुर्धर्षणं रणे हत्वा शक्त्या गन्धर्वसेनया ॥ निःशेषितारातिबलः प्रविवेश निजं पुरम् ॥५६॥ ततोभिषिक्तः सचिवैर्ब्राह्मणैश्च महोत्तमैः ॥ रत्नसिंहासनारूढश्चक्रे राज्यमकण्टकम् ॥ ५७॥ या विप्रवनिता पूर्वं तमपुष्णात्स्वपुत्रवत् ॥ सैव माताभवत्तस्य स भ्राता द्विजनन्दनः ॥ ५८ ॥ गन्धर्वतनया जाया विदर्भनगरेश्वरः ॥ आराध्य देवं गिरिशं धर्मगुप्तो नृपोऽभवत् ॥ ५९ ॥ एवमन्ये समाराध्य प्रदोषे गिरिजापतिम् ॥ लभन्तेभीप्सितान्कामान्देहान्ते तु परां गतिम् ॥ ६० ॥ सूत उवाच ॥ एतन्महाव्रतं पुण्यं प्रदोषे

तदनन्तर बड़े उत्तम मंत्रियों व ब्राह्मणों से अभिषेक किये व रत्नसिंहासन पै बैठे हुए राजपुत्र ने निष्कण्टक राज्य किया ॥ ५७ ॥ और जिस विप्रकी स्त्री ने पहले उसको अपने पुत्र की नाई पालन किया था वही उसकी माता हुई और वह ब्राह्मण का पुत्र भाई हुआ ॥ ५८ ॥ और गंधर्ब की कन्या स्त्री हुई व विदर्भ देश का स्वामी धर्मगुप्त शिवदेवजी को आराधन कर राजा हुआ ॥ ५९ ॥ इस प्रकार अन्य मनुष्य प्रदोष में सदाशिवजी को आराधन कर चाहे हुए मनोरथों को पाते हैं व शरीर के अन्त में उत्तम गति को पाते हैं ॥ ६० ॥ सूतजी बोले कि प्रदोष में शिवजी का पूजन यह पवित्र महाव्रत है जो यह कि धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष

का उत्तम साधन है ॥ ६१ ॥ सावधान होकर जो मनुष्य इस बड़े अद्भुत व पवित्र माहात्म्य को प्रदोष में शिवपूजन के अन्त में सुनता या कहता है ॥ ६२ ॥ सैकड़ों जन्मों में भी उसके दरिद्रता नहीं होती है और ज्ञान के ऐश्वर्य से संयुत वह अन्त में शिवलोक को जाता है ॥ ६३ ॥ जो मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ शरीर को पाकर शिवजी के चरणों का पूजन करते हैं अपने पुण्य से त्रिलोक को जीतनेवाले वे धन्य हैं और उनके चरणकमलों की धूलि संसार को पवित्र करती है ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकाया प्रदोषमहिमावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥

शङ्करार्चनम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां यदेतत्साधनं परम् ॥ ६१ ॥ य एतच्छृणुयात्पुण्यं माहात्म्यं परमाद्भुतम् ॥ प्रदोषे शिवपूजान्ते कथयेद्वा समाहितः ॥ ६२ ॥ भवेन्न तस्य दारिद्र्यं जन्मान्तरशतेष्वपि ॥ ज्ञानैश्वर्यसमायुक्तः सोन्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥ ६३ ॥ ये प्राप्य दुर्लभतरं मनुजाः शरीरं कुर्वन्ति हन्त परमेश्वरपादपूजाम् ॥ धन्यास्त एव निजपुण्यजितत्रिलोकास्तेषां पदाम्बुजरजो भुवनं पुनाति ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे प्रदोषमहिमावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ नित्यानन्दमयं शान्तं निर्विकल्पं निरामयम् ॥ शिवतत्त्वमनाद्यन्तं ये विदुस्ते परं गताः ॥ १ ॥ विरक्ताः कामभोगेभ्यो ये प्रकुर्वन्त्यहैतुकीम् ॥ भक्तिं परां शिवे धीरास्तेषां मुक्तिर्न संसृतिः ॥ २ ॥ विषयानभिसंधाय ये कुर्वन्ति शिवे रतिम् ॥ विषयैर्नाभिभूयन्ते भुञ्जानास्तत्फलान्यपि ॥ ३ ॥ येन केनापि भावेन शिवभक्ति

दो० । पायो जिमि निजमृतपतिहिं सीमतिनि नृप नारि । सो अष्टम अध्याय में कह्यो कथा सुखकारि ॥ सूतजी बोले कि सदैव आनन्दमय व शान्त तथा विकल्परहित व व्याधिहीन और आदि अन्त से रहित शिवतत्त्व को जो जानते हैं वे उत्तम स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ व कामनाओं के सुखों से विरक्त जो विद्वान् मनुष्य शिवजी में फलाभिसन्धानरहित भक्ति करते हैं उनकी मुक्ति होती है जन्म व मरण नहीं होता है ॥ २ ॥ और विषयों (कामनाओं) की इच्छा करके जो मनुष्य शिवजी में स्नेह करते हैं उनके फलों को भोगते हुए मनुष्य विषयों से तिरस्कृत नहीं होते हैं ॥ ३ ॥ जिस किसी भी भाव से शिव-

भक्तिसंयुत मनुष्य काल से नाश नहीं होता है और वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ उत्तम स्थान को प्राप्त होने की इच्छावाला व विषयों में जिसका मन लगा है वह कर्म से शिवजी को पूजै तो सुखों के अन्त में शिवजी को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ विषयवासना को छोड़ने के लिये प्रायः कोई भी मनुष्य समर्थ नहीं होता है इस कारण कर्ममयी पूजा मनुष्यों को कामधेनु है ॥ ६ ॥ मायामय संसार में जो मनुष्य बहुत समय तक सुखपूर्वक विहार करके मुक्ति चाहते हैं शरीर के अन्त में उनका यह धर्म कहा गया है ॥ ७ ॥ संसार में शिवजी का पूजन स्वर्ग व मोक्ष का कारण है और प्रदोषादि गुणों से संयुत सोमवार में

युतो नरः ॥ न विनश्यति कालेन स याति परमां गतिम् ॥ ४ ॥ आरुरुक्षुः परं स्थानं विषयासक्तमानसः ॥ पूजये त्कर्मणा शम्भुं भोगान्ते शिवमाप्नुयात् ॥ ५ ॥ अशक्तः कश्चिदुत्स्रष्टुं प्रायो विषयवासनाम् ॥ अतः कर्ममयी पूजा कामधेनुः शरीरिणाम् ॥ ६ ॥ मायामयेपि संसारे ये विहृत्य चिरं सुखम् ॥ मुक्तिमिच्छन्ति देहान्ते तेषां धर्मो यमीरितः ॥ ७ ॥ शिवपूजा सदा लोके हेतुः स्वर्गापवर्गयोः ॥ सोमवारे विशेषेण प्रदोषादिगुणान्विते ॥ ८ ॥ केव लेनापि ये कुर्युः सोमवारे शिवार्चनम् ॥ न तेषां विद्यते किञ्चिदिहामुत्र च दुर्लभम् ॥ ९ ॥ उपोषितः शुचिर्भूत्वा सोमवारे जितेन्द्रियः ॥ वैदिकैर्लौकिकैर्वापि विधिवत्पूजयेच्छिवम् ॥ १० ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थो वा कन्या वापि सभ र्तृका ॥ विभर्तृका वा संपूज्य लभते वरमीप्सितम् ॥ ११ ॥ अत्राहं कथयिष्यामि कथां श्रोतृमनोहराम् ॥ श्रुत्वा मुक्तिं प्रयान्त्येव भक्तिर्भवति शाम्भवी ॥ १२ ॥ आर्यावर्ते नृपः कश्चिदासीद्धर्मभृतां वरः ॥ चित्रवर्मेति विख्यातो

विशेषकर है ॥ ८ ॥ व जो मनुष्य केवल सोमवार में शिवजी का पूजन करते हैं उनको इस लोक व परलोक में कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ ९ ॥ और सोमवार में उपासकर जो जितेन्द्रिय मनुष्य पवित्र होकर विधिपूर्वक वैदिक व लौकिक मंत्रों से शिवजी को पूजता है ॥ १० ॥ और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, कन्या व पति समेत या पतिरहित स्त्री शिवजी को भली भांति पूजकर चाहे हुए वर को पाती है ॥ ११ ॥ इस विषय में मैं सुननेवालों के मनको हरनेवाली कथा को कहूंगा जिसको सुनकर मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होते हैं और शिवजी की भक्ति होती है ॥ १२ ॥ आर्यावर्त देश में धर्मधारियों में श्रेष्ठ कोई चित्रवर्मा ऐसा प्रसिद्ध राजा हुआ है

जो कि दुष्टों के लिये यमराज था ॥ १३ ॥ और वह धर्मसेतुवों का रक्षक तथा कुपथगामियों को दण्डदायक व यज्ञों को करनेवाला और शरणार्थियों का रक्षक था ॥ १४ ॥ और सब पुण्यों को करनेवाला व सब संपदाओं को देनेवाला तथा शत्रुगणों को जीतनेवाला व शिव और विष्णुजी का भक्त था ॥ १५ ॥ और उस राजा ने अपने अनुसार स्त्रियों में बड़े पराक्रमी पुत्रों को पाकर बहुत दिनों से चाहीहुई एक सुन्दरी कन्या को पाया ॥ १६ ॥ जैसे हिमाचल ने पार्वती को पाया है वैसेही उसने कन्या को पाकर अपना को देवताओं के समान पूर्णमनोरथवान् माना ॥ १७ ॥ एक समय उत्पत्तिवाले के लक्षणों को जाननेवाले

धर्मराजो दुरात्मनाम् ॥ १३ ॥ स गोप्ता धर्मसेतूनां शास्ता दुष्पथगामिनाम् ॥ यष्टा समस्तयज्ञानां त्राता शरणमिच्छताम् ॥ १४ ॥ कर्ता सकलपुण्यानां दाता सकलसम्पदाम् ॥ जेता सपत्नवृन्दानां भक्तः शिवमुकुन्दयोः ॥ १५ ॥ सोनुकूलासु पत्नीषु लब्ध्वा पुत्रान्महौजसः ॥ चिरेण प्रार्थितां लेभे कन्यामेकां वराननाम् ॥ १६ ॥ स लब्ध्वा तनयां इष्टां हिमवानिव पार्वतीम् ॥ आत्मानं देवसदृशं मेने पूर्णमनोरथम् ॥ १७ ॥ स एकदा जातकलक्षणज्ञानाहूय साधून्द्विजमुख्यवृन्दान् ॥ कुतूहलेनाभिनिविष्टचेताः पप्रच्छ कन्याजनने फलानि ॥ १८ ॥ अथ तत्राब्रवीदेको बहुज्ञो द्विजसत्तमः ॥ एषा सीमन्तिनी नाम्ना कन्या तव महीपते ॥ १९ ॥ उमेव माङ्गल्यवती दमयन्तीव रूपिणी ॥ भारतीव कलाभिज्ञा लक्ष्मीरिव महागुणा ॥ २० ॥ सुप्रजा देवमातेव जानकीव धृतव्रता ॥ रविप्रभेव सत्कान्तिश्चन्द्रिकेव मनोरमा ॥ २१ ॥ दशवर्षसहस्राणि सह भर्त्रा प्रमोदते ॥ प्रसूय तनयानष्टौ परं सुख

उत्तम मुख्य द्विजगणों को बुलाकर कौतुक आवेश चित्तवाले उस राजा ने कन्या के उत्पन्न होने में फलों को पूंछा ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त वहां बहुत जाननेवाले एक उत्तम ब्राह्मण ने कहा कि हे भूपते ! यह सीमंतिनी नामक तुम्हारी कन्या ॥ १९ ॥ पार्वती की नाईं मांगल्यवती व दमयंती की नाईं रूपवती होगी और सरस्वती की नाईं कलाओं को जाननेवाली व लक्ष्मी की नाईं महागुणवती होगी ॥ २० ॥ और अदिति की नाईं उत्तम सन्तानवाली तथा जानकी की नाईं व्रतको धारनेवाली व सूर्य की प्रभाके समान उत्तम कान्तिमती और चन्द्रमा के प्रकाश की नाईं सुन्दरी होगी ॥ २१ ॥ और दश हज़ार वर्ष तक

पतिके साथ आनन्द करैगी व आठ पुत्रोंको उत्पन्न करके उत्तम सुखको पावैगी ॥ २२ ॥ यह कहनेवाले उस ब्राह्मण को धनों से पूजकर राजाने उसके वचनरूपी अमृतके सेवन से उत्तम प्रीति को पाया ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त अमित शोभावाले अन्य भी धैर्यवान् ब्राह्मण ने कहा कि यह चौदहवें वर्ष में वैधव्यता को प्राप्त होगी ॥ २४ ॥ वज्र की चोट के समान कठोर ऐसा उस ब्राह्मण का वचन सुनकर राजा थोड़ी देर तक चिन्ता से विकलमनवाला हुआ ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त सब ब्राह्मणों को बिदा करके वह द्विजप्रिय राजा सब भाग्यकृत जानकर चिन्तारहित हुआ ॥ २६ ॥ और क्रम से व्यतीत अवस्थावाली उस सीमंतिनी कन्या ने

मवाप्स्यति ॥ २२ ॥ इत्युक्तवन्तं नृपतिर्धनैः संपूज्य तं द्विजम् ॥ अवाप परमां प्रीतिं तद्वागमृतसेवया ॥ २३ ॥ अथान्योऽपि द्विजः प्राह धैर्यवानमितद्युतिः ॥ एषा चतुर्दशे वर्षे वैधव्यं प्रतिपत्स्यति ॥ २४ ॥ इत्याकर्ण्य वच स्तस्य वज्रनिर्घातनिष्ठुरम् ॥ मुहूर्तमभवद्राजा चिन्ताव्याकुलमानसः ॥ २५ ॥ अथ सर्वान्समुत्सृज्य ब्राह्मणा न्ब्रह्मवत्सलः ॥ सर्वं दैवकृतं मत्वा निश्चिन्तः पार्थिवोऽभवत् ॥ २६ ॥ सापि सीमन्तिनी बाला क्रमेणगतशैशवा ॥ वैधव्यमात्मनो भावि शुश्रावात्मसखीमुखात् ॥ २७ ॥ परं निर्वेदमापन्ना चिन्तयामास बालिका ॥ याज्ञ वल्क्यमुनेः पत्नीं मैत्रेयीं पर्यपृच्छत ॥ २८ ॥ मातस्त्वच्चरणाम्भोजं प्रपन्नास्मि भयाकुला ॥ सौभाग्यवर्द्धनं कर्म मम शंसितुमर्हसि ॥ २९ ॥ इति प्रपन्नां नृपतेः कन्यां प्राह मुनेः सती ॥ शरणं व्रज तन्वङ्गि पार्वतीं शिवसंयुता म् ॥ ३० ॥ सोमवारे शिवं गौरीं पूजयस्व समाहिता ॥ उपोषिता वा सुस्नाता विरजाम्बरधारिणी ॥ ३१ ॥ यत

अपनी सखी के मुख से अपनी होनेवाली विधवता को सुना ॥ २७ ॥ व बड़े वैराग्य को प्राप्त कन्या ने चिन्तन किया और याज्ञवल्क्यमुनि की मैत्रेयी स्त्री से पूंछा ॥ २८ ॥ कि हे मातः ! भय से विकल मैं तुम्हारे चरणकमल में प्राप्त हूं मुझ से तुम सौभाग्य बढ़ानेवाले कर्मको कहने के योग्य हो ॥ २९ ॥ इस प्रकार शरण में प्राप्त राजा की कन्या से मुनि की स्त्री ने कहा कि हे तन्वंगि ! शिव समेत पार्वतीजी की शरण में जावो ॥ ३० ॥ और उपास करके नहाकर निर्मल वस्त्रों को धारण करके सावधान होती हुई तुम सोमवार में शिव व पार्वतीजी को पूजो ॥ ३१ ॥ और मौन होकर स्वस्थमनवाली तुम यथायोग्य पूजन करके

ब्राह्मणों को भोजन कराकर शिवजी को भलीभाति प्रसन्न करो ॥ ३२ ॥ अभिषेकसे पाप का नाश होताहै व पीठपूजन से चक्रवर्तित्व होता हैं और चन्दन, माला व अक्षतों के चढ़ाने से सौभाग्य व सब सुख मिलता है ॥ ३३ ॥ धूपदान से सुगन्धित और दीपदानसे कान्ति होती है व नैवेद्यों से महासुख और ताम्बूल देने से लक्ष्मी होती है ॥ ३४ ॥ और प्रणाम करने से धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष होता है और आठ ऐश्वर्यादिक सिद्धियों का जप ही कारण है ॥ ३५ ॥ और होम से सब कामनाओं की समृद्धि होती है व ब्राह्मणों के भोजन से सबही देवताओं की प्रसन्नता होती है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार सोमवार में महादेव व पार्वती को भी आरा-

प्राङ्निश्चलमनाः पूजां कृत्वा यथोचिताम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वाथ शिवं सम्यक्प्रसादय ॥ ३२ ॥ पापक्षयोऽभिषेकेण साम्राज्यं पीठपूजनात् ॥ सौभाग्यमखिलं सौख्यं गन्धमाल्याक्षतार्पणात् ॥ ३३ ॥ धूपदानेन सौगन्ध्यं कान्तिर्दीपप्रदानतः ॥ नैवेद्यैश्च महाभोगो लक्ष्मीस्ताम्बूलदानतः ॥ ३४ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाश्च नमस्कारप्रदानतः ॥ अष्टैश्वर्यादिसिद्धीनां जप एव हि कारणम् ॥ ३५ ॥ होमेन सर्वकामानां समृद्धिरुपजायते ॥ सर्वेषामेव देवानां तुष्टिर्ब्राह्मणभोजनात् ॥ ३६ ॥ इत्थमाराधय शिवं सोमवारे शिवामपि ॥ अत्यापदमपि प्राप्ता निस्तीर्णाभिभवा भवेः ॥ ३७ ॥ घोराद्घोरं प्रपन्नापि महाक्लेशं भयानकम् ॥ शिवपूजाप्रभावेण तरिष्यसि महद्भयम् ॥ ३८ ॥ इत्थं सीमन्तिनीं सम्यगनुशास्य पुनः सती ॥ ययौ सापि वरारोहा राजपुत्री तथाऽकरोत् ॥ ३९ ॥ दमयन्त्यां नलस्यासीदिन्द्रसेनाभिधः सुतः ॥ तस्य चन्द्राङ्गदो नाम पुत्रोभूच्चन्द्रसन्निभः ॥ ४० ॥ चित्रवर्मा नृपश्रेष्ठस्तमाहूय नृपा

धन करो तो बड़ी विपत्ति में भी प्राप्त तुम दुःख को उतर जावोगी ॥ ३७ ॥ घोर से भी घोर बडे भारी भयंकर क्लेश को प्राप्त भी तुम शिवपूजन के प्रभाव से बड़े भय को नाँघ जावोगी ॥ ३८ ॥ इस प्रकार सीमंतिनी से भली भाति कहकर वह मुनि की स्त्री चली गई और उस राजा की कन्या ने भी वैसाही किया ॥ ३९ ॥ नल के दमयन्ती स्त्री में इन्द्रसेन नामक पुत्र हुआ है उसके चन्द्राङ्गद नामक पुत्र चन्द्रमा के समान हुआ है ॥ ४० ॥ चित्रवर्मा नामक श्रेष्ठ राजा ने उस राज-

कुमार को बुलाकर गुरु की आज्ञा से उसके लिये सीमंतिनी नामक कन्या को दिया ॥ ४१ ॥ और उसके उस विवाह कर्म में वह बडाभारी उत्सव हुआ जहां कि सब राजाओं का बडा भारी समाज हुआ ॥ ४२ ॥ और समय में उसका व्याह करके प्रवीण चन्द्राङ्गद ने वहीं श्वशुर के घरमें कुछ महीनो तक निवास किया ॥ ४३ ॥ एक समय वह बलवान् राजपुत्र कितेक मित्रों समेत लीला से यमुना को उतरने के लिये नाव पै सवार हुआ ॥ ४४ ॥ जब वह राजपुत्र यमुना को उतरने लगा तब दैव के वश से भँवर से ताडित नाव निषादों समेत डूबगई ॥ ४५ ॥ और उसके दोनों किनारों पै सब सेनालोगों के देखते हुए बड़ाभारी हाहा

त्मजम् ॥ कन्यां सीमन्तिनीं तस्मै प्रायच्छद् गुर्वनुज्ञया ॥ ४१ ॥ सोऽभून्महोत्सवस्तत्र तस्या उद्वाहकर्मणि ॥ यत्र सर्वमहीपानां समवायो महानभूत् ॥ ४२ ॥ तस्याःपाणिग्रहं काले कृत्वा चन्द्राङ्गदः कृती ॥ उवास कतिचि न्मासांस्तत्रैव श्वशुरालये ॥ ४३ ॥ एकदा यमुनां तर्तुं स राजतनयो बली ॥ आरुरोह तरीं कैश्चिद्वयस्यैः सह लील या ॥ ४४ ॥ तस्मिंस्तरति कालिन्दीं राजपुत्रे विधेर्वशात् ॥ ममज्ज सह कैवर्तैरावर्त्ताभिहता तरी ॥ ४५ ॥ हा हेति शब्दः सुमहानासीत्तस्यास्तटद्वये ॥ पश्यतां सर्वसैन्यानां प्रलापो दिवमस्पृशत् ॥ ४६ ॥ मज्जन्तो मम्रिरे केचित्केचिद्ग्राहो दरं गताः ॥ राजपुत्रादयः केचिन्नादृश्यन्त महाजले ॥ ४७ ॥ तदुपश्रुत्य राजापि चित्रवर्मातिविह्वलः ॥ यमुना यास्तटं प्राप्य विचेष्टः समजायत ॥ ४८ ॥ श्रुत्वाथ राजपत्न्यश्च बभूवुर्गतचेतनाः ॥ सा च सीमन्तिनी श्रुत्वा पपात भुवि मूर्च्छिता ॥ ४९ ॥ तथान्ये मन्त्रिमुख्याश्च नायकाः सपुरोहिताः ॥ विह्वलाः शोकसन्तप्ता विलेपुर्मु

कार शब्द हुआ और विलाप के शब्द ने आकाश को स्पर्श किया ॥ ४६ ॥ डूबते हुए कितेक लोग मरगये व कोई ग्राह के पेट में प्राप्त हुए और कोई राजपुत्रादिक महाजल में न देख पड़े ॥ ४७ ॥ उसको सुनकर चित्रवर्मा राजा भी बहुत विह्वल हुआ और यमुनाके किनारे प्राप्त होकर मूर्च्छित होगया ॥ ४८ ॥ इसके उपरान्त राजाकी स्त्रियां सुनकर चैतन्यतारहित होगईं और वह सीमंतिनी सुनकर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पै गिरपड़ी ॥ ४९ ॥ और अन्य मुख्य मंत्री व पुरोहित समेत शोकसे

संतप्त नायक लोग विह्वल व मुक्तकेश होकर विलाप करने लगे ॥ ५० ॥ और इन्द्रसेन राजा भी पुत्र की वार्त्ता को सुनकर दुःखित हुआ व स्त्रियों समेत मूर्च्छित होकर गिरपडा ॥ ५१ ॥ और उसके मंत्री व उनके पुरवासी तथा उस देश के निवासी लोग बालक, वृद्ध व स्त्रियां आदिक सब शोक से विकल होकर रोने लगे ॥ ५२ ॥ शोक से कोई छाती पीटने लगे व कोई शिर पीटने लगे और हा राजपुत्र ! हा तात ! कहा हो कहां हो यह कहकर घूमने लगे ॥ ५३ ॥ इस प्रकार इन्द्रसेन राजा का शोक से विकल व उदासीन नगर यकायक क्षोभित हुआ व चित्रवर्मा राजा का नगर यकायक क्षोभित होगया ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त वृद्धों

क्तमूर्धजाः ॥५०॥ इन्द्रसेनोपि राजेन्द्रः पुत्रवार्त्तां सुदुःखितः ॥ आकर्ण्य सहपत्नीभिर्नष्टसंज्ञः पपात ह ॥५१॥ तन्मन्त्रिणश्च तत्पौरास्तथा तद्देशवासिनः ॥ आबालवृद्धवनिताश्चुक्रुशुः शोकविह्वलाः ॥ ५२ ॥ शोकात्केचिदुरो जघ्नुः शिरो जघ्नुश्च केचन ॥ हा राजपुत्र हा तात कासि कासीति बभ्रमुः ॥५३॥ एवं शोकाकुलं दीनमिन्द्रसेनमहीपतेः ॥ नगरं सहसा क्षुब्धं चित्रवर्मपुरं तथा ॥ ५४॥ अथ वृद्धैः समाश्वस्तश्चित्रवर्मा महीपतिः ॥ शनैर्नगरमागत्य सान्त्वयामास चात्मजाम् ॥ ५५ ॥ स राजाम्भसि मग्नस्य जामातुस्तस्य बान्धवैः ॥ आगतैः कारयामास साकल्यादौर्ध्वदैहिकम् ॥ ५६ ॥ सा च सीमन्तिनी साध्वी भर्तृलोकमतिः सती ॥ पित्रा निषिद्धा स्नेहेन वैधव्यं प्रत्यपद्यत ॥ ५७ ॥ मुनेः पत्न्योऽपदिष्टं यत्सोमवारव्रतं शुभम् ॥ न तत्याज शुभाचारा वैधव्यं प्राप्तवत्यपि ॥ ५८ ॥ एवं चतुर्दशे वर्षे दुःखं प्राप्य सुदारुणम् ॥ ध्यायन्ती शिवपादाब्जं वत्सरत्रयमत्यगात् ॥ ५९ ॥ पुत्रशोकादिवोन्मत्तमिन्द्रसेनं मही

से समझाये हुए चित्रवर्मा राजाने धीरे धीरे नगर को आकर कन्या को समझाया ॥ ५५ ॥ और उस राजा ने जल में डूबेहुए दामाद का प्रेतकर्म आये हुए उसके भाइयों से संपूर्णता से करवाया ॥ ५६ ॥ और पतिलोक में बुद्धिवाली उस पतिव्रता सीमंतिनी को पिता ने स्नेह से मना किया और वह वैधव्यता को प्राप्त हुई ॥ ५७ ॥ और मुनि की स्त्री ने जो उत्तम सोमवार का व्रत बतलाया था विधवापन को प्राप्त भी उत्तम आचारवाली सीमंतिनी ने उसको नहीं छोड़ा ॥ ५८ ॥ इस प्रकार चौदहवें वर्ष में बड़ा दारुण दुःख पाकर शिवजी के चरणकमलों को ध्यान करती हुई उसने तीन वर्षों को व्यतीत किया ॥ ५९ ॥ और पुत्र के शोक

से उन्मत्त की नाईं इन्द्रसेन राजा को बल से दबाकर उसके भाइयों ने पराक्रम से राज्य को हरलिया ॥ ६० ॥ और वीर भाइयों ने सिंहासन को हरकर उस सन्तानहीन राजा को पकड़कर स्त्री समेत बन्दीगृह में डाल दिया ॥ ६१ ॥ और यमुनाजल में डूबे हुए उसके पुत्र इस चन्द्राङ्गद ने नीचे नीचे डूबते हुए नागनारियों को देखा ॥ ६२ ॥ और जलक्रीडा में लगी हुई वे विस्मित नागस्त्रियां उस राजपुत्र को देखकर पाताल को लेगईं ॥ ६३ ॥ नागिनियों से वेग से लिये जाते हुए उस राजकुमार ने बड़े अद्भुत व सुन्दर नाग के नगर में प्रवेश किया ॥ ६४ ॥ और उस राजपुत्रने महारत्नों की सब ओर चमकती हुई किरणों

पतिम् ॥ प्रसह्य तस्य दायादाः सप्ताङ्गं जहुरोजसा ॥ ६० ॥ हृतसिंहासनः शूरैर्दायादैः सोऽप्रजो नृपः ॥ निगृह्य काराभवने सपत्नीको निवेशितः ॥ ६१ ॥ चन्द्राङ्गदोऽपि तत्पुत्रो निमग्नो यमुनाजले ॥ अधोधोमज्जमानोऽसौ ददर्शोरगकामिनीः ॥ ६२ ॥ जलक्रीडासु सक्तास्ता दृष्ट्वा राजकुमारकम् ॥ विस्मितास्तमथो निन्युः पातालं पन्नगालयम् ॥ ६३ ॥ स नीयमानस्तरसा पन्नगीभिर्नृपात्मजः ॥ तक्षकस्य पुरं रम्यं विवेश परमाद्भुतम् ॥ ६४ ॥ सोऽपश्यद्राजतनयो महेन्द्रभवनोपमम् ॥ महारत्नपरिभ्राजन्मयूखपरिदीपितम् ॥ ६५ ॥ वज्रविद्रुमवैडूर्यप्रासादशतसङ्कुलम् ॥ माणिक्यगोपुरद्वारं मुक्तादामभिरुज्ज्वलम् ॥ ६६ ॥ चन्द्रकान्तस्थलं रम्यं हेमद्वारकपाटकम् ॥ अनेकशतसाहस्रमणिदीपविराजितम् ॥ ६७ ॥ तत्रापश्यत्सभामध्ये निषण्णं रत्नविष्टरे ॥ तक्षकं पन्नगाधीशं फणानेकशतोज्ज्वलम् ॥ ६८ ॥ दिव्याम्बरधरं दीप्तं रत्नकुण्डलराजितम् ॥ नानारत्नपरिक्षिप्तमुकुटद्युतिरञ्जितम् ॥ ६९ ॥ फणा

से प्रकाशित व इन्द्रमन्दिर के समान घरको देखा ॥ ६५ ॥ और हीरा, मूंगा व वैडूर्यादिक मणियों से बनेहुए सैकड़ों मन्दिरों से संयुत और मोतियों की झालर से उज्ज्वल नगर के द्वारको देखा ॥ ६६ ॥ और मनोहर चन्द्रकान्तमणि की भूमि व सुवर्ण के द्वार व कपाट को देखा व अनेक लक्ष मणिरूपी दीपों से शोभित स्थान को देखा ॥ ६७ ॥ वहां सभा के मध्य में रत्नों के आसन पै बैठे हुए अनेक सौ फणाओं से उज्ज्वल सर्पराज तक्षक को देखा ॥ ६८ ॥ जोकि दिव्य वसनों को धारण किये व प्रकाशित तथा रत्नों के कुडलों से शोभित और अनेक भांति के रत्नों से जडेहुए मुकुट की छवि से रँगे थे ॥ ६९ ॥ और विचित्र रत्नों से भूषित

तथा फणकी मणियों की किरणोंसे संयुत थ हाथों को जोड़ेहुए असंख्य उत्तम सर्प उनकी सेवा करते थे ॥ ७० ॥ और रूप व यौवन की मधुरता तथा विलास की गति से शोभित हजारों नागकन्या सब ओर से घेरे थीं ॥ ७१ ॥ और दिव्य आभूषणों से प्रकाशित अंगोंवाले तथा दिव्य चन्दन से पूजित व कालाग्नि के समान दुर्धर्ष व तेजसे सूर्यनारायण के समान तक्षक को ॥ ७२ ॥ बुद्धिमान् राजपुत्र सभा के स्थानमें देखकर प्रणामकर हाथों को जोड़कर उठकर खड़ा हुआ और उस तक्षक के तेजसे राजकुमार के नेत्र चकचौंधे होगये ॥ ७३ ॥ और नागराज ने भी उस सुन्दर राजपुत्र को देखकर नागिनियों से यह पूंछा कि यह कौन है

मणिमयूखाढ्यैरसंख्यैः पन्नगोत्तमैः ॥ उपासितं प्राञ्जलिभिश्चित्ररत्नविभूषितैः ॥ ७० ॥ रूपयौवनमाधुर्यविला सगतिशोभिना ॥ नागकन्यासहस्रेण समन्तात्परिवारितम् ॥ ७१ ॥ दिव्याभरणदीप्ताङ्गं दिव्यचन्दनचर्चितम् ॥ कालाग्निमिव दुर्धर्षं तेजसादित्यसन्निभम् ॥ ७२ ॥ दृष्ट्वा राजसुतो धीरः प्रणिपत्य सभास्थले ॥ उत्थितः प्राञ्जलि स्तस्य तेजसाक्षिप्तलोचनः ॥ ७३ ॥ नागराजोपि तं दृष्ट्वा राजपुत्रं मनोरमम् ॥ कोऽयं कस्मादिहायात इति पप्रच्छ पन्नगीः ॥ ७४ ॥ ता ऊचुर्यमुनातोये दृष्टोऽस्माभिर्यदृच्छया ॥ अज्ञातकुलनामायमानीतस्तव सन्निधिम् ॥ ७५ ॥ अथ पृष्टो राजपुत्रस्तक्षकेण महात्मना ॥ कस्यासि तनयः कस्त्वं को देशः कथमागतः ॥ ७६ ॥ राजपुत्रो वचः श्रुत्वा तक्षकं वाक्यमब्रवीत् ॥ ७७ ॥ राजपुत्र उवाच ॥ अस्ति भूमण्डले कश्चिद्देशो निषधसंज्ञकः ॥ तस्याधिपोऽभ वद्राजा नलो नाम महायशाः ॥ स पुण्यकीर्त्तिः क्षितिपो दमयन्तीपतिः शुभः ॥ ७८ ॥ तस्मादपीन्द्रसेनाख्यस्तस्य

और कहांसे यहां आया है ॥ ७४ ॥ उन नागिनियों ने कहा कि कुल व नाम न जाने हुए इस राजकुमार को हम सबोंने यमुनाजी के जलमें देखा था और इसको हम तुम्हारे समीप ले आई हैं ॥ ७५ ॥ इसके उपरान्त महात्मा तक्षक ने राजपुत्र से पूंछा कि तुम किसके पुत्र हो व तुम्हारा कौन देश है और तुम कैसे आये हो ॥ ७६ ॥ राजपुत्रने वचन को सुनकर तक्षक से यह वचन कहा ॥ ७७ ॥ राजपुत्र बोला कि पृथ्वीमंडल में कोई निषधसंज्ञक देश है उसका स्वामी नलनामक बड़ा यशस्वी हुआ है और दमयन्ती का पति वह पवित्र यशवाला राजा उत्तम था ॥ ७८ ॥ व उसके भी इन्द्रसेननामक पुत्र हुआ है उसका पुत्र मैं चन्द्राङ्गद

नामक बड़ा बलवान् हूं व ब्याह करके मैं श्वशुर के घरमें था और यमुनाजल में विहार करताहुआ दैवसे प्रेरित मैं डूबगया ॥ ७६ ॥ और ये नागस्त्रियां मुझको तुम्हारे समीप लेआई हैं अन्य जन्मों में इकट्ठा कियेहुए पुण्योंसे मैं तुम्हारे चरणकमल को देखकर ॥ ८० ॥ आज धन्य हूं धन्य हूं और मेरे पितर कृतार्थ होगये क्योंकि तुमने दयासे मुझको देखा व वार्त्तालाप किया ॥ ८१ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार उदार व अतिसुन्दर तथा सीधे वचन को सुनकर फिर तक्षक ने उत्कण्ठा से राजपुत्र से कहा ॥ ८२ ॥ तक्षक बोला कि हे हे नरेन्द्रपुत्र ! मत डरो धीरज धरो और सब देवताओं में किसको तुम सदैव पूजते हो ॥ ८३ ॥

पुत्रो महाबलः ॥ चन्द्राङ्गदोस्मि नाम्नाहं नवोढः श्वशुरालये ॥ विहरन्यमुनातोये निमग्नो दैवचोदितः ॥ ७६ ॥ एताभिः पन्नगस्त्रीभिरानीतोस्मि तवान्तिकम् ॥ दृष्ट्वाहं तव पादाब्जं पुण्यैर्जन्मान्तरार्जितैः ॥ ८० ॥ अद्य धन्योऽस्मि धन्योऽस्मि कृतार्थौ पितरौ मम ॥ यत्प्रेक्षितोऽहं कारुण्यात्त्वया संभाषितोपि च ॥ ८१ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युदारमसंभ्रान्तं वचः श्रुत्वातिपेशलम् ॥ तक्षकः पुनरौत्सुक्यादभाषे राजनन्दनम् ॥ ८२ ॥ तक्षक उवाच ॥ भो भो नरेन्द्रदायाद मा भैषीर्धीरतां व्रज ॥ सर्वदेवेषु को देवो युष्माभिः पूज्यते सदा ॥ ८३ ॥ राजपुत्र उवाच ॥ यो देवः सर्वदेवेषु महादेव इति स्मृतः ॥ पूज्यते स हि विश्वात्मा शिवोऽस्माभिरुमापतिः ॥ ८४ ॥ यस्य तेजोंशलेशेन रजसा च प्रजापतिः ॥ कृतरूपोऽसृजद्विश्वं स नः पूज्यो महेश्वरः ॥ ८५ ॥ यस्यांशात्सात्त्विकं दिव्यं बिभ्रद्विष्णुः सनातनः ॥ विश्वं बिभर्ति भूतात्मा शिवोऽस्माभिः स पूज्यते ॥ ८६ ॥ यस्यांशात्तामसाज्जातो रुद्रः कालाग्नि

राजपुत्र बोला कि सब देवताओं के मध्य में जो देवता महादेव ऐसे कहे गये हैं वेही संसारात्मक पार्वती के पति शिवजी हमसे पूजेजाते हैं ॥ ८४ ॥ और जिन के तेज भाग के कुछ अंशवाले रजोगुण से रचित रूपवाले ब्रह्माजी संसार को रचते हैं वे शिवजी हमारे पूजने योग्य हैं ॥ ८५ ॥ व जिनके अंश से दिव्य सात्त्विक तेजको धारते हुए सनातन विष्णुजी संसार को पालते हैं वे भूतात्मक शिवजी हमलोगों से पूजेजाते हैं ॥ ८६ ॥ और जिनके तमोगुणवाले अंश से

कालाग्नि के समान उत्पन्न रुद्रजी प्रलय में इस संसार को संहार करते हैं वे शिवजी हमसे पूजने योग्य हैं ॥ ८७ ॥ जो ब्रह्माके भी रचनेवाले और कारण के भी कारण हैं व तेजों के मध्य में जो उत्तम तेज हैं वे शिवजी हमारी उत्तम गति हैं ॥ ८८ ॥ और समीप स्थित भी जो पाप से नष्टचित्तवाले जनों के दूर स्थित हैं अमित तेजवाले वे शिवजी हमलोगों की उत्तम गति हैं ॥ ८९ ॥ और जो अग्नि में स्थित हैं व जो भूमिमें व पवनमें और जो जलमें स्थित हैं व जो आकाशमें हैं वे विश्वात्मक सदाशिवजी हमलोगों से पूजने योग्य हैं ॥ ९० ॥ और जो सब प्राणियों के साक्षी व शरीर में स्थित जो निरंजन है और संसार जिस

सन्निभः ॥ विश्वमेतद्धरत्यन्ते स पूज्योऽस्माभिरीश्वरः ॥ ८७ ॥ यो विधाता विधातुश्च कारणस्यापि कारणम् ॥ तेजसां परमं तेजः स शिवो नः परा गतिः ॥ ८८ ॥ योन्तिकस्थोऽपि दूरस्थः पापोपहतचेतसाम् ॥ अपरिच्छेद्यधामासौ शिवो नः परमा गतिः ॥ ८९ ॥ योऽग्नौ तिष्ठति यो भूमौ यो वायौ सलिले च यः ॥ य आकाशे च विश्वात्मा स पूज्यो नः सदाशिवः ॥ ९० ॥ यः साक्षी सर्वभूतानां य आत्मस्थो निरञ्जनः ॥ यस्येच्छावशगो लोकः सोऽस्माभिः पूज्यते शिवः ॥ ९१ ॥ यमेकमाद्यं पुरुषं पुराणं वदन्ति भिन्नं गुणवैकृतेन ॥ क्षेत्रज्ञमेकेथ तुरीयमन्ये कूटस्थमन्ये स शिवो गतिर्नः ॥ ९२ ॥ यं नास्पृशंश्चैत्त्यमचिन्त्यतत्त्वं दुरन्तधामानमतस्स्वरूपम् ॥ मनोवचोवृत्तय आत्मभाजां स एष पूज्यः परमः शिवो नः ॥ ९३ ॥ यस्य प्रसादं प्रतिलभ्य सन्तो वाञ्छन्ति नैन्द्रं पदमुज्ज्वलं वा ॥ निस्तीर्णकर्मार्गलकालचक्राश्चरन्त्यभीताः स शिवो गतिर्नः ॥ ९४ ॥ यस्य स्मृतिः सकलपापरुजां विघातं सद्यः

की इच्छा के वशमें प्राप्त है वे शिवजी हमसे पूजेजाते हैं ॥ ९१ ॥ जिसको विद्वान् लोग एक पुराणपुरुष कहते हैं व गुणों के विकार से जिसको भिन्न कहते हैं और कोई क्षेत्रज्ञ व कोई तुरीय कहते हैं और अन्य लोग कूटस्थ कहते हैं वे शिवजी हमारी गतिहैं ॥ ९२ ॥ और जिन ज्ञानमय व अचिन्तनीय तत्त्व तथा अमित तेजवाले शिवजीको आत्मज्ञानियों के मन, वचन की वृत्तियां स्पर्श नहीं करती हैं वे श्रेष्ठ शिवजी हमारे पूजनीयहैं ॥ ९३ ॥ व जिनकी प्रसन्नताको पाकर विद्वान् लोग इन्द्रपद व निर्मल पद (मोक्ष) को नहीं चाहते हैं और कर्म की जंजीर व कालचक्रको नांघकर निडर होकर घूमते हैं वे शिवजी हमारी गति है ॥ ९४ ॥ और

जिनका स्मरण चाण्डाल जन्मवाले मनुष्यों के भी सब पापरूपी रोगों को शीघ्रही नाश करता है व जिनका पूर्णस्वरूप श्रुतियों से ढूंढ़ने योग्य है उन शिवजी के लिये हम सदैव पूजन करते हैं ॥ ९५ ॥ व स्वर्ग की नदी गंगाजीने जिनके मस्तक में स्थान पाया है और भगवती जगदम्बिका पार्वतीजी जिनके अङ्गमें प्राप्त हैं व तक्षक, वासुकी दोनों जिनके कुण्डल हैं वे अर्धचन्द्रभालवाले शिवजी हमारी गति हैं ॥ ९६ ॥ और वेदोंकी शिखा के अग्रभाग मे जिनके चरणकमल हैं उनकी जय हो व योगियों के हृदय में जिनकी सदैव मूर्ति रहती है उनकी जय हो और जिनकी मूर्ति सब तत्त्वों को प्रकाश करती है गुणों की

करोत्यपि च पुल्कसजन्मभाजाम् ॥ यस्य स्वरूपमखिलं श्रुतिभिर्विमृग्यं तस्मै शिवाय सततं करवाम पूजाम् ॥ ९५ ॥ यन्मूर्ध्नि लब्धनिलया सुरलोकसिन्धुर्यस्याङ्गगा भगवती जगदम्बिका च ॥ यत्कुण्डले त्विह तक्षकवासुकी द्वौ सोऽस्माकमेव गतिरर्धशशाङ्कमौलिः ॥ ९६ ॥ जयति निगमचूडाग्रेषु यस्याङ्घ्रिपद्मं जयति च हृदि नित्यं योगिनां यस्य मूर्तिः ॥ जयति सकलतत्त्वोद्भासनं यस्य मूर्तिः स विजितगुणसर्गः पूज्यतेऽस्माभिरीशः ॥ ९७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तक्षकः प्रीतमानसः ॥ जातभक्तिर्महादेवे राजपुत्रमभाषत ॥ ९८ ॥ तक्षक उवाच ॥ परितुष्टोऽस्मि भद्रं स्तात्तव राजेन्द्रनन्दन ॥ बालोपि यत्परं तत्त्वं वेत्सि शैवं परात्परम् ॥ ९९ ॥ एष रत्नमयो लोक एताश्चारुदृशोऽबलाः ॥ एते कल्पद्रुमाः सर्वे वाप्योमृतरसाम्भसः ॥ १०० ॥ नात्र मृत्युभयं घोरं न जरारोगपीडनम् ॥ यथेष्टं विहरात्रैव भुङ्क्ष्व भोगान्यथोचितान् ॥ १ ॥ इत्युक्तो नागराजेन स राजेन्द्रकुमारकः ॥ प्रत्यु

सृष्टिको जीतनेवाले वे शिवजी हमसे पूजेजाते हैं ॥ ९७ ॥ उसका यह वचन सुनकर महादेवजी में उत्पन्न भक्ति व प्रसन्नमनवाले तक्षक ने राजपुत्र से कहा ॥ ९८ ॥ तक्षक बोला कि हे नृपेन्द्रपुत्र ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं व तुम्हारा कल्याण होवै जोकि बालक भी तुम परेसे भी परे श्रेष्ठ शिव तत्त्व को जानते हो ॥ ९९ ॥ और यह लोक रत्नमय है व ये स्त्रिया सुन्दर नेत्रोंवाली हैं और ये सब वृक्ष कल्पवृक्ष हैं व बावलियों में अमृतरूपी जल है ॥ १०० ॥ और यहा भयंकर मृत्यु नहीं होती है व वृद्धता तथा रोग से पीडा नहीं होती है तुम यहीं पर इच्छा के अनुसार विहार करो व यथायोग्य सुखों को भोग करो ॥ १ ॥ नागराज से ऐसा

कहेहुए उदार बुद्धिवाले नृपेन्द्रपुत्रने हाथों को जोड़कर बड़े हर्ष से कहा ॥ २ ॥ कि समयमें मैंने व्याह किया है और मेरी स्त्री उत्तम व्रतवर्ती है व सदैव शिव-पूजन में परायण है और पिता; माताके मैंही एक पुत्र हूं ॥ ३ ॥ इस समय वे मुझको मरेहुए सुनकर बड़े शोक मे संयुत होवैंगे व प्रायः प्राणों से रहित होवेंगे या दैवसे प्राणों को धारण किये होवैं ॥ ४ ॥ इस कारण बहुत दिनोंतक मुझको किसी प्रकार यहां स्थित होना न चाहिये मुझको उसी लोक को तुम दया से पठाने योग्यहो ॥ ५ ॥ यह कहनेवाले उस राजकुमार को कल्पवृक्षों से उपजेहुए दिव्य व उत्तम अन्नों से तृप्त कर तथा उत्तम चन्दन, वसन, माला, रत्न व विचित्र

वाच परं प्रीत्या कृताञ्जलिरुदारधीः ॥ २ ॥ कृतदारोऽस्म्यहं काले सुव्रता गृहिणी मम ॥ शिवपूजापरा नित्यं पितरावेकपुत्रकौ ॥ ३ ॥ ते त्वद्य मां मृतं मत्वा शोकेन महतावृताः ॥ प्रायः प्राणैर्वियुज्यन्ते दैवात्प्राणान्वहन्ति वा ॥ ४ ॥ अतो मया बहुतिथं नात्र स्थेयं कथंचन ॥ तमेव लोकं कृपया मां प्रापयितुमर्हसि ॥ ५ ॥ इत्युक्तवन्तं नरदेवपुत्रं दिव्यैर्वरान्नैः सुरपादपोत्थैः ॥ आप्याययित्वावरगन्धवासः स्रग्रत्नदिव्याभरणैर्विचित्रैः ॥ ६ ॥ सन्तोपयित्वा विविधैश्च भोगैः पुनर्बभाषे भुजगाधिराजः ॥ यदा यदा त्वं स्मरसि त्वदग्रे तदा तदा विष्क्रियते मयेति ॥ ७ ॥ पुनश्च राजपुत्राय तक्षकोऽश्वं च कामगम् ॥ नानाद्वीपसमुद्रेषु लोकेषु च निरर्गलम् ॥ ८ ॥ दत्तवान् रत्नाभरणादिव्याभरणवाससाम् ॥ वाहनाय ददावेकं राक्षसं पन्नगेश्वरः ॥ ९ ॥ तत्सहायार्थमेकं च पन्नगेन्द्रकुमारकम् ॥ नियुज्य तक्षकः प्रीत्या गच्छेति विससर्ज तम् ॥ १० ॥ इति चन्द्राङ्गदः सोऽथ संगृह्य विविधं धनम् ॥ अश्वं कामगमा

दिव्य आभूषणों से ॥ ६ ॥ और अनेक प्रकार के सुखों से प्रसन्न कराकर फिर नागराज ने कहा कि तुम जब जब याद करोगे तब तब मैं तुम्हारे आगे प्रकट हूंगा ॥ ७ ॥ फिर नागराज तक्षकने अनेकप्रकार के द्वीपों, समुद्रों व लोकों में विन रोंकटोंक व इच्छा के अनुसार चलनेवाला एक घोड़ा सवारीके लिये राजकुमार को दिया व रत्नाभरण तथा दिव्य आभूषणों व वसनों को दिया और एक राक्षस को दिया ॥ ८।९ ॥ और उसकी सहाय के लिये एक नागराजकुमार को नियुक्त कर तक्षक ने प्रीति से जाओ यह कहकर बिदा किया ॥ १० ॥ इस प्रकार वह चन्द्राङ्गद अनेक प्रकार का धन लेकर व इच्छा के अनुसार चलनेवाले घोड़े पै सवार

होकर उन दोनों समेत निकला ॥ ११ ॥ और थोड़ी देर में उस नदी के जलसे उठकर दिव्य घोड़े पै सवार होकर सुन्दर किनारे पै घूमने लगा ॥ १२ ॥ इसी समय में सखियों से घिरी हुई वह पतिव्रता सीमंतिनी स्त्री वहां नहाने के लिये गई ॥ १३ ॥ और उस स्त्री ने मनुष्यरूपवाले राक्षस व नागपुत्र से संयुत राजकुमार को नदी के किनारे विहार करते हुए देखा ॥ १४ ॥ व दिव्य रत्नों से संयुत तथा दिव्य माला व शिरभूषणवाले और दिव्य सुगन्धवाले शरीर से दश योजन तक मन को खींचते हुए ॥ १५ ॥ व दिव्य घोड़े पै चढ़े हुए उस अपूर्व आकारवाले राजकुमार को देखकर जड़, उन्मत्त व डरी हुई सी वह सीमंतिनी उन्हीं

रुह्य ताभ्यां सह विनिर्ययौ ॥ ११ ॥ स मुहूर्तादिवोन्मज्य तस्मादेव सरिज्जलात् ॥ विजहार तटे रम्ये दिव्यमारुह्य वाजिनम् ॥ १२ ॥ अथास्मिन्समये तन्वी सा च सीमन्तिनी सती ॥ स्नातुं समाययौ तत्र सखीभिः परिवारिता ॥ १३ ॥ सा ददर्श नदीतीरे विहरन्तं नृपात्मजम् ॥ रक्षसा नररूपेण नागपुत्रेण चान्वितम् ॥ १४ ॥ दिव्यरत्नसमाकीर्णं दिव्यमाल्यावतंसकम् ॥ देहेन दिव्यगन्धेन व्याक्षिप्तदशयोजनम् ॥ १५ ॥ तमपूर्वाकृतिं वीक्ष्य दिव्याश्वमधिसंस्थितम् ॥ जडोन्मत्तेव भीतेव तस्थौ तन्न्यस्तलोचना ॥ १६ ॥ तां च राजेन्द्रपुत्रोऽसौ दृष्टपूर्वामिति स्मरन् ॥ निर्मुक्तकण्ठाभरणां कण्ठसूत्रविवर्जिताम् ॥ १७ ॥ असंयोजितधम्मिल्लामङ्गरागविवर्जिताम् ॥ त्यक्तनीलाञ्जनापाङ्गीं कृशाङ्गीं शोकदूषिताम् ॥ १८ ॥ दृष्ट्वाऽवतीर्य तुरगादुपविष्टः सरित्तटे ॥ तामाहूय वरारोहामुपवेश्येदमब्रवीत् ॥ १९ ॥ का त्वं कस्य कलत्रं वा कस्यासि तनयासती ॥ किमिदं तेऽङ्गने बाल्ये दुःसहं शोकलक्षणम् ॥ २० ॥

में आँखों को लगाकर खडी होगई ॥ १६ ॥ और यह राजेन्द्रपुत्र उसका यह स्मरण करता हुआ कि पहले देखी हुई है और कंठाभूषण को छोडे तथा कंठसूत्र से रहित ॥ १७ ॥ तथा बिन गूथी वेणीवाली और अंगराग से रहित व नेत्रों के अन्त भाग में नील अंजन से रहित और दुर्बल अंगोवाली व शोक से दूषित उस सीमतिनी को ॥ १८ ॥ देखकर घोडे से उतरकर राजकुमार नदी के किनारे बैठ गया और उस स्त्री को बुलाकर उसने समीप बिठाकर यह कहा ॥ १९ ॥ कि तुम कौन हो व किसकी स्त्री हो और किसकी कन्या हो व हे अंगने ! बाल्यावस्था में तुम्हारे यह दुस्सह शोक का लक्षण कैसे हुआ है ॥ २० ॥

इस प्रकार स्नेह से पूंछी हुई वह आँसुवों समेत लोचनोंवाली स्त्री आपही कहने के लिये लज्जित होगई तब उसकी सखी ने सब वृत्तान्त कहा ॥ २१ ॥ कि सीमंतिनीनामक यह निषध देश के राजाकी पतोहू है और चन्द्राङ्गद की स्त्री व चित्रवर्मा की कन्या है ॥ २२ ॥ इसका पति दैवयोग से इस महाजल में डूबगया उसी कारण विधवताको प्राप्त यह दुःख से सूखीहुई है ॥ २३ ॥ इस प्रकार बडे बलवान् शोक से तीनवर्ष बीतगये हैं आज सोमवार में यहा नहाने के लिये आई है ॥ २४ ॥ और इसके श्वशुरका राज्य शत्रुवों ने हरलिया व बल से पकड़ कर बाँधलिया है और स्त्रीसमेत वह उनके वशमें स्थित है ॥ २५ ॥

इति स्नेहेन संपृष्टा सा वधूरश्रुलोचना ॥ लज्जिता स्वयमाख्यातुं तत्सखी सर्वमब्रवीत् ॥ २१ ॥ इयं सीमन्तिनी नाम्ना स्नुषा निषधभूपतेः ॥ चन्द्राङ्गदस्य महिषी तनया चित्रवर्मणः ॥ २२ ॥ अस्याः पतिर्दैवयोगान्निमग्नोऽस्मिन्महाजले ॥ तेनेयं प्राप्तवैधव्या बाला दुःखेन शोषिता ॥ २३ ॥ एवं वर्षत्रयं नीतं शोकेनातिबलीयसा ॥ अद्येन्दुवारे संप्राप्ते स्नातुमत्र समागता ॥ २४ ॥ श्वशुरोऽस्याश्च राजेन्द्रो हृतराज्यश्च शत्रुभिः ॥ बलाद्गृहीतो बद्धश्च सभार्यस्तद्वशे स्थितः ॥ २५ ॥ तथाप्येषा शुभाचारा सोमवारे महेश्वरम् ॥ साम्बिकं परया भक्त्या पूजयत्यमलाशया ॥ २६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्थं सखीमुखेनैव सर्वमावेद्य सुव्रता ॥ ततः सीमन्तिनी प्राह स्वयमेव नृपात्मजम् ॥ २७ ॥ कस्त्वं कन्दर्पसंकाशः काविमौ तव पार्श्वगौ ॥ देवो नरेन्द्रः सिद्धो वा गन्धर्वो वाथ किन्नरः ॥ २८ ॥ किमर्थं मम वृत्तान्तं स्नेहवानिव पृच्छसि ॥ किं मां वेत्सि महाबाहो दृष्टवान्किमु कुत्रचित् ॥ २९ ॥ दृष्टपूर्व इवाभासि मया च स्वजनो

तिसपर भी यह उत्तम आचरण व निर्मल आशयवाली सीमंतिनी सोमवार में पार्वती समेत सदाशिवजी को बडीभक्ति से पूजती है ॥ २६ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार सखी के मुखसे सब कहकर तदनन्तर उत्तम नियमवाली सीमंतिनी आपही राजकुमार से बोली ॥ २७ ॥ कि कामदेव के समान तुम कौन हो और तुम्हारे समीप प्राप्त ये दोनों कौन हैं देवताहो या राजाहो या सिद्धहो या गन्धर्व हो अथवा किन्नर हो ॥ २८ ॥ और मेरे वृत्तान्त को सनेही की नाईं तुम किसलिये पूंछते हो हे महाबाहो ! तुम क्या मुझको जानतेहो या कहीं तुमने देखा है ॥ २९ ॥ और मुझको स्वजन की नाईं पहले देखेहुए से जान पड़ते हो यह सब

वृत्तान्त यथार्थ कहिये क्योंकि साधुवों में सत्य सारांश होता है ॥ ३० ॥ सूतजी बोले कि इतना कहकर गद्गदकण्ठ होकर राजकुमारी बहुत देरतक रोती रही और सखियों से घिरीहुई वह मोहित होकर पृथ्वी पै गिरपड़ी और कुछ कहने के लिये समर्थ न हुई ॥ ३१ ॥ सब प्रियाके शोक का कारण सुनकर आप भी शोक से व्याकुल चन्द्राङ्गद थोड़ी देरतक चुप होगया ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त प्यारी स्त्री को अनेक प्रकार के वचनों की निपुणता से समझाकर उस राजपुत्र ने कहा कि इच्छा के अनुकूल चलनेवाले हमलोग सिद्धनामक देवता हैं ॥ ३३ ॥ तदनन्तर हाथ पकड़ने से शंकित उसको बलसे खींचकर सब अङ्गोंमें रोमाञ्चवती उस सीमं-

यथा ॥ सर्वं कथय तत्त्वेन सत्यसारा हि साधवः ॥ ३० ॥ सूत उवाच ॥ एतावदुक्त्वा नरदेवपुत्री सबाष्पकण्ठं सुचिरं रुरोद ॥ मुमोह भूमौ पतिता सखीभिर्वृता न किञ्चित्कथितुं शशाक ॥ ३१ ॥ श्रुत्वा चन्द्राङ्गदः सर्वं प्रियायाः शोककारणम् ॥ मुहूर्त्तमभवत्तूष्णीं स्वयं शोकसमाकुलः ॥ ३२ ॥ अथाश्वास्य प्रियां तन्वीं विविधैर्वाक्यनैपुणैः ॥ सिद्धा नाम वयं देवाः कामगा इति सोऽब्रवीत् ॥ ३३ ॥ ततो बलादिवाकृष्य पाणिग्रहणशङ्किताम् ॥ पुलकाञ्चितसर्वाङ्गीं तां कर्णे त्विदमब्रवीत् ॥ ३४ ॥ क्वापि लोके मया दृष्टस्तव भर्त्ता वरानने ॥ त्वद्व्रताचरणात्प्रीतः सद्य एवागमिष्यति ॥ ३५ ॥ अपनेष्यति ते शोकं द्वित्रैरेव दिनैर्ध्रुवम् ॥ एतच्छंसितुमायातस्तव भर्त्तुः सखाऽस्म्यहम् ॥ ३६ ॥ अत्र कार्यो न सन्देहः शपामि शिवपादयोः ॥ तावत्त्वद्धृदये स्थेयं न प्रकाश्यं च कुत्रचित् ॥ ३७ ॥ सा तु तद्वचनं श्रुत्वा सुधाधाराशताधिकम् ॥ संभ्रमोद्भ्रान्तनयना तमेव मुहुरैक्षत ॥ ३८ ॥ प्रेमबन्धानुगुणितं वाक्यं चाह रसायनम् ॥

तिनीके कानमें यह कहा ॥ ३४ ॥ कि हे वरानने ! संसार में मैंने कहींपर तुम्हारे पति को देखा है तुम्हारे व्रत करने से प्रसन्न वह शीघ्रही आवैगा ॥ ३५ ॥ व दो तीनदिनोंमें निश्चय कर तुम्हारे शोकको दूर करैगा यही कहनेके लिये मैं आया था और तुम्हारे पतिका मैं मित्रहूं ॥ ३६ ॥ इसमें तुम सन्देह न करना मैं शिवजी के चरणों की सौगन्द करताहूं और तबतक तुम कहीं इस बातको प्रकट न करना वरन अपने हृदय में स्थित रखना ॥ ३७ ॥ अमृत की धारासे सौगुने अधिक उस वचनको सुनकर संभ्रम से भ्रमित लोचनोंवाली वह सीमंतिनी थोड़ीदेर तक उसीको बार २ देखती रही ॥ ३८ ॥ और प्रेमके बन्धन से गूथेहुए रसायन वचन

को कहा और विभ्रम व उदार समेत तथा मधुरता से कटाक्षदर्शन ॥ ३९ ॥ व अपने हाथ के छूनेसे रोमाञ्चित देह और अङ्गोंमें व स्वरादिकों में पहले देखेहुए लक्षणोंको तथा अवस्था का प्रमाण व रङ्गकी परीक्षा करके इनको निश्चय किया ॥ ४० ॥ कि यही निश्चय कर मेरा पति है अन्य न होगा क्योंकि प्रेमसे अधीर मेरा मन इन्हींमें लगा है ॥ ४१ ॥ और ऐसे स्वरूप को धारनेवाला यह कैसे परलोकसे आया है और मुझ अभागिनी को नष्ट पति का दर्शन कैसे होगा ॥ ४२ ॥ और यह स्वप्न है अथवा स्वप्न नहीं है या भ्रम है अथवा भ्रम नहीं है या यह छली है व कोई यक्ष या गन्धर्व है ॥ ४३ ॥ अथवा मुनिकी स्त्रीने जो मुझ

विभ्रमोदारसहितं मधुरापाङ्गवीक्षणम् ॥ ३९ ॥ स्वपाणिस्पर्शनोद्भिन्नपुलकाञ्चितविग्रहम् ॥ पूर्वदृष्टानि चाङ्गेषु लक्षणानि स्वरादिषु ॥ वयःप्रमाणं वर्णं च परीक्ष्यैनमतर्कयत् ॥ ४० ॥ एव एव पतिर्मे स्याद्ध्रुवं नान्यो भविष्यति ॥ अस्मिन्नेव प्रसक्तं मे हृदयं प्रेमकातरम् ॥ ४१ ॥ परलोकादिहायातः कथमेवं स्वरूपधृक् ॥ दुर्भाग्यायाः कथं मे स्याद्भर्तुर्नष्टस्य दर्शनम् ॥ ४२ ॥ स्वप्नोऽयं किमु न स्वप्नो भ्रमोऽयं किं तु न भ्रमः ॥ एष धूर्तोऽथवा कश्चिद्यक्षो गन्धर्व एव वा ॥ ४३ ॥ मुनिपत्न्या यदुक्तं मे परमापद्गतापि च ॥ व्रतमेतत्कुरुष्वेति तस्यैव फलमेव वा ॥ ४४ ॥ यो वर्षायुतसौभाग्यं ममेत्याह द्विजोत्तमः ॥ नूनं तस्य वचः सत्यं को विद्यादीश्वरं विना ॥ ४५ ॥ निमित्तानि च दृश्यन्ते मङ्गलानि दिने दिने ॥ प्रसन्ने पार्वतीनाथे किमसाध्यं शरीरिणाम् ॥ ४६ ॥ इत्थं विमृश्य बहुधा तां पुनर्मुक्तसंशयाम् ॥ लज्जानम्रमुखीं कर्णे शशंसात्मप्रयोजनम् ॥ ४७ ॥ इमं वृत्तान्तमाख्यातुं तत्पित्रोः शोकत

से यह कहा था कि बड़ी विपत्ति में प्राप्तभी तुम इस व्रत को करना उसीका फल है ॥ ४४ ॥ और जिस द्विजोत्तमने मुझसे यह कहाथा कि दशहजार वर्ष तुम्हारा सौभाग्य है उसका वचन सत्य है यह ईश्वर के विना कौन जानै ॥ ४५ ॥ और प्रतिदिन मङ्गल के लक्षण देख पडते हैं शिवजी के प्रसन्न होनेपर शरीरधारियों को क्या दुर्लभ है ॥ ४६ ॥ इस प्रकार बहुत भाति से विचार कर फिर मुक्तसन्देह व लजा से नीचे मुखवाली उस सीमंतिनी से कान मे अपना प्रयोजन कहा ॥ ४७ ॥ कि हे भद्रे ! इस वृत्तान्त को शोकसे संतप्त उन माता, पिता से कहने के लिये हम जाते हैं तुम्हारा कल्याण होवै और तुम शीघ्रही पति को

पात्रोगी ॥ ४८ ॥ यह कहकर व घोड़े पै सवार होकर राजपुत्र चलागया और उसी क्षण उनदोनों समेत वह अपने राज्यमें प्राप्त हुआ ॥ ४९ ॥ और उसने नगर के बगीचे के समीप स्थित होकर उस सर्पराज के पुत्रको राजासन पै प्राप्त अपने भाइयों के समीप पठाया ॥ ५० ॥ व उसने जाकर उनसे कहा कि इन्द्रसेन को शीघ्रही छोडदो क्योंकि उसका यह चन्द्राङ्गद पुत्र पातालसे प्राप्त हुआहै ॥ ५१ ॥ आप लोग सिंहासन को छोड़दो विचार न करो नहीं तो चन्द्राङ्गद के बाण तुम लोगों के प्राणों को हर लेवैंगे ॥ ५२ ॥ यमुनाजी के जलमें डूबा हुआ वह तक्षक के मन्दिरको जाकर व उसकी सहायता को पाकर वह फिर उस लोक से यहां आया

मयोः ॥ गच्छामः स्वस्ति ते भद्रे सद्यः पतिमवाप्स्यसि ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वाश्वं समारुह्य जगाम नृपनन्दनः ॥ ताभ्यां सह निजं राष्ट्रं प्रत्यपद्यत तत्क्षणात् ॥ ४९ ॥ स पुरोपवनाभ्याशे स्थित्वा तं फणिपुत्रकम् ॥ विससर्जात्मदायादान्नृपासनगतान्प्रति ॥ ५० ॥ स गत्वोवाच ताञ्शीघ्रमिन्द्रसेनो विमुच्यताम् ॥ चन्द्राङ्गदस्तस्य सुतः प्राप्तोऽयं पन्नगालयात् ॥ ५१ ॥ नृपासनं विमुञ्चन्तु भवन्तो न विचार्यताम् ॥ नो चेच्चन्द्राङ्गदस्याशु बाणाः प्राणान्हरन्ति वः ॥ ५२ ॥ स मग्नो यमुनातोये गत्वा तक्षकमन्दिरम् ॥ लब्ध्वा च तस्य साहाय्यं पुनर्लोकादिहागतः ॥ ५३ ॥ इत्याख्यातमशेषेण तद्वृत्तान्तं निशम्य ते ॥ साधुसाध्विति संभ्रान्ताः शशंसुः परिपन्थिनः ॥ ५४ ॥ अथेन्द्रसेनाय निवेद्य सत्वरं नष्टस्य पुत्रस्य पुनः समागमम् ॥ प्रसाद्य तं प्राप्तनरेश्वरासनं दायादमुख्यास्तु भयं प्रपेदिरे ॥ ५५ ॥ अथ पौरजनाः सर्वे पुरोद्याने नृपात्मजम् ॥ दृष्ट्वा राज्ञे द्रुतं प्रोचुर्लेभिरे च महाधनम् ॥ ५६ ॥ आकर्ण्य पुत्रमायान्तं

है ॥ ५३ ॥ संपूर्णता से कहेहुए उस वृत्तान्त को सुनकर संभ्रमसमेत उन शत्रुवों ने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त वे मुख्य बन्धुलोग इन्द्रसेनसे नष्ट पुत्रका फिर आगमन बतलाकर व प्राप्त सिंहासनवाले उस इन्द्रसेन को प्रसन्न कराकर भयको प्राप्तहुए ॥ ५५ ॥ इसके उपरान्त सब पुरवासियों ने नगर के बगीचे में राजकुमार को देखकर शीघ्रही राजा से कहा व बड़ा धन पाया ॥ ५६ ॥ व आयेहुए पुत्रको सुनकर आनन्दके जलमें मग्न राजा

व रानीने बड़े हर्षसे इस लोक को नहीं जाना ॥ ५७ ॥ इसके उपरान्त सब नगरनिवासी व वृद्ध मन्त्री और पुरोहित आगे जाकर व उस चन्द्राङ्गद को लिपटा कर राजाके समीप ले आये ॥ ५८ ॥ इसके उपरान्त बड़ेभारी उत्साह से अपने मन्दिर में पैठकर आँसुवों को छोड़तेहुए राजकुमार ने अपने माता, पिता को प्रणाम किया ॥ ५९ ॥ चरणमूलमें पड़ेहुए उस अपने पुत्रको इस राजाने क्षणभर नहीं जाना और मन्त्री लोगों से समझाये हुए उस राजाने किसी प्रकार उठाकर भीगेहुए हृदय से लिपटालिया ॥ ६० ॥ और क्रमसे माताओं को प्रणाम कर स्नेह से विकल उन माताओं से आशीर्वाद को पाकर लिपटायेहुए उस राजपुत्रने

राजानन्दजलाप्लुतः ॥ न व्यजानादिमं लोकं राज्ञी च परया मुदा ॥ ५७ ॥ अथ नागरिकाः सर्वे मन्त्रिवृद्धाः पुरोधसः ॥ प्रत्युद्गम्य परिष्वज्य तमानिन्युर्नृपान्तिकम् ॥ ५८ ॥ अथोत्सवेन महता प्रविश्य निजमन्दिरम् ॥ राजपुत्रः स्वपितरौ ववन्दे बाष्पमुत्सृजन् ॥ ५९ ॥ तं पादमूले पतितं स्वपुत्रं विवेद नासौ पृथिवीपतिः क्षणम् ॥ प्रबोधितोऽमात्यजनैः कथंचिदुत्थाप्य क्लिन्नेन हृदालिलिङ्ग ॥ ६० ॥ क्रमेण मातॄरभिवन्द्य ताभिः प्रवर्धिताशीःप्रणयाकुलाभिः ॥ आलिङ्गितः पौरजनानशेषान्सम्भावयामास स राजसूनुः ॥ ६१ ॥ तेषां मध्ये समासीनः स्ववृत्तान्तमशेषतः ॥ पित्रे निवेदयामास तक्षकस्य च मित्रताम् ॥ ६२ ॥ दत्तं भुजङ्गराजेन रत्नादिधनसञ्चयम् ॥ दिव्यं तद्राक्षसानीतं पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ॥ ६३ ॥ राजपुत्रस्य चरितं दृष्ट्वा श्रुत्वा च विह्वलः ॥ मेने स्नुषायाः सौभाग्यं महेशाराधनार्जितम् ॥ ६४ ॥ सौमाङ्गल्यमयीं वार्तामिमां निषधभूपतिः ॥ चारैर्निवेदयामास चित्रवर्ममहीपतेः ॥ ६५ ॥ श्रुत्वा

सब नगरनिवासियों को देखा ॥ ६१ ॥ व उनके मध्यमें बैठेहुए राजकुमार ने अपना वृत्तान्त व तक्षक की मित्रता को राजा से कहा ॥ ६२ ॥ व सर्पराज से दिये रत्नादि धन राशि और उस राक्षस से लायेहुए सब दिव्य धनको पितासे कहा ॥ ६३ ॥ और राजपुत्र का चरित्र देखकर व सुनकर विह्वल राजा ने शिवजी के आराधन से इकट्ठा कियेहुए पतोहू के सौभाग्य को जाना ॥ ६४ ॥ व निषधराजने इस सुमङ्गलमयी वार्ता को गुप्त दूतों के द्वारा चित्रवर्म राजा से कहलाया ॥ ६५ ॥

और अमृतमयी वार्ताको सुनकर आनन्द से विह्वल वह चित्रवर्मराजा शीघ्रता से उठकर उनके लिये बहुत सा धन देकर नाचने लगा ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त छूटे हुए वैधव्य लक्षणोंवाली अपनी कन्या को बुलाकर व लिपटाकर आँसुवों से संयुत लोचनोंवाले चित्रवर्मा ने भूषणों से भूषित किया ॥ ६७ ॥ इसके उपरान्त राज्य,ग्राम व नगरादिकों में बडाभारी उत्सव हुआ और सब ओर मनुष्यलोगों ने सीमंतिनी के उत्तम आचार की प्रशंसा किया ॥ ६८ ॥ इसके उपरान्त चित्रवर्मा राजाने इन्द्रसेन के पुत्र को बुलाकर फिर विवाह की विधिसे उसके लिये कन्यादान किया ॥ ६९ ॥ व चित्राङ्गदने भी तक्षक के घरसे लायेहुए

ऽमृतमयीं वार्त्तां स समुत्थाय संभ्रमात् ॥ तेभ्यो दत्त्वा धनं भूरि ननर्तानन्दविह्वलः ॥ ६६ ॥ अथाहूय स्वतनयां परिष्वज्याश्रुलोचनः ॥ भूषणैर्भूषयामास त्यक्तवैधव्यलक्षणाम् ॥ ६७ ॥ अथोत्सवो महानासीद्राष्ट्रग्रामपुरादिषु ॥ सीमन्तिन्याः शुभाचारं शशंसुः सर्वतो जनाः ॥ ६८ ॥ चित्रवर्माथ नृपतिः समाहूयेन्द्रसेनजम् ॥ पुनर्विवाहविधिना सुतां तस्मै न्यवेदयत् ॥ ६९ ॥ चन्द्राङ्गदोऽपि रत्नाद्यैरानीतैस्तक्षकालयात् ॥ स्वां पत्नीं भूषयांचक्रे मर्त्यानामतिदुर्लभैः ॥ ७० ॥ अङ्गरागेण दिव्येन तप्तकाञ्चनशोभिना ॥ शुशुभे सा सुगन्धेन दशयोजनगामिना ॥ ७१ ॥ अम्लानमालया शश्वत्पद्मकिंजल्कवर्णया ॥ कल्पद्रुमोत्थया बाला भूषिता शुशुभे सती ॥ ७२ ॥ एवं चन्द्राङ्गदः पत्नीमवाप्य समये शुभे ॥ ययौ स्वनगरीं भूयः श्वशुरेणानुमोदितः ॥ ७३ ॥ इन्द्रसेनोऽपि राजेन्द्रो राज्ये स्थाप्य निजात्मजम् ॥ तपसा शिवमाराध्य लेभे संयमिनां गतिम् ॥ ७४ ॥ दशवर्षसहस्राणि सीमन्तिन्या स्वभा

मनुष्यों को बहुतही दुर्लभ रत्नादिकों से अपनी स्त्री को भूषित किया ॥ ७० ॥ और तचे हुए सोने के समान शोभावाले व चालीस कोस तक जानेवाले सुगंधित दिव्य अंगराग से वह सीमंतिनी शोभित हुई ॥ ७१ ॥ और कमलकेसर के रंगवाली व सदैव बिन कुम्हलाई हुई कल्पवृक्ष से उत्पन्न माला से भूषित वह उत्तम आचरणवाली सीमंतिनी शोभित हुई ॥ ७२ ॥ इस प्रकार उत्तम समय में स्त्री को पाकर श्वशुर से अनुमोदित चन्द्राङ्गद फिर अपनी नगरी को गया ॥ ७३ ॥ व इन्द्रसेन नृपेन्द्र ने भी राज्य पै अपने पुत्र को बिठाकर व तपस्या से शिवजी को आराधन कर संयमियों की गति को पाया ॥ ७४ ॥

और दश हज़ार वर्ष तक अपनी सीमंतिनी स्त्री समेत चन्द्राङ्गद राजाने बहुत से इन्द्रियसुखों को भोग किया ॥ ७५ ॥ और एक सुन्दरी कन्या व आठ पुत्रों को सीमंतिनी ने पैदा किया व शिवजी को पूजती हुई उसने पति समेत रमण किया और सोमवार से दिन-दिन में सौभाग्य को पाया ॥ ७६ ॥ सूतजी बोले कि मैंने इस विचित्र कथा को वर्णन किया और फिर भी सोमवार व्रत में कहे हुए माहात्म्य को कहता हूं ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सोमवारव्रतवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

यंया॥ साधं चन्द्राङ्गदो राजा बुभुजे विषयान्बहून् ॥ ७५ ॥ प्रासूत तनयानष्टौ कन्यामेकां वराननाम् ॥ इमे सीमन्तिनी भर्त्रा पूजयन्ती महेश्वरम् ॥ दिने दिने च सौभाग्यं प्राप्तं चैवेन्दुवासरात् ॥ ७६ ॥ सूत उवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यानं मया समनुवर्णितम् ॥ भूयोऽपि वक्ष्ये माहात्म्यं सोमवारव्रतोदितम् ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां ब्रह्मोत्तरखण्डे सोमवारव्रतवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥ * ॥

ऋषय ऊचुः ॥ साधु साधु महाभाग त्वया कथितमुत्तमम् ॥ आख्यानं पुनरन्यच्च विचित्रं वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ विदर्भविषये पूर्वमासीदेको द्विजोत्तमः ॥ वेदमित्र इति ख्यातो वेदशास्त्रार्थवित्सुधीः ॥ २ ॥ तस्यासीदपरो विप्रः सखा सारस्वताह्वयः ॥ तावुभौ परमस्निग्धावेकदेशनिवासिनौ ॥ ३ ॥ वेदमित्रस्य पुत्रोऽभूत्सुमेधा नाम सुव्रतः ॥ सारस्वतस्य तनयः सोमवानिति विश्रुतः ॥ ४ ॥ उभौ सवयसौ बालौ समवेषौ समस्थिती ॥

दो॰। सीमंतिनी प्रभाव सन द्विज भो नारीरूप। सोइ नवम अध्याय में वर्णित चरित अनूप ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महाभाग ! आपको साधुवाद है तुमने उत्तम चरित्र को कहा और फिर अन्य विचित्र चरित्र को कहने के योग्य हो ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि पहले विदर्भदेशमें शास्त्रार्थ को जाननेवाला एक वेदमित्र ऐसा विद्वान् द्विजोत्तम हुआ है ॥ २ ॥ और सारस्वतनामक अन्य ब्राह्मण उसका मित्र था वे दोनों एकदेश में रहनेवाले व बड़े प्रेमी थे ॥ ३ ॥ वेदमित्र के सुमेधा नामक उत्तम व्रतवाला पुत्र हुआ और सारस्वत के सोमवान् ऐसा प्रसिद्ध पुत्र हुआ ॥ ४ ॥ एकही अवस्थावाले वे दोनों बालक समानवेष व समान स्थितिवाले

हुए और एकही साथ संस्कार व समान विद्यावाले हुए ॥ ५ ॥ और वे दोनों अङ्गों समेत वेदोंको पढ़कर व न्याय, व्याकरण, इतिहास, पुराण और सब धर्मशास्त्रों को पढ़कर ॥ ६ ॥ बाल्यावस्थाही में वे दोनों बुद्धिमान् सब विद्याओं में प्रवीण हुए और उनदोनों ने माता, पिता को सब गुणों से बडा आनन्द दिया ॥ ७ ॥ एक समय उनदोनों द्विजोत्तमोंने सोलह वर्षवाले व उत्तम रूपवान् उन दोनों अपने पुत्रों को बुलाकर प्रीतिसे कहा ॥ ८ ॥ कि हे पुत्रो ! उत्तम तेजवाले तुम दोनोंने बाल्यावस्था में विद्याको पढ़ा है और तुमदोनों का यह विवाहवाला समय वर्तमान है ॥ ९ ॥ इस विदर्भ देशके स्वामी को अपनी विद्यासे प्रसन्न

समं च कृतसंस्कारौ समविद्यौ बभूवतुः ॥ ५ ॥ साङ्गानधीत्य तौ वेदांस्तर्कव्याकरणानि च ॥ इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि कृत्स्नशः ॥ ६ ॥ सर्वविद्याकुशलिनौ बाल्य एव मनीषिणौ ॥ प्रहर्षमतुलं पित्रोर्ददतुः सकलैर्गुणैः ॥ ७ ॥ तावेकदा स्वतनयौ तावुभौ ब्राह्मणोत्तमौ ॥ आहूयावोचतां प्रीत्या षोडशाब्दौ शुभाकृती ॥ ८ ॥ हे पुत्रकौ युवां बाल्ये कृतविद्यौ सुवर्चसौ ॥ वैवाहिकोयं समयो वर्तते युवयोः समम् ॥ ९ ॥ इमं प्रसाद्य राजानं विदर्भेशं स्वविद्यया ॥ ततः प्राप्य धनं भूरि कृतोद्वाहौ भविष्यथः ॥ १० ॥ एवमुक्तौ सुतौ ताभ्यां तावुभौ द्विजनन्दनौ ॥ विदर्भराजमासाद्य समतोषयतां गुणैः ॥ ११ ॥ विद्यया परितुष्टाय तस्मै द्विजकुमारकौ ॥ विवाहार्थं कृतोद्योगौ धनहीनावशंसताम् ॥ १२ ॥ तयोरपि मतं ज्ञात्वा स विदर्भमहीपतिः ॥ प्रहस्य किञ्चित्प्रोवाच लोकतत्त्वविवित्सया ॥ १३ ॥ आस्ते निषधराजस्य राज्ञी सीमन्तिनी सती ॥ सोमवारे महादेवं पूजयत्यम्बिकायुतम् ॥ १४ ॥ तस्मिन्दिने सप

कराकर व उससे बहुत सा धन पाकर ब्याहे जावोगे ॥ १० ॥ उन दोनों से ऐसा कहेहुए उनदोनों द्विजबालकोंने विदर्भदेशके राजा के समीप प्राप्त होकर गुणोंसे प्रसन्न किया ॥ ११ ॥ व विद्यासे प्रसन्न उस विदर्भराज से द्विजपुत्रों ने यह कहा कि विवाह के लिये उद्योग किये हमदोनों धनहीन हैं ॥ १२ ॥ उनदोनों का संमत जानकर उस विदर्भराज ने कुछ हँसकर लोकके तत्त्व की जानने की इच्छा से कहा ॥ १३ ॥ कि निषधदेशके राजाकी सीमंतिनीनामक पतिव्रता स्त्री है वह सोमवार में पार्वतीसंयुत महादेवजी को पूजती है ॥ १४ ॥ और उस दिन वेदविदों में श्रेष्ठ सपत्नीक उत्तम ब्राह्मणों को बड़ीभक्ति से पूजकर बहुत धन

देती है ॥ १५ ॥ इस कारण यहां तुम दोनोंमें से एक स्त्री के विभ्रम व रूपको धारण करै और एक उसका पति होकर ब्राह्मण स्त्री पुरुष होवो ॥ १६ ॥ व तुमदोनों स्त्री पुरुष होकर सीमंतिनी के घरको प्राप्त होकर भोजन करके व धनको पाकर फिर मेरे समीप आइयेगा ॥ १७ ॥ इस प्रकार राजासे कहेहुए डरे द्विजबालकों ने प्रत्युत्तर दिया कि यह कर्म करने के लिये हम दोनों के बड़ा डर होता है ॥ १८ ॥ क्योंकि देवता, गुरु, माता, पिता व राजकुलों में मोहसे कुटिलता करता हुआ मनुष्य शीघ्रही वंशसमेत नाश होजाता है ॥ १९ ॥ और राजाओं के घरके भीतर मनुष्य कैसे छलसे पैठसक्ता है क्योंकि छिपाया हुआ भी छल कभी

नीकान्द्विजाग्र्यान्वेदवित्तमान् ॥ संपूज्य परया भक्त्या धनं भूरि ददाति च ॥ १५ ॥ अतोऽत्र युवयोरेको नारी विभ्रमवेषधृक् ॥ एकस्तस्याः पतिर्भूत्वा जायेतां विप्रदम्पती ॥ १६ ॥ युवां वधूवरौ भूत्वा प्राप्य सीमन्तिनीगृहम् ॥ भुक्त्वा भूरि धनं लब्ध्वा पुनर्यातं ममान्तिकम् ॥१७॥ इति राज्ञा समादिष्टौ भीतौ द्विजकुमारकौ ॥ प्रत्यूचतुरिदं कर्म कर्तुं नौ जायते भयम् ॥ १८ ॥ देवतासु गुरौ पित्रोस्तथा राजकुलेषु च ॥ कौटिल्यमाचरन्मोहात्सद्यो नश्यति सान्वयः ॥ १९ ॥ कथमन्तर्गृहं राज्ञां छद्मना प्रविशेत्पुमान् ॥ गोप्यमानमपिच्छद्म कदाचित्ख्यातिमेष्यति ॥ २० ॥ ये गुणाः साधिताः पूर्वं शीलाचारश्रुतादिभिः ॥ सद्यस्ते नाशमायान्ति कौटिल्यपथगामिनः ॥ २१ ॥ पापं निन्दा भयं वैरं चत्वार्येतानि देहिनाम् ॥ छद्ममार्गप्रपन्नानां तिष्ठन्त्येव हि सर्वदा ॥ २२ ॥ अत आवां शुभाचारौ जातौ च शुचिनां कुले ॥ वृत्तं धूर्तजनश्लाघ्यं नाश्रयावः कदाचन ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ देवतानां गुरूणां च

प्रसिद्ध होजाता है ॥ २० ॥ और शील, आचार व शास्त्रादिकों से पहले जो गुण सिद्ध कियेजाते हैं कुटिलता के मार्गमें चलनेवाले मनुष्यके वे शीघ्रही नाश होजाते हैं ॥ २१ ॥ और पाप, निन्दा, भय व वैर ये चार वस्तुवें छलके मार्ग में प्राप्त मनुष्यों के सदैव टिकी रहती हैं ॥ २२ ॥ इस कारण पवित्र द्विजोंके वंशमें उत्पन्न व उत्तम आचरणवाले हम दोनों छली लोगों से प्रशंसनीय आचरणका आश्रय न करेंगे ॥ २३ ॥ राजा बोले कि देवता, गुरु, माता, पिता व राजाकी

भी आज्ञा के उल्लंघन न होने योग्य से किसी प्रकार प्रत्युत्तर नहीं होता है ॥ २४ ॥ और इनलोगों से शुभ या अशुभ जो जो आज्ञा दीजावै उसको सावधान व डरेहुए तथा होनेकी इच्छावाले मनुष्यों को निश्चय कर करना चाहिये ॥ २५ ॥ अहो हम राजा हैं व तुमलोग प्रजा मानेगये हो और राजाकी आज्ञा से वर्तमान होनेवाले मनुष्यों का कल्याण होता है अन्यथा भय होता है ॥ २६ ॥ इस कारण आप दोनों को शीघ्रही मेरी आज्ञा करना चाहिये राजा से ऐसा कहेहुए उन दोनों द्विजबालकों ने डरसे बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ २७ ॥ व राजा ने सारस्वत के पुत्र सामवान् को वस्त्र, वेष व अंजनादिकों से स्त्रीरूपधारी किया ॥ २८ ॥

पित्रोश्च पृथिवीपतेः ॥ शासनस्याप्यलङ्घ्यत्वात्प्रत्यादेशो न कर्हिचित् ॥ २४ ॥ एतैर्यद्यत्समादिष्टं शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ कर्त्तव्यं नियतं भीतैरप्रमत्तैर्बुभूषुभिः ॥ २५ ॥ अहो वयं हि राजानः प्रजा यूयं हि संमताः ॥ राजाज्ञया प्रवृत्तानां श्रेयः स्यादन्यथा भयम् ॥ २६ ॥ अतो मच्छासनं कार्यं भवद्भ्यामविलम्बितम् ॥ इत्युक्तौ नरदेवेन तौ तथेत्यूचतुर्भयात् ॥ २७ ॥ सारस्वतस्य तनयं सामवन्तं नराधिपः ॥ स्त्रीरूपधारिणं चक्रे वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः ॥ २८ ॥ स कृत्रिमोद्भूतकलत्रभावः प्रयुक्तकर्णाभरणाङ्गरागः ॥ स्निग्धाञ्जनाक्षः स्पृहणीयरूपो बभूव सद्यः प्रमदोत्तमाभः ॥ २९ ॥ तावुभौ दम्पती भूत्वा द्विजपुत्रौ नृपाज्ञया ॥ जग्मतुर्नैषधं देशं यद्दा तद्दा भवत्विति ॥ ३० ॥ उपेत्य राजसदनं सोमवारे द्विजोत्तमैः ॥ सपत्नीकैः कृतातिथ्यौ धौतपादौ बभूवतुः ॥ ३१ ॥ सा राज्ञी ब्राह्मणान्सर्वानुपविष्टान्वरासने ॥ प्रत्येकमर्चयांचक्रे सपत्नीकान्द्विजोत्तमान् ॥ ३२ ॥ तौ च विप्रसुतौ दृष्ट्वा प्राप्तौ कृत

और बनावट से उपजेहुए स्त्रीभाववाला तथा कानों में आभूषण व अङ्गराग लगाये और सचिक्कण अंजनके समान नेत्रोंवाला वह सुन्दर रूपवान् द्विजपुत्र शीघ्रही उत्तम स्त्रीके समान होगया ॥ २९ ॥ और वे दोनों ब्राह्मणों के पुत्र राजाकी आज्ञासे स्त्री पुरुष होकर जो होगा वह होगा यह विचारकर निषधदेशको गये ॥ ३० ॥ और स्त्री समेत स्त्री पुरुषों के साथ राजाके घरको सोमवार के दिन जाकर चरणों को धुलाया व सत्कार को ग्रहण किया ॥ ३१ ॥ और उस रानी ने उत्तम आसन पै बैठेहुए स्त्री समेत सब उत्तम ब्राह्मणों को प्रत्येक का पूजन किया ॥ ३२ ॥ और बनावट के स्त्री पुरुष द्विजपुत्रों को प्राप्त देखकर व जानकर

कुछ हँसकर उसने पार्वती व शिव माना ॥ ३३ ॥ और मुख्य ब्राह्मणों में देवदेव सदाशिवजी को आवाहन करके उस रानी ने स्त्रियों में जगदम्बिका देवी को आवाहन किया ॥ ३४ ॥ और सावधान होकर उस रानीने सुगन्धित चन्दन, माला, धूप व नीराजन से भी पूजकर द्विजोत्तमों को प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ और सोने के पात्रों में सुन्दर शाकों से संयुत व शक्कर और सहद समेत घी से युक्त खीर को परोस कर ॥ ३६ ॥ सुगन्धित जड़हन के भातों समेत मनोहर लड्डू व पुवों की राशियों से युक्त पूरी व गुझिया और खिचड़ी व उड़द समेत पकेहुए ॥ ३७ ॥ अन्य भी असंख्य सुन्दर भक्ष्य भोज्यों समेत तथा सुगन्धित व स्वादिष्ठ

कदम्पती ॥ ज्ञात्वा किञ्चिद्विहस्याथ मेने गौरीमहेश्वरौ ॥ ३३ ॥ आवाह्य द्विजमुख्येषु देवदेवं सदाशिवम् ॥ पत्नी ष्वावाहयामास सा देवीं जगदम्बिकाम् ॥ ३४ ॥ गन्धैर्माल्यैः सुरभिभिर्धूपैर्नीराजनैरपि ॥ अर्चयित्वा द्विजश्रेष्ठान्न मश्चक्रे समाहिता ॥ ३५ ॥ हिरण्मयेषु पात्रेषु पायसं घृतसंयुतम् ॥ शर्करामधुसंयुक्तं शाकैर्जुष्टं मनोरमैः ॥ ३६ ॥ गन्धशाल्योदनैर्हृद्यैर्मोदकापूपराशिभिः ॥ शष्कुलीभिश्च संयावैः कृसरैर्माषपक्वकैः ॥ ३७ ॥ तथान्यैरप्यसंख्यातै र्भक्ष्यैर्भोज्यैर्मनोरमैः ॥ सुगन्धैः स्वादुभिः सूपैः पानीयैरपि शीतलैः ॥ ३८ ॥ कृतमन्नं द्विजाग्रयेभ्यः सा भक्त्या पर्यवेषयत् ॥ दध्योदनं निरुपमं निवेद्य समतोषयत् ॥ ३९ ॥ भुक्तवत्सु द्विजाग्र्येषु स्वाचान्तेषु नृपाङ्गना ॥ प्रणम्य दत्त्वा ताम्बूलं दक्षिणां च यथार्हतः ॥ ४० ॥ धेनूर्हिरण्यवासांसि रत्नस्रग्भूषणानि च ॥ दत्त्वा भूयो नमस्कृत्य विस सर्ज द्विजोत्तमान् ॥ ४१ ॥ तयोर्द्वयोर्भूसुरवर्यपुत्रयोरेकस्तया हैमवतीधियार्चितः ॥ एको महादेवधियाभिपूजि

दालि व ठण्ढे जल समेत ॥ ३८ ॥ बनेहुए अन्न को उस रानी ने भक्ति से उत्तम ब्राह्मणोंके लिये परोसा और अनूपम दही भातको निवेदनकर प्रसन्न किया ॥ ३९ ॥ और उत्तम ब्राह्मणों के भोजन व आचमन करने पर राजकुमारी ने प्रणाम कर तांबूल व यथायोग्य दक्षिणा को देकर ॥ ४० ॥ गऊ, सुवर्ण, वस्त्र, रत्न, माला व भूषणों को देकर फिर प्रणाम कर द्विजोत्तमों को बिदा किया ॥ ४१ ॥ और उन दोनों द्विजोत्तमपुत्रों में से एक को उस राजकुमारी ने पार्वती की बुद्धि से पूजा

व एक को शिवजी की बुद्धि से पूजा और प्रणाम किया व उसकी आज्ञा से वे दोनों चले गये ॥ ४२ ॥ और पुरुषत्व को भूल कर उस स्त्री की द्विजोत्तम में इच्छा उत्पन्न हुई और कामदेव के वश में प्राप्त व मद से सींची हुई वह बोली ॥ ४३ ॥ कि हे सब अंगों से सुन्दर, विशाललोचन, नाथ! खड़े हो खड़े हो कहां जाते हो मुझ अपनी प्यारी को देखिये ॥ ४४ ॥ आगे यह फूले हुए बड़े वृक्षोंवाला सुन्दर वन है इसमें मैं तुम्हारे साथ सुखपूर्वक विहार करना चाहती हूं ॥ ४५ ॥ इस प्रकार उससे कहा हुआ वचन सुनकर ब्राह्मण का पुत्र आगे गया व हँसी का वचन विचार कर पहले की नाईं चला ॥ ४६ ॥ व फिर भी उस स्त्री

तः कृतप्रणामौ ययतुस्तदाज्ञया ॥ ४२ ॥ सा तु विस्मृतपुम्भावा तस्मिन्नेव द्विजोत्तमे ॥ जातस्पृहा मदोत्सिक्ता कन्दर्पविवशाब्रवीत् ॥ ४३ ॥ अयि नाथ विशालाक्ष सर्वावयवसुन्दर ॥ तिष्ठ तिष्ठ क्व वा यासि मां न पश्यसि ते प्रियाम् ॥ ४४ ॥ इदमग्रे वनं रम्यं सुपुष्पितमहाद्रुमम् ॥ अस्मिन्विहर्तुमिच्छामि त्वया सह यथासुखम् ॥ ४५ ॥ इत्थं तयोक्तमाकर्ण्य पुरोऽगच्छद्द्विजात्मजः ॥ विचिन्त्य परिहासोक्तिं गच्छति स्म यथा पुरा ॥ ४६ ॥ पुनरप्याह सा बाला तिष्ठ तिष्ठ क्व यास्यसि ॥ दुरुत्सहस्मरावेशां परिभोक्तुमुपेत्य माम् ॥ ४७ ॥ परिष्वजस्व मां कान्तां पायस्व तवाधरम् ॥ नाहं गन्तुं समर्थास्मि स्मरबाणप्रपीडिता ॥ ४८ ॥ इत्थमश्रुतपूर्वां तां निशम्य परिशङ्कितः ॥ आयान्तीं पृष्ठतो वीक्ष्य सहसा विस्मयं गतः ॥ ४९ ॥ कैषा पद्मपलाशाक्षी पीनोन्नतपयोधरा ॥ कृशोदरी बृहच्छ्रोणी नवपल्लवकोमला ॥ ५० ॥ स एव मे सखा किन्तु जात एव वराङ्गना ॥ पृच्छाम्येनमतः सर्वमिति संचिन्त्य

ने कहा कि खड़े हो खड़े हो दुःख से सहने योग्य कामदेव के प्रवेशवाली मुझको भोगने के लिये प्राप्त होकर तुम कहा जावोगे ॥ ४७ ॥ मुझ सुन्दरी को लिपटाइये व अपना अधर (ओंठ) पिलाइये कामदेव के बाण से पीडित मैं चलने के लिये समर्थ नहीं हूं ॥ ४८ ॥ इस प्रकार पहले न सुनी हुई उस वाणी को सुनकर वह शंकित हुआ और पीछे आती हुई उसको देखकर यकायक विस्मय को प्राप्त हुआ ॥ ४९ ॥ कि कमलपत्रके समान लोचनोंवाली व मोटे तथा ऊंचे कुचोंवाली और पतली कमर व बड़े नितम्बवाली यह नवीन पत्तों के समान कोमल कौन है ॥ ५० ॥ क्या वही मेरा मित्र उत्तम स्त्री होगया है इस कारण

इससे पूंछूंगा यह सब विचारकर उसने कहा ॥ ५१ ॥ कि हे सखे ! रूप व गुणादिकों से क्यों अपूर्व की नाईं जान पड़ते हो व कामवती स्त्रीकी नाईं क्यों अपूर्व वचन कहतेहो ॥ ५२ ॥ जो तुम वेद, पुराणोंको जाननेवाले, ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय व शान्त सारस्वत के पुत्रथे वही तुम क्यों इस प्रकार कहते हो ॥ ५३ ॥ इस प्रकार कही हुई उस स्त्रीने फिर कहा कि हे प्रभो ! मैं पुरुष नहीं हूं बरन सामवतीनामक मैं रति को देनेवाली तुम्हारी स्त्री हूं ॥ ५४ ॥ हे कान्त ! यदि तुमको सन्देह है तो मेरे अंगों को देखिये मार्ग में ऐसा कहे हुए उसने यकायक एकान्त में इसको देखा ॥ ५५ ॥ और सचमुच गुंथी बेणीवाली व जघन और कुचों से

सोऽब्रवीत् ॥ ५१ ॥ किमपूर्व इवाभासि सखे रूपगुणादिभिः ॥ अपूर्वं भाषसे वाक्यं कामिनीव समाकुला ॥ ५२ ॥ यस्त्वं वेदपुराणज्ञो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ सारस्वतात्मजः शान्तः कथमेवं प्रभाषसे ॥ ५३ ॥ इत्युक्ता सा पुनः प्राह नाहमस्मि पुमान्प्रभो ॥ नाम्ना सामवती बाला तवास्मि रतिदायिनी ॥ ५४ ॥ यदि ते संशयः कान्त ममाङ्गानि विलोकय ॥ इत्युक्तः सहसा मार्गे रहस्येनां व्यलोकयत् ॥ ५५ ॥ तामकृत्रिमधम्मिल्लां जघनस्तनशोभिनीम् ॥ सुरूपां वीक्ष्य कामेन किंचिद्व्याकुलतामगात् ॥ ५६ ॥ पुनः संस्तभ्य यत्नेन चेतसो विकृतिं बुधः ॥ मुहूर्तं विस्मयाविष्टो न किंचित्प्रत्यभाषत ॥ ५७ ॥ सामवत्युवाच ॥ गतस्ते संशयः कच्चित्तर्ह्यागच्छ भजस्व माम् ॥ पश्येदं विपिनं कान्त परस्त्रीसुरतोचितम् ॥ ५८ ॥ सुमेधा उवाच ॥ मैवं कथय मर्यादां मा हिंसीर्मदमत्तवत् ॥ आवां विज्ञातशास्त्रार्थौ त्वमेवं भाषसे कथम् ॥ ५९ ॥ अधीतस्य च शास्त्रस्य विवेकस्य कुलस्य च ॥ किमेष सदृशो धर्मो जारधर्मनिषेवणम् ॥ ६० ॥

शोभित उस स्वरूपवती स्त्री को देखकर वह कामदेवसे कुछ विकल हो गया ॥ ५६ ॥ फिर यत्नसे चित्त के विकारको रोंककर वह विद्वान् थोडी देर तक विस्मयसे संयुत हुआ व कुछ न बोला ॥ ५७ ॥ सामवती स्त्री बोली कि हे कान्त ! क्या तुम्हारी सन्देह जाती रही तो आइये मुझको भजिये और पराई स्त्री के रतिके योग्य इस वनको देखिये ॥ ५८ ॥ सुमेधा बोला कि ऐसा मत कहिये व मदसे मत्त की नाईं मर्यादा को नाश न कीजिये हम तुम दोनों शास्त्रार्थ के जाननेवाले हैं तुम ऐसा क्यों कहते हो ॥ ५९ ॥ पढ़े हुए शास्त्र व विवेक और कुलके समान क्या यह धर्म है जो कि जारधर्म का सेवन है ॥ ६० ॥ तुम स्त्री नहीं हो बरन

विद्वान् पुरुष हो अपनाको बुद्धि से जानिये यह आपही से कियाहुआ अनर्थ है जोकि हम तुम दोनों से कियागयाहै ॥६१॥ अपने पिताओं को छलकर छली राजा की आज्ञा से अयोग्य कर्म करके उसका यह फल भोग किया जाता है ॥ ६२ ॥ और सब अयोग्य कर्म मनुष्यों के कल्याण का नाशक है जो तुम ब्राह्मण के पुत्र विद्वान् थे वही निन्दित स्त्रीत्व को प्राप्त हुए हो ॥ ६३ ॥ मार्ग को छोडकर वनको जानेवाला मनुष्य कांटों से छिदजाता है और जब छोड़ेहुए का समागम होता है तब हिंसक जीवों से बल से मारा जाता है ॥ ६४ ॥ इस प्रकार आपही विचारको प्राप्त होकर चुपचाप घरको आइये देवता व ब्राह्मणों की प्रसन्नता से तुम्हारा

न त्वं स्त्री पुरुषो विद्वाञ्जानीह्यात्मानमात्मना ॥ अयं स्वयंकृतोऽनर्थ आवाभ्यां यद्विचेष्टितम् ॥ ६१ ॥ वञ्च यित्वात्मपितरौ धूर्त्तराजानुशासनात् ॥ कृत्वा चानुचितं कर्म तस्यैतद्भुज्यते फलम् ॥ ६२ ॥ सर्वं त्वनुचितं कर्म नृणां श्रेयोविनाशनम् ॥ यस्त्वं विप्रात्मजो विद्वान्गतः स्त्रीत्वं विगर्हितम् ॥ ६३ ॥ मार्गं त्यक्त्वा गतोऽरण्यं नरो विध्येत कण्टकैः ॥ बलाद्धिंस्येत वा हिंस्रैर्यदा त्यक्तसमागमः ॥ ६४ ॥ एवं विवेकमाश्रित्य तूष्णीमेहि स्वयं गृहम् ॥ देवद्विजप्रसादेन स्त्रीत्वं तव विलीयते ॥ ६५ ॥ अथवा दैवयोगेन स्त्रीत्वमेव भवेत्तव ॥ पित्रा दत्ता मया साकं रंस्यसे वरवर्णिनि ॥ ६६ ॥ अहो चित्रमहो दुःखमहो पापबलं महत् ॥ अहो राज्ञः प्रभावोयं शिवाराधनसंभृतः ॥ ६७ ॥ इत्युक्ताप्यसकृत्तेन सा वधूरातिविह्वला ॥ बलेन तं समालिङ्ग्य चुचुम्बाधरपल्लवम् ॥ ६८ ॥ धर्षितोपि तया धीरः सुमेधा नूतनस्त्रियम् ॥ यत्नादानीय सदनं कृत्स्नं तत्र न्यवेदयत् ॥ ६९ ॥ तदाकर्ण्याथ तौ विप्रौ कुपितौ शोक

स्त्रीपन जाता रहैगा ॥ ६५ ॥ अथवा दैवयोगसे तुम्हारे स्त्रीपन होगा तो हे वरवर्णिनि ! पितासे दी हुई तुम मेरे साथ रमण कीजियेगा ॥ ६६ ॥ अहो आश्चर्य है व अहो दुःखहै और पापका बल बडाभारी होता है व शिवजी के आराधन से इकट्ठा कियेहुए इस रानीके प्रभाव को आश्चर्य है ॥ ६७ ॥ उससे बार २ यह कहीहुई वह बड़ी विह्वल स्त्री हठसे उसको लिपटकर कोमल पल्लव (पत्र) के समान ओंठ को चूमती भई ॥ ६८ ॥ उससे धर्षित भी बुद्धिमान् सुमेधाने नवीन स्त्रीको यत्नसे घरको लाकर वहां सब वृत्तान्त बतलाया ॥ ६९ ॥ उस वचन को सुनकर शोकसे विकल व क्रोधित वे दोनों ब्राह्मण उन बालकों समेत विदर्भाधीश के

समीप आये ॥ ७० ॥ तदनन्तर सारस्वत ने छली के कर्मवाले राजासे कहा कि हे राजन् ! तुम्हारी आज्ञा से बँधेहुए मेरे पुत्रको देखिये ॥ ७१ ॥ तुम्हारी आज्ञा के वशमें प्राप्त इनदोनों ने निन्दित कर्म किया व मेरा पुत्र निन्दित स्त्रीपन को पाकर उसका फल भोगता है ॥ ७२ ॥ आज मेरी सन्तान नाश होगई व मेरे पितर निराश होगये और लुप्त पिण्डादिक व लुप्त संस्कारवाले पुरुषको उत्तम लोक नहीं होताहै ॥७३॥ शिखा, यज्ञोपवीत, मृगचर्म, मौंजी, दण्ड व कमण्डलु और ब्रह्मचर्य के योग्य चिह्नको छोड़कर यह मेरा पुत्र इस दशाको प्राप्त हुआहै ॥ ७४ ॥ हे राजन् ! ब्रह्मसूत्र (जनेऊ), गायत्री, स्नान, सन्ध्या, जप व पूजन को छोड़कर यह

विह्वलौ ॥ ताभ्यां सह कुमाराभ्यां वैदर्भान्तिकमीयतुः ॥ ७० ॥ ततः सारस्वतः प्राह राजानं धूर्तचेष्टितम् ॥ राजन्म मात्मजं पश्य तव शासनयन्त्रितम् ॥७१॥ एतौ तवाज्ञावशगौ चक्रतुः कर्म गर्हितम् ॥ मत्पुत्रस्तत्फलं भुङ्क्ते स्त्रीत्वं प्राप्य जुगुप्सितम् ॥ ७२ ॥ अद्य मे सन्ततिर्नष्टा निराशाः पितरो मम ॥ नापुत्रस्य हि लोकोस्ति लुप्तपिण्डादिसंस्कृ तेः ॥ ७३ ॥ शिखोपवीतमजिनं मौञ्जीं दण्डं कमण्डलुम् ॥ ब्रह्मचर्योचितं चिह्नं विहायेमां दशां गतः ॥ ७४ ॥ ब्रह्म सूत्रं च सावित्रीं स्नानं सन्ध्यां जपार्चनम् ॥ विसृज्य स्त्रीत्वमाप्तोस्य का गतिर्वद पार्थिव ॥ ७५ ॥ त्वया मे सन्त तिर्नष्टा नष्टो वेदपथश्च मे ॥ एकात्मजस्य मे राजन् का गतिर्वद शाश्वती ॥ ७६ ॥ इति सारस्वतेनोक्तं वाक्यमा कर्ण्य भूपतिः ॥ सीमन्तिन्याः प्रभावेण विस्मयं परमं गतः ॥ ७७ ॥ अथ सर्वान्समाहूय महर्षीनमितद्युतीन् ॥ प्रसाद्य प्रार्थयामास तस्य पुंस्त्वं महीपतिः ॥ ७८ ॥ तेऽब्रुवन्नथ पार्वत्याः शिवस्य च समीहितम् ॥ तद्भक्तानां च

स्त्रीत्वको प्राप्त हुआ है तो कहिये कि इसकी क्या गति होगी ॥ ७५ ॥ हे राजन् ! तुमने मेरी सन्तान को नाश किया व मेरा वेदमार्ग नाश किया व एकही पुत्रवाले मेरी क्या सनातनी गति होगी इसको कहिये ॥ ७६ ॥ सारस्वत से कहेहुए इस वचन को सुनकर राजा सीमन्तिनी के प्रभावसे आश्चर्य को प्राप्तहुआ ॥ ७७ ॥ इसके उपरान्त अमित छविवाले सब महर्षियों को बुलाकर राजा ने प्रसन्न करा कर उसके पुरुष होने की प्रार्थना किया ॥ ७८ ॥ इसके उपरान्त वे महर्षिलोग

बोले कि पार्वती व शिवजीका कर्तव्य और उनके भक्तों का माहात्म्य अन्यथा करने के लिये कौन समर्थ है ॥ ७६ ॥ इसके उपरान्त भरद्वाज मुनिश्रेष्ठ को लाकर उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों व उनके पुत्रों समेत राजा ने ॥ ८० ॥ भरद्वाज के उपदेश से पार्वती के मन्दिर को प्राप्त होकर महारात्रि में उस देवी की तीव्र नियमोंसे उपासना किया ॥ ८१ ॥ इस प्रकार तीन रात्रितक भोजन को छोड़कर पार्वतीजी के ध्यान में परायण राजाने भलीभाति प्रणामों से व अनेक प्रकार के स्तोत्रों से शरणागत के दुःखको हरनेवाली पार्वतीजी को प्रसन्न किया ॥ ८२ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतीहुई उन देवीजीने भक्त राजा को करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रभावाले

माहात्म्यं कोन्यथा कर्तुमीश्वरः ॥ ७६ ॥ अथ राजा भरद्वाजमादाय मुनिपुङ्गवम् ॥ ताभ्यां सह द्विजाग्र्याभ्यां तत्सुताभ्यां समन्वितः ॥ ८० ॥ अम्बिकाभवनं प्राप्य भरद्वाजोपदेशतः ॥ तां देवीं नियमैस्तीव्रैरुपास्ते स्म महानिशि ॥८१॥ एवं त्रिरात्रं सुविशिष्टभोजनः स पार्वतीध्यानरतो महीपतिः ॥ सम्यक्प्रणामैर्विविधैश्च संस्तवैर्गौरीं प्रपन्नार्तिहरामतोषयत् ॥ ८२ ॥ ततः प्रसन्ना सा देवी भक्तस्य पृथिवीपतेः ॥ स्वरूपं दर्शयामास चन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥ ८३ ॥ अथाह गौरी राजानं किं ते ब्रूहि समीहितम् ॥ सोऽप्याह पुंस्त्वमेतस्य कृपया दीयतामिति ॥ ८४ ॥ भूयोप्याह महादेवी मद्भक्तैः कर्म यत्कृतम् ॥ शक्यते नान्यथा कर्तुं वर्षायुतशतैरपि ॥ ८५ ॥ राजोवाच ॥ एकात्मजो हि विप्रोयं कर्मणा नष्टसन्ततिः ॥ कथं सुखं प्रपद्येत विना पुत्रेण तादृशः ॥ ८६ ॥ देव्युवाच ॥ तस्यान्यो मत्प्रसादेन भविष्यति सुतोत्तमः ॥ विद्याविनयसंपन्नो दीर्घायुरमलाशयः ॥ ८७ ॥ एषा सामवती नाम सुता तस्य

स्वरूप को दिखलाया ॥ ८३ ॥ इसके उपरान्त पार्वतीजी ने राजा से कहा कि तुम्हारा क्या मनोरथ है उसको कहो राजाने भी यह कहा कि दयासे इसको पुरुषत्व दीजिये ॥ ८४ ॥ फिर महादेवी ने कहा कि मेरे भक्तोंसे जो कर्म किया जाता है वह दशलक्ष वर्षों से भी अन्यथा नहीं किया जासक्ता है ॥ ८५ ॥ राजा बोले कि कर्म से नष्ट सन्तानवाला यह ब्राह्मण एक पुत्रवाला है इसलिये पुत्रके विना वैसा यह पुत्र कैसे सुखको प्राप्त होगा ॥ ८६ ॥ देवीजी बोलीं कि मेरी प्रसन्नता से उसके अन्य उत्तम पुत्र होगा जोकि विद्या व विनय से संयुक्त तथा दीर्घायु व निर्मल आशयवाला होगा ॥ ८७ ॥ और यह सामवतीनामक उसकी कन्या

उस सुमेधा ब्राह्मण की स्त्री होकर कामदेव के सुखसे युक्त होवै ॥८८॥ यह कहकर देवी अन्तर्द्धान होगई और वे राजा आदिक सबलोग अपने अपने घरको गये व इन्होंने उन देवीकी आज्ञामें विश्वास किया ॥८९॥ और देवीजी के प्रसाद से उस सारस्वत ब्राह्मणने भी पहले के पुत्रसे उत्तम पुत्रको थोडेही समयमें पाया ॥९०॥ और उस सामवती कन्या को उस सुमेधा के लिये दिया व उन दोनों स्त्री पुरुषोंने बहुत समयतक उत्तम सुखको भोग किया ॥ ९१॥ सूतजी बोले कि यह शिवजी की भक्तिनि सीमन्तिनीनामक राजाकी स्त्री का प्रभाव कहा गया व शिवजी का माहात्म्य भी वर्णन किया गया ॥ ९२॥ व फिर भी सुननेवालों के मङ्गलका स्थान

द्विजन्मनः ॥ भूत्वा सुमेधसः पत्नी कामभोगेन युज्यताम् ॥ ८८ ॥ इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी ते च राजपुरोगमाः ॥ गताः स्वं स्वं गृहं सर्वे चक्रुस्तच्छासने स्थितिम् ॥ ८९ ॥ सोपि सारस्वतो विप्रः पुत्रं पूर्वसुतोत्तमम् ॥ लेभे देव्याः प्रसादेन ह्यचिरादेव कालतः ॥ ९० ॥ तां च सामवतीं कन्यां ददौ तस्मै सुमेधसे ॥ तौ दम्पती चिरं कालं बुभुजाते परं सुखम् ॥ ९१ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येष शिवभक्तायाः सीमन्तिन्या नृपस्त्रियाः ॥ प्रभावः कथितः शम्भोर्माहात्म्यमपि वर्णितम् ॥ ९२ ॥ भूयोपि शिवभक्तानां प्रभावं विस्मयावहम् ॥ समासाद्वर्णयिष्यामि श्रोतॄणां मङ्गलायनम् ॥ ९३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे सीमन्तिन्याः प्रभाववर्णनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

सूत उवाच ॥ विचित्रं शिवनिर्माणं विचित्रं शिवचेष्टितम् ॥ विचित्रं शिवमाहात्म्यं विचित्रं शिवभाषितम् ॥ १ ॥ विचित्रं शिवभक्तानां चरितं पापनाशनम् ॥ स्वर्गापवर्गयोः सत्यं साधनं तद्ब्रवीम्यहम् ॥२॥ अवन्तीविषये कश्चिद्ब्राह्मणो

व आश्चर्यदायक शिवभक्तोंका माहात्म्य संक्षेप से वर्णन करूंगा ॥९३॥ इति श्रीस्कान्देब्रह्मोत्तरखण्डे भाषाटीकायां सीमन्तिन्याःप्रभाववर्णनंनाम नवमोऽध्यायः॥९॥

दो॰। यथा मरे नृप पुत्र को योगी दीन जियाय। सोइ दशम अध्याय में कह्यो चरित सुखदाय ॥ सूतजी बोले कि शिवजी का बनाना विचित्र है व शिवजी का कर्म विचित्र है और शिवजी का माहात्म्य विचित्र है व शिवजी का वचन विचित्र है ॥ १ ॥ और शिवभक्तों का पापनाशक चरित्र विचित्र है व स्वर्ग और मोक्ष का सत्यसाधन है इससे उसको कहता हूं ॥ २ ॥ कि अवन्तीदेश में कोई मंदरनामक ब्राह्मण विषयों का स्थान व स्त्री से जीता हुआ तथा धन को

करनेवाला हुआ है ॥ ३ ॥ और वह सन्ध्या तथा स्नानको छोड़नेवाला था व चन्दन, माला और वसन उसको प्यारे थे व निन्दित स्त्रियों में आसक्त था कुमार्ग में स्थित जैसा कि पहले अजामिल था वैसाही वह था ॥ ४ ॥ व दिन रात पिङ्गलानामक वेश्यामें रमण करता हुआ इन्द्रियों को न जीतनेवाला नित्य उसीके घरमें रहता था ॥ ५ ॥ किसी समय उसके घरमें उस ब्राह्मण के बसने पर ऋषभनामक धर्मात्मा शिवयोगी आया ॥ ६ ॥ व आयेहुए उसको र अपना इकट्ठा कियाहुआ पुण्य मानकर वेश्या व ब्राह्मण उन दोनों ने पूजन किया ॥ ७ ॥ और कम्मल व बसन बिछेहुए महापीठ पै उस ब्राह्मण को

मन्दराह्वयः ॥ बभूव विषयारामः स्त्रीजितो धनसंग्रही ॥ ३ ॥ सन्ध्यास्नानपरित्यक्तो गन्धमाल्याम्बरप्रियः ॥ कुस्त्री सक्तः कुमार्गस्थो यथा पूर्वमजामिलः ॥ ४ ॥ स वेश्यां पिङ्गलां नाम रममाणो दिवानिशम् ॥ तस्या एव गृहे नित्यमासीदविजितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ कदाचित्सदने तस्यास्तस्मिन्निवसति द्विजे ॥ ऋषभो नाम धर्मात्मा शिवयोगी समाययौ ॥ ६ ॥ तमागतमभिप्रेक्ष्य मत्वा स्वं पुण्यमूर्जितम् ॥ सा वेश्या स च विप्रश्च पर्यपूजयतामुभौ ॥ ७ ॥ तमारोप्य महापीठे कम्बलाम्बरसंभृते ॥ प्रक्षाल्य चरणौ भक्त्या तज्जलं दधतुः शिरः ॥ ८ ॥ स्वागतार्घ्यनमस्कारैर्गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ उपचारैः समभ्यर्च्य भोजयामासतुर्मुदा ॥ ९ ॥ तं भुक्तवन्तमाचान्तं पर्यङ्के सुखसंस्तरे ॥ उपवेश्य मुदा युक्तौ ताम्बूलं प्रत्ययच्छताम् ॥ १० ॥ पादसंवाहनं भक्त्या कुर्वन्तौ दैवचोदितौ ॥ कल्पयित्वा तु शुश्रूषां प्रीणयामासतुश्चिरम् ॥ ११ ॥ एवं समर्चितस्ताभ्यां शिवयोगी महाद्युतिः ॥ अतिवाह्य निशामेकां

बिठाकर भक्ति से चरणों को धोकर उस जलको मस्तक पै धारण किया ॥ ८ ॥ और स्वागत, अर्घ्य, नमस्कार, चन्दन, पुष्प व अक्षतादिक उपचारों से पूजकर उसको हर्ष से भोजन कराया ॥ ९ ॥ और भोजन व आचमन कियेहुए उस मुनि को सुखदायक बिछौनेवाले पलँग पै बिठाकर हर्षसे संयुत उन दोनोंने ताबूल दिया ॥ १० ॥ और चरणों को चापते हुए भाग्य से प्रेरित उनदोनों ने सेवा करके बहुत देरतक प्रसन्न किया ॥ ११ ॥ इस प्रकार उनदोनों से पूजित महाछविवान्

शिवयोगी एक रात्रि व्यतीत करके उनसे आदर कियाहुआ वह प्रातःकाल चलागया ॥ १२ ॥ और कुछ समय बीतने पर वह ब्राह्मण मृत्यु को प्राप्त हुआ और वह वेश्या मरकर कर्म से इकट्ठा कीहुई गति को प्राप्त हुई ॥ १३ ॥ व कर्म से प्राप्त कियाहुआ वह ब्राह्मण दशार्ण देश के राजा वज्रबाहु की स्त्री सुमति के गर्भमें प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ व राजा की उस बड़ी स्त्री को गर्भ की संपत्ति में आश्रित देखकर सौतियों ने छलसे उसको विष देदिया ॥ १५ ॥ और भयंकर विषको खाकर वह दैवयोग से न मरी परन्तु मरने से भी बड़े दुस्सह क्लेश को प्राप्त हुई ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त समय आनेपर उसने एक पुत्रको पैदाकिया

ययौ प्रातस्तदादृतः ॥ १२ ॥ एवं काले गतप्राये स विप्रो निधनं गतः ॥ सा च वेश्या मृता काले ययौ कर्मार्जितां गतिम् ॥ १३ ॥ स विप्रः कर्मणा नीतो दशार्णधरणीपतेः ॥ वज्रबाहुकुटुम्बिन्याः सुमत्या गर्भमास्थितः ॥ १४ ॥ तां ज्येष्ठपत्नीं नृपतेर्गर्भसंपदमाश्रिताम् ॥ अवेक्ष्य तस्यै गरलं सपत्न्यश्छद्मना ददुः ॥ १५ ॥ सा भुक्त्वा गरलं घोरं न मृता दैवयोगतः ॥ क्लेशमेव परं प्राप मरणादतिदुःसहम् ॥ १६ ॥ अथ काले समायाते पुत्रमेकमजीजनत् ॥ क्लेशेन महता साध्वी पीडिता वरवर्णिनी ॥ १७ ॥ स निर्दशो राजपुत्रः स्पृष्टपूर्वो गरेण यत् ॥ तेनावाप महाक्लेशं क्रन्दमानो दिवानिशम् ॥ १८ ॥ तस्य बालस्य माता च सर्वाङ्गव्रणपीडिता ॥ बभूवतुरतिक्लिष्टौ गरयोगप्रभावतः ॥ १९ ॥ तौ राज्ञा च समानीतौ वैद्यैश्च कृतभेषजौ ॥ न स्वास्थ्यमापतुर्यत्नैरनेकैर्योजितैरपि ॥ २० ॥ न रात्रौ लभते निद्रां सा राज्ञी विपुलव्यथा ॥ स्वपुत्रस्य च दुःखेन दुःखिता नितरां कृशा ॥ २१ ॥ नीत्वैवं कतिचिन्मासान्स राजा मातृ

और बड़े क्लेश से वह पतिव्रता पीड़ित हुई ॥ १७ ॥ जिसलिये पहले विष ने उसको स्पर्श किया था उस कारण दिन रात रोतेहुए उस दशनहीन राजपुत्र ने बड़ा क्लेश पाया ॥ १८ ॥ और उस बालक की माता सब अंगों में व्रणों से पीड़ित हुई व विष के योग के प्रभाव से वे दोनों बड़े क्लेशित हुए ॥ १९ ॥ व राजा से लाये हुए वैद्यों से औषध किये उन दोनों ने युक्त किये हुए भी अनेकों यत्नों से स्वस्थता को नहीं पाया ॥ २० ॥ और बड़ी पीड़ावाली वह रानी रात्रि में निद्रा को नहीं प्राप्त होती थी और अपने पुत्र के दुःख से दुःखित वह बहुत दुबली थी ॥ २१ ॥ इस प्रकार कुछ महीनों को व्यतीत कर

उस राजा ने जीते हुए भी माता व पुत्र को मरे हुए से देखकर मन में विचार किया ॥ २२ ॥ कि मेरी स्त्री व पुत्र ये, दोनों नरक से यहां आये हैं इससे इनका रोग शान्त नहीं होता है व रोते हुए ये निद्रा को भंग करते हैं ॥ २३ ॥ इस विषय में इन पापियों का मैं निश्चय कर यत्न करूंगा क्योंकि पाप को भोगनेवाले ये मरने व जीने के लिये भी योग्य नहीं हैं ॥ २४ ॥ इस प्रकार विचार कर सौतियों व उनके पुत्रों में आसक्त राजा ने सारथी को बुलाकर अपनी स्त्री व पुत्रको रथके द्वारा दूर निकलवा दिया ॥ २५ ॥ कहीं निर्जन वनमें सारथी से त्यागे हुए वे क्षुधा व प्यास से बहुतही विकल दोनों बड़ी

पुत्रकौ॥जीवन्तौ च मृतप्रायौ विलोक्यात्मन्यचिन्तयत्॥२२॥ एतौ मे गृहिणीपुत्रौ निरयादागताविह ॥ अश्रान्तरोगौ क्रन्दन्तौ निद्राभङ्गविधायिनौ ॥२३॥ अत्रोपायं करिष्यामि पापयोर्ध्रुवमेतयोः ॥ मर्तुं वा जीवितुं वापि न क्षमौ पापभोगिनौ ॥ २४ ॥ इत्थं विनिश्चित्य च भूमिपालः सक्तः सपत्नीषु तदात्मजेषु ॥ आहूय सूतं निजदारपुत्रौ निर्वासयामास रथेन दूरम् ॥ २५ ॥ तौ सूतेन परित्यक्तौ कुत्रचिद्विजने वने ॥ अवापतुः परां पीडां क्षुत्तृड्भ्यां भृशविह्वलौ ॥ २६ ॥ सोद्वहन्ती निजं बालं निपतन्ती पदे पदे ॥ निःश्वसन्ती निजं कर्म निन्दन्ती चकिता भृशम् ॥ २७ ॥ कचित्कण्टकभिन्नाङ्गी मुक्तकेशी भयातुरा ॥ कचिद्व्याघ्रस्वनैर्भीता कचिद्व्यालैरनुद्रुता ॥ २८॥ भर्त्स्यमाना पिशाचैश्च वेतालैर्ब्रह्मराक्षसैः ॥ महागुल्मेषु धावन्ती भिन्नपादा क्षुराश्मभिः ॥ २९ ॥ सैवं घोरे महारण्ये भ्रमन्ती नृपगेहिनी ॥ दैवात्प्राप्ता वणिङ्मार्गं गोवाजिनरसेवितम् ॥ ३० ॥ गच्छन्ती तेन मार्गेण सुदूरमतियत्नतः ॥ ददर्श वैश्यनगरं बहु

पीड़ा को प्राप्त हुए ॥ २६ ॥ अपने बालक को लिये पग पग पै गिरती व श्वास लेती तथा अपने कर्म की निन्दा करती हुई वह रानी बहुत चकित हुई ॥ २७ ॥ व भय से विकल तथा छुटेबालोंवाली उस रानी के अंग कहीं काँटों से छिदजातेथे और कहीं व्याघ्रके शब्दों से डरती थी व कहीं सपाँसे भगाई जाती थी ॥ २८ ॥ व पिशाच वेताल और ब्रह्मराक्षसों से घुड़कीहुई महागुल्मों में दौड़नेवाली उस रानी के पैर छुरे के समान पत्थरों से छिदगये ॥ २९ ॥ भयंकर महावन में इस प्रकार घूमती हुई वह राजाकी स्त्री दैवयोगसे गऊ, घोड़े व मनुष्यों से सेवित बनियों के मार्गमें प्राप्त हुई ॥ ३० ॥ व उस मार्ग से बहुत दूर जातीहुई उसने बड़े

यत्न से बहुत स्त्री व मनुष्यों से सेवित वैश्यों के नगर को देखा ॥ ३१ ॥ व उस नगर का रक्षक पद्माकर नामक महावैश्य महाजन दूसरे राजराज की नाईं था ॥ ३२ ॥ व उस वैश्यराजकी कोई गृहदासी आतीहुई राजाकी स्त्री को दूरसे देखकर उसके समीप आई ॥ ३३ ॥ और आपही वृत्तान्त को जानकर उस दासी ने पुत्रसमेत राजाकी स्त्री को स्वामी को दिखाया ॥ ३४ ॥ और दुःखित पुत्रवाली तथा रोगोंसे विकल उस रानी को देखकर वैश्यों के स्वामी ने एकान्तमें लेजाकर प्रकटता से उसका वृत्तान्त पूंछा ॥ ३५ ॥ और उस स्त्री से सम्पूर्ण वृत्तान्त को जानकर वह वैश्यराज अहो कष्ट है यह जानकर बारबार श्वास लेनेलगा ॥ ३६ ॥

ग्निरसेवितम् ॥ ३१ ॥ तस्य गोप्ता महावैश्यो नगरस्य महाजनः ॥ अस्ति पद्माकरो नाम राजराज इवापरः ॥ ३२ ॥ तस्य वैश्यपतेः काचिद्गृहदासी नृपाङ्गनाम् ॥ आयान्तीं दूरतो दृष्ट्वा तदन्तिकमुपाययौ ॥ ३३ ॥ सा दासी नृपतेः कान्तां सपुत्रां भृशपीडिताम् ॥ स्वयं विदितवृत्तान्ता स्वामिने प्रत्यदर्शयत् ॥ ३४ ॥ स तां दृष्ट्वा विशां नाथो रुजार्त्तां क्लिष्टपुत्रकाम् ॥ नीत्वा रहसि सुव्यक्तं तद्वृत्तान्तमपृच्छत ॥ ३५ ॥ तया निवेदिताशेषवृत्तान्तः स वणिक्पतिः ॥ अहो कष्टमिति ज्ञात्वा निशश्वास मुहुर्मुहुः ॥ ३६ ॥ तामन्तिके स्वगेहस्य संनिवेश्य रहोगृहे ॥ वासोन्नपानशयनैर्मातृसाम्यमपूजयत् ॥ ३७ ॥ तस्मिन्गृहे नृपवधूर्निवसन्ती सुरक्षिता ॥ व्रणयक्ष्मादिरोगाणां न शान्तिं प्रत्यपद्यत ॥ ३८ ॥ ततो दिनैः कतिपयैः स बालो व्रणपीडितः ॥ विलङ्घितभिषक्सत्त्वो ममार च विधेर्वशात् ॥ ३९ ॥ मृते स्वतनये राज्ञी शोकेन महतावृता ॥ मूर्च्छिता चापतद्भूमौ गजभग्नेव वल्लरी ॥ ४० ॥ दैवात्संज्ञामवाप्याथ बाष्पक्लि

और उसको अपने घरके समीप एकान्तगृह में टिकाकर वसन, अन्न, जल व पलँग से माताके समान पूजन किया ॥ ३७ ॥ व उस घरमें बसतीहुई भलीभाति रक्षित राजा की स्त्री घाव व यक्ष्मादिक रोगोंकी शान्ति को न प्राप्त हुई ॥ ३८ ॥ तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद वैद्यों के उद्योग को उल्लंघन करनेवाला वह व्रणों से पीड़ित बालक दैवके वशसे मरगया ॥ ३९ ॥ और अपने पुत्रके मरने पर बड़े शोकसे संयुत स्त्री मूर्च्छित होकर हाथी से तोड़ीहुई लता के समान पृथ्वी पै गिरपड़ी ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त दैवयोग से चैतन्यता को पाकर आँसुओं से भीगेहुए स्तनोंवाली वह बनियों की स्त्रियों से समझाई हुई भी रानी बहुत दुःखित होकर विलाप

करने लगी ॥ ४१ ॥ कि हा तात,तात ! हा पुत्र ! हा मेरे प्राणों के रक्षक ! हा राजवंश में पूर्ण चन्द्रमा ! हा मेरे आनन्द को बढ़ानेवाले ! ॥ ४२ ॥ हा राजकुमार ! छूटे बन्धु व तुम्हीं प्राणवाली इस बिचारी अनाथ अपनी माताको छोड़कर कहां चलेगये ॥ ४३ ॥ इस प्रकार शोक व चिन्ता को बढ़ानेवाले इन कहेहुए वचनों से विलाप करती हुई उस मरे पुत्रवाली रानी को समझाने के लिये कौन समर्थ होवै ॥ ४४ ॥ इसी समय में उसके दुःख व शोक का वैद्य ऋषभ नामक पहले कहा हुआ शिव योगी आया ॥ ४५ ॥ और अर्घ समेत हाथवाले उस वैश्यनाथसे पूजित वह योगी शोचती हुई उस रानीके समीप आया व उसने यह कहा ॥ ४६ ॥

न्नपयोधरा ॥ सान्त्विताऽपि वणिक्स्त्रीभिर्विललाप सुदुःखिता ॥ ४१ ॥ हा तात तात हा पुत्र हा मम प्राणरक्षक ॥ हा राजकुलपूर्णेन्दो हा ममानन्दवर्धन ॥ ४२ ॥ इमामनाथां कृपणां त्वत्प्राणां त्यक्तबान्धवाम् ॥ मातरं ते परित्यज्य क यातोऽसि नृपात्मज ॥ ४३ ॥ इत्येभिरुदितैर्वाक्यैः शोकचिन्ताविवर्धकैः ॥ विलपन्तीं मृतापत्यां को नु सान्त्वयितुं क्षमः ॥ ४४ ॥ एतस्मिन्समये तस्या दुःखशोकचिकित्सकः ॥ ऋषभः पूर्वमाख्यातः शिवयोगी समाययौ ॥ ४५ ॥ स योगी वैश्यनाथेन सार्घहस्तेन पूजितः ॥ तस्याः सकाशमगमच्छोचन्त्या इदमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ ऋषभ उवाच ॥ अकस्मात्किमहो वत्से रोरवीषि विमूढधीः ॥ को जातः कतमो लोके को मृतो वद साम्प्रतम् ॥ ४७ ॥ अमी देहादयो भावास्तोयफेनसधर्मकाः ॥ कचिद्भ्रान्तिः कचिच्छान्तिःस्थितिर्भवति वा पुनः ॥ ४८ ॥ अतोऽस्मिन्फेनसदृशे देहे पञ्चत्वमागते ॥ शोकस्यानवकाशत्वान्न शोचन्ति विपश्चितः ॥ ४९ ॥ गुणैर्भूतानि सृज्यन्ते भ्राम्यन्ते निजकर्मभिः ॥

ऋषभ बोला कि हे वत्से ! मूढबुद्धिवाली तुम यकायक क्यों बहुत रोती हो संसार में कौन उत्पन्न व कौन मरा है इस समय यह कहिये ॥ ४७ ॥ ये शरीरादिक भाव जलके फेनाके समान धर्मवाले हैं कहीं भ्रान्ति व कहीं शान्ति और कहीं फिर स्थिति होती है ॥ ४८ ॥ इस कारण इस फेनके समान शरीरके मरनेपर शोक का समय न होनेसे विद्वान् नहीं शोचते हैं ॥ ४९ ॥ प्राणीलोग गुणों से रचेजाते हैं और अपने कर्मों से भ्रमायेजाते हैं तथा काल से खींचे जाते हैं व

वासना में सोते हैं ॥ ५० ॥ व सत्त्वादिक तीनों गुण माया से उत्पन्न होते हैं और उन्हीं से शरीर पैदा होते हैं व उसी लक्षण के आश्रयवाले प्राणी उत्पन्न होते हैं ॥ ५१ ॥ और वासना के अनुगत प्राणी सत्त्वगुणसे देवत्व को प्राप्त होताहै व रजोगुण से मनुष्यता को प्राप्त होता है तथा तमोगुण से पशु, पक्षी की योनिको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ व इस वर्तमान संसार में प्राणी कर्म के बन्धन से बारबार दुःख से प्रकट होने योग्य गति को प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ और कल्पपर्यन्त आयुर्बलवाले उन देवताओं का उलट पलट होता है फिर अनेक रोगों से बँधे हुए मनुष्यदेहवालों की क्या कथा है ॥ ५४ ॥ कोई शरीरका कारण कालही को कहते

कालेनाथ विकृष्यन्ते वासनायां च शेरते ॥ ५० ॥ माययोत्पत्तिमायान्ति गुणाः सत्त्वादयस्त्रयः ॥ तैरेव देहा जायन्ते जातास्तल्लक्षणाश्रयाः ॥ ५१ ॥ देवत्वं याति सत्त्वेन रजसा च मनुष्यताम् ॥ तिर्यक्त्वं तमसा जन्तुर्वासनानुगतोव शः ॥ ५२ ॥ संसारे वर्तमानेस्मिञ्जन्तुः कर्मानुबन्धनात् ॥ दुर्विभाव्यां गतिं याति सुखदुःखमयीं मुहुः ॥ ५३ ॥ अपि कल्पायुषां तेषां देवानां तु विपर्ययः ॥ अनेकामयबद्धानां का कथा नरदेहिनाम् ॥ ५४ ॥ केचिद्वदन्ति देहस्य काल मेव हि कारणम् ॥ कर्म केचिद्गुणान्केचिद्देहः साधारणोह्ययम् ॥ ५५ ॥ कालकर्मगुणाधानं पञ्चात्मकमिदं वपुः ॥ जातं दृष्ट्वा न हृष्यन्ति न शोचन्ति मृतं बुधाः ॥ ५६ ॥ अव्यक्ताज्जायते जन्तुरव्यक्ते च प्रलीयते ॥ मध्ये व्यक्त वदाभाति जलबुद्बुदसन्निभः ॥ ५७ ॥ यदा गर्भगतो देही विनाशः कल्पितस्तदा ॥ दैवाज्जीवति वा जातो म्रियते सह सैव वा ॥ ५८ ॥ गर्भस्था एव नश्यन्ति जातमात्रास्तथा परे ॥ केचिद्युवानो नश्यन्ति म्रियन्ते केपि वार्धके ॥ ५९ ॥

हैं और कोई कर्म व कोई गुणों को कहते हैं और यह शरीर साधारण है ॥ ५५ ॥ और काल, कर्म व गुणों के स्थानवाले इस पञ्चभूतमय शरीर को उत्पन्न देखकर विद्वान् प्रसन्न नहीं होते हैं व मरेहुए को शोचते नहीं हैं ॥ ५६ ॥ और पानी के बुल्ले के समान प्राणी अव्यक्त से उत्पन्न होताहै व अव्यक्तमें लीन होजाता है तथा मध्यमें व्यक्तकी नाईं मालूम होता है ॥ ५७ ॥ जब प्राणी गर्भ में प्राप्त होता है तब विनाश कल्पित होता है और उत्पन्न प्राणी दैवसे जीता है व यकायक मरजाता है ॥ ५८ ॥ और कोई गर्भहीमें स्थित प्राणी नाश होजातेहैं व कोई उत्पन्न होकर नाश होजातेहैं तथा कोई ज्वान होकर नष्ट होजातेहैं व कोई वृद्धतामें मरजातेहैं ॥ ५९ ॥

और जैसा पहले का कर्म होता है वैसेही शरीर को प्राणी पाता है और प्राणी उसीके अनुसार सुख व दुःखों को भोगता है ॥ ६० ॥ व माया के प्रभाव से प्रेरित माता, पिता के रतिके संभ्रम से पुरुष, स्त्री व नपुंसक लक्षणोंवाला कोई शरीर उत्पन्न होताहै ॥ ६१ ॥ और विधाता से मस्तक में लिखेहुए आयुर्बल, सुख, दुःख, पुण्य, पाप, शास्त्र व धन को धारण करताहुआ प्राणी उत्पन्न होता है ॥ ६२ ॥ कर्मों के उल्लंघन न करने योग्य होनेसे व कालका भी उल्लघन न होनेसे व उत्पत्तियों के अनित्य होने से तुम शोच करने के योग्य नहीं हो ॥ ६३ ॥ और स्वप्न में सदैव स्थिरता कहां होती है व इन्द्रजाल में सत्यता कहा होती है तथा

यादृशं प्राक्तनं कर्म तादृशं विन्दते वपुः ॥ भुङ्क्ते तदनुरूपाणि सुखदुःखानि वै ह्यसौ ॥ ६० ॥ मायानुभावेरितयोः पित्रोः सुरतसंभ्रमात् ॥ देह उत्पद्यते कोपि पुंयोषित्क्लीबलक्षणः ॥ ६१ ॥ आयुः सुखं च दुःखं च पुण्यं पापं श्रुतं धनम् ॥ ललाटे लिखितं धात्रा वहञ्जन्तुः प्रजायते ॥ ६२ ॥ कर्मणामविलङ्घ्यत्वात्कालस्याप्यनतिक्रमात् ॥ अनित्यत्वाच्च भावानां न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ ६३ ॥ क स्वप्ने नियतं स्थैर्यमिन्द्रजाले क सत्यता ॥ क नित्यता शरन्मेघे क शश्वत्त्वं कलेवरे ॥ ६४ ॥ तव जन्मान्यतीतानि शतकोट्ययुतानि च ॥ अजानन्त्याः परं तत्त्वं संप्राप्तोऽयं महाभ्रमः ॥ ६५ ॥ कस्य कस्यासि तनया जननी कस्य कस्य वा ॥ कस्य कस्यासि गृहिणी भवकोटिषु वर्त्तिनी ॥ ६६ ॥ पञ्चभूतात्मको देहस्त्वगसृङ्मांसबन्धनः ॥ मेदोमज्जास्थिनिचितो विण्मूत्रश्लेष्मभाजनम् ॥ ६७ ॥ शरीरान्तर

शरद्काल के मेघ में नित्यता कहां होती है और शरीर में नाश न होना कहां होता है ॥ ६४ ॥ और तुम्हारे सैकड़ों करोड़ दशहज़ार जन्म व्यतीत हुए हैं व श्रेष्ठ तत्त्व को न जानतीहुई तुम्हारे यह महाभ्रम प्राप्त हुआ है ॥ ६५ ॥ व करोड़ों जन्मों में वर्तमान तुम किस किस की कन्या व किस किस की माता और किस किसकी स्त्री हुई हो ॥ ६६ ॥ और पाच महाभूतों से बनाहुआ शरीर त्वचा, रक्त व मांस के बन्धन में है और मेदा, मज्जा व अस्थियों से संयुत तथा विष्ठा, मूत्र व श्लेष्मा का पात्र है ॥ ६७ ॥ व हे मूढे ! इस अन्य शरीरवाले अपने पुत्रको भी अपने शरीर से उपजाहुआ मल मानकर तुम शोक करने के योग्य

नहीं हो ॥ ६८ ॥ यह प्रसिद्ध है कि यदि कोई मनुष्य यत्नसे मृत्युको उल्लंघन करजावै तो पहलेवाले सब विद्वान् कैसे विपत्तिको प्राप्त होवैं ॥ ६९ ॥ और कोई भी पण्डित तपस्या, विद्या, बुद्धि, मन्त्र व औषधि तथा रसायनों से मृत्युको नहीं उल्लंघन करसक्ता है ॥ ७० ॥ हे वरानने ! आज एक प्राणी की मृत्यु हुई व कल अन्य की हुई इस कारण सदैव न रहनेवाले शरीर के विषय में तुम शोचने के योग्य नहीं हो ॥ ७१ ॥ मृत्यु सदैव समीप स्थित रहती है तो कहिये कि प्राणियों को कौन सुख है क्योंकि व्याघ्र के आगे स्थित होने पर क्या पशुवोंको भोजन रुचता है ॥ ७२ ॥ इस कारण हे वरानने ! यदि जन्म व वृद्धता को जीतना

मप्येतन्निजदेहोद्भवं मलम् ॥ मत्वा स्वतनयं मूढे मा शोकं कर्तुमर्हसि ॥ ६८ ॥ यदि नाम जनः कश्चिन्मृत्युं तरति यत्नतः ॥ कथं तर्हि विपद्येरन्सर्वे पूर्वे विपश्चितः ॥ ६९ ॥ तपसा विद्यया बुद्ध्या मन्त्रौषधिरसायनैः ॥ अतियाति परं मृत्युं न कश्चिदपि पण्डितः ॥ ७० ॥ एकस्याद्य मृतिर्जन्तोः श्वश्चान्यस्य वरानने ॥ तस्मादनित्यावयवे नत्वं शोचितुमर्हसि ॥ ७१ ॥ नित्यं सन्निहितो मृत्युः किं सुखं वद देहिनाम् ॥ व्याघ्रे पुरः स्थिते ग्रासः पशूनां किं नु रोचते ॥ ७२ ॥ अतो जन्म जरां जेतुं यदीच्छसि वरानने ॥ शरणं व्रज सर्वेशं मृत्युंजयमुमापतिम् ॥ ७३ ॥ तावन्मृत्युभयं घोरं तावज्जन्मजराभयम् ॥ यावन्नो याति शरणं देही शिवपदाम्बुजम् ॥ ७४ ॥ अनुभूयेह दुःखानि संसारे भृशदारुणे ॥ मनो यदा वियुज्येत तदा ध्येयो महेश्वरः ॥ ७५ ॥ मनसा पिबतः पुंसः शिवध्यानरसामृतम् ॥ भूयस्तृष्णा न जायेत संसारविषयासवे ॥ ७६ ॥ विमुक्तं सर्वसङ्गैश्च मनो वैराग्ययन्त्रितम् ॥ यदा शिवपदे मग्नं तदा

चाहती हो तो सबों के स्वामी मृत्युंजय सदाशिवजीकी शरण में जावो ॥ ७३ ॥ तबतक भयंकर मृत्यु का डर और तबतक जन्म व वृद्धता का भय होता है जब तक कि प्राणी शिवजी के चरणकमलों की शरण में नहीं जाता है ॥ ७४ ॥ इस बड़े कठिन संसार में दुःखों को भोगकर जब मन अलग होवै तब शिवजी को ध्यान करना चाहिये ॥ ७५ ॥ शिवजी के ध्यानरूपी रसामृत को मनसे पीते हुए मनुष्य के फिर संसाररूपी विषय के आसव में तृष्णा नहीं होती है ॥ ७६ ॥

और सबके संगों से छूटाहुआ मन जब वैराग्य से बँध जाता है व शिवजी के चरण में मग्न होता है तब फिर जन्म नहीं होता है ॥ ७७ ॥ उस कारण हे भद्रे ! शिवजीका ध्यानरूप एक साधनवाले इस मनको शोक, मोहसे संयुत मत करो वरन शिवजी को भजो ॥ ७८ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार शिवयोगी से अनुनय समेत समझाई हुई रानीनें उस गुरु के चरणकमलको प्रणामकर प्रत्युत्तर दिया ॥ ७९ ॥ रानी बोली कि हे भगवन् ! प्यारे बन्धुवों से छोडी व महारोगोंसे विकल तथा मरेहुए पुत्रवाली मेरी मरने के सिवा कौन गति है ॥ ८० ॥ इस कारण इस बालक के साथही मैं मरना चाहतीहूं और मैं कृतार्थ होगई जोकि मरने

नास्ति पुनर्भवः ॥ ७७ ॥ तस्मादिदं मनो भद्रे शिवध्यानैकसाधनम् ॥ शोकमोहसमाविष्टं मा कुरुष्व शिवं भज ॥ ७८ ॥ सूत उवाच ॥ इत्थं सानुनयं राज्ञी बोधिता शिवयोगिना ॥ प्रत्याचष्ट गुरोस्तस्य प्रणम्य चरणाम्बुजम् ॥ ७९ ॥ राज्युवाच ॥ भगवन्मृतपुत्रायास्त्यक्तायाः प्रियबन्धुभिः ॥ महारोगातुराया मे का गतिर्मरणं विना ॥ ८० ॥ अतोऽहं मर्तुमिच्छामि सहैव शिशुनाऽमुना ॥ कृतार्थाहं यदद्य त्वामपश्यं मरणोन्मुखी ॥ ८१ ॥ सूत उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा शिवयोगी दयानिधिः ॥ पूर्वोपकारं संस्मृत्य मृतस्यान्तिकमाययौ ॥ ८२ ॥ स तदा भस्म संगृह्य शिव मन्त्राभिमन्त्रितम् ॥ विदीर्णे तन्मुखे क्षिप्त्वा मृतं प्राणैरयोजयत् ॥ ८३ ॥ स बालः संगतः प्राणैः शनैरुन्मील्य लोचने ॥ प्राप्तपूर्वेन्द्रियबलो रुरोद स्तन्यकाङ्क्षया ॥ ८४ ॥ मृतस्य पुनरुत्थानं वीक्ष्य बालस्य विस्मिताः ॥ जना मुमुदिरे सर्वे नगरेषु पुरोगमाः ॥ ८५ ॥ अथानन्दभरा राज्ञी विह्वलोन्मत्तलोचना ॥ जग्राह तनयं शीघ्रं बाष्पव्याकुल

के लिये तैयार मैंने तुमको देखा ॥ ८१ ॥ सूतजी बोले कि उसका यह वचन सुनकर दयानिधान शिवयोगी पहले का उपकार स्मरण करके मरे बालक के समीप आया ॥ ८२ ॥ व उस समय उसने शिवजी के मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म को लेकर उसके फैलेहुए मुखमें डालकर मरेहुए बालकको प्राणों से युक्त किया ॥ ८३ ॥ व प्राणों से संयुत वह बालक धीरे से आंखों को खोलकर पहले की इन्द्रियों के बलको पाकर दूध की इच्छा से रोनेलगा ॥ ८४ ॥ और मरेहुए बालक का फिर उठना देखकर नगरों में सब विस्मय को प्राप्त मनुष्य प्रसन्न हुए ॥ ८५ ॥ इसके उपरान्त आनन्द से पूर्ण व विह्वल तथा उन्मत्त लोचनोंवाली व आंसुवों

से व्याकुल नयनोंवाली उस रानीने बालक को शीघ्रही पकड़ लिया ॥ ८६ ॥ तब बड़े आनन्द में मग्न परिश्रम से सोईहुई सी उस रानी ने बालक को लिपटाकर अपना व अन्य को नहीं जाना ॥ ८७ ॥ फिर ऋषभ योगी ने उन माता व पुत्र के विष और व्रणों से संयुत शरीर को भस्मही से स्पर्श किया ॥ ८८ ॥ और उस भस्म से स्पर्श कियेहुए उन प्राप्त दिव्य शरीरवाले दोनोंने देवताओं के समान कान्ति से भूषित रूप को धारण किया ॥ ८९ ॥ स्वर्ग का ऐश्वर्य प्राप्त होनेपर पुण्यकर्मी मनुष्यों को जो सुख होता है उससे सौगुने उत्तम सुख को रानी ने पाया ॥ ९० ॥ व चरणों में पड़ीहुई उस स्त्री को प्रेमसे विह्वल ऋषभ ने उठाकर

लोचना ॥ ८६ ॥ उपगुह्य तदा तन्वी परमानन्दनिर्वृता ॥ न वेदात्मानमन्यं वा सुषुप्तेव परिश्रमात् ॥ ८७ ॥ पुनश्च ऋषभो योगी तयोर्मातृकुमारयोः ॥ विषव्रणयुतं देहं भस्मनैव परामृशत् ॥ ८८ ॥ तौ च तद्भस्मना स्पृष्टौ प्राप्त दिव्यकलेवरौ ॥ देवानां सदृशं रूपं दधतुः कान्तिभूषितम् ॥ ८९ ॥ संप्राप्ते त्रिदिवैश्वर्ये यत्सुखं पुण्यकर्मणाम् ॥ तस्माच्छतगुणं प्राप सा राज्ञी सुखमुत्तमम् ॥ ९० ॥ तां पादयोर्निपतितामृषभः प्रेमविह्वलः ॥ उत्थाप्याश्वास यामास दुःखमुक्तामुवाच ह ॥ ९१ ॥ अयि वत्से महाराज्ञि जीव त्वं शाश्वतीः समाः ॥ यावज्जीवसि लोके स्मिन्न तावत्प्राप्स्यसे जराम् ॥ ९२ ॥ एष ते तनयः साध्वि भद्रायुरिति नामतः ॥ ख्यातिं यास्यति लोकेषु निजं राज्यमवाप्स्यति ॥ ९३ ॥ अस्य वैश्यस्य सदने तावत्तिष्ठ शुचिस्मिते ॥ यावदेष कुमारस्ते प्राप्तविद्यो भविष्य ति ॥ ९४ ॥ सूत उवाच ॥ इति तामृषभो योगी तं च राजकुमारकम् ॥ संजीव्य भस्मवीर्येण ययौ देशान्यथे

समझाया व दुःख से छूटीहुई उस रानी से यह कहा ॥ ९१ ॥ कि हे महाराज्ञि, वत्से ! तुम सैकडों बरसतक जियो व जबतक इस लोकमें जियो तबतक वृद्धता को न प्राप्त होवो ॥ ९२ ॥ व हे साध्वि ! तुम्हारा यह पुत्र भद्रायु ऐसे नाम से लोकोंमें प्रसिद्धि को प्राप्त होगा व अपने राज्यको पावैगा ॥ ९३ ॥ हे शुचिस्मिते ! तबतक तुम इस वैश्य के घर में टिको जबतक कि यह तुम्हारा बालक विद्या को प्राप्त होवै ॥ ९४ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार ऋषभ योगी उस स्त्री व उस

राजकुमार को भस्म के प्रभाव से जिलाकर इच्छा के अनुसार देशोंको चलागया ॥ ९५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां भद्राय्वाख्याने ऋषभयोगिना भद्रायुर्जीवनंनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । भद्रायुहिं उपदेश जिमि दियो ऋषभ मुनिनाथ । सो गेरहें अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ ॥ सूतजी बोले कि मुझ से पिङ्गला नामक वेश्या जो पहले कहीगई है वह शिवभक्तपूजन के पुण्य से पहले के शरीर को छोड़कर ॥ १ ॥ फिर वह चन्द्राङ्गद की स्त्री सीमन्तिनी में पैदाहुई और रूप व उदारता के

प्सितान् ॥ ९५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे भद्राय्वाख्याने ऋषभयोगिना भद्रायुर्जीवनंनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ पिङ्गला नाम या वेश्या मया पूर्वमुदाहृता॥ शिवभक्तार्चनात्पुण्यात्त्यक्त्वा पूर्वकलेवरम्॥ १ ॥ चन्द्राङ्गदस्य सा भूयः सीमन्तिन्यामजायत ॥ रूपौदार्यगुणोपेता नाम्ना वै कीर्तिमालिनी ॥ २ ॥ भद्रायुरपि तत्रैव राजपुत्रो वणिक्पतेः ॥ ववृधे सदने भानुः शुचाविव महातपाः ॥ ३ ॥ तस्यापि वैश्यनाथस्य कुमारस्त्वेक उत्तमः ॥ स नाम्ना सुनयः प्रोक्तो राजसूनोः सखाऽभवत् ॥ ४ ॥ तावुभौ परमस्निग्धौ राजवैश्यकुमारकौ ॥ चित्रक्रीडावुदाराङ्गौ रत्नाभरणमण्डितौ ॥ ५ ॥ तस्य राजकुमारस्य ब्राह्मणैः स वणिक्पतिः ॥ संस्कारान् कारयामास स्वपुत्रस्यापि विस्तरात् ॥ ६ ॥ काले कृतोपनयनौ गुरुशुश्रूषणे रतौ ॥ चक्रतुः सर्वविद्यानां संग्रहं विनयान्वितौ ॥ ७ ॥

गुणों से संयुत वह कीर्तिमालिनी नामक हुई ॥ २ ॥ और भद्रायु भी राजपुत्र उसी वैश्य पतिके घरमें आषाढ़ में बडे तपवाले सूर्य की नाईं बढ़ता भया ॥ ३ ॥ उस वैश्यनाथ के भी नाम से सुनय ऐसा कहा हुआ एक उत्तम कुमार राजपुत्र का मित्र हुआ ॥ ४ ॥ राजा व वैश्यके पुत्र वे दोनों बड़े स्नेही थे और विचित्र क्रीड़ा व उदार अङ्गोंवाले वे दोनों रत्नों के आभूषणों से भूषित थे ॥ ५ ॥ और उस वैश्यपति ने उस राजकुमार व अपने पुत्रके भी संस्कारों को ब्राह्मणों के द्वारा विस्तार से कराया ॥ ६ ॥ और समय में यज्ञोपवीत कियेहुए उन गुरुकी सेवा में परायण दोनों बालकों ने सब विद्याओं का संग्रह किया ॥ ७ ॥

इसके उपरान्त राजपुत्र का सोलहवां वर्ष प्राप्त होनेपर वही ऋषभ योगी उसके घरमें आया ॥ ८॥ और उस रानी व उस राजकुमार दोनों ने आयेहुए शिवयोगीको बारबार प्रणाम कर हर्ष से पूजन किया ॥ ९ ॥ उन दोनों से पूजित प्रसन्नमन तथा दयासे नम्रबुद्धिवाले योगीश ने उस राजपुत्र को उद्देश कर कहा ॥ १० ॥ शिवयोगी बोला कि हे तात ! क्या तुम्हारा कुशल है व तुम्हारी माता का भी कुशल है और क्या तुमने सब विद्याओं को ग्रहण किया है ॥ ११ ॥ और क्या आप गुरुवों की सेवा में तत्पर हो व हे तात ! क्या तुम्हारे प्राणों को देनेवाले गुप्त गुरु को तुम स्मरण करते हो ॥ १२ ॥ इसप्रकार योगीश के कहनेपर विनय

अथ राजकुमारस्य प्राप्ते षोडशहायने ॥ स एव ऋषभो योगी तस्य वेश्मन्युपाययौ ॥ ८ ॥ सा राज्ञी स कुमारश्च शिवयोगिनमागतम् ॥ मुहुर्मुहुः प्रणम्योभौ पूजयामासतुर्मुदा ॥ ९ ॥ ताभ्यां च पूजितः सोऽथ योगीशो हृष्टमानसः ॥ तं राजपुत्रमुद्दिश्य बभाषे करुणार्द्रधीः ॥ १० ॥ शिवयोग्युवाच ॥ कच्चित्ते कुशलं तात त्वन्मातुश्चाप्यनामयम् ॥ ११ ॥ कच्चित्त्वं सर्वविद्यानामकार्षीश्च प्रतिग्रहम् ॥ कच्चिद्गुरूणां सततं शुश्रूषातत्परो भवान् ॥ कच्चित्स्मरसि मां तात तव प्राणप्रदं गुरुम् ॥ १२ ॥ एवं वदति योगीशे राज्ञी सा विनयान्विता ॥ स्वपुत्रं पादयोस्तस्य निपात्यैनमभाषत ॥ १३ ॥ एष पुत्रस्तव गुरो त्वमस्य प्राणदः पिता ॥ एष शिष्यस्तु संग्राह्यो भवता करुणात्मना ॥ १४ ॥ अतो बन्धुभिरुत्सृष्टमनाथं परिपालय ॥ अस्मै सम्यक्सतां मार्गमुपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥ १५ ॥ इति प्रसादितो राज्ञ्या शिवयोगी महामतिः ॥ तस्मै राजकुमाराय सन्मार्गमुपदिष्टवान् ॥ १६ ॥ ऋषभ उवाच ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणेषु

मे संयुत उस रानी ने अपने पुत्रको उस योगी के चरणों में डालकर इससे कहा ॥ १३ ॥ कि हे गुरो ! यह तुम्हारा पुत्र है और तुम इसके प्राणों को देनेवाले पिता हो व दयासंयुत चित्तवाले आपको यह शिष्य ग्रहण करना चाहिये ॥ १४ ॥ इस कारण बन्धुवों से त्यागेहुए इस अनाथ को तुम पालन करो व इसके लिये तुम भलीभांति सत्पुरुषों का उपदेश करने के लिये योग्य हो ॥ १५ ॥ रानी से इस प्रकार प्रसन्न करायेहुए महाबुद्धिमान् शिवयोगीने उस कुमार के लिये उत्तम मार्ग का उपदेश किया ॥ १६ ॥ ऋषभजी बोले कि श्रुति, स्मृति व पुराणों में कहा हुआ सनातन धर्म सदैव वर्णों व आश्रमों के अनुसार लोगों को सेवन करना

चाहिये ॥ १७ ॥ हे वत्स ! सत्पुरुषोंका मार्ग भजो व उत्तमही आचरण करो और देवताओं की आज्ञाको न उल्लङ्घन करिये व देवताओं का निरादर न कीजियेगा ॥ १८ ॥ और गऊ, देवता, गुरु व ब्राह्मणों में सदैव भक्तिमान् होवो व प्राप्तहुए चाण्डाल को भी सदैव अतिथि जानो ॥ १९ ॥ और प्राणों का संकट भी प्राप्त होनेपर सब कहीं सत्य को न छोड़ो और गऊ व ब्राह्मणों की रक्षा के लिये तुम कभी असत्य कहो ॥ २० ॥ व हे महाबाहो ! पराये धन व पराई स्त्रियों तथा देवता व ब्राह्मणों की वस्तुवों में और दुर्लभ भी वस्तुवों में तृष्णा को छोड़ दो ॥ २१ ॥ व हे महामते ! उत्तम कथा, उत्तम आचरण, उत्तम व्रत और उत्तम

प्रोक्तो धर्मः सनातनः ॥ वर्णाश्रमानुरूपेण निषेव्यः सर्वदा [illegible] ॥ १७ ॥ भज वत्स सतां मार्गं सदेव चरितं चर ॥ न देवाज्ञां विलङ्घेथा मा कार्षीर्देवहेलनम् ॥ १८ ॥ गोदेवगुरुविप्रेषु भक्तिमान्भव सर्वदा ॥ चाण्डालमपि संप्राप्तं सदा संभावयातिथिम् ॥ १९ ॥ सत्यं न त्यज सर्वत्र प्राप्तेऽपि प्राणसंकटे ॥ गोब्राह्मणानां रक्षार्थमसत्यं त्वं वद क्वचित् ॥ २० ॥ परस्वेषु परस्त्रीषु देवब्राह्मणवस्तुषु ॥ तृष्णां त्यज महाबाहो दुर्लभेष्वपि वस्तुषु ॥ २१ ॥ सत्कथायां सदाचारे सद्व्रते च सदागमे ॥ धर्मादिसंग्रहे नित्यं तृष्णां कुरु महामते ॥ २२ ॥ स्नाने जपे च होमे च स्वाध्याये पितृतर्पणे ॥ गोदेवातिथिपूजासु निरालस्यो भवानघ ॥ २३ ॥ क्रोधं द्वेषं भयं शाठ्यं पैशुन्यमसदाग्रहम् ॥ कौटिल्यं दम्भमुद्वेगं यत्नेन परिवर्जय ॥ २४ ॥ क्षात्रधर्मरतोऽपि त्वं वृथा हिंसां परित्यज ॥ शुष्कवैरं वृथालापं परनिन्दां च वर्जय ॥ २५ ॥ मृगयाद्यूतपानेषु स्त्रीषु स्त्रीविजितेषु च ॥ अत्याहारमतिक्रोधमतिनिद्रामतिश्रमम् ॥ २६ ॥ अत्यालाप

शास्त्र तथा धर्मादिकों के संग्रहमें सदैव इच्छा करो ॥ २२ ॥ व हे अनघ ! स्नान, जप, होम, वेदपाठ और पितरों के तर्पण व गऊ, देवता और अतिथियों के पूजन में निरालसी होवो ॥ २३ ॥ और क्रोध, वैर, भय, शठता, पिशुनता, असत् ग्रहण करना और कुटिलता, पाखण्ड व उद्वेग को यत्न से वर्जित करो ॥ २४ ॥ और क्षत्रियों के धर्म में परायण भी तुम वृथा हिंसा को छोड़ दो व शुष्कवैर, वृथा बकवाद और पराई निन्दा को छोड़ दो ॥ २५ ॥ और शिकार, जुवा, मद्यपान व स्त्रियों तथा स्त्रियों से जीते हुए लोगों में संग न करो और बहुत भोजन, बहुत क्रोध, बहुत निद्रा तथा बहुत परिश्रम ॥ २६ ॥ और बहुत अनर्थ वचन व बहुत

क्रीडा को सदैव वर्जित करो ॥ २७ ॥ और अतिविद्या, अतिश्रद्धा, अतिपुण्य तथा अतिस्मृति व बहुत उत्साह, बहुत प्रसिद्धि और बहुत धैर्य को साधन करो ॥ २८ ॥ और अपनी स्त्रियों में सकाम तथा अपने शत्रुवों में सकोप व पुण्यके इकट्ठा करने में सलोभ और अधर्मियों में ईर्षा समेत होवो ॥ २९ ॥ और पाखण्ड में वैर समेत, सज्जनों में स्नेह समेत व दुष्टसंमति में दुर्बोध और चुगुल के वचनों में बधिर होवो ॥ ३० ॥ और धूर्त, प्रचण्ड, शठ, क्रूर, छली, चंचल, दुष्ट, धर्म से भ्रष्ट, वेदादिनिन्दक व कुटिल को दूरसे छोड़ दो ॥ ३१ ॥ व अपनी प्रशंसा न करना और पराई चेष्टा को जाननेवाले होवो और धन व सब

मतिक्रीडां सर्वदा परिवर्जय ॥ २७ ॥ अतिविद्यामतिश्रद्धामतिपुण्यमतिस्मृतिम् ॥ अत्युत्साहमतिख्याति मतिधैर्यं च साधय ॥ २८ ॥ सकामो निजदारेषु सक्रोधो निजशत्रुषु ॥ सलोभः पुण्यनिचये साभ्यसूयोह्यधर्मिषु ॥ २९ ॥ सद्वेषो भव पाखण्डे सरागः सज्जनेषु च ॥ दुर्बोधो भव दुर्मन्त्रे बधिरः पिशुनोक्तिषु ॥ ३० ॥ धूर्त्तं चण्डं शठं क्रूरं कितवं चपलं खलम् ॥ पतितं नास्तिकं जिह्मं दूरतः परिवर्जय ॥ ३१ ॥ आत्मप्रशंसां मा कार्षीः परिज्ञातेङ्गितो भव ॥ धने सर्वकुटुम्बे च नात्यासक्तः सदा भव ॥ ३२ ॥ पत्न्याः पतिव्रतायाश्च जनन्याः श्वशुरस्य च ॥ सतां गुरोश्च वचने विश्वासं कुरु सर्वदा ॥ ३३ ॥ आत्मरक्षापरो नित्यमप्रमत्तो दृढव्रतः ॥ विश्वासं नैव कुर्वीथाः स्वभृत्येष्वपि कुत्रचित् ॥ ३४ ॥ विश्वस्तं मा वधीः कंचिदपि चोरं महामते ॥ अपापेषु न शङ्केथाः सत्यान्न चलितो भव ॥ ३५ ॥ अनाथं कृपणं वृद्धं स्त्रियं बालं निरागसम् ॥ परिरक्ष धनैः प्राणैर्बुद्ध्या शक्त्या बलेन

कुटुम्ब में सदैव बहुत आसक्त न होवो ॥ ३२ ॥ और स्त्री, पतिव्रता, माता, श्वशुर, सत्पुरुष व गुरुके वचन में सदैव विश्वास करो ॥ ३३ ॥ और सदैव अपनी रक्षा में परायण होवो तथा सदैव अप्रमत्त व दृढ नियमवाले होवो और अपने सेवकोंमें भी कभी विश्वास न करो ॥ ३४ ॥ व हे महामते ! विश्वास कियेहुए किसी चोरको भी मत मारो व पापरहित मनुष्योंमें शङ्का न करो तथा सत्य से न चलो ॥३५॥ व अनाथ, कृपण, वृद्ध, स्त्री, बालक व बिन अपराधी मनुष्यकी धनसे व प्राणोंसे

और शक्ति तथा बलसे रक्षा करो ॥ ३६॥ व शरणमें आयेहुए मारने योग्य शत्रुको भी मत मारो और अपात्र भी व सुपात्र या नीच अथवा महान् भी मनुष्य ॥३७॥ जो कोई मांगै उसके लिये शिरको भी देदीजिये व सदैव बड़े यत्नसे भी यशही को इकट्ठा करो ॥ ३८ ॥ क्योंकि राजाओं व विद्वानों का भी यशही भूषण है और उत्तम यशसे लक्ष्मी उत्पन्न होती है व उत्तम यशसे पुण्य उत्पन्न होता है ॥ ३९ ॥ और उत्तम यश से संसार शोभित होता है जैसे कि चन्द्रिका (उजियाली) से चन्द्रमा शोभित होता है इस कारण हाथी, घोड़ा व सुवर्ण की राशि तथा पर्वत के समान रत्नों की राशि ॥ ४० ॥ अयश से नष्ट सब वस्तु को शीघ्रही

च ॥ ३६ ॥ अपि शत्रुं वधस्यार्हं मा वधीः शरणागतम् ॥ अप्यपात्रं सुपात्रं वा नीचो वापि महत्तमः ॥ ३७ ॥ यो वा को वापि याचेत तस्मै देहि शिरोपि च ॥ अपि यत्नेन महता कीर्तिमेव सदार्जय ॥ ३८ ॥ राज्ञां च विदुषां चैव कीर्तिरेव हि भूषणम् ॥ सत्कीर्तिप्रभवा लक्ष्मीः पुण्यं सत्कीर्तिसंभवम् ॥ ३९ ॥ सत्कीर्त्या राजते लोकश्चन्द्रश्चन्द्रिकया यथा ॥ गजाश्वहेमनिचयं रत्नराशिं नगोपमम् ॥ ४० ॥ अकीर्त्योपहतं सर्वं तृणवन्मुञ्च सत्वरम् ॥ मातुः कोपं पितुः कोपं गुरोः कोपं धनव्ययम् ॥ ४१ ॥ पुत्राणामपराधं च ब्राह्मणानां क्षमस्व भोः ॥ यथा द्विजप्रसादः स्यात्तथा तेषां हितं चर ॥ ४२ ॥ राजानं संकटे मग्नमुद्धरेयुर्द्विजोत्तमाः ॥ आयुर्यशो बलं सौख्यं धनं पुण्यं प्रजोन्नतिः ॥ ४३ ॥ कर्मणा येन जायेत तत्सेव्यं भवता सदा ॥ देशं कालं च शक्तिं च कार्यं चाकार्यमेव च ॥ ४४ ॥ सम्यग्विचार्य यत्नेन कुरु कार्यं च सर्वदा ॥ न कुर्याः कस्यचिद्बाधां परबाधां निवारय ॥ ४५ ॥ चोरान्दुष्टांश्च

तिनुका की नाईं छोड़ दो और माता का कोप व पिता का कोप तथा गुरु का कोप व धन का ख़र्च ॥ ४१ ॥ और पुत्रों व ब्राह्मणों का अपराध क्षमा करो और जिस प्रकार ब्राह्मणों की प्रसन्नता होवै उसी प्रकार उनका हित करो ॥ ४२ ॥ क्योंकि संकट में पड़ेहुए राजाको द्विजोत्तम लोग निकाल लेतेहैं और आयुर्बल, यश, बल, सुख, धन, पुण्य व प्रजाओंकी उन्नति ॥ ४३ ॥ जिस कर्म से होवै उसको सदैव आपको सेवन करना चाहिये और देश, काल, शक्ति, कार्य व अकार्य को ॥ ४४ ॥ भलीभांति विचारकर सदैव यत्न से करना चाहिये व किसी की बाधा न करो और पराई पीड़ा को मना करो ॥ ४५ ॥ और शक्तिमती उत्तम नीति

से चोरों व दुष्टों को पीड़ित करो और स्नान, जप, होम व देवता तथा पितरों के कर्म में ॥ ४६ ॥ शीघ्रतारहित होवो व भोजन में शीघ्रता समेत होवो व हे महामते ! चतुरतायुक्त व अशठ, सत्य तथा लोगों के मनकी हरनेवाले व थोड़े अक्षर और बहुत अर्थवाले सत्य वचन को कहो और शत्रुवों व विपत्तियों में सब कहीं निडर होवो ॥ ४७ । ४८ ॥ और ब्राह्मणों के वश में भीत होवो व पापी तथा गुरुकी आज्ञा में न डरो और कुटुम्ब के भाइयों में तथा ब्राह्मणों व स्त्रियों और पुत्रों में ॥ ४९ ॥ और भोजनकी पंक्तियों में समता से वर्तमान होवो व सत्पुरुषों के हितोपदेशों में और पुण्य की कथाओं में ॥ ५० ॥ और विद्या की

बाधेथाः सुनीत्या शक्तिमत्तया ॥ स्नाने जपे च होमे च दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ ४६ ॥ अत्वरो भव निद्रायां भोजने भव सत्वरः ॥ दाक्षिण्ययुक्तमशठं सत्यं जनमनोहरम् ॥ ४७ ॥ अल्पाक्षरमनन्तार्थं वाक्यं ब्रूहि महामते ॥ अभीतो भव सर्वत्र विपक्षेषु विपत्सु च ॥ ४८ ॥ भीतो भव ब्रह्मकुले न पापे गुरुशासने ॥ ज्ञातिबन्धुषु विप्रेषु भार्यासु तनयेषु च ॥ ४९ ॥ समभावेन वर्तेथास्तथा भोजनपङ्क्तिषु ॥ सतां हितोपदेशेषु तथा पुण्यकथासु च ॥ ५० ॥ विद्यागोष्ठीषु धर्म्यासु कच्चिन्मा भूः पराङ्मुखः ॥ शुचौ पुण्यजलस्यान्ते प्रख्याते ब्रह्मसंकुले ॥ ५१ ॥ महादेशे शिवमये वस्तव्यं भवता सदा ॥ कुलटा गणिका यत्र यत्र तिष्ठति कामुकः ॥ ५२ ॥ दुर्देशे नीचसंबाधे कदाचिदपि मा वस ॥ एकमेवाश्रितोपि त्वं शिवं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ ५३ ॥ सर्वान्देवानुपासीथास्तद्दिनानि च मानयन् ॥ सदा शुचिः सदा दक्षः सदा शान्तः सदा स्थिरः ॥ ५४ ॥ सदा विजितषड्वर्गः सदैकान्तो भवानघ ॥ विप्रान्वेदविदः शान्तान्य

सभाओं में तथा धर्म की सभाओं में कभी विमुख मत होवो और पवित्र व पवित्र जल के समीप तथा प्रसिद्ध व ब्राह्मणों से संयुत ॥ ५१ ॥ व शिवमय महादेश में आपको सदैव बसना चाहिये और कुलटा व वेश्या जहां स्थित हों व जहा कामी स्थित हों ॥ ५२ ॥ और दुष्टदेश व नीचों से सयुत देश में कभी मत बसो और त्रिलोक के स्वामी एक शिवजी के आश्रित भी तुम ॥ ५३ ॥ उनके दिनोंको मानतेहुए सब देवताओं की उपासना करो और सदैव पवित्र, सदैव प्रवीण, सदैव शान्त व सदैव स्थिर होवो ॥ ५४ ॥ व हे अनघ ! सदैव काम क्रोधादिक छह वर्गों को जीतो और सदैव एकान्त होवो व वेदों को जाननेवाले

ब्राह्मणों और शान्त संन्यासियों व निश्चयकर निर्मल ॥ ५५ ॥ और पवित्र वृक्षों व पवित्र नदियों तथा पवित्र तीर्थ, बड़ा भारी तड़ाग, गऊ, बैल, रत्न व पतिव्रता स्त्री को ॥ ५६ ॥ और अपने गृहदेवताओं को यकायक प्रणाम करो और ब्राह्मयसमयमें उठकर भलीभांति आचमन करके निर्मल आशयवाले तुम ॥ ५७ ॥ अपने गुरुके लिये प्रणाम कर व सदाशिवजी को ध्यान कर और लक्ष्मीजी के पति नारायण, ब्रह्मा, गणेश ॥ ५८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय, कात्यायनी देवी, महालक्ष्मी, सरस्वती और इन्द्रादिक लोकेशों व पवित्र यशवाले ऋषियों को भी ॥ ५९ ॥ ध्यान कर सदैव उदय होतेहुए सूर्यनारायण को प्रणाम करो और चन्दन,

तींश्च नियतोज्ज्वलान् ॥ ५५ ॥ युग्मम् ॥ पुण्यवृक्षान्पुण्यनदीः पुण्यतीर्थं महत्सरः ॥ धेनुं च वृषभं रत्नं युवतीं च पतिव्रताम् ॥ ५६ ॥ आत्मनो गृहदेवांश्च सहसैव नमस्कुरु ॥ उत्थाय समये ब्राह्मे स्वाचम्य विमलाशयः ॥ ५७ ॥ नमस्कृत्यात्मगुरवे ध्यात्वा देवमुमापतिम् ॥ नारायणं च लक्ष्मीशं ब्रह्माणं च विनायकम् ॥ ५८ ॥ स्कन्दं कात्यायनीं देवीं महालक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥ इन्द्रादीनथ लोकेशान्पुण्यश्लोकानृषीनपि ॥ ५९ ॥ चिन्तयित्वाथ मार्त्तण्ड मुद्यन्तं प्रणमेस्सदा ॥ गन्धं पुष्पं च ताम्बूलं शाकं पक्कफलादिकम् ॥ ६० ॥ शिवाय दत्त्वोपभुङ्क्ष्व भक्ष्यं भोज्यं प्रियं नवम् ॥ यद्दत्तं यत्कृतं जप्तं यत्स्नातं यद्धुतं स्मृतम् ॥ ६१ ॥ यच्च तप्तं तपः सर्वं तच्छिवाय निवेदय ॥ भुञ्जानश्च पठन्वापि शयानो विहरन्नपि ॥ पश्यञ्छृण्वन्वदन्गृह्णञ्छिवमेवानुचिन्तय ॥ ६२ ॥ रुद्राक्षकङ्कणलसत्करदण्डयुग्मो मालान्तरालधृतभस्मसितत्रिपुण्ड्रः ॥ पञ्चाक्षरं परिपठन्परमन्त्रराजं ध्यायन्सदा पशुपतेश्चरणं रमेथाः ॥ ६३ ॥ इति

पुष्प, ताम्बूल, शाक व पक्क फलादिक को ॥ ६० ॥ और नवीन व प्रिय भक्ष्य, भोज्य को शिवजी के लिये देकर भोजन करो और जो दान व जो किया हुआ कर्म तथा जो जप व जो स्नान और जो हवन कहागया है ॥ ६१ ॥ और जो किया हुआ तप होवै उस सबको शिवजी के लिये निवेदन करो और भोजन, पठन, शयन, विहार, दर्शन, श्रवण, कथन व ग्रहण करतेहुए तुम शिवही को चिन्तन करो ॥ ६२ ॥ रुद्राक्ष के कंकण से शोभित दोनों हाथोंवाले व माला के मध्य में सफ़ेद भस्म के त्रिपुण्ड्र को धारनेवाले तुम पंचाक्षर मन्त्रराज को ध्यान करते हुए सदैव शिवजी के चरणों में रमण करो ॥ ६३ ॥ हे वत्स ! संक्षेप से

यह धर्म का संग्रह कहा गया और अन्य पुराणों में विस्तार से कहा गया है ॥ ६४ ॥ इसके उपरान्त समस्त पापों को हरनेवाली व जयदायिनी तथा सब विपत्तियों को छुडानेवाली व सब पुराणों में गुप्त शिवजीकी कवच को तुम्हारे हित के लिये कहूंगा ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां भद्रायुंप्रति ऋषभोपदेशवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ● ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ● ॥

दो० । राजपुत्र सों कह्यो जिमि ऋषभयोगि शिववर्म । बारहवें अध्याय में सोई चरित सुपर्म ॥ ऋषभजी बोले कि सर्वव्यापी महादेवजी को प्रणामकर

संक्षेपतो वत्स कथितो धर्मसंग्रहः ॥ अन्येषु च पुराणेषु विस्तरेण प्रकीर्तितः ॥ ६४ ॥ अथापरं सर्वपुराणगुह्यं निःशेषपापौघहरं पवित्रम् ॥ जयप्रदं सर्वविपद्विमोचनं वक्ष्यामि शैवं कवचं हिताय ते ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे भद्रायुं प्रति ऋषभोपदेशवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥

ऋषभ उवाच ॥ नमस्कृत्य महादेवं विश्वव्यापिनमीश्वरम् ॥ वक्ष्ये शिवमयं वर्म सर्वरक्षाकरं नृणाम् ॥ १ ॥ शुचौ देशे समासीनो यथावत्कल्पितासनः ॥ जितेन्द्रियो जितप्राणश्चिन्तयेच्छिवमव्ययम् ॥ २ ॥ हृत्पुण्डरीकान्तरसन्निविष्टं स्वतेजसा व्याप्तनभोवकाशम् ॥ अतीन्द्रियं सूक्ष्ममनन्तमाद्यं ध्यायेत्परानन्दमयं महेशम् ॥ ३ ॥ ध्यानावधूताखिलकर्मबन्धश्चिरं चिदानन्दनिमग्नचेताः ॥ षडक्षरन्याससमाहितात्मा शैवेन कुर्यात्कवचेन रक्षाम् ॥ ४ ॥ मां पातु देवोऽखिलदेवतात्मा संसारकूपे पतितं गभीरे ॥ तन्नाम दिव्यं वरमन्त्रमूलं धुनोतु

मनुष्यों की सब रक्षा करनेवाली शिवमय वर्म को कहूंगा ॥ १ ॥ पवित्र देशमें बैठकर यथायोग्य आसन को कल्पित कर जितेन्द्रिय व प्राणों को जीतेहुए मनुष्य विकाररहित शिवजी को ध्यान करै ॥ २ ॥ हृदयकमल के भीतर बैठेहुए व अपने तेजसे व्यापित आकाश स्थानवाले, इन्द्रियों से परे, सूक्ष्म, अनन्त, आद्य व परम आनन्दमय शिवजी को ध्यान करै ॥ ३ ॥ ध्यान से नष्ट समस्तकर्मबन्धन व चिदानन्द में मग्नचित्त तथा षडक्षरके न्यास से सावधानचित्तवाला मनुष्य शिवजी की कवच से रक्षा करै ॥ ४ ॥ कि समस्त देवतात्मक शिवदेवजी गम्भीर संसारकूप में पडेहुए मेरी रक्षा करो और उत्तम मन्त्र का मूल दिव्य उनका

नाम हृदय में स्थित मेरे सब पाप को नाश करैं ॥ ५ ॥ विश्वमूर्ति व ज्योतिर्मय आनन्दघन चैतन्यात्मक शिवजी सब कहीं मेरी रक्षा करैं और सूक्ष्मसे सूक्ष्म व बड़ी भारी शक्तिवाले वे एक ईश्वर सब भयसे मेरी रक्षा करैं ॥ ६ ॥ पृथ्वी के रूपसे जो संसार को धारण करते हैं वे अष्टमूर्ति गिरीशजी पृथ्वी से रक्षा करैं और जलके रूपसे जो मनुष्यों का जीवन करते हैं वे जलों से मेरी रक्षा करैं ॥ ७ ॥ बड़ी भारी लीलावाले जो शिवजी कल्प के अन्त में सब लोकोंको जलाकर नाचते हैं वे काल रुद्रजी दवाग्नि से मेरी रक्षा करैं व बड़े पवनादि के भयसे व सब संताप से मेरी रक्षा करैं ॥ ८ ॥ व चमकती हुई बिजली तथा सोने के समान

मे सर्वमघं हृदिस्थम् ॥ ५ ॥ सर्वत्र मां रक्षतु विश्वमूर्त्तिर्ज्योतिर्मयानन्दघनश्चिदात्मा ॥ अणोरणीयानुरुशक्तिरेकः स ईश्वरः पातु भयादशेषात् ॥ ६ ॥ यो भूस्वरूपेण बिभर्ति विश्वं पायात्स भूमेर्गिरिशोऽष्टमूर्तिः ॥ योऽपां स्वरूपेण नृणां करोति संजीवनं सोऽवतु मां जलेभ्यः ॥ ७ ॥ कल्पावसाने भुवनानि दग्ध्वा सर्वाणि यो नृत्यति भूरिलीलः ॥ स कालरुद्रोऽवतु मां दवाग्नेर्वात्यादिभीतेरखिलाच्च तापात् ॥ ८ ॥ प्रदीप्तविद्युत्कनकावभासो विद्यावराभीतिकुठारपाणिः ॥ चतुर्मुखस्तत्पुरुषस्त्रिनेत्रः प्राच्यां स्थितं रक्षतु मामजस्रम् ॥ ९ ॥ कुठारवेदाङ्कुशपाशशूलकपालढक्काक्षगुणान्दधानः ॥ चतुर्मुखो नीलरुचिस्त्रिनेत्रः पायादघोरो दिशि दक्षिणस्याम् ॥ १० ॥ कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकावभासो वेदाक्षमालावरदाभयाङ्कः ॥ त्र्यक्षश्चतुर्वक्र उरुप्रभावः सद्योधिजातोऽवतु मां प्रतीच्याम् ॥ ११ ॥ वराक्षमालाभयटङ्कहस्तः सरोजकिञ्जल्कसमानवर्णः ॥ त्रिलोचनश्चारुचतुर्मुखो मां पायादुदीच्यां दिशि

प्रकाशवाले और विद्या, वर, अभय व कुठार को हाथ में लिये हुए चतुर्मुख, त्रिलोचन तत्पुरुषजी पूर्व में सदैव मेरी रक्षा करैं॥ ९ ॥ और कुठार, वेद, अंकुश, फँसरी, शूल, कपाल व नगाड़ा और रुद्राक्ष की माला को धारण किये हुए नीलरुचि चतुर्मुख व त्रिनेत्र अघोरजी दक्षिण दिशा में रक्षा करैं ॥ १० ॥ और कुन्द, चन्द्रमा, शँख व स्फटिक के समान प्रकाशवाले व वेद रुद्राक्षमाला, वरदान और भयसे चिह्नित बडे प्रभाव वाम् त्रिलोचन चतुरानन सद्योधिजात पश्चिम दिशा में मेरी रक्षा करैं॥ ११ ॥ और वर, रुद्राक्षमाला, अभय व टाकी को हाथों में लिये और कमलकिञ्जल्क के समान रंगवाले त्रिलोचन, चतुर्मुख

वामदेवजी उत्तर दिशा में मेरी रक्षा करैं ॥ १२ ॥ और वेद, अभय, वर, अंकुश, टांकी, फँसरी; कपाल, डंका, रुद्राक्ष व शूल को हाथ में लिये श्वेत दीप्ति व उत्तम प्रकाशवाले पंचमुख ईशानजी ऊपर रक्षा करैं ॥ १३ ॥ व चन्द्रमौलिजी मेरे शिर की रक्षा करैं और भालनेत्रजी मेरे मस्तक की रक्षा करैं व भग-नेत्रहारक मेरे नेत्रों की रक्षा करैं व विश्वनाथजी सदैव नासिका की रक्षा करैं ॥ १४ ॥ और श्रुतियों में गाये हुए यशवाले शिवजी मेरे कानों की रक्षा करैं व कपालीजी सदैव मेरे कपोल की रक्षा करैं तथा पंचमुखजी सदैव मेरे मुख की रक्षा करैं और वेदजिह्वजी सदैव जिह्वा की रक्षा करैं ॥ १५ ॥ और गिरीश नीलकंठजी कंठ की रक्षा करैं व पिनाक को हाथ में लिये हुए शिवजी दोनों हाथों की रक्षा करैं और धर्मबाहुजी मेरे भुजाओं के मूल की रक्षा करैं व दक्षके

वामदेवः ॥ १२ ॥ वेदाभयेष्टाङ्कुशटङ्कपाशकपालढक्काक्षकशूलपाणिः ॥ सितद्युतिः पञ्चमुखोऽवतान्मामीशान ऊर्ध्वं परमप्रकाशः ॥ १३ ॥ मूर्धानमव्यान्मम चन्द्रमौलिर्भालं ममाव्यादथ भालनेत्रः ॥ नेत्रे ममाव्याद्भगनेत्रहारी नासां सदा रक्षतु विश्वनाथः ॥ १४ ॥ पायाच्छ्रुती मे श्रुतिगीतकीर्तिःकपोलमव्यात्सततं कपाली ॥ वक्त्रं सदा रक्षतु पञ्चवक्त्रो जिह्वां सदा रक्षतु वेदजिह्वः ॥ १५ ॥ कण्ठं गिरीशोऽवतु नीलकण्ठः पाणिद्वयं पातु पिनाकपाणिः ॥ दोर्मूलमव्यान्मम धर्मबाहुर्वक्षःस्थलं दक्षमखान्तकोऽव्यात् ॥ १६ ॥ ममोदरं पातु गिरीन्द्रधन्वा मध्यं ममाव्यान्मदनान्तकारी ॥ हेरम्बतातो मम पातु नाभिं पायात्कटीं धूर्जटिरीश्वरो मे ॥ १७ ॥ ऊरुद्वयं पातु कुबेरमित्रो जानुद्वयं मे जगदीश्वरोऽव्यात् ॥ जङ्घायुगं पुङ्गवकेतुरव्यात्पादौ ममाव्यात्सुरवन्द्यपादः ॥ १८ ॥ महेश्वरः पातु दिनादियामे

यज्ञको नाश करनेवाले मेरे वक्षःस्थल की रक्षा करैं ॥ १६ ॥ और गिरीन्द्रधनुषवाले शिवजी मेरे पेट की रक्षा करैं व कामदेवनाशकजी मेरे मध्यभाग की रक्षा करैं और गणेशजी के पिता मेरी नाभिकी रक्षा करैं व धूर्जटि शिवजी मेरी कटि की रक्षा करैं ॥ १७ ॥ व कुबेर के मित्र मेरे दोनों जंघों की रक्षा करैं और जग-दीश्वरजी मेरी दोनों घुटनुवों की रक्षा करैं और पुङ्गवकेतुजी मेरी दोनों जंघों की रक्षा करैं व देवताओं से प्रणाम करने योग्य चरणोंवाले शिवजी मेरे चरणों की रक्षा करैं ॥ १८ ॥ दिनके पहले पहर में महेश्वरजी मेरी रक्षा करैं व मध्य के पहर में वामदेवजी रक्षा करैं और तिसरे पहर में त्रिलोचनजी रक्षा करैं व दिन के अन्त-

वाले पहरमें वृषध्वजजी रक्षा करैं॥ १९ ॥ व रात्रिके पहले पहर में शशिशेखरजी मेरी रक्षा करैं और गंगाधरजी आधीरात्रि में मेरी रक्षा करैं व गौरीपतिजी रात्रि के अन्त में मेरी रक्षा करैं और मृत्युंजयजी सब समय में मेरी रक्षा करैं ॥ २० ॥ व भीतर स्थित मेरी शङ्करजी रक्षा करैं व स्थाणुजी सदैव बाहर स्थित मेरी रक्षा करैं व उसके मध्यमें पशुवों के पति रक्षा करैं और सदाशिवजी सबओर से मेरी रक्षा करैं ॥ २१ ॥ व लोकों के एकही स्वामी शिवजी खड़ेहुए मेरी रक्षा करैं और चलते हुए मेरी प्रमथाधिनाथजी रक्षा करैं और वेदान्त से जानने योग्य शिवजी बैठेहुए मेरी रक्षा करैं तथा अव्यय शिवजी सोतेहुए मेरी रक्षा करैं ॥ २२ ॥ व नीलकण्ठजी

मां मध्ययामेऽवतु वामदेवः ॥ त्रियम्बकः पातु तृतीययामे वृषध्वजः पातु दिनान्त्ययामे ॥ १९ ॥ पायान्निशादौ शशिशेखरो मां गङ्गाधरो रक्षतु मां निशीथे ॥ गौरीपतिः पातु निशावसाने मृत्युञ्जयो रक्षतु सर्वकालम् ॥ २० ॥ अन्तः स्थितं रक्षतु शङ्करो मां स्थाणुः सदा पातु बहिःस्थितं माम् ॥ तदन्तरे पातु पतिः पशूनां सदा शिवो रक्षतु मां समन्तात् ॥ २१ ॥ तिष्ठन्तमव्याद्भुवनैकनाथः पायाद् व्रजन्तं प्रमथाधिनाथः ॥ वेदान्तवेद्योऽवतु मान्निषण्णं मामव्ययः पातु शिवः शयानम् ॥ २२ ॥ मार्गेषु मां रक्षतु नीलकण्ठः शैलादिदुर्गेषु पुरत्रयारिः ॥ अरण्यवासादिमहाप्रवासे पायान्मृगव्याध उदारशक्तिः ॥ २३ ॥ कल्पान्तकाटोपपटुप्रकोपः स्फुटाट्टहासोच्चलिताण्डकोशः ॥ घोरारिसेनार्णवदुर्निवारमहाभयाद्रक्षतु वीरभद्रः ॥ २४ ॥ पत्त्यश्वमातङ्गघटावरूथसहस्रलक्षायुतकोटिभीषणम् ॥ अक्षौहिणीनां शतमाततायिनां छिन्द्यान्मृडो घोरकुठारधारया ॥ २५ ॥ निहन्तु दस्यून्प्रलयानलार्चिर्ज्वल

मार्गों में रक्षा करैं और शैलादि दुर्गों में त्रिपुरारिजी रक्षा करैं तथा वनवासादिक महाप्रवास में उदारशक्तिवाले मृगव्याधजी मेरी रक्षा करैं ॥ २३ ॥ और कल्पान्तके आटोपमें प्रवीण क्रोधवाले तथा प्रकट अट्टहास से चलित ब्रह्माण्डवाले वीरभद्रजी भयंकर शत्रुसेनारूपी समुद्रके बड़े कठिन भयसे रक्षा करैं ॥ २४ ॥ और हज़ार, लक्ष, दशहज़ार व करोड़ों पैदल, घोड़ा व हाथियों की गर्जन तथा रथों के लोहादि आवरण से भयंकर मारने के लिये तैयार सैकड़ों अक्षौहिणी को मृडजी घोर कुठार की धारसे काटैं ॥ २५ ॥ और प्रलयाग्नि के समान ज्वालावान् जलता हुआ त्रिपुरान्तकजी का त्रिशूल शत्रुवों को मारै व शिवजी का पिनाक

धनुष व्याघ्र, सिंह, ऋक्ष व भेड़िया आदिक हिंसक जीवों को भगावै ॥ २६ ॥ और लोकों के स्वामी शिवजी मेरे दुस्स्वप्न , दुश्शकुन, दुर्गति, दुर्मनस्य, दुर्भिक्ष, दुर्व्यसन और दुस्सह अयश तथा उत्पात, ताप व विषके भयको और दुष्ट ग्रहों के दुःख व रोगोंको नाश करें ॥ २७ ॥ ऐश्वर्यों से युक्त सदाशिवजी के लिये नमस्कार है व समस्त तत्त्वात्मक व सब तत्त्वों में विहार करनेवाले, सब लोकों के एकही रचनेवाले, सब लोकोंके एकही पालनेवाले तथा सब लोकों के एकही संहार करनेवाले के लिये प्रणाम है व सब लोकोंके एक गुरु, सब लोकोंके एकही साक्षी, सब वेदों में गुप्त तथा सबको वरदायक, सबोंके पाप व दुःखों के नाशक

त्रिशूलं त्रिपुरान्तकस्य ॥ शार्दूलसिंहर्क्षवृकादिहिंस्रान्सन्त्रासयत्वीश धनुःपिनाकः ॥ २६ ॥ दुःस्वप्नदुःशकुनदुर्गतिदौर्मनस्यदुर्भिक्षदुर्व्यसनदुःसहदुर्यशांसि ॥ उत्पाततापविषभीतिमसद्ग्रहार्तिव्याधींश्च नाशयतु मे जगतामधीशः॥२७॥ ॐ नमो भगवते सदाशिवाय सकलतत्त्वात्मकाय सकलतत्त्वविहाराय सकललोकैककर्त्रे सकललोकैकभर्त्रे सकललोकैकहर्त्रे सकललोकैकगुरवे सकललोकैकसाक्षिणे सकलनिगमगुह्याय सकलवरप्रदाय सकलदुरितार्तिभञ्जनाय सकलजगदभयङ्कराय सकललोकैकशङ्कराय शशाङ्कशेखराय शाश्वतनिजाभासाय निर्गुणाय निरुपमाय नीरूपाय निराभासाय निरामयाय निष्प्रपञ्चाय निष्कलङ्काय निर्द्वन्द्वाय निःसङ्गाय निर्मलाय निर्गमाय नित्यरूपविभवाय निरुपमविभवाय निराधाराय नित्यशुद्धबुद्धपरिपूर्णसच्चिदानन्दाद्वयाय परमशान्तप्रकाशतेजोरूपाय जय जय महारुद्र महारौद्र भद्रावतार दुःखदावदारण महाभैरव कालभैरव कल्पान्तभैरव कपालमालाधर खट्वा

और समस्त संसार को अभय करनेवाले व सब लोकों का एकही कल्याण करनेवाले, चन्द्रभाल, सदैव अपनेही प्रकाशवाले, निर्गुण, निरुपम, अरूप, अभास, निर्व्याधि, निष्प्रपञ्च, निष्कलङ्क, निर्द्वंद्व, निस्सङ्ग, निर्मल, निर्गम, नित्यरूपविभव, निरुपमविभव, निराधार व नित्य शुद्ध बुद्ध परिपूर्ण सच्चिदानन्द अद्वय और परम शान्त व प्रकाश तेजोरूपवाले आपके लिये प्रणाम है व हे महारुद्र, महारौद्र, भद्रावतार, दुःखदावदारण, महाभैरव, कालभैरव, कल्पान्तभैरव,

कपालमालाधर ! आपकी जय हो जय हो हे खट्वाङ्ग, तलवार, ढाल, फँसरी, अंकुश, डमरू, शूल, धनुष, बाण, गदा, शक्ति, भिंदिपाल, तोमर, मुसल, मुद्गर, पट्टिश, परशु, परिघ, भुशुण्डी, शतघ्नी व चक्रादिक अस्त्रों से भयंकर हज़ार हाथोंवाले ! हे मुखदंष्ट्राकराल, विकटाट्टहासविस्फारितब्रह्माण्डमण्डल, नागेन्द्र-कुण्डल, नागेन्द्रहार, नागेन्द्रवलय, नागेन्द्रधर्मधर, मृत्युंजय, त्र्यम्बक, त्रिपुरान्तक, विरूपाक्ष, विश्वेश्वर, विश्वरूप, वृषवाहन, विषभूषण, विश्वतोमुख ! सब ओर से मेरी रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ज्वल ज्वल महामृत्युभय को व अपमृत्युभय को नाश कीजिये नाश कीजिये व रोगभयको नाश कीजिये नाश कीजिये और

ङ्गखड्गचर्म्मपाशाङ्कुशडमरुशूलचापबाणगदाशक्तिभिण्डिपालतोमरमुसलमुद्गरपट्टिशपरशुपरिघभुशुण्डीशतघ्नीच क्रायायुधभीषणकरसहस्रमुखदंष्ट्राकरालविकटाट्टहासविस्फारितब्रह्माण्डमण्डल नागेन्द्रकुण्डल नागेन्द्रहार नागेन्द्रवलय नागेन्द्रचर्मधर मृत्युञ्जय त्र्यम्बक त्रिपुरान्तक विरूपाक्ष विश्वेश्वर विश्वरूप वृषभवाहन विषभूषण विश्वतोमुख सर्वतो रक्ष रक्ष मां ज्वल ज्वल महामृत्युभयमपमृत्युभयं नाशय नाशय रोगभयमुत्सादयोत्सादय विषसर्पभयं शमय शमय चोरभयं मारय मारय मम शत्रूनुच्चाटयोच्चाटय शूलेन विदारय विदारय कुठारेण भि न्धि भिन्धि खड्गेन छिन्धि छिन्धि खट्वाङ्गेन विपोथय विपोथय मुसलेन निष्पेषय निष्पेषय बाणैः सन्ताडय स न्ताडय रक्षांसि भीषय भीषय भूतानि विद्रावय विद्रावय कूष्माण्डवेतालमारीगणब्रह्मराक्षसान्सन्त्रासय सन्त्रासय ममाभयं कुरु कुरु वित्रस्तं ममाश्वासयाश्वासय नरकभयान्मामुद्धारयोद्धारय संजीवय संजीवय क्षुत्तृड्भ्यां मा

विष व सर्प के भयको शान्त कीजिये शान्त कीजिये चोरभयको मारिये मारिये व मेरे शत्रुओं को उच्चाटन कीजिये उच्चाटन कीजिये शूल से विदारण कीजिये विदारण कीजिये व कुठारसे भेदन कीजिये भेदन कीजिये तलवारसे काटिये काटिये खट्वाङ्गसे नाश कीजिये नाश कीजिये मुसलसे पीसिये पीसिये बाणोंसे मारिये मारिये राक्षसोंको डरवाइये डरवाइये भूतोंको भगाइये भगाइये व कूष्मांड, वेताल, मारीगण और ब्रह्मराक्षसों को डरवाइये डरवाइये मुझको अभय कीजिये अभय कीजिये डरेहुए मुझको समझाइये समझाइये व नरक के भयसे मुझको उधारिये उधारिये जिलाइये जिलाइये और क्षुधा व प्यासके कारण मुझको तृप्त कीजिये

तृप्त कीजिये व दुःख से विकल मुझको आनन्द कीजिये आनन्द कीजिये शिवकवच से मुझको आच्छादन कीजिये आच्छादन कीजिये हे त्र्यम्बक, सदाशिवजी ! तुम्हारे लिये प्रणाम है प्रणाम है प्रणाम है ॥ ऋषभजी बोले कि सब प्राणियों की समस्त पीडाओं को नाश करनेवाली इस वरदायक व गुप्त शिवकवच को मैंने कहा ॥ २८ ॥ सदैव जो मनुष्य शिवजी की उत्तम कवच को धारण करता है उसको शिवजी की दया से कहीं भय नहीं होता है ॥ २९ ॥ क्षीण आयुर्बल व मृत्यु को प्राप्त तथा महारोगों से नष्ट भी मनुष्य शीघ्रही सुख को पाता है व दीर्घ आयुर्बल को पाता है ॥ ३० ॥ सब दरिद्रों को नाश करनेवाली व सौमङ्गल्य को बढ़ाने

माप्याययाप्यायय दुःखातुरं मामानन्दयानन्दय शिवकवचेन मामाच्छादयाच्छादय त्र्यम्बक सदाशिव नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ऋषभ उवाच ॥ इत्येतत्कवचं शैवं वरदं व्याहृतं मया ॥ सर्वबाधाप्रशमनं रहस्यं सर्वदेहिनाम् ॥ २८ ॥ यः सदा धारयेन्मर्त्यः शैवं कवचमुत्तमम् ॥ न तस्य जायते क्वापि भयं शम्भोरनुग्रहात् ॥ २९ ॥ क्षीणायुर्मृत्युमापन्नो महारोगहतोऽपि वा ॥ सद्यः सुखमवाप्नोति दीर्घमायुश्च विन्दति ॥ ३० ॥ सर्वदारिद्र्यशमनं सौमङ्गल्यविवर्धनम् ॥ यो धत्ते कवचं शैवं स देवैरपि पूज्यते ॥ ३१ ॥ महापातकसंघातैर्मुच्यते चोपपातकैः ॥ देहान्ते शिवमाप्नोति शिववर्मानुभावतः ॥ ३२ ॥ त्वमपि श्रद्धया वत्स शैवं कवचमुत्तमम् ॥ धारयस्व मया दत्तं सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा ऋषभो योगी तस्मै पार्थिवसूनवे ॥ ददौ शङ्खं महारावं खड्गं चारिनिषूदनम् ॥ ३४ ॥ पुनश्च भस्म संमन्त्र्य तदङ्गं सर्वतोऽस्पृशत् ॥ गजानां षट्सहस्रस्य द्विगुणं च बलं ददौ ॥ ३५ ॥ भस्म

वाली शिवकवचको जो धारण करता है वह देवताओं से भी पूजा जाता है ॥ ३१ ॥ और महापातकों के समूहों से व उपपातकों से छूट जाताहै और शिवकवच के प्रभावसे वह शरीरके नाशमें शिवजीको प्राप्त होताहै ॥ ३२ ॥ हे वत्स ! मुझसे दीहुई उत्तम शिवजी की कवच को तुमभी श्रद्धा से धारण करो तो शीघ्रही कल्याण को पावोगे ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले कि यह कहकर ऋषभ योगीने उस राजपुत्र के लिये बडे शब्दवाला शङ्ख व शत्रुनाशक तलवार को दिया ॥ ३४ ॥ फिर भस्मको भली भाँति मन्त्रित कर उस राजपुत्र के अंग में सबकहीं लगाया और छह हज़ार हाथियों के दूने याने बारह हजार हाथियों का पराक्रम दिया ॥ ३५ ॥ व भस्मके

प्रभावसे बल, ऐश्वर्य, धैर्य व स्मरणको पाकर वह राजपुत्र लक्ष्मीसे शरद् ऋतु के सूर्यनारायणकी नाईं शोभित हुआ ॥ ३६ ॥ फिर हाथों को जोड़ेहुए उस राजपुत्र से उस योगी ने कहा कि मैंने तपस्या व मंत्र के प्रभाव से इस तलवार को दिया है ॥ ३७ ॥ पैनी धारवाली इस तलवार को जिसको दिखलाइयेगा वह शत्रु साक्षात् मृत्यु भी आपही शीघ्र मरजावेगा ॥ ३८ ॥ और तुम्हारे जो शत्रु इस शंख का शब्द सुनैंगे चैतन्यतारहित वे मूर्च्छित होकर शस्त्रों को डालकर गिर-पड़ैंगे ॥ ३९ ॥ यह दिव्य तलवार व शंख शत्रु की सेना को नाश करनेवाला है व अपनी सेना और अपने पक्षवाले लोगों की शूरता व तेज को बढ़ानेवाला

प्रभावात्संप्राप्य बलैश्वर्यधृतिस्मृतीः ॥ स राजपुत्रः शुशुभे शरदर्क इव श्रिया ॥ ३६ ॥ तमाह प्राञ्जलिं भूयः स योगी राजनन्दनम् ॥ एष खड्गो मया दत्तस्तपोमन्त्रानुभावतः ॥ ३७ ॥ शितधारमिमं खड्गं यस्मै दर्शयसि स्फुटम् ॥ स सद्यो म्रियते शत्रुः साक्षान्मृत्युरपि स्वयम् ॥ ३८ ॥ अस्य शङ्खस्य निह्रादं ये शृण्वन्ति तवाहिताः ॥ ते मूर्च्छिताः पतिष्यन्ति न्यस्तशस्त्रा विचेतनाः ॥ ३९ ॥ खड्गशङ्खाविमौ दिव्यौ परसैन्यविनाशिनौ ॥ आत्मसैन्यस्वपक्षाणां शौर्यतेजोविवर्धनौ ॥ ४० ॥ एतयोश्च प्रभावेण शैवेन कवचेन च ॥ द्विषट्सहस्रनागानां बलेन महतापि च ॥ ४१ ॥ भस्मधारणसामर्थ्याच्छत्रुसैन्यं विजेष्यसि ॥ प्राप्य सिंहासनं पैत्र्यं गोप्तासि पृथिवीमिमाम् ॥ ४२ ॥ इति भद्रायुषं सम्यगनुशास्य समातृकम् ॥ ताभ्यां संपूजितः सोऽथ योगी स्वैरगतिर्ययौ ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे सीमन्तिनीमाहात्म्ये भद्रायूपाख्याने शिवकवचकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ * ॥

है ॥ ४० ॥ इन दोनों के प्रभावसे व शिवजी की कवच से और बारह हज़ार हाथियों के बड़े भारी बलसे ॥ ४१ ॥ व भस्म धारनेकी सामर्थ्य से तुम शत्रुवों की सेना को जीतोगे और पिता के सिंहासन को पाकर इस पृथ्वी की रक्षा करोगे ॥ ४२ ॥ इस प्रकार माता समेत भद्रायु को भली भाँति सिखलाकर इसके उपरान्त उन दोनों से पूजित वह इच्छा के अनुकूल जानेवाला योगी चला गया ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां सीमन्तिनीमाहात्म्येभद्रायूपाख्याने शिवकवचकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जीत्यो जिमि भद्रायुजी मागधेश नरपाल । तेरहवें अध्याय में सोइ चरित्र रसाल ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर दशार्णदेशके राजा उस बडे पालक वज्रबाहु का बलवान् मगधराज शत्रु हुआ ॥ १ ॥ रणमें उग्र व भुजाओं से शोभित उस हेमरथ नामक बलवान् राजाने बड़ी सेनाको लेकर दशार्णदेशको घेर लिया ॥ २ ॥ और उसके दुर्धर्ष सेनापतियों ने दशार्ण देशको प्राप्त होकर धन व रत्नों को लूटलिया और अन्य सेनाध्यक्षों ने घरों को जलादिया ॥ ३ ॥ और कितेक ने धनोंको लेलिया व कितेक ने बालकों को और अन्य सेनावाले लोगों ने स्त्रियों को लेलिया व अन्य गोधन और कितेक लोगों ने धान्य व सामग्रियों को

सूत उवाच ॥ दशार्णाधिपतेस्तस्य वज्रबाहोर्महाभुजः ॥ बभूव शत्रुर्बलवान् राजा मगधराट् ततः ॥ १ ॥ स वै हेमरथो नाम बाहुशाली रणोत्कटः ॥ बलेन महतावृत्य दशार्णं न्यरुधद्बली ॥ २ ॥ चमूपास्तस्य दुर्धर्षाः प्राप्य देशं दशार्णकम् ॥ व्यलुम्पन्वसुरत्नानि गृहाणि ददहुः परे ॥ ३ ॥ केचिद्धनानि जगृहुः केचिद्बालान्स्त्रियोऽपरे ॥ गोधनान्य परेऽगृह्णन्केचिद्धान्यपरिच्छदान् ॥ केचिदारामसस्यानि गृहोद्यानान्यनाशयन् ॥ ४ ॥ एवं विनाश्य तद्राज्यं स्त्रीगोधनजिघृक्षवः ॥ आवृत्य तस्य नगरीं वज्रबाहोस्तु मागधः ॥ ५ ॥ एवं पर्याकुलं वीक्ष्य राजा नगरमेव च ॥ युद्धाय निर्जगामाशु वज्रबाहुः ससैनिकः ॥ ६ ॥ वज्रबाहुश्च भूपालस्तथा मन्त्रिपुरःसराः ॥ युयुधुर्मागधैः सार्धं निजघ्नुः शत्रुवाहिनीम् ॥ ७ ॥ वज्रबाहुर्महेष्वासो दंशितो रथमास्थितः ॥ विकिरन्बाणवर्षाणि चकार कदनं महत् ॥ ८ ॥ दशार्णराजं

लेलिया व कितेक लोगोंने बग़ीचों व क्षेत्रान्नों तथा घरके समीप बग़ीचों को नाश करदिया ॥ ४ ॥ इस प्रकार स्त्री व गोधन के लेने की इच्छावाले लोग उस राज्य को नाशकर उस वज्रबाहु की पुरी को घेरकर स्थित हुए और मगधराज भी स्थित हुआ ॥ ५ ॥ नगर को इस प्रकार व्याकुल देखकर राजा वज्रबाहु सेनासमेत युद्ध के लिये शीघ्रही निकला ॥ ६ ॥ और वज्रबाहु राजा व मन्त्री आदिक अन्य लोगों ने मागधों के साथ युद्ध किया व शत्रु सेनाको मारा ॥ ७ ॥ बडे धनुष-वाला वज्रबाहु कवच को पहनकर रथ पै बैठा और बाणों की वर्षा करतेहुए उसने बड़ा युद्ध किया ॥ ८ ॥ युद्ध करते हुए दशार्णराज को युद्धमें अत्यन्त दुस्सह

देखकर सब मागधसेना के मनुष्यों ने वेगसे उसी को घेरलिया ॥ ९ ॥ और दृढ़ पराक्रमी मागधों ने बहुत समय तक युद्ध करके उसकी सेनाको नाश किया व जीतकी लक्ष्मी को पाया ॥ १० ॥ कितेक ने उसके रथको नाश किया व कितेक ने उसके धनुष को काटडाला और एक ने उसके सारथी को मारडाला व अन्य ने तलवार को काटडाला ॥ ११ ॥ व कटीहुई तलवार तथा धनुषवाले व मारेहुए सारथीवाले रथरहित राजाको बलसे पकड़कर पराक्रमी मनुष्योंने बाँध लिया ॥१२॥ और उसके मन्त्रीगण व उसकी सब सेनाको जीतकर जीतकी इच्छावाले मागध लोग उसकी पुरीमें पैठे ॥ १३ ॥ और उन्होंने घोड़े, मनुष्य, हाथी,

युध्यन्तं दृष्ट्वा युद्धे सुदुःसहम् ॥ तमेव तरसा वव्रुः सर्वे मागधसैनिकाः ॥ ९ ॥ कृत्वा तु सुचिरं युद्धं मागधा दृढवि क्रमाः ॥ तत्सैन्यं नाशयामासुर्लेभिरे च जयश्रियम् ॥ १० ॥ केचित्तस्य रथं जघ्नुः केचित्तद्धनुराच्छिनन् ॥ सूतं तस्य जघानैकस्त्वपरः खड्गमाच्छिनत् ॥ ११ ॥ संछिन्नखड्गधन्वानं विरथं हतसारथिम् ॥ बलाद्गृहीत्वा बलिनो बबन्धुर्नृपतिं रुषा ॥ १२ ॥ तस्य मन्त्रिगणं सर्वं तत्सैन्यं च विजित्य ते ॥ मागधास्तस्य नगरीं विविशुर्ज यकाशिनः ॥ १३ ॥ अश्वान्नरान्गजानुष्ट्रान्पशूंश्चैव धनानि च ॥ जगृहुर्युवतीः सर्वाश्चार्वङ्गीश्चैव कन्य काः ॥ १४ ॥ राज्ञो बबन्धुर्महिषीर्दासीश्चैव सहस्रशः ॥ कोशं च रत्नसंपूर्णं जहुस्तेऽप्याततायिनः ॥ १५ ॥ एवं वि नाश्य नगरीं हृत्वा स्त्रीगोधनादिकम् ॥ वज्रबाहुं बलाद्बद्धा रथे स्थाप्य विनिर्ययुः ॥ १६ ॥ एवं कोलाहले जाते राष्ट्रनाशे च दारुणे ॥ राजपुत्रोऽथ भद्रायुस्तद्वार्तामशृणोद्बली ॥ १७॥ पितरं शत्रुनिर्बद्धं पितृपत्नीस्तथा हृताः ॥

ऊंट, पशु, धन व सब स्त्रियों और सुन्दर अङ्गोंवाली कन्याओंको लेलिया ॥ १४ ॥ और मारने के लिये तैयार उन मागधों ने राजाकी स्त्रियों व हजारों दासियों को तथा रत्नोंसे पूर्ण ख़ज़ाने को लेलिया ॥ १५ ॥ इस प्रकार नगरी को नाशकर व स्त्री और गऊ, धनादिक को हरकर व वज्रबाहु को बलसे बाँधकर मागधलोग रथ पै बिठाकर निकल गये ॥ १६ ॥ इस प्रकार राज्य के नाश में भयंकर कोलाहल होनेपर राजाके पुत्र पराक्रमी भद्रायु ने उस बात को सुना ॥ १७ ॥ शत्रुवों

से बँधेहुए पिता व हरीहुई पिताकी स्त्रियों को सुनकर और दशार्णदेशके राज्य को नष्ट सुनकर वह सिंहकी नाईं गर्जनेलगा ॥ १८ ॥ और तलवार व शङ्ख को लेकर वह वैश्यपुत्र सहायकवाला राजपुत्र जीतने की इच्छा से घोडे पै चढ़कर व कवच को पहनकर ॥ १९ ॥ मागधों से पूर्ण उस देश को वेग से आकर जलते व चिल्लाते और हरेहुए स्त्री, पुत्र व गोधन को ॥ २० ॥ व सब राजजन और राज्य को शून्य व भयसे विकल देखकर क्रोधसे धमित मनवाले राजपुत्र ने शीघ्रही शत्रु की सेना में पैठकर व धनुष को कानों तक खींचकर बाणों की वर्षा किया ॥ २१ ॥ राजपुत्रसे बाणों करके मारेजाते हुए उन शत्रुवोंने

नष्टं दशार्णराष्ट्रं च श्रुत्वा चुक्रोश सिंहवत् ॥ १८ ॥ सखङ्गशङ्खावादाय वैश्यपुत्रसहायवान् ॥ दंशितो हयमारुह्य कुमारो विजिगीषया ॥ १९ ॥ जवेनागत्य तं देशं मागधैरभिपूरितम् ॥ दह्यमानं क्रन्दमानं हृतस्त्रीसुतगोधनम् ॥ २० ॥ दृष्ट्वा राजजनं सर्वं राज्यं शून्यं भयाकुलम् ॥ क्रोधाध्मातमनास्तूर्णं प्रविश्य रिपुवाहिनीम् ॥ आकर्णाकृष्टकोदण्डो ववर्ष शरसन्ततीः ॥ २१ ॥ ते हन्यमाना रिपवो राजपुत्रेण सायकैः ॥ तमभिद्रुत्य वेगेन शरैर्विव्यधुरुल्बणैः ॥ २२ ॥ हन्यमानोऽस्त्रपूगेन रिपुभिर्युद्धदुर्मदैः ॥ न चचाल रणे धीरः शिववर्माभिरक्षितः ॥ २३ ॥ सोऽस्त्रवर्षं प्रसह्याशु प्रविश्य गजलीलया ॥ जघानाशु रथान्नागान्पदातीनपि भूरिशः ॥ २४ ॥ तत्रैकं रथिनं हत्वा ससूतं नृपनन्दनः ॥ तमेव रथमास्थाय वैश्यनन्दनसारथिः ॥ विचचार रणे धीरः सिंहो मृगकुलं यथा ॥ २५ ॥ अथ सर्वे सुसंरब्धाः शूराः प्रोद्यतकार्मुकाः ॥ अभिसस्रुस्तमेवैकं चमूपा बलशालिनः ॥ २६ ॥ तेषामापततामग्रे खङ्गमुद्यम्य दारुणम् ॥

वेगसे उसके सामने आकर उग्र बाणों से बेधन किया ॥ २२ ॥ युद्धमें दुर्मद शत्रुवों से अस्त्रसमूह करके मारा जाताहुआ वह शिवकवच से रक्षित बुद्धिमान् राजपुत्र युद्धमें न हटा ॥ २३ ॥ उसने अस्त्रों की वर्षा को सहकर शीघ्रही हाथियों की लीला से पैठकर बहुतसे रथ, हाथी व पैदलों को शीघ्र मारा ॥ २४ ॥ व उस युद्ध में सारथी समेत एक रथीको मारकर वैश्यपुत्र सारथीवाला बुद्धिमान् राजपुत्र उसी रथ पै बैठकर युद्ध में घूमनेलगा जैसे कि सिंह मृगगण को मारकर घूमै ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त धनुषों को उठाये हुए बलसे शोभित सब बड़े क्रोधित शूर सेनापति उस एक राजपुत्र के सामने चले ॥ २६ ॥ व आतेहुए उनके आगे कराल

तलवार को उवाकर महावीरोंको पराक्रम दिखलाता हुआ राजपुत्र सामने गया ॥ २७ ॥ व भयंकर काल की जिह्वा के समान उसकी बडी उज्ज्वल तलवार को देखही कर उसके प्रभावसे सेनापति यकायक मरगये ॥ २८ ॥ रणके आंगन में चमकती हुई उस तलवार को जो जो देखते थे वे सब मृत्यु को प्राप्त होते थे जैसे कि वज्रको पाकर कीट मरजावै ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त पृथ्वी व आकाश को पूर्ण करते हुए इस महाभुज राजकुमार ने सब सेनाओं के नाश के लिये बड़े शब्दवाले शङ्ख को बजाया ॥ ३० ॥ और विष लगेहुए से बड़ेभारी उस शङ्ख शब्द के सुननेही से शत्रुलोग मूर्च्छित होकर पृथ्वी में गिरपड़े ॥ ३१ ॥ जो

अभ्युद्ययौ महावीरान्दर्शयन्निव पौरुषम् ॥ २७ ॥ करालान्तकजिह्वाभं तस्य खड्गं महोज्ज्वलम् ॥ दृष्ट्वैव सहसा मम्रुश्चमूपास्तत्प्रभावतः ॥ २८ ॥ ये ये पश्यन्ति तं खड्गं प्रस्फुरन्तं रणाङ्गणे ॥ ते सर्वे निधनं जग्मुर्वज्रं प्राप्येव कीटकः ॥ २९ ॥ अथासौ सर्वसैन्यानां विनाशाय महाभुजः ॥ शङ्खं दध्मौ महारावं पूरयन्निव रोदसी ॥ ३० ॥ तेन शङ्खनिनादेन विषाक्तेनैव भूयसा ॥ श्रुतमात्रेण रिपवो मूर्च्छिताः पतिता भुवि ॥ ३१ ॥ येऽश्वपृष्ठे रथे ये च ये च दन्तिषु संस्थिताः ॥ ते विसंज्ञाः क्षणात्पेतुः शङ्खनादहतौजसः ॥ ३२ ॥ तान्भूमौ पतितान्सर्वान्नष्टसंज्ञान्निरायुधान् ॥ विगणय्य शवप्रायान्नावधीद्धर्मशास्त्रवित् ॥ ३३ ॥ आत्मनः पितरं बद्धं मोचयित्वा रणाजिरे ॥ तत्पत्नीः शत्रुवशगाः सर्वाः सद्यो व्यमोचयत् ॥ ३४ ॥ पत्नीश्च मन्त्रिमुख्यानां तथान्येषां पुरौकसाम् ॥ स्त्रियो बालांश्च कन्याश्च गोधनादीन्यनेकशः ॥ ३५ ॥ मोचयित्वा रिपुभयात्तमाश्वासयदाकुलम् ॥ अथारिसैन्येषु चरंस्तेषां जग्राह

घोडे की पीठ पै व जो रथ पै और जो हाथियों पै बैठे थे शङ्ख के शब्द से नष्टबलवाले वे मूर्च्छित होकर क्षणभर में गिरपडे ॥ ३२ ॥ पृथ्वी में गिरेहुए उन अस्त्र-रहित व मूर्च्छित सब सैनिक लोगों को मुर्दों के समान जानकर धर्मशास्त्र के जाननेवाले उस राजकुमार ने नहीं मारा ॥ ३३ ॥ व रण के आंगन में बँधेहुए पिताको छुड़ाकर उसने शत्रुके वशमें प्राप्त सब उसकी स्त्रियोंको शीघ्रही छुड़ाया ॥ ३४ ॥ और मुख्य मन्त्रियों की स्त्रियों तथा अन्य पुरवासीलोगों की स्त्रियों व बालकों और कन्याओं को व अनेक गोधनों को ॥ ३५ ॥ छुड़ाकर उस व्याकुल पिताको शत्रुके भयसे समझाया इसके उपरान्त शत्रुसेनाओं में घूमतेहुए उसने

उनकी स्त्रियों को पकडलिया ॥ ३६ ॥ और पवन व मनके समान वेगवाले घोडों और पर्वतों के समान हाथियों को तथा सोने के रथ व सुन्दर मुखवाली दासियों को लेलिया ॥ ३७ ॥ वेगसे सबको हरकर व उसका बहुतसा धन लेकर सुवर्ण के रथवाले हारेहुए मागधेश को बाँधलिया ॥ ३८ ॥ और उसके मन्त्री, राजा व उसमें मुख्य स्वामियों को वेगसे पकड़ कर व बाँधकर शीघ्रही पुरी में प्रवेश कराया ॥ ३९ ॥ पहले युद्धमें जो लोग भगे व सब दिशाओं में चलेगये थे विश्वास को प्राप्त वे मुख्य मन्त्री व नायक लोग आये ॥ ४० ॥ और राजकुमार का पराक्रम देखकर सबके मन विस्मित हुए व सबों ने उसको कारणसे

योषितः ॥ ३६ ॥ मरुन्मनोजवानश्वान्मातङ्गान्गिरिसन्निभान् ॥ स्यन्दनानि च रौक्माणि दासीश्च रुचिराननाः ॥३७॥ युग्मम् ॥ सर्वमाहृत्य वेगेन गृहीत्वा तद्धनं बहु ॥ मागधेशं हेमरथं निर्बबन्ध पराजितम् ॥३८॥ तन्मन्त्रिणश्च भूपांश्च तत्र मुख्यांश्च नायकान् ॥ गृहीत्वा तरसा बद्ध्वा पुरीं प्रावेशयद्द्रुतम् ॥ ३९ ॥ पूर्वं ये समरे भग्ना विद्रुत्ताः सर्वतोदिशम् ॥ ते मन्त्रिमुख्या विश्वस्ता नायकाश्च समाययुः ॥ ४० ॥ कुमारविक्रमं दृष्ट्वा सर्वे विस्मितमानसाः ॥ तं मेनिरे सुरश्रेष्ठं कारणादागतं भुवम् ॥ ४१ ॥ अहो नः सुमहाभाग्यमहो नस्तपसः फलम् ॥ केनाप्यनेन वीरेण मृताः संजीविताः खलु ॥ ४२ ॥ एष किं योगसिद्धो वा तपःसिद्धोऽथवाऽमरः ॥ अमानुषमिदं कर्म यदनेन कृतं महत् ॥ ४३ ॥ नूनमस्य भवेन्माता सा गौरीति शिवः पिता ॥ अक्षौहिणीनां नवकं जिगायानन्तशक्तिधृक् ॥ ४४ ॥ इत्याश्चर्ययुतैर्हृष्टैः प्रशंसद्भिः परस्परम् ॥ पृष्टोऽमात्यजनेनासावात्मानं प्राह तत्त्वतः ॥ ४५ ॥ समागतं स्वपितरं विस्म

पृथ्वी में आयेहुए विष्णुजी माना ॥ ४१ ॥ कि अहो हमलोगों का बडा भाग्य है व हमलोगों की बडी तपस्या है क्योंकि मरेहुए हमलोग किसी इस वीरसे जिलाये गये हैं ॥ ४२ ॥ क्या यह योगसिद्ध है या तपस्या से सिद्ध है या देवता है जो कि इसने बड़ाभारी अमानुष कर्म किया है ॥ ४३ ॥ निश्चयकर इसकी माता पार्वती और पिता महादेवजी होंगे क्योंकि अनन्त शक्तिको धारनेवाले इसने नव अक्षौहिणी सेना को जीतलिया ॥ ४४ ॥ इस प्रकार आश्चर्य से संयुत व प्रसन्न तथा परस्पर प्रशंसा करतेहुए लोगोंसे व मन्त्री लोगोंसे पूंछेहुए इसने अपना को यथार्थ कहा ॥ ४५ ॥ और आश्चर्य व आनन्द में मग्न तथा आनन्द के जलको

के योग्य मुहूर्त में भद्रायु को बुलाकर कीर्तिमालिनी को देदिया ॥ ६४ ॥ और विवाह करके वह राजेन्द्र का पुत्र सिंहासन पै बैठकर स्त्री समेत इस प्रकार शोभित हुआ जैसे कि रोहिणी से चन्द्रमा शोभित होता है ॥ ६५ ॥ और उसके पिता वज्रबाहुको बुलाकर मन्त्रियों समेत उस निषधराजने नगरमें प्रवेश कराकर आगे जाकर पूजन किया ॥ ६६ ॥ और वहां विवाह कियेहुए शत्रुनाशक भद्रायु को देखा व चरणों में पड़ेहुए उसको प्रेम व हर्षसे लिपटा लिया ॥ ६७ ॥ व कहा कि यह शत्रु नाशक वीर मेरे प्राणों का दायक है और अमित पराक्रमवाले इसका मैंने वंश नहीं जाना है ॥ ६८ ॥ हे चन्द्राङ्गद, राजन् ! जो यह बड़ा बलवान्

मालिनीम् ॥ ६४ ॥ कृतोद्वाहः स राजेन्द्रतनयः सह भार्यया ॥ हेमासनस्थः शुशुभे रोहिण्येव निशाकरः ॥ ६५ ॥ वज्रबाहुं तत्पितरं समाहूय स नैषधः ॥ पुरं प्रवेश्य सामात्यः प्रत्युद्गम्याभ्यपूजयत् ॥ ६६ ॥ तत्रापश्यत्कृतोद्वाहं भद्रायुषमरिन्दमम् ॥ पादयोः पतितं प्रेम्णा हर्षार्त्तं परिषस्वजे ॥ ६७ ॥ एष मे प्राणदो वीर एष शत्रुनिषूदनः ॥ अथाप्यज्ञातवंशोऽयं मयानन्तपराक्रमः ॥ ६८ ॥ एष ते नृप जामाता चन्द्राङ्गद महाबलः ॥ अस्य वंशमथोत्पत्तिं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ६९ ॥ इत्थं दशार्णराजेन प्रार्थितो निषधाधिपः ॥ विविक्त उपसंगम्य प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ७० ॥ एष ते तनयो राजञ्छैशवे रोगपीडितः ॥ त्वया वने परित्यक्तः सह मात्रा रुजार्तया ॥ ७१ ॥ परिभ्रमन्ती विपिने सा नारी शिशुनामुना ॥ दैवाद्वैश्यगृहं प्राप्ता तेन वैश्येन रक्षिता ॥ ७२ ॥ अथासौ बहुरोगार्तो मृतस्तत्र कुमारकः ॥ केनापि योगिराजेन मृतः संजीवितः पुनः ॥ ७३ ॥ ऋषभाख्यस्य तस्यैव प्रभावाच्छिवयोगिनः ॥

तुम्हारा दामाद है इसका वंश व उत्पत्ति मैं यथार्थ सुना चाहता हूं ॥ ६९ ॥ दशार्णदेश के राजा से इस प्रकार पूंछेहुए निषधराजने एकान्त में जाकर हँसतेहुए से यह कहा ॥ ७० ॥ कि हे राजन् ! बाल्यावस्थामें तुम्हारा यह पुत्र रोगसे पीड़ितथा और रोग से विकल माता समेत इसको तुमने वनमें छोड़दिया ॥ ७१ ॥ व इस बालक समेत वनमें घूमतीहुई वह स्त्री भाग्य से वैश्य के घरमें प्राप्तहुई और उस वैश्य से रक्षा कीगई ॥ ७२ ॥ इसके उपरान्त बहुत रोग से विकल यह तुम्हारा बालक मरगया और मरेहुए को किसी योगीराज ने फिर जिलाया ॥ ७३ ॥ और ऋषभ नामक उसी शिव योगी के प्रभाव से माता व बालक देवताओं के समान

रूपको प्राप्तहुए ॥ ७४ ॥ और उससे दीहुई शत्रुनाशक तलवार व शङ्ख से शिवकवच से रक्षित इसने युद्ध में शत्रुवों को जीता है ॥ ७५ ॥ और अकेला यह बारह हजार हाथियों के बलको धारनेवाला है व सब विद्याओं में प्रवीण यह मेरी जामातृता को प्राप्त है याने दामाद है ॥ ७६ ॥ इस कारण हे राजन् ! उत्तम व्रतोंवाली इसकी माताको व इसको लेकर अपनी पुरी को जावो तो उत्तम कल्याणको पावोगे ॥ ७७ ॥ इस प्रकार चन्द्राङ्गद ने सब वृत्तान्त कहकर घरके भीतर बैठीहुई उसकी भूषित बड़ी रानीको बुलाकर दिखलाया ॥ ७८ ॥ इत्यादिक सब वृत्तान्त को सुनकर व देखकर वह राजा बहुत लज्जित हुआ और मूढ़ता से अपने

रूपं च देवसदृशं प्राप्तौ मातृकुमारकौ ॥ ७४ ॥ तेन दत्तेन खड्गेन शङ्खेन रिपुघातिना ॥ जिगाय समरे शत्रूञ्छिववर्माभिरक्षितः ॥ ७५ ॥ द्विषट्सहस्रनागानां बलमेको बिभर्त्यसौ ॥ सर्वविद्यासु निष्णातो मम जामातृतां गतः ॥ ७६ ॥ अत एनं समादाय मातरं चास्य सुव्रताम् ॥ गच्छस्व नगरीं राजन्प्राप्स्यसि श्रेय उत्तमम् ॥ ७७ ॥ इति चन्द्राङ्गदः सर्वमाख्यायान्तर्गृहे स्थिताम् ॥ तस्याग्रपत्नीमाहूय दर्शयामास भूषिताम् ॥ ७८ ॥ इत्यादि सर्वमाकर्ण्य दृष्ट्वा च स महीपतिः ॥ व्रीडितो नितरां मौढ्यात्स्वकृतं कर्म गर्हयन् ॥ ७९ ॥ प्राप्तश्च परमानन्दं तयोर्दर्शनकौतुकात् ॥ पुलकाङ्कितसर्वाङ्गस्तावुभौ परिषस्वजे ॥ ८० ॥ युग्मम् ॥ एवं निषधराजेन पूजितश्चाभिनन्दितः ॥ स भोजयित्वा तं सम्यक्स्वयं च सह मन्त्रिभिः ॥ ८१ ॥ तामात्मनोग्रमहिषीं पुत्रं तमपि तां स्नुषाम् ॥ आदाय सपरीवारो वज्रबाहुः पुरीं ययौ ॥ ८२ ॥ स संभ्रमेण महता भद्रायुः पितृमन्दिरम् ॥ संप्राप्य परमानन्दं चक्रे सर्वपुरौकसाम् ॥ ८३ ॥ कालेन दिव

कियेहुए कर्म की निन्दा करता हुआ वह ॥ ७९ ॥ उन दोनों के देखने के कौतुक से बड़े आनन्द को प्राप्तहुआ और रोमाञ्चित सर्वांगवाले उसने उन दोनों को लिपटा लिया ॥ ८० ॥ इस प्रकार निषधराज से पूजित व प्रशंसित वह उसको भोजन कराकर व मन्त्रियों समेत आप भी भोजन करके ॥ ८१ ॥ उस अपनी बड़ी रानी व उस पुत्र और उस पतोहू को लेकर परिवार समेत वज्रबाहु पुरी को चलागया ॥ ८२ ॥ और बड़े संभ्रम से पिताके मन्दिर को प्राप्त होकर उसने सब नगरनिवासियों को बड़ा आनन्द किया ॥ ८३ ॥ और जब पिता काल से स्वर्गारूढ़ हुआ तब युवावस्थाको प्राप्त अद्भुत पराक्रमवाले भद्रायु ने सब

पृथ्वी को पालन किया ॥ ८४ ॥ और ब्रह्मर्षियों के समीप बड़ी मित्रता करके हेमरथ मगधराजको बन्धन से छुडाया ॥ ८५ ॥ इस प्रकार त्रिलोक मे पूजित शिवयोगी की पूजा करके प्राचीन जन्ममें भी उस राजपुत्र ने दुस्सह विपत्ति के गणको नॉघकर व राज्य को पाकर चन्द्राङ्गद की कन्या के साथ रमण किया ॥ ८६ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकाया भद्रायुविवाहकथनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ☉ ॥ ☉ ॥

दो० । जिमि भद्रायुप नृपति को दीन्हो शिव वरदान । चौदहवें अध्याय में सोई कियो वखान ॥ सूतजी बोले कि सिंहासन को प्राप्त उस वीर भद्रायु राजा

मारूढे पितरि प्राप्तयौवनः ॥ भद्रायुः पृथिवीं सर्वां शशासाद्भुतविक्रमः ॥ ८४ ॥ मागधेशं हेमरथं मोचयामास बन्धनात् ॥ संधाय मैत्रीं परमां ब्रह्मर्षीणां च सन्निधौ ॥ ८५ ॥ इत्थं त्रिलोकमहितां शिवयोगिपूजां कृत्वा पुरातनभवेऽपि स राजसूनुः ॥ निस्तीर्य दुःसहविपद्गणमाप्तराज्यश्चन्द्राङ्गदस्य सुतया सह साधु रेमे ॥ ८६ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे भद्रायुविवाहकथनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ प्राप्तसिंहासनो वीरो भद्रायुः स महीपतिः ॥ प्रविवेश वनं रम्यं कदाचिद्भार्यया सह ॥ १ ॥ तस्मिन्विकसिताशोकप्रसूननवपल्लवे ॥ प्रोत्फुल्लमल्लिकाखण्डकूजद्भ्रमरसंकुले ॥ २ ॥ नवकेसरसौरभ्यबद्धरागिजनोत्सवे ॥ सद्यःकोरकिताशोकतमालगहनान्तरे ॥ ३ ॥ प्रसूनप्रकरानम्रमाधवीदनमण्डपे ॥ प्रवालकुसुमोद्द्योतचूतशाखिभिरञ्चिते ॥ ४ ॥ पुन्नागवनविभ्रान्तपुंस्कोकिलविराविणि ॥ वसन्तसमये रम्ये विजहार स्त्रिया सह ॥ ५ ॥ अथा

ने किसी समय स्त्री समेत सुन्दर वनमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ और प्रफुल्लित अशोकके पुष्प व नवीन पत्तोंवाले तथा फूली हुई चमेली समूह व कूजते हुए भँवरों से संयुत उस वन में ॥ २ ॥ और नवीन केसर की सुगन्ध में बँधे अनुरागी जनों के आनन्दवाले व शीघ्रही कलियों से संयुत अशोक व तमालवन के मध्य में ॥ ३ ॥ और पुष्पसमूहों से कुछ झुँके हुए जूही के वन के मंडपवाले और पत्तों व पुष्पों से प्रकाशित आम्रवृक्षों से पूजित ॥ ४ ॥ और पुन्नाग के वन में भ्रमित पुरुष कोकिलाओं के शब्दवाले वन में उस राजा ने मनोहर वसन्तसमय में स्त्री समेत विहार किया ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त श्रेष्ठ राजा ने थोड़ी दूर पै

व्याघ्रसे अनुगामी दौडते व चिल्लाते हुए स्त्री पुरुषों को देखा ॥ ६ ॥ वे यह कहते थे कि हे दयानिधे, महाराज, राजन् ! रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये यह बडा वेगवान् व्याघ्र हम दोनों को खाने के लिये दौडता है ॥ ७ ॥ हे भूपते ! सब प्राणियों को भयंकर यह पर्वत के समान व्याघ्र प्राप्त होकर जब तक न खा जावै तब तक हम दोनों की रक्षा कीजिये ॥ ८ ॥ इस प्रकार चिल्लाने का शब्द सुनकर उस राजा ने धनुष को लिया तब तक व्याघ्रने बीच में आकर उस स्त्री को पकड़ लिया ॥ ६ ॥ हा नाथ, नाथ ! हा कान्त ! हा जगतःपते, शम्भो ! इसप्रकार बहुत रोती हुई उस स्त्री को जब तक भयंकर व्याघ्र ने पकड़ा ॥ १० ॥

विदूरे क्रोशन्तौ धावन्तौ द्विजदम्पती ॥ अन्वीयमानौ व्याघ्रेण ददर्श नृपसत्तमः ॥ ६ ॥ पाहि पाहि महाराज हा राजन् करुणानिधे ॥ एष धावति शार्दूलो जग्धुमावां महारयः ॥ ७ ॥ एष पर्वतसंकाशः सर्वप्राणिभयङ्करः ॥ यावन्न खादति प्राप्य तावन्नौ रक्ष भूपते ॥ ८ ॥ इत्थमाक्रन्दितं श्रुत्वा स राजा धनुराददे ॥ तावदागत्य शार्दूलो मध्ये जग्राह तां वधूम् ॥ ६ ॥ हा नाथ नाथ हा कान्त हा शम्भो जगतःपते ॥ इति रोरूयमाणां तां यावज्जग्राह भीषणः ॥ १० ॥ तावत्स राजा निशितैर्भल्लैर्व्याघ्रमताडयत् ॥ न च तैर्विव्यथे किञ्चिद्गिरीन्द्र इव वृष्टिभिः ॥ ११ ॥ स शार्दूलो महासत्त्वो राज्ञोस्त्रैरकृतव्यथः ॥ बलादाकृष्य तां नारीमपाक्रामत सत्वरः ॥ १२ ॥ व्याघ्रेणापहृतां पत्नीं वीक्ष्य विप्रोऽतिदुःखितः ॥ रुरोद हा प्रिये बाले हा कान्ते हा पतिव्रते ॥ १३ ॥ एकं मामिह सन्त्यज्य कथं लोकान्तरं गता ॥ प्राणेभ्योपि प्रियां त्यक्त्वा कथं जीवितुमुत्सहे ॥ १४ ॥ राजन्क ते महास्त्राणि क ते श्लाघ्यं महद्धनुः ॥

तब तक उस राजा ने पैने बाणों से व्याघ्र को मारा और वह उन बाणों से व्यथित न हुआ जैसे कि वृष्टियों से हिमाचल नहीं व्यथित होता है ॥ ११ ॥ और राजा के बाणों से पीड़ित न होकर वह महापराक्रमी व्याघ्र बलसे उस स्त्री को खीचकर शीघ्रता समेत निकल गया ॥ १२ ॥ और व्याघ्र से हरीहुई स्त्रीको देख कर ब्राह्मण बड़ा दुःखी हुआ व रोनेलगा कि हा प्रिये, बाले, हा कान्ते, हा पतिव्रते ! ॥ १३ ॥ यहा मुझको अकेला छोडकर कैसे परलोक को चलीगई और प्राणों से भी प्यारी तुमको छोड़कर मैं कैसे जीने के लिये उत्साह करूं ॥ १४ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे बड़े भारी अस्त्र कहा हैं व प्रशंसनीय तुम्हारा बडा भारी धनुष

कहां है और बारह हज़ार हाथियों से अधिक बड़ा भारी बल कहां है ॥ १५ ॥ तुम्हारे शंख तलवार से क्या है और तुम्हारे मंत्रास्त्रों की विद्या से क्या है और उस यत्न व बड़े भारी प्रभाव से क्या है ॥ १६ ॥ और जो अन्य तुममें स्थित है वह सब विफल होगया जो तुम वनवासी जन्तु को मना करने के लिये असमर्थ हो ॥ १७ ॥ और जो दुःख से रक्षा करना है यह क्षत्रिय का परम धर्म है इस कारण वंश के योग्य धर्म के नष्ट होनेपर तुम्हारे जीवन से क्या है ॥ १८ ॥ और धर्मज्ञ राजा लोग प्राणों व धनों से भी शरण में आये हुए दुःखी लोगों की रक्षा करते है व उससे हीन मनुष्य मरे के समान हैं ॥ १९ ॥ व दान से हीन धनियों को

क ते द्वादशसाहस्रमहानागातिगं बलम् ॥ १५ ॥ किं ते शंखेन खड्गेन किं ते मन्त्रास्त्रविद्यया ॥ किं च तेन प्रयत्नेन किं प्रभावेण भूयसा ॥ १६ ॥ तत्सर्वं विफलं जातं यच्चान्यत्त्वयि तिष्ठति ॥ यस्त्वं वनौकसं जन्तुं निवारयितुमक्षमः ॥ १७ ॥ क्षात्रस्यायं परो धर्मः क्षतात्परिरक्षणम् ॥ तस्मात्कुलोचिते धर्मे नष्टे त्वज्जीवितेन किम् ॥ १८ ॥ आर्तानां शरणार्तानां त्राणं कुर्वन्ति पार्थिवाः ॥ प्राणैरर्थैश्च धर्मज्ञास्तद्विहीना मृतोपमाः ॥ १९ ॥ धनिनां दानहीनानां गार्हस्थ्याद्भिक्षुता वरा ॥ आर्तत्राणविहीनानां जीवितान्मरणं वरम् ॥ २० ॥ वरं विषादनं राज्ञो वरमग्नौ प्रवेशनम् ॥ अनाथानां प्रपन्नानां कृपणानामरक्षणात् ॥ २१ ॥ इत्थं विलापितं तस्य स्ववीर्यस्य च गर्हणम् ॥ निशम्य नृपतिः शोकादात्मन्येवमचिन्तयत् ॥ २२ ॥ अहो मे पौरुषं नष्टमद्य दैवविपर्ययात् ॥ अद्य कीर्तिश्च मे नष्टा पातकं प्राप्तमुत्कटम् ॥ २३ ॥ धर्मः कालोचितो नष्टो मन्दभाग्यस्य दुर्मतेः ॥ नूनं मे संपदो राज्यमायुष्यं क्षयमेष्यति ॥ २४ ॥

गृहस्थी से भीख मांगना श्रेष्ठ है व दुःखी लोगों की रक्षा से हीन लोगों के जीने से मरना अच्छा है ॥ २० ॥ और शरणमें प्राप्त अनाथ व दीनों की रक्षा न करने से राजा को विष खाना अच्छा है व अग्नि में प्रवेश करना अच्छा है ॥ २१ ॥ इस प्रकार उसका विलाप व अपने पराक्रम की निन्दा को सुनकर राजाने शोक से इस प्रकार मनमें विचार किया ॥ २२ ॥ कि अहो आज दैव के उलटे होने से मेरा पराक्रम नष्ट होगया और आज मेरा यश नाश होगया व उग्र पातक प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ व मुझ मन्दभाग्य राजा का समय के योग्य धर्म नाश होगया और मेरी संपदा, राज्य व आयुर्बल निश्चयकर नाश होजावैगा ॥ २४ ॥

और अपुरुषों की संपदा, सुख, पुत्र, स्त्री व धन क्षणभर में भाग्य से उदय होते हैं और क्षणभर में अस्त होजाते हैं ॥ २५ ॥ इस कारण नष्टस्त्रीवाले व शोक से विकल इस ब्राह्मण को मैं प्यारे प्राणोंको भी देकर शोकरहित करूंगा ॥ २६ ॥ इस प्रकार मन से निश्चय कर इसको समझाते हुए भद्रायुनामक उत्तम राजाने इसके चरणों में गिरकर कहा ॥ २७ ॥ कि हे महाबुद्धे ! नष्टपराक्रमवाले मुझ अधम क्षत्रिय के ऊपर दया कीजिये व शोक को छोड़ दीजिये मैं तुम्हारे मनोरथ को दूंगा ॥ २८ ॥ यह राज्य, यह रानी और मेरा यह शरीर यह सब तुम्हारे अधीनहै कहिये कि तुम्हारा क्या अभिलाष है ॥ २९ ॥ ब्राह्मण बोला कि अन्ध को

अपुंसां सम्पदो भोगाः पुत्रदारधनानि च ॥ दैवेन क्षणमुद्यन्ति क्षणादस्तं व्रजन्ति च ॥ २५ ॥ अत एनं द्विजन्मानं हतदारं शुचार्दितम् ॥ गतशोकं करिष्यामि दत्त्वा प्राणानपि प्रियान् ॥ २६ ॥ इति निश्चित्य मनसा भद्रायुर्नृपसत्तमः ॥ पतित्वा पादयोस्त्वस्य बभाषे परिसान्त्वयन् ॥ २७ ॥ कृपां कुरु मयि ब्रह्मन्क्षत्रबन्धौ हतौजसि ॥ शोकं त्यज महाबुद्धे दास्याम्यर्थं तवेप्सितम् ॥ २८ ॥ इदं राज्यमियं राज्ञी ममेदं च कलेवरम् ॥ त्वदधीनमिदं सर्वं किं तेऽभिलषितं वद ॥ २९ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किमादर्शेन चान्धस्य किं गृहैर्भैक्ष्यजीविनः ॥ किं पुस्तकेन मूर्खस्य ह्यस्त्रीकस्य धनेन किम् ॥ ३० ॥ अतोऽहं गतपत्नीको भुक्तभोगो न कर्हिचित् ॥ इमां तवाग्रमहिषीं कामार्थं दीयतां मम ॥ ३१ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्किमेष धर्मस्ते किमेतद्गुरुशासनम् ॥ अस्वर्ग्यमयशस्यं च परदाराभिमर्शनम् ॥ ३२ ॥ दातारः सन्ति वित्तस्य राज्यस्य गजवाजिनाम् ॥ आत्मदेहस्य वा क्वापि न कलत्रस्य कर्हिचित् ॥ ३३ ॥ परदारोप

दर्पण से क्या है व भिक्षा से जीविका करनेवाले को घरों से क्या है और मूर्ख को पुस्तक से क्या प्रयोजन है व बिन स्त्रीवाले पुरुष को धनसे क्या है ॥ ३० ॥ इस कारण स्त्रीरहित मैं किसी प्रकार सुखोंको न भोगूंगा इसलिये काम के लिये इस अपनी बड़ी रानी को मुझे दीजिये ॥ ३१ ॥ राजा बोले कि हे ब्रह्मन् ! तुम्हारा यह क्या धर्म है और यह क्या गुरु की आज्ञा है क्योंकि पराई स्त्रीकी धर्षणा करना स्वर्गदायक व यशकारक नहीं होता है ॥ ३२ ॥ धन, राज्य व स्त्री और हाथी, घोड़ों के देनेवाले हैं व अपने शरीर को भी देनेवाले हैं परन्तु स्त्रीको देनेवाले कभी नहीं हैं ॥ ३३ ॥ और पराई स्त्रीको भोगनेसे जो पाप इकट्ठा किया

जाता है वह सैकड़ों प्रायश्चित्तों से भी नहीं नाश होसक्ता है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मण बोला कि भयंकर ब्रह्मघात व भयंकर मद्यसेवनको भी मैं तपस्या से नाश करूंगा फिर पराई स्त्रीवाले पापको क्या कहना है इस कारण तुम मुझे इस स्त्री को देवो नहीं तो निश्चय कर ॥ ३५ ॥ भयसे विकल मनुष्यों की रक्षा न करने से अवश्यकर नरक को जावोगे इस प्रकार ब्राह्मण के वचन से डरेहुए राजा ने चिन्तन किया कि रक्षा न करने से बड़ा भारी पाप होगा इससे स्त्री का देना श्रेष्ठ है ॥ ३६ ॥ इस कारण श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिये स्त्री को देकर पातकोंसे रहित मैं शीघ्रही अग्निमें पैठ जाऊंगा और यश भी स्थित होगा ॥ ३७ ॥ इस प्रकार मन

भोगेन यत्पापं समुपार्जितम् ॥ न तत्क्षालयितुं शक्यं प्रायश्चित्तशतैरपि ॥ ३४ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अपि ब्रह्मवधं घोरमपि मद्यनिषेवणम् ॥ तपसा नाशयिष्यामि किं पुनः पारदारिकम् ॥ तस्मात्प्रयच्छ मे भार्यामिमां त्वं ध्रुवमन्यथा ॥ ३५ ॥ अरक्षणाद्भयार्तानां गन्तासि निरयं ध्रुवम् ॥ इति विप्रगिरा भीतश्चिन्तयामास पार्थिवः ॥ अरक्षणान्महत्पापं पत्नीदानं ततो वरम् ॥ ३६ ॥ अतः पत्नीं द्विजाग्र्याय दत्त्वा निर्मुक्तकिल्बिषः ॥ सद्यो वह्निं प्रवेक्ष्यामि कीर्तिश्च निहिता भवेत् ॥ ३७ ॥ इति निश्चित्य मनसा समुज्ज्वाल्य हुताशनम् ॥ तं ब्राह्मणं समाहूय ददौ पत्नीं सहोदकाम् ॥ ३८ ॥ स्वयं स्नातः शुचिर्भूत्वा प्रणम्य विबुधेश्वरान् ॥ तमग्निं द्विः परिक्रम्य शिवं दध्यौ समाहितः ॥ ३९ ॥ तमथाग्नौ पतिष्यन्तं स्वपदासक्तचेतसम् ॥ प्रत्यदृश्यत विश्वेशः प्रादुर्भूतो जगत्पतिः ॥ ४० ॥ तमीश्वरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं पिनाकिनं चन्द्रकलावतंसम् ॥ आलम्बितापिङ्गजटाकलापं मध्यंगतं भास्करकोटितेज

से निश्चय कर अग्नि को जलाकर उसने उस ब्राह्मण को बुलाकर जल समेत स्त्रीको देदिया ॥ ३८ ॥ और आपभी नहाकर पवित्र होकर देवेश्वरों को प्रणामकर व उस अग्निकी दो बार परिक्रमा करके सावधान होतेहुए उसने शिवजीको ध्यान किया ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त अपने चरणों में आसक्तचित्तवाले उस राजाको अग्नि में गिरतेहुए देखकर विश्वेश्वर जगदीशजी प्रकट हुए ॥ ४० ॥ उन पञ्चमुख, त्रिलोचन, पिनाकधारी व चन्द्रकला के अवतंसवाले तथा कुछ लटकती हुई

पीली जटाकलापवाले व मध्य में प्राप्त करोड़ सूर्यों के समान तेजवाले शिवजी को उन्होंने देखा ॥ ४१ ॥ और कमल के भँसीड़ के समान गौर व गजचर्म को पहने तथा गंगाजी की लहरियों से सींचेहुए मस्तकवाले व शेषकी हारावलि, कङ्कण, मुंदरी, किरीटकोटि, बजुल्ला व कुंडलों से उज्ज्वल शिवजी को देखा ॥ ४२ ॥ और त्रिशूल, खट्वाङ्ग, कुठार, ढाल, मृग, अभय व इष्ट वस्तु तथा पिनाक धनुष को हाथ में लिये व बैल के ऊपर बैठेहुए नीलकंठ शिवजी को राजा ने आगे प्रकट देखा ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त शीघ्रही आकाश से दिव्य पुष्प वर्षा हुई और देवताओं की तुरुही बाजने लगीं व देवता नाचने गाने लगे ॥ ४४ ॥

सम् ॥ ४१ ॥ मृणालगौरं गजचर्मवाससं गङ्गातरङ्गोक्षितमौलिदेशम् ॥ नागेन्द्रहारावलिकङ्कणोर्मिकाकिरीटकोटयङ्गदकुण्डलोज्ज्वलम् ॥ ४२ ॥ त्रिशूलखट्वाङ्गकुठारचर्ममृगाभयेष्टार्थपिनाकहस्तम् ॥ वृषोपरिस्थं शितिकण्ठमीशं प्रोद्भूतमग्रे नृपतिर्ददर्श ॥ ४३ ॥ अथाम्बराद्द्रुतं पेतुर्दिव्याः कुसुमवृष्टयः ॥ प्रणेदुर्देवतूर्याणि देवाश्च नन्तुर्जगुः ॥ ४४ ॥ तत्राजग्मुर्नारदाद्याः सनकाद्याः सुरर्षयः ॥ इन्द्रादयश्च लोकेशास्तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ४५ ॥ तेषां मध्ये समासीनो महादेवः सहोमया ॥ ववर्ष करुणासारं भक्तिनम्रे महीपतौ ॥ ४६ ॥ तद्दर्शनानन्दविजृम्भिताशयः प्रवृद्धबाष्पाम्बुपरिप्लुताङ्गः ॥ प्रहृष्टरोमा गलगद्गदाक्षरं तुष्टाव गीर्भिर्मुकुलीकृताञ्जलिः ॥ ४७ ॥ राजोवाच ॥ नतोस्म्यहं देवमनाथमव्ययं प्रधानमव्यक्तगुणं महान्तम् ॥ अकारणं कारणकारणं परं शिवं चिदानन्दमयं प्रशान्तम् ॥ ४८ ॥ त्वं विश्वसाक्षी जगतोऽस्य कर्त्ता निरूढधामा हृदि सन्निविष्टः ॥ अतो विचिन्वन्ति विधौ विपश्चितो यो

वहां नारदादिक व सनकादिक देवर्षि आये और इन्द्रादिक लोकेश व निर्मल ब्रह्मर्षिलोग आये ॥ ४५ ॥ उनके मध्य में पार्वती समेत बैठेहुए शिवजी ने भक्ति से नम्र राजा के ऊपर करुणा के धाराकी वृर्षा किया ॥ ४६ ॥ उन शिवजी के दर्शन के आनन्द से बढ़े आशय व बढ़ेहुए आँसुवों के जल से मग्न अंगवाले, प्रसन्न रोम व हाथों को जोड़ेहुए राजाने गलेमें गद्गद अक्षरोंवाले वचनों से स्तुति किया ॥ ४७ ॥ राजा बोले कि अनाथ, अविकारी, प्रधान व अव्यक्त गुणवाले महान् देवता को मैं प्रणाम करता हूं और अकारण व कारण के कारण तथा चिदानन्दमय उत्तम शान्त शिवजी को मैं प्रणाम करता हू ॥ ४८ ॥ व संसार के

साक्षी तुम इस संसार को रचनेवाले हो व बहुत तेजवाले तुम हृदय में स्थित हो इस कारण चित्तको रोंकनेवाले अनेक योगों से विद्वान् लोग विधि में ढूंढ़ते हैं ॥ ४६ ॥ व एकात्मता भावन करनेवालों के तुम एक हो और अनेक बुद्धिवालों के जो तुम अनेक रूप हो इन्द्रियों से परे व साक्षी के उदय, अस्तवाला तुम्हारा स्थान मनके मार्ग से हरलिया जाता है ॥ ५० ॥ वचन व बुद्धि से दुर्लभ तथा मोहसे रहित परमात्मारूप उन्हीं तुम्हारी स्तुति करने के लिये केवल गुणमें स्थित व प्रकृति में लीन मेरी बुद्धियां कैसे समर्थ हैं ॥ ५१ ॥ तथापि भक्ति की आश्रयता को प्राप्त होती हैं और प्रणत जनों के दुःखनाशक तुम्हारे चरण

गैरनेकैः कृतचित्तरोधैः ॥ ४६ ॥ एकात्मतां भावयतां त्वमेको नानाधियां यस्त्वमनेकरूपः ॥ अतीन्द्रियं साक्ष्युदयास्तविभ्रमं मनःपथात्संह्रियते पदं ते ॥ ५० ॥ तं त्वां दुरापं वचसो धियाश्च व्यपेतमोहं परमात्मरूपम् ॥ गुणैकनिष्ठाः प्रकृतौ विलीनाः कथं वपुः स्तोतुमलं गिरो मे ॥ ५१ ॥ तथापि भक्त्याश्रयतामुपेयुस्तवाङ्घ्रिपद्मं प्रणतार्तिभञ्जनम् ॥ सुघोरसंसारदवाग्निपीडितो भजामि नित्यं भवभीतिशान्तये ॥ ५२ ॥ नमस्ते देवदेवाय महादेवाय शम्भवे ॥ नमस्त्रिमूर्तिरूपाय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥ ५३ ॥ नमो विश्वादिरूपाय विश्वप्रथमसाक्षिणे ॥ नमः सन्मात्रतत्त्वाय बोधानन्दघनाय च ॥ ५४ ॥ सर्वक्षेत्रनिवासाय क्षेत्रभिन्नात्मशक्तये ॥ अशक्ताय नमस्तुभ्यं शक्ताभासाय भूयसे ॥ ५५ ॥ निराभासाय नित्याय सत्यज्ञानान्तरात्मने ॥ विशुद्धाय विदूराय विमुक्ताशेषकर्मणे ॥ ५६ ॥

कमल को भयंकर संसाररूपी दावानल से पीड़ित मैं भवभय की शान्ति के लिये सदैव भजता हूं ॥ ५२ ॥ देवदेव महादेव शम्भुजी के लिये प्रणाम है व सृष्टि, पालन व संहार करनेवाले आप त्रिमूर्ति के लिये प्रणाम है ॥ ५३ ॥ व संसार के आदिरूप तथा संसार के प्रथम साक्षी के लिये प्रणाम है व सन्मात्र तत्त्व तथा ज्ञानानन्दघनके लिये प्रणाम है ॥ ५४ ॥ व सब क्षेत्रों में बसनेवाले तथा क्षेत्रसे भिन्न आत्मशक्तिवाले व अशक्त तथा बहुत शक्तियों के आभासवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ५५ ॥ व निराभास, नित्य तथा सत्य, ज्ञान अन्तरात्माके लिये और विशुद्ध, विदूर व विमुक्त सब कर्मवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ५६ ॥

व वेदान्त से जानने योग्य तथा वेदमूलनिवासी के लिये प्रणाम है और पवित्र चेष्टावाले व निवृत्त गुण वृत्तियोंवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है॥ ५७ ॥ व कल्याणवीर्य तथा कल्याणफल को देनेवाले आपके लिये प्रणाम है व अनन्त, महान् तथा शान्त शिवरूपके लिये प्रणाम है ॥ ५८ ॥ व अघोर, सुघोर तथा घोर पापसमूहको नाशनेवाले आपके लिये प्रणाम है और भर्ग व संसार के बीजों के नाशनेवाले गुरु आपके लिये नमस्कार है और मोहरहित व निर्मल आत्म-गुणोंवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ५९ ॥ हे लोकोंके स्वामी ! मेरी रक्षा कीजिये व हे शाश्वत, शंकरजी ! रक्षा कीजिये हे विरूपलोचन, रुद्र ! रक्षा कीजिये व

नमो वेदान्तवेद्याय वेदमूलनिवासिने ॥ नमो विविक्तचेष्टाय निवृत्तगुणवृत्तये ॥ ५७ ॥ नमः कल्याणवीर्याय कल्याणफलदायिने ॥ नमोऽनन्ताय महते शान्ताय शिवरूपिणे ॥ ५८ ॥ अघोराय सुघोराय घोराघौघविदारिणे ॥ भर्गाय भवबीजानां भञ्जनाय गरीयसे ॥ नमो विध्वस्तमोहाय विशदात्मगुणाय च ॥ ५९ ॥ पाहि मां जगतां नाथ पाहि शङ्कर शाश्वत ॥ पाहि रुद्र विरूपाक्ष पाहि मृत्युञ्जयाऽव्यय ॥ ६० ॥ शम्भो शशाङ्ककृतशेखर शान्तमूर्ते गौरीश गोपतिनिशापहुताशनेत्र ॥ गङ्गाधरान्धकविदारण पुण्यकीर्ते भूतेश भूधरनिवास सदा नमस्ते ॥ ६१ ॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुतः स भगवान्राज्ञा देवो महेश्वरः॥ प्रसन्नः सह पार्वत्या प्रत्युवाच दयानिधिः ॥ ६२॥ ईश्वर उवाच॥ राजंस्ते परितुष्टोऽस्मि भक्त्या पुण्यस्तवेन च ॥ अनन्यचेता यो नित्यं सदा मां पर्यपूजयः ॥ ६३॥

हे मृत्युंजय, अव्यय ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ ६० ॥ हे शम्भो ! हे शशाङ्ककृतशेखर ! हे शान्तमूर्ते ! हे गौरीश ! हे सूर्य, चन्द्रमा, अग्निनेत्र ! हे गंगाधर ! हे अन्धक-विदारण ! हे पुण्यकीर्ते ! हे भूतेश ! हे भूधरनिवास ! तुम्हारे लिये सदैव नमस्कार है ॥ ६१ ॥ सूतजी बोले कि राजा से इस प्रकार स्तुति किये हुए करुणानि-धान भगवान् शिवदेवजी ने पार्वती समेत प्रसन्न होकर यह कहा ॥ ६२ ॥ शिवजी बोले कि हे राजन् ! मैं तुम्हारी भक्ति व पवित्र स्तोत्रसे प्रसन्न हूं जो तुमने अन्य में चित्त को न लगाकर सदैव नित्य मुझको पूजा है ॥ ६३ ॥ तुम्हारी भक्ति की परीक्षा के लिये मैं ब्राह्मण होकर आया था और जिसको व्याघ्रने पकड़ा था वही

यह पार्वती देवी है ॥ ६४ ॥ और वह मायाका व्याघ्र था कि जिसका शरीर तुम्हारे बाणों से नहीं कटा था और तुम्हारी बुद्धिमानी को देखनेकी इच्छावाले मैंने स्त्री को मांगा था ॥ ६५ ॥ हे मानद ! इस कीर्तिमालिनी की व तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न मैं वर को देता हूं जो दुर्लभ होवै उस वर को मांगिये ॥ ६६ ॥ राजा बोले कि हे देव ! यही वर है जो कि आप परमेश्वर देवजी संसार की ताप से घिरे हुए मेरी आँखों के सामने प्राप्त हुए ॥ ६७ ॥ हे देव ! वरदायकों में श्रेष्ठ आप से मैं अन्य वर को नहीं मांगता हूं वरन मैं और जो यह मेरी रानी है और मेरी माता व मेरा पिता ॥ ६८ ॥ व पद्माकर नामक बनिया व सुनय नामक उसका पुत्र इन सबोंको

तव भावपरीक्षार्थं द्विजो भूत्वाहमागतः ॥ व्याघ्रेण या परिग्रस्ता सैषा देवी गिरीन्द्रजा ॥ ६४ ॥ व्याघ्रो मायामयो यस्ते शरैरक्षतविग्रहः ॥ धीरतां द्रष्टुकामस्ते पत्नीं याचितवानहम् ॥ ६५ ॥ अस्याश्च कीर्तिमालिन्यास्तव भक्त्या च मानद ॥ तुष्टोऽहं संप्रयच्छामि वरं वरय दुर्लभम् ॥ ६६ ॥ राजोवाच ॥ एष एव वरो देव यद्भवान्परमेश्वरः ॥ भवतापपरीतस्य मम प्रत्यक्षतां गतः ॥ ६७ ॥ नान्यं वरं वृणे देव भवतो वरदर्षभात् ॥ अहं च येयं सा राज्ञी मम माता च मत्पिता ॥ ६८ ॥ वैश्यः पद्माकरो नाम तत्पुत्रः सुनयाभिधः ॥ सर्वानेतान्महादेव सदा त्वत्पार्श्वगान्कुरु ॥ ६९ ॥ सूत उवाच ॥ अथ राज्ञी महाभागा प्रणता कीर्तिमालिनी ॥ भक्त्या प्रसाद्य गिरिशं ययाचे वरमुत्तमम् ॥ ७० ॥ राज्ञ्युवाच ॥ चन्द्राङ्गदो मम पिता माता सीमन्तिनी च मे ॥ तयोर्याचे महादेव त्वत्पार्श्वे सन्निधिं सदा ॥ ७१ ॥ एवमस्त्विति गौरीशः प्रसन्नो भक्तवत्सलः ॥ तयोः कामवरं दत्त्वा क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ॥ ७२ ॥ सोपि राजा सुरैः सार्धं

हे महादेवजी ! अपने समीपवर्ती कीजिये ॥६९॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त बड़े ऐश्वर्यवाली कीर्तिमालिनी रानी ने प्रणाम किया व भक्तिसे शिवजी को प्रसन्न कराकर उत्तम वर को मांगा ॥ ७० ॥ रानी बोली कि हे महादेवजी ! मेरा पिता चन्द्राङ्गद व मेरी माता सीमंतिनी उन दोनों की सदैव आपके समीप स्थिति को मांगती हूं ॥ ७१ ॥ ऐसाही होगा यह भक्तवत्सल शिवजी प्रसन्न होकर उन दोनों के लिये इच्छा के अनुकूल वरको देकर क्षणभर में अन्तर्द्धान होगये ॥ ७२ ॥

और उस राजा ने भी देवताओं समेत शिवजी की प्रसन्नता को पाकर कीर्तिमालिनी के साथ प्रिय सुखों को भोग किया ॥ ७३ ॥ और अनष्ट पराक्रमकी उन्नतिवाले उस राजाने भी दश हज़ार वर्षतक राज्य करके व राज्य को पुत्रों में स्थापित कर शिवजी के परम पद को पाया ॥ ७४ ॥ व चन्द्राङ्गद राजा और वह सीमन्तिनी रानी भक्ति से शिवजी को पूजकर दोनों शिवजी के स्थान को चलेगये ॥ ७५ ॥ जो पवित्र मनुष्य इस पापनाशक व पवित्र तथा विचित्र शिवजी के अत्यन्त गुप्त गुणकथन को बुधजनों को सुनाता है या पढ़ता है वह सुखके ऐश्वर्य को प्राकर अन्त में शिवजी को पाता है ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे

प्रसादं प्राप्य शूलिनः ॥ सहितः कीर्तिमालिन्या बुभुजे विषयान्प्रियान् ॥ ७३ ॥ कृत्वा वर्षायुतं राज्यमव्याहतबलोन्नतिः ॥ राज्यं पुत्रेषु विन्यस्य भेजे शम्भोः परं पदम् ॥ ७४ ॥ चन्द्राङ्गदोपि राजेन्द्र राज्ञी सीमन्तिनी च सा ॥ भक्त्या संपूज्य गिरिशं जग्मतुः शाम्भवं पदम् ॥ ७५ ॥ एतत्पवित्रमघनाशकरं विचित्रं शम्भोर्गुणानुकथनं परमं रहस्यम् ॥ यः श्रावयेद्बुधजनान्प्रयतः पठेद्वा संप्राप्य भोगविभवं शिवमेति सोन्ते ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे भद्रायुशिवप्रसादकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ ऋषभस्यानुभावोयं वर्णितः शिवयोगिनः ॥ अथान्यस्यापि वक्ष्यामि प्रभावं शिवयोगिनः ॥ १ ॥ भस्मनश्चापि माहात्म्यं वर्णयामि समासतः ॥ कृतकृत्या भविष्यन्ति यच्छ्रुत्वा पापिनो जनाः ॥ २ ॥ अस्त्येको वामदेवाख्यः शिवयोगी महातपाः ॥ निर्द्वन्द्वो निर्गुणः शान्तो निःसङ्गः समदर्शनः ॥ ३ ॥ आत्मारामो जितक्रो

ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायां भद्रायुशिवप्रसादकथनंनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ ॥

दो० । भयो ब्रह्मराक्षस यथा भस्म संगसों मुक्त । पन्द्रहवें अध्याय में सोइ कथा है उक्त ॥ सूतजी बोले कि ऋषभ शिवयोगी का यह प्रभाव कहा गया अब अन्य भी शिवयोगी का प्रभाव कहूंगा ॥ १ ॥ व भस्म का भी माहात्म्य संक्षेप से वर्णन करता हूं कि जिसको सुनकर पापी मनुष्य कृतार्थ होवेंगे ॥ २ ॥ बड़ा तपस्वी वामदेव नामक एक शिवयोगी था जोकि दुःख व सुखसे रहित तथा निर्गुण, शान्त, निस्संग व समदर्शी था ॥ ३ ॥ और वह आत्माराम, क्रोध को

जीतनेवाला तथा घर व स्त्री से रहित था व अनिश्चित गतिवाला तथा मौनी व संतुष्ट और कुटुम्बहीन था ॥ ४ ॥ और सब अङ्गों में भस्म को लगाये तथा जटा मण्डल से शोभित और बकला व मृगचर्म को पहने तथा भिक्षाही को ग्रहण करता था ॥ ५ ॥ एक समय सबों के ऊपर दया में परायण वह संसार में घूमता हुआ अपनी इच्छासे बड़े भयंकर क्रौंचवन में पैठगया ॥ ६ ॥ उस मनुष्यरहित वनमें क्षुधा व प्यास से विकल, बहुत भयंकर एक जो कोई ब्रह्मराक्षस टिका था ॥ ७ ॥ क्षुधा से पीड़ित वह ब्रह्मराक्षस उस पैठेहुए शिवात्मक योगीको देखकर खानेके लिये वेगसे दौड़ा ॥ ८ ॥ भयंकर दाढ़ोंवाले तथा बड़े शरीरवाले व मुख

धो गृहदारविवर्जितः ॥ अतर्कितगतिर्मौनी सन्तुष्टो निष्परिग्रहः ॥ ४ ॥ भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो जटामण्डलमण्डितः ॥ वल्कलाजिनसंवीतो भिक्षामात्रपरिग्रहः ॥ ५ ॥ स एकदा चरँल्लोके सर्वानुग्रहतत्परः ॥ क्रौञ्चारण्यं महाघोरं प्रविवेश यदृच्छया ॥ ६ ॥ तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये तिष्ठत्येकोऽतिभीषणः ॥ क्षुत्तृषाकुलितो नित्यं यः कश्चिद्ब्रह्मराक्षसः ॥ ७ ॥ तं प्रविष्टं शिवात्मानं स दृष्ट्वा ब्रह्मराक्षसः ॥ अभिदुद्राव वेगेन जग्धुं क्षुत्परिपीडितः ॥ ८ ॥ व्यात्ताननं महाकायं भीमदंष्ट्रं भयानकम् ॥ तमायान्तमभिप्रेक्ष्य योगीशो न चचाल सः ॥ ९ ॥ अथाभिद्रुत्य तरसा स घोरो वनगोचरः ॥ दोर्भ्यां निष्पीड्य जग्राह निष्कम्पं शिवयोगिनम् ॥ १० ॥ तदङ्गस्पर्शनादेव सद्यो विध्वस्तकिल्बिषः ॥ स ब्रह्मराक्षसो घोरो विषण्णः स्मृतिमाययौ ॥ ११ ॥ यथा चिन्तामणिं स्पृष्ट्वा लोहं काञ्चनतां व्रजेत् ॥ यथा जम्बूनदीं प्राप्य मृत्तिका स्वर्णतां व्रजेत् ॥ १२ ॥ यथा मानसमभ्येत्य वायसा यान्ति हंसताम् ॥ यथामृतं सकृ

को फैलाये उस आतेहुए ब्रह्मराक्षस को देखकर वह योगीश नहीं चला ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त वेगसे दौड़कर उस भयंकर वनचारी ब्रह्मराक्षस ने भुजाओं से दबाकर कम्परहित शिवयोगी को पकड़लिया ॥ १० ॥ और उसका अङ्ग छूनेही से शीघ्रही पापरहित वह भयंकर ब्रह्मराक्षस दुःखित होकर स्मरण को प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ जैसे चिन्तामणि को छूकर लोह सुवर्ण होजाता है और जम्बूनदी को प्राप्त होकर मिट्टी जैसे सुवर्ण होजाती है ॥ १२ ॥ व जैसे मानस

तड़ाग को प्राप्त होकर कौवा हंसताको प्राप्त होते हैं और जैसे अमृतको एक बार पीकर मनुष्य देवत्व को प्राप्त होता है ॥१३॥ वैसेही महात्मा लोग दर्शन व स्पर्शन आदिकों से शीघ्रही पापसंयुत मनुष्यों को पवित्र करते हैं इस कारण सत्सङ्ग दुर्लभ है ॥१४॥ पहले क्षुधा व प्यास से विकल जो भयंकर शरीरवाला वनचारी था वह शीघ्रही तृप्तिको प्राप्त हुआ और पूर्ण आनन्दमय होगया ॥१५॥ और उसके शरीर में लगीहुई सफ़ेद भस्म के कणों से विद्ध तथा उसी क्षण नष्ट पापरूपी तमोगुणी स्वभाव व पूर्वजन्म के स्मरण को प्राप्त तथा उग्र कर्मवाले उस ब्रह्मराक्षस ने उसके दोनों चरणकमलों में प्रणाम करके कहा ॥ १६ ॥ राक्षस बोला

त्पीत्वा नरो देवत्वमाप्नुयात् ॥ १३ ॥ तथैव हि महात्मानो दर्शनस्पर्शनादिभिः ॥ सद्यः पुनन्त्यघोपेतान्सत्सङ्गो दुर्लभो ह्यतः ॥ १४ ॥ यः पूर्वं क्षुत्पिपासार्तो घोरात्मा विपिने चरः ॥ स सद्यस्तृप्तिमायातः पूर्णानन्दो बभूव ह ॥१५॥ तद्गात्रलग्नसितभस्मकणानुविद्धः सद्यो विधूतघनपापतमः स्वभावः ॥ संप्राप्तपूर्वभवसंस्मृतिरुग्रकार्यस्तत्पादपद्मयुगले प्रणतो बभाषे ॥ १६ ॥ राक्षस उवाच ॥ प्रसीद मे महायोगिन्प्रसीद करुणानिधे ॥ प्रसीद भवतप्तानामानन्दामृतवारिधे ॥ १७ ॥ काहं पापमतिर्घोरः सर्वप्राणिभयङ्करः ॥ क्व ते महानुभावस्य दर्शनं करुणात्मनः ॥ १८ ॥ उद्धरोद्धर मां घोरे पतितं दुःखसागरे ॥ तव सन्निधिमात्रेण महानन्दोऽभिवर्धते ॥ १९ ॥ वामदेव उवाच ॥ कस्त्वं वनेचरो घोरो राक्षसोऽत्र किमास्थितः ॥ कथमेतां महाघोरां कष्टां गतिमवाप्तवान् ॥ २० ॥ राक्षस उवाच ॥ राक्ष

कि हे दयानिधे, महायोगिन्! मेरे ऊपर प्रसन्न होवो हे आनन्दरूपी अमृत के समुद्र! संसार से तप्त पुरुषोंके ऊपर प्रसन्न होवो ॥ १७ ॥ सब प्राणियों को भयकारक व पापबुद्धिवाला तथा भयानक कहा मैं और कहा बडे प्रभाववाले तथा दयात्मक तुम्हारा दर्शन होना ॥ १८ ॥ विकराल दुःख के समुद्र में पडेहुए मुझको उधारिये उधारिये तुम्हारी समीपताही से बड़ा आनन्द बढ़ता है ॥ १९ ॥ वामदेवजी बोले कि वनमें रहनेवाले तुम कौन भयंकर राक्षस हो और यहां क्यों टिके हो व कैसे इस महाविकराल तथा क्लेशित दशा को प्राप्त हुए हो ॥ २० ॥ राक्षस बोला कि इससे पचीसवें जन्म में मैं राक्षस था और म्लेच्छों के राज्य का

रक्षक बलवान् मैं दुर्जयनामक था ॥ २१ ॥ दुष्टबुद्धिवाला वही मैं बड़ा पापी तथा इच्छा के अनुकूल घूमनेवाला व मदसे उग्र और दण्डधारी व दुराचारी, प्रचण्ड, निर्दयी और दुष्ट था ॥ २२ ॥ और ज्वान मैं बहुत स्त्रियोंवाला भी निर्जितेन्द्रिय होकर कामासक्त था फिर इस एक बडी पापिनी चेष्टा को मैं प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ कि सदैव प्रतिदिन मैं अन्य नवीन स्त्रीके मैथुनकी इच्छा करनेवाला हुआ और मेरी आज्ञासे सेवकलोग सब देशों से स्त्रियों को लेआते थे ॥ २४ ॥ प्रतिदिन एक एक भोगीहुई स्त्रीको त्यागकर भीतर घरोंमें स्थापित कर फिर अन्य स्त्रियों को धारण करता था ॥ २५ ॥ इस प्रकार प्रतिदिन अपने राज्य से व दूसरे

सोऽहमितः पूर्वं पञ्चविंशतिमे भवे ॥ गोप्ता यवनराष्ट्रस्य दुर्जयो नाम वीर्यवान् ॥ २१ ॥ सोऽहं दुरात्मा पापीया न्स्वैरचारी मदोत्कटः ॥ दण्डधारी दुराचारः प्रचण्डो निर्घृणः खलः ॥ २२॥ युवा बहुकलत्रोऽपि कामासक्तो जितेन्द्रियः ॥ इमां पापीयसीं चेष्टां पुनरेकां गतोऽस्म्यहम् ॥ २३ ॥ प्रत्यहं नूतनामन्यां नारीं भोक्तुमनाः सदा ॥ आहृताः सर्वदेशेभ्यो नार्यो भृत्यैर्मदाज्ञया ॥ २४ ॥ भुक्त्वा भुक्त्वा परित्यक्तामेकामेकां दिनेदिने ॥ अन्तर्गृहेषु संस्थाप्य पुनरन्याः स्त्रियो धृताः ॥ २५ ॥ एवं स्वराष्ट्रात्परराष्ट्रतश्च देशाकरग्रामपुरव्रजेभ्यः ॥ आहृत्य नार्यो रमिता दिने दिने भुक्ता पुनः कापि न भुज्यते मया ॥ २६ ॥ अथान्यैश्च न भुज्यन्ते मया भुक्तास्तथा स्त्रियः ॥ अन्त र्गृहेषु निहिताः शोचन्ते च दिवानिशम् ॥ २७ ॥ ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यदा नार्यो मया हृताः ॥ मम राज्ये स्थिता विप्राः सह दारैः प्रदुद्रुवुः ॥ २८ ॥ सभर्तृकाश्च कन्याश्च विधवाश्च रजस्वलाः ॥ आहृत्य नार्यो रमिता मया काम

के राज्य से तथा देश, ग्राम, नगर व व्रजों से लाकर स्त्रियां भोग कीजाती थीं फिर भोगीहुई कोई भी स्त्री मुझसे भोग नहीं कीजाती थी ॥ २६ ॥ और मुझसे भोगी हुई स्त्रियां अन्य लोगों से भी नहीं भोगी जाती थीं और घरों के भीतर स्थापित वे दिन रात शोचती थीं ॥ २७ ॥ जब मैंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्रों की स्त्रियों को हरलिया तब मेरे राज्य में स्थित ब्राह्मण लोग स्त्रियों समेत भागगये ॥ २८ ॥ व कामदेव से नष्टबुद्धिवाले मैंने पतिसमेत स्त्रियोंको व कन्या

और विधवा तथा रजस्वला स्त्रियों को लाकर रमण किया ॥ २६ ॥ तीन सौ ब्राह्मणों की स्त्रियों को और चार सौ राजाओं की स्त्रियों को तथा छहसौ बनियों की स्त्रियों को और एक हजार शूद्रों की स्त्रियों को मैंने भोग किया है ॥ ३० ॥ और सौ चाण्डालोंकी स्त्रियों को तथा हजार पुलिन्दी व पांच सौ शैलूषी और चार सौ धोबिनियों को मैंने भोग किया है ॥ ३१ ॥ व दुष्टबुद्धिवाले मैंने असंख्य वेश्याओं को भोग किया तौभी मुझ में कामदेवकी तृप्ति न हुई ॥ ३२ ॥ इसप्रकार दुष्ट विषयों में आसक्त व मदिरा पीने में परायण तथा मत्त मुझ में युवावस्था में भी यक्ष्मादिक महारोगों ने प्रवेश किया ॥ ३३ ॥ रोगों से विकल व सन्तान-

हतात्मना ॥ २६ ॥ त्रिशतं द्विजनारीणां राजस्त्रीणां चतुःशतम् ॥ षट्शतं वैश्यनारीणां सहस्रं शूद्रयोपिताम् ॥ ३० ॥ शतं चाण्डालनारीणां पुलिन्दीनां सहस्रकम् ॥ शैलूषीणां पञ्चशतं रजकीनां चतुःशतम् ॥ ३१ ॥ असंख्या वारमुख्याश्च मया भुक्ता दुरात्मना ॥ तथापि मयि कामस्य न तृप्तिः समजायत ॥ ३२ ॥ एवं दुर्विषयासक्तं मत्तं पानरतं सदा ॥ यौवनेपि महारोगा विविशुर्यक्ष्मकादयः ॥ ३३ ॥ रोगार्दितोऽनपत्यश्च शत्रुभिश्चापि पीडितः ॥ त्यक्तो मात्यैश्च भृत्यैश्च मृतोऽहं स्वेन कर्मणा ॥ ३४ ॥ आयुर्विनश्यत्ययशो विवर्धते भाग्यं क्षयं यात्यतिदुर्गतिं व्रजेत् ॥ स्वर्गाच्च्यवन्ते पितरः पुरातना धर्मव्यपेतस्य नरस्य निश्चितम् ॥ ३५ ॥ अथाहं किङ्करैर्याम्यैर्नीतो वैवस्वतालयम् ॥ ततोऽहं नरके घोरे तत्कुण्डे विनिपातितः ॥ ३६ ॥ तत्राहं नरके घोरे वर्षाणामयुतत्रयम् ॥ रेतः पिबन्पीड्यमानो न्यवसं यमकिङ्करैः ॥ ३७ ॥ ततः पापावशेषेण पिशाचो निर्जने वने ॥ सहस्राशिश्नःसंजातो नित्यं क्षुत्तृष

हीन तथा शत्रुवों से भी पीड़ित मुझको मन्त्रियों व नौकरों ने छोड़दिया और मैं अपने कर्म से मरगया ॥ ३४ ॥ धर्म से रहित मनुष्य का निश्चयकर आयुर्बल नाश होजाता है व अयश बढ़ता है और भाग्य क्षय होजाती है व बड़ी दुर्दशा को वह प्राप्त होता है और प्राचीन पितर लोग स्वर्ग से भ्रष्ट होजाते हैं ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त यमदूत मुझको यमस्थानको लेगये तदनन्तर भयंकर नरक व उसके कुण्ड में मैं डालदिया गया ॥ ३६ ॥ और उस भयंकर नरक में वीर्यको पीते व यमदूतों से पीड़ित होतेहुए मैंने तीस हज़ार वर्षतक निवास किया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर बचेहुए पाप से निर्जन वनमें नित्य क्षुधा व

प्यास से विकल मैं हज़ार लिङ्गोंवाला पिशाच हुआ ॥ ३८ ॥ व पिशाच की दशा को प्राप्त होकर मैंने देवताओं के सौ वर्ष तक व्यतीत किया और दूसरे जन्म में प्राणियों को भय करनेवाला मैं व्याघ्र हुआ ॥ ३९ ॥ और तीसरे में भयंकर अजगर व चौथे जन्म में मैं भेड़िया हुआ और पांचवें जन्म में ग्राम्यशूकर व छठे जन्म में मैं गिरगिट हुआ ॥ ४० ॥ और सातवें में कुत्ता व आठवें जन्म में मैं सियार हुआ और नवें जन्म में सुरहगाय व दशवें जन्म में मैं मृग हुआ ॥ ४१ ॥ और गेरहवें जन्म में वानर व बारहवें जन्म में मैं गीध हुआ और तेरहवें में नेउला व चौदहवें जन्म में मैं कौवा हुआ ॥ ४२ ॥ और पन्द्रहवें जन्म में रीछ तथा

याकुलः ॥ ३८ ॥ पैशाचीं गतिमाश्रित्य नीतं दिव्यं शरच्छतम् ॥ द्वितीयेहं भवे जातो व्याघ्रः प्राणिभयङ्करः ॥ ३९ ॥ तृतीयेऽजगरो घोरश्चतुर्थेऽहं भवे वृकः ॥ पञ्चमे विड्वराहश्च षष्ठेऽहं कृकलासकः ॥ ४० ॥ सप्तमेऽहं सारमेयः सृगालश्चाष्टमे भवे ॥ नवमे गवयो भीमो मृगोऽहं दशमे भवे ॥ ४१ ॥ एकादशे मर्कटश्च गृध्रोऽहं द्वादशे भवे ॥ त्रयोदशेऽहं नकुलो वायसश्च चतुर्दशे ॥ ४२ ॥ अच्छभल्लः पञ्चदशे षोडशे वनकुक्कुटः ॥ गर्दभोऽहं सप्तदशे मार्जारो ऽष्टादशे भवे ॥ ४३ ॥ एकोनविंशे मण्डूकः कूर्मो विंशतिमे भवे ॥ एकविंशे भवे मत्स्यो द्वाविंशे मूषकोऽभवम् ॥ ४४ ॥ उलूकोऽहं त्रयोविंशे चतुर्विंशे वनद्विपः ॥ पञ्चविंशे भवे चास्मिञ्जातोऽहं ब्रह्मराक्षसः ॥ ४५ ॥ क्षुत्परीतो निराहारो वसाम्यत्र महावने ॥ इदानीमागतं दृष्ट्वा भवन्तं जग्धुमुत्सुकः ॥ त्वद्देहस्पर्शमात्रेण जाता पूर्वभवस्मृतिः ॥ ४६ ॥ गत

सोलहवें में वनमुर्ग व सत्रहवें जन्म में गधा और अठारहवें जन्म में मैं बिडाल हुआ ॥ ४३ ॥ और उन्नीसवें में मेंढक व बीसवें जन्म में मैं कच्छप हुआ और इक्कीसवें जन्म में मछली व बाईसवें जन्म में मैं मूसा हुआ ॥ ४४ ॥ और तेईसवें जन्म में उल्लू व चौबीसवें जन्म में वन का हाथी हुआ और इस पच्चीसवें जन्म में मैं ब्रह्मराक्षस हुआ ॥ ४५ ॥ इस महावन में क्षुधा से संयुत व निराहार मैं बसता हूं इस समय आये हुए आपको देखकर खाने के लिये उत्कंठित हुआ व तुम्हारे शरीर के स्पर्शही करने से पहले जन्म का स्मरण होगया ॥ ४६ ॥ इस समय तुम्हारे समीप मैं हज़ारों बीते हुए जन्मों को स्मरण करता हूं और उत्तम

विराग हुआ व मेरा चित्त प्रसन्न होगया ॥ ४७ ॥ हे महामते ! तुमको यह ऐसा प्रभाव कैसे मिला है क्या उग्र तपसे या तीर्थों के सेवन से मिला है ॥४८॥ या योग व देवताओंकी शक्ति से तथा अमितबलवाले मन्त्रोंसे यह प्रभाव मिला है हे भगवन् ! इसको यथार्थ कहिये मैं तुम्हारी शरण में प्राप्त हूं ॥ ४९ ॥ वामदेवजी बोले कि मेरे शरीर में लगीहुई भस्मका यह बडाभारी प्रभाव है कि जिसके लगनेसे तमोगुणी वृत्तिवाले तुम्हारी यह उत्तम बुद्धि हुई ॥ ५० ॥ महादेवजी के सिवा अन्य कौन भस्म की सामर्थ्य को जानता है जैसे शिवजी का माहात्म्य जानने योग्य नहीं है वैसेही भस्म का माहात्म्य है ॥५१॥ पुरातन समय धर्म से वर्जित कोई आप

जन्मसहस्राणि स्मराम्यद्य त्वदन्तिके ॥ निर्वेदश्च परो जातः प्रसन्नं हृदयं च मे ॥ ४७ ॥ ईदृशोऽयं प्रभावस्ते कथं लब्धो महामते ॥ तपसा वापि तीव्रेण किमु तीर्थनिषेवणात् ॥ ४८ ॥ योगेन देवशक्त्या वा मन्त्रैर्वानन्त शक्तिभिः ॥ तत्त्वतो ब्रूहि भगवंस्त्वामहं शरणं गतः ॥ ४९ ॥ वामदेव उवाच ॥ एष मद्गात्रलग्नस्य प्रभावो भस्मनो महान् ॥ यत्संपर्कात्तमोवृत्तेस्तवेयं मतिरुत्तमा ॥ ५० ॥ को वेद भस्मसामर्थ्यं महादेवादृते परः ॥ दुर्विभाव्यं यथा शम्भोर्माहात्म्यं भस्मनस्तथा ॥ ५१ ॥ पुरा भवादृशःकश्चिद्ब्राह्मणो धर्मवर्जितः ॥ द्राविडेषु स्थितो मूढः कर्मणा शूद्रतां गतः ॥ ५२ ॥ चौर्यवृत्तिर्नैष्कृतिको वृषलीरतिलालसः ॥ कदाचिज्जारतां प्राप्तः शूद्रेण निहतो निशि ॥ ५३ ॥ तच्छवस्य बहिर्ग्रामात्क्षिप्तस्य प्रेतकर्मणः ॥ चचार सारमेयोऽङ्गे भस्मपादो यदृच्छया ॥ ५४ ॥ अथ तं नरके घोरे पतितं शिवकिङ्कराः ॥ निन्युर्विमानमारोप्य प्रसह्य यमकिङ्करान् ॥ ५५ ॥ शिवदूतान्समभ्येत्य यमोपि परि

सरीखे ब्राह्मण द्रविड़ देश में स्थित था और वह मूढ़ कर्मसे शूद्रताको प्राप्त हुआ ॥ ५२ ॥ और चोरी की जीविका करनेवाला व शठ वह शूद्राके मैथुन करनेमें बड़ी इच्छा करता था किसी समय पराई स्त्रीके समीप गयेहुए उसको रातमें शूद्रने मारडाला ॥ ५३ ॥ और गावके बाहर फेंकेहुए उस प्रेतकर्मवाले मुर्दे के अङ्ग पै पैरों में भस्मवाला कुत्ता अपनी इच्छा से चलागया ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त भयंकर नरकमें पड़ेहुए उसको शिवदूत यमदूतों से हठ करके विमान पै चढ़ाकर लेगये ॥ ५५ ॥

और शिवदूतों के समीप आकर यमराजने भी पूंछा कि महापापों को करनेवाले इसको क्यों लिये जाते हो ॥ ५६ ॥ इसके उपरान्त उन शिवदूतों ने कहा कि इसके मुर्दे शरीर को देखिये कि वक्षस्थल, मस्तक और भुजाओं के मूल उत्तम भस्म से चिह्नित हैं ॥ ५७ ॥ इस कारण हमलोग शिवजी की आज्ञा से इसको लेने के लिये आये हैं हमलोगों को रोंकने के लिये तुम समर्थ नहीं हो इसमें तुमको सन्देह न होवै ॥ ५८ ॥ यमराज से यह कहकर तदनन्तर शिवजी के दूत सबलोगों के देखतेहुए उस ब्राह्मण को व्याधिरहित लोक को लेगये ॥ ५९ ॥ उस कारण समस्त पापों को शीघ्रही शोधन करनेवाली

पृष्टवान् ॥ महापातककर्त्तारं कथमेनं निनीषथ ॥ ५६ ॥ अथोचुः शिवदूतास्ते पश्यास्य शवविग्रहम् ॥ वक्षोललाट दोर्मूलान्यङ्कितानि सुभस्मना ॥ ५७ ॥ अत एनं समानेतुमागताः शिवशासनात् ॥ नास्मान्निषेद्धुं शक्नोसि मास्त्वत्र तव संशयः ॥५८॥ इत्याभाष्य यमं शम्भोर्दूतास्तं ब्राह्मणं ततः॥ पश्यतां सर्वलोकानां निन्युर्लोकमनामयम् ॥ ५९ ॥ तस्मादशेषपापानां सद्यः संशोधनं परम् ॥ शम्भोर्विभूषणं भस्म सततं ध्रियते मया ॥ ६० ॥ इत्थं निशम्य मा हात्म्यं भस्मनो ब्रह्मराक्षसः ॥ विस्तरेण पुनः श्रोतुमौत्कण्ठ्यादित्यभाषत ॥ ६१ ॥ साधु साधु महायोगिन्धन्यो स्मि तव दर्शनात् ॥ मां विमोचय धर्मात्मन्घोरादस्मात्कुजन्मनः ॥ ६२ ॥ किञ्चिदस्तीह मे भाति मया पुण्यं पुरा कृतम् ॥ अतोहं त्वत्प्रसादेन मुक्तोस्म्यद्य द्विजोत्तम ॥ ६३ ॥ एकस्मै शिवभक्ताय तस्मिन्पार्थिवजन्मनि ॥ भूमि र्वृत्तिकरी दत्ता सस्यारामान्विता मया ॥ ६४ ॥ यमेनापि तदैवोक्तं पञ्चविंशतिमे भवे ॥ कस्यचिद्योगिनः सङ्गा

व शिवजी के भूषण भस्म को मैं सदैव धारण करता हूं ॥ ६० ॥ इस प्रकार भस्म का माहात्म्य सुनकर ब्रह्मराक्षस ने फिर विस्तार से सुनने के लिये उत्कण्ठा से यह कहा ॥ ६१ ॥ कि हे महायोगिन् ! तुमको साधुवाद है मैं तुम्हारे दर्शन से धन्य होगया हे धर्मात्मन् ! इस भयंकर कुजन्म से मुझको छुडा- इये ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम ! मुझसे पहले कियाहुआ कुछ पुण्य है यह मुझको जानपड़ता है इस कारण इस समय मैं तुम्हारी प्रसन्नता से मुक्त होगया ॥ ६३ ॥ उस राजा के जन्म में मैंने एक शिवभक्त के लिये अन्न व बगीचों से संयुत जीविका करनेवाली पृथ्वी को दिया था ॥ ६४ ॥ तभी यमराज ने भी यह कहा था कि

मन्दराचल पै ॥ २ ॥ किसी समय संसारसे प्रणाम कियेहुए भूतेश भगवान् कालाग्नि रुद्र सदाशिवजी अपनी इच्छा से प्राप्तहुए ॥ ३ ॥ सबओर से सैकड़ों करोड़ रुद्र उपासना करते थे और उनके मध्यमें देवदेव त्रिलोचन सदाशिवजी बैठे थे ॥ ४ ॥ और वहां देवताओं समेत सुरश्रेष्ठ इन्द्रजी आये व अग्नि, वरुण, पवन और सूर्य के पुत्र यमराजजी आये ॥ ५ ॥ और चित्रसेनादिक गन्धर्व व ग्रह, नागादिक तथा विद्याधर, किंपुरुष, सिद्ध, साध्य व गुह्यक लोग आये ॥ ६ ॥ व वसिष्ठादिक ब्रह्मर्षि तथा नारदादिक देवर्षि और पितर महात्मा व दक्षादिक प्रजापति आये ॥ ७ ॥ और उर्वशी आदिक अप्सरा व चंडिकादिक मातृका

विचित्रिते॥ नानासत्त्वसमाकीर्णे नानाद्रुमलताकुले ॥ २ ॥ कालाग्निरुद्रो भगवान्कदाचिद्विश्ववन्दितः ॥ समाससाद भूतेशः स्वेच्छया परमेश्वरः ॥ ३ ॥ समन्तात्समुपातिष्ठन्रुद्राणां शतकोटयः ॥ तेषां मध्ये समासीनो देवदेवस्त्रिलोचनः ॥ ४ ॥ तत्रागच्छत्सुरश्रेष्ठो देवैः सह पुरन्दरः ॥ तथाग्निर्वरुणो वायुर्यमो वैवस्वतस्तथा ॥ ५ ॥ गन्धर्वाश्चित्रसेनाद्याः खेचराः पन्नगादयः ॥ विद्याधराः किंपुरुषाः सिद्धाः साध्याश्च गुह्यकाः ॥ ६ ॥ ब्रह्मर्षयो वसिष्ठाद्या नारदाद्याः सुरर्षयः ॥ पितरश्च महात्मानो दक्षाद्याश्च प्रजेश्वराः ॥ ७ ॥ उर्वश्याद्याश्चाप्सरसश्चण्डिकाद्याश्च मातरः ॥ आदित्या वसवो दस्रौ विश्वेदेवा महौजसः ॥ ८ ॥ अथान्ये भूतपतयो लोकसंहरणे क्षमाः ॥ महाकालश्च नन्दी च तथा वै शङ्खपालकौ ॥ ९ ॥ वीरभद्रो महातेजाः शङ्कुकर्णो महाबलः ॥ घण्टाकर्णश्च दुर्धर्षो मणिभद्रो वृकोदरः ॥ १० ॥ कुण्डोदरश्च विकटास्तथा कुम्भोदरो बली ॥ मन्दोदरः कर्णधारः केतुर्भृङ्गी रिटिस्तथा ॥ ११ ॥ भूतनाथा

तथा आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार और बड़े पराक्रमी विश्वेदेवता आये ॥ ८ ॥ और अन्य भूतपति जो लोकों के संहार करनेमें समर्थ थे वे आये और महाकाल, नन्दी, शङ्ख व पालक आये ॥ ९ ॥ व बड़े तेजस्वी वीरभद्र और बड़े बलवान् शंकुकर्ण तथा दुर्धर्ष घण्टाकर्ण व मणिभद्र और वृकोदरजी आये ॥ १० ॥ व कुण्डोदर, विकट तथा बलवान् कुम्भोदर, मन्दोदर, कर्णधार, केतु, भृङ्गी और रिटि आये ॥ ११ ॥ और बड़े पराक्रमी व बड़े शरीरवाले अन्य प्रेतनाथ आये जोकि

कालेरङ्गवाले और गौर व कोई मेंढक के समान थे ॥ १२ ॥ और कोई हरित, धूसर, धूम्र, कर्बुर और पीले व लाल रङ्गवाले तथा कर्बुर रङ्ग और विचित्र अङ्गों वाले व विचित्र लीलावाले तथा गर्व से उग्र थे ॥ १३ ॥ और अनेक प्रकार के अस्त्रों को हाथ में उठाये हुए व अनेक भांति के वाहन व भूषणवाले थे और कितेक व्याघ्र के समान मुखवाले व कितेक सूकर के समान मुखवाले व मृगमुख थे ॥ १४ ॥ व कितेक मगरमुखवाले तथा अन्य कुत्तों के समान मुखवाले तथा अन्य सियार के तुल्य मुखवाले व अन्य ऊंटके समान मुखवाले थे ॥ १५ ॥ और कितेक शरभ, भेरुंड, सिंह, घोड़ा, ऊंट व बगुलेके समान मुखवाले थे व कितेक

स्तथान्ये च महाकाया महौजसः ॥ कृष्णवर्णास्तथा श्वेताः केचिन्मण्डूकसप्रभाः ॥ १२ ॥ हरिता धूसरा धूम्राः कर्बुराः पीतलोहिताः ॥ चित्रवर्णा विचित्राङ्गाश्चित्रलीला मदोत्कटाः ॥ १३ ॥ नानायुधोद्यतकरा नानावाहनभूषणाः ॥ केचिद्व्याघ्रमुखाः केचित्सूकरास्या मृगाननाः ॥ १४ ॥ केचिच्च नक्रवदनाः सारमेयमुखाः परे ॥ सृगालवदनाश्चान्य उष्ट्राभवदनाः परे ॥ १५ ॥ केचिच्छरभभेरुण्डसिंहाश्वोष्ट्रबकाननाः ॥ एकवक्त्रा द्विवक्त्राश्च त्रिमुखाश्चैव निर्मुखाः ॥ १६ ॥ एकहस्तास्त्रिहस्ताश्च पञ्चहस्तास्त्वहस्तकाः ॥ अपादा बहुपादाश्च बहुकर्णैककर्णकाः ॥ १७ ॥ एकनेत्राश्चतुर्नेत्रा दीर्घाः केचन वामनाः ॥ समन्तात्परिवार्येशं भूतनाथमुपासते ॥ १८ ॥ अथागच्छन्महातेजा मुनीनां प्रवरः सुधीः ॥ सनत्कुमारो धर्मात्मा तं द्रष्टुं जगदीश्वरम् ॥ १९ ॥ तं देवदेवं विश्वेशं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ महाप्रलयसंक्षुब्धसप्तार्णवघनस्वनम् ॥ २० ॥ संवर्त्ताग्निसमाटोपं जटामण्डलशोभितम् ॥ अक्षीणभा

एकमुख, दो मुख, तीन मुख और बिन मुखवाले थे ॥ १६ ॥ और कितेक एक हाथ, तीन हाथ, पांच हाथ व बिन हाथवाले थे और कितेक बिन पैर व बहुत पैर तथा बहुत कान व एक कानवाले थे ॥ १७ ॥ और कितेक एक आँख व चार आँखोंवाले थे और कोई लम्बे व कोई छोटे थे ये सब प्रेतनाथ शिवजी को घेरकर उपासना करते थे ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त मुनियोंमें श्रेष्ठ व उत्तम बुद्धिवाले बड़ेतेजस्वी तथा धर्मवान् सनत्कुमारजी उन शिवजीको देखने के लिये आये ॥ १९ ॥ और करोड़ों सूर्यों के समान प्रभावान् तथा महाप्रलय में क्षोभित सात समुद्र व मेघों के समान शब्दवाले उन देवदेव जगदीश्वर ॥ २० ॥ प्रलयकी अग्निके

समान आटोप व जटामण्डलसे शोभित तथा अक्षीण मस्तक व नेत्रोंवाले और ज्वालाओं से मलिन मुखकी शोभावाले ॥ २१ ॥ और चकमती हुई चूडामणि से व चन्द्रखण्ड से शोभित और बायें कान से तक्षक व दाहिनेसे वासुकि को ॥ २२ ॥ दोनों कुण्डल धारण किये और नील रत्न के समान बडी दाढ़वाले व नागों के हार से शोभित ॥ २३ ॥ और शेषराज से शोभित कंकण, बजुल्ला व मुंदरीवाले और तक्षकरूपी रस्सी में हज़ारों मणियों से रंगी मेखलावाले ॥ २४ ॥ और व्याघ्रचर्म को पहने व घंटा और दर्पण से भूषित व कर्कोटक, महापद्म, धृतराष्ट्र और धनंजय से ॥ २५ ॥ बाजते हुए नूपुर से शब्दायमान चरणकमल

लनयनं ज्वालाम्लानमुखत्विषम् ॥ २१ ॥ प्रदीप्तचूडामणिना शशिखण्डेन शोभितम् ॥ तक्षकं वामकर्णेन दक्षिणेन च वासुकिम् ॥ २२ ॥ बिभ्राणं कुण्डलयुगं नीलरत्नमहाहनुम् ॥ नीलग्रीवं महाबाहुं नागहारविराजितम् ॥ २३ ॥ फणिराजपरिभ्राजत्कङ्कणाङ्गदमुद्रिकम् ॥ अनन्तगुणसाहस्रमणिरञ्जितमेखलम् ॥ २४ ॥ व्याघ्रचर्मपरीधानं घण्टादर्पणभूषितम् ॥ कर्कोटकमहापद्मधृतराष्ट्रधनंजयैः ॥ २५ ॥ कूजन्नूपुरसंघुष्टपादपद्मविराजितम् ॥ प्रास तोमरखट्वाङ्गशूलटङ्कधनुर्धरम् ॥ २६ ॥ अप्रधृष्यमनिर्देश्यमचिन्त्याकारमीश्वरम् ॥ रत्नसिंहासनारूढं प्रणनाम महामुनिः ॥ २७ ॥ तं भक्तिभारोच्छ्वसितान्तरात्मा संस्तूय वाग्भिः श्रुतिसंमिताभिः ॥ कृताञ्जलिः प्रश्रयनम्रकन्धरः पप्रच्छ धर्मानखिलाञ्छुभप्रदान् ॥ २८ ॥ यान्यानपृच्छत मुनिस्तांस्तान्धर्मानशेषतः ॥ प्रोवाच भगवान्रुद्रो भूयो मुनिरपृच्छत ॥ २९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ श्रुतास्ते भगवन्धर्मास्त्वन्मुखान्मुक्तिहेतवः ॥ यैर्मुक्तपापा मनुजास्तरि

से शोभित और प्रास, तोमर, खट्वांग, शूल, टंक व धनुष को धारण किये ॥ २६ ॥ और अधृष्य, अनिर्देश्य व अचिन्त्य आकारवाले और रत्नों के सिंहासन पै बैठे हुए शिवजी को महामुनि सनत्कुमारजी ने प्रणाम किया ॥ २७ ॥ व भक्ति के भारसे प्रसन्नचित्त तथा विनय से नम्र कन्धेवाले सनत्कुमारजी ने हाथों को जोड़कर श्रुतियों के समान वचनों से उन शिवजी की स्तुति करके कल्याणदायक समस्त धर्मों को पूंछा ॥ २८ ॥ और सनत्कुमार मुनि ने जिन जिन धर्मों को पूंछा उनको भगवान् शिवजी ने सम्पूर्णता से कहा और फिर मुनि ने पूंछा ॥ २९ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे भगवन्! तुम्हारे मुख से वे मुक्ति के कारण

धर्म सुने गये कि जिनसे पातकों से छूटकर मनुष्य संसाररूपी समुद्र को उतर जावैंगे ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त हे विभो ! शीघ्रही मनुष्यों को मुक्तिदायक व थोड़े परिश्रमवाले बड़े फलवान् अन्य धर्म को मुझसे दया से कहिये ॥ ३१ ॥ क्योंकि बहुत अभ्यासवाले हज़ारों धर्म शास्त्रों में देखेगये हैं भलीभाति सेवित वे समय से सिद्धि को देवैं या न देवैं ॥ ३२ ॥ इस कारण हे महेश्वरजी ! तुम्हारी प्रसन्नता से भुक्ति व मुक्ति का साधन तथा लोकों का हितकारक गुप्तधर्म मैं जानना चाहता हूं ॥ ३३ ॥ श्रीशिवजी बोले कि जो त्रिपुण्ड्र का धारण है वह सब भी धर्मों के मध्य में उत्तम है और श्रुतियों से कहा हुआ व सब प्राणियों का

ष्यन्ति भवार्णवम् ॥ ३० ॥ अथापरं विभो धर्ममल्पायासं महाफलम् ॥ ब्रूहि कारुण्यतो मह्यं सद्यो मुक्तिप्रदं नृणाम् ॥ ३१ ॥ अभ्यासबहुला धर्माः शास्त्रदृष्टाः सहस्रशः ॥ सम्यक्संसेविताः कालात्सिद्धिं यच्छन्ति वा न वा ॥ ३२ ॥ अतो लोकहितं गुह्यं भुक्तिमुक्त्योश्च साधनम् ॥ धर्मं विज्ञातुमिच्छामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ३३ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ सर्वेषामपि धर्माणामुत्तमं श्रुतिचोदितम् ॥ रहस्यं सर्वजन्तूनां यत्त्रिपुण्ड्रस्य धारणम् ॥ ३४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ त्रिपुण्ड्रस्य विधिं ब्रूहि भगवञ्जगतां पते ॥ तत्त्वतो ज्ञातुमिच्छामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ३५ ॥ कति स्थानानि किं द्रव्यं का शक्तिः का च देवता ॥ किं प्रमाणं च कः कर्त्ता के मन्त्रास्तस्य किं फलम् ॥ ३६ ॥ एतत्सर्वमशेषेण त्रिपुण्ड्रस्य च लक्षणम् ॥ ब्रूहि मे जगतां नाथ लोकानुग्रहकाम्यया ॥ ३७ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ आग्नेयमुच्यते भस्म दग्धगोमयसंभवम् ॥ तदेव द्रव्यमित्युक्तं त्रिपुण्ड्रस्य महामुने ॥ ३८ ॥ सद्योजातादिभिर्ब्रह्ममयैर्मन्त्रैश्च

रहस्य है ॥ ३४ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे जगदीश, भगवन्, महेश्वरजी ! त्रिपुण्ड्र की विधिको कहिये मैं तुम्हारी प्रसन्नतासे उसको यथार्थ जानना चाहता हूं ॥ ३५ ॥ कि कितने स्थान व कौन वस्तु और कौन शक्ति व कौन देवता है तथा कौन प्रमाण व कौन कर्ता और कौन मन्त्र व उसका कौन फल है ॥ ३६ ॥ हे लोकों के स्वामी ! यह सब व त्रिपुण्ड्र का लक्षण मुझसे लोकों के ऊपर दया की इच्छा से कहिये ॥ ३७ ॥ श्रीशिवजी बोले कि हे महामुने ! जलेहुए गोमय से उत्पन्न आग्नेय भस्म कही जाती है वही त्रिपुण्ड्र की द्रव्य ऐसी कही गई है ॥ ३८ ॥ और सद्योजात आदिक पाच वेदमय मन्त्रों से भस्म को लेकर अग्नि

आदिक मन्त्रों से भस्म को अभिमन्त्रित करै ॥ ३९ ॥ और मानस्तोके इस मन्त्र से भिगोकर त्र्यम्बक मन्त्र से मस्तक में लगावै और त्रियायुष आदिक मन्त्रों से मस्तक व दोनों भुजाओं में व कन्धे पै मन्त्रसे शुद्ध सजल भस्म को लेपन करै ॥ ४० ॥ व हे मुनिपुंगव ! इन स्थानों में तीन रेखा होती हैं और भौंहों के मध्य से लगाकर जहांतक भौंहों का अन्त होवै वहांतक ॥ ४१ ॥ मध्यमा व अनामिका अंगुली की मध्य में विलोम यानी दाहिने ओर से अँगूठे से कीहुई त्रिपुण्ड्र की रेखा कही जाती है यानी मस्तक के वाम भाग से लगाकर दक्षिण भागतक मध्यमा व अनामिका अंगुली से दो रेखाओं को बनाकर उनके मध्य में

पञ्चभिः ॥ परिगृह्याग्निरित्यादिमन्त्रैर्भस्माभिमन्त्रयेत् ॥ ३९ ॥ मानस्तोकेति संमृज्य शिरो लिम्पेच्च त्र्यम्बकम् ॥ त्रियायुषादिभिर्मन्त्रैर्ललाटे च भुजद्वये ॥ स्कन्धे च लेपयेद्भस्म सजलं मन्त्रभावितम् ॥ ४० ॥ तिस्रो रेखा भवन्त्येषु स्थानेषु मुनिपुङ्गव ॥ भ्रुवोर्मध्यं समारभ्य यावदन्तोभ्रुवोर्भवेत् ॥ ४१ ॥ मध्यमानामिकाङ्गुल्योर्मध्ये तु प्रतिलोमतः ॥ अङ्गुष्ठेन कृता रेखा त्रिपुण्ड्रस्याभिधीयते ॥ ४२ ॥ तिसृणामपि रेखाणां प्रत्येकं नव देवताः ॥ अकारोगार्हपत्यश्च ऋग्भूर्लोको रजस्तथा ॥ ४३ ॥ आत्मा चैव क्रियाशक्तिः प्रातःसवनमेव च ॥ महादेवस्तु रेखायाः प्रथमायास्तु देवता ॥ ४४ ॥ उकारो दक्षिणाग्निश्च नभः सत्त्वं यजुस्तथा ॥ मध्यंदिनं च सवनमिच्छाशक्त्यन्तरात्मकौ ॥ ४५ ॥ महेश्वरश्च रेखाया द्वितीयायाश्च देवता ॥ मकाराहवनीयौ च परमात्मा तमो दिवः ॥ ४६ ॥ ज्ञानशक्तिः सामवेदस्तृतीयसवनं तथा ॥ शिवश्चेति तृतीयाया रेखायाश्चाधिदेवता ॥ ४७ ॥ एता नित्यं नमस्कृत्य

दाहिने ओरसे बीचवाली रेखा अँगूठे से करना चाहिये यही त्रिपुण्ड्र है ॥ ४२ ॥ और तीनों रेखाओं के प्रत्येक नव देवता हैं अकार, गार्हपत्य, ऋक्, भूलोक, रज ॥ ४३ ॥ आत्मा, क्रियाशक्ति, प्रातःसवन और महादेवजी पहली रेखाके देवता हैं ॥ ४४ ॥ और उकार, दक्षिणाग्नि, आकाश, सत्त्व व यजुः और दिनके मध्य भाग का सवन, इच्छाशक्ति व अन्तरात्मा ॥ ४५ ॥ और महेश्वरजी दूसरी रेखा के देवता हैं व मकार, आहवनीय अग्नि, परमात्मा, तमोगुण, आकाश ॥ ४६ ॥ ज्ञानशक्ति व सामवेद और तीसरा सवन व शिवजी तीसरी रेखा के अधिदेवता हैं ॥ ४७ ॥ इनको नित्य प्रणामकर विद्वान् त्रिपुण्ड्र को धारण करै यह महेश्वर

व्रत सब वेदों में कहा गया है ॥ ४८ ॥ और मुक्ति की चाहनावाले मनुष्यों से सेवने योग्य है क्योंकि फिर उनका जन्म नहीं होता है और विधिपूर्वक जो भस्म से त्रिपुण्ड्र करता है ॥ ४९ ॥ वह ब्रह्मचारी या गृहस्थ या बनवासी व संन्यासी महापापसमूहों से व उपपातकों से छूटजाता है ॥ ५० ॥ वैसेही अन्य क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री व गोहत्यादिक पातकों से तथा वीरहत्या व अश्वहत्यासे छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५१ ॥ व बड़ी महिमा को न जानकर जो बिना मन्त्र से भी त्रिपुण्ड्र को मस्तक में करता है वह सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ५२ ॥ और पराई द्रव्य का हरना व पराई स्त्रीका अभिमर्शन, पराई निन्दा, पराये क्षेत्र

त्रिपुण्ड्रं धारयेत्सुधीः ॥ महेश्वरव्रतमिदं सर्ववेदेषु कीर्तितम् ॥ ४८ ॥ मुक्तिकामैर्नरैः सेव्यं पुनस्तेषां न संभवः ॥ त्रिपुण्ड्रं कुरुते यस्तु भस्मना विधिपूर्वकम् ॥ ४९ ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वनस्थो यतिरेव वा ॥ महापातकसंघातैर्मुच्यते चोपपातकैः ॥ ५० ॥ तथान्यैः क्षत्रविट्शूद्रस्त्रीगोहत्यादिपातकैः ॥ वीरहत्याश्वहत्याभ्यां मुच्यते नात्र संशयः ॥ ५१ ॥ अमन्त्रेणापि यः कुर्यादज्ञात्वा महिमोन्नतिम् ॥ त्रिपुण्ड्रं भालपटले मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ५२ ॥ परद्रव्यापहरणं परदाराभिमर्शनम् ॥ परनिन्दा परक्षेत्रहरणं परपीडनम् ॥ ५३ ॥ सस्यारामादिहरणं गृहदाहादिकर्म च ॥ असत्यवादं पैशुन्यं पारुष्यं वेदविक्रयः ॥ कूटसाक्ष्यं व्रतत्यागः कैतवं नीचसेवनम् ॥ ५४ ॥ गोभूहिरण्यमाहिषीतिलकम्बलवाससाम् ॥ अन्नधान्यजलादीनां नीचेभ्यश्च परिग्रहः ॥ ५५ ॥ दासी वेश्या भुजङ्गेषु वृषलीषु नटीषु च ॥ रजस्वलासु कन्यासु विधवासु च संगमः ॥ ५६ ॥ मांसचर्मरसादीनां लवणस्य च विक्रयः ॥ एवमादीन्यसंख्या

का हरना व अन्य को पीड़ा देना ॥ ५३ ॥ और अन्न व बगीचा आदि का हरना तथा घरको जलाना इत्यादिक कर्म और झूठ कहना व चुगली और कठोरता व वेद बेंचना और झूठी गवाही देना, व्रत का त्याग और छल व नीच की सेवा ॥ ५४ ॥ और गऊ, पृथ्वी, सुवर्ण,भैंसी, तिल,कम्बल, वस्त्र, अन्न, धान्य व जलादिकों का नीचों से लेना ॥ ५५ ॥ और दासी, वेश्या, शूद्रा, नटी व रजस्वला और कन्या तथा विधवाओं में सगम करना ॥ ५६ ॥ और मास, चर्म तथा रसा-

दिकों का व लोन का बेंचना इत्यादिक अनेक प्रकार के असंख्य पाप ॥ ५७ ॥ त्रिपुण्ड्र के धारण करने से उसी क्षण नाश होजाते हैं और शिवजी की द्रव्य का लेना व कहीं शिवजी की निन्दा ॥ ५८ ॥ और शिवभक्तों की निन्दा प्रायश्चित्तोंसे शुद्ध नहीं होती है और जिसके अंगमें रुद्राक्ष व मस्तक में त्रिपुण्ड्र होवै ॥ ५९ ॥ वह चाण्डाल भी पूजने योग्य है और वह सब वर्णों में उत्तम होता है इस संसारमें जो तीर्थ व गंगादिक नदियां हैं ॥ ६० ॥ उन सब में वह नहाया होता है जो कि मस्तक में त्रिपुण्ड्र को धारण करता है और पंचाक्षर आदिक सात कोटि महामन्त्र ॥ ६१ ॥ और अन्य जो शिवजी के करोड़ों मन्त्र मोक्ष के कारण हैं

नि पापानि विविधानि च ॥ ५७ ॥ सद्य एव विनश्यन्ति त्रिपुण्ड्रस्य च धारणात् ॥ शिवद्रव्यापहरणं शिवनिन्दा च कुत्रचित् ॥ ५८ ॥ निन्दा च शिवभक्तानां प्रायश्चित्तैर्न शुद्ध्यति ॥ रुद्राक्षा यस्य गात्रेषु ललाटे च त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ५९ ॥ स चाण्डालोऽपि संपूज्यः सर्ववर्णोत्तमो भवेत् ॥ यानि तीर्थानि लोकेऽस्मिन्गङ्गाद्याः सरितश्च याः ॥ ६० ॥ स्नातो भवति सर्वत्र ललाटे यस्त्रिपुण्ड्रधृक् ॥ सप्तकोटिमहामन्त्राः पञ्चाक्षरपुरःसराः ॥ ६१ ॥ तथान्ये कोटिशो मन्त्राः शैवाः कैवल्यहेतवः ॥ ते सर्वे येन जप्ताः स्युर्यो बिभर्ति त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ६२ ॥ सहस्रं पूर्वजातानां सहस्रं च जनिष्यताम् ॥ स्ववंशजानां मर्त्यानामुद्धरेद्यस्त्रिपुण्ड्रधृक् ॥ ६३ ॥ इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्दीर्घायुर्व्याधिवर्जितः ॥ जीवितान्ते च मरणं सुखेनैव प्रपद्यते ॥ ६४ ॥ अष्टैश्वर्यगुणोपेतं प्राप्य दिव्यं वपुः शुभम् ॥ दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीशतसेवितः ॥ ६५ ॥ विद्याधराणां सिद्धानां गन्धर्वाणां महौजसाम् ॥ इन्द्रादिलोकपालानां लोकेषु च

वे सव उससे जपे गये जो कि त्रिपुण्ड्र को धारण करता है ॥ ६२ ॥ और जो त्रिपुण्ड्र को धारण करता है वह हज़ार पहले पैदा हुए व हज़ार पैदा होनेवाले पुरुषों को उधारता है ॥ ६३ ॥ और इस संसार में समस्त सुखों को भोगकर वह दीर्घ आयुर्बलवाला व रोगरहित होता है और जीने के अन्त में वह सुखहीं से मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥ और आठ ऐश्वर्यांके गुणसे संयुत उत्तम दिव्य देहको पाकर दिव्य विमान पै चढ़कर सैकड़ों दिव्य स्त्रियों से सेवित होताहै ॥ ६५ ॥

और क्रमपूर्वक बड़े पराक्रमी विद्याधर, सिद्ध, गंधर्व व इन्द्रादिक लोकपालों के लोकों में ॥ ६६ ॥ व प्रजापतियों के लोकों में बहुतसे सुखोंको भोगकर ब्रह्मा के स्थान को प्राप्त होकर वहां सौ कल्प तक रमण करता है ॥ ६७ ॥ और तीन सौ ब्रह्मा तक विष्णुजी के लोक में रमण करता है ॥ ६८ ॥ तदनन्तर शिवलोक को प्राप्त होकर अक्षय समय तक रमण करता है और वह शिवजी की सायुज्य मुक्तिको पाता है व फिर उत्पन्न नहीं होता है ॥ ६९ ॥ और बारबार सब उपनिषदों का साराश देखकर यही निर्णय कियागया कि त्रिपुण्ड्र बहुत कल्याणदायक होता है ॥ ७० ॥ यह त्रिपुण्ड्र का माहात्म्य मुझ से संक्षेप से कहा गया

यथाक्रमम् ॥ ६६ ॥ भुक्त्वा भोगान्सुविपुलान्प्रजेशानां पुरेषु च ॥ ब्रह्मणः पदमासाद्य तत्र कल्पशतं रमेत् ॥ ६७ ॥ विष्णोर्लोके च रमते यावद्ब्रह्मशतत्रयम् ॥ ६८ ॥ शिवलोकं ततः प्राप्य रमते कालमक्षयम् ॥ शिवसायुज्यमाप्नोति न स भूयोऽभिजायते ॥ ६९ ॥ सर्वोपनिषदां सारं समालोच्य मुहुर्मुहुः ॥ इदमेव हि निर्णीतं परं श्रेयस्त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ७० ॥ एतत्त्रिपुण्ड्रमाहात्म्यं समासात्कथितं मया ॥ रहस्यं सर्वभूतानां गोपनीयमिदं त्वया ॥ ७१ ॥ इत्युक्त्वा भगवान्रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ सनत्कुमारोऽपि मुनिर्जगाम ब्रह्मणः पदम् ॥ ७२ ॥ तवापि भस्मसंपर्कात्संजाता विमला मतिः ॥ त्वमपि श्रद्धया पुण्यं धारयस्व त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ७३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा वामदेवस्तु शिवयोगी महातपाः ॥ अभिमन्त्र्य ददौ भस्म घोराय ब्रह्मरक्षसे ॥ ७४ ॥ तेनासौ भालपटले चक्रे तिर्यक्त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ब्रह्मराक्षसतां सद्यो जहौ तस्यानुभावतः ॥ ७५ ॥ स बभौ सूर्यसंकाशस्तेजोमण्डलमण्डितः ॥ दिव्यावयवरूपैश्च

जोकि सब प्राणियों का रहस्य है और तुमको यह गुप्त करना चाहिये ॥ ७१ ॥ यह कहकर भगवान् शिवजी वहीं अन्तर्धान होगये और सनत्कुमार मुनि भी ब्रह्मा के स्थान को चलेगये ॥ ७२ ॥ भस्म के संसर्ग से तुम्हारी भी उत्तम बुद्धि होगई और तुमभी श्रद्धासे पवित्र त्रिपुण्ड्र को धारण करो ॥ ७३ ॥ सूतजी बोले कि यह कहकर बड़े तपस्वी वामदेव नामक शिवयोगी ने भस्म को अभिमन्त्रित कर भयंकर ब्रह्मराक्षसके लिये देदिया ॥ ७४ ॥ व उससे इसने मस्तक में तिरछा त्रिपुण्ड्र किया और उसके प्रभाव से उसने शीघ्रही ब्रह्मराक्षसत्व को छोड़दिया ॥ ७५ ॥ व तेजके मण्डल से शोभित वह सूर्य के समान शोभित हुआ और दिव्य

अङ्गों से संयुत वह दिव्य मालाओं व वसनों से उज्ज्वल हुआ ॥ ७६ ॥ और भक्ति से वह शिवयोगी गुरुकी प्रदक्षिणा करके वह दिव्य विमान पै चढ़कर पवित्र लोकों को चलागया ॥ ७७ ॥ और वामदेव शिवयोगी उसके लिये उत्तम गतिको देकर संसारमें गुप्त आत्मावाला वह आपही शिवजी की नाईं घूमने लगा ॥ ७८ ॥ जो मनुष्य इस भस्म के माहात्म्य व त्रिपुण्ड्र को सुनता है और जो सुनाता व पढ़ता है वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ ७९ ॥ संसार से छूटने के कारण शिवजी के यश को जो कहता है और जो शिवयोगी से ध्यान करने योग्य शिवजी के चरणकमल को प्रणाम करता है व जो शिवभक्त को प्रकाश करने

दिव्यमाल्याम्बरोज्ज्वलः ॥ ७६ ॥ भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य तं गुरुं शिवयोगिनम् ॥ दिव्यं विमानमारुह्य पुण्यलोकाञ्जगाम सः ॥ ७७ ॥ वामदेवो महायोगी दत्त्वा तस्मै परां गतिम् ॥ चचार लोके गूढात्मा साक्षादिव शिवः स्वयम् ॥ ७८ ॥ य एतद्भस्ममाहात्म्यं त्रिपुण्ड्रं शृणुयान्नरः ॥ श्रावयेद्वा पठेद्वापि स हि याति परां गतिम् ॥ ७९ ॥ कथयति शिवकीर्तिं संसृतेर्मुक्तिहेतुं प्रणमति शिवयोगिध्येयमीशाङ्घ्रिपद्मम् ॥ रचयति शिवभक्तोद्भासिभाले त्रिपुण्ड्रं न पुनरिह जनन्या गर्भवासं भजेत्सः ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे भस्ममाहात्म्यकथनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

* ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषय ऊचुः ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञैर्गुरुभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ नृणां कृतोपदेशानां सद्यः सिद्धिर्हि जायते ॥ १ ॥ अथान्य

वाले त्रिपुण्ड्र को मस्तक में लगाता है वह इस संसार में फिर माता के गर्भवास को नहीं प्राप्त होता है ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां भस्ममाहात्म्यकथनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ ॥ ॥

दो० । यथा भस्ममाहात्म्य सों भयो शबर यक मुक्त । सत्रहयें अध्यायमें सोइ चरितहै उक्त ॥ ऋषिलोग बोले कि वेदों व वेदांगोंके तत्त्व को जाननेवाले ब्रह्मवादी गुरुवों से किये हुए उपदेशवाले मनुष्यों की शीघ्रही सिद्धि होती है ॥ १ ॥ और अन्य पुरुषों की नाईं सामान्य व नीति के जाननेवाले गुरुवों से किये हुए

उपदेशवाले मनुष्यों की कैसी सिद्धि होती है॥ २ ॥ सूतजी बोले कि श्रद्धाही सब धर्मों की बहुत हित करनेवाली है और श्रद्धाही से दोनों लोकों में मनुष्यों की सिद्धि होती है ॥ ३ ॥ और श्रद्धा से शिला भी सेवन करते हुए मनुष्य को फल देती है और भक्ति से पूजित गुरु भी सिद्धिदायक होता है ॥ ४ ॥ और श्रद्धा से पढ़ा हुआ बिन बँधा भी मंत्र फलदायक होता है व श्रद्धा से पूजे हुए देवता नीच को भी फलदायक होते हैं ॥ ५ ॥ और बिन श्रद्धा से कीहुई पूजा दान, यज्ञ, तपस्या व व्रत सब बँझुवे वृक्ष के पुष्प की नाईं निष्फलता को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ और श्रद्धा से हीन अतिचपल पुरुष सब कहीं संशययुक्त होता है और परमार्थ

जनसामान्यैर्गुरुभिर्नीतिकोविदैः॥ नृणां कृतोपदेशानां सिद्धिर्भवति कीदृशी ॥२॥ सूत उवाच ॥ श्रद्धैव सर्वधर्मस्य चातीव हितकारिणी ॥ श्रद्धयैव नृणां सिद्धिर्जायते लोकयोर्द्वयोः ॥ ३ ॥ श्रद्धया भजतः पुंसः शिलापि फलदायिनी ॥ मूर्खोऽपि पूजितो भक्त्या गुरुर्भवति सिद्धिदः ॥ ४ ॥ श्रद्धया पठितो मन्त्रस्त्वबद्धोपि फलप्रदः ॥ श्रद्धया पूजितो देवो नीचस्यापि फलप्रदः ॥ ५ ॥ अश्रद्धया कृता पूजा दानं यज्ञस्तपो व्रतम् ॥ सर्वं निष्फलतां याति पुष्पं बन्ध्यतरोरिव ॥ ६ ॥ सर्वत्र संशयाविष्टः श्रद्धाहीनोऽतिचञ्चलः ॥ परमार्थात्परिभ्रष्टः संसृतेर्न हि मुच्यते ॥ ७ ॥ मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ॥ यादृशी भावना यत्र सिद्धिर्भवति तादृशी ॥ ८ ॥ अतो भावमयं विश्वं पुण्यं पापं च भावतः ॥ त उभे भावहीनस्य न भवेतां कदाचन ॥ ९ ॥ अत्रेदं परमाश्चर्यमाख्यानमनुवर्ण्यते ॥ अश्रद्धा सर्वमर्त्यानां येन सद्यो निवर्तते ॥ १० ॥ आसीत्पाञ्चालराजस्य सिंहकेतुरिति श्रुतः ॥ पुत्रः सर्वगुणोपेतः क्षात्रधर्मरतः

से छूटा हुआ वह संसार से मुक्त नहीं होता है ॥ ७ ॥ मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, औषध व गुरु जिसमें जैसी भावना होती है वैसी सिद्धि होती है ॥ ८ ॥ इस कारण संसारमें भावप्रधान है और पाप व पुण्य भाव से होता है और वे दोनों भावहीन पुरुष के कभी नहीं होते हैं ॥ ९ ॥ इस विषय में बड़ा आश्चर्यमय यह आख्यान कहा जाता है कि जिससे शीघ्रही सब मनुष्यों की अश्रद्धा निवृत्त होती है ॥ १० ॥ पांचाल देश के राजाके सब के सब गुणोंसे संयुत व

सदैव क्षत्रियधर्म में परायण सिंहकेतु ऐसा प्रसिद्ध पुत्र हुआ है ॥ ११ ॥ एक समय कितेक नौकरों से संयुत वह बड़ा बलवान् राजा शिकार के लिये बहुत प्राणियों से संयुत वन को गया ॥ १२ ॥ व शिकार के लिये वन में घूमते हुए उसके किसी म्लेच्छजातिवाले नौकर ने पुराने फूटे हुए शिवालय को गिरा देखा ॥ १३ ॥ और उसमें चौतरे पै पड़े हुए टूटे पीठ (आसन) वाले सीधे व सूक्ष्म शिवलिङ्ग को मूर्तिमान् अपने भाग्य की नाईं देखा ॥ १४ ॥ पहले के कर्म से प्रेरणा कियेहुए उसने शीघ्रता से उसको लेकर बुद्धिमान् राजपुत्र के लिये दिखलाया ॥ १५ ॥ कि हे प्रभो ! इस वनमें मुझ से देखेहुए इस सुन्दर लिङ्ग

सदा ॥ ११ ॥ स एकदा कतिपयैर्भृत्यैर्युक्तो महाबलः ॥ जगाम मृगयाहेतोर्बहुसत्त्वान्वितं वनम् ॥ १२ ॥ तद्भृत्यः शबरः कश्चिद्विचरन्मृगयां वने ॥ ददर्श जीर्णं स्फुटितं पतितं देवतालयम् ॥ १३ ॥ तत्रापश्यद्भिन्नपीठं पतितं स्थण्डिलोपरि ॥ शिवलिङ्गमृजुं सूक्ष्मं मूर्तं भाग्यमिवात्मनः ॥ १४ ॥ स समादाय वेगेन पूर्वकर्मप्रचोदितः ॥ तस्मै संदर्शयामास राजपुत्राय धीमते ॥ १५ ॥ पश्येदं रुचिरं लिङ्गं मया दृष्टमिह प्रभो ॥ तदेतत्पूजयिष्यामि यथाविभवमादरात् ॥ १६ ॥ अस्य पूजाविधिं ब्रूहि यथा देवो महेश्वरः ॥ अमन्त्रज्ञैश्च मन्त्रज्ञैः प्रीतो भवति पूजितः ॥ १७ ॥ इति तेन निषादेन पृष्टः पार्थिवनन्दनः ॥ प्रत्युवाच प्रहस्यैनं परिहासविचक्षणः ॥ १८ ॥ संकल्पेन सदा कुर्यादभिषेकं नवाम्भसा ॥ उपवेश्यासने शुद्धे शुभैर्गन्धाक्षतैर्नवैः ॥ वन्यैः पत्रैश्च कुसुमैर्धूपैर्दीपैश्च पूजयेत् ॥ १६ ॥ चिताभस्मो

को देखिये और उसी इस लिङ्गको मैं ऐश्वर्य के अनुसार आदर से पूजूंगा ॥ १६ ॥ और शिवदेव की नाईं तुम इसके पूजन की विधिको कहो कि जिस प्रकार बिन मन्त्र जाननेवाले व मन्त्र के जाननेवाले पुरुषों से भी पूजेहुए शिवजी प्रसन्न होते हैं ॥ १७ ॥ उस निषाद से इस प्रकार पूंछेहुए परिहासमें चतुर उस राजकुमार ने हँसकर इससे कहा ॥ १८ ॥ कि संकल्प से सदैव नवीन जल से स्नान करावै और पवित्र आसन पै बिठाकर उत्तम व नवीन चन्दन तथा अक्षतोंसे और वन के पत्तों व पुष्पों से तथा धूप व दीप से पूजन करै ॥ १६ ॥ और पहले चिता की भस्म का उपहार देवै व विद्वान् अपना से भोजन करने योग्य अन्न से

नैवेद्य लगावै ॥ २० ॥ और फिर धूप, दीपादिक उपचारों को कल्पित करै और यथायोग्य नृत्य, बाजन व गीतादिक करै ॥ २१ ॥ और प्रणाम करके विधि-पूर्वक विद्वान् प्रसाद को धारण करै यह साधारण शिवपूजन की विधि तुम से कहीगई ॥ २२ ॥ चिता के भस्मके उपहारसे शीघ्रही शिवजी प्रसन्न होते हैं ॥ २३ ॥ सूतजी बोले कि इस स्वामी से परिहास के रससे इस प्रकार सिखलाये हुए उस चण्डक नामक शबरने उसका वचन ग्रहण किया ॥ २४ ॥ तदनन्तर चिता-भस्म का उपहार करनेवाले उस शबर ने अपने घरको प्राप्त होकर प्रतिदिन लिङ्ग मूर्तिवाले शिवजी को पूजन किया ॥ २५ ॥ और जो वस्तु अपना को प्रिय थी

पहारं च प्रथमं परिकल्पयेत् ॥ आत्मोपभोग्येनान्नेन नैवेद्यं कल्पयेद्बुधः ॥ २० ॥ पुनश्च धूपदीपादीनुपचारान्प्रकल्प येत्॥ नृत्यवादित्रगीतादीन्यथावत्परिकल्पयेत् ॥२१॥ नमस्कृत्वा तु विधिवत्प्रसादं धारयेद्बुधः ॥ एष साधारणः प्रोक्तः शिवपूजाविधिस्तव ॥ २२ ॥ चिताभस्मोपहारेण सद्यस्तुष्यति शङ्करः ॥ २३ ॥ सूत उवाच ॥ परिहासरसेनेत्थं शासितः स्वामिनाऽमुना ॥ स चण्डकाख्यः शबरो मूर्ध्ना जग्राह तद्वचः ॥ २४ ॥ ततः स्वभवनं प्राप्य लिङ्गमूर्तिं महेश्व रम् ॥ प्रत्यहं पूजयामास चिताभस्मोपहारकृत् ॥ २५ ॥ यच्चात्मनः प्रियं वस्तु गन्धपुष्पाक्षतादिकम् ॥ निवेद्य शम्भवे नित्यमुपाभुंक्त ततः स्वयम् ॥ २६ ॥ एवं महेश्वरं भक्त्या सह पत्न्याभ्यपूजयत् ॥ शबरः सुखमासाद्य नि नाय कतिचित्समाः ॥ २७ ॥ एकदा शिवपूजार्थं प्रवृत्तः शबरोत्तमः ॥ न ददर्श चिताभस्म पात्रे पूरितमण्वपि ॥ २८ ॥ अथासौ त्वरितो दूरमन्विष्यन्परितो भ्रमन् ॥ न लब्धवांश्चिताभस्म श्रान्तो गृहमगात्पुनः ॥ २९ ॥ तत आहूय

उस सब चन्दन, पुष्प व अक्षतादिक को शिवजी के लिये देकर तदनन्तर आप भी भोग करता था ॥ २६ ॥ इस प्रकार स्त्रीसमेत भक्ति से उस शबर ने शिवजीको पूजन किया और सुखको प्राप्त होकर कुछ वर्षों को व्यतीत किया ॥ २७ ॥ एक समय शिवपूजन के लिये प्रवृत्त उत्तम शबर ने पात्रमें पूरित चिताभस्म को थोड़ी भी न देखा ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त शीघ्रता समेत सबओर घूमते व दूरतक ढूंढ़तेहुए इसने चिताकी भस्मको न पाया फिर थककर घरको चलागया ॥ २९ ॥ तद-

नन्तर अपनी स्त्री को बुलाकर शबर ने यह वचन कहा कि हे प्रिये ! मुझको चिता की भस्म नहीं मिली मैं क्या करूं ॥ ३० ॥ आज मुझ पापीके शिवपूजन का विघ्न होगया और बिन पूजन के मैं क्षणभर भी नहीं जीसक्ता हूं ॥ ३१ ॥ और पूजन का सामान नष्ट होनेपर मैं इस विषयमें यत्न को नहीं देखता हूं और सब प्रयोजनों को देनेवाली गुरुकी आज्ञा भी नहीं नाश कीजावैगी ॥ ३२ ॥ इस प्रकार पतिको विकल देखकर शबर की स्त्रीने प्रत्युत्तर दिया कि तुम मत डरो मैं तुमसे यत्न को कहती हूं ॥ ३३ ॥ कि बहुत समय से बढ़ेहुए इसी घरको जला कर मैं अग्नि में पैठूंगी तदनन्तर चिता की भस्म होगी ॥ ३४ ॥ शबर बोला कि

पत्नीं स्वां शबरो वाक्यमब्रवीत् ॥ न लब्धं मे चिताभस्म किं करोमि वद प्रिये ॥ ३० ॥ शिवपूजान्तरायो मे जातोद्य बत पाप्मनः ॥ पूजां विना क्षणमपि नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ३१ ॥ उपायं नात्र पश्यामि पूजोपकरणे हते ॥ न गुरोश्च विहन्येत शासनं सकलार्थदम् ॥ ३२ ॥ इति व्याकुलितं दृष्ट्वा भर्त्तारं शबराङ्गना ॥ प्रत्यभाषत मा भैस्त्व मुपायं प्रवदामि ते ॥ ३३ ॥ इदमेव गृहं दग्ध्वा बहुकालोपबृंहितम् ॥ अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि चिताभस्म भवेत्ततः ॥ ३४ ॥ शबर उवाच ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां देहः परमसाधनम् ॥ कथं त्यजसि तं देहं सुखार्थं नवयौवनम् ॥ ३५ ॥ अधुना त्वनपत्या त्वमभुक्तविषयासवा ॥ भोगयोग्यमिमं देहं कथं दग्धुमिहेच्छसि ॥ ३६ ॥ शबर्युवाच ॥ एतावदेव साफल्यं जीवितस्य च जन्मनः ॥ परार्थे यस्त्यजेत्प्राणाञ्छिवार्थे किमुत स्वयम् ॥ ३७ ॥ किं नु तप्तं तपो घोरं किं वा दत्तं मया पुरा ॥ किं वार्चनं कृतं शम्भोः पूर्वजन्मशतान्तरे ॥ ३८ ॥ किं वा पुण्यं मम पितुः का वा मातुः कृतार्थता ॥ यच्छि

शरीर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का उत्तम साधन है उस शरीर को क्यों छोड़ती हो क्योंकि नवीन यौवन सुखके लिये होता है ॥ ३५ ॥ इस समय तुम सन्तान-हीन हो और सुखरूपी मदिराको तुमने नहीं पिया है तो सुखके योग्य इस शरीर को तुम क्यों यहां जलाना चाहती हो ॥ ३६ ॥ शबरी बोली कि जीवन व जन्म की इतनीही सफलता है कि जो दूसरे के लिये प्राणों को छोड़ै फिर साक्षात् शिवजी के लिये क्या कहना है ॥ ३७ ॥ मैंने पहले क्या भयंकर तप किया है व क्या दिया है व पहलेके सौ जन्मों के मध्य में क्या शिवजी का पूजन किया है ॥ ३८ ॥ अथवा क्या मेरे पिताका पुण्य है व क्या माताकी कृतार्थता है जोकि शिवजी

के लिये जलती हुई अग्नि में मैं इस शरीर को छोड़ती हूं ॥ ३९ ॥ इस प्रकार स्थिर बुद्धि व शिवजी में उसकी भक्ति को देखकर बहुत अच्छा ऐसा कहकर दृढ़ सकल्पवाले शबर ने प्रशंसा किया ॥ ४० ॥ और उसने पतिकी आज्ञा लेकर नहाकर पवित्र होकर भूपित होतीहुई उसने घरको जलाकर उस अग्नि की भक्ति से प्रदक्षिणा किया ॥ ४१ ॥ व अपने गुरुके लिये प्रणाम कर तथा हृदय में सदाशिवजी को ध्यानकर अग्नि में पैठने के लिये तैयार होकर हाथों को जोडकर यह कहा ॥ ४२ ॥ शबरी बोली कि हे देव ! मेरी इन्द्रिया तुम्हारे पुष्प होवैं और यह शरीर अगुरु धूप होवै तथा हृदय दीप होवै और प्राण हव्य होवैं व

वार्थे समिद्धेऽग्नौ त्यजाम्येतत्कलेवरम् ॥ ३९ ॥ इत्थं स्थिरां मतिं दृष्ट्वा तस्या भक्तिं च शङ्करे ॥ दथेति दृढसंकल्पः शबरः प्रत्यपूजयत् ॥ ४० ॥ सा भर्त्तारमनुज्ञाप्य स्नात्वा शुचिरलंकृता ॥ गृहमादीप्य तं वह्निं भक्त्या चक्रे प्रदक्षिणम् ॥ ४१ ॥ नमस्कृत्वात्मगुरवे ध्यात्वा हृदि सदाशिवम् ॥ अग्निप्रवेशाभिमुखी कृताञ्जलिरिदं जगौ ॥ ४२ ॥ शबर्युवाच ॥ पुष्पाणि सन्तु तव देव ममेन्द्रियाणि धूपोऽगुरुर्वपुरिदं हृदयं प्रदीपः ॥ प्राणा हवींषि करणानि तवाक्षताश्च पूजाफलं व्रजतु सांप्रतमेष जीवः ॥ ४३ ॥ वाञ्छामि नाहमपि सर्वधनाधिपत्यं न स्वर्गभूमिमचलां न पदं विधातुः ॥ भूयो भवामि यदि जन्मनि जन्मनि स्यां त्वत्पादपङ्कजलसन्मकरन्दभृङ्गी ॥ ४४ ॥ जन्मानि सन्तु मम देव शताधिकानि माया न मे विशतु चित्तमबोधहेतुः ॥ किञ्चित्क्षणार्धमपि ते चरणारविन्दान्नापैतु मे हृदयमीश नमोनमस्ते ॥ ४५ ॥ इति प्रसाद्य देवेशं शबरी दृढनिश्चया ॥ विवेश ज्वलितं वह्निं भस्मसादभवत्क्षणात् ॥ ४६ ॥ शबरोपि च तद्भस्म

इन्द्रिय अक्षत होवैं और इस समय यह जीव पूजन का फल होवै ॥ ४३ ॥ मैं सब धनों की स्वामिता को नहीं चाहती हूं और न स्वर्ग की भूमि न ब्रह्मा के अचल स्थान को चाहती हूं बरन यदि मैं फिर होऊं तो प्रत्येक जन्म में आपके चरणकमलों में शोभित परागकी भ्रमरी होऊं ॥ ४४ ॥ व हे देव ! सौसे अधिक मेरे जन्म होवैं परन्तु अज्ञानकी कारण माया मेरे चित्तमें न पैठै व हे ईश ! आधा क्षण भी मेरा मन तुम्हारे चरणारविन्द से अलग न होवै हे ईश ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै नमस्कार है ॥ ४५ ॥ इस प्रकार देवेश शिवजी को प्रसन्न कराकर दृढ़ निश्चयवाली शबरी जलती हुई अग्निमें पैठगई और क्षणभर में भस्म होगई ॥ ४६ ॥ और

शबर ने भी यत्न से उस भस्म को लेकर सावधान होतेहुए उसने जलेहुए घरके समीप शिवपूजन किया ॥ ४७ ॥ इसके उपरान्त पूजन के अन्त में प्रसाद लेनेके योग्य नित्य आनेवाली विनय से संयुत हाथ जोडे हुई स्त्रीको स्मरण किया ॥ ४८ ॥ और उस समय स्मरण कीहुई आई व पीछे खडीहुई भक्तिसे नम्र तथा पवित्र हास्यवाली उस स्त्रीको पहलेही के अङ्गसे देखा ॥ ४९ ॥ और पहले की नाईं हाथोंको जोड़े खडीहुई उस स्त्रीको देखकर व जलकर भस्म हुए घरको पहले की नाईं स्थित देखकर शबर ने विचार किया ॥ ५० ॥ कि अग्नि तेजोंसे जलाती है व सूर्य किरणों से जलाते हैं और राजा दण्ड से जलाता

यत्नेन परिगृह्य सः ॥ चक्रे दग्धगृहोपान्ते शिवपूजां समाहितः ॥ ४७ ॥ अथ सस्मार पूजान्ते प्रसादग्रहणोचिताम् ॥ दयितां नित्यमायान्तीं प्राञ्जलिं विनयान्विताम् ॥ ४८ ॥ स्मृतमात्रां तदापश्यदागतां पृष्ठतः स्थिताम् ॥ पूर्वेणावयवेनैव भक्तिनम्रां शुचिस्मिताम् ॥ ४९ ॥ तां वीक्ष्य शबरः पत्नीं पूर्ववत्प्राञ्जलिं स्थिताम् ॥ भस्मावशेषितगृहं यथापूर्वमवस्थितम् ॥ ५० ॥ अग्निर्दहति तेजोभिः सूर्यो दहति रश्मिभिः ॥ राजा दहति दण्डेन ब्राह्मणो मनसा दहेत् ॥५१॥ किमयं स्वप्न आहोस्वित्किं वा माया भ्रमात्मिका ॥ इति विस्मयसंभ्रान्तस्तां भूयः पर्यपृच्छत ॥ ५२ ॥ अपि त्वं च कथं प्राप्ता भस्मभूतासि पावके ॥ दग्धं च भवनं भूयः कथं पूर्ववदास्थितम् ॥ ५३ ॥ शबर्युवाच ॥ यदा गृहं समुद्दीप्य प्रविष्टाहं हुताशने ॥ तदात्मानं न जानामि न पश्यामि हुताशनम् ॥ ५४ ॥ न तापलेशोप्यभवन्मे प्रविष्टाया इवोदकम् ॥ सुषुप्तेव क्षणार्धेन प्रबुद्धास्मि पुनः क्षणात् ॥ ५५ ॥ तावद्भवनमद्राक्षमदग्धमिव सुस्थितम् ॥

है व ब्राह्मण मनसे जलाता है ॥ ५१ ॥ क्या यह स्वप्न है या भ्रमवाली माया है इस प्रकार विस्मय से भ्रमित उसने फिर उससे पूंछा ॥ ५२ ॥ कि तुम कैसे प्राप्त हुई हो क्योंकि अग्नि में भस्म होगई थीं और जलाहुआ घर फिर कैसे पहले की नाईं स्थित हुआ ॥ ५३ ॥ शबरी बोली कि जब घरको जलाकर मैं अग्नि में पैठ गई तब मैंने न अपना को जाना न अग्निको देखा ॥ ५४ ॥ और जलमें पैठीहुई की नाईं मुझ को कुछ भी ताप न हुआ व सोईहुई की नाईं फिर मैं क्षणभर में जगपड़ी ॥ ५५ ॥ तब तक मैंने बिनजले हुए की नाईं भलीभांति स्थित घर को देखा और इस समय देवपूजन के अन्त में प्रसाद लेने के लिये

आई हूं ॥ ५६ ॥ इस प्रकार परस्पर कहतेहुए उन दोनों स्त्री पुरुषों के आगे दिव्य व अद्भुत विमान प्रकट हुआ ॥ ५७ ॥ और सैकड़ों चन्द्रमा के समान प्रकाशमान उस विमान पै आगे चलनेवाले चार शिवदूतों ने हाथ में पकड़ कर शरीर समेत निषाद स्त्री पुरुषों को बिठा लिया ॥ ५८ ॥ और उसी क्षण उन निषाद स्त्री पुरुषों का वह शरीर शिवदूतों के हाथ के स्पर्श से उनकी सरूपता को प्राप्त हुआ ॥ ५९ ॥ इसलिये सब पुण्यकर्मों में श्रद्धाही करने योग्य है क्योंकि श्रद्धा से नीच निषाद ने भी योगियों की गति को पाया ॥ ६० ॥ सब जातिवाले लोगों से उत्तम जन्मसे क्या है व सब शास्त्रों के विचारवाली

अधुना देवपूजान्ते प्रसादं लब्धुमागता ॥ ५६ ॥ एवं परस्परं प्रेम्णा दम्पत्योर्भाषमाणयोः ॥ प्रादुरासीत्तयोरग्रे विमानं दिव्यमद्भुतम् ॥ ५७ ॥ तस्मिन्विमाने शतचन्द्रभास्वरे चत्वार ईशानुचराः पुरःसराः ॥ हस्ते गृहीत्वाथ निषाददम्पती आरोपयामासुरमुक्तविग्रहौ ॥ ५८ ॥ तयोर्निषाददम्पत्योस्तत्क्षणादेव तद्वपुः ॥ शिवदूतकरस्पर्शात्तत्सारूप्यमवाप ह ॥ ५९ ॥ तस्माच्छ्रद्धैव सर्वेषु विधेया पुण्यकर्मसु ॥ नीचोपि शबरः प्राप श्रद्धया योगिनां गतिम् ॥ ६० ॥ किं जन्मना सकलवर्णजनोत्तमेन किं विद्यया सकलशास्त्रविचारवत्या ॥ यस्यास्ति चेतसि सदा परमेशभक्तिः कोऽन्यस्ततस्त्रिभुवने पुरुषोस्ति धन्यः ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे भस्ममाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ अथाहं संप्रवक्ष्यामि सर्वधर्मोत्तमोत्तमम् ॥ उमामहेश्वरं नाम व्रतं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥ १ ॥ आनर्त्त

विद्या से क्या है जिसके चित्त में सदैव शिवजी की भक्ति है उससे अधिक त्रिलोक में कौन धन्य है ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां भस्ममाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । उमामहेश्वर-व्रत कह्यो यथा अन्धमुनिनाथ । अठरहवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त मैं सब धर्मों में उत्तम और सब प्रयोजनों की सिद्धि को देनेवाले उमामहेश्वर नामक व्रत को कहता हूं ॥ १ ॥ कि आनर्त देशमें उत्पन्न कोई वेदरथ नामक ब्राह्मण विद्वान् था और स्त्री व पुत्रों

उत्तम शिलाके ऊपर अच्छी वर्षा की नाईं व कुतिया में उत्तम कर्म की नाईं मन्दभाग्यवती स्त्रीमें ब्रह्मज्ञानियोंका भी आशीर्वाद निष्फल होजाता है ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन्! वही दुष्कर्मफलभागिनी यह विधवा मैं इस तुम्हारे आशीर्वाद के वचन की पात्रताको कैसे प्राप्तहूगी ॥ २२ ॥ मुनि बोले कि इस समय तुमको न देखकर मैं अन्ध ने जो कहा है उस इस वचन को साधन करूंगा हे शुभे! मेरी आज्ञा कीजिये ॥ २३ ॥ यदि तुम उमामहेश्वर नामक व्रतको करोगी तो उस व्रत के प्रभाव से तुम शीघ्रही कल्याण को भोगोगी ॥ २४ ॥ शारदा बोली कि तुमसे कहेहुए बहुत कठिनभी व्रतको यत्न से करूंगी हे ब्रह्मन्! उस व्रतको मुझ से कहिये व

शिलाग्रयामिव सद्वृष्टिः शुनक्यामिव सत्क्रिया ॥ विफला मन्दभाग्यायामाशीर्ब्रह्मविदामपि ॥ २१ ॥ सैषाहं विधवा ब्रह्मन्दुष्कर्मफलभागिनी ॥ त्वदाशीर्वचनस्यास्य कथं यास्यामि पात्रताम् ॥ २२ ॥ मुनिरुवाच ॥ त्वामनालक्ष्य यत्प्रोक्तमन्धेनापि मयाऽधुना ॥ तदेतत्साधयिष्यामि कुरु मच्छासनं शुभे ॥ २३ ॥ उमामहेश्वरं नाम व्रतं यदि चरिष्यसि ॥ तेन व्रतानुभावेन सद्यः श्रेयोऽनुभोक्ष्यसे ॥ २४ ॥ शारदोवाच ॥ त्वयोपदिष्टं यत्नेन चरिष्याम्यपि दुश्चरम् ॥ तद्व्रतं ब्रूहि मे ब्रह्मन्विधानं वद विस्तरात् ॥ २५ ॥ मुनिरुवाच ॥ चैत्रे वा मार्गशीर्षे वा शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥ व्रतारम्भं प्रकुर्वीत यथावद्गुर्वनुज्ञया ॥ २६ ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यामुभयोरपि पर्वणोः ॥ संकल्पं विधिवत्कृत्वा प्रातः स्नानं समाचरेत् ॥ २७ ॥ सन्तर्प्य पितृदेवादीन्गत्वा स्वभवनं प्रति ॥ मण्डपं रचयेद्दिव्यं वितानाद्यैरलंकृतम् ॥ २८ ॥ फलपल्लवपुष्पाद्यैस्तोरणैश्च समन्वितम् ॥ पञ्चवर्णैश्च तन्मध्ये रजोभिः पद्ममुद्धरेत् ॥ २९ ॥ चतुर्दशदलैर्बाह्ये

विस्तारसे विधि को कहिये ॥ २५ ॥ मुनि बोले कि चैत या अगहनमें शुक्लपक्षमें उत्तम दिनमें गुरुकी आज्ञासे यथायोग्य व्रतको प्रारम्भ करै ॥ २६ ॥ और अष्टमी, चौदसि व दोनों पर्वों में भी विधिपूर्वक संकल्प करके प्रातःकाल स्नान करै ॥ २७ ॥ और पितरों व देवादिकों को तर्पण कर अपने घरको जाकर वितानादिकों से भूषित दिव्यमण्डप को बनावै ॥ २८ ॥ और फल, पत्र, पुष्पादिक व बन्दनवारों से संयुत करै व उसके मध्य में पांचरंगोंकी रजोंसे कमल को बनावै ॥ २९ ॥

बाहर चौदह दलों से व उसके मध्य में बाईस दलों से तथा उसके मध्य में सोलह से और उसके बीचमें आठ दलों से बनावै ॥ ३० ॥ इस प्रकार पाचरंगों से सुन्दर कमल को बनाकर तदनन्तर भीतर उत्तम गोल वृत्त बनावै उसके बाद चौकोन करै ॥ ३१ ॥ और उसके मध्य में कूर्च समेत यव व चावलों की राशि करके कूर्चके ऊपर जलसे पूर्ण कलश को स्थापित कर ॥ ३२ ॥ कलश के ऊपर रगसे संयुत वस्त्रको धरकर उसके ऊपर सुवर्ण की शिवाशिवजी की उत्तम मूर्तियों को धरकर ऐश्वर्य के अनुकूल विस्तारपूर्वक भक्ति से पूजै ॥ ३३ ॥ और पञ्चामृत से व शुद्ध जल से न्हवाकर एकादशरुद्र व एकसौ आठ पञ्चाक्षर

द्वाविंशद्भिस्तदन्तरे ॥ तदन्तरे षोडशभिरष्टभिश्च तदन्तरे ॥ ३० ॥ एवं पद्मं समुद्धृत्य पञ्चवर्णैर्मनोरमम् ॥ चतुरस्रं ततः कुर्यादन्तर्वर्तुलमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ व्रीहितण्डुलराशिं च तन्मध्ये च सकूर्चकम् ॥ कूर्चोपरि सुसंस्थाप्य कलशं वारिपूरितम् ॥ ३२ ॥ कलशोपरि विन्यस्य वस्त्रं वर्णसमन्वितम् ॥ तस्योपरिष्टात्सौवर्ण्यौ प्रतिमे शिवयोः शुभे ॥ निधाय पूजयेद्भक्त्या यथाविभवविस्तरम् ॥ ३३ ॥ पञ्चामृतैस्तु संस्नाप्य तथा शुद्धोदकेन च ॥ रुद्रैकादशकं जप्त्वा पञ्चाक्षरशताष्टकम् ॥ ३४ ॥ अभिमन्त्र्य पुनः स्थाप्य पीठमध्ये तथार्चयेत् ॥ स्वयं शुद्धासनासीनो धौतशुक्लाम्बरः सुधीः ॥ ३५ ॥ पीठमामन्त्र्य मन्त्रेण प्राणायामान्समाचरेत् ॥ संकल्पं प्रवदेत्तत्र शिवाग्रे विहिताञ्जलिः ॥ ३६ ॥ यानि पापानि घोराणि जन्मान्तरशतेषु मे ॥ तेषां सर्वविनाशाय शिवपूजां समारभे ॥ ३७ ॥ सौभाग्यविजयारोग्यधर्मैश्वर्याभिवृद्धये ॥ स्वर्गापवर्गसिद्ध्यर्थं करिष्ये शिवपूजनम् ॥ ३८ ॥ इति संकल्पमुच्चार्य यथावत्सुसमाहितः ॥

मन्त्र को जपकर ॥ ३४ ॥ फिर अभिमन्त्रित कर पीठके बीच में स्थापित करके पूजन करै और धोयेहुए सफ़ेद वस्त्र को पहनकर उत्तम बुद्धिवाला आपही शुद्ध आसन पै बैठे ॥ ३५ ॥ और मन्त्र से पीठको अभिमन्त्रित कर प्राणायामों को करै और वहां शिवजी के आगे हाथों को जोडकर संकल्प कहै ॥ ३६ ॥ कि मेरे सैकड़ों जन्मों के मध्य में जो भयंकर पाप हैं उन सबके नाश होनेके लिये मैं शिवपूजन को प्रारम्भ करता हूं ॥ ३७ ॥ और सौभाग्य, विजय, आरोग्य, धर्म व ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये और स्वर्ग तथा मोक्ष की सिद्धि के लिये मैं शिवपूजन करूंगा ॥ ३८ ॥ इसप्रकार संकल्प को कहकर सावधान होताहुआ मनुष्य

यथायोग्य अङ्गन्यास करके शिव व पार्वतीजी को ध्यान करै ॥ ३९ ॥ कुन्द व चन्द्रमा के समान सफ़ेद आकारवाले व नागों के भूषणों से भूषित और वरदायक व अभय हाथवाले तथा परशु व मृगको धारण किये ॥ ४० ॥ और करोड सूर्यों के समान प्रकाशवान् तथा संसार के आनन्द का कारण और गंगाजल के संसर्ग से दीर्घ व पीली जटा को धारनेवाले ॥ ४१ ॥ व नागेन्द्र की फणा से उत्पन्न महामुकुट से शोभित और चन्द्रखण्ड से शोभित मस्तक व बजुल्ला के भूषणवाले ॥ ४२ ॥ व उघरेहुए मस्तकमें नयनोंवाले तथा सूर्य व चन्द्रमानयनोंवाले नीलकण्ठ, चतुर्भुज और गजचर्म व मृगचर्मको पहने॥ ४३ ॥ और रत्नोंके

अङ्गन्यासं ततः कृत्वा ध्यायेदीशं च पार्वतीम् ॥ ३९ ॥ कुन्देन्दुधवलाकारं नागाभरणभूषितम् ॥ वरदाभयहस्तं च बिभ्राणं परशुं मृगम् ॥ ४० ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशं जगदानन्दकारणम् ॥ जाह्नवीजलसंपर्काद्दीर्घपिङ्गजटाधरम् ॥ ४१ ॥ उरगेन्द्रफणोद्भूतमहामुकुटमण्डितम् ॥ शीतांशुखण्डविलसत्कोटीराङ्गदभूषणम् ॥ ४२ ॥ उन्मीलद्भालनयनं तथा सूर्येन्दुलोचनम् ॥ नीलकण्ठं चतुर्बाहुं गजेन्द्राजिनवाससम् ॥ ४३ ॥ रत्नसिंहासनारूढं नागाभरणभूषितम् ॥ देवीं च दिव्यवसनां बालसूर्यायुतद्युतिम् ॥ ४४ ॥ बालवेषां च तन्वङ्गीं बालशीतांशुशेखराम् ॥ पाशाङ्कुशवराभीतिं बिभ्रतीं च चतुर्भुजाम् ॥ ४५ ॥ प्रसादसुमुखीमम्बां लीलारसविहारिणीम् ॥ लसत्कुरवकाशोकपुन्नागनवचम्पकैः ॥ ४६ ॥ कृतावतंसामुत्फुल्लमल्लिकोत्कलितालकाम् ॥ काञ्चीकलापपर्यस्तजघनाभोगशालिनीम् ॥ ४७ ॥ उदारकिंकिणीश्रेणी

सिंहासन पै बैठेहुए व नागोंके भूषणसे भूषित तथा दिव्य वसन को पहने व दशहज़ार बालसूर्यों के समान छविवाली देवी ॥ ४४ ॥ व बालवेषवाली तथा सूक्ष्मांगी व बालचन्द्रमा को मस्तक में धारण किये और पाश, अंकुश, वर व अभय को धारनेवाली चतुर्भुजी ॥ ४५ ॥ और प्रसन्नता से सुन्दर मुखवाली व लीला के रससे विहार करनेवाली, अम्बा तथा सोहतेहुए कुरबक, अशोक, पुन्नाग व चम्पकों से ॥ ४६ ॥ शिरोभूषण किये और फूलीहुई चमेली से शोभित अलकोंवाली व कांचीभूषण के पहनने से जघनों से शोभित ॥ ४७ ॥ और उत्तम किंकिणी की श्रेणी व नूपुर से संयुक्त दोनों पगोंवाली और कपोलमंडल में

लगे हुए रत्नों के कुंडलों से शोभित ॥ ४८ ॥ और बिम्बाफल के समान ओंठों से रँगी हुई किरणों से शोभित दांतों की कलीवाली और बडे मोलवाले रत्नों के कंठभूषण व तार के हार से शोभित ॥ ४६ ॥ व नवीन माणिक्य से सुन्दर कंकण, बजुल्ला व मुंदरीवाली और लाल वस्त्रको पहने और लाल माला व अनुलेपन किये ॥ ५० ॥ तथा उन्नत व स्थूल दोनों स्तनों से निन्दित कमल कलीवाली और लीला से चंचल व श्यामनेत्रान्तभागवाली तथा भक्तों के ऊपर दया देनेवाली पार्वतीजी को ध्यान करै ॥ ५१ ॥ इस प्रकार हृदयकमल में संसार के माता, पिता पार्वती व शिवजी को ध्यानकर व उनका

नूपुराढ्यपदद्वयाम् ॥ गण्डमण्डलसंसक्तरत्नकुण्डलशोभिताम् ॥ ४८ ॥ बिम्बाधरानुरक्तांशुलसद्दशनकुड्मलाम् ॥ महार्हरत्नग्रैवेयतारहारविराजिताम् ॥ ४६ ॥ नवमाणिक्यरुचिरकङ्कणाङ्गदमुद्रिकाम् ॥ रक्तांशुकपरीधानां रक्तमाल्यानुलेपनाम् ॥ ५० ॥ उद्यत्पीनकुचद्वन्द्वनिन्दिताम्भोजकुड्मलाम् ॥ लीलालोलासितापाङ्गीं भक्तानुग्रहदायिनीम् ॥ ५१ ॥ एवं ध्यात्वा तु हृत्पद्मे जगतः पितरौ शिवौ ॥ जप्त्वा तदात्मकं मन्त्रं तदन्ते बहिरर्चयेत् ॥ ५२ ॥ आवाह्य प्रतिमायुग्मे कल्पयेदासनादिकम् ॥ अर्घ्यं च दद्याच्छिवयोर्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥ ५३ ॥ नमस्ते पार्वतीनाथ त्रैलोक्यवरदर्षभ ॥ त्र्यम्बकेश महादेव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ५४ ॥ नमस्ते देवदेवेशि प्रपन्नभयहारिणि ॥ अम्बिके वरदे देवि गृहाणार्घ्यं शिवप्रिये ॥ ५५ ॥ इति त्रिवारमुच्चार्य दद्यादर्घ्यं समाहितः ॥ गन्धपुष्पाक्षतान्सम्यग्धूपदीपान्प्रकल्पयेत् ॥ ५६ ॥ नैवेद्यं पायसान्नेन घृताक्तं परिकल्पयेत् ॥ जुहुयान्मूलमन्त्रेण हरिरष्टोत्तरं

मंत्र जपकर उसके अन्त में बाहर पूजन करै ॥ ५२ ॥ और दोनों मूर्तियों को आवाहन कर आसनादिक देवै व मंत्रको जाननेवाला इस मंत्र से पार्वती व शिवजी को अर्घ्य देवै ॥ ५३ ॥ कि हे त्रैलोक्यवरदर्षभ, पार्वतीनाथ ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे त्र्यम्बक, ईश, महादेव ! अर्घ्य को ग्रहण कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ५४ ॥ हे देवदेवेशि, प्रपन्नभयहारिणि ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे अम्बिके, वरदे, देवि, शिवप्रिये ! अर्घ्य को ग्रहण कीजिये ॥ ५५ ॥ यह तीनबार कहकर सावधान मनुष्य अर्घ्य को देवै और चन्दन, पुष्प, अक्षत व धूप, दीप को भलीभांति देवै ॥ ५६ ॥ और खीर अन्न समेत घृतसे संयुत नैवेद्य को देवै

और मूलमन्त्र से एकसौ आठ बार हव्य को हवन करै ॥ ५७ ॥ तदनन्तर नैवेद्य को लगाकर व धूप, नीराजनादिक करके ताम्बूल को देकर सावधान होताहुआ मनुष्य नमस्कार करै ॥ ५८ ॥ इसके उपरान्त उपचार से पूजनकर स्त्री पुरुष ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ५९ ॥ इस प्रकार सायंकाल का पूजन करके ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर रात्रि में मौनी होकर दूधमें पकाईहुई हविष्य को भोजन करै ॥ ६० ॥ इस प्रकार विद्वान् दोनों पक्षों में वर्षभर तक व्रत करै तदनन्तर वर्ष पूर्ण होनेपर व्रत का उद्यापन करै ॥ ६१ ॥ और शतरुद्री के जपसे प्रतिमाओं को जलसे नहवावै और शास्त्रोक्त मन्त्र से पार्वती व शिवजी को पूजकर ॥ ६२ ॥ वस्त्र समेत व

शतम् ॥ ५७ ॥ तत उद्वास्य नैवेद्यं धूपनीराजनादिकम् ॥ कृत्वा निवेद्य ताम्बूलं नमस्कुर्यात्समाहितः ॥ ५८ ॥ अथाभ्य र्च्योपचारेण भोजयेद्विप्रदम्पती ॥ ५९ ॥ एवं सायन्तनीं पूजां कृत्वा विप्रानुमोदितः ॥ भुञ्जीत वाग्यतो रात्रौ हविष्यं क्षीरभावितम् ॥ ६० ॥ एवं संवत्सरं कुर्याद् व्रतं पक्षद्वये बुधः ॥ ततःसंवत्सरे पूर्णे व्रतोद्यापनमाचरेत् ॥ ६१ ॥ शतरुद्रा भिजप्तेन स्नापयेत्प्रतिमे जलैः ॥ आगमोक्तेन मन्त्रेण संपूज्य गिरिजाशिवौ ॥ ६२ ॥ सवस्त्रं ससुवर्णं च कलशं प्रतिमा न्वितम् ॥ दत्त्वाचार्याय महते सदाचाररताय च ॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या यथाशक्त्याभिपूज्य च ॥ ६३ ॥ दद्याच्च द क्षिणां तेभ्यो गोहिरण्याम्बरादिकम् ॥ भुञ्जीत तदनुज्ञातः सहेष्टजनबन्धुभिः ॥ ६४ ॥ एवं यः कुरुते भक्त्या व्रतं त्रैलो क्यविश्रुतम् ॥ त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ ६५ ॥ इन्द्रादिलोकपालानां स्थानेषु रमते ध्रुवम् ॥ ब्रह्मलोके च रमते विष्णुलोके च शाश्वते ॥ ६६ ॥ शिवलोकमथ प्राप्य तत्र कल्पशतं पुनः ॥ भुक्त्वा भोगान्सुवि

सुवर्णसहित मूर्तिसमेत कलश को उत्तम आचरण में परायण महात्मा आचार्य के लिये देकर भक्ति से यथाशक्ति पूजन करके ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ६३ ॥ और उनके लिये गऊ, सुवर्ण व वस्त्रादिक दक्षिणा देवै व उनसे आज्ञाको लेकर प्रियजन तथा बन्धुवों समेत भोजन करै ॥ ६४ ॥ जो मनुष्य इस प्रकार त्रैलोक्य में प्रसिद्ध व्रतको भक्ति से करता है वह इक्कीस पुश्तियों को उधारकर और चाहे हुए सुखों को भोगकर ॥ ६५ ॥ इन्द्रादिक लोकपालों के स्थानों में निश्चय कर रमण करता है और ब्रह्मलोक में व सनातन विष्णुलोक में रमण करता है ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त शिवलोकको प्राप्त होकर वहां फिर सौ कल्प तक रमण करताहै

और बड़ेभारी सुखों को भोगकर शिवही को प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ इस कहेहुए महाव्रत को तुमभी श्रद्धा से करो तो बहुत दुर्लभ भी मनोरथको पावोगी ॥ ६८ ॥ मुनीन्द्र से इस प्रकार आज्ञा दी हुई वह स्त्री बहुत प्रसन्न हुई और विश्वास को प्राप्त होकर उसके मनोहर वचन को ग्रहण किया ॥ ६९ ॥ इसके उपरान्त उसके पिता, माता व सगे भाई लोग आये व उन्होंने सुखपूर्वक बैठे व भोजन किये हुए उन मुनिको देखा ॥ ७० ॥ और यकायक आकर उन सबों ने महात्मा के लिये प्रणाम किया और हमारे ऊपर प्रसन्न हूजिये प्रसन्न हूजिये ऐसा कहतेहुए उन्होंने पूजन किया ॥ ७१ ॥ और उस उत्तम आचरणवाली शारदा से पूजेहुए श्रेष्ठ

पुत्राञ्छिवमेव प्रपद्यते ॥ ६७ ॥ महाव्रतमिदं प्रोक्तं त्वमपि श्रद्धया चर ॥ अत्यन्तदुर्लभं वापि लप्स्यसे च मनोरथम् ॥ ६८ ॥ इत्यादिष्टा मुनीन्द्रेण सा बाला मुदिता भृशम् ॥ प्रत्यग्रहीत्सुविश्रब्धा तद्वाक्यं सुमनोहरम् ॥ ६९ ॥ अथ तस्याः समायाताः पितृमातृसहोदराः ॥ तं मुनिं सुखमासीनं ददृशुः कृतभोजनम् ॥ ७० ॥ सहसागत्य ते सर्वे नमश्चक्रुर्महात्मने ॥ प्रसीद नः प्रसीदेति गृणन्तः पर्यपूजयन् ॥ ७१ ॥ श्रुत्वा च ते तया साध्व्या पूजितं परमं मुनिम् ॥ अनुग्रहं व्रतं तस्यै श्रुत्वा हर्षं परं ययुः ॥ ७२ ॥ ते कृताञ्जलयः सर्वे तमूचुर्मुनिपुङ्गवम् ॥ ७३ ॥ अद्य धन्या वयं सर्वे तवागमनमात्रतः ॥ पावितं नः कुलं सर्वं गृहं च सफलीकृतम् ॥ ७४ ॥ इयं च शारदा नाम कन्या वैधव्यमागता ॥ केनापि कर्मयोगेन दुर्विलङ्घेन भूयसा ॥ ७५ ॥ सैषाद्य तव पादाब्जं प्रपन्ना शरणं सती ॥ इमां समुद्धरास ह्यात्सुघोराद्दुःखसागरात् ॥ ७६ ॥ त्वयापि तावदत्रैव स्थातव्यं नो गृहान्तिके ॥ अस्मद्गृहमठेऽप्यस्मिन्स्नानपूजा

मुनिको सुनकर व उसके लिये दयारूप व्रतको सुनकर बड़े हर्षको प्राप्त हुए ॥ ७२ ॥ और हाथों को जोड़कर उन सबोंने उस मुनिश्रेष्ठ से कहा ॥ ७३ ॥ कि तुम्हारे आनेही से आज हम सब धन्य होगये और सब वंश पवित्र करदिया गया व घर सफल किया गया ॥ ७४ ॥ यह शारदा नामक कन्या न उल्लंघन करने योग्य बड़े भारी किसी कर्मयोग से विधवापन को प्राप्त हुई है ॥ ७५ ॥ वही यह पतिव्रता शारदा आज तुम्हारे चरणकमल की शरण में प्राप्त है इसको बड़े भयंकर व असह्य दुःख के समुद्र से उधारिये ॥ ७६ ॥ तबतक तुम भी हमलोगों के घरके समीप स्नान, पूजन व जपके योग्य इस हमारे घरके मठ में

टिको ॥ ७७ ॥ व हे भगवन्,महामुने ! तुम्हारे चरणोंको पूजन करतीहुई यह कन्या तुम्हारे समीपही व्रतको करैगी ॥ ७८ ॥ हे गुरो ! इसका व्रत जबतक तुम्हारे समीप समाप्तिको प्राप्त होवै तबतक यहीं बसकर हमलोगों को कृतार्थ कीजिये ॥ ७९ ॥ इसप्रकार उसके सब भाई आदिक लोगों से प्रार्थना कियेहुए उस मुनिश्रेष्ठने बहुत अच्छा ऐसा कहकर उस उत्तम मठमें निवास किया ॥ ८० ॥ और उससे बतलाये हुए मार्ग से पार्वती व शिवजी को पूजती हुई उस निर्मल सती ने भली भांति व्रतको किया ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायामुमामहेश्वरव्रताचरणं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥

जपोचिते ॥ ७७ ॥ एषा बालापि भगवन्कुर्वन्ती त्वत्पदार्चनम् ॥ व्रतं त्वत्सन्निधावेव चरिष्यति महामुने ॥ ७८ ॥ यावत्समाप्तिमायाति व्रतमस्यास्त्वदन्तिके ॥ उषित्वा तावदत्रैव कृतार्थान्कुरु नो गुरो ॥ ७९ ॥ एवमभ्यर्थितः सर्वैस्तस्या भ्रातृजनादिभिः ॥ तथेति स मुनिश्रेष्ठस्तत्रोवास मठे शुभे ॥ ८० ॥ सापि तेनोपदिष्टेन मार्गेण गिरिजा शिवौ ॥ अर्चयन्ती व्रतं सम्यक्चचार विमला सती ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे उमामहेश्वरव्रताचरणं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ एवं महाव्रतं तस्याश्चरन्त्या गुरुसन्निधौ ॥ संवत्सरो व्यतीयाय नियमासक्तचेतसः ॥ १ ॥ संवत्सरान्ते सा बाला तत्रैव पितृमन्दिरे ॥ चकारोद्यापनं सम्यग्विप्रभोजनपूर्वकम् ॥ २ ॥ दत्त्वा च दक्षिणां तेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो यथार्हतः ॥ विसृज्य तान्नमस्कृत्य पितृभ्यामभिनन्दिता ॥ ३ ॥ उपोषिता स्वयं तस्मिन्दिने नियममाश्रिता ॥ जजाप

दो० । यथा शारदा स्वप्न में पति सँयोग को पाय । लह्यो पुत्र उन्नीस में सोइ चरित्र सुहाय ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार गुरुके समीप महाव्रत को करती हुई व नियम में लगेहुए चित्तवाली उस शारदा का वर्षभर व्यतीत होगया ॥ १ ॥ व वर्षभर के बाद उस कन्या ने उसी पिता के घरमें भलीभांति ब्राह्मण भोजन पूर्वक उद्यापन किया ॥ २ ॥ व उन ब्राह्मणोंके लिये यथायोग्य दक्षिणा को देकर माता, पिता से प्रशंसित उस शारदा ने उनको बिदा करके प्रणाम कर ॥ ३ ॥

आपभी नियम में आश्रित होकर उस दिन उपास किया व महात्मा से बतलाये हुए उत्तम मन्त्र का जप किया ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त प्रदोषसमय प्राप्तहोनेपर शिवजी को पूजकर उस घरके समीप मठमें उस गुरुके समीप ॥ ५ ॥ जप व पूजन में परायण तथा शिवजी को ध्यान करती हुई वह पतिव्रता शारदा रात्रि में उस जागरण में शिवजी के समीप बैठीरही ॥ ६ ॥ व उस रात में उस शारदा समेत उस मुनिने जप, ध्यान व तपों से जगदम्बिका पार्वतीजी को प्रसन्न किया ॥ ७ ॥ और व्रतसे शुद्ध उस शारदाकी भक्तिसे व मुनिकी तपस्या और योग की समाधि से ससारकी एकही माता पार्वतीजी प्रसन्न हुईं व उत्तम मूर्ति करके प्रकट हुईं ॥ ८ ॥

परमं मन्त्रमुपदिष्टं महात्मना ॥ ४ ॥ अथ प्रदोषसमये प्राप्ते संपूज्य शंकरम् ॥ तस्मिन्गृहान्तिकमठे गुरोस्तस्य च सन्निधौ ॥ ५ ॥ जपार्चनरता माध्वी ध्यायन्ती परमेश्वरम् ॥ तस्मिञ्जागरणे रात्रावुपविष्टा शिवान्तिके ॥ ६ ॥ तस्यां रात्रौ तया सार्धं स मुनिर्जगदम्बिकाम् ॥ जपध्यानतपोभिश्च तोषयामास पार्वतीम् ॥ ७ ॥ तस्याश्च भक्त्या व्रतभाविताया मुनेस्तपोयोगसमाधिना च ॥ तुष्टा भवानी जगदेकमाता प्रादुर्बभूवाकृतसान्द्रमूर्तिः ॥ ८ ॥ प्रादुर्भूता यदा गौरी तयोरग्रे जगन्मयी ॥ अन्धोऽपि तत्क्षणादेव मुनिःप्राप दृशोर्द्वयम् ॥ ९ ॥ तां वीक्ष्य जगतां धात्रीमाविर्भूतां पुरः स्थिताम् ॥ निपेततुस्तत्पदयोः स मुनिः सा च कन्यका ॥ १० ॥ तौ भक्तिभावोच्छ्वसितामलाशयावानन्दवाष्पोक्षितसर्वगात्रौ ॥ उत्थाप्य देवी कृपया परिप्लुता प्रेम्णा बभाषे मृदुवल्गुभाषिणी ॥ ११ ॥ देव्युवाच ॥ प्रीतास्मि ते मुनिश्रेष्ठ वत्से प्रीतास्मि तेऽनघे ॥ किं वा ददाम्यभिमतं देवानामपि दुर्लभम् ॥ १२ ॥ मुनिरुवाच ॥ एषा तु शारदा

जब उन दोनों के आगे संसारमयी पार्वती जी प्रकट हुईं तब अन्धमुनि ने भी उसीक्षण दोनों नेत्रों को पाया ॥ ९ ॥ व प्रकट हुई तथा आगे स्थित उन लोकों की माता पार्वतीजी को देखकर वे मुनि और वह कन्या उनके चरणों पै गिरपड़ी ॥ १० ॥ व भक्तिभाव से बढ़े हुए निर्मल आशयवाले तथा आनन्द के आँसुवों से भीगे हुए सब शरीरवाले उन दोनों को उठाकर कोमल व मनोहर बोलनेवाली पार्वती देवी ने प्रेम से कहा ॥ ११ ॥ देवीजी बोलीं कि हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं व हे अनघे, वत्से ! तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं देवताओं को भी दुर्लभ तुमको क्या मनोरथ दूं ॥ १२ ॥ मुनि बोले कि यह

शारदा नामक कन्या पतिरहित है और नेत्ररहित प्रसन्न मैं ने इससे प्रतिज्ञा की है ॥ १३ ॥ कि पति के साथ बहुत समय तक विहार कर उत्तम पुत्र को पावोगी यह मैंने कहा है इसको सत्य कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १४ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि पूर्व जन्म में भामिनी नामक प्रसिद्ध यह द्राविड़ ब्राह्मण की दूसरी स्त्री हुई है ॥ १५ ॥ और रूपकी मधुरता से चतुर व सदैव पति को प्यारी उसने रूपवश्यादिक छलों से पति को वश करलिया ॥ १६ ॥ व इसमें लगे चित्तवाले मोह से बँधे हुए उस ब्राह्मण ने कभी पतिव्रता बड़ी स्त्री के समीप गमन नहीं किया ॥ १७ ॥ और पति के समीप न आने से पुत्र-

नाम कन्या तु गतभर्तृका ॥ मया प्रतिश्रुतं चास्यै तुष्टेन गतचक्षुषा ॥ १३ ॥ सह भर्त्रा चिरं कालं विहृत्य सुतमुत्तमम् ॥ लभस्वेति मया प्रोक्तं सत्यं कुरु नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ एषा पूर्वभवे बाला द्राविडस्य द्विजन्मनः ॥ आसीद् द्वितीया दयिता भामिनी नाम विश्रुता ॥ १५ ॥ सा भर्तृप्रेयसी नित्यं रूपमाधुर्यपेशला ॥ भर्तारं वशमानिन्ये रूपवश्यादिकैतवैः ॥ १६ ॥ अस्यां चासक्तहृदयः स विप्रो मोहयन्त्रितः ॥ कदाचिदपि नैवागाज्ज्येष्ठपत्नीं पतिव्रताम् ॥ १७ ॥ अनभ्यागमनाद्भर्तुः सा नारी पुत्रवर्जिता ॥ सदा शोकेन संतप्ता कालेन निधनं गता ॥ १८ ॥ अस्या गृहसमीपस्थो यः कश्चिद्ब्राह्मणो युवा ॥ इमां वीक्ष्याथ चार्वङ्गीं कामार्तः करमग्रहीत् ॥ १९ ॥ अनया रोषताम्राक्ष्या स विप्रस्तु निवारितः ॥ इमां स्मरन्दिवानक्तं निधनं प्रत्यपद्यत ॥ २० ॥ एषा संमोह्य भर्तारं ज्येष्ठपत्न्यां पराङ्मुखम् ॥ चकार तेन पापेन भवेऽस्मिन्विधवाऽभवत् ॥ २१ ॥ याः कुर्वन्ति स्त्रियो लोके जायापत्योश्च विप्रियम् ॥ तासां

रहित वह स्त्री सदैव शोक से संतप्त रहती थी और वह काल से मृत्यु को प्राप्त हुई ॥ १८ ॥ और इसके घर के समीप जो कोई युवा ब्राह्मण रहता था कामदेव से विकल उसने इस सुन्दर अंगोंवाली रानी को देखकर हाथ को पकड़ लिया ॥ १९ ॥ और क्रोधसे लाल लोचनोंवाली इस रानी ने उस ब्राह्मण को मना किया व दिन रात इसको स्मरण करता हुआ वह मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ २० ॥ और इसने पति को मोहित कर बड़ी स्त्री में विमुख कर दिया उस पाप से इस जन्म में यह विधवा होगई ॥ २१ ॥ जो स्त्रिया संसार में स्त्री पुरुष का वियोग करती हैं उनका इक्कीस जन्मों में बालविधवापन

होता है ॥ २२ ॥ जिस लिये इसने पूर्वजन्म में मेरी बड़ी भारी पूजा किया है उस पुण्य से वह सब पाप उसी समय नष्ट होगया ॥ २३ ॥ और जो इसका पहले जन्म-से विकल होता हुआ जो ब्राह्मण-कामदेव से मोहित होकर मरगया था वह इसका विवाह करके इस जन्म में मरगया ॥ २४ ॥ और वियोग वाला पति था वह इस समय पाण्ड्यराज्यों में स्त्री समेत व सामग्रीसमेत लक्ष्मीवान् तथा उत्तम ब्राह्मण पैदा हुआ है ॥ २५ ॥ उसी पतिसे प्रत्येक रात्रि में वही यह स्त्री प्रेमसे संयोग को प्राप्त होकर स्वप्न में जागरण से भी श्रेष्ठ रति के सुख को प्राप्त होगी ॥ २६ ॥ इस देशसे तीन सौ साठ योजन दूर पै स्थित वह उत्तम

कौमारवैधव्यमेकविंशतिजन्मसु ॥ २२ ॥ यदेतया पूर्वभवे मत्पूजा महती कृता ॥ तेन पुण्येन तत्पापं नष्टं सर्वं तदैव हि ॥ २३ ॥ यो विप्रो विरहार्तः सन्मृतः कामविमोहितः ॥ सोऽस्याः पाणिग्रहं कृत्वा भवेस्मिन्निधनं गतः ॥ २४ ॥ तेन भर्त्रा प्रति प्राग्जन्मपतिरेतस्याः पाण्ड्यराष्ट्रेषु सोऽधुना ॥ जातो विप्रवरः श्रीमान्सदारः सपरिच्छदः ॥ २५ ॥ तेन भर्त्रा प्रति निशं सैषा प्रेम्णाभिसंगता ॥ स्वप्ने रतिसुखं यातु श्रेष्ठं जागरणादपि ॥ २६ ॥ षष्ट्युत्तरत्रिशतयोजनदूरसंस्थो देशा दितो द्विजवरः स च कर्मगत्या ॥ एनां वधूं प्रतिनिशं मनसोभिरामां स्वप्नेषु पश्यति चिरं रतिमादधानः ॥ २७ ॥ सैषा वै स्वप्नसंगत्या पत्युः प्रतिनिशं सती ॥ कालेन लप्स्यते पुत्रं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ २८ ॥ एतस्यां तनयं जात मात्मनश्चिरसंगमात् ॥ सोऽपि विप्रोऽनिशं स्वप्ने द्रक्ष्यति प्रेमभावितम् ॥ २९ ॥ अनयाराधिता पूर्वे भवे साहं महा मुने ॥ अस्यैव वरदानाय प्रादुर्भूतास्मि साम्प्रतम् ॥ ३० ॥ सूत उवाच ॥ अथोवाच महादेवी तां बालां प्रति सादरम् ॥

ब्राह्मण कर्म की गति से प्रत्येक रात्रि में मन को सुन्दरी इस स्त्री को स्वप्नों में देखता है व बहुत समय तक रतिको धारण करता है ॥ २७ ॥ और प्रत्येक रात्रि में वही यह स्वप्न में पतिके समागम से कुछ समय में वेदों, वेदांगों के पारगामी पुत्र को पावेगी ॥ २८ ॥ और बहुत समयतक सङ्गम से इसमें अपना से पैदा हुए प्रेम से भावित पुत्रको वह ब्राह्मण सदैव स्वप्न में देखैगा ॥ २९ ॥ व हे महामुने ! पूर्वजन्म में इसने मेरा आराधन किया है और इसीके वरदान के लिये मैं इस समय प्रकट हुई हूं ॥ ३० ॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त महादेवी ने उस कन्या से आदर समेत कहा कि हे महाभागे, वत्से ! मेरा उत्तम वचन

सुनिये ॥ ३१ ॥ कि जब कभी किसी देशमें स्वप्न में देखेहुए पुराने पतिको देखना तब चतुर तुम उसको जानलेना ॥ ३२ ॥ और वह ब्राह्मण भी स्वप्नमें देखीहुई उत्तम नीतिवाली तुमको देखैगा तब तुम दोनोंका आपसमें वार्त्तालाप होगा ॥ ३३ ॥ व हे भद्रे ! तब उसके लिये तुम बहुत शास्त्रवाले अपने पुत्रको दीजियेगा और इस व्रतके उत्तमफलको उसके हाथमें देदीजियेगा ॥३४॥ व तबसे लगाकर हे सुमध्यमे ! उसीके वशमें स्थित होना और स्वप्नमें रतिके सिवा तुम दोनोंका देहवाला सङ्ग न होगा ॥ ३५ ॥ और काल से जब वह द्विजोत्तम मृत्यु को प्राप्त होगा तब अग्नि में पैठकर उसीके साथ मेरे स्थान को प्राप्त होगी ॥ ३६ ॥ व हे सुभ्रु ! तुम्हारे

अयि वत्से महाभागे शृणु मे परमं वचः ॥ ३१ ॥ यदा कदापि भर्त्तारं क्वापि देशे पुरातनम् ॥ द्रक्ष्यसि स्वप्नदृष्टं प्राग्ज्ञास्यसे त्वं विचक्षणा ॥ ३२ ॥ त्वां द्रक्ष्यति स विप्रोपि सुनयां स्वप्नलक्षणाम् ॥ तदा परस्परालापो युवयोः संभविष्यति ॥ ३३ ॥ तदा स्वतनयं भद्रे तस्मै देहि बहुश्रुतम् ॥ फलमस्य व्रतस्याग्र्यं तस्य हस्ते समर्पय ॥ ३४ ॥ ततः प्रभृति तस्यैव वशे तिष्ठ सुमध्यमे ॥ युवयोर्दैहिकः सङ्गो माभूत्स्वप्नरताद्दते ॥ ३५ ॥ कालात्पञ्चत्वमापन्ने तस्मिन्ब्राह्मणसत्तमे ॥ अग्निं प्रविश्य तेनैव सह यास्यसि मत्पदम् ॥ ३६ ॥ पुत्रस्ते भविता सुभ्रु सर्वलोकमनोरमः ॥ संपदश्च भविष्यन्ति प्राप्स्यते परमं पदम् ॥ ३७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा त्रिजगन्माता दत्त्वा तस्यै मनोरथम् ॥ तयोः संपश्यतोरेव क्षणेनादर्शनं गता ॥ ३८ ॥ सापि बाला वरं लब्ध्वा पार्वत्याः करुणानिधेः ॥ अवाप परमानन्दं पूजयामास तं गुरुम् ॥ ३९ ॥ तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां स मुनिर्लब्धलोचनः ॥ तस्याः पित्रोश्च तत्सर्वं रहस्याचष्ट धर्मवित् ॥ ४० ॥

सब लोकोंमें सुन्दर पुत्र होगा और संपत्तिया होंगी व उत्तम स्थान मिलैगा ॥ ३७ ॥ सूतजी बोले कि यह कहकर त्रिलोककी माता पार्वतीजी उसके लिये मनोरथको देकर उनके देखतेही क्षणभर में अन्तर्धान होगईं ॥ ३८ ॥ और वह कन्या भी दया की निधि पार्वतीजी से वरको पाकर बड़े आनन्द को प्राप्त हुई और उसने उस गुरुको पूजन किया ॥ ३९ ॥ व उस रातके बीतने पर नेत्रों को पाकर उस धर्मज्ञ मुनिने उसके माता, पितासे एकान्त में उस सब वृत्तान्त को कहा ॥ ४० ॥

इसके उपरान्त सबसे व यशस्विनी शारदासे पूंछकर और उनके ऊपर दया करके इच्छा के अनुकूल गतिवाले मुनि चलेगये ॥ ४१ ॥ इस प्रकार दिनों के बीततेहुए उस कन्या ने प्रत्येक क्षणमें सुखके बढ़ानेवाले पतिके समागम को स्वप्न में पाया ॥ ४२ ॥ और पार्वती के वरदान से उत्तम व्रतवाली शारदा ने स्वप्न में भी पति के सङ्ग के प्रभाव से गर्भ को धारण किया ॥ ४३ ॥ और पतिसे रहित उस शारदा सती को गर्भिणी सुनकर सबों ने धिक्कार ऐसा कहा व लोगों ने उसको परपतिगामिनी ऐसा कहा ॥ ४४ ॥ और मरेहुए उसके पतिके जो जाति व कुलके बन्धुलोग थे वे उस दुस्सह वार्त्ता को सुनकर उसके पिता के घरको गये ॥ ४५ ॥ इसके

अथ सर्वानुपामन्त्र्य शारदां च यशस्विनीम् ॥ विधायानुग्रहं तेषां ययौ स्वैरगतिर्मुनिः ॥ ४१ ॥ एवं दिनेषु गच्छत्सु सा बाला च प्रतिक्षणम् ॥ भर्तुः समागमं लेभे स्वप्ने सुखविवर्धनम् ॥ ४२ ॥ गौर्या वरप्रदानेन शारदा विशदव्रता ॥ दधार गर्भं स्वप्नेऽपि भर्तुः सङ्गानुभावतः ॥ ४३ ॥ तां श्रुत्वा भर्तृरहितां शारदां गर्भिणीं सतीम् ॥ सर्वे धिगिति प्रोचुस्तां जारिणीति जगुर्जनाः ॥ ४४ ॥ संपरेतस्य तद्भर्तुर्ये जातिकुलबान्धवाः ॥ तां वार्त्तां दुःसहां श्रुत्वा ययुस्तत्पितृमन्दिरम् ॥ ४५ ॥ अथ सर्वे समायाता ग्रामवृद्धाश्च पण्डिताः ॥ समाजं चक्रिरे तत्र कुलवृद्धैः समन्वितम् ॥ ४६ ॥ अन्तर्वत्नीं समाहूय शारदां विनताननाम् ॥ अतर्जयन्सुसंक्रुद्धाः केचिदासन्पराङ्मुखाः ॥ ४७ ॥ अयि जारिणि दुर्बुद्धे किमेतत्ते विचेष्टितम् ॥ अस्मत्कुले सुदुष्कीर्त्तिं कृतवत्यसि बालिशे ॥ ४८ ॥ इति संतर्जयन्तस्ते ग्रामवृद्धा मनीषिणः ॥ सर्वे संमन्त्रयामासुः किं कुर्म इति भाषिणः ॥ ४९ ॥ तत्रोचुः के च वृद्धास्तां बालां प्रति विनिर्दयाः ॥ एषा पापम

उपरान्त सब गाँव के वृद्ध व पण्डित लोग आये और उन्होंने कुलवृद्धों समेत समाज किया ॥ ४६ ॥ और गर्भिणी तथा नीचे झुकेहुए मुखवाली शारदा को बुलाकर क्रोधित होतेहुए कुछ लोग डरवानेलगे व कोई विमुख होगये ॥ ४७ ॥ व उन्होंने कहा कि हे दुर्बुद्धे, जारिणि ! तेरा यह क्या कर्म है हे बालिशे ! तूने हमारे वंश में अयश किया ॥ ४८ ॥ इस प्रकार डरवाते हुए वे गाँव के वृद्ध व विद्वान् लोग सब सम्मति करनेलगे और क्या करैं यह कहनेलगे ॥ ४९ ॥ और कितेक

निर्दयी वृद्धों ने वहां उस कन्या के विषय में यह कहा कि यह पापबुद्धिवाली कन्या दोनों वंशों को नाश करनेवाली है ॥ ५० ॥ और इसको मुंडनकर व कानों और नासिकाको काटकर अपने गोत्रसे अलग करके गॉव से बाहर यह निकाल दीजावै ॥ ५१ ॥ इस प्रकार सब विचारकर उसको वैसाही करने के लिये उद्यत हुए इसके उपरान्त आकाश में उपजी हुई अगोचर वाणी सुन पड़ी ॥ ५२ ॥ कि इसने पाप नहीं किया है और कुल का दूषण नहीं किया है व इसका व्रतभङ्ग नहीं हुआ है व यह स्त्री उत्तम आचरणवाली है ॥ ५३ ॥ और इसके उपरान्त जो मनुष्य यह कहैंगे कि यह स्त्री जारिणी है दोष से मूढ उन लोगों की जिह्वा

तिर्बाला कुलद्वयविनाशिनी ॥ ५० ॥ कृत्वास्याः केशवपनं छित्त्वा कर्णौ च नासिकाम् ॥ निर्वास्यतां बहिर्ग्रामात्परित्यज्य स्वगोत्रतः ॥ ५१ ॥ इति सर्वे समालोच्य तां तथाकर्तुमुद्यताः ॥ अथान्तरिक्षे संभूता शुश्रुवे वागगोचरा ॥ ५२ ॥ अनया न कृतं पापं न चैव कुलदूषणम् ॥ व्रतभङ्गो न चैतस्यास्सुचरित्रेयमङ्गना ॥ ५३ ॥ इतः परमियं नारी जारिणीति वदन्ति ये ॥ तेषां दोषविमूढानां सद्यो जिह्वा विदीर्यते ॥ ५४ ॥ इत्यन्तरिक्षे जनितां वाणीं श्रुत्वाऽशरीरिणीम् ॥ सर्वे प्रजहृषुस्तस्या जननीजनकादयः ॥ ५५ ॥ ततः ससंभ्रमाः सर्वे ग्रामवृद्धाः सभाजनाः ॥ मुहूर्त्तं मौनमालम्ब्य भीतास्तस्थुरधोमुखाः ॥ ५६ ॥ तत्र केचिदविश्वस्ता मिथ्यावाणीत्यवादिषुः ॥ तेषां जिह्वा द्विधा भिन्ना ववमुस्ते कृमीन्क्षणात् ॥ ५७ ॥ ततः संपूजयामासुस्तां बालां ज्ञातिबान्धवाः ॥ बान्धवाश्च स्त्रियो वृद्धाः शशंसुः साधु साध्विति ॥ ५८ ॥ मुमुचुः केचिदानन्दबाष्पबिन्दून्कुलोत्तमाः ॥ कुलस्त्रियः प्रमुदितास्तामुद्दिश्य समाश्व

शीघ्रही फट जावैगी ॥ ५४ ॥ आकाश में उपजी हुई इस वाणी को सुनकर सब उसके माता, पितादिक प्रसन्न हुए ॥ ५५ ॥ तदनन्तर संभ्रम समेत सब गॉव के वृद्ध व सभा के लोग थोड़ी देरतक चुप होकर डरकर नीचे मुख करके खड़े होगये ॥ ५६ ॥ और वहां पर कोई विश्वास न करनेवाले लोगों ने यह कहा कि वाणी मिथ्या है उनकी जिह्वा दो खण्ड होगई और वे क्षणभरमें कीटों को उगिलने लगे ॥ ५७ ॥ तदनन्तर कुटुम्ब के बन्धु लोगों ने उस स्त्रीकी पूजा किया और भाई लोगोंने व स्त्री तथा वृद्धोंने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसी प्रशंसा किया ॥ ५८ ॥ और कुलमें उत्तम कितेक लोग आनन्द के ऑसुवों को छोड़नेलगे व कुल की

स्त्रियां प्रसन्न हुईं व उसको उद्देश कर समझाने लगीं ॥ ५६ ॥ और वहां अन्य लोगों ने यह कहा कि देवता झूंठ नहीं कहता है क्योंकि इसने कैसे गर्भ को धारण किया है और यह निश्चयकर उत्तम आचरण से चलायमान नहीं हुई है ॥ ६० ॥ इस प्रकार संशय में पैठेहुए चित्तवाले सब सभाजनों को देखकर वहां एक वृद्ध जो सर्वज्ञ व लोक के तत्त्व को जाननेवाला था उसने कहा ॥ ६१ ॥ कि जो देखा व सुनाजाता है यह मायामय संसार है और इस क्षणभर रहनेवाले संसार में क्या होनहार व क्या असंभव है ॥ ६२ ॥ व निरूपण न करने योग्य तथा असंभव अर्थवाला संसार माया से उत्पन्न होता है और माया ईश्वर के वश में है व

सन् ॥ ५९ ॥ अथ तत्रापरे प्रोचुर्देवो वदति नानृतम् ॥ कथमेषा दधौ गर्भं शीलान्न चलिता ध्रुवम् ॥ ६० ॥ इति सर्वान्सभ्यजनान्संशयाविष्टचेतसः ॥ विलोक्य वृद्धस्तत्रैको सर्वज्ञो लोकतत्त्ववित् ॥ ६१ ॥ मायामयमिदं विश्वं दृश्यते श्रूयते च यत् ॥ किं भाव्यं किमभाव्यं वा संसारेऽस्मिन्क्षणात्मके ॥ ६२ ॥ अनिरूप्यमभूतार्थं मायया जायते स्फुटम् ॥ ईश्वरस्य वशे माया तस्य को वेद चेष्टितम् ॥ ६३ ॥ यूपकेतोश्च राजर्षेः शुक्रं निपतितं जले ॥ सशुक्रं तज्जलं पीत्वा वेश्या गर्भं दधौ किल ॥ ६४ ॥ मुनेर्विभाण्डकस्यापि शुक्रं पीत्वा सहाम्भसा ॥ हरिणी गर्भिणी भूत्वा ऋष्यशृङ्गमसूयत ॥ ६५ ॥ सुराष्ट्रस्य तथा राज्ञः करं स्पृष्ट्वा मृगाङ्गना ॥ तत्क्षणाद्गर्भिणी भूत्वा मुनिं प्रासूत तापसम् ॥ ६६ ॥ तथा सत्यवती नारी शफरीगर्भसंभवा ॥ तथैव महिषीगर्भो जातश्च महिषासुरः ॥ ६७ ॥ तथा सन्ति पुरा नार्यः कारुण्याद्गर्भसंभवाः ॥ तथा हि वसुदेवेन रोहिण्यास्तनयोऽभवत् ॥ ६८ ॥ देवतानां महर्षीणां शापेन च वरेण च ॥ अयुक्तमपि यत्कर्म

उस ईश्वर का कर्तव्य कौन जानता है ॥ ६३ ॥ क्योंकि यूपकेतु राजर्षि का वीर्य जलमें गिरपड़ा और वीर्य समेत उस जल को पीकर वेश्या ने गर्भ को धारण किया है ॥ ६४ ॥ और विभांडक मुनि के वीर्य को जल के साथ पीकर हरिणीने गर्भिणी होकर ऋष्यशृंग को पैदा किया है ॥ ६५ ॥ और सुराष्ट्र राजा के हाथ को छूकर मृगीने उसी क्षण गर्भिणी होकर तापस मुनि को पैदा किया है ॥ ६६ ॥ वैसेही सत्यवती स्त्री मछली के पेटसे पैदा हुई है और महिषासुर भैंसी के गर्भ से पैदा हुआ है ॥ ६७ ॥ और पुरातन समय स्त्रियां दयासे गर्भ में उत्पन्न हुई हैं व वसुदेव से रोहिणी के पुत्र हुआ है ॥ ६८ ॥ और देवताओं व महर्षियों के शाप व

वरदान से जो अयोग्य भी कर्म होता है वहभी योग्य होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६९ ॥ मुनि के शाप से साम्ब के पेटसे मुसल पैदा हुआ है और मुनियों के मन्त्र के गौरव से युवनाश्व राजा के गर्भ हुआ है ॥ ७० ॥ और निश्चय कर यह कल्याणी व अनिन्दित शारदा महर्षि के चरणों को सेवनेसे व महाव्रत के प्रभाव से गर्भ को धारण किये है ॥ ७१ ॥ इस विषय में इससे एकान्त में स्त्रियां सत्य पूंछैं तब महाजन लोगों की सन्देह निवृत्त होगी ॥ ७२ ॥ तदनन्तर उसके वचन से स्त्रियों ने परस्पर पूंछा और उसने उन सब स्त्रियों से बड़े अद्भुत अपने वृत्तान्त को कहा ॥ ७३ ॥ तदनन्तर जानते हुए सब लोग उस सतीको मानकर प्रसन्न हुए

युज्यते नात्र संशयः ॥ ६९ ॥ साम्बस्य जठराज्जातं मुसलं मुनिशापतः ॥ युवनाश्वस्य गर्भोऽभून्मुनीनां मन्त्रगौरवात् ॥ ७० ॥ नूनमेषापि कल्याणी महर्षेः पादसेवनात् ॥ महाव्रतानुभावाच्च धत्ते गर्भमनिन्दिता ॥ ७१ ॥ अस्मिन्नर्थे रहस्येनां सत्यं पृच्छन्तु योषितः ॥ ततो निवृत्तसंदेहो भविष्यति महाजनः ॥ ७२ ॥ ततस्तद्वचनादेव तामपृच्छन्स्त्रियो मिथः ॥ ताभ्यः शशंस तत्सर्वं सा स्ववृत्तं महाद्भुतम् ॥ ७३ ॥ विजानन्तस्ततः सर्वे मानयित्वा च तां सतीम् ॥ मोदमानाः प्रशंसन्तः प्रययुः स्वं स्वमालयम् ॥ ७४ ॥ अथ काले शुभे प्राप्ते शारदा विमलाशया ॥ असूत तनयं बाला बालार्कसमतेजसम् ॥ ७५ ॥ स कुमारो महोदारलक्षणः कमलेक्षणः ॥ अवाप्य महतीं विद्यां बाल्य एव महामतिः ॥ ७६ ॥ अथोपनीतो गुरुणा काले लोकमनोरमः ॥ स शारदेय एवेति लोके ख्यातिमवाप ह ॥ ७७ ॥ ऋग्वेदमष्टमे वर्षे नवमे यजुषां गणम् ॥ दशमे सामवेदं च लीलयाध्यगमत्सुधीः ॥ ७८ ॥ अथ त्रिलोकमहिते संप्राप्ते शिवपर्वणि ॥

व प्रशंसा करते हुए सबलोग अपने अपने घरको गये ॥ ७४ ॥ इसके उपरान्त उत्तम समय प्राप्त होनेपर निर्मल आशयवाली शारदा ने बाल सूर्यों के समान तेजवाले पुत्र को पैदा किया ॥ ७५ ॥ और बड़े उदार लक्षणोंवाला वह कमललोचन बालक बड़ी विद्या को पाकर बाल्यावस्थाही में बडा बुद्धिमान् हुआ ॥ ७६ ॥ इसके उपरान्त समय में गुरु से यज्ञोपवीत किया हुआ लोकोंमें सुन्दर वह संसार में शारदेय ही ऐसी प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ ॥ ७७ ॥ और उत्तम बुद्धिवाले उस बालक ने आठवें वर्ष में ऋग्वेद व नवें में यजुर्वेद और दशवें में लीला से सामवेद को पढ़ लिया ॥ ७८ ॥ इसके उपरान्त त्रिलोक से पूजित शिवपर्व के प्राप्त

होनेपर सब कहीं के बसनेवाले सबलोग गोकर्णक्षेत्रको गये ॥ ७९ ॥ और शारदाभी अपने पुत्रके साथ गोकर्णक्षेत्रको चलीगई ॥ ८० ॥ और वहां उसने सदैव स्वप्न में देखेहुए पूर्व जन्ममें पति को द्विजों व बन्धुगणों से घिरे तथा आये हुए देखा ॥ ८१ ॥ व उसको देख कर प्रेमसे पूर्ण तथा रोमांचित शरीरवाली शारदा आँसुवों के प्रवाह को रोंक कर उसी में नेत्रों को लगाकर खड़ी हुई ॥ ८२ ॥ और वह ब्राह्मण भी रूप तथा लक्षणों से लक्षित तथा स्वप्न में सदैव भोगी जाती हुई व अपना को रति देनेवाली उस स्त्री को देखकर ॥ ८३ ॥ व स्वप्न में अपने शरीर से उपजे हुए उस कुमार को भी देखकर विस्मय संयुत हुआ

गोकर्णं प्रययुः सर्वे जनाः सर्वनिवासिनः ॥ ७९ ॥ शारदापि स्वपुत्रेण गोकर्णं प्रययौ सती ॥ ८० ॥ तत्रापश्यत्समायातं सदा स्वप्नेषु लक्षितम् ॥ पूर्वजन्मनि भर्तारं द्विजबन्धुजनावृतम् ॥ ८१ ॥ तं दृष्ट्वा प्रेमनिर्विण्णा पुलकाङ्कितविग्रहा ॥ निरुद्धबाष्पप्रसरा तस्थौ तन्न्यस्तलोचना ॥ ८२ ॥ स च विप्रोऽपि तां दृष्ट्वा रूपलक्षणलक्षिताम् ॥ स्वप्ने सदा भुज्यमानामात्मनो रतिदायिनीम् ॥ ८३ ॥ तं कुमारमपि स्वप्ने दृष्ट्वा चात्मशरीरजम् ॥ विलोक्य विस्मयाविष्टस्तदन्तिकमुपाययौ ॥ ८४ ॥ भद्रे त्वां प्रष्टुमिच्छामि यत्किंचिन्मनसि स्थितम् ॥ इति प्रथममाभाष्य रहः स्थानं निनाय ताम् ॥ ८५ ॥ का त्वं कथय वामोरु कस्य भार्यासि सुव्रते ॥ को देशः कस्य वा पुत्री किन्नामेत्यब्रवीच्च ताम् ॥ ८६ ॥ इति तेन समापृष्टा सा नारी बाष्पलोचना ॥ व्याजहारात्मनो वृत्तं बाल्ये वैधव्यकारणम् ॥ ८७ ॥ पुनः पप्रच्छ तां बालां पुत्रः कस्यायमुत्तमः ॥ कथं धृतो वा जठरे बालोऽयं चन्द्रसन्निभः ॥ ८८ ॥ शारदोवाच ॥ एष मे तनयः स्वामिन्सर्व

और उसके समीप आया ॥ ८४ ॥ व उसने कहा कि हे भद्रे ! जो कुछ तुम्हारे मनमें स्थित हो उसको मैं पूछना चाहता हूं यह पहले कहकर उसको एकान्त स्थान में लेगया ॥ ८५ ॥ व उसने कहा कि हे वामोरु ! तुम कौन हो कहिये व किसकी स्त्री हो और कौन देश है व किसकी कन्या हो और क्या नाम है यह उसमे कहा ॥ ८६ ॥ उससे यह पूंछी हुई आँसुवों समेत लोचनोंवाली उस स्त्रीने बाल्यावस्था में विधवा होनेका कारण व अपना वृत्तान्त कहा ॥ ८७ ॥ फिर उस स्त्रीसे कहा कि यह किसका उत्तम पुत्र है और चन्द्रमा के समान यह बालक कैसे पेट में धारण किया गया है ॥ ८८ ॥ शारदा बोली कि हे स्वामिन् ! सब

विद्याओं में प्रवीण यह मेरा पुत्र मेरेही नाम से शारदेय ऐसा कहा गयाहै ॥ ८९ ॥ उसका यह वचन सुनकर द्विजोत्तमने हँसकर कहा कि हे भामिनि ! तुम्हारा चरित्र कष्टसे भी अधिक कष्ट है ॥ ९० ॥ कि ब्याहही करके तुम्हारा पति मरगया तो कैसे यह पुत्र पैदाहुआ उसका कारण कहिये ॥ ९१ ॥ उससे कहीहुई इस वाणी को सुनकर वह बहुत लज्जित हुई और क्षणभर आँसुवों से संयुत मुखवाली होकर धैर्य से इस प्रकार बोली ॥ ९२ ॥ (शारदा बोली) कि हे महामते ! परिहास के कहने से कुछ प्रयोजन नहीं है तुम मुझको जानते हो व मैं भी तुमको जानती हूं इसवस्तु में हमारा व तुम्हारा दोनों का मनही प्रमाण है ॥ ९३ ॥ यह कहकर व

विद्याविशारदः ॥ शारदेय इति प्रोक्तो मम नाम्नैव कल्पितः ॥ ८९ ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा विहस्य ब्राह्मणोत्तमः ॥ प्रोवाच कष्टात्कष्टं हि चरितं तव भामिनि ॥ ९० ॥ पाणिग्रहणमात्रं ते कृत्वा भर्त्ता मृतःकिल ॥ कथं चायं सुतो जातस्त स्य कारणमुच्यताम् ॥ ९१ ॥ इति तेनोदितां वाणीमाकर्ण्यातीव लज्जिता ॥ क्षणं चाश्रुमुखी भूत्वा धैर्यादित्थमभा षत ॥ ९२ ॥ शारदोवाच ॥ तदलं परिहासोक्त्या त्वं मां वेत्सि महामते ॥ त्वामहं वेद्मि चार्थेऽस्मिन्प्रमाणं मन आव योः ॥ ९३ ॥ इत्युक्त्वा सर्वमावेद्य देव्या दत्तं वरादिकम् ॥ व्रतस्यार्धं कुमारं तं ददौ तस्मै धृतव्रतम् ॥ ९४ ॥ सोऽपि प्रमुदितो विप्रः कुमारं प्रतिगृह्य तम् ॥ पित्रोरनुमतेनैव तां निनाय निजालयम् ॥ ९५ ॥ सापि स्थित्वा बहून्मासांस्तस्य विप्रस्य मन्दिरे ॥ तस्मिन्कालवशं प्राप्ते प्रविश्याग्निं तमन्वगात् ॥ ९६ ॥ ततस्तौ दम्पती भूत्वा विमानं दिव्यमा स्थितौ ॥ दिव्यभोगसमायुक्तौ जग्मतुः शिवमन्दिरम् ॥ ९७ ॥ इत्येतत्पुण्यमाख्यानं मया समनुवर्णितम् ॥ पठतां

देवीजी से दियेहुए सब वरादिक को बतलाकर व्रत के अर्धभाग को व व्रतको धारनेवाले उस बालक को देदिया ॥ ९४ ॥ और वह ब्राह्मण भी प्रसन्न होकर उस बालक को लेकर माता, पिता के सम्मत से उसको अपने घरको लेगया ॥ ९५ ॥ और वह भी उस ब्राह्मण के मन्दिर में बहुत दिनोंतक टिककर जब वह मृत्यु के वशमें प्राप्त हुआ तब अग्नि में पैठकर उसके पीछे चलीगई ॥ ९६ ॥ तदनन्तर वे दोनों स्त्री पुरुष दिव्य विमान पै चढ़कर दिव्य सुखों से संयुत शिवजी के मन्दिर को चलेगये ॥ ९७ ॥ यह पुण्य कथानक मैंने कहा जो कि पढ़ने व सुननेवाले लोगों को भलीभाति भुक्ति, मुक्ति के

फलका दायक है ॥ ९८ ॥ और आयुर्बल, आरोग्य, सम्पत्ति व धन, धान्य को बढ़ानेवाला है और स्त्रियों के मङ्गल, सौभाग्य, सन्तान व सुख का साधन है ॥ ९९ ॥ पातकसमूहोंके नाशक इस गौरी व महेश्वर व्रतके पुण्यकीर्तनरूप कथानक को जो भक्तिसे एक बार सुनता व कहताहै वह सुखों को भोगकर सनातन स्थान को प्राप्त होता है ॥ १०० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां शारदाख्यानवर्णननामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

दो• । जिमि रुद्राक्ष प्रभाव सों भइ यक वेश्या मुक्त । सोइ बीस अध्याय में चरित अहै अति गुप्त ॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त मैं संक्षेप से रुद्राक्ष का

शृण्वतां सम्यग्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ९८ ॥ आयुरारोग्यसम्पत्तिधनधान्यविवर्द्धनम् ॥ स्त्रीणां मङ्गलसौभाग्यसन्तानसुखसाधनम् ॥ ९९ ॥ एतन्महाख्यानमघौघनाशनं गौरीमहेशव्रतपुण्यकीर्तनम् ॥ भक्त्या सकृद्यः शृणुयाच्च कीर्तयेद्भुक्त्वा स भोगान्पदमेति शाश्वतम् ॥ १०० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे शारदाख्यानवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ अथ रुद्राक्षमाहात्म्यं वर्णयामि समासतः ॥ सर्वपापक्षयकरं शृण्वताम्पठतामपि ॥ १ ॥ अभक्तो वापि भक्तो वा नीचो नीचतरोपि वा ॥ रुद्राक्षान्धारयेद्यस्तु मुच्यते सर्वपातकैः ॥ २ ॥ रुद्राक्षधारणं पुण्यं केन वा सदृशं भवेत् ॥ महाव्रतमिदं प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३ ॥ सहस्रं धारयेद्यस्तु रुद्राक्षाणां धृतव्रतः ॥ तं नमन्ति सुरास्सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः ॥ ४ ॥ अभावे तु सहस्रस्य बाह्वोः षोडश षोडश ॥ एकं शिखायां करयोर्द्वादश द्वाद

माहात्म्य कहताहूं जोकि सुनने व पढ़नेवालों के भी सब पापों का नाशक है ॥ १ ॥ अभक्त या भक्त व नीच और नीचसे भी अधिक जो रुद्राक्षों को धारण करता है वह सब पापों से छूट जाता है ॥ २ ॥ और रुद्राक्ष धारण का पुण्य किसके समान है व तत्त्वदर्शी मुनियोंने इसको महाव्रत कहा है ॥ ३ ॥ और व्रतों को धारने वाला जो मनुष्य हज़ार रुद्राक्षोंको धारण करताहै उसको सब देवता प्रणाम करते हैं और वह शिवजीके समान होताहै ॥ ४ ॥ व हजारके न होने में दोनों भुजाओं

में सोलह सोलह व एक चोटी में और हाथोंमें बारह बारह धारण करै ॥ ५ ॥ व गले में बत्तीस और मस्तक में चालीस तथा एक एक कान में छः छः और वक्षस्थल में एक सौ आठ रुद्राक्षों को जो धारण करता है वह भी शिवजीकी नाईं पूजा जाता है ॥ ६ ॥ और मोती, मूंगा, स्फटिक, चांदी, वैदूर्य व सुवर्ण समेत रुद्राक्षों को जो धारण करता है वह शिव होजाता है ॥ ७ ॥ और जैसे मिलैं वैसे रुद्राक्षों को भी जो केवल धारण करता है उसको पाप नहीं छूते हैं जैसे कि अन्धकार सूर्य को नहीं स्पर्श करते हैं ॥ ८ ॥ व रुद्राक्ष की मालासे जपा हुआ मन्त्र अमित फलको देताहै और बिन रुद्राक्ष से जप पुरुषों को उतनेही फल को देताहै ॥ ९ ॥ और

शैव हि ॥ ५ ॥ द्वात्रिंशत्कण्ठदेशे तु चत्वारिंशत्तु मस्तके ॥ एकैककर्णयोः षट् षड् वक्षस्यष्टोत्तरं शतम् ॥ ६ ॥ यो धारयति रुद्राक्षान्रुद्रवत्सोपि पूज्यते ॥ मुक्ताप्रवालस्फटिकरौप्यवैदूर्यकाञ्चनैः ॥ समेतान्धारयेद्यस्तु रुद्राक्षान्स शिवो भवेत् ॥ ७ ॥ केवलानपि रुद्राक्षान्यथालाभं बिभर्ति यः ॥ तं न स्पृशन्ति पापानि तमांसीव विभावसुम् ॥ ८ ॥ रुद्राक्षमालया जप्तो मन्त्रोऽनन्तफलप्रदः ॥ अरुद्राक्षो जपः पुंसां तावन्मात्रफलप्रदः ॥ ९ ॥ यस्याङ्गे नास्ति रुद्राक्ष एकोपि बहुपुण्यदः ॥ तस्य जन्म निरर्थं स्यात्त्रिपुण्ड्ररहितं यदि ॥ १० ॥ रुद्राक्षं मस्तके बद्धा शिरस्स्नानं करोति यः ॥ गङ्गास्नानफलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥ ११ ॥ रुद्राक्षं पूजयेद्यस्तु विना तोयाभिषेचनम् ॥ यत्फलं लिङ्गपूजायास्तदेवाप्नोति निश्चितम् ॥ १२ ॥ एकवक्त्राः पञ्चवक्त्रा एकादशमुखाः परे ॥ चतुर्दशमुखाःकेचिद्रुद्राक्षा लोकपूजिताः ॥ १३ ॥ भक्त्या सम्पूजितो नित्यं रुद्राक्षः शङ्करात्मकः ॥ दरिद्रं वापि कुरुते राजराजश्रियान्वितम् ॥ १४ ॥ अत्रेदं पुण्य

बहुत पुण्य को देनेवाला एक भी रुद्राक्ष जिसके अंगमें नहीं है उसका जन्म निरर्थक है यदि त्रिपुण्ड्र से रहित होवै ॥ १० ॥ और मस्तक में रुद्राक्ष को बाँधकर जो शिर से स्नान करता है उसको गङ्गास्नान का फल होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥ और जो जल के स्नान के विना रुद्राक्ष को पूजता है वह उसी फल को निश्चयकर पाता है जोकि लिङ्ग के पूजन का होता है ॥ १२ ॥ और एकमुख, पांचमुख तथा अन्य गेरह मुखवाले व कोई चौदह मुखवाले रुद्राक्ष संसार में पूजित होते हैं ॥ १३ ॥ नित्य भक्ति से पूजा हुआ शंकरात्मक रुद्राक्ष निर्धनी मनुष्य को भी राजराज की लक्ष्मी से संयुत करता है ॥ १४ ॥ विद्वान्

लोग इस विषय में इस पवित्र चरित्र को वर्णन करते हैं जोकि सुनने व कहने से भी महापातकों का विनाशकारक है ॥ १५ ॥ काश्मीर देश का भद्रसेन ऐसा प्रसिद्ध राजा हुआ है उसके सुधर्मा नामक बलवान् पुत्र हुआ ॥ १६ ॥ और उत्तम गुणवाला कोई तारक नामक उसके मन्त्री का पुत्र राजपुत्र का बडा उत्तम मित्र हुआ है ॥ १७ ॥ वे दोनों रूप से सुन्दर बालक बड़े स्नेही थे और विद्या के अभ्यास में परायण वे दोनों साथही क्रीडा करते थे ॥ १८ ॥ और सदैव सब अगों में रुद्राक्ष का भूषण किये उदार अंगवाले वे दोनों घूमते थे व सदैव भस्म को धारण किये रहते थे ॥ १९ ॥ और सुवर्ण व रत्नमय हार, बजुल्ला,

माख्यानं वर्णयन्ति मनीषिणः ॥ महापापक्षयकरं श्रवणात्कीर्त्तनादपि ॥ १५ ॥ राजा काश्मीरदेशस्य भद्रसेन इति श्रुतः ॥ तस्य पुत्रोऽभवद्धीमान्सुधर्मानाम वीर्यवान् ॥ १६ ॥ तस्यामात्यसुतः कश्चित्तारको नाम सद्गुणः ॥ ब भूव राजपुत्रस्य सखा परमशोभनः ॥ १७ ॥ तावुभौ परमस्निग्धौ कुमारौ रूपसुन्दरौ ॥ विद्याभ्यासपरौ बाल्ये सह क्रीडां प्रचक्रतुः ॥ १८ ॥ तौ सदा सर्वगात्रेषु रुद्राक्षकृतभूषणौ ॥ विचेरतुरुदाराङ्गौ सततं भस्मधारिणौ ॥ १९ ॥ हा रकेयूरकटककुण्डलादिविभूषणम् ॥ हेमरत्नमयं त्यक्त्वा रुद्राक्षान्दधतुश्च तौ ॥ २० ॥ रुद्राक्षमालिनौ नित्यं रुद्राक्ष करकङ्कणौ ॥ रुद्राक्षकण्ठाभरणौ सदा रुद्राक्षकुण्डलौ ॥ २१ ॥ हेमरत्नाद्यलङ्कारे लोष्टपाषाणदर्शनौ ॥ बोध्यमानावपि जनैर्न रुद्राक्षान्व्यमुञ्चताम् ॥ २२ ॥ तस्य काश्मीरराजस्य गृहं प्राप्तो यदृच्छया ॥ पराशरो मुनिवरः साक्षादिव पिताम हः ॥ २३ ॥ तमर्चयित्वा विधिवद्राजा धर्मभृतां वरः ॥ पप्रच्छ सुखमासीनं त्रिकालज्ञं महामुनिम् ॥ २४ ॥ राजोवाच ॥

कङ्कण व कुण्डलादिक भूषण को छोड़कर वे रुद्राक्षों को धारण करते थे ॥ २० ॥ और नित्य रुद्राक्ष की माला पहने व रुद्राक्ष का हाथों में कङ्कण पहने तथा रुद्राक्ष का कण्ठा पहने और सदैव रुद्राक्ष के कुण्डल पहने रहते थे ॥ २१ ॥ और सुवर्ण व रत्नादिकों के भूषण में मिट्टी के ढेला व पत्थर की दृष्टिसे देखते थे और लोगों से समझाये हुए भी उन्होंने रुद्राक्षों को नहीं छोड़ा ॥ २२ ॥ उस काश्मीर देश के राजा के घरमें साक्षात् ब्रह्मा की नाईं पराशरजी यकायक प्राप्त हुए ॥ २३ ॥ और विधिपूर्वक उनको पूजकर धर्मधारियों में श्रेष्ठ राजाने सुखपूर्वक बैठे हुए त्रिकालज्ञ महामुनि से पूंछा ॥ २४ ॥ राजा बोले कि हे भगवन् !

यह मेरा पुत्र और वह मेरे मन्त्री का पुत्र भी नित्य रुद्राक्ष को धारण करते हैं व रत्नों के भूषण में इच्छा नहीं करते हैं ॥ २५ ॥ रत्नों का भूषण पहनने में सदैव सिखलाये हुए भी वे हमारे वचनोंको उल्लङ्घनकर रुद्राक्षही में तत्पर रहते हैं ॥ २६ ॥ और कभी किसीने इन बालकों को सिखलाया नहीं है तो यह स्वाभाविकी वृत्ति कैसे बालकों की हुई ॥२७॥ पराशरजी बोले कि हे राजन् ! सुनिये बुद्धिमान् तुम्हारे पुत्र व तुम्हारे मन्त्री के पुत्र का जैसा आश्चर्यदायक पहले का वृत्तान्तहै वैसा मैं कहूंगा ॥ २८ ॥ कि पुरातन समय नन्दिग्राम में शृंगार से सुन्दर रूपवाली कोई महानन्दा ऐसी प्रसिद्ध वेश्या हुई है ॥ २९ ॥ उसके पूर्ण चन्द्रमा के समान छत्र व

भगवन्नेष पुत्रो मे सोपि मन्त्रिसुतश्च मे ॥ रुद्राक्षधारिणौ नित्यं रत्नाभरणनिःस्पृहौ ॥ २५ ॥ शास्यमानावपि सदा रत्नाकल्पपरिग्रहे ॥ विलङ्घितास्मद्वचनौ रुद्राक्षेष्वेव तत्परौ ॥ २६ ॥ नोपदिष्टाविमौ बालौ कदाचिदपि केन चित् ॥ एषा स्वाभाविकी वृत्तिः कथमासीत्कुमारयोः ॥ २७ ॥ पराशर उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तव पुत्रस्य धीमतः ॥ यथा त्वन्मन्त्रिपुत्रस्य प्राग्वृत्तं विस्मयावहम् ॥ २८ ॥ नन्दिग्रामे पुरा काचिन्महानन्देति विश्रुता ॥ बभूव वारवनिता शृङ्गारललिताकृतिः ॥ २९ ॥ छत्रं पूर्णेन्दुसङ्काशं यानं स्वर्णविराजितम् ॥ चामराणि सुदण्डानि पादुके च हिरण्मये ॥ ३० ॥ अम्बराणि विचित्राणि महार्हाणि द्युमन्ति च ॥ चन्द्ररश्मिनिभाः शय्याः पर्यङ्काश्च हिरण्मयाः॥ ३१ ॥ गावो महिष्यः शतशो दासाश्च शतशस्तथा ॥ ३२ ॥ सर्वाभरणदीप्ताङ्ग्यो दास्यश्च नवयौवनाः ॥ भूषणानि परार्ध्याणि नवरत्नोज्ज्वलानि च ॥ ३३ ॥ गन्धकुङ्कुमकस्तूरीकर्पूरागुरुलेपनम् ॥ चित्रमाल्यावतंसश्च यथेष्टं मृष्ट

सोने से शोभित रथ तथा उत्तम दण्डवाले छत्र और सुवर्णमय खड़ाऊं थीं ॥ ३० ॥ और बडे मोलवाले व सुन्दर विचित्र वस्त्र थे तथा चन्द्रमा की किरणों के समान शय्या व सोने के पलँग थे ॥ ३१॥ और सैकड़ों गाईं,भैंसी व सेवक थे ॥ ३२॥ और सब भूषणोंसे चमकते हुए अगोंवाली तथा नवीन यौवनवाली दासियां थीं और नवीन रत्नों से उज्ज्वल बड़े कीमती भूषण थे ॥ ३३ ॥ और चन्दन, कुंकुम, कस्तूरी व कपूर तथा अगुरु का लेपन और विचित्र माला व शिरोभूषण तथा

इच्छा के अनुकूल दिव्य भोजन था ॥ ३४ ॥ और अनेक भांति के विचित्र वितानों से संयुत तथा अनेक प्रकार के धान्यों से संयुत व बहुत हजार रत्नों से संयुत घर था और करोड़ संख्या से अधिक धन था ॥ ३५॥ इस प्रकार ऐश्वर्य से संयुत इच्छाके अनुकूल विहार करनेवाली वेश्या सत्य के धर्म में परायण सदैव शिवपूजन में लगी थी ॥ ३६ ॥ और सदैव शिवजी की कथा में आसक्त और शिवनाम की कथा में उत्कंठित थी और शिवभक्तों के चरणों को प्रणाम करने वाली व सदैव शिवभक्ति में परायण थी॥ ३७ ॥ और क्रीड़ा के कारण वह वेश्या नाट्यमण्डप के मध्य में रुद्राक्षों से एक वानर व एक मुर्गे को भूषित करके ॥३८॥

भोजनम् ॥ ३४ ॥ नानाचित्रवितानाढ्यं नानाधान्यमयं गृहम् ॥ बहुरत्नसहस्राढ्यं कोटिसंख्याधिकं धनम् ॥ ३५ ॥ एवं विभवसम्पन्ना वेश्या कामविहारिणी ॥ शिवपूजारता नित्यं सत्यधर्मपरायणा ॥ ३६ ॥ सदाशिवकथासक्ता शिवनामकथोत्सुका ॥ शिवभक्ताङ्घ्रयवनता शिवभक्तिरतानिशम् ॥ ३७ ॥ विनोदहेतोः सा वेश्या नाट्यमण्डप मध्यतः ॥ रुद्राक्षैर्भूषयित्वैकं मर्कटं चैव कुक्कुटम् ॥ ३८ ॥ करतालैश्च गीतैश्च सदा नर्तयति स्वयम् ॥ पुनश्च विहसन्त्युच्चैः सखीभिः परिवारिता ॥ ३९ ॥ रुद्राक्षैः कृतकेयूरकर्णाभरणभूषणः ॥ मर्कटः शिक्षया तस्याः सदा नृत्यति बालवत् ॥ ४० ॥ शिखायां बद्धरुद्राक्षः कुक्कुटः कपिना सह ॥ चिरं नृत्यति नृत्यज्ञः पश्यतां चित्रमावहन् ॥ ४१ ॥ एकदा भवनं तस्याः कश्चिद्वैश्यः शिवव्रती ॥ आजगाम सरुद्राक्षस्त्रिपुण्ड्री निर्ममः कृती ॥ ४२ ॥ स बिभ्रद्भस्म

सदैव करतालों व गीतों से आपही नचाती थी और फिर सखियों से घिरी हुई वह उच्च स्वर से हँसती थी ॥ ३९ ॥ और रुद्राक्षों से किये हुए बजुल्ला व कर्णाभरण भूषणोंवाला वानर उसकी शिक्षा से सदैव वानर की नाईं नाचता था ॥ ४० ॥ और चोटी में बँधे हुए रुद्राक्षवाला मुर्गा जोकि नृत्य को जानता था देखनेवालों को आश्चर्य प्राप्त कराता हुआ वह वानर के साथ बहुत देरतक नाचता था ॥ ४१ ॥ एक समय उसके घरको कोई शैव वैश्य आया जोकि रुद्राक्ष को पहने व ममतारहित तथा पुण्यवान् था ॥ ४२ ॥ और उत्तम पहुँचे में वह बड़े रत्नों से जटित श्रेष्ठ कङ्कण को पहने व भस्म को धारण किये था

दुपहरी के सूर्यनारायण के समान जलते हुए ॥ ४३ ॥ उस आये हुए वैश्य को बडी प्रसन्नता से पूजकर उस आश्चर्य संयुत वेश्या ने पहुँचे में बँधे हुए उस कङ्कण को देखकर कहा ॥ ४४ ॥ कि हे साधो ! महारत्नमय जो यह कंकण तुम्हारे हाथमें स्थित है दिव्य स्त्रियों के भूषण के योग्य वह मेरे मन को हरता है ॥ ४५ ॥ इस प्रकार उत्तम रत्नों से संयुत हाथ के भूषण में चाहवाली उस वेश्या को देखकर उदारबुद्धिवाले उस वैश्य ने मुसक्यान समेत कहा ॥ ४६ ॥ (वैश्य बोला) कि इस दिव्य व श्रेष्ठ रत्नमें यदि तुम्हारा मन अभिलाष करता है तो बहुत प्रसन्न होकर उसीको लीजिये और इसका क्या मूल्य दोगी ॥ ४७ ॥ वेश्या बोली कि हम

तमागतं सा गणिका सम्पूज्य परया मुदा ॥ तत्प्रकोष्ठगतं वीक्ष्य कङ्कणं प्राह विस्मिता ॥ ४४ ॥ महारत्नपरिस्तीर्णं ज्वलन्तं तरुणार्कवत् ॥ ४३ ॥ विशदे प्रकोष्ठे वरकङ्कणम् ॥ महारत्नमयः सोऽयं कङ्कणस्त्वत्करे स्थितः ॥ मनो हरति मे साधो दिव्यस्त्रीभूषणोचितः ॥ ४५ ॥ इति तां वररत्नाढ्ये सस्पृहां करभूषणे ॥ वीक्ष्योदारमतिर्वैश्यः सस्मितं समभाषत ॥ ४६ ॥ वैश्य उवाच ॥ अस्मिन्रत्नवरे दिव्ये यदि ते सस्पृहं मनः ॥ तमेवादत्स्व सुप्रीता मौल्यमस्य ददासि किम् ॥ ४७ ॥ वेश्योवाच ॥ वयं तु स्वैरचारिण्यो वेश्यास्तु न पतिव्रताः ॥ अस्मत्कुलोचितो धर्मो व्यभिचारो न संशयः ॥ ४८ ॥ यद्येतद्रत्नखचितं ददासि करभूषणम् ॥ दिनत्रयमहोरात्रं तव पत्नी भवाम्यहम् ॥ ४९ ॥ वैश्य उवाच ॥ तथास्तु यदि ते सत्यं वचनं वारवल्लभे ॥ ददामि रत्नवलयं त्रिरात्रं भव मद्वधूः ॥ ५० ॥ एतस्मिन्व्यवहारे तु प्रमाणं शशिभास्करौ ॥ त्रिवारं सत्यमित्युक्त्वा हृदयं मे स्पृश प्रिये ॥ ५१ ॥ वेश्योवाच ॥

तो इच्छा के अनुसार काम करनेवाली वेश्या हैं पतिव्रता नहीं हैं और हमारे कुलके योग्य धर्म व्यभिचार है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ यदि रत्नोंसे जटित इस हाथ के भूषण को तुम दोगे तो मैं तीन दिन अहर्निश तुम्हारी स्त्री हूंगी ॥ ४९ ॥ वैश्य बोला कि हे वारवल्लभे ! वैसाही होगा यदि तुम्हारा वचन सत्य है तो मैं रत्नजटित कङ्कण को देता हू तुम तीन रात तक मेरी स्त्री होवो ॥ ५० ॥ इस व्यवहार में चन्द्रमा व सूर्य साक्षी हैं हे प्रिये ! तीन बार सत्य कहकर मेरा हृदय छुवो ॥ ५१ ॥ वेश्या बोली कि हे प्रभो ! तीन दिन अहर्निश तुम्हारी स्त्री होकर स्त्रीका काम करूंगी यह कहकर उस वेश्याने उसके हृदयको

छूलिया ॥ ५२ ॥ इसके उपरान्त उस वैश्यने उसके लिये रत्नों का कङ्कण दिया व रत्नमय लिङ्गको इसके हाथ में देकर यह कहा ॥ ५३ ॥ कि हे कान्ते ! मेरे प्राणों के समान इस रत्नमय शिवलिङ्गकी तुम रक्षा करना क्योंकि उसकी हानि होना मेरी मृत्यु है ॥ ५४ ॥ ऐसाही होगा यह कहकर वह वेश्या रत्नोंसे उत्पन्न लिङ्गको लेकर नाट्यमण्डप के खम्भ में धरकर घरको चलीगई ॥ ५५ ॥ और परस्त्रीगामी धर्मवाले उस वैश्य के साथ उस वेश्याने कोमल शय्यासे शोभित पलँग पै सुखपूर्वक शयन किया ॥ ५६ ॥ तदनन्तर आधीरात में नाट्यमण्डप के मध्यमें यकायक आग लगगई और उस मण्डप को अचानकही घेर लिया ॥ ५७ ॥ और जब मण्डप

दिनत्रयमहोरात्रं पत्नी भूत्वा तव प्रभो ॥ सहधर्मं चरामीति सा तद्धृदयमस्पृशत् ॥ ५२ ॥ अथ तस्यै स वैश्यस्तु प्रददौ रत्नकङ्कणम् ॥ लिङ्गं रत्नमयं चास्या हस्ते दत्त्वेदमब्रवीत् ॥ ५३ ॥ इदं रत्नमयं शैवं लिङ्गं मत्प्राणसंनिभम् ॥ रक्षणीयं त्वया कान्ते तस्य हानिर्मृतिर्मम ॥ ५४ ॥ एवमस्त्विति सा कान्ता लिङ्गमादाय रत्नजम् ॥ नाट्यमण्डपिकास्तम्भे निधाय प्राविशद् गृहम् ॥ ५५ ॥ सा तेन संगता रात्रौ वैश्येन विटधर्मिणा ॥ सुखं सुष्वाप पर्यङ्के मृदुतल्पोपशोभिते ॥ ५६ ॥ ततो निशीथसमये नाट्यमण्डपिकान्तरे ॥ अकस्मादुत्थितो वह्निस्तमेव सहसावृणोत् ॥ ५७ ॥ मण्डपे दह्यमाने तु सहसोत्थाय संभ्रमात् ॥ सा वेश्या मर्कटं तत्र मोचयामास बन्धनात् ॥ ५८ ॥ स मर्कटो मुक्तबन्धः कुक्कुटेन सहामुना ॥ भीतो दूरं प्रदुद्राव विधूयाग्निकणान्बहून् ॥ ५९ ॥ स्तम्भेन सह निर्दग्धं तल्लिङ्गं शकलीकृतम् ॥ दृष्ट्वा वेश्या च वैश्यश्च दुरन्तं दुःखमापतुः ॥ ६० ॥ दृष्ट्वा प्राणसमं लिङ्गं दग्धं वैश्यपतिस्तथा ॥ स्वयमप्याप्त

जलनेलगा तब यकायक शीघ्रता से उठकर उस वेश्या ने वहां वानर को बन्धन से छुड़ा दिया ॥ ५८ ॥ इस मुर्गा समेत वह वानर-बन्धन से छूटकर बहुतसे अग्नि के कणों को झाड़कर डरकर दूर भागगये ॥ ५९ ॥ और स्तम्भ (खम्भ) समेत जले व खण्ड खण्ड कियेहुए उस लिङ्ग को देखकर वेश्या और वैश्य बड़े दुःख को प्राप्त हुए ॥ ६० ॥ और प्राणों के समान लिङ्ग को जलाहुआ देखकर आप भी वैश्य ने वैराग्य को प्राप्त होकर मरने के लिये बुद्धि

किया ॥ ६१ ॥ और निर्वेद के कारण बहुत दुःख से वैश्य ने उस दुःखित वेश्या से कहा कि शिवलिङ्ग के टूट जानेपर मैं जीना नहीं चाहता हूं ॥ ६२ ॥ हे भद्रे ! अपने अधिक बलवान् वैश्यों से मेरी चिताको बनवाइये क्योंकि शिवजी में मनको लगाकर मैं अग्निमें पैठूंगा ॥ ६३ ॥ यदि ब्रह्मा, इन्द्र व विष्णु आदिक देवता मिलकर मुझको मना करैंगे तौभी इसी क्षण अग्निमें पैठकर मैं प्राणों को छोड़दूंगा ॥ ६४ ॥ इस प्रकार पुष्ट हठवाले उस वैश्य को जानकर बहुत दुःखित वेश्याने अपने नगर से बाहर अपने नौकरों से चिता को बनवाया ॥ ६५ ॥ तदनन्तर शिवजी की भक्ति से पवित्र वह बुद्धिमान् वैश्य लोगों के देखतेहुए जलतीहुई अग्नि

निर्वेदो मरणाय मतिं दधौ ॥ ६१ ॥ मिर्वेदान्नितरां खेदाद्वैश्यस्तामाह दुःखिताम् ॥ शिवलिङ्गे तु निर्भिन्ने नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ६२ ॥ चितां कारय मे भद्रे तव भृत्यैर्बलाधिकैः॥शिवे मनः समावेश्य प्रविशामि हुताशनम् ॥ ६३ ॥ यदि ब्रह्मेन्द्रविष्ण्वाद्या वारयेयुः समेत्य माम् ॥ तथाप्यस्मिन्क्षणे धीरः प्रविश्याग्निं त्यजाम्यसून् ॥ ६४ ॥ तमेवं दृढबन्धं सा विज्ञाय बहुदुःखिता ॥ स्वभृत्यैः कारयामास चितां स्वनगराद्बहिः ॥ ६५ ॥ ततः स वैश्यः शिवभक्तिपूतः प्रदक्षिणीकृत्य समिद्धमग्निम् ॥ विवेश पश्यत्सु जनेषु धीरः सा चानुतापं युवती प्रपेदे ॥ ६६ ॥ अथ सा दुःखिता नारी स्मृत्वा धर्मं सुनिर्मलम् ॥ सर्वान्बन्धून्समीक्ष्यैवं बभाषे करुणं वचः ॥ ६७ ॥ रत्नकङ्कणमादाय मया सत्यमुदाहृतम् ॥ दिनत्रयमहं पत्नी वैश्यस्यामुष्य संमता ॥ ६८ ॥ कर्मणा मत्कृतेनायं मृतो वैश्यः शिवव्रती ॥ तस्मादहं प्रवेक्ष्यामि सहानेन हुताशनम् ॥ सधर्मचारिणीत्युक्तं सत्यमेतद्धि पश्यथ ॥ ६९ ॥ सत्येन प्रीतिमायान्ति देवास्त्रिभु

की प्रदक्षिणा करके पैठगया और वह वेश्या दुःख को प्राप्त हुई ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त वह दुःखित वेश्या अपने निर्मल धर्मको स्मरण करके सब बन्धुवों को देखकर ऐसा करुणवचन बोली ॥ ६७ ॥ कि रत्नों के कङ्कण को लेकर मैंने सत्य कहा है कि तीन दिनतक इस वैश्य की मैं स्त्री हूंगी ॥ ६८ ॥ व मुझ से कियेहुए कर्म से यह शिवव्रती वैश्य मरगया इस कारण इसके साथ मैं अग्नि में पैठूंगी और सधर्मचारिणी ऐसा कहा गया है इस सत्य को देखिये ॥ ६९ ॥ क्योंकि सत्य

से त्रिलोक के स्वामी प्रीति को प्राप्त होते हैं व सत्य में लगाहुआ उत्तम धर्म है और सत्य में सब स्थित है ॥ ७० ॥ और सत्य से स्वर्ग व मोक्ष होते हैं और असत्य से उत्तम गति नहीं होती है उस कारण सत्य के आश्रित होकर मैं अग्नि में पैठूंगी ॥ ७१ ॥ इस प्रकार दृढ़ हठवाली उस बन्धुवों से मना कीहुई भी वेश्या ने सत्य लोप होने के डरसे प्राणों के छोड़ने का मन किया ॥ ७२ ॥ और शिवभक्तों के लिये सर्वस देकर सदाशिवजी को ध्यान कर उस अग्नि की तीन बार प्रदक्षिणा कर पैठने के लिये खड़ी हुई ॥ ७३ ॥ और अपने चरणों में लगेहुए मनवाली व जलती अग्नि में गिरती हुई उस वेश्या को आपही विश्वात्मा

वनेश्वराः ॥ सत्यासक्तिः परो धर्मः सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥७० ॥ सत्येन स्वर्गमोक्षौ च नासत्येन परा गतिः ॥ तस्मा त्सत्यं समाश्रित्य प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ॥ ७१ ॥ इति मा दृढनिर्बन्धा वार्यमाणापि बन्धुभिः ॥ सत्यलोपभयान्नारी प्राणांस्त्यक्तुं मनो दधे ॥ ७२ ॥ सर्वस्वं शिवभक्तेभ्यो दत्त्वा ध्यात्वा सदाशिवम् ॥ तमग्निं त्रिः परिक्रम्य प्रवे शाभिमुखी स्थिता ॥ ७३ ॥ तां पतन्तीं समिद्धेग्नौ स्वपदार्पितमानसाम् ॥ वारयामास विश्वात्मा प्रादुर्भूतः शिवः स्वयम् ॥ ७४ ॥ सा तं त्रिलोक्याखिलदेवदेवं त्रिलोचनं चन्द्रकलावतंसम् ॥ शशाङ्कसूर्यानलकोटिभासं स्तब्धेव भीतेव तथैव तस्थौ ॥ ७५ ॥ तां विह्वलां परित्रस्तां वेपमानां जडीकृताम् ॥ समाश्वास्य गलद्बाष्पां करे गृह्या ब्रवीद्वचः ॥ ७६ ॥ शिव उवाच ॥ सत्यं धर्मं च ते धैर्यं भक्तिं च मयि निश्चलाम् ॥ निरीक्षितुं त्वत्सकाशं वैश्यो भूत्वाहमागतः ॥ ७७ ॥ माययाग्निं समुत्थाप्य दग्धवान्नाट्यमण्डपम् ॥ दग्धं कृत्वा रत्नलिङ्गं प्रविष्टोस्मि हुताश

शिवजीने प्रकट होकर मना किया ॥ ७४ ॥ चन्द्रकला के शिरोभूषणवाले व करोड़ों चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि के समान प्रकाशवाले उन अखिल देवदेव त्रिलोचनजीको देखकर डरीहुईसी अचल होकर वैसीही खड़ी होगई ॥ ७५ ॥ और गिरते हुए आँसुवोंवाली उस विह्वल, डरी व काँपती तथा अचल की हुई वेश्या को समझाकर व हाथ में पकड़ कर शिवजी ने यह वचन कहा ॥ ७६ ॥ (शिवजी बोले) कि तुम्हारा सत्य, धर्म, धैर्य व मुझ में निश्चल भक्ति को देखने के लिये मैं वैश्य होकर आया था ॥ ७७ ॥ और मायासे अग्नि को उत्पन्न करके मैंने नाट्यमण्डप को जलादिया और रत्नमय लिङ्ग को जलाकर अग्नि में प्रवेश

किया ॥ ७८ ॥ वेश्या छल करनेवाली व स्वच्छन्दता के अनुसार काम करनेवाली और लोगों को छलनेवाली होती हैं परन्तु वही तुम वेश्या होकर सत्य को स्मरण कर मेरे साथ अग्नि में पैठगई ॥ ७६ ॥ इस कारण मैं तुमको देवताओं को भी दुर्लभ सुखों को दूंगा व हे सुश्रोणि ! दीर्घ आयुर्बल, नीरोगता और सन्तान की उन्नति जो जो तुम चाहती हो उस उसको मैं तुम्हें दूंगा ॥ ८० ॥ सूतजी बोले कि शिवजी के ऐसा कहने पर उस वेश्या ने प्रत्युत्तर दिया ॥ ८१ ॥ (वेश्या बोली) कि पृथ्वी, स्वर्ग व रसातल में भी मेरी सुखों में इच्छा नहीं है और तुम्हारे चरणकमलों के स्पर्श के सिवा मैं अन्य कुछ नहीं मांगती हूं ॥ ८२ ॥

नम् ॥ ७८ ॥ वेश्याः कैतवकारिण्यः स्वैरिण्यो जनवञ्चकाः ॥ सा त्वं सत्यमनुस्मृत्य प्रविष्टाग्निं मया सह ॥ ७६ ॥ अतस्ते संप्रदास्यामि भोगांस्त्रिदशदुर्लभान् ॥ आयुश्च परमं दीर्घमारोग्यं च प्रजोन्नतिम् ॥ यद्यदिच्छसि सुश्रोणि तत्तदेव ददामि ते ॥ ८० ॥ सूत उवाच ॥ इति ब्रुवति गौरीशे सा वेश्या प्रत्यभाषत ॥ ८१ ॥ वेश्योवाच ॥ न मे वा ञ्छास्ति भोगेषु भूमौ स्वर्गे रसातले ॥ तव पादाम्बुजस्पर्शादन्यत्किञ्चिन्न वै वृणे ॥ ८२ ॥ एते भृत्याश्च दास्यश्च ये चान्ये मम बान्धवाः ॥ सर्वे त्वदर्चनपरास्त्वयि संन्यस्तवृत्तयः ॥ ८३ ॥ सर्वानेतान्मया सार्धं नीत्वा तव परं पदम् ॥ पुनर्जन्मभयं घोरं विमोचय नमोस्तु ते ॥ ८४ ॥ तथेति तस्या वचनं प्रतिनन्द्य महेश्वरः ॥ तान्सर्वांश्च तया सार्धं निनाय परमं पदम् ॥ ८५ ॥ पराशर उवाच ॥ नाट्यमण्डपिकादाहे यौ दूरं विद्रुतौ पुरा ॥ तत्रावशिष्टौ तावेव कुक्कुटो मर्कटस्तथा ॥ ८६ ॥ कालेन निधनं यातो यस्तस्या नाट्यमर्कटः ॥ सोभूत्तव कुमारोऽसौ कुक्कुटो

और ये नौकर, दासियां व अन्य जो मेरे बन्धुलोग हैं वे सब तुम्हारा पूजन करते हैं और तुम्हीं में मनकी वृत्ति को लगाये हैं ॥ ८३ ॥ मुझ समेत इन सबों को अपने परमपद में प्राप्त करके फिर भयंकर जन्म के भयको छुड़ा दीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ८४ ॥ बहुत अच्छा ऐसा कहकर उसके वचन की प्रशंसा करके शिवजी उस वेश्या समेत उन सबों को परमपद को लेगये ॥ ८५ ॥ पराशरजी बोले कि नाट्यमण्डप के जलने में जो दूर भागगये थे वे मुर्गा व वानर दोनों वहां बचगये ॥ ८६ ॥ और कालसे मृत्यु को प्राप्तहुए व जो उस वेश्या का नाट्यवाला वानर था वही यह तुम्हारा बालक हुआ व मुर्गा मन्त्री का पुत्र

हुआ ॥ ८७ ॥ और पूर्व जन्ममें इकट्ठा कियेहुए रुद्राक्ष धारण से उत्पन्न पुण्य से बड़े भारी कुलमें पैदाहुए ये बालक वर्तमान हैं ॥ ८८ ॥ और पूर्व जन्म के अभ्यास से शुद्धमनवाले ये दोनों रुद्राक्षों को धारण करते हैं व इस जन्म में उन शिवजी को पूजकर उस लोक को जावेंगे ॥ ८९ ॥ इन बालकों का यह वृत्तान्त कहागया व शिवभक्ता वेश्याकी कथा कहीगई अन्य क्या पूंछना चाहते हो ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरुद्राक्षमहिमवर्णननामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

मन्त्रिणः सुतः ॥ ८७ ॥ रुद्राक्षधारणोद्भूतात्पुण्यात्पूर्वभवार्जितात् ॥ कुले महति संजातौ वर्तेते बालकाविमौ ॥ ८८ ॥ पूर्वाभ्यासेन रुद्राक्षान्दधाते शुद्धमानसौ ॥ अस्मिञ्जन्मनि तं लोकं शिवं संपूज्य यास्यतः ॥ ८९ ॥ एषा प्रवृत्तिस्त्वनयोर्बालयोःसमुदाहृता ॥ कथा च शिवभक्तायाः किमन्यत्प्रष्टुमिच्छसि ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे रुद्राक्षमहिमवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ एवं ब्रह्मर्षिणा प्रोक्तां वाणीं पीयूषसन्निभाम् ॥ आकर्ण्य मुदितो राजा प्राञ्जलिःपुनरब्रवीत् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ अहो सत्संगमः पुंसामशेषाघप्रशोधनः ॥ कामक्रोधनिहन्ता च इष्टदोग्धा जनस्य हि ॥२॥ मम मायातमो नष्टं ज्ञानदृष्टिः प्रकाशिता ॥ तव दर्शनमात्रेण प्रायोहममरोत्तमः ॥३॥ श्रुतं च पूर्वचरितं बालयोः सम्यगेतयोः ॥ भवि

दो० । रुद्राध्याय प्रभावसों भो चिरजीव नृपाल । इक्किसवें अध्यायमें सोई चरित रसाल ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार ब्रह्मर्षिसे कहीहुई अमृत के समान वाणी को सुनकर राजा प्रसन्न हुए व हाथों को जोड़कर फिर उस राजा ने कहा ॥ १ ॥ (राजा बोले) कि अहो सज्जनों का समागम मनुष्यों के समस्त पातकों का नाशक है व काम, क्रोध का विनाशक तथा मनुष्यके प्रिय पदार्थ को देनेवाला है ॥ २ ॥ क्योंकि तुम्हारे दर्शनही से मेरा मायारूपी अन्धकार नष्ट होगया और ज्ञान की दृष्टि प्रकाशित हुई व मैं देवताओं में भी उत्तम होगया ॥ ३ ॥ हे मुने ! इन बालकों का पहले का चरित्र भलीभाति सुना गया और होनेवाले भी अपने पुत्र

के आचरण को पूंछता हूं ॥ ४ ॥ कि इसका आयुर्बल कितने वर्ष है व कैसा भाग्य है और विद्या, यश, शक्ति, श्रद्धा व भक्ति कैसी है यह कहिये ॥ ५ ॥ हे मुने ! इस सबको तुम सम्पूर्णता से कहने योग्य हो क्योंकि मैं तुम्हारा शिष्य हूं व सेवक हूं और तुम्हारी शरण में प्राप्त हूं ॥ ६ ॥ पराशरजी बोले कि इनमें जो कुछ नहीं कहने योग्य है उसको मैं कैसे कहसक्ता हूं कि जिसको सुनकर धैर्यवान् भी मनुष्य विषाद को प्राप्त होवैं ॥ ७ ॥ तौभी हे महीपते ! सत्यता से पूंछते हुए तुम्हारे स्नेह से मैं न कहने योग्य भी चरित्र को कहूंगा ॥ ८ ॥ इस तुम्हारे पुत्रके बारह वर्ष व्यतीत हुए हैं और इसके बाद सातवें दिन यह मरजावैगा ॥ ९ ॥

ष्यदपि पृच्छामि मत्पुत्राचरणं मुने ॥ ४ ॥ अस्यायुः कति वर्षाणि भाग्यं वद च कीदृशम् ॥ विद्या कीर्तिश्च शक्तिश्च श्रद्धा भक्तिश्च कीदृशी ॥ ५ ॥ एतत्सर्वमशेषेण मुने त्वं वक्तुमर्हसि ॥ तव शिष्योस्मि भृत्योस्मि शरणं त्वां गतोस्म्यहम् ॥ ६ ॥ पराशरउवाच ॥ अत्रावाच्यं हि यत्किंचित्कथं शक्नोस्मि शंसितुम् ॥ यच्छ्रुत्वा धृतिमन्तोपि विषादं प्राप्नुयुर्जनाः ॥ ७ ॥ तथापि निर्व्यलीकेन भावेन परिपृच्छतः ॥ अवाच्यमपि वक्ष्यामि तव स्नेहान्महीपते ॥ ८ ॥ अमुष्य त्वत्कुमारस्य वर्षाणि द्वादशात्ययुः ॥ इतः परं प्रपद्येत सप्तमे दिवसे मृतिम् ॥ ९ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा कालकूटमिवोदितम् ॥ मूर्च्छितः सहसा भूमौ पतितो नृपतिः शुचा ॥ १० ॥ तमुत्थाप्य समाश्वास्य स मुनिः करुणार्द्रधीः ॥ उवाच मा भैर्नृपते पुनर्वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ११ ॥ सर्गात्पुरा निरालोकं यदेकं निष्कलं परम् ॥ चिदानन्दमयं ज्योतिः स आद्यः केवलः शिवः ॥ १२ ॥ स एवादौ रजोरूपं सृष्ट्वा ब्रह्माणमात्मना ॥ सृष्टिकर्मनियुक्ताय तस्मै वेदांश्च दत्त

विषके समान, कहेहुए उसके इस वचन को सुनकर राजा शोक से यकायक मूर्च्छित होकर गिरपड़ा ॥ १० ॥ उसको उठाकर व समझाकर दया से नम्रबुद्धिवाले उस मुनि ने कहा कि हे नृपते ! तुम मत डरो मैं तुम्हारे हितको कहूंगा ॥ ११ ॥ सृष्टि से पहले जो एक निरञ्जन व कलारहित तथा श्रेष्ठ चैतन्यात्मक आनन्दमय ज्योति होती है वे आदिभूत केवल शिवजी हैं ॥ १२ ॥ पहले उन्होंने अपना से रजोरूप ब्रह्मा को रचकर सृष्टि के कर्म में लगेहुए उनके लिये वेदों को

दिया ॥ १३ ॥ फिर शिवजी ने आत्मतत्त्व का एक संग्रह व सब उपनिषदोंका सारांश रुद्राध्याय दिया ॥ १४ ॥ जो एक अव्यय व साक्षात् ब्रह्मज्योति और सनातन ब्रह्म है वह शिवात्मक श्रेष्ठ तत्त्व रुद्राध्याय में स्थित है ॥ १५ ॥ उन विराट् ब्रह्मा ने संसार को रचा व लोकों की मर्याद के लिये चारों मुखोंसे चार वेदों को रचा ॥ १६ ॥ व उनमें से यजुर्वेद के मध्यमें समस्त उपनिषदोंका सार यह रुद्राध्याय ब्रह्मा के दक्षिणवाले मुखसे निकला है ॥ १७ ॥ और उसी इस रुद्राध्यायको देवताओं समेत मरीचि व अत्रि आदिक सब मुनियों ने धारण किया और उन लोगों से उनके शिष्यों ने, उसको ग्रहण किया ॥ १८ ॥ और क्रम से आयेहुए

वान् ॥ १३ ॥ पुनश्च दत्तवानीश आत्मतत्त्वैकसंग्रहम् ॥ सर्वोपनिषदां सारं रुद्राध्यायं च दत्तवान् ॥ १४ ॥ यदेक मव्ययं साक्षाद्ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ शिवात्मकं परं तत्त्वं रुद्राध्याये प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥ स आत्मभूः सृजद्विश्वं चतुर्भिर्वदनैर्विराट् ॥ ससर्ज वेदांश्चतुरो लोकानां स्थितिहेतवे ॥ १६ ॥ तत्रायं यजुषां मध्ये ब्रह्मणो दक्षिणान्मुखात् ॥ अशेषोपनिषत्सारो रुद्राध्यायः समुद्धृतः ॥ १७ ॥ स एष मुनिभिः सर्वैर्मरीच्यत्रिपुरोगमैः ॥ सह देवैर्धृतस्तेभ्यस्तच्छिष्या जगृहुश्च तम् ॥ १८ ॥ तच्छिष्यशिष्यैस्तत्पुत्रैस्तत्पुत्रैश्च क्रमागतैः ॥ धृतो रुद्रात्मकः सोऽयं वेदसारः प्रसादितः ॥ १९ ॥ एष एव परो मन्त्र एष एव परं तपः ॥ रुद्राध्यायजपः पुंसां परं कैवल्यसाधनम् ॥ २० ॥ महापातकिनः प्रोक्ता उपपातकिनश्च ये ॥ रुद्राध्यायजपात्सद्यस्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ २१ ॥ भूयोऽपि ब्रह्मणा सृष्टाः सदसन्मिश्रयोनयः ॥ देवतिर्यङ्मनुष्याद्यास्ततः संपूरितं जगत् ॥ २२ ॥ तेषां कर्माणि सृष्टानि स्वजन्मा

उनके शिष्यों के शिष्यों से तथा उनके पुत्रोंसे व उन मुनियोंके पुत्रों से वही यह प्रसादित रुद्राध्याय धारण किया गया है ॥ १९ ॥ यही रुद्राध्याय का जप उत्तम मन्त्र है व यही उत्तम तप है और पुरुषों के उत्तम मोक्षका यत्न है ॥ २० ॥ जो महापातकी व उपपातकी कहेगये हैं रुद्राध्यायके जप से वेभी शीघ्रही उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥ फिर ब्रह्मा करके उत्तम व नीचसे मिलीहुई जातिवाले देवता, पशु, पक्षी व मनुष्यादिक रचेगये हैं उनसे संसार पूर्ण है ॥ २२ ॥ और अपने

जन्म के अनुसार उन लोगों के कर्म रचेगयेहैं उनमें मनुष्य वर्तमान होते हैं व उसका फल पातेहैं ॥ २३ ॥ और संसारकी सृष्टि के होनेके लिये ब्रह्मा ने आपहीं पहले अपने वक्षस्थल से धर्म व पीठ से अधर्म को उत्पन्न किया है ॥ २४ ॥ जो धर्महीं को करते हैं वे उस पुण्यफलको पाते हैं और जो अधर्म करते हैं वे पाप के फलको भोगते हैं ॥ २५ ॥ पुण्यकर्म का फल स्वर्ग है और पापका फल नरक है उन दोनों के स्वामी इन्द्र व यमराजहैं यानी पुण्य के स्वामी इन्द्र व पाप के स्वामी यमराज हैं ॥ २६ ॥ काम, क्रोध, लोभ व अन्य मद मान आदिक सब अधर्म के पुत्र नरक के स्वामी हुए हैं ॥ २७ ॥ व गुरुकी शय्या पै जाना और मदिरा पीना

नुगुणानि च ॥ लोकास्तेषु प्रवर्तन्ते भुञ्जते चैव तत्फलम् ॥ २३ ॥ लोकसृष्टिप्रवाहार्थं स्वयमेव प्रजापतिः ॥ धर्माधर्मौ ससर्जाग्रे स्ववक्षःपृष्ठभागतः ॥ २४ ॥ धर्ममेवानुतिष्ठन्तः पुण्यं विन्दन्ति तत्फलम् ॥ अधर्ममनुतिष्ठन्तस्ते पापफलभोगिनः ॥ २५ ॥ पुण्यकर्मफलं स्वर्गो नरकस्तद्विपर्ययः ॥ तयोर्द्वावधिपौ धात्रा कृतौ शतमखान्तकौ ॥ २६ ॥ कामः क्रोधश्च लोभश्च मदमानादयः परे ॥ अधर्मस्य सुता आसन्सर्वे नरकनायकाः ॥ २७ ॥ गुरुतल्पः सुरापानं तथान्यः पुल्कसीगमः ॥ कामस्य तनया ह्येते प्रधानाः परिकीर्तिताः ॥ २८ ॥ क्रोधात्पितृवधो जातस्तथा मातृवधः परः ॥ ब्रह्महत्या च कन्यैका क्रोधस्य तनया अमी ॥ २९ ॥ देवस्वहरणश्चैव ब्रह्मस्वहरणस्तथा ॥ स्वर्णस्तेय इति त्वेते लोभस्य तनयाः स्मृताः ॥ ३० ॥ एतानाहूय चाण्डालान्यमः पातकनायकान् ॥ नरकस्य विवृद्ध्यर्थमाधिपत्यं चकार ह ॥ ३१ ॥ ते यमेन समादिष्टा नव पातकनायकाः ॥ ते सर्वे संगता भूयो घोराः पातकना

व चाण्डाली का समागम ये मुख्य काम के पुत्र कहेगये हैं ॥ २८ ॥ और क्रोध से पिता का मारना व माता का मारना तथा ब्रह्महत्या एक कन्या हुई ये क्रोध के पुत्र हैं ॥ २९ ॥ और देवता के धनको हरना व ब्राह्मण के धन का लेना और सुवर्णकी चोरी ये लोभ के पुत्र कहेगये हैं ॥ ३० ॥ यमराज ने पातकों के स्वामी इन चाण्डालों को बुलाकर नरक की वृद्धि के लिये उसकी स्वामिता किया ॥ ३१ ॥ यमराज से आज्ञा दियेहुए वे नव पातकों के स्वामी हुए फिर भयंकर पाप-

नायक उन सबों ने मिलकर ॥ ३२ ॥ अपने उपपातक नौकरों से नरकों को पालन किया और साक्षात् मोक्षके साधनरूप रुद्राध्याय के पृथ्वी में प्राप्त होने पर ॥ ३३ ॥ वेही ये पातकों के स्वामी डरकर भागगये और अन्य उपपातकों समेत यमराज से कहा ॥ ३४ ॥ कि हे देव, महाराज ! तुम्हारी जय हो हमलोग तुम्हारे सेवक हैं और नरकके बढ़ने के लिये तुमसे अधिकारी कियेगये हैं ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! इस समय संसार में रहने के लिये हमलोग समर्थ नहीं हैं और रुद्राध्याय के प्रभाव से जलेहुए हमलोग भाग आये हैं ॥ ३६ ॥ क्योंकि गाँव गाँव में व नदी के किनारे तथा पवित्र स्थानों में रुद्राध्याय के पूर्ण होनेपर हमलोग कैसे

यकाः ॥ ३२ ॥ नरकान्पालयामासुः स्वभृत्यैश्चोपपातकैः ॥ रुद्राध्याये भुवि प्राप्ते साक्षात्कैवल्यसाधने ॥ ३३ ॥ भीताः प्रदुद्रुवुः सर्वे तेऽमी पातकनायकाः ॥ यमं विज्ञापयामासुः सहान्यैरुपपातकैः ॥ ३४ ॥ जय देव महाराज वयं हि तव किङ्कराः ॥ नरकस्य विवृद्ध्यर्थं साधिकाराः कृतास्त्वया ॥ ३५ ॥ अधुना वर्तितुं लोके न शक्ताः स्मो वयं प्रभो ॥ रुद्राध्यायानुभावेन निर्दग्धाश्चैव विद्रुताः ॥ ३६ ॥ ग्रामे ग्रामे नदीकूले पुण्येष्वायतनेषु च ॥ रुद्रजाप्ये तु पर्याप्ते कथं लोके चरेमहि ॥ ३७ ॥ प्रायश्चित्तसहस्रं वै गणयामो न किञ्चन ॥ रुद्रजाप्याक्षराण्येव सोढुं बत न शक्नुमः ॥ ३८ ॥ महापातकमुख्यानामस्माकं लोकघातिनाम् ॥ रुद्रजाप्यं भयं घोरं रुद्रजाप्यं महाद्विषम् ॥ ३९ ॥ अतो दुर्विषहं घोरमस्माकं व्यसनं महत् ॥ रुद्रजाप्येन संप्राप्तमपनेतुं त्वमर्हसि ॥ ४० ॥ इति विज्ञापितः साक्षाद्यमः पातकनायकैः ॥ ब्रह्मणोऽन्तिकमासाद्य तस्मै सर्वं न्यवेदयत् ॥ ४१ ॥ देवदेव जगन्नाथ त्वामेव शरणं

संसार में घूमें ॥ ३७ ॥ हज़ारों प्रायश्चित्तों को हमलोग कुछ नहीं गिनते हैं परन्तु रुद्राध्याय के अक्षरों को सहने के लिये समर्थ नहीं हैं ॥ ३८ ॥ लोकों का नाश करनेवाले व महापातकों में मुख्य हमलोगों को रुद्रजप विकराल भय है व रुद्रजप बड़ा भारी विष है ॥ ३९ ॥ इस कारण रुद्रजप से प्राप्त हुए दुःख से सहने योग्य हमलोगों के बड़े भयंकर क्लेश को तुम दूरकरने के योग्य हो ॥ ४० ॥ पातकों के स्वामियों से इस प्रकार कहेहुए साक्षात् यमराज ने ब्रह्मा के निकट जाकर उनसे सब वृत्तान्त बतलाया ॥ ४१ ॥ व यह कहा कि हे देवदेव, जगन्नाथ ! मैं तुम्हारीही शरण में प्राप्त हूं और तुमने मुझको पापकारी मनुष्यों को

दण्ड देनेमें लगाया है ॥ ४२ ॥ इस समय पृथ्वी में पापी मनुष्य नहीं हैं क्योंकि रुद्राध्याय से पातकों का बडाभारी वंशनाश होगया ॥ ४३ ॥ और पातकों का वंशनाश होनेपर नरक शून्य होगये व नरकों के शून्य होनेपर मेरा राज्य निष्फल होगया ॥ ४४ ॥ इस कारण हे भगवन् ! आपही यत्न को विचारिये कि जिस प्रकार मेरी मनुष्योंकी स्वामिता नाश न होवै ॥ ४५ ॥ बडे दुःखित यमराज से इस प्रकार कहेहुए ब्रह्मा ने रुद्रजप के विघ्न के लिये यत्न को बनाया ॥ ४६ ॥ और श्रद्धा व बुद्धि को नाश करनेवाली अश्रद्धा व दुर्मेधा अविद्याकी कन्याओं को मनुष्यों में प्रेरणा किया ॥ ४७ ॥ और उनसे मोहित मनुष्य जब रुद्राध्याय से

गतः ॥ त्वया नियुक्तो मर्त्यानां निग्रहे पापकारिणाम् ॥ ४२ ॥ अधुना पापिनो मर्त्या न सन्ति पृथिवीतले ॥ रुद्राध्यायेन निहतं पातकानां महत्कुलम् ॥ ४३ ॥ पातकानां कुले नष्टे नरकाः शून्यतां गताः ॥ नरके शून्यतां याते मम राज्यं हि निष्फलम् ॥ ४४ ॥ तस्मात्त्वयैव भगवन्नुपायः परिचिन्त्यताम् ॥ यथा मे न विहन्येत स्वामित्वं मर्त्यदेहिनाम् ॥ ४५ ॥ इति विज्ञापितो धाता यमेन परिखिद्यता ॥ रुद्रजाप्यविघातार्थमुपायं पर्यकल्पयत् ॥ ४६ ॥ अश्रद्धां चैव दुर्मेधामविद्यायाः सुते उभे ॥ श्रद्धामेधाविघातिन्यौ मर्त्येषु पर्यचोदयत् ॥ ४७ ॥ ताभ्यां विमोहिते लोके रुद्राध्यायपराङ्मुखे ॥ यमः स्वस्थानमासाद्य कृतार्थ इव सोऽभवत् ॥ ४८ ॥ पूर्वजन्मकृतैः पापैर्जायन्तेऽल्पायुषो जनाः ॥ तानि पापानि नश्यन्ति रुद्रं जपवतां नृणाम् ॥ ४९ ॥ क्षीणेषु सर्वपापेषु दीर्घमायुर्बलं धृति ॥ आरोग्यं ज्ञानमैश्वर्यं वर्धते सर्वदेहिनाम् ॥ ५० ॥ रुद्राध्यायेन ये देवं स्नापयन्ति महेश्वरम् ॥ कुर्वन्तस्तज्जलैः स्नानं ते मृत्युं संतरन्ति च ॥ ५१ ॥ रुद्राध्यायाभिजप्तेन स्नानं कुर्वन्ति येऽम्भसा ॥ तेषां मृत्युभयं नास्ति शिवलोके

विमुख होगया तब वे यमराज अपने स्थान को प्राप्त होकर कृतार्थ से होगये ॥ ४८ ॥ पूर्वजन्म में किये हुए पापों से मनुष्य थोडे आयुर्बल के होते हैं और वे पाप रुद्राध्याय जपनेवाले लोगों के नाश होजाते हैं ॥ ४९ ॥ और सब पापों के नाश होने पर सब प्राणियों का दीर्घ आयुर्बल व धैर्य, आरोग्य, ज्ञान तथा ऐश्वर्य बढ़ता है ॥ ५० ॥ और रुद्राध्याय से जो शिवदेवजी को नहवाते हैं व उस जलसे जो स्नान करते हैं वे मृत्यु को उल्लङ्घन कर जाते हैं ॥ ५१ ॥ और रुद्राध्याय से

अभिमंत्रित जल से जो स्नान करते हैं उनको मृत्यु का भय नहीं होता है और वे शिवलोक में पूजे जाते हैं ॥ ५२ ॥ और सौ रुद्राभिषेक से मनुष्य सौ वर्षकी आयुवाला होता है व सब पापों से छूट कर वह शिवजी को प्रिय होता है ॥ ५३ ॥ यह तुम्हारा पुत्र दश हज़ार रुद्राभिषेक करै तो दश हज़ार वर्ष तक पृथ्वी में इन्द्रकी नाईं आनन्द करैगा ॥ ५४ ॥ और दृढ़बल व ऐश्वर्यवाला तथा शत्रुवोंसे रहित व नीरोग यह बालक सब पापोंसे छूटकर अकण्टक राज्य करैगा ॥ ५५ ॥ जो ब्राह्मण वेदोंको जाननेवाले व शान्त तथा पुण्यवान् और तीक्ष्णव्रतोंवाले होवैं और ज्ञान, यज्ञ व तपमें स्थित तथा शिवजीकी भक्तिमें परायण होवैं ॥ ५६ ॥

महीयते ॥ ५२ ॥ शतरुद्राभिषेकेण शतायुर्जायते नरः ॥ अशेषपापनिर्मुक्तः शिवस्य दयितो भवेत् ॥ ५३ ॥ एष रुद्रायुत स्नानं करोतु तव पुत्रकः ॥ दशवर्षसहस्राणि मोदते भुवि शक्रवत् ॥ ५४ ॥ अव्याहतबलैश्वर्यो हतशत्रुर्निरामयः ॥ निर्धूताखिलपापौघः शास्ता राज्यमकण्टकम् ॥ ५५ ॥ विप्रा वेदविदः शान्ताः कृतिनः शंसितव्रताः ॥ ज्ञानयज्ञतपोनिष्ठाः शिवभक्तिपरायणाः ॥ ५६ ॥ रुद्राध्यायजपं सम्यक्कुर्वन्तु विमलाशयाः ॥ तेषां जपानुभावेन सद्यः श्रेयो भविष्यति ॥ ५७ ॥ इत्युक्तवन्तं नृपतिर्महामुनिं तमेव वव्रे प्रथमं क्रियागुरुम् ॥ अथापरांस्त्यक्तधनाशयान्मुनीनावाहयामास सहस्रशः क्षणात् ॥ ५८ ॥ ते विप्राः शान्तमनसः सहस्रपरिसंमिताः ॥ कलशानां शतं स्थाप्य पुण्य वृक्षरसैर्युतम् ॥ ५९ ॥ रुद्राध्यायेन संस्नाप्य तमुर्वीपतिपुत्रकम् ॥ विधिवत्स्नापयामासुः संप्राप्ते सप्तमे दिने ॥ ६० ॥ स्नाप्यमानो मुनिजनैः स राजन्यकुमारकः ॥ अकस्मादेव संत्रस्तः क्षणं मूर्च्छामवाप ह ॥ ६१ ॥ सहसैव प्रबु

निर्मल आशयवाले वे भली भाति रुद्राध्याय का जप करैं तो उनके जपके प्रभाव से शीघ्रही कल्याण होगा ॥ ५७ ॥ ऐसा कहनेवाले उसी महामुनि को राजाने पहले कर्मों के आचार्य का वरण किया इसके उपरान्त धनके आशय को छोड़े हुए अन्य हजारों मुनियों को क्षणभर में बुलाया ॥ ५८ ॥ और हजार संख्यक उन शान्त मनवाले ब्राह्मणों ने पवित्र वृक्षोंके रसों से संयुत सौ घटोंको स्थापित कर ॥ ५९ ॥ उस राजपुत्रको रुद्राध्याय से नहवाकर सातवा दिन प्राप्त होनेपर विधिपूर्वक स्नान कराया ॥ ६० ॥ और मुनिलोगों से नहवाया जाता हुआ वह राजकुमार यकायक डरगया व क्षणभर मूर्च्छित होगया ॥ ६१ ॥ और मुनि से

रक्षा कियाहुआ यह राजपुत्र अचानकही जगपड़ा व उसने कहा कि मुझको मारने के लिये बुद्धि करके दण्ड को हाथ में लियेहुए कोई विकराल दण्डवाला भयानक पुरुष आया व उसको भी अन्य महावीर पुरुषों ने मारा ॥ ६२ । ६३ ॥ और फँसरी से बाँधकर वे बहुत दूरसे लेगये आप लोगों से रक्षा कियेहुए मैंने इतना देखा ॥ ६४ ॥ ऐसा कहनेवाले राजा के पुत्रको द्विजोत्तमोंने आशिषों से पूजन किया और राजासे भयको कहा ॥ ६५ ॥ इसके उपरान्त नृपोत्तमने सब श्रेष्ठ ऋषियों को दक्षिणाओं से पूजकर व भक्तिसे उत्तम अन्न से भोजन कराकर ॥ ६६ ॥ व भक्ति से उन ब्रह्मवादी मुनियों के आशिषों को ग्रहण कर बन्धुजनों समेत सभा

क्तोऽसौ मुनिभिः कृतरक्षणः ॥ प्रोवाच कश्चित्पुरुषो दण्डहस्तः समागतः ॥ ६२ ॥ मां प्रहर्तुं कृतमतिर्भीमदण्डो भयानकः ॥ सोऽपि चान्यैर्महावीरैः पुरुषैरभिताडितः ॥ ६३ ॥ बद्धा पाशेन महता दूरं नीत इवाभवत् ॥ एतावदहमद्राक्षं भवद्भिः कृतरक्षणः ॥ ६४ ॥ इत्युक्तवन्तं नृपतेस्तनूजं द्विजसत्तमाः ॥ आशीर्भिः पूजयामासुर्भयं राज्ञे न्यवेदयन् ॥ ६५ ॥ अथ सर्वानृषीञ्छ्रेष्ठान्दक्षिणाभिर्नृपोत्तमः ॥ पूजयित्वा वरान्नेन भोजयित्वा च भक्तितः ॥ ६६ ॥ प्रतिगृह्याशिषस्तेषां मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् ॥ भक्त्या बन्धुजनैः सार्धं सभायां समुपाविशत ॥ ६७ ॥ तस्मिन्समागते वीरे मुनिभिः सह पार्थिवे ॥ आजगाम महायोगी देवर्षिर्नारदः स्वयम् ॥ ६८ ॥ तमागतं प्रेक्ष्य गुरुं मुनीनां सार्धं सदस्यैरखिलैर्मुनीन्द्रैः ॥ प्रणम्य भक्त्या विनिवेश्य पीठे कृतोपचारं नृपतिर्बभाषे ॥ ६९ ॥ राजोवाच ॥ दृष्टं किमस्ति ते ब्रह्मंस्त्रिलोक्यां किञ्चिदद्भुतम् ॥ तन्नो ब्रूहि वयं सर्वे त्वद्वाक्यामृतलालसाः ॥ ७० ॥ नारद उवाच ॥ अद्य चित्रं

में प्रवेश किया ॥ ६७ ॥ व मुनियों समेत उस वीर राजा के आनेपर महायोगी देवर्षि नारदजी आगये ॥ ६८ ॥ मुनियों के गुरु उन आयेहुए नारदजी को देखकर सभा में बैठेहुए समस्त मुनीन्द्रों समेत भक्तिसे प्रणाम कर व आसन पै बिठाकर पूजन कियेहुए उनसे राजाने कहा ॥ ६९ ॥ (राजा बोले) कि हे ब्रह्मन् ! तुमने त्रिलोक में जो कुछ अद्भुत देखा है उसको हमलोगों से कहिये क्योंकि हमलोग सब तुम्हारे वचनरूपी अमृतकी इच्छा करते हैं ॥ ७० ॥ नारदजी बोले कि

हे महाराज ! आकाश से उतरते हुए मैंने इन मुनियों समेत आज बड़ाभारी अद्भुत वृत्तान्त देखा है उसको सुनिये ॥ ७१ ॥ कि सदैव संसार को पीड़ित करते हुए व दण्ड को हाथ में लिये दुर्धर्ष यमराजजी आज तुम्हारे पुत्रको मारने के लिये आये थे ॥ ७२ ॥ और इस तुम्हारे पुत्रको मारने के लिये आयेहुए यमराज को जानकर शिवजी ने भी पार्षदों समेत किसी वीरभद्र को पठाया ॥ ७३ ॥ और उन वीरभद्रजी ने आकर तुम्हारे पुत्रको मारने के लिये आयेहुए मृत्यु को हठसे पकड़कर व दृढ़ता से बाँधकर क्रोध से दण्ड से मारा ॥ ७४ ॥ और शिवजी के समीप लायेहुए उस मृत्यु को जानकर आपही भगवान् यमराजजी ने हाथों को

महद्दृष्टं व्योम्नोवतरता मया ॥ तच्छृणुष्व महाराज सहैभिर्मुनिपुङ्गवैः ॥ ७१ ॥ अद्य मृत्युरिहायातो निहन्तुं तव पुत्रकम् ॥ दण्डहस्तो दुराधर्षो लोकमुद्बाधयन्सदा ॥ ७२ ॥ ईश्वरोपि विदित्वैनं त्वत्पुत्रं हन्तुमागतम् ॥ सहैव पार्षदैः कंचिद्वीरभद्रमचोदयत ॥ ७३ ॥ स आगत्य हठान्मृत्युं त्वत्पुत्रं हन्तुमागतम् ॥ गृहीत्वा सुदृढं बद्धा दण्डेनाभ्यहनद्रुषा ॥ ७४ ॥ तं नीयमानं जगदीशसन्निधिं शीघ्रं विदित्वा भगवान्यमः स्वयम् ॥ कृताञ्जलिर्देव जयेत्युदीरयन्प्रणम्य मूर्ध्ना निजगाद शूलिनम् ॥ ७५ ॥ यम उवाच ॥ देवदेव महारुद्र वीरभद्र नमोऽस्तु ते ॥ निरागसि कथं मृत्यौ कोपस्तव समुत्थितः ॥ ७६ ॥ निजकर्मानुबन्धेन राजपुत्रं गतायुषम् ॥ प्रहर्तुमुद्यते मृत्यौ कोपराधो वद प्रभो ॥ ७७ ॥ वीरभद्र उवाच ॥ दशवर्षसहस्रायुः स राजतनयः कथम् ॥ विपत्तिमन्तरायाति रुद्रस्नानहताशुभः ॥ ७८ ॥ अस्ति चेत्तव सन्देहो मद्वाक्येऽप्यनिवारिते ॥ चित्रगुप्तं समाहूय प्रष्टव्योऽद्यैव मा चिरम् ॥ ७९ ॥ नारद उवाच ॥ अथाहूत

जोड़कर हे देव ! तुम्हारी जय हो ऐसा कहतेहुए मस्तक से प्रणाम करके शिवजी से कहा ॥ ७५ ॥ (यमराज बोले) कि हे देवदेव, महादेव, वीरभद्र ! तुम्हारे लिये प्रणाम है बिन अपराधी मृत्यु में किस कारण तुम्हारा क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ ७६ ॥ हे प्रभो ! अपने कर्म के अनुबन्ध से आयुर्बलरहित राजपुत्र को मारने के लिये तैयार मृत्यु में क्या अपराध है कहिये ॥ ७७ ॥ वीरभद्रजी बोले कि रुद्रस्नान से नष्टपातकोंवाला वह दश हज़ार वर्षका आयुवाला राजपुत्र कैसे मध्य में मृत्यु को प्राप्त होवै ॥ ७८ ॥ यदि बिन रोंकटोंकवाले मेरे वचन में तुमको सन्देह होवै तो चित्रगुप्त को बुलाकर इसी समय पूछ लीजिये देर न कीजिये ॥ ७९ ॥

नारदजी बोले कि इसके उपरान्त यमराज से बुलाये हुए चित्रगुप्तजी यकायक आगये व तुम्हारे पुत्रके आयुर्बल का प्रमाण पूंछने पर उन चित्रगुप्तने कहा ॥ ८० ॥ और बारह वर्ष उसका आयुर्बल कहकर व विचार कर उन्होंने फिर लिखे हुए दश हज़ार वर्ष का जीवन कहा ॥ ८१ ॥ इसके उपरान्त डरेहुए यमराजने वीरभद्र को प्रणाम कर किसी प्रकार बिन मना करनेवाले बन्धन से मृत्यु को छुडा दिया ॥ ८२ ॥ इसके उपरान्त वीरभद्र से छोडेहुए यमराज अपने मन्दिर को गये और वीरभद्र कैलास को गये व मैं तुम्हारे समीप प्राप्त हुआ ॥ ८३ ॥ इस कारण तुम्हारा यह पुत्र रुद्रजप के प्रभाव से मृत्यु के भयको नाघकर दश हज़ार वर्षतक

श्चित्रगुप्तो यमेन सहसागतः ॥ आयुःप्रमाणं त्वत्सूनोः परिपृष्टः स चाब्रवीत् ॥ ८० ॥ द्वादशाब्दं च तस्यायुरित्युक्त्वा थ विमृश्य च ॥ पुनर्लेख्यगतं प्राह स वर्षायुतजीवितम् ॥ ८१ ॥ अथ भीतो यमो राजा वीरभद्रं प्रणम्य च ॥ कथं चिन्मोचयामास मृत्युं दुर्वारबन्धनात् ॥ ८२ ॥ वीरभद्रेण मुक्तोऽथ यमोऽगान्निजमन्दिरम् ॥ वीरभद्रश्च कैलासमहं प्राप्तस्तवान्तिकम् ॥ ८३ ॥ अतस्तव कुमारोऽयं रुद्रजाप्यानुभावतः ॥ मृत्योर्भयं समुत्तीर्य सुखी जातोऽयुतं समाः ॥ ८४ ॥ इत्युक्त्वा नृपमामन्त्र्य नारदे त्रिदिवं गते ॥ विप्राः सर्वे प्रमुदिताः स्वं स्वं जग्मुरथाश्रमम् ॥ ८५ ॥ इत्थं काश्मीरनृपती रुद्राध्यायप्रभावतः ॥ निस्तीर्याशेषदुःखानि कृतार्थोभूत्सपुत्रकः ॥ ८६ ॥ ये कीर्तयन्ति मनुजाः परमेश्वरस्य माहात्म्यमेतदथ कर्णपुटैः पिबन्ति ॥ ते जन्मकोटिकृतपापगणैर्विमुक्ताः शान्ताः प्रयान्ति परमं पदमिन्दुमौलेः ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे रुद्राध्यायमहिमवर्णनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

सुखी हुआ ॥ ८४ ॥ यह कहकर राजा से पूंछकर जब नारदजी स्वर्ग को चलेगये तब प्रसन्न होकर सब ब्राह्मण अपने अपने आश्रम को चलेगये ॥ ८५ ॥ इस प्रकार काश्मीर देश का राजा रुद्राध्याय के प्रभाव से पुत्र समेत सब दुःखों को नाँघकर कृतार्थ हुआ ॥ ८६ ॥ जो मनुष्य शिवजी के इस माहात्म्य को कहते हैं व कानों से पीते हैं वे करोडों जन्मों में कियेहुए पापगणोंसे छूटकर शान्त होकर शिवजी के उत्तम स्थान को जाते हैं ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां रुद्राध्यायमहिमवर्णनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। यथा कथा सुनि परमपद पायो कुलटा नारि । बाइसवें अध्याय में सोइ चरित सुखकारि ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार अत्यन्त कल्याणकारक मार्ग शिवही से दिखलाया गया है जोकि संसार से बँधेहुए मनुष्यों का शीघ्रही उत्तम मुक्तिकारक है ॥ १ ॥ और दुर्बुद्धि मनुष्यों व वेदों में बिन अधिकारिणी स्त्रियों तथा अधम ब्राह्मणों व सब प्राणियों का ॥ २ ॥ यह साधारण मार्ग साक्षात् मोक्ष का साधन करनेवाला है और देवताओं से भी पूजित यह महामुनि लोगों से सेवन करने योग्य है ॥ ३ ॥ व जिसलिये शिवजीकी कथा का सुनना ससार के भयका नाशक है व शीघ्रही मुक्तिकारक तथा प्रशंसनीय व सब प्राणियों के लिये

सूत उवाच ॥ एवं शिवतमः पन्थाः शिवेनैव प्रदर्शितः ॥ नृणां संसृतिबद्धानां सद्यो मुक्तिकरः परः ॥ १ ॥ अथ दुर्मेधसां पुंसां वेदेष्वनधिकारिणाम् ॥ स्त्रीणां द्विजातिबन्धूनां सर्वेषां च शरीरिणाम् ॥ २ ॥ एष साधारणः पन्थाः साक्षात्कैवल्यसाधनः ॥ महामुनिजनैः सेव्यो देवैरपि सुपूजितः ॥ ३ ॥ यत्कथाश्रवणं शम्भोः संसारभयनाशनम् ॥ सद्योमुक्तिकरं श्लाघ्यं पवित्रं सर्वदेहिनाम् ॥ ४ ॥ अज्ञानतिमिरान्धानां दीपोऽयं ज्ञानसिद्धिदः ॥ भवरोगनिबद्धानां सुसेव्यं परमौषधम् ॥ ५ ॥ महापातकशैलानां वज्रघातसुदारुणम् ॥ भर्जनं कर्मबीजानां साधनं सर्वसम्पदाम् ॥ ६ ॥ ये शृण्वन्ति सदा शम्भोः कथां भुवनपावनीम् ॥ ते वै मनुष्या लोकेस्मिन्रुद्रा एव न संशयः ॥ ७ ॥ शृण्वतां शूलिनो गाथां तथा कीर्तयतां सताम् ॥ तेषां पादरजांस्येव तीर्थानि मुनयो जगुः ॥ ८ ॥ तस्मान्निःश्रेयसं गन्तुं ये

सेवन करने योग्य है ॥ ४ ॥ और अज्ञानरूपी तिमिर से अन्ध मनुष्यों के लिये यह ज्ञानकी सिद्धि को देनेवाला दीपक है और संसाररूपी रोगसे बँधेहुए मनुष्यों के लिये बड़ीभारी औषध है ॥ ५ ॥ और महापापरूपी पर्वतों के लिये कठोर वज्रघात और भवबीजों को जलानेवाला तथा सब सम्पत्तियों का साधन करनेवाला है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य लोकों को पवित्र करनेवाली शिवजीकी कथा को सदैव सुनते हैं वे मनुष्य इस संसारमें रुद्रही हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ और शिवजी की कथा को सुननेवाले व कहनेवाले उन मनुष्यों के चरणों की धूलि को मुनिलोगों ने तीर्थ कहा है ॥ ८ ॥ इस कारण जो प्राणी कल्याण को प्राप्त होने

के लिये इच्छा करैं वे भक्ति से सदैव शिवजी की कथा को सुनैं ॥ ९ ॥ यदि सदैव पुराण की कथा को सुनने के लिये मनुष्य असमर्थ होवैं तो नियतचित्त मनुष्य प्रतिदिन मुहूर्तभर (कच्ची दोघड़ी) सुनै ॥ १० ॥ अथवा यदि मुहूर्तभर प्रतिदिन सुनने के लिये असमर्थ होवै तो पवित्र महीनों में व पवित्र दिन में तथा पवित्र तिथियों में ॥ ११ ॥ जो मनुष्य पुराणों से कहीहुई सुन्दरी कथा को सुनता है वह कर्म के महावन को जलाकर संसारको उतर जाता है ॥ १२ ॥ और मुहूर्तभर या आधा मुहूर्त व क्षणभर जो मनुष्य भक्ति से सदैव पवित्रकारिणी कथा को सुनते हैं उनकी दुर्गति नहीं होती है ॥ १३ ॥ और सब यज्ञों में जो फल होताहै व सब

भिवाञ्छन्ति देहिनः ॥ ते शृण्वन्तु सदा भक्त्या शैवीं पौराणिकीं कथाम् ॥ ९ ॥ यद्यशक्तः सदा श्रोतुं कथां पौराणिकीं नरः ॥ मुहूर्तं वापि शृणुयान्नियतात्मा दिने दिने ॥ १० ॥ अथ प्रतिदिनं श्रोतुमशक्तो यदि मानवः ॥ पुण्यमासेषु वा पुण्ये दिने पुण्यतिथिष्वपि ॥ ११ ॥ यः शृणोति कथां रम्यां पुराणैः समुदीरिताम् ॥ स निस्तरति संसारं दग्ध्वा कर्ममहाटवीम् ॥ १२ ॥ मुहूर्तं वा तदर्द्धं वा क्षणं वा पावनीं कथाम् ॥ ये शृण्वन्ति सदा भक्त्या न तेषामस्ति दुर्गतिः ॥ १३ ॥ यत्फलं सर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम् ॥ सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फलं विन्दते नरः ॥ १४ ॥ कलौ युगे विशेषेण पुराणश्रवणादृते ॥ नास्ति धर्मः परः पुंसां नास्ति मुक्तिपथः परः ॥ १५ ॥ पुराणश्रवणाच्छम्भोर्नास्ति संकीर्तनं परम् ॥ अत एव मनुष्याणां कल्पद्रुममहाफलम् ॥ १६ ॥ कलौ हीनायुषो मर्त्या दुर्बलाः श्रमपीडिताः ॥ दुर्मेधसो दुःखभाजो धर्माचारविवर्जिताः ॥ १७ ॥ इति सञ्चिन्त्य कृपया भगवान्बादरायणः ॥ हिताय तेषां

दानों में जो फल होता है उस फलको मनुष्य एक बार पुराण के सुनने से पाता है ॥ १४ ॥ और कलियुगमें विशेष कर पुराणके सुनने के सिवा पुरुषों के लिये अन्य धर्म नहीं है और न दूसरा मुक्ति का मार्ग है ॥ १५ ॥ और पुराण सुनने के सिवा अन्य शिवजीका कीर्तन नहीं है इसी कारण मनुष्यों को कल्पवृक्षके समान महाफलवान् है ॥ १६ ॥ कलियुग में मनुष्य कम आयुवाले व दुर्बल तथा श्रम से पीड़ित होते हैं और दुर्बुद्धि व दुःखी तथा धर्म व आचार से रहित होते हैं ॥ १७ ॥

यह विचार कर दयासे भगवान् व्यासजी ने उन मनुष्यों के हित के लिये पुराण नामक अमृत का रस बनाया है ॥ १८ ॥ यत्नसे इस अमृत को पीता हुआ मनुष्य अजर व अमर होता है और शिवजी की कथा का अमृत वंशको अजर अमर करता है ॥ १९ ॥ पुराण को जाननेवाला बालक, ज्वान, निर्धनी, वृद्ध व दुर्बलभी सदैव पुण्य के चाहनेवाले मनुष्यों से प्रणाम करने व पूजने योग्य है ॥ २० ॥ और कभी पुराण के जाननेवाले में नीच की बुद्धि न करै कि जिसके कमलरूपी मुखसे उपजी हुई वाणी प्राणियों के लिये कामधेनु है ॥ २१ ॥ लोकों में जन्म से व गुणसे बहुत गुरु होते हैं परन्तु उन सबों के

विदधे पुराणाख्यं सुधारसम् ॥ १८ ॥ पिबन्नेवामृतं यत्नादेतत्स्यादजरामरः ॥ शम्भोः कथामृतं कुर्यात्कुलमेवाजराम रम् ॥ १९ ॥ बालो युवा दरिद्रो वा वृद्धो वा दुर्बलोऽपि वा ॥ पुराणज्ञः सदा वन्द्यः पूज्यश्च सुकृतार्थिभिः ॥ २० ॥ नीच बुद्धिं न कुर्वीत पुराणज्ञे कदाचन ॥ यस्य वक्त्राम्बुजाद्वाणी कामधेनुः शरीरिणाम् ॥ २१ ॥ गुरवः सन्ति लोकेषु जन्मतो गुणतस्तथा ॥ तेषामपि च सर्वेषां पुराणज्ञः परो गुरुः ॥ २२ ॥ भवकोटिसहस्रेषु भूत्वा भूत्वावसीदति ॥ यो ददात्यपुनर्वृत्तिं कोऽन्यस्तस्मात्परो गुरुः ॥ २३ ॥ पुराणज्ञः शुचिर्दान्तः शान्तो विजितमत्सरः ॥ साधुः कारुण्यवा न्वाग्मी वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ २४ ॥ व्यासासनं समारूढो यदा पौराणिको द्विजः ॥ असमाप्तप्रसङ्गश्च नम स्कुर्यान्न कस्यचित् ॥ २५ ॥ ये धूर्ता ये च दुर्वृत्ता ये चान्ये विजिगीषवः ॥ तेषां कुटिलवृत्तीनामग्रे नैव वदेत्क

मध्य में पुराण का जाननेवाला श्रेष्ठ गुरु होता है ॥ २२ ॥ करोड़ों हज़ार जन्मों में बारबार उत्पन्न होकर जो दुःखित होता है उसके लिये जो फिर जन्म को नहीं देता है उससे अन्य कौन श्रेष्ठ गुरु है ॥ २३ ॥ और पवित्र, इन्द्रियों को रोंकनेवाला व शान्त तथा ईर्षा को जीतनेवाला व साधु और दयावान् व उत्तम वचन-वाला बुद्धिमान् पुराण को जाननेवाला मनुष्य पवित्र कथा को कहै ॥ २४ ॥ जब पुराण को जाननेवाला ब्राह्मण व्यासासन पै प्राप्त होवै तब बिन प्रसंग समास हुए किसी को प्रणाम न करै ॥ २५ ॥ और जो छली व जो दुष्ट तथा अन्य जो जीतने की इच्छावाले हैं उन कुटिलवृत्तिवाले मनुष्यों के आगे कथाको न

कहै ॥ २६ ॥ और दुर्जनों से पूर्ण तथा शूद्रों व हिंसक जीवों से घिरेहुए देशमें व जुवा खेलने के घरमें उत्तम बुद्धिवाला मनुष्य पवित्र कथा को न कहै ॥ २७ ॥ वरन उत्तम ग्राम में व सुजनों से व्याप्त तथा उत्तम क्षेत्र व देवालय में और पवित्र नद व नदी के किनारे विद्वान् पवित्र कथाको कहै ॥ २८ ॥ और पुण्यभागी श्रोता लोग शिवजी की भक्ति से संयुत होवैं व अन्य कार्यों में उनका चित्त न लगै व मौन तथा पवित्र व सावधान होवैं ॥ २९ ॥ और बिन भक्त जो नीच मनुष्य पवित्र कथा को सुनते हैं उनको पुण्य का फल नहीं होता है व प्रत्येक जन्म में दुःख होता है ॥ ३० ॥ और ताम्बूलादिक उपायनों से पुराण को न पूज

थाम् ॥ २६ ॥ न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृते ॥ देशे न द्यूतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ २७ ॥ सद्ग्रामे सुजनाकीर्णे सुक्षेत्रे देवतालये ॥ पुण्ये नदनदीतीरे वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ २८ ॥ शिवभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः ॥ वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः ॥ २९ ॥ अभक्ता ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः ॥ तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि ॥ ३० ॥ पुराणं ये त्वसंपूज्य ताम्बूलाद्यैरुपायनैः ॥ शृण्वन्ति च कथां भक्त्या दरिद्राः स्युर्न पापिनः ॥ ३१ ॥ कथायां कीर्त्यमानायां ये गच्छन्त्यन्यतो नराः ॥ भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च सम्पदः ॥ ३२ ॥ सोष्णीषमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति पावनीम् ॥ ते बलाकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः ॥ ३३ ॥ ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथां शृण्वन्ति पावनीम् ॥ स्वविष्ठां खादयन्त्येतान्नरके यमकिङ्कराः ॥ ३४ ॥ ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः ॥ अक्षयान्नरकान्भुक्त्वा ते भवन्त्येव

कर जो भक्ति से कथा को सुनते हैं वे निर्धनी होते हैं पापी नहीं होते हैं ॥ ३१ ॥ और कथा कहते समय जो मनुष्य अन्यत्र चले जाते हैं उनकी स्त्रियां व सम्पदा सुखके मध्य में नाश होजाती हैं ॥ ३२ ॥ और पगड़ी को मस्तक में बाँधकर जो मनुष्य पवित्रकारिणी कथा को सुनते हैं वे पापी व नीच मनुष्य बगुला होते हैं ॥ ३३ ॥ और ताम्बूल खातेहुए जो मनुष्य पवित्रकारिणी कथा को सुनते हैं इनको यमदूत नरकमें अपना विष्ठा खिलाते हैं ॥ ३४ ॥ और ऊंचे आसन पै बैठकर

जो पाखण्डी लोग कथा को सुनते हैं वे अक्षय नरकों को भोगकर कौवा होते हैं ॥ ३५ ॥ और जो सिंहासन पै चढ़कर व जो मञ्च पै बैठकर उत्तम कथा को सुनते हैं वे टेढ़े वृक्ष होते हैं ॥ ३६ ॥ और विन प्रणाम करके कथा को सुननेवाले मनुष्य विष के वृक्ष होते हैं और सोतेहुए जो मनुष्य कथाको सुनते हैं वे अजगर होते हैं ॥ ३७ ॥ और वक्ता के बराबर आसन पै बैठकर जो कथाको सुनता है वह गुरुकी शय्या पै जानेके समान पाप को पाकर नरक को जाता है ॥ ३८ ॥ और जो मनुष्य पुराण के ज्ञाता व पापहारिणी कथा की निन्दा करते हैं वे मनुष्य सौ जन्म तक कुत्ता होते हैं ॥ ३९ ॥ और कथा वर्तमान होनेपर जो नीच मनुष्य

वायसाः ॥ ३५ ॥ ये च वीरासनारूढा ये च मञ्चकसंस्थिताः ॥ शृण्वन्ति सत्कथां ते वै भवन्त्यनृजुपादपाः ॥ ३६ ॥ असं प्रणम्य शृण्वन्तो विषवृक्षा भवन्ति ते ॥ कथां शयानाः शृण्वन्तो भवन्त्यजगरा नराः ॥ ३७ ॥ यः शृणोति कथां वक्तुःसमानासनमाश्रितः ॥ गुरुतल्पसमं पापं संप्राप्य नरकं व्रजेत् ॥ ३८ ॥ ये निन्दन्ति पुराणज्ञं कथां वा पापहारिणीम् ॥ ते वै जन्मशतं मर्त्याः शुनकाः संभवन्ति च ॥ ३९ ॥ कथायां वर्तमानायां ये वदन्ति नराधमाः ॥ ते गर्दभाः प्रजायन्ते कृकलासास्ततः परम् ॥ ४० ॥ कदाचिदपि ये पुण्यां न शृण्वन्ति कथां नराः ॥ ते भुक्त्वा नरकान्घोरान्भवन्ति वनसूकराः ॥ ४१ ॥ ये कथामनुमोदन्ते कीर्त्यमानां नरोत्तमाः ॥ अशृण्वन्तोऽपि ते यान्ति शाश्वतं परमं पदम् ॥ ४२ ॥ कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः ॥ कोट्यब्दान्नरकान्भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः ॥ ४३ ॥ ये श्रावयन्ति मनुजान्पुण्यां पौराणिकीं कथाम् ॥ कल्पकोटिशतं साग्रं तिष्ठन्ति ब्रह्मणः पदम् ॥ ४४ ॥ आसनार्थं

बोलते हैं वे गधा होते हैं तदनन्तर गिरगिट होते हैं ॥ ४० ॥ और जो मनुष्य कभी पवित्र कथाको नहीं सुनते हैं वे भयंकर नरकों को भोगकर वनसूकर होते हैं ॥ ४१ ॥ और जो उत्तम मनुष्य कही जातीहुई कथा का अनुमोदन करते हैं न सुनतेहुए भी वे सनातन परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥ और कथा वर्तमान होनेपर जो शठ मनुष्य विघ्न करते हैं वे करोड़ वर्षतक नरकों को भोगकर ग्रामसूकर होते हैं ॥ ४३ ॥ और जो मनुष्यों को पुराण की उत्तम कथा को सुनाते हैं वे कुछ अधिक करोड़ कल्पों तक ब्रह्मा के स्थान में स्थित होते हैं ॥ ४४ ॥ व जो मनुष्य पुराण के ज्ञाता को बैठने के लिये कम्मर,मृगचर्म व वसनों को देते हैं या

मञ्च व तख़्त को देते हैं ॥ ४५ ॥ वे स्वर्गलोक को जाकर इच्छा के अनुसार सुखोंको भोगकर ब्रह्मादिक के लोकों में स्थित होकर व्याधिरहित स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ ४६ ॥ और पुराण के जाननेवाले मनुष्य को जो नवीन सूत्र के वसन को देते हैं वे प्रत्येक जन्म में सुखी व ज्ञान से युक्त होते हैं ॥ ४७ ॥ और जो बडे पातकों से संयुत व जो उपपातकी होते हैं पुराण के सुननेही से वे परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस विषय में मैं सुननेवालों के सब पापोंका नाशक व विचित्र तथा मनोहर महापवित्र इतिहास को कहता हूं ॥ ४९ ॥ कि दक्षिणापथ के मध्य में वाष्कल संज्ञक ग्राम है उसमें सबलोग मूर्ख व कर्म

प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः ॥ कम्बलाजिनवासांसि मञ्चं फलकमेव च ॥ ४५ ॥ स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम् ॥ ४६ ॥ पुराणज्ञस्य यच्छन्ति ये सूत्र वसनं नवम् ॥ भोगिनो ज्ञानसम्पन्नास्ते भवन्ति भवे भवे ॥ ४७ ॥ ये महापातकैर्युक्ता उपपातकिनश्च ये ॥ पुराणश्रव णादेव ते यान्ति परमं पदम् ॥ ४८ ॥ अत्र वक्ष्ये महापुण्यमितिहासं द्विजोत्तमाः ॥ शृण्वतां सर्वपापघ्नं विचित्रं सुमनोहरम् ॥ ४९ ॥ दक्षिणापथमध्ये वै ग्रामो बाष्कलसंज्ञितः ॥ तत्र सन्ति जनाः सर्वे मूढाः कर्मविवर्जिताः ॥ ५० ॥ न तत्र ब्राह्मणाचाराः श्रुतिस्मृतिपराङ्मुखाः ॥ जपस्वाध्यायरहिताः परस्त्रीविषयातुराः ॥ ५१ ॥ कृषीवलाः शस्त्रध रा निर्देवा जिह्मवृत्तयः ॥ न जानन्ति परं धर्मं ज्ञानवैराग्यलक्षणम् ॥ ५२ ॥ स्त्रियश्च पापनिरताः स्वैरिण्यः काम लालसाः ॥ दुर्बुद्धयः कुटिलगाः सद्व्रताचारवर्जिताः ॥ ५३ ॥ तत्रैको विदुरो नाम दुरात्मा ब्राह्मणाधमः ॥ आसीद्वेश्या

से रहित रहते थे ॥ ५० ॥ और उसमें ब्राह्मण के आचारवाले मनुष्य नहीं थे तथा श्रुतियों व स्मृतियों से विमुख थे और जप व वेदपाठ से रहित तथा पराई स्त्रियों के विषय से आतुर थे ॥ ५१ ॥ और खेती के कर्मवाले तथा शस्त्रधारी और देवतारहित व कुटिल कर्मकारी थे और ज्ञान, वैराग्य लक्षणवाले उत्तम धर्म को नहीं जानते थे ॥ ५२ ॥ और स्त्रियां पाप में परायण व स्वैरिणी तथा कामदेव में लालसावाली थीं और दुर्बुद्धि व कुटिलगामिनी तथा उत्तम व्रत व आचार से रहित थीं ॥ ५३ ॥ उस गॉव में एक दुष्टचित्त व ब्राह्मणों में नीच विदुरनामक ब्राह्मण हुआ है जो यह स्त्रीसमेतभी सदैव कुमार्गगामी होकर

वेश्या का पति था ॥ ५४ ॥ और प्रत्येक रात्रि में बन्दुलानामक अपनी स्त्रीको छोड़कर वेश्या के घरको जाकर कामदेव से पीडित वह रमण करता था ॥ ५५ ॥ और नवीन यौवनवाली वह उसकी स्त्री भी रात्रि में पतिसे अलग होकर कामदेवका प्रवेश न सहती हुई परपतिके साथ रमण करती थी ॥ ५६ ॥ किसी समय दुष्ट आचरणवाली उस स्त्रीको परपति के साथ देखकर शीघ्रता समेत वह उसका पति क्रोधसे दौड़ा ॥ ५७ ॥ और परपति के भागजानेपर दुष्ट आशयवाले उस पतिने स्त्रीको पकड़कर बारबार घूंसा से मारा ॥ ५८ ॥ और पति से पीड़ित उस निडर स्त्रीने क्रोधित होकर कहा कि आप प्रत्येक रात्रि में वेश्या से रमण करते

पतिर्योऽसौ सदारोऽपि कुमार्गगः ॥ ५४ ॥ स्वपत्नीं बन्दुलां नाम हित्वा प्रतिनिशं तथा ॥ वेश्याभवनमासाद्य रमते स्मरपीडितः ॥ ५५ ॥ सापि तस्याङ्गना रात्रौ वियुक्ता नवयौवना ॥ असहन्ती स्मरावेशं रेमे जारेण सङ्गता ॥ ५६ ॥ तां कदाचिद्दुराचारां जारेण सह सङ्गताम् ॥ दृष्ट्वा तस्याः पतिः क्रोधादभिदुद्राव सत्वरः ॥ ५७ ॥ जारे पलायिते पत्नीं गृहीत्वा स दुराशयः ॥ सन्ताड्य मुष्टिबन्धेन मुहुर्मुहुरताडयत् ॥ ५८ ॥ सा नारी पीडिता भर्त्रा कुपिता प्राह निर्भया ॥ भवान्प्रतिनिशं वेश्यां रमते का गतिर्मम ॥ ५९ ॥ अहं रूपवती योषा नवयौवनशालिनी ॥ कथं सहिष्ये कामार्ता तव सङ्गतिवर्जिता ॥ ६० ॥ इत्युक्तः स तया तन्व्या प्रोवाच ब्राह्मणाधमः ॥ युक्तमेव त्वयोक्तं हि तस्माद्वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ६१ ॥ जारेभ्यो धनमाकृष्य तेभ्यो देहि परां रतिम् ॥ तद्धनं देहि मे सर्वं पण्यस्त्रीणां ददामि तत् ॥ ६२ ॥ एवं संपूर्यते कामो ममापि च वरानने ॥ तथेति भर्तृवचनं प्रतिजग्राह सा वधूः ॥ ६३ ॥ एवं तयोस्तु

हो तो मेरी कौन गति होवै ॥ ५९ ॥ नवीन यौवन में शोभित मैं रूपवती स्त्री तुम्हारा समागम न होने के कारण कामदेव से विकल होकर कैसे सहूं ॥ ६० ॥ उस स्त्रीसे ऐसा कहेहुए उस नीच ब्राह्मण ने कहा कि तुमने योग्य कहा है उसी कारण तुम्हारा हित कहता हूं ॥ ६१ ॥ कि जार (अन्य पुरुष) से धनको लेकर उनके लिये उत्तम रति दीजिये और उस सब धन को मुझे दीजिये तो उसको मैं वेश्याओं को देऊं ॥ ६२ ॥ हे वरानने ! इस प्रकार मेरा भी काम पूर्ण होगा बहुत अच्छा ऐसा कहकर उस स्त्रीने पतिका वचन स्वीकार किया ॥ ६३ ॥ इस प्रकार दुष्ट आचार में लगेहुए उन दोनों के मध्य में वह शूद्रा का पति ब्राह्मण

काल से मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ ६४ ॥ और पति के मरने पर कुछ बीते यौवनवाली उस स्त्रीने बहुत समय तक पुत्रों समेत अपने घरमें निवास किया ॥ ६५ ॥ एक समय दैवयोग से पवित्र पर्व के प्राप्त होनेपर बन्धुवों समेत वह स्त्री गोकर्णक्षेत्र को आई ॥ ६६ ॥ वहां तीर्थ के जल में नहाकर उसने किसी देवालय में मुख्य देवताओं की पुराणवाली कथा को सुना ॥ ६७ ॥ कि अन्य पति का सङ्ग करनेवाली स्त्रियों की योनि में यमदूत नरक में तचेहुए लोहके परिघ को डालते हैं ॥ ६८ ॥ पुराणज्ञाता से कही हुई इस धर्मसंहिता को सुनकर इस डरीहुई स्त्रीने एकान्त में उस श्रेष्ठ ब्राह्मण से कहा ॥ ६९ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! पाप को न

दम्पत्योर्दुराचारप्रवृत्तयोः ॥ कालेन निधनं प्राप्तः स विप्रो वृषलीपतिः ॥ ६४ ॥ मृते भर्तरि सा नारी पुत्रैः सह निजालये ॥ उवास सुचिरं कालं किञ्चिदुत्क्रान्तयौवना ॥ ६५ ॥ एकदा दैवयोगेन संप्राप्ते पुण्यपर्वणि ॥ सा नारी बन्धुभिः सार्धं गोकर्णं क्षेत्रमाययौ ॥ ६६ ॥ तत्र तीर्थजले स्नात्वा कस्मिंश्चिद्देवतालये ॥ शुश्राव देवमुख्यानां पुण्यां पौराणिकीं कथाम् ॥ ६७ ॥ योषितां जारसक्तानां नरके यम किङ्कराः ॥ सन्तप्तलोहपरिघं क्षिपन्ति स्मरमन्दिरे ॥ ६८ ॥ इति पौराणिकेनोक्तां सा श्रुत्वा धर्मसंहिताम् ॥ तमुवाच रहस्येषा भीता ब्राह्मणपुङ्गवम् ॥ ६९ ॥ ब्रह्मन्पापमजानन्त्या मयाचरितमुल्बणम् ॥ यौवने कामचारेण कौटिल्येन प्रवर्तितम् ॥ ७० ॥ इदं त्वद्वचनं श्रुत्वा पुराणार्थविजृम्भितम् ॥ भीतिर्मे महती जाता शरीरं वेपते मुहुः ॥ ७१ ॥ धिङ्मां दुरिन्द्रियासक्तां पापां स्मरविमोहिताम् ॥ अल्पस्य यत्सुखस्यार्थे घोरां यास्यामि दुर्गतिम् ॥ ७२ ॥ कथं पश्यामि मरणे यमदूतान्भयङ्करान् ॥ कथं पाशैर्बलात्कण्ठे वध्य

जानती हुई मैंने उग्र पाप को किया है और युवावस्था में इच्छा के अनुसार आचरण से कुटिलता से वर्ताव किया ॥ ७० ॥ और पुराण के अर्थ से कहेहुए इस तुम्हारे वचनको सुनकर मुझको बड़ा डर हुआ और बारबार शरीर कॉपता है ॥ ७१ ॥ दुष्ट इन्द्रियों में आसक्त व कामदेव से मोहित मुझ पापिनी को धिक्कार है जोकि थोड़े सुखके लिये मैं भयंकर दुर्गति को प्राप्त हूंगी ॥ ७२ ॥ मरण में भयंकर यमदूतों को मै कैसे देखूंगी और गले में फॅसरी से बॉधीहुई मैं

कैसे धैर्य को पाऊंगी ॥ ७३ ॥ और नरक में खण्ड खण्ड देह के कटने को कैसे सहूंगी और फिर संतप्त मैं क्षारकर्दम में कैसे गिरूंगी ॥ ७४ ॥ और दुःख- समूह से निरन्तर पीड़ित मैं कैसे कृमि कीट व पक्षी आदिक लाखों योनियों में भ्रमित हूंगी ॥ ७५ ॥ और आज से लगाकर मुझको भोजन कैसे रुचैगा व दुःख से डूबीहुई मैं रात्रि में कैसे निद्रा को सेवन करूंगी ॥ ७६ ॥ हाय हाय मैं मरगई व जलगई और मेरा हृदय फटगया हा विधे! महापाप में बुद्धि को देकर तुमने मुझको पतित किया ॥ ७७ ॥ ऊंचे पर्वत के अग्रभाग से गिरते हुए व शूल से मारे हुए प्राणी को जो भयंकर दुःख होता है मुझको

माना धृतिं लभे ॥७३॥ कथं सहिष्ये नरके खण्डशो देहकृन्तनम्॥ पुनः कथं पतिष्यामि सन्तप्ता क्षारकर्दमे ॥७४॥ कथं च योनिलक्षेषु क्रिमिकीटखगादिषु॥ परिभ्रमामि दुःखौघात्पीड्यमाना निरन्तरम् ॥ ७५ ॥ कथं च रोचते मह्यमद्यप्रभृति भोजनम् ॥ रात्रौ कथं च सेविष्ये निद्रां दुःखपरिप्लुता ॥ ७६ ॥ हा हा हतास्मि दग्धास्मि विदीर्णहृदयास्मि च॥ हा विधे मां महापापे दत्त्वा बुद्धिमपातयः ॥ ७७॥ पततस्तुङ्गशैलाग्राच्छूलाक्रान्तस्य देहिनः ॥ यद्दुःखं जायते घोरं तस्मात्कोटिगुणं मम ॥ ७८॥ अश्वमेधायुतं कृत्वा गङ्गां स्नात्वा शतं समाः ॥ न शुद्धिर्जायते प्रायो मत्पापस्य गरीयसः ॥७९॥ किं करोमि क्व गच्छामि कं वा शरणमाश्रये॥ को वा मां त्रायते लोके पतन्तीं नरकार्णवे॥ ८० ॥ त्वमेव मे गुरुर्ब्रह्मंस्त्वं माता त्वं पितासि च॥ उद्धरोद्धर मां दीनां त्वामेव शरणं गताम् ॥ ८१ ॥ इति तां जातनिर्वेदां पतितां चरणद्वये ॥ उत्थाप्य कृपया धीमान्बभाषे द्विजपुङ्गवः ॥ ८२ ॥ ब्राह्मण उवाच॥

उससे कोटिगुना है ॥ ७८ ॥ दश हज़ार अश्वमेध यज्ञ करके व सौ वर्ष तक गंगा में नहाकर मेरे बड़े भारी पाप की शुद्धि न होगी ॥ ७९ ॥ मैं क्या करूं व कहां जाऊं व किसकी शरण होऊं और नरक के समुद्र में गिरती हुई मेरी संसार में कौन रक्षा करैगा ॥ ८० ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हीं मेरे गुरु हो और तुम्हीं माता, पिता हो तुम्हारी ही शरण में प्राप्त मुझको उधारिये उधारिये ॥ ८१ ॥ इस प्रकार दोनों चरणोंमें पड़ीहुई उस उत्पन्न निर्वेद (वैराग्य) वाली स्त्री को दया से उठाकर बुद्धिमान् द्विजोत्तम ने कहा॥ ८२॥ (ब्राह्मण बोला) कि आनन्द है जोकि तुम इस बड़ी भारी कथा को सुनकर समय में ज्ञानवती हुई

तुम मत डरो मैं सुख को देनेवाली गतिको तुमसे कहता हूं ॥ ८३ ॥ उत्तम कथा के सुननेही से तुम्हारी ऐसी बुद्धि होगई और इन्द्रियार्थों में वैराग्य हुआ व बडा भारी पश्चात्ताप हुआ ॥ ८४ ॥ सब पापों का पश्चात्तापही श्रेष्ठ यत्न है और उसीसे बुद्धिमान् मनुष्य शीघ्रही प्रायश्चित्त करता है ॥ ८५ ॥ और विधिपूर्वक सब प्रायश्चित्तों को करके पश्चात्ताप न करनेवाले मनुष्य उत्तम गति को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ८६ ॥ और उत्तम कथा को सुननेही से मनुष्य उत्तम गति को जाता है व पवित्र क्षेत्र में बसने से चित्त की शुद्धि होती है ॥ ८७ ॥ जिस प्रकार नित्य उत्तम कथा के सुनने से मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त होता है उस प्रकार अन्य

दिष्ट्या काले प्रबुद्धासि श्रुत्वेमां महतीं कथाम् ॥ माभैषीस्तव वक्ष्यामि गतिं चैव सुखावहाम् ॥ ८३ ॥ सत्कथाश्रवणादेव जाता ते गतिरीदृशी ॥ इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं पश्चात्तापो महानभूत् ॥ ८४ ॥ पश्चात्तापो हि सर्वेषामघानां निष्कृतिः परा ॥ तेनैव कुरुते सद्यः प्रायश्चित्तं सुधीर्नरः ॥ ८५ ॥ प्रायश्चित्तानि सर्वाणि कृत्वा च विधिवत्पुनः ॥ अपश्चात्तापिनो मर्त्या न यान्ति गतिमुत्तमाम् ॥ ८६ ॥ सत्कथाश्रवणान्नित्यं संयाति परमां गतिम् ॥ पुण्यक्षेत्रनिवासाच्च चित्तशुद्धिः प्रजायते ॥ ८७ ॥ यथा सत्कथया नित्यं संयाति परमां गतिम् ॥ तथान्यैः सद्व्रतैर्जन्तोर्न भवेन्मतिरुत्तमा ॥ ८८ ॥ यथा मुहुः शोध्यमानो दर्पणो निर्मलो भवेत् ॥ तथा सत्कथया चेतो विशुद्धिं परमां व्रजेत् ॥ ८९ ॥ विशुद्धे चेतसि नृणां ध्यानं सिध्यत्युमापतेः ॥ ध्यानेन सर्वं मलिनं मनोवाक्कायसंभृतम् ॥ ९० ॥ सद्यो विधूय कृतिनो यान्ति शम्भोः परं पदम् ॥ अतः संन्यस्तपुण्यानां सत्कथा साधनं परम् ॥ ९१ ॥ कथया सिध्यति ध्यानं

उत्तम व्रतों से प्राणी की उत्तम बुद्धि नहीं होती है ॥ ८८ ॥ जैसे बारबार शोधाहुआ दर्पण निर्मल होता है वैसेही उत्तम कथा से चित्त उत्तम शुद्धि को प्राप्त होता है ॥ ८९ ॥ और चित्त शुद्ध होनेपर मनुष्यों के शिवजी का ध्यान सिद्ध होता है व ध्यान से मन, वचन तथा शरीर से कियेहुए सब मलिन को ॥ ९० ॥ शीघ्रही नाशकर पुण्यवान् लोग शिवजी के परमपद को प्राप्त होते हैं इस कारण पुण्यवान् लोगों का उत्तम कथा श्रेष्ठ यत्न है ॥ ९१ ॥ और कथा से ध्यान सिद्ध होता

है व ध्यान से उत्तम मोक्ष होता है व उत्तम ध्यान को न सिद्ध करनेवाला जो मनुष्य इस कथा को सुनता है वह दूसरे जन्म में ध्यान को प्राप्त होकर उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ९२ ॥ अजामिल पश्चात्ताप से संयुत होकर नाम के कहनेही से मन्त्र को जपकर उत्तम गति को प्राप्त हुआ है ॥ ९३ ॥ मनुष्यों का उत्तम कथा का सुनना सब कल्याणों का बीज है जो उससे हीन है वह पशु बन्धन से कैसे छूटैगा ॥ ९४ ॥ इस कारण तुम भी सब विषयों से बुद्धिको लौटा कर उत्तम भक्ति को धारण कर सदैव उत्तम कथा को सुनो क्योंकि नित्य उत्तम कथा को सुनती हुई तेरा चित्त शुद्धि को प्राप्त होगा ॥ ९५ ॥ और उससे विश्वे-

ध्यानात्कैवल्यमुत्तमम् ॥ असिद्धपरमध्यानः कथामेतां शृणोति यः ॥ सोऽन्यजन्मनि संप्राप्य ध्यानं याति परां गतिम् ॥ ९२ ॥ नामोच्चारणमात्रेण जप्त्वा मन्त्रमजामिलः ॥ पश्चात्तापसमायुक्तस्त्ववाप परमां गतिम् ॥ ९३ ॥ सर्वेषां श्रेयसां बीजं सत्कथाश्रवणं नृणाम् ॥ यस्तद्विहीनः स पशुः कथं मुच्येत बन्धनात् ॥ ९४ ॥ अतस्त्वमपि सर्वेभ्यो विषयेभ्यो निवृत्तधीः ॥ भक्तिं परां समाधाय सत्कथां शृणु सर्वदा ॥ शृण्वन्त्याः सत्कथां नित्यं चेतस्ते शुद्धिमेष्यति ॥ ९५ ॥ तेन ध्यायसि विश्वेशं ततो मुक्तिमवाप्स्यसि ॥ ध्यायतः शिवपादाब्जं मुक्तिरेकेन जन्मना ॥ ९६ ॥ भविष्यति न सन्देहः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ इत्युक्ता तेन विप्रेण सा नारी बाष्पसंकुला ॥ ९७ ॥ पतित्वा पादयोस्तस्य कृतार्थास्मीत्यभाषत ॥ तस्मिन्नेव महाक्षेत्रे तस्मादेव द्विजोत्तमात् ॥ ९८ ॥ शुश्राव सत्कथां साध्वी कैवल्यफलदायिनीम् ॥ स उवाच द्विजस्तस्यै कथां वैराग्यबृंहिताम् ॥ ९९ ॥ यां श्रुत्वा मनुजः सद्यस्त्यजेद्विप

श्वरजी को ध्यावोगी तदनन्तर मुक्तिको पावोगी क्योंकि शिवजी के चरणकमल को ध्यान करनेवाले की एक जन्म से मुक्ति होजावैगी इसमें सन्देह नहीं है मैं सत्य सत्य कहता हू उस ब्राह्मण से इस प्रकार कहीहुई आँसुवों से सयुत उस स्त्रीने ॥ ९६ । ९७ ॥ उसके चरणों में गिरकर यह कहा कि मैं कृतार्थ होगई और उसी महाक्षेत्र में उसी द्विजोत्तम से ॥ ९८ ॥ मुक्तिफल को देनेवाली उत्तम कथा को सुना और उस ब्राह्मण ने उस स्त्रीसे वैराग्य से बढ़ीहुई कथा को कहा ॥ ९९ ॥

जिसको सुनकर मनुष्य शीघ्रही विषय वासना को छोड़देता है उसका चित्त जिस प्रकार शुद्ध होगया व जिस भांति वैराग्य के रसमें प्राप्त हुआ ॥ १०० ॥ उसी प्रकार ब्राह्मण ने भक्ति से संयुत शिवजी की कथा को कहा और ज्यों ज्यों उस स्त्रीका मन धीरे धीरे प्रसन्नता को प्राप्त होता था त्यों त्यों उस ब्राह्मण ने धीरे धीरे शिवजी के ध्यानयोग को कहा ॥ १ ॥ धीरे धीरे नष्ट रजोगुण व तमोगुणवाले तथा सब इन्द्रियोंके सुख को छोड़नेवाले तथा शुद्धतत्त्ववाले ब्राह्मण की स्त्रीके हृदय में विश्वेश्वर के रूपका ध्यान पैठगया ॥ २ ॥ इस प्रकार उत्तम गुरुको प्राप्त होकर उस स्त्रीने उत्तम बुद्धि को पाकर बारबार शिवजी के चैतन्यात्मक

यवासनाम् ॥ तस्याश्चित्तं यथा शुद्धं वैराग्यरसगं यथा ॥ १०० ॥ तथोवाच द्विजः शैवीं कथां भक्तिसमन्विताम् ॥ यथा यथा मनस्तस्याः प्रसादमभिगच्छति ॥ तथा तथा शनैः शम्भोर्ध्यानयोगमुपादिशत् ॥ १ ॥ शनैः शनैर्ध्व स्तरजस्तमोमलं विमुक्तसर्वेन्द्रियभोगविग्रहम् ॥ विशुद्धतत्त्वं हृदयं द्विजस्त्रिया विवेश विश्वेश्वररूपचिन्तनम् ॥२॥ इत्थं सद्गुरुमाश्रित्य सा नारी प्राप्तसन्मतिः ॥ दध्यौ मुहुर्मुहुः शम्भोश्चिदानन्दमयं वपुः ॥ ३ ॥ नित्यं तीर्थजले स्नात्वा जटावल्कलधारिणी ॥ भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गी रुद्राक्षकृतभूषणा ॥ ४ ॥ शिवनामजपासक्ता वाग्यता मितभो जना ॥ बद्धपद्मासनाऽव्यग्रा सत्कथाश्रवणोत्सुका ॥ ५ ॥ गुरुशुश्रूषणरता त्यक्तापत्यसुहृज्जना ॥ गुरूपदिष्टयोगेन शिवमेवमतोषयत् ॥ ६ ॥ विश्वेश विश्वविलयस्थितिजन्महेतो विश्वैकवन्द्य शिव शाश्वत विश्वरूप ॥ विध्वस्त

शरीर को ध्यान किया ॥ ३ ॥ और नित्य तीर्थ के जलमें नहाकर जटा व बकलों को धारनेवाली उस स्त्रीने सब अङ्गों में भस्म को लगाकर रुद्राक्ष का भूषण किया ॥ ४ ॥ और शिवजी के नामोंके जपमें लगीहुई वह मौनी व थोड़ा भोजन करनेवाली सावधान स्त्री पद्मासन को बाँधकर उत्तम कथा के सुनने में उत्कंठित हुई ॥ ५ ॥ और गुरुकी सेवा में परायण तथा सन्तान व मित्रजनों को छोडकर उस स्त्रीने गुरुसे बतलाये हुए मार्ग से शिवही को प्रसन्न किया ॥ ६ ॥ कि हे विश्वेश ! हे संसार के नाश ! पालन व जन्म के कारण ! हे विश्वैकवन्द्य, शिव, शाश्वत, विश्वरूप ! हे विध्वस्तकालविपरीतगुणावभास, श्रीमन्महेश ! मेरे

ऊपर दयादृष्टिको धारण कीजिये॥७॥ हे शम्भो ! हे चन्द्रभाल ! हे शान्तमूर्ते ! हे गंगाधर ! हे अमरवरपूजितचरणकमल ! हे नगेन्द्रनिकेतन, ईश ! हे भक्तदुःख-नाशक ! मेरे ऊपर दयादृष्टिको धारण कीजिये ॥ ८ ॥ हे श्रीविश्वनाथ, दयाकर, शूलपाणे ! हे भूतेश, भर्ग, भुवनत्रयगीतकीर्ते ! हे श्रीनीलकण्ठ, मदनान्तक, विश्वमूर्ते, गौरीपते ! मेरे ऊपर दयादृष्टि को धारण कीजिये ॥ ९ ॥ इस प्रकार प्रतिदिन शिवजी से प्रार्थना करती व उत्तम कथा को भलीभांति सुनतीहुई उस ने कर्मबन्धन को काटडाला ॥ १० ॥ इसके उपरान्त कालसे शरीर को छोड़कर शिवदूतों से लेगईहुई वह स्त्री शिवजी के मन्दिर को प्राप्त हुई ॥ ११ ॥ वहां

कालविपरीतगुणावभास श्रीमन्महेश मयि धेहि कृपाकटाक्षम् ॥ ७ ॥ शम्भो शशाङ्ककृतशेखर शान्तमूर्ते गङ्गाधरा मरवरार्चितपादपद्म ॥ नागेन्द्रभूषण नगेन्द्रनिकेतनेश भक्तार्तिहन्मयि निधेहि कृपाकटाक्षम् ॥ ८ ॥ श्रीविश्वनाथ करुणाकर शूलपाणे भूतेश भर्ग भुवनत्रयगीतकीर्ते ॥ श्रीनीलकण्ठ मदनान्तक विश्वमूर्ते गौरीपते मयि निधेहि कृपाकटाक्षम् ॥ ९ ॥ इत्थं प्रतिदिनं भक्त्या प्रार्थयन्ती महेश्वरम् ॥ शृण्वन्ती सत्कथां सम्यक्कर्मबन्धं समाच्छिनत् ॥ १० ॥ अथ कालेन सा नारी समुत्सृज्य कलेवरम् ॥ महेशानुचरैर्नीता संप्राप्ता शिवमन्दिरम् ॥ ११ ॥ तत्र देवं महादेवं सेव्यमानं सहोमया ॥ गणेशनन्दिभृङ्ग्याद्यैर्वीरभद्रेश्वरादिभिः ॥ १२ ॥ उपास्यमानं गौरीशं कोटिसूर्य समप्रभम् ॥ त्रिलोचनं पञ्चमुखं नीलग्रीवं सदाशिवम् ॥ १३ ॥ वामाङ्के बिभ्रतं गौरीं विद्युच्चन्द्रसमप्रभाम् ॥ दृष्ट्वा ससंभ्रमं नारी सा प्रणम्य पुनः पुनः ॥ १४ ॥ आनन्दाश्रुजलोत्सिक्ता रोमहर्षसमाकुला ॥ संमानिता करुणया

गणेश, नन्दी, भृङ्गी आदिक व वीरभद्रेश्वर आदिकों से सेवित पार्वती समेत देवदेव सदाशिवजी को ॥ १२ ॥ और उपासना कियेजाते हुए करोड़ों सूर्यों के समान प्रभावान् गौरीश, त्रिलोचन,पञ्चानन, नीलकण्ठ सदाशिवजी को ॥ १३ ॥ और बिजली व चन्द्रमा के समान प्रभावाली पार्वतीजी को बाईं गोदी में धारण कियेहुए शिवजी को देखकर संभ्रम समेत उस स्त्रीने बारबार प्रणाम कर ॥ १४ ॥ आनन्द के आँसुवों के जल से सींचीहुई व रोमांच से संयुत उस स्त्री का

पार्वतीजी ने व शिवजी ने दया से सम्मान किया ॥ १५ ॥ और उत्तम आनन्दघन से प्रकाशवाले तथा सदैव रहनेवाले उस लोक में अचलनिवास को पाकर बड़ा भारी सुख पाया ॥ १६ ॥ किसी समय उस स्त्रीने पार्वतीजीके समीप जाकर व प्रणाम करके यह पूंछा कि मेरा पति किस गतिको प्राप्त हुआ है ॥ १७ ॥ उस से महादेवी पार्वतीजी ने कहा कि वह दुष्ट तेरा पति नरक के दुःखों को भोगकर विन्ध्याचल में पिशाच हुआ है ॥ १८ ॥ फिर उस स्त्रीने त्रिलोक की स्वामिनी पार्वतीदेवी से पूंछा कि मेरा पति किस उपाय से उत्तम गतिको पावैगा ॥ १९ ॥ देवीजी बोलीं कि वह यदि किसी समय मेरी बड़ी पवित्र कथा को सुनै तो सब

पार्वत्या शङ्करेण च ॥ १५ ॥ तस्मिँल्लोके परानन्दघनज्योतिषि शाश्वते ॥ लब्ध्वा निवासमचलं लेभे सुखमनोहतम् ॥ १६ ॥ सा कदाचिदुमां देवीमुपसृत्य प्रणम्य च ॥ पर्यपृच्छत मे भर्त्ता कां गतिं गतवानिति ॥ १७ ॥ तामुवाच महादेवी स ते भर्त्ता दुराशयः ॥ भुक्त्वा नरकदुःखानि विन्ध्ये जातः पिशाचकः ॥ १८ ॥ पुनः पप्रच्छ सा नारी देवीं त्रिभुवनेश्वरीम् ॥ केनोपायेन मे भर्त्ता सद्गतिं प्राप्नुयादिति ॥ १९ ॥ देव्युवाच ॥ सोऽस्मत्कथां महापुण्यां कदाचिच्छृणुयाद्यदि ॥ निस्तीर्य दुर्गतिं सर्वामिमं लोकं प्रयास्यति ॥ २० ॥ इति गौर्या वचः श्रुत्वा सा नारी विहिताञ्जलिः ॥ प्रार्थयामास तां देवीं भर्तुः पापविशोधने ॥ २१ ॥ तया मुहुः प्रार्थ्यमाना पार्वती करुणायुता ॥ तुम्बुरुं नाम गन्धर्वमाहूयेदमथाब्रवीत् ॥ २२ ॥ तुम्बुरो गच्छ भद्रं ते विन्ध्यशैलं सहानया ॥ आस्ते पिशाचकस्तत्र योऽस्याः पतिरसन्मतिः ॥ २३ ॥ तस्याग्रे परमां पुण्यां कथामस्मद्गुणैर्युताम् ॥ आख्याय दुर्गतेर्मुक्तं तमानय शिवान्ति

दुर्गति को नाँघकर इस लोक को प्राप्त होगा ॥ २० ॥ पार्वतीजी का इस प्रकार वचन सुनकर हाथों को जोड़कर उस स्त्रीने पति का पाप नाश होने के लिये उन पार्वती देवी से प्रार्थना किया ॥ २१ ॥ व उससे बारबार प्रार्थना करने पर दयासंयुत पार्वतीजी ने तुम्बुरु नामक गन्धर्व को बुलाकर यह कहा ॥ २२ ॥ कि हे तुम्बुरो ! तुम्हारा कल्याण होवै इस स्त्रीसमेत तुम विन्ध्याचल को जावो और वहां जो दुष्टबुद्धिवाला इसका पिशाच पति है ॥ २३ ॥ उसके आगे मेरे गुणों से

संयुत बहुत प्यारी कथा को कहकर दुर्गति से छूटेहुए उसको शिवजी के समीप ले आइये ॥ २४ ॥ देवीजी से इस प्रकार आज्ञा को पाकर तुम्बुरु उन पार्वतीजी को प्रणाम कर उसके साथ विमान पै चढ़कर यकायक विन्ध्याचल को चला गया ॥ २५ ॥ वहां उसने अरुणनेत्र व बड़ी दाढ़ीवाले तथा हँसते, रोते व बोलते हुए बड़े शरीरवाले पिशाच को देखा ॥ २६ ॥ और बलसे पकड़कर व उसको पाशों से बाँधकर बिठाकर वीणाको हाथमें लियेहुए तुम्बुरुने शिवजी की कथा को गाया ॥ २७ ॥ और उस पिशाच ने शिवजी की पवित्र कथा को सुनकर सब पापको जलाकर सात दिनमें स्मरण को पाया ॥ २८ ॥ और पिशाच के

कम् ॥ २४ ॥ इति देव्या समादिष्टस्तुम्बुरुस्तां प्रणम्य च ॥ तया सह विमानेन विन्ध्याद्रिं सहसा ययौ ॥ २५ ॥ तत्रा पश्यन्महाकायं रक्तनेत्रं महाहनुम् ॥ प्रहसन्तं रुदन्तं च वल्गन्तं च पिशाचकम् ॥ २६ ॥ बलाद् गृहीत्वा तं पाशैर्ब द्ध्वा वै संनिवेश्य च ॥ तुम्बुरुर्वल्लकीहस्तो जगौ गौरीपतेः कथाम् ॥ २७ ॥ स पिशाचो महापुण्यां कथां श्रुत्वा पुर द्विषः ॥ विधूय कलुषं सर्वं सप्ताहात्प्राप संस्मृतिम् ॥२८॥ स पैशाचं वपुस्त्यक्त्वा स्वरूपं दिव्यमाप्य च ॥ जगौ स्वय मपि श्रीमच्चरितं पार्वतीपतेः ॥ २९ ॥ विमानमारुह्य स दिव्यरूपधृक्सतुम्बुरुः पार्श्वगतः स्वकान्तया ॥ गायन्महे शस्य गुणान्मनोरमाञ्जगाम कैवल्यपदं सनातनम् ॥ ३० ॥ सूत उवाच ॥ इत्येतत्कथितं पुण्यमाख्यानं दुरितापहम् ॥ महेश्वरप्रीतिकरं निर्मलज्ञानसाधनम् ॥ ३१ ॥ य इदं शृणुयान्मर्त्यः कीर्तयेद्वा समाहितः ॥ शम्भोर्गुणानुकथनं विचित्रं पापनाशनम् ॥ ३२ ॥ परमानन्दजनकं भवरोगमहौषधम् ॥ भुक्त्वेह विविधान्भोगान्मुक्तो याति परां

शरीर को छोड़कर वह दिव्य स्वरूप को पाकर आपभी शिवजी के उत्तम चरित्र को गाया ॥ २९ ॥ और दिव्य स्वरूपको धारणकर शिवजी के सुन्दर गुणोंको गाता हुआ वह अपनी स्त्रीसमेत व तुम्बुरुसमेत विमानपै चढ़कर सनातन मुक्तिस्थानको प्राप्त हुआ ॥ ३० ॥ सूतजी बोले कि पापनाशक व शिवजी की प्रीतिकारक तथा निर्मल ज्ञानका साधक यह पवित्र चरित्र कहागया ॥ ३१ ॥ सावधान होकर जो मनुष्य इस पापनाशक व उत्तम आनन्द को पैदा करने वाला तथा संसाररूपी रोग की बड़ीभारी औषधरूप शिवजी के विचित्र गुणों को सुनता व कहता है वह इस संसार में अनेक प्रकार के सुखों को भोगकर

मुक्त होकर उत्तम गतिको प्राप्त होताहै ॥३२।३३॥ सूतजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठो ! तुमलोग बड़े भाग्यवान् व कृतार्थहो जोकि सदैव शिवजी के नवीन कथारूपी अमृत के रसको सेवतेहो ॥ ३४ ॥ संसार में वे मनुष्य जन्मधारी हैं कि जिनका मन शिवजी को ध्यान करता है वह वाणी है जोकि गुणों की स्तुति करती है और वे दोनों कान हैं जोकि कथाको सुनते हैं और वे संसार को उतर जाते हैं ॥ ३५ ॥ सदैव अनेक प्रकार के गुणके भेदों से अप्रकट रूपवाले तथा संसार में व भीतर, बाहर महिमा से समानरूप तथा अपने तेजमें विहार करनेवाले और वचन व मन की वृत्ति से दूर परम शिव और अनन्त आनन्दघन की शरण में

गतिम् ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥ यूयं खलु महाभागाः कृतार्था मुनिसत्तमाः ॥ ये सेवन्ते सदा शम्भोः कथामृतरसं नवम् ॥ ३४ ॥ ते जन्मभाजः खलु जीवलोके येषां मनो ध्यायति विश्वनाथम् ॥ वाणी गुणान्स्तौति कथां शृणोति श्रोत्रद्वयं ते भवमुत्तरन्ति ॥ ३५ ॥ विविधगुणविभेदैर्नित्यमस्पृष्टरूपं जगति च बहिरन्तर्वा समानं महिम्ना ॥ स्वमहसि विहरन्तं वाङ्मनोवृत्तिदूरं परमशिवमनन्तानन्दसान्द्रं प्रपद्ये ॥ १३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे पुराणश्रवणमहिमवर्णनंनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ इति ब्रह्मोत्तरखण्डं समाप्तम् ॥ * ॥ * ॥

मैं प्राप्तहूं ॥ १३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पुराणश्रवणमहिमवर्णनंनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ● ॥

इति ब्रह्मोत्तरखण्डं समाप्तम् ॥

प्रथमबार

लखनऊ

बाबू मनोहरलाल भार्गव, बी. ए., सुपरिंटेंडेंट के प्रबन्ध से
मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के यन्त्रालय में छपा—सन् १९१५ ई० ॥

॥ इति स्कन्दपुराण ब्रह्मखण्ड ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ ब्रह्मखण्डान्तर्गतचातुर्मास्यमाहात्म्यम् ॥

दो० । चातुर्मास्य मँझार जिमि व्रत कीन्हे फल होत । सोइ प्रथम अध्याय में बरन्यो चरित उदोत ॥ नारदजी बोले कि हे देवदेव, महाभाग, ब्रह्मन् ! तुम्हारे मुख से बहुत से व्रत सुने गये परन्तु मेरा मन तृप्ति को नहीं प्राप्त होता है ॥ १ ॥ इस समय मैं उत्तम चातुर्मास्य को सुना चाहता हूं ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे देव, मुने ! तुम मुझसे उत्तम चातुर्मास्य के व्रत को सुनिये जिसको सुनकर भरतखण्ड में मुक्ति दुर्लभ नहीं होती है ॥ ३ ॥ ये मुक्तिदायक भगवान् संसार से पारकरने के लिये

श्रीगणेशाय नमः ॥ नारद उवाच ॥ देवदेव महाभाग व्रतानि सुबहून्यपि ॥ श्रुतानि त्वन्मुखाद्ब्रह्मन्न तृप्तिमधिगच्छति ॥ १ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि चातुर्मास्यव्रतं शुभम् ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु देव मुने मत्तश्चातुर्मास्यव्रतं शुभम् ॥ यच्छ्रुत्वा भारते खण्डे नृणां मुक्तिर्न दुर्लभा ॥ ३ ॥ मुक्तिप्रदोऽयं भगवान् संसारोत्तारकारणम् ॥ यस्य स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥ मानुष्यं दुर्लभं लोके तत्राऽपि च कुलीनता ॥ तत्रापि सदयत्वं च तत्र सत्संगमः शुभः ॥ ५ ॥ सत्संगमो न यत्रास्ति विष्णुभक्तिर्व्रतानि च ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण विष्णुव्रतकरः शुभः॥६॥ चातुर्मास्येऽव्रती यस्तु तस्य पुण्यं निरर्थकम् ॥ सर्वतीर्थानि दानानि पुण्यान्यायतनानि च ॥ ७ ॥ विष्णुमाश्रित्य

कारण हैं जिनके स्मरण ही से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ४ ॥ संसार में मनुष्य होना दुर्लभ है और उसमें भी कुलीनता व कुलीनता में भी दयासंयुत होना व उसमें भी सज्जनों का संगम शुभ है ॥ ५ ॥ जहां सत्संगम व विष्णुभक्ति और व्रत नहीं होते हैं वहां विशेष कर चातुर्मास्य में विष्णुजी का व्रत करनेवाला नर उत्तम होता है ॥ ६ ॥ और चातुर्मास्य में जो व्रत करनेवाला नहीं होता है उसका पुण्य निरर्थक होजाता है और सब तीर्थ, दान व पवित्र स्थान ॥ ७ ॥

चातुर्मास्य आने पर विष्णुजी के आश्रित होकर स्थित होते हैं और बहुत पुष्ट भी शरीर से उसका जीवन उत्तम है ॥ ८ ॥ जो विद्वान् चातुर्मास्य आने पर विष्णुजी को प्रणाम करता है और प्रसन्न होते हुए देवता उसके ऊपर जीवन पर्यन्त वरदायक होते हैं ॥ ९ ॥ व मानुषजन्म को पाकर जो चातुर्मास्य से विमुख होता है विद्वान् उसके शरीर में सैकड़ों पापों को स्थित कहते हैं ॥ १० ॥ संसार में मनुष्य होना दुर्लभ है व विष्णुजी की भक्ति दुर्लभ है और चातुर्मास्य में विष्णुदेवजी के सोने पर विशेष कर दुर्लभ है ॥ ११ ॥ जो मनुष्य चातुर्मास्य में प्रातःकाल स्नान करता है वह सब यज्ञों के फल को पाकर

तिष्ठन्ति चातुर्मास्ये समागते ॥ सुपुष्टेनापि देहेन जीवितं तस्य शोभनम् ॥ ८ ॥ चातुर्मास्ये समायाते हरिं यः प्रण मेद्बुधः ॥ कृतार्थास्तस्य विबुधा यावज्जीवं वरप्रदाः ॥ ९ ॥ संप्राप्य मानुषं जन्म चातुर्मास्यपराङ्मुखः ॥ तस्य पाप शतान्याहुर्देहस्थानि न संशयः ॥ १० ॥ मानुष्यं दुर्लभं लोके हरिभक्तिश्च दुर्लभा ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सुप्ते देवे जनार्दने ॥ ११ ॥ चातुर्मास्ये नरः स्नानं प्रातरेव समाचरेत् ॥ सर्वक्रतुफलं प्राप्य देववद्दिवि मोदते ॥ १२ ॥ चातु र्मास्ये नदीस्नानं कुर्यात्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ तथा निर्झरणे स्नाति तडागे कूपिकासु च ॥ १३ ॥ तस्य पापसहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ पुष्करे च प्रयागे वा यत्र क्वापि महाजले ॥ चातुर्मास्येषु यः स्नाति पुण्यसंख्या न वि द्यते ॥ १४ ॥ रेवायां भास्करक्षेत्रे प्राच्यां सागरसङ्गमे ॥ एकाहमपि यः स्नातश्चातुर्मास्ये न दोषभाक् ॥ १५ ॥ दिनत्रयं च यः स्नाति नर्मदायां समाहितः ॥ सुप्ते देवे जगन्नाथे पापं याति सहस्रधा ॥ १६ ॥ पक्षमेकं तु यः स्नाति

स्वर्ग में देवताओं की नाईं आनन्द करता है ॥ १२ ॥ व चातुर्मास्य में जो मनुष्य नदी में स्नान करता है वह सिद्धि को प्राप्त होता है और जो झरना, तड़ाग व बावली में स्नान करता है ॥ १३ ॥ उसके हज़ारों पाप उसी क्षण नाश होजाते हैं और चातुर्मास्य में जो पुष्कर, प्रयाग व जिस किसी महाजल में स्नान करता है उसके पुण्य की संख्या नहीं है ॥ १४ ॥ और नर्मदा, भास्करक्षेत्र व प्राची सरस्वती तथा सागर के संगम में जो चातुर्मास्य में एक दिन भी स्नान करता है वह दोषभागी नहीं होता है ॥ १५ ॥ व जगदीशजी के सोने पर सावधान होता हुआ जो मनुष्य नर्मदा में स्नान करता है उसका पाप हज़ार खण्ड होजाता है ॥ १६ ॥

और जो एक पक्षभर गोदावरी नदी में सूर्योदय में स्नान करता है वह कर्मजशरीर को छोडकर विष्णुजी की सलोकता को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ और जो मनुष्य तिलोदक व आमलोदक से स्नान करता है और जो बिल्वपत्रोदक से चातुर्मास्य में स्नान करता है वह दोषभागी नहीं होता है ॥ १८ ॥ व जो मनुष्य नित्य कूप के समीप गंगाजी को स्मरण करता है वह गंगाजी का जल होजाता है उससे मनुष्य स्नान करै ॥ १६ ॥ और देवदेव विष्णुजी के चरण के अँगूठे से वहने वाली वे गंगाजी सदैव पापहारिणी कहीगई हैं व चातुर्मास्य में विशेषकर हैं ॥ २० ॥ जिस लिये स्मरण किये हुए विष्णुजी हज़ारों पापों को जलाते हैं उस

गोदावर्यां दिनोदये ॥ स भित्त्वा कर्मजं देहं याति विष्णोः सलोकताम् ॥ १७ ॥ तिलोदकेन यः स्नाति तथा चैवामलोदकैः ॥ बिल्वपत्रोदकैश्चैव चातुर्मास्ये न दोषभाक् ॥ १८ ॥ गङ्गां स्मरति यो नित्यमुदपानसमीपतः ॥ तद्गाङ्गेयं जलं जातं तेन स्नानं समाचरेत् ॥ १६ ॥ गङ्गापि देवदेवस्य चरणाङ्गुष्ठवाहिनी ॥ पापघ्नी सा सदा प्रोक्ता चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ २० ॥ यतः पापसहस्राणि विष्णुर्दहति संस्मृतः ॥ तस्मात्पादोदकं शीर्षे चातुर्मास्ये धृतं शिवम् ॥ २१ ॥ चातुर्मास्ये जलगतो देवो नारायणो भवेत् ॥ सर्वतीर्थाधिकं स्नानं विष्णुतेजोंशसंगतम् ॥ २२ ॥ स्नानं दशविधं कार्यं विष्णुनाममहाफलम् ॥ सुप्ते देवे विशेषेण नरो देवत्वमाप्नुयात् ॥ २३ ॥ विना स्नानं तु यत्कर्म पुण्यकार्यमयं शुभम् ॥ क्रियते निष्फलं ब्रह्मंस्तत्प्रगृह्णन्ति राक्षसाः ॥ २४ ॥ स्नानेन सत्यमाप्नोति स्नानं धर्मः सनातनः ॥ धर्मान्मोक्ष

कारण चातुर्मास्य में मस्तक में धारण किया हुआ चरणोदक कल्याणकारक होता है ॥ २१ ॥ चातुर्मास्य में विष्णुदेव नारायणजी जलगत होते हैं और विष्णुजी के तेज के अंश से प्राप्त स्नान सब तीर्थों से अधिक कहा गयाहै ॥ २२ ॥ और विष्णु नामक महाफलवाला दश प्रकार का स्नान करना चाहिये और विष्णुदेवजी के सोने पर विशेष कर मनुष्य देवत्व को प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ हे ब्रह्मन् ! बिन स्नान के जो उत्तम पुण्य कार्यमय कर्म किया जाता है वह निष्फल होता है व उसको राक्षस ग्रहण करते हैं ॥ २४ ॥ स्नान से मनुष्य सत्य को पाता है व स्नान सनातनधर्म है और धर्म से मोक्ष के फल को पाकर मनुष्य

फिर दुःखी नहीं होता है॥ २५ ॥ जो अध्यात्म को जाननेवाले हैं व जो पवित्र मनुष्य वेदांगों के पारगामी हैं और जो सब दानों को देनेवाले हैं उनकी स्नान से पवित्रता होती है॥ २६ ॥ व स्नान किये हुए मनुष्य के शरीर के आश्रित होकर विष्णुजी स्थित होते हैं व सब कर्मसमूहों में व संपूर्ण फल के दायक होते हैं॥ २७ ॥ और सब पापों के नाश के लिये तथा देवताओं की प्रसन्नता के लिये चातुर्मास्य में जल का स्नान सब पापोंका नाशक है॥ २८ ॥ और रात्रि में स्नान न करै व ग्रहण के विना संध्या में स्नान न करै व गरम जल से स्नान न करै और रात्रि में शुद्धि नहीं होती है॥ २९ ॥ क्योंकि सूर्यनारायण के दर्शन से सब

फलं प्राप्य पुनर्नैवावसीदति ॥ २५ ॥ ये चाध्यात्मविदः पुण्या ये च वेदाङ्गपारगाः ॥ सर्वदानप्रदा ये च तेषां स्नानेन शुद्धता ॥ २६ ॥ कृतस्नानस्य च हरिर्देहमाश्रित्य तिष्ठति ॥ सर्वक्रियाकलापेषु संपूर्णफलदो भवेत् ॥ २७ ॥ सर्वपापविनाशाय देवतातोषणाय च ॥ चातुर्मास्ये जलस्नानं सर्वपापक्षयावहम् ॥ २८ ॥ निशायां चैव न स्नायात्संध्यायां ग्रहणं विना ॥ उष्णोदकेन न स्नानं रात्रौ शुद्धिर्न जायते ॥ २९ ॥ भानुसंदर्शनाच्छुद्धिर्विहिता सर्वकर्मसु ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण जलशुद्धिस्तु भाविनी ॥ ३० ॥ अशक्त्या तु शरीरस्य भस्मस्नानेन शुध्यति ॥ मन्त्रस्नानेन विप्रेन्द्र विष्णुपादोदकेन वा ॥ ३१ ॥ नारायणाग्रतः स्नानं क्षेत्रतीर्थनदीषु च ॥ यः करोति विशुद्धात्मा चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्यं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥

कर्मों में शुद्धि कही गई है व चातुर्मास्य में विशेष कर जल की शुद्धि होती है॥ ३० ॥ और शरीर की अशक्ति से मनुष्य भस्मस्नान से शुद्ध होता है व हे द्विजेन्द्र ! मंत्रस्नान से तथा विष्णु के चरणोदक से शुद्ध होता है ॥ ३१ ॥ और क्षेत्र, तीर्थ व नदियों में जो विष्णुजी के आगे स्नान करता है वह शुद्धचित्त होता है और चातुर्मास्य में विशेष कर शुद्ध होता है॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्यं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अहै दया सब धर्म महँ अति उत्तम जिमि धर्म । सो दूजे अध्याय में कह्यो चरित्र सुपर्म ॥ ब्रह्माजी बोले कि विष्णुदेवजी के सोने पर नित्य स्नान के अन्त में श्रद्धायुक्त चित्त से बड़ा फलदायक पितरों का तर्पण करै ॥ १ ॥ और नदियों के संगम में वहा पितरों व देवताओं को तर्पणकर जप होमादिक कर्मों को करके अनन्त फल होता है ॥ २ ॥ विष्णुजी को स्मरण कर पश्चात् उत्तमकर्मों को करना चाहिये क्योंकि यही पितर, देवता व मनुष्यादिकों में तृप्तिदायक है ॥ ३ ॥ और धर्मयुत नामक श्रद्धा तथा स्मृति से पवित्र सब कर्मों को इस अधिक गुणवाले चातुर्मास्य में करै ॥ ४ ॥ सत्संग, द्विजभक्ति व गुरु, देवता और अग्नि का

ब्रह्मोवाच ॥ पितॄणां तर्पणं कुर्याच्छ्रद्धायुक्तेन चेतसा ॥ स्नानावसाने नित्यं च सुप्ते देवे महाफलम् ॥ १ ॥ सङ्गमे सरितान्तत्र पितॄन्संतर्प्य देवताः ॥ जपहोमादिकर्माणि कृत्वा फलमनन्तकम् ॥ २ ॥ गोविन्दस्मरणं कृत्वा पश्चात्कार्याः शुभाः क्रियाः ॥ एष एव पितृदेवमनुष्यादिषु तृप्तिदः ॥ ३ ॥ श्रद्धां धर्मयुतां नाम स्मृतिपूतानि कारयेत् ॥ कर्माणि सकलानीह चातुर्मास्ये गुणोत्तरे ॥ ४ ॥ सत्सङ्गो द्विजभक्तिश्च गुरुदेवाग्नितर्पणम् ॥ गोप्रदानं वेदपाठः सत्क्रिया सत्यभाषणम् ॥ ५ ॥ गोभक्तिर्दानभक्तिश्च सदा धर्मस्य साधनम् ॥ कृष्णे सुप्ते विशेषेण नियमोऽपि महाफलः ॥ ६ ॥ नारद उवाच ॥ नियमः कीदृशो ब्रह्मन् फलं च नियमेन किम् ॥ नियमेन हरिस्तुष्टो यथा भवति तद्वद ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नियमश्च क्षुरादीनां क्रियासु विविधासु च ॥ कार्यो विद्यावता पुंसा तत्प्रयोगान्महासुखम् ॥ ८ ॥ एतत्षड्वर्गहरणं रिपुनिग्रहणं परम् ॥ अध्यात्ममूलमेतद्धि परमं सौख्यकारणम् ॥ ९ ॥ तत्र तिष्ठन्ति नियतं क्षमासत्यादयो

तर्पण, गोदान, वेदपाठ, सत्कार व सत्यवचन ॥ ५ ॥ व गऊ की भक्ति और दानकी भक्ति व सदैव धर्म का साधन व नियम भी विशेषकर श्रीकृष्णजी के सोनेपर बड़ा फलवान् होता है ॥ ६ ॥ नारदजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! नियम कैसा होताहै और नियम से क्या फल होता है व जिसप्रकार नियम से विष्णुजी प्रसन्न होते हैं उसको कहिये ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले कि अनेक प्रकार के कर्मों में विद्यावान् मनुष्य को नेत्रादिकों का नियम करना चाहिये क्योंकि उसके प्रयोग से बड़ा सुख होता है ॥ ८ ॥ और यह षड्वर्ग का हरण व शत्रुवों का उत्तम निग्रहकारक है व यह अध्यात्म का मूल व उत्तम सुख का कारण है ॥ ९ ॥ और विवेकरूपी

क्षमा व सत्यादिक सब गुण उसमें निश्चय कर स्थित होते हैं और वह विष्णुजीका परमपद है ॥ १० ॥ और जिसने इस पदको जाना है उसके पूर्वजों की वह कृतकृत्यता होती है व यज्ञ का कर्मकृत होता है ॥ ११ ॥ और निरंजन के सेवन से उसको मुहूर्त भर ध्यान कर सौ जन्मों में उपजा व किया हुआ पाप सब भस्म होजाता है ॥ १२ ॥ और प्रतिदिन इसकी क्षुधा व प्यासादिक श्रम कम होजाताहै और वह योगी व नित्यनियमी मनुष्य विष्णुजी के सोनेपर विशेषकर होता है ॥ १३ ॥ यदि चातुर्मास्य में मनुष्य भक्तिसे योगाभ्यास में परायण न होवै तो उसके हाथसे अमृत गिरगया इसमें सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥ जिसने सब इच्छाओं में सदैव

गुणाः ॥ विवेकरूपिणः सर्वे तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ १० ॥ कृतं भवति यज्ञीयं कृतकृत्यत्वमत्र तत् ॥ स्यात्तस्य तत्पूर्वजानां येन ज्ञातमिदं पदम् ॥ ११ ॥ तन्मुहूर्त्तमपि ध्यात्वा पापं जन्मशतोद्भवम् ॥ भस्मसाद्याति विहितं निरञ्जननिषेवणात् ॥ १२ ॥ प्रत्यहं संकुचद्यस्य क्षुत्पिपासादिकःश्रमः ॥ स योगी नियमी नित्यं हरौ सुप्ते विशिष्यते ॥ १३ ॥ चातुर्मास्ये नरो भक्त्या योगाभ्यासरतो न चेत् ॥ तस्य हस्तात्परिभ्रष्टममृतं नात्र संशयः ॥ १४ ॥ मनोनियमितं येन सर्वेच्छासु सदागतम् ॥ तस्य ज्ञाने च मोक्षे च कारणं मन एव हि ॥ १५ ॥ मनोनियमने यत्नः कार्यः प्रज्ञावता सदा ॥ मनसा सुगृहीतेन ज्ञानाप्तिरखिला ध्रुवम् ॥ १६ ॥ तन्मनः क्षमया ग्राह्यं यथा वह्निश्च वारिणा ॥ एकया क्षमया सर्वो नियमः कथितो बुधैः ॥ १७ ॥ सत्यमेकं परो धर्मः सत्यमेकं परं तपः ॥ सत्यमेकं परं ज्ञानं सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः ॥ १८ ॥ धर्ममूलमहिंसा च मनसा तां च चिन्तयन् ॥ कर्मणा च तथा वाचा तत एतां समाचरेत् ॥ १९ ॥ परस्व

प्राप्त मनको रोंकलिया उसके ज्ञान व मोक्ष में मन ही कारण है ॥ १५ ॥ सदैव बुद्धिमान् मनुष्य को नियम में यत्न करना चाहिये और मनके रोंकने से निश्चय कर ज्ञान की सब प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥ इस कारण क्षमा से मनको ग्रहण करनाचाहिये जैसे कि जलसे अग्नि शात की जाती है विद्वानो ने एक क्षमा से सब नियम को कहा है ॥ १७ ॥ एक सत्य परमधर्म है और एक सत्यही परमतप है व एक सत्य परमज्ञान है और सत्य में धर्म स्थित है ॥ १८ ॥ अहिंसा धर्म का मूल है इस कारण उस अहिंसा को मन, वचन व कर्म से विचारता हुआ मनुष्य इस अहिंसा को करै ॥ १९ ॥ और सब मनुष्यो को सदैव पराये धनका हरना व चोरी

वर्जित है व चातुर्मास्य में विशेषकर ब्राह्मण व देवता का धन वर्जित करना चाहिये ॥ २० ॥ और विद्वानों को सदैव अकार्य कर्म वर्जित करना चाहिये व हे विप्र ! जो सदैव सब कार्यों में अभिलाषरहित वर्तमान होता है ॥ २१ ॥ वह महाप्राज्ञ योगी प्रज्ञाचक्षु होता है व अहंकारिणी बुद्धि नहीं होती है मनुष्यों के शरीर मे यह अहंकाररूपी विष वर्तमान है ॥ २२ ॥ इस कारण वह सदैव व विष्णुदेवजीके सोने पर विशेषकर त्यागने योग्य है और अनीहासे मनुष्य क्रोध को जीतनेवाला व लोभ को जीतनेवाला होता है ॥ २३ ॥ और उसके शरीर से हज़ारों पाप हज़ार खण्ड होजाते हैं और शान्तिरूपी शत्रुसे मोह व मान को जीतकर ॥ २४ ॥ विचार

हरणं चौर्यं सर्वदा सर्वमानुषैः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण ब्रह्मदेवस्ववर्जनम् ॥ २० ॥ अकृत्यकरणं चैव वर्जनीयं सदा बुधैः ॥ अनीहः सर्वकार्येषु यः सदा विप्रवर्तते ॥ २१ ॥ स च योगी महाप्राज्ञः प्रज्ञाचक्षुरहं न धीः ॥ अहंकारो विष मिदं शरीरे वर्तते नृणाम् ॥ २२ ॥ तस्मात्स सर्वदा त्याज्यः सुप्ते देवे विशेषतः ॥ अनीहया जितक्रोधो जितलोभो भवेन्नरः ॥ २३ ॥ तस्य पापसहस्राणि देहाद्यान्ति सहस्रधा ॥ मोहं मानं पराजित्य शमरूपेण शत्रुणा ॥ २४ ॥ विचारेण शमो ग्राह्यः सन्तोषेण तथाहि सः ॥ मात्सर्यमृजुभावेन नियच्छेत्स मुनीश्वरः ॥ २५ ॥ चातुर्मास्ये दयाधर्मो न धर्मो भूतविद्रुहम् ॥ सर्वदा सर्वमासेषु भूतद्रोहं विवर्जयेत् ॥ २६ ॥ एतत्पापसहस्राणां मूलं प्राहुर्मनीषिणः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्या भूतदया नृभिः ॥ २७ ॥ सर्वेषामेव भूतानां हरिर्नित्यं हृदि स्थितः ॥ स एव हि पराभूतो यो भूतद्रोहकारकः ॥ २८ ॥ यस्मिन् धर्मे दया नैव स धर्मो दूषितो मतः ॥ दयां विना न विज्ञानं न धर्मो ज्ञानमेव

से शान्ति को ग्रहण करना चाहिये व संतोष से उसको ग्रहण करना चाहिये और वह मुनीश्वर ऋजुता से मात्सर्य को निग्रह करै ॥ २५ ॥ और चातुर्मास्य में दया धर्म है प्राणियों से वैर करना धर्म नहीं है और सदैव सब मासों में भूतद्रोह को वर्जित करै ॥ २६ ॥ क्योंकि विद्वानों ने इसको हज़ारों पातकों का मूल कहा है इसकारण मनुष्यों को सदैव प्राणियों के ऊपर दया करना चाहिये ॥२७ ॥ और सबही प्राणियों के हृदय में विष्णुजी सदैव स्थित रहते हैं व जो भूतद्रोह करनेवाला होता है वही तिरस्कृत होता है ॥ २८ ॥ और जिस धर्म में दया नहीं है वह धर्म दूषित मानागया है क्योंकि दया के विना न विज्ञान होता है और न धर्म

न ज्ञान होता है ॥ २९ ॥ इस कारण सब प्रकार से दया सनातन धर्म है और चातुर्मास्य में विशेषकर नित्य वह सेवने योग्य है ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्म-नारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्ये नियमविधिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। अन्नादिक चौमास में दिये जौन फल होत। सो तिसरे अध्यायमें वर्णित चरित उदोत ॥ ब्रह्माजी बोले कि सदैव सब कार्यों में विद्वान् लोग दान धर्म की प्रशंसा करते हैं और विष्णुजी के सोने पर दान ब्रह्मत्व का कारण है ॥ १ ॥ अन्न ब्रह्म ऐसा कहा गया है व अन्न में प्राण प्रतिष्ठित हैं उस कारण मनुष्य सदैव

च ॥ २९ ॥ तस्मात्सर्वात्मभावेन दयाधर्मः सनातनः ॥ सेव्यः स पुरुषैर्नित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ३० ॥ इति श्री स्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये नियमविधिमाहात्म्यं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ दानधर्मं प्रशंसन्ति सर्वधर्मेषु सर्वदा ॥ हरौ सुप्ते विशेषेण दानं ब्रह्मत्वकारणम् ॥ १ ॥ अन्नं ब्रह्म इति प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥ तस्मादन्नप्रदो नित्यं वारिदश्च भवेन्नरः ॥ २ ॥ वारिदस्तृप्तिमायाति सुखमक्षय्यमन्नदः ॥ वार्यन्नयोः समं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ ३ ॥ मणिरत्नप्रवालानां रूप्यहाटकवाससाम् ॥ अन्येषामपि दानानामन्नदानं विशिष्यते ॥ ४ ॥ अन्नोदकप्रदानं च गोप्रदानं च नित्यदा ॥ वेदपाठो वह्निहोमश्चातुर्मास्ये महाफलम् ॥ ५ ॥ वैकुण्ठपदवाञ्छा चेद्विष्णुना सह संगमे ॥ सर्वपापक्षयार्थाय चातुर्मास्येऽन्नदो भवेत् ॥ ६ ॥ सत्यं सत्यं हि देवर्षे मयोक्तं तव नारद ॥ जन्मान्तरसहस्रेषु नादत्तमुपतिष्ठते ॥ ७ ॥ तस्मादन्नप्रदानेन सर्वे हृष्यन्ति जन्तवः ॥ देवा वै स्पृहय

अन्नदायक व जलदायक होवै ॥ २ ॥ और जलदायक तृप्तिको प्राप्त होता है व अन्नदायक अक्षय सुख को प्राप्त होताहै और जल व अन्न के समान दान न हुआ है न होवैगा ॥ ३ ॥ मणि, रत्न, मूंगा, चांदी, सुवर्ण व वस्त्र और अन्य भी दानों के मध्य में अन्नदान विशेष है ॥ ४ ॥ सदैव अन्न व जल का दान और गोदान, वेदपाठ व अग्नि में हवन चातुर्मास्य में बड़ा फलदायक है ॥ ५ ॥ यदि विष्णुजी के साथ समागम में वैकुंठ स्थान की इच्छा होवै तो सब पापों के नाश के लिये चातुर्मास्य में अन्नदायक होवै ॥ ६ ॥ हे देवर्षे, नारद ! मैंने तुमसे सत्य सत्य कहा है कि हज़ार जन्मोंके मध्यमें भी बिन दिया हुआ नहीं प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

इस कारण अन्न के दान से सब प्राणी प्रसन्न होते हैं और देवता भी इस अन्नदायी मनुष्य की इच्छा करते हैं ॥ ८ ॥ और वस्त्र से मिश्रित घी को श्रद्धा से पात्रों में देना चाहिये और चातुर्मास्य में वस्त्र दान करनेवाला मनुष्य मनुष्य नहीं है ॥ ९ ॥ और चातुर्मास्य में गुरुवों व ब्राह्मणों का भोजन, घृतदान व सत्कार ये जिस मनुष्यके स्थित होते हैं वह मनुष्य नहीं है ॥ १० ॥ और सद्धर्म, सत्कथा, सत्सेवा व सज्जनोंका दर्शन और विष्णुपूजन व दान में स्नेह चातुर्मास्य में दुर्लभ है ॥ ११ ॥ और जो मनुष्य पितरों को उद्देश कर चातुर्मास्य में अन्नदायक होताहै सब पापों से शुद्ध चित्तवाला वह मनुष्य पितरोंके लोकको प्राप्त होता है ॥१२॥

न्त्येनमन्नदानप्रदायिनम् ॥ ८ ॥ आज्यं देयं च पात्रेषु श्रद्धया वस्त्रमिश्रितम् ॥ वस्त्रदानकरो मर्त्यश्चातुर्मास्ये न मानवः ॥ ९ ॥ भोजने गुरुविप्राणां घृतदानं च सत्क्रिया ॥ एतानि यस्य तिष्ठन्ति चातुर्मास्येन मानवः ॥ १० ॥ सद्धर्मः सत्कथा चैव सत्सेवा दर्शनं सताम् ॥ विष्णुपूजारतिर्दाने चातुर्मास्येषु दुर्लभा ॥ ११ ॥ पितॄनुद्दिश्य यो म र्त्यश्चातुर्मास्येन्नदो भवेत् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा पितृलोकमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ देवाः सर्वेऽन्नदानेन तृप्ता यच्छ न्ति वाञ्छितम् ॥ पिपीलिकाऽपि तद्गेहाद्भक्ष्यमादाय गच्छति ॥ १३ ॥ रात्रौ दिवा निषिद्धान्नो अन्नदानमनुत्तम म् ॥ हरौ सुप्ते हि पापघ्नं न वार्यमपि शत्रुषु ॥ १४ ॥ चातुर्मास्ये दुग्धदानं दधितक्रं महाफलम् ॥ जन्मकाले येन बद्धः पिण्डस्तद्दानमुत्तमम् ॥ १५ ॥ शाकप्रदाता नरकं यमलोकं न पश्यति ॥ वस्त्रदः सोमलोकं च वसेदाभूतसं प्लवम् ॥ १६ ॥ सुप्ते देवे यथाशक्ति ह्यन्यासु प्रतिमासु च ॥ पुष्पवस्त्रप्रदानेन सन्तानं नैव हीयते ॥ १७ ॥ चन्दनागुरु

और अन्नदान से तृप्त सब देवता मनोरथ को देतेहैं और पिपीलिका भी उसके घरसे भोजनको लेकर जातीहै ॥ १३ ॥ और रात्रि व दिनमें अतिउत्तम अन्न दान निषिद्ध नहीं है और विष्णुजी के सोनेपर पापनाशक अन्नदान शत्रुवों में भी मना न करना चाहिये ॥ १४ ॥ और चातुर्मास्य में दुग्धदान, दही, मठा बड़ा फलवान् होता है और जन्म समयमें जिसने पिंड को बाँधाहै वह उत्तम दान होताहै ॥ १५ ॥ और शाक को देनेवाला मनुष्य नरक व यमलोक को नहीं देखताहै व वस्त्रको देनेवाला मनुष्य प्रलय पर्यन्त चन्द्रलोकमें बसताहै ॥ १६ ॥ और विष्णुदेवजीके सोनेपर यथाशक्ति अन्य प्रतिमाओंमें भी पुष्प व वस्त्रके दानसे सन्तानहीन नहीं होताहै ॥ १७ ॥

व चातुर्मास्य में जो मनुष्य चन्दन, अगुरु व धूप को देता है पुत्रों व पौत्रों से संयुत वह मनुष्य विष्णुरूप होता है ॥ १८ ॥ व जगदीश देवजी के सोने पर जो मनुष्य वेदों के जाननेवाले ब्राह्मणके लिये फलदान को देता है वह यमलोकको नहीं देखता है ॥ १९ ॥ व विष्णुजीकी प्रीतिके लिये जो इस संसारमें विद्यादान, गोदान व भूमिदान देता है वह पूर्वज पितरों को तारताहै ॥ २० ॥ और जिस देवता को उद्देश कर गुड़, नमक, तैलादिक, सहद, तिक्तवस्तु व तिल और अन्न को देता है वह उनके लोकों को जाता है ॥ २१ ॥ और चातुर्मास्यमें तिलों को देकर फिर मनुष्य दूधको पीनेवाला नहीं होता है और यवों को देनेवाला मनुष्य इन्द्र

धूपं च चातुर्मास्ये प्रयच्छति ॥ पुत्रपौत्रसमायुक्तो विष्णुरूपो भवेन्नरः ॥ १८ ॥ सुप्ते देवे जगन्नाथे फलदानं प्रयच्छति ॥ विप्राय वेदविदुषे यमलोकं न पश्यति ॥ १९ ॥ विद्यादानं च गोदानं भूमिदानं प्रयच्छति ॥ विष्णुप्रीत्यर्थमेवेह स तारयति पूर्वजान् ॥ २० ॥ गुडसैन्धवतैलादिमधुतिक्ततिलान्नदः ॥ देवतायास्समुद्दिश्य तासां लोकं प्रयाति हि ॥ २१ ॥ चातुर्मास्ये तिलान् दत्त्वा न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ यवप्रदाता वसते वासवं लोकमक्षयम् ॥ २२ ॥ हूयेत हव्यं वह्नौ च दानं दद्याद्द्विजातये ॥ गावः सुपूजिताः कार्याश्चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ २३ ॥ यत्किञ्चित् सुकृतं कर्म जन्मावधि सुसञ्चितम् ॥ चातुर्मास्ये गते पात्रे विषुवे यत्प्रदीयते ॥ २४ ॥ प्रणश्यति क्षणादेव वचनाद्यस्तु प्रच्युतः ॥ दिवसे दिवसे तस्य वर्द्धते च प्रतिश्रुतम् ॥ २५ ॥ तस्मान्नैव प्रतिश्राव्यं स्वल्पमप्याशु दीयते ॥ तावद्विवर्द्धते दानं यावत्तन्न प्रयच्छति ॥ २६ ॥ यो मोहान्मनुजो लोके यावत्कोटिगुणं भवेत् ॥ ततो दशगुणा वृद्धिश्चातुर्मास्ये

के अक्षय लोक में बसता है॥ २२ ॥ और विशेष कर चातुर्मास्य में मनुष्य हव्य को अग्नि में हवन करै और ब्राह्मण के लिये दान देवै व गौवों को सुपूजित करना चाहिये ॥ २३ ॥ और जो कुछ पुण्य कर्म जन्मसे लगाकर इकट्ठा किया जाताहै वह चातुर्मास्यरूपी पात्र बीतने पर जो विषुव समय में दिया जाताहै ॥ २४ ॥ वह क्षणही भरमें नाश होजाता है और जो वचनसे भ्रष्ट होजाताहै उसका प्रतिश्रुत (दिया हुआ दान) प्रतिदिन बढ़ता है ॥ २५ ॥ इस कारण देने की प्रतिज्ञा न करना चाहिये वरन शीघ्रही थोड़ा दिया जाता है क्योंकि तबतक दान बढ़ता है जब तक कि उसको जो मनुष्य संसार में मोहसे नहीं देता है और जितना कोटिगुना

होता है उससे दशगुनी वृद्धि चातुर्मास्य में देनेवाले पुरुष में होती है ॥ २६ । २७ ॥ और उसका तब तक नरक में पात होता है जब तक कि चौदह इन्द्र रहते हैं इस कारण मनुष्यों को जो प्रतिज्ञा करना चाहिये वह सदैव देना चाहिये ॥ २८ ॥ और अन्य पुरुष के लिये न देना चाहिये व दी हुई वस्तु को न हरै व जो मनुष्य चातुर्मास्य में श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिये वेदोक्त विधिसे शय्या को देता है वह यमस्थान को नहीं जाता है और आसन, जलपात्र, भोजन व ताम्रपात्र को ॥ २९।३० ॥ चातुर्मास्य में द्रव्य के अनुसार देना चाहिये और जगद्गुरु विष्णुजी के सोनेपर जो ब्राह्मणों के लिये सब दानों को देता है ॥ ३१ ॥ वह पूर्वजों समेत अपना को

प्रदातरि ॥ २७ ॥ नरके पतनं तस्य यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ अतस्तु सर्वदा देयं नरैर्यत्तु प्रतिश्रुतम् ॥ २८ ॥ अन्यस्मै न प्रदातव्यं प्रदत्तं नैव हारयेत् ॥ चातुर्मास्येषु यः शय्यां द्विजाग्र्याय प्रयच्छति ॥ २९ ॥ वेदोक्तेन विधानेन न स याति यमालयम् ॥ आसनं वारिपात्रं च भोजनं ताम्रभाजनम् ॥ ३० ॥ चातुर्मास्ये प्रयत्नेन देयं वित्तानुसारतः ॥ सर्वदानानि विप्रेभ्यो ददेत्सुप्ते जगद्गुरौ ॥ ३१ ॥ आत्मानं पूर्वजैः सार्द्धं स मोचयति पातकात् ॥ गौर्भूश्च तिलपात्रं च दीपदानमनुत्तमम् ॥ ३२ ॥ ददेद्द्विजातये मुक्तो जायते स ऋणत्रयात् ॥ ३३ ॥ स विश्वकर्ता भुवनेषु गोप्ता स यज्ञभुक् सर्वफलप्रदश्च ॥ दानानि वस्तुष्वधिदैवतं च यस्मिन्समुद्दिश्य ददाति मुक्तः ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये दानमहिमावर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥

पाप से छुड़ाता है और गऊ, पृथ्वी व तिलपात्र और अतिउत्तम दीपदान को ॥ ३२ ॥ जो ब्राह्मण के लिये देता है वह तीनों ऋणों से छूट जाता है ॥ ३३ ॥ और वह संसार को रचनेवाला तथा लोकों में रक्षक और यज्ञ भोक्ता व सब फल को देनेवाला और मुक्त होता है जो कि वस्तुवों में अधिदेवता को उद्देश कर जिसमें दानों को देता है ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचिताया भाषाटीकायां दानमहिमावर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । इष्ट वस्तु के त्याग से मिलत जौन फल भूरि । सो चौथे अध्याय में कह्यो चरित सुखमूरि ॥ ब्रह्माजी बोले कि विष्णुजी प्रिय वस्तु के दायक हैं व मनुष्य सदैव प्रिय वस्तु की इच्छा करता है इस कारण चातुर्मास्य में मनुष्य नारायण की प्रीति के लिये उसको त्याग करै तो वह अक्षयता को प्राप्त होता है और जो श्रद्धावान् मनुष्य जिसको त्यागता है वह अनन्त फल का भागी होता है ॥ १ । २ ॥ कासे के पात्र को छोड़ने से मनुष्य पृथ्वी में राजा होता है और ढाख के पत्ते में भोजन करनेवाला मनुष्य ब्रह्मता को प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ और गृहस्थ मनुष्य ताँबे के पात्र में कभी न भोजन करै व चातुर्मास्य में विशेष कर

ब्रह्मोवाच ॥ इष्टवस्तुप्रदो विष्णुर्लोकश्चेष्टरुचिः सदा ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चातुर्मास्ये त्यजेच्च तत् ॥ १ ॥ नारायणस्य प्रीत्यर्थं तदेवाक्षय्यमाप्यते ॥ मर्त्यस्त्यजति श्रद्धावान् सोऽनन्तफलभाग्भवेत् ॥ २ ॥ कांस्यभोजनसंत्यागाज्जायते भूपतिर्भुवि ॥ पालाशपत्रे भुञ्जानो ब्रह्मभूयस्त्वमश्नुते ॥ ३ ॥ ताम्रपात्रेन भुञ्जीत कदाचिद्वा गृही नरः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण ताम्रपात्रं विवर्जयेत् ॥ ४ ॥ अर्कपत्रेषु भुञ्जानोऽनुपमं लभते फलम् ॥ वटपत्रेषु भोक्तव्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ५ ॥ अश्वत्थपत्रसंभोगः कार्यो बुधजनैः सदा ॥ एकान्नभोजी राजा स्यात्सकले भूमिमण्डले ॥ ६ ॥ तथा च लवणत्यागात्सुभगो जायते नरः ॥ गोधूमान्नपरित्यागाज्जायते जनवल्लभः ॥ ७ ॥ अशाकभोजी दीर्घायुश्चातुर्मास्येऽभिजायते ॥ रसत्यागान्महाप्राणी मधुत्यागात्सुलोचनः ॥ ८ ॥ मुद्गत्यागाद्रिपुभृती राजमाषा-

ताँबे के पात्र को वर्जित करै ॥ ४ ॥ व मदार के पत्तों में भोजन करनेवाला मनुष्य अनूपम फल को पाता है व चातुर्मास्य में विशेष कर बरगद के पत्तो में भोजन करना चाहिये ॥ ५ ॥ और विद्वान् लोगों को सदैव पीपल के पत्ते में भोजन करना चाहिये और एक अन्न को भोजन करनेवाला मनुष्य सब पृथ्वीमण्डल में राजा होता है ॥ ६ ॥ वैसेही नमक के छोडने से मनुष्य सुन्दर ऐश्वर्यवान् होता है और गोधूमान्न के त्याग से मनुष्यों को प्रिय होता है ॥ ७ ॥ व चातुर्मास्य में शाक को न भोजन करनेवाला मनुष्य दीर्घायु होता है व रसों के त्याग से बड़ा बलवान् और सहद के त्याग से सुलोचन होता है ॥ ८ ॥ और मूग को

त्यागने से शत्रु की मृत्यु व लोबिया को छोड़ने से धनाढ्यता होती है व चातुर्मास्यमें चावल के छोड़ने से घोड़े की प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥ व फलों को छोडने से बहुत पुत्रवान् और तैल को त्यागने से स्वरूपता होती है और जल को छोड़ने से ज्ञानी होता है व सदैव बल, वीर्य होता है ॥ १० ॥ और मृग का मास छोड़ने से मनुष्य नरक को नहीं देखता है व शूकर का मास छोड़ने से ब्रह्मवास मिलता है ॥ ११ ॥ व लवा (बटेर) के छोड़ने से ज्ञान मिलता है और घी के त्यागने से बड़ा सुख होता है व मदिरा को छोड़कर उस मनुष्य को मुक्ति दुर्लभ नहीं होती है ॥ १२ ॥ व सुवर्ण को त्यागने से बलसंयुत और चादी को छोडने

द्धनाढ्यता ॥ अश्वाप्तिस्तण्डुलत्यागाच्चातुर्मास्येऽभिजायते ॥ ९ ॥ फलत्यागाद्बहुसुतस्तैलत्यागात्सुरूपता ॥ ज्ञानी तु वारिसंत्यागाद्बलं वीर्यं सदैव हि ॥ १० ॥ मार्गमांसपरित्यागान्नरकं न च पश्यति ॥ शौकरस्य परित्यागाद्ब्रह्मवासमवाप्यते ॥ ११ ॥ ज्ञानं लावकसंत्यागादाज्यत्यागे महत्सुखम् ॥ आसवं संपरित्यज्य मुक्तिस्तस्य न दुर्लभा ॥ १२ ॥ सबलः कनकत्यागाद्रूप्यत्यागेन मानुषः ॥ दधिदुग्धपरित्यागी गोलोके सुखभाग्भवेत् ॥ १३ ॥ ब्रह्मा पायससंत्यागात्क्षीरत्यागान्महेश्वरः ॥ कन्दर्पोपूपसंत्यागान्मोदकत्याजकः सुखी ॥ १४ ॥ गृहाश्रमपरित्यागी बाह्याश्रमनिषेवकः ॥ चातुर्मास्ये हरिप्रीत्यै न मातुर्जठरे शिशुः ॥ १५ ॥ नृपो मरीचसंत्यागाच्छुण्ठीत्यागेन सत्कविः ॥ शर्करायाः परित्यागाज्जायते राजपूजितः ॥ १६ ॥ गुडत्यागान्महाभूतिस्तथा दाडिमवर्जनात् ॥ रक्तवस्त्रप

से मनुष्य बलवान् होता है व दही, दूध को छोडनेवाला मनुष्य गोलोक में सुखभागी होता है ॥ १३ ॥ और खीर को छोड़ने से ब्रह्मा तथा दूध को त्यागने से शिव होता है और पुवा को छोडने से कामदेव व लड्डुवों को छोड़नेवाला मनुष्य सुखी होता है ॥ १४ ॥ व चातुर्मास्य में विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये गृहाश्रम को छोड़नेवाला तथा बाह्याश्रम को त्यागनेवाला मनुष्य माता के पेट में बालक नहीं होता है ॥ १५॥ और मिर्च को छोडने से राजा व सोंठि के त्यागने से उत्तम कवि होता है व शक्कर को छोडने से मनुष्य राजपूजित होता है ॥ १६ ॥ व गुड को त्यागने से और अनार को छोड़ने से बड़ा ऐश्वर्य होता है व लाल

वस्त्र को छोड़ने से मनुष्यों को प्रिय होता है ॥ १७ ॥ और रेशमी वस्त्रों को छोड़ने से अक्षय स्वर्ग मिलता है व उड़द और चना के छोड़ने से फिर जन्म नहीं होता है ॥ १८ ॥ और काला कपड़ा सदैव त्यागने योग्य है व चातुर्मास्य में विशेष कर त्यागने योग्य है और नील वस्त्र को देखने से सूर्यनारायण के दर्शन से शुद्धि होती है ॥ १९ ॥ व चंदन को छोड़ने से मनुष्य गंधर्बों के लोक को भोगता है व कपूर को छोड़ने से मनुष्य जीवनपर्यन्त बड़ा धनी होता है ॥ २० ॥ व कुसुम के छोड़ने से मनुष्य यमराज के स्थान को नहीं देखता है व केसर के छोड़ने से मनुष्य राजप्रिय होता है ॥ २१ ॥ व यक्षकर्दम को छोड़ने से मनुष्य ब्रह्मलोक

रित्यागाज्जायते जनवल्लभः ॥ १७ ॥ पट्टकूलपरित्यागादक्षय्यं स्वर्गमाप्यते ॥ माषान्नचणकान्नस्य त्यागान्नैव पुनर्भवः ॥ १८ ॥ कृष्णवस्त्रं सदा त्याज्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ सूर्यसंदर्शनाच्छुद्धिर्नीलवस्त्रस्य दर्शनात् ॥ १९ ॥ चन्दनस्य परित्यागाद्गान्धर्वं लोकमश्नुते ॥ कर्पूरस्य परित्यागाद्यावज्जीवं महाधनी ॥ २० ॥ कुसुम्भस्य परित्यागान्नैव पश्येद्यमालयम् ॥ केशरस्य परित्यागान्मनुष्यो राजवल्लभः ॥ २१ ॥ यक्षकर्दमसंत्यागाद्ब्रह्मलोके महीयते ॥ ज्ञानी पुष्पपरित्यागाच्छय्यात्यागे महत्सुखम् ॥ २२ ॥ भार्यावियोगं नाप्नोति चातुर्मास्ये न संशयः ॥ अलीकवादसंत्यागान्मोक्षद्वारमपावृतम् ॥ २३ ॥ परमर्मप्रकाशश्च सद्यः पापसमागमः ॥ चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते परनिन्दां विवर्जयेत् ॥ २४ ॥ परनिन्दा महापापं परनिन्दा महाभयम् ॥ परनिन्दा महद्दुःखं न तस्याः पातकं परम् ॥ २५ ॥ केवलं निन्दने चैव

में पूजा जाता है व पुष्पों को छोड़ने से ज्ञानी होता है और शय्या को छोडने से बड़ा सुख होता है ॥ २२ ॥ और चातुर्मास्य में शय्या को छोड़ने से मनुष्य स्त्री के वियोग को नहीं प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है और झूंठ वचन को छोड़ने से मोक्षद्वार खुला होता है ॥ २३ ॥ और पराये मर्म का प्रकाश करना शीघ्रही पाप का समागम है इस लिये विष्णुजी के सोने पर चातुर्मास्य में पराई निन्दा वर्जित करै ॥ २४ ॥ क्योंकि पराई निन्दा बड़ा भारी पाप है व पराई निन्दा बड़ा भय है और पराई निन्दा बहुत दुःख है व उससे अधिक पातक नहीं है ॥ २५ ॥ और निन्दा में मनुष्य केवल उस बडे भारी पाप को पाता है व जैसा

सुननेवाला पापी होता है वैसा अन्य नहीं होताहै ॥ २६ ॥ और केशोंका संस्कार छोड़नेसे मनुष्य तीनों तापोंसे रहित होताहै व विशेषकर विष्णुजी के सोनेपर जो
नख व रोमों को धारनेवाला होताहै ॥ २७ ॥ उसको प्रतिदिन गंगाजीके स्नान का फल होताहै ॥ २८ ॥ सब उपायोंसे विष्णुही प्रसन्न कराने योग्य हैं और श्रेष्ठ सब
वर्णोंसे व योगियों से ध्यान करने योग्यहैं क्योंकि विष्णुजी के नामसे मनुष्य घोर बन्धनसे छूट जाताहै और ये विष्णुजी चातुर्मास्यमें विशेष कर स्मरण किये जाते
है ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामिष्टवस्तुपरित्यागमहिमावर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

तत्पापं लभते गुरु ॥ यथा शृण्वान एव स्यात्पातकी न ततः परः ॥ २६ ॥ केशसंस्कारसंत्यागात्तापत्रयविवर्जितः ॥
नखरोमधरो यस्तु हरौ सुप्ते विशेषतः ॥ २७ ॥ दिवसे दिवसे तस्य गङ्गास्नानफलं भवेत् ॥ २८ ॥ सर्वोपायैर्विष्णुरेव
प्रसाद्यो योगिध्येयः प्रवरैः सर्ववर्णैः ॥ विष्णोर्नाम्ना मुच्यते घोरबन्धाच्चातुर्मास्ये स्मर्यतेसौ विशेषात् ॥ २९ ॥ इति
श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये इष्टवस्तुपरित्यागमहिमावर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

नारद उवाच ॥ कदा विधिनिषेधौ च कर्त्तव्यौ विष्णुसंनिधौ ॥ युष्मद्वाक्यामृतं पीत्वा तृप्तिर्मम न विद्यते ॥ १ ॥
ब्रह्मोवाच ॥ कर्कसंक्रान्तिदिवसे विष्णुं सम्पूज्य भक्तितः ॥ फलैरर्घः प्रदातव्यः शस्तजम्बूफलैः शुभैः ॥ २ ॥ जम्बूद्वी
पस्य संज्ञेयं फलेन च विजायते ॥ मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र श्रद्धाधर्मसुसंयुतैः ॥ ३ ॥ षण्मासाभ्यन्तरे मृत्युर्यत्र क्वापि भ
वेन्मम ॥ तन्मया वासुदेवाय स्वयमात्मा निवेदितः ॥ ४ ॥ इति मन्त्रेणार्घ्यम् ॥ ततो विधिनिषेधौ च ग्राह्यौ भक्त्या

दो० विधिनिषेध के किये जिमि मिलत अहै फल जौन । यहि पंचम अध्याय में कह्यो चरित सब तौन ॥ नारदजी बोले कि विष्णुजी के समीप कब विधि व
निषेध करना चाहिये तुम्हारे वचनरूपी अमृत को पीकर मुझको तृप्ति नहीं होती है ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले कि कर्क की संक्रान्तिके दिन विष्णुजी को भक्ति से पूजकर
प्रशस्त व उत्तम जम्बूफलों से अर्घ देना चाहिये ॥ २ ॥ हे द्विजेन्द्र ! जम्बूद्वीप की यह संज्ञा फल से होती है इस मंत्र से श्रद्धा व धर्म से संयुत मनुष्यों को अर्घ
देना चाहिये ॥ ३ ॥ कि छः महीने के बीचमें जहा कहीं भी मेरी मृत्यु होवै तो मैंने आपही आत्मा को वासुदेवजी के लिये निवेदन किया ॥ ४ ॥ इस मत्र से अर्घ्य को

देवै ॥ तदनन्तर विष्णुजी के आगे भक्ति से विधि व निषेध को ग्रहण करना चाहिये सब लोकों को बड़े सुखवाले चातुर्मास्य के आने पर ॥ ५ ॥ वेदविधि को करना चाहिये और निषेध नियम माना गया है और विधि व निषेध ये दोनों विष्णुही हैं ॥ ६ ॥ इस कारण सब यत्न से जनार्दनजी सेवने योग्यहैं और विष्णुजीकी कथा व विष्णुजी की पूजा व ध्यान और विष्णुजी को प्रणाम करना ॥ ७ ॥ सबही को जो विष्णुजी की प्रीति के लिये करता है वह मुक्तिभागी होताहै और वर्ण व आश्रम की मूर्ति सत्यरूपी सनातन विष्णुजी हैं ॥ ८ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर जन्म के कष्टादि को नाशनेवाले हैं व्रत से विष्णुजी ग्रहण करने योग्य हैं व

हरेः पुरः ॥ चातुर्मास्ये समायाते सर्वलोकमहासुखे ॥ ५ ॥ विधिर्वेदविधिः कार्यो निषेधो नियमो मतः ॥ विधिश्चैव निषेधश्च द्वावेतौ विष्णुरेव हि ॥ ६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सेव्य एव जनार्दनः ॥ विष्णोः कथा विष्णुपूजा ध्यानं विष्णोर्नतिस्तथा ॥ ७ ॥ सर्वमेव हरिप्रीत्या यः करोति स मुक्तिभाक् ॥ वर्णाश्रमविधेर्मूर्तिः सत्यो विष्णुः सनातनः ॥ ८ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण जन्मकष्टादिनाशनम् ॥ हरिरेव व्रताद्ग्राह्यो व्रतं देहेन कारयेत् ॥ ९ ॥ देहोऽयं तपसा शोध्यः सुप्ते देवे तपोनिधौ ॥ नारद उवाच ॥ किं व्रतं किं तपः प्रोक्तं ब्रह्मन्ब्रूहि सविस्तरम् ॥ सुप्ते देवे मया कार्यं कृतं यच्च महाफलम् ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ व्रतं विष्णुव्रतं विद्धि विष्णुभक्तिसमन्वितम् ॥ तपश्च धर्मवर्त्तित्वं कृच्छ्रादिकमथापि वा ॥ ११ ॥ शृणु व्रतस्य माहात्म्यं वक्ष्यामि प्रथमं तव ॥ ब्रह्मचर्यव्रतं सारं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मचर्यं तपःसारं ब्रह्मचर्यं

व्रत को देह से करै ॥ ९ ॥ और तपोनिधि विष्णुदेवजी के सोने पर यह शरीर तपस्यासे शोधने योग्य है नारदजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! क्या व्रत और क्या तप कहा गया है इसको विस्तारसमेत कहिये क्योंकि विष्णुदेवजी के सोनेपर मैं उसको करूंगा किया हुआ जो कि बड़ा फलवान् है ॥ १० ॥ ब्रह्माजी बोले कि विष्णुजीकी भक्ति से संयुत व्रत को विष्णुव्रत जानिये और धर्म में वर्तमान होना या कृच्छ्रादिक तप है ॥ ११ ॥ मैं तुम से जो पहले कहता हूं उस व्रत के माहात्म्य को सुनिये कि व्रतों के मध्य में उत्तम व सारांश व्रत ब्रह्मचर्यरूप व्रत है ॥ १२ ॥ और ब्रह्मचर्य तपस्या का सारांश है व ब्रह्मचर्य बड़ा फलवान् है इस लिये सब कर्मों

में ब्रह्मचर्यको बढ़ावै ॥ १३ ॥ क्योंकि ब्रह्मचर्य के प्रभावसे उग्र तप वर्तमान होता है व ब्रह्मचर्य से अधिक उत्तम धर्म साधन नहींहै ॥ १४ ॥ व हे द्विज ! चातुर्मास्य में विष्णुदेवजी के सोने पर विशेष कर संसार में उसी इस महाव्रत को सदैव अधिक गुणवान् जानिये ॥ १५ ॥ और जो इस विष्णुजी के कर्म को करता है वह कर्मों से लिप्त नहीं होता है वर्ष भर में विद्वान् लोग तीनसौ साठ दिन कहते हैं ॥ १६ ॥ उसमें व्रत करनेवाले मनुष्यों मे विष्णुदेवजी पूजे जाते हैं हे देव ! मैं अमुक उत्तम कर्म को करूंगा यह निश्चय कर ॥ १७ ॥ जो विष्णुदेवजी के सोने पर अधिक गुणवाले कर्म को करता है उसको व्रत कहते हैं

महत्फलम् ॥ क्रियासु सकलास्वेव ब्रह्मचर्यं विवर्द्धयेत् ॥१३॥ ब्रह्मचर्यप्रभावेण तप उग्रं प्रवर्त्तते ॥ ब्रह्मचर्यात्परं नास्ति धर्मसाधनमुत्तमम् ॥ १४ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सुप्ते देवे गुणोत्तरम् ॥ महाव्रतमिदं लोके तन्निबोध सदा द्विज ॥ १५ ॥ नारायणमिदं कर्म यः करोति न लिप्यते ॥ शतत्रयं षष्टियुतं दिनमाहुश्च वत्सरे ॥ १६ ॥ तत्र नारायणो देवः पूज्यते व्रतकारिभिः ॥ सत्क्रियाममुकीं देव कारयिष्यामि निश्चयः ॥ १७ ॥ कुरुते तद्व्रतं प्राहुः सुप्ते देवे गुणोत्तरम् ॥ वह्निहोमो विप्रभक्तिः श्रद्धा धर्मे मतिः शुभा ॥ १८ ॥ सत्सङ्गो विष्णुपूजा च सत्यवादो दया हृदि ॥ आर्जवं मधुरा वाणी सच्चरित्रे सदा रतिः ॥ १९ ॥ वेदपाठस्तथास्तेयमहिंसा ह्रीः क्षमा दमः ॥ निर्लोभताऽक्रोधता च निर्मोहो यमता रतिः ॥ २० ॥ श्रुतिक्रियापरं ज्ञानं कृष्णार्पितमनोगतिः ॥ एतानि यस्य तिष्ठन्ति व्रतानि ब्रह्मवित्तम ॥ २१ ॥ जीवन्मुक्तो नरः प्रोक्तो नैव लिप्यति पातकैः ॥ व्रतं कृतं सकृदपि सदैव हि महाफलम् ॥ २२ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण

अग्नि में हवन व ब्राह्मण की भक्ति तथा धर्म में श्रद्धा व उत्तम बुद्धि ॥ १८ ॥ और सत्संग, विष्णुपूजन, सत्यवचन व हृदय में दया व कोमलता और मधुर वचन तथा उत्तम चरित्र में सदैव स्नेह ॥ १९ ॥ और वेदपाठ, अस्तेय, अहिंसा, लज्जा, क्षमा व दम, निर्लोभता, अक्रोधता, निर्मोह व यम में स्नेह ॥ २० ॥ व हे ब्रह्मवित्तम ! वेदकार्यों में उत्तम ज्ञान तथा श्रीकृष्णजी में मन की गति को लगाना ये नियम जिसके स्थित होते हैं ॥ २१ ॥ वह मनुष्य जीवन्मुक्त कहा गया है और वह पातकों से लिप्त नहीं होता है और एक बार किया हुआ भी व्रत सदैव महाफलवान् होता है ॥ २२ ॥ व चातुर्मास्य में ब्रह्मचर्यादि का सेवन

विशेष कर महाफलवान् है व सदैव जिन मनुष्यों का चातुर्मास्य बिन व्रत से व्यतीत हुआ है ॥ २३ ॥ उनका धर्म तत्त्व को जाननेवाले विद्वानों से वृथा कहागया है और व्रत का करना सबही वर्णों को बड़ा फलवान् है ॥ २४ ॥ व हे वत्स ! चातुर्मास्यमें थोड़ा भी किया हुआ व्रत सुखदायक है और व्रत की सेवामें परायण मनुष्यों को विष्णुजी सर्वत्र देखपड़ते हैं ॥ २५ ॥ चातुर्मास्य आने पर उसको बडे यत्न से पालन करै ॥ २६ ॥ और विष्णु व द्विज और अग्निमय तीर्थ को भजो व वेद-प्रभेदमय मूर्ति और अज व विराट्रूप को भजो कि जिनकी प्रसन्नता से मनुष्य मोक्षरूपी महावृक्ष के नीचे स्थित होता है और वह सूर्यनारायण से उपजे हुये ताप

ब्रह्मचर्यादिसेवनम् ॥ अव्रतेन गतं येषां चातुर्मास्यं सदा नृणाम् ॥ २३ ॥ धर्मस्तेषां वृथा सद्भिस्तत्त्वज्ञैः परिकीर्तितः ॥ सर्वेषामेव वर्णानां व्रतचर्यामहाफलम् ॥ २४ ॥ स्वल्पापि विहिता वत्स चातुर्मास्ये सुखप्रदा ॥ सर्वत्र दृश्यते विष्णुर्व्रतसेवापरैर्नृभिः ॥ २५ ॥ चातुर्मास्ये समायाते पालयेत्तत्प्रयत्नतः ॥ २६ ॥ भजस्व विष्णुं द्विजवह्नितीर्थं वेदप्रभेदमयमूर्तिमजं विराजम् ॥ यत्प्रसादाद्भवति मोक्षमहातरुस्थस्तापं न यास्यति स चार्कसमुद्भवन्तम् ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये व्रतमहिमावर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ तपः शृणुष्व विप्रेन्द्र विस्तरेण महामते ॥ यस्य श्रवणमात्रेण चातुर्मास्येऽघनाशनम् ॥ १ ॥ षोडशेनोपचारेण विष्णोः पूजा सदा तपः ॥ ततः सुप्ते जगन्नाथे महत्तप उदाहृतम् ॥ २ ॥ करणं पञ्चयज्ञानां सततं तप एव हि ॥ तन्निवेद्य हरौ चैव चातुर्मास्ये महत्तपः ॥ ३ ॥ ऋतुयानं गृहस्थस्य तप एव सदैव हि ॥ चातुर्मास्ये हरिप्रीत्यै

को न प्राप्त होगा ॥२७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्ये व्रतमहिमावर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

दो॰ जिमि पराक व्रत आदि तप होत अनेक प्रकार । सोइ छठें अध्याय में कह्यो चरित्र उदार ॥ ब्रह्मा बोले कि हे द्विजेन्द्र, महामते ! विस्तार से तप को सुनिये कि चातुर्मास्य में जिसके सुनने से पाप नाश होता है ॥ १ ॥ सोलह उपचारों से सदैव विष्णुजी का पूजन तप है इस लिये जगदीशजी के सोने पर बड़ा तप कहा गया है ॥ २ ॥ और पंचयज्ञों का सदैव करना ही तप है उसको चातुर्मास्य में विष्णुजी में निवेदन कर बडा भारी तप होता है ॥ ३ ॥ और गृहस्थ

को ऋतु समय याने रजोधर्म से शुद्ध होने पर सोलह रात्रियों तक स्त्री के समीप जाना सदैव तप है चातुर्मास्य में विष्णुजी की प्रीति के लिये वह महातप सेवन करने योग्य है ॥ ४ ॥ और पृथ्वी में सदैव सत्य कहना प्राणियों को दुर्लभ तप है देवपति-विष्णुजी के सोने पर उसको करता हुआ मनुष्य अमित फल का भागी होता है ॥ ५ ॥ और सदैव अहिंसादिक गुणों का पालन करना तप है व चातुर्मास्य में वैर को त्याग करना बड़ा तप कहागया है ॥ ६ ॥ और पंचायतन का पूजन बड़ा भारी तप है विष्णुजी की प्रीति के लिये चातुर्मास्य में उसको मनुष्य विशेषकर करै ॥ ७ ॥ नारदजी बोले कि यह पंचायतन संज्ञा किसकी है और

तन्निषेव्यं महत्तपः ॥ ४ ॥ सत्यवादस्तपो नित्यं प्राणिनां भुवि दुर्लभम् ॥ सुप्ते देवपतौ कुर्वन्ननन्तफलभाग्भवेत् ॥ ५ ॥ अहिंसादिगुणानां च पालनं सततं तपः ॥ चातुर्मास्ये त्यक्तवैरं महत्तप उदाहृतम् ॥ ६ ॥ तप एव महन्मर्त्यः पञ्चायतनपूजनम् ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण हरिप्रीत्या समाचरेत् ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ पञ्चायतनसंज्ञेयं कस्योक्ता सा कथं भवेत् ॥ कथं पूजा च कर्त्तव्या विस्तरेणाऽशु तद्वद ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रातर्मध्याह्नपूजायां मध्ये पूज्यो रविः सदा ॥ रात्रौ मध्ये भवेच्चन्द्रस्तद्वर्णकुसुमैः शुभैः ॥ ९ ॥ वह्निकोणे तु हेरम्बं सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ रक्तचन्दनपुष्पैश्च चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ १० ॥ नैर्ऋतं दलमास्थाय भगवान् दुष्टदर्पहा ॥ गृहस्थस्य सदा शत्रुविनाशं विदधाति सः ॥ ११ ॥ नैर्ऋत्यकोणगं विष्णुं पूजयेत्सर्वदा बुधः ॥ सुगन्धचन्दनैः पुष्पैर्नैवेद्यैश्चातिशोभनैः ॥ १२ ॥ गोत्रजा वायुकोणे तु पूज

वह कैसे होती है व किस प्रकार पूजन करना चाहिये उसको शीघ्रही विस्तार से कहिये ॥ ८ ॥ ब्रह्मा बोले कि प्रातःकाल व मध्याह्न की पूजा में सदैव सूर्यनारायण जी मध्य में पूजने योग्य हैं और रात्रि में चन्द्रमा मध्य में होताहै उसको उत्तम उसी रंग के पुष्पों से पूजना चाहिये ॥ ९ ॥ और अग्निकोण में सब विघ्नों की शांति के लिये चातुर्मास्य में विशेष कर लालचन्दन व पुष्पोंसे गणेशजी को पूजै ॥ १० ॥ और नैर्ऋत्यकोण को प्राप्त होकर दुष्टों के गर्वको नाशनेवाले वे भगवान् विष्णु जी सदैव गृहस्थ के शत्रुवों का नाश करते हैं ॥ ११ ॥ नैर्ऋत्यकोण में प्राप्त विष्णुजी को विद्वान् सदैव सुगंध चंदन, पुष्प व अतिउत्तम नैवेद्यों से पूजै ॥ १२ ॥

और वायव्यकोण में सदैव पुत्र पौत्रों की वृद्धि के लिये विद्वानों को सुन्दर पुष्पों से पार्वतीजी को पूजना चाहिये ॥ १३ ॥ व ईशानकोण में सफ़ेद पुष्पों से पूजित भगवान् शिवजी सदैव अपमृत्यु के नाश के लिये व सब दोषों के विनाश के लिये होते हैं ॥ १४ ॥ जिन गृहस्थों से यह पंचायतन पूजा जाता है उनकी महिमा जागती है व ब्रह्मादिकों से नहीं लिखी जाती है ॥ १५ ॥ चातुर्मास्य में यह बहुत फलवाला तप सदैव करना चाहिये और सब पर्वकालों में दान देना चाहिये जो कि सदैव तप है और चातुर्मास्य में वह विशेष कर अनन्त होजाता है ॥ १६ ॥ और सदैव बाहर व भीतर दो प्रकार का शौच ग्रहण करना

नीया सदा बुधैः ॥ पुत्रपौत्रप्रवृद्ध्यर्थं सुमनोभिर्मनोहरैः ॥ १३ ॥ ऐशाने भगवान् रुद्रः श्वेतपुष्पैः सदार्चितः ॥ अपमृत्युविनाशाय सर्वदोषापनुत्तये ॥ १४ ॥ जागर्ति महिमा तेषां ब्रह्माद्यैर्नैव लिख्यते ॥ पञ्चायतनमेतद्धि पूज्यते गृहमेधिभिः ॥ १५ ॥ तप एतत्सदा कार्यं चातुर्मास्ये महाफलम् ॥ पर्वकालेषु सर्वेषु दानं देयं तपः सदा ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण तदनन्तं प्रजायते ॥ १६ ॥ शौचं तु द्विविधं ग्राह्यं बाह्यमाभ्यन्तरं सदा ॥ जलशौचं तथा बाह्यं श्रद्धया चान्तरं भवेत् ॥ १७ ॥ इन्द्रियाणां ग्रहः कार्यस्तपसो लक्षणं परम् ॥ निवृत्त्येन्द्रियलौल्यं च चातुर्मास्ये महत्तपः ॥ १८ ॥ इन्द्रियाश्वान् सन्नियम्य सततं सुखमेधते ॥ नरके पात्यते प्राणैस्तैरेवोत्पथगामिभिः ॥ १९ ॥ ममतारूपिणीं ग्राहीं दुष्टां निर्भर्त्स्य निग्रहेत् ॥ तप एव सदा पुंसां चातुर्मास्येऽधिगौरवम् ॥ २० ॥ काम एष महाशत्रुस्तमेकं निर्जयेद्दृढम् ॥ जितकामा महात्मानस्तैर्जितं निखिलं जगत् ॥ २१ ॥ एतच्च तपसो मूलं तपसो मूलमेव तत् ॥ स

चाहिये बाह्यजल शौच है और भीतर का शौच श्रद्धा से होता है ॥ १७ ॥ व उत्तमतपस्या का लक्षण रूप इन्द्रियों का निग्रह करना चाहिये क्योंकि चातुर्मास्य में इन्द्रियों की चंचलता को निवृत्त कर बड़ा तप होता है ॥ १८ ॥ और इन्द्रियरूपी अश्वों को रोंककर मनुष्य सदैव सुख को पाता है व उन्हीं कुमार्ग में जानेवाली इन्द्रियों से मनुष्य नरक में गिराया जाता है ॥ १९ ॥ और ममतारूपिणी दुष्ट ग्राहीको घुड़क कर निग्रह करै व चातुर्मास्य सदैव पुरुषों का अधिगौरव तपहै ॥२०॥ और यह काम बड़ाभारी शत्रुहै उस एक शत्रुको दृढ़तासे जीतै क्योंकि जिनमहात्माओंने काम को जीत लिया उन्होंने सब संसारको जीत लियाहै ॥२१॥ और यह तपस्या

का मूल है व तपस्या का मूल वह है जो कि सदैव काम का विजय व संकल्प का विजयहै ॥ २२ ॥ जिससे काम जीता जाता है वही परम ज्ञानहै और चातुर्मास्य में उत्तम फलवाले उसीको विद्वान् लोग बड़ा तप कहते हैं ॥ २३ ॥ और लोभ सदैव छोड़ने योग्य है क्योंकि लोभ में पाप स्थित होता है और विशेषकर चातुर्मास्य में उसीके तप व विजय होता है ॥ २४ ॥ और सदैव मोह व अविवेक वर्जित करने योग्य है क्योंकि उस मोहसे त्यागा हुआ मनुष्य ज्ञानी होता है और मोह के आश्रय से ज्ञानी नहीं होता है ॥ २५ ॥ और मनुष्यों के शरीर में स्थित मद बड़ा भारी शत्रु है वह सदैव निग्रह करने योग्य है और विष्णुदेवजी के सोने

सदा कामविजयः संकल्पविजयस्तथा ॥ २२ ॥ तदेव हि परं ज्ञानं कामो येन विजीयते ॥ महत्तपस्तदेवाहुश्चातुर्मास्ये फलोत्तमम् ॥ २३ ॥ लोभः सदा परित्याज्यः पापं लोभे समास्थितम् ॥ तपस्तस्यैव विजयश्चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ २४ ॥ मोहः सदा विवेकश्च वर्जनीयः प्रयत्नतः ॥ तेन त्यक्तो नरो ज्ञानी न ज्ञानी मोहसंश्रयात् ॥ २५ ॥ मद एव मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः ॥ सदा स एव निग्राह्यः सुप्ते देवे विशेषतः ॥ २६ ॥ मानः सर्वेषु भूतेषु वसत्येव भयावहः ॥ क्षमया तं विनिर्जित्य चातुर्मास्ये गुणाधिकः ॥ २७ ॥ मात्सर्यं निर्जयेत्प्राज्ञो महापातककारणम् ॥ चातुर्मास्ये जितं तेन त्रैलोक्यममरैः सह ॥ २८ ॥ अहंकारसमाक्रान्ता मुनयो विजितेन्द्रियाः ॥ धर्ममार्गं परित्यज्य कुर्वन्त्युन्मार्गजां क्रियाम् ॥ २९ ॥ अहंकारं परित्यज्य सततं सुखमाप्नुयात् ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण तस्य त्यागे महाफलम् ॥ ३० ॥ एतद्धि तपसो मूलं यदेतन्मनसस्त्यजेत् ॥ त्यक्तेष्वेतेषु सर्वेषु परब्रह्ममयी भवेत् ॥ ३१ ॥ प्रथमं काय

पर विशेषकर निग्रह करने योग्यहै ॥ २६ ॥ और सब मनुष्योंमें भयदायक मान बसताहै उसको चातुर्मास्य में क्षमा से जीतकर मनुष्य अधिक गुणवान् होताहै ॥ २७ ॥ व चातुर्मास्य में बड़े पातकों के कारणरूप मात्सर्य को विद्वान् जीतै तो देवताओं समेत त्रिलोक को उसने जीत लिया ॥ २८ ॥ और इन्द्रियों को न जीतनेवाले अहंकार से घिरे हुए मुनिलोग धर्म के मार्ग को छोड़कर कुमार्ग से उत्पन्न कर्म को करते हैं ॥ २९ ॥ और अहंकारको छोड़कर मनुष्य सदैव सुख को पाता है व चातुर्मास्य में विशेषकर उसके त्यागमें बड़ा फल होताहै ॥ ३० ॥ यह तपस्याका मूलहै यदि इसको मनसे छोड़ देवै और इन सबोंके छोड़ने पर परब्रह्ममय होताहै ॥ ३१ ॥

पहले देवदेव विष्णुजी के शयन में पहले शरीर की शुद्धि के लिये विशेष कर प्राजापत्य बड़ा तप करै ॥ ३२ ॥ और विष्णुजी के शयन में सदैव एक दिन अन्तर कर जो मनुष्य भक्ति से उपास करता है वह यमराज के स्थान को नहीं जाता है ॥ ३३ ॥ और विष्णुजी के शयन में जो मनुष्य सदैव एकभक्त व्रत करता है वह प्रतिदिन द्वादशाह यज्ञ के फल को पाता है ॥ ३४ ॥ और चातुर्मास्य में यदि जो मनुष्य शाकभोजन में परायण होता है उसको हज़ार यज्ञों का पुण्य होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ और चातुर्मास्य में जो मनुष्य नित्य मासैकमासि चान्द्रायण व्रतको करता है वह पुण्य कहा नहीं जासक्ता है ॥ ३६ ॥ व

शुद्धयर्थं प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ शयने देवदेवस्य विशेषेण महत्तपः ॥ ३२ ॥ हरेस्तु शयने नित्यमेकान्तरमुपोषणम् ॥ यः करोति नरो भक्त्या न स गच्छेद्यमालयम् ॥ ३३ ॥ हरिस्वापे नरो नित्यमेकभक्तं समाचरेत् ॥ दिवसे दिवसे तस्य द्वादशाहफलं लभेत् ॥ ३४ ॥ चातुर्मास्ये नरो यस्तु शाकाहारपरो यदि ॥ पुण्यं क्रतुसहस्राणां जायते नात्र संशयः ॥ ३५ ॥ चातुर्मास्ये नरो नित्यं चान्द्रायणव्रतं चरेत् ॥ मासैकमासि तत्पुण्यं वर्णितुं नैव शक्यते ॥३६॥ सुप्ते देवे च पाराकं यः करोति विशुद्धधीः ॥ नारी वा श्रद्धया युक्ता शतजन्माघनाशनम् ॥ ३७ ॥ कृच्छ्रसेवी भवेद्यस्तु सुप्ते देवे जनार्दने ॥ पापराशिं विनिर्धूय वैकुण्ठे गणतां व्रजेत् ॥ ३८ ॥ तप्तकृच्छ्रपरो यस्तु सुप्ते देवे जनार्दने ॥ कीर्तिं संप्राप्य वा पुत्रं विष्णुसायुज्यतां व्रजेत् ॥ ३९ ॥ दुग्धाहारपरो यस्तु चातुर्मास्येऽभिजायते ॥ तस्य पापसहस्राणि विलयं यान्ति देहिनः ॥ ४० ॥ मितान्नाशनकृद्धीरश्चातुर्मास्ये नरो यदि ॥ निर्धूय सकलं पापं

शुद्धबुद्धिवाला जो मनुष्य विष्णुदेवजी के सोने पर पाराक व्रत को करता है व श्रद्धा से संयुत जो स्त्री करती है उसके सौ जन्मों का पाप नाश होता है ॥ ३७ ॥ व जनार्दन देवजी के सोने पर जो कृच्छ्रसेवी होता है वह पापराशि को नाश कर वैकुंठ में गणता को प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ व विष्णुदेवजी के सोने पर जो मनुष्य तप्तकृच्छ्र में परायण होता है वह यश व पुत्र को पाकर विष्णुजी की सायुज्यमुक्ति को पाता है ॥ ३९ ॥ और चातुर्मास्य में जो दुग्धभोजन में परायण होता है उस शरीरधारी के हज़ारों पाप नाश को प्राप्त होते हैं ॥ ४० ॥ व यदि मनुष्य चातुर्मास्य में प्रमाण भर अन्न को भोजन करनेवाला होता है तो समस्त

ओं से अधिक मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादेचातुर्मास्यमाहात्म्येतपोमहिमावर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥
न सहित विष्णु पूजि फल जौन। मिलत सातवें में सोई कह्यो चरित सब तौन ॥ नारदजी बोले कि कैसे षोडशोपचारसे पूजा की जाती है और वे
हैं जो कि नित्य विष्णुजी के शयनमें होते हैं॥ १॥ हे प्रजापते ! पूंछते हुए मुझ से इसको विस्तार से कहिये क्योंकि तुम्हारी प्रसन्नता को पाकर
के पूजने योग्य हूंगा ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले कि वेदों व शास्त्रों की विधिसे दृढ़ विष्णुभक्ति करना चाहिये और यह सब वेदमूल है व वेद सनातन विष्णुजी

हेतु ॥ नारायणं तं मनसा विचिन्त्य मृतोऽभिगच्छत्यमृतं सुराधिकम् ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये तपोमहिमावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ उपचारैः षोडशभिः पूजनं क्रियते कथम् ॥ ते के षोडशभावाः स्युर्नित्यं ये शयने हरेः ॥ १ ॥ एतद्विस्तरतो ब्रूहि पृच्छतो मे प्रजापते ॥ तव प्रसादमासाद्य जगत्पूज्यो भवाम्यहम् ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विष्णुभक्तिर्दृढा कार्या वेदशास्त्रविधानतः ॥ वेदमूलमिदं सर्वं वेदो विष्णुः सनातनः ॥ ३ ॥ ते वेदा ब्राह्मणाधारा ब्राह्मणाश्चाग्निदैवताः ॥ अग्नौ प्रास्ताहुतिर्विप्रो यज्ञे देवं यजन्त्सदा ॥ ४ ॥ जगत्संधारयेत्सर्वं विष्णुपूजारतः सदा ॥ नारायणः स्मृतो ध्यातः क्लेशदुःखादिनाशनः ॥ ५ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण जलरूपगतो हरिः ॥ जलादन्नानि जायन्ते जगतां तृप्तिहेतवे ॥ ६ ॥ विष्णुदेहांशसम्भूतं तदन्नं ब्रह्म इष्यते ॥ तदन्नं विष्णवे दत्त्वा ह्यावाहनपुरःसरम् ॥ ७ ॥ पुनर्जन्म

हैं ॥ ३ ॥ और वे वेद ब्राह्मणरूपी आधार में स्थित होते हैं और ब्राह्मणों का देवता अग्नि है व सदैव यज्ञ में विष्णुदेवजी को पूजता हुआ अग्नि में आहुति करने
वाला व सदैव विष्णुके पूजन में परायण ब्राह्मण सब ससार को धारण करता है और स्मरण व ध्यान किये हुए विष्णुजी क्लेशों व दुःखादिकों के नाशक हैं॥ ४ । ५ ॥
और चातुर्मास्य में विष्णुजी विशेष कर जलरूप में प्राप्त होते हैं व लोकों की तृप्ति के लिये जल से अन्न पैदा होते हैं ॥ ६ ॥ और विष्णु के शरीर के अंशसे
उत्पन्न वह अन्न ब्रह्म कहा जाता है उस अन्न को आवाहनपूर्वक विष्णुजी के लिये देकर ॥ ७ ॥ फिर जन्म, वृद्धता, क्लेश व संस्कारों से तिरस्कृत नहीं होता है पुरा-

महापाराक कहा जाता है इनमें एकको भी स्त्री या पुरुष ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य भक्ति से करता है वह सनातन विष्णु है और सब तपों के मध्य में यह बड़ा भारी तप कहा गया है ॥ ५२ ॥ और चातुर्मास्य में यज्ञ से अधिक यह संसारमें कठिन व दुर्लभ है और प्रतिदिन उसको दश हज़ार यज्ञों का फल कहा गया है ॥ ५३ ॥ जिसने संसार में इस बडे भारी दुर्लभ व्रत को किया है यही बड़ा पवित्र है व यही बड़ा सुख है ॥ ५४ ॥ व यही महापाराक का सेवन बड़ा कल्याण है और उसके शरीर में विष्णुजी बसते हैं व उसको ज्ञान होताहै ॥ ५५ ॥ व बड़े पापों का करनेवाला वह जीवन्मुक्त होता है और तबतक पाप गरजते हैं व तभीतक नरक होते

मेकमपि च नारी वा पुरुषोऽपि वा ॥ ५१ ॥ यः करोति नरो भक्त्या स च विष्णुः सनातनः ॥ इदं च सर्वतपसां महत्तप उदाहृतम् ॥ ५२ ॥ दुष्करं दुर्लभं लोके चातुर्मास्ये मखाधिकम् ॥ दिवसे दिवसे तस्य यज्ञायुतफलं स्मृतम् ॥ ५३ ॥ महत्तप इदं येन कृतं जगति दुर्लभम् ॥ इदमेव महापुण्यमिदमेव महत्सुखम् ॥ ५४ ॥ इदमेव परं श्रेयो महापाराक सेवनम् ॥ नारायणो वसेद्देहे ज्ञानं तस्य प्रजायते ॥ ५५ ॥ जीवन्मुक्तः स भवति महापातककारकः ॥ तावद्गर्जन्ति पापानि नरकास्तावदेव हि ॥ ५६ ॥ तावन्मायासहस्राणि यावन्मासोपवासकः ॥ चातुर्मास्युपवासी यो यस्य प्राङ्गणिको भवेत् ॥ ५७ ॥ सोपि हत्यासहस्राणि त्यक्त्वा निष्कल्मषो भवेत् ॥ य इदं श्रावयेन्मर्त्यो यः पठेत्सततं स्वयम् ॥ ५८ ॥ सोपि वाचस्पतिसमः फलं प्राप्नोत्यसंशयः ॥ ५९ ॥ इदं पुराणं परमं पवित्रं शृण्वन् गृणन् पापविशुद्धि

हैं ॥ ५६ ॥ और तबतक हज़ारों माया होती हैं जबतक कि मासोपवास होता है और चातुर्मास्य में उपास करनेवाला जो जिसके आंगन में प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ वह भी हज़ारों हत्याओं को छोडकर पापरहित होता है और जो मनुष्य इसको सुनाता है व जो सदैव आपही पढ़ता है ॥ ५८ ॥ वह भी बृहस्पति के समान होकर फल को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५९ ॥ व उन विष्णुजी को मनसे ध्यान कर इस परम पवित्र व विशुद्धि के कारणरूप पुराण को, सुनता व पढ़ता

हुआ मनुष्य मर कर देवताओं से अधिक मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादेचातुर्मास्यमाहात्म्येतपोमहिमावर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

दो० षोडशोपचारन सहित विष्णु पूजि फल जौन। मिलत सातवें में सोई कह्यो चरित सब तौन ॥ नारदजी बोले कि कैसे षोडशोपचारसे पूजा की जाती है और वे कौन सोलहभाव हैं जो कि नित्य विष्णुजी के शयनमें होते हैं ॥ १ ॥ हे प्रजापते ! पूछते हुए मुझ से इसको विस्तार से कहिये क्योंकि तुम्हारी प्रसन्नता को पाकर मैं संसार के पूजने योग्य हूंगा ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले कि वेदों व शास्त्रों की विधिसे दृढ़ विष्णुभक्ति करना चाहिये और यह सब वेदमूल है व वेद सनातन विष्णुजी

हेतु ॥ नारायणं तं मनसा विचिन्त्य मृतोऽभिगच्छत्यमृतं सुराधिकम् ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये तपोमहिमावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ उपचारैः षोडशभिः पूजनं क्रियते कथम् ॥ ते के षोडशभावाः स्युर्नित्यं ये शयने हरेः ॥ १ ॥ एतद्विस्तरतो ब्रूहि पृच्छतो मे प्रजापते ॥ तव प्रसादमासाद्य जगत्पूज्यो भवाम्यहम् ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विष्णुभक्तिर्दृढा कार्या वेदशास्त्रविधानतः ॥ वेदमूलमिदं सर्वं वेदो विष्णुः सनातनः ॥ ३ ॥ ते वेदा ब्राह्मणाधारा ब्राह्मणाश्चाग्निदैवताः ॥ अग्नौ प्रास्ताहुतिर्विप्रो यज्ञे देवं यजन्सदा ॥ ४ ॥ जगत्संधारयेत्सर्वं विष्णुपूजारतः सदा ॥ नारायणः स्मृतो ध्यातः क्लेशदुःखादिनाशनः ॥ ५ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण जलरूपगतो हरिः ॥ जलादन्नानि जायन्ते जगतां तृप्तिहेतवे ॥ ६ ॥ विष्णुदेहांशसम्भूतं तदन्नं ब्रह्म इष्यते ॥ तदन्नं विष्णवे दत्त्वा ह्यावाहनपुरःसरम् ॥ ७ ॥ पुनर्जन्म

हैं ॥ ३ ॥ और वे वेद ब्राह्मणरूपी आधार में स्थित होते हैं और ब्राह्मणों का देवता अग्नि है व सदैव यज्ञ में विष्णुदेवजी को पूजता हुआ अग्नि में आहुति करने वाला व सदैव विष्णुके पूजन में परायण ब्राह्मण सब ससार को धारण करता है और स्मरण व ध्यान किये हुए विष्णुजी क्लेशों व दुःखादिकों के नाशक हैं॥ ४ । ५॥ और चातुर्मास्य में विष्णुजी विशेष कर जलरूप में प्राप्त होते हैं व लोकों की तृप्ति के लिये जल से अन्न पैदा होते हैं ॥ ६ ॥ और विष्णु के शरीर के अंशसे उत्पन्न वह अन्न ब्रह्म कहा जाता है उस अन्न को आवाहनपूर्वक विष्णुजी के लिये देकर ॥ ७ ॥ फिर जन्म, वृद्धता, क्लेश व संस्कारों से तिरस्कृत नहीं होता है पुरा-

तन समय आकाश से उपजाहुआ एकही वेद हुआ है ॥ ८ ॥ तदनन्तर वेद ऐश्वर्यके लिये यजुः, साम व ऋक् की संज्ञा को प्राप्त हुआ पहले ऋग्वेद कहा गया है और यजुः सहस्रशीर्ष ऐसा ॥ ९ ॥ सोलह ऋचाओंवाला महासूक्त उत्तम नारायणमय है उसके पाठमात्र से ब्रह्महत्या निवृत्त होजाती है ॥ १० ॥ पहले विद्वान् ब्राह्मण स्मृति में कही हुई विधि से अपने शरीर में न्यास करै तदनन्तर प्रतिमा व विशेषकर शालग्रामशिला में न्यास करै ॥ ११ ॥ उसके पश्चात् क्रम से आवाहनादिक करै और वैकुंठस्थान में स्थित कलाओं समेत रूपको आवाहन कर ॥ १२ ॥ कौस्तुभ से शोभित व करोड़ सूर्यों के समान प्रभावान् तथा दण्ड

जराक्लेशसंस्कारैर्नाभिभूयते ॥ आकाशसम्भवो वेद एक एव पुराऽभवत् ॥ ८ ॥ ततो यजुः सामसंज्ञामृग्वेदः प्राप भूयते ॥ ऋग्वेदोभिहितः पूर्वं यजुःसहस्रशीर्षेति च ॥ ९ ॥ षोडशर्चं महासूक्तं नारायणमयं परम् ॥ तस्यापि पाठमात्रेण ब्रह्महत्या निवर्तते ॥ १० ॥ विप्रः पूर्वं न्यसेद्देहे स्मृत्युक्तेन निजे बुधः ॥ ततस्तु प्रतिमायां च शालग्रामे विशेषतः ॥ ११ ॥ क्रमेण च ततः कुर्यात्पश्चादावाहनादिकम् ॥ आवाह्य सकलं रूपं वैकुण्ठस्थानसंस्थितम् ॥ १२ ॥ कौस्तुभेन विराजन्तं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ दण्डहस्तं शिखासूत्रसहितं पीतवाससम् ॥ १३ ॥ महासंन्यासिनं ध्यायेच्चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ एवं रूपमयं विष्णुं सर्वपापौघहारिणम् ॥ १४ ॥ आवाहयेच्च पुरतो ध्यानसंस्थं द्विजोत्तम ॥ ऋचा प्रथमया चास्योंकारादिसमुदीर्णया ॥ १५ ॥ द्वितीयया चासनं च पार्षदैश्च समन्वितम् ॥ सौवर्णान्यासनान्येषां मनसा परिचिन्तयेत् ॥ १६ ॥ चिन्तनैर्भक्तियोगेन परिपूर्णं च तद्भवेत् ॥ पाद्यं तृतीयया कार्यं गङ्गां तत्र स्मरे

को हाथ में लिये व शिखा सूत्र समेत और पीतवसन को पहने ॥ १३ ॥ महासंन्यासी विष्णुजी को विशेष कर चातुर्मास्य में ध्यान करै हे द्विजोत्तम! ऐसे रूपवाले सब पापों को हरनेवाले तथा ध्यान में स्थित विष्णुजी को ध्यान करै और ॐकार आदि से कही हुई पहली ऋचा से व दूसरी ऋचा से इन विष्णुजी के पार्षदों समेत आसन को ध्यान करै और मनसे इनके सुवर्ण के आसनों को चिन्तवन करै ॥ १४ । १५ । १६ ॥ और भक्ति के योग से ध्यानों करके वह परिपूर्ण होता

है और तीसरी ऋचा से पाद्य करना चाहिये व विद्वान् वहां श्रीगंगाजी को स्मरण करै ॥ १७ ॥ तदन्तर नदियों व सात समुद्रों से जगदीश विष्णुजी का अर्घ करना चाहिये फिर अमृत से आचमन करना चाहिये ॥ १८ ॥ और तीन आचमनों से ब्राह्मण की शुद्धि कही जाती है व फेन और बुद्बुद से रहित तथा प्रकृति स्थित याने निर्मल जलों से ॥ १९ ॥ जाति के अनुकूल द्विज याने ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य हृदय, कंठ व तालु में प्राप्त होने से शुद्ध होते हैं और स्त्री व शूद्र एक बार जल का स्पर्श करने से अन्तर से पवित्र होते हैं ॥ २० ॥ और पांचवीं ऋचा से भक्तिसंयुत चित्त करके आचमन करना चाहिये क्योंकि भक्ति से ग्रहण करने

द्बुधः ॥ १७ ॥ अर्घः कार्यस्ततो विष्णोः सरिद्भिः सप्तसागरैः ॥ पुनराचमनं कार्यममृतेन जगत्पतेः ॥ १८ ॥ त्रिभि राचमनैः शुद्धिर्ब्राह्मणस्य निगद्यते ॥ अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिर्हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ॥ १९ ॥ हृत्कण्ठतालुगाभिश्च यथावर्णं द्विजातयः ॥ शुद्धेरन् स्त्री च शूद्रश्च सकृत्स्पृष्टाभिरन्ततः ॥ २० ॥ पञ्चम्यांचमनं कार्यं भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ भक्तिग्राह्यो हृषीकेशो भक्त्यात्मानं प्रयच्छति ॥ २१ ॥ ततः सुवासितैस्तोयैः सर्वौषधिसमन्वितैः ॥ शेषोदकैः स्वर्णघटैः स्नानं देवस्य कारयेत् ॥ २२ ॥ तीर्थोदकैः श्रद्धया च मनसा समुपाहृतैः ॥ अश्रद्धया रत्नराशिः प्रदत्तो निष्फलो भवेत् ॥ २३ ॥ वार्यपि श्रद्धया दत्तमनंतत्वाय कल्पते ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण श्रद्धया पूयते नरः ॥ २४ ॥ षष्ठ्या स्नानं ततः कार्यं पुनराचमनं भवेत् ॥ दद्याच्च वाससी स्वर्णसहिते भक्तिशक्तितः ॥ २५ ॥ आच्छादितं जगत्सर्वं

योग्य विष्णुजी भक्ति से आत्मा को देते हैं ॥ २१ ॥ तदनन्तर सब औषधियों से संयुत सुवासित जलों से व शेष जलवाले सुवर्ण के घटोंसे विष्णुदेवजीको स्नान करावै ॥ २२ ॥ और मन से लाये हुए तीर्थों के जलों से श्रद्धा से स्नान करावै क्योंकि विना श्रद्धा से दी हुई रत्नों की राशि निष्फल होती है ॥ २३ ॥ और श्रद्धा से दिया हुआ जल भी अनन्तत्व के लिये समर्थ होताहै और चातुर्मास्यमें विशेषकर श्रद्धा से मनुष्य पवित्र होताहै ॥ २४ ॥ तदनन्तर छठीं ऋचा से स्नान कराना चाहिये फिर आचमन होता है और भक्ति व शक्ति से सुवर्ण समेत दो वसनों को देवै ॥ २५ ॥ क्योंकि वस्त्र से सब संसार आच्छादितहै व वस्त्र से विष्णुजी आच्छ-

दित हैं और चातुर्मास्य में विशेषकर वस्त्रदान महाफलवान् है ॥ २६ ॥ फिर विष्णुरूपी यती के लिये आचमन देना चाहिये व हे मुनीश्वर ! सातवीं ऋचा से विष्णु जी को वस्त्रदान करना चाहिये ॥ २७ ॥ और आठवीं ऋचा से यज्ञोपवीत को देवै व उसको अध्यात्मता से सुनिये कि करोड सूर्यों के समान स्पर्शवाला व तेज से प्रकाशवान् ॥ २८ ॥ और ब्राह्मण के क्रोध से तिरस्कृत होने पर करोड़ बिजलियों के समान प्रभावान् और सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि के संयोग से तीन गुणों से संयुक्त ॥ २९ ॥ व वेदत्रयीमय तथा ब्रह्म, विष्णु व रुद्ररूप तथा स्वर्गमय है व हे द्विजेन्द्र ! जिसके प्रभावसे मनुष्य द्विज कहा जाता है ॥ ३० ॥ और जन्म

वस्त्रेणाच्छादितो हरिः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण वस्त्रदानं महाफलम् ॥ २६ ॥ पुनराचमनं देयं यतये विष्णुरूपिणे ॥ वस्त्रदानं च सप्तम्या कार्यं विष्णोर्मुनीश्वर ॥ २७ ॥ यज्ञोपवीतमष्टम्या तच्चाध्यात्मतया शृणु ॥ सूर्यकोटिसमस्पर्शं तेजसा भास्वरं तथा ॥ २८ ॥ क्रोधाभिभूते विप्रे तु तडित्कोटिसमप्रभम् ॥ सूर्येन्दुवह्निसंयोगाद्गुणत्रयसमन्वितम् ॥ २९ ॥ त्रयीमयं ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपं त्रिविष्टपम् ॥ यस्य प्रभावाद्विप्रेन्द्र मानवो द्विज उच्यते ॥ ३० ॥ जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते ॥ शापोनुग्रहसामर्थ्यं तथा क्रोधः प्रसन्नता ॥ ३१ ॥ त्रैलोक्यप्रवरत्वं च ब्राह्मणादेव जायते ॥ न ब्राह्मणसमो बन्धुर्न ब्राह्मणसमा गतिः ॥ ३२ ॥ न ब्राह्मणसमः कश्चित्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ दत्तोपवीते ब्रह्मण्ये सुप्ते देवे जनार्दने ॥ ३३ ॥ सर्वं जगद्ब्रह्ममयं संजातं नात्र संशयः ॥ नवम्या च सुलेपश्च कर्त्तव्यो यज्ञमूर्तये ॥ ३४ ॥ सुयक्षकर्दमैर्लिप्तो विष्णुर्येन जगद्गुरुः ॥ तेनाप्यायितमेतद्धि वासितं यशसा जगत् ॥ ३५ ॥ तेजसा

से शूद्र होता है व संस्कार से द्विज कहा जाता है और शापानुग्रह सामर्थ्य, क्रोध व प्रसन्नता ॥ ३१ ॥ और त्रिलोक में श्रेष्ठता ब्राह्मणही से होती है व ब्राह्मण के समान बंधु नहीं है और ब्राह्मण के समान गति नहीं है ॥ ३२ ॥ व चराचर समेत त्रिलोक में कोई ब्राह्मण के समान नहीं है व ब्रह्मण्य विष्णुदेवजी के सोने पर यज्ञोपवीत देने पर ॥ ३३ ॥ सब संसार ब्रह्ममय होता है इसमें सन्देह नहीं है व नवमी ऋचा से यज्ञमूर्ति विष्णुजी के लिये उत्तम लेपन करना चाहिये ॥ ३४ ॥ जिसने उत्तम यक्ष कर्दम से विष्णुजी के लेपन किया है उसने यश से वासित इस संसारको तृप्त किया ॥ ३५ ॥ व चंदन को देनेवाला मनुष्य संसार में तेज से सूर्य

नारायण के समान होकर देवत्व को प्राप्त होकर ब्रह्मलोकादिक लोक में आनन्द करता है ॥ ३६ ॥ व जो मनुष्य चातुर्मास्य में विशेष कर चदन के लेप से सुन्दर विष्णुजी को देखते हैं वे यमपुर को नहीं जाते हैं ॥ ३७ ॥ और दशवीं ऋचा से पुष्पपूजा व भक्तिपूजा करना चाहिये क्योंकि पुष्प में सदैव निरन्तर लक्ष्मी वसती है ॥ ३८ ॥ और सर्वत्रगामिनी लक्ष्मी का दोष नहीं होताहै जैसे कि सर्वमय विष्णुजी दोषों से तिरस्कृत नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥ वैसेही सर्वमयी लक्ष्मी पतिव्रतत्वसे हीन नहीं होती है सब मूर्तियों में व सब प्राणियों में सदैव ॥ ४० ॥ मनुष्य, देवता व पितरों में पुष्पपूजा कीजाती है जिसने लक्ष्मी समेत एक विष्णुजी को

भास्करो लोके देवत्वं प्राप्य मानवः ॥ ब्रह्मलोकादिके लोके मोदते चन्दनप्रदः ॥ ३६ ॥ चन्दनालेपसुभगं विष्णुं पश्यन्ति मानवाः ॥ न ते यमपुरं यान्ति चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ३७ ॥ दशम्या पुष्पपूजा च भक्तिपूजा तथैव च ॥ पुष्पे चैव सदा लक्ष्मीर्वसत्येव निरन्तरम् ॥ ३८ ॥ लक्ष्म्याऽसर्वत्रगामिन्या दोषो नैव प्रजायते ॥ यथा सर्वमयो विष्णुर्न दोषैरनुभूयते ॥ ३९ ॥ तथा सर्वमयी लक्ष्मीः सतीत्वान्नैव हीयते ॥ प्रतिमासु च सर्वासु सर्वभूतेषु नित्यदा ॥ ४० ॥ मनुष्यदेवपितृषु पुष्पपूजा विधीयते ॥ पुष्पैः संपूजितो येन हरिरेकः श्रिया सह ॥ ४१ ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं पूजितं तेन वै जगत् ॥ अतः सुश्वेतकुसुमैर्विष्णुं संपूजयेत्सदा ॥ ४२ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण भक्तियुक्तः सदा शुचिः ॥ भक्त्या सुविहिता ब्रह्मन् पुष्पपूजा नरैर्यदि ॥ ४३ ॥ यं यं काममभिध्यायेत्तस्य सिद्धिर्निरन्तरा ॥ पुष्पैरुपचितं विष्णुं यद्यन्ये प्रणमन्ति च ॥ ४४ ॥ तेषामप्यक्षया लोकाश्चातुर्मास्येऽधिकं फलम् ॥ एकादश्या धूपदानं

पुष्पों से पूजा है ॥४१॥ उसने ब्रह्मसे लगाकर स्तम्बपर्यन्त संसार को पूजन किया इस कारण सदैव सपेद पुष्पोंसे विष्णुजी को पूजै ॥ ४२ ॥ और भक्ति से सयुत व पवित्र मनुष्य चातुर्मास्य में विशेषकर पूजै हे ब्रह्मन्! यदि भक्ति से मनुष्य पुष्पों से पूजन करते हैं ॥ ४३ ॥ तो जो मनुष्य जिस जिस कामना को चिन्तवन करता है उसकी निरन्तर सिद्धि होती है और पुष्पों से पूजित विष्णुजी को यदि अन्य लोग प्रणाम करते हैं ॥ ४४ ॥ तो उनको भी अक्षय लोक होते हैं और चातुर्मास्य

में अधिक फल होता है और गेरहवीं ऋचा से यतीरूप विष्णुजी के लिये धूपदान करना चाहिये ॥ ४५ ॥ गंधवानोंमें श्रेष्ठ व गंध से संयुत, वनस्पति का रस जो कि सर्व देवताओंके सूंघने योग्य है इस दिव्य धूप को ग्रहण कीजिये ॥ ४६ ॥ इस मंत्र को कह कर चातुर्मास्य में नित्य विष्णुजी के लिये अगरु से उपजे हुए बडे फल वाले उत्तम धूप को देवै ॥ ४७ ॥ हे सत्तम ! कपूर व चंदन दलों से संयुत तथा शक्कर व शहद से संयुत व जटामासी से युक्त धूप को विष्णुदेवजी के सोने पर देवै ॥ ४८ ॥ देवता घ्राणसे प्रसन्न होते हैं व धूप उत्तम तथा घ्राणहारक है और बारहवीं ऋचा से मुक्ति को चाहनेवाले पुरुषोंको दीपदान करना चाहिये ॥ ४९ ॥

कर्तव्यं यतये हरौ ॥४५॥ वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्धवत्तमः ॥ आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोयं प्रतिगृह्यताम् ॥४६॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य धूपमागुरुजं शुभम् ॥ दद्याद्भगवते नित्यं चातुर्मास्ये महाफलम् ॥ ४७॥ कर्पूरचन्दनदलैः सिता मधुसमन्वितम् ॥ मासीजटाभिः सहितं सुप्ते देवेऽथ सत्तम ॥ ४८ ॥ देवाघ्राणेन तुष्यन्ति धूपं घ्राणहरं शुभम् ॥ द्वादश्या दीपदानं तु कर्तव्यं मुक्तिमिच्छुभिः ॥ ४९ ॥ दीपः सर्वेषु कार्येषु प्रथमस्तेजसां पतिः ॥ दीपस्तमौघनाशाय दीपः कान्तिं प्रयच्छति ॥ ५० ॥ तस्माद्दीपप्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः ॥ अयं पौराणजो मन्त्रो वेदर्चेन समन्वितः ॥ दीपप्रदाने सकलः प्रयुक्तो नाशयेदघम् ॥ ५१ ॥ चातुर्मास्ये दीपदानं कुरुते यो हरेः पुरः ॥ तस्य पापमयो राशिर्निमेषादपि दह्यते ॥ ५२ ॥ तावत्पापानि गर्जन्ति तावद्बिभेति पातकी ॥ यावन्न विहितो भास्वान्दीपो नारायणे गृहे ॥ ५३ ॥ दर्शनादपि दीपस्य सर्वसिद्धिर्नृणां भवेत् ॥ कामनायां समुद्दिश्य दीपं कारयते हरौ ॥ ५४ ॥ सासा

तेजों का स्वामी दीप सब कार्यों में श्रेष्ठ है और दीप अन्धकारसमूह के नाश के लिये है व दीप कान्ति को देता है ॥ ५० ॥ उस कारण दीप को देनेसे विष्णुजी प्रसन्न होवैं वेदकी ऋचा से संयुत यह पुराणसे उपजा हुआ समस्त मंत्र दीपदान में प्रयुक्त होकर पाप को नाशता है ॥ ५१ ॥ व चातुर्मास्य में विष्णुजी के आगे जो दीपदान करता है उसकी पापमयी राशि निमेष भर में जल जाती है ॥५२॥ तबतक पाप गरजते हैं व तबतक पातकी डरताहै जबतक कि विष्णुजीके ग्रहमें प्रकाशवान् दीप नहीं धराजाता है ॥ ५३ ॥ और दीपके दर्शनसे मनुष्यों की सब सिद्धि होती है व जिस कामना को उद्देश कर मनुष्य विष्णुजीके लिये दीप करता है ॥ ५४ ॥

वह वह अनन्त विष्णुजी के सोने पर अधिक गुण से निर्विघ्न सिद्ध होती है और पंचायतन में स्थित पांचों देवताओं के लिये ॥ ५५ ॥ चातुर्मास्य में दीपदान करना बड़ा फलवान् होता है ॥ ५६ ॥ नित्य ध्यान, पूजन व स्तुति किये हुए एक मुक्तिदायक विष्णुजी प्रसन्न होते हैं और जो प्रिय हो व जो घर में उत्तम हो उस उस वस्तु को मुक्ति के लिये श्रेष्ठ मनुष्यों को देना चाहिये ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्य माहात्म्ये तपोधिकारषोडशोपचारदीपमहिमावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

सिद्ध्यति निर्विघ्ना सुप्तेनन्ते गुणोत्तरम् ॥ पञ्चायतनसंस्थेषु तथा देवेषु पञ्चसु ॥ ५५ ॥ विहितं दीपदानं च चातुर्मास्ये महाफलम् ॥ ५६ ॥ एको विष्णुस्तुष्यते मुक्तिदाता नित्यं ध्यातः पूजितः संस्तुतश्च ॥ यच्चाभीष्टं यच्च गेहे शुभं वा तत्तद्देयं मुक्तिहेतोर्नृवर्यैः ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये तपोधिकारषोडशोपचारदीपमहिमावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ हरेर्दीपस्तु मद्दीपादधिकोऽयं प्रवर्तते ॥ वैकुण्ठवास एव स्यान्ममैश्वर्यमवाञ्छितम् ॥ १ ॥ कार्त्तिकेय उवाच ॥ दीपोऽयं विष्णुभवने मन्त्रवद्विहितो नरैः ॥ सदा विशेषफलदश्चातुर्मास्येऽधिकः कथम् ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ विष्णुर्नित्याधिदैवं मे विष्णुः पूज्यः सदा मम ॥ विष्णुमेनं सदाध्याये विष्णुर्मत्तः परो हि सः ॥ ३ ॥ स विष्णु

दो० यथा विष्णुजी के लिये करै दीप का दान । सोइ आठ अध्याय में कह्यो चरित सुख खान ॥ महादेवजी बोले कि यह विष्णु का दीप मेरे दीप से अधिक वर्तमान है और वैकुंठवास होता है व बिन चाहा हुआ महाऐश्वर्य होताहै ॥ १ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि विष्णुजीके मंदिर में मंत्रपूर्वक मनुष्योंसे धरा हुआ यह दीप सदैव विशेष फलदायक है तो चातुर्मास्य में कैसे अधिक है ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि विष्णुजी मेरे सदैव अधिदेवता हैं व विष्णुजी सदैव मेरे पूजनीय हैं व इन विष्णुजी को मैं सदैव ध्यान करता हूं और वे विष्णुजी मुझ से परे हैं ॥ ३ ॥ और विष्णुजी को प्रिय वह दीपक सदैव पापहारक है व चातुर्मास्य में वह

विशेष कर कामनाओं को सिद्धिकारक है ॥ ४ ॥ हे पुत्र ! जिस प्रकार दीपक से विष्णुजी प्रसन्न होते हैं उस प्रकार हज़ारों यज्ञों से वर को नहीं देते हैं ॥ ५ ॥ दीप के थोड़े व्यय से मनुष्यों को अमित फल होताहै और अनंतजी के शयन में प्राप्त होने पर पुण्य की संख्या नहीं विद्यमान है ॥ ६ ॥ उस कारण जो मनुष्य श्रद्धा से संयुक्त सब यत्न से विष्णुजी को दीप प्रदान करता है वह पापों से नहीं लिप्त होता है ॥ ७ ॥ व फिर यतीरूपी विष्णुजी के निमित्त सोलह उपचारों से दीप प्रादन करने पर सब संसार प्रकाशित होता है ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! दीप के उपरान्त मोक्षपद में स्थित भक्ति से संयुत मनुष्यों को तेरहवीं ऋचा से

वल्लभो दीपः सर्वदा पापहारकः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण कामना सिद्धिकारकः ॥ ४ ॥ विष्णुर्दीपेन सन्तुष्टो यथा भवति पुत्रक ॥ तथा यज्ञसहस्रैश्च वरं नैव प्रयच्छति ॥ ५ ॥ स्वल्पव्ययेन दीपस्य फलमानन्तकं नृणाम् ॥ अनन्त शयने प्राप्ते पुण्यसंख्या न विद्यते ॥ ६ ॥ तस्मात्सर्वात्मभावेन श्रद्धया संयुतेन च ॥ दीपप्रदानं कुरुते हरेः पापैर्न लिप्यते ॥ ७ ॥ उपचारैः षोडशकैर्यतिरूपे हरौ पुनः ॥ दीपप्रदाने विहिते सर्वमुद्द्योतितं जगत् ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवा-

दनन्तरं ब्रह्मन्नन्नस्य च निवेदनम् ॥ त्रयोदश्या भक्तियुक्तैः कार्यं मोक्षपदस्थितैः ॥ ९ ॥ अमृतं -

अपि ॥ स्पृहयन्ति गृहस्थस्य गृहद्वारगताः सदा ॥ १० ॥ हरौ सुप्ते विशेषेण प्रदेयः -

त्कालसमुदाहृतैः ॥ ११ ॥ ताम्बूलवल्लीपत्रैश्च तदा पूगफलैः शुभैः ॥ -

बीजपूरफलैश्चैव दद्यादर्घ्यं सुभक्तितः ॥ शङ्खतोयं समादाय -

अन्न का निवेदन करना चाहिये ॥ ९ ॥ देवता भी अमृत को छोड़ कर स-

सोने पर प्रतिदिन मनुष्यों को वह अन्न विशेष कर देना चाहिये -

त्तम सुपारी के फलों से तथा मुनक्का, जामुन व आम-

शख में जल को लेकर उसके ऊपर उत्तम -

आचमन देना चाहिये ॥ १४ ॥ तदनन्तर यतिरूपी विष्णुजी के लिये चौदहवीं ऋचा से नमस्कार करै व समस्त पातकों को नाशनेवाली आरती करै ॥ १५ ॥ व पंद्रहवीं ऋचा से ब्राह्मणों समेत सब दिशाओं में भ्रमण करना चाहिये सात समुद्रोंसे उपजे हुए जलों के देनेसे जो फल मिलता है ॥ १६ ॥ वह विष्णुजी को जल-दान से विष्णुप्रिय मनुष्यों को मिलता है और चार बार भ्रमण करने से चराचर समेत सब संसार ॥ १७ ॥ व हे द्विजेन्द्र ! उनके तीर्थ का गमनादिक क्रान्त होता है व योगविदों में उत्तम मनुष्य सोलहवीं ऋचा से विष्णुदेवजी की सायुज्य याने एकीभाव को चिन्तवन करै ॥ १८ ॥ उस समय नित्य अपनी व विष्णुजी की

केशवाय निवेदयेत् ॥ पुनराचमनं देयमन्नदानादनन्तरम् ॥ १४ ॥ आर्त्तिक्यं च ततः कुर्यात्सर्वपापविनाशनम् ॥ चतुर्दश्या नमस्कुर्याद्विष्णवे यतिरूपिणे ॥ १५ ॥ पञ्चदश्या भ्रमः कार्यः सर्वदिक्षु द्विजैः सह ॥ सप्तसागरजैस्तोयैर्दत्तैर्यत्फलमाप्यते ॥ १६ ॥ ततो पदानाच्च हरेः प्राप्यते विष्णुवल्लभैः ॥ चतुर्वारभ्रमीभिश्च जगत्सर्वं चराचरम् ॥ १७ ॥ क्रान्तं भवति विप्राग्र्य तत्तीर्थगमनादिकम् ॥ षोडश्या देवसायुज्यं चिन्तयेद्योगवित्तमः ॥ १८ ॥ आत्मनश्च हरेर्नित्यं न मूर्त्तिं भावयेत्तदा ॥ मूर्त्तामूर्त्तस्वरूपत्वाद्दृश्यो भवति योगवित् ॥ १९ ॥ तस्मिन्दृष्टे निवर्त्तेत सदसद्रूपजा क्रिया ॥ आत्मानं तेजसां मध्ये चिन्तयेत्सूर्यवर्चसम् ॥ २० ॥ अहमेव सदा विष्णुरित्यात्मनि विचारयन् ॥ लभते वैष्णवं देहं जीवन्मुक्तो द्विजो भवेत् ॥ २१ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण योगयुक्तो द्विजो भवेत् ॥ इयं भक्तिः समादिष्टा मोक्षमार्गप्रदे हरौ ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्येऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥

मूर्ति की संभावना न करै और मूर्त व अमूर्तस्वरूप होने के कारण योग को जाननेवाला मनुष्य दृश्य होता है ॥ १९ ॥ व उन के देखने पर सत व असद्रूप से उपजी हुई क्रिया निवृत्त होजाती है व अपना को तेजोंके मध्यमें सूर्य के समान तेजवान् ध्यान करै ॥ २० ॥ व मैंही सदा विष्णु हू ऐसा आत्मा में विचारता हुआ ब्राह्मण जीवन्मुक्त होता है व वैष्णवशरीर को प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ और चातुर्मास्य में विशेष कर ब्राह्मण योग युक्त होवै मोक्षमार्ग को देनेवाले विष्णुजी में यह भक्ति कही गई है ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचिताया भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्ये अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❀ ॥

दो० स्त्री अरु शूद्रादिक यथा करहिं धर्म आचार। सोइ नवम अध्याय में कह्यो चरित सुखसार ॥ महादेवजी बोले कि यह षोडशोपचार से संयुत विष्णुजी का पूजन तुमसे कहा गया जिसको ब्राह्मण करके परमपद को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ वैसेही क्षत्रिय वैश्यों के करने से उत्तम मुक्ति होती है व शूद्रों और स्त्रियों को किसी प्रकार इसमें अधिकार नहीं है ॥ २ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि शूद्रों व स्त्रियोंके धर्म को विस्तार से कहिये कि श्रीकृष्णजी के आराधन विना उनकी किस प्रकार मुक्ति होती है ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि उत्तम शूद्रों को भी वेदाक्षरों का विचार न करना चाहिये व न सुनना चाहिये और न पढ़ना चाहिये क्योंकि

ईश्वर उवाच ॥ एतत्ते पूजनं विष्णोः षोडशोपायसंभवम् ॥ कथितं यद्द्विजः कृत्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥ १ ॥ तथा च क्षत्रियविशां करणान्मुक्तिरुत्तमा ॥ शूद्राणां चाधिकारोस्मिन् स्त्रीणां नैव कदाचन ॥ २ ॥ कार्त्तिकेय उवाच ॥ शूद्राणां च तथा स्त्रीणां धर्मं विस्तरतो वद ॥ केन मुक्तिर्भवेत्तेषां कृष्णस्याराधनं विना ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ सच्छूद्रैरपि नो कार्या वेदाक्षरविचारणा ॥ न श्रोतव्या न पाठ्या च पठन्नरकभाग्भवेत् ॥ ४ ॥ पुराणानां नैव पाठः श्रवणं कारयेत्सदा ॥ स्मृत्युक्तं सुगुरोर्ग्राह्यं न पाठः श्रवणादिकम् ॥ ५ ॥ स्कन्द उवाच ॥ सच्छूद्राः के समाख्यातास्तांश्च विस्तरतो वद ॥ के सन्तः के च शूद्राश्च सच्छूद्रा नामतश्च के ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ धर्मोढा यस्य पत्नी स्यात्स सच्छूद्र उदाहृतः ॥ समानकुलरूपा च दशदोषविवर्जिता ॥ ७ ॥ उद्वोढा वेदविधिना स सच्छूद्रः प्रकीर्तितः ॥ अक्लीबाऽव्याङ्गिनी शस्ता महारोगाद्यदूषिता ॥ ८ ॥ अनिन्दिता शुभकला चक्षुरोगविवर्जिता ॥ वाधिर्यहीना चपला कन्या

उसको पढ़ता हुआ शूद्र नरकभागी होता है ॥ ४ ॥ और सदैव पुराणों का पाठ व श्रवण न करै और उत्तम गुरु से स्मृति में उक्त पाठ व श्रवणादिक न ग्रहण करना चाहिये ॥ ५ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि सच्छूद्र कौन कहेगये हैं उनको विस्तार से कहिये कि कौन संत हैं व कौन शूद्र हैं और नाम से कौन सच्छूद्र हैं ॥ ६ ॥ महादेवजी बोले कि जिसकी स्त्री धर्म से ब्याही गई है वह सच्छूद्र कहा गया है और समान कुलरूपवाली व दश दोषों से रहित स्त्री को ॥ ७ ॥ जिसने वेद की विधि से ब्याहा है वह सच्छूद्र कहा गयाहै याने अक्लीवा, अव्यंगिनी, उत्तम व महारोगादिकोंसे अदूषित ॥ ८ ॥ प्रशंसित व उत्तम गुणोंवाली तथा नेत्ररोगसे

रहित और बधिरता से रहित व चंचल और मधुर बोलनेवाली दश दोषोंसे रहित जो कन्या वेदोक्तविधि से मनुष्यों से ब्याही गई है और वह जिस की सदैव स्त्री होती है ॥९।१०॥ देवादिकों का विभाग करनेवाला वह सच्छूद्र जानने योग्य है और सब पुण्यकार्यों में वह श्रेष्ठ कहीगई है ॥११॥ व उससे भलीभाति किया हुआ धर्म संपूर्ण फल को देनेवाला है और विशेष कर चातुर्मास्य में उसके साथ अधिक गुण होता है ॥ १२ ॥ और स्त्रीमें स्नेह करनेवाला व पवित्र तथा सेवकादिकों के पोषण में तत्पर और नित्य श्राद्धादि करनेवाला इष्टापूर्तकर्म का साधन करनेवाला होता है ॥ १३ ॥ और नमस्कारादि मंत्र से व नामों के कहने से और

मधुरभाषिणी ॥ ९ ॥ दूषणैर्दशभिर्हीना वेदोक्तविधिना नरैः ॥ विवाहिता च सा पत्नी गृहिणी यस्य सर्वदा ॥ १० ॥ सच्छूद्रः स तु विज्ञेयो देवादीनां विभागकृत् ॥ पुण्यकार्येषु सर्वेषु प्रथमा सा प्रकीर्तिता ॥ ११ ॥ तया सुविहितो धर्मः सम्पूर्णफलदायकः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण तया सह गुणाधिकः ॥ १२ ॥ भार्यारतिः शुचिर्भृत्यादीनां पोषणतत्परः ॥ श्राद्धादिकारको नित्यमिष्टापूर्तप्रसाधकः ॥ १३ ॥ नमस्कारादिमन्त्रेण नामसंकीर्तनेन च ॥ देवास्तस्य च तुष्यन्ति पञ्चयज्ञादिकैः शुभैः ॥ १४ ॥ स्नानं च तर्पणं चैव वह्निहोमोप्यमन्त्रकः ॥ ब्रह्मयज्ञोऽतिथेः पूजा पञ्चयज्ञान्न संत्यजेत् ॥ १५ ॥ कार्यं स्त्रीभिश्च शूद्रैश्च ह्यमन्त्रपञ्चयज्ञकम् ॥ पञ्चयज्ञैश्च सन्तुष्टा यथैषाम्पितृदेवताः ॥ १६ ॥ तथा पतिव्रतायाश्च पतिशुश्रूषया सदा ॥ पतिव्रताया देहे तु सर्वे देवाश्च सन्ति हि ॥ १७ ॥ अतस्ताभ्यां समेताभ्यां धर्मादीनां समागमः ॥ यदोभयोर्मते पृष्टे सन्तुष्टाः पितृदेवताः ॥ १८ ॥ कार्यादीनां च सर्वेषां सङ्गमस्तत्र नित्यदा ॥

उत्तम पंचयज्ञादिकों से उसके ऊपर देवता प्रसन्न होते हैं ॥ १४ ॥ और स्नान, तर्पण व विना मंत्र के अग्नि में हवन और ब्रह्मयज्ञ तथा अतिथि का पूजन व पंचयज्ञोंको वह न त्याग करै ॥ १५ ॥ और स्त्रियों व शूद्रों को भी विना मंत्र के पंचयज्ञ करना चाहिये और जिस प्रकार पंचयज्ञों से इनके ऊपर पितर व देवता प्रसन्न होते हैं ॥ १६ ॥ वैसेही पतिव्रता के ऊपर पति की सेवा से सदैव प्रसन्न होते हैं और पतिव्रता के शरीर में सब देवता होते हैं ॥ १७ ॥ इस कारण उन दोनों समेत धर्मादिकों का समागम होता है और जब उन दोनों का मत पूछने पर पितर व देवता प्रसन्न होते हैं ॥ १८ ॥ तब वहां सदैव सब कार्यादिकों का समागम

होता है और चातुर्मास्य आने पर विष्णुजी की भक्ति से उन दोनों का कल्याण होता है ॥ १९ ॥ कि जिस की स्त्री समान कुल में उत्पन्न धारित होती है और पहला पति अर्धभागी होता है दूसरे को किसी प्रकार नहीं होता है ॥ २० ॥ व अर्थ व कार्य का इस स्त्रीको अधिकार होता है उससे वह धर्मार्धधारिणी होती है और उन दोनों का अपना अपना किया हुआ शुभाशुभ कर्म होता है ॥ २१ ॥ व हे द्विज ! जो स्त्री उत्तम तप से मरे हुए पति के पश्चात् गमन करती है वह पतिव्रता जानने योग्य है और उससे वंश उद्धार किया जाता है ॥ २२ ॥ और अन्य जातिवाले मरे हुए पति के पश्चात् जो ब्याही या विना ब्याही स्त्री अग्नि के

चातुर्मास्ये समायाते विष्णुभक्त्या तयोः शिवम् ॥ १९ ॥ समानजातिसंभूता पत्नी यस्य धृता भवेत् ॥ पूर्वो भर्तार्द्ध भागीस्याद्द्वितीयस्य न किञ्चन ॥ २० ॥ अर्थकार्याधिकारोस्यास्तेन धमार्धधारिणी ॥ स्वं स्वं कृतं सदैवस्यात्तयोः कर्म शुभाशुभम् ॥ २१ ॥ यानुगच्छति भर्त्तारं मृतं सु तपसा द्विज ॥ साध्वी सा हि परिज्ञेया तया चोद्ध्रियते कुलम् ॥ २२ ॥ अन्यजातिमृतं चाथ धृतावापि विवाहिता ॥ वैश्वानरस्य मार्गेण सा तमुद्धरते पतिम् ॥ २३ ॥ यथा जलाच्च जम्बालः कृष्यते धार्मिकैर्नृभिः ॥ एवमुद्धरते साध्वी भर्त्तारं यानुगच्छति ॥ २४ ॥ अन्यजातिसमुद्भूता अन्येन विधृता यदि ॥ तावुभौ धर्मकार्येषु सन्त्याज्यौ नित्यदा मतौ ॥ २५ ॥ स्वं स्वं कर्म प्रकुरुतः सत्कर्मजं स्वकं फलम् ॥ तस्माद्वरिष्ठा हीना वा सत्कुल्याशूद्रसंभवैः ॥ २६ ॥ धृता न कार्या सा पत्नी यत्करोति न वर्द्धते ॥ तया सह कृतं

मार्ग से गमन करती है वह उस पति को उधारती है ॥ २३ ॥ जिस प्रकार धर्मवान् मनुष्य जल से कीचड़ को खींच लेते हैं उस प्रकार जो पतिव्रता स्त्री पति के पश्चात् गमन करती है वह पति को उधारती है ॥ २४ ॥ और अन्य जाति से उपजी हुई स्त्री को यदि अन्य पुरुष ने धारण किया है तो वे दोनो सदैव धर्मकार्यों में त्यागने योग्य माने गये हैं ॥ २५ ॥ और वे दोनों अपने अपने कर्म को करते हैं व उत्तम कर्म से उपजे हुए फल को भोगते हैं व उससे श्रेष्ठ या हीन व उत्तम कुलमें उपजी हुई जो स्त्री होवै शूद्र जाति में उपजे हुए मनुष्यों को ॥ २६ ॥ उस स्त्री को धारण न करना चाहिये क्योंकि उसके साथ किया हुआ पुण्य दशगुणा

बढ़ता है व उनके पुत्रों से भी किया हुआ कर्म अमित तृप्तिदायक नहीं होता है व जो कन्या मोललीजाती है वह दासी कही गई है ॥ २७ । २८ ॥ और सच्छूद्र के अधिकार में वह कभी नहीं होती है व जो कन्या आपही पिता से उद्यम कर वर के लिये दीजाती है ॥ २९ ॥ जिस कर्म को मनुष्य करता है वह नहीं बढ़ता है और अन्यथा विवाह की विधि से ब्याही हुई वह पितरों व देवताओं के अर्थ को साधन करनेवाली होती है क्योंकि सुन्दर लक्षणोंवाली व विनीत तथा उत्तम और विवेकादि गुणोंवाली जो उत्तम कन्या होती है ॥ ३० ॥ उत्तम चरित्रोंवाली व पति में परायण वह उनके लिये देने के योग्य है और शुद्ध वंश में उत्पन्न

पुण्यं वर्द्धते दशधोत्तरम् ॥ २७ ॥ अनन्ततृप्तिदं नैव तत्सुतैरपि वा तथा ॥ क्रयक्रीता च या कन्या दासी सा परिकीर्तिता ॥ २८ ॥ सच्छूद्रस्याधिकारे सा कदाचिन्नैव जायते ॥ या कन्या स्वयमुद्यम्य पित्रा दत्ता वराय च ॥ २९ ॥ विवाहविधिनोढूढा पितृदेवार्थसाधिनी ॥ सुलक्षणा विनीता या विवेकादिगुणा शुभा ॥ ३० ॥ सच्चरित्रा पतिपरा सा तेभ्यो दातुमर्हति ॥ विशुद्धकुलजा कन्या धर्मोढा धर्मचारिणी ॥ ३१ ॥ सा पुनाति कुलं सर्वं मातृतः पितृतस्तथा ॥ एष एव मया प्रोक्तः सच्छूद्राणां परो विधिः ॥ ३२ ॥ अधोजातिसमुद्भूताः सच्छूद्रात्क्रमहीनजाः ॥ विवाहो दशधा तेषां दशधा पुत्रता भवेत् ॥ ३३ ॥ चत्वार उत्तमाः प्रोक्ता विवाहा मुनिसत्तम ॥ शेषाः सर्वप्रकृतिषु कथिताश्च पुराविदैः ॥ ३४ ॥ प्राजापत्यस्तथा ब्राह्मो दैवार्षौ चातिशोभनाः ॥ गान्धर्वश्चासुरश्चैव राक्षसश्च पिशाचकः ॥ ३५ ॥ प्रातिभो घातिनश्चेति विवाहाः कथिता दश ॥ एते हि हीनजातीनां विवाहाः परिकीर्तिताः ॥ ३६ ॥ औरसः क्षेत्रज

व धर्मचारिणी जो कन्या धर्म से ब्याही गई है ॥ ३१ ॥ वह माता व पिता के सब वंश को उधारती है मैंने सच्छूद्रों की इस उत्तम विधि को कहा ॥ ३२ ॥ और नीच जाति में उत्पन्न व सच्छूद्र से क्रम से जो हीन में पैदा हुए हैं उनका दश प्रकार का विवाह होता है और दश प्रकार की पुत्रता होती है ॥ ३३ ॥ हे मुनिसत्तम ! चार विवाह उत्तम कहे गये हैं और शेष विवाह सब प्रजाओं में पुरातन समय के विद्वानों ने कहा है ॥ ३४ ॥ प्राजापत्य, ब्राह्म, दैव, आर्ष व अतिउत्तम गांधर्व, आसुर, राक्षस व पिशाच ॥ ३५ ॥ प्रातिभ व घातिन ये दश विवाह कहे गये हैं ये हीन जातिवालों के विवाह कहे गये हैं ॥ ३६ ॥ और औरस,

क्षेत्रज, दत्त, कृत्रिम, गूढोत्पन्न, अपविद्ध, कानीन व सहोढज॥ ३७ ॥ और क्रीत व पौनर्भव ये दश प्रकार के पुत्र कहे गये हैं व औरस से जो हीन है वे भी उन को शुभदायक हैं ॥ ३८ ॥ व प्रजाओंके मध्य में जिस प्रकार अठारह संख्यक नीच हैं उनको न विधि है न क्रियाहै और न स्मृतिमार्ग है ॥ ३९ ॥ उनको ब्राह्मण की सेवा व विष्णुका ध्यान तथा शिवपूजन व बिन मन्त्र से पुण्य करना और सदैव दान देना चाहिये ॥ ४० ॥ और श्रद्धा से जो दान दिया जाता है उस दान का संसार में नाश नहीं होताहै और बिन श्रद्धा व अपवित्रता से दान वैर का कारण है ॥ ४१ ॥ व उनका अहिंसादिक से कहा हुआ धर्म बडा फलवाला है और चातु-

श्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ॥ गूढोत्पन्नोपविद्धश्च कानीनश्च सहोढजः ॥ ३७ ॥ क्रीतः पौनर्भवश्चापि पुत्रा दशविधाः स्मृताः ॥ औरसादपि हीनाश्च तेपि तेषां शुभावहाः ॥ ३८ ॥ अष्टादशमिता नीचा प्रकृतीनां यथातथा ॥ विधिर्नैव क्रिया नैव स्मृतिमार्गोऽपि नैव च ॥ ३९ ॥ तासां ब्राह्मणशुश्रूषा विष्णुध्यानं शिवार्चनम् ॥ अमन्त्रात्पुण्यकरणं दानं देयं च वै सदा ॥ ४० ॥ न दानस्य क्षयो लोके श्रद्धया यत्प्रदीयते ॥ अश्रद्धया शुचितया दानं वैरस्य कारणम् ॥ ४१ ॥ अहिंसादिसमादिष्टो धर्मस्तासां महाफलः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण त्रिदिवेशादिसेवया ॥ ४२ ॥ सुदर्शनैस्तथा धर्मः सेव्यते ह्यविरोधिभिः ॥ सच्छूद्रैर्दानपुण्यैश्च द्विजशुश्रूषणादिभिः ॥ ४३ ॥ वृत्तिश्च सत्यानृतजा वाणिज्यव्यवहारजा ॥ अशीतिभागमादद्याद्द्विजाद्वार्धुषिकः शते ॥ ४४ ॥ सपादभागवृद्धा तु क्षत्रियादिषु गृह्यते ॥ एवं न बन्धो भवति पातकस्य कदाचन ॥ ४५ ॥ प्रातःकर्म सुरेशानं मध्याह्ने द्विजसेवनम् ॥ अपराह्णेऽथ कार्याणि कुर्वे

र्मास्य में विशेषकर देवादिकों की सेवासे धर्म बडा फलवान् होता है॥ ४२॥ और उत्तमदर्शनवाले अविरोधी सच्छूद्रों से ब्राह्मणों की सेवादिकों से व दान,पुण्यों से धर्म सेवन किया जाता है ॥ ४३ ॥ और वाणिज्य के व्यवहार से उत्पन्न सौदागरी की वृत्ति (जीविका) करना चाहिये और व्याजखोर ब्राह्मण से प्रत्येक सैकड़ा में अस्सीवाँभाग लेवै याने सवा रुपया सैकड़ा माहवारी सूद ब्राह्मण से लेना चाहिये ॥ ४४ ॥ और क्रम से सवाई भाग वृद्धि क्षत्रियादिकों में ग्रहण की जाती है व इसप्रकार कभी पाप का बन्धन नहीं होता है ॥ ४५ ॥ प्रातःकाल सुरेश्वर कर्म व मध्याह्न में ब्राह्मण की सेवा और अपराह्न मे कार्यों को करता हुआ मनुष्य सुखी

होता है ॥ ४६ ॥ और अतिथि व ब्राह्मणों को पूजनेवाले तथा पञ्चयज्ञ में परायण कार्य में तत्पर गृहस्थ मनुष्यों को जीवनपर्यन्त सदैव होना चाहिये ॥ ४७ ॥ और विष्णुजी की भक्ति में तत्पर व वेदमन्त्र पाठ करनेवाले तथा सदैव दानशील व दीनार्तजनप्रिय ॥ ४८ ॥ और क्षमादि गुणों से सयुत व द्वादशाक्षर को पूजनेवाले और षडक्षर मन्त्र के महोद्वार के परम आनन्द से पूरित ॥ ४९ ॥ व उत्तम सन्तान और उत्तम आचारवाले मत्सरतारहित व ताप क्लेश से वर्जित जनों को सदैव सज्जनों की सेवाओं से स्थित होना चाहिये ॥ ५० ॥ इस प्रकार धर्म से डरे हुए विदेशगमन से रहित सच्छूद्रों को द्रव्य के अनुसार सब प्राणियों की

न्मर्त्यः सुखी भवेत् ॥ ४६ ॥ गृहस्थैश्च सदा भाव्यं यावज्जीवं क्रियापरैः ॥ पञ्चयज्ञरतैश्चैवातिथिद्विजसुपूजकैः ॥ ४७ ॥ विष्णुभक्तिरतैश्चैव वेदमन्त्रविपाठकैः ॥ सततं दानशीलैश्च दीनार्तजनवत्सलैः ॥ ४८ ॥ क्षमादिगुणसंयुक्तैर्द्वादशाक्षरपूजकैः ॥ षडक्षरमहोद्वारपरमानन्दपूरितैः ॥ ४९ ॥ सदपत्यैः सदाचारैः सतां शुश्रूषणैरपि ॥ विमत्सरैः सदा स्थेयं तापक्लेशविवर्जितैः ॥ ५० ॥ प्रव्रज्यावर्जनैरेवं सच्छूद्रैर्धर्मतर्जितैः ॥ तोषणं सर्वभूतानां कार्यं वित्तानुसारतः ॥ ५१ ॥ सदा विष्णुशिवादीनां ये भक्तास्ते नराः सदा ॥ देववद्दिवि दीव्यन्ति चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये तपोधिकारे सच्छूद्रकथनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ अष्टादश प्रकृतयः का वदस्व पितामह ॥ वृत्तिस्तासां च को धर्मः सर्वं विस्तरतो मम ॥ १ ॥ ब्रह्मोवा

प्रसन्नता करना चाहिये ॥ ५१ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर जो मनुष्य सदैव विष्णु व शिवादिकों के भक्त हैं वे मनुष्य सदैव देवताओं की नाईं स्वर्ग में क्रीड़ा करते हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेचातुर्मास्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकाया तपोधिकारे सच्छूद्रकथनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ यथा अठारह भांति के भये प्रजा उत्पन्न। सोइ दशमअध्यायमें चरित मोदसंपन्न ॥ नारदजी बोले कि हे पितामह ! अठारह प्रकृतियां याने प्रजा लोग कौन हैं और उनकी कौन जीविका व कौन धर्म है इस सबको मुझसे विस्तार से कहिये ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले कि अपने काल के प्रमाण मे जगे हुए जगदीशविष्णुजी

की नाभि के कमलकोश से मेरा जन्म हुआ ॥ २ ॥ तदनन्तर पुरातन समय बहुत दिनों तक मन में अनेक भाति की राजसी प्रजाओं को रचने की इच्छावाले विष्णु जीने मुझको स्मरण किया ॥ ३ ॥ और वहा मैं चतुर्मुख पुत्र पैदा हुआ इसके अनन्तर नाभि के नालसे पेट में पैठकर मैंने देखा ॥ ४ ॥ फिर सृष्टि के लिये दौड़ते व विस्मयसे चिन्ता करते हुए मुझको वहा करोडों ब्रह्माण्डों का दर्शन हुआ ॥ ५ ॥ फिर कमल के नाल से पैठकर मैं जबतक बाहर आया तबतक वह सब सृष्टि के अर्थ का कारण भूलगया ॥ ६ ॥ तदनन्तर फिर जाकर चार प्रकार के प्रजाओं को रचकर नाभि के नाल से निकलकर विस्मृतचित्त से ॥ ७ ॥ उस समय मैं जडवत्

च ॥ मज्जन्माभूद्भगवतो नाभिपङ्कजकोशतः ॥ स्वकालपरिमाणेन प्रबुद्धस्य जगत्पतेः ॥ २ ॥ ततो बहुतिथे काले केशवेन पुरा स्मृतः ॥ स्रष्टुकामेन विविधाः प्रजा मनसि राजसीः ॥ ३ ॥ अहं कमलजस्तत्र जातः पुत्रश्चतुर्मुखः ॥ उदरं नाभिनालेन प्रविश्याथ व्यलोकयम् ॥ ४ ॥ तत्र ब्रह्माण्डकोटीनां दर्शनं मेऽभवत्पुनः ॥ विस्मयाच्चिन्तयानस्य सृष्ट्यर्थमभिधावतः ॥ ५ ॥ निर्गम्य पुनरेवाहं पद्मनालेन यावता ॥ बहिरागां विस्मृतं तत्सर्वं सृष्ट्यर्थकारणम् ॥ ६ ॥ पुनरेव ततो गत्वा प्रजाः सृष्ट्वा चतुर्विधाः ॥ नाभिनालेन निर्गत्य विस्मृतेनान्तरात्मना ॥ ७ ॥ तदाहं जडवज्जातो वागुवाचाशरीरिणी ॥ तपस्तप महाबुद्धे जडत्वं नोचितं तव ॥ ८ ॥ दशवर्षसहस्राणि ततोऽहं तप आस्थितः ॥ पुनराकाशजा वाणी मामुवाचाविनश्वरा ॥ ९ ॥ वेदरूपाश्रिता पूर्वमाविर्भूता तपोबलात् ॥ ततो भगवतादिष्टः सृज त्वं बहुधाः प्रजाः ॥ १० ॥ राजसं गुणमाश्रित्य भूतसर्गमकल्मषम् ॥ मनसा मानसी सृष्टिः प्रथमं चिन्तिता मया ॥ ११ ॥ ततो

होगया और आकाशवाणी बोली कि हे महाबुद्धे ! तपस्या करो तुमको जडता योग्य नहीं है ॥ ८ ॥ तदनन्तर मैं दशहज़ार वर्षतक तपस्या में स्थित हुआ फिर आकाश में उपजी हुई अविनाशिनी वाणी ने मुझसे कहा ॥ ९ ॥ कि जिस लिये तपोबल से पहले वेदरूपाश्रिता वाणी प्रकट हुई है उसी कारण विष्णुजी से आज्ञा दिये हुए तुम अनेक प्रकार की प्रजाओं को रचो ॥ १० ॥ और राजसी गुण में आश्रित होकर पापरहित भूत सृष्टि को रचो मैंने पहले मन से मानसी सृष्टि को चिन्तन किया ॥ ११ ॥ उससे मरीचि आदिक मुनीश्वर ब्राह्मण लोग उत्पन्न हुए और उनके मध्य में ज्ञान व वेदान्त के पारगामी छोटे तुम उत्पन्न

हुए ॥ १२ ॥ और सदैव कर्म में निष्ठ वे लोग सृष्टि के लिये सदैव उद्यत हुए और व्यापाररहित व विष्णुभक्त तथा एकान्त ब्रह्मके सेवक ॥ १३ ॥ व ममतारहित और अहंकारसे रहित तुम मेरे मानसी पुत्र हो मैंने उनके क्रमसे वेदोंकी रक्षाके लिये ॥ १४ ॥ पहली ब्राह्मणादिक मानसीसृष्टिको रचा तदनन्तर हे नारद ! मैंने वहां आंगिकी सृष्टि को रचा ॥ १५ ॥ मेरे मुखसे ब्राह्मण पैदा हुए व भुजाओं से क्षत्रिय उत्पन्न हुए और वैश्य ऊरुसे उत्पन्न हुए व पांवों से शूद्र हुए ॥ १६ ॥ और अनुलोम व विलोम से और क्रमसे व क्रम के योग से शूद्र से नीचे नीचे सब चरणतलसे पैदा हुए ॥ १७ ॥ व हे नारद ! वे सब प्रजा लोग मेरे देहांश से उत्पन्न हैं तुम

वै ब्राह्मणा जाता मरीच्यादिमुनीश्वराः ॥ तेषां कनीयांस्त्वं जातो ज्ञानवेदान्तपारगः ॥ १२ ॥ कर्मनिष्ठाश्च ते नित्यं सृष्ट्यर्थं सततोद्यताः ॥ निर्व्यापारो विष्णुभक्त एकान्तब्रह्मसेवकः ॥ १३ ॥ निर्ममो निरहंकारो ममत्वं मानसः सुतः ॥ क्रमान्मया तु तेषां वै वेदरक्षार्थमेव च ॥ १४ ॥ प्रथमा मानसी सृष्टिर्द्विजात्यादिविनिर्मिता ॥ ततोहमाङ्गिकीं सृष्टिं सृष्टवांस्तत्र नारद ॥ १५ ॥ मुखाच्च ब्राह्मणा जाता बाहुभ्यः क्षत्रिया मम ॥ वैश्या ऊरुसमुद्भूताः पद्भ्यां शूद्रा बभूविरे ॥ १६ ॥ अनुलोमविलोमाभ्यां क्रमाच्च क्रमयोगतः ॥ शूद्रादधोधोजाताश्च सर्वे पादतलोद्भवाः ॥ १७ ॥ ताः सर्वास्तु प्रकृतयो मम देहांशसंभवाः ॥ नारद त्वं विजानीहि तासां नामानि वच्मि ते ॥ १८ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रय एव द्विजातयः ॥ वेदास्तपोध्ययनं च यजनं दानमेव च ॥ १९ ॥ वृत्तिरध्यापनाच्चैव तथा स्वल्पप्रतिग्रहात् ॥ विप्रः समर्थस्तपसा यद्यपि स्यात्प्रतिग्रहे ॥ २० ॥ तथापि नैव गृह्णीयात्तपोरक्षायतः सदा ॥ वेदपाठो विष्णुपूजा ब्रह्मध्यानमलोभता ॥ २१ ॥ अक्रो

इसको जानो और उनके नामों को मैं तुमसे कहता हूं ॥ १८ ॥ कि ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य तीनही द्विजाति है और वेद, तपस्या, पठन, यज्ञ करना व दान ॥ १९ ॥ और पढ़ानेसे व थोड़ा दान लेने से ब्राह्मणों की जीविका है यद्यपि ब्राह्मण तपस्या के कारण दान लेने में समर्थ हैं ॥ २० ॥ तथापि उसको ग्रहण न करै क्योंकि सदैव तपस्या की रक्षा होती है और वेदपाठ, विष्णुपूजन, ब्रह्मध्यान व निर्लोभता ॥ २१ ॥ और क्रोध न होना व ममताराहित्य, क्षमासारता और

को सदैव गुरुपूजन कहागया है और ब्राह्मणों को नित्यदानही प्राकृत उत्तम विधि है ॥ ४२ ॥ व हे महामुने ! सब वर्णों व आश्रमों और सब पुरुषोंको सदैव विष्णु-भक्ति उत्तम होती है ॥ ४३ ॥ यह सब तुमसे कहागया कि जिस प्रकार प्रकृतियों की उत्पत्ति हुई और महापवित्र कथाको सुनिये कि जिसप्रकार शूद्र शुद्धि को प्राप्त हुआ है ॥ ४४ ॥ इस पवित्र पुराण को जो पवित्रबुद्धिवाला मनुष्य सुनता या पढ़ता है कार्यों में तत्पर वह पहले के इकट्ठा किये हुए पापों को नाशकर विष्णुजीके मन्दिर को प्राप्त होताहै ॥४५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्ये प्रकृतिकथनंनाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

दिता ॥ विप्राणां प्राकृतो नित्यं दानमेव परो विधिः ॥ ४२ ॥ सर्वेषामेव वर्णानामाश्रमाणां महामुने ॥ सर्वासां प्रकृतीनां च विष्णुभक्तिः सदा शुभा ॥ ४३ ॥ इति ते कथितं सर्वं यथाप्रकृतिसम्भवम् ॥ कथां शृणु महापुण्यां शूद्रः शुद्धिमगाद्यथा ॥ ४४ ॥ इदं पुराणं परमं पवित्रं विशुद्धधीर्यस्तु शृणोति वा पठेत् ॥ विधूय पापानि पुरार्जितानि स याति विष्णोर्भवनं क्रियापरः ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये प्रकृतिकथनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ शूद्रः पैंजवनो नाम गार्हस्थ्याच्छुद्धिमाप्तवान् ॥ धर्ममार्गाविरोधेन तन्निबोध महामते ॥ १ ॥ आसीत्पैंजवनः शूद्रः पुरा त्रेतायुगे किल ॥ स धर्मनिरतः ख्यातो विष्णुब्राह्मणपूजकः ॥ २ ॥ न्यायागतधनो नित्यं शान्तः सर्वजनप्रियः ॥ सत्यवादी विवेकज्ञस्तस्य भार्या च सुन्दरी ॥ ३ ॥ धर्मोढा वेदविधिना समानकुलजा शुभा ॥

दो० ॥ धर्ममार्ग पैजवन सन कह गालव मुनिनाथ । सो गेरहें अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे महामते ! पैजवननामक शूद्र ने जिस प्रकार धर्ममार्ग के अविरोध से शुद्धि को पाया है उसको सुनिये ॥ १ ॥ कि पुरातन समय त्रेतायुग में पैजवननामक शूद्र हुआ है वह धर्म में तत्पर था और विष्णु व ब्राह्मणों का पूजक प्रसिद्ध था ॥ २ ॥ और वह सदैव न्याय से धन को प्राप्त करता था व शान्त तथा सब जनों को प्यारा था और सत्यवादी व विवेक को जाननेवाला था और उसकी स्त्री सुन्दरी थी ॥ ३ ॥ व समान कुल में उत्पन्न वह धर्म से ब्याही हुई उत्तम व पतिव्रता तथा बडे ऐश्वर्यवाली स्त्री देवताओं

व ब्राह्मणों के हित में परायण थी ॥ ४ ॥ काशी में सम्बन्धवाली वह स्त्री वैजयन्तीपुरी में व्याही गई और धर्म करने में प्रवीण वह वैष्णवव्रत को करती थी ॥ ५ ॥ और पति के साथ उसने भलीभांति क्रीडा किया व उसने भी विनीत की नाईं उसके साथ समय में क्रीडा किया जैसे कि हस्तिनी के साथ महागज क्रीड़ा करता है ॥ ६ ॥ और पहले के पुण्य से उस महात्मा को द्रव्य की प्राप्ति हुई वह नित्य स्वजनों से स्वदेश व विदेशमें उत्पन्न वाणिज्यको ॥ ७ ॥ पराये व अपने धनों से कराता था इसप्रकार उस धर्मदर्शी के बहुत प्रकार का धन हुआ ॥ ८ ॥ और पिता की सेवामें परायण दो पुत्र पैदा हुए और उसके पुत्र पिता के भक्त व द्रव्यादि

प्रतिव्रता महाभागा देवद्विजहिते रता ॥ ४ ॥ काश्यां सम्बन्धिता बाला वैजयन्त्यां विवाहिता ॥ सा धर्माचरणे दक्षा वैष्णवव्रतचारिणी ॥ ५ ॥ भर्त्रा सह तथा सम्यक् चिक्रीडे सुविनीतवत् ॥ सोऽपि रेमे तया काले हस्तिन्येव महागजः ॥ ६ ॥ अर्थाप्तिः पूर्वपुण्येन जाता तस्य महात्मनः ॥ वाणिज्यं स्वजनैर्नित्यं स्वदेशपरदेशजम् ॥ ७ ॥ कारयत्यर्थजातैश्च परकीयस्वकीयजैः ॥ एवमर्थश्च बहुधा संजातो धर्मदर्शिनः ॥ ८ ॥ पुत्रद्वयं च संजातं पितुः शुश्रूषणे रतम् ॥ तस्य पुत्राः पितुर्भक्ता द्रव्यादिमदवर्जिताः ॥ ९ ॥ पितृवाक्यरताः श्रेष्ठाः स्वधर्माचारशोभनाः ॥ पित्रोः शुश्रूषणादन्यन्नाभिनन्दन्ति किंचन ॥ १० ॥ ते सम्बन्धैः सुसम्बद्धाः पित्रा धर्मार्थदर्शिना ॥ तत्पत्न्यो मातृपित्रर्चां कारयन्त्यनिवारितम् ॥ ११ ॥ ऋद्धिमद्भवनं तस्य धनधान्यसमन्वितम् ॥ सोऽपि धर्मरतो नित्यं देवतातिथिपूजकः ॥ १२ ॥ गृहागतो न विमुखो यस्य याति कदाचन ॥ शीतकाले धनं प्रादादुष्णकाले जलान्नदः ॥ १३ ॥ वर्षाकाले वस्त्र

के अहंकार से रहित थे ॥ ९ ॥ और पितरों के वचन में परायण व श्रेष्ठ तथा अपने धर्म के आचार से उत्तम वे माता, पिता की सेवा से अन्य किसी कर्म की प्रशंसा नहीं करते थे ॥ १० ॥ और धर्म व अर्थ को देखनेवाले पिताने सम्बन्धों से उनको भलीभांति बांधा और उनकी स्त्रिया बिन रोंकटोंक माता, पिता का पूजन करती थीं ॥ ११ ॥ और उसका घर ऋद्धियों से संयुत तथा धन, धान्य से युक्तथा और सदैव धर्म में परायण वह भी देवताओं व अतिथियोंका पूजक था ॥ १२ ॥ और जिसके घर में आया हुआ पुरुष कभी विमुख नहीं जाता था और शीतसमय में वह धन को देता था व गरम समय में जल व अन्नको देताथा ॥ १३ ॥ और

वर्षा समय में वस्त्रदायक व सदैव अन्न का दायक था और बावली, कूप, तड़ागादिक, पौशाला व देवगृहों को ॥ १४ ॥ उचित समय में शिव व विष्णु के व्रतमें स्थित वह कराता था वर्णों का किया हुआ इष्टधर्म महाफलदायक है ॥ १५ ॥ व उन पूर्व धर्मवाले अन्यजनों का धर्म सदैव पवित्रकारक है व्यसनों से अनाश्रित वह धनाढ्य हुआ ॥ १६ ॥ और वह सदैव विष्णुजी की भक्ति में परायण था व चातुर्मास्य में विशेषकर विष्णुभक्ति में तत्पर था एक समय बहुत शिष्यों से घिरे हुए गालव मुनि ॥ १७ ॥ जोकि ब्रह्मज्ञान में तत्पर तथा शान्त व तपस्या में निष्ठ व बहुत कान्तिमान् थे वे पैजवन शूद्र के घर में आये ॥ १८ ॥

दश्च बभूवान्नप्रदः सदा ॥ वापीकूपतडागादिप्रपादेवगृहाणि च ॥ १४ ॥ कारयत्युचिते काले शिवविष्णुव्रतस्थितः ॥ इष्टधर्मस्तु वर्णानां समाचीर्णो महाफलः ॥ १५ ॥ अन्येषां पूर्वधर्माणां तेषां पूतकरः सदा ॥ स बभूव धनाढ्योपि व्यसनैर्न समाश्रितः ॥ १६ ॥ विष्णुभक्तिरतो नित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ एकदा गालवमुनिः शिष्यैर्बहुभिरावृतः ॥ १७ ॥ ब्रह्मज्ञानरतः शान्तस्तपोनिष्ठो महावशी ॥ अभ्याजगाम शूद्रस्य गेहे पैजवनस्य सः ॥ १८ ॥ सवाग्भिर्मधुभिस्तस्य ह्यभ्युत्थानासनादिभिः ॥ उपचारैः पुनर्युक्तः कृतार्थ इव मानयन् ॥ १९ ॥ अद्य मे सफलं जन्म जातं जीवितमुत्तमम् ॥ अद्य मे सफलो धर्मः सकुलश्चोद्धृतस्त्वया ॥ २० ॥ मम पापसहस्राणि दृष्ट्वा दग्धानि ते मुने ॥ गृहं मम गृहस्थस्य सकलं पावितं त्वया ॥ २१ ॥ तस्य भक्त्या प्रसन्नोभूद्गतमार्गपरिश्रमः ॥ उवाच मुनिशार्दूलः सच्छूद्रं तं कृताञ्जलिम् ॥ २२ ॥ कच्चित्ते कुशलं सौम्य मनोधर्मे प्रवर्तते ॥ अर्थानुबन्धाः सततं बन्धुदारसुता

और वह शूद्र वचनों से व मधुपर्क तथा उनके अभ्युत्थान व आसनादिकों से और उपचारों से युक्त फिर कृतार्थसा मानता हुआ बोला ॥ १९ ॥ कि आज मेरा जन्म सफल हुआ व जीवन उत्तम हुआ और आज मेरा धर्म सफल हुआ व तुमसे कुलसमेत मैं उधारा गया ॥ २० ॥ हे मुने ! तुम्हारी दृष्टि से मेरे हज़ारों पाप जल गये व मुझ गृहस्थ के समस्त घर को तुमने पवित्र कर दिया ॥ २१ ॥ उस शूद्र की भक्ति से पथिश्रम से रहित मुनिश्रेष्ठ गालवजी प्रसन्न हुए व हाथों को जोडे हुए उस सच्छूद्रसे बोले ॥ २२ ॥ कि हे सौम्य ! क्या तुम्हारे कुशल है और धर्म में मन वर्तमान है और सदैव बन्धु, स्त्री व पुत्रादिक अर्थ के अनुबन्धी

हैं ॥२३॥ और गोविन्दमें व दानमें सदैव भक्ति वर्तमानहै और धर्म,अर्थ,काम व कार्यमें तुम्हारा मन प्रभावसहितहै ॥२४॥ और विष्णुजीका चरणोदक नित्य मस्तक से धारण किया जाता है या नहीं क्योंकि चरणोदक व गंगोदक बारहवर्ष के फलको देनेवाला है ॥ २५ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर वह फल दुगुना होता है और हरिभक्ति, हरिकथा व विष्णुजी का स्तोत्र और विष्णुजी को प्रणाम करना ॥ २६ ॥ और विष्णु का ध्यान व विष्णु का पूजन विष्णुदेवजी के सोनेपर मोक्षकारी है ऐसा कहते हुए मुनि से प्रणाम करके उस शूद्र ने फिर कहा ॥ २७ ॥ कि आपकी दृष्टि से यह परिश्रम का फल हुआ इसमें सन्देह नहीं है तथापि तुम्हारी

दयः ॥ २३ ॥ गोविन्दे सततं भक्तिस्तथा दाने प्रवर्तते ॥ धर्मार्थकामकार्येषु सप्रभावं मनस्तव ॥ २४ ॥ विष्णुपादोदकं नित्यं शिरसा धार्यते न वा ॥ पादोद्भवं च गङ्गोदं द्वादशाब्दफलप्रदम् ॥ २५ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण तत्फलं द्विगुणं भवेत् ॥ हरिभक्तिर्हरिकथा हरिस्तोत्रं हरेर्नतिः ॥ २६ ॥ हरिध्यानं हरेः पूजा सुप्ते देवे च मोक्षकृत् ॥ एवं ब्रुवाणं स मुनिं पुनराह नतिं गतः ॥ २७ ॥ भवद्दृष्ट्याश्रमफलमेतज्जातं न संशयः ॥ तथापि श्रोतुमिच्छामि तव वाणीमनामयीम् ॥ २८ ॥ भवादृशानां गमनं सर्वार्थेषु प्रकल्प्यते ॥ ततस्तौ सुमुदायुक्तौ संजातौ हृष्टचेतसौ ॥ २९ ॥ मुनिः पैजवनो नाम सच्छूद्रः प्राह संमतः ॥ किमागमनकृत्यं ते कथयस्व प्रसादतः ॥ ३० ॥ को वा तीर्थप्रसङ्गश्च चातुर्मास्ये समीपगे ॥ गालवः प्राह सच्छूद्रं धार्मिकं सत्यवादिनम् ॥ ३१ ॥ मम तीर्थावसक्तस्य मासा बहुतरा गताः ॥ इदानीमाश्रमं यास्ये चातुर्मास्ये समागते ॥ ३२ ॥ आषाढशुक्लैकादश्यां करिष्ये नियमं गृहे ॥ नारायणस्य प्रीत्यर्थं श्रे

व्याधिरहित वाणी को मैं निस्सन्देह सुना चाहता हूं ॥ २८ ॥ आप लोगों का गमन सब अर्थों में समर्थ होता है तदनन्तर हर्ष से संयुत वे प्रसन्नचित्त हुए ॥ २९ ॥ और संमत पैजवन नामक सच्छूद्र ने कहा कि तुम्हारे आने का क्या कारणहै इसको प्रसन्नता से कहिये ॥ ३० ॥ और चातुर्मास्य के समीप में प्राप्त होने पर कौन तीर्थ प्रसंग है गालव ने धार्मिक व सत्यवादी सच्छूद्र से कहा ॥३१॥ कि तीर्थों में लगे हुए मुझको बहुत से महीने व्यतीत हुए और इससमय चातुर्मास्य समीप प्राप्त होनेपर मैं आश्रम को जाऊंगा ॥ ३२ ॥ और आषाढ़ के शुक्लपक्ष की एकादशी में मैं विष्णुजी की प्रीति के लिये व अपने कल्याण के लिये घर में नियम

करूंगा ॥ ३३ ॥ गालव मुनिने विनय से झुँके हुए शूद्र से धर्मोंको कहा पैजवन बोला कि हे द्विजोत्तम ! तुम मुझसे दया से उपजी हुई बुद्धि को कहो क्योंकि मुझको वेद में अधिकार नहीं है व वेदसार के जपका अधिकार नहीं है ॥ ३४ ॥ व पुराणों व स्मृतियों के पाठका अधिकार नहीं है उस कारण मुझसे कुछ कहिये और तत्त्वात्म के समान कुछ महाफलवान् रूप जान पड़ता है ॥ ३५ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर मुक्ति साधन करनेवाले यत्न को कहो ॥ ३६ ॥ गालवजी बोले कि जो मनुष्य सदैव शालग्राम में प्राप्त व चक्रांकित पुटवाले विष्णुजी को पूजते हैं उनके समीपही भक्ति होती है ॥ ३७ ॥ और जिसका मन शालग्राममें होता है

योर्थं चात्मनस्तथा ॥ ३३ ॥ प्रत्युवाच मुनिर्धर्मान् विनयानतकन्धरम् ॥ पैजवन उवाच ॥ मामनुग्रहजां बुद्धिं ब्रूहि त्वं द्विजपुङ्गव ॥ वेदेऽधिकारो नैवास्ति वेदसारजपस्य वा ॥ ३४ ॥ पुराणस्मृतिपाठस्य तस्मात्किञ्चिद्वदस्व मे ॥ तत्त्वात्मसदृशं किञ्चिद्भाति रूपं महाफलम् ॥ ३५ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण मुक्तिसंसाधकं वद ॥ ३६ ॥ गालव उवाच ॥ शालग्रामगतं विष्णुञ्चक्राङ्कितपुटं सदा ॥ येऽर्चयन्ति नरा नित्यं तेषां भक्तिस्त्वदूरतः ॥ ३७ ॥ शालग्रामे मनो यस्य यत्किञ्चित्क्रियते शुभम् ॥ अक्षय्यं तद्भवेन्नित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ३८ ॥ शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारावती शिला ॥ उभयोः संगमः प्राप्तो मुक्तिस्तस्य न दुर्लभा ॥ ३९ ॥ शालग्रामशिला यस्यां भूमौ सम्पूज्यते नृभिः ॥ पञ्चक्रोशं पुनात्येषा अपि पापशतान्वितैः ॥ ४० ॥ तैजसं पिण्डमेतद्धि ब्रह्मरूपमिदं शुभम् ॥ यस्याः संदर्शनादेव सद्यः कल्मषनाशनम् ॥ ४१ ॥ सर्वतीर्थानि पुण्यानि देवतायतनानि च ॥ नद्यः सर्वा महाशूद्र तीर्थत्वं प्राप्नुवन्ति हि ॥ ४२ ॥

वह जो कुछ उत्तम कर्म को करता है वह सदैव अक्षय होता है और चातुर्मास्य में विशेषकर अक्षय होता है ॥ ३८ ॥ जहां शालग्राम शिला होती है व जहां द्वारावती शिला होती है और जिसने दोनोंके संगम को पाया है उसको मुक्ति दुर्लभ नहीं है ॥ ३९ ॥ और शालग्राम की शिला को सैकड़ों पापों से सयुत मनुष्य जिस भूमि में पूजते हैं वहां पांच कोसतक यह शिला पवित्र करती है ॥ ४० ॥ यह उत्तम व ब्रह्मरूप तैजसपिंड है कि जिसके दर्शन से शीघ्रही पातकों का विनाश होता है ॥ ४१ ॥ व हे महाशूद्र ! सब तीर्थ तथा देवमन्दिर पवित्र होते हैं और सब नदियां तीर्थत्व को प्राप्त होती हैं ॥ ४२ ॥ और उसकी समीपता से सब कहीं

कर्म उत्तम होते हैं व चातुर्मास्य में विशेषकर कर्मत्व को प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥ और जिसके घरमें उत्तम शालग्राम की शिला कोमल तुलसीदलों से पूजी जातीहै वहां यमराज विमुख होजाते हैं ॥ ४४ ॥ और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को व सच्छूद्रों को भी शालग्रामशिला का अधिकार है अन्यजनों को किसी प्रकार से नहीं है ॥ ४५ ॥ सच्छूद्र बोला कि हे वेदविदाश्रेष्ठ, सर्वशास्त्रविशारद, ब्रह्मन् ! शालग्राम में यह स्त्री व शूद्रादिकों का निषेध सुनाजाता है ॥ ४६ ॥ और मेरे समान पुरुष कैसे पूजन करै तुम शालग्रामशिला के पूजन की विधिको कहो ॥ ४७ ॥ गालवजी बोले कि हे मानद, दास ! असच्छूद्र में प्राप्त पूजन को निषिद्ध जानिये और पतिव्रता

सन्निधानेन वै तस्याः क्रियाः सर्वत्र शोभनाः ॥ व्रजन्ति हि क्रियात्वं च चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ४३ ॥ पूज्यते भवने यस्य शालग्रामशिला शुभा ॥ कोमलैस्तुलसीपत्रैर्विमुखस्तत्र वै यमः ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणक्षत्रियविशां सच्छूद्राणामथापि वा ॥ शालग्रामाधिकारोऽस्ति न चान्येषां कदाचन ॥ ४५ ॥ सच्छूद्र उवाच ॥ ब्रह्मन् वेदविदांश्रेष्ठ सर्वशास्त्रविशारद ॥ स्त्रीशूद्रादिनिषेधोऽयं शालग्रामे हि श्रूयते ॥ ४६ ॥ मादृशस्तु कथं शालग्रामपूजाविधिं वद ॥ ४७ ॥ गालव उवाच ॥ असच्छूद्रगतं दास निषेधं विद्धि मानद ॥ स्त्रीणामपि च साध्वीनां नैवाभावः प्रकीर्तितः ॥ ४८ ॥ मा भूत्संशयस्तेनात्र नाप्नुषे संशयात्फलम् ॥ शालग्रामार्चनपराः शुद्धदेहा विवेकिनः ॥ ४९ ॥ न ते यमपुरं यान्ति चातुर्मास्येव पूजकाः ॥ शालग्रामार्पितं माल्यं शिरसा धारयन्ति ये ॥ ५० ॥ तेषां पापसहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ शालग्रामशिलाग्रे तु ये प्रयच्छन्ति दीपकम् ॥ ५१ ॥ तेषां सौरपुरे वासः कदाचिन्नैव जायते ॥ शालग्राम

स्त्रियोंको भी अभाव नहीं कहागया है ॥ ४८ ॥ उससे इस विषय में तुमको सन्देह न होवै और सन्देह से तुम फलको नहीं पावोगे क्योंकि शुद्ध शरीर व विवेकी जो लोग शालग्राम के पूजन में परायण होते हैं ॥ ४९ ॥ वे चातुर्मास्यही में पूजनेवाले पुरुष यमपुर को नहीं जाते हैं और शालग्राम के ऊपर चढ़ाई हुई माला को जो मस्तक से धारण करते हैं ॥ ५० ॥ उनके हज़ारों पाप उसी क्षण नाश होजाते हैं और जो मनुष्य शालग्राम शिला के आगे दीपक देते हैं ॥ ५१ ॥ उन

का कभी यमपुर में निवास नहीं होता है व हे महाशूद्र ! विष्णुदेवजी के सोने पर जो मनुष्य शालग्राम में प्राप्त विष्णुजी को सुन्दर पुष्पों से पूजते हैं ॥ ५२ ॥ व जो मनुष्य शालग्राम शिला में सदैव पंचामृत से स्नान कराते हैं वे मनुष्य संसारी नहीं होते हैं ॥ ५३ ॥ मुक्तिके कारणरूप शालग्राम में प्राप्त निर्मल विष्णु जी को हृदय में धरकर सदैव भक्ति से जो ध्यान करता है वह मुक्तिभागी होता है ॥ ५४ ॥ और विशेषकर चातुर्मास्य में जो मनुष्य तुलसीदल से उपजी हुई मालाको शालग्रामशिला के ऊपर धरता है वह सब कामनाओं को पाता है ॥ ५५ ॥ पुष्पों से उपजी हुई माला वैसी विष्णुजी को नहीं प्यारी है और उत्तम

गतं विष्णुं सुमनोभिर्मनोहरैः ॥ येऽर्चयन्ति महाशूद्र सुप्ते देवे हरौ तथा ॥ ५२ ॥ पञ्चामृतेन स्नपनं ये कुर्वन्ति सदा नराः ॥ शालग्रामशिलायां च न ते संसारिणो नराः ॥ ५३ ॥ मुक्तेर्निदानममलं शालग्रामगतं हरिम् ॥ हृदि न्यस्य सदा भक्त्या यो ध्यायति स मुक्तिभाक् ॥ ५४ ॥ तुलसीदलजां मालां शालग्रामोपरि न्यसेत् ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सर्वकामानवाप्नुयात् ॥ ५५ ॥ न तावत्पुष्पजा माला शालग्रामस्य वल्लभा ॥ सर्वदा तुलसी देवी विष्णोर्नित्यं शुभा प्रिया ॥ ५६ ॥ तुलसीवल्लभा नित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः॥ शालग्रामो महाविष्णुस्तुलसी श्रीर्न संशयः ॥ ५७ ॥ अतो वासितपानीयैः स्नाप्य चन्दनचर्चितैः॥ मञ्जरीभिर्युतं देवं शालग्रामशिलाहरिम् ॥ ५८ ॥ तुलसीसम्भवाभिश्च कृत्वा कामानवाप्नुयात् ॥ पत्रे तु प्रथमे ब्रह्मा द्वितीये भगवाञ्छिवः ॥ ५९ ॥ मञ्जर्यां भगवान्विष्णुस्तदेकत्रस्थया तदा ॥ मञ्जरीदलसंयुक्ता ग्राह्या बुधजनैः सदा ॥ ६० ॥ तां निवेद्य गुरौ भक्त्या जन्मादिक्षयकारणम् ॥ शालग्रामे धूपराशिं

प्यारी तुलसीदेवी सदैव विष्णुजी को प्रिय हैं ॥ ५६ ॥ तुलसीजी सदैव विष्णुजी को प्यारी हैं और चातुर्मास्य में विशेषकर प्यारी हैं शालग्राम महाविष्णु हैं व तुलसी लक्ष्मीजी हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५७ ॥ इस कारण चन्दन से चर्चित व वासित जलों से शालग्राम शिलारूपी विष्णुदेवजी को नहवाकर व तुलसी से उपजी हुई मंजरियों से युक्त करके मनुष्य कामनाओं को पाता है तुलसी के प्रथम पत्र में ब्रह्मा व दूसरे में भगवान् शिवजी हैं ॥ ५८ । ५९ ॥ और मंजरी में भगवान् विष्णुजी हैं उस कारण सदैव विद्वान् लोगों को एकही में स्थित तीनों देवताओंवाली दलों से संयुत मंजरी को ग्रहण करना चाहिये ॥ ६० ॥ और

जन्मादि के नाशका कारण उस मंजरी को गुरुमें भक्ति से निवेदन कर विष्णु में तत्पर मनुष्य शालग्राम के लिये धूपकी राशि को समर्पण कर ॥ ६१ ॥ व विशेषकर चातुर्मास्य में निवेदन कर मनुष्य नरकगामी नहीं होता है और उत्तम पुष्पों से पूजित शालग्राम को देखकर मनुष्य ॥ ६२ ॥ सब पापों से शुद्धचित्त होकर विष्णुजी में तन्मयता को प्राप्त होता है और गण्डकी के जल से उत्पन्न व शालग्रामशिला में प्राप्त विष्णुजी की जो मनुष्य श्रुति, स्मृति व पुराणों से स्तुति करता है वह भी विष्णुजी के स्थान को प्राप्त होताहै व हे महामते, महाशूद्र ! शालग्रामशिला के चौबीस संख्यक भेद हैं उनको सुनिये ॥ ६३ । ६४ ॥

निवेद्य हरितत्परः ॥ ६१ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण मनुष्यो नैव नारकी ॥ शालग्रामं नरो दृष्ट्वा पूजितं कुसुमैः शुभैः ॥ ६२ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा याति तन्मयतां हरौ ॥ यः स्तौत्यश्मगतं विष्णुं गण्डकीजलसम्भवम् ॥ ६३ ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणैश्च सोपि विष्णुपदं व्रजेत् ॥ शालग्रामशिलायाश्च चतुर्विंशतिसंख्यकाः ॥ भेदाः सन्ति महा शूद्र ताञ्छृणुष्व महामते ॥ ६४ ॥ इमा द्वादश्यो लोके च चतुर्विंशतिसंख्यकाः ॥ तासां च दैवतं विष्णुं नामानि च वदाम्यहम् ॥ ६५ ॥ स एव मूर्तश्चतुरुत्तराभिर्विंशद्भिरेको भगवान्यथाद्यः ॥ स एव संवत्सरनामसंज्ञः स एव ग्रावागत आदिदेवः ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्यानं नाम एकादशो ऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पैजवन उवाच ॥ एतान् भेदान् मम ब्रूहि विस्तरेण तपोधन ॥ त्वद्वाक्यामृतपानेन तृषा नैव प्रशाम्यति ॥१॥ गालव

और संसार में चौबीस संख्यक ये द्वादशी हैं उनके देवता विष्णुको व नामों को मैं कहताहूं ॥ ६५ ॥ व आदि भगवान् वे विष्णुजी जिस प्रकार चौबीस द्वादशियों से मूर्तिमान् हैं और वेही संवत्सरसंज्ञक हैं और वही आदिदेव शालग्राम शिला में प्राप्त हैं ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्यानं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ चौबिस संख्यक कहे जिमि मूर्ति भेदके नाम । बारहवें अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ पैजवन बोले कि हे तपोधन ! इन भेदों को मुझसे

विस्तार से कहिये तुम्हारे वचनरूपी अमृत के पान से मेरी तृषा शान्त नहीं होती है ॥ १ ॥ गालवजी बोले कि विस्तार से भेदोंको सुनिये मैं पुराणोक्त भेदोंको तुमसे कहताहूं कि जिनको सुनकर मनुष्य अवश्य कर सब पापों से छूटजाता है ॥ २ ॥ पहले केशव पूजने योग्य हैं व दूसरे मधुसूदन और तीसरे संकर्षण तदनन्तर दामोदर कहेगये हैं ॥ ३ ॥ और पाचवें वासुदेवनामक व छठें प्रद्युम्नसंज्ञक हैं और सातवें विष्णु कहेगये हैं व आठवें माधवजी हैं ॥ ४ ॥ और नवें अनन्तमूर्ति व दशवें पुरुषोत्तम हैं उसके पश्चात् अधोक्षज व बारहवें जनार्दनजी हैं ॥ ५ ॥ और तेरहवें गोविन्द व चौदहवें त्रिविक्रम, पन्द्रहवें श्री-

उवाच ॥ शृणु विस्तरतो भेदान् पुराणोक्तान् वदामि ते ॥ यान् श्रुत्वा मुच्यतेऽवश्यं मनुजः सर्वकिल्विपात् ॥ २ ॥ पूर्वं तु केशवः पूज्यो द्वितीयो मधुसूदनः ॥ संकर्षणस्तृतीयस्तु ततो दामोदरः स्मृतः ॥ ३ ॥ पञ्चमो वासुदेवाख्यः षष्ठः प्रद्युम्नसंज्ञकः ॥ सप्तमो विष्णुरुक्तश्चाष्टमो माधव एव च ॥ ४ ॥ नवमोऽनन्तमूर्त्तिश्च दशमः पुरुषोत्तमः ॥ अधोक्षजस्ततः पश्चाद्द्वादशस्तु जनार्दनः ॥ ५ ॥ त्रयोदशस्तु गोविन्दश्चतुर्दशस्त्रिविक्रमः ॥ श्रीधरश्च पञ्चदशो हृषीकेशस्तु षोडशः ॥ ६ ॥ नृसिंहस्तु सप्तदशो विश्वयोनिस्ततः परम् ॥ वामनश्च ततः प्रोक्तस्ततो नारायणः स्मृतः ॥ ७ ॥ पुण्डरीकाक्ष उक्तस्तु ह्युपेन्द्रश्च ततः परम् ॥ हरिस्त्रयोविंशतिमः कृष्णश्चान्त्य उदाहृतः ॥ ८ ॥ शालग्रामस्य भेदास्ते मयोक्तास्तव शूद्रज ॥ मूर्तिभेदास्तथा प्रोक्ता एत एव महाधन ॥ ९ ॥ मूर्त्तयस्तिथिनाम्न्यः स्युरेकादश्यः सदैव हि ॥ संवत्सरेण पूज्यन्ते चतुर्विंशतिमूर्तयः ॥ १० ॥ देवाश्च ताराश्च तथा चतुर्विंशतिसंख्यकाः ॥ मासा मार्गशि

धर और सोलहवें हृषीकेश हैं ॥ ६ ॥ और सत्रहवें नृसिंह तदनन्तर विश्वयोनि उसके उपरान्त वामन व तदनन्तर नारायण कहेगये हैं ॥ ७ ॥ उसके उपरान्त पुण्डरीकाक्ष व तदनन्तर उपेन्द्रजी कहेगये हैं और तेईसवें हरि व चौबीसवें कृष्णजी कहेगये हैं ॥ ८ ॥ हे शूद्रज ! मैंने तुमसे उन शालग्राम के भेदोंको कहा व हे महाधन ! येही मूर्ति के भेद कहेगये हैं ॥ ९ ॥ और तिथि नामवाली मूर्तिया होती हैं व सदैव सवत्सर से चौबीस संख्यक एकादशी पूजीजाती हैं ॥ १० ॥

जी शालग्रामत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ४ ॥ व जिस प्रकार शिवजी लिङ्गत्व को प्राप्त हुए हैं हे अनघ ! उसको मैं तुमसे कहताहूं पुरातन समय दक्षप्रजापति ब्रह्मा के अँगूठे से उत्पन्न हुए हैं ॥ ५ ॥ उनके उत्तम लक्षणोंवाली सतीनामक उत्तम आचरणवाली कन्या हुई तदनन्तर विधि को जाननेवाले शिवजीने वेदोक्त विधि से उसको ब्याहा ॥ ६ ॥ और उस मूढ़बुद्धि दक्षने महायज्ञ में शिवजी से वैर किया और उस बड़ेभारी वैरसे सतीजी बहुतही क्रोधित हुईं ॥ ७ ॥ व उस समय यज्ञवेदी में आकर प्राणायाम में परायण होकर उन सतीजी ने अग्निकी धारणा से शरीर को त्याग किया ॥ ८ ॥ और मरीहुई सतीजी अपने भागसे पिताके

णेषु च पठ्यते ॥ यथा स एव भगवान् शालग्रामत्वमागतः ॥ ४ ॥ महेश्वरश्च लिङ्गत्वं कथयेहं तवानघ ॥ पूर्वं प्रजापतिर्दक्षो ब्रह्मणोऽगुष्ठसंभवः ॥ ५ ॥ तस्यासीद्दुहिता साध्वी सती नाम्नी सुलक्षणा ॥ हरेणोढा विधिज्ञेन वेदोक्तविधिना ततः ॥ ६ ॥ स चकार महायज्ञे हरद्वेषं विमूढधीः ॥ तेन द्वेषेण महता सती प्रकुपिता भृशम् ॥ ७ ॥ यज्ञवेद्यां समागम्य वह्निधारणया तदा ॥ प्राणायामपरा भूत्वा देहोत्सर्गं चकार सा ॥ ८ ॥ पितृभागं परित्यज्य स्वभागेन हता सती ॥ मनसा ध्यानमगमच्छीतलं च हिमालयम् ॥ ९ ॥ यत्र यत्र मनो याति स्वकर्म वशगं मृतौ ॥ अवतारस्तत्र तत्र जायते नात्र संशयः ॥ १० ॥ दह्यमाना हि सा देवी हिमालयसुताऽभवत् ॥ तत्र सा पार्वती भूत्वा तप उग्रं समाश्रिता ॥ ११ ॥ शिवभक्तिरता नित्यं हरव्रतपरायणा ॥ शृङ्गे हिमवतः पुत्री मनो न्यस्य महेश्वरे ॥ १२ ॥ ततो वर्षसहस्रान्ते भगवान् भूतभावनः ॥ अथाजगाम तं देशं विप्ररूपो महेश्वरः ॥ १३ ॥ तां ज्ञात्वा तपसा शुद्धो कर्मभावैः परी

भागको छोड़कर मनसे शीतल हिमालय के ध्यानको प्राप्त हुई ॥ ९ ॥ मरण समय में अपने कर्म के वशमें प्राप्त मन जहां जहां जाताहै वहा वहां अवतार होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १० ॥ और जलीहुई वे सतीदेवी हिमाचल की कन्या हुईं और वहां वे पार्वती होकर उग्रतपस्या में स्थित हुईं ॥ ११ ॥ शिवभक्ति में परायण व सदैव शिवजी के व्रतमें तत्पर हिमाचल की कन्या पार्वतीजी हिमालय के शिखरपै शिवजी में मनको लगाकर तप करनेलगीं ॥ १२ ॥ तदनन्तर हज़ार वर्ष के उपरान्त प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले भगवान् शिवजी ब्राह्मण का रूप धरकर उस स्थान को आये ॥ १३ ॥ और परीक्षित कर्म भावों से उन

पार्वतीजी को तपस्या से शुद्ध जानकर तदनन्तर शिवजी ने दिव्य शरीर होकर पार्वतीजी का हाथ पकड़ा ॥ १४ ॥ व कहा कि तुमने तपस्या से मुझको जीत लिया और मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूं तदनन्तर पार्वतीजी ने शिवजी से कहा कि मेरे पिताको प्रमाण करो ॥ १५ ॥ उस प्रकार कहे हुए उन शिवजी ने सप्तर्षियों को पठाया और वे हिमाचल को समय बतलाने के लिये वहां जाकर ॥ १६ ॥ और उन शिवजी से कहकर पठाये हुए मुनिलोग गये तदनन्तर लग्नके दिन इन्द्रादिक देवता ब्रह्मा व विष्णुआदिक देवताओं समेत अग्नि को आगेकर शिवजी के समीप आये व योगसे सिद्धलोग आये और आते हुए वर वेषवाले

क्षितैः ॥ ततो दिव्यवपुर्भूत्वा करे जग्राह पार्वतीम् ॥ १४ ॥ तपसा निर्जितश्चास्मि करवाणि च किं प्रियम् ॥ ततः प्राह महेशानं प्रमाणं मे पिता कुरु ॥ १५ ॥ सप्तर्षीन् स तथोक्तस्तु प्रेषयामास शङ्करः ॥ ते तत्र गत्वा समयं वक्तुं हिमवता सह ॥ १६ ॥ निवेद्य च महेशानं प्रेषिता मुनयो ययुः ॥ ततो लग्नदिने देवा महेन्द्रादय ईश्वरम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मविष्णुपुरोगैश्च पुरोधायाग्निमाययुः ॥ योगसिद्धाः समायान्तं वरवेषं वृषध्वजम् ॥ १८ ॥ हिमवान् पूजयामास मधुपर्कादिकैः शुभैः ॥ उपचारैर्मुदायुक्तो मानयन् कृतकृत्यताम् ॥ १९ ॥ वेदोक्तेन विधानेन तां कन्यां समयोजयत् ॥ पाणिग्रहेण विधिना द्विजातिगणसंवृतः ॥ २० ॥ वह्निं प्रदक्षिणीकृत्य गिरीशस्तदनन्तरम् ॥ दानकाले च गोत्रादिपृष्टो लज्जापरो हरः ॥ २१ ॥ ब्रह्मणो वचनात्तेन विधिशेषोवशेषतः ॥ चरुप्राशनकाले तु पञ्चवक्त्रप्रकाशकृत् ॥ २२ ॥ सहितः सकलैर्देवैः कुतूहलपरायणैः ॥ गिरिजार्थं समायुक्तो वरः सोऽपि महेश्वरः ॥ २३ ॥ नवकोटिमुखा

शिवजी को देखकर ॥ १७ । १८ ॥ कृतकृत्यता को मानते हुए हर्षसंयुत हिमवान् ने मधुपर्कादिक उत्तम उपचारों से पूजन किया ॥ १९ ॥ और द्विजगणों से संयुत हिमाचल ने वेदोक्तविधि से उस कन्याको विवाह की विधि से युक्त किया ॥ २० ॥ तदनन्तर अग्नि की प्रदक्षिणा कर दान के समय में गोत्रादिक पूंछेहुए सदाशिवजी लज्जासंयुत हुए ॥ २१ ॥ व उस कारण ब्रह्मा के वचन से शेषविधि अवशेष कीगई चरुके भोजन समय में जो पांच मुखों को प्रकाश करनेवाले हैं ॥ २२ ॥ कौतुक में परायण सब देवताओं समेत वेही शिवजी पार्वतीजी के लिये वर हुए ॥ २३ ॥ और नव करोड़ मुखों को देखकर मनुष्य हास-

संयुत हुए और वेदकी यह श्रुति कहीगई है कि हे शिवजी ! तुम स्थिरता को प्राप्त होवो ॥ २४ ॥ और लज्जित उन पार्वतीजी ने पांच जन्मों में परित्याग नहीं किया वरन श्याम नेत्रान्त भागवाली पार्वतीजी पति शिवजी के, समीप प्राप्त हुई ॥ २५ ॥ और देवताओं व पर्वतों का सब कुल प्रसन्न हुआ तदनन्तर विवाह पूर्ण होनेपर शिवजी कौतुक के स्थान को गये ॥ २६ ॥ और गणों के भी समीप उन शिवजी ने अम्बिकाजी को नहीं सहा तदनन्तर दहेज को देकर हिमाचलने उन शिवजी को बिदा किया ॥ २७ ॥ और मानित व सत्कार कियेहुए भी शिवजी मन्दराचल को आये तदनन्तर विश्वकर्माजी ने क्षणभर में उन

न्दृष्ट्वा साट्टहासो जनोऽभवत् ॥ वैदिकी श्रुतिरित्युक्ता शिव त्वं स्थिरतां व्रज ॥ २४ ॥ लज्जिता सा परित्यागं नाकरो त्पञ्चजन्मसु ॥ भर्तारमसितापाङ्गी हरमेवाभ्यगच्छत ॥ २५ ॥ देवानां पर्वतानां च प्रहृष्टं सकलं कुलम् ॥ ततो वि वाहे संपूर्णे हरोगात्कौतुकौकसि ॥ २६ ॥ गणानां चापि सान्निध्ये स नामर्षयदम्बिकाम् ॥ पारिवर्हं ततो दत्त्वा शैले न स विसर्जितः ॥ २७ ॥ मानितः सत्कृतश्चापि मन्दरालयमभ्यगात् ॥ विश्वकर्मा ततस्तस्य क्षणेन मणिमद्गृह म् ॥ २८ ॥ निर्ममे देवदेवस्य स्वेच्छावर्द्धिष्णु मन्दिरम् ॥सर्वर्द्धिमत्प्रशस्ताभं मणिविद्रुमभूषितम् ॥ २९ ॥ स्थूणा सहस्रसंयुक्तं मणिवेदि मनोहरम् ॥ गणा नन्दिप्रभृतयो यस्य द्वारि समाश्रिताः ॥ ३० ॥ त्रिनेत्राः शूलहस्ताश्च ब भुः शङ्कररूपिणः ॥ वाटिका अस्य परितः पारिजाताः सहस्रशः ॥ ३१ ॥ कामधेनुर्मणिर्दिव्यो यस्य द्वारि समाश्रि तौ ॥ तस्मिन्मनोहरतरे कामवृद्धिकरे गृहे ॥ ३२ ॥ वसतःपार्वतीसार्द्धं कामो दृष्टिपथं ययौ ॥ वायुरूपः शिवं दृष्ट्वा

देवदेव शिवजी के मणिमान् व अपनी इच्छा से बढ़नेवाले मन्दिर को बनाया जोकि सब ऋद्धियों से संयुत व प्रशस्त तथा मणियों व विद्रुमों से भूषित था ॥ २८ । २९ ॥ और हज़ारों खंभों से युक्त तथा मणियों की वेदी से सुन्दर था और जिसके द्वारपै नन्दिआदिक गण स्थितथे ॥ ३० ॥ जोकि तीन नेत्रोंवाले व त्रिशूल को हाथ में लिये शंकररूपी शोभित थे और इसके चारोंओर बग़ीचा व हज़ारों पारिजात के वृक्ष थे ॥ ३१ ॥ और जिसके द्वारपै कामधेनु व दिव्य मणि स्थित थी और कामदेव को वृद्धि करनेवाले उस बहुत सुन्दर मन्दिर में ॥ ३२ ॥ पार्वती समेत वसते हुए शिवजी के दृष्टिमार्ग में कामदेव प्राप्त हुआ और पवनरूपी काम-

देव ने शिवजी को देखकर शंकरजी से कहा ॥ ३३ ॥ कि सर्वरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है व हे वृषध्वज ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व गणों के स्वामी तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे नाथ ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३४ ॥ व तुमसे रहित संसार को पृथ्वी मुर्दे की नाईं स्पर्श करती है और चराचर समेत संसार में तुमसे रहित कुछ नहीं देख पड़ता है ॥ ३५ ॥ और तुम रक्षक व तुम विधाता और तुम्हीं लोक को सहार करनेवाले हो हे महादेव ! दया कीजिये व मुझको देह-दान दीजिये ॥ ३६ ॥ शिवजी बोले कि हे अनघ ! मैंने जो तुमको पार्वती के आगे जलाया है इससे उसीके समीप तुम फिर शरीरवान् होवो ॥ ३७ ॥ तदनन्तर

कामः प्रोवाच शङ्करम् ॥ ३३ ॥ नमस्ते सर्वरूपाय नमस्ते वृषभध्वज ॥ नमस्ते गणनाथाय पाहि नाथ नमोस्तु ते ॥ ३४ ॥ त्वया विरहितं लोकं शववत्स्पृशते मही ॥ न त्वया रहितं किंचिद्दृश्यते सचराचरे ॥ ३५ ॥ त्वं गोप्ता त्वं विधाता च लोकसंहारकारकः ॥ कृपां कुरु महादेव देहदानं प्रयच्छ मे ॥ ३६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ यन्मया त्वं पुरा दग्धः पार्वतीपुरतोनघ ॥ तस्या एव समीपे च पुनर्भवस्व देहवान् ॥ ३७ ॥ एवमुक्तस्ततः कामः स्वशरीरमुपागतः ॥ ववन्दे चरणौ शूद्र विनयावनतोऽभवत् ॥ ३८ ॥ ततो ननाम चरणौ पार्वत्याः संप्रहृष्टवान् ॥ लब्धप्रसादस्तु तयोः समीपाद्भुवनत्रये ॥ ३९ ॥ चचार सुमहातेजा महामोहबलान्वितः ॥ पुष्पधन्वा पुष्पबाणस्त्वाकुञ्चितशिरोरुहः॥४०॥ सदाघूर्णितनेत्रश्च तयोर्देहमुपाविशत ॥ दिव्यासवैर्दिव्यगन्धैर्वस्त्रमाल्यादिभिस्तथा ॥ ४१ ॥ सख्यः संभोगसमये

ऐसा कहा हुआ कामदेव अपने शरीर को प्राप्त हुआ व हे शूद्र ! विनय से झुक गया व उसने चरणों को प्रणाम किया ॥ ३८ ॥ तदनन्तर बहुतही प्रसन्न उसने पार्वतीजीके चरणों को प्रणाम किया और उन दोनोंके समीप से प्रसन्नता को पाकर तीनों लोकों में ॥ ३९ ॥ महामोह व बल से संयुत तथा बड़े तेजस्वी कामदेव ने भ्रमण किया और पुष्पधनुष व पुष्पबाण व घुँघुवारे बालोंवाला ॥ ४० ॥ और सदैव घूर्णित नेत्रवाला कामदेव उन दोनों के शरीर में पैठ गया और दिव्य आसव व दिव्य गन्धों तथा वस्त्रों व मालादिकों से ॥ ४१ ॥ सखियों ने संभोग के समय में सब ओर से सेवा किया इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए उन

शिवजी को कुछ अधिक सौ वर्ष बीत गये ॥ ४२ ॥ और मैथुन में लगे हुए चित्तवाले उन शिवजी को जैसे एक रात होवै वैसेही वे वर्ष हुए इसी अवसर में भय से तारकासुर से भगाये हुए देवता ॥ ४३ ॥ ब्रह्मा की शरण में गये और उनकी स्तुतिकर शरण में प्राप्त हुए देवता बोले कि पुरातन समय इस महारौद्र तारकासुर को तुमने वरदान दिया है ॥ ४४ ॥ और त्रिलोक में पूजित वह पराक्रम से इन्द्र को जीतकर भोग करता है जिसप्रकार उसके मारने का उपाय होवै तुम आपही वैसा करो ॥ ४५ ॥ ब्रह्मा बोले कि मुझसे वर दिया हुआ यह मुझसे न मारा जावैगा क्योंकि आपही कड़ुवे वृक्ष को बढ़ाकर काटने के लिये कोई भी

परिचक्रुः समन्ततः ॥ एवं प्रक्रीडतस्तस्य वत्सराणां शतं ययौ ॥ ४२ ॥ साग्रमेका निशायद्वन्मैथुने सक्तचेतसः ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवास्तारकप्रद्रुता भयात् ॥ ४३ ॥ ब्रह्माणं शरणं जग्मुः स्तुत्वा तं शरणं गताः ॥ देवा ऊचुः ॥ तारकोसौ महारौद्रस्त्वया दत्तवरः पुरा ॥ ४४ ॥ विजित्य तरसा शक्रं भुङ्क्ते त्रैलोक्यपूजितः ॥ वधोपायो यथा तस्य जायते त्वं कुरु स्वयम् ॥ ४५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मया दत्तवरश्चासौ मयैवोच्छिद्यते न हि ॥ स्वयं संवर्ध्य कटुकं छेत्तुं कोपि न चार्हति ॥ ४६ ॥ तस्मात्तस्य वधोपायं कथयामि महात्मनः ॥ पार्वत्यां यो महेशानात्सूनुरुत्पत्स्यते हि सः ॥ ४७ ॥ दिनसप्तचतुर्भूत्वा तारकं संहनिष्यति ॥ इतिवाक्यं तु ते श्रुत्वा मन्दरं लोकसुन्दरम् ॥ ४८ ॥ ब्रह्मलोकात्समाजग्मुः पीडिता दैत्यदानवैः ॥ ४९ ॥ तत्र नन्दिप्रभृतयो गणाः शूलभृतः पुरः ॥ गृहद्वारे ह्युपावृत्य तस्थुः संयतचेतसः ॥ ५० ॥ देवाश्च दुःखातुरचेतसो भृशं हतप्रभास्त्यक्तगृहाश्रयाखिलाः ॥ संप्राप्य मासाश्चतुरस्तपः

नहीं योग्य है ॥ ४६ ॥ उस कारण मैं उस महात्मा के मारने का यत्न कहता हूं कि शिवजी से पार्वतीजी में जो पुत्र पैदा होगा वह ॥ ४७ ॥ गेरह दिन का होकर तारकासुर को मारैगा इस वचन को सुनकर दैत्यों व दानवों से पीड़ित वे देवता ब्रह्मलोक से लोकों में सुन्दर मन्दराचल को आये ॥ ४८ । ४९ ॥ वहां चित्तको रोंके हुए नन्दि आदिक गण त्रिशूलधारी शिवजी के आगे से गृह द्वार पै लौटकर स्थित थे ॥ ५० ॥ और दुःख से बहुत विकल चित्तवाले व प्रकाश रहित तथा गृहों के समस्त आश्रमों को छोड़े हुए देवता चातुर्मास्य को प्राप्त होकर विष्णुदेवजी के सोने पर महादेवजी के प्रसन्न करनेवाले उत्तम तप करने में

स्थित हुए ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याननाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३ ॥
दो० ॥ पारवती देवन यथा दियो सबन कहँ शाप। चौदहवें अध्याय में सोई चरित प्रलाप ॥ गालवजी बोले इन्द्रादिक देवेश दुःख से संतप्तमन हुए व शिवजी के दर्शन न होने से उनके मन व कर्मेन्द्रिय और चित्त भ्रमित होगये ॥ १ ॥ और लोकनाथ शिवजी को नहीं पाया व लोहे की प्रतिमा के आकार को बनाकर उन्होंने तपस्या से सब प्राणियों के हृदय में स्थित शिवजी को आराधन किया ॥ २ ॥ व जटाओं को मस्तकमें धारण किये त्रिशूल को हाथमें लिये पिनाकी देव व

स्थिता देवे प्रसुप्ते हरतोषणं परम् ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याननाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

गालव उवाच ॥ शक्रादयस्तु देवेशा दुःखसन्तप्तमानसाः ॥ ईश्वरादर्शनभ्रान्तमनःकर्मेन्द्रियात्मकाः ॥ १ ॥ न प्रापुर्लोकनाथं ते कृत्वा यः प्रतिमाकृतिम् ॥ तपसाराधयामासुः सर्वभूतहृदि स्थितम् ॥ २ ॥ कपर्दशिरसं देवं शूलहस्तं पिनाकिनम् ॥ कपालखट्वाङ्गधरं दशहस्तं किरीटिनम् ॥ ३ ॥ उमासहितमीशानं पञ्चवक्त्रं महाभुजम् ॥ कर्पूरगौरदेहाभं सितभूतिविभूषितम् ॥ ४ ॥ नागयज्ञोपवीतेन गजचर्मसमन्वितम् ॥ कृष्णसारत्वचा चापि कृतप्रावरणं विभुम् ॥ ५ ॥ कृतध्यानाः सुरास्तत्र वृक्षाधारे समाश्रिताः ॥ व्रतचर्यां समाश्रित्य प्रचक्रुस्तप उत्तमम् ॥ ६ ॥ षडक्षरेण मन्त्रेण शैवेन विहितां सुराः ॥ शूद्र उवाच ॥ व्रतचर्या त्वया या सा प्रोक्ता संजायते कथम् ॥ ७ ॥

कपाल तथा खट्वाग को धारे व दश हाथोंवाले किरीटधारी ॥ ३ ॥ व पार्वती समेत पञ्चमुख महाभुज व कर्पूर के समान गौर शरीर की प्रभावाले और श्वेत भस्म से भूषित व नागों के यज्ञोपवीत से व हाथी की खालसे संयुत तथा कृष्ण मृग की खाल से आच्छादन किये व्यापक शिवजी को ॥ ४ । ५ ॥ ध्यान किये हुए देवता वहां वृक्ष के आधार में स्थित हुए व शिवजी के षडक्षरमन्त्र से विहित व्रतचर्या के आश्रित होकर देवताओं ने उत्तम तप किया शूद्र बोला कि तुमने

जिस व्रतचर्या को कहा है वह कैसे होती है ॥ ६ । ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! विस्तार से कहिये मैं तुम्हारे अमृतरूपी वचनों से तृप्त नहीं होता हूं ॥ ८ ॥ गालवजी बोले कि जपता हुआ मनुष्य भस्म व खट्वांग और स्फटिक के कपाल को तथा मुण्डमाला व पञ्चमुख और मस्तक में अर्धचन्द्रमाको धारण किये ॥ ९ ॥ और चीते के चर्म को पहने व कौपीन तथा दोनों कुंडल और दो घंटा व त्रिशूल और सूत्र इन लक्षणों से लक्ष्य इस चर्या के स्वरूप को मैंने तुमसे कहा हे शूद्रज ! इस विधि से अग्नि आदिक सब देवताओं ने ॥ १० । ११ ॥ सब उपायों से वरदायक शिवजी को सबोंने आराधन किया और चातुर्मास्य संपूर्ण होनेपर व निर्मल

ब्रह्मन् विस्तरतो ब्रूहि न तृप्येते वचोऽमृतैः ॥ ८ ॥ गालव उवाच ॥ जपन् भस्म च खट्वाङ्गं कपालं स्फाटिकं तथा ॥ मुण्डमालां पञ्चवक्त्रमर्द्धचन्द्रं च मूर्द्धनि ॥ ९ ॥ चित्रकृत्तिपरीधानं कौपीनकुण्डलद्वयम् ॥ घण्टायुग्मं त्रिशूलं च सूत्रं चर्यास्वरूपकम् ॥ १० ॥ अमीभिर्लक्षणैर्लक्ष्यं मयोक्तं तव शूद्रज ॥ अनेन विधिना सर्वे देवा वह्निपुरोगमाः ॥ ११ ॥ सर्वे आराधयामासुः सर्वोपायैर्वरप्रदम् ॥ चातुर्मास्ये च संपूर्णे संपूर्णे कार्त्तिकेमले ॥ १२ ॥ चीर्णव्रतान् सुरान् दृष्ट्वा विशुद्धांश्च महेश्वरः ॥ मतिं तेषां ददौ तुष्टो जीवात्मा सर्वभूतदृक् ॥ १३ ॥ शतरुद्रीयजाप्येन विधानसहितेन च ॥ ध्यानेन दीपदानेन चातुर्मास्ये तुतोष सः ॥ १४ ॥ पूजनैः षोडशविधैर्यथा विष्णोस्तथा हरेः ॥ कुर्वाणान् भक्तिभावेन ज्ञात्वा देवान् समागतान् ॥ १५ ॥ प्रहृष्टो भगवान् रुद्रो ददौ तेषां शुभां मतिम् ॥ ततः स मन्त्र्यते देवा वह्निं स्तुत्वा यथार्थतः ॥ १६ ॥ प्रसन्नवदनं चक्रुः कार्यसाधनतत्परम् ॥ कर्मसाक्षी महातेजाः कृत्वा पारावतं

कार्त्तिक मास पूर्ण होने पर ॥ १२ ॥ व्रत को किये व पवित्र देवताओं को देखकर सब प्राणियों को देखनेवाले जीवात्मा शिवजी ने उनके ऊपर प्रसन्न होकर बुद्धि को दिया ॥ १३ ॥ और विधि समेत शतरुद्री के जप से व ध्यान तथा दीपदान से वे शिवजी प्रसन्न हुए ॥ १४ ॥ व जैसे विष्णु वैसेही हरि के सोलह प्रकार के पूजनों से शिवजी प्रसन्न हुए और भक्तिभाव से पूजन करते व आये हुए देवताओं को जानकर ॥ १५ ॥ प्रसन्न होकर भगवान् शिवजी ने उनको उत्तम बुद्धि दिया तदनन्तर उन देवताओं ने सम्मति कर व यथार्थ अग्नि की स्तुतिकर ॥ १६ ॥ कार्य के साधन में तत्पर अग्नि को प्रसन्नमुख किया व बड़े तेजस्वी

अग्नि ने कपोत (कबूतर) का रूप करके ॥ १७ ॥ तदनन्तर शिवदेवजी को देखने के लिये मध्य में प्रवेश किया और गुंठन व अवगुंठन से गति का विक्षेप किया ॥ १८ ॥ व लुंठन और सर्पण से अग्निजी सुन्दर रूप हुए व अद्भुत गति हुई वहां भगवान् ने उन अग्निजी को देखकर कारण को जाना ॥ १९ ॥ तदनन्तर ऊर्ध्वरेता शिवजी ने पहले जिस वीर्य को छोड़ा था उसको उस अग्नि के मुख में धारण किया और वे अग्निजी घर से बाहर उड़ गये ॥ २० ॥ व उस पक्षी के जाने पर पार्वतीजी विफल श्रमवाली हुई व क्रोधित होती हुई उन महेश्वरी पार्वतीजी ने सब देवताओं को शाप दिया ॥ २१ ॥ कि जिस लिये

वपुः ॥१७॥ प्रविवेश ततो मध्ये द्रष्टुं देवं महेश्वरम् ॥ चकार गतिविक्षेपं गुण्ठनैरवगुण्ठनैः ॥ १८ ॥ लुण्ठनैः सर्पणैश्चैव चारुरूपोऽद्भुता गतिः ॥ तं दृष्ट्वा भगवांस्तत्र कारणं समबुध्यत ॥ १९ ॥ ऊर्ध्वरेतास्ततस्तस्मिन् ससर्जादौ दधार तत् ॥ वीर्यं वह्नि मुखे चैव सोत्पपात गृहाद्बहिः ॥ २० ॥ गते तस्मिन्पतङ्गेऽथ पार्वती विफलश्रमा ॥ संक्रुद्धा सर्वदेवानां सा शशाप महेश्वरी ॥ २१ ॥ यस्मान्ममेच्छा विहता भवद्भिर्दुष्टबुद्धिभिः ॥ तस्मात्पाषाणतामाशु व्रजन्तु त्रिदिवौकसः ॥ २२ ॥ निरपत्या निर्दयाश्च सर्वे देवा भविष्यथ ॥ ततः प्रसादयामासुः प्रणताः शापयन्त्रिताः ॥ २३ ॥ महद्दुःखं संप्रविष्टाः पुनः पुनरथाब्रुवन् ॥ २४ ॥ देवा ऊचुः ॥ त्वं माता सर्वदेवानां सर्वसाक्षी सनातना ॥ उत्पत्तिस्थितिसंहारकारणं जगतां सदा ॥ २५ ॥ भूतप्रकृतिरूपा त्वं महाभूतसमाश्रिता ॥ अपर्णा तपसां धात्री भूतधात्री वसुन्धरा ॥ २६ ॥ मन्त्राराध्या मन्त्रबीजं विश्वबीजलया स्थितिः ॥ यज्ञादिफलदात्री च स्वाहारूपेण स

दुष्ट बुद्धिवाले आप लोगों ने मेरी इच्छा को नाश करदिया उस कारण देवता लोग शीघ्रही पाषाणता को प्राप्त होवैं ॥ २२ ॥ व हे सब देवताओ ! तुम लोग सन्तानहीन व दयारहित होवो तदनन्तर प्रणाम करके शापमें बँधे हुए देवताओंने प्रसन्न कराया ॥ २३ ॥ और बड़े दुःखमें बैठे हुए देवता लोग बार २ बोले ॥ २४ ॥ देवता बोले कि सब देवताओं की तुम माता हो व सर्वसाक्षी तथा सनातनी हो और लोकों की उत्पत्ति, पालन व संहार का सदैव कारण हो ॥ २५ ॥ और महाभूतों से आश्रित तुम भूतप्रकृतिरूपिणी हो और अपर्णा व तपों को धारण करनेवाली तथा भूतधात्री व वसुंधरा हो ॥ २६ ॥ व मन्त्रों से आराधन करने योग्य व मन्त्र

बीज तथा संसार का बीज,नाश व स्थिति हो और सदैव स्वाहारूप से यज्ञादिकों के फल को देनेवाली हो ॥ २७ ॥ और मन्त्र, यंत्र से संयुत तथा ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों में नित्यरूपा, महारूपा, सर्वरूपा व निरंजना हो ॥ २८ ॥ और तीन दोषों से आक्रमित जन्मों से कल्याण को देनेवाली हो और महालक्ष्मी, महाकाली, महादेवी व महेश्वरी हो ॥ २९ ॥ व विश्वेश्वरी, महामाया और मायाबीज को वर देनेवाली तथा वररूपा व वरेण्या हो और तुम्हीं वरदायिनी व उत्तमसुता हो ॥ ३० ॥ व जो मनुष्य तुमको सदैव उत्तम बिल्वपत्रों से पूजते हैं उनको तुम सदैव राज्यदायिनी व कामदायिनी तथा सिद्धिदायिनी हो ॥ ३१ ॥

वेदा ॥ २७ ॥ मन्त्रयन्त्रसमोपेता ब्रह्मविष्णुशिवादिषु ॥ नित्यरूपा महारूपा सर्वरूपा निरञ्जना ॥२८॥ दोषत्रयस माक्रान्तजननैः श्रेयसप्रदा ॥ महालक्ष्मीर्महाकाली महादेवी महेश्वरी ॥ २९ ॥ विश्वेश्वरी महामाया मायाबीज वरप्रदा ॥ वररूपा वरेण्या त्वं वरदात्री वरासुता ॥ ३० ॥ बिल्वपत्रैः शुभैर्ये त्वां पूजयन्ति नराः सदा ॥ तेषां राज्य प्रदात्री च कामदा सिद्धिदा सदा ॥ ३१ ॥ चातुर्मास्येर्चिता यैस्त्वं बिल्वपत्रैर्विशेषतः ॥ तेषां वाञ्छितसिद्ध्यर्थं जा ता कामदुघा स्वयम् ॥ ३२ ॥ येऽर्चयन्ति सदा लोके महेश्वरसमन्विताम् ॥ बिल्वपत्रैर्महाभक्त्या न तेषां दुःखदु ष्कृती ॥ ३३ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण तव पूजा महाफला ॥ अद्यप्रभृति यैर्लोकैर्बिल्वपत्रैस्तु पूजिता ॥ ३४ ॥ विधा स्यसि महेशानि तेषां ज्ञानमनुत्तमम् ॥ चातुर्मास्येऽधिकफलं बिल्वपत्रं वरानने ॥ ३५ ॥ उमामहेश्वरप्रीत्यै दत्तं

व विशेषकर चातुर्मास्य में जिन्होंने तुमको बिल्वपत्रों से पूजा है उनकी चाही हुई सिद्धि के लिये तुम आपही कामदुघा पैदा हुई हो ॥ ३२ ॥ व संसार में शिवजी से संयुत तुमको जो सदैव बिल्वपत्रों से पूजते हैं उनको दुःख व दुष्कृति नहीं होती है ॥ ३३ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर तुम्हारी पूजा महाफल को देती है और आजसे लगाकर जो मनुष्य तुमको बिल्वपत्रों से पूजैंगे ॥ ३४ ॥ हे महेशानि ! उनको तुम अति उत्तम ज्ञान को दोगी क्योंकि हे वरानने ! चातुर्मास्य में बिल्वपत्र अधिक फलवान् होता है ॥ ३५ ॥ और पार्वती व शिवजी की प्रीति के लिये विधिपूर्वक दिया हुआ बिल्वपत्र अक्षय होताहै जिसप्रकार तुलसी के

वृक्ष में लक्ष्मी हैं वैसेही बिल्वमें पार्वतीजी हैं ॥ ३६ ॥ व सब मनोरथों को देनेवाली तुम मूर्ति से संसार देख पड़तीहो और चातुर्मास्य में विशेषकर सेवित दोनों महाफलवान् होते हैं ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने इन्द्रादीनां शापप्रदानंनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

दो० ॥ जिमि पीपल द्रुम की अहै महिमा अमित अपार। पन्द्रहवें अध्याय में सोइ चरित विस्तार ॥ पैजवन बोला कि लक्ष्मीजी कैसे तुलसीरूपिणी

त्वं मूर्त्या दृश्यसे विश्वं सकलाभीष्टदायिनी ॥ विधिवदक्षयम् ॥ यथा श्रीस्तुलसीवृक्षे तथा बिल्वे च पार्वती ॥ ३६ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सेवितौ द्वौ महाफलौ ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने इन्द्रादीनां शापप्रदानंनाम चतुर्दशोध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥

पैजवन उवाच ॥ श्रीः कथं तुलसीरूपा बिल्ववृक्षे च पार्वती ॥ एतच्च विस्तरेण त्वं मुने तत्त्वं वद प्रभो ॥ १ ॥ गालव उवाच ॥ पुरा देवासुरे युद्धे दानवा बलदर्पिताः ॥ देवान् निजघ्नुः संग्रामे घोररूपाः सुदारुणाः ॥ २ ॥ देवाश्च भयसंविग्ना ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ते स्तुत्वा पितरं नत्वा बृहस्पतिपुरःसराः ॥ ३ ॥ तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे तानुवाच पितामहः ॥ किमर्थं देवनिकरा मत्सकाशमुपागताः ॥ ४ ॥ कारणं कथ्यतामाशु वह्नीन्द्रवसुभिर्युतैः ॥ देवा ऊचुः ॥ दैत्यैः पराजितास्तात संगरेऽद्भुतकारिभिः ॥ ५ ॥ वयं सर्वे पराक्रान्ता अतस्त्वां शरणंगताः ॥ त्राहि

हैं व बिल्ववृक्ष में पार्वतीजी कैसे हैं हे प्रभो, मुने ! तुम इस तत्त्व को विस्तार से कहो ॥ १ ॥ गालवजी बोले कि पुरातन समय बलसे गर्वित व भयंकररूपी दारुण दानवों ने देवासुरसंग्राम में देवताओं को मारा ॥ २ ॥ भयसे ऊवेहुए देवता ब्रह्माकी शरण में गये और बृहस्पति आदिक वे देवता पिताकी स्तुतिकर व प्रणामकर ॥ ३ ॥ सब हाथों को जोडकर स्थित हुए व पितामहजी उनसे बोले कि हे देवगणो ! तुमलोग मेरे समीप क्यों आये हो ॥ ४ ॥ अग्नि, इन्द्र व वसुवों से संयुत देवताओं से यह कारण शीघ्रही कहा जावै देवता बोले कि हे तात ! अद्भुत करनेवाले दैत्यों ने समर में हमलोगों को जीतलिया ॥ ५ ॥

इस कारण आक्रमण किये हुए हमसब तुम्हारी शरण में आये हैं हे देवदेवेश ! शरण में आयेहुए हमलोगों की रक्षा कीजिये ॥ ६ ॥ उस वचनको सुनकर लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्माने कहा कि मुझसे किसी मनुष्यका पक्ष नहीं किया जा सक्ता है ॥ ७ ॥ और उत्तम धर्म के आश्रित आपलोगों के आगे मैं यत्नको कहता हूं एक समय विष्णुजी के भक्तों के साथ परस्पर जीतने की इच्छासे शिवभक्तों का बड़ा भारी विवाद हुआ तदनन्तर विष्णुगणों समेत अपने भक्तों के देखते हुए भगवान् शिवजी ने बड़ा अद्भुतरूप धारण किया तब आधे देहों से उन्होंने हरिहराख्य रूप किया ॥ ८ । १० ॥ कि आधे शरीर से शिव व आधे से विष्णुजी

स्मान्देवदेवेश शरणं समुपागतान् ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्प्राह ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ मया न शक्यते कर्त्तुं पक्षः कस्य जनस्य च ॥ ७ ॥ वक्ष्याम्युपायं सद्धर्माश्रितानां भवतां पुरः ॥ एकदा शिवभक्तानां विवादः सुमहानभूत् ॥ ८ ॥ समं केशवभक्तैश्च परस्परजिगीषया ॥ ततस्तु भगवान्रुद्रः स्वभक्तानां च पश्यताम् ॥ ९ ॥ एकं विष्णुगणैः कुर्वन् दध्रे रूपं महाद्भुतम् ॥ तदा हरिहराख्यं च देहार्द्धाभ्यां दधार सः ॥ १० ॥ हरश्चैवार्द्धदेहेन विष्णुरर्द्धेन चाभवत् ॥ एकतो विष्णुचिह्नानि हरचिह्नानि चैकतः ॥ ११ ॥ एकतो वैनतेयश्च वृषभश्चान्यतोऽभवत् ॥ वामतो मेघवर्णाभो देहोश्मनिचयोपमः ॥ १२ ॥ कर्पूरगौरः सव्ये तु समजायत वै तदा ॥ द्वयोरैक्यसमं विश्वं विश्वमैक्यमवर्त्तत ॥ १३ ॥ विभेदमतयो नष्टाः श्रुतिस्मृत्यर्थबाधकाः ॥ पाखण्डिनो हैतुकाश्च सर्वे विस्मयमागमन् ॥ १४ ॥ स्वं स्वं मार्गं परित्यज्य ययुर्निर्वाणपद्धतिम् ॥ मन्दरे पर्वतश्रेष्ठे सा मूर्तिर्नित्यसंस्तुता ॥ १५ ॥ प्रमथाद्यैर्गणैश्चैव वर्ततेऽद्यापि नि

हुए और एक ओर विष्णु के चिह्न होगये व एक ओर शिवजी के चिह्न हुए ॥११॥ व एक ओर गरुड व एक ओर बैल हुआ व वाम ओर पत्थरसमूहों के समान तथा मेघों के रंग के समान शरीर हो गया ॥ १२ ॥ व उस समय दाहिने ओर कर्पूर के समान गौर हो गया व दोनों में एकता समान संसार और ऐक्य के समान संसार होगया ॥ १३ ॥ व श्रुतियों तथा स्मृतियों के बाधक भेद बुद्धिवाले नष्ट मनुष्य और पाखण्डी व हैतुक सब लोग विस्मयको प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ व अपने अपने मार्ग को छोड़कर सब मोक्ष की पदवी को प्राप्त हुए और पर्वतों में श्रेष्ठ मन्दराचल पर्वत पै प्रमथादिक गण उस मूर्ति की नित्य स्तुति करते हैं

और वह आज भी अचल वर्तमान है व सृष्टि, पालन व संहार करनेवाली वह मूर्ति विश्वबीज है व अनन्त है ॥ १५ । १६ ॥ शिव व विष्णुजी समेत स्मरण की हुई वह पापनाशिनी है जो कि योगियों से ध्यान करने योग्य व सत्य समेत तथा सत्त्व के आधार के गुणों को उल्लंघन करनेवाली है ॥ १७ ॥ मुक्ति को चाहनेवाले भी उसको ध्यानकर परम पद को प्राप्त होते हैं व चातुर्मास्य में विशेषकर ध्यान कर मनुष्य फिर मनुष्य नहीं होताहै ॥ १८ ॥ और वहां जो जाते हैं उनका वह देवता कल्याण करैगा उनसे यह कहकर भगवान् ब्रह्माजी वहीं अन्तर्द्धान हो गये ॥ १९ ॥ और वे भी अग्नि आदिक देवता मंदराचल पर्वत

श्चला ॥ सृष्टिस्थित्यन्तकर्त्री सा विश्वबीजमनन्तका ॥ १६ ॥ महेशविष्णुसंयुक्ता सा स्मृता पापनाशिनी ॥ योगिध्येयाससत्या च सत्त्वाधारगुणातिगा ॥ १७ ॥ मुमुक्षवोऽपि तां ध्यात्वा प्रयान्ति परमं पदम् ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण ध्यात्वा मर्त्यो ह्यमानुषः ॥ १८ ॥ तत्र गच्छन्ति ये तेषां स देवः शं विधास्यति ॥ इत्युक्त्वा भगवांस्तेषां तत्रैवान्तरधीयत ॥ १९ ॥ तेपि वह्निमुखा देवाः प्रजग्मुर्मन्दराचलम् ॥ बभ्रमुस्तत्र तत्रैव विचिन्वाना महेश्वरम् ॥ २० ॥ पार्वतीं बिल्ववृक्षस्थां लक्ष्मीं च तुलसीगताम् ॥ आदौ सर्वं वृक्षमयं पूर्वं विश्वमजायत ॥ २१ ॥ एते वृक्षा महाश्रेष्ठाः सर्वे देवांशसंभवाः ॥ एतेषां स्पर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण महापापौघहारिणः ॥ यदा ते नैव ददृशुर्देवास्त्रिभुवनेश्वरम् ॥ २३ ॥ तदाकाशभवा वाणी प्राह देवान् यथार्थतः ॥ ईश्वरः सर्वभूतानां कृपया वृक्षमाश्रितः ॥ २४ ॥ चातुर्मास्येऽथ संप्राप्ते सर्वभूतदयाकरः ॥ अश्वत्थोतः सदा सेव्यो मन्दवारे विशे

को गये और शिवजी को ढूंढ़ते हुए वे जहां तहां घूमने लगे ॥ २० ॥ व बिल्व वृक्ष में स्थित पार्वती तथा तुलसी में प्राप्त लक्ष्मीजी को ढूंढ़ने लगे पहले सब संसार वृक्षमय हुआ है ॥ २१ ॥ और ये बड़े श्रेष्ठ सब वृक्ष देवांश से उत्पन्न हैं व इनके स्पर्श ही से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ २२ ॥ व चातुर्मास्य में विशेषकर ये महापापसमूहों को हरनेवाले हैं और जब उन देवताओं ने त्रिलोकेश शिवजी को नहीं देखा ॥ २३ ॥ तब आकाश से उपजी हुई वाणीने देवताओं से यथार्थ कहा कि ईश्वर सब प्राणियों के ऊपर दया से वृक्ष में आश्रित है ॥ २४ ॥ इस कारण चातुर्मास्य प्राप्त होने पर सब प्राणियों के ऊपर

दया करनेवाला पीपल सदैव सेवने योग्य है व शनैश्चर के दिन विशेषकर सेवने योग्य है ॥ २५ ॥ नित्य पीपल के स्पर्श से पाप हज़ार खण्ड हो जाता है और जो भक्ति से तिलमिश्रित दुग्ध से तर्पण करते हैं ॥ २६ ॥ व जो सेचन करते हैं उनके पूर्वज पितरों में तृप्ति होती है और वृक्ष के दर्शन ही से पाप नाश हो जाता है ॥ २७ ॥ और विशेषकर चातुर्मास्य में पूजन, ध्यान, दर्शन व सेवन किया हुआ पीपल पाप रोग के नाश के लिये होता है और सब प्राणियों को सुख देनेवाले पूजित तथा सिक्त (सींचे हुए) पीपल को ॥ २८ ॥ व सब रोगों को नाशनेवाले तथा सब पापसमूहों को हरनेवाले पीपल वृक्ष

षतः ॥ २५ ॥ नित्यमश्वत्थसंस्पर्शात्पापं याति सहस्रधा ॥ दुग्धेन तर्पणं ये वै तिलमिश्रेण भक्तितः ॥ २६ ॥ सेचनं वा करिष्यन्ति तृप्तिस्तत्पूर्वजेषु च ॥ दर्शनादेव वृक्षस्य पातकं तु विनश्यति ॥ २७ ॥ पिप्पलः पूजितो ध्यातो दृष्टः सेवित एव वा ॥ पापरोगविनाशाय चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ अश्वत्थं पूजितं सिक्तं सर्वभूतसुखावहम् ॥ २८ ॥ सर्वामयहरं चैव सर्वपापौघहारिणम् ॥ ये नराः कीर्तयिष्यन्ति नामाप्यश्वत्थवृक्षजम् ॥ २९ ॥ न तेषां यमलोकस्य भयं मार्गे प्रजायते ॥ कुंकुमैश्चन्दनैश्चैव सुलिप्तं यश्च कारयेत् ॥ ३० ॥ तस्य तापत्रयाभावो वैकुण्ठे गणना भवेत् ॥ दुःस्वप्नं दुष्टचिन्ता च दुष्टज्वरपराभवाः ॥ ३१ ॥ विलयं नय पापानि पिप्पल त्वं हरिप्रिय ॥ मन्त्रेणानेन ये देवाः पूजयिष्यन्ति पिप्पलम् ॥ ३२ ॥ ततस्तेषां धर्मराजो जायते वाक्यकारकः ॥ अश्वत्थो वचनेनापि प्रोक्तो ज्ञानप्रदो नृणाम् ॥ ३३ ॥ श्रुतो हरति पापं च जन्मादिमरणावधि ॥ अश्वत्थसेवनं पुण्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ३४ ॥ सुप्ते देवे वृक्षमध्यमास्थाय

से उत्पन्न नाम को भी कीर्तन करेंगे ॥ २९ ॥ उनको यमलोक के मार्ग में भय नहीं होता है और जो मनुष्य कुंकुम व चन्दनों से सुलिप्त करता है ॥ ३० ॥ उसके तीनों तापों का अभाव होता है और वैकुण्ठ में गणना होती है और दुःस्वप्न, दुष्टचिन्ता व दुष्ट ज्वरों से पराभवको ॥ ३१ ॥ हे हरिप्रिय, पिप्पल ! तुम नाश को प्राप्त करो इस मन्त्रसे जो देवता पिप्पल को पूजेंगे ॥ ३२ ॥ उससे यमराज उनके वचनकारक होते हैं और वचन से भी कहा हुआ पिप्पल मनुष्यों को ज्ञानदायक होता है ॥ ३३ ॥ व जन्म से लगाकर मरण तक के पाप को सुना हुआ पीपल नाश करता है और चातुर्मास्य में विशेषकर पीपल

का सेवन पुण्यवान् होता है॥ ३४ ॥ व विष्णुदेवजी के सोने पर वृक्ष के मध्य में स्थित होकर पृथ्वी में प्राप्त सब जल को पीते हुए से सेवते हैं॥ ३५ ॥ और जल विष्णु है व जलत्व से विष्णु ही बड़े रसमय हैं इसलिये चातुर्मास्य में जल में प्राप्त विष्णुजी पापनाशक होते हैं॥ ३६॥ व सब प्राणियों में प्राप्त विष्णुजी संसार को तृप्त करते हैं वैसे ही पीपल में प्राप्त विष्णुजीको जो प्रणाम करता है वह नरकगामी नहीं होता है॥ ३७॥ व जो पवित्र मनुष्य पृथ्वी में पीपल को आरोपण करता है उसके हज़ारों पाप उसी क्षण नाशको प्राप्त होते हैं॥ ३८॥ व सब वृक्षों के मध्यमें पीपल पवित्र व मंगल से संयुत है उसकारण चातुर्मास्य में

भगवान्प्रभुः॥ जलं पृथ्वीगतं सर्वं प्रपिबन्निव सेवते॥ ३५॥ जलं विष्णुर्जलत्वेन विष्णुरेव रसो महान्॥ तस्माद्वृक्ष गतो विष्णुश्चातुर्मास्येऽघनाशनः॥ ३६॥ सर्वभूतगतो विष्णुराप्याययति वै जगत्॥ तथाश्वत्थगतं विष्णुं यो न मस्येन्न नारकी॥ ३७॥ अश्वत्थं रोपयेद्यस्तु पृथिव्यां प्रयतो नरः॥ तस्य पापसहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात्॥ ३८॥ अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां पवित्रो मङ्गलान्वितः॥ मुक्तिदोपि ततो ध्यातश्चातुर्मास्येऽघनाशनः॥ ३९॥ अश्व त्थे चरणं दत्त्वा ब्रह्महत्या प्रजायते॥ निष्कारणं संकुथित्वा नरके पच्यते ध्रुवम्॥ ४०॥ मूले विष्णुः स्थितो नि त्यं स्कन्धे केशव एव च॥ नारायणस्तु शाखासु पत्रेषु भगवान् हरिः॥ ४१॥ फलेच्युतो न सन्देहः सर्वदेवसमन्वि तः॥ चातुर्मास्ये विशेषेण द्रुमः पूज्यः स मुक्तिभाक्॥ ४२॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सदैवाश्वत्थसेवनम्॥ यः करो ति नरो भक्त्या पापं याति दिनोद्भवम्॥ ४३॥ स एव विष्णुर्द्रुम एव मूर्तो महात्मभिः सेवितपुण्यमूलः॥ यस्याश्र

ध्यान किया हुआ पापनाशक पीपल मुक्तिदायक है॥ ३९ ॥ व पीपल में चरण को देकर ब्रह्महत्या होतीहै व बिन कारण काटकर मनुष्य निश्चय कर नरक में पचताहै॥ ४० ॥ उसके मूल में विष्णुजी नित्य स्थित हैं व स्कन्ध में विष्णुजी स्थित हैं और भगवान् नारायण विष्णुजी शाखाओं व पत्रों में स्थित हैं॥ ४१ ॥ और सब देवताओं से संयुत अच्युतजी निस्सन्देह फल में स्थित हैं और चातुर्मास्य में विशेषकर वह मुक्तिभागी वृक्ष पूजने योग्य है॥ ४२ ॥ उस कारण जो मनुष्य भक्ति से सदैव पीपल को सेवन करता है उसका दिन में उपजा हुआ पाप नाश होजाता है॥ ४३ ॥ व महात्माओं से सेवित पवित्र मूलवाला वह

वृक्ष ही विष्णुरूपी है जिसका गुणाढ्य आश्रय मनुष्यों के हजारों पापों का नाशक है व कामनाओं को देनेवाला है ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारद-संवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्येऽश्वत्थमहिमावर्णनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अहै पलाशहुँ वृक्ष की महिमा यथा अपार । सोलहवें अध्याय में सोई चरित सुखार ॥ वाणी बोली कि पुरातन समय के जाननेवाले जनों से पलाश विष्णुरूप से सेवन किया जाताहै और बहुत उपचारोंसे ब्रह्मवृक्ष का सेवन ॥ १ ॥ सब कामनाओं का दायक व महापातकों का नाशक कहा गयाहै और पलाश में

यः पापसहस्रहन्ता भवेन्नृणां कामदुघो गुणाढ्यः ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने अश्वत्थमहिमावर्णनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥

वाण्युवाच ॥ पलाशो हरिरूपेण सेव्यते हि पुराविदैः ॥ बहुभिर्ह्युपचारैस्तु ब्रह्मवृक्षस्य सेवनम् ॥ १ ॥ सर्वकामप्रदं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ॥ त्रीणि पत्राणि पालाशे मध्यमं विष्णुशापितम् ॥ २ ॥ वामे ब्रह्मा दक्षिणे च हर एकः प्रकीर्तितः ॥ पालाशपत्रे यो भुङ्क्ते नित्यमेव नरोत्तमः ॥ ३ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण भोक्तुर्मोक्षप्रदं भवेत् ॥ ४ ॥ पयसा वाथ दुग्धेन रविवारेऽनिशं यदि ॥ चातुर्मास्येऽर्चितो यैस्तु ते यान्ति परमं पदम् ॥ ५ ॥ दृश्यते यदि पालाशः प्रातरुत्थाय मानवैः ॥ नरकानाशु निर्धूय गम्यते परमं पदम् ॥ ६ ॥ पाला

तीन पत्ते होते हैं उनमें से मध्य का पत्र विष्णुजी से शापितहै ॥ २ ॥ और वाम ओर ब्रह्मा व दक्षिण ओर एक शिवजी कहे गयेहैं और जो उत्तम मनुष्य नित्य पलाश के पत्ते में भोजन करता है ॥ ३ ॥ वह निस्सन्देह हज़ार अश्वमेधयज्ञोंके फल को पाता है व चातुर्मास्य में विशेषकर भोजन करनेवाले को पत्र मोक्षदायक होता है ॥ ४ ॥ और यदि चातुर्मास्य में रविवार को जिन मनुष्यों ने सदैव जल व दूधसे पूजन किया है वे परम पदको प्राप्त होतेहैं ॥ ५ ॥ और यदि प्रातःकाल उठकर मनुष्य पलाश को देखताहै तो शीघ्रही नरकों को नाशकर परम पदको जाताहै ॥ ६ ॥ और पलाश सब देवताओं का आधार व धर्मसाधन है इससे जहां उस धर्म

का लोभ होवै वहां वह महावृक्ष पूजने योग्यहै ॥ ७ ॥ जैसे सब जातियों में ब्राह्मण अधिक मुख्य होता है वैसेही सब वृक्षों के मध्य में ब्रह्मवृक्ष वहुत उत्तम है ॥ ८ ॥ जिसके मूल में सदैव शिव व स्कन्ध में आपही त्रिशूलधारी हैं और शाखाओं में भगवान् शिव व पुष्पों में त्रिपुरान्तकहैं ॥ ९ ॥ व पत्तोंमें शिव और फल में गणेशजी बसते हैं व त्वचा में गगापति तथा मज्जा में भगवान् भवजी हैं ॥ १० ॥ व ईश्वर प्रशाखाओं में हैं और यह सब वृक्ष शिवजी को प्रिय हैं जैसे सदैव शिवजी यथावत् कर्पूर के समान श्वेत वर्णन किये गये हैं ॥ ११ ॥ वैसेही यह ब्रह्मरूप वृक्ष श्वेत रंग व महाऐश्वर्यवान् है और ध्यान किया हुआ वह शत्रुओं

शः सर्वदेवानामाधारो धर्मसाधनम् ॥ यत्र लोभस्तु तस्य स्यात्तत्र पूज्यो महातरुः ॥ ७ ॥ यथा सर्वेषु वर्णेषु विप्रो मुख्यतमो भवेत् ॥ मध्ये सर्वतरूणां च ब्रह्मवृक्षो महोत्तमः ॥ ८ ॥ यस्य मूले हरो नित्यं स्कन्धे शूलधरः स्वयम् ॥ शाखासु भगवान् रुद्रः पुष्पेषु त्रिपुरान्तकः ॥ ९ ॥ शिवः पत्रेषु वसति फले गणपतिस्तथा ॥ गङ्गापतिस्त्वचायां तु मज्जायां भगवान् भवः ॥ १० ॥ ईश्वरस्तु प्रशाखासु सर्वोऽयं हरवल्लभः ॥ हरः कर्पूरधवलो यथावद्वर्णितः सदा ॥ ११ ॥ तथा ह्ययं ब्रह्मरूपः सितवर्णो महाभगः ॥ चिन्तितो रिपुनाशाय पापसंशोषणाय च ॥ १२ ॥ मनोरथप्रदानाय जायते नात्र संशयः ॥ गुरुवारे समायाते चातुर्मास्ये तथैव च ॥ १३ ॥ पूजितस्तु ततो ध्यातः सर्वदुःखविनाशकः ॥ १४ ॥ देवस्तुत्यो देवबीजं परं यन्मूर्तब्रह्मब्रह्मवृक्षत्वमाप्तम् ॥ नित्यं सेव्यः श्रद्धया स्थाणुरूपश्चातुर्मास्ये सेवितः पापहा स्यात् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कान्दे पैजवनोपाख्याने पालाशमहिमावर्णनन्नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥

के नाश व पातकों के शोषण के लिये होता है ॥ १२ ॥ व मनोरथों के देने के लिये होता है इसमें सन्देह नहीं है और बृहस्पति दिन आने पर विशेषकर चातुर्मास्य में ॥ १३ ॥ पूजित व तदनन्तर ध्यान किया हुआ वह सब दुःखों का विनाशक होता है ॥ १४ ॥ और जो देव बीज व मूर्त्तिमय परंब्रह्म ब्रह्मवृक्षत्व को प्राप्त हुआ है वह स्थाणुरूप व देवताओं से स्तुति करने योग्य वृक्ष श्रद्धा से सदैव सेवन करने योग्य है और चातुर्मास्य में सेवा किया हुआ वह पापविनाशक होता है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्येपालाशमहिमावर्णनन्नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दो०। आश्रित हैं लक्ष्मी यथा तुलसी वृक्ष मँझार। सत्रहवें अध्याय में सोइ चरित सुखसार॥ वाणी बोली कि जिस गृहस्थ ने बड़े फलवाली तुलसी को आरोपण किया है उसके घर में दरिद्रता नहीं होती है इसमें सन्देह नहीं है॥ १ ॥ और तुलसी के दर्शनही से पापों की राशि निवृत्त होजाती है और अमृत के कणों से उत्पन्न हरिप्रिया तुलसी लक्ष्मी के लिये होती हैं॥ २॥ और रुचिर पान को पीती हुई तुलसी प्राणियों के पापों को हरनेवाली हैं और जिसके रूपमें लक्ष्मी व स्कन्ध में समुद्रजा बसती हैं॥ ३॥ व पत्तों में सदैव लक्ष्मी तथा शाखाओं में आपही कमलाजी स्थित हैं और इंदिरा सदैव पुष्पों में प्राप्त हैं व फल में क्षीर-

वाण्युवाच॥ तुलसी रोपिता येन गृहस्थेन महाफला॥ गृहे तस्य न दारिद्र्यं जायते नात्र संशयः॥ १॥ तुलस्या दर्शनादेव पापराशिर्निवर्तते॥ श्रिये मृतकणोत्पन्ना तुलसी हरिवल्लभा॥ २॥ पिबन्ती रुचिरं पानं प्राणिनां पापहारिणी॥ यस्या रूपे वसेल्लक्ष्मीः स्कन्धे सागरसंभवा॥३॥पत्रेषु सततं श्रीश्च शाखासु कमला स्वयम्॥ इन्दिरापुष्पगा नित्यं फले क्षीराब्धिसंभवा॥ ४॥ तुलसी शुष्ककाष्ठेषु या रूपा विश्वव्यापिनी॥ मज्जायां पद्मवासा च त्वचासु च हरिप्रिया॥ ५॥ सर्वरूपा च सर्वेशा परमानन्ददायिनी॥ तुलसीप्राशको मर्त्यो यमलोकं न गच्छति॥ ६॥ शिरस्था तुलसी यस्य न याम्यैः परिभूयते॥ मुखस्था तुलसी यस्य निर्वाणपददायिनी॥ ७॥ हस्तस्था तुलसी यस्य स तापत्रयवर्जितः॥ तुलसी हृदयस्था च प्राणिनां सर्वकामदा॥ ८॥ स्कन्धस्था तुलसी यस्य स पापैर्न च लिप्यते॥

सागर से उपजी हुई बसती हैं॥ ४॥ व तुलसी के सूखे काष्ठों में जो विश्वव्यापिनी व अरूपा बसती हैं और मज्जा में पद्मवासा तथा त्वचाओं में हरिप्रिया हैं॥ ५॥ और सर्वरूपा व सर्वेशा तथा परमानन्ददायिनी हैं व तुलसी को खानेवाला मनुष्य यमलोक को नहीं जाता है॥ ६॥ व तुलसीजी जिसके मस्तक में स्थित होती हैं वह यमदूतों से परिभूत नहीं होता है और तुलसी जिसके मुखमें स्थित होती हैं उसको मोक्ष पदवी को देती हैं॥ ७॥ व तुलसी जिसके हाथ में स्थित होती हैं वह तीनों तापों से रहित होता है व प्राणियों के हृदय में स्थित तुलसी सब कामनाओं को देती हैं॥ ८॥ व तुलसी जिसके स्कध में स्थित

होती है वह पापों से लिप्त नहीं होता है और तुलसी जिसके कण्ठ में स्थित होती है वह सदैव जीवन्मुक्त होता है व ॥ ९ ॥ तुलसी से उपजे हुए पत्रको जो सदैव धारण करता है वह मन से चिन्तित सिद्धि को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १० ॥ व सब कार्यार्थों को साधन करनेवाली तथा दुष्टों को मना करनेवाली तुलसी को जो मनुष्य प्रतिदिन सींचता है वह यमराज के स्थान को नहीं जाता है ॥ ११ ॥ व चातुर्मास्य में विशेषकर प्रणाम की हुई भी वह मुक्ति को देती है नारायण को जलगत व वृक्ष में प्राप्त जानकर ॥१२॥ प्राणियों के ऊपर दया से लक्ष्मीजी तुलसी के वृक्ष में आश्रित हुई चातुर्मास्य आने पर

कण्ठगा तुलसी यस्य जीवन्मुक्तः सदा हि सः ॥ ९ ॥ तुलसीसंभवं पत्रं सदा वहति यो नरः ॥ मनसा चिन्तितां सिद्धिं संप्राप्नोति न संशयः ॥ १० ॥ तुलसी सर्वकार्यार्थसाधिनीं दुष्टवारिणीम् ॥ यो नरः प्रत्यहं सिञ्चेन्न स याति यमालयम् ॥ ११ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण वन्दितापि विमुक्तिदा ॥ नारायणं जलगतं ज्ञात्वा वृक्षगतं तथा ॥ १२ ॥ प्राणिनां कृपया लक्ष्मीस्तुलसीवृक्षमाश्रिता ॥ चातुर्मास्ये समायाते तुलसी सेविता यदि ॥ १३ ॥ तेषां पापसहस्राणि याति नित्यं सहस्रधा ॥ गोविन्दस्मरणं नित्यं तुलसीवनसेवनम् ॥ १४ ॥ तुलसीसेचनं दुग्धैश्चातुर्मास्येऽतिदुर्लभम् ॥ तुलसीं वर्द्धयेद्यस्तु मानवो यदि श्रद्धया ॥ १५ ॥ आलवालाम्बुदानैश्च पावितं सकलं कुलम् ॥ यथा श्रीस्तुलसीसंस्था नित्यमेव हि वर्द्धते ॥ १६ ॥ तथा तथा गृहस्थस्य कामवृद्धिः प्रजायते ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ १७ ॥ तथा प्रकृतयः सर्वास्तुलसीसेवने रताः ॥ श्रद्धया यदि जायन्ते न तासां दुःखदो हरिः ॥१८॥

यदि जो मनुष्य तुलसी को सेवते हैं ॥ १३ ॥ उनके हज़ारों पाप नित्य हज़ार खण्ड होजाते हैं नित्य गोविन्दजी का स्मरण व तुलसीवनका सेवन ॥ १४ ॥ और चातुर्मास्य में दुग्ध से तुलसी को सींचना बहुत दुर्लभ है और यदि श्रद्धा से मनुष्य तुलसी को थाल्हा व जलदान से बढ़ाता है तो सब वंश पवित्र हो जाता है और तुलसी में टिकी हुई लक्ष्मी जैसे नित्यही बढ़ती है॥ १५। १६ ॥ त्यों त्यों गृहस्थ के कामनाओं की वृद्धि होती है ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यासी ॥ १७ ॥ और सब प्रजा लोग यदि तुलसी के सेवन में परायण होते हैं तो विष्णुजी उनको दुःखदायक नहीं होते हैं ॥ १८ ॥ और अनेकरस से

कलिपत मूर्तिवाले एक विष्णुजी सब वृक्षों में प्राप्त प्रकाशित होते हैं और सदैव स्मरण की हुई लक्ष्मी देवी वृक्षादिकों के निवास को प्राप्त हुई है ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां तुलसीमाहात्म्यवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥

दो० । बिल्ववृक्षमें स्थित भई यथा उमा महरानि । सोइवीस अध्यायमें कह्यो चरित सुखदानि ॥ वाणी बोली कि हे महेन्द्र ! बिल्वपत्र का माहात्म्य नहीं कहा जा सक्ताहै मैं तुम्हारे उद्देशसे कहताहूं उसको यथार्थ सुनिये ॥ १ ॥ कि हिमाचलकी उत्तम कन्या पार्वतीदेवी विहाराश्रम में प्राप्त हुई और उनके मस्तक में पसीना

एको हरिः सकलवृक्षगतो विभाति नानारसेन परिभावितमूर्त्तिरेव ॥ वृक्षादिवासमगमत्कमला च देवी दुःखादि नाशनकरी सततं स्मृतापि ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने तुलसीमाहात्म्यवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥

वाण्युवाच ॥ बिल्वपत्रस्य माहात्म्यं कथितुं नैव शक्यते ॥ तवोद्देशेन वक्ष्यामि महेन्द्र शृणु तत्त्वतः ॥ १ ॥ विहाराश्रममापन्ना देवी गिरिसुता शुभा ॥ ललाटफलके तस्याः स्वेदबिन्दुरजायत ॥ २ ॥ स भवान्या विनिक्षिप्तो भूतले निपपात च ॥ महातरुरयं जातो मन्दरे पर्वतोत्तमे ॥३॥ ततः शैलसुता तत्र रममाणा ययौ पुनः ॥ दृष्ट्वा वनग तं वृक्षं विस्मयोत्फुल्ललोचना ॥ ४ ॥ जयां च विजयां चैव पप्रच्छ च सखीद्वयम् ॥ कोऽयं महातरुर्दिव्यो विभाति वनमध्यगः ॥ ५ ॥ दृश्यते रुचिराकारो महाहर्षकरो ह्ययम् ॥ जयोवाच ॥ देवि त्वद्देहसंभूतो वृक्षोऽयं स्वेदबिन्दु

का बिन्दु हुआ ॥ २ ॥ व पार्वती ने उसको पृथ्वी में फेंकदिया और यह मन्दरनामक उत्तम पर्वतपै बडा वृक्ष होगया ॥ ३ ॥ तदनन्तर रमण करतीहुई पार्वतीजी फिर वहां चली गईं और वन में प्राप्त वृक्षको देखकर विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाली पार्वती ने ॥ ४ ॥ जया व विजया दोनों सखियों से पूछा कि वनके बीच में प्राप्त यह कौन महादिव्य वृक्ष शोभित है ॥ ५ ॥ और सुन्दर आकार व बडाहर्ष करनेवाला यह वृक्ष देख पड़ता है जया बोली कि हे देवि ! तुम्हारे शरीर से उपजा

हुआ यह पसीने के बिन्दुसे पैदा हुआ है ॥ ६ ॥ तुम शीघ्रही इसका नाम करो और पूजित यह पापका विनाशक होगा पार्वतीजी बोलीं कि जिसलिये पृथ्वीतल को फोडकर यह उत्तम महावृक्ष ॥ ७ ॥ मेरे समीप उत्पन्न हुआ है इस कारण यह बिल्व होवै इस वृक्षको प्राप्त होकर जो पत्रसचयको ॥ ८ ॥ लावैगा वह पृथ्वी में राजा होगा व श्रद्धासंयुत जो मनुष्य बिल्वपत्रोंसे मेरा पूजन करैगा ॥ ९ ॥ वह जिस जिस कामना को चिन्तन करैगा उसकी सिद्धि होगी और जो बिल्वपत्रों को देखकर पूजनार्थ विधि के लिये श्रद्धाको भी करैगा उसको मैं निस्सन्देह धन दूंगी और यदि जो मनुष्य पत्राग्र के भोजन में मन करैगा उसके हज़ारों पाप

जः ॥ ६ ॥ नामाऽस्य कुरु वै क्षिप्रं पूजितः पापनाशनः ॥ पार्वत्युवाच ॥ यस्मात्क्षोणितलं भित्त्वा विशिष्टोऽयं महातरुः ॥ ७ ॥ उदतिष्ठत्समीपे मे तस्माद्बिल्वो भवत्वयम् ॥ इमं वृक्षं समासाद्य भक्तितः पत्रसंचयम् ॥ ८ ॥ आहरिष्यत्यसौ राजा भविष्यत्येव भूतले ॥ यः करिष्यति मे पूजां पत्रैः श्रद्धासमन्वितः ॥ ९ ॥ यं यं काममभिध्यायेत्तस्य सिद्धिः प्रजायते ॥ यो दृष्ट्वा बिल्वपत्राणि श्रद्धामपि करिष्यति ॥ १० ॥ पूजनार्थाय विधये धनदाऽहं न संशयः ॥ पत्राग्रप्राशने यस्तु करिष्यति मनो यदि ॥ तस्य पापसहस्राणि यास्यन्ति विलयं स्वयम् ॥ ११ ॥ शिरः पत्राग्रसंयुक्तं करोति यदि मानवः ॥ न याम्या यातना ह्यस्य दुःखदात्री भविष्यति ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा पार्वती हृष्टा जगाम भवनं स्वकम् ॥ सखीभिः सहिता देवी गणैरपि समन्विता ॥ १३ ॥ वाण्युवाच ॥ अयं बिल्वतरुः श्रेष्ठः पवित्रः पापनाशनः ॥ तस्य मूले स्थिता देवी गिरिजा नात्र संशयः ॥ १४ ॥ स्कन्धे दाक्षायणी देवी शाखासु च महेश्व

आपही नाश होवैंगे ॥ १० । ११ ॥ और यदि मनुष्य शिरको पत्राग्रसे संयुत करैगा इसको यमराज की पीड़ा दुःखदायिनी न होगी ॥१२॥ यह कहकर प्रसन्न होती हुई सखियोंसमेत व गणों सहित भी पार्वती देवी अपने मन्दिरको चलीगई ॥ १३ ॥ वाणी बोली कि यह श्रेष्ठ बिल्ववृक्ष पवित्र व पापनाशक है उसके मूल में आपही गिरिजा देवी स्थित हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥ स्कन्धमें दाक्षायणी देवी व शाखाओंमें महेश्वरी और पत्रों में पार्वतीदेवी तथा फल में कात्यायनीजी

कहीगई हैं ॥ १५ ॥ और त्वचामें गौरीजी कहीगई हैं व अपर्णा मध्य वल्कल में हैं तथा पुष्पमें दुर्गा और शाखाके अंगों में उमाजी हैं ॥ १६ ॥ और प्राणियों की रक्षाके लिये पार्वतीजी की आज्ञा से सब कंटकों में नौ करोड़ शक्तियां स्थित हैं ॥ १७ ॥ उन सनातनी पार्वतीजी को उत्तम पत्रों से जो पूजते व भजते हैं वे जिस जिस कामना की इच्छा करते हैं उसकी निश्चयकर सिद्धि होती है ॥ १८ ॥ मनुष्योंको मोक्ष देनेवाली उन शुद्धरूपिणी महेश्वरी गिरिजा ने शिवजी को पलाश में स्थित देखकर अपनी लीला से बिल्वका शरीर धारण किया ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने देवीदयालु-

री ॥ पत्रेषु पार्वती देवी फले कात्यायनी स्मृता ॥ १५ ॥ त्वचि गौरी समाख्याता अपर्णा मध्यवल्कले ॥ पुष्पे दुर्गा समाख्याता उमा शाखाङ्गकेषु च ॥ १६ ॥ कण्टकेषु च सर्वेषु कोटयो नवसंख्यया ॥ शक्तयः प्राणिरक्षार्थं संस्थिता गिरिजाज्ञया ॥ १७ ॥ तां भजन्ति सुपत्रैश्च पूजयन्ति सनातनीम् ॥ यं यं कामं कामयन्ते तस्य सिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ १८ ॥ महेश्वरी सा गिरिजा महेश्वरी विशुद्धरूपा जनमोक्षदात्री ॥ हरं च दृष्ट्वाथ पलाशमाश्रितं स्वलीलया बिल्ववपुश्चकार सा ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने बिल्वोत्पत्तिवर्णनंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

गालव उवाच ॥ इत्युक्त्वाकाशजा वाणी विरराम शुभप्रदा ॥ तेऽपि देवास्तदाश्चर्यं महद्दृष्ट्वा महाव्रताः ॥ १ ॥ चतुष्टयं च वृक्षाणां चातुर्मास्ये समागते ॥ अपूजयंश्च विधिवदैक्यभावेन शूद्रज ॥ २ ॥ चातुर्मास्येऽथ संपूर्णे दे

मिश्रविरचितायां भाषाटीकायां बिल्वोत्पत्तिवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पारवती देवादिकन दियो यथा विधि शाप । उन्निसवें अध्याय में सोइ चरित आलाप ॥ गालवजी बोले कि यह कहकर आकाश से उपजी हुई शुभदायिनी वाणी चुप होगई और महाव्रतवाले उन देवताओं ने उस बड़ेभारी आश्चर्य को देखकर ॥ १ ॥ हे शूद्रज ! चातुर्मास्य आनेपर एकता से विधिपूर्वक चार वृक्षों को पूजा ॥ २ ॥ इसके अनन्तर चातुर्मास्य पूर्ण होनेपर प्रत्यक्ष रूपधारी हरिहरात्मक देवजी भक्ति से उनके ऊपर प्रसन्न होकर

बोले ॥ ३ ॥ कि हे महाव्रतवाले,देवेशो ! तुमलोग जावो और अपने अधिकारोंको भोगकरो मैंने उन दानवोंको मारडाला ॥ ४ ॥ यह कहकर जब देवदेवेश ऐक्य रूपधारी हुए तब गणों व देवताओं की बुद्धिनिर्भेदताको ॥ ५ ॥ प्राप्त करते हुए वे शत्रुनाशक दोनों स्वामी हुए और अभेद से प्रसन्नचित्त व पीड़ारहित वे देवता भी ॥ ६ ॥ करोड़ों विमान गणों के द्वारा अपने अधिकारों को प्राप्त हुए गालवजी बोले कि वहां भी उन पार्वतीजी के शाप से मोहित वे देवता ॥ ७ ॥ उन पार्वतीजी की स्तुतिकर व बिल्वपत्रों से महेश्वरीजी को पूजकर प्रसन्न मुखवाली उन देवी की स्तुतिकर बार २ प्रणाम करते भये ॥ ८ ॥ तदनन्तर स्तुति की

वो हरिहरात्मकः ॥ प्रसन्नस्तानुवाचाथ भक्त्या प्रत्यक्षरूपधृक् ॥ ३ ॥ ॥ यूयं गच्छत देवेशा महाव्रतपरायणाः ॥ भुंक्षध्वं स्वांश्चाधिकारान् मया ते दानवा हताः ॥ ४ ॥ इत्युक्त्वा देवदेवांशावैक्यरूपधरौ यदा ॥ गणानां देवतानां च बुद्धिं निर्भेदता तदा ॥५॥ नयन्तौ तौ तदा ईशौ बभूवतुररिन्दमौ ॥ तेपि देवा निराबाधा हृष्टचित्ता अभेदतः ॥ ६ ॥ प्रययुः स्वांश्चाधिकारान् विमानगणकोटिभिः ॥ गालव उवाच ॥ तया तत्रापि ते देवाः पार्वत्या शापमोहिताः ॥ ७ ॥ स्तुत्वा तां बिल्वपत्रैश्च पूजयित्वा महेश्वरीम् ॥ प्रसन्नवदनां स्तुत्वा प्रणेमुश्च पुनः पुनः ॥ ८ ॥ सा प्रोवाच ततो देवान् विश्वमाता तु संस्तुता ॥ मम शापो वृथा नैव भविष्यति सुरोत्तमाः ॥ ९ ॥ तथापि कृतपापानां करवाणि कृपां च वः ॥ स्वर्गे दृषन्मया नैव भविष्यथ सुरोत्तमाः ॥ १० ॥ मर्त्यलोकं च संप्राप्य प्रतिमासु च सर्वशः ॥ सर्वे देवाश्च वरदा लोकानां प्रभविष्यथ ॥ ११ ॥ पाणिग्रहेण विहिता ये कुमाराः कुमारिकाः ॥ तेषां तासां प्रजाश्चैव भविष्यन्ति न संशयः ॥ १२ ॥ देवास्तस्या भयान्नष्टा मर्त्येषु प्रतिमांगताः ॥ भक्तानां मानसं भावं पूरयन्तः

हुई विश्वमाताजी देवताओं से बोलीं कि हे सुरोत्तमो ! मेरा शाप वृथा न होगा ॥ ९ ॥ तथापि पापको किये हुए तुम लोगों के ऊपर मैं दया करतीहूं कि हे सुरोत्तमो ! तुम लोग स्वर्ग में पत्थरमय न होगे ॥ १० ॥ और मृत्युलोक को प्राप्त होकर सब प्रतिमाओं में तुम सब देवतालोगों को वरदायक होगे ॥ ११ ॥ और विवाहसे जो पुत्र व कन्या विहित हैं उन पुत्रों व उन कन्याओं के सन्तान होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ देवता लोग उसके भय से नष्ट होकर मृत्युलोक में

प्रतिमा को प्राप्त हुए और भक्तोंके मानसी भावको पूर्ण करते हुए स्थित हुए॥१३॥ यह कहकर देवताओं को वर देनेवाली उन भगवती पार्वतीजी ने बहुत क्रोधित होकर विष्णु व शिवजी से कहा ॥ १४ ॥ कि हे विष्णो ! जिस लिये तुमने भी शिवजी को मना नहीं किया उस कारण तुम भी पत्थर होगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ और ब्राह्मणों के शाप से शिवजी भी लोकों में निन्दित पत्थरमय लिंगाकार रूपको प्राप्त होकर बड़े दुःखको पावेंगे ॥ १६ ॥ उस वचन को सुनकर पार्वती को अनुकूल करते हुए भगवान् विष्णुजी ने प्रणाम कर शिवजी की स्त्री पार्वतीजी से कहा ॥ १७ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि हे महाव्रते, महादेवि ! तुम

सुसंस्थिताः ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वा सा भगवती देवतानां वरप्रदा ॥ विष्णुं महेश्वरं चैव प्रोवाच कुपिता भृशम् ॥ १४ ॥ यस्माद्विष्णो महेशानस्त्वयापि न निषेधितः ॥ तस्मात्त्वमपि पाषाणो भविष्यसि न संशयः ॥ १५ ॥ हरोऽप्यश्ममयं रूपं प्राप्य लोकविगर्हितम् ॥ लिङ्गाकारं विप्रशापान्महद्दुःखमवाप्स्यति ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुः पार्वतीमनुकूलयन् ॥ उवाच प्रणतो भूत्वा हरभार्यां महेश्वरीम् ॥ १७ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ महाव्रते महादेवि महादेवप्रिये सदा ॥ त्वं हि सत्त्वरजःस्था च तामसी शक्तिरुत्तमा ॥ १८ ॥ मात्रात्रयसमोपेता गुणत्रयविभाविनी ॥ मायादीनां जनित्री त्वं विश्वव्यापकरूपिणी ॥ १९ ॥ वेदत्रयस्तुता त्वं च साध्यारूपेण रागिणी ॥ अरूपा सर्वरूपा त्वं जनसन्तानदायिनी ॥ २० ॥ फलवेला महाकाली महालक्ष्मीः सरस्वती ॥ ॐकारश्च वषट्कारस्त्वमेव हि सुरेश्वरी ॥ २१ ॥ भूतधात्रि नमस्तेस्तु शिवायै च नमोस्तु ते ॥ रागिण्यै च विरागिण्यै विकराले नमः शुभे ॥ २२ ॥

सदैव महादेवजी को प्यारी हो और तुम सत्त्व व रजोगुण में स्थित हो व उत्तम तामसी शक्ति हो ॥ १८ ॥ और तुम तीन मात्राओंसे संयुत व तीन गुणोंको प्रकट करनेवाली तथा मायादिकों को पैदा करनेवाली व संसार की व्यापकरूपिणी हो ॥ १९ ॥ और तुम तीनों वेदों से स्तुति की जाती हो व साध्यारूप से तथा रागिणी हो और अरूपा व सर्वरूपा तुम मनुष्यों को सन्तान देनेवाली हो ॥ २० ॥ और तुम फलवेला व महाकाली, महालक्ष्मी व सरस्वती हो और तुम्हीं ॐकार व वषट्कार और सुरेश्वरी हो ॥ २१ ॥ हे भूतधात्रि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व शिवारूपिणी आपके लिये प्रणाम है व हे शुभे, विकराले ! रागिणी

व विरागिणी के लिये नमस्कार है ॥ २२ ॥ इस प्रकार स्तुति की हुई प्रसन्नाक्षी पार्वती देवीजी ने प्रसन्नचित्त से बड़े उदार विष्णुजी से वृथा रोष सयुत वचन को कहा ॥ २३ ॥ कि हे जनार्दनजी ! तुमको भी यह मेरा शाप अन्यथा न होगा और उसमें भी स्थित तुम योगीश्वरों को मुक्तिदायक होगे ॥ २४ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर कामदायक होगे और गंडकी नामक जो नदी ब्रह्माकी प्यारी कन्या है ॥ २५ ॥ वह पाषाणसारसंभूत तथा पुण्यदायिनी व महाजलवाली है उसके निर्मल जल में तुम्हारा निवास होगा ॥ २६ ॥ और चौबीस भेद से पुराणों के जाननेवाले जनों से देखे जावोगे और मुख में

एवंस्तुता प्रसन्नाक्षी प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ उवाच परमोदारं मिथ्यारोषयुतं वचः ॥ २३ ॥ मच्छापो नान्यथा भावी जनार्दन तवाप्ययम् ॥ तत्रापि संस्थितस्त्वं हि योगीश्वरविमुक्तिदः ॥ २४ ॥ कामप्रदश्च भक्तानां चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ निम्नगा गण्डकीनाम ब्रह्मणो दयिता सुता ॥२५॥ पाषाणसारसंभूता पुण्यदात्री महाजला ॥ तस्याः सुविमले नीरे तव वासो भविष्यति ॥ २६ ॥ चतुर्विंशतिभेदेन पुराणज्ञैर्निरीक्षितः ॥ मुखे जाम्बूनदं चैव शालग्रामः प्रकीर्तितः ॥ २७ ॥ वर्त्तुलस्तेजसः पिण्डः श्रिया युक्तो भविष्यति ॥ सर्वसामर्थ्यसंयुक्तो योगिनामपि मोक्षदः ॥२८॥ ये त्वां शिलागतं विष्णुं पूजयिष्यन्ति मानवाः ॥ तेषां सुचिन्तितां सिद्धिं भक्तानां संप्रयच्छसि ॥ २९ ॥ शिलागतं च देवेशं तुलस्या भक्तितत्पराः ॥ पूजयिष्यन्ति मनुजास्तेषां मुक्तिर्न दूरतः ॥ ३० ॥ शिलास्थितं च यः पश्येत्त्वां विष्णुं प्रतिमागतम् ॥ सुचक्राङ्कितसर्वाङ्गं न स गच्छेद्यमालयम् ॥ ३१ ॥ गालव उवाच ॥ इति ते कथितं सर्वं शा

जांबूनद शालग्राम कहागया है ॥ २७ ॥ व तेज का गोलपिण्ड लक्ष्मी से संयुत होगा और सब सामर्थ्य से संयुत योगियों को मोक्षदायक होगे ॥ २८ ॥ और शिला में प्राप्त तुम विष्णुजी को जो मनुष्य पूजैंगे उन भक्तों को चिन्तित सिद्धि को तुम दोगे ॥ २९ ॥ व भक्ति में तत्पर जो मनुष्य तुलसी से शिला में प्राप्त देवेश विष्णुजी को पूजैंगे उनको मुक्ति दूर नहीं होती है ॥ ३० ॥ और प्रतिमा में प्राप्त व शिला में स्थित तथा उत्तम चक्रसे चिह्नित सर्वांगवाले तुम विष्णुजी को जो देखैगा वह यमराज के स्थान को न जावैगा ॥ ३१ ॥ गालवजी बोले कि तुमसे यह सब शालग्राम का कारण कहा गया जिस प्रकार

कि वे भगवान् विष्णुजी पाषाणत्व को प्राप्त हुए ॥ ३२ ॥ और गोविन्दजी भी बडे शापको पाकर अपने मन्दिर को चले गये और क्रोधित पार्वतीजी शिवजी को प्रणाम कर स्थित हुईं ॥ ३३ ॥ इस प्रकार संसार के भूत, भविष्य प्राणियों के करनेवाले तथा सबके पालन व नाशन से चिह्नित वे भगवान् विष्णुजी लक्ष्मी समेत और पार्वतीजी समेत शिव भी चारों वृक्षों में भी निवास को प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने विष्णुशापोनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

लग्नामस्य कारणम् ॥ यथा स भगवान्विष्णुः पाषाणत्वमुपागतः ॥ ३२ ॥ गोविन्दोपि महाशापं लब्ध्वा स्वभवनं गतः ॥ पार्वती च महेशानं कुपिता प्रणमय्य च ॥ ३३ ॥ एवं स एव भगवान् भवभूतभव्यभूतादिकृत्सकलसंस्थितिनाशनांकः ॥ सोपि श्रिया सह भवोपि गिरीशपुत्र्या सार्द्धं चतुर्षु च द्रुमेषु निवासमाप ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने विष्णुशापोनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ * ॥

शूद्र उवाच ॥ महदाश्चर्यमेतद्धि यत्सुरा वृक्षरूपिणः ॥ चातुर्मास्ये समायाते सर्ववृक्षनिवासिनः ॥ १ ॥ भगवन्के सुरास्ते तु केषु केषु निवासिनः ॥ एतद्विस्तरतो ब्रूहि ममानुग्रहकाम्यया ॥ २ ॥ गालव उवाच ॥ अमृतं जलमित्याहुश्चातुर्मास्ये तदिच्छया ॥ लीलया विधृतं देवैः पिबन्ति द्रुमदेवताः ॥३॥ तस्य पानान्महातृप्तिर्जायते नात्र संशयः ॥

दो० । जौन देवता टिकत हैं जेहिं तरु चातुर्मास । सोइ बीस अध्याय में कह्यो चरित सुखरास ॥ शूद्र बोला कि यह बड़ा आश्चर्य है जो कि देवता वृक्षरूपी हुए और चातुर्मास्य आने पर सब वृक्षों के निवासी हुए ॥ १ ॥ हे भगवन् ! वे कौन देवता हैं और किन २ वृक्षों में बसते हैं मेरे ऊपर दया की इच्छा से इसको विस्तार से कहिये ॥ २ ॥ गालवजी बोले कि विद्वान् जल को अमृत ऐसा कहते हैं और चातुर्मास्य में उसकी इच्छा से देवताओं से लीला से धारण किये हुए जल को वृक्षरूपी देवता पीते हैं ॥ ३ ॥ और उसके पीने से बड़ी तृप्ति होती है इसमे सन्देह नहीं है और बल, तेज व कान्ति, सौष्ठव

श्रौर बहुतही शीघ्र पराक्रम ॥ ४ ॥ ये गुण श्रीकृष्णजी के अंश से उत्पन्न अमृत के पीने से होते हैं और नित्य अमृत के पीने से थोडा बल होता है ॥ ५ ॥ इस कारण नित्य इस भोजन की प्रशंसा करते हैं व उसी कारण चारों मासों में वृक्षों में स्थित पितर व देवता प्राणियों के हित की कामना से जल को पीते हैं और सदैव सब महीनों में वृक्षों का सेवन श्रेष्ठ है ॥ ६ । ७ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर सेवन किये हुए वृक्ष सुखकारक हैं और तिलोदक से वृक्षों का सेचन सब कामनाओं को देनेवाला है ॥ ८ ॥ और दूधवाले वृक्ष दूध से संयुत जलों से सींचे हुए कल्याण को देते हैं और मैंने पहले जिन चार वृक्षों को कहा है ॥ ९ ॥

बलं तेजश्च कान्तिश्च सौष्ठवं लघुविक्रमः ॥ ४ ॥ गुणा एते प्रजायन्ते पानात् कृष्णांशसंभवात् ॥ नित्यामृतस्य पानेन बलं स्वल्पं प्रजायते ॥ ५ ॥ भोजनं तत्प्रशंसन्ति नित्यमेतन्न संशयः ॥ तस्माच्चतुर्षु मासेषु पिबन्ति जलमेव हि ॥ ६ ॥ वृक्षस्थाः पितरो देवाः प्राणिनां हितकाम्यया ॥ वृक्षाणां सेवनं श्रेष्ठं सर्वमासेषु सर्वदा ॥ ७ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सेविताः सौख्यकारकाः ॥ तिलोदकेन वृक्षाणां सेचनं सर्वकामदम् ॥ ८ ॥ क्षीरवृक्षाः क्षीरयुक्तैस्तोयैः सिक्ताः शुभप्रदाः ॥ चतुष्टयं च वृक्षाणां यच्चोक्तं पूर्वतो मया ॥ ९ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सर्वकामफलप्रदम् ॥ ब्रह्मा तु वटमाश्रित्य प्राणिनां स वरप्रदः ॥ १० ॥ सावित्री तिलमास्थाय पवित्रं श्वेतभूषणम् ॥ सुप्ते देवे विशेषेण तिलसेवा महाफला ॥ ११ ॥ तिलाः पवित्रमतुलं तिला धर्मार्थसाधकाः ॥ तिला मोक्षप्रदाश्चैव तिलाः पापापहारिणः ॥ १२ ॥ तिला विशेषफलदास्तिलाः शत्रुविनाशनाः ॥ तिलाः सर्वेषु पुण्येषु प्रथमं समुदाहृताः ॥ १३ ॥ न तिला धान्यमित्याहु

वे विशेषकर चातुर्मास्य में सब कामनाओं के फल को देनेवाले हैं और बरगद के आश्रित होकर वे ब्रह्मा वरदायक हैं ॥ १० ॥ और सफ़ेद भूषणवाले पवित्र तिल में स्थित होकर सावित्रीजी वर को देती हैं व विष्णुदेवजी के सोने पर विशेषकर तिलकी सेवा बहुत फल को देती है ॥ ११ ॥ तिल बड़े पवित्र हैं व तिल धर्म, अर्थ के साधक हैं व तिल मोक्षदायक हैं व तिल पापों को हरनेवाले हैं ॥ १२ ॥ व तिल विशेष फलदायक हैं व तिल शत्रुविनाशक हैं और सब कार्यों में तिल श्रेष्ठ कहे गये हैं ॥ १३ ॥ और विद्वान् लोग तिल को धान्य नहीं कहते हैं बरन देवधान्य ऐसा कहा गया है उस कारण सब दानों में तिलदान

बड़ा उत्तम होता है ॥ १४ ॥ हे शूद्रज ! जिसने सुवर्ण से संयुत तिलों को दिया है उसने ब्रह्महत्यादिक पापों का विनाश किया ॥ १५ ॥ और सावित्री व तिल सब कार्यार्थों के साधक हैं व विशेषकर चातुर्मास्य में मनुष्य तिलों से तर्पण करै ॥ १६ ॥ और तिलों का दर्शन, स्पर्शन व सेवन पवित्र है और तिलों का हवन, भक्षण व शरीर का उबटन पवित्र है ॥ १७ ॥ और सब भांति से यह तिल का वृक्ष दर्शनही से पापनाशक है और चातुर्मास्य में विशेषकर सेवा किया हुआ तिल वृक्ष सब सुखों को देनेवाला है ॥ १८ ॥ और प्राणियों के हित में परायण इन्द्रजी यव में प्राप्त होकर स्थित हैं और यवका सेवन, दर्शन

देवधान्यमिति स्मृतम् ॥ तस्मात्सर्वेषु दानेषु तिलदानं महोत्तमम् ॥ १४ ॥ कनकेन युता येन तिला दत्तास्तु शूद्रज ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां विनाशस्तेन वै कृतः ॥ १५ ॥ सावित्री च तिलाः प्रोक्ताः सर्वकार्यार्थसाधकाः ॥ तिलैस्तु तर्पणं कुर्याच्चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ १६ ॥ तिलानां दर्शनं पुण्यं स्पर्शनं सेवनं तथा ॥ हवनं भक्षणं चैव शरीरोद्वर्त्तनं तथा ॥ १७ ॥ सर्वथा तिलवृक्षोयं दर्शनादेव पापहा ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सेवितः सर्वसौख्यदः ॥ १८ ॥ महेन्द्रो यवमास्थाय स्थितो भूतहिते रतः ॥ यवस्य सेवनं पुण्यं दर्शनं स्पर्शनं तथा ॥ १९ ॥ यवैस्तु तर्पणं कुर्याद्देवानां दत्तमक्षयम् ॥ प्रजानां पतयः सर्वे चूतवृक्षमुपाश्रिताः ॥ २० ॥ गन्धर्वा मलयं वृक्षमगुरुं गणनायकः ॥ समुद्रा वेतसं वृक्षं यक्षाः पुन्नागमेव च ॥ २१ ॥ नागवृक्षं तथा नागाः सिद्धाः कंकोलकं द्रुमम् ॥ गुह्यकाः पनसं चैव किन्नरा मरिचं श्रिताः ॥ २२ ॥ यष्टीमधुं समाश्रित्य कन्दर्पोभूद्व्यवस्थितः ॥ रक्ताञ्जनं महावृक्षं वह्निराश्रित्य तिष्ठति ॥ २३ ॥ यमो

व स्पर्शन पवित्र है ॥ १९ ॥ और यवों से तर्पण करै तो देवताओं को दिया हुआ अक्षय होता है व सब प्रजापति लोग आम वृक्ष के आश्रित होते हैं ॥ २० ॥ और गन्धर्व मलय वृक्ष के व गणेशजी अगुरु वृक्ष के आश्रित होते हैं और समुद्र वेतस वृक्ष के व यक्ष पुन्नाग वृक्ष के आश्रित होते हैं ॥ २१ ॥ व नाग नागवृक्ष के तथा सिद्ध कंकोल वृक्ष के आश्रित होते हैं और गुह्यक कटहल वृक्षके व किन्नर मिर्च वृक्ष के आश्रित होते हैं ॥ २२ ॥ और जेठी मधुके आश्रित होकर कामदेव स्थित हुआ है व अग्निजी रक्ताञ्जन महावृक्षके आश्रित होकर स्थित हैं ॥ २३ ॥ व यमराज बहेर वृक्षके आश्रित हैं और निर्ऋति देवता मौलसिरी के

आश्रित है और वरुण खजूर वृक्षके व पवन सुपारी वृक्षके आश्रित हैं ॥ २४ ॥ और कुबेर अखरोट वृक्षके व रुद्र बेरके वृक्षके आश्रित हैं और सप्तर्षियों के महाताल हैं व इलायची वृक्ष अन्य देवताओं से घिरा है ॥ २५ ॥ और पातकोंका विनाशक कृष्ण वर्ण जामुन वृक्ष मेघों से घिरा है व श्रीकृष्णजी के समान रंग है उससे जामुन वृक्षों में उत्तम है ॥ २६ ॥ और उसके फलों के दान से वासुदेव श्रीकृष्णजी प्रसन्न होते हैं व जंबू वृक्षके आश्रित होकर जो द्विज भोजन करते हैं ॥ २७ ॥ उनके ऊपर प्रसन्न होते हुए विष्णुजी चार पुरुषार्थों को देते हैं और चातुर्मास्य आनेपर विष्णुदेवजी के सोनेपर ॥ २८ ॥ जो पवित्र स्थित

विभीतकं चैव बकुलं नैर्ऋताधिपः ॥ वरुणः खर्जुरीवृक्षं पूगवृक्षं च मारुतः ॥ २४ ॥ धनदोऽक्षोटकं वृक्षं रुद्राश्च बदरी द्रुमम् ॥ सप्तर्षीणां महाताला बहुलश्चामरैर्वृतः ॥ २५ ॥ जम्बूर्मेघैः परिवृतः कृष्णवर्णोघनाशनः ॥ कृष्णस्य सदृशो वर्णस्तेन जम्बूनगोत्तमः ॥ २६ ॥ तत्फलैर्वासुदेवस्तु प्रीतो भवति दानतः ॥ जम्बूवृक्षं समाश्रित्य कुर्वन्ति द्विजभोजनम् ॥ २७ ॥ तेषां प्रीतो हरिर्दद्यात्पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ चातुर्मास्ये समायाते सुप्ते देवे जनार्दने ॥ २८ ॥ ब्राह्मणान् भोजयेद्यस्तु सपत्नीकान् शुचिः स्थितः ॥ तेन नारायणस्तुष्टो भवेल्लक्ष्मीसहायवान् ॥ २९ ॥ लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै वस्त्रालङ्करणैः शुभैः ॥ परिधाय सपत्नीकान् कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ ३० ॥ यद्रात्रित्रितयेनैव वटाशोकभवेन च ॥ यत्फलं जायते तच्च जम्बुना द्विजभोजनात् ॥ ३१ ॥ तस्मिन् दिने एकभक्तं कारयेद्व्रतकृत्तदा ॥ बहुना च किमुक्तेन जम्बूवृक्षप्रपूजनात् ॥ ३२ ॥ पुत्रपौत्रधनैर्युक्तो जायते नात्र संशयः ॥ जम्बूर्मेघैः परिवृता विद्युताशोक एव च ॥ ३३ ॥

मनुष्य स्त्री समेत ब्राह्मणों को भोजन कराता है उससे लक्ष्मीसहायवाले विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ २९ ॥ व लक्ष्मीनारायणजी की प्रीति के लिये उत्तम वस्त्रों व गहनों से स्त्रीसमेत ब्राह्मणों को पहनाकर मनुष्य कृतार्थ होता है ॥ ३० ॥ और बरगद व अशोक से उपजे हुए रात्रित्रयसे जो फल होता है वह फल जामुन के सकाश से द्विजभोजन से होता है ॥ ३१ ॥ व उस दिन यदि एकभक्त व्रत करै तो व्रतकारी होता है और बहुत कहने से क्या है जवू वृक्षके पूजन से ॥ ३२ ॥ मनुष्य पुत्र, पौत्र व धनों से संयुत होता है इसमें सन्देह नहीं है जामुन वृक्ष मेघों से घिरा है व अशोक वृक्ष बिजली से घिरा है ॥ ३३ ॥ व सदैव प्रियाल (चिरौंजी)

महावृक्ष वसुवों से स्वीकार किया गया है व आदित्यों से जपा (दुपहरी) का वृक्ष और अश्विनीकुमारों से मैनफल घिरा है ॥ ३४ ॥ और विश्वेदेवता महुवा वृक्षके आश्रित हैं व राक्षस गुग्गुलु वृक्षके आश्रित हैं और पवित्र सूर्यनारायण मदार वृक्षके आश्रित हैं व चन्द्रमा पलाश वृक्षके आश्रितहै ॥ ३५ ॥ और मंगल खैर वृक्ष के व बुध लटजीरा वृक्षके आश्रित हैं और बृहस्पति पीपल वृक्षके तथा शुक्र गूलर वृक्षके आश्रित हैं ॥ ३६ ॥ और शूद्रजातिवाले शनैश्चर ने शमी वृक्ष को स्वीकार किया है और पितरों के तर्पण के योग्य दूर्वा को राहुने स्वीकार किया है ॥ ३७ ॥ और दूर्वा विष्णु को सदैव प्यारी है व चातुर्मास्य में

वसुभिः स्वीकृतो नित्यं प्रियालश्च महानगः ॥ आदित्यैस्तु जपावृक्षो ह्यश्विभ्यां मदनस्तथा ॥ ३४ ॥ विश्वेभिश्च मधूकश्च गुग्गुलुः पिशिताशनैः ॥ सूर्येणार्कः पवित्रेण सोमेनाथ त्रिपत्रकः ॥३५॥ खदिरो भूमिपुत्रेण अपामार्गो बुधेन च॥ अश्वत्थो गुरुणा चैव शुक्रेणोदुम्बरस्तथा ॥ ३६ ॥ शमी शनैश्चरेणाथ स्वीकृता शूद्रजातिना ॥ राहुणा स्वीकृता दूर्वा पितॄणां तर्पणोचिता ॥ ३७॥ विष्णोश्च दयिता नित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ केतुना स्वीकृता दर्भा याज्ञिकेया महाफलाः ॥ ३८ ॥ विना येन शुभं कर्म संपूर्णं नैव जायते ॥ पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥ ३९ ॥ मुमूर्षूणां मोक्षरूपो धरासंस्थो महाद्रुमः ॥ अस्मिन्वसन्ति सततं ब्रह्मविष्णुशिवाः सदा ॥ ४० ॥ मूले मध्ये तथाग्रे च यस्य नामापि तृप्तिदम् ॥ अन्येपि देवा वृक्षांस्तानधिश्रित्य महाद्रुमान् ॥ ४१ ॥ प्रवर्तन्ते हि मासेषु चतुर्षु च न संशयः ॥ चातुर्मास्ये देवपत्न्यः सर्वावल्लीसमाश्रिताः ॥४२॥ प्रयच्छन्ति नृणां कामान् वाञ्छि

विशेषकर प्यारी है और बड़े फलवाले यज्ञ के वृक्षों को केतुने स्वीकार किया है ॥ ३८ ॥ जिसके विना शुभ कर्म संपूर्ण नहीं होताहै और पवित्रों के मध्यमें जो पवित्र है व मंगलों के मध्य में जो मंगल है ॥ ३९ ॥ व जो पृथ्वी में स्थित बड़ा भारी वृक्ष मनुष्योंके लिये मोक्षरूप है इस वृक्षमें सदैव ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी बसते हैं ॥ ४० ॥ और जिसके मूल, मध्य व अग्र भाग में नाम भी तृप्तिदायक है और अन्य भी देवता उन महावृक्षों के आश्रित होकर ॥ ४१ ॥ चारों महीनों में वर्तमान होते हैं इसमें सन्देह नहीं है व चातुर्मास्य में देवताओं की स्त्रियां सब लताओं में स्थित होती हैं ॥ ४२ ॥ और सेवन कियेहुए भी वृक्ष मनुष्यों

को चाहे हुए मनोरथोंको देते हैं इस कारण जिसने सब भांति से पिप्पल को सेवन किया है ॥ ४३ ॥ और विशेषकर चातुर्मास्यमें जिसने सब वृक्षोंको सेवन किया व जिसने तुलसी को सेवन किया तथा जिसने सब लताओं को सेवन किया है ॥ ४४ ॥ उसने ब्रह्म से लगाकर स्तंब पर्यन्त सब संसार को तृप्त करदिया और चातुर्मास्य में गृहस्थ था फिर वानप्रस्थ ॥ ४५ ॥ व ब्रह्मचारी और संन्यासी से सेवन की हुई तुलसी मोक्षदायिनी है व इन सब वृक्षोंका छेदन न करै ॥ ४६ ॥ व विशेषकर चातुर्मास्य में यज्ञादि कारण के विना वृक्षच्छेदन न करै तुमने जो मुझसे पूंछा यह सब कहा गया ॥ ४७ ॥ जिसप्रकार हे शूद्रज ! सब

तान्सेविता अपि ॥ तस्मात्सर्वात्मभावेन पिप्पलो येन सेवितः ॥ ४३ ॥ सेविताः सकला वृक्षाश्चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ तुलसी सेविता येन सर्ववल्ल्यश्च सेविताः ॥ ४४ ॥ आप्यायितं जगत्सर्वमाब्रह्मस्तम्बसेवितम् ॥ चातुर्मास्ये गृहस्थेन वानप्रस्थेन वा पुनः ॥ ४५ ॥ ब्रह्मचारियतिभ्यां च सेविता मोक्षदायिनी ॥ एतेषां सर्ववृक्षाणां छेदनं नैव कारयेत् ॥ ४६ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण विना यज्ञादिकारणम् ॥ एतदुक्तमशेषेण यत्पृष्टोहमिह त्वया ॥ ४७ ॥ यथा वृक्षत्वमापन्ना देवाः सर्वेऽपि शूद्रज ॥ ४८ ॥ अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दशतिन्तिडीश्च ॥ कपित्थबिल्वामलकीत्रयं च एतांश्च दृष्ट्वा नरकं न पश्येत् ॥ ४९ ॥ सर्वे देवा विश्ववृक्षेशयाश्च कृष्णाधारा कृष्णमध्याग्रकाश्च ॥ यस्मिन्देवे सेविते विश्वपूज्ये सर्वं तृप्तं जायते विश्वमेतत् ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये वृक्षमाहात्म्यकथनंनाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥

भी देवता वृक्षत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ४८ ॥ एक पीपल व एक नीम और एक बरगद तथा दश इमली और कैथा, बेल व आंवला के तीन वृक्ष इनको देखकर मनुष्य नरक को नहीं देखता है ॥ ४९ ॥ सब देवता सब वृक्षों में शयन करते हैं और कृष्ण आधार व कृष्ण मध्य तथा कृष्णाग्रभागी होते हैं कि संसार के पूजने योग्य जिन श्रीकृष्णजी के सेवित होनेपर यह सब ससार तृप्त होता है ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां वृक्षमाहात्म्यकथनंनाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । जिमि क्रोधित पार्वती कहँ समझायो शिवनाथ । इक्किसवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ शूद्र बोला कि क्रोधित पार्वती देवीजी को किस प्रकार त्रिशूलधारी शिवजी ने प्रसन्न किया है और वे शाप देकर गई हैं कि जिनके क्रोध से संसार क्षोभित होता है ॥ १ ॥ और किस प्रकार वे भगवान् रुद्रजी स्त्री के शाप को प्राप्त हुए हैं व किस भांति विकृत रूपको प्राप्त होकर फिर दिव्य शरीर को प्राप्त हुए हैं ॥ २ ॥ गालवजी बोले कि देवता लोग देवीजी के महाभय से अदृश्य रूपों को करके सब मनुष्यलोक में प्रतिमाओं में स्थित हुए ॥ ३ ॥ और विष्णुजी से स्तुति की हुई महाऐश्वर्यवती व पापनाशिनी उन जगदम्बिकाजी ने

शूद्र उवाच ॥ पार्वती कुपिता देवी कथं देवेन शूलिना ॥ प्रसादिता गता शप्त्वा यत्कोपात्क्षुभ्यते जगत् ॥ १ ॥ कथं स भगवान् रुद्रो भार्याशापमवाप ह ॥ वैकृतं रूपमासाद्य पुनर्दिव्यं वपुःश्रितः ॥ २ ॥ गालव उवाच ॥ देवा रूपाण्यदृश्यानि कृत्वा देव्या महाभयात् ॥ मनुष्यलोके सकले प्रतिमासु च संस्थिताः ॥ ३ ॥ तेषामपि प्रसन्ना सानुग्रहं समुपाकरोत् ॥ विष्णुस्तुता महाभागा विश्वमाताघनाशिनी ॥ ४ ॥ तेषां बलाच्च पार्वत्याः शापभारेण यन्त्रितः ॥ तां नित्यमेवानुनयन्नूचे सोवाच शङ्करम् ॥ ५ ॥ एते देवा विश्वपूज्या विश्वस्य च वरप्रदाः ॥ मत्प्रसादाद्भविष्यन्ति भक्तितस्तोषिता नरैः ॥ ६ ॥ त्वामृते मम कर्मेदं कृतं साधु विनिन्दितम् ॥ वेद्यां विवाहकाले च प्रत्यक्षं सर्वसाक्षिकम् ॥ ७ ॥ यत्सप्तमण्डलानां च गमनं च करार्पणम् ॥ वह्निश्च वरुणः कृष्णो देवताश्च सवासनाः ॥ ८ ॥ चतुर्दि

उन देवताओं के ऊपर भी प्रसन्न होकर अनुग्रह किया ॥ ४ ॥ और उनके बलसे व पार्वतीजीके शापके भारसे बँधेहुए शिवजीने उन पार्वतीजीको नित्य समझाते हुए कहा और उन्होंने शिवजी से कहा ॥ ५ ॥ कि भक्ति से मनुष्यों करके प्रसन्न करायेहुए ये देवता तुमको छोडकर मेरी प्रसन्नतासे संसारके पूजने योग्य व संसार को वरदायक होवैंगे ॥ ६ ॥ और साधुवों से निन्दित मेरा यह कर्म कियागया क्योंकि विवाह के समय में वेदी के समीप सबों के सामने ॥ ७ ॥ जो सात मण्डलों का गमन है व हाथ का अर्पण करना है और अग्नि, वरुण व कृष्ण और इन्द्रसमेत देवता ॥ ८ ॥ चारों दिशाओं के अंग संयुत व देवताओं तथा ब्राह्मणों समेत जो

महर्षि हैं इनके आगे मनुष्यों की सभा में शपथ करके सत्त्व में प्राप्त तुमने प्रमाद से कैसे व्यभिचार किया और सामान्य मनुजगणों की नाईं गुरुजन भी उत्तम मार्ग में नहीं वर्तमान होते हैं ॥ ९ । १० ॥ और जब सब मनुष्यों के मध्य में निग्रह करने योग्य होता है तब प्रबुद्ध सुना जाता है पुत्रसे भी पिता व शिष्य से भी आपही गुरु शासन करने योग्य है ॥ ११ ॥ और क्षत्रियों से ब्राह्मण व स्त्रीसे पति शिक्षा करने योग्य है व वेदान्तों के पारगामी श्रेष्ठ भी कुपथगामी मनुष्य को ॥ १२ ॥ नीच भी शिक्षा करते हैं ऐसा सनातनी श्रुतिने कहा है व सब कहीं उत्तममार्ग ही पूजा जाता है कुमार्ग कहीं नहीं पूजा जाता है ॥ १३ ॥ जिसने

क्ष्वङ्गसंयुक्ता देवब्राह्मणसंयुताः ॥ एतेषामग्रतो दिव्यं कृत्वा त्वं जनसंसदि ॥ ९ ॥ प्रमादात्सत्त्वमापन्नो व्यभिचारं कथं कृथाः ॥ गुरवोपि न सन्मार्गे प्रवर्त्तन्ते जनौघवत् ॥ १० ॥ निग्राह्यः सर्वलोकेषु प्रबुद्धः श्रूयते तदा ॥ पुत्रेणापि पिता शास्यः शिष्येणापि गुरुः स्वयम् ॥ ११ ॥ क्षत्रियैर्ब्राह्मणः शास्यो भार्यया च पतिस्तथा ॥ उन्मार्गगामिनं श्रेष्ठमपि वेदान्तपारगम् ॥ १२ ॥ प्रशासत्यधमाश्चापि श्रुतिराह सनातनी ॥ सन्मार्ग एव सर्वत्र पूज्यते नापथः क्वचित् ॥ १३ ॥ येन स्वकुलजो धर्मस्त्यक्तः स पतितो भवेत् ॥ मृतश्च नरकं प्राप्य दुःखभारेण युज्यते ॥ १४ ॥ धर्मं त्यजति नास्तिक्याज्ज्ञातिभेदमुपागतः ॥ स निग्राह्यः सर्वलोकैर्मनुधर्मपरायणैः ॥ १५ ॥ कुलधर्मान् ज्ञातिधर्मान् देशधर्मान् महेश्वर ॥ ये त्यजन्ति जना अवश्यं कुलाच्च पतिता हि ते ॥१६॥ अग्नित्यागो व्रतत्यागो वचनत्याग एव च ॥ धर्मत्यागो नैव कार्यः कुर्वन् पतित एव हि ॥ १७ ॥ न पिता न च ते माता न भ्राता स्वजनोऽपि

अपने वंश में उपजेहुए धर्मको छोड़ दिया वह पतित होता है और मराहुआ वह नरक को प्राप्त होकर दुःख के भारसे युक्त होता है ॥ १४ ॥ जाति के भेद को प्राप्त जो नास्तिकता से धर्म को छोड़ताहै वह मनुधर्म में परायण सब मनुष्यों से निग्रह करने योग्य है ॥ १५ ॥ हे महेश्वरजी ! जो मनुष्य कुलधर्म, ज्ञातिधर्म व देशधर्मोंको छोड़ते हैं वे अवश्यकर कुलसे पतित होते हैं ॥ १६ ॥ अग्नित्याग, व्रतत्याग व वचनत्याग और धर्म का त्याग न करना चाहिये व इनको त्याग करता हुआ मनुष्य पतित होता है ॥ १७ ॥ और न तुम्हारे पिताहै न तुम्हारे माता है और न भाई है व स्वजन भी तुम्हारी वार्ताको नहीं देखता है और विप

को खातेहुए तुम छूने के योग्य नहीं हो ॥ १८ ॥ व अस्थियों की माला और चिता भस्म व जटा को धारनेवाले, कुवसन, चपल व मर्याद को छोड़ेहुए तुम मेरे आगे स्थित होने योग्य नहीं हो ॥ १९ ॥ अब्रह्मण्य, व्रती, भिक्षु, दुष्टात्मा व सदैव कपटी ईश्वर तुम मेरे आगे संभाषण करने के योग्य नहीं हो ॥ २० ॥ इस प्रकार आंसुवों से विकल लोचनोंवाली वे रोती हुई पार्वती देवी देवेश शिवजी के समझाने पर महादुःख से संयुत हुईं ॥ २१ ॥ व फिर भी क्रोधित पार्वतीदेवीजीने शिवजीसे कहा कि तुम्हारे हृदयमें कोमलता नहींहै बरन सदैव कठिनता जानती हूं ॥ २२ ॥ और आसुर ब्राह्मणोंने जो कहाहै वह मुझको झूंठ जान पड़ता

च ॥ पश्यते तव वार्त्तां च अस्पृश्यस्त्वमदन्विषम् ॥ १८ ॥ अस्थिमाला चिताभस्मजटाधारी कुचैलवान् ॥ चपलो मुक्तमर्यादस्तस्थुं नार्हसि मेऽग्रतः ॥ १९ ॥ अब्रह्मण्यो व्रती भिक्षुर्दुष्टात्मा कपटी सदा ॥ नार्हसि त्वं मम पुरः संभाषयितुमीश्वरः ॥ २० ॥ एवं सा रुदती देवी बाष्पव्याकुललोचना ॥ महादुःखयुतैवासीद्देवेशेनुनयत्यपि ॥ २१ ॥ पुनरेव प्रकुपिता हरं प्रोवाच भामिनी ॥ तवार्जवं न हृदये काठिन्यं वेद्मि नित्यदा ॥ २२ ॥ ब्राह्मणैस्त्वासुरैरुक्तं तन्मृषा प्रतिभाति मे ॥ यस्मान्मयि महादुष्टभाव एव कृतस्त्वया ॥ २३ ॥ ब्राह्मणा वञ्चिता यस्माद्ब्राह्मणैस्त्वं हनिष्यसे ॥ एवमुक्त्वा भगवती पुनराह न किंचन ॥ २४ ॥ ईशः प्रसन्नवदनामुपचारैरथाकरोत् ॥ शनैर्नीतिमयैर्वाक्यैर्हेतुमद्भिर्महेश्वरः ॥ २५ ॥ प्रसन्नलोचनां ज्ञात्वा किंचित्प्राह हरस्ततः ॥ कोपेन कलुषं वक्त्रं पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ॥ २६ ॥ कस्मात्त्वं कुरुषे भद्रे युक्तमेव वचो न ते ॥ सर्वभूतदया कार्या प्राणिनां हि हितेच्छया ॥ २७ ॥ यद्यपीष्टो हि य

है हे महादुष्ट ! जिस लिये तुमने मुझमें बड़ा दुष्ट भाव किया ॥ २३ ॥ व जिस लिये ब्राह्मण वञ्चित हुए हैं उस कारण तुम ब्राह्मणों से मारे जावोगे ऐसा कह कर फिर भगवती ने कुछ नहीं कहा ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर महेश्वर शिवजी ने उपचारोंसे व धीरे २ हेतुमान् नीतिमय वचनों से प्रसन्नमुखी किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर कुछ प्रसन्ननयना जानकर शिवजी ने कहा कि हे भद्रे ! तुम किस कारण पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रभावान् मुखको क्रोधसे मलीन करती हो और तुम्हारा वचन योग्य नहीं है व प्राणियों के ऊपर हित की इच्छा से सब प्राणियों के ऊपर दया करना चाहिये ॥ २६ । २७ ॥ यद्यपि जिसको अर्थ प्रिय होता है

उसको पराई पीडा न करना चाहिये हे वरवर्णिनि ! सब संसार तुम्हारे पुत्र के समान है ॥ २८ ॥ हे अनघे ! सर्वरूपधारिणी तुम्हीं एक संसार के पूजने योग्य हो मैंने यदि निन्दित कर्म किया है तौ भी देवताओं के हित के लिये तुम्हारे पुत्र होगा इसमें सन्देह नहीं है अथवा मुझको तुम सब प्राणों से भी अधिक प्यारी हो ॥ २९ । ३० ॥ हे वरानने ! जो चाहती हो वैसेही तुम्हारे मनोरथों को मैं करूं उसको तुम प्रसन्नमुखी होकर कहो ॥ ३१ ॥ ऐसा कही हुई उन भगवती ने फिर शिवजी से कहा कि चातुर्मास्य प्राप्त होनेपर यदि महाव्रतधारी होकर ॥ ३२ ॥ देवताओं के सामने ताण्डवनृत्य करो व हे महेश्वर ! भलीभांति

स्यार्थो न कार्यं परपीडनम् ॥ जगत्सर्वं सुतप्रायं तवास्ति वरवर्णिनि ॥ २८ ॥ जगत्पूज्या त्वमेवैका सर्वरूपधरानघे ॥ मया यदि कृतं कर्मावद्यं देवहिताय वै ॥ २९ ॥ तथाप्येवं तव सुतो भविष्यति न संशयः ॥ अथवा मम सर्वेभ्यः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ ३० ॥ यदिच्छसि तथा कुर्यां तथा तव मनोरथान् ॥ प्रसन्नवदना भूत्वा कथयस्व वरानने ॥ ३१ ॥ इत्युक्ता सा भगवती पुनराह महेश्वरम् ॥ चातुर्मास्ये च संप्राप्ते महाव्रतधरो यदि ॥ ३२ ॥ देवतानां च प्रत्यक्षं ताण्डवं नर्तसे यदि ॥ पारयित्वा व्रतं सम्यग्ब्रह्मचर्यं महेश्वर ॥ ३३ ॥ मत्प्रीत्यै यदि देहार्द्धं वैष्णवं च प्रयच्छसि ॥ शापस्यानुग्रहं कुर्यां प्रसन्नवदना सती ॥ ३४ ॥ नान्यथा मम चित्तं त्वं विश्वासमनुगच्छति ॥ तच्छ्रुत्वा भगवांस्तुष्टस्तथेति प्रत्युवाच ताम् ॥ ३५ ॥ सापि हृष्टा भगवती शापस्यानुग्रहे वृता ॥ ३६ ॥ इदं पुराणं मनुजः शृणोति श्रद्धायुक्तो भेदबुद्ध्या दृढत्वम् ॥ तस्यावश्यं जीवितं सर्वसिद्धं मर्त्याः सत्याः तच्छ्रेयत्वं प्रयान्ति ॥ ३७ ॥ इत्येकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

ब्रह्मचर्यव्रत को पूर्ण कर ॥ ३३ ॥ यदि मेरी प्रीति के लिये विष्णुजी के आधे शरीर को देवो तो प्रसन्नमुखी होतीहुई मैं शाप का अनुग्रह करूंगी ॥ ३४ ॥ अन्यथा मेरा चित्त तुम्हारे ऊपर विश्वास को नहीं प्राप्त होता है उस वचन को सुनकर प्रसन्न होतेहुए भगवान् शिवजी ने उन पार्वतीजी से बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ ३५ ॥ और प्रसन्न होती हुई वे भगवती पार्वती भी शाप के अनुग्रह में संयुक्त हुई ॥ ३६ ॥ श्रद्धायुक्त जो मनुष्य अभेद बुद्धिसे इस पुराण को सुनता है उसका जीवित अवश्यकर दृढ़त्व व सब सिद्ध को प्राप्त होता है व मनुष्य लोग सत्य से उसकी आश्रयता को प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥ इत्येकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दो० । मंदर पर्वत पर यथा शिवजी ताण्डव कीन । बाइसवें अध्याय में सोई चरित नवीन ॥ शूद्र बोला कि हे सुव्रत ! यह तुम्हारा वचन मुझको आश्चर्य रूप जान पड़ता है और यद्यपि कहते हुए तुमको बड़ा क्लेश होता है ॥ १ ॥ तथापि मेरे भाग्य से व मेरे पुण्यों से तुम मेरे घरको प्राप्त हुए हो फिर विशेष गुणों से पूरित गौरीजी के कथानकरूप तुम्हारे मुख से निकले हुए वचनरूपी अमृत को पीताहुआ मैं तृप्त नहीं होता हूं कि देवताओं से घिरे हुए शिवजी ने कैसे नृत्य कियाहै ॥ २।३ ॥ व चातुर्मास्य में वह कैसे हुआ और कौन ग्राह्यव्रत कहा जाताहै व उन पार्वतीजीने कैसे अनुग्रह किया व कौन अनुग्रहहै ॥ ४ ॥ हे

शूद्र उवाच ॥ इदमाश्चर्यरूपं मे प्रतिभाति वचस्तव ॥ यद्यपि स्यान्महाक्लेशो वदतस्तव सुव्रत ॥ १ ॥ तथापि मम भाग्येन मत्पुण्यैर्मद्गृहं गतः ॥ न तृप्ये त्वन्मुखाम्भोजाच्च्युतवाक्यामृतं पुनः ॥ २ ॥ पिबन् गौरीकथाख्यानं विशेषगुणपूरितम् ॥ कथं महेश्वरो नृत्यं चकार सुरसंवृतः ॥ ३ ॥ चातुर्मास्ये कथं जातं किं ग्राह्यं व्रतमुच्यते ॥ अनुग्रहं कृतवती सा कथं को ह्यनुग्रहः ॥ ४ ॥ एतद्विस्तरतो ब्रूहि पृच्छतो मे द्विजोत्तम ॥ भगवान् पूज्यते लोके ममानुग्रहकारकः ॥ ५ ॥ प्रसन्नवदनो भूत्वा स्वस्थः कथय सुव्रत ॥ गालवश्चापि तच्छ्रुत्वा पुनराह प्रहृष्टवान् ॥ ६ ॥ गालव उवाच ॥ इतिहासमिमं पुण्यं कथयामि तवानघ ॥ शृणुष्वावहितो भूत्वा यज्ञायुतफलप्रदम् ॥ ७ ॥ चातुर्मास्येऽथ संप्राप्ते हरो भक्तिसमन्वितः ॥ ब्रह्मचर्यव्रतपरः प्रहृष्टवदनोभवत् ॥ ८ ॥ देवतानामथाह्वानं स हर्षीणां चकार ह ॥ समागत्य ततो देवा मन्दराचलमास्थिताः ॥ ९ ॥ प्रणम्य ते महेशानं तस्थुः प्राञ्जलयोग्रतः ॥

द्विजोत्तम ! पूंछते हुए मुझसे इसको विस्तार से कहिये क्योंकि मेरे ऊपर दया करनेवाले शिवजी संसार में पूजेजाते हैं ॥ ५ ॥ हे सुव्रत ! स्वस्थ होतेहुए तुम प्रसन्नमुख होकर कहो गालवजी ने भी उसको सुनकर प्रसन्न होकर फिर कहा ॥ ६ ॥ गालवजी बोले कि हे अनघ ! इस पवित्र इतिहास को मैं तुमसे कहताहूं सावधान होकर तुम दश हज़ार यज्ञों के फल को देनेवाले इस चरित्रको सुनो ॥ ७ ॥ कि चातुर्मास्य प्राप्त होनेपर ब्रह्मचर्यव्रत में परायण व भक्ति से संयुत शिवजी प्रसन्नमुख हुए ॥ ८ ॥ और उन्होंने देवताओं व महर्षियों को बुलाया तदनन्तर देवता मंदराचल पै आकर स्थित हुए ॥ ९ ॥ और वे शिवजी को प्रणामकर

हाथों को जोडकर आगे स्थित हुए और शिवजी ने उन सब आयेहुए देवताओं को देखकर कहा ॥ १० ॥ व किसी कार्य के मध्य में पार्वतीजी से कहेहुए वचन को कहा कि मुझसे नियुक्त भी इस अभिनय (नृत्य के विषय) में इन्द्रआदिक देवता चातुर्मास्य प्राप्त होनेपर सहायकारी होवैं उन प्रसन्न इन्द्रादिक देवताओं ने त्रिशूलधारी शिवजी को प्रणाम कर बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ ११ । १२ ॥ और सूर्य के समान विमानों के द्वारा वे देवता अपने अपने मन्दिर को चलेगये और आषाढ़ में शुक्ल पक्षमें चतुर्दशी तिथि में शिवजी ने ॥ १३ ॥ पार्वतीजी की प्रसन्नता के लिये पर्वतों में श्रेष्ठ मंदराचल पै नृत्य करने का प्रारम्भ किया और

तानुवाच सुरान् सर्वान् हरो दृष्ट्वा समागतान् ॥ १० ॥ पार्वत्याभिहितं प्राह कस्मिन् कार्यान्तरे सति ॥ मया नियुक्तेऽभिनयेप्यत्र साहाय्यकारिणः ॥ ११ ॥ भवन्त्विन्द्रपुरोगाश्च चातुर्मास्ये समागते ॥ ते तथोचुश्च संहृष्टा नमस्कृत्य च शूलिनम् ॥ १२ ॥ स्वं स्वं भवनमाजग्मुर्विमानैः सूर्यसन्निभैः ॥ तथाषाढे शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां महेश्वरः ॥ १३ ॥ प्रनर्तयितुमारेभे भवानीतोषणाय च ॥ मन्दरे पर्वतश्रेष्ठे तत्र जग्मुर्महर्षयः ॥ १४ ॥ नारदो देवलो व्यासः शुकद्वैपायनादयः ॥ अङ्गिराश्च मरीचिश्च कर्दमश्च प्रजापतिः ॥ १५ ॥ कश्यपो गौतमश्चात्रिर्वसिष्ठो भृगुरेव च ॥ जमदग्निस्तथोत्तङ्को रामो भार्गव एव च ॥ १६ ॥ अगस्त्यश्च पुलोमा च पुलस्त्यः पुलहस्तथा ॥ प्रचेताश्च क्रतुश्चैव तथैवान्ये महर्षयः ॥ १७ ॥ सिद्धा यक्षाः पिशाचाश्च चारणाश्चारणैः सह ॥ आदित्या गुह्यकाश्चैव साध्याश्च वसवोऽश्विनौ ॥ १८ ॥ एते सर्वे तथेन्द्राद्या ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ समाजग्मुर्महेशस्य नृत्यदर्शनलालसाः ॥ १९ ॥

वहां महर्षिलोग आये ॥ १४ ॥ नारद, देवल, व्यास, शुक, द्वैपायनादिक, अङ्गिरा, मरीचि व कर्दम प्रजापति ॥ १५ ॥ कश्यप, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ, भृगु, जमदग्नि, उत्तङ्क व भार्गव परशुरामजी ॥ १६ ॥ व अगस्त्य, पुलोमा, पुलस्त्य, पुलह, प्रचेता, क्रतु व अन्य महर्षि लोग ॥ १७ ॥ और सिद्ध, यक्ष, पिशाच, चारण और चारणों समेत आदित्य, गुह्यक, साध्य, वसु व अश्विनीकुमार ॥ १८ ॥ ये सब और ब्रह्मा, विष्णु अग्रगामी वाले इन्द्रादिक देवता शिवजी के

नृत्यदर्शन की लालसा करके आये ॥ १६ ॥ तदनन्तर नन्दि आदिक गणों ने मुनि आदिकों के लिये क्रमपूर्वक रत्नों को दिया और भूषणों व वस्त्रों को दिया ॥ २० ॥ तदनन्तर सब ओर हज़ारों बाजों के बाजने पर सबसे जय ऐसा कहे हुए भगवान् शिवजी व्रत में प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ और प्रसन्न मनवाली पार्वतीजी ने महादेवजी को देखा और जया, विजया, जयन्ती व मंगलारुणा ॥ २२ ॥ इन चार सखियों के मध्यमें उत्तममुखी पार्वतीजी शोभित हुईं और उनकी समीपता के योग से संसार अधिक गुणवाला शोभित होता है ॥ २३ ॥ व जिसके शरीर से उपजी हुई शोभा नहीं कही जासक्ती है और अनेक भाति के मुखोंवाले

ततो गणा नन्दिमुखा रत्नानि प्रददुस्तथा ॥ भूषणानि च वासांसि मुन्यादिभ्यो यथाक्रमम् ॥ २० ॥ ततो वाद्य सहस्रेषु वादितेषु समन्ततः ॥ सर्वैर्जयेति चैवोक्तो भगवान् व्रतमाविशत् ॥ २१ ॥ भवानी हृष्टहृदया महादेवं व्यलोकयत् ॥ जया च विजया चैव जयन्ती मङ्गलारुणा ॥ २२ ॥ चतुष्टयसखीमध्ये विरराज शुभानना ॥ तस्याः सान्निध्ययोगेन जगद्भाति गुणोत्तरम् ॥ २३ ॥ यस्याः शरीरजा शोभा वर्णितुं नैव शक्यते ॥ ईशोऽपि गणकोटीभिर्नानावक्त्राभिरीक्षितः ॥ २४ ॥ पिशाचभूतसंघैश्च वृतः परमशोभनः ॥ स्वर्णवेत्रधरो नन्दी बभौ कपिमुखोऽग्रतः ॥२५॥ विद्याधराश्च गन्धर्वाश्चित्रसेनादयस्तथा ॥ चित्रन्यस्ता इव बभुस्तत्र नागा मुनीश्वराः ॥ २६ ॥ श्रीरागप्रमुखा रागास्तस्य पुत्रा महौजसः ॥ अमूर्त्ताश्चैव ते पुत्रा हरदेहसमुद्भवाः ॥ २७ ॥ एकैकस्य च षट् भार्याः सर्वासां च पितामहः ॥ ताभिः सहैव ते रागा लीलावपुर्धरास्तथा ॥ २८ ॥ प्रादुर्बभूवुः सहसा चिन्तितास्तेन शम्भुना ॥

करोड़ों गणों ने शिवजी को देखा ॥ २४ ॥ और अनेक भूतगणों से घिरे व सोने के बेत को धारणकिये बहुतही शोभन वानरमुखवाले नन्दी आगे शोभित हुए ॥ २५ ॥ और विद्याधर व सुचित्रसेनादिक गन्धर्व और नाग व मुनीश्वर वहां चित्रन्यस्त याने तसवीर में खींचेहुएकी नाईं शोभित हुए ॥ २६ ॥ और श्री राग इत्यादिक राग व उसके बड़े पराक्रमी पुत्र और वे बिन शरीरवाले पुत्र जो शिवजी के शरीर से उत्पन्न हुए हैं ॥ २७ ॥ व एक एक की छा स्त्रिया और सबोंके पितामह व उन समेत वे लीला से शरीर धारनेवाले राग ॥ २८ ॥ यकायक उन शिवजी से ध्यान किये हुए प्रकट हुए हे महाधन ! उनके नामों

को मैं तुमसे कहताहूं सुनिये ॥ २६ ॥ कि शिवजीका जो पहला श्रीरागविमोहन पुत्र था परब्रह्मको देनेवाले उसने भौंहों के बीच में स्थित किया ॥ ३० ॥ व महेशजी से उनके मध्य का उत्तम गण उत्पन्न हुआ इसके अनन्तर कटि के स्थान से बड़ा यशस्वी वसंत हुआ ॥ ३१ ॥ और प्राणियों के विशुद्ध चक्र से महदंक हुआ व संसार का भूषणरूप तीसरा पञ्चम नामक पुत्र हुआ ॥ ३२ ॥ व शिवजी के हृदय से अनाहतचक्र हुआ और नासिका के स्थान से आपही भयंकर भैरव पुत्र पैदाहुआ ॥ ३३ ॥ व मणिपूरक नामक जो यह चक्रहै वह मुक्तिको देनेवाला है और शिवजी से पचास वर्ण अंक नामक हुए ॥ ३४ ॥ और

तेषां नामानि ते वच्मि शृणुष्व त्वं महाधन ॥ २६ ॥ श्रीरागः प्रथमः पुत्र ईश्वरस्य विमोहनः ॥ आसां चक्रे भ्रुवोर्मध्ये परब्रह्मप्रदायकः ॥ ३० ॥ तन्मध्यश्चैव माहेशात्समुद्भूतो गणोत्तमः ॥ द्वितीयोथ वसन्तोभूत्कटिदेशान्महायशाः ॥ ३१ ॥ महदङ्कश्च भूतानां चक्राच्चैव विशुद्धतः ॥ पञ्चमस्तु तृतीयोभूत्सुतो विश्वविभूषणः ॥ ३२ ॥ महेश्वरहृदो जातं चक्रं चैवमनाहतम् ॥ नासादेशात्समुद्भूतो भैरवो भैरवः स्वयम् ॥ ३३ ॥ मणिपूरकनामेदं चक्रं तद्धि विमुक्तिदम् ॥ पञ्चाशच्च तथा वर्णा अङ्का नाम महेश्वरात् ॥ ३४ ॥ राशयो द्वादश तथा नक्षत्राणि तथैव च ॥ स्वाधिष्ठानसमुद्भूता जगद्बीजसमन्विताः ॥ ३५ ॥ क्षणेन वृद्धिमायान्ति ततो रेतः प्रवर्तते ॥ रेतसस्तु जगत्सृष्टं नन्दीशजननेन्द्रियम् ॥ ३६ ॥ आधाराच्च महान्षष्ठो नटो नारायणोभवत् ॥ महेशवल्लभः पुत्रो नीलो विष्णुपराक्रमः ॥ ३७ ॥ एते मूर्तिधरा रागा जाता भार्यासहायिनः ॥ भार्यास्तेषां समुद्भूताः शिरोभागात्पिनाकिनः ॥ ३८ ॥ षट्त्रिं

बारह राशियां व नक्षत्र हुए और अपने अधिष्ठान से उत्पन्न तथा संसार के बीज से संयुत वे ॥ ३५ ॥ क्षण भरमें वृद्धिको प्राप्तहोते हैं तदनन्तर वीर्य प्रवृत्त होता है और वीर्य से नन्दीशजनन व इन्द्रियात्मक संसार रचागया ॥ ३६ ॥ व आधार से छठा बड़ा भारी नारायण नट हुआ और विष्णु के समान बलवाला नील पुत्र शिवजी को प्रिय हुआ ॥ ३७ ॥ स्त्रीसहायवाले ये राग मूर्तिधारी उत्पन्न हुए और उनकी स्त्रियां शिवजी के मस्तक के भाग से उत्पन्न हुईं ॥ ३८ ॥

जोकि छत्तीस संख्यक हैं इस कारण तुम उनको सुनो कि गौरी, कोलाहली, धीरा, द्राविड़ा व मालकौशिकी ॥ ३९ ॥ और छठीं देवगान्धारी हैं ये श्रीरागकी स्त्रियां हैं और आन्दोला, कौशिकी व चरममंजरी ॥ ४० ॥ और गंडागिरी, देवशाखा व रागगिरि ये स्त्रियां वसन्त राग को प्राप्त हुईं और त्रिगुणा, स्तंभतीर्था, अहिरी व कुंकुमा ॥ ४१ ॥ और वैराटी, सामबेरी ये छः स्त्रियां पञ्चम रागमें मानी गई हैं और भैरवी, गुर्जरी, भाषा व वेलागुली ॥ ४२ ॥ और कर्णाटकी व रक्तहंसा ये छः स्त्रियां भैरवकी अनुगामिनी हुईं और बंगाली, मधुरा, कामोदा व अक्षिनारिका ॥ ४३ ॥ व देवगिरी और देवाली ये मेघराग की अनुगामिनी हुईं

शतपरिमाणेन ततस्तास्त्वं निशामय ॥ गौरी कोलाहली धीरा द्राविडी मालकौशिकी ॥ ३९ ॥ षष्ठी स्याद्देवगान्धारी श्रीरागस्य प्रिया इमाः ॥ आन्दोला कौशिकी चैव तथा चरममञ्जरी ॥ ४० ॥ गण्डगिरीदेवशाखारामगिरीवसन्तगाः ॥ त्रिगुणा स्तम्भतीर्था च अहिरी कुङ्कुमा तथा ॥ ४१ ॥ वैराटी सामवेरी च षड्भार्याः पञ्चमे मताः ॥ भैरवी गुर्जरी चैव भाषा वेलागुली तथा ॥ ४२ ॥ कर्णाटकी रक्तहंसा षड्भार्या भैरवानुगाः ॥ बंगाली मधुरा चैव कामोदा चाक्षिनारिका ॥ ४३ ॥ देवगिरी च देवाली मेघरागानुगा इमाः ॥ त्रोटकी मोडकी चैव नरा दुम्बी तथैव च ॥ ४४ ॥ मल्हारी सिन्धुमल्हारी नटनारायणानुगाः ॥ एता हि गिरिशं नत्वा महेशं च महेश्वरीम् ॥ ४५ ॥ स्वमूर्त्तिवाहनोपेताः स्वभर्तृसहिताः स्थिताः ॥ ब्रह्मा मृदङ्गवाद्येन तोषयामास शङ्करम् ॥ ४६ ॥ चतुरक्षरवाद्येन सुवाद्यं चाकरोत्पुनः ॥ तालक्रियां महेशाय दर्शयामास केशवः ॥ ४७ ॥ वायवस्तत्र वाद्यं च चक्रुः सुस्वरमोजसा ॥ महेन्द्रो वंशवाद्यं च

और त्रोटकी, मोडकी, नरा, दुंबी ॥ ४४ ॥ और मल्हारी व सिन्धुमल्हारी ये नट नारायणकी अनुगामिनी स्त्रियां हुईं ये शिवजी को व पार्वतीजी को प्रणाम कर ॥ ४५ ॥ अपनी मूर्त्ति व सवारी से संयुत और अपने पतियों समेत स्थित हुईं और ब्रह्माजी ने मृदंग के वाद्य से शिवजी को प्रसन्न किया ॥ ४६ ॥ फिर चार अक्षरों के बजाने से सुवाद्य किया और विष्णुजी ने शिवजी के लिये ताल की क्रिया को दिखाया ॥ ४७ ॥ और वहां पवनोंने पराक्रम से वाद्य को सुस्वर किया

और महेन्द्र ने बांसुरी के बाजा को बहुत उत्तम स्वरवान् किया ॥ ४८ ॥ और अग्निने सूप का शब्द किया व अश्विनीकुमार देवताओं ने पणववादन किया और चन्द्रमा व सूर्य ने सब ओर से उपाग वादन किया ॥ ४९ ॥ और सैकडों व हज़ारों गणों ने घंटाओं को बजाया और मुनीश्वर लोग व पार्वती समेत देवियां ॥ ५० ॥ और ये देवता सिंहासनों के ऊपर बैठकर देखने लगे और महानागों समेत वसुवों ने शृंगों को बजाया ॥ ५१ ॥ और साध्य देवताओं ने भेरी ध्वनि किया व अन्य देवताओं ने बाजनों को बजाया व साध्य देवताओं ने महोत्सव में झर्झरी व गोमुखादिक बाजनों को बजाया ॥ ५२ ॥ व मीठे स्वरवाले गधर्व

सुगिरं सुस्वरं बहु ॥ ४८ ॥ वह्निः शूर्परवं चक्रे पणवं च तथाश्विनौ ॥ उपाङ्गवादनं चक्रे सोमः सूर्यः समन्ततः ॥ ४९ ॥ घण्टानां वादनं चक्रुर्गणाः शतसहस्रशः ॥ मुनीश्वरास्तथा देव्यः पार्वतीसहितास्तथा ॥ ५० ॥ स्वर्णभद्रासनेष्वेते ह्युपविष्टा व्यलोकयन् ॥ शृङ्गाणां वादनं चक्रुर्वसवः समहोरगाः ॥ ५१ ॥ भेरीध्वनिं तथासाध्या वाद्यान्यन्ये सुरोत्तमाः ॥ झर्झरीगोमुखादीनि साध्याश्चक्रुर्महोत्सवे ॥ ५२ ॥ तन्त्रीलयसमायुक्ता गन्धर्वा मधुरस्वराः ॥ सुवर्णशृङ्गनादं च चक्रुः सिद्धाः समन्ततः ॥ ५३ ॥ ततस्तु भगवानासीन्महानटवपुर्धरः ॥ मुकुटाः पञ्चशीर्षे तु पन्नगैरुपशोभिताः ॥ ५४ ॥ जटा विमुच्य सकला भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥ बाहुभिर्दशभिर्युक्तो हारकेयूरसंयुतः ॥ ५५ ॥ त्रैलोक्यव्यापकं रूपं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ कृत्वा ननर्त भगवान् भासुरं स महानगे ॥ ५६ ॥ ततं वीणादिकं वाद्यं कांस्यतालादिकं घनम् ॥ वंशादिकं तु वादित्रं तोमरादि च नामकम् ॥ ५७ ॥ चतुर्विधं ततो वाद्यं तुमुलं समजायत ॥

लोग तंत्री के लयसे संयुत हुए व सिद्धों ने सब ओर सुवर्णशृंग का नाद किया ॥ ५३ ॥ तदनन्तर भगवान् शिवजी महानट के शरीरधारी हुए और पांच सरतकों में नागों से मुकुट शोभित हुए ॥ ५४ ॥ और सब जटाओंको छोड़कर हार व बजुल्ला से संयुत तथा दश भुजाओं से युक्त व भस्मको शरीर में लगाये हुए ॥ ५५ ॥ उन भगवान् शिवजी ने करोड सूर्योंके समान प्रभावान् व त्रिलोक में व्यापक प्रकाशमान रूपको करके महापर्वत पै नृत्य किया ॥ ५६ ॥ वीणादिक वाद्य तत है व कांस्य तालादिक घन है और वशादिक वादित्र है व तोमरादिक नामक है ॥ ५७ ॥ तदनन्तर चार प्रकार बड़ा भारी वाद्य हुआ और पटहादिक तालों का व

हस्तकादिकों का ॥ ५८॥ व मानों और तानों का प्रत्यक्ष रूप शोभित हुआ और बड़ा गंभीर व महाशब्द तथा सुकण्ठ और सुस्वर प्रत्यक्षरूप हुआ ॥ ५६ ॥ और विश्वावसु, नारद, तुंबुरु व मीठे स्वरवाले गन्धर्वपति गायक और अप्सरा गानेलगीं ॥ ६० ॥ और वहां तीन ग्रामों से संयुत तथा सात स्वरों से युक्त और दिव्य व शुद्ध और सांकल्य गान वर्तमान हुआ ॥ ६१ ॥ और वहां शिवजी के चरणतल से ताड़ित पर्वत ने भी पुरों व वनों समेत पृथ्वी को भ्रमियों (चक्करों) से घुमाते हुए, बड़ा शब्द किया ॥ ६२ ॥ और उन सदाशिवजी ने चौरासी हाथों को रचा व मस्तक के पसीने से सूत, मागध व वंदी उत्पन्न हुए ॥ ६३ ॥ और शिवजी के

तालानां पटहादीनां हस्तकानां तथैव च ॥ ५८ ॥ मानानां चैव तानानां प्रत्यक्षं रूपमावभौ ॥ सुकण्ठं सुस्वरं मुक्तं सु गम्भीरं महास्वनम् ॥ ५६ ॥ विश्वावसुर्नारदश्च तुम्बुरुश्चैव गायकाः ॥ जगुर्गन्धर्वपतयोऽप्सरसो मधुरस्वराः ॥ ६० ॥ ग्रामत्रयसमोपेतं स्वरसप्तकसंयुतम् ॥ दिव्यं शुद्धं च सांकल्यं तत्र गेयमवर्तत ॥ ६१ ॥ पर्वतोऽपि महानादं हरपादतलाहतः ॥ भ्रमीभिर्भ्रमयंस्तत्र महीं सपुरकाननाम् ॥ ६२ ॥ हस्तकांश्चतुराशीतिं स ससर्ज सदाशिवः ॥ ललाटफलकस्वेदात्सूतमागधवन्दिनः ॥ ६३ ॥ महेशहृदयाज्जाता गन्धर्वा विश्वगायकाः ॥ ते मूर्त्ता देवदेवस्य सुरङ्गा लयसंयुताः ॥ ६४ ॥ प्रेक्षकाणामृषीणां च चक्रुराश्चर्यमोजसा ॥ किन्नराः पुष्पवर्षाणि ससृजुः स्वैर्गुणैरिह ॥ ६५ ॥ एवं चतुर्षु मासेषु यदा नृत्यमजायत ॥ अतिक्रान्ता शरज्जाता निर्मलाकाशशोभिता ॥ ६६ ॥ पद्मखण्डसमाच्छन्नसरोवरमुखाम्बुजा ॥ फलवृक्षौषधीभिश्च किंचित्पाण्डुमुखच्छविः ॥ ६७ ॥ ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां प्रसन्ना

हृदय से संसार के गानेवाले गन्धर्व उत्पन्न हुए और मूर्तिधारी वे सुरंग व लय से संयुत होकर ॥ ६४ ॥ पराक्रम से देखनेवालों व ऋषियों को आश्चर्य किया और किन्नरों ने अपने गुणों से यहां पुष्पवर्षों को रचा ॥ ६५ ॥ इस प्रकार जब चार महीनों में नृत्य हुआ तब वर्षा बीतगई व निर्मल आकाश से शोभित शरद् ऋतु प्राप्त हुई ॥ ६६ ॥ जो कि कमलसमूह से आच्छादित तड़ागरूपी मुखकमलवाली व फल, वृक्ष और औषधियों से पाण्डु मुखकी छविवाली थी ॥ ६७ ॥ तब

कातिक महीने के शुक्ल पक्षकी चौदसि में पार्वतीजी प्रसन्न हुईं और उस समय समाप्त व्रतचर्यावाले शिवजी भी शोभित हुए ॥ ६८ ॥ तब प्रफुल्लित स्वर व लोचनोंवाली पार्वतीजी ने शिवजी से कहा कि जब ब्राह्मणों के शाप से लिङ्ग पातित होगा ॥ ६९ ॥ तब नर्मदा के जल से उत्पन्न वह संसार से पूजने योग्य होगा ऐसा कहकर तदनन्तर प्रसन्न होतीहुई पार्वती ने शिवजी की स्तुति किया ॥ ७० ॥ कि देवदेव आप मौली महादेवजी के लिये प्रणाम है और संसार के धारनेवाले, सविता, शंकर व शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ ७१ ॥ और कपर्दी, अजपाद व ब्रह्मगर्भ तुम्हारे लिये प्रणाम है और आप हिरण्यरेता व नील-

गिरिजातदा ॥ समाप्तव्रतचर्यः स ईश्वरोपि तदा बभौ ॥ ६८ ॥ सा चोवाच तदा शम्भुं विकचस्वरलोचना ॥ विप्र शापपातितं च यदा लिङ्गं भविष्यति ॥ ६९ ॥ नर्मदाजलसंभूतं विश्वपूज्यं भविष्यति ॥ एवमुक्त्वा ततस्तुष्टा हर स्तोत्रं चकार ह ॥ ७० ॥ नमस्ते देवदेवाय महादेवाय मौलिने ॥ जगद्धात्रे सवित्रे च शङ्कराय शिवाय च ॥ ७१ ॥ कपर्दिनेऽजपादाय ब्रह्मगर्भाय ते नमः ॥ हिरण्यरेतसे तुभ्यं नीलग्रीवाय ते नमः ॥ ७२ ॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय सित भूतिधराय च ॥ पञ्चवक्त्राय रूपाय निरूपाय नमोनमः ॥ ७३ ॥ सहस्राक्षाय शुभ्राय नमस्ते कृत्तिवाससे ॥ अन्ध कासुरमोक्षाय पशूनां पतये नमः ॥ ७४ ॥ विप्रवह्निमुखाग्राय हराय च भवाय च ॥ शङ्कराय महेशाय ईश्वराय नमोनमः ॥ ७५ ॥ अमूर्त्तब्रह्मरूपाय मूर्त्तानां भावनाय च ॥ नमः शिवाय चोग्राय हराय च भवाय च ॥ ७६ ॥

ग्रीव आपके लिये प्रणाम है ॥ ७२ ॥ और ब्रह्मण्य देव व श्वेत भूतिधारी आपके लिये प्रणाम है और पञ्चमुखरूप व निरूप के लिये प्रणाम है ॥ ७३ ॥ व शुभ्र सहस्राक्ष तथा कृत्तिवासजी के लिये नमस्कार है और अन्धकासुर को छुड़ानेवाले तथा पशुवों के पति के लिये प्रणाम है ॥ ७४ ॥ और ब्राह्मण व अग्नि के मुखाग्र भाग के लिये व हर और भवजी के लिये नमस्कार है व शंकर, महेश और ईश्वरजी के लिये बार २ प्रणाम है ॥ ७५ ॥ और अमूर्त ब्रह्मरूप के लिये व मूर्तों के उत्पन्न करनेवाले के लिये प्रणाम है और शिव, उग्र, हर व भवजी के लिये प्रणाम है ॥ ७६ ॥ और कृष्ण, शर्व व त्रिपुरान्तकहारी के

लिये प्रणाम है व आप अघोर के लिये प्रणाम है व आप पुरुष के लिये प्रणाम है ॥ ७७ ॥ व सद्योजात आपके लिये तथा वामदेव आपके लिये प्रणाम है और ईशान आपके लिये व पञ्चास्य तथा कपाली आपके लिये प्रणाम है ॥ ७८ ॥ व विरूपाक्ष, भाव तथा भग नेत्रनिपाती के लिये प्रणाम है और पूषा के दन्त तोड़ने वाले के लिये व महायज्ञनिपाती के लिये प्रणाम है ॥ ७९ ॥ व मृगव्याध, धर्म, कालचक्र व चक्री के लिये प्रणाम है व महापुरुषों से पूजने योग्य तथा गणों के स्वामी के लिये प्रणाम है ॥ ८० ॥ और आप गंगाधरजी के लिये व भवानी का प्रिय करनेवाले के लिये नमस्कार है व संसार को आनन्द देनेवाले आप ब्रह्मरूपी

नमः कृष्णाय शर्वाय त्रिपुरान्तकहारिणे ॥ अघोराय नमस्तेस्तु नमस्ते पुरुषाय ते ॥ ७७ ॥ सद्योजाताय तुभ्यं भो वामदेवाय ते नमः ॥ ईशानाय नमस्तुभ्यं पञ्चास्याय कपालिने ॥ ७८ ॥ विरूपाक्षाय भावाय भगनेत्रनिपातिने ॥ पूषदन्तनिपाताय महायज्ञनिपातिने ॥ ७९ ॥ मृगव्याधाय धर्माय कालचक्राय चक्रिणे ॥ महापुरुषपूज्याय गणानां पतये नमः ॥ ८० ॥ गङ्गाधराय भवते भवानीप्रियकारिणे ॥ जगदानन्ददात्रे च ब्रह्मरूपाय ते नमः ॥ ८१ ॥ गुणातीताय गुणिने सूक्ष्माय गुरवेपि च ॥ नमो महास्वरूपाय भस्मनो जन्मकारिणे ॥ ८२ ॥ वैराग्यरूपिणे नित्यं योगाचार्याय वै नमः ॥ मयोक्तमप्रियं देव स्मरसंहारकारक ॥ ८३ ॥ क्षन्तुमर्हसि विश्वेश शिरसा त्वां प्रसादये ॥ शापानुग्रह एवैष कृतस्ते वै न संशयः ॥ ८४ ॥ ममापराधजो मन्युर्न कार्यो भवताऽनघ ॥ एवं प्रसादितः शम्भुर्हृष्टात्मा त्रिदशैः सह ॥ ८५ ॥ तीर्णव्रतपरानन्दनिर्भरः प्राह तामुमाम् ॥ य इमां मत्स्तुतिं भक्त्या पठिष्यति

के लिये प्रणाम है ॥ ८१ ॥ और गुणों से परे, गुणी, सूक्ष्म व गुरुके लिये भी प्रणाम है व महास्वरूप के लिये तथा भस्म के जन्मकारी के लिये प्रणाम है ॥ ८२ ॥ व नित्य वैराग्यरूपी और योगाचार्य के लिये नमस्कार है हे कामदेवसंहारकारक, विश्वेश, देव ! मुझसे कहेहुए अप्रिय को तुम क्षमा करने के योग्य हो मैं तुमको मस्तक से प्रणाम करती हूं और यह तुम्हारा शापानुग्रह कियागया इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८३ । ८४ ॥ व हे अनघ ! मेरे अपराध से उपजा हुआ क्रोध तुमको न करना चाहिये इस प्रकार प्रसन्न कराये हुए शिवजी देवताओं समेत प्रसन्नचित्त हुए ॥ ८५ ॥ और व्रतको समाप्त कियेहुए बड़े आनन्द से पूर्ण

उन शिवजीने उन पार्वतीजी से कहा कि तुमसे कही हुई इस मेरी स्तुतिको जो भक्ति से पढ़ैगा हे पार्वति ! उसके प्रिय का वियोग न होगा ॥ ८६ ॥ और तीन जन्मों तक धनों से संयुत व सब रोगोंसे रहित होकर इस लोक में अनेक प्रकार के सुखोंको भोगकर अन्त में मेरे पुरको जावैगा ॥ ८७ ॥ उन पार्वतीजी से ऐसा कहकर तदनन्तर शिवजीने भी अपने अगको दिया और उन पार्वतीजीने विष्णुजीवाले वाम भागको ग्रहण किया ॥ ८८ ॥ और आधा शिवजीका रूप कपाल-हस्त व आधी ग्रीवा विष से संयुत हुई व मुण्डमाला और आधे में हार व सब ओर सित तथा गौर था ॥ ८९ ॥ और करोड ब्रह्माण्डों को उत्पन्न करनेवाला तथा

तवोद्गताम् ॥ तस्य चेष्टवियोगश्च न भविष्यति पार्वति ॥ ८६ ॥ जन्मत्रयं धनैर्युक्तः सर्वव्याधिविवर्जितः ॥ भुक्त्वेह विविधान् भोगानन्ते यास्यति मत्पुरम् ॥ ८७ ॥ इत्युक्त्वा तां महेशोपि स्वमङ्गं प्रददौ ततः ॥ वैष्णवं वाम भागं सा प्रतिजग्राह पार्वती ॥ ८८ ॥ शर्वं कपालहस्तं च ग्रीवार्द्धं गरलान्वितम् ॥ मुण्डमालार्द्धहारं च सितगौरं सम न्ततः ॥ ८९ ॥ ब्रह्माण्डकोटिजनकं जटाभिर्भूषितं शिरः ॥ सितद्युतिकलाखण्डरत्नभासावभासितम् ॥ ९० ॥ स्वर्णा भरणसंयुक्तमेकतो भुजगाङ्गदम् ॥ एकतः कृत्तिवसनमन्यतः पट्टकूलवत् ॥ ९१ ॥ मत्स्यवाहनसंयुक्तमन्यतो वृष भाङ्कितम् ॥ एकतः पार्षदैः सेव्यमन्यतः सखिसेवितम् ॥ ९२ ॥ रूपमेवंविधं दृष्ट्वा ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥ तुष्टुवुः परया भक्त्या तेजोभूषितलोचनम् ॥ ९३ ॥ त्वमेको भगवान्सर्वव्यापकः सर्वदेहिनाम् ॥ पितृवद्रक्षकोसि त्वं माता त्वं जीव

जटाओं से शिर भूषित था और श्वेत प्रकाशवाली कलासमूहों से रत्नकी शोभा के समान प्रकाशित था ॥ ९० ॥ और एक ओर सोने के आभूषणों से युक्त व एक ओर सर्पोंका बजुल्ला तथा एक ओर मृगचर्म वसन व अन्य ओर रेशमी वस्त्र था ॥ ९१ ॥ और एक ओर मछली के वाहन से युक्त व दूसरी ओर वृषभ से युक्त था व एक ओर पार्षदों से सेवित और दूसरी ओर सखियों से सेवित था ॥ ९२ ॥ ऐसे रूप को देखकर ब्रह्मादिक देवगणों ने तेज से भूषित लोचनोंवाले शिवजी की बड़ी भक्ति से स्तुति किया ॥ ९३ ॥ कि तुम एकही भगवान् सब देहियों के सर्वव्यापक हो और तुम पिताकी नाईं रक्षक हो व तुम माता हो और जीवसञ्ज्ञक

हो ॥ ९४ ॥ व तुम विश्वके साक्षी और बीज हो व ब्रह्माण्डको वश करनेवाले हो और तुममें करोड़ों ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं व लीन होजाते हैं ॥ ९५ ॥ जैसे कि सागर में सदैव लहरी होती हैं और जलमें जैसे बुद्बुद होते हैं व लीन होते हैं किसी समय मैं तुम्हारे नेत्रसे व किसी समय तुम्हारे मस्तक से ॥ ९६ ॥ व हे महादेव ! कभी तुम्हारे संग में प्रकट होकर मैं संसार को रचता हूं और हम सब ब्रह्मादिक देवता तुम्हारी आज्ञा करनेवाले हैं ॥ ९७ ॥ अनन्त ऐश्वर्यवाले तुम अनन्त व अनन्त तेज हो और अन्त रहित अनन्त तुम सबके नाशके लिये अद्भुतरूप करते हो ॥ ९८ ॥ व हे भवानि ! तुम सदा अशिवजनों को पवित्र करनेवाली

संज्ञकः ॥ ९४ ॥ साक्षी विश्वस्य बीजं त्वं ब्रह्माण्डवशकारकः ॥ उत्पद्यन्ते विलीयन्ते त्वयि ब्रह्माण्डकोटयः ॥ ९५ ॥ ऊर्मयः सागरे नित्यं सलिले बुद्बुदा यथा ॥ अहं कदाचित्ते नेत्रात्कदाचित्तव भालतः ॥ ९६ ॥ क्वचित् संगे महादेव प्रादुर्भूत्वा सृजे जगत् ॥ तवाज्ञाकारिणः सर्वे वयं ब्रह्मादयः सुराः ॥ ९७ ॥ अनन्तवैभवोऽनन्तोऽनन्तधामास्यनन्तकः ॥ अनन्तः सर्वभङ्गाय कुरुषे रूपमद्भुतम् ॥ ९८ ॥ भवानि त्वं भयं नित्यमशिवानां पवित्रकृत् ॥ शिवानामपि दात्री त्वं तपसामपि त्वं फलम् ॥ ९९ ॥ यः शिवः स स्वयं विष्णुर्यो विष्णुः स सदाशिवः ॥ इत्यभेदमतिर्जाता स्वल्पा न त्वत्प्रसादतः ॥ १०० ॥ यत्किञ्चिच्च जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥ मध्ये बहिश्च तत्सर्वं त्रयं व्याप्य स्थिता सदा ॥ १ ॥ जगत्पूज्य सुरेशान जगद्वन्द्ये तथाम्बिके ॥ प्रसादं कुरु देवेशि देवेश प्रणता वयम् ॥ २ ॥ इत्युक्त्वा त्रिदशाः सर्वे हृष्टा जग्मुर्यथागतम् ॥ ३ ॥ गालव उवाच ॥ ते दिव्यमेतदखिलं भुवि ये मनुष्याः संसारसागर

भय हो व मंगलों को भी तुम देनेवाली हो और तपों का भी तुम फल हो ॥ ९९ ॥ और जो शिव हैं वे आपही विष्णु हैं व जो विष्णुहैं वे आपही सदाशिव हैं तुम्हारी प्रसन्नता से यह बड़ी भारी बुद्धि उत्पन्न हुई है ॥ १०० ॥ इस संसार में जो कुछ देखा व सुना जाता है और जो कुछ मध्य में व बाहर है वह सब तीनों लोकों में व्याप्त होकर तुम सदैव स्थित हो ॥ १ ॥ हे जगत्पूज्य, सुरेशान ! हे जगद्वन्द्ये, अम्बिके, देवेशि ! प्रसन्नता कीजिये हे देवेश ! हमलोग प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥ यह कहकर प्रसन्न होतेहुए सब देवता जैसे आये थे वैसेही चलेगये ॥ ३ ॥ गालवजी बोले कि जो मनुष्य संसाररूपी समुद्र से उतरने के लिये एक

केवटरूप इस समस्तरूपको मनसे ध्यान करते हैं वे पापरहित होते हैं और संग से छूटकर वे ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होते हैं ॥ १०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्म-नारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये हरताण्डवनर्तनंनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। उमा शापलहि विष्णु भे मूरति शालग्राम । तेइसवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ गालवजी बोले कि इस प्रकार शापको पायेहुए वे पार्वतीजीके शाप से पीड़ित देवता सन्तानहीन हुए और प्रतिमा को प्राप्त हुए ॥ १ ॥ गंडकी में शालग्राम व नर्मदा में स्वयंभू शिवजी उत्पन्न होते हैं और वे ये दोनों

समुत्तरणैकपोतम् ॥ संचिन्तयन्ति मनसा हतकिल्बिषास्ते ब्रह्मस्वरूपमनुयान्ति विमुक्तसंगाः ॥ १०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये हरताण्डवनर्तनंनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥

गालव उवाच ॥ एवं ते लब्धशापाश्च पार्वतीशापपीडिताः ॥ अनपत्या बभूवुश्च तथा च प्रतिमां गताः ॥ १ ॥ शालग्रामस्तु गण्डक्यां नर्मदायां महेश्वरः ॥ उत्पद्यते स्वयंभूश्च तावेतौ नैव कृत्रिमौ ॥ २ ॥ चतुर्विंशतिभेदेन शालग्रामगतो हरिः ॥ परीक्ष्य पुरुषो नित्यमेकरूपः सदाशिवः ॥ ३ ॥ शालग्रामशिला यत्र गण्डकीविमले जले ॥ तत्र स्नात्वा च पीत्वा च ब्रह्मणः पदमाप्नुयात् ॥ ४ ॥ तां पूजयित्वा विधिवद्गण्डकीसंभवां शिलाम् ॥ योगीश्वरो विशुद्धात्मा जायते नात्र संशयः ॥ ५ ॥ एतत्ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोहमिह त्वया ॥ यथा हरो विप्रशापं प्राप्तवांस्तन्निशामय ॥ ६ ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या वाच्यमानामिमां कथाम् ॥ गिरीशनृत्यसम्बन्धामुमादेहा

कृत्रिम नहीं होते हैं ॥ २ ॥ और चौबीस भेद से विष्णुजी शालग्राम में प्राप्त हैं उनको सदैव देखकर पुरुष एकरूप सदाशिव होता है ॥ ३ ॥ व जहां शालग्राम शिला होती है उस गडकी के निर्मल जल में नहाकर व जलको पीकर मनुष्य ब्रह्मके पदको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ और विधिपूर्वक गंडकी में उपजी हुई उस शिलाको पूजकर योगीश्वर पवित्रचित्त होताहै, इसमें सन्देह नहींहै ॥ ५ ॥ तुमने जो मुझसे पूंछा यह सब वृत्तान्त तुमसे कहा गया व जिस प्रकार शिवजीने विप्र-शाप को पाया है उसको सुनिये ॥ ६ ॥ और जो मनुष्य भक्ति से शिवजीके नित्य संबंधवाली व पार्वतीरूपी शरीरार्द्ध से वर्णित तथा ब्रह्मा की स्तुति से युक्त इस

पढ़ी जाती हुई कथा को सुनता है वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है और आधा श्लोक या चौथाई श्लोक व समस्त श्लोक को ॥ ७।८ ॥ माया व मानसे वर्जित जो पुरुष अविरोध से पढ़ता है वह उत्तम स्थान को प्राप्त होता है जहां जाकर मनुष्य शोचता नहीं है ॥ ९ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर पढ़ता व सुनता हुआ मनुष्य धन व पुत्रादिकोंसे संयुत होकर चाहीहुई सिद्धि को पाता है ॥ १० ॥ जैसे कि उन ब्रह्मादिक देवताओंने दुर्गा व शिवजीके समीप गीत और वाद्य के योगसे उत्तम सिद्धिको पाया है ॥ ११ ॥ और वर्षाकाल प्राप्त होनेपर जनार्दन, शिव व दुर्गाजीमें भक्तिका योग होनेपर फिर स्तन को पीनेवाला नहीं होताहै ॥ १२ ॥ और

धर्वर्णिताम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मणः स्तुतिसंयुक्तां स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा समस्तं श्लोकमेव वा ॥ ८ ॥ यः पठेदविरोधेन मायामानविवर्जितः ॥ स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥ ९ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण पठन् शृण्वन्नरोत्तमः ॥ लभते चिन्तितां सिद्धिं धनपुत्रादिसंवृतः ॥ १० ॥ यथा ब्रह्मादयो देवा गीतवाद्याभियोगतः ॥ परां सिद्धिमवापुस्ते दुर्गाशिवसमीपतः ॥ ११ ॥ वर्षाकाले च संप्राप्ते भक्तियोगे जनार्दने ॥ महेश्वरेऽथ दुर्गायां न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ १२ ॥ गणेशस्य सदा कुर्याच्चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ पूजां मनुष्यो लाभार्थं यत्नो लाभप्रदो हि सः ॥ १३ ॥ सूर्यो निरोगतां दद्याद्भक्त्या यैः पूज्यते हि सः ॥ चातुर्मास्ये समायाते विशेषफलदो नृणाम् ॥ १४ ॥ इदं हि पञ्चायतनं सेव्यते गृहमेधिभिः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सेवितं चिन्तितं प्रदम् ॥ १५ ॥ शालग्रामगतं विष्णुं यः पूजयति नित्यदा ॥ द्वारावती चक्रशिलासहितं मोक्षदायकम् ॥ १६ ॥ चातुर्मा

लाभके लिये मनुष्य सदैव गणेश का पूजन करै व चातुर्मास्य में विशेषकर करै क्योंकि वह यत्न लाभदायक है ॥ १३ ॥ और जो मनुष्य भक्तिसे पूजते है उनको वे सूर्यनारायण निरोगता को देते हैं व चातुर्मास्य आने पर मनुष्यों को विशेष फलदायक होते हैं ॥ १४ ॥ और यह पञ्चायतन गृहस्थों से सेवन किया जाता है व चातुर्मास्य में विशेषकर सेवित पञ्चायतन चिन्तित वस्तु को देते हैं ॥ १५ ॥ और शालग्राम में प्राप्त विष्णुजीको जो सदैव पूजता है उसको द्वारावती व चक्रशिला समेत वह मोक्षदायक होता है ॥ १६ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर वह दर्शन से भी मुक्तिदायक होताहै और जिसकी स्तुति करनेपर सब स्तुति किया व

जिसके पूजित होनेपर सब संसार पूजित होता है ॥ १७ ॥ और पूजन, पठन, ध्यान व स्मरण कियेहुए विष्णुजी पापविनाशक होते हैं फिर शालग्राम में क्या कहना है क्योंकि विष्णुजी शालग्राम में प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ फिर विशेषकर चातुर्मास्य में शालग्राम में प्राप्त विष्णुजी की नैवेद्य, फल व धारण किया हुआ जल उत्तम होता है ॥ १९ ॥ व हे शूद्रज ! चातुर्मास्यमें विशेषकर भक्तिसे संयुत सब मनुष्यको शालग्राम के तिल पवित्र करते हैं ॥ २० ॥ और वह मनुष्य सदैव लक्ष्मी समेत व धन, धान्य से संयुत होता है व महाभाग्यवानों के घरमें पैदा होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ और वह मनुष्य लक्ष्मीसमेत विष्णु जानने

स्ये विशेषेण दर्शनादपि मुक्तिदम् ॥ यस्मिन् स्तुते स्तुतं सर्वं पूजिते पूजितं जगत् ॥ १७ ॥ पूजितः पठितो ध्यातः स्मृतो वै कलुषापहः ॥ शालग्रामे किं पुनर्यच्छालग्रामगतो हरिः ॥ १८ ॥ पुनर्हि हरिनैवेद्यं फलं चापिधृतं जलम् ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण शालग्रामगतं शुभम् ॥ १९ ॥ तिलाः पुनन्ति सकलं शालग्रामस्य शूद्रज ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण नरं भक्त्या समन्वितम् ॥ २० ॥ स लक्ष्मीसहितो नित्यं धनधान्यसमन्वितः ॥ महाभाग्यवतां गेहे जायते नात्र संशयः ॥ २१ ॥ स लक्ष्मीसहितो विष्णुर्विज्ञेयो नात्र संशयः ॥ तं पूजयेन्महाभक्त्या स्थिरा लक्ष्मीर्गृहे भवेत् ॥ २२ ॥ तावद्दरिद्रता लोके तावद्गर्जति पातकम् ॥ तावत्क्लेशाः शरीरेऽस्मिन् न यावद्ध्रियते हरिः ॥ २३ ॥ स एव पूज्यते यत्र पञ्चक्रोशं पवित्रकम् ॥ करोति सकलं क्षेत्रं न तत्राशुभसम्भवः ॥ २४ ॥ एतदेव महाभाग्यमेतदेव महातपः ॥ एष एव परो मोक्षो यत्र लक्ष्मीशपूजनम् ॥ २५ ॥ शङ्खश्च दक्षिणावर्त्तो लक्ष्मीनारायणात्मकः ॥ तुलसीकृष्णसारोऽत्र

योग्य है इसमें सन्देह नहीं है और उसको बड़ी भक्ति से पूजै तो घरमें स्थिर लक्ष्मी होती है ॥ २२ ॥ और संसारमें तबतक दरिद्रता होती है व तबतक पातक गरजता है और तबतक इस शरीर में दुःख होते हैं जब तक कि विष्णुजी नहीं धारण किये जाते हैं ॥ २३ ॥ और जहां वेही विष्णुजी पूजेजाते हैं और जहां वह पांचकोस सब क्षेत्रको पवित्र करता है वहां पापकी उत्पत्ति नहीं होती है ॥ २४ ॥ और यही महाभाग्य है व यही महातप है और यही उत्तम मोक्ष है जहां कि लक्ष्मीशजी का पूजन होता है ॥ २५ ॥ और दक्षिणावर्त शंख लक्ष्मीनारायणात्मक होता है और यहा तुलसी व कृष्णसार मृग होता है जहां कि द्वारवती

शिला होती है ॥ २६ ॥ और वहां लक्ष्मी, विजय, विष्णु व मुक्ति इस प्रकार चारों वस्तुयें होती हैं और लक्ष्मीनारायण में पूजन करनेवाले मनुष्य को ॥ २७ ॥ विष्णुजी अतुल पुण्य को देते हैं और उसी क्षण वह मुक्त होजाता है और चातुर्मास्य में विशेषकर लक्ष्मी से संयुत विष्णुजी पूजने योग्य हैं ॥ २८ ॥ और उन विष्णुदेव का ध्यान करते हुए मनुष्य का पाप नाश होता है व तुलसी की मंजरियों से पूजेहुए विष्णुजी जन्म के नाशक होते हैं ॥ २९ ॥ और चातुर्मास्य में बिल्वपत्र से पूजेहुए विष्णुजी बहुत पापके नाशक होते हैं ॥ ३० ॥ और सब यत्न से वेही विष्णुजी सेवने योग्य हैं जोकि संसार में व्याप्त होकर लोकों के

यत्र द्वारवती शिला ॥ २६ ॥ तत्र श्रीर्विजयो विष्णुर्मुक्तिरेवं चतुष्टयम् ॥ लक्ष्मीनारायणे पूजां विधातुर्मनुजस्य तु ॥ २७ ॥ ददाति पुण्यमतुलं मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण पूज्यो लक्ष्मीयुतो हरिः ॥ २८ ॥ कुर्वतस्तस्य देवस्य ध्यानं कल्मषनाशनम् ॥ तुलसीमञ्जरीभिश्च पूजितो जन्मनाशनः ॥ २९ ॥ पूजितो बिल्वपत्रेण चातुर्मास्येऽघहृत्तमः ॥ ३० ॥ सर्वप्रयत्नेन स एव सेव्यो यो व्याप्य विश्वं जगतामधीशः ॥ काले सृजत्यत्ति च हेलया वा तं प्राप्य भक्तो न हि सीदतीति ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये लक्ष्मीनारायणमहिमावर्णनंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

गालव उवाच ॥ एकदा भगवान् रुद्रः कैलासशिखरे स्थितः ॥ दधार परमां लक्ष्मीमुमया सहितः किल ॥ १ ॥ गणानां कोटयस्तिस्रस्तं यदा पर्यवारयन् ॥ वीरबाहुर्वीरभद्रो वीरसेनश्च भृङ्गिराट् ॥ २ ॥ रुचिस्तुटिस्तथा

स्वामी हैं व जो समय में हेला से संसार को रचता है व संहार करता है उसको प्राप्त होकर भक्त मनुष्य क्लेशित नहीं होता है ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां लक्ष्मीनारायणमहिमावर्णनन्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । द्वादशाक्षरहु मन्त्र की महिमा अहै अपार । चौबिसवें अध्याय में सोई चरित सुखार ॥ गालवजी बोले कि एकसमय भगवान् शिवजी कैलास पर्वत के शिखर पै स्थित थे व उमासमेत उन्होंने उत्तम शोभा को धारण किया ॥ १ ॥ जब तीन करोड़ गणोंने उनको घेरलिया याने वीरबाहु, वीरभद्र, वीरसेन व भृङ्गि-

राद् ॥ २ ॥ और रुचि, तुटि, नन्दी, पुष्पदन्त, उत्कट, विकट, कण्टक, हर, केश व विघण्टक ॥ ३ ॥ व मालाधर, पाशधर, भृंगी व नरन, पुण्योत्कट, शालिभद्र, महाभद्र व विभद्रक ॥ ४ ॥ कणप, कालप, काल, धनप व रक्तलोचन, विकटास्य, भद्रक, दीर्घजिह्व व विरोचन ॥ ५ ॥ और पारद, धनद, ध्वांक्षी, हंसक व नरक, पञ्चशीर्ष, त्रिशीर्ष, क्रोडदंष्ट्र व महाद्भुत ॥ ६ ॥ सिंहवक्त्र, वृषहनु, प्रचण्ड, तुण्डि ये और अन्य बहुत से गण उस समय शिवजी के समीप प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ हे महादेव ! जय हो ऐसा उच्चस्वर से कहकर भद्रकाली से संयुत जिनके प्यारे भूत, प्रेत व पिशाचों के गणों ने ॥ ८ ॥ वसन्त प्राप्त होनेपर समीप स्थित होकर

नन्दी पुष्पदन्तस्तथोत्कटः ॥ विकटः कण्टकश्चैव हरः केशो विघण्टकः ॥ ३ ॥ मालाधरः पाशधरः शृङ्गी च नरनस्तथा ॥ पुण्योत्कटः शालिभद्रो महाभद्रो विभद्रकः ॥ ४ ॥ कणपः कालपः कालो धनपो रक्तलोचनः ॥ विकटास्यो भद्रकश्च दीर्घजिह्वो विरोचनः ॥ ५ ॥ पारदो धनदो ध्वांक्षी हंसको नरकस्तथा ॥ पञ्चशीर्षस्त्रिशीर्षश्च क्रोडदंष्ट्रो महाद्भुतः ॥ ६ ॥ सिंहवक्त्रो वृषहनुः प्रचण्डस्तुण्डिरेव च ॥ एते चान्ये च बहवस्तदा भवसमीपगाः ॥ ७ ॥ महादेव जयेत्युच्चैर्भद्रकालीसमन्विताः ॥ भूतप्रेतपिशाचानां समूहा यस्य वल्लभाः ॥ ८ ॥ अस्तुवंस्तं समीपस्था वसन्ते समुपागते ॥ वनराजिर्विभाति स्म नवकोरकशोभिता ॥ ९ ॥ दक्षिणानिलसंस्पर्शः कवीनां सुखकृद्बभौ ॥ वियोगिहृदयाकर्षी किंशुकः पुष्पशोभितः ॥ १० ॥ द्वन्द्वादिविक्रियाभावं चिक्रीडुश्च समन्ततः ॥ तस्मिन्विगाढे समये मनस्युन्मादके तथा ॥ ११ ॥ नन्दी दण्डधरः संज्ञां दृष्ट्वा चक्रे हरोपरः ॥ अलं चापलदोषेण तपः कुर्वन्तु भो

उन शिवजी की स्तुति किया और नवीन कलियों से शोभित वन की पांति शोभित हुई ॥ ९ ॥ और कवियों को सुख करनेवाला दक्षिण पवनका स्पर्श शोभित हुआ और वियोगीजनों के हृदय को खींचनेवाला पलाश पुष्पोंसे शोभित हुआ ॥ १० ॥ और उन गणों ने सब ओर से द्वन्द्वादि विकारके भाव से क्रीड़ा किया और उस कठिन समय में मनके उन्मादक होनेपर ॥ ११ ॥ अन्य शिवदण्डधारक नन्दी ने देखकर संज्ञा किया कि हे गणो ! चपलता के दोष से कुछ न

होगा तुमलोग तप करो ॥ १२ ॥ तब सब गण फिर पृथ्वीखण्डसे उत्पन्न वनको गये और उन गणों ने वसन्त से उपजी हुई शोभा को देखकर तप किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर उन जगदम्बिका पार्वतीजी ने शिवजी से कहा कि हे महेश्वरजी ! यह रुद्राक्ष की माला सदैव तुम्हारे हाथ में प्राप्त रहती है ॥ १४ ॥ हे देव ! तुम क्या जपते हो मेरा मन सन्देह को प्राप्त होता है और सब प्राणियों के जन्म करनेवाले तुम एकही हो व सबोंके स्वामी हो ॥ १५ ॥ और तुम्हारे न माता है न कोई पिता है न बन्धु है न जाति है और मैं तुमसे अधिक कुछ नहीं जानती हूं और कुछ नहीं है ॥ १६ ॥ और तुम श्रमसे संयुत हो व श्वास के उच्छ्वास में परायण हो

गणाः ॥ १२ ॥ तदा सर्वे वनमपि भूकाण्डजमगुः पुनः ॥ गणास्ते तप आतस्थुर्दृष्ट्वा कान्तिं वसन्तजाम् ॥ १३ ॥ ततः सा विश्वजननी पार्वती प्राह शङ्करम् ॥ इयं ते करगा नित्यमक्षमाला महेश्वर ॥ १४ ॥ त्वया किं जप्यते देव सन्देहयति मे मनः ॥ त्वमेकः सर्वभूतानामादिकृत्सकलेश्वरः ॥ १५ ॥ न माता न पिता बन्धुस्तव जातिर्न कश्चन ॥ अहं तव परं किञ्चिद्वेद्मि नास्तीति किञ्चन ॥ १६ ॥ श्रमेण त्वं समायुक्तो श्वासोच्छ्वासपरायणः ॥ जपन्नपि महाभक्त्या दृश्यसे त्वं मया सदा ॥ १७ ॥ त्वत्तः परतरं किञ्चिद्यत्त्वं ध्यायसि चेतसा ॥ तन्मे कथय देवेश यद्यहं दयिता तव ॥ १८ ॥ इति पृष्टस्तदा शम्भुरुवाच हरिसेवकः ॥ हरेर्नामसहस्राणां सारं ध्यायामि नित्यशः ॥ १९ ॥ जपामि रामनामाङ्कमवतारं तु सत्तमम् ॥ चतुर्विंशतिसंख्याकान् प्रादुर्भावान् हरेर्गुणान् ॥ २० ॥ एतेषामपि य त्सारं प्रणवाख्यं महत्फलम् ॥ द्वादशाक्षरसंयुक्तं ब्रह्मरूपं सनातनम् ॥ २१ ॥ अक्षरत्रयसंबद्धं ग्रामत्रयसमन्वित

और मैं सदैव बड़ी भक्ति से जपते हुए तुमको देखती हूं ॥ १७ ॥ हे देवेश ! तुमसे अधिक श्रेष्ठ क्या है जिसको चित्त से ध्यान करते हो यदि मैं तुमको प्यारी हूं तो उसको मुझसे कहिये ॥ १८ ॥ उस समय इस प्रकार पूंछे हुए विष्णुजी के सेवक शिवजी बोले कि नित्य मैं विष्णुजी के हज़ार नामों के साराश को ध्यान करताहूं ॥ १९ ॥ और बहुतही श्रेष्ठ व रामनाम से चिह्नित अवतारको मैं जपता हूं और चौबीससंख्यक प्रकट हुए विष्णुजीके गुणों को जपता हूं ॥ २० ॥ और इनके मध्य में भी जो बड़ा फलवाला प्रणव नामक सारांश है द्वादशाक्षर से युक्त व सनातन ब्रह्मरूप ॥ २१ ॥ तीन अक्षरों से बँधेहुए व तीन ग्रामों से

संयुत बिन्दु समेत ॐकार को मैं सदैव जप माला से जपता हूं ॥ २२ ॥ यह वेदसार व नित्य, अक्षर तथा सदैव उद्यत, निर्मल, अमृत, शान्त, सद्रूप व अमृत के समान ॥ २३ ॥ और कलाओं से परे व निर्वंश में प्राप्त तथा व्यापाररहित व बहुतही श्रेष्ठ और जगदाधार, संसार का मध्य व करोड़ों ब्रह्माण्डों का बीज ॥२४॥ और जो जड़, शुद्धक्रियात्मक, निरञ्जन व नियामक है व जिसको जानकर मनुष्य शीघ्रही भयंकर संसार के बन्धन से छूटजाता है ॥ २५ ॥ और द्वादशाक्षर का बीज जो ॐकार समेत है वह संसार के करोड़ों पातकों के जलाने के लिये दावाग्नि होजाता है ॥ २६ ॥ और यही उत्तम गुप्त है व यही उत्तम तेज है और

म् ॥ सबिन्दुं प्रणवं शश्वज्जपामि जपमालया ॥ २२ ॥ वेदसारमिदं नित्यं ह्यक्षरं सततोद्यतम् ॥ निर्मलं ह्यमृतं शान्तं सद्रूपममृतोपमम् ॥ २३ ॥ कलातीतं निर्वंशगं निर्व्यापारं महत्परम् ॥ विश्वाधारं जगन्मध्यं कोटिब्रह्माण्ड बीजकम् ॥ २४ ॥ जडं शुद्धक्रियं वापि निरञ्जनं नियामकम् ॥ यज्ज्ञात्वा मुच्यते क्षिप्रं घोरसंसारबन्धनात् ॥ २५ ॥ ॐकारसहितं यच्च द्वादशाक्षरबीजकम् ॥ जपतः पापकोटीनां दावाग्नित्वं प्रजायते ॥२६॥ एतदेव परं गुह्यमेतदेव परं महः ॥ एतद्धि दुर्लभं लोके लोकत्रयविभूषणम् ॥ २७ ॥ प्राप्यते जन्मकोटीभिः शुभाशुभविनाशकम् ॥ एतदेव परं ज्ञानं द्वादशाक्षरचिन्तनम् ॥ २८ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण ब्रह्मदं चिन्तितप्रदम् ॥ एतदक्षरजं स्तोत्रं यः समाश्रयते सदा ॥ २९ ॥ मनसा कर्मणा वाचा तस्य नास्ति पुनर्भवः ॥ द्वादशाक्षरसंयुक्तं चक्रद्वादशभूषितम् ॥ ३० ॥ मासद्वादशनामानि विष्णोर्यो भक्तितत्परः ॥ शालग्रामेषु तान्युक्त्वा न्यसेदघहराणि च ॥ ३१ ॥ दिवसे दिवसे तस्य

तीनों लोकों का भूषणरूप यह संसार में दुर्लभ है ॥ २७ ॥ और पुण्य व पाप को नाशनेवाला यही द्वादशाक्षर का ध्यानरूप उत्तम ज्ञान करोड़ों जन्मों में मिलता है ॥ २८ ॥ और चातुर्मास्यमें विशेषकर ब्रह्मदायक व चिन्तितदायक है और इस अक्षर से उपजे हुए स्तोत्र के जो सदैव मन, कर्म व वचन से आश्रित होता है उसका फिर जन्म नहीं होता है और बारह चक्रों से भूषित जो द्वादशाक्षर से संयुत है ॥ २९ । ३० ॥ व विष्णु के उन बारह महीनों के पापनाशक नामों को कहकर भक्तिमें तत्पर जो मनुष्य शालग्रामों में न्यास करता है ॥ ३१ ॥ उसको प्रतिदिन द्वादशाह यज्ञ का फल होता है और द्वादशाक्षर का माहात्म्य हजारों जिह्वाओं

से भी नहीं कहा जासक्ता है और ब्रह्मासे भी नहीं कहाजासक्ता है और संसार में जप, ध्यान व स्तुति किया हुआ यह महामन्त्र ॥ ३२ । ३३ ॥ सब मासोंमें पापनाशक है व चातुर्मास्य में विशेषकर पापनाशक है और वेदों व अनेक पुराणों का यह रहस्य है ॥ ३४ ॥ व सब स्मृतियों का यह द्वादशाक्षर चिन्तनरहस्य है क्योंकि चिन्तनहीसे मनुष्यों की चाहीहुई सिद्धि होती है ॥ ३५ ॥ और पुण्य दान से व जप से सनातनी मुक्ति होती है और वर्णों व आश्रमों को ॐकार संयुत जप करना चाहिये ॥ ३६ ॥ और शमपरायण जपों व ध्यानों से मनुष्य निश्चयकर मोक्ष को प्राप्त होता है और शूद्रों व स्त्रियों को ॐकार से रहित द्वादशाक्षर मन्त्र

द्वादशाहफलं भवेत् ॥ द्वादशाक्षरमाहात्म्यं वर्णितुं नैव शक्यते ॥ ३२ ॥ जिह्वासहस्रैरपि च ब्रह्मणापि न वर्ण्यते ॥ महामन्त्रो ह्ययं लोके जप्तो ध्यातः स्तुतस्तथा ॥ ३३ ॥ पापहा सर्वमासेषु चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ इदं रहस्यं वेदानां पुराणानामनेकशः ॥ ३४ ॥ स्मृतीनामपि सर्वासां द्वादशाक्षरचिन्तनम् ॥ चिन्तनादेव मर्त्यानां सिद्धिर्भवति हीप्सिता ॥ ३५ ॥ पुण्यदानेन जाप्येन मुक्तिर्भवति शाश्वती ॥ वर्णैस्तथाश्रमैरेव प्रणवेन समन्वितैः ॥ ३६ ॥ जपैर्ध्यानैः शमपरैर्मोक्षं यास्यति निश्चितम् ॥ शूद्राणां चापि नारीणां प्रणवेन विवर्जितः ॥ ३७ ॥ प्रकृतीनां च सर्वासां न मन्त्रो द्वादशाक्षरः ॥ न जपो न तपः कार्यं कायक्लेशाद्विशुद्धिता ॥ ३८ ॥ विप्रभक्त्या च दानेन विष्णुध्यानेन सिध्यति ॥ तासां मन्त्रो रामनाम ध्येयः कोट्यधिको भवेत् ॥ ३९ ॥ रामेति द्व्यक्षरजपः सर्वपापापनोदकः ॥ गच्छंस्तिष्ठञ्छयानो वा मनुजो रामकीर्तनात् ॥ ४० ॥ इह निर्वृतिमायाति प्रान्ते हरिगणो भवेत् ॥ रामेति द्व्यक्ष

न जपना चाहिये व सब प्रजाओं को ॐकार रहित द्वादशाक्षर न जपना चाहिये और जप व तप न करना चाहिये क्योंकि शरीर के क्लेश से शुद्धता नहीं होती है ॥ ३७ । ३८ ॥ वरन ब्राह्मणों की भक्ति व दान और विष्णुजी के ध्यान से सिद्ध होता है और उनके मध्य में ध्यान किया हुआ रामनाम मन्त्र करोड़गुना अधिक होता है ॥ ३९ ॥ व राम ऐसे दो अक्षरोंका जप सब पापोंको दूर करनेवाला है व चलता हुआ तथा स्थित होता व सोताहुआ भी मनुष्य श्रीरामजीके कीर्तन

से ॥ ४० ॥ इस ससार में सुखको प्राप्त होता है व अन्त में विष्णु का गण होता है और राम ऐसा दो अक्षरका मन्त्र करोडों सौ मन्त्रों से अधिक है ॥ ४१ ॥ और सब प्रकृतियों का पापनाशक कहा गया है और चातुर्मास्य प्राप्त होनेपर वह भी अमित फल को देताहै ॥ ४२ ॥ और महापवित्र चातुर्मास्य में जो भक्तिसे सयुत मनुष्य उसको जपते हैं उनको देवताओं की नाईं यमलोक का सेवन निष्फल होता है ॥ ४३ ॥ पृथ्वीतल में राम से अधिक कुछ पठन नहीं है और जो राम नाम के आश्रय होते हैं उनको यमराज की पीड़ा नहीं होती है ॥ ४४ ॥ और जो विघ्नकारक दोष हैं व जो मृतक और विग्रह हैं वे रामनामही से नाश को प्राप्त

रो मन्त्रो मन्त्रकोटिशताधिकः ॥४१॥ सर्वासां प्रकृतीनां च कथितः पापनाशकः ॥ चातुर्मास्येऽथ संप्राप्ते सोप्यनन्त फलप्रदः ॥ ४२ ॥ चातुर्मास्ये महापुण्ये जप्यते भक्तितत्परैः ॥ देववन्निष्फलं तेषां यमलोकस्य सेवनम् ॥ ४३ ॥ न रामादधिकं किञ्चित्पठनं जगतीतले ॥ रामनामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना ॥ ४४ ॥ ये च दोषा विघ्नकरा मृत का विग्रहाश्च ये ॥ रामनाम्नैव विलयं यान्ति नात्र विचारणा ॥ ४५ ॥ रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥ अन्त रात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ॥ ४६ ॥ रामेति मन्त्रराजोऽयं भयव्याधिनिषूदकः ॥ रणे विजयदश्चापि सर्वका र्यार्थसाधकः ॥ ४७ ॥ सर्वतीर्थफलप्रोक्तो विप्राणामपि कामदः ॥ रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः ॥ ४८ ॥ द्व्यक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्यकरो भुवि ॥ देवा अपि प्रगायन्ति रामनामगुणाकरम् ॥४९॥ तस्मात्त्वमपि देवेशि रामनाम सदा वद ॥ रामनाम जपेद्यो वै मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ५० ॥ सहस्रनामजं पुण्यं रामनाम्नैव जायते ॥

होते हैं इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ४५ ॥ और स्थावरों व चरों में जो अन्तरात्मकरूप से रमता है वह राम ऐसा कहा जाता है ॥ ४६ ॥ और राम ऐसा यह मन्त्रराज भय व रोगों का नाशक है व समर में विजयदायक है तथा सब कार्यार्थों का साधक है ॥ ४७ ॥ व सब तीर्थ का फल कहा गया है और ब्राह्मणों को भी मनोरथदायक है और रामचन्द्र व राम ऐसा कहा हुआ ॥ ४८ ॥ दो अक्षर का यह मन्त्रराज पृथ्वी में सब कार्य को करता है व रामनाम के गुणगण को देवता भी गाते हैं ॥ ४९ ॥ इस कारण हे देवेशि ! तुम भी सदैव रामनाम को कहो और जो रामनाम को जपता है वह सब पापों से छूटजाता है ॥ ५० ॥ और

राम नामही से सहस्रनाम से उपजा हुआ पुण्य मिलता है और चातुर्मास्य में विशेषकर वह दशगुना पुण्य होता है ॥ ५१ ॥ व हीनजाति में उत्पन्न हुए लोगों का बड़ा भारी पाप जलजाता है ॥ ५२ ॥ और ये रामजी इस समस्त संसार को अपने तेज से व्याप्त कर मनुष्यों के अन्तरात्मा से अन्य जन्मों के स्थूल व सूक्ष्म पातकों को क्षणभर में जलाकर पवित्र करते हैं ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकाया चातुर्मास्यमाहात्म्ये द्वादशाक्षरमहिमावर्णनंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ० ॥ ० ॥ ० ॥ ० ॥ ० ॥

चातुर्मास्ये विशेषेण तत्पुण्यं दशधोत्तरम् ॥५१॥ हीनजातिप्रजातानां महद्दह्यति पातकम् ॥५२॥ रामो ह्ययं विश्वमिदं समग्रं स्वतेजसा व्याप्य जनान्तरात्मना ॥ पुनाति जन्मान्तरपातकानि स्थूलानि सूक्ष्माणि क्षणाच्च दग्ध्वा॥५३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये द्वादशाक्षरमहिमावर्णनंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पार्वत्युवाच ॥ द्वादशाक्षरमाहात्म्यं मम विस्तरतो वद ॥ यथावर्णं यत्फलं च यथा च क्रियते मया ॥ १ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ द्विजातीनां सहोंकारः सहितो द्वादशाक्षरः ॥ स्त्रीशूद्राणां नमस्कारपूर्वकः समुदाहृतः ॥ २॥ प्रकृतीनां रामनामसंमतो वा षडक्षरः ॥ सोपि प्रणवहीनः स्यात्पुराणस्मृतिनिर्णयः ॥ ३ ॥ क्रमोऽयं सर्ववर्णानां प्रकृतीनां सदैव हि ॥ क्रमेण रहितो यस्तु करोति मनुजो जपम् ॥ ४ ॥ तस्य प्रकुप्यति विभुर्नरकादीनां प्रदायकः ॥

दो० । चातुर्मास्य मँझार जिमि पारवती तप कीन । पचिसवें अध्याय में सोइ चरित्र नवीन ॥ पार्वतीजी बोलीं कि मुझसे द्वादशाक्षर का माहात्म्य कहिये और वर्णों के अनुकूल जो फल होवै व जिस प्रकार मुझसे किया जावै उसको कहो ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्यों को ॐकार समेत द्वादशाक्षर जपना चाहिये व स्त्री और शूद्रों को नमस्कारपूर्वक कहा गया है ॥ २ ॥ और प्रकृतियों को रामनाम व षडक्षर संमत है व ॐकार रहित वह भी पुराणों व स्मृतियों में निश्चय किया गया है ॥ ३ ॥ यह क्रम सब वर्णों व प्रकृतियों का क्रम है और क्रम से रहित जो मनुष्य जप करता है ॥ ४ ॥ उसके ऊपर

स्वामी विष्णुजी क्रोधित होते हैं व नरकादिकों को देते हैं पार्वतीजी बोलीं कि हे स्वामिन्! तीन मात्रा से मैं जगदीश्वरजी को सेवती हूं ॥ ५ ॥ व वचनों के भी अगोचर इनके रूपको मैं कैसे जानूं शिवजी बोले कि हे वरवर्णिनि! तुमको ॐकार का अधिकार नहीं है और नमो भगवते वासुदेवाय ऐसा सदैव जप करना चाहिये ॥ ६ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे धूर्जटे! यदि ॐकारसमेत द्वादशाक्षर का चिन्तवन देवै तो प्रणव (ॐकार) से कैसे मेरा अधिकार होवै ॥ ७ ॥ शिवजी बोले कि यह प्रणव सब देवताओं का आदि कहा गया है और स्त्री से संयुत ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी उसमें बसते हैं ॥ ८ ॥ और उसमें सब प्राणी व

पार्वत्युवाच ॥ मया त्रिमात्रया स्वामिन् सेव्यते जगदीश्वरः ॥ ५ ॥ रूपमस्य कथं जाने वचसामप्यगोचरम् ॥ ईश्वर उवाच ॥ प्रणवस्याधिकारो न तवास्ति वरवर्णिनि ॥ नमो भगवते वासुदेवायेति जपः सदा ॥ ६ ॥ पार्वत्युवाच ॥ यदि सप्रणवं दद्याद्द्वादशाक्षरचिन्तनम् ॥ प्रणवेनाधिकारो मे कथं भवति धूर्जटे ॥ ७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ प्रणवः सर्वदेवानामादिरेष प्रकीर्तितः ॥ ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चैव वसन्ति दयितायुताः ॥ ८ ॥ तत्र सर्वाणि भूतानि सर्वतीर्थानि भागशः ॥ तिष्ठन्ति सर्वतीर्थानि कैवल्यं ब्रह्म एव यः ॥ ९ ॥ तस्य योग्या तदा देवि भविष्यसि यदा तपः ॥ चातुर्मास्ये हरिप्रीत्यै करिष्यसि शुभानने ॥ १० ॥ तपसा प्राप्यते कामस्तपसा च महत्फलम् ॥ तपसा जायते सर्वं तत्तपः सुलभं नरैः ॥ ११ ॥ यशः सौभाग्यमतुलं क्षमासत्यादयो गुणाः ॥ सुलभं तपसा नित्यं तपश्चर्तुं न शक्यते ॥ १२ ॥ यदाहि तपसो वृद्धिस्तदा भक्तिर्हरौ भवेत् ॥ तदाहि तपसो हानिर्यदा भक्तिं विना कृतम् ॥ १३ ॥

सब तीर्थ विभागसे स्थित हैं और जो प्रणव समस्त तीर्थमय है व जो कैवल्य ब्रह्म है ॥ ९ ॥ हे शुभानने, देवि! जब चातुर्मास्य में विष्णुजी की प्रीतिके लिये तप करोगी तब उसके योग्य होगी ॥ १० ॥ और तपस्यासे मनोरथ मिलता है व तप से बड़ा भारी फल होता है व तपस्या से सब होता है उस कारण तपस्या से सब सुलभ होता है ॥ ११ ॥ और यश व अतुल सौभाग्य तथा क्षमा व सत्यादि गुण होते हैं व तपस्या से सब सुलभ होता है और तप नहीं किया जासक्ता है ॥ १२ ॥ और जब तपस्या की वृद्धि होती है तब विष्णुजी में भक्ति होती है व तब तपस्या की हानि होती है जब कि विना भक्तिके कुछ किया जाता है ॥ १३ ॥

और तबतक सदैव मनुष्यों के इस शरीर में तप गरजते हैं जबतक कि विष्णुजी को नित्य स्मरण करता है और जिह्वा का अग्रभाग पवित्र होता है ॥ १४ ॥ जैसे दीपक जलने पर बड़ाभारी अन्धकार नाश होजाता है वैसेही विष्णुजीकी कथा में पाप अनेक खण्ड होजाता है ॥ १५ ॥ उसलिये हे पार्वति ! चातुर्मास्य प्राप्त होनेपर विष्णुजी के सोनेपर ॐकार से संयुत तप करो ॥ १६ ॥ व पवित्र हृदय होकर द्वादशाक्षर से संयुत इस मंत्रराजको जपो तो प्रसन्न होकर वेही भगवान् विष्णुजी ॥ १७ ॥ ब्रह्मरूप अखंडित उत्तम ज्ञानको देवैंगे तुम करोड़ों ब्रह्मकल्पान्तों तक द्वादशाक्षरको जपो ॥ १८ ॥ ॐकार समेत मंत्रराजको जो ध्यान करता

तावत्तपांसि गर्जन्ति देहेस्मिन् सततं नृणाम्॥ यदा विष्णुं स्मरेन्नित्यं जिह्वाग्रं पावनं भवेत् ॥ १४ ॥ यथा प्रदीपे ज्वलिते प्रणश्यति महत्तमः ॥ तथा हरेः कथायां च याति पापमनेकधा ॥ १५ ॥ तस्मात्पार्वति यत्नेन हरौ सुप्ते तपः कुरु ॥ चातुर्मास्येऽथ संप्राप्ते प्रणवेन समन्वितम् ॥ १६॥ विशुद्धहृदया भूत्वा मन्त्रराजमिमं जप ॥ स एव भगवांस्तुष्टो द्वादशाक्षरसंयुतम् ॥ १७ ॥ प्रदास्यति परं ज्ञानं ब्रह्मरूपमखण्डितम् ॥ ब्रह्मकल्पान्तकोटीषु जप त्वं द्वादशाक्षरम् ॥ १८॥ मन्त्रराजं सप्रणवं ध्यायेत्सोपि न नश्यति ॥ इत्युक्ता सा तपोनिष्ठा तपश्चरितुमागता ॥ १९ ॥ हिमाचलस्य शिखरे चातुर्मास्ये समागते ॥ ब्रह्मचर्यव्रतपरा वसनत्रयसंयुता ॥ २० ॥ प्रातर्मध्ये पराह्णे च ध्यायन्ती हरिशङ्करम् ॥ वपुर्यथा पुराकृष्टं पूजने शङ्करस्य च ॥ २१ ॥ सखीजनसमायुक्ता पितुः शृङ्गे मनोहरे ॥ अतपत्सा विशालाक्षी क्षमादिगुणसंयुता ॥ २२ ॥ गालव उवाच ॥ याहि योगेश्वराध्येया या वन्द्या विश्व

है वह नाश नहीं होता है ऐसा कही हुई वे तपस्या में निष्ठ पार्वतीजी तप करने के लिये चातुर्मास्य प्राप्त होनेपर हिमाचल के शिखर पै आई व ब्रह्मचर्य में परायण होकर तीन वसनोंसे संयुत वे पार्वतीजी ॥ १९ । २० ॥ प्रातःकाल, मध्याह्न व पराह्न में विष्णु व शिवजी को ध्यान करने लगीं और पहले शिवजी के पूजन में जैसा शरीर दुर्बल हुआ था वैसाही होगया ॥ २१ ॥ क्षमादि गुणों से संयुत तथा सखीजनों से युक्त उन विशाललोचनोंवाली पार्वतीजी ने सुन्दर हिमाचल के शिखर पै तप किया ॥ २२ ॥ गालवजी बोले कि जो योगीश्वरों से ध्यान करने योग्य हैं और जो प्रणाम करने योग्य तथा संसार से वन्दित हैं और जो ससारकी

माता हैं वे भी कामनासे तपमें प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ और जो प्रकृति सद्रूपिणी हैं व करोड़ों विजलियोंके समान जो प्रभावती हैं और जो विरजा व आपही प्रणाम करने योग्य हैं गुणोंसे परे उन पार्वतीजीने तप किया ॥ २४ ॥ और विद्वान्लोग पृथ्वी, जल, तेज, वायु व आकाश यन्मय कहते हैं और जो मूलप्रकृतिरूपिणी हैं उसने उत्तम तप किया है ॥ २५ ॥ जो स्थावर व जंगम तथा संसार को शीघ्रही व्याप्त कर प्रकृति के पहले भी स्थित थी व स्पृहादि रूप से जो तृप्ति को देनेवाली हैं उसने विष्णुदेवजी के सोनेपर शुद्धि को पाया ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्य

वन्दिता ॥ जननी या च विश्वस्य सापि कामात्तपोगता ॥ २३ ॥ याहि प्रकृतिसद्रूपा तडित्कोटिसमप्रभा ॥ विरजा या स्वयं वन्द्या गुणातीताचरत्तपः ॥ २४ ॥ पृथ्व्यम्बुतेजोवायुश्च गगनं यन्मयं विदुः ॥ मूलप्रकृतिरूपा या सा चकारोत्तमं तपः ॥ २५ ॥ या स्थावरं जङ्गममाशु विश्वं व्याप्य स्थिता या प्रकृतेः पुरापि ॥ स्पृहादिरूपेण च तृप्तिदात्री देवे प्रसुप्ते तपसाप शुद्धिम् ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पार्वतीतपोवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

गालव उवाच ॥ प्रवृत्तायां शैलपुत्र्यां महत्तपसि दारुणे ॥ कन्दर्पेण पराभूतो विचचार महीं हरः ॥ १ ॥ वृक्षच्छायासु तीर्थेषु नदीषु च नदेषु च ॥ जलेन सिञ्चन्स्ववपुः सर्वत्रापि महेश्वरः ॥ २ ॥ तथापि कामाकुलितो न लेभे

माहात्म्ये पार्वतीतपोवर्णन नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । नग्न देखि शिवको यथा दियो ब्राह्मणन शाप । छब्बिसवें अध्याय में सोई चरित अलाप ॥ गालवजी बोले कि पार्वतीजी जब बडे दारुण तपमें प्रवृत्त हुई तब कामदेव से तिरस्कृत शिवजी घूमने लगे ॥ १ ॥ और वृक्षों की छाया व उत्तम तीर्थों और नदियों व नदों में जलसे अपने शरीर को सींचते हुए शिवजी सब कहीं भी घूमते रहे ॥ २ ॥ तथापि कामदेव से विकल चित्तवाले शिवजी ने किसी समय कल्याण को न पाया एक समय जलकी बडी लहरियों से मालावाली

यमुनाजी को देखकर॥ ३ ॥ तपके दुःखको नाश करतेहुए से उन्होंने स्नान करने का मन किया और शिवजीके शरीरकी अग्निसे वह जल काला होगया॥ ४॥ उस समय स्नान से जला हुआ जल शीघ्रही काला होगया और पहले दिव्य देहवाली वे पार्वतीजी जिसलिये शिवजी से श्याम होगईं ॥ ५ ॥ उस कारण फिर भी उन पार्वतीजी ने स्तुति व प्रणाम करके शिवजी से कहा कि हे देवेश ! प्रसन्नता कीजिये मैं तुम्हारे सदैव वश में प्राप्त हूं ॥ ६ ॥ शिवजी बोले कि पृथ्वी में इस पवित्र व श्रेष्ठ तीर्थ में जो नहावैगा उसके हज़ारों पाप निश्चय कर नाश होजावैंगे ॥ ७ ॥ और यह पवित्र तीर्थ संसार में हरतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध होगा यह

शर्म कर्हिचित् ॥ एकदा यमुनां दृष्ट्वा जलकल्लोलमालिनीम् ॥ ३ ॥ विगाहितुं मनश्चक्रे तापार्त्तिं शमयन्निव ॥ कृष्णं बभूव तन्नीरं हरकामाग्निवह्निना ॥ ४ ॥ दग्धं विगाहनेनाशु मषीप्रायं तदा बभौ ॥ सापि दिव्यवपुः पूर्वं श्यामा भूता हराद्यतः ॥ ५ ॥ स्तुत्वा नत्वा महेशानमुवाच पुनरेव सा ॥ प्रसादं कुरु देवेश वशगास्मि सदा तव ॥६॥ ईश्वर उवाच ॥ अस्मिंस्तीर्थवरे पुण्ये यःस्नास्यति नरो भुवि ॥ तस्य पापसहस्राणि यास्यन्ति विलयं ध्रुवम् ॥ ७॥ हरतीर्थमिति ख्यातं पुण्यं लोके भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा तां प्रणम्याथ तत्रैवान्तरधीयत ॥ ८ ॥ तस्यास्तीरे महेशोऽपि कृत्वा रूपं मनोहरम् ॥ कामालयं वाद्यहस्तं कृतपुण्ड्रं जटाधरम् ॥ ९ ॥ स्वेच्छया मुनिगेहेषु दर्शयत्यङ्गचापलम् ॥ कचिद्गायति गीतानि क्वचिन्नृत्यति छन्दतः ॥ १० ॥ सच क्रुद्धयति हसति स्त्रीणां मध्यगतः क्वचित् ॥ एवं विचरतस्तस्य ऋषिपत्न्यः समन्ततः ॥ ११ ॥ पत्युः शुश्रूषणं गेहे कार्याण्यपि च तत्क्षणात् ॥ तमेव मनसा

कहकर उन पार्वतीजी को प्रणाम कर शिवजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ८ ॥ और उसके किनारे व वाद्यको हाथ में लिये तथा त्रिपुंड्रको धारण किये व जटाधारी तथा कामदेव के स्थानरूप सुन्दर स्वरूप को धारण कर ॥ ९ ॥ अपनी इच्छा से मुनियों के गृहों में अंगों की चपलता को दिखाने लगे कहीं गीतों को गाने लगे और कहीं अपनी इच्छा से नाचने लगे ॥ १० ॥ और स्त्रियों के मध्य में प्राप्त कहीं क्रोधित हुए व कहीं हँसने लगे इस प्रकार सब ओर उनके घूमते हुए ऋषियों की स्त्रियों ने ॥ ११ ॥ उन शिवजी के रूपसे मोहित होकर घरमें पतिकी सेवा व कार्यों को छोड़कर उस समय उन शिवजी की मनसे इच्छा

किया ॥१२॥ और घूमती हुई उन स्त्रियों ने हास्य किया तदनन्तर मुनिलोगों ने उन स्त्रियोंकी दुःशीलता को देखकर ॥ १३ ॥ उन शिवजी के सुन्दररूप पै क्रोध किया व कहा कि इसको पकड़िये व मारिये यह कौन दुष्ट आया है ॥ १४ ॥ इस प्रकार वे काष्ठों को लेकर जब समीप गये तब उन महात्माओंके भयसे वे शिवजी बहुत भांति से भगे ॥ १५ ॥ जीवके अंश से जो संसार में प्राणियोंके मध्य में व्याप्त होकर स्थित हैं और जो न जाने जाते हैं, न ग्रहण किये जाते हैं व न भेदन के योग्य हैं ॥ १६ ॥ उन शिवजी को पकड़ने के लिये जब वे मुनि समर्थ न हुए तब क्रोधित होतेहुए ब्राह्मणों ने शिवजी को इस प्रकार शाप दिया ॥ १७ ॥ कि

चक्रुस्तस्य रूपेण मोहिताः ॥ १२ ॥ भ्रमत्यश्चैव हास्यानि चक्रुस्ता अपि योषितः ॥ ततस्तु मुनयो दृष्ट्वा तासां दुःशीलभावनाम् ॥ १३ ॥ चक्रुधुर्मुनयः सर्वे रूपं तस्य मनोहरम् ॥ गृह्यतां हन्यतामेष कोऽयं दुष्ट उपागतः ॥ १४ ॥ इति ते गृह्य काष्ठानि यदोपस्थे ययुस्तदा ॥ पलायितः स बहुधा भयात्तेषां महात्मनाम् ॥ १५ ॥ यो जीवकलया विश्वं व्याप्य तिष्ठति देहिनाम् ॥ न ज्ञायते न च ग्राह्यो न भेद्यश्चापि जायते ॥ १६ ॥ न शेकुस्ते यदा सर्वे ग्रहीतुं तं महेश्वरम् ॥ तदा शिवं प्रकुपिताः शेपुरित्थं द्विजातयः ॥ १७ ॥ यस्माल्लिङ्गार्थमागत्य ह्याश्रमाश्चोरवत्कृतम् ॥ परदारापहरणं तल्लिङ्गं पततां भुवि ॥ १० ॥ सद्य एव हि शापं त्वं दुष्टं प्राप्नुहि तापस ॥ एवमुक्ते स शापाग्निर्वज्ररूपधरो महान् ॥१९॥ तल्लिङ्गधूर्जटेश्छित्त्वा पातयामास भूतले ॥ रुधिरौघपरिव्याप्तो मुमोह भगवान् विभुः ॥ २० ॥ वेदनार्तो ज्वलवपुर्महाशापाभिभूतधीः ॥ तं तथा पतितं दृष्ट्वा त आजग्मुर्महर्षयः ॥ २१ ॥ आकाशे

जिस कारण लिङ्ग के लिये आश्रमों को आकर चोर की नाईं पराई स्त्रियों का हरण कियागया उस कारण लिङ्ग पृथ्वी में गिरपड़ै ॥ १८ ॥ व हे तापस ! तुम शीघ्रही दुष्ट शाप को प्राप्त होवो ऐसा कहने पर वज्ररूपधारी उस बड़ी भारी शापाग्नि ने ॥ १९ ॥ शिवजी के उस लिङ्गको काटकर पृथ्वी में गिरादिया और रक्तके प्रवाह से व्याप्त व्यापक भगवान् शिवजी मोहित हुए ॥ २० ॥ और बड़े शाप से तिरस्कृत बुद्धिवाले व जलतेहुए शरीरवाले शिवजी पीडासे विकल हुए और उनको उस प्रकार गिरेहुए देखकर वे महर्षिलोग आगये ॥ २१ ॥ और आकाश में सब प्राणी डरगये व संसार कॉप उठा और बडे भयको प्राप्त देवता

विकल हुए ॥ २२ ॥ व शिवजी को जानकर ब्राह्मणलोग हृदय में पीड़ित हुए और दैवको बहुत बलवान् जानकर बहुत दुःख से विकल ब्राह्मणों ने शोच किया ॥ २३ ॥ कि यह क्या कियागया क्योंकि ये भगवान् शिवजी देवताओंसे भी सेवन किये जाते हैं और सब संसार के साक्षी हैं उनको हमने नहीं देखा ॥ २४ ॥ हमलोग मूढ़बुद्धि व पापी और बहुतही अज्ञान से दुर्बल हैं क्योंकि हमने जिनकी आत्मा को न सुना है न कहा है ॥ २५ ॥ और मैंने ऐसे शरीर को गृहस्थ के लिये निवेदन नहीं किया और विकाररहित व विषयों से रहित तथा चेष्टारहित व उपद्रवरहित ॥ २६ ॥ और जो ममतारहित व अहंकाररहित हैं उन शिवजी

सर्वभूतानि त्रेसुर्विश्वं चचाल ह ॥ देवाश्च व्याकुला जाता महाभयमुपागताः ॥ २२ ॥ ज्ञात्वा विप्रा महेशानं पीडिता हृदयेऽभवन् ॥ शुशुचुर्भृशदुःखार्त्ता दैवं हि बलवत्तरम् ॥ २३ ॥ किं कृतं भगवानेष देवैरपि स सेव्यते ॥ साक्षी सर्वस्य जगतोऽस्माभिर्नैवोपलक्षितः ॥ २४ ॥ वयं मूढधियः पापाः परमज्ञानदुर्बलाः ॥ कथमस्माभिर्यस्यात्मा श्रुतश्च न निवेदितः ॥ २५ ॥ मयेदृशो गृहस्थाय आत्मा यं च निवेदितः ॥ निर्विकारो निर्विषयो निरीहो निरुपद्रवः ॥ २६ ॥ निर्ममो निरहंकारो यः शम्भुर्नोपलक्षितः ॥ यस्य लोका इमे सर्वे देहे तिष्ठन्ति मध्यगाः ॥ २७ ॥ स एष जगतां स्वामी हरोऽस्माभिर्न वीक्षितः ॥ इत्युक्त्वा ते ह्युपविष्टा यावत्तत्र समागताः ॥ २८ ॥ तान्दृष्ट्वा सहसा त्रस्तः पुनरेव महेश्वरः ॥ विप्रशापभयान्नष्टस्त्रिपुरारिर्दिवं ययौ ॥ २९ ॥ सुरभिं गां च गोलोके तां तुष्टाव सुसंयतः ॥ सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्त्र्यै मात्रे नमोनमः ॥ ३० ॥ या त्वं रसमयैर्भावैराप्यायसि भूतलम् ॥ देवानां च तथा सं

को नहीं देखा और जिनके शरीर के मध्य में प्राप्त ये सब लोक स्थित हैं लोकों के स्वामी उन्हीं इन शिवजी को हमलोगों ने नहीं देखा यह कहकर जबतक वहां आये हुए वे बैठे ॥ २७ । २८ ॥ तबतक उनको यकायक देखकर शिवजी फिर भी डरगये और ब्राह्मणों के शापके भयसे भगकर शिवजी स्वर्गको चलेगये ॥२९॥ और संयम में प्राप्त शिवजी ने गोलोक में सुरभी गऊ की स्तुति किया कि सृष्टि, पालन व संहार को करनेवाली माता के लिये प्रणाम है ॥ ३० ॥ जो तुम

रसमयी भावों से संसार को तृप्त करती हो और देवताओं के गणों को व पितरों के गणोंको भी जो तुम तृप्त करती हो ॥ ३१ ॥ हे मधुरास्वाददायिनि ! सब विद्वान् लोग तुम्हारे स्वाद को जानते हैं और यह सब संसार तुमसे बल व स्नेह से संयुत है ॥ ३२ ॥ और सब रुद्रों की तुम माता हो व वसुवों की कन्या हो और सूर्यों की बहन हो व स्तुति कीहुई तुम चाही हुई सिद्धियों को देती हो ॥ ३३ ॥ और तुम धृति हो व तुम पुष्टि हो और तुम्हीं स्वाहा हो व स्वधा हो और तुम्हीं ऋद्धि, सिद्धि, लक्ष्मी, धृति व कीर्ति और मति हो ॥ ३४ ॥ और तुम्हीं कांति, लज्जा, महामाया व सब प्रयोजनोंको साधन करनेवाली श्रद्धा हो

घान् पितॄणामपि वै गणान् ॥ ३१ ॥ सर्वैर्ज्ञाता रसाभिज्ञैर्मधुरास्वाददायिनि ॥ त्वया विश्वमिदं सर्वं बलस्नेहसम न्वितम् ॥ ३२ ॥ त्वं माता सर्वरुद्राणां वसूनां दुहिता तथा ॥ आदित्यानां स्वसा चैव तुष्टा वाञ्छितसिद्धिदा ॥ ३३ ॥ त्वं धृतिस्त्वं तथा पुष्टिस्त्वं स्वाहा त्वं स्वधा तथा ॥ ऋद्धिः सिद्धिस्तथा लक्ष्मीर्धृतिः कीर्तिस्तथा मतिः ॥ ३४ ॥ कान्तिर्लज्जा महामाया श्रद्धा सर्वार्थसाधिनी ॥ त्वया विरहितं किंचिन्नास्ति त्रिभुवनेष्वपि ॥ ३५ ॥ वह्नेस्तृप्ति प्रदात्री च देवादीनां च तृप्तिदा ॥ त्वया सर्वमिदं व्याप्तं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ३६ ॥ पादास्ते वेदाश्चत्वारः समु द्राः स्तनतां ययुः ॥ चन्द्रार्कौ लोचने यस्या रोमाग्रेषु च देवताः ॥ ३७ ॥ शृङ्गयोः पर्वताः सर्वे कर्णयोर्वायवस्त था ॥ नाभौ चैवामृतं देवि पातालानि खुरास्तथा ॥ ३८ ॥ स्कन्धे च भगवान् ब्रह्मा मस्तकस्थः सदाशिवः ॥ हृद्देशे च स्थितो विष्णुः पुच्छाग्रे पन्नगास्तथा ॥ ३९ ॥ शकृत्स्था वसवः सर्वे साध्या मूत्रस्थितास्तव ॥ सर्वे यज्ञा ह्य

और तीनों लोकों में भी तुमसे रहित कुछ नहीं है ॥ ३५ ॥ और तुम अग्निको तृप्ति देनेवाली व देवादिकों को तृप्ति देनेवाली हो और यह चराचर सब संसार तुम से व्याप्त है ॥ ३६ ॥ और चारों वेद तुम्हारे चरण हैं व समुद्र स्तन हैं और चन्द्रमा व सूर्य जिसके नेत्र हैं व रोम के अग्रभागों में देवता हैं ॥ ३७ ॥ और शृंगों में सब पर्वत हैं व कानों में पवन हैं व हे देवि ! नाभि में अमृत है और पाताल खुर हैं ॥ ३८ ॥ और जिसके कन्धे पै भगवान् ब्रह्मा व सदाशिवजी जिसके मस्तक में स्थित हैं और हृदय के देश में विष्णुजी स्थित हैं और पुच्छ के अग्रभाग में सर्प हैं ॥ ३९ ॥ और तुम्हारे गोमय में सब वसु स्थित हैं व साध्यदेवता

मूत्रमें स्थित हैं और सब यज्ञ अस्थि में हैं व किन्नर गुह्य इन्द्रिय में स्थित हैं ॥ ४० ॥ और सब पितरों के गण सदैव तुम्हारे आगे स्थित शोभित हैं व सब यक्ष मस्तक के स्थान में हैं और किन्नर कपोलों में हैं ॥ ४१ ॥ और तुम सर्वदेवमयी हो व सब प्राणियों को वृद्धि देनेवाली हो सदैव सब लोकों का हित करनेवाली तुम मेरे शरीरकी हितकारिणी होवो ॥ ४२ ॥ हे देवेशि ! मैं तुमको प्रणाम करता हूं व हे अनघे ! मैं तुमको सदैव पूजता हूं और संसार के दुःख को हरने वाली तुम्हारी मैं स्तुति करता हूं व तुम प्रसन्न और वरदायिनी होवो ॥ ४३ ॥ हे शोभने ! मेरा शरीर ब्राह्मणोंकी शापाग्नि से जलगया है हे अमृतसंभवे !

स्थिदेशे किन्नरा गुह्यसंस्थिताः ॥ ४० ॥ पितॄणां च गणाः सर्वे पुरःस्था भान्ति सर्वदा ॥ सर्वे यक्षा भालदेशे किन्नराश्च कपोलयोः ॥ ४१ ॥ सर्वदेवमयी त्वं हि सर्वभूतविवृद्धिदा ॥ सर्वलोकहिता नित्यं मम देहहिता भव ॥ ४२ ॥ प्रणतस्तव देवेशि पूजये त्वां सदानघे ॥ स्तौमि विश्वार्तिहन्त्रीं त्वां प्रसन्ना वरदा भव ॥ ४३ ॥ विप्रशापाग्निना दग्धं शरीरं मम शोभने ॥ स्वतेजसा पुनः कर्त्तुमर्हस्यमृतसंभवे ॥ ४४ ॥ इत्युक्त्वा तां परिक्रम्य तस्या देहे लयं गतः ॥ सापि गर्भे दधाराथ सुरभिस्तदनन्तरम् ॥ ४५ ॥ कालातिक्रमयोगेन सर्वो व्याकुलतां ययौ ॥ तस्मिन्प्रणष्टे देवेशे विप्रशापभयावृते ॥ ४६ ॥ देवा महार्तिं प्रययुश्चचाल पृथिवी तथा ॥ चन्द्रार्कौ निष्प्रभौ चैव वायुरुच्चण्ड एव च ॥ ४७ ॥ समुद्राः क्षोभमगमंस्तस्मिन्काले द्विजोत्तम ॥ ४८ ॥ यस्मिञ्जगत्स्थावरजङ्गमादिकं काले लयं

उसको तुम फिर अपने तेजसे करने के योग्य हो ॥ ४४ ॥ यह कहकर उस सुरभी की परिक्रमा करके शिवजी उसके शरीर में लीन होगये तदनन्तर सुरभी ने भी गर्भ में उनको धारण किया ॥ ४५ ॥ और समयके नांघने के योग से सब संसार विकलता को प्राप्त हुआ और ब्राह्मणों के शाप के भय से घिरेहुए उन शिवजीके अदृश्य होजाने पर ॥ ४६ ॥ देवता लोग बड़े दुःख को प्राप्त हुए व पृथ्वी कांपने लगी और चन्द्रमा व सूर्य प्रकाशहीन हुए व पवन प्रचंड चलने लगा ॥ ४७ ॥ व हे द्विजोत्तम ! उस समय समुद्र क्षोभको प्राप्त हुए ॥ ४८ ॥ चराचरादिक संसार कालमें जिन शिवजीमें लयको प्राप्त होकर फिर उत्पन्न होता है ब्राह्मणों के शाप

से पीडित उन शिवजी के अदृश्य होजाने पर संसार क्षणभर में नष्ट सा होगया ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां हरशापो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । पाय द्विजन कर शाप शिव भये यथा वृषरूप । सत्ताइसवें में सोई बरण्यो चरित अनूप ॥ गालवजी बोले कि योजन भर लम्बे चौड़े उस लिङ्गके गिरनेपर दुःखसे विकल हज़ारों ऋषियोंके गण वहां गये ॥ १ ॥ और वहां शिवजी को देखने के लिये वे सब कहीं देखने लगे और भय से विकल ये शिवजी उन

प्राप्य पुनः प्ररोहति ॥ तस्मिन्प्रणष्टे द्विजशापपीडिते जगद्धतप्रायमवर्तत क्षणात् ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये हरशापोनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥

गालव उवाच ॥ तस्मिंस्तु पतिते लिङ्गे योजनायामविस्तृते ॥ विषादार्त्ता ऋषिगणास्तत्र जग्मुः सहस्रशः ॥१॥ व्यलोकयन्त सर्वत्र द्रष्टुं तत्र महेश्वरम् ॥ नासौ दृष्टिपथे तेषां बभूव भयविह्वलः ॥ २ ॥ वीर्यं वर्षसहस्राणि बहून्यपि सुसंचितम् ॥ पृथिवीं सकलां व्याप्य स्थितं ददृशिरे द्विजाः ॥ ३ ॥ तद्दृष्ट्वा सुमहल्लिङ्गं रुधिराक्तं जलैः प्लुतम् ॥ ब्राह्मणाः संशयगता दह्यमाना वसुन्धरा ॥ ४ ॥ तल्लिङ्गं तत्र संस्थाप्य चक्रुस्तां नर्मदां नदीम् ॥ तज्जलं नर्मदारूपं तल्लिङ्गममरकण्टकम् ॥ ५ ॥ नरकं वारयत्येतत्सेवितं नरकापहम् ॥ भूतग्रहाश्च सर्वेऽपि यास्यन्ति विलयं ध्रुवम् ॥ ६ ॥ तत्र स्नात्वा जलं पीत्वा सन्तर्प्य च पितॄंस्तथा ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति मनुष्यो भुवि दुर्ल

के नेत्रपथ में नहीं प्राप्त हुए ॥ २ ॥ और बहुत हज़ार वर्षों से इकट्ठा हुए वीर्य को ब्राह्मणों ने सब पृथ्वी को व्याप्त होकर स्थित देखा ॥ ३ ॥ और जलसे डूबे व रक्त से संयुत उस बड़े भारी लिङ्ग को देखकर ब्राह्मण लोग सन्देह को प्राप्त हुए व पृथ्वी जलने लगी ॥ ४ ॥ और उस लिङ्गको वहां थापकर ब्राह्मणों ने उस नर्मदा नदी को किया और वह जल नर्मदारूप होगया तथा वह लिङ्ग अमरकण्टक हुआ ॥ ५ ॥ नरक को नाशनेवाला यह सेवित लिङ्ग नरकको मना करताहै और सब भूत ग्रह निश्चयकर नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ और उसमें नहाकर व जल को पीकर तथा पितरों को तर्पण कर मनुष्य पृथ्वी में सब दुर्लभ कामनाओं

को पाता है ॥ ७ ॥ और नर्मदा के लिङ्गोंको जो मनुष्य पूजेंगे उनका शरीर शिवमय होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ और चातुर्मास्य में विशेष कर लिङ्ग की पूजा बडे भारी फलको देती है व चातुर्मास्य में रुद्रजप, शिवपूजन व शिवजी में अनुराग ॥ ९ ॥ और जो पञ्चामृत से स्नान कराते हैं उनको गर्भ का दुःख नहीं होता है और जो मनुष्य लिङ्गके मस्तक पै शहदसे सेचन करेंगे याने स्नान करावेंगे ॥ १० ॥ उनके हज़ारों दुःख निश्चय कर नाश होजावेंगे और जिसने चातुर्मास्य में शिवजी के आगे दीपदान किया है ॥ ११ ॥ वह करोड़ों पुरितयों को उधारकर अपनी इच्छा से शिवलोक का भागी होता है और चंदन,

भान् ॥ ७ ॥ लिङ्गानि नार्मदेयानि पूजयिष्यन्ति ये नराः ॥ तेषां रुद्रमयो देहो भविष्यति न संशयः ॥ ८ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण लिङ्गपूजा महाफला ॥ चातुर्मास्ये रुद्रजपं हरपूजा शिवे रतिः ॥ ९ ॥ पञ्चामृतेन स्नपनं न तेषां गर्भवेदना ॥ ये करिष्यन्ति मधुना सेचनं लिङ्गमस्तके ॥ १० ॥ तेषां दुःखसहस्राणि यास्यन्ति विलयं ध्रुवम् ॥ दीपदानं कृतं येन चातुर्मास्ये शिवाग्रतः ॥ ११ ॥ कुलकोटिं समुद्धृत्य स्वेच्छया शिवलोकभाक् ॥ चन्दनागुरुधूपैश्च सुश्वेतकुसुमैरपि ॥ १२ ॥ नर्मदाजललिङ्गं ये ह्यर्चयिष्यन्ति ते शिवाः ॥ शिलाहरत्वमापन्नाः प्राणिनामपि का कथा ॥ १३ ॥ तत्संभूतं महालिङ्गं जलधारणसंयुतम् ॥ पूजयित्वा विधानेन चातुर्मास्ये शिवो भवेत् ॥ १४ ॥ चातुर्मास्ये ये मनुजा नर्मदामरकण्टके ॥ तीर्थे स्नास्यन्ति नियतास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे ॥ १५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा ते द्विजास्तत्र स्थाप्य लिङ्गं यथाविधि ॥ अमरकण्टकतीर्थे च नर्मदां च महानदीम् ॥ १६ ॥ पुनश्चिन्तापरा जाता विश्व

अगुरु, धूप व सफ़ेद पुष्पों से भी ॥ १२ ॥ जो मनुष्य नर्मदाजल के लिङ्ग को पूजेंगे वे शिव होवेंगे और पत्थर भी शिवत्व को प्राप्त होते हैं तो प्राणियों की कौन कथा है ॥ १३ ॥ और चातुर्मास्य में जलधारण से संयुत उससे उपजे हुए महालिङ्ग को विधि से पूजकर मनुष्य शिव होजाता है ॥ १४ ॥ और नियम संयुत जो मनुष्य चातुर्मास्य में नर्मदामरकण्टक तीर्थ में नहावेंगे उनका स्वर्ग में निवास होगा ॥ १५ ॥ ब्रह्माजी बोले कि यह कहकर वे ब्राह्मण वहां नर्मदा महानदी पै अमरकण्टक तीर्थ में विधिपूर्वक लिङ्ग को थापकर ॥ १६ ॥ फिर संसार के क्षोभकारण में चिन्ता में परायण हुए और कमलासनमें प्राप्त होकर प्रणायाम

करने लगे ॥ १७ ॥ और सावधानता से हृदय में स्थित शिवजी को ध्यान करने लगे तदनन्तर इन्द्रादिक देवता अमरकण्टक तीर्थको प्राप्त होकर ॥ १८ ॥ विनय से झुकेहुए कन्धेवाले उन्होंने ब्राह्मणों की स्तुति किया कि हे महेश्वरो ! ब्रह्म को जाननेवाले आप लोगों के लिये प्रणाम है ॥ १९ ॥ व बंधन से छूटेहुए तथा पृथ्वी के देवता तुमलोगों गुरुवों के लिये प्रणाम है तुमलोग तीनों गुणोंसे परे व गुणरूप और गुणों की खानि हो ॥ २० ॥ और तीनों गुणों के भावों से सदैव प्राणरूपी बुद्बुदोंवाले पापी जिनके वचनरूपी जलसे शुद्धता को ॥ २१ ॥ प्राप्त होते हैं और पापियों के पापपुंज भस्म होजाते हैं और जिनका वचनही

स्य क्षोभकारणे ॥ पद्मासनगता भूत्वा प्राणायामपरायणाः ॥ १७ ॥ चिन्तयामासुरव्यग्रं हृदयस्थं महेश्वरम् ॥ ततो देवा महेन्द्राद्याः संप्राप्यामरकण्टकम् ॥ १८ ॥ ब्राह्मणानां स्तुतिं चक्रुर्विनयानतकन्धराः ॥ नमोस्तु वो द्विजातिभ्यो ब्रह्मविद्भ्यो महेश्वराः ॥ १९ ॥ भूसुरेभ्यो गुरुभ्यश्च विमुक्तेभ्यश्च बन्धनात् ॥ यूयं गुणत्रयातीता गुणरूपा गुणाकराः ॥ २० ॥ गुणत्रयमयैर्भावैः सततं प्राणबुद्बुदाः ॥ येषां वाक्यजलेनैव पापिष्ठा अपि शुद्धताम् ॥ २१ ॥ प्रयान्ति पापपुञ्जाश्च भस्मसाद्यान्ति पापिनाम् ॥ शस्त्रं लोहमयं येषां वागेव तत्समन्विताः ॥ २२ ॥ पापैः पराभिभूतानां तेषां लोकोत्तरं बलम् ॥ क्षमया पृथिवीतुल्याः कोपे वैश्वानरप्रभाः ॥ २३ ॥ पातनेऽनेकशक्तीनां समर्था यूयमेव हि ॥ स्वर्गादीनां तथा याने भवन्तो गतयो ध्रुवम् ॥ २४ ॥ सत्कर्मकारकाश्चैव सत्कर्मनिरताः सदा ॥ सत्कर्मफलदातारः सत्कर्मभ्यो मुमुक्षवः ॥ २५ ॥ सावित्रीमन्त्रनिरता ये भवन्तोघनाशनाः ॥ आत्मानं यजमानं

लोहमय शस्त्र है उससे जो संयुत हैं ॥ २२ ॥ पापोंसे तिरस्कृत उनका बल लोकोंसे अधिक होता है और क्षमा में पृथ्वी के समान व क्रोध में अग्निके समान ॥ २३ ॥ और अनेक शक्तियों के नाशने में तुम्हीं लोग समर्थ हो और स्वर्गादिकों को जाने के लिये आपही लोग निश्चय कर गति हो ॥ २४ ॥ और आप लोग उत्तम कर्मों को करनेवाले व सदैव उत्तम कर्मों में परायण और उत्तम कर्मों को देनेवाले व उत्तम कर्मों से मुक्ति की इच्छा करनेवाले हो ॥ २५ ॥ और जो आप

लोग गायत्रीमंत्र में परायण व पापनाशक हैं वे अपना व यजमान को निस्सन्देह तारते हैं ॥ २६ ॥ और तृप्त कियेहुए ब्राह्मण व अग्नि कार्य के साधक होते हैं और चातुर्मास्य में विशेषकर उनका पूजन बहुत फलवान् होता है ॥ २७ ॥ और क्रोध कराये हुए वे सब शरीर के नाश के लिये होते हैं तबतक इन्द्र का वज्र व शिवजी का त्रिशूल नहीं नाश करता है ॥ २८ ॥ और तबतक यमराज का दंड नहीं नाश करता है जबतक कि ब्राह्मणों से उपजा हुआ शाप नहीं होता है और अग्नि प्रत्यक्ष वस्तुको जलाती है व शाप बिन देखीहुई भी वस्तुओं को जलाती है ॥ २९ ॥ और पैदाहुए व बिन पैदाहुए भी लोगोंको नाश करती है उस कारण

च तारयन्ति न संशयः ॥ २६ ॥ वह्नयश्च तथा विप्रास्तर्पिताः कार्यसाधकाः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण तेषां पूजा महाफला ॥ २७ ॥ कोपिताः सर्वदेहस्य नाशनाय भवन्ति हि ॥ तावन्न वज्रमिन्द्रस्य शूलं नैव पिनाकिनः ॥ २८ ॥ दण्डो यमस्य तावन्नो यावच्छापो द्विजोद्भवः ॥ अग्निना ज्वाल्यते दृश्यं शापोदृष्टानपि स्वयम् ॥ २९ ॥ हन्ति जातानजातांश्च तस्माद्विप्रं न कोपयेत् ॥ विप्रकोपाग्निना दग्धो नरकान्नैव मुच्यते ॥ ३० ॥ शस्त्रक्षतोऽपि नरकान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ देवानामपि सर्वेषां सामर्थ्यं भेदने न हि ॥ ३१ ॥ वाङ्मात्रेण हि विप्रस्य भिद्यते सकलं जगत् ॥ ते यूयं गुरवोऽस्माकं विश्वकारणकारकाः ॥ ३२ ॥ प्रसादपरमा नित्यं भवन्तु भुवनेश्वराः ॥ ईश्वरेण विना सर्वे वयं लोकाश्च दुःखिताः ॥ ३३ ॥ तत्कथ्यतां स भगवान् कुत्रास्ते परमेश्वरः ॥ गालव उवाच ॥ ज्ञात्वा मुनिभय

ब्राह्मण को क्रोधित न करावे और ब्राह्मण की क्रोधाग्नि से जला हुआ मनुष्य नरक से नहीं छूटता है ॥ ३० ॥ व शस्त्र से कटाहुआ भी नरक से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है और भेदन करने में सब देवताओं की भी सामर्थ्य नहीं होती है ॥ ३१ ॥ और ब्राह्मण के वचनही से सब संसार नाश होजाता है वे आप लोग हम लोगों के गुरु हो व संसार के कारण व कर्ताहो ॥ ३२ ॥ और लोकोंके स्वामी आप लोग सदैव प्रसन्नता से श्रेष्ठ होवो हमलोग और सब लोक शिवजी के विना दुःखित हैं ॥ ३३ ॥ इससे कहिये कि वे परमेश्वर भगवान् शिवजी कहां हैं गालवजी बोले कि त्रिशूलधारी शिवजी को मुनियों के भयसे

डरे हुए जानकर ॥ ३४ ॥ महर्षियों ने सुरभी के गर्भ में उत्पन्न शिवजी को देवताओं से कहा व यह कहा कि देवदेव आपलोगोंके लिये स्वागत है वे शिवजी जानेगये ॥ ३५ ॥ हे देवेशो ! वहां चलिये जहां कि सनातन शिवदेवजी हैं यह कहकर वे महात्मा देवताओं समेत उस समय देवताओं के मार्ग से गोलोक को गये जहां कि खीर का कीचड़ व घी की नदियां हैं व जहां शहद के कुंड व नदियों के गण हैं ॥ ३६ । ३७ ॥ और पूर्वज पितरों के सब गण दही व अमृत को हाथ में लिये थे और मरीचिप, सोमप व अन्य सिद्धों के गण थे ॥ ३८ ॥ और वहां घृतप व साध्य देवता थे जहां कि सनातन शिवदेवजी थे उन मुनिलोगोंने

त्रस्तं देवेशं शूलपाणिनम् ॥३४॥ सुरभीगर्भसंभूतं देवानूचुर्महर्षयः॥ स्वागतं देवदेवेभ्यो ज्ञातो वै स महेश्वरः ॥३५॥ तत्र गच्छन्तु देवेशा यत्र देवः सनातनः ॥ इत्युक्त्वा ते महात्मानः सह देवैर्ययुस्तदा ॥ ३६ ॥ गोलोकं देवमार्गेण यत्र पायसकर्दमः ॥ घृतनद्यो मधुह्रदा नदीनां यत्र संघशः ॥ ३७ ॥ पूर्वजानां गणाः सर्वे दधिपीयूषपाणयः ॥ मरीचिपाः सोमपाश्च सिद्धसंघास्तथापरे ॥ ३८ ॥ घृतपाश्चैव साध्याश्च यत्र देवाः सनातनाः ॥ ते तत्र गत्वा मुनयो ददृशुः सुरभीसुतम् ॥ ३९ ॥ तेजसा भास्करं चैव नीलनामेति विश्रुतम् ॥ इतस्ततोभिधावन्तं गवां संघातमध्यगम् ॥ ४० ॥ नन्दा सुमनसा चैव सुरूपा च सुशीलका ॥ कामिनी नन्दिनी चैव मेध्या चैव हिरण्यदा ॥ ४१ ॥ धनदा धर्मदा चैव नर्मदा सकलप्रिया ॥ वामना लम्बिका कृष्णा दीर्घशृङ्गा सुपिच्छिका ॥ ४२ ॥ तारा तरेयिका शान्ता दुर्विषह्या मनोरमा ॥ सुनासा दीर्घनासा च गौरा गौरमुखी हया ॥ ४३ ॥ हरिद्रवर्णा नीला च शङ्खिनी

वहां जाकर तेज से सूर्य के समान नील नाम ऐसे प्रसिद्ध सुरभीपुत्रको गौवों के समूह के मध्य में प्राप्त व इधर उधर दौडता हुआ देखा ॥ ३९ । ४० ॥ और नंदा, सुमनसा, सुरूपा, सुशीला, कामिनी, नंदिनी, मेध्या व हिरण्यदा ॥ ४१ ॥ और धनदा, धर्मदा, नर्मदा, सकलप्रिया, वामना, लंबिका, कृष्णा, दीर्घशृंगा व सुपिच्छिका ॥ ४२ ॥ और तारा तरेयिका, शान्ता, दुर्विषह्या, मनोरमा, सुनासा, दीर्घनासा, गौरा, गौरमुखी व हया ॥ ४३ ॥ और हरिद्रवर्णा, नीला, शखिनी

व पञ्चवर्णा, विनता, अभिनता, भिन्नवर्णा व सुपत्रिका ॥ ४४ ॥ और जया, अरुणा, कुंडोध्नी, सुदती व चारुचंपका इनके मध्य में प्राप्त नील को देखकर वे मुनि व देवता ॥ ४५ ॥ घूमने लगे और उस सुरूप के ऊपर सब विस्मित हुए और दया से संयुत मुनीश्वर व इन्द्रादिक देवता प्रसन्नमन हुए ॥ ४६ ॥ और उनके तेजसे प्रसन्न होते हुए उन्हों ने स्तुति करने का प्रारंभ किया शूद्र बोला कि अद्भुत आकारवाला यह नील नामक कैसे हुआ ॥ ४७ ॥ और संसार के कारणरूप उन शिवजी की प्रसन्न ब्राह्मणों ने क्यों स्तुति किया गालवजी बोले कि जो रंग से लाल हो व मुख और पूंछ में जो श्वेतरंग होवै ॥ ४८ ॥

पञ्चवर्णका ॥ विनताभिनता चैव भिन्नवर्णा सुपत्रिका ॥ ४४ ॥ जयाऽरुणा च कुण्डोध्नी सुदती चारुचम्पका ॥ एतासां मध्यगं नीलं दृष्ट्वा ता मुनिदेवताः ॥ ४५ ॥ विचरन्ति सुरूपं तं संजातं विस्मयोन्मुखाः ॥ मुनीश्वराः कृपाविष्टा इन्द्राद्या हृष्टमानसाः ॥ ४६ ॥ स्तुतिमारेभिरे कर्त्तुं तेजसा तस्य तोषिताः ॥ शूद्र उवाच ॥ कथं नीलेति नामासौ जातोयमद्भुताकृतिः ॥ ४७ ॥ किमस्तुवन् प्रसन्नास्ते ब्राह्मणा विश्वकारणम् ॥ गालव उवाच ॥ लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः ॥ ४८ ॥ श्वेतः खुरविषाणेषु स नीलो वृषभः स्मृतः ॥ चतुष्पादो धर्मरूपो नीललोहितचिह्नकः ॥ ४९ ॥ कपिलः खुरचिह्नेषु स नीलो वृषभः स्मृतः ॥ योऽसौ महेश्वरो देवो वृषश्चापि स एव हि ॥ ५० ॥ चतुष्पादो धर्मरूपो नीलः पञ्चमुखो हरः ॥ यस्य संदर्शनादेव वाजपेयफलं लभेत् ॥ ५१ ॥ नीले च पूजिते यस्मिन् पूजितं सकलं जगत् ॥ स्निग्धग्रासप्रदानेन जगदाप्यायितं भवेत् ॥ ५२ ॥ यस्य देहे सदा

और खुरों व सींगों में जो सफ़ेद होवै वह नीलवृष कहा गया है और नील व लाल चिह्नवाला तथा चार चरणोंवाला धर्मरूपी होता है ॥ ४९ ॥ और जो खुरों के चिह्नोंमें कपिल रंग होता है वह नीलबैल कहा गया है और जो ये शिवदेवजी हैं वही वृष भी हैं ॥ ५० ॥ और चार चरणोंवाला धर्मरूपी नीलबैल पांच मुखोंवाले शिवजी हैं कि जिनके दर्शनही से मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फल को पाता है ॥ ५१ ॥ व जिस नील के पूजने पर सब संसार पूजित होताहै व सचिक्कण कवल के देने से संसार तृप्त किया होता है ॥ ५२ ॥ और जिनके शरीर में संसार व्यापक श्रीमान् विष्णुजी सदैव रहते हैं और जो ये सनातन वेदमंत्रों से

नित्य पूजेजाते हैं ॥ ५३ ॥ ऋषिलोग बोले कि संसार के रक्षक व सनातन तुम सब रक्षकों के रक्षा करनेवाले देवता हो और विघ्नहर्ता व ज्ञानदायक तथा धर्मरूप व मोक्षदायक हो ॥ ५४ ॥ और तुम्हीं धनदायक, लक्ष्मीदायक व सब रोगों के नाशनेवाले हो व लोकों के कल्याण करने में लगेहुए व सुवर्ण के दायक हो ॥ ५५ ॥ हे महाबल, सौरभेय, सबों के तेजों के स्थान ! तुमने पार्वती समेत कैलासको सींग पै धारण किया है ॥ ५६ ॥ और आप वेदों से स्तुति करने योग्य तथा वेदमय व वेदात्मक और वेदविदों में श्रेष्ठ हो व वेदों से जानने योग्य तथा वेदयान और वेदरूप व गुणों की खानि हो ॥ ५७ ॥ और तीनों गुणों से

श्रीमान् विश्वव्यापी जनार्दनः ॥ नित्यमभ्यर्च्यते योऽसौ वेदमन्त्रैः सनातनैः ॥ ५३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वं देवः सर्वगोप्तॄणां विश्वगोप्ता सनातनः ॥ विघ्नहर्ता ज्ञानदश्च धर्मरूपश्च मोक्षदः ॥ ५४ ॥ त्वमेव धनदः श्रीदः सर्वव्याधिनिषूदनः ॥ जगतां शर्मकरणे प्रवृत्तः कनकप्रदः ॥ ५५ ॥ तेजसां धाम सर्वेषां सौरभेय महाबल ॥ शृङ्गे धृतश्च कैलासः पार्वतीसहितस्त्वया ॥ ५६ ॥ वेदस्तुत्यो वेदमयो वेदात्मा वेदवित्तमः ॥ वेदवेद्यो वेदयानो वेदरूपो गुणाकरः ॥ ५७ ॥ गुणत्रयेभ्योऽपि परो याथात्म्यं वेदकस्तव ॥ वृषस्त्वं भगवन् देवं यस्तुभ्यं कुरुते त्वघम् ॥ ५८ ॥ वृषलः स तु विज्ञेयो रौरवादिषु पच्यते ॥ पदा स्पृष्ट्वा स तु नरो नरकादिषु यातनाः ॥ ५९ ॥ सेव्यते पापनिचयैर्निगाढप्रायबन्धनैः ॥ क्षुत्क्षामं च तृषाक्रान्तं महाभारसमन्वितम् ॥ ६० ॥ निर्दया ये प्रशोष्यन्ति मतिस्तेषां न शाश्वती ॥ चतुर्भिः सहितं मर्त्या विवाहविधिना तु ये ॥ ६१ ॥ विवाहं नीलरूपस्य ये करिष्यन्ति मानवाः ॥ पितॄनुद्दिश्य तेषां वै कुले

भी परे ही तुम्हारी यथार्थता को कौन जानता है हे भगवन्, देव ! तुम धर्म हो और जो तुम्हारे लिये पाप करता है ॥ ५८ ॥ वह शूद्र जानने योग्य है और रौरवादिक नरकों में वह पचता है और पैर से तुमको छूकर वह मनुष्य नरकादिकों में पीड़ा को पाता है ॥ ५९ ॥ और पापसमूहों के कारण बड़े कठिन बन्धनों से वह सेवन किया जाता है और क्षुधा से दुर्बल व प्यास से संयुत तथा बड़े बोझ से संयुत ॥ ६० ॥ व चार बैलों समेत तुमको जो निर्दयी लोग सुखाते हैं उनकी सनातनी बुद्धि नहीं होती है और विवाह की विधि से ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य पितरों को उद्देशकर नीलरूपी तुम्हारा विवाह करेंगे उनके वंश में नरकगामी

मनुष्य न होवैगा ॥ ६२ ॥ और सब लोकों की तुम गति हो व तुम पिता हो व परमेश्वर हो और तुम्हारे विना सब संसार उसी क्षण नाश होजाता है ॥ ६३ ॥
और परा, पश्यन्ती, मध्यमा व वैखरी इन चारों प्रकार के वचनों के ईश्वर तुमको विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ६४ ॥ और चार सींग व चार पैर तथा दो
मस्तक व सात हाथोंवाले और तीन भांति से बँधेहुए तुमको विद्वान् वृष कहते हैं ॥ ६५ ॥ और सब प्राणियों को तृप्ति देनेवाले व पराक्रम से संसार के व्यापक
तथा ब्रह्म धर्ममय व नित्य आत्मा तुम्हीं को लोग कहते हैं ॥ ६६ ॥ और तुम अच्छेद्य व अभेद्य तथा अमित व बड़े यशस्वी हो और तुम अशोष्य व अदाह्य

नैवास्ति नारकी ॥ ६२ ॥ त्वं गतिः सर्वलोकानां त्वं पिता परमेश्वरः ॥ त्वया विना जगत्सर्वं तत्क्षणादेव नश्यति ॥ ६३ ॥ परा चैव तु पश्यन्ती मध्यमा वैखरी तथा ॥ चतुर्विधानां वचसामीश्वरं त्वां विदुर्बुधाः ॥ ६४ ॥ चतुःश्रृङ्गं चतुष्पादं द्विशीर्षं सप्तहस्तकम् ॥ त्रिधा बद्धं धर्ममयं त्वामेव वृषभं विदुः ॥ ६५ ॥ तृप्तिदं सर्वभूतानां विश्वव्यापकमोजसा ॥ ब्रह्मधर्ममयं नित्यं त्वामात्मानं विदुर्जनाः ॥ ६६ ॥ अच्छेद्यस्त्वमभेद्यस्त्वमप्रमेयो महायशाः ॥ अशोष्यस्त्वमदाह्योसि विदुः पौराणिका जनाः ॥ ६७ ॥ त्वदाधारमिदं सर्वं त्वदाधारमिदं जगत् ॥ त्वदाधाराश्च देवाश्च त्वदाधारं तथामृतम् ॥ ६८ ॥ जीवरूपेण लोकांस्त्रीन् व्याप्य तिष्ठसि नित्यदा ॥ एवं स संस्तुतो नीलो विप्रैस्तैः सोमपायिभिः ॥ ६९ ॥ प्रसन्नवदनोभूत्वा विप्रान्प्रणतितत्परः ॥ पुनरेव वचः प्रोचुर्विप्राः कृताशिवागसः ॥७०॥ वरं ददुर्महेशस्य नीलरूपस्य धर्मतः ॥ एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः ॥७१॥ प्रेतत्वं सुस्थिरं

हो ऐसा पौराणिक लोग कहते हैं ॥ ६७ ॥ यह सब तुम्हारे आधार है और यह संसार तुम्हारे आधार है व देवता तुम्हारे आधार हैं और अमृत तुम्हारे आधार
है ॥ ६८ ॥ और सदैव जीवरूप से तीनों लोकों को व्याप्त कर तुम स्थित होते हो इस प्रकार उन सोमप ब्राह्मणों से स्तुति किया हुआ वह नीलवृष ॥ ६९ ॥
प्रसन्नमुख होकर ब्राह्मणों को प्रणाम करता भया और शिवजी का अपराध करने वाले ब्राह्मणों ने फिर यह वचन कहा ॥ ७० ॥ और धर्म से नीलरूप
शिवजी को वर दिया कि जिस प्रेतके एकादशाह में बैल नहीं छोड़ा जाता है ॥ ७१ ॥ सैकड़ों श्राद्धों के भी देनेसे उसकी प्रेतता स्थिर होती है फिर महावृष

से संयुत तथा कमल सरीखे चौड़े नेत्रवाले थे ॥ २७ ॥ युद्ध में बहुतही थकेहुए उन रघुनाथजी को देखा व देवता, ऋषि और किन्नरों से स्तुति किये जातेहुए शत्रुविना-शक ॥ २८ ॥ व बहुत दयावान् चित्तवाले दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी को देखकर रघुनाथजी के हाथ के छूने से पूर्ण शरीरवाले उन वानर हनुमान्‌जीने ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मणो ! पृथ्वी में दंडा की नाईं गिरकर दोनों हाथों को जोड़कर कानों के मनोहर स्तोत्रों से रघुनाथजी की स्तुति किया ॥ ३० ॥ हनूमान्‌जी बोले कि समर्थवान् विष्णु व हरि श्रीरामजी के लिये प्रणाम है और आदिदेव, देव व पुराण तथा गदाधारी के लिये प्रणाम है ॥ ३१ ॥ और पुष्पक आसन पै सदैव बैठनेवाले महात्मा

समुक्षितम् ॥ जटामण्डलशोभाढ्यं पुण्डरीकायतेक्षणम् ॥ २७ ॥ खिन्नञ्चबहुशोयुद्धे ददर्शरघुनन्दनम् ॥ स्तूयमानम मित्रघ्नं देवर्षिपितृकिन्नरैः ॥ २८ ॥ दृष्ट्वादाशरथिंरामं कृपाबहुलचेतसम् ॥ रघुनाथकरस्पर्शपूर्णगात्रःसवानरः ॥ २९ ॥ पतित्वादण्डवद्भूमौ कृताञ्जलिपुटोद्विजाः ॥ अस्तौषीज्जानकीनाथं स्तोत्रैःश्रुतिमनोहरैः ॥ ३० ॥ हनूमानुवाच ॥ नमो रामायहरये विष्णवेप्रभविष्णवे ॥ आदिदेवायदेवाय पुराणायगदाभृते ॥ ३१ ॥ विष्टरेपुष्पकेनित्यं निविष्टायमहात्मने ॥ प्रहृष्टवानरानीकजुष्टपादाम्बुजायते ॥ ३२ ॥ निष्पिष्टराक्षसेन्द्राय जगदिष्टविधायिने ॥ नमःसहस्रशिरसे सहस्रचरणायच ॥ ३३ ॥ सहस्राक्षायशुद्धाय राघवायचविष्णवे ॥ भक्तार्तिहारिणेतुभ्यं सीतायाःपतयेनमः ॥ ३४ ॥ हरयेनारसिंहाय दैत्यराजविदारिणे ॥ नमस्तुभ्यंवराहाय दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धर ॥ ३५ ॥ त्रिविक्रमायभवते बलियज्ञविभेदिने ॥

के लिये प्रणाम है व प्रसन्न वानरसमूहों से सेवित चरणकमलवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३२ ॥ व राक्षसेन्द्र रावण को मारनेवाले और संसार का प्रिय करनेवाले आप के लिये प्रणाम है और हज़ार मस्तक व हज़ार चरणोंवाले आप के लिये प्रणाम है ॥ ३३ ॥ और सहस्रलोचन, शुद्ध, राघव व विष्णुजी के लिये प्रणाम है तथा भक्तदुःखविनाशक आप जानकीनाथ के लिये प्रणाम है ॥ ३४ ॥ और दैत्यराज हिरण्यकशिपु को विदारनेवाले नृसिंहरूपी विष्णु के लिये प्रणाम है व हे दाढ़ से पृथ्वी को उठानेवाले ! वराहरूपी आप के लिये प्रणाम है ॥ ३५ ॥ और बलि के यज्ञ को भेदन करनेवाले आप त्रिविक्रम वामनरूप के लिये प्रणाम है व महामन्दर

को धारनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ३६ ॥ और वेदत्रयी की रक्षा करनेवाले मछली रूपवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व क्षत्रियों का नाश करनेवाले आप परशुराम के लिये प्रणाम है ॥ ३७ ॥ और राक्षसों का नाश करनेवाले व महादेवजी के बड़े भयंकर धनुष को तोड़नेवाले राघवरूपी आप के लिये प्रणाम है ॥ ३८ ॥ और क्षत्रियों का नाश करनेवाले क्रूर परशुरामजी को भय करानेवाले तथा अहल्या के संताप को हरनेवाले तथा धनुष को भंजनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ३९ ॥ और दश हज़ार हाथियों के बल से संयुत ताड़का राक्षसी के शरीर को नाशनेवाले व पत्थर से कठोर व विशाल बालि के वक्षस्थल को विदारनेवाले के लिये प्रणाम

नमोवामनरूपाय महामन्दरधारिणे ॥ ३६ ॥ नमस्तेमत्स्यरूपाय त्रयीपालनकारिणे ॥ नमःपरशुरामाय क्षत्रियान्तकरायते ॥ ३७ ॥ नमस्तेराक्षसघ्नाय नमोराघवरूपिणे ॥ महादेवमहाभीममहाकोदण्डभेदिने ॥ ३८ ॥ क्षत्रियान्तकरक्रूरभार्गवत्रासकारिणे ॥ नमोस्त्वहल्यासन्तापहारिणेचापहारिणे ॥ ३९ ॥ नागायुतबलोपेतताटकादेहहारिणे ॥ शिलाकठिनविस्तारबालिवक्षोविभेदिने ॥ ४० ॥ नमोमायामृगोन्माथकारिणेज्ञानहारिणे ॥ दशस्यन्दनदुःखाब्धिशोषणागस्त्यरूपिणे ॥ ४१ ॥ अनेकोर्मिसमाधूतसमुद्रमदहारिणे ॥ मैथिलीमानसाम्भोजभानवे लोकसाक्षिणे ॥ ४२ ॥ राजेन्द्रायनमस्तुभ्यं जानकीपतयेहरे ॥ तारकब्रह्मणेतुभ्यं नमोराजीवलोचन ॥ ४३ ॥ रामायरामचन्द्राय वरेण्यायसुखात्मने ॥ विश्वामित्रप्रियायेदं नमःखरविदारिणे ॥ ४४ ॥ प्रसीददेवदेवेश भक्तानामभयप्रद ॥

है ॥ ४० ॥ और मायामृग (मारीच) को नाशनेवाले तथा अज्ञान को हरनेवाले और दशरथजी के दुःखरूपी समुद्र के सुखाने के लिये अगस्त्यरूपी आप के लिये प्रणाम है ॥ ४१ ॥ और अनेक लहरियों से कंपित समुद्र के गर्व को हरनेवाले और मैथिलीजी के मनरूपी कमल के लिये सूर्यरूपी लोकसाक्षी के लिये नमस्कार है ॥ ४२ ॥ व हे हरे ! जानकीनाथ तथा नृपेन्द्र आपके लिये प्रणाम है व हे कमललोचन ! तारक ब्रह्मरूपी आपके लिये प्रणाम है ॥ ४३ ॥ और वरेण्य व सुखात्मक राम व रामचन्द्रजी के लिये प्रणाम है तथा खर राक्षस को विदारनेवाले व विश्वामित्रजी के प्यारे के लिये यह प्रणाम है ॥ ४४ ॥ हे भक्तों को अभय देनेवाले, देवदेवेश ! प्रसन्न

होवो हे दयासिन्धो, रामचन्द्र ! मेरी रक्षा कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४५ ॥ हे वेदवचनों के भी अगोचर, राघवजी ! मेरी रक्षा कीजिये हे रामजी ! दयासे मेरी रक्षा कीजिये मैं तुम्हारे शरण में प्राप्त हूं ॥४६॥ हे रघुवीर ! इस समय मेरे महामोह को दूर कीजिये और स्नान, आचमन, भोजन, जाग्रत्, स्वप्न व सुषुप्ति ॥ ४७॥ सब अवस्थाओं में मेरी रक्षा कीजिये हे रघुनन्दनजी ! त्रिलोक में कौन तुम्हारी महिमा की स्तुति करने के लिये समर्थ है ॥ ४८ ॥ हे रघुनन्दनजी ! तुम्हारी महिमा को तुम्हीं जानते हो इस प्रकार दयानिधान रघुनाथजी की स्तुति करके पवनकुमार हनुमान्जी ने ॥ ४९ ॥ भक्तिसंयुत चित्त से सीताजी की भी स्तुति किया कि हे जानकीजी ! सब

रक्षमांकरुणासिन्धो रामचन्द्रनमोस्तुते ॥ ४५ ॥ रक्षमांवेदवचसामप्यगोचरराघव ॥ पाहिमांकृपयाराम शरणंत्वामुपैम्यहम् ॥ ४६ ॥ रघुवीरमहामोहमपाकुरुममाधुना ॥ स्नानेचाचमनेभुक्तौ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ॥ ४७ ॥ सर्वावस्थासुसर्वत्र पाहिमांरघुनन्दन ॥ महिमानन्तवस्तोतुं कःसमर्थोजगत्त्रये ॥ ४८ ॥ त्वमेवत्वन्महत्त्वंवै जानासिरघुनन्दन ॥ इतिस्तुत्वावायुपुत्रो रामचन्द्रंघृणानिधिम् ॥ ४९ ॥ सीतामप्यभितुष्टाव भक्तियुक्तेनचेतसा ॥ जानकित्वान्नमस्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ ५० ॥ दारिद्र्यरणसंहर्त्रीं भक्तानामिष्टदायिनीम् ॥ विदेहराजतनयां राघवानन्दकारिणीम् ॥ ५१ ॥ भूमेर्दुहितरंविद्यां नमामिप्रकृतिंशिवाम् ॥ पौलस्त्यैश्वर्यसंहर्त्रीम्भक्ताभीष्टांसरस्वतीम् ॥ ५२ ॥ पतिव्रताधुरीणान्त्वां नमामिजनकात्मजाम् ॥ अनुग्रहपरामृद्धिमनघांहरिवल्लभाम् ॥ ५३ ॥ आत्मविद्यात्रयीरूपामुमारू

पापों को नाशनेवाली तुमको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५० ॥ और दरिद्रता के समर को संहारनेवाली तथा भक्तों के मनोरथ को देनेवाली व रघुनाथजी के आनन्द को करनेहारी जनकराजदुलारी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५१ ॥ व पृथ्वी की कन्या तथा विद्या व कल्याणकारिणी प्रकृति को मैं प्रणाम करता हूं व पौलस्त्य (रावण) के ऐश्वर्य को नाश करनेवाली भक्तप्रिया सरस्वतीजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५२ ॥ व पतिव्रताओं में श्रेष्ठ आप जनक की कन्या को मैं प्रणाम करता हूं और दया में परायण व ऋद्धि तथा निष्पापरूपिणी और विष्णुप्रिया ॥ ५३ ॥ तथा आत्मविद्या व वेदत्रयी रूपवाली और पार्वतीरूपिणी को मैं प्रणाम करता हूं व क्षीरसागर की कन्या

प्रसन्न अभिमुखवाली उत्तम लक्ष्मी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५४ ॥ व सब अंगों से सुन्दरी व चन्द्रमा की बहन सीताजी को मैं प्रणाम करता हूं और धर्म में रहने वाली और दयारूपिणी वेदमाता को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५५ ॥ और कमल में स्थानवाली तथा कमल को हाथ में लिये और विष्णुजी के वक्षस्थल में बसनेवाली व चन्द्रमा में रहनेवाली और चन्द्रमा के समान मुखवाली जानकीजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५६ ॥ और आनन्दरूपिणी, सिद्धि, शिवा व कल्याणकारिणी, सती और रामचन्द्र की प्यारी जगदम्बिकाजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५७ ॥ और सब निर्दोष अंगोंवाली सीताजी को मैं सदैव हृदय से भजता हूं श्रीसूतजी बोले कि इस प्रकार

पांनमाम्यहम् ॥ प्रसादाभिमुखींलक्ष्मीं क्षीराब्धितनयांशुभाम् ॥ ५४ ॥ नमामिचन्द्रभगिनीं सीतांसर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥ नमामिधर्मनिलयां करुणांवेदमातरम् ॥ ५५ ॥ पद्मालयांपद्महस्तां विष्णुवक्षस्थलालयाम् ॥ नमामिचन्द्रनिलयां सीतांचन्द्रनिभाननाम् ॥ ५६ ॥ आह्लादरूपिणींसिद्धिं शिवांशिवकरींसतीम् ॥ नमामिविश्वजननीं रामचन्द्रेष्टवल्लभाम् ॥ ५७ ॥ सीतांसर्वानवद्याङ्गीं भजामिसततंहृदा ॥ श्रीसूत उवाच ॥ स्तुत्वैवंहनूमान्सीतारामचन्द्रौसभक्तिकम् ॥ ५८ ॥ आनन्दाश्रुपरिक्लिन्नस्तूष्णीमास्तेद्विजोत्तमाः ॥ यइदंवायुपुत्रेण कथितम्पापनाशनम् ॥ ५९ ॥ स्तोत्रंश्रीरामचन्द्रस्य सीतायाःपठतेन्वहम् ॥ सनरोमहदैश्वर्यमश्नुतेवाञ्छितंसदा ॥ ६० ॥ अनेकक्षेत्रधान्यानि गाश्चदोग्ध्रीः पयस्विनीः ॥ आयुर्विद्याश्चपुत्रांश्च भार्यामपिमनोरमाम् ॥ ६१ ॥ एतत्स्तोत्रंसकृद्विप्राः पठन्नाप्नोत्यसंशयः ॥ एतत्स्तोत्रस्यपाठेन नरकन्नैवयास्यति ॥ ६२ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि नश्यन्तिसुमहान्त्यपि ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो देहान्तेमुक्ति

भक्ति समेत सीता व रामचन्द्रजी की स्तुति करके हनुमान्जी ॥ ५८ ॥ आनन्द के आंसुवों से भीगगये व हे द्विजोत्तमो ! चुप होरहे पवनकुमार से कहेहुए इस सीता व रामचन्द्रजी के पापनाशक स्तोत्र को जो प्रतिदिन पढ़ता है वह मनुष्य सदैव बड़ेभारी ऐश्वर्य व मनोरथ को प्राप्त होता है ॥ ५९ । ६० ॥ और अनेक क्षेत्र व अन्न तथा दूध देनेवाली गौवों को पाता है और आयुर्बल, विद्या, पुत्र व सुन्दरी स्त्री को भी ॥ ६१ ॥ हे ब्राह्मणो ! एकबार इस स्तोत्र को पढ़ता हुआ पुरुष निस्सन्देह पाता है और इस स्तोत्र के पढ़ने से नरक को नहीं जाता है ॥ ६२ ॥ और ब्रह्महत्यादिक बड़ेभारी भी पाप नाश होजाते हैं और शरीर के अन्त में सब पापों से छूटाहुआ

पुरुष मुक्ति को पाता है ॥ ६३ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार पवनपुत्र से स्तुति कियेहुए सीतासमेत जगदीश रघुनाथजी हनुमान्जी से बोले ॥ ६४ ॥ श्रीरामजी बोले कि हे वानरश्रेष्ठ ! तुमने अज्ञान से यह साहस किया ब्रह्मा, विष्णु व इन्द्रादिक देवताओं से ॥ ६५ ॥ व मुझ से यह लिंग नहीं उखाड़ा जासक्ता है महादेवजी के अपराध से इस समय तुम मूर्च्छित होकर गिरपड़े ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त तुम त्रिशूलधारी साम्ब शिवजी का द्रोह न करना आज से लगाकर यह कुंड त्रिलोक में तुम्हारे नाम से ॥ ६७ ॥ प्रसिद्धि को प्राप्त होवै जहां कि हे वानरोत्तम ! तुम गिरे हो इसमें नहाने से महापातकों के समूह का नाश होगा ॥ ६८ ॥ नदियों के मध्य में श्रेष्ठ

माप्नुयात् ॥ ६३ ॥ इतिस्तुतोजगन्नाथो वायुपुत्रेणराघवः ॥ सीतयासहितोविप्रा हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ ६४ ॥ श्रीराम उवाच ॥ अज्ञानाद्वानरश्रेष्ठ त्वयेदंसाहसंकृतम् ॥ ब्रह्मणाविष्णुनावापि शक्रादित्रिदशैरपि ॥ ६५ ॥ नेदंलिङ्गंसमुद्धर्तुं शक्यतेस्थापितम्मया ॥ महादेवापराधेन पतितोस्यद्यमूर्च्छितः ॥ ६६ ॥ इतःपरंमाक्रियतान्द्रोहःसाम्बस्यशूलिनः ॥ अद्यारभ्यत्विदंकुण्डं तवनाम्नाजगत्रये ॥ ६७ ॥ ख्यातिंप्रयातुयत्रत्वं पतितोवानरोत्तम ॥ महापातकसङ्घानां नाशः स्यादत्रमज्जनात् ॥ ६८ ॥ महादेवजटाजाता गौतमीसरितांवरा ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलदास्नायिनान्नृणाम् ॥ ६९ ॥ ततःशतगुणागङ्गा यमुनाचसरस्वती ॥ एतन्नदीत्रयंयत्र स्थलेप्रवहतेकपे ॥ ७० ॥ मिलित्वातत्रतुस्नानं सहस्रगुणितं स्मृतम् ॥ नदीष्वेतासुयत्स्नानात्फलम्पुंसाम्भवेत्कपे ॥ ७१ ॥ तत्फलन्तवकुण्डेस्मिन्स्नानात्प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ दुर्लभम्प्राप्यमानुष्यं हनूमत्कुण्डतीरतः ॥ ७२ ॥ श्राद्धन्नकुरुतेयस्तु भक्तियुक्तेनचेतसा ॥ निराशास्तस्यपितरः प्रयान्ति

गौतमीजी महादेवजी के जटा से उत्पन्न हुई हैं जोकि नहानेवाले पुरुषों को हज़ार अश्वमेध यज्ञ के फल को देनेवाली हैं ॥ ६९ ॥ और उससे सौगुनी गंगा, यमुना व सरस्वती जी हैं हे कपे ! ये तीनों नदियां मिलकर जिस स्थल में बहती हैं उसमें स्नान हज़ारगुना कहागया है हे कपे ! इन नदियों में नहाने से पुरुषों को जो फल होता है ॥ ७० । ७१ ॥ उस फल को मनुष्य निस्सन्देह तुम्हारे इस कुंड में नहाने से पाता है दुर्लभ मनुष्यजन्म को पाकर हनुमत्कुंड के किनारे ॥ ७२ ॥ जो भक्तिसंयुत

चित्त से श्राद्ध को नहीं करता है हे कपे! उसके पितर क्रोधित होकर चलेजाते हैं॥ ७३ ॥ और इसके लिये मुनि व इन्द्रसमेत तथा चारणों समेत देवता क्रोधित होते हैं और हनुमत्कुंड के किनारे जिसने दान नहीं दिया व हवन नहीं किया है ॥ ७४ ॥ यह वृथा जीवितही है और इस लोक व परलोक में वह दुःख का भागी होता है और हनुमत्कुंड के समीप जिसने तिल व जल को दिया है ॥ ७५ ॥ उसके पितर प्रसन्न होते हैं व घी की नदियों को पीते हैं श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो! वे हनुमान्जी श्रीरामजी से कहेहुए इस वचन को सुनकर ॥ ७६ ॥ रामनाथ के उत्तर में अपना से हर्ष से लायेहुए लिंग को पवनसुत हनूमान्जी ने रामचन्द्रजी की आज्ञा से स्थापन

कुपिताःकपे ॥ ७३ ॥ कुप्यन्तिमुनयोप्यस्मै देवाःसेन्द्राःसचारणाः ॥ नदत्तन्नहुतंयेन हनूमत्कुण्डतीरतः ॥ ७४ ॥ वृथाजीवितएवासाविहामुत्रचदुःखभाक् ॥ हनूमत्कुण्डसविधे येनदत्तन्तिलोदकम् ॥ ७५ ॥ मोदन्तेपितरस्तस्य घृतकुल्याःपिबन्तिच ॥ श्रीसूत उवाच ॥ श्रुत्वैतद्वचनंविप्रा रामेणोक्तंसवायुजः ॥ ७६ ॥ उत्तरेरामनाथस्य लिङ्गंस्वेनाहृतम्मुदा ॥ आज्ञयारामचन्द्रस्य स्थापयामासवायुजः ॥ ७७ ॥ प्रत्यक्षमेवसर्वेषां कपिलाङ्गूलवेष्टितम् ॥ हरोपितत्पुच्छजातम्बिभर्तिचवलित्रयम् ॥ तदुत्तरायांककुभि गौरींसंस्थापयेन्मुदा ॥ ७८ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवंवःकथितंविप्रा यदर्थं राघवेणतु ॥ लिङ्गंप्रतिष्ठितंसेतौ भुक्तिमुक्तिप्रदन्नृणाम् ॥ ७९ ॥ यःपठेदिममध्यायं शृणुयाद्वासमाहितः ॥ सविधूयेहपापानि शिवलोकेमहीयते ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येरामनाथलिङ्गप्रतिष्ठाकारणकथनन्नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

किया ॥ ७७ ॥ और सबों के सामनेही शिवजी भी कपि (हनुमान्जी) के लांगूल से घिरीहुई और उनकी पूंछ से उत्पन्न तीन वलियों को धारण करते हैं और उसके उत्तर की दिशा में प्रसन्नता से गौरीजी को स्थापित करै ॥ ७८ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो! तुम लोगों से इस प्रकार कहागया कि जिसलिये श्रीरामजी ने सेतु पै मनुष्यों को भुक्ति, मुक्ति देनेवाले लिंग को स्थापन कियाहै ॥७९॥ सावधान होता हुआ जो मनुष्य इस अध्याय को पढ़ता या सुनता है वह इस लोक में पातकों को नाशकर शिवलोक में पूजा जाता है ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामनाथलिङ्गप्रतिष्ठाकारणकथनंनामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

दो॰ । मारि रावणहिं रामजी ब्रह्मघात सों युक्त । भे सैंतालिस में सोई चरित अहै शुभउक्त ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महामुने, सूतजी ! रावण राक्षस के मारने से महात्मा रघुनाथजी के ब्रह्महत्या कैसे हुई है ॥ १ ॥ हे मुने, सूतजी ! ब्राह्मण के मारने से ब्रह्महत्या होती है और दशानन (रावण) ब्राह्मण न था तो कैसे ब्रह्महत्या हुई उसको हम लोगों से कहिये ॥ २ ॥ बुद्धिमान् रामचन्द्रजी को क्रूर ब्रह्महत्या हुई है इस समय श्रद्धावान् हम लोगों से इसको दया से कहिये ॥ ३ ॥ उस समय नैमिषारण्यनिवासी मुनियों से इस प्रकार पूंछेहुए सूतजी ने प्रश्न के उत्तम उत्तर को कहने के लिये प्रारम्भ किया ॥ ४ ॥ श्रीसूतजी बोले कि ब्रह्मा के पुत्र बड़े

ऋषय ऊचुः ॥ राक्षसस्यवधात्सूत रावणस्यमहामुने ॥ ब्रह्महत्याकथमभूद्राघवस्यमहात्मनः ॥ १ ॥ ब्राह्मणस्यव धात्सूत ब्रह्महत्याभिजायते ॥ नब्राह्मणोदशग्रीवः कथंतद्वदनोमुने ॥ २ ॥ ब्रह्महत्याभवत्क्रूरा रामचन्द्रस्यधीमतः ॥ एतन्नःश्रद्दधानानां वदकारुण्यतोधुना ॥ ३ ॥ इतिपृष्टस्ततःसूतो नैमिषारण्यवासिभिः ॥ वक्तुम्प्रचक्रमेतेषां प्रश्नस्योत्तर मुत्तमम् ॥ ४ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ ब्रह्मपुत्रोमहातेजाः पुलस्त्योनामवैद्विजाः ॥ बभूवतस्यपुत्रोभूद्विश्रवाइतिविश्रुतः ॥ ५ ॥ तस्यपुत्रःपुलस्त्यस्य विश्रवामुनिपुङ्गवाः ॥ चिरकालंतपस्तेपे देवैरपिसुदुष्करम् ॥ ६ ॥ तपःकुर्वतितस्मिंस्तु सुमाली नामराक्षसः ॥ पाताललोकाद्भूलोकं सर्वंवैविचचारह ॥ ७ ॥ हेमनिष्काङ्गदधरः कालमेघनिभच्छविः ॥ समादायसुतांक न्यां पद्महीनामिवश्रियम् ॥ ८ ॥ विचरन्समहीपृष्ठे कदाचित्पुष्पकस्थितम् ॥ दृष्ट्वाविश्रवसःपुत्रं कुबेरंवैधनेश्वर म् ॥ ९ ॥ चिन्तयामासविप्रेन्द्राः सुमालीसतुराक्षसः ॥ कुबेरसदृशःपुत्रो यद्यस्माकम्भविष्यति ॥ १० ॥ वयंवर्द्धामहे

तेजस्वी पुलस्त्यजी हुए हैं व उनके पुत्र विश्रवा ऐसे प्रसिद्ध हुए ॥ ५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! उन पुलस्त्यजी के पुत्र विश्रवा ने बहुत समय तक देवताओं से भी कठिन तप किया है ॥ ६ ॥ और उनके तप करते हुए सुमाली नामक राक्षस पाताललोक से सब भूमिलोक में भ्रमता भया ॥ ७ ॥ और कमल से रहित लक्ष्मी की नाईं कुँवारी कन्या को लेकर सुवर्ण की अशर्फी व बजुल्ला को धारण किये काले मेघों के समान छविवाले ॥ ८ ॥ पृथ्वी में घूमतेहुए उस राक्षस ने किसी समय पुष्पक विमान पै स्थित विश्रवा के पुत्र धनेश्वर कुबेरजी को देखकर ॥ ९ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! उस सुमाली राक्षस ने विचार किया कि यदि हम लोगों के कुबेर के समान पुत्र होवै ॥ १० ॥ तो सब

कहीं से निडर होकर हम सब राक्षस लोग वृद्धि को प्राप्त होवैं ऐसा विचार कर राक्षसेश्वर सुमाली ने अपनी कन्या से कहा ॥ ११ ॥ कि हे शोभनें, सुते, कैकसि ! इस समय तुम्हारे दान का समय है और अब तुमको यौवन प्राप्त हैं इसलिये तुम वरके लिये देने योग्य हो ॥ १२ ॥ क्योंकि कन्याओं के न देने से पिता लोग दुःख को पाते हैं परन्तु हे शुभे, सुते ! सब गुणों से उत्तम व लक्ष्मी की नाईं ॥ १३ ॥ तुमको मनुष्य जवाब देने के भय से नहीं मांगते हैं व हे शुभे ! कन्या मान को चाहनेवाले सब पिताओं के दुःख के लिये होती है ॥ १४ ॥ हे कन्यके ! मैं यह नहीं जानता हूं कि कौन वर तुमको ब्याहैगा सो तुम आपही जाकर ब्रह्मा के वंश

सर्वे राक्षसाह्यकुतोभयाः ॥ विचार्यैवंनिजसुतामब्रवीद्राक्षसेश्वरः ॥ ११ ॥ सुतेप्रदानकालोद्य तवकैकसिशोभने ॥ अद्य तेयौवनम्प्राप्तं तद्देयात्वंवरायहि ॥ १२ ॥ अप्रदानेनपुत्रीणां पितरोदुःखमाप्नुयुः ॥ किञ्चसर्वगुणोत्कृष्टा लक्ष्मीरिवसु तेशुभे॥१३॥प्रत्याख्यानभयात्पुम्भिर्नचत्वंप्रार्थ्यसेशुभे॥ कन्यापितॄणांदुःखाय सर्वेषांमानकाङ्क्षिणाम्॥१४॥ नजाने हंवरःकोवा वरयेदितिकन्यके ॥ सात्वम्पौलस्त्यतनयं मुनिंविश्रवसंद्विजम् ॥ १५ ॥ पितामहकुलोद्भूतं वरयस्वस्वयंग ता ॥ कुबेरतुल्यास्तनया भवेयुस्तेनसंशयः ॥ १६ ॥ कैकसीतद्वचःश्रुत्वा साकन्यापितृगौरवात् ॥ अङ्गीचकारतद्वा क्यं तथास्त्वितिशुचिस्मिता ॥ १७ ॥ पर्णशालांमुनिश्रेष्ठा गत्वाविश्रवसोमुनेः ॥ अतिष्ठदन्तिकेतस्य लज्जमानाह्यधो मुखा ॥ १८ ॥ तस्मिन्नवसरेविप्राः पौलस्त्यतनयःसुधीः ॥ अग्निहोत्रमुपास्तेस्म ज्वलत्पावकसन्निभः ॥ १९ ॥ सन्ध्या कालमतिक्रूरमविचिन्त्यतुकैकसी ॥ अभ्येत्यतंमुनिंसुभ्रूः पितुर्वचनगौरवात् ॥२०॥ तस्थावधोमुखीभूमिंलिखत्यङ्गुष्ठ

में उपजे हुए पौलस्त्य के पुत्र विश्रवा नामक द्विज मुनि को वरण करो तो तुम्हारे कुबेर के समान पुत्र होवैंगे इसमें संदेह नहीं है ॥ १५ । १६ ॥ उस वचन को सुन कर श्वेत हास्यवाली उस कैकसी कन्या ने पिता के गौरव से उस वचन को स्वीकार किया कि वैसाही होवै ॥ १७ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठो ! विश्रवा मुनिकी कुटी को जाकर नीचे मुख किये व लज्जित कैकसी उसके समीप स्थित हुई ॥ १८ ॥ हे ब्राह्मणो ! उससमय जलती हुई अग्नि के समान पौलस्त्यतनय बुद्धिमान् विश्रवाजी अग्निहोत्र की उपासना करते थे ॥१९॥ और अत्यन्त क्रूर सन्ध्या समय को न विचार कर सुन्दरी भौंहोंवाली कैकसी पिता के वचन के गौरव से उन मुनि के समीप आकर ॥२०॥ अंगूठे

के किनारे से पृथ्वी को लिखतीहुई नीचे मुख करके खड़ी होगई इसके अनन्तर सूक्ष्मकटिवाली उस कैकसी को देखकर विश्रवा ने ॥ २१ ॥ हे ब्राह्मणो! मुसक्यान समेत पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाली कैकसी से कहा विश्रवाजी बोले कि हे शोभने! तुम किसकी कन्या हो और तुम कहां से यहां आई हो ॥ २२ ॥ व हे शुचिस्मिते! तुम किस कार्य को उद्देश कर यहां वर्तमान हो हे अनिन्दिते! इस समय तुम मुझ से सब को यथार्थ कहिये ॥ २३ ॥ हे ब्राह्मणो! इस प्रकार कही हुई वह प्रणाम व विनय से संयुत कैकसी कन्या हाथों को जोड़कर उन मुनि से बोली ॥ २४ ॥ कि हे पौलस्त्यकुलदीपन, मुने! इस समय तुम मेरे

कोटिना ॥ विश्रवास्तांविलोक्याथ कैकसींतनुमध्यमाम् ॥ २१ ॥ उवाचसस्मितोविप्राः पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥ विश्रवाउवाच ॥ शोभनेकस्यपुत्रीत्वं कुतोवात्वमिहागता ॥ २२ ॥ कार्यंकिंवात्वमुद्दिश्य वर्तसेत्रशुचिस्मिते ॥ यथार्थतोवदस्वाद्य ममसर्वमनिन्दिते ॥२३॥ इतीरिताकैकसीसा कन्याबद्धाञ्जलिर्द्विजाः॥उवाचतम्मुनिंप्रह्वविनयेनसमन्विता ॥२४॥ तपःप्रभावेनमुने मदभिप्रायमद्यतु ॥ वेत्तुमर्हसिसम्यक्त्वं पौलस्त्यकुलदीपन ॥ २५ ॥ अहन्तुकैकसीनाम सुमालीदुहितामुने ॥ मत्तातस्याज्ञयाब्रह्मंस्तवान्तिकमुपागता ॥ २६ ॥ शेषंत्वंज्ञानदृष्ट्याद्य ज्ञातुमर्हस्यसंशयः ॥ क्षणंध्यात्वामुनिःप्राह विश्रवाःसतुकैकसीम् ॥ २७ ॥ मयातेविदितंसुभ्रु मनोगतमभीप्सितम् ॥ पुत्राभिलाषिणीसात्वं मामागात्साम्प्रतंशुभे ॥ २८॥ सायङ्कालेधुनाक्रूरे यस्मान्मांत्वमुपागता ॥ पुत्राभिलाषिणीभूत्वा तस्मात्त्वाम्प्रब्रवीम्यहम् ॥ २९ ॥ शृणुष्वाव

प्रयोजन को तपस्या के प्रभाव से भलींभांति जानने के योग्य हो ॥ २५ ॥ हे मुने! सुमाली की कन्या मैं कैकसी नामक हूं व हे ब्रह्मन्! अपने पिता की आज्ञा से मैं तुम्हारे समीप आई हूं ॥ २६ ॥ और शेष वस्तु को तुम ज्ञान की दृष्टि से निस्सन्देह जानने योग्य हो उन विश्रवा मुनि ने क्षणभर ध्यानकर कैकसी से कहा ॥ २७ ॥ कि हे सुभ्रु! मैंने तुम्हारे मनमें प्राप्त मनोरथ को जान लिया कि हे शुभे! इस समय पुत्र को चाहती हुई तुम मेरे समीप आई हो ॥ २८ ॥ हे क्रूरे! इस समय जिस कारण पुत्र को चाहनेवाली होकर तुम सायंकाल में मेरे समीप आई हो इस कारण मैं तुमसे कहता हूं ॥ २९ ॥ हे अनिन्दिते, रामे, कैकसि! सावधान होती

हुई सुनिये कि भयंकर आकारवाले व क्रूरजनप्रिय तथा भयंकर ॥ ३० ॥ और क्रूरकर्मी राक्षसों को तुम पुत्र पैदा करोगी उस वचन को सुनकर वह कैकसी उन विश्रवा को प्रणामकर ॥ ३१ ॥ हे ब्राह्मणो ! पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा से हाथों को जोड़कर बोली कि हे भगवन् ! तुमसे ऐसे पुत्र प्राप्त होने के लिये योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥ ऐसा कहेहुए उन मुनिने उस सुन्दर कटिवाली कैकसी से कहा कि तुम्हारा पिछला पुत्र मेरे वंश के समान होगा ॥ ३३ ॥ और वह धर्मवान् व शास्त्रवेत्ता तथा शान्त होगा राक्षसों के समान कर्मवान् न होगा हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार कहीहुई कैकसी ने कुछ समय बीतने पर ॥ ३४ ॥ दश मस्तक व बीस भुजाओंवाले

हितारामे कैकसित्वमनिन्दिते॥ दारुणान्दारुणाकारान् दारुणाभिजनप्रियान् ॥ ३० ॥ जनयिष्यसिपुत्रांस्त्वं राक्षसान्क्रूरकर्मणः ॥ श्रुतंतद्वचनासातु कैकसीप्रणिपत्यतम् ॥ ३१ ॥ पुलस्त्यतनयंप्राह कृताञ्जलिपुटाद्विजाः ॥ भगवन्नीदृशाःपुत्रास्त्वत्तःप्राप्तुंनयुज्यते ॥ ३२ ॥ इत्युक्तःसमुनिःप्राह कैकसींतांसुमध्यमाम् ॥ मद्वंशानुगुणःपुत्रः पश्चिमस्तेभविष्यति ॥ ३३ ॥ धार्मिकःशास्त्रविच्छान्तो नतुराक्षसचेष्टितः ॥ इत्युक्ताकैकसीविप्राः कालेकतिपयेगते ॥ ३४ ॥ सुषुवेतनयंक्रूरंरक्षोरूपंभयङ्करम् ॥ द्विपञ्चशीर्षंकुमतिं विंशद्बाहुम्भयानकम् ॥ ३५ ॥ ताम्रोष्ठंकृष्णवदनंरक्तश्मश्रुशिरोरुहम् ॥ महादंष्ट्रंमहाकायं लोकत्रासकरंसदा ॥ ३६ ॥ दशग्रीवाभिधोसोभूत्तथारावणनामवान् ॥ रावणानन्तरंजातः कुम्भकर्णाभिधःसुतः ॥ ३७ ॥ ततःशूर्पनखानाम्ना क्रूराजज्ञेचराक्षसी ॥ ततोबभूवकैकस्या विभीषणइतिश्रुतः ॥ ३८ ॥ पश्चिमस्तनयोधीमान्धार्मिकोवेदशास्त्रवित् ॥ एतेविश्रवसःपुत्रा दशग्रीवादयोद्विजाः ॥ ३९ ॥ अतोदशग्रीववधात्कुम्भ

तथा कुबुद्धि राक्षसरूपी भयंकर व क्रूर पुत्र को पैदा किया ॥ ३५ ॥ जो कि तांबे के समान ओठोंवाला तथा कृष्णमुख और लाल दाढ़ी मूंछ व बालोंवाला था और बड़ी दाढ़ व बड़े शरीरवाला तथा सदैव लोकों को भय करनेवाला था ॥ ३६ ॥ वह दशग्रीव नामक व रावण नामक हुआ और रावण के बाद कुम्भकर्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३७ ॥ तदनन्तर शूर्पणखा नामक भयंकरी राक्षसी पैदा हुई तदनन्तर कैकसी के विभीषण ऐसा प्रसिद्ध पुत्र हुआ ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मणो ! पिछला पुत्र बुद्धिमान्, धर्मवान् व वेद शास्त्रों का ज्ञाता हुआ ये रावण आदिक विश्रवा के पुत्र हुए ॥ ३९ ॥ इस कारण रावण को मारने से व कुम्भकर्ण को मारने से भी

सहजकर्मी श्रीरामचन्द्रजी के ब्रह्महत्या हुई है ॥ ४० ॥ इस कारण हे द्विजोत्तमो ! उसकी शान्ति के लिये श्रीरामजी ने वैदिक विधि से रमेश्वर लिंग को स्थापन किया ॥ ४१ ॥ इस प्रकार बुद्धिमान् व लोकों में सुन्दर श्रीरामचन्द्रजी के रावण के मारने से ब्रह्महत्या की उत्पत्ति हुई है ॥ ४२ ॥ ब्रह्मघात से उपजा हुआ वह पाप आपलोगों से कारण समेत कहागया कि जिसकी शान्ति के लिये श्रीरामचन्द्रजी ने आपही लिंग को स्थापन किया है ॥ ४३ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार लिंग को थापकर सीता व अनुज समेत अतिधर्मवान् श्रीरामचन्द्रजी ने अपना को कृतार्थ माना ॥ ४४ ॥ जहां राजा रामचन्द्रजी की ब्रह्महत्या गई है वहां ब्रह्महत्यामोचन नामक

कर्णवधादपि ॥ ब्रह्महत्यासमभवद्रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ४० ॥ अतस्तच्छान्तयेरामो लिङ्गंरामेश्वराभिधम् ॥ स्थापयामासविधिना वैदिकेनद्विजोत्तमाः ॥ ४१ ॥ एवंरावणघातेन ब्रह्महत्यासमुद्भवः ॥ समभूद्रामचन्द्रस्य लोककान्तस्यधीमतः ॥ ४२ ॥ तत्सहेतुकमाख्यातं भवताम्ब्रह्मघातजम् ॥ पापंयच्छान्तयेरामो लिङ्गम्प्राति ष्ठिपत्स्वयम् ॥ ४३ ॥ एवंलिङ्गंप्रतिष्ठाप्य रामचन्द्रोतिधार्मिकः ॥ मेनेकृतार्थमात्मानं ससीतावरजोद्विजाः ॥ ४४ ॥ ब्रह्महत्यागतायत्र रामचन्द्रस्यभूपतेः ॥ तत्रतीर्थमभूत्किञ्चिद्ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥ ४५ ॥ तत्रस्नानंमहापुण्यं ब्रह्महत्याविनाशनम् ॥ दृश्यतेरावणोद्यापि छायारूपेणतत्रवै ॥ ४६ ॥ तदग्रेनागलोकस्य बिलमस्तिमहत्तरम् ॥ दश ग्रीववधोत्पन्नां ब्रह्महत्याम्बलीयसीम् ॥ ४७ ॥ तद्बिलंप्रापयामास जानकीरमणोद्विजाः ॥ तस्योपरिबिलस्याथ कृत्वा मण्डपमुत्तमम् ॥ ४८ ॥ भैरवंस्थापयामास रक्षार्थंतत्रराघवः ॥ भैरवाज्ञापरित्रस्ता ब्रह्महत्याभयङ्करी ॥ ४९ ॥

कोई तीर्थ हुआ है ॥ ४५ ॥ उसमें स्नान महापुण्यदायक व ब्रह्महत्या का विनाशक है और वहां आज भी रावण छाया के रूप से देख पड़ता है ॥ ४६ ॥ और उसके आगे नागलोक का बड़ाभारी बिल है रावण के मारने से उपजीहुई बलवती ब्रह्महत्या को ॥ ४७ ॥ जानकीरमण रघुनाथजी ने उस बिल में प्राप्त किया है व हे ब्राह्मणो ! उस बिल के ऊपर उत्तम मण्डप करके ॥ ४८ ॥ रक्षा के लिये वहां रघुनाथजी ने भैरवजी को स्थापन किया और भैरवजी की आज्ञा से डरीहुई भयंकरी ब्रह्महत्या ॥ ४९ ॥

हे द्विजोत्तमो ! उसके बल से ऊपर निकलने के लिये समर्थ न हुई और उद्यमरहित ब्रह्महत्या उसी बिल में स्थित हुई ॥ ५० ॥ और परमानन्द शिवजी की अर्धशरीरवाली गिरिजा (पार्वती) जी रामनाथ महालिंग के दक्षिण में हर्ष से वर्तमान हैं ॥ ५१ ॥ और वहां त्रिशूलधारी शिवजी के दोनों पार्श्वों में सूर्य व चन्द्रमा वर्तमान हैं और रामनाथदेवजी के आगे अग्निजी वर्तमान हैं ॥ ५२ ॥ और पूर्व में इन्द्र व आग्नेय में अग्नि तथा दक्षिण में रामनाथजी के सेवक यमराजजी वर्तमान हैं ॥ ५३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! शंकरजी के नैर्ऋत्य में निर्ऋति और पश्चिम में वरुणजी भक्ति से राघवेश्वरजी को सेवते हैं ॥ ५४ ॥ और शिवजी

नाशक्नोत्तद्बलादूर्ध्वं निर्गन्तुंद्विजसत्तमाः ॥ तस्मिन्नेवबिलेतस्थौ ब्रह्महत्यानिरुद्यमा ॥ ५० ॥ रामनाथमहालिङ्गदक्षिणे गिरिजामुदा ॥ वर्ततेपरमानन्दशिवस्यार्धशरीरिणी ॥ ५१ ॥ आदित्यसोमौवर्तेते पार्श्वयोस्तत्रशूलिनः ॥ देवस्यपुरतो वह्नीरामनाथस्यवर्तते ॥ ५२ ॥ आस्तेशतक्रतुःप्राच्यामाग्नेय्यांचतथानलः ॥ आस्तेयमोदक्षिणस्यां रामनाथस्यसेवकः ॥ ५३ ॥ नैर्ऋतेनिर्ऋतिर्विप्रा वर्ततेशङ्करस्यतु ॥ वारुण्यांवरुणोभक्त्या सेवतेराघवेश्वरम् ॥ ५४ ॥ वायव्येतुदिशोभागे वायुरास्तेशिवस्यतु ॥ उत्तरस्याञ्चधनदो रामनाथस्यवर्तते ॥ ५५ ॥ ईशान्यस्यचदिग्भागे महेशोवर्ततेद्विजाः ॥ विनायककुमारौच महादेवसुतावुभौ ॥ ५६ ॥ यथाप्रदेशंवर्तेते रामनाथालयेधुना ॥ वीरभद्रादयःसर्वे महेश्वरगणेश्वराः ॥ ५७ ॥ यथाप्रदेशंवर्तन्ते रामनाथालयेसदा ॥ मुनयःपन्नगाःसिद्धा गन्धर्वाप्सरसाङ्गणाः ॥ ५८ ॥ सन्तुष्यमाणहृदया यथेष्टंशिवसन्निधौ ॥ वर्तन्तेरामनाथस्य सेवार्थंभक्तिपूर्वकम् ॥ ५९ ॥ रामनाथस्यपूजार्थं श्रोत्रियान्ब्राह्मणा

के वायव्य दिशा के भाग में पवनजी स्थित हैं व रामनाथजी के उत्तर दिशा में कुबेरजी वर्तमान हैं ॥ ५५ ॥ व हे ब्राह्मणो ! ईशानदिशा के भाग में शिवजी वर्तमान हैं और महादेवजी के दोनों पुत्र गणेश व स्वामिकार्त्तिकेयजी ॥ ५६ ॥ इस समय रामनाथजी के मन्दिर में इच्छा के अनुकूल स्थान में वर्तमान होते हैं और वीरभद्र आदिक सब महेशजी के गणनायक ॥ ५७ ॥ रामनाथजी के मन्दिर में सदैव जिस स्थान में चाहते हैं वहां वर्तमान होते हैं और मुनि, नाग, सिद्ध, गंधर्व व अप्सराओं के गण ॥ ५८ ॥ प्रसन्नहृदय होकर शिवजी के समीप इच्छा के अनुकूल भक्तिपूर्वक रामनाथजी की सेवा के लिये वर्तमान होते हैं ॥ ५९ ॥ और

रघुनाथजी ने रामनाथजी की पूजा के लिये बहुत से वेदपात्र ब्राह्मणों को रामेश्वर में पूजक स्थापित किया ॥ ६० ॥ और रामजी से थापेहुए ब्राह्मणों को हव्य, कव्यादिक से पूजन करै क्योंकि वे और पितरों समेत सब देवता प्रसन्न कराये गये हैं ॥ ६१ ॥ और उन ब्राह्मणों के लिये जानकीनाथजी ने बहुत धनों व ग्रामों को दिया है व हे ब्राह्मणो ! रामनाथ महादेवजी की नैवेद्य के लिये भी ॥ ६२ ॥ लक्ष्मण के बड़े भाई श्रीरामजी ने बहुत ग्रामों व बहुत धन को दिया है और हार, बजुल्ला, कंकण व अशर्फी आदिक भूषणों को ॥ ६३ ॥ और अनेक पट वस्त्र व अनेक भांति के रेशमी वस्त्रों को दशरथकुमार श्रीरामजीने रामनाथदेवजी के लिये दिया है ॥ ६४ ॥

न्बहून् ॥ रामेश्वरेरघुपतिः स्थापयामासपूजकान् ॥ ६० ॥ रामप्रतिष्ठितान्विप्रान्हव्यकव्यादिनार्चयेत् ॥ तुष्टास्तेतोषिताःसर्वाः पितृभिःसहदेवताः ॥ ६१ ॥ तेभ्योबहुधनान्ग्रामान्प्रददौजानकीपतिः ॥ रामनाथमहादेव नैवेद्यार्थमपिद्विजाः ॥ ६२ ॥ बहून्ग्रामान्बहुधनं प्रददौलक्ष्मणाग्रजः ॥ हारकेयूरकटकनिष्काद्याभरणानिच ॥ ६३ ॥ अनेकपटवस्त्राणि क्षौमाणिविविधानिच ॥ रामनाथायदेवाय ददौदशरथात्मजः ॥ ६४ ॥ गङ्गाचयमुनापुण्या सरयूचसरस्वती ॥ सेतौरामेश्वरंदेवं भजन्तेस्वाघशान्तये ॥ ६५ ॥ एतदध्यायपठनाच्छ्रवणादपिमानवः ॥ विमुक्तःसर्वपापेभ्यः सायुज्यंलभतेहरेः ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येरामस्यब्रह्महत्योत्पत्तिहेतुनिरूपणंनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

श्रीसूत उवाच ॥ रामनाथं समुद्दिश्य कथाम्पापविनाशिनीम् ॥ प्रवक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वं सुसमाहि

और गंगा, यमुना व पवित्र सरयू तथा सरस्वतीजी अपने पाप की शान्ति के लिये सेतु पै रामेश्वरदेव को भजती हैं ॥ ६५ ॥ इस अध्याय के पढ़ने व सुनने से भी मनुष्य सब पापों से छूटकर विष्णुजी की सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामस्यब्रह्महत्योत्पत्तिहेतुनिरूपणंनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । ब्रह्मघात सों मुक्त भो शंकर नाम नृपाल । अर्तालिसवें में सोई कह्यो चरित्र रसाल ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठो ! रामनाथजी को उद्देश कर पाप विना-

रानवाला कथा को कहता हूं तुम लोग सावधान होकर सुनो ॥ १ ॥ पुरातन समय पांड्यदेश का स्वामी शंकर नामक राजा हुआ है जोकि ब्रह्मण्य व सत्यप्रतिज्ञ वाला तथा यज्ञकारक और धर्मवान् था ॥ २ ॥ और वेदों व वेदांगों के तत्त्व को जाननेवाला तथा शत्रु की सेना को विदारनेवाला था और चारो वर्णों व आश्रमों को भी धर्म से पालन करता हुआ वह ॥ ३ ॥ वैदिक आचार में तत्पर तथा पुराणों व स्मृतियों का पारगामी था और सदैव शिव व विष्णु को पूजनेवाला तथा अन्य देवताओं का पूजक था ॥ ४ ॥ और सदैव महात्माओं व ब्राह्मणों को महादान देता था किसी समय वह बुद्धिमान् राजा शिकार के लिये तपोवन को गया ॥ ५ ॥ और

ताः ॥ १ ॥ पाण्ड्यदेशाधिपोराजा पुरासीच्छंकराभिधः ॥ ब्रह्मण्यःसत्यसन्धश्च यायजूकश्चधार्मिकः ॥ २ ॥ वेदवेदाङ्ग तत्त्वज्ञः परसैन्यविदारणः ॥ चतुरोप्याश्रमान्वर्णान्धर्मतःपरिपालयन् ॥ ३ ॥ वैदिकाचारनिरतः पुराणस्मृतिपारगः ॥ शिवविष्ण्वर्चकोनित्यमन्यदैवतपूजकः ॥४॥ महादानप्रदोनित्यं ब्राह्मणानांमहात्मनाम् ॥ मृगयार्थंययौधीमान्सक दाचित्तपोवनम् ॥ ५ ॥ सिंहव्याघ्रेभमहिषक्रूरसत्त्वंभयङ्करम् ॥ झिल्लिकाभीषणरवं सरीसृपसमाकुलम् ॥ ६ ॥ भी मश्वापदसम्पूर्णं दावानलभयंकरम् ॥ महारण्यम्प्रविश्याथ शंकरोराजशेखरः ॥ ७ ॥ अनेकसैनिकोपेत आखेटिकुल संकुलः ॥ पादुकागूढचरणो रक्तोष्णीषोहरिच्छदः ॥ ८ ॥ बद्धगोधांगुलित्राणो धृतकोदण्डसायकः ॥ कक्ष्याबद्धमहा खड्गः श्वेताश्ववरमास्थितः ॥ ९ ॥ सुवेषधारीसन्नद्धः पत्तिसङ्घसमावृतः ॥ कान्तारेषुचरम्येषु पर्वतेषुगुहासुच ॥ १० ॥

सिंह, व्याघ्र, हाथी व भैंसे आदिक क्रूर जन्तुओंवाले तथा भयंकर व झिल्ली के भयंकर शब्दवारे तथा सर्पों से संयुत ॥ ६ ॥ और भयानक हिंसक जीवों से पूर्ण व दावानल से भयंकर महावन में पैठकर राजवर शंकर ॥ ७ ॥ अनेक सैनिकों से संयुत तथा शिकारीजनों से युक्त व पांव में पनहियों को पहने व लाल पगड़ी को बांधे व हरित वसनों को पहने था ॥ ८ ॥ और गोह की खाल के दस्तानों को बांधे व धनुषबाण को धारण किये था और पेटी में बड़ी भारी तलवार को बांधे और सफेद घोड़े पै सवार था ॥ ९ ॥ व पैदल के गणों से घिराहुआ व सन्नद्ध और उत्तम वेष को धारनेवाला वह सुन्दर वनों व पर्वतों और गुहाओं में घूमता था ॥ १० ॥

और बड़े भारी सोत को नांघकर युवा व सिंह के समान बलवान् वह सेनाओं समेत गुहाओं में मृगों को ढूंढ़ता हुआ घूमता रहा ॥ ११॥ यह माराजावै माराजावै क्योंकि वेग से वन में मृग जाता है सैनिकों के ऐसा कहने पर आपही कूदकर शंकर ॥ १२ ॥ महाराज वनस्थली में ढूंढ़कर मृग को मारता था सिंह, वराह, भैंसे व हाथी और शरभ ॥ १३ ॥ तथा अन्य वन के मृगों को मारता हुआ शंकर राजा कहीं वनस्थली में कंदरा के मध्य में बसनेवाले ॥ १४ ॥ व नियत मनवाले तथा व्याघ्रचर्मधारी शान्त मुनिको व्याघ्र की बुद्धि से कुछ झुकीहुई गांठियोंवाले बाण से शीघ्रही मारता भया ॥ १५ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! उस बाण ने पति के समीप बैठीहुई पति में

समुत्तीर्णमहास्रोतो युवासिंहपराक्रमः ॥ विचचारबलैःसाकं दरीषुमृगयन्मृगान् ॥ ११ ॥ वध्यतांवध्यतामेष याति वेगान्मृगोवने ॥ एवंवदत्सुसैन्येषु स्वयमुत्प्लुत्यशंकरः ॥ १२ ॥ मृगंहन्तिमहाराजो विगाह्यविपिनस्थलीम् ॥ सिंहान्वराहान्महिषान्कुञ्जराञ्छरभांस्तथा ॥ १३ ॥ विनिघ्नन्समृगानन्यान्वन्याञ्छंकरभूपतिः ॥ कुत्रचिद्विपिनोद्देशे दरीमध्यनिवासिनम् ॥ १४ ॥ व्याघ्रचर्मधरंशान्तं मुनिंनियतमानसम् ॥ व्याघ्रबुद्ध्याजघानाशु शरेणानतपर्वणा ॥ १५ ॥ अतिवेगेनविप्रेन्द्रास्तत्पत्नींचससायकः ॥ निजघानपतिप्राणां निविष्टांपत्युरन्तिके ॥ १६ ॥ विलोक्य मातापितरौ तत्पुत्रोनिहतौवने ॥ रुरोदभृशदुःखार्तो विललापचकातरः ॥ १७ ॥ भोस्तातमातर्मांहित्वा युवांयातौक्वाधुना ॥ अहंकुत्रगमिष्यामि कोवामेशरणम्भवेत् ॥ १८ ॥ कोमामध्यापयेद्वेदाञ्छास्त्रंवापाठयेत्पितः ॥ अम्बमेभोजनंकावादास्यतेसोपदेशकम् ॥ १९ ॥ आचाराञ्छिक्षयेत्को वा तातत्वयिमृतेधुना ॥ अम्बबालंप्रकुपितं कावामामुपला

प्राणोंवाली उसकी स्त्री को भी बड़े वेग से मारा ॥ १६ ॥ और माता, पिता को मरे हुए देखकर बहुतही दुःख से विकल व भयभीत उसका पुत्र वनमें रोनेलगा ॥ १७ ॥ कि हे पिता व हे माता ! इस समय मुझको छोड़कर तुम दोनों कहां चलेगये मैं कहां जाऊं और मेरा कौन रक्षक होगा ॥ १८ ॥ हे पिताजी ! मुझको वेदों व शास्त्र को कौन पढ़ावैगा व हे माता ! मुझको शिक्षा समेत कौन स्त्री भोजन देवैगी ॥ १९ ॥ व हे पिताजी ! इससमय तुम्हारे मरने पर कौन आचारों को सिखावैगा व हे माता !

क्रोध कियेहुए मेरा कौन प्यार करैगी ॥ २० ॥ इस समय तपस्या में परायण व मेरे प्राणरूप विना अपराधी तुम दोनों मेरे माता पिता वन में किस पाप से बाणों करके मारेगये ॥ २१ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार उन दोनों के पुत्र ने बहुत चिल्लाकर रोदन किया इसके अनन्तर प्रलाप को सुनकर बनमें घूमता हुआ वह शंकर राजा शीघ्रही उस शब्द के सामने गुहा को गया और वहां के मुनिलोग भी शीघ्रही उस आश्रम को आये ॥ २२ । २३ ॥ हे ब्राह्मणो ! वे सब मुनिलोग बाण से मारेहुए मुनिको व नष्ट हुई उसकी स्त्री को देखकर और धनुषधारी राजा को देखकर ॥ २४ ॥ व विलाप करतेहुए पुत्रको भी देखकर बहुत विकल हुए और उन्होंने डरेहुए पुत्रको

लयेत् ॥ २० ॥ युवांनिरागसावद्य केनपापेनसायकैः ॥ निहतौवैतपोनिष्ठौ मत्प्राणौमद्गुरूवने ॥ २१ ॥ एवंतयोःसुतो विप्रा मुक्तकण्ठंरुरोदवै ॥ अथप्रलपितंश्रुत्वा शंकरोविपिनेचरन् ॥ २२ ॥ तच्छब्दाभिमुखः सद्यः प्रययौसदरीमुखम् ॥ तत्रत्यामुनयोप्याशु समागच्छंस्तमाश्रमम् ॥ २३ ॥ तेदृष्ट्वामुनयःसर्वे शरेणनिहतंमुनिम् ॥ तत्पत्नींचहतांविप्रा राजानंचधनुर्धरम् ॥ २४ ॥ विलपन्तंसुतंचापि विलोक्यभृशविह्वलाः ॥ पुत्रमाश्वासयामासुर्मारोदीरितिकातरम् ॥ २५ ॥ मुनय ऊचुः ॥ आढ्येवापिदरिद्रेवा मूर्खेवापण्डितेपिवा ॥ पीनेवाथकृशेवापि समवर्तीपरेतराट् ॥ २६ ॥ वनेवानगरे ग्रामे पर्वतेवास्थलान्तरे ॥ मृत्योर्वशेप्रयातव्यं सर्वैरपिहिजन्तुभिः ॥ २७ ॥ वत्सनित्यंचगर्भस्थैर्जातैरपिचजन्तुभिः ॥ युवभिःस्थविरैःसर्वैर्यातव्यंयमपत्तनम् ॥ २८ ॥ वर्णिभिश्चगृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्चभिक्षुभिः ॥ कालेप्राप्तेत्वयंदेहस्त्यक्तव्योद्विजपुत्रक ॥ २९ ॥ ब्राह्मणैःक्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरपिचसंकरैः ॥ यातव्यःप्रेतनिलये द्विजपुत्रमहामते ॥ ३० ॥ देवाश्च

यह समझाया कि मत रोवो ॥ २५ ॥ मुनिलोग बोले कि धनी, निर्धनी व मूर्ख या पंडित और मोटे व दुबले में भी यमराज समवर्ती हैं ॥ २६ ॥ वन, नगर, ग्राम, पर्वत या अन्य स्थल में सबभी प्राणियों को मृत्यु के वश में जाना है ॥ २७ ॥ हे वत्स ! गर्भ में स्थित व उत्पन्न और युवा व वृद्ध सबभी प्राणियों को यमपुर को जाना है ॥ २८ ॥ हे द्विजपुत्र ! ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यासियों को भी काल प्राप्त होनेपर यह शरीर छोड़ना है ॥ २९ ॥ हे महामते, द्विजपुत्र ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व संकरवर्णों को भी प्रेतस्थान में जाना है ॥ ३० ॥ देवता, मुनि, यक्ष, गंधर्व, नाग व राक्षस और ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक अन्य सब

प्राणी॥ ३१ ॥ नाश को प्राप्त होंगे तुम शोचने के योग्य नहीं हो और अद्वय र.चिदानन्द ब्रह्म जो उपनिषदों में प्राप्त है॥३२॥ हे सत्तम ! उस.का नाश, जन्म व वृद्धि नहीं होती है मल के पात्र व नवद्वारोंवाले और पीव व रुधिर के स्थान रूप ॥३३॥ तथा कीट गणों से संयुत व बुल्ले के समान और काम, क्रोध, भय, द्रोह, मोह व मत्सरता करनेवाले इस शरीर में ॥३४॥ और पराई स्त्री व पराये क्षेत्र तथा पराये धन में केवल लोभ करनेवाले और हिंसा, ईर्ष्या व अशुद्धि से पूर्ण तथा मल, मूत्र के एकही पात्ररूप शरीर में॥ ३५ ॥ जो उत्तम बुद्धि करताहै वह मूढ़ है और वह दुर्बुद्धि है क्योंकि सदैव अपवित्र व बहुत छिद्रों व घटके समान आकारवाले इस शरीर में॥ ३६ ॥ हे द्विज !

मुनयोयक्षा गन्धर्वोरगराक्षसाः ॥ अन्येचजन्तवःसर्वे ब्रह्मविष्णुहरादयः ॥ ३१ ॥ सर्वेयास्यन्तिविलयं नत्वंशोचितुमर्हसि ॥ अद्वयंसच्चिदानन्दं यद्ब्रह्मोपनिषद्गतम् ॥ ३२ ॥ न तस्यविलयोजन्म वर्धनंचापिसत्तम ॥ मलभाण्डेनवद्वारे पूयासृक्शोणितालये ॥ ३३ ॥ देहेस्मिन्बुद्बुदाकारे कृमियूथसमाकुले॥ कामक्रोधभयद्रोहमोहमात्सर्यकारिणि॥३४॥ परदारपरक्षेत्रपरद्रव्यैकलोलुपे ॥ हिंसासूयाशुचिव्याप्ते विष्ठामूत्रैकभाजने ॥ ३५ ॥ यःकुर्याच्छोभनधियं समूढःस चदुर्मतिः॥ बहुच्छिद्रघटाकारे देहेस्मिन्नशुचौसदा ॥ ३६ ॥ वायोरवस्थितिःकिंस्यात्प्राणाख्यस्यचिरंद्विज ॥ अतो माकुरुशोकंत्वं जननींपितरंप्रति ॥ ३७ ॥ तौस्वकर्मवशाद्यातौ गृहंत्यक्त्वाविदंकचित् ॥ तवकर्मवशात्त्वंच तिष्ठस्यस्मिन्महीतले ॥ ३८ ॥ यदाकर्मक्षयस्तेस्यात्तदात्वंचमरिष्यसि ॥ मरिष्यमाणप्रेतोहि मृतप्रेतस्यशोचति ॥ ३९ ॥ यस्मिन्कालेसमुत्पन्नौ तवमातापितातथा ॥ नतस्मिंस्त्वंसमुत्पन्नस्ततोभिन्नागतिर्हिवः ॥ ४० ॥ यदितुल्यागतिस्ते

प्राण नामक पवन की कैसे बहुत दिन स्थिति होवै इस कारण तुम माता व पिता के लिये मत शोच करो ॥ ३७ ॥ क्योंकि वे दोनों अपने कर्म के वश से इस घरको छोड़कर कहीं चलेगये और अपने कर्म के वश से तुम इस पृथ्वी में स्थित हो ॥ ३८ ॥ और जब तुम्हारे कर्म का नाश होगा तब तुम भी मरजावोगे और मरनेवाला प्रेत मरेहुए प्रेतका शोच करता है ॥ ३९ ॥ जिस समय तुम्हारे माता, पिता पैदाहुए थे उस समय तुम नहीं पैदाहुए थे उसी कारण तुम लोगों की गति भिन्न होगई ॥ ४० ॥

हे महामते ! उन दोनों समेत यदि तुम्हारी गति समान होवै तो जहां मरेहुए वे गये हैं वहां तुमको भी जाना चाहिये ॥४१॥ और मरेहुए प्राणियों के जो बन्धुलोग हैं वे पृथ्वी में जिन आंसुवों को छोड़ते हैं उन आंसुवों को परलोक में मरेहुए प्रेत पीते हैं ॥ ४२ ॥ इस कारण शोच को छोड़ धैर्य कर सावधान होतेहुए तुम इन दोनोंके वैदिक प्रेतकार्यों को करो ॥ ४३ ॥ जिस कारण तुम्हारे ये माता, पिता बाण के मारने से मरगये इस कारण उस दोष की शांति के लिये उन दोनों की अस्थियों को लेकर ॥ ४४ ॥ मुक्तिदायक रामसेतु पै रामनाथ शिवक्षेत्र में स्थापन करो और सपिंडीकरणादिक श्राद्ध को ॥ ४५ ॥ हे द्विजपुत्र ! वहींपर उन दोनों की शुद्धि के लिये करो उससे दुः

स्यात्ताभ्यांसहमहामते ॥ तर्हित्वयापियातव्यं मृतौयत्रहितौगतौ ॥ ४१ ॥ मृतानांबान्धवायेतु मुञ्चन्त्यश्रूणिभूतले ॥ पास्यन्त्यश्रूणितान्यद्धा मृताःप्रेताःपरत्रवै ॥ ४२ ॥ अतःशोकंपरित्यज्य धृतिंकृत्वासमाहितः ॥ अनयोःप्रेतकार्याणि कुरुत्ववैदिकानितु ॥ ४३ ॥ शरघातान्मृतावेतौ यस्मात्तेजननीपिता ॥ अतस्तद्दोषशान्त्यर्थमस्थीन्यादायवैतयोः ॥ ४४ ॥ रामनाथशिवक्षेत्रे रामसेतौविमुक्तिदे ॥ स्थापयस्वतथाश्राद्धं सपिण्डीकरणादिकम् ॥ ४५ ॥ तत्रैवकुरुशुद्ध्यर्थं तयोर्ब्राह्मणपुत्रक ॥ तेनदुर्मृत्युदोषस्य शान्तिर्भवतिनान्यथा ॥ ४६ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवमुक्तःसमुनिभिः शाकल्यस्यसुतोद्विजाः ॥ जाङ्गलाख्यस्तयोःसर्वं पितृमेधंचकारवै ॥ ४७ ॥ अन्येद्युरस्थीन्यादाय हालास्यंप्रययौचसः ॥ तस्माद्रामेश्वरंसद्यो गत्वायंजाङ्गलोद्विजः ॥ ४८ ॥ मुनिप्रोक्तप्रकारेण तस्मिन्रामेश्वरस्थले ॥ निधायपित्रोरस्थीनि श्राद्धादीन्यकरोत्तथा ॥ ४९ ॥ प्रथमाब्दिकपर्यन्तं कार्यंतत्राकरोच्चसः ॥ स्थित्वाब्दंसमुनेःपुत्र एकोजाङ्

मृत्यु की शांति होगी अन्यथा न होगी ॥ ४६ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! मुनियों से इस प्रकार कहेहुए उस जांगल नामक शाकल्य के पुत्र ने उन दोनों के सब पितृयज्ञ को किया ॥ ४७ ॥ और दूसरे दिन वह अस्थियों को लेकर हालास्य क्षेत्र को गया और वहां से शीघ्रही इस जांगल नामक ब्राह्मणने रामेश्वर को जाकर ॥ ४८ ॥ उस रामेश्वर स्थल में मुनियों से कहीहुई विधि से माता, पिता की अस्थियों को स्थापित कर श्राद्धादिकों को किया ॥ ४९ ॥ और वहां उसने प्रथम वार्षिकपर्यन्त कार्य

किया और अकेला जांगल नामक वह मुनि का पुत्र वर्षभर टिककर ॥ ५० ॥ वार्षिक श्राद्ध के अन्तवाले दिन में वह ब्राह्मण रात्रि में अपनी माता व पिता को स्वप्न में शङ्ख, चक्र व गदाधारी देखकर ॥ ५१ ॥ व गरुड़ के ऊपर बैठेहुए तथा कमलों की माला से भूषित व तुलसी की माला से शोभित तथा चमकतेहुए मकराकृति कुंडलोंवाले ॥ ५२ ॥ और कौस्तुभमणि से भूषित वक्षस्थलवाले व पीताम्बर से शोभित इस प्रकार माता, पिता को देखकर मुनिपुत्र जांगल ने प्रसन्नमन होकर ॥ ५३ ॥ हे द्विजो ! फिर अपने आश्रमको आकर सुख से निवास किया और उस जांगल ने स्वप्न में देखेहुए माता, पिता के वृत्तान्त को ॥ ५४ ॥ बहुत प्रसन्न होकर उन ब्राह्मणों

लसंज्ञकः ॥ ५० ॥ आब्दिकान्तेदिनेविप्रो रात्रौस्वप्नेविलोक्यतु ॥ स्वमातरंचपितरं शङ्खचक्रगदाधरौ ॥ ५१ ॥ गरुडोपरिसंविष्टौ पद्ममालाविभूषितौ ॥ शोभितौतुलसीदाम्ना स्फुरन्मकरकुण्डलौ ॥ ५२ ॥ कौस्तुभालंकृतोरस्कौ पीताम्बरविराजितौ ॥ एवंदृष्ट्वामुनिसुतो जाङ्गलःसुप्रसन्नधीः ॥ ५३ ॥ स्वाश्रमंपुनरागत्य सुखेनन्यवसद्द्विजाः ॥ स्वप्नदृष्टंचवृत्तान्तं मातापित्रोःसजाङ्गलः ॥ ५४ ॥ तेभ्योन्यवेदयत्सर्वं ब्राह्मणेभ्योतिहर्षितः ॥ श्रुत्वातेमुनयोवृत्तमासन्संप्रीतमानसाः ॥ ५५ ॥ अथराजानमालोक्य सर्वेतेपिमहर्षयः ॥ अवदन्कुपिताविप्राः शपन्तःशङ्करंनृपम् ॥ ५६ ॥ पाण्ड्यभूपमहामूर्ख क्रौर्याद्ब्राह्मणघातक ॥ स्त्रीहत्याब्रह्महत्याच कृतायस्मात्त्वयाधुना ॥ ५७ ॥ अतःशरीरसंत्यागं कुरुत्वंहव्यवाहने ॥ नोचेत्तवनशुद्धिःस्यात्प्रायश्चित्तशतैरपि ॥ ५८ ॥ त्वत्संभाषणमात्रेण ब्रह्महत्यायुतंभवेत् ॥ अस्मत्सकाशाद्गच्छत्वं पाण्ड्यानांकुलपांसन ॥ ५९ ॥ इत्युक्तोमुनिभिःपाण्ड्यः शङ्करोद्विजपुङ्गवाः ॥ तथास्तुदेहसंत्यागं

से सब निवेदन किया और वे मुनि वृत्तान्त को सुनकर प्रसन्नमन हुए ॥ ५५ ॥ इसके उपरान्त हे ब्राह्मणो ! राजा को देखकर क्रोधित होकर शंकर राजा की निन्दा करतेहुए उन सब भी महर्षियों ने कहा ॥ ५६ ॥ कि हे ब्रह्मघाती, महामूर्ख, पांड्यभूप ! जिसलिये तूने क्रूरता से इस समय स्त्रीहत्या व ब्रह्महत्या की है ॥ ५७ ॥ इस कारण तुम अग्नि में देह का त्यागकरो नहीं तो सैकड़ों प्रायश्चित्तों से भी तुम्हारी शुद्धि न होगी ॥ ५८ ॥ हे पांड्यों के मध्य में वंशनाशक ! तुम्हारे वार्तालापही से दश हजार ब्रह्महत्या होती है इससे तुम हमलोगों के समीप से चलेजावो ॥ ५९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मुनियों से ऐसा कहेहुए पांड्यदेश के राजा शंकर ने कहा कि वैसाही

होगा मैं आपलोगों के समीप ब्रह्महत्या से शुद्धि के लिये अग्नि में शरीर को त्याग करूंगा हे मुनिश्रेष्ठो ! आपलोग मेरे ऊपर दया कीजिये ॥ ६० । ६१ ॥ कि जिस प्रकार शरीर को छोड़ने से मेरा पाप नाश होजावै सब मुनियों से ऐसा कहकर पाण्ड्यदेश के राजा शंकर ने ॥ ६२ ॥ अपने मंत्रियों को बुलाकर यह वचन कहा कि हे मंत्रियो ! मैंने बिन विचार से ब्रह्महत्या की है ॥ ६३ ॥ व महानरक की देनेवाली स्त्रीहत्या की है और मुनियों के वचन से मैं इस पाप से शुद्धि के लिये ॥ ६४ ॥ बड़ी ज्वालाओंवाली जलतीहुई अग्नि में शरीर को त्याग करूंगा तुमलोग शीघ्रही लकड़ियों को लावो और उनसे अग्नि को जलावो ॥ ६५ ॥ और मेरे पुत्र सुरुचि को

करिष्येहव्यवाहने ॥ ६० ॥ ब्रह्महत्याविशुद्ध्यर्थं भवतांसन्निधावहम् ॥ अनुग्रहंमेकुर्वन्तु भवन्तोमुनिसत्तमाः ॥ ६१ ॥ यथाशरीरसंत्यागात्पातकंमेलयंव्रजेत् ॥ एवमुक्त्वामुनीन्सर्वाञ्छङ्करःपाण्ड्यभूपतिः ॥ ६२ ॥ स्वान्मन्त्रिणःसमाहूय बभाषेवचनंत्विदम् ॥ भोमन्त्रिणोब्रह्महत्या मयाकार्यविचारतः ॥ ६३ ॥ स्त्रीहत्याचतथाक्रूरा महानरकदायिनी ॥ एतत्पातकशुद्ध्यर्थं मुनीनांवचनादहम् ॥ ६४ ॥ प्रदीप्तेग्नौमहाज्वाले परित्यक्ष्येकलेवरम् ॥ काष्ठान्यानयताक्षिप्रं तैरग्निश्च समिध्यताम् ॥ ६५ ॥ ममपुत्रंचसुरुचिं राज्येस्थापयताचिरात् ॥ माशोकंकुरुतामात्या दैवतंदुरतिक्रमम् ॥ ६६ ॥ इतीरितानृपतिना मन्त्रिणोरुरुदुस्तदा ॥ पाण्ड्यनाथमहाराज रिपूणामपिवत्सल ॥ ६७ ॥ वयंहिभवतानित्यं पुत्रवत्परिपालिताः ॥ त्वांविनानप्रवेक्ष्यामः पुरींदेवपुरोपमाम् ॥ ६८ ॥ हव्यवाहंप्रवेक्ष्यामो महाकाष्ठसमेधितम् ॥ तेषांप्रलपितं श्रुत्वा पाण्ड्यःशङ्करभूपतिः ॥ ६९ ॥ प्रोवाचमन्त्रिणःसर्वान्वचनंसान्त्वपूर्वकम् ॥ शङ्कर उवाच ॥ किंकरिष्यथभोमा

शीघ्रही राज्य पै स्थापित करो हे मंत्रियो ! शोच मत करो क्योंकि दैव उल्लंघन नहीं किया जासक्ता है ॥ ६६ ॥ उस समय राजा से ऐसा कहेहुए मंत्री लोग रोनेलगे कि हे शत्रुवों को भी प्यारे, पांड्यनाथ, महाराज ! ॥ ६७ ॥ आप ने हमलोगों का सदैव पुत्रकी नाईं पालन किया है इससे सुरपुर के समान पुरी में हमलोग तुम्हारे विना नहीं पैठैंगे ॥ ६८ ॥ बरन महाकाष्ठों से बढ़ी हुई अग्नि में पैठजावैंगे उनके विलाप को सुनकर पांड्यदेश के शंकर राजा ने ॥ ६९ ॥ प्रिय वचनपूर्वक सब मंत्रियों

से वचन कहा शंकर बोले कि हे मंत्रियो ! तुमलोग महापातकी मुझसे क्या करोगे ॥ ७० ॥ क्योंकि यह खेद है कि सिंहासन पै बैठकर चारों समुद्रों तक पृथ्वी का पालन करना मुझको अयोग्य है ॥ ७१ ॥ इस कारण तुमलोग मेरे पुत्र सुरुचि को शीघ्रही राज्यासन पै बिठालो और अग्नि में पैठने के लिये शीघ्रही लकड़ियों को लाइये ॥ ७२ ॥ तुमलोग मेरे श्रेष्ठ मंत्री हो इससे इस समय देरको छोड़ दीजिये ऐसा कहेहुए वे मंत्री लोग क्षणभर में लकड़ियों को लेआये ॥ ७३ ॥ और लकड़ियों से जलतीहुई अग्नि को देखकर उस समय शुद्धचित्तवाले शंकर राजा ने मुनियों के समीप स्नान व आचमन कर ॥ ७४ ॥ शीघ्रता समेत अग्नि व उन मुनियों की

त्या महापातकिनामया ॥ ७० ॥ सिंहासनंसमारुह्य नकर्तुंयुज्यतेबत ॥ चतुरर्णवपर्यन्तधरापालनमञ्जसा ॥ ७१ ॥ मत्पुत्रंसुरुचिंशीघ्रमतःस्थापयतासने ॥ काष्ठान्यानयतक्षिप्रं प्रवेष्टुंहव्यवाहनम् ॥ ७२ ॥ ममममन्त्रिवरायूयं विलम्बन्त्यजताधुना ॥ इत्युक्तामन्त्रिणःकाष्ठं समानिन्युःक्षणेनते ॥ ७३ ॥ अग्निंप्रज्वलितंकाष्ठैर्दृष्ट्वाशङ्करभूपतिः ॥ स्नात्वाचम्यविशुद्धात्मा मुनीनांसन्निधौतदा ॥ ७४ ॥ अग्निंप्रदक्षिणीकृत्य तान्मुनीनपिसत्वरम् ॥ अग्निंमुनीन्नमस्कृत्य ध्यात्वादेवमुमापतिम् ॥ ७५ ॥ अग्नौपतितुमारेभे धैर्यमालम्ब्यभूपतिः ॥ तस्मिन्नवसरेविप्रा मुनीनामपिशृण्वताम् ॥ ७६ ॥ अशरीरासमुदभूद्वाणीभैरवनादिनी ॥ भोःशङ्करमहीपाल मानलंप्रविशाधुना ॥ ७७ ॥ ब्रह्महत्यानिमित्तन्ते भयंमाभून्महामते ॥ तवोपदेशंवक्ष्यामि रहस्यंवेदसम्मितम् ॥ ७८ ॥ शृणुष्वावहितोराजन्मदुक्तंक्रियतान्त्वया ॥ दक्षिणाम्बुनिधेस्तीरे गन्धमादनपर्वते ॥ ७९ ॥ रामसेतौमहापुण्ये महापातकनाशने ॥ रामप्रतिष्ठितंलिङ्गं

भी प्रदक्षिणा कर और अग्नि व मुनियों को प्रणामकर पार्वतीपति सदाशिवजी को ध्यानकर ॥ ७५ ॥ राजा ने धीरज धरकर अग्नि में गिरने का प्रारम्भ किया हे मुनियो ! उस समय मुनियों के भी सुनतेहुए ॥ ७६ ॥ भयंकरशब्दवाली अशरीरिणी वाणी उत्पन्न हुई कि हे शंकर राजन् ! इस समय तुम अग्नि में मत पैठो ॥ ७७ ॥ और ब्रह्महत्या के कारण तुमको डर न होवै क्योंकि मैं वेदों से सम्मित गुप्त उपदेश को तुम से कहती हूं ॥ ७८ ॥ हे राजन् ! सावधान होकर सुनो और तुम को मेरा कहना करना चाहिये कि दक्षिण समुद्र के किनारे गन्धमादन पर्वत पै ॥ ७९ ॥ महापापों को नाशनेवाले व महापवित्र रामसेतु पै श्रीरामजी से

स्थापित रामनाथ शिवजी को ॥ ८० ॥ तुम एक वर्ष भरतक त्रिकाल सेवन करो और प्रदक्षिणा परिक्रमा व प्रणाम करो ॥ ८१ ॥ और तुम रामनाथजी का महाभिषेक करो व हे राजन् ! प्रतिदिन अनेक प्रकार की नैवेद्य करो ॥ ८२ ॥ और चन्दन, अगरु व कपूर से श्रीरामलिंग को पूजो और दो भार गऊ के घी से तुम स्नान करावो ॥ ८३ ॥ और प्रतिदिन दोभार प्रमाणभर गौवों के दूध से भी नहवावो व हे प्रभो ! द्रोण प्रमाणभर शहद से प्रतिदिन उस लिंग को नहवावो ॥ ८४ ॥ व हे भूपते ! प्रतिदिन हविष्यान्न से नैवेद्य करो और प्रतिदिन तिलके तैल से दीपाराधन करो ॥ ८५ ॥ हे नृपेन्द्र ! त्रिशूलधारी रामनाथजी के इस कर्म से उसीक्षण

रामनाथंमहेश्वरम् ॥ ८० ॥ सेवस्ववर्षमेकंत्वं त्रिकालंभक्तिपूर्वकम् ॥ प्रदक्षिणप्रक्रमणं नमस्कारंचवैकुरु ॥ ८१ ॥ महाभिषेकःक्रियतां रामनाथस्यवैत्वया ॥ नैवेद्यंविविधंराजन् क्रियतांचदिनेदिने ॥ ८२ ॥ चन्दनागरुकर्पूरैरामलिङ्गं प्रपूजय ॥ भारद्वयेनगव्येन ह्याज्येनत्वभिषेचय ॥ ८३ ॥ प्रत्यहंचगवांक्षीरैर्द्विभारपरिसम्मितैः ॥ मधुद्रोणेनतल्लिङ्गं प्रत्यहंस्नापयप्रभो ॥ ८४ ॥ प्रत्यहंपायसान्नेन नैवेद्यंकुरुभूपते ॥ प्रत्यहंतिलतैलेन दीपाराधनमाचर ॥ ८५ ॥ एतेनतवराजेन्द्र रामनाथस्यशूलिनः ॥ स्त्रीहत्याब्रह्महत्याच तत्क्षणादेवनश्यतः ॥ ८६ ॥ दर्शनाद्रामनाथस्य भ्रूणहत्याशतानिच ॥ अयुतंब्रह्महत्यानां सुरापानायुतंतथा ॥ ८७ ॥ स्वर्णस्तेयायुतंराजन् गुरुस्त्रीगमनायुतम् ॥ एतत्संसर्गदोषाश्च विनश्यन्तिक्षणाद्विभो ॥ ८८ ॥ महापातकतुल्यानि यानिपापानिसन्तिवै ॥ तानिसर्वाणिनश्यन्ति रामनाथस्यसेवया ॥ ८९ ॥ महतीरामनाथस्य सेवालभ्येतचेन्नृणाम् ॥ किंगङ्गयाचगयया प्रयागेणाध्व

तुम्हारी स्त्रीहत्या व ब्रह्महत्या नाश होजावैगी ॥ ८६ ॥ क्योंकि रामनाथजी के दर्शन से सैकड़ों बालहत्या व दशहज़ार ब्रह्महत्या तथा दशहज़ार मदिरापान ॥ ८७ ॥ व हे विभो, राजन् ! दशहज़ार सुवर्ण की चोरी व दशहज़ार गुरुस्त्रीगमन और इनके संसर्गवाले दोष क्षणभर में नाश होजाते हैं ॥ ८८ ॥ और महापातकों के समान जो अन्य पाप हैं वे सब रामनाथजी की सेवा से नाश होजाते हैं ॥ ८९ ॥ यदि मनुष्यों को रामनाथजी की बड़ी भारी सेवा मिलै तो गंगा, गया व प्रयाग

और यज्ञ से क्या है ॥ ९० ॥ इस कारण हे विभो ! तुम रामसेतु पै जाओ और रुद्रैव रामनाथजी को भजो देर मत करो बरन जाने में शीघ्रता करो ॥ ९१ ॥ यह कहकर वह अशरीरिणी वाणी चुप होगई और उसको सुनकर सब मुनियों ने राजा को शीघ्रता कराया ॥ ९२ ॥ कि हे महाराज ! मुक्तिदायक रामसेतु को शीघ्रही जाओ क्योंकि रामनाथजी के प्रभाव को न जानकर हमलोगों ने यह कहा था ॥ ९३ ॥ कि इस समय जलतीहुई अग्नि में देह का त्याग करो मुनीश्वरों से इस प्रकार आज्ञा दियाहुआ वह शंकर राजा ॥ ९४ ॥ शीघ्रता संयुत होकर चतुरंगिणी सेना को पुरी में पठाकर सब मुनियों को प्रणामकर प्रसन्नचित्त से ॥ ९५ ॥ कुछ

रेणवा ॥९०॥ तद्गच्छरामसेतुंत्वं रामनाथंभजानिशम् ॥ विलम्बंमाकुरुविभो गमनेचत्वरांकुरु ॥९१॥ इत्युक्त्वाविररामाथ सापिवागशरीरिणी ॥ तच्छ्रुत्वामुनयःसर्वे त्वरयन्तिस्मभूपतिम् ॥९२॥ गच्छशीघ्रंमहाराज रामसेतुंविमुक्तिदम् ॥ रामनाथस्यमाहात्म्यमज्ञात्वास्माभिरीरितम् ॥ ९३ ॥ देहत्यागंकुरुष्वेति वह्नौप्रज्वलितेधुना ॥ अनुज्ञातोमुनिवरैरितिराजा सशङ्करः ॥ ९४ ॥ चतुरङ्गबलंपुर्यां प्रापयित्वात्वरान्वितः ॥ नमस्कृत्यमुनीन्सर्वान्प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ९५ ॥ वृतःकतिपयैःसैन्यैः समादायधनंबहु ॥ रामनाथस्यसेवार्थमायासीद्गन्धमादनम् ॥ ९६ ॥ उवासवर्षमेकंच रामसेतौविशुद्धिदे ॥ एकभुक्तोजितक्रोधो विजितेन्द्रियसञ्चयः ॥ ९७ ॥ त्रिसन्ध्यंरामनाथंच सेवमानःसभक्तिकम् ॥ प्रददौरामनाथाय दशभारंधनंमुदा ॥ ९८ ॥ प्रत्यहंरामनाथस्य महापूजामकारयत् ॥ अकरोच्चधनुष्कोटौ प्रत्यहंभक्तिपूर्वकम् ॥ ९९ ॥ स्नानंप्रतिदिनंचान्नं ब्राह्मणेभ्योददौमुदा ॥ अशरीरावचःप्रोक्तमखिलंपूजनंतथा ॥ १०० ॥ एवंकृतवत

सेना से घिरकर व बहुत धनको लेकर रामनाथजी की सेवा के लिये गन्धमादन पर्वत को गया ॥ ९६ ॥ और उसने शुद्धिदायक रामसेतु पै एक वर्ष भरतक निवास किया और एक बार भोजनकर क्रोध को जीते व इन्द्रियगण को जीतेहुए वह राजा ॥ ९७ ॥ भक्तिसमेत त्रिकाल रामनाथजी की सेवा करता रहा और उसने हर्ष से रामनाथजी के लिये दश भार धनको दिया ॥ ९८ ॥ और प्रतिदिन रामनाथजी की बड़ीभारी पूजा किया और प्रतिदिन धनुष्कोटि में भक्तिपूर्वक स्नान किया और प्रतिदिन ब्राह्मणों के लिये अन्न दिया और अशरीरिणी वाणी से कहाहुआ सब पूजन किया ॥ ९९ । १०० ॥ हे ब्राह्मणो ! ऐसा करतेहुए उसको एक वर्ष

व्यतीत होगया और वर्ष के अन्त में पवित्र होकर उस प्रसन्नमनवाले शंकर ने ॥ १ ॥ दयानिधान रामनाथ शिवजी की स्तुति किया शंकर बोले कि पार्वती के पति रुद्र रामनाथ शिवजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ २ ॥ हे देव ! दया से मेरी रक्षाकरो और शीघ्रही मेरी ब्रह्महत्या को जलावो हे त्रिपुरविनाशक ! हे कालकूट विष को खानेवाले, महादेवजी ! ॥ ३ ॥ हे दयासिन्धो ! तुम मेरी रक्षा करो व मेरी स्त्रीहत्या को छुड़ावो हे गंगाधर, विरूपनयन, त्रिलोचन, रामनाथजी ! ॥ ४ ॥ हे विभो ! दयादृष्टि से मेरी रक्षा कीजिये व मेरे पाप को काटिये हे कामशत्रु ! हे भक्तों के मनोरथ को देनेवाले, राघवेश्वर ! ॥ ५ ॥ हे मार्कंडेयजी को भय

स्तस्य वर्षमेकंगतंद्विजाः ॥ वर्षान्तेसशुचिर्भूत्वा शङ्करस्तुष्टमानसः ॥ १ ॥ तुष्टावपरमेशानं रामनाथंघृणानिधिम् ॥ शङ्कर उवाच ॥ नमामिरुद्रमीशानं रामनाथमुमापतिम् ॥ २ ॥ पाहिमांकृपयादेव ब्रह्महत्यांदहाशुमे ॥ त्रिपुरघ्नमहा देव कालकूटविषादन ॥ ३ ॥ रक्षमांत्वंदयासिन्धो स्त्रीहत्यांमेविमोचय ॥ गङ्गाधरविरूपाक्ष रामनाथत्रिलोचन ॥ ४ ॥ मांपालयकृपादृष्ट्या छिन्धिमत्पातकंविभो ॥ कामारेकामसंदायिन्भक्तानांराघवेश्वर ॥ ५ ॥ कटाक्षंपातयमयि शुद्धं मांकुरुधूर्जटे ॥ मार्कण्डेयभयत्राण मृत्युञ्जयशिवाव्यय ॥ ६ ॥ नमस्तेगिरिजार्धाय निष्पापंकुरुमांसदा ॥ रुद्राक्षमा लाभरण चन्द्रशेखरशङ्कर ॥ ७ ॥ वेदोक्तसम्यगाचारयोग्यंमांकुरुतेनमः ॥ सूर्यदन्तभिदेतुभ्यं भारतीनासिकाच्छि दे ॥ ८ ॥ रामेश्वरायदेवाय नमोमेशुद्धिदोभव ॥ आनन्दंसच्चिदानन्दं रामनाथवृषध्वजम् ॥ ९ ॥ भूयोभूयोनमस्या

से रक्षा करनेवाले, मृत्युंजय, अव्यय, शिव ! हे धूर्जटे ! मेरे ऊपर दृष्टिपात कीजिये व मुझको शुद्ध कीजिये ॥ ६ ॥ गिरिजार्धशरीरवाले आप के लिये प्रणाम है मुझको सदैव पापरहित कीजिये हे रुद्राक्ष की माला के आभूषणवाले, चन्द्रशेखर, शंकरजी ! ॥ ७ ॥ मुझको वेदों में भलीभांति कहेहुए आचार के योग्य कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है व सूर्यनारायण के दन्तों को तोड़नेवाले व सरस्वतीजी की नासिका को काटनेवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ८ ॥ व रामेश्वर देवजी के लिये नमस्कार है मुझको शुद्धिदायक होवो आनन्द सच्चिदानन्द व रामनाथ वृषध्वजजी को ॥ ९ ॥ मैं बारबार प्रणाम करता हूं मेरा पातक नाश

होजावै इस प्रकार भक्ति से रामनाथ शिवजी की स्तुति करतेहुए उस ॥ १० ॥ राजाके मुख से बहुत भयंकरी ब्रह्महत्या निकली जोकि नील वसनों को धारे व क्रूर और बहुत लाल बालोंवाली थी ॥ ११ ॥ राजा के मुख से निकली हुई उस बीभत्सब्रह्महत्या को शिवजी की आज्ञा से भैरवजी ने त्रिशूल से मारा ॥ १२ ॥ और शिवजी की आज्ञा से भैरव से ब्रह्महत्या के नाश होनेपर उसकी स्तुति से प्रसन्न बुद्धिवाले रामनाथजी ने राजा से कहा ॥ १३ ॥ श्रीरामनाथजी बोले कि हे पाण्ड्य भूप, महाराज ! तुम्हारे इस स्तोत्र से मैं प्रसन्न हूं तुम चाहेहुए वरको मांगो मैं उसको तुम्हारे लिये दूंगा ॥ १४ ॥ और स्त्रीहत्या व ब्रह्महत्या से जो तुम्हारे दोष

मि पातकंमेविनश्यतु ॥ भक्त्यैवंस्तुवतस्तस्य रामनाथंमहेश्वरम् ॥ १० ॥ निर्जगाममुखाद्राज्ञो ब्रह्महत्यातिभीषणा ॥ नीलवस्त्रधराक्रूरा महारक्तशिरोरुहा ॥ ११ ॥ तांब्रह्महत्यांबीभत्सां नृपवक्त्राद्विनिर्गताम् ॥ निजघानत्रिशूलेन भैरवो रुद्रशासनात् ॥ १२ ॥ हतायांब्रह्महत्यायां भैरवेणशिवाज्ञया ॥ रामनाथोनृपंप्राह स्तुत्यातस्यप्रसन्नधीः ॥ १३ ॥ श्री रामनाथ उवाच ॥ पाण्ड्यभूपमहाराज स्तोत्रेणानेनतेनघ ॥ प्रसन्नोहंवरंदास्ये तुभ्यंवरयचेप्सितम् ॥ १४ ॥ स्त्रीहत्या ब्रह्महत्याभ्यां यस्तेदोषःसनिर्गतः ॥ शुद्धोविधूतपापोसि राज्यंपालयपूर्ववत् ॥ १५ ॥ येमामत्रनिषेवन्ते भक्तियुक्ते नचेतसा ॥ नाशयामिनृणांतेषां ब्रह्महत्यायुतान्यपि ॥ १६ ॥ सुरापानायुतंभूप गुरुस्त्रीगमनायुतम् ॥ स्वर्णस्तेया युतमपि तत्संसर्गायुतंतथा ॥ १७ ॥ अन्यान्यपिचपापानि नाशयामिनसंशयः ॥ मत्सेविनोनराराजन्नभूयःसंसरन्ति ते ॥ १८ ॥ किन्तुसायुज्यरूपांमे मुक्तियास्यन्त्यसंशयम् ॥ स्तुवन्त्यनेनस्तोत्रेण येमांभक्तिपुरःसरम् ॥ १९ ॥ नाश

था वह निकल गया तुम शुद्ध व पापरहित हो इससे पहले की नाईं राज्य को पालन करो ॥ १५ ॥ जो मनुष्य भक्तिसंयुत चित्त से यहां मुझको सेवते हैं उन मनुष्यों की दशहज़ार ब्रह्महत्याओं को भी मैं नाश करता हूं ॥ १६ ॥ व हे राजन् ! दशहज़ार मद्यपान और दशहज़ार गुरुस्त्रीगमन और दशहज़ार सुवर्ण की चोरी व उसके संसर्गवाले दशहज़ार पापों को ॥ १७ ॥ व अन्य भी पापों को निस्सन्देह नाश करता हूं व हे राजन् ! मेरी सेवा करनेवाले वे लोग फिर संसार में नहीं उत्पन्न होते हैं ॥ १८ ॥ किन्तु मेरी सायुज्य मुक्ति को पावैंगे इसमें सन्देह नहीं है और जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करते हैं ॥ १९ ॥ इनके मैं

महापातकों के समूह को नाश करता हूं हे मनुजेश्वर ! भक्ति से तुम्हारे इस स्तोत्र से मैं प्रसन्न हूं॥ २० ॥ हे राजन् ! मुझ वरदायक से तुम यथेष्ट (प्रिय) वरको मांगो शिवजी से ऐसा कहेहुए नृपश्रेष्ठ शंकर ने॥ २१ ॥ उन करुणानिधान रामनाथ शिवजी से कहा राजा बोले कि हे महेश्वर ! मैं तुम्हारे दर्शन से कृतार्थ होगया॥ २२ ॥ और इस समय मुझको इससे अधिक नहीं मांगने योग्य है और मृकण्डुजी के भय व संताप को हरनेवाले तुम्हारे युगल चरण को॥ २३ ॥ मैंने देखा इसलिये हे विभो, महादेव ! कुछ मांगने योग्य नहीं है तुम्हारे युगल चरणकमलों में मेरी अचल भक्ति होवै ॥ २४ ॥ और माताओं के अशुद्ध उदर

याम्यहमेतेषां महापातकसञ्चयम् ॥ प्रीतोहंतवभक्त्याच स्तोत्रेणमनुजेश्वर ॥ २० ॥ यथेष्टंप्रार्थयवरं मत्तस्त्वंवरदान्नृप ॥ एवमुक्तःशिवेनाथ शङ्करोन्नृपपुङ्गवः ॥ २१ ॥ रामनाथंबभाषेतं शङ्करंकरुणानिधिम् ॥ नृप उवाच ॥ तवसंदर्शनेनाहं कृतार्थोस्मिमहेश्वर ॥ २२ ॥ इतःपरंप्रार्थनीयं ममनास्त्यधुनाधिकम् ॥ मृकण्डुभयसन्तापहारिपादयुगं तव ॥ २३ ॥ दृष्टंमयामहादेव नातःप्रार्थ्यंविभोस्तिवै ॥ त्वत्पादपद्मयुगले निश्चलाभक्तिरस्तुमे ॥ २४ ॥ नपुनर्जन्ममेभूयान्मातॄणामुदरेशुचौ ॥ येमत्कृतमिदंस्तोत्रं कीर्तयन्तितवप्रभो ॥ २५ ॥ तेनराःपापनिर्मुक्तास्त्वत्सेवाफलमाप्नुयुः ॥ श्रीसूत उवाच॥ तथास्त्वित्यनुगृह्यैनं रामनाथोद्विजोत्तमाः॥ २६ ॥ नीलकण्ठोविरूपाक्षो लिङ्गरूपेतिरोहितः॥ राजापिरामनाथेन विहितानुग्रहस्ततः ॥ २७ ॥ रामनाथंनमस्कृत्य कृतार्थेनान्तरात्मना ॥ स्वसेनासंवृतःप्रीतः प्रययावात्मनःपुरीम् ॥ २८ ॥ वृत्तान्तमेतदवदन्मुनीनांवनवासिनाम् ॥ तेभ्यषिञ्चन्नृपंराज्ये मुनयःप्रीतमानसाः ॥ २९ ॥

में फिर मेरा जन्म न होवै व हे प्रभो ! जो मनुष्य मुझसे कियेहुए तुम्हारे स्तोत्र को कीर्तन करैं ॥ २५ ॥ पापों से छूटेहुए वे पुरुष तुम्हारी सेवा के फल को पावैं श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वैसाही होगा इस प्रकार इस राजा के ऊपर दयाकर रामनाथ ॥ २६ ॥ विरूपलोचन नीलकण्ठजी लिंगरूप में अन्तर्द्धान होगये तदनन्तर रामनाथजी से दया कियाहुआ राजा भी ॥ २७ ॥ रामनाथजी को प्रणाम कर अपनी सेना से युक्त हो प्रसन्न होकर प्रसन्न चित्त से अपनी पुरी को चलागया॥ २८ ॥ और इस वृत्तान्त को उसने वनवासी मुनियों से कहा व प्रसन्न मनवाले उन मुनियों ने राजा को राज्य पै अभिषेक किया ॥ २९ ॥

महापातकों के समूह को नाश करता हूं हे मनुजेश्वर ! भक्ति से तुम्हारे इस स्तोत्र से मैं प्रसन्न हूं ॥ २० ॥ हे राजन् ! मुझ वरदायक से तुम यथेष्ट (प्रिय) वरको मांगो शिवजी से ऐसा कहेहुए नृपश्रेष्ठ शंकर ने ॥ २१ ॥ उन करुणानिधान रामनाथ शिवजी से कहा राजा बोले कि हे महेश्वर ! मैं तुम्हारे दर्शन से कृतार्थ होगया ॥ २२ ॥ और इस समय मुझको इससे अधिक नहीं मांगने योग्य है और मृकण्डुजी के भय व संताप को हरनेवाले तुम्हारे युगल चरण को ॥ २३ ॥ मैंने देखा इसलिये हे विभो, महादेव ! कुछ मांगने योग्य नहीं है तुम्हारे युगल चरणकमलों में मेरी अचल भक्ति होवै ॥ २४ ॥ और माताओं के अशुद्ध उदर

याम्यहमेतेषां महापातकसञ्चयम् ॥ प्रीतोहंतवभक्त्याच स्तोत्रेणमनुजेश्वर ॥ २० ॥ यथेष्टंप्रार्थयवरं मत्तस्त्वंवरदान्नृप ॥ एवमुक्तःशिवेनाथ शङ्करोनृपपुङ्गवः ॥ २१ ॥ रामनाथंबभाषेतं शङ्करंकरुणानिधिम् ॥ नृप उवाच ॥ तवसंदर्शनेनाहं कृतार्थोस्मिमहेश्वर ॥ २२ ॥ इतःपरंप्रार्थनीयं ममनास्त्यधुनाधिकम् ॥ मृकण्डुभयसन्तापहारिपादयुगं तव ॥ २३ ॥ दृष्टंमयामहादेव नातःप्रार्थ्यंविभोस्तिवै ॥ त्वत्पादपद्मयुगले निश्चलाभक्तिरस्तुमे ॥ २४ ॥ नपुनर्जन्ममेभूयान्मातृणामुदरेशुचौ ॥ येमत्कृतमिदंस्तोत्रं कीर्तयन्तितवप्रभो ॥ २५ ॥ तेनराःपापनिर्मुक्तास्त्वत्सेवाफलमाप्नुयुः ॥ श्रीसूत उवाच ॥ तथास्त्वित्यनुगृह्यैनं रामनाथोद्विजोत्तमाः ॥ २६ ॥ नीलकण्ठोविरूपाक्षो लिङ्गरूपेतिरोहितः ॥ राजापिरामनाथेन विहितानुग्रहस्ततः ॥ २७ ॥ रामनाथंनमस्कृत्य कृतार्थेनान्तरात्मना ॥ स्वसेनासंवृतःप्रीतः प्रययावात्मनःपुरीम् ॥ २८ ॥ वृत्तान्तमेतदवदन्मुनीनांवनवासिनाम् ॥ तेभ्यषिञ्चन्नृपंराज्ये मुनयःप्रीतमानसाः ॥ २९ ॥

में फिर मेरा जन्म न होवै व हे प्रभो ! जो मनुष्य मुझसे कियेहुए तुम्हारे स्तोत्र को कीर्तन करैं ॥ २५ ॥ पापों से छूटेहुए वे पुरुष तुम्हारी सेवा के फल को पावैं श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वैसाही होगा इस प्रकार इस राजा के ऊपर दयाकर रामनाथ ॥ २६ ॥ विरूपलोचन नीलकण्ठजी लिंगरूप में अन्तर्द्धान होगये तदनन्तर रामनाथजी से दया कियाहुआ राजा भी ॥ २७ ॥ रामनाथजी को प्रणाम कर अपनी सेना से युक्त हो प्रसन्न होकर प्रसन्न चित्त से अपनी पुरी को चलागया ॥ २८ ॥ और इस वृत्तान्त को उसने वनवासी मुनियों से कहा व प्रसन्न मनवाले उन मुनियों ने राजा को राज्य पै अभिषेक किया ॥ २९ ॥

व हे ब्राह्मणो! पुत्रों व स्त्रियों से संयुत तथा मंत्रियों समेत राजा ने निष्कण्टक राज्य को पाकर बहुत दिनों तक पृथ्वी की रक्षा किया ॥ ३० ॥ तदनन्तर मृत्युसमय प्राप्त होने पर रामेश्वर शिवजी को ध्यान करताहुआ राजा देहान्त में रामनाथ की उत्तम सायुज्य मुक्ति को प्राप्त हुआ ॥ ३१ ॥ हे ब्राह्मणो! इस प्रकार तुमलोगों से रामनाथ का प्रभाव व शंकर नामक राजाका पवित्र चरित्र व आख्यान कहागया ॥ ३२ ॥ इस अध्याय को आदर से पढ़ता व सुनता हुआ मनुष्य सब पापों से छूटकर रामनाथजी को प्राप्त होता है ॥३३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामनाथप्रशंसायांशाकल्यदुर्मरणदोषशान्तिर्नामाष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

पुत्रदारयुतोराजा प्राप्यराज्यमकण्टकम् ॥ मन्त्रिभिःसहितोविप्रा ररक्षपृथिवींचिरम् ॥ ३० ॥ ततोन्तकाले सम्प्राप्ते ध्यायन्रामेश्वरंशिवम् ॥ देहान्तेरामनाथस्य सायुज्यंप्रययौशुभम् ॥ ३१ ॥ एवंवःकथितंविप्रा रामनाथस्यवैभवम् ॥ चरितंपुण्यमाख्यानं शङ्कराख्यनृपस्यच ॥ ३२ ॥ शृण्वन्पठन्वामनुजस्त्विममध्यायमादरात् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो रामनाथंसमश्नुते ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्ये रामनाथप्रशंसायांशाकल्यदुर्मरणदोषशान्तिशङ्करस्त्रीहत्याब्रह्महत्यादोषशान्तिर्नामाष्टाचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४८ ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ अथातःसम्प्रवक्ष्यामि रामनाथस्यशूलिनः ॥ स्तोत्राध्यायंमहापुण्यं शृणुतश्रद्धयाद्विजाः ॥ १ ॥ रामःप्रतिष्ठितेलिङ्गे तुष्टावपरमेश्वरम् ॥ लक्ष्मणोजानकीसीता सुग्रीवाद्याःकपीश्वराः ॥ २ ॥ ब्रह्मप्रभृतयोदेवाः कुम्भजाद्यामहर्षयः ॥ अस्तुवन्भक्तिसंयुक्ताः प्रत्येकंराघवेश्वरम् ॥ ३ ॥ तद्वक्ष्याम्यानुपूर्व्येण शृणुतादरपूर्वकम् ॥ एत

दो० । रामनाथ की स्तुति यथा किय देवादि अपार । उंचसवें अध्याय में सोई चरित सुखार ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो! इसके उपरान्त मैं त्रिशूलधारी रामनाथजी के महापवित्र स्तोत्राध्यायको कहताहूं उसको श्रद्धा से सुनिये ॥ १ ॥ लिंग स्थापित करनेपर श्रीरामजी ने शिवजी की स्तुति किया और लक्ष्मण व सीता जानकीजी और सुग्रीवादिक कपीश्वरों ने ॥ २ ॥ व ब्रह्मादिक देवता तथा अगस्त्यादिक महर्षियों ने भक्तिसंयुत होकर प्रत्येक रघुनाथजी की स्तुति किया है ॥ ३ ॥ उसको मै क्रम से कहताहूं

आदरपूर्वक सुनिये हे ब्राह्मणो ! इसको सुननेही से मनुष्य मुक्त होजाता है ॥ ४ ॥ श्रीरामजी बोले कि आप त्रिशूलधारी व महाभाग महात्मा के लिये प्रणाम है और अपने चरणकमलों के भक्त के दुःख को हरनेवाले तथा सर्पों के हारवाले आप के लिये प्रणाम है ॥ ५ ॥ व देवताओं के आदिदेवता रामनाथ साक्षी के लिये प्रणाम है तथा वेदांतों से जानने योग्य व योगियों को तत्त्वदेनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ६ ॥ और सदैव आनंद से पूर्ण तथा भक्तों के भयको नाशने के कारणरूप चरण कमलवाले विश्वनाथ शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ ७ ॥ और सबों के साक्षी आप के लिये प्रणाम है व साक्षात् परमात्मा के लिये प्रणाम है तथा महापातकों को

च्छ्रवणमात्रेण मुक्तःस्यान्मानवोद्विजाः ॥ ४ ॥ श्रीराम उवाच ॥ नमोमहात्मनेतुभ्यं महाभागायशूलिने ॥ स्वपदाम्बुजभक्तार्तिहारिणेसर्पहारिणे ॥ ५ ॥ नमोदेवादिदेवाय रामनाथायसाक्षिणे ॥ नमोवेदान्तवेद्याय योगिनांतत्त्वदायिने ॥ ६ ॥ सर्वदानन्दपूर्णाय विश्वनाथायशम्भवे ॥ नमोभक्तभयच्छेदहेतुपादाब्जरेणवे ॥ ७ ॥ नमस्तेखिलनाथाय नमःसाक्षात्परात्मने ॥ नमस्तेद्भुतवीर्याय महापातकनाशिने ॥ ८ ॥ कालकालायकालाय कालातीतायतेनमः ॥ नमोविद्यानिहन्त्रेते नमःपापहराय च ॥ ९ ॥ नमःसंसारतप्तानां तापनाशैकहेतवे ॥ नमोमद्ब्रह्महत्याविनाशिने चविषाशिने ॥ १० ॥ नमस्तेपार्वतीनाथ कैलासनिलयाव्यय ॥ गङ्गाधरविरूपाक्ष मांरक्षसकलापदः ॥ ११ ॥ तुभ्यं पिनाकहस्ताय नमोमदनहारिणे ॥ भूयोभूयोनमस्तुभ्यं सर्वावस्थासुसर्वदा ॥ १२ ॥ लक्ष्मण उवाच ॥ नमस्तेराम

नाशनेवाले व अद्भुतबलवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ८ ॥ और काल के भी काल व कालातीत कालरूप तुम्हारे लिये प्रणाम है और पातकों को नाशनेवाले के लिये प्रणाम है व माया को नाशनेवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ९ ॥ और संसार से तप्त प्राणियों के ताप नाश के लिये एकही कारणरूप आपके लिये प्रणाम है और मेरी ब्रह्महत्या को नाशनेवाले व विषको खानेवाले के लिये प्रणाम है ॥ १० ॥ हे कैलासनिलय, अव्यय, पार्वतीनाथ ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे विरूपलोचन, गंगाधर ! सब विपत्ति से मेरी रक्षा कीजिये ॥ ११ ॥ व पिनाक को हाथ में लियेहुए कामदेव को नाशनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है और सब अवस्थाओं में सदैव आप के लिये बार २ नमस्कार है ॥ १२ ॥

लक्ष्मणजी बोले कि आप त्रिपुरविनाशक व शंभु रामनाथजी के लिये प्रणाम है और पार्वतीजीके जीवन के स्वामी और गणेश व स्वामिकार्त्तिकेय पुत्रवाले आप के लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ और सूर्य, चन्द्रमा व अग्निनेत्रोंवाले जटाधारी आप के लिये प्रणाम है व सोम और मार्कंडेय के भय को नाशनेवाले शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥ व सब संसार की सृष्टि, पालन व नाश के कारणरूप आप के लिये प्रणाम है व उग्र, भीम तथा साक्षी महादेवजी के लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ और सर्वज्ञ, वरेण्य, वरदायक व श्रेष्ठ आप के लिये प्रणाम है तथा पांच पातकों को नाशनेवाले तुम श्रीकंठ के लिये प्रणाम है ॥१६॥ व परमानन्द सत्य व विज्ञानरूपी आप के लिये

नाथाय त्रिपुरघ्नायशम्भवे ॥ पार्वतीजीवितेशाय गणेशस्कन्दसूनवे ॥ १३ ॥ नमस्तेसूर्यचन्द्राग्निलोचनायकपर्दिने ॥ नमःशिवायसोमाय मार्कण्डेयभयच्छिदे ॥ १४ ॥ नमःसर्वप्रपञ्चस्य सृष्टिस्थित्यन्तहेतवे ॥ नमउग्रायभीमाय महादेवायसाक्षिणे ॥ १५ ॥ सर्वज्ञायवरेण्याय वरदायवरायते ॥ श्रीकण्ठायनमस्तुभ्यं पञ्चपातकभेदिने ॥ १६ ॥ नमस्तेस्तुपरानन्दसत्यविज्ञानरूपिणे ॥ नमस्तेभवरोगघ्न स्तायूनांपतयेनमः ॥ १७ ॥ पतयेतस्कराणान्ते वनानांपतयेनमः ॥ गणानांपतयेतुभ्यं विश्वरूपायसाक्षिणे ॥ १८ ॥ कर्मणाप्रेरितःशम्भो जनिष्येयत्रयत्रतु ॥ तत्रतत्रपदद्वन्द्वे भवतोभक्तिरस्तुमे ॥ १९ ॥ असन्मार्गेरतिर्माभूद्भवतःकृपयामम ॥ वैदिकाचारमार्गेच रतिःस्याद्भवतेनमः ॥ २० ॥ सीतोवाच ॥ परमकारणशङ्करधूर्जटे गिरिसुतास्तनकुङ्कुमशोभित ॥ ममपतौपरिदेहिमतिंसदा नविषमांपरपूरुषगोचराम् ॥ २१ ॥

नमस्कार है हे भवरोगविनाशक ! आप स्तायुवों के पति के लिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ व तस्करों के पति तथा वनों के पति आप के लिये प्रणाम है और गणों के स्वामी व विश्वरूप तथा साक्षी आप के लिये प्रणाम है ॥ १८ ॥ हे शंभो ! मैं कर्म से जहां जहां उत्पन्न होऊं वहां वहां आप के दोनों चरणों में मेरी भक्ति होवै ॥ १९ ॥ और आप की दया से असत्मार्ग में मेरी प्रीति न होवै और वैदिक आचार व मार्ग में प्रीति होवै आप के लिये नमस्कार है ॥ २० ॥ सीताजी बोलीं कि हे गिरिजा के स्तनों के कुंकुम से शोभित, परमकारण, धूर्जटे, शंकरजी ! मेरी बुद्धि को सदैव पति में दीजिये और परपुरुष में गोचर न होवै व विषम न होवै ॥ २१ ॥

हे विरूपलोचन, गंगाधर, नीललोहित, शंकरजी ! हे दयाकर, रामनाथ ! तुम्हारे लिये नमस्कार है मेरी रक्षाकीजिये ॥ २२ ॥ हे देवदेवेश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे दयालय ! तुम्हारे लिये प्रणाम है व हे संसार से डरेहुए प्राणियों की भवभीति को मर्दन करनेवाले ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २३ ॥ हे नाथ, शंभो ! तुम्हारे चरणकमलों के ध्यान से वे मृकंडु के पुत्र मार्कंडेयजी सूर्यपुत्र (यमराज) से भयको नाशकर शीघ्रही नित्यता को प्राप्त हुए हे परेश ! तुम्हारे आश्रय से क्या नहीं सिद्ध होता है याने सब कुछ सिद्ध होजाता है ॥ २४ ॥ हे परेश, परमानंद, शरणागतपालक ! मुझको सदैव पतिव्रतत्व दीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है

गङ्गाधरविरूपाक्ष नीललोहितशङ्कर ॥ रामनाथनमस्तुभ्यं रक्षमांकरुणाकर ॥ २२ ॥ नमस्तेदेवदेवेश नमस्ते करुणालय ॥ नमस्तेभवभीतानां भवभीतिविमर्दन ॥ २३ ॥ नाथत्वदीयचरणाम्बुजचिन्तनेन निर्धूयभास्करसुताद्भयमाशुशम्भो ॥ नित्यत्वमाशुगतवान्समृकण्डुपुत्रः किंवानसिद्ध्यतितवाश्रयणात्परेश ॥ २४ ॥ परेशपरमानन्द शरणागतपालक ॥ पातिव्रत्यंममसदा देहितुभ्यंनमोनमः ॥ २५ ॥ हनूमानुवाच ॥ देवदेवजगन्नाथ रामनाथ कृपानिधे ॥ त्वत्पादाम्भोरुहगता निश्चलाभक्तिरस्तुमे ॥ २६ ॥ यंविनानजगत्सत्ता तद्भानमपिनोभवेत् ॥ नमःसद्भानरूपाय रामनाथायशम्भवे ॥ २७ ॥ अङ्गद उवाच ॥ यस्यभासाजगद्भानं यत्प्रकाशंविनाजगत् ॥ नभासतेनमस्तस्मै रामनाथायशम्भवे ॥ २८ ॥ जाम्बवानुवाच ॥ सर्वानन्दोयदानन्दो भासतेपरमार्थतः ॥ नमोरामेश्वरायास्मै परमानन्दरूपिणे ॥ २९ ॥ नील उवाच ॥ यद्देशकालदिग्भेदैरभिन्नंसर्वदाद्वयम् ॥ तस्मैरामेश्वरायास्मै नमोभिन्नस्व

नमस्कार है ॥ २५ ॥ हनूमान्‌जी बोले कि हे देवदेव, जगन्नाथ, दयानिधे, रामनाथ ! तुम्हारे चरणकमलों में मेरी अचल भक्ति होवै ॥ २६ ॥ जिनके विना संसार की सत्ता व उसका भान भी नहीं होता है उन सद्भानरूपी रामनाथ शंभुजी के लिये प्रणाम है ॥ २७ ॥ अंगदजी बोले कि जिनके प्रकाश से संसार का प्रकाश होता है व जिसके प्रकाश के विना संसार नहीं प्रकाशित होता है उन रामनाथ शिवजी के लिये नमस्कार है ॥ २८ ॥ जाम्बवान् बोले कि जिससे यथार्थ सर्वानन्द व आनन्द भासित होता है इन परमानन्दरूपी रामेश्वरजी के लिये नमस्कार है ॥ २९ ॥ नील बोले कि जो अद्वय सदैव देश, काल व दिशाओं के भेदों से अभिन्न है उन

अभिन्नरूपी इन रामेश्वरजी के लिये नमस्कार हैं ॥ ३० ॥ नल बोले कि ब्रह्मा, विष्णु व महेश जिसकी माया से रचित हैं उन मायाहीन आप रामेश्वरजी के लिये प्रणाम है ॥ ३१ ॥ कुमुद बोले कि जिसके स्वरूप के न जानने से कारणता से प्रधान रचागया इन कारणरूप रामनाथ शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ ३२ ॥ पनस बोले कि जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति आदिक अवस्था जिसकी माया से रचित हैं इस जाग्रत् आदिक अवस्थाओं से रहित ज्ञानरूपी रामनाथजी के लिये प्रणाम है ॥ ३३ ॥ गज बोले कि जिनके स्वरूप के न जानने से अधम तार्किकों से कारणत्व से कार्यों के परमाणु वृथा कल्पित होते हैं ॥ ३४ ॥ उन सर्वसाक्षी परमानंद

रूपिणे ॥ ३० ॥ नल उवाच ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाना यदविद्याविजृम्भिताः ॥ नमोविद्याविहीनाय तस्मैरामेश्वराय ते ॥ ३१ ॥ कुमुद उवाच ॥ यत्स्वरूपापरिज्ञानात्प्रधानंकारणत्वतः ॥ कल्पितंकारणायास्मै रामनाथायशम्भवे॥३२॥ पनस उवाच ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादियदविद्याविजृम्भितम् ॥ जागृतादिविहीनाय नमोस्मैज्ञानरूपिणे ॥ ३३ ॥ गज उवाच ॥ यत्स्वरूपापरिज्ञानात्कार्याणांपरमाणवः ॥ कल्पिताःकारणत्वेन तार्किकापसदैर्वृथा ॥ ३४ ॥ तमहंपरमानन्दं रामनाथंमहेश्वरम् ॥ आत्मरूपतयानित्यमुपास्येसर्वसाक्षिणम् ॥ ३५ ॥ गवाक्ष उवाच ॥ अज्ञानपाशबद्धानां पशूनांपाशमोचकम् ॥ रामेश्वरंशिवंशान्तमुपैमिशरणंसदा ॥ ३६ ॥ गवय उवाच ॥ स्वाध्यस्तंजगदाधारं चन्द्रचूडमुमापतिम् ॥ रामनाथशिवंवन्दे संसारामयभेषजम् ॥ ३७ ॥ शरभ उवाच ॥ अन्तःकरणमात्मेति यदज्ञानाद्विमोहितैः ॥ भण्यतेरामनाथंतमात्मानंप्रणमाम्यहम् ॥ ३८ ॥ गन्धमादन उवाच ॥ रामनाथमुमानाथं गणनाथंचत्र्यम्बकम् ॥

रामनाथ शिवजी की मैं आत्मरूपता से सदैव उपासना करता हूं ॥ ३५ ॥ गवाक्ष बोले कि अज्ञानरूपी फँसरी से बँधेहुए पशुवों के पाश को छुड़ानेवाले शांत रामेश्वर शिवजी की शरण में मैं सदैव प्राप्त होताहूं ॥ ३६ ॥ गवय बोले कि संसार के आधाररूप उन निराश्रय चंद्रचूड़ उमापति को मैं प्रणाम करता हूं व संसाररूपी रोग की औषधिरूप रामनाथ शिवजी को मैं प्रणाम करताहूं ॥ ३७ ॥ शरभ बोले कि अज्ञान से मोहित पुरुषों से जो अंतःकरण व आत्मा ऐसा कहाजाता है उन रामनाथ आत्मा को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३८ ॥ गन्धमादन बोले कि समस्त पातकों से शुद्धि के लिये उमापति व गणनायक तथा त्रिलोचन जगदीश रामनाथजी की मैं

उपासना करता हूं ॥ ३९ ॥ सुग्रीवजी बोले कि पुत्र, स्त्री, धन व क्षेत्ररूपी तरंगसमूहों से संयुत तथा जन्म व मृत्युरूपी जलवाले संसाररूपी समुद्र के मध्य में ॥ ४० ॥ डूबतेहुए ब्रह्माण्डसमूह में गिरे और पार न पाये व चिल्लातेहुए तथा विवश, दुःखी व विषयरूपी सर्पों से डरेहुए ॥ ४१ ॥ और रोगरूपी मकरों से उद्विग्न तथा तीनताप रूपी मछलियों से विकल मेरी रक्षा कीजिये हे पार्वतीनाथ, रामनाथ ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४२ ॥ विभीषणजी बोले कि रोगरूपी चोर व पापरूपी सिंह तथा जन्मरूपी व्याघ्र और नाशरूपी सर्पवाले व भूलेहुए अपने मार्गवाले संसाररूपी वनके मध्य में मुझको ॥ ४३ ॥ जो वन कि बाल्यावस्था व युवावस्था तथा वृद्धता

सर्वपातकशुद्ध्यर्थमुपास्येजगदीश्वरम् ॥ ३९ ॥ सुग्रीव उवाच ॥ संसाराम्भोधिमध्येमां जन्ममृत्युजलेभये ॥ पुत्रदार धनक्षेत्रवीचिमालासमाकुले ॥ ४० ॥ मज्जद्ब्रह्माण्डषण्डेच पतितंनाप्तपारकम् ॥ क्रोशन्तमवशंदीनं विषयव्यालकात रम् ॥ ४१ ॥ व्याधिनक्रसमुद्विग्नं तापत्रयझषार्तिनम् ॥ मांरक्षगिरिजानाथ रामनाथनमोस्तुते ॥ ४२ ॥ विभीषण उवाच ॥ संसारवनमध्येमां विनष्टनिजमार्गकं ॥ व्याधिचौरेघसिंहेच जन्मव्याघ्रेलयोरगे ॥ ४३ ॥ बाल्ययौवनवा र्धक्यमहाभीमान्धकूपके ॥ क्रोधेर्ष्यालोभवह्नौच विषयक्रूरपर्वते ॥ ४४ ॥ त्रासभूकण्टकाढ्येच सीदन्तंरामनाथक ॥ शोभनांपदवींशम्भो नयरामेश्वराधुना ॥ ४५ ॥ सर्वेवानरा ऊचुः ॥ निन्द्यानिन्द्येषुसर्वत्र जनित्वायोनिषुप्रभो ॥ कु म्भीपाकादिनरके पतित्वाचपुनस्तथा ॥ ४६ ॥ जनित्वाचपुनर्योनौ कर्मशेषेणकुत्सिते ॥ संसारेपतितानस्मान् राम नाथदयानिधे ॥ ४७ ॥ अनाथान्विवशान्दीनान्क्रोशतःपाहिशङ्कर ॥ नमस्तेस्तुदयासिन्धो रामनाथमहेश्वर ॥ ४८ ॥

रूपी बड़े भयंकर अंधकूपवाला व क्रोध, ईर्ष्या तथा लोभरूपी अग्निवाला और विषयरूपी क्रूर पर्वतोंवाला है ॥ ४४ ॥ उस डररूपी पृथ्वी व कांटोंवाले वनमें विकल मुझको हे रामनाथ ! हे शंभो ! हे रामेश्वर ! इस समय उत्तम पदवी पै प्राप्त कीजिये ॥ ४५ ॥ सब वानर बोले कि हे प्रभो ! सब कहीं निन्द्य व अनिन्द्य योनियों में उत्पन्न होकर व फिर कुंभीपाकादिक नरक में गिरकर ॥ ४६ ॥ हे दयानिधान, रामनाथ ! फिर बचेहुए कर्म से योनि में उत्पन्न होकर निन्दित संसार में गिरेहुए अनाथ, विवश, दीन व चिल्लाते हुए हमलोगों की रक्षा कीजिये हे शंकर, दयासागर, रामनाथ, महेश्वरजी ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४७ । ४८ ॥

ब्रह्मा बोले कि लोकों के स्वामी तुम्हारे रामनाथ शिवजी के लिये प्रणाम है हे सर्वेश ! मेरे ऊपर प्रसन्न होवो व मेरी माया को नाश कीजिये ॥ ४९ ॥ इन्द्रजी बोले कि जगदम्बिका व वेदत्रयीमयी पार्वती देवी जिनकी शक्ति हैं उन पार्वती के पति रामनाथ शिवजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ५० ॥ यमराज बोले कि गणेश व स्वामिकार्त्तिकेयजी जिनके पुत्र हैं व बैल जिनकी सवारी है सब अज्ञानों के नाश के लिये उन रामनाथजी को मैं सेवन करता हूं ॥ ५१ ॥ वरुणजी बोले कि जिनकी पूजा के प्रभाव से मृकण्डु के पुत्र मार्कंडेयजी ने मृत्यु को जीतलिया उन मृत्युंजय रामनाथजी की मैं हृदय से उपासना करता हूं ॥ ५२ ॥ कुबेरजी बोले कि शोभित

ब्रह्मोवाच ॥ नमस्तेलोकनाथाय रामनाथायशम्भवे ॥ प्रसीदममसर्वेश मदविद्यांविनाशय ॥ ४९ ॥ इन्द्र उवाच ॥ यस्य शक्तिरुमादेवी जगन्मातात्रयीमयी ॥ तमहंशङ्करंवन्दे रामनाथमुमापतिम् ॥ ५० ॥ यम उवाच ॥ पुत्रौगणेश्वरस्कन्दौ वृषोयस्यचवाहनम् ॥ तंवैरामेश्वरंसेवे सर्वाज्ञाननिवृत्तये ॥५१॥ वरुण उवाच ॥ यस्यपूजाप्रभावेन जितमृत्युर्मृकण्डुजः॥ मृत्युञ्जयमुपास्येहं रामनाथंहृदातुतम् ॥ ५२ ॥ कुबेर उवाच ॥ ईश्वरायलसत्कर्णकुण्डलाभरणायते ॥ लाक्षारुणश रीराय नमोरामेश्वरायवै ॥ ५३ ॥ आदित्य उवाच ॥ नमस्तेस्तुमहादेव रामनाथत्रियम्बक ॥ दक्षाध्वरविनाशाय नमस्तेपाहिमांशिव ॥ ५४ ॥ सोम उवाच ॥ नमस्तेभस्मदिग्धाय शूलिनेसर्पमालिने ॥ रामनाथदयाम्भोधे श्मशा ननिलयायते ॥ ५५ ॥ अग्निरुवाच ॥ इन्द्राद्यखिलदिक्पालसंसेवितपदाम्बुज ॥ रामनाथायशुद्धाय नमोदिग्वाससे

कर्णकुण्डल आभूषणवाले आप ईश्वर के लिये प्रणाम है और लाख के समान लाल शरीरवाले रामेश्वरजी के लिये नमस्कार है ॥ ५३ ॥ सूर्यनारायण बोले कि हे त्रिलोचन, रामनाथ, महादेव, शिव ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है मेरी रक्षा कीजिये ॥ ५४ ॥ चन्द्रमा बोले कि भस्म को लगाये व त्रिशूलधारी तथा सर्पों की मालावाले आप के लिये प्रणाम है व हे दयासागर, रामनाथ ! श्मशानमें रहनेवाले तुम्हारे लिये प्रणामहै ॥५५॥ अग्निजी बोले कि हे इन्द्रादिक समस्त दिक्पालों से भलीभांति सेवित चरणकमलवाले ! शुद्ध व सदैव दिग्वसन (नग्न) रामनाथजी के लिये नमस्कार

है ॥ ५६ ॥ पवन बोले कि हरिरूप व व्याघ्रचर्म वसनवाले आप शिवजीके लिये प्रणाम है हे रामनाथ ! मेरे मनोरथ के दायक होवो ॥ ५७ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि अहंता व साक्षी तथा सदैव प्रत्यक् अद्वय वस्तु वाले आप के लिये प्रणाम है हे रामनाथ ! मेरे अज्ञान को शीघ्रही नाश कीजिये ॥५८॥ शुकजी बोले कि वंचकों के अलभ्य व महा-मंत्रार्थरूपी आप के लिये प्रणाम है और द्वैतसे हीन व रामनाथ शिवजीके लिये प्रणाम है ॥ ५९ ॥ अश्विनीकुमार बोले कि हे राघवेश्वर ! सदैव आत्मरूपतासे योगियों के हृदय में भासित होनेवाले व अनन्य शोभा से जानने योग्य तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ६० ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे आदिदेव, महादेव, विश्वेश्वर, शिव, अव्यय !

सदा ॥ ५६ ॥ वायुरुवाच ॥ हरायहरिरूपाय व्याघ्रचर्माम्बरायच ॥ रामनाथनमस्तुभ्यं ममाभीष्टप्रदोभव ॥ ५७ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ अहन्तासाक्षिणेनित्यं प्रत्यगद्वयवस्तुने ॥ रामनाथममाज्ञानमाशुनाशयतेनमः ॥ ५८ ॥ शुक उवाच ॥ वञ्चकानामलभ्याय महामन्त्रार्थरूपिणे ॥ नमोद्वैतविहीनाय रामनाथायशम्भवे ॥ ५९ ॥ अश्विनावूचतुः ॥ आत्मरूपतयानित्यं योगिनांभासतेहृदि ॥ अनन्यभानवेद्याय नमस्तेराघवेश्वर ॥ ६० ॥ अगस्त्य उवाच ॥ आदिदेवमहादेव विश्वेश्वरशिवाव्यय ॥ रामनाथाम्बिकानाथ प्रसीदवृषभध्वज ॥ ६१ ॥ अपराधसहस्रंमे क्षमस्वविधुशेखर ॥ ममाहमितिपुत्रादावहन्तांमममोचय ॥ ६२ ॥ सुतीक्ष्ण उवाच ॥ क्षेत्राणिरत्नानिधनानिदारामित्राणिवस्त्राणिगवाश्वपुत्राः ॥ नैवोपकारायहिरामनाथ मह्यंप्रयच्छत्वमतोविरक्तिम् ॥ ६३ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ श्रुतानिशास्त्राण्यपिनिष्फलानि त्रय्यप्यधीताविफलैवनूनम् ॥ त्वयीश्वरेचेन्नभवेद्धिभक्तिः श्रीरामनाथेशिवमानुषस्य ॥ ६४ ॥

हे वृषध्वज, पार्वतीनाथ, रामनाथ ! प्रसन्न होवो ॥ ६१ ॥ हे चन्द्रभाल ! मेरे हज़ार अपराधों को क्षमाकीजिये और मम व अहं इस पुत्रादिकों में मेरे अहंकार को छुड़ादीजिये ॥ ६२ ॥ सुतीक्ष्ण बोले कि हे रामनाथ ! क्षेत्र, रत्न, धन, स्त्रियां, मित्र, वस्त्र व गऊ, घोड़े और पुत्र उपकारके लिये नहीं होते हैं इसकारण तुम मेरे लिये विरागको देवो ॥६३॥ विश्वामित्रजी बोले कि हे शिव ! यादि आप रामनाथ ईश्वरमें मनुष्यकी भक्ति न होवै तो सुनेहुए भी शास्त्र निष्फलहैं और पढ़ीहुई भी वेदत्रयी निश्चयकर विफलहै ॥ ६४ ॥

गालवजी बोले कि तुम रामेश्वरजी को जो प्रणाम नहीं करते हैं उनके दान, यज्ञ, यम, तपस्या और गंगादिक तीर्थों में स्नान व्यर्थ है इसमें यह निश्चय है ॥ ६५ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे रामेश्वर ! समस्त पातकों को करके जो भक्तिसंयुत मनुष्य तुमको प्रणाम करैं तो वे सब पाप नाश को प्राप्त होवैंगे जैसे कि सूर्यनारायण के तेज से अन्धकार नाश होजाते हैं ॥ ६६ ॥ अत्रिजी बोले कि एक समय भी आप रामेश्वर शिवजी को देखकर व स्पर्शकर तथा प्रणामकर वह मनुष्य फिर गर्भ को नहीं प्राप्त होता है किन्तु तुम्हारे अद्वय स्वरूप को पाता है ॥ ६७ ॥ अंगिराजी बोले कि जो मनुष्य आप रामनाथजी के समीप आकर बंधुत्रों को प्रणाम करताहुआ

गालव उवाच ॥ दानानियज्ञानियमास्तपांसि गङ्गादितीर्थेषुनिमज्जनानि ॥ रामेश्वरंत्वांननमन्तियेतु व्यर्थानितेषा मितिनिश्चयोत्र ॥ ६५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ कृत्वापिपापान्यखिलानिलोकस्त्वामेत्यरामेश्वरभक्तियुक्तः ॥ नमेतचेत्तानि लयंव्रजेयुर्यथान्धकाराश्रवितेजसाद्धा ॥ ६६ ॥ अत्रिरुवाच ॥ दृष्ट्वातुरामेश्वरमेकदापि स्पृष्ट्वानमस्कृत्यभवन्तमीशम् ॥ पुनर्नगर्भंसनरःप्रयायात्किन्त्वद्वयन्तेलभतेस्वरूपम् ॥ ६७ ॥ अङ्गिरा उवाच ॥ योरामनाथंमनुजोभवन्तमुपेत्यबन्धून्प्र णमन्स्मरेत् ॥ सन्तारयेत्तानपिसर्वपापात्किमद्भुतंतस्यकृतार्थतायाम् ॥ ६८ ॥ गौतम उवाच ॥ श्रीरामनाथेश्वरगूढमे तद्रहस्यभूतंपरमंविशोकम् ॥ त्वत्पादमूलंभजतांनृणांये सेवांप्रकुर्वन्तिहितेपिधन्याः ॥ ६९ ॥ शतानन्द उवाच ॥ वेदान्त विज्ञानरहस्यविद्भिर्विज्ञेयमेतद्धिमुमुक्षुभिस्तु ॥ शास्त्राणिसर्वाणिविहायदेव त्वत्सेवनंयद्रघुवीरनाथ ॥ ७० ॥ भृगुरुवाच ॥ रामनाथतवपादपङ्कजद्वन्द्वचिन्तनविधूतकल्मषः ॥ निर्भयंव्रजतिसत्सुखाद्वयं त्वांस्वयंप्रथममोहचिद्घनम् ॥ ७१ ॥

स्मरण करता है उनको भी आप सब पापों से तारते हैं तो उसकी कृतार्थता में क्या आश्चर्य है ॥ ६८ ॥ गौतमजी बोले कि हे श्रीरामनाथेश्वर ! यह गुप्तभूत चरित्र बहुतही शोकरहित है कि तुम्हारे चरणमूल को भजतेहुए पुरुषों की जो सेवा करते हैं वेभी धन्य हैं ॥ ६९ ॥ शतानन्दजी बोले कि वेदान्त के विज्ञान के रहस्य को जाननेवाले मुक्ति की इच्छावाले पुरुषों से यह जानने योग्य है जो कि हे रघुवीरनाथ, देव ! सब शास्त्रों को छोड़कर तुम्हारी सेवा है ॥ ७० ॥ भृगुजी बोले कि हे रामनाथ ! तुम्हारे दोनों चरणकमलों के ध्यान से पापरहित मनुष्य आपही प्रथम मोह व चिद्घन तथा सत्सुख व निडर तथा अद्वय तुमको प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥

कुत्सजी बोले कि हे रामनाथ ! तुम्हारे चरणों की सेवा मनुष्यों को सदैव भोग, मोक्ष व वरदायक है और रौरवादिक नरकों की नाशक है उसको रसग्राही कौन पुरुष नहीं भजता है ॥ ७२ ॥ काश्यपजी बोले कि हे रामनाथ ! तुम्हारे चरणोंकी सेवा करनेवाले पुरुषों को व्रत, तपस्या व यज्ञों से क्या है और वेद शास्त्र व जपकी चिन्तासे क्या है और स्वर्गनदी (गंगाजी) के जलसे भी क्या फल है ॥ ७३ ॥ हे श्रीरामनाथ ! मेरे मरण समय में पार्वतीजी समेत शीघ्रही आकर तुम मुझको शोकरहित व मोहहीन तथा चित्स्वरूप व सुखमय अपने चरणारविन्द को प्राप्त कीजिये ॥ ७४ ॥ गंधर्व बोले कि हे रामनाथ ! अपार दुःखरूपी बड़ी भारी लहरियोंवाले भवसागरमें डूबते

कुत्स उवाच ॥ रामनाथतवपादसेवनं भोगमोक्षवरदंनृणांसदा ॥ रौरवादिनरकप्रणाशनं कःपुमान्नभजतेरसग्रहः ॥ ७२ ॥ काश्यप उवाच ॥ रामनाथतवपादसेविनां किंव्रतैरुततपोभिरध्वरैः ॥ वेदशास्त्रजपचिन्तयाचकिं स्वर्गसिन्धुपयसापिकिंफलम् ॥ ७३ ॥ श्रीरामनाथत्वमागत्यशीघ्रं ममोत्क्रान्तिकालेभवान्याचसाकम् ॥ मांप्रापयस्वात्मपादारविन्दं विशोकंविमोहंसुखंचित्स्वरूपम् ॥ ७४ ॥ गन्धर्वा ऊचुः ॥ रामनाथत्वमस्माकं मज्जतांभवसागरे ॥ अपारदुःखकल्लोले नत्वत्तोन्यागतिर्हिनः ॥ ७५ ॥ किन्नरा ऊचुः ॥ रामनाथभवारण्ये व्याधिव्याघ्रभयानके ॥ त्वामन्तरेण नास्माकं पदवीदर्शकोभवेत् ॥ ७६ ॥ यक्षा ऊचुः ॥ रामनाथेन्द्रियारातिबाधानोदुःसहासदा ॥ तान्विजेतुंसहायस्त्वमस्माकंभवधूर्जटे ॥ ७७ ॥ नागा ऊचुः ॥ अचिन्त्यमहिमानंत्वां रामनाथवयंकथम् ॥ स्तोतुमल्पधियःशक्ता भविष्यामोम्बिकापते ॥ ७८ ॥ किंपुरुषा ऊचुः ॥ नानायोनौचजननं मरणंचाप्यनेकशः ॥ विनाशयतथाज्ञानं रामनाथन

हुए हमलोगों की तुम्हीं गति हो क्योंकि तुम से अन्य हमलोगों की गति नहीं है ॥ ७५ ॥ किन्नर बोले कि हे रामनाथ ! रोगरूपी व्याघ्रों से भयानक संसाररूपी वन में तुम्हारे विना हमलोगों को कोई मार्गदर्शक नहीं है ॥ ७६ ॥ यक्ष बोले कि हे धूर्जटे, रामनाथ ! सदैव इन्द्रियरूपी शत्रुवों की बाधा हमको दुःसह है इससे उनको जीतने के लिये तुम हमलोगों के सहायक होवो ॥ ७७ ॥ नाग बोले कि हे पार्वतीपते, रामनाथ ! थोड़ी बुद्धिवाले हमलोग अचिन्तनीय महिमावाले तुम्हारी स्तुति करने के लिये कैसे समर्थ होवेंगे ॥ ७८ ॥ किंपुरुष बोले कि हे रामनाथ ! अनेक योनियों में उत्पन्न होना व अनेकबार मरण तथा अज्ञान को नाश कीजिये तुम्हारे

लिये नमस्कार है ॥ ७९ ॥ विद्याधर बोले कि हे वृषध्वज ! पार्वती के पति आप निस्संग महात्मा के लिये नमस्कार है व आप रामनाथजी के लिये प्रणाम है प्रसन्न होवो ॥ ८० ॥ वसु बोले कि हे रामनाथ ! गणसमूहों से पूजित चरणवाले आप गणेश व गुह्य तथा गंगाधर के लिये प्रणाम है तुम सदैव हमलोगों की रक्षा करो ॥ ८१ ॥ विश्वेदेवता बोले कि हे शंकरजी ! केवल ज्ञान में लगेहुए उत्तम योगियों को मुक्ति देनेवाले सांब रामनाथजी के लिये प्रणाम है हमारी रक्षा कीजिये ॥ ८२ ॥ मरुत् बोले कि तत्त्वों के मध्य में परतत्त्व और वस्तु से तत्त्वभूत आप के लिये नमस्कार है व स्वयंप्रकाशमान और रामनाथ शंभुजीके लिये प्रणाम

मोस्तुते ॥ ७९ ॥ विद्याधरा ऊचुः ॥ अम्बिकापतयेतुभ्यमसङ्गायमहात्मने॥नमस्तेरामनाथाय प्रसीदवृषभध्वज॥ ८० ॥ वसव ऊचुः ॥ रामनाथगणेशाय गणवृन्दार्चिताङ्घ्रये ॥ गङ्गाधरायगुह्याय नमस्तेपाहिनःसदा ॥८१॥ विश्वेदेवा ऊचुः ॥ ज्ञप्तिमात्रैकनिष्ठानां मुक्तिदायसुयोगिनाम् ॥ रामनाथायसाम्बाय नमोस्मान्रक्षशङ्कर ॥ ८२ ॥ मरुत ऊचुः ॥ परतत्त्वायतत्त्वानां तत्त्वभूतायवस्तुतः ॥ नमस्तेरामनाथाय स्वयंभानायशम्भवे ॥ ८३ ॥ साध्या ऊचुः ॥ स्वातिरिक्तविहीनाय जगत्सत्ताप्रदायिने ॥ रामेश्वरायदेवाय नमोविद्याविभेदिने ॥ ८४ ॥ सर्वेदेवा ऊचुः ॥ सच्चिदानन्दसम्पूर्णद्वैतवस्तुविवर्जितम् ॥ ब्रह्मात्मानंस्वयंभानमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥ ८५ ॥ अविक्रियमसङ्गञ्च परिशुद्धंसनातनम् ॥ आकाशादिप्रपञ्चानां साक्षिभूतंपरामृतम् ॥ ८६ ॥ प्रमातीतंप्रमाणानामपिबोधप्रदायिनम् ॥ आविर्भावतिरोभावसंकोचरहितंसदा ॥ ८७ ॥ स्वस्मिन्नध्यस्तरूपस्यप्रपञ्चस्यास्यसाक्षिणम् ॥ निर्लेपंपरमानन्दं निरस्तसकलक्रियम् ॥ ८८ ॥

है ॥ ८३ ॥ साध्य बोले कि अपना से अधिकसे रहित और संसार की सत्ताको देनेवाले व माया को नाशनेवाले रामेश्वरदेवजी के लिये प्रणाम है ॥ ८४ ॥ सब देवता बोले कि सच्चिदानन्द संपूर्ण व द्वैतवस्तु से रहित ब्रह्मात्मक तथा स्वयंप्रकाशमान और आदि, मध्य व अन्त से रहित ॥ ८५ ॥ व विकारहीन तथा निस्संग व शुद्ध, सनातन और आकाशादिक प्रपंचों के साक्षीभूत तथा परमामृत ॥ ८६ ॥ और प्रमाणों की प्रमाण से परे व बोध देनेवाले तथा सदैव प्रकट व अन्तर्द्धान और संकोच से रहित ॥ ८७ ॥ व अपने में अध्यस्तरूपवाले और इस प्रपंच (संसार) के साक्षी तथा गर्वरहित व परमानन्द तथा समस्त कर्मों से रहित ॥ ८८ ॥

और बहुत आनन्दमय, भोगों से रहित व चिद्रूप रामनाथ महात्मा को अपने पापों की शुद्धि के लिये अपने आत्मानन्द को जानने की इच्छावाले हमलोग सदैव चित्त में ध्यान करते हैं ॥ ८९ । ९० ॥ व संसार को संहारनेवाले रामनाथ रुद्रजी के लिये नमस्कार है और अपनी माया से ब्रह्मा व विष्णुआदिक रूपसे भिन्न शिवजीके लिये प्रणाम है ॥ ९१ ॥ विभीषण के मंत्री बोले कि वरदायक, वरेण्य, त्रिनेत्र व त्रिशूलधारी तथा योगियों से ध्यान करनेयोग्य व नित्य तुम रामनाथके लिये नमस्कार है ॥ ९२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार रामआदिक सबों से स्तुति कियेहुए रामेश्वर शिवजी ने रामादिक सबों को बुलाकर कहा ॥ ९३ ॥ कि हे महाभाग, राम, राम, जानकीरमण,

भूमानन्दंमहात्मानं चिद्रूपंभोगवर्जितम् ॥ रामनाथंवयंसर्वे स्वपातकविशुद्धये ॥ ८९ ॥ चिन्तयामःसदाचित्ते स्वात्मानन्दबुभुत्सवः ॥ रक्षास्मान्करुणासिन्धो रामनाथनमोस्तुते ॥ ९० ॥ रामनाथायरुद्राय नमःसंसारहारिणे ॥ ब्रह्मविष्णवादिरूपेण विभिन्नायस्वमायया ॥ ९१ ॥ विभीषणसचिवाऊचुः ॥ वरदायवरेण्याय त्रिनेत्रायत्रिशूलिने ॥ योगिध्येयायनित्याय रामनाथायतेनमः ॥ ९२ ॥ इतिरामादिभिःसर्वैःस्तुतोरामेश्वरःशिवः ॥ प्राहसर्वान्समाहूय रामादीन्द्विजसत्तमाः ॥ ९३ ॥ रामराममहाभाग जानकीरमणप्रभो ॥ सौमित्रेजानकिशुभे हेसुग्रीवमुखास्तदा ॥ ९४ ॥ अन्येब्रह्ममुखायूयं शृणुध्वंसुसमास्थिताः ॥ स्तोत्राध्यायमिमंपुण्यं युष्माभिःकृतमादरात् ॥ ९५ ॥ येपठन्तिचशृण्वन्तिश्रावयन्तिचमानवाः ॥ मदर्चनफलंतेषां भविष्यतिनसंशयः ॥ ९६ ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटिस्नानपुण्यंचवैभवेत् ॥ वर्षमेकंरामसेतौ वासपुण्यंभविष्यति ॥ ९७ ॥ गन्धमादनमध्यस्थसर्वतीर्थाभिमज्जनात् ॥ यत्पुण्यंतद्भवेत्तेन

प्रभो ! हे लक्ष्मण ! हे शुभे, जानकि ! हे सुग्रीवादिक ! ॥ ९४ ॥ व हे ब्रह्मादिक अन्य देवताओ ! सावधान होतेहुए तुमलोग सुनो कि तुमलोगों से आदर से किये हुए इस पवित्र स्तोत्राध्याय को ॥ ९५ ॥ जो मनुष्य सुनते, सुनाते व पढ़ते हैं उनको मेरे पूजन का फल होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९६ ॥ और रामचन्द्र की धनुष्कोटि में स्नान का पुण्य होगा व एक वर्षतक रामसेतुपै निवास का पुण्य होगा ॥ ९७ ॥ और गन्धमादन के मध्य में स्थित सब तीर्थों के नहाने से जो पुण्य होता है वह

उससे होता है इसमें सन्देह का कारण नहीं है ॥ ९८ ॥ और वृद्धता व मरण से छूटाहुआ मनुष्य जन्म के दुःख से रहित होकर निस्सन्देह रामनाथजी की सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामादिभीरामनाथस्तोत्रकथनंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

दो० । कियो पुण्यनिधि नृपति जिमि लक्ष्मिहिं पुत्री थान । सो पचास अध्याय में कीन्हो चरित बखान ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनियो! इसके उपरान्त मैं सेतुमाधव के प्रभाव को कहताहूं उस पवित्र व पापहारक तथा उत्तम माहात्म्य को सुनिये ॥ १ ॥ कि पुरातन समय चन्द्रवंश में उत्पन्न पुण्यनिधि नामक राजाने हालास्येश्वर से

नात्रसंशयकारणम् ॥ ९८ ॥ जरामरणनिर्मुक्तो जन्मदुःखविवर्जितः ॥ रामनाथस्यसायुज्यमुक्तिप्राप्नोत्यसंशयः ॥ ९९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येरामादिभीरामनाथस्तोत्रकथनन्नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ अथातःसम्प्रवक्ष्यामि सेतुमाधववैभवम् ॥ शृणुध्वंमुनयोभक्त्या पुण्यंपापहरंशुभम् ॥ १ ॥ पुरापुण्यनिधिर्नाम राजासोमकुलोद्भवः ॥ मथुरांपालयामास हालास्येश्वरभूषिताम् ॥ २ ॥ कदाचित्समहीपालश्च तुरङ्गबलान्वितः ॥ सोन्तःपुरपरीवारो मथुरायांनिजंसुतम् ॥ ३ ॥ स्थापयित्वारामसेतुं प्रययौस्नानकौतुकी ॥ तत्रग त्वाधनुष्कोटौ स्नात्वासङ्कल्पपूर्वकम् ॥ ४ ॥ अन्येष्वपिचतीर्थेषु तत्रत्येषुनृपोत्तमः ॥ सस्नौरामेश्वरंदेवं सिषेवेचस भक्तिकम् ॥ ५ ॥ एवंसबहुकालंवै तत्रैवन्यवसत्सुखम् ॥ रामसेतौवसन्पुण्ये गन्धमादनपर्वते ॥ ६ ॥ विष्णुप्रीतिकरं यज्ञं कदाचिदकरोन्नृपः ॥ यज्ञावसानेराजासौमुदावभृथकौतुकी ॥ ७ ॥ सस्नौरामधनुष्कोटौ सदारःसपरिच्छदः ॥

भूषित मथुरापुरी को पालन किया ॥ २ ॥ किसी समय चतुरंगिणी सेनासमेत व रनिवास तथा कुटुंब समेत वह राजा मथुरापुरी में अपने पुत्रको ॥ ३ ॥ स्थापितकर स्नान के कौतुकवाला वह रामसेतु को गया और वहां जाकर संकल्पपूर्वक धनुष्कोटि में नहाकर ॥ ४ ॥ वहां के अन्यभी तीर्थों में नृपोत्तम ने स्नान किया व भक्तिसमेत रामेश्वर देव की सेवा किया ॥ ५ ॥ इसी प्रकार बहुत समयतक उसने वहां सुखपूर्वक निवास किया और पवित्र रामसेतु पै गन्धमादन पर्वतपै बसतेहुए ॥ ६ ॥ राजा ने किसी समय विष्णुजी की प्रीति को करनेवाला यज्ञ किया और यज्ञके अन्तमें स्त्री समेत व परिवार समेत अवभृथ स्नान के कौतुकवाले इस राजाने हर्ष से रामजीकी धनुष्कोटि

में स्नान किया व हे ब्राह्मणो ! रामनाथजी की सेवाकर वह राजा घरको चलागया ॥ ७ । ८ ॥ इस प्रकार इस पुण्यनिधि राजाके निवास करतेहुए उस समय किसी काल में विष्णुजी ने क्रीड़ा कलह के कारण लक्ष्मी को पठाया ॥ ९ ॥ याने राजाकी भक्ति की परीक्षा करने के लिये विष्णुभगवान् ने प्रतिज्ञाकर वैकुंठ से कमलस्थानवाली लक्ष्मी को पठाया ॥ १० ॥ और आठवर्ष की अवस्था व रूपवाली लक्ष्मीजी गन्धमादन पर्वतपै गईं और उस धनुष्कोटि में जाकर वे कमलालया लक्ष्मीजी टिकीं ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस समय स्त्रीसमेत व सेना समेत पुण्यनिधि राजा रामजी की धनुष्कोटि में नहाने के लिये गया ॥ १२ ॥ और वहां जाकर नियमपूर्वक इस राजा ने स्नानकर

सेवित्वारामनाथंच सवेश्मप्रययौद्विजाः ॥ ८ ॥ एवंनिवसमानेस्मिन् राज्ञिपुण्यनिधौतदा ॥ कदाचिद्धरिणालक्ष्मी विनोदकलहाकुलात् ॥ ९ ॥ हरिणासमयंकृत्वा नृपभक्तिपरीक्षितुम् ॥ विष्णुनाप्रेषितालक्ष्मीर्वैकुण्ठात्कमलाल या ॥ १० ॥ अष्टवर्षवयोरूपा प्रययौगन्धमादने ॥ तत्रागत्यधनुष्कोटौ तस्थौसाकमलालया ॥ ११ ॥ तस्मिन्नवस रेराजा ययौपुण्यनिधिर्द्विजाः ॥ स्नातुंरामधनुष्कोटौ सदारःसहसैनिकः ॥ १२ ॥ तत्रगत्वासराजायं स्नात्वानियमपूर्व कम् ॥ तुलापुरुषमुख्यानि कृत्वादानानिकृत्स्नशः ॥ १३ ॥ प्रयातुकामोभवनंकन्यांकाञ्चिद्ददर्शसः ॥ अतीवरूप सम्पन्नामष्टवर्षांशुचिस्मिताम् ॥ १४ ॥ दृष्ट्वानृपस्तांपप्रच्छ कन्यांचारुविलोचनाम् ॥ चारुस्मितांचारुदतींबिम्बोष्ठीं तनुमध्यमाम् ॥ १५ ॥ पुण्यनिधिरुवाच ॥ कात्वंकन्येसुताकस्य कुतोवात्वमिहागता ॥ अत्रागमेनकिंकार्यं तववत्से शुचिस्मिते ॥ १६ ॥ एवंनृपस्तांपप्रच्छ कन्यामुत्पललोचनाम् ॥ एवंपृष्टातदाकन्या नृपंतमवदद्द्विजाः ॥ १७ ॥ नमे

तुलापुरुष आदिक सम्पूर्ण दानों को करके ॥ १३ ॥ घरको जानेकी इच्छावाले उस राजाने किसी कन्या को देखा और अत्यन्तरूप से संयुत आठवर्षवाली व पवित्र हास्य वाली ॥ १४ ॥ उस सुन्दर नयनोंवाली कन्या को देखकर सुन्दर मुसक्यान व सुन्दर दांतोंवाली तथा बिंबाफल के समान ओंठोंवाली व सूक्ष्म कटिवाली उस कन्या से पूंछा ॥ १५ ॥ पुण्यनिधि बोले कि हे कन्ये ! तुम कौन हो व किसकी कन्याहो और कहां से यहां आई हो व हे शुचिस्मिते, वत्से ! यहां आने से तुम्हारा क्या कार्य है ॥ १६ ॥ राजा ने कमललोचनोंवाली उस कन्या से इस प्रकार पूंछा व हे ब्राह्मणो ! उस समय इस प्रकार पूंछीहुई कन्या ने उस राजा से कहा ॥ १७ ॥ कि हे

महाराज ! मेरे न माता है न पिता है और न मेरे बन्धु हैं वरन मैं अनाथ हूं और तुम्हारी कन्या हूंगी ॥ १८ ॥ हे तात ! तुमको सदैव देखतीहुई मैं तुम्हारे घर में बसूंगी और हठसे जो मुझको खींचैगा अथवा जो हाथ से मुझको पकड़ैगा ॥ १९ ॥ हे भूप ! यदि तुम उसको शासन करोगे तो हे गुणनिधे, पिताजी ! तुम्हारी कन्याहोकर मैं बहुतदिनोंतक तुम्हारे घरमें बसूंगी ॥ २० ॥ इस प्रकार कहेहुए पुण्यनिधि राजाने कन्यासे कहा कि हे शुभे, कन्यके ! मैं तुमसे कहेहुए सब वचन को करूंगा ॥ २१ ॥ क्योंकि मेरे भी कन्या नहीं है और कुलको उन्नति में प्राप्त करनेवाला एक पुत्र है हे भद्रे ! जिसमें तुम्हारी रुचि होगी उसको मैं तुमको दूंगा ॥ २२ ॥ हे अनिन्दिते,

मातापितानास्ति नचमेबान्धवास्तथा ॥ अनाथाहंमहाराज भविष्यामिचतेसुता ॥ १८ ॥ त्वद्गृहेहंनिवत्स्यामि तात्वांपश्यतीसदा ॥ हठात्कृष्यतियोवामां ग्रहीष्यतिकरेणतम् ॥ १९ ॥ यदिशासिष्यसेभूप तदाहंतवमन्दिरे ॥ वत्स्यामितेसुताभूत्वा पितुर्गुणनिधेचिरम् ॥ २० ॥ एवमुक्तस्तदाप्राह कन्यांपुण्यनिधिर्नृपः ॥ अहंसर्वंकरिष्यामि त्वदुक्तंकन्यकेशुभे ॥ २१ ॥ ममापिदुहितानास्ति पुत्रोस्त्येकःकुलोद्वहः ॥ तवयस्मिन्रुचिर्भद्रे त्वांतस्मैप्रददाम्यहम् ॥ २२ ॥ आगच्छमद्गृहंकन्ये ममचान्तःपुरेवस ॥ मद्भार्यायाःसुताभूत्वा यथाकाममनिन्दिते ॥ २३ ॥ इत्युक्तासानृपेणाथ कन्याकमललोचना ॥ तथास्त्वितिनृपंप्रोच्य तेनसाकंययौगृहम् ॥ २४ ॥ राजास्वभार्याहस्तेतां प्रददौकन्यकांशुभाम् ॥ अब्रवीच्चस्वकांभार्यां राजाविन्ध्यावलींतदा ॥ २५ ॥ आवयोःकन्यकाचेयं राज्ञिविन्ध्यावलेशुभे ॥ रक्षेमांसर्वथात्वंवै पुरुषान्तरतःप्रिये ॥ २६ ॥ इतीरितानृपेणासौ भार्याविन्ध्यावलिस्तदा ॥ ओमित्युक्त्वाथतांकन्यां पुत्रींजग्राह

कन्ये ! मेरे घरको आइये व मेरे रनिवास में मेरी स्त्री की कन्या होकर इच्छा के अनुकूल बसिये ॥ २३ ॥ राजा से इस प्रकार कहीहुई कमल समान लोचनोंवाली वह कन्या वैसाही होवै यह राजा से कहकर उसके साथ घरको चलीगई ॥ २४ ॥ और राजा ने उस उत्तम कन्या को अपनी स्त्री के हाथ में दिया व उस समय राजाने अपनी विन्ध्यावली रानीसे कहा ॥ २५ ॥ कि हे प्रिये, शुभे, विन्ध्यावलि, राज्ञि ! हम तुम दोनों की यह कन्या है इसकी अन्य पुरुष से सब प्रकार से रक्षा कीजिये ॥ २६ ॥ उस समय

राजा से इस प्रकार कहीहुई इस विंध्यावलि स्त्री ने बहुत अच्छा यह कह कर उस कन्या को हाथ से पकड़ लिया ॥ २७ ॥ और राजा से पुत्रकी नाई पालन व पोषण कीहुई उस कन्या ने सदैव प्यारी होकर राजा के घरमें सुखपूर्वक निवास किया ॥ २८ ॥ इसके अनन्तर हे ब्राह्मणो ! जगदीश विष्णुजी आदर से लक्ष्मी को ढूंढ़ने के लिये विनतातनय (गरुड़) के ऊपर चढ़कर वैकुंठसे निकले ॥ २९ ॥ और वैकुंठ से निकलकर आकाशमार्ग को नांघकर उन्हों ने बहुत देशों में भ्रमण किया और वहां लक्ष्मीजी को नहीं देखा ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त वे विष्णुजी रामसेतु को गये और गन्धमादन पै लक्ष्मीजी को ढूंढ़कर रामसेतु के सबओर घूमते रहे ॥ ३१ ॥

पाणिना ॥ २७ ॥ पोषितापालिताराज्ञा सुतवत्कन्यकाचसा ॥ न्यवात्सीत्ससुखंराज्ञो भवनेलालितासदा ॥ २८ ॥ अथविष्णुर्जगन्नाथो लक्ष्मीमन्वेष्टुमादरात् ॥ आरूढविनतानन्दो वैकुण्ठान्निर्ययौद्विजाः ॥ २९ ॥ विनिर्गत्यसवैकुण्ठाद्विलङ्घितवियत्पथः ॥ बभ्रामचबहून्देशाँल्लक्ष्मींतत्रनदृष्टवान् ॥ ३० ॥ रामसेतुमथागच्छद्गन्धमादनपर्वते ॥ अन्विष्यसर्वतोरामसेतुंबभ्रामचेन्दिराम् ॥ ३१ ॥ एतस्मिन्नेवकालेसा पुष्पावचयकौतुकात् ॥ सखीभिःकन्यकायासीद्भवनोद्यानपादपान् ॥ ३२ ॥ पुष्पाण्यपचिनोतिस्म सखीभिःसहकानने ॥ तत्रागत्यततोविष्णुर्विप्ररूपधरोद्विजाः ॥ ३३ ॥ गङ्गाम्भोविदधन्स्कन्धे वहञ्छत्रंकरेणच ॥ गङ्गास्नायीद्विजस्येवरचयन्वेषमात्मनः ॥ ३४ ॥ धारयन्दक्षिणेपाणौ कुशग्रन्थिपवित्रकम् ॥ भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गस्त्रिपुण्ड्रावलिशोभितः ॥ ३५ ॥ प्रजपञ्छिवनामानि धृतरुद्राक्षमालिकः ॥

इसी अवसर में फूलों के तोड़ने के कौतुक से सखियों से घिरीहुई वह कन्या गृह के समीप बगीचे के वृक्षों को गई ॥ ३२ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! जहां सखियों के साथ वह फूलों को तोड़ती थी वहां ब्राह्मण के रूपको धारनेवाले विष्णुजी जाकर ॥ ३३ ॥ गंगाजी के जल को कंधे पै धरे व छत्रको हाथ से लिये अपने वेषको गंगाजीके नहानेवाले ब्राह्मण की नाईं रचतेहुए स्थित हुए ॥ ३४ ॥ और कुशकी ग्रंथिपूर्वक पवित्री को दाहिने हाथ में धारण किये तथा भस्मको सर्वांग में लगाये और त्रिपुंड्रकी अवली से शोभित ॥ ३५ ॥ व हे ब्राह्मणो ! शिवजी के नामों को जपतेहुए व रुद्राक्ष की माला को धारण किये उत्तरीय (दुपट्टे) समेत पवित्र

विष्णुजी आगये ॥ ३६ ॥ व आयेहुए उस ब्राह्मणको देखकर ढीठ कन्या खड़ी होगई और आठवर्षवाली उस फूलों को तोड़नेवारी प्यारी कन्या को विष्णुजी ने देखा ॥ ३७ ॥ व मधुर बोलनेवाली कन्या को देखकर इन विप्ररूपी विष्णुजीने शीघ्रता से हठकरके खींचकर हाथ से पकड़ लिया ॥ ३८ ॥ तब सखियों समेत वह कन्या चिल्लानेलगी और उस चिल्लाने के शब्दको सुनकर वह राजा आगया ॥ ३९ ॥ और कितेक योधाओं से घिराहुआ वह घरके समीप बगीचे को गया और जाकर राजा ने उस कन्यासे व उसकी सखियों से भी पूंछा ॥ ४० ॥ कि हे कन्ये ! इस समय गृहोद्यान में सखियों समेत तुम क्यों चिल्लाउठी उस विषय में कारणको कहिये ॥ ४१ ॥

सोत्तरीयःशुचिर्विप्रः समायातोजनार्दनः ॥ ३६ ॥ तमागतंद्विजंदृष्ट्वास्तब्धातिष्ठतकन्यका ॥ अपश्यदष्टवर्षान्तांव ल्लभांपुष्पहारिणीम् ॥ ३७ ॥ दृष्ट्वासत्वरयाविप्रः कन्यांमधुरभाषिणीम् ॥ हठात्कृष्यकरेणासौ जग्राहगरुडध्व जः ॥ ३८ ॥ तदाचुक्रोशसाकन्या सखीभिःसहकानने ॥ तमाक्रोशंसमाकर्ण्य राजासतुसमागतः ॥ ३९ ॥ प्रययौभ वनोद्यानं वृतःकतिपयैर्भटैः ॥ गत्वापप्रच्छतांकन्यां तत्सखीरपिभूपतिः ॥ ४० ॥ किमर्थमधुनाक्रुष्टं सखीभिःसहक न्यके ॥ त्वयातुभवनोद्याने तत्रकारणमुच्यताम् ॥ ४१ ॥ केनत्वंपरिभूतासि हठात्कृष्यसुतेमम ॥ इतिपृष्टातमाचष्ट कन्यागुणनिधिंनृपम् ॥ ४२ ॥ बाष्पपूर्णाननाखिन्नारुषिताभृशकातरा ॥ कन्योवाच ॥ अयंविप्रोहठात्कृष्य जगृहेपा ण्ड्यनाथमाम् ॥ ४३ ॥ तातात्रवृक्षमूलेसौ सतिष्ठत्यकुतोभयः ॥ तदाकर्ण्यवचस्तस्या राजागुणनिधिःसुधीः ॥ ४४ ॥ जग्राहतरसाविप्रमविद्वांस्तद्बलंहठात् ॥ रामनाथालयंनीत्वा निगृह्यचहठात्तदा ॥ ४५ ॥ बद्ध्वानिगडपाशाभ्यामन

हे ममसुते ! हठसे खींचकर किसने तुम्हारा अनादर किया इस प्रकार पूंछीहुई कन्या ने उस गुणनिधि राजा से कहा ॥ ४२ ॥ जोकि आंसुवों से पूर्णमुखवाली तथा उदासीन व क्रोधित और बहुतही डरी थी कन्या बोली कि हे पांड्यनाथ ! इस ब्राह्मण ने हठ से खींचकर मुझको पकड़लिया ॥ ४३ ॥ व हे पिताजी ! सबकहीं से निडर वही यह वृक्षकी जड़में खड़ा है उस कन्या के उस वचन को सुनकर उत्तम बुद्धिवाले गुणनिधि राजाने ॥ ४४ ॥ उसके बलको न जानते हुए हठकरके शीघ्रता से उस ब्राह्मण को पकड़लिया और उस समय रामनाथजी के मंदिर को लेजाकर हठसे दंड देकर ॥ ४५ ॥ व बेड़ी और फँसरियों से बांधकर उरु.को राजा मंडप में लाया और अपनी

ततोरा यन्मण्डपंचतम् ॥ आत्मपुत्रींसमाश्वास्य शुद्धान्तमनयन्नृपः ॥ ४६ ॥ स्वयंचप्रययौरम्यं भवनंनृपपुङ्गवः ॥ ततोरा त्रौस्वपन्राजा स्वप्नेविप्रंददर्शतम् ॥ ४७ ॥ शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥ कौस्तुभालंकृतोरस्कं पीताम्ब रधरंहरिम् ॥ ४८ ॥ कालमेघच्छविंकान्तं गरुडोपरिसंस्थितम् ॥ चारुस्मितंचारुदन्तं लसन्मकरकुण्डलम् ॥ ४९ ॥ विष्वक्सेनप्रभृतिभिः किङ्करैरुपसेवितम् ॥ शेषपर्यङ्कशयनं नारदादिमुनिस्तुतम् ॥ ५० ॥ ददर्शचस्वकांकन्यां विकासि कमलस्थिताम् ॥ धृतपङ्कजहस्तांतां नीलकुञ्चितमूर्धजाम् ॥ ५१ ॥ विष्णुवक्षस्थलावासां समुन्नतपयोधराम् ॥ दिग्ग जैरभिषिक्ताङ्गीं श्यामांपीताम्बरावृताम् ॥ ५२ ॥ स्वर्णपङ्कजसंक्लृप्तमालालङ्कृतमूर्धजाम् ॥ दिव्याभरणशोभाढ्यां चारुहारविभूषिताम् ॥ ५३ ॥ अनर्घरत्नसंक्लृप्तनासाभरणशोभिताम् ॥ सुवर्णनिष्काभरणां काञ्चिनूपुरराजि ताम् ॥ ५४ ॥ महालक्ष्मींददर्शासौ राजारात्रौस्वकांसुताम् ॥ एवंदृष्ट्वानृपःस्वप्ने विप्रंतंस्वसुतामपि ॥ ५५ ॥ उत्थितः

कन्या को समझाकर रनिवास को लाया ॥ ४६ ॥ और नृपोत्तम आप सुन्दर मन्दिरको चलागया तदनन्तर रात्रि में सोतेहुए राजाने स्वप्न में उस ब्राह्मण को देखा ॥ ४७ ॥ जो विष्णु कि शंख, चक्र, गदा, कमल व वनमाला से भूषित तथा कौस्तुभमणि से भूषित व वक्षस्थलवाले और पीताम्बरधारी थे ॥ ४८ ॥ और काले मेघों के समान छविवाले व सुन्दर तथा गरुड़ के ऊपर बैठे और सुन्दर मुसक्यान व मनोहर दंतोंवारे तथा शोभित मकराकृत कुण्डलों को पहने थे ॥ ४९ ॥ और विष्वक्सेन आदिक पार्षदों से सेवित तथा शेषशय्या पै सोनेवाले और नारदादिक मुनियों से स्तुति कियेजाते थे ॥ ५० ॥ और कमल को हाथ में धारण किये व नीले तथा घुंघुवारे बालोंवाली व फूले कमल पै बैठी हुई उस अपनी कन्या को देखा ॥ ५१ ॥ और विष्णुजी के वक्षस्थल में निवास करनेवाली तथा ऊंचे कुचोंवारी और दिग्गजों से अभिषिक्त अंगोंवारी तथा श्यामा व पीताम्बर को पहने ॥ ५२ ॥ और सोने के कमलों से बनी हुई माला से भूषित बालोंवाली व दिव्य आभूषणों की शोभा से संयुत व सुन्दर हारों से भूषित ॥ ५३ ॥ और बड़े मोलवाले रत्नों से बनेहुए नासिकाभरण से शोभित तथा सोने की अशर्फियों के गहनेवाली व क्षुद्रघण्टिका तथा नूपुरों से शोभित ॥ ५४ ॥ अपनी महालक्ष्मी कन्या को रात्रि में इस राजा ने स्वप्न में देखा इस प्रकार राजा उस ब्राह्मण व अपनी कन्या को भी देखकर ॥ ५५ ॥ यकायक

शय्या से उठा व और कन्या के घर में प्राप्तहुआ व उसने वैसेही कन्या को देखा जिस प्रकार कि स्वप्न में देखा था ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर सूर्यनारायण के उदय होने पर राजा कन्या को लेकर रामनाथ के मन्दिर में प्राप्त हुआ जहां कि ब्राह्मण को टिकाया था ॥ ५७ ॥ और उस राजा ने जिस प्रकार स्वप्न में वनमालादिकों से चिह्नित उस ब्राह्मण को देखा था वैसेही उत्तम मंडप में विष्णुरूपी ब्राह्मण को देखा ॥ ५८ ॥ और विष्णुजी को जानकर राजा ने मनुष्यों के स्वामी विष्णुजी की स्तुति किया पुण्यनिधि बोले कि हे लक्ष्मीकांत, गरुड़ध्वज ! तुम्हारे लिये नमस्कार है प्रसन्न होवो ॥ ५९ ॥ हे शार्ङ्गपाणे ! तुम्हारे लिये नमस्कार है मेरे अपराध को क्षमा कीजिये

सहसातल्पात्कन्यागृहमवापच ॥ तथैवदृष्टवान्कन्यां यथास्वप्नेददर्शताम् ॥ ५६ ॥ अथोदितेसवितरि कन्यामादायभूमिपः ॥ रामनाथालयंप्राप ब्राह्मणंन्यस्तवान्यतः ॥ ५७ ॥ समण्डपवरेविप्रं ददर्शहरिरूपिणम् ॥ यथाददर्शस्वप्नेतं वनमालादिचिह्नितम् ॥ ५८ ॥ विष्णुंविज्ञायतुष्टाव नृपतिर्नृपतिर्हरिम् ॥ पुण्यनिधिरुवाच ॥ नमस्तेकमलाकान्त प्रसीदगरुडध्वज ॥ ५९ ॥ शार्ङ्गपाणेनमस्तुभ्यमपराधंक्षमस्वमे ॥ नमस्तेपुंडरीकाक्ष चक्रपाणेश्रियःपते ॥ ६० ॥ कौस्तुभालंकृताङ्काय नमःश्रीवत्सलक्ष्मणे ॥ नमस्तेब्रह्मपुत्राय दैत्यसङ्घविदारिणे ॥ ६१ ॥ अशेषभुवनावास नाभिपङ्कजशालिने ॥ मधुकैटभसंहर्त्रे रावणान्तकरायते ॥ ६२ ॥ प्रह्लादरक्षिणेतुभ्यं धरित्रीपतयेनमः ॥ निर्गुणायाप्रमेयाय विष्णवे बुद्धिसाक्षिणे ॥ ६३ ॥ नमस्तेश्रीनिवासाय जगद्धात्रेपरात्मने ॥ नारायणायदेवाय कृष्णायमधुविद्विषे ॥ ६४ ॥ नमः

हे लक्ष्मीपते, चक्रपाणे, कमललोचन ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ६० ॥ और कौस्तुभमणि से भूषित वक्षस्थलवाले व श्रीवत्सचिह्न तथा दैत्यगणों को विदारनेवाले आप ब्रह्मपुत्र के लिये प्रणाम है ॥ ६१ ॥ हे समस्तलोकों के निवासभूत ! नाभि के कमल से शोभित व मधु कैटभ को संहारनेवाले तथा रावण को नाशनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ६२ ॥ और प्रह्लाद की रक्षा करनेवाले आप पृथ्वीपति के लिये प्रणाम है व निर्गुण अप्रमेय तथा बुद्धि के साक्षी विष्णुजी के लिये प्रणाम है ॥ ६३ ॥ और संसारको धारनेवाले परमात्मा व श्रीनिवास आपके लिये नमस्कार है और मधु दैत्यके वैरी नारायण कृष्णदेव के लिये प्रणाम है ॥ ६४ ॥ कमलनाभिवाले के

इच्छा से मुझ से पठाई हुई यह ॥ ८३ ॥ मेरी प्यारी लक्ष्मी हे राजन् ! इस समय तुम से रक्षितहुई उससे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं और यह सदैव मेरी स्वरूपवती है ॥ ८४ ॥ और संसार में जो इसमें भक्तिमान् है वह मेरा भक्त कहाजाता है व हे राजन् ! जो इसमें विमुख है वह सदैव मेरा वैरी कहागया है ॥ ८५ ॥ जिसलिये भक्ति से संयुत तुमने इसको पूजा है उस कारण मेरा भी पूजन कियागया क्योंकि यह मुझ से अभिन्न है ॥ ८६ ॥ इस कारण हे नरेश्वर ! तुमने मेरा अपराध नहीं किया है बरन उसको पूजतेहुए तुमने मेरा पूजनही किया है ॥ ८७ ॥ जिसलिये पुरातन समय तुमने मेरी स्त्री के साथ संकेत किया और उसके संकेत के छिपाने के

त्किंज्ञातुकामेन मयासंप्रेरितात्वियम् ॥ ८३ ॥ लक्ष्मीर्ममप्रियाराजंस्त्वयासंरक्षिताधुना ॥ तेनाहंतवतुष्टोस्मि मत्स्व रूपात्वियंसदा ॥ ८४ ॥ अस्यांयोभक्तिमाल्लोके समद्भक्तोभिधीयते ॥ अस्यांयोविमुखोराजन्समद्वेषीस्मृतःस दा ॥ ८५ ॥ त्वमिमांभक्तिसंयुक्तो यस्मात्पूजितवानसि ॥ मत्पूजापिकृतातस्मान्मदभिन्नात्वियंयतः ॥ ८६ ॥ अत स्त्वयानापराधः कृतोमयिनरेश्वर ॥ किन्तुपूजेवविहिता तांत्वयार्चयताम्मम ॥ ८७ ॥ त्वयामद्भार्ययासाकं सङ्केतो कारियत्पुरा ॥ तत्सङ्केताभिगुप्तार्थं मांयद्बन्धितवानसि ॥ ८८ ॥ तेनप्रीतोस्मितेराजल्लँक्ष्मीःसंरक्षिताधुना ॥ मत्स्व रूपाचसालक्ष्मीर्जगन्मातात्रयीमयी ॥ ८९ ॥ तद्रक्षांकुर्वताभूप त्वयायद्बन्धनंमम ॥ तत्प्रियंममराजेन्द्र माभयंक्रि यतांत्वया ॥ ९० ॥ इयंलक्ष्मीस्तवसुता सत्यमेवनसंशयः ॥ इतीरितेथहरिणा लक्ष्मीःप्रोवाचभूपतिम् ॥ ९१ ॥ लक्ष्मी रुवाच ॥ राजन्प्रीतास्मितेचाहं रक्षितायद्गृहेत्वया ॥ त्वद्भक्तिशोधनार्थंवै अहंविष्णुरुभावपि ॥ ९२ ॥ विनोदकलह

लिये तुमने जिस कारण मुझ को बाँधा है ॥ ८८ ॥ हे राजन् ! उससे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं इस समय जो लक्ष्मी रक्षित हुई है वह मेरे स्वरूपवाली लक्ष्मी संसार की माता व वेदत्रयीमयी है ॥ ८९ ॥ हे राजन् ! उसकी रक्षा करतेहुए तुमने जो मेरा बन्धन किया है हे नृपेन्द्र ! वह मुझको प्रिय है तुम डर न करो ॥ ९० ॥ और यह लक्ष्मी सत्यही तुम्हारी कन्या है इसमें सन्देह नहीं है विष्णुजी से यह कहने पर लक्ष्मी ने राजासे कहा ॥ ९१ ॥ लक्ष्मीजी बोलीं कि हे राजन् ! जिसलिये तुमने घर में मेरी रक्षा किया उस कारण मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं और तुम्हारी भक्ति के शोधन के लिये मैं और विष्णु दोनों भी ॥ ९२ ॥ हे राजन् !

तुम्हारे लिये बार २ नमस्कार है इस प्रकार महालक्ष्मीजी की स्तुति कर राजा ने विष्णुजीकी प्रार्थना किया ॥७४॥ कि हे विष्णो ! इस समय मैंने अज्ञानसे पैर में बेड़ी के बन्धन से तुम में जो दोष किया है वह द्रोह तुमको क्षमा करना चाहिये ॥७५॥ हे हरे ! वे सब लोक तुम्हारे बालक हैं और लोकों के तुम पिता हो हे मधुसूदन ! पिताओं को पुत्र का अपराध क्षमा करना चाहिये ॥ ७६ ॥ हे विष्णो ! आपने अपराधी दैत्यों को अपना रूप दिया है इससे मेरे भी इस अपराध को क्षमा करो ॥ ७७ ॥ हे भगवन् ! मारने की इच्छा से भी आईहुई पूतना को तुम ने अपने चरण कमल में प्राप्त किया इसलिये हे दयानिधे ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ ७८ ॥ हे लक्ष्मीपते,

भूयोनमस्तुभ्यं ब्रह्ममात्रेमहेश्वरि ॥ इतिस्तुत्वामहालक्ष्मीं प्रार्थयामासमाधवम् ॥ ७४ ॥ यदज्ञानान्मयाविष्णो त्वयिदोषःकृतोधुना ॥ पादेनिगडबन्धेन सद्रोहःक्षम्यतांत्वया ॥ ७५ ॥ लोकास्तेशिशवःसर्वे त्वंपिताजगतांहरे ॥ सुतापराधःपितृभिः क्षन्तव्योमधुसूदन ॥ ७६ ॥ अपराधिनांचदैत्यानां स्वरूपमपिदत्तवान् ॥ भवान्विष्णोम मापीममपराधंक्षमस्ववै ॥ ७७ ॥ जिघांसयापिभगवन्नागतांपूतनांभवेत् ॥ अनयत्स्वपदाम्भोजं तन्मांरक्षकृपा निधे ॥ ७८ ॥ लक्ष्मीकान्तकृपादृष्टिं मयिपातयकेशव ॥ श्रीसूत उवाच ॥ इतिसंप्रार्थितोविष्णू राज्ञातेनद्विजोत्त माः ॥ ७९ ॥ प्राहगम्भीरयावाचा नृपंपुण्यनिधिंततः ॥ विष्णुरुवाच ॥ राजन्नभीस्त्वयाकार्या मद्बन्धननिमित्त जा ॥ ८० ॥ भक्तवश्यत्वमधुना तवप्रतिहितम्मया ॥ ममप्रीतिकरंयज्ञमकरोद्यद्भवानिह ॥ ८१ ॥ अतस्त्वंममभक्तोसि राजन्पुण्यनिधेधुना ॥ तेनाहंतववश्योस्मि भक्तिपाशेंनयन्त्रितः ॥ ८२ ॥ भक्तापराधंसततं क्षमाम्यहमरिन्दम ॥ त्वद्भ

केशव ! मुझ में दयादृष्टि को धरिये श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उस राजा से इस प्रकार प्रार्थना कियेहुए विष्णुजी ने ॥ ७९ ॥ तदनन्तर गम्भीर वचन से पुण्यनिधि राजा से कहा विष्णुजी बोले कि हे राजन् ! मेरे बन्धन के निमित्त से उपजाहुआ डर तुमको न करना चाहिये ॥ ८० ॥ इस समय मैंने तुमको भक्तवश्यता दिया और जिसलिये आपने यहां मेरी प्रीतिकारक यज्ञ किया है ॥ ८१ ॥ इस कारण हे राजन्, पुण्यनिधे ! तुम मेरे भक्त हो और उसीकारण भक्तिकी फँसरी से बँधाहुआ मैं तुम्हारे वश हूं ॥ ८२ ॥ हे अरिन्दम ! मैं सदैव भक्त का अपराध क्षमा करता हूं और तुम्हारी भक्ति को जानने की

इच्छा से मुझ से पठाई हुई यह ॥ ८३ ॥ मेरी प्यारी लक्ष्मी हे राजन् ! इस समय तुम से रक्षितहुई उससे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं और यह सदैव मेरी स्वरूपवती है ॥ ८४ ॥ और संसार में जो इसमें भक्तिमान् है वह मेरा भक्त कहाजाता है व हे राजन् ! जो इसमें विमुख है वह सदैव मेरा वैरी कहागया है ॥ ८५ ॥ जिसलिये भक्ति से संयुत तुमने इसको पूजा है उस कारण मेरा भी पूजन कियागया क्योंकि यह मुझ से अभिन्न है ॥ ८६ ॥ इस कारण हे नरेश्वर ! तुमने मेरा अपराध नहीं किया है बरन उसको पूजतेहुए तुमने मेरा पूजनही किया है ॥ ८७ ॥ जिसलिये पुरातन समय तुमने मेरी स्त्री के साथ संकेत किया और उसके संकेत के छिपाने के

त्किंज्ञातुकामेन मयासंप्रेरितात्वियम् ॥ ८३ ॥ लक्ष्मीर्ममप्रियाराजंस्त्वयासंरक्षिताधुना ॥ तेनाहंतवतुष्टोस्मि मत्स्वरूपात्वियंसदा ॥ ८४ ॥ अस्यांयोभक्तिमाल्लोके समद्भक्तोभिधीयते ॥ अस्यांयोविमुखोराजन्समद्वेषीस्मृतःसदा ॥ ८५ ॥ त्वमिमांभक्तिसंयुक्तो यस्मात्पूजितवानसि ॥ मत्पूजापिकृतातस्मान्मदभिन्नात्वियंयतः ॥ ८६ ॥ अतस्त्वयानापराधः कृतोमयिनरेश्वर ॥ किन्तुपूजैवविहिता तांत्वयार्चयताममम ॥ ८७ ॥ त्वयामद्भार्ययासाकं सङ्केतो कारियत्पुरा ॥ तत्सङ्केताभिगुप्तार्थं मांयद्बन्धितवानसि ॥ ८८ ॥ तेनप्रीतोस्मितेराजल्लँक्ष्मीःसंरक्षिताधुना ॥ मत्स्वरूपाचसालक्ष्मीर्जगन्मातात्रयीमयी ॥ ८९ ॥ तद्रक्षांकुर्वताभूप त्वयायद्बन्धनंमम ॥ तत्प्रियंममराजेन्द्र माभयंक्रियतांत्वया ॥ ९० ॥ इयंलक्ष्मीस्तवसुता सत्यमेवनसंशयः ॥ इतीरितेथहरिणा लक्ष्मीःप्रोवाचभूपतिम् ॥ ९१ ॥ लक्ष्मीरुवाच ॥ राजन्प्रीतास्मितेचाहं रक्षितायद्गृहेत्वया ॥ त्वद्भक्तिशोधनार्थंवै अहंविष्णुरुभावपि ॥ ९२ ॥ विनोदकलह

लिये तुमने जिस कारण मुझ को बाँधा है ॥ ८८ ॥ हे राजन् ! उससे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं इस समय जो लक्ष्मी रक्षित हुई है वह मेरे स्वरूपवाली लक्ष्मी संसार की माता व वेदत्रयीमयी है ॥ ८९ ॥ हे राजन् ! उसकी रक्षा करतेहुए तुमने जो मेरा बन्धन किया है हे नृपेन्द्र ! वह मुझको प्रिय है तुम डर न करो ॥ ९० ॥ और यह लक्ष्मी सत्यही तुम्हारी कन्या है इसमें सन्देह नहीं है विष्णुजी से यह कहने पर लक्ष्मी ने राजासे कहा ॥ ९१ ॥ लक्ष्मीजी बोलीं कि हे राजन् ! जिसलिये तुमने घर में मेरी रक्षा किया उस कारण मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं और तुम्हारी भक्ति के शोधन के लिये मैं और विष्णु दोनों भी ॥ ९२ ॥ हे राजन् !

क्रीड़ा कलह के बहाने से यहां आये हैं व हे परन्तप ! तुम्हारे योग व भक्ति से हम दोनों प्रसन्न हैं ॥ ९३ ॥ हे राजन् ! हम दोनों की दया से तुमको सदैव सुख होगा और सदैव तुमको निश्चय कर सब पृथ्वीमण्डल का ऐश्वर्य होगा ॥ ९४ ॥ और हम दोनों के युगल चरणों में तुम्हारी अचल भक्ति होवै और देहान्त में पुनरावृत्ति से रहित मेरी सायुज्य मुक्ति ॥ ९५ ॥ सदैव होगी व हे राजन् ! तुम्हारे पापकी बुद्धि मत होवै व विष्णुजी की भक्ति से संयुत तुम्हारी बुद्धि सदैव धर्म में होवै ॥ ९६ ॥ इस प्रकार लक्ष्मीजी राजा से कहकर विष्णुजी के वक्षस्थल में प्राप्तहुईं इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! विष्णुजी ने राजासे यह कहा ॥ ९७ ॥ कि हे नृपोत्तम !

व्याजादागताविहभूपते ॥ तवयोगेनभक्तयाच तुष्टावावांपरंतप ॥ ९३ ॥ आवयोःकृपयाराजन्सुखन्तेभवतात्सदा ॥ सर्वभूमण्डलैश्वर्यं सदातेभवतुध्रुवम् ॥ ९४ ॥ आवयोःपादयुगले भक्तिर्भवतुतेध्रुवा ॥ देहान्तेममसायुज्यं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ९५ ॥ नित्यंभवतुतेराजन्माभूत्तेपापधीस्तथा ॥ सदाधर्मेभवतुधीर्विष्णुभक्तियुतातव ॥ ९६ ॥ एवमुक्त्वानृपं लक्ष्मीर्विष्णोर्वक्षस्थलंययौ ॥ अथविष्णुरुवाचेदं राजानंद्विजपुङ्गवाः ॥ ९७ ॥ यथात्वयात्रबद्धोहं निगडेननृपोत्तम ॥ तद्रूपेणैववत्स्यामि सेतुमाधवसंज्ञितः ॥ ९८ ॥ मयैवकारितःसेतुस्तद्रक्षार्थमहंनृप ॥ भूतराक्षससङ्घेभ्यो भयानामुपशान्तये ॥ ९९ ॥ ब्रह्मापिसेतुरक्षार्थं वसत्यत्रदिवानिशम् ॥ शङ्करोरामनाथाख्यो नित्यंसेतौवसत्यथ ॥ १०० ॥ इन्द्रादिलोकपालाश्च वसन्त्यत्रमुदान्विताः ॥ अतोहमत्रवत्स्यामि सेतुमाधवसंज्ञया ॥ १ ॥ सेतुसंरक्षणार्थंवै सर्वोपद्रवशान्तये ॥ सर्वेषामिष्टसिद्ध्यर्थं सर्वपापोपशान्तये ॥ २ ॥ त्वयानिगडबद्धंमां सेवन्तेयेत्रमानवाः ॥ तेयान्तिममसायुज्यं सर्वा

जिसप्रकार तुमने मुझको यहां बेड़ियों से बाँधा है उसी रूप से सेतुमाधव संज्ञक मैं सेतु पै बसूंगा ॥ ९८ ॥ हे राजन् ! मैंनेही सेतु को किया है और उसकी रक्षा के लिये मैं भूतों व राक्षसों के गणों से भयों की शान्ति के लिये बसूंगा ॥ ९९ ॥ और सेतु की रक्षा के लिये ब्रह्माभी यहां दिन रात बसते हैं और रामनाथ नामक शंकरजी सदैव सेतु पै बसते हैं ॥ १०० ॥ और हर्ष से संयुत इन्द्रादिक लोकपाल यहां बसते हैं इसकारण सेतुमाधवसंज्ञा से मैं यहां बसता हूं ॥ १ ॥ सेतु की रक्षा के लिये व सब उपद्रवों की शांति के लिये तथा सबों की इष्टसिद्धि के लिये व सब पापों की शांति के लिये मैं यहां बसता हूं ॥ २ ॥ हे राजन् ! तुमसे निगड़ से बँधे हुए मुझको

जो मनुष्य यहा सेवते हैं वे मेरी सायुज्यमुक्ति व सब मनोरथको प्राप्त होते हैं॥ ३ ॥ और मेरे व लक्ष्मीजी के स्तोत्र व चरित को जो पढ़ते हैं वे दरिद्रता को नहीं प्राप्त होते हैं किन्तु वे ऐश्वर्य को पाते हैं ॥ ४ ॥ हे विशापते ! तुमसे किये हुए मेरे व लक्ष्मीजी के इस स्तोत्र को जो हर्षसंयुत मनुष्य पढ़ते, सुनते व लिखते हैं ॥ ५ ॥ मेरे लोक से उनकी पुनरावृत्ति कभी नहीं होती है उससमय वहा राजा पुण्यनिधि से यह कहकर वे विष्णुजी ॥ ६ ॥ सदैव पूर्णरूप से वहीं स्थित रहते हैं व हे ब्राह्मणो ! पुण्यनिधि राजा सेतुमाधवरूपी ॥ ७ ॥ विष्णुजी को भक्ति से प्रणामकर व महापूजन कर और रामनाथजी की सेवा करके अपने घर को चलागया ॥ ८ ॥ और जबतक जिया

भीष्टंतथानृप ॥ ३ ॥ ममलक्ष्म्यास्तवतथा चरितंयेपठन्तिवै ॥ नतेयास्यन्तिदारिद्र्यं किंत्वैश्वर्यंव्रजन्तिते ॥ ४ ॥ त्वत्कृतंयदिदंस्तोत्रं ममलक्ष्म्याविशाम्पते ॥ येपठन्तिचशृण्वन्ति लिखन्तिचमुदान्विताः ॥ ५ ॥ नतेषांपुनरावृत्तिर्ममलोकात्कदाचन ॥ इत्युक्त्वासहरिस्तत्र नृपंपुण्यनिधिंतदा ॥ ६ ॥ तत्रैवपूर्णरूपेण संनिधत्तेस्मसर्वदा ॥ नृपःपुण्यनिधिर्विप्राः सेतुमाधवरूपिणम् ॥ ७ ॥ विष्णुंप्रणम्यभक्त्यातु महापूजांविधायच ॥ सेवित्वारामनाथञ्च स्वमेवभवनंययौ ॥ ८ ॥ यावज्जीवमसौतत्र सेतौन्यवसदुत्तमे ॥ मथुरायांनिजंपुत्रं स्थापयामासपालकम् ॥ ९ ॥ तत्रैवनिवसन्राजा देहान्तेमुक्तिमाप्तवान् ॥ विन्ध्यावलिश्चतत्पत्नी तमेवानुममारसा ॥ १० ॥ पतिव्रतापतिप्राणा प्रययौसापिसद्गतिम् ॥ श्रीसूत उवाच ॥ येत्रभक्तियुतानित्यं सेवन्तेसेतुमाधवम् ॥ ११ ॥ नतेषांपुनरावृत्तिः कैलासाज्जातुजायते ॥ सेतुमाधवसेवांये नकुर्वन्त्यत्रमानवाः ॥ १२ ॥ नतेषांरामनाथस्य सेवाफलवतीभवेत् ॥ गृहीत्वासैकतंसेतोर्गङ्गायांनिःक्षिपे

तबतक इसने उस उत्तम सेतु पै निवास किया और मथुरापुरी में अपने पुत्र को रक्षक स्थापित किया ॥ ९ ॥ और वहीं बसतेहुए राजा ने देहान्त में मुक्ति को पाया और उसकी स्त्री वह विन्ध्यावलि उसी के पीछे मरगई ॥ १० ॥ और पतिव्रता व पति में प्राणोंवाली वह भी उत्तम गति को प्राप्तहुई श्रीसूतजी बोले कि भक्तिसंयुत जो मनुष्य यहा सदैव सेतुमाधवजी को सेवते हैं॥ ११ ॥ उनकी कभी कैलास से पुनरावृत्ति नहीं होती है और यहां जो मनुष्य सेतुमाधव की सेवा नहीं करते हैं ॥ १२ ॥ उनकी

रामनाथजी की सेवा फलवती नहीं होती है और सेतुकी बालू को लेकर यदि गङ्गाजी में डालता है ॥ १३ ॥ वह मनुष्य मरकर माधवपुर वैकुण्ठ में बसता है व हे ब्राह्मणो ! गङ्गाजी को जानेकी इच्छावाला मनुष्य सेतुमाधवके समीप ॥ १४ ॥ संकल्प कर गङ्गाजी को जाता है तो वह यात्रा सफल होती है और गङ्गाजी का जल लाकर रामेश्वरजी को स्नान कराकर ॥ १५ ॥ सेतु पै उसके भार को धर कर निस्सन्देह ब्रह्म को प्राप्त होता है हे ब्राह्मणो ! तुम लोगों से यह सेतुमाधव का प्रभाव कहागया ॥ १६ ॥ इसको पढ़ता व सुनता हुआ मनुष्य वैकुण्ठ में गति को पाता है ॥ ११७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां

द्यदि ॥ १३ ॥ प्रेत्यवैमाधवपुरे वैकुण्ठेसवसेन्नरः ॥ गङ्गांजिगमिषुर्विप्राः सेतुमाधवसन्निधौ ॥ १४ ॥ सङ्कल्प्यगङ्गांनिर्गच्छेत्सायात्रासफलाभवेत् ॥ आनीयगङ्गासलिलं रामेशमभिषिच्यच ॥ १५ ॥ सेतौनिक्षिप्यतद्भारं ब्रह्मप्राप्नोत्यसंशयः॥ इतिवःकथितंविप्राः सेतुमाधववैभवम् ॥ १६॥ एतत्पठन्वाशृण्वन्वा वैकुण्ठेलभतेगतिम् ॥ ११७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येसेतुमाधवप्रशंसायांपुण्यनिधिचरितकथनंनामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ अथातःसम्प्रवक्ष्यामि सेतुयात्राक्रमंद्विजाः ॥ यंश्रुत्वासर्वपापेभ्यो मुच्यतेमानवःक्षणात् ॥ १ ॥ स्नात्वाचम्यविशुद्धात्मा कृतनित्यविधिःसुधीः ॥ रामनाथस्यतुष्ट्यर्थं प्रीत्यर्थंराघवस्यच ॥ २ ॥ भोजयित्वायथाशक्ति ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गस्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकः ॥ ३ ॥ गोपीचन्दनलिप्तोवा स्वभालेप्यूर्ध्वपुण्ड्रकः ॥

भाषाटीकायांसेतुमाधवप्रशंसायांपुण्यनिधिचरितकथनन्नामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

सेतुयात्राक्रमहुं अरु अहै यथा सुविधान । इक्यावन अध्याय में सोई कियो बखान ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! इसके उपरान्त मैं सेतुयात्रा के क्रम को कहताहूं कि जिसको सुनकर मनुष्य क्षणभर में सब पापों से छूटजाता है ॥ १ ॥ शुद्धचित्त व उत्तम बुद्धिवाला पुरुष रामनाथजी की प्रसन्नता के लिये व रघुनाथजी की प्रीति के लिये नहाकर आचमन कर नित्य विधि को करै ॥ २ ॥ और शक्ति के अनुसार वेदों के पारगामी ब्राह्मणों को भोजन कराकर सब अंगों में भस्म को लगा कर मस्तक में त्रिपुण्ड्र को लगावै ॥ ३ ॥ अथवा गोपीचन्दन को लगावै या अपने मस्तक में ऊर्ध्वपुण्ड्र को लगावै और रुद्राक्ष की माला का आभूषण किये पैंतियों समेत

हाथवाला पवित्र मनुष्य ॥ ४ ॥ मैं सेतुयात्रा करूंगा यह भक्ति से संकल्प कर अष्टाक्षर मन्त्र को जपताहुआ मनुष्य मौन होकर अपने घर से चलै ॥ ५ ॥ और मन को
रोंकेहुए मनुष्य पञ्चाक्षर मन्त्र को जपताहुआ एकबार हविष्य को भोजन करै और क्रोध को जीतेहुए जितेन्द्रिय मनुष्य ॥ ६ ॥ पादुका व छत्र से रहित होकर तांबूल
को वर्जित करै और तैलाभ्यंग से रहित होकर स्त्रीसंगादिक से रहित होवै ॥ ७ ॥ और शौच आदिक आचार से संयुत व सन्ध्योपासन में परायण होकर गायत्री की
उपासना करता हुआ मनुष्य त्रिकाल श्रीरामजी को ध्यान करै ॥ ८ ॥ और मार्ग के मध्य में नित्य आदर से सेतुमाहात्म्य को पढ़ताहुआ या रामायण व अन्य पुराण

रुद्राक्षमालाभरणः सपवित्रकरःशुचिः ॥ ४ ॥ सेतुयात्रांकरिष्येहमितिसङ्कल्प्यभक्तितः ॥ स्वगृहात्प्रव्रजेन्मौनी
जपन्नष्टाक्षरंमनुम् ॥ ५ ॥ पञ्चाक्षरंनाममन्त्रं जपेन्नियतमानसः ॥ एकवारंहविष्याशी जितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ ६ ॥ पा
दुकाछत्ररहितस्ताम्बूलपरिवर्जितः ॥ तैलाभ्यङ्गविहीनश्च स्त्रीसङ्गादिविवर्जितः ॥ ७ ॥ शौचाद्याचारसंयुक्तः सन्ध्योपास्ति
परायणः ॥ गायत्र्युपास्तिंकुर्वाणस्त्रिसन्ध्यंरामचिन्तकः ॥ ८ ॥ मध्येमार्गेपठन्नित्यं सेतुमाहात्म्यमादरात् ॥ पठन्रा
मायणंवापि पुराणान्तरमेववा ॥ ९ ॥ व्यर्थवाक्यानिसंत्यज्य सेतुंगच्छेद्विशुद्धये ॥ प्रतिग्रहंनगृह्णीयान्नाचारांश्चपरि
त्यजेत् ॥ १० ॥ कुर्यान्मार्गेयथाशक्ति शिवविष्ण्वादिपूजनम् ॥ वैश्वदेवादिकर्माणि यथाशक्तिसमाचरेत् ॥ ११ ॥
ब्रह्मयज्ञमुखान्धर्मान्प्रकुर्याच्चाग्निपूजनम् ॥ अतिथिभ्योन्नपानादि सम्प्रदद्याद्यथाबलम् ॥ १२ ॥ दद्याद्भिक्षांयतिभ्यो
पि वित्तशाठ्यंपरित्यजन् ॥ शिवविष्ण्वादिनामानि स्तोत्राणिचपठेत्पथि ॥ १३ ॥ धर्ममेवसदाकुर्यान्निषिद्धानिपरि

को पढ़ताहुआ मनुष्य ॥ ९ ॥ शुद्धिके लिये व्यर्थवाक्यों को छोड़कर सेतु को जावै और प्रतिग्रह (दान) को न लेवै व आचारोंको न छोड़ै ॥ १० ॥ और मार्ग में यथा
शक्ति शिव व विष्णु आदि का पूजन करै व यथाशक्ति वैश्वदेवादिक कर्मों को करै ॥ ११ ॥ व ब्रह्मयज्ञ आदिक धर्म व अग्नि का पूजनकरै व शक्तिके अनुसार अतिथियों
के लिये अन्न, पानादिक देवै ॥ १२ ॥ व वित्तशाठ्य को छोड़ताहुआ पुरुष संन्यासियों के लिये भोजन देवै व मार्गमें शिव, विष्णु आदिक नामोंको व स्तोत्रोंको पढ़ै ॥ १३ ॥ और

निषिद्ध कर्मों को छोड़ै व सदैव धर्म ही करै इत्यादिक नियमों से संयुत होकर तदनन्तर सेतुमूल को जावै ॥ १४ ॥ और वहां जाकर सावधान होताहुआ मनुष्य पहले पत्थर को देवै और वहां समुद्र को आवाहन कर तदनन्तर प्रणाम करै ॥ १५ ॥ और समुद्र के लिये अर्घ्य देवै उसके उपरान्त प्रार्थना करै तदनन्तर अनुज्ञा करै उसके उपरान्त समुद्र में स्नान करै ॥ १६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! मन से विष्णुजी को स्मरण करताहुआ मनुष्य मुनि, देवता, वानर व पितरों का तर्पण करै ॥ १७ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! सात पत्थर या एक पत्थर को देवै क्योंकि पाषाण के दान से स्नान सफल होता है अन्यथा नहीं होता है ॥ १८ ॥ पत्थर

त्यजेत् ॥ इत्यादिनियमोपेतः सेतुमूलंततोव्रजेत् ॥ १४ ॥ पाषाणंप्रथमंदद्यात्तत्रगत्वासमाहितः ॥ तत्रावाह्यसमुद्रञ्च प्रणमेत्तदनन्तरम् ॥ १५ ॥ अर्घ्यंदद्यात्समुद्राय प्रार्थयेत्तदनन्तरम् ॥ अनुज्ञांचततःकुर्यात्ततः स्नायान्महोदधौ ॥ १६ ॥ मुनीनामथदेवानां कपीनांपितॄणांतथा ॥ प्रकुर्यात्तर्पणंविप्रा मनसासंस्मरन्हरिम् ॥ १७ ॥ पाषाणसप्तकंदद्यादेकंवा विप्रपुङ्गवाः ॥ पाषाणदानात्सफलं स्नानम्भवतिनान्यथा ॥ १८ ॥ पाषाणदानमन्त्रः ॥ पिप्पलादसमुत्पन्ने कृत्येलोक भयङ्करे ॥ पाषाणन्तेमयादत्तमाहारार्थंप्रकल्प्यताम् ॥ १९ ॥ सान्निध्यमन्त्रः ॥ विश्वाचित्वंघृताचित्वं विश्वयोने विशाम्पते ॥ सान्निध्यंकुरुमेदेव सागरेलवणाम्भसि ॥ २० ॥ नमस्कारमन्त्रः ॥ नमस्तेविश्वगुप्ताय नमोविष्णोह्यपा म्पते ॥ नमोहिरण्यश्रृङ्गाय नदीनाम्पतयेनमः ॥ २१ ॥ समुद्रायवयूनाय प्रोच्चार्यप्रणमेत्तथा ॥ अर्घ्यमन्त्रः ॥ सर्वरत्न मयश्रीमान् सर्वरत्नाकराकर ॥२२॥ सर्वरत्नप्रधानस्त्वं गृहाणार्घ्यंमहोदधे ॥ अनुज्ञापनमन्त्रः ॥ अशेषजगदाधार शङ्ख

देने का यह मन्त्र है कि हे पिप्पलाद से उत्पन्न, लोकों को भय करनेवाली, कृत्ये ! मुझसे दियेहुए पत्थर को आहार के लिये कल्पित कीजिये ॥ १९ ॥ सान्निध्य का यह मन्त्र है कि हे विश्वाचि ! तुम व हे घृताचि ! तुम और हे विशाम्पते, विश्वयोने ! हे देव ! क्षार जलवाले समुद्र में मेरी समीपता कीजिये ॥ २० ॥ नमस्कार का यह मन्त्र है कि हे अपापते, विष्णो ! तुम विश्वगुप्त के लिये प्रणाम है व हिरण्यश्रृङ्ग तथा नदियों के पति के लिये नमस्कार है ॥ २१ ॥ और समुद्र व वयूनके लिये नमस्कार है ऐसा कहकर प्रणाम करै यह अर्घ्य का मन्त्र है कि हे सर्वरत्नाकराकर, सर्वरत्नमय ! तुम श्रीमान् हो ॥ २२ ॥ व हे महोदधे ! तुम सब रत्नों में प्रधान हो

अर्घ्य को ग्रहण कीजिये यह अनुज्ञापन का मन्त्र है कि हे सब संसार के आधार, शङ्खचक्रगदाधर ! ॥ २३ ॥ हे देव ! तुम्हारे तीर्थ सेवन में मुझ को आज्ञा दीजिये यह प्रार्थना का मन्त्र है कि पूर्वदिशा में सुग्रीव व दक्षिण में नल को स्मरण करै ॥ २४ ॥ और पश्चिम में मैंद नामक वानर व उत्तर में द्विविद को स्मरण करै और राम, लक्ष्मण व यशस्विनी सीताजी को ॥ २५ ॥ और अङ्गद व पवननन्दन तथा विभीषणजी को मध्य में स्मरण करै हे महोदधे ! पृथ्वी में जो तीर्थ हैं वे तुम में पैठे हैं ॥ २६ ॥ मुझ को स्नान का फल दीजिये और सब पापसे मेरी रक्षा कीजिये और हिरण्यशृङ्ग इन दो मन्त्रों से नाभि में नारायण को स्मरण करै ॥ २७ ॥

चक्रगदाधर ॥ २३ ॥ देहिदेवममानुज्ञां युष्मत्तीर्थनिषेवणे ॥ प्रार्थनामन्त्रः ॥ प्राच्यांदिशिचसुग्रीवं दक्षिणस्यांनलंस्मरेत् ॥ २४ ॥ प्रतीच्यांमैन्दनामानमुदीच्यांद्विविदंतथा ॥ रामञ्चलक्ष्मणञ्चैव सीतामपियशस्विनीम् ॥ २५ ॥ अङ्गदंवायुतनयं स्मरेन्मध्येविभीषणम् ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि प्राविशंस्त्वामहोदधे ॥ २६ ॥ स्नानस्यमेफलंदेहि सर्वस्मात्राहिमांहसः ॥ हिरण्यशृङ्गमित्याभ्यां नाभ्यांनारायणंस्मरेत् ॥ २७ ॥ ध्यायन्नारायणंदेवं स्नानादिषुचकर्मसु ॥ ब्रह्मलोकमवाप्नोति जायतेनेहवैपुनः ॥ २८ ॥ सर्वेषामपिपापानां प्रायश्चित्तंभवेत्ततः ॥ प्रह्लादंनारदंव्यासमम्बरीषंशुकंतथा ॥ २९ ॥ अन्यांश्चभगवद्भक्तांश्चिन्तयेदेकमानसः ॥ स्नानमन्त्रः ॥ वेदादिर्योवेदवसिष्ठयोनिः सरित्पतिःसागररत्नयोनिः ॥ ३० ॥ अग्निश्चतेयोनिरिडाचदेहोरेतोधाविष्णोरमृतस्यनाभिः ॥ इदंतेअन्याभिरस्यमानमद्भिर्याःकाश्चसिन्धुंप्रविशन्त्यापः॥

स्नानादिक कर्मों में नारायण देव को ध्यान करताहुआ मनुष्य ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है व फिर इस संसार में नहीं उत्पन्न होता है ॥ २८ ॥ और उससे सब पापों का भी प्रायश्चित्त होता है प्रह्लाद, नारद, व्यास, अम्बरीष, शुकदेव ॥ २९ ॥ व अन्य भगवद्भक्तों को सावधान मनवाला मनुष्य ध्यान करै यह स्नान का मन्त्र है कि जो वेदादि है व जो वेद वसिष्ठ की योनि है और नदियों का पति व जो समुद्र रत्नयोनि है ॥ ३० ॥ अग्नि तुम्हारा उत्पत्ति स्थान है व इडा (यज्ञ) शरीर है और तुम विष्णुजी के जीव को धारनेवाले हो और मोक्ष का साधन हो व जो कोई जल समुद्र में पैठते हैं उन में मस्तक से स्नान कर मैं वैसेही शरीर से पातक को

छोड़देऊं जैसे कि पुरानी खाल को सर्प छोड़ता है ॥ ३१ ॥ हे ब्राह्मणो ! फिर नदियों के पति सर्वतीर्थमय शुद्ध वयून समुद्र के लिये नमस्कार करै ॥ ३२ ॥ फिर द्वौ समुद्रौ ऐसा कहकर स्नानकरै व यह मन्त्र कहै कि हे रवे ! ब्रह्माण्डके बीचमें जो तीर्थ तुम्हारी किरणों से छुयेगये हैं ॥ ३३ ॥ हे दिवाकर ! उस सत्य से मुझको सेतु में तीर्थ दीजिये और पूर्वदिशा में सुग्रीव को स्मरण करै इत्यादिक क्रम के योगसे ॥ ३४ ॥ हे ब्राह्मणो ! स्मरण कर फिर सेतु में तीसरा स्नान करै यदि मनुष्य देवीपत्तन से लगाकर चलै ॥ ३५ ॥ तो अपने पापसमूह की शान्ति के लिये नवपाषाण के मध्य में मुक्तिदायक सेतु पै समुद्र में स्नान करै ॥ ३६ ॥ और कुश की शय्या के

सर्पोजीर्णामिवत्वचंजहामिपापंशरीरात् सशिरस्को अभ्युपेत्य ॥ ३१ ॥ समुद्रायवयूनाय नमस्कुर्यात्पुनर्द्विजाः ॥ सर्वतीर्थमयंशुद्धं नदीनांपतिमम्बुधिम् ॥ ३२ ॥ द्वौसमुद्रावितिपुनः प्रोच्चार्यस्नानमाचरेत् ॥ ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करस्पृष्टानितेरवे ॥ ३३ ॥ तेनसत्येनमेसेतौ तीर्थंदेहिदिवाकर ॥ प्राच्यांदिशिचसुग्रीवमित्यादिक्रमयोगतः ॥ ३४ ॥ स्मृत्वाभूयोद्विजाःसेतौ तृतीयंस्नानमाचरेत् ॥ देवीपत्तनमारभ्य प्रव्रजेद्यदिमानवः ॥३५॥ तदातुनवपाषाणमध्येसेतौविमुक्तिदे ॥ स्नानमम्बुनिधौकुर्यात्स्वपापौघापनुत्तये ॥ ३६ ॥ दर्भशय्यापदव्याचेद्गच्छेत्सेतुंविमुक्तिदम् ॥ तदातत्रोदधावेव स्नानंकुर्याद्विमुक्तये ॥ ३७ ॥ तर्पणविधिः ॥ पिप्पलादंकविंकण्वं कृतान्तंजीवितेश्वरम् ॥ मन्युञ्चकालरात्रिञ्च विद्याञ्चाहर्गणेश्वरम् ॥ ३८ ॥ वसिष्ठंवामदेवञ्च पराशरमुमापतिम् ॥ बाल्मीकिंनारदञ्चैव बालखिल्यान्मुनींस्तथा ॥ ३९ ॥ नलंनीलंगवाक्षंच गवयंगन्धमादनम् ॥ मैन्दञ्चद्विविदञ्चैव शरभंऋषभंतथा ॥ ४० ॥ सुग्रीवञ्चहनूमन्तं

मार्ग से यदि मुक्तिदायक सेतु को जावै तो उस समुद्र में मुक्ति के लिये स्नान करै ॥ ३७ ॥ अब तर्पण की विधि कही जाती है कि पिप्पलाद, कवि, कण्व, कृतान्त, जीवितेश्वर, मन्यु, कालरात्रि, विद्या व अहर्गणेश्वर को तर्पणकरै ॥ ३८ ॥ और वसिष्ठ, वामदेव, पराशर, उमापति, बाल्मीकि, नारद व बालखिल्य मुनियों को तर्पण करै ॥ ३९ ॥ और नल, नील, गवाक्ष, गवय, गन्धमादन, मैंद, द्विविद, शरभ व ऋषभको तर्पण करै ॥ ४० ॥ और सुग्रीव, हनूमान्, वेगदर्शन, राम, लक्ष्मण व महा-

ऐश्वर्य्यवती तथा यशस्विनी सीताजी को ॥ ४१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इन मन्त्रों को कहकर क्रमपूर्वक तीनबार करके तर्पण करै और विभुके चतुर्थी विभक्ति अन्तवाले उन उन नामों को कहकर तर्पण करै ॥ ४२ ॥ व हे ब्राह्मणो ! द्वितीयान्तनामों को कहकर विधिपूर्वक तिल व जल से देवता, ऋषि व पितरों को तर्पणकरै ॥ ४३ ॥ प्रसन्न बुद्धि मनुष्य पैतियों समेत जलमें स्थित होकर तर्पणकरै क्योंकि तर्पण से सब तीर्थों में स्नान के फल को पाता है ॥ ४४ ॥ इस प्रकार इनको तर्पण कर व प्रणाम कर जलसे ऊपर निकलै और भीगे वसन को छोड़कर सूखे वसन को पहनकर ॥ ४५ ॥ आचमन कर पैतियों समेत मनुष्य विधिपूर्वक

वेगदर्शनमेवच ॥ रामञ्चलक्ष्मणंसीतां महाभागांयशस्विनीम् ॥ ४१ ॥ त्रिःकृत्वातर्पयेदेतान्मन्त्रानुक्त्वायथा क्रमम् ॥ विभोश्चतत्तन्नामानि चतुर्थ्यन्तानिवैद्विजाः ॥ ४२ ॥ देवानृषीन्पितॄंश्चैव विधिवच्चतिलोदकैः ॥ द्वितीयान्तानि नामानि चोक्त्वातर्पयेद्द्विजाः ॥ ४३ ॥ तर्पयेत्सपवित्रस्तु जलेस्थित्वाप्रसन्नधीः ॥ तर्पणात्सर्वतीर्थेषु स्नानस्यफल माप्नुयात् ॥ ४४ ॥ एवमेतांस्तर्पयित्वा नमस्कृत्योत्तरेज्जलात् ॥ आर्द्रवस्त्रंपरित्यज्य शुष्कवासःसमावृतः ॥ ४५ ॥ आ चम्यसपवित्रश्च विधिवच्छ्राद्धमाचरेत् ॥ पिण्डान्पितृभ्योदद्याच्च तिलतण्डुलकैस्तथा ॥ ४६ ॥ एतच्छ्राद्धमशक्तस्य मयाप्रोक्तंद्विजोत्तमाः ॥ धनाढ्योन्नेनवैश्राद्धं षड्रसेनसमाचरेत् ॥ ४७ ॥ गोभूतिलहिरण्यादिदानंकुर्यात्समृद्धि मान् ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटावेवमेवसमाचरेत् ॥ ४८ ॥ पाषाणदानपूर्वाणि तर्पणान्तानिवैद्विजाः ॥ सेतुमूलेयथैता नि विधिवद्दयतनोद्विजाः ॥ ४९ ॥ चक्रतीर्थंततोगत्वा तत्रापिस्नानमाचरेत् ॥ पश्येच्चसेत्वधिपतिं देवंनारायणं

श्राद्ध करै और पितरों के लिये तिल व चावलों से पिंडों को देवै ॥ ४६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मैंने असमर्थ मनुष्य को यह श्राद्ध कहा और धनी पुरुष छा रसोंवाले अन्नसे श्राद्ध करै ॥ ४७ ॥ और समृद्धिमान् पुरुष गऊ, पृथ्वी, तिल व सुवर्णादिक दान करै इसीप्रकार रामचन्द्रजी की धनुष्कोटि में करै ॥ ४८ ॥ हे ब्राह्मणो ! सेतु-मूल में जिसप्रकार विधिपूर्वक इनको किया है वैसेही हे द्विजो ! पाषाणदानपूर्वक व तर्पणान्त करै ॥ ४९ ॥ तदनन्तर चक्रतीर्थ को जाकर उसमें भी स्नान करै और

सेतु के स्वामी नारायण विष्णुदेवजी को देखै ॥ ५० ॥ और पश्चिम मार्ग से जाता हुआ मनुष्य वहां के चक्रतीर्थ में स्नान कर भक्तिपूर्वक दर्भशयदेवजी को देखै ॥५१॥ तदनन्तर कपितीर्थ को प्राप्तहोकर उसमें भी स्नान करै उसके उपरान्त सीताकुण्ड को प्राप्तहोकर उसमें भी स्नान करै ॥ ५२ ॥ तदनन्तर बड़े फलवाले ऋणमोचन तीर्थ को प्राप्तहोकर स्नान करके जानकीरमण श्रीरामचन्द्र स्वामी को प्रणामकर ॥ ५३ ॥ कण्ठ से ऊपर क्षौर कराकर लक्ष्मणतीर्थ को जावै और पापों को चिन्तन करता हुआ मनुष्य उसमें भी स्नान करै ॥ ५४ ॥ तदनन्तर रामतीर्थ में नहाकर उसके उपरान्त देवालय को जावै और पापविनाशक व गंगा, यमुना में नहाकर ॥ ५५ ॥

हरिम् ॥ ५० ॥ गच्छन्पश्चिममार्गेण तत्रत्येचक्रतीर्थके ॥ स्नात्वादर्भशयंदेवं प्रपश्येद्भक्तिपूर्वकम् ॥ ५१ ॥ कपितीर्थंततःप्राप्य तत्रापिस्नानमाचरेत् ॥ सीताकुण्डंततःप्राप्य तत्रापिस्नानमाचरेत् ॥ ५२ ॥ ऋणमोचनतीर्थन्तु ततःप्राप्यमहाफलम् ॥ स्नात्वाप्रणम्यरामञ्च जानकीरमणंप्रभुम् ॥ ५३ ॥ गच्छेल्लक्ष्मणतीर्थंतु कण्ठादुपरिवापनम् ॥ कृत्वास्नायाच्चतत्रापि दुष्कृतान्यपिचिन्तयन् ॥ ५४ ॥ ततःस्नात्वारामतीर्थे ततोदेवालयंव्रजेत् ॥ स्नात्वापापविनाशेच गङ्गायमुनयोस्तथा ॥ ५५ ॥ सावित्र्यांचसरस्वत्यां गायत्र्यांचद्विजोत्तमाः ॥ स्नात्वाचहनुमत्कुण्डे ततःस्नायान्महाफले ॥ ५६ ॥ ब्रह्मकुण्डंततःप्राप्य स्नायाद्विधिपुरःसरम् ॥ नागकुण्डंततःप्राप्य सर्वपापविनाशनम् ॥ ५७ ॥ स्नानंकुर्यान्नरोविप्रा नरकक्लेशनाशनम् ॥ गङ्गाद्याःसरितःसर्वास्तीर्थानिसकलान्यपि ॥ ५८ ॥ सर्वदानागकुण्डेतु वसन्तिस्वाघशान्तये ॥ अनन्तादिमहानागैरष्टाभिरिदमुत्तमम् ॥ ५९ ॥ कल्पितंमुक्तिदंतीर्थं रामसेतौशिवंकरम् ॥ अगस्त्यकुण्डं

हे द्विजोत्तमो ! सावित्री, सरस्वती व गायत्री में और हनुमत्कुण्ड में नहाकर तदनन्तर महाफल तीर्थ में नहावै ॥ ५६ ॥ उसके उपरान्त ब्रह्मकुण्ड को प्राप्त होकर विधिपूर्वक स्नान करै तदनन्तर सब पापों के विनाशक नागकुण्डको प्राप्त होकर ॥ ५७ ॥ हे ब्राह्मणो ! नरकों के क्लेश को नाश करनेवाली स्नान करै गङ्गादिक सब नदियां व सब भी तीर्थ ॥ ५८ ॥ अपने पापकी शान्ति के लिये सदैव नागकुण्ड में बसते हैं अनन्तादिक आठ महानागों से यह उत्तम ॥ ५९ ॥ व कल्याणकारक तथा

मुक्तिदायक तीर्थ रामसेतु तीर्थ पै निर्माण कियागया है तदनन्तर अतिउत्तम अगस्त्यतीर्थ को प्राप्तहोकर स्नान करै ॥ ६० ॥ इसके उपरान्त सब पापों को नाशनेवाले अग्नितीर्थ को प्राप्त होकर पितरों को स्मरण करताहुआ मनुष्य नहाकर तर्पण कर विधिपूर्वक श्राद्ध करै ॥ ६१ ॥ और अग्नितीर्थ के किनारे ब्राह्मणों के लिये अपनी शक्ति से गऊ, भूमि, सुवर्ण व धान्यादिक को देकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ६२ ॥ अथवा हे द्विजेन्द्रो ! चक्रतीर्थ आदिक जो तीर्थ हैं सब पातकों को हरनेवाले वे सब क्रम से कहेगये ॥ ६३ ॥ और उस क्रम से यथारुचि स्नान करै इसप्रकार सब तीर्थों में नहाकर श्राद्धादिक करै ॥ ६४ ॥ पश्चात् रामेश्वरजी को प्राप्तहोकर परमेश्वर

सम्प्राप्य ततःस्नायादनुत्तमम् ॥ ६० ॥ अथाग्नितीर्थमासाद्य सर्वदुष्कर्मनाशनम् ॥ स्नात्वासन्तर्प्यविधिवच्छ्राद्धं कुर्यात्पितॄन्स्मरन् ॥ ६१ ॥ गोभूहिरण्यधान्यादि ब्राह्मणेभ्यःस्वशक्तितः ॥ दत्त्वाग्नितीर्थतीरेतु सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ६२ ॥ अथवायानितीर्थानि चक्रतीर्थमुखानिवै ॥ अनुक्रान्तानिविप्रेन्द्राः सर्वपापहराणितु ॥ ६३ ॥ स्नायात्तदनुपूर्वेण स्नायाद्वापियथारुचि ॥ स्नात्वैवंसर्वतीर्थेषु श्राद्धादीनिसमाचरेत् ॥ ६४ ॥ पश्चाद्रामेश्वरंप्राप्य निषेव्यपरमेश्वरम् ॥ सेतुमाधवमागम्य तथारामञ्चलक्ष्मणम् ॥ ६५ ॥ सीतांप्रभञ्जनसुतं तथान्यान्कपिसत्तमान् ॥ तत्रत्यसर्वतीर्थेषु स्नात्वानियमपूर्वकम् ॥ ६६ ॥ प्रणम्यरामनाथञ्च रामचन्द्रंतथापरान् ॥ नमस्कृत्यधनुष्कोटिं ततःस्नातुंव्रजेन्नरः ॥ ६७ ॥ तत्रपाषाणदानादिपूर्वोक्तनियमंचरेत् ॥ धनुष्कोटौचदानानि दद्याद्वित्तानुसारतः ॥ ६८ ॥ क्षेत्रंगाश्चतथान्यानि वस्त्राण्यन्यानिचादरात् ॥ ब्राह्मणेभ्योवेदविद्भ्यो दद्याद्वित्तानुसारतः ॥ ६९ ॥ कोटितीर्थंततःप्राप्य स्नायान्नि

को सेवन कर सेतुमाधव, राम व लक्ष्मणजी को आकर ॥ ६५ ॥ और सीता व पवनसुत और अन्य उत्तम वानरों के समीप जाकर नियमपूर्वक वहां के सब तीर्थों में नहाकर ॥ ६६ ॥ रामनाथ, रामचन्द्र व अन्य देवताओं को प्रणाम कर तदनन्तर मनुष्य नहाने के लिये धनुष्कोटि को जावै ॥ ६७ ॥ और वहां पाषाणदानादिक पूर्वोक्त नियम करै व द्रव्य के अनुसार धनुष्कोटि में दानों को देवै ॥ ६८ ॥ और वेदज्ञ ब्राह्मणों के लिये द्रव्यके अनुसार क्षेत्र, गऊ व अन्य वस्त्रों को आदर से देवै ॥ ६९ ॥ तदनन्तर

कोटितीर्थ को प्राप्तहोकर नियमपूर्वक स्नान करै उसके उपरान्त वृषध्वज रामेश्वर देव को प्रणाम करै ॥ ७० ॥ और ऐश्वर्य होने पर ब्राह्मणों के लिये सुवर्ण की दक्षिणा को देवै और तिल, अन्न, गऊ, क्षेत्र, अन्य वस्त्र व चावलों को ॥ ७१ ॥ द्रव्य लोभसे रहित मनुष्य धन के अनुसार देवै और धूप, दीप, नैवेद्य व पूजन की सामग्रियों को ॥ ७२ ॥ द्रव्य के अनुसार रामेश्वरदेवजी के लिये देवै और रामेश्वरदेवजी की स्तुति कर भक्ति समेत प्रणाम कर ॥ ७३ ॥ आज्ञा को लेकर तदनन्तर सेतुमाधव के समीप जावै और उनके लिये धूप, दीपको देकर माधवजी से आज्ञा को लेकर ॥ ७४ ॥ पूर्वोक्त नियमों से संयुत पुरुष फिर अपने घर को आवै

यमपूर्वकम् ॥ ततोरामेश्वरंदेवं प्रणमेद्वृषभध्वजम् ॥ ७० ॥ विभवेसतिविप्रेभ्यो दद्यात्सौवर्णदक्षिणाम् ॥ तिलंधान्य ञ्चगांक्षेत्रं वस्त्राण्यन्यानितण्डुलान् ॥ ७१ ॥ दद्याद्वित्तानुसारेण वित्तलोभविवर्जितः ॥ धूपंदीपञ्चनैवेद्यं पूजोपकरणा निच ॥ ७२ ॥ रामेश्वरायदेवाय दद्याद्वित्तानुसारतः ॥ स्तुत्वारामेश्वरंदेवं प्रणम्यचसभक्तिकम् ॥ ७३ ॥ अनुज्ञाप्यत तोगच्छेत्सेतुमाधवसन्निधिम् ॥ तस्मैदत्त्वाचधूपादीननुज्ञाप्यचमाधवम् ॥ ७४ ॥ पूर्वोक्तनियमोपेतः पुनरायात्स्वकं गृहम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेदन्नैः षड्रसैःपरिपूरितैः ॥ ७५ ॥ तेनैवरामनाथोस्मै प्रीतोभीष्टम्प्रयच्छति ॥ नारकंचास्यनास्त्येव दारिद्र्यंचविनश्यति ॥ ७६ ॥ सन्ततिर्वर्धतेतस्य पुरुषस्यद्विजोत्तमाः ॥ संसारमवधूयाशु सायुज्यमपियास्यति ॥ ७७ ॥ अत्रागन्तुमशक्तश्चेच्छ्रुतिस्मृत्यागमेषुयत् ॥ ग्रन्थजातंमहापुण्यं सेतुमाहात्म्यसूचकम् ॥ ७८ ॥ तंग्रन्थंपाठयेद्विप्रा महापातकनाशनम् ॥ इदंवासेतुमाहात्म्यं पठेद्भक्तिपुरःसरम् ॥ ७९ ॥ सेतुस्नानफलम्पुण्यं तेनाप्नोतिनसंशयः ॥

और छः रसोंवाले परिपूरित-अन्नों से ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ७५ ॥ उसी से प्रसन्न रामनाथजी इसके लिये मनोरथ को देते हैं व इसको नरक नहीं होता है और दरिद्रता नाश होजाती है ॥ ७६ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! उस पुरुष की सन्तान बढ़ती है और शीघ्रही संसार को नाशकर सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ७७ ॥ और यदि यहां आने के लिये असमर्थ होवै तो श्रुति, स्मृति व शास्त्रों में जो सेतु के माहात्म्य का सूचक महापुण्यवान् ग्रन्थ होवै ॥ ७८ ॥ हे ब्राह्मणो ! महापातकों को नाश करनेवाले उस ग्रन्थ को पढ़ावै अथवा भक्तिपूर्वक इस सेतुमाहात्म्य को पढ़ै ॥ ७९ ॥ तो उससे सेतुस्नान के फल को निस्सन्देह प्राप्त होता है विद्वानों ने इस

को अन्ध व पंगु आदिकों के विषय में कहा है ॥ ८० ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! तुम लोगों से इसप्रकार सेतुयात्राका क्रम कहागया इसको पढ़ता व सुनता हुआ मनुष्य सब दुःख से छूटजाता है ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां यात्राक्रमोनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

दो० । अहै अमित परभाव युत यथा सेतुमाहात्म्य । बावनवें अध्याय में सोइ चरित याथात्म्य ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठो ! सेतु को उद्देश कर मैं तुम लोगों से फिर भी आदर से सेतु के प्रभाव को कहताहूं उसको आदर से सुनिये ॥ १ ॥ कि सब स्थानों के मध्य में भी यह बड़ाभारी स्थान है और यहां जप, हवन व तपस्या

अन्धपङ्ग्वादिविषयमेतत्प्रोक्तम्मनीषिभिः ॥ ८० ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवंवःकथितोविप्राः सेतुयात्राक्रमोद्विजाः ॥ एतत्पठन्वाशृण्वन्वा सर्वदुःखाद्विमुच्यते ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येयात्राक्रमोनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीसूत उवाच ॥ भूयोप्यहम्प्रवक्ष्यामि सेतुमुद्दिश्यवैभवम् ॥ युष्माकमादरेणाहं शृणुध्वम्मुनिपुङ्गवाः ॥ १ ॥ स्थानानामपिसर्वेषामेतत्स्थानंमहत्तरम् ॥ अत्रजप्तंहुतंतप्तं दत्तंचाक्षयमुच्यते ॥ २ ॥ अस्मिन्नेवमहास्थाने धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ वाराणस्यांदशसमा वासपुण्यफलम्भवेत् ॥ ३ ॥ तस्मिन्स्थलेधनुष्कोटौ स्नात्वारामेश्वरंशिवम् ॥ दृष्ट्वानरोभक्तियुक्तो त्रिदिनानिवसेद्द्विजाः ॥ ४ ॥ पुण्डरीकपुरेतेन दशवत्सरवासजम् ॥ पुण्यम्भवतिविप्रेन्द्रा महापातकनाशनम् ॥ ५ ॥ अष्टोत्तरसहस्रंतु मन्त्रमाद्यंषडक्षरम् ॥ अत्रजप्त्वानरोभक्त्या शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ६ ॥ मध्यार्जु

और दियाहुआ दान अक्षय कहाजाता है ॥ २ ॥ और इसी महास्थान में धनुष्कोटि में नहाने से दश वर्षतक काशी में वास का पुण्य फल होता है ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस स्थल में धनुष्कोटि में नहाकर भक्तिसंयुत मनुष्य रामेश्वर शिवजी को देखकर तीन दिन बसै ॥ ४ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! उससे पुण्डरीक नगरमें दश वर्षसे उपजा हुआ महापातकों का विनाशक पुण्यहोताहै ॥ ५ ॥ और एक हज़ार एक सौ आठ आदि षडक्षर मन्त्रको यहां भक्तिसे जपकर मनुष्य शिवजी की सायुज्य मुक्तिको पाताहै ॥ ६ ॥

और मध्यार्जुन, कुम्भकोण, मायूर, श्वेतवन, हालास्य, गजारण्य, वेदारण्य व नैमिष में ॥ ७ ॥ और श्रीपर्वत, श्रीरंग व श्रीमद्वृद्धिपर्वत और चिदम्बर, वल्मीक, शेषाद्रि व अरुणाचल पै ॥ ८ ॥ और श्रीमान् दक्षिणकैलास, वेङ्कटाद्रि, हरिस्थल, कांचीपुर, ब्रह्मपुर व वैद्येश्वरपुर में ॥ ९ ॥ व हे सत्तमो ! अन्य भी शिवस्थान व विष्णुस्थान में वर्षभर निवास के पुण्य को निस्सन्देह मनुष्य प्राप्त होता है यदि माघमहीने में धनुष्कोटि में हर्ष से स्नान करै और इस सेतु को उद्देश कर द्वौ समुद्रौ ऐसी श्रुति ॥ १० । ११ ॥ हे द्विजोत्तमो ! सनातनी व माताकी नाईं विद्यमान है व हे मुनिश्रेष्ठो ! जहां अदोयदारु ऐसी अन्य श्रुति है ॥ १२ ॥ वहां मनुष्य

नेकुम्भकोणे मायूरेश्वेतकानने ॥ हालास्येचगजारण्ये वेदारण्येचनैमिषे ॥ ७ ॥ श्रीपर्वतेचश्रीरङ्गे श्रीमद्वृद्धगिरौतथा ॥ चिदम्बरेचवल्मीके शेषाद्रावरुणाचले ॥ ८ ॥ श्रीमद्दक्षिणकैलासे वेङ्कटाद्रौहरिस्थले ॥ काञ्चीपुरेब्रह्मपुरे वैद्येश्वरपुरेतथा ॥ ९ ॥ अन्यत्रापिशिवस्थाने विष्णुस्थानेचसत्तमाः ॥ वर्षवासभवम्पुण्यं धनुष्कोटौनरोमुदा ॥ १० ॥ माघमासेयदिस्नायादाप्नोत्येवनसंशयः ॥ इमंसेतुंसमुद्दिश्य द्वौसमुद्रावितिश्रुतिः ॥ ११ ॥ विद्यतेब्राह्मणश्रेष्ठा मातृभूतासनातनी ॥ अदोयद्दारुरित्यन्या यत्रास्तिमुनिपुङ्गवाः ॥ १२ ॥ विष्णोःकर्माणिपश्यन्ते सेतुवैभवशंसिनी ॥ श्रुतिरस्तितथान्यापि तद्विष्णोरितिचापरा ॥ १३ ॥ इतिहासपुराणानि स्मृतयश्चतपोधनाः ॥ एकवाक्यतयासेतुमाहात्म्यंप्रब्रुवन्तिहि ॥ १४ ॥ चन्द्रसूर्योपरागेषु कुर्वन्सेत्ववगाहनम् ॥ अविमुक्तेदशाब्दन्तु गङ्गास्नानफलंलभेत् ॥ १५ ॥ कोटिजन्मकृतंपापं तत्क्षणेनैवनश्यति ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ १६ ॥ विषुवायनसंक्रान्तौ

विष्णु के कर्मों को देखते हैं और सेतुके प्रभाव को कहनेवाली तद्विष्णोः ऐसी अन्य श्रुति है ॥ १३ ॥ हे तपस्वियो ! इतिहास, पुराण व स्मृतियां एकवाक्यता से सेतु के माहात्म्य को कहती हैं ॥ १४ ॥ चन्द्रमा व सूर्यके ग्रहणों में सेतुका स्नान करताहुआ मनुष्य अविमुक्तक्षेत्र में दश वर्षतक गङ्गास्नान के फल को पाता है ॥ १५ ॥ और उसी क्षण कोटि जन्मों में किया हुआ पाप नाश होजाता है व हज़ार अश्वमेध यज्ञों के अति उत्तम फल को वह पाता है ॥ १६ ॥ और विषुवायन संक्रांति में

व सोमवार और पर्व में सेतुके दर्शनही से सात जन्मों का इकट्ठा हुआ पाप ॥ १७ ॥ नाश होजाता है व हे द्विजोत्तमो ! स्वर्ग की गति को प्राप्त होताहै और माघ में सूर्यनारायण के मकरराशि में स्थित होने पर कुछ सूर्योदय होने पर ॥ १८ ॥ तीन दिन धनुष्कोटि में नहाकर पापविहीन होता है व गंगादिक सब तीर्थों में नहाने के पुण्य को पाता है ॥ १९ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! जो मनुष्य पांच दिन धनुष्कोटि में स्नान करता है वह अश्वमेधादिक यज्ञ के पुण्य को पाता है ॥ २० ॥ और चान्द्रायणादिक कृच्छ्रों के अनुष्ठान के फल को पाता है व चारों वेदों के पारायणफल को पाता है ॥ २१ ॥ और माघ महीने में जो मनुष्य पंद्रह दिन धनुष्कोटि में स्नान करता

शशिवारेचपर्वणि ॥ सेतुदर्शनमात्रेण सप्तजन्मार्जिताशुभम् ॥ १७ ॥ नश्यतेस्वर्गतिश्चैव प्रयातिद्विजपुङ्गवाः ॥ मकरस्थे रवौमाघे किञ्चिदभ्युदितेरवौ ॥ १८ ॥ स्नात्वादिनत्रयंमर्त्यो धनुष्कोटौविपातकः ॥ गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नानपुण्यमवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ धनुष्कोटौनरःकुर्यात्स्नानम्पञ्चदिनेषुयः ॥ अश्वमेधादिपुण्यञ्च प्राप्नुयाद्ब्राह्मणोत्तमाः ॥ २० ॥ चान्द्रायणादिकृच्छ्राणामनुष्ठानफलंलभेत् ॥ चतुर्णामपिवेदानां पारायणफलंतथा ॥ २१ ॥ माघमासेधनुष्कोटौ दशपञ्चदिनानियः ॥ स्नानंकरोतिमनुजः सवैकुण्ठमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥ माघमासेरामसेतौ स्नानंविंशद्दिनञ्चरन् ॥ शिवसामीप्यमाप्नोति शिवेनसहमोदते ॥ २३ ॥ पञ्चविंशद्दिनंस्नानं कुर्वन्सारूप्यमाप्नुयात् ॥ स्नानंत्रिंशद्दिनंकुर्वन्सायुज्यंलभतेध्रुवम् ॥ २४ ॥ अतोवश्यंरामसेतौ माघमासेद्विजोत्तमाः ॥ स्नानंसमाचरेद्विद्वान्किञ्चिदभ्युदितेरवौ ॥ २५ ॥ चन्द्रसूर्योपरागेच तथैवार्द्धोदयेद्विजाः ॥ महोदयेरामसेतौ स्नानंकुर्वन्नरोत्तमाः ॥ २६ ॥ अनेकक्लेशसंयुक्त

है वह वैकुंठ को पाता है ॥ २२ ॥ और माघ महीने में बीस दिन रामसेतु में स्नानकरता हुआ मनुष्य शिवजी की सायुज्य मुक्ति को पाता है और शिवजी के साथ आनन्द करता है ॥ २३ ॥ व पचीस दिन स्नान करता हुआ मनुष्य सारूप्य मुक्तिको पाता है और तीस दिन उस में स्नान करता हुआ पुरुष निश्चय कर सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ २४ ॥ इस कारण हे द्विजोत्तमो ! माघ महीने में कुछ सूर्यनारायण उदय होने पर अवश्य कर विद्वान् रामसेतु में स्नान करै ॥ २५ ॥ हे ब्राह्मणो ! चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण में व अर्द्धोदय में बड़े प्रभाववाले रामसेतु में स्नान करता हुआ मनुष्य ॥ २६ ॥ अनेक क्लेशों से संयुत गर्भवास को नहीं देखता

है और वह ब्रह्महत्यादिक पातकों का नाशक कहागया है ॥ २७ ॥ व सब नरकों का बाधक कहागया है और सब संपदाओं का आदिकारण कहागया है ॥ २८ ॥ व हे ब्राह्मणो ! इन्द्रादिक सब लोकों की सालोक्य मुक्ति का दायक कहागया है व हे ब्राह्मणो ! चन्द्रमा तथा सूर्य के ग्रहण में व अर्द्धोदययोग में ॥ २९ ॥ व महोदययोग में धनुष्कोटि तीर्थ में स्नान करना अत्यन्त निश्चित हैं पुरातन समय श्रीरामजी ने उस तीर्थ को रावण के नाश के लिये निर्माण किया है ॥ ३० ॥ जो कि सिद्ध, चारण, गंधर्व, किन्नर व नागों से सेवित तथा ब्रह्मर्षि, देवर्षि व राजर्षि तथा पितृगणों से सेवित है ॥ ३१ ॥ व ब्रह्मादि सुरगणों से भक्तिपूर्वक सेवित है हे ब्राह्मणो !

गर्भवासंनपश्यति ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां नाशकञ्चप्रकीर्तितम् ॥ २७ ॥ सर्वेषांनरकाणाञ्च बाधकम्परिकीर्तितम् ॥ सम्पदामपिसर्वासां निदानम्परिकीर्तितम् ॥ २८ ॥ इन्द्रादिसर्वलोकानां सालोक्यादिप्रदंतथा ॥ चन्द्रसूर्योपरागेच तथैवार्द्धोदयेद्विजाः ॥ २९ ॥ महोदयेधनुष्कोटौ मज्जनंत्वतिनिश्चितम् ॥ रावणस्यविनाशार्थं पुरारामेणनिर्मितम् ॥ ३० ॥ सिद्धचारणगन्धर्वकिन्नरोरगसेवितम् ॥ ब्रह्मदेवर्षिराजर्षिपितृसङ्घनिषेवितम् ॥ ३१ ॥ ब्रह्मादिदेवतावृन्दैस्सेवितम्भक्तिपूर्वकम् ॥ पुण्यंयोरामसेतुंवै संस्मरन्पुरुषोद्विजाः ॥ ३२ ॥ स्नायाच्चयत्रकुत्रापि तटाकादौजलान्विते ॥ नतस्यदुष्कृतंकिञ्चिद्भविष्यतिकदाचन ॥ ३३ ॥ सेतुमध्यस्थतीर्थेषु मुष्टिमात्रप्रदानतः ॥ नश्यन्तिसकलारोगा भ्रूणहत्यादयस्तथा ॥ ३४ ॥ रामेणधनुषःपुण्यां योरेखांपश्यतेकृताम् ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्वैकुण्ठात्स्यात्कदाचन ॥ ३५ ॥ धनुष्कोटिरितिख्याता यालोकेपापनाशिनी ॥ विभीषणप्रार्थनया कृतारामेणधीमता ॥ ३६ ॥ धनुष्कोटिर्महापुण्या

पवित्र रामसेतुको स्मरण करता हुआ जो मनुष्य ॥ ३२ ॥ जल से संयुत जहां कहीं भी तडागादिकों में स्नान करता है उसको कभी कुछ पाप न होगा ॥ ३३ ॥ और सेतु के मध्य में स्थित तीर्थों में मुट्ठी भर अन्न देनेसे सब रोग व गर्भहत्यादिक नाश होजाते हैं ॥ ३४ ॥ व रामजी से धनुष से कीहुई पवित्र रेखा को जो देखताहै कभी वैकुण्ठ से उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ३५ ॥ संसार में जो पापविनाशिनी धनुष्कोटि ऐसी प्रसिद्धहै उसको बुद्धिमान् श्रीरामजी ने विभीषणकी प्रार्थना से कियाहै ॥ ३६ ॥ और

जो महापवित्र धनुष्कोटि है उसमें भक्ति समेत नहाकर द्रव्य, क्षेत्र व गौवों का दान देवै ॥ ३७ ॥ और तिल, तण्डुल, धान्य, दूध, वस्त्र, भूषण व उड़द और भात ॥ ३८ ॥ व दही, घृत, जल, शाक, मठा और शुद्ध शक्कर व अन्न, शहद ॥ ३९ ॥ तथा लड्डू व पुवों का दान व अन्य वस्तुवोंका दान हे ब्राह्मणो! रामसेतु पै सब मनोरथों का दायक कहागया है ॥ ४० ॥ इस कारण द्रव्य लोभ से रहित मनुष्य रामसेतु पै दान को देवै क्योंकि श्रीरामजी की धनुष्कोटि में दान, हवन, तप, जप व नियमादिक अनन्त फलदायक होता है और उससे देवता प्रसन्न होते हैं व पितर प्रसन्न होते हैं ॥ ४१ । ४२ ॥ और सब मुनि व ब्रह्मा, विष्णु

तस्यांस्नात्वासभक्तिकम् ॥ दद्याद्दानानिवित्तानां क्षेत्राणाञ्चगवांतथा ॥ ३७ ॥ तिलानांतण्डुलानाञ्च धान्यानांपयसांतथा ॥ वस्त्राणाम्भूषणानाञ्च माषाणामोदनस्यच ॥ ३८ ॥ दध्नांघृतानांवारीणां शाकानामप्युदश्वितास् ॥ शुद्धानांशर्कराणाञ्च सस्यानांमधुनांतथा ॥ ३९ ॥ मोदकानामपूपानामन्येषांदानमेवच ॥ रामसेतौद्विजाःप्रोक्तं सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥ ४० ॥ अतोदद्याद्रामसेतौ वित्तलोभविवर्जितः ॥ दत्तंहुतञ्चतप्तञ्च जपश्चनियमादिकम् ॥ ४१ ॥ श्रीरामधनुषःकोटावनन्तफलदम्भवेत् ॥ तेनदेवाश्चतुष्यन्ति तुष्यन्तिपितरस्तथा ॥ ४२ ॥ तुष्यन्तिमुनयःसर्वे ब्रह्माविष्णुःशिवस्तथा ॥ नागाःकिम्पुरुषायक्षाः सर्वेतुष्यन्तिनिश्चितम् ॥ ४३ ॥ स्वयञ्चपूतोभवति धनुष्कोटयवलोकनात् ॥ स्ववंशजान्नरान्सर्वान्पावयेच्चपितामहान् ॥ ४४ ॥ तारयेच्चकुलंसर्वं धनुष्कोटयवलोकनात् ॥ रामस्यधनुषःकोटया कृतरेखावगाहनात् ॥ ४५ ॥ पञ्चपातककोटीनां नाशःस्यात्तत्क्षणेध्रुवम् ॥ श्रीरामधनुषःकोटया रेखांयःपश्य

और शिवजी प्रसन्न होते हैं और नाग, किंपुरुष व यक्ष सब निश्चय कर प्रसन्न होते हैं ॥ ४३ ॥ और धनुष्कोटि के देखने से आप पवित्र होता है व अपने वंश में पैदाहुए सब पितामह पुरुषों को भी पवित्र करता है ॥ ४४ ॥ और धनुष्कोटि को देखने से मनुष्य सब वंश को तारता है व रामजी के धनुष की कोटि से कीहुई रेखा में स्नान करने से ॥ ४५ ॥ उसी क्षण पांच करोड़ पातकों का नाश होजाता है व श्रीरामजी के धनुष की कोटि से कीहुई रेखा को जो देखता

है ॥ ४६ ॥ वह अनेक क्लेशों से संपूर्ण गर्भवास को नहीं देखता है और जहां सीताजी अग्निमें प्राप्तहुई हैं उस कुंड में नहाने से ॥ ४७ ॥ हे ब्राह्मणो ! सैकड़ों गर्भहत्या क्षण भर में नाश होजाती हैं जैसे रामजी हैं वैसाही सेतु है और जैसी गंगाजी हैं वैसेहीं विष्णुजी हैं ॥ ४८ ॥ इसकारण हे गंगे ! हे हरे ! हे राम ! हे सेतो ! ऐसा कहता हुआ मनुष्य जहां कहीं भी बाहर स्नान करै उससे उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ४९ ॥ गंधमादन पर्वत पै सेतु में अर्द्धोदय योग में नहाकर जो पितरों को उद्देशकर सरसों भर पिंडों को देता है ॥ ५० ॥ उसके पितर जब तक चंद्रमा व सूर्य रहते हैं तबतक तृप्ति को प्राप्त होते हैं पितरों को उद्देश कर भक्ति से शमीपत्र के प्रमाण

तेकृताम् ॥ ४६ ॥ अनेकक्लेशसम्पूर्णं गर्भवासंनपश्यति ॥ यत्रसीतानलम्प्राप्ता तस्मिन्कुण्डेनिमज्जनात् ॥ ४७ ॥ भ्रूणहत्याशतंविप्रा नश्यन्तिक्षणमात्रतः ॥ यथारामस्तथासेतुर्यथागङ्गातथाहरिः ॥ ४८ ॥ गङ्गेहरेरामसेतो त्वितिसंकीर्तयन्नरः ॥ यत्रकापिबहिःस्नायात्तेनयातिपराङ्गतिम् ॥ ४९ ॥ सेतावर्धोदयेस्नात्वा गन्धमादनपर्वते ॥ पितॄनुद्दिश्ययः पिण्डान्दद्यात्सर्षपमात्रकम् ॥ ५० ॥ पितरस्तृप्तिमायान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ शमीपत्रप्रमाणन्तु पितॄनुद्दिश्यभक्तितः ॥ ५१ ॥ द्विजेनपिण्डंदत्तंचेत्सर्वपापविमोचितः ॥ स्वर्गस्थोमुक्तिमायाति नरकस्थोदिवंव्रजेत् ॥ ५२ सेतौचपद्मनाभेच गोकर्णेपुरुषोत्तमे ॥ उदन्वदम्भसिस्नानं सार्वकालिकमीप्सितम् ॥ ५३ ॥ शुक्राङ्गारकसौरीणां वारेषुलवणाम्भसि ॥ सन्तानकामीनस्नायात्सेतोरन्यत्रकर्हिचित् ॥ ५४ ॥ अकृतप्रेतकार्योवा गर्भिणीपतिरेववा ॥ नस्नायादुदधौविद्वान्सेतोरन्यत्रकर्हिचित् ॥ ५५ ॥ नकालापेक्षणंसेतोर्नित्यस्नानंप्रशस्यते ॥ वारतिथ्यृक्षनियमाः सेतोरन्यत्रहि

भर ॥ ५१ ॥ यदि ब्राह्मणों से पिंड दिया जाताहै तो सब पापोंसे छूटकर स्वर्ग में टिका हुआ पुरुष मुक्ति को प्राप्त होताहै और नरक में टिका हुआ मनुष्य स्वर्ग को जाता हैं ॥ ५२ ॥ और सेतु, पद्मनाभ, गोकर्ण व पुरुषोत्तम तथा समुद्र के जल में स्नान सब समयों में प्रिय है ॥ ५३ ॥ और शुक्र, मंगल व शनैश्चर के दिन सेतु से अन्यत्र क्षारसमुद्र में कहीं संतान को चाहनेवाला पुरुष स्नान न करैं ॥ ५४ ॥ व प्रेतकार्य को न किये तथा गर्भिणी का पति विद्वान् पुरुष सेतु से अन्यत्र कहीं समुद्र में स्नान न करै ॥ ५५ ॥ समय की अपेक्षा नहीं है किन्तु सेतु का स्नान सदैव उत्तम है हे ब्राह्मणो ! दिन, तिथि व नक्षत्र के नियम सेतु से अन्यत्र

हैं॥ ५६ ॥ जीतेहुए पुरुषोंको उद्देश कर नहावै और मरेहुए लोगों को उद्देश कर न स्नान करै बरन कुशों से प्रतिमाको बनाकर इस मंत्र को कहकर प्रसन्न इन्द्रिय व मन वाला पुरुष तीर्थ के जलसे स्नान करावै कि तुम कुश हो व पवित्र हो और पुरातन समय विष्णुजी से धारण कियेगये हो ॥ ५७ । ५८ ॥ और तुम्हारे नहाने पर वह नहाया हुआ होगा कि जिसका यह ग्रन्थिबन्धन है सदैव पर्व पर्व में समुद्र पुण्यरूप होता है ॥ ५९ ॥ सेतु व नदी तथा समुद्र के संगम में और गंगा सागर के संगम में व गोकर्ण तथा पुरुषोत्तम में सदैव स्नान कहागया है ॥ ६० ॥ और बिन पर्व में अन्यत्र कहीं समुद्र को स्पर्श न करै क्योंकि पितरों व सब देवताओं तथा

द्विजाः ॥ ५६ ॥ उद्दिश्यजीवतःस्नायान्नतुस्नायान्मृतान्प्रति ॥ कुशैःप्रतिकृतिंकृत्वा स्नापयेत्तीर्थवारिभिः ॥ ५७ ॥ इमं मन्त्रंसमुच्चार्य प्रसन्नेन्द्रियमानसः ॥ कुशोसित्वंपवित्रोसि विष्णुनाविधृतःपुरा ॥ ५८ ॥ त्वयिस्नातेसचस्नातो यस्यै तद्ग्रन्थिबन्धनम् ॥ सर्वत्रसागरःपुण्यः सदापर्वणिपर्वणि ॥ ५९ ॥ सेतौसिन्ध्वब्धिसंयोगे गङ्गासागरसङ्गमे ॥ नित्य स्नानंहिनिर्दिष्टं गोकर्णेपुरुषोत्तमे ॥ ६० ॥ नापर्वणिसरिन्नाथं स्पृशेदन्यत्रकर्हिचित् ॥ पितॄणांसर्वदेवानां मुनीनामपि शृण्वताम् ॥ ६१ ॥ प्रतिज्ञामकरोद्रामः सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥ मयाह्यत्रकृतेसेतौ स्नानंकुर्वन्तियेनराः ॥ ६२ ॥ मत्प्रसादे नतेसर्वे नयास्यन्तिपुनर्भवम् ॥ नश्यन्तिसर्वपापानि मत्सेतोरवलोकनात् ॥ ६३ ॥ रामनाथस्यमाहात्म्यं मत्सेतोरपिवै भवम् ॥ नाहंवर्णयितुंशक्तो वर्षकोटिशतैरपि ॥ ६४ ॥ इतिरामस्यवचनं श्रुत्वादेवमहर्षयः ॥ साधुसाध्वितिसन्तुष्टाः प्रशशंसुश्चतद्वचः ॥ ६५ ॥ सेतुमध्येचतुर्वक्त्रः सर्वदेवसमन्वितः ॥ अध्यास्तेतस्यरक्षार्थमीश्वरस्याज्ञयासदा ॥ ६६ ॥ रक्षा

मुनियों के भी सुनते हुए ॥ ६१ ॥ सीता व लक्ष्मण समेत श्रीरामजी ने प्रतिज्ञा किया कि मुझ से कियेहुए इस सेतु में जो स्नान करेंगे ॥ ६२ ॥ मेरी प्रसन्नता से वे सब फिर जन्म को न पावैंगे और मेरे सेतु को देखने से सब पाप नाश होजाते हैं ॥ ६३ ॥ रामनाथ का माहात्म्य व मेरे सेतुके भी प्रभाव को करोड़ सौ वर्षों से भी मैं कहने के लिये नहीं समर्थ हूं ॥ ६४ ॥ श्रीरामजी के इस वचनको सुनकर प्रसन्न होतेहुए देवता व महर्षियों ने बहुत अच्छा बहुत अच्छा इस प्रकार उस वचन की प्रशंसा किया ॥ ६५ ॥ और ईश्वर की आज्ञा से उसकी रक्षा के लिये सब देवताओं से संयुत ब्रह्माजी सदैव सेतु के मध्य में स्थित रहते हैं ॥ ६६ ॥ बेड़ियों से

धेहुए महाविष्णुजी रक्षा के लिये रामसेतु पै सेतुमाधव की संज्ञा से स्थित रहते हैं ॥ ६७ ॥ धर्मशास्त्र के प्रवर्तक महर्षि व पितर और किन्नरों व महानागों समेत तथा गन्धर्वों समेत देवता ॥ ६८ ॥ विद्याधर, चारण, यक्ष व किंपुरुष और अन्य सब प्राणी इस पै दिनरात बसते हैं ॥ ६९ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वही यह देखा, सुना व स्मरण किया तथा स्पर्श किया व नहायाहुआ रामसेतु सब पातक से रक्षा करता है ॥ ७० ॥ अर्द्धोदय में सेतु में स्नान करना आनन्दके मिलने का कारण व मुक्तिदायक तथा महापुण्यदायक और महानरकों का नाशक है ॥ ७१ ॥ पौष महीने में जब सूर्यनारायण श्रवण नक्षत्र में स्थित होवैं तब रविवार में कुछ सूर्यनारायणके उदय होने

थैरामसतौहि सेतुमाधवसंज्ञया ॥ महाविष्णुःसमध्यास्ते निबद्धोनिगडेनवै ॥ ६७ ॥ महर्षयश्चापितरो धर्मशास्त्र प्रवर्तकाः ॥ देवाश्चसहगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥ ६८ ॥ विद्याधराश्चारणाश्च यक्षाःकिम्पुरुषास्तथा ॥ अन्यानिसर्वभूतानि वसन्त्यस्मिन्नहर्निशम् ॥ ६९ ॥ सोयंदृष्टःश्रुतोवापि स्मृतःस्पृष्टोवगाहितः ॥ सर्वस्माद्दुरितात्पाति रामसेतुर्द्विजोत्तमाः ॥ ७० ॥ सेतावर्धोदयेस्नानमानन्दप्राप्तिकारणम् ॥ मुक्तिप्रदम्महापुण्यं महानरकनाशनम् ॥ ७१ ॥ पौषेमासेविष्णुभस्थेदिनेशे भानोर्वारेकिञ्चिदुद्यद्दिनेशे ॥ युक्तामाचेन्नागहीनातुपाते विष्णोर्ऋक्षेपुण्यमर्धोदयंस्यात् ॥ ७२ ॥ तस्मिन्नर्धोदयेसेतौ स्नानंसायुज्यकारणम् ॥ व्यतीपातसहस्रेण दर्शमेकंसमंस्मृतम् ॥ ७३ ॥ दर्शायुतसमंपुण्यं भानुवारोभवेद्यदि ॥ श्रवणर्क्षंयदिभवेद्भानुवारेणसंयुतम् ॥ ७४ ॥ पुण्यमेवतुविज्ञेयमन्योन्यस्यैवयोगतः ॥ एकैकमध्यमृतदं स्नानदानजपार्चनात् ॥ ७५ ॥ पञ्चस्वपिचयुक्तेषु किमुवक्तव्यमत्रहि ॥ श्रवणंज्योतिषांश्रेष्ठममा

पर यदि नाग करण से हीन अमावस युक्त होवै तो व्यतीपात योग व श्रवण नक्षत्र में अर्द्धोदय योग पुण्यदायक होताहै ॥ ७२ ॥ उस अर्द्धोदय योग में सेतु में स्नान सायुज्य मुक्ति का कारण है हज़ार व्यतीपात के बराबर एक अमावस कहीगई है ॥ ७३ ॥ और यदि रविवार होवै तो दश हज़ार अमावस के समान पुण्यवान् होता है और यदि रविवार से संयुत श्रवण नक्षत्र होवै ॥ ७४ ॥ तो परस्पर के योग से पुण्यही जानने योग्य हैं और स्नान, दान, जप व पूजन से एक एक भी मोक्षदायक है ॥ ७५ ॥ और पांचों के भी युक्त होने पर इस विषय में क्या कहना है नक्षत्रों के मध्य में श्रवण श्रेष्ठ है और तिथियों में अमावस

श्रेष्ठ है ॥ ७६ ॥ और योगों के मध्य में व्यतीपात तथा दिनों के मध्य में रविवार श्रेष्ठ है मकरराशि में सूर्यनारायण के स्थित होने पर जो चारों का भी योग है ॥ ७७ ॥ उस समय यदि मनुष्य रामसेतु में स्नान करै तो माता के गर्भ को नहीं प्राप्त होता है बरन सायुज्य मुक्तिको पाता है ॥ ७८ ॥ अर्द्धोदय योग के समान समय न हुआ है न होवैगा इस प्रकार महोदय समय धर्मकाल कहागया है ॥ ७९ ॥ इन पुण्यसमयों में सेतु पै दान कहागया है और आचार, तप, वेद व वेदान्त का श्रवण ॥ ८० ॥ और शिव व विष्णु आदिक देवताओं का पूजन व पुराणों के अर्थों का कहना जिस ब्राह्मण में विद्यमान होवै वह दानपात्र कहाजाता है ॥ ८१ ॥ सेतु पै उस पात्ररूप

श्रेष्ठातिथिष्वपि ॥ ७६ ॥ व्यतीपातन्तुयोगानां वारंवारेषुवैरवेः ॥ चतुर्णामपियोयोगो मकरस्थेरवौभवेत् ॥ ७७ ॥ तस्मिन्कालेरामसेतौ यदिस्नायात्तुमानवः ॥ गर्भंनमातुराप्नोति किन्तुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ७८ ॥ अर्धोदयसमः कालो नभूतोनभविष्यति ॥ एवम्महोदयःकालो धर्मकालःप्रकीर्तितः ॥ ७९ ॥ एतेषुपुण्यकालेषु सेतौदानम्प्रकीर्तितम् ॥ आचारश्चतपोवेदो वेदान्तश्रवणंतथा ॥ ८० ॥ शिवविष्ण्वादिपूजापि पुराणार्थप्रवक्तृता ॥ यस्मिन्विप्रेतुविद्यते दानपात्रंतदुच्यते ॥ ८१ ॥ पात्रायतस्मैदानानि सेतौदद्याद्द्विजातये ॥ यदिपात्रंनलभ्येत सेतावाचारसंयुतम् ॥ ८२ ॥ संकल्प्योद्दिश्यसत्पात्रं प्रदद्याद्ग्राममागतः ॥ अतोनाधमपात्राय दातव्यम्फलकाङ्क्षिभिः ॥ ८३ ॥ अत्रेतिहासंवक्ष्यामि वसिष्ठोक्तमनुत्तमम् ॥ दिलीपायमहाराज्ञे दानपात्रविवित्सवे ॥ ८४ ॥ दिलीप उवाच ॥ दानानिकस्मैदेयानि ब्रह्मपुत्रपुरोहित ॥ एतन्मेतत्त्वतोब्रूहि त्वच्छिष्यस्यमहामुने ॥ ८५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ पात्राणामुत्तमंपात्रं वेदाचारपरा

ब्राह्मण के लिये दानों को देवै और यदि सेतु पै आचार से संयुत पात्र न मिलै ॥८२॥ तो गांव में आकर सत्पात्र को उद्देश कर संकल्प करके देवै इस कारण फल को चाहनेवाले पुरुषों को नीचपात्र के लिये न देनाचाहिये ॥ ८३ ॥ इस विषय में दानपात्र को जानने की इच्छावाले दिलीप महाराजाके लिये वसिष्ठजी से कहेहुए अतिउत्तम इतिहास को मैं कहताहूं ॥ ८४ ॥ दिलीपजी बोले कि हे पुरोहित, ब्रह्मपुत्र, महामुने ! किसके लिये दानों को देना चाहिये अपने शिष्य मुझ से इसको तुम यथार्थ कहो ॥८५॥ वसिष्ठजी बोले

कि वेद व आचार में लगाहुआ ब्राह्मण पात्रों के मध्य में उत्तम पात्र है और जिसके पेट में शूद्र का अन्न न होवै वह उससे भी अधिक पात्र है ॥ ८६ ॥ और वेद व पुराण के मन्त्र तथा शिव व विष्णु आदि का पूजन तथा वर्ण व आश्रमादिकों का अनुष्ठान जिसके सदैव वर्तमान होवै ॥ ८७ ॥ और जो निर्धनी व कुटुम्बी होवै वह श्रेष्ठ पात्र कहाजाता है उस पात्र में दियाहुआ दान धर्म, काम, अर्थ व मोक्षदायक है ॥ ८८ ॥ व पुण्यस्थल में विशेष कर सत्पात्र में प्राप्त दान हित है नहीं तो दश जन्मों तक गिरगिट होगा ॥ ८९ ॥ और तीन जन्म तक गधा व दो जन्मों में मेढक और एक जन्म में चाण्डाल तदनन्तर शूद्र होगा ॥ ९० ॥ तदनन्तर क्रमसे क्षत्रिय, वैश्य

यणः ॥ तस्मादप्यधिकम्पात्रं शूद्रान्नंयस्यनोदरे ॥ ८६ ॥ वेदाःपुराणमन्त्राश्च शिवविष्ण्वादिपूजनम् ॥ वर्णाश्रमाद्यनुष्ठानं वर्ततेयस्यसन्ततम् ॥ ८७ ॥ दरिद्रश्चकुटुम्बीच तत्पात्रंश्रेष्ठमुच्यते ॥ तस्मिन्पात्रेप्रदत्तंवै धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥ ८८ ॥ पुण्यस्थलेविशेषेण दानंसत्पात्रगंहितम् ॥ अन्यथादशजन्मानि कृकलासोभविष्यति ॥ ८९ ॥ जन्मत्रयंरासभःस्यान्मण्डूकश्चद्विजन्मनि ॥ एकजन्मनिचण्डालस्ततःशूद्रोभविष्यति ॥ ९० ॥ ततश्चक्षत्रियोवैश्यः क्रमाद्विप्रश्चजायते ॥ दरिद्रश्चभवेत्तत्र बहुरोगसमन्वितः ॥ ९१ ॥ एवम्बहुविधादोषा दुष्टपात्रप्रदानतः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्पात्रेषुप्रदापयेत् ॥ ९२ ॥ नलभ्यतेचेत्सत्पात्रं तदासङ्कल्पपूर्वकम् ॥ एकंसत्पात्रमुद्दिश्य प्रक्षिपेदुदकम्भुवि ॥ ९३ ॥ उद्दिष्टपात्रस्यमृतौ तत्पुत्रायसमर्पयेत् ॥ तस्यापिमरणेप्राप्ते महादेवेसमर्पयेत् ॥ ९४ ॥ अतोनाधमपात्राय दद्यात्तीर्थेविशेषतः ॥ श्रीसूत उवाच ॥ एवमुक्तोवसिष्ठेन दिलीपःसद्विजोत्तमाः ॥ ९५ ॥ तदाप्रभृतिसत्पात्रे प्रायच्छद्दानमु

और ब्राह्मण होता है व उसमें निर्धनी तथा बहुत रोगों से संयुत होता है ॥ ९१ ॥ इस प्रकार दुष्टपात्र को देने से बहुत भांति के दोष होते हैं उस कारण सब यत्न से सत्पात्रों में देवै ॥ ९२ ॥ यदि सत्पात्र न मिलै तो संकल्पपूर्वक एक सत्पात्र को उद्देशकर पृथ्वी में जल को फेंक देवै ॥ ९३ ॥ और उद्दिष्ट पात्र के मरने पर उसके पुत्रके लिये देवै और उसका भी मरण प्राप्तहोने पर महादेव में अर्पण करै ॥ ९४ ॥ इस कारण तीर्थ में विशेष कर अधम पात्र के लिये न देवै श्रीसूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! वसिष्ठजी से इस प्रकार कहेहुए उन दिलीप ने ॥ ९५ ॥ तब से लगाकर सत्पात्र में उत्तम दान दिया इस कारण हे मुनिश्रेष्ठो ! इस

पुण्यस्थल सेतु में भी ॥ ९६ ॥ यदि उत्तम पात्र मिलै तो धनादिक देवै नहीं तो संकल्पपूर्वक उत्तम विशिष्ट पात्र को ॥ ९७ ॥ उद्देश कर पात्र से संयुत पुरुष जल को पृथ्वी में डाल देवै और पश्चात् अपने गाव को आकर पूर्व संकल्पित द्रव्य को उस पात्र में अर्पण करै नहीं तो धर्म का लोप होता है और फिर दुःख को नहीं पाता है बरन सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ ९८ । ९९ ॥ अर्द्धोदययोग के समान समय न हुआ है न होवैगा कुम्भकोण, सेतुमूल, गोकर्ण व नैमिष ॥ १०० ॥ और अयोध्या, दण्डकारण्य, विरूपाक्ष, वेंकट, सालिग्राम, प्रयाग, काची व द्वारकापुरी ॥ १ ॥ और मथुरा, पद्मनाभ और शिवस्थान काशी और सब नदियां व समुद्र तथा जो

त्तमम् ॥ अतःपुण्यस्थलेसेतावत्रापिमुनिपुङ्गवाः ॥ ९६ ॥ यदिलभ्येतसत्पात्रं तदाद्द्याद्धनादिकम् ॥ नोचेत्सङ्कल्पपूर्वन्तु विशिष्टम्पात्रमुत्तमम् ॥ ९७ ॥ समुद्दिश्यजलम्भूमौ प्रक्षिपेत्पात्रसंयुतः ॥ स्वग्राममागतःपश्चात्तस्मिन्पात्रेसमर्पयेत् ॥ ९८ ॥ पूर्वसङ्कल्पितंवित्तं धर्मलोपोन्यथाभवेत् ॥ नदुःखंपुनराप्नोति किन्तुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ९९ ॥ अर्धोदयसमःकालो नभूतोनभविष्यति ॥ कुम्भकोणंसेतुमूलं गोकर्णंनैमिषंतथा ॥ १०० ॥ अयोध्यादण्डकारण्यं विरूपाक्षंचवेङ्कटम् ॥ सालिग्रामंप्रयागञ्च काञ्चीद्वारावतीतथा ॥ १ ॥ मधुरापद्मनाभञ्च काशीविश्वेश्वरालया ॥ नद्यःसर्वाःसमुद्राश्च पर्वतंभास्करंस्मृतम् ॥ २ ॥ मुण्डनञ्चोपवासश्च क्षेत्रेष्वेषुप्रकीर्तितम् ॥ लोभान्मोहादकृत्वायः स्वगृहंयातिमानवः ॥ ३ ॥ सहैवयान्तितद्गेहे पातकानिचतेनवै ॥ चतुर्विंशतितीर्थानि पर्वतेगन्धमादने ॥ ४ ॥ तत्रलक्ष्मणतीर्थंतु वपनंमुनिभिःस्मृतम् ॥ तीरेलक्ष्मणतीर्थस्य लोमवर्ज्यंशिवाज्ञया ॥ ५ ॥ शिरोमात्रस्यवपनं कृत्वादत्त्वाचदक्षिणाम् ॥

भास्कर पर्वत कहागया है ॥ २ ॥ इन क्षेत्रों में मुण्डन व उपवास कहागया है और लोभ व मोह से जो मनुष्य मुण्डन व उपवास न करके अपने घर को जाता है ॥ ३ ॥ उसके साथही पातक उसके घर में चलेजाते हैं गन्धमादन पर्वत पै चौबीस तीर्थ हैं ॥ ४ ॥ और वहां लक्ष्मणतीर्थ में मुनियों से मुंडन कहागया है और लक्ष्मणतीर्थ के किनारे शिवजी की आज्ञा से लोम रहित क्षौर करना चाहिये ॥ ५ ॥ केवल शिर भर का क्षौर कर लक्ष्मणतीर्थ में नहाकर व दक्षिणा को

देकर लक्ष्मण शंकरजी को देखकर ॥ ६ ॥ सब पापों से छूटाहुआ मनुष्य शंकरजी को प्राप्त होता है इसप्रकार अर्द्धोदययोग में सदैव सेतु में स्नानकरै ॥ ७ ॥ सेतुतीर्थ के समान अन्य तीर्थ नहीं है व सेतुतीर्थ के समान तप नहीं है व सेतुतीर्थ के समान पुण्य नहीं है और सेतुतीर्थ के समान गति नहीं है ॥ ८ ॥ हज़ार ग्रहणों के समान अर्द्धोदययोग कहागया है और अर्द्धोदययोग के समान संसार से छुड़ानेवाला तीर्थ नहीं है ॥ ९ ॥ और उस अर्द्धोदययोग में यदि रामसेतु में स्नान होवै तो सब शास्त्रों में सदैव उसके समान पुण्य नहीं है ॥ १० ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! साठ हज़ार वर्ष गंगाजी में स्नान से जो पुण्य ऋषियों से कहागया है वह

स्नात्वालक्ष्मणतीर्थेच दृष्ट्वालक्ष्मणशङ्करम् ॥ ६ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शङ्करंयातिमानवः ॥ अर्धोदयेसदास्नानं सेतावेवंसमाचरेत् ॥ ७ ॥ नास्तिसेतुसमंतीर्थं नास्तिसेतुसमंतपः ॥ नास्तिसेतुसमम्पुण्यं नास्तिसेतुसमागतिः ॥ ८ ॥ उपरागसहस्रेण सममर्धोदयंस्मृतम् ॥ अर्धोदयसमःकालो नास्तिसंसारमोचकः ॥ ९ ॥ तस्मिन्नर्धोदयेरामसेतौस्नानंतुयद्भवेत् ॥ नतत्तुल्यंभवेत्पुण्यं सर्वशास्त्रेषुसर्वदा ॥ १० ॥ षष्टिर्वर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहनात् ॥ यत्पुण्यमृषिभिर्दिष्टं तत्पुण्यम्मुनिपुङ्गवाः ॥ ११ ॥ एकवारंरामसेतौ स्नानात्सिध्यतिनिश्चितम् ॥ अर्द्धोदयेविशेषेण तथैवचमहोदये ॥ १२ ॥ मकरस्थेरवौमाघे प्रयागेपापमोचने ॥ माघस्नानसहस्रेण यत्पुण्यंलभतेनरः ॥ १३ ॥ तस्मिन्नर्धोदये विप्रा रामसेतौ निमज्जनात् ॥ एकवारेणतत्पुण्यं लभतेनात्रसंशयः ॥ १४ ॥ त्रैलोक्यस्थेषुतीर्थेषु स्नातानांयत्फलंभवेत् ॥ सकृदर्द्धोदयेसेतौ स्नात्वातत्पुण्यभाग्भवेत् ॥ १५ ॥ ब्रह्मज्ञानविहीनानां कृतघ्नानांदुरात्मनाम् ॥ पापिनामित

पुण्य ॥ ११ ॥ एकबार रामसेतु में नहाने से निश्चय कर सिद्ध होता है और अर्द्धोदय व महोदययोग में विशेषकर सिद्ध होता है ॥ १२ ॥ और माघ महीने में मकर राशि में सूर्यनारायण के स्थित होनेपर पापमोचक प्रयाग तीर्थ में मनुष्य हज़ार माघस्नान से जिस पुण्य को पाता है ॥ १३ ॥ हे ब्राह्मणो ! उस अर्द्धोदय योग में एकबार रामसेतु में नहाने से मनुष्य उस पुण्य को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥ त्रिलोक में स्थित तीर्थों में नहायेहुए लोगों को जो फल होता है अर्द्धोदययोग में एकबार सेतु में नहाकर उस पुण्य का भागी होता है ॥ १५ ॥ ब्रह्मज्ञान से विहीन व कृतघ्न तथा दुष्टात्मक पापी व अन्य महा-

पापियों की ॥ १६ ॥ अर्द्धोदययोग में सेतु में नहाने से निश्चय कर शुद्धि होती है और अन्यस्थल में किसी प्रकार कृतघ्नों का प्रायश्चित्त नहीं होता है ॥ १७ ॥ व अर्द्धोदययोग में नहाने से उनका भी प्रायश्चित्त होता है अर्द्धोदययोग में जो मनुष्य मोह से सेतु में स्नान नहीं करते हैं ॥ १८ ॥ वे संसार में डूबते हैं जैसे कि अन्ध नीचे गिरते हैं अर्द्धोदययोग में सेतु में नहाकर मनुष्य सूर्यमण्डल को फोड़ कर ॥ १९ ॥ ब्रह्मलोक को जावैंगे इसमें विचार न करना चाहिये अर्द्धोदय प्राप्त होने पर मुक्तिदायक सेतु में नहाकर ॥ २० ॥ सीतासमेत जगदीश रघुनाथजी को भलीभांति प्रणामकर व रामेश्वर महादेव तथा सुग्रीवादिक वानरों को प्रणामकर ॥ २१ ॥

रेषांच महापातकिनांतथा ॥ १६ ॥ सेतावर्द्धोदयेस्नानाद्विशुद्धिरितिनिश्चिता ॥ स्थलान्तरेकृतघ्नानां निष्कृतिर्नास्ति कर्हिचित् ॥ १७ ॥ सेतावर्द्धोदयेस्नानात्तेषामपिहिनिष्कृतिः ॥ सेतावर्द्धोदयेस्नानं येनकुर्वन्तिमोहतः ॥ १८ ॥ संसारेषुनिमज्जन्ति तेयथान्धाःपतन्त्यधः ॥ सेतावर्द्धोदयेस्नात्वा भित्त्वाभास्करमण्डलम् ॥ १९ ॥ ब्रह्मलोकम्प्रयास्यन्ति नात्रकार्याविचारणा ॥ अर्द्धोदयेतुसम्प्राप्ते स्नात्वासेतौविमुक्तिदे ॥ २० ॥ नत्वासम्यग्जगन्नाथं राघवंसीतयासह ॥ रामेश्वरम्महादेवं सुग्रीवादिमुखान्कपीन् ॥ २१ ॥ ध्यात्वादेवानृषींश्चापि तथापितृगणानपि ॥ तर्पयेदपितान्सर्वान्स्व दारिद्र्यविमुक्तये ॥ २२ ॥ अर्द्धोदयाख्यममलं जगन्नाथंसमर्चयेत् ॥ सेतावर्द्धोदयेकाले तेनप्रीणातिकेशवः ॥ २३ ॥ दिवाकरनमस्तेस्तु तेजोराशेजगत्पते ॥ अत्रिगोत्रसमुत्पन्न लक्ष्मीदेव्याःसहोदर ॥ २४ ॥ अर्घंगृहाणभगवन्सुधाकुम्भ नमोस्तुते ॥ व्यतीपातमहायोगिन्महापातकनाशन ॥ २५ ॥ सहस्रबाहोसर्वात्मन् गृहाणार्घ्यंनमोस्तुते ॥ तिथिनक्षत्र

देवता, ऋषि व पितृगणों को ध्यानकर अपनी दरिद्रता के छूटने के लिये उन सबों को भी तर्पण करै ॥ २२ ॥ और सेतु पै अर्द्धोदय समय में अर्द्धोदय नामक निर्मल जगदीशजी को पूजै उससे विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ २३ ॥ हे जगत्पते, तेजोराशे, दिवाकरजी ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे अत्रिगोत्र में उत्पन्न, लक्ष्मीदेवी के सहोदर ! ॥ २४ ॥ अमृतकुम्भ, भगवन् ! अर्घ को ग्रहण कीजिये तुम्हारे लिये प्रणाम है व हे महापातकविनाशक, व्यतीपात, महायोगिन् ! ॥ २५ ॥ हे सहस्रभुज, सर्वात्मन् !

अर्घ्य को ग्रहण कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है हे तिथि, नक्षत्र व वारों के स्वामी, परमेश्वर ! ॥ २६ ॥ हे कालरूप, मासरूप ! अर्घ्य को ग्रहण कीजिये तुम्हारे लिये प्रणाम है इस प्रकार महोदययोग में मनुष्य अलग २ मन्त्रों से अर्घ्य को देकर ॥ २७ ॥ द्रव्य के अनुसार ब्राह्मणों के लिये भेंटदेवै और चौदह, बारह, आठ, सात, छः या पांच ब्राह्मणों को ॥ २८ ॥ शक्ति के अनुसार अलग २ मन्त्रों से अन्न पानादिकों से पूजनकरै और नवीन कांस्यका पात्र या लकड़ी का पात्र लेकर ॥ २९ ॥ जल से पूर्ण उस पात्र को ब्राह्मणों के आगे धरकर फल समेत व गुड़ सहित और घी समेत तथा तांबूल व दक्षिणा समेत उस पात्र

वाराणामधीशपरमेश्वर ॥ २६ ॥ मासरूपगृहाणार्घ्यं कालरूपनमोस्तुते ॥ इतिदत्त्वापृथङ्मन्त्रैरर्घ्यमर्द्धोदये नरः ॥ २७ ॥ उपायनानिविप्रेभ्यो दद्याद्वित्तानुसारतः ॥ चतुर्दशद्वादशाष्टौ सप्तषट्पञ्चवाद्विजान् ॥ २८ ॥ यथाशक्त्य न्नपानाद्यैः पृथङ्मन्त्रैःसमर्चयेत् ॥ कांस्यपात्रंसमादाय नूतनंदारवन्तुवा ॥ २९ ॥ विप्राणाम्पुरतःस्थाप्य पयसापरिपू रितम् ॥ सफलंसगुडंसाज्यं सताम्बूलंसदक्षिणम् ॥ ३० ॥ दद्याद्यज्ञोपवीतञ्च गांसवत्सांपयस्विनीम् ॥ अलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो यथाशक्तिवदेदिदम् ॥ ३१ ॥ श्रवणर्क्षेजगन्नाथजन्मर्क्षेतवकेशव ॥ यन्मयादत्तमर्थिभ्यस्तदक्षयमिहास्तु ते ॥ ३२ ॥ नक्षत्राणामधिपते देवानाममृतप्रद ॥ त्राहिमांरोहिणीकान्त कलाशेषनमोस्तुते ॥ ३३ ॥ दीननाथजग न्नाथ कालनाथकृपाकर ॥ त्वत्पादपद्मयुगलभक्तिरस्त्वचलाममम ॥ ३४ ॥ व्यतीपातनमस्तेस्तु सोमसूर्यसुतप्रभो ॥ यद्दा नादिकृतंकिञ्चित्तदक्षयमिहास्तुते ॥ ३५ ॥ अर्थिनांकल्पवृक्षोसि वासुदेवजनार्दन ॥ मासत्वंयनकालेश पापंशमय

को ॥ ३० ॥ और यज्ञोपवीत व बछड़ा समेत दूध देनेवाली गऊ को शक्ति के अनुसार भूषित ब्राह्मणों के लिये देवै और यह कहै ॥ ३१ ॥ कि हे जगदीश, केशवजी ! तुम्हारे जन्मवाले नक्षत्र श्रवण नक्षत्र में यहां जो मैंने अर्थियो के लिये दिया वह तुमको अक्षय होवै ॥ ३२ ॥ हे देवताओं को अमृतदायक, नक्षत्रेश, रोहिणी-पते, कलाशेष ! मेरी रक्षा कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३३ ॥ हे दीननाथ, जगन्नाथ, कालनाथ, दयाकर ! तुम्हारे दोनो चरणकमलों में मेरी अचल भक्ति होवै ॥ ३४ ॥ हे सोमसूर्यसुत, व्यतीपात, प्रभो ! तुम्हारे लिये नमस्कार है यहा जो कुछ दानादिक किया गया है वह तुमको अक्षय होवै ॥ ३५ ॥ हे जनार्दन,

वासुदेव ! तुम अर्थियों के कल्पवृक्ष हो हे मास, ऋतु, अयन व काल के स्वामी, विष्णुजी ! मेरे पाप को नाश कीजिये ॥ ३६ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! इस प्रकार पूजकर तदनन्तर श्राद्ध करै हिरण्यश्राद्ध या आमश्राद्ध अथवा पाकश्राद्ध करै ॥ ३७ ॥ तदनन्तर पार्वणश्राद्ध करै और वित्तशाठ्य न करै पश्चात् वस्त्र, भूषण व कुंडलों से आचार्य को पूजै ॥ ३८ ॥ और उसके लिये मूर्ति, गऊ, छत्र व पनही को देवै हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार सेतु पै अर्द्धोदययोग में व्रतकरै ॥ ३९ ॥ उसी से मनुष्य कृतकृत्य होता है और कुछ करने योग्य नहीं होता है इसी प्रकार अर्द्धोदययोग में अन्यस्थल में भी व्रतकरै ॥ ४० ॥ गन्धमादन पर्वत पै श्रीरामजी

मेहरे ॥ ३६ ॥ इत्यर्चयित्वाविप्रेन्द्रास्ततःश्राद्धंसमाचरेत् ॥ हिरण्यश्राद्धमामंवा पाकश्राद्धमथापिवा ॥ ३७ ॥ पार्वणंच ततःकुर्याद्वित्तशाठ्यंनकारयेत् ॥ आचार्यंपूजयेत्पश्चाद्वस्त्रभूषणकुण्डलैः ॥ ३८ ॥ प्रतिमामर्पयेत्तस्मै गांचछत्रमुपानहम् ॥ एवमर्द्धोदयेसेतौ व्रतंकुर्याद्द्विजोत्तमाः ॥ ३९ ॥ तेनैवकृतकृत्यःस्यात्कर्तव्यंनास्तिकिञ्चन ॥ स्थलान्तरेप्येवमेतद्व्रतमर्धोदयेचरेत् ॥ ४० ॥ सेतुःसमुद्रेरामेण निर्मितोगन्धमादने॥ सेतुःसेतुरितिप्रोच्चैस्तस्यनाम्नःप्रकीर्तनात् ॥ ४१ ॥ स्नानकालेमनुष्याणां पातकानान्तुकोटयः ॥ तत्क्षणादेवनश्यन्ति यास्यन्त्यप्यच्युतम्पदम् ॥ ४२ ॥ निमिषंनिमिषार्द्धंवा सेतौतिष्ठतियोनरः ॥ तद्दृष्टिगोचरङ्गन्तुं नशक्तायमकिङ्कराः ॥४३॥ रामसेतुंधनुष्कोटिं रामंसीतांचलक्ष्मणम्॥ रामनाथंहनूमन्तं सुग्रीवादिमुखान्कपीन् ॥ ४४ ॥ विभीषणंनारदञ्च विश्वामित्रंघटोद्भवम् ॥ वसिष्ठंवामदेवञ्च जाबालिमथकाश्यपम् ॥ ४५ ॥ रामभक्तस्तथाचान्यश्चिन्तयन्मनसातदा ॥ सर्वदुःखाद्विमुच्येत प्रयातिपरमम्पदम् ॥ ४६ ॥

ने समुद्र में सेतु को बनाया है सेतु सेतु ऐसा उच्च प्रकार से उसके नाम को कहने से ॥ ४१ ॥ स्नान के समय में मनुष्यों के करोड़ों पातक उसीक्षण नाश होजाते हैं और वे अच्युतस्थान को पाते हैं ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य निमेष या आधे निमेष भर सेतु पै टिकता है उसके दृष्टिगोचर में जाने के लिये यमदूत समर्थ नहीं होते हैं ॥ ४३ ॥ रामसेतु, धनुष्कोटि, राम, सीता, लक्ष्मण, रामनाथ, हनूमान् व सुग्रीवादिक वानरों को ॥ ४४ ॥ और विभीषण, नारद, विश्वामित्र, अगस्ति, वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि व काश्यपजी को ॥ ४५ ॥ उससमय चिन्तन करता हुआ अन्य रामभक्त सब दुःख से छूट जाता है व परमपद को प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

और सत्यक्षेत्र, हरिक्षेत्र, कृष्णक्षेत्र, नैमिष, सालग्राम, बदरिकाश्रम, हस्तिशैल व वृषाचल में ॥ ४७ ॥ और शेषाद्रि, चित्रकूट, लक्ष्मीक्षेत्र, कुरंगक, कांचिक, कुम्भकोण और मोहिनीनगर में ॥ ४८ ॥ और ऐन्द्र, श्वेताचल व पवित्र पद्मनाभ महास्थल में और फुल्लनामक ग्राम व घटिकाद्रि, सारक्षेत्र और हरिस्थल में ॥ ४९ ॥ और श्रीनिवास महाक्षेत्र, भक्तनाथ महास्थल, अलिंद नामक महाक्षेत्र व शुकक्षेत्र और वारुणक्षेत्र में ॥ ५० ॥ व मधुरा, हरिक्षेत्र, श्रीगोष्ठी, पुरुषोत्तम, श्रीरंग, पुंडरीकाक्ष व अन्य विष्णुस्थल में ॥ ५१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! नहाने से जो पाप नाश होजाते हैं वे सब निश्चय कर सेतु में स्नान से नाश होजाते हैं ॥ ५२ ॥

सत्यक्षेत्रेहरिक्षेत्रे कृष्णक्षेत्रेचनैमिषे ॥ सालग्रामेबदर्य्यांच हस्तिशैलेवृषाचले ॥ ४७ ॥ शेषाद्रौचित्रकूटेच लक्ष्मीक्षेत्रेकुरङ्गके ॥ काञ्चिकेकुम्भकोणेच मोहिनीपुरएवच ॥ ४८ ॥ ऐन्द्रेश्वेताचलेपुण्ये पद्मनाभेमहास्थले ॥ फुल्लाख्येघटिकाद्रौच सारक्षेत्रेहरिस्थले ॥ ४९ ॥ श्रीनिवासेमहाक्षेत्रे भक्तनाथमहास्थले ॥ अलिन्दाख्येमहाक्षेत्रे शुकक्षेत्रेचवारुणे ॥ ५० ॥ मधुरायांहरिक्षेत्रे श्रीगोष्ठ्यांपुरुषोत्तमे ॥ श्रीरङ्गेपुण्डरीकाक्षे तथान्यत्रहरिस्थले ॥ ५१ ॥ स्नानेनयानिपापानि नश्यन्तिचद्विजोत्तमाः ॥ तानिसर्वाणिनश्यन्ति सेतुस्नानेननिश्चितम् ॥ ५२ ॥ रघुनाथकृतेसेतौ महामुनिनिषेविते ॥ नस्नान्तियेनरास्तेषां नसंसारनिवर्त्तनम् ॥ ५३ ॥ येवानमःशिवायेति मन्त्रंपञ्चाक्षरंशुभम् ॥ नवदन्तिनशृण्वन्ति नस्मरन्तिमुनीश्वराः ॥ ५४ ॥ नमोनारायणायेति प्रणवेनसमन्वितम् ॥ मन्त्रमष्टाक्षरंवापि नजपन्तिस्मरन्तिवा ॥ ५५ ॥ एवंश्रीरामचन्द्रस्य षडक्षरमनुंतथा ॥ नजपन्तिनशृण्वन्ति नस्मरन्तिचसत्तमाः ॥ ५६ ॥

महामुनियों से सेवित रघुनाथजी से कियेहुए सेतु में जो मनुष्य नहीं नहाते हैं उनकी संसार से निवृत्ति नहीं होती है ॥ ५३ ॥ अथवा हे मुनीश्वरो ! जो मनुष्य नमः शिवाय ऐसे उत्तम पंचाक्षर मन्त्र को न कहते हैं न सुनते हैं और न स्मरण करते हैं ॥ ५४ ॥ और ॐकार से संयुत नमोनारायणाय ऐसे अष्टाक्षर मन्त्र-को जो न जपते हैं न स्मरण करते हैं ॥ ५५ ॥ व हे सत्तमो ! इसीप्रकार श्रीरामचन्द्रजी के षडक्षर मन्त्र को जो न जपते हैं न सुनते न स्मरण करते हैं ॥ ५६ ॥

उनके पाप रामसेतु में नहाने से नाश होजाते हैं अथवा जो उत्तम हरिदिन (द्वादशीतिथि) में उपवास नहीं करते हैं ॥ ५७ ॥ और जो सात जाबालोपनिषत् के मन्त्रों से मस्तकादिक में त्रिपुंड् के उद्धूलन आदि से भस्म को नहीं धारण करते हैं ॥ ५८ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! शिव व विष्णु तथा अन्य देवताओं को जो वेदोक्तमार्ग से नहीं पूजते है ॥ ५६ ॥ उनके पाप रामसेतु में नहाने से नाश होजाते हैं और शिव व विष्णु आदिक देवताओं के लिये धूप, दीप, चन्दन ॥ ६० ॥ व हे द्विजोत्तमो ! पुष्पों को भक्तिपूर्वक जो नहीं देते हैं और जो मनुष्य शिव व विष्णु आदिक देवताओं का श्रीरुद्र व चमक ॥ ६१ ॥ तथा श्रीमत्पुरुषसूक्त व पावमान्यादिक सूक्त

तेषांपापानिनश्यन्ति रामसेतौनिमज्जनात् ॥ उपोषणंनकुर्वन्ति येवाहरिदिनेशुभे ॥ ५७ ॥ नधारयन्तियेभस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनादिना ॥ जाबालोपनिषन्मन्त्रैस्सप्तभिर्मस्तकादिके ॥ ५८ ॥ शिवंवाकेशवंवापि तथान्यानपिवैसुरान् ॥ नपूजयन्तिवेदोक्तमार्गेणद्विजपुङ्गवाः ॥ ५६ ॥ तेषांपापानिनश्यन्ति रामसेतौनिमज्जनात् ॥ शिवविष्ण्वादिदेवेभ्यो धूपंदीपंचचन्दनम् ॥ ६० ॥ पुष्पाणिनप्रयच्छन्ति भक्तिपूर्वंद्विजोत्तमाः ॥ शिवविष्ण्वादिदेवानां श्रीरुद्रैश्चमकैस्तथा ॥ ६१ ॥ श्रीमत्पुरुषसूक्तेन पावमान्यादिसूक्तकैः ॥ त्रिमधुत्रिसुपर्णैश्च पञ्चशान्त्यादिनातथा ॥ ६२ ॥ नाभिषेकम्प्रकुर्वन्ति येनराःपापचेतसः ॥ तेषांपापानिनश्यन्ति धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ ६३ ॥ शिवविष्ण्वादिदेवानां नमस्कारप्रदक्षिणे ॥ नप्रकुर्वन्तिभक्त्याये पापोपहतबुद्धयः ॥ ६४ ॥ धनुर्मासेप्युषःकाले नपूजाञ्चप्रकुर्वते ॥ शिवविष्ण्वादिदेवानां महानैवेद्यपूर्वकम् ॥ ६५ ॥ तेषांपापानिनश्यन्ति रामसेतौनिमज्जनात् ॥ कीर्तयन्तिनयेविष्णोर्नामानितुहरस्य

तथा त्रिमधु, त्रिसुपर्ण और पंचशीति आदिक सूक्त से ॥ ६२ ॥ जो पापचित्तवाले पुरुष अभिषेक नहीं करते हैं उनके पातक धनुष्कोटि में नहाने से नाश होजाते हैं ॥ ६३ ॥ व पाप से नष्टबुद्धिवाले जो पुरुष भक्ति से शिव, विष्णु आदिक देवताओं का प्रणाम व प्रदक्षिणा नहीं करतेहैं ॥ ६४ ॥ और पौष महीने में प्रातःकाल जो मनुष्य महानैवेद्यपूर्वक शिव व विष्णु आदिक देवताओं का पूजन नहीं करते हैं ॥ ६५ ॥ उनके पाप रामसेतु में नहाने से नाश होजाते हैं और जो मनुष्य

विष्णु व शिवजी के नामों को नहीं कहते हैं ॥ ६६ ॥ और जो मनुष्य शालग्रामशिला के चक्र को व शिवनाभ तथा द्वारकाचक्र को मोह से नहीं पूजते हैं ॥ ६७ ॥ व हे ब्राह्मणो ! जो मूढ़ मनुष्य श्रीगंगाजी की मिट्टी व तुलसी की मिट्टी और गोपीचन्दन को मस्तक व वक्षस्थल में नहीं धारण करते हैं ॥ ६८ ॥ और जो मनुष्य सब पापसमूहों की शान्ति के लिये दोनों भुजाओं व गले में रुद्राक्ष व तुलसीकाष्ठ को नहीं धारण करता है ॥ ६९ ॥ उसके पातक धनुष्कोटि में नहाने से नाश होजाते हैं और ब्राह्ममुहूर्त प्राप्त होनेपर जो प्रसन्नबुद्धिवाला पुरुष निद्रा को छोड़कर ॥ ७० ॥ हे ब्राह्मणो ! विष्णु व शिवजी के नामों को व उनके स्तोत्रों

वा ॥ ६६ ॥ शालग्रामशिलाचक्रं शिवनाभंचयेनराः ॥ नपूजयन्तिमोहेन द्वारकाचक्रमेववा ॥ ६७ ॥ गङ्गामृदञ्चतुलसीमृत्तिकांगोपिचन्दनम् ॥ नधारयन्तियेमूढा ललाटेचोरसिद्विजाः ॥ ६८ ॥ दोर्द्वन्द्वेचगलेसम्यक्सर्वपापौघशान्तये ॥ रुद्राक्षंतुलसीकाष्ठं योनधारयतेनरः ॥ ६९ ॥ तस्यपापानिनश्यन्ति धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ ब्राह्मेमुहूर्त्तेसम्प्राप्ते निद्रांत्यक्त्वाप्रसन्नधीः ॥ ७० ॥ हरिशङ्करनामानि तत्स्तोत्राण्यथवाद्विजाः ॥ योनचिन्तयतेनित्यं विशिष्टंमन्त्रमेववा ॥ ७१ ॥ तस्यपापानिनश्यन्ति धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ प्रातर्जलाशयंगत्वा स्नात्वाचम्यविशुद्धधीः ॥ ७२ ॥ प्रसन्नात्मामुनिश्रेष्ठाः सन्ध्योपासनपूर्वकम् ॥ नोपास्तेचनरोयस्तु गायत्रींवेदमातरम् ॥ ७३ ॥ नोपासनंवाकुर्वन्ति सायम्प्रातरतन्द्रिताः ॥ माध्याह्निकन्नकुर्वन्ति येवापापहताशयाः ॥ ७४ ॥ ब्रह्मयज्ञंवैश्वदेवं मध्याह्नेतिथिपूजनम् ॥ नाचरन्तिचसायंये पूजामतिथिसम्मताम् ॥ ७५ ॥ तेषांपापानिनश्यन्ति धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ भिक्षांयतीनांमध्याह्ने

से नाश होजाते हैं और प्रातःकाल जलाशय को जाकर नहाकर को व उत्तम मन्त्र को नित्य चिन्तन नहीं करता है ॥ ७१ ॥ उसके पातक धनुष्कोटि में नहाने से नाश होजाते हैं और प्रातःकाल जलाशय को जाकर नहाकर आचमन कर शुद्धबुद्धि ॥ ७२ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठो ! प्रसन्नमनवाला जो पुरुष संध्योपासनपूर्वक वेदमाता गायत्री की उपासना नहीं करता है ॥ ७३ ॥ अथवा पाप से नष्ट आशयवाले जो पुरुष निरालसी होकर सायंकाल व प्रातःकाल संध्योपासन नहीं करते हैं अथवा जो मध्याह्न संध्योपासन नहीं करते हैं ॥ ७४ ॥ और जो ब्रह्मयज्ञ, वैश्वदेव व मध्याह्न में अतिथिपूजन और सायंकाल में अतिथि से संमत पूजन को नहीं करता है ॥ ७५ ॥ उनके पाप धनुष्कोटि में नहाने से नाश होजाते हैं

व जो पुरुष मध्याह्न में यतियों को भिक्षा नहीं देते हैं ॥ ७६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! जो कुबुद्धि पुरुष पढ़ीहुई वेदत्रयी को भूल जाते हैं व फिर जो वेदत्रयी और वेदांगों को नहीं पढ़ते हैं ॥ ७७ ॥ और जो प्रत्येक वर्ष में माता, पिता का श्राद्ध नहीं करते हैं व जो महालय में नित्यश्राद्ध और अष्टकाश्राद्ध ॥ ७८ ॥ तथा अन्य नैमित्तिकश्राद्ध को जो लोभ से नहीं करते हैं और चैत की पौर्णमासी तिथि में चित्रगुप्त की प्रसन्नता के लिये जो ॥ ७९ ॥ पान, केला के पके फल व शक्कर समेत और गुड़ सहित व आम के फलों समेत तथा कटहर के फलों से संयुत खीर ॥ ८० ॥ व तांबूल, खड़ाऊं, छत्र, वस्त्र, पुष्प व चन्दन को लोभ से नष्ट बुद्धिवाले पुरुष ब्राह्मणों के

नप्रयच्छन्तियेनराः ॥ ७६ ॥ येप्यधीतांत्रयींविप्रा विस्मरन्तिकुबुद्धयः ॥ नाधीयतेत्रयींवापि वेदाङ्गानितथापुनः ॥ ७७ ॥ प्रत्यान्दिकम्मातृपित्रोः श्राद्धंयेनाचरन्तिवै ॥ श्राद्धंमहालयेनित्यमष्टकाश्राद्धमेववा ॥ ७८ ॥ अन्यंनैमित्तिकंश्राद्धं येनकुर्वन्तिलोभतः ॥ येचैत्रेतुपौर्णमास्यां चित्रगुप्तस्यतुष्टये ॥ ७९ ॥ पानकंकदलीपक्वं पायसान्नंसशर्करम्॥ सगुडंमाम्रफलकं पनसादिफलैर्युतम् ॥ ८० ॥ ताम्बूलंपादुकेछत्रं वस्त्रपुष्पाणिचन्दनम् ॥ विप्रेभ्योनप्रयच्छन्ति लोभोपहतबुद्धयः ॥ ८१ ॥ तेषाम्पापानिनश्यन्ति धनुष्कोटौनिमज्जनात् ॥ दुर्वृत्तोवासुवृत्तोवा योधनुष्कोटिसेवकः ॥ ८२ ॥ तस्यसंसारविच्छित्तिः पुनर्जन्मविनाभवेत् ॥ संसारसागरंतर्तुं यइच्छेन्मुनिपुङ्गवाः ॥ ८३ ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटिं सगच्छेदविलम्बितम् ॥ सत्यंवच्मिहितंवच्मि सारंवच्मिहितम्पुनः ॥ ८४ ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटिं गच्छध्वम्मुक्तिसिद्धये ॥ रामचन्द्रधनुष्कोटौ मुक्त्वास्नानंविमुक्तये ॥ ८५ ॥ नास्त्युपायान्तरंविप्रा भूयोभूयोवदाम्यहम् ॥ रामचन्द्र

लिये नहीं देते हैं ॥ ८१ ॥ उनके पातक धनुष्कोटि में नहाने से नाश होजाते हैं और जो दुराचारी या उत्तम आचारवाला पुरुष धनुष्कोटि का सेवक होता है ॥ ८२ ॥ उसके फिर जन्म के विना संसार का विनाश होता है हे मुनिश्रेष्ठो ! जो मनुष्य संसारसागर को उतरना चाहे ॥ ८३ ॥ वह शीघ्रही रामचन्द्र की धनुष्कोटि को जावै मैं सत्य व हित कहताहूं और फिर सारांश व हित को कहताहूं ॥ ८४ ॥ कि तुमलोग मुक्ति की सिद्धि के लिये रामचन्द्र की धनुष्कोटि को जावो क्योंकि रामचन्द्र की धनुष्कोटि में स्नान को छोड़कर मुक्ति के लिये ॥ ८५ ॥ हे ब्राह्मणो ! अन्य उपाय नहीं है यह मैं बार २ कहताहूं कि जो मनुष्य रामचन्द्र की धनुष्कोटि में

उतने मद्यसेवन ॥ ६ ॥ और उतनी सुवर्ण की चोरी व उतनी गुरुकी स्त्रियों में गमन तथा उतनेही संसर्ग के दोष उसी क्षण नाश होजाते हैं ॥ ७ ॥ इस महापवित्र माहात्म्य में जितने अक्षरगण वर्तमान हैं उतने बार चौबीस तीर्थों में स्नान से उपजाहुआ फल होता है ॥ ८ ॥ और सेतु के मध्य में प्राप्त अन्य भी तीर्थों में नहाने से जो फल होता है उस फलको मनुष्य इसके पढ़ने व सुनने से पाता है ॥ ९ ॥ व जो मनुष्य भक्ति से इस उत्तम सेतुमाहात्म्य को लिखता है अज्ञान की सन्तति को नाश कर वह शिवजी की सायुज्य मुक्ति को पाता है ॥ १० ॥ और जिसके घर में यह लिखाहुआ उत्तम माहात्म्य वर्तमान होवे वहां भूतों व वेतालादिकों

हि ॥ तावन्त्योब्रह्महत्याश्च तावन्मद्यनिषेवणम् ॥ ६ ॥ तावत्सुवर्णस्तेयंच तावान्गुर्वङ्गनागमः ॥ तावत्संसर्गदोषाश्च नश्यन्त्येवहितत्क्षणात् ॥ ७ ॥ यावन्तोस्मिन्महापुण्ये वर्तन्तेवर्णराशयः ॥ तावत्कृत्वश्चतुर्विंशत्तीर्थेषुस्नानजम्फलम् ॥ ८ ॥ तथान्येष्वपितीर्थेषु सेतुमध्यगतेषुवै ॥ तत्फलंसमवाप्नोति पाठेनश्रवणेनवा ॥ ९ ॥ येनेदंलिखितम्भक्त्या सेतुमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ विनष्टाज्ञानसन्तानः शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ १० ॥ यस्येदंवर्ततेगेहे माहात्म्यंलिखितंशुभम् ॥ भूतवेतालकादिभ्यो भीतिस्तत्रनविद्यते ॥ ११ ॥ व्याधिपीडानतत्रास्ति नास्तिचोरभयंतथा ॥ शन्यङ्गारकमुख्यानां ग्रहाणांनास्तिपीडनम् ॥ १२ ॥ यद्गृहेवर्ततेपुण्यमिदमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ रामसेतुंविजानीत तद्गृहम्मुनिपुङ्गवाः ॥ १३ ॥ चतुर्विंशतितीर्थानि तत्रैवनिवसन्तिहि ॥ तत्रैववर्ततेपुण्यो गन्धमादनपर्वतः ॥ १४ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च वर्तन्तेतत्रसादरम् ॥ किम्पुनर्बहुनोक्तेन वसत्यत्रजगत्त्रयम् ॥ १५ ॥ श्रावयेच्छ्राद्धकालेयो ह्येकमध्यायमत्रवै ॥

से डर नहीं होता है ॥ ११ ॥ और वहां रोगोंकी पीड़ा नहीं होती है व चोरों का डर नहीं होता है और शनैश्चर व मंगल आदिक ग्रहों की पीडा नहीं होती है ॥ १२ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! यह पुण्यरूप उत्तम माहात्म्य जिसके घर में वर्तमान होवै उस घर को तुमलोग रामसेतु जानो ॥ १३ ॥ और वहीं चौबीस तीर्थ बसते हैं और वहीं पर पवित्र गन्धमादन पर्वत है ॥ १४ ॥ और वहां आदर समेत ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी वर्तमान होते हैं फिर बहुत कहने से क्या है क्योंकि इस घरमें त्रिलोक बसता है ॥ १५ ॥ और

इस माहात्म्य के एक अध्याय को जो श्राद्धसमय में सुनाता है उसके श्राद्ध की न्यूनता नाश होजाती है और पितर भी बहुत प्रसन्न होते हैं ॥ १६ ॥ और पर्वसमय प्राप्तहोने पर जो पुरुष इस माहात्म्य को ब्राह्मणों को सुनाता है अथवा एक अध्याय या एक श्लोक को जो सुनाता है इसकी गौवैं उपद्रवरहित होती हैं ॥ १७ ॥ और इसके बहुत दूधवाली व वत्सों समेत भैंसियां होतीं हैं इस पुण्यदायक माहात्म्य को मठ व देवालय में पढ़ना चाहिये ॥ १८ ॥ अथवा नदी या तड़ाग के किनारे व पवित्र वनभूमि में या वेदपात्रों के घर में इसको पढ़ना चाहिये अन्यत्र कहीं न पढ़ना चाहिये ॥ १९ ॥ और विषुवायन समय व पुण्यदायक हरिवासर और अष्टमी व चौदसि तिथि में

नश्येच्छ्राद्धस्यवैकल्यं पितरोप्यतिहर्षिताः ॥ १६ ॥ यःपर्वकालेसम्प्राप्ते ब्राह्मणाञ्छ्रावयेदिदम् ॥ अध्यायमेकंश्लोकं वा गावोस्यनिरुपद्रवाः ॥ १७ ॥ बहुक्षीराःसवत्साश्च महिष्योस्यभवन्तिहि ॥ पठनीयमिदम्पुण्यं मठेदेवालयेपि वा ॥ १८ ॥ नदीतटाकतीरेषु पुण्येवारण्यभूतले ॥ श्रोत्रियाणांगृहेवापि नैवान्यत्रतुकर्हिचित् ॥ १९ ॥ विषुवायन कालेषु पुण्येचहरिवासरे ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यां पठनीयंविशेषतः ॥ २० ॥ इदंहिपाठ्यंश्रावण्यां मासिभाद्रपदेतथा ॥ धनुर्मासेचपाठ्यंस्यात्पाठ्यंचैवोत्तरायणे ॥ २१ ॥ नियतेनैवमाहात्म्यं पठनीयमिदंद्विजाः ॥ श्रोतारोनियमैर्युक्ताः शृणुयुश्चेदमुत्तमम् ॥ २२ ॥ कीर्त्यन्तेपुण्यतीर्थानि माहात्म्येस्मिन्बहूनिवै ॥ कीर्त्यन्तेपुण्यशीलाश्च तथाराजर्षिसत्तमाः ॥ २३ ॥ ऋषयश्चमहाभागाः कीर्त्यन्तेस्मिन्ननुत्तमे ॥ धर्माधर्मौचकीर्त्येते पुण्येस्मिन्द्विजपुङ्गवाः ॥ २४ ॥ ब्रह्मा

इसको विशेष कर पढ़ना चाहिये ॥ २० ॥ और श्रावणी व भाद्रपद में इसको पढ़ना चाहिये और पौष महीने में पढ़ना चाहिये व उत्तरायण में पढ़ना चाहिये ॥ २१ ॥ हे ब्राह्मणो ! नियत मनुष्य को यह माहात्म्य पढ़ना चाहिये और नियमों से संयुत मनुष्य इस उत्तम माहात्म्य को सुनैं ॥ २२ ॥ इस माहात्म्य में बहुत पवित्र तीर्थ कहे जाते हैं व हे द्विजोत्तमो ! पवित्र स्वभाववाले उत्तम राजर्षिलोग कहे जाते हैं ॥ २३ ॥ और इस अति उत्तम माहात्म्य में महाभाग ऋषि लोग कहे जाते हैं तथा हे द्विजोत्तमो ! इस पवित्र माहात्म्य में धर्म व अधर्म कहे जाते हैं ॥ २४ ॥ और इस में तीनों मूर्तियोंवाले ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी

कहे जाते हैं यह पवित्र व पापनाशक माहात्म्य श्रुतियों के अर्थों से बढ़ा है ॥ २५ ॥ और स्मृति रचनेवालों के संमत व व्यासजी को प्रिय है और अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुष को यह सुनना व पढ़ना चाहिये ॥ २६ ॥ और सुनानेवाले के लिये जो कुछ सुवर्ण आदिक होवै उसको अपनी अपनी शक्ति के अनुसार देना चाहिये और वित्तशाठ्य न करै ॥ २७ ॥ और वसन, सुवर्ण, अन्न, पृथ्वी व गऊ को यथाशक्ति देकर श्रोतालोगों को इस सुनानेवाले का सन्मान करना चाहिये ॥ २८ ॥ क्योंकि उस सुनानेवाले के पूजित होने पर तीनों मूर्तियां पूजित होती हैं और त्रिलोक पूजित होने पर व तीनों मूर्तियों के पूजित होने पर ॥ २९ ॥

विष्णुश्चरुद्रश्च कीर्त्यन्तेत्रत्रिमूर्तयः ॥ इदंपवित्रम्पापघ्नं श्रुत्यर्थैरुपबृंहितम् ॥ २५ ॥ संमतंस्मृतिकर्तॄणांद्वैपायनमुनिप्रियम् ॥ श्रोतव्यम्पठितव्यञ्च आत्मनःश्रेयइच्छता ॥ २६ ॥ श्रावकायचदातव्यं यत्किञ्चित्काञ्चनादिकम् ॥ स्वस्वशक्त्यनुरोधेन वित्तशाठ्यंनकारयेत् ॥ २७ ॥ वस्त्रंहिरण्यंधान्यंवा भूमिंगांचयथाबलम् ॥ दत्त्वासम्भावनीयोयं श्रावकःश्रोतृभिर्जनैः ॥ २८ ॥ पूजितेश्रावकेतस्मिन्पूजिताःस्युस्त्रिमूर्तयः ॥ जगत्त्रयंपूजितंस्यात्पूजितासुत्रिमूर्तिषु ॥ २९ ॥ अवतीर्णोमहींसाक्षाद्रामोदाशरथिर्हरिः ॥ ससीतालक्ष्मणोनित्यं श्रोतृभ्यःश्रावकायच ॥ ३० ॥ दत्त्वेहलोके भोगांश्च मुक्तिंचान्तेप्रयच्छति ॥ द्वैपायनमुखाम्भोजान्निःसृतंशुभदंशुभम् ॥ ३१ ॥ इदंवैसेतुमाहात्म्यं धर्मराजोयुधिष्ठिरः ॥ भीमसेनादिभिःसर्वैरनुजैरपिसंवृतः ॥ ३२ ॥ निहताचारसंयुक्तः ससैन्यश्चदिनेदिने ॥ शृणोतिपठतोधौम्य महर्षेःस्वपुरोधसः ॥ ३३ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ भोभोस्तपोधनाःसर्वे नैमिषारण्यवासिनः ॥ मत्सकाशादिदंगुह्यं माहात्म्यंश्रु

दशरथकुमार साक्षात् विष्णु श्रीरामजी पृथ्वी में अवतार लेकर सीता व लक्ष्मण समेत सदैव श्रोता व सुनानेवाले के लिये ॥ ३० ॥ इस लोक में सुखों को देकर अन्त में मुक्ति को देते हैं व्यासजी के मुखकमल से निकले हुए शुभदायक व उत्तम ॥ ३१ ॥ इस सेतुमाहात्म्य को भीमसेनादिक सब छोटे भाइयों से घिरे हुए धर्मराज युधिष्ठिरजी ॥ ३२ ॥ उत्तम आचार से संयुत व सेना समेत प्रतिदिन पढ़ते हुए अपने पुरोहित धौम्य महर्षि से सुनते हैं ॥ ३३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि हे नैमिषारण्य-

वासियो, सब तपस्वियो ! मेरे सकाश से इस श्रुतिसंमत गुप्त माहात्म्य को ॥ ३४ ॥ नियम से संयुत आप लोगों ने सुना है इस को नित्य आदर समेत पढ़िये और सदैव अपने नियत शिष्यों को पढ़ाइये ॥ ३५ ॥ उन मुनियों से यह कहकर रोमांचित अंगवाले सूतजी अपने गुरु व्यासजी को हृदय से स्मरण करते हुए आँसुओं को बहाते हुए नाचने लगे ॥ ३६ ॥ इसी अवसर में महाविद्वान् व्यास महामुनि वहां शिष्य के ऊपर दया करने की इच्छा से शीघ्रही प्रकट हुए ॥ ३७ ॥ उन आये हुए सत्यवती-सुत व्यास मुनि को देखकर नैमिषारण्यनिवासी सब मुनियों समेत सूतजी ने ॥ ३८ ॥ व्यासजी के चरणकमल को दंडा की नाईं प्रणाम कर वहां आनन्द से उपजे हुए

तिसंमितम् ॥ ३४ ॥ श्रुतंभवद्भिर्नियतैर्नित्यंपठतसादरम् ॥ पाठयध्वंस्वशिष्येभ्यो नियतेभ्योनिरन्तरम् ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वातान्मुनीन्सूतो रोमाञ्चितकलेवरः ॥ गुरुंहृदास्मरन्व्यासं ननर्ताश्रूणिवर्तयन् ॥ ३६ ॥ अत्रान्तरेमहाविद्वान्पाराशर्योमहामुनिः ॥ आशुप्रादुरभूत्तत्र शिष्यानुग्रहकाङ्क्षया ॥ ३७ ॥ तमागतंविलोक्याथ मुनिंसत्यवतीसुतम् ॥ सूतःसर्वैश्चसहितो नैमिषारण्यवासिभिः ॥ ३८ ॥ व्यासस्यचरणाम्भोजे दण्डवत्प्रणिपत्यतु ॥ जलमानन्दजंतत्र नेत्राभ्यांपर्यवर्तयत् ॥ ३९ ॥ प्रणतम्प्रियशिष्यन्तं दोर्भ्यामुत्थाप्यवैमुनिः ॥ आशीर्भिरभिनन्द्यैनमालिङ्ग्यचमुहुर्मुहुः ॥ ४० ॥ नैमिषारण्यमुनिभिरानीतेपरमासने ॥ द्वैपायनोमहातेजा निषसादतपोधनः ॥ ४१ ॥ मुनिष्वप्युपविष्टेषु सूतेपिचनिजाज्ञया ॥ शौनकादीन्मुनीन्सर्वाञ्छक्तेःपौत्रोभ्यभाषत ॥ ४२ ॥ मयाज्ञातमिदंसर्वं नैमिषारण्यवासिनः ॥ ममशिष्येणसूतेन सेतुमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ कथितम्भवतामद्य महापातकनाशनम् ॥ ४३ ॥ श्रुतीनाञ्चस्मृतीनाञ्च

जल को नेत्रों से बहाया ॥ ३९ ॥ और प्रणाम किये हुए उन प्यारे शिष्य सूतजी को भुजाओं से उठाकर व्यास मुनि इन सूतजी को आशीर्वादों से आनन्द कर व बार २ लिपटा कर ॥ ४० ॥ नैमिषारण्यनिवासी मुनियों से लाये हुए उत्तम आसन पै बड़े तेजस्वी व तपस्या के निधान व्यासजी बैठगये ॥ ४१ ॥ और अपनी आज्ञा से मुनियों व सूतजी के भी बैठने पर शक्ति के पुत्र व्यासजी शौनकादिक सब मुनियों से बोले ॥ ४२ ॥ कि हे नैमिषारण्यनिवासियो ! मैंने इस सब को जाना कि मेरे शिष्य सूत ने इस समय आपलोगों से महापातकों के विनाशक उत्तम सेतुमाहात्म्य को कहा ॥ ४३ ॥ और श्रुति, स्मृति, पुराण व शास्त्रों और अन्य सब

इतिहासों का भी ॥ ४४ ॥ यह परिणाम अर्थ है जो कि यह बड़ा भारी माहात्म्य है और सब पुराणों में भी यह मुझको बहुत संमत है ॥ ४५ ॥ और मेरी आज्ञासे धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी इस को धौम्य से नित्य सुनते हैं इस कारण आपलोग भी सदैव उत्तम सेतुमाहात्म्य को ॥ ४६ ॥ पढ़ो, सुनो व शिष्यों को भी पढ़ावो उन व्यासजी के उस वचन को सुनकर मुनियों ने भी उन से बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ ४७ ॥ तदनन्तर सूत शिष्य से संयुत व्यास मुनि भी सब मुनियों से कहकर कैलास पर्वत को चलेगये ॥ ४८ ॥ और प्रसन्न होकर नैमिषारण्यनिवासी ऋषिलोग प्रतिदिन सेतु का माहात्म्य सुनते व पढ़ते हैं ॥ २४९ ॥

पुराणानांतथैवच॥ शास्त्राणांचेतिहासानामन्येषामपिकृत्स्नशः॥ ४४॥ एषपर्यवसानोर्थमाहात्म्यंयत्त्विदंमहत्॥ सर्वेष्वपिपुराणेषु इदंबहुमतंमम ॥ ४५ ॥ शृणोतिधर्मजोधौम्यादिदंनित्यंममाज्ञया ॥ अतोभवन्तोऽपिसदा सेतुमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४६ ॥ पठन्तुशृण्वन्तुतथा शिष्याणांपाठयन्तुच ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य तंप्राहुर्बाढमित्यपि॥ ४७॥ ततोव्यासोऽपिसूतेन शिष्येणचसमन्वितः ॥ अनुज्ञाप्यमुनीन्सर्वान्कैलासंपर्वतंययौ ॥ ४८ ॥ ऋषयोनैमिषारण्यनिलयास्तुष्टिमागताः॥ प्रत्यहंसेतुमाहात्म्यं शृण्वन्तिचपठन्तिच॥ २४९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५२ ॥ श्रीरामेश्वरार्पणमस्तु ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेसेतुमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सेतुमाहात्म्यं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ समाप्तमिदं सेतुमाहात्म्यम् ॥ ❀ ॥

दो० कियो सेतुमाहात्म्य कर यह टीका सुखकारि। भूलचूक जो होय सो लेवैं सुजन सुधारि॥ १ ॥
जो जन याको हर्षयुत पढ़ै सुनै चित लाय। देहिं सदाशिव त्याहिं सकल सुख संपति समुदाय॥ २ ॥

प्रथमबार

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव बी. ए., के प्रबन्ध से मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेखाने में छपा—सन् १९१२ ई०

॥ इति स्कन्दपुराण सेतुमाहात्म्य ॥

स्कन्दपुराणान्तर्गतब्रह्मखण्ड ॥

१—सेतुखण्ड

२—धर्मारण्यखण्ड

३—चातुर्मास्यमाहात्म्य

४—ब्रह्मोत्तरखण्ड

॥ अथ स्कन्दपुराण धर्मारण्यमाहात्म्य ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ ब्रह्मखण्डान्तर्गतधर्मारण्यमाहात्म्यम् ॥

दोहा। पूंछ्यो धर्मज व्याससन धर्मारण्य चरित्र। सोइ प्रथम अध्याय में वर्णित कथा विचित्र ॥ तीनों लोकों में संसाररूपी समुद्र के उतरने के लिये जिन विष्णुजी का नाम नौकारूप है व जिनसे उत्पन्न और स्थित यह सब संसार सदैव शोभित है और जो चैतन्यघन व प्रमाणरहित है व जो व्यापक तथा वेदान्तों से जानने योग्य है उन स्वभावही से प्रकाशवान् व निर्मल उत्तम श्रीरामचन्द्रजी को मैं प्रणाम करता हूं (॥ १ ॥) स्त्रियां, पुत्र, धन व कुटुंब समेत बंधुवर्ग, प्रिय, माता, भ्राता,

श्रीगणेशाय नमः ॥ ततुं संसृतिवारिधिं त्रिजगतां नौर्नाम यस्य प्रभोर्येनेदं सकलं विभाति सततं जातं स्थितं संसृतम् ॥ यश्चैतन्यघनप्रमाणविधुरो वेदान्तवेद्यो विभुस्तं वन्दे सहजप्रकाशममलं श्रीरामचन्द्रं परम् (॥ १ ॥) दाराः पुत्रा धनं वा परिजनसहितो बन्धुवर्गः प्रियो वा माता भ्राता पिता वा श्वशुरकुलजना भृत्य ऐश्वर्य्यवित्ते ॥ विद्यारूपं विमलभवनं यौवनं यौवतं वा सर्वं व्यर्थं मरणसमये धर्म एकः सहायः (॥ २ ॥) नैमिषे निमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ॥ सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥ १ ॥ एकदा सूतमायान्तं दृष्ट्वा तं शौनकादयः ॥ परं

पिता व श्वशुरवंश के लोग, सेवक, ऐश्वर्य, धन, विद्या, रूप, निर्मल मन्दिर, यौवन व स्त्रीगण यह सब व्यर्थ है क्योंकि मरण के समय में केवल धर्मही सहायक होता है (॥ २ ॥) नैमिषसंज्ञक अनिमिष क्षेत्र में शौनकादिक ऋषि लोग हज़ारों वर्षों तक स्वर्गलोक के लिये यज्ञ करते रहे ॥ १ ॥ एक समय आतेहुए सूतजी को देख

कर बड़े हर्ष से संयुत शौनकादिक ऋषियों ने उत्तम चित्त से नेत्रों से पान किया और वहां विचित्र कथाओं को सुनने के लिये तपस्वियों ने उन सूतजी को सब ओर से घेर लिया॥ २ ॥ इसके उपरान्त उन तपस्वी महात्माओं के बैठने पर विनय से बतलाये हुए आसन पै सूतजी बैठगये॥ ३ ॥ और सुख से बैठे हुए उन सूतजी को देखकर व विश्रान्त को देखकर उन ऋषियों ने कुछ प्रस्ताविक कथाओं को पूंछा ॥ ४ ॥ कि हे तात ! तुम्हारे पिता ने पहले सब पुराण को पढ़ा था हे लोमहर्षणे ! क्या तुमने भी उस सब को पढ़ा है॥ ५ ॥ हे सूत ! पापों को नाशनेवाली व पवित्र कथा को कहिये कि जिसको सुनकर सौ जन्मों में उपजा हुआ पाप नाश हो

हर्षं समाविष्टाः पपुर्नेत्रैः सुचेतसा ॥ चित्राः श्रोतुं कथास्तत्र परिवव्रुस्तपस्विनः॥ २॥ अथ तेषूपविष्टेषु तपस्विषु महात्मसु ॥ निर्दिष्टमासनं भेजे विनयाल्लोमहर्षणिः ॥ ३ ॥ सुखासीनं च तं दृष्ट्वा विश्रान्तमुपलक्ष्य च ॥ अथापृच्छंस्त ऋषयः काश्चित्प्रास्ताविकीः कथाः ॥ ४॥ पुराणमखिलं तात पुरा तेऽधीतवान्पिता ॥ कच्चित्त्वयापि तत्सर्वमधीतं लोमहर्षणे ॥ ५ ॥ कथयस्व कथां सूत पुण्यां पापनिषूदिनीम् ॥ श्रुत्वा यां याति विलयं पापं जन्मशतोद्भवम् ॥ ६ ॥ सूत उवाच ॥ श्रीभारत्यङ्घ्रियुगलं गणनाथपदद्वयम्॥ सर्वेषां चैव देवानां नमस्कृत्य वदाम्यहम् ॥ ७ ॥ शक्तींश्चैव वसूंश्चैव ग्रहान्यज्ञादिदेवताः ॥ नमस्कृत्य शुभान्विप्रान्कविमुख्यांश्च सर्वशः ॥ ८ ॥ अभीष्टदेवताश्चैव प्रणम्य गुरुसत्तमम् ॥ नमस्कृत्य शुभान्देवान् रामादींश्च विशेषतः ॥ ९ ॥ यान्स्मृत्वा त्रिविधैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥ तेषां प्रसादाद्वक्ष्येऽहं तीर्थानां फलमुत्तमम् ॥ सर्वेषां च नियन्तारं धर्मात्मानं प्रणम्य च ॥ १० ॥ धर्मारण्यपतिस्त्रिविष्टपपतिर्नित्यं

जावै ॥ ६ ॥ सूतजी बोले कि श्रीसरस्वतीजी के दोनों चरण व गणनायक के युगचरण को प्रणामकर तथा सब देवताओंके दोनों चरणों को प्रणाम कर मैं कहताहूं ॥७॥ और शक्ति, वसु, ग्रह व यज्ञादि देवता तथा उत्तम ब्राह्मणों व सब मुख्य कवियों को प्रणाम कर ॥ ८ ॥ व इष्ट देवता तथा उत्तम गुरु को और विशेष कर रामादिक उत्तम देवताओं को प्रणाम कर ॥ ९ ॥ जिनको स्मरणकर मनुष्य तीन प्रकार के पापों से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है और सबों के नियामक धर्मात्मा विष्णुजी को प्रणामकर उनके प्रसाद से मैं तीर्थों के उत्तम फल को कहता हूं ॥ १० ॥ धर्मारण्य के स्वामी व स्वर्ग के स्वामी तथा स्थिर भोग व योग से सुलभ वे पार्वती

के पति धर्मेश्वर देवजी सदैव तुमलोगों की रक्षा करैं जोकि जीव की कला से सबों के हृदयों को व्यासकर स्थित हैं व सदैव जिनको देखकर मनुष्य फिर संसाररूपी कारागृह में नहीं प्रवेश करते हैं ॥ ११ ॥ सूतजी बोले कि एक समय वे धर्मराज ब्रह्मा की सभामें गये तब उस सभा को देखकर वे धर्मराज ज्ञान में निष्ठहुए ॥ १२ ॥ और देवताओं व उत्तम मुनियों से घिरी सभा को देखकर विस्मित हुए व देवता, यक्ष, नाग, पन्नग, असुर ॥ १३ ॥ ऋषि, सिद्ध व गंधर्वों से बैठे हुए उचित आसन वाली सुख समेत वह सभा हे ब्रह्मन्! न शीत थी न उष्णदायक थी ॥ १४ ॥ जिसमें बैठनेवाले लोग क्षुधा, प्यास व ग्लानि को नहीं पाते हैं अनेक रूप की

सर्वेषां हृदयानि जीवकलया व्याप्य स्थितः सर्व भवानीपतिः पायाद्वः स्थिरभोगयोगसुलभो देवः स धर्मेश्वरः ॥ सदा ध्यात्वा यं न पुनर्विशन्ति मनुजाः संसारकारागृहम् ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥ एकदा तु स धर्म्मो वै जगाम ब्रह्मसदि ॥ तां सभां स समालोक्य ज्ञाननिष्ठोऽभवत्तदा ॥ १२ ॥ देवैर्मुनिवरैः क्रान्तां सभामालोक्य विस्मितः ॥ देवैर्यक्षैस्तथा नागैः पन्नगैश्च तथाऽसुरैः ॥ १३ ॥ ऋषिभिः सिद्धगन्धर्वैः समाक्रान्तोचितासना ॥ ससुखा सा सभा ब्रह्मन्न शीता न च धर्म्मदा ॥ १४ ॥ न क्षुधं न पिपासां च न ग्लानिं प्राप्नुवन्त्युत ॥ नानारूपैरिव कृता मणिभिः सा सभा वरैः ॥ १५ ॥ स्तम्भैश्च विधृता सा तु शाश्वती न च सक्षया ॥ दिव्यैर्नानाविधैर्भावैर्भासद्भिरमितप्रभा ॥ १६ ॥ अंति[1] चन्द्रं च सूर्य्यं च शिखिनं च स्वयम्प्रभा ॥ दीप्यते नाकपृष्ठस्था भर्त्सयन्तीव भास्करम् ॥ १७ ॥ तस्यां स भगवाञ्छास्ति विविधान्देवमानुषान् ॥ स्वयमेकोऽनिशं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ १८ ॥ उपतिष्ठन्ति चाप्येनं प्रजानां प

उत्तम मणियों से कीहुई सी वह सभा ॥ १५ ॥ स्तंभों से धारण कीहुई वह सभा सदैव रहती है जिसका नाश नहीं होता है व अनेक प्रकार के प्रकाशमान भावों से वह अमित प्रभाववान् थी ॥ १६ ॥ और चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि को उल्लंघन कर आपही प्रकाशमान स्वर्गपृष्ठ में स्थित वह सभा सूर्य को निन्दती हुई सी शोभित है ॥ १७ ॥ व उस सभा में अनेक भांति के देवताओं व मनुष्यों को एक सबलोकों के पितामह ब्रह्माजी आपही सदैव शासन करते हैं ॥ १८ ॥ और इन ब्रह्मा प्रभु की

१ अति—अतिक्रम्य—दीप्यत इत्युत्तरेण सवन्धः ।

प्रजापतिलोग सेवा करते हैं और दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि व कश्यप प्रभु ॥ १९ ॥ और भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, अंगिरा, पुलस्त्य, क्रतु, प्रह्लाद व कर्दम ॥ २० ॥ और अथर्वा, अंगिरा व किरणों को पीनेवाले बालखिल्य महर्षि, मन, आकाश, विद्या, पवन, तेज, जल व पृथ्वी ॥ २१ ॥ शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, प्रकृति, विकार व सत् और असत् का कारण ॥ २२ ॥ व बड़े तेजस्वी अगस्त्य तथा बलवान् मार्कण्डेय, जमदग्नि, भरद्वाज, संवर्त, च्यवन ॥ २३ ॥ व महाभाग दुर्वासा और धर्मवान् ऋष्यशृंग तथा योगाचार्य व बड़े तपस्वी भगवान् सनत्कुमारजी ॥ २४ ॥ और असित, देवल व तत्त्ववित् जैगीषव्य और अष्टांग आयुर्वेद व गान्धर्ववेद वहां

तयः प्रभुम् ॥ दक्षः प्रचेताः पुलहो मरीचिः कश्यपः प्रभुः ॥ १९ ॥ भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमोऽथ तथाङ्गिराः ॥ पुलस्त्यश्च क्रतुश्चैव प्रह्लादः कर्दमस्तथा ॥ २० ॥ अथर्वाङ्गिरसश्चैव वालखिल्या मरीचिपाः ॥ मनोन्तरिक्षं विद्याश्च वायुस्तेजो जलं मही ॥ २१ ॥ शब्दस्पर्शौ तथा रूपं रसो गन्धस्तथैव च ॥ प्रकृतिश्च विकारश्च सदसत्कारणं तथा ॥ २२ ॥ अगस्त्यश्च महातेजा मार्कण्डेयश्च वीर्यवान् ॥ जमदग्निर्भरद्वाजः संवर्त्तश्च्यवनस्तथा ॥ २३ ॥ दुर्वासाश्च महाभाग ऋष्यशृङ्गश्च धार्मिकः ॥ सनत्कुमारो भगवान्योगाचार्य्यो महातपाः ॥ २४ ॥ असितो देवलश्चैव जैगीषव्यश्च तत्त्ववित् ॥ आयुर्वेदस्तथाष्टाङ्गो गान्धर्वश्चैव तत्र हि ॥ २५ ॥ चन्द्रमाः सह नक्षत्रैरादित्यश्च गभस्तिमान् ॥ वायवस्तन्तवश्चैव सङ्कल्पः प्राण एव च ॥ २६ ॥ मूर्तिमन्तोमहात्मानो महाव्रतपरायणाः ॥ एते चान्ये च बहवो ब्रह्माणं समुपासिरे ॥ २७ ॥ अर्थो धर्मश्च कामश्च हर्षो द्वेषः शमो दमः ॥ आयान्ति तस्यां सहिता गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ २८ ॥ शुक्राद्याश्च ग्रहाश्चैव ये चान्ये तत्समीपगाः ॥ मन्त्रा रथन्तरं चैव हरिमान्वसुमानपि ॥ २९ ॥ महितो विश्वकर्मा

आया ॥ २५ ॥ और नक्षत्रों समेत चन्द्रमा व किरणवान् सूर्य, पवन, तंतु, संकल्प व प्राण ॥ २६ ॥ महाव्रतों में परायण इन व अन्य बहुत से मूर्तिमान् महात्माओं ने ब्रह्मा की उपासना किया ॥ २७ ॥ और अर्थ, धर्म, काम, हर्ष, द्वेष, शम, दम और गंधर्व व अप्सराओं के गण उस सभा में साथही आते थे ॥ २८ ॥ और शुक्रादिक ग्रह व जो अन्य उनके समीप में प्राप्त थे वे और मंत्र व रथंतर, हरिमान् व वसुमान् भी ॥ २९ ॥ और पूजित विश्वकर्मा व सब वसु तथा सब पितरों के गण व सब

हव्य ॥ ३० ॥ और ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद व अथर्वणवेद और सब शास्त्र ॥ ३१ ॥ और इतिहास, उपवेद व सब वेदांग, मेधा, धैर्य, स्मृति, प्रज्ञा, बुद्धि, यश व सम ॥ ३२ ॥ और वह सदैव अक्षय व अव्यय कालचक्र और जितनी देवस्त्रियां थीं मन के समान वेगवाली वे सब ॥ ३३ ॥ और गार्हपत्य, स्वर्गचारी व लोकों में प्रसिद्ध सोमप पितर तथा एकशृंग व सब तपस्वी ॥ ३४ ॥ और नाग, सुपर्ण व पशु ब्रह्मा की उपासना करते थे और चर, अचर व अन्य महाभूत ॥ ३५ ॥ व देवताओं के राजा इन्द्र, वरुण, कुबेर व पार्वती समेत सर्वदायक शिवजी सदैव इस सभा में आते थे ॥ ३६ ॥ व सदैव देवता, नारायण व ऋषिलोग जाते थे और बालखिल्य

च वसवश्चैव सर्वशः ॥ तथा पितृगणाः सर्वे सर्वाणि च हवींष्यथ ॥ ३० ॥ ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्तथैव च ॥ अथर्ववेदश्च तथा सर्वशास्त्राणि चैव ह ॥ ३१ ॥ इतिहासोपवेदाश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥ मेधा धृतिः स्मृतिश्चैव प्रज्ञाबुद्धिर्यशः समाः ॥ ३२ ॥ कालचक्रं च तद्दिव्यं नित्यमक्षयमव्ययम् ॥ यावन्त्यो देवपत्न्यश्च सर्वा एव मनोजवाः ॥ ३३ ॥ गार्हपत्या नाकचराः पितरो लोकविश्रुताः ॥ सोमपा एकशृङ्गाश्च तथा सर्वे तपस्विनः ॥ ३४ ॥ नागाः सुपर्णाः पशवः पितामहमुपासते ॥ स्थावरा जङ्गमाश्चापि महाभूतास्तथापरे ॥ ३५ ॥ पुरन्दरश्च देवेन्द्रो वरुणो धनदस्तथा ॥ महादेवः सहोमोऽत्र सदा गच्छति सर्वदः ॥ ३६ ॥ गच्छन्ति सर्वदा देवा नारायणस्तथर्षयः ॥ ऋषयो बालखिल्याश्च योनिजायोनिजास्तथा ॥ ३७ ॥ यत्किञ्चित्त्रिषु लोकेषु दृश्यते स्थाणु जङ्गमम् ॥ तस्यां सहोपविष्टायां तत्र ज्ञात्वा स धर्मवित् ॥ ३८ ॥ देवैर्मुनिवरैः क्रान्तां समालोक्यातिविस्मितः ॥ हर्षेण महता युक्तो रोमाञ्चिततनूरुहः ॥ ३९ ॥ तत्र धर्मो महातेजाः कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ वाच्यमानां तु शुश्राव व्यासेनामिततेजसा ॥ ४० ॥ धर्मारण्यकथां

ऋषि व योनिज और अयोनिज प्राणी ॥ ३७ ॥ व तीनों लोकों में जो कुछ चराचर देख पड़ता है वह सब उस सभा में जानकर वे धर्मज्ञ धर्मराजजी ॥ ३८ ॥ देवताओं व मुनिवरों से आक्रमित सभा को देखकर बड़े हर्ष से युक्त हुए और उनके शरीर में रोमाञ्च होगया ॥ ३९ ॥ और अमित तेजवाले व्यासजी से उस सभा में पढ़ी जाती हुई पापनाशिनी कथा को महातेजस्वी धर्म ने सुना ॥ ४० ॥ वैसेही धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की फलदायिनी सुन्दरी व दिव्य धर्मारण्य की कथा को

सुना ॥ ४१ ॥ धारने, सुनने, पढ़ने व कीर्तन करने से पुत्र, पौत्र व प्रपौत्रादिक फल को देनेवाली ॥ ४२ ॥ उस ब्रह्माण्ड से उपजी हुई विस्तारित कथा को सुनकर हर्ष से प्रफुल्लित लोचनोंवाले धर्मात्मा धर्मराजजी उस समय ब्रह्मा से सम्मतिकर जाने की इच्छा करते भये और उस समय वे धर्मराजजी पितामह ब्रह्माजी को प्रणाम कर ॥ ४३ । ४४ ॥ व उनसे आज्ञा को लेकर तब ये धर्मराजजी यमपुरी को गये ब्रह्मा के प्रसाद से पुण्यदायिनी ॥ ४५ ॥ व पापनाशिनी दिव्य तथा पवित्र धर्मारण्य की कथा को सुनकर तदनन्तर दूतों समेत वे यमपुरी को चलेगये ॥ ४६ ॥ जब मंत्री व दूतों समेत यमराज अपनी पुरीमें बैठे तब उसी अवसरमें मुनिश्रेष्ठ नारदजी ॥४७॥

दिव्यां तथैव सुमनोहराम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां फलदात्रीं तथैव च ॥ ४१ ॥ पुत्रपौत्रप्रपौत्रादि फलदात्रीं तथैव च ॥ धारणाच्छ्रवणाच्चापि पठनाच्चावलोकनात् ॥ ४२ ॥ तां निशम्य सुविस्तीर्णां कथां ब्रह्माण्डसम्भवाम् ॥ प्रमोदोत्फुल्लनयनो ब्रह्माणमनुमत्य च ॥ ४३ ॥ कृतकार्योऽपि धर्मात्मा गन्तुकामस्तदाभवत् ॥ नमस्कृत्य तदा धर्मो ब्रह्माणं स पितामहम् ॥ ४४ ॥ अनुज्ञातस्तदा तेन गतोऽसौ यमशासनम् ॥ पितामहप्रसादाच्च श्रुत्वा पुण्यप्रदायिनीम् ॥ ४५ ॥ धर्मारण्यकथां दिव्यां पवित्रां पापनाशिनीम् ॥ स गतोऽनुचरैः सार्द्धं ततः संयमिनीं प्रति ॥ ४६ ॥ अमात्यानुचरैः सार्धं प्रविष्टः स्वपुरं यमः ॥ तत्रान्तरे महातेजा नारदो मुनिपुङ्गवः ॥ ४७ ॥ दुर्निरीक्ष्यः कृपायुक्तः समदर्शी तपोनिधिः ॥ तपसा दग्धदेहोऽपि विष्णुभक्तिपरायणः ॥ ४८ ॥ सर्वगः सर्वविच्चैव नारदः सर्वदा शुचिः ॥ वेदाध्ययनशीलश्च त्वागतस्तत्र संसदि ॥ ४९ ॥ तं दृष्ट्वा सहसा धर्मो भार्यया सेवकैः सह ॥ सम्मुखो हर्षसंयुक्तो गच्छन्नेव स सत्वरः ॥ ५० ॥ अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं कुलम् ॥ अद्य मे सफलो धर्मस्त्वय्यायाते तपोधने ॥ ५१ ॥

जोकि दुर्दर्श व दयायुक्त और समदर्शी तथा तपस्या के निधान थे और तपस्या से भस्म शरीरवाले व विष्णुजी की भक्ति में परायण थे ॥ ४८ ॥ सर्वत्रगामी व सर्वज्ञ और सदैव पवित्र तथा वेदपाठ करनेवाले वे नारदजी उस सभा में आये ॥ ४९ ॥ उनको देखकर स्त्री व सेवकों समेत हर्ष से संयुत वे धर्मराजजी शीघ्रता समेत चलते हुए सामने गये ॥ ५० ॥ व यह बोले कि आज मेरा जन्म सफल होगया व आज मेरा कुल सफल होगया और आज तपोधन आपके आनेपर मेरा धर्म सफल होगया ॥५१॥

समान उनको प्रणामकर रत्नों व सुवर्ण से भूषित अपने महादिव्य आसन पै बिठाया
इसके उपरान्त अर्घ्य व पाद्यादि की विधिसे विधिपूर्वक पूजन कर व दंडा के
निश्चल होगये ॥ ५२ । ५३ ॥ और कुशल पूंछकर
तब सब सभा खिंची हुई तसवीर की नाई होगई और वहा के मनुष्य निर्वात स्थान में प्राप्त दीपक के समान
प्रसन्नचित्त से नारदजी को पूजकर बहुत आनन्द पाया व यमराज को प्रसन्न
स्वागत से उनको अभिनंदनकर धर्मारण्य की कथा को स्मरण करते हुए उन्हों ने
व उन्हों ने मन से विचार किया कि यह क्या है कि जो यमराजजी प्रसन्न हैं व यमराज-
देखकर नारदजी विस्मययुक्त मुख से उपलक्षित हुए ॥ ५४ । ५५ ॥

दण्डवत्तं प्रणम्याथ विधिना चोपवेशितः ॥ ५२ ॥ आसने स्वे महा
अर्घ्यपाद्यादिविधिना पूजां कृत्वा विधानतः ॥
चित्रार्पिता सभा सर्वा दीपा निर्वातगा इव ॥ ५३ ॥ विधाय कुशलप्रश्नं स्वागतेनाभिनन्द्य
दिव्ये रत्नकाञ्चनभूषिते ॥
नारदं पूजयित्वा तु प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ हर्षितं तु यमं
तम् ॥ प्रहर्षमतुलं लेभे धर्मारण्यकथां स्मरन् ॥ ५४ ॥
चिन्तयामास मनसा किमिदं हर्षितो हरिः ॥ अतिहर्षं च तं दृष्ट्वा यमराजस्व
दृष्ट्वा नारदो विस्मिताननः ॥ ५५ ॥
नारद उवाच ॥ किं दृष्टं भवताश्चर्य्यं किं वा लब्धं म
रूपिणम् ॥ आश्चर्यमनसं चैव नारदः पृष्टवांस्तदा ॥ ५६ ॥
पापिनां यमनं चैवमेतद्रूपं महत्तरम् ॥ सौम्यरूपं
हत्पदम् ॥ दुष्टस्त्वं दुष्टकर्मा च दुष्टात्मा क्रोधरूपधृक् ॥ ५७ ॥
अद्य त्वं हर्षसंयुक्तो दृश्यसे केन हेतुना ॥ कथयस्व महाकाय हर्षस्यैव हि
कथं जातमेतन्मे संशयः प्रभो ॥ ५८ ॥
श्रूयतां ब्रह्मपुत्रैतत्कथयामि न संशयः ॥ पुराहं ब्रह्मसदनं गतवानभिवन्दि
कारणम् ॥ ५९ ॥ धर्मराज उवाच ॥

॥ नारदजी बोले कि आपने क्या आश्चर्य देखा व किस
स्वरूपी उन धर्म को बड़े प्रसन्न व आश्चर्ययुक्त मनवाले देखकर उस समय नारदजी ने पूंछा ॥ ५६
जो यह बड़ाभारी रूप था हे प्रभो ! वह सौम्यरूप कैसे
बड़े स्थान को पाया क्योंकि दुष्ट व दुष्कर्मी और दुष्टचित्त तुम थे ॥ ५७ ॥ और पापियों को दंड देनेवाला
इस हर्ष के कारण को कहो ॥ ५९ ॥ धर्मराज बोले कि हे
होगया यह मुझको सन्देह है ॥ ५८ ॥ हे महाकाय ! आज तुम किस कारण हर्ष से संयुत देख पड़ते हो

ब्रह्मपुत्र ! सुनिये मैं इसको कहता हूं इसमें सन्देह नहीं है कि पहले मैं प्रणाम करने के लिये ब्रह्मस्थान को गया ॥ ६० ॥ व सब लोकों में एकही पूजित उस सभा के बीच में मैं बैठगया और धर्मवर्ग से संयुत अनेक भांति की कथाओं को मैंने वहीं सुना ॥ ६१ ॥ और धर्म, काम व अर्थ से संयुत तथा सब पापौघ को नाशने वाली, धर्म से संयुत सुन्दरी कथाओं को मैंने व्यासजी के मुख से सुना ॥ ६२ ॥ हे मुने ! जिन कथाओं को सुनकर मनुष्य सब पापों से व ब्रह्महत्या से छूट जाते हैं और एक सौ एक पितृगणों को तारते हैं ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले कि उसकी कथा कैसी है उसको मुझसे कहिये हे महाबाहो, यम ! आपसे सुनी हुई उस कथा को

तुम् ॥ ६० ॥ तत्रासीनःसभामध्ये सर्वलोकैकपूजिते ॥ नानाकथाः श्रुतास्तत्र धर्म्मवर्गसमन्विताः ॥ ६१ ॥ कथाः पुण्या धर्मयुता रम्या व्यासमुखाच्छ्रुताः ॥ धर्मकामार्थसंयुक्ताः सर्वाघौघविनाशिनीः ॥ ६२ ॥ याः श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यन्ते ब्रह्महत्यया ॥ तारयन्ति पितृगणाञ्छतमेकोत्तरं मुने ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ कीदृशी तत्कथा मे तां प्रशंस भवता श्रुताम् ॥ कथां यम महाबाहो श्रोतुकामोस्म्यहं च ताम् ॥ ६४ ॥ यम उवाच ॥ एकदा ब्रह्मलोकेऽहं नमस्कर्तुं पितामहम् ॥ गतवानस्मि तं देशं कार्याकार्यविचारणे ॥ ६५ ॥ मया तत्राद्भुतं दृष्टं श्रुतं च मुनिसत्तम ॥ धर्म्मारण्यकथां दिव्यां कृष्णद्वैपायनेरिताम् ॥ ६६ ॥ श्रुत्वा कथां महापुण्यां ब्रह्मन्ब्रह्माण्डगां शुभाम् ॥ गुणपूर्णां सत्ययुक्तां तेन हर्षेण हर्षितः ॥ ६७ ॥ अन्यच्चैव मुनिश्रेष्ठ तवागमनकारणम् ॥ शुभाय च सुखायैव क्षेमाय च जयाय हि ॥ ६८ ॥ अद्यास्मि कृतकृत्योऽहमद्याहं सुकृती मुने ॥ धर्मोनामाद्य जातोऽहं तव पद्युग्मदर्शनात् ॥ ६९ ॥ पूज्यो

मैं सुना, चाहता हूं ॥ ६४ ॥ यमराज बोले कि एक समय ब्रह्मलोक में कर्तव्याकर्तव्य के विचार में ब्रह्माजी को प्रणाम करने के लिये मैं उस स्थान को गया ॥ ६५ ॥ हे मुनिसत्तम ! मैंने वहां अद्भुत चरित्र को देखा व सुना कि व्यासजी से कहीहुई महापवित्र व ब्रह्माण्ड में प्राप्त तथा गुणों से पूर्ण व सत्यसंयुत उत्तम व दिव्य धर्मारण्य की कथा को सुनकर उस हर्ष से मैं प्रसन्न हुआ ॥ ६६ । ६७ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठ ! अन्य तुम्हारे आने का कारण शुभ व सुख और कल्याण व जय के लिये है ॥ ६८ ॥ हे मुने ! आज मैं कृतकृत्य होगया व आज मैं पुण्यवान् हुआ और तुम्हारे चरणयुगल के दर्शन से मैं आज धर्म नामक हुआ ॥ ६९ ॥ व हे नारद !

आज मैं पूज्य व कृतार्थ और धन्य होगया व तुम्हारे चरण के प्रसाद से मैं त्रिलोक में प्रसिद्ध हुआ ॥ ७० ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार के वचनों से प्रसन्न होते हुए मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने बड़ी भक्ति से धर्मारण्य की उत्तम कथा को पूंछा ॥ ७१ ॥ नारदजी बोले कि हे धर्म ! व्यासजी के मुख से धर्मारण्य की उत्तम कथा जो सुनी गई उस सब विस्तीर्ण कथा को मुझसे यथार्थ कहिये ॥ ७२ ॥ यमराज बोले कि हे ब्रह्मन् ! मैं सुख व दुःखवाले प्राणियों को उस उस कर्म के अनुसार लेशित गति को देने के लिये सदैव व्यग्र रहता हूं ॥ ७३ ॥ तथापि सज्जनों का संग धर्महीं के लिये होता है और इस लोक व परलोक में भी कल्याण व सुख के लिये होता

ऽहं च कृतार्थोहं धन्योहं चाद्य नारद ॥ युष्मत्पादप्रसादाच्च पूज्योऽहं भुवनत्रये ॥ ७० ॥ सूत उवाच ॥ एवंविधैर्व चोभिश्च तोषितो मुनिसत्तमः ॥ पप्रच्छ परया भक्त्या धर्मारण्यकथां शुभाम् ॥ ७१ ॥ नारद उवाच ॥ श्रुता व्यास मुखाद्धर्म्म धर्मारण्यकथा शुभा ॥ तत्सर्वं हि कथय मे विस्तीर्णं च यथातथम् ॥ ७२ ॥ यम उवाच ॥ व्यग्रोऽहं सत तं ब्रह्मन्प्राणिनां सुखदुःखिनाम् ॥ तत्तत्कर्मानुसारेण गतिं दातुं सुखेतराम् ॥ ७३ ॥ तथापि साधुसङ्गो हि धर्मायैव प्रजायते ॥ इह लोके परत्रापि क्षेमाय च सुखाय च ॥ ७४ ॥ ब्रह्मणः सन्निधौ यच्च श्रुतं व्यासमुखेरितम् ॥ तत्सर्वं कथयिष्यामि मानुषाणां हिताय वै ॥ ७५ ॥ सूत उवाच ॥ यमेन कथितं सर्वं यच्छ्रुतं ब्रह्मसंसदि ॥ आदिमध्यावसा नं च सर्वं नैवात्र संशयः ॥ ७६ ॥ कलिद्वापरयोर्मध्ये धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ गतोऽसौ नारदो मर्त्ये राज्यं धर्मसुतस्य वै ॥ ७७ ॥ आगतः श्रीहरेरंशो नारदः प्रत्यदृश्यत ॥ ज्वलिताग्निप्रतीकाशो बालार्कसदृशेक्षणः ॥ ७८ ॥ सव्याप

है ॥ ७४ ॥ ब्रह्मा के समीप व्यासजी से कहे हुए जिस चरित्र को मैंने सुना है मनुष्यों के हित के लिये मैं उस सब को कहता हूं ॥ ७५ ॥ सूतजी बोले कि ब्रह्मा की सभा में यमराज ने जो सुना था आदि, मध्य व अन्त तक वह सब चरित्र कहा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७६ ॥ और कलियुग व द्वापर के मध्य में धर्मपुत्र युधिष्ठिर के राज्य में ये नारदजी मृत्युलोक में धर्मसुत युधिष्ठिर के समीप गये ॥ ७७ ॥ व आये हुए श्रीविष्णुजी के अंश नारदजी देख पड़े जो कि जलती हुई अग्निके समान व बाल सूर्य के समान नेत्रवान् थे ॥ ७८ ॥ और बायें ओर से घूमे हुए बड़े भारी जटामंडल को धारते हुए तथा चन्द्रमा की किरणों के समान दो वसनों को पहने

और सुवर्ण के भूषणों से भूषित थे ॥ ७९ ॥ और बगल में लगी हुई सखी की नाईं बड़ी भारी वीणा को लेकर कृष्णाजिन का दुपट्टा लिये और सुवर्ण के समान जनेऊ पहने थे ॥ ८० ॥ व दण्ड को लिये और कमण्डलु को हाथ में धारण किये साक्षात् दूसरी अग्नि की नाईं जो गुप्त विग्रहों के भेदन करनेवाले व स्वामिकार्त्तिकेय के समान थे ॥ ८१ ॥ व महर्षिगणों से संसिद्ध, विद्वान् और गंधर्व वेद को जाननेवाले तथा वैर की क्रीड़ा करनेवाले जो विप्र दूसरी ब्राह्मय कलि की नाईं थे ॥ ८२ ॥ व देवताओं और गंधर्वलोकों के आदि वक्ता व इन्द्रियों को भलीभांति जीते हुए और चारों वेदों के गानेवाले तथा विष्णुजी के उत्तम गुणों के गानेवाले थे ॥ ८३ ॥

वृत्तं विपुलं जटामण्डलमुद्वहन् ॥ चन्द्रांशुशुक्ले वसने वसानो रुक्मभूषणः ॥ ७९ ॥ वीणां गृहीत्वा महतीं कक्षासक्तां सखीमिव ॥ कृष्णाजिनोत्तरासङ्गो हेमयज्ञोपवीतवान् ॥ ८० ॥ दण्डी कमण्डलुकरः साक्षाद्वह्निरिवापरः ॥ भेत्ता जगति गुह्यानां विग्रहाणां गुहोपमः ॥ ८१ ॥ महर्षिगणसंसिद्धो विद्वान्गान्धर्ववेदवित् ॥ वैरकेलिकलो विप्रो ब्राह्मः कलिरिवापरः ॥ ८२ ॥ देवगन्धर्वलोकानामादिवक्ता सुनिग्रहः ॥ गाता चतुर्णां वेदानामुद्गाता हरिसद्गुणान् ॥ ८३ ॥ स नारदोऽथ विप्रर्षिर्ब्रह्मलोकचरोऽव्ययः ॥ आगतोऽथ पुरीं हर्षाद्धर्मराजेन पालिताम् ॥ ८४ ॥ अथ तत्रोपविष्टेषु राजन्येषु महात्मसु ॥ महत्सु चोपविष्टेषु गन्धर्वेषु च तत्र वै ॥८५॥ लोकाननुचरन्सर्वानागतः स महर्षिराट् ॥ नारदः सुमहातेजा ऋषिभिः सहितस्तदा ॥ ८६ ॥ तमागतमृषिं दृष्ट्वा नारदं सर्वधर्मवित् ॥ सिंहासनात्समुत्थाय प्रययौ सम्मुखस्तदा ॥ ८७ ॥ अभ्यवादयत प्रीत्या विनयावनतस्तदा ॥ तदर्हमासनं तस्मै सम्प्रदाय यथाविधि ॥ ८८ ॥ गां चैव

ब्रह्मलोक तक जानेवाले वे अव्यय नारद ब्रह्मर्षिजी धर्मराज से पालित पुरी को हर्ष से आये ॥ ८४ ॥ वहां राजगण व महात्माओं के बैठने पर तथा बहुत गंधर्वों के वहां बैठने पर ॥ ८५ ॥ सब लोकों में घूमते हुए वे महर्षिराज व बड़े तेजस्वी नारदजी उस समय ऋषियों समेत आये ॥ ८६ ॥ तब उन आये हुए नारद ऋषि को देखकर सब धर्मों के जाननेवाले युधिष्ठिरजी सिंहासन से उठकर सामने चले ॥ ८७ ॥ व उस समय विनय से झुके हुए युधिष्ठिरजी ने प्रीति से प्रणाम किया व विधिपूर्वक उनके लिये उनके योग्य आसन को देकर ॥ ८८ ॥ व गऊ, मधुपर्क और अर्घ को देकर धर्मज्ञ युधिष्ठिरजी ने रत्नों से व सब मनोरथों से पजन

किया॥ ८९ ॥ और यथायोग्य पूजन को पाकर वे धर्मज्ञ प्रसन्न हुए व युधिष्ठिरजी ने यह पूंछा कि हे महाभाग ! तुम कुशल समेत हो और तुम्हारे तप की कुशल है ॥ ९० ॥ और कोई दुष्ट स्वर्ग के राजा इन्द्र को पीड़ित नहीं करता है व हे मुने, ब्रह्मपुत्र, दयानिधे ! देवताओं व दैत्यों से प्रणाम किये हुए कल्याणरूप तुम सर्वत्र जानेवाले व सर्वज्ञ हो ॥ ९१ ॥ नारदजी बोले कि हे महाभाग, धर्मपुत्र, युधिष्ठिर ! ब्रह्मा की प्रसन्नता से इस समय मेरे सब ओर से कुशल है व तुम सदैव कुशलपूर्वक रहते हो॥ ९२ ॥ हे राजेन्द्र ! भाइयों समेत तुम्हारा मन धर्मों में लगता है व स्त्री, पुत्र, सेवक और चतुर गज, वाजियों समेत ॥ ९३ ॥ हे धर्मज ! प्रजाओं को औरस

मधुपर्कं च सम्प्रदायार्घमेव च ॥ अर्चयामास रत्नैश्च सर्वकामैश्च धर्मवित् ॥ ८९ ॥ तुतोष च यथावच्च पूजां प्राप्य च धर्मवित् ॥ कुशली त्वं महाभाग तपसः कुशलं तव॥ ९० ॥ न कश्चिद्बाधते दुष्टो दैत्यो हि स्वर्गभूपतिम् ॥ मुने कल्याणरूपस्त्वं नमस्कृतः सुरासुरैः ॥ सर्व्वगः सर्व्ववेत्ता च ब्रह्मपुत्र कृपानिधे ॥ ९१ ॥ नारद उवाच ॥ सर्वतः कुशलं मेद्य प्रसादाद्ब्रह्मणः सदा ॥ कुशली त्वं महाभाग धर्मपुत्र युधिष्ठिर ॥ ९२ ॥ भ्रातृभिः सह राजेन्द्र धर्मेषु रमते मनः ॥ दारैः पुत्रैश्च भृत्यैश्च कुशलैर्गजवाजिभिः ॥ ९३ ॥ औरसानिव पुत्रांश्च प्रजा धर्मेण धर्मज ॥ पालयसि किमाश्चर्यं त्वया धन्या हि सा प्रजा ॥ ९४ ॥ पालनात्पोषणान्नृणां धर्मो भवति वै ध्रुवम् ॥ तत्तद्धर्मस्य भोक्ता त्वमित्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ९५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कुशलं मम राष्ट्रं च भवतामङ्घ्रिदर्शनात् ॥ दर्शनेन महाभाग जातोऽहं गतकिल्बिषः ॥ ९६ ॥ धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सभाग्योऽहं धरातले ॥ अद्याहं सुकृती जातो ब्रह्मपुत्रे गृहागते ॥ ९७ ॥

पुत्रों की नाईं पालन करते हो तो क्या आश्चर्य है और वह प्रजा आप से धन्य है ॥ ९४ ॥ मनुष्यों को पालन व पोषण करने से अचल धर्म होता है और उस उस धर्म के तुम भोक्ता हो ऐसा मनु ने कहा ॥ ९५ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि आप के चरणों के दर्शन से मेरा राज्य कुशल है व हे महाभाग ! आप के दर्शन से मैं पापरहित होगया ॥ ९६ ॥ व मैं धन्य और कृतार्थ व सभाग्य होगया और ब्रह्मपुत्र आपके घर आने पर आज मैं पृथ्वी में पुण्यवान् होगया ॥ ९७ ॥

हे मुनिसत्तम, ब्रह्मन् ! साधुवों के ऊपर दया के लिये या किसी कार्य से आज आपका कहां से आगमन होता है॥ ९८ ॥ नारदजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! ब्रह्मा के आगे व्यासजी से कही हुई धर्मारण्य के आश्रित व समस्त संताप को हरनेवाली पुराण की दिव्य व उत्तम कथा को सुनकर मैं यमराज के समीप से आया हूं कि जिसको सुनकर मनुष्य सब पापों से व ब्रह्महत्या से छूट जाता है ॥ ९९ । १०० ॥ व दश हज़ार हत्याओं को नाशनेवाली तथा तीनों तापों को नाशनेवाली जिस कथा को बड़ी भक्ति से सुनकर कठिन पुरुष कोमलता को धारण करता है ॥ १ ॥ मेरे आगे धर्मराज से कही हुई उस कथा को सुनकर मैं यहां आया हूं अमित

कुत आगमनं ब्रह्मन्नद्य ते मुनिसत्तम ॥ अनुग्रहार्थं साधूनां किं वा कार्येण केन च ॥ ९८ ॥ नारद उवाच ॥ आगतोऽहं नृपश्रेष्ठ सकाशाच्छमनस्य च ॥ व्यासेनोक्तां ब्रह्मणोग्रे कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ ९९ ॥ धर्मारण्याश्रितां दिव्यां सर्वसंतापहारिणीम् ॥ यां श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ १०० ॥ हत्यायुतप्रशमनीं तापत्रयविनाशिनीम् ॥ यां वै श्रुत्वातिभक्त्या च कठिनो मृदुतां भजेत् ॥ १ ॥ धर्मराजेन तां श्रुत्वा ममाग्रे च निवेदिताम् ॥ तमपृच्छदमेयात्मा कथां धर्मविनोदिनीम् ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ धर्मारण्याश्रितां पुण्यां कथां मे द्विजसत्तम ॥ कथयस्व प्रसादेन लोकानां हितकाम्यया ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ स्नानकालोयमस्माकं न कथावसरो मम ॥ परन्तु श्रूयतां राजन्नुपदेशं ददाम्यहम् ॥ ४ ॥ मासानामुत्तमो माघः स्नानदानादिके तथा ॥ तस्मिन्माघे च यः स्नाति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥ स्नानार्थं याहि शीघ्रं त्वं गङ्गायां नृपतेऽधुना ॥ व्यासस्यागमनं चाद्य भविष्यति

बुद्धिवाले ब्रह्माजी ने उन नारदजी से धर्मकेलिवाली कथा को पूंछा ॥ २ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! लोकों के हित की इच्छा से धर्मारण्य के आश्रित पवित्र कथा को मुझ से प्रसन्नता से कहिये ॥ ३ ॥ नारदजी बोले कि यह हमारा स्नान का समय है मुझको कथा का अवकाश नहीं है परन्तु हे राजन् ! सुनिये मैं उपदेश देता हूं ॥ ४ ॥ कि स्नान व दानादिक कार्य में मासों के मध्य में माघ महीना श्रेष्ठ होता है और उस माघ महीने में जो गंगाजी में नहाता है वह सब पापों से छूट जाता है ॥ ५ ॥ हे नृपोत्तम, नृपते ! इस समय तुम गंगाजी में नहाने के लिये शीघ्रही जावो क्योंकि आज वहां व्यासजी का आगमन

होगा ॥ ६ ॥ हे महाभाग ! तुम उनसे पूंछोगे तो वे व्यासजी सब तीर्थों का जो अद्भुत फल है उस उत्तम फल को तुम्हें सुनावैंगे ॥ ७ ॥ भूत, भव्य, भविष्य और उत्तम, मध्यम, अधम इतिहास से उपजे हुए उस सब चरित्र को व्यासजी कहैंगे ॥ ८ ॥ और धर्मारण्य का जो जो प्राचीन वृत्तान्त है उस सबको सत्यवतीसुत व्यासजी तुमसे कहैंगे ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि ऐसा कहकर ब्रह्मा के पुत्र नारदजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और उनके जाने पर नृपति युधिष्ठिरजी मंत्रियों समेत क्रीड़ा करनेलगे ॥ १० ॥ इसी अवसर में वहा सत्यवती के पुत्र व्यासजी प्राप्त हुए तब विदुरने युधिष्ठिरजी को बतलाया ॥ ११ ॥ सूतजी बोले कि उन आये हुए व्यास मुनि को सुनकर धर्मराज

नृपोत्तम ॥ ६ ॥ तं पृच्छस्व महाभाग श्रावयिष्यति ते शुभम् ॥ तीर्थानां चैव सर्वेषां फलं पुण्यं यदद्भुतम् ॥ ७ ॥ भूतं भव्यं भविष्यं च उत्तमाधममध्यमाः ॥ वाचयिष्यति तत्सर्वमितिहाससमुद्भवम् ॥ ८ ॥ धर्मारण्यस्य सकलं वृत्तं यद्यत्पुरातनम् ॥ व्यासः सत्यवतीपुत्रो वदिष्यति च तेऽखिलम् ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा विधेः पुत्रस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ तस्मिन्गते स नृपतिः क्रीडते सचिवैः सह ॥ १० ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र प्राप्तः सत्यवतीसुतः ॥ विज्ञापयामास तदा विदुरः पाण्डवस्य हि ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥ आगतं तु मुनिं श्रुत्वा सर्वे हर्षसमाकुलाः ॥ समुत्तस्थुर्हि भीमाद्याः सह धर्मेण सर्वशः ॥ १२ ॥ तदा हि सम्मुखो भूत्वा मुमुदे नतकन्धरः ॥ दण्डवत्तं प्रणम्याथ भ्रातृभिः सहितस्तदा ॥ १३ ॥ मधुपर्केण विधिना पूजां कृत्वा सुशोभनाम् ॥ सिंहासने समावेश्य पप्रच्छानामयं तदा ॥ १४ ॥ ततः पुण्यां कथां दिव्यां श्रावयामास धर्मवित् ॥ कथान्ते मुनिशार्दूलं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥

समेत हर्ष से संयुत सब भीमादिक उठ पड़े ॥ १२ ॥ तब सामने होकर झुँकेहुए कन्धेवाले युधिष्ठिरजी भाइयों समेत उन व्यासजी को दंडवत् प्रणामकर प्रसन्न हुए ॥ १३ ॥ व विधि समेत मधुपर्क से उत्तम पूजनकर सिंहासन पै बिठाकर तब उन्होंने कुशल पूंछा ॥ १४ ॥ तदनन्तर धर्मज्ञ व्यासजी ने पवित्र व दिव्य कथा को सुनाया, और कथा के अन्त में युधिष्ठिरजी ने मुनिश्रेष्ठ व्यासजी से यह वचन कहा ॥ १५ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैंने उत्तम

कथाओं को सुना और विपत्ति धर्म, राजधर्म व अनेक मोक्षधर्म ॥ १६ ॥ और पुराणों के धर्म, व्रत व अनेक भांति के बहुत से तीर्थ व सब स्थानों को मैंने सुना ॥ १७ ॥ इस समय मैं धर्मारण्य की उत्तम कथा को सुना चाहता हूं जिसको सुनकर ब्रह्मघातादिक पाप नाश होजाता है ॥ १८ ॥ मैं धर्मारण्य में स्थित तीर्थों को यथार्थ सुना चाहता हूं कि किसका यह स्थान स्थापित है व किसलिये यह बनाया गया है ॥ १९ ॥ और किससे यह रक्षित व पालित है और किस समय यह बनाया गया है और यहां पहले क्या क्या हुआ है इसको पूंछतेहुए मुझसे कहिये ॥ २० ॥ और उस स्थान में भूत, भव्य व भविष्य जो होवै और जिस भांति तीर्थों की स्थिति होवै

त्वत्प्रसादान्मया ब्रह्मञ्छ्रुतास्तु प्रवराः कथाः ॥ आपद्धर्म्मा राजधर्मा मोक्षधर्म्मा ह्यनेकशः ॥ १६ ॥ पुराणानां च धर्माश्च व्रतानि बहुशस्तथा ॥ तीर्थान्यनेकरूपाणि सर्वाण्यायतनानि च ॥ १७ ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि धर्मारण्य कथां शुभाम् ॥ श्रुत्वा यां हि विनश्येत पापं ब्रह्मवधादिकम् ॥ १८ ॥ धर्म्मारण्यस्थतीर्थानां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ कस्येदं स्थापितं स्थानं कस्मादेतद्विनिर्मितम् ॥ १९ ॥ रक्षितं पालितं केन कस्मिन्कालेऽथ निर्मितम् ॥ किं किं त्वत्राभवत्पूर्वं शंसैतत्पृच्छतो मम ॥ २० ॥ भूतं भव्यं भविष्यच्च तस्मिन्स्थाने च यद्भवेत् ॥ तत्सर्वं कथयस्वाद्य तीर्थानां च यथा स्थितिः ॥ १२१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येयुधिष्ठिरप्रश्नवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

व्यास उवाच ॥ पृथ्वीपुरन्ध्र्यास्तिलकं ललाटे लक्ष्मीलतायाः स्फुटमालवालम् ॥ वाग्देवताया जलकेलिरम्यं धर्माटवीं सम्प्रति वर्णयामि ॥ १ ॥ साधु पृष्टं त्वया राजन्वाराणस्यधिकाधिकम् ॥ धर्मारण्यं नृपश्रेष्ठ शृणुष्वावहि

उस सबको इस समय मुझसे कहिये ॥ १२१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयुधिष्ठिरप्रश्नवर्णनंनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दो० । धर्मारण्य द्विजन कर पूंछयो धर्म हवाल । यहि दूजे अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ व्यासजी बोले कि पृथ्वीरूपी पुरंध्री (स्त्री) के मस्तक में तिलकरूप और लक्ष्मीरूपिणी लता के प्रकटही आलवाल (थालहा) रूप व सरस्वतीजी के सुन्दर जलक्रीड़ारूप धर्मारण्य को मैं इस समय वर्णन करता हूं ॥ १ ॥ हे नृपश्रेष्ठ,

राजन्! तुम ने बहुत अच्छा पूंछा काशी से बहुतही अधिक धर्मारण्यक्षेत्र को सावधान होकर सुनिये ॥ २ ॥ कि वहीं पर सब तीर्थ हैं उससे वह ऊपर कहा जाता है और ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक व इन्द्रादिक देवताओं से वह सेवित है ॥ ३ ॥ और लोकपाल, दिक्पाल व मातृका शिवशक्ति तथा गंधर्व, अप्सरा व यज्ञ कर्मों से सेवित है ॥ ४ ॥ और शाकिनी, भूत, वेताल, ग्रह देवता व अधिदेवता और ऋतु, मास, पक्ष व सुरासुरों से सेवित है ॥ ५ ॥ हे नृप! वह श्रेष्ठ स्थान सब सुखों को देनेवाला है और बहुत यज्ञों व मुनिश्रेष्ठों से सेवित है ॥ ६ ॥ और सिंह, व्याघ्र, हाथी व अनेक भांति के पक्षी तथा गऊ, भैंसी आदिक व सारस, मृग और शूकरों

तो भृशम् ॥ २ ॥ सर्वतीर्थानि तत्रैव ऊपरं तेन कथ्यते ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैरिन्द्राद्यैः परिसेवितम् ॥ ३ ॥ लोकपालैश्च दिक्पालैर्मातृभिः शिवशक्तिभिः ॥ गन्धर्वैश्चाप्सरोभिश्च सेवितं यज्ञकर्मभिः ॥ ४ ॥ शाकिनीभूतवेतालग्रहदेवाधिदेवतैः ॥ ऋतुभिर्मासपक्षैश्च सेव्यमानं सुरासुरैः ॥ ५ ॥ तदाद्यं च नृप स्थानं सर्वसौख्यप्रदं तथा ॥ यज्ञैश्च बहुभिश्चैव सेवितं मुनिसत्तमैः ॥ ६ ॥ सिंहव्याघ्रैर्द्विपैश्चैव पक्षिभिर्विविधैस्तथा ॥ गोमहिष्यादिभिश्चैव सारसैर्मृगशूकरैः ॥ ७ ॥ सेवितं नृपशार्दूल श्वापदैर्विविधैरपि ॥ तत्र ये निधनं प्राप्ताः पक्षिणः कीटकादयः ॥ ८ ॥ पशवः श्वापदाश्चैव जलस्थलचराश्च ये ॥ खेचरा भूचराश्चैव डाकिन्यो राक्षसास्तथा ॥ ९ ॥ एकोत्तरशतैः सार्द्धं मुक्तिस्तेषां हि शाश्वती ॥ ते सर्वे विष्णुलोकांश्च प्रयान्त्येव न संशयः ॥ १० ॥ सन्तारयति पूर्वज्ञान्दश पूर्वान्दशापरान् ॥ यवव्रीहितिलैः सर्पिर्बिल्वपत्रैश्च दूर्वया ॥ ११ ॥ गुडैश्चैवोदकैर्नाथ तत्र पिण्डं करोति यः ॥ उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ १२ ॥

से ॥ ७ ॥ व हे नृपोत्तम! अनेक प्रकार के हिंसकजीवों से वह धर्मारण्य सेवित है और वहां जो पक्षी व कीटादिक मृत्यु को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ और पशु, हिंसक प्राणी व जो जलचारी व जो स्थलचारी हैं और आकाशचारी, भूमिचारी, डाकिनी व राक्षस ॥ ९ ॥ उन सबों की एक सौ एक पुश्ति समेत शाश्वती मुक्ति होती है और वे सब विष्णुलोकों को जाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ १० ॥ और दश पहले व दश पीछे की पुश्तियों को वह तारता है जो कि यव, धान, तिल, घी, बिल्वपत्र व दूर्वा से ॥ ११ ॥ व हे नाथ! जो गुड़ और जल से वहां पिण्ड करता है वह सात गोत्रों को व एक सौ एक पुश्तियों को तारता है ॥ १२ ॥

वह धर्मारण्य अनेक प्रकार के वृक्षों से संयुत व लताओं तथा गुल्मों से शोभित है और वह सदैव पुण्यदायक व सदैव फलों से संयुतहै॥१३॥ व हे भूपते ! धर्मारण्य वैर रहित व निर्भय है वहां गऊ व्याघ्रों से क्रीड़ा करती है व बिलार मूसों से क्रीड़ा करते हैं ॥ १४ ॥ और मेढक सांप के साथ व मनुष्य राक्षसों के साथ क्रीड़ा करते हैं उस पृथ्वीतल में निर्भय धर्मारण्य बसता है ॥ १५ ॥ और वह धर्मारण्य महानन्दमय, दिव्य व पावन से भी अधिक पावन है और कुंज में प्राप्त कबूतर मधुर व अव्यक्त शब्द की उत्कण्ठा से जब गूंजता है ॥ १६ ॥ तब कबूतरी इस कारण उसको मना करती है कि ध्यान में स्थित कोक (चकवा) उसको सुनता है

वृक्षैरनेकधा युक्तं लतागुल्मैः सुशोभितम् ॥ सदा पुण्यप्रदं तच्च सदा फलसमन्वितम् ॥ १३ ॥ निर्वैरं निर्भयं चैव धर्मारण्यं च भूपते ॥ गोव्याघ्रैः क्रीड्यते तत्र तथा मार्जारमूषकैः ॥ १४ ॥ भेकोऽहिना क्रीडते च मानुषा राक्षसैः सह ॥ निर्भयं वसते तत्र धर्म्मारण्यं च भूतले ॥ १५ ॥ महानन्दमयं दिव्यं पावनात्पावनं परम् ॥ कलकण्ठः कलोत्कण्ठमनुगुञ्जति कुञ्जगः ॥ १६ ॥ ध्यानस्थः श्रोष्यति तदा पारावत्येति वार्य्यते ॥ कोकः कोकीं परित्यज्य मौनं तिष्ठति तद्भयात् ॥ १७ ॥ चकोरश्चन्द्रिकाभोक्ता नक्तव्रतमिवास्थितः ॥ पठन्ति सारिकाः सारं शुकं सम्बोधयन्त्यहो ॥ १८ ॥ अपारवारसंसारसिन्धुपारप्रदः शिवः ॥ आलस्येनापि यो यायाद् गृहाद्धर्मवनम्प्रति ॥ १९ ॥ अश्वमेधाधिको धर्मस्तस्य स्याच्च पदे पदे ॥ शापानुग्रहसंयुक्ता ब्राह्मणास्तत्र सन्ति वै ॥ २० ॥ अष्टादशसहस्राणि पुण्यकार्येषु निर्मिताः ॥ षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि भृत्यास्ते वणिजो भुवि ॥ २१ ॥ द्विजभक्तिसमायुक्ता ब्रह्मण्यास्ते

और चकई को छोड़कर वह उसके भय से चुपचाप स्थित होता है ॥ १७ ॥ और चंद्रिका को भोगनेवाला चकोर रात्रि के व्रत में सा स्थित है और सारिका सारांश को पढ़ती हैं व शुक को संबोधन करती हैं ॥ १८ ॥ कि बिन पारवाले संसाररूपी समुद्र से पार उतारनेवाले शिवजी हैं जो मनुष्य आलस्य से भी घर से धर्मारण्य को जाता है ॥ १९ ॥ उसको पग २ पै अश्वमेध यज्ञ का फल होता है और वहां ब्राह्मणलोग शाप व अनुग्रह में समर्थ हैं ॥ २० ॥ और पुण्य के कार्यों में अठारह हज़ार ब्राह्मण बनाये गये हैं व छत्तीस हज़ार जो सेवक हैं वे पृथ्वी में बनिया हैं ॥ २१ ॥ और ब्राह्मणों की भक्ति से संयुत वे ब्रह्मण्य अयोनिज हैं जो कि पुराण

के जाननेवाले, सदाचार, धार्मिक व शुद्धबुद्धि हैं स्वर्ग में देवता भी धर्मारण्यनिवासी जनों की प्रशंसा करते हैं ॥ २२ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि धर्मारण्य ऐसा नाम कब देवताओं से किया गया है व उन धर्म से बनाया हुआ यह धर्मारण्य किस कारण पृथ्वी में पवित्रकारक हुआ ॥ २३ ॥ व किस कारण वह तीर्थभूत है उसको मुझसे कहिये और कितने संख्यक ब्राह्मण पहले किससे स्थापित कियेगये हैं ॥ २४ ॥ और अठारह हज़ार ब्राह्मण किस लिये स्थापित किये गये व किस वंश में श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं ॥ २५ ॥ और सब विद्याओं में प्रवीण व वेद वेदांगों के पारगामी हैं और ऋग्वेद में चतुर व यजुर्वेद में परिश्रम किये हैं ॥ २६ ॥ व सामवेद

त्वयोनिजाः ॥ पुराणज्ञाः सदाचारा धार्मिकाः शुद्धबुद्धयः ॥ स्वर्गे देवाः प्रशंसन्ति धर्म्मारण्यनिवासिनः ॥ २२ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ धर्मारण्येति त्रिदशैः कदा नाम प्रतिष्ठितम् ॥ पावनं भूतले जातं कस्मात्तेन विनिर्मितम् ॥२३॥ तीर्थभूतं हि कस्माच्च कारणात्तद्वदस्व मे ॥ ब्राह्मणाः कतिसंख्याकाः केन वै स्थापिताः पुरा ॥ २४ ॥ अष्टादशसहस्राणि किमर्थं स्थापितानि वै ॥ कस्मिन्वंशे समुत्पन्ना ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तमाः ॥ २५ ॥ सर्वविद्यासु निष्णाता वेदवेदाङ्गपारगाः॥ ऋग्वेदेषु च निष्णाता यजुर्वेदकृतश्रमाः ॥ २६ ॥ सामवेदाङ्गपारज्ञास्त्रैविद्या धर्मवित्तमाः ॥ तपोनिष्ठाः शुभाचाराः सत्यव्रतपरायणाः ॥ २७ ॥ मासोपवासैः कृशितास्तथा चान्द्रायणादिभिः ॥ सदाचाराश्च ब्रह्मण्याः केन नित्योपजीविनः ॥ तत्सर्वमादितः कृत्स्नं ब्रूहि मे वदतां वर ॥ २८ ॥ दानवास्तत्र दैतेया भूतवेतालसम्भवाः ॥ राक्षसाश्च पिशाचाश्च उद्वेजन्ते कथं न तान् ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येयुधिष्ठिरप्रश्नवर्णनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

के अंगों का पार जाननेवाले तथा वेदत्रयी के पढ़नेवाले व बड़े धर्मवान् हैं और तपस्या में निष्ठ व उत्तम आचारवाले तथा सत्य के व्रत में परायण हैं ॥ २७ ॥ और मासोपवास से दुर्बल व चांद्रायणादिकों से कृशित व उत्तम आचारवाले वे ब्राह्मण किस कर्म से नित्य जीविका करते हैं हे वदतांवर ! पहले से लगाकर उस सब को कहिये ॥ २८ ॥ और वहां दानव, दैत्य व भूतों, वेतालों से उपजे हुए प्राणी और राक्षस व पिशाच उनको क्यों नहीं दुःखित करते हैं ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयुधिष्ठिरप्रश्नवर्णनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । धर्मराज तप भंग हित वेश्यावर्द्धिनि नाम । गई तीसरे में सोई वर्णित चरित ललाम ॥ व्यासजी बोले कि हे नृपोत्तम ! पुराण की उत्तम कथा को सुनिये कि जिसको सुनकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १ ॥ एक समय ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों के कारण जल वर्षा व आतप (धूप) आदि को सहनेवाले धर्मराज ने बड़ा कठिन तप किया है ॥ २ ॥ हे राजन् ! पहले त्रेतायुग में तीस हज़ार वर्ष तक अशोक वृक्ष के मूल में प्राप्त मध्यवन में तप करते हुए ॥ ३ ॥ सूखी नसों से बँधे हुए अस्थिसमूहवाले व अचल आकारवान् तथा बँबौरि के करोड़ों कीटों से शोषित समस्त रक्तवाले ॥ ४ ॥ व मांसरहित अस्थि

व्यास उवाच ॥ श्रूयतां नृपशार्दूल कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ यां श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥ एकदा धर्मराजो वै तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैर्जलवर्षातपादिषाट् ॥ २ ॥ आदौ त्रेतायुगे राजन्वर्षाणामयुतत्रयम् ॥ मध्ये वनं तपस्यन्तमशोकतरुमूलगम् ॥ ३ ॥ शुष्कस्नायुपिनद्धास्थिसञ्चयं निश्चलाकृतिम् ॥ वल्मीककीटिकाकोटिशोषिताशेषशोणितम् ॥ ४ ॥ निर्मांसकीकसचयं स्फटिकोपलनिश्चलम् ॥ शङ्खकुन्देन्दुतुहिनमहाशङ्खलसच्छ्रियम् ॥ ५ ॥ सत्त्वावलम्बितप्राणमायुःशेषेण रक्षितम् ॥ निश्वासोच्छ्वासपवनवृत्तिसूचितजीवितम् ॥ ६ ॥ निमेषोन्मेषसञ्चारपिशुनीकृतजन्तुकम् ॥ पिशङ्गितस्फुरद्रश्मिनेत्रदीपितदिङ्मुखम् ॥ ७ ॥ तत्तपोग्निशिखादावचुम्बितम्लानकाननम् ॥ तच्छान्त्युदसुधावर्षसंसिक्ताखिलभूरुहम् ॥ ८ ॥ साक्षात्तपस्यन्तमिव तपो

समूहवाले तथा स्फटिकशिला के समान निश्चल और शंख, कुंद, चन्द्रमा, पाला व महाशंख के समान शोभित लक्ष्मीवाले ॥ ५ ॥ व सत्त्व में अवलम्बित प्राणोंवाले तथा शेष आयुर्बल से रक्षित व निश्वास, ऊर्ध्वश्वास की पवनवृत्ति से सूचित जीवनवाले ॥ ६ ॥ व पलकों के मूंदने उघारने से सूचित प्राणीवाले व पीले रंग की चमकती हुई किरणों के समान नेत्रों से प्रकाशित दिशामुखवाले ॥ ७ ॥ और उनकी तपस्या की अग्निज्वाला के दाव से चुंबित होने के कारण मलिन वनवाले व उनकी शांतिरूपी जल व अमृत की वर्षा से सींचे हुए समस्त वृक्षोंवाले ॥ ८ ॥ व नराकार धारण कर तप करते हुए साक्षात् तप की नाई व भक्ति करके इच्छारहित

मनुष्य के आकारवाले सुवर्ण की नाईं ॥ ६ ॥ व घूमते हुए मृगबालकों के गणों से घिरेहुए व शब्द से भयंकर मुखवाले वनजन्तुओं से रक्षित ॥ १० ॥ व सबों को अभय देनेवाले महादेवजी को ध्यान करते हुए ऐसे बड़े भयंकर धर्मराज को देखकर इन्द्र समेत सब देवता ॥ ११ ॥ और ब्रह्मादिक रुब देवता कैलास पर्वत पै पारिजात वृक्ष की छाया में पार्वती समेत बैठेहुए शिवजी के समीप गये ॥ १२ ॥ और नंदि, भृंगि, महाकाल व अन्य महागण और स्वामिकार्त्तिकेय स्वामी व भगवान् गणेशजी और इन्द्रादिक देवता वहां अपने २ स्थानों में बैठगये ॥ १३ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे नीलकण्ठ! अनन्तरूपी आप के लिये नमस्कार है व अज्ञात

धृत्वा नराकृतिम् ॥ नराकृतिं निराकाङ्क्षं कृत्वा भक्तिं च काञ्चनम् ॥ ६ ॥ कुरङ्गशावैर्गणशो भ्रमद्भिः परिवारितम् ॥ निनादभीषणास्यैश्च वनजैः परिरक्षितम् ॥ १० ॥ एतादृशं महाभीमं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः ॥ ध्यायन्तं च महादेवं सर्वेषां चाभयप्रदम् ॥ ११ ॥ ब्रह्माद्या देवताः सर्वे कैलासं प्रति जग्मिरे ॥ पारिजाततरुच्छायामासीनं च सहोमया ॥ १२ ॥ नन्दिर्भृङ्गिर्महाकालस्तथान्ये च महागणाः ॥ स्कन्दस्वामी च भगवान्गणपश्च तथैव च ॥ तत्र देवाः सब्रह्माद्याः स्वस्वस्थानेषु तस्थिरे ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमोस्त्वनन्तरूपाय नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते ॥ अविज्ञातस्वरूपाय कैवल्यायामृताय च ॥ १४ ॥ नान्तं देवा विजानन्ति यस्य तस्मै नमोनमः ॥ यं न वाचः प्रशंसन्ति नमस्तस्मै चिदात्मने ॥ १५ ॥ योगिनो यं हृदः कोशे प्रणिधानेन निश्चलाः ॥ ज्योतीरूपं प्रपश्यन्ति तस्मै श्रीब्रह्मणे नमः ॥ १६ ॥ कालात्पराय कालाय स्वेच्छया पुरुषाय च ॥ गुणत्रयस्वरूपाय नमः प्रकृतिरूपिणे ॥ १७ ॥ विष्णवे सत्त्वरूपाय

स्वरूपवाले तथा कैवल्य मोक्षरूप के लिये प्रणाम है ॥ १४ ॥ जिसका अन्त देवता नहीं जानते हैं उनके लिये नमस्कार है नमस्कार है व वचन जिनकी प्रशंसा नहीं करते हैं उन चैतन्यात्मक शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ सावधानता से निश्चल योगी लोग जिनको हृदय के कमल में ज्योतिरूप देखते हैं उन श्रीब्रह्म के लिये प्रणाम है ॥ १६ ॥ और काल से परे काल के लिये व अपनी इच्छा से जीवरूप के लिये तथा त्रिगुणस्वरूपी व प्रकृतिरूपी आप के लिये प्रणाम है ॥ १७ ॥ सत्त्वगुणी

विष्णु व रजोगुणरूपी ब्रह्मा और तमोगुणरूपी रुद्र के लिये व पालन, सृष्टि तथा संहार करनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ १८ ॥ व बुद्धिस्वरूप आप के लिये और तीन प्रकार के अहंकाररूपी तथा पांच तन्मात्रारूप व प्रकृतिरूपी के लिये प्रणाम है ॥ १९ ॥ व पांच ज्ञानेन्द्रियात्मस्वरूपी आप के लिये नमस्कार है नमस्कार है व पृथ्वी आदिक पांचरूपोंवाले व विषयात्मक तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ २० ॥ व ब्रह्माण्डरूपी और उसके मध्य में वर्तमान होनेवाले के लिये प्रणाम है व अर्वाचीन, पराचीन आप विश्वरूपजी के लिये नमस्कार है ॥ २१ ॥ व अनित्य तथा नित्यरूपी व कार्य, कारणरूपवाले आप के लिये प्रणाम है व हे भक्त के ऊपर दया

रजोरूपाय वेधसे ॥ तमोरूपाय रुद्राय स्थितिसर्गान्तकारिणे ॥ १८ ॥ नमो बुद्धिस्वरूपाय त्रिधाहङ्काररूपिणे ॥ पञ्च तन्मात्ररूपाय नमः प्रकृतिरूपिणे ॥ १९ ॥ नमो नमः स्वरूपाय पञ्चबुद्धीन्द्रियात्मने ॥ क्षित्यादिपञ्चरूपाय नमस्ते विषयात्मने ॥ २० ॥ नमो ब्रह्माण्डरूपाय तदन्तर्वर्तिने नमः ॥ अर्वाचीनपराचीनविश्वरूपाय ते नमः ॥ २१ ॥ अनित्यनित्यरूपाय सदसत्पतये नमः ॥ नमस्ते भक्तकृपया स्वेच्छाविष्कृतविग्रह ॥ २२ ॥ तव निश्वसितं वेदास्तव वेदोऽखिलं जगत् ॥ विश्वाभूतानि ते पादः शिरो द्यौः समवर्तत ॥ २३ ॥ नाभ्या आसीदन्तरिक्षं लोमानि च वनस्पतिः ॥ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यस्तव प्रभो ॥ २४ ॥ त्वमेव सर्वं त्वयि देव सर्वं सर्वस्तुतिस्तव्य इह त्वमेव ॥ ईश त्वया वास्यमिदं हि सर्वं नमोऽस्तु भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ २५ ॥ इति स्तुत्वा महादेवं निपेतुर्दण्डवत्क्षितौ ॥ प्रत्यु

से अपनी इच्छा से शरीर को धारनेवाले ! आप के लिये प्रणाम है ॥ २२ ॥ वेद तुम्हारा श्वास हैं और सब संसार वेद हैं व संसार के प्राणी तुम्हारा चरण हैं और तुम्हारा शिर स्वर्ग है ॥ २३ ॥ व आकाश तुम्हारी नाभि है और वनस्पति रोम हैं व हे प्रभो ! तुम्हारे मन से चन्द्रमा पैदा हुआ है और तुम्हारे नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुए हैं ॥ २४ ॥ हे देव ! सब तुम्हीं हो व तुम्हीं में सब वर्तमान है और इस संसार में सब स्तुतियों से स्तुति करने योग्य तुम्हीं हो हे ईश ! तुम से यह सब वासित है तुम्हारे लिये नमस्कार है व बार २ आप के लिये प्रणाम है ॥ २५ ॥ इस प्रकार महादेवजी की स्तुतिकर सब देवता पृथ्वी में दण्ड की नाईं गिरपड़े तब शिवजी

बोले कि मैं वरदायक हूं तुम लोग क्या चाहते हो ॥ २६ ॥ महादेवजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! बृहस्पति आदिक सब देवता क्यों विकल हैं उसको कहो जोकि आप लोगों के दुःख का कारण होवै ॥ २७ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे दुःखनाशक, अभयदायक, नीलकण्ठ, महादेव ! तुम हम लोगों का दुःख सुनो जो कि आप से हम कहते हैं ॥ २८ ॥ कि धर्मात्मा धर्मराज ने बड़ा दुस्सह तप किया मैं यह नहीं जानता हूं कि ये देवताओं का कौन उत्तम स्थान चाहते हैं ॥ २९ ॥ उस कारण उसके तप से इन्द्र आदिक सब देवता डर गये हैं उसी से बहुत दिनों से आपके चरणों में मन लगाया गया हे देवेश ! उसको उठाइये वे धर्मराज क्या चाहते हैं ॥ ३० ॥

वाच तदा शम्भुर्वरदोऽस्मि किमिच्छथ ॥ २६ ॥ महादेव उवाच ॥ कथं व्यग्राः सुराः सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ तत्स माचक्ष्व मां ब्रह्मन्भवतां दुःखकारणम् ॥ २७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नीलकण्ठ महादेव दुःखनाशाभयप्रद ॥ शृणु त्वं दुःख मस्माकं भवतो यद्वदाम्यहम् ॥ २८ ॥ धर्मराजोऽपि धर्मात्मा तपस्तेपे सुदुःसहम् ॥ न जानेऽसौ किमिच्छति देवानां पदमुत्तमम् ॥ २९ ॥ तेन त्रस्तास्तत्तपसा सर्व इन्द्रपुरोगमाः ॥ भवतोऽङ्घ्रौ चिरेणैव मनस्तेन समर्पितम् ॥ तमुत्था पय देवेश किमिच्छति स धर्मराट् ॥ ३० ॥ ईश्वर उवाच ॥ भवतां नास्ति नु भयं धर्मात्सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ ३१ ॥ तत उत्थाय ते सर्वे देवाः सह दिवौकसः ॥ रुद्रं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्वा पुनःपुनः ॥ ३२ ॥ इन्द्रेण सहिताः सर्वे कैलासात्पुनरागताः ॥ स्वस्वस्थाने तदा शीघ्रं गताः सर्वे दिवौकसः ॥ ३३ ॥ इन्द्रोऽपि वै सुधर्मायां गतवान्प्रभुरी श्वरः ॥ न निद्रां लब्धवांस्तत्र न सुखं न च निर्वृतिम् ॥ ३४ ॥ मनसा चिन्तयामास विघ्नं मे समुपस्थितम् ॥ अवाप

महादेवजी बोले कि धर्मराज से आप लोगों को भय नहीं है यह मैं सत्य कहता हूं ॥ ३१ ॥ तदनन्तर वे सब देवता साथही उठकर शिवजी की प्रदक्षिणा कर व बार २ प्रणाम कर ॥ ३२ ॥ इन्द्र समेत सब देवता फिर कैलास से आये और उस समय सब देवता शीघ्रही अपने अपने स्थान में गये ॥ ३३ ॥ और इन्द्र स्वामी भी सुधर्मा सभा में गये व उन इन्द्रजी ने वहां निद्रा, सुख व आनन्द को नहीं पाया ॥ ३४ ॥ व मन से यह विचार किया कि मुझको विघ्न प्राप्त हुआ

तब इन्द्राणी के पति इन्द्रदेवजी बड़ी चिन्ता को प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥ कि मेरा स्थान हरने के लिये धर्मराज ने बड़ा कठिन तप किया है सब देवताओं को बुलाकर उन इन्द्र ने यह वचन कहा ॥ ३६ ॥ इन्द्रजी बोले कि सब देवता लोग मेरे दुःख का कारण सुनैं कि मैंने जिसको दुःख से पाया है क्या यमराज उसी की प्रार्थना करते हैं इसके उपरान्त बृहस्पतिजी ने देखकर सब देवताओं से कहा ॥ ३७ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि हे देवताओ ! तपस्या के लिये सामर्थ्य नहीं है इस कारण विघ्न करने के लिये वहां उर्वशी आदिक अप्सरा बुलाकर पठाई जावैं ॥ ३८ ॥ उनको बुलाने के लिये द्वारपालक गया और वह जाकर उन अप्सराओं को लाकर

महतीं चिन्तां तदा देवः शचीपतिः ॥ ३५ ॥ मम स्थानं पराहर्तुं तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥ सर्वान्देवान्समाहूय इदं वचनमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ इन्द्र उवाच ॥ शृण्वन्तु देवताः सर्वा मम दुःखस्य कारणम् ॥ दुःखेन मम यल्लब्धं तत्किं वा प्रार्थयेद्यमः ॥ बृहस्पतिः समालोक्य सर्वान्देवानथाब्रवीत् ॥ ३७ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ तपसे नास्ति सामर्थ्यं विघ्नं कर्तुं दिवौकसः ॥ उर्वश्याद्याः समाहूय सम्प्रेष्यन्तां च तत्र वै ॥ ३८ ॥ तासामाकारणार्थाय प्रतिहारः प्रतास्थिवान् ॥ स गत्वा ताः समादाय सभायां शीघ्रमाययौ ॥ ३९ ॥ आगतास्ता हरिः प्राह महत्कार्यमुपस्थितम् ॥ गच्छन्तु त्वरिताः सर्वा धर्मारण्यं प्रति द्रुतम् ॥ ४० ॥ यत्र वै धर्मराजोसौ तपश्चक्रे सुदुष्करम् ॥ हास्यभावकटाक्षैश्च गीतनृत्यादिभिस्तथा ॥ ४१ ॥ तं लोभयध्वं यमिनं तपःस्थानाच्च्युतिर्भवेत् ॥ देवस्य वचनं श्रुत्वा तथा अप्सरसां गणाः ॥ ४२ ॥ मिथः संरेभिरे कर्तुं विचार्य च परस्परम् ॥ धर्मारण्यं प्रतस्थेसावुर्वशी स्ववराङ्गना ॥ ४३ ॥ तुष्टुवुः पुष्पवर्षांश्च स

शीघ्रही सभा में आया ॥ ३९ ॥ व उन आई हुई अप्सराओं से इन्द्र ने कहा कि बड़ाभारी कार्य उपस्थित हुआ है इस लिये तुम सब शीघ्रही धर्मारण्य को जावो ॥ ४० ॥ जहां ये धर्मराजजी बहुत कठिन तप करते हैं वहां हाव, भाव संयुत कटाक्षों से व गीतों और नृत्यादिकों से ॥ ४१ ॥ उन यमराज को लुभावो कि जिस से तपस्या से पृथक्का होवै इन्द्रदेवजी के उस प्रकार वचन को सुनकर अप्सराओं के गणों ने ॥ ४२ ॥ आपस में करने का विचार किया व परस्पर विचार कर वह स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी धर्मारण्य को चली ॥ ४३ ॥ तब इन देवताओं ने इसकी स्तुति की व उसके शिर पै फूलों की वृष्टि की तदनन्तर देवताओं व ब्राह्मणों से सब ओर

स्तुति कीजाती हुई वह उर्वशी ॥ ४४ ॥ बडी प्रीति से बेल, मदार व खैर के वृक्षों से आकीर्ण व कैथा व धव के वृक्षोंसे व्याप्त परमपवित्रकारक वनको गई ॥ ४५ ॥ वहां सूर्य प्रकाश नहीं करते थे उस महांधकार से संयुत व निर्जन, मनुष्यरहित तथा बहुत योजन चौड़े वन को गई ॥ ४६ ॥ जो कि मृगों व सिंहों से तथा अन्य वनचारी जन्तुवों से घिरा था और फूलेहुए वृक्षोंसे व्याप्त व बहुत सुन्दर घाससे हरित था ॥ ४७ ॥ और बड़ाभारी व मीठे शब्दवाले पक्षियों से शब्दायमान था और पुरुषकोकिल के शब्द से संयुत तथा झिल्लीक गणों से नादित था ॥ ४८ ॥ व बढ़े हुए विकट तथा सुखदायिनी छायावाले वृक्षों से घिरा था और वृक्षोंसे ढकी हुई नीचे की भूमिवाला

सृजुस्तच्छिरस्यमी ॥ ततस्तु देवैर्विप्रैश्च स्तूयमाना समन्ततः ॥ ४४ ॥ निर्ययौ परमप्रीत्या वनं परमपावनम् ॥ बिल्वार्कखदिराकीर्णं कपित्थधवसंकुलम् ॥ ४५ ॥ न सूर्यो भाति तत्रैव महान्धकारसंयुतम् ॥ निर्जनं निर्मनुष्यं च बहुयोजनमायतम् ॥ ४६ ॥ मृगैः सिंहैर्वृतं घोरैरन्यैश्चापि वनेचरैः ॥ पुष्पितैः पादपैः कीर्णं सुमनोहरशाद्वलम् ॥ ४७ ॥ विपुलं मधुरानादैर्नादितं विहगैस्तथा ॥ पुंस्कोकिलनिनादाढ्यं झिल्लीकगणनादितम् ॥ ४८ ॥ प्रवृद्धविकटैर्वृक्षैः सुखच्छायैः समावृतम् ॥ वृक्षैराच्छादिततलं लक्ष्म्या परमया युतम् ॥ ४९ ॥ नापुष्पः पादपः कश्चिन्नाफलो नापि कण्टकी ॥ षट्पदैरप्यनाकीर्णं नास्मिन्वै कानने भवेत् ॥ ५० ॥ विहङ्गैर्नादितं पुष्पैरलंकृतमतीव हि ॥ सर्वर्तुकुसुमैर्वृक्षैः सुखच्छायैः समावृतम् ॥ ५१ ॥ मारुताकम्पितास्तत्र द्रुमाः कुसुमशाखिनः ॥ पुष्पवृष्टिं विचित्रां तु विसृजन्ति च पादपाः ॥ ५२ ॥ दिवस्पृशोऽथ संघुष्टाः पक्षिभिर्मधुरस्वनैः ॥ विरेजुः पादपास्तत्र सुगन्धकुसुमैर्वृताः ॥ ५३ ॥

वह वन बडी लक्ष्मी से संयुत था ॥ ४९ ॥ और इस वन में कोई वृक्ष बिन फूल व बिन फल का और कांटों से युक्त नहीं है व भ्रमरों से वियुक्त नहीं है ॥ ५० ॥ और पक्षियों से नादित व पुष्पों से बहुतही भूषित था व सब ऋतुवोंवाले फूलों से संयुत तथा सुखद छायावाले वृक्षों से घिरा था ॥ ५१ ॥ और वहां पवन से कंपाये हुए पुष्प शाखावाले वृक्ष विचित्र पुष्पवृष्टि करते थे ॥ ५२ ॥ और वहां सुगन्धित पुष्पों से संयुत व मीठे शब्दवाले पक्षियों से कूजित आकाश को छूनेवाले वृक्ष शोभित थे ॥ ५३ ॥

और पुष्पों के भार से नीचे झुके हुए नवीन पत्तों में मधु को चाहनेवाले व मीठे शब्दवाले भ्रमर बैठे थे व शब्द करते थे ॥ ५४ ॥ और वहां सुगन्धित अंकुरों से शोभित व लतागृहों से आच्छादित तथा मन की प्रीतिको बढ़ानेवाले बहुत से स्थानों को ॥ ५५ ॥ देखती हुई वह बड़ी तेजवती अप्सरा उस समय प्रसन्न हुई और फूलों से व्याप्त तथा परस्पर मिली हुई शाखावाले इन्द्रध्वज के समान वृक्षों से वह वन शोभित था और वहां सुखदायक व शीतल सुगन्ध तथा पुष्पों की धूलि को लेजानेवाला पवन चलता था ॥ ५६।५७ ॥ ऐसे गुणोंसे संयुत वन को उस उर्वशी ने उस समय देखा तब वहां सब ओर शोभित व पवित्र यमुनाजी को देखा ॥ ५८ ॥ और वहां मुनिगणोंसे

तिष्ठन्ति च प्रवालेषु पुष्पभारावनामिषु ॥ रुवन्ति मधुरालापाः षट्पदा मधुलिप्सवः ॥ ५४ ॥ तत्र प्रदेशांश्च बहून् आमोदाङ्कुरमण्डितान् ॥ लतागृहपरिक्षिप्तान्मनसः प्रीतिवर्द्धनान् ॥ ५५ ॥ सम्पश्यन्ती महातेजा बभूव मुदिता तदा ॥ परस्पराश्लिष्टशाखैः पादपैः कुसुमाचितैः ॥ ५६ ॥ अशोभत वनं तत्तु महेन्द्रध्वजसन्निभैः ॥ सुखशीतसुगन्धी च पुष्परेणुवहोऽनिलः ॥ ५७ ॥ एवं गुणसमायुक्तं सा ददर्श वनं तदा ॥ तदा सूर्योद्भवां तत्र पवित्रां परिशोभिताम् ॥ ५८ ॥ आश्रमप्रवरं तत्र ददर्श च मनोरमम् ॥ यतिभिर्बालखिल्यैश्च वृतं मुनिगणावृतम् ॥ ५९ ॥ अग्न्यगारैश्च बहुभिर्वृक्ष शाखावलम्बितैः ॥ धूम्रपानकणैस्तत्र दिग्वासोयतिभिस्तथा ॥ ६० ॥ पाल्या वन्या मृगास्तत्र सौम्या भूयो बभूविरे ॥ मार्जारा मूषकैस्तत्र सर्पैश्च नकुलास्तथा ॥ ६१ ॥ मृगशावैस्तथा सिंहाः सत्त्वरूपा बभूविरे ॥ परस्परं चिक्रीडुस्ते यथा चैव सहोदराः ॥ दूराद्ददर्श च वनं तत्र देवोऽब्रवीत्तदा ॥ ६२ ॥ इन्द्र उवाच ॥ अयं च धर्मराजो वै तपस्युग्रे

आच्छादित तथा यतियों व बालखिल्य मुनियों से घिरे हुए सुन्दर व श्रेष्ठ आश्रम को देखा ॥ ५९ ॥ और वृक्षों की शाखामें लटके हुए मुनियों व बहुत से अग्निमन्दिरों से वह वन संयुत था और वहां धुवां के पीनेके किनुकों से व नग्न यतियोंसे वह वन संयुत था ॥ ६० ॥ व वनवाले पालने योग्य मृग वहां फिर सौम्य होगये और वहां बिलार मूसों के साथ व नेउला सर्पों के साथ ॥ ६१ ॥ तथा सिंह मृगबच्चों के साथ सत्त्वरूप हुए और एकही पेट से पैदा हुए की नाईं वे परस्पर खेलते थे दूरसे इन्द्र देवजीने वनको देखा तब वहां यह वचन कहा ॥ ६२ ॥ इन्द्रजी बोले कि ये धर्मराज उग्र तपस्या में स्थितहैं व मेरे राज्य की ये इच्छा करते हैं इस कारण इनके लिये

यहां यत्न कीजावै ॥ ६३ ॥ कि आप सब तपस्या का विघ्न करो व मेरी आज्ञा से वहां जावो इन्द्र का वचन सुनकर उर्वशी, तिलोत्तमा ॥ ६४ ॥ सुकेशी, मंजुघोषा, घृताची, मेनका, विश्वाची, रम्भा व सुन्दर भाषण करनेवाली प्रम्लोचा ॥ ६५ ॥ व सुन्दररूपवाली पूर्वचित्ति और यशस्विनी अनुम्लोचा ये और अन्य बहुतसी अप्सरा वहां बैठ कर विचारनेलगीं ॥ ६६ ॥ और परस्पर देखकर भय से शंकित हुई कि यमराज व इन्द्र ये दोनों तुम लोगों का स्थान हैं ॥ ६७ ॥ हे भारत ! इस प्रकार बहुत भांति से विचार कर जो वर्द्धनी नामक थी सब अप्सराओं के मध्य में श्रेष्ठ वह सब आभूषणों से भूषित थी ॥ ६८ ॥ उसने वहां उर्वशी से कहा कि हे वरानने ! तुम क्यों

वतिष्ठते ॥ मम राज्याभिकाङ्क्षोऽसावतोर्थे यत्यतामिह ॥ ६३ ॥ तपोविघ्नं प्रकुर्वन्तु ममाज्ञा तत्र गम्यताम् ॥ इन्द्रस्य वचनं श्रुत्वा उर्वशी च तिलोत्तमा ॥ ६४ ॥ सुकेशी मञ्जुघोषा च घृताची मेनका तथा ॥ विश्वाची चैव रम्भा च प्रम्लोचा चारुभाषिणी ॥ ६५ ॥ पूर्वचित्तिः सुरूपा च अनुम्लोचा यशस्विनी ॥ एताश्चान्याश्च बहुशस्तत्र संस्थाव्यचिन्तयन् ॥ ६६ ॥ परस्परं विलोक्यैव शङ्कमाना भयेन हि ॥ यमश्चैव तथा शक्र उभौ वायतनं हि वः ॥ ६७ ॥ एवं विचार्य बहुधा वर्द्धनीनाम भारत ॥ सर्वासामप्सरसां श्रेष्ठा सर्वाभरणभूषिता ॥ ६८ ॥ उवाचैवोर्वशीं तत्र किं खिद्यसि शुभानने ॥ देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं मायारूपबलेन च ॥ वर्णधर्मो यथा भूयात्करिष्ये पाकशासन ॥ ६९ ॥ इन्द्र उवाच ॥ साधु साधु महाभागे वर्द्धनीनाम सुव्रता ॥ शीघ्रं गच्छ स्वयं भद्रे कुरु कार्यं कृशोदरि ॥ ७० ॥ धीराणामवने शक्ता नान्या सुभ्रु त्वया विना ॥ वर्द्धनी च तथेत्युक्त्वा गता यत्र स धर्मराट् ॥ ७१ ॥ महता भूषणेनैव

खेद करती हो व हे पाकशासन ! देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये माया के रूपके बलसे जिस प्रकार वर्णधर्म होगा मैं वैसाही करूंगी ॥ ६९ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे महाभागे ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा वर्द्धनी नामक तुम उत्तमव्रतवाली हो हे कृशोदरि, भद्रे ! तुम शीघ्रही जावो व आपही कार्य करो ॥ ७० ॥ हे सुभ्रु ! तुम्हारे विना धीरों की रक्षा में अन्य समर्थ नहीं है बहुत अच्छा यह कहकर वह वर्द्धनी वहां गई जहां कि धर्मराज थे ॥ ७१ ॥ बड़े भूषण से सुन्दर रूप करके कुंकुम, कज्जल,

वस्त्र व भूषणों से भूषित हुई ॥ ७२ ॥ व कुसुम से रंगे हुए वसन को उसने धारण किया और क्षुद्रघंटिका को कटि में पहन कर शोभित हुई व दोनों चरणों में बाजते हुए भूषणोंसे भूषित हुई ॥ ७३ ॥ और अनेक प्रकार के भूषणों की शोभा से संयुत व अनेक भांति के चन्दनों से चर्चित व अनेक भांति के पुष्पमालाओं से संयुत वह उत्तम अप्सरा रेशमी वस्त्र को पहनकर ॥ ७४ ॥ हाथ में शुद्ध वीणा को लेकर सब अंगों से सुन्दरी उस अप्सरा ने वहां मनुष्यों के मन को रमानेवाला तीन भांति का नृत्य किया ॥ ७५ ॥ व तारस्वर से और वंशनाद से मिश्रित व मूर्च्छना तथा मालाओं से युक्त और तंत्री के लय से युक्त नृत्य किया तब हे नृपात्मज ! जो धर्मराज

रूपं कृत्वा मनोरमम् ॥ कुङ्कुमैः कज्जलैर्वस्त्रैर्भूषणैश्चैव भूषिता ॥ ७२ ॥ कुसुमं च तथा वस्त्रं किङ्किणीकटिराजिता ॥ झणत्कारैस्तथा कष्टैर्भूषिता च पदद्वये ॥ ७३ ॥ नानाभूषणभूषाढ्या नानाचन्दनचर्चिता ॥ नानाकुसुममालाढ्या दुकूलेनावृता शुभा ॥ ७४ ॥ प्रगृह्य वीणां संशुद्धां करे सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ नर्तनं त्रिविधं तत्र चक्रे लोकमनोरमम् ॥ ७५ ॥ तारस्वरेण मधुरैर्वंशनादेन मिश्रितम् ॥ ७६ ॥ मूर्च्छनातालसंयुक्तं तन्त्रीलयसमन्वितम् ॥ क्षणेन सहसा देवो धर्मराजो जितात्मवान् ॥ विमनाः स तदा जातो धर्मराजो नृपात्मज ॥ ७७ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ आश्चर्यं परमं ब्रह्मञ्ज्ञातं मे ब्रह्मसत्तम ॥ कथं ब्रह्मोपपन्नस्य तपश्छेदो बभूव ह ॥ ७८ ॥ धर्मे धरा च नाकश्च धर्मे पातालमेव च ॥ धर्मे चन्द्रार्कमापश्च धर्मे च पवनोऽनलः ॥ ७९ ॥ धर्मे चैवाखिलं विश्वं स धर्मो व्यग्रतां कथम् ॥ गतः स्वामिंस्तद्वैयग्र्यं तथ्यं कथय सुव्रत ॥ ८० ॥ व्यास उवाच ॥ पतनं साहसानां च नरकस्यैव कारणम् ॥ योनिकुण्डमिदं सृष्टं कुम्भी

जितेन्द्रिय थे वे यकायक क्षण भर में क्षुभितमानस हुए ॥ ७६ । ७७ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे ब्रह्मसत्तम ! मुझको बड़ा आश्चर्य हुआ कि ब्रह्म में युक्त उन यमराज का कैसे तपोभंग हुआ ॥ ७८ ॥ धर्म में पृथ्वी व स्वर्ग है और धर्म में पाताल है और धर्म में चन्द्रमा, सूर्य व जल हैं और धर्म में पवन व अग्नि हैं ॥ ७९ ॥ और धर्म में सब संसार है वह धर्म कैसे व्यग्रता को प्राप्त हुआ हे स्वामिन्, सुव्रत ! उसकी व्यग्रता को सत्य कहिये ॥ ८० ॥ व्यासजी बोले कि साहसों का पतन नरकही

का कारण है और पृथ्वी में यह योनिकुण्ड कुम्भीपाक के समान रचा गया है ॥ ८१ ॥ और नेत्ररूपी रस्सी से दृढ़ बांधकर स्त्रियां मनस्वी पुरुषों की घर्षणा करती हैं और कुचरूपी महादण्डों से ताड़ित पुरुष को निश्चेत ॥ ८२ ॥ करके हे नृपोत्तम ! वे स्त्रिया शीघ्रही नरक में गिराती हैं व सब प्राणियों को मोहनेवाली स्त्री बनाई गई है ॥ ८३ ॥ तबतक मन की स्थिरता, शास्त्र, सत्य व निराकुलता होती है जबतक कि सुन्दरचित्तवाले पुरुषों के आगे जाल की नाईं मत्त स्त्री नहीं होती है ॥ ८४ ॥ व तबतक तपस्या की वृद्धि होती है व तबतक दान, दया व दम होता है और तबतक वेद पढ़ने का आचार व तबतक शौच, धैर्य व व्रत होता है ॥ ८५ ॥ जबतक

पाकसमं भुवि ॥ ८१ ॥ नेत्ररज्ज्वा दृढं बद्ध्वा धर्षयन्ति मनस्विनः ॥ कुचरूपैर्महादण्डैस्ताड्यमानमचेतसम् ॥ ८२ ॥ कृत्वा वै पातयन्त्याशु नरकं नृपसत्तम ॥ मोहनं सर्वभूतानां नारी चैवं विनिर्मिता ॥ ८३ ॥ तावद्धन्त मनःस्थैर्यं श्रुतं सत्यमनाकुलम् ॥ यावन्मत्ताङ्गनाग्रे न वागुरेव सुचेतसाम् ॥ ८४ ॥ तावत्तपोभिवृद्धिस्तु तावद्दानं दया दमः ॥ तावत्स्वाध्यायवृत्तं च तावच्छौचं धृतं व्रतम् ॥ ८५ ॥ यावत्रस्तमृगीदृष्टिं चपलां न विलोकयेत् ॥ तावन्माता पिता तावद् भ्राता तावत्सुहृज्जनः ॥ ८६ ॥ तावल्लज्जा भयं तावत्स्वाचारस्तावदेव हि ॥ ज्ञानमौदार्यमैश्वर्यं तावदेव हि भासते ॥ यावन्मत्ताङ्गनापाशैः पातितो नैव बन्धनैः ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये इन्द्रभयकथनन्नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

कि डरी हुई मृगी की नाईं चंचलदृष्टि को मनुष्य नहीं देखता है और तबतक माता, पिता, भाई व तबतक मित्रजन होते हैं ॥ ८६ ॥ और तबतक लज्जा व तबतक भय और तभी तक उत्तम आचार होता है व तबतक ज्ञान, उदारता और ऐश्वर्य प्रकाशित होता है जबतक कि मनुष्य मत्त स्त्री के पाशरूपी बन्धनों से नहीं गिराया जाता है ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामिन्द्रभयकथनन्नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ● ॥ ● ॥

स्थिरता दीजिये॥ १९ ॥ यमराज बोले कि ऐसाही होवै व उससे उन्होंने यह कहा कि शीघ्रही अन्य वर को मांगिये क्योंकि गान से मैं प्रसन्न हुआ हूं और उत्तम वर को दूंगा ॥ २० ॥ वर्द्धनी बोली कि हे महामते ! इस महाक्षेत्र स्थान में मेरे नाम से प्रसिद्ध सब पापों का नाशक तीर्थ होवै ॥ २१ ॥ और उस में दान, हवन, तप व पठित अक्षय होवै व जो मनुष्य वर्द्धमान नामक तडाग को पांच रात्रि तक सेवन करै ॥ २२ ॥ प्रतिदिन तृप्त किये हुए उसके पूर्वज पितर तृप्त होवैं बहुत अच्छा यह उससे कहकर धर्मराजजी चुप होकर स्थित हुए व उन धर्म की तीन प्रदक्षिणा कर व प्रणाम करके वह स्वर्ग को चली गई ॥ २३ ॥ वर्द्धनी बोली कि हे देवेश !

भृतां श्रेष्ठ लोकानां च हिताय वै ॥ १९ ॥ यम उवाच ॥ एवमस्त्विति तां प्राह चान्यं वरय सत्वरम् ॥ ददामि वरमुत्कृष्टं गानेन तोषितोस्म्यहम् ॥ २० ॥ वर्द्धन्युवाच ॥ अस्मिन्स्थाने महाक्षेत्रे मम तीर्थं महामते ॥ भूयाच्च सर्वपापघ्नं मन्नाम्नेति च विश्रुतम् ॥ २१ ॥ तत्र दत्तं हुतं तप्तं पठितं वाऽक्षयं भवेत् ॥ पञ्चरात्रं निषेवेत वर्द्धमानं सरोवरम् ॥ २२ ॥ पूर्वजास्तस्य तुष्येरंस्तर्प्यमाणा दिनेदिने ॥ तथेत्युक्त्वा तु तां धर्मो मौनमाचष्ट संस्थितः ॥ त्रिः परिक्रम्य तं धर्मं नमस्कृत्य दिवं ययौ ॥ २३ ॥ वर्द्धन्युवाच ॥ मा भयं कुरु देवेश यमस्यार्कसुतस्य च ॥ अयं स्वार्थपरो धर्मं यशसे च समाचरेत् ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ वर्द्धनी पूजिता तेन शक्रेण च शुभानना ॥ साधु साधु महाभागे देवकार्यं कृतं त्वया ॥ २५ ॥ निर्भयत्वं वरारोहे सुखवासश्च ते सदा ॥ यशः सौख्यं श्रियं रम्यां प्राप्स्यसि त्वं शुभानने ॥ २६ ॥ तथेति देवास्तामूचुर्निर्भयानन्दचेतसा ॥ नमस्कृत्य च शक्रं सा गता स्थानं स्वकं शुभम् ॥ २७ ॥ व्यास

सूर्य के पुत्र यमराज का तुम भय न करो क्योंकि स्वार्थ में परायण ये धर्मराज यश के लिये तप करते हैं ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले कि उन इन्द्र ने उस उत्तम मुखवाली वर्द्धनी का पूजन किया व यह कहा कि हे महाभागे ! तुमको साधुवाद है क्योंकि तूने देवताओं का कार्य किया ॥ २५ ॥ व हे शुभानने, वरारोहे ! तुमको सदैव अभयता होवै व सुखपूर्वक तुम्हारा निवास होवै और तुम यश, सुख व सुन्दरी लक्ष्मी को पावोगी ॥ २६ ॥ देवताओं ने निर्भय व आनन्द चित्त से उससे यह कहा कि वैसाही होगा और वह वर्द्धनी अप्सरा इन्द्रजी को प्रणामकर अपने उत्तम स्थान को चलीगई ॥ २७ ॥ व्यासजी बोले कि हे राजेन्द्र ! अप्सरा के चलेजाने

पर धर्मराज विधिपूर्वक स्थित हुए व उन्हों ने संसार को दुःखदायक बड़ा भयंकर तप किया ॥ २८ ॥ कि हे राजन्! सूर्य से तापित ज्येष्ठ महीने में उन्हों ने देवताओं से भी दुस्सह व दुरासद पंचाग्नि साधन किया ॥ २९ ॥ तदनन्तर सौ वर्ष पूर्ण होने पर यमराज मौन होकर स्थित हुए व सैकड़ों बँवौरि से घिरे हुए वे काठ की नाईं स्थित हुए ॥ ३० ॥ व हे राजन्! अनेक प्रकार के पक्षियों से वहां घोंसला करने पर उन धर्मराज ने व्रत किया और वे कहीं देख नहीं पड़ते थे ॥ ३१ ॥ इस के अनन्तर अनिन्दित उमापति देवेश शिवजी को स्मरण करते हुए गन्धर्वों समेत देवता व यक्ष उद्विग्नमानस हुए और फिर शिवजी के समीप कैलास पर्वत के शिखर

उवाच ॥ गतेप्सरसि राजेन्द्र धर्मस्तस्थौ यथाविधि ॥ तपस्तेपे महाघोरं विश्वस्योद्वेगदायकम् ॥ २८ ॥ पञ्चाग्निसाधनं शुक्रे मासि सूर्येण तापिते ॥ चक्रे सुदुःसहं राजन्देवैरपि दुरासदम् ॥ २९ ॥ ततो वर्षशते पूर्णे अन्तको मौनमास्थितः ॥ काष्ठभूत इवातस्थौ वल्मीकशतसंवृतः ॥ ३० ॥ नानापक्षिगणैस्तत्र कृतनीडे स धर्मराट् ॥ उपविष्टे व्रतं राजन्दृश्यते नैव कुत्रचित् ॥ ३१ ॥ संस्मरन्तोऽथ देवेशमुमापतिमनिन्दितम् ॥ ततो देवाः सगन्धर्वा यक्षाश्चोद्विग्नमानसाः ॥ कैलासशिखरं भूय आजग्मुः शिवसन्निधौ ॥ ३२ ॥ देवा ऊचुः ॥ त्राहि त्राहि महादेव श्रीकण्ठ जगतः पते ॥ त्राहि नो भूतभव्येश त्राहि नो वृषभध्वज ॥ दयालुस्त्वं कृपानाथ निर्विघ्नं कुरु शंकर ॥ ३३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ केनापराधिता देवाः केन वा मानमर्दिताः ॥ मर्त्ये स्वर्गेऽथवा नागे शीघ्रं कथयताचिरम् ॥ ३४ ॥ अनेनैव त्रिशूलेन खट्वाङ्गेनाथवा पुनः ॥ अथ पाशुपतेनैव निहनिष्यामि तं रणे ॥ शीघ्रं वै वदतास्माकमत्रागमन

पै आये ॥ ३२ ॥ देवता बोले कि हे श्रीकण्ठ, जगत्पते, देवदेव! रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये हे भूतभव्येश! हम लोगों की रक्षा कीजिये हे वृषभध्वज! हमारी रक्षा कीजिये हे दयानाथ, शंकर! तुम दयालु हो निर्विघ्न कीजिये ॥ ३३ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवताओ! किसने तुमलोगों का अपराध किया है व किसने मानमर्दन किया है मृत्युलोकमें या स्वर्ग में या पातालमें होवै उसको शीघ्रही कहिये देर मत कीजिये ॥ ३४ ॥ क्योंकि इसी त्रिशूल से या खट्वाङ्ग से अथवा पाशुपत अस्त्र से मैं

उसको युद्ध में मारूंगा तुमलोग शीघ्रही हम से यहां आने का कारण कहो॥ ३५ ॥ देवता बोले कि हे दयासिन्धो, जगदानन्ददायक, देवेश ! इस समय मनुष्य से व नाग से और देवता व दानव से भय नहीं है ॥ ३६ ॥ बरन हे महादेव ! मृत्युलोकमें बड़ेभारी शरीरवाले यमराजजी बड़े भयंकर अपने शरीर को क्लेशित करते हैं यह निश्चय है ॥ ३७ ॥ व हे सदाशिव ! उग्र तपस्या करके आत्मा से आत्मा क्लेशित होता है उससे हे सदाशिव ! हम सब देवता दुःखित होकर तुम्हारे शरण में प्राप्त हुए हैं जो चाहो उसको करो ॥ ३८ ॥ सूतजी बोले कि देवताओं का वचन सुनकर बैल पै चढ़े हुए वृषध्वज शिवजी अस्त्रों को लेकर व सुन्दर कवच को पहनकर उस

कारणम् ॥ ३५॥ देवा ऊचुः ॥ कृपासिन्धो हि देवेश जगदानन्दकारक॥ न भयं मानुषादद्य न नागाद्देवदानवात् ॥ ३६॥ मर्त्यलोके महादेव प्रेतनाथो महाकृतिः ॥ आत्मकायं महाघोरं क्लेशयेदिति निश्चयः॥ ३७ ॥ उग्रेण तपसा कृत्वा क्लिश्येदात्मानमात्मना॥ तेनात्र वयमुद्विग्ना देवाः सर्वे सदाशिव ॥ शरणं त्वामनुप्राप्ता यदिच्छसि कुरुष्व तत् ॥ ३८॥ सूत उवाच ॥ देवानां वचनं श्रुत्वा वृषारूढो वृषध्वजः ॥ आयुधान्परिसंगृह्य कवचं सुमनोहरम् ॥ गतवानथ तं देशं यत्र धर्मो व्यवस्थितः ॥ ३९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अनेन तपसा धर्म संतुष्टं मम मानसम् ॥ वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि वरं ब्रूहीत्युवाच ह ॥ ४० ॥ इच्छसे त्वं यथा कामान्यथा ते मनसि स्थितान् ॥ यं यं प्रार्थयसे भद्र ददामि तव सांप्रतम् ॥ ४१ ॥ व्यास उवाच॥ एवं संभाषमाणं तु दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥ वल्मीकादुत्थितो राजन्गृहीत्वा करसंपुटम् ॥ तुष्टाव वचनैः शुद्धैर्लोकनाथमरिंदमम् ॥ ४२ ॥ धर्म उवाच॥ ईश्वराय नमस्तुभ्यं नमस्ते योगरूपिणे॥ नमस्ते तेजो

स्थान को गये जहां कि धर्मराजजी टिके थे ॥ ३९ ॥ महादेवजी बोले कि हे धर्म ! इस तप से मेरा मन प्रसन्न होगया वरदान को कहो ऐसा तीन बार उन शिवजी ने कहा ॥ ४० ॥ जैसे कामों को तुम चाहते हो व जैसे तुम्हारे मन में स्थित हैं हे भद्र ! जिस जिस मनोरथ को तुम चाहते हो उसको इस समय दूंगा ॥ ४१ ॥ व्यास जी बोले कि इस प्रकार कहते हुए लोकनाथ व शत्रुनाशक महेश्वरदेवजी को देखकर बँबौरि से उठे हुए धर्मराज ने हाथों को जोड़कर शुद्ध वचनों से स्तुति किया ॥ ४२ ॥ धर्म बोले कि आप ईश्वर के लिये नमस्कार है व योगरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है तेजोरूपी आपके लिये प्रणाम है व हे नीलकण्ठ ! तुम्हारे लिये प्रणाम

है ॥ ४३ ॥ व ध्यान करनेवालों के अनुरूप भक्ति से गम्य आपके लिये प्रणाम है व ब्रह्मरूपी आपके लिये नमस्कार है हे विष्णुरूप ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४४ ॥ व स्थूल, सूक्ष्म व अणुरूप आपके लिये प्रणाम है व कामरूपी आप सृष्टि, स्थिति तथा संहार करनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ४५ ॥ व नित्य, सौम्य, मृड व हरि के लिये प्रणाम है व आतपरूप आपके लिये प्रणाम है तथा शीतकर आपके लिये नमस्कार है ॥ ४६ ॥ हे सृष्टिरूप ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे लोकपाल ! आपके लिये नमस्कार है और उग्र, भीम व शातरूप आपके लिये नमस्कार है ॥ ४७ ॥ अनंतरूप आपके लिये प्रणाम है व विश्वरूप तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे चन्द्रशेखर ! भस्म

ध्यातॄणामनुरूपाय भक्तिगम्याय ते नमः ॥ नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूप रूपाय नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते ॥ ४३ ॥ नमस्ते कामरूपाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ॥ ४५ ॥ नमोऽस्तु ते ॥ ४४ ॥ नमः स्थूलाय सूक्ष्माय अणुरूपाय वै नमः ॥ नमस्तुभ्यं नमः शीतकराय च ॥ ४६ ॥ सृष्टिरूप नमस्तु नमो नित्याय सौम्याय मृडाय हरये नमः ॥ आतपाय नमस्तुभ्यं नमः शीतकराय च ॥ ४६ ॥ सृष्टिरूप नमस्तुभ्यं लोकपाल नमोऽस्तु ते ॥ नम उग्राय भीमाय शान्तरूपाय ते नमः ॥ ४७ ॥ नमश्चानन्तरूपाय विश्वरूपाय ते नमः ॥ नमो भस्माङ्गलिप्ताय नमस्ते चन्द्रशेखर ॥ ४८ ॥ नमस्ते व्यालभूषाय काष्ठापटधराय च ॥ नमोऽस्तु पञ्चवक्त्राय त्रिनेत्राय नमोऽस्तु ते ॥ ४९ ॥ नमोऽन्धकविनाशाय दक्षपापापहारिणे ॥ कामनिर्दाहिने तुभ्यं त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते ॥ ४९ ॥ चत्वारिंशच्च नामानि मयोक्तानि च यः पठेत् ॥ शुचिर्भूत्वा त्रिकालं तु पठेद्वा शृणुयादपि ॥ ५० ॥ गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च सुरापो गुरुतल्पगः ॥ ब्रह्महा हेमहारी च ह्यथवा वृषलीपतिः ॥ ५१ ॥ स्त्रीबालघातकश्चैव पापी चा

को अंगमें लगाये हुए आपके लिये नमस्कारहै व पंचमुख तथा त्रिनेत्र आपके लिये प्रणाम है ॥ ४८ ॥ व सर्पों का भूषण करनेवाले व दिशारूपी वसनों को धारनेवाले आपके लिये प्रणाम है व अन्धक को नाशनेवाले और दक्ष के पाप को नाशनेवाले आपके लिये प्रणाम है हे त्रिपुरारे ! कामदेव को जलानेवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ४९ ॥ मुझ से कहेहुए चालीस नामोंको जो पढ़ता है और पवित्र होकर जो त्रिकाल पढ़ता या सुनता है ॥ ५० ॥ गोघाती, कृतघ्न, मद्यपी, गुरु की शय्या पै बैठनेवाला, ब्रह्मघाती, सुवर्णहारी या शूद्रा का पति ॥ ५१ ॥ व स्त्री और बालक को मारनेवाला, पापी, असत्यवादी, दुराचारी, चोर व पराई स्त्री से संगम करने

वाला॥५२॥ और दूसरे को कलंक लगानेवाला, वैरी व जीविका को लोप करनेवाला तथा अकार्यकारी, कार्यनाशक, ब्रह्मशत्रु व नीच ब्राह्मण वह सब पापों से छूटजाता है और कैलास को जाता है ॥ ५३ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार बहुत वचनों से जब धर्मराजने आपही मस्तक से प्रणाम कर बड़ी भक्ति से शिवजी की स्तुति की ॥ ५४ ॥ तब प्रसन्न होतेहुए शिवजी ने उन धर्म से यह उत्तम वचन कहा कि हे महाभाग ! जो तुम्हारे मनमें वर्त्तमान हो उस वरदान को मांगो ॥ ५५ ॥ यमराज बोले कि हे महाभाग, देवेश ! यदि प्रसन्न हो तो मेरे ऊपर दयाकर चराचर त्रिलोक को कीजिये॥ ५६ ॥ और यह स्थान संसार में मेरे नाम से प्रसिद्ध होवै और अच्छेद्य, अभेद्य व

नृतभाषणः ॥ अनाचारी तथा स्तेयी परदाराभिगस्तथा ॥ ५२ ॥ परापवादी द्वेषी च वृत्तिलोपकरस्तथा ॥ अकार्यकारी कृत्यघ्नो ब्रह्मद्विड्डाडवाधमः ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यः कैलासं स च गच्छति ॥५३॥ सूत उवाच ॥ इत्येवं बहुभिर्वाक्यैर्धर्मराजेन वै मुहुः ॥ ईडितोऽपि महद्भक्त्या प्रणम्य शिरसा स्वयम् ॥ ५४ ॥ तुष्टः शम्भुस्तदा तस्मा उवाचेदं वचः शुभम्॥ वरं वृणु महाभाग यत्ते मनसि वर्त्तते॥५५॥ यम उवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि देवेश दयां कृत्वा ममोपरि ॥ तत्कुरुष्व महाभाग त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥५६॥ मन्नाम्ना स्थानमेतद्धि ख्यातं लोके भवेदिति॥ अच्छेद्यं चाप्यभेद्यं च पुण्यं पापप्रणाशनम् ॥ ५७॥ स्थानं कुरु महादेव यदि तुष्टोऽसि मे भव ॥ व्यास उवाच॥ शिवेन स्थानकं दत्तं काशीतुल्यं तदा नृप ॥ तद्दत्त्वा च पुनः प्राह अन्यं वरय सत्तम ॥ ५८ ॥ धर्म उवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि देवेश दयां कृत्वा ममोपरि ॥ तं कुरुष्व महाभाग त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ वरेणैवं यथा ख्यातिं गमिष्यामि युगे युगे ॥ ५९ ॥ ईश्वर

पवित्र तथा पापनाशक ॥ ५७ ॥ स्थान को कीजिये यदि हे महादेव, भव ! मेरे ऊपर आप प्रसन्न हो व्यासजी बोले कि हे राजन् ! तब शिवजी ने काशी के समान स्थान को दिया व उसको देकर फिर कहा कि हे सत्तम ! अन्य वरदान को मांगो ॥ ५८ ॥ धर्मराज बोले कि हे महाभाग, देवेश ! यदि प्रसन्न हो तो मेरे ऊपर दया करके उस चराचर समेत त्रिलोक को कीजिये कि जिस प्रकार ऐसे वर से यह स्थान युग युग में प्रसिद्धि को प्राप्त होवै ॥ ५९ ॥ महादेवजी बोले कि हे कीनाश ! कहिये मैं उस सब

तुम्हारे मनोरथ को करूंगा। मैं तपस्या से प्रसन्न हूं इससे चाहेहुए वर को दूंगा ॥ ६० ॥ यमराज बोले कि हे शंकर, देव! यदि मुझको वांछित देते हो तो इस स्थान में तुम सदैव मेरे नाम से होवो ॥ ६१ ॥ व हे महेश्वर, देव! जिस प्रकार चराचर समेत त्रिलोक में धर्मारण्य ऐसी प्रसिद्धि होवै वैसाही कीजिये ॥ ६२ ॥ महादेवजी बोले कि हे देव! धर्मारण्य ऐसा तुम्हारे नाम से स्थापित यह स्थान सदैव युग युग में प्रसिद्ध होगा व और जो कुछ कहिये उसको इस समय मैं करूं ॥ ६३ ॥ यमराज बोले कि दो योजन चौड़ा मेरे नाम से उत्तम तीर्थ होवै जोकि मुक्ति का शाश्वतस्थान व सब प्राणियों को पवित्रकारक होवै ॥ ६४ ॥ और मक्षिका, कीट, पशु, पक्षी,

उवाच ॥ ब्रूहि कीनाश तत्सर्वं प्रकरोमि तवेप्सितम् ॥ तपसा तोषितोऽहं वै ददामि वरमीप्सितम् ॥ ६० ॥ यम उवाच ॥ यदि मे वाञ्छितं देव ददासि तर्हि शङ्कर ॥ अस्मिन्स्थाने महाक्षेत्रे मन्नाम्ना भव सर्वदा ॥ ६१ ॥ धर्मारण्यमिति ख्यातिस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ यथा संजायते देव तथा कुरु महेश्वर ॥ ६२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ धर्मारण्यमिदं ख्यातं सदा भूयाद्युगे युगे ॥ त्वन्नाम्ना स्थापितं देव ख्यातिमेतद्गमिष्यति ॥ अथान्यदपि यत्किञ्चित्करोम्येष वदस्व तत् ॥ ६३ ॥ यम उवाच ॥ योजनद्वयविस्तीर्णं मन्नाम्ना तीर्थमुत्तमम् ॥ मुक्तेश्च शाश्वतं स्थानं पावनं सर्वदेहिनाम् ॥ ६४ ॥ मक्षिकाः कीटकाश्चैव पशुपक्षिमृगादयः ॥ पतङ्गा भूतवेतालाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ ६५ ॥ नारी वाथ नरो वाथ मत्क्षेत्रे धर्मसंज्ञके ॥ त्यजते यः प्रियान्प्राणान्मुक्तिर्भवतु शाश्वती ॥ ६६ ॥ एवमस्त्विति सर्वोपि देवा ब्रह्मादयस्तथा ॥ पुष्पवृष्टिं प्रकुर्वाणाः परं हर्षमवाप्नुयुः ॥ ६७ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुर्गन्धर्वपतयो जगुः ॥ ववुः पुण्यास्तथा वाता ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ६८ ॥ सूत उवाच ॥ यमेन तपसा भक्त्या तोषितो हि सदाशिवः ॥ उवाच वचनं देवं

मृगादिक, पतंग, भूत, वेताल, पिशाच, नाग व राक्षस ॥ ६५ ॥ स्त्री व पुरुष जो धर्मनामक मेरे क्षेत्र में प्रिय प्राणों को छोड़ै उसकी अविनाशिनी मुक्ति होवै ॥ ६६ ॥ ऐसाही होवै यह शिवजी ने कहा और पुष्पवृष्टि को करते हुए ब्रह्मादिक देवता बड़े हर्ष को प्राप्त हुए ॥ ६७ ॥ और देवताओं की दुन्दुभी बजनेलगीं व गंधर्वपति गाने लगे और पवित्र पवन चलने लगे व अप्सराओं के गण नाचनेलगे ॥ ६८ ॥ सूतजी बोले कि यमराज की तपस्या व भक्ति से प्रसन्न होतेहुए सदाशिवजी ने धर्मराज

देवजी से उत्तम व सुन्दर वचन को कहा ॥ ६९ ॥ कि हे तात ! मुझको आज्ञा दीजिये कि जिस प्रकार देवताओं के हित की कामना से मैं शीघ्रही कैलास नामक श्रेष्ठ पर्वत को जाऊं ॥ ७० ॥ यमराज बोले कि हे महेश्वर ! तुम को मेरा स्थान छोड़ना न चाहिये हे देव ! तुम्हारे वचन से यह स्थान कैलास से अधिक होवै ॥ ७१ ॥ शिवजी बोले कि तुमने बहुत अच्छा व योग्य कहा कि एक अंश से मेरी यहां स्थिति होगी और तुम्हारे निर्मल व उत्तम स्थान को मैं नहीं छोड़ूंगा ॥ ७२ ॥ मेरे नाम से यहां विश्वेश्वर नामक लिंग होगा ऐसा कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ७३ ॥ तब शिवजी के वचन से वहां वह अद्भुत लिंग हुआ व उसको देखकर

रम्यं साधुमनोरमम् ॥ ६९ ॥ अनुज्ञां देहि मे तात यथा गच्छामि सत्वरम् ॥ कैलासं पर्वतश्रेष्ठं देवानां हितकाम्यया ॥ ७० ॥ यम उवाच ॥ न मे स्थानं परित्यक्तुं त्वया युक्तं महेश्वर ॥ कैलासादधिकं देव जायते वचनादिदम् ॥ ७१ ॥ शिव उवाच ॥ साधु प्रोक्तं त्वया युक्तमेकांशेनात्र मे स्थितिः ॥ न मया त्यजितं साधु स्थानं तव सुनिर्मलम् ॥ ७२ ॥ विश्वेश्वरं महालिङ्गं मन्नाम्नात्र भविष्यति ॥ एवमुक्त्वा महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७३ ॥ शिवस्य वचनात्तत्र तदा लिङ्गं तदद्भुतम् ॥ तं दृष्ट्वा च सुरैस्तत्र यथानामानुकीर्त्तनम् ॥ ७४ ॥ स्वं स्वं लिङ्गं तदा सृष्टं धर्मारण्ये सुरोत्तमैः ॥ यस्य देवस्य यल्लिङ्गं तन्नाम्ना परिकीर्तितम् ॥ ७५ ॥ सूत उवाच ॥ धर्मेण स्थापितं लिङ्गं धर्मेश्वरमुपस्थितम् ॥ स्मरणात्पूजनात्तस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७६ ॥ यद्ब्रह्म योगिनां गम्यं सर्वेषां हृदये स्थितम् ॥ तिष्ठते यस्य लिङ्गं तु स्वयम्भुवमिति स्मृतम् ॥ ७७ ॥ भूतनाथं च सम्पूज्य व्याधिभिर्मुच्यते जनः ॥ धर्मवापीं ततश्चैव

वहां उत्तम देवताओंने जिसका जैसा नाम कहाजाता था उसने वैसेही अपने अपने लिंग को उस समय बनाया और जिस देवता का जो लिंगहुआ वह उसके नाम से कहा गया ॥ ७४।७५ ॥ सूतजी बोले कि धर्मजी से स्थापित धर्मेश्वरलिंग उपस्थित हुआ उसके स्मरण व पूजन से मनुष्य सब पापों मे छूट जाता है ॥ ७६ ॥ और योगियों के प्राप्त होने योग्य जो ब्रह्म सबोंके हृदयमें स्थित है व जिनका स्वयंभुव ऐसा कहा हुआ लिंग स्थित है ॥ ७७ ॥ उन भूतनाथजी को पूजकर मनुष्य रोगों से छूटजाता है

तदनन्तर वहींपर धर्मराजजी ने सुन्दरी धर्मवापी को किया ॥ ७८ ॥ और करोडों तीर्थों का जल लाकर बावली में छोड़दिया सुन्दर यमतीर्थस्वरूप में स्नान करके ॥ ७९ ॥ व शुद्ध चित्तवाले ऋषियों तथा देवताओं के नहाने के लिये उसमें नहाकर व जलको पीकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ८० ॥ और धर्मवापी में नहाकर व धर्मेश्वर शिवजीको देखकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है और माता के गर्भ में नहीं प्रवेश करता है ॥ ८१ ॥ और उसमें नहाकर व्याधि दोष के नाश के लिये व क्लेश दोष की शांति के लिये जो मनुष्य यमतर्पण करता है ॥ ८२ ॥ कि यम, धर्मराज, मृत्यु, अंतक, वैवस्वत, काल, दध्न, परमेष्ठी के लिये ॥ ८३ ॥ व वृकोदर, वृक

चक्रे तत्र मनोरमाम् ॥ ७८ ॥ आहत्य कोटितीर्थानां जलं वाप्यां मुमोच ह ॥ यमतीर्थस्वरूपे च स्नानं कृत्वा मनोरमम् ॥ ७९ ॥ स्नानार्थं देवतानां च ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ तत्र स्नात्वा च पीत्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ८० ॥ धर्मवाप्यां नरः स्नात्वा दृष्ट्वा धर्मेश्वरं शिवम् ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो न मातुर्गर्भमाविशेत् ॥ ८१ ॥ तत्र स्नात्वा नरो यस्तु करोति यमतर्पणम् ॥ व्याधिदोषविनाशार्थं क्लेशदोषोपशान्तये ॥ ८२ ॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ॥ वैवस्वताय कालाय दध्नाय परमेष्ठिने ॥ ८३ ॥ वृकोदराय वृकाय दक्षिणेशाय ते नमः ॥ नीलाय चित्रगुप्ताय चित्र वैचित्र ते नमः ॥ ८४ ॥ यमार्थं तर्पणं यो वै धर्मवाप्यां करिष्यति ॥ साक्षतैर्नामभिश्चैतैस्तस्य नोपद्रवो भवेत् ॥ ८५ ॥ एकान्तरस्तृतीयस्तु ज्वरश्चातुर्थिकस्तथा ॥ वेलायां जायते यस्तु ज्वरः शीतज्वरस्तथा ॥ ८६ ॥ पीडयन्ति न चैतस्य यस्यैव मतिरीदृशी ॥ रेवत्यादिग्रहा दोषा डाकिनी शाकिनी तथा ॥ ८७ ॥ धनधान्यसमृद्धिः स्यात्सं

और दक्षिणेश तुम्हारे लिये नमस्कार है व नील तथा चित्रगुप्त के लिये व हे चित्र, वैचित्र ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ८४ ॥ इस प्रकार धर्मवापी में जो मनुष्य अक्षतों समेत इन नामों से यमराज के लिये तर्पण करता है उसके उपद्रव नहीं होता है ॥ ८५ ॥ और एकांतर, तृतीय व चातुर्थिक ज्वर और जो समय में ज्वर व शीतज्वर होता है ॥ ८६ ॥ ये इस मनुष्य को पीडित नहीं करते हैं जिसकी ऐसी बुद्धि होती है व रेवती आदिक ग्रहदोष डाकिनी व शाकिनी नहीं होती हैं ॥ ८७ ॥ व धन, धान्य

की समृद्धि होती है और सदैव सन्तान बढ़ती है और स्नान कर जितेन्द्रिय मनुष्य भूतेश्वरजीको पूजकर ॥ ८८ ॥ व अंग समेत रुद्रजप कर व्याधि के दोषों से छूटजाता है अमावस, सोमदिन, व्यतीपात, वैधृति, संक्रांति व ग्रहण में वहां मनुष्यों को श्राद्ध कहा गया है ॥ ८९ ॥ व जो प्रसिद्ध मनुष्य तिलों से मिश्रित जल को देता है उसने हज़ारों वर्ष तक श्राद्ध किया पितर लोग इस रहस्य को कहते हैं ॥ ९० ॥ व इक्कीस बार गया में पिंडदान से व धर्मेश्वर में पितरों को एक बार दियाहुआ श्राद्ध अक्षय होता है ॥ ९१ ॥ धर्मेश्वर से पश्चिम भाग में विश्वेश्वर के मध्य में धर्मवापी ऐसी प्रसिद्ध वह स्वर्गसोपान को देनेवाली है ॥ ९२ ॥ धर्मबुद्धिवाले धर्मराज ने

ततिर्वर्धते सदा ॥ भूतेश्वरं तु सम्पूज्य सुस्नातो विजितेन्द्रियः ॥ ८८ ॥ साङ्गं रुद्रजपं कृत्वा व्याधिदोषात्प्रमुच्यते ॥ अमावास्यां सोमदिने व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ संक्रान्तौ ग्रहणे चैव तत्र श्राद्धं स्मृतं नृणाम् ॥ ८९ ॥ श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति ॥ पानीयमेवापि तिलैर्विमिश्रितं ददाति यो वै प्रथितो मनुष्यः ॥ ९० ॥ एक विंशतिवारैस्तु गयायां पिण्डदानतः ॥ धर्मेश्वरे सकृद्दत्तं पितॄणां चाक्षयं भवेत् ॥ ९१ ॥ धर्मेशात्पश्चिमे भागे विश्वे श्वरान्तरेऽपि वा ॥ धर्मवापीति विख्याता स्वर्गसोपानदायिनी ॥ ९२ ॥ धर्मेण निर्मिता पूर्वं शिवार्थं धर्मबुद्धिना ॥ तत्र स्नात्वा च पीत्वा च तर्पिताः पितृदेवताः ॥ ९३ ॥ शमीपत्रप्रमाणं तु पिण्डं दद्याच्च यो नरः ॥ धर्मवाप्यां महा पुण्यां गर्भवासं न चाप्नुयात् ॥ ९४ ॥ कुम्भीपाकान्महारौद्राद्रौरवान्नरकात्पुनः ॥ अन्धतामिस्रकाद्राजन्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ९५ ॥ व्यास उवाच ॥ नैकवर्णं च पानीयं धर्मवाप्यां नरोत्तम ॥ ऋतौ मासे च पक्षे च विपरीतं च जायते ॥ ९६ ॥

पुरातन समय शिवजी के लिये उसको बनाया है उसमें नहाकर व जल को पीकर पितर और देवता तृप्त होते हैं ॥ ९३ ॥ जो मनुष्य महापवित्र धर्मबावली में शमी के पत्ते के प्रमाण भर पिंडको देता है वह गर्भवास को नहीं पाता है ॥ ९४ ॥ और महाभयंकर कुंभीपाक से व रौरव नरक से व हे राजन् ! अंधतामिस्र नरक से मुक्त होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९५ ॥ व्यासजी बोले कि हे नरोत्तम ! धर्मबावली में अनेक रंगका-जल होता है और ऋतु, मास व पक्ष में बदलता है ॥ ९६ ॥

और बर्हिषद्, अग्निष्वात्त, आज्यप व सोमपसंज्ञक पितर बावली में तर्पण करने से उत्तम तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ६७ ॥ कुरुक्षेत्रादिक क्षेत्र व अयोध्यादि नगर व सब पुष्करादिक जो मुक्तिस्थान हैं ॥ ६८ ॥ वे सब तुल्य हैं और धर्मकूप अधिक है मंत्र, वेद, यज्ञ, दान व व्रत ॥ ६६ ॥ हे नरेश्वर ! वहां देकर व जपकर ये अक्षय होते हैं और अथर्ववेदसे उपजेहुए जो अभिचार हैं वे भलीभांति सिद्ध होते हैं ॥ १०० ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! उस स्थान में कियेहुए भी वे सब सिद्धि को प्राप्त होते हैं और वह आदि तीर्थ ब्रह्मा, विष्णु व महेश से सेवित है ॥ १ ॥ व बहुत सौम्य सिद्धिस्थान ब्रह्मादिक देवताओं से सेवित है सतयुगमें युगभर तक व त्रेतायुग में पांचलाख वर्षतक ॥ २ ॥

बर्हिषदोऽग्निष्वात्ताश्च आज्यपाः सोमपास्तथा ॥ तृप्तिं प्रयान्ति परमां वाप्यां वै तर्पणेन तु ॥ ६७ ॥ कुरुक्षेत्रादि क्षेत्राणि अयोध्यादिपुरस्तथा ॥ पुष्कराद्यानि सर्वाणि मुक्तिस्थानानि सन्ति वै ॥ ६८ ॥ तानि सर्वाणि तुल्यानि धर्मकूपोऽधिको भवेत् ॥ मन्त्रो वेदास्तथा यज्ञा दानानि च व्रतानि च ॥ ६६ ॥ अक्षयाणि प्रजायन्ते दत्त्वा जप्त्वा नरेश्वर ॥ अभिचाराश्च ये चान्ये सुसिद्धाथर्ववेदजाः ॥ १०० ॥ ते सर्वे सिद्धिमायान्ति तस्मिन्स्थाने कृता अपि ॥ आदितीर्थं नृपश्रेष्ठ काजेशैरुपसेवितम् ॥ १ ॥ सिद्धिस्थानं सुसौम्यं च ब्रह्माद्यैरपि सेवितम् ॥ कृते तु युग पर्यन्तं त्रेतायां लक्षपञ्चकम् ॥ २ ॥ द्वापरे लक्षमेकं तु दिनैकेन फलं कलौ ॥ एतदुक्तं मया ब्रह्मन्धर्मारण्यस्य वर्ण नम् ॥ फलं चैवात्र सर्वं हि उक्तं द्वैपायनेन तु ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मवाक्यं मनोरमम् ॥ दे वानां हितकामाय आज्ञाप्य च यदुक्तवान् ॥ ४ ॥ धर्म उवाच ॥ अस्मिन्क्षेत्रे प्रकुर्वन्ति विष्णुमायाविमोहिताः ॥ पार दार्यं महादुष्टं स्वर्णस्तेयादिकं तथा ॥ ५ ॥ अन्यच्च विकृतं सर्वं कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ॥ अन्यक्षेत्रे कृतं पापं धर्मारण्ये

और द्वापर में एकलाख वर्ष से जो फल होता है वह कलियुग में एक दिन से फल होता है हे ब्रह्मन् ! यह धर्मारण्य का वर्णन किया गया और इसमें व्यासजी से सब फल कहा गया है ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त मैं सुन्दर धर्म वचन को कहता हूं जोकि हित की कामना के लिये देवताओं को आज्ञा देकर कहा है ॥ ४ ॥ धर्म बोले कि विष्णुजी की माया से मोहित जो मनुष्य इस क्षेत्र में महादुष्ट पराई स्त्री से उपजेहुए व सुवर्ण की चोरी आदिक पाप को करते हैं ॥ ५ ॥ व अन्य सब

विकृत कर्म को करताहुआ मनुष्य नरक को जाता है और अन्य क्षेत्रमें किया हुआ पाप धर्मारण्य में नाश होजाता है ॥ ६ ॥ व धर्मारण्य में किया हुआ पाप वज्रलेप होजाता है जैसे पुण्य वैसेही पाप किया हुआ जो कुछ शुभ, अशुभ पाप है ॥ ७ ॥ वह सब सौ बरस तक नित्य बढ़ता है और कामियों को वह पवित्र क्षेत्र कामदायक है व योगियों को मुक्तिदायक है ॥ ८ ॥ व सदैव धर्मारण्यक्षेत्र सिद्धों को सिद्धिदायक कहा गया है पुत्ररहित मनुष्य पुत्रों को पाता है व निर्धनी धनवान् होता है ॥ ९ ॥ पुरातन समय इस पवित्र कथा को धर्मराजने कहा है जो मनुष्य या स्त्री भक्ति से सुनती है व जो इसको सुनाता है उसको हज़ार गऊ का फलहोता है और

विनश्यति ॥ ६ ॥ धर्मारण्ये कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ॥ यथा पुण्यं तथा पापं यत्किञ्चिच्च शुभाशुभम् ॥ ७ ॥ तत्सर्वं वर्द्धते नित्यं वर्षाणि शतमित्युत ॥ कामिनां कामदं पुण्यं योगिनां मुक्तिदायकम् ॥ ८ ॥ सिद्धानां सिद्धिदं प्रोक्तं धर्मारण्यं तु सर्वदा ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो धनवान्भवेत् ॥ ९ ॥ एतदाख्यानकं पुण्यं धर्मेण कथितं पुरा ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या नारी वा श्रावयेत्तु यः ॥ गोसहस्रफलं तस्य अन्ते हरिपुरं व्रजेत् ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येक्षेत्रस्थापनन्नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यनिवासिना ॥ यत्कार्यं पुरुषेणेह गार्हस्थ्यमनुतिष्ठता ॥ १ ॥ धर्मारण्येषु ये जाता ब्राह्मणाः शुद्धवंशजाः ॥ अष्टादशसहस्राश्च काजेशैश्च विनिर्मिताः ॥ २ ॥ सदाचाराः पवित्राश्च ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ॥ तेषां दर्शनमात्रेण महापापैर्विमुच्यते ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ पाराशर्य समाख्याहि सदा

अन्त में वह विष्णुपुर को जाता है ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांक्षेत्रस्थापनन्नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ⊛ ॥

दो० । करै गृहस्थाश्रमी जिमि सदाचार को कर्म । सोइ पांच अध्याय महँ कह्यो चरित्र सुपर्म ॥ व्यासजी बोले कि इसके उपरान्त धर्मारण्यनिवासी गृहस्थाश्रमी पुरुष को इस संसार में जो करना चाहिये उसको मैं कहता हूं ॥ १ ॥ कि धर्मारण्यमें ब्रह्मा, विष्णु व महेशजी से रचेहुए शुद्ध वंश में उत्पन्न जो अठारह हज़ार ब्राह्मण उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥ वे उत्तम आचारवाले व पवित्र तथा ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं और उनके दर्शनही से मनुष्य महापापों से छूटजाता है ॥ ३ ॥ युधिष्ठिर

जी बोले कि हे पाराशर्य ! मुझ से उत्तम आचार को कहिये क्योंकि आचार से मनुष्य धर्म को पाता है व आचार से फल को पाता है और आचार से लक्ष्मी को पाता है इससे आचार को मुझ से कहिये ॥ ४ ॥ व्यासजी बोले कि स्थावर, कीट, जलजन्तु, पक्षी, पशु व मनुष्य ये क्रम से धर्मवान् हैं और इनसे देवता धर्मवान् हैं ॥ ५ ॥ हज़ार भाग से पहले व दूसरे क्रमवाले ये सब पाप से मुक्ति में स्थित होकर बडे ऐश्वर्यवान् होते हैं ॥ ६ ॥ चार प्रकारके भी जन्तुवोंमें प्राणधारी उत्तम हैं व हे नृप ! प्राणधारियों से भी सब बुद्धि से कार्य करनेवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ७ ॥ व बुद्धिमानों से मनुष्य श्रेष्ठ हैं व उनसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं और ब्राह्मणों से भी विद्वान् श्रेष्ठ हैं व विद्वानों से

चारं च मे प्रभो ॥ आचाराद्धर्ममाप्नोति आचाराल्लभते फलम् ॥ आचाराच्छ्रियमाप्नोति तदाचारं वदस्व मे ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ स्थावराः कृमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नराः ॥ क्रमेण धार्मिकास्त्वेत एतेभ्यो धार्मिकाः सुराः ॥ ५ ॥ सहस्रभागात्प्रथमे द्वितीयानुक्रमास्तथा ॥ सर्व एते महाभागाः पापान्मुक्तिसमाश्रयाः ॥ ६ ॥ चतुर्णामपि भूतानां प्राणिनोतीव चोत्तमाः ॥ प्राणिभ्योपि नृपश्रेष्ठाः सर्वे बुद्ध्युपजीविनः ॥ ७ ॥ मतिमद्भ्यो नराः श्रेष्ठास्तेभ्यः श्रेष्ठास्तु वाडवाः ॥ विप्रेभ्योऽपि च विद्वांसो विद्वद्भ्यः कृतबुद्धयः ॥ ८ ॥ कृतधीभ्योऽपि कर्तारः कर्तृभ्यो ब्रह्मतत्पराः ॥ न तेभ्योऽभ्यधिकः कश्चित्त्रिषु लोकेषु भारत ॥ ९ ॥ अन्योन्यपूजकास्ते वै तपोविद्याविशेषतः ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मणा सृष्टः सर्वभूतेश्वरो यतः ॥ १० ॥ अतो जगत्स्थितं सर्वं ब्राह्मणोऽर्हति नापरः ॥ सदाचारो हि सर्वार्होनाचाराद्विच्युतः पुनः ॥ ११ ॥ तस्माद्विप्रेण सततं भाव्यमाचारशीलिना ॥ विद्वेषरागरहिता अनुतिष्ठन्ति यं मुने ॥ १२ ॥ सद्भिरस्तं

प्रवीण बुद्धिवाले श्रेष्ठ हैं ॥ ८ ॥ व कृतबुद्धियों से कर्त्ता व कर्त्ताजनों से भी ब्रह्ममें तत्पर मनुष्य श्रेष्ठ हैं व हे भारत ! तीनों लोकों में उनसे अधिक कोई नहीं है ॥ ९ ॥ और तपस्या व विद्या की अधिकता से वे परस्पर पूजक होते हैं क्योंकि ब्राह्मण ब्रह्मा से सब प्राणियोंका स्वामी बनाया गया है ॥ १० ॥ इस कारण संसार में स्थित सब वस्तु के ब्राह्मण योग्य है अन्य नहीं है और उत्तम आचारवाला ब्राह्मण सब कार्य के योग्य होता है व आचार से रहित योग्य नहीं होता है ॥ ११ ॥ इस कारण सदैव ब्राह्मण को आचार में अभ्यास करना चाहिये हे मुने ! विद्वेष व अनुराग से रहित मनुष्य जिस कार्य को करते हैं ॥ १२ ॥ उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् लोग उस धर्म

के मूल को सदाचार करते हैं क्योंकि लक्षणों से हीन भी भलीभांति आचार में तत्पर ॥ १३ ॥ श्रद्धालु व इर्षारहित मनुष्य सैकड़ों वर्षतक जीता है व अपने अपने कर्मों में श्रुति, स्मृति से कहेहुए ॥ १४ ॥ धर्ममूल सदाचार को निरालसी पुरुष सेवन करै और संसार में दुराचारपरायण पुरुष निन्दनीय होता है ॥ १५ ॥ और रोगों से तिरस्कृत होता है व सदैव अल्पायु व दुःखी होता है और पराधीन कर्म छोड़ना चाहिये व सदैव अपने वश कार्य को करना चाहिये ॥ १६ ॥ क्योंकि पराधीन दुःखी होता है व अपने वश सुखी होताहै जिस कर्म के करने पर चित्त प्रसन्न होताहै ॥ १७ ॥ वही कर्म करना चाहिये विपरीत कभी न करै जिसलिये नियम व यम पहला धर्म सर्वस्व

सदाचारं धर्ममूलं विदुर्बुधाः ॥ लक्षणैः परिहीनोऽपि सम्यगाचारतत्परः ॥ १३ ॥ श्रद्धालुरनसूयुश्च नरो जीवेत्समाः शतम् ॥ श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं स्वेषु स्वेषु च कर्मसु ॥ १४ ॥ सदाचारं निषेवेत धर्ममूलमतन्द्रितः ॥ दुराचाररतो लोके गर्हणीयः पुमान्भवेत् ॥ १५ ॥ व्याधिभिश्चाभिभूयेत सदाल्पायुः सुदुःखभाक् ॥ त्याज्यं कर्म पराधीनं कार्यमात्मवशं सदा ॥ १६ ॥ दुःखी यतः पराधीनः सदैवात्मवशः सुखी ॥ यस्मिन्कर्मण्यन्तरात्मा क्रियमाणे प्रसीदति ॥ १७ ॥ तदेव कर्म कर्त्तव्यं विपरीतं न च कचित् ॥ प्रथमं धर्म्मसर्वस्वं प्रोक्तं यन्नियमा यमाः ॥ १८ ॥ अतस्तेष्वेव वै यत्नः कर्त्तव्यो धर्ममिच्छता ॥ सत्यं क्षमार्जवं ध्यानमानृशंस्यमहिंसनम् ॥ १९ ॥ दमः प्रसादो माधुर्यं मृदुतेति यमा दश ॥ शौचं स्नानं तपो दानं मौनेज्याध्ययनं व्रतम् ॥ २० ॥ उपोषणोपस्थदण्डो दशैते नियमाः स्मृताः ॥ कामं क्रोधं दमं मोहं मात्सर्यं लोभमेव च ॥ २१ ॥ अमून्षड्वैरिणोजित्वा सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ शनैः सञ्चिनुयाद्धर्मं वल्मीकं

कहा गया है ॥ १८ ॥ इस कारण धर्म की इच्छावाले पुरुष को उन्हीं में यत्न करना चाहिये और सत्य, क्षमा, ऋजुता, ध्यान, अक्रूरता, अहिंसन ॥ १९ ॥ इन्द्रियनिग्रह, प्रसाद, माधुर्य, मृदुता ये दश यम हैं और पवित्रता, स्नान, तप, दान, मौन, यज्ञ, पठन व व्रत ॥ २० ॥ उपवास व योनि और लिंग को दंडदेना ये दश नियम कहे गये हैं और काम, क्रोध, दम, मोह, मत्सरता व लोभ ॥ २१ ॥ इन छो वैरियोंको जीतकर मनुष्य सब कहीं विजयी होता है और जैसे बेंबौरि बनानेवाला कीट बेंबौरि

को इकट्ठा करता है वैसेही धीरे २ धर्म को इकट्ठा करै ॥ २२ ॥ और पराई पीड़ा को न करता हुआ पुरुष परलोक में सहाय करनेवाले धर्म को करै क्योंकि रक्षाकिया हुआ धर्मही परलोक में सहायी होता है ॥ २३ ॥ पिता, माता, पुत्र, भाई, स्त्री व बन्धुजनों से अधिक प्राणी अकेला पैदा होता है व अकेलाही मरता है ॥ २४ ॥ और अकेला पुण्य को भोगता है व अकेलाही पाप को भोगता है और शरीर मर जानेपर काठ व ढेले के समान अकेले प्राणी को छोड़कर ॥ २५ ॥ बन्धुलोग विमुख होजाते हैं व धर्म जातेहुए जीव के पीछे जाता है इस कारण इस लोक व परलोक में सहायता करनेवाले धर्म को इकट्ठा करै ॥ २६ ॥ क्योंकि धर्म को सहायक पाकर

श्टङ्गवान्यथा ॥ २२ ॥ परपीडामकुर्वाणः परलोकसहायिनम् ॥ धर्म एव सहायी स्यादमुत्र परिरक्षितः ॥ २३ ॥ पितृमातृसुतभ्रातृयोषिद्बन्धुजनाधिकः ॥ जायते चैकलः प्राणी म्रियते च तथैकलः ॥ २४ ॥ एकलः सुकृतं भुङ्क्ते भुङ्क्ते दुष्कृतमेकलः ॥ देहे पञ्चत्वमापन्ने त्यक्त्वैकं काष्ठलोष्टवत् ॥ २५ ॥ बान्धवा विमुखा यान्ति धर्मो यान्तमनुव्रजेत् ॥ अतः सञ्चिनुयाद्धर्म्ममत्राऽमुत्र सहायिनम् ॥ २६ ॥ धर्मं सहायिनं लब्ध्वा सन्तरेदुस्तरं तमः ॥ सम्बन्धानाचरेन्नित्यमुत्तमैरुत्तमैः सुधीः ॥ २७ ॥ अधमानधमांस्त्यक्त्वा कुलमुत्कर्षतां नयेत् ॥ उत्तमानुत्तमानेव गच्छेद्धीनांश्च वर्जयेत् ॥ ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥ २८ ॥ अनध्ययनशीलं च सदाचारविलङ्घिनम् ॥ सालसं च दुरन्नादं ब्राह्मणं बाधतेऽन्तकः ॥ २९ ॥ अतोऽभ्यस्येत्प्रयत्नेन सदाचारं सदा द्विजः ॥ तीर्थान्यप्यभिलष्यन्ति सदाचारिसमागमम् ॥ ३० ॥ रजनी

मनुष्य कठिन अन्धकार को नाँघजाता है व विद्वान् मनुष्य नित्य उत्तम उत्तम मनुष्यों से सम्बन्ध करै ॥ २७ ॥ और नीच नीच पुरुषों को छोड़कर वंश को उन्नति में प्राप्त करै और उत्तम उत्तम जनों के समीप जावै व हीनजनों को वर्जित करै तो ब्राह्मण श्रेष्ठताको प्राप्त होता है व पाप से शूद्रता को प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ और वेदपाठ न करनेवाले व सदाचार को उल्लंघन करनेवाले तथा आलसी व दुष्ट अन्न को खानेवाले ब्राह्मण को यमराज बाधा करते हैं ॥ २९ ॥ इस कारण सदैव ब्राह्मण बड़े यत्न से उत्तम आचार का अभ्यास करै क्योंकि उत्तम आचारवाले प्राणी के समागम की तीर्थ भी अभिलाष करते हैं ॥ ३० ॥ रात्रि के अन्त में आधा पहर ब्राह्म समय कहा

जाता है उस समय उठकर विद्वान् सदैव अपने हित को चिन्तन करै ॥ ३१ ॥ पहले गणेशजी को स्मरण करै उसके उपरान्त पार्वती समेत शिवजी को व लक्ष्मी समेत श्रीरंग और कमल से उपजेहुए ब्रह्मा को स्मरण करै ॥ ३२ ॥ व इन्द्रादिक सब देवता व वसिष्ठादिक मुनियों को स्मरण करै और गंगादिक सब नदी व श्रीशैलादिक समस्त पर्वतों को स्मरण करै ॥ ३३ ॥ और क्षीरोदादिक समुद्र व मानसादिक तड़ागों को स्मरण करै और नंदनादिक वन व कामदुघादिक गौवों को स्मरण करै ॥ ३४ ॥ और कल्पवृक्षादिक वृक्ष व सुवर्णादिक धातु तथा उर्वशी आदिक देवांगना व प्रह्लादादिक विष्णु के भक्तोंको स्मरण करै ॥ ३५ ॥ व सब तीर्थों से उत्तमोत्तम

प्रान्तयामार्द्धं ब्राह्मः समय उच्यते ॥ स्वहितं चिन्तयेत्प्राज्ञस्तस्मिंश्चोत्थाय सर्वदा ॥ ३१ ॥ गजास्यं संस्मरेदादौ तत ईशं सहाम्बया ॥ श्रीरङ्गं श्रीसमेतं तु ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥ ३२ ॥ इन्द्रादीन्सकलान्देवान्वसिष्ठादीन्मुनीनपि ॥ गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः श्रीशैलाद्यखिलान्गिरीन् ॥ ३३ ॥ क्षीरोदादीन्समुद्रांश्च मानसादिसरांसि च ॥ वनानि नन्दनादीनि धेनूः कामदुघादयः ॥ ३४ ॥ कल्पवृक्षादिवृक्षांश्च धातून्काञ्चनमुख्यतः ॥ दिव्यस्त्रीरुर्वशीमुख्याः प्रह्लादाद्यान्हरेः प्रियान् ॥ ३५ ॥ जननीचरणौ स्मृत्वा सर्वतीर्थोत्तमोत्तमौ ॥ पितरं च गुरुंश्चापि हृदि ध्यात्वा प्रसन्नधीः ॥ ३६ ॥ ततश्चावश्यकं कर्तुं नैर्ऋतीं दिशमाव्रजेत् ॥ ग्रामाद्धनुःशतं गच्छेन्नगराच्च चतुर्गुणम् ॥ ३७ ॥ तृणैराच्छाद्य वसुधां शिरः प्रावृत्य वाससा ॥ कर्णोपवीत उदग्वक्त्रो दिवसे सन्ध्ययोरपि ॥ ३८ ॥ विण्मूत्रे विसृजेन्मौनी निशायां दक्षिणामुखः ॥ न तिष्ठन्नाशु नो विप्रगोवह्न्यनिलसम्मुखः ॥ ३९ ॥ न फालकृष्टे भूभागे न रथ्यासेव्यभू

माता के चरणो को स्मरण कर पिता व गुरु को हृदय में ध्यानकर प्रसन्नबुद्धि मनुष्य ॥ ३६ ॥ उसके उपरान्त आवश्यक कार्य करने के लिये नैर्ऋत्य दिशा को जावै ग्राम से सौ धनुष व नगर से चार सौ धनुष जावै ॥ ३७ ॥ व तृणों से पृथ्वी को आच्छादित कर और वसन से मस्तक को आच्छादन कर दिन में व प्रातःकाल और संध्या में उत्तर मुख बैठकर यज्ञोपवीत को कर्ण के ऊपर चढ़ाकर ॥ ३८ ॥ मौन होकर मल, मूत्र त्याग करै और रात्रि में दक्षिण मुख होकर मल मूत्रको त्याग करै और न उठकर न शीघ्र न विप्र, गऊ, अग्नि व पवन के सामने मल, मूत्र को त्याग करै ॥ ३९ ॥ न फाल से जोतेहुए भूमिभाग में न चौराहे में मल, मूत्र त्याग करै

और दिशाओंके भागों को न देखै न ज्योतिश्चक्र, न आकाश न मल को देखै ॥ ४० ॥ और बायें हाथ से लिंग को उठाकर यत्नवान् मनुष्य उठै इसके उपरान्त मनुष्य कीटों व कंकड़ों से रहित मिट्टी को लेवै ॥ ४१ ॥ परन्तु मूस से खोदी व उच्छिष्ट और बालों से संयुत मिट्टी को न लेवै फिर एक मिट्टी को गुदा में देवै तदनन्तर जल से धोकर ॥ ४२ ॥ फिर पाच बार बायें हाथ से गुदा को धोवै व चरणों में एक एक मिट्टी को देवै और हाथों में तीन मिट्टियोंको देवै ॥ ४३ ॥ इस प्रकार गंधलेप के नाश होनेतक गृहस्थ शौच करै और ब्रह्मचर्यादिक तीनों आश्रमों में क्रम से दूना शौच करै ॥ ४४ ॥ और दिन में कहेहुए शौच से रात्रि में आधा शौच करै और पराये ग्राम

तले ॥ नालोकयेद्दिशो भागाञ्ज्योतिश्चक्रं नभो मलम् ॥ ४० ॥ वामेन पाणिना शिश्नं धृत्वोत्तिष्ठेत्प्रयत्नवान् ॥ अथो मृदं समादद्याज्जन्तुकर्करवर्जिताम् ॥ ४१ ॥ विहाय मूषकोत्खातां चोच्छिष्टां केशसंकुलाम् ॥ गुह्ये दद्यान्मृदं चैकां प्रक्षाल्य चाम्बुना ततः ॥ ४२ ॥ पुनर्वामकरेणेति पञ्चधा क्षालयेद्गुदम् ॥ एकैकपादयोर्दद्यात्तिस्रः पाण्योर्मृद स्तथा ॥ ४३ ॥ इत्थं शौचं गृही कुर्याद्गन्धलेपक्षयावधि ॥ क्रमाद्द्वैगुण्यतः कुर्याद्ब्रह्मचर्यादिषु त्रिषु ॥ ४४ ॥ दिवावि हितशौचाच्च रात्रावर्द्धं समाचरेत् ॥ परग्रामे तदर्धं च पथि तस्यार्धमेव च ॥ ४५ ॥ तदर्धं रोगिणां चापि सुस्थे न्यूनं न कारयेत् ॥ अपि सर्वनदीतोयैर्मृत्कूटैश्चाप्यगोपमैः ॥ ४६ ॥ आपातमाचरेच्छौचं भावदुष्टो न शुद्धिभाक् ॥ आर्द्रधात्रीफलोन्माना मृदः शौचे प्रकीर्तिताः ॥ ४७ ॥ सर्वाश्चाहुतयोऽप्येवं ग्रासाश्चान्द्रायणेपि च ॥ प्रागास्य उद गास्यो वा सूपविष्टः शुचौ भुवि ॥ ४८ ॥ उपस्पृशेद्विहीनाभिस्तुषाङ्गारास्थिभस्मभिः ॥ अतिस्वच्छाभिरद्भिश्च याव

में उसका आधा व मार्ग में उसका आधा शौच करै ॥ ४५ ॥ और उसका आधा रोगियों को शौच करना चाहिये व सुस्थ प्राणी में न्यून शौच न करै और सब नदियों के जल से व पर्वत के समान मिट्टी की राशियों से ॥ ४६ ॥ मरण पर्यन्त शौच करै परन्तु स्वभाव से दुष्ट पुरुष शुद्धि का भागी नहीं होता है व बिन सूखे ऑवरों के समान मिट्टी शौच में कही गई हैं ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार सब आहुति व ग्रास भी चान्द्रायण में कहेगये हैं व पूर्व मुख व उत्तर मुख होकर पवित्र भूमि में बैठकर ॥ ४८ ॥ भूसी,

अंगार, अस्थि व भस्म से रहित तथा बहुतही निर्मल व हृदय पर्यन्त गयेहुए जलों से शीघ्रतारहित पुरुष आचमन करै ॥ ४९ ॥ और दृष्टि से पवित्र जलों से ब्राह्मण ब्रह्मतीर्थ से आचमन करै और कंठ में प्राप्त जलों से राजा शुद्ध होता है व तालु में प्राप्त जल से वैश्य शुद्ध होता है ॥ ५० ॥ और स्त्री व शूद्र स्पर्शही करने से पवित्र होते हैं और शिर, शब्द व सकंठ और जल में शिखा को छोड़नेवाला मनुष्य ॥ ५१ ॥ और दोनों चरणों को न धोनेवाला मनुष्य आचमन करके भी अशुद्ध माना गया है और पवित्रता के लिये तीन बार जल को पीकर तदनन्तर इन्द्रियों को पवित्र करै ॥ ५२ ॥ व अँगूठा के मूलस्थान से ओठों को धोवै व जलसे हृदय को

ह्रद्गाभिरत्वरः ॥ ४९ ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मतीर्थेन दृष्टिपूताभिराचमेत् ॥ कण्ठगाभिर्नृपः शुध्येत्तालुगाभिस्तथोरुजः॥५०॥ स्त्रीशूद्रावथ संस्पर्शमात्रेणापि विशुध्यतः ॥ शिरः शब्दं सकण्ठं वा जले मुक्तशिखोऽपि वा ॥ ५१ ॥ अक्षालितपद द्वन्द्व आचान्तोऽप्यशुचिर्म्मतः ॥ त्रिः पीत्वाम्बु विशुद्ध्यर्थं ततः खानि विशोधयेत् ॥ ५२ ॥ अङ्गुष्ठमूलदेशेन ह्यधरौ ष्ठौ परिमृजेत् ॥ स्पृष्ट्वा जलेन हृदयं समस्ताभिः शिरः स्पृशेत् ॥ ५३ ॥ अङ्गुल्यग्रैस्तथा स्कन्धौ साम्बु सर्व्वत्र संस्पृ शेत् ॥ आचान्तः पुनराचामेत्कृत्वा रथ्योपसर्पणम् ॥ ५४ ॥ स्नात्वा भुक्त्वा पयः पीत्वा प्रारम्भे शुभकर्मणाम् ॥ सु प्त्वा वासः परीधाय दृष्ट्वा तथाप्यमङ्गलम् ॥ ५५ ॥ प्रमादादशुचिः स्पृत्वा द्विराचान्तः शुचिर्भवेत् ॥ दन्तधावनं प्रकु र्वीत यथोक्तं धर्मशास्त्रतः ॥ आचान्तोऽप्यशुचिर्यस्मादकृत्वा दन्तधावनम् ॥ ५६ ॥ प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्यां रविवा

स्पर्शकर सब अंगुलियों से मस्तक को स्पर्शकरै ॥ ५३ ॥ व अंगुली के अग्रभागों से कन्धों को स्पर्श करै और जल समेत सब कहीं स्पर्श करै और आचमन कियेहुए मनुष्य गांव के भीतरी मार्ग में जाकर फिर आचमन करै ॥ ५४ ॥ और नहाकर, भोजनकर, जल को पीकर व शुभ कर्मों के प्रारंभ में और सोकर, वसन को पहनकर व अमंगल वस्तु को देखकर ॥ ५५ ॥ व असावधानता से अशुद्ध वस्तु को छूकर दो बार आचमन कर मनुष्य शुद्ध होता है और धर्मशास्त्र में जैसा कहा है वैसेही दंतधावन करै क्योंकि दंतधावन न करके आचमन कियेहुए भी पुरुष अपवित्र होता है ॥ ५६ ॥ परेवा, अमावस, छठि, नवमी व रविवार में दांतों का काष्ठसंयोग सात

पुरितयों तक जलाता है ॥ ५७ ॥ व दतून के न मिलनेपर और निषिद्ध दिन में मुख की शुद्धि के लिये बारह कुल्ला करना चाहिये ॥ ५८ ॥ व छोटी अंगुली के प्रमाणभर व बकला समेत और बिन कटीहुई बारह अंगुल की प्रमाणभर बिन सूखी हुई दतून करना चाहिये ॥ ५६ ॥ व एक एक अंगुल प्रमाण भर दतून को चबावै और शुद्धि के लिये विशेष कर तीर्थ में प्रातःकाल स्नान कर नित्यकर्म करै ॥ ६० ॥ क्योंकि प्रातःकाल स्नान से सदैव मलिन यह शरीर शुद्ध होता है जो मल दिन रात नव छिद्रों से बहताहै ॥ ६१ ॥ उत्साह, मेधा, सौभाग्य, रूप व संपत्ति को बढ़ानेवाला व महापापों का नाशक वह प्राजापत्य के समान कहागया है ॥ ६२ ॥

दहेदासप्तमं कुलम् ॥ ५७ ॥ अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धे वाथ वासरे ॥ गण्डूषा द्वादश ग्राह्या मुखस्य परिशुद्धये ॥ ५८ ॥ कनिष्ठाग्रपरीमाणं सत्वचं निर्व्रणारुजम् ॥ द्वादशाङ्गुलमानं च सार्द्रं स्याद्दन्तधावनम् ॥ ५६ ॥ एकैकाङ्गुलमानं तच्चर्वयेद्दन्तधावनम् ॥ प्रातः स्नानं चरित्वा च शुद्ध्यै तीर्थे विशेषतः ॥ ६० ॥ प्रातः स्नानाद्यतः शुद्ध्येत्कायोऽयं मलिनः सदा ॥ यन्मलं नवभिश्छिद्रैः स्रवत्येव दिवानिशम् ॥ ६१ ॥ उत्साहमेधासौभाग्यरूपसम्पत्प्रवर्द्धकम् ॥ प्राजापत्यसमं प्राहुस्तन्महाघविनाशकृत् ॥ ६२ ॥ प्रातः स्नानं हरेत्पापमलक्ष्मीं ग्लानिमेव च ॥ अशुचित्वं च दुःस्वप्नं तुष्टिं पुष्टिं प्रयच्छति ॥ ६३ ॥ नोपसर्प्पन्ति वै दुष्टाः प्रातःस्नायिजनं क्वचित् ॥ दृष्टादृष्टफलं यस्मात्प्रातःस्नानं समाचरेत् ॥ ६४ ॥ प्रसङ्गतः स्नानविधिं प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम ॥ विधिस्नानं यतः प्राहुः स्नानाच्छतगुणोत्तरम् ॥ ६५ ॥ विशुद्धां मृदमादाय बर्हिषस्तिलगोमयम् ॥ शुचौ देशे परिस्थाप्य ह्याचम्य स्नानमा

व तुष्टि और पुष्टि को देता है ॥ ६३ ॥ व प्रातःकाल नहानेवाले और प्रातः स्नान पाप, दरिद्रता व उदासीनता को हरता है व अशुद्धि और दुस्स्वप्न को नाशता है मनुष्य के समीप कभी दुष्ट नहीं जाते हैं व जिसलिये देखा व बिन देखा हुआ फल होता है उसी कारण प्रातः स्नान करै ॥ ६४ ॥ हे नृपोत्तम ! मैं प्रसंग से स्नान की विधि को कहता हूं क्योंकि विद्वान् लोगों ने सामान्य स्नान से विधिस्नान को सौगुना कहा है ॥ ६५ ॥ पवित्र मिट्टी को लेकर और कुश, तिल, गोमय को शुद्ध

स्नान में स्थापन करके आचमन कर तदनन्तर स्नान करै ॥ ६६ ॥ और कुशों को लेकर शिखा को बाँधकर मनुष्य जल के मध्य में पैठे और अपनी शाखा में कही हुई विधि से विधिपूर्वक स्नान करै ॥ ६७ ॥ व इस प्रकार नहाकर वसन को निचोड़ कर धौतवस्त्रों को ग्रहण करै व आचमन कर तदनन्तर कुशों को लियेहुए मनुष्य प्रातःकाल की संध्या करै ॥ ६८ ॥ मन को दृढ़ता से रोंककर प्राणायामों को करता हुआ ब्राह्मण दिन रात में कियेहुए पापों से उसी क्षण मुक्त होजाता है ॥ ६९ ॥ मन को रोंककर यदि जिसने दश या बारह संख्यक प्राणायामों को किया उसने बड़ा तप किया है ॥ ७० ॥ और प्रतिदिन कियेहुए व्याहृती व ॐकार समेत

चरेत् ॥ ६६ ॥ उपग्रही बद्धशिखो जलमध्ये समाविशेत् ॥ स्वशाखोक्तविधानेन स्नानं कुर्याद्यथाविधि ॥ ६७ ॥ स्ना त्वेत्थं वस्त्रमापीड्य गृह्णीयाद्धौतवाससी ॥ आचम्य च ततः कुर्यात्प्रातःसन्ध्यां कुशान्वितः ॥ ६८ ॥ प्राणायामांश्चर न्विप्रो नियम्य मानसं दृढम् ॥ अहोरात्रकृतैः पापैर्मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥ ६९ ॥ दश द्वादशसंख्या वा प्राणाया माः कृता यदि ॥ नियम्य मानसं तेन तदा तप्तं महत्तपः ॥ ७० ॥ सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ॥ अपि भ्रूणहनं सासात्पुनन्त्यहरहःकृताः ॥ ७१ ॥ यथा पार्थिवधातूनां दह्यन्ते धमनान्मलाः ॥ तथेन्द्रियैः कृता दोषा ज्वा ल्यन्ते प्राणसंयमात् ॥ ७२ ॥ एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ॥ गायत्र्यास्तु परं नास्ति पावनं च नृपो त्तम ॥ ७३ ॥ कर्मणा मनसा वाचा यद्रात्रौ कुरुते त्वघम् ॥ उत्तिष्ठन्पूर्वसन्ध्यायां प्राणायामैर्विशोधयेत् ॥ ७४ ॥ यद ह्ना कुरुते पापं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ आसीनः पश्चिमां सन्ध्यां प्राणायामैर्व्यपोहति ॥ पश्चिमां तु समासीनो मलं

सोलह प्राणायाम महीनेभर में गर्भघाती पुरुष को भी पवित्र करते हैं ॥ ७१ ॥ हे राजन् ! जैसे अग्नि के संयोग से धातुवों के मल जलजाते हैं वैसेही इन्द्रियों से किये हुए दोष प्राणायाम से जलजाते हैं ॥ ७२ ॥ एकाक्षर (ॐकार) परब्रह्म है व प्राणायाम उत्तम तप है व हे नृपोत्तम ! गायत्री से परे अन्य पवित्रकारक वस्तु नहीं है ॥ ७३ ॥ मन, वचन व कर्म से मनुष्य रात्रि में जो पाप करता है प्रातःकालकी संध्या में उठता हुआ मनुष्य उसको प्राणायामों से शोधन करता है ॥ ७४ ॥ और दिन में मनुष्य मन, वचन, शरीर व कर्म से जिस पाप को करता है सायं संध्योपासन करके मनुष्य उसको प्राणायामों से नाश करता है और सायं संध्योपासन

करके दिन में कियेहुए पाप को नाश करता है ॥ ७५ ॥ और जो प्रातःसंध्या व सायंसंध्या की उपासना नहीं करता है वह सब द्विजकर्म से शूद्र की नाईं बाहर करने योग्य है ॥ ७६ ॥ जल के समीप जाकर मनुष्य नित्य कर्म को करै तदनन्तर विधिपूर्वक आचमन करै ॥ ७७ ॥ तदनन्तर आपोहिष्ठा ऐसी तीन ऋचाओं से पृथ्वी, शिर, आकाश व आकाश, पृथ्वी और मस्तक में मार्जन करै ॥ ७८ ॥ और मस्तक, आकाश व भूमि में नव स्थानों में फेंक देवै भूमिशब्द से चरण व आकाश हृदय कहागया है व शिर में शिरशब्द है उनसे मार्जन करै ॥ ७९ ॥ और पश्चिम दिशा व आग्नेय, वायव्य व पूर्व से लगाकर यह ब्राह्मस्नान मंत्रस्नान से भी श्रेष्ठ है क्यों

हन्ति दिवाकृतम् ॥ ७५ ॥ नोपतिष्ठेत्तु यः पूर्व्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ॥ स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ ७६ ॥ अपां समीपमासाद्य नित्यकर्म समाचरेत् ॥ तत आचमनं कुर्याद्यथाविध्यनु पूर्वशः ॥ ७७ ॥ आपोहिष्ठेति तिसृभिर्मार्जनं तु ततश्चरेत् ॥ भूमौ शिरसि चाकाश आकाशे भुवि मस्तके ॥ ७८ ॥ मस्तके च तथाकाशे भूमौ च नवधा क्षिपेत् ॥ भूमिशब्देन चरणावाकाशं हृदयं स्मृतम् ॥ शिरस्येव शिरःशब्दो मार्जनं तैरुदाहृतम् ॥ ७९ ॥ वारुणादपि चाग्नेयाद्वायव्यादपि चेन्द्रतः ॥ मन्त्रस्नानादपि परं ब्राह्मं स्नानमिदं परम् ॥ ब्राह्मस्नानेन यः स्नातः स बाह्याभ्यन्तरं शुचिः ॥ ८० ॥ सर्वत्र चार्हतामेति देवपूजादिकर्मणि ॥ नक्तंदिनं निमज्ज्याप्सु कैवर्ताः किमु पावनाः ॥ ८१ ॥ शतशोऽपि तथा स्नाता न शुद्धा भावदूषिताः ॥ अन्तःकरणशुद्धांश्च तान्विभूतिः पवित्रयेत् ॥ ८२ ॥ किं पावनाः प्रकीर्त्यन्ते रासभा भस्मधूसराः ॥ स स्नातः सर्वतीर्थेषु मलैः सर्वैर्विवर्जितः ॥ ८३ ॥ तेन क्रतुशतैरिष्टं

कि जिसने ब्राह्मस्नान से नहाया है वह बाहर व भीतरसे पवित्र होजाता है ॥ ८० ॥ और देवपूजनादिक कर्म में सब कहीं वह पूज्यता को प्राप्त होता है क्योंकि दिन रात जल में डूबकर धीवर क्या पवित्र होते हैं ॥ ८१ ॥ और भाव से दूषित सैकड़ों भांति से नहाकर मनुष्य पवित्र नहीं होते हैं और चित्त से शुद्ध उन मनुष्यों को विभूति पवित्र करती है ॥ ८२ ॥ और भस्म को लपेटे हुए गधे क्या पवित्र कहेजाते हैं उसने सब तीर्थों में नहाया और वह सब मलों से रहित होताहै ॥ ८३ ॥ व उसने

सैकड़ों यज्ञों से पूजन किया कि जिसका चित्त इस संसार में निर्मल है हे मुने ! वही चित्त जिस प्रकार निर्मल होता है उसको सुनिये ॥ ८४ ॥ कि यदि विश्वेश्वर
जी प्रसन्न होते हैं तो वह मन कभी अन्यथा नहीं होता है इसलिये चित्त की शुद्धि के लिये विश्वनाथजी के आश्रित होवै ॥ ८५ ॥ तो इस शरीर को छोड़कर मनुष्य पर-
ब्रह्म को प्राप्त होता है तदनन्तर द्रुपदांत ऋचा तक जपकर जल को हाथ से लेकर ॥ ८६ ॥ विधि को जाननेवाला मनुष्य ऋतंच इस मंत्र से अघमर्षण करै और जल
में स्नान कर जो मनुष्य तीन बार अघमर्षण मंत्र को जपता है ॥ ८७ ॥ व जल में या स्थलमें जो अघमर्षण करता है उसका पापसमूह वैसेही नाश होजाता है जैसे कि

चेतो यस्येह निर्मलम् ॥ तदेव निर्मलं चेतो यथा स्यात्तन्मुने शृणु ॥ ८४ ॥ विश्वेशश्चेत्प्रसन्नः स्यात्तदा स्यान्ना न्यथा क्वचित् ॥ तस्माच्चेतोविशुद्ध्यर्थं काशीनाथं समाश्रयेत् ॥ ८५ ॥ इदं शरीरमुत्सृज्य परंब्रह्माधिगच्छति ॥ द्रुपदान्तं ततो जप्त्वा जलमादाय पाणिना ॥ ८६ ॥ कुर्यादृतं च मन्त्रेण विधिज्ञस्त्वघमर्षणम् ॥ निमज्ज्याप्सु च यो विद्वाञ्जपेत्त्रिरघमर्षणम् ॥ ८७ ॥ जले वापि स्थले वापि यः कुर्यादघमर्षणम् ॥ तस्याघौघो विनश्येत यथा सूर्यो दये तमः ॥ ८८ ॥ गायत्रीं शिरसा हीनां महाव्याहृतिपूर्व्विकाम् ॥ प्रणवाद्यां जपंस्तिष्ठन्क्षिपेदम्भोञ्जलित्रयम् ॥ ८९ ॥ तेन वज्रोदकेनाशु मन्देहानाम राक्षसाः ॥ सूर्यतेजः प्रलोपन्ते शैला इव विवस्वतः ॥ ९० ॥ सहायार्थं च सूर्यस्य यो द्विजो नाञ्जलित्रयम् ॥ क्षिपेन्मन्देहनाशाय सोपि मन्देहतां व्रजेत् ॥ ९१ ॥ प्रातस्तावज्जपंस्तिष्ठेद्यावत्सूर्यस्य दर्श नम् ॥ उपविष्टो जपेत्सायमृक्षाणामाविलोकनात् ॥ ९२ ॥ काललोपो न कर्त्तव्यो द्विजेन स्वहितेप्सुना ॥ अर्द्धोदया

सूर्योदय में अन्धकार नाश होजाता है ॥ ८८ ॥ व शिरहीन गायत्री को महाव्याहृतियों पूर्वक व ॐकारपूर्वक जपता व खड़ा हुआ मनुष्य जल की तीन अंजलियों को
फेंकै ॥ ८९ ॥ क्योंकि उस वज्र के समान जल से मंदेहा नामक राक्षस शीघ्रही नाश होजाते हैं जोकि पर्वतों के समान सूर्यनारायणके तेजको आच्छादित करते हैं ॥ ९० ॥
व सूर्यनारायण की सहायता के लिये और मंदेहा नामक राक्षसों के विनाश के लिये जो ब्राह्मण तीन अंजलियों को नहीं फेंकता है वह भी मंदेहों के समान होजाता
है ॥ ९१ ॥ प्रातःकाल तबतक गायत्री को जपता हुआ मनुष्य खड़ा रहै जबतक कि सूर्य का दर्शन होवै व सायंकाल बैठाहुआ मनुष्य नक्षत्र देखनेतक जपै ॥ ९२ ॥ व अपना

हित चाहनेवाले ब्राह्मण को समय का लोप न करना चाहिये इस कारण अर्घोदय व अर्घास्त के समय में वज्रोदक को फेंकै ॥ ६३ ॥ व समय व्यतीत होनेपर विधि से कीगई भी संध्या विफल होती है यही दृष्टान्त बन्ध्या स्त्री के मैथुन के समान है ॥ ६४ ॥ व जल में बायें हाथ को करके ब्राह्मण लोग जिस संध्या को करते हैं वह वृषली संध्या राक्षसगणों को आनन्ददायिनी जानने योग्य है ॥ ६५ ॥ तदनन्तर शाखा में कही हुई विधि से उपस्थान करै उसके उपरान्त हज़ारबार व सौबार गायत्री को जपकर ॥ ६६ ॥ व दशबार गायत्री को जपकर देवीजी के लिये सूर्योपस्थान करै व हज़ार उत्तम, सौ मध्यम व दश अधम ॥ ६७ ॥ गायत्री को जो ब्राह्मण

स्तसमये तस्माद्वज्रोदकं क्षिपेत् ॥ ९३ ॥ विधिनापि कृता सन्ध्या कालातीताऽफला भवेत् ॥ अयमेव हि दृष्टान्तो बन्ध्यास्त्रीमैथुनं यथा ॥ ९४ ॥ जले वामकरं कृत्वा या सन्ध्याऽऽचरिता द्विजैः ॥ वृषली सा परिज्ञेया रक्षोगणमुदाव हा ॥ ९५ ॥ उपस्थानं ततः कुर्याच्छाखोक्तविधिना ततः ॥ सहस्रकृत्वो गायत्र्याः शतकृत्वोथवा पुनः ॥ ९६ ॥ दशकृत्वोऽथ देव्यै च कुर्यात्सौरीमुपस्थितिम् ॥ सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ॥ ९७ ॥ गायत्रीं यो जपेद्विप्रो न स पापैः प्रलिप्यते ॥ रक्तचन्दनमिश्राभिरद्भिश्च कुसुमैः कुशैः ॥ ९८ ॥ वेदोक्तैरागमोक्तैर्वा मन्त्रैरर्घं प्रदापयेत् ॥ अर्चितः सविता येन तेन त्रैलोक्यमर्चितम् ॥ ९९ ॥ अर्चितः सविता दत्ते सुतान्पशुवसूनि च ॥ व्याधीन्हरेद्ददात्यायुः पूरयेद्वाञ्छितान्यपि ॥ १०० ॥ अयं हि रुद्र आदित्यो हरिरेष दिवाकरः ॥ रविर्हिरण्यरूपोऽसौ त्रयीरूपोऽयमर्य मा ॥ १ ॥ ततस्तु तर्पणं कुर्यात्स्वशाखोक्तविधानतः ॥ ब्रह्मादीनखिलान्देवान्मरीच्यादींस्तथा मुनीन् ॥ २ ॥ चन्दना

जपता है वह पापों से लिप्त नहीं होता है व लालचंदन मिले हुए जल से व पुष्पों और कुशों से ॥ ९८ ॥ वेदोक्त व शास्त्रोक्त मंत्रों के द्वारा अर्घ को देवै जिसने सूर्य को पूजन किया उसने त्रिलोक को पूजा ॥ ९९ ॥ और पूजे हुए सूर्यनारायणजी पुत्र, पशु व धनों को देते हैं व रोगों को हरते हैं और आयुर्बल को देते हैं व मनोरथों को पूर्ण करते हैं ॥ १०० ॥ व ये सूर्यनारायण रुद्र हैं और ये सूर्य विष्णु हैं व ये सूर्य ब्रह्मरूप हैं और ये सूर्य त्रयीमय हैं ॥ १ ॥ उसके उपरान्त अपनी शाखा में कही हुई विधिसे ब्रह्मादिक सब देवता व मरीचि आदिक मुनियों को तर्पण करै ॥ २ ॥ चंदन, अगुरु, कपूर व सुगंधित पुष्पों व पवित्र जलों से तर्पण करै और तृप्यन्तु यह

कहै ॥ ३ ॥ व यज्ञोपवीत को गले में पहनकर सीधे कुशोंको दोनों अँगूठों के मध्य में करके ब्राह्मण यवों से सनकादिक मनुष्यों को तर्पण करै ॥ ४ ॥ व अपसव्य होकर दूने कुशोंसे तिलमिश्रित जलों से कव्यवाडनलादिक दिव्य पितरों को तर्पण करै ॥ ५ ॥ व रविवार तथा शुक्लपक्ष की तेरसि, सप्तमी, रात्रि व संध्या में कल्याण को चाहनेवाला ब्राह्मण कभी तिलों से तर्पण न करै ॥ ६ ॥ व यदि करै तो श्वेतही तिलों से पुण्यवान् ब्राह्मण तर्पण करै पश्चात् नाम कहकर चौदह यमों को तर्पण करै ॥ ७ ॥ तदनन्तर अपने गोत्र को कहकर हर्ष से अपने पितरों को वाम जंघ को झुकाकर पितृतीर्थ से मौनी ब्राह्मण तर्पण करै ॥ ८ ॥ देवता एक एक अंजली व

गुरुकर्पूरगन्धवत्कुसुमैरपि ॥ तर्पयेच्छुचिभिस्तोयैस्तृप्यन्त्विति समुच्चरेत् ॥ ३ ॥ सनकादीन्मनुष्यांश्च निवीती तर्पयेद्यवैः ॥ अङ्गुष्ठद्वयमध्ये तु कृत्वा दर्भानृजून्द्विजः ॥ ४ ॥ कव्यवाडनलादींश्च पितॄन्दिव्यान्प्रतर्प्पयेत् ॥ प्राचीनावीतिको दर्भैर्द्विगुणैस्तिलमिश्रितैः ॥ ५ ॥ रवौ शुक्लेत्रयोदश्यां सप्तम्यां निशि सन्ध्ययोः ॥ श्रेयोर्थी ब्राह्मणो जातु न कुर्यात्तिलतर्प्पणम् ॥ ६ ॥ यदि कुर्यात्ततः कुर्याच्छुक्लैरेव तिलैः कृती ॥ चतुर्दश यमान्पश्चात्तर्पयेन्नामउच्चरन् ॥ ७ ॥ ततः स्वगोत्रमुच्चार्य तर्पयेत्स्वान्पितॄन्मुदा ॥ सव्यजानुनिपातेन पितृतीर्थेन वाग्यतः ॥ ८ ॥ एकैकमञ्जलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादिकाः ॥ पितरस्त्रीन्प्रवाञ्छन्ति स्त्रिय एकैकमञ्जलिम् ॥ ९ ॥ अङ्गुल्यग्रेण वै दैवमार्षमङ्गुलिमूलगम् ॥ ब्राह्ममङ्गुष्ठमूले तु पाणिमध्ये प्रजापतेः ॥ १० ॥ मध्येङ्गुष्ठप्रदेशिन्योः पित्र्यं तीर्थं प्रचक्षते ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ॥ ११ ॥ तृप्यन्तु सर्व्वे पितरो मातृमातामहादयः ॥ अन्ये च मन्त्राः प्रोक्ता ये वेदोक्ताः

सनकादिक दो दो अंजली व पितर तीन तीन व स्त्रियां एक एक अंजली को चाहती हैं ॥ ९ ॥ अंगुलियों के अग्रभाग से दैवतीर्थ है व अंगुलियों के मूल में ऋषियों का तीर्थ है व हाथ के बीच में प्रजापति का तीर्थ है व अँगूठा के मूल में ब्रह्मा का तीर्थ है ॥ १० ॥ व अँगूठा और प्रदेशिनी के मध्य में पितरों का तीर्थ कहा जाता है ब्रह्मा से लगाकर स्तंब पर्यन्त देवता, ऋषि, पितर व मनुष्य ॥ ११ ॥ माता व मातामहादिक सब पितर तृप्त होते हैं व वेदोक्त व पुराणों से उपजे हुए जो

मंत्र हैं ॥ १२ ॥ उनसे पितरों को सुखदायक अंगों समेत तर्पण करै तदनन्तर अग्निकार्य (हवन) करके उसके उपरान्त वेदाभ्यास करै ॥ १३ ॥ वेदाभ्यास पांच प्रकार का है एक स्वीकार दूसरा अर्थचिन्तन तीसरा वेदपाठ चौथा तप पांचवां शिष्यों के लिये पढ़ाना है ॥ १४ ॥ हे नृपोत्तम ! मिली वस्तु की रक्षा के लिये व बिन मिली हुई वस्तु के मिलने के लिये यह द्विजों का प्रातःकाल कार्य कहा गया है ॥ १५ ॥ अथवा प्रातःकाल उठकर आवश्यक कार्यकर शौच व आचमन करके दतून को लेकर चर्वण करै ॥ १६ ॥ व सब अंगों को शोधकर प्रातःकाल की संध्या करै और अनेक भांति के शास्त्र व वेदार्थों को पढ़ै ॥ १७ ॥ व बुद्धिसंयुत तथा

पुराणसम्भवाः ॥१२॥ साङ्गं च तर्पणं कुर्यात्पितॄणां च सुखप्रदम् ॥ अग्निकार्यं ततः कृत्वा वेदाभ्यासं ततश्चरेत् ॥१३॥ श्रुत्यभ्यासः पञ्चधा स्यात्स्वीकारोऽर्थविचारणम् ॥ अभ्यासश्च तपश्चापि शिष्येभ्यः प्रतिपादनम् ॥ १४॥ लब्धस्य प्रतिपालार्थमलब्धस्य च लब्धये ॥ प्रातःकृत्यमिदं प्रोक्तं द्विजातीनां नृपोत्तम ॥ १५ ॥ अथवा प्रातरुत्थाय कृत्वा वश्यकमेव च ॥ शौचाचमनमादाय भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥ १६ ॥ विशोध्य सर्वगात्राणि प्रातःसन्ध्यां समाचरेत् ॥ वेदार्थानधिगच्छेद्वै शास्त्राणि विविधान्यपि ॥ १७॥ अध्यापयेच्छुचीञ्छिष्यान्हितान्मेधासमन्वितान् ॥ उपेयादीश्वरं चापि योगक्षेमादिसिद्धये ॥ १८ ॥ ततो मध्याह्नसिद्ध्यर्थं पूर्वोक्तं स्नानमाचरेत् ॥ स्नात्वा माध्याह्निकीं सन्ध्यामुपासीत विचक्षणः ॥ १९ ॥ देवतां परिपूज्याथ विधिं नैमित्तिकं चरेत् ॥ पवनाग्निं समुज्ज्वाल्य वैश्वदेवं समाचरेत् ॥ २० ॥ निष्पावान्कोद्रवान्माषान्कलायांश्चणकांस्त्यजेत् ॥ तैलपक्वमपक्वान्नं सर्वं लवणयुक्त्यजेत् ॥ २१ ॥ आढक्यन्नं

हित व पवित्र शिष्यों को पढ़ावै और योगक्षेमादि की सिद्धि के लिये ईश्वर के समीप जावै ॥ १८ ॥ तदनन्तर मध्याह्न की सिद्धि के लिये पूर्वोक्त स्नान करै व नहाकर विद्वान् मध्याह्नसंध्योपासन करै ॥ १९ ॥ इसके उपरान्त देवता को पूजकर नैमित्तिक विधि करै व पवनाग्निको जलाकर वैश्वदेव कर्म करै ॥ २० ॥ और निष्पाव, कोदौ, उड़द, मटर व चना को त्याग करै व तैल से पक्व और बिन पका हुआ अन्न व नमक से संयुत रूब वस्तु को छोड़ देवै ॥ २१ ॥ और अरहर, मसूर व गोलधान्य से उत्पन्न

तथा भोजन से शेष व पर्युषित को वैश्वदेव कर्म में त्याग करै ॥ २२ ॥ कुशों को हाथ में लेकर आचमन व प्राणायाम करके पृषोदिवि इस मंत्रसे अभ्युक्षण करै ॥ २३ ॥ प्रदक्षिण ओर से जल को सब ओर दो बार घुमाकर कुशों को चारों ओर बिछाकर रापोर्द्ददेव इस मंत्र से अग्नि को अपने सामने करै ॥ २४ ॥ व अग्नि को चन्दन, पुष्प और अक्षतों से पूजकर विद्वान् अपनी शाखा में कही हुई विधि से होम करै ॥ २५ ॥ मार्ग चलनेवाला व क्षीण जीविकावाला तथा विद्यार्थी व गुरु को पोषण करने वाला, संन्यासी व ब्रह्मचारी ये छः धर्म के भिक्षुक हैं ॥ २६ ॥ मार्गगामी अतिथि जानने योग्य है व वेदपारगामी अनूचान है ब्रह्मलोक को चाहनेवाले गृहस्थों

मसूरान्नं वर्तुलधान्यसम्भवम् ॥ भुक्तशेषं पर्युषितं वैश्वदेवे विवर्जयेत् ॥ २२ ॥ दर्भपाणिः समाचम्य प्राणायामं विधाय च ॥ पृषोदिवीति मन्त्रेण पर्य्युक्षणमथाचरेत् ॥ २३ ॥ प्रदक्षिणं च पर्य्युक्ष्य द्विः परिस्तीर्य वै कुशान् रापोर्द्ददेवमन्त्रेण कुर्याद्वह्निं स्वसम्मुखे ॥ २४ ॥ वैश्वानरं समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतैस्तथा ॥ स्वशाखोक्तप्रकारेण होमं कुर्याद्विचक्षणः ॥ २५ ॥ अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च विद्यार्थी गुरुपोषकः ॥ यतिश्च ब्रह्मचारी च षडेते धर्मभिक्षुकाः ॥ २६ ॥ अतिथिः पान्थिको ज्ञेयोऽनूचानः श्रुतिपारगः ॥ मान्यावेतौ गृहस्थानां ब्रह्मलोकमभीप्सताम् ॥ २७ ॥ अपि श्वपाके शुनि वा नैवान्नं निष्फलं भवेत् ॥ अन्नार्थिनि समायाते पात्रापात्रं न चिन्तयेत् ॥ २८ ॥ शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ॥ काकानां च कृमीणां च बहिरन्नं किरेद्भुवि ॥ २९ ॥ ऐन्द्रवारुणवायव्याः सौम्या वै नैर्ऋताश्च ये ॥ प्रतिगृह्णन्त्विमं पिण्डं काका भूमौ मयार्पितम् ॥ ३० ॥ इत्थं भूतबलिं कृत्वा कालं गोदोहमात्रकम् ॥

के ये दोनों मान्य हैं ॥ २७ ॥ और चाण्डाल व कुत्ते में भी अन्न निष्फल नहीं होता है व इस बलिवैश्वदेव कर्म में याचक आने पर पात्र व अपात्र को न विचारै ॥ २८ ॥ कुत्ता, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, कौवा व कीटों को बाहर भूमि में अन्न को फेंक देवै ॥ २९ ॥ ऐन्द्र (पूर्व) वारुण (पश्चिम) वायव्य व नैर्ऋत्य दिशा में जो वर्तमान होवैं वे काक पृथ्वी में मुझ से दिये हुए इस पिंड को ग्रहण करैं ॥ ३० ॥ इस प्रकार भूतबलि करके गोदोहन समय तक आते हुए अतिथि का मार्ग देख

कर तदनन्तर भोजनागार में पैठे ॥ ३१ ॥ काकबलि को न देकर नित्यश्राद्ध करै व नित्यश्राद्ध में अपनी सामर्थ्य से तीन, दो व एक ब्राह्मण को ॥ ३२ ॥ भोजन करावै व पितृयज्ञ के लिये जल को भरकर देवै और नित्यश्राद्ध नियमादिकों से रहित व विश्वेदेव रहित करै ॥ ३३ ॥ व दक्षिणा से रहित यह श्राद्धदाता व भोजनकर्ता को तृप्तिकारक है इस प्रकार पितृयज्ञ को करके स्वस्थबुद्धि व अनातुर पुरुष ॥ ३४ ॥ उत्तम आसन पै बैठ कर बालकों समेत भोजन करै उत्तम गन्धि, उत्तम मनवाला मनुष्य माला व शुद्ध दो वसनों से संयुत ॥ ३५ ॥ पूर्व मुख या उत्तर मुख बैठ कर पितृसेवित अन्न को भोजन करै और उसके ऊपर व नीचे अन्न

प्रतीक्ष्यातिथिमायातं विशेद्भोज्यगृहं ततः ॥ ३१ ॥ अदत्त्वा वायसबलिं नित्यश्राद्धं समाचरेत् ॥ नित्यश्राद्धेस्व सामर्थ्यात्त्रीन्द्वावेकमथापि वा ॥ ३२ ॥ भोजयेत्पितृयज्ञार्थं दद्यादुद्धृत्य वारि च ॥ नित्यश्राद्धं दैवहीनं नियमादि विवर्जितम् ॥ ३३ ॥ दक्षिणारहितं त्वेतद्दातृभोक्तृसुतृप्तिकृत् ॥ पितृयज्ञं विधायेत्थं स्वस्थबुद्धिरनातुरः ॥ ३४ ॥ अदुष्टासनमध्यास्य भुञ्जीत शिशुभिः सह ॥ सुगन्धिः सुमनाः स्रग्वी शुचिवासोद्वयान्वितः ॥ ३५ ॥ प्रागास्य उदगास्यो वा भुञ्जीत पितृसेवितम् ॥ विधायान्नमनग्नं तदुपरिष्टादधस्तथा ॥ ३६ ॥ आपोशानविधानेन कृत्वाश्नीयात्सुधीर्द्विजः ॥ भूमौ बलित्रयं कुर्यादपो दद्यात्तदोपरि ॥ ३७ ॥ सकृच्चाप उपस्पृश्य प्राणाद्याहुतिपञ्चकम् ॥ दद्याज्जठरकुण्डाग्नौ दर्भपाणिः प्रसन्नधीः ॥ ३८ ॥ दर्भपाणिस्तु यो भुङ्क्ते तस्य दोषो न विद्यते ॥ केशकीटादिसम्भूतस्तदश्नीयात्सदर्भकः ॥ ३९ ॥ ततो मौनेन भुञ्जीत न कुर्याद्दन्तघर्षणम् ॥ प्रक्षालितव्यहस्तस्य दक्षिणाङ्गुष्ठमूलतः ॥ ४० ॥ रौरवेऽ

को आच्छादित करके ॥ ३६ ॥ आपोशान विधि से करके विद्वान् ब्राह्मण भोजन करै और पृथ्वी में तीन बलि करै व उसके ऊपर जलको देवै ॥ ३७ ॥ और एक बार जलको आचमन कर प्रसन्नबुद्धि मनुष्य कुशों को हाथ में लेकर उदररूपी कुण्ड की अग्नि में प्राणादिक पांच आहुतियों को देवै ॥ ३८ ॥ कुशों को हाथ में लियेहुए जो मनुष्य भोजन करता है उसको केश कीटादिकों से उपजा हुआ दोष नहीं होता है इस कारण कुशों समेत मनुष्य भोजन करै ॥ ३९ ॥ तदनन्तर मौन भोजन करै व दन्तघर्षण न करै और धोने योग्य हाथवाला मनुष्य दाहिने अंगूठा के मूल से ॥ ४० ॥ पापस्थानवाले रौरव नरक में अधोलोकनिवासी उच्छिष्ट जल को चाहनेवाले

पितरों को अक्षय्योदक देवै ॥ ४१ ॥ फिर आचमन कर बुद्धिमान् बड़े यत्न से पवित्र होकर तदनन्तर मुखशुद्धि करके पुराणश्रवणादिकों से ॥ ४२ ॥ शेष दिनको व्यतीत कर तदनन्तर संध्या करै गृहों में सामान्य संध्या होती है व गोशाला में दशगुनी कही गई है ॥ ४३ ॥ व नदी में दश हज़ार संख्यक होती है और शिवजी के समीप अनन्त संध्या होती है असत्य, मदिरा की गन्ध व दिनमें मैथुन और शूद्रस्थान को गांव बाहर कीहुई संध्या पवित्र करती है ॥ ४४ ॥ उद्देशसे यह नित्य विधि कहीगई इस प्रकार करता हुआ द्विज कभी दुःखी नहीं होता है ॥ १४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसदाचारवर्णनन्नामपञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

पुण्यनिलये अधोलोकनिवासिनाम् ॥ उच्छिष्टोदकमिच्छूनामक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ ४१ ॥ पुनराचम्य मेधावी शुचिर्भूत्वा प्रयत्नतः ॥ मुखशुद्धिं ततः कृत्वा पुराणश्रवणादिभिः ॥ ४२ ॥ अतिवाह्य दिवाशेषं ततः सन्ध्यां समाचरेत् ॥ गृहेषु प्राकृता सन्ध्या गोष्ठे दशगुणा स्मृता ॥ ४३ ॥ नद्यामयुतसंख्या स्यादनन्ता शिवसन्निधौ ॥ अनृतं मद्यगन्धं च दिवामैथुनमेव च ॥ पुनाति वृषलस्थानं सन्ध्या बहिरुपासिता ॥ ४४ ॥ उद्देशतः समाख्यात एष नित्यतनो विधिः ॥ इत्थं समाचरन्विप्रो नावसीदति कर्हिचित् ॥ १४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये सदाचारवर्णनंनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ उपकाराय साधूनां गृहस्थाश्रमवासिनाम् ॥ यथा च क्रियते धर्मो यथावत्कथयामि ते ॥ १ ॥ वत्स गार्हस्थ्यमास्थाय नरः सर्वमिदं जगत् ॥ पुष्णाति तेन लोकांश्च स जयत्यभिवाञ्छितान् ॥ २ ॥ पितरो मुनयो देवा भूतानि मनुजास्तथा ॥ कृमिकीटपतङ्गाश्च वयांसि पितरोऽसुराः ॥ ३ ॥ गृहस्थमुपजीवन्ति ततस्तृप्तिं प्रयान्ति

दो० । धर्मारण्यनिवासिकर यथा धर्म आचार । सोइ छठें अध्याय में कह्यो चरित्र सुखार ॥ व्यासजी बोले कि गृहस्थाश्रमनिवासी साधुवों के उपकार के लिये जिस प्रकार धर्म किया जाता है उसको मैं यथायोग्य कहता हूं ॥ १ ॥ कि हे वत्स ! गृहस्थाश्रम में प्राप्त होकर मनुष्य इस सब संसार को पुष्ट करता है उससे मनुष्य लोकों को जीतता है व मनोरथों को पाता है ॥ २ ॥ पितर, मुनि, देवता, भूत, मनुष्य, कृमि, कीट व पतंग, पक्षी, पितर व दैत्य ॥ ३ ॥ ये गृहस्थ ही से जीते हैं व उसी

से तृप्ति को प्राप्त होते हैं व इसका मुख देखते हैं कि यह हमको जल देवैगा ॥ ४ ॥ हे वत्स ! यह त्रयीमयी धेनु सब की आधारभूत है इसमें संसार प्रतिष्ठित है
जोकि संसार का कारण है ॥ ५ ॥ व इस धेनु की पृष्ठ (पीठ) ऋग्वेद है व यजुर्वेद मध्यभाग है और सामवेद कुक्षि व स्तन हैं व इष्टापूर्त शृंग हैं और उत्तम सूक्त
रोम हैं ॥ ६ ॥ और शान्ति व पुष्टि के कर्म उस धेनु का मल मूत्र है व अक्षररूपी चरणों से प्रतिष्ठित है और पदक्रमरूपी जटाघनों से लोकों की उपजीविका है ॥ ७ ॥
व हे पुत्र ! स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार व अन्य हन्तकार उस धेनु के चारों स्तनहैं ॥ ८ ॥ स्वाहाकाररूपी स्तन को देवता व स्वधामय स्तन को पितर व मुनि और

च ॥ मुखं वास्य निरीक्षन्ते अपो नो दास्यतीति च ॥ ४ ॥ सर्वस्याधारभूतेयं वत्स धेनुस्त्रयीमयी ॥ अस्यां प्रतिष्ठितं
विश्वं विश्वहेतुश्च या मता ॥ ५ ॥ ऋक्पृष्ठासौ यजुर्मध्या सामकुक्षिपयोधरा ॥ इष्टापूर्तविषाणा च साधुसूक्ततनूरु
हा ॥ ६ ॥ शान्तिपुष्टिशकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता ॥ उपजीव्यमाना जगतां पदक्रमजटाघनैः ॥ ७ ॥ स्वाहाकारस्वधा
कारौ वषट्कारश्च पुत्रक ॥ हन्तकारस्तथैवान्यस्तस्याःस्तनचतुष्टयम् ॥ ८ ॥ स्वाहाकारस्तनं देवाः पितरश्च स्वधा
मयम् ॥ मुनयश्च वषट्कारं देवभूतसुरेश्वराः ॥ ६ ॥ हन्तकारं मनुष्याश्च पिबन्ति सततं स्तनम् ॥ एवमाप्यायते
ह्येषा देवादीनखिलांस्त्रयी ॥ १० ॥ तेषामुच्छेदकर्त्ता यः पुरुषोऽनन्तपापकृत् ॥ स तमस्यन्धतामिस्रे नरके हि निमज्ज
ति ॥ ११ ॥ यस्त्वेनां मानवो धेनुं स्वैर्वत्सैरमरादिभिः ॥ पाययत्युचिते काले स स्वर्गायोपपद्यते ॥ १२ ॥ तस्मात्पुत्र
मनुष्येण देवर्षिपितृमानवाः ॥ भूतानि चानुदिवसं पोष्याणि स्वतनुर्यथा ॥ १३ ॥ तस्मात्स्नातः शुचिर्भूत्वा देवर्षि

देवता, भूत व सुरेश्वर वषट्काररूपी स्तन को पीते हैं ॥ ९ ॥ और हन्तकाररूपी स्तनको सदैव मनुष्य पीते हैं इस प्रकार सब देवादिकों को यह वेदत्रयी तृप्त करती
है ॥ १० ॥ व उनको नाश करनेवाला जो बहुत पापकारी मनुष्य है वह अन्धतामिस्र नामक अन्ध नरक में मग्न होता है ॥ ११ ॥ जो मनुष्य इस गऊ को उचित समय
में अपने देवादिक बछड़ों से पिलाता है वह स्वर्ग के लिये सिद्ध होता है ॥ १२ ॥ इस कारण हे पुत्र ! प्रतिदिन मनुष्य को अपने शरीर की नाईं देवता, ऋषि,
पितर, मनुष्य व भूतों को पोषण करना चाहिये ॥ १३ ॥ उस कारण नहाये हुए सावधान मनुष्य पवित्र होकर ब्रह्मयज्ञ के अन्त समय में जल से देवता, ऋषि व

पितरों का तर्पण करै ॥ १४ ॥ और पुष्प, चन्दन व धूप से देवताओं को पूजकर मनुष्य अग्नि को तृप्त करै तदनन्तर बलियों को देवै ॥ १५ ॥ राक्षसों व भूतों को आकाश में बलि देवै तदनन्तर वैसेही दक्षिण मुख होकर पितरों को बलि देवै ॥ १६ ॥ तदनन्तर सावधानमनवाला विद्वान् गृहस्थ तत्पर होकर जल को लेकर नाम से देवताओं को उद्देश कर उन स्थानों में आचमन कार्य के लिये फेंक देवै इस प्रकार पवित्र होकर गृहस्थ गृह में गृहबलि करके ॥ १७ । १८ ॥ तदनन्तर आचमन करके विद्वान् द्वार को देखै तदनन्तर मुहूर्त याने कच्ची दो घड़ी के आठवें भाग तक अतिथि को देखै ॥ १९ ॥ और वहां प्राप्तहुए अतिथि को अर्घ्य, पाद्य जल से

पितृतर्पणम् ॥ यज्ञस्यान्ते तथैवाद्भिः काले कुर्यात्समाहितः ॥ १४ ॥ सुमनोगन्धधूपैश्च देवानभ्यर्च्य मानवः ॥ ततोग्नेस्तर्पणं कुर्याद्दद्याचापि बलींस्तथा ॥ १५ ॥ नक्तञ्चरेभ्यो भूतेभ्यो बलिमाकाशतो हरेत् ॥ पितॄणां निर्वपेत्तद्द दक्षिणाभिमुखस्ततः ॥ १६ ॥ गृहस्थस्तत्परो भूत्वा सुसमाहितमानसः ॥ ततस्तोयमुपादाय तेष्वेवाचमनक्रियाम् ॥ १७ ॥ स्थानेषु निक्षिपेत्प्राज्ञो नाम्ना तूद्दिश्य देवताः ॥ एवं गृहबलिं दत्त्वा गृहे गृहपतिः शुचिः ॥ १८ ॥ आचम्य च ततः कुर्यात्प्राज्ञो द्वारावलोकनम् ॥ मुहूर्तस्याष्टमं भागमुदीक्षेतातिथिं ततः ॥ १९ ॥ अतिथिं तत्र संप्राप्तमर्घ्यपाद्योदकेन च ॥ बुभुक्षुमागतं श्रान्तं याचमानमकिंचनम् ॥ २० ॥ ब्राह्मणं प्राहुरतिथिं संपूज्य शक्तितो बुधैः ॥ न पृच्छेत्तत्राचरणं स्वाध्यायं चापि पण्डितः ॥ २१ ॥ शोभनाशोभनाकारं तं मन्येत प्रजापतिम् ॥ अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ २२ ॥ तस्मै दत्त्वा तु यो भुङ्क्ते स तु भुङ्क्तेऽमृतं नरः ॥ अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रति नि

पूजै क्षुधित, आयेहुए थके व मांगते हुए-अकिंचन ॥ २० ॥ ब्राह्मण को अतिथि कहते हैं उस अतिथि को शक्ति के अनुसार विद्वानों को पूजना चाहिये उस अतिथि में विद्वान् स्वाध्याय व आचरण को न पूंछै ॥ २१ ॥ बरन उत्तम व अनुत्तम आकारवाले उस अतिथि को ब्रह्मा मानै जिस लिये वह नित्य नहीं स्थित होता है उसी कारण वह अतिथि कहाजाता है ॥ २२ ॥ उसके लिये देकर जो मनुष्य भोजन करता है वह अमृत भोजन करता है और जिसके घर से भंग आश होकर

अतिथि लौट जाता है ॥ २३ ॥ वह उसको पाप देकर व पुण्य को लेकर चला जाता है इस कारण शाकदान या जलदान से भी उसको मनुष्य शक्ति के अनुसार पूजे तो उसीसे वह मुक्त होजाता है ॥ २४ ॥ युधिष्ठिर जी बोले कि ब्राह्म, दैव व आर्षविवाह व प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस व आठवां पैशाच कहाजाता है ॥ २५ ॥ इनकी विधि व कार्य को यथार्थ कहिये और विशेष कर तुम मुझ से गृहस्थों के धर्मों को कहो ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले कि वर को बुलाकर अलंकार कीहुई कन्या जिस में दीजाती है वह ब्राह्म विवाह है उसका पुत्र इक्कीस पुश्तियों को तारता है ॥ २७ ॥ और यज्ञ में स्थित ऋत्विज् के लिये जो कन्यादान है वह

वर्तते ॥ २३ ॥ स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥ अपि वा शाकदानेन यद्वा तोयप्रदानतः ॥ पूजयेत्तं नरः शक्त्या तेनैवातो विमुच्यते ॥ २४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ विवाहा ब्राह्मदैवार्षाः प्राजापत्यासुरौ तथा ॥ गान्धर्वो राक्षसश्चापि पैशाचोष्टम उच्यते ॥ २५ ॥ एतेषां च विधिं ब्रूहि तथा कार्यं च तत्त्वतः ॥ गृहस्थानां तथा धर्मान्ब्रूहि मे त्वं विशेषतः ॥ २६ ॥ व्यास उवाच ॥ स ब्राह्मो वरमाहूय यत्र कन्या स्वलंकृता ॥ दीयते तत्सुतः पूयात्पुरुषानेकविंशतिम् ॥ २७ ॥ यज्ञस्थायर्त्विजे दैवस्तज्जः पाति चतुर्दश ॥ वरादादाय गोद्वन्द्वमार्षस्तज्जः पुनाति षट् ॥ २८ ॥ सहोभौ चरतां धर्मं प्राजापत्यः स ईरितः ॥ वरवध्वोः स्वेच्छया च गान्धर्वोऽन्योन्यमैत्रतः ॥ प्रसह्य कन्याहरणाद्राक्षसो निन्दितः सताम् ॥ २९ ॥ छलेन कन्याहरणात्पैशाचो गर्हितोष्टमः ॥ प्रायः क्षत्रविशोरुक्ता गान्धर्वासुरराक्षसाः ॥ ३० ॥ अष्टम

दैवविवाह है उससे पैदाहुआ पुत्र चौदह पुश्तियों की रक्षा करता है और वर से एक गऊ व एक बैल को लेकर जो विवाह होता है वह आर्ष है उससे पैदाहुआ पुत्र छः पुश्तियों को तारता है ॥ २८ ॥ और तुम दोनों साथही धर्म करो यह कहकर जो कियाजावै वह प्राजापत्य विवाह कहागया है और परस्पर मैत्री से अपनी इच्छा से वर, वधू का विवाह गान्धर्व है और हठ से कन्या को हरने से राक्षसविवाह सज्जनों को निन्दित है ॥ २९ ॥ और छलसे कन्या को हरने से आठवां पैशाचविवाह निन्दित है प्रायः क्षत्रिय व वैश्यों को गान्धर्व, आसुर व राक्षस विवाह कहेगये हैं ॥ ३० ॥ और यह आठवां पिशाचविवाह पापिष्ठ है व पापिष्ठों

को उत्पन्न करनेवाला है समानजातिवाली (ब्राह्मणी) कन्या को हाथ पकड़ना चाहिये और क्षत्रिया को बाण लेना चाहिये ॥ ३१ ॥ व वैश्या स्त्री को चाबुक व शूद्रा को वस्त्रान्तभाग धारण करना चाहिये असवर्णा स्त्रियों के विषय में यह विधि स्मृति व वेद में कहीगई है ॥ ३२ ॥ और सब सवर्णा स्त्रियों को हाथ पकड़ना चाहिये यह विधि है व धर्म्यविवाह में सौ वर्ष आयुर्बलवाले व धर्मवान् पुत्र पैदा होते हैं ॥ ३३ ॥ व अधर्म्यविवाह से धर्मरहित व मन्दभाग्य तथा निर्धनी व अल्पायु होते हैं और ऋतुसमय में स्त्री का संग करना यह गृहस्थ का उत्तम धर्म है ॥ ३४ ॥ या स्त्रियों के वर को स्मरण कर इच्छा के अनुकूल होवै और दिन में

स्त्वेष पापिष्ठः पापिष्ठानां च सम्भवः ॥ सवर्णया करो ग्राह्यो धार्यः क्षत्रियया शरः ॥ ३१ ॥ प्रतोदो वैश्यया धार्यो वासोन्तः शूद्रया तथा ॥ असवर्णास्वेष विधिः स्मृतौ दृष्टश्च वेदने ॥ ३२ ॥ सवर्णाभिस्तु सर्वाभिः पाणिर्ग्राह्य स्त्वयं विधिः ॥ धर्म्ये विवाहे जायन्ते धर्म्याः पुत्राः शतायुषः ॥ ३३ ॥ अधर्म्याद्धर्म्मरहिता मन्दभाग्यधनायुषः ॥ ऋतुकालाभिगमनं धर्मोयं गृहिणः परः ॥ ३४ ॥ स्त्रीणां वरमनुस्मृत्य यथाकाम्यथवा भवेत् ॥ दिवाभिगमनं पुंसा मनायुष्यं परं मतम् ॥ ३५ ॥ श्राद्धाहःसर्वपर्वाणि न गन्तव्यानि धीमता ॥ तत्र गच्छन्स्त्रियं मोहाद्धर्मात्प्रच्यवते प रात् ॥ ३६ ॥ ऋतुकालाभिगामी यः स्वदारनिरतश्च यः ॥ स सदा ब्रह्मचारी हि विज्ञेयः स गृहाश्रमी ॥ ३७ ॥ आर्षे वि वाहे गोद्वन्द्वं यदुक्तं तन्न शस्यते ॥ शुल्कमण्वपि कन्यायाः कन्याविक्रयपापकृत् ॥ ३८ ॥ अपत्यविक्रयात्कल्पं वसेद्विट्

स्त्री का संग करना पुरुषों को बहुतही अनायुष्य मानागया है ॥ ३५ ॥ और श्राद्धदिन में व सब पर्वों में बुद्धिमान् मनुष्य को स्त्री का संग न करना चाहिये क्योंकि उसमें मोह से स्त्री के समीप जाताहुआ पुरुष उत्तम धर्म से च्युत होजाता है ॥ ३६ ॥ और ऋतुसमय में जो स्त्री के समीप जाता है व जो अपनीही स्त्री से स्नेह करता है वह सदैव ब्रह्मचारी व गृहस्थ जानने योग्य है ॥ ३७ ॥ आर्षविवाह में जो दो गौवों का देना कहा है वह उत्तम नहीं होता है क्योंकि कन्या का थोड़ा भी शुल्क (मूल्य धन) कन्याविक्रय का पापकारी होता है ॥ ३८ ॥ और सन्तान को बेंचने से मनुष्य कल्पपर्यन्त विष्ठा व कृमि के भोजन में बसता है इस कारण थोड़ा भी

कन्या का धन मनुष्यों से जीविका के योग्य नहीं होता है ॥ ३९ ॥ वहां विष्णु समेत महालक्ष्मी जी प्रसन्न होकर बसती हैं वाणिज्य, नीचसेवा व वेदोंका न पढ़ना ॥ ४० ॥ निन्दित ब्याह व कर्म का लोप ये वंश में हीनता का कारण हैं और विवाहकी अग्नि में गृहस्थ प्रतिदिन गृह्यकर्म करै ॥ ४१ ॥ व पंचयज्ञ कर्म और प्रतिदिन पाक करै व गृहस्थाश्रमी को प्रतिदिन पंचसूना का कर्म होता है ॥ ४२ ॥ ओखली, चक्की, चुल्ही, जल का घट व मार्जनी (झाडू) उन पांचों वधस्थानों के निकालने के कारणरूप पांच यज्ञ गृहस्थाश्रम के कल्याण को बढ़ानेवाले कहेगये हैं ॥ ४३ ॥ पढ़ना ब्रह्मयज्ञ है व तर्पण पितृयज्ञ है होम दैवयज्ञ है व बलि भूतयज्ञ है और अतिथि

कृमिभोजने ॥ अतो नाण्वपि कन्याया उपजीव्यं नरैर्धनम् ॥ ३९ ॥ तत्र तुष्टा महालक्ष्मीर्निवसेद्दानवारिणा ॥ वाणिज्यं नीचसेवा च वेदानध्ययनं तथा ॥ ४० ॥ कुविवाहः क्रियालोपः कुले पतनहेतवः ॥ कुर्याद्वैवाहिके चाग्नौ गृह्यकर्म्मान्वहं गृही ॥ ४१ ॥ पञ्चयज्ञक्रियां चापि पक्तिं दैनन्दिनीमपि ॥ गृहस्थाश्रमिणः पञ्चसूनाकर्म दिने दिने ॥ ४२ ॥ कुण्डनी पेषणी चुल्ली ह्युदकुम्भी तु मार्जनी ॥ तासां च पञ्चसूनानां निराकरणहेतवः ॥ क्रतवः पञ्च निर्दिष्टा गृहिश्रेयोभिवर्द्धनाः ॥ ४३ ॥ पठनं ब्रह्मयज्ञः स्यात्तर्पणं च पितृक्रतुः ॥ होमो दैवो बलिर्भौत आतिथ्यं नृक्रतुः क्रमात् ॥ ४४ ॥ वैश्वदेवान्तरे प्राप्तः सूर्योढो वातिथिः स्मृतः ॥ अतिथेरादितोप्येते भोज्या नात्र विचारणा ॥ ४५ ॥ पितृदेवमनुष्येभ्यो दत्त्वाश्नात्यमृतं गृही ॥ अदत्त्वान्नं च यो भुङ्क्ते केवलं स्वोदरम्भरिः ॥ ४६ ॥ वैश्वदेवेन ये हीना आतिथ्येन विवर्जिताः ॥ सर्वे ते वृषला ज्ञेयाः प्राप्तवेदा अपि द्विजाः ॥ ४७ ॥ अकृत्वा वैश्वदेवं तु भु

को भोजन देना नरयज्ञ है ये क्रमसे हैं ॥ ४४ ॥ व वैश्वदेवकर्म के मध्य में प्राप्त व सूर्य से लायाहुआ अतिथि कहागया है और अतिथि के पहले भी ये भोजन के योग्य हैं इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ४५ ॥ पितर, देवता व मनुष्यों के लिये देकर गृहस्थ अमृत को भोजन करता है व इनको न देकर जो अन्न भोजन करता है वह केवल अपने पेट को भरनेवाला है ॥ ४६ ॥ जो वैश्वदेव से हीन व जो आतिथ्य से रहित हैं वेदों को पढ़ेहुए भी वे द्विज शूद्र जानने योग्य हैं ॥ ४७ ॥ व

वैश्वदेवको न करके जो नीच द्विज भोजन करते हैं इस लोक में वे अन्नहीन होते हैं इसके उपरान्त काकयोनि को प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥ निरालसी पुरुष वेदोक्त विदित कर्म को नित्य करै यदि शक्ति के अनुसार उसको करता है तो उत्तम गति को पाता है ॥ ४९ ॥ छठि व अष्टमी में पाप क्रम से तैल व मांस में बसता है वैसेही चौदसि व अमावस में क्रमसे क्षुर व योनि में बसता है ॥ ५० ॥ और उदय व अस्त होतेहुए सूर्य को न देखै और मस्तक पै व राहु से ग्रस्त तथा अण्डस्थ सूर्यनारायण को न देखै ॥ ५१ ॥ और जल में अपने रूप को न देखै न कीचड़ में दौड़ै और नग्न स्त्री को न देखै न नग्न होकर जल में प्रवेश करै ॥ ५२ ॥ और देवमन्दिर,

अ्नते ये द्विजाधमाः ॥ इह लोकेन्नहीनाः स्युः काकयोनिं व्रजन्त्यथो ॥ ४८ ॥ वेदोक्तं विदितं कर्म्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ॥ यदि कुर्याद्यथाशक्ति प्राप्नुयात्सद्गतिं पराम् ॥४९॥ षष्ठ्यष्टम्योर्वसेत्पापं तैले मांसे सदैव हि ॥ चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां तथैव च क्षुरे भगे ॥ ५० ॥ उदयन्तं न वीक्षेत नास्तं यन्तं न मस्तके ॥ न राहुणोपसृष्टं च नाण्डस्थं वीक्षयेद्रविम् ॥ ५१ ॥ न वीक्षेतात्मनो रूपमप्सु धावेन्न कर्दमे ॥ न नग्नां स्त्रियमीक्षेत न नग्नो जलमाविशेत् ॥ ५२ ॥ देवतायतनं विप्रं धेनुं मधु मृदं तथा ॥ जातिवृद्धं वयोवृद्धं विद्यावृद्धं तथैव च ॥ ५३ ॥ अश्वत्थं चैत्यवृक्षं च गुरुं जलभृतं घटम् ॥ सिद्धान्नं दधि सिद्धार्थं गच्छन्कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ ५४ ॥ रजस्वलां न सेवेत नाश्नीयात्सह भार्यया ॥ एकवासा न भुञ्जीत न भुञ्जीतोत्कटासने ॥ ५५ ॥ नाशुचिं स्त्रियमीक्षेत तेजस्कामो द्विजोत्तमः ॥ असन्तर्प्य पितॄन्देवान्नाद्यादन्नं च कुत्रचित् ॥ ५६ ॥ पक्वान्नं चापि नो मांसं दीर्घकालं जिजीविषुः ॥ न मूत्रणं व्रजे कुर्यान्न [illegible]ल्मीके न

ब्राह्मण, गऊ, शहद, मिट्टी, जाति में वृद्ध, अवस्था में वृद्ध व विद्या में वृद्ध ॥ ५३ ॥ व पीपल, यज्ञस्थानवृक्ष, गुरु और जल से भरेहुए घट, स[illegible] [illegible]सिद्धि के लिये जाताहुआ मनुष्य प्रदक्षिणा करै ॥ ५४ ॥ व रजस्वला स्त्री को न सेवन करै और न स्त्री के साथ भोजन करै व एकवसन होकर भोज[illegible] [illegible]न पै भोजन न करै ॥ ५५ ॥ व तेजको चाहनेवाला द्विजोत्तम अशुद्ध स्त्री को न देखै और पितरों व देवताओं को न तृप्त करके कभी अन्[illegible]

दीर्घ काल तक जीने की इच्छावाला मनुष्य पकान्न व मांस को न खावै और गोरस्थान, बेंबौरि व भस्म में मूत्र न करै ॥ ५७ ॥ और जीव समेत गढ़ों में मूत्र न करै व खड़ा और चलताहुआ भी मनुष्य पेशाब न करै और ब्राह्मण, सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, नक्षत्र व गुरुवों को ॥ ५८ ॥ सामने देखताहुआ मनुष्य मल, मूत्र त्याग न करै और मुख से अग्नि को न फूंकै और नग्न स्त्री को न देखै ॥ ५९ ॥ और चरणों को अग्नि में न तपावै न अशुद्ध वस्तु को फेंकै व प्राणियों की हिंसा न करै और दोनों सन्ध्याओं में भोजन न करै ॥ ६० ॥ व प्रातःकाल और सायंकाल सन्ध्या में विद्वान् कभी शयन न करै और पिलाती हुई गऊ को न कहे न इन्द्रधनुष

भस्मनि ॥ ५७ ॥ न गर्त्तेषु ससत्त्वेषु न तिष्ठन्न व्रजन्नपि ॥ ब्राह्मणं सूर्यमग्निं च चन्द्रमृक्षगुरूनपि ॥ ५८ ॥ अभिपश्यन्न कुर्वीत मलमूत्रविसर्जनम् ॥ मुखेनोपधमेन्नाग्निं नग्नां नेक्षेत योषितम् ॥ ५९ ॥ नाङ्घ्री प्रतापयेदग्नौ न वस्तु अशुचि क्षिपेत् ॥ प्राणिहिंसां न कुर्वीत नाश्नीयात्सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥ ६० ॥ न संविशेच्च सन्ध्यायां प्रातः सायं कचिद् बुधः ॥ नाचक्षीत धयन्तीं गां नेन्द्रचापं प्रदर्शयेत् ॥ ६१ ॥ नैकः सुप्यात्कचिच्छून्ये न शयानं प्रबोधयेत् ॥ पन्थानं नैकलो यायान्न वार्य्यञ्जलिना पिबेत् ॥ ६२ ॥ न दिवोद्धृतसारं च भक्षयेद्दधि नो निशि ॥ स्त्रीधर्मिणीं नाभिवदेन्नाद्यादातृप्ति रात्रिषु ॥ ६३ ॥ तौर्यत्रिकप्रियो न स्यात्कांस्ये पादौ न धावयेत् ॥ श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे योऽश्नीयाज्ज्ञानवर्जितः ॥ ६४ ॥ दातुः श्राद्धफलं नास्ति भोक्ता किल्बिषभुग्भवेत् ॥ न धारयेदन्यभुक्तं वासश्चोपानहावपि ॥ ६५ ॥ न भिन्नभाजनेऽश्नीयान्नासीताग्न्यादिदूषिते ॥ आरोहणं गवां पृष्ठे प्रेतधूमं

को दिखावै ॥ ६१ ॥ व अकेला कभी शून्यस्थान में शयन न करै और न सोतेहुए मनुष्य को जगावै व अकेला मार्ग में न जावै और जल को अंजलि से न पियै ॥ ६२ ॥ और दिन में मठा व रात्रि में दही को न खावै और रजस्वला स्त्री से संभाषण न करै व रात्रियों में तृप्ति पर्यन्त भोजन न करै ॥ ६३ ॥ और नृत्य, गीत व बाजन ये तीनों प्रिय न होवैं व कांस्यपात्र में चरणों को न धुलावै और ज्ञान से वर्जित जो मनुष्य श्राद्ध करके पराये श्राद्ध में भोजन करता है ॥ ६४ ॥ तो दाता को श्राद्ध का फल नहीं होता है व भोजनकर्ता पापभोगी होता है और अन्य से पहनेहुए वसन व पनही को धारण न करै ॥ ६५ ॥ और फूटे बर्तन में न खावै व अग्नि आदि से

दूषित आसन पै न बैठे व गौवों की पीठ पै चढ़ना, प्रेत का धुवां और नदी का किनारा ॥ ६६ ॥ व बालातप और दिन में शयन बहुत दीर्घ समय तक जीने की इच्छावाला पुरुष वर्जित करै और स्नान करके अंग को न पोंछै व मार्ग में चोटी को न छोड़ै ॥ ६७ ॥ और हाथों व पैरों को न कँपावै व पैर से आसन को न खींचै और हाथ से शरीर को न पोंछै न स्नानवाले वस्त्रसे पोंछै ॥ ६८ ॥ और जो शरीर कुत्ता से उच्छिष्ट होता है वह फिर स्नान से शुद्ध होता है और दांत से कभी रोम व नख को न काटै ॥ ६९ ॥ व शुभके लिये नखों से नख का छेदन न करै और जिसको विपत्ति में छोड़ देवै उस कर्म को वड़े यत्न से भी न करै ॥ ७० ॥ और अपने घर

सरित्तटम् ॥ ६६ ॥ बालातपं दिवास्वापं त्यजेद्दीर्घं जिजीविषुः ॥ स्नात्वा न मार्जयेद्गात्रं विसृजेन्न शिखां पथि ॥ ६७ ॥ हस्तौ शिरो न धुनुयान्नाकर्षेदासनं पदा ॥ करेण नो मृजेद्गात्रं स्नानवस्त्रेण वा पुनः ॥ ६८ ॥ शुनोच्छिष्टं भवेद्गात्रं पुनः स्नानेन शुध्यति ॥ नोत्पाटयेल्लोमनखं दशनेन कदाचन ॥ ६९ ॥ करजैः करजच्छेदं विवर्जयेच्छुभाय तु ॥ यदापत्त्यां त्यजेत्तन्न कुर्यात्कर्म प्रयत्नतः ॥ ७० ॥ अद्वारेण न गन्तव्यं स्ववेश्मापि कदाचन ॥ क्रीडेन्नाज्ञैः सहासीत न धर्म्मघ्नैर्न रोगिभिः ॥ ७१ ॥ न शयीत क्वचिन्नग्नः पाणौ भुञ्जीत नैव च ॥ आर्द्रपादकरास्योऽश्नन्दीर्घकालं च जीवति ॥ ७२ ॥ संविशेन्नार्द्रचरणो नोच्छिष्टः क्वचिदाव्रजेत् ॥ शयनस्थो न चाश्नीयान्न पिबेच्च जलं द्विजः ॥ ७३ ॥ सोपानत्को नोपविशेन्न जलं चोत्थितः पिबेत् ॥ सर्व्वमम्लमयं नाद्यादारोग्यस्याभिलाषुकः ॥ ७४ ॥ न निरीक्षेत विण्मूत्रे नोच्छिष्टः संस्पृशेच्छिरः ॥ नाधितिष्ठेत्तुषाङ्गारभस्मकेशकपालिकाः ॥ ७५ ॥

को भी कभी बिन द्वार न जावै और मूर्खों के साथ व धर्मनाशक तथा रोगियों के साथ क्रीड़ा न करै ॥ ७१ ॥ कभी नग्न न सोवै और हाथ में कभी भोजन न करै व भीगे चरण हाथ व मुखवाला मनुष्य भोजन करता हुआ बहुत समय तक जीता है ॥ ७२ ॥ और भीगे चरणोंवाला मनुष्य कभी शयन न करै व उच्छिष्ट होकर कहीं न जावै व शय्या पै बैठा हुआ द्विज न भोजन करै न जल को पियै ॥ ७३ ॥ और पनहियों समेत न बैठे न उठकर जल को पियै व नीरोगता का अभिलाषी मनुष्य सब खट्टी वस्तु को न खावै ॥ ७४ ॥ व मल, मूत्र को न देखै और उच्छिष्ट होकर शिर को न छुवै व भूसी, अंगार, भस्म, बाल व कपाल के ऊपर न बैठै ॥ ७५ ॥

और धर्म से भ्रष्ट मनुष्यों के साथ निवास पतनही के लिये होता है और कभी शूद्र के लिये ऊंचा आसन व पलँग न देवै ॥ ७६ ॥ क्योंकि ब्राह्मण ब्राह्मणता से हीन होजाता है व शूद्र धर्म से हीन होजाता है और शूद्रों को धर्म का उपदेश अपने कल्याण को नाश करता है ॥ ७७ ॥ और द्विजों की सेवा शूद्रों का परम धर्म माना गया है व हाथों से शिर का खुजलाना उत्तम नहीं मानागया है ॥ ७८ ॥ वैदिक मन्त्र को कभी शूद्र के लिये न उपदेश करै क्योंकि ब्राह्मण ब्राह्मणता से हीन होजाता है व शूद्र धर्म से रहित होजाता है ॥ ७९ ॥ हाथों से मारना व निन्दा करना और बाल काटना व शास्त्र के विपरीत बर्ताव करना और लोभी से दान को लेकर ॥ ८० ॥

पतितैः सह संवासः पतनायैव जायते ॥ दद्यादूर्ध्वासनं मञ्चं न शूद्राय कदाचन ॥ ७६ ॥ ब्राह्मण्याद्धीयते विप्रः शूद्रो धर्माच्च हीयते ॥ धर्मोपदेशः शूद्राणां स्वश्रेयः प्रतिघातयेत् ॥ ७७ ॥ द्विजशुश्रूषणं धर्म्मः शूद्राणां हि परो मतः ॥ कण्डूयनं हि शिरसः पाणिभ्यां न शुभं मतम् ॥ ७८ ॥ आदिशेद्वैदिकं मन्त्रं न शूद्राय कदाचन ॥ ब्राह्मण्याद्धीयते विप्रः शूद्रो धर्म्माच हीयते ॥ ७९ ॥ आताडनं कराभ्यां च क्रोशनं केशलुञ्चनम् ॥ अशास्त्रवर्तनं भूयो लुब्धात्कृत्वा प्रतिग्रहम् ॥ ८० ॥ ब्राह्मणः स च वै याति नरकानेकविंशतिम् ॥ अकालमेघस्तनिते वर्षर्तौ पांसुवर्षणे ॥ ८१ ॥ महा बालध्वनौ रात्रावनध्यायाः प्रकीर्तिताः ॥ उल्कापाते च भूकम्पे दिग्दाहे मध्यरात्रिषु ॥ ८२ ॥ सन्ध्ययोर्वृषलोपान्ते राज्यहारे च सूतके ॥ दशाष्टकासु भूतायां श्राद्धाहे प्रतिपद्यपि ॥ ८३ ॥ पूर्णिमायां तथाष्टम्यां श्वरुते राष्ट्रविप्लवे ॥ उपाकर्मणि चोत्सर्गे कल्पादिषु युगादिषु ॥ ८४ ॥ आरण्यकमधीत्यापि बाणसाम्नोरपि ध्वनौ ॥ अनध्यायेषु चैतेषु

वह ब्राह्मण इक्कीस नरकों को जाता है व बिन समय मेघशब्द होने पर और वर्षा ऋतु में धूलि बरसने पर ॥ ८१ ॥ व रात्रि में महाबालध्वनि में अनध्याय कहेगये हैं और उल्कापात, भूकम्प, दिग्दाह व मध्य रात्रियों में ॥ ८२ ॥ और संध्या व शूद्रके समीप तथा राज्यहरण और सूतक में व दश अष्टकाओं में व चतुर्दशी तथा श्राद्धदिन और परेवा में ॥ ८३ ॥ व पूर्णिमा, अष्टमी व कुत्ता के शब्द में और राज्यभंग में व उपाकर्म और मलमूत्र त्याग और कल्पादिक व युगादिक तिथियों में ॥ ८४ ॥ व वनपर्व

कहार, नाई, गोपाल, कुलमित्र, अर्धसीरी (अपनी भूमिका कृषीकर्ता) और आत्मनिवेदक (अपने आश्रित) शूद्रवर्ग में भी ये सम्बन्ध के कारण भोजन करने योग्य अन्नवाले कहेगये हैं ॥ ३ ॥ हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार धर्मारण्यनिवासी जनों का यह श्रुतियों व स्मृतियों में कहा हुआ धर्म कहा गया ॥ १०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसदाचारलक्षणवर्णनंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा पितर सब मनुज के तृप्त होत ततकाल । कह्यो सात अध्याय में सोइ चरित्र रसाल ॥ व्यासजी बोले कि धर्मबावली में प्राप्त होकर जो पितरों का

गोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः ॥ भोज्यान्नाः शूद्रवर्गेमी तथात्मविनिवेदकः ॥ ३ ॥ इत्थमाचारधर्मोयं धर्मारण्यनिवासिनाम् ॥ श्रुतिस्मृत्युक्तधर्मोऽयं युधिष्ठिर निवेदितः ॥ १०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येसदाचारलक्षणवर्णनन्नामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ सम्प्राप्य धर्मवाप्यां च यः कुर्यात्पितृतर्पणम् ॥ तृप्तिं प्रयान्ति पितरो यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ १ ॥ पितरश्चात्र पूज्याश्च स्वर्गता ये च पूर्वजाः ॥ पिण्डांश्च निर्वपेत्तेषां प्राप्येमां मुक्तिदायिकाम् ॥ २ ॥ त्रेतायां पञ्चदिवसै द्वापरे त्रिदिनेन तु ॥ एकचित्तेन यो विप्राः पिण्डं दद्यात्कलौयुगे ॥ ३ ॥ लोलुपा मानवा लोके सम्प्राप्ते तु कलौयुगे ॥ परदाररता लोकाः स्त्रियोऽतिचपलाः पुनः ॥ ४ ॥ परद्रोहरताः सर्वे नरनारीनपुंसकाः ॥ परनिन्दापरा नित्यं परच्छि

तर्पण करता है उसके पितर तबतक तृप्ति को प्राप्त होते हैं जबतक कि चौदह इन्द्र रहते हैं ॥ १ ॥ और यहां पितर पूजने योग्य हैं व जो पूर्वज पितर स्वर्ग में प्राप्त होते हैं उनको इस मुक्तिदायिनी बावली को प्राप्त होकर पिण्ड देवै ॥ २ ॥ त्रेता में पांच दिन व द्वापर में तीन दिनों से जो फल होता है हे ब्राह्मणो ! जो मनुष्य कलियुग में सावधानचित्त से पिण्ड को देता है उसको वही फल होता है ॥ ३ ॥ कलियुग प्राप्त होने पर संसार में मनुष्य लोभी होते हैं व पराई स्त्रियों में मनुष्य स्नेह करते हैं और फिर स्त्रियां बहुत चंचल होती हैं ॥ ४ ॥ और पुरुष, स्त्री व नपुंसक सब पराये द्रोह में परायण होते हैं और सदैव पराई निन्दा में परायण व पराये छिद्र के

देखनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥ व जो अन्य को दुःख करते हैं और जो कलही व मित्रभेदी होते हैं वे सब शुद्धता को प्राप्त होते हैं ऐसा आपही ब्रह्मा, विष्णु व महेश ने कहा है ॥ ६ ॥ हे महाभाग ! यह धर्मारण्य का वर्णन कहागया व शिवजी ने इस में जो फल कहा है वह कहागया ॥ ७ ॥ कि वचन, मन व शरीर से शुद्ध और पराई स्त्री से विमुख होते हैं व द्रोहरहित, समदर्शी, शुद्ध और माता, पिता में परायण होते हैं ॥ ८ ॥ व अचंचल, लोभरहित व दान धर्म में परायण होते हैं और जो आस्तिक, धर्मज्ञ व स्वामी की भक्ति में परायण होते हैं ॥ ९ ॥ और जो स्त्री पतिव्रता होती है व जो पति की सेवा में परायण होती है व जो मनुष्य अहिंसक,

द्रोपदर्शकाः ॥ ५ ॥ परोद्वेगकरा नूनं कलहा मित्रभेदिनः॥ सर्वे ते शुद्धतां यान्ति काजेशाः स्वयमब्रुवन् ॥ ६ ॥ एत दुक्तं महाभाग धर्मारण्यस्य वर्णनम् ॥ फलं चैवात्र सर्वं हि यदुक्तं शूलपाणिना ॥ ७ ॥ वाङ्मनःकायशुद्धाश्च पर दारपराङ्मुखाः ॥ अद्रोहाश्च समाः शुद्धा मातापितृपरायणाः ॥ ८ ॥ अलौल्या लोभरहिता दानधर्मपरायणाः ॥ आस्तिकाश्चैव धर्मज्ञाः स्वामिभक्तिरताश्च ये ॥ ९ ॥ पतिव्रता तु या नारी पतिशुश्रूषणे रता ॥ अहिंसका आतिथेयाः स्वधर्मनिरताः सदा ॥ १० ॥ शौनक उवाच ॥ शृणु सूत महाभाग सर्वधर्मविदांवर ॥ गृहस्थानां सदाचारः श्रुतश्च त्वन्मुखान्मया ॥ ११ ॥ एकं मनेप्सितं मेद्य तत्कथयस्व सूतज ॥ पतिव्रतानां सर्वासां लक्षणं कीदृशं वद ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ पतिव्रता गृहे यस्य सफलं तस्य जीवनम् ॥ यस्याङ्गच्छायया तुल्या यत्कथा पुण्यकारिणी ॥ १३ ॥ पतिव्रतास्त्वरुन्धत्या सावित्र्याप्यनसूयया ॥ शाण्डिल्या चैव सत्या च लक्ष्म्या च शतरूपया ॥ १४ ॥ मेनया च

अतिथिपूजक और सदैव अपने धर्म में परायण होते हैं ॥ १० ॥ शौनकजी बोले कि हे सब धर्मज्ञों में श्रेष्ठ, महाभाग, सूतजी ! मैंने तुम्हारे मुखसे गृहस्थों का र दाचार सुना ॥ ११ ॥ परन्तु इस समय मेरा एक मनोरथ है उसको कहिये कि हे सूतज ! सब पतिव्रताओं का कैसा लक्षण है उसको कहिये ॥ १२ ॥ सूतजी बोले कि जिसके घर में पतिव्रता होती है उसका जीवन सफल होता है और जिसके अंग की छायाके समान जिसकी कथा पुण्यकारिणी होती है ॥ १३ ॥ और पतिव्रता स्त्रियां अरुन्धती, सावित्री, अनसूया, शाण्डिली, सती, लक्ष्मी व शतरूपा के समान होती हैं ॥ १४ ॥ और मेना, सुनीति, संज्ञा व स्वाहा के समान होती हैं मुनि ने

पतिव्रताओं के धर्मों को कहा है ॥ १५ ॥ कि स्वामी के भोजन करने पर जो भोजन करती है व स्वामी के स्थित होने पर जो स्थित होती है व सोने पर जो सोती है और पहले जो जागती है ॥ १६ ॥ व पति के विदेश में स्थित होनेपर जो अपना अलंकार नहीं करती है और कार्य के लिये कहीं भी जाने पर जो सब भूषणों से वर्जित होती है ॥ १७ ॥ व इसके आयुर्बल के बढ़ने के लिये जो पति का नाम नहीं लेती है व कभी अन्य पुरुष का नाम भी जो नहीं लेती है ॥ १८ ॥ और खींची हुई भी जो गाली नहीं देती है व मारेजाने पर भी जो प्रसन्न होती है व इस कर्म को करो ऐसा कहने पर जो यह कहती है कि हे स्वामिन् ! मैंने इस कार्य

सुनीत्या च संज्ञया स्वाहया समाः ॥ पतिव्रतानां धर्मा हि मुनिना च प्रकीर्तिताः ॥ १५ ॥ भुङ्क्ते भुक्ते स्वामिनि च तिष्ठति त्वनुतिष्ठति ॥ विनिद्रिते या निद्राति प्रथमं परिबुध्यति ॥ १६ ॥ अनलङ्कृतमात्मानं देशान्ते भर्तरि स्थिते ॥ कार्यार्थं प्रोषिते क्वापि सर्व्वमण्डनवर्जिता ॥ १७ ॥ भर्तुर्नाम न गृह्णाति ह्यायुषोऽस्य हि वृद्धये ॥ पुरुषान्तरनामापि न गृह्णाति कदाचन ॥ १८ ॥ आकृष्टापि च नाक्रोशेत्ताडितापि प्रसीदति ॥ इदं कुरु कृतं स्वामिन्मन्यतामिति वक्ति च ॥ १९ ॥ आहूता गृहकार्याणि त्यक्त्वा गच्छति सत्वरम् ॥ किमर्थं व्याहृता नाथ स प्रसादो विधीयताम् ॥ २० ॥ न चिरं तिष्ठति द्वारि न द्वारमुपसेवते ॥ अदातव्यं स्वयं किञ्चित्कर्हिचिन्न ददात्यपि ॥ २१ ॥ पूजोपकरणं सर्वमनुक्ता साधयेत्स्वयम् ॥ नियमोदकबर्हींषि पत्रपुष्पाक्षतादिकम् ॥ २२ ॥ प्रतीक्षमाणा च वरं यथाकालोचितं हि यत् ॥ तदुपस्थापयेत्सर्वमनुद्विग्नातिहृष्टवत् ॥ २३ ॥ सेवते भर्तुरुच्छिष्टमिष्टमन्नं फलादिकम् ॥ दूरतो वर्जयेत्

को किया ऐसा जानिये ॥ १९ ॥ और बुलाई हुई जो घर के कार्यों को छोड़कर शीघ्रता समेत जाती व यह कहती है कि हे नाथ ! मैं किस लिये बुलाई गई उस प्रसाद को कीजिये ॥ २० ॥ और बहुत देर तक जो द्वार पै खड़ी नहीं होती है व द्वार को जो नहीं सेवती है और न देने योग्य किसी वस्तु को जो स्वयं कभी नहीं देती है ॥ २१ ॥ व न कहने पर नियम जल, कुश व पत्र, पुष्प और अक्षतादिक उस सब पूजन के सामान को जो स्त्री आपही इकट्ठा करती है ॥ २२ ॥ व वर की इच्छा करती हुई जो निरालसी स्त्री समय के अनुकूल जो कुछ होता है उस सब को बड़ी प्रसन्नता से स्थापित करती है ॥ २३ ॥ व पति के उच्छिष्ट प्रिय अन्न व

फलादिक को जो सेवती है और यह समाज व उत्साह के दर्शन को जो दूर से वर्जित करती है ॥ २४ ॥ और तीर्थयात्रादिक व विवाहादि के देखने के लिये जो नहीं जाती है व सुखसे सोते व सुखसे बैठे और इच्छा के अनुकूल रमण करते हुए ॥ २५ ॥ पति को जो विघ्न में भी कभी नहीं उठाती है व रजस्वला होकर तीन रात्रियों तक जो अपना मुख नहीं दिखाती है ॥ २६ ॥ और जबतक नहाकर शुद्ध न होवै तबतक जो अपने वचन को नहीं सुनाती है व भलीभांति नहाई हुई जो पति का मुख देखती है अन्य किसी के मुखको नहीं देखती है अथवा मन में पति को ध्यान कर सूर्यनारायण को जो देखती है ॥ २७ ॥ व हरिद्रा, कुंकुम, सिन्दूर,

देषा समाजोत्सवदर्शनम् ॥ २४ ॥ न गच्छेत्तीर्थयात्रादिविवाहप्रेक्षणादिषु ॥ सुखसुप्तं सुखासीनं रममाणं यदृच्छया ॥ २५ ॥ अन्तरायेऽपि कार्येषु पतिं नोत्थापयेत्कचित् ॥ स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं तु स्वमुखं नैव दर्शयेत् ॥ २६ ॥ स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्नात्वा न शुध्यति ॥ सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेतान्यस्य न कचित् ॥ अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं विलोकयेत् ॥ २७ ॥ हरिद्रां कुङ्कुमं चैव सिन्दूरं कज्जलं तथा ॥ कूर्पासकं च ताम्बूलं माङ्गल्याभरणं शुभम् ॥ २८ ॥ केशसंस्कारकं चैव करकर्णादिभूषणम् ॥ भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेन्न पतिव्रता ॥ २९ ॥ भर्तृविद्वेषिणीं नारीं नैषा सम्भाषते कचित् ॥ नैकाकिनी कचिद्भूयान्न नग्ना स्नाति च कचित् ॥ ३० ॥ नोलूखले न मुशले न वर्द्धन्यां दृषद्यपि ॥ न यन्त्रके न देहल्यां सती चोपविशेत्कचित् ॥ ३१ ॥ विना व्यवायसमयात्प्रागल्भ्यं न कचिच्चरेत् ॥ यत्र यत्र रुचिर्भर्तुस्तत्र प्रेमवती सदा ॥ ३२ ॥ इदमेव व्रतं स्त्रीणामयमेव परो वृषः ॥ इयमेव च पूजा च भर्तु

कज्जल, वसन, ताम्बूल व उत्तम मांगल्य का आभरण ॥ २८ ॥ व बालों का संस्कार और हाथ व कान आदि का भूषण पति का आयुर्बल चाहती हुई वह पतिव्रता स्त्री दूर न करै ॥ २९ ॥ और यह स्त्री पति से वैर करनेवाली स्त्री से कभी वार्तालाप न करै व कभी अकेली न होवै व नग्न होकर कभी स्नान न करै ॥ ३० ॥ और पतिव्रता स्त्री कभी उलूखल, मूसल व करछुलि पै न बैठै और पत्थर, यन्त्र व देहली पै न बैठै ॥ ३१ ॥ व मैथुन समय के सिवा कभी धृष्टता न करै और जहा जहां पति की रुचि होवै वहां सदैव प्रेम करै ॥ ३२ ॥ स्त्रियों का यही व्रत है व यही परम धर्म है और यही पूजा है कि पति का वचन उल्लंघन न

करै ॥ ३३ ॥ व नपुंसक और दुष्टदशा में प्राप्त तथा रोगी व वृद्ध और सुस्थिर व दुःस्थिर भी एक पति को उल्लंघन न करै ॥ ३४ ॥ और घी, नमक व हींग आदिक न होने पर भी पतिव्रता स्त्री पति से यह न कहै कि नहीं है और लोहे के पात्रों में भोजन न करै ॥ ३५ ॥ और तीर्थ स्नान की इच्छावाली स्त्री पति के चरणोदक को पियै और शिव व विष्णुजीसे भी अधिक स्त्री को पति होताहै ॥ ३६ ॥ जो स्त्री पति को उल्लंघनकर व्रत व उपवासका नियम करती है वह पति का आयुर्बल हरती है व मरकर नरक को जाती है ॥ ३७ ॥ और क्रोधमें तत्पर जो स्त्री कहने पर प्रत्युत्तर देती है वह गांव में कुत्ती होती है व निर्जन वन में शृगाली होती है ॥ ३८ ॥ और स्त्रियों को

वाक्यं न लङ्घयेत् ॥ ३३ ॥ क्लीबं वा दुरवस्थं वा व्याधितं वृद्धमेव वा ॥ सुस्थिरं दुःस्थिरं वापि पतिमेकं न लङ्घयेत् ॥ ३४ ॥ सर्पिर्लवणहिङ्ग्वादिक्षयेऽपि च पतिव्रता ॥ पतिं नास्तीति न ब्रूयादायसीषु न भोजयेत् ॥ ३५ ॥ तीर्थस्नानार्थिनी चैव पतिपादोदकं पिबेत् ॥ शङ्करादपि वा विष्णोःपतिरेवाधिकः स्त्रियः ॥ ३६ ॥ व्रतोपवासनियमं पतिमुल्लङ्घ्य या चरेत् ॥ आयुष्यं हरते भर्तुर्मृता निरयमृच्छति ॥ ३७ ॥ उक्ता प्रत्युत्तरं दद्यान्नारी या क्रोधतत्परा ॥ सरमा जायते ग्रामे शृगाली निर्जने वने ॥ ३८ ॥ स्त्रीणां हि परमश्चैको नियमः समुदाहृतः ॥ अभ्यर्च्य चरणौ भर्तुर्भोक्तव्यं कृतनिश्चया ॥ ३९ ॥ उच्चासनं न सेवेत न व्रजेत्परवेश्मसु ॥ तत्र पारुष्यवाक्यानि ब्रूयान्नैव कदाचन ॥ ४० ॥ गुरूणां सन्निधौ वापि नोच्चैर्ब्रूयान्न वाह्वयेत् ॥ ४१ ॥ या भर्तारं परित्यज्य रहश्चरति दुर्मतिः ॥ उलूकी जायते क्रूरा वृक्षकोटरशायिनी ॥ ४२ ॥ ताडिता ताडयेच्चेत्तं सा व्याघ्री वृषदंशिका ॥ कटाक्षयति याऽन्यं वै केकराक्षी तु सा

एक उत्तम नियम कहागया है कि पति के चरणों को पूजकर भोजन करना चाहिये व निश्चय कियेहुई स्त्री ॥ ३९ ॥ ऊंचे आसन पै न बैठै व पराये घरों को न जावै और वहां कठोरवचनों को कभी न कहै ॥ ४० ॥ और गुरुवों के समीप उच्चस्वर से न बोलै और न किसी को पुकारै ॥ ४१ ॥ और जो निर्बुद्धिनी स्त्री पति को छोड़कर एकान्त में जाती है वह क्रूरा वृक्ष के खोढ़र में सोनेवाली उलूकिनी होती है ॥ ४२ ॥ व मारी हुई जो स्त्री उस पति को मारती है वह वृषदंशिका (बिलारी) व व्याघ्री

होती है और जो अन्य पुरुष को कटाक्ष से देखती है वह केकराक्षी (कुदृष्टिवाली) होती है ॥ ४३ ॥ और जो पति को छोड़कर केवल मीठी वस्तु को खाती है वह ग्राम में सूकरी होती है या बगुली व विष्ठा को खानेवाली होती है ॥ ४४ ॥ और जो स्त्री हुंकार व त्वंकार कर अप्रिय बोलती है वह निश्चय कर गूंगी होती है व जो सदैव सौति से ईर्षा करती है वह बार २ दुर्भगा होती है और जो पति से दृष्टि को छिपाकर अन्य किसी को देखती है ॥ ४५ ॥ वह कानी, विमुख व कुरूपिणी होती है और बाहर से आतेहुए पति को शीघ्रता समेत जो स्त्री जल, आसन, तांबूल, व्यजन व पादसंवाहनादिक ॥ ४६ ॥ व सुन्दर वचन तथा पसीना को दूर करने से

भवेत् ॥ ४३ ॥ या भर्तारं परित्यज्य मिष्टमश्नाति केवलम् ॥ ग्रामे सा सूकरी भूयाद्वल्गुली वाथ विड्भुजा ॥ ४४ ॥ हुन्त्वङ्कृत्याप्रियं ब्रूते मूका सा जायते खलु ॥ या सपत्नीं सदेर्ष्येत दुर्भगा सा पुनः पुनः ॥ दृष्टिं विलुप्य भर्तुर्या कश्चिदन्यं समीक्षते ॥ ४५ ॥ काणा च विमुखा वापि कुरूपापि च जायते ॥ बाह्यादायान्तमालोक्य त्वरिता च जलासनैः ॥ ताम्बूलैर्व्यजनैश्चैव पादसंवाहनादिभिः ॥ ४६ ॥ तथैव चारुवचनैः स्वेदसन्नोदनैः परैः ॥ या प्रियं प्रीणयेत्प्रीता त्रिलोकी प्रीणिता तया ॥ मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ॥ ४७ ॥ अमितस्य हि दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥ भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च ॥ तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत् ॥ ४८ ॥ जीवहीनो यथा देहः क्षणादशुचितां व्रजेत् ॥ भर्तृहीना तथा योषित्सुस्नाताप्यशुचिः सदा ॥ ४९ ॥ अमङ्गलेभ्यः सर्वेभ्यो विधवा स्यादमङ्गला ॥ विधवादर्शनात्सिद्धिः क्वापि जातु न जायते ॥ ५० ॥ विहाय मातरं चैकां सर्वा मङ्गल

जो प्रसन्न होती हुई स्त्री पति को प्रसन्न करती है उसने त्रिलोक को प्रसन्न किया पिता व भाई और पुत्र प्रमाणभर वस्तु को देता है ॥ ४७ ॥ और अमित के देनेवाले पति को कौन स्त्री नहीं पूजती है पतिही देवता है व पति गुरु है और पतिही धर्म, तीर्थ व व्रत हैं इस कारण सब को छोड कर केवल पति को पूजै ॥ ४८ ॥ जैसे जीव से रहित शरीर क्षणभर में अशुद्ध होजाता है वैसेही पति से रहित स्त्री भली भाति नहाई हुई भी सदैव अशुद्ध होती है ॥ ४९ ॥ व सब अमंगलों से विधवा अमगल होती है और विधवा के दर्शन से कहीं भी सिद्धि नहीं होती है ॥ ५० ॥ एक माता को छोड़कर सब विधवा स्त्रियां मंगल से रहित होती हैं इससे विद्वान्

सर्प के समान उनका आशीर्वाद भी छोड़देवे ॥ ५१ ॥ कन्या के विवाह समय में ब्राह्मण यह कहाते हैं कि जीते व मरेहुए भी पतिकी स्त्री सहचरी होवे ॥ ५२ ॥ घरसे श्मशान को जातेहुए पति के पीछे जो स्त्री हर्ष से जाती है वह पग २ पै निस्सन्देह अश्वमेध यज्ञ का फल पाती है ॥ ५३ ॥ सर्प को पकड़नेवाला मनुष्य जैसे बिल से सर्प को बल से ऊपर खींचलेता है वैसेही पतिव्रता स्त्री यमदूतों से पति को लेकर स्वर्ग को जाती है ॥ ५४ ॥ और उस पतिव्रता स्त्री को देखकर यम-दूत भगजाते हैं व सूर्य तपते हैं व अग्नि भी जलती है ॥ ५५ ॥ और पतिव्रता का तेज देखकर सब तेज काँपते हैं जितनी अपने रोमों की संख्या होती है उतने

वर्जिताः ॥ तदाशिषमपि प्राज्ञस्त्यजेदाशीविषोपमाम् ॥ ५१ ॥ कन्याविवाहसमये वाचयेयुरिति द्विजाः ॥ भर्तुः सहचरी भूयाज्जीवतोऽजीवतोपि वा ॥ ५२ ॥ अनुव्रजन्ती भर्तारं गृहात्पितृवनं मुदा ॥ पदेपदेश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ५३ ॥ व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् ॥ एवमुत्क्रम्य दूतेभ्यः पतिं स्वर्गं व्रजेत्सती ॥ ५४ ॥ यमदूताः पलायन्ते तामालोक्य पतिव्रताम् ॥ तपनस्तप्यते नूनं दहनोपि च दह्यते ॥ ५५ ॥ कम्पन्ते सर्वतेजांसि दृष्ट्वा पातिव्रतं महः ॥ यावत्स्वलोमसंख्यास्ति तावत्कोटचयुतानि च ॥ ५६ ॥ भर्त्रा स्वर्गसुखं भुङ्क्ते रममाणा पतिव्रता ॥ धन्या सा जननी लोके धन्योऽसौ जनकः पुनः ॥ ५७ ॥ धन्यः स च पतिः श्रीमान्येषां गेहे पतिव्रता ॥ पितृवंश्या मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः ॥ पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गसौख्यानि भुञ्जते ॥ ५८ ॥ शीलभङ्गेन दुर्वृत्ताः पातयन्ति कुलत्रयम् ॥ पितुर्मातुस्तथा पत्युरिहामुत्र च दुःखिताः ॥ ५९ ॥ पतिव्रतायाश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद्भुवम् ॥ सा तीर्थभूमिर्म्मा

करोड़ दशहज़ार वर्षोंतक ॥ ५६ ॥ पति के साथ रमण करती हुई पतिव्रता स्त्री स्वर्ग का सुख भोगती है संसार में वह माता धन्य है व यह पिता धन्य है ॥ ५७ ॥ और वह श्रीमान् धन्य है कि जिनके घर में पतिव्रता स्त्री होती है व पतिव्रता के प्रभाव से तीन पुश्तियां पिताके वंश की व तीन माता के वंश की और तीन पति के वंश की स्वर्ग के सुखों को भोगती हैं ॥ ५८ ॥ और शीलभंग से दुष्टचरित्रवाली स्त्रियां पिता, माता व पति की तीन पुश्तियों को नरक में डालती हैं व इस लोक और पर-लोक में दुःखित होती हैं ॥ ५९ ॥ और जहां जहां पतिव्रता का चरण पृथ्वी को छूता है वह तीर्थ की भूमि मानने योग्य है व इसमें पृथ्वी को भार नहीं होता है बरन पवित्र-

सर्प के समान उनका आशीर्वाद भी छोड़देवे ॥ ५१ ॥ कन्या के विवाह समय में ब्राह्मण यह कहाते हैं कि जीते व मेरेहुए भी पतिकी स्त्री सहचरी होवे ॥ ५२ ॥ घरसे श्मशान को जातेहुए पति के पीछे जो स्त्री हर्ष से जाती है वह पग २ पै निस्सन्देह अश्वमेध यज्ञ का फल पाती है ॥ ५३ ॥ सर्प को पकड़नेवाला मनुष्य जैसे बिल से सर्प को बल से ऊपर खींचलेता है वैसेही पतिव्रता स्त्री यमदूतों से पति को लेकर स्वर्ग को जाती है ॥ ५४ ॥ और उस पतिव्रता स्त्री को देखकर यम-दूत भगजाते हैं व सूर्य तपते हैं व अग्नि भी जलती है ॥ ५५ ॥ और पतिव्रता का तेज देखकर सब तेज काँपते हैं जितनी अपने रोमों की संख्या होती है उतने

वर्जिताः॥तदाशिषमपि प्राज्ञस्त्यजेदाशीविषोपमाम्॥५१॥कन्याविवाहसमये वाचयेयुरिति द्विजाः॥भर्तुः सहचरी भूयाज्जीवतोऽजीवतोपि वा ॥ ५२ ॥ अनुव्रजन्ती भर्तारं गृहात्पितृवनं मुदा ॥ पदेपदेश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ५३ ॥ व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् ॥ एवमुत्क्रम्य दूतेभ्यः पतिं स्वर्गं व्रजेत्सती ॥ ५४ ॥ यमदूताः पलायन्ते तामालोक्य पतिव्रताम् ॥ तपनस्तप्यते नूनं दहनोपि च दह्यते ॥ ५५ ॥ कम्पन्ते सर्वतेजांसि दृष्ट्वा पातिव्रतं महः॥ यावत्स्वलोमसंख्यास्ति तावत्कोटचयुतानि च ॥ ५६ ॥ भर्त्रा स्वर्गसुखं भुङ्क्ते रममाणा पतिव्रता॥ धन्या सा जननी लोके धन्योऽसौ जनकः पुनः॥५७॥ धन्यः स च पतिः श्रीमान्येषां गेहे पतिव्रता ॥ पितृवंश्या मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः ॥ पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गसौख्यानि भुञ्जते ॥५८॥ शीलभङ्गेन दुर्वृत्ताः पातयन्ति कुलत्रयम्॥ पितुर्मातुस्तथा पत्युरिहामुत्र च दुःखिताः॥५९॥पतिव्रतायाश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद्भुवम्॥ सा तीर्थभूमिर्म्मा

करोड़ दशहज़ार वर्षोंतक ॥ ५६ ॥ पति के साथ रमण करती हुई पतिव्रता स्त्री स्वर्ग का सुख भोगती है संसार में वह माता धन्य है व यह पिता धन्य है ॥ ५७ ॥ और वह श्रीमान् धन्य है कि जिनके घर में पतिव्रता स्त्री होती है व पतिव्रता के प्रभाव से तीन पुश्तियां पिताके वंश की व तीन माता के वंश की और तीन पति के वंश की स्वर्ग के सुखों को भोगती हैं ॥ ५८ ॥ और शीलभंग से दुष्टचरित्रवाली स्त्रियां पिता, माता व पति की तीन पुश्तियों को नरक में डालती हैं व इस लोक और पर-लोक में दुःखित होती हैं ॥ ५९ ॥ और जहां जहां पतिव्रता का चरण पृथ्वी को छूता है वह तीर्थ की भूमि मानने योग्य है व इसमें पृथ्वी को भार नहीं होता है बरन पवित्र-

कारक होताहै ॥ ६० ॥ व सूर्यनारायण भी डरतेहुए पतिव्रता का स्पर्श करते हैं और चन्द्रमा व गन्धर्व भी अपनी पवित्रता के लिये पतिव्रता का स्पर्श करते हैं अन्यथा नहीं स्पर्श करते हैं ॥ ६१ ॥ और जल सदैव पतिव्रता का स्पर्श चाहते हैं व हमारा पापनाश होगा इस कारण गायत्री पतिव्रता का स्पर्श करती है और वह गायत्री पापनाशिनी होती है ॥ ६२ ॥ रूप व लावण्य से गर्वित स्त्रियां क्या घर घरमें नहीं हैं परन्तु विश्वेश्वरजी की भक्तिही से पतिव्रता स्त्री मिलती है ॥ ६३ ॥ स्त्री गृहस्थ की जड़ है व स्त्री सुख की मूल है और स्त्री धर्म के फल के लिये होती है व स्त्री संतान की वृद्धि के लिये होती है ॥ ६४ ॥ और स्त्री से परलोक व यह लोक दोनों जीतेजाते हैं और

न्येति नात्र भारोऽस्ति पावनः ॥ ६० ॥ बिभ्यत्पतिव्रतास्पर्शं कुरुते भानुमानपि ॥ सोमो गन्धर्व एवापि स्वपावित्र्याय नान्यथा ॥ ६१ ॥ आपः पतिव्रतास्पर्शमभिलष्यन्ति सर्वदा ॥ गायत्र्यघविनाशो नो पातिव्रत्येन साऽघनुत् ॥ ६२ ॥ गृहेगृहे न किं नार्य्यो रूपलावण्यगर्विताः ॥ परं विश्वेशभक्त्यैव लभ्यते स्त्री पतिव्रता ॥ ६३ ॥ भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च ॥ भार्या धर्मफलायैव भार्या सन्तानवृद्धये ॥ ६४ ॥ परलोकस्त्वयं लोको जीयते भार्यया द्वयम् ॥ देवपित्रतिथीनां च तृप्तिः स्याद्भार्यया गृहे ॥ गृहस्थः स तु विज्ञेयो गृहे यस्य पतिव्रता ॥६५॥ यथा गङ्गावगाहेन शरीरं पावनं भवेत् ॥ तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सदनं पावनं भवेत् ॥ ६६ ॥ पर्यङ्कशायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम् ॥ तस्माद्भूशयनं कार्य्यं पतिसौख्यसमीहया ॥ ६७ ॥ नैवाङ्गोद्वर्त्तनं कार्य्यं स्त्रिया विधवया क्वचित् ॥ गन्धद्रव्यस्य सम्भोगो नैव कार्य्यस्तया क्वचित् ॥ ६८ ॥ तर्पणं प्रत्यहं कार्य्यं भर्तुः कुशतिलोदकैः ॥ तत्पि

स्त्री से घर में देवता, पितर व अतिथियों की तृप्ति होती है और जिसके घर में पतिव्रता होती है वह गृहस्थ जानने योग्य है ॥ ६५ ॥ जैसे गङ्गास्नान से शरीर पवित्र होता है वैसेही पतिव्रता को देखकर मन्दिर पवित्र होताहै ॥ ६६ ॥ और पलंग पर सोनेवाली विधवा स्त्री पति को नरक में डालती है इस कारण पति के सुखकी इच्छावाली स्त्री को पृथ्वी में शयन करना चाहिये ॥ ६७ ॥ विधवा स्त्री को कभी अंग में उबटन न लगाना चाहिये और उसको कभी सुगन्धित वस्तु का संभोग न करना चाहिये ॥ ६८ ॥ और प्रतिदिन कुश व तिलोदक से पति को तर्पण करना चाहिये और उसके पति को व उसके भी पति को नामगोत्रादिपूर्वक तर्पण करना

चाहिये ॥ ६९ ॥ और पति की बुद्धि से विष्णु का पूजन करना चाहिये अन्यथा न करना चाहिये व विष्णुरूपधारी पति को विष्णु ध्यान करै ॥ ७० ॥ और संसार में जो जो पति को बहुत प्रिय होवै पति की तृप्ति की इच्छा से उस उस वस्तु को गुणवान् ब्राह्मण के लिये देना चाहिये ॥ ७१ ॥ और वैशाख व कातिक महीने में विशेष नियमों को करै कि स्नान, दान व तीर्थयात्रा और बार २ पुराण का श्रवण करै ॥ ७२ ॥ वैशाख में जल के घट व कार्त्तिक में घृतके दिया देना चाहिये व माघ में धान्य और तिलों का दान स्वर्गलोक में विशेष होता है ॥ ७३ ॥ और विष्णुदेवजी के निमित्त वैशाख में पौशाला करना चाहिये व झारी देना चाहिये और खस, व्यजन,

तुस्तत्पितुश्चापि नामगोत्रादिपूर्वकम् ॥ ६९ ॥ विष्णोः सम्पूजनं कार्यं पतिबुद्ध्या न चान्यथा ॥ पतिमेव सदा ध्यायेद्विष्णुरूपधरं हरिम् ॥ ७० ॥ यद्यदिष्टतमं लोके यद्यत्पत्युः समीहितम् ॥ तत्तद्गुणवते देयं पतिप्रीणनकाम्यया ॥ ७१ ॥ वैशाखे कार्त्तिके मासे विशेषनियमांश्चरेत् ॥ स्नानं दानं तीर्थयात्रां पुराणश्रवणं मुहुः ॥ ७२ ॥ वैशाखे जलकुम्भाश्च कार्त्तिके घृतदीपिकाः ॥ माघे धान्यतिलोत्सर्गः स्वर्गलोके विशिष्यते ॥ ७३ ॥ प्रपा कार्या च वैशाखे देवे देया गलन्तिका ॥ उशीरं व्यजनं छत्रं सूक्ष्मवासांसि चन्दनम् ॥ ७४ ॥ सकर्पूरं च ताम्बूलं पुष्पदानं तथैव च ॥ जलपात्राण्यनेकानि तथा पुष्पगृहाणि च ॥ ७५ ॥ पानानि च विचित्राणि द्राक्षारम्भाफलानि च ॥ देयानि द्विजमुख्येभ्यः पतिर्मे प्रीयतामिति ॥ ७६ ॥ ऊर्ज्जे यवान्नमश्नीयादेकान्नमथवा पुनः ॥ वृन्ताकं सूरणं चैव शूकशिम्बीं च वर्जयेत् ॥ ७७ ॥ कार्त्तिके वर्ज्जयेत्तैलं कांस्यं चापि विवर्जयेत् ॥ कार्त्तिके मौननियमे चारुघण्टां प्रदापयेत् ॥ ७८ ॥

छत्र व रेशमी वस्त्र व चंदन देना चाहिये ॥ ७४ ॥ और कर्पूर समेत, ताम्बूल व पुष्पदान तथा अनेक जलपात्र व अनेक पुष्पगृह ॥ ७५ ॥ व विचित्र पान और मुनक्का व केला के फल इस लिये मुख्य ब्राह्मणों के लिये देना चाहिये कि मेरा पति प्रसन्न होवै ॥ ७६ ॥ कार्त्तिक में यवान्न व एक अन्न को खावै और वृन्ताक (भांटा), ज़िमींक़न्द व केंवाच को वर्जित करै ॥ ७७ ॥ और कार्त्तिक में तैल व कांस्य को भी वर्जित करै और कार्त्तिक में मौन के नियम में सुन्दर घण्टा को देवै ॥ ७८ ॥

और पत्ते में खानेवाला मनुष्य घृत से पूर्ण कांस्यपात्र को देवै व भूमिशय्या के व्रत में रजाई समेत नम्रशय्या को देना चाहिये ॥ ७९ ॥ व फल के त्याग में फल देना चाहिये और रस के त्याग में वही रस देना चाहिये और अन्न के त्याग में वही धान्य देवै अथवा शाली कहेगये हैं और अलंकार समेत व सुवर्ण समेत गऊ को यत्न से देवै ॥ ८० ॥ एक ओर सब दान व एक ओर दीपदान होता है और कार्त्तिक में दीपदान के फल के अन्य कर्म सोलहवीं कला के योग्य नहीं होते हैं ॥ ८१ ॥ इत्यादिक विधवाओं के नियम कहेगये हैं हे राजन्! उनको यह फल होता है अन्य जनों को किसी प्रकार नहीं होता है ॥ ८२ ॥ धर्मवापी को प्राप्त

पत्रभोजी कांस्यपात्रं घृतपूर्णं प्रयच्छति ॥ भूमिशय्याव्रते देया शय्या श्लक्ष्णा सतूलिका ॥ ७९ ॥ फलत्यागे फलं देयं रसत्यागे च तद्रसः ॥ धान्यत्यागे च तद्धान्यमथवा शालयः स्मृताः ॥ धेनुं दद्यात्प्रयत्नेन सालङ्कारां सकाञ्चनाम् ॥ ८० ॥ एकतः सर्वदानानि दीपदानं तथैकतः ॥ कार्त्तिके दीपदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ८१ ॥ इत्यादिविधवानां च नियमाः सम्प्रकीर्तिताः ॥ तेषां फलमिदं राजन्नान्येषां च कदाचन ॥ ८२ ॥ धर्मवापीं समासाद्य दानं दद्याद्विचक्षणः ॥ कोटिधा वर्द्धते नित्यं ब्रह्मणो वचनं यथा ॥ ८३ ॥ तिलधेनुं च यो दद्याद्धर्मेश्वरपुरः स्थितः ॥ तिलसंख्यानि वर्षाणि स्वर्गे लोके महीयते ॥ ८४ ॥ धर्मक्षेत्रे तु सम्प्राप्य श्राद्धं कुर्यादतन्द्रितः ॥ तस्य संवत्सरं यावत्तृप्ताः स्युः पितरो ध्रुवम् ॥ ८५ ॥ ये चान्ये पूर्वजाः स्वर्गे ये चान्ये नरकौकसः ॥ ये च तिर्यक्त्वमापन्ना ये च भूतादिसंस्थिताः ॥ ८६ ॥ तान्सर्वान्धर्मकूपे वै श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ॥ अत्र प्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि ॥ तेन ते

होकर चतुर मनुष्य दान देवै तो नित्य कोटिगुना बढ़ता है जैसा कि ब्रह्मा का वचन है ॥ ८३ ॥ व धर्मेश्वरपुर में स्थित जो मनुष्य तिल की गऊ को देता है वह तिल संख्यक वर्षोंतक स्वर्गलोक में पूजा जाता है ॥ ८४ ॥ व धर्मक्षेत्र में प्राप्त होकर जो निरालसी पुरुष श्राद्ध को देवै उसके पितर वर्षभरतक निश्चयकर तृप्त होते हैं ॥ ८५ ॥ व जो अन्य पूर्वज पितर स्वर्ग में होवैं और जो अन्य नरकगामी होवैं व जो तिर्यक्ता को प्राप्त हुए हैं और जो भूतादिकों में स्थित हैं ॥ ८६ ॥ उन सबों को विधिपूर्वक

धर्मकूप के समीप श्राद्ध देवै और इस श्राद्ध में मनुष्य पृथ्वी में जो अन्न डालते हैं उससे वे पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं जो कि पिशाचत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ८७ ॥ व हे पुत्र ! जिन मनुष्यों का स्नानवस्त्र से उपजाहुआ जल पृथ्वी में गिरता है उस जल से उनकी तृप्ति होती है जो कि वृक्षत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ८८ ॥ और जो यवों के किनुका पृथ्वी में गिरते हैं उनसे उनकी तृप्ति होती है जो कि देवत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ८९ ॥ व पिंडों के उठाने पर जो यवों के किनुका पृथ्वी में गिरते हैं उनसे उनकी तृप्ति होती है जोकि पाताल को प्राप्त हुए हैं ॥ ९० ॥ और वर्ण, आश्रम के आचार व कर्म से रहित व संस्कारहीन जो पुरुष मरे हैं वे इस श्राद्ध में

तृप्तिमायान्ति ये पिशाचत्वमागताः ॥ ८७ ॥ येषां तु स्नानवस्त्रोत्थं भूमौ पतति पुत्रक ॥ तेन ये तरुतां प्राप्तास्तेषां तृप्तिः प्रजायते ॥ ८८ ॥ या वै यवानां कणिकाः पतन्ति धरणीतले ॥ ताभिराप्यायनं तेषां ये तु देवत्वमागताः ॥ ८९ ॥ उद्धृतेष्वथ पिण्डेषु यवान्नकणिका भुवि ॥ ताभिराप्यायनं तेषां ये च पातालमागताः ॥ ९० ॥ ये वा वर्णाश्रमाचारक्रियालोपा ह्यसंस्कृताः ॥ विपन्नास्ते भवन्त्यत्र सम्मार्जनजलाशिनः ॥ ९१ ॥ भुक्त्वा वाचमनं यच्च जलं पतति भूतले ॥ ब्राह्मणानां तथैवान्ये तेन तृप्तिं प्रयान्ति वै ॥ ९२ ॥ एवं यो यजमानश्च यच्च तेषां द्विजन्मनाम् ॥ कचिज्जलान्नविक्षेपः शुचिरस्पृष्ट एव च ॥ ९३ ॥ ये चान्ये नरके जातास्तत्र योन्यन्तरं गताः ॥ प्रयान्त्याप्यायनं वत्स सम्यक्छ्राद्धक्रियावताम् ॥ ९४ ॥ अन्यायोपार्जितैर्द्रव्यैः श्राद्धं यत्क्रियते नरैः ॥ तृप्यन्ति तेन चण्डालपुल्कसादिषु योनिषु ॥ ९५ ॥ एव

शुद्धि करने के जल को पीते हैं ॥ ९१ ॥ और भोजन करके जो द्विजों के आचमन का जल पृथ्वी में गिरता है उससे वे अन्य पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ९२ ॥ इस प्रकार जो यजमान होता है व उन ब्राह्मणों का जो कहीं शुद्ध या अशुद्ध जल डाला जाता है ॥ ९३ ॥ हे वत्स ! उससे उस श्राद्ध में वे तृप्त होते हैं जोकि भली भाति श्राद्ध कर्मवाले जनों के अन्य पितर नरक में प्राप्त है व जो अन्य योनियों में प्राप्त हैं ॥ ९४ ॥ व मनुष्य अन्याय से इकट्ठा किये हुए द्रव्यों से जो श्राद्ध करते हैं उससे चाण्डाल व पुल्कसादिक योनियों में तृप्त होते हैं ॥ ९५ ॥ हे वत्स ! इस प्रकार उससे अनेक बन्धु लोग तृप्त होते हैं और यदि श्राद्ध करने की असामर्थ्य होवै

तो शाकों से भी श्राद्ध होता है ॥ ९६ ॥ इस लिये मनुष्य भक्ति से विधिपूर्वक जो श्राद्ध करता है सो श्राद्ध करते हुए उस मनुष्य का वंश कभी दुःखित नहीं होता है ॥ ९७ ॥ यदि सब पाप किया गया है तो निश्चय कर पाप बढ़ता है और पाप करता हुआ मनुष्य भयंकर नरकमें पचताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९८ ॥ हे नृपोत्तम ! जैसे पुण्य वैसेही पाप धर्मारण्यमें किया हुआ वह सब शुभाशुभ कर्म निश्चयकर बढ़ता है ॥ ९९ ॥ कामिक व कामदायक तथा योगियों को मुक्तिदायक देव व सिद्धों को सदैव सिद्धिदायक धर्मारण्य कहा गया है ॥ १०० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांधर्माचारवर्णनंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

माप्यायिता वत्स तेन चानेकबान्धवाः ॥ श्राद्धं कर्तुमशक्तिश्चेच्छाकैरपि हि जायते ॥ ९६ ॥ तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि ॥ कुरुते कुर्वतः श्राद्धं कुलं कचिन्न सीदति ॥ ९७ ॥ पापं यदि कृतं सर्वं पापं च वर्द्धते ध्रुवम् ॥ कुर्वाणो नरके घोरे पच्यते नात्र संशयः ॥ ९८ ॥ यथा पुण्यं तथा पापं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ तत्सर्वं वर्द्धते नूनं धर्मारण्ये नृपोत्तम ॥ ९९ ॥ कामिकं कामदं देवं योगिनां मुक्तिदायकम् ॥ सिद्धानां सिद्धिदं प्रोक्तं धर्मारण्यं तु सर्वदा ॥ १०० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येधर्माचारवर्णनन्नामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ धर्मारण्यकथां पुण्यां श्रुत्वा तृप्तिर्न मे विभो ॥ यदा यदा कथयसि तदा प्रोत्सहते मनः ॥ अतः परं किमभवत्परं कौतूहलं हि मे ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु पार्थ महापुण्यां कथां स्कन्दपुराणजाम् ॥ स्थाणुनोक्तां च स्कन्दाय धर्मारण्योद्भवां शुभाम् ॥ २ ॥ सर्वतीर्थस्य फलदां सर्वोपद्रवनाशिनीम् ॥ कैलासशिखरासीनं देवदेवं

दो० । धर्मारण्य क्षेत्र कहँ देवन कीन पयान । सोइ आठ अध्यायमें अहै चरित सुखदान ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे विभो ! धर्मारण्य की पवित्र कथा को सुनकर मेरी तृप्ति नहीं होती है और ज्यों ज्यों तुम कहते हो वैसेही मेरा मन उत्साह करता है इसके उपरान्त क्या हुआ है यह मुझ को बड़ा आश्चर्य है ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे पार्थ ! स्कन्दपुराण से उपजी हुई महापवित्र कथा को सुनिये शिवजी ने जिस धर्मारण्य से उपजीहुई उत्तम कथाको स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहा है ॥ २ ॥ वह सब तीर्थ के फल को देनेवाली व सब उपद्रवों को नाशनेवाली है कैलास पर्वत के शिखर पै बैठे हुए जगद्गुरु देवदेव, पञ्चमुख, दशभुज, त्रिशूलधारी व

त्रिनेत्र ॥ ३ ॥ और कपाल व खट्वांग को हाथ में लिये तथा नागों का यज्ञोपवीत पहने और गणों से घिरे हुए वहां देवताओं व दैत्यों से नमस्कृत ॥ ४ ॥ और अनेक प्रकार के रूप व गुणों से गीत तथा नारदादिकों से संयुत और गंधर्वों व अप्सराओं से सेवित वहां बैठे हुए उन महादेवजी को प्रणाम कर पुत्र ने कहा ॥ ५ ॥ स्कन्द जी बोले कि हे स्वामिन् ! इन्द्रादिक व ब्रह्मादिक सब देवता केवल तुम्हारे दर्शनकी इच्छासे तुम्हारे द्वार पै आये हैं हे देव ! मुझको क्या आज्ञा देतेहो उसको मैं तुम्हारे आगे करूं ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले कि स्वामिकार्त्तिकेयजी का वचन सुनकर शिवजी आसन से उठे और बैल पर न चढ़े व उस समय उन्होंने जाने की इच्छा

जगद्गुरुम् ॥ पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं शूलपाणिनम् ॥ ३ ॥ कपालखट्वाङ्गकरं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥ गणैः परिवृतं तत्र सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ४ ॥ नानारूपगुणैर्गीतं नारदप्रमुखैर्युतम् ॥ गन्धर्वैश्चाप्सरोभिश्च सेवितं तमुमापतिम् ॥ तत्रस्थं च महादेवं प्रणिपत्याब्रवीत्सुतः ॥ ५ ॥ स्कन्द उवाच ॥ स्वामिन्निन्द्रादयो देवा ब्रह्माद्याश्चैव सर्वशः ॥ तव द्वारे समायातास्त्वद्दर्शनैकलालसाः ॥ किमाज्ञापयसे देव करवाणि तवाग्रतः ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ स्कन्दस्य वचनं श्रुत्वा आसनादुत्थितो हरः ॥ वृषभं न समारूढो गन्तुकामोऽभवत्तदा ॥ ७ ॥ गन्तुकामं शिवं दृष्ट्वा स्कन्दो वाक्य मथाब्रवीत् ॥ ८ ॥ स्कन्द उवाच ॥ किं कार्यं देव देवानां यत्त्वमाहूयसे त्वरम् ॥ वृषं त्यक्त्वा कृपासिन्धो कृपास्ति यदि मे वद ॥ ९ ॥ देवदानवयुद्धं वा किं कार्यं वा महत्तरम् ॥ १० ॥ शिव उवाच ॥ शृणुष्वैकाग्रमनसा येनाहं व्यग्रचेतसः ॥ अस्ति स्थानं महापुण्यं धर्म्मारण्यं च भूतले ॥ ११ ॥ तत्रापि गन्तुकामोऽहं देवैः सह षडानन ॥ १२ ॥ स्कन्द

किया ॥ ७ ॥ व जाने की इच्छावाले शिवजी को देखकर स्वामिकार्त्तिकेयजी ने यह वचन कहा ॥ ८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले कि हे देव ! देवताओं का क्या कार्य है जोकि तुम बैलको छोड़कर शीघ्रता से बुलाये जाते हो हे दयासिन्धो ! यदि मेरे ऊपर दया होवै तो उसको कहिये ॥ ९ ॥ कि देवताओं या दानवों का युद्धहै अथवा बड़ा भारी क्या कार्य है ॥ १० ॥ शिवजी बोले कि जिससे मैं व्यग्रचित्त हूं उस को सावधान मन से सुनिये कि पृथ्वी में महापवित्र धर्मारण्य स्थान है ॥ ११ ॥ हे षडानन ! देवताओं समेत मैं वहां जाना चाहता हूं ॥ १२ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय जी बोले कि हे महादेव ! तुम वहां जाकर इस समय क्या करोगे हे जगन्नाथ ! उस सब

कार्य को मुझ से संपूर्णता से कहिये ॥ १३ ॥ शिवजी बोले कि हे पुत्र ! मन के आनन्द का कारण व सृष्टि व पालन करनेवाले सब वृत्तान्तरूप वचन को पहले से सुनिये ॥ १४ ॥ कि प्रलय होने पर जब सब संसार अन्धकार से घिरगया तब निर्गुण व अव्यय एक ब्रह्मबीज हुआ है ॥ १५ ॥ और पहले गुणोंसे वह बनाया गया जोकि महद्द्रव्य कहा जाता है ॥ १६ ॥ चराचर नाश होने पर जब महाकल्प प्राप्त हुआ तब जलरूपी जगन्नाथजी लीला से रमण करने लगे ॥ १७ ॥ और बहुत समय बीतने पर उनने पृथ्वी आदिक तत्त्वों से दश हज़ार शाखाओं से सुन्दर वृक्षको उत्पन्न किया ॥ १८ ॥ जोकि बड़े भारी फलों से पूर्ण व स्कन्धों तथा कांडादिकों से

उवाच॥ तत्र गत्वा महादेव किं करिष्यसि साम्प्रतम्॥ तन्मे ब्रूहि जगन्नाथ कृत्यं सर्वमशेषतः ॥ १३ ॥ शिव उवाच॥ श्रूयतां वचनं पुत्र मनसोह्लादकारणम् ॥ आदितः सर्ववृत्तानां सृष्टिस्थितिकरं महत् ॥ १४ ॥ परन्तु प्रलये जाते सर्वतस्तमसा वृतम्॥ आसीदेकं तदा ब्रह्म निर्गुणं बीजमव्ययम् ॥ १५ ॥ निर्मितं वै गुणैरादौ महद्द्रव्यं प्रचक्ष्यते ॥ १६ ॥ महाकल्पे च सम्प्राप्ते चराचरे क्षयं गते॥ जलरूपी जगन्नाथो रममाणस्तु लीलया ॥ १७ ॥ चिरकाले गते सोपि पृथिव्यादिसुतत्त्वकैः ॥ वृक्षमुत्पादयामासायुतशाखामनोरमम् ॥ १८ ॥ फलैर्विशालैराकीर्णं स्कन्धकाण्डादिशोभितम् ॥ फलौघाढ्यो जटायुक्तो न्यग्रोधो विटपो महान् ॥ १९ ॥ बालभावं ततः कृत्वा वासुदेवो जनार्दनः ॥ शेतेऽसौ वटपत्रेषु विश्वं निर्मातुमुत्सुकः ॥ २० ॥ स नाभिकमले विष्णोर्जातो ब्रह्मा हि लोककृत् ॥ सर्वं जलमयं पश्यन्नानाकारमरूपकम् ॥ २१ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोद्वेगाद्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ इदमाह तदा पुत्र किं करोमीति

शोभित था वह फलसमूह से संयुत और जटायुक्त बड़ाभारी बरगद का वृक्ष हुआ ॥ १९ ॥ तब संसार को रचने की उत्कंठावाले ये जनार्दन विष्णुजी बालक होकर बरगद के पत्तों पै सोने लगे ॥ २० ॥ और विष्णुजी की नाभि से उपजे हुए कमल में लोकों को रचनेवाले वे ब्रह्मा उत्पन्न हुए व सब जलमय देखकर और अनेक प्रकार के आकारवाले व अरूप ॥ २१ ॥ उन विष्णुजी को यकायक देखकर हे पुत्र ! लोकों के पितामह ब्रह्मा ने उद्वेग से इस निश्चित वचन को कहा कि मैं क्या

करूं ॥ २२॥ तब आकाशमें दैवसे वह आकाशवाणी उत्पन्न हुई कि हे विधे, धातः! जिस प्रकार मेरा दर्शन होवै उसी प्रकार तप करो ॥ २३ ॥ वहां उस वचन को सुन कर लोकों के पितामह ब्रह्माने बहुत कठिन व भयंकर तप किया ॥ २४ ॥ तब बाल रूप से हँसते हुए उन दयालु लक्ष्मीपति विष्णुजी ने बाललीला से मधुरवचन को कहा ॥ २५ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि हे पुत्र ! इस समय तुम ब्रह्माण्डगोलक करो और पाताल, पृथ्वी, सिंधु, सागर व वन को बनावो ॥ २६ ॥ और जो वृक्ष व पर्वत हैं और द्विपद, पशु, पक्षी, गंधर्व, सिद्ध, यक्ष व राक्षसों को रचो ॥ २७ ॥ और व्याघ्रादिक जो जीव हैं उन चौरासी लक्ष योनियों को बनावो उद्भिज्ज, स्वेदज, जरायुज

निश्चितम् ॥ २२ ॥ खे जजान ततो वाणी दैवात्सा चाशरीरिणी ॥ तपस्तप विधे धातर्यथा मे दर्शनं भवेत् ॥ २३ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं तत्र ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ प्रातप्यत तपो घोरं परमं दुष्करं महत् ॥ २४ ॥ प्रहसन्स तदा बालरूपेण कमलापतिः ॥ उवाच मधुरां वाचं कृपालुर्बाललीलया ॥ २५ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ पुत्र त्वं विधिना चाद्य कुरु ब्रह्माण्डगोलके ॥ पातालं भूतलं चैव सिन्धुसागरकाननम् ॥ २६ ॥ वृक्षाश्च गिरयो ये वै द्विपदाः पशवस्तथा ॥ पक्षिणश्चैव गन्धर्वाः सिद्धा यक्षाश्च राक्षसाः ॥ २७ ॥ श्वापदाद्याश्च ये जीवाश्चतुराशीतियोनयः ॥ उद्भिज्जाः स्वेदजाश्चैव जरायुजास्तथाण्डजाः ॥ २८ ॥ एकविंशतिलक्षाणि एकैकस्य च योनयः ॥ कुरु त्वं सकलं चाशु इत्युक्त्वान्तरधीयत ॥ ब्रह्मणा निर्मितं सर्वं ब्रह्माण्डं च यथोदितम् ॥ २९ ॥ यस्मिन्पितामहो जज्ञे प्रभुरेकः प्रजापतिः ॥ स्थाणुः सुरगुरुर्भानुः प्रचेताः परमेष्ठिनः ॥ ३० ॥ यथा दक्षो दक्षपुत्रास्तथा सप्तर्षयश्च ये ॥ ततः प्रजानां पतयः प्राभवन्नेकविंशतिः ॥ ३१ ॥ पुरुषश्चा

व अंडज ॥ २८ ॥ एक एक की इक्कीस इक्कीस लक्ष जो योनि हैं उन सबको तुम शीघ्रही बनावो यह कहकर विष्णुजी अन्तर्द्धान होगये और जैसा कहा गया वैसे ही सब ब्रह्माण्ड को ब्रह्मा ने बनाया ॥ २९ ॥ कि जिसमें एक प्रभु ब्रह्माजी व सुरगुरु सदाशिव, सूर्य और प्रचेता ये सब ब्रह्मा से उत्पन्न हुए ॥ ३० ॥ जिस प्रकार दक्ष व दक्षपुत्र उत्पन्न हुए वैसेही जो सप्तर्षि हैं वे पैदा हुए तदनन्तर इक्कीस प्रजापति हुए ॥ ३१ ॥ और अप्रमेय पुरुष उत्पन्न हुआ इस प्रकार वंशवाले ऋषि लोग कहते

हैं और विश्वेदेवा, आदित्य, वसु व अश्विनीकुमार ॥ ३२ ॥ और यक्ष, पिशाच, साध्य, पितर, गुह्यक उत्पन्न हुए तदनन्तर आठ निर्मल विद्वान् उत्पन्न हुए ॥ ३३ ॥
व सब गुणों से संयुत बहुतसे राजर्षि उत्पन्न हुए और स्वर्ग, जल, पृथ्वी, पवन और दिशा ॥ ३४ ॥ व संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष और दिन रात क्रमसे पैदा हुए व कला,
काष्ठा, मुहूर्त्तादिक, निमेषादिक व लवादिक ॥ ३५ ॥ और नक्षत्रों समेत ग्रहचक्र युग व मन्वन्तरादिक और अन्य भी जो था वह सब लोक का साक्षी उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥
और जो कुछ यह चराचर चक्र देख पडता है हे पुत्र ! युग का नाश प्राप्त होनेपर वह संसार फिर नाश होजाता है ॥ ३७ ॥ हे वत्स ! जैसे ऋतु में ऋतुके चिह्न और

प्रमेयश्च एवं वंश्यर्षयो विदुः ॥ विश्वेदेवास्तथादित्या वसवश्चाश्विनावपि ॥ ३२ ॥ यक्षाः पिशाचाः साध्याश्च
पितरो गुह्यकास्तथा ॥ ततः प्रसूता विद्वांसो ह्यष्टौ ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ३३ ॥ राजर्षयश्च बहवः सर्वे समुदिता गुणैः ॥
द्यौरापः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा ॥ ३४ ॥ संवत्सरार्तवो मासाः पक्षाहोरात्रयः क्रमात् ॥ कलाकाष्ठामुहूर्ता
दिनिमेषादिलवास्तथा ॥ ३५ ॥ ग्रहचक्रं सनक्षत्रं युगा मन्वन्तरादयः ॥ यच्चान्यदपि तत्सर्वं सम्भूतं लोकसाक्षिक
म् ॥ ३६ ॥ यदिदं दृश्यते चक्रं किञ्चित्स्थावरजङ्गमम् ॥ पुनः संक्षिप्यते पुत्र जगत्प्राप्ते युगक्षये ॥ ३७ ॥ यथर्तावृतु
लिङ्गानि नामरूपाणि पर्यये ॥ दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा वत्सयुगादिकम् ॥ ३८ ॥ शिव उवाच ॥ अतः परं प्र
वक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ ब्रह्मणश्च तथा पुत्र वंशस्यैवानुकीर्तनम् ॥ ३९ ॥ ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदि
ताः षण्महर्षयः ॥ मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ ४० ॥ मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपाच्चरमाः प्रजाः ॥
प्रजज्ञिरे महाभागा दक्षकन्यास्त्रयोदश ॥ ४१ ॥ अदितिर्दितिर्दनुः काला दनायुः सिंहिका तथा ॥ क्रोधा प्रोवा वसिष्ठा

नाम व रूप देख पड़ते हैं वेही वे और युगादिक सब युग प्राप्त होने पर होताहै ॥ ३८ ॥ शिवजी बोले कि हे पुत्र ! इसके उपरान्त मैं पुराण की उत्तम कथा को कहता
हूं व ब्रह्मा के वंश के वंश को कहता हूं ॥ ३९ ॥ कि ब्रह्माके छः मानसी पुत्र महर्षिलोग उत्पन्नहुए कि मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह व क्रतुजी उत्पन्न हुए ॥ ४० ॥
व मरीचि के कश्यप पुत्र हुए और कश्यप की पिछली प्रजा बड़े ऐश्वर्यवाली तेरह कन्या उत्पन्न हुईं ॥ ४१ ॥ कि अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, क्रोधा,

प्रोवा, वसिष्ठा, विनता व कपिला ॥ ४२ ॥ और कण्डू व सुनेत्रा इन तेरह कन्याओं को उस समय कश्यपजी के लिये दिया व अदितिमें उत्तम मुखवाले बारह आदित्य उत्पन्न हुए ॥ ४३ ॥ और सूर्य से धर्मराज उत्पन्न हुए व उन्होंने पहले इस स्थान को बनाया है हे स्कन्द ! धर्मराज से बनाये हुए अति उत्तम धर्मारण्य को देखकर मैं ने धर्मारण्य ऐसा कहा जोकि पुण्यदायक है ॥ ४४ ॥ स्कन्दजी बोले कि हे महेश्वर ! धर्मारण्य के परमपावन कथानक को मैं सुना चाहताहूं उस सब को कहिये ॥ ४५ ॥ महादेव जी बोले कि इन्द्रादिक सब देवता ब्रह्मा के साथ चलें और मैं वहां पापनाशक क्षेत्र को जाऊंगा ॥ ४६ ॥ स्कन्दजी बोले कि हे शशिशेखर ! मैं भी उसको

च विनता कपिला तथा ॥ ४२ ॥ कण्डूश्चैव सुनेत्रा च कश्यपाय ददौ तदा ॥ अदित्यां द्वादशादित्याः सञ्जाता हि शुभाननाः ॥ ४३ ॥ सूर्याद्वै धर्मराड् जज्ञे तेनेदं निर्मितं पुरा ॥ धर्मेण निर्मितं दृष्ट्वा धर्मारण्यमनुत्तमम् ॥ धर्मारण्यमिति प्रोक्तं यन्मया स्कन्द पुण्यदम् ॥ ४४ ॥ स्कन्द उवाच ॥ धर्मारण्यस्य चाख्यानं परमं पावनं तथा ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं कथयस्व महेश्वर ॥ ४५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इन्द्राद्याः सकला देवा अन्वयुर्ब्रह्मणा सह ॥ अहं वै तत्र यास्यामि क्षेत्रं पापनिषूदनम् ॥ ४६ ॥ स्कन्द उवाच ॥ अहमप्यागमिष्यामि तं द्रष्टुं शशिशेखर ॥ ४७ ॥ सूत उवाच ॥ ततः स्कन्दस्तथा रुद्रः सूर्यश्चैवानिलोऽनलः ॥ सिद्धाश्चैव सगन्धर्वास्तथैवाप्सरसः शुभाः ॥ ४८ ॥ पिशाचा गुह्यकाः सर्वे इन्द्रो वरुण एव च ॥ नागाः सर्वाः समाजग्मुः शुक्रो वाचस्पतिस्तथा ॥ ४९ ॥ ग्रहाः सर्वे सनक्षत्रा वसवोऽष्टौ ध्रुवादयः ॥ अन्तरिक्षचराः सर्वे ये चान्ये नगवासिनः ॥ ५० ॥ ब्रह्मादयः सुराः सर्वे वैकुण्ठं परया मुदा ॥ मन्त्रणार्थं तदा राजन् विष्णवेऽमिततेजसे ॥ ५१ ॥ गत्वा तस्मिंश्च वैकुण्ठे ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ध्यात्वा मुहूर्तमाचष्ट विष्णुं प्रति

देखने के लिये जाऊंगा ॥ ४७ ॥ सूतजी कहते हैं कि तदनन्तर स्कन्द, रुद्र, सूर्य, पवन व अग्नि, सिद्ध व गन्धर्वों समेत उत्तम अप्सरा ॥ ४८ ॥ और पिशाच व सब गुह्यक, इन्द्र, वरुण और सब नाग आये व शुक्र और बृहस्पतिजी आये ॥ ४९ ॥ और नक्षत्रों समेत सब ग्रह व आठ वसु और ध्रुवादिक व सब आकाशचारी और जो अन्य पर्वतनिवासी थे ॥ ५० ॥ वे और सब ब्रह्मादिक देवता हे राजन् ! बड़े हर्ष से अमित तेजवाले विष्णुजी के बुलाने के लिये उस समय वैकुंठ को गये ॥ ५१ ॥ व उस

वैकुंठ में जाकर लोकपितामह ब्रह्माजी ने थोड़ी देर तक विचारकर प्रसन्न होकर विष्णुजी से कहा ॥ ५२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे कृष्ण, कृष्ण, महाबाहो, दयालो, परमेश्वर ! तुम्हीं संसार को रचनेवाले व तुम्हीं हरनेवाले और तुम्हीं संसार के पिता हो ॥ ५३ ॥ हे सौम्य ! विष्णुरूपी आप के लिये नमस्कार है हे गरुडध्वज ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे कमलाकान्त ! ब्रह्मरूपी आप के लिये प्रणाम है ॥ ५४ ॥ व मत्स्यरूपी विश्वरूप आप के लिये नमस्कार है व दैत्यों को नाशनेवाले तथा भक्तों को अभय देनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ५५ ॥ व कंस को नाशनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है और बल दैत्य को जीतनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है

सुहर्षितः ॥ ५२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महाबाहो कृपालो परमेश्वर ॥ स्रष्टा त्वं चैव हर्ता त्वं त्वमेव जगतः पिता ॥ ५३ ॥ नमस्ते विष्णवे सौम्य नमस्ते गरुडध्वज ॥ नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ॥ ५४ ॥ नमस्ते मत्स्यरूपाय विश्वरूपाय वै नमः ॥ नमस्ते दैत्यनाशाय भक्तानामभयाय च ॥ ५५ ॥ कंसघ्नाय नमस्तेऽस्तु बलदैत्य जिते नमः ॥ ब्रह्मणैवं स्तुतश्चासीत्प्रत्यक्षोऽसौ जनार्दनः ॥ ५६ ॥ पीताम्बरो घनश्यामो नागारिकृतवाहनः ॥ चतुर्भुजो महातेजाः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ५७ ॥ स्तूयमानः सुरैः सर्वैः स देवोऽमितविक्रमः ॥ विद्याधरैस्तथा नागैः स्तूयमानश्च सर्वशः ॥ ५८ ॥ उत्तस्थौ स तदा देवो भास्करामितदीप्तिमान् ॥ कोटिरत्नप्रभाभास्वन्मुकुटादिविभूषितः ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येविष्णुसमागमोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मा से इस प्रकार स्तुति कियेहुए ये विष्णुजी नेत्रों के सामने प्राप्त हुए ॥ ५६ ॥ पीताम्बर व मेघों के समान श्याम तथा गरुड़जी पै सवार, चतुर्भुज व महातेजस्वी और शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले ॥ ५७ ॥ उन अमित पराक्रमी विष्णुदेवजी की सब देवताओं ने स्तुति की व विद्याधरों और सब नागों ने स्तुति की ॥ ५८ ॥ तब अमित सूर्यों के समान प्रकाशमान, व करोड़ों रत्नों की प्रभा से प्रकाशमान मुकुटादिकों से भूषित वे विष्णुदेवजी उठपड़े ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविष्णुसमागमोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। जौन गोत्र देवी अहैं और प्रवर के नाम। सोइ नवें अध्याय में अहै चरित अभिराम॥ व्यासजी बोले कि हे राजशार्दूल! पवित्र व उत्तम कथानक को सुनिये कि स्तुति कियेहुए जगदीशजी ने इस वचन को कहा॥ १॥ विष्णुजी बोले कि हे ब्रह्मादिक सुरश्रेष्ठो! तुम सबलोग किस लिये आये हो क्या पृथ्वी में कुशल है और तुमलोगों को कहां से भय प्राप्तहुआ॥ २॥ तदनन्तर प्रसन्न होते हुए ब्रह्मा ने उन विष्णुजी से यह वचन कहा कि चराचर समेत त्रिलोक में हम लोगों को भय नहीं है॥ ३॥ मैं कुछ कहने के लिये केवल तुम्हारे समीप आया हूं उसको मैं तुमसे कहता हूं इस मेरे वचन को सुनिये॥ ४॥ कि पुरातनसमय

व्यास उवाच॥ श्रूयतां राजशार्दूल पुण्यमाख्यानमुत्तमम्॥ स्तूयमानो जगन्नाथ इदं वचनमब्रवीत्॥ १॥ विष्णुरुवाच॥ किमर्थमागताः सर्वे ब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः॥ पृथिव्यां कुशलं कच्चित्कुतो वो भयमागतम्॥ २॥ ततः प्रोवाच वै हृष्टो ब्रह्मा तं केशवं वचः॥ न भयं विद्यतेऽस्माकं त्रैलोक्ये सचराचरे॥ ३॥ एकविज्ञापनार्थाय आगतोऽहं तवान्तिके॥ तदहं सम्प्रवक्ष्यामि तदेतच्छृणु मे वचः॥ ४॥ परं तु पूर्वं धर्मेण स्थापितं तीर्थमुत्तमम्॥ तद्द्रष्टुकामोऽहं देव त्वत्प्रसादाज्जनार्दन॥ ५॥ तत्र त्वं देवदेवेश गमने कुरु मानसम्॥ यथा सत्तीर्थतां याति धर्मारण्यमनुत्तमम्॥ ६॥ विष्णुरुवाच॥ साधुसाधु महाभाग त्वर्य्यतां तत्र माचिरम्॥ ममापि चित्तं तत्रैव तद्दर्शनेऽस्ति लालसम्॥ ७॥ व्यास उवाच॥ तार्क्ष्यमारुह्य गोविन्दस्तत्रागाच्छीघ्रमेव हि॥ ततो धर्मेण ते देवाः सेन्द्राः सर्षिगणास्तथा॥ ८॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या दृष्टा दूरान्मुमोद च॥ धर्मराजोपि तान्दृष्ट्वा देवान्विष्णुपुरोगमान्॥ ९॥ आगतः स्वाश्रमात्तत्र

धर्म ने उत्तम तीर्थ को स्थापित किया है हे जनार्दन, देव! तुम्हारी प्रसन्नता से मैं उसको देखना चाहताहूं॥ ५॥ हे देवदेवेश! वहां जाने के लिये तुम मन करो जिस भांति कि अति उत्तम धर्मारण्य उत्तम तीर्थता को प्राप्त होवै॥ ६॥ विष्णुजी बोले कि हे महाभाग! बहुत अच्छा बहुत अच्छा वहां जाने के लिये शीघ्रता कीजिये व मेरा भी चित्त वहीं उसके दर्शन में लालची है॥ ७॥ व्यासजी बोले कि गरुड़ पै चढ़कर विष्णुजी वहां शीघ्रही गये तदनन्तर धर्मराज ने इन्द्र समेत उन देवताओं व ऋषिगणों को॥ ८॥ और ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक देवताओं को दूर से देखा व प्रसन्नहुए और विष्णु आदिक उन देवताओं को देखकर धर्मराज भी॥ ९॥ पूजनको लेकर

अपने आश्रम से वहां उन देवताओं के सामने आये व पूजनादिक को लेकर शीघ्र ही आसन से उठे व उन्होंने पृथक् पृथक् एक एक की पूजा किया ॥ १० ॥ और वहां सूर्यपुत्र धर्मराज ने विधिपूर्वक उन देवताओं का पूजन किया व आसनों पै बिठाकर बड़ीभारी पूजाकरके उन्हों ने यह कहा ॥ ११ ॥ यमराज बोले कि हे देवकीसुत! तुम्हारी प्रसन्नता की विधि से व शिवजी की दया से यह क्षेत्र तीर्थरूप होगया ॥ १२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु व महेशजी के आने से आज मेरा जन्म सफल होगया व आज मेरा तप सफल हुआ व आज मेरा स्थान सफल होगया ॥ १३ ॥ व्यासजी बोले कि उस समय इस प्रकार स्तुति कियेहुए विष्णुजी मधुर वचन को

पूजां प्रगृह्य तत्पुरः॥ आसनादुत्थितः शीघ्रं सपर्याद्यं प्रगृह्य च ॥ एकैकस्य चकाराथ पूजां चैव पृथक्पृथक् ॥ १० ॥ चकार पूजां विधिवत्तेषां तत्रार्कनन्दनः ॥ आसनेषूपवेश्याथ पूजां कृत्वा गरीयसीम् ॥ ११ ॥ यम उवाच ॥ तीर्थरूपमिदं क्षेत्रं प्रसादाद्देवकीसुत ॥ त्वत्तोषविधिना चाद्य कृपया च शिवस्य च ॥ १२ ॥ अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः ॥ अद्य मे सफलं स्थानं काजेशानां समागमात् ॥१३॥ व्यास उवाच ॥ एवं स्तुतस्तदा विष्णुः प्रोवाच मधुरं वचः॥ तुष्टोऽस्मि धर्मराजेन्द्र अहं स्तोत्रेण ते विभो ॥ १४ ॥ किञ्चित्प्रार्थय मत्तोऽहं करोमि तव वाञ्छितम्॥ यत्तेऽस्त्यभीप्सितं तुभ्यं तद्ददामि न संशयः ॥ १५ ॥ यम उवाच ॥ यदि तुष्टोऽसि देवेश वाञ्छितं कुरुषे यदि ॥ धर्मारण्ये महापुण्ये ऋषीणामाश्रमान्कुरु ॥ १६ ॥ वसन्ति वाडवा यत्र यजन्ति चैव याज्ञिकाः ॥ वेदनिर्घोषसंयुक्तं भाति तत्तीर्थमुत्तमम् ॥ १७॥ अब्राह्मणमिदं तीर्थं पीडयिष्यन्ति जन्तवः ॥ तस्मात्त्वं वाडवाञ्छौरे समानय ऋषीन्बहून् ॥ धर्मारण्यं

बोले कि हे धर्मराजेन्द्र, विभो! मैं तुम्हारे स्तोत्र से प्रसन्न होगया हूं ॥ १४ ॥ मुझ से कुछ मांगिये मैं तुम्हारा मनोरथ करूंगा जो तुमको प्रिय होगा उसको मैं दूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ यमराज बोले कि हे देवेश! यदि तुम प्रसन्न हो व यदि मनोरथ करते हो तो महापवित्र धर्मारण्य में ऋषियों के आश्रमों को कीजिये ॥ १६ ॥ जहां कि ब्राह्मण बसते हैं व यज्ञकर्ता यज्ञ करते हैं वेद शब्द से संयुत वह उत्तम तीर्थ शोभित है ॥ १७ ॥ बिन ब्राह्मणवाले इस तीर्थ को प्राणी

पीड़ित करैंगे इस कारण हे शौरे ! तुम बहुत से ब्राह्मणों व ऋषियों को लावो जिस प्रकार कि धर्मारण्य तीर्थ चराचर समेत त्रिलोक में शोभित होवै ॥ १८ ॥ तदनन्तर सहस्रलोचन व सहस्रमस्तक तथा सहस्रचरणोंवाले धर्मप्रिय विष्णुजी ने उस समय हज़ारों रूप किया और जिस स्थान में उत्तम आचार व उत्तम नियम वाले जो ब्राह्मण थे ॥ १६ ॥ और जो सब धर्मों में प्रवीण तथा सब शास्त्रों में चतुर थे और तपस्या व ज्ञान में जो बहुत प्रसिद्ध थे और जो ब्रह्मयज्ञ में परायण थे वे सब अठारह हज़ार ऋषिलोग स्थापित कियेगये ॥ २० ॥ और वहां ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से बनायेहुए बहुत आश्रमों में उन देवताओं ने अनेक देशों से लाकर

यथा भाति त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ १८ ॥ ततो विष्णुः सहस्राक्षः सहस्रशीर्षः सहस्रपात् ॥ सहस्रशस्तदा रूपं कृतवा न्धर्मवत्सलः ॥ यस्मिन्स्थाने च ये विप्राः सदाचाराः शुभव्रताः ॥ १६ ॥ अशेषधर्मकुशलाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ तपोज्ञाने महाख्याता ब्रह्मयज्ञपरायणाः ॥ स्थापिता ऋषयः सर्वे सहस्राण्यष्टादशैव तु ॥ २० ॥ नानादेशात्समा नीय स्थापितास्तत्र तैः सुरैः ॥ आश्रमांश्च बहूंस्तत्र काजेशैरपि निर्मितान् ॥ २१ ॥ धर्मोपदेशात्कृष्णेन ब्रह्मणा च शिवेन च ॥ स्वेस्वे स्थाने यथायोग्ये स्थापयामास केशवः ॥२२॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कस्मिन्वंशे समुत्पन्ना ब्राह्मणा वे दपारगाः ॥ स्थापिताः सपरीवाराः पुत्रपौत्रसमावृताः ॥ २३ ॥ शिष्यैश्च बहुभिर्युक्ता अग्निहोत्रपरायणाः ॥ तेषां स्था नानि नामानि यथावच्च वदस्व मे ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ श्रूयतां नृपशार्दूल धर्मारण्यनिवासिनाम् ॥ २५ ॥ महा त्मनां ब्राह्मणानामृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥ तेषां वै पुत्रपौत्राणां नामानि च वदाम्यहम् ॥ २६ ॥ चतुर्विंशतिगोत्राणि

स्थापित किया ॥ २१ ॥ धर्मोपदेश के लिये कृष्ण, ब्रह्मा व शिवजी से बनायेहुए अपने अपने यथायोग्य स्थान में विष्णुजी ने उन ब्राह्मणों को स्थापित किया ॥ २२ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि किस वंश में उपजेहुए वेदपारगामी ब्राह्मण परिवार समेत व पुत्रों और पौत्रों से संयुत स्थापित कियेगये ॥ २३ ॥ जो कि बहुत से शिष्यों से संयुत व अग्निहोत्र में परायण थे उनके स्थानों व नामों को मुझसे यथायोग्य कहिये ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले कि हे नृपोत्तम ! धर्मारण्यनिवासी लोगों को सुनिये ॥ २५ ॥ उन ऊर्ध्वरेता ऋषियों व महात्मा ब्राह्मणों के पुत्रों व पौत्रों के नामों को मैं कहताहूं ॥ २६ ॥ हे पांडवर्षभ ! ब्राह्मणों के चौबीस गोत्र हुए उनकी शाखा

चौबीस मुख्य गोत्रों के नामों को मैं तुमसे कहताहूं और ब्राह्मणों के जो ऋषि कहे व प्रशाखा और पुत्र, पौत्रादिक हुए ॥ २७ ॥ और सैकड़ों व हज़ारों पुत्र पैदा हुए गये हैं उन प्रवरों को सुनिये ॥ २८ ॥ कि भारद्वाज, वत्स, कौशिक, कुश, शांडिल्य, काश्यप, गौतम व छांधन ॥ २९ ॥ और जातूकर्ण्य, वत्स, वसिष्ठ, धारण, आत्रेय, भाडिल व इसके उपरान्त लौकिक ॥ ३० ॥ कृष्णायन, उपमन्यु, गार्ग्य, मुद्गल, मौषक, पुण्यासन, पराशर व उसके उपरान्त कौंडिन्य ॥ ३१ ॥ और गांगासन ये चौबीस प्रवर हैं जामदग्न्य गोत्र के पांचही प्रवर हैं ॥ ३२ ॥ कि भार्गव, च्यवन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हे राजन्! ये पांच प्रवर लोकों में प्रसिद्ध हैं ॥ ३३ ॥

जज्ञिरे बहवः पुत्राः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ तेषां शाखाः प्रशाखाश्च पुत्रपौत्रादयस्तथा ॥ २७ ॥ चतुर्विंशतिमुख्यानां नामानि प्रवदामि ते ॥ द्विजानामृषयः प्रोक्ताः प्रवराणि तथा शृणु ॥ २८ ॥ भारद्वाजस्तथा वत्सः कौशिकः कुश एव च ॥ शाण्डिल्यः काश्यपश्चैव गौतमश्छान्धनस्तथा ॥ २९ ॥ जातूकर्ण्यस्तथा वत्सो वसिष्ठो धारणस्तथा ॥ आत्रेयो भाण्डिलश्चैव लौकिकाश्च इतः परम् ॥ ३० ॥ कृष्णायनोपमन्युश्च गार्ग्यमुद्गलमौषकाः ॥ पुण्यासनः पराशरः कौण्डिन्यश्च ततः परम् ॥ ३१ ॥ तथा गाङ्गासनश्चैव प्रवराणि चतुर्विंशतिः ॥ जामदग्न्यस्य गोत्रस्य प्रवराः पञ्च एव हि ॥ ३२ ॥ भार्गवश्च्यवनाप्नुवानौर्वश्च जमदग्निकः ॥ पञ्चैते प्रवरा राजन्विख्याता लोकविश्रुताः ॥ ३३ ॥ एवं गोत्रसमुत्पन्ना वाडवा वेदपारगाः ॥ द्विजपूजाक्रियायुक्ता नानाक्रतुक्रियापराः ॥ ३४ ॥ गुणेन संहिता आसन् षट्कर्मनिरताश्च ये ॥ एवंविधा महाभागा नानादेशभवा द्विजाः ॥ ३५ ॥ गाङ्गासनं द्वितीयं च प्रवराः पञ्च एव हि ॥ भार्गवच्यावनाप्नुवानौर्वजामदग्न्यसंयुताः ॥ आत्रेयोऽर्चनानसश्च श्यावास्येति तृतीयकः ॥ ३६ ॥ अ

इस प्रकार गोत्रों में उत्पन्न ब्राह्मण वेदों के पारगामी हुए और ब्राह्मणों के पूजनकर्म से संयुक्त व अनेक भांति के यज्ञकर्म में परायण हुए ॥ ३४ ॥ जो छः कर्मों में परायणहुए वे गुण से संयुक्तहुए इस प्रकार के अनेक देशों में उत्पन्न ब्राह्मण बड़े ऐश्वर्यवान् हुए ॥ ३५ ॥ और दूसरा गांगासन गोत्रहै उसके पांचही प्रवर हैं भार्गव, च्यावन, आप्नुवान, और्व व जामदग्न्य हैं व आत्रेय, अर्चनानस व तीसरा श्यावास्य है ॥ ३६ ॥ इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण दुष्ट व कुटिलगामी होते हैं और धनी वाले ते.
और काले

व धर्मनिष्ठ तथा वेदों व वेदांगों के पारगामी होते हैं ॥ ३७ ॥ व सब दान और भोग में परायण और श्रौत, स्मार्त कर्म से संमत होते हैं और मांडव्य गोत्र में पांच प्रवरों से संयुत जानने योग्य हैं ॥ ३८ ॥ कि भार्गव, च्यावन, अत्रि, आप्नुवान् व और्व हैं इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण श्रुतियों व स्मृतियों में परायण होते हैं ॥ ३९ ॥ और रोगी, लोभी, दुष्ट और यज्ञ करने व कराने में परायण होते हैं व हे कुरुसत्तम ! मांडव्य गोत्रवाले सब वेदकर्म में परायण होते हैं ॥ ४० ॥ और गार्ग्य के वंश में जो पैदा हुए उनके तीन प्रवर हुए अंगिरा, अम्बरीष और तीसरे यौवनाश्व हुए ॥ ४१ ॥ व इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण उत्तम आचारवाले और सत्यवादी हुए और शांत,

स्मिन्गोत्रे भवा विप्रा दुष्टाः कुटिलगामिनः ॥ धनिनो धर्मनिष्ठाश्च वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ३७ ॥ दानभोगरताः सर्वे श्रौ तस्मार्तेषु सम्मताः ॥ माण्डव्यगोत्रे विज्ञेयाः प्रवरैः पञ्चभिर्युताः ॥ ३८ ॥ भार्गवश्च्यावनोऽत्रिश्चाप्नुवानौर्वस्तथैव च ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः श्रुतिस्मृतिपरायणाः ॥ ३९ ॥ रोगिणो लोभिनो दुष्टा यजने याजने रताः ॥ ब्रह्मक्रिया पराः सर्वे माण्डव्याः कुरुसत्तम ॥ ४० ॥ गार्ग्यस्य गोत्रे ये जातास्तेषां तु प्रवरास्त्रयः ॥ अङ्गिराश्चाम्बरीषश्च यौवनाश्व स्तृतीयकः ॥ ४१ ॥ अस्मिन्गोत्रे समुत्पन्नाः सद्वृत्ताः सत्यभाषिणः ॥ शान्ताश्च भिन्नवर्णाश्च निर्द्धनाश्च कुचैलि नः ॥ ४२ ॥ सङ्गवात्सल्ययुक्ताश्च वेदशास्त्रेषु निश्चलाः ॥ वत्सगोत्रे द्विजा भूप प्रवराः पञ्च एव हि ॥ ४३ ॥ भार्गव श्च्यवनाप्नुवानौर्वश्च जमदग्निकः ॥ एभिस्तु पञ्चभिः ख्याता द्विजा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥ ४४ ॥ शान्ता दान्ताः सुशीला श्च धर्मपुत्रैः सुसंयुताः ॥ वेदाध्ययनहीनाश्च कुशलाः सर्वकर्मसु ॥ ४५ ॥ सुरूपाश्च सदाचाराः सर्वधर्मेषु निष्ठिताः ॥

भिन्नवर्ण, निर्धनी व कुवस्त्र को धारनेवाले हुए ॥ ४२ ॥ और संग व वत्सलता से संयुत और वेद शास्त्रों में निश्चल हैं व हे राजन् ! वत्सगोत्र में जो ब्राह्मण हुए उनके भी पांचही प्रवर हुए ॥ ४३ ॥ भार्गव, च्यवन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हुए और इन पांचों से ब्रह्मस्वरूपी ब्राह्मण प्रसिद्ध हुए ॥ ४४ ॥ जो कि शांत, दांत, सुशील व धर्मपुत्रोंसे संयुत हुए और वेदपाठसे हीन व सब कर्मोंमें प्रवीण हुए ॥ ४५ ॥ और स्वरूपवान् तथा उत्तम आचारवाले व सब धर्मों में निष्ठित हुए और सब

ब्राह्मण दानधर्म में परायण व अन्नदायक तथा जलदायक हुए ॥ ४६ ॥ और दयालु, सुशील व सब प्राणियों के हित में तत्पर हुए व हे राजन्! कश्यपगोत्रवाले
ब्राह्मण तीन प्रवरों से संयुत हुए ॥ ४७ ॥ कि काश्यप, आपवत्सार व तीसरा नैध्रुव हुआ और वे वेदों को जाननेवाले, गौर रंग, नैष्ठिक व यज्ञकारक हुए ॥ ४८ ॥ और
वे प्रिय निवासवाले तथा महाप्रवीण और सदैव गुरुवों की भक्ति में परायण हुए व प्रतिष्ठा और मानवान् व सब प्राणियों के हित में परायण हुए ॥ ४९ ॥ और कश्यप
वंशवाले ब्राह्मण महायज्ञों को करते हैं व धारीणसगोत्रमें उपजे हुए ब्राह्मण तीन प्रवरों से संयुत हुए ॥ ५० ॥ कि अगस्ति, दर्विश्वेता व दध्यवाहन संज्ञक हैं और इस गोत्र

काश्यपा ब्राह्मणा राज
दानधर्मरताः सर्वे अन्नदा जलदा द्विजाः ॥ ४६ ॥ दयालवः सुशीलाश्च सर्वभूतहिते रताः ॥ वेदज्ञा गौरवर्णाश्च नैष्ठिका यज्ञकारकाः ॥ ४८ ॥
न्प्रवरत्रयसंयुताः ॥ ४७ ॥ काश्यपश्चापवत्सारो नैध्रुवश्च तृतीयकः ॥ सर्वभूतहिते रताः ॥ ४९ ॥ यजन्ते च महायज्ञान्का
प्रियवासा महादक्षा गुरुभक्तिरताः सदा ॥ प्रतिष्ठामानवन्तश्च अगस्तिदर्विश्वेताश्वदध्यवाहनसंज्ञकाः ॥
श्यपेया द्विजातयः ॥ धारीणसगोत्रजाश्च प्रवरैस्त्रिभिरन्विताः ॥ ५० ॥ लम्बकर्णा महादंष्ट्रा
अस्मिन्गोत्रे च ये जाता धर्मकर्मसमाश्रिताः ॥ ५१ ॥ कर्मक्रूराश्च ते सर्वे तथैवोदरिणस्तु ते ॥ सत्यसंश्रि
द्विजा धनपरायणाः ॥ ५२ ॥ क्रोधिनो द्वेषिणश्चैव सर्वसत्त्वभयङ्कराः ॥ लौगाक्षसोद्भवा ये वै वाडवाः सदाचारा
ताः ॥ ५३ ॥ प्रवराश्च त्रयस्तेषां तत्त्वज्ञानस्वरूपकाः ॥ कश्यपश्चैव वत्सश्च वसिष्ठश्च तृतीयकः ॥ ५४ ॥ सुशीलाश्च
स्तु विख्याता वैष्णवा बहुवृत्तयः ॥ रोमभिर्बहुभिर्व्याप्ताः कृष्णवर्णास्तु वाडवाः ॥ ५५ ॥ शान्ता दान्ताः

में जो उत्पन्न हुए वे धर्म के कर्म में आश्रित हुए ॥ ५१ ॥ और कर्म से क्रूर वे सब ब्राह्मण बड़े पेटवाले और लंबे कान तथा बड़ी डाढ़ोंवाले व धन से संयुत होते
हैं ॥ ५२ ॥ और क्रोधी, वैरी व सब प्राणियों को भयकारक होते हैं और लौगाक्षसगोत्र में जो ब्राह्मण उत्पन्न हुए वे सत्य में स्थितहुए ॥ ५३ ॥ उनके तत्त्वज्ञान स्वरूप
वाले तीन प्रवर हुए कश्यप, वत्स व तीसरा वसिष्ठ है ॥ ५४ ॥ और वे ब्राह्मण उत्तम आचारवाले तथा वैष्णव और बहुत जीविकाओंवाले होते हैं व बहुतरोमों से व्याप्त
और काले रंग के होते हैं ॥ ५५ ॥ और शांत, दांत, सुशील व सदैव अपनी स्त्रियों में परायण होते हैं और जो कुशिक गोत्र में उत्पन्नहुए वे तीन प्रवरों से संयुत

हुए ॥ ५६ ॥ विश्वामित्र, देवरात और औदल ये तीन प्रवर हुए और इस गोत्र में जो उत्पन्न हुए वे दुर्बल व दीनमानस हुए ॥ ५७ ॥ व हे नृपोत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व सुरूपवान् हुए और वे श्रेष्ठ ब्राह्मण सब विद्याओं में चतुर हुए ॥ ५८ ॥ व उपमन्यु के गोत्रमें उपजेहुए ब्राह्मण तीन प्रवरों से संयुत हुए वसिष्ठ, भरद्वाज व इन्द्रप्रमद ये तीन प्रवर हैं ॥५९॥ व इस गोत्र में जो ब्राह्मण हुए वे क्रूर व कुटिलगामी हुए और दूषण व वैरी तथा तुच्छ व सब के संग्रह में तत्पर हुए ॥ ६० ॥ व झगड़ा उत्पन्न करने में प्रवीण और धनी व मानी हुए व सदैवही दुष्ट और दुष्टों का संग करनेवाले हुए ॥ ६१ ॥ और रोगी, दुर्बल व वृत्ति के उपकल्प से रहित हुए और वात्स्य गोत्र में उपजेहुए

स्वदारनिरताः सदा ॥ कुशिकसगोत्रे ये जाताः प्रवरैस्त्रिभिरन्विताः ॥ ५६ ॥ विश्वामित्रो देवरात औदलश्च त्रयश्च ये ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ ५७ ॥ असत्यभाषिणो विप्राः सुरूपा नृपसत्तम ॥ सर्व्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तमाः ॥ ५८ ॥ उपमन्युसगोत्रेयाः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ वसिष्ठश्च भरद्वाजस्त्विन्द्रप्रमद एव वा ॥ ५९ ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये विप्राः क्रूराः कुटिलगामिनः ॥ दूषणा द्वेषिणस्तुच्छाः सर्वसंग्रहतत्पराः ॥ ६० ॥ कलहोत्पादने दक्षा धनिनो मानिनस्तथा ॥ सर्वदैव प्रदुष्टाश्च दुष्टसङ्गरतास्तथा ॥ ६१ ॥ रोगिणो दुर्बलाश्चैव वृत्त्युपकल्पवर्जिताः ॥ वात्स्यगोत्रे भवा विप्राः प्रवरैः पञ्चभिर्युताः ॥ ६२ ॥ भार्गवच्यावनाप्नुवानौर्वश्च जमदग्निकः ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः स्थूलाश्च बहुबुद्धयः ॥ ६३ ॥ सर्वकर्मरताश्चैव सर्वधर्मेषु निश्चलाः ॥ वेदशास्त्रार्थनिपुणा यजने याजने रताः ॥ ६४ ॥ सदाचाराः सुरूपाश्च बुद्धितो दीर्घदर्शिनः ॥ वात्स्यायनसगोत्रेयाः प्रवरैः पञ्चभिर्युताः ॥ ६५ ॥ भार्ग

ब्राह्मण पांच प्रवरों से संयुत हुए ॥ ६२ ॥ भार्गव, च्यवन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हुए हैं और इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण मोटे व बहुत बुद्धिवाले हुए ॥ ६३ ॥ व सबकर्मों में परायण तथा सब धर्मों में निश्चल हुए और वेद शास्त्रार्थ में निपुण व यज्ञकरने और यज्ञ कराने में रत हैं ॥ ६४ ॥ व उत्तम आचारवाले और स्वरूपवान् तथा बुद्धि से दीर्घदर्शी होते हैं और वात्स्यायन गोत्रवाले ब्राह्मण पांच प्रवरों से संयुत होते हैं ॥ ६५ ॥ कि भार्गव, च्यावन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हुए हे भारत ! इनके

पूर्वोक्त प्रवर तुमसे कहेगये ॥ ६६ ॥ व इस गोत्र में जो उत्पन्न हुए वे सदैव पाकयज्ञ में परायण हुए और लोभी, क्रोधी व बहुत प्रजाओंवाले उत्पन्न होते हैं ॥ ६७ ॥ और स्नान, दानादि में परायण तथा सदैव जितेंद्रिय होते हैं व हज़ारों बावली, कूप और तड़ागों के करनेवाले हुए व व्रतशील, गुणज्ञ, मूर्ख और वेदों से रहित हुए ॥ ६८ ॥ और कौशिकवंश में जो उत्पन्न हुए वे तीन प्रवरों से संयुत हुए कि विश्वामित्र, अघमर्षी व तीसरा कौशिक हुआ ॥ ६९ ॥ और इस गोत्र में जो ब्राह्मण उत्पन्न हुए वे ब्रह्मज्ञ हुए और शांत, दांत, सुशील व सब धर्मों में परायण हुए ॥ ७० ॥ और वे द्विजोत्तम पुत्ररहित, रूक्ष व तेजसे हीन हुए और भारद्वाज गोत्रवाले ब्राह्मण

वच्यावनाप्नुवानौर्वश्च जमदग्निकः ॥ पूर्वोक्ताः प्रवराश्चास्य कथितास्तव भारत ॥ ६६ ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाताः पाकयज्ञरताः सदा ॥ लोभिनः क्रोधिनश्चैव प्रजायन्ते वहुप्रजाः ॥ ६७ ॥ स्नानदानादिनिरताः सर्वदा च जितेन्द्रियाः ॥ वापीकूपतडागानां कर्तारश्च सहस्रशः ॥ व्रतशीला गुणज्ञाश्च मूर्खा वेदविवर्जिताः ॥ ६८ ॥ कौशिकवंशे ये जाताः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ विश्वामित्रोऽघमर्षी च कौशिकश्च तृतीयकः ॥ ६९ ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता ब्राह्मणा ब्रह्मवेदिनः ॥ शान्ता दान्ताः सुशीलाश्च सर्वधर्मपरायणाः ॥ ७० ॥ अपुत्रिणस्तथा रूक्षास्तेजोहीना द्विजोत्तमाः ॥ भारद्वाजसगोत्रेयाः प्रवरैः पञ्चभिर्युताः ॥ ७१ ॥ आङ्गिरसो बार्हस्पत्यो भारद्वाजस्तु सैन्यसः ॥ गार्ग्यश्चैवेति विज्ञेयाः प्रवराः पञ्च एव च ॥ ७२ ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता वाडवा धनिनः शुभाः ॥ वस्त्रालङ्करणोपेता द्विजभक्तिपरायणाः ॥ ७३ ॥ ब्रह्मभोज्यपराः सर्वे सर्वधर्मपरायणाः ॥ काश्यपगोत्रे ये जाताः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ ७४ ॥ काश्यप

पांच प्रवरों से संयुत हुए ॥ ७१ ॥ कि आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, सैन्यस व गार्ग्य ये पांच प्रवर जानने योग्य हैं ॥ ७२ ॥ और इस गोत्र में जो ब्राह्मण पैदाहुए वे धनी व उत्तमहुए और वस्त्रों व भूषणों से संयुत तथा द्विजों की भक्ति में परायण हुए ॥ ७३ ॥ और सब ब्रह्मभोज्य में परायण तथा सब धर्मों में तत्पर हुए और जो काश्यपगोत्र में पैदा हुए वे तीन प्रवरों से संयुत हुए ॥ ७४ ॥ काश्यप, आपवत्सार व रैभ्य ये तीनों प्रसिद्ध हैं और इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण लाल नेत्रोंवाले व क्रूर

दृष्टि होते हैं ॥ ७५ ॥ व सब जिह्वाकी चंचलता में रत होते हैं और वे सब परमार्थ करनेवाले होते हैं और ये निर्धनी, रोगी व चोर और असत्यवादी होते हैं ॥ ७६ ॥ और सब शास्त्रार्थ को जाननेवाले व वेदों और स्मृतियों से रहित होते हैं और शुनकवंशों में जो उत्पन्न हुए वे ब्राह्मण ध्यान में परायण हुए ॥ ७७ ॥ और तपस्वी, योगी व वेदों तथा वेदांगों के पारगामी हुए और साधु व उत्तम आचारवाले तथा विष्णुजी की भक्ति में परायण हुए ॥ ७८ ॥ व छोटे शरीरवाले और भिन्न रंग व बहुत स्त्रियोंवाले द्विजोत्तम दयालु, उदार, शांत व ब्रह्मभोज्य में परायण हुए ॥ ७९ ॥ व शौनकवंशों में जो उत्पन्न हैं वे तीन प्रवरों से संयुत हैं भार्गव, शौनहोत्र व

श्चापवत्सारो रैभ्येति विश्रुतास्त्रयः ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा विप्रा रक्ताक्षाः क्रूरदृष्टयः ॥ ७५ ॥ जिह्वालौल्यरताः सर्वे सर्वे ते पारमार्थिनः ॥ निर्धना रोगिणश्चैते तस्करानृतभाषिणः ॥ ७६ ॥ शास्त्रार्थवेदिनः सर्वे वेदस्मृतिविवर्जिताः ॥ शुनकेषु च ये जाता विप्रा ध्यानपरायणाः ॥ ७७ ॥ तपस्विनो योगिनश्च वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ साधवश्च सदाचारा विष्णुभक्तिपरायणाः ॥ ७८ ॥ ह्रस्वकाया भिन्नवर्णा बहुरामा द्विजोत्तमाः ॥ दयालाः सरलाः शान्ता ब्रह्मभोज्यपरायणाः ॥ ७९ ॥ शौनकसेषु ये जाताः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ भार्गवशौनहोत्रेति गात्स्र्यप्रमद इति त्रयः ॥ ८० ॥ अस्मिन्वंशे समुत्पन्ना वाडवा दुःसहा नृप ॥ महोत्कटा महाकायाः प्रलम्बाश्च मदोद्धताः ॥ ८१ ॥ क्लेशरूपाः कृष्णवर्णाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ बहुभुजो मानिनो दक्षा रागद्वेषोपवर्जिताः ॥ ८२ ॥ सुवस्त्रभूषारूपा वै ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ वसिष्ठगोत्रे ये जाताः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ ८३ ॥ वसिष्ठो भारद्वाजश्च इन्द्रप्रमद एव च ॥ अस्मिन्गोत्रे

गात्स्र्यप्रमद ये तीनों प्रवर हैं ॥ ८० ॥ हे राजन्! इस वंश में उपजे हुए ब्राह्मण दुस्सह हैं और बड़े उग्र व बड़े शरीरवाले तथा लंबे व मदसे उद्धत हैं ॥ ८१ ॥ और क्लेशरूप व कालेरंगवाले तथा सब शास्त्रों में प्रवीण और बहुत भोजन करनेवाले, मानी, दक्ष और राग, द्वेष से रहित हैं ॥ ८२ ॥ व सुवस्त्र भूषणरूपी वे ब्राह्मण ब्रह्मवादी हुए और जो वसिष्ठगोत्र में उत्पन्न हुए वे तीन प्रवरों से संयुत हुए ॥ ८३ ॥ जो कि वसिष्ठ, भारद्वाज व इन्द्रप्रमद हैं व इस वंश में उपजे हुए ब्राह्मण वेदों व

वेदांगों के पारगामी हुए ॥ ८४ ॥ और याज्ञिक, यज्ञशील, सुस्वर व सुखी, वैरी, धनवान् और पुत्रवान् व गुणवान् हुए ॥ ८५ ॥ व हे राजन्! विशालहृदय व शूर और शत्रुनाशक हुए व गौतम के गोत्र में जो पैदाहुए वे पाचही प्रवर हुए ॥ ८६ ॥ कि कौत्स, गार्ग्य, प्रवाह, देवल और असित हुए व इस गोत्र में जो उत्पन्नहुए वे बड़े पावन ब्राह्मण हुए ॥ ८७ ॥ और सब परोपकारी व श्रुतियों तथा स्मृतियों में परायण हुए और बगुले की नाईं बैठनेवाले और कुटिल व छल की वृत्ति में तत्पर हुए ॥ ८८ ॥ व अनेकप्रकार के शास्त्रार्थ में निपुण तथा अनेकभांति के आभूषणों से भूषित हुए और वृक्षादिकों के कर्म में प्रवीण व बहुत क्रोधवाले और रोगी

श्वा विप्रा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ८४ ॥ याज्ञिका यज्ञशीलाश्च सुस्वराः सुखिनस्तथा ॥ द्वेषिणो धनवन्तश्च पुत्रिणो गुणिनस्तथा ॥ ८५ ॥ विशालहृदया राजञ्छूराः शत्रुनिबर्हणाः ॥ गौतमसगोत्रे ये जाताः प्रवराः पञ्च एव हि ॥ ८६ ॥ कौत्सगार्ग्यप्रवाहाश्च असितो देवलस्तथा॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता विप्राः परमपावनाः ॥ ८७ ॥ परोपकारिणः सर्वे श्रुतिस्मृतिपरायणाः ॥ बकासनाश्च कुटिलाश्छद्मवृत्तिपरास्तथा ॥ ८८ ॥ नानाशास्त्रार्थनिपुणा नानाभरणभूषिताः ॥ वृक्षादिकर्मकुशला दीर्घरोषाश्च रोगिणः ॥ ८९ ॥ आङ्गिरसगोत्रे ये जाताः प्रवरत्रयसंयुताः ॥ आङ्गिरसोम्बरीषश्च यौवनाश्वस्तृतीयकः ॥ ९० ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाताः सत्यसम्भाषिणस्तथा ॥ जितेन्द्रियाः सुरूपाश्च अल्पाहाराः शुभाननाः ॥ ९१ ॥ महाव्रताः पुराणज्ञा महादानपरायणाः ॥ निर्द्वेषिणो लोभयुता वेदाध्ययनतत्पराः ॥ ९२ ॥ दीर्घदर्शिमहातेजोमहामायाविमोहिताः ॥ शाण्डिलसगोत्रे ये जाताः प्रवरत्रयसंयु

हुए ॥ ८९ ॥ व जो आंगिरस गोत्र में उत्पन्न हुए वे तीन प्रवरोंसे संयुत हुए आंगिरस, अंबरीष व तीसरा यौवनाश्व है ॥ ९० ॥ और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे सत्यवादी हैं और जितेन्द्रिय व स्वरूपवान् तथा थोड़ा भोजन करनेवाले और उत्तम मुखवाले हैं ॥ ९१ ॥ और महाव्रतवाले व पुराणों के जाननेवाले तथा महादानों में परायण हुए और वैररहित व लोभ से संयुत व वेदपाठ में तत्परहुए ॥ ९२ ॥ और दूरदर्शी तथा बड़ी तेजोवती महामाया से मोहित हुए और जो शाडिलस गोत्र में

उत्पन्नहुए वे तीन प्रवरों से संयुत हैं ॥ ९३ ॥ असित, देवल व तीसरा शांडिल है इस गोत्र में द्विजोत्तम बड़े ऐश्वर्यवान् व कूबरे होते हैं ॥ ९४ ॥ और नेत्ररोगी, बड़े दुष्ट, बडे दानी व आयुर्बल से हीन होते हैं और झगड़ा पैदा करने में प्रवीण तथा सबके संग्रह में तत्पर होते हैं ॥ ९५ ॥ और मलीन, मानी व ज्योतिःशास्त्र में चतुर होते हैं और जो आत्रेय गोत्र में उत्पन्न हैं वे पांच प्रवरों से संयुत हैं ॥ ९६ ॥ कि आत्रेय, अर्चनानस, श्यावाश्व, आंगिरस और अत्रि हैं व इस वंश में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण सूर्य के समान तेजस्वी हैं ॥ ९७ ॥ और धर्मारण्य में टिकेहुए वे सब चन्द्रमा की नाईं शीतल हैं और उत्तम आचारवाले तथा महाप्रवीण व श्रुतियों

ताः ॥ ९३ ॥ असितो देवलश्चैव शाण्डिलस्तु तृतीयकः ॥ अस्मिन्गोत्रे महाभागाः कुब्जाश्च द्विजसत्तमाः ॥ ९४ ॥ नेत्ररोगी महादुष्टा महात्यागा अनायुषः ॥ कलहोत्पादने दक्षाः सर्वसंग्रहतत्पराः ॥ ९५ ॥ मलिना मानिनश्चैव ज्योतिःशास्त्रविशारदाः ॥ आत्रेयसगोत्रे ये जाताः पञ्चप्रवरसंयुताः ॥ ९६ ॥ आत्रेयोऽर्चनानसश्यावाश्वावाङ्गिरसोऽत्रिकः ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता द्विजास्ते सूर्यवर्चसः ॥ ९७ ॥ चन्द्रवच्छीतलाः सर्वे धर्मारण्ये व्यवस्थिताः ॥ सदाचारा महादक्षाः श्रुतिशास्त्रपरायणाः ॥ ९८ ॥ याज्ञिकाश्च शुभाचाराः सत्यशौचपरायणाः ॥ धर्मज्ञा दानशीलाश्च निर्मलाश्च महोत्सुकाः ॥ ९९ ॥ तपःस्वाध्यायनिरता न्यायधर्मपरायणाः ॥ १०० ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथयस्व महाबाहो धर्मारण्यकथामृतम् ॥ यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापाद्घोराद्ब्रह्मवधादपि ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कथामेतां सुदुर्लभाम् ॥ २ ॥ यक्षरक्षःपिशाचाद्या उद्वेजयन्ति वाडवान् ॥ जृम्भकोनाम यक्षोऽभूद्धर्म्मारण्यसमी

और शास्त्रों में प्रवीण हैं ॥ ९८ ॥ और यज्ञकर्ता तथा उत्तम आचारवाले और सत्य व शौच में परायण हैं और धर्मज्ञ व दानी, निर्मल और बडे उत्कंठित होतेहैं ॥ ९९ ॥ और तपस्या व निज वेदपाठ में परायण तथा न्याय धर्म में तत्पर हैं ॥ १०० ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाबाहो ! धर्मारण्य के कथारूपी अमृत को कहिये कि जिसको सुनकर मनुष्य भयङ्कर ब्रह्मघात पाप सेभी छूटजाता है ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन् ! सुनिये मैं इस दुर्लभ कथा को कहता हूं ॥ २ ॥ कि यक्ष,

राक्षस व पिशाचादिक ब्राह्मणों को पीडित करते थे धर्मारण्य के समीप जृंभकनामक यक्ष हुआ है ॥ ३ ॥ वह नित्य धर्मारण्य में बसनेवाले द्विजों को पीड़ित करताथा तदनन्तर उन द्विजोत्तमों ने देवताओं से कहा ॥ ४ ॥ कि हे देवताओ ! यक्ष व राक्षसादिकों से हमलोग दुःखित कियेजाते हैं इस कारण उनके भयसे हमलोग इस समय उत्तम स्थान को त्यागदेवैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ तदनन्तर गन्धर्वों समेत देवताओं ने वहां सिद्धों और श्रीमातृ आदिक उत्तम योगिनियों को स्थापित किया ॥ ६ ॥ लोकों के हितकी कामना से ब्राह्मणों की रक्षा के लिये उस समय गोत्रों में एक एक योगिनी स्थापित कीगई ॥ ७ ॥ जिस गोत्र के रक्षण व पालन में जो

पतः ॥ ३ ॥ उद्वेजयति नित्यं स धर्मारण्यनिवासिनः ॥ ततस्तैश्च द्विजाग्र्यैस्तु देवेभ्यो विनिवेदितम् ॥ ४ ॥ यक्षरक्षादिना चैव परिभूता वयं सुराः ॥ त्यक्ष्यामोऽद्य वरं स्थानं तद्भयान्नात्र संशयः ॥ ५ ॥ ततो देवैः सगन्धर्वैः स्थापितास्तत्र भूमिषु ॥ सिद्धाश्च वरयोगिन्यः श्रीमातृप्रभृतयस्तथा ॥ ६ ॥ रक्षणार्थं हि विप्राणां लोकानां हितकाम्यया ॥ गोत्रान्प्रति तथैकैका स्थापिता योगिनी तदा ॥ ७ ॥ यस्य गोत्रस्य या शक्ती रक्षणे पालने क्षमा ॥ सा तस्य कुलदेवीति साक्षात्तत्र बभूव ह ॥ ८ ॥ श्रीमाता तारणी देवी आशापूरी च गोत्रपा ॥ इच्छाऽऽर्तिनाशिनी चैव पिप्पली विकरावशा ॥ ९ ॥ जगन्माता महामाता सिद्धा भट्टारिका तथा ॥ कदम्बा विकरा मीठा सुपर्णा वसुजा तथा ॥ १० ॥ मातङ्गी च महादेवी वाणी च मुकुटेश्वरी ॥ भद्री चैव महाशक्तिः संहारी च महाबला ॥ ११ ॥ चामुण्डा च महादेवी इत्येता गोत्रमातरः ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैः स्थापितास्तत्र रक्षणे ॥ १२ ॥ ताः पूजयन्ति विप्रेन्द्राः स्वधर्मनिर

शक्ति समर्थ हुई वह वहां उस गोत्र की साक्षात् कुलदेवी हुई ॥ ८ ॥ श्रीमाता व तारणी देवी और गोत्र की रक्षा करनेवाली आशापूरी तथा इच्छार्तिनाशिनी, पिप्पली, विकरावशा ॥ ९ ॥ व जगन्माता, महामाता, सिद्धा, भट्टारिका, कदंबा, विकरा, मीठा, सुपर्णा व वसुजा ॥ १० ॥ और मातंगी, महादेवी, वाणी, मुकुटेश्वरी व भद्री, महाशक्ति, संहारी और महाबला ॥ ११ ॥ चामुंडा और महादेवी ये गोत्रमातृका वहां ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों से रक्षा करने में स्थापित कीगई ॥ १२ ॥ अपने

धर्म में तत्पर द्विजेन्द्र सदैव उनको पूजते हैं तबसे लगाकर योगिनियों से अपने अपने समय में सुरक्षित ॥ १३ ॥ पुत्रों व पौत्रों से घिरेहुए ब्राह्मण स्वस्थता को प्राप्तहुए तदनन्तर हर्ष से पूर्ण मनवाले गंधर्वों समेत अमृतभोजी देवता उत्तम विमानों पै चढ़कर वैकुंठ में चलेगये ॥ १४ ॥ व हे राजन्! सौ वर्ष बीतने पर ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी धर्मारण्य को देखने के लिये कौतुक से स्मरण कर ॥ १५ ॥ हे राजन्! प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर उत्तम विमानपै चढ़कर अप्सरागणों से सेवित व गंधर्वों से गायेजाते हुए व वंदियों से स्तुति कियेजातेहुए वे आये हे राजन्! उस स्थान में ब्राह्मण लोग बहुत से समिधा, पुष्प व कुशों को लेने के लिये ॥ १६ । १७ ॥ उन

ताः सदा ॥ ततः प्रभृति योगिनीभिः स्वेस्वे काले सुरक्षिताः ॥ १३ ॥ वाडवाः स्वस्थतां जग्मुः पुत्रपौत्रैः समावृताः ॥ ततो देवाः सगन्धर्वा हर्षनिर्भरमानसाः ॥ विमानवरमारूढा जग्मुर्नाकेऽमृताशनाः ॥ १४ ॥ गते वर्षशते राजन्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ स्मृत्वा तु धर्मारण्यस्य प्रेक्षणार्थं कुतूहलात् ॥ १५ ॥ समाजग्मुस्तदा राजन्प्रभाते उदिते रवौ ॥ विमानवरमारुह्य अप्सरोगणसेविताः ॥ १६ ॥ गन्धर्वैर्गीयमानास्ते स्तूयमानाः प्रवोधकैः ॥ तत्र स्थाने द्विजा राजन्समित्पुष्पकुशान्वहून् ॥ १७ ॥ आश्रमांस्तान्परित्यज्य गताः सर्वे दिशो दश ॥ तमाश्रमपदं दृष्ट्वा शून्यं चैव महेश्वरः ॥ १८ ॥ उवाच वाक्यं धर्मज्ञः क्लिश्यन्ते वाडवा विभो ॥ शुश्रूषार्थं हि शुश्रूषून्कल्पयामीति मे मतिः ॥ १९ ॥ श्रुत्वा तु वचनं शम्भोर्देवदेवो जनार्दनः ॥ सत्यं सत्यमिति प्रोच्य ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ॥ २० ॥ भोभो ब्रह्मन्द्विजातीनां शुश्रूषार्थं प्रकल्पय ॥ सृष्टिर्हि शाश्वतीवाद्य द्विजौघोपि सुखी भवेत् ॥ विष्णोर्वाक्यमभिश्रुत्य ब्रह्मा

आश्रमों को छोडकर सब दशों दिशाओं को चले गये तब उस आश्रम स्थान को शून्य देखकर महेश्वर ॥ १८ ॥ धर्मज्ञ ने विष्णुजी से यह वचन कहा कि हे विभो! ब्राह्मण दुःखी होते हैं इस कारण सेवा के लिये सेवकों को कल्पित करूं ऐसी मेरी बुद्धि है ॥ १९ ॥ शिवजीका वचन सुनकर देवदेव विष्णुजीने सत्य है सत्य है यह कहकर ब्रह्मा से यह कहा ॥ २० ॥ कि हे ब्रह्मन्! ब्राह्मणों की सेवा के लिये इस समय सनातनी सृष्टि की नाईं कल्पित करो कि जिस से द्विजगण भी सुखी होवै

विष्णुजी का वचन सुनकर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने ॥ २१ ॥ कामधेनु को स्मरण किया और स्मरणही से उसी क्षण वह कामधेनु उस पवित्र धर्मारण्य में आ-
गई ॥ १२२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगोत्रप्रवरगोत्रदेवीकथनन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ❋ ॥

दो० । कामधेनु से प्रकट भे यथा वणिज सवलोग । सोइ दशम अध्याय में कह्यो चरित सुखभोग ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन् ! धर्मारण्य में जैसा उत्तम वृत्तान्त
हुआ है उसको सुनिये मैं कहताहूं जो यह कि सब पापराशियों का नाशक है ॥ १ ॥ हे राजन् ! ब्रह्मा से प्रेरित विष्णु व शिवजी ने कामधेनु को बुलाया व उससे

लोकपितामहः ॥ २१ ॥ सस्मार कामधेनुं वै स्मरणेनैव तत्क्षणे ॥ आगता तत्र साधेनुर्धर्मारण्ये पवित्रके ॥ १२२ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येगोत्रप्रवरगोत्रदेवीकथनन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ❋ ॥

व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्यथावृत्तं धर्म्मारण्ये शुभं गतम् ॥ यदिदं कथयिष्यामि अशेषाघौघनाशनम् ॥ १ ॥ विप्रेभ्योऽनुचरान्देहि
अजेशेन तदा राजन्प्रेरितेन स्वयम्भुवा ॥ कामधेनुः समाहूता कथयामास तां प्रति ॥ २ ॥
एकैकस्मै द्विजातये ॥ द्वौ द्वौ शुद्धात्मकौ चैवं देहि मातः प्रसीद मे ॥ ३ ॥ तथेत्युक्त्वा महाधेनुः खुरेणोल्लेखयद्धराम् ॥
हुङ्कारात्तस्या निष्क्रान्ताः शिखासूत्रधरा नराः ॥ ४ ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि वणिजश्च महाबलाः ॥ सोपवीता महा
दक्षाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ ५ ॥ द्विजभक्तिसमायुक्ता ब्रह्मण्यास्ते तपोन्विताः ॥ पुराणज्ञाः सदाचारा धार्मिका
ब्रह्मसेवकाः ॥ ६ ॥ स्वर्गे देवाः प्रशंसन्ति धर्मारण्यनिवासिनः ॥ तपोऽध्ययनदानेषु सर्वकालेप्यतीन्द्रियाः ॥ ७ ॥

कहा ॥ २ ॥ कि हे मातः ! ब्राह्मणों के लिये सेवकों को दीजिये याने एक एक ब्राह्मण के लिये शुद्धचित्तवाले दो दो सेवकों को दीजिये मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये ॥ ३ ॥
बहुत अच्छा यह कहकर महाधेनु ने खुर से पृथ्वी को लिखा और उसके हुंकार से शिखासूत्रधारी छत्तीसहज़ार बड़े बलवान् वणिज् निकले जोकि यज्ञोपवीत समेत व बड़े
प्रवीण और सब शास्त्रों में चतुर थे ॥ ४ । ५ ॥ और ब्राह्मणों की भक्ति से संयुत वे ब्रह्मण्य और तपस्या से संयुत व पुराणों के जाननेवाले तथा उत्तम आचारवाले और
धार्मिक व ब्रह्मसेवक थे ॥ ६ ॥ स्वर्ग में देवता भी धर्मारण्यनिवासी ब्राह्मणों की प्रशंसा करते हैं कि तपस्या, पठन व दान में वे सबसमय में भी इन्द्रियों को जीते हैं॥ ७ ॥

हे राजन्! एक एक ब्राह्मण के लिये दो दो सेवक दिये गये और जिस ब्राह्मण का पहले जो गोत्र कहागया है ॥ ८ ॥ उसके सेवक का भी परस्पर वह गोत्र हुआ इस व्यवस्था को करके वहा भूमियों में द्विजोंने निवास किया ॥ ९ ॥ तदनन्तर पृथ्वी में देवताओं ने सेवकों को शिष्यता दी और ब्रह्मा ने उनके हित के लिये सब कहा ॥ १० ॥ कि तुम लोग इनका वचन करो और जो मनोरथ हो उसको देवो व प्रतिदिन समिधा, पुष्प और कुशादिकों को लेआवो ॥ ११ ॥ और इनकी आज्ञा से वर्तमान होवो कभी अपमान मत करो और जातक, नामकरण व उत्तम अन्नप्राशन ॥ १२ ॥ व मुंडन, यज्ञोपवीत और महानाम्न्यादिक जो क्रिया कर्मादिक व व्रत, दान

एकैकस्मैद्विजायैव दत्तं ह्यनुचरद्वयम् ॥ वाडवस्य च यद्गोत्रं पुरा प्रोक्तं महीपते ॥ ८ ॥ परस्परं च तद्गोत्रं तस्य चानुचरस्य च ॥ इति कृत्वा व्यवस्थां च न्यवसंस्तत्र भूमिषु ॥ ९ ॥ ततश्च शिष्यता देवैर्दत्ता चानुचरान्भुवि ॥ ब्रह्मणा कथितं सर्वं तेषामनुहिताय वै ॥ १० ॥ कुरुध्वं वचनं चैषां ददध्वं च यदिच्छितम् ॥ समित्पुष्पकुशादीनि आनयध्वं दिने दिने ॥ ११ ॥ अनुज्ञयैषां वर्तध्वं मावज्ञां कुरुत कर्हिचित् ॥ जातकं नामकरणं तथान्नप्राशनं शुभम् ॥ १२ ॥ क्षौरं चैवोपनयनं महानाम्न्यादिकं तथा ॥ क्रियाकर्मादिकं यच्च व्रतं दानोपवासकम् ॥ १३ ॥ अनुज्ञयैषां कर्तव्यं काजेशा इदमब्रुवन् ॥ अनुज्ञया विनैषां यः कार्यमारभते यदि ॥ १४ ॥ दर्शं वा श्राद्धकार्यं वा शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ दारिद्र्यं पुत्रशोकं च कीर्तिनाशं तथैव च ॥ १५ ॥ रोगैर्निपीड्यते नित्यं न कचित्सुखमाप्नुयुः ॥ तथेति च ततो देवाः शक्राद्याः सुरसत्तमाः ॥ १६ ॥ स्तुतिं कुर्वन्ति ते सर्वे कामधेनोः पुरः स्थिताः ॥ कृतकृत्यास्तदा देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ १७ ॥

और उपवास ॥ १३ ॥ इनकी आज्ञा से करना चाहिये ब्रह्मा, विष्णु व महेशाने ऐसा कहा और बिन इनकी आज्ञा जो कार्य का प्रारंभ करैगा ॥ १४ ॥ दर्श श्राद्धकार्य या शुभ व अशुभ जो कार्य करैगा वह दारिद्र्य, पुत्रशोक व कीर्तिनाश को पावैगा ॥ १५ ॥ और वह नित्य रोगों से निपीडित होगा व कभी वे सुखको न पावेंगे बहुत अच्छा ऐसा उन्होंने कहा तदनन्तर इन्द्रादिक वे सुरश्रेष्ठ सब देवता कामधेनु के आगे स्थित होकर स्तुति करनेलगे व उस समय ब्रह्मा, विष्णु व शिवदेवता कृतार्थ हुए ॥१६।१७॥

हे अनघे ! तुम सब देवताओं की माता हो व तुम यज्ञका कारण हो और सब तीर्थों के मध्य में तुम तीर्थ हो हे अनघे ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १८ ॥ जिसके मस्तक में चन्द्रमा, सूर्य, अरुण व शिवजी हैं व जिसके हुंकार में सरस्वती है व सब नाग जिसके कंबल स्थान में हैं ॥ १६ ॥ और जिस के खुर के पिछले भाग में गंधर्व व चारों वेद हैं और मुख के अग्रभाग में सब तीर्थ व स्थावर और जंगम हैं ॥ २० ॥ ऐसे बहुत वचनों से प्रसन्न कीहुई वह कामधेनु हर्षित हुई तब उसने यह कहा कि मैं क्या करूं ॥ २१ ॥ देवता बोले कि हे मातः ! आप भगवती ने इन सब उत्तम सेवकों को रचा व हे महाभागे ! तुम्हारी प्रसन्नता से ब्राह्मण

त्वं माता सर्वदेवानां त्वं च यज्ञस्य कारणम् ॥ त्वं तीर्थं सर्वतीर्थानां नमस्तेऽस्तु सदानघे ॥ १८ ॥ शशिसूर्यारुणा यस्या ललाटे वृषभध्वजः ॥ सरस्वती च हुङ्कारे सर्वे नागाश्च कम्बले ॥ १६ ॥ खुरपृष्ठे च गन्धर्वा वेदाश्चत्वार एव च ॥ मुखाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च ॥ २० ॥ एवंविधैश्च बहुशो वचनैस्तोषिता च सा ॥ सुप्रसन्ना तदा धेनुः किं करोमीति चाब्रवीत् ॥ २१ ॥ देवा ऊचुः ॥ सृष्टाः सर्वे त्वया मातर्देव्यैतेऽनुचराः शुभाः ॥ त्वत्प्रसादान्महाभागे ब्राह्मणाः सुखिनोऽभवन् ॥ २२ ॥ ततोऽसौ सुरभी राजन्गता नाकं यशस्विनी ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यास्तत्रैवान्तरधुस्ततः ॥ २३ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अभार्यास्ते महातेजा गोजा अनुचरास्तथा ॥ उद्वाहिताः कथं ब्रह्मन्सुतास्तेषां कदाऽभवन् ॥ २४ ॥ व्यास उवाच ॥ परिग्रहार्थं वै तेषां रुद्रेण च यमेन च ॥ गन्धर्वकन्या आहृत्य दारास्तत्रोपकल्पिताः ॥ २५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ को वा गन्धर्वराजासौ किन्नामा कुत्र वा स्थितः ॥ कियन्मात्रास्तस्य कन्याः कि

लोग सुखी हुए ॥ २२ ॥ व हे राजन् ! तदनन्तर कामधेनु स्वर्ग को चलीगई और ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक देवता वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ २३ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे महातेजा, ब्रह्मन् ! गऊ से उपजे हुए वे अनुचर (वैश्य) स्त्रीविहीन थे फिर कैसे व्याहेगये और किस समय उनके पुत्र हुए ॥ २४ ॥ व्यासजी बोले कि उन वैश्यों के विवाह के लिये रुद्र व यमराज ने गंधर्वों की कन्याओं को हरकर वहां स्त्रियों को कल्पित किया ॥ २५ ॥ युधिष्ठिरजी बोले यह कौन गंधर्वराज था व इस

का क्या नाम था और यह कहां स्थित था और किस आचारवाली उसकी कितनी कन्या थीं इसको मुझसे कहिये ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले कि हे नृप ! विश्वावसु ऐसा प्रसिद्ध गंधर्वों का राजा था उसके मन्दिर में साठहज़ार कन्या थीं ॥ २७ ॥ उसका आकाश में घर था और उत्तम गंधर्वनगर था व गंधर्व से उपजी हुई उत्तम कन्या स्वरूपवती और युवावस्था में स्थित थीं ॥ २८ ॥ हे राजन् ! शिवजी के गण उत्तम मुखवाले नन्दी व भृंगी ने पहले देखी हुई उन कन्याओं को शिवजी से कहा ॥ २९ ॥ कि हे विभो, महादेव ! पुरातन समय गंधर्वनगर में विश्वावसु के घर में मैंने हज़ारों कन्याओं को देखा है ॥ ३० ॥ हे शिवजी ! उनको बलसे

माचारा ब्रवीहि मे ॥ २६ ॥ व्यास उवाच ॥ विश्वावसुरितिख्यातो गन्धर्वाधिपतिर्नृप ॥ षष्टिकन्यासहस्राणि आसते तस्य वेश्मनि ॥ २७ ॥ अन्तरिक्षे गृहं तस्य गन्धर्वनगरं शुभम् ॥ यौवनस्थाः सुरूपाश्च कन्या गन्धर्वजाः शुभाः ॥ २८ ॥ रुद्रस्यानुचरौ राजन्नन्दी भृङ्गी शुभाननौ ॥ पूर्वदृष्टाश्च ताः कन्याः कथयामासतुः शिवम् ॥ २९ ॥ दृष्टाः पुरा महादेव गन्धर्वनगरे विभो ॥ विश्वावसुगृहे कन्या असंख्याताः सहस्रशः ॥ ३० ॥ ता आनीय बलादेव गोभुजेभ्यः प्रयच्छ भोः ॥ एवं श्रुत्वा ततो देवस्त्रिपुरघ्नः सदाशिवः ॥ ३१ ॥ प्रेषयामास दूतं तु विजयं नाम भारत ॥ स तत्र गत्वा यत्रास्ते विश्वावसुररिन्दमः ॥ ३२ ॥ उवाच वचनं चैव पथ्यं चैव शिवेरितम् ॥ धर्मारण्ये महाभाग काजेशेन विनिर्मिताः ॥ ३३ ॥ स्थापिता वाडवास्तत्र वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ तेषां वै परिचर्यार्थं कामधेनुश्च प्रार्थिता ॥ ३४ ॥ तया कृताः शुभाचारा वणिजस्ते त्वयोनिजाः ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि कुमारास्ते महाबलाः ॥ ३५ ॥ शिवेन प्रेषितोऽहं

लाकर वैश्यों को दीजिये ऐसा सुनकर तदनन्तर त्रिपुरविनाशक सदाशिवजी ने ॥ ३१ ॥ हे भारत ! विजय नामक दूतको पठाया और जहां शत्रुनाशक विश्वावसु था वहां उसने जाकर ॥ ३२ ॥ शिवजी से कहे हुए पथ्य वचन को कहा कि हे महाभाग ! धर्मारण्य में ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से रचेहुए ॥ ३३ ॥ वेदवेदांग के पारगामी ब्राह्मण वहां स्थापित हैं और उनकी सेवा के लिये कामधेनु की प्रार्थना कीगई ॥ ३४ ॥ व उसने उत्तम आचारवाले अयोनिज बनियों को बनाया है वे बड़े बलवान् छत्तीस हज़ार कुमार हैं ॥ ३५ ॥ शिवजी से पठाया हुआ मैं तुम्हारे समीप कन्या के लिये आया हूं हे महाभाग ! कन्या को दीजिये दीजिये ऐसा उसने

कहा॥३६॥ गंधर्व बोला कि हे महामते! संसार में सब देवताओं व गंधर्वोंको छोड़कर कैसे मनुष्यों को कन्या देऊं ॥ ३७ ॥ उसका वचन सुनकर उस समय विजय लौट आया व उसने बड़े भारी गंधर्वचरित्र को कहा ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर भगवान् सदाशिवजी क्रोधित हुए और त्रिशूल को हाथ में लिये हुए सदाशिवजी बैलपै सवार हुए ॥ ३९ ॥ व हज़ारों भूत, प्रेत और पिशाचादिकों से घिरे तदनन्तर देवता, नाग, भूत, वेताल व खेचर ॥ ४० ॥ बड़े क्रोध से संयुत होकर वे हज़ारों लोग आये और उस सेना के चलने पर बड़ाभारी हाहाकार हुआ ॥ ४१ ॥ और पृथ्वी देवी कॉपनेलगी व दिक्पाल भय से विकल हुए तब भयंकर व अशांत पवन चलनेलगे

वै त्वत्समीपमुपागतः ॥ कन्यार्थं हि महाभाग देहि देहीत्युवाच ह ॥ ३६ ॥ गन्धर्व उवाच ॥ देवानां चैव सर्वेषां गन्धर्वाणां महामते ॥ परित्यज्य कथं लोके मानुषाणां ददामि वै ॥ ३७ ॥ श्रुत्वा तु वचनं तस्य निवृत्तो विजयस्तदा ॥ कथयामास तत्सर्वं गन्धर्वचरितं महत् ॥ ३८ ॥ व्यास उवाच ॥ ततः कोपसमाविष्टो भगवाँल्लोकशङ्करः ॥ वृषभे च समारूढः शूलहस्तः सदाशिवः ॥ ३९ ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्यैः सहस्रैरावृतः प्रभुः ॥ ततो देवास्तथा नागा भूतवेताल खेचराः ॥ ४० ॥ क्रोधेन महताविष्टाः समाजग्मुः सहस्रशः ॥ हाहाकारो महानासीत्तस्मिन्सैन्ये विसर्पति ॥ ४१ ॥ प्रकम्पिता धरादेवी दिशापाला भयातुराः ॥ घोरा वातास्तदाऽशान्ताः शब्दं कुर्वन्ति दिग्गजाः ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ तदागतं महासैन्यं दृष्ट्वा भयविलोलितम् ॥ गन्धर्वनगरात्सर्वे विनेशुस्ते दिशो दश ॥ ४३ ॥ गन्धर्वराजो नगरं त्यक्त्वा मेरुं गतो नृप ॥ ताः कन्या यौवनोपेता रूपौदार्यसमन्विताः ॥ ४४ ॥ गृहीत्वा प्रददौ सर्वा वणिग्भ्यश्च तदा नृप ॥ वेदोक्तेन विधानेन तथा वै देवसन्निधौ ॥ ४५ ॥ आज्यभागं तदा दत्त्वा गन्धर्वाय गवात्मजाः ॥ देवानां पूर्व

और दिग्गज शब्द करनेलगे ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले कि भय से चंचल व आई हुई सब सेना को देखकर गंधर्वनगर से वे सब दशो दिशाओं को भगगये ॥ ४३ ॥ व हे राजन्! गंधर्वों का राजा विश्वावसु नगर को छोड़कर सुमेरुगिरि पै चलागया तब हे राजन्! यौवन से युक्त व रूप, उदारता से संयुत उन सब कन्याओं को लेकर बनियों के लिये देदिया तब शिवदेवजी के समीप वेदोक्त विधि से ॥ ४४ । ४५ ॥ गंधर्व के लिये आज्यभाग को देकर गऊ के पुत्र वणिजों ने पूर्वज देवता व सूर्य और

चन्द्रमा को ॥ ४६ ॥ व यमराज और मृत्यु के लिये घृतभाग को दिया और घृतभागों को देकर विधिपूर्वक उन वणिजों ने उत्तम व्रतवाली कन्याओं का ब्याह किया ॥ ४७ ॥ तबसे लगाकर गांधर्व विवाह प्राप्त होनेपर आजभी सब देवादिक आज्य (घृत) भाग को ग्रहण करते हैं ॥ ४८ ॥ और छत्तीसहज़ार जो कुमार कहे गये हैं उनके सैकड़ों व हज़ारों पुत्र, पौत्र हुए ॥ ४६ ॥ इसी कारण वे सब दासत्व में कियेगये व बड़े वीर क्षत्रिय सेवकता में कियेगये ॥ ५० ॥ तदनन्तर हे राजन्! सब देवता जैसे आये थे वैसेही चलेगये व देवताओं के जानेपर वे सब ब्राह्मण इस स्थान में बसने लगे ॥ ५१ ॥ हे राजन्! पुत्रों व पौत्रों से संयुत व सबकहीं से निडर ब्राह्मण

जानां च सूर्याचन्द्रमसोस्तथा ॥ ४६ ॥ यमाय मृत्यवे चैव आज्यभागं तदा ददुः ॥ दत्त्वाज्यभागान्विधिवद्वव्रिरे ते शुभव्रताः ॥ ४७ ॥ ततः प्रभृति गान्धर्वविवाहे समुपस्थिते ॥ आज्यभागं प्रगृह्णन्ति अद्यापि सर्वतो भृशम् ॥ ४८ ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि कुमारा ये निवेदिताः ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४६ ॥ अत एव हि ते सर्वे दासत्वे हि विनिर्मिताः ॥ क्षत्रियाश्च महावीराः किङ्करत्वे हि निर्मिताः ॥ ५० ॥ ततो देवास्तदा राजञ्जग्मुः सर्वे यथातथा ॥ गते देवे द्विजाः सर्वे स्थानेऽस्मिन्निवसन्ति ते ॥ ५१ ॥ पुत्रपौत्रयुता राजन्निवसन्त्यकुतोभयाः ॥ पठन्ति वेदान्वेदज्ञाः कचिच्छास्त्रार्थमुद्गिरन् ॥ ५२ ॥ केचिद्विष्णुं जपन्तीह शिवं केचिज्जपन्ति हि ॥ ब्रह्माणं च जपन्त्येके यमसूक्तं हि केचन ॥ ५३ ॥ यजन्ति याजकाश्चैव अग्निहोत्रमुपासते ॥ स्वाहाकारस्वधाकारवषट्कारैश्च सुव्रत ॥ ५४ ॥ शब्दैरापूर्यते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ वणिजश्च महादक्षा द्विजशुश्रूषणोत्सुकाः ॥ ५५ ॥ धर्मारण्ये शुभे दिव्ये ते

बसते हैं व वेदों को जाननेवाले वे वेदों को पढ़ते हैं और कभी शास्त्रार्थ को कहते हैं ॥ ५२ ॥ यहां कोई शिवजी को जपते हैं व कोई विष्णुजी को जपते हैं और कोई ब्रह्मा को जपते हैं व कोई यमसूक्त को जपते हैं ॥ ५३ ॥ और याजक लोग यज्ञ करते हैं व अग्निहोत्र की उपासना करते हैं व हे सुव्रत! स्वाहाकार, स्वधाकार और वषट्कार शब्दों से चराचर समेत सब त्रिलोक पूर्ण होता है और ब्राह्मणों की सेवा में उत्कंठित जो बड़े दक्ष वणिज् हैं ॥ ५४ । ५५ ॥ भलीभांति निष्ठित वे लोग उत्तम व दिव्य

धर्मारण्य में बसते हैं और अन्न, पानादिक व समिधा, कुश और फलादिक सब वस्तु को ॥ ५६ ॥ गऊ के पुत्र उन वणिजों ने ब्राह्मणों के लिये पूर्ण किया ॥ ५७ ॥ और पुष्पोपहार का इकट्ठा करना व स्नान और वस्त्रादिकों का धोना तथा पत्थरआदिक का निर्माण और मार्जनादिक उत्तम कर्मों को ॥ ५८ ॥ और कुट्टन व पीसना आदिक काम को वणिजों की स्त्रियां करनेलगीं व ब्रह्मा, विष्णु व महेशजी के वचन से वे उन ब्राह्मणों की सेवा करनेलगे ॥ ५९ ॥ तब हर्ष में तत्पर सब ब्राह्मण स्वस्थ हो गये और दिन, रात्रि व सन्ध्याओं में ब्रह्मा, विष्णु और शिवादिकों की उपासना करनेलगे ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां

वसन्ति सुनिष्ठिताः ॥ अन्नपानादिकं सर्वं समित्कुशफलादिकम् ॥ ५६ ॥ आपूरयन्द्विजातीनां वणिजस्ते गवात्मजाः ॥ ५७ ॥ पुष्पोपहारनिचयं स्नानवस्त्रादिधावनम् ॥ उपलादिकनिर्माणं मार्जनादिशुभक्रियाः ॥ ५८ ॥ वणिक्स्त्रियः प्रकुर्वन्ति कण्डनं पेषणादिकम् ॥ शुश्रूषन्ति च तान्विप्रान्काजेशवचनेन हि ॥ ५९ ॥ स्वस्था जातास्तदा सर्वे द्विजा हर्षपरायणाः ॥ काजेशादीनुपासन्ते दिवारात्रौ हि सन्ध्ययोः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये वणिक्परिग्रहवर्णनन्नामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ अतः परं किमभवद्ब्रवीतु द्विजसत्तम ॥ त्वद्वचनामृतं पीत्वा तृप्तिर्नास्ति मम प्रभो ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ अथ किञ्चिद्गते काले युगान्तसमये सति ॥ त्रेतादौ लोलजिह्वाक्ष अभवद्राक्षसेश्वरः ॥ २ ॥ तेन विद्रा

भाषाटीकायांवणिक्परिग्रहवर्णनन्नामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । लोलजिह्व राक्षसहिं जिमि हन्यो विष्णु सुरनाथ । गेरहनें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे द्विजोत्तम, प्रभो ! इसके उपरान्त क्या हुआ उसको कहिये तुम्हारे वचनरूपी अमृत को पीकर मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि इसके उपरान्त कुछ समय बीतने पर जब युगांत समय हुआ तब त्रेतायुग के आदि में लोलजिह्वाक्ष नामक राक्षसेश्वर हुआ ॥ २ ॥ उसने चराचर समेत सब त्रिलोक को भगादिया व सबलोकों को जीतकर वह धर्मारण्य में

आया॥ ३॥ और ब्राह्मणों से सेवित उस पवित्र व सुंदर धर्मारण्य को देखकर ब्राह्मणों के वैर से उसी ने उत्तम पुर को जलादिया॥ ४॥ और जलते हुए नगर को देखकर द्विजोत्तम लोग भग गये और वे धर्मारण्यनिवासी लोग जैसे आये थे वैसेही चले गये॥ ५॥ तब श्रीमातादिक देवियां राक्षस से क्रोधित हुईं और शब्द से डरवाकर राक्षस को मारनेलगीं॥ ६॥ तब उत्तम त्रिशूल को धारनेवाली व शंख, चक्र और गदा को धारनेवाली सैकड़ों व हज़ारों देवियां प्राप्तहुईं॥ ७॥ कोई कमंडलु को धारे थीं व अन्य चाबुक और तलवार को धारण किये थी और कोई फसरी व अंकुश को धारे थीं और कोई तलवार व खेटक अस्त्र को धारण किये थी॥ ८॥ कोई

वितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ जित्वा स सकलाँल्लोकान्धर्मारण्ये समागतः॥ ३॥ तद्दृष्ट्वा सकलं पुण्यं रम्यं द्विजनिषेवितम्॥ ब्रह्मद्वेषाच्च तेनैव दाहितं च पुरं शुभम्॥ ४॥ दह्यमानं पुरं दृष्ट्वा प्रणष्टा द्विजसत्तमाः॥ यथागतं प्रजग्मुस्ते धर्मारण्यनिवासिनः॥ ५॥ श्रीमाताद्यास्तदा देव्यः कोपिता राक्षसेन वै॥ घातयन्त्येव शब्देन तर्जयित्वा च राक्षसम्॥ ६॥ समुच्छ्रितास्तदा देव्यः शतशोऽथसहस्रशः॥ त्रिशूलवरधारिण्यः शङ्खचक्रगदाधराः॥ ७॥ कमण्डलुधराः काश्चित्कशाखड्गधराः पराः॥ पाशाङ्कुशधरा काचित्खड्गखेटकधारिणी॥ ८॥ काचित्परशुहस्ता च दिव्यायुधधरा परा॥ नानाभरणभूषाढ्या नानारत्नाभिशोभिताः॥ ९॥ राक्षसानां विनाशाय ब्राह्मणानां हिताय च॥ आजग्मुस्तत्र यत्रास्ते लोलजिह्वो हि राक्षसः॥ १०॥ महादंष्ट्रो महाकायो विद्युज्जिह्वो भयङ्करः॥ दृष्ट्वा ता राक्षसो घोरं सिंहनादमथाकरोत्॥ ११॥ तेन नादेन महता त्रासितं भुवनत्रयम्॥ आपूरिता दिशः सर्वाः

परशु को हाथ में लिये थी व अन्य दिव्य अस्त्र को धारण किये थी अनेक प्रकार के आभूषणों से भूषित व अनेकभांति के रत्नों से शोभित देवियां॥ ९॥ राक्षसों के नाश व ब्राह्मणों के हित के लिये वहां आईं जहां कि लोलजिह्व राक्षस था॥ १०॥ बड़ी दाढ़ोंवाले व बड़े शरीर तथा भयंकर व बिजली के समान जिह्वावाले उस राक्षस ने उन देवियों को देखकर भयंकर सिंहनाद किया॥ ११॥ उस बड़ेभारी शब्द से त्रिलोक डरगया और सब दिशा पूर्ण होगईं व अनेक समुद्र क्षोभित

होगये ॥ १२ ॥ हे राजन् ! उस समय धर्मारण्य में बड़ा कोलाहल हुआ उसको सुन कर इन्द्रजी ने कुबेर को पठाया ॥ १३ ॥ कि यह क्या है तुम जाकर देखकर उस को मुझसे कहिये उनके उस वचन को सुनकर कुबेरजी गये ॥ १४ ॥ और वहां श्रीमाता व लोलजिह्व का बड़ाभारी युद्ध देखकर जैसा देखा व जैसाहुआ था वैसा उन कुबेर ने इन्द्रजी के आगे कहा ॥ १५ ॥ कि यहां से गया हुआ लोलजिह्व तीनों लोकों को पीड़ित करता है उस वचन को सुनकर इन्द्रजी ने विष्णुजी से कहकर पृथ्वी को आये ॥ १६ ॥ व देवताओं को भी दुर्लभ वह सुन्दर नगर जला दियागया और वहां ब्राह्मण न देखपड़े क्योंकि वे दशो दिशाओं को चलेगये ॥ १७ ॥ और

क्षुभितानेकसागराः ॥ १२ ॥ कोलाहलो महानासीद्धर्मारण्ये तदा नृप ॥ तच्छ्रुत्वा वासवेनाथ प्रेषितो नलकूबरः ॥ १३ ॥ किमिदं पश्य गत्वा त्वं दृष्ट्वा मह्यं निवेदय॥ तत्तस्य वचनं श्रुत्वा गतो वै नलकूबरः ॥ १४ ॥ दृष्ट्वा तत्र महायुद्धं श्रीमातालोलजिह्वयोः ॥ यथादृष्टं यथाजातं शक्राग्रे स न्यवेदयत् ॥ १५ ॥ उद्वेजयति लोकांस्त्रीन्धर्मारण्यमितो गतः ॥ तच्छ्रुत्वा वासवो विष्णुं निवेद्य क्षितिमागमत् ॥ १६ ॥ दाहितं तत्पुरं रम्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥ न दृष्टा वाडवास्तत्र गताः सर्वे दिशो दश ॥ १७ ॥ श्रीमाता योगिनी तत्र कुरुते युद्धमुत्तमम्॥ हाहाभूता प्रजा सर्वा इतश्चेतश्च धावति ॥ १८ ॥ तच्छ्रुत्वा वासुदेवो हि गृहीत्वा च सुदर्शनम् ॥ सत्यलोकात्तदा राजन्समागच्छन्महीतले ॥ १९ ॥ धर्मारण्यं ततो गत्वा तच्चक्रं प्रमुमोच ह ॥ लोलजिह्वस्तदा रक्षो मूर्च्छितो निपपात ह ॥ २० ॥ त्रिशूलेन ततो भिन्नः शक्तिभिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ हन्यमानस्तदा रक्षः प्राणांस्त्यक्त्वा दिवं गतः ॥ २१ ॥ ततो देवाः सग

श्रीमाता योगिनी वहां उत्तम युद्ध को करती है और सब प्रजा हाहाभूत होगई व इधर उधर दौड़ती है ॥ १८ ॥ हे राजन् ! तब उस वचन को सुनकर विष्णुजी सुदर्शन चक्र को लेकर सत्यलोक से पृथ्वी में आये ॥ १९ ॥ तदनन्तर धर्मारण्य में जाकर विष्णुजी ने उस चक्र को छोड़ा तब लोलजिह्व राक्षस मूर्च्छित होकर गिरपडा ॥ २० ॥ तदनन्तर त्रिशूल से भिन्न व शक्तियों से माराहुआ वह क्रोध से मूर्च्छित राक्षस उस समय प्राणों को छोड़कर स्वर्ग को चलागया ॥ २१ ॥ तदनन्तर हर्ष से पूर्ण मन

वाले गंधर्वों समेत देवता सत्यलोक से आकर उन जगदीश विष्णुजी की स्तुति किया ॥ २२ ॥ और उस नगर को उजड़ाहुआ देखकर विष्णुजी वचन बोले कि ऋषियों के आश्रम में वे सब ब्राह्मण कहां हैं ॥ २३ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! गंधर्वों समेत देवताओं ने वेग से इधर उधर भगेहुए ब्राह्मणों को ढूंढ़कर यह कहा ॥ २४ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! हमलोगों का वचन सुनिये कि अधम राक्षस को विष्णुदेवजी ने मारा व चक्र से काटडाला ॥ २५ ॥ उस वचन को सुनकर बड़े हर्ष से प्रफुल्लित लोचनोंवाले सब ब्राह्मण उस समय आये व हे राजन् ! अपने अपने स्थान में पैठ गये ॥ २६ ॥ तब श्रीपति विष्णुजी के लिये सुन्दर वचन कहागया कि जिसलिये

न्धर्वा हर्षनिर्भरमानसाः ॥ तुष्टुवुस्तं जगन्नाथं सत्यलोकात्समागताः ॥ २२ ॥ उद्वसं तत्समालोक्य विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥ क्व च ते ब्राह्मणाः सर्वे ऋषीणामाश्रमे पुनः ॥ २३ ॥ ततो देवाः सगन्धर्वा इतस्ततः पलायितान् ॥ संशोध्य तरसा राजन्ब्राह्मणानिदमब्रुवन् ॥ २४ ॥ श्रूयतां नो वचो विप्रा निहतो राक्षसाधमः ॥ वासुदेवेन देवेन चक्रेण निरकृन्तत ॥ २५ ॥ तच्छ्रुत्वा वाडवाः सर्वे प्रहर्षोत्फुल्ललोचनाः ॥ समाजग्मुस्तदा राजन्स्वस्वस्थाने समाविशन् ॥ २६ ॥ श्रीकान्ताय तदा राजन्वाक्यमुक्तं मनोरमम् ॥ यस्मात्त्वं सत्यलोकाच्च आगतोऽसि जगत्प्रभुः ॥ स्थापितं च पुरं चेदं हिताय च द्विजात्मनाम् ॥ २७ ॥ सत्यमन्दिरमिति ख्यातं ततो लोके भविष्यति ॥ कृते युगे धर्मारण्यं त्रेतायां सत्यमन्दिरम् ॥ २८ ॥ तच्छ्रुत्वा वासुदेवेन तथेति प्रतिपद्य च ॥ ततस्ते वाडवाः सर्वे पुत्रपौत्रसमन्विताः ॥ २९ ॥ सपत्नीकाः सानुचरा यथापूर्वं न्यवात्सिषुः ॥ तपोयज्ञक्रियाद्येषु वर्तन्तेऽध्ययनादिषु ॥ ३० ॥ एवं ते सर्वमाख्यातं धर्म वै सत्य

संसार के स्वामी तुम सत्यलोक से आये व ब्राह्मणों के हित के लिये यह पुर स्थापित कियागया ॥ २७ ॥ उस कारण संसार में सत्यमंदिर ऐसा प्रसिद्ध होगा सतयुग में धर्मारण्य व त्रेता में सत्यमन्दिर नाम होगा ॥ २८ ॥ उस वचन को सुनकर विष्णुजी बहुत अच्छा यह कहकर चलेगये तदनन्तर पुत्रों व पौत्रों से संयुत उन सब ब्राह्मणों ने ॥ २९ ॥ स्त्रियों समेत व सेवकों समेत पहले की नाईं निवास किया और वे तपस्या व यज्ञ कर्मादिकों में और पठनादिक कर्मों में वर्तमान हुए ॥ ३० ॥ हे धर्म !

इस प्रकार तुमसे सत्यमंदिर के विषय में सब वृत्तान्त कहागया ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांलोलजिह्वासुरवधपूर्वकंसत्यमन्दिरसंस्थापनवर्णनन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि गणेश उत्पत्ति किय पारवती महरानि । सो बरहें अध्याय में कह्यो चरित सुखदानि ॥ व्यासजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर देवताओं ने रक्षा के लिये सत्यमन्दिर को स्थापन किया उसी कारण वह आदि पुरी सत्य नामक है ॥ १ ॥ उसके पूर्व में धर्मेश्वर देव व दक्षिण में गणाधिप और पश्चिम में सूर्य व उत्तर में

मन्दिरे ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येलोलजिह्वासुरवधपूर्वकंसत्यमन्दिरसंस्थापनवर्णनन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ ततो देवैर्नृपश्रेष्ठ रक्षार्थं सत्यमन्दिरम् ॥ स्थापितं तत्तदाद्यैव सत्याभिख्या हि सा पुरी ॥ १ ॥ पूर्वे धर्मेश्वरो देवो दक्षिणेन गणाधिपः ॥ पश्चिमे स्थापितो भानुरुत्तरे च स्वयम्भुवः ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ गणेशः स्थापितः केन कस्मात्स्थापितवानसौ ॥ किन्नामासौ महाभाग तन्मे कथय माचिरम् ॥ ३ ॥ व्यास उवाच ॥ अधुनाहं प्रवक्ष्यामि गणेशोत्पत्तिकारणम् ॥ ४ ॥ समये मिलिताः सर्वे देवता मातरस्तथा ॥ धर्मारण्ये महाराज स्थापितश्चण्डिकासुतः ॥ ५ ॥ आदौ देवैर्नृपश्रेष्ठ भूमौ वै सत्ययोषिताम् ॥ प्राकारश्चाभवत्तत्र पताकाध्वजशोभितः ॥ ६ ॥ ब्राह्मणायत

स्वयंभुवजी स्थापित हैं ॥ २ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाभाग ! गणेश को किस ने स्थापित किया व इसने किस कारण स्थापित किया व इनका क्या नाम है इसको मुझसे शीघ्रही कहिये ॥ ३ ॥ व्यासजी बोले कि इस समय मैं गणेशजी की उत्पत्ति का कारण कहता हूं ॥ ४ ॥ कि हे महाराज ! किसी समय सब देवता व मातृका मिलीं तब हे नृपश्रेष्ठ ! पहले देवताओं ने पृथ्वी में सत्यमंदिर की स्त्रियों के लिये धर्मारण्य में चंडिकाजी के पुत्र गणेशजी को थापा और वहां पताकाओं व ध्वजों से शोभित प्राकार (छहरदिवाली) हुआ ॥ ५ । ६ ॥ और वहां उस ब्राह्मणों के निवासस्थान के मध्य प्राकारमंडल के बीच में ईंटों से बहुत शोभित पीठ बनाया

गया ॥ ७ ॥ और बाहरी द्वारों समेत शुद्ध चार गांव के भीतरी मार्ग बनायेगये पूर्व में धर्मेश्वर व दक्षिण में गणनायक ॥ ८ ॥ व पश्चिम में सूर्यनारायण और उत्तर में स्वयंभुवजी स्थापित कियेगये वह धर्मेश्वर की उत्पत्ति का चरित्र तुम्हारे आगे कहागया ॥ ९ ॥ इस समय मैं गणेशजीकी उत्पत्ति का कारण कहताहूं कि किसी समय पार्वतीजी ने शरीर में उबटन लगाया ॥ १० ॥ व उससे उत्पन्न मलको देखकर और अपने अंग से उपजेहुए मल को हाथ में धरकर तदनन्तर मूर्ति को बनाकर स्वरूप को देखा ॥ ११ ॥ व उस मूर्ति में जीवको प्राप्त करके पार्वतीजी ने जब देखा तब वह उनके आगे उठ खड़ाहुआ और उसने माता से कहा कि मैं तुम्हारी आज्ञा

ने तत्र प्राकारमण्डलान्तरे ॥ तन्मध्ये रचितं पीठमिष्टकाभिः सुशोभितम् ॥ ७ ॥ प्रतोल्यश्च चतस्रो वै शुद्धा एव सतोरणाः ॥ पूर्वे धर्मेश्वरो देवो दक्षिणे गणनायकः ॥ ८ ॥ पश्चिमे स्थापितो भानुरुत्तरे च स्वयम्भुवः ॥ धर्मेश्वरोत्पत्तिवृत्तमाख्यातं तत्तवाग्रतः ॥ ९ ॥ अधुनाहं प्रवक्ष्यामि गणेशोत्पत्तिहेतुकम् ॥ कदाचित्पार्वती गात्रोद्वर्त्तनं कृतवत्यभूत् ॥ १० ॥ मलं तज्जनितं दृष्ट्वा हस्ते धृत्वा स्वगात्रजम् ॥ प्रतिमां च ततः कृत्वा सुरूपं च ददर्श ह ॥ ११ ॥ जीवं तस्यां च सञ्चार्य उदतिष्ठत्तदग्रतः ॥ मातरं स तदोवाच किं करोमि तवाज्ञया ॥ १२ ॥ पार्वत्युवाच ॥ यावत्स्नानं करिष्यामि तावत्त्वं द्वारि तिष्ठ मे ॥ आयुधानि च सर्वाणि परश्वादीनि यानि तु ॥ १३ ॥ त्वयि तिष्ठति मद्द्वारे कोऽपि विघ्नं करोतु न ॥ एवमुक्तो महादेव्या द्वारेऽतिष्ठत्स सायुधः ॥ १४ ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवो महादेवो जगाम ह ॥ आभ्यन्तरे प्रवेष्टुं च मतिं दध्रे महेश्वरः ॥ १५ ॥ द्वारस्थेन गणेशेन प्रवेशोदायि तस्य न ॥ ततः क्रुद्धो महादेवः परस्परमयु

से क्या करूं ॥ १२ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि फरसा आदिक जो अस्त्र हैं उनको लेकर तुम जबतक मैं स्नानकरूं तबतक तुम मेरे द्वार पै स्थित होवो ॥ १३ ॥ और मेरे द्वार पै तुम्हारे स्थित होनेपर कोई विघ्न न करै महादेवी से ऐसा कहाहुआ वह पुत्र अस्त्रों समेत द्वारपै खड़ाहुआ ॥ १४ ॥ इसी अवसर में सदाशिवदेवजी आये और उन महादेवजी ने भीतर पैठने की इच्छा किया ॥ १५ ॥ और द्वारपै खड़ेहुए गणेशजीने उन शिवजी को पैठने न दिया तदनन्तर क्रोधित महादेवजी परस्पर युद्ध करने

वणिज् बड़े बलवान् होवैं ॥ ३५ ॥ व हे देव ! जब तक चन्द्रमा, सूर्य व पृथ्वी रहै तबतक तुमको इनकी रक्षा करना चाहिये ऐसाही होगा यह उन गणनायक महेश्वरजी ने कहा ॥ ३६ ॥ और हर्ष को प्राप्त देवता गणेशजी को पूजनेलगे तदनन्तर देवता प्रसन्नता से संयुत होकर पुष्प, धूपादिक व तर्पण से पूजन किया ॥ ३७ ॥ व संसार में जो अन्य मनुष्य थे उन्होंने विघ्न न होने के लिये पूजन किया ॥ ३८ ॥ और विवाह, उत्सव व यज्ञों में पहले वे पूजित होते हैं और धर्मारण्य में उपजेहुए सब ब्राह्मणों के ऊपर वे सदा प्रसन्न होत हैं ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायागणेशप्रस्थापनावर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सततं वणिजश्च महाबलाः ॥ ३५ ॥ रक्षितव्यास्त्वया देव यावच्चन्द्रार्कमेदिनी ॥ एवमस्त्विति सोवादीद्गणनाथो महेश्वरः ॥ ३६ ॥ देवाश्च हर्षमापन्नाः पूजयन्ति गणाधिपम् ॥ ततो देवा मुदा युक्ताः पुष्पधूपादितर्पणैः ॥ ३७ ॥ ये चान्ये मनुजा लोके निर्विघ्नार्थं ह्यपूजयन् ॥ ३८ ॥ विवाहोत्सवयज्ञेषु पूर्वमाराधितो भवेत् ॥ धर्मारण्योद्भवानां च प्रसन्नः स्यात्स सर्वदा ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येगणेशप्रस्थापनावर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

व्यास उवाच ॥ शम्भोश्च पश्चिमे भागे स्थापितः कश्यपात्मजः ॥ तत्रास्ति तन्महाभाग रविक्षेत्रं तदुच्यते ॥ १ ॥ तत्रोत्पन्नौ महादिव्यौ रूपयौवनसंयुतौ ॥ नासत्यावश्विनौ देवौ विख्यातौ गदनाशनौ ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ पितामह महाभाग कथयस्व प्रसादतः ॥ उत्पत्तिरश्विनोश्चैव मृत्युलोके च तत्कथम् ॥ ३ ॥ रविलोकात्कथं सूर्यो धरायामवतारितः ॥ एतत्सर्वं प्रयत्नेन कथयस्व प्रसादतः ॥ ४ ॥ यच्छ्रुत्वा हि महाभाग सर्वपापैः

दो० । जिमि अश्विनीकुमार की भई अहै उत्पत्ति । सो तेरहें अध्याय में कह्यो चरित व्युत्पत्ति ॥ व्यासजी बोले कि हे महाभाग ! शिवजी के पश्चिम भाग में कश्यपजी के पुत्र सूर्यनारायणजी थापे गये हैं वहा पर वह रविक्षेत्र कहा जाता है ॥ १ ॥ वहां महादिव्य व रूप, यौवन से संयुत अश्विनीकुमार देवजी उत्पन्न हुए जोकि रोगनाशक प्रसिद्ध हैं ॥ २ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाभाग, पितामह ! अश्विनीकुमार की जो उत्पत्ति हुई वह मृत्युलोक में कैसे हुई इसको प्रसन्नता से कहिये ॥ ३ ॥ सूर्यलोक से सूर्यनारायणजी ने कैसे पृथ्वी में अवतार लिया इस सब को बड़े यत्न से प्रसन्नता से कहिये ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! जिसको सुनकर

किये॥ २६ ॥ और हाथ में कमल को लिये, समस्त विघ्नों के नाशक व लोकों की रक्षा के लिये नगर से दक्षिण ओर टिके हुए ॥ २७ ॥ बहुतही प्रसन्न और सिद्धि, बुद्धि से पूजित, सिंदूर की शोभा के समान व पैने अंकुश को धारण किये और उत्तम कमलपुष्पों से पूजित उन उत्तम गणेशजी को इन्द्रजी ने प्रणाम कर तदनन्तर देवताओं ने बड़ी भक्ति से स्तुति किया ॥ २८ । २९ ॥ देवता बोले कि सुरेश्वर आपके लिये नमस्कार है व गणों के स्वामी के लिये प्रणाम है हे महादेवाधिदैवत, गजानन ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३० ॥ हे गणाध्यक्ष ! भक्तिप्रिय देव तुम्हारे लिये प्रणाम है इन उत्तम स्तोत्रों से जब गणेशजी की स्तुति कीगई तब प्रसन्न होते हुए इन

कायं करध्वजकुठारकम् ॥ २६ ॥ दधानं कमलं हस्ते सर्वविघ्नविनाशनम् ॥ रक्षणाय च लोकानां नगराद्दक्षिणाश्रितम् ॥ २७ ॥ सुप्रसन्नं गणाध्यक्षं सिद्धिबुद्धिनमस्कृतम् ॥ सिन्दूराभं सुरश्रेष्ठं तीव्राङ्कुशधरं शुभम् ॥ २८ ॥ शतपुष्पैः शुभैः पुष्पैरर्चितं ह्यमराधिपः ॥ प्रणम्य च महाभक्त्या तुष्टुवुस्तं सुरास्ततः ॥ २९ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्तेस्तु सुरेशाय गणानां पतये नमः ॥ गजानन नमस्तुभ्यं महादेवाधिदैवत ॥ ३० ॥ भक्तिप्रियाय देवाय गणाध्यक्ष नमोस्तु ते॥ इत्येतैश्च शुभैः स्तोत्रैः स्तूयमानो गणाधिपः॥ सुप्रीतश्च गणाध्यक्षः तदाऽसौ वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ गणाध्यक्ष उवाच ॥ तुष्टोऽहं वः सुरा ब्रूत वाञ्छितं च ददामि वः ॥ ३२ ॥ देवा ऊचुः ॥ त्वमत्रस्थो महाभाग कुरु कार्यं च नः प्रभो ॥ धर्मारण्ये च विप्राणां वणिग्जननिवासिनाम् ॥ ३३ ॥ ब्रह्मचर्यादियुक्तानां धार्मिकाणां गणेश्वर ॥ वर्णाश्रमेतराणां च रक्षिता भव सर्वदा ॥ ३४ ॥ त्वत्प्रसादान्महाभाग धनसौख्ययुता द्विजाः ॥ भवन्तु सर्वे

गणेशजी ने यह वचन कहा ॥ ३१ ॥ गणेशजी बोले कि हे देवताओ ! मैं तुमलोगों के ऊपर प्रसन्न हूं कहिये मैं तुम लोगों को वांछित दूंगा ॥ ३२ ॥ देवता बोले कि हे महाभाग, प्रभो ! यहां टिके हुए तुम हमलोगों का कार्य करो और धर्मारण्य में ब्राह्मणों व वणिग्जन निवासियों के ॥ ३३ ॥ व हे गणेश्वर ! ब्रह्मचर्यादि से संयुत धार्मिकों के व वर्णों और आश्रमों के इतर लोगों के सदैव रक्षक होवो ॥ ३४ ॥ व हे महाभाग ! तुम्हारी प्रसन्नता से ब्राह्मण सदैव धन व सुख से संयुत होवैं और

वणिज् बड़े बलवान् होवैं ॥ ३५ ॥ व हे देव ! जब तक चन्द्रमा, सूर्य व पृथ्वी रहै तबतक तुमको इनकी रक्षा करना चाहिये ऐसाही होगा यह उन गणनायक महेश्वरजी ने कहा ॥ ३६ ॥ और हर्ष को प्राप्त देवता गणेशजी को पूजनेलगे तदनन्तर देवता प्रसन्नता से संयुत होकर पुष्प, धूपादिक व तर्पण से पूजन किया ॥ ३७ ॥ व संसार में जो अन्य मनुष्य थे उन्होंने विघ्न न होने के लिये पूजन किया ॥ ३८ ॥ और विवाह, उत्सव व यज्ञों में पहले वे पूजित होते हैं और धर्मारण्य में उपजेहुए सब ब्राह्मणों के ऊपर वे सदा प्रसन्न होते हैं ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगणेशप्रस्थापनावर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सततं वणिजश्च महाबलाः ॥ ३५ ॥ रक्षितव्यास्त्वया देव यावच्चन्द्रार्कमेदिनी ॥ एवमस्त्विति सोवादीद्गणनाथो महेश्वरः ॥ ३६ ॥ देवाश्च हर्षमापन्नाः पूजयन्ति गणाधिपम् ॥ ततो देवा मुदा युक्ताः पुष्पधूपादितर्पणैः ॥ ३७ ॥ ये चान्ये मनुजा लोके निर्विघ्नार्थं ह्यपूजयन् ॥ ३८ ॥ विवाहोत्सवयज्ञेषु पूर्वमाराधितो भवेत् ॥ धर्मारण्योद्भवानां च प्रसन्नः स्यात्स सर्वदा ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येगणेशप्रस्थापनावर्णनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

व्यास उवाच ॥ शम्भोश्च पश्चिमे भागे स्थापितः कश्यपात्मजः ॥ तत्रास्ति तन्महाभाग रविक्षेत्रं तदुच्यते ॥ १ ॥ तत्रोत्पन्नौ महादिव्यौ रूपयौवनसंयुतौ ॥ नासत्यावश्विनौ देवौ विख्यातौ गदनाशनौ ॥ २ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ पितामह महाभाग कथयस्व प्रसादतः ॥ उत्पत्तिरश्विनोश्चैव मृत्युलोके च तत्कथम् ॥ ३ ॥ रविलोकात्कथं सूर्यो धरायामवतारितः ॥ एतत्सर्वं प्रयत्नेन कथयस्व प्रसादतः ॥ ४ ॥ यच्छ्रुत्वा हि महाभाग सर्वपापैः

दो० । जिमि अश्विनीकुमार की भई अहै उत्पत्ति । सो तेरहें अध्याय में कह्यो चरित व्युत्पत्ति ॥ व्यासजी बोले कि हे महाभाग ! शिवजी के पश्चिम भाग में कश्यपजी के पुत्र सूर्यनारायणजी थापे गये हैं वहां पर वह रविक्षेत्र कहा जाता है ॥ १ ॥ वहां महादिव्य व रूप, यौवन से संयुत अश्विनीकुमार देवजी उत्पन्न हुए जोकि रोगनाशक प्रसिद्ध हैं ॥ २ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाभाग, पितामह ! अश्विनीकुमार की जो उत्पत्ति हुई वह मृत्युलोक में कैसे हुई इसको प्रसन्नता से कहिये ॥ ३ ॥ सूर्यलोक से सूर्यनारायणजी ने कैसे पृथ्वी में अवतार लिया इस सब को बड़े यत्न से प्रसन्नता से कहिये ॥ ४ ॥ हे महाभाग ! जिसको सुनकर

मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ५ ॥ व्यासजी बोले कि हे नरशार्दूल, भूप ! तुमने ऊर्ध्वलोक के कथानक को बहुत अच्छा पूंछा जिसको सुनकर मनुष्य सब रोग से छूट जाता है विश्वकर्मा की कन्या संज्ञा को सूर्यनारायण ने ब्याहा ॥ ६ ॥ और सूर्यनारायण को देखकर संज्ञा जिस लिये सदैव अपने नेत्रों को मूंद लेती थी उस कारण क्रोध संयुत सूर्यनारायणजी ने संज्ञा से यह वचन कहा ॥ ७ ॥ सूर्यनारायण बोले कि जिस लिये मुझ को देख कर तुम सदैव अपने नेत्रों को मूंदती हो उस कारण हे मूढे ! तुम्हारे प्रजाओं को दंड देनेवाले यमराज उत्पन्न होवैंगे॥ ८॥ तदनन्तर उन संज्ञा ने भय से विकल व चंचलता से सूर्यनारायणजी को देखा फिर

प्रमुच्यते ॥ ५ ॥ व्यास उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया भूप ऊर्ध्वलोककथानकम् ॥ यच्छ्रुत्वा नरशार्दूल सर्वरोगात्प्रमुच्यते॥ विश्वकर्म्मसुता संज्ञा अंशुमद्रविणा वृता ॥ ६ ॥ सूर्यं दृष्ट्वा सदा संज्ञा स्वाक्षिसंयमनं व्यधात् ॥ यतस्ततः सरोषोऽर्कः संज्ञां वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥ सूर्य उवाच ॥ मयि दृष्टे सदा यस्मात्कुरुषे स्वाक्षिसंयमम् ॥ तस्माज्जनिष्यते मूढे प्रजासं यमनो यमः ॥ ८ ॥ ततः सा चपलं देवी ददर्श च भयाकुलम् ॥ विलोलितदृशं दृष्ट्वा पुनराह च तां रविः ॥ ९ ॥ यस्मा द्विलोलिता दृष्टिर्मयि दृष्टे त्वयाधुना ॥ तस्माद्विलोलितां संज्ञे तनयां प्रसविष्यसि ॥ १० ॥ व्यास उवाच ॥ ततस्तस्या स्तु संजज्ञे भर्तृशापेन तेन वै ॥ यमश्च यमुना येयं विख्याता सुमहानदी ॥ ११ ॥ सा च संज्ञा रवेस्तेजो महद्दुःखेन भामिनी ॥ असहन्तीव सा चित्ते चिन्तयामास वै तदा ॥ १२ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि क्व गतायाश्च निर्वृतिः ॥ भ वेन्मम कथं भर्तुः कोपमर्कस्य नश्यति ॥ १३ ॥ इति सञ्चिन्त्य बहुधा प्रजापतिसुता तदा ॥ साधु मेने महाभागा पितृ

चंचल नेत्रोंवाली उस संज्ञा को देखकर सूर्यनारायणजी ने कहा ॥ ९ ॥ कि जिस लिये तुमने इस समय मुझ को देखने पर चंचल दृष्टि किया उस कारण हे संज्ञे ! चंचल कन्या को पैदा करोगी ॥ १० ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर उस पति के शाप से उस संज्ञा के यमराज व यमुनाजी उत्पन्न हुई जो कि यह महानदी प्रसिद्ध है ॥ ११ ॥ सूर्यनारायण के तेज को बड़े दुःख से न सहती हुई सी उस संज्ञा ने उस समय चित्त में विचार किया ॥ १२ ॥ कि क्या करूं और कहां जाऊं व कहां जाने से मुझको सुख होगा और सूर्यनारायण का क्रोध कैसे नाश होगा ॥ १३ ॥ इस प्रकार बहुतभांति से विचार कर तब प्रजापति की कन्या महाऐश्वर्यवती संज्ञा ने

पिता का आश्रय उत्तम माना व उसने उस पिता के आश्रय को माना ॥ १४॥ तदनन्तर पिता के घर को जाने के लिये बुद्धि करके वह यशस्विनी सूर्यनारायण की स्त्री ने अपनी छाया को बुलाकर ॥ १५ ॥ उससे यह कहा कि तुमको सूर्यनारायण के यहां मेरे समान टिकना चाहिये और लड़कों व सूर्यनारायण में भलीभांति वर्तमान होना चाहिये ॥ १६ ॥ व तुम दुष्ट वचन को न कहना जैसा कि मेरा बहुत संमत है व हे अनघे! तुम इस प्रकार यह कहना कि मैं वही संज्ञा हूं॥१७॥ छायासंज्ञा बोली कि बाल पकड़ने तक व शाप देने तक मैं वैसा वचन करूंगी और जब तक बालों को न खींचैंगे तबतक मैं वैसाही कहूंगी ॥ १८ ॥ ऐसा कही

संश्रयमाप सा ॥ १४ ॥ ततः पितृगृहं गन्तुं कृतबुद्धिर्यशस्विनी ॥ छायामाहूयात्मनस्तु सा देवी दयिता रवेः ॥१५॥ तां चोवाच त्वया स्थेयमत्र भानोर्यथा मया ॥ तथा सम्यगपत्येषु वर्तितव्यं तथा रवौ ॥ १६ ॥ न दुष्टमपि वाच्यं ते यथा बहुमतं मम ॥ सैवास्मि संज्ञाहमिति वाच्यमेवं त्वयानघे ॥ १७ ॥ छायासंज्ञोवाच ॥ आकेशग्रहणाच्चाहमा शापाच्च वचस्तथा ॥ करिष्ये कथयिष्यामि यावत्केशापकर्षणात् ॥ १८ ॥ इत्युक्ता सा तदा देवी जगाम भवनं पितुः ॥ ददर्श तत्र त्वष्टारं तपसा धूतकिल्बिषम् ॥ १९ ॥ बहुमानाच्च तेनापि पूजिता विश्वकर्म्मणा ॥ तस्थौ पितृगृहे सा तु किञ्चित्कालमनिन्दिता ॥ २० ॥ ततः प्राह स धर्मज्ञः पिता नातिचिरोषिताम् ॥ विश्वकर्मा सुतां प्रेम्णा बहुमानपुरःसरम् ॥ २१ ॥ त्वां तु मे पश्यतो वत्से दिनानि सुबहून्यपि ॥ मुहूर्त्तेन समानि स्युः किं तु धर्मो विलुप्यते ॥ २२ ॥ बान्धवेषु चिरं वासो न नारीणां यशस्करः ॥ मनोरथो बान्धवानां भार्या पतिगृहे स्थिता ॥ २३ ॥ सा त्वं त्रैलोक्य

हुई वह देवी पिता के घर को चली गई और वहां उसने तपसे नष्ट पापोंवाले विश्वकर्माजी को देखा ॥ १९ ॥ और उन विश्वकर्मा ने भी बहुत आदर से पूजन किया और कुछ समय तक वह अनिन्दित संज्ञा पिता के घर में टिकी ॥ २० ॥ तदनन्तर उस धर्मज्ञ पिता विश्वकर्मा ने बहुत दिन न बसी हुई कन्या से बहुत मानपूर्वक प्रेम से यह कहा ॥ २१ ॥ कि हे वत्से! तुम को देखते हुए मेरे बहुत से दिन मुहूर्त के समान होते हैं परन्तु धर्म लुप्त होता है ॥ २२ ॥ क्योंकि बंधुवों में स्त्रियों का बहुत दिन बसना यशकारक नहीं होता है और बन्धुवों का यह मनोरथ होता है कि स्त्री पति के घर में स्थित होवै ॥ २३ ॥ हे पुत्रिके! सो तुम त्रिलोकनाथ सूर्य पति

के साथ समागम को प्राप्त हुई हो इससे पिता के घर में बहुत दिन बसने के योग्य नहीं हो ॥ २४ ॥ इस लिये तुम पति के घर को जावो मैं देखा गया व मुझ से तुम पूजी गई हे शुभेक्षणे ! देखने के लिये तुम फिर आइयेगा ॥ २५ ॥ व्यासजी बोले कि हे मुने ! यह कही हुई वह संज्ञा बहुत अच्छा यह कहकर व पिता को पूजकर उत्तरकुरुवों को चली गई ॥ २६ ॥ और सूर्य के ताप को न चाहती व उनके तेज से डरती हुई उस संज्ञा ने वहां भी घोड़ी का रूप धारण कर तप किया ॥ २७ ॥ और संज्ञा है यही मानते हुए सूर्यनारायण ने दूसरी स्त्री में दो पुत्र व एक सुन्दरी कन्या को उत्पन्न किया ॥ २८ ॥ और छाया ने जिस प्रकार अपने पुत्रों में प्रेम से

नाथेन भर्त्रा सूर्येण सङ्गता॥ पितुर्गृहे चिरं कालं वस्तुं नार्हसि पुत्रिके ॥ २४ ॥ अतो भर्तृगृहं गच्छ दृष्टोऽहं पूजिता च मे ॥ पुनरागमनं कार्यं दर्शनाय शुभेक्षणे ॥ २५ ॥ व्यास उवाच ॥ इत्युक्ता सा तदा क्षिप्रं तथेत्युक्त्वा च वै मुने॥ पूजयित्वा तु पितरं सा जगामोत्तरान्कुरून् ॥ २६ ॥ सूर्यतापमनिच्छन्ती तेजसस्तस्य बिभ्यती ॥ तपश्चचार तत्रापि वडवारूपधारिणी ॥ २७ ॥ संज्ञामित्येव मन्वानो द्वितीयायां दिवस्पतिः ॥ जनयामास तनयौ कन्यां चैकां मनोरमाम् ॥ २८ ॥ छाया स्वतनयेष्वेव यथा प्रेम्णाध्यवर्तत ॥ तथा न संज्ञाकन्यायां पुत्रयोश्चाप्यवर्तत ॥ लालनासु च भोज्येषु विशेषमनुवासरम् ॥ २९ ॥ मनुस्तत्क्षान्तवानस्या यमस्तस्या न चाक्षमत् ॥ ताडनाय ततः कोपात्पादस्तेन समुद्यतः ॥ तस्याः पुनः क्षान्तमना नतु देहे न्यपातयत् ॥ ३० ॥ ततः शशाप तं कोपाच्छायासंज्ञा यमं नृप॥ किञ्चित्प्रस्फुरमाणोष्ठी विचलत्पाणिपल्लवा ॥ ३१ ॥ पत्न्यां पितुर्मयि यदि पादमुद्यच्छसे बलात् ॥ भुवि तस्मादयं पादस्तवा

वर्तमान हुई उस प्रकार संज्ञा की कन्या व पुत्रों में प्यार व भोज्यादिक में विशेषता से प्रतिदिन न वर्तमान हुई ॥ २९ ॥ इसके उस कर्म को मनु ने सहलिया परन्तु यमराज ने उस का कर्म नहीं सहा तब उन यमराज ने मारने के लिये पैर को उठाया फिर क्षमा मनवाले उन्हों ने उसके शरीर में नहीं मारा ॥ ३० ॥ तदनन्तर हे राजन् ! कुछ कांपते हुए ओंठ व चलते हुए हस्तरूपी पल्लवोंवाली छाया संज्ञा ने क्रोध से उन यमराज को शापदिया ॥ ३१ ॥ कि यदि पिता की स्त्री मुझ में तुम बल

से पैर को उठाते हो तो उस कारण आजही तुम्हारा यह पांव पृथ्वी में गिरपड़े ॥ ३२॥ इस शाप को सुनकर यमराज माता में बहुत शंकित हुए और पिता के समीप जाकर उन्हों ने प्रणामपूर्वक कहा ॥ ३३ ॥ कि हे पिताजी ! यह बड़ाभारी आश्चर्य कहीं नहीं देखा गया है कि माता पुत्र में प्यार को छोड कर शाप देती है ॥ ३४ ॥ जैसा कि मेरी माता ने कहा है यह मेरी माता नहीं है क्योंकि निर्गुणी भी पुत्रों में माता निर्गुणी नहीं होती है ॥ ३५ ॥ यमराज का यह वचन सुनकर अन्धकार नाशक भगवान् सूर्यनारायण ने छायासंज्ञा को बुलाकर यह पूंछा कि वह संज्ञा कहां गई ॥ ३६ ॥ उसने कहा कि हे विभावसो ! मैं विश्वकर्मा की संज्ञा नामक कन्या

द्यैव पतिष्यति ॥ ३२ ॥ इत्याकर्ण्य यमः शापं मातर्यतिविशङ्कितः ॥ अभ्येत्य पितरं प्राह प्रणिपातपुरस्सरम् ॥ ३३ ॥ तातैतन्महदाश्चर्यमदृष्टमिति च क्वचित् ॥ माता वात्सल्यमुत्सृज्य शापं पुत्रे प्रयच्छति ॥ ३४ ॥ यथा माता ममाचष्ट नेयं माता तथा मम ॥ निर्गुणेष्वपि पुत्रेषु न माता निर्गुणा भवेत् ॥ ३५ ॥ यमस्यैतद्वचः श्रुत्वा भगवांस्तिमिरापहः ॥ छायासंज्ञामथाहूय पप्रच्छ क्व गतेति च ॥ ३६ ॥ सा चाह तनया त्वष्टुरहं संज्ञा विभावसो ॥ पत्नी तव त्वया पत्यान्यैतानि जनितानि मे ॥ ३७ ॥ इत्थं विवस्वतस्तां तु बहुशः पृच्छतो यदा ॥ नाचचक्षे तदा क्रुद्धो भास्वांस्तां शप्तुमुद्यतः ॥ ३८ ॥ ततः सा कथयामास यथावृत्तं विवस्वते ॥ विदितार्थश्च भगवाञ्जगाम त्वष्टुरालयम् ॥ ३९ ॥ ततः सम्पूजयामास त्वष्टा त्रैलोक्यपूजितम् ॥ भास्वन्किं रहितः शक्त्या निजगेहमुपागतः ॥ ४० ॥ संज्ञां पप्रच्छ तं

हूं और तुम्हारी स्त्री हूं व तुमसे मैंने इन पुत्रों व कन्याओं को पैदा किया है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार उससे बहुत पूंछते हुए सूर्यनारायणजी से जब उसने नहीं कहा तब क्रोधित होते हुए सूर्यनारायण उसको शाप देने के लिये उद्यत हुए ॥ ३८ ॥ तब उसने सूर्यनारायण से जैसा वृत्तान्त था वैसा कहा और प्रयोजन को जानकर भगवान् सूर्यनारायणजी विश्वकर्मा के घर को गये ॥ ३९ ॥ तदनन्तर त्वष्टा ने त्रिलोकपूजित सूर्यनारायण की पूजा किया व कहा कि हे भास्वन् ! क्या संज्ञा शक्ति से रहित तुम अपने घर को आये हो ॥ ४० ॥ सूर्य ने उन विश्वकर्मा से संज्ञा को पूंछा व यथार्थ जाननेवाले उन्हों ने उनसे कहा कि हे रवे ! आप से

पठाई हुई वह संज्ञा यहां मेरे घर को आई थी ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त समाधि में स्थित सूर्यनारायणजी ने उत्तरकुरुवों में घोड़ी के रूप को धारनेवाली तप करतीहुई संज्ञा को देखा ॥ ४२ ॥ कि सूर्य के तेज को न सहती हुई व उससे बहुतही पीड़ित संज्ञा अग्नि के समान अपने छायारूपी रूप को छोड़ कर ॥ ४३ ॥ उसने धर्मारण्य में आकर बड़ा कठिन तप किया व हे राजन् ! छाया के पुत्र शनैश्चर व अन्य यमराज को देखकर ॥ ४४ ॥ उसीं समय सूर्यनारायण दुष्ट पुत्रों को देखकर विस्मित हुए व उसको जानने के लिये क्षण भर ध्यान कर व उस कारण को जानकर ॥ ४५ ॥ कि किरणों की उष्णता से जले हुए शरीरवाली उस पतिव्रता ने तपस्या किया है

तस्मै कथयामास तत्त्ववित् ॥ आगता सेह मे वेश्म भवतः प्रेषिता रवे ॥ ४१ ॥ दिवाकरः समाधिस्थो वडवारूपधारिणीम् ॥ तपश्चरन्तीं ददृशे उत्तरेषु कुरुष्वथ ॥ ४२ ॥ असह्यमाना सूर्यस्य तेजस्तेनातिपीडिता ॥ वह्न्याभनिजरूपं तु छायारूपं विमुच्य च ॥ ४३ ॥ धर्मारण्ये समागत्य तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ छायापुत्रं शनिं दृष्ट्वा यमं चान्यं च भूपते ॥ ४४ ॥ तदैव विस्मितः सूर्यो दुष्टपुत्रौ समीक्ष्य च ॥ ज्ञातुं दध्यौ क्षणं ध्यात्वा विदित्वा तच्च कारणम् ॥ ४५ ॥ घृणयौष्णयाद्दग्धदेहा सा तपस्तेपे पतिव्रता ॥ येन मां तेजसा सह्यं द्रष्टुं नैव शशाक ह ॥ ४६ ॥ पञ्चाशद्धायनेतीते गत्वा कौ तप आचरत् ॥ प्रद्योतनो विचार्यैवं गतः शीघ्रं मनोजवः ॥ ४७ ॥ धर्मारण्ये वरे पुण्ये यत्र संज्ञा स्थिता तपः ॥ आगतं तं रविं दृष्ट्वा वडवा समजायत ॥ ४८ ॥ सूर्यपत्नी यदा संज्ञा सूर्यश्चाश्वस्ततोऽभवत् ॥ ताभ्यां सहाभूत्संयोगो घ्राणे लिङ्गं निवेश्य च ॥ ४९ ॥ तदा तौ च समुत्पन्नौ युगलावश्विनौ भुवि ॥ प्रादुर्भूतं जलं तत्र दक्षिणेन खु

क्योंकि तेज से असह्य मुझ को वह देखने के लिये समर्थ न हुई ॥ ४६ ॥ और पचास वर्ष बीतने पर पृथ्वी में जाकर उसने तप किया ऐसा विचार कर मन के समान वेगवाले सूर्यनारायणजी शीघ्रही वहां गये ॥ ४७ ॥ जहां कि पवित्र व श्रेष्ठ धर्मारण्यपुर में संज्ञा तपस्या करने के लिये स्थित थी और आये हुए उन सूर्य को देखकर सूर्य की स्त्री संज्ञा जब घोड़ी होगई तब सूर्यनारायण अश्व होगये और नासिका में लिंग को प्रवेश कर उन दोनों का समागम हुआ ॥ ४८ । ४९ ॥ तब

वे दोनों अश्विनीकुमार पृथ्वी में उत्पन्न हुए और दाहिने खुर से वहां जल उत्पन्न हुआ ॥ ५० ॥ पृथ्वी का भाग विदीर्ण होने पर वहां कुंड उत्पन्न हुआ और फिर दूसरा कुंड पिछले अर्ध चरण से उत्पन्न हुआ ॥ ५१ ॥ इस कुंड में मुनि ने उत्तरवाहिनी काशी का व कुरुक्षेत्रादि का फल कहा है व गंगा और सात पुरियों का फल कहा है ॥ ५२ ॥ और तप्तकुंड में मनुष्य उस फल को पाता है इसमें सन्देह नहीं है और उसी में स्नान करके मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ५३ ॥ और फिर शरीर कुष्ठादिरोगों से पीडित नहीं होता है हे भूप ! यह तुम से अश्विनीकुमार की उत्पत्ति का कारण कहा गया ॥ ५४ ॥ हे भूपते ! तब वहां ब्रह्मादिक देवता

रेण च ॥ ५० ॥ भूमिभागे विदलिते तत्र कुण्डं समुद्भवौ ॥ द्वितीयं तु पुनः कुण्डं पश्चार्धचरणोद्भवम् ॥ ५१ ॥ उत्तरवाहिन्याः काश्याः कुरुक्षेत्रादि वै तथा ॥ गङ्गापुरीसप्तफलं कुण्डेऽत्र मुनिनोदितम् ॥ ५२ ॥ तत्फलं समवाप्नोति तप्तकुण्डे न संशयः ॥ स्नानं विधाय तत्रैव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५३ ॥ न पुनर्जायते देहः कुष्ठादिव्याधिपीडितः ॥ एतत्ते कथितं भूप दस्रांशोत्पत्तिकारणम् ॥ ५४ ॥ तदा ब्रह्मादयो देवा आगतास्तत्र भूपते ॥ दत्त्वा संज्ञावरं शुभ्रं चिन्तितादधिकं हि तैः ॥ ५५ ॥ स्थापयित्वा रविं तत्र बकुलाख्यवनाधिपम् ॥ आनर्चुस्ते तदा संज्ञां पूर्वरूपाऽभवत्तदा ॥ ५६ ॥ स्थापिता तत्र राज्ञी च कुमारौ युगलौ तदा ॥ एतत्तीर्थफलं वक्ष्ये शृणु राजन्महामते ॥ ५७ ॥ आदिस्थानं कुरुश्रेष्ठ देवैरपि सुदुर्लभम् ॥ रविकुण्डे नरः स्नात्वा श्रद्धायुक्तो जितेन्द्रियः ॥ ५८ ॥ तारयेत्स पितॄन्सर्वान्महानरकगानपि ॥ श्रद्धया यः पिबेत्तोयं सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥ ५९ ॥ स्वल्पं वापि बहुवापि सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥ सप्तम्यां रविवारेण

आये और चिन्तित से अधिक संज्ञा को उत्तम वर को उन्हों ने देकर ॥ ५५ ॥ और वहां बकुल नामक वन के स्वामी सूर्यनारायण को थापकर उस समय उन्हों ने संज्ञा को पूजा तब वह पहले के समान रूपवती हुई ॥ ५६ ॥ व उस समय वहां रानी और दोनों कुमार थापे गये हे महामते, राजन् ! इस तीर्थ के फल को मैं कहता हूं सुनिये ॥ ५७ ॥ कि हे कुरुश्रेष्ठ ! आदिस्थान देवताओं को भी दुर्लभ है और रविकुंड में श्रद्धायुक्त व जितेन्द्रिय मनुष्य नहाकर ॥ ५८ ॥ वह मनुष्य महा नरक में प्राप्त भी सब पितरों को तारता है और पितरों व देवताओं को श्रद्धा से भलीभांति तर्पण कर जो जल को पीता है ॥ ५९ ॥ थोड़ा या बहुत वह सब कोटि

गुना होता है और रविवार सप्तमी में चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण में ॥ ६० ॥ जिन्हों ने रविकुंड में स्नान किया है वे गर्भगामी नहीं होते हैं और संक्रान्ति, व्यतीपात व वैधृत योग व पर्वों में ॥ ६१ ॥ और शुक्ल व कृष्णपक्ष में पूर्णमोसी और अमावस में जो रविकुंड में नहाता है वह करोड़ यज्ञों के फल को पाता है ॥ ६२ ॥ व सावधान चित्त से जो मनुष्य बकुलार्कजी को पूजता है वह उत्तम स्थान को तबतक पाता है जबतक कि सूर्यनारायण तपते है ॥ ६३ ॥ और उसकी लक्ष्मी निश्चयकर स्थिर होती है व संतान और सुख को वह पाता है और सूर्यनारायण के प्रसाद से शत्रुवर्ग नाश को प्राप्त होताहै ॥ ६४ ॥ और अग्नि से व व्याघ्र और हाथी से उसको

ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ६० ॥ रविकुण्डे च ये स्नाता न ते वै गर्भगामिनः ॥ संक्रान्तौ च व्यतीपाते वैधृतेषु च पर्वसु ॥ ६१ ॥ पूर्णमास्याममावास्यां चतुर्द्दश्यां सितासिते ॥ रविकुण्डे च यः स्नातः क्रतुकोटिफलं लभेत् ॥ ६२ ॥ पूजयेद्बकुलार्कं च एकचित्तेन मानवः ॥ स याति परमं धाम स यावत्तपते रविः ॥ ६३ ॥ तस्य लक्ष्मीः स्थिरा नूनं लभते सन्ततिं सुखम् ॥ अरिवर्गः क्षयं याति प्रसादाच्च दिवस्पतेः ॥ ६४ ॥ नाग्नेर्भयं हि तस्य स्यान्न व्याघ्रान्न च दन्तिनः ॥ न च सर्पभयं क्वापि भूतप्रेतादिभिर्न हि ॥ ६५ ॥ बालग्रहाश्च सर्वेऽपि रेवती वृद्धरेवती ॥ ते सर्वे नाशमायान्ति बकुलार्के नमस्कृते ॥ ६६ ॥ गावस्तस्य विवर्द्धन्ते धनं धान्यं तथैव च ॥ अविच्छेदो भवेद्वंशो बकुलार्के नमस्कृते ॥ ६७॥ काकबन्ध्या च या नारी अनपत्या मृतप्रजा ॥ बन्ध्या विरूपिता चैव विषकन्याश्च याः स्त्रियः ॥६८॥ एवं दोषैः प्रमुच्यन्ते स्नात्वा कुण्डे च भूपते ॥ सौभाग्यस्त्रीसुतांश्चैव रूपं चाप्नोति सर्वशः ॥ ६९ ॥ व्याधिग्रस्तोपि यो

भय नहीं होती है व कभी सर्प का डर नहीं होता है और भूत, प्रेतादिकों की भय नहीं होती है ॥ ६५ ॥ और सब बालग्रह व रेवती तथा वृद्धरेवती वे सब बकुलार्कजी का नमस्कार करने पर नाश होजाते हैं ॥ ६६ ॥ और उसके गऊ बढ़ती हैं और धन व धान्य बढ़ती है व बकुलार्कजी का प्रणाम करने पर वंश नहीं नाश होता है ॥ ६७ ॥ और जो स्त्री काकबन्ध्या व संतानहीन और मृतवत्सा होती है व जो बन्ध्या और कुरूपिणी होती है व जो स्त्रियां विषकन्या होती हैं ॥ ६८ ॥ हे भूपते ! कुंड में नह कर वे ऐसे दोषों से छूट जाती हैं और सौभाग्य स्त्री व सुख इस सब को मनुष्य पाता है ॥ ६९ ॥ और जो मनुष्य रोगग्रस्त भी होता है वह कुंड में नहाकर

छः महीने में सब रोग से छूट जाता है ॥ ७० ॥ और रविक्षेत्र में जो नीलोत्सर्ग विधि को करता है उस के पितर कल्प पर्यन्त तृप्त रहते हैं ॥ ७१ ॥ व हे पुत्र ! इस क्षेत्र में जो कन्यादान करता है विवाह से पवित्र चित्तवाला वह ब्रह्मलोक में पूजा जाता है ॥ ७२ ॥ व गोदान, शय्या, मूंगा, अश्व, दासी, भैंसी व सुवर्ण से संयुत तिल को इस क्षेत्र में देवै ॥ ७३ ॥ व हे भारत ! इस क्षेत्र में तिलों की गऊ, पनही, छतुरी और शीतत्राणादिक वस्तु को देवै ॥ ७४ ॥ और लक्ष होम व रुद्र तथा रुद्रातिरुद्र जो कुछ श्रद्धा से संयुत मनुष्य उस स्थान में देता है ॥ ७५ ॥ हे तात ! एक एक का फल कहता हूं उसको यथार्थ सुनिये कि दान से मनुष्य इस लोक व पर-

मर्त्यः षण्मासाच्चैव मानवः ॥ रविकुण्डे च सुस्नातः सर्वरोगात्प्रमुच्यते ॥ ७० ॥ नीलोत्सर्गविधिं यस्तु रविक्षेत्रे करोति वै ॥ पितरस्तृप्तिमायान्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ७१ ॥ कन्यादानं च यः कुर्यादस्मिन्क्षेत्रे च पुत्रक ॥ उद्वाह परिपूतात्मा ब्रह्मलोके महीयते ॥ ७२ ॥ धेनुदानं च शय्यां च विद्रुमं च हयं तथा ॥ दासीं च महिषीञ्चैव तिलं काञ्चन संयुतम् ॥ ७३ ॥ धेनुं तिलमयीं दद्यादस्मिन्क्षेत्रे च भारत ॥ उपानहौ च छत्रं च शीतत्राणादिकं तथा ॥ ७४ ॥ लक्ष होमं तथा रुद्रं रुद्रातिरुद्रमेव च ॥ तस्मिन्स्थाने च यत्किंचिद्ददाति श्रद्धयान्वितः ॥ ७५ ॥ एकैकस्य फलं तात वक्ष्यामि शृणु तत्त्वतः ॥ दानेन लभते भोगानिह लोके परत्र च ॥ ७६ ॥ राज्यं च लभते मर्त्यः कृत्वोद्वाहं तु मानुषाः ॥ जायातो धर्मकामार्थाः प्राप्यन्ते नात्र संशयः ॥ ७७ ॥ पूजया लभते सौख्यं भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ सप्तम्यां रवियुक्तायां बकुलार्के स्मरेत्तु यः ॥ ७८ ॥ ज्वरादेः शत्रुतश्चैव व्याधेस्तस्य भयं न हि ॥ ७९ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ बकु

लोक में सुखों को पाता है ॥ ७६ ॥ व राज्य को मनुष्य पाता है और विवाह करके स्त्री से धर्म, काम व अर्थ मिलते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७७ ॥ और पूजन से सुख को पाता है व जन्म जन्म में सुख होता है और रविवार संयुत सप्तमी तिथि में जो बकुलार्कजी को स्मरण करता है ॥ ७८ ॥ उसको ज्वरादिक से व शत्रु और व्याधि से भय नहीं होती है ॥ ७९ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे कहनेवालों में श्रेष्ठ, मुने ! सूर्य का बकुलार्क ऐसा नाम कैसे हुआ इसको तुम यथार्थ कहने के योग्य

हो ॥ ८० ॥ व्यासजी बोले कि हे राजेन्द्र ! जब संज्ञा ने एक चित्त से सूर्य के लिये बकुल (मौलसिरी) वृक्ष के नीचे पति के तेज की शांति के लिये तप किया है ॥ ८१ ॥ तब सूर्यनारायण को प्रकट देख कर वह घोड़ी होगई और बकुल के समीप सूर्यनारायणजी बहुतही शांत होगये ॥ ८२ ॥ और तब रानी संज्ञा ने दो दिव्य व सुंदर पुत्रों को पैदा किया उसी से इन सूर्यनारायण का बकुलार्क ऐसा नाम प्रसिद्ध हुआ ॥ ८३ ॥ वहां जो स्नान करता है उसको रोग पीडित नहीं करता है और वह धर्म, अर्थ व काम को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८४ ॥ और छः महीने में वह मनुष्य सिद्धि को पाता है व मोक्ष को पाता है हे महाराज ! यह

लार्केति वै नाम कथं जातं रवेर्मुने ॥ एतन्मे वदतां श्रेष्ठ तत्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥ ८० ॥ व्यास उवाच ॥ यदा संज्ञा च राजेन्द्र सूर्यार्थे चैकचेतसा ॥ तेपे बकुलवृक्षाधः पत्युस्तेजः प्रशान्तये ॥ ८१ ॥ प्रादुर्भावं रवेर्दृष्ट्वा वडवा समजायत ॥ अत्यन्तं गोपतिः शान्तो बकुलस्य समीपतः ॥ ८२ ॥ सुषुवे च तदा राज्ञी सुतौ दिव्यौ मनोहरौ ॥ तेनास्य प्रथितं नाम बकुलार्केति वै रवेः ॥ ८३ ॥ यस्तत्र कुरुते स्नानं व्याधिस्तस्य न पीडयेत् ॥ धर्ममर्थं च कामं च लभते नात्र संशयः ॥ ८४ ॥ षण्मासात्सिद्धिमाप्नोति मोक्षं च लभते नरः ॥ एतदुक्तं महाराज बकुलार्कस्य वैभवम् ॥ ८५ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येबकुलार्कमाहात्म्यकथनंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ कृपासिन्धो महाभाग सर्वव्यापिन्सुरेश्वर ॥ कदा ह्यत्र तपस्तप्तं विष्णुनामिततेजसा ॥ १ ॥ स्कन्दाय कथितं चैव शर्वेण च महात्मना ॥ आनुपूर्व्येण सर्वं हि कथयस्व त्वमेव हि ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु

बकुलार्क का प्रभाव कहा गया ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबकुलार्कमाहात्म्यकथनेनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

दो० । तप संयुत श्रीविष्णु ढिग गये देव मिलि साथ । चौदहवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे महाभाग, दयासिंधो, सर्वव्यापिन्, सुरेश्वर ! यहां पर अमित तेजवाले विष्णुजीने कब तप किया है ॥ १ ॥ व महात्मा शिवजी ने स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहा है उस सब को तुम क्रम से कहो ॥ २ ॥ व्यासजी

बोले कि हे वत्स, नृपोत्तम ! मैं जो कहता हूं उसको सुनिये कि इस धर्मारण्य में एक समय अमित तेजवाले विष्णुजी ने तप किया है ॥ ३ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि देवसर नामक कैसे हुआ व पंपा, चंपा, गया कैसे काशी से अधिक हुई व विष्णुजी कैसे अश्वमुख हुए हैं ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि यहां नारायणदेवजी ने देवताओं के तीन सौ वर्ष तक बहुत कठिन तप किया है तब वे उत्तम मुखवाले हुए हैं ॥ ५ ॥ हे पुत्र ! उस महाप्रकाशवान् सिद्धस्थान में अश्वमुखवाले महाविष्णु देवजी ने स्वरूप के लिये तप किया है ॥ ६ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि इस समय तुम मुझ से, उस कारण को कहो कि जिस से महाशत्रु हयशीर्ष नामक दैत्य

वत्स प्रवक्ष्यामि धर्म्मारण्ये नृपोत्तम ॥ एकदात्र तपस्तप्तं विष्णुनाऽमिततेजसा ॥ ३ ॥ स्कन्द उवाच ॥ कथं देव सरोनाम पम्पा चम्पा गया तथा ॥ वाराणस्यधिका चैव कथमश्वमुखो हरिः ॥ ४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अत्र नारायणो देवस्तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ दिव्यवर्षशतं त्रीणि जातः सुष्ठाननश्च सः ॥ ५ ॥ तपस्तेपे महाविष्णुः सुरूपार्थं च पुत्रक ॥ वाजिमुखो हरिस्तत्र सिद्धस्थाने महाद्युते ॥ ६ ॥ स्कन्द उवाच ॥ कारणं ब्रूहि नोद्य त्वमश्वाननः कथं हरिः ॥ महारिपोश्च हन्ता च देवदेवो जगत्पतिः ॥ ७ ॥ यस्य नाम्ना महाभाग पातकानि बहून्यपि ॥ विलीयन्ते तु वेगेन तमः सूर्योदये यथा ॥ ८ ॥ श्रूयन्ते यस्य कर्म्माणि अद्भुतान्यद्भुतानि वै ॥ सर्वेषामेव जीवानां कारणं परमेश्वरः ॥ ९ ॥ प्राणरूपेण यो देवो हयरूपः कथं भवेत् ॥ सर्वेषामपि तन्त्राणामेकरूपः प्रकीर्तितः ॥ १० ॥ भक्तिगम्यो धर्मभाजां सुखरूपः सदा शुचिः ॥ गुणातीतोऽपि नित्योऽसौ सर्वगो निर्गुणस्तथा ॥ ११ ॥ स्रष्टासौ पालको हन्ता अव्यक्तः

को मारकर देवदेव जगदीशजी अश्वमुख हुए हैं ॥ ७ ॥ व हे महाभाग ! जैसे सूर्योदय में अन्धकार नाश होजाता है वैसेही बहुत से भी पाप जिनके नाम से शीघ्रही नाश होजाते हैं ॥ ८ ॥ व जिसके कर्म बहुत अद्भुत सुने जाते हैं और जो परमेश्वर सबही जीवों का कारण हैं ॥ ९ ॥ और जो प्राणरूप से हैं वे विष्णुदेवजी कैसे अश्वरूप हुए और सब तंत्रों के भी जो एक रूप कहे गये हैं ॥ १० ॥ और जो भक्तिगम्य व धर्म करनेवालों के सदैव सुखरूप व पवित्र हैं और गुणों से परे भी जो ये विष्णुजी नित्य व सर्वव्यापी और निर्गुणी हैं ॥ ११ ॥ और रचनेवाले व पालक तथा नाशक व अव्यक्त हैं ये सब प्राणियों के अनुकूल व महातेजस्वी विष्णु

जी किस कारण अश्वमुख हुए ॥ १२ ॥ और देवता, वृक्षादिक, नाग व पर्वत जिन के रोम से उत्पन्न हुए हैं और प्रत्येक कल्प में जिनके शरीर से सब संसार उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥ वही संसार को उत्पन्न करनेवाले और वही अत्यन्त कारण हैं जो कि नाश को प्राप्त सब विद्याओं व यज्ञों को फिर ले आये ॥ १४ ॥ और उन्होंने वेद के लिये उद्यम किया व इस हयग्रीव नामक दुष्ट दैत्य को मारा है ऐसे महाविष्णुजी कैसे अश्वमुख हुए हैं ॥ १५ ॥ और जिन्हों ने पीठ पै लीला से रत्नगर्भा (पृथ्वी) को धारण किया और जिन्हों ने चराचर संसार को कार्य से स्थापित किया ॥ १६ ॥ वे विश्वरूप देवजी कैसे अश्वमुख हुए और वाराहरूप करके जिन्हों

सर्वदेहिनाम् ॥ अनुकूलो महातेजाः कस्मादश्वमुखोऽभवत् ॥ १२ ॥ यस्य रोमोद्भवा देवा वृक्षाद्याः पन्नगा नगाः ॥ कल्पे कल्पे जगत्सर्वं जायते यस्य देहतः ॥ १३ ॥ स एव विश्वप्रभवः स एवात्यन्तकारणम् ॥ येनानीताः पुनर्विद्या यज्ञाश्च प्रलयं गताः ॥ १४ ॥ घातितो दुष्टदैत्योऽसौ वेदार्थं कृत उद्यमः ॥ एवमासीन्महाविष्णुः कथमश्वमुखोऽभवत् ॥ १५ ॥ रत्नगर्भा धृता येन पृष्ठदेशे च लीलया ॥ कृत्वा व्यवस्थितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ १६ ॥ स देवो विश्वरूपो वै कथं वाजिमुखोऽभवत् ॥ हिरण्याक्षस्य हन्ता यो रूपं कृत्वा वराहजम् ॥ १७ ॥ सुपवित्रं महातेजाः प्रविश्य जलसागरे ॥ उद्धृता च मही सर्वा ससागरमहीधरा ॥ १८ ॥ उद्धृता च मही नूनं दंष्ट्राग्रे येन लीलया ॥ कृत्वा रूपं वराहं च कपिलं शोकनाशनम् ॥ १९ ॥ स देवः कथमीशानो हयग्रीवत्वमागतः ॥ प्रह्लादार्थे स चेशानो रूपं कृत्वा भयावहम् ॥ २० ॥ नारसिंहं महादेवं सर्वदुष्टनिवारणम् ॥ पर्वताग्निसमुद्रस्थं ररक्ष भक्तसत्तमम् ॥ २१ ॥

ने हिरण्याक्ष को मारा ॥ १७ ॥ और बहुत पवित्र वाराहरूप को करके बड़े तेजस्वी वे विष्णुजी समुद्रों व पर्वतों समेत सब पृथ्वी को ऊपर ले आये ॥ १८ ॥ और जिन्हों ने वराहरूप करके लीला से दाढ़ के अग्रभाग से पृथ्वी को उठा लिया व शोकनाशक कपिलरूप को किया ॥ १९ ॥ वे विष्णुदेवजी कैसे हयग्रीव हुए और प्रह्लाद के लिये उन विष्णुजी ने सब दुष्टों को मना करनेवाले व भयनाशक नारसिंह महादेवरूप करके पर्वत, अग्नि व समुद्र में भी स्थित उत्तम भक्त की रक्षा की ॥ २० । २१ ॥

और दुष्ट हिरण्यकशिपु को जिन्हों ने संध्या में मारा व इन्द्रासन पै इन्द्रजी को बिठाल कर प्रह्लाद को सुख देनेवाले ॥ २२ ॥ नृसिंहरूप को वे विष्णुजी निश्चय कर प्रह्लाद के लिये प्राप्त हुए व ये विष्णुजी उस समय विरोचन के पुत्र बलि के आगे याचक हुए ॥ २३ ॥ और अश्वमेध यज्ञ में जो बलि से पूजे गये और जिन्हों ने तीन पग करके भूर्लोक व भुवर्लोक और स्वर्गलोक को हरलिया ॥ २४ ॥ और जिन्हों ने विश्वरूप से बलि को पाताल में पठाया और जिन्हों ने पृथ्वीतल में इक्कीस बार क्षत्रियों को मारकर ॥ २५ ॥ बड़े पराक्रम से पृथ्वी को ब्राह्मणों के लिये दिया व जिन्हों ने हैहय राजा को व माता को मारडाला ॥ २६ ॥ व विश्वामित्रजी

हिरण्यकशिपुं दुष्टं जघान रजनीमुखे ॥ इन्द्रासने च संस्थाप्य प्रह्लादस्य सुखप्रदम् ॥ २२ ॥ प्रह्लादार्थे च वै नूनं नृसिंहत्वमुपागतः ॥ विरोचनसुतस्याग्रे याचकोऽसावभूत्तदा ॥ २३ ॥ यज्ञे चैवाश्वमेधे वै बलिना यः समर्चितः ॥ हृता वसुमती तस्य त्रिपदीकृतरोदसी ॥ २४ ॥ विश्वरूपेण वै येन पाताले क्षपितो बलिः ॥ त्रिःसप्तवारं येनैव क्षत्रियानवनीतले ॥ २५ ॥ हत्वाऽददाच्च विप्रेभ्यो महीमतिमहौजसा ॥ घातितो हैहयो राजा येनैव जननी हता ॥ २६ ॥ येन वै शिशुनोर्व्यां हि घातिता दुष्टचारिणी ॥ राक्षसी ताडका नाम्नी कौशिकस्य प्रसादतः ॥ २७ ॥ विश्वामित्रस्य यज्ञे तु येन लीलानृदेहिना ॥ चतुर्द्दशसहस्राणि घातिता राक्षसा बलात् ॥ २८ ॥ हता शूर्पणखा येन त्रिशिराश्च निपातितः ॥ सुग्रीवं बालिनं हत्वा सुग्रीवेण सहायवान् ॥ २९ ॥ कृत्वा सेतुं समुद्रस्य रणे हत्वा दशाननम् ॥ धर्म्मारण्यं समासाद्य ब्राह्मणानन्वपूजयत् ॥ ३० ॥ शासनं द्विजवर्य्येभ्यो दत्त्वा ग्रामान्बहूंस्तथा ॥ स्नात्वा चैव धर्म्मवाप्यां मुदानान्यद

के प्रसाद से जिन बालकने दुष्ट काम करनेवाली ताड़का नामक राक्षसी को मारा ॥ २७ ॥ और लीला से मनुजशरीरधारी जिन विष्णुजी ने विश्वामित्रजी के यज्ञ में चौदह हज़ार राक्षसों को बल से मारा ॥ २८ ॥ और जिन्हों ने शूर्पणखा को मारा व त्रिशिरा को मारा और सुन्दरी ग्रीवावाले बालि को मारकर सुग्रीव के साथ सहायवान् होकर ॥ २९ ॥ समुद्र के मध्य में सेतु बनाकर समर में दशानन (रावण) को मारकर जिन्हों ने धर्मारण्य को आकर ब्राह्मणों को पूजन किया ॥ ३० ॥ और

जी किस कारण अश्वमुख हुए ॥ १२ ॥ और देवता, वृक्षादिक, नाग व पर्वत जिन के रोम से उत्पन्न हुए हैं और प्रत्येक कल्प में जिनके शरीर से सब संसार उत्पन्न होता है ॥ १३ ॥ वही संसार को उत्पन्न करनेवाले और वही अत्यन्त कारण हैं जो कि नाश को प्राप्त सब विद्याओं व यज्ञों को फिर ले आये ॥ १४ ॥ और उन्होंने वेद के लिये उद्यम किया व इस हयग्रीव नामक दुष्ट दैत्य को मारा है ऐसे महाविष्णुजी कैसे अश्वमुख हुए हैं ॥ १५ ॥ और जिन्हों ने पीठ पै लीला से रत्नगर्भा (पृथ्वी) को धारण किया और जिन्हों ने चराचर संसार को कार्य से स्थापित किया ॥ १६ ॥ वे विश्वरूप देवजी कैसे अश्वमुख हुए और वाराहरूप करके जिन्हों

सर्वदेहिनाम् ॥ अनुकूलो महातेजाः कस्मादश्वमुखोऽभवत् ॥ १२ ॥ यस्य रोमोद्भवा देवा वृक्षाद्याः पन्नगा नगाः ॥ कल्पे कल्पे जगत्सर्वं जायते यस्य देहतः ॥ १३ ॥ स एव विश्वप्रभवः स एवात्यन्तकारणम् ॥ येनानीताः पुनर्विद्या यज्ञाश्च प्रलयं गताः ॥ १४ ॥ घातितो दुष्टदैत्योऽसौ वेदार्थे कृत उद्यमः ॥ एवमासीन्महाविष्णुः कथमश्वमुखोऽभवत् ॥ १५ ॥ रत्नगर्भा धृता येन पृष्ठदेशे च लीलया ॥ कृत्या व्यवस्थितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ १६ ॥ स देवो विश्वरूपो वै कथं वाजिमुखोऽभवत् ॥ हिरण्याक्षस्य हन्ता यो रूपं कृत्वा वराहजम् ॥ १७ ॥ सुपवित्रं महातेजाः प्रविश्य जलसागरे ॥ उद्धृता च मही सर्वा ससागरमहीधरा ॥ १८ ॥ उद्धृता च मही नूनं दंष्ट्राग्रे येन लीलया ॥ कृत्वा रूपं वराहं च कपिलं शोकनाशनम् ॥ १९ ॥ स देवः कथमीशानो हयग्रीवत्वमागतः ॥ प्रह्लादार्थे स चेशानो रूपं कृत्वा भयावहम् ॥ २० ॥ नारसिंहं महादेवं सर्वदुष्टनिवारणम् ॥ पर्वताग्निसमुद्रस्थं ररक्ष भक्तसत्तमम् ॥ २१ ॥

ने हिरण्याक्ष को मारा ॥ १७ ॥ और बहुत पवित्र वाराहरूप को करके बड़े तेजस्वी वे विष्णुजी समुद्रों व पर्वतों समेत सब पृथ्वी को ऊपर ले आये ॥ १८ ॥ और जिन्हों ने वराहरूप करके लीला से दाढ़ के अग्रभाग से पृथ्वी को उठा लिया व शोकनाशक कपिलरूप को किया ॥ १९ ॥ वे विष्णुदेवजी कैसे हयग्रीव हुए और प्रह्लाद के लिये उन विष्णुजी ने सब दुष्टों को मना करनेवाले व भयनाशक नारसिंह महादेवरूप करके पर्वत, अग्नि व समुद्र में भी स्थित उत्तम भक्त की रक्षा की ॥ २० । २१ ॥

और दुष्ट हिरण्यकशिपु को जिन्हों ने संध्या में मारा व इन्द्रासन पै इन्द्रजी को बिठाल कर प्रह्लाद को सुख देनेवाले ॥ २२ ॥ नृसिंहरूप को वे विष्णुजी निश्चय कर प्रह्लाद के लिये प्राप्त हुए व ये विष्णुजी उस समय विरोचन के पुत्र बलि के आगे याचक हुए ॥ २३ ॥ और अश्वमेध यज्ञ में जो बलि से पूजे गये और जिन्हों ने तीन पग करके भूर्लोक व भुवर्लोक और स्वर्गलोक को हरलिया ॥ २४ ॥ और जिन्हों ने विश्वरूप से बलि को पाताल में पठाया और जिन्हों ने पृथ्वीतल में इक्कीस बार क्षत्रियों को मारकर ॥ २५ ॥ बडे पराक्रम से पृथ्वी को ब्राह्मणों के लिये दिया व जिन्हों ने हैहय राजा को व माता को मारडाला ॥ २६ ॥ व विश्वामित्रजी

हिरण्यकशिपुं दुष्टं जघान रजनीमुखे ॥ इन्द्रासने च संस्थाप्य प्रह्लादस्य सुखप्रदम् ॥ २२ ॥ प्रह्लादार्थे च वै नूनं नृसिंहत्वमुपागतः ॥ विरोचनसुतस्याग्रे याचकोऽसावभूत्तदा ॥ २३ ॥ यज्ञे चैवाश्वमेधे वै बलिना यः समर्चितः ॥ हृता वसुमती तस्य त्रिपदीकृतरोदसी ॥ २४ ॥ विश्वरूपेण वै येन पाताले क्षपितो बलिः ॥ त्रिःसप्तवारं येनैव क्षत्रियानवनीतले ॥ २५ ॥ हत्वाऽददाच्च विप्रेभ्यो महीमतिमहौजसा ॥ घातितो हैहयो राजा येनैव जननी हता ॥ २६ ॥ येन वै शिशुनोर्व्यां हि घातिता दुष्टचारिणी ॥ राक्षसी ताडका नाम्नी कौशिकस्य प्रसादतः ॥ २७ ॥ विश्वामित्रस्य यज्ञे तु येन लीलानृदेहिना ॥ चतुर्द्दशसहस्राणि घातिता राक्षसा बलात् ॥ २८ ॥ हता शूर्पणखा येन त्रिशिराश्च निपातितः ॥ सुग्रीवं बालिनं हत्वा सुग्रीवेण सहायवान् ॥ २९ ॥ कृत्वा सेतुं समुद्रस्य रणे हत्वा दशाननम् ॥ धर्म्मारण्यं समासाद्य ब्राह्मणानन्वपूजयत् ॥ ३० ॥ शासनं द्विजवर्येभ्यो दत्त्वा ग्रामान्बहूंस्तथा ॥ स्नात्वा चैव धर्म्मवाप्यां सुदानान्यद

के प्रसाद से जिन बालकने दुष्ट काम करनेवाली ताड़का नामक राक्षसी को मारा ॥ २७ ॥ और लीला से मनुजशरीरधारी जिन विष्णुजी ने विश्वामित्रजी के यज्ञ में चौदह हज़ार राक्षसों को बल से मारा ॥ २८ ॥ और जिन्हों ने शूर्पणखा को मारा व त्रिशिरा को मारा और सुन्दरी ग्रीवावाले बालि को मारकर सुग्रीव के साथ सहायवान् होकर ॥ २९ ॥ समुद्र के मध्य में सेतु बनाकर समर में दशानन (रावण) को मारकर जिन्हों ने धर्मारण्य को आकर ब्राह्मणों को पूजन किया ॥ ३० ॥ और

श्रेष्ठ ब्राह्मणों के लिये शिक्षा व बहुत से ग्रामों को देकर व धर्मवापी में नहाकर उत्तम दान व गौवों को दिया ॥ ३१ ॥ व साधुवों का पालन कर दुष्टों को दंड देने के लिये जिन के अन्य भी ऐसेही कर्म पृथ्वी में सुने गये हैं ॥ ३२ ॥ वे विष्णुदेवजी लीला से कर्म करके कैसे अश्वमुख हुए हैं और यादववंश में उत्पन्न होकर जिन्हों ने पूतना व शकटादिक को मारा ॥ ३३ ॥ और अरिष्टासुर, केशी, वृकासुर व बकासुर, शकटासुर, तृणावर्त व धेनुकासुर को जिन्हों ने मारा है ॥ ३४ ॥ और मल्ल, कंस व जरासंध को जिन्हों ने मारा है वे कालयवन को मारनेवाले विष्णुजी कैसे अश्वमुख हुए और समर में तारकासुर को मारकर व अयुतषट्पुर को नाश

दाद्दवाम् ॥ ३१ ॥ साधूनां पालनं कृत्वा निग्रहाय दुरात्मनाम् ॥ एवमन्यानि कर्म्माणि श्रुतानि च धरातले ॥ ३२॥ स देवो लीलया कृत्वा कथं चाश्वमुखोऽभवत् ॥ यो जातो यादवे वंशे पूतनाशकटादिकम् ॥ ३३ ॥ अरिष्टदैत्यः केशी च वृकासुरबकासुरौ ॥ शकटासुरो महासुरस्तृणावर्तश्च धेनुकः ॥ ३४ ॥ मल्लश्चैव तथा कंसो जरासन्धस्तथैव च ॥ कालयवनस्य हन्ता च कथं वै स हयाननः ॥ तारकासुरं रणे जित्वा अयुतषट्पुरं तथा ॥ ३५ ॥ कन्याश्चोद्वाहिता येन सहस्राणि च षड् दश ॥ अमानुषाणि कृत्वेत्थं कथं सोऽश्वमुखोऽभवत् ॥ ३६ ॥ त्राता यः सर्वभक्तानां हन्ता सर्वदुरात्मनाम् ॥ धर्मस्थापनकृत्सोऽपि कल्किर्विष्णुपदे स्थितः ॥ ३७ ॥ एतद्वै महदाश्चर्य्यं भवता यत्प्रकाशितम् ॥ एतदाचक्ष्व मे सर्वं कारणं त्रिपुरान्तक ॥ ३८ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ साधु पृष्टं महाबाहो कारणं तस्य वच्म्यहम् ॥ हयग्रीवस्य कृष्णस्य शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ ३९ ॥ व्यास उवाच ॥ पुरा देवैः समारब्धो यज्ञो नूनं धरातले ॥ वेदमन्त्रैराह्व

कर ॥ ३५ ॥ जिन्हों ने सोलह हज़ार कन्याओं का व्याह किया इस प्रकार अमानुष कर्मों को करके विष्णुजी कैसे अश्वमुख हुए ॥ ३६ ॥ व सब भक्तों के जो रक्षक हैं और सब दुष्टों के जो नाशक हैं धर्म को स्थापन करनेवाले वे कल्किजी विष्णुपद में स्थित हुए ॥ ३७ ॥ हे त्रिपुरान्तक ! आपने जो इस बड़े भारी आश्चर्य को प्रकाशित किया इस सब कारण को मुझ से कहिये ॥ ३८ ॥ श्रीशिवजी बोले कि हे महाबाहो ! तुम ने बहुत अच्छा पूंछा मैं उसका कारण कहता हूं तुम सावधान मन होकर हयग्रीव विष्णुजी का चरित्र सुनो ॥ ३९ ॥ व्यासजी बोले कि पुरातन समय पृथ्वी में देवताओं ने यज्ञ का प्रारंभ किया और वेदमंत्रों से बुलाने के लिये

सब रुद्रादिक देवता ॥ ४० ॥ अपने स्थान क्षीरसागर में व वैकुंठ में गये और पाताल में भी फिर जाकर उन्हों ने श्रीकृष्ण का दर्शन नहीं पाया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर मोह से संयुत सब देवता इधर उधर दौडनेलगे तब उन्हों ने ब्रह्मरूपी विष्णुजी को नहीं देखा ॥ ४२ ॥ और इन्द्रादिक वे सब देवता विचारनेलगे कि ये महाविष्णु जी कहा गये और किस यत्न से देख पड़ैंगे ॥ ४३ ॥ बृहस्पति देवजी को मस्तक से प्रणामकर देवताओं ने आदर से कहा कि हे देवदेव ! महाविष्णुजी को प्रसन्नता से कहिये ॥ ४४ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि मैं यह नहीं जानता हूं कि किस कार्य से योगीश व अच्युत महात्मवान् विष्णुजी योगारूढ़ हुए हैं ॥ ४५ ॥ क्षण भर अपने

यितुं सर्वे रुद्रपुरोगमाः ॥ ४० ॥ वैकुण्ठे च गताः सर्वे क्षीराब्धौ च निजालये ॥ पातालेऽपि पुनर्गत्वा न विदुः कृष्णद र्शनम् ॥ ४१ ॥ मोहाविष्टास्ततः सर्वे इतश्चेतश्च धाविताः ॥ नैव दृष्टस्तदा तैस्तु ब्रह्मरूपो जनार्दनः ॥ ४२ ॥ विचारयन्ति ते सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥ क गतोऽसौ महाविष्णुः केनोपायेन दृश्यते ॥ ४३ ॥ प्रणम्य शिरसा देवं वागीशं प्रोचुरा दरात् ॥ देवदेव महाविष्णुं कथयस्व प्रसादतः ॥ ४४ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ न जाने केन कार्येण योगारूढो महात्म वान् ॥ योगरूपोऽभवद्विष्णुर्योगीशो हरिरच्युतः ॥ ४५ ॥ क्षणं ध्यात्वा स्वमात्मानं धिषणेन ख्यापितो हरिः ॥ तत्र सर्वे गता देवा यत्र देवो जगत्पतिः ॥ ४६ ॥ तदा दृष्टो महाविष्णुर्ध्यानस्थोऽसौ जनार्दनः ॥ ध्यात्वा कृत्यसमा कारं सशरं दैत्यसूदनम् ॥ ४७ ॥ समाधिस्थं ततो दृष्ट्वा बोधोपायं प्रचक्रमे ॥ आह तांश्च तदा वम्रयो धनुर्गुणं प्रयत्न तः ॥ छेत्स्यन्ति चेत्तच्छब्देन प्रबुध्येत हरिः स्वयम् ॥ ४८ ॥ देवा ऊचुः ॥ गुणभक्षं कुरुध्वं वै येनासौ बुध्यते हरिः ॥

चित्त में ध्यान करके बृहस्पतिजी ने विष्णुजी को कहा और वहां सब देवता गये जहां कि जगदीश देवजी थे ॥ ४६ ॥ तब ध्यान में स्थित इन महाविष्णु जनार्दन जी को देखा और कार्य के समान आकारवाले बाण समेत दैत्यसूदन विष्णुजी को ॥ ४७ ॥ समाधि में स्थित देखकर बोध करने का यत्न किया व उन से तब कहा कि वंम्री[1] नामक कीट यदि बडे यत्न से धनुष के गुण को काटैं तो उसके शब्द से आपही विष्णुजी जगपड़ैंगे ॥ ४८ ॥ देवता बोले कि हे वम्रियो ! तुम धनुष के

१ पुस्तक व वस्त्रादि को काटनेवाला कीट।

गुण को भक्षण करो कि जिस से ये विष्णुजी बोधित होवैं क्योंकि यज्ञ के चाहनेवाले हमलोग विष्णु प्रभु को बोध कराते हैं ॥ ४९ ॥ वम्री बोलीं कि निद्राभंग, कथाछेद व स्त्री पुरुषों की मित्रता का भंग करना और बालक व माता का भेद करनेवाला मनुष्य नरक को जाता है ॥ ५० ॥ बड़े बलवान् जगदीश विष्णुजी समाधि में स्थित हैं व योग में आरूढ़ हैं उन श्रीविष्णुजी का हम विघ्न न करैंगी ॥ ५१ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे वम्रियो ! यदि देवकार्य किया जावै तो आप सबों को सर्वभक्षत्व होगा इससे वैसा करना चाहिये कि जिस प्रकार यज्ञ की सिद्धि होवै हे वत्स ! तब वह वम्रीशा फिर बोली ॥ ५२ ॥ वम्री बोली कि हे ब्रह्मन् ! मलय पवन

क्रत्वर्थिनो वयं वम्रयः प्रभुं विज्ञापयामहे ॥ ४९ ॥ वम्र्यच ऊचुः ॥ निद्राभङ्गं कथाच्छेदं दम्पत्योर्मैत्रभेदनम् ॥ शिशुमातृविभेदं वा कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ॥ ५० ॥ योगारूढो जगन्नाथः समाधिस्थो महाबलः ॥ तस्य श्रीजगदीशस्य विघ्नं नैव तु कुर्महे ॥ ५१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भवतां सर्वभक्षत्वं देवकार्यं क्रियेत चेत् ॥ कर्तव्यं च ततो वम्र्यो यज्ञसिद्धिर्यथा भवेत् ॥ वम्रीशा सा तदा वत्स पुनरेवमुवाच ह ॥ ५२ ॥ वम्र्युवाच ॥ दुःखसाध्यो जगन्नाथो मलयानिलसन्निभः ॥ कथं वा बोध्यतां ब्रह्मन्नस्माभिः सुरपूजितः ॥ ५३ ॥ नैव यज्ञेन मे कार्यं सुरैश्चैव तथैव च ॥ सर्वेषु यज्ञकार्येषु भागं ददतु मे सुराः ॥ ५४ ॥ देवा ऊचुः ॥ प्रदास्यामो वयं वम्र्यै भागं यज्ञेषु सर्वदा ॥ यज्ञाय दत्तमस्माभिः कुरुष्वैवं वचो हि नः ॥ ५५ ॥ तथेति विधिनाप्युक्तं वम्री चोद्यममाश्रिता ॥ गुणभक्षादिकं कर्म तया सर्वं कृतं नृप ॥ ५६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अशक्या बोधने देवा गुणभङ्गे समाधिषु ॥ एतदाश्चर्यं विप्रर्षे सत्यं सत्यवतीसुत ॥ ५७ ॥ व्यास उवाच ॥

के समान विष्णुजी दुःख से साधन करने योग्य हैं तो वे देवपूजित विष्णुजी कैसे हम से बोधित किये जावैं ॥ ५३ ॥ यज्ञोंसे व देवताओं से मेरा कार्य नहीं है हे देवताओ ! सब यज्ञकार्यों में मुझको भाग दीजिये ॥ ५४ ॥ देवता बोले कि वम्री के लिये हमलोग सदैव यज्ञों में भाग देवैंगे व यज्ञ के लिये हम सबों ने भाग दिया इस प्रकार तुम हमारा वचन करो ॥ ५५ ॥ वम्री ने भी बहुत अच्छा ऐसा कहा और वह उद्यम में आश्रित हुई व हे राजन् ! उसने गुणभक्षादिक सब कर्म को किया ॥ ५६ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे सत्यवतीसुत, ब्रह्मर्षे ! इन विष्णुजी की समाधियों में बोधन और गुणभंग में जो देवता समर्थ न हुए यह सत्य आश्चर्य है ॥ ५७ ॥ व्यासजी

सुरेशान ! प्रथम तुम्हीं हो व सदैव रक्षक तुम्हीं हो ॥१३॥ और यज्ञ, यज्ञपति, यज्वा, द्रव्य, होता व हवन तुम्हीं हो व हे देव ! तुम्हारे लिये हवन किया जाता है और रक्षक व मित्र तुम्हीं हो ॥१४॥ और करालरूपी काल तुम्हीं हो और सूर्य व चन्द्रमा तुम्हीं हो और अग्नि व वरुण तुम्हीं हो व काल को नाशनेवाले तुम्हीं हो ॥ १५ ॥ और तीनों गुण तुम्हीं हो व गुणों से रहित तुम्हीं हो और गुणों का स्थान तुम्हीं हो व सब जंतुवों में रक्षक तुम्हीं हो ॥ १६ ॥ और स्त्री व पुरुष में दो भांति तुम्हीं हो व पशु, पक्षी और मनुष्यों समेत चौरासी लक्षणोंवाला चार प्रकार का कुल तुम्हीं हो ॥ १७ ॥ व हे हरे ! दिनान्त, पक्षान्त, मासान्त, वर्ष व युग तुम्हीं हो और

व शरणं सदा ॥ १३ ॥ यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा द्रव्यं होता हुतस्तथा ॥ त्वदर्थं हूयते देव त्वमेव शरणं सखा ॥ १४ ॥ कालः करालरूपस्त्वं त्वं वार्कः शीतदीधितिः ॥ त्वमग्निर्वरुणश्चैव त्वं च कालक्षयङ्करः ॥ १५ ॥ गुणत्रयं त्वमेवेह गुणहीनस्त्वमेव हि ॥ गुणानामालयस्त्वं च गोप्ता सर्वेषु जन्तुषु ॥ १६ ॥ स्त्रीपुंसोश्च द्विधा त्वं च पशुपक्ष्यादिमानवैः ॥ चतुर्विधं कुलं त्वं हि चतुराशीतिलक्षणम् ॥ १७ ॥ दिनान्तश्चैव पक्षान्तो मासान्तो हायनं युगम् ॥ कल्पान्तश्च महान्तश्च कालान्तस्त्वं च वै हरे ॥ १८ ॥ एवंविधैर्महादिव्यैः स्तूयमानः सुरैर्नृप ॥ सन्तुष्टः प्राह सर्वेषां देवानां पुरतः प्रभुः ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किमर्थमिह सम्प्राप्ताः सर्वे देवगणा भुवि ॥ किमेतत्कारणं देवाः किं नु दैत्यप्रपीडिताः ॥ २० ॥ देवा ऊचुः ॥ न दैत्यस्य भयं जातं यज्ञकर्मोत्सुका वयम् ॥ त्वद्दर्शनपराः सर्वे पश्यामो वै दिशो दश ॥ २१ ॥ त्वन्मायामोहिताः सर्वे व्यग्रचित्ता भयातुराः ॥ योगारूढस्वरूपं च दृष्टं तेऽस्माभिरुत्तमम् ॥ २२ ॥ वम्री च नोदिता

कल्पान्त, महान्त व कालान्त तुम्हीं हो ॥ १८ ॥ हे नृप ! ऐसे महादिव्य स्तोत्रों से स्तुति कियेहुए प्रभु विष्णुजी ने प्रसन्न होकर सब देवताओं के आगे कहा ॥ १९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे देवताओ ! यहां पृथ्वी में तुमलोग सब देवताओं के गण किसलिये प्राप्त हुए हो यह क्या कारण है क्या दैत्यों से पीड़ित हुए हो ॥ २० ॥ देवता बोले कि दैत्य का भय नहीं हुआ है हमलोग यज्ञकर्म के उत्कंठित हैं और तुम्हारे दर्शन में परायण हम सब दशो दिशाओं को देखते हैं ॥ २१ ॥ और हम सब तुम्हारी माया से मोहित हैं व व्यग्रचित्तवाले तथा भय से विकल हैं और हमलोगों ने तुम्हारे योगारूढस्वरूप को देखा ॥ २२ ॥ व हे ईश्वर ! तुम्हारे जागरण के

विश्वकर्माजी कमल से उपजेहुए ब्रह्मा से बड़ी भक्ति से बोले कि अनेक भांति के देवता यह कहते हैं कि अश्व का शिर शीघ्रही काटो ॥ ४ ॥ यज्ञ भाग से रहित मुझ से बार २ क्यों मांगा जाता है हे देव ! देवताओं समेत मैं यज्ञभाग को पाऊं ॥५॥ ब्रह्माजी बोले कि हे सुरवर्द्धके ! मैं सब यज्ञों में तुमको भाग दूंगा व हे वीर ! वेदों को जाननेवालों से तुम पहले पूजे जावोगे ॥ ६ ॥ हे अमरवर्द्धके ! तब तक उन विष्णुजी के शिर को लगाइये विश्वकर्मा ने देवताओं से यह कहा कि शिर को लाइये ॥ ७ ॥ व हे नृपोत्तम ! सब देवता यह कहनेलगे कि वह नहीं है और मध्याह्न होने पर सूर्यनारायण आकाश में रथ पै स्थित थे ॥ ८ ॥ तब सब देवता

ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥ अश्वकायं निकृन्ताशु वदन्ति विविधाः सुराः ॥ ४ ॥ यज्ञभागविहीनं मां याच्यते किं पुनः पुनः ॥ यज्ञभागमहं देव लभेयैवं सुरैः सह ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ दास्यामि सर्वयज्ञेषु विभागं सुरवर्द्धके ॥ सोमे त्वं प्रथमं वीर पूज्यसे श्रुतिकोविदैः ॥ ६ ॥ तद्विष्णोश्च शिरस्तावत्सन्धत्स्वामरवर्द्धके ॥ विश्वकर्माब्रवीद्देवानानयध्वं शिर स्त्विति ॥ ७ ॥ तन्नास्तीति सुराः सर्वे वदन्ति नृपसत्तम ॥ मध्याह्ने तु समुद्भूते रथस्थो दिवि चांशुमान् ॥ ८ ॥ दृष्टं तदा सुरैः सर्वैं रथादश्वमथानयन् ॥ छित्त्वा शीर्षं महीपाल कबन्धाद्वाजिनो हरेः ॥ ९ ॥ कबन्धे योजयामास विश्व कर्मातिचातुरः ॥ दृष्ट्वा तं देवदेवेशं सुराः स्तुतिमकुर्वत ॥ १० ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्तेऽस्तु जगद्बीज नमस्ते कमला पते ॥ नमस्तेऽस्तु सुरेशान नमस्ते कमलेक्षण ॥ ११ ॥ त्वं स्थितिः सर्वभूतानां त्वमेव शरणं सताम् ॥ त्वं हन्ता सर्वदुष्टानां हयग्रीव नमोऽस्तु ते ॥ १२ ॥ त्वमोङ्कारो वषट्कारः स्वधा स्वाहा चतुर्विधा ॥ आद्यस्त्वं च सुरेशान त्वमे

देखे हुए अश्व को रथ से ले आये व हे भूपाल ! मस्तक को काटकर सूर्यनारायण के अश्व के कबंध से ॥ ९ ॥ बड़े चतुर विश्वकर्मा ने विष्णुजी के शिररहित शरीर में युक्त किया और उन देवदेवेश विष्णुजी को देखकर स्तुति करनेलगे ॥ १० ॥ देवता बोले कि हे जगद्बीज ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे लक्ष्मीपते ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे सुरेशान ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे कमलेक्षण ! आप के लिये प्रणाम है ॥ ११ ॥ सब प्राणियों की स्थिति तुम्हीं हो व सज्जनों के रक्षक तुम्हीं हो व हे हयग्रीव ! सब दुष्टों को मारनेवाले तुम्हीं हो तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १२ ॥ और ॐकार, वषट्कार, स्वाहा व स्वधा चार प्रकार के तुम्हीं हो व हे

सुरेशान ! प्रथम तुम्हीं हो व सदैव रक्षक तुम्हीं हो ॥१३॥ और यज्ञ, यज्ञपति, यज्वा, द्रव्य, होता व हवन तुम्हीं हो व हे देव ! तुम्हारे लिये हवन किया जाता है और रक्षक व मित्र तुम्हीं हो ॥१४॥ और करालरूपी काल तुम्हीं हो और सूर्य व चन्द्रमा तुम्हीं हो और अग्नि व वरुण तुम्हीं हो व काल को नाशनेवाले तुम्हीं हो ॥ १५ ॥ और तीनों गुण तुम्हीं हो व गुणों से रहित तुम्हीं हो और गुणों का स्थान तुम्हीं हो व सब जंतुओं में रक्षक तुम्हीं हो ॥ १६ ॥ और स्त्री व पुरुष में दो भांति तुम्हीं हो व पशु, पक्षी और मनुष्यों समेत चौरासी लक्षणोंवाला चार प्रकार का कुल तुम्हीं हो ॥ १७ ॥ व हे हरे ! दिनान्त, पक्षान्त, मासान्त, वर्ष व युग तुम्हीं हो और

व शरणं सदा ॥ १३ ॥ यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा द्रव्यं होता हुतस्तथा ॥ त्वदर्थं हूयते देव त्वमेव शरणं सखा ॥ १४ ॥ कालः करालरूपस्त्वं त्वं वार्कः शीतदीधितिः ॥ त्वमग्निर्वरुणश्चैव त्वं च कालक्षयङ्करः ॥ १५ ॥ गुणत्रयं त्वमेवेह गुणहीनस्त्वमेव हि ॥ गुणानामालयस्त्वं च गोप्ता सर्वेषु जन्तुषु ॥ १६ ॥ स्त्रीपुंसोश्च द्विधा त्वं च पशुपक्ष्यादिमानवैः ॥ चतुर्विधं कुलं त्वं हि चतुराशीतिलक्षणम् ॥ १७ ॥ दिनान्तश्चैव पक्षान्तो मासान्तो हायनं युगम् ॥ कल्पान्तश्च महान्तश्च कालान्तस्त्वं च वै हरे ॥ १८ ॥ एवंविधैर्महादिव्यैःस्तूयमानः सुरैर्नृप ॥ सन्तुष्टःप्राह सर्वेषां देवानां पुरतः प्रभुः ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किमर्थमिह सम्प्राप्ताः सर्वे देवगणा भुवि ॥ किमेतत्कारणं देवाः किं नु दैत्यप्रपीडिताः ॥ २० ॥ देवा ऊचुः ॥ न दैत्यस्य भयं जातं यज्ञकर्मोत्सुका वयम् ॥ त्वद्दर्शनपराः सर्वे पश्यामो वै दिशो दश ॥ २१ ॥ त्वन्मायामोहिताः सर्वे व्यग्रचित्ता भयातुराः ॥ योगारूढस्वरूपं च दृष्टं तेऽस्माभिरुत्तमम् ॥ २२ ॥ वम्री च नोदिता

कल्पान्त, महान्त व कालान्त तुम्हीं हो ॥ १८ ॥ हे नृप ! ऐसे महादिव्य स्तोत्रों से स्तुति कियेहुए प्रभु विष्णुजी ने प्रसन्न होकर सब देवताओं के आगे कहा ॥ १९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे देवताओ ! यहा पृथ्वी में तुमलोग सब देवताओं के गण किसलिये प्राप्त हुए हो यह क्या कारण है क्या दैत्यों से पीड़ित हुए हो ॥ २० ॥ देवता बोले कि दैत्य का भय नहीं हुआ है हमलोग यज्ञकर्म के उत्कंठित हैं और तुम्हारे दर्शन में परायण हम सब दशो दिशाओं को देखते हैं ॥ २१ ॥ और हम सब तुम्हारी माया से मोहित हैं व व्यग्रचित्तवाले तथा भय से विकल हैं और हमलोगों ने तुम्हारे योगारूढस्वरूप को देखा ॥ २२ ॥ व हे ईश्वर ! तुम्हारे जागरण के

लिये हमलोगों ने वम्री नामक कीट को पठाया तदनन्तर तुम्हारा अपूर्व शिर कट गया ॥ २३ ॥ हे प्रभो, विष्णो ! बड़े चतुर विश्वकर्मा ने सूर्य के घोड़े का शिर लाकर लगाया है इस कारण हयग्रीव हो ॥ २४ ॥ विष्णुजी बोले कि हे सब देवताओ ! मैं प्रसन्न हूं तुमलोगों को प्रिय वर दूंगा और संसार का स्वामी मैं हयग्रीव देवदेव हूं ॥ २५ ॥ और यह रूप न भयङ्कर है न कुरूप है बरन देवताओं से भी सेवित है व हे देवताओ ! प्रसन्न कराया हुआ हयानन ऐसा मैं वरदायक हुआ हूं ॥ २६ ॥ व्यासजी बोले कि यज्ञ करनेपर तदनन्तर ब्रह्माजी प्रसन्नचित्त से वम्री व विश्वकर्माजी के लिये यज्ञभाग को देकर ॥ २७ ॥ व यज्ञान्त में सुरश्रेष्ठ विश्वकर्माजी को प्रणाम

स्माभिर्जागराय तवेश्वर ॥ ततश्चापूर्वमभवच्छिरश्छिन्नं बभूव ते ॥ २३ ॥ सूर्याश्वशीर्षमानीय विश्वकर्मातिचातुरः ॥ समधत्त शिरो विष्णो हयग्रीवोऽस्यतः प्रभो ॥ २४ ॥ विष्णुरुवाच ॥ तुष्टोऽहं नाकिनः सर्वे ददामि वरमीप्सितम् ॥ हयग्रीवोऽस्म्यहं जातो देवदेवो जगत्पतिः ॥ २५ ॥ न रौद्रं न विरूपं च सुरैरपि च सेवितम् ॥ जातोऽहं वरदो देवा हयाननेति तोषितः ॥ २६ ॥ व्यास उवाच ॥ कृते सत्रे ततो वेधा धीमान्सन्तुष्टचेतसा ॥ यज्ञभागं ततो दत्त्वा वम्रीभ्यो विश्वकर्मणे ॥ २७ ॥ यज्ञान्ते च सुरश्रेष्ठं नमस्कृत्य दिवं ययौ ॥ एतच्च कारणं विद्धि हयाननो यतो हरिः ॥ २८ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ येनाक्रान्ता मही सर्वा क्रमेणैकेन तत्त्वतः ॥ विवरे विवरे रोम्णां वर्तन्ते च पृथक्पृथक् ॥ २९ ॥ ब्रह्माण्डानि सहस्राणि दृश्यन्ते च महाद्युते ॥ न वेत्ति वेदो यत्पारं शीर्षघातो हि वै कथम् ॥ ३० ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु त्वं पाण्डवश्रेष्ठ कथां पौराणिकीं शुभाम् ॥ ईश्वरस्य चरित्रं हि नैव वेत्ति चराचरे ॥ ३१ ॥ एकदा ब्रह्मसभायां

कर स्वर्ग को चलेगये इस कारण को जानिये कि जिससे विष्णुजी हयग्रीव हुए हैं ॥ २८ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि जिन्होंने एक पग से सब पृथ्वी को नापलिया व हे महाद्युते ! जिनके रोमों के प्रत्येक छिद्र में हज़ारों ब्रह्माण्ड वर्तमान हैं व पृथक् २ देख पड़ते हैं व वेद भी जिनका पार नहीं पाता है उनके शिरश्छेद को कैसे जानें ॥ २९।३० ॥ व्यासजी बोले कि हे पाण्डवश्रेष्ठ ! तुम पुराण की उत्तम कथाको सुनो ईश्वरके चरित्रको चराचर संसार में कोई नहीं जानता है ॥ ३१ ॥ एक समय

ब्रह्मा की सभा में इन्द्र समेत देवता गये सब भूर्लोकादिक व स्थावर और जङ्गम ॥ ३२ ॥ व देवता और सब ब्रह्मर्षि ब्रह्मा को प्रणाम करने के लिये गये और उस सभा में सम्मति के कारण विष्णु भी आगये ॥ ३३ ॥ तब विशेषकर गर्वित ब्रह्माने भी यह वचन कहा कि हे देवताओ ! सुनिये कि तीनों देवताओं के मध्य में कौन बड़ा भारी कारण है ॥ ३४ ॥ हे देवताओ ! ब्रह्मा, शिव व विष्णुजी के मध्य में सत्य कहिये उस वचन को सुनकर देवता विस्मय को प्राप्तहुए ॥ ३५ ॥ तदनन्तर देवताओं ने कहा कि हमलोग देवता यह नहीं जानते हैं तब सुरेश्वर विष्णुजी से ब्रह्मा की स्त्री ने कहा कि तीनों देवताओं के मध्य में मुझ से श्रेष्ठ को कहिये ॥ ३६ ॥

गता देवाः सवासवाः ॥ भूर्लोकाद्याश्च सर्वे हि स्थावराणि चराणि च ॥ ३२ ॥ देवा ब्रह्मर्षयः सर्वे नमस्कर्त्तुं पितामहम् ॥ विष्णुरप्यागतस्तत्र सभायां मन्त्रकारणात् ॥ ३३ ॥ ब्रह्माचापि विगर्विष्ठ उवाचेदं वचस्तदा ॥ भो भो देवाः शृणुध्वं कस्त्रयाणां कारणं महत् ॥ ३४ ॥ सत्यं ब्रुवन्तु वै देवा ब्रह्मेशविष्णुमध्यतः ॥ तां वाचं च समाकर्ण्य देवा विस्मयमागताः ॥ ३५ ॥ ऊचुश्चैव ततो देवा न जानीमो वयं सुराः ॥ ब्रह्मपत्नी तदोवाच विष्णुं प्रति सुरेश्वरम् ॥ त्रयाणामपि देवानां महान्तं च वदस्व मे ॥ ३६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ विष्णुमायाबलेनैव मोहितं भुवनत्रयम् ॥ ततो ब्रह्मोवाच चेदं न त्वं जानासि भो विभो ॥ ३७ ॥ नैव मुह्यन्ति ते मायाबलेन नैवमेव च ॥ गर्वहिंसापरो देवो जगद्भर्ता जगत्प्रभुः ॥ ३८ ॥ ज्येष्ठं त्वां न विदुः सर्वे विष्णुमायावृताः खिलाः ॥ ततो ब्रह्मा स रोषेण क्रुद्धः प्रस्फुरिताननः ॥ ३९ ॥ उवाच वचनं कोपाद्धे विष्णो शृणु मे वचः ॥ सभायां येन वक्त्रेण वचनं समुदीरितम् ॥ ४० ॥ तच्छीर्षं पततादाशु चाल्प

विष्णुजी बोले कि विष्णुजी की माया के बल से त्रिलोक मोहित है तदनन्तर ब्रह्माने कहा कि हे विभो ! तुम यह नहीं जानतेहो ॥ ३७ ॥ और तुम्हारी माया के बल से देवता नहीं मोहित होते हैं इस प्रकार गर्व की हिंसा में तत्पर न होवो कि संसार का स्वामी व संसार का पालन करनेवाला देवता मैं हूं ॥ ३८ ॥ और विष्णु की माया से घिरेहुए सब देवता तुमको ज्येष्ठ नहीं जानते हैं तदनन्तर रोष से कंपित मुखवाले उन क्रोधित ब्रह्मा ने ॥ ३९ ॥ कोप से यह वचन कहा कि हे विष्णो ! मेरा वचन सुनिये कि सभा में जिस मुख से वचन कहा गया ॥ ४० ॥ वह मस्तक थोड़ेही समय में शीघ्रही गिरपड़े तदनन्तर सब हाहाकार होगया और इन्द्र समेत व ऋषियों

सहित ॥ ४१ ॥ सुरोत्तमों ने विष्णुजी से क्षमापन कराया और विष्णुजी उस वचनको सुनकर यह बोले कि सत्य सत्य यह होगा ॥ ४२ ॥ तदनन्तर बड़े तेजस्वी सुरेश्वर विष्णुजी ने तीर्थ को उत्पन्न करने के कारण उस धर्मारण्य में तप किया और अश्वशिरवाले मुख को देखकर हयग्रीव विष्णुजी ने ॥ ४३ ॥ हे महाभाग, भारत! ब्रह्मा समेत ऐसा तप किया कि जिस को अन्य कोई नहीं करसक्ता है तब अपनाही से स्वयं प्रसन्न होगये ॥ ४४ ॥ और विष्णुकी माया से मोहित व विष्णुजी के आगे खड़े हुए तप से संयुत ब्रह्मा ने भी तीन सौ वर्षतक तप किया ॥ ४५ ॥ और देवदेव जगदीशजी ने यज्ञ के लिये प्रसन्न होकर कहा कि हे ब्रह्मन्! इस समय तुम्हारी

कालेन वै पुनः ॥ ततो हाहाकृतं सर्वे सेन्द्राः सर्षिपुरोगमाः ॥ ४१ ॥ ब्रह्माणं क्षमयामासुर्विष्णुं प्रति सुरोत्तमाः ॥ विष्णुश्च तद्वचः श्रुत्वा सत्यं सत्यं भविष्यति ॥ ४२ ॥ ततो विष्णुर्महातेजास्तीर्थस्योत्पादनेन च ॥ तपस्तेपे तु वै तत्र धर्मारण्ये सुरेश्वरः ॥ अश्वशीर्षं मुखं दृष्ट्वा हयग्रीवो जनार्द्दनः ॥ ४३ ॥ तपस्तेपे महाभाग विधिना सह भारत ॥ न शक्यं केनचित्कर्त्तुमात्मनात्मैव तुष्टवान् ॥ ४४ ॥ ब्रह्मापि तपसा युक्तस्तेपे वर्षशतत्रयम् ॥ तिष्ठन्नेव पुरो विष्णोर्विष्णुमायाविमोहितः ॥ ४५ ॥ यज्ञार्थमवदत्तुष्टो देवदेवो जगत्पतिः ॥ ब्रह्मंस्ते मुक्तताद्यास्ति मम मायाप्यदुःसहा ॥४६॥ ततो लब्धवरो ब्रह्मा हृष्टचित्तो जनार्द्दनः ॥ उवाच मधुरां वाचं सर्वेषां हितकारणात् ॥ ४७ ॥ अत्राभवन्महाक्षेत्रं पुण्यं पापप्रणाशनम् ॥ विधिविष्णुमयं चैतद्भवत्वेतन्न संशयः ॥ ४८ ॥ तीर्थस्य महिमा राजन्हयशीर्षस्तदा हरिः ॥ शुभाननो हि संजातः पूर्वेणैवाननेन तु ॥ ४९ ॥ कन्दर्पकोटिलावण्यो जातः कृष्णस्तदा नृप ॥ ब्रह्मापि तपसा युक्तो

मुक्तता है और मेरी माया भी तुमको दुस्सह म होगी ॥ ४६ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी ने वरको पाया व प्रसन्नचित्तवाले विष्णुजी ने सबों के हित के कारण मधुर वचन को कहा ॥ ४७ ॥ कि यहां पुण्यरूप पापनाशक महाक्षेत्र हुआ और ब्रह्मा व विष्णुमय यह तीर्थ होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ व तीर्थ की महिमा होगी हे राजन्! उस समय हयग्रीव विष्णुजी पहले के मुखके समान उत्तम मुखवाले होगये ॥ ४९ ॥ व हे नृप! श्रीकृष्णजी उस समय करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर होगये और देवताओं

के तीन सौ वर्षतक ब्रह्मा भी तपसे संयुत हुए ॥ ५० ॥ और सावित्री ने वहां तप किया जहां कि विष्णुजी की माया बाधा नहीं करती है और माया से ब्रह्मा का जो पांचवा शिर शार्दूल (व्याघ्र) का सा किया गया था ॥ ५१ ॥ वह धर्मारण्य में सुन्दर किया गया जिस को पुरातन समय शिवजी ने काटा था विष्णुजी उन के लिये वरको देकर तदनन्तर अन्तर्द्धान होगये ॥ ५२ ॥ व हे अरिंदम ! ब्रह्माजी वहा मुक्तेश नामक शिवदेवजी के मोक्षतीर्थ को व त्रिलोचनजी को थापकर ॥ ५३ ॥ देवताओं में श्रेष्ठ वे ब्रह्मा भी देवताओं से सेवित अपने स्थान को चलेगये और वहां तर्पण से तृप्त कियेहुए प्रेत स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ ५४ ॥ और उसके स्नान

दिव्यं वर्षशतत्रयम् ॥ ५० ॥ सावित्र्या च कृतं यत्र विष्णुमाया न बाधते ॥ मायया तु कृतं शीर्षं पञ्चमं शार्दुलस्य वा ॥ ५१ ॥ धर्मारण्ये कृतं रम्यं हरेण च्छेदितं पुरा ॥ तस्मै दत्त्वा वरं विष्णुर्जगामादर्शनं ततः ॥ ५२ ॥ स्थापयित्वा विधिस्तत्र तीर्थं चैव त्रिलोचनम् ॥ मुक्तेशंनाम देवस्य मोक्षतीर्थमरिंदम ॥ ५३ ॥ गतः सोऽपि सुरश्रेष्ठः स्वस्थानं सुरसेवितम् ॥ तत्र प्रेता दिवं यान्ति तर्पणेन प्रतर्पिताः ॥ ५४ ॥ अश्वमेधफलं स्नाने पाने गोदानजं फलम् ॥ पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ॥ ५५ ॥ स्नानार्थमत्रागच्छन्ति देवताः पितरस्तथा ॥ कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगे मुक्तेशं पूजयेत्तु यः ॥ ५६ ॥ स्नात्वा देवसरे रम्ये नत्वा देवं जनार्द्दनम् ॥ यः करोति नरो भक्त्या सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५७ ॥ भुक्त्वा भोगान्यथाकामं विष्णुलोकं स गच्छति ॥ अपुत्रा काकवन्ध्या च मृतवत्सा मृतप्रजा ॥ ५८ ॥ एकाम्बरेण सुस्नातौ पतिपत्न्यौ यथाविधि ॥ तद्दोषं नाशयेन्नूनं प्रजाप्तिप्रतिबन्धकम् ॥ ५९ ॥ मोक्षेश्वरप्रसादेन

में अश्वमेध यज्ञ का फल है व जल पीने में गोदान से उपजा हुआ फल है और पुष्करादिक तीर्थ व गंगादिक नदियां ॥ ५५ ॥ व देवता और पितर स्नान के लिये यहा आते हैं कार्त्तिकी पौर्णमासी में कृत्तिका नक्षत्र योग में जो मुक्तेशजी को पूजताहै ॥ ५६ ॥ व सुन्दर देवसर में नहाकर तथा जनार्दनजी को प्रणामकर जो मनुष्य भक्ति से ऐसा करता है वह सब पापों से छूटजाता है ॥ ५७ ॥ और चाहे हुए सुखों को भोगकर वह विष्णुलोक को जाता है और यदि अपुत्रिणी, काकबंध्या, मृतवत्सा व मृतप्रजा स्त्री होवै ॥ ५८ ॥ तो विधिपूर्वक एकवसन स्त्री पुरुष नहाकर पुत्रप्राप्ति के प्रतिबन्धकरूप उस दोषको निश्चयकर नाश करता है ॥ ५९ ॥ और मोक्षेश्वर के

प्रसाद से पुत्रों व पौत्रादिकों को बढ़ाता है अथवा सत्य से संयुत स्त्री भी यदि एक चित्त से वांसे के पात्र में फलों को धरकर देती है तो वह दोष से छूटजाती है व हे नृप ! देवता अग्निष्टोम के फल को पाते हैं ॥ ६० । ६१ ॥ और ब्रह्मा, विष्णु व महेश धर्मारण्य में देवसर में त्रिकाल स्नानकर उत्तम तपस्या करते हैं ॥ ६२ ॥ तदनन्तर वहां देवताओं ने मोक्षेश्वर शिवजी को स्थापन किया है और वहां सांग जप करके फिर स्तन को पीनेवाला नहीं होता है ॥ ६३ ॥ हे महाराज ! ऐसा क्षेत्र त्रिलोक में प्रसिद्ध है और श्रद्धा से संयुत जो मनुष्य पितरों का श्राद्ध करता है ॥ ६४ ॥ वह सात गोत्रों को व एक सौ एक पुश्तियों को तारता है और बड़ा सुन्दर देवसर

पुत्रपौत्रादि वर्द्धयेत् ॥ दद्यादेकेन चित्तेन फलानि सत्यसंयुता ॥ ६० ॥ निधाय वंशपात्रेऽपि नारी दोषात्प्रमुच्यते ॥ प्राप्नुवन्ति च देवाश्च अग्निष्टोमफलं नृप ॥ ६१ ॥ वेधा हरिर्हरश्चैव तप्यन्ते परमं तपः ॥ धर्मारण्ये त्रिसन्ध्यं च स्नात्वा देवसरस्यथ ॥ ६२ ॥ तत्र मोक्षेश्वरः शम्भुः स्थापितो वै ततः सुरैः ॥ तत्र साङ्गं जपं कृत्वा न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ ६३ ॥ एवं क्षेत्रं महाराज प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥ यस्तत्र कुरुते श्राद्धं पितॄणां श्रद्धयान्वितः ॥ ६४ ॥ उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ देवसरो महारम्यं नानापुष्पैः समन्वितम् ॥ श्यामं सकलकह्लारैर्विविधैर्जलजन्तुभिः ॥ ६५ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैः सेवितं सुरमानुषैः ॥ सिद्धैर्यक्षैश्च मुनिभिः सेवितं सर्वतः शुभम् ॥ ६६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कीदृशं तत्सरः ख्यातं तस्मिन्स्थाने द्विजोत्तम ॥ तस्य रूपं प्रकारं च कथयस्व यथातथम् ॥ ६७ ॥ व्यास उवाच ॥ साधु साधु महाप्राज्ञ धर्मपुत्र युधिष्ठिर ॥ यस्य संकीर्तनान्नूनं सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ६८ ॥ अतिस्वच्छतरं शीतं गङ्गोदकसमप्रभम् ॥

अनेक भांति के पुष्पों से संयुत है व सब कमल और जलजन्तुओं से श्याम है ॥ ६५ ॥ और ब्रह्मा, विष्णु व महेशादिकों से तथा देवताओं व मनुष्यों से सेवित है व सिद्धों, यक्षों तथा मुनियों से सेवित और सब ओर से उत्तम है ॥ ६६ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! उस स्थान में वह तड़ाग कैसा प्रसिद्ध है उसका रूप व प्रकार यथायोग्य कहिये ॥ ६७ ॥ व्यासजी बोले कि हे महाप्राज्ञ, धर्मपुत्र, युधिष्ठिर ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा आपने पूंछा जिसका कीर्तन करने से मनुष्य निश्चय कर सब पापों से छूटजाता है ॥ ६८ ॥ हे नृपोत्तम ! उसका जल बहुतही निर्मल, ठण्ढा व गंगाजल के समान प्रभावान् और पवित्र, मधुर तथा स्वादिष्ठ

है ॥ ६९ ॥ और वह महाविशाल, गंभीर व मनोहर देवखात है और वह गंभीर लहरी आदिकों से व फेन और भँवरों से संयुत है ॥ ७० ॥ व मछली, मेढक, कछुवा और मकरों से संयुत है और शंख व शुक्ति आदिकों से युक्त तथा राजहंसों से शोभित है ॥ ७१ ॥ और बरगद व पकरिया के वृक्षों से युक्त व पीपल और आम्रों से घिरा है और चकई, चकवा से संयुत तथा बगुला, सारस व टिट्टिभ पक्षियों से युक्त है ॥ ७२ ॥ और सुन्दर व बहुत सुगन्ध से युक्त तथा कमलों से शोभित है और सब पक्षियों से सेवित तथा सारस आदिकों से सुशोभित है ॥ ७३ ॥ व हे राजन्! देवताओं समेत मुनियों और ब्राह्मणों व मनुष्यों से सेवित तथा दुःखनाशक

पवित्रं मधुरं स्वादु जलं तस्य नृपोत्तम ॥ ६९ ॥ महाविशालं गम्भीरं देवखातं मनोरमम् ॥ लहर्यादिभिर्गम्भीरैः फेनावर्तसमाकुलम् ॥ ७० ॥ झषमण्डूककमठैर्मकरैश्च समाकुलम् ॥ शङ्खशुक्त्यादिभिर्युक्तं राजहंसैः सुशोभितम् ॥ ७१ ॥ वटप्लक्षैः समायुक्तमश्वत्थाम्रैश्च वेष्टितम् ॥ चक्रवाकसमोपेतं बकसारसटिट्टिभैः ॥ ७२ ॥ कमनीयप्रगन्धाढ्यं शतपत्रैः सुशोभितम् ॥ सेव्यमानं द्विजैः सर्वैः सारसाद्यैः सुशोभितम् ॥ ७३ ॥ सदेवैर्मुनिभिश्चैव विप्रैर्मर्त्यैश्च भूमिप ॥ सेवितं दुःखहं चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ७४ ॥ अनादिनिधनोपेतं सेवितं सिद्धमण्डलैः ॥ स्नानादिभिः सर्वदैव तत्सरो नृपसत्तम ॥ ७५ ॥ विधिना कुरुते यस्तु नीलोत्सर्गं च तत्तटे ॥ प्रेता नैव कुले तस्य यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ७६ ॥ कन्यादानं च ये कुर्युर्विधिना तत्र भूपते ॥ ते तिष्ठन्ति ब्रह्मलोके यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ७७ ॥ महिषीं गृहदासीं च सुरभीं सुतसंयुताम् ॥ हेम विद्यां तथा भूमिं रथांश्च गजवाससी ॥ ७८ ॥ ददाति श्रद्धया तत्र सोऽक्षय्यं स्वर्गमश्नुते ॥ देवखातस्य मा

व समस्त पातकों का विनाशक है ॥ ७४ ॥ और हे नृपोत्तम! आदि अन्त रहित तथा सिद्ध मंडलों से सदैव ही वह तड़ाग स्नानादिकों से सेवित है ॥ ७५ ॥ जो मनुष्य उसके किनारे पै विधि से नीलोत्सर्ग करता है उसके कुल में चौदह इन्द्र पर्यन्त प्रेत नहीं होते हैं ॥ ७६ ॥ व हे भूपते! वहां विधि से जो कन्यादान करते हैं वे प्रलय पर्यन्त ब्रह्मलोक में स्थित होते हैं ॥ ७७ ॥ और भैंसी, गृह, दासी और बछड़ा से संयुत गऊ, सुवर्ण, विद्या, भूमि, रथ और हाथी व वस्त्रों को ॥ ७८ ॥ जो वहां

श्रद्धा से देता है वह अक्षय स्वर्ग को पाता है और इस देवखात (बिन खोदे हुए तड़ाग) का माहात्म्य जो शिवजी के समीप पढ़ता है वह दीर्घ आयुर्बल व सुखको पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७९ ॥ व हे युधिष्ठिर ! जो स्त्री या पुरुष इस अद्भुत माहात्म्य को सुनता है उस के वंश में कल्पान्त में भी कल्याण होता है ॥८०॥ यह सब हयग्रीव का कारण कहा गया व सब पापों के नाश के लिये उस तीर्थ का प्रभाव कहा गया ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायांहयग्रीवस्याख्यानवर्णनंनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

हात्म्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ॥ दीर्घमायुस्तथा सौख्यं लभते नात्र संशयः ॥ ७९ ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या नारी वा त्विदमद्भुतम् ॥ कुले तस्य भवेच्छ्रेयः कल्पान्तेऽपि युधिष्ठिर ॥ ८० ॥ एतत्सर्वं मयाख्यातं हयग्रीवस्य कारणम् ॥ प्रभावस्तस्य तीर्थस्य सर्वपापापनुत्तये ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्ये हयग्रीवस्याख्यानवर्णनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ रक्षसां चैव दैत्यानां यक्षाणामथ पक्षिणाम् ॥ भयनाशाय काजेशैर्धर्मारण्यनिवासिनाम् ॥ १ ॥ शक्तिः संस्थापिता नूनं नानारूपा ह्यनेकशः ॥ तासां स्थानानि नामानि यथारूपाणि मे वद ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु पार्थ महाबाहो धर्ममूर्ते नृपोत्तम ॥ स्थाने वै स्थापिता शक्तिः काजेशैश्चैव गोत्रपा ॥ ३ ॥ श्रीमाता मदारिका यां शान्ता नन्दापुरे वरे ॥ रक्षार्थं द्विजमुख्यानां चतुर्दिक्षु स्थिताश्च ताः ॥ ४ ॥ युक्ताश्चैव सुरैः सर्वैः स्वस्वस्थाने

दो० । धर्मारण्य क्षेत्र में जिमि आनन्दा शक्ति । थपी सोलहें में सोई अहै चरित की उक्ति ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि राक्षस, दैत्य, यक्ष व पक्षियों के सकाश से धर्मारण्यनिवासियों के भय के नाश के लिये ब्रह्मा, विष्णु व महेश ने ॥ १ ॥ निश्चय कर अनेक रूपवाली अनेक शक्तियों को स्थापन किया है उनके स्थान व नामों को जैसे रूप हों वैसे कहिये ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि हे महाबाहो, धर्ममूर्ते, नृपोत्तम, पार्थ ! उस स्थान में ब्रह्मा, विष्णु व महेश से गोत्रपा शक्ति थापी गई है ॥ ३ ॥ और मदारिका में श्रीमाता व उत्तम नंदापुर में शांता है मुख्य ब्राह्मणों की रक्षा के लिये वे चारों दिशाओं में स्थित हैं ॥ ४ ॥ व हे नृपोत्तम ! सब

देवताओं ने अपने अपने स्थान में युक्त किया है और वन के मध्य में ब्राह्मणों की रक्षा के लिये सब शक्तियां स्थित हैं ॥ ५ ॥ व हे महाराज ! सावित्री ऐसी प्रसिद्ध वह शिवा हुई है और दैत्यों के विनाश के लिये देवताओं ने ज्ञानजा शक्ति को स्थापित किया है ॥ ६ ॥ और गात्रायी व पक्षिणी देवी और छत्रजा, द्वारवासिनी, शीहोरी व जो चूटसंज्ञक है और पिप्पलाशापुरी व अन्य बहुतसी शक्तियां भय से रक्षा करने में स्थापित कीगई हैं ॥ ७ ॥ और पश्चिम, उत्तर व दक्षिण में देवताओं ने उस शक्ति को स्थापन किया है और वह अनेक प्रकार के अस्त्रों को धारण किये व अनेक आभूषणों से भूषित है ॥ ८ ॥ और वह अनेक प्रकार की सवा-

नृपोत्तम ॥ वनमध्ये स्थिताः सर्वा द्विजानां रक्षणाय वै ॥ ५ ॥ सा बभूव महाराज सावित्रीतिप्रथा शिवा ॥ असुराणां व धार्थाय ज्ञानजा स्थापिता सुरैः ॥ ६ ॥ गात्रायी पक्षिणी देवी छत्रजा द्वारवासिनी ॥ शीहोरी चूटसंज्ञा या पिप्पला शापुरी तथा ॥ अन्याश्च बहवश्चैव स्थापिता भयरक्षणे ॥ ७ ॥ प्रतीच्योदीच्यां याम्यां वै विबुधैः स्थापिता हि सा ॥ नानायुधधरा सा च नानाभरणभूषिता ॥ ८ ॥ नानावाहनमारूढा नानारूपधरा च सा ॥ नानाकोपसमायुक्ता नाना भयविनाशिनी ॥ ९ ॥ स्थाप्या मातर्यथास्थाने यथायोग्या दिशोदश ॥ गरुडेन समारूढा त्रिशूलवरधारिणी ॥ १० ॥ सिंहारूढा शुद्धरूपा वारुणी पानदर्पिता ॥ खड्गखेटकबाणाद्यैः करैर्भाति शुभानना ॥ ११ ॥ रक्तवस्त्रावृता चैव पीनोन्नतपयोधरा ॥ उद्यदादित्यबिम्बाभा मदाघूर्णितलोचना ॥ १२ ॥ एवमेषा महादिव्या काजेशैः स्थापिता

रियों पै सवार व अनेक भांति के रूपों को धारण किये है व अनेक भांति के क्रोध से संयुत व अनेक भांति के भय को नाशनेवाली है ॥ ९ ॥ और यथायोग्य स्थान व यथायोग्य दशो दिशाओं में मातृका स्थापन करने योग्य हैं व उत्तम त्रिशूल को धारण किये वे गरुड़ पै चढ़ी हैं ॥ १० ॥ व शुद्धरूपवाली वह शक्ति सिंह पै सवार और मदिरा पीने से गर्वित है व खड्ग, खेटक और बाण से संयुत हाथों से उत्तम मुखवाली वह शोभित है ॥ ११ ॥ और लाल वसन को पहने व कठोर तथा ऊंचे स्तनोंवाली है और उदय होते हुए सूर्यबिम्ब के समान तथा मद से घूर्णित नेत्रोंवाली है ॥ १२ ॥ उस समय यह महादिव्य शक्ति सत्यमंदिर में बसनेवाले

सब जंतुवों की रक्षा के लिये स्थापित कीगई है ॥ १३ ॥ हे नृपोत्तम ! स्तुति कीहुई व पूजीहुई वह देवी सदैव सब चाहे हुए मनोरथों को देती है ॥ १४ ॥ और धर्मारण्य से पश्चिम में उत्तम छत्रजा शक्ति स्थापित कीगई है और कितेक शक्तियों से संयुत वहां स्थित वह शक्ति ब्राह्मणों की रक्षा करती है ॥ १५ ॥ भयंकर रूप में स्थित होकर वे शक्तियां राक्षसों के मारने के लिये व ब्राह्मणों के अभय के लिये इस प्रकार के अस्त्रों को धारण करती हैं॥ १६ ॥ हे महाभाग ! उसके आगे जल से पूर्ण उत्तम तड़ाग को उसने किया है इस तड़ाग में स्नानादिक व तर्पण करके ॥ १७ ॥ पिंडदानादिक सब कर्म अक्षय होता है और पृथ्वी में जो दिव्य जलांजलियों को

तदा ॥ रक्षार्थं सर्वजन्तूनां सत्यमन्दिरवासिनाम् ॥ १३ ॥ सा देवी नृपशार्दूल स्तुता संपूजिता सदा ॥ ददाति सकलान्कामान्वाञ्छितान्नृपसत्तम ॥ १४ ॥ धर्मारण्यात्पश्चिमतः स्थापिता छत्रजा शुभा ॥ तत्रस्था रक्षते विप्रान्कियच्छक्तिसमन्विता ॥ १५ ॥ भैरवं रूपमास्थाय राक्षसानां वधाय च ॥ धारयन्त्यायुधानीत्थं विप्राणामभयाय च ॥ १६ ॥ सरश्चकार तस्याग्रे उत्तमं जलपूरितम् ॥ सरस्यस्मिन्महाभाग कृत्वा स्नानादितर्पणम् ॥ १७ ॥ पिण्डदानादिकं सर्वमक्षयं चैव जायते ॥ भूमौ क्षिप्ताञ्जलीन्दिव्यान्धूपदीपादिकं सदा ॥ १८ ॥ तस्य नो बाधते व्याधिः शत्रूणां नाश एव च ॥ बलिदानादिकं तत्र कुर्याद्भूयः स्वशक्तितः ॥ १९ ॥ शत्रवो नाशमायान्ति धनं धान्यं विवर्धते ॥ आनन्दा स्थापिता राजञ्छक्त्यंशा च मनोरमा ॥ २० ॥ रक्षणार्थं द्विजातीनां माहात्म्यं शृणु भूपते ॥ शुक्लाम्बरधरा दिव्या हेमभूषणभूषिता ॥ २१ ॥ सिंहारूढा चतुर्हस्ता शशाङ्ककृतशेखरा ॥ मुक्ताहारलतोपेता पीनोन्नतपयोधरा ॥ २२ ॥ अक्ष

देता है व जो सदैव धूप दीपादिक करता है ॥ १८ ॥ उसको रोग पीडा नहीं करता है और शत्रुवों का नाशही होता है फिर अपनी शक्ति से वहां जो बलिदानादिक कर्म करता है ॥ १९ ॥ उसके शत्रु नाश होते हैं और धन व धान्य बढ़ता है हे राजन् ! सुन्दरी आनंदा नामक शक्त्यंश ब्राह्मणों की रक्षा के लिये स्थापित कीगई है हे भूपते ! उसका माहात्म्य सुनिये कि श्वेत वसन को धारण किये व सुवर्ण के भूषण से भूषित वह दिव्य शक्ति ॥ २० । २१ ॥ जिसके चार हाथ हैं व चन्द्रमा को जो मस्तक में धारण किये है वह सिंह पै सवार व मुक्काहार की लता से संयुत तथा कठोर व ऊंचे स्तनोंवाली है ॥ २२ ॥ और रुद्राक्ष की माला व तल-

वार को हाथ में लिये तथा गुण व तोमर अस्त्र को धारण किये है व सुगंधित तथा दिव्य वसनों को पहने और दिव्य मालाओं से भूषित है ॥ २३ ॥ हे राजन्! उस नगर में पहले आनंदा नामक सात्त्विकी शक्ति स्थित हुई है उस को कपूर व लाल चन्दन से पूजै ॥ २४ ॥ और शहद, घी व शक्कर समेत उत्तम खीर से भोजन करावै हे राजन्! पार्वतीजी की प्रीति के लिये कुमारी का पूजनकरै ॥ २५ ॥ हे नृपोत्तम! वहां जप, हवन, दान व ध्यान वह सब अक्षय होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ व हे नृपोत्तम! उस स्थान में त्रिगुण करने पर तिगुनी वृद्धि होती है और निश्चय कर साधक के धन व स्त्री आदिक संपदा होती हैं ॥ २७ ॥ और न हानि होती है

मालासिहस्ता च गुणतोमरधारिणी ॥ दिव्यगन्धाम्बरधरा दिव्यमालाविभूषिता ॥ २३ ॥ सात्त्विकी शक्तिरानन्दा स्थिता तस्मिन्पुरे पुरा ॥ पूजयेत्तां च वै राजन्कर्पूरारक्तचन्दनैः ॥ २४ ॥ भोजयेत्पायसैः शुभ्रैर्मध्वाज्यसितया सह ॥ भवान्याः प्रीतये राजन्कुमार्याः पूजनं तथा ॥ २५ ॥ तत्र जप्तं हुतं दत्तं ध्यातं च नृपसत्तम ॥ तत्सर्वं चाक्षयं तत्र जायते नात्र संशयः ॥ २६ ॥ त्रिगुणे त्रिगुणा वृद्धिस्तस्मिन्स्थाने नृपोत्तम ॥ साधकस्य भवेन्नूनं धनदारादि सम्पदः ॥ २७ ॥ न हानिर्न च रोगश्च न शत्रुर्न च दुष्कृतम् ॥ गावस्तस्य विवर्द्धन्ते धनधान्यादिसङ्कुलम् ॥ २८ ॥ न शाकिन्या भयं तस्य न च राज्ञश्च वैरिणः ॥ न च व्याधिभयं चैव सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ २९ ॥ विद्याश्चतुर्दशा स्यैव भासन्ते पठिता इव ॥ सूर्यवद्द्योतते भूमावानन्दामाश्रितो नरः ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येआनन्दास्थापनवर्णनन्नामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

न रोग होता है न शत्रु और न पाप होता है और उसके गाइयां बढ़ती हैं व धन, धान्यादि से संयुत होता है ॥ २८ ॥ और उसको शाकिनी की भय नहीं होती व राजा और शत्रु व रोग की भय नहीं होती है और वह सब कहीं विजयवान् होता है ॥ २९ ॥ और इसको पढ़ी हुई सी चौदह विद्या भासित होती हैं और आनन्दा के आश्रित मनुष्य पृथ्वी में सूर्य के समान प्रकाशित होता है ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामानन्दास्थापनवर्णनं नामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । थापित है देवी यथा श्रीमाता-इमि नाम । सत्रहवें अध्याय में सोई चरित ललाम ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन् ! दक्षिण में बड़ी बलवती शांता देवी स्थापित है वह विचित्र वसन को धारण किये व वनमाला से भूषित है ॥ १ ॥ हे महाराज ! मधुकैटभ को नाशनेवाली वह तामसी शक्ति है हे नृपोत्तम ! विष्णुजी ने वहां शिवजी की स्त्री को स्थापित किया है ॥ २ ॥ और आठ भुजाओंवाली वह सुन्दरी मेघों के समान श्याम व मनोहारिणी है और काले वसन को पहने हुई वह देवी व्याघ्र की सवारी पै स्थित है ॥ ३ ॥ और व्याघ्र के चर्म को पहने व दिव्य भूषणों से भूषित है और वह उत्तम देवी घंटा, त्रिशूल, रुद्राक्षमाला व कमंडलु

व्यास उवाच ॥ दक्षिणे स्थापिता राजञ्छान्ता देवी महाबला ॥ सा विचित्राम्बरधरा वनमालाविभूषिता ॥ १ ॥ तामसी सा महाराज मधुकैटभनाशिनी ॥ विष्णुना तत्र वै न्यस्ता शिवपत्नी नृपोत्तम ॥ २ ॥ सा चैवाष्टभुजा रम्या मेघश्यामा मनोरमा ॥ कृष्णाम्बरधरा देवी व्याघ्रवाहनसंस्थिता ॥ ३ ॥ द्वीपिचर्मपरीधाना दिव्याभरणभूषिता ॥ घण्टात्रिशूलाक्षमालाकमण्डलुधरा शुभा ॥ ४ ॥ अलङ्कृतभुजा देवी सर्वदेवनमस्कृता ॥ धनं धान्यं सुतान्भोगान्स्वभक्तेभ्यः प्रयच्छति ॥ ५ ॥ पूजयेत्कमलैर्दिव्यैः कर्पूरागरुचन्दनैः ॥ तदुद्देशेन तत्रैव पूजयेद्द्विजसत्तमान् ॥ ६ ॥ कुमारीर्भोजयेदन्नैर्विविधैर्भक्तिभावतः ॥ धूपैर्दीपैः फलैः रम्यैः पूजयेच्च सुरादिभिः ॥ ७ ॥ मांसैस्तु विविधैर्दिव्यैरथवा धान्यपिष्टजैः ॥ अन्यैश्च विविधैर्धान्यैः पायसैर्वटकैस्तथा ॥ ८ ॥ ओदनैः कृशरापूपैः पूजयेत्सुसमाहितः ॥ स्तुतिपाठेन तत्रै

को धारण किये है ॥ ४ ॥ और भूषित भुजाओंवाली वह देवी सब देवताओं से नमस्कृत है और अपने भक्तों के लिये वह धन, धान्य, पुत्र व सुखों को देती है ॥ ५ ॥ और दिव्य कमलों से व कपूर, अगुरु और चंदन से पूजै व उनके उद्देश से वहीं द्विजोत्तमों को पूजै ॥ ६ ॥ व अनेक भांति के अन्नों से भक्ति, भाव से कुमारियों को पूजै और धूप, दीप व सुन्दर फलों से और मदिरादिकों से पूजै ॥ ७ ॥ व अनेक भांति के दिव्य मांसों से व धान्य के पिसान से उपजे हुए व्यंजनों से और अनेक प्रकार के अन्य धान्यों से व पायस और वटक (बरा नामक व्यंजन) से पूजै ॥ ८ ॥ और सावधान होता हुआ मनुष्य भात व तिलौदन और पुवों से पूजै और स्तुतिपाठ

से वहाँ सुन्दर शक्ति के स्तोत्रों से जो आराधन करै ॥ ९ ॥ उस के शत्रु नाश होजाते हैं और वह सब कहीं विजयी होता है और समर, राजकुल व द्यूत में जय व मंगल को पाता है ॥ १० ॥ व हे महाराज ! सौम्य व शांत जो कुलमातृका थापी गई है वह श्रीमाता प्रसिद्ध है हे भूपते ! उसका माहात्म्य सुनिये ॥ ११ ॥ कि हे नृपसत्तम ! वहा जो कुलमाता महाशक्ति है उस कुमारी ब्रह्मपुत्री को ब्रह्माने रक्षा के लिये किया है ॥ १२ ॥ और वह स्थानमाता नाम से श्रीमाता देवी प्रसिद्ध है और वह त्रिरूपा ब्राह्मणों की रक्षा के लिये निर्माण कीगई है ॥ १३ ॥ और कमंडलु को धारण किये वह देवी घंटा के आभूषण से भूषित है व हे राजन् ! रुद्राक्ष

व शक्तिस्तोत्रैर्मनोहरैः ॥ ९ ॥ रिपवस्तस्य नश्यन्ति सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ रणे राजकुले द्यूते लभते जयमङ्गलम् ॥ १० ॥ सौम्या शान्ता महाराज स्थापिता कुलमातृका ॥ श्रीमाता सा प्रसिद्धा च माहात्म्यं शृणु भूपते ॥ ११ ॥ कुलमाता महाशक्तिस्तत्रास्ते नृपसत्तम ॥ कुमारी ब्रह्मपुत्री सा रक्षार्थं विधिना कृता ॥ १२ ॥ स्थानमाता च सा देवी श्रीमाता साभिधानतः ॥ त्रिरूपा सा द्विजातीनां निर्मिता रक्षणाय च ॥ १३ ॥ कमण्डलुधरा देवी घण्टाभरणभूषिता ॥ अक्षमालायुता राजञ्छुभा सा शुभरूपिणी ॥ १४ ॥ कुमारी चादिमाता च स्थानत्राणकरापि च ॥ दैत्यघ्नी कामदा चैव महामोहविनाशिनी ॥ १५ ॥ भक्तिगम्या च सा देवी कुमारी ब्रह्मणः सुता ॥ रक्ताम्बरधरा साधुरक्तचन्दनचर्चिता ॥ १६ ॥ रक्तमाल्या दशभुजा पञ्चवक्त्रा सुरेश्वरी ॥ चन्द्रावतंसिका माता सुरासुरनमस्कृता ॥ १७ ॥ साक्षात्स

की माला से संयुत वह उत्तम शक्ति कल्याणरूपिणी है ॥ १४ ॥ और कुमारी व आदिमाता वह स्थान की रक्षा करनेवाली है और दैत्यों को नाशनेवाली व कामदायिनी तथा महामोह को नाशनेवाली है ॥ १५ ॥ और वह भक्ति से सुलभ कुमारी देवी ब्रह्मा की कन्या लाल वसन को धारण किये व उत्तम लाल चन्दन से पूजित है ॥ १६ ॥ और लाल मालाओं को पहने दश भुजाओंवाली सुरेश्वरी देवी पांच मुखोंवाली है और चन्द्रमा का शिरोभूषण किये वह माता देवताओं व दैत्यों से नमस्कृत है ॥ १७ ॥ और साक्षात् सरस्वतीरूपिणी वह ब्रह्मा से रक्षा के लिये कीगई है और महापवित्र वह ॐकारा ब्रह्मा, विष्णु व शिव जी से बनाई गई

है ॥ १८ ॥ और ऋषियों से व सिद्ध, यक्षादिक, देवता, नाग व मनुष्यों से प्रणाम करने योग्य दोनों चरणोंवाली वह उनके लिये मन से चाहे हुए पदार्थ को देती है ॥ १९ ॥ और ब्राह्मणों के हित के लिये स्थान की रक्षा करती है और जैसे औरस पुत्रों की माता रक्षा करती है वैसेही वह उत्तम गुणों से रक्षा करती है ॥ २० ॥ और श्रीमाता कुलदेवता देवी पालन करती है व स्तुति कीहुई वह शक्ति सदैव सब उपद्रवों को नाश करती है ॥ २१ ॥ और विवाह, यज्ञोपवीत, सीमंत व शुभकर्म में श्रीमाता स्मरण से सब विघ्नों को नाश करनेवाली है ॥ २२ ॥ सब भक्तकार्यों में श्रीमाता सदैव पूजी जाती हैं और जैसे गणेश देव को पूजकर कर्म को प्रारंभ

रस्वतीरूपा रक्षार्थं विधिना कृता ॥ ॐकारा सा महापुण्या काजेशेन विनिर्मिता ॥ १८ ॥ ऋषिभिः सिद्धयक्षादिसुरप न्नगमानवैः ॥ प्रणम्याङ्घ्रियुगा तेभ्यो ददाति मनसेप्सितम् ॥ १९ ॥ पालयन्ती च संस्थानं द्विजातीनां हिताय वै ॥ यथौरसान्सुतान्माता पालयन्तीह सद्गुणैः ॥ २० ॥ अथ पालयती देवी श्रीमाता कुलदेवता ॥ उपद्रवाणि सर्वाणि नाशयेत्सततं स्तुता ॥ २१ ॥ सर्वविघ्नोपशमनी श्रीमाता स्मरणेन हि ॥ विवाहे चोपवीते च सीमन्ते शुभकर्मणि ॥ २२ ॥ सर्वेषु भक्तकार्येषु श्रीमाता पूज्यते सदा ॥ यथा लम्बोदरं देवं पूजयित्वा समारभेत् ॥ २३ ॥ कार्यं शुभं सर्वमपि तथा श्रीमातरं नृप ॥ यत्किञ्चिद्भोजनं त्वत्र ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति ॥ २४ ॥ अथवा विनिवेद्यं च क्रियते यत्परस्परम् ॥ अनिवेद्य च तां राजन्कुर्वाणो विघ्नमेष्यति ॥ २५ ॥ तस्मात्तस्यै निवेद्याथ ततः कर्म समारभेत् ॥ तद्वरेणाखिलं कर्म अविघ्नेन हि सिध्यति ॥ हेमन्ते शिशिरे प्राप्ते पूजयेद्धर्मपुत्रिकाम् ॥ २६ ॥ हेमपत्रे समालिख्य

करै ॥ २३ ॥ वैसेही हे नृप ! श्रीमाताजी को पूजकर कार्य को प्रारंभ करै और जो कुछ भोजन यहां ब्राह्मणों के लिये मनुष्य देता है ॥ २४ ॥ अथवा जो परस्पर निवेदन किया जाता है हे राजन् ! उसको न देकर कर्म करता हुआ मनुष्य विघ्न को प्राप्त होता है ॥ २५ ॥ इसलिये उसके लिये निवेदन करके तदनन्तर कर्म को प्रारंभ करै और उसके वर से सब कर्म निर्विघ्नता से सिद्ध होता है और हेमंत व शिशिर प्राप्त होने पर धर्मपुत्रिका को पूजै ॥ २६ ॥ और सुवर्ण के पत्र या चांदी के पत्र में

लिखकर पूजन करावै व हे राजन् ! श्रीमाता के लिये उत्तम पादुका को निवेदन करै ॥ २७ ॥ और तिल व आमलों से मिश्रित जलों से नहाकर पवित्र होकर वस्त्रों व पुष्पों से तथा सुन्दर दुकूलों से पूजन करै ॥ २८ ॥ और उत्तम चंदन, कुंकुम व सिंदूरादिकों से लेपन करै और कपूर, अगुरु व कस्तूरी से मिले हुए कीचड़ से लेपन करै ॥ २९ ॥ और कर्णिकार व सुर्ख कर्मूल और श्वेत तथा लाल कनेर के पुष्पों से और चंपक, केतकी व दुपहरी के पुष्पों से ॥ ३० ॥ और यक्षकर्दम व संपूर्ण बिल्वपत्रों से तथा पलाश व चमेली के पुष्पों से और उड़द से उपजे हुए बरों से व पुवा, भात, दालि व शाकसमूहों से प्रसन्न करै ॥ ३१ ॥ व धूप, दीपादिपूर्वक जगदम्बिका

राजते वाथ कारयेत् ॥ पादुकां चोत्तमां राजञ्छ्रीमातायै निवेदयेत् ॥ २७ ॥ स्नात्वा चैव शुचिर्भूत्वा तिलामलकमिश्रितैः ॥ वासोभिः सुमनोभिश्च दुकूलैः सुमनोहरैः ॥ २८ ॥ लेपयेच्चन्दनैः शुभ्रैः कुङ्कुमैः सिन्दुरादिकैः ॥ कर्पूरागुरुकस्तूरीमिश्रितैः कर्दमैस्तथा ॥ २९ ॥ कर्णिकारैश्च कह्लारैः करवीरैः सितारुणैः ॥ चम्पकैः केतकीभिश्च जपाकुसुमकैस्तथा ॥ ३० ॥ यक्षकर्दमकैश्चैव बिल्वपत्रैरखण्डितैः ॥ पालाशजातिपुष्पैश्च वटकैर्माषसम्भवैः ॥ पूपभक्तादिदालीभिस्तोषयेच्छाकसञ्चयैः ॥ ३१ ॥ धूपदीपादिपूर्वं तु पूजयेज्जगदम्बिकाम् ॥ तद्धियैव कुमारीर्वै विप्रानपि च भोजयेत् ॥ पायसैर्घृतयुक्तैश्च शर्करामिश्रितैर्नृप ॥ ३२ ॥ पक्वान्नैर्मोदकाद्यैश्च तर्पयेद्भक्तिभावतः ॥ तर्प्यमाणे द्विजैकस्मिन्सहस्रफलमश्नुते ॥ ३३ ॥ दैत्यानां घातकं स्तोत्रं वाचयेच्च पुनः पुनः ॥ एकाग्रमानसो भूत्वा स्तौति श्रीमातरं तु यः ॥ ३४ ॥ तस्य तुष्टा वरं दद्यात्स्नापिता पूजिता स्तुता ॥ अनिष्टानि च सर्वाणि नाशयेद्धर्मपुत्रिका ॥ ३५ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रा

जी को पूजै व हे नृप ! उन्हीं की बुद्धि से कुमारी व ब्राह्मणों को भी घृतसंयुत व शर्करा से मिश्रित खीर से भोजन करावै ॥ ३२ ॥ और पक्वान्न व लड्डू आदिकों से भक्तिभाव से तृप्त करै तो एक ब्राह्मण को तृप्त करने से मनुष्य हज़ार ब्राह्मणों के फल को पाता है ॥ ३३ ॥ और दैत्यों के घातक (सप्तशती) स्तोत्र को बार २ पाठ करावै और एकाग्रमन होकर जो श्रीमाताजी की स्तुति करता है ॥ ३४ ॥ उसको स्नान, पूजन व स्तुति कीहुई प्रसन्न देवी वर देती हैं और धर्म की कन्या वह सब अरिष्टों को नाश करती है ॥ ३५ ॥ पुत्रहीन मनुष्य पुत्रों को पाता है व निर्धनी धनी होता है व राज्य को चाहनेवाला मनुष्य राज्य को पाता है और विद्यार्थी उस विद्या

को पाता है ॥ ३६ ॥ व लक्ष्मी को चाहनेवाला मनुष्य लक्ष्मी को पाता है व स्त्री की इच्छा करनेवाला पुरुष उस स्त्री को पाता है सरस्वती जी के प्रसाद से इस सब को मनुष्य पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३७ ॥ और सरस्वती जी के प्रसाद से पुरुष अन्त में जो देवताओं को भी दुर्लभ है उस सनातन स्थान को पाता है ॥ ३८ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीमातामाहात्म्यवर्णनंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥
दो० । मातंगीकर चरित अरु कर्णाटक वृत्तान्त । अठरहवें अध्यायमें सोइ चरित सुखदान्त ॥ शिवजी बोले कि हे महाप्राज्ञ, स्कन्द ! सुनिये जोकि उसने अद्भुत

न्निर्धनो धनवान्भवेत् ॥ राज्यार्थी लभते राज्यं विद्यार्थी लभते च ताम् ॥ ३६ ॥ श्रियोर्थी लभते लक्ष्मीं भार्यार्थी लभते च ताम् ॥ प्रसादाच्च सरस्वत्या लभते नात्र संशयः ॥ ३७ ॥ अन्ते च परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥ प्राप्नोति पुरुषो नित्यं सरस्वत्याः प्रसादतः ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येश्रीमातामाहात्म्यवर्णनन्नामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

रुद्र उवाच ॥ शृणु स्कन्द महाप्राज्ञ ह्यद्भुतं यत्कृतं तया ॥ धर्मारण्ये महादुष्टो दैत्यः कर्णाटकाभिधः ॥ १ ॥ सततं हि समागत्य दम्पत्योर्विघ्नमाचरत ॥ तं दृष्ट्वा तद्भयाल्लोकः प्रदुद्राव निरन्तरम् ॥ २ ॥ त्यक्त्वा स्थानं गताः सर्वे वणिजो वाडवादयः ॥ मातङ्गीरूपमास्थाय श्रीमात्रा त्वनया सुत ॥ ३ ॥ हतः कर्णाटकोनाम राक्षसो द्विजघातकः ॥ तदा सर्वेऽपि वै विप्रा हृष्टास्ते तेन कर्मणा ॥ ४ ॥ स्तुवन्ति पूजयन्ति स्म वणिजो भक्तितत्पराः ॥ वर्षे वर्षे प्रकु

किया है धर्मारण्य में कर्णाटक नामक महादुष्ट दैत्य था ॥ १ ॥ वह सदैव स्त्री पुरुषों के समीप आकर विघ्न करता था उसको देखकर मनुष्य सदैव उसके भय से भगता था ॥ २ ॥ और स्थान को छोड़कर सब वणिज् व ब्राह्मणादिक चले गये व हे पुत्र ! इस श्रीमाता ने हथिनी का रूप धरकर ॥ ३ ॥ कर्णाटक नामक द्विजघाती राक्षस को मारडाला तब वे सब ब्राह्मण उस कर्म से प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥ व भक्ति में तत्पर वणिजों ने उनकी स्तुति व पूजन किया और प्रतिवर्ष में वे उत्तम श्रीमाता

का पूजन करते हैं ॥ ५ ॥ सब उत्तम कर्मों में जो पहले उसको पूजता है हे पुत्र ! तब से लगाकर वह विघ्न को नहीं देखता है ॥ ६ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि यह दुष्ट महादैत्य कौन है व किस वंश में पैदा हुआ है व हे सुव्रत, तात ! उसने क्या क्या कर्म किया है उस सब को कहिये ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन् ! सुनिये मैं कर्णाटक का कर्म कहता हूं जोकि देवताओं व दानवों को दुस्सह था और बल से गर्वित था ॥ ८ ॥ वह दुष्टकर्मी व दुराचारी और बड़ी दाढ़ों व बड़ी भुजाओंवाला था और सब लोकों को जीतकर वह त्रिलोक में जाता आता था ॥ ९ ॥ हे नृप ! जहां देवता व ऋषिलोग थे वहां जाकर वह महादैत्य छल से या बल से विघ्न

वन्ति श्रीमातापूजनं शुभम् ॥ ५ ॥ शुभकार्येषु सर्वेषु प्रथमं पूजयेत्तु ताम् ॥ न स विघ्नं प्रपश्येत तदाप्रभृति पुत्रक ॥ ६ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कोऽसौ दुष्टो महादैत्यः कस्मिन्वंशे समुद्भवः ॥ किं किं तेन कृतं तात सर्वं कथय सुव्रत ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कर्णाटकविचेष्टितम् ॥ देवानां दानवानां यो दुःसहो वीर्यदर्पितः ॥ ८ ॥ दुष्टकर्मा दुराचारो महादंष्ट्रो महाभुजः ॥ जित्वा च सकलाँल्लोकांस्त्रैलोक्ये च गतागतः ॥ ९ ॥ यत्र देवाश्च ऋषयस्तत्र गत्वा महासुरः ॥ छद्मना वा बलेनैव विघ्नम्प्रकुरुते नृप ॥ १० ॥ न वेदाध्ययनं लोके भवेत्तस्य भयेन च ॥ कुर्वते वाडवा देवा न च सन्ध्याद्युपासनम् ॥ ११ ॥ न क्रतुर्वर्तते तत्र न चैव सुरपूजनम् ॥ देशे देशे च सर्वत्र ग्रामे ग्रामे पुरे पुरे ॥ १२ ॥ तीर्थे तीर्थे च सर्वत्र विघ्नं प्रकुरुतेऽसुरः ॥ परन्तु शक्यते नैव धर्मारण्ये प्रवेशितुम् ॥ १३ ॥ भयाच्छक्त्याश्च श्रीमातुर्दानवो विक्लवस्तदा ॥ केनोपायेन तत्रैव गम्यते त्विति चिन्तयन् ॥ १४ ॥ विघ्नं करिष्ये

करता था ॥ १० ॥ उसके भय से संसार में वेदपाठ नहीं होता था और ब्राह्मण देवता संध्यादिकों की उपासना नहीं करते थे ॥ ११ ॥ और वहां न यज्ञ होता था न देवपूजन होता था और देश देश व ग्राम ग्राम और पुर पुर में सब कहीं ॥ १२ ॥ और प्रत्येक तीर्थ में वह दैत्य सर्वत्र विघ्न करताथा परन्तु धर्मारण्य में नहीं पैठसक्ता था ॥ १३ ॥ तब श्रीमाता शक्ति के भयसे वह दानव विकल हुआ और यह चिन्तन करता रहा कि किस यत्न से वहां जाना होगा ॥ १४ ॥ और यज्ञ में कर्मों के अधि-

छाता व वेदाध्ययन करनेवाले महात्मा ब्राह्मणों का मैं किस प्रकार विघ्न करूं॥ १५॥ दूर से वेदपाठ से उपजे हुए शब्द को सुनकर वह दानव वज्र से मारे हुए हाथी की नाईं व्यथित होता था॥ १६॥ और कोप से दांतों से दांतों को घिसता हुआ वह श्वासों को छोड़ता था और दोनों हाथों को पीसता व अपने ओठों को काटता हुआ वह॥ १७॥ हे मारिष! इधर उधर उन्मत्त की नाईं घूमता था जैसे सन्निपात के दोष से मनुष्य भयंकर होता है॥ १८॥ वैसेही धर्मारण्य के समीप में प्राप्त वह दानव भयंकर था और भय से संयुत वह दूरही से घूमता व भगता था॥ १९॥ और ब्राह्मणों के विवाहसमय में ब्राह्मण का रूप धरकर वह दुर्धर्ष-दानव वहां जाकर

हि कथं ब्राह्मणानां महात्मनाम्॥ वेदाध्ययनकर्तॄणां यज्ञे कर्माधितिष्ठताम्॥ १५॥ वेदाध्ययनजं शब्दं श्रुत्वा दूरात्स दानवः॥ विव्यथे स यथा राजन्वज्राहत इव द्विपः॥ १६॥ निःश्वासान्मुमुचे रोषाद्दन्तैर्दन्तांश्च घर्षयन्॥ दशमानो निजावोष्ठौ पेषयंश्च करावुभौ॥ १७॥ उन्मत्तवद्विचरत इतश्चेतश्च मारिष॥ सन्निपातस्य दोषेण यथा भवति मानवः॥ १८॥ तथैव दानवो घोरो धर्मारण्यसमीपगः॥ भ्रमते द्रवते चैव दूरादेव भयान्वितः॥ १९॥ विवाहकाले विप्राणां रूपं कृत्वा द्विजन्मनः॥ तत्रागत्य दुराधर्षो नीत्वा दाम्पत्यमुत्तमम्॥ २०॥ उत्पपात महीपृष्ठाद्गगने सोऽसुराधमः॥ स्वयं च रमते पापो द्वेषाज्जातिस्वभावतः॥ २१॥ एवं च बहुशः सोऽथ धर्मारण्याच्च दम्पतीं॥ गृहीत्वा कुरुते पापं देवानामपि दुःसहम्॥ २२॥ विघ्नं करोति दुष्टोऽसौ दम्पत्योः सततं भुवि॥ महाघोरतरं कर्म कुर्वंस्तस्मिन्पुरे वरे॥ २३॥ तत्रोद्विग्ना द्विजाः सर्वे पलायन्ते दिशो दश॥ गताः सर्वे भूमिदेवास्त्यक्त्वा स्थानं

उत्तम स्त्री, पुरुषों को लेकर॥ २०॥ वह नीच दानव पृथ्वी से आकाश में उड़जाता था और वैर से व जाति के स्वभाव से वह पापी आपही रमण करता था॥ २१॥ इस प्रकार वह धर्मारण्य से बहुत से स्त्री पुरुषों को पकड़कर देवताओं के भी दुस्सह पाप को करता था॥ २२॥ और सदैव पृथ्वी में यह दुष्ट स्त्री पुरुषों का विघ्न करता था और उस श्रेष्ठ नगर में बहुतही भयंकर कर्म करता था॥ २३॥ और दुःखित होते हुए सब ब्राह्मण वहां भगने लगे और सब ब्राह्मण सुन्दर स्थान को छोड़कर

चले गये ॥ २४ ॥ व जहां जहां महातीर्थ था वहां वहां ब्राह्मण चले गये हे नृपोत्तम ! उस समय वह नगर उजाड़ होगया ॥ २५ ॥ और वहां वेदपाठ व यज्ञ नहीं होता था और कर्णाट के भयसे विकल मनुष्य वहां नहीं टिकते थे ॥ २६ ॥ हे महायशाः, राजन् ! तदनन्तर यथायोग्य सम्मति कहने के लिये सब ब्राह्मण और वणिज् एक ठिकाने मिले ॥ २७ ॥ और श्रेष्ठ ब्राह्मणलोग कर्णाट के मारने के यत्न की सम्मति करने लगे और उनके विचार करने पर दैव से आकाशवाणी उत्पन्न हुई ॥ २८ ॥ कि सब दैत्यों को नाश करनेवाली व सब उपद्रवों को नाशनेवाली तथा सब दुःखों को हरनेवाली श्रीमाता को आराधन करो ॥ २९ ॥ उसको

मनोरमम् ॥ २४ ॥ यत्र यत्र महत्तीर्थं तत्र तत्र गता द्विजाः ॥ उद्वसं तत्पुरं जातं तस्मिन्काले नृपोत्तम ॥ २५ ॥ न वेदाध्ययनं तत्र न च यज्ञः प्रवर्तते ॥ मनुजास्तत्र तिष्ठन्ति न कर्णाटभयार्दिताः ॥ २६ ॥ द्विजाः सर्वे ततो राजन्वणिजश्च महायशाः ॥ एकत्र मिलिताः सर्वे वक्तुं मन्त्रं यथोचितम् ॥ २७ ॥ कर्णाटस्य वधोपायं मन्त्रयन्ति द्विजर्षभाः ॥ विचार्यमाणे तैर्दैवाद्वाग्जाता चाशरीरिणी ॥ २८ ॥ आराधयत श्रीमातां सर्वदुःखापहारिणीम् ॥ सर्वदैत्यक्षयकरीं सर्वोपद्रवनाशनीम् ॥ २९ ॥ तच्छ्रुत्वा वाडवाः सर्वे हर्षव्याकुललोचनाः ॥ श्रीमातां तु समागत्य गृहीत्वा बलिमुत्तमम् ॥ ३० ॥ मधु क्षीरं दधि घृतं शर्करा पञ्चधारया ॥ धूपं दीपं तथा चैव चन्दनं कुसुमानि च ॥ ३१ ॥ फलानि विविधान्येव गृहीत्वा वाडवा नृप ॥ धान्यं तु विविधं राजन्भक्तापूपा घृताचिताः ॥ ३२ ॥ कुल्माषा वटकाश्चैव पायसं घृतमिश्रितम् ॥ सोहालिका दीपिकाश्च सार्द्राश्च वटकास्तथा ॥ ३३ ॥ राजिकाभिश्च संलिप्ता नवच्छिद्रसमन्विताः ॥

सुनकर सब ब्राह्मणलोग हर्ष से विकल नयनोंवाले हुए और श्रीमाता के समीप जाकर व उत्तम बलि को लेकर ॥ ३० ॥ शहद, दूध, दधि, घी, शक्कर इस पंचधारा समेत व धूप, दीप, चन्दन और पुष्पों को लेकर ॥ ३१ ॥ व हे राजन् ! अनेक प्रकार के फलों को लेकर ब्राह्मण लोग अनेक प्रकार का अन्न व घृत से पूर्ण भात व पुवा ॥ ३२ ॥ और कुल्माष (खिचड़ी), बरा व घी से मिली हुई खीर, सोहारी, दीपिका और भीगे बरा ॥ ३३ ॥ जोकि राई से संलिप्त व नव छिद्रों से संयुत तथा

चंद्रबिम्बके समान गोल वहां बनायेगये थे ॥ ३४ ॥ पंचामृत व सुगंधित जलसे नहवाकर उन ब्राह्मणोंने धूप, दीप व नैवेद्यों से भगवती को प्रसन्न किया ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! कपूर समेत नीराजन पुष्प, दीप व उत्तम चंदनों से सब उपद्रवों को नाशनेवाली श्रीमाता प्रसन्न कराई गईं ॥ ३६ ॥ संसार की माता वे सौम्य और वरदायिनी ब्राह्मी श्रीमाता तीन रूपों को धरकर त्रिलोक को पालन करती हैं ॥ ३७ ॥ व हे धर्मात्मन् ! त्रयीरूप से वे भगवतीजी सत्यमंदिर की रक्षा करती हैं जितेन्द्रिय व चित्त को जीते हुए जो द्विजोत्तम लोग इकट्ठा हुए ॥ ३८ ॥ उन सबोंने माता को पूजन किया व चंदनादिक से प्रसन्न किया और उन्होंने ब्रह्मकन्या के आगे स्थित होकर

चन्द्रबिम्बप्रतीकाशा मण्डकास्तत्र कल्पिताः ॥ ३४ ॥ पञ्चामृतेन स्नपनं कृत्वा गन्धोदकेन च ॥ धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यै स्तोषयांमासुरीश्वरीम् ॥ ३५ ॥ नीराजनैः सकर्पूरैः पुष्पैर्दीपैः सुचन्दनैः ॥ श्रीमाता तोषिता राजन्सर्वोपद्रवनाशनी ॥ ३६ ॥ श्रीमाता च जगन्माता ब्राह्मी सौम्या वरप्रदा॥ रूपत्रयं समास्थाय पालयेत्सा जगत्रयम् ॥ ३७ ॥ त्रयीरूपेण धर्मात्मन्रक्षते सत्यमन्दिरम् ॥ जितेन्द्रिया जितात्मानो मिलितास्ते द्विजोत्तमाः ॥ ३८ ॥ तैः सर्वैरर्चिता माता चन्दनाद्येन तोषिता ॥ स्तुतिमारेभिरे तत्र वाङ्मनःकायकर्मभिः ॥ एकचित्तेन भावेन ब्रह्मपुत्र्याः पुरः स्थिताः॥३९॥ विप्रा ऊचुः ॥ नमस्ते ब्रह्मपुत्र्यास्तु नमस्ते ब्रह्मचारिणि॥ नमस्ते जगतां मातर्नमस्ते सर्वगे सदा ॥ ४० ॥ क्षुन्निद्रा त्वं तृषा त्वं च क्रोधतन्द्रादयस्तथा ॥ त्वं शान्तिस्त्वं रतिश्चैव त्वं जया विजया तथा ॥ ४१ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैस्त्वं प्रपन्ना सुरेश्वरि ॥ सावित्री श्रीरुमा चैव त्वं च माता व्यवस्थिता ॥ ४२ ॥ ब्रह्मविष्णुसुरेशानास्त्वदाधारे

भक्ति से सावधान चित्त करके वचन, मन, शरीर व कर्म से स्तुति करनेका प्रारंभ किया ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि आप ब्रह्मकन्या को प्रणाम है व हे ब्रह्मचारिणि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे लोकों की माता ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे सर्वगे ! तुम्हारे लिये सदैव नमस्कार है ॥ ४० ॥ क्षुधा व निद्रा तुम्हींहो और तृषा (प्यास) तुम्हीं हो व क्रोध और आलस्यादिक तुम्हीं हो और तुम शांति हो व तुम्हीं रति हो और जया व विजया तुम्हीं हो ॥ ४१ ॥ हे सुरेश्वरि ! ब्रह्मा, विष्णु व महेशादिक तुम्हारी शरण में प्राप्त होते हैं और सावित्री, लक्ष्मी, उमा तुम्हीं हो व माता तुम्हीं हो ॥ ४२ ॥ और ब्रह्मा, विष्णु व इन्द्र तुम्हारे ही आधार में स्थित हैं हे धृति, पुष्टि-

स्वरूपिणि, जगन्मातः ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ४३ ॥ हे ज्योतिःस्वरूपिणि ! रति, क्रोधा, महामाया व छाया तुम्हीं हो व हे देवि ! सदैव कार्य व कारण को देने
वाली तुम सृष्टि, पालन व संहार करनेवाली हो ॥ ४४ ॥ हे महाविद्ये, महाज्ञानमये, अनघे ! पृथ्वी, अग्नि, पवन, जल व आकाश तुम्हीं हो तुम्हारे लिये प्रणाम
है ॥ ४५ ॥ हे महाद्युते ! देवरूपिणी ह्रींकारी तुम्हीं हो व क्लींकारी तुम्हीं हो और आदि, मध्य व अन्तवाली तुम्हीं हो हम सबों की इस महाभयसे रक्षा करिये ॥ ४६ ॥
यह महापापी दुष्टात्मा दैत्य इस समय बाधा करता है रक्षारूपिणी तुम एकही हमलोगों की कुलदेवता हो ॥ ४७ ॥ हे महादेवि ! रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये हे महे-

ऽव्यवस्थिताः ॥ नमस्तुभ्यं जगन्मातर्धृतिपुष्टिस्वरूपिणि ॥ ४३ ॥ रतिः क्रोधा महामाया छाया ज्योतिःस्वरूपिणि ॥
सृष्टिस्थित्यन्तकृद्देवि कार्यकारणदा सदा ॥ ४४ ॥ धरा तेजस्तथा वायुः सलिलाकाशमेव च ॥ नमस्तेऽस्तु महाविद्ये
महाज्ञानमयेऽनघे ॥ ४५ ॥ ह्रीङ्कारी देवरूपा त्वं क्लीङ्कारी त्वं महाद्युते ॥ आदिमध्यावसाना त्वं त्राहि चास्मान्महा
भयात् ॥ ४६ ॥ महापापो हि दुष्टात्मा दैत्योऽयं बाधतेऽधुना ॥ त्राणरूपा त्वमेका च अस्माकं कुलदेवता ॥ ४७ ॥
त्राहि त्राहि महादेवि रक्ष रक्ष महेश्वरि ॥ हन हन दानवं दुष्टं द्विजानां विघ्नकारकम् ॥ ४८ ॥ एवं स्तुता तदा देवी
महामाया द्विजन्मभिः ॥ कर्णाटस्य वधार्थाय द्विजातीनांहिताय च ॥ प्रत्यक्षा साऽभवत्तत्र वरं ब्रूहीत्युवाच ह ॥ ४९ ॥
श्रीमातोवाच ॥ केन वै त्रासिता विप्राः केन वोद्वेजिताः पुनः ॥ तस्याहं कुपिता विप्रा नयिष्ये यमसादनम् ॥ ५० ॥
क्षीणायुषं नरं वित्त येन यूयं निपीडिताः ॥ ददामि वो द्विजातिभ्यो यथेष्टं वक्तुमर्हथ ॥ ५१ ॥ भक्त्या हि भवतां

श्वरि ! रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ब्राह्मणों का विघ्न करनेवाले दुष्ट दानव को मारिये मारिये ॥ ४८ ॥ उस समय ब्राह्मणों से इस प्रकार स्तुति कीहुई महामाया
देवी कर्णाट के वध के लिये व ब्राह्मणों के हित के लिये वहां प्रत्यक्ष हुई और वरदान मांगिये यह बोली ॥ ४९ ॥ श्रीमाता बोली कि हे ब्राह्मणो ! किससे तुम भीत हुए
हो व किसने तुम लोगों को दुःख दिया है हे ब्राह्मणो ! क्रोधित होकर मैं उसको यममन्दिर को पठाऊं ॥ ५० ॥ जिसने तुमलोगों को पीडित किया है उस मनुष्य
को क्षीण आयुर्बलवाला जानिये मैं आप तुमलोगों ब्राह्मणों को उसको दूंगी जैसा प्रिय हो वैसा वर मांगिये ॥ ५१ ॥ हे ब्राह्मणो ! आपलोगों की भक्ति से मैं उसको

करूंगी इस में सन्देह नहीं है ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणलोग बोले कि कर्णाट नामक महारौद्र दानव अहंकार से गर्वित है और वह सत्यमंदिर में बसनेवाले लोगों का सदैव विघ्न करता है ॥ ५३ ॥ हे महामते ! वह द्वेषी दैत्य सत्यशील व वेदपाठ में परायण ब्राह्मणों से सदैव द्वेष से वैर करता है और वेदों से वैर करनेवाला व दुष्ट है हे महाद्युते ! इसको मारिये ॥ ५४ ॥ व्यासजी बोले कि बहुत अच्छा यह कहकर वह कुलदेवता देवी हँसकर भक्तों की रक्षा के लिये इसके मारने का उपाय विचार कर ॥ ५५ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! श्रीमाता क्रोध से संयुत हुई और क्रोध से भौंह को लाल नेत्रांतभागवाले लोचनोंवाली करके ॥ ५६ ॥ बड़े क्रोध से संयुत हुई

विप्राः करिष्ये नात्र संशयः ॥ ५२ ॥ द्विजा ऊचुः ॥ कर्णाटाख्यो महारौद्रो दानवो मदगर्वितः ॥ विघ्नं प्रकुरुते नित्यं सत्यमन्दिरवासिनाम् ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणान्सत्यशीलांश्च वेदाध्ययनतत्परान् ॥ द्वेषाद्द्वेष्टि द्वेषणस्तान्नित्यमेव महामते ॥ वेदविद्वेषणो दुष्टो घातयैनं महाद्युते ॥ ५४ ॥ व्यास उवाच ॥ तथेत्युक्त्वा तु सा देवी प्रहस्य कुलदेवता ॥ वधोपायं विचिन्त्यास्य भक्तानां रक्षणाय वै ॥ ५५ ॥ ततः कोपपरा जाता श्रीमाता नृपसत्तम ॥ कोपेन भृकुटीं कृत्वा रक्तनेत्रान्तलोचनाम् ॥ ५६ ॥ कोपेन महताऽऽविष्टा वमन्ती पावकं तथा ॥ महाज्वाला मुखान्नेत्रान्नासाकर्णाच्च भारत ॥ ५७ ॥ तत्तेजसा समुद्भूता मातङ्गी कामरूपिणी ॥ काली करालवदना दुर्दर्शवदनोज्ज्वला ॥ ५८ ॥ रक्तमाल्याम्बरधरा मदाघूर्णितलोचना ॥ न्यग्रोधस्य समीपे सा श्रीमाता संश्रिता तदा ॥ ५९ ॥ अष्टादशभुजा सा तु शुभा माता सुशोभना ॥ धनुर्बाणधरा देवी खड्गखेटकधारिणी ॥ ६० ॥ कुठारं क्षुरिकां बिभ्रत्त्रिशूलं पानपात्रकम् ॥ गदां

व अग्नि को मुख से उगिलने लगी व हे भारत ! मुख से नेत्र से व नासिका और कर्णों से महाज्वलित हुई ॥ ५७ ॥ उसके तेज से कामरूपिणी मातंगी उत्पन्न हुई जो कि काली व करालमुखी और दुःख से देखने योग्य मुख से उज्ज्वल थी ॥ ५८ ॥ और लाल माला व वसनों को धारण किये तथा मद से घूर्णित नेत्रों वाली थी उस समय वह श्रीमाता बरगद के समीप स्थित हुई ॥ ५९ ॥ और अठारह भुजाओंवाली वह अति उत्तम माता धनुष बाण को धारनेवाली व तलवार तथा खेटक अस्त्र को धारनेवाली थी ॥ ६० ॥ और वह कुठार, छुरी, त्रिशूल व मदिरा पीनेके पात्रको लिये थी और गदा, सर्प, परिघ, धनुष व फँसरी को धारण किये

थीं ॥ ६१ ॥ व हे राजन्! रुद्राक्ष की माला को धारनेवाली वह मदिरा के घट को लिये थी और शक्ति व उग्र मुशल तथा कर्तरी व खप्पर को लिये थी ॥ ६२ ॥ और काटोंसे संयुत बदरी को वह बड़ेभारी मुखवाली देवी लिये थी हे नृपोत्तम! वहां कर्णाट दानव के साथ मातंगी का रोमों को खड़ा करनेवाला बड़ा युद्ध हुआ ॥६३।६४॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे मारिष, धर्मज्ञ! कैसे युद्ध हुआ है व कैसे निवृत्त हुआ और किसने जीता है उसको मुझ से कहिये ॥ ६५ ॥ व्यासजी बोले कि हे राजेंद्र! दैत्य के युद्धमें एक समय जो हुआ है उसको सुनिये मैं उस सब को शीघ्रही कहता हूं कि जिस प्रकार पहले हुआ है ॥ ६६ ॥ हे नृपोत्तम! जिन ब्राह्मणों व वणिजों की स्त्रियां

सर्पं च परिघं पिनाकं चैव पाशकम् ॥ ६१ ॥ अक्षमालाधरा राजन्मद्यकुम्भानुधारिणी ॥ शक्तिं च मुशलं चोग्रं कर्तरीं खर्परं तथा ॥ ६२ ॥ कण्टकाढ्यां च बदरीं बिभ्रती तु महानना ॥ तत्राभवन्महायुद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ ६३ ॥ मातङ्ग्याः सह कर्णाटदानवेन नृपोत्तम ॥ ६४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कथं युद्धं समभवत्कथं चैवापवर्तत ॥ जितं केनैव धर्मज्ञ तन्ममाचक्ष्व मारिष ॥ ६५ ॥ व्यास उवाच ॥ एकदा शृणु राजेन्द्र यज्जातं दैत्यसङ्गरे ॥ तत्सर्वं कथयाम्याशु यथावृत्तं हि तत्पुरा ॥ ६६ ॥ प्रणष्टयोषा ये विप्रा वणिजश्चैव भारत ॥ चैत्रमासे तु सम्प्राप्ते धर्मारण्ये नृपोत्तम ॥ ६७ ॥ गौरीमुद्वाहयामासुर्विप्रास्ते संशितव्रताः ॥ स्वस्थानं सुशुभं ज्ञात्वा तीर्थराजं तथोत्तमम् ॥ ६८ ॥ विवाहं तत्र कुर्वन्तो मिलितास्ते द्विजोत्तमाः ॥ कोटिकन्याकुलं तत्र एकत्रासीन्महोत्सवे ॥ धर्मारण्ये महाप्राज्ञ सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ६९ ॥ चतुर्थ्यामपररात्रेऽभ्यन्तरतोऽग्निमादधुः ॥ आसनं ब्रह्मणे दत्त्वा अग्निं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ७० ॥

नष्ट होगई थीं चैत्र महीना प्राप्त होनेपर धर्मारण्य में ॥ ६७ ॥ उन तीक्ष्ण व्रतोंवाले ब्राह्मणों ने उत्तम तीर्थराज व अपने स्थान को शुभ जानकर गौरी कन्याका विवाह किया ॥ ६८ ॥ और हे महाप्राज्ञ! वहां विवाह करते हुए वे द्विजोत्तम मिले और उस बड़े भारी उत्सव में धर्मारण्य में करोड़ कन्याओं का गण इकट्ठा हुआ यह मैं सत्य सत्य कहता हूं ॥ ६९ ॥ और अन्य रात्रि में चौथि को उन्होंने भीतर अग्न्याधान किया व ब्रह्मा के लिये आसन को देकर तथा अग्नि की प्रदक्षिणाकर ॥ ७० ॥

उस समय स्थालीपाक व चार हाथ की उत्तम वेदियों को करके कलश समेत व नागपाश से संयुत किया ॥ ७१ ॥ तदनन्तर ब्राह्मणलोग उत्तम वेदमंत्र से आमंत्रण करनेलगे व चलते हुए स्त्री पुरुषों को यथायोग्य बिठालकर ॥ ७२ ॥ वहा ब्रह्मा समेत वे ब्राह्मणलोग प्रसन्न हुए और ॐकार स्वर से शब्दायमान वेदध्वनि करने लगे ॥ ७३ ॥ व उस बड़े भारी शब्द से समस्त आकाश पूर्ण होगया और ब्राह्मणों से कही हुई उस वेदध्वनि को सुनकर भयंकर दानव ॥ ७४ ॥ सेना समेत वह निर्बुद्धि शीघ्रही आसन से ऊपर उछला और जो अन्य सब सेवक थे दौड़ते हुए उन से उसने कहा ॥ ७५ ॥ कि सुनिये यह ब्राह्मणों का शब्द कहां उत्पन्न हुआ है उस

स्थालीपाकं च कृत्वाथ कृत्वा वेदीः शुभास्तदा ॥ चतुर्हस्ताः सकलशा नागपाशसमन्विताः ॥ ७१ ॥ वेदमन्त्रेण शुभ्रेण मन्त्रयन्ते ततो द्विजाः ॥ चरतां दम्पतीनां हि परिवेश्य यथोचितम् ॥ ७२ ॥ ब्रह्मणा सहितास्तत्र वाडवास्ते सुहर्षिताः ॥ कुर्वते वेदनिर्घोषं तारस्वरनिनादितम् ॥ ७३ ॥ तेन शब्देन महता कृत्स्नमापूरितं नभः ॥ तां श्रुत्वा दानवो घोरो वेदध्वनिं द्विजेरितम् ॥ ७४ ॥ उत्पपातासनात्तूर्णं ससैन्यो गतचेतनः ॥ धावतः सर्वभृत्यांस्तु ये चान्ये तानुवाच सः ॥ ७५ ॥ श्रूयतां कुत्र शब्दोऽयं वाडवानां समुत्थितः ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दैतेयाः सत्वरं ययुः ॥ ७६ ॥ विभ्रान्तचेतसः सर्वे इतश्चेतश्च धाविताः ॥ धर्मारण्ये गताः केचित्तत्र दृष्टा द्विजातयः ॥ ७७ ॥ उद्गिरन्तो हि निगमान्विवाहसमये नृप ॥ सर्वं निवेदयामासुः कर्णाटाय दुरात्मने ॥ ७८ ॥ तच्छ्रुत्वा रक्तताम्राक्षो द्विजद्विट् कोपपूरितः ॥ अभ्यधावन्महाभाग यत्र ते दम्पती नृप ॥ ७९ ॥ खमाश्रित्य तदा दैत्यमायां कुर्वन्स राक्षसः ॥ अहरद्दम्पती राजन्स

के उस वचन को सुनकर दैत्यलोग शीघ्रही गये ॥ ७६ ॥ और भ्रमितचित्तवाले सब इधर उधर दौड़े कोई वहां धर्मारण्यमें गये और उन्होंने ब्राह्मणोंको देखा ॥ ७७ ॥ कि हे नृप ! विवाह के समय में ब्राह्मणलोग वेदों को उच्चारण करते हैं इस सब वृत्तान्त को उन्होंने कर्णाटक दुष्ट से कहा ॥ ७८ ॥ उसको सुनकर क्रोध से लाल लोचनोंवाला द्विजवैरी वह कर्णाटक क्रोध से पूर्ण होगया व हे नृप ! वहां दौड़ा जहां कि वे स्त्री पुरुष थे ॥ ७९ ॥ तब हे राजन् ! आकाश में स्थित होकर दैत्यों

की माया करता हुआ वह राक्षस सब अलंकारों से संयुत स्त्री, पुरुषों को हरता भया ॥ ८० ॥ तदनन्तर बुम्बा शब्द करतेहुए वे सब ब्राह्मण भुवनेश्वरीजी के समीप गये और रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये यह बोले ॥ ८१ ॥ उसको सुनकर जगदम्बिका भुवनेश्वरी मातंगीजी उत्तम त्रिशूल को धारणकर सिंहनाद करतीहुई आई ॥ ८२ ॥ तदनन्तर देवी व कर्णाट का युद्ध वर्तमान हुआ और ऋषियों के देखते हुए व वणिजों तथा ब्राह्मणों के देखते हुए वहा ॥ ८३ ॥ रोमों को खड़ा करनेवाला बड़ाभारी युद्ध हुआ और मातंगी ने मद से विह्वल शत्रुको अस्त्रोंसे भेदन किया ॥ ८४ ॥ तदनन्तर उस मातंगी ने एक बाण से उस दैत्य के भी वक्षस्थल में मारा और त्रिशूल से

र्वालङ्कारसंयुतान् ॥ ८० ॥ ततस्ते वाडवाः सर्वे सङ्गता भुवनेश्वरीम् ॥ बुम्बारवं प्रकुर्वाणास्त्राहि त्राहीति चोचिरे ॥ ८१ ॥ तच्छ्रुत्वा विश्वजननी मातङ्गी भुवनेश्वरी ॥ सिंहनादं प्रकुर्वाणा त्रिशूलवरधारिणी ॥ ८२ ॥ ततः प्रववृते युद्धं देवी कर्णाटयोस्तथा ॥ ऋषीणां पश्यतां तत्र वणिजां च द्विजन्मनाम् ॥ ८३ ॥ पश्यतामभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ अस्त्रैश्चिच्छेद मातङ्गी मदविह्वलितं रिपुम् ॥ ८४ ॥ सोऽपि दैत्यस्ततस्तस्या बाणेनैकेन वक्षसि ॥ असावपि त्रिशूलेन घातितः कश्मलं गतः ॥ ८५ ॥ मुष्टिभिश्चैव तां देवीं सोऽपि ताडयतेऽसुरः ॥ सोऽपि देव्या ततः शीघ्रं नागपाशेन यन्त्रितः ॥ ८६ ॥ ततस्तेनैव दैत्येन गरुडास्त्रं समादधे ॥ तया नारायणास्त्रं तु सन्दधे शरपातनम् ॥ ८७ ॥ एवमन्योन्यमाकृष्य युध्यमानौ जयेच्छया ॥ ततः परिघमादाय आयसं दैत्यपुङ्गवः ॥ ८८ ॥ मातङ्गीं प्रति संक्रुद्धो जघान परवीरहा ॥ देवी क्रुद्धा मुष्टिपातैश्चूर्णयामास दानवम् ॥ ८९ ॥ तेन मुष्टिप्रहारेण मूर्च्छितो निपपात ह ॥ ततस्तु सहसो

मारा हुआ यह भी दुःख को प्राप्त हुआ ॥ ८५ ॥ और वह भी दैत्य उस देवी को घूंसों से मारा तदनन्तर देवीजी ने शीघ्रही उसको नागपाश से बाँध लिया ॥ ८६ ॥ तदनन्तर उस दैत्य ने गरुडास्त्र को धारण किया और उसने बाणों को गिरानेवाले नारायणास्त्र को धारण किया ॥ ८७ ॥ इस प्रकार जीत की इच्छा से परस्पर खींच कर दोनों युद्ध करनेलगे तदनन्तर लोहे का परिघ अस्त्र लेकर वह श्रेष्ठ दानव ॥ ८८ ॥ जोकि वीर शत्रुवों का नाशक था उसने क्रोधित होकर मातंगी को मारा और क्रोधित होती हुई देवीजी ने घूंसों से दानव को मारा ॥ ८९ ॥ और उस घूंसे के मारने से वह मूर्च्छित होकर गिरपड़ा तदनन्तर यकायक उठकर हर्ष से हाथ में शक्ति को

लेकर ॥ ९० ॥ दानव ने उस देवीके ऊपर शतघ्नी (बंदूक) को चलाया और उत्तम मुखवाली उस मातंगी देवी ने शक्ति को काटडाला ॥ ९१ ॥ और वह उत्तम भौंहोंवाली देवी शतघ्नी को हँसनेलगी इस प्रकार परस्पर शस्त्रसमूहों से अन्योन्य विकल करनेलगे ॥ ९२ ॥ तदनन्तर त्रिशूल से हृदय में मारा हुआ दैत्य गिरपड़ा और यह दैत्य मूर्च्छा को छोड़कर व राक्षसी माया को करके ॥ ९३ ॥ उनके देखते हुए वह महासुर वहां अन्तर्द्धान होगया तदनन्तर अरुण लोचनोंवाली देवी ने मद्य पान किया व हास्य किया ॥ ९४ ॥ व चराचर समेत त्रिलोक में सब कहीं जानेवाले उससे ॥ ९५ ॥ वह देवी कहनेलगी कि कहां जावोगे यह तुम मुझसे कहो हे महा-

त्थाय शक्तिं धृत्वा करे मुदा ॥ ९० ॥ शतघ्नीं पातयामास तस्या उपरि दानवः ॥ शक्तिं चिच्छेद सा देवी मातङ्गी च शुभानना ॥ ९१ ॥ जहासोच्चैस्तु सा सुभ्रूः शतघ्नीं वज्रसन्निभाम् ॥ एवमन्योन्यशस्त्रौघैरर्दयन्तौ परस्परम् ॥ ९२ ॥ ततस्त्रिशूलेन हतो हृदये निपपात ह ॥ मूर्च्छां विहाय दैत्योऽसौ मायां कृत्वा च राक्षसीम् ॥ ९३ ॥ पश्यतां तत्र तेषां तु अदृश्योऽभून्महासुरः ॥ पपौ पानं ततो देवी जहासारुणलोचना ॥ ९४ ॥ सर्वत्रगं तं सा देवी त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ९५ ॥ क्व यास्यसीति ब्रूते सा ब्रूहि त्वं साम्प्रतं हि मे ॥ कर्णाटक महादुष्ट एहि शीघ्रं हि युध्यताम् ॥ ९६ ॥ ततोऽभवन्महायुद्धं दारुणं च भयानकम् ॥ पपौ देवी तु मैरेयं वधार्थं सुमहाबला ॥ ९७ ॥ मातङ्गी च ततः क्रुद्धा वक्त्रे चिक्षेप दानवम् ॥ ततोऽपि दानवो रौद्रो नासारन्ध्रेण निर्गतः ॥ ९८ ॥ युध्यते स पुनर्दैत्यः कर्णाटो मदपूरितः ॥ ततो देवी प्रकुपिता मातङ्गी मदपूरिता ॥ ९९ ॥ दशनैर्मथयित्वा च चर्वयित्वा पुनः पुनः ॥ शवास्थि मेदसा युक्तं

दुष्ट, कर्णाटक ! शीघ्रही आइये युद्ध कीजिये ॥ ९६ ॥ तदनन्तर दारुण व भयानक बड़ाभारी युद्ध हुआ और बड़ी बलवती देवी ने उसके मारने के लिये मदिरा को पान किया ॥ ९७ ॥ तदनन्तर क्रोधित होती हुई मातंगी ने दानवको मुखमें डाललिया उसके उपरान्त भयंकर दानव नासिका के छिद्र से निकला ॥ ९८ ॥ फिर मद से पूरित वह कर्णाटक दैत्य युद्ध करनेलगा तदनन्तर मद से पूरित क्रोधित मातंगी देवी ॥ ९९ ॥ दांतों से पीसकर व बार २ चर्वणकर अस्थि व मेदा से संयुत तथा

मज्जा व मांसादिसे पूरित ॥ १०० ॥ और नखों व रोमोंसे संयुत दैत्यको पेट में डालकर एक हाथ से मुख को आच्छादन किया व एक हाथ से नासिका को आच्छादन किया ॥ १ ॥ तदनन्तर बड़ा बलवान् दैत्य कान के छिद्र से निकला तदनन्तर उस महादेवी ने उस समय पृथ्वी में वह नाम किया ॥ २ ॥ कि कान के छिद्र से यह पैदा हुआ है इसलिये विद्वान् उसको कर्णाटक ऐसा कहते हैं फिर बल से गर्वित दैत्य युद्ध के लिये आया ॥ ३ ॥ और गर्जता हुआ अस्त्र समेत दानव युद्ध में स्थित हुआ उस दुस्सह दैत्य को देखकर व बार २ विचारकर ॥ ४ ॥ हे भारत ! मातंगी ने वध का उपाय विचार किया जब मदसे पूरित मातंगी देवी विचारनेलगी ॥ ५ ॥

मज्जामांसादिपूरितम् ॥ १०० ॥ नखरोमाभिसंयुक्तं प्रक्षिप्य चोदरेऽसुरम् ॥ करैकेण मुखं रुद्धं करेणैकेन नासिकाम् ॥ १ ॥ ततो महाबलो दैत्यः कर्णरन्ध्रेण निर्गतः ॥ ततस्तया महादेव्या नाम चक्रे तदा भुवि ॥ २ ॥ कर्णरन्ध्रप्रसूतोऽयं कर्णाटेति विदुर्बुधाः ॥ पुनर्युद्धार्थमायातो दैत्यो हि बलदर्पितः ॥ ३ ॥ गर्जमानोऽसुरस्तत्र सायुधो युधि संस्थितः ॥ तं दृष्ट्वा दुःसहं दैत्यं विमृश्य च पुनः पुनः ॥ ४ ॥ वधोपायं हि मातङ्गी चिन्तयामास भारत ॥ यदा चिन्तयते देवी मातङ्गी मदपूरिता ॥ ५ ॥ मायारूपं समास्थाय कर्णाटः कुसुमायुधः ॥ गौरश्चाम्बुजपत्राक्षस्तथा षोडशवार्षिकः ॥ ६ ॥ अभ्येत्य देवीं ब्रूते स्म मां त्वं वरय शोभने ॥ ७ ॥ श्रीमातोवाच ॥ साधु चेदं त्वया प्रोक्तं दैत्यराज सुनिश्चितम् ॥ रूपेण सदृशो नान्यो विद्यते भुवनत्रये ॥ ८ ॥ प्रतिज्ञा मे कृता पूर्वं श्रुता किमसुरोत्तम ॥ ममानुजा शुभा श्यामा विवाहे विघ्नकारिणी ॥ ९ ॥ पित्रा मे स्थापिता दैत्य रक्षार्थं हि द्विजन्मनाम् ॥ केवलं श्यामलाङ्गी

तब मायारूपमें स्थित होकर कामदेव के समान व गौर और कमल के समान नेत्रोंवाला तथा सोलहवर्षवाला कर्णाटक ॥ ६ ॥ देवीजी के समीप आकर कहनेलगा कि हे शोभने ! तुम मुझ को पति करो ॥ ७ ॥ श्रीमाता बोलीं कि हे दैत्यराज ! तुमने यह अच्छा निश्चित कहा त्रिलोक में अन्य तुम्हारे रूप के समान नहीं है ॥ ८ ॥ हे असुरोत्तम ! पहले मुझसे कीहुई प्रतिज्ञा को क्या तुम ने सुना है कि मेरी श्यामला छोटी बहन विवाह में विघ्न करनेवाली है ॥ ९ ॥ व हे दैत्य ! मेरे पिताने ब्राह्मणों

की रक्षा के लिये उसको स्थापन किया है केवल श्यामांगी वह सब लोकों का हित करनेवाली है ॥ १० ॥ कोई कन्या को नहीं व्याहै यह कहकर वह स्थापित कीगई है इससे शीघ्रही कहिये तो तुम्हारा उत्तम उपाय सुनकर मैं करूं ॥ ११ ॥ हे दैत्येन्द्र ! मेरी श्यामला बहन कुँवारी है व हे शूर ! तुम्हारे लिये वह रक्षितहै पहले उसको व्याहिये ॥ १२ ॥ हे महावीर ! वह पिता उस उत्तम कन्या को तुमको देवैगा तुम जावो और क्रोध से संयुत श्यामला को व्याहो ॥ १३ ॥ तदनन्तर क्रोधित होता हुआ दुष्टात्मा कर्णाटक बड़ी भारी शक्ति को लेकर श्यामला को मारने की इच्छा से दौड़ा ॥ १४ ॥ और आये हुए दैत्य को देखकर बड़ी मनस्विनी श्यामला दुष्ट चित्त

सा सर्वलोकहितावहा ॥ १० ॥ न कश्चिद्वरयेत्कन्यामित्युक्त्वा स्थापिता तु सा ॥ कथयाशु तव शुभं श्रुत्वोपायं करोम्यहम् ॥ ११ ॥ भगिनी मेऽस्ति दैत्येन्द्र श्यामला ह्यपरिग्रहा ॥ तवार्थे रक्षिता शूर तां च पूर्वेण चोद्वह ॥ १२ ॥ स पिता तां महावीर दास्यते वै शुभामिमाम् ॥ गच्छ त्वं व्रियतां ह्येव श्यामला कोपसंयुता ॥ १३ ॥ ततः कर्णाटकः क्रुद्धो गृहीत्वा शक्तिमूर्जिताम् ॥ अभ्यधावत दुष्टात्मा श्यामलानिधनेच्छया ॥ १४ ॥ आगतं चासुरं दृष्ट्वा श्यामला सुमहामनाः ॥ विवाहार्थं परं ज्ञात्वाऽभिप्रायं दुष्टचेतसः ॥ १५ ॥ महायुद्धमभूत्तत्र श्यामलाऽसुरवर्ययोः ॥ मासत्रयं ततो राजंश्चाभवत्तुमुलं क्षितौ ॥ १६ ॥ माघे कृष्णतृतीयायां धर्मारण्ये महारणे ॥ मध्याह्नसमये भूप कर्णाटाख्यो निपातितः ॥ १७ ॥ कर्णाटः पतितस्तत्र यत्र देव्या निपातितः ॥ तच्छैलशृङ्गप्रतिमं पपात शिर उत्तमम् ॥ १८ ॥ चचाल सकला पृथ्वी साब्धिद्वीपा सपर्वता ॥ ततो विप्राः प्रहृष्टास्ते जय मातरुदैरयन् ॥ १९ ॥ जगुर्ग

वाले दैत्य का विवाह के लिये अधिक प्रयोजन जानकर ॥ १५ ॥ श्यामला व श्रेष्ठ दानव का बड़ाभारी युद्ध हुआ तदनन्तर हे राजन् ! पृथ्वी में तीन महीने तक लोमहर्षण युद्ध हुआ ॥ १६ ॥ हे भूप ! माघ में कृष्णपक्ष की तीज में धर्मारण्य में दुपहर के समय कर्णाट नामक दैत्य महायुद्ध में मारा गया ॥ १७ ॥ जहां देवी जी से गिराया हुआ वह कर्णाटक गिरा वहां वह पर्वत के शिखर के समान उत्तम शिर गिरपड़ा ॥ १८ ॥ और समुद्रों व द्वीपों समेत तथा पर्वतों समेत सब पृथ्वी कांप उठी तदनन्तर प्रसन्न होतेहुए उन ब्राह्मणोंने यह कहा कि हे मातः ! तुम्हारी जय हो ॥ १९ ॥ और गंधर्वों के स्वामी गानेलगे व अप्सराओंके गण नाचनेलगे तदनन्तर कल्याण-

दायक गीत व नृत्य और उत्सव करनेलगे ॥ २० ॥ व खीर, बरा और लड्डुवों की नैवेद्यों से पूजन किया व उत्तम मोटेरक स्थान में उन्होंने उत्तम वाणी से स्तुति किया ॥ २१ ॥ क्योंकि पूजी हुई वे मातंगी सुत, सुख व धन को देती हैं और महोत्सव प्राप्त होनेपर मातंगी का पूजन हित है ॥ २२ ॥ जो मनुष्य उसको थाप कर धन व पुत्रार्थ की सिद्धि के लिये पूजते हैं वे सुख, यश, आयुर्बल व कीर्ति और पुण्य को पाते हैं ॥ २३ ॥ और रोग नाश होजाते हैं व सूर्यादिक ग्रह शुभ होते हैं और भूत, वेताल, शाकिनी व जंभादिक ग्रह पीडित नहीं करते हैं ॥ २४ ॥ और कभी प्रेतादिकों की पीड़ा नहीं होती है तदनन्तर प्रसन्न होते हुए ब्राह्मण स्तुति करने के

न्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ततोत्सवं प्रकुर्वन्तो गीतं नृत्यं शुभप्रदम् ॥ २० ॥ पायसैर्वटकैश्चैव नैवेद्यैर्मोदकै स्तथा ॥ तुष्टुवुः शुभवाण्या ते स्थाने मोटेरके वरे ॥ २१ ॥ श्रीमती पूजिता सा च सुतसौख्यधनप्रदा ॥ महोत्सवे च सम्प्राप्ते मातङ्गीपूजनं हितम् ॥ २२ ॥ येऽर्चयन्ति स्थापयित्वा धनपुत्रार्थसिद्धये ॥ सुखं कीर्तिं तथायुष्यं यशः पुण्यं समाप्नुयुः ॥ २३ ॥ व्याधयो नाशमायान्ति चादित्याद्या ग्रहाः शुभाः ॥ भूतवेतालशाकिन्यो जम्भाद्याः पीड यन्ति न ॥ २४ ॥ न जायते तथा क्वापि प्रेतादीनां प्रपीडनम् ॥ ततो विप्राः प्रहृष्टाश्च स्तुतिं कर्तुं समुद्यताः ॥ २५ ॥ श्रीमातां चैव शक्तीश्च मातङ्गीमस्तुवंस्तदा ॥ श्यामलां च महादेवीं हर्षेण महता युताः ॥ २६ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ मात स्त्वमेवमस्माकं रक्षिका स्थानके भव ॥ दम्पतीनां हितार्थाय स्थातव्यं स्थानके सदा ॥ २७ ॥ मातङ्ग्युवाच ॥ तुष्टा हं वो महाभागाः स्तवेनानेन वो द्विजाः ॥ वरयध्वं वरं यद्वो मनसा समभीप्सितम् ॥ २८ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ दा

लिये उद्यत हुए ॥ २५ ॥ तब श्रीमाता और शक्तियों की व मातंगी की स्तुति किया और बड़े हर्ष से संयुत उन्होंने श्यामला महादेवी की स्तुति किया ॥ २६ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे मातः ! इस स्थान में स्त्री पुरुषों के हित के लिये तुम्हीं हमलोगों की रक्षिका होवो और सदैव तुम को इस स्थानमें स्थित होना चाहिये ॥ २७ ॥ मातंगी बोली कि हे महाभागो ! इस स्तोत्र से मैं तुमलोगों के ऊपर प्रसन्न हूं जो मन से तुमलोगोंको प्रियहो उस वरको मांगिये ॥ २८ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे देवि ! तुम्हारे

मन में जो वर्तमान है उस बलि को हम देवैंगे और हमलोगों की स्त्री पुरुषों की रक्षा के लिये स्थिर होवो ॥ २९ ॥ देवीजी बोलीं कि सब ब्राह्मण स्वस्थ होवैं क्योंकि मेरे स्थित होनेपर पीड़ा न होगी और दुर्धर्ष दैत्य व जो अन्य राक्षस हैं ॥ ३० ॥ व शाकिनी, भूत, प्रेत व जंभादिक ग्रह और शाकिनी आदिक ग्रह व सर्प और व्याघ्रादिक ॥ ३१ ॥ मेरी आज्ञामें स्थित मनुष्योंको कभी पीड़ा नहीं करैंगे और विवाह प्राप्त होनेपर जो महोत्सव करता है ॥ ३२ ॥ व स्त्री पुरुषोंके हितके लिये जो मनुष्य देव मुझको पूजता है उसकी सब पीड़ाको मैं निस्सन्देह नाश करती हूं ॥ ३३ ॥ और मानसी व्यथा व रोग और क्लेश व संभ्रम नहीं होता है और बहुत सुख, यश,

स्यामहे बलिं देवि यस्ते मनसि वर्तते ॥ अस्माकं चैव दम्पत्यो रक्षार्थं त्वं स्थिरा भव ॥ २९ ॥ देव्युवाच ॥ स्वस्थाः सन्तु द्विजाः सर्वे न च पीडा भविष्यति ॥ मयि स्थितायां दुर्धर्षा दैत्या येऽन्ये च राक्षसाः ॥ ३० ॥ शाकिनीभूतप्रेताश्च जम्भाद्याश्च ग्रहास्तथा ॥ शाकिन्यादिग्रहाश्चैव सर्पा व्याघ्रादयस्तथा ॥ ३१ ॥ पीडयिष्यन्ति न कापि स्थितानां मम शासने ॥ महोत्सवं यः कुरुते विवाहे समुपस्थिते ॥ ३२ ॥ दम्पत्योश्च हितार्थं हि पूजयेन्मां सदा नरः ॥ तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ ३३ ॥ नाधयो व्याधयश्चैव न क्लेशो न च सम्भ्रमः ॥ प्राप्यते परमं सौख्यं यशः पुण्यं धनं सदा ॥ नाकाले मरणं तस्य वातपित्तादिकं न हि ॥ ३४ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ केन वा विधिना पूजा नैवेद्यं कीदृशं भवेत् ॥ धूपं च कीदृशं मातः कथं पूजां प्रकल्पयेत् ॥ ३५ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ श्रूयतां मे वचो विप्राः पत्रे चैव हिरण्मये ॥ लिखित्वा पूजयेद्यस्तु चिरायुर्दम्पती भवेत् ॥ ३६ ॥ अथवा राजते पत्रे कांसपत्रेऽथवा पुनः ॥

पुण्य व धन सदैव मिलता है व उसका अकाल में मरण नहीं होता है और वात, पित्तादिक नहीं होताहै ॥ ३४ ॥ ब्राह्मण बोले कि किस विधिसे पूजन करना चाहिये व कैसी नैवेद्य होवै व हे मातः ! कैसी धूप होवै और कैसी पूजा करै ॥ ३५ ॥ श्रीदेवी बोलीं कि हे ब्राह्मणो ! मेरा वचन सुनिये कि सोनेके पत्रमें लिखकर जो मनुष्य पूजन करता है उसके स्त्री पुरुष बड़े आयुर्बलवान् होते हैं ॥ ३६ ॥ अथवा चांदी के पत्र में व कांस के पत्र में लिखकर अठारह भुजाओंवाली देवी चंदन से पूजित

होती है ॥ ३७ ॥ और हाथों से सूप, बाण, कुत्ता व उत्तम कमल और एक कैंची को बनावै व तरकस और धनुष ॥ ३८ ॥ व ढाल, पाश, मुद्गर, कांसाल, तोमर, शंख, चक्र व उत्तम गदा और मुशल व उत्तम परिघ ॥ ३९ ॥ और खट्वांग, बदरी व सुन्दर अंकुश इन अठारह अस्त्रों से भुवनेश्वरी-संयुत हैं ॥ ४० ॥ बहुत नूपुरों से भूषित व कुंडल समेत और बजुल्ला व मोती के कमलोंसे तथा मुंडमालाओं से संयुत देवी को लिखै ॥ ४१ ॥ और मातृका के अक्षरों से घिरी व अंगूठी से संयुत तथा अनेक भाति के आभूषणों की शोभा से संयुत मातंगी ऐसी प्रसिद्ध भुवनेश्वरीजी को प्रतिष्ठा के लिये लिखकर सुन्दर चन्दन व पुष्पों से पूजै ॥ ४२ । ४३ ॥ और यक्ष-

अष्टादशभुजा देवी चन्दनेन विचर्चिता ॥ ३७ ॥ शूर्पं शरं करैः श्वानं पद्मं तु परमं पुनः ॥ कर्त्तरीं कारयेदेकां तूणीरं च धनूंषि च ॥ ३८ ॥ चर्म पाशं मुद्गरं च कांसालं तोमरं तथा ॥ शङ्खं चक्रं गदां शुभ्रां मुशलं परिघं शुभम् ॥ ३९ ॥ खट्वाङ्गं बदरीं चैव अङ्कुशं च मनोरमम् ॥ अष्टादशायुधैरेभिः संयुता भुवनेश्वरी ॥ ४० ॥ लिखेत्सकुण्डलां देवीं बहुनूपुरभूषिताम् ॥ केयूरमुक्तापद्मैश्च मुण्डमालाभिरन्विताम् ॥ ४१ ॥ मातृकाक्षरपरिवृतामङ्गुलीयकसंयुताम् ॥ नानाभरणशोभाढ्यां लिखित्वा भुवनेश्वरीम् ॥ ४२ ॥ मातङ्गीमिति विख्यातां प्रतिष्ठार्थं द्विजोत्तमाः ॥ चन्दनेन च हृद्येन पुष्पैश्चैव प्रपूजयेत् ॥ ४३ ॥ यक्षकर्दममानीय मातङ्गीं पूजयेत्सुधीः ॥ घृतेन बोधयेद्दीपं सप्तवर्तियुतं शुभम् ॥ ४४ ॥ धूपयेद्गुग्गुलेनाथ साज्येनाति सुगन्धिना ॥ नालिकेरेण शुभ्रेण दद्यादर्घं च दम्पती ॥ ४५ ॥ प्रदक्षिणाः प्रकुर्वीत चतुरः सुमनोरमम् ॥ वस्त्रांशुकं गुण्ठयित्वा अग्रे कृत्वा च दम्पती ॥ ४६ ॥ प्रोक्षणीकृत्य मातङ्ग्याः प्राश्य माध्वीकमुत्तमम् ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैर्मातङ्गीं पूजयेत्सुधीः ॥ ४७ ॥ सुवासिनीस्तु तद्रूपा मातङ्गीसम्भवा इति ॥ नृत्य

कर्दम को लाकर विद्वान् मातंगी को पूजै और सात बत्तियों से संयुत उत्तम दीप को घृत से संयुत करै ॥ ४४ ॥ व घी समेत बड़े सुगंधित गुग्गुल से धूप देवै और स्त्री पुरुष उत्तम नारियल से अर्घ को देवैं ॥ ४५ ॥ और चार सुन्दर प्रदक्षिणा करै व वस्त्र को पहनाकर स्त्री पुरुष आगे करके ॥ ४६ ॥ छिड़क कर मातंगी जी के उत्तम मदिरा को पीकर विद्वान् गाने, बजाने के शब्दों से मातंगीको पूजै ॥ ४७ ॥ और सौभाग्यवती स्त्रियां उसी रूपवाली व मातंगी से उत्पन्न होती हैं इस कारण स्त्री पुरुष

सब उपद्रवों की शांति के लिये उनके आगे नृत्य करै ॥ ४८ ॥ और अनेक भांति के अन्न से अठारह भांति की उत्तम नैवेद्य निवेदन करै उत्तम बरा व पुवा और शक्कर से संयुत दूध की नैवेद्य निवेदन करै ॥ ४९ ॥ और बल्लाकर, बरा, पुवा व क्षिप्तकुल्माष तथा सोहारी, भिन्नवटा, लप्सी और पद्मचूर्ण ॥ ५० ॥ और वहां निर्मल सेंवई और पापड़ व शालकादिक और उस मांस को सुन्दर पूर्ण करै ॥ ५१ ॥ व स्त्री पुरुष वहां भली भांति लोबिया को पकावै और वहां सुन्दर फेनी व रोपिका करै ॥ ५२ ॥ शाक समूहों से संयुत व घी, शक्करसे संयुत इन अन्य अठारह पक्वान्नों को बनावै ॥ ५३ ॥ व रात्रि में जागरण करना चाहिये और सुवासिनी (सौभाग्यवती) को पूजै और स्त्री

न्ती दम्पती चाग्रे सर्वोपद्रवशान्तये ॥ ४८ ॥ नैवेद्यं विविधान्नेन अष्टादशविधं शुभम् ॥ वटकापूपिकाः शुभ्राः क्षीरं शर्करया युतम् ॥ ४९ ॥ बल्लाकरं वरं पूपाः क्षिप्तकुल्माषकं तथा ॥ सोहालिका भिन्नवटा लाप्सिका पद्मचूर्णकम् ॥ ५० ॥ शैवेया विमलास्तत्र पर्पटाः शालकादयः ॥ पूरणं तस्य मांसस्य कुर्याच्छुभ्रं मनोरमम् ॥ ५१ ॥ राजमाषाः सूपचिताः कल्पयेत्तत्र दम्पती ॥ फेणिका रोपिकास्तत्र कुर्याच्चैव मनोरमाः ॥ ५२ ॥ एतान्यष्टादशान्यानि पक्वान्नानि प्रकल्पयेत् ॥ आज्यशर्करायुक्तानि युक्तानि शाकसञ्चयैः ॥ ५३ ॥ रात्रौ जागरणं कार्यं पूजयेच्च सुवासिनीम् ॥ मुखावलोकनं चाज्ये कुर्वीयातां च दम्पती ॥ ५४ ॥ परस्परं हि कुर्वीत उत्पातपरिशान्तये ॥ एवंविधं मयाख्यातं मातङ्गीपूजनं शुभम् ॥ ५५ ॥ न पूजयति यो मूढस्तस्य विघ्नं करोति सा ॥ दम्पत्योर्मरणं चाथ धननाशं महाभयम् ॥ ५६ ॥ क्लेशं रोगं तथा वह्नेः प्रादुर्भावं प्रपश्यति ॥ एतस्मात्कारणाद्विप्रा मातङ्गीं पूजयेत्सुधीः ॥ ५७ ॥ दम्पतीनां च सर्वेषां द्विजातीनां च शासने ॥ वणिजां च महादेवी निर्विघ्नं कुरुते सदा ॥ ५८ ॥ तथेति चैव तैरुक्ते पुनर्वचनमब्रवीत् ॥

पुरुष घी में मुख को देखै ॥ ५४ ॥ उत्पात की शांति के लिये परस्पर ऐसा करै मैंने इस प्रकार का उत्तम मातंगीपूजन कहा ॥ ५५ ॥ और जो मूढ़ नहीं पूजता है उसका वह मातंगी विघ्न करती है व स्त्री पुरुषों का मरण व धन का नाश और महाभय होती है ॥ ५६ ॥ और क्लेश, रोग व अग्नि की प्रकटता को वह देखता है हे ब्राह्मणो ! इस कारण विद्वान् मातंगी को पूजै ॥ ५७ ॥ सब स्त्री पुरुषों व ब्राह्मणों तथा वणिजों के शासन में महादेवी सदैव निर्विघ्न करती हैं ॥ ५८ ॥ बहुत अच्छा

यह उनसे कहनेपर फिर वचन बोली कि हे सब ब्राह्मणो ! सुनिये कि विवाहादिक बड़े भारी उत्सव में ॥ ५९ ॥ मेरा वचन सुनकर वैसी विधि कीजिये कि विवाह समय प्राप्त होने पर स्त्री, पुरुषोंके सुखके लिये ॥ ६० ॥ निर्विघ्न के लिये अपने सेवकों समेत करना चाहिये कि सब संबन्धियों के नेत्रों में अंजन करै ॥ ६१ ॥ भौंहों के मध्य स अर्द्धचन्द्रमा के समान आकार करना चाहिये व हे ब्राह्मणो ! उसके ऊपर सुन्दर बिन्दु करै ॥ ६२ ॥ हे ब्राह्मणो ! ऐसा करने पर उस समय शांति होती है अन्यथा नहीं होती यह अर्द्धबिम्ब तिलक पुत्रों की वृद्धि करनेवाला है और सब विघ्नों को हरनेवाला व सब दुर्गति और रोगों का विनाशक है ॥ ६३ ॥ व्यासजी

श्रूयतां ब्राह्मणाः सर्वे विवाहादिमहोत्सवे ॥ ५९ ॥ मदीयवचनं श्रुत्वा तथा कुरुत वै विधिम् ॥ विवाहकाले सम्प्राप्ते दम्पत्योः सौख्यहेतवे ॥ ६० ॥ निर्विघ्नार्थं तु कर्तव्यं निजैश्च सह सेवकैः ॥ अञ्जनं नयने कुर्यात्संबन्धिनां च सर्वशः ॥६१॥ भ्रूमध्यात्तु प्रकर्त्तव्यमर्द्धचन्द्रसमाकृति ॥ बिन्दुं तु कारयेद्विप्रास्त योपरि मनोहरम् ॥ ६२ ॥ एवं कृते तदा विप्राः शान्तिर्भवति नान्यथा ॥ पुत्रवृद्धिकरं चैतत्तिलकं चार्द्धबिम्बकम् ॥ सर्वविघ्नहरं सर्वदौःस्थ्यव्याधिविनाशनम् ॥ ६३ ॥ व्यास उवाच ॥ ततः शान्ताः प्रजाः सर्वा धर्मारण्ये नराधिप ॥ प्रसादाच्चैव मातङ्ग्या देव्या वै सत्यमन्दिरे ॥ ६४ ॥ ततो हृष्टहृदा विप्राः प्रत्यूचुस्ते विधेः सुताम् ॥ मातङ्ग्याश्च प्रकर्त्तव्यं वर्षे वर्षे च पूजनम् ॥ ६५ ॥ माघासिते तृतीयायां भक्ष्यभोज्यादिभिस्तथा ॥ कर्णाटस्य तथोत्पत्तिः पुनर्जाता तु भूतले ॥ ६६ ॥ भयाच्चैव हि तत्स्थानं त्यक्त्वा याम्यमगात्ततः ॥ गच्छमानस्तदा दैत्यो यक्ष्मरूपो ह्यभाषत ॥ ६७ ॥ श्रूयतां भो द्विजाः सर्वे धर्मारण्यनि

बोले कि हे नराधिप ! तदनन्तर मातंगी देवी के प्रसाद से सब प्रजा धर्मारण्य सत्यमंदिर में शांत होगये ॥ ६४ ॥ तदनन्तर उन ब्राह्मणों ने प्रसन्नहृदय से ब्रह्मा की कन्या से कहा कि प्रतिवर्ष में माघ महीने के कृष्णपक्ष में तीज तिथि में भक्ष्य, भोज्यादिकों से मातंगी का पूजन करना चाहिये फिर पृथ्वी में कर्णाट की उत्पत्ति हुई ॥ ६५ । ६६ ॥ और वह भय से उस स्थान को छोड़कर तदनन्तर दक्षिण दिशा को चला गया तब जाता हुआ वह यक्ष्मरूपी दैत्य बोला ॥ ६७ ॥ कि हे धर्मारण्य-

निवासी, सब ब्राह्मणो व वणिजो ! सुनिये व इस मेरे बड़े भारी वचन को परिपालन कीजिये ॥ ६८ ॥ कि सदैव पृथ्वी में मेरी प्रीति से निर्विघ्न के लिये माघ महीने में त्रिदल धान से व विशेषकर मूली से ॥ ६९ ॥ व तिल के तैल से दृढ़व्रत पुरुष व्रत को करै और यक्ष्म की प्रीति के लिये सदैव एक बार भोजन करै ॥ ७० ॥ बालक से लगाकर युवा व वृद्ध पुरुष को भी सदैव प्रति वर्ष में यक्ष्मा का उत्तम व्रत करना चाहिये ॥ ७१ ॥ और जिस घर में जितने पुरुषाकाररूपी होवैं एकभक्त में परायण वे सदैव उसका व्रत करैं ॥ ७२ ॥ और बालक के लिये माता उत्तम व्रत करै पिता या भाई जिसके लिये व्रतको करै ॥ ७३ ॥ उसको कहीं भय नहीं होती और व्याधि व बंधन

वासिनः ॥ वणिजश्च महच्चेदं मद्वाक्यं परिपाल्यताम् ॥ ६८ ॥ माघमासे हि मत्प्रीत्या निर्विघ्नार्थं सदा भुवि ॥ त्रिदलेन च धान्येन मूलकेन विशेषतः ॥ ६९ ॥ तिलतैलेन वा कुर्यात्पुरुषो नियतव्रतः ॥ एकाशनं हि कुरुते यक्ष्मप्रीत्यै निरन्तरम् ॥ ७० ॥ आबालयौवनेनैव वृद्धेनापीह सर्वदा ॥ वर्षे वर्षे प्रकर्त्तव्यं यक्ष्मणो व्रतमुत्तमम् ॥ ७१ ॥ यस्मिन्गृहे हि यावन्तः पुरुषाकाररूपिणः ॥ तस्य व्रतं प्रकुर्युस्त एकभक्तरताः सदा ॥ ७२ ॥ बालस्यार्थे तु जननी कुरुते व्रत मुत्तमम् ॥ पिता वाप्यथवा भ्राता यन्निमित्तं व्रतं चरेत् ॥ ७३ ॥ न च तस्य भयं कापि न व्याधिर्न च बन्धनम् ॥ भर्तुर्निमित्ते स्त्री कुर्यादशक्के त्वितरेण च ॥ ७४ ॥ एवं समादिशन्दैत्यः सत्यमन्दिरमुत्सृजन् ॥ गतोऽसौ याम्यदिग्भा ग उदधेस्तीर उत्तमे ॥ ७५ ॥ विपुलं देहमासाद्य कर्णाटः स नराधिप ॥ स्वनाम्ना चैव तं देशं स्थापयामास चोत्त मम् ॥ ७६ ॥ यस्मिंश्च सर्ववस्तूनि धनधान्यानि भूरिशः ॥ कर्णाटदेशं तं राजन्परिवार्य चिरं स्थितः ॥ ७७ ॥ धर्मार

नहीं होता है पति के लिये स्त्री व्रत को करै और अशक्त होने पर अन्य से व्रत कराना चाहिये ॥ ७४ ॥ सत्यमंदिर को छोड़तेहुए दैत्य ने ऐसा कहा और यह दक्षिण दिशा के भाग में समुद्र के उत्तम किनारे पै चला गया ॥ ७५ ॥ हे नराधिप ! बड़े भारी शरीर को प्राप्त होकर उस कर्णाट ने अपने नाम से उस उत्तम देश को स्थापित किया ॥ ७६ ॥ जिसमें सब वस्तुवें व बहुत धन, धान्य हैं हे राजन् ! उस कर्णाट देश को घेर कर वह कर्णाट बहुत दिनोंतक स्थित रहा ॥ ७७ ॥ हे नरसत्तम ! कही

हुई धर्मारण्य की पवित्र कथा व श्रीमाता का उत्तम माहात्म्य जो सुनते या सुनाते हैं ॥ ७८ ॥ उनके वंश में कभी अरिष्ट नहीं होता है पुत्र रहित मनुष्य पुत्रों को पाता है व धनहीन संपत्तियों को पाता है व आयुर्बल, नीरोगता और ऐश्वर्य को श्रीमाता के प्रसाद से प्राप्त होता है ॥ १७९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमातङ्गीकर्णाटकोपाख्यानवर्णनन्नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जयंतेश इन्द्रेश जिमि थाप्यो इन्द्र जयन्त । उन्निसवें अध्यायमें सोइ चरित सुखवन्त ॥ व्यासजी बोले कि इन्द्रसर में नहाकर व इन्द्रेश्वर शिवजी को देखकर

ण्यकथां पुण्यां कथितां नरसत्तम ॥ श्रीमातुश्चैव माहात्म्यं शृण्वन्ति श्रावयन्ति ये ॥ ७८ ॥ तेषां कुले कदाचित्तु अरिष्टं नैव जायते ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्धनहीनस्तु सम्पदः ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं श्रीमातुश्च प्रसादतः ॥ १७९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येमातङ्गीकर्णाटकोपाख्यानवर्णनन्नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ❋ ॥

व्यास उवाच ॥ नर इन्द्रसरे स्नात्वा दृष्ट्वा चेन्द्रेश्वरं शिवम् ॥ सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ केन चादौ निर्मितं तत्तीर्थं सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ यथावद्वर्णय त्वं मे भगवन्द्विजसत्तम ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ इन्द्रेणैव महाराज तपस्तप्तं सुदुष्करम् ॥ ग्रामादुत्तरदिग्भागे शतवर्षाणि तत्र वै ॥ ३ ॥ शिवोद्देशं महाघोरमेकाङ्गुष्ठेन भारत ॥ उर्द्ध्वबाहुर्महातेजाः सूर्यस्याभिमुखोऽभवत् ॥ ४ ॥ वृत्रस्य वधतो जातं यत्पापं तस्य नुत्तये ॥ एकाग्रः प्रयतो भूत्वा शिवस्याराधने रतः ॥ ५ ॥ तपसा च तदा शम्भुस्तोषितः शशिशेखरः ॥ तत्राऽऽजगाम जटि

मनुष्य सात जन्मों में किये हुए पाप से छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि उस सब तीर्थों में उत्तमोत्तम तीर्थ को किसने पहले बनाया है हे द्विजोत्तम, भगवन् ! तुम इसको यथायोग्य वर्णन करो ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि हे महाराज, भारत ! गांव से उत्तर दिशा के भाग में इन्द्र ने शिवजी को उद्देश कर तीन सौ बरस तक एक अंगूठे से बड़ा भयंकर व कठिन तप किया और ऊर्ध्वबाहु व बड़े तेजस्वी इन्द्रजी सूर्य के सामने हुए ॥ ३ । ४ ॥ वृत्रासुर के वध से जो पाप उत्पन्न हुआ था उसको दूर करने के लिये एकाग्र व पवित्र होकर इन्द्रजी शिवजी के आराधन में परायण हुए ॥ ५ ॥ तब तपस्या से चन्द्रभाल शिवजी प्रसन्न हुए और

भस्म को अंग में लगाये हुए जटाधारी शिवजी वहां आये ॥ ६ ॥ खट्वांग नामक अस्त्र को लिये दशभुज, त्रिलोचन, पंचमुख, गंगाधर, भूत, प्रेतादिकोंसे वेष्टित शिवजी बैलपर चढ़कर ॥ ७ ॥ बहुत प्रसन्न, सुरश्रेष्ठ, दयालु, वरदायक व प्रसन्न मनवाले शिवदेवजी ने उस समय इन्द्रजी से यह कहा ॥ ८ ॥ शिवजी बोले कि हे देव ! जो तुम मांगते हो उसको मैं तुम को दूंगा ॥ ९ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे दयासिंधो, देवेश, महेशजी ! यदि मेरे ऊपर तुम प्रसन्न हो तो मुझ को ब्रह्महत्या नित्य दुःख देती है ॥ १० ॥ हे सुरोत्तम ! वृत्रासुर के मारने में जो पाप हुआ है हे विभो ! मुझको सदैव दुःखदायक उस पाप को नाश कीजिये ॥ ११ ॥ शिवजी बोले कि हे

लो भस्माङ्गो वृषभध्वजः ॥ ६ ॥ खट्वाङ्गी पञ्चवक्त्रश्च दशबाहुस्त्रिलोचनः ॥ गङ्गाधरो वृषारूढो भूतप्रेतादिवेष्टितः ॥ ७ ॥ सुप्रसन्नः सुरश्रेष्ठः कृपालुर्वरदायकः ॥ तदा हृष्टमना देवो देवेन्द्रमिदमूचिवान् ॥ ८ ॥ हर उवाच ॥ यत्त्वं याचयसे देव तदहं प्रददामि ते ॥ ९ ॥ इन्द्र उवाच ॥ यदि तुष्टोसि देवेश कृपासिन्धो महेश्वर ॥ ब्रह्महत्या हि मां देव उद्वेजयति नित्यशः ॥ १० ॥ वृत्रासुरस्य हनने जातं पापं सुरोत्तम ॥ तत्पापं नाशय विभो मम दुःखप्रदं सदा ॥ ११ ॥ हर उवाच ॥ धर्मारण्ये सुरपते ब्रह्महत्या न पीडयेत् ॥ हत्या गवां द्विजातीनां बालस्य योषितामपि ॥ १२ ॥ वचनान्मम देवेन्द्र ब्रह्मणः केशवस्य च ॥ यमस्य वचनाज्जिष्णो हत्या नैवात्र तिष्ठति ॥ प्रविश्य त्वं महाराज अतोत्र स्नानमाचर ॥ १३ ॥ इन्द्र उवाच ॥ यदि त्वं मम तुष्टोऽसि कृपासिन्धो महेश्वर ॥ मन्नाम्ना च महादेव स्थापितो भव शङ्कर ॥ १४ ॥ तथेत्युक्त्वा महादेवः सुप्रसन्नो हरस्तदा ॥ दर्शयामास तत्रैव लिङ्गं पापप्रणाश

सुरपते ! धर्मारण्य में ब्रह्महत्या दुःख नहीं देवैगी क्योंकि गौवों की हत्या व बालक की हत्या और स्त्रियों की भी जो हत्या है ॥ १२ ॥ हे देवेन्द्र, जिष्णो ! मेरे और ब्रह्मा व विष्णुजी के वचन से और यमराज के वचन से वह हत्या यहां स्थित नहीं होती है हे महाराज ! इस कारण तुम इसमें पैठकर स्नान करो ॥ १३ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे दयासिंधो, महेश्वर ! यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो हे शंकर, महादेव ! मेरे नाम से स्थापित होवो ॥ १४ ॥ तब बहुत अच्छा यह कहकर महादेवजी प्रसन्न हुए और पापनाशक लिंगको कूर्म की पीठ से शिवजीने अपने योगसे उत्पन्न करके दिखलाया और शिवजी वहीं स्थित हुए ऐसा त्रिकालके जानने

वाले कहते हैं ॥ १५ । १६ ॥ हे नृप ! तब वृत्रासुर की हत्या से डरे हुए इन्द्र के समीप इन्द्रेश्वरजी उस धर्मारण्य में लोकों की हितकी इच्छासे सब पापों की शुद्धि के लिये स्थित हुए हे नृपेन्द्र ! जो मनुष्य सदैव पुष्प व धूपादिकों से इन्द्रेश्वरजी को ॥ १७ । १८ ॥ भक्तिसे पूजता है वह मनुष्य सब पापों से छूटजाता है और माघ महीने में विशेषकर अष्टमी व चौदसि में ॥ १९ ॥ जो सब पापों की शुद्धि के लिये पूजता है वह शिवलोक में पूजा जाता है और उन इन्द्रेश्वरजी के आगे जो नीलोत्सर्ग करता है ॥ २० ॥ वह सात गोत्रोंको व एक सौ एक पुरिखयोंको उधारताहै और जो चौदसि तिथि में सांग रुद्र जप करता है ॥ २१ ॥ सब पापोंसे शुद्ध चित्त

नम् ॥ १५ ॥ कूर्मपृष्ठात्समुत्पाद्य आत्मयोगेन शम्भुना ॥ स्थितस्तत्रैव श्रीकण्ठःकालत्रयविदो विदुः ॥ १६ ॥ वृत्रहत्यासमुत्रस्तदेवराजस्य सन्निधौ ॥ इन्द्रेश्वरस्तदा तत्र धर्मारण्ये स्थितो नृप ॥ १७ ॥ सर्वपापविशुद्ध्यर्थं लोकानां हितकाम्यया ॥ इन्द्रेश्वरं तु राजेन्द्र पुष्पधूपादिकैः सदा ॥ १८ ॥ पूजयेच्च नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यां माघमासे विशेषतः ॥ १९ ॥ सर्वपापविशुद्ध्यर्थं शिवलोके महीयते ॥ नीलोत्सर्गं तु यो मर्त्यः करोति च तदग्रतः ॥ २० ॥ उद्धरेत्सप्त गोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ साङ्गरुद्रजपं यस्तु चतुर्दश्यां करोति वै ॥ २१ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा लभते परमं पदम् ॥ २२ ॥ सौवर्णनयनं कृत्वा मध्ये रत्नसमन्वितम् ॥ यो ददाति हि जातिभ्य इन्द्रतीर्थे तथोत्तमे ॥ २३ ॥ अन्धता न भवेत्तस्य जन्मानि षष्टिसंख्यया ॥ निर्मलत्वं सदा तेषां नयनेषु प्रजायते ॥ महारोगास्तथा चान्ये स्नात्वा यान्ति तदग्रतः ॥ २४ ॥ पूजिते चैकचित्तेन सर्वरोगात्प्रमुच्यते ॥ स्नात्वा कुण्डे नरो यस्तु सन्तर्पयति यः पितॄन् ॥ २५ ॥ तस्य तृप्ताः सदा भूप पितरश्च पितामहाः ॥ ये वै ग्रस्ता महारो

वाला वह परमपद को पाता है ॥ २२ ॥ और उत्तम इन्द्रतीर्थ में मध्य में रत्नसंयुत करके जो सोने का नेत्र ब्राह्मणों के लिये देता है ॥ २३ ॥ साठ संख्यक जन्मोंतक उसके अन्धता नहीं होती है और उनके नेत्रों में सदैव निर्मलता होती है और उनके आगे नहाकर अन्य महारोग नाश होजाते हैं ॥ २४ ॥ और सावधान चित्त से पूजन करनेपर मनुष्य सब रोगसे छूट जाता है और कुंडमें नहाकर जो मनुष्य पितरों को तर्पण करता है ॥ २५ ॥ हे भूप ! उसके पितर व पितामह सदैव तृप्त रहते हैं

और जो मनुष्य कुष्ठादिक महारोगों से ग्रस्त होते हैं ॥ २६ ॥ वे नहाने ही से शुद्ध होकर दिव्यशरीर होजाते हैं और ज्वरादिक के कष्ट में प्राप्त मनुष्य अपने हित के लिये ॥ २७ ॥ स्नानही से शुद्ध होकर दिव्यशरीर होजाते हैं और स्नान करके जो इन्द्रेश्वरदेव को पूजता है वह ज्वरके बन्धन से छुट जाता है ॥ २८ ॥ और एका-हिक, द्याहिक, चातुर्थिक व तृतीयक और विषमज्वर की पीड़ा व मास, पक्षादिक ज्वर ॥ २९ ॥ इन्द्रेश्वरजी के प्रसाद से नाश होजाता है इस में सन्देह नहीं है व हे भूपते ! वह सत्य सत्य ज्वररहित होजाता है ॥ ३० ॥ और जो बन्ध्या, दुर्भगा, काकबन्ध्या व मृतप्रजा और जो मृतवत्सा व महादुष्टा स्त्री शिवजी के आगे कुण्ड

गैः कुष्ठाद्यैश्चैव देहिनः ॥ २६ ॥ स्नानमात्रेण संशुद्धा दिव्यदेहा भवन्ति ते ॥ ज्वरादिकष्टमापन्ना नराः स्वात्महिताय वै ॥ २७ ॥ स्नानमात्रेण संशुद्धा दिव्यदेहा भवन्ति ते ॥ स्नात्वा च पूजयेद्देवं मुच्यते ज्वरबन्धनात् ॥ २८ ॥ एकाहिकं द्व्याहिकं च चातुर्थं वा तृतीयकम् ॥ विषमज्वरपीडा च मासपक्षादिकं ज्वरम् ॥ २९ ॥ इन्द्रेश्वरप्रसादाच्च नश्यते नात्र संशयः ॥ विज्वरो जायते नूनं सत्यं सत्यं च भूपते ॥ ३० ॥ बन्ध्या च दुर्भगा नारी काकबन्ध्या मृतप्रजा ॥ मृतवत्सा महादुष्टा स्नात्वा कुण्डे शिवाग्रतः ॥ पूजयेदेकचित्तेन स्नानमात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३१ ॥ एवंविधांश्च बहुशो वरान्दत्त्वा पिनाकधृक् ॥ गतोऽसौ स्वपुरं पार्थ सेव्यमानः सुरासुरैः ॥ ३२ ॥ ततः शक्रो महातेजा गतो वै स्वपुरं प्रति ॥ जयन्तेनापि तत्रैव स्थापितं लिङ्गमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ जयन्तस्य हरस्तुष्टस्तस्मिँल्लिङ्गे स्तुतः सदा ॥ त्रिकालं पुत्रसंयुक्तः पूजनार्थं सुरेश्वर ॥ ३४ ॥ आयाति च महाबाहो त्यक्त्वा स्थानं स्वकं हि वै ॥ एतत्सर्वं समाख्यातं सर्वं

में नहाकर सावधान चित्त से पूजती है वह नहानेही से पवित्र होजाती है ॥ ३१ ॥ हे पार्थ ! इस प्रकार बहुत से वरदानों को देकर देवताओं व दैत्यों से सेवित पिनाक-धारी शिवजी अपने लोक को चले गये ॥ ३२ ॥ तदनन्तर बड़े तेजस्वी इन्द्रजी अपने लोक को चलेगये और वहीं पर जयन्तने भी उत्तम लिंगको थापा है ॥ ३३ ॥ उस लिंगमें स्तुति किये हुए शिवजी सदैव जयंत के ऊपर प्रसन्न रहते हैं सुरेश्वर इन्द्रजी पुत्र समेत पूजन के लिये त्रिकाल ॥ ३४ ॥ हे महाबाहो ! अपने स्थान को

छोड़कर आतेहैं सब सुखोंको देनेवाला यह सब चरित्र कहा गया ॥ ३५ ॥ जो पुण्य इन्द्रेश्वरमें होताहै जयंतेशजी के पूजन से उसी पुण्य को मनुष्य सत्य सत्य पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३६ ॥ हे महाराज ! उस कुंड में नहाकर व पूजन करके सावधान मनवाला मनुष्य सब पापों से शुद्धचित्त होकर इन्द्रलोक में पूजा जाता है ॥ ३७ ॥ और जो मनुष्य भक्ति से सुनता है वह सब पापों से छूट जाता है और जयंतेशजी के प्रसाद से वह सब कामनाओं को पाता है ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामिन्द्रेश्वरजयन्तेश्वरमहिमवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ❀ ॥ ● ॥ ❀ ॥

सौख्यप्रदायकम् ॥ ३५ ॥ इन्द्रेश्वरे तु यत्पुण्यं जयन्तेशस्य पूजनात् ॥ तदेवाप्नोति राजेन्द्र सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ३६ ॥ स्नात्वा कुण्डे महाराज सम्पूज्यैकाग्रमानसः ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा इन्द्रलोके महीयते ॥ ३७ ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति जयन्तेशप्रसादतः ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येइन्द्रेश्वरजयन्तेश्वरमहिमवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि शिवतीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्रासौ शंकरो देवः पुनर्जन्मधरोऽभवत् ॥ १ ॥ कीलितो देवदेवेशः शंकरश्च त्रिलोचनः ॥ गिरिजया महाभाग पातितो भूमिमण्डले ॥ २ ॥ छलितो मुह्यमानस्तु दिवा रात्रिं न वेत्ति च ॥ पुंस्त्रीनपुंसकांश्चैव जडीभूतस्त्रिलोचनः ॥ ३ ॥ कल्पान्तमिव सञ्जातं तदा तस्मिंश्च कीलिते ॥ पार्वत्या सहसा तस्य कृतं कीलनकं तदा ॥ ४ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ एतदाश्चर्यमतुलं वचनं यत्त्वयोदितम् ॥ यो गुरुः

दो॰ । धराक्षेत्रकर है यथा अतिहीं अतुल प्रभाव । सोइ बीस अध्याय में कह्यो चरित्र सुहाव ॥ व्यासजी बोले कि इसके उपरान्त मैं अतिउत्तम शिवतीर्थ को कहता हूं जहां कि ये शिवदेवजी फिर जन्मधारी हुए हैं ॥ १ ॥ हे महाभाग ! पार्वतीजी ने देवदेवेश त्रिलोचन शिवजी को कीलन किया व भूमंडल में पातित किया है ॥ २ ॥ छलित व मोहित वे दिन, रात को नहीं जानते हैं और जड़ीभूत त्रिलोचनजी पुरुष, स्त्री व नपुंसक को नहीं जानते हैं ॥ ३ ॥ तब उन शिवजी के कीलने पर कल्पान्त सा होगया उस समय यकायक पार्वतीजी ने उन शिवजी का कीलन कियाहै ॥ ४ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि यह बड़ाभारी आश्चर्य है जो वचन कि तुमने कहा है सब

देवताओं व योगियों के जो सदैव गुरु हैं ॥ ५ ॥ नष्टवृत्तिवाले वे शिवजी किस कारण पार्वतीजी से कीलित हुए इस कारण को कहिये उसमें मुझको बड़ा आश्चर्य है ॥ ६ ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन्, महाराज ! अथर्वण उपवेद से उपजे हुए अनेक प्रकारके मंत्रसमूहोंको शिवजी ने पार्वतीजी के आगे प्रकाशित कियाहै ॥ ७ ॥ और शाकिनी, डाकिनी, काकिनी, हाकिनी, एकिनी व लाकिनी ये छः भेद वहां कहे गये ॥ ८ ॥ व हे नृपोत्तम ! उनसे बीजों को उद्धारकर शिवजी ने पार्वतीजी के आगे एकवृता माला किया है व कहा है ॥ ९ ॥ व हे अनघ ! उस समय अन्य आठ बीजों से मंत्रोद्धार किया गया है और वह महादुष्टा शाकिनी प्रमदा साधन

सर्वदेवानां योगिनां चैव सर्वदा ॥ ५ ॥ पार्वत्या कीलितः कस्मान्नष्टवृत्तिः शिवः कथम् ॥ कारणं कथ्यतां तत्र परं कौतूहलं हि मे ॥ ६ ॥ व्यास उवाच ॥ मन्त्रौघा विविधा राजञ्छंकरेण प्रकाशिताः ॥ पार्वत्यग्रे महाराज अथर्वणोपवेदजाः ॥ ७ ॥ शाकिनी डाकिनी चैव काकिनी हाकिनी तथा ॥ एकिनी लाकिनी ह्येताः षड् भेदास्तत्र कीर्तिताः ॥ ८ ॥ बीजान्युद्धृत्य वै ताभ्यो माला चैकवृता कृता ॥ शम्भुना कथिता चैव पार्वत्यग्रे नृपोत्तम ॥ ९ ॥ अन्यैश्चैवाष्टभिर्बीजैर्मन्त्रोद्धारः कृतस्तदा ॥ साधयेत्सा महादुष्टा शाकिनी प्रमदानघा ॥ १० ॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥ प्रकाशितास्त्वया नाथ भेदा ह्येते षडेव हि ॥ षड्विधाः शक्तयो नाथ अगम्या योगमालिनीः ॥ षड्विधोक्तं त्वयैकेन कूटात्कृतं वदस्व माम् ॥ ११ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ अप्रकाश्यो महादेवि देवासुरैस्तु मानवैः ॥ १२ ॥ पार्वत्युवाच ॥ नमस्ते सर्वरूपाय नमस्ते वृषभध्वज ॥ जटिलेश नमस्तुभ्यं नीलकण्ठ नमोस्तुते ॥ १३ ॥ कृपासिन्धो नमस्तुभ्यं नमस्ते कालरूपिणे ॥

करती है ॥ १० ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि हे नाथ ! तुमने इन छःही भेदों को प्रकाशित किया है व हे नाथ ! छः प्रकार की शक्तियां अगम्य व योगमालिनी हैं व तुम एकने छः प्रकार के उस शक्तिसमूह को कहा है इससे कूट से कियेहुए उसको मुझ से कहिये ॥ ११ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे महादेवि ! वह देवता, दैत्य व मनुष्यों से प्रकाश करने योग्य नहीं है ॥ १२ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि सब रूपी आपके लिये नमस्कार है व हे वृषभध्वज ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे जटिल, ईश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे नीलकण्ठ ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ हे दयासिन्धो ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व कालरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है इन बहुत से

कोमल वचनों से दयानिधान शिवजी को ॥ १४ ॥ प्रसन्न कराकर पार्वतीजी ने दण्डवत् प्रणामकर दोनों चरणों को प्रणाम किया और दया में तत्पर शिवजी ने उन पार्वतीजी से कहा ॥ १५ ॥ कि हे भद्रे ! तुम किस लिये स्तुति करती हो मन में प्रिय वरदान को मांगो ॥ १६ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि यदि मैं तुम को प्यारी हूं तो ध्यान समेत सब समाहार को विस्तार समेत निस्सन्देह कहिये ॥ १७ ॥ श्रीशिवजी बोले कि समाहार से उपजा हुआ फल तुमको प्रकाश न करना चाहिये मैं सब तत्त्व व मंत्र कूटादिक को कहता हूं ॥ १८ ॥ कि हे वरानने ! सब कूटों का माया बीज है और सबों का मध्यम वर्ण बिंदुनाद से आदि में शोभित होताहै ॥ १९ ॥ व

एतैश्च बहुभिर्वाक्यैः कोमलैः करुणानिधिम् ॥ १४ ॥ तोषयित्वाद्रितनया दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥ जग्राह पादयुगलं तां प्रोवाच दयापरः ॥ १५ ॥ किमर्थं स्तूयसे भद्रे याच्यतां मनसीप्सितम् ॥ १६ ॥ पार्वत्युवाच ॥ समाहारं च सध्यानं कथयस्व सविस्तरम् ॥ असन्देहमशेषं च यद्यहं वल्लभा तव ॥ १७ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ न प्रकाश्यं त्वया देवि समाहारोद्भवं फलम् ॥ सर्वं तत्त्वमहं वक्ष्ये मन्त्रकूटाद्यमेव हि ॥ १८ ॥ मायाबीजं तु सर्वेषां कूटानां हि वरानने ॥ सर्वेषां मध्यमो वर्णो बिन्दुनादादिशोभितः ॥ १९ ॥ वह्निबीजं सवातं च कूर्मबीजसमन्वितम् ॥ आदित्यप्रभवं बीजं शक्तिबीजोद्भवं सदा ॥ २० ॥ एतत्कूटं चाद्यबीजं द्वितीयं च विभोर्मतम् ॥ तृतीयं चाग्निबीजं तु संयुक्तं बिन्दुनेन्दुना ॥ २१ ॥ चतुर्थं तु विशेषेण ब्रह्मबीजमृषिस्तथा ॥ पञ्चमं कालबीजं च षष्ठं पार्थिवबीजकम् ॥ २२ ॥ सप्तमे चाष्टमे बाह्यं नृसिंहेन समन्वितम् ॥ नवमे द्वितीयमेकं च दशमे चाष्टकूटकम् ॥ २३ ॥ विपरीतं तयोर्बीजं रुद्राख्ये वरव

पवन समेत अग्निबीज और कूर्मबीज से संयुत सूर्य से उपजा हुआ बीज सदैव शक्तिबीज से उत्पन्न होता है ॥ २० ॥ यह कूट प्रथम बीज व दूसरा बीज विभु का माना गया है और तीसरा अग्निबीज बिंदु व चंद्रमासे संयुक्त है ॥ २१ ॥ और विशेषकर चौथा ब्रह्मबीज व ऋषि है और पांचवां कालबीज व छठां पृथ्वीबीज है ॥ २२ ॥ और सातवें व आठवें में बाहर नृसिंहबीज से संयुत है और नवम में दूसरा व पहला तथा दशम में अष्टकूट है ॥ २३ ॥ व हे वरवर्णिनि ! गेरहवें में उनका

बीज उलटा होता है और चौदहवें में चौथा पृथ्वीबीज से संयुत होता है ॥ २४ ॥ व हे मेनकात्मजे ! कितेक कूट शेष अक्षर रक्षित हैं हे नृप ! जब वे शिवजी की स्त्री पार्वतीजी पृथ्वी में प्राप्त हुईं तब ॥ २५ ॥ वहां रामचन्द्रजी ने समझाया और हँसते हुए शिवजी ने कहा कि हे भद्रे ! तुम किस लिये आपत्ति में प्राप्त हो तुम्हारे मारण, मोहन, वशीकरण, आकर्षण व उच्चाटन में शक्ति होगी और जिस जिस वस्तु की इच्छा करोगी वह वह सिद्धि होगी ॥ २६ । २७ ॥ यह सुनकर उस समय पवित्र हास्यवाली पार्वतीजी का चित्त प्रसन्न हुआ तदनन्तर हे वीर ! शिवजी ने शेष कूटोंको पार्वतीजी से कहा ॥ २८ ॥ और दयासिंधु शिवजी यह बोले कि विधिपूर्वक साधन

णि ॥ चतुर्दशे चतुर्थाख्यं पृथ्वीबीजेन संयुतम् ॥ २४ ॥ कूटाः शेषाक्षराः केचिद्रक्षिता मेनकात्मजे ॥ सा पपात य दोर्व्यां हि शिवपत्नी तदा नृप ॥ २५ ॥ रामेणाश्वासिता तत्र प्रहसंस्त्रिपुरान्तकः ॥ भद्रे कस्मात्त्वमापन्ना तव शक्ति र्भविष्यति ॥ २६ ॥ मारणे मोहने वश्ये आकर्षणे च क्षोभणे ॥ यं यं कामयसे नूनं तत्तत्सिद्धिर्भविष्यति ॥ २७ ॥ इति श्रुत्वा तदा देवी हृष्टचित्ता शुचिस्मिता ॥ कूटशेषास्ततो वीर प्रोक्तास्तस्यै तु शम्भुना ॥ २८ ॥ उवाच च कृपासिन्धुः साधयस्व यथाविधि ॥ कैलासात्तु हरस्तत्र धर्मारण्ये गतोभृशम् ॥ २९ ॥ ज्ञात्वा देवी ययौ तत्र यत्रासौ वृषभध्व जः ॥ तत्क्षणात्पतितो भूमौ धर्मारण्ये नृपोत्तम ॥ ३० ॥ जटा चन्द्रोरगाः शूलं वृषभाद्यायुधानि वै ॥ मुण्डमाला च कौपीनं कपालं ब्रह्मणस्तु वै ॥ ३१ ॥ गता गणाश्च सर्वत्र भूतप्रेता दिशो दश ॥ विसंज्ञं च स्वमात्मानं ज्ञात्वा देवो महे श्वरः ॥ ३२ ॥ स्वेदजास्तु समुत्पन्ना गणाः कूटादयस्तथा ॥ पञ्चकूटान्समुत्पाद्य तदा तस्मै च शूलिने ॥ ३३ ॥ साध

करो और शिवजी कैलास से उस धर्मारण्य में गये ॥ २९ ॥ और पार्वती देवीजी जानकर वहां गईं जहां कि हे नृपोत्तम ! ये वृषध्वज शिवजी उसी क्षण धर्मारण्य में पृथ्वी में गिरे थे ॥ ३० ॥ और जटा, चंद्रमा, नाग, त्रिशूल व वृषभादिक और अस्त्र तथा मुंडमाला, कौपीन व ब्रह्माका कपाल ॥ ३१ ॥ और भूत, प्रेतादिक गण सब कहीं दशो दिशाओं को चले गये और अपने चित्त को मोहित जानकर शिवदेवजी ने विचार किया ॥ ३२ ॥ व स्वेदज उत्पन्न हुए और कूटादिक गण पैदा हुए पांच कूटों को उत्पन्न करके उस समय उन शिवजी के लिये ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! वे साधक जप व होम में परायण हुए और प्रेतासनवाले वे सब गण कालकूट

के ऊपर स्थित हुए ॥ ३४ ॥ व अपने चित्तसे ऐसा कहने लगे कि जिससे शिवजी को मोक्ष होवै तदनन्तर अग्नि की भय से विकल पार्वतीजी कष्ट में प्राप्तहुई ॥ ३५ ॥ और उन्होंने शिवजी को पूजन किया व शिवजी की आज्ञा करनेवाली नीचे मुख किये लज्जित होकर वहां स्थित पार्वतीजी ने तप किया ॥ ३६ ॥ और पञ्चाग्निसेवन व धूमपान करके पार्वतीजी नीचे मुख करके स्थित हुई और उन कूटाक्षरों से स्तुति किये हुए शिवजी प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ हे राजन्! यह धराक्षेत्र पातकों का विनाशक व सब कामनाओं का दायक है और इस स्थान में देवमज्जनक नामक उत्तम तड़ाग शोभित है ॥ ३८ ॥ हे नृप! कुँवार के कृष्णपक्ष में चौदसि के दिन उस में नहाकर

कास्ते महाराज जपहोमपरायणाः ॥ प्रेतासनास्तु ते सर्वे कालकूटोपरिस्थिताः ॥ ३४ ॥ कथयन्ति स्वमात्मानं येन मोक्षः पिनाकिनः ॥ ततः कष्टसमाविष्टा गौरी वह्निभयातुरा ॥ ३५ ॥ समर्चितः शिवस्तैश्च गौरी ह्रीणा त्वधोमुखी ॥ तपस्तेपे च तत्रस्था शंकरादेशकारिणी ॥ ३६ ॥ पञ्चाग्निसेवनं कृत्वा धूम्रपानमधोमुखी ॥ कूटाक्षरैः स्तुतस्तैस्तु तोषितो वृषभध्वजः ॥ ३७ ॥ धराक्षेत्रमिदं राजन्पापघ्नं सर्वकामदम् ॥ देवमज्जनकं शुभ्रं स्थानकेऽस्मिन्विराजते ॥ ३८ ॥ आश्विने कृष्णपक्षे च चतुर्दश्या दिने नृप ॥ तत्र स्नात्वा च पीत्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३९ ॥ पूजयित्वा च देवेशमुपोष्य च विधानतः ॥ शाकिनी डाकिनी चैव वेतालाः पितरो ग्रहाः ॥ ४० ॥ ग्रहा धिष्ण्या न पीड्यन्ते सत्यं सत्यं वरानने ॥ साङ्गं रुद्रजपं तत्र कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥ ४१ ॥ नश्यन्ति विविधा रोगाः सत्यं सत्यं च भूपते ॥ एतत्सर्वं मया ख्यातं देवमज्जनकं शुभम् ॥ ४२ ॥ अश्वमेधसहस्रैस्तु कृतैस्तु भूरिदक्षिणैः ॥ तत्फलं समवा

व जल को पीकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ३९ ॥ और देवेश शिवजी को पूजकर व विधिसे उपासकर शाकिनी, डाकिनी, वेताल, पितर व ग्रह ॥ ४० ॥ और नक्षत्र ग्रह पीडित नहीं करते हैं हे वरानने! यह सत्य सत्य है और वहां साग रुद्रजप करके मनुष्य पापोंसे छूट जाता है ॥ ४१ ॥ व हे राजन्! अनेक भांति के रोग सत्य सत्य नाश होजाते हैं यह सब मैंने उत्तम देवमज्जनक तड़ाग कहा ॥ ४२ ॥ बहुत दक्षिणावाले हजार अश्वमेध यज्ञ करने से जो फल होता है उस फल को इस

को सुनने व सुनानेवाला मनुष्य पाता है ॥ ४३ ॥ व पुत्ररहित मनुष्य पुत्रों को पाता है और निर्धनी धन को पाता है और आयुर्बल, आरोग्य व ऐश्वर्य को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४४ ॥ और मन, वचन व शरीर से उपजा हुआ जो तीन प्रकार का पापहै हे नृप ! वह सब स्मरण व कीर्तन से नाश होजाता है ॥ ४५ ॥ और वह धन्य, यशदायक, आयुर्बलदायक व सुख और सन्तान को देनेवाला है हे वत्स ! जो इस माहात्म्य को सुनता है वह सब सुखों से संयुत होताहै ॥ ४६ ॥ हे नृप ! सब तीर्थों में जो पुण्य होता है व सब दानों में जो फल होता है और सब यज्ञों से जो पुण्य होताहै वह इसको सुनने से होताहै ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमा

प्नोति श्रोता श्रावयिता नरः ॥ ४३ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो धनमाप्नुयात् ॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं लभते नात्र संशयः ॥ ४४ ॥ मनोवाक्कायजनितं पातकं त्रिविधं च यत् ॥ तत्सर्वं नाशमायाति स्मरणात्कीर्तनान्नृप ॥ ४५ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं सुखसन्तानदायकम् ॥ माहात्म्यं शृणुयाद्वत्स सर्वसौख्यान्वितो भवेत् ॥ ४६ ॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वदानेषु यत्फलम् ॥ सर्वयज्ञैश्च यत्पुण्यं जायते श्रवणान्नृप ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येधराक्षेत्रवर्णनंनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ तया चोत्पादिता राजञ्छरीरात्कुलदेवताः ॥ भट्टारिकी १ तथा छत्रा २ ओविका ३ ज्ञानजा तथा ४ ॥ १ ॥ भद्रकाली च ५ माहेशी ६ सिंहोरी ७ धनमर्द्दनी ८ ॥ गात्रा ९ शान्ता १० शेषदेवी ११ वाराही १२ भद्रयोगिनी १३ ॥ २ ॥ योगेश्वरी १४ मोहलज्जा १५ कुलेशी १६ शकुलाचिता १७ ॥ तारणी १८ कनकानन्दा १९

हात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांधराक्षेत्रवर्णनंनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । जौन गोत्र देवी अहै गोत्र प्रवर हैं जौन । इक्किसवें अध्याय में कह्यो चरित सब तौन ॥ व्यासजी बोले कि हे राजन् ! उसने शरीर से कुलदेवताओं को उत्पन्न किया है कि भट्टारिका, छत्रा, ओविका व ज्ञानजा ॥ १ ॥ और भद्रकाली, माहेशी, सिंहोरी, धनमर्दिनी, गात्रा, शांता, शेषदेवी, वाराही व भद्रयोगिनी ॥ २ ॥ योगेश्वरी,

मोहलज्जा, कुलेशी, शकुलाचिता, तारणी, कनकानंदा, चामुण्डा व सुरेश्वरी ॥ ३ ॥ और दारभट्टारिकादिक फिर प्रत्येक सौप्रकार की उत्तम शक्तियां उसमें अनेक रूपों से संयुत उत्पन्न हुईं इसके उपरान्त मैं प्रवरों व देवताओं को कहता हूं ॥ ४ ॥ कि औपमन्यवसगोत्र के प्रवर तीन ३ हैं और गोत्रदेव्या गात्रावसिष्ठ १ भरद्वाज २ इन्द्रप्रमद ३ और काश्यपसगोत्र की सगोत्रदेव्या ज्ञानजा २ व प्रवर ३ तीन हैं काश्यप १ अवत्सार २ व रैभ्य ३ और मांडव्यसगोत्र ३ गोत्रजा दारभट्टारिका ३ व प्रवर ५ पांच हैं भार्गव, च्यवन, अत्रि, और्व और जमदग्नि व कुशिकसगोत्र में उत्पन्न तारणी ६ व महाबला है और प्रवर ३ तीन हैं विश्वामित्र, देवराज, उद्दालक ६

चामुण्डा २० च सुरेश्वरी २१ ॥ ३ ॥ दारभट्टारिकेत्या २२ द्या प्रत्येका शतधा पुनः ॥ उत्पन्नाः शक्तयस्तस्मिन्नानारूपान्विताः शुभाः ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रवराण्यथ देवताः ॥ ४ ॥ औपमन्यवसगोत्रप्रवर ३ गोत्रदेव्यागात्रावसिष्ठ १ भरद्वाज २ इन्द्रप्रमद ३ काश्यपसगोत्रसगोत्रदेव्याज्ञानजा २ प्रवर ३ काश्यपः १ अवत्सारः २ रैभ्यः ३ माण्डव्यसगोत्र ३ गोत्रजा दारभट्टारिका ३ प्रवर ५ भार्गवच्यवनाअत्रिऔर्वजमदग्निः ५ कुशिकसगोत्रजातारणी ६ महाबला प्रवर ३ विश्वामित्रदेवराजउद्दालक ६ शौनकसगोत्र ७ गोत्रदेवी ७ शान्ता प्रवर ३ भार्गवाणैनहोत्रगार्त्समद ३ कृष्णात्रेयसगोत्रवीगोत्रदेव्याभद्रयोगिनी ८ प्रवर ३ आत्रेयअर्चनानसश्यावाश्व ३ गार्ग्यायणसगोत्र गोत्रजा शान्ता प्रवर ५ भार्गवच्यवनआप्नुवान्और्वजमदग्निः १० गार्गायणगोत्रगोत्रजाज्ञानजा प्रवर ५ काश्यपअवत्सारशाण्डिलअसितदेवलगाङ्गेयसगोत्रदेवी शान्ता द्वारवासिनी प्रवर ३ गार्ग्यगार्गि शङ्ख लिखित १२ पैङ्ग्यसगोत्रजाज्ञानजा

और शौनक के सगोत्र ७ सात हैं व गोत्र देवी ७ सात हैं और शांता के प्रवर ३ तीन हैं भार्गव, अणैनहोत्र व गार्त्समद ३ और कृष्णात्रेयस गोत्रवी गोत्रदेवी की भद्रयोगिनी है ८ और प्रवर ३ आत्रेय, अर्चनानस और श्यावाश्व ३ और गार्ग्यायणसगोत्र की गोत्रजा देवी शांता है प्रवर ५ पाच हैं भार्गव, च्यवन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हैं १० और गार्गायण गोत्रकी गोत्रजा देवी ज्ञानजा है व प्रवर ५ पांच हैं काश्यप, अवत्सार, शाडिल, असित व देवल हैं और गांगेयस की गोत्रदेवी शांता द्वारवासिनी है और प्रवर ३ गार्ग्यगार्गि, शंख व लिखित हैं १२ व पैंग्यसगोत्र की गोत्रजा देवी ज्ञानजा है व प्रवर ३ तीन हैं आंगिरस, आंबरीष व

यौवनाश्व १३ और वत्ससगोत्र की गोत्रजा देवी ज्ञानजा है व प्रवर ५ पांच हैं भार्गव, च्यावन, आप्नुवान्, और्व व पुरोधस हैं १४ व वात्ससगोत्र की गोत्रजा देवी ज्ञानजा है और प्रवर ५ पांच हैं भार्गव, च्यावन, आप्नुवान्, और्व व पुरोधस १५ व वात्स्यसगोत्र की गोत्रजा देवी शीहरी है प्रवर ५ पांच हैं भार्गव, च्यावन, आप्नुवान्, और्व व पुरोधस हैं १६ और श्यामायनसगोत्र की गोत्रजा देवी शीहरी है और प्रवर पांच हैं भार्गव, च्यावन, आप्नुवान्, और्व व जमदग्नि हैं १७ व धारणसगोत्र की गोत्रजा देवी छत्रजा है प्रवर ३ तीनहैं अगस्त्य, दार्वच्युत व दध्यवाहन हैं १८ और काश्यप गोत्र की गोत्रजा देवी चामुण्डा है प्रवर ३ तीन हैं काश्यप, स्यावत्सार व नैध्रुव

प्रवर ३ आङ्गिरसआम्बरीषयौवनाश्व १३ वत्ससगोत्रगोत्रजाज्ञानजाप्रवर ५ भार्गवच्यावनआप्नुवान् और्वपुरोधसः १४वात्ससगोत्रगोत्रजाज्ञानजाप्रवर५ भार्गवच्यावन आप्नुवान् और्वपुरोधसः १५ वात्स्यसगोत्रस्य गोत्रजा शीहरी प्रवर ५ भार्गवच्यावनआप्नुवान् और्वपुरोधसः १६ श्यामायनसगोत्रस्य गोत्रजा शीहरी प्रवर ५ भार्गवच्यावनआप्नुवान् और्व जमदग्निः १७ धारणसगोत्रस्य गोत्रजा छत्रजा प्रवर ३ अगस्त्यदार्वच्युतदध्यवाहन १८ काश्यपगोत्रस्य गोत्रजा चामुण्डा प्रवर ३ काश्यपस्यावत्सार नैध्रुव १९ भरद्वाजगोत्रस्य गोत्रजा पक्षिणी प्रवर ३ आङ्गिरस बार्हस्पत्यभारद्वाज २२ माण्डव्यसगोत्रस्य वत्ससवात्स्यसवात्स्यायनस ४ सामान्यलौगाक्षसगोत्रस्य गोत्रजा भद्रयोगिनी प्रवर ३ काश्यपवसिष्ठ अवत्सार २० कौशिकसगोत्रस्य गोत्रजा पक्षिणी प्रवर ३ विश्वामित्र अथर्व भारद्वाज २१ सामान्यप्रवर १ पैङ्ग्यसभरद्वाज २ समानप्रवरा २ लौगाक्षसगार्ग्यायनसकाश्यपकश्यप ४ समानप्रवर ३

हैं १९ और भरद्वाज गोत्र की गोत्रजा पक्षिणी देवी है प्रवर ३ तीन हैं आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज २२ व मांडव्यसगोत्र के वत्स, सवात्स्यस, वात्स्यायनस ये तीन प्रवर हैं ४ और सामान्य लौगाक्षस गोत्र की गोत्रजा देवी भद्रयोगिनी है प्रवर ३ तीन हैं काश्यप, वसिष्ठ, अवत्सार २० कौशिकसगोत्र की गोत्रजा देवी पक्षिणी है प्रवर ३ तीन हैं विश्वामित्र, अथर्व व भरद्वाज २१ सामान्य प्रवर १ पैंग्यस भरद्वाज २ समानप्रवरा २ लौगाक्षस, गार्ग्यायनस, काश्यप, कश्यप ४ समान प्रवर ३ तीन

हैं कौशिक, कुशिकसाः २ समानप्रवरः ४ औपमन्यु, लौगाक्षस २ समानप्रवराः ५ पांच हैं ॥ जितने गोत्रों के प्रवरों में एक विश्वामित्रजी वर्तमान हैं उतने गोत्रों का सगोत्र होने के कारण परस्पर विवाह नही होता है ॥ ५ ॥ समान प्रवर व समानगोत्रवाली तथा माता के सपिण्ड (सातपुश्तियों के इसपार) वाली व जिसकी औषधि न होसकै ऐसे रोगवाली व अजातलोम्नी तथा पहले अन्य की ब्याही व पुत्ररहित की कन्या व बहुतही काली कन्या को त्याग करै ॥ ६ ॥ और जिन प्रवरों में एकही ऋषि वर्तमान हैं भृगु व अंगिरा गण को छोड़कर उतने में सगोत्रता होती है ॥ ७ ॥ और सामान्य से पांच व तीन प्रवरों में और तीन व दो में और ऐसेही भृगु

कौशिककुशिकसाः २ समानप्रवरः ४ औपमन्युलौगाक्षस २ समानप्रवराः ५ ॥ यावतां प्रवरेष्वेको विश्वामित्रोऽनुवर्तते ॥ न तावतां सगोत्रत्वाद्विवाहः स्यात्परस्परम् ॥ ५ ॥ त्यजेत्समानप्रवरां सगोत्रां मातुः सपिण्डामचिकित्स्यरोगाम् ॥ अजातलोम्नीं च तथान्यपूर्वां सुतेन हीनस्य सुतां सुकृष्णाम् ॥ ६ ॥ एक एव ऋषिर्यत्र प्रवरेष्वनुवर्तते ॥ तावत्समानगोत्रत्वमृते भृग्वङ्गिरोगणात् ॥ ७ ॥ पञ्चसु त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः ॥ भृग्वङ्गिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोपि वारयेत् ॥ ८ ॥ समानगोत्रप्रवरां कन्यामूढ्वोपगम्य च ॥ तस्यामुत्पाद्य चाण्डालं ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥ ९ ॥ कात्यायनः ॥ परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरां तथा ॥ त्यागं कृत्वा द्विजस्तस्यास्ततश्चान्द्रायणं चरेत् ॥ १० ॥ उत्सृज्य तां ततो भार्यां मातृवत्परिपालयेत् ॥ ११ ॥ याज्ञवल्क्यः ॥ अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम् ॥ पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ॥ १२ ॥ असमानप्रवरैर्विवाह इति गौतमः ॥ यद्येकं प्रवरं भिन्नं मातृगोत्र

व अंगिरा गणों में तथा शेष प्रवरों में एक को भी त्याग करै ॥ ८ ॥ और समान गोत्र व प्रवरवाली कन्या को ब्याह कर व संगम कर उसमें चांडाल पुत्र को पैदाकरके मनुष्य ब्राह्मणताही से हीन होजाता है ॥ ९ ॥ कात्यायन ने कहा है कि समान गोत्र व समान प्रवरवाली कन्या को ब्याह कर ब्राह्मण उसको त्याग कर तदनन्तर चान्द्रायण व्रत करै ॥ १० ॥ उसके उपरान्त उसको त्यागकर माता की नाईं पालन करै ॥ ११ ॥ याज्ञवल्क्य ने कहा है कि बिन रोगवाली व भाइयोंवाली तथा असमान ऋषि व गोत्र में उपजी हुई कन्या को ब्याहै और माता से पांच व सात पुश्तियों के उपरान्त तथा पिता से ॥ १२ ॥ असमान गोत्र व प्रवरों से विवाह करना

चाहिये ऐसा गौतम ने कहा है ॥ व यदि माता के गोत्र व प्रवर का एकही प्रवर पृथक् हो तो उसमें विवाह न करना चाहिये क्योंकि वह कन्या बहन मानी गई है ॥ १३ ॥ और जो बड़ा भाई स्थित होनेपर स्त्री व अग्नि का संयोग करता है वह परिवेत्ता जानने योग्य है और जेठा भाई परिवित्त होताहै ॥ १४ ॥ और उदरी स्त्री में उपजी हुई नीचकुलवाली स्त्री सदैव वर्जित करने योग्य है वचन व मन से दी हुई और कौतुक से जिसका मंगल कर्म किया गया है ॥ १५ ॥ और जिसका जल से संकल्प हुआ है व जिसका पाणिग्रहण हुआ है व जिसने अग्नि की प्रदक्षिणा की है व जिसके संतान पैदा होचुकी है वह उदरी है ॥ १६ ॥ ये वंश को अग्नि की

वरस्य च ॥ तत्रोद्वाहो न कर्तव्यः सा कन्या भगिनी भवेत् ॥ १३ ॥ दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते ॥ परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ १४ ॥ सदा पौनर्भवा कन्या वर्जनीया कुलाधमा ॥ वाचा दत्ता मनोदत्ता कृतकौतुक मङ्गला ॥ १५ ॥ उदकस्पर्शिता या च या च पाणिगृहीतका ॥ अग्निं परिगता या च पुनर्भूः प्रसवा च या ॥ १६ ॥ इत्येताः काश्यपेनोक्ता दहन्ति कुलमग्निवत् ॥ १७ ॥ अथावटङ्काः कथ्यन्ते गोत्र १ पात्र २ दात्र ३ त्राशयत्र ४ लडकात्र १५ मण्डकीयात्र १६ विडलात्र १७ रहिला १८ भादिल १९ वालूआ २० पोकीया २१ वाकीया २२ मकाल्या २३ लाडआ २४ माणवेदा २५ कालीया २६ ताली २७ वेलीया २८ पांवलएडीया २९ मूडा ३० पीतूला ३१ धिगमघ ३२ भूतपादवादी ३४ होफोया ३५ शेवार्दत ३६ वपार ३७ वथार ३८ साधका ३९ बहुधिया ४० ॥ १८ ॥ मातुलस्य

नाईं जलाती हैं ऐसा काश्यपजी ने कहा है ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त अवटंक कहेजाते हैं कि गोत्र १ पात्र २ दात्र ३ त्राशयत्र ४ लडकात्र १५ मंडकीयात्र १६ विडलात्र १७ रहिला १८ भादिल १९ वालूआ २० पोकीया २१ वाकीया २२ मकाल्या२३ लाडआ २४ माणवेदा २५ कालीया २६ ताली २७ वेलीया २८ पांवलएडीया २९ मूडा ३० पीतूला ३१ धिगमघ ३२ भूतपादवादी ३४ होफोया ३५ शेवार्दत ३६ वपार ३७ वथार ३८ साधका ३९ बहुधिया ४० ॥ १८ ॥ और मामा की कन्या व माता

के गोत्र की कन्या को व्याह कर और समानप्रवरवाली कन्या को व्याह करके उसको छोड़कर चान्द्रायण करै ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालु मिश्रविरचितायाभाषाटीकायांश्रीमाताकथितनामगोत्रप्रवरकृतदेव्यवटङ्ककथनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । धर्मारण्य स्थान में जौन जौन हैं देवि । बाइसवें अध्याय में सोइ चरित सुखसेवि ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि स्थानवासिनी योगिनियों को ब्रह्मा, विष्णु व शिव जीने निर्माण किया है तो किस स्थान में कौनसी व कैसी देवियां हैं उनको मुझ से कहिये ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! तुम सर्वज्ञ व कुलीन हो और बहुत

सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च ॥ समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्य माहात्म्ये श्रीमाताकथितनामगोत्रप्रवरकृतदेव्यवटङ्ककथनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥

युधिष्ठिर उवाच ॥ योगिन्यः स्थानवासिन्यो काजेशेन विनिर्मिताः ॥ कस्मिन्स्थाने हि का देव्यः कीदृश्यस्ता वदस्व मे ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ सर्वज्ञोसि कुलीनोसि साधु पृष्टं त्वयानघ ॥ कथयिष्याम्यहं सर्वमखिलेन युधिष्ठिर ॥ २ ॥ नानाभरणभूषाढ्या नानारत्नोपशोभिताः ॥ नानावसनसंवीता नानायुधसमन्विताः ॥ ३ ॥ नानावाहनसंयुक्ता नानास्वरनिनादिनीः ॥ भयनाशाय विप्राणां काजेशेन विनिर्मिताः ॥ ४ ॥ प्राच्यां याम्यामुदीच्यां च प्रतीच्यां स्थापिता हि ताः ॥ आग्नेय्यां नैर्ऋते देशे वायव्येशानयोस्तथा ॥ ५ ॥ आशापुरी च गात्रायी छत्रायी ज्ञानजा तथा ॥ पिप्पलाम्बा तथा शान्ता सिद्धा भट्टारिका तथा ॥ ६ ॥ कदम्बा विकटा मीठा सुपर्णा वसुजा तथा ॥ मातङ्गी

अच्छा तुमने पूंछा मैं सब को सम्पूर्णता से कहता हूं ॥ २ ॥ कि अनेक भांति के आभूषणोंसे संयुत तथा अनेक भांति के रत्नों से शोभित और अनेक भांति के वसनों को पहने व अनेक प्रकार के अस्त्रों से वे देवियां संयुत हैं ॥ ३ ॥ और अनेक भांति की सवारियों से युक्त व अनेक भांति के शब्दों से बोलनेवाली वे ब्राह्मणों की भय के नाश लिये ब्रह्मा, विष्णु व महेशजी से बनाई गई हैं ॥ ४ ॥ और वे पूर्व, दक्षिण, उत्तर व पश्चिम में स्थापित कीगई हैं और आग्नेय व नैर्ऋत्य स्थान में और वायव्य व ईशान में स्थापित हैं ॥ ५ ॥ आशापुरी, गात्रायी, छत्रायी व ज्ञानजा, पिप्पलाम्बा, शांता व सिद्धा और भट्टारिका ॥ ६ ॥ कदम्बा, विकटा, मीठा, सुपर्णा, वसुजा व मातंगी

महादेवी, वाराही और मुकुटेश्वरी ॥ ७ ॥ और भद्रा महाशक्ति व महाबलवती सिंहारा ये व अन्य बहुतसी वे देवियां कही नहीं जासक्ती हैं॥ ८ ॥ वे देवियां अनेक भांति के रूप को धारण करनेवाली व अनेक प्रकार के वेषों में आश्रित देवियां स्थान से उत्तरदिशा के भागमें आशापूर्णा के समीप हैं॥ ६ ॥ पूर्व में आनन्द को देनेवाली आनन्दा देवी है और उत्तर में बसंती है व हर्ष से अनेक प्रकार के रूपों को वे धारण करती हैं॥ १० ॥ और जलदान से तृप्त कीहुई ये देवियां प्रिय कामनाओं को देती हैं व नैर्ऋत्य दिशा के भाग में शांति को देनेवाली शांता देवी है ॥ ११ ॥ वरदायिनी व चार भुजाओंवाली वह देवी सिंह के ऊपर बैठी है और फिर भट्टारी महाशक्ति

च महादेवी वाराही मुकुटेश्वरी ॥ ७ ॥ भद्रा चैव महाशक्तिः सिंहारा च महाबला ॥ एताश्चान्याश्च बह्वयस्ताः कथितुं नैव शक्यते ॥ ८ ॥ नानारूपधरा देव्यो नानावेषसमाश्रिताः ॥ स्थानादुत्तरदिग्भागे आशापूर्णासमीपतः ॥ ६ ॥ पूर्वे तु विद्यते देवी आनन्दानन्ददायिनी ॥ वसन्ती चोत्तरे देव्यो नानारूपधरा मुदा ॥ १० ॥ इष्टान्कामान्ददत्येता जलदानेन तर्पिताः ॥ स्थाने नैर्ऋतिदिग्भागे शान्ता शान्तिप्रदायिनी ॥ ११ ॥ सिंहोपरि समासीना चतुर्हस्ता वरप्रदा ॥ भट्टारी च महाशक्तिः पुनस्तत्रैव तिष्ठति ॥ १२ ॥ संस्तुता पूजिता भक्त्या भक्तानां भयनाशिनी ॥ स्थानात्तु सप्तमे क्रोशे क्षेमलाभा व्यवस्थिता ॥ १३ ॥ सा विलेपमयी पूज्या चिन्तिता सिद्धिदायिनी ॥ पूर्वस्यां दिशि लोकैस्तु बलिदानेन तर्पिता ॥ परिवारेण संयुक्ता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ १४ ॥ अचिन्त्यरूपचरिता सर्वशत्रुविनाशनी ॥ सन्ध्यायास्त्रिषु कालेषु प्रत्यक्षैव हि दृश्यते ॥ १५ ॥ स्थानात्तु सप्तमे क्रोशे दक्षिणे विन्ध्यवासिनी ॥ सायुधा

वहीं पर स्थित है ॥ १२ ॥ भक्ति से स्तुति कीहुई व पूजी हुई वह भक्तों के भयको नाशनेवाली है और स्थान से सात कोसपर क्षेमलाभा देवी स्थित है ॥ १३ ॥ लेपमयी वह पूजने योग्य है और स्मरण कीहुई वह सिद्धि को देती है और पूर्व दिशा में परिवार समेत लोगों से तृप्त कीहुई वह भुक्ति, मुक्ति को देती है ॥ १४ ॥ और वह अचिन्तनीय रूप व चारित्रवाली है व सब शत्रुवों को नाशनेवाली है और संध्या के तीनों समयों में वह प्रत्यक्षही देखपड़ती है ॥ १५ ॥ और स्थान से

दक्षिण में सात कोसपर विन्ध्यवासिनी देवी है अस्त्रों समेत व रूप से संयुत वह भक्तों के भय को नाशनेवाली है ॥ १६ ॥ और पश्चिम में उतनीही भूमि में निम्बजा देवी स्थित है बहुत बलवती वह देखनेपर भी नयनों को आनन्द देती है ॥ १७ ॥ और स्थान से उत्तर दिशा के भाग में उतनीही भूमि पै बहुसुवर्णाक्ष नामक शक्ति स्थित है पूजीहुई वह सुवर्ण को देती हैं ॥ १८ ॥ और स्थान से वायव्यकोण में कोसभर पर समय में छाग को धारनेवाली क्षेत्रधरा महादेवी स्थित है ॥ १९ ॥ और नगर से उत्तर दिशा के भाग में कोसभरपर सब के उपकार में परायण व स्थान के उपद्रव को नाशनेवाली कर्णिका देवी है ॥ २० ॥ और स्थान से नैर्ऋत्य दिशा

रूपसम्पन्ना भक्तानां भयहारिणी ॥ १६ ॥ पश्चिमे निम्बजा देवी तावद्भूमिसमाश्रिता ॥ महाबला सा दृष्टापि नयनानन्ददायिनी ॥ १७ ॥ स्थानादुत्तरदिग्भागे तावद्भूमिसमाश्रिता ॥ शक्तिर्बहुसुवर्णाक्षा पूजिता सा सुवर्णदा ॥ १८ ॥ स्थानाद्वायव्यकोणे च क्रोशमात्रमिते श्रिता ॥ क्षेत्रधरा महादेवी समये छागधारिणी ॥ १९ ॥ पुरादुत्तरदिग्भागे क्रोशमात्रे तु कर्णिका ॥ सर्वोपकारनिरता स्थानोपद्रवनाशनी ॥ २० ॥ स्थानान्निर्ऋतिदिग्भागे ब्रह्माणीप्रमुखास्तथा ॥ नानारूपधरा देव्यो विद्यन्ते जलमातरः ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवतास्थापनंनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा यत्कृतं पुरा ॥ तत्सर्वं कथयाम्यद्य शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ १ ॥ देवा

के भाग में अनेक प्रकार के रूपों को धारनेवाली ब्रह्माणी आदिक जलमातृका देवी स्थित हैं ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदेवतास्थापनंनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । धर्मारण्य क्षेत्र में यज्ञ देवतन कीन । तेइसवें अध्याय में सोइ चरित्र नवीन ॥ व्यासजी बोले- कि इसके उपरान्त मैं कहता हूं कि पुरातन समय ब्रह्मा ने जो किया है उस सबको मैं इस समय कहताहूं सावधान मन होकर सुनिये ॥ १ ॥ कि देवताओं व दानवों का वैर से युद्ध हुआ और उस महादुष्ट युद्ध में देवताओं का मन

दुःखित हुआ ॥ २ ॥ और उस युद्धमें वे दुःखित हुए व ब्रह्माकी शरण में गये ॥ ३ ॥ देवता बोले कि हे ब्रह्मन्! हम किस प्रकार दैत्यों का वध करैंगे उस यत्न को इस समय मुझ से शीघ्रही कहिये ॥ ४ ॥ ब्रह्मा बोले कि पुरातन समय यमराज की तपस्या से प्रसन्न होतेहुए मैंने व शिवजी ने और विष्णुजी ने धर्मारण्यको बनाया है ॥ ५ ॥ वहां जो दान दिया जाता है अथवा जो उत्तम यज्ञ या तप कियाजाता है वह सब कोटिगुना होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६ ॥ हे देवताओ! पाप या पुण्य सब कोटिगुना होता है उसी कारण दैत्यों से वह स्थान कभी घर्षित नहीं होता है ॥ ७ ॥ ब्रह्मा का वचन सुनकर आश्चर्य समेत सब देवता ब्रह्मा को आगे करके धर्मारण्य

नां दानवानां च वैराद्युद्धं बभूव ह ॥ तस्मिन्युद्धे महादुष्टे देवाः संक्लिष्टमानसाः ॥ २ ॥ बभूवुस्तत्र सोद्वेगा ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ३ ॥ देवा ऊचुः ॥ ब्रह्मन्केन प्रकारेण दैत्यानां वधमेव च ॥ कुर्मश्चाद्य उपायं हि कथ्यतां शीघ्रमेव मे ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मया हि शंकरेणैव विष्णुना हि तथा पुरा ॥ यमस्य तपसा तुष्टैर्धर्मारण्यं विनिर्मितम् ॥ ५ ॥ तत्र यद्दीयते दानं यज्ञं वा तप उत्तमम् ॥ तत्सर्वं कोटिगुणितं भवेदिति न संशयः ॥ ६ ॥ पापं वा यदि वा पुण्यं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥ तस्माद्दैत्यैर्धर्षितं न कदाचिदपि भोः सुराः ॥ ७ ॥ श्रुत्वा तु ब्रह्मणो वाक्यं देवाः सर्वे सविस्मयाः ॥ ब्रह्माणं त्वग्रतः कृत्वा धर्मारण्यमुपाययुः ॥ ८ ॥ सत्रं तत्र समारभ्य सहस्राब्दमनुत्तमम् ॥ वृत्वाऽऽचार्यं चाङ्गिरसं मार्कण्डेयं तथैव च ॥ ९ ॥ अत्रिं च कश्यपं चैव होतारं समकल्पयन् ॥ जमदग्निं गौतमं च अध्वर्युत्वं न्यवेदयन् ॥ १० ॥ भरद्वाजं वसिष्ठं तु प्रत्यध्वर्युत्वमादिशन् ॥ नारदं चैव बाल्मीकिं नोदनायाकरोत्तदा ॥ ११ ॥ ब्रह्मासने च ब्रह्माणं स्थापयामासुरादरात् ॥ क्रोशचतुष्कमात्रां च वेदिं कृत्वा सुरैस्ततः ॥ १२ ॥ द्विजाः सर्वे समाहूता यज्ञस्यार्थे हि जाप

को आये ॥ ८ ॥ और वहां हज़ार वर्षका अति उत्तम यज्ञ प्रारंभ करके आंगिरस व मार्कण्डेयजी को आचार्य वरण करके ॥ ९ ॥ अत्रि व कश्यपजी को होता किया और जमदग्नि व गौतमजी को अध्वर्यु का कर्म दिया ॥ १० ॥ और भरद्वाज व वसिष्ठजी को प्रत्यध्वर्यु का कार्य दिया व उस समय नारद और बाल्मीकिजी को प्रेरणा के लिये किया ॥ ११ ॥ और ब्रह्मासन पै आदर से ब्रह्माजी को स्थापित किया तदनन्तर देवताओं ने चार कोस की वेदी बनाकर ॥ १२ ॥ यज्ञ के लिये जप करनेवाले सब

ब्राह्मणों को बुलाया जोकि ऋग्, यजुः, साम व अथर्वण वेदों को कहते थे ॥ १३ ॥ और शिवजी के पुत्र गणेश व स्वामिकार्त्तिकेयजी को बुलाया और वज्रधारी इन्द्र व इन्द्र के पुत्र जयंत को बुलाया ॥ १४ ॥ और चार शूर देवता द्वारपाल बनाये गये तदनन्तर रक्षोघ्न इस मंत्र से अग्नि में हवन होनेलगा ॥ १५ ॥ और हे नरेश्वर ! यव से मिश्रित व शहद तथा घी से मिश्रित तिलों को उससमय उन देवताओं ने वेदमंत्रों से हवन किया ॥ १६ ॥ तदनन्तर आघार व आज्यभाग को हवन कर मुनक्का, ऊंख, सुपारी, नारंगी, जंभीरी व बिजौरा निंबू को हवन किया ॥ १७ ॥ और उत्तर से नारियल व अनार को क्रम से हवन किया और दूध से संयुत शहद व घी और शक्कर

काः ॥ ऋग्यजुःसामाथर्वान्वै वेदानुद्गिरयन्ति ये ॥ १३ ॥ गणनाथं शम्भुसुतं कार्त्तिकेयं तथैव च॥ इन्द्रं वज्रधरं चैव जयन्तं चेन्द्रसूनुकम् ॥ १४ ॥ चत्वारो द्वारपालाश्च देवाः शूरा विनिर्मिताः ॥ ततो रक्षोघ्नमन्त्रेण हूयते हव्यवाहनः ॥ १५ ॥ तिलांश्च यवमिश्रांश्च मध्वाज्येन च मिश्रितान् ॥ जुहुवुस्ते तदा देवा वेदमन्त्रैर्नरेश्वर ॥ १६ ॥ आघारावाज्यभागौ च हुत्वा चैव ततः परम् ॥ द्राक्षेक्षुपूगनारिङ्गजम्बीरं बीजपूरकम् ॥ १७ ॥ उत्तरतो नालिकेरं दाडिमं च यथाक्रमम् ॥ मध्वाज्यं पयसा युक्तं कृशरं शर्करायुतम् ॥ १८ ॥ तण्डुलैः शतपत्रैश्च यज्ञे वाचं नियम्य च ॥ विचिन्त्य च महाभागाः कृत्वा यज्ञं सदक्षिणम् ॥ १९ ॥ उत्तमं च शुभं स्तोमं कृत्वा हर्षमुपाययुः ॥ अवारितान्नमददन्दीनान्धकृपणेष्वपि ॥ २० ॥ ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण दत्तमन्नं यथेप्सितम् ॥ पायसं शर्करायुक्तं साज्यशाकसमन्वितम् ॥ २१ ॥ मण्डका वटकाः पूपास्तथा वै वेष्टिकाः शुभाः ॥ सहस्रमोदकाश्चापि फेणिका घुर्घुरादयः ॥ २२ ॥ ओदनश्च तथा

समेत तिल, चावल को हवन किया ॥ १८ ॥ और यज्ञ में वचन को रोंककर चावलों व कमलों से हवन करके महाभाग देवता लोग विचार कर यज्ञ को दक्षिणा समेत करके ॥ १९ ॥ उत्तम व शुभ स्तोत्र करके हर्ष को प्राप्त हुए व उन्हों ने बिन मना कियेहुए अन्न को दीन, अन्ध और कृपणों के लिये दिया ॥ २० ॥ व विशेषकर ब्राह्मणों के लिये इच्छा के अनुकूल अन्न दियागया और शक्कर समेत व घी और शाक से संयुत खीर दीगई ॥ २१ ॥ और मंडक, बरा, पुवा और उत्तम वेष्टिका दीगई व हज़ारों लड्डू व फेनी और घुर्घुरादिक दियेगये ॥ २२ ॥ और भात व अरहर से उपजी हुई उत्तम दालि दीगई और वैसेही मूंगकी दालि व पापड़ और बरिया

दीगई ॥ २३ ॥ व विचित्र चाटने योग्य पदार्थ दियेगये और लवंग, मिर्च व पिप्पली की राशियोंसे संयुत कुल्माप, वेल्लक व कोमल और उत्तम वालक दियेगये ॥ २४ ॥ व मिर्च समेत तथा अदरख से संयुत ककड़ियां दीगई इस प्रकार के अन्न व अनेक भांति के शाकों को ॥ २५ ॥ हे नृप ! पुत्रों समेत अठारह हज़ार सब धर्मारण्यनिवासी द्विजोंको उस समय भोजन कराकर ॥ २६ ॥ तब वे देवता प्रतिदिन भोजन करते थे इस प्रकार उस समय हज़ार वर्षतक यज्ञ करके ॥ २७ ॥ हे राजन् ! दैत्यका वध करके वे सुखको प्राप्त हुए और सब पवनगण व देवता यकायक स्वर्ग को चलेगये ॥ २८ ॥ वैसेही सब अप्सरा और ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी मनोहर कैलास पर्वतके शिखर पै व

दाली आढकीसम्भवा शुभा ॥ तथा वै मुद्गदाली च पर्पटा वटिका तथा ॥ २३ ॥ प्रलेह्यानि विचित्राणि युक्तास्त्र्यूषणसञ्चयैः ॥ कुल्माषा वेल्लकाश्चैव कोमला वालकाः शुभाः ॥ २४ ॥ कर्कटिकाश्चार्द्रयुता मरिचेन समन्विताः ॥ एवंविधानि चान्नानि शाकानि विविधानि च ॥ २५ ॥ भोजयित्वा द्विजान्सर्वान्धर्मारण्यनिवासिनः ॥ अष्टादशसहस्राणि सपुत्रांश्च-तदा नृप ॥ २६ ॥ तदा देवाः प्रतिदिनं ते कुर्वन्तिस्म भोजनम् ॥ एवं वर्षसहस्रं वै कृत्वा यज्ञं तदामराः ॥ २७ ॥ कृत्वा दैत्यवधं राजन्निर्भयत्वमवाप्नुयुः ॥ स्वर्गं जग्मुश्च सहसा देवाः सर्वे मरुद्गणाः ॥ २८ ॥ तथैवाप्सरसः सर्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ कैलासशिखरं रम्यं वैकुण्ठं विष्णुवल्लभम् ॥ २९ ॥ ब्रह्मलोकं महापुण्यं प्राप्य सर्वे दिवौकसः ॥ परं हर्षमुपाजग्मुः प्राप्य नन्दनमुत्तमम् ॥ ३० ॥ स्वे स्वे स्थाने स्थिरीभूत्वा तस्थुः सर्वे हि निर्भयाः ॥ ३१ ॥ ततः कालेन महता कृताख्ययुगपर्यये ॥ लोहासुरो मदोन्मत्तो ब्रह्मवेषधरः सदा ॥ ३२ ॥ आगत्य सर्वान्विप्रांश्च धर्षयेद्धर्मवित्तमान् ॥ शूद्रांश्च वणिजश्चैव दण्डघातेन ताडयेत् ॥ ३३ ॥ विध्वंसयेच्च यज्ञादीन्होमद्रव्याणि भक्षयेत् ॥

विष्णु प्रिय वैकुंठ को ॥ २९ ॥ और महापुण्य ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर व सब देवता उत्तम नंदनवन को प्राप्त होकर बड़े आनन्द को प्राप्तहुए ॥ ३० ॥ और अपने अपने स्थान में स्थिर होकर सब निडर होतेहुए स्थित हुए ॥ ३१ ॥ तदनन्तर बहुत समय के बाद सतयुग नामक युग के बीतने पर सदैव ब्राह्मण का वेष धारनेवाला मद से उन्मत्त लोहासुर ॥ ३२ ॥ आकर धर्मविदों में श्रेष्ठ सब ब्राह्मणों की धर्षणा करनेलगा और शूद्रों व वणिजों को दंडघात से मारता था ॥ ३३ ॥ और यज्ञादिकों को

विध्वंस करता था व होम की वस्तुवों को खाता था और बडी भारी वेदियों को देखकर मोह से दूषित करता था ॥ ३४ ॥ और पवित्र भूमियों को मूत्रोत्सर्ग व मल से दूषित करता था व हे राजन् ! वह वन से स्त्रियों को दूषित करता था ॥ ३५ ॥ तदनन्तर लोहासुर के डर से विकल वे सब ब्राह्मण परिवार समेत भगकर दशो दिशाओं को चले गये ॥ ३६ ॥ व हे नृप ! भय से दुःखित वे बनिया ब्राह्मणों के पीछे चले और बड़े डर से भीत होतेहुए वे दूर जाकर व विचार कर ॥ ३७ ॥ तब शूद्रों व ब्राह्मणों समेत सब मिलकर चलेगये और निर्जन तथा बहुतही पवित्र मुक्तावन को वे गये ॥ ३८ ॥ व हे नरेश्वर ! थोड़ेही दूर पै उन्हों ने निवास कराया और उन्हों ने वजिङ्

वेदिका दीर्घिका दृष्ट्वा कश्मलेन प्रदूषयेत् ॥ ३४ ॥ मूत्रोत्सर्गपुरीषेण दूषयेत्पुण्यभूमिकाः ॥ गहनेन तथा राजन्स्त्रियो दूषयते हि सः ॥ ३५ ॥ ततस्ते वाडवाः सर्वे लोहासुरभयातुराः ॥ प्रणष्टाः सपरीवारा गतास्ते वै दिशो दश ॥ ३६ ॥ वणिजस्ते भयोद्विग्ना विप्राननुययुर्नृप ॥ महाभयेन सम्भीता दूरं गत्वा विमृश्य च ॥ ३७ ॥ सह शूद्रैर्द्विजैः सर्व एकीभूत्वा गतास्तदा ॥ मुक्तारण्यं पुण्यतमं निर्जनं हि ययुश्च ते ॥ ३८ ॥ निवासं कारयामासुर्नातिदूरे नरेश्वर ॥ वजिङ्नाम्ना हि तद्ग्रामं वासयामासुरेव ते ॥ ३९ ॥ लोहासुरभयाद्राजन्विप्रनाम्ना विनिर्मितम् ॥ शम्भुना वणिजो यस्मात्तस्मात्तन्नामधारणम् ॥ ४० ॥ शम्भुग्राममिति ख्यातं लोके विख्यातिमागतम् ॥ अथ केचिद्भयान्नष्टा वणिजः प्रथमं तदा ॥ ४१ ॥ ते नातिदूरे गत्वा वै मण्डलं चक्रुरुत्तमम् ॥ विप्रागमनकाङ्क्षास्ते तत्र वासमकल्पयन् ॥४२॥ मण्डलेति च नाम्ना वै ग्रामं कृत्वान्यवीवसन् ॥ विप्रसार्थपरिभ्रष्टाः केचित्तु वणिजस्तदा ॥ ४३ ॥ अन्यमार्गे

नाम से उस ग्राम को बसाया ॥ ३९ ॥ व हे राजन् ! लोहासुर के भय से विप्रों के नाम से शिवजी से बनाया गया जिस लिये उसमें वणिज् बसते हैं उस कारण उस नाम को धारनेवाला है ॥ ४० ॥ व शंभुग्राम ऐसा वह संसार में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ और उस समय कितेक वणिज् लोग पहले भय से भगगये ॥ ४१ ॥ उन्हों ने थोडीदूर जाकर उत्तम मंडल किया व ब्राह्मणों के आने की इच्छावाले उन्हों ने वहा निवास किया ॥ ४२ ॥ और मंडल ऐसे नाम से ग्राम करके उन्हों ने निवास किया और उस समय ब्राह्मणों के गण से अलग होकर कितेक वणिज् लोग ॥ ४३ ॥ लोहासुर के डर से विकल होकर जो अन्य मार्ग में गये और धर्मारण्य से थोड़ीदूर

जाकर चिंता को प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥ कि हम लोग किस मार्ग में प्राप्त हैं व ब्राह्मण लोग किस मार्ग में प्राप्तहुए इस बड़ी भारी चिन्ता को प्राप्त उन्होंने वहां निवास किया ॥ ४५ ॥ जिस लिये वे अन्य मार्ग में गये थे उस कारण उन्हों ने उस नाम से उपजेहुए अडालंज ऐसे पृथ्वी में प्रसिद्ध ग्राम को बसाया ॥ ४६ ॥ हे भूपते! जिस नाम का जो वणिज् जिस ग्राम में निवासी हुआ उस ग्रामका वह नाम हुआ ॥ ४७ ॥ व हे राजन्! भय से विकल वणिज् और ब्राह्मण जिसलिये मोह को प्राप्त हुए उसी कारण उन सबों ने मोह ऐसी संज्ञा को कहा ॥ ४८ ॥ इस प्रकार वे सब भगकर दशो दिशाओं को चले गये और ब्राह्मण व वणिज् भी धर्मारण्य में नहीं स्थित

गता ये वै लोहासुरभयार्दिताः ॥ धर्मारण्यान्नातिदूरे गत्वा चिन्तामुपाययुः ॥ ४४ ॥ कस्मिन्मार्गे वयं प्राप्ताः कस्मिन्प्राप्ता द्विजातयः ॥ इति चिन्तां परां प्राप्ता वासं तत्र त्वकारयन् ॥ ४५ ॥ अन्यमार्गे गता यस्मात्तस्मात्तन्नामसम्भवम् ॥ ग्रामं निवासयामासुरडालज्ञमिति क्षितौ ॥४६॥ यस्मिन्ग्रामे निवासी यो यत्संज्ञश्च वणिग्भवेत् ॥ तस्य ग्रामस्य तन्नाम ह्यभवत्पृथिवीपते ॥ ४७ ॥ वणिजश्च तथा विप्रा मोहं प्राप्ता भयार्दिताः ॥ तस्मान्मोहेतिसंज्ञां ते राजन्सर्वे निरब्रुवन् ॥ ४८ ॥ एवं प्रनपणं नष्टास्ते गताश्च दिशो दश ॥ धर्मारण्ये न तिष्ठन्ति वाडवा वणिजोऽपि वा ॥ ४९ ॥ उद्वसं हि तदा जातं धर्मारण्यं च दुर्लभम् ॥ भूषणं सर्वतीर्थानां कृतं लोहासुरेण तत् ॥ ५० ॥ नष्टद्विजं नष्टतीर्थं स्थानं कृत्वा हि दानवः ॥ परां मुदमवाप्यैव जगाम स्वालयं ततः ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येज्ञातिभेदवर्णनंनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

९ ॥ तब सब तीर्थों का भूषण धर्मारण्य उजाड़ होगया और लोहासुर ने उसको दुर्लभ करदिया ॥ ५० ॥ उस स्थान को ब्राह्मणों से रहित व तीर्थों से रहित आनन्द को प्राप्त होकर तदनन्तर अपने स्थान को चला गया ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकाया मत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । धर्मारण्य क्षेत्रकर अहै यथा माहात्म्य । चौबिसवें अध्याय में सोइ चरित याथात्म्य ॥ व्यासजी बोले कि हे भूपते ! अनेक पूर्व जन्मों के पातकों का नाशक इस तीर्थ का माहात्म्य मैंने तुम्हारे आगे कहा ॥ १ ॥ स्थानों के मध्य में वह उत्तम स्थान बड़ा भारी कल्याणकारक है पुरातन समय बुद्धिमान् महारुद्रजी ने स्वामिकार्त्तिकेयजी के आगे कहा है ॥ २ ॥ हे पार्थ ! उसमें नहाकर तुम सब पाप से छूट जावोगे शिवजी बोले कि हे तात ! व्यासजी के उस वचन को सुनकर साधुवों के पालन में तत्पर धर्म के पुत्र धर्मराज युधिष्ठिरजी ने उस समय महापातकों के नाश के लिये धर्मारण्य में प्रवेश किया और उन्हों ने इच्छा के अनुकूल वहां तीर्थों में

व्यास उवाच ॥ एतत्तीर्थस्य माहात्म्यं मया प्रोक्तं तवाग्रतः ॥ अनेकपूर्वजन्मोत्थपातकघ्नं महीपते ॥ १ ॥ स्थानानामुत्तमं स्थानं परं स्वस्त्ययनं महत् ॥ स्कन्दस्याग्रे पुरा प्रोक्तं महारुद्रेण धीमता ॥ २ ॥ त्वं पार्थ तत्र स्नात्वा हि मोक्ष्यसे सर्वपातकात् ॥ शिव उवाच ॥ तच्छ्रुत्वा व्यासवाक्यं हि धर्म्मराजो युधिष्ठिरः ॥ ३ ॥ धर्मात्मजस्तदा तात धर्मारण्यं समाविशत् ॥ महापातकनाशाय साधुपालनतत्परः ॥ ४ ॥ विगाह्य तत्र तीर्थानि देवतायतनानि च ॥ इष्टापूर्तादिकं सर्वं कृतं तेन यथेप्सितम् ॥ ५ ॥ ततः पापविनिर्मुक्तः पुनर्गत्वा स्वकं पुरम् ॥ इन्द्रप्रस्थं महासेन शशास वसुधातलम् ॥ ६ ॥ इदं हि स्थानमासाद्य ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ॥ तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः ॥ ७ ॥ भुक्त्वा भोगान्पार्थिवांश्च परं निर्वाणमाप्नुयुः ॥ श्राद्धकाले च सम्प्राप्ते ये पठन्ति द्विजातयः ॥ ८ ॥ उद्धृताः पितरस्तैस्तु यावच्चन्द्रार्कमेदिनी ॥ द्वापरे च युगे भूत्वा व्यासेनोक्तं महात्मना ॥ ९ ॥ वारिमात्रेण धर्मवाप्यां गया

नहाकर व देवस्थानों को जाकर सब इष्टापूर्तादिक कर्म किया ॥ ३ । ४ । ५ ॥ तदनन्तर फिर हे महासेन ! पातकों से छूटेहुए उन्हों ने अपने नगर इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) को जाकर पृथ्वी को पालन किया ॥ ६ ॥ इस स्थान को आकर जो उत्तम मनुष्य इसको सुनते हैं उनकी भुक्ति व मुक्ति होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ और राजाओं के सुखों को भोगकर वे उत्तम मोक्ष को पाते हैं व श्राद्ध का समय प्राप्त होनेपर जो ब्राह्मण इसको पढ़ते हैं ॥ ८ ॥ उन्हों ने चन्द्रमा व सूर्य और पृथ्वी जबतक रहेगी तबतक पितरोंको उधारा है द्वापरयुग में उत्पन्न होकर महात्मा व्यासजी ने यह कहा है ॥ ९ ॥ कि धर्मवापी में जलही से मनुष्य गयाश्राद्ध का फल पाता है और

यहां आयेहुए मनुष्य का पाप यमराज के स्थान में स्थित होता है याने नाश होजाता है॥ १० ॥ लोकों के हित की इच्छा से धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी ने कहा है कि विना अन्न व विना कुश और विना आसन के ॥ ११ ॥ जल से कोटि जन्मों में किया हुआ पाप नाश होजाताहै कुरु जांगल में सुवर्णशृंगवाली हज़ार गौवों को सूर्यग्रहण में देकर जो पुण्य होता है वही धर्मवापी में तर्पण से होता है ॥ १२ ॥ तुमलोगों से यह सब धर्मारण्य का कार्य कहागया जिसको सुनकर ब्रह्मघाती व गोघाती मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ १३ ॥ गया में इक्कीसबार पिंडपातन से जो फल होता है उस फल को मनुष्य एकवार इसको सुनने पर पाता है ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे

श्राद्धफलं लभेत् ॥ अत्रागतस्य मर्त्यस्य पापं यमपदे स्थितम् ॥ १० ॥ कथितं धर्मपुत्रेण लोकानां हितकाम्यया ॥ विना अन्नैर्विना दर्भैर्विना चासनमेव वा ॥ ११ ॥ तोयेन नाशमायाति कोटिजन्मकृतं त्वघम् ॥ सहस्ररुक्मशृङ्गीणां धेनूनां कुरुजाङ्गले ॥ दत्त्वा सूर्यग्रहे पुण्यं धर्मवाप्यां च तर्पणात् ॥ १२ ॥ एतद्वः कथितं सर्वं धर्मारण्यस्य चेष्टितम् ॥ यच्छ्रुत्वा ब्रह्महा गोघ्नो मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १३ ॥ एकविंशतिवारैस्तु गयायां पिण्डपातने ॥ तत्फलं समवाप्नोति सकृदस्मिञ्छ्रुते सति ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कान्देधर्मारण्यतीर्थमाहात्म्यप्रभावकथनंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

सूत उवाच ॥ अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ धर्मारण्ये यथाऽऽनीता सत्यलोकात्सरस्वती ॥१॥ मार्कण्डेयं सुखासीनं महामुनिनिषेवितम् ॥ तरुणादित्यसंकाशं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ २ ॥ सर्वतीर्थमयं दिव्यमृषीणां प्रवरं द्विजम् ॥ आसनस्थं समायुक्तं धन्यं पूज्यं दृढव्रतम् ॥ ३ ॥ योगात्मानं परं शान्तं कमण्डलुधरं विभुम्॥

धर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांधर्मारण्यतीर्थमाहात्म्यप्रभावकथनंनामचतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । यथा सरस्वति नदीकर है अति अतुल प्रभाव । पच्चिसवें अध्याय में सोइ चरित सरसाव ॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त मैं अन्य उत्तम तीर्थ का माहात्म्य कहताहूं कि जिस प्रकार धर्मारण्यमें सत्यलोक से सरस्वतीजी लाईगई हैं॥ १ ॥ सुख से बैठे हुए व महामुनियों से सेवित तथा तरुणसूर्य के समान व सब शास्त्रों में प्रवीण मार्कंडेयजी ॥ २ ॥ जोकि समस्त तीर्थमय व ऋषियों के मध्य में श्रेष्ठ व दिव्य द्विज, आसन पै बैठे, धन्य, पूज्य व दृढ़व्रत ॥ ३ ॥ और योगात्मक व बहुतही शान्त, कमंडलु

को धारण किये व्यापक, रुद्राक्ष सूत्रधारी, शान्त व कल्पान्तवासी ॥ ४ ॥ और क्षोभरहित, ज्ञानी, स्वस्थ व पितामह के समान प्रकाशवान् इस प्रकार समाधि में स्थित व हर्ष से प्रफुल्लित लोचनोंवाले ॥ ५ ॥ मार्कंडजी को स्तुतियों से भक्ति करके प्रणाम कर मुनियों ने कहा कि हे भगवन् ! नैमिषारण्य में बारह वर्ष के यज्ञ में ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम ने जिस ब्रह्मा की कन्या को उतारा है व पृथ्वी में वहीं गंगाका अवतरण कराया है ॥ ७ ॥ कुलपति शौनक मुनि के आगे अन्य मुनियों के भी सुनतेहुए सूत मुनि से जो गाया व कहागया है ॥ ८ ॥ उस बड़े भारी आख्यानको सुनकर हमलोगों के हृदय में स्थित है कि दर्शन से भी सरस्वतीजी प्राणियों के

अक्षसूत्रधरं शान्तं तथा कल्पान्तवासिनम् ॥ ४ ॥ अक्षोभ्यं ज्ञानिनं स्वस्थं पितामहसमद्युतिम् ॥ एवं दृष्ट्वा समाधिस्थं प्रहर्षोत्फुल्ललोचनम् ॥ ५ ॥ प्रणम्य स्तुतिभिर्भक्त्या मार्कण्डं मुनयोऽब्रुवन् ॥ भगवन्नैमिषारण्ये सत्रे द्वादशवार्षिके ॥ ६ ॥ त्वयावतारिता ब्रह्मन्नदी या ब्रह्मणः सुता ॥ तथा कृतं च तत्रैव गङ्गावतरणं क्षितौ ॥ ७ ॥ गीयमानं कुलपतेः शौनकस्य मुनेः पुरः ॥ सूतेन मुनिना ख्यातमन्येषामपि शृण्वताम् ॥ ८ ॥ तच्छ्रुत्वा महदाख्यानमस्माकं हृदि संस्थितम् ॥ पापघ्नी पुण्यजननी प्राणिनां दर्शनादपि ॥ ९ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ धर्मारण्ये मया विप्राः सत्यलोकात्सरस्वती ॥ समानीता सुरेन्द्राद्यैः शरण्या शरणार्थिनाम् ॥ १० ॥ भाद्रपदे सिते पक्षे द्वादशी पुण्यसंयुता ॥ तत्र द्वारावतीतीर्थे मुनिगन्धर्वसेविते ॥ ११ ॥ तस्मिन्दिने च तत्तीर्थे पिण्डदानादि कारयेत् ॥ तत्फलं समवाप्नोति पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ १२ ॥ महदाख्यानमखिलं पापघ्नं पुण्यदं च यत् ॥ पवित्रं यत्पवित्राणां महापातकनाश

पाप को नाशनेवाली व पुण्य को पैदा करनेवाली हैं ॥ ९ ॥ मार्कंडेयजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! शरण चाहनेवालोंके शरण योग्य सरस्वतीजी को मैं व सुरेन्द्रादिक लोग धर्मारण्य में भादौं के शुक्लपक्ष में जो पुण्यसंयुत द्वादशी तिथि है उसमें मुनियों व गन्धर्वों से सेवित द्वारावतीतीर्थ में ले आये हैं ॥ १० । ११ ॥ उस दिन जो मनुष्य उस तीर्थ में पिंडदानादिक कर्म करता है वह उस फल को पाता है और पितरों को दिया हुआ अक्षय होता है ॥ १२ ॥ यह बड़ा भारी समस्त आख्यान जो पातकों का

विनाशक व पुण्यदायक है और जो पवित्रों के मध्यमें पवित्र व महापापों का विनाशक है ॥ १३ ॥ और सरस्वतीजी का जल सर्व मंगलों का मंगलदायक व पवित्र है और जो पुण्य प्रभास के मध्य में स्थित है क्या वह ऊपर स्वर्ग में है याने नहीं है ॥ १४ ॥ और सरस्वतीजी का जल मनुष्यों की ब्रह्महत्या को नाश करता है व सरस्वतीजी में नहाकर और पितरों व देवताओं को तर्पण कर पश्चात् पिंड को देनेवाले मनुष्य दूध पीनेवाले नहीं होते हैं ॥ १५ ॥ जैसे कामधेनु गऊ प्रिय फलको देनेवाली होती हैं वैसेही स्वर्ग व मोक्ष को एकही कारणभूत सरस्वतीजी हैं ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसरस्वतीमाहा

नम् ॥ १३ ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं पुण्यं सारस्वतं जलम् ॥ ऊर्ध्वं किं दिवि यत्पुण्यं प्रभासान्ते व्यवस्थितम् ॥ १४ ॥ सारस्वतजलं नृणां ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ सरस्वत्यां नराः स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः ॥ पश्चात्पिण्डप्रदातारो न भवन्ति स्तनन्धयाः ॥ १५ ॥ यथा कामदुघा गावो भवन्तीष्टफलप्रदाः ॥ तथा स्वर्गापवर्गैकहेतुभूता सरस्वती ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येसरस्वतीमाहात्म्यवर्णनंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ मार्कण्डेयोद्घाटितं वै स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥ तत्र ये देहसंत्यागं कुर्वन्ति फलकाङ्क्षया ॥ १ ॥ लभन्ते तत्फलं ह्यन्ते विष्णोः सायुज्यमाप्नुयुः ॥ अतः किं बहुनोक्तेन द्वारवत्यां सदा नरैः ॥ २ ॥ देहत्यागः प्रकर्त्तव्यो विष्णोर्लोकजिगीषया ॥ अनाशके जले वाग्नौ ये वसन्ति नरोत्तमाः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः पुरीं

त्म्यवर्णनंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा द्वारकापुरी में अनशन से फल होत । छब्बिसवें अध्याय में सोई चरित उदोत ॥ व्यासजी बोले कि मार्कंडेयजी ने मूंदेहुए स्वर्गद्वार को खोलदिया है क्योंकि उस सरस्वती नदी के समीप जो मनुष्य फल की इच्छा से शरीर को त्याग करते हैं ॥ १ ॥ वे उस फल को पाते हैं कि अन्त में विष्णुजी की सायुज्य मुक्ति को पाते हैं इससे बहुत कहने से क्या है द्वारका में सदैव मनुष्यों को ॥ २ ॥ विष्णुलोक के जीतने की इच्छा से शरीर को त्याग करना चाहिये और जो उत्तम मनुष्य अनशन

व्रत और जल व अग्नि में बसते हैं सब पापों से छूटेहुए वे सदैव विष्णुपुरी को प्राप्तहोते हैं ॥ ३ ॥ व रोगरहित अन्य भी जो पुरुष अनशन व्रत को प्राप्त होता है सब पापोंसे छूटाहुआ वह मनुष्य विष्णुजी की पुरीको जाता है ॥ ४ ॥ और सैकड़ों व हज़ारों वर्षतक वह ब्राह्मण अन्त में स्वर्ग में बसता है पृथ्वी में ब्राह्मणों से अधिक पवित्र व पावन नहीं है ॥ ५ ॥ और उपासों के समान तपस्या का कर्म नहीं है व वेद से अधिक अन्य शास्त्र नहीं है व माता के समान गुरु नहीं है ॥ ६ ॥ व अनशन धर्म से अधिक यहा अन्य तप नहीं है इसमें नहाकर जो श्राद्ध व पिंडोदक कर्म को करता है ॥ ७ ॥ उसके पितर तबतक तृप्त रहते हैं जबतक कि ब्रह्मा का दिन व राति

सदा ॥ ३ ॥ अन्योपि व्याधिरहितो गच्छेदनशनं तु यः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः पुरीं नरः ॥ ४ ॥ शतवर्षसहस्राणां वसेदन्ते दिवि द्विजः ॥ ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति पवित्रं पावनं भुवि ॥ ५ ॥ उपवासैस्तथा तुल्यं तपः कर्म्म न विद्यते ॥ नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातृसमो गुरुः ॥६॥ न धर्मात्परमस्तीह तपो नानशनात्परम् ॥ स्नात्वा यः कुरुतेऽत्रापि श्राद्धं पिण्डोदकक्रियाम् ॥ ७ ॥ तृप्यन्ति पितरस्तस्य यावद्ब्रह्मदिवानिशम् ॥ तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा केशवं यस्तु पूजयेत् ॥ ८ ॥ समुक्तःपातकैः सर्वैर्विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ तीर्थानामुत्तमं तीर्थं यत्र सन्निहितो हरिः ॥ ९ ॥ हरते सकलं पापं तस्मिंस्तीर्थे स्थितस्य सः ॥ मुक्तिदं मोक्षकामानां धनदं च धनार्थिनाम् ॥ आयुर्दं सुखदं चैव सर्वकामफलप्रदम् ॥ १० ॥ किमन्येनात्र तीर्थेन यत्र देवो जनार्दनः ॥ स्वयं वसति नित्यं हि सर्वेषामनुकम्पया ॥ ११ ॥ तत्र यद्दीयते किञ्चिद्दानं श्रद्धासमन्वितम् ॥ अक्षयं तद्भवेत्सर्वमिह लोके परत्र च ॥ १२ ॥ यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च यत्फ

होती है उस तीर्थ मे नहाकर जो मनुष्य विष्णुजीको पूजता है ॥ ८ ॥ सब पापों से छूटकर वह विष्णुलोक को प्राप्त होता है जहांपर विष्णुजी स्थित हैं तीर्थों के मध्य में वह उत्तम तीर्थ ॥ ९ ॥ उस तीर्थ में स्थित मनुष्य के सब पापको हरता है मोक्ष चाहनेवालों को वह मुक्तिदायक व धन की इच्छावाले मनुष्यों को धनदायक है व आयुर्दायक और सुखदायक व सब कामनाओं के फल को देनेवाला है ॥ १० ॥ यहां अन्य तीर्थ से क्या है जहां कि सबों के ऊपर दया से आपही जनार्दन देवजी नित्य बसते हैं ॥ ११ ॥ वहा श्रद्धा से संयुत जो कुछ दान दिया जाता है इस लोक व परलोक में वह सब अक्षय होता है ॥ १२ ॥ विद्वानों को यज्ञ, दान व तपसे जो

फल मिलता है वह यहां उत्तम सेवकों शूद्रोंको भी मिलता है ॥ १३ ॥ व एकादशीमें उपास करके जो मनुष्य वहां श्राद्ध करताहै वह नरक से सब पितरों को उधारता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥ और परमात्मा जनार्दनजी अक्षय तृप्ति को प्राप्त होते हैं और उनको उद्देश कर यहां जो दियाजाता है वह अक्षय कहा गया है ॥ १५ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांद्वारकामाहात्म्यवर्णनन्नामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो० । भयो लिङ्ग उत्पन्न जिमि गोवत्सक इमि नाम । सत्ताइसवें में सोई कह्यो चरित्र ललाम ॥ सूतजी बोले कि वहां उसके समीप में स्थित व मार्कंडजी से उपल-

लं प्राप्यते बुधैः ॥ तदत्र स्नानमात्रेण शूद्रैरपि सुसेवकैः ॥ १३ ॥ तत्र श्राद्धं च यः कुर्यादेकादश्यामुपोषितः ॥ स पितॄनुद्धरेत्सर्वान्नरकेभ्यो न संशयः ॥ १४ ॥ अक्षय्यां तृप्तिमाप्नोति परमात्मा जनार्दनः ॥ दीयतेऽत्र यदुद्दिश्य तदक्षय्यमुदाहृतम् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येद्वारकामाहात्म्यवर्णनन्नामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सूत उवाच ॥ तत्र तस्य समीपस्थं मार्कण्डेनोपलक्षितम् ॥ तीर्थं गोवत्ससंज्ञं तु सर्वत्र भुवि विश्रुतम् ॥ १ ॥ तत्रावतीर्य गोवत्सस्वरूपेणाम्बिकापतिः ॥ स्वयम्भूलिङ्गरूपेण संस्थितो जगतां पतिः ॥ २ ॥ आसीद्बलाहकोनाम रुद्रभक्तो महाबलः ॥ आखेटकसमायुक्तो नृपः परपुरञ्जयः ॥ ३ ॥ मृगयूथे स्थितं दृष्ट्वा गोवत्सं तत्पदातिना ॥ उक्तो राजा मया दृष्टं कौतुकं नृपसत्तम ॥ ४ ॥ गोवत्सो मृगयूथस्य दृष्टो मध्यस्थितो मया ॥ तेषामेवानुरक्तोऽसौ जनन्या रहितस्तथा ॥ ५ ॥ द्रष्टुं तु कौतुकं राजा तं पदातिं पुरः स्थितम् ॥ उवाच दर्शयस्वेति गोवत्सं त्वं समाविश ॥ ६ ॥

क्षित गोवत्स नामक तीर्थ सबकहीं पृथ्वी में प्रसिद्ध है ॥ १ ॥ वहां लोकों के स्वामी शिवजी गऊ के बछड़ा के स्वरूपसे अवतार लेकर स्वयंभू लिङ्ग के रूप से स्थितहैं ॥ २ ॥ बलाहक नामक बड़ा बलवान् शिवजीका भक्त हुआ है और शत्रुपुरोंको जीतनेवाला वह राजा शिकारी था ॥ ३ ॥ उसके पैदल नौकर ने मृगयूथ में स्थित गऊ का बछड़ा देखकर राजा से कहा कि हे नृपोत्तम ! मैंने एक कौतुक देखा है ॥ ४ ॥ कि मृगयूथ में स्थित गऊ के बछड़ा को मैंने देखा और माता से रहित यह उन्हीं मृगों में स्नेह करता है ॥ ५ ॥ राजा ने उस कौतुक को देखने के लिये आगे खड़े हुए उस पैदल नौकर से यह कहा कि गऊ के बछड़ा को तुम दिखाओ और वन में प्रवेश करो ॥ ६ ॥

तब वन को जाकर पैदल सेवक ने राजा को उसको दिखाया और जब पैदलों से डरवाया हुआ मृगयूथ भगा ॥ ७ ॥ और पीलु वृक्षों के गुल्म में चला गया तब गऊका बछड़ा भी चला और उसके पकड़ने की इच्छावाला राजा भी उस गुल्म में पैठ गया ॥ ८ ॥ और वहां स्थित गऊ के बछड़े को उस राजा ने आपही देखा और जब तक राजा उसको ग्रहण करै तब तक वह उज्ज्वल लिङ्ग होगया ॥ ९ ॥ उसको देखकर राजा विस्मित हुआ व उसने यह चिंतन किया कि यह क्या है जब तक ऐसा विचार करता रहा तब तक शरीर को छोड़कर वह स्वर्ग को चला गया ॥ १० ॥ इसी अवसर में आकाश में सब ओर देवताओं के जय करने का गर्जित शब्द सुनपड़ा और

गत्वाटवीं तदा राज्ञो दर्शितः स पदातिना ॥ पदातिभिर्मृगानीकं दुद्राव त्रासितं यदा ॥ ७ ॥ पीलुगुल्मं प्रति गतं गोवत्सः प्रस्थितस्तदा ॥ राजा तद्धरणाकाङ्क्षो प्राविशद् गुल्ममादरात् ॥ ८ ॥ तत्र स्थितं स गोवत्समपश्यन्नृपतिः स्वयम् ॥ यावद् गृह्णाति तं तावल्लिङ्गं जातं समुज्ज्वलम् ॥ ९ ॥ तं दृष्ट्वा विस्मितो राजा किमेतदित्यचिन्तयत् ॥ यावच्चिन्तयते ह्येवं देहं त्यक्त्वा दिवं गतः ॥ १० ॥ अत्रान्तरे गगनतले समन्ततः श्रूयते सुरजयकारगर्जितम् ॥ पपात पुष्पवृष्टिरम्बराद्राजा गतः शिवभुवनं च तत्क्षणात् ॥ ११ ॥ तावत्पश्यति तन्नाभ्यां गोवत्सं बालकं स्थितम् ॥ नूनमेष महादेवो वत्सरूपी महेश्वरः ॥ १२ ॥ तमानेतुं समुद्युक्तो राजा तमुज्जहार च ॥ यदा तद्देवलिङ्गं तु नोत्तिष्ठति कथंचन ॥ तदा देवाः सहानेन प्रार्थयामासुरीश्वरम् ॥ १३ ॥ देवा ऊचुः ॥ भगवन्सर्वदेवेश स्थातव्यं भवता विभो ॥ शुक्लेन लिङ्गरूपेण सर्वलोकहितैषिणा ॥ १४ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ स्थास्याम्यहं सदैवात्र लिङ्गरूपेण देवताः ॥ यस्मा

आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुई और उसी क्षण राजा शिवलोक को चला गया ॥ ११ ॥ तब तक उसके मध्य में गऊ के बछड़ारूपी बालक को स्थित देखा व यह विचार किया कि निश्चयकर ये बछड़ारूपी महेश्वर देवजी हैं ॥ १२ ॥ उसको लाने के लिये राजा उद्यत हुआ व राजा ने उसको उठाया जब वह देवलिङ्ग किसी प्रकार न उठा तब इस राजा समेत देवताओं ने शिवजी की प्रार्थना की ॥ १३ ॥ देवता बोले कि हे सर्वदेवेश, भगवन्, विभो ! सब लोकों का हित करनेवाले आप को सफेद लिङ्ग के रूप से स्थित होना चाहिये ॥ १४ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे देवताओ ! मैं यहां लिङ्गरूप से सदैव टिकूंगा जिस लिये भादों महीने में कृष्णपक्ष में अमावस

के दिन में मैं स्थित हुआ ॥ १५ ॥ उस कारण उस दिन उसमें स्नान करके जो विधि से उस लिङ्ग को पूजैंगे उसको भय न होगी ॥ १६ ॥ और पिंडदान करने से जो पूर्वज पितर सैकड़ों बरस से भयंकर रौरव व कुंभीपाक नरक में प्राप्त हैं ॥ १७ ॥ व जो अनेक नरकों में स्थित हैं और जो पशु, पक्षियों की योनि में प्राप्त हैं एक बार पिंड देने से उनकी अक्षय गति होती है ॥ १८ ॥ तदनन्तर सब देवताओं से संयुत बलाहक राजा ने सब देवताओं के समीप उस लिङ्ग को स्थापन किया ॥ १९ ॥ और लोकों के हित की कामना से बहुत दानों को किया जब तक वे पूजन करैं तब तक आपही शिवजी भी आगये ॥ २० ॥ शिवजी बोले कि इस रात्रि में श्रद्धा

भाद्रपदे मासि कृष्णपक्षे कुहूदिने ॥ १५ ॥ तस्मात्तद्दिवसे तत्र स्नानं कृत्वा विधानतः ॥ लिङ्गं ये पूजयिष्यन्ति न तेषां विद्यते भयम् ॥ १६ ॥ कृतेन पिण्डदानेन पूर्वजाः शाश्वतीः समाः ॥ रौरवे नरके घोरे कुम्भीपाके च ये गताः ॥ १७ ॥ अनेकनरकस्थाश्च तिर्यग्योनिगताश्च ये ॥ सकृत्पिण्डप्रदानेन स्यात्तेषामक्षया गतिः ॥ १८ ॥ ततो बलाहको राजा सर्वदेवसमन्वितः ॥ स्थापयामास तल्लिङ्गं सर्वदेवसमीपतः ॥ १९ ॥ चकार बहुदानानि लोकानां हितकाम्यया ॥ यावदर्चयते ह्येवं रुद्रोऽपि स्वयमागतः ॥ २० ॥ रुद्र उवाच ॥ अस्यां रात्रौ तु मनुजाः श्रद्धाभक्तिसमन्विताः ॥ येऽर्चयिष्यन्ति देवेशं तेषां पुण्यमनन्तकम् ॥ २१ ॥ जागरं ये करिष्यन्ति गीतशास्त्रपुरःसरम् ॥ उद्धरिष्यन्ति ते मर्त्याः कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ २२ ॥ तावद्गर्ज्जन्ति तीर्थानि नैमिषं पुष्करं गया ॥ प्रयागं च प्रभासं च द्वारका मथुराऽर्बुदः ॥ २३ ॥ यावन्न दृश्यते लिङ्गं गोवत्सं परमाद्भुतम् ॥ यदा हि कुरुते भावं गोवत्सगमनं प्रति ॥ २४ ॥ स्ववंशजास्तदा सर्वे नृत्य

व भक्ति से संयुत जो मनुष्य देवेश शिवजी को पूजैंगे उनको अनन्त पुण्य होगा ॥ २१ ॥ और गीतशास्त्रपूर्वक जो जागरण करैंगे वे मनुष्य एक सौ एक पुश्तियों को उधारैंगे ॥ २२ ॥ तब तक तीर्थ, नैमिष, पुष्कर व गया और प्रयाग, प्रभास, द्वारका, मथुरा और अर्बुद ये तीर्थ गर्जते हैं ॥ २३ ॥ जब तक कि बहुतही अद्भुत गोवत्स नामक लिङ्ग नहीं देखा जाता है जब मनुष्य गोवत्सजी के गमन में भक्ति करता है ॥ २४ ॥ तब निश्चय कर हर्षित होते हुए सब अपने वंश में

उपजे हुए पितर नाचते हैं ॥ २५ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजो ! वहां जो अन्य अद्भुत वृत्तान्त हुआ है उसको सुनिये कि जिस के सुनने से सब पापों का नाश होता है ॥ २६ ॥ जब सब देवताओं ने प्राचीन लिङ्ग को स्थापन किया तब विष्णुजी के व सब देवताओं के स्थापन के गुण से ॥ २७ ॥ वह प्रतिदिन अणु प्रमाण भर से बढ़नेलगा तदनन्तर डरे हुए वे मनुष्य व देवता उन शिवजी की शरण में गये ॥ २८ ॥ देवता बोले कि हे देवेश ! वृद्धि को संहार कीजिये तो लोकों का कल्याण होवै ऐसा कहने पर तदनन्तर लिङ्ग से आकाशवाणी बोली ॥ २९ ॥ शिववाणी बोली कि हे लोगो ! तुमलोगों को भय मत होवै इस यत्न को सुनिये कि किसी चांडाल

न्ति हर्षिता ध्रुवम् ॥ २५ ॥ सूत उवाच ॥ यच्चान्यदद्भुतं तत्र वृत्तान्तं शृणुत द्विजाः ॥ येन वै श्रुतमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ २६ ॥ यदा वै स्थापितं लिङ्गं सर्वदेवैः पुरातनम् ॥ विष्णोः प्रतिष्ठानगुणात्सर्वेषां च दिवौकसाम् ॥ २७ ॥ अणुमात्रप्रमाणेन प्रत्यहं समवर्द्धत ॥ ततस्ते मनुजा देवा भीतास्तं शरणं ययुः ॥ २८ ॥ देवा ऊचुः ॥ वृद्धिं संहर देवेश लोकानां स्वस्ति तद्भवेत् ॥ एवमुक्ते ततो लिङ्गाद्वाग्रवाचाशरीरिणी ॥ २९ ॥ शिववाण्युवाच ॥ हे लोका माभयं वोऽस्तु उपायः श्रूयतामयम् ॥ कञ्चिच्चण्डालमानीय मत्पुरः स्थाप्यतां ध्रुवम् ॥ ३० ॥ चण्डालांश्च समानीय दधुर्देवस्य ते पुरः ॥ तथापि तस्य वृद्धिस्तु नैव निर्वर्तते पुनः ॥ ३१ ॥ वागुवाच ॥ कर्म्मणा यस्तु चण्डालः सोऽग्रे मे स्थाप्यतां जनाः ॥ तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं मतिं चक्रुश्च वीक्षणे ॥ ३२ ॥ मार्गमाणास्तदा ते तु ग्रामाणि च पुराणि च ॥ कञ्चित्कर्मरतं पापं ददृशुर्ब्राह्मणब्रुवम् ॥ ३३ ॥ वृषभान्भारसंयुक्तान्मध्याह्नेवाहयत्तु सः ॥ क्षुत्तृट्श्रमपरीतांश्च दुर्व

को लेकर निश्चय कर मेरे आगे स्थापन कीजिये ॥ ३० ॥ उन्होंने चांडालों को लेकर शिव देवजी के आगे धारण किया तथापि उसकी वृद्धि फिर निवृत्त न हुई ॥ ३१ ॥ आकाशवाणी बोली कि हे लोगो ! जो कर्म से चांडाल होवै उसको मेरे आगे स्थापन कीजिये उस बड़े भारी आश्चर्य को सुनकर उन्हों ने ढूंढ़ने में बुद्धि किया ॥ ३२ ॥ तब गावों व पुरों को ढूंढ़ते हुए उन्हों ने कर्म में लगे व ब्राह्मण कहते हुए किसी पापी को देखा ॥ ३३ ॥ क्रूर मनवाला वह दुपहर में भी क्षुधा,

प्यास व परिश्रम से संयुत तथा बोझ से संयुत दुर्बल बैलों को चलाता था॥ ३४ ॥ और बिन नहाकर भी वह ब्राह्मण पर्युषित अन्न को भोजन करता था उसको लेकर वे देवेश विष्णुजी के समीप गये जहां कि जगद्गुरु विष्णुजी थे ॥ ३५ ॥ और देवालय के आगेवाली भूमि में उसको उन्हों ने आदर से स्थापन किया और गोवत्स जी के आगे स्थापित वह यकायक भस्म होगया ॥ ३६ ॥ इससे पृथ्वी में यह चांडालस्थल ऐसा प्रसिद्ध हुआ वहां स्थित मनुष्यों को आज भी वह मन्दिर नहीं देखपड़ता है ॥ ३७ ॥ तब से लगाकर वह लिङ्ग समता को प्राप्त हुआ और लिङ्ग को देखने से पापरहित वह ब्राह्मण स्वर्ग को चलागया ॥ ३८ ॥ व पापरहित उस

लान्क्रूरमानसः ॥ ३४ ॥ अस्नात्वापि पर्युषितं भक्षयेच्चैव वै द्विजः ॥ तं समादाय देवेशं जग्मुर्यत्र जगद्गुरुः ॥ ३५ ॥ देवालयाग्रभूमौ तं स्थापयामासुरादृताः ॥ भस्मीबभूव सहसा गोवत्साग्रे निरूपितः ॥ ३६ ॥ चण्डालस्थल इत्येष प्रसिद्धः सोऽभवत्क्षितौ ॥ तत्र स्थितैर्न चाद्यापि प्रासादो दृश्यते हि सः ॥ ३७ ॥ तदाप्रभृति तल्लिङ्गं साम्यभावमुपागतम् ॥ धौतपाप्मा गतः स्वर्गं द्विजो लिङ्गनिरीक्षणात् ॥ ३८ ॥ प्रत्यहं पूजयामास गोवत्सं गतकिल्बिषः ॥ विशेषात्कृष्णपक्षस्य चतुर्दश्यां समागतः ॥ ३९ ॥ एतत्तदद्भुतं तस्य देवस्य च त्रिशूलिनः ॥ शृणुयाद्यो नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४० ॥ सूत उवाच ॥ गोवत्समिति विख्यातं नराणां पुण्यदं परम् ॥ अनेकजन्मपापघ्नं मार्कण्डेयेन भाषितम् ॥ ४१ ॥ तत्र तीर्थे सकृत्स्नानं रुद्रलोकप्रदं नृणाम् ॥ पापदेहविशुद्ध्यर्थं पापेनोपहतात्मनाम् ॥ ४२ ॥ कूपे तर्पणतश्चैव श्राद्धतश्चैव तृप्तता ॥ भाद्रपदे विशेषेण पक्षस्यान्ते भवेत्कलौ ॥ ४३ ॥ एकविंशतिवारांस्तु गयायां

ने प्रतिदिन गोवत्स का पूजन किया और कृष्णपक्ष की चौदसि में आकर उसने विशेष कर पूजन किया ॥ ३९ ॥ उन त्रिशूलधारी शिवजी के इस चरित्र को जो मनुष्य भक्ति से सुनता है वह सब पापों से छूटजाता है ॥ ४० ॥ सूतजी बोले कि गोवत्स ऐसा प्रसिद्ध लिङ्ग मनुष्यों को बहुतही पुण्यदायक व अनेक जन्मों का पापनाशक मार्कंडेयजी से कहा गया है ॥ ४१ ॥ पाप से नष्टचित्तवाले मनुष्यों के पापसंयुत शरीर की शुद्धि के लिये उस तीर्थ में एक बार स्नान शिवलोकदायक है ॥ ४२ ॥ व विशेष कर भाद्रपद महीने में पक्ष के अन्त में कलियुग में कूप में तर्पण व श्राद्ध से तृप्तता होती है ॥ ४३ ॥ गया में इक्कीस बार तर्पण करने पर पितरों

की उत्तम तृप्ति होती है व गंगकूप में एक बार तर्पण करने से तृप्ति होती है ॥४४॥ और उस गोवत्स के समीप गंगकूप स्थित है उसमें तिलोदक से भी तृप्त किये हुए पितर नरक से छूट कर उत्तम गति को पाते हैं और उस तीर्थ में मुनीश्वर लोग गोदान की प्रशंसा करते हैं ॥ ४५ । ४६ ॥ और ब्राह्मण के लिये सुवर्ण का दान मनुष्य को शिवलोक में प्राप्त करता है सरस्वती, शिवक्षेत्र और गंगाजी गंगकूप में स्थित हैं ॥ ४७ ॥ स्वर्ग व मोक्ष का कारण ये तीनों एकत्र स्थित हैं और सब कहीं प्रसिद्ध वह तीर्थ ऋषियों व सिद्धों से सेवित है ॥ ४८ ॥ और वहां दो पीलु के वृक्ष स्थित हैं व मुनियों से सेवित वह तीर्थ स्नान से स्वर्गदायक और पान से

तर्प्पणे कृते ॥ पितॄणां परमा तृप्तिः सकृद्वै गङ्गकूपके ॥ ४४ ॥ तस्मिन्गोवत्ससामीप्ये तिष्ठते गङ्गकूपकः ॥ तस्मिंस्तिलोदकेनापि सन्तृप्तिं यान्ति तर्प्पिताः ॥४५॥ पितरो नरकाद्यापि सुपुण्येन सुमेधसा ॥ गोप्रदानं प्रशंसन्ति तस्मिंस्तीर्थे मुनीश्वराः ॥ ४६ ॥ विप्राय स्वर्णदानं तु रुद्रलोके नयेन्नरम् ॥ सरस्वतीशिवक्षेत्रे गङ्गा च गङ्गकूपके ॥ ४७ ॥ एकस्थमेतत्त्रितयं स्वर्गापवर्गकारणम् ॥ सेवितं चर्षिभिः सिद्धैस्तीर्थं सर्वत्र विश्रुतम् ॥४८॥ पीलुयुग्मं स्थितं तत्र तत्तीर्थं मुनिसेवितम् ॥ स्नानात्स्वर्गप्रदं चैव पानात्पापविशुद्धिदम् ॥ ४९ ॥ कीर्त्तनात्पुण्यजननं सेवनान्मुक्तिदं परम् ॥ तद्वै पश्यन्ति ये भक्त्या ब्रह्महा यदि मातृहा ॥ ५० ॥ बालघाती च गोघ्नश्च ये च स्त्रीशूद्रघातकाः ॥ गरदाश्चाग्निदाश्चैव गुरुद्रोहरताश्च ये ॥५१॥ तपस्विनिन्दकाश्चैव कूटसाक्ष्यं करोति यः ॥ वक्ता च परदोषस्य परस्य गुणलोपकः ॥ ५२ ॥ सर्वपापमयोऽप्यत्र मुच्यते लिङ्गदर्शनात् ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कान्देबलाहकोपाख्यानवर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

पाप की शुद्धि को देनेवाला है ॥ ४९ ॥ और कीर्तन करने से पुण्य को पैदा करनेवाला व सेवन से बहुतही मुक्तिदायक है उसको भक्ति से जो मनुष्य देखते हैं ब्रह्मघाती और यदि मातृघाती होवे ॥ ५० ॥ और बालघाती व जो स्त्री और शूद्रों को मारनेवाले हैं व विषदायक तथा अग्निदायक व जो गुरुवों के द्रोह में परायण हैं ॥ ५१ ॥ और तपस्वियों के निन्दक व जो झूंठी गवाही देता है और पराये दोष का कहनेवाला व अन्य के गुणों को लोप करनेवाला ॥ ५२ ॥ सब पापमय भी यहां लिङ्गके दर्शन से मुक्त होजाता है ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबलाहकोपाख्यानवर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥

दो० । लोहयष्टि के तीर्थ महँ पिंड दिये फल जौन । अट्ठाइसयें में सोई कह्यो चरित सब तौन ॥ व्यासजी बोले कि गोवत्स से नैर्ऋत्य दिशा के भाग में लोहयष्टि देखपड़ती है वहा स्वयंभू लिङ्ग के रूप से आपही शिवजी स्थित हैं ॥ १ ॥ श्रीमार्कंडेयजी बोले कि सरस्वती के मोक्षतीर्थ में भाद्रपद में अमावस के दिन ब्राह्मणों को पूजकर विधिपूर्वक उनके लिये दक्षिणा देकर ॥ २ ॥ भक्ति से इक्कीस बार पिंड का जो फल गया में पुरुषों को मिलता है वह निश्चय कर यहां तर्पण से मिलता है ॥ ३ ॥ भादौं में अमावस के दिन लोहयष्टि तीर्थ में श्राद्ध करने पर प्रेतयोनि से छूटे हुए पितर स्वर्ग में क्रीडा करते है ॥ ४ ॥ पितरलोग यह

व्यास उवाच ॥ गोवत्सान्नैर्ऋते भागे दृश्यते लोहयष्टिका ॥ स्वयम्भुलिङ्गरूपेण रुद्रस्तत्र स्थितः स्वयम् ॥ १ ॥ श्रीमार्कण्डेय उवाच ॥ मोक्षतीर्थे सरस्वत्या नभस्ये चन्द्रसंक्षये ॥ विप्रान्सम्पूज्य विधिवत्तेभ्यो दत्त्वा च दक्षिणाम् ॥ २ ॥ एकविंशतिवारांस्तु भक्त्या पिण्डस्य यत्फलम् ॥ गयायां प्राप्यते पुंसां ध्रुवं तदिह तर्पणात् ॥ ३ ॥ लोहयष्ट्यां कृते श्राद्धे नभस्ये चन्द्रसंक्षये ॥ प्रेतयोनिविनिर्मुक्ताः क्रीडन्ति पितरो दिवि ॥ ४ ॥ अपि नः स कुले भूयाद्यो वै दद्यात्तिलोदकम् ॥ पिण्डं वाप्युदकं वापि प्रेतपक्षे विधूदये ॥ ५ ॥ लोहयष्ट्याममावस्यां कार्यं भाद्रपदे जनैः ॥ श्राद्धं वै मुनयः प्राहुः पितरो यदि वल्लभाः ॥ ६ ॥ क्षीरेण तु तिलैः श्वेतैः स्नात्वा सारस्वते जले ॥ पितॄंस्तर्पयते यस्तु तृप्तास्तत्पितरो ध्रुवम् ॥ ७ ॥ तत्र श्राद्धानि कुर्वीत सक्तुभिः पयसा सह ॥ अमावास्यादिनं प्राप्य पितॄणां मोक्षमिच्छुकः ॥ ८ ॥ रुद्रतीर्थे ततो धेनुं दद्याद्वस्त्रादिभूषिताम् ॥ विष्णुतीर्थे हिरण्यं च प्रदद्यान्मोक्षमिच्छुकः ॥ ९ ॥ गयायां

कहते हैं कि वह हम लोगों के वंश में उत्पन्न होवै जो कि प्रेतपक्ष में अमावस तिथि में पिंड या जल देवै ॥ ५ ॥ मुनियों ने ऐसा कहा है कि यदि पितर प्रिय होवैं तो भाद्रपद में अमावस तिथि को मनुष्यों को श्राद्ध करना चाहिये ॥ ६ ॥ सरस्वती के जल में नहाकर दूध से व श्वेततिलों से जो पितरों को तर्पण करता है उसके पितर निश्चय कर तृप्त होते हैं ॥ ७ ॥ वहां अमावस दिन को पाकर पितरों की मुक्ति चाहनेवाले मनुष्य को दूध समेत सत्तुवों से श्राद्ध करना चाहिये ॥ ८ ॥ तदनन्तर रुद्र तीर्थ में वस्त्रादि से भूषित गऊ को देवै और मोक्ष चाहनेवाला मनुष्य विष्णुतीर्थ में सुवर्ण को देवै ॥ ९ ॥ गया में आपही विष्णुजी पितरों के रूप से

स्थित हैं उन कमललोचन विष्णुजी को ध्यान कर मनुष्य तीनों ऋणों से छूटजाता है ॥ १० ॥ वहां जाकर देवदेव विष्णुजी से प्रार्थना करै कि हे देव ! पितरों को पिंडदेने की इच्छा से मैं गया को आया हूं व हे जनार्दनजी ! मैंने तुम्हारे हाथ में इस पिंड को दिया ॥ ११ ॥ क्योंकि परलोक में गये हुए पितरों के लिये तुम दाता होगे इसी मंत्र से वहां विष्णुजी के हाथ में पिंड को देवै ॥ १२ ॥ भादों में चौदसि व अमावस-तिथि में यदि पिंड को देवै तो पितरों की अक्षय तृप्ति होगी इस में सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥ गया में इक्कीसबार पिंड देने से और लोहयष्टि तीर्थ में भक्ति से तर्पण करने पर तृप्ति को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ जल को देनेवाला तृप्ति

पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः ॥ तं ध्यात्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते च ऋणत्रयात् ॥ १० ॥ प्रार्थयेत्तत्र गत्वा तं देव देवं जनार्दनम् ॥ आगतोऽस्मि गयां देव पितृभ्यः पिण्डदित्सया ॥ एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन ॥११॥ परलोकगतेभ्यश्च त्वं हि दाता भविष्यसि ॥ अनेनैव च मन्त्रेण तत्र दद्याद्धरेः करे ॥ १२ ॥ चन्द्रे क्षीणे चतुर्दश्यां नभस्ये पिण्डमाहरेत् ॥ पितॄणामक्षया तृप्तिर्भविष्यति न संशयः ॥ १३ ॥ एकविंशतिवारांश्च गयायां पिण्ड पातनैः ॥ भक्त्या तृप्तिमवाप्नोति लोहयष्ट्यां च तर्पणे ॥ १४ ॥ वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ॥ फलप्रदः सुतान्भक्तानारोग्यमभयप्रदः ॥ १५ ॥ वित्तं न्यायार्जितं दत्तं स्वल्पं तत्र महाफलम् ॥ स्नानेनापि हि तत्तीर्थे रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येसंक्षेपतस्तीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टा विंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

को पाता है व अन्न को देनेवाला मनुष्य अक्षय सुख को पाता है व फल देनेवाला भक्त पुत्रों को पाता है और अभय को देनेवाला आरोग्य को पाता है ॥ १५ ॥ वहां न्याय से इकट्ठा किया थोड़ा धन दिया हुआ महाफलवान् होता है और उस तीर्थ में स्नान से भी शिवजी का सेवक होता है ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्य माहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायासंक्षेपतस्तीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । लोहासुर के नाम से भयो तीर्थ जिमि ख्यात । उन्तिसवें अध्याय में सोइ चरित्र सुहात ॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त लोहासुर के चरित्र को सुनिये और बलि के सौ पुत्रों का भी पराक्रम कहूंगा ॥ १ ॥ जब वे दोनों वृद्ध भाई उत्तम स्थान को प्राप्त हुए तब से लगाकर लोहासुर दैत्य ने वैराग्य को धारण किया ॥ २ ॥ मैं क्या करूं व कहां जाऊं और किस उत्तम स्थान को सेवन करूं देवता, मनुष्य व मुनिलोग जिसका अन्त नहीं जानते हैं ॥ ३ ॥ ऐसे किस देवता का मैं आराधन करूं ऐसा हृदय में बहुत ही चिन्तन करता रहा इस प्रकार विचारते हुए उस महात्मा की यह बुद्धि हुई ॥ ४ ॥ कि जिसने अपने मस्तक से गंगा को धारण किया

सूत उवाच ॥ अतः परं शृणुध्वं हि लोहासुरविचेष्टितम् ॥ बलेः पुत्रशतस्यापि कथयिष्यामि विक्रमम् ॥ १ ॥ यदा तौ भ्रातरौ वृद्धौ प्रापतुः स्थानमुत्तमम् ॥ तदाप्रभृति वैराग्यं दैत्यो लोहासुरो दधौ ॥ २ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि किं सेवे स्थानमुत्तमम् ॥ यस्य पारं न जानन्ति देवता मुनयो नराः ॥ ३ ॥ कोमयाऽऽराध्यतां देवो हृदि चिन्तयते भृशम् ॥ इति चिन्तयतस्तस्य मतिर्जाता महात्मनः ॥ ४ ॥ दधौ गङ्गां स्वशीर्षेण पुष्पवन्तौ च नेत्रयोः ॥ हृदा नारायणं देवं ब्रह्माणं कटिमण्डले ॥ ५ ॥ इन्द्राद्या देवताः सर्वे यद्देहे प्रतिबिम्बिताः ॥ प्रपश्यन्ति सदात्मानं भास्करः सलिले यथा ॥ ६ ॥ तमेवाराधयिष्यामि निरञ्जनमकल्मषम् ॥ एवं कृत्वा मतिं दैत्यस्तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ भीतो जन्मभयाद्घोराद्दुष्करं यन्महात्मभिः ॥ ७ ॥ अम्बुभक्षो वायुभक्षः शीर्णपर्णाशनस्तथा ॥ दिव्यं वर्षशतं साग्रं यदा तेपे महत्तपः ॥ ततस्तुतोष भगवांस्त्रिशूलवरधारकः ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ वरं वृणीष्व भद्रं ते मनसा यदभीप्सितम् ॥

है व नेत्रों में सूर्य और चन्द्रमा को धारण किया और हृदय से नारायणदेव व कटिमंडल में ब्रह्मा को धारण किया है ॥ ५ ॥ इन्द्रादिक सब देवता जिसके शरीर में प्रतिबिम्बित हैं व रुद्रदेव अपना को देखते हैं जैसे कि सूर्यनारायण जल में प्रतिबिम्बित हैं ॥ ६ ॥ उन्हीं निष्पाप निरंजन को मैं आराधन करूंगा ऐसी बुद्धि करके महात्माओं को भी जो कठिन है भयंकर जन्म के भय से डरे हुए उसने उस कठिन तप को किया ॥ ७ ॥ जलभक्षी व पवनभक्षी और गिरे हुए पत्तों को खानेवाले उस ने जब कुछ अधिक सौ वर्षों तक बड़ा भारी तप किया तब उत्तम त्रिशूल को धारनेवाले भगवान् शिवजी प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ शिवजी बोले कि हे लोहासुर ! तुम्हारा

कल्याण होवै और मन से जो प्रिय होवै उस वर को मांगो तुम्हारे तपोबल से मुझ को कुछ न देने योग्य नहीं है ॥ ९ ॥ ऐसा कहे हुए दानव ने वहां शिवजी के आगे वचन कहा ॥ १० ॥ लोहासुर बोला कि हे देवेश ! यदि तुम प्रसन्न हो तो मैं तुम से एक वर को मागता हूं कि शरीर की वृद्धता न होवै और मृत्यु से भी मुझ को डर ॥ ११ ॥ इस जन्म में न होवै व हे प्रभो ! मेरे हृदय में स्थित होना चाहिये ऐसाही होवै वहां उस दानवेश्वर से शिवजी ने ऐसा कहा ॥ १२ ॥ शिवदेवजी से इस प्रकार वर को पाकर उसने फिर सुन्दर सरस्वतीजी के किनारे संसारसागर से तरने के लिये बड़ा तप किया ॥ १३ ॥ हज़ारों व लाखों और अर्बुदों वर्ष तक जब

लोहासुर मयादेयं तव नास्ति तपोबलात् ॥ ९ ॥ इत्युक्तो दानवस्तत्र शङ्कराग्रे वचोऽब्रवीत् ॥ १० ॥ लोहासुर उवाच ॥ यदि तुष्टोसि देवेश वरमेकं वृणोम्यहम् ॥ शरीरस्याजरत्वं च मा मृत्योरपि मे भयम् ॥ ११ ॥ जन्मन्यस्मिन्प्रभो भूयात्स्थातव्यं हृदये मम ॥ एवमस्तु शिवः प्राह तत्र तं दानवेश्वरम् ॥ १२ ॥ एवं लब्धवरो दैवात्पुनस्तेपे मह त्तपः ॥ रम्ये सरस्वतीतीरे तरणाय भवार्णवात् ॥ १३ ॥ वत्सराणां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥ शङ्कते भगवा निन्द्रो भीतस्तस्य तपोबलात् ॥ १४ ॥ मा मे पदच्युतिर्भूयाद्दैत्याल्लोहासुरात्कचित् ॥ मघवा गुप्तरूपेण समेत्याश्रम काननम् ॥ १५ ॥ तपोभङ्गं प्रकुरुते कोपयित्वा महासुरम् ॥ ताडयन्ति शरीरे तं मुष्टिभिस्तीक्ष्णकर्कशैः ॥ १६ ॥ अथ तेन च दैत्येन ध्यानमुत्सृज्य वीक्षितम् ॥ इन्द्रेण तत्कृतं सर्वं तपोबलविनाशनम् ॥ १७ ॥ तस्य तैरभवद्युद्ध मिन्द्राद्यैरथ कर्कशैः ॥ एकस्य बहुभिः सार्द्धं देवास्ते तेन संयुगे ॥ १८ ॥ रुधिराक्लिन्नदेहा वै प्रहारैर्जर्जरीकृताः ॥ के

उसने तप किया तब उसके तपोबल से डरे हुए भगवान् इन्द्रजी शंकित हुए ॥ १४ ॥ कि लोहासुर दैत्य से कहीं मेरे स्थान की पृथक्ता न होवै और गुप्तरूप से आश्रम के वन को आकर इन्द्रजी ॥ १५ ॥ महादैत्य को क्रोधित कराकर तपस्या का भंग करनेलगे और तीक्ष्ण व कठोर घूंसों से उसके शरीर में मारनेलगे ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त उस दैत्य ने ध्यान को छोड़कर देखा कि इन्द्र ने उस सब तपोबल को नाश किया है ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त उन कठोर बहुत से इन्द्रादिकों का उस एक दैत्य के साथ युद्ध हुआ और युद्ध में उस दैत्य ने उन देवताओं को ॥ १८ ॥ प्रहारों से जर्जर किया और रक्त से भीगे हुए शरीरवाले वे देवता रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये

ऐसा कहते हुए विष्णुजी की शरण में प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि देवताओं का वचन सुनकर वासुदेव जनार्दन विष्णुजी ने उसके साथ युद्ध में सौ बरस तक समर किया ॥ २० ॥ तदनन्तर वरदान से बढ़े हुए उसने उस युद्ध में विष्णुजी को जीतलिया इसके उपरान्त लोहासुर से जीते हुए नारायण देवजी ने ॥ २१ ॥ शिव व ब्रह्माजी से बार २ सम्मति किया और तीनों देवताओं ने विचार कर फिर युद्ध का उद्यम किया ॥ २२ ॥ फिर लोहासुर दैत्य का शरीर नवीन देखकर तदनन्तर विष्णु व दैत्य का फिर बड़ा भारी युद्ध हुआ ॥ २३ ॥ जब सामर्थ्यवान् विष्णुजी से वह दैत्य न मरा तब उसको विष्णुजी ने वेग से पृथ्वी में गिरा दिया ॥ २४ ॥

शर्वं शरणं प्राप्तास्त्राहि त्राहीति भाषिणः ॥ १६ ॥ सूत उवाच ॥ देवानां वाक्यमाकर्ण्य वासुदेवो जनार्दनः॥ युयुधे केशवस्तेन युद्धे वर्षशतं किल ॥ २० ॥ ततो नारायणं तत्र जिगाय स वरोर्जितः ॥ अथ नारायणो देवो जितो लोहासुरेण तु ॥ २१ ॥ मन्त्रयामास रुद्रेण ब्रह्मणा च पुनः पुनः॥ मीमांसित्वा त्रयो देवाः पुनर्युद्धसमुद्यमम् ॥ २२ ॥ लोहासुरस्य दैत्यस्य वपुर्दृष्ट्वा पुनर्नवम् ॥ महदासीत्पुनर्युद्धं दैत्यकेशवयोस्ततः ॥ २३ ॥ न ममार यदा दैत्यो विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ तरसा तं केशवोऽपि पातयामास भूतले ॥ २४ ॥ उत्तानं पतितं दृष्ट्वा पिनाकी परमेश्वरः ॥ दधार हृदये तस्य स्वरूपं रूपवर्जितः ॥ २५ ॥ कण्ठे तस्थौ ततो ब्रह्मा तस्य लोहासुरस्य च ॥ चरणौ पीडयामास स्वस्थित्या पुरुषोत्तमः ॥ २६ ॥ अथ दैत्यः समुत्तस्थौ भृशं बद्धोपि भूतले ॥ दृष्ट्वोत्थितं ततो दैत्यं पातयन्तं सुरोत्तमान् ॥ २७ ॥ उवाच दिव्यया वाचा विरञ्चिः कमलासनः ॥ २८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ लोहासुर सदा रक्ष वाचोधर्ममभीक्ष्ण

और उतान गिरे हुए उस दैत्य को देख कर रूप से रहित परमेश्वर शिवजी ने उसके हृदय में अपने स्वरूप को धारण किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर उस लोहासुर के कण्ठ में ब्रह्माजी स्थित हुए और पुरुषोत्तम विष्णुजी ने अपनी स्थिति से चरणों को पीड़ित किया ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर बहुतही बाँधा हुआ भी वह दैत्य उठपड़ा तदनन्तर सुरोत्तमों को गिराते हुए दैत्य को उत्थित देख कर ॥ २७ ॥ कमलासन ब्रह्माजी ने दिव्य वाणी से कहा ॥ २८ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे लोहासुर ! वचन के

पृथ्वी में शिवरूप के अन्तर्गत धर्मारण्य में यहां पितरों के पिंडदान से अक्षय तृप्ति होगी ॥ ४९ ॥ और श्राद्ध, पिंड व जलक्रिया श्रद्धाही से करना चाहिये व हे असुरोत्तम ! हमलोगों के मध्यदेश में व तुम्हारे शरीर में विशेष कर श्राद्ध पिंड करने योग्य होगा ब्रह्मा का वचन सुनकर तदनन्तर शिवजी ने उस दैत्य से कहा ॥ ५० । ५१ ॥ कि हे लोहासुर ! तुम को चिन्ता न करना चाहिये व हे सुव्रत ! तुम सत्य हो और तीनों लोकों में दुर्लभ तुम्हारी स्वर्गस्थिति सत्यही होगी ॥ ५२ ॥ व हे असुरसत्तम ! हमारे सत्य वचन से पृथ्वी में तुम्हारा तीर्थ गया से अधिक होगा ॥ ५३ ॥ और तुम्हारे शरीर में हमारी अव्यग्र स्थिति होगी इसमें सन्देह नहीं है व हे अनघ !

पितॄणां पिण्डदानेन अक्षय्या तृप्तिरस्त्विह ॥ शिवरूपान्तराले वै धर्मारण्ये धरातले ॥ ४९ ॥ श्रद्धयैव हि कर्त्तव्याः श्राद्धपिण्डोदकक्रियाः ॥ तथान्तराले चास्माकं श्राद्धपिण्डो विशेषतः ॥ ५० ॥ तथा शरीरे कर्तव्यो भविष्यत्य सुरोत्तम ॥ ब्रह्मणो वाक्यमाकर्ण्य रुद्रः प्राह ततोऽसुरम् ॥ ५१ ॥ लोहासुर न ते कार्या चिन्ता सत्योऽसि सुव्रत ॥ त्रिषु लोकेषु दुष्प्रापं सत्यं ते दिवि संस्थितम् ॥ ५२ ॥ अस्मद्वाक्येन सत्येन तत्तथाऽसुरसत्तम ॥ गयासमधिकं तीर्थं तव जातं धरातले ॥ ५३ ॥ अस्माकं स्थितिरव्यग्रा तव देहे न संशयः ॥ सत्यपाशेन बद्धाः स्म दृढमेव त्वयाऽनघ ॥५४॥ विष्णुरुवाच ॥ गयाप्रयागकस्याऽपि फलं समधिकं स्मृतम् ॥ चतुर्दश्याममावास्यां लोहयष्ट्यां पिण्डदानतः ॥ ५५ ॥ बलिपुत्रस्य सत्येन महती तृप्तिरत्र हि ॥ मा कुरुष्वात्र सन्देहं तव देहे स्थिता स्वयम् ॥ ५[illegible] ॥ सरस्वती पुण्यतोया ब्रह्मलोकात्प्रयात्युत ॥ प्लावयिष्यन्ति देहाङ्गं मया सह सुसङ्गता ॥ ५७ ॥ यत्र वै द्वारकावासो देवस्तत्र

तुम ने सत्यरूपी पाश से हमलोगों को दृढ़ता से बाँध लिया ॥ ५४ ॥ विष्णुजी बोले कि गया व प्रयाग से भी यहां अधिक फल कहा गया है और चौदसि व अमावस में लोहयष्टि तीर्थ में पिंडदान से ॥ ५५ ॥ बलिपुत्र (लोहासुर) के सत्य से यहां बड़ी तृप्ति होगी इसमें सन्देह न करो हमलोग तुम्हारे शरीर में आपही स्थित हैं ॥ ५६ ॥ और ब्रह्मलोक से चलती हुई पवित्र जलवाली सरस्वतीजी मेरे साथ आकर शरीर को डुबावैंगी ॥ ५७ ॥ और जहां द्वारकाजी का निवास है वहां शिवदेवजी

आपलोगों के बल में नहीं स्थित हूंगा ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी ये तीनों उत्तम देवता ॥ ३९ ॥ यदि मेरे शरीर में टिकैंगे तो मैंने क्या नहीं पाया और तीनों देवताओं से आक्रमित (दबाया हुआ) यह मेरा शरीर ॥ ४० ॥ हे सुरोत्तमो ! पृथ्वी में मेरे प्रभाव से प्रसिद्ध होवै ॥ ४१ ॥ लोहासुर के वचन से प्रसन्न होते हुए ब्रह्मा, विष्णु व शिव तीनों देवताओं ने उसको प्रत्युत्तर दिया ॥ ४२ ॥ कि जिसलिये तुम सत्यवचनरूपी पाश से नहीं चले उस सत्य से प्रसन्न होते हुए हमलोग तुम्हारे मनोरथ को देवैंगे ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे दैत्य ! जैसे गया स्थान में स्नान, ब्रह्मज्ञान व शरीर त्याग होता है वैसेही धर्मेश्वरजी के आगे स्थित धर्मारण्य में होता है ॥ ४४ ॥

वाक्पाशबद्धस्तिष्ठामि न पुनर्भवतां बले ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयोऽमी सुरसत्तमाः ॥ ३९ ॥ स्थास्यन्ति चेच्छरीरे मे किं न लब्धं मया ततः ॥ इदं कलेवरं मे हि समारूढं त्रिभिः सुरैः ॥ ४० ॥ भूम्यां भवतु विख्यातं मत्प्रभावात्सुरोत्तमाः ॥ ४१ ॥ लोहासुरस्य वाक्येन हर्षितास्त्रिदशास्त्रयः ॥ ददुः प्रत्युत्तरं तस्मै ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ४२ ॥ सत्यवाक्पाशतो दैत्यो न सत्याच्चलितो यतः ॥ तेन सत्येन सन्तुष्टा दास्यामस्ते हृदीप्सितम् ॥ ४३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यथा स्नानं ब्रह्मज्ञानं देहत्यागो गयातले ॥ धर्मारण्ये तथा दैत्य धर्म्मेश्वरपुरःस्थिते ॥ ४४ ॥ कूपे तर्प्पणकं श्राद्धं शंसन्ति पितरो दिवि ॥ सन्तुष्टाः पिण्डदानेन गयायां पितरो यथा ॥ ४५ ॥ वाञ्छन्ति तर्प्पणं कूपे धर्मारण्ये विशुद्धये ॥ दानवेन्द्र शरीरं तु तीर्थं तव भविष्यति ॥ ४६ ॥ एकविंशतिवारांस्तु गयायां तर्प्पणे कृते ॥ पितॄणां या परा तृप्तिर्जायते दानवाधिप ॥ ४७ ॥ धर्मेश्वरपुरस्तात्सा त्वेकदा पितृतर्पणात् ॥ स्याद्दै दशगुणा तृप्तिः सत्यमेव न संशयः ॥ ४८ ॥

और कूप के समीप तर्पण व श्राद्ध की पितरलोग स्वर्ग में प्रशंसा करते हैं और जैसे गया में पिंडदान से पितर प्रसन्न होते हैं ॥ ४५ ॥ वैसेही धर्मारण्य में शुद्धि के लिये पितरलोग कूप के समीप तर्पण की इच्छा करते हैं व हे दानवेन्द्र ! तुम्हारा शरीर तीर्थ होगा ॥ ४६ ॥ हे दानवाधिप ! गया में इक्कीसबार तर्पण करने से पितरों की जो उत्तम तृप्ति होती है ॥ ४७ ॥ धर्मेश्वरजी के आगे एकबार पितरों के तर्पण से उससे दशगुनी तृप्ति होती है यह सत्य है इस में सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥

पृथ्वी में शिवरूप के अन्तर्गत धर्मारण्य में यहां पितरों के पिंडदान से अक्षय तृप्ति होगी ॥ ४९ ॥ और श्राद्ध, पिंड व जलक्रिया श्रद्धाही से करना चाहिये व हे असुरोत्तम ! हमलोगों के मध्यदेश में व तुम्हारे शरीर में विशेष कर श्राद्ध पिंड करने योग्य होगा ब्रह्मा का वचन सुनकर तदनन्तर शिवजी ने उस दैत्य से कहा ॥ ५० । ५१ ॥ कि हे लोहासुर ! तुम को चिन्ता न करना चाहिये व हे सुव्रत ! तुम सत्य हो और तीनों लोकों में दुर्लभ तुम्हारी स्वर्गस्थिति सत्यही होगी ॥ ५२ ॥ व हे असुरसत्तम ! हमारे सत्य वचन से पृथ्वी में तुम्हारा तीर्थ गया से अधिक होगा ॥ ५३ ॥ और तुम्हारे शरीर में हमारी अव्यग्र स्थिति होगी इसमें सन्देह नहीं है व हे अनघ !

पितॄणां पिण्डदानेन अक्षय्या तृप्तिरस्त्विह ॥ शिवरूपान्तराले वै धर्मारण्ये धरातले ॥ ४९ ॥ श्रद्धयैव हि कर्त्तव्याः श्राद्धपिण्डोदकक्रियाः ॥ तथान्तराले चास्माकं श्राद्धपिण्डो विशेषतः ॥ ५० ॥ तथा शरीरे कर्तव्यो भविष्यत्यसुरोत्तम ॥ ब्रह्मणो वाक्यमाकर्ण्य रुद्रः प्राह ततोऽसुरम् ॥ ५१ ॥ लोहासुर न ते कार्या चिन्ता सत्योऽसि सुव्रत ॥ त्रिषु लोकेषु दुष्प्रापं सत्यं ते दिवि संस्थितम् ॥ ५२ ॥ अस्मद्वाक्येन सत्येन तत्तथाऽसुरसत्तम ॥ गयासमधिकं तीर्थं तव जातं धरातले ॥ ५३ ॥ अस्माकं स्थितिरव्यग्रा तव देहे न संशयः ॥ सत्यपाशेन बद्धाः स्म दृढमेव त्वयाऽनघ ॥ ५४ ॥ विष्णुरुवाच ॥ गयाप्रयागकस्याऽपि फलं समधिकं स्मृतम् ॥ चतुर्द्दश्याममावास्यां लोहयष्ट्यां पिण्डदानतः ॥ ५५ ॥ बलिपुत्रस्य सत्येन महती तृप्तिरत्र हि ॥ मा कुरुष्वात्र सन्देहं तव देहे स्थिता स्वयम् ॥ ५[illegible] ॥ सरस्वती पुण्यतोया ब्रह्मलोकात्प्रयात्युत ॥ प्लावयिष्यन्ति देहाङ्गं मया सह सुसङ्गता ॥ ५७ ॥ यत्र वै द्वारकावासो देवस्तत्र

तुम ने सत्यरूपी पाश से हमलोगों को दृढ़ता से बाँध लिया ॥ ५४ ॥ विष्णुजी बोले कि गया व प्रयाग से भी यहां अधिक फल कहा गया है और चौदसि व अमावस में लोहयष्टि तीर्थ में पिंडदान से ॥ ५५ ॥ बलिपुत्र (लोहासुर) के सत्य से यहां बड़ी तृप्ति होगी इसमें सन्देह न करो हमलोग तुम्हारे शरीर में आपही स्थित हैं ॥ ५६ ॥ और ब्रह्मलोक से चलती हुई पवित्र जलवाली सरस्वतीजी मेरे साथ आकर शरीर को डुबावैंगी ॥ ५७ ॥ और जहां द्वारकाजी का निवास है वहां शिवदेवजी

स्थित होते हैं व जहां ब्रह्मा होते हैं वहां पृथ्वी में ये तीनों तीर्थ होते हैं ॥ ५८ ॥ व हे असुरश्रेष्ठ ! पितरों की तृप्ति के लिये ये तीर्थ पाताल, स्वर्गलोक व यमस्थान में प्रसिद्ध होवैंगे ॥ ५९ ॥ हे अनघ ! पुत्रों के लिये आज्ञारूपिणी पितरों से कीहुई उत्तम गाथा को कहता हूं उसको मुझ से सुनिये ॥ ६० ॥ पितरलोग बोले कि पाप से नष्टशरीरवाले मनुष्यों के पापसंयुत शरीर की शुद्धि के लिये शंकरजी के आगे स्थान शिवलोक का दायक है ॥ ६१ ॥ उसमें उत्तम बुद्धिवाले पुत्र से तिलोदक से भी तृप्त किये हुए पितर नरक से छूटकर उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ॥ ६२ ॥ इसी कारण वहां पितरों की मुक्ति के लिये विद्वान् गोदान की प्रशंसा करते हैं और

महेश्वरः ॥ विरञ्चिर्यत्र तीर्थानि त्रीण्येतानि धरातले ॥ ५८ ॥ भविष्यन्ति च पाताले स्वर्गलोके यमक्षये ॥ विख्यातान्यसुरश्रेष्ठ पितॄणां तृप्तिहेतवे ॥ ५९ ॥ अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि गाथां पितृकृतां पराम् ॥ आज्ञारूपां हि पुत्राणां तां शृणुष्व ममानघ ॥ ६० ॥ पितर ऊचुः ॥ शङ्करस्याग्रतः स्थानं रुद्रलोकप्रदं नृणाम् ॥ पापदेहविशुद्ध्यर्थं पापेनोपहतात्मनाम् ॥ ६१ ॥ तस्मिंस्तिलोदकेनापि सद्गतिं यान्ति तर्पिताः ॥ पितरो नरकाद्वापि सुपुत्रेण सुमेधसा ॥ ६२ ॥ गोप्रदानं प्रशंसन्ति तत्तत्र पितृमुक्तये ॥ पित्रादिकान्समुद्दिश्य दृष्ट्वा रुद्रं च केशवम् ॥ ६३ ॥ तिलपिण्याकपिण्डे न तृप्तिं यास्यामहे पराम् ॥ चतुर्दश्याममावास्यां तथा च पितृतर्पणम् ॥ ६४ ॥ अज्ञातगोत्रजन्मानस्तेभ्यः पिण्डांस्तु निर्वपेत् ॥ तेऽपि यान्ति दिवं सर्वे पिण्डे दत्त इति श्रुतिः ॥ ६५ ॥ सर्वकार्याणि सन्त्यज्य मानवैः पुण्यमीप्सुभिः ॥ प्राप्ते भाद्रपदे मासे गन्तव्या लोहयष्टिका ॥ ६६ ॥ अज्ञातगोत्रनाम्नां तु पिण्डमन्त्रमिमं शृणु ॥ ६७ ॥ पितृवंशे

शिव व विष्णुजी को देखकर पिता आदिकों को उद्देश कर ॥ ६३ ॥ तिल के पीना के पिंड से हमलोग उत्तम तृप्ति को प्राप्त होवैंगे और चौदसि व अमावस में पितरों को तर्पण करना चाहिये ॥ ६४ ॥ और जिनका गोत्र व जन्म नहीं जाना गया है उनके लिये पिंडों को देवै तो पिंड देने पर वे भी स्वर्ग को जाते हैं ऐसा श्रुति ने कहा है ॥ ६५ ॥ पुण्य को चाहनेवाले मनुष्यों को सब कर्मों को छोड़कर भादों महीना प्राप्त होने पर लोहयष्टितीर्थ में जाना चाहिये ॥ ६६ ॥ और बिन जाने हुए गोत्र व नामवाले पितरों के इस पिंडमंत्र को सुनिये ॥ ६७ ॥ कि बिन जाने हुए गोत्र में उत्पन्न जो पिता के वंश में व माता के वंश में मरे हैं उनके लिये यह पिंड

प्राप्त होवै ॥ ६८ ॥ विष्णुजी बोले कि हे असुरसत्तम ! भादौं में अमावस व चौदसि तिथि में इसी मंत्र से मेरे आगे पिंड को देवै ॥ ६९ ॥ तो पितरों की अक्षय तृप्ति होगी इस में सन्देह नहीं है और तिल के पीना के पिंड से पितर मोक्ष को पाते हैं ॥ ७० ॥ और लोहयष्टितीर्थ में तिलों से तर्पण करने पर मनुष्य पृथ्वी में तीनों ऋणों से मुक्त होवैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७१ ॥ और यहां स्नान करके जो पितरों को पिंड व जलदान कर्म करते हैं उसके पितर ब्रह्मा के दिन रात्रि तक तृप्त रहते हैं ॥ ७२ ॥ व हे असुर ! भादौं महीने में अमावस दिन को पाकर ब्रह्मा की यष्टिका में जो पितरों का तर्पण करता है ॥ ७३ ॥ उसके पितर कल्पपर्यन्त तृप्त रहते

मृता ये च मातृवंशे तथैव च ॥ अज्ञातगोत्रजास्तेभ्यः पिण्डोऽयमुपतिष्ठतु ॥ ६८ ॥ विष्णुरुवाच ॥ अनेनैव तु मन्त्रेण ममाग्रेऽसुरसत्तम ॥ क्षीणे चन्द्रे चतुर्दश्यां नभस्ये पिण्डमाहरेत् ॥ ६९ ॥ पितॄणामक्षया तृप्तिर्भविष्यति न संशयः ॥ तिलपिण्याकपिण्डेन पितरो मोक्षमाप्नुयुः ॥ ७० ॥ ऋणत्रयविनिर्मुक्ता मानवा जगतीतले ॥ भविष्यन्ति न सन्देहो लोहयष्ट्यां तिलतर्पणे ॥ ७१ ॥ स्नात्वा यः कुरुते चात्र पितृपिण्डोदकक्रियाः ॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावद्ब्रह्मदिवानिशम् ॥ ७२ ॥ अमावास्यादिनं प्राप्य मासि भाद्रपदेऽसुर ॥ ब्रह्मणो यष्टिकायां तु यः कुर्यात्पितृतर्पणम् ॥ ७३ ॥ पितरस्तस्य तृप्ताः स्युर्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ तेषां प्रसन्नो भगवानादिदेवो महेश्वरः ॥ ७४ ॥ अस्य तीर्थस्य यात्रायां मतिर्येषां भविष्यति ॥ गोक्षीरेण तिलैः श्वेतैः स्नात्वा सारस्वते जले ॥ ७५ ॥ तर्पयेदक्षया तृप्तिः पितॄणां तस्य जायते ॥ श्राद्धं चैव प्रकुर्वीत सक्तुभिः पयसा सह ॥ ७६ ॥ अमावास्यादिनं प्राप्य पितॄणां मोक्षमिच्छुकः ॥ धेनुं दद्याद्रुद्रतीर्थे वस्त्राणि यमतीर्थके ॥ ७७ ॥ विष्णुतीर्थे हिरण्यं च पितॄणां मोक्षमिच्छुकः ॥ विनाक्षतैर्विना दर्भैर्वि

हैं और भगवान् आदिदेव महेश्वरजी उनके ऊपर प्रसन्न होते हैं ॥ ७४ ॥ जिन की बुद्धि इस तीर्थ की यात्रा में होगी और सरस्वतीजी के जल में नहाकर जो गऊ के दूध व सफ़ेद तिलों से ॥ ७५ ॥ तर्पण करता है उसके पितरों की अक्षय तृप्ति होती है और पितरों की मुक्ति को चाहनेवाला मनुष्य अमावास्या दिन को प्राप्त होकर वहां दूध समेत सत्तुवों से श्राद्ध करना चाहिये और रुद्रतीर्थ में गऊ देवै व यमतीर्थ में वस्त्रों को देवै ॥ ७६ । ७७ ॥ और पितरों की मुक्ति चाहनेवाला

मनुष्य विष्णुतीर्थ में सुवर्ण को देवै अक्षतों के विना व कुशों के विना और आसन के विना लोहयष्टि में जलही से मनुष्य गयाश्राद्ध का फल पाता है ॥ ७८ ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! यह लोहासुर का वृत्तान्त तुमलोगों से कहागया जिमको सुनकर ब्रह्मघाती व गोघाती मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ७९ ॥ गया में इक्कीसबार पिंडदान से जो फल होताहै उस फल को मनुष्य इस चरित्र के एकबार सुनने से पाता है ॥ ८० ॥ और जो इस माहात्म्य को सुनता है उसने चार करोड़ दो लाख एक हज़ार सौ गौवों को दिया ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांलोहासुरमाहात्म्यसम्पूर्तिर्नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

ना चासनमेव च ॥ वारिमात्राल्लोहयष्ट्यां गयाश्राद्धफलं लभेत् ॥ ७८ ॥ सूत उवाच ॥ एतद्वः कथितं विप्रा लोहासुर विचेष्टितम् ॥ यच्छ्रुत्वा ब्रह्महा गोघ्नो मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ७९ ॥ एकविंशतिवारन्तु गयायां पिण्डपातने ॥ तत्फलं समवाप्नोति सकृदस्मिञ्छ्रुते सति ॥ ८० ॥ चतुष्कोटिद्विलक्षं च सहस्रं शतमेव च ॥ धेनवस्तेन दत्ताः स्युर्माहात्म्यं शृणुयात्तु यः ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येलोहासुरमाहात्म्यसम्पूर्तिर्नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

व्यास उवाच ॥ पुरा त्रेतायुगे प्राप्ते वैष्णवांशो रघूद्वहः ॥ सूर्यवंशे समुत्पन्नो रामो राजीवलोचनः ॥ १ ॥ स रामो लक्ष्मणश्चैव काकपक्षधरावुभौ ॥ तातस्य वचनात्तौ तु विश्वामित्रमनुव्रतौ ॥ २ ॥ यज्ञसंरक्षणार्थाय राज्ञा दत्तौ कुमारकौ ॥ धनुःशरधरौ वीरौ पितुर्वचनपालकौ ॥ ३ ॥ पथि प्रव्रजतोर्यावत्ताडकानाम राक्षसी ॥ तावदागम्य पुरतस्तस्थौ वै विघ्नकारणात् ॥ ४ ॥ ऋषेरनुज्ञया रामस्ताडकां समघातयत् ॥ प्रादिशच्च धनुर्वेदविद्यां रामाय

दो॰ । रावण राक्षस को हन्यो यथा देव रघुनाथ । सोइ तीस अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ ॥ व्यासजी बोले कि पुरातनसमय त्रेतायुग प्राप्त होने पर विष्णुजी के अंश रघुनायक कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी सूर्यवंश में उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ और काकपक्षधारी श्रीराम व लक्ष्मणजी वे दोनों पिता के वचन से विश्वामित्रजी के अनुगामी हुए ॥ २ ॥ यज्ञ की रक्षा के लिये राजा दशरथ ने उन दोनों कुमारों को दिया और धनुष व बाण को धारनेवाले वे वीर पिता वचन के पालक हुए ॥ ३ ॥ जब मार्ग में जाते थे तब तक ताड़का नामक राक्षसी आकर विघ्न के कारण आगे स्थित हुई ॥ ४ ॥ और ऋषि की आज्ञा से श्रीरामजी ने ताड़का को मारा और

गाधिजः ॥ ५ ॥ तस्य पादतलस्पर्शाच्छिला वासवयोगतः ॥ अहल्या गौतमवधूः पुनर्जाता स्वरूपिणी ॥ ६ ॥ विश्वामित्रस्य यज्ञे तु सम्प्रवृत्ते रघूत्तमः ॥ मारीचं च सुबाहुं च जघान परमेषुभिः ॥ ७ ॥ ईश्वरस्य धनुर्भग्नं जनकस्य गृहे स्थितम् ॥ रामः पञ्चदशे वर्षे षड्वर्षां चैव मैथिलीम् ॥ ८ ॥ उपयेमे यदा राजन्रम्यां सीतामयोनिजाम् ॥ कृतकृत्यस्तदा जातः सीतां सम्प्राप्य राघवः ॥ ९ ॥ अयोध्यामगमन्मार्गे जामदग्न्यमवेक्ष्य च ॥ संग्रामोऽभूत्तदा राजन्देवानामपि दुःसहः ॥ १० ॥ ततो रामं पराजित्य सीतया गृहमागतः ॥ ततो द्वादशवर्षाणि रेमे रामस्तया सह ॥ ११ ॥ सप्तविंशतिमे वर्षे यौवराज्यप्रदायकम् ॥ राजानमथ कैकेयी वरद्वयमयाचत ॥ १२ ॥ तयोरेकेन रामस्तु ससीतः सहलक्ष्मणः ॥ जटाधरः प्रव्रजतां वर्षाणीह चतुर्दश ॥ १३ ॥ भरतस्तु द्वितीयेन यौवराज्याधिपोऽस्तु मे ॥ मन्थरावचनान्मूढा वरमेतमयाचत ॥ १४ ॥ जानकीलक्ष्मणसखं रामं प्राव्राजयन्नृपः ॥ त्रिरात्रमुदकाहारश्चतुर्थेह्नि

विश्वामित्रजी ने श्रीरामजी के लिये धनुर्वेदविद्या को बतलाया ॥ ५ ॥ और इन्द्र के संयोग से गौतमकी स्त्री अहल्या शिला उन श्रीरामचन्द्रजी के चरणतलों के स्पर्श से फिर स्वरूपवती होगई ॥ ६ ॥ और विश्वामित्र का यज्ञ वर्तमान होने पर रघूत्तम रघुनाथजी ने उत्तम बाणों से मारीच व सुबाहु को मारा ॥ ७ ॥ और जनक के घर में धरा हुआ शिवजी का धनुष तोड़डाला और श्रीरामचन्द्रजी ने पन्द्रहवें वर्ष में छः वर्ष की मैथिली ॥ ८ ॥ व अयोनिजा सुन्दरी सीताजी को जब ब्याहा तब हे राजन्! सीताजी को पाकर श्रीरामजी कृतार्थ हुए ॥ ९ ॥ व जब अयोध्याजी को गये तब हे राजन्! परशुरामजी को देखकर देवताओं को भी दुस्सह समर हुआ ॥ १० ॥ तदनन्तर परशुरामजी को जीतकर श्रीरामजी सीता समेत घर को आये तदनन्तर श्रीरामजी ने उन जानकीजी समेत बारह वर्ष तक रमण किया ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर सत्ताईसवें वर्ष में युवराजता को देनेवाले राजा दशरथ से कैकेयी ने दो वरों को मांगा ॥ १२ ॥ उन दोनों में से एक वर से सीता समेत व लक्ष्मण सहित श्रीरामजी जटाओं को धारण कर चौदह वर्ष तक वन को जावें ॥ १३ ॥ और मेरे दूसरे वरदान से भरतजी युवराजता के स्वामी होवें मंथरा के वचन से मूढ़ कैकेयी ने इस वर को मांगा ॥ १४ ॥ और राजा दशरथ ने जानकी व लक्ष्मण सखावाले श्रीरामजी को वनवास दिया और तीन रात्रि तक जलाहारी व चौथे दिन

फल को भोजन करनेवाले ॥ १५ ॥ श्रीरामजी ने पांचवें दिन चित्रकूट में निवास किया तब हा राम ! ऐसा कहते हुए दशरथजी स्वर्ग को चलेगये ॥ १६ ॥ वे दशरथजी ब्राह्मण का शाप सफल कर स्वर्ग को गये तदनन्तर भरत व शत्रुघ्न चित्रकूट में आये ॥ १७ ॥ व हे राजन् ! रामजी से पिता को स्वर्ग में प्राप्त बतलाकर भरतजी इन श्रीरामजी के लौटने के लिये समझा कर ॥ १८ ॥ तदनन्तर भरत व शत्रुघ्नजी नंदिग्राम को आये और वहां राज्य को धारण किये दोनों पादुका पूजन में परायण हुए ॥ १९ ॥ और श्रीरामजी महात्मा अत्रिजी को देखकर दण्डकारण्य को आये व राक्षसगणों के मारने के प्रारंभ में विराध के मारने पर ॥ २० ॥ साढ़े तेरह वर्ष

फलाशनः ॥ १५ ॥ पञ्चमे चित्रकूटे तु रामो वासमकल्पयत् ॥ तदा दशरथः स्वर्गं गतो राम इति ब्रुवन् ॥ १६ ॥ ब्रह्मशापं तु सफलं कृत्वा स्वर्गं जगाम सः ॥ ततो भरतशत्रुघ्नौ चित्रकूटे समागतौ ॥ १७ ॥ स्वर्गतं पितरं राजन् रामाय विनिवेद्य च ॥ सान्त्वनं भरतश्चास्य कृत्वा निवर्तनं प्रति ॥ १८ ॥ ततो भरतशत्रुघ्नौ नन्दिग्रामं समागतौ ॥ पादुकापूजनरतौ तत्र राज्यधरावुभौ ॥ १९ ॥ अत्रिं दृष्ट्वा महात्मानं दण्डकारण्यमागमत् ॥ रक्षोगणवधारम्भे विराधे विनिपातिते ॥ २० ॥ अर्द्धत्रयोदशे वर्षे पञ्चवट्यामुवास ह ॥ ततो विरूपयामास शूर्पणखां निशाचरीम् ॥ वने विचरतस्तस्य जानकीसहितस्य च ॥ २१ ॥ आगतो राक्षसो घोरः सीतापहरणाय सः ॥ ततो माघासिताष्टम्यां मुहूर्ते वृन्दसंज्ञके ॥२२॥ राघवाभ्यां विना सीतां जहार दशकन्धरः ॥ मारीचस्याश्रमं गत्वा मृगरूपेण तेन च ॥ २३ ॥ नीत्वा दूरं राघवं च लक्ष्मणेन समन्वितम् ॥ ततो रामो जघानाशु मारीचं मृगरूपिणम् ॥ २४ ॥ पुनः प्राप्याश्रमं

पंचवटी में बसे तदनन्तर उन्हों ने शूर्पणखा राक्षसी को विरूप किया और जानकी समेत वन में घूमते हुए उन श्रीरामजी के ॥ २१ ॥ वह भयंकर रावण राक्षस सीता जी के हरने के लिये आया तदनन्तर माघ की कृष्ण पक्षवाली अष्टमी में वृन्दसंज्ञक मुहूर्त में ॥ २२ ॥ रावण ने मारीच के आश्रम को जाकर श्रीराम व लक्ष्मणजी के बिना सीताजी को हरलिया और उस मृगरूपधारी मारीच ने ॥ २३ ॥ लक्ष्मण समेत श्रीरामजी को दूर ले जाकर माया किया तदनन्तर मृगरूपी मारीच को श्रीराम जी ने शीघ्रही मारा ॥ २४ ॥ फिर आश्रम को प्राप्त होकर श्रीरामजी ने सीता के बिना आश्रम को देखा और वहां हरी जाती हुई वे सीताजी कुररी पक्षिणी की नाईं

रोनेलगीं ॥ २५ ॥ कि हे राम ! हे राम ! राक्षस से हरी हुई मेरी रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये जैसे क्षुधा से संयुत बाजपक्षी चिल्लाती हुई वर्तिका (बटेर) को लेजाता है ॥ २६ ॥ वैसेही कामदेव के वश में प्राप्त यह राक्षस रावण जनक की कन्या (जानकी) जी को लिये जाता है तब उस वचन को सुनकर पक्षिराज गीध ने ॥ २७ ॥ राक्षसेन्द्र रावण से युद्ध किया व रावण से मारा हुआ वह गिरपड़ा और माघ के कृष्णपक्ष की नवमी में रावण के मन्दिर में बसती हुई जानकीजी को ॥ २८ ॥ ढूंढ़ते हुए वे राम, लक्ष्मण दोनों भाई उस समय ॥ २९ ॥ जटायु को देखकर व राक्षस से हरी हुई सीता को जानकर तदनन्तर उन श्रीरामजी ने पक्षी गृध्रराज का दाहा-

रामो विना सीतां ददर्श ह ॥ तत्रैव ह्रियमाणा सा चक्रन्द कुररी यथा ॥ २५ ॥ रामरामेति मां रक्ष रक्ष मां रक्षसा हृताम् ॥ यथा श्येनः क्षुधायुक्तः क्रन्दन्तीं वर्तिकां नयेत् ॥ २६ ॥ तथा कामवशं प्राप्तो राक्षसो जनकात्मजाम् ॥ नयत्येष जनकजां तच्छ्रुत्वा पक्षिराट् तदा ॥ २७ ॥ युयुधे राक्षसेन्द्रेण रावणेन हतोऽपतत् ॥ माघासितनवम्यां तु वसन्तीं रावणालये ॥ २८ ॥ मार्गमाणौ तदा तौ तु भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ २९ ॥ जटायुषं तु दृष्ट्वैव ज्ञात्वा राक्षससंहृताम् ॥ सीतां ज्ञात्वा ततः पक्षी संस्कृतस्तेन भक्तितः ॥ ३० ॥ अग्रतः प्रययौ रामो लक्ष्मणस्तत्पदानुगः ॥ पम्पाभ्याशमनुप्राप्य शबरीमनुगृह्य च ॥ ३१ ॥ तज्जलं समुपस्पृश्य हनुमद्दर्शनं कृतम् ॥ ततो रामो हनुमता सह सख्यं चकार ह ॥ ३२ ॥ ततः सुग्रीवमभ्येत्य अहनद्वालिवानरम् ॥ प्रेषिता रामदेवेन हनुमत्प्रमुखाः प्रियाम् ॥ ३३ ॥ अङ्गुलीयकमादाय वायुसूनुस्तदा गतः ॥ सम्पातिर्दशमे मासि आचख्यौ वानराय ताम् ॥ ३४ ॥ ततस्त

दिक कर्म किया ॥ ३० ॥ आगे श्रीरामजी चले व उनके पीछे लक्ष्मणजी चले और पंपासर के समीप प्राप्त होकर शबरी के ऊपर दयाकर ॥ ३१ ॥ उस पंपासर के जल को स्पर्श कर उन्हों ने हनुमान्जी का दर्शन किया तदनन्तर श्रीरामजी ने हनुमान्जी के साथ मित्रता की ॥ ३२ ॥ तदनन्तर सुग्रीव के समीप जाकर बालि वानर को मारा और श्रीरामदेवजी ने हनुमान् आदिक वानरों को सीताजी के समीप पठाया ॥ ३३ ॥ तब हनुमान्जी अँगूठी को लेकर गये और दशवें महीने में संपाति वानर ने हनुमान् वानर से उन जानकीजी को कहा ॥ ३४ ॥ तदनन्तर उस संपाति के वचन से हनुमान्जी सौ योजन समुद्र को नांघगये व उन्होंने उस रात में लंका में

जानकीजी को सब ओर ढूंढ़ा ॥ ३५ ॥ और उसी रात के शेष रहने पर हनुमान्‌जीको सीताजी का दर्शन हुआ और द्वादशी में हनुमान्‌जी शशिम के वृक्षपै चढ़े ॥ ३६ ॥ और उस रातमें उन्होंने जानकीजी के विश्वास के लिये कथा को कहा तदनन्तर तेरसि तिथि में अक्षकुमार आदिकों के साथ युद्ध वर्तमान हुआ ॥ ३७ ॥ और तेरसि में मेघनादने हनुमान्‌जी को ब्रह्मास्त्र से बांध लिया और हनुमान्‌जी ने कठोर व रूखे वचनों को राक्षसाधिप रावण से कहा व ब्रह्मास्त्र से संयुत तथा बँधेहुए उन्होंने पुच्छ से संयुत आग से लंका को जलादिया ॥ ३८।३९ ॥ और पौर्णमासी में हनुमान्‌जी का महेन्द्र पर्वत पै आगमन हुआ व मार्गशीर्ष की परेवा से पांच दिनों से मार्गमें ॥ ४० ॥

द्वचनादब्धिं पुप्लुवे शतयोजनम् ॥ हनुमान्निशि तस्यां तु लङ्कायां परितोऽचिनोत् ॥ ३५ ॥ तद्रात्रिशेषे सीताया दर्शनं तु हनूमतः ॥ द्वादश्यां शिंशपावृक्षे हनुमान्पर्यवस्थितः ॥ ३६ ॥ तस्यां निशायां जानक्या विश्वासायाह संकथाम् ॥ अक्षादिभिस्त्रयोदश्यां ततो युद्धमवर्त्तत ॥ ३७ ॥ ब्रह्मास्त्रेण त्रयोदश्यां बद्धः शक्रजिता कपिः ॥ दारुणानि च रूक्षाणि वाक्यानि राक्षसाधिपम् ॥ ३८ ॥ अब्रवीद्वायुसूनुस्तं बद्धो ब्रह्मास्त्रसंयुतः ॥ वह्निना पुच्छयुक्तेन लङ्काया दहनं कृतम् ॥ ३९ ॥ पूर्णिमायां महेन्द्राद्रौ पुनरागमनं कपेः ॥ मार्गशीर्षप्रतिपदः पञ्चभिः पथि वासरैः ॥ ४० ॥ पुनरागत्य वर्षेऽह्नि ध्वस्तं मधुवनं किल ॥ सप्तम्यां प्रत्यभिज्ञानदानं सर्वनिवेदनम् ॥ ४१ ॥ मणिप्रदानं सीतायाः सर्वं रामाय शंसयत् ॥ अष्टम्युत्तरफाल्गुन्यां मुहूर्त्ते विजयाभिधे ॥ ४२ ॥ मध्यं प्राप्ते सहस्रांशौ प्रस्थानं राघवस्य च ॥ रामः कृत्वा प्रतिज्ञां हि प्रयातुं दक्षिणां दिशम् ॥ ४३ ॥ तीर्त्वाहं सागरमपि हनिष्ये राक्षसेश्वरम् ॥ दक्षिणाशां

फिर आकर षष्ठ दिनमें मधुवनको विध्वंस किया और सप्तमीमें चीन्ह को दिया व सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ४१ ॥ हनुमान्‌जी ने सीताजी के मणि प्रदान आदि समस्त वृत्तान्तको श्रीरामजी से निवेदन किया और अष्टमीमें उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में विजय संज्ञक मुहूर्त्त में ॥ ४२ ॥ सूर्यनारायण के मध्य में प्राप्त होनेपर श्रीरामजी का प्रस्थान हुआ व श्रीरामजी दक्षिण दिशा को जाने के लिये प्रतिज्ञा करके ॥ ४३ ॥ यह कहा कि मैं समुद्र को भी उतरकर रावण को मारूंगा और दक्षिण दिशा को जातेहुए उन

चार दिनों तक युद्ध किया ॥ ६२ । ६३ ॥ व श्रीरामजी ने युद्ध में बहुत वानरों को खानेवाले कुंभकर्ण को मारा और अमावस के दिन शोकाभ्यवहार हुआ ॥ ६४ ॥ और फाल्गुन की प्रतिपदा से लगाकर चौथि तक चार दिनों में नरांतक आदिक पांच राक्षस मारे गये ॥ ६५ ॥ और पंचमी से सप्तमी तक तीन दिन में अतिकाय का वध हुआ व अष्टमी से द्वादशी तक पाच दिन में निकुंभ व कुंभ ये दोनों मारे गये और मकराक्ष चार दिनों में मारा गया व फाल्गुन के कृष्णपक्ष की दुइज के दिन मेघनाद जीता गया ॥ ६६ । ६७ ॥ और तीज से लगाकर सप्तमी तक पांच दिन तक ओषधी लाने की व्यग्रता से युद्ध बन्द रहा ॥ ६८ ॥ और अष्टमी में

ऽभ्यवहारं चतुर्दिनम् ॥ कुम्भकर्णोकरोद्युद्धं नवम्यादिचतुर्दिनैः ॥ ६३ ॥ रामेण निहतो युद्धे बहुवानरभक्षकः ॥ अमावास्यादिने शोकाऽभ्यवहारो बभूव ह ॥ ६४ ॥ फाल्गुनप्रतिपदादौ चतुर्थ्यन्तैश्चतुर्दिनैः ॥ नरान्तकप्रभृतयो निहताः पञ्च राक्षसाः ॥ ६५ ॥ पञ्चम्याः सप्तमीं यावदतिकायवधस्त्र्यहात् ॥ अष्टम्या द्वादशीं यावन्निहतौ दिनपञ्चकात् ॥ ६६ ॥ निकुम्भकुम्भौ द्वावेतौ मकराक्षश्चतुर्दिनैः ॥ फाल्गुनासितद्वितीयाया दिने वै शक्रजिज्जितः ॥ ६७ ॥ तृतीयादौ सप्तम्यन्तदिनपञ्चकमेव च ॥ ओषध्यानयवैयग्र्यादवहारो बभूव ह ॥ ६८ ॥ अष्टम्यां रावणो मायामैथिलीं हतवान्कुधीः ॥ शोकावेगात्तदा रामश्चक्रे सैन्यावधारणम् ॥ ६९ ॥ ततस्त्रयोदशीं यावद्दिनैः पञ्चभिरिन्द्रजित् ॥ लक्ष्मणेन हतो युद्धे विख्यातबलपौरुषः ॥ ७० ॥ चतुर्दश्यां दशग्रीवो दीक्षामापावहारतः ॥ अमावास्यांदिने प्रागाद्युद्धाय दशकन्धरः ॥ ७१ ॥ चैत्रशुक्लप्रतिपदः पञ्चमीं दिनपञ्चके ॥ रावणो युध्यमानोऽभूत्प्रचुरो रक्षसां वधः ॥ ७२ ॥

कुबुद्धि रावण ने मायारूपिणी जानकीजी को मारा तब शोक के वेग से श्रीरामजी ने सेना का निश्चय किया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर त्रयोदशी से पांच दिनों में प्रसिद्ध बल व पौरुषवाला मेघनाद युद्ध में लक्ष्मणजी से मारा गया ॥ ७० ॥ और चौदसि में युद्ध बंद होने के कारण रावण यज्ञदीक्षा को प्राप्त हुआ व अमावस दिन में रावण युद्ध के लिये गया ॥ ७१ ॥ और चैत के शुक्लपक्ष की परेवा से पंचमी तक पांच दिन रावण युद्ध करता रहा और राक्षसों का बहुत वध हुआ ॥ ७२ ॥

जानकीजी को सब ओर ढूंढ़ा ॥ ३५ ॥ और उसी रात के शेष रहने पर हनुमान्जीको सीताजी का दर्शन हुआ और द्वादशी में हनुमान्जी शीशम के वृक्षपै चढ़े ॥ ३६ ॥ और उस रातमें उन्होंने जानकीजी के विश्वास के लिये कथा को कहा तदनन्तर तेरसि तिथि में अक्षकुमार आदिकों के साथ युद्ध वर्तमान हुआ ॥ ३७ ॥ और तेरसि में मेघनादने हनुमान्जी को ब्रह्मास्त्र से बांध लिया और हनुमान्जी ने कठोर व रूखे वचनों को राक्षसाधिप रावण से कहा व ब्रह्मास्त्र से संयुत तथा बँधेहुए उन्होंने पुच्छ से संयुत आग से लंका को जलादिया ॥ ३८।३९ ॥ और पौर्णमासी में हनुमान्जी का महेन्द्र पर्वत पै आगमन हुआ व मार्गशीर्ष की परेवा से पांच दिनों से मार्गमें ॥ ४० ॥

द्वचनादब्धिं पुप्लुवे शतयोजनम् ॥ हनुमान्निशि तस्यां तु लङ्कायां परितोऽचिनोत् ॥ ३५ ॥ तद्रात्रिशेषे सीताया दर्शनं तु हनूमतः ॥ द्वादश्यां शिंशपावृक्षे हनुमान्पर्यवस्थितः ॥ ३६ ॥ तस्यां निशायां जानक्या विश्वासायाह संकथाम् ॥ अक्षादिभिस्त्रयोदश्यां ततो युद्धमवर्त्तत ॥ ३७ ॥ ब्रह्मास्त्रेण त्रयोदश्यां बद्धः शक्रजिता कपिः ॥ दारुणानि च रूक्षाणि वाक्यानि राक्षसाधिपम् ॥ ३८ ॥ अब्रवीद्वायुसूनुस्तं बद्धो ब्रह्मास्त्रसंयुतः ॥ वह्निना पुच्छयुक्तेन लङ्काया दहनं कृतम् ॥ ३९ ॥ पूर्णिमायां महेन्द्राद्रौ पुनरागमनं कपेः ॥ मार्गशीर्षप्रतिपदः पञ्चभिः पथि वासरैः ॥ ४० ॥ पुनरागत्य वर्षेह्नि ध्वस्तं मधुवनं किल ॥ सप्तम्यां प्रत्यभिज्ञानदानं सर्वनिवेदनम् ॥ ४१ ॥ मणिप्रदानं सीतायाः सर्वं रामाय शंसयत् ॥ अष्टम्युत्तरफाल्गुन्यां मुहूर्त्ते विजयाभिधे ॥ ४२ ॥ मध्यं प्राप्ते सहस्रांशौ प्रस्थानं राघवस्य च ॥ रामः कृत्वा प्रतिज्ञां हि प्रयातुं दक्षिणां दिशम् ॥ ४३ ॥ तीर्त्वाहं सागरमपि हनिष्ये राक्षसेश्वरम् ॥ दक्षिणाशां

फिर आकर वर्ष दिनमें मधुवनको विध्वंस किया और सप्तमीमें चीन्ह को दिया व सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ४१ ॥ हनुमान्जी ने सीताजी के मणि प्रदान आदि समस्त वृत्तान्तको श्रीरामजी से निवेदन किया और अष्टमीमें उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में विजय संज्ञक मुहूर्त्त में ॥ ४२ ॥ सूर्यनारायण के मध्य में प्राप्त होनेपर श्रीरामजी का प्रस्थान हुआ व श्रीरामजी दक्षिण दिशा को जाने के लिये प्रतिज्ञा करके ॥ ४३ ॥ यह कहा कि मैं समुद्र को भी उतरकर रावण को मारूंगा और दक्षिण दिशा को जातेहुए उन

श्रीरामजी के सुग्रीव-मित्र हुए ॥ ४४ ॥ और सात दिनों में समुद्र के किनारेपर सेनाका ठिकाश्रय हुआ व पौष के शुक्लपक्ष की परेवा से तीज तिथितक सेना समेत श्रीरामजी समुद्र के समीप टिकेरहे ॥ ४५ ॥ और चौथि तिथि में विभीषणजी श्रीरामचन्द्रजी को मिले व पंचमी तिथि में समुद्र को उतरने के लिये सलाह हुई ॥ ४६ ॥ और श्रीरामजी ने चार दिन अन्न जल को छोड़कर व्रत किया तब समुद्र से वर मिला व यत्न दिखलाया गया ॥ ४७ ॥ और दशमी तिथि में सेतु का प्रारम्भ हुआ व तेरसि में समाप्तहुआ और चौदसि तिथि में श्रीरामजी ने सुवेल पर्वत पै सेना को टिकाया ॥ ४८ ॥ व पौर्णमासी तिथि से दुइज तक तीन दिनों से सेना उतरी और वीर

प्रयातस्य सुग्रीवोऽथाभवत्सखा ॥ ४४ ॥ वासरैः सप्तभिः सिंधोस्तीरे सैन्यनिवेशनम् ॥ पौषशुक्लप्रतिपदस्तृतीयां यावदम्बुधौ ॥ उपस्थानं ससैन्यस्य राघवस्य बभूव ह ॥ ४५ ॥ विभीषणश्चतुर्थ्यां तु रामेण सह सङ्गतः ॥ समुद्रतरणार्थाय पञ्चम्यां मन्त्र उद्यतः ॥ ४६ ॥ प्रायोपवेशनं चक्रे रामो दिनचतुष्टयम् ॥ समुद्राद्वरलाभश्च सहोपायप्रदर्शनः ॥ ४७ ॥ सेतोर्दशम्यामारम्भस्त्रयोदश्यां समापनम् ॥ चतुर्दश्यां सुवेलाद्रौ रामः सेनां न्यवेशयत् ॥ ४८ ॥ पूर्णिमास्या द्वितीयायां त्रिदिनैः सैन्यतारणम् ॥ तीर्त्वा तोयनिधिं रामः शूरवानरसैन्यवान् ॥ ४९ ॥ रुरोध च पुरीं लङ्कां सीतार्थं शुभलक्षणः ॥ तृतीयादिदशम्यन्तं निवेशश्च दिनाष्टकः ॥ ५० ॥ शुकसारणयोस्तत्र प्राप्तिरेकादशीदिने ॥ पौषासिते च द्वादश्यां सैन्यसंख्यानमेव च ॥ ५१ ॥ शार्दूलेन कपीन्द्राणां सारासारोपवर्णनम् ॥ त्रयोदश्याद्यमान्ते च लङ्कायां दिवसैस्त्रिभिः ॥ ५२ ॥ रावणः सैन्यसंख्यानं रणोत्साहं तदाऽकरोत् ॥ प्रययावङ्गदो

वानरों की सेनावाले श्रीरामजी ने समुद्र को उतरकर ॥ ४९ ॥ सीता के लिये उत्तम लक्षणोंवाले श्रीरामजी ने लंकापुरी को घेरलिया और तीज से लगाकर दशमीतक आठ दिन सेना टिकी रही ॥ ५० ॥ और वहां एकादशी तिथि में शुक व सारण मंत्री का मिलाप हुआ व पौष के कृष्णपक्ष में द्वादशी तिथि में सेना की गिनती हुई ॥ ५१ ॥ व कपीन्द्रों के मध्य में श्रेष्ठ सुग्रीव ने सारांश व असारांश का वर्णन किया और तेरसि से लगाकर अमावस तक लंका में तीन दिनों से ॥ ५२ ॥ रावण

ने सेना की गिनती की तब युद्ध करने का उत्साह किया व माघशुक्ल की प्रतिपदा तिथि में अंगद दूतता में गये ॥ ५३ ॥ तब माघशुक्ल द्वितीया तिथि में सीताजी को पति का माया से मस्तकादि का दर्शन कराया गया और सात दिनों में अष्टमी पर्यन्त ॥ ५४ ॥ राक्षसों व वानरों का बड़ा भारी युद्ध हुआ व माघशुक्ल नवमी तिथि में रात्रि को युद्ध में मेघनाद ने ॥ ५५ ॥ श्रीराम व लक्ष्मणजी को नागपाश से बाँध लिया व वानरेशों के विकल होने पर व सबों की आशा टूटने पर ॥ ५६ ॥ उस समय श्रीरामजी ने पवन के उपदेश से गरुड़ को स्मरण किया और दशमी में नागपाश से छुडाने के लिये गरुड़जी आये ॥ ५७ ॥ व माघशुक्ल

दौत्ये माघशुक्लाद्यवासरे ॥ ५३ ॥ सीतायाश्च तदा भर्तुर्मायामूर्धादिदर्शनम् ॥ माघशुक्लद्वितीयायां दिनैः सप्तभिर ष्टमीम् ॥ ५४ ॥ रक्षसां वानराणां च युद्धमासीच्च संकुलम् ॥ माघशुक्लनवम्यां तु रात्राविन्द्रजिता रणे ॥ ५५ ॥ रामलक्ष्मणयोर्नागपाशबन्धः कृतः किल ॥ आकुलेषु कपीशेषु हताशेषु च सर्वशः ॥ ५६ ॥ वायूपदेशाद्गरुडं स स्मार राघवस्तदा ॥ नागपाशविमोक्षार्थं दशम्यां गरुडोऽभ्यगात् ॥ ५७ ॥ अवहारो माघशुक्लस्यैकादश्या दिनद्वय म् ॥ द्वादश्यामाञ्जनेयेन धूम्राक्षस्य वधः कृतः ॥ ५८ ॥ त्रयोदश्यां तु तेनैव निहतोऽकम्पनो रणे ॥ मायासीतां दर्श यित्वा रामाय दशकन्धरः ॥ ५९ ॥ त्रासयामास च तदा सर्वान्सैन्यगतानपि ॥ माघशुक्लचतुर्दश्या यावत्कृष्णादि वासरम् ॥ ६० ॥ त्रिदिनेन प्रहस्तस्य नीलेन विहितो वधः ॥ माघकृष्णद्वितीयायाश्चतुर्थ्यन्तं त्रिभिर्दिनैः ॥ ६१ ॥ रामेण तुमुले युद्धे रावणो द्रावितो रणात् ॥ पञ्चम्या अष्टमी यावद्रावणेन प्रबोधितः ॥ ६२ ॥ कुम्भकर्णस्तदा चक्रे

की एकादशी से दो दिन तक फिर युद्ध हुआ व द्वादशी तिथि में हनुमान्‌जी ने धूम्राक्ष को मारा ॥ ५८ ॥ व तेरसि तिथि में उन्हीं ने समर में अकंपन को मारा व रावण ने श्रीरामजी को माया की सीता को दिखलाकर ॥ ५९ ॥ उस समय सेना में प्राप्त सब लोगों को डरवाया व माघशुक्ल की चौदसि से कृष्णपक्ष की परेवा तक ॥ ६० ॥ तीन दिन में नील वानर ने प्रहस्त का वध किया व माघकृष्ण की द्वितीया से चौथि तक तीन दिनों में ॥ ६१ ॥ श्रीरामजी ने बड़े युद्ध में रावण को युद्ध से भगा दिया व पंचमी से लगाकर अष्टमी तक रावण ने कुंभकर्ण को जगाया तब कुंभकर्ण ने चार दिन तक भोजन किया और कुंभकर्ण ने नवमी से लगाकर

चार दिनों तक युद्ध किया ॥ ६२ । ६३ ॥ व श्रीरामजी ने युद्ध में बहुत वानरों को खानेवाले कुंभकर्ण को मारा और अमावस के दिन शोकाभ्यवहार हुआ ॥ ६४ ॥ और फाल्गुन की प्रतिपदा से लगाकर चौथि तक चार दिनों में नरांतक आदिक पांच राक्षस मारे गये ॥ ६५ ॥ और पंचमी से सप्तमी तक तीन दिन में अतिकाय का वध हुआ व अष्टमी से द्वादशी तक पांच दिन में निकुंभ व कुंभ ये दोनों मारे गये और मकराक्ष चार दिनों में मारा गया व फाल्गुन के कृष्णपक्ष की दुइज के दिन मेघनाद जीता गया ॥ ६६ । ६७ ॥ और तीज से लगाकर सप्तमी तक पांच दिन तक ओषधी लाने की व्यग्रता से युद्ध बन्द रहा ॥ ६८ ॥ और अष्टमी में

ऽभ्यवहारं चतुर्दिनम् ॥ कुम्भकर्णोकरोद्युद्धं नवम्यादिचतुर्दिनैः ॥ ६३ ॥ रामेण निहतो युद्धे बहुवानरभक्षकः ॥ अमावास्यादिने शोकाऽभ्यवहारो बभूव ह ॥ ६४ ॥ फाल्गुनप्रतिपदादौ चतुर्थ्यन्तैश्चतुर्दिनैः ॥ नरान्तकप्रभृतयो निहताः पञ्च राक्षसाः ॥ ६५ ॥ पञ्चम्याः सप्तमीं यावदतिकायवधस्त्र्यहात् ॥ अष्टम्या द्वादशीं यावन्निहतौ दिनपञ्चकात् ॥ ६६ ॥ निकुम्भकुम्भौ द्वावेतौ मकराक्षश्चतुर्दिनैः ॥ फाल्गुनासितद्वितीयाया दिने वै शक्रजिज्जितः ॥ ६७ ॥ तृतीयादौ सप्तम्यन्तदिनपञ्चकमेव च ॥ ओषध्यानयवैयग्र्यादवहारो बभूव ह ॥ ६८ ॥ अष्टम्यां रावणो मायामैथिलीं हतवान्कुधीः ॥ शोकावेगात्तदा रामश्चक्रे सैन्यावधारणम् ॥ ६९ ॥ ततस्त्रयोदशीं यावद्दिनैः पञ्चभिरिन्द्रजित् ॥ लक्ष्मणेन हतो युद्धे विख्यातबलपौरुषः ॥ ७० ॥ चतुर्दश्यां दशग्रीवो दीक्षामापावहारतः ॥ अमावास्यांदिने प्रागाद्युद्धाय दशकन्धरः ॥ ७१ ॥ चैत्रशुक्लप्रतिपदः पञ्चमीं दिनपञ्चके ॥ रावणो युध्यमानोऽभूत्प्रचुरो रक्षसां वधः ॥ ७२ ॥

कुबुद्धि रावण ने मायारूपिणी जानकीजी को मारा तब शोक के वेग से श्रीरामजी ने सेना का निश्चय किया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर त्रयोदशी से पांच दिनों में प्रसिद्ध बल व पौरुषवाला मेघनाद युद्ध में लक्ष्मणजी से मारा गया ॥ ७० ॥ और चौदसि में युद्ध बंद होने के कारण रावण यज्ञदीक्षा को प्राप्त हुआ व अमावस दिन में रावण युद्ध के लिये गया ॥ ७१ ॥ और चैत के शुक्लपक्ष की परेवा से पंचमी तक पांच दिन रावण युद्ध करता रहा और राक्षसों का बहुत वध हुआ ॥ ७२ ॥

व चैत के शुक्लपक्ष की अष्टमी तक रथ व अश्वादिकों का नाश हुआ और चैत के शुक्लपक्ष की नवमी में लक्ष्मणजी के शक्ति का भेदन होने पर ॥ ७३ ॥ क्रोध से संयुत श्रीरामजी ने रावण को भगा दिया और विभीषण के उपदेश से हनुमान्जी का युद्ध हुआ ॥ ७४ ॥ और हनुमान्जी लक्ष्मणजी के लिये ओषधी लाने के कारण द्रोणाचल को आये व विशल्यकरणी ओषधी को लाकर उसको लक्ष्मणजी को पिला दिया ॥ ७५ ॥ व दशमी में युद्ध शांत रहा और रात्रि में राक्षसों का युद्ध हुआ और एकादशी में श्रीरामजी के लिये रथ व मातलि सारथी प्राप्त हुआ और द्वादशी से लगाकर कृष्णपक्ष की चौदसि तक अठारह दिनों में श्रीरामजी ने रावण को

चैत्रशुक्लाष्टमीं यावत्स्यन्दनाश्वादिसुदनम् ॥ चैत्रशुक्लनवम्यां तु सौमित्रेः शक्तिभेदने ॥ ७३ ॥ कोपाविष्टेन रामेण द्रावितो दशकन्धरः ॥ विभीषणोपदेशेन हनुमद्युद्धमेव च ॥ ७४ ॥ द्रोणाद्रेरोषधीं नेतुं लक्ष्मणार्थमुपागतः ॥ विशल्यां तु समादाय लक्ष्मणं तामपाययत् ॥ ७५ ॥ दशम्यामवहारोऽभूद्रात्रौ युद्धं तु रक्षसाम् ॥ एकादश्यां तु रामाय रथो मातलिसारथिः ॥ ७६ ॥ प्राप्तो युद्धाय द्वादश्या यावत्कृष्णां चतुर्द्दशीम् ॥ अष्टादशदिने रामो रावणं द्वैरथेऽवधीत् ॥ ७७ ॥ संस्कारा रावणादीनाममावास्यादिनेऽभवन् ॥ संग्रामे तुमुले जाते रामो जयमवाप्तवान् ॥७८॥ माघशुक्लद्वितीयादि चैत्रकृष्णचतुर्द्दशीम् ॥ सप्ताशीतिदिनान्येवं मध्ये पञ्चदशाहकम् ॥ ७९ ॥ युद्धावहारः संग्रामो द्वासप्ततिदिनान्यभूत् ॥ वैशाखादितिथौ राम उवास रणभूमिषु ॥ अभिषिक्तो द्वितीयायां लङ्काराज्ये विभीषणः ॥ ८० ॥ सीताशुद्धिस्तृतीयायां देवेभ्यो वरलम्भनम् ॥ दशरथस्यागमनं तत्र चैवानुमोदनम् ॥ ८१ ॥ हत्वा

द्वैरथ युद्ध में मारा ॥ ७६ । ७७ ॥ और अमावस के दिन रावणादिकों के संस्कार हुए व बड़ाभारी संग्राम होने पर श्रीरामजी ने जीत को पाया ॥ ७८ ॥ इस प्रकार माघ महीने के शुक्लपक्ष की द्वितीया से लगाकर चैत महीने की कृष्णपक्षवाली चौदसि तक सत्तासी दिन हुए और बीच में पंद्रह दिन ॥ ७९ ॥ युद्ध बंद हुआ और बहत्तरि दिन युद्ध हुआ व वैशाख की प्रतिपदा तिथि में श्रीरामजी ने युद्धभूमियों में निवास किया और दुइज तिथि में लंका के राज्य पै विभीषण का अभिषेक किया गया ॥ ८० ॥ और तीज तिथि में सीताजी की शुद्धि हुई व देवताओं से वरदान मिला और वहां दशरथ का आगमन हुआ व अनुमोदन हुआ ॥ ८१ ॥ और

लक्ष्मण के बड़े भाई व्यापक श्रीरामजी शीघ्रता से लंकेश रावण को मारकर राक्षस से दुःखित पवित्र जानकीजी को लेकर ॥ ८२ ॥ वैशाख की चौथि में श्रीरामजी पुष्पक विमान पै बैठकर व बड़ी प्रीति से जानकीजी को लेकर लौटे ॥ ८३ ॥ फिर आकाश के द्वारा अयोध्यापुरी को लौटे और चौदह वर्ष पूर्ण होने पर वैशाख की पंचमी में ॥ ८४ ॥ गणों समेत श्रीरामजी भारद्वाजजी के आश्रम में पैठे और छठि तिथि में वे पुष्पक विमान के द्वारा नंदिग्राम में आये ॥ ८५ ॥ और सप्तमी तिथि में इन रघुनाथजी का अयोध्यापुरी में अभिषेक किया गया दश अधिक चौदह महीने तक जानकीजी ने ॥ ८६ ॥ श्रीरामजी से रहित होकर रावण के घर

त्वरेण लङ्केशं लक्ष्मणस्याग्रजो विभुः ॥ गृहीत्वा जानकीं पुण्यां दुःखितां राक्षसेन तु ॥ ८२ ॥ आदाय परया प्रीत्या जानकीं स न्यवर्तत ॥ वैशाखस्य चतुर्थ्यां तु रामः पुष्पकमाश्रितः ॥ ८३ ॥ विहायसा निवृत्तस्तु भूयोऽयोध्यां पुरीं प्रति ॥ पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां माधवस्य च ॥ ८४ ॥ भारद्वाजाश्रमे रामः सगणः समुपाविशत् ॥ नन्दिग्रामे तु षष्ठ्यां स पुष्पकेण समागतः ॥ ८५ ॥ सप्तम्यामभिषिक्तोऽसावयोध्यायां रघूद्वहः ॥ दशाहाधिकमासांश्च चतुर्दश हि मैथिली ॥ ८६ ॥ उवास रामरहिता रावणस्य निवेशने ॥ द्वाचत्वारिंशके वर्षे रामो राज्यमकारयत् ॥ ८७ ॥ सीता यास्तु त्रयस्त्रिंशद्वर्षाणि तु तदाभवन् ॥ स चतुर्दशवर्षान्ते प्रविष्टः स्वां पुरीं प्रभुः ॥ ८८ ॥ अयोध्यांनाम मुदितो रामो रावणदर्पहा ॥ भ्रातृभिः सहितस्तत्र रामो राज्यमकारयत् ॥ ८९ ॥ दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ रामो राज्यं पालयित्वा जगाम त्रिदिवालयम् ॥ ९० ॥ रामराज्ये तदा लोका हर्षनिर्भरमानसाः ॥ बभूवुर्धनधान्याढ्याः पुत्रपौत्रयुता नराः ॥ ९१ ॥ कामवर्षी च पर्जन्यः सस्यानि गुणवन्ति च ॥ गावस्तु घटदोहिन्यः पादपाश्च सदा

में निवास किया बयालीसवें वर्ष में श्रीरामजी ने राज्य किया ॥ ८७ ॥ तब सीताजी के तेंतीस वर्ष हुए और रावण का गर्व नाशनेवाले वे प्रभु श्रीरामजी प्रसन्न होकर चौदह वर्ष के अन्त में अयोध्या नामक अपनी पुरी में पैठे और वहां भाइयों समेत श्रीरामजी ने राज्य किया ॥ ८८ । ८९ ॥ गेरह हज़ार वर्ष तक श्रीरामजी राज्य को पालन कर स्वर्ग को चलेगये ॥ ९० ॥ उस श्रीरामजी के राज्य में मनुष्यों के मन हर्ष से पूर्ण हुए व पुत्रों और पौत्रों से संयुत मनुष्य धन व धान्य से युक्त हुए॥ ९१ ॥ और

फलाः ॥ ९२ ॥ नाधयो व्याधयश्चैव रामराज्ये नराधिप ॥ नार्यः पतिव्रताश्चासन्पितृभक्तिपरा नराः ॥ ९३ ॥ द्विजा वेदपरा नित्यं क्षत्रिया द्विजसेविनः ॥ कुर्वते वैश्यवर्णाश्च भक्तिं द्विजगवां सदा ॥ ९४ ॥ न योनिसङ्करश्चासीत्तत्र नाचारसङ्करः ॥ न बन्ध्या दुर्भगा नारी काकबन्ध्या मृतप्रजा ॥ ९५ ॥ विधवा नैव काप्यासीत्क्षप्यते न सभर्तृका ॥ नावज्ञां कुर्वते केपि मातापित्रोर्गुरोस्तथा ॥ ९६ ॥ न च वाक्यं हि वृद्धानामुल्लङ्घयति पुण्यकृत् ॥ न भूमिहरणं तत्र परनारीपराङ्मुखाः ॥ ९७ ॥ नापवादपरो लोको न दरिद्रो न रोगभाक् ॥ न स्तेयो द्यूतकारी च मैरेयी पापिनो न हि ॥ ९८ ॥ न हेमहारी ब्रह्मघ्नो न चैव गुरुतल्पगः ॥ न स्त्रीघ्नो न च बालघ्नो न चैवानृतभाषणः ॥ ९९ ॥ न वृत्तिलोपकश्चासीत्कूटसाक्षी न चैव हि ॥ न शठो न कृतघ्नश्च मलिनो नैव दृश्यते ॥ १०० ॥ सदा सर्वत्र पूज्यन्ते ब्राह्मणा

मेघ इच्छा के अनुकूल बरसते थे व अन्न गुणवान् होते थे और गौवैं घड़ाभर दूध देनेवाली थीं व वृक्ष सदैव फलते थे ॥ ९२ ॥ व हे नराधिप! श्रीरामजी के राज्य में मानसी व्यथा व रोग न हुए और स्त्रियां पतिव्रता हुईं व मनुष्य पितरों की भक्ति में परायण हुए ॥ ९३ ॥ और ब्राह्मणलोग सदैव वेद में परायण हुए व क्षत्रिय ब्राह्मणों के सेवक हुए और वैश्य जातिवाले लोग सदैव ब्राह्मणों व गौवों की भक्ति को करते थे ॥ ९४ ॥ व उस राज्य में संकरवर्ण व संकर आचरण नहीं हुआ है और स्त्री बंध्या व दुर्भाग्यवती तथा काकबध्या और मृतवत्सा नहीं होती थी ॥ ९५ ॥ और कोई भी स्त्री विधवा न हुई व पतिसंयुत स्त्री विलाप नही करती थी और कोई मनुष्य माता, पिता व गुरु का अपमान नहीं करते थे ॥ ९६ ॥ और कोई पुण्यकारी मनुष्य वृद्धों का वचन उल्लंघन नहीं करता था व उस राज्य में पृथ्वी का हरण नहीं होता था और मनुष्य पराई स्त्रियों से विमुख होते थे ॥ ९७ ॥ व मनुष्य कलंक में तत्पर नहीं होता था और निर्धनी व रोगी नहीं होता था और चोर, जुँवारी व मदिरा पीनेवाला और पापी मनुष्य नहीं होते थे ॥ ९८ ॥ और सुवर्ण को चुरानेवाला, ब्रह्मघाती व गुरु की शय्या पै जानेवाला नहीं हुआ और न स्त्री को मारनेवाला तथा न बालघाती और न असत्यवादी हुआ ॥ ९९ ॥ और जीविका को लोप करनेवाला व झूंठी गवाही देनेवाला मनुष्य नहीं हुआ और न शठ न कृतघ्न न मलीन देख पड़ता था ॥ १०० ॥ व हे राजन्! बहुतही प्रसिद्ध श्रीरामजी के राज्य में सदैव सब कहीं वेदों के पार-

गामी ब्राह्मण पूजे जाते थे और कोई अवैष्णव व व्रतविहीन न था ॥ १ ॥ और उन श्रीरामजी के राज्य करते हुए बड़े ऐश्वर्यवान् व तपस्या के निधान ब्रह्मपुत्र वसिष्ठजी मुनियों समेत अनेक तीर्थों को करके आये और श्रीरामजी ने मुनियों समेत गुरु वसिष्ठजी को अभ्युत्थान व अर्घ, पाद्य और मधुपर्कादि पूजा से पूजन किया व मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी ने श्रीरामजी से कुशल पूंछा ॥ २ । ३ । ४ ॥ कि हे राम ! राज्य, घोड़ा, हाथी, ख़ज़ाना, देश व उत्तम बन्धु तथा सेवकों में कुशल है उस समय मुनि के ऐसा पूंछने पर ॥ ५ ॥ रामजी बोले कि आप की प्रसन्नता से इस समय व सदैव सब कहीं मेरे कुशल है और श्रीरामजी ने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी से

वेदपारगाः ॥ नावैष्णवोऽव्रती राजन् रामराज्येऽतिविश्रुते ॥ १ ॥ राज्यं प्रकुर्वतस्तस्य पुरोधा वदतां वरः ॥ वसिष्ठो मुनिभिः सार्द्धं कृत्वा तीर्थान्यनेकशः ॥ २ ॥ आजगाम ब्रह्मपुत्रो महाभागस्तपोनिधिः ॥ रामस्तं पूजयामास मुनिभिः सहितं गुरुम् ॥ ३ ॥ अभ्युत्थानार्घपाद्यैश्च मधुपर्कादिपूजया ॥ पप्रच्छ कुशलं रामं वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः ॥ ४ ॥ राज्ये चाश्वे गजे कोशे देशे सद्भ्रातृभृत्ययोः ॥ कुशलं वर्त्तते राम इति पृष्टे मुनेस्तदा ॥ ५ ॥ राम उवाच ॥ सर्वत्र कुशलं मेऽद्य प्रसादाद्भवतः सदा ॥ पप्रच्छ कुशलं रामो वसिष्ठं मुनिपुङ्गवम् ॥ ६ ॥ सर्वतः कुशली त्वं हि भार्यापुत्रसमन्वितः ॥ स सर्वं कथयामास यथा तीर्थान्यशेषतः ॥ ७ ॥ सेवितानि धरापृष्ठे क्षेत्राण्यायतनानि च ॥ रामाय कथयामास सर्वत्र कुशलं तदा ॥ ८ ॥ ततः स विस्मयाविष्टो रामो राजीवलोचनः ॥ पप्रच्छ तीर्थमाहात्म्यं यत्तीर्थे षूत्तमोत्तमम् ॥ १०९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येरामचरित्रवर्णनंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ * ॥

कुशल पूंछा ॥ ६ ॥ कि स्त्री व पुत्र समेत तुम सब ओर से कुशल समेत हो तब उन वसिष्ठजी ने श्रीरामजी से सब कहीं कुशल कही व जिस प्रकार पृथ्वी में सब तीर्थ और क्षेत्र व स्थान जिस प्रकार सेवन किये गये उस सब को कहा ॥ ७ । ८ ॥ तदनन्तर विस्मय से संयुत कमललोचन श्रीरामजी ने उस तीर्थ के माहात्म्य को पूंछा जो कि तीर्थों में उत्तमोत्तम था ॥ १०९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांरामचरित्रवर्णनंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

दो० । धर्मारण्यक्षेत्र को गये यथा श्रीराम । इकतिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ श्रीरामजी बोले कि हे मानद, भगवन्, विभो ! तुम ने जिन तीर्थों को सेवन किया है इनके मध्य में जो उत्तम तीर्थ हो उसको मुझ से कहिये ॥ १ ॥ और मैंने सीताजी के हरने में ब्रह्मराक्षसों को मारा है उस पाप की शुद्धि के लिये उत्तम तीर्थों में भी उत्तम तीर्थ को कहिये ॥ २ ॥ वसिष्ठजी बोले कि गंगा, नर्मदा, तापी, यमुना, सरस्वती, गंडकी, गोमती व पूर्णा ये नदियां भलीभांति पवित्रकारक हैं॥ ३॥ और इन नदियों के मध्य में त्रिपथगामिनी गंगाजी श्रेष्ठ हैं हे राघव ! ये गंगाजी दर्शनही से पाप को जलाती हैं ॥ ४ ॥ और कलियुग में नर्मदा नदी देखकर सौ

श्रीराम उवाच ॥ भगवन्यानि तीर्थानि सेवितानि त्वया विभो ॥ एतेषां परमं तीर्थं तन्ममाचक्ष्व मानद ॥ १ ॥ मया तु सीताहरणे निहता ब्रह्मराक्षसाः ॥ तत्पापस्य विशुद्ध्यर्थं वद तीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ २ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ गङ्गा च नर्मदा तापी यमुना च सरस्वती ॥ गण्डकी गोमती पूर्णा एता नद्यः सुपावनाः ॥ ३ ॥ एतासां नर्मदा श्रेष्ठा गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥ दहते किल्बिषं सर्वं दर्शनादेव राघव ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा जन्मशतं पापं गत्वा जन्मशतत्रयम् ॥ स्नात्वा जन्मसहस्रं च हन्ति रेवा कलौ युगे ॥ ५ ॥ नर्मदातीरमाश्रित्य शाकमूलफलैरपि ॥ एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिभोजफलं लभेत् ॥ ६ ॥ गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ॥ मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ ७ ॥ फाल्गुनान्ते कुहूं प्राप्य तथा प्रौष्ठपदेऽसिते ॥ पक्षे गङ्गामधि प्राप्य स्नानं च पितृतर्पणम् ॥ ८ ॥ कुरुते पिण्डदानानि सोऽक्षयं फलमश्नुते ॥ शुचौ मासे च सम्प्राप्ते स्नानं वाप्यां करोति यः ॥ ९ ॥ चतुरशीतिनरकान्न

जन्मों का पाप व जाकर तीन सौ जन्मों का पाप और नहाकर हज़ार जन्मों का पाप नाश करती है ॥ ५ ॥ नर्मदा के किनारे प्राप्त होकर शाक, मूल व फलों से भी एक ब्राह्मण को भोजन कराने पर मनुष्य कोटि ब्राह्मणों के भोजन का फल पाता है ॥ ६ ॥ और सौ योजनों से भी जो गंगा गंगा ऐसा कहता है वह सब पापों से छूट जाता है व विष्णुलोक को जाता है ॥ ७ ॥ फागुन के अन्त में अमावस को प्राप्त होकर व भादों के कृष्णपक्ष में गंगा के समीप प्राप्त होकर जो स्नान व पितरों का तर्पण करता है ॥ ८ ॥ व जो पिंडदान करता है वह अक्षय फल को भोगता है और आषाढ़ महीना प्राप्त होने पर जो बावली में स्नान करता है ॥ ९ ॥ हे राजन् !

वह चौरासी नरकों को नहीं देखता है व हे राम! तपती के स्मरण में महापातकियों के भी ॥ १० ॥ सात गोत्रों को व एक सौ एक पुश्तियों को वह उधारता है व यमुना में नहाकर मनुष्य समस्त पातकों से छूट जाता है ॥ ११ ॥ और बड़े पापों से युक्त भी वह उत्तम गति को प्राप्त होता है व कृत्तिका नक्षत्र के योग में कार्त्तिकी पौर्णमासी में जो सरस्वतीजी में नहाता है ॥ १२ ॥ उत्तम देवताओं से स्तुति किया जाता हुआ वह गरुड़ पै चढ़कर स्वर्ग को जाता है और जहा प्राची सरस्वती है वहा कातिक महीने में जो नहाकर ॥ १३ ॥ प्राची सरस्वती व माधवजी की स्तुति करता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है और गंडकी नामक पवित्र तीर्थ में जो

पश्यति नरो नृप ॥ तपत्याः स्मरणे राम महापातकिनामपि ॥ १० ॥ उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ यमुनायां नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ११ ॥ महापातकयुक्तोऽपि स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ कार्त्तिक्यां कृत्तिका योगे सरस्वत्यां निमज्जयेत् ॥ १२ ॥ गच्छेत्स गरुडारूढः स्तूयमानः सुरोत्तमैः ॥ स्नात्वा यः कार्त्तिके मासि यत्र प्राची सरस्वती ॥ १३ ॥ प्राचीं च माधवं स्तौति स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ गण्डकीपुण्यतीर्थे हि स्नानं यः कुरुते नरः ॥ १४ ॥ शालग्रामशिलामर्च्य न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ गोमतीजलकल्लोलैर्मज्जयेत्कृष्णसन्निधौ ॥ १५ ॥ चतुर्भुजो नरो भूत्वा वैकुण्ठे मोदते चिरम् ॥ चर्मण्वतीं नमस्कृत्य अपः स्पृशति यो नरः ॥ १६ ॥ स पूर्वजांस्तारयति दश पूर्वान्दशापरान् ॥ द्वयोश्च सङ्गमं दृष्ट्वा श्रुत्वा वा सागरध्वनिम् ॥ १७ ॥ ब्रह्महत्यायुतो वापि पूतो गच्छेत्परां गतिम् ॥ माघमासे प्रयागे तु मज्जनं कुरुते नरः ॥ १८ ॥ इह लोके सुखं भुक्त्वा अन्ते विष्णुपदं व्रजेत् ॥ प्रभासे ये

मनुष्य स्नान करता है ॥ १४ ॥ वह शालग्रामशिला को पूजकर फिर दूध पीनेवाला नहीं होता है और श्रीकृष्णजी के समीप जो गोमतीजल की बड़ी भारी लहरियों से नहाता है ॥ १५ ॥ वह मनुष्य चतुर्भुज होकर वैकुंठ में बहुत दिनों तक आनन्द करता है व चर्मण्वती नदी को प्रणाम कर जो मनुष्य जल को स्पर्श करता है ॥ १६ ॥ वह दश पहले व दश पीछे के पितरों को तारता है और दोनों के संगम को देखकर व समुद्र की ध्वनि को सुनकर ॥ १७ ॥ ब्रह्महत्या से संयुत भी मनुष्य पवित्र होकर उत्तम गति को प्राप्त होता है और माघ महीने में जो मनुष्य प्रयाग में स्नान करता है ॥ १८ ॥ वह इस लोक में सुख को भोगकर अन्त में

विष्णुजी के स्थान को जाता है व हे राम ! प्रभासक्षेत्र में जो मनुष्य तीन रात्रि तक ब्रह्मचारी होते हैं ॥ १९ ॥ वे यमलोक व कुंभीपाकादिक को नहीं देखते हैं और जो मनुष्य नैमिषारण्यवासी होता है वह देवत्व को प्राप्त होता है ॥ २० ॥ जिस कारण देवताओं का स्थान है उसी कारण वह पृथ्वी में दुर्लभ है व हे राम ! कुरुक्षेत्र तीर्थ में चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण में ॥ २१ ॥ हे नृपेन्द्र ! सुवर्ण के दान से फिर मनुष्य स्तन पीनेवाला नहीं होताहै और श्रीस्थल में दर्शन करके मनुष्य पाप से छूट जाता है ॥ २२ ॥ और सब दुःखों के विनाशक विष्णुलोक में वह पूजा जाता है व हे राघव ! पृथ्वी में जो मनुष्य कपिला गऊ को स्पर्श करता है ॥ २३ ॥ वह

नरा राम त्रिरात्रं ब्रह्मचारिणः ॥ १९ ॥ यमलोकं न पश्येयुः कुम्भीपाकादिकं तथा ॥ नैमिषारण्यवासी यो नरो देवत्वमाप्नुयात् ॥ २० ॥ देवानामालयं यस्मात्तदेव भुवि दुर्लभम् ॥ कुरुक्षेत्रे नरो राम ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ २१ ॥ हेमदानाच्च राजेन्द्र न भूयःस्तनपो भवेत् ॥ श्रीस्थले दर्शनं कृत्वा नरः पापात्प्रमुच्यते ॥ २२ ॥ सर्वदुःखविनाशे च विष्णुलोके महीयते ॥ कपिलां स्पर्शयेद्यो गां मानवो भुवि राघव ॥ २३ ॥ सर्वकामदुघावासमृषिलोकं स गच्छति ॥ उज्जयिन्यां तु वैशाखे शिप्रायां स्नानमाचरेत् ॥ २४ ॥ मोचयेद्रौरवाद् घोरात्पूर्वजांश्च सहस्रशः ॥ सिन्धुस्नानं नरो राम प्रकरोति दिनत्रयम् ॥ २५ ॥ सर्पपापविशुद्धात्मा कैलासे मोदते नरः ॥ कोटितीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वरं शिवम् ॥ २६ ॥ ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्लिप्यते न च स क्वचित् ॥ अज्ञानामपि जन्तूनां महाऽमेध्ये तु गच्छताम् ॥ २७ ॥ पादोद्भूतं पयः पीत्वा सर्वपापं प्रणश्यति ॥ वेदवत्यां नरो यस्तु स्नाति सूर्योदये शुभे ॥२८॥

सब कामनाओं को देनेवाले ऋषिलोक स्थान को जाता है और वैशाख में उज्जयिनीपुरी में जो शिप्रा नदी में स्नान करता है ॥ २४ ॥ वह हज़ारों पूर्वजों को भयंकर रौरव नरक से छुड़ाता है व हे राम ! जो मनुष्य तीन दिन तक समुद्रस्नान करता है ॥ २५ ॥ वह मनुष्य सब पापों से शुद्धचित्त होकर कैलास में आनन्द करता है और कोटितीर्थ में नहाकर मनुष्य कोटीश्वर शिवजी को देखकर ॥ २६ ॥ वह कभी ब्रह्महत्यादिक पापों से लिप्त नहीं होता है और बहुतही अशुद्ध स्थान में जानेवाले मूर्ख भी प्राणियों का ॥ २७ ॥ सब पातक विष्णुजी के चरण से उपजे हुए जल को पीकर नाश हो जाता है और उत्तम सूर्योदय में जो मनुष्य वेदवती नदी में नहाताहै ॥२८॥

वह सब रोग से छूट जाता है व उत्तम सुख को पाता है हे राम ! सब कहीं तीर्थस्नान, पान व अवगाहन से ॥ २९ ॥ मनुष्यों के सब पापों को लीला से नाश करते हैं तीर्थों के मध्य में धर्मारण्य उत्तम तीर्थ कहा जाता है ॥ ३० ॥ जो कि पुरातन समय में पहले ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों से स्थापित किया गया है सब बनों व तीर्थों के मध्य में विशेष कर ॥ ३१ ॥ धर्मारण्य से श्रेष्ठ मुक्ति, मुक्ति को देनेवाला तीर्थ नहीं है स्वर्ग में देवता धर्मारण्यनिवासी जनों की प्रशंसा करते हैं ॥ ३२ ॥ हे रामदेव ! वे पवित्र और वे पुण्यकारी मनुष्य हैं जो कि कलियुग में सब पातकों को नाशनेवाले धर्मारण्य में बसते हैं ॥ ३३ ॥ और ब्रह्महत्यादिक पाप

सर्वरोगात्प्रमुच्येत परं सुखमवाप्नुयात् ॥ तीर्थानि राम सर्वत्र स्नानपानावगाहनैः ॥ २९ ॥ नाशयन्ति मनुष्याणां सर्वपापानि लीलया ॥ तीर्थानां परमं तीर्थं धर्मारण्यं प्रचक्ष्यते ॥ ३० ॥ ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैर्यदादौ संस्थापितं पुरा ॥ अरण्यानां च सर्वेषां तीर्थानां च विशेषतः ॥ ३१ ॥ धर्मारण्यात्परं नास्ति भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ स्वर्गे देवाः प्रशंसन्ति धर्मारण्यनिवासिनः ॥ ३२ ॥ ते पुण्यास्ते पुण्यकृतो ये वसन्ति कलौ नराः ॥ धर्मारण्ये रामदेव सर्वकिल्बिषनाशने ॥ ३३ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि सर्वस्तेयकृतानि च ॥ परदारप्रसङ्गादि अभक्ष्यभक्षणादि वै ॥ ३४ ॥ अगम्यागमनाद्यानि अस्पर्शस्पर्शनादि च ॥ भस्मीभवन्ति लोकानां धर्मारण्यावगाहनात् ॥ ३५ ॥ ब्रह्मघ्नश्च कृतघ्नश्च बालघ्नोऽनृतभाषणः ॥ स्त्रीगोघ्नश्चैव ग्रामघ्नो धर्मारण्ये विमुच्यते ॥ ३६ ॥ नातः परं पावनं हि पापिनां प्राणिनां भुवि ॥ स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं वाञ्छितार्थप्रदं शुभम् ॥ ३७ ॥ कामिनां कामदं क्षेत्रं यतीनां मुक्तिदायकम् ॥ सिद्धानां सि

व सब चोरियों से किये हुए पाप और पराई स्त्री के प्रसंगादिक व अभक्ष्य वस्तु के खाने से उत्पन्न ॥ ३४ ॥ और न संग करने योग्य स्त्रियों के संगमादिक से उत्पन्न व न छूने योग्य वस्तुओं के स्पर्शादिक से उपजे हुए मनुष्यों के पाप धर्मारण्य के अवगाहन से भस्म होजाते हैं ॥ ३५ ॥ और ब्रह्मघाती, कृतघ्न, बालघाती, असत्यवादी व स्त्री और गऊ को मारनेवाला व ग्रामनाशक मनुष्य धर्मारण्य में मुक्त होता है ॥ ३६ ॥ पृथ्वी में इससे अधिक पापी प्राणियों को पवित्रकारक व स्वर्गदायक, यशदायक तथा आयुर्बलदायक व चाहे हुए प्रयोजन को देनेवाला उत्तम तीर्थ नहीं है ॥ ३७ ॥ और कामियों को धर्मारण्यक्षेत्र कामनादायक व

संन्यासियों को मुक्तिदायक तथा सिद्धों को प्रत्येक युग में सिद्धिदायक कहा गया है ॥ ३८ ॥ ब्रह्माजी बोले कि वसिष्ठजी का वचन सुन कर धर्मधारियों में श्रेष्ठ श्रीरामजी हृदय को आनन्द करनेवाले बड़े भारी हर्ष को प्राप्त होकर ॥ ३९ ॥ उत्तम नियमोंवाले, प्रफुल्लित हृदय व रोमांचसंयुत श्रीरामजी ने धर्मारण्य में जाने के लिये बुद्धि की ॥ ४० ॥ जिस धर्मारण्य में तीन रात्रि के सेवन से कीट, पतंगादिक, मनुष्य व पशु सब पापों से छूट जाते हैं ॥ ४१ ॥ हे रामजी ! जिस प्रकार द्वारकापुरी व काशी और त्रिशूलपाणि शिव व भैरवजी मुक्तिदायक हैं वैसेही धर्मारण्य उत्तम है ॥ ४२ ॥ तदनन्तर बड़े भारी धनुषवाले तथा बड़े हर्ष से संयुत श्रीरामजी

द्धिदं प्रोक्तं धर्मारण्यं युगे युगे ॥ ३८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वसिष्ठवचनं श्रुत्वा रामो धर्मभृतां वरः ॥ परं हर्षमनुप्राप्य हृदयानन्दकारकम् ॥ ३९ ॥ प्रोत्फुल्लहृदयो रामो रोमाञ्चिततनूरुहः ॥ गमनाय मतिं चक्रे धर्मारण्ये शुभव्रतः ॥४०॥ यस्मिन्कीटपतङ्गादिमानुषाः पशवस्तथा ॥ त्रिरात्रसेवनेनैव मुच्यन्ते सर्वपातकैः ॥ ४१ ॥ कुशस्थली यथा काशी शूलपाणिश्च भैरवः ॥ यथा वै मुक्तिदो राम धर्मारण्यं तथोत्तमम् ॥ ४२ ॥ ततो रामो महेष्वासो मुदा परमया युतः ॥ प्रस्थितस्तीर्थयात्रायां सीतया भ्रातृभिः सह ॥ ४३ ॥ अनुजग्मुस्तदा रामं हनुमांश्च कपीश्वरः ॥ कौशल्या च सुमित्रा च कैकेयी च मुदान्विता ॥ ४४ ॥ लक्ष्मणो लक्षणोपेतो भरतश्च महामतिः ॥ शत्रुघ्नः सैन्यसहितोप्ययोध्यावासिनस्तथा ॥ ४५ ॥ नरव्याघ्र प्रकृतयो धर्मारण्ये विनिर्ययुः ॥ अनुजग्मुस्तदा रामं मुदा परमया युताः ॥ ४६ ॥ तीर्थयात्राविधिं कर्तुं गृहात्प्रचलितो नृपः ॥ वसिष्ठं स्वकुलाचार्यमिदमाह महीपते ॥ ४७ ॥ श्रीराम उवाच ॥ एत

सीता व भाइयों समेत तीर्थयात्रा के लिये चले ॥ ४३ ॥ तब कपिनायक हनुमान्जी और हर्ष से संयुत कौशल्या, सुमित्रा व कैकेयी श्रीरामजी के पीछे चलीं ॥ ४४ ॥ और लक्षणों से संयुत लक्ष्मणजी व महाबुद्धिमान् भरतजी और सेना समेत शत्रुघ्न व अयोध्यानिवासीलोग ॥ ४५ ॥ व हे नरव्याघ्र ! सब प्रजालोग धर्मारण्य को चले और बड़ी प्रसन्नता से संयुत वे उस समय श्रीरामजी के पीछे चले ॥ ४६ ॥ हे महीपते ! तीर्थयात्रा की विधि को करने के लिये घर से चले हुए राजा रामजी ने अपने वंश के आचार्य वसिष्ठजी से यह कहा ॥ ४७ ॥ श्रीरामजी बोले कि हे वसिष्ठजी ! यह बड़ा भारी आश्चर्य है कि पहले क्या द्वारका हुई है और कितने

समय से यह उत्पन्न है इसको मुझ से कहिये ॥ ४८ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे महाराज ! मैं यह नहीं जानता हूं कि कितने समय से यह क्षेत्र हुआ है लोमश और जाम्बवान्‌जी इस कारण को जानते हैं ॥ ४९ ॥ और अनेक भांति के जन्मों के मध्य में शरीर में जो पाप किया गया है उन सबों का यह क्षेत्र उत्तम प्रायश्चित्त (पापनाशक कर्म) कहा गया है ॥ ५० ॥ उन वसिष्ठजी के इस वचन को सुन कर ज्ञानियों में श्रेष्ठ श्रीरामजी ने तीर्थ को जाने के लिये बुद्धि करके यात्रा की विधि कियी ॥ ५१ ॥ और पुरश्चरण की विधि करके श्रीरामजी वसिष्ठजी को आगे कर महामांडलिक राजाओं के साथ उत्तर दिशा को चले ॥ ५२ ॥ और वसिष्ठजी को

दाश्चर्यमतुलं किमादौ द्वारकाभवत् ॥ कियत्कालसमुत्पन्ना वसिष्ठेदं वदस्व मे ॥ ४८ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ न जानामि महाराज कियत्कालादभूदिदम् ॥ लोमशो जाम्बवांश्चैव जानातीति च कारणम् ॥ ४९ ॥ शरीरे यत्कृतं पापं नाना जन्मान्तरेष्वपि ॥ प्रायश्चित्तं हि सर्वेषामेतत्क्षेत्रं परं स्मृतम् ॥ ५० ॥ श्रुत्वेति वचनं तस्य रामो ज्ञानवतां वरः ॥ गन्तुं कृतमतिस्तीर्थे यात्राविधिमथाचरत् ॥ ५१ ॥ वसिष्ठं चाग्रतः कृत्वा महामाण्डलिकैर्नृपैः ॥ पुरश्चरणविधिं कृत्वा प्रस्थितश्चोत्तरां दिशम् ॥ ५२ ॥ वसिष्ठं चाग्रतः कृत्वा प्रतस्थे पश्चिमां दिशम् ॥ ग्रामाद्ग्राममतिक्रम्य देशाद्देशं व नाद्वनम् ॥ ५३ ॥ विमुच्य निर्ययौ रामः ससैन्यः सपरिच्छदः ॥ गजवाजिसहस्रौघैं रथैर्यानैश्च कोटिभिः ॥ ५४ ॥ शिबिकाभिश्चासंख्याभिः प्रययौ राघवस्तदा ॥ गजारूढः प्रपश्यंश्च देशान्विविधसौहृदान् ॥ ५५ ॥ श्वेतातपत्रं वि धृत्य चामरेण शुभेन च ॥ वीजितश्च जनौघेन रामस्तत्र समभ्यगात् ॥ ५६ ॥ वादित्राणां स्वनैर्घोरैर्नृत्यगीतपुरः

आगे कर पश्चिम दिशा को चले और एक ग्राम से दूसरे ग्राम को व देश से देश को और वन से वन को ॥ ५३ ॥ छोड़कर सेना समेत व सामान समेत श्रीरामजी निकले और हज़ारों हाथी घोड़े व करोड़ों रथों व सवारियों से ॥ ५४ ॥ और असंख्य पालकियों समेत उस समय अनेक प्रकार के प्रिय देशों को देखते हुए श्रीरामजी हाथी के ऊपर चढ़कर चले ॥ ५५ ॥ और जनों के गण से उत्तम चँवर से वीजित श्रीरामजी श्वेत छत्र को धारण कर वहां गये ॥ ५६ ॥ और नृत्य, गीतपूर्वक बाजनों

के घोर शब्दों समेत सूतों से प्रशंसा किये जाते हुए भी हर्षसंयुत श्रीरामजी चले॥ ५७ ॥ और दशवें दिन अति उत्तम धर्मारण्य मिला तदनन्तर समीप में माण्डलिक नगर को देखकर श्रीरामजी ने ॥ ५८ ॥ वहां सेना समेत टिककर रात्रि को उस पुरी में निवास किया और क्षेत्र को उजड़ा हुआ व भयानक तथा मनुष्यों से रहित सुनकर ॥ ५९ ॥ और उस धर्मारण्य को लोगों के मुख से व्याघ्रों तथा सिंहों से पूर्ण तथा यक्षों व राक्षसों से सेवित सुनकर श्रीरामदेवजी ने सबों से यह कहा कि चिन्ता न कीजिये॥ ६० ॥ व उस समय श्रीरामजी ने अपने उद्योग में प्रवीण तथा शूर व बड़े बलवान् व पराक्रमी और बड़े शरीरवाले वहां टिके हुए

सरैः ॥ स्तूयमानोपि सूतैश्च ययौ रामो मुदान्वितः ॥ ५७ ॥ दशमेऽहनि सम्प्राप्तं धर्मारण्यमनुत्तमम् ॥ अदूरे हि ततो रामो दृष्ट्वा माण्डलिकं पुरम् ॥ ५८ ॥ तत्र स्थित्वा ससैन्यस्तु उवास निशि तां पुरीम् ॥ श्रुत्वा तु निर्जनं क्षेत्र मुद्वसं च भयानकम् ॥ ५९ ॥ व्याघ्रसिंहाकुलं तच्च यक्षराक्षससेवितम् ॥ श्रुत्वा जनमुखाद्रामो धर्मारण्यमरण्यकम् ॥ उवाच रामदेवस्तु न चिन्ता क्रियतामिति ॥ ६० ॥ तत्रस्थान्वणिजः शूरान्दक्षान्स्वव्यवसायके ॥ ६१ ॥ समर्थान्हि महाकायान्महाबलपराक्रमान् ॥ समाहूय तदा काले वाक्यमेतदथाब्रवीत् ॥ ६२ ॥ शिबिकां सुसुवर्णां मे शीघ्रं वाहयताचिरम् ॥ यथा क्षणेन चैकेन धर्मारण्यं व्रजाम्यहम् ॥ ६३ ॥ तत्र स्नात्वा च पीत्वा च सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥ एवं ते वणिजः सर्वे रामेण प्रेरितास्तदा ॥ ६४ ॥ तथेत्युक्त्वा च ते सर्वे ऊहुस्तच्छिबिकां तदा ॥ क्षेत्रमध्ये यदा रामः प्रविष्टः सहसैनिकः ॥ ६५ ॥ तद्यानस्य गतिर्मन्दा संजाता किल भारत ॥ मन्दशब्दानि वाद्यानि मातङ्गा

समर्थ वैश्यों को बुलाकर यह वचन कहा ॥ ६१।६२ ॥ कि मेरी सोने की पालकी को तुमलोग शीघ्रही ले चलो जिस प्रकार कि एक क्षण में मैं धर्मारण्य को जाऊं ॥ ६३ ॥ क्योंकि उस धर्मारण्य में नहाकर व जल को पीकर मनुष्य पापों से छूट जाता है उस समय श्रीरामजी से इस प्रकार प्रेरित वणिज्लोग ॥ ६४ ॥ बहुत अच्छा यह कहकर वे सब उस समय उन श्रीरामजी की पालकी को ले चले और जब सेना समेत श्रीरामजी क्षेत्र के मध्य में पैठे ॥ ६५ ॥ तब हे भारत ! उस सवारी की गति मंद

होगई और ध्वजनों के शब्द मन्द होगये व हाथियों की चाल मंद होगई ॥ ६६ ॥ और घोड़े भी वैसेही होगये तब श्रीरामजी आश्चर्य को प्राप्त हुए और विनय से उन्हों ने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ गुरु से पूंछा ॥ ६७ ॥ कि हे मुनीश्वर ! यह क्या है जो कि ये मंदगति होगये और हृदय में आश्चर्य है त्रिकाल के जाननेवाले मुनि ने कहा कि धर्मक्षेत्र आगया ॥ ६८ ॥ हे राम ! इस प्राचीन तीर्थ में पैदल चलिये क्योंकि ऐसा करने पर तदनन्तर पश्चात् सेना को सुख होगा ॥ ६९ ॥ तदनन्तर सेना समेत श्रीरामजी पैदल चलकर बहुतही पवित्र मधुवासनक ग्राम में प्राप्त हुए ॥ ७० ॥ और गुरु से कहे हुए मार्ग से श्रीरामजी ने प्रतिष्ठा की विधिपूर्वक अनेक भांति के

मन्दगामिनः ॥ ६६ ॥ हयाश्च तादृशा जाता रामो विस्मयमागतः ॥ गुरुं पप्रच्छ विनयाद्वसिष्ठं मुनिपुङ्गवम् ॥ ६७ ॥ किमेतन्मन्दगतयाश्चित्रं हृदि मुनीश्वर ॥ त्रिकालज्ञो मुनिः प्राह धर्मक्षेत्रमुपागतम् ॥ ६८ ॥ तीर्थे पुरातने राम पादचारेण गम्यताम् ॥ एवं कृते ततः पश्चात्सैन्यसौख्यं भविष्यति ॥ ६९ ॥ पादचारी ततो रामः सैन्येन सह संयुतः ॥ मधुवासनके ग्रामे प्राप्तः परमपावने ॥ ७० ॥ गुरुणा चोक्तमार्गेण मातॄणां पूजनं कृतम् ॥ नानोपहारैर्विविधैः प्रतिष्ठाविधिपूर्वकम् ॥ ७१ ॥ ततो रामो हरिक्षेत्रं सुवर्णादक्षिणे तटे ॥ निरीक्ष्य यज्ञयोग्याश्च भूमीर्वै बहुशस्तथा ॥ ७२ ॥ कृतकृत्यं तदात्मानं मेने रामो रघूद्वहः ॥ धर्मस्थानं निरीक्ष्याथ सुवर्णाक्षोत्तरे तटे ॥ ७३ ॥ सैन्यसङ्घं समुत्तीर्य्य बभ्राम क्षेत्रमध्यतः ॥ तत्र तीर्थेषु सर्वेषु देवतायतनेषु च ॥ ७४ ॥ यथोक्तानि च कर्माणि रामश्चक्रे विधानतः ॥ श्राद्धानि विधिवच्चक्रे श्रद्धया परया युतः ॥ ७५ ॥ स्थापयामास रामेशं तथा कामेश्वरं पुनः ॥ स्थानाद्वायुप्रदेशे तु सु

उपहारों से मातृकाओं का पूजन किया ॥ ७१ ॥ तदनन्तर श्रीरामजी सुवर्णा नदी के दक्षिण किनारे पै हरिक्षेत्र को देखकर व यज्ञ के योग्य बहुतसी भूमियों को देखकर ॥ ७२ ॥ उस समय रघुनायक श्रीरामजी ने अपना को कृतार्थ माना और सुवर्णाक्षा के उत्तर किनारे पै धर्मस्थान को देखकर ॥ ७३ ॥ सेनासमूह को उतार कर श्रीरामजी क्षेत्र के मध्य में घूमनेलगे और वहां सब तीर्थों व देवमन्दिरों में ॥ ७४ ॥ श्रीरामजी ने जैसे कहे हैं वैसेही कर्मों को विधि से किया व बड़ी श्रद्धा से संयुत श्रीरामजी ने विधिपूर्वक श्राद्धों को किया ॥ ७५ ॥ और स्थान से वायव्यकोण में सुवर्णा के दोनों किनारों में रामेश्वर व कामेश्वरजी को स्थापन

किया ॥ ७६ ॥ ऐसा करके दशरथ के पुत्र श्रीरामजी कृतार्थ हुए और सब विधि करके स्त्री समेत श्रीरामजी स्थित हुए ॥ ७७ ॥ और वे रघुनाथजी उस रात को नदी के किनारे सो रहे तदनन्तर आधीरात होने पर उस समय धर्मप्रिय व कमललोचन श्रीरामजी अकेले जागते रहे व उस क्षण में श्रीरामजी ने स्त्री का रोना सुना ॥७८।७९॥ रात में दीनवचनों से कुररी की नाईं रोती हुई उस स्त्री को श्रीरामजी ने बड़ी शीघ्रता से गुप्त दूतों से देखा ॥ ८० ॥ तब हे अनघ ! करुण शब्दों से रोती हुई बहुत ही विकल स्त्री को देखकर श्रीरामजी के दूतों ने उस दुःखित स्त्री से पूंछा ॥ ८१ ॥ दूत बोले कि हे सुभगे, नारि ! तुम कौन हो देवपत्नी हो या दानवी हो और किस

वर्णोभयतस्तटे ॥ ७६ ॥ कृत्वैवं कृतकृत्योऽभूद्रामो दशरथात्मजः ॥ कृत्वा सर्वविधिं चैव सभार्यः समुपाविशत् ॥ ७७ ॥ तां निशां स नदीतीरे सुष्वाप रघुनन्दनः ॥ ततोऽर्द्धरात्रे संजाते रामो राजीवलोचनः ॥ ७८ ॥ जागर्ति स्म तदा काल एकाकी धर्मवत्सलः ॥ अश्रौषीच्च क्षणे तस्मिन् रामो नारीविरोदनम् ॥ ७९ ॥ निशायां करुणैर्वाक्यै रुदन्तीं कुररीमिव ॥ चारैर्विलोकयामास रामस्तामतिसम्भ्रमात् ॥ ८० ॥ दृष्ट्वातिविह्वलां नारीं क्रन्दन्तीं करुणैः स्वरैः ॥ पृष्टा सा दुःखिता नारी रामदूतैस्तदानघ ॥ ८१ ॥ दूता ऊचुः ॥ कासि त्वं सुभगे नारि देवी वा दानवी नु किम् ॥ केन वा त्रासितासि त्वं मुष्टं केन धनं तव ॥ ८२ ॥ विकला दारुणाञ्छब्दानुद्गिरन्ती मुहुर्मुहुः ॥ कथयस्व यथातथ्यं रामो राजाभिपृच्छति ॥ ८३ ॥ तयोक्तं स्वामिनं दूताः प्रेषयध्वं ममान्तिकम् ॥ यथाहं मानसं दुःखं शान्त्यै तस्मै निवेदये ॥ ८४ ॥ तथेत्युक्त्वा ततो दूता राममागत्य चाब्रुवन् ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये दूतागमनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ने तुम को दुःखित किया है व किस ने तुम्हारा धन चुराया है ॥ ८२ ॥ बार २ कठोर शब्दों को कहती हुई विकल तुम यथार्थ कहो इसको राजा रामजी पूंछते हैं ॥ ८३ ॥ उस ने कहा कि हे दूतो ! मेरे समीप स्वामी को पठाइये कि जिस प्रकार मैं मानसी दुःख को उनसे शांति के लिये कहूं ॥ ८४ ॥ बहुत अच्छा यह कहकर तदनन्तर दूतों ने श्रीरामजी के समीप आकर कहा ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदूतागमनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

दो॰। उजड़े धर्मारण्य को फेरि बसायो राम। बत्तिसवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर श्रीरामजी के उन दूतों ने श्रीरामजी को प्रणाम कर कहा कि हे महाबाहो, राम, राम! वह उत्तम मुखवाली स्त्री है॥ १॥ और सुन्दर वस्त्र व भूषणोंवाली तथा कोमलवचनों में परायण उस रोती हुई अकेली स्त्री को देखकर हमलोग विस्मित होगये॥ २॥ और समीप वर्तमान होकर हम लोगों ने उस देवपत्नी से पूंछा कि हे वरारोहे, देवि! तुम कौन हो देवी हो या दानवी हो॥ ३॥ हे देवि! श्रीरामजी तुम को पूंछते हैं तुम सब यथायोग्य कहो उस वचन को सुनकर उस स्त्री ने मधुरवचन को कहा॥ ४॥ कि मेरे दुःख को

व्यास उवाच॥ ततश्च रामदूतास्ते नत्वा राममथाब्रुवन्॥ रामराम महाबाहो वरनारी शुभानना॥ १॥ सुवस्त्र भूषाभरणां मृदुवाक्यपरायणाम्॥ एकाकिनीं क्रन्दमानां दृष्ट्वा तां विस्मिता वयम्॥ २॥ समीपवर्तिनो भूत्वा पृष्टा सा सुरसुन्दरी॥ का त्वं देवि वरारोहे देवी वा दानवी नु किम्॥ ३॥ रामः पृच्छति देवि त्वां ब्रूहि सर्वं यथातथम्॥ तच्छ्रुत्वा वचनं रामा सोवाच मधुरं वचः॥ ४॥ रामं प्रेषयत भद्रं वो मम दुःखापहं परम्॥ ५॥ तदाकर्ण्य ततो रामः सम्भ्रमात्त्वरितो ययौ॥ दृष्ट्वा तां दुःखसन्तप्तां स्वयं दुःखमवाप सः॥ उवाच वचनं रामः कृताञ्जलिपुटस्तदा॥ ६॥ श्रीराम उवाच॥ का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा केनावधूता विजने निरस्ता॥ मुष्टं धनं केन च तावकीनमाचक्ष्व मातः सकलं ममाग्रे॥ ७॥ इत्युक्त्वा चातिदुःखार्तो रामो मतिमतां वरः॥ प्रणामं दण्डवच्चक्रे चक्रपाणिरिवापरः॥ ८॥ तयाभिनन्दितो रामः प्रणम्य च पुनः पुनः॥ तुष्टया परया प्रीत्या स्तुतो मधुरया

नाश करनेवाले श्रेष्ठ श्रीरामजी को पठाइये तुम लोगों का कल्याण होवै॥ ५॥ उस वचन को सुनकर तदनन्तर शीघ्रता समेत श्रीरामजी संभ्रम से गये और दुःख से तची हुई उस स्त्री को देखकर वे श्रीरामजी आप भी दुःख को प्राप्त हुए और उस समय हाथों को जोड़कर श्रीरामजी वचन बोले॥ ६॥ श्रीरामजी बोले कि हे शुभे! तुम कौन हो व किस की स्त्री हो और किसने दुःखित तुम को निर्जन स्थान में निकाल दिया है व हे मातः! किसने तुम्हारा धन चुरा लिया है इस सब को मेरे आगे कहिये॥ ७॥ यह कह कर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ बहुतही दुःख से विकल श्रीरामजी ने दूसरे चक्रपाणि की नाईं दंडवत् प्रणाम किया॥ ८॥ और बड़ी प्रीति से

प्रसन्न उस स्त्री ने बार २ प्रणाम कर श्रीरामजी की प्रशंसा किया व बार २ स्तुति किया ॥ ६ ॥ कि हे परमात्मन्, परेशान, दुःखहारिन्, सनातन ! जिस लिये तुम्हारा अवतार हुआ है उस कार्य को तुम ने किया ॥ १० ॥ कि रावण, कुम्भकर्ण व इन्द्रजीत (मेघनाद) आदिक खर, दूषण, त्रिशिरा, मारीच व अक्षकुमार ॥ ११ ॥ व असंख्य भयंकर राक्षस युद्ध के आंगन में जीते गये ॥ १२ ॥ हे लोकेश ! इस समय मैं तुम्हारे यश को क्या कहूं कि तुम्हारे अंग से उत्पन्न कमल से उपजे हुए ब्रह्मा ने तुम्हारे उदर में स्थित संसार को देखा जैसे कि बरगद के बीज में बरगद का वृक्ष माना गया है ॥ १३ ॥ हे जगदीश, गोविन्द ! संसार में दशरथ व तुम्हारी

गिरा ॥ ६ ॥ परमात्मन्परेशान दुःखहारिन्सनातन ॥ यदर्थमवतारस्ते तच्च कार्यं त्वया कृतम् ॥ १० ॥ रावणः कुम्भकर्णश्च शक्रजित्प्रमुखास्तथा ॥ खरदूषणत्रिशिरोमारीचाक्षकुमारकाः ॥ ११ ॥ असंख्या निर्जिता रौद्रा राक्षसाः समराङ्गणे ॥ १२ ॥ किं वच्मि लोकेश सुकीर्त्तिमद्य ते वेधास्त्वदीयाङ्गजपद्मसम्भवः ॥ ददर्श विश्वं च तवोदरस्थं वटस्य बीजे हि यथा वटो मतः ॥ १३ ॥ धन्यो दशरथो लोके कौशल्या जननी तव ॥ ययोर्जातोसि गोविन्द जगदीश परः पुमान् ॥ १४ ॥ धन्यं च तत्कुलं राम यत्र त्वमा तः स्वयम् ॥ धन्याऽयोध्यापुरी राम धन्यो लोकस्त्वदाश्रयः ॥ १५ ॥ धन्यः सोऽपि हि वाल्मीकिर्येन रामायणं कृतम् ॥ कविना विप्रमुख्येभ्य आत्मबुद्ध्या ह्यनागतम् ॥ १६ ॥ त्वत्तोऽभवत्कुलं चेदं त्वया देव सुपावितम् ॥ १७ ॥ नरपतिरिति लोकैः स्मर्यते वैष्णवांशः स्वयमसि रमणीयैस्त्वं गुणैर्विष्णुरेव ॥ किमपि भुवनकार्यं यद्विचिन्त्यावतीर्य तदिह घटयतस्ते वत्स निर्विघ्नमस्तु ॥ १८ ॥ स्तुत्वो वाचाथ

माता कौशल्या धन्य हैं कि जिन दोनों के तुम परमपुरुष उत्पन्न हुए हो ॥ १४ ॥ व हे राम ! वह वंश धन्य है कि जिस में तुम आपही आये हो व हे राम ! अयोध्यापुरी धन्य है और तुम्हारे आश्रित मनुष्य धन्य है ॥ १५ ॥ और वे वाल्मीकि भी धन्य हैं कि जिन कवि ने अपनी बुद्धि से मुख्य ब्राह्मणों के लिये भविष्य रामायण को बनाया है ॥ १६ ॥ व हे देव ! तुम से यह वंश भली भांति पवित्र होगया ॥ १७ ॥ हे वत्स ! मनुष्यों से नृपति विष्णुजी का अंश कहा जाता है और तुम सुन्दर गुणों से आपही विष्णु हो व कोई भी लोक का कार्य है कि जिस को विचार कर अवतार लेकर उस को करते हुए तुम को इस संसार में विघ्न न होवै ॥ १८ ॥ इस प्रकार

स्तुतिकर इसके अनन्तर उसने श्रीरामजी से कहा कि इस समय तुम्हारे स्वामी होने पर मैं बहुत दिनों से जिस लिये शून्य वर्तमान हूं उस कारण तुम्हीं को दोष है॥ १९ ॥ मुझ को धर्मारण्य क्षेत्र की अधिदेवता जानो और यहां मुझको बारह वर्ष बीते हैं तब से मैं दुःखित हूं ॥ २० ॥ हे महामते ! आज तुम मेरी शून्यता को हरलो हे रामजी ! लोहासुर के डर से सब ब्राह्मण दशो दिशाओं को चले गये ॥ २१ ॥ व दुःखित होते हुए सब बनिया स्थानों के अनुसार चले गये व हे रामजी ! यहां बडे भारी मायावी व दुर्धर्ष और दुःख से नाश होने योग्य उस सुरभयंकर दैत्य को ब्रह्मा, विष्णु व शिव देवताओं ने दबाकर मारडाला है परन्तु उसके डर से बहुत ही शंकित

रामं हि त्वयि नाथे नु साम्प्रतम् ॥ शून्यावर्तें चिरं कालं यतो दोषस्तवैव हि ॥ १९ ॥ धर्मारण्यस्य क्षेत्रस्य विद्धि मामधिदेवताम् ॥ वर्षाणि द्वादशैहैव जातानि दुःखितास्म्यहम् ॥ २० ॥ निर्जनत्वं ममाद्य त्वमुद्धरस्व महामते ॥ लोहासुरभयाद्राम विप्राः सर्वे दिशो दश ॥ २१ ॥ गताश्च वणिजः सर्वे यथास्थानं सुदुःखिताः ॥ स दैत्यो घातितो राम देवैः सुरभयङ्करः ॥ २२ ॥ आक्रम्यात्र महामायो दुराधर्षो दुरत्ययः ॥ न ते जनाः समायान्ति तद्भयादतिशङ्किताः ॥ २३ ॥ अद्य वै द्वादश समाः शून्यागारमनाथवत् ॥ यस्यां हि दीर्घिकायां मे स्नानदानोद्यतो जनः ॥२४॥ राम तस्यां दीर्घिकायां निपतन्ति च शूकराः ॥ यत्राङ्गना भर्तृयुता जलक्रीडापरायणाः ॥ २५ ॥ चिक्रीडुस्तत्र महिषा निपतन्ति जलाशये ॥ यत्र स्थाने सुपुष्पाणां प्रकारः प्रचुरोऽभवत् ॥ २६ ॥ तद्रुद्धं कण्टकैर्वृक्षैः सिंहव्याघ्रसमाकुलैः ॥ संचिक्रीडुः कुमाराश्च यस्यां भूमौ निरन्तरम् ॥ २७ ॥ कुमाराश्चित्रकाणां च तत्र क्रीडन्ति हर्षिताः ॥

वे लोग नहीं आते हैं ॥ २२।२३ ॥ आज शून्य मंदिर व अनाथवान् धर्मक्षेत्र को बारह वर्ष हुए और मेरी जिस बावली में मनुष्य स्नान, दान के लिये उद्यत था ॥ २४॥ हे राम ! उस बावली में सुवर गिरते हैं और जिसमें पतियों से संयुत स्त्रियां जलक्रीड़ा करती थीं ॥ २५ ॥ उस जलाशय में भैंसे गिरते हैं व खेलते हैं और जिस स्थानमें बहुत उत्तम पुष्पों के भेद थे ॥ २६ ॥ वह स्थान सिंहों व व्याघ्रों से संयुत कँटीले वृक्षों से रुँध गया है और जिस भूमि में सदैव कुमार लोग क्रीड़ा करते थे ॥२७॥ वहां

प्रसन्न होते हुए चीता बाघों के बच्चे खेलते हैं और जहां सदैव ब्राह्मण लोग वेदगान करते थे॥ २८॥ वहां बड़े भयंकर सियारियोंके फेत्कार शब्द सुनपड़ते हैं और जहां घर घर में अग्निहोत्रों का धुवाँ देख पड़ता था॥ २९॥ वहां बहुतही उग्र व धुवाँ समेत दौरहा देख पड़ते हैं और ब्राह्मणों के आगे जहां प्रसन्न होकर नर्तक लोग नाचते थे॥ ३०॥ वहीं पर मोहित होते हुए भूत, वेताल व प्रेत नाचते हैं व जिस सभा में मंत्रोंको जपते हुए ब्राह्मण लोग बैठते थे॥ ३१॥ उस स्थान में सुरहगाय, ऋक्ष व साही नामक जन्तु बैठते हैं और जहा ब्राह्मणों व वैश्यों के निवासस्थान देख पड़ते थे॥ ३२॥ हे राम! बाँधी हुई भूमिवाले वे स्थान यहां बिल देख पड़ते हैं और यहां

अकुर्वन्वाडवा यत्र वेदगानं निरन्तरम्॥ २८॥ शिवानां तत्र फेत्काराः श्रूयन्तेऽतिभयङ्कराः॥ यत्र धूमोग्निहोत्राणां दृश्यते वै गृहे गृहे॥ २९॥ तत्र दावाः सधूमाश्च दृश्यन्तेऽत्युल्बणा भृशम्॥ नृत्यन्ते नर्त्तका यत्र हर्षिता हि द्विजाग्रतः॥ ३०॥ तत्रैव भूतवेतालाःप्रेता नृत्यन्ति मोहिताः॥ नृपा यत्र सभायां तु न्यषीदन्मन्त्रतत्पराः॥ ३१॥ तस्मिन्स्थाने निषीदन्ति गवया ऋक्षशल्लकाः॥ आवासा यत्र दृश्यन्ते द्विजानां वणिजां तथा॥ ३२॥ कुट्टिमप्रतिमा राम दृश्यन्तेत्र बिलानि वै॥ कोटराणीव वृक्षाणां गवाक्षाणीह सर्वतः॥ ३३॥ चतुष्का यज्ञवेदिर्हि सोच्छ्रायाह्यभवत्पुरा॥ तेऽत्र वल्मीकनिचयैर्दृश्यन्ते परिवेष्टिताः॥ ३४॥ एवंविधं निवासं मे विद्धि राम नृपोत्तम॥ शून्यं तु सर्वतो यस्मान्निवासाय द्विजा गताः॥ ३५॥ तेन मे सुमहद्दुःखं तस्मात्त्राहि नरेश्वर॥ एतच्छ्रुत्वा वचो राम उवाच वदतां वरः॥ ३६॥ श्रीराम उवाच॥ न जाने तावकान्विप्रांश्चतुर्दिक्षु समाश्रितान्॥ न तेषां वेद्म्यहं संख्यां नाम

सब ओर झरोखा वृक्षों के खोड़र से देख पड़ते हैं॥ ३३॥ और पुरातन समय चौकोर यज्ञवेदी जो उँचाई समेत हुई है वे स्थान बेंबौरि समूहों से घिरे देखपड़ते हैं॥ ३४॥ हे नृपोत्तम, राम! मेरे इस प्रकार के निवास को सब ओर से शून्य जानिये जिस लिये ब्राह्मण लोग निवास के लिये चले गये॥ ३५॥ हे नरेश्वर! उससे मुझको बड़ा दुःख है उसी कारण रक्षा कीजिये इस वचन को सुनकर कहनेवालों में श्रेष्ठ श्रीरामजी ने वचन को कहा॥ ३६॥ श्रीरामजी बोले कि चारों दिशाओं में टिके हुए

तुम्हारे ब्राह्मणों को मैं नहीं जानता हूं और उन ब्राह्मणों की संख्या व नाम और गोत्र को नहीं जानता हूं ॥ ३७ ॥ जैसा कुटुंब व जैसा गोत्र हो उसको यथार्थ कहिये तो उन सबों को लाकर मैं उन सबों को अपने स्थान में बसाऊं ॥ ३८ ॥ श्रीमाता बोली कि हे नरेश्वर ! ब्रह्मा, विष्णु व शिवजीने जिनको स्थापन किया है वे अठारह हज़ार वेदों के पारगामी ब्राह्मण हैं ॥ ३९ ॥ व हे अमितद्युते ! इस संसार में वे वेदत्रयी की विद्याओं में प्रवीण हैं और चौंसठि गोत्रों के मध्य में जो ब्राह्मण प्रतिष्ठित हैं ॥ ४० ॥ उनको श्रीमाता ने त्रयीविद्या को दिया है और संसार में वे सब द्विजोत्तम हैं व छत्तीस हज़ार धर्म में परायण वैश्य हैं ॥ ४१ ॥ व ब्राह्मणों की सेवा में परायण वे

गोत्रे द्विजन्मनाम् ॥ ३७ ॥ यथा ज्ञातिर्यथा गोत्रं याथातथ्यं निवेदय ॥ तत आनीय तान्सर्वान्स्वस्थाने वासयाम्य हम् ॥ ३८ ॥ श्रीमातोवाच ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशैश्च स्थापिता ये नरेश्वर ॥ अष्टादशसहस्राणि ब्राह्मणा वेदपार गाः ॥ ३९ ॥ त्रयीविद्यासु विख्याता लोकेऽस्मिन्नमितद्युते ॥ चतुष्षष्टिकगोत्राणां वाडवा ये प्रतिष्ठिताः ॥ ४० ॥ श्री मातादात्त्रयीविद्यां लोके सर्वे द्विजोत्तमाः ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि वैश्या धर्मपरायणाः ॥ ४१ ॥ आर्यवृत्तास्तु वि ज्ञेया द्विजशुश्रूषणे रताः ॥ बकुलार्को नृपो यत्र संज्ञया सह राजते ॥ ४२ ॥ कुमारावश्विनौ देवौ धनदो व्ययपूरकः ॥ अधिष्ठात्री त्वहं राम नाम्ना भट्टारिका स्मृता ॥ ४३ ॥ श्रीसूत उवाच ॥ स्थानाचाराश्च ये केचित्कुलाचारास्तथैव च ॥ श्रीमात्रा कथितं सर्वं रामस्याग्रे पुरातनम् ॥ ४४ ॥ तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा रामो मुदमवाप ह ॥ सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यं हि भाषितं त्वया ॥ ४५ ॥ यस्मात्सत्यं त्वया प्रोक्तं तन्नाम्ना नगरं शुभम् ॥ वासयामि जगन्मातः सत्य

श्रेष्ठ आचरणवाले हैं जहां कि संज्ञा समेत बकुलार्क राजा शोभित हैं ॥ ४२ ॥ वहीं अश्विनीकुमार देव व व्यय (ख़र्च) को पूर्ण करनेवाले कुबेरजी हैं व हे राम ! मैं अ-धिष्ठात्री देवता नाम से भट्टारिका कही गई हूं ॥ ४३ ॥ श्रीसूतजी बोले कि जो कोई स्थान के आचार व कुल के आचार थे श्रीरामजी के आगे उस सब पुराने चरित्र को श्रीमाता ने कहा ॥ ४४ ॥ व उसका वचन सुनकर रामजी हर्ष को प्राप्त हुए और यह बोले कि तुमने सत्य, सत्य व फिर सत्य को कहा है ॥ ४५ ॥ हे जगदम्बिके !

जिस लिये तुम ने सत्य कहा है उसी कारण उस नाम से सत्यमंदिर नामक उत्तम नगर को बसाऊंगा ॥ ४६ ॥ और उत्तम सत्यमंदिर तीनों लोकों में प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ ४७ ॥ यह कहकर तदनन्तर श्रीरामजी ने ब्राह्मणों को लाने के लिये लक्ष संख्यक अपने सेवकों को पठाया ॥ ४८ ॥ व कहा कि जिस देश व प्रदेश और वन में व नदी के किनारे और पर्वत के समीप व जैसे स्थानवाले उस उस ग्राम में ॥ ४९ ॥ जहां धर्मारण्य के निवासी द्विजोत्तम गये हों वहां उन को अर्घ व पाद्यों से पूजकर शीघ्रही लाइये ॥ ५० ॥ जब यहां मैं उन द्विजोत्तमों को देखूंगा तब भोजन करूंगा ॥ ५१ ॥ और जो इन ब्राह्मणों को न मानकर यहां आवैगा

मन्दिरमेव च ॥ ४६ ॥ त्रैलोक्ये ख्यातिमाप्नोतु सत्यमन्दिरमुत्तमम् ॥ ४७ ॥ एतदुक्त्वा ततो रामः सहस्रशतसंख्य या ॥ स्वभृत्यान्प्रेषयामास विप्रानयनहेतवे ॥ ४८ ॥ यस्मिन्देशे प्रदेशे वा वने वा सरितस्तटे ॥ पर्यन्ते वा यथास्था ने ग्रामे वा तत्र तत्र च ॥ ४९ ॥ धर्मारण्यनिवासाश्च याता यत्र द्विजोत्तमाः ॥ अर्घपाद्यैः पूजयित्वा शीघ्रमानयतात्र तान् ॥ ५० ॥ अहमत्र तदा भोक्ष्ये यदा द्रक्ष्ये द्विजोत्तमान् ॥ ५१ ॥ विमान्य च द्विजानेतानागमिष्यति यो नरः ॥ स मे वध्यश्च दण्ड्यश्च निर्वास्यो विषयाद्बहिः ॥ ५२ ॥ तच्छ्रुत्वा दारुणं वाक्यं दुःसहं दुष्प्रधर्षणम् ॥ रामाज्ञाकारि णो दूता गताः सर्वे दिशो दश ॥ ५३ ॥ शोधिता वाडवाः सर्वे लब्ध्वा सर्वे सुहर्षिताः ॥ यथोक्तेन विधानेन अर्घपाद्यै रपूजयन् ॥ ५४ ॥ स्तुतिं चक्रुश्च विधिवद्विनयाचारपूर्वकम् ॥ आमन्त्र्य च द्विजान्सर्वान् रामवाक्यं प्रकाशयन् ॥५५॥ [illegible] सर्वे द्विजाः सेवकसंयुताः ॥ गमनायोद्यताः सर्वे वेदशास्त्रपरायणाः ॥ ५६ ॥ आगता रामपार्श्वे च बहु

[illegible] दंड देने योग्य व देश से बाहर निकालने योग्य होगा ॥ ५२ ॥ उस दुःसह व दुर्धर्ष और कठोर वचन को सुनकर श्रीरामजी की आज्ञा [illegible] दशो दिशाओं को चले गये ॥ ५३ ॥ सब ब्राह्मण ढूंढे गये और उन को पाकर प्रसन्न होते हुए दूतों ने यथोक्त विधि से अर्घ व पाद्य से पूजन [illegible] आचारपूर्वक विधि से स्तुति किया व सब ब्राह्मणों को बुलाकर श्रीरामजी के वचन को प्रकाश किया ॥ ५५ ॥ तब वेदों व शास्त्रों में [illegible]त जाने के लिये तैयार हुए ॥ ५६ ॥ और बहुत मानपूर्वक वे श्रीरामजी के समीप आये और आये हुए ब्राह्मणों को देखकर रोमांच

संयुत ॥ ५७ ॥ दशरथकुमार श्रीराम राजा ने अपना को कृतार्थ सा माना और वे शीघ्रता से उठकर आगे पैदल चले ॥ ५८ ॥ और हाथों को जोड़कर हर्ष से आँसुवों को छोड़ते हुए श्रीरामजी ने घुटुनुवों से पृथ्वी को प्राप्त होकर यह वचन कहा ॥ ५९ ॥ कि ब्राह्मणों की प्रसन्नतासे मैं लक्ष्मीपति हूं व ब्राह्मणों की प्रसन्नता से मैं पृथ्वी को धारण किये हूं और ब्राह्मणों की प्रसन्नता से मैं पृथ्वी का स्वामी हूं व ब्राह्मणों की प्रसन्नता से मेरा राम नाम है ॥ ६० ॥ श्रीरामजी से ऐसा कहे हुए वे ब्राह्मण प्रसन्न हुए व उन्होंने जय के आशीर्वादों से पूजकर दीर्घायु होवो यह कहा ॥ ६१ ॥ और श्रीरामजी ने उनको पाद्य, अर्घ्य व विष्टरादिक दिया व दंडा की नाई

मानपुरःसराः ॥ समागतान्द्विजान्दृष्ट्वा रोमाञ्चिततनूरुहः ॥ ५७ ॥ कृतकृत्यमिवात्मानं मेने दाशरथिर्नृपः ॥ स संभ्रमात्समुत्थाय पदातिः प्रययौ पुरः ॥ ५८ ॥ करसम्पुटकं कृत्वा हर्षाश्रु प्रतिमुञ्चयन् ॥ जानुभ्यामवनिं गत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥ ५९ ॥ विप्रप्रसादात्कमलावरोऽहं विप्रप्रसादाद्धरणीधरोऽहम् ॥ विप्रप्रसादाज्जगतीपतिश्च विप्रप्रसादान्मम रामनाम ॥ ६० ॥ इत्येवमुक्ता रामेण वाडवास्ते प्रहर्षिताः ॥ जयाशीर्भिः प्रपूज्याथ दीर्घायुरिति चाब्रुवन् ॥ ६१ ॥ आवर्जितास्ते रामेण पाद्यार्घ्यविष्टरादिभिः ॥ स्तुतिं चकार विप्राणां दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥ ६२ ॥ कृताञ्जलिपुटः स्थित्वा चक्रे पादाभिवन्दनम् ॥ आसनानि विचित्राणि हैमान्याभरणानि च ॥ ६३ ॥ समर्पयामास ततो रामो दशरथात्मजः ॥ अङ्गुलीयकवासांसि उपवीतानि कर्णकान् ॥ ६४ ॥ प्रददौ विप्रमुख्येभ्यो नानावर्णाश्च धेनवः ॥ एकैकशतसंख्याका घटोध्नीश्च सवत्सकाः ॥ ६५ ॥ सवस्त्रा बद्धघण्टाश्च हेमशृङ्गविभूषिताः ॥ रूप्यखुरास्ताम्र

प्रणाम करके स्तुति किया ॥ ६२ ॥ और हाथों को जोड़कर स्थित होकर चरणों को प्रणाम किया व विचित्र आसन व सुवर्ण के गहनों को दिया ॥ ६३ ॥ तदनन्तर दशरथ के पुत्र श्रीरामजी ने अँगूठी, वसन, यज्ञोपवीत व कर्णाभरणों को दिया ॥ ६४ ॥ व मुख्य ब्राह्मणों के लिये अनेक प्रकार के रंगवाली तथा घड़ा के समान ऐनवाली बछड़ा समेत एक एक सौ गौवों को मुख्य ब्राह्मणों के लिये दिया ॥ ६५ ॥ और बँधेहुए घंटोंवाली तथा सुवर्ण के शृंगों से भूषित व चांदी के खुर और ताँबे की पीठवाली

कांस्य पात्रों से संयुत वस्त्र समेत गौवों को दिया ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां ब्रह्मनारदसंवादेसत्यमन्दिरस्थापनवर्णनोनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । धर्मारण्यक राम किय यथा जीर्ण उद्धार । तेंतिसवें अध्याय में सोई चरित सुखार ॥ श्रीरामजी बोले कि श्रीमाता के वचन से मैं जीर्णोद्धार करूंगा मेरे लिये आज्ञा को दीजिये कि जिस प्रकार मैं तुमलोगों को दान देऊं ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! उत्तम यज्ञ करके पात्र में दान देना चाहिये अपात्र में कुछ नहीं दिया जाता है क्योंकि

पृष्ठीः कांस्यपात्रसमन्विताः ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येब्रह्मनारदसंवादे सत्यमन्दिरस्थापनवर्णनोनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

राम उवाच ॥ जीर्णोद्धारं करिष्यामि श्रीमातुर्वचनादहम् ॥ आज्ञा प्रदीयतां मह्यं यथादानं ददामि वः ॥ १ ॥ पात्रे दानं प्रदातव्यं कृत्वा यज्ञवरं द्विजाः ॥ नापात्रे दीयते किञ्चिद्दत्तं न तु सुखावहम् ॥ २ ॥ सुपात्रं नौरिव सदा तारयेदुभयोरपि ॥ लोहपिण्डोपमं ज्ञेयं कुपात्रं भञ्जनात्मकम् ॥ ३ ॥ जातिमात्रेण विप्रत्वं जायते न हि भो द्विजाः ॥ क्रिया बलवती लोके क्रियाहीने कुतः फलम् ॥ ४ ॥ पूज्यास्तस्मात्पूज्यतमा ब्राह्मणाः सत्यवादिनः ॥ यज्ञकार्ये समुत्पन्ने कृपां कुर्वन्तु सर्वदा ॥ ५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ततस्तु मिलिताः सर्वे विमृश्य च परस्परम् ॥ केचिदूचुस्तदा रामं शिलोञ्छजीविका वयम् ॥ ६ ॥ सन्तोषं परमास्थाय स्थिता धर्मपरायणाः ॥ प्रतिग्रहप्रयोगेण न चास्माकं प्रयो

दिया हुआ वह सुखदायक नहीं होता है ॥ २ ॥ और नाव की नाईं सुपात्र सदैव दोनों को भी तारता है व कुपात्र लोहपिंड के समान नाशक जानने योग्य है ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! केवल जातिही से ब्राह्मणता नहीं होती है वरन संसार में कर्म बलवान् होता है और कर्महीन में फल कहां से होगा ॥ ४ ॥ इस कारण सत्यवादी ब्राह्मण पूजने योग्य व अधिक पूजनीय हैं और यज्ञकार्य उत्पन्न होने पर ब्राह्मण सदैव कृपा करैं ॥ ५ ॥ ब्रह्मा बोले कि तदनन्तर सब मिलकर व परस्पर विचार कर उस समय कुछ ब्राह्मणों ने श्रीरामजी से कहा कि हमलोग शिलोञ्छ जीविकावाले हैं ॥ ६ ॥ और बड़े संतोष में स्थित हमलोग धर्म में लगे हुए हैं हमलोगों का दान

के प्रयोग से प्रयोजन नहीं है ॥ ७ ॥ दश वधस्थानों के समान कुम्हार होता है व दश कुम्हारों के बराबर तेली होता है और दश तेलियों के समान वेश्या होती है व दश वेश्याओं के समान राजा होता है ॥ ८ ॥ व हे रामजी ! राजा का दान भयंकर होता है यह निस्सन्देह सत्य है उसी कारण हमलोग भयदायक दान की इच्छा नहीं करते हैं ॥ ९ ॥ कोई एकाहिक व्रतवाले ब्राह्मण थे व कोई अमृत (अयाचित) जीविकावाले थे और कोई ब्राह्मण कुंभीधान्य व्रतवाले व कोई छः कर्मों में तत्पर थे ॥ १० ॥ और कोई तीन मूर्तियों को स्थापन करनेवाले थे इस प्रकार सब पृथक् भाववाले व पृथक् गुणोंवाले थे और कितेक ब्राह्मणों ने यह कहा कि बिन त्रिमूर्ति

जनम् ॥७॥ दशसूनासमश्चक्री दशचक्रिसमो ध्वजः ॥ दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः ॥ ८॥ राजप्रतिग्रहो घोरो राम सत्यं न संशयः॥ तस्माद्वयं न चेच्छामः प्रतिग्रहं भयावहम् ॥ ९ ॥ एकाहिका द्विजाः केचित्केचित्स्वामृत वृत्तयः ॥ कुम्भीधान्या द्विजाः केचित् केचित्षट्कर्मतत्पराः ॥ १० ॥ त्रिमूर्तिस्थापिताः सर्वे पृथग्भावाः पृथग्गुणाः ॥ केचिदेवं वदन्तिस्म त्रिमूर्त्याज्ञां विना वयम् ॥ ११ ॥ प्रतिग्रहस्य स्वीकारं कथं कुर्याम ह द्विजाः ॥ न ताम्बूलं स्वीकृतं नो यावद्देवैर्नभाषितम् ॥ १२ ॥ विमृश्य स तदा रामो वसिष्ठेन महात्मना ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां सस्मार गुरुणा सह ॥ १३ ॥ स्मृतमात्रास्ततो देवास्तं देशं समुपागमन् ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशविमानावलिसंवृताः ॥ १४ ॥ रामेण ते यथान्यायं पूजिताः परया मुदा ॥ निवेदितं तु तत्सर्वं रामेणातिसुबुद्धिना ॥ १५ ॥ अधिदेव्या वचनतो जीर्णोद्धारं करोम्यहम् ॥ धर्मारण्ये हरिक्षेत्रे धर्मकूपसमीपतः ॥ १६ ॥ ततस्ते वाडवाः सर्वे त्रिमूर्त्तीः प्रणिपत्य च ॥ महता हर्ष

की आज्ञा से हमलोग ॥ ११ ॥ ब्राह्मण कैसे दान को स्वीकार करें क्योंकि जबतक देवता नहीं कहते हैं तबतक हमलोग ताम्बूल को नहीं खाते हैं ॥ १२ ॥ तब महात्मा वसिष्ठ गुरु समेत श्रीरामजी ने विचार कर ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक देवताओं को स्मरण किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर स्मरण किये हुए वे विमानों की पांतियों से घिरेहुए करोड़ों सूर्यों के समान देवता उस स्थान को आये ॥ १४ ॥ और श्रीरामजी ने उनको बड़े हर्ष से यथायोग्य पूजन किया और उत्तम बुद्धिवाले श्रीरामजी ने उस सब वृत्तान्त को बतलाया ॥ १५ ॥ धर्मारण्य विष्णुक्षेत्र में धर्मकूप के समीप से मैं अधिदेवी के वचन से जीर्णोद्धार करता हूं ॥ १६ ॥ तदनन्तर वे सब बड़े हर्षगण

से पूर्ण वे सब ब्राह्मण तीनों मूर्तियों को प्रणाम कर मनोरथ को प्राप्त हुए ॥ १७ ॥ और उन्हों ने अर्घ्य, पाद्यादि की विधि से उन को श्रद्धा से पूजा व क्षण भर विश्राम कर उन ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक देवताओं ने ॥ १८ ॥ विनय से हाथों को जोड़े हुए बड़े शक्तिमान् श्रीरामजी से कहा ॥ १९ ॥ देवता बोले कि हे सूर्यवंशभूषण, श्रीरामजी ! तुम ने देवताओं के शत्रु जिन रावणादिकों को मारा है उस से हम सब प्रसन्न हैं ॥ २० ॥ और बड़े भारी स्थान का जीर्णोद्धार कीजिये तो बड़े भारी यश को प्राप्त होवोगे ॥ २१ ॥ उन देवताओं की आज्ञा को पाकर वे दशरथकुमार श्रीरामजी प्रसन्न हुए व जीर्णोद्धार में अनन्त गुण को चाहते हुए लक्ष्मीपति श्रीरामजी

वृन्देन पूर्णाः प्राप्तमनोरथाः ॥ १७ ॥ अर्घ्यपाद्यादिविधिना श्रद्धया तानपूजयन् ॥ क्षणं विश्रम्य ते देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ १८ ॥ ऊचू रामं महाशक्तिं विनयात्कृतसम्पुटम् ॥ १९ ॥ देवा ऊचुः ॥ देवद्रुहस्त्वया राम ये हता रावणादयः ॥ तेन तुष्टा वयं सर्वे भानुवंशविभूषण ॥ २० ॥ उद्धरस्व महास्थानं महतीं कीर्तिमाप्नुहि ॥ २१ ॥ लब्ध्वा स तेषामाज्ञां तु प्रीतो दशरथात्मजः ॥ जीर्णोद्धारेऽनन्तगुणं फलमिच्छन्निलापतिः ॥ २२ ॥ देवानां सन्निधौ तेषां कार्यारम्भमथाकरोत् ॥ स्थण्डिलं पूर्वतः कृत्वा महागिरिसमं शुभम् ॥ २३ ॥ तस्योपरि बहिःशाला गृहशाला ह्यनेकशः ॥ ब्रह्मशालाश्च बहुशो निर्ममे शोभनाकृतीः ॥ २४ ॥ निधानैश्च समायुक्ता गृहोपकरणैर्वृताः ॥ सुवर्णकोटिसम्पूर्णा रसवस्त्रादिपूरिताः ॥ २५ ॥ धनधान्यसमृद्धाश्च सर्वधातुयुतास्तथा ॥ एतत्सर्वं कारयित्वा ब्राह्मणेभ्यस्तदा ददौ ॥ २६ ॥ एकैकशो दश दश ददौ धेनूः पयस्विनीः ॥ चत्वारिंशच्छतं प्रादाद् ग्रामाणां चतुराधिकम् ॥ २७ ॥ त्रैविद्यद्विजविप्रेभ्यो

ने ॥ २२ ॥ उन देवताओं के समीप कार्य का प्रारंभ किया पूर्व और बड़े पर्वत के समान चौतरा को बनाकर ॥ २३ ॥ उसके ऊपर उत्तम स्वरूपवाली अनेक बहिश्शाला व गृहशाला और ब्रह्मशालाओं को बनाया ॥ २४ ॥ जो कि घर की सामग्रियों से संयुत तथा खज़ानों से युक्त और करोडों अशर्फियों से पूर्ण व रस और वस्त्रादिकों से पूर्ण थे ॥ २५ ॥ और धन, धान्य से पूर्ण व सब धातुओं से संयुत थे इस सब को बनवाकर तब श्रीरामजी ने ब्राह्मणों के लिये देदिया ॥ २६ ॥ और एक एक ब्राह्मण को दश दश दूधवाली गाइयों को दिया व दशरथ के पुत्र श्रीरामजी ने त्रैविद्य ब्राह्मणों के लिये चार अधिक चार सौ ग्रामों को दिया जिस लिये

ब्रह्मा, विष्णु व महेश तीनों ने द्विजोत्तमों को स्थापित किया है ॥ २७ । २८ ॥ उसी कारण त्रैविद्य ऐसी प्रसिद्धि संसार में हुई ब्राह्मणों के लिये इस प्रकार का बड़ा अद्भुत दान देकर ॥ २९ ॥ उन श्रीरामनरेशजी ने अपना को कृतार्थ माना पहले ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से जो स्थापन किये गये थे ॥ ३० ॥ वे जीर्णोद्धार करने पर श्रीरामजी से पूजे गये और छत्तीस हज़ार जो गोभुज श्रेष्ठ वैश्य थे ने सेवा के लिये विष्णु व शिवादिक देवताओं से दिये गये और प्रसन्न शिवजी ने उनके लिये नौकरी दिया ॥ ३१ । ३२ ॥ और सफेद घोडे व चँवर दिये गये और निर्मल तलवार दीगई तब ब्राह्मणों की सेवा के लिये वे समझाये गये ॥ ३३ ॥ कि विवाहादिकों में सदैव

रामो दशरथात्मजः ॥ काजेशेन त्रयेणैव स्थापिता द्विजसत्तमाः ॥ २८ ॥ तस्मात्त्रयीविद्य इति ख्यातिर्लोके बभूव ह ॥ एवंविधं द्विजेभ्यः स दत्त्वा दानं महाद्भुतम् ॥ २९ ॥ आत्मानं चापि मेने स कृतकृत्यं नरेश्वरः ॥ ब्रह्मणा स्थापिताः पूर्वं विष्णुना शङ्करेण ये ॥ ३० ॥ ते पूजिता राघवेण जीर्णोद्धारे कृते सति ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि गोभुजा ये वणिग्वराः ॥ ३१ ॥ शुश्रूषार्थं प्रदत्ता वै देवैर्हरिहरादिभिः ॥ सन्तुष्टेन तु शर्वेण तेभ्यो दत्तं तु वेतनम् ॥ ३२ ॥ श्वेताश्वचामरौ दत्तौ खड्गं दत्तं सुनिर्मलम् ॥ तदा प्रबोधितास्ते च द्विजशुश्रूषणाय वै ॥ ३३ ॥ विवाहादौ सदा भाव्यं चामरैर्मङ्गलं वरम् ॥ खड्गं शुभं तदा धार्य्यं मम चिह्नं करे स्थितम् ॥ ३४ ॥ गुरुपूजा सदा कार्या कुलदेव्या पुनः पुनः ॥ वृद्ध्यागमेषु प्राप्तेषु वृद्धिदायकदक्षिणा ॥ ३५ ॥ एकादश्यां शनेर्वारे दानं देयं द्विजन्मने ॥ प्रदेयं बालवृद्धेभ्यो मम रामस्य शासनात् ॥ ३६ ॥ मण्डलेषु च ये शूद्रा वणिग्वृत्तिरताः पराः ॥ सपादलक्षास्ते दत्ता रामशासन

चँवर से उत्तम मंगल होना चाहिये और तब मेरे हाथ में स्थित चिह्न व उत्तम तलवार को धारण करना चाहिये ॥३४॥ और सदैव गुरुपूजन व कुलदेवी का पूजन बार २ करना चाहिये व वृद्धि आगमवाले कार्यों के प्राप्त होने पर वृद्धि देनेवाली दक्षिणा चाहिये ॥ ३५ ॥ और शनिवार एकादशी में ब्राह्मण के लिये दान देना चाहिये और मेरी रामजी की आज्ञा से बालकों व वृद्धों के लिये देना चाहिये ॥३६॥ और मंडलों में जो उत्तम शूद्र वैश्यों की जीविका में परायण थे श्रीरामजी की आज्ञा

के पालक वे सवालक्ष दिये गये ॥ ३७ ॥ वे मांडलीक राजा मंडलेश्वर जानने योग्य हैं व श्रीरामजी से श्रेष्ठ वैश्यलोग ब्राह्मणों की सेवा में दिये गये ॥ ३८ ॥ और श्रीरामजी ने दो चँवर व तलवार को दिया और प्रतिष्ठा की विधिपूर्वक कुल के स्वामी सूर्य को स्थापित किया ॥ ३९ ॥ और चारों वेदों से संयुत ब्रह्मा को स्थापित किया और श्रीमाता महाशक्ति व शून्य के स्वामी विष्णुजी को स्थापित किया ॥ ४० ॥ व विघ्नों के नाश के लिये दक्षिण द्वार पै टिके हुए गण को स्थापित किया और अन्य देवताओं को स्थापित किया ॥ ४१ ॥ और उन वीर श्रीरामजी ने सात भूमियोंवाले मन्दिरों को बनवाया जो कुछ मंगलरूप उत्तम कार्य को मनुष्य करता है॥४२॥

पालकाः ॥ ३७ ॥ माण्डलीकास्तु ते ज्ञेया राजानो मण्डलेश्वराः ॥ द्विजशुश्रूषणे दत्ता रामेण वणिजां वराः ॥ ३८ ॥ चामरद्वितयं रामो दत्तवान्खड्गमेव च ॥ कुलस्य स्वामिनं सूर्यं प्रतिष्ठाविधिपूर्वकम् ॥ ३९ ॥ ब्रह्माणं स्थापयामास चतुर्वेदसमन्वितम् ॥ श्रीमातरं महाशक्तिं शून्यस्वामिहरिं तथा ॥ ४० ॥ विघ्नापध्वंसनार्थाय दक्षिणद्वारसंस्थितम् ॥ गणं संस्थापयामास तथान्याश्चैव देवताः ॥ ४१ ॥ कारितास्तेन वीरेण प्रासादाः सप्तभूमिकाः ॥ यत्किञ्चित्कुरुते कार्यं शुभं माङ्गल्यरूपकम् ॥ ४२ ॥ पुत्रे जाते जातके वान्नाशने मुण्डनेऽपि वा ॥ लक्षहोमे कोटिहोमे तथा यज्ञक्रियासु च ॥ ४३ ॥ वास्तुपूजाग्रहशान्त्योः प्राप्ते चैव महोत्सवे ॥ यत्किञ्चित्कुरुते दानं द्रव्यं वा धान्यमुत्तमम् ॥ ४४ ॥ वस्त्रं वा धेनवो नाथ हेम रूप्यं तथैव च ॥ विप्राणामथशूद्राणां दीनानाथान्धकेषु च ॥ ४५ ॥ प्रथमं वकुलार्कस्य श्रीमातुश्चैव मानवः ॥ भागं दद्याच्च निर्विघ्नकार्यसिद्ध्यै निरन्तरम् ॥ ४६ ॥ वचनं मे समुल्लंध्य कुरुते योऽन्यथा नरः ॥

और पुत्र उत्पन्न होने पर जातक कर्म या अन्नप्राशन व मुंडन में भी और यज्ञ कार्यों में लक्ष होम व कोटि होम में ॥ ४३ ॥ और वास्तुपूजन व ग्रह की शांति में महोत्सव प्राप्त होने पर मनुष्य जिस किसी दान व द्रव्य और उत्तम धान्य को देता है ॥ ४४ ॥ व हे नाथ ! वस्त्र व गऊ और सुवर्ण व चांदी को जो ब्राह्मणों व शूद्रों तथा दीन, अनाथ और अन्धों के लिये देवै ॥ ४५ ॥ वह मनुष्य सदैव निर्विघ्न कार्य की सिद्धि के लिये पहले वकुलार्कजी को व श्रीमाताजी को भाग देवै ॥ ४६ ॥ व जो

मनुष्य मेरे वचन को उल्लंघन करके अन्यथा करता है उसके उस कर्म का विघ्न होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४७ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर श्रीरामजी ने प्रसन्न चित्त से देवताओं की बावली व किला की सामग्रियों से युक्त उत्तम प्राकारों (शहर दिवाली) को बनाया. और बड़े लंबे चौड़े गाव के भीतरी मार्गों को व कुंड और तडाग व छोटे तालाबों को बनाया ॥ ४८ । ४९ ॥ और धर्म बावली व देवताओं से रचित अन्य कूपों को बनाया सुन्दर धर्मारण्य में इस सब को विस्तार कर ॥ ५० ॥ फिर श्रीरामजी ने बड़ी श्रद्धा से मुख्य त्रैविद्य ब्राह्मणों के लिये दिया ताँबे के पट्ट (तख्ते) में स्थित श्रीरामजी की आज्ञा को जो लोप करता है ॥ ५१ ॥ उसके पहले

तस्यतत्कर्मणो विघ्नं भविष्यति न संशयः ॥ ४७ ॥ एवमुक्त्वा ततो रामः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ देवानामथ वापीश्च प्राकारांस्तु सुशोभनान् ॥ ४८ ॥ दुर्गोपकरणैर्युक्तान्प्रतोलीश्च सुविस्तृताः ॥ निर्ममे चैव कुण्डानि सरांसि सरसीस्त था ॥ ४९ ॥ धर्मवापीश्च कूपांश्च तथान्यान्देवनिर्मितान् ॥ एतत्सर्वं च विस्तार्य धर्मारण्ये मनोरमे ॥ ५० ॥ ददौ त्रैविद्यमुख्येभ्यः श्रद्धया परया पुनः ॥ ताम्रपट्टस्थितं रामशासनं लोपयेत्तु यः ॥ ५१ ॥ पूर्वजास्तस्य नरके पतन्त्यग्रे न सन्ततिः ॥ वायुपुत्रं समाहूय ततो रामोऽब्रवीद्वचः ॥ ५२ ॥ वायुपुत्र महावीर तव पूजा भविष्यति ॥ अस्य क्षेत्रस्य रक्षायै त्वमत्र स्थितिमाचर ॥ ५३ ॥ आञ्जनेयस्तु तद्वाक्यं प्रणम्य शिरसा दधौ ॥ जीर्णोद्धारं तदा कृ त्वा कृतकृत्यो बभूव ह ॥ ५४ ॥ श्रीमातरं तदाभ्यर्च्य प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ श्रीमातरं नमस्कृत्य तीर्थान्यन्यानि राघवः ॥ ५५ ॥ तेऽपि देवाः स्वकं स्थानं ययुर्ब्रह्मपुरोगमाः ॥ ५६ ॥ दत्त्वाशिर्षं तु रामाय वाञ्छितं ते भविष्यति ॥

पैदा हुए पितर नरक में पडते हैं और आगे सन्तान नहीं होती है पवनपुत्र हनुमान्जी को बुलाकर तदनन्तर श्रीरामजी ने यह वचन कहा ॥ ५२ ॥ कि हे महावीर, पवनपुत्र ! तुम्हारी यहा पूजा होगी और इस क्षेत्र की रक्षा के लिये तुम यहां स्थिति को प्राप्त होवो ॥ ५३ ॥ अंजनीकुमार हनुमान्जी ने प्रणामकर उस वचन को मस्तक से धारण किया और उस समय जीर्णोद्धार करके श्रीरामजी कृतार्थ हुए ॥५४॥ व उस समय श्रीरघुनाथजी प्रसन्नचित्त से श्रीमाता को प्रणामकर व पूजकर अन्य तीर्थों को चलेगये ॥ ५५ ॥ और ब्रह्मा आदिक वे देवता भी तुम्हारा मनोरथ होगा श्रीरामजी के लिये इस आशीर्वाद को देकर अपने स्थान को चले गये हे राम ! तुम

ने ब्राह्मणों का सुन्दर स्थापनादिक कर्म किया ॥ ५६ । ५७ ॥ और तुम पुण्यवान् ने हमलोगों का भी स्नेह किया इस प्रकार स्तुति करते हुए देवता अपने स्थानों को चले गये ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां श्रीरामचन्द्रस्यपुरप्रत्यागमनवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥

दो॰ । धर्मारण्य द्विजन को दिय शासन जिमि राम । चौंतिसवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ व्यासजी बोले कि हे धर्मज्ञ ! पुरातन समय इस प्रकार श्रीरामजी ने ब्राह्मणों के हित के लिये श्रीमाता के वचन से जीर्णोद्धार किया है ॥ १ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! त्रेता में श्रीरामजी ने सत्यमन्दिर में कैसा शासन (शिक्षा)

रम्यं कृतं त्वया राम विप्राणां स्थापनादिकम् ॥ ५७ ॥ अस्माकमपि वात्सल्यं कृतं पुण्यवता त्वया ॥ इति स्तुवन्तस्ते देवाः स्वानि स्थानानि भेजिरे ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येश्रीरामचन्द्रस्यपुरप्रत्यागमनवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ एवं रामेण धर्मज्ञ जीर्णोद्धारः पुरा कृतः ॥ द्विजानां च हितार्थाय श्रीमातुर्वचनेन च ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कीदृशं शासनं ब्रह्मन् रामेण लिखितं पुरा ॥ कथयस्व प्रसादेन त्रेतायां सत्यमन्दिरे ॥ २ ॥ व्यास उवाच ॥ धर्मारण्ये वरे दिव्ये बकुलार्के स्वधिष्ठिते ॥ शून्यस्वामिनि विप्रेन्द्र स्थिते नारायणे प्रभौ ॥ ३ ॥ रक्षणाधिपतौ देवे सर्वज्ञे गणनायके ॥ भवसागरमग्नानां तारिणी यत्र योगिनी ॥ ४ ॥ शासनं तत्र रामस्य राघवस्य च नामतः ॥ शृणु ताम्राश्रयं तत्र लिखितं धर्मशास्त्रतः ॥ ५ ॥ महाश्चर्यकरं तच्च ह्यनेकयुगसंस्थितम् ॥ सर्वो धातुः क्षयं

लिखा है उसको प्रसन्नता से कहिये ॥ २ ॥ व्यासजी बोले कि हे द्विजेन्द्र ! उत्तम व दिव्य धर्मारण्य में बकुलार्कजी के स्थित होनेपर व शून्यस्वामी नारायण प्रभु के स्थित होने पर ॥ ३ ॥ और सर्वज्ञ गणेशदेवजी के रक्षा के स्वामी होने पर संसाररूपी समुद्र में मग्न मनुष्यों के तारने के लिये जहां योगिनीजी हैं ॥ ४ ॥ वहां रा.वजी के नाम से श्रीरामजी के शासन को सुनिये कि धर्मशास्त्र से ताम्रपत्र के आश्रय जो शासन लिखा गया है ॥ ५ ॥ अनेकों युगों से स्थित वह बड़ा भारी आश्चर्य

करनेवाला है सब धातु क्षय होती है और सुवर्ण नाश को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ व हे पुत्र ! द्विजशासन प्रत्यक्ष अक्षय देख पड़ता है और वहां ताँबे के नाश न होने-वाला कारण विद्यमान है ॥ ७ ॥ हे भारत ! जिस लिये विष्णुही सब वेदोक्त कहे जाते हैं व पुराणों में और वेदों तथा धर्मशास्त्रों में ॥ ८ ॥ अनेक प्रकार के भावों में आश्रित विष्णुजी सब कहीं गाये जाते हैं और अनेक प्रकार के देशों व धर्मों में अनेक भांति के धर्मों को सेवनेवाले मनुष्यों से ॥ ९ ॥ अनेक प्रकार के भेदों से सर्वत्र जो विष्णुही ध्यान किये जाते हैं वे ही साक्षात् पुराण पुरुषोत्तम विष्णुजी अवतार करते भये हैं ॥ १० ॥ हे पुत्र ! उन्हों ने देवताओं के वैरियों के नाश के लिये व

याति सुवर्णं क्षयमेति च ॥ ६ ॥ प्रत्यक्षं दृश्यते पुत्र द्विजशासनमक्षयम् ॥ अविनाशो हि ताम्रस्य कारणं तत्र विद्यते ॥ ७ ॥ वेदोक्तं सकलं यस्माद्विष्णुरेव हि कथ्यते ॥ पुराणेषु च वेदेषु धर्मशास्त्रेषु भारत ॥ ८ ॥ सर्वत्र गीयते विष्णुर्नानाभावसमाश्रयः ॥ नानादेशेषु धर्मेषु नानाधर्मनिषेविभिः ॥ ९ ॥ नानाभेदैस्तु सर्वत्र विष्णुरेवेति चिन्त्यते ॥ अवतीर्णः स वै साक्षात्पुराणपुरुषोत्तमः ॥ १० ॥ देववैरिविनाशाय धर्मसंरक्षणाय च ॥ तेनेदं शासनं दत्तमविनाशात्मकं सुत ॥ ११ ॥ यस्य प्रतापाद्दृषदस्तारिता जलमध्यतः ॥ वानरैर्वेष्टिता लङ्का हेलया राक्षसा हताः ॥ १२ ॥ मुनिपुत्रं मृतं रामो यमलोकादुपानयत् ॥ दुन्दुभिर्निहतो येन कबन्धोऽभिहतस्तथा ॥ १३ ॥ निहता ताडका चैव सप्ततालाविभेदिताः ॥ खरश्च दूषणश्चैव त्रिशिराश्च महासुरः ॥ १४ ॥ चतुर्दशसहस्राणि जवेन निहता रणे ॥ तेनेदं शासनं दत्तमक्षयं न कथं भवेत् ॥ १५ ॥ स्ववंशवर्णनं तत्र लिखित्वा स्वयमेव तु ॥ देशकालादिकं सर्वं लिलेख विधिपूर्वं

धर्म की रक्षा के लिये इस अविनाशी शासन को दिया है ॥ ११ ॥ जिन के प्रताप से पत्थर जल के मध्य में ऊपर प्राप्त हुए और वानरों से लंका घेरी गई व हेला से राक्षस मारे गये ॥ १२ ॥ और मरे हुए मुनिपुत्र को श्रीरामजी यमलोक से ले आये और जिन्होंने कबंध को मारा व दुन्दुभि को नाश किया ॥ १३ ॥ और जिन्हों ने ताड़का राक्षसी को मारा व सात ताल वृक्षों को काट डाला और खर, दूषण व त्रिशिरा महादैत्य को जिन्हों ने मारा ॥ १४ ॥ और युद्ध में चौदह हज़ार राक्षस वेग से मारेगये उन्हों ने यह अक्षय शासन दिया है वह कैसे न होवै ॥ १५ ॥ उसमें आपही श्रीरामजी ने अपने वंश का वर्णन लिखकर विधिपूर्वक सब देश काला॰

दिक लिखा ॥ १६ ॥ और वहां अपनी छाप से चिह्नित उस लेख को त्रैविद्य ब्राह्मणों के लिये चवालीस वर्ष के दशरथकुमार श्रीरामजी ने दिया ॥ १७ ॥ व हे भारत ! उसी समय में बड़ा भारी आश्चर्य दिया गया कि वहां सुवर्ण के समान व चांदी के समान ॥ १८ ॥ देवता, ऋषि व पितरों की तृप्तिदायक जल को श्रीरामजी ने तीर्थ में प्राप्त किया और अपने वंश के स्वामी श्रीरामजी के आगे सूर्य ने उसको किया ॥ १९ ॥ उस बड़े भारी आश्चर्य को देखकर पवित्र श्रीरामजी ने विष्णुजी को पूजकर विद्यामयी त्रयी को देकर ब्रह्म में मन को लगाया व रामजी के विचित्र लेखों से धर्म की आज्ञा लिखी गई ॥ २० ॥ जिसको देखकर जिस लिये सब

कम् ॥ १६ ॥ स्वमुद्राचिह्नितं तत्र त्रैविद्येभ्यस्तथा ददौ ॥ चतुश्चत्वारिंशवर्षो रामो दशरथात्मजः ॥ १७ ॥ तस्मिन्काले महाश्चर्यं संदत्तं किल भारत ॥ तत्र स्वर्णोपमं चापि रौप्योपममथापि च ॥ १८ ॥ उवाह सलिलं तीर्थे देवर्षिपितृतृप्तिदम् ॥ स्ववंशनायकस्याग्रे सूर्येण कृतमेव तत् ॥ १९ ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं रामो विष्णुं प्रपूज्य च ॥ त्रयीं विद्यामयीं दत्त्वा ब्रह्मार्पणमनाः शुचिः ॥ रामलेखविचित्रैस्तु लिखितं धर्मशासनम् ॥ २० ॥ यद्दृष्ट्वाथ द्विजाः सर्वे संसारभयबन्धनम् ॥ कुर्वते नैव यस्माच्च तस्मान्निखिलरक्षकम् ॥ २१ ॥ ये पापिष्ठा दुराचारा मित्रद्रोहरताश्च ये ॥ तेषां प्रबोधनार्थाय प्रसिद्धिमकरोत्पुरा ॥ २२ ॥ रामलेखविचित्रैस्तु विचित्रे ताम्रपट्टके ॥ वाक्यानीमानि श्रूयन्ते शासने किल नारद ॥ २३ ॥ आस्फोटयन्ति पितरः कथयन्ति पितामहाः ॥ भूमिदोऽस्मत्कुले जातः सोऽस्मान्सन्तारयिष्यति ॥ २४ ॥ बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः पृथिवी त्वियम् ॥ यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥ २५ ॥ षष्टिवर्ष

ब्राह्मण संसार के भय के बंधन को नहीं करते हैं उसी कारण वह सबों का रक्षक है ॥ २१ ॥ और जो पापी व दुराचारी और जो मित्र के द्रोह में परायण हैं उन के ज्ञान के लिये प्राचीन समय में उन्हों ने प्रसिद्धि किया है ॥ २२ ॥ हे नारद ! रामजी के विचित्र लेखों से विचित्र ताम्रपट्ट में शिक्षा में ये वचन सुन पड़ते हैं ॥ २३ ॥ कि पितर गरजते हैं व पितामह यह कहते हैं कि जो भूमिदायक हमारे वंश में पैदा होगा वह हमलोगों को तारैगा ॥ २४ ॥ बहुत से राजाओं ने द्रव्य को धारनेवाली इस पृथ्वी को भोग किया है जब जिस जिस की पृथ्वी होती है तब उस उस को फल होता है ॥ २५ ॥ और पृथ्वी को देनेवाला मनुष्य साठ हज़ार वर्ष तक

स्वर्ग में बसता है और मना करनेवाला व उसको अनुमोदन करनेवाला उन्हीं साठ हजार वर्षों तक नरक को जाता है ॥ २६ ॥ और मुद्गरों से मार कर संगसियों से क्लेशित व फँसरियों से बांधा जाता हुआ वह बड़े भारी शब्द से रोता है ॥ २७ ॥ और दंडों से मस्तक में मारा हुआ व छुरी से काटा जाता हुआ वह अग्नि को लिपट कर बड़े शब्द से रोता है ॥ २८ ॥ और ब्राह्मण की जीविका को हरनेवाले उन पुरुषों को ऐसे बड़े दुष्ट महागण यमदूतलोग पीडित करते हैं ॥ २९ ॥ तदनन्तर वह पशु या पक्षी की योनि को पाता है या राक्षसी व कुत्ते की योनि को प्राप्त होता है अथवा बड़े प्राणियों को भी भय-करनेवाली सर्प, सियार व पिशाच की योनि

सहस्राणि स्वर्गे वसति भूमिदः ॥ आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरकं व्रजेत् ॥ २६ ॥ सन्दंशैस्तुद्यमानस्तु मुद्गरैर्विनिहत्य च ॥ पाशैः सुबध्यमानस्तु रोरवीति महास्वरम् ॥ २७ ॥ ताड्यमानः शिरे दण्डैः समालिङ्ग्य विभावसुम् ॥ छिद्यमानः क्षुरिकया रोरवीति महास्वनम् ॥ २८ ॥ यमदूतैर्महाघोरैर्ब्रह्मवृत्तिविलोपकाः ॥ एवंविधैर्महादुष्टैः पीड्यन्ते ते महागणैः ॥ २९ ॥ ततस्तिर्यक्त्वमाप्नोति योनिं वा राक्षसीं शुनीम् ॥ व्यालीं शृगालीं पैशाचीं महाभूतभयङ्करीम् ॥ ३० ॥ भूमेरङ्गुलहर्त्ता हि स कथं पापमाचरेत् ॥ भूमेरङ्गुलदाता च स कथं पुण्यमाचरेत् ॥ ३१ ॥ अश्वमेधसहस्राणां राजसूयशतस्य च ॥ कन्याशतप्रदानस्य फलं प्राप्नोति भूमिदः ॥ ३२ ॥ आयुर्यशः सुखं प्रज्ञा धर्मो धान्यं धनं जयः ॥ सन्तानं वर्द्धते नित्यं भूमिदः सुखमश्नुते ॥ ३३ ॥ भूमेरङ्गुलमेकं तु ये हरन्ति खला नराः ॥ विन्ध्याटवीष्वतोयासु शुष्ककोटरवासिनः ॥ कृष्णसर्पाः प्रजायन्ते दत्तदायापहारकाः ॥ ३४ ॥ तडागानां सहस्रेण

को प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ और जो अंगुल भर पृथ्वी को हरता है वह क्यों पाप करता है व अंगुल भर पृथ्वी को जो देता है वह क्यों पुण्य करता है ॥ ३१ ॥ क्योंकि पृथ्वी को देनेवाला मनुष्य हज़ार अश्वमेध व सौ राजसूय और सौ कन्यादान के फल को पाता है ॥ ३२ ॥ और आयुर्बल, यश, सुख, बुद्धि, धर्म, धान्य, धन, जय व सन्तान सदैव बढ़ती हैं और पृथ्वी को देनेवाला मनुष्य सुख को पाता है ॥ ३३ ॥ और जो दुष्ट मनुष्य पृथ्वी का एक अंगुल हरते हैं वे बिन जलवाले विन्ध्याचल के वनों में व सूखे वृक्षों के खोड़रों में बसते हैं और दिये हुए धन को हरनेवाले मनुष्य काले साप होते हैं ॥ ३४ ॥ और हज़ार तड़ाग व सौ अश्वमेध

तथा करोड़ गौवों के देने से पृथ्वी को हरनेवाला मनुष्य पवित्र होता है॥ ३५॥ इस संसार में उदारता से जो धर्म, अर्थ व यश को करनेवाले धन दान दिये गये फिर ब्राह्मण को दिये हुए उनको कौन सज्जन पुरुष ले लेता है ॥ ३६ ॥ सब संसार के सुखवाले और तिनुका के अणु प्रमाण भर छोटे सारांशवाले इस मेघों के समान चलायमान जीवलोक में जो दुष्ट आशावाला पुरुष ब्राह्मणों की जीविका को हरता है वह कठिन नरककुंड के भँवर में गिरने का उत्कंठित होताहै॥ ३७॥ जो राजालोग इस पृथ्वी को पालन करेंगे वे सब पृथ्वी को भोगकर चलेजावेंगे परन्तु किसी के साथ भी पृथ्वी न गई है न जाती है न जावेगी और जो कुछ पृथ्वी में है वह सब

अश्वमेधशतेन वा ॥ गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्त्ता विशुध्यति ॥ ३५ ॥ यानीह दत्तानि पुनर्धनानि दानानि धर्मार्थयशस्कराणि ॥ औदार्यतो विप्रनिवेदितानि को नाम साधुः पुनराददीत ॥ ३६ ॥ इह हि जलदलीलाचञ्चले जीवलोके तृणलवलघुसारे सर्वसंसारसौख्ये ॥ अपहरति दुराशः शासनं ब्राह्मणानां नरकगहनगर्त्तावर्तपातोत्सुकोयः ॥ ३७ ॥ ये पास्यन्ति महीभुजः क्षितिमिमां यास्यन्ति भुक्त्वाखिलां नो याता न तु याति यास्यति न वा केनापि सार्द्धं धरा ॥ यत्किञ्चिद्भुवि तद्विनाशि सकलं कीर्तिः परं स्थायिनी त्वेवं वै वसुधापि यैरुपकृता लोप्या न सत्कीर्तयः ॥ ३८ ॥ एकैव भगिनी लोके सर्वेषामेव भूभुजाम् ॥ न भोज्या न करग्राह्या विप्रदत्ता वसुंधरा ॥ ३९ ॥ दत्त्वा भूमिं भाविनः पार्थिवेशान्भूयो भूयो याचते रामचन्द्रः॥सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नृपाणां स्वे स्वे काले पालनीयो भवद्भिः॥४०॥ अस्मिन्वंशे क्षितौ कोपि राजा यदि भविष्यति ॥ तस्याहं करलग्नोस्मि मद्दत्तं यदि पाल्यते ॥ ४१ ॥ लिखित्वा

नाशवान् है परन्तु यश स्थित होनेवाला है ऐसेही जिसने पृथ्वी को दिया है उसके उत्तम यश नाश नहीं होते हैं ॥ ३८ ॥ संसार में सब राजाओं की एकही बहन है याने ब्राह्मण को दीहुई पृथ्वी न भोग करने योग्य है और न हाथ पकड़ने के योग्य है ॥ ३९ ॥ पृथ्वी को देकर होनेवाले राजाओं से रामचन्द्रजी बार २ प्रार्थना करते हैं कि राजाओं का यह साधारण धर्मसेतु आपलोगों से अपने अपने समय में पालन करने योग्य है ॥ ४० ॥ यदि मेरा दिया हुआ पालन किया जाता है तो पृथ्वी में यदि इस वंश में कोई भी राजा होगा तो उसके हाथ में मैं प्राप्त हूंगा ॥ ४१ ॥ इस शासन (शिक्षा) को लिखकर बुद्धिमान् श्रीमान्जी ने वसिष्ठजी के सामने

चतुर्वेदी द्विजोत्तमों को पूजकर दे दिया ॥ ४२ ॥ और उन ब्राह्मणों ने सुवर्ण के अक्षरों से संयुत व धर्मभूषण उस धर्मसंयुत उत्तम ताँबे के पट्ट को लेकर ॥ ४३ ॥ पूजन के लिये भक्ति की इच्छावाले उन्हों ने उसकी रक्षा किया और दिव्यचंदन व सुगंधित पुष्प से ॥ ४४ ॥ और सोने के पुष्प व चादी के पुष्प से वे ब्राह्मण प्रतिदिन उत्तम पूजन करनेलगे ॥ ४५ ॥ व हे राजन् ! निर्मल घी से संयुत व सात बत्तियों से युक्त दीपक को उसके आगे ब्राह्मणलोग अर्घ्य करते हैं ॥ ४६ ॥ व भक्तिपूर्वक ब्राह्मण लोग नित्य नैवेद्य करते हैं और राम, राम व राम ऐसा मंत्र कहते हैं ॥ ४७ ॥ और भोजन, शयन, जलपान, गमन व आसन और सुख या दुःख में जो राम-

शासनं रामश्चातुर्वेद्यद्विजोत्तमान् ॥ सम्पूज्य प्रददौ धीमान्वसिष्ठस्य च सन्निधौ ॥ ४२ ॥ ते वाडवा गृहीत्वा तं पट्टं रामाज्ञया शुभम् ॥ ताम्रं हैमाक्षरयुतं धर्म्यं धर्मविभूषणम् ॥ ४३ ॥ पूजार्थं भक्तिकामार्थास्तद्रक्षणमकुर्वत ॥ चन्दनेन च दिव्येन पुष्पेण च सुगन्धिना ॥ ४४ ॥ तथा सुवर्णपुष्पेण रूप्यपुष्पेण वा पुनः ॥ अहन्यहनि पूजां ते कुर्वते वाडवाः शुभाम् ॥ ४५ ॥ तदग्रे दीपकं चैव घृतेन विमलेन हि ॥ सप्तवर्तियुतं राजन्नर्घ्यं प्रकुर्वते द्विजाः ॥४६॥ नैवेद्यं कुर्वते नित्यं भक्तिपूर्वं द्विजोत्तमाः ॥ रामरामेति रामेति मन्त्रमप्युच्चरन्ति हि ॥ ४७ ॥ अशने शयने पाने गमने चोपवेशने ॥ सुखे वाप्यथवा दुःखे राममन्त्रं समुच्चरेत् ॥ ४८ ॥ न तस्य दुःखदौर्भाग्यं नाधिव्याधिभयं भवेत् ॥ आयुः श्रियं बलं तस्य वर्द्धयन्ति दिने दिने ॥ ४९ ॥ रामेति नाम्ना मुच्येत पापाद्वै दारुणादपि ॥ नरकं नहि गच्छेत गतिं प्राप्नोति शाश्वतीम् ॥ ५० ॥ व्यास उवाच ॥ इति कृत्वा ततो रामः कृतकृत्यममन्यत ॥ प्रदक्षिणीकृत्य तदा प्रणम्य च द्विजान्बहून् ॥ ५१ ॥ दत्त्वा दानं भूरितरं गवाश्वमहिषीरथम् ॥ ततः सर्वान्निजांस्तांश्च वाक्यमे

मन्त्र को कहता है ॥ ४८ ॥ उसको दुःख, दुर्भाग्यता व आधि, व्याधि का डर नहीं होता है व प्रतिदिन उसका आयुर्बल, लक्ष्मी व पराक्रम बढ़ता है ॥ ४९ ॥ और राम ऐसे नाम से मनुष्य कठिन पाप से भी छूटजाता है और नरक को नहीं जाता है व अविनाशिनी गति को पाता है ॥ ५० ॥ ऐसा करके तदनन्तर श्रीरामजी ने कृतार्थ माना और उस समय बहुत से ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा कर व प्रणाम करके ॥ ५१ ॥ गऊ, घोड़े, भैंसी व रथ बहुत सा दान देकर तदनन्तर श्रीरामजी ने

उन सब अगमे ब्राह्मणों मे यह वचन कहा॥ ५२॥ कि जब तक चन्द्रमा व सूर्य रहैं तबतक तुम सबों को यहां टिकना चाहिये और जबतक पृथ्वी में सुमेरु व सातों समुद्र रहैं ॥ ५३ ॥ तबतक निस्सन्देह आपलोगों को यहीं टिकना चाहिये व हे ब्राह्मणो ! पृथ्वी में जब राजालोग मेरी शिक्षा को न मानैं ॥ ५४ ॥ अथवा गर्व व माया से मोहित वे वणिज् व शूद्रलोग मेरी आज्ञा को न करैं ॥ ५५ ॥ तब हे ब्राह्मणो ! तुमलोग पवनपुत्र हनुमान्जी को स्मरण कीजियेगा क्योंकि स्मरण किये हुए हनुमान्जी आकर मेरे वचन से यकायक उनको भस्म करैंगे यह निस्सन्देह सत्य है और जो राजा मेरी इस सुन्दरी शिक्षा को पालैगा ॥ ५६ । ५७ ॥ पवनपुत्र

तदुवाचह ॥५२॥ अत्रैव स्थीयतां सर्वैर्यावचन्द्रदिवाकरौ॥ यावन्मेरुर्महीपृष्ठे सागराः सप्त एव च ॥५३॥ तावदत्रैव स्थातव्यं भवद्भिर्हि न संशयः॥ यदाहि शासनं विप्रा न मन्यन्ते नृपा भुवि ॥५४॥ अथवा वणिजःशूद्रा मदमायाविमोहिताः॥ मदाज्ञां न प्रकुर्वन्ति मन्यन्ते वा न ते जनाः ॥५५॥ तदा वै वायुपुत्रस्य स्मरणं क्रियतां द्विजाः ॥स्मृतमात्रो हनूमान्वै समागत्य करिष्यति॥५६॥सहसा भस्म तान्सत्यं वचनान्मे न संशयः॥ य इदं शासनं रम्यं पालयिष्यति भूपतिः॥५७॥ वायुपुत्रः सदा तस्य सौख्यमृद्धिं प्रदास्यति ॥ ददाति पुत्रान्पौत्रांश्च साध्वीं पत्नीं यशो जयम् ॥५८॥ इत्येवं कथयित्वा च हनुमन्तं प्रबोध्य च ॥ निवर्तितो रामदेवः ससैन्यः सपरिच्छदः ॥५९॥ वादित्राणां स्वनैर्विष्वक्सूच्यमानशुभागमः ॥ श्वेतातपत्रयुक्तोऽसौ चामरैर्वीजितो नरैः ॥ अयोध्यां नगरीं प्राप्य चिरं राज्यं चकार ह ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येब्रह्मनारदसंवादेश्रीरामेणब्राह्मणेभ्यः शासनपट्टप्रदानवर्णनंनामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥

हनुमान्जी सदैव उसको सुख व ऐश्वर्य देवैंगे और पुत्रों व पौत्रों को तथा पतिव्रता स्त्री और यश व जीत को देवैंगे ॥ ५८ ॥ यह कहकर वे हनुमान्जी को समझाकर सेना समेत व सामान समेत श्रीरामजी लौट आये ॥ ५९ ॥ सब ओर बाजनों के शब्दों से सूचित उत्तम आगमनवाले ये सफ़ेद छत्र से संयुत व मनुष्यों से वीजित श्रीरामजी ने अयोध्या नगरी को प्राप्त होकर बहुत दिनों तक राज्य किया ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां ब्रह्मनारदसंवादेश्रीरामेणब्राह्मणेभ्यः शासनपट्टप्रदानवर्णनंनामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । धर्मारण्यक्षेत्र में कियो यज्ञ श्रीराम । पैंतिसवें अध्याय में सोइ चरित्त अभिराम ॥ नारदजी बोले कि हे सृष्टिसंहारकारक, देवदेवेश, भगवन् ! गुणों से रहित व गुणों से युक्त तथा मुक्तियों के उत्तम साधनरूप ॥ १ ॥ रघुनाथजी विधिपूर्वक सत्यमंदिर में द्विजोत्तमों को थापकर फिर जब अयोध्यापुरी में गये तब उन्हों ने क्या किया है ॥ २ ॥ और वहां अपने स्थान में ब्राह्मणों ने किन कर्मों को किया है ब्रह्माजी बोले कि इष्टापूर्तकर्मों में लगे हुए वे शांत ब्राह्मण दान से विमुख हुए ॥ ३ ॥ और द्विजोत्तम वसिष्ठ पुरोहित ने इस वन की राज्य किया और श्रीरामजी के आगे उत्तम तीर्थ का माहात्म्य कहा ॥ ४ ॥ और प्रयाग का माहात्म्य व त्रिवेणी का उत्तम

नारद उवाच ॥ भगवन्देवदेवेश सृष्टिसंहारकारक ॥ गुणातीतो गुणैर्युक्तो मुक्तीनां साधनं परम् ॥ १ ॥ संस्थाप्य वेदभवनं विधिवद् द्विजसत्तमान् ॥ किं चक्रे रघुनाथस्तु भूयोऽयोध्यां गतस्तदा ॥ २ ॥ स्वस्थाने ब्राह्मणास्तत्र कानि कर्माणि चक्रिरे ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इष्टापूर्तरताः शान्ताः प्रतिग्रहपराङ्मुखाः ॥ ३ ॥ राज्यं चक्रुर्वनस्यास्य पुरोधा द्विजसत्तमः ॥ उवाच रामपुरतस्तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४ ॥ प्रयागस्य च माहात्म्यं त्रिवेणीफलमुत्तमम् ॥ प्रयागतीर्थमहिमा शुक्लतीर्थस्य चैव हि ॥ ५ ॥ सिद्धक्षेत्रस्य काश्याश्च गङ्गाया महिमा तथा ॥ वसिष्ठः कथयामास तीर्थान्यन्यानि नारद ॥ ६ ॥ धर्मारण्ये सुवर्णाया हरिक्षेत्रस्य तस्य च ॥ स्नानदानादिकं सर्वं वाराणस्या यवाधिकम् ॥ ७ ॥ एतच्छ्रुत्वा रामदेवः स चमत्कृतमानसः ॥ धर्मारण्ये पुनर्यात्रां कर्तुकामः समभ्यगात् ॥ ८ ॥ सीतया सह धर्मज्ञो गुरुसैन्यपुरःसरः ॥ लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा भरतेन सहायवान् ॥ ९ ॥ शत्रुघ्नेन परिवृतो गतो मोहेरके पुरे ॥ तत्र गत्वा

फल कहा और प्रयागतीर्थ की महिमा व शुक्लतीर्थ की महिमा को उन्हों ने कहा ॥ ५ ॥ व हे नारद ! सिद्ध क्षेत्र की महिमा व काशी और गंगा की महिमा और अन्य तीर्थों को वसिष्ठजी ने कहा ॥ ६ ॥ और धर्मारण्य में सुवर्णा नदी व इस हरिक्षेत्र के सब स्नान दानादिक को कहा और काशी से यव भर अधिक धर्मारण्य को कहा ॥ ७ ॥ इस वचन को सुनकर चमत्कृत मनवाले वे श्रीरामजी फिर धर्मारण्य में तीर्थयात्रा करने के लिये गये ॥ ८ ॥ और सीता समेत बड़ी भारी सेना अग्रगामीवाले धर्मज्ञ व भरत सहायवाले श्रीरामजी लक्ष्मण भाई समेत ॥ ९ ॥ शत्रुघ्न से घिरकर मोहेरक पुर में गये और वहां जाकर ये उदार मनवाले श्रीरामजी

वसिष्ठजी से पूछने लगे ॥ १० ॥ श्रीरामजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! धर्मारण्य महाक्षेत्र में क्या दान, नियम, स्नान व उत्तम तप करना चाहिये ॥ ११ ॥ और ध्यान, यज्ञ, होम व उत्तम जप, दान, नियम, स्नान व कौन उत्तम तप करना चाहिये ॥ १२ ॥ हे द्विजोत्तम ! इस तीर्थ में जिसके करने से मनुष्य ब्रह्महत्यादिक पापों से छूट जाता है उसको मुझ से कहिये ॥ १३ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे महाभाग ! तुम प्रतिदिन कोटि गुँने उत्तम यज्ञ को सौ बरस तक कीजिये ॥ १४ ॥ गुरु से उसको सुनकर उन श्रीरामजी ने यज्ञ का प्रारंभ किया और उस समय में श्रीरामजी से सीताजी ने हर्ष से कहा ॥ १५ ॥ कि हे स्वामिन् ! तुम ने पहले

वसिष्ठं तु पृच्छतेऽसौ महामनाः ॥ १० ॥ राम उवाच ॥ धर्मारण्ये महाक्षेत्रे किं कर्त्तव्यं द्विजोत्तम ॥ दानं वा नियमो वाथ स्नानं वा तप उत्तमम् ॥११॥ ध्यानं वाथ क्रतुं वाथ होमं वा जपमुत्तमम् ॥ दानं वा नियमं वाथ स्नानं वा तप उत्तमम् ॥ १२ ॥ येन वै क्रियमाणेन तीर्थेऽस्मिन्द्विजसत्तम ॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते तद्ब्रवीहि मे ॥ १३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ यज्ञं कुरु महाभाग धर्मारण्ये त्वमुत्तमम् ॥ दिनेदिने कोटिगुणं यावद्वर्षशतं भवेत् ॥ १४ ॥ तच्छ्रुत्वा चैव गुरुतो यज्ञारम्भं चकार सः॥ तस्मिन्नवसरे सीता रामं व्यज्ञापयन्मुदा ॥ १५ ॥ स्वामिन्पूर्वं त्वया विप्रा वृता ये वेदपारगाः ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशेन निर्मिता ये पुरा द्विजाः ॥ १६ ॥ कृते त्रेतायुगे चैव धर्मारण्यनिवासिनः ॥ विप्रांस्तान्वै वृणुष्व त्वं तैरेव सार्थकोऽध्वरः ॥ १७ ॥ तच्छ्रुत्वा रामदेवेन आहूता ब्राह्मणास्तदा ॥ स्थापिताश्च यथापूर्वमस्मिन्मोहेरके पुरे ॥ १८ ॥ तैस्त्वष्टादशसंख्याकैस्त्रैविद्यैर्मोहिवाडवैः ॥ यज्ञं चकार विधिवत्तैरेवायतबुद्धिभिः ॥ १९ ॥

जिन वेदों के पारगामी ब्राह्मणों को वरण किया था और जो ब्राह्मण पुरातन समय ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से बनाये गये हैं ॥ १६ ॥ सतयुग व त्रेतायुग में धर्मारण्य में बसनेवाले उन ब्राह्मणों को तुम वरण करो क्योंकि उन्हीं से यज्ञ सार्थक होगा ॥ १७ ॥ उसको सुनकर श्रीरामदेवजी ने उस समय ब्राह्मणों को बुलाया और इस मोहेरक पुर में पहले की नाईं स्थापित किया ॥ १८ ॥ और विशाल बुद्धिवाले उन अठारह संख्यक त्रैविद्य मोहेरकपुर निवासी ब्राह्मणों से उन्होंने यज्ञ किया ॥ १९ ॥

कुशिक, कौशिक, वत्स, उपमन्यु, काश्यप, कृष्णात्रेय, भरद्वाज, धारिण व श्रेष्ठ शौनकजी ॥ २० ॥ और मांडव्य, भार्गव, पैंग्य, वात्स्य, लौगाक्ष, गांगायन, गांगेय, शुनक व शौनकजी ने यज्ञ कराया ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि इन ब्राह्मणों से राजा श्रीरामजी ने विधिपूर्वक यज्ञ को समाप्तकर ब्राह्मणों को भक्ति से पूजकर अवभृथ (यज्ञान्त स्नान) किया ॥ २२ ॥ और यज्ञ के अन्तमें बहुतही नम्र सीताजी ने श्रीरामजी से विनय किया कि हे सुव्रत ! इस यज्ञ की सिद्धि में दक्षिणाको दीजिये ॥ २३ ॥ और मेरे नाम से वहां शीघ्रही नगर को स्थापन कीजिये सीताजी का वचन सुनकर श्रीरामजी ने वैसाही किया ॥ २४ ॥ और सीताजी की प्रसन्नता के लिये श्रीरामराजा ने

कुशिकः कौशिको वत्स उपमन्युश्च काश्यपः ॥ कृष्णात्रेयो भरद्वाजो धारिणः शौनको वरः ॥ २० ॥ माण्डव्यो भार्गवः पैङ्ग्यो वात्स्यो लौगाक्ष एव च ॥ गाङ्गायनोथ गाङ्गेयः शुनकः शौनकस्तथा ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एभिर्विप्रैः क्रतुं रामः समाप्य विधिवन्नृपः ॥ चकारावभृथं रामो विप्रान्सम्पूज्य भक्तितः ॥ २२ ॥ यज्ञान्ते सीतया रामो विज्ञप्तः सुविनीतया ॥ अस्याध्वरस्य सम्पत्तौ दक्षिणां देहि सुव्रत ॥ २३ ॥ मन्नाम्ना च पुरं तत्र स्थाप्यतां शीघ्रमेव च ॥ सीताया वचनं श्रुत्वा तथा चक्रे नृपोत्तमः ॥ २४ ॥ तेषां च ब्राह्मणानां च स्थानमेकं सुनिर्भयम् ॥ दत्तं रामेण सीतायाः सन्तोषाय महीभृता ॥ २५ ॥ सीतापुरमिति ख्यातं नाम चक्रे तदा किल ॥ तस्याधिदेव्यौ वर्त्तेते शान्ता चैव सुमङ्गला ॥ २६ ॥ मोहेरकस्य पुरतो ग्रामद्वादशकं पुरः ॥ ददौ विप्राय विदुषे समुत्थाय प्रहर्षितः ॥ २७ ॥ तीर्थान्तरं जगामाशु काश्यपीसरितस्तटे ॥ वाडवाः केऽपि नीतास्ते रामेण सह धर्मवित् ॥ २८ ॥ धर्मालये गतः सद्यो यत्र मूलार्क

उन ब्राह्मणों को एक निडर स्थान दिया ॥ २५ ॥ व तब उन्हों ने उसका सीतापुर ऐसा प्रसिद्ध नाम किया और उस नगर की शांता व मंगला ये दो अधिदेवियां वर्तमान हैं ॥ २६ ॥ और मोहेरक नगर के आगे बारह ग्रामों को प्रसन्न होतेहुए श्रीरामजी ने उठकर विद्वान् ब्राह्मण के लिये दिया ॥ २७ ॥ व हे धर्मवित् ! श्रीरामजी काश्यपी नदी के किनारे शीघ्रही अन्य तीर्थ को गये और श्रीरामजी साथही कितेक ब्राह्मणों को भी ले आये ॥ २८ ॥ और शीघ्रही धर्मालय में गये जहां कि मूलार्क

जीका मण्डप है व हे मुने! जहां पहले धर्मराज ने बड़ाभारी तप किया है ॥ २९ ॥ तबसे लगाकर वह धर्मालय ऐसा प्रसिद्ध स्थान विख्यात हुआ और वहां दशरथ-कुमार श्रीरामजी ने सोलह महादानों को दिया ॥ ३० ॥ और उस समय सीतापुर समेत जो सत्यमन्दिर तक पचास ग्राम थे उनको रघुनाथजी ने ॥ ३१ ॥ सीताजी के वचन से व गुरु के वचन से अपने वंश की वृद्धि के लिये व सब प्रयोजनों की सिद्धि के लिये दिया ॥ ३२ ॥ वहां अठारह हज़ार ब्राह्मणों का वंश हुआ है वात्स्यायन, उपमन्यु, जातूकर्ण्य व पिंगल ॥ ३३ ॥ व भारद्वाज, वत्स, कौशिक, कुश, शाण्डिल्य, कश्यप, गौतम व छांधन ॥ ३४ ॥ कृष्णात्रेय, वत्स, वसिष्ठ, धारण,

मण्डपः ॥ पुरा धर्मेण सुमहत्कृतं यत्र तपो मुने ॥ २९ ॥ तदारभ्य सुविख्यातं धर्मालयमिति श्रुतम् ॥ ददौ दाशरथिस्तत्र महादानानि षोडश ॥ ३० ॥ ये पञ्चाशत्तदा ग्रामाः सीतापुरसमन्विताः ॥ सत्यमन्दिरपर्यन्ता रघुनाथेन वै तदा ॥ ३१ ॥ सीताया वचनात्तत्र गुरुवाक्येन चैव हि ॥ आत्मनो वंशवृद्ध्यर्थं दत्तास्सर्वार्थसिद्धये ॥ ३२ ॥ अष्टादश सहस्राणां द्विजानामभवत्कुलम् ॥ वात्स्यायन उपमन्युर्जातूकर्ण्योऽथ पिङ्गलः ॥ ३३ ॥ भारद्वाजस्तथा वत्सः कौशिकः कुश एव च ॥ शाण्डिल्यः कश्यपश्चैव गौतमश्छान्धनस्तथा ॥ ३४ ॥ कृष्णात्रेयस्तथा वत्सो वसिष्ठो धारणस्तथा ॥ भाण्डिलश्चैव विज्ञेयो यौवनाश्वस्ततः परम् ॥ ३५ ॥ कृष्णायनोपमन्यू च गार्ग्यमुद्गलमौखकाः ॥ पुशिः पराशरश्चैव कौण्डिन्यश्च ततः परम् ॥ ३६ ॥ पञ्चपञ्चाशद्ग्रामाणां नामान्येवं यथाक्रमम् ॥ सीतापुरं श्रीक्षेत्रं च मुशली मुद्गली तथा ॥ ३७ ॥ ज्येष्ठला श्रेयस्थानं च दन्ताली वटपत्रका ॥ राज्ञः पुरं कृष्णवाटं देहं लोहं चनस्थम् ॥ ३८ ॥ कोहेचं चन्दनक्षेत्रं थलं च हस्तिनापुरम् ॥ कर्पटं कंनजह्वी वनोडफनफावली ॥ ३९ ॥ मोहोधं शमो

भांडिल व तदनन्तर यौवनाश्व जानने योग्य हैं ॥ ३५ ॥ और कृष्णायन, उपमन्यु, गार्ग्य, मुद्गल व मौखक, पुशि, पराशर तदनन्तर कौण्डिन्य हैं ॥ ३६ ॥ व ऐसेही पचपन ग्रामों के नाम क्रम से हैं सीतापुर, श्रीक्षेत्र, मुशली, मुद्गली ॥ ३७ ॥ ज्येष्ठला, श्रेयस्थान, दन्ताली, वटपत्रका, राजापुर, कृष्णवाट, देह, लोह व चनस्थन ॥ ३८ ॥ और कोहेच, चन्दनक्षेत्र, थल व हस्तिनापुर, कर्पट, कंनजह्वी, बनोडफ व नफावली ॥ ३९ ॥ और मोहोध, शमोहोरली, गोविन्दण, थलत्यज, चारण

सिद्ध, सोद्दीत्राभाज्यज व वटमालिका ॥ ४० ॥ और गोधर, मारणज, मात्रमध्य व मातर, बलवती, गन्धवती, ईश्राम्ली व राज्यज ॥ ४१ ॥ और रूपावली, बहुधन, छत्रीट व वंशज और जायासंरण, गोतिकी व चित्रलेख ॥ ४२ ॥ दुग्धावली, हंसावली, वैहोल, चैल्लज, नालावली, आसावली और इसके उपरान्त सुहालीका है ॥ ४३ ॥ श्रीरामजी ने पचपन ग्रामों को आपही बनाकर बसने के लिये उन ब्राह्मणों के लिये दे दिया ॥ ४४ ॥ और श्रीरामजी ने उनकी सेवा के लिये छत्तीस हज़ार वैश्यों को दिया व उनसे चौगुने शूद्रों को दिया ॥ ४५ ॥ व उनके लिये बड़े हर्ष से गऊ, घोड़े, वस्त्र, सुवर्ण, चांदी व ताँबा इन दानों को बड़ी भक्ति से

होरली गोविन्दणं थलत्यजम् ॥ चारणसिद्धं सोद्दीत्राभाज्यजं वटमालिका ॥ ४० ॥ गोधरं मारणजं चैव मात्रमध्यं च मातरम् ॥ बलवती गन्धवती ईश्राम्ली च राज्यजम् ॥ ४१ ॥ रूपावली बहुधनं छत्रीटं वंशजं तथा ॥ जायासंरणं गोतिकी च चित्रलेखं तथैव च ॥ ४२ ॥ दुग्धावली हंसावली च वैहोलं चैल्लजं तथा ॥ नालावली आसावली सुहालीकामतः परम् ॥ ४३ ॥ रामेण पञ्चपञ्चाशद्ग्रामाणि वसनाय च ॥ स्वयं निर्माय दत्तानि द्विजेभ्यस्तेभ्य एव च ॥ ४४ ॥ तेषां शुश्रूषणार्थाय वैश्यान्रामो न्यवेदयत् ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि शूद्रांस्तेभ्यश्चतुर्गुणान् ॥ ४५ ॥ तेभ्यो दत्तानि दानानि गवाश्ववसनानि च ॥ हिरण्यं रजतं ताम्रं श्रद्धया परया मुदा ॥ ४६ ॥ नारद उवाच ॥ अष्टादशसहस्रास्ते ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ कथं ते व्यभजन्ग्रामान् ग्रामोत्पन्नं तथा वसु ॥ वस्त्राद्यं भूषणाद्यं च तन्मे कथय सुव्रत ॥ ४७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यज्ञान्ते दक्षिणा यावत्सर्त्विग्भिः स्वीकृता सुत ॥ महादानादिकं सर्वं तेभ्य एव समर्पितम् ॥ ४८ ॥ ग्रामाः साधारणा दत्ता महास्थानानि वै तदा ॥ ये वसन्ति च यत्रैव तानि तेषां भवन्त्विति ॥ ४९ ॥

दिया ॥ ४६ ॥ नारदजी बोले कि हे सुव्रत ! उन अठारह हज़ार वेदोंके पारगामी ब्राह्मणों ने ग्रामों को व ग्रामों में उत्पन्न धन को कैसे बाँटा और वस्त्रादिक व भूषणादिक को कैसे बाँटा है उसको मुझ से कहिये ॥ ४७ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे पुत्र ! ऋत्विजों समेत जितने ब्राह्मणों ने यज्ञ के अन्त में जितनी दक्षिणा को पाया है उन्हीं के लिये सब महादानादिक दिया गया है ॥ ४८ ॥ और उस समय साधारण ग्राम व महास्थान दिये गये जो जिसमें बसैं उनके वे ग्राम होवैं ॥ ४९ ॥

इस वसिष्ठजी के वचन से वहां वे ग्राम ब्राह्मणों के अधीन किये गये और जिस प्रकार ब्राह्मण न उजड़ैं वैसेही बुद्धिमान् रघुनायकजी ने ॥ ५० ॥ उन ब्राह्मणों को बहुत साधन व धान्य दिया तदनन्तर हाथों को जोड़कर श्रीरामजी ने ब्राह्मणों से यह कहा ॥ ५१ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! जैसे सतयुग व जैसे त्रेतायुग में तुम लोग वर्तमान थे वैसेही इससमय भी मेरे राज्यमें निस्सन्देह वर्तमान होना चाहिये ॥ ५२ ॥ और जो कुछ धन, धान्य, वाहन व वसन, मणि, सुवर्णादिक और धन ॥ ५३ ॥ और तांबा आदिक व चांदी आदिक मुझ से इससमय मांगिये और इस समय व भविष्य समय में यथायोग्य प्रार्थना करनेयोग्य ॥ ५४ ॥ वाचिक हे द्विजोत्तमो ! मैं सदैव पठाऊंगा

वसिष्ठवचनात्तत्र ग्रामास्ते विप्रसात्कृताः ॥ रघूद्वहेन धीरेण नोद्वसन्ति यथा द्विजाः ॥ ५० ॥ धान्यं तेषां प्रदत्तं हि विप्राणां चामितं वसु ॥ कृताञ्जलिस्ततो रामो ब्राह्मणानिदमब्रवीत् ॥ ५१ ॥ यथा कृतयुगे विप्रास्त्रेतायां च यथा पुरा ॥ तथा चाद्यैव वर्त्तव्यं मम राज्ये न संशयः ॥ ५२ ॥ यत्किञ्चिद्धनधान्यं वा यानं वा वसनानि वा ॥ मणयः काञ्चनादींश्च हेमादींश्च तथा वसु ॥ ५३ ॥ ताम्राद्यं रजतादींश्च प्रार्थयध्वं ममाधुना ॥ अधुना वा भविष्ये वाभ्यर्थनीयं यथोचितम् ॥ ५४ ॥ प्रेषणीयं वाचिकं मे सर्वदा द्विजसत्तमाः ॥ यं यं कामं प्रार्थयध्वं तं तं दास्याम्यहं सदा ॥ ५५ ॥ ततो रामः सेवकादीनादरात्प्रत्यभाषत ॥ विप्राज्ञा नोल्लङ्घनीया सेवनीया प्रयत्नतः ॥ ५६ ॥ यं यं कामं प्रार्थयन्ते कारयध्वं ततस्ततः ॥ एवं नत्वा च विप्राणां सेवनं कुरुते तु यः ॥ ५७ ॥ स शूद्रः स्वर्गमाप्नोति धनवान्पुत्रवान्भवेत् ॥ अन्यथा निर्धनत्वं हि लभते नात्र संशयः ॥ ५८ ॥ यवनोम्लेच्छजातीयो दैत्यो वा राक्षसोपि वा ॥ योत्र विघ्नं करो

व जिस जिस कामनाकी प्रार्थना करियेगा उस उसको मैं सदैव दूंगा ॥ ५५ ॥ तदनन्तर श्रीरामजी ने आदर से सेवकादिकों से कहा कि ब्राह्मणों की आज्ञा उल्लंघन करने योग्य नहीं है बरन बड़े यत्न से सेवने योग्य है ॥ ५६ ॥ और जिस जिस काम की वे प्रार्थना करैं उस उसको तुम लोग करो इस प्रकार प्रणाम कर जो ब्राह्मणों की सेवा करता है ॥ ५७ ॥ वह शूद्र सुख को पाता है और धनवान् व पुत्रवान् होताहै नहीं तो दरिद्रता को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५८ ॥ और यवन व म्लेच्छ

जातिवाला मनुष्य तथा दैत्य व राक्षस जो यहां विघ्न करताहै वह उसी क्षण भस्म होजाता है ॥ ५९ ॥ ब्रह्माजी बोले कि तदनन्तर बड़े प्रसन्न श्रीरामजी ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणों से आशीर्वादों को पाकर यात्राके सामने हुए ॥ ६० ॥ और हद्दतक पीछे जाकर स्नेहसे विकल लोचनोंवाले सब मोहित ब्राह्मण धर्मारण्य में लौट आये ॥ ६१ ॥ ऐसा करके तदनन्तर श्रीरामजी अपनी पुरी को चले और दृढ़ व्रतवाले काश्यप व गर्ग गोत्रवाले ब्राह्मण कृतार्थ हुए ॥ ६२ ॥ और उस समय बड़ी सेना से संयुत स्त्री समेत व मित्र पुत्रों समेत श्रीरामजी गुणों से संयुत अयोध्यापुरी को प्राप्त हुए ॥ ६३ ॥ और श्रीरघुनाथजी को देखकर सब मनुष्य प्रसन्न हुए

त्येव भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ ५९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्य द्विजान्रामोऽतिहर्षितः ॥ प्रस्थानाभिमुखो विप्रैराशीर्भिरभिनन्दितः ॥ ६० ॥ आसीमान्तमनुव्रज्य स्नेहव्याकुललोचनाः ॥ द्विजाः सर्वे विनिर्वृत्ता धर्मारण्ये विमोहिताः ॥ ६१ ॥ एवं कृत्वा ततो रामः प्रतस्थे स्वां पुरीं प्रति ॥ काश्यपाश्चैव गर्गाश्च कृतकृत्या दृढव्रताः ॥ ६२ ॥ गुरुसेनासमाविष्टः सभार्यः ससुहृत्सुतः ॥ राजधानीं तदा प्राप रामोऽयोध्यां गुणान्विताम् ॥ ६३ ॥ दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वे लोकाः श्रीरघुनन्दनम् ॥ ततो रामः स धर्मात्मा प्रजापालनतत्परः ॥ ६४ ॥ सीतया सह धर्मात्मा राज्यं कुर्वंस्तदा सुधीः ॥ जानक्यां गर्भमाधत्त रविवंशोद्भवाय च ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येश्रीरामचन्द्रकृतधर्मारण्यतीर्थक्षेत्रजीर्णोद्धारवर्णनंनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

तदनन्तर वे धर्मात्मा श्रीरामजी प्रजाओं के पालन में तत्पर हुए ॥ ६४ ॥ तब बुद्धिमान् श्रीरामजी ने सीता समेत राज्य करते हुए सूर्यवंश की उत्पत्ति के लिये जानकी जी में गर्भ को धारण किया ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीरामचन्द्रकृतधर्मारण्यतीर्थक्षेत्रजीर्णोद्धारवर्णनंनाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । धर्मारण्य द्विजन जिमि सेतुबंध गम कीन । छत्तिसवें अध्याय में सोई चरित नवीन ॥ नारदजी बोले कि हे सुव्रत ! इसके उपरान्त क्या हुआ है उसको मुझ से कहिये हे कहनेवालों में श्रेष्ठ ! पहले उसको मुझ से संपूर्णता से कहिये ॥ १ ॥ और कितने समयतक वह स्थान स्थिर हुआ व हे प्रभो ! किससे वह रक्षित हुआ व किसकी आज्ञा वर्तमान हुई इसको मुझ से कहिये ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले कि त्रेता से द्वापर के अन्त तक जबतक कलियुग का आगम हुआ तबतक एक पवनपुत्र हनुमान् जी भलीभांति रक्षा करने में ॥ ३ ॥ समर्थ हैं व हे पुत्र ! विना हनुमान्जी के अन्यथा कोई भी समर्थ नहीं है जिन्होंने लंका को विध्वंस किया व प्रबल राक्षसों को मार

नारद उवाच ॥ अतः परं किमभवत्तन्मे कथय सुव्रत ॥ पूर्वं च तदशेषेण शंस मे वदतां वर ॥ १ ॥ स्थिरीभूतं च तत्स्थानं कियत्कालं वदस्व मे ॥ केन वै रक्ष्यमाणं च कस्याज्ञा वर्तते प्रभो ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्रेतातो द्वापरान्तं च यावत्कलिसमागमः ॥ तावत्संरक्षणे चैको हनूमान्पवनात्मजः ॥ ३ ॥ समर्थो नान्यथा कोपि विना हनुमता सुत ॥ लङ्का विध्वंसिता येन राक्षसाः प्रबला हताः ॥ ४ ॥ स एव रक्षते तत्र रामादेशेन पुत्रक ॥ द्विजस्याज्ञा प्रवर्तेत श्रीमातायास्तथैव च ॥ ५ ॥ दिनेदिने प्रहर्षोभूज्जनानां तत्र वासिनः ॥ पठन्ति स्म द्विजास्तत्र ऋग्यजुःसामलक्षणान् ॥ ६ ॥ अथर्वणं चापि तत्र पठन्ति स्म दिवानिशम् ॥ वेदनिर्घोषजः शब्दस्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ७ ॥ उत्सवास्तत्र जायन्ते ग्रामे ग्रामे पुरे पुरे ॥ नाना यज्ञाः प्रवर्तन्ते नानाधर्मसमाश्रिताः ॥ ८ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कदापि तस्य स्थानस्य भङ्गो जातोथ वा नवा ॥ दैत्यैर्जितं कदा स्थानमथवा दुष्टराक्षसैः ॥ ९ ॥ व्यास उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया राजन्ध

डाला ॥ ४ ॥ हे पुत्र ! वही हनुमान्जी श्रीरामजी की आज्ञा से रक्षा करते हैं और ब्राह्मण वसिष्ठजी की व श्रीमाताजी की आज्ञा वर्तमान है ॥ ५ ॥ और प्रतिदिन वहां के लोगों को बड़ा हर्ष हुआ व वहां के बसनेवाले ब्राह्मण ऋग्, यजुः व साम लक्षणोंवाले वेदों को पढ़ते थे ॥ ६ ॥ और दिन रात अथर्वण वेद को भी पढ़ते थे व चराचर समेत त्रिलोक में वेदों से उपजा हुआ शब्द होता था ॥ ७ ॥ और वहां गांव गांव व नगर नगर में उत्साह होते थे और अनेक प्रकार के धर्मों में आश्रित अनेक भांति के यज्ञ होते थे ॥ ८ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि कभी उस स्थान का भंग हुआ या नहीं हुआ है व कभी दैत्यों ने व दुष्ट राक्षसों ने उस स्थान को जीत लिया है ॥ ९ ॥ व्यासजी

बोले कि हे राजन् ! तुम ने बहुत अच्छा पूंछा व तुम सदैव पवित्र व धर्मज्ञ हो पहले कलियुग प्राप्त होने पर जो वृत्तान्त हुआ है उसको सुनिये ॥ १० ॥ हे राजन् ! लोकों के हित के लिये व मनोरथ और सुख के लिये मैं जो कहूंगा उस सब को सुनिये ॥ ११ ॥ कि इससमय कलियुग प्राप्त होने पर नाम से आम नामक कान्यकुब्ज देश का स्वामी श्रीमान्, धर्मज्ञ व नीति में परायण हुआ है ॥ १२ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! जोकि शांत, दांत, सुशील व सत्यधर्म में तत्पर था द्वापर के अन्त में कलियुग न आने पर ॥ १३ ॥ कलियुग के विशेष भय से व अधर्म के भयादिकों से सब देवता पृथ्वी को छोड़कर नैमिषारण्यमें टिके ॥ १४ ॥

र्मज्ञस्त्वं सदा शुचिः ॥ आदौ कलियुगे प्राप्ते यद्वृत्तं तच्छृणुष्व भोः ॥ १० ॥ लोकानां च हितार्थाय कामाय च सुखाय च ॥ यदहं कथयिष्यामि तत्सर्वं शृणु भूपते ॥ ११ ॥ इदानीं च कलौ प्राप्त आमो नाम्ना बभूव ह ॥ कान्यकुब्जाधिपः श्रीमान्धर्मज्ञो नीतितत्परः ॥ १२ ॥ शान्तो दान्तः सुशीलश्च सत्यधर्मपरायणः ॥ द्वापरान्ते नृपश्रेष्ठ अनागते कलौयुगे ॥ १३ ॥ भयात्कलिविशेषेण अधर्मस्य भयादिभिः ॥ सर्वे देवाः क्षितिं त्यक्त्वा नैमिषारण्यमाश्रिताः ॥ १४ ॥ रामोपि सेतुबन्धं हि ससहायो गतो नृप ॥ १५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कीदृशं हि कलौ प्राप्ते भयं लोके सुदुस्तरम् ॥ यस्मिन्सुरैः परित्यक्ता रत्नगर्भा वसुन्धरा ॥ १६ ॥ व्यास उवाच ॥ शृणुष्व कलिधर्मांस्त्वं भविष्यन्ति यथा नृप ॥ असत्यवादिनो लोकाः साधुनिन्दापरायणाः ॥ १७ ॥ दस्युकर्मरताः सर्वे पितृभक्तिविवर्जिताः ॥ स्वगोत्रदाराभिरता लौल्यध्यानपरायणाः ॥ १८ ॥ ब्रह्मविद्वेषिणः सर्वे परस्परविरोधिनः ॥ शरणागतहन्तारो भविष्यन्ति कलौयुगे ॥ १९ ॥

व हे राजन् ! सहायकों समेत श्रीरामजी सेतुबंध तीर्थ को गये ॥ १५ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि कलियुग प्राप्त होने पर संसार में कैसा बहुत कठिन डर है कि जिसमें देवताओं ने रत्नगर्भवाली पृथ्वी को छोड़ दिया ॥ १६ ॥ व्यासजी बोले कि हे नृप ! तुम कलियुग के धर्मों को सुनो कि जिस प्रकार झूंठ कहनेवाले लोग सज्जनों की निन्दा में परायण होंगे ॥ १७ ॥ और सब चोर के कर्म में परायण होते हैं व पितरों की भक्ति से रहित तथा अपने वंश की स्त्रियों में अनुरागी और चंचलता के ध्यान में परायण होते हैं ॥ १८ ॥ और ब्राह्मणों से वैर करनेवाले सब आपस में विरोधी व शरणमें आये हुए लोगोंको मारनेवाले मनुष्य कलियुगमें होवेंगे ॥ १९ ॥

और कलियुग प्राप्त होनेपर ब्राह्मण वैश्यों के आचार में तत्पर तथा वेदों से भ्रष्ट व अहंकारी होवैंगे और ब्राह्मण संध्या को लोप करनेवाले होवैंगे ॥ २० ॥ व शांति में शूर तथा भय में दीन व श्राद्ध और तर्पण से रहित होवैंगे व दैत्यों के आचार में परायण और विष्णुजी की भक्ति से रहित होवैंगे ॥ २१ ॥ और पराये धन की इच्छा करनेवाले व घूस लेने में परायण होवैंगे और ब्राह्मण बिन नहाये भोजन करैंगे व क्षत्रिय युद्ध से रहित होवैंगे ॥ २२ ॥ और कलियुग प्राप्त होनेपर सब ब्राह्मण दुष्ट जीविका करनेवाले तथा मलिन व मदिरा पीने में परायण व यज्ञ न कराने योग्य पुरुषों को यज्ञ करानेवाले होवैंगे ॥ २३ ॥ और स्त्रियां पतियों से वैर करनेवाली व

वैश्याचाररता विप्रा वेदभ्रष्टाश्च मानिनः ॥ भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते सन्ध्यालोपकरा द्विजाः ॥ २० ॥ शान्तौ शूरा भये दीनाः श्राद्धतर्पणवर्जिताः ॥ असुराचारनिरता विष्णुभक्तिविवर्जिताः ॥ २१ ॥ परवित्ताभिलाषाश्च उत्कोचग्रहणे रताः ॥ अस्नातभोजिनो विप्राः क्षत्रिया रणवर्जिताः ॥ २२ ॥ भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते मलिना दुष्टवृत्तयः ॥ मद्यपानरताः सर्वेऽप्ययाज्यानां हि याजकाः ॥ २३ ॥ भर्तृद्वेषकरा रामाः पितृद्वेषकराः सुताः ॥ भ्रातृद्वेषकराः क्षुद्रा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ २४ ॥ गव्यविक्रयिणस्ते वै ब्राह्मणा वित्ततत्पराः ॥ गावो दुग्धं न दुह्यन्ते सम्प्राप्ते हि कलौ युगे ॥ २५ ॥ फलन्ते नैव वृक्षाश्च कदाचिदपि भारत ॥ कन्याविक्रयकर्त्तारो गोजाविक्रयकारकाः ॥ २६ ॥ विषविक्रयकर्त्तारो रसविक्रयकारकाः ॥ वेदविक्रयकर्त्तारो भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ २७ ॥ नारी गर्भं समाधत्ते हायनैकादशेन हि ॥ एकादश्युपवासस्य विरताः सर्वतो जनाः ॥ २८ ॥ न तीर्थसेवनरता भविष्यन्ति च

पुत्र पिता से वैर करनेवाले होवैंगे व कलियुग प्राप्त होनेपर नीच पुरुष भाइयों से वैर करनेवाले होवैंगे ॥ २४ ॥ और धन में तत्पर वे ब्राह्मण कलियुग प्राप्त होनेपर गऊ का दूध, दही व घी आदिकके बेंचनेवाले होवैंगे व गाइयां दूध न देवैंगी ॥ २५ ॥ व हे भारत ! कभी वृक्ष नहीं फलतेहैं और कन्याको बेंचनेवाले तथा गऊ व छगड़ी को बेंचनेवाले होवैंगे ॥ २६ ॥ और कलियुग प्राप्त होनेपर ब्राह्मण विष को बेंचनेवाले तथा रस को बेंचनेवाले और वेदों को बेंचनेवाले होवैंगे ॥ २७ ॥ और स्त्री गेरहवर्षमे गर्भको धारण करैगी और सबलोग एकादशी व्रत से रहित होवैंगे ॥ २८ ॥ और ब्राह्मणलोग तीर्थसेवा में परायण न होवैंगे और बहुत भोजन करनेवाले तथा

बहुत निद्रा से व्याकुल होवेंगे ॥ २९ ॥ और सब कुटिल जीविका करनेवाले तथा वेदों की निन्दामें परायण व संन्यासियों की निन्दा करनेवाले व आपसमें छल करने वाले होंगे ॥ ३० ॥ और कलियुग में स्पर्श के दोष का भय न होगा व क्षत्रिय राज्य से हीन होवेंगे और म्लेच्छ राजा होगा ॥ ३१ ॥ व सब विश्वासघाती तथा गुरुवों के द्रोह में परायण होंगे व हे राजन् ! मित्रों के द्रोह में तत्पर तथा लिंग व उदर में परायण होवेंगे ॥ ३२ ॥ व हे महाराज ! कलियुग प्राप्त होनेपर चारों वर्ण एकही वर्ण होजावेंगे मेरा वचन अन्यथा नहीं है ॥ ३३ ॥ गुरु से यह सुनकर कान्यकुब्ज देश का स्वामी आम नामक उस पृथ्वी में राज्य करने लगा ॥ ३४ ॥ और

वाडवाः॥ बह्वाहारा भविष्यन्ति बहुनिद्रासमाकुलाः ॥ २९॥ जिह्मवृत्तिपराः सर्वे वेदनिन्दापरायणाः ॥ यतिनिन्दापरा श्चैवच्छद्मकाराः परस्परम् ॥ ३० ॥ स्पर्शदोषभयं नैव भविष्यति कलौ युगे ॥ क्षत्रिया राज्यहीनाश्च म्लेच्छो राजा भविष्यति ॥ ३१ ॥ विश्वासघातिनः सर्वे गुरुद्रोहरतास्तथा ॥ मित्रद्रोहरता राजञ्छिश्नोदरपरायणाः ॥ ३२ ॥ एकवर्णा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वार एव च ॥ कलौ प्राप्ते महाराज नान्यथा वचनं मम ॥ ३३ ॥ एतच्छ्रुत्वा गुरोरेष कान्यकुब्जा धिपो बली ॥ राज्यं प्रकुरुते तत्र आमो नाम्ना हि भूतले ॥ ३४ ॥ सार्वभौमत्वमापन्नः प्रजापालनतत्परः ॥ प्रजा नां कलिना तत्र पापे बुद्धिरजायत ॥ ३५ ॥ वैष्णवं धर्ममुत्सृज्य बौद्धधर्ममुपागताः ॥ प्रजास्तमनुवर्तिन्यः क्षपणैः प्रतिबोधिताः ॥ ३६ ॥ तस्य राज्ञो महादेवी मामानाम्न्यतिविश्रुता ॥ गर्भं दधार सा राज्ञो सर्वलक्षणसंयुता ॥ ३७ ॥ सम्पूर्णे दशमे मासि जाता तस्याः सुरूपिणी ॥ दुहिता समये राज्ञ्याः पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ ३८ ॥ रत्नगङ्गे

प्रजाओं के पालन में तत्पर वह चक्रवर्तित्व को प्राप्तहुआ और कलियुगसे उस समय प्रजाओं की बुद्धि पाप में होगई ॥ ३५ ॥ व वैष्णवधर्म को छोड़कर प्रजा बौद्धधर्म को प्राप्त हुए और उनके अनुगामी प्रजालोग बौद्धधर्मानुगामी लोगों से प्रबोधित होगये ॥ ३६ ॥ और बहुतही प्रसिद्ध जो मामा नामक उस राजा की महादेवी थी सब लक्षणों से संयुत उसने राजा से गर्भ को धारण किया ॥ ३७ ॥ और दशम महीना पूर्ण होनेपर समय में उस रानी के पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाली स्वरूप-वती कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३८ ॥ मणि व माणिक्य से भूषित वह नाम से रत्नगंगा ऐसी प्रसिद्ध हुई एक समय इन्द्रसूरि नामक राजा दैवयोगसे इस कान्यकुब्ज देश

में अन्य देश से आया और सोलह वर्ष की वह राजकुमारी कन्या नहीं ब्याही गई थी ॥ ३९ । ४० ॥ और दासी के विना वह मिली व हे भारत ! जीविक इन्द्रसूरिजी शाबरी मंत्रविद्या का कहा ॥ ४१ ॥ और शूली के कर्म से मोहित वह एकचित्त हुई तदनन्तर उस उस वाक्य में परायण वह मोह को प्राप्तहुई ॥ ४२ ॥ व हे वत्स ! जैनधर्म में परायण वह बौद्धमतानुगामी लोगों से समझाई गई और उस बड़े बलवान् राजा ने रत्नगंगा महादेवी को ब्रह्मावर्त के स्वामी बुद्धिमान् कुंभीपाल राजा के लिये दिया व दैव से मोहित उसने विवाह में उसके लिये मोहेरक को दिया ॥ ४३ । ४४ ॥ तब धर्मारण्य को आकर राजधानी की गई और उसने जैन-

ति नाम्ना सा मणिमाणिक्यभूषिता ॥ एकदा दैवयोगेन देशान्तराढुपागतः ॥ ३९ ॥ नाम्ना चैवेन्द्रसूरिर्वै देशेस्मिन्कान्यकुब्जके ॥ षोडशाब्दा च सा कन्या नोपनीता नृपात्मजा ॥ ४० ॥ दास्यान्तरेण मिलिता इन्द्रसूरिश्च जीविकः ॥ शाबरीं मन्त्रविद्यां च कथयामास भारत ॥ ४१ ॥ एकचित्ताभवत्सा तु शूलिकर्मविमोहिता ॥ ततः सा मोहमापन्ना तत्तद्वाक्यपरायणा ॥ ४२ ॥ क्षपणैर्बोधिता वत्स जैनधर्मपरायणा ॥ ब्रह्मावर्ताधिपतये कुम्भीपालाय धीमते ॥ ४३ ॥ रत्नगङ्गां महादेवीं ददौ तामतिविक्रमी ॥ मोहेरकं ददौ तस्मै विवाहे दैवमोहितः ॥ ४४ ॥ धर्मारण्यं समागत्य राजधानी कृता तदा ॥ देवांश्च स्थापयामास जैनधर्मप्रणीतकान् ॥ ४५ ॥ सर्वे वर्णास्तथाभूता जैनधर्मसमाश्रिताः ॥ ब्राह्मणा नैव पूज्यन्ते न च शान्तिकपौष्टिकम् ॥ ४६ ॥ न ददाति कदा दानमेवं कालः प्रवर्तते ॥ लब्धशासनका विप्रा लुप्तस्वाम्या अहर्निशम् ॥ ४७ ॥ समाकुलितचित्तास्ते नृपमामं समाययुः ॥ कान्यकुब्जास्थितं शूरं पाखण्डैः परिवेष्टितम् ॥ ४८ ॥ कान्यकुब्जपुरं प्राप्य कतिभिर्वासरैर्नृप ॥ गङ्गोपकण्ठे न्यवसञ्छ्रांतास्ते मोढ

धर्म प्रतिपादन करनेवाले देवताओं को स्थापित किया ॥ ४५ ॥ और जैनधर्म में आश्रित सब वर्ण वैसेही होगये और ब्राह्मण नहीं पूजे जाते हैं व शांतिक, पौष्टिक कर्म नहीं होता है ॥ ४६ ॥ व कभी कोई दान नहीं देताहै ऐसा समय वर्तमान है और शासन को पाये हुए लुप्त स्वामितावाले ब्राह्मण दिनरात ॥ ४७ ॥ विकल चित्त वाले वे पाखण्डों से घिरे हुए व कान्यकुब्ज देश में स्थित शूर आम राजा के समीप आये ॥ ४८ ॥ व हे राजन् ! कुछ दिनों से कान्यकुब्ज नगर को प्राप्त होकर थके

हुए वे मूढ़ ब्राह्मण गंगाजी के समीप बसे ॥ ४९ ॥ और गुप्त दूतोंने राजा के आगे उन आये हुए ब्राह्मणों को कहा व प्रातःकाल बुलाये हुए वे ब्राह्मण राजा की सभा में आये ॥ ५० ॥ तदनन्तर राजा ने आदर समेत प्रत्युत्थान व प्रणामादिक नहीं किया और यह राजा खड़ेहुए सब ब्राह्मणों से पूंछने लगा ॥ ५१ ॥ कि हे ब्राह्मणो! तुम लोग किस लिये आये हो और क्या कार्य है उसको कहिये ॥ ५२ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे नराधिप! हम लोग धर्मारण्य से यहां तुम्हारे समीप आये हैं क्योंकि हे राजन्! तुम्हारी कन्या का पति जो कुमारपालक है ॥ ५३ ॥ इन्द्रसूरि से प्रेरित व जैनधर्म से वर्तमान उसने बड़े अद्भुत ब्राह्मणों के शासन (आज्ञा) को लुसकर

वाडवाः ॥ ४९ ॥ चारैश्च कथितास्ते च नृपस्याग्रे समागताः ॥ प्रातराकारिता विप्रा आगता नृपसंसदि ॥ ५० ॥ प्रत्युत्थानाभिवादादीन्न चक्रे सादरं नृपः ॥ तिष्ठतो ब्राह्मणान्सर्वान्पर्यपृच्छदसौ ततः ॥ ५१ ॥ किमर्थमागता विप्राः किंस्वित्कार्यं ब्रुवन्तु तत् ॥ ५२ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ धर्मारण्यादिहायातास्त्वत्समीपं नराधिप ॥ राजंस्तव सुतायास्तु भर्ता कुमारपालकः ॥ ५३ ॥ तेन प्रलुप्तं विप्राणां शासनं महदद्भुतम् ॥ वर्तता जैनधर्मेण प्रेरितेनेन्द्रसूरिणा ॥ ५४ ॥ राजोवाच ॥ केन वै स्थापिता यूयमस्मिन्मोहेरकेपुरे ॥ एतद्धि वाडवाः सर्वं ब्रूत वृत्तं यथातथम् ॥ ५५ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ काजेशैः स्थापिताः पूर्वं धर्मराजेन धीमता ॥ कृता चात्र शुभे स्थाने रामेण च ततः पुरी ॥ ५६ ॥ शासनं रामचन्द्रस्य दृष्ट्वाऽन्यैश्चैव राजभिः ॥ पालितं धर्मतो ह्यत्र शासनं नृपसत्तम ॥ ५७ ॥ इदानीं तव जामाता विप्रान्पालयते न हि ॥ तच्छ्रुत्वा विप्रवाक्यं तु राजा विप्रानथाब्रवीत् ॥ ५८ ॥ यान्तु शीघ्रं हि भो विप्राः कथयन्तु ममा

दिया है ॥ ५४ ॥ राजा बोले कि हे ब्राह्मणो! इस मोहेरक पुरमें तुम लोगों को किसने स्थापित किया है इस सब वृत्तान्तको तुमलोग यथार्थ कहो ॥ ५५ ॥ ब्राह्मण बोले कि पुरातन समय में ब्रह्मा, विष्णु व शिवजीने स्थापित किया तदनन्तर बुद्धिमान् धर्मराज ने व श्रीरामजी ने इस उत्तम स्थान में पुरी को बनाया है ॥ ५६ ॥ व हे नृपोत्तम! रामचन्द्र के शासन को देखकर अन्य राजाओं ने यहां धर्म से उस शासन को पालन किया ॥ ५७ ॥ इससमय तुम्हारा दामाद ब्राह्मणों को पालन नहीं करता है उस ब्राह्मणों के वचन को सुनकर राजा ने ब्राह्मणों से कहा ॥ ५८ ॥ कि हे ब्राह्मणो! शीघ्रही जाओ व मेरी आज्ञा से कुमारपाल राजा से कहो कि तुम ब्राह्मणों

के स्थान को दे दीजिये ॥ ५९ ॥ इस वचन को सुनकर तदनन्तर ब्राह्मण बड़े हर्षको प्राप्त हुए उसके बाद बड़े प्रसन्न होकर चले गये और वहां वचन को कहा ॥ ६० ॥ श्वसुर का वचन सुनकर राजा ने वचन कहा कुमारपाल बोले कि हे ब्राह्मणो ! श्रीरामजी के शासन को मैं पालन न करूंगा ॥ ६१ ॥ व हे ब्राह्मणो ! यज्ञ में पशु की हिंसा में लगे हुए ब्राह्मणों को मैं छोड़ता हूं उस कारण हिंसा करनेवालों की मेरे भक्ति न होगी ॥ ६२ ॥ ब्राह्मण बोले कि पाखंड के धर्म से कैसे आप शासन के लोपकर्त्ता होगे हे नृपश्रेष्ठ ! उसको पालन कीजिये पापमें मन न कीजिये ॥ ६३ ॥ राजा बोले कि अहिंसा बड़ा भारी धर्म है व हिंसा न करना उत्तम तप है और अ-

ज्ञया ॥ राज्ञे कुमारपालाय देहि त्वं ब्राह्मणालयम् ॥ ५९ ॥ श्रुत्वा वाक्यं ततो विप्राः परं हर्षमुपागताः ॥ जग्मुस्ततोऽतिमुदिता वाक्यं तत्र निवेदितम् ॥ ६० ॥ श्वशुरस्य वचः श्रुत्वा राजा वचनमब्रवीत् ॥ कुमारपाल उवाच ॥ रामस्य शासनं विप्राः पालयिष्याम्यहं नहि ॥ ६१ ॥ त्यजामि ब्राह्मणान्यज्ञे पशुहिंसापरायणान् ॥ तस्माद्धि हिंसकानां तु न मे भक्तिर्भवेद्विजाः ॥ ६२ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ कथं पाखण्डधर्मेण लुप्तशासनको भवान् ॥ पालयस्व नृपश्रेष्ठ मा स्म पापे मनः कृथाः ॥ ६३ ॥ राजोवाच ॥ अहिंसा परमो धर्मो अहिंसा च परन्तपः ॥ अहिंसा परमं ज्ञानम हिंसा परमं फलम् ॥ ६४ ॥ तृणेषु चैव वृक्षेषु पतङ्गेषु नरेषु च ॥ कीटेषु मत्कुणाद्येषु अजाश्वेषु गजेषु च ॥ ६५ ॥ लूतासु चैव सर्पेषु महिष्यादिषु वै तथा ॥ जन्तवः सदृशा विप्राः सूक्ष्मेषु च महत्सु च ॥ ६६ ॥ कथं यूयं प्रवर्त्तध्वे विप्रा हिंसापरायणाः ॥ तच्छ्रुत्वा वज्रतुल्यं हि वचनं च द्विजोत्तमाः ॥ ६७ ॥ प्रत्यूचुर्वाडवाः सर्वे क्रोधरक्तेक्षणास्तदा ॥ ६८ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ अहिंसा परमो धर्मः सत्यमेतत्त्वयोदितम् ॥ परं तथापि धर्मोऽस्ति शृणुष्वैकाग्रमा

हिंसा परम ज्ञान है व अहिंसा बड़ाभारी फल है ॥ ६४ ॥ तृणों में और वृक्ष, पतंग, मनुष्य, कीट, खटमलादिक और छाग, घोड़ा व हाथियों में ॥ ६५ ॥ और मकड़ी व सर्प तथा भैंसी आदिकों में हे ब्राह्मणो ! छोटे व बड़े प्राणियों में सब जंतु बराबर हैं ॥ ६६ ॥ और हिंसा में परायण तुम लोग ब्राह्मण कैसे वर्तमान हो वज्र के समान उस वचनको सुनकर उस समय क्रोधसे लाल लोचनोंवाले सब द्विजोत्तम ब्राह्मणों ने प्रत्युत्तर दिया ॥ ६७ । ६८ ॥ ब्राह्मण बोले कि तुमने यह सत्य कहा कि अहिंसा

बड़ा उत्तम धर्म है परन्तु तौ भी धर्म है उसको एकाग्र मन होकर सुनिये ॥ ६९ ॥ कि जो हिंसा वेद में कही गई है वह हिंसा नहीं है ऐसा निर्णय है क्योंकि जो शस्त्र से मारा जाता है और प्राणियों में जो पीड़ा होती है ॥ ७० ॥ हे धर्मज्ञों में श्रेष्ठ ! संसार में वही अधर्म है और विना शस्त्रके जो प्राणी वेदमंत्रों से मारेजाते हैं ॥ ७१ ॥ वह हिंसा प्राणियों को पीड़ा करनेवाली नहीं होती है बरन सुखदायिनी होती है और पराया उपकार पुण्य के लिये है व पराई पीड़ा पाप के लिये है ॥ ७२ ॥ और वेदों में कही हुई हिंसा को करके भी मनुष्य पाप से युक्त नहीं होता है ब्राह्मणों का वचन सुनकर राजाने फिर वचन कहा ॥ ७३ ॥ राजा बोले कि अति उत्तम धर्मारण्य

नमः ॥ ६९ ॥ या वेदविहिता हिंसा सा न हिंसेति निर्णयः ॥ शस्त्रेणाहन्यते यच्च पीडा जन्तुषु जायते ॥ ७० ॥ स एवा धर्म एवास्ति लोके धर्मविदां वर ॥ वेदमन्त्रैर्विहन्यन्ते विना शस्त्रेण जन्तवः ॥ ७१ ॥ जन्तुपीडाकरा नैव सा हिंसा सुखदायिनी ॥ परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥ ७२ ॥ वेदोदितां विधायापि हिंसां पापैर्न लिप्यते ॥ विप्राणां वचनं श्रुत्वा पुनर्वचनमब्रवीत् ॥ ७३ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मादीनां परं क्षेत्रं धर्मारण्यमनुत्तमम् ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या नेदानीमत्र सन्ति ते ॥ ७४ ॥ न धर्मो विद्यते वात्र उक्तो रामः स मानुषः ॥ क्व वापि लम्बपुच्छोऽसौ यो मुक्तो रक्षणाय वः ॥ ७५ ॥ शासनं चेन्न दृष्टं वो नैव तत्पालयाम्यहम् ॥ द्विजाः कोपसमाविष्टा ददुः प्रत्युत्तरं तदा ॥ ७६ ॥ द्विजा ऊचुः ॥ रे मूढ त्वं कथं वेत्थं भाषसे मदलोलुपः ॥ स दैत्यानां विनाशाय धर्मसंरक्षणाय च ॥ ७७ ॥ रामश्चतुर्भुजः साक्षान्मानुषत्वं गतो भुवि ॥ अगतीनां च गतिदः स वै धर्मपरायणः ॥ दयालुश्च कृपालुश्च जन्तूनां

ब्रह्मादिक देवताओं का उत्तम क्षेत्र है और इससमय ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिक वे देवता नहीं हैं ॥ ७४ ॥ और यहां धर्म नहीं है तथा वे श्रीरामजी मनुष्य कहे गयेहैं और जो तुमलोगों की रक्षा के लिये छोड़े गये थे वे लम्बी पूंछवाले हनुमान्‌जी कहां हैं ॥ ७५ ॥ यदि शासन न देखा जायगा तो मैं तुमलोगों को पालन न करूंगा तब क्रोध से संयुत ब्राह्मणों ने प्रत्युत्तर दिया ॥ ७६ ॥ ब्राह्मण बोले कि रेमूढ ! मद से लोभी तुम कैसे ऐसा कहते हो क्योंकि दैत्यों के नाश के लिये व धर्म की रक्षा के लिये वे ॥ ७७ ॥ चतुर्भुज साक्षात् रामजी पृथ्वी में मनुजता को प्राप्तहुए हैं और अगतिवालों को गति देनेवाले श्रीरामजी धर्म में परायण हैं और दयालु, कृपालु

घ जंतुवों के पालक हैं ॥ ७८ ॥ राजा बोले कि आज श्रीरामजी कहां वर्तमान हैं व पवनपुत्र कहां हैं वे सब फूटेहुए बादल की नाईं होगये क्योंकि श्रीराम व हनुमान् जी कहां हैं ॥ ७९ ॥ परन्तु यदि श्रीराम व हनुमान्जी सर्वत्र वर्तमान हैं तो इस समय ब्राह्मणों की सहायता में आवैंगे ऐसी मेरी बुद्धि है ॥ ८० ॥ हे ब्राह्मणो ! हनुमान् व श्रीराम और लक्ष्मणजी को दिखलाइये यदि कोई विश्वास है तो वह हमलोगों को दिखलाइये ॥ ८१ ॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् ! हनुमान्जी को दूत करके श्रीरामजी ने एक सौ चवालीस ग्रामों को दिया है ॥ ८२ ॥ फिर इस स्थान में आकर तेरह ग्रामों को दिया और काश्यपी व श्रीगंगाजी के समीप सोलह महादानों

परिपालकः ॥ ७८ ॥ राजोवाच ॥ कुतोऽद्य वर्त्तते रामः कुतो वै वायुनन्दनः ॥ अष्टाभ्रमिव ते सर्वे क रामो हनुमानिति ॥ ७९ ॥ परन्तु रामो हनुमान्यदि वर्त्तेत सर्वतः ॥ इदानीं विप्रसाहाय्य आगमिष्यति मे मतिः ॥ ८० ॥ दर्शयध्वं हनूमन्तं रामं वा लक्ष्मणं तथा ॥ यद्यस्ति प्रत्ययः कश्चित्स नो विप्राः प्रदर्श्यताम् ॥ ८१ ॥ उक्तं तै रामदेवेन दूतं कृत्वाञ्जनीसुतम् ॥ चतुश्चत्वारिंशदधिकं दत्तं ग्रामशतं नृप ॥ ८२ ॥ पुनरागत्य स्थानेऽस्मिन्दत्ता ग्रामास्त्रयोदश ॥ काश्यप्यां चैव गङ्गायां महादानानि षोडश ॥ ८३ ॥ दत्तानि विप्रमुख्येभ्यो दत्ता ग्रामाः सुशोभनाः ॥ पुनः सङ्कल्पिता वीर षट्पञ्चाशकसंख्यया ॥ ८४ ॥ षट्त्रिंशचसहस्राणि गोभुजा जज्ञिरे वराः ॥ सपादलक्षा वणिजो दत्ता माण्डलिकाभिधाः ॥ ८५ ॥ तेनोक्तं वाडवाः सर्वे दर्शयध्वं हि मारुतिम् ॥ यस्याभिज्ञानमात्रेण स्थितिं पूर्वां ददाम्यहम् ॥ ८६ ॥ विप्रवाक्यं करिष्यामि प्रत्ययो दर्श्यते यदि ॥ ततः सर्वे भविष्यन्ति वेदधर्मपरायणाः ॥ ८७ ॥ अन्यथा

को ॥ ८३ ॥ मुख्य ब्राह्मणों के लिये दिया और बहुतही उत्तम ग्रामों को दिया और फिर छप्पन संख्यक ग्रामों को संकल्प किया ॥ ८४ ॥ और छत्तिस हज़ार श्रेष्ठ गोभुज वैश्य उत्पन्न हुए व मांडलिक नामक सवालाख वैश्य दिये गये ॥ ८५ ॥ उस राजा ने सब ब्राह्मणों से कहा कि हनुमान्जी को दिखलाइये कि जिनके जानने ही से मैं पहली मर्यादा को दूंगा ॥ ८६ ॥ और यदि विश्वास देख पड़ैगा तो मैं ब्राह्मणों का वचन करूंगा और तदनन्तर सब वेदधर्म में तत्पर होवैंगे ॥ ८७ ॥ नहीं तो तुम

सब जैनधर्म से वर्तमान होवो राजा का वचन सुनकर वे ब्राह्मण अपने २ स्थान को आये ॥ ८८ ॥ और क्रोध से अन्ध किये व दुःखित मनवाले वे ब्राह्मण पृथ्वी में श्वासों को छोड़ते हुए हाहा ऐसा कहने लगे ॥ ८९ ॥ और दांतोंको घिसते व हाथों से हाथों को पीसते हुए वे परस्पर कहनेलगे कि हम लोग इससे क्या करैं ॥ ९० ॥ और उन सब ब्राह्मणों ने मिलकर उत्तम सम्मति किया व हृदय में श्रीराम व हनुमान्जी को ध्यान कर ॥ ९१ ॥ बालक व वृद्ध भी ब्राह्मणों ने मेल किया तब उनके मध्य में बहुतही वृद्ध ब्राह्मण ने उत्तम वचन कहा ॥ ९२ ॥ कि चौंसठि गोत्रोंवाले हम लोगों के मध्य में जो बहत्तरि अपने अपने गोत्र के अवटंकवाले तथा एक ग्राम

जिनधर्मेण वर्त्तयध्वं हि सर्वशः ॥ नृपवाक्यं तु ते श्रुत्वा स्वेस्वे स्थाने समागताः ॥ ८८ ॥ वाडवाः खिन्नमनसः क्रोधेनान्धीकृता भुवि ॥ निश्वासान्मुञ्चमानास्ते हाहेति प्रवदन्ति च ॥ ८९ ॥ दन्तान्प्राघर्षयन्सर्वान्न्यपीडंश्च करैः करान् ॥ परस्परं भाषमाणाः कथं कुर्मो वयं त्वितः ॥ ९० ॥ मिलित्वा वाडवाः सर्वे चक्रुस्ते मन्त्रमुत्तमम् ॥ रामवाक्यं हृदि ध्यात्वा ध्यात्वा चैवाञ्जनीसुतम् ॥ ९१ ॥ द्विजा मेलापकं चक्रुर्बाला वृद्धतमा अपि ॥ तेषां वृद्धतमो विप्रो वाक्यमूचे शुभं तदा ॥ ९२ ॥ चतुःषष्टिश्च गोत्राणामस्माकं ये द्विसप्ततिः ॥ स्वस्वगोत्रस्यावटङ्का एकग्रामाभिलाषिणः ॥ ९३ ॥ प्रयातु स्वस्ववर्गस्य एको ह्येको द्विजः सुधीः ॥ रामेश्वरं सेतुबन्धं हनूमांस्तत्र विद्यते ॥ ९४ ॥ सर्वे प्रयान्तु तत्रैव रामपार्श्वे निरामयाः ॥ नि ाहारा जितक्रोधा मायया वर्जिताः पुनः ॥ ९५ ॥ एकाग्रमानसाः सर्वे स्तुत्वा ध्यात्वा जपन्तु तम् ॥ ततो दाशरथी रामो दयां कृत्वा द्विजन्मसु ॥ ९६ ॥ शासनं च प्रदास्यति अचलं च

के अभिलाषी हैं ॥ ९३ ॥ उनमें से अपने अपने वर्ग का एक एक विद्वान् ब्राह्मण रामेश्वर व सेतुबंध तीर्थ को जावें वहां हनुमान्जी विद्यमान हैं ॥ ९४ ॥ और व्याधि रहित सबलोग वहीं श्रीरामजी के समीप चलैं और निराहार व क्रोधको जीतनेवाले व फिर माया से रहित ॥ ९५ ॥ सावधान मनवाले सब उन की स्तुति कर व ध्यान कर जप करैं तदनन्तर दशरथकुमार श्रीरामजी ब्राह्मणों के ऊपर दयाकर ॥ ९६ ॥ युग युग में अचल शासन को देवैंगे और बड़े तप से प्रसन्न होकर वे मनोरथ को

देवैंगे ॥ ६७ ॥ और जिस वर्ग का जो ब्राह्मण वहां न जावैगा वह वर्ग से व स्थान के धर्मसे परित्याग करने योग्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६८ ॥ और वह वणिग्वृत्त वाले सम्बंध तथा विवाह व ग्रामवृत्त में सम्बंध न होगा और सब स्थान में वे बाहर किये जावैंगे ॥ ६६ ॥ सभा के उस वचन को सुनकर उनके मध्य में उत्तम वचन व उत्तम शब्दवाला पवित्र तथा प्रवीण ब्राह्मण तीन शब्दों से ब्राह्मणों को सुनाता ॥ १०० ॥ व खड़ा होता हुआ दिये हुए तालवाले इस प्रत्युत्तर को कहा कि असत्य-वादियों को और पराई निन्दा करनेवाले में जो पाप होता है और पराई स्त्री के समीप जाने में व पराये द्रोह में परायण पुरुष में जो पाप होताहै ॥ १ ॥ और मदिरा

युगेयुगे ॥ महता तपसा तुष्टः प्रदास्यति समीहितम्॥६७॥ यस्य वर्गस्य यो विप्रो न प्रयास्यति तत्र वै॥ स च वर्गा त्परित्याज्यः स्थानधर्मान्न संशयः ॥ ६८ ॥ वणिग्वृत्ते न सम्बन्धे न विवाहे कदाचन ॥ ग्रामवृत्ते न सम्बन्धः सर्व स्थाने बहिष्कृताः ॥ ६६ ॥ सभावाक्यं च तच्छ्रुत्वा तन्मध्ये वाडवः शुचिः ॥ वाग्मी दक्षः सुशब्दश्च त्रिरवैः श्रावय न्द्विजान् ॥ १०० ॥ प्रतिवाक्यं दत्ततालं तिष्ठन्नेतद्वचोऽब्रवीत् ॥ असत्यवादिनां यच्च पातकं परनिन्दके ॥ परदारा भिगमने परद्रोहरते नरे ॥ १ ॥ मद्यपेषु च यत्पापं यत्पापं हेमहारिषु ॥ तत्पापं च भवेत्तस्य गमने यः पराङ्मुखः ॥ अथ किं बहुनोक्तेन यान्तु सत्यं द्विजोत्तमाः ॥ २ ॥ तच्छ्रुत्वा दारुणं वाक्यं गमनाय मनोदधे ॥ गच्छतस्तान्द्विजा ञ्छ्रुत्वा कुमारपालको नृपः ॥ ३ ॥ समाहूय कृषेः कर्म भिक्षाटनमथापि वा ॥ नानागोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः प्राप यिष्ये न संशयः ॥ ४ ॥ तच्छ्रुत्वा व्यथिताः सर्वे किं भविष्यत्यतः परम् ॥ तथा त्रीणि सहस्राणि प्रबन्धं चक्रिरे

पीनेवालों में व सोना चुरानेवालों में जो पाप होताहै वह पाप उसको होवै जोकि वहां जाने में विमुख होवै अथवा बहुत कहनेसे क्याहै सत्यही द्विजोत्तम लोग जावैं ॥ २ ॥ उस कठिन वचन को सुनकर उसने जानेके लिये मन धारण किया और उन जाते हुए ब्राह्मणों को सुनकर कुमारपालक राजा ने कहा ॥ ३ ॥ कि उन सबों को बुला कर कृषी कर्म या भिक्षाटन को अनेक गोत्रोंवाले ब्राह्मणों के लिये प्राप्त कराऊंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥ उसको सुनकर सब दुःखित हुए कि इसके उपरान्त

क्या होगा तब तीन हज़ार ब्राह्मणों ने यह प्रबंध किया ॥ ५ ॥ कि हम सब श्रीरामजी के समीप जावैंगे इसमें सन्देह नहीं है और आपस में ब्राह्मणों ने हस्ताक्षर दान किया ॥ ६ ॥ व हाथों को जोड़कर ब्राह्मणों ने इस वचन को कहा कि यहां त्रयीविद्या नाश होजावैगी और त्रयीमूर्त्ति याने ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी क्रोधित होवैंगे ॥ ७ ॥ इस कारण अठारह हज़ार ब्राह्मणों को वहीं जाना चाहिये तदनन्तर उस श्रेष्ठ राजा ने सब श्रेष्ठ गोभुज वणिजों को बुलाकर यह वचन कहा कि ब्राह्मणों को मना कीजिये ॥ ८ । ९ ॥ व्यासजी बोले कि जो उत्तम वणिज् जैनधर्म में लिप्त नहीं थे उन्होंने वहां जीविका नाश होने के डर से मौन धारण

तदा ॥ ५ ॥ गमिष्यामो वयं सर्वे रामं प्रति न संशयः ॥ हस्ताक्षरप्रदानं वै अन्योन्यं तु कृतं द्विजैः ॥ ६ ॥ कृताञ्जलिपुटा विप्रा वाक्यमेतदथाब्रुवन् ॥ नश्यतेऽत्र त्रयी विद्या त्रयीमूर्तिः प्रकुप्यति ॥ ७ ॥ तस्मात्तत्रैव गन्तव्यमष्टादशसहस्रकैः ॥ ततः स वणिजः सर्वान्समाहूय च गोभुजान् ॥ ८ ॥ वाक्यमूचे नृपश्रेष्ठो वारयध्वं द्विजानिति ॥ ९ ॥ व्यास उवाच ॥ न जैनधर्मे ये लिप्ता गोभुजा वणिगुत्तमाः ॥ वृत्तिभङ्गभयात्तत्र मौनमेव समाचरन् ॥ १० ॥ वारयाम कथं विप्रान्वह्निरूपान्दहन्ति ते ॥ शापाग्निना नरपते द्विजा मृत्युपरायणाः ॥ ११ ॥ अडालयेषु ये जाताः शूद्रा आहूय तान्नृपः ॥ निवार्यन्तामिति प्राह वाडवा गमनोद्यताः ॥ १२ ॥ तेषां मध्ये कतिपया जैनधर्मसमाश्रिताः ॥ गता वाडवपुञ्जेषु राजादेशान्निवारणे ॥ १३ ॥ केचिच्छूद्रा ऊचुः ॥ क्व रामो लक्ष्मणोपेतः क्व च वायुसुतो बली ॥ वर्तमानेन कालेन वक्तव्यं द्विजसत्तमाः ॥ १४ ॥ व्याघ्रसिंहाकुले दुर्गे वने वनगजाश्रिते ॥ परित्यज्य प्रियान्प्राणान्पुत्रान्दारान्निकेत

किया ॥ १० ॥ कि अग्निरूपी ब्राह्मणों को मैं कैसे मना करूं क्योंकि हे राजन् ! मृत्यु में परायण ब्राह्मण शापरूपी अग्नि से जलावैंगे ॥ ११ ॥ तब जो अडालय में शूद्र पैदाहुए थे उनको बुलाकर राजा ने कहा कि जाने के लिये तैयार ब्राह्मणों को मना कीजिये ॥ १२ ॥ उनके मध्य में जैनधर्म में आश्रित कुछ शूद्र राजा की आज्ञा से ब्राह्मणों के गणों में मना करने के लिये गये ॥ १३ ॥ कितेक शूद्र बोले कि लक्ष्मण से संयुत श्रीरामजी कहां है व पवनकुमार बलवान् हनुमान् जी कहां हैं हे द्विजोत्तमो ! वर्तमान समय से यह कहना चाहिये ॥ १४ ॥ व्याघ्रों व सिंहों से पूर्ण तथा वनके हाथियों से संयुत कठिन वन में प्यारे प्राणों को व पुत्रों, स्त्रियों और मन्दिरों

को छोड़कर ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणो ! दुष्ट शासनवाले राज्य में क्यों जाते हो उस वचन को सुनकर कितेक ब्राह्मणों ने वचन व मन से स्मरण किया ॥ १६ ॥ और पंद्रह हज़ार उन ब्राह्मणों ने श्रेष्ठ राजा के सकाश से भय, लोभ व दान के कारण यह कहा कि वह सब होगा ॥ १७ ॥ और हम लोग जीविका की कल्पना कभी न करैंगे या कृषीकर्म करैंगे अथवा भिक्षाटन करैंगे ॥ १८ ॥ तदनन्तर उन पंद्रहहज़ार द्विजोत्तमों ने उनसे यह कठिन वचन कहा कि अन्य ब्राह्मण यथायोग्य चले जावैं ॥ १९ ॥ और आपलोगों को श्रीरामजी से दिया हुआ शासन होवै और त्रयी विद्यावाले सब प्रसिद्ध द्विजोत्तम ॥ २० ॥ तीनहज़ार निश्चयकर त्रैविद्य हुए ॥ २१ ॥

नान् ॥ १५ ॥ किमर्थं गम्यते विप्रा राज्ये वै दुष्टशासने ॥ तच्छ्रुत्वा वाडवाः केचिद्वाक्येन मनसाऽस्मरन् ॥ १६ ॥ पञ्चदशसहस्रास्ते वाडवा नृपसत्तमात् ॥ भयाल्लोभाच्च दानाच्च तत्सर्वं भवतामिति ॥ १७ ॥ वृत्त्योपकल्पनं नैव करिष्यामः कदाचन ॥ कृषिकर्म करिष्यामो भिक्षाटनमथापि वा ॥ १८ ॥ ततश्च ते पञ्चदशसहस्रा द्विजसत्तमाः ॥ दारुणं वाक्यमूचुस्तान्यान्तु चान्ये यथोचितम् ॥ १९ ॥ शासनं भवतामस्तु रामदत्तं न संशयः ॥ त्रयीविद्यास्तु विख्याताः सर्वे वाडवपुङ्गवाः ॥ २० ॥ सहस्राणि च त्रीण्येव त्रैविद्या अभवन्ध्रुवम् ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ चतुर्थांशेन राज्यं च किञ्चिद्दत्ता वसुन्धरा ॥ तस्माच्चतुर्विधेत्येवं ज्ञातिबन्धमतः परम् ॥ २२ ॥ च्यवनो दास्यते कन्यां यूयं कन्यामवाप्नुत ॥ न वृत्तिर्न च सम्बन्धो भवतां स्यात्कदापि वा ॥ २३ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयीविद्याश्च वाडवाः ॥ स्वे स्वे स्थाने गताः सर्वे सङ्केतादनिवृत्त्य च ॥ २४ ॥ पञ्चदशसहस्राणि ततस्तु द्विजपुङ्गवाः ॥ यथागतं गताः सर्वे चातुर्विद्या द्विजोत्तमाः ॥ २५ ॥ तद्दिनं ह्यतिवाह्याथ चिन्ताविष्टेन चेतसा ॥ वार्यमाणाः स्वपुत्रैस्ते दारैश्च विन

राजा बोले कि चौथाई अंश से कुछ राज्य व पृथ्वी दीगई उस कारण इसके उपरान्त चारही प्रकार का ज्ञातिप्रबन्ध होगा ॥ २२ ॥ और च्यवनजी कन्या को देवैंगे व तुमलोग कन्या को पावोगे और आपलोगों की कभी जीविका व सम्बन्ध न होगा ॥ २३ ॥ उस राजा के इस वचन को सुनकर त्रयी विद्यावाले सब ब्राह्मण संकेत से न लौटकर अपने स्थान में चले गये ॥ २४ ॥ तदनन्तर पंद्रह हज़ार सब चातुर्विद्य द्विजोत्तमलोग जिसप्रकार आये थे वैसेही चले गये ॥ २५ ॥ और चिन्ता से संयुत

चित्त करके उस दिन को व्यतीत कर विनय से संयुत पुत्रों व स्त्रियों से वे ब्राह्मण मना किये गये ॥ २६ ॥ व सावधान मनवाले सब ब्राह्मण निद्रा को न प्राप्त हुए और ब्राह्ममुहूर्त में उठकर संसार की माया को छोड़कर ॥ २७ ॥ और स्थान समेत प्यारे पुत्रों व स्त्रियों को छोड़कर ग्राम के समीप सब श्रेष्ठ ब्राह्मण मिले ॥ २८ ॥ तब नित्य के दिनवाले कर्मों को करके तीन हज़ार ब्राह्मणों ने ब्राह्मणों के लिये दक्षिणा को देकर व कुलमाता को पूजकर ॥ २९ ॥ विघ्नसमूहों के नाश के लिये दक्षिण द्वारपै स्थित गणेशजी को सिंदूर व पुष्प की मालाओंसे पूजन किया ॥ ३० ॥ व सब प्रयोजनों को सिद्ध करनेवाले वकुलस्वामी सूर्यनारायण को पूजा और आदर से

यान्वितैः ॥ २६ ॥ एकाग्रमानसाः सर्वे न निद्रामुपलेभिरे ॥ ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय मायां त्यक्त्वा हि लौकिकीम् ॥ २७ ॥ परित्यज्य प्रियान्पुत्रान्दारान्सनिलयानपि ॥ ग्रामोपान्तेषु मिलिताः सर्वे वाडवपुङ्गवाः ॥ २८ ॥ सहस्राणि तदा त्रीणि कृतनित्याह्निकक्रियाः ॥ विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा सम्पूज्य कुलमातरम् ॥ २९ ॥ विघ्नसङ्घविनाशाय दक्षिणद्वारसंस्थितः ॥ सिन्दूरपुष्पमालाभिः पूजितो गणनायकः ॥ ३० ॥ पूजितो वकुलस्वामी सूर्यः सर्वार्थसाधकः ॥ आदराच्च महाशक्तिः श्रीमाता पूजिता तथा ॥ ३१ ॥ शान्तां चैव नमस्कृत्य ज्ञानजां गोत्रमातरम् ॥ गमने नोद्यमानास्ते परं हर्षमुपाययुः ॥ ३२ ॥ चातुर्विद्या द्विजाश्चैव पुनरामन्त्र्य तान्प्रति ॥ पप्रच्छुश्च मुहुः सर्वे समागमनकारणम् ॥ ३३ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ न गन्तव्यं भवद्भिर्वै गत्वा वाऽऽयान्तु सत्वराः ॥ ३४ ॥ यथा रामप्रदत्तं हि उपकल्पयसेऽचिरात् ॥ श्रुत्वा पुनरथोचुस्ते चातुर्विद्या द्विजोत्तमाः ॥ ३५ ॥ न स्थानेन द्विजैर्वापि न च वृत्त्या कथंचन ॥ वयं

श्रीमाता महाशक्ति को पूजन किया ॥ ३१ ॥ और शान्ता व ज्ञानजा गोत्रमाता को प्रणामकर गमन के लिये प्रेरित वे बड़े हर्ष को प्राप्त हुए ॥ ३२ ॥ फिर चातुर्विद्य ब्राह्मणों ने उनको बुलाकर सब आनेके कारण को पूंछा ॥ ३३ ॥ ब्राह्मण लोग बोले कि आप लोगों को जाना न चाहिये या जाकर शीघ्रही आइयेगा ॥ ३४ ॥ और रामजीने जैसी आज्ञा दियाहै वैसाही शीघ्रही कीजियेगा यह सुनकर फिर उन चातुर्विद्य ब्राह्मणों ने कहा ॥ ३५ ॥ कि स्थान से व ब्राह्मणों से और जीविका से किसी प्रकार

हम लोग न आवैंगे और फिर न कहना चाहिये ॥ ३६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! रघुनायकजीने हम सबों को जो जीविका दिया है उस जीविका को हम लोग जप, होम व पूजनादिकों से प्राप्त होवैंगे ॥ ३७ ॥ फिर उन पंद्रह हज़ार ब्राह्मणोंने उनसे आदर से कहा कि अग्निकी सेवा में तत्पर हम सबों को यहां टिकना चाहिये ॥ ३८ ॥ सबोंके कार्य की सिद्धि के लिये तुम लोगों को वहां जाना चाहिये और आपस में सब सहायवाले हम लोग जीविका को प्राप्त होवैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३९ ॥ और अपने वचनको छोड़नेवाले तुम लोग जीविका से रहित होवोगे तदनन्तर उनके मध्य में किसी चातुर्विद्य ब्राह्मण ने कहा ॥ ४० ॥ चातुर्विद्य बोला कि हे ब्राह्मणो ! श्रीरामजी

नैवागमिष्यामः कथनीयं न वै पुनः ॥ ३६ ॥ रघूद्वहेन दत्ता वै वृत्तिर्नो द्विजसत्तमाः ॥ तां वृत्तिं प्रति यास्यामो जप होमार्चनादिभिः ॥ ३७ ॥ ते पञ्चदशसाहस्राः पुनस्तानूचुरादरात् ॥ अस्माभिरत्र स्थातव्यमग्निसेवार्थतत्परैः ॥ ३८ ॥ युष्माभिस्तत्र गन्तव्यं सर्वेषां कार्यसिद्धये ॥ अन्योन्यं सर्वसाहाया वृत्तिं याम न संशयः ॥ ३९ ॥ त्यक्तस्वकीयवचना वृत्तिहीना भविष्यथ ॥ ततस्तन्मध्यतः कश्चिचातुर्विद्य उवाच ह ॥ ४० ॥ चातुर्विद्य उवाच ॥ पूर्वं हि वृत्तिमस्माकं रामो वै दत्तवान्द्विजाः ॥ चातुर्विद्या महासत्त्वाः स्वधर्मप्रतिपालकाः ॥ ४१ ॥ याजनाध्ययनायुक्ताः काजेशेन विनिर्मिताः ॥ दानं दत्त्वा तु रामेण उक्तं हि भवतां पुनः ॥ ४२ ॥ स्थानं त्यक्त्वा न गन्तव्यमित्थं हि नियमः कृतः ॥ आपत्काले तु स्मर्तव्यो वायुपुत्रो महाबलः ॥ ४३ ॥ इति रामेण पूर्वं हि स्वे स्थाने स्थापितास्तदा ॥ अन्यथा रामवाक्यं तत्कृत्वा गच्छेत्कथं पुनः ॥ ४४ ॥ तस्माद्युष्मान्वयं ब्रूमो गच्छतः कार्यसिद्धये ॥ भवतां कार्यसिद्ध्यर्थं वयं

ने पहले हमलोगों को जीविका दिया है व अपने धर्म के पालक बड़े सत्त्ववाले चातुर्विद्य ब्राह्मण ॥ ४१ ॥ यज्ञ कराने व वेद पाठसे संयुत ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से बनाये गये और श्रीरामजीने आप लोगों को दान देकर फिर कहा ॥ ४२ ॥ कि स्थान को छोड़कर जाना न चाहिये ऐसा नियम किया गया और विपत्ति समय में बड़े बल पवनकुमार को स्मरण करना चाहिये ॥ ४३ ॥ उस समय इस प्रकार श्रीरामजी ने पहले अपने स्थान में स्थापित किया और उस रामजी के वचन को अन्यथा क फिर कैसे जावै ॥ ४४ ॥ उसी कारण हमलोग कार्य की सिद्धि के लिये जाते हुए तुमलोगों से कहते है कि आपलोगों की कार्यसिद्धि के लिये हमलोग होम व पू

दिकोंसे प्राप्त हैं ॥ ४५ ॥ और शीघ्रही कार्य की सिद्धि है यह सत्य सत्य है इसमें सन्देह नहीं है इस वचनको सुनकर तदनन्तर उन ब्राह्मणों ने गमनके लिये ॥ ४६ ॥ पहले प्रस्थान करके जानेके लिये मनको धारण किया तब तीनहज़ार उत्तम ब्राह्मण वहां से गये ॥ ४७ ॥ और देशसे अन्य देश व वन से अन्य वन को जाकर पूर्वजों को तृप्त करके उन्होंने प्रत्येक तीर्थ में श्राद्ध किया ॥ ४८ ॥ व राम राम और हनुमंत ऐसा ध्यान करते हुए उत्तम आचार व एक बार भोजन करनेवाले वे ब्राह्मण धीरे धीरे गये ॥ ४९ ॥ और सत्य के व्रत में परायण व प्रतिग्रह (दान लेना) छोड़े हुए वे हनुमान्‌जी के दर्शन की इच्छावाले ब्राह्मण दूर मार्गको चलेगये ॥ ५० ॥ और

होमार्चनादिभिः ॥ ४५ ॥ झटिति कार्यसिद्धिः स्यात्सत्यं सत्यं न संशयः ॥ इति वाक्यं ततः श्रुत्वा ते द्विजा गमनं प्रति ॥ ४६ ॥ प्रस्थानं च विधायादौ गमनाय मनो दधुः ॥ त्रिसाहस्रास्तदा तस्मात्प्रस्थिता द्विजसत्तमाः ॥ ४७ ॥ देशाद्देशान्तरं गत्वा वनाच्चैव वनान्तरम् ॥ तीर्थेतीर्थे कृतश्राद्धाः सुसन्तर्पितपूर्वजाः ॥ ४८ ॥ ध्यायन्तो रामरामेति हनुमन्तेति वै पुनः ॥ एकाशनाः सदाचारा द्विजा जग्मुः शनैःशनैः ॥ ४९ ॥ त्यक्तप्रतिग्रहाः शान्ताः सत्यव्रतपरायणाः ॥ ते गता दूरमध्वानं हनुमद्दर्शनार्थिनः ॥ ५० ॥ सन्ध्यामुपासते नित्यं त्रिकालं चैकमानसाः ॥ एवं तु गच्छतां तेषां शकुना अभवञ्छुभाः ॥ ५१ ॥ एवं तु गच्छतां तेषां पाथेयं त्रुटितं तदा ॥ श्रान्ता ग्लानिं गताः सर्वे पदं परममास्थिताः ॥ ५२ ॥ क्रमित्वा कियतीं भूमिं पदं गन्तुं न तु क्षमाः ॥ मनसा निश्चयं कृत्वा दृढीकृत्य स्वमानसम् ॥ ५३ ॥ हनूमन्तमदृष्ट्वैव न यास्यामो वयं गृहान् ॥ त्रैविद्यास्तु गतास्तत्र यत्र रामेश्वरो हरिः ॥ ५४ ॥

सावधान मनवाले वे नित्य त्रिकाल संध्योपासन करते थे इस प्रकार जाते हुए उन को उत्तम शकुन हुए ॥ ५१ ॥ और इस प्रकार जाते हुए उनका मार्गव्यय चुक गया तब बडे स्थान में प्राप्त वे सब थकगये और बड़े उदासीन होगये ॥ ५२ ॥ और कितनी पृथ्वी को नॉघकर पगभर चलने के लिये न समर्थ हुए तब मनसे निश्चय कर व अपने मन को दृढ़ करके ॥ ५३ ॥ कि हनुमान्‌जी को न देखकर हम लोग घरको न जावैंगे और वे त्रैविद्य ब्राह्मण वहां गये जहां कि रामेश्वर हरि थे ॥ ५४ ॥

और दृढ़व्रत व सत्य में परायण तथा कन्द, मूल व फलों को खानेवाले वे राम राम व हनूमंत ऐसा ध्यान करते हुए ॥ ५५ ॥ वे नियम को ग्रहणकर और अन्न व जल को छोड़कर प्यास से विकल व क्षुधा से व्याकुल व्रतमें परायण वे गये ॥ ५६ ॥ इस प्रकार दुःखित ब्राह्मणों के भक्तिपात्र श्रीरामजी उचाट मन होकर हनुमान्जी से बोले ॥ ५७ ॥ कि हे पवनकुमार ! धर्म को जाननेवाले तुम ब्राह्मणों के लिये शीघ्रही जावो क्योंकि धर्मारण्य में बसनेवाले सब ब्राह्मण दुःखित होतेहैं ॥ ५८ ॥ और मेरा मन जलता है अन्यथा मेरी शांति न होगी व ब्राह्मणों को दुःख करनेवाला दण्ड देने योग्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५९ ॥ हे कपे ! जिससे ब्राह्मण दुःखित

दृढव्रताः सत्यपराः कन्दमूलफलाशनाः ॥ ध्यायन्तो रामरामेति हनूमन्तेति वै पुनः ॥ ५५ ॥ गृहीत्वा नियमं तेऽपि त्यक्त्वा चान्नं तथोदकम् ॥ तृषार्ताश्च क्षुधार्त्ताश्च ययुर्व्रतपरायणाः ॥ ५६ ॥ एवं तु क्लिश्यमानानां द्विजानां भक्तिभाजनः ॥ उद्विग्नमानसो रामो हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ ५७ ॥ शीघ्रं गच्छ द्विजार्थे त्वं पवनात्मज धर्मवित् ॥ क्लिश्यन्ते वाडवाः सर्वे धर्मारण्यनिवासिनः ॥ ५८ ॥ दह्यते मानसं मेऽद्य नान्यथा शान्तिरस्ति मे ॥ विप्राणां दुःखकर्त्ता च शास्तव्यो नात्र संशयः ॥ ५९ ॥ येन वै दुःखिता विप्रास्तेनाहं दुःखितः कपे ॥ याहि शीघ्रं हि मां त्यक्त्वा विप्राणां परिपालने ॥ ६० ॥ रामस्य वचनं श्रुत्वा नमस्कृत्य च राघवम् ॥ कृपया परयाविष्टः प्रादुरासीद्धरीश्वरः ॥ ६१ ॥ वृद्धब्राह्मणरूपेण परीक्षार्थं द्विजन्मनाम् ॥ उवाच परया भक्त्या ब्राह्मणाञ्छ्रमदुर्बलान् ॥ ६२ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा करान्मुक्त्वा कमण्डलुम् ॥ सर्वान्प्रत्यभिवाद्याथ वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ६३ ॥ कुतः स्थानादिह प्राप्ता गन्तु

हैं उसी से मैं दुःखित हूं तुम मुझ को छोड़कर शीघ्रही ब्राह्मणों के पालन के लिये जाइये ॥ ६० ॥ श्रीरामजी का वचन सुनकर व श्रीरघुनाथजी को प्रणामकर बड़ी दया से संयुत कपीश्वर हनुमान्जी ब्राह्मणों की परीक्षा के लिये बूढ़े ब्राह्मण के रूप से प्रकटहुए और परिश्रम से दुर्बल ब्राह्मणों से बड़ी भक्ति से बोले ॥ ६१ । ६२ ॥ हाथ से कमंडलु को छोड़कर व हाथों को जोड़कर हनुमान्जी सबों को प्रणामकर इसके उपरान्त यह वचन बोले ॥ ६३ ॥ कि आप लोग किस स्थान से यहां प्राप्त

हुए हो और कहां को जाने की इच्छा करतेहो व किस लिये आप लोग भयंकर वन में जातेहो ॥ ६४ ॥ ब्राह्मण बोले कि हम लोग ब्राह्मण अपना दुःख कहने के लिये धर्मारण्य से आये हैं और हमलोग श्रीरामजी के दर्शन के लिये सब कामनाओं को देनेवाले सेतुबंध महातीर्थ को जानेकी इच्छा करते हैं और नियममें स्थित व दुर्बल शरीरवाले हमलोग श्रीरामजी को देखने के लिये उत्कंठित हैं ॥ ६५ । ६६ ॥ जहां कि रामेश्वरदेव व साक्षात् पवनकुमार वानर (हनुमान्जी) हैं उसको सुनकर उस ब्राह्मण ने कहा कि श्रीरामजी कहां हैं व हनुमान्जी कहां हैं ॥ ६७ ॥ व हे ब्राह्मणो ! दूर से भी अधिक दूर सेतुबंध रामेशजी कहां हैं और व्याघ्रों व सिंहों

कामाश्च वै कुतः ॥ किमर्थं वै भवद्भिश्च गम्यते दारुणं वनम् ॥ ६४ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ धर्मारण्यात्समायाता निजदुःखं निवेदितुम् ॥ रामस्य दर्शनार्थं हि गन्तुकामा वयं द्विजाः ॥ ६५ ॥ सेतुबन्धं महातीर्थं सर्वकामप्रदायकम् ॥ नियमस्थाः क्षीणदेहा रामं द्रष्टुं समुत्सुकाः ॥ ६६ ॥ यत्र रामेश्वरो देवः साक्षाद्वायुसुतः कपिः ॥ तच्छ्रुत्वा स द्विजः प्राह क रामः क च वायुजः ॥ ६७ ॥ क सेतुबन्धरामेशो दूराद्दूरतरो द्विजाः ॥ व्याघ्रसिंहाकुलं चोग्रं वनं घोरतरं महत् ॥६८॥ गत्वा यस्मान्न वर्तन्ते तदुग्रमनुजीविनः ॥ निवर्तध्वं महाभागा यदि कार्यं हि मद्वचः ॥ ६९ ॥ अथवा गम्यतां विप्राश्चिरं जीव सुखी भव ॥ वृद्धस्य वाक्यं तच्छ्रुत्वा वाडवाश्चैकमानसाः ॥ ७० ॥ विप्र गच्छामहे सर्वे रामपार्श्वमसंशयः ॥ म्रियेत यदि मार्गेऽस्मिन् रामलोकमवाप्नुयात् ॥ ७१ ॥ जीवन्वृत्तिमवाप्नोति रामादेव न संशयः ॥ अन्यथा शरणं नास्ति अस्माकं राघवं विना ॥ ७२ ॥ इत्युक्त्वा निर्गताः सर्वे रामदर्शनतत्पराः ॥ दिनान्तमतिवाह्याथ प्रभाते

से संयुत उग्र वन बड़ा भारी व बहुत भयंकर है ॥ ६८ ॥ व जिस में जाकर जीविकावाले प्राणी नहीं वर्तमान होते हैं वह उग्र वन है हे महाभागो ! यदि मेरा वचन करनाहै तो लौटिये ॥ ६९ ॥ अथवा हे ब्राह्मणो ! जाइये और बहुत दिनोंतक जियो व सुखी होवो वृद्धके उस वचनको सुनकर सावधान मनवाले ब्राह्मणोंने कहा ॥७०॥ कि हे विप्रजी ! हम सब श्रीरामजी के समीप जावेंगे इसमें सन्देह नहीं है यदि इस मार्ग में कोई मरजाता है तो वह श्रीरामजी के लोकको पाता है ॥ ७१ ॥ और जीता हुआ वह श्रीरामहीसे जीविका को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है अन्यथा हमलोगों की श्रीरामजी के विना शरण नहीं है ॥ ७२ ॥ यह कहकर श्रीरामजी के

दर्शन में तत्पर सब लोग चले और दिनके अन्त को व्यतीत कर फिर निर्मल प्रातःकाल होने पर ॥ ७३ ॥ पहले के गुणों से संयुत वे ब्राह्मणरूपी वृद्ध बुद्धिमान् हनुमान्जी ने कमंडलु को धारण कर प्रणाम किया ॥ ७४ ॥ व कहा कि किस स्थान से तुम सब ब्राह्मणलोग यहां प्राप्त हुए हो कहीं बड़ा लाभ है या बड़ा भारी उत्सव है ॥ ७५ ॥ उसके इस वचन को सुनकर ब्राह्मणलोग विस्मय को प्राप्त हुए और प्रणामपूर्वक उन्हों ने आदर समेत विनय कहा ॥ ७६ ॥ कि हे भूमिदेव ! बड़े आश्चर्यकारक हमलोगों के पहले के वृत्तान्त को सुनिये क्योंकि तुम दयालु देख पड़ते हो ॥ ७७ ॥ पहले सृष्टि के प्रारंभ में हमलोगों को विष्णु, शिव व ब्रह्माजी

विमले पुनः ॥ ७३ ॥ हनुमान्ब्रह्मरूपी स वृद्धः पूर्वगुणान्वितः ॥ कमण्डलुधरो धीमानभिवादनतत्परः ॥ ७४ ॥ कुत्र स्थानादिह प्राप्ताः सर्वे यूयं हि वाडवाः ॥ कुत्रास्ति वा महालाभो विवाहोत्सव एव वा ॥ ७५ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा वाडवा विस्मयं गताः ॥ प्रणामपूर्वां विज्ञप्तिं कथयामासुरादृताः ॥ ७६ ॥ अस्माकं तु पुरा वृत्तं महदाश्चर्यकारकम् ॥ भूमिदेव शृणुष्व त्वं दयालुर्दृश्यसे यतः ॥ ७७ ॥ आदौ सृष्टिसमारम्भे स्थापिताः केशवेन च ॥ शिवेन ब्रह्मणा चैव त्रिमूर्तिस्थापिता वयम् ॥ ७८ ॥ श्रीरामेण ततः पश्चाज्जीर्णोद्धारेण स्थापिताः ॥ ग्रामाणां वेतनं दत्तं हरिराजेन चादरात् ॥७९॥ चतुश्चत्वारिंशदधिकचतुःशतमितात्मनाम् ॥ ग्रामास्त्रयोदशार्चार्थं सीतापुरसमन्विताः ॥८०॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि वणिजो द्विजपालने ॥ गोभूजसंज्ञास्ते शूद्रास्तेभ्यः सपादलक्षकाः ॥ ८१ ॥ ते च जातास्त्रिधा तात गोभूजाडालजास्तथा ॥ माण्डलीयास्तथा चैते त्रिविधाश्च मनोरमाः ॥ ८२ ॥ वृत्त्यर्थं तेन दत्ता वै ह्यनर्घ्या

ने स्थापन किया है इससे हमलोग तीनों मूर्तियों से स्थापित हैं ॥ ७८ ॥ तदनन्तर पश्चात् श्रीरामजी ने जीर्णोद्धार से स्थापित किया है और हनुमान्जी ने आदर से ग्रामों को वेतन (नौकरी) दिया है ॥ ७९ ॥ और पूजन के लिये सीतापुर समेत चार सौ चवालीस व तेरह ग्रामों को दिया ॥ ८० ॥ और ब्राह्मणों के पालन में छत्तीस हजार वैश्य दिये गये और उनके लिये सवालाख गोभुजसंज्ञक वे शूद्र दिये गये ॥ ८१ ॥ हे तात ! वे तीन प्रकार के हुए याने गोभुज, अडालज, मांडलीय ये तीनों प्रकार के मनोहर हैं ॥ ८२ ॥ और जीविका के लिये उन्हों ने अमूल्य करोड़ों रत्नों को दिया है तब वे मोढ, गोभूज, मांडलीय और अडालज संज्ञक

हुए ॥ ८३ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इस समय दुर्बुद्धि आम नामक राजा श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा को नहीं मानताहै ॥ ८४ ॥ व उसका दामाद कुमारपालक नामक सदैव पाखंडों से व्याप्त व कलियुग के धर्म से संमत है ॥ ८५ ॥ और बौद्धधर्मवाले इन्द्रसूत्र जैनी ने उसकी प्रेरणा किया व उसने श्रीरामजी के दिये हुए शासन को लुप्त किया है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८६ ॥ और कितेक वैसेही वणिज्लोग उसी मनवाले होगये वे श्रीराम व बड़े बुद्धिमान् हनुमान्जी को मना करते हैं ॥ ८७ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! विना विश्वास के मैं निश्चयकर न दूंगा उसको जानकर ये ब्राह्मण श्रीरामजी की शरण में आये ॥ ८८ ॥ व श्रीरामजी की आज्ञा को पालन करनेवाले

रत्नकोटयः ॥ तदा ते मोढ १८००० गोभूजा १८००० माण्डलीया १२५००० अडालजाः १८००० ॥ ८३ ॥ अधुना वाडवश्रेष्ठ आमोनाम महीपतिः ॥ शासनं रामचन्द्रस्य न मानयति दुर्मतिः ॥ ८४ ॥ जामाता तस्य दुष्टो वै नाम्ना कुमारपालकः ॥ पाखण्डैर्वेष्टितो नित्यं कलिधर्मेणसंमतः ॥ ८५ ॥ इन्द्रसूत्रेण जैनेन प्रेरितो बौद्धधर्मिणा ॥ शासनं तेन लुप्तं हि रामदत्तं न संशयः ॥ ८६ ॥ वणिजस्तादृशाः केऽपि तन्मनस्का बभूविरे ॥ निषेधयन्ति रामं ते हनुमन्तं महामतिम् ॥ ८७ ॥ प्रत्ययं तु विना विप्रा न दास्यामीति निश्चितम् ॥ तं ज्ञात्वा तु इमे विप्रा रामं शरणमाययुः ॥ ८८ ॥ हनुमन्तं महावीरं रामशासनपालकम् ॥ तस्माद्गच्छामहे सर्वे रामं प्रति महामते ॥ ८९ ॥ आञ्जनेयो यदस्माकं न दास्यति समीहितम् ॥ अनाहारव्रतेनैव प्राणांस्त्यक्ष्यामहे वयम् ॥ ९० ॥ अस्माभिस्ते विशेषेण कथितं परिपृच्छितम् ॥ स्नेहभावं विचिन्त्याशु निजवृत्तिं प्रकाशय ॥ ९१ ॥ हनुमानुवाच ॥ प्राप्ते कलियुगे

महावीर हनुमान्जी की शरण में आये उसी कारण हे महामते ! हम सब श्रीरामजी के समीप जाते हैं ॥ ८९ ॥ और यदि हनुमान्जी हमलोगों को मनोरथ न देवैंगे तो हम सब निराहार व्रत से प्राणों को छोड़देवैंगे ॥ ९० ॥ हमलोगों ने तुम से विशेष कर पूंछे हुए वृत्तान्त को कहा तुम स्नेह के भाव को विचारकर शीघ्रही अपनी वृत्ति को प्रकाशित करो ॥ ९१ ॥ हनुमान्जी बोले कि हे ब्राह्मणो ! कलियुग प्राप्त होने पर कहां देवदर्शन होगा हे द्विजेन्द्रो ! यदि बहुत सुख चाहते हो तो

लौट आइये ॥ ६२ ॥ क्योंकि व्याघ्रों व सिंहों से पूर्ण तथा वन के हाथियों से आश्रित व बहुत से वनाग्नियों से संयुत शून्य वन में प्रवेश नहीं किया जा सक्ता है ॥ ६३ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे विप्र ! दिन बीतने पर आपने इस एक वृत्तान्त को कहा और तुम आजही आकर तुम ऐसा कहते हो ॥ ६४ ॥ विप्र के रूप से तुम कौन हो श्रीराम हो व हनुमान्जी हो हे महाद्विज ! दया करके हमलोगों से सत्य कहिये ॥ ६५ ॥ हनुमान्जी ने जो गुप्त था उसको ब्राह्मणों के आगे कहा कि हे ब्राह्मणो ! मैं हनुमान्जी हूं ऐसा निश्चयकर तुमलोग मुझ को जानो ॥ ६६ ॥ और स्वरूप को प्रकटकर बड़े भारी लांगूल (पुच्छ) को दिखाते हुए ॥ ६७ ॥ हनुमान्जी बोले

विप्राः क्व देवदर्शनं भवेत् ॥ निवर्त्तध्वं हि विप्रेन्द्रा यदीच्छथ सुखं महत् ॥ ९२ ॥ व्याघ्रसिंहाकुले शून्ये वने वनगजाश्रिते ॥ बहुदावसमाविष्टे प्रवेष्टुं नैव शक्यते ॥ ९३ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ अतीते दिवसे विप्र एकं कथितवानिदम् ॥ अद्यैव त्वं समागम्य एवमेव प्रभाषसे ॥ ९४ ॥ कस्त्वं वाडवरूपेण रामो वाप्यथ वायुजः ॥ सत्यं कथय न स्वास्मिन्दयां कृत्वा महाद्विज ॥ ९५ ॥ हनुमान्कथयामास गोपितं यद्द्विजाग्रतः ॥ हनुमानित्यहं विप्रा बुध्यध्वं निश्चिता हि माम् ॥९६॥ स्वरूपं प्रकटीकृत्य लाङ्गूलं दर्शयन्महत् ॥ ९७ ॥ हनुमानुवाच ॥ अयमम्भोनिधिः साक्षात्सेतुबन्धो मनोरमः ॥ अयं रामेश्वरो देवो गर्भवासविनाशकृत् ॥ ९८ ॥ इयं तु नगरी श्रेष्ठा लङ्कानामेति विश्रुता ॥ यत्र सीता मया प्राप्ता रामशोकापहारिणी ॥ ९९ ॥ तर्जन्यग्रे द्विजश्रेष्ठा अगम्या मां विना परैः ॥ सा सुवर्णमयी भाति यस्यां राज्ये विभीषणः ॥ २०० ॥ स्थापितो रामदेवेन सेयं लङ्का महापुरी ॥ नियमस्थैः साधुवृन्दैस्तीर्थयात्राप्रसङ्गतः ॥ १ ॥ आनीय

कि यह साक्षात् समुद्र है व सुन्दर सेतुबंध है और गर्भवास को विनाशनेवाले ये रामेश्वर देवजी हैं ॥ ६८ ॥ और लंका नाम ऐसी प्रसिद्ध यह उत्तम नगरी है जहां कि श्रीरामजी के शोक को हरनेवाली सीताजी को मैंने पाया था ॥ ६६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! तर्जनी अंगुली के आगे यह पुरी मुझ को छोड़कर अन्यलोगों से जाने योग्य नहीं है और वह लंकापुरी सुवर्णमयी शोभित है व जिसमें राज्य पै विभीषणजी को ॥ २०० ॥ श्रीराम देवजी ने स्थापित किया है वही यह लंका महापुरी है और नियम में स्थित साधुगणों से तीर्थयात्रा के प्रसंग से ॥ १ ॥ श्रीगंगाजी का जल मंगाकर रामेश्वरजी को अभिषेक करके ये बड़े भाग्यवान् समुद्र के मध्य में डाले

हुए देख पड़ते हैं ॥ २ ॥ उस से वे दृढ़ नियमोंवाले साधुलोग पापरहित होगये पुण्य के उदय में निश्चय कर वृद्धि होती है व पाप में न्यूनता होती है ॥ ३ ॥ पहले चातुर्विद्य ब्राह्मणलोग स्थान से भ्रष्ट किये गये फिर श्रीरामजी से जीर्णोद्धार से स्थापित किये गये हे ब्राह्मणो ! पूर्व जन्म में मैंने विष्णुजी का पूजन किया है ॥ ४ ॥ व इस समय आपलोगों के निश्चल भक्ति देखपड़ती है उस पुण्य के प्रभाव से प्रसन्न होकर मैं तुमलोगों को वर दूंगा ॥ ५ ॥ और पृथ्वी में मैं धन्य हूं व कृतार्थ हूं और उत्तम भाग्यवान् हूं व आज मेरा जन्म सफल होगया व जीवन भलीभांति जीवित हुआ ॥ ६ ॥ जो कि मैंने ब्राह्मणों के चरणों के समीप को

गङ्गासलिलं रामेशमभिषिच्य च ॥ क्षिप्ता एते महाभागा दृश्यन्ते सागरान्तरे ॥ २ ॥ निष्पापास्तेन संजाताः साधवस्ते दृढव्रताः ॥ नूनं पुण्योदये वृद्धिः पापे हानिश्च जायते ॥ ३ ॥ स्थानभ्रष्टाः कृताः पूर्वं चातुर्विद्या द्विजातयः ॥ जीर्णोद्धारेण रामेण स्थापिताः पुनरेव हि ॥ पूर्वजन्मनि भो विप्रा हरिपूजा कृता मया ॥ ४ ॥ साम्प्रतं निश्चला भक्तिर्भवत्स्वेव हि दृश्यते ॥ तेन पुण्यप्रभावेण तुष्टो दास्यामि वो वरम् ॥ ५ ॥ धन्योहं कृतकृत्योहं सुभाग्योहं धरातले ॥ अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ॥ ६ ॥ यदहं ब्राह्मणानां च प्राप्तवांश्चरणान्तिकम् ॥ ७ ॥ व्यास उवाच ॥ दृष्ट्वैव हनुमन्तं ते पुलकाङ्कितविग्रहाः ॥ सगद्गदमथोचुस्ते वाक्यं वाक्यविशारदाः ॥ २०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येहनुमत्समागमोनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥

व्यास उवाच ॥ ततस्ते ब्राह्मणाः सर्वे प्रत्यूचुः पवनात्मजम् ॥ अधुना सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ॥ १ ॥ अद्य नो

पाया ॥ ७ ॥ व्यासजी बोले कि इस प्रकार हनुमान्जी को देखकर रोमांचित शरीरवाले उन वाक्य में चतुर ब्राह्मणों ने गद्गद समेत वचन को कहा ॥ २०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहनुमत्समागमोनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । धर्मारण्य क्षेत्र को पुनि आये जिमि विप्र । सैंतिसवें अध्याय में सोई सुभग चरित्र ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर उन सब ब्राह्मणों ने हनुमान्जी से कहा कि इस समय हम सबों का जन्म सफल होगया व जीवित सुजीवित हुआ ॥ १ ॥ और आज हम सब मोढलोगों का धर्म व घर धन्य हैं और सब पृथ्वी धन्य है

जहां कि अनेक प्रकार के धर्म हैं ॥ २ ॥ श्रीरामजी के भक्त और अक्षकुमार को नाशनेवाले के लिये प्रणाम है और राक्षसों की पुरी को जलानेवाले तथा वज्र को धारनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ३ ॥ और जानकीजी के हृदय की रक्षा करनेवाले दयात्मक के लिये तथा सीताजी के विरह से संतप्त श्रीरामजी के प्यारे हनुमान्‌जी के लिये प्रणाम है ॥ ४ ॥ हे महावीर ! तुम्हारे लिये प्रणाम है पृथ्वी में डूबते हुए हमलोगों की रक्षा कीजिये व ब्राह्मण देवजी के लिये प्रणाम है और पवन के पुत्र आप के लिये प्रणाम है ॥ ५ ॥ व श्रीरामजी के भक्त तथा गऊ व ब्राह्मणों का हित करनेवाले के लिये प्रणाम है और रुद्ररूपी व कृष्णमुखवाले आप के लिये प्रणाम

मोढलोकानां धन्यो धर्मश्च वै गृहाः ॥ धन्या च सकला पृथ्वी यत्र धर्मा ह्यनेकशः ॥ २ ॥ नमः श्रीरामभक्ताय अक्षविध्वंसनाय च ॥ नमो रक्षःपुरीदाहकारिणे वज्रधारिणे ॥ ३ ॥ जानकीहृदयत्राणकारिणे करुणात्मने ॥ सीताविरहतप्तस्य श्रीरामस्य प्रियाय च ॥ ४ ॥ नमोऽस्तु ते महावीर रक्षास्मान्मज्जतः क्षितौ ॥ नमो ब्राह्मणदेवाय वायुपुत्राय ते नमः ॥ ५ ॥ नमोऽस्तु रामभक्ताय गोब्राह्मणहिताय च ॥ नमोस्तु रुद्ररूपाय कृष्णवक्राय ते नमः ॥ ६ ॥ अञ्जनीसूनवे नित्यं सर्वव्याधिहराय च ॥ नागयज्ञोपवीताय प्रबलाय नमोऽस्तु ते ॥ ७ ॥ स्वयं समुद्रतीर्णाय सेतुबन्धनकारिणे ॥ ८ ॥ व्यास उवाच ॥ स्तोत्रेणैवामुना तुष्टो वायुपुत्रोऽब्रवीद्वचः ॥ वृणुध्वं हि वरं विप्रा यद्वोमनसि रोचते ॥ ९ ॥ विप्रा ऊचुः ॥ यदि तुष्टोऽसि देवेश रामाज्ञापालक प्रभो ॥ स्वरूपं दर्शयस्वाद्य लङ्कायां यत्कृतं हरे ॥ १० ॥ तथा विध्वंसयाद्य त्वं राजानं पापकारिणम् ॥ दुष्टं कुमारपालं हि आमं चैव न सं

है ॥ ६ ॥ व अंजनीकुमार के लिये तथा सदैव सब रोगों को हरनेवाले के लिये प्रणाम है व सर्पों का जनेऊ पहने और प्रबल आप के लिये प्रणाम है ॥ ७ ॥ और आपही समुद्र को नाँघनेवाले व सेतु को बाँधनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ ८ ॥ व्यासजी बोले कि इस स्तोत्र से प्रसन्न पवनकुमार ने यह वचन कहा कि हे ब्राह्मणो ! तुमलोगों के मन में जो रुचता हो उस वर को मांगिये ॥ ९ ॥ ब्राह्मणलोग बोले कि हे श्रीरामजी की आज्ञा को पालन करनेवाले, देवेश, प्रभो, हरे ! यदि तुम प्रसन्न हो तो तुमने लंका में विध्वंस करने के लिये जिस रूप को दिखाया था उसको वैसेही आज तुम पापकारी व दुष्ट कुमारपाल और आम राजा को निस्सन्देह दिखलाइये

व उसको इस समय नाश कीजिये ॥ १० । ११ ॥ और जिस प्रकार वह जीविका के लोप के फल को इसी क्षण पावै तुम वैसाही करो व हे महाबाहो ! विश्वास के लिये हमलोगों को कुछ चिह्न दीजिये ॥ १२ ॥ कि जिस चिह्न के देने से वह राजा पुण्यभागी होवै और विश्वास दिखलाने पर वह शासन को पालैगा ॥ १३ ॥ और वेदत्रयी का धर्म विस्तार को प्राप्त करावैगा हे धर्मधीर, महावीर ! हमलोगों को स्वरूप को दिखलाइये ॥ १४ ॥ हनुमान्जी बोले कि हे ब्राह्मणो ! बड़े शरीरवाला व तेजपुंजमय मेरा दिव्यस्वरूप कलियुग में नेत्रों के सामने प्राप्त होने योग्य नहीं है आपलोग ऐसा जानिये ॥ १५ ॥ तथापि मैं बड़ी भक्ति व स्तोत्रादिकों से प्रसन्न

शयः ॥ ११ ॥ वृत्तिलोपफलं सद्यः प्राप्नुयात्त्वं तथा कुरु ॥ प्रतीत्यर्थं महाबाहो किञ्चिच्चिह्नं ददस्व नः ॥ १२ ॥ येन चिह्ने न दत्तेन स राजा पुण्यभाग्भवेत् ॥ प्रत्यये दर्शिते वीर शासनं पालयिष्यति ॥ १३ ॥ त्रयीधर्म्मः पृथिव्यां तु विस्तारं प्रापयिष्यति ॥ धर्मधीर महावीर स्वरूपं दर्शयस्व नः ॥ १४ ॥ हनुमानुवाच ॥ मत्स्वरूपं महाकायं न चक्षुर्विषयं कलौ ॥ तेजोराशिमयं दिव्यमिति जानन्तु वाडवाः ॥ १५ ॥ तथापि परया भक्त्या प्रसन्नोऽहं स्तवादिभिः ॥ वसनान्तरितं रूपं दर्शयिष्यामि पश्यत ॥ १६ ॥ एवमुक्तास्तदा विप्राः सर्वकार्यसमुत्सुकाः ॥ महारूपं महाकायं महापुच्छसमाकुलम् ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा दिव्यस्वरूपं तं हनुमन्तं जहर्षिरे ॥ कथंचिद्धैर्यमालम्ब्य विप्राः प्रोचुः शनैः शनैः ॥ १८ ॥ यथोक्तं तु पुराणेषु तत्तथैव हि दृश्यते ॥ उवाच स हि तान्सर्वांश्चक्षुः प्रच्छाद्य संस्थितान् ॥ १९ ॥ फलानीमानि गृह्णीध्वं भक्षणार्थं मृषीश्वराः ॥ एभिस्तु भक्षितैर्विप्रा ह्यतितृप्तिर्भविष्यति ॥ २० ॥ धर्मारण्यं विना चाद्य क्षुधा वः शाम्यति ध्रुवम् ॥ २१ ॥

हूं इस से वस्त्र से आच्छादितरूप को दिखलाता हूं देखिये ॥ १६ ॥ तब ऐसा कहे हुए सब कार्यों में उत्कंठित ब्राह्मण बड़ी भारी पूंछ से संयुत और बड़े शरीरवाले महारूप ॥ १७ ॥ व दिव्य स्वरूपवाले उन हनुमान्जी को देखकर प्रसन्नहुए और किसी प्रकार धीरज धरकर ब्राह्मणलोग धीरे धीरे बोले ॥ १८ ॥ कि पुराणों में जैसा कहा है वह वैसाही देख पड़ता है उन हनुमान्जी ने नेत्रों को मूंदकर स्थित उन सब ब्राह्मणों से कहा ॥ १९ ॥ कि हे ऋषीश्वरो ! खाने के लिये इन फलों को लीजिये हे ब्राह्मणो ! इन के खाने से बडी तृप्ति होगी ॥ २० ॥ और बिन धर्मारण्य के आज तुमलोगों की क्षुधा निश्चयकर शांत होजावैगी ॥ २१ ॥

व्यासजी बोले कि उस समय क्षुधा से संयुत ब्राह्मणोंने फलों का भक्षण किया और अमृत भोजनके समान उनकी तृप्ति हुई ॥ २२ ॥ हे राजन् ! न प्यास और न क्षुधा रही वरन यकायक वे ब्राह्मण प्रसन्न मन व विस्मय से संयुत चित्तवाले हुए ॥ २३ ॥ तदनन्तर हनुमान्जी बोले कि हे ब्राह्मणो ! कलियुग प्राप्त होने पर मैं रामेश्वर शिवजी को छोड़कर यहां न आऊंगा ॥ २४ ॥ मुझ से दिये हुए चिह्न को लेकर तुम वहां जावो तो उस राजा को यह सत्य प्रतीत होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ यह कहकर भुजा को उठाकर दोनों भुजाओं के अलग अलग रोमों को लेकर दो पोटली किया ॥ २६ ॥ और भूर्जपत्र से लपेटकर उन दोनों को ब्राह्मण की बगल

व्यास उवाच ॥ क्षुधाक्रान्तैस्तदा विप्रैः कृतं वै फलभक्षणम् ॥ अमृतप्राशनमिव तृप्तिस्तेषामजायत ॥ २२ ॥ न तृषा नैव क्षुच्चैव विप्राः संहृष्टमानसाः ॥ अभवन्सहसा राजन्विस्मयाविष्टचेतसः ॥ २३ ॥ ततः प्राहाञ्जनीपुत्रः सम्प्राप्ते हि कलौ द्विजाः ॥ नागमिष्याम्यहं तत्र मुक्त्वा रामेश्वरं शिवम् ॥ २४ ॥ अभिज्ञानं मया दत्तं गृहीत्वा तत्र गच्छत ॥ तथ्यमेतत्प्रतीयेत तस्य राज्ञो न संशयः ॥ २५ ॥ इत्युक्त्वा बाहुमुद्धृत्य भुजयोरुभयोरपि ॥ पृथग्रोमाणि संगृह्य चकार पुटिकाद्वयम् ॥ २६ ॥ भूर्जपत्रेण संवेष्ट्य ते अदाद्द्विप्रकक्षयोः ॥ वामे तु वामकक्षोत्थां दक्षिणोत्थां तु दक्षिणे ॥ २७ ॥ कामदां रामभक्तस्य अन्येषां क्षयकारिणीम् ॥ उवाच च यदा राजा ब्रूते चिह्नं प्रदीयताम् ॥ २८ ॥ तदा प्रदीयतां शीघ्रं वामकक्षोद्भवा पुटी ॥ अथवा तस्य राज्ञस्तु द्वारे तु पुटिकां क्षिप ॥ २९ ॥ ज्वालयति च तत्सैन्यं गृहं कोशं तथैव च ॥ महिष्यः पुत्रकाः सर्वे ज्वलमानं भविष्यति ॥ ३० ॥ यदा तु वृत्तिं ग्रामांश्च वणि

में देदिया याने बायें बगल से रचित पोटली को बाईं बगल में व दाहिने बगल से उत्पन्न पोटली को दाहिनी बगल में दिया ॥ २७ ॥ जो कि श्रीरामजी के भक्त को मनोरथ को देनेवाली व अन्यलोगों का नाश करनेवाली थी और यह कहा कि जब राजा कहै कि चिह्न को दीजिये ॥ २८ ॥ तब शीघ्रही बायें बगल में उपजी हुई पोटली को दीजियेगा अथवा उस राजा के द्वार पै पोटली को फेंक दीजियेगा ॥ २९ ॥ तो वह उसकी सेना, घर व कोश (खज़ाना) को जलावैगी और स्त्रियां व पुत्र सब जल जावैगा ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! जब जीविका, ग्राम व वणिजों की बलि और जो कुछ पहले स्थित था उस उस वस्तु को

देवैगा ॥ ३१ ॥ याने लिखकर व निश्चयकर वह राजा जब पहले की नाईं देदेवै और हाथों को जोड़कर प्रणाम करै ॥ ३२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! तब श्रीरामजी से पहले दीहुई जीविका को पाकर तदनन्तर दाहिनी बगल में स्थित बालों की इस पोटली को ॥ ३३ ॥ फेंक दीजियेगा तब पहले की नाईं सेना होजावैगी और घर, ख़ज़ाना व पुत्र, पौत्रादिक ॥ ३४ ॥ अग्नि से छोड़े हुए वे उसी क्षण देख पड़ैंगे हनुमान्जी से कहे हुए अमृत के समान उत्तम वचन को सुनकर ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणों ने हर्ष को पाया, और नृत्य किया व बहुत गरजनेलगे और कोई जय कहनेलगे व परस्पर हँसनेलगे ॥ ३६ ॥ व सब शरीर में रोमांच संयुत वे बार २ स्तुति करनेलगे और कितेक

जां च बलिं तथा ॥ पूर्वं स्थितं तु यत्किञ्चित्तत्तद्दास्यति वाडवाः ॥ ३१ ॥ लिखित्वा निश्चयं कृत्वाप्यथ दद्यात्स पूर्ववत् ॥ करसम्पुटकं कृत्वा प्रणमेच्च यदा नृपः ॥ ३२ ॥ सम्प्राप्य च पुरावृत्तिं रामदत्तां द्विजोत्तमाः ॥ ततो दक्षिणकक्षास्थकेशानां पुटिका त्वियम् ॥ ३३ ॥ प्रक्षिप्यतां तदा सैन्यं पुरावच्च भविष्यति ॥ गृहाणि च तथा कोशः पुत्रपौत्रादयस्तथा ॥ ३४ ॥ वह्निना मुच्यमानास्ते दृश्यन्ते तत्क्षणादिति ॥ श्रुत्वाऽमृतमयं वाक्यं वायुजेनोदितं परम् ॥ ३५ ॥ अलभन्त मुदं विप्रा ननृतुः प्रजगुर्भृशम् ॥ जयं चोदैरयन्केऽपि प्रहसन्ति परस्परम् ॥ ३६ ॥ पुलकाङ्कितसर्वाङ्गाः स्तुवन्ति च मुहुर्मुहुः ॥ पुच्छं तस्य च संगृह्य चुचुम्बुः केचिदुत्सुकाः ॥ ३७ ॥ ब्रूतेऽन्यो मम यत्नेन कार्यं नियतमेव हि ॥ अन्यो ब्रूते महाभाग मयेदं कृतमित्युत ॥ ३८ ॥ ततः प्रोवाच हनुमांस्त्रिरात्रं स्थीयतामिह ॥ रामतीर्थस्य च फलं यथा प्राप्स्यथ वाडवाः ॥ ३९ ॥ तथेत्युक्त्वाथ ते विप्रा ब्रह्मयज्ञं प्रचक्रिरे ॥ ब्रह्मघोषेण महता तद्वनं बधिरं कृतम् ॥ ४० ॥

हर्षित ब्राह्मणलोग उन हनुमान्जी की पूंछ को पकड़कर चूमनेलगे ॥ ३७ ॥ व अन्य कोई कहनेलगा कि मेरे उपाय से कार्य निश्चयकर होगया और कोई अन्य कहता था कि हे महाभाग ! मैंने इसको किया है ॥ ३८ ॥ तदनन्तर हनुमान्जी ने कहा कि हे ब्राह्मणो ! आपलोग यहां तीन रात्रि तक टिकिये कि जिस प्रकार श्रीरामतीर्थ का फल पाइयेगा ॥ ३९ ॥ बहुत अच्छा यह कहकर उन ब्राह्मणों ने ब्रह्मयज्ञ किया और बड़ी भारी वेदध्वनि से वह वन बहरा करदिया गया ॥ ४० ॥

रात्रि तक टिककर जाने की बुद्धि करके उन ब्राह्मणों ने रात्रि में हनुमान्‌जी के आगे उत्तम भक्ति से यह कहा ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे तात! हमलोग प्रातः- बहुतही निर्मल धर्मारण्य को जावैंगे और हमको भूलना न चाहिये व क्षमा कीजिये क्षमा कीजियेगा ॥ ४२ ॥ तदनन्तर हे राजन्! पवनकुमार ने पर्वत से दश न चौड़ी और चार शालाओंवाली बड़ी भारी शिलाको ॥ ४३ ॥ बिछाकर उन ब्राह्मणों से कहा कि हे द्विजोत्तमो, द्विजो! मुझसे रक्षा किये हुए तुमलोग शोक त होकर शिला पै शयन करो ॥ ४४ ॥ यह सुनकर तदनन्तर सब ब्राह्मण सुखदायिनी निद्रा को प्राप्त हुए इस प्रकार वे कृतार्थ होकर संध्यासमय में सो गये ॥ ४५ ॥

स्थित्वा त्रिरात्रं ते विप्रा गमने कृतबुद्धयः ॥ रात्रौ हनुमतोऽग्रे त इदमूचुः सुभक्तितः ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ वयं प्रातर्गमिष्यामो धर्मारण्यं सुनिर्मलम् ॥ न विस्मार्या वयं तात क्षम्यतां क्षम्यतामिति ॥ ४२ ॥ ततो वायुसुतो राजन्पर्वतान्महतीं शिलाम् ॥ बृहतीं च चतुःशालां दशयोजनमायतीम् ॥ ४३ ॥ आस्तीर्य प्राह तान्विप्राञ्छिलायां द्विजसत्तमाः ॥ रक्ष्यमाणा मया विप्राः शयीध्वं विगतज्वराः ॥ ४४ ॥ इति श्रुत्वा ततः सर्वे निद्रामापुः सुखप्रदाम् ॥ एवं ते कृतकृत्यास्तु भूत्वा सुप्ता निशामुखे ॥ ४५ ॥ कृपालुः स च रुद्रात्मा रामशासनपालकः ॥ रक्षणार्थं हि विप्राणामतिष्ठच्च धरातले ॥ ४६ ॥ व्यास उवाच ॥ अर्द्धरात्रे तु सम्प्राप्ते सर्वे निद्रामुपागताः ॥ तातं सम्प्रार्थयामास कृतानुग्रहको भवान् ॥ ४७ ॥ समीरण द्विजानेतान्स्थानं स्वं प्रापयस्व भोः ॥ ततो निद्राभिभूतांस्तान्वायुः पुत्रप्रणोदितः ॥ ४८ ॥ समुद्धृत्य शिलां तां तु पिता पुत्रेण भारत ॥ निशीथे यापयामास स्वस्थानं द्विजसत्त

श्रीरामजी का शासन पालन करनेवाले वे रुद्रात्मक दयालु हनुमान्‌जी ब्राह्मणों की रक्षा के लिये पृथ्वी में स्थित हुए ॥ ४६ ॥ व्यासजी बोले कि आधी रात प्राप्त पर जब सब निद्रा को प्राप्त हुए तब हनुमान्‌जी ने पिता (पवन) जी से प्रार्थना किया कि आप दया करनेवाले हो ॥ ४७ ॥ हे पवन! इन ब्राह्मणों को ने स्थान में प्राप्त कीजिये तदनन्तर हे भारत! पुत्र से प्रेरित पवन पिता ने शिला को उठाकर निद्रा से तिरस्कृत उन द्विजोत्तमों ब्राह्मणों को आधी रात में अपने स्थान

को प्राप्त किया ॥ ४८ । ४९ ॥ जिस मार्ग को ब्राह्मणलोग छः महीने में नाँघे थे उसको द्विजोत्तमलोग तीन मुहूर्त में प्राप्त हुए ॥ ५० ॥ और घूमती हुई शिला को जानकर वात्स्यगोत्र में उत्पन्न एक ब्राह्मण ने ब्राह्मणों के आगे लोगों से मधुर व अप्रकट गान किया ॥ ५१ ॥ और गायक से गाये हुए गीतों को सुनकर ब्राह्मण लोग विस्मय को प्राप्त हुए और प्रातःकाल होने पर वे उठपड़े और आपस में ॥ ५२ ॥ विस्मय को प्राप्त उन सब ब्राह्मणों ने कहा कि यह स्वप्न है व भ्रम है और शीघ्रता समेत उन ब्राह्मणों ने उठकर सत्यमंदिर को देखा ॥ ५३ ॥ और भीतर की बुद्धि से हनुमान्जी के प्रभाव को देखकर व वेदध्वनि को सुनकर ब्राह्मणलोग बड़े हर्ष

भ्रममान् ॥४९॥ षड्भिर्मासैश्च यः पन्था अतिक्रान्तो द्विजातिभिः ॥ त्रिभिरेव मुहूर्तैस्तु तं च प्रापुर्द्विजर्षभाः ॥५०॥ भ्रममाणां शिलां ज्ञात्वा विप्र एको द्विजाग्रतः ॥ वात्स्यगोत्रसमुत्पन्नो लोकान्सङ्गीतवान्कलम् ॥ ५१ ॥ गीतानि गायनोक्तानि श्रुत्वा विस्मयमाययुः ॥ प्रभाते सुप्रसन्ने तु उदतिष्ठन्परस्परम् ॥ ५२ ॥ ऊचुस्ते विस्मिताः सर्वे स्वप्नोऽयं वाथ विभ्रमः ॥ ससम्भ्रमाः समुत्थाय ददृशुः सत्यमन्दिरम् ॥ ५३ ॥ अन्तर्बुद्ध्या समालोक्य प्रभावं वायुजस्य च ॥ श्रुत्वा वेदध्वनिं विप्राः परं हर्षमुपागताः ॥ ५४ ॥ ग्रामीणाश्च ततो लोका दृष्ट्वा तु महतीं शिलाम् ॥ अद्भुतं मेनिरे सर्वे किमिदं किमिदं त्विति ॥ ५५ ॥ गृहे गृहे हि ते लोकाः प्रवदन्ति तथाद्भुतम् ॥ ब्राह्मणैः पूर्यमाणा सा शिला च महती शुभा ॥ ५६ ॥ अशुभा वा शुभा वापि न जानीमो वयं किल ॥ संवदन्ते ततो लोकाः परस्परमिदं वचः ॥५७॥ व्यास उवाच ॥ ततो द्विजानां ते पुत्राः पौत्राश्चैव समागताः ॥ ऊचुश्च दिष्ट्या भो विप्रा आगताः पथिका द्विजाः ॥५८॥

को प्राप्त हुए ॥ ५४ ॥ तदनन्तर सब ग्रामीणलोगों ने बड़ी भारी शिला को देखकर अद्भुत माना कि यह क्या है यह क्या है ॥ ५५ ॥ और घर घर में वे लोग वैसे आश्चर्य को कहते थे कि ब्राह्मणों से पूर्ण वह बड़ी भारी शिला ॥ ५६ ॥ अशुभ है या शुभ है इसको हमलोग नहीं जानते हैं उसी कारण लोग परस्पर यह वचन कहते थे ॥ ५७ ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर ब्राह्मणों के वे पुत्र व पौत्र आये व बोले कि हे ब्राह्मणो ! आपलोग पथिक ब्राह्मण आगये यह आनन्द है ॥ ५८ ॥

तीन रात्रि तक टिककर जाने की बुद्धि करके उन ब्राह्मणों ने रात्रि में हनुमान्जी के आगे उत्तम भक्ति से यह कहा ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे तात! हमलोग प्रातः-काल बहुतही निर्मल धर्मारण्य को जावेंगे और हमको भूलना न चाहिये व क्षमा कीजिये क्षमा कीजियेगा ॥ ४२ ॥ तदनन्तर हे राजन्! पवनकुमार ने पर्वत से दश योजन चौड़ी और चार शालाओंवाली बड़ी भारी शिलाको ॥ ४३ ॥ बिछाकर उन ब्राह्मणों से कहा कि हे द्विजोत्तमो, द्विजो! मुझसे रक्षा किये हुए तुमलोग शोक रहित होकर शिला पै शयन करो ॥ ४४ ॥ यह सुनकर तदनन्तर सब ब्राह्मण सुखदायिनी निद्रा को प्राप्त हुए इस प्रकार वे कृतार्थ होकर संध्यासमय में सो गये ॥ ४५ ॥

स्थित्वा त्रिरात्रं ते विप्रा गमने कृतबुद्धयः ॥ रात्रौ हनुमतोऽग्रे त इदमूचुः सुभक्तितः ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ वयं प्रातर्गमिष्यामो धर्मारण्यं सुनिर्मलम् ॥ न विस्मार्या वयं तात क्षम्यतां क्षम्यतामिति ॥ ४२ ॥ ततो वायुसुतो राजन्पर्वतान्महतीं शिलाम् ॥ बृहतीं च चतुःशालां दशयोजनमायतीम् ॥ ४३ ॥ आस्तीर्य प्राह तान्विप्राञ्छिलायां द्विजसत्तमाः ॥ रक्ष्यमाणा मया विप्राः शयीध्वं विगतज्वराः ॥ ४४ ॥ इति श्रुत्वा ततः सर्वे निद्रामापुः सुखप्रदाम् ॥ एवं ते कृतकृत्यास्तु भूत्वा सुप्ता निशामुखे ॥ ४५ ॥ कृपालुः स च रुद्रात्मा रामशासनपालकः ॥ रक्षणार्थं हि विप्राणामतिष्ठच्च धरातले ॥ ४६ ॥ व्यास उवाच ॥ अर्द्धरात्रे तु सम्प्राप्ते सर्वे निद्रामुपागताः ॥ तातं सम्प्रार्थयामास कृतानुग्रहको भवान् ॥ ४७ ॥ समीरण द्विजानेतान्स्थानं स्वं प्रापयस्व भोः ॥ ततो निद्राभिभूतांस्तान्वायुः पुत्रप्रणोदितः ॥ ४८ ॥ समुद्धृत्य शिलां तां तु पिता पुत्रेण भारत ॥ निशीथे यापयामास स्वस्थानं द्विजसत्त

और श्रीरामजी का शासन पालन करनेवाले वे रुद्रात्मक दयालु हनुमान्जी ब्राह्मणों की रक्षा के लिये पृथ्वी में स्थित हुए ॥ ४६ ॥ व्यासजी बोले कि आधी रात प्राप्त होने पर जब सब निद्रा को प्राप्त हुए तब हनुमान्जी ने पिता (पवन) जी से प्रार्थना किया कि आप दया करनेवाले हो ॥ ४७ ॥ हे पवन! इन ब्राह्मणों को अपने स्थान में प्राप्त कीजिये तदनन्तर हे भारत! पुत्र से प्रेरित पवन पिता ने शिला को उठाकर निद्रा से तिरस्कृत उन द्विजोत्तमों ब्राह्मणों को आधी रात में अपने स्थान

को प्राप्त किया ॥ ४८ । ४९ ॥ जिस मार्ग को ब्राह्मणलोग छा महीने में नाँघे थे उसको द्विजोत्तमलोग तीन मुहूर्त में प्राप्त हुए ॥ ५० ॥ और घूमती हुई शिला को जानकर वात्स्यगोत्र में उत्पन्न एक ब्राह्मण ने ब्राह्मणों के आगे लोगों से मधुर व अप्रकट गान किया ॥ ५१ ॥ और गायक से गाये हुए गीतों को सुनकर ब्राह्मण लोग विस्मय को प्राप्त हुए और प्रातःकाल होने पर वे उठपड़े और आपस में ॥ ५२ ॥ विस्मय को प्राप्त उन सब ब्राह्मणों ने कहा कि यह स्वप्न है व भ्रम है और शीघ्रता समेत उन ब्राह्मणों ने उठकर सत्यमंदिर को देखा ॥ ५३ ॥ और भीतर की बुद्धि से हनुमान्‌जी के प्रभाव को देखकर व वेदध्वनि को सुनकर ब्राह्मणलोग बड़े हर्ष

मान् ॥४९॥ षड्भिर्मासैश्च यः पन्था अतिक्रान्तो द्विजातिभिः ॥ त्रिभिरेव मुहूर्तैस्तु तं च प्रापुर्द्विजर्षभाः ॥५०॥ भ्रम माणां शिलां ज्ञात्वा विप्र एको द्विजाग्रतः ॥ वात्स्यगोत्रसमुत्पन्नो लोकान्सङ्गीतवान्कलम् ॥ ५१ ॥ गीतानि गाय नोक्तानि श्रुत्वा विस्मयमाययुः ॥ प्रभाते सुप्रसन्ने तु उदतिष्ठन्परस्परम् ॥ ५२ ॥ ऊचुस्ते विस्मिताः सर्वे स्वप्नोऽयं वाथ विभ्रमः ॥ ससम्भ्रमाः समुत्थाय ददृशुः सत्यमन्दिरम् ॥ ५३ ॥ अन्तर्बुद्ध्या समालोक्य प्रभावं वायुजस्य च ॥ श्रुत्वा वेदध्वनिं विप्राः परं हर्षमुपागताः ॥ ५४ ॥ ग्रामीणाश्च ततो लोका दृष्ट्वा तु महतीं शिलाम् ॥ अद्भुतं मेनिरे सर्वे किमिदं किमिदं त्विति ॥ ५५ ॥ गृहे गृहे हि ते लोकाः प्रवदन्ति तथाद्भुतम् ॥ ब्राह्मणैः पूर्यमाणा सा शिला च महती शुभा ॥ ५६ ॥ अशुभा वा शुभा वापि न जानीमो वयं किल ॥ संवदन्ते ततो लोकाः परस्परमिदं वचः ॥५७॥ व्यास उवाच ॥ ततो द्विजानां ते पुत्राः पौत्राश्चैव समागताः ॥ ऊचुश्च दिष्ट्या भो विप्रा आगताः पथिका द्विजाः ॥५८॥

को प्राप्त हुए ॥ ५४ ॥ तदनन्तर सब ग्रामीणलोगों ने बड़ी भारी शिला को देखकर अद्भुत माना कि यह क्या है यह क्या है ॥ ५५ ॥ और घर घर में वे लोग वैसे आश्चर्य को कहते थे कि ब्राह्मणों से पूर्ण वह बड़ी भारी शिला ॥ ५६ ॥ अशुभ है या शुभ है इसको हमलोग नहीं जानते हैं उसी कारण लोग परस्पर यह वचन कहते थे ॥ ५७ ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर ब्राह्मणों के वे पुत्र व पौत्र आये व बोले कि हे ब्राह्मणो ! आपलोग पथिक ब्राह्मण आगये यह आनन्द है ॥ ५८ ॥

और वे ब्राह्मण प्रसन्न मन से हर्ष से प्रत्युत्थान व प्रणाम से गये और मिलकर ॥ ५९ ॥ व सूंघकर और यथायोग्य पूजकर विस्तार करके सब अपने आगमन को शीघ्रही कहा ॥ ६० ॥ तदनन्तर चन्दन, ताम्बूल व कुंकुम से उन सबों को पूजकर शांतिपाठ को पढ़ते हुए वे प्रसन्न होकर अपने घरों को गये ॥ ६१ ॥ और प्रातःकाल उठ कर उत्कंठा समेत व हर्ष से पूर्ण उन पथिकलोगों ने आनंदा के महास्थान में बड़े भारी स्थान को देखा ॥ ६२ ॥ और वे बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुए कि यह कौन उत्तम स्थान है और यहां दक्षिण द्वार पै शातिपाठ पढ़ा जाता है ॥ ६३ ॥ और इन्द्र के घर के समान सुन्दर घर देख पड़ते हैं व अग्नि के समान सुन्दर कुलमातृ-

ते तु सन्तुष्टमनसा सन्मुखाः प्रययुर्मुदा ॥ प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां परिरम्भणकं तथा ॥ ५९ ॥ आघ्राणकादींश्च कृत्वा यथायोग्यं प्रपूज्य च ॥ सर्वं विस्तार्य कथितं शीघ्रमागममात्मनः ॥ ६० ॥ ततः सम्पूज्य तान्सर्वान्गन्ध ताम्बूलकुङ्कुमैः ॥ शान्तिपाठं पठन्तस्ते हृष्टा निजगृहान्ययुः ॥ ६१ ॥ आनन्दाया महापीठे प्रातः पान्थाः समुत्थिताः ॥ ददृशुस्ते महास्थानं सोत्कण्ठा हर्षपूरिताः ॥ ६२ ॥ आश्चर्यं परमं प्रापुः किमेतत्स्थानमुत्तमम् ॥ अयं तु दक्षिणद्वारे शान्तिपाठोऽत्र पठ्यते ॥ ६३ ॥ गृहा रम्याः प्रदृश्यन्ते शचीपतिगृहोपमाः ॥ प्रासादाः कुलमातॄणां दृश्यन्ते चाग्निशोभनाः ॥ ६४ ॥ एवं ब्रुवत्सु विप्रेषु महाशक्तिप्रपूजने ॥ आगतो ब्राह्मणोऽपश्यत्तत्र विप्रकदम्बकम् ॥ ६५ ॥ हर्षितो धावितस्तत्र यत्र विप्राः सभासदः ॥ उवाच दिष्ट्या भो विप्रा ह्यागताः पथिका द्विजाः ॥ ६६ ॥ प्रत्युत्तस्थुस्ततो विप्राः पूजां गृह्य समागताः ॥ प्रत्युत्थानाभिवादौ चाकुर्वंस्ते च परस्परम् ॥ ६७ ॥ तेते

काओं के घर देख पड़ते हैं ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणों के ऐसा कहने पर महाशक्ति के पूजन में वहां आये हुए ब्राह्मण ने ब्राह्मणों के समूह को देखा ॥ ६५ ॥ और वहां ब्राह्मण प्रसन्न होकर गया जहां कि ब्राह्मण थे व सभासद ब्राह्मण ने कहा कि हे ब्राह्मणो ! आनन्द है जो कि आपलोग पथिक ब्राह्मण आगये ॥ ६६ ॥ तदनन्तर आये हुए ब्राह्मण पूजन को लेकर उठे और उन्हों ने परस्पर प्रत्युत्थान व प्रणाम किया ॥ ६७ ॥ और उन्हों ने यथायोग्य विधिपूर्वक पूजकर जो हनुमानजी का वृत्तान्त था उसको

ब्राह्मण के आगे प्रकाशित किया ॥ ६८॥ पथिकों का वचन सुनकर द्विजोत्तमलोग हर्ष से पूर्ण हुए व शांतिपाठ को पढ़ते हुए वे प्रसन्न होकर अपने घरों को चले गये ॥ ६९ ॥ व प्रातःकाल प्रतिष्ठित ब्राह्मणलोग विचारकर ज्योतिषियों से मिले और ब्राह्मय मुहूर्त में उठकर ब्राह्मणलोग कान्यकुब्जदेश को गये ॥ ७० ॥ कितेक दोलाओं के ऊपर सवार हुए व कितेक ब्राह्मण घोड़ों व रथों के ऊपर सवार हुए और कितेक पालकियों के ऊपर सवार हुए और वे ब्राह्मण अनेक प्रकार की सवारियों पै प्राप्त हुए ॥ ७१ ॥ और उस नगर को जाकर श्रीगंगाजी के उत्तम किनारे बुद्धिमान् ब्राह्मणों ने निवास किया व स्नान और दानादिक कर्म किया ॥ ७२ ॥ और

सम्पूज्य वेगात्तु यथायोग्यं यथाविधि ॥ हरीश्वरस्य यद्वृत्तं विप्राग्रे सम्प्रकाशितम् ॥ ६८ ॥ पथिकानां वचः श्रुत्वा हर्षपूर्णा द्विजोत्तमाः ॥ शान्तिपाठं पठन्तस्ते हृष्टा निजगृहान्ययुः ॥ ६९ ॥ विमृश्य मिलिताः प्रातर्ज्योतिर्विद्भिः प्रतिष्ठिताः ॥ ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय कान्यकुब्जं गता द्विजाः ॥ ७० ॥ दोलाभिर्वाहिताः केचित्केचिदश्वै रथैस्तथा ॥ केचित्तु शिबिकारूढा नानावाहनगाश्च ते ॥ ७१ ॥ तत्पुरं तु समासाद्य गङ्गायाः शोभने तटे ॥ अकुर्वन्वसतिं धीराः स्नानदानादिकर्म्म च ॥ ७२ ॥ चरेण केनचिद्दृष्टाः कथिता नृपसन्निधौ ॥ अश्वाश्च बहुशो दोला रथाश्च बहुशो वृषाः ॥ ७३ ॥ विप्राणामिह दृश्यन्ते धर्मारण्यनिवासिनाम् ॥ नूनं ते च समायाता नृपेणोक्तं ममाग्रतः ॥ ७४ ॥ अभिज्ञानाय मे पूर्वं प्रेषिताः कपिसन्निधौ ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये ब्राह्मणानांप्रत्यागमनवर्णनं नामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

किसी गुप्त दूत ने देखा व राजा के समीप कहा कि बहुत से घोड़ा, दोला, रथ और बहुत से बैल ॥ ७३ ॥ यहां धर्मारण्यनिवासी ब्राह्मणों के देख पड़ते हैं राजा ने कहा कि वे निश्चयकर मेरे आगे आवैंगे ॥ ७४ ॥ क्योंकि पहले मैंने उनको चिह्न के लिये हनुमान्जी के समीप पठाया था ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांब्राह्मणानांप्रत्यागमनवर्णनंनामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । दियो वृत्ति जिमि द्विजन पुनि रामपाल भूपाल । अर्तिसवें अध्याय में सोइ चरित्र रसाल ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर निर्मल प्रातःकाल होने पर दिन के पूर्वभाग का कार्य करके उत्तम वस्त्रों को पहने हुए उन ब्राह्मणों ने पृथक् २ फलों को हाथ में लिया ॥ १ ॥ और रत्न के बजुल्ला को भुजदंडों में पहने तथा अँगूठियों से भूषित और कर्णों के आभूषणों से संयुत वे ब्राह्मण प्रसन्न होकर आये ॥ २ ॥ और राजद्वार को प्राप्त होकर वे ब्रह्मवादी ब्राह्मण स्थित हुए व उनको देखकर बलवान् राजपुत्र ने कुछ हास्य किया ॥ ३ ॥ व कहा कि हे सब मंत्रियो ! सुनिये कि श्रीराम व हनुमान्जी के समीप जाकर व देखकर आये हैं उन द्विजोत्तमों को

व्यास उवाच ॥ ततः प्रभाते विमले कृतपूर्वाह्लिकक्रियाः ॥ शुभवस्त्रपरीधानाः फलहस्ताः पृथक्पृथक् ॥ १ ॥ रत्नाङ्गदाढ्यदोर्दण्डा अङ्गुलीयकभूषिताः ॥ कर्णाभरणसंयुक्ताः समाजग्मुः प्रहर्षिताः ॥ २ ॥ राजद्वारं तु सम्प्राप्य सन्तस्थुर्ब्रह्मवादिनः ॥ तान्दृष्ट्वा राजपुत्रस्तु ईषत्प्रहसितो वली ॥ ३ ॥ रामं च हनुमन्तं च गत्वा विप्राः समागताः ॥ श्रूयतां मन्त्रिणः सर्वे पश्यत द्विज सत्तमान् ॥ ४ ॥ एतदुक्त्वा तु वचनं तूष्णीं भूत्वा स्थितो नृपः ॥ ततो द्वित्रा द्विजाः सर्वे उपविष्टाः क्रमात्ततः ॥ ५ ॥ क्षेमं पप्रच्छुर्नृपतिं हस्तिरथपदातिषु ॥ ततः प्रोवाच नृपतिर्विप्रान्प्रति महामनाः ॥ ६ ॥ अर्हन्देवप्रसादेन सर्वत्र कुशलं मम ॥ सा जिह्वा या जिनं स्तौति तौ करौ यौ जिनार्चनौ ॥ ७ ॥ सा दृष्टिर्या जिने लीना तन्मनो यज्जिने रतम् ॥ दया सर्वत्र कर्तव्या जीवात्मा पूज्यते सदा ॥ ८ ॥ योगशाला हि गन्त

देखिये ॥ ४ ॥ यह वचन कहकर राजा चुप होकर स्थित हुआ तदनन्तर दो तीन व सब ब्राह्मण क्रम से बैठे ॥ ५ ॥ व उन्हों ने राजा से हाथी, रथ और पैदलों में कुशल पूंछा तदनन्तर उदार मनवाले राजा ने ब्राह्मणों से कहा ॥ ६ ॥ कि अर्हन्देव की प्रसन्नता से मेरे सब कहीं कुशल है और वह जिह्वा है कि जो जिन देवता की स्तुति करती हैं और वे हाथ हैं कि जो जिन देवता के पूजक हैं ॥ ७ ॥ और वह दृष्टि है जो कि जिन में लीन है व मन वही है जो कि जिन में अनुरागी है और सब में दया करना चाहिये व जीवात्मा सदैव पूजा जाता है ॥ ८ ॥ और योगशाला में जाना चाहिये व गुरु का प्रणाम करना चाहिये और नवकार मंत्र दिन

रात जपना चाहिये ॥ ९ ॥ व पंचूषण करना चाहिये और सदैव श्रमण देना चाहिये उसका वचन सुनकर तदनन्तर ब्राह्मणलोग दांतों को पीसनेलगे ॥ १० ॥ और बड़े श्वास को छोड़कर उन्हों ने राजा से कहा कि हे राजन्! श्रीराम व हनुमान्जी ने कहा है ॥ ११ ॥ कि ब्राह्मणों की जीविका को देदीजिये क्योंकि पृथ्वी में तुम धर्मिष्ठ हो और तुम्हारी दीहुई जानी जाती है मुझ से नहीं दीगई है ॥ १२ ॥ श्रीरामजी के वचन की तुम रक्षा करो कि जिसको करके तुम सुखी होवो ॥ १३ ॥ राजा बोले कि हे ब्राह्मणो! जहां श्रीराम व हनुमान्जी हैं वहां आप सब जावो श्रीरामजी सर्वस देवैंगे यहां तुमलोग क्यों प्राप्त हुए हो ॥ १४ ॥

व्या कर्त्तव्यं गुरुवन्दनम् ॥ नचकारं महामन्त्रं जपितव्यमहर्निशम् ॥ ९ ॥ पञ्चूषणं हि कर्त्तव्यं दातव्यं श्रमणं सदा ॥ श्रुत्वा वाक्यं ततो विप्रास्तस्य दन्तानपीडयन् ॥ १० ॥ विमुच्य दीर्घनिश्वासमूचुस्ते नृपतिं प्रति ॥ रामेण कथितं राजन्धीमता च हनूमता ॥ ११ ॥ दीयतां विप्रवृत्तिं च धर्मिष्ठोऽसि धरातले ॥ ज्ञायते तव दत्ता स्यान्मद्दत्ता नैव नैव च ॥ १२ ॥ रक्षस्व रामवाक्यं त्वं यत्कृत्वा त्वं सुखी भव ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ यत्र रामहनूमन्तौ यान्तु सर्वेऽपि तत्र वै ॥ रामो दास्यति सर्वस्वं किं प्राप्ता इह वै द्विजाः ॥ १४ ॥ न दास्यामि न दास्यामि एकां चैव वराटिकाम् ॥ न ग्रामं नैव वृत्तिं च गच्छध्वं यत्र रोचते ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वा दारुणं वाक्यं द्विजाः कोपाकुलास्तदा ॥ सहस्व रामकोपं हि साम्प्रतञ्च हनूमतः ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वा हनुमद्दत्ता वामकक्षोद्भवा पुटी ॥ प्रक्षिप्ता चास्य निलये व्यावृत्ता द्विजसत्तमाः ॥ १७ ॥ गते तदा विप्रसङ्घे ज्वालामालाकुलं त्वभूत् ॥ अग्निज्वालाकुलं सर्वं सञ्जातं चैव तत्र

मैं एक कौडी को न दूंगा न दूंगा और ग्राम व जीविका को नहीं दूंगा जहां रुचि होवै वहां जाइये ॥ १५ ॥ उस कठिन वचन को सुनकर उस समय क्रोध से विकल ब्राह्मणों ने कहा कि इस समय श्रीराम व हनुमान्जी के कोप को सहिये ॥ १६ ॥ यह कहकर हनुमान्जी से दीहुई बाई बगल से उपजी पोटली को इसके स्थान में उन्हों ने फेंक दिया व द्विजोत्तम लोग लौटपड़े ॥ १७ ॥ तब द्विजगण चले जाने पर सब स्थान ज्वालाओं की माला से व्याप्त होगया और सब स्थान वहां अग्नि

की ज्वालाओं से युक्त हुआ ॥ १८ ॥ और राजा की वस्तुवें छत्र और चँवर जलने लगे व ख़ज़ाने के सब घर व शस्त्रों के घर जलनेलगे ॥ १९ ॥ और स्त्रियां, राजपुत्र, हाथी व अनेक घोड़े, विमान और सवारी जलनेलगीं ॥ २० ॥ और विचित्र पालकी व हज़ारों रथ जलनेलगे और सब कहीं जलती हुई वस्तु को देखकर राजा भी दुःखी हुआ ॥ २१ ॥ और उसका कोई भी रक्षक न हुआ व मनुष्य भय से विकल हुए और वह अग्नि मंत्रों व यंत्रों और जड़ों से शान्त न हुई ॥ २२ ॥ जहां करोड़ों कुटिलताओं को नाशनेवाले श्रीरामजी क्रोधित होते हैं वहां सब नाश होजाते हैं तो कुमारपालक को क्या कहना है ॥ २३ ॥ तब उस जलतीहुई सब वस्तु को देख

हि ॥ १८ ॥ दह्यन्ते राजवस्तूनिच्छत्राणि चामराणि च ॥ कोशागाराणि सर्वाणि आयुधागारमेव च ॥ १९ ॥ महिष्यो राजपुत्राश्च गजा अश्वा ह्यनेकशः ॥ विमानानि च दह्यन्ते दह्यन्ते वाहनानि च ॥ २० ॥ शिबिकाश्च विचित्रा वै रथा श्चैव सहस्रशः ॥ सर्वत्र दह्यमानं च दृष्ट्वा राजापि विव्यथे ॥ २१ ॥ न कोपि त्राता तस्यास्ति मानवा भयविक्लवाः ॥ न मन्त्रयन्त्रैर्वह्निः स साध्यते न च मूलिकैः ॥ २२ ॥ कौटिल्यकोटिनाशी च यत्र रामः प्रकुप्यते ॥ तत्र सर्वे प्रणश्य न्ति किं तत्कुमारपालकः ॥ २३ ॥ सर्वं तज्ज्वलितं दृष्ट्वा नग्नक्षपणकास्तदा ॥ धृत्वा करेण पात्राणि नीत्वा दण्डा न्छुभानपि ॥ २४ ॥ रक्तकम्बलिका गृह्य वेपमाना मुहुर्मुहुः ॥ अनुपानहिकाश्चैव नष्टाः सर्वे दिशो दश ॥ २५ ॥ को लाहलं प्रकुर्वाणाः पलायध्वमिति ब्रुवन् ॥ दाहिता विप्रमुख्यैश्च वयं सर्वे न संशयः ॥ २६ ॥ केचिच्च भग्नपात्रास्ते भग्नदण्डास्तथापरे ॥ प्रणष्टाश्च विवस्त्रास्ते वीतरागमितिब्रुवन् ॥ २७ ॥ अर्हन्तमेव केचिच्च पलायनपरायणाः ॥

कर बौद्धलोग हाथ से पात्रों को धारणकर व उत्तम दंडों को भी लेकर ॥ २४ ॥ और लाली कम्बलियों को लेकर बार २ कॉपने लगे और विन पनहियों को पहने हुए वे सब दशो दिशाओं को भगगये ॥ २५ ॥ कोलाहल करतेहुए उन्होंने ऐसा कहा कि भागिये क्योंकि मुख्य ब्राह्मणों ने हम सबों को जला दिया इसमें सन्देह नहीं है ॥ २६ ॥ कितेक लोगों के पात्र फूट गये व अन्य मनुष्यों के दंड टूट गये और भागने में तत्पर कितेक नग्न वे जैनी उन अर्हन्जी को स्नेहरहित ऐसा कहते हुए

भग गये तदनन्तर अग्नि को बढ़ाता हुआ सा पवन उत्पन्न हुआ ॥ २७ । २८ ॥ जिसको ब्राह्मणों की प्रिय कामना से हनुमान्‌जी ने पठाया था पश्चात् उस समय इधर उधर दौड़ता हुआ वह राजा ॥ २९ ॥ पैदल अकेला रोता व यह कहता हुआ भगा कि ब्राह्मण कहां हैं तदनन्तर लोगों से सुनकर वह राजा वहां गया जहां कि ब्राह्मण थे ॥ ३० ॥ व हे राजन् ! उस समय जाकर वह राजा यकायक ब्राह्मणों के पैरों को पकड़कर तब मूर्छित होकर पृथ्वी में गिरपड़ा ॥ ३१ ॥ व हे राम राम ! ऐसा बारबार दशरथकुमार श्रीरामजी को जपते हुए व विनय में तत्पर राजा ने ब्राह्मणों से यह कहा ॥ ३२ ॥ कि उन श्रीरामजी के दास का भी मैं दास हूं व

ततो वायुः समभवद्वह्निमान्दोलयन्निव ॥ २८ ॥ प्रेषितो वै हनुमता विप्राणां प्रियकाम्यया ॥ धावन्स नृपतिः पश्चादितश्चेतश्च वै तदा ॥ २९ ॥ पदातिरेकः प्ररुदन्क विप्रा इति जल्पकः ॥ लोकाच्छ्रुत्वा ततो राजा गतस्तत्र यतो द्विजाः ॥ ३० ॥ गत्वा तु सहसा राजन्गृहीत्वा चरणौ तदा ॥ विप्राणां नृपतिर्भूमौ मूर्च्छितो न्यपतत्तदा ॥ ३१ ॥ उवाच वचनं राजा विप्रान्विनयतत्परः ॥ जपन्दाशरथिं रामं रामरामेति वै पुनः ॥ ३२ ॥ तस्य दासस्य दासोहं रामस्य च द्विजस्य च ॥ अज्ञानतिमिरान्धेन जातोस्म्यन्धो हि सम्प्रति ॥ ३३ ॥ अञ्जनं च मया लब्धं रामनाममहौषधम् ॥ रामं मुक्त्वा हि ये मर्त्या ह्यन्यं देवमुपासते ॥ दह्यन्ते तेऽग्निना स्वामिन्यथाहं मूढचेतनः ॥ ३४ ॥ हरिर्भागीरथी विप्रा विप्रा भागीरथी हरिः ॥ भागीरथी हरिर्विप्राः सारमेकं जगत्त्रये ॥ ३५ ॥ स्वर्गस्य चैव सोपानं विप्रा भागीरथी हरिः ॥ रामनाममहारज्ज्वा वैकुण्ठे येन नीयते ॥ ३६ ॥ इत्येवं प्रणमन् राजा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ वह्निः प्रशा

ब्राह्मण का सेवक हूं इस समय अज्ञानरूपी बड़े भारी अन्धकार से मैं अन्ध होगया ॥ ३३ ॥ और रामनामरूपी बड़ीभारी औषध को मैंने पाया जो मनुष्य श्रीरामजी को छोड़कर अन्य देवता की उपासना करते हैं हे स्वामिन् ! वे मुझ मूर्ख की नाईं अग्नि से जलाये जाते हैं ॥ ३४ ॥ विष्णु व गंगाजी ब्राह्मण हैं और ब्राह्मण गंगा व विष्णुजी हैं त्रिलोक में गंगा, विष्णु व ब्राह्मण केवल सारांश हैं ॥ ३५ ॥ और ब्राह्मण, गंगा व विष्णु स्वर्ग की सीढ़ी हैं कि जिस रामनामरूपी बड़ी भारी रस्सी से मनुष्य वैकुण्ठ में प्राप्त किया जाता है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार प्रणाम करते हुए राजा ने हाथों को जोड़कर यह वचन कहा कि हे ब्राह्मणो ! अग्नि को शान्त कीजिये मैं

तुमलोगों को जीविका दूंगा ॥ ३७ ॥ हे ब्राह्मणो ! मैं इस समय दास हूं और मेरा वचन अन्यथा नहीं होताहै पराई स्त्री से भोग करनेवाले मनुष्योंको व ब्रह्महत्या का जो पाप होता है ॥ ३८ ॥ और सुवर्ण चुरानेवाले व मदिरा पीनेवालों को जो पाप होताहै और गुरुको मारनेवालों को जो पाप होता है वही पाप मुझको होवै ॥ ३९ ॥ और जो जिस जिस मनोरथ की इच्छा करैगा उसको मैं उस उस अभिलाष को दूंगा और सदैव ब्राह्मणों की भक्ति व श्रीरामजी की भक्ति करना चाहिये ॥ ४० ॥ हे द्विजोत्तमो ! अन्यथा मैं कभी न करूंगा ॥ ४१ ॥ व्यासजी बोले कि हे भूप ! उस समय ब्राह्मणलोग दयालु होगये और जो दूसरी पोटली थी उसको शाप की शान्ति के लिये

म्यतां विप्राः शासनं वो ददाम्यहम् ॥ ३७ ॥ दासोऽस्मि साम्प्रतं विप्रा न मे वागन्यथा भवेत् ॥ यत्पापं ब्रह्महत्याया: परदाराभिगामिनाम् ॥ ३८ ॥ यत्पापं मद्यपानां च सुवर्णस्तेयिनां तथा ॥ यत्पापं गुरुघातानां तत्पापं वा भवेन्मम ॥ ३९ ॥ यं यं चिन्तयते कामं तं तं दास्याम्यहं पुनः ॥ विप्रभक्तिः सदा कार्या रामभक्तिस्तथैव च ॥ ४० ॥ अन्यथा करणीयं मे न कदाचिद् द्विजोत्तमाः ॥ ४१ ॥ व्यास उवाच ॥ तस्मिन्नवसरे विप्रा जाता भूप दयालवः ॥ अन्या या पुटिका चासीत्सा दत्ता शापशान्तये ॥ ४२ ॥ जीवितं चैव तत्सैन्यं जातं क्षिप्तेषु रोमसु ॥ दिशः प्रसन्नाः सञ्जाताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः ॥ ४३ ॥ प्रजा स्वस्थाऽभवत्तत्र हर्षनिर्भरमानसा ॥ अवतस्थे यथापूर्वं पुत्रपौत्रादिकं तथा ॥ ४४ ॥ विप्राज्ञाकारिणो लोकाः सञ्जाताश्च यथा पुरा ॥ विष्णुधर्मं परित्यज्य नान्यं जानन्ति ते वृषम् ॥ ४५ ॥ नवीनं शासनं कृत्वा पूर्ववद्विधिपूर्वकम् ॥ निष्कासितास्तु पाखण्डाः कृतशास्त्रप्रयोजकाः ॥ ४६ ॥

देदिया ॥ ४२ ॥ और रोमों के फेंकने पर वह सैना जीउठी और दिशाएं निर्मल होगईं व दिशाओं में उपजे हुए शब्द शांत होगये ॥ ४३ ॥ और वहां हर्ष से पूर्ण मनवाले प्रजालोग स्वस्थ होगये व पुत्र, पौत्रादिक पहले की नाईं स्थित हुआ ॥ ४४ ॥ और पहले की नाईं मनुष्य ब्राह्मणों की आज्ञा को करनेवाले हुए व विष्णुजी के धर्म को छोड़कर वे अन्य धर्म को न जाननेलगे ॥ ४५ ॥ और शासन को नवीन करके पहले की नाईं विधिपूर्वक शास्त्रों के प्रयोगकर्त्ता हुए और पाखण्ड निकाल दियेगये ॥ ४६ ॥

और वेदसे बाहर-कियेहुए वे उत्तम, मध्यम व नीच नष्ट होगये और पहले जो छत्तीस हज़ार गोभुज हुए थे ॥ ४७ ॥ उनके मध्यसे अढबीज वणिज् लोग उत्पन्न हुए और राजा ने उन सबों को ब्राह्मणों की सेवाके लिये निरूपण किया ॥ ४८ ॥ और पाखण्ड के मार्ग को छोड़कर वे उत्तम आचारवाले तथा अत्यन्त निपुण व देवताओं और ब्राह्मणों के पूजक वे विष्णुजी की भक्ति में परायण हुए ॥ ४९ ॥ राजाने गंगाजी के किनारे जाकर त्रैविद्य ब्राह्मणों के लिये जीविका को दिया जब उनको भक्तिपूर्वक शासन (वृत्ति) दिया गया ॥ ५० ॥ तब स्थान के धर्म से चले हुए वे ब्राह्मण आये और क्लेश करनेवाले उन ब्राह्मणों ने राजा से यह कहा ॥ ५१ ॥

वेदबाह्याः प्रणष्टास्ते उत्तमाधममध्यमाः ॥ षट्त्रिंशच्च सहस्राणि येऽभूवन्गोभुजाः पुरा ॥ ४७ ॥ तेषां मध्यात्तु सञ्जाता अढबीजा वणिग्जनाः ॥ शुश्रूषार्थं ब्राह्मणानां राज्ञा सर्वे निरूपिताः ॥ ४८ ॥ सदाचाराः सुनिपुणा देवब्राह्मणपूजकाः ॥ त्यक्त्वा पाखण्डमार्गं तु विष्णुभक्तिपरास्तु ते ॥ ४९ ॥ जाह्नवीतीरमासाद्य त्रैविद्येभ्यो ददौ नृपः ॥ शासनं तु यदा दत्तं तेषां वै भक्तिपूर्वकम् ॥ ५० ॥ स्थानधर्मात्प्रचलिता वाडवास्ते समागताः ॥ नृपो विज्ञापितो विप्रैस्तैरेवं क्लेशकारिभिः ॥ ५१ ॥ ये त्यक्तवाचो विप्रेन्द्रास्तान्निःसारय भूपते ॥ परस्परं विवादास्तु सञ्जाता दत्तवृत्तये ॥ ५२ ॥ न्यायप्रदर्शनार्थं च कारितास्तु सभासदः ॥ हस्ताक्षरेषु दृष्टेषु पृथक्पृथक् प्रपादितम् ॥ ५३ ॥ एतच्छ्रुत्वा ततो राजा तुलादानं चकार ह ॥ दीयमाने तदा दाने चातुर्विद्या बभाषिरे ॥ ५४ ॥ अस्माभिर्हारिता जातिः कथं कुर्मः प्रतिग्रहम् ॥ निवारितास्तु ते सर्वे स्थानान्मोहेरका द्विजाः ॥ ५५ ॥ दशपञ्च सहस्राणि वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ततस्तेन तदा राजन्

कि हे भूपते ! जिन्हों ने तुम्हारे वचनको छोड़दिया उनको निकाल दीजिये परस्पर दीहुई जीविका के लिये विवाद हुए ॥ ५२ ॥ और योग्य दिखलाने के लिये सभासद् कियेगये व हस्ताक्षरों के देखनेपर अलग २ सिद्ध कियागया ॥ ५३ ॥ इस वचन को सुनकर तदनन्तर राजा ने तुलादान किया तब दान देनेपर चातुर्विद्य ब्राह्मण बोले ॥ ५४ ॥ कि हम सबों से जाति हारगई तो हमलोग कैसे दान को लेवैंगे और वे सब मोहेरक ब्राह्मण स्थान से मना किये गये ॥ ५५ ॥ जो कि पंद्रह

हज़ार ब्राह्मण वेदों व वेदांगों के पारगामी थे तदनन्तर हे राजन्! उस समय श्रीरामजी के आज्ञानुवर्ती उस राजा ने ॥ ५६ ॥ उन ब्राह्मणों को बुलाकर ज्ञाति का भेद किया कि जो त्रयीविद्य ब्राह्मण सेतुबंध स्वामी को ॥ ५७ ॥ गये थे वे जीविका के भागी हुए और अन्य जीविका के भागी न हुए और जो वहां नहीं गये वे चातुर्वेद्यता को प्राप्तहुए ॥ ५८ ॥ व उनके साथ वणिजों से संबन्ध व विवाह नहीं हुआ और ज्ञातिभेद करने पर ग्राम की जीविका में संबन्ध न हुआ ॥ ५९ ॥ और ब्राह्मणों की भक्ति में परायण जो शूद्र पाखण्डों से लोपित न हुए जैन धर्म से निवृत्त वे गोभुज उत्तम हुए ॥ ६० ॥ और पाखण्ड में तत्पर जो श्रीरामजी के शासन को लोप

राज्ञा रामानुवर्तिना ॥ ५६ ॥ आहूय वाडवांस्तांस्तु ज्ञातिभेदं चकार सः ॥ त्रयीविद्या वाडवा ये सेतुबन्धं प्रति प्रभुम् ॥ ५७ ॥ गतास्ते वृत्तिभाजः स्युर्नान्ये वृत्त्यभिभागिनः ॥ तत्र नैव गता ये वै चातुर्विद्यत्वमागताः ॥ ५८ ॥ वणिग्भिर्न च सम्बन्धो न विवाहश्च तैः सह ॥ ग्रामवृत्तौ न सम्बन्धो ज्ञातिभेदे कृते सति ॥ ५९ ॥ द्विजभक्तिपराः शूद्रा ये पाखण्डैर्न लोपिताः ॥ जैनधर्मात्परावृत्तास्ते गोभूजास्तथोत्तमाः ॥ ६० ॥ ये च पाखण्डनिरता रामशासनलोपकाः ॥ सर्वे विप्रास्तथा शूद्राः प्रतिबन्धेन योजिताः ॥ ६१ ॥ सत्यप्रतिज्ञां कुर्वाणास्तत्रस्थाः सुखिनोऽभवन् ॥ चातुर्विद्या बहिर्ग्रामे राज्ञा तेन निवासिताः ॥ ६२ ॥ यथा रामो न कुप्येत तथा कार्यं मया ध्रुवम् ॥ पराङ्मुखा ये रामस्य सन्मुखा न गताः किल ॥ ६३ ॥ चातुर्विद्यास्ते विज्ञेया वृत्तिबाह्याः कृतास्तदा ॥ कृतकृत्यस्तदा जातो राजा कुमारपालकः ॥६४॥ विप्राणां पुरतः प्राह प्रश्रयेण वचस्तदा ॥ ग्रामवृत्तिर्न मे लुप्ता एतद्दै देवनिर्मितम् ॥ ६५ ॥ स्वयं

करनेवाले हुए वे सब ब्राह्मण व शूद्र प्रतिबन्धसे युक्त हुए ॥ ६१ ॥ और सत्यप्रतिज्ञा को करते हुए वहां स्थित ब्राह्मण सुखी हुए और चातुर्विद्य ब्राह्मणों को उस राजा ने गाँव के बाहर बसाया ॥ ६२ ॥ जिस प्रकार श्रीरामजी क्रोध न करैं मुझको निश्चयकर वैसाही करना चाहिये व श्रीरामजी से जो विमुख हैं और सामने नहीं प्राप्त हुए हैं ॥६३॥ वे चातुर्विद्य उस समय जीविका से बाहर किये गये जानने योग्य हैं तब कुमारपालक राजा कृतार्थ होगया ॥ ६४ ॥ और उसने उस समय नम्रता से ब्राह्मणोंके आगे यह वचन कहा कि मैंने ग्राम की वृत्ति को लुप्त नहीं किया बरन यह देवता से किया गया है ॥ ६५ ॥ व आपही किये हुए अपराधों का दोष किसीको नहीं दिया

जाताहै जैसे वनमें काठ के घिसने से अग्नि दैवयोगसे उत्पन्न होजाती है ॥ ६६ ॥ आपलोगों ने श्रीरामजी का शासन करके हनुमान्जी के लिये चिह्न के कारण पर्ण (वादद्यूत याने बाजी लगाना) किया था ॥ ६७ ॥ और तुमलोग ब्राह्मण लौट आये तो वह दोष किसको दिया जाताहै अन्तमें विष्णुजी को स्मरणकर बड़े पातकों से संयुत भी पुरुष ॥ ६८ ॥ शीघ्रही विष्णुलोक को जाता है तो कैसे सन्देह होवे और बड़े भारी पुण्य के उदय में मनुष्यों की बुद्धि कल्याण में होतीहै ॥ ६९ ॥ और पाप के उदय समय में वह बुद्धि उलटी होजाती है धर्म से जो इस त्रिलोक को एकही साथ पालन करता है ॥ ७० ॥ व जो प्राणियों का जीवात्मा है उसमें संशय

कृतापराधानां दोषो कस्य न दीयते ॥ यथा वने काष्ठघर्षाद्वह्निः स्याद्दैवयोगतः ॥ ६६ ॥ भवद्भिस्तु पणः प्रोक्तोह्य भिज्ञानस्य हेतवे ॥ रामस्य शासनं कृत्वा वायुपुत्रस्य हेतवे ॥ ६७ ॥ व्यावृत्ता वाडवा यूयं स दोषः कस्य दीयते ॥ अवसाने हरिं स्मृत्वा महापापयुतोऽपि वा ॥ ६८ ॥ विष्णुलोकं व्रजत्याशु संशयस्तु कथं भवेत् ॥ महत्पुण्योदये नृणां बुद्धिः श्रेयसि जायते ॥ ६९ ॥ पापस्योदयकाले च विपरीता हि सा भवेत् ॥ सकृत्पालयते यस्तु धर्मेणैतज्जग त्त्रयम् ॥ ७० ॥ योन्तरात्मा च भूतानां संशयस्तत्र नो हितः ॥ इन्द्रादयोऽमराः सर्वे सनकाद्यास्तपोधनाः ॥ ७१ ॥ मुक्त्यर्थमर्चयन्तीह संशयस्तत्र नो हितः ॥ सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनामेति गीयते ॥ ७२ ॥ तस्मिन्ननिश्चयं कृत्वा कथं सिद्धिर्भवेदिह ॥ मम जन्मकृतात्पुण्यादभिज्ञानं ददौ हरिः ॥ ७३ ॥ पाखण्डाद्यत्कृतं पापं मृष्टं तद्वः प्रणामतः ॥ प्रसीदन्तु भवन्तश्च त्यक्त्वा क्रोधं ममाधुना ॥ ७४ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ राजन्धर्मो विलुप्तस्ते प्रापितश्च तथा

हित नहीं होता है और इन्द्रादिक सब देवता व सनकादिक तपस्वी लोग ॥ ७१ ॥ जिसको मुक्ति के लिये पूजते हैं उसमें सन्देह हित नहीं होताहै और वह राम नाम सहस्रनाम के तुल्य कहा जाता है ॥ ७२ ॥ उसमें निश्चय न करके इस संसार में कैसे सिद्धि होतीहै मेरे जन्म में कियेहुए पुण्य से विष्णुजी ने चिह्नको दिया ॥ ७३ ॥ और पाखण्ड से मैंने जो पाप किया था वह तुमलोगों के प्रणाम से शुद्ध होगया आप लोग इस समय क्रोध को छोड़कर मेरे ऊपर प्रसन्न होवो ॥ ७४ ॥ ब्राह्मण बोले

कि हे राजन्! तुमने धर्म को लुप्त किया व फिर प्राप्त किया और अवश्य होनेवाले कार्य बड़े लोगों के भी होते हैं॥ ७५ ॥ शिवजी का नग्न होना व विष्णुजी का शेषजी पै सोना यह सब दैव से किया गया है जोकि सुख व दुःख के स्वामी हैं ॥ ७६ ॥ सत्यप्रतिज्ञावाले त्रैविद्य ब्राह्मण श्रीरामजी के शासन को करैं और हम लोगों को उत्तम स्थान दीजिये जहां कि बसैं ॥ ७७ ॥ उन ब्राह्मणों का वचन सुनकर ब्राह्मणों के सुख को चाहनेवाले राजा ने उन ब्राह्मणों को सुखवास नामक स्थान को दिया ॥ ७८ ॥ व हे राजन्! सुवर्ण व रत्न, वसन और कामदुघा गऊ तथा सुवर्ण का भूषण और सब अनेक प्रकारके वस्तुसमूह को॥ ७९ ॥ बड़ी श्रद्धा से

पुनः ॥ अवश्यं भाविनो भावा भवन्ति महतामपि॥ ७५॥ नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिशयनं हरेः ॥ एतद्दैवकृतं सर्वं प्रभुर्यः सुखदुःखयोः ॥ ७६ ॥ सत्यप्रतिज्ञास्त्रैविद्या भजन्तु रामशासनम् ॥ अस्माकं तु परं देहि स्थानं यत्र वसामहे ॥ ७७ ॥ तेषां तु वचनं श्रुत्वा सुखमिच्छुर्द्विजन्मनाम् ॥ तेषां स्थानं च प्रददौ सुखवासं तु नामतः ॥ ७८ ॥ हिरण्यं रत्नवासांसि गावः कामदुघा नृप ॥ स्वर्णालङ्करणं सर्वं नानावस्तुचयं तथा॥ ७९॥ श्रद्धया परया दत्त्वा मुदं लेभे नराधिपः ॥ त्रयीविद्यास्तु ते ज्ञेयाः स्थापिता ये त्रिमूर्तिभिः ॥ ८० ॥ चतुर्थेनैव भूपेन स्थापिताः सुखवासने ॥ ते बभूवुर्द्विजश्रेष्ठाश्चातुर्विद्याः कलौ युगे ॥ ८१ ॥ चातुर्विद्याश्च ते सर्वे धर्मारण्ये प्रतिष्ठिताः ॥ वेदोक्ता आशिषो दत्त्वा तस्मै राज्ञे महात्मने ॥ ८२ ॥ रथैरश्वैरुह्यमानाः कृतकृत्या द्विजातयः ॥ महत्प्रमोदयुक्तास्ते प्रापुर्मोहेरकं महत् ॥ ८३॥ पौषशुक्लत्रयोदश्यां लब्धं शासनकं द्विजैः॥ बलिप्रदानं तु कृतमुद्दिश्य कुलदेवताम् ॥ ८४ ॥ वर्षे वर्षे

देकर राजा ने आनन्द को पाया और जो तीन मूर्तियों से स्थापित किये गये वे त्रयीविद्य जानने योग्य हैं॥ ८० ॥ और चौथे भूप से जो सुखवासन नामक स्थान में स्थापित किये गये वे द्विजोत्तम कलियुग में चातुर्विद्य हुए॥ ८१॥ और वे सब चातुर्विद्य ब्राह्मण धर्मारण्य में स्थित हुए और उस महात्मा राजा के लिये वेदोक्त आशीर्वादों को देकर॥ ८२॥ रथों व घोड़ों पै चढ़कर ब्राह्मण लोग कृतार्थ हुए और बड़े आनन्द से संयुत वे बड़े भारी मोहेरक स्थान को प्राप्त हुए॥ ८३ ॥ पौष शुक्ल तेरसि में ब्राह्मणों ने शासन को पाया और कुलदेवता को उद्देशकर बलिप्रदान किया॥ ८४॥ महात्मा पुरुष को प्रत्येक वर्ष में विधिपूर्वक बलिदान व मंगल स्नान

करना चाहिये ॥ ८५ ॥ और उस दिन अवश्यकर गीत, नृत्य व बाजन करै व जिसप्रकार जीविकाका नाश न होवै उसप्रकार उस महीने व उस दिनमें करै ॥ ८६ ॥ और जब दैवयोग से व्यतीत समय में वृद्धि प्राप्त होवै तब पहले उसको करके पश्चात् वृद्धि कीजाती है ॥ ८७ ॥ और मोढवंश में उत्पन्न जो त्रैविध व चातुर्विध अन्य तिथि में प्राप्त होते हैं ॥ ८८ ॥ वे वर्ष के मध्यमें व विष्णुजी के शयनमें बलिप्रदान करते हैं और पौष महीने में जो बलि को न करके श्रौत, स्मार्त कर्म को करता है ॥ ८९ ॥ उसको क्रोधसे संयुत कुलदेवता नाश करती हैं और विवाह व उत्सव के समयमें तथा यज्ञोपवीतादिक कर्म में और सब वृद्धिके समयों में विद्वान्

प्रकर्त्तव्यं बलिदानं यथाविधि ॥ कार्यं च मङ्गलस्नानं पुरुषेण महात्मना ॥ ८५ ॥ गीतं नृत्यं तथा वाद्यं कुर्वीत तद्दिने ध्रुवम् ॥ तन्मासे तद्दिने नैव वृत्तिनाशो भवेद्यथा ॥ ८६ ॥ दैवादतीतकाले चेद् वृद्धिरापद्यते यदा ॥ तदा प्रथमतः कृत्वा पश्चाद्वृद्धिर्विधीयते ॥ ८७ ॥ ये च भिन्नतिथौ प्राप्तास्त्रैविद्या मोढवंशजाः ॥ तथा चातुर्वेदिनश्च कुर्वन्ति गोत्रपूजनम् ॥ ८८ ॥ वर्षमध्ये प्रकुर्वन्ति तथा सुप्ते जनार्द्दने ॥ पौषे बलिमकृत्वा च श्रौतं स्मार्त्तं करोति यः ॥ ८९ ॥ तन्तु क्रोधसमाविष्टा निघ्नन्ति कुलदेवताः ॥ विवाहोत्सवकाले च मौञ्जीबन्धादिकर्मणि ॥ सर्वेषु वृद्धिकालेषु मातङ्गीं पूजयेद्बुधः ॥ ९० ॥ पूजनं गणनाथस्य ततः प्रभृति शोभनम् ॥ ९१ ॥ मोहेरकस्य भङ्गो हि फाल्गुन्याश्च दिने कृतः ॥ मलस्नानं तदा वर्ज्यं त्रिविधैर्मोढवाडवैः ॥ ९२ ॥ अत्राश्चर्यमभूदेकं तच्छृणुष्व महामते ॥ आसीत्कश्चित्तु शरक्षो रुद्राल्लब्धवरो मुने ॥ ९३ ॥ मोहेरकादुत्तरतो वटवृक्षसमाश्रयः ॥ पाणिग्रहणकाले स जहार वरकन्यके ॥ ९४ ॥

मातंगीजी को पूजै ॥ ९० ॥ और तब से लगाकर गणेशजी का उत्तम पूजन करै ॥ ९१ ॥ और फाल्गुनी पौर्णमासी के दिन मोहेरक का भंग किया गया है तब त्रिविध मोढब्राह्मणों को मलस्नान न करना चाहिये ॥ ९२ ॥ हे महामते ! इस विषय में जो एक आश्चर्य हुआ है उसको सुनिये कि हे मुने ! पुरातन समय शिवजी से वरको पाये हुए कोई राक्षस हुआ है ॥ ९३ ॥ मोहेरक से उत्तर में बरगद के वृक्ष के समीप स्थित वह विवाह के समय में वर व कन्या को हरलेता था ॥ ९४ ॥

इस प्रकार उस दुष्ट आशयवाले राक्षसने बहुत से वरों व कन्याओं को हरलिया तदनन्तर कुछ समय के बाद उस समय ब्राह्मणों ने बहुत पूजनपूर्वक भट्टारिका देवी से कहा तदनन्तर प्रसन्न होतीहुई उस भट्टारिका देवीने ब्राह्मणों से कहा ॥ ९५।९६ ॥ भट्टारिका बोली कि दुःखित मनवाले तुम लोग किस लिये यहां आये हो व आप लोगों का क्या कार्य है इसको शीघ्रही कहिये ॥ ९७ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे मातः! हमारे स्त्री पुरुष विवाह के योग से हरे जाते हैं उसको हम नहीं जानते हैं तुम उस से रक्षा करने के योग्य हो ॥ ९८ ॥ बहुत अच्छा यह कहकर उस समय वह देवी वहां अन्तर्द्धान होगई व फिर विवाह प्राप्त होने पर वह राक्षस उस समय वेदी पै

एवं बहून्वरान्कन्या जहार स दुराशयः ॥ ततः कालेन कियता देवीं भट्टारिकांतदा ॥ ९५ ॥ द्विजा विज्ञापयामा सुर्बहुपूजापुरःसरम् ॥ ततस्तुष्टा तु सा देवी द्विजान्भट्टारिकाब्रवीत् ॥ ९६ ॥ भट्टारिकोवाच ॥ उद्विग्नमनसो यूयं किमर्थमिहचागताः ॥ किञ्च कार्यं हि भवतां कथ्यतामविलम्बितम् ॥ ९७ ॥ द्विजा ऊचुः ॥ अस्माकं दम्पती मातः पाणिग्रहणयोगतः ॥ ह्रियेते तु न जानीमस्तद्रक्षां कर्तुमर्हसि ॥ ९८ ॥ तथेत्युक्त्वा तदा देवी तत्रैवान्तरधीयत ॥ पुनर्विवाहे सम्प्राप्ते तद्रक्षो दम्पती तदा ॥ आवेदिकां गतो हृत्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ ९९ ॥ ततः सुदुःखिता विप्राः पुनर्देवीमुपस्थिताः ॥ आवेदयन् स्ववृत्तान्तं दम्पतीहरणादिकम् ॥ १०० ॥ ततः क्रोधसमाविष्टा देवी शूलं समाददे ॥ युयुधे रक्षसा तेन दिनानि सुबहून्यपि ॥ १ ॥ ततो भट्टारिका श्रान्ता चिरं युद्धसमाकुला ॥ निद्रां प्राप्ता तथा ग्लाना सु ष्वाप वटसन्निधौ ॥ २ ॥ तदातद्देहसम्भूता मातङ्गी रक्तलोचना ॥ मदाघूर्णितलोलाक्षी रक्तपुष्पाम्बरावृता ॥ ३ ॥ तद्रक्षः

प्राप्त होकर स्त्री पुरुष को हरकर वहीं अन्तर्द्धान होगया ॥ ९९ ॥ तदनन्तर बहुत दुःखित ब्राह्मण फिर देवीजी के समीप प्राप्त हुए और उन्होंने स्त्री पुरुष का हरण आदिक अपने वृत्तान्तको कहा ॥ १०० ॥ तदनन्तर क्रोधसे संयुत देवीजीने त्रिशूल को लिया और बहुत दिनों तक उस राक्षस से युद्ध किया ॥ १ ॥ तदनन्तर बहुत दिनों तक युद्ध से विकल भट्टारिका देवी थकगई व थककर नींद को प्राप्त हुई व बरगद के समीप सो गई ॥ २ ॥ तब लाल लोचनोंवाली मातंगी उसके शरीर से उत्पन्न हुई और मद से घूर्णित नेत्रोंवाली तथा लाल पुष्पों व वसनोंको धारण करनेवाली मातंगी ने ॥ ३ ॥ हे मुने! बड़ी सेना से उस राक्षस को पीड़ित किया और

उस राक्षस को शीघ्रही मारकर वह मातंगी बरगद के वृक्ष के नीचे बैठ गई ॥ ४ ॥ तदनन्तर निद्रा को छोड़कर वह आदियोगिनी शीघ्रही जाग पड़ी और राक्षस को मरे हुए देखकर भट्टारिका देवी हर्षसंयुत हुई ॥ ५ ॥ और उसने विचार किया कि किसने बल से गर्वित राक्षस को मारा है ध्यान के प्रभाव से भट्टारिका देवीने मातंगी से मारे हुए राक्षस को जानकर ॥ ६ ॥ ब्राह्मणों से कहा कि तुमलोगों का कल्याण होवै राक्षस का नाश होगया हे द्विजेन्द्रो ! आज से लगाकर आपलोग अपने घरों में ॥ ७ ॥ विवाह व उत्सव के समयों में तथा यज्ञोपवीत व मुंडनादिक कर्मों में और सब महोत्सवों में हे द्विजो ! मातंगी को पूजियेगा ॥ ८ ॥ श्वेत वस्त्रको पहने

पीडयामास बलेन महता मुने ॥ सा तद्रक्षो निहत्याशु वटवृक्षमुपाश्रिता ॥ ४ ॥ ततो निद्रां विहायाशु प्रबुद्धा आदियोगिनी ॥ देवी भट्टारिका दृष्ट्वा हतं रक्षो मुदान्विता ॥ ५ ॥ अचिन्तयत् केन हतो राक्षसो बलगर्वितः ॥ मातङ्ग्या निहतं ज्ञात्वा देवी ध्यानप्रभावतः ॥ ६ ॥ उवाच विप्रान् भद्रं वो जातं रक्षोविनाशनम् ॥ अद्यप्रभृति विप्रेन्द्रा भवद्भिस्स्वगृहेषु च ॥ ७ ॥ विवाहोत्सवकालेषु मौञ्जीचूडादिकर्मसु ॥ महोत्सवेषु सर्वेषु मातङ्गी पूज्यतां द्विजाः ॥ ८ ॥ श्वेतवस्त्रपरीधाना पानपात्रधरा वरा ॥ योत्रं कलशसूर्पादिशिरसा बिभ्रती शुभा ॥ ९ ॥ अष्टादशभुजा देवी सा रमेयकरा तथा ॥ पूजनीया द्विजवरा मातङ्गी मदविह्वला ॥ १० ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी तत्रैवान्तरधीयत ॥ अतः पूज्या द्विजैर्देवी मातङ्गी वटसन्निधौ ॥ ११ ॥ विवाहादिषु कालेषु कुलरक्षणकारिणी ॥ मातङ्गीं मदघूर्णाक्षीं सूर्पयोत्रादिधारिणीम् ॥ १२ ॥ यो नैव पूजयेद्वृद्धौ तत्कुलं याति संक्षयम् ॥ अतएव सदा पूज्या मातङ्गी वृद्धि

व मद्यपान के पात्र को धारण किये और जोत नामक रस्सी व कलश तथा सूपादि को शिर से धारण करनेवाली व श्रेष्ठ ॥ ९ ॥ और कुत्ता को हाथ में लिये वह अठारह भुजाओंवाली मद से विह्वल मातंगी देवी हे द्विजोत्तमो ! तुमलोगों से पूजने योग्य है ॥ १० ॥ यह कहकर उस समय वह भट्टारिका देवी वहीं अन्तर्द्धान होगई इस कारण बरगद के समीप मातंगीजी ब्राह्मणों से पूजने योग्य हैं ॥ ११ ॥ व विवाहादिक समयों में कुल की रक्षा करनेवाली मातंगी पूजने योग्य है व मद से भ्रमित नेत्रोंवाली तथा सूप व जोत आदि को धारनेवाली मातंगी को ॥ १२ ॥ जो वृद्धि में नहीं पूजता है उसका वंश नाश होजाता है इसी कारण वृद्धि के लिये

मातंगी एदैव पूजने योग्य है ॥ १३ ॥ अनेक प्रकार के बलिप्रदानों से मोढों की कुलदेवता को पूजना चाहिये तदनन्तर ब्राह्मणलोग गान व बाजन के शब्दों से मोढों की कुलदेवता उस मातंगी को वेदध्वनिपूर्वक पूजकर मनोरथ को पाये हुए उन प्रसन्न ब्राह्मणों ने धर्मारण्य में प्रवेश किया ॥ १४ । १५ ॥ और आमराजा ने अपनी आज्ञा से जिन ब्राह्मणों को निकाल दिया वे पंद्रहहज़ार ब्राह्मण सुखवासक नामक स्थान को चले गये ॥ १६ ॥ श्रीरामजी ने पहले आपही पचपन ग्रामों को दिया है और वहां टिके हुए वणिजों ने उनकी जीविका को कल्पित किया ॥ १७॥ और वे अडालज, माण्डलीय व पवित्र गोभुज ब्राह्मणों की जीविका के दायक हुए व ब्राह्मणों

हेतवे ॥ १३ ॥ नानाबलिप्रदानेन मोढानां कुलदेवता ॥ ततो द्विजास्तां सम्पूज्य मोढानां कुलदेवताम् ॥ १४ ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैर्वेदध्वनिपुरःसरम् ॥ धर्मारण्यं प्रविविशुर्हृष्टाः प्राप्तमनोरथाः ॥ १५ ॥ निर्वासितास्तु ये विप्रा आमराज्ञा स्वशासनात् ॥ पञ्चदशसहस्राणि ययुस्ते सुखवासकम् ॥ १६ ॥ पञ्चपञ्चाशतो ग्रामान्ददौ रामः पुरा स्वयम् ॥ तत्रस्था वणिजश्चैव तेषां वृत्तिमकल्पयन् ॥ १७ ॥ अडालजा माण्डलीया गोभुजाश्च पवित्रकाः ॥ ब्राह्मणानां वृत्तिदास्ते ब्रह्मसेवासु तत्पराः ॥ ११८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्ये ब्राह्मणानांशासनवृत्तिप्राप्तिवर्णनंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमं मतम् ॥ एते ब्रह्मविदः प्रोक्ताश्चातुर्विद्या महाद्विजाः ॥ १ ॥ स्वाध्यायाश्च वषट्काराः स्वधाकाराश्च नित्यशः ॥ रामाज्ञापालकाश्चैव हनुमद्भक्तितत्पराः ॥ २ ॥ एकदा तु ततो देवा

की सेवा में तत्पर हुए ॥ ११८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेधर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांब्राह्मणानांशासनवृत्तिप्राप्तिवर्णनंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

दो० । धर्मारण्य द्विजन के जिमि कह भेद अनेक ॥ उन्तालिसवें में सोई कह्यो चरित्र सुनेक ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे पुत्र ! सुनिये मैं उत्तम रहस्य को कहता हूं कि ये चातुर्विद्य ब्राह्मण लोग ब्रह्मज्ञानी कहे गये हैं ॥ १ ॥ और नित्य स्वाध्याय व वषट्कार तथा स्वधाकार करनेवाले वे श्रीरामजी की आज्ञा को पालनेवाले व हनुमान् जी की भक्ति में तत्पर थे ॥ २ ॥ तदनन्तर एक समय देवता ब्रह्माजी के समीप गये व ब्राह्मणों को देखने की इच्छावाले वे ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवता वहां

गये ॥ ३ ॥ व उन आये हुए देवताओं को देखकर वे ब्राह्मण अर्घ, पाद्य व मधुपर्क को आगे कर अपने स्थान से चले ॥ ४ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा आदिक देवताओं को पूजकर वे ब्राह्मण ब्रह्मा के आगे बैठकर वेदों को उच्चारण करने लगे ॥ ५ ॥ और संहिता, पद, क्रम व घन और ऋचाओं को व ऋग्वेद की संहिता को उच्चस्वर से कहने लगे ॥ ६ ॥ और सामको गानेवाले वे अनेकप्रकार के स्तोत्रों को करनेलगे व याज्य लोग शास्त्रों को और पुरोनुवाक्यों को पढ़ने लगे ॥ ७ ॥ और चतुरक्षर व परम-चतुरक्षर, द्व्यक्षर, पंचाक्षर व द्व्यक्षर इस यज्ञस्वरूप को जो ज्ञानपूर्वक जपता है ॥ ८ ॥ उसको अन्त में ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है यह मैं सत्य सत्य कहता हूं सब सावधान

ब्रह्माणं समुपागताः ॥ ब्राह्मणान्द्रष्टुकामास्ते ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ ३ ॥ तान्देवानागतान्दृष्ट्वा स्वस्थानाच्चलितास्तु ते ॥ अर्घपाद्यं पुरस्कृत्य मधुपर्कं तथैव च ॥ ४ ॥ पूजयित्वा ततो विप्रा देवान्ब्रह्मपुरोगमान् ॥ ब्रह्माग्र उपविष्टास्ते वेदानुच्चारयन्ति हि ॥ ५ ॥ संहितां च पदं चैव क्रमं घनं तथैव च ॥ उच्चैः स्वरेण कुर्वीत ऋचामृग्वेदसंहिताम् ॥ ६ ॥ सामगाश्च प्रकुर्वन्ति स्तोत्राणि विविधानि च ॥ शास्त्राणि च तथा याज्याःपुरोनुवाक्यांस्तथा ॥ ७ ॥ चतुरक्षरं परं चैव चतुरक्षरमेव च ॥ द्व्यक्षरं च तथा पञ्चाक्षरं द्व्यक्षरमेव च ॥ एतद्यज्ञस्वरूपं च यो जपेज्ज्ञानपूर्वकम् ॥ ८ ॥ अन्ते ब्रह्मपदप्राप्तिः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ एकाग्रमानसाः सर्वे वेदपाठरता द्विजाः ॥ ९ ॥ तेषामङ्गणदेशेषु कण्डूयन्ते कचान्मृगाः ॥ ब्राह्मणा वेदमातां च जपन्ति विधिपूर्वकम् ॥ १० ॥ हस्ते धृतांश्च तैर्दर्भान्भक्षन्ते मृगपोतकाः ॥ निर्वैरं तं तदा दृष्ट्वा आश्रमं गृहमेधिनाम् ॥ ११ ॥ तुतुषुः परमं देवा ऊचुस्ते च परस्परम् ॥ त्रेतायुगमिदानीं च सर्वं धर्मप

मनवाले ब्राह्मण वेदपाठ में परायण थे ॥ ९ ॥ और उनके आंगन के स्थानों में मृग बालों को खुजलाते थे और ब्राह्मणलोग विधिपूर्वक वेदमाता (गायत्री) को जपते थे ॥ १० ॥ व उनसे हाथ में धरे हुए अक्षतों को मृगों के बच्चे खाते थे उस समय गृहस्थों के आश्रम को वैररहित देखकर ॥ ११ ॥ देवतालोग बहुत प्रसन्न हुए और

१ यजामहे २ अस्तु श्रौषट् ३ यजे ४ ये यजामहे ५ वौषट् ये पांच यज्ञसमय में अध्वर्यु आदिकों से कहने योग्य वचन हैं ॥

उन्होंने परस्पर कहा कि इस समय त्रेतायुग है और सब धर्म में परायण हैं॥ १२ ॥ व कलियुग दुष्ट कहागया है तो वह पापी दुष्ट क्या करैगा चातुर्विद्य ब्राह्मणों को बुला-कर उन तीनों ने कहा ॥ १३ ॥ कि आप लोगों के व त्रैविद्य ब्राह्मणों की जीविका के लिये हम तुमलोगों को विभाग देवैंगे उसको यथायोग्य पालन कीजिये॥ १४ ॥ पहले जो छत्तीस हज़ार वणिज् कहे गये हैं वे और तीन हज़ार त्रैविद्य तथा पंद्रह हज़ार ॥ १५ ॥ चातुर्विद्य परस्पर वृत्ति में आश्रित हुए कि त्रिभाग समेत त्रैविद्य व चौथाई भागवाले चातुर्विद्य लोग ॥ १६ ॥ नित्य वणिजोंके घरको जाकर पुरोहिती के भाग को बॉटकर ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से बनाये हुए ब्राह्मणलोग उस को

रायणाः ॥ १२ ॥ कलिर्दुष्टस्तथा प्रोक्तः किं करिष्यति पापकः ॥ चातुर्विद्यान्समाहूय ऊचुस्ते त्रय एव च ॥ १३ ॥ वृत्त्यर्थं भवतां चैव त्रैविद्यानां तथैव च ॥ विभागं वः प्रदास्यामो यथावत्प्रतिपाल्यताम् ॥ १४ ॥ ये वणिजः पुरा प्रोक्ताः षट्त्रिंशच्च सहस्रकाः ॥ त्रिसहस्रास्तु त्रैविद्या दशपञ्चसहस्रकाः ॥ १५ ॥ चातुर्विद्यास्तथा प्रोक्ता अन्योन्यं वृत्तिमाश्रिताः ॥ सत्रिभागास्तु त्रैविद्याश्चतुर्भागास्तु चात्रिणः ॥ १६ ॥ वणिजां गृहमागत्य पौरोहित्यस्य नित्यशः ॥ भागं विभज्य सम्प्रापुः काजेशेन विनिर्मिताः ॥ १७ ॥ परस्परं न विवाहश्चातुर्विद्यत्रिविद्ययोः ॥ चातुर्विद्या मया प्रोक्तास्त्रिविद्यास्तु तथैव च ॥ १८ ॥ त्रैविभागेन त्रैविद्याश्चतुर्भागेन चात्रिणः ॥ एवं ज्ञातिविभागस्तु काजेशेन विनिमितः ॥ १९ ॥ कृतकृत्यास्तु ते विप्राः प्रणेमुस्तान्सुरोत्तमान् ॥ वृत्तिं दत्त्वा ततो देवाः स्वस्थानं च प्रतस्थिरे ॥ २० ॥ पञ्चपञ्चाशद्ग्रामाणां ते द्विजाश्च निवासिनः ॥ चतुर्विद्यास्तु ते प्रोक्तास्तदादि तु त्रिविद्यकाः ॥ २१ ॥ चातुर्विद्यस्य

प्राप्त हुए ॥ १७ ॥ और चातुर्विद्य व त्रिविद्यलोगों का परस्पर विवाह नहीं होता है मैंने चातुर्विद्य व त्रिविद्य ब्राह्मणोंको कहा ॥ १८ ॥ और तिहाई भाग से त्रैविद्य व चौथाई भागसे चातुर्विद्य ब्राह्मण हुए ब्रह्मा, विष्णु व शिवजीसे इस प्रकार जाति का विभाग हुआ ॥ १९ ॥ व उन कृतार्थ ब्राह्मणों ने उन सुरोत्तमों को प्रणाम किया और जीविका को देकर तदनन्तर देवता अपने स्थान को चलेगये ॥ २० ॥ और वे ब्राह्मण पचपन ग्रामों में निवासी हुए और तब से लगाकर वे चातुर्विद्य और त्रिविद्य कहेगये ॥ २१ ॥

और चातुर्विद्य के पंद्रह गोत्र हैं भारद्वाज, वत्स, कौशिक व कुश ॥ २२ ॥ और शांडिल्य, कश्यप, गौतम, छादन, जातूकर्ण्य, कुंत, वशिष्ठ व धारण ॥ २३ ॥ और आत्रेय, मांडिल व उसके उपरान्त लौगाक्ष है और स्वस्थानों के नामों को मैं क्रम से कहता हूं ॥ २४ ॥ कि सीतापुर, श्रीक्षेत्र, मगोड़ी, ज्येष्ठलोज व उसके उपरान्त शेरथा कहा गया है ॥ २५ ॥ और छेदे, ताली, वनोडी व गोव्यंदली, कंटाचोपली, कोहेच व चंदन ॥ २६ ॥ और थलग्राम, सोह, हाथंज व कपडवाणक,

गोत्राणि दशपञ्च तथैव च ॥ भारद्वाजस्तथा वत्सः कौशिकः ८ कुश एव च ॥ २२ ॥ शाण्डिल्यः ५ कश्यपश्चैव गौतमश्छादनस्तथा ८ ॥ जातूकर्ण्यस्तथा कुन्तो वशिष्ठो ११ धारणस्तथा ॥ २३ ॥ आत्रेयोर्माण्डिलश्चैव १४ लौगाक्षश्च १५ ततः परम् ॥ स्वस्थानानां च नामानि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ २४ ॥ सीतापुरं च श्रीक्षेत्रं २ मगोडी च ३ तथा स्मृता ॥ ज्येष्ठलोजस्तथा चैव शेरथा च ततः परम् ॥ २५ ॥ छेदे ताली वनोडी च गोव्यन्दली तथैव च ॥ कण्टाचोपली चैव कोहेचं चन्दनस्तथा ॥ २६ ॥ थलग्रामश्च सोहं च हाथञ्जं कपडवाणकम् ॥ व्रजन्होरी च वनोडी च फीणां वगोलं द्रणस्तथा ॥ २७ ॥ थलजा चारणं सिद्धा भालजाश्च ततः परम् ॥ महोवी आईया मलीआ गोधरीग्राम ततः परम् ॥ २८ ॥ वाठसुहाली तथा चैव माणजा सानदीयास्तथा ॥ आनन्दीया पाटडीअटीकोलीया ततः परम् ॥ २९ ॥ गम्भी धणीआ मात्रा च नातमोरास्तथैव च ॥ वलोला रान्त्यजाश्चैव रूपोला बोधणी च वै ॥ ३० ॥ छत्रोटा अलुएवा च वासतडीग्रामतः परम् ॥ जाषासणा गोतीया च चरणीया दुधीयास्तथा ॥ ३१ ॥ हालोला वै

व्रजन्होरी, वनोड़ी, फीणा, वगोल व द्रण ॥ २७ ॥ और थलजा, चारण, सिद्धा तदनन्तर भालजा, महोवी, आईया, मलीआ व इसके उपरान्त गोधरीग्राम् ॥ २८ ॥ और वाठसुहाली, माणजा, सानदीया, आनन्दीया, पाटडीअ तदनन्तर टीकोलीआ ॥ २९ ॥ और गंभी, धणीआ, मात्रा व नातमोरा, वलोला, रांत्यजा, रूपोला व बोधणी ॥ ३० ॥ और छत्रोटा, अलुएवा, वासतडीग्राम व इसके उपरान्त जाषासणा, गोतीया, चरणीया और दुधीया ॥ ३१ ॥ हालोला, वैहोला, असाला, नालाडा,

देहोलो, सौहासीया और संहालीया ॥ ३२ ॥ व स्वस्थान इन पचपन ग्रामों को क्रम से श्रीरामजी ने विधिपूर्वक करके ब्राह्मणों के लिये दिया है ॥३३॥ इसके उपरान्त स्वस्थान के गोत्र में उपजे हुए ब्राह्मणों को व प्रवरों को यथायोग्य विधिपूर्वक कहता हूं ॥ ३४ ॥ क्योंकि गोत्रदेवी व प्रवर को जानकर स्वस्थान होता है और ब्राह्मण अपने स्थान में बसते हैं ॥ ३५ ॥ नारदजी बोले कि गोत्र कैसे जाना जाता है व कुल कैसे जाना जाता है ? और देवी कैसे जानी जाती है ? उसको यथार्थ कहिये ॥३६॥ ब्रह्माजी

होला च असाला नालाडास्तथा ॥ देहोलोसौहासीया च संहालीयास्तथैव च ॥ ३२ ॥ स्वस्थानं पञ्चपञ्चाशद्ग्रामा एते ह्यनुक्रमात् ॥ दत्ता रामेण विधिवत्कृत्वा विप्रेभ्य एव च ॥ ३३ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि स्वस्थानस्य च गोत्रजान् ॥ तथा हि प्रवरांश्चैव यथावद्विधिपूर्वकम् ॥ ३४ ॥ ज्ञात्वा तु गोत्रदेवीं च तथा प्रवरमेव च ॥ स्वस्थानं जायते चैव द्विजाः स्वस्थानवासिनः ॥ ३५ ॥ नारद उवाच ॥ कथं च ज्ञायते गोत्रं कथं तु ज्ञायते कुलम् ॥ कथं वा ज्ञायते देवी तद्वदस्व यथार्थतः ॥ ३६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सीतापुरं तु प्रथमं प्रवरद्वयमेव च ॥ कुशवत्सौ तथा चात्र मया ते परिकीर्त्तितौ ॥ ३७ ॥ १ द्वितीयं चैव श्रीक्षेत्रं गोत्राणां त्रयमेव च ॥ छान्दनसस्तथा वत्सस्तृतीयं कुशमेव च ॥ ३८ ॥ तृतीयं मुद्गलं चैव कुशभारद्वाजमेव च २ ॥ शोहोली च चतुर्थं वै कुशप्रवरमेव च ॥ ३९ ॥ ज्येष्ठला पञ्चमश्चैव कुशवत्सौ प्रकीर्त्तितौ ५ ॥ श्रेयस्थानं हि षष्ठं वै भारद्वाजः कुशस्तथा ६ ॥ ४० ॥ दन्ताली सप्तमं चैव भारद्वाजः कुशस्तथा ७ ॥ वटस्थानमष्टमं च निबोध सुतसत्तम ॥ ४१ ॥ तत्र गोत्रं कुशं कुत्सं भारद्वाजं तथैव च ॥ राज्ञः पुरं नवमं च भारद्वाज

बोले कि पहला सीतापुर और कुश व वत्स दो प्रवरों को मैंने यहां तुमसे कहा है ॥ ३७ ॥ और दूसरा श्रीक्षेत्र है व तीन गोत्र हैं छांदनस, वत्स व तीसरा कुश है ॥ ३८ ॥ और तीसरा मुद्गल है व कुश और भारद्वाज प्रवर हैं और चौथा शोहोली ग्राम है व कुशप्रवर है ॥ ३९ ॥ और पांचवां ज्येष्ठला ग्रामहै व वत्स और कुशप्रवर कहे गये हैं ॥५॥ और छठां श्रेयस्थान है व भारद्वाज और कुश प्रवर हैं ॥ ४० ॥ और सातवां दंताली ग्राम है व भारद्वाज और कुश प्रवर हैं व हे उत्तम सुत ! आठवां वटस्थान जानिये ॥४१॥ वहां

कुश, कुत्स व भारद्वाजगोत्र है और नवां राजापुर है व भारद्वाज प्रवर है ॥ ४२ ॥ और दशवां कृष्णवाट नगर है व कुश प्रवर है और गेरहवां दहलोटपुर है व वत्स प्रवर है ॥ ४३ ॥ और बारहवां चेखलीपुर है व पौककुश प्रवर है ॥ ४४ ॥ और चांचोदखे, देहोलोडी, आत्रय, वत्स व कुत्सक प्रवर हैं और भारद्वाजी, कोणायाग्राम हैं व भारद्वाज, गोलंदणा और शकु प्रवर हैं ॥ ४५ ॥ और थलत्यजाद्दय ग्राम में कुश व धारण प्रवर हैं और नारणसिद्धा स्वस्थान है व कुत्सगोत्र कहागया है ॥४६॥ और भालजाग्राम में कुत्स व वत्स प्रवर हैं और मोहोवी व आकुश हैं तथा ईयाश्लीआ, शाडिल और गोधरीपात्र हैं ॥ ४७ ॥ व आनंदीयाग्राम है और

प्रवरमेव च ९ ॥ ४२ ॥ कृष्णवाटं दशमं चैव कुशप्रवरमेव च ॥ दहलोडमेकादशं वत्सप्रवरमेव हि ॥ ४३ ॥ चेखली द्वादशं पौककुशप्रवरमेव च ॥ ४४ ॥ चाञ्चोदखे देहोलोडी आत्रयश्च वत्सकुत्सकश्चैव ॥ भारद्वाजीकोणाया च भारद्वाजगोलंदणाशकुस्तथा ॥ ४५ ॥ थलत्यजाद्दये चैव कुशधारणमेव च ॥ नारणसिद्धा च स्वस्थानं कुत्सं गोत्रं प्रकीर्तितम् ॥ ४६ ॥ भालजां कुत्सवत्सौ च मोहोवी आकुशस्तथा ॥ ईयाश्लीआ शाण्डिलश्च गोधरीपात्रमेव च ॥ ४७ ॥ आनन्दीया द्वे चैव भारद्वाजशाण्डिलश्चैवपाटडीआ कुशमेव च ॥ ४८ ॥ वांसडीआश्चैव जास्वा कौत्समणा वत्स आत्रेयौ गीता आकुशगौतमौ ॥ ४९ ॥ चरणीआ भारद्वाजः दुधी आधारणसा हि अहोसोन्ना शाण्डिल्यस्तथा ॥ ५० ॥ वैलोला हुशश्चैवा असाला कुशश्चैव धारणा च द्वितीयकम् ॥ ५१ ॥ नालोला वत्सधारणीया च देलोला कुत्समेव च ॥ सोहासीया भारद्वाजकुशवत्समेव च ॥ ५२ ॥ सुहालीआ वत्सं वै प्रोक्तं गोत्राणि यथाक्रमम् ॥

उसमें दो गोत्र हैं भारद्वाज व शाडिल और पाटडीआ ग्राम है व कुश गोत्र है ॥ ४८ ॥ और बॉसडीआ, जास्वा, कौत्समणा ग्राम हैं व इनमें वत्स और आत्रेय गोत्र है व गीता ग्राम है और आकुश व गौतम प्रवर हैं ॥ ४९ ॥ और चरणीआ ग्राम है व भारद्वाज गोत्र है और दुधीआ धारणसा, अहोसोन्ना ग्राम है व शांडिल्यगोत्र है ॥ ५० ॥ व वैलोला, हुशश्चैवा, असाला ग्राम हैं और कुश व दूसरा धारणागोत्र है ॥ ५१ ॥ और नालोला ग्राम है व वत्स और धारणीय गोत्र हैं व देलोला ग्राम है और कुत्स गोत्र है और सोहासीया ग्राम है उसमें भारद्वाज, कुश व वत्स गोत्र हैं ॥ ५२ ॥ और जो सुहालीआ ग्राम है उसमें वत्स गोत्र है मैंने यहां क्रम से गोत्रों व स्वस्थानों को

कहा ॥ ५३ ॥ और शीतवाडिया ग्राम है उसमें जो गोत्र कहे गये वे ये हैं कि कुश, वत्स और विश्वामित्र, देवरात और तीसरा दल गोत्र है ॥५४॥ और भार्गव, च्यवन, आप्नवान्, और्व व जमदग्नि ये गोत्र हैं और वचा, अर्द्दशेषा व बुटला ये गोत्रदेवियां कही गई हैं ॥ ५५॥ यह प्रथम गोत्र समाप्त हुआ ॥१॥ दूसरा श्रीक्षेत्र कहा गया है और दो गोत्र हैं छान्दनस व वत्स और दो देवियां हैं ॥ ५६ ॥ और आंगिरस, अम्बरीष, यौवनाश्व, भृगु, च्यवन, आप्नवान्, और्व व जमदग्नि ये प्रवर हैं ॥ ५७ ॥ व हे मुनिसत्तम ! एक भट्टारिका व दूसरी शेपलादेवी कही गई है और जो इस वंश में उत्पन्न हैं उनको सुनिये ॥ ५८ ॥ कि वे क्रोधसमेत व उत्तम आचारवाले

मया प्रोक्तानि चैवात्र स्वस्थानानि यथाक्रमम् ॥ ५३ ॥ शीतवाडिया ये प्रोक्ताः कुशो वत्सस्तथैव च ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दलमेव च ॥ ५४ ॥ भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वजमदग्निरेव हि ॥ वचार्द्दशेषाबुटला गोत्रदेव्यः प्रकीर्तिताः ॥ ५५ ॥ इति प्रथमं गोत्रम् ॥ १ ॥ श्रीक्षेत्रं द्वितीयं प्रोक्तं गोत्रद्वितयमेव च ॥ छान्दनसस्तथा वत्सं देवी द्वितयमेव च ॥ ५६ ॥ आङ्गिरसाम्बरीषश्च यौवनाश्वस्तथैव च ॥ भृगुच्यवनआप्नवानौर्वजमदग्निमेव च ॥ ५७ ॥ देवी भट्टारिका प्रोक्ता द्वितीया शेपला तथा ॥ एतद्वंशोद्भवा ये च शृणु तान्मुनिसत्तम ॥ ५८ ॥ सक्रोधनाः सदाचाराः श्रौतस्मार्तक्रियापराः ॥ पञ्चयज्ञरता नित्यं स्वसम्बन्धसमाश्रिताः ॥ कृतज्ञाः क्रतुजाश्चैव ते सर्वे द्विजसत्तमाः ॥ ५९ ॥ इति द्वितीयगोत्रम् ॥ २ ॥ तृतीयं मगोडोआ वै गोत्रद्वितयमेव च ॥ भारद्वाजस्तथा कुत्सं देवीद्वितयमेव च ॥ ६० ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजस्तथैव च ॥ विश्वामित्रदेवरातौ प्रवरत्रयमेव च ॥ ६१ ॥ शेषला बुधला प्रोक्ताधारशान्तिस्तथैव च ॥ अस्मिन्ग्रामे च ये जाता ब्राह्मणाः सत्यवादिनः ॥ ६२ ॥ द्विजपूजाक्रियायुक्ता नानायज्ञक्रिया

और श्रौत, स्मार्त कर्मों में परायण हैं व नित्य पञ्चयज्ञों में परायण तथा अपने संबन्ध में आश्रित हैं और वे सब नृपोत्तम कृतज्ञ व यज्ञ से उत्पन्न हैं ॥ ५९ ॥ यह दूसरा गोत्र समाप्त हुआ ॥ २ ॥ और तीसरा मगोडोआ नगर है व दो गोत्र हैं भारद्वाज व कुत्स और दो देवी हैं ॥ ६० ॥ आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, विश्वामित्र व देवरात ये तीन प्रवरहैं ॥ ६१ ॥ और शेषला, बुधला व धारशान्ति कहीगई है और इस ग्राम में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण सत्यवादी हैं ॥ ६२ ॥ और ब्राह्मणों की पूजा व कर्म में

युक्त हैं तथा अनेक प्रकार के यज्ञकर्मों में परायण हैं व इस गोत्र में उत्पन्न सब ब्राह्मण मुनीश्वर हैं ॥ ६३ ॥ यह तीसरा गोत्र समाप्त हुआ ॥३॥ चौथा शीहोलिया ग्राम है और दो गोत्र हैं विश्वामित्र, देवरात व तीसरा-दल है ॥ ६४ ॥ और उनकी चचाई देवी गोत्रदेवी कही गई है व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे दुर्बल व उदासीनमन हैं ॥ ६५ ॥ व हे नृपोत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी हैं व हे ब्रह्मसत्तम ! वे ब्राह्मण सब विद्याओं में प्रवीण हैं ॥ ६६ ॥ यह चौथा स्थान समाप्त हुआ ॥ ४ ॥ और ज्येष्ठलोजा पांचवां स्वस्थान है व वत्सशीया और कुत्सशीया ये दो प्रवर कहेगये हैं ॥६७॥ और आवरिवृवाप्र, यौवनाश्व, भृगु, च्यवन, आप्न, और्व, जमदग्नि ये गोत्र

पराः ॥ अस्मिन्गोत्रे समुत्पन्ना द्विजाः सर्वे मुनीश्वराः ॥ ६३ ॥ इति तृतीयगोत्रम् ॥ ३ ॥ चतुर्थं शीहोलियाग्रामं गोत्रद्वितयमेव च ॥ विश्वामित्रदेवरातस्तृतीयो दलमेव च ॥ ६४ ॥ देवी चचाई वै तेषां गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ ६५ ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ॥ सर्व्वविद्याप्रवीणाश्च ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तम ॥ ६६ ॥ इति चतुर्थं स्थानम् ॥ ४ ॥ ज्येष्ठलोजा पञ्चमं च स्वस्थानं परिकीर्तितम् ॥ वत्सशीया कुत्सशीया प्रवरद्वितयं स्मृतम् ॥ ६७ ॥ आवरिवृवाप्रःयौवनाश्वभृगुच्यवनआप्नौर्वजमदग्निस्तथैव हि ॥ ६८ ॥ चचाई वत्सगोत्रस्य शान्ता च कुत्सगोत्रजा ॥ एतैस्त्रिभिः पञ्चभिश्च द्विजा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥ ६९ ॥ शान्ता दान्ताः सुशीलाश्च धनपुत्रैश्च संयुताः ॥ वेदाध्ययनहीनाश्च कुशलाः सर्वकर्मसु ॥ ७० ॥ सुरूपाश्च सदाचाराः सर्वधर्मेषु निष्ठिताः ॥ दानधर्म्मरताः सर्वे अत्रजा जलदा द्विजाः ॥ ७१ ॥ इति पञ्चमं स्थानम् ॥ ५ ॥ शेरथाग्रामेषु वै जाताः प्रवर

हैं ॥ ६८ ॥ और वत्स गोत्र की चचाई देवी है व कुत्सगोत्र में उत्पन्न शांता देवी है और इन तीनों व पांचों से ब्राह्मण ब्रह्मस्वरूपी होते हैं ॥ ६९ ॥ और वे शान्त, दान्त, सुशील व धन और पुत्रों से संयुत होते हैं व वेदपाठ से संयुत और सब कर्मों में प्रवीण होते हैं ॥७०॥ और उत्तम रूपवान् तथा अच्छे आचरणवाले व सब धर्मों में परायण होते हैं और इसमें पैदा हुए सब ब्राह्मण दान धर्म में परायण व जलदायक होते हैं ॥ ७१ ॥ यह पांचवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५ ॥ और शेरथा ग्रामों में जो

उत्पन्न हैं वे दो प्रवरों से संयुत हैं कुश व भारद्वाज और दो देवी हैं ॥ ७२ ॥ विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल है और आंगिरस, बार्हस्पत्य व भारद्वाज ये गोत्र हैं ॥७३॥ और कमला महालक्ष्मी व दूसरी यक्षिणी है और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे श्रौत स्मार्त कर्मों में परायण व विद्वान् होते हैं ॥ ७४ ॥ और वेदपाठ करनेवाले व तपस्वी तथा शत्रुमर्दक होते हैं और क्रोधी, लोभी, दुष्ट व यज्ञ करने और यज्ञ कराने में परायण हैं और सब वेदकर्म में तत्पर होते हैं वे ब्राह्मण मुझसे कहेगये ॥ ७५ ॥ यह छठा स्थान समाप्त हुआ ॥ ६ ॥ और दन्तालीया ग्राम में भारद्वाज, कुत्स व शाय, आंगिरस, बार्हस्पत्य व भारद्वाज गोत्र हैं ॥ ७६ ॥ और यक्षिणी व दूसरी कर्मलादेवी

द्वयसंयुताः ॥ कुशभारद्वाजाश्चैव देवीद्वयं तथैव च ॥ ७२ ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दल एव च ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च ॥ ७३ ॥ कमला च महालक्ष्मीर्द्वितीया यक्षिणी तथा ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाताः श्रौतस्मार्त्तरता बुधाः ॥ ७४ ॥ वेदाध्ययनशीलाश्च तापसाश्चारिमर्द्दनाः ॥ रोषिणो लोभिनो दुष्टा यजने याजने रताः ॥ ब्रह्मक्रियापराः सर्वे ब्राह्मणास्ते मयोदिताः ॥ ७५ ॥ इति षष्ठं स्थानम् ॥ ६ ॥ दन्तालीया भारद्वाजकुत्सशायास्तथैव च ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च ॥ ७६ ॥ देवी च यक्षिणी प्रोक्ता द्वितीया कर्मला तथा ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता वाडवा धनिनः शुभाः ॥ ७७ ॥ वस्त्रालङ्करणोपेता द्विजभक्तिपरायणाः ॥ ब्रह्मभोज्यपराः सर्वे सर्वे धर्मपरायणाः ॥ ७८ ॥ इति सप्तमं स्थानम् ॥ ७ ॥ वडोद्रीयान्वये जाताश्चत्वारः प्रवराः स्मृताः ॥ कुशः कुत्सश्च वत्सश्च भारद्वाजस्तथैव च ॥ ७९ ॥ तत्प्रवराण्यहं वक्ष्ये तथा गोत्राण्यनुक्रमात् ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयोदल एव च ॥ ८० ॥ आङ्गिरसाम्बरीषश्च यौवनाश्व

कही गई है और इस गोत्र में जो ब्राह्मण उत्पन्न हैं वे धनी व शुभ होते हैं ॥ ७७ ॥ और वस्त्रों व भूषणों से संयुत तथा ब्राह्मणों की भक्ति में परायण हैं और सब ब्रह्मभोज में परायण व सब धर्म में परायण हैं ॥ ७८ ॥ यह सातवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ७ ॥ और जो वडोद्रीय के वंश में उत्पन्न हैं उनके चार प्रवर कहे गये हैं कुश, कुत्स, वत्स व भारद्वाज हैं ॥ ७९ ॥ और उनके प्रवरों व गोत्रों को मैं क्रम से कहता हूं कि विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल है ॥ ८० ॥ और आङ्गिरस, अम्बरीष व तीसरे यौवनाश्व

हैं और भार्गव, च्यावन, आप्नवान्, और्व व जमदग्नि हैं ॥ ८१ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज ये गोत्र हैं और कर्मला, क्षेमला और धारभट्टारिका ॥ ८२ ॥ और चौथी क्षेमला कही गई है ये क्रम से गोत्रमाता हैं व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे सदैव पञ्चयज्ञ में परायण हैं ॥ ८३ ॥ और लोभी, क्रोधी व बहुत प्रजाओंवाले और स्नान, दानादि में परायण व सदैव इन्द्रियों को जीतनेवाले होते हैं ॥ ८४ ॥ और हज़ारों बावली, कुँआ व तडागों के बनानेवाले होते हैं और व्रत करनेवाले व गुणज्ञ तथा मूर्ख व वेदों से रहित होते हैं ॥ ८५ ॥ यह आठवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ८ ॥ और उस गोदणीय नामक ग्राम में दो गोत्र टिके हैं पहला वत्स गोत्र है दूसरा

स्तृतीयकः ॥ भार्गवश्च्यावनाप्नवानौर्वजमदग्निस्तथैव च ॥ ८१ ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च ॥ कर्मला क्षेमलाचैव धारभट्टारिका तथा ॥ ८२ ॥ चतुर्थी क्षेमला प्रोक्ता गोत्रमाता अनुक्रमात् ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाताः पञ्चयज्ञरताः सदा ॥ ८३ ॥ लोभिनः क्रोधिनश्चैव प्रजायन्ते बहुप्रजाः ॥ स्नानदानादि निरताः सदा वै निर्जितेन्द्रियाः ॥ ८४ ॥ वापीकूपतडागानां कर्त्तारश्च सहस्रशः ॥ व्रतशीला गुणज्ञाश्च मूर्खा वेदविवर्जिताः ॥ ८५ ॥ इत्यष्टमं स्थानम् ॥ ८ ॥ गोदणीयाभिधे ग्रामे गोत्रौ द्वौ तत्र संस्थितौ ॥ वत्सगोत्रं प्रथमकं भारद्वाजं द्वितीयकम् ॥ ८६ ॥ भृगुच्यवनाप्नवानौर्वपुरोधसमेव च ॥ शीहरी प्रथमा ज्ञेया द्वितीया यक्षिणी तथा ॥ ८७ ॥ अस्मिन्गोत्रोद्भवा विप्रा धनधान्यसमन्विताः ॥ सामर्षा लौल्यहीनाश्च द्वेषिणः कुटिलास्तथा ॥ ८८ ॥ हिंसिनो धनलुब्धाश्च मया प्रोक्तास्तु भूपते ॥ ८९ ॥ इति नवमं स्थानम् ॥ ९ ॥ कणटवाडीआ ग्रामे विप्राः कुशगोत्र समुद्भवाः ॥ प्रवरं तस्य वक्ष्यामि शृणु त्वं च नृपो

भारद्वाज है ॥ ८६ ॥ और भृगु, च्यवन, आप्नवान्, और्व व पुरोधस ये प्रवर हैं और प्रथम देवी शीहरी व दूसरी यक्षिणी जानने योग्य है ॥ ८७ ॥ और इस गोत्र में उत्पन्न ब्राह्मण धन, धान्य से संयुत होते हैं और क्रोध समेत व चंचलता रहित तथा द्वेषी व कुटिल होते हैं ॥ ८८ ॥ व हे भूपते ! मुझसे वे हिंसक व धन के लोभी कहे गये ॥ ८९ ॥ यह नवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ९ ॥ व हे नृपोत्तम ! कराटवाडीआ ग्राम में ब्राह्मण कुश गोत्र में उत्पन्न हैं उसका प्रवर मैं कहता हूं तुम

सुनो ॥९० ॥ कि विश्वामित्र, देवरात व उदल ये तीन प्रवर कहेगये हैं व हे नृपोत्तम ! वह चचाई देवी कहां गई तुम सुनो ॥ ९१ ॥ और वहां प्रसन्न चित्त व सावधान मनवाले वे यज्ञों से पूजते हैं और वे ब्राह्मण सब विद्याओं में प्रवीण तथा सत्यवादी होते हैं ॥ ९२ ॥ यह दशवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १० ॥ और मैंने जो वेखलोया ग्राम कहा है उसमें कुशवंश में उपजेहुए ब्राह्मण बसते हैं व हे नृपोत्तम ! वे तीन प्रवरों से संयुत होते हैं उनको सुनो ॥ ९३ ॥ कि विश्वामित्र, देवराज और औदल ये तीन प्रवर कहे गये हैं और उनके कुल की रक्षा करनेवाली चचाई देवी कहीगई है ॥ ९४ ॥ और ब्राह्मण महात्मा, सत्त्ववान् व गुण से संयुत होते हैं और तपस्वी,

त्तम ॥ ९० ॥ विश्वामित्रो देवरात उदलश्च त्रयः स्मृताः ॥ चचाई देवी सा प्रोक्ता शृणु त्वं नृप सत्तम ॥ ९१ ॥ यजन्ते क्रतुभिस्तत्र हृष्टचित्तैकमानसाः ॥ सर्वविद्यासु कुशला ब्राह्मणाः सत्यवादिनः ॥९२॥ इति दशमं स्थानम् ॥ १० ॥ वेखलोया मया प्रोक्ता कुत्सवंशे समुद्भवाः ॥ प्रवरत्रयसंयुक्ताः शृणु त्वं च नृपोत्तम ॥ ९३ ॥ विश्वामित्रो देवराजौदलश्चेति त्रयः स्मृताः ॥ चचाई देवी तेषां वै कुलरक्षाकरी स्मृता ॥ ९४ ॥ ब्राह्मणाश्च महात्मानः सत्त्ववन्तो गुणान्विताः॥ तपस्वियोगिनश्चैव वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ९५ ॥ साधवश्च सदाचारा विष्णुभक्तिपरायणाः ॥ स्नानसन्ध्यापरा नित्यं ब्रह्मभोज्यपरायणाः ॥ ९६ ॥ अस्मिन्वंशे मया प्रोक्ताः शृणु त्वं च अतः परम् ॥ ९७॥ इत्येकादशं स्थानम् ॥११॥ देहलोडीआ ये प्रोक्ताः कुत्सप्रवरसंयुताः ॥ आङ्गिरस आम्बरीषो युवनाश्वस्तृतीयकः ॥ ९८ ॥ गोत्रदेवी मया प्रोक्ता श्रीशेषदुर्बलेति च ॥ कुत्सवंशे च ये जाताः सद्वृत्ताः सत्यभाषिणः ॥ ९९ ॥ वेदाध्ययनशीलाश्च परच्छिद्रैकद

योगी व वेदों और वेदांगोंके पारगामी होते हैं ॥ ९५ ॥ और साधु व उत्तम आचार वाले तथा विष्णुजी की भक्ति में परायण होते हैं और स्नान व संध्या में तत्पर तथा नित्य ब्रह्मभोज में परायण होते हैं ॥ ९६ ॥ इस वंश में जो उत्पन्न हैं वे मुझसे कहे गये व इसके उपरान्त तुम सुनो ॥ ९७ ॥ यह गेरहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ११ ॥ और देहलोडीआ ग्राम में जो ब्राह्मण कहेगये हैं वे कुत्स प्रवर से संयुत हैं और आंगिरस, आम्बरीष व तीसरा युवनाश्व प्रवर है ॥ ९८ ॥ व मैंने श्रीशेष दुर्बला ऐसी गोत्रदेवी कहा है और जो कुत्सवंश में उत्पन्न हैं वे उत्तम चरित्रवाले व सत्यवादी होते हैं ॥ ९९ ॥ और वेदपाठ से रहित व पराये छिद्र को देखनेवाले तथा क्रोधसहित

व चंचलता से रहित और द्वेषी व कुटिल होते हैं ॥ १०० ॥ व जो कुत्सवंश में उत्पन्न हैं वे हिंसक और धन के लोभी होते हैं ॥ १ ॥ यह बारहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १२ ॥ और कोह ग्राम में तीन गोत्रों से संयुत ब्राह्मण कहेगये हैं भारद्वाज, वत्स व तीसरा कुश है ॥ २ ॥ और गोत्र के क्रम से मैं प्रवरों को कहता हूं कि भार्गव,च्यवन,आप्नवान्,और्व व जमदग्नि हैं ॥ ३ ॥ और तीसरा कुश प्रवर है व उसमें तीन प्रवर हैं विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल है ॥ ४ ॥ और पहली यक्षिणी व दूसरी शीहुरी देवी कहीगई है और क्रमपूर्वक गोत्र में उत्पन्न तीसरी चचाईदेवी है ॥ ५ ॥ व इस गोत्र में उत्पन्न ब्राह्मण श्रौतस्मार्त कर्मों में परायण व विद्वान् होते हैं और

शिनः ॥ सामर्षा लौल्यतो हीना द्वेषिणः कुटिलास्तथा ॥ १०० ॥ हिंसिनो धनलुब्धाश्च ये च कुत्ससमुद्भवाः ॥ १ ॥ इति द्वादशं स्थानम् ॥ १२ ॥ कोहे च ब्राह्मणाः प्रोक्ता गोत्र त्रितयसंयुताः ॥ भारद्वाजस्तथा वत्सस्तृतीयः कुश एव च ॥ २ ॥ प्रवराण्यहं तथा वक्ष्ये यथा गोत्रक्रमेण हि ॥ भार्गवच्यवनाप्नवानौर्वजमदग्निस्तथैव च ॥ ३ ॥ कुशप्रवरं तृतीयं तु प्रवरत्रयमेव च ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दलमेव च ॥ ४ ॥ यक्षिणी प्रथमा प्रोक्ता द्वितीया शीहुरी तथा ॥ तृतीया चचाई प्रोक्ता यथानुक्रमगोत्रजा ॥ ५ ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः श्रौतस्मार्त्तरता बुधाः ॥ वेदाध्ययनशीलाश्च तापसाश्चारिमर्द्दनाः ॥ ६ ॥ रोषिणो लोभिनो दुष्टा यजने याजने रताः ॥ ब्रह्मकर्मपराः सर्वे मया प्रोक्ता द्विजोत्तमाः ॥ ७ ॥ इति त्रयोदशं स्थानम् ॥ १३ ॥ चान्दणखेडे ये जाता भारद्वाजसमुद्भवाः ॥ आङ्गिरसो बार्हस्पत्यस्तृतीयो भारद्वाजस्तथा ॥ ८ ॥ यक्षिणी चास्य वै देवी प्रोक्ता व्यासेन धीमता ॥ भारद्वाजास्तु ये जाता द्विजा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥ ९ ॥ शान्ता दान्ताः सुशीलाश्च धनपुत्रसमन्विताः ॥ धर्मारण्ये द्विजाः श्रेष्ठाः क्रतुकर्मणि को

वेदपाठ करनेवाले व तपस्वी और शत्रुमर्दक होते हैं ॥ ६ ॥ और क्रोधी, लोभी, दुष्ट व यज्ञ करने और यज्ञ कराने में परायण हैं व मैंने सब द्विजोत्तमों को ब्रह्मकर्म में परायण कहा है ॥ ७ ॥ यह तेरहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १३ ॥ और चांदड़खेड़ में जो उत्पन्न हैं वे भारद्वाज से उत्पन्न हैं और आंगिरस, बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज प्रवर है ॥ ८ ॥ और बुद्धिमान् व्यासजी ने इस गोत्र की यक्षिणी देवी कहा है और भारद्वाज गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण ब्रह्मस्वरूपी हैं ॥ ९ ॥ और शांत, दांत, सुशील व धन

और पुत्रों से संयुत होते हैं और धर्मारण्य में श्रेष्ठ ब्राह्मण यज्ञ कर्म में परायण हैं ॥ १० ॥ और गुरुवों की भक्ति में परायण सब अपने कुलको प्रकाशित करते हैं ॥ ११ ॥ यह चौदहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १४ ॥ और थल ग्राम में जो उत्पन्न हैं वे भारद्वाज से उत्पन्न हैं और आंगिरस, बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज प्रवर हैं ॥ १२ ॥ और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण उत्तम व धनी होते हैं और वस्त्रों व भूषणों से संयुत तथा ब्राह्मणों की भक्ति में परायण होते हैं ॥ १३ ॥ और सब ब्रह्म भोज में परायण व सब धर्म में तत्पर होते हैं और गोत्र की देवी यक्षिणी नामक रक्षा करनेवाली मुझसे कहीगई ॥ १४ ॥ यह पंद्रहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

विदाः॥ १०॥ गुरुभक्तिरताः सर्वे भासयन्ति स्वकं कुलम् ॥ ११ ॥ इति चतुर्दशं स्थानम् ॥ १४॥ थलग्रामे च ये जाता भारद्वाजसमुद्भवाः ॥ आङ्गिरसो बार्हस्पत्यो भारद्वाजस्तृतीयकः ॥ १२ ॥ अस्मिन् गोत्रे च ये जाता वाडवा धनिनः शुभाः॥ वस्त्रालङ्करणोपेता द्विजभक्तिपरायणाः॥१३॥ ब्रह्मभोज्यपराः सर्वे सर्वे धर्मपरायणाः ॥ गोत्रदेवी मया ख्याता यक्षिणी नाम रक्षिणी॥ १४॥ इति पञ्चदशं स्थानम्॥१५॥मोऊत्रीयाश्च ये जाता द्वौ गोत्रौ तत्र कीर्तितौ ॥ भारद्वाजः कश्यपश्च देवीद्वितयमेव च ॥ १५ ॥ चामुण्डा यक्षिणीचैव देवी चात्र प्रकीर्त्तिता ॥ कश्यपाऽवत्सारश्चैव नैध्रुवश्च तृतीयकः ॥ १६ ॥ आङ्गिरसो बार्हस्पत्यो भारद्वाजस्तृतीयकः ॥ प्रियवाक्या महादक्षा गुरुभक्ति रताः सदा ॥ १७ ॥ सदा प्रतिष्ठावन्तश्च सर्वभूतहिते रताः ॥ यजन्ति ते महायज्ञान्काश्यपा ये द्विजातयः ॥ १८ ॥ सर्वेषां याजनकरा याज्ञिकाः परमाः स्मृताः॥१९॥इति षोडशं स्थानम् ॥१६॥ हाथीजणे च ये जाता वात्सा भारद्वाजास्तथा॥ज्ञानजा यक्षि

और जो मोऊत्रीया ग्राममें उत्पन्न हैं उनमें दो गोत्र कहे गये हैं भारद्वाज व कश्यप और दो देवी हैं ॥ १५ ॥ चामुण्डा और यक्षिणी ये दो देवी इसमें कहीगई हैं और कश्यप अवत्सार व तीसरा नैध्रुव प्रवर है ॥ १६ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज है और वे सब प्रियवचनवाले व बडे प्रवीण तथा सदैव गुरुवों की भक्ति में परायण होते हैं ॥ १७ ॥ और सदैव प्रतिष्ठावाले व सब प्राणियों के हित में परायण होते हैं और जो कश्यपगोत्रवाले ब्राह्मण हैं वे महायज्ञों को करते हैं ॥ १८ ॥ और वे सबों को यज्ञ करानेवाले व उत्तम यज्ञकर्ता कहे गये हैं ॥ १९ ॥ यह सोलहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १६ ॥ और जो हाथी जड ग्राम में उत्पन्न हैं वे वात्स व भार

द्वाजगोत्रवाले हैं और ज्ञानजा व यक्षिणी गोत्र देवी कही गई हैं॥ २० ॥ और जो इस गोत्र में उत्पन्न हैं वे सदैव पञ्चयज्ञों में परायण होते हैं व लोभी, क्रोधी और पुत्रवान् व बहुत शास्त्रों को पढ़नेवाले होतेहैं ॥ २१ ॥ और स्नान, दानादि में तत्पर व विष्णुजी की भक्ति में परायण होते हैं और व्रत करनेवाले तथा गुण व ज्ञान से मूर्ख और वेदों से रहित होते हैं ॥ २२ ॥ यह सत्रहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १७ ॥ और कपड्वाण ग्राम में उत्पन्न ब्राह्मण भारद्वाज व कुशगोत्रवाले हैं और यक्षिणी व दूसरी चचाईदेवी कही गई है ॥ २३ ॥ और आगिरस, बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज गोत्र है और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल प्रवर है ॥ २४ ॥ और इस

णी चैव गोत्रदेव्यौ प्रकीर्तिते ॥ २० ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाताः पञ्चयज्ञरताः सदा ॥ लोभिनः क्रोधिनश्चैव प्रजावन्तो बहुश्रुताः ॥ २१ ॥ स्नानदानादिनिरता विष्णुभक्तिपरायणाः ॥ व्रतशीला गुणज्ञानमूर्खा वेदविवर्जिताः ॥ २२ ॥ इति सप्तदशं स्थानम् ॥ १७ ॥ कपड्वाणजा ब्राह्मणास्तु भारद्वाजाः कुशास्तथा ॥ देवी च यक्षिणी प्रोक्ता द्वितीया चचाई तथा ॥ २३ ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यौ भारद्वाजस्तृतीयकः ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दल एव च ॥ २४ ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाताः सत्यवादिजितव्रताः ॥ जितेन्द्रियाः सुरूपाश्च अल्पाहाराः शुभाननाः ॥ २५ ॥ सदोद्यताः पुराणज्ञा महादानपरायणाः ॥ निर्द्वेषिणो लोभयुता वेदाध्ययनतत्पराः ॥ २६ ॥ दीर्घदर्शिनो महातेजा महामाया विमोहिताः ॥ २७ ॥ इत्यष्टादशं स्थानम् ॥ १८ ॥ जन्होरीवाडवाः प्रोक्ताः कुशप्रवरसंयुताः ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयोदल एव च ॥ २८ ॥ तारणी च महामाया गोत्रदेवी प्रकीर्त्तिता ॥ अस्मिन्वंशे समुत्पन्ना वाडवा दुःसहा नृप ॥ २९ ॥ महो

गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे सत्यवादी व व्रतों को जीतनेवाले तथा जितेन्द्रिय व स्वरूप वान् और थोड़ा भोजन करनेवाले व उत्तम मुखवाले होते हैं ॥ २५ ॥ और सदैव उद्यत व पुराणों को जाननेवाले तथा महादानों में परायण और वैररहित, लोभ संयुत व वेदपाठ में परायण रहते हैं ॥ २६ ॥ और बड़े तेजस्वी व महामाया से मोहित होते हैं ॥ २७ ॥ यह अट्ठारहवां स्थान समाप्त हुआ ॥ १८ ॥ और जन्होरी ग्राम के ब्राह्मण कुश के प्रवर से संयुत होते हैं और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल प्रवर है ॥ २८ ॥ और तारणी महादेवी गोत्रदेवी कही गई है व हे राजन् ! इस वंश में उपजे हुए ब्राह्मण दुस्सह होते हैं ॥ २९ ॥ और बड़े उग्र व बड़े शरीर

वाले तथा लम्बे व बड़े गर्वित होते हैं और क्लेशरूप व काले रंग वाले तथा सब शास्त्रों में चतुर होते हैं॥ ३० ॥ और बहुत भोजन करनेवाले तथा प्रवीण व वैर और पाप से रहित व उत्तम वस्त्र और भूषण व रूपवाले व ब्रह्मवादी ब्राह्मण होते हैं॥ ३१॥ यह उन्नीसवां स्थान समाप्त हुआ॥ १९ ॥ और वनोडीया ग्राम में जो ब्राह्मण उत्पन्न हैं उनके तीन गोत्र हैं कुश व कुत्सप्रवर और तीसरा भारद्वाज है॥ ३२॥ और विश्वामित्र,देवरात व तीसरा औदल है और आंगिरस, आम्बरीष व तीसरा युव नाश्व है॥ ३३॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य व भारद्वाज हैं और पहली देवी शेषला व दूसरी शांता कही गई है॥ ३४॥ और तीसरी धारशांति है ये क्रम से गोत्रदेवियां

त्कटा महाकायाः प्रलम्बाश्च महोद्धताः ॥ क्लेशरूपाः कृष्णवर्णाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ ३० ॥ बहुभुग्धनिनो दक्षा द्वेषपापविवर्जिताः ॥ सुवस्त्रभूषा वै रूपा ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ ३१ ॥ इत्येकोनविंशतितमं स्थानम् ॥ १९ ॥ वनोडी याश्च ये जाता गोत्राणां त्रयमेव च ॥ कुशकुत्सौ च प्रवरौ तृतीयो भारद्वाजस्तथा ॥ ३२ ॥ विश्वामित्रो देवरात स्तृतीयोदल एव च ॥ आङ्गिरस आम्बरीषो युवनाश्वस्तृतीयकः ॥ ३३ ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च ॥ शेषला प्रथमा प्रोक्ता तथा शान्ता द्वितीयका ॥ ३४ ॥ तृतीया धारशान्तिश्च गोत्रदेव्यो ह्यनुक्रमात् ॥ अस्मिन्गो त्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ ३५ ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ॥ सर्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ॥ ३६ ॥ इति विंशतितमं स्थानम् ॥ २० ॥ कीणावाचनकं स्थानं यदेकाधिकविंशतिः ॥ भार द्वाजाश्च विप्रेन्द्राः कथिता ब्राह्मणाः शुभाः ॥ ३७ ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजास्तथैव च ॥ यक्षिणी च तथा देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता वाडवा धनिनः शुभाः ॥ वस्त्रालंकरणोपेता द्विजभक्ति

हैं व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे दुर्बल व दीनमनवाले होते हैं ॥ ३५ ॥ व हे नृपोत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी होते हैं और वे ब्राह्मण सब विद्याओं में प्रवीण व ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ होते हैं ॥ ३६ ॥ यह बीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २० ॥ और कीणावाचनक नामक जो इक्कीसवां स्थान है उसमें भारद्वाज गोत्रवाले उत्तम द्विजेन्द्र द्विज कहे गये हैं ॥ ३७ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य व भारद्वाज प्रवर हैं व यक्षिणीदेवी गोत्रदेवी कहीगई है ॥ ३८ ॥ व इस गोत्रमें जो ब्राह्मण उत्पन्न हैं

वे धनी व उत्तम होते हैं और वस्त्रों व भूषणों से संयुत तथा ब्राह्मणों की भक्ति में परायण होते हैं ॥ ३९ ॥ और सब ब्रह्मभोज में परायण व सब धर्म में परायण होते हैं ॥ ४० ॥ यह इक्कीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २१ ॥ और गोविंदण स्वस्थान में जो उत्पन्न हैं वे श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं और कुश गोत्र कहागया है व तीन प्रवर हैं ॥ ४१ ॥ विश्वामित्र, देवरात व औदल प्रवर है और चचाई महादेवी गोत्रदेवी कही गई है ॥ ४२ ॥ और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानी होते हैं और वहां प्रसन्न चित्त व सावधान मनवाले वे यज्ञों से पूजते हैं ॥ ४३ ॥ और वे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ व ब्रह्मण्य ब्राह्मण सब विद्याओं में चतुर होतेहैं ॥ ४४ ॥ यह बाईसवा स्थान

परायणाः ॥ ३९ ॥ ब्रह्मभोज्यपराः सर्वे सर्वे धर्म्मपरायणाः ॥ ४० ॥ इत्येकविंशतितमं स्थानम् ॥ २१ ॥ गोविन्दणा च स्वस्थाने ये जाता ब्रह्मसत्तमाः ॥ कुशगोत्रं च वै प्रोक्तं प्रवरत्रयमेव च ॥ ४१ ॥ विश्वामित्रो देवरातौदलप्रवरमेव च ॥ चचाई च महादेवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ ४२ ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता ब्राह्मणा ब्रह्मवेदिनः ॥ यजन्ते क्रतुभिस्तत्र हृष्टचित्तैकमानसाः ॥४३॥ सर्वविद्यासु कुशला ब्रह्मण्या ब्रह्मवित्तमाः ॥४४॥ इति द्वाविंशतितमं स्थानम् ॥२२॥ थलत्यजा हि विप्रेन्द्रा द्वौ गोत्रौ चाप्यधिष्ठितौ ॥ धारणं संकुशं चैव गोत्रद्वितयमेव च ॥ ४५ ॥ अगस्त्यो दार्ढ्यच्युतश्च रथ्यवाहनमेव च ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयोदल एव च ॥ ४६ ॥ देवी च छत्रजा प्रोक्ता द्वितीया थलजा तथा ॥ धारणसगोत्रे ये जाता ब्रह्मण्या ब्रह्मवित्तमाः ॥ ४७ ॥ त्रिप्रवराश्चैव विख्याता सत्त्ववन्तो गुणान्विताः ॥ तदन्वये च ये जाता धर्मकर्म्मसमाश्रिताः ॥ ४८ ॥ धनिनो ज्ञाननिष्ठाश्च तपोयज्ञक्रियादिषु ॥ त्रयोविंशं प्रोक्तमेतत्स्थानं

समाप्त हुआ ॥ २२ ॥ और थलत्यजा ग्राम में जो द्विजेन्द्र हैं उनमें दो गोत्र स्थित हैं धारण और संकुश ये दो गोत्रहैं ॥ ४५ ॥ और अगस्त्य, दार्ढ्यच्युत व रथ्यवाहन और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल प्रवर है ॥ ४६ ॥ और छत्रजा देवी व दूसरी थलजा देवी है और जो धारणस गोत्र में उत्पन्न हैं वे ब्रह्मण्य व ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं ॥ ४७ ॥ और तीन प्रवरवाले वे सत्त्ववान् व गुणों से संयुत होते हैं और उसके वंश में जो उत्पन्न हैं वे धर्म व कर्म से आश्रित होतेहैं ॥ ४८ ॥ और धनी व

ज्ञान में तत्पर तथा तपस्या व यज्ञ कार्यादिकों में परायण होतेहैं मोढ ज्ञातिवालों का यह तेईसवां स्थान है ॥ ४९ ॥ यह तेईसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २३ ॥ और ज्ञानियों में श्रेष्ठ जो वारण सिद्ध ब्राह्मण कहे गये हैं व इस गोत्र में जो ब्राह्मण हैं वे सत्यवादी व व्रतों को जीतनेवाले हैं ॥ ५० ॥ और जितेन्द्रिय व स्वरूपवान् तथा थोड़े भोजन व उत्तम मुखवाले हैं और सदैव उद्यत व पुराणोंको जाननेवाले तथा महादानों में परायण हैं ॥ ५१ ॥ और निश्शत्रु व भिन्नलोभसे संयुत तथा वेदपाठ में तत्पर होते हैं और विद्वान् व बड़े तेजस्वी तथा महामायासे मोहित होतेहैं ॥ ५२ ॥ यह चौबीसवां स्वस्थान कहागया जोकि श्रेष्ठ माना गया है ॥ ५३ ॥ यह चौबीसवां

मोढकजातिनाम् ॥ ४९ ॥ इति त्रयोविंशतितमं स्थानम् ॥ २३ ॥ वारणसिद्धाश्च ये प्रोक्ता ब्राह्मणा ज्ञानवित्तमाः ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये विप्राः सत्यवादिजितव्रताः ॥ ५० ॥ जितेन्द्रियाः सुरूपाश्च अल्पाहाराः शुभाननाः ॥ सदोद्यताः पुराणज्ञा महादानपरायणाः ॥ ५१ ॥ निर्द्वेषिणोऽलोभयुता वेदाध्ययनतत्पराः ॥ दीर्घदर्शिनो महातेजा महामायाविमोहिताः ॥ ५२ ॥ चतुर्विंशतितमं प्रोक्तं स्वस्थानं परमं मतम् ॥ ५३ ॥ इति चतुर्विंशतितमं स्थानम् ॥ २४ ॥ भालजाश्चात्र वै प्रोक्ता ब्राह्मणाः सत्यवादिनः ॥ ५४ ॥ वत्सगोत्रं कुशं चैव गोत्रद्वितयमेव च ॥ तेषां प्रवराण्यहं वक्ष्ये पञ्चत्रितयमेव च ॥ भृगुश्च्यवनाप्नवानौर्वजमदग्निस्तथैव च ॥ ५५ ॥ आङ्गिरसोम्बरीषश्च यौवनाश्वस्तृतीयकः ॥ शान्ता च शेषला चात्र देवीद्वितयमेव च ॥ ५६ ॥ अस्मिन्वंशे समुत्पन्ना सद्वृत्ताः सत्यभाषिणः ॥ शान्ताश्च भिन्नवर्णाश्च निर्धनाश्च कुचैलिनः ॥ ५७ ॥ सगर्वा लौल्य युक्ताश्च वेदशास्त्रेषु निश्चलाः ॥ पञ्चविंशतिमं प्रोक्तं

स्थान समाप्त हुआ ॥ २४ ॥ और यहां भालज व सत्यवादी ब्राह्मण कहेगयेहैं ॥ ५४ ॥ और वत्स गोत्र व कुश ये दो गोत्र कहे गये हैं उनके पांच व तीन प्रवरों को मैं कहता हूं कि भृगु, च्यवन, आप्नवान, और्व व जमदग्नि ॥ ५५ ॥ और आंगिरस, अम्बरीष व तीसरा युवनाश्व है और इसमें शांता व शेषला दो देवी हैं ॥ ५६ ॥ और इस वंश में उपजे हुए ब्राह्मण उत्तमचरित्रवाले व सत्यवादी होते हैं और शांत व भिन्न रंगवाले तथा निर्धनी व मलिनवस्त्रोंवाले होते हैं ॥ ५७ ॥ और अहंकार

समेत व चंचलतायुक्त तथा वेद व शास्त्रों में निश्चल होते हैं यह मोढ जातिवालों का पच्चीसवां स्वस्थान कहागयाहै ॥ ५८ ॥ यह पच्चीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २५ ॥
और महोवीश्रा ग्राम में जो ब्राह्मण हैं वे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ होते हैं और कुश सञ्ज्ञक एकही पवित्रगोत्र है ॥ ५९ ॥ और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल प्रवर है
इसमें रक्षारूप चचाई देवी स्थित है ॥ ६० ॥ व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे सत्यवादी व जितेन्द्रिय होते हैं और सत्यव्रत, स्वरूपवान् व थोड़े भोजन तथा उत्तम
...ले होते हैं ॥ ६१ ॥ और दयालु, सुशील व सब प्राणियों के हित में परायण होते हैं यह ब्रह्मवादियों का छब्बीसवां स्वस्थान कहा गया ॥ ६२ ॥ जोकि छोटे

...थानं मोढज्ञातिनाम्॥५८॥ इति पञ्चविंशतितमं स्थानम्॥ २५॥ महोवीश्राश्च ये सन्ति ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः॥
...व च वै गोत्रं कुशसंज्ञं पवित्रकम्॥ ५९ ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदल एव च ॥ देवी चचाई चैवात्र रक्षा
...। ॥ ६० ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाताः सत्यवादिजितेन्द्रियाः ॥ सत्यव्रताः सुरूपाश्च अल्पाहाराः शु
...१ ॥ दयालवः सुशीलाश्च सर्वभूतहिते रताः ॥ षड्विंशतितमं प्रोक्तं स्वस्थानं ब्रह्मवादिनाम्॥६२॥ रामेण
...व सानुजेन तथैव च ॥ ६३ ॥ इति षड्विंशतितमं स्थानम्॥ २६ ॥ तियाश्रीयामथो वक्ष्ये स्वस्थानं स
...अस्मिन्स्थाने च ये जाता ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ ६४ ॥ शाण्डिल्यगोत्रं चैवात्र कथितं वेदसत्तमैः ॥
...प्रोक्तं ज्ञानजा चात्र देवता ॥ ६५ ॥ काश्यपावत्सारश्चैव शाण्डिलोसित एव च ॥ पञ्चमो देवलश्चैव
...क्रमात्॥ज्ञानजा च तथा देवी कथिता स्थानदेवता॥६६॥ अस्मिन्वंशे च ये जातास्ते द्विजाः सूर्यवर्चसः॥

...जी से स्तुति किये गये हैं ॥ ६३ ॥ यह छब्बीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त तियाश्री में सत्ताईसवें स्वस्थान को कहता हूं
...हैं वे ब्राह्मण वेदों के पारगामी होतेहैं ॥ ६४ ॥ और इस में श्रेष्ठ ज्ञानियों ने शांडिल्य गोत्र कहा है और इसमें पांच प्रवर व ज्ञानजा देवता
...यप, अवत्सार, शाडिल, असित व पांचवां देवल ये क्रमसे प्रवर कहे गये हैं और ज्ञानजा देवी स्थानदेवता कही गई है ॥ ६६ ॥ व इस वंशमें

महा ... ॥ ८५ ॥ और यहा व६

जो उत्पन्न हुए हैं वे ब्राह्मण सूर्य के समान तेजस्वी हैं और धर्मारण्य में टिके हुए वे सब चन्द्रमा के समान शीतल हैं ॥ ६७ ॥ व हे महाराज! उत्तम आचारवाले तथा वेदों व शास्त्रों में परायण हैं और यज्ञ करनेवाले तथा उत्तम आचार व सत्य तथा शुद्धता में परायण हैं ॥ ६८ ॥ और धर्मज्ञ व दान करनेवाले तथा निर्मल व गर्व से उत्कंठित हैं और तपस्या व निज वेद पाठ में परायण और न्याय धर्म में लगे हुए हैं उत्तम ब्रह्मज्ञानियों ने यह सत्ताईसवां स्थान कहा है ॥ ६९ ॥ यह सत्ताईसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २७ ॥ और गोधरीय ग्राम मे जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण ज्ञान में श्रेष्ठ होते हैं इसके उपरान्त क्रम से मैं तीन गोत्रों को कहता हूं ॥ ७० ॥ पहला धारणस

चन्द्रवच्छीतलाः सर्वे धर्मारण्ये व्यवस्थिताः ॥ ६७ ॥ सदाचारा महाराज वेदशास्त्रपरायणाः ॥ याज्ञिकाश्च शुभाचाराः सत्यशौचपरायणाः ॥ ६८ ॥ धर्मज्ञा दानशीलाश्च निर्मला हि मदोत्सुकाः ॥ तपःस्वाध्यायनिरता न्यायधर्मपरायणाः ॥ सप्तविंशतिमं स्थानं कथितं ब्रह्मवित्तमैः ॥ ६९ ॥ इति सप्तविंशं स्थानम् ॥ २७ ॥ गोधरीयाश्च ये जाता ब्राह्मणा ज्ञानसत्तमाः ॥ गोत्रत्रयमथोवक्ष्ये यथा चैवाप्यनुक्रमात् ॥ ७० ॥ प्रथमं धारणसं चैव जातूकर्णं द्वितीयकम् ॥ तृतीयं कौशिकं चैव यथा चैवाप्यनुक्रमात् ॥ ७१ ॥ धारणसगोत्रे ये जाताः प्रवरैस्त्रिभिरन्विताः ॥ अगस्तिश्च दार्ढच्युत इध्मवाहनसंज्ञकः ॥७२॥ वसिष्ठश्च तथात्रेयो जातूकर्णस्तृतीयकः ॥ विश्वामित्रो मधुच्छन्दसस्तृतीयो ह्यघमर्षणः ॥७३॥ महाबला च मालेया द्वितीया चैव यक्षिणी ॥ तृतीया च महायोगी गोत्रदेव्यः प्रकीर्तिताः ॥७४॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता ब्राह्मणाः सत्यवादिनः ॥ अलौल्याश्च महायज्ञा वेदाज्ञाप्रतिपालकाः ॥ ७५ ॥ इत्यष्टाविंशं

दूसरा जातूकर्णं तीसरा कौशिक ये क्रम से हैं ॥ ७१ ॥ और जो धारणस गोत्र में उत्पन्न हैं वे तीन प्रवरों से संयुत होते है अगस्ति, दार्ढच्युन व इध्मवाहन संज्ञक ॥ ७२ ॥ और वसिष्ठ, आत्रेय व तीसरा जातूकर्ण है और विश्वामित्र, मधुच्छंदस व तीसरा अघमर्षण है ॥७३॥ और बड़ी बलवती मालेया व दूसरी यक्षिणी और तीसरी महायोगी ये गोत्रदेवियां कही गई हैं ॥ ७४ ॥ व इस वंश में जो ब्राह्मण उत्पन्न हैं व सत्यवादी होते है और चंचलताहीन व महायज्ञों को करनेवाले तथा वेदों की आज्ञा के पालक होते हैं ॥ ७५ ॥ यह अट्ठाईसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २८ ॥ और जो वाटस्र हाल में उत्पन्न हैं उनके तीन गोत्र है पहला धारण व दूसरा वत्स

संज्ञक जानने योग्य है ॥ ७६ ॥ और तीसरा कुत्ससंज्ञक है ये गोत्रदेवियां कही हैं और गोत्र देवियां हैं व पहला धारणस गोत्र व तीन प्रवर हैं ॥ ७७ ॥ व अगस्ति, दार्ढच्युत व इध्मवाहन और दूसरा वत्ससंज्ञक व पांच प्रवर हैं ॥ ७८ ॥ भृगु, च्यवन, आप्नवान्, और्व व जमदग्नि हैं और तीसरा कुत्ससंज्ञक व तीन प्रवर हैं ॥ ७९ ॥ आंगिरस, अम्बरीष व तीसरा यौवनाश्व है और देवी छत्रजा व दूसरी शेषला है ॥ ८० ॥ और तीसरी ज्ञानजा देवी हैं ये क्रम से गोत्र की देवियां हैं और इस गोत्र में जो ब्राह्मण हैं वे सत्यवादी व जितेन्द्रिय होते हैं ॥ ८१ ॥ और स्वरूपवान् व थोड़े भोजन वाले तथा महादानों में परायण होते हैं और बिन द्वेषी व लोभ से संयुत तथा वेद

स्थानम् ॥ २८ ॥ वाटस्त्रहाले ये जाता गोत्रत्रितयमेव च ॥ धारणं प्रथमं ज्ञेयं वत्ससंज्ञं द्वितीयकम् ॥ ७६ ॥ तृतीयं कुत्ससंज्ञं च गोत्रदेव्यस्तथैव च ॥ प्रथमं धारणसगोत्रं प्रवरत्रयमेव च ॥ ७७ ॥ अगस्तिदार्ढच्युतश्चैव इध्म वाहन एव च ॥ द्वितीयं वत्ससंज्ञं हि प्रवराणि च पञ्च वै ॥ ७८ ॥ भृगुच्यवनाप्नवानौर्वजमदग्निस्तथैव च ॥ तृतीयं कुत्ससं ज्ञं हि प्रवरत्रयमेव च ॥ ७९ ॥ आङ्गिरसाम्बरीषौ च यौवनाश्वस्तृतीयकः ॥ देवी चच्छत्रजा चैव द्वितीया शेषला तथा ॥ ८० ॥ ज्ञानजा चैव देवी च गोत्रदेव्यो ह्यनुक्रमात् ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये विप्राः सत्यवादिजितेन्द्रियाः ॥ ८१ ॥ सु रूपाश्चाल्पाहाराश्च महादानपरायणः ॥ निर्द्वेषिणो लोभयुता वेदाध्ययनतत्पराः ॥ ८२ ॥ दीर्घदर्शिनो महातेजा महोत्काः सत्यवादिनः ॥ ८३ ॥ इत्येकोनत्रिंशं स्थानम् ॥ २९ ॥ माणजा च महास्थानं गोत्रद्वितयमेव च ॥ शाण्डिल्यश्च कुशश्चैव गोत्रद्वयमितीरितम् ॥ ८४ ॥ काश्यपोऽवत्सारश्च शाण्डिल्योऽसित एव च ॥ पञ्चमो देवलश्चैव एकगोत्रं प्रकी र्तितम् ॥ ८५ ॥ ज्ञानजा च तथा देवी कथिता चात्र सैव च ॥ द्वितीयं च कुशं गोत्रं प्रवरत्रयमेव च ॥ ८६ ॥ विश्वामित्रो

पाठ में तत्पर होते हैं ॥ ८२ ॥ और विद्वान् व बड़े तेजस्वी तथा बड़े उत्कंठित व सत्यवादी होते हैं ॥ ८३ ॥ यह उन्तीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ २९ ॥ और माणजा महास्थान में दो गोत्र हैं शांडिल्य व कुश ये दो गोत्र कहे गये हैं ॥ ८४ ॥ और काश्यप, अवत्सार, शांडिल्य, असित व पांचवां देवल है और एक गोत्र कहा गया है ॥ ८५ ॥ और यहा वह ज्ञानजा देवी कही है व दूसरा कुश गोत्र है और तीन प्रवर हैं ॥ ८६ ॥ विश्वामित्र, देवराज व तीसरा औदल है और यहा ज्ञानदा देवी

कही गई है ॥ ८७ ॥ व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे दुर्बल तथा दीन मनवाले होते हैं व हे नृपसत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी होते हैं ॥ ८८ ॥ और वे श्रेष्ठ ब्राह्मण सब विद्याओं में चतुर होते हैं ॥ ८९ ॥ यह तीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ३० ॥ और साणदा नामक उत्तम स्थान बहुत पवित्र मानागया है और वहां टिके हुए ब्राह्मण पवित्रकारक कहे गये हैं ॥ ९० ॥ और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल कहा गया है और ज्ञानदा महादेवी गोत्र देवी कही गई है ॥ ९१ ॥ व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे दुर्बल व दीनमनवाले होते हैं व हे नृपश्रेष्ठ ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी होते हैं ॥ ९२ ॥ और सब विद्या में प्रवीण वे ब्राह्मण ब्रह्मज्ञा-

देवराजस्तृतीयोदलमेव च ॥ ज्ञानदा चात्र वै देवी द्वितीया संप्रकीर्तिता ॥ ८७ ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ॥ ८८ ॥ सर्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तमाः ॥ ८९ ॥ इति त्रिंशं स्थानम् ॥ ३० ॥ साणदा च परं स्थानं पवित्रं परमं मतम् ॥ कुशप्रवरजा विप्रास्तत्रस्थाः पावनाः स्मृताः ॥ ९० ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दल एव च ॥ ज्ञानदा च महादेवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ ९१ ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ॥ ९२ ॥ सर्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ॥ ९३ ॥ इत्येकत्रिंशं स्थानम् ॥ ३१ ॥ आनन्दीया च संस्थानं गोत्रद्वितयमेव च ॥ भारद्वाजं नाम चैकं शाण्डिल्यं च द्वितीयकम् ॥ ९४ ॥ आङ्गिरसो बार्हस्पत्यो भारद्वाजस्तृतीयकः ॥ चचाई चात्र या देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ ९५ ॥ काश्यपावत्सारश्च शाण्डिल्योऽसित एव च ॥ पञ्चमो देवलश्चैव प्रवराणि यथाक्रमम् ॥ ९६ ॥ ज्ञानजा च तथा देवी कथिता गोत्रदेवता ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता निर्लोभाः शुद्धमानसाः ॥ ९७ ॥ यदृच्छालाभसंतुष्टा ब्राह्मणा

नियों में श्रेष्ठ होते हैं ॥ ९३ ॥ यह इकतीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ३१ ॥ और आनन्दीया संस्थान में दो गोत्र हैं एक भारद्वाज नामक व दूसरा शांडिल्य है ॥ ९४ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज है और यहां जो गोत्रदेवी है वह चचाई कही गई है ॥ ९५ ॥ और काश्यप, अवत्सार, शांडिल्य, असित व पांचवां देवल है ये प्रवर क्रम से कहे गये हैं ॥ ९६ ॥ और ज्ञानजा देवी गोत्रदेवता कही गई है व इस गोत्र में जो उत्पन्न है वे निर्लोभ व शुद्धमनवाले होते हैं ॥ ९७ ॥ और

स्वच्छंद लाभ से संतोषवाले ब्राह्मण बड़े ब्रह्मज्ञानी होते हैं ॥९८॥ यह बत्तीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ३२ ॥ और पाटडीआ नामक उत्तम पवित्र स्थान कहा गया है इस में तीन प्रवरों से संयुत कुश गोत्र है ॥ ९९ ॥ विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल है और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे वेद शास्त्रों में परायण होते हैं ॥ २०० ॥ और वे ब्राह्मण गर्व से उद्धत व न्यायमार्ग में प्रवृत्त होते हैं ॥ १ ॥ यह तेंतीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ३३ ॥ और टीकोलिया नामक उत्तमस्थान है उसमें कुशगोत्र है विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल है ॥ २ ॥ व इसमें चचाई देवी गोत्रदेवी कही गई है और इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण श्रुतियों व स्मृतियों में परायण हैं ॥ ३ ॥ और रोगी,

ब्रह्मवित्तमाः ॥ ९८ ॥ इति द्वात्रिंशं स्थानम् ॥ ३२ ॥ पाटडीया परं स्थानं पवित्रं परिकीर्तितम् ॥ कुशगोत्रं भवेदत्र प्रवरत्रयसंयुतम् ॥९९॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदलमेव हि ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता वेदशास्त्रपरायणाः ॥२००॥ मदोद्धुराश्च ते विप्रा न्यायमार्गप्रवर्तकाः ॥ १ ॥ इति त्रयस्त्रिंशं स्थानम् ॥ ३३ ॥ टीकोलिया परं स्थानं कुशगोत्रं तथैव च ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदलमेव च ॥ २ ॥ चचाई चात्र वै देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः श्रुतिस्मृतिपरायणाः ॥ ३ ॥ रोगिणो लोभिनो दुष्टा यजने याजने रताः ॥ ब्रह्मक्रियापराः सर्वे मोढाः प्रोक्ता मयात्र वै ॥ ४ ॥ इति चतुस्त्रिंशं स्थानम् ॥ ३४ ॥ गमीधाणीयं परमं स्थानं प्रोक्तं वै पञ्चत्रिंशकम् ॥ गोत्रं धारणसं चैव देवी चात्र महाबला ॥ ५ ॥ अगस्तिदार्ढच्युतइध्मवाहनसंज्ञकाः ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता ब्राह्मणा ब्रह्मतत्पराः ॥६॥ अलोल्याश्च महाप्राज्ञा वेदाज्ञाप्रतिपालकाः ॥७॥ इति पञ्चत्रिंशं स्थानम् ॥३५॥ मात्रा च परमं स्थानं पवित्रं

लोभी, दुष्ट व यज्ञ करने और यज्ञ कराने में तत्पर होते हैं मैंने यहां वेद कर्म में परायण सब मोढा ब्राह्मणों को कहा ॥ ४ ॥ यह चौतीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ३४ ॥ पैंतीसवां गमीधाणीय नामक उत्तम स्थान कहा गया है इसमें धारणसगोत्र व महाबला गोत्रदेवी है ॥ ५ ॥ और अगस्ति दार्ढच्युत व इध्मवाहन संज्ञक प्रवर है और इस वंश में जो ब्राह्मण उत्पन्न हैं वे ब्रह्म में तत्पर होते हैं ॥ ६ ॥ और अचंचल व बड़े बुद्धिमान् तथा वेद की आज्ञा के प्रतिपालक होते हैं ॥ ७ ॥ यह पैंतीसवां स्थान

समाप्त हुआ ॥ ३५ ॥ और मात्रा नामक पवित्र व उत्तम सब देहधारियों का स्थान है इसमें पवित्र कुश गोत्र स्थित है ॥ ८॥ व विश्वामित्र, देवरात और तीसरा दल प्रवर है व इसमें ज्ञानदा महादेवी सब लोकों की एक रक्षा करनेवाली है ॥९॥ और इस वंश में उपजेहुए ब्राह्मण देवताओं में तत्पर होते हैं और वेद पठन व वषट्कारों समेत तथा वेदों व शास्त्रों के प्रवर्तक होते हैं ॥ १० ॥ यह छत्तीसवा स्थान समाप्त हुआ ॥ ३६ ॥ और नातमोरा नामक उत्तम तथा पवित्र व शुभ स्थान मानागया है उसमें तीन प्रवरों से संयुत कुश गोत्र है ॥ ११ ॥ विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल प्रवर है और इसमें ज्ञानजादेवी गोत्रदेवी कहीगई है ॥ १२ ॥ और इस वंश में जो उत्पन्न हैं वे

सर्वदेहिनाम् ॥ कुशगोत्रं पवित्रं तु परमं चात्र धिष्ठितम् ॥ ८ ॥ विश्वामित्रो देवरातो दलश्चैव तृतीयकः ॥ ज्ञानदा च महादेवी सर्वलोकैकरक्षिणी ॥ ९ ॥ अस्मिन्वंशे समुद्भूता ब्राह्मणा देवतत्पराः ॥ सस्वाधायवषट्कारा वेदशास्त्रप्रवर्तकाः ॥१०॥ इति षट्त्रिंशं स्थानम् ॥ ३६ ॥ नातमोरापरं स्थानं पवित्रं परमं शुभम् ॥ कुशगोत्रं च तत्रास्ति प्रवरत्रयसंयुतम् ॥ ११ ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदलमेव च ॥ ज्ञानजा चात्र वै देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ १२ ॥ अस्मिन्वंशे भवा ये च ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ॥ धर्मज्ञाः सत्यवक्तारो व्रतदानपरायणाः ॥ १३ ॥ इति सप्तत्रिंशं स्थानम् ॥३७॥ बलोला च महास्थानं पवित्रं परमाद्भुतम् ॥ कुशगोत्रं समाख्यातं प्रवरत्रयमेव च ॥१४॥ पूर्वोक्तं प्रवरं चैव देवी चैवात्र मानदा ॥ वंशेस्मिन्परमाः प्रोक्ताः काजेशेन विनिर्मिताः ॥ १५ ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ॥ सर्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तमाः ॥१६॥ इत्यष्टत्रिंशं स्थानम् ॥ ३८ ॥ राज्यजा च महास्थानं लौगा

ब्राह्मण बड़े ब्रह्मज्ञानी होते हैं और धर्मज्ञ व सत्यवादी तथा व्रत व दानों में परायण होते हैं ॥१३॥ यह सैंतीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥३७॥ और बलोला नामक महास्थान बड़ा अद्भुत व पवित्रहै और कुशगोत्र व तीन प्रवर कहेगये हैं ॥ १४॥ इसमें पहले कहा हुआ प्रवर व मानदादेवी है और इस वंश में ब्रह्मा, विष्णु व महेशजी से बनाये हुए ब्राह्मण श्रेष्ठ कहेगये हैं ॥ १५ ॥ व हे नृपोत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी होते हैं और सब विद्याओं में चतुर व श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी होते हैं ॥१६॥ यह अर्तीसवां स्थान

समाप्त हुआ ॥३८॥ और राज्यजा महास्थान में लौगाक्षा प्रवर है और काश्यप, अवत्सार, वाशिष्ठ ये तीन प्रवर हैं ॥ १७ ॥ और भद्रायोगिनी गोत्रदेवी कहीगई है व इस वंश में उपजेहुए ब्राह्मण वेदों में तत्पर होते हैं ॥ १८ ॥ और नित्य स्नान, नित्य होम व नित्य दान में परायण होते हैं और नित्य धर्म में तत्पर तथा नित्य नैमित्त कर्मों में परायण होते हैं ॥ १९ ॥ यह उन्तालीसवा स्थान समाप्त हुआ ॥ ३९ ॥ और रूपोला नामक उत्तम स्थान पवित्र व बड़ा पुण्यदायक है और इन तीनों गोत्रों में तीन देवियाँ हैं ॥ २० ॥ पहला कुत्स व वत्स नामक और तीसरा भारद्वाज है और आंगिरस, अम्बरीष व तीसरा यौवनाश्व है ॥ २१ ॥ भृगु, च्यवन, आप्नवान्, और्व व जम-

क्षाप्रवरं तथा ॥ काश्यपावत्सारवाशिष्ठं प्रवरत्रयमेव च ॥ १७ ॥ भद्रा च योगिनी चैव गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ अस्मिन्वंशे समुद्भूता ब्राह्मणा वेदतत्पराः ॥ १८ ॥ नित्यस्नाननित्यहोमनित्यदानपरायणाः ॥ नित्यधर्मरताश्चैव नित्यनैमित्त तत्पराः ॥ १९ ॥ इत्येकोनचत्वारिंशं स्थानम् ॥ ३९ ॥ रूपोला परमं स्थानं पवित्रमतिपुण्यदम् ॥ अस्मिन्गोत्रत्रये चैव देवीत्रितयमेव च ॥ २० ॥ प्रथमं कुत्सवत्साख्यौ भारद्वाजस्तृतीयकः ॥ आङ्गिरसोम्बरीषश्च यौवनाश्वस्तृतीयकः ॥ २१ ॥ भृगुच्यवनाप्नवानौर्वजमदग्निस्तथैव च ॥ आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजस्तथैव च ॥ २२ ॥ क्षेमला चैव वै देवी धारभट्टारिका तथा ॥ तृतीया क्षेमला प्रोक्ता गोत्रमाता ह्यनुक्रमात् ॥ २३ ॥ अस्मिन्गोत्रे च ये जाता पञ्चयज्ञरताः सदा ॥ लोभिनः क्रोधिनश्चैव प्रजायन्ते बहुप्रजाः ॥ २४ ॥ स्नानदानादिनिरताः सदा च विजितेन्द्रियाः ॥ वापीकूपतडागानां कर्त्तारश्च सहस्रशः ॥ २५ ॥ इति चत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४० ॥ बोधणी परमं स्थानं

दग्नि हैं और आंगिरस, बार्हस्पत्य व भारद्वाज हैं ॥ २२ ॥ और क्षेमला व धारभट्टारिकादेवी हैं और तीसरी क्षेमला है ये क्रम से गोत्रमाता हैं ॥ २३ ॥ व इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे सदैव पञ्चयज्ञ में परायण होते हैं और लोभी, क्रोधी व बहुत पुत्रोंवाले होते हैं ॥ २४ ॥ व स्नान दानादिकों में परायण तथा सदैव जितेन्द्रिय होते हैं और हज़ारों बावली, कूप व तड़ागों के निर्माणकर्ता होते हैं ॥ २५ ॥ यह चालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४० ॥ और बोधणीनामक उत्तम स्थान पवित्र व पापनाशक

कहा गया है और कुश व कौशिक दो गोत्र कहेगये हैं ॥ २६ ॥ और पहला विश्वामित्र व दूसरा देवरात और तीसरा दल है व विश्वामित्र, अघमर्षण तथा कौशिक ऐसा प्रवर है ॥ २७ ॥ और पहली यक्षिणीदेवी व दूसरी तारणी है और इस गोत्र में जो उत्पन्न हैं वे दुर्बल व दीन मनवाले होते हैं ॥ २८ ॥ व हे नृपोत्तम ! वे ब्राह्मण असत्यवादी व लोभी होते हैं और सब विद्याओं में प्रवीण वे ब्राह्मणश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी होते हैं ॥ २९ ॥ यह इकतालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४१ ॥ और छत्रोटा नामक उत्तम स्थान सब लोकों में एकही पूजित है और कुशगोत्र कहागया है व तीन प्रवर हैं ॥ ३० ॥ विश्वामित्र, देवरात व तीसरा दल है और इसमें चचाईदेवी गोत्रदेवी

पवित्रं पापनाशनम् ॥ कुशं च कौशिकं चैव गोत्रद्वितयमेव च ॥ २६ ॥ विश्वामित्रश्च प्रथमो देवरातो दलेति च ॥ विश्वामित्राघमर्षणकौशिकेति तथैव च ॥ २७ ॥ यक्षिणी प्रथमा चैव द्वितीया तारणी तथा ॥ अस्मिन्गोत्रे तु ये जाता दुर्बला दीनमानसाः ॥ २८ ॥ असत्यभाषिणो विप्रा लोभिनो नृपसत्तम ॥ सर्वविद्याकुशलिनो ब्राह्मणा ब्रह्मसत्तमाः ॥ २९ ॥ इत्येकचत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४१ ॥ छत्रोटा च परं स्थानं सर्वलोकैकपूजितम् ॥ कुशगोत्रं समाख्यातं प्रवरत्रयमेव हि ॥ ३० ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयो दलमेव वै ॥ चचाई चात्र वै देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ ३१ ॥ अस्मिन्वंशे भवाश्चैव वेदशास्त्रपरायणाः ॥ महोदयाश्च ते विप्रा न्यायमार्गप्रवर्तकाः ॥ ३२ ॥ इति द्विचत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४२ ॥ खल एवात्र संस्थानं त्रयश्चत्वारिंशमेव हि ॥ वत्सगोत्रोद्भवा विप्राः कृषिकर्मप्रवर्तकाः ॥ ३३ ॥ गोत्रजा ज्ञानजा देवी प्रवराः पञ्च एव हि ॥ भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वजामदग्न्येति चैव हि ॥ ३४ ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा विप्राः

ई है ॥ ३१ ॥ व इस वंश में उपजेहुए ब्राह्मण वेदों व शास्त्रों में परायण होते हैं और बड़े ऐश्वर्यवाले वे ब्राह्मण न्यायमार्ग के प्रवर्तक होते हैं ॥ ३२ ॥ यह बयालिसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४२ ॥ और यहां तेंतालीसवां खलस्थान है व वत्सगोत्र में उपजे हुए ब्राह्मण खेती के कर्म में प्रवृत्त होते हैं ॥ ३३ ॥ और गोत्रजा ज्ञानजा देवी है व पांच प्रवर हैं भार्गव, च्यावन, आप्नवान्, और्व व जामदग्न्य प्रवर हैं ॥ ३४ ॥ और इस गोत्र में उपजेहुए ब्राह्मण श्रौत अग्नियों के सेवक होते हैं और

वेदपाठ करनेवाले व तपस्वी तथा शत्रुमर्दक होते हैं ॥ ३५ ॥ और क्रोधी, लोभी, प्रसन्न व यज्ञ करने और यज्ञ कराने में परायण होते हैं और सब प्राणियों के ऊपर दया करनेवाले व परोपकारी होते हैं ॥३६॥ यह तेंतालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४३ ॥ और वासंतडी में ब्राह्मणों का कुशगोत्र कहागया है और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा औदल प्रवर हैं ॥३७॥ और इसमें चचाईदेवी गोत्रदेवी कहीगई है और इस वंश में जो पूर्वोक्त ब्राह्मण उत्पन्न हैं वे ब्रह्म में तत्पर होते हैं ॥३८॥ और पराया उपकार करनेवाले व पराये चित्तके अनुवर्ती होते हैं और पराये द्रव्य से विमुख तथा पराये मार्ग के प्रवर्तक होते हैं ॥ ३९ ॥ यह चवालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४४ ॥ इसके उपरान्त

श्रौताग्निसुनिषेवकाः ॥ वेदाध्ययनशीलाश्च तापसाश्चारिमर्दनाः ॥ ३५ ॥ रोषिणो लोभिनो हृष्टा यजने याजने रताः ॥ सर्वभूतदयाविष्टास्तथा परोपकारिणः ॥ ३६ ॥ इति त्रयश्चत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४३ ॥ वासंतड्यां च विप्राणां कुशगोत्रमुदाहृतम् ॥ विश्वामित्रो देवरातस्तृतीयौदलमेव हि ॥ ३७ ॥ चचाई चात्र वै देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाताः पूर्वोक्ता ब्रह्मतत्पराः ॥ ३८ ॥ परोपकारिणश्चैव परचित्तानुवर्तिनः ॥ परस्वविमुखाश्चैव परमार्गप्रवर्त्तकाः ॥ ३९ ॥ इति चतुश्चत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४४ ॥ अतः परं च संस्थानं जाखासणमुदाहृतम् ॥ गोत्रं वै वात्स्यसंज्ञं तु गोत्रजा शीहुरी तथा ॥ प्रवराणि च पञ्चैव मया तव प्रकाशितम् ॥ ४० ॥ भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वपुरोधसः स्मृताः ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता वाडवाः सुखवासिनः ॥ विप्राः स्थूलाश्च ज्ञातारः सर्वकर्मरताश्च वै ॥ ४१ ॥ सर्वे धर्मैकविश्वासाः सर्वलोकैकपूजिताः ॥ वेदशास्त्रार्थनिपुणा यजने याजने रताः ॥ ४२ ॥ सदाचाराः सुरूपाश्च तुन्दिला दीर्घ

जाखासण स्थान कहागया है और वात्स्यसंज्ञकगोत्र है व शीहुरी गोत्रजादेवी है और पांचही प्रवरों को मैंने तुमसे प्रकाशित किया ॥ ४० ॥ भार्गव, च्यावन, आप्नवान्, और्व व पुरोधस कहेगये हैं और इस वंश में जो उत्पन्नहैं वे ब्राह्मण सुखवासी होते हैं और स्थूल व बुद्धिमान् ब्राह्मण सब कर्मों में परायण होते हैं ॥ ४१ ॥ और सब धर्महीं में केवल विश्वास करनेवाले तथा सब लोकों में एकही पूजित और वेदों व शास्त्रार्थों में निपुण और यज्ञ करने व यज्ञ कराने में तत्पर हैं ॥ ४२ ॥ और उत्तम

आचारवाले व स्वरूपवान् तथा तोंदवाले व विद्वान् होते हैं और यहां शीदुरीदेवी कुलदेवी कहीगई है ॥ ४३ ॥ यह पैंतालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४५ ॥ और छियालीसवां स्थान मोट ब्राह्मणों का प्रकाशित कियागया है जो कि गोतीआ नाम संज्ञक है और इसमें कुशगोत्र है ॥ ४४ ॥ और पहला विश्वामित्र व दूसरा देवरात और तीसरा औदल है ये तीन प्रवर हैं ॥ ४५ ॥ और यहां राक्षसों को नाशनेवाली यक्षिणीदेवी है और इस वंश में जो उत्पन्न हैं वे ब्राह्मण ब्रह्म में परायण होते हैं ॥ ४६ ॥ और उनकी बुद्धि धर्म में प्रवृत्त होती है व धर्मशास्त्रों में वे स्थित होते हैं ॥ ४७ ॥ यह छियालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४६ ॥ और सैंतालीसवां

दर्शिनः ॥ शीहुरी चात्र वै देवी कुलदेवी प्रकीर्तिता ॥ ४३ ॥ इति पञ्चचत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४५ ॥ षट्चत्वारिंशकं स्थानं मोटानां तु प्रकाशितम् ॥ गोतीआनामसंज्ञा तु कुशगोत्रमिहास्ति च ॥ ४४ ॥ विश्वामित्रं प्रथमं चैव द्वितीयं देवरातकम् ॥ तृतीयमौदलं चैव प्रवरत्रितयन्त्विदम् ॥ ४५ ॥ यक्षिणी चात्र वै देवी राक्षसानां प्रभञ्जनी ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता ब्राह्मणा ब्रह्मतत्पराः ॥ ४६ ॥ धर्मे मतिप्रवृत्ताश्च धर्मशास्त्रेषु निष्ठिताः ॥ ४७ ॥ इति षट्चत्वारिंशं स्थानम् ॥ ४६ ॥ सप्तचत्वारिंशकं च संस्थानं परिकीर्तितम् ॥ वरलीयाख्यसंस्थानं पवित्रं परमं मतम् ॥ ४८ ॥ भारद्वाजं तथा गोत्रं प्रवराणि तथैव च ॥ यक्षिणी चात्र वै देवी कुलदेवी प्रकीर्तिता ॥ ४९ ॥ आङ्गिरसं बार्हस्पत्यं भारद्वाजं तृतीयकम् ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता ब्राह्मणा पूतमूर्तयः ॥ ५० ॥ येषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति पापिनो नराः ॥ ५१ ॥ इति सप्तचत्वारिंशकं स्थानम् ॥ ४७ ॥ दुधीयाख्यं परं स्थानं गोत्रद्वितयमेव च ॥ धारणसं तथा गोत्रमाङ्गिरसकमेव च ॥ ५२ ॥

स्थान कहागया है व वरलीयनामक स्थान वह बड़ा पवित्र मानागया है ॥ ४८ ॥ और भारद्वाज गोत्र व प्रवर हैं व इसमें यक्षिणीदेवी कुलदेवी कही गई है ॥ ४९ ॥ और आंगिरस, बार्हस्पत्य व तीसरा भारद्वाज गोत्र है और इस वंश में जो ब्राह्मण उत्पन्न होते हैं वे पवित्रमूर्ति होते हैं ॥ ५० ॥ कि जिनके वचनरूपी जलही से पापी मनुष्य शुद्ध होजाते हैं ॥ ५१ ॥ यह सैंतालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४७ ॥ और दुधीयनामक जो उत्तम स्थान है उस में दो गोत्र हैं धारणस व आंगिरस है ॥ ५२ ॥

और अगस्ति, दार्ढ्यच्युत व इध्मवाहनसंज्ञक प्रवर है और छत्राई महादेवी हैं व दूसरा प्रवर सुनिये ॥ ५३ ॥ कि आंगिरस, अम्बरीष व तीसरा यौवनाश्व है और ज्ञानदा व शेषलादेवी सब प्राणियों को ज्ञान देनेवाली है ॥ ५४ ॥ व हे राजन्! इस वंश में उपजेहुए ब्राह्मण दुस्सह होते हैं और मद से उग्र व बड़े शरीरवाले तथा छली व मद से उद्धत होते हैं ॥५५॥ और क्लेशरूपी व कालेरंगवाले तथा समस्त शास्त्रों में चतुर होते हैं और बहुत खानेवाले व प्रवीण और द्वेष व पाप से रहित होते हैं॥५६॥ यह अड़तालीसवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४८ ॥ और यहां प्रसिद्ध हासोल्लास स्वस्थान को मैं कहता हूं इसमें पांच गोत्रों से संयुक्त शांडिल्यगोत्र है ॥ ५७ ॥ भार्गव,

अगस्तिदार्ढच्युतइध्मवाहनसंज्ञकम् ॥ छत्राई च महादेवी द्वितीयं प्रवरं शृणु ॥५३॥ आङ्गिरसाम्बरीषौ च यौवनाश्वस्तृतीयकः॥ ज्ञानदा शेषला चैव ज्ञानदा सर्वदेहिनाम् ॥ ५४ ॥ अस्मिन्वंशे समुत्पन्ना वाडवा दुस्सहा नृप॥ मदोत्कटा महाकायाः प्रलम्भाश्च मदोद्धताः ॥ ५५ ॥ क्लेशरूपाः कृष्णवर्णाः सर्वशास्त्रविशारदाः ॥ बहुभुग्धनिनो दक्षा द्वेषपापविवर्जिताः ॥ ५६ ॥ इत्यष्टाचत्वारिंशकं स्थानम् ॥ ४८ ॥ हासोल्लासं प्रवक्ष्यामि स्वस्थानं चात्र संश्रुतम् ॥ शाण्डिल्यगोत्रं चैवात्र प्रवरैः पञ्चभिर्युतम् ॥ ५७ ॥ भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वं वै जामदग्न्यकम् ॥ यक्षिणी चात्र वै देवी पवित्रा पापनाशिनी ॥ ५८ ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाता ब्राह्मणाः स्थूलदेहिनः ॥ लम्बोदरा लम्बकर्णा लम्बहस्ता महाद्विजाः ॥ ५९ ॥ अरोगिणः सदा देव सत्यव्रतपरायणाः ॥ ६० ॥ इत्येकोनपञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥४९॥ वैहालाख्यं च संस्थानं पञ्चाशत्तममेव हि ॥ कुशगोत्रं तथा चैव देवी चात्र महाबला ॥ ६१ ॥ अस्मिन्गोत्रे भवा

च्यावन, आप्नवान्, और्व व जामदग्न्य प्रवर हैं और इसमें पापनाशिनी व पवित्र यक्षिणीदेवी हैं ॥ ५८ ॥ और इस वंश में जो ब्राह्मण उत्पन्न हैं वे मोटे शरीरवाले होते हैं और वे महाब्राह्मण लम्बे पेट व लम्बे कान तथा लम्बे हाथोंवाले होते हैं॥ ५९ ॥ और वे सदैव अरोग व देवता और सत्य के व्रत में परायण होते हैं ॥६०॥ यह उंचासवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ४९ ॥ और बैहाल नामक पचासवां स्थान है व इसमें कुशगोत्र और बड़ी महाबलादेवी है ॥६१ ॥ और इस वंश में उपजे हुए ब्राह्मण

दुष्ट व कुटिलगामी होते हैं और धनी व धर्म में परायण तथा वेदों व वेदांगों के पारगामी होते हैं ॥ ६२ ॥ और सब दान व भोग में तत्पर तथा श्रौत कर्ममें बुद्धि को लगानेवाले होते हैं ॥ ६३ ॥ यह पचासवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५० ॥ और असालानामक उत्तम स्थान दो प्रवरोंवाला है और क्रम से कुश व धारण दो प्रवर हैं ॥ ६४ ॥ और विश्वामित्र, देवरात व तीसरा देवल प्रवर हैं और ज्ञानजादेवी गोत्रदेवी कहीगई है ॥ ६५ ॥ यह इक्यावनवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५१ ॥ और बावनवां नालोला नामक उत्तम स्थान है और एक वत्सगोत्र व दूसरा धारणस गोत्र है ॥ ६६ ॥ और पूर्वोक्त प्रवर हैं व पहलेही कहीहुई देवी हैं व इस वंश में जो उत्पन्न हैं वे बड़े पवित्र

विप्रा दुष्टाः कुटिलगामिनः ॥ धनिनो धर्मनिष्ठाश्च वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ ६२ ॥ दानभोगरताः सर्वे श्रौते च कृतबुद्धयः ॥ ६३ ॥ इति पञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥ ५० ॥ असालापरमं स्थानं प्रवरद्वयमेव हि ॥ कुशं च धारणं चैव प्रवराणि क्रमेण तु ॥ ६४ ॥ विश्वामित्रो देवरातो देवलस्तु तृतीयकः ॥ ज्ञानजा च तथा देवी गोत्रदेवी प्रकीर्तिता ॥६५॥ इत्येकपञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥ ५१ ॥ नालोला परमं स्थानं द्विपञ्चाशत्तमं किल ॥ वत्सगोत्रं तथा ख्यातं द्वितीयं धारणसं तथा ॥ ६६ ॥ प्रवराश्चैव पूर्वोक्ता देव्युक्ता पूर्वमेव हि ॥ अस्मिन्वंशे च ये जाताः पवित्राः परमा मताः ॥ ६७ ॥ बहुनोक्तेन किं विप्राः सर्व एवात्र सत्तमाः ॥ सर्वे शुद्धा महात्मनः सर्वे कुलपरम्पराः ॥ ६८ ॥ इति द्वापञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥ ५२ ॥ देहोलं परमं स्थानं ब्राह्मणानां परंतप ॥ कुशवंशोद्भवा विप्रास्तत्र जाता नृसत्तम ॥ पूर्वोक्तप्रवराण्येव देवी पूर्वोदिता मया ॥ ६९ ॥ तस्मिन्गोत्रे द्विजा जाताः पूर्वोक्तगुणशालिनः ॥ ७० ॥ इति त्रिपञ्चाशत्तमं स्था

मानेगये हैं ॥ ६७ ॥ बहुत कहने से क्या है यहां सबही ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं और सब शुद्ध व महात्मा तथा सब कुल की परंपरावाले होते हैं ॥ ६८ ॥ यह बावनवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५२ ॥ व हे परंतप ! ब्राह्मणों का देहोल नामक उत्तम स्थान है हे नृपसत्तम ! वहां कुश वंश में उपजे हुए ब्राह्मण हैं और पूर्वोक्त प्रवर हैं व मुझसे पहले कहीहुई देवी है ॥ ६९ ॥ और उस गोत्र में पैदा हुए ब्राह्मण पूर्वोक्त गुण से शोभित होते हैं ॥ ७० ॥ यह तिरपनवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५३ ॥ और सोहासीयानामक

उत्तम स्थान तीन गोत्रोंवाला है और भारद्वाज व वत्सगोत्र कहागया है ॥ ७१ ॥ और ज्ञानजा व सिहोली यक्षिणी क्रमसे है हे नृपोत्तम ? इस वंश की परीक्षा पहले कहीगई है ॥ ७२ ॥ यह चौवनवां स्थान समाप्त हुआ ॥ ५४ ॥ इस समय मैं तुम से पच्चपनवें स्थान को कहता हूं कि पुरातन समय श्रीरामजीने संहालियानामक स्थान को दिया है ॥ ७३ ॥ उसमें कुत्स गोत्र में स्थित ब्राह्मण हैं और वे सदैव अपने धर्म में परायण व अपने कर्म में तत्पर होते हैं ॥ ७४ ॥ और आंगिरस, अम्बरीष व इसके उपरान्त यौवनाश्व प्रवर है और इसमें शांतिकर्म में शांति को देनेवाली शांता देवी है ॥ ७५ ॥ यह पच्चपनवा स्थान समाप्त हुआ ॥ ५५ ॥ हे परंतप ! मैंने यहां इस

नम् ॥ ५३ ॥ सोहासीयापुरं स्थानं गोत्रत्रितयमेव हि ॥ भारद्वाजस्तथा ख्यातं गोत्रं वत्सं तथैव च ॥ ७१ ॥ यक्षिणी ज्ञानजा चैव सिहोली च यथाक्रमम् ॥ एतद्वंशपरीक्षा च पूर्वोक्ता नृपसत्तम ॥ ७२ ॥ इति चतुःपञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥ ५४ ॥ पञ्चपञ्चाशकं स्थानं प्रवक्ष्यामि तवाधुना ॥ नाम्ना संहालियास्थानं दत्तं रामेण वै पुरा ॥ ७३ ॥ तत्र वै कुत्सगोत्रस्था ब्राह्मणा ब्रह्मवर्चसः ॥ स्वधर्मनिरता नित्यं स्वकर्म्मनिरताश्च ते ॥ ७४ ॥ आङ्गिरसाम्बरीषे च यौवनाश्वमतः परम् ॥ शान्ता चैवात्र वै देवी शान्तिकर्म्मणि शान्तिदा ॥ ७५ ॥ इति पञ्चपञ्चाशत्तमं स्थानम् ॥ ५५ ॥ एवं मया ते गोत्राणि स्थानान्यपि तथैव च ॥ प्रवराणि तथैवात्र ब्राह्मणानां परंतप ॥ ७६ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि त्रैविद्यानां परंतप ॥ स्वस्थानं हि मया प्रोक्तं यथाचानुक्रमेण तु ॥ ७७ ॥ शीलायाः प्रथमं स्थानं मण्डोरा च द्वितीयकम् ॥ एवडी च तृतीयं हि गुन्दराणा चतुर्थकम् ॥ ७८ ॥ पञ्चमं कल्याणीया देगामा षष्ठकं तथा ॥ नायकपुरा सप्तमं च डलीआ चाष्टमं तथा ॥ ७९ ॥ कडोव्या नवमं चैव कोहाटोया दशमं तथा ॥ हरडीयैकादशं चैव भदुकीया द्वादशं तथा ॥ ८० ॥

प्रकार तुमसे ब्राह्मणों के गोत्र, स्थान व प्रवरों को कहा ॥ ७६ ॥ व हे परन्तप ! इसके उपरान्त त्रैविद्यों के स्थानों को कहूंगा और क्रम से मैंने स्वस्थान को कहा ॥ ७७ ॥ पहला शीला का स्थान है व दूसरा मंडोरा स्थान है और तीसरा एवडी व चौथा गुंदराणा स्थान है ॥ ७८ ॥ और पांचवां कल्याणीया व छठां देगामा स्थान है और सातवां नायकपुरा व आठवा डलीआ स्थान है ॥ ७९ ॥ और कडोव्या नवां स्थान है व दशवां कोहाटोया स्थान है और गेरहवां हरडीया व बारहवां भदुकीया स्थान है ॥ ८० ॥

और यहां संप्राणावा व कंदरावा स्थान कहागया है और तेरहवां वासरोवा व चौदहवां शरंडावा स्थान है ॥ ८१ ॥ और पंद्रहवां लोलासणा, सोलहवां वारोला स्थान है व मैंने यहा सत्रहवां नागलपुरा स्थान कहा है ॥ ८२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि जो चातुर्विंद्य ब्राह्मण नहीं आये थे वे फिर आये और उस सुन्दर स्थान में उन्होंने निवास किया ॥ ८३ ॥ और चौबीस संख्यक वे श्रीरामजी के शासन (आज्ञा) की मिलने की इच्छा से हनुमान्जी के समीप गये और फिर लौट आये ॥ ८४ ॥ व उनके दोष से वे सब स्थान च्युति को प्राप्तहुए और कुछ समय बीतनेपर उनका वैर हुआ ॥ ८५ ॥ और भिन्न आचार व भिन्न भाषावाले वे वेष के सन्देह को प्राप्त हुए व पंद्रह हज़ार

संप्राणावा तथा चात्र कन्दरावा प्रकीर्तितम् ॥ वासरोवा त्रयोदशं शरण्डावा चतुर्दशम् ॥ ८१ ॥ लोलासणा पञ्चदशं वारोला षोडशं तथा ॥ नागलपुरा मया चात्र उक्तं सप्तदशं तथा ॥ ८२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ चातुर्विद्यास्तु ये विप्रा नागताः पुनरागताः ॥ वसतिं तत्र रम्ये च चक्रिरे ते द्विजोत्तमाः ॥ ८३ ॥ चतुर्विंशतिसंख्याका रामशासनलिप्सया ॥ हनूमन्तं प्रति गता व्यावृत्ताः पुनरागताः ॥ ८४ ॥ तेषां दोषात्समस्तास्ते स्थानभ्रंशत्वमागताः ॥ कियत्काले गते तेषां विरोधः समपद्यत ॥ ८५ ॥ भिन्नाचारा भिन्नभाषा वेशसंशयमागताः ॥ पञ्चदशसहस्राणां मध्ये ये के च वाडवाः ॥ ८६ ॥ कृषिकर्मरता आसन्केचिद्यज्ञपरायणाः ॥ केचिन्मल्लाश्च सञ्जाताः केचिद्वै वेदपाठकाः ॥ ८७ ॥ आयुर्वेदरताः केचित्केचिद्रजकयाजकाः ॥ सन्ध्यास्नानपराः केचिन्नीलीकर्तृप्रयाजकाः ॥ ८८ ॥ तन्तुकृद्याजनरतास्तन्तुवायादियाचकाः ॥ कलौ प्राप्ते द्विजा भ्रष्टा भविष्यन्ति न संशयः ॥ ८९ ॥ शूद्रेषु जातिभेदः स्यात्कलौ प्राप्ते नराधिप ॥

ब्राह्मणों के मध्य में कोई ब्राह्मण ॥ ८६ ॥ खेती के कर्म में परायण हुए व कोई यज्ञों में तत्पर हुए तथा कोई मल्ल और कोई वेदपाठी हुए ॥ ८७ ॥ और कोई वैद्यक करनेवाले तथा कोई धोबियों को यज्ञ करानेवाले हुए और कोई संध्या व स्नान में परायण तथा कोई नील करनेवालों को यज्ञ करानेवाले हुए ॥ ८८ ॥ और कलियुग प्राप्त होनेपर कोई वस्त्र बुननेवालों को यज्ञ कराने में परायण व कोई उनसे मांगनेवाले और भ्रष्ट होवेंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८९ ॥ व हे नराधिप ! कलियुग प्राप्त होने

पर शूद्रों में जाति का भेद होगा और बहुतही भ्रष्ट आचारवाले लोगों को जानकर कुटुम्ब के बन्ध से पीड़ित ॥ ९० ॥ कोई ब्राह्मण हे राजन् ! भोजन व आच्छादन में स्वजनों से छोड़ दिये जावैंगे और कोई भी मेल होने से कभी कन्या को न व्याहैगा तदनन्तर हे राजन् ! कलियुग में वे वणिज् तेली होवैंगे ॥९१॥ और कोई कुम्हार व कोई चावलों के बनानेवाले होवैंगे और कलियुग प्राप्त होनेपर कोई वणिज राजपुत्रों के आश्रय व कोई अनेक जातियों के आश्रित होवैंगे व कोई पृथ्वी में भ्रष्ट होवैंगे ॥ ९२ ॥ और उनके पृथक् आचार व पृथक् सम्बन्ध कियेगये और कितेक ब्राह्मणों का सीतापुर में निवास हुआ ॥ ९३ ॥ और कोई साभ्रमती के किनारे जहां कहीं

भ्रष्टाचारान् परं ज्ञात्वा ज्ञातिबन्धेन पीडिताः ॥ ९० ॥ भोजनाच्छादने राजन्परित्यक्ता निजैर्जनैः ॥ न कोऽपि कन्यां विवहेत्संसर्गेण कदाचन ॥ ततस्ते वणिजो राजंस्तैलकाराः कलौ किल ॥ ९१ ॥ केचिच्च कुम्भकाराश्च केचित्तन्दुलकारिणः ॥ राजपुत्राश्रिताः केचिन्नानावर्णसमाश्रिताः ॥ कलौ प्राप्ते तु वणिजो भ्रष्टाः केपि महीतले ॥ ९२ ॥ तेषां तु पृथगाचाराः सम्बन्धाश्च पृथक्कृताः ॥ सीतापुरे च वसतिः केषांचित्समजायत ॥ ९३ ॥ साभ्रमत्यास्तटे केचिद्यत्र कुत्र व्यवस्थिताः ॥ सीतापुरात्तु ये पूर्वं भयभीताः समागताः ॥ ९४ ॥ साभ्रमत्युत्तरे कूले श्रीक्षेत्रे ते व्यवस्थिताः ॥ यदा तेषां परं स्थानं दत्तं वै सुखवासकम् ॥ ९५ ॥ पुनस्तेऽपि गताः सद्यस्तस्मिन्सीतापुरे स्वयम् ॥ पञ्चपञ्चाशद्ग्रामाश्च दत्तास्तु पुनरागमे ॥ ९६ ॥ रामेण मोढविप्राणां निवासांस्तेषु चक्रिरे ॥ वृत्तिबाह्यास्तु ये विप्रा धर्मारण्यान्तरस्थिताः ॥ ९७ ॥ नास्माकं वणिजां वृत्तौ ग्रामवृत्तौ न किञ्चन ॥ प्रयोजनं हि विप्रेन्द्रा वासोऽस्माकं तु

स्थितहुए और जो कोई सीतापुर से पूर्व भयभीत होकर आये ॥ ९४ ॥ वे साभ्रमती के उत्तर किनारे में श्रीक्षेत्रनगर में स्थित हुए जब उनको सुखवासक नामक उत्तम स्थान दियागया ॥ ९५ ॥ तब फिर वे उसीक्षण उस सीतापुर में आपही स्थित हुए और फिर आनेपर श्रीरामजी ने मोढ ब्राह्मणों को पचपन ग्राम दिये और उन ग्रामों में उन्हों ने निवास किया व जीविका के बाहर जो ब्राह्मण धर्मारण्य के मध्य में स्थित हुए ॥ ९६ । ९७ ॥ उन्होंने कहा कि हे द्विजेन्द्रो ! वणिजों की जीविका व ग्राम की जीविका

में हमलोगों का कुछ प्रयोजन नहीं है बरन हमलोगों को यहां निवास रुचता है ॥ ६८ ॥ यह कहने पर उन त्रैविद्य ब्राह्मणों ने उन चातुर्विद्य ब्राह्मणों को आज्ञा दिया और उन ग्रामों में वे चातुर्विद्य द्विजोत्तम ब्राह्मण ॥ ६६ ॥ अपने कर्मों में परायण व शान्त और कृषीकर्म में लगेहुए थे और धर्मारण्य से थोड़ेही दूर पै वे गौवों को चराते थे ॥ ३०० ॥ वहां बहुत से ब्राह्मणों के पुत्र गोपाल हुए और चातुर्विद्य बालकों ने उनकी गौवों को चराया और उनके भोजन के लिये भलभिांति बनायेहुए अन्न पानादिको ॥ १ ॥ विधवा स्त्रियां व बालकलोग भी ले आते थे ॥२॥ हे राजन्! कुछ समय के बाद परस्पर उनकी प्रीति हुई और प्रेम से गोपाल व बालकों की कन्याओं

रोचते ॥ ६८ ॥ इत्युक्ते समनुज्ञातास्त्रैविद्यैस्तैर्द्विजोत्तमैः ॥ तेषु ग्रामेषु ते विप्राश्चातुर्विद्या द्विजोत्तमाः ॥ ६६ ॥ स्वकर्मनिरताः शान्ताः कृषिकर्मपरायणाः ॥ धर्मारण्यान्नातिदूरे धेनूः सञ्चारयन्ति ते ॥ ३०० ॥ बहवस्तत्र गोपाला बभूवुर्द्विजबालकाः ॥ चातुर्विद्यास्तु शिशवस्तेषां धेनूरचारयन् ॥ तेषां भोजनकामाय अन्नपानादिसत्कृतम् ॥ १ ॥ अनयन्वै युवतयो विधवा अपि बालकाः ॥ २ ॥ कालेन कियता राजंस्तेषां प्रीतिरभून्मिथः ॥ गोपाला बुभुजुः प्रेम्णा कुमार्यो द्विजबालिकाः ॥ ३ ॥ जाताः सगर्भास्ताः सर्वा दृष्टास्तैर्द्विजसत्तमैः ॥ परित्यक्ताश्च सदनाद्धिक्कृताः पापकर्मणा ॥ ४ ॥ ताभ्यो जाताः कुमारा ये कातीभा गोलकास्तथा ॥ धेनुजास्ते धरालोके ख्यातिं जग्मुर्द्विजोत्तमाः ॥ ५ ॥ वृत्तिबाह्यास्तु ते विप्रा भिक्षां कुर्वन्ति नित्यशः ॥ अन्यच्च श्रूयतां राजंस्त्रैविद्यानां द्विजन्मनाम् ॥ ६ ॥ कुष्ठी कोऽपि तथा पङ्गुर्मूर्खो वा बधिरोऽपि वा ॥ काणो वाप्यथ कुब्जो वा बद्धवागथवा पुनः ॥ ७ ॥ अप्राप्तकन्यका ह्येते

ने भोजन किया ॥३॥ और उन द्विजोत्तमों से देखी हुई वे सब स्त्रियां गर्भिणी हुई और पापकर्म से धिक्कार कीहुई वे घर से छोड़ दीगईं ॥४॥ और उनसे जो बालक उत्पन्न हुए वे कातीभ और गोलक संज्ञक हुए व वे द्विजोत्तम लोग पृथ्वीलोक में धेनुक ऐसे प्रसिद्ध हुए ॥ ५ ॥ और जीविका से बाहर वे ब्राह्मण नित्य भिक्षा करते थे व हे राजन्! त्रैविद्य ब्राह्मणों के अन्य चारित्र को सुनिये ॥ ६ ॥ कि कोई कुष्ठी व लँगड़ा, मूर्ख, बहरा, काना व कूबरा और बंधे वचनवाला पुरुष ॥ ७ ॥ कन्याओं को न पाये

हुए ये चातुर्विद्य ब्राह्मणों के आश्रित हुए व हे राजन्! बडे द्रव्य के कारण उनकी कुँवारी कन्या ॥ ८ ॥ उस समय हे राजन्! व्याही गई और उससे जो लड़के उत्पन्न हुए वे पृथ्वीलोकमें उसी से त्रिदलज उत्पन्न हुए॥९॥ व मेलसे उपजे हुए उन ब्राह्मणोंने परस्पर जीविका किया व हे राजन्! त्रैविद्य ब्राह्मणोंका अन्य चरित्र सुनिये ॥१०॥ कि श्रीरामजी से दिये हुए ग्राम से कर लेने के कारण सब ब्राह्मणों ने इकट्ठा होकर उस ग्राम को भेंट लेकर ॥ ११ ॥ आधा निवेदन किया व आधे की रक्षा किया और यह मिला ऐसा मानते हुए वे ब्राह्मण चांचल्यभागी हुए ॥ १२ ॥ और जो महास्थान को गये वे विस्मय को प्राप्त हुए व उनके मध्य में किसी ब्राह्मण ने क्रोधित होकर

चातुर्विद्यान्समाश्रिताः॥ वित्तेन महता राजन्सुतास्तेषां कुमारिकाः ॥ ८ ॥ उद्वाहितास्तदा राजंस्तस्माज्जातार्भकास्तु ये ॥ त्रिदलजास्ते विख्याताः क्षितिलोकेऽभवंस्ततः ॥ ९ ॥ वृत्तिं चक्रुर्ब्राह्मणास्तेऽन्योन्यं मिश्रसमुद्भवाः ॥ अन्यच्च श्रूयतां राजंस्त्रैविद्यानां द्विजन्मनाम् ॥ १० ॥ रामदत्तेन ग्रामेण करग्रहणहेतवे ॥ एकीभूय द्विजैः सर्वैर्ग्रामं प्रादाय तं वलिम् ॥ ११ ॥ अर्द्धं निवेदयामासुरर्द्धं चैवोपरक्षितम् ॥ एतल्लब्धं हि मन्वानास्ते द्विजा लौल्यभागिनः ॥ १२ ॥ महास्थानगता ये च ते हि विस्मयमाययुः ॥ तन्मध्ये कोऽपि विप्रस्तानुवाच कुपितो वचः ॥ १३ ॥ विप्र उवाच ॥ अनृतं चैव भाषन्ते लौल्येन महता वृताः ॥ पुत्रपौत्रविनाशाय ब्रह्मस्वेष्वतिलोलुपाः ॥ १४ ॥ न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ॥ विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् ॥ १५ ॥ ब्रह्मस्वेन च दग्धेषु पुत्रदारगृहादिषु ॥ न च ते ह्यपि तिष्ठन्ति ब्रह्मस्वेन विनाशिताः ॥ १६ ॥ न नाकं लभते सोऽथ सदा ब्रह्मस्वहारकः ॥ यदा वराटिकां

उनसे वचन कहा ॥१३॥ ब्राह्मण बोला कि बडी चंचलता से घिरेहुए और ब्राह्मणों के धनों में बहुत ही लोभी मनुष्य पुत्रों व पौत्रों के नाश के लिये झूंठ बोलते हैं॥१४॥ विष को विद्वान्लोग विष नहीं कहते हैं बरन ब्राह्मण का धन विष कहाजाता है क्योंकि विष एकही को मारता है और ब्राह्मण का धन पुत्रों व पौत्रों को नाश करता है ॥ १५ ॥ और ब्राह्मण के धन से पुत्र, स्त्री व घर आदि के जलजाने पर ब्रह्मधन से नाश किये हुए वे भी नहीं स्थित होते हैं ॥ १६॥ और सदैव ब्राह्मण का

घन हरनेवाला वह मनुष्य स्वर्ग को नहीं पाता है और ब्राह्मण की कौड़ी को जब जो मनुष्य हरते हैं ॥ १७ ॥ तदनन्तर हरनेवाला मनुष्य तीन जन्मों तक नरक को जाता है और उससे दिये हुए जल को पूर्वज लोग कभी नहीं ग्रहण करते हैं ॥ १८ ॥ और क्षयाह में उसके पिंड व जलदान कर्म को पितर नहीं भोजन करते हैं और वह सन्तान को नहीं पाता है व मिलीहुई सन्तान जीती नहीं है ॥ १९ ॥ और यदि दैवयोग से सन्तान जीती है तो भ्रष्ट आचारवाली होती है ॥ २० ॥ गेरह ब्राह्मण बोले कि हे विप्र ! झूंठ नहीं कहागया हमलोगों को तुम क्यों दूषित करते हो और अपराध के विना किस को कडुई उक्ति योग्य होती है ॥ २१ ॥ हे पार्थ ! उस

चैव ब्राह्मणस्य हरन्ति ये ॥ १७ ॥ ततो जन्मत्रयाण्येव हर्त्ता निरयमाव्रजेत् ॥ पूर्वजा नोपभुञ्जन्ति तत्प्रदत्तं जलं क्वचित् ॥ १८ ॥ क्षयाहे नोपभुञ्जन्ति तस्य पिण्डोदकक्रियाः ॥ सन्ततिं नैव लभते लभ्यमाना न जीवति ॥ १९ ॥ यदि जीवति दैवाच्चेद्भ्रष्टाचारा भवेदिति ॥ २० ॥ एकादशविप्रा ऊचुः ॥ नासत्यं भाषितं विप्र कथं दूषयसे हि नः ॥ अपराधं विना कस्य कटूक्तिर्युज्यते किल ॥ २१ ॥ तच्छ्रुत्वा तैर्द्विजैः पार्थ ग्रामग्राहयिता वणिक् ॥ परिपृष्टः स तत्सर्वं कथयामास कारणम् ॥ २२ ॥ वणिजैरेव मे दत्तो बलिश्च द्विजसत्तमाः ॥ तत्सर्वं शुद्धभावेन कथितं तु द्विजन्मसु ॥ २३ ॥ ततोऽर्द्धदलं ज्ञात्वा ते कुपिता द्विजपुत्रकाः ॥ वृत्तेर्बहिष्कृतास्ते वै एकादश द्विजास्ततः ॥ २४ ॥ एकादशसमा ज्ञातिर्विख्याता भुवनत्रये ॥ न तेषां सह संबन्धो न विवाहश्च जायते ॥ २५ ॥ एकादशसमा ये च बहिर्ग्रामे वसन्ति ते ॥ एवं भेदाः समभवन्नाना मोढद्विजन्मनाम् ॥ युगानुसारात्कालेन ज्ञातीनां च

वचन को सुनकर उन ब्राह्मणों ने ग्राम को ग्रहण करनेवाले वणिज् से पूंछा और उसने उस सब कारण को कहा ॥ २२ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! वणिजों ने मुझको बलि दिया है वह सब ब्राह्मणों से शुद्धभाव से कहागया ॥ २३ ॥ तदनन्तर आधा भाग जान कर वे ब्राह्मणों के पुत्र क्रोधित हुए तदनन्तर जीविका से बाहर किये हुए गेरह ब्राह्मण ॥ २४ ॥ त्रिलोक में कुटुम्ब से एकादशसमा ऐसे प्रसिद्ध हुए व उनके साथ संबन्ध व विवाह नहीं होता है ॥ २५ ॥ और जो एकादशसमा

संज्ञक ब्राह्मण हैं वे गाँव के बाहर बसते हैं इस प्रकार समय से युग के अनुसार मोढ ब्राह्मणों के वंशों के व धर्म के अनेक भेद हुए ॥ ३२६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां ज्ञातिभेदवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । धर्मारण्यमहात्म के, सुने मिलै फल जौन । चालिसवें अध्याय में, कह्यो चरित सब तौन ॥ नारदजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! उस मोहेरकपुर में जाति का भेद होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणों ने क्या किया है उसको पूंछते हुए मुझसे कहिये ॥ १॥ ब्रह्मा बोले कि अपने स्थान में सब ब्राह्मण हर्ष से पूर्ण मन वाले थे और कोई अग्निहोत्र में

वृषस्य वा ॥ ३२६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्ये ज्ञातिभेदवर्णनंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

नारद उवाच ॥ ज्ञातिभेदे तु संजाते तस्मिन्मोहेरके पुरे ॥ त्रैविद्यैः किं कृतं ब्रह्मंस्तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ स्वस्थाने वाडवाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः ॥ अग्निहोत्रपराः केऽपि केऽपि यज्ञपरायणाः ॥२॥ केऽपि चाग्निसमाधानाः केऽपि स्मार्ता निरन्तरम् ॥ पुराणन्यायवेत्तारो वेदवेदाङ्गवादिनः ॥ ३ ॥ सुखेन स्वान्सदाचारान्कुर्वन्तो ब्रह्मवादिनः ॥ एवं धर्मसमाचारान्कुर्वतां कुशलात्मनाम् ॥ ४ ॥ स्थानाचारान्कुलाचारानधिदेव्याश्च भाषितान् ॥ धर्मशास्त्रस्थितं सर्वं काजेशैरुदितं च यत् ॥ ५ ॥ परम्परागतं धर्ममूचुस्ते वाडवोत्तमाः ॥ ६ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ यस्याभिधानं लिखितं रक्तपादैस्तु वाडवाः ॥ ज्ञातिश्रेष्ठः स विज्ञेयो बहिर्ज्ञेयस्ततः परम् ॥७॥ रक्तं पदं नाम साध्यं प्र

परायण व कोई यज्ञोंमें परायण थे ॥ २ ॥ और कोई अग्न्याधान करनेवाले व कोई सदैव स्मार्त थे और कोई पुराणों व न्याय के जाननेवाले तथा वेदों व वेदांगोंके कहनेवाले थे ॥३॥ और वे ब्रह्मवादी सुखसे अपने उत्तम आचारोंको करते थे इसप्रकार अधिदेवी से कहेहुए धर्माचार, स्थानाचार व कुलाचारों को करते हुए निपुण चित्तवाले उन ब्राह्मणों का वह सब धर्मशास्त्र में स्थित कर्म हुआ जोकि ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से कहागया था ॥ ४ । ५ ॥ और उन द्विजोत्तमों ने परंपरा मे प्राप्त धर्म को कहा ॥ ६ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे ब्राह्मणो ! रक्तपादों से जिसका नाम लिखा गया है वह जाति में श्रेष्ठ जानने योग्य है व उसके उपरान्त बाहर जानने योग्य है ॥ ७ ॥ और रक्तपद

साध्य नाम है व अपने वंश की प्रसिद्धि के लिये चन्दन व पुष्पादिकों से पूजित उन कुंकुम से कुछ लाल चरणोंवाले द्विजों से ॥ ८ ॥ मिलकर जो लिखा गया है वह रक्तपाद कहाजाता है और वे सब सावधान होकर श्रीरामजी के लेखको पूजन करैं ॥ ९ ॥ व सदैव ब्राह्मणलोग श्रीरामजी के हाथ की मुद्रा (छाप) को पूजन करैं और यदि जिनके उत्तम आचार में व्यभिचार आदिक दोष होवैंगे ॥ १० ॥ उनको वह दण्ड करने योग्य होगा जोकि विधिपूर्वक ब्राह्मणों से कहा गया है और जबतक दण्ड (बलि) नहीं देता है तबतक श्रीरामजी की मुद्रा का चिह्न नहीं होता है ॥ ११ ॥ क्योंकि बलि देने के विना मुद्रा का चिह्न नहीं

सिद्ध्यै स्वकुलस्य वै ॥ कुङ्कुमारक्तपादैस्तैर्गन्धपुष्पादिचर्चितैः ॥ ८ ॥ संभूय लिखितं यच्च रक्तपादं तदुच्यते ॥ रामस्य लेख्यं ते सर्वे पूजयन्तु समाहिताः ॥ ९ ॥ रामस्य करमुद्रां च पूजयन्तु द्विजाः सदा ॥ येषां दोषाः सदाचारे व्यभिचारादयो यदि ॥ १० ॥ तेषां दण्डो विधेयस्तु य उक्तो विधिवद्द्विजैः ॥ चिह्नं न राममुद्राया यावद्दण्डं ददाति न ॥ ११ ॥ विना दण्डप्रदानेन मुद्राचिह्नं न धार्यते ॥ मुद्राहस्ताश्च विज्ञेया वाडवा नृपसत्तम ॥ १२ ॥ पुत्रे जाते पिता दद्याच्छ्रीमात्रे तु बलिं सदा ॥ पलानि विंशतिः सर्पिर्गुडः पञ्चपलानि च ॥ १३ ॥ कुङ्कुमादिभिरभ्यर्च्यो जातमात्रः सुतस्तदा ॥ षष्ठे च दिवसे राजन्षष्ठीं पूजयते सदा ॥ १४ ॥ दद्यात्तत्र बलिं साज्यं कुर्याद्धि बलिपञ्चकम् ॥ पञ्चप्रस्थान्बलीन्दद्यात्सवस्त्राञ्छ्रीफलैर्युतान् ॥ १५ ॥ कुङ्कुमादिभिरभ्यर्च्य श्रीमात्रे भक्तिपूर्वकम् ॥ वित्तशाठ्यं न कुर्वीत .ले सन्ततिवृद्धये ॥ १६ ॥ तद्धि चार्पयता द्रव्यं वृद्धौ यद्भाषितं पुनः ॥ जन्मनोऽनन्तरं कार्यं जातकर्म

रण किया जाता है व हे नृपोत्तम ! मुद्रा हाथवाले ब्राह्मण जानने योग्य हैं ॥ १२ ॥ पुत्र पैदा होनेपर पिता सदैव श्रीमाताजी के लिये बलि को देवै बीसपल घी और पांच पल गुड देवै ॥ १३ ॥ और पैदा हुआ पुत्र उस समय कुंकुमादिकों से पूजने योग्य है और हे राजन् ! सदैव छठें दिन छठी को पूजै ॥ १४ ॥ और उसमें घी समेत बलि को देवै व पांच बलियों को देवै और श्रीफलों से संयुत व वस्त्रोंसमेत पांच प्रस्थ-प्रमाणभर बलियों को देवै ॥ १५ ॥ और भक्तिपूर्वक श्रीमाता के लिये कुंकुम आदि से पूजकर वंश में सन्तान की वृद्धि के लिये वित्तशाठ्य न करै ॥ १६ ॥ और वृद्धि में जो कहा गया है उस धनको देते हुए पिता को जन्म के बाद

विधिपूर्वक जातकर्म करना चाहिये ॥ १७ ॥ और इसमें जो वृत्ति ब्राह्मणों से कहीगई है वह विभाग कीजाती है कि पहली जितनी वृत्ति मिलै ॥ १८ ॥ उस जीविका का आधाभाग गोत्रदेवी के लिये देवै और पुत्र उत्पन्न होनेपर वणिज् को दूना होता है ॥ १९ ॥ और जो मांडलीय शूद्र हैं उनका यह आधा कर होता है और अडालजों का तिगुना व गोमुजों को चौगुना होता है ॥ २० ॥ यह व अन्य सब शूद्रजातियों में कहागया है और दैव के वश से जिसके हत्या का दोष उत्पन्न हुआ है ॥ २१ ॥ उसका वेदशास्त्री लोगों से विधिपूर्वक दण्ड करना चाहिये और अगम्यास्त्री के गमन से जब जिसको दोष उत्पन्न होवै तब त्रैविद्य जातिवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणों को फिर उसका

यथाविधि ॥ १७ ॥ विप्रानुकीर्तिता याऽत्र वृत्तिः सापि विभज्यते ॥ प्रथमा लभ्यमाना च वृत्तिर्वै यावती पुनः ॥ १८ ॥ तस्या वृत्तेरर्द्धभागो गोत्रदेव्यै तु कल्प्यताम् ॥ द्विगुणं वणिजां चैव पुत्रे जाते भवेदिति ॥ १९ ॥ माण्डलीयाश्च ये शूद्रास्तेषामर्धकरं त्विदम् ॥ अडालजानां त्रिगुणं गोभुजानां चतुर्गुणम् ॥ २० ॥ इत्येतत्कथितं सर्वमन्यच्च शूद्रजातिषु ॥ यस्य दोषस्तु हत्यायाः समुद्भूतो विधेर्वशात् ॥ २१ ॥ दण्डस्तु विधिवत्तस्य कर्त्तव्यो वेदशास्त्रिभिः ॥ अगम्या गमनाद्य स्य दोष उत्पद्यते यदा ॥ तस्य दण्डः पुनः कार्य आर्यैस्त्रैविद्यजातिभिः ॥ २२ ॥ पङ्क्तिभेदस्य कर्त्ता च गोसहस्रवधः स्मृतः ॥ वृत्तिभागविभजनं तथा न्यायविचारणम् ॥ श्रीरामदूतकस्याग्रे कर्त्तव्यमिति निश्चयः ॥ २३ ॥ तस्य पूजां प्रकुर्वीत तदा कालेऽथवा सदा ॥ तैलेन लेपयेत्तस्य देहे वै विघ्नशान्तये ॥ २४ ॥ धूपं दीपं फलं दद्यात्पुष्पैर्नानाविधैः किल ॥ पूजितो हनुमा नेव ददाति तस्य वाञ्छितम् ॥ २५ ॥ प्रतिपुत्रं तु तस्याग्रे कुर्यान्नान्यत्र कुत्रचित् ॥ श्रीमातावकुलस्वामिभागधेयं तु

दण्ड करना चाहिये ॥ २२ ॥ और जो पंक्तिभेद का करनेवाला है वह हज़ार गऊ का वधकर्ता कहा गया है और जीविका के अंश का विभाग व न्याय का विचार श्रीरामजी के दूत हनुमान्जी के आगे करना चाहिये यह निश्चय है ॥ २३ ॥ और उस समय या सदैव उन हनुमान्जी का पूजन करै व विघ्न की शान्ति के लिये तैलसे उनके शरीर में लेपन करै ॥ २४ ॥ और धूप, दीप व फलको देवै क्योंकि अनेक भांति के पुष्पों से पूजे हुए हनुमान्जी उसको मनोरथ देते हैं ॥ २५ ॥ उन हनुमान्जी के

आगे प्रत्येक पुत्र में ऐसा करै अन्यत्र कहीं न करै और पहले श्रीमाता व बकुलस्वामी को बलि देवै ॥ २६ ॥ पश्चात् ब्राह्मणों को प्रतिग्रह (दान) करना चाहिये और ब्राह्मणों के समाजों में न्याय व अन्याय के निर्णय में ॥ २७ ॥ हृदय में निर्णयको धरकर वहां बैठे हुए ब्राह्मणों को केवल धर्म की बुद्धि से निर्णय को सुनावै और पक्षपात वर्जित करै ॥२८॥ और सबों का सम्मत करना चाहिये क्योंकि वह विकाररहित होता है यदि बुलाया हुआ ब्राह्मण सभा में उससे भय को प्राप्त होवै ॥२६॥ तो निर्णय किये हुए अर्थ के विचार में उसका वचन न सुनना चाहिये और सब ब्राह्मण मिलकर जिसको वर्जित करैं ॥ ३० ॥ उसके साथ अन्न पानादिक

पूर्वतः ॥ २६ ॥ पश्चात्प्रतिग्रहं विप्रैः कर्त्तव्यमिति निश्चितम् ॥ समागमेषु विप्राणां न्यायान्यायविनिर्णये ॥ २७ ॥ निर्णयं हृदये धृत्वा तत्रस्थाञ्छ्रावयेद्द्विजान् ॥ केवलं धर्मबुद्धया च पक्षपातं विवर्जयेत् ॥ २८ ॥ सर्वेषां संमतं कार्यं तद्धयविकृतमेव च ॥ आकारितस्ततो विप्रः सभायां भयमेति चेत् ॥ २६ ॥ न तस्य वाक्यं श्रोतव्यं निर्णीतार्थविचारणे ॥ यस्य वर्जस्तु क्रियते मिलित्वा सर्वबाडवैः ॥ ३० ॥ अन्नपानादिकं सर्वं कार्यं तेन विवर्जयेत् ॥ तस्य कन्या न दातव्या तत्संसर्गी च तादृशः ॥ ३१ ॥ ततो दण्डं प्रकुर्वीत सर्वैरेव द्विजोत्तमैः ॥ भोजनं कन्यकादानमिति दाशरथेर्मतम् ॥ ३२ ॥ यत्किंचित्कुरुते पापं लघुस्थूलमथापि वा ॥ शुष्कार्द्रं वसते चान्ने तस्मादन्नं परित्यजेत् ॥ ३३ ॥ कुर्वंस्तत्पापभागी स्यात्तस्य दण्डो यथाविधि ॥ न्यायं न पश्यते यस्तु शक्तौ सत्यां सदा यतः ॥ ३४ ॥ पापभागी स

सब कार्य वर्जित करै और उसको कन्या न देना चाहिये व उसका मेल करनेवाला भी वैसाही होताहै ॥ ३१ ॥ उसी कारण सब द्विजोत्तमों से दण्ड करना चाहिये और भोजन व कन्यादान करना चाहिये यह श्रीरामजी का सम्मत है ॥ ३२ ॥ और जो कुछ छोटा या बड़ा व सूखा या भीगा पाप मनुष्य करताहै वह सब उसके अन्न में बसता है इस कारण अन्न को त्याग देवै ॥ ३३ ॥ क्योंकि करता हुआ मनुष्य उसके पाप का भागी होता है और उसका विधिपूर्वक दण्ड करना चाहिये और शक्ति होने पर जो सदैव जिससे न्याय को नहीं देखता है ॥ ३४ ॥ उसी कारण वह पाप भागी जानने योग्य है यह सत्य है इसमें सन्देह नहीं है और जो दुष्टकर्मी

पापियों की घूस लेता है उनका सब पाप उसको होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ और उसका अन्न व कन्या को भी कभी न ग्रहण करै व जो मनुष्य पुत्रों का भी हित करै ॥ ३६ ॥ वह इन सब नियमों को पालन करै इसमें सन्देह नहीं है ऐसा पत्र लिखकर वे ब्राह्मण प्रसन्न हुए ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार भयंकर कलियुग प्राप्त होने पर मनुष्य पाप न करैं ऐसा जानकर उन सबों ने न्यायधर्म को किया ॥ ३८ ॥ व्यासजी बोले कि कलियुग प्राप्त होने पर जिस लिये सब ब्राह्मण स्थान से भ्रष्ट होवैंगे उससे उत्कृष्ट पक्ष को ग्रहण करैंगे और पक्षपाती होवैंगे ॥ ३९ ॥ और म्लेच्छों के ग्राम कोलाविध्वंसियों से भोग किये जावैंगे और कलियुग में वे ब्राह्मण वेदोंसे भ्रष्ट

विज्ञेय इति सत्यं न संशयः ॥ उत्कोचं यस्तु गृह्णाति पापिनां दुष्टकर्मिणाम् ॥ सकलं च भवेत्तस्य पापं नैवात्र संशयः ॥ ३५ ॥ तस्यान्नं नैव गृह्णीयात् कन्यापि न कदाचन ॥ हितमाचरते यस्तु पुत्राणामपि वै नरः ॥ ३६ ॥ स एतान्नियमान्सर्वान्पालयेन्नात्र संशयः ॥ एवं पत्रं लिखित्वा तु वाडवास्ते प्रहर्षिताः ॥ ३७ ॥ प्राप्ते कलियुगे घोरे यथा पापं न कुर्वते ॥ इति ज्ञात्वा तु सर्वे ते न्यायधर्मं प्रचक्रिरे ॥ ३८ ॥ व्यास उवाच ॥ कलौ प्राप्ते द्विजाः सर्वे स्थानभ्रष्टा यतस्ततः ॥ ग्रहीष्यन्त्युत्कलं पक्षं तथा स्युः पक्षपातिनः ॥ ३९ ॥ भोक्ष्यन्ते म्लेच्छकग्रामान्कोलाविध्वंसिभिः किल ॥ वेदभ्रष्टाश्च ते विप्रा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥ ४० ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ देशे देशे गमिष्यन्ति ते विप्रा वणिजस्तथा ॥ ज्ञायन्ते वै कथं सर्वैः केन चिह्नेन मारिष ॥ ४१ ॥ यस्मिन्गोत्रे समुत्पन्ना वाडवा ये महाबलाः ॥ ४२ ॥ व्यास उवाच ॥ ज्ञायते गोत्रसंज्ञाऽथ केचिच्चैव पराक्रमैः ॥ यस्य यस्य च यत्कर्म तस्य तस्यावटङ्ककः ॥ ४३ ॥ अवटङ्कैर्हि ज्ञायन्ते

होवैंगे ॥ ४० ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे मारिष ! वे ब्राह्मण व वणिज् देश, देश में जावैंगे तो किस चिह्न से सबों से वे जानेजाते हैं ॥ ४१ ॥ जो कि बड़े बलवान् ब्राह्मण जिस गोत्र में उत्पन्न हैं ॥ ४२ ॥ व्यासजी बोले कि गोत्र की संज्ञा जानीजाती है और कोई ब्राह्मण पराक्रम से जानेजाते हैं और जिस जिसका जो कर्म है उस उसका वह अवटंक होताहै ॥ ४३ ॥ और अवटंकों से वे जानेजाते हैं और अन्यथा कभी नहीं जानेजाते हैं व हे नृपात्मज, राजन् ! गोत्रों से और प्रवरों तथा

अवटंकों से श्रेष्ठ मोढसंज्ञक ब्राह्मण जानेजाते हैं ॥ ४४ । ४५ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि तुम्हारे मुख से गोत्रों और प्रवरों से ये सुने गये हैं व किस शाखा के वे पढ़ने वाले हैं हे पितामहजी ! उसको मुझसे कहिये ॥ ४६ ॥ व्यासजी बोले कि जहां तहां स्थित बड़े बलवान् माध्यंदिनी शाखावाले ब्राह्मण जानेजाते हैं और गुणों से संयुत कोई ब्राह्मण कौथमी शाखा के आश्रित होकर स्थित होते हैं ॥ ४७ ॥ व हे महामते ! ऋग्वेद व अथर्वण वेद से उपजी हुई वह शाखा नष्ट होगई है इस प्रकार धर्मारण्य में धर्म से उपजे हुए वे बड़े ऐश्वर्यवान् ब्राह्मण पुत्रों व पौत्रों से संयुत हुए और बड़े ऐश्वर्यवान् सब शूद्र पुत्रों व पौत्रों से संयुत हुए ॥ ४८ । ४९ ॥

ज्ञायन्ते नान्यथा क्वचित् ॥ गोत्रैश्च प्रवरैश्चैव अवटङ्कैर्नृपात्मज ॥ ४४ ॥ ज्ञायन्ते हि द्विजा राजन्मोढब्राह्मणसत्तमाः ॥ ४५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ गोत्रैश्च प्रवरैश्चैव श्रुता एते तवाननात् ॥ कां वा शाखामधीयानास्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ ४६ ॥ व्यास उवाच ॥ ज्ञायन्ते यत्र तत्रस्था माध्यन्दिनीया महाबलाः ॥ कौथमीं च समाश्रित्य केचिद्विप्रा गुणान्विताः ॥ ४७ ॥ ऋगथर्वणजा शाखा नष्टा सा च महामते ॥ एवं वै वर्तमानास्ते वाडवा धर्मसंभवाः ॥ ४८ ॥ धर्मारण्ये महाभागाः पुत्रपौत्रान्विताऽभवन् ॥ शूद्राः सर्वे महाभागाः पुत्रपौत्रसमावृताः ॥ ४९ ॥ धर्मारण्ये महातीर्थे सर्वे ते द्विजसेवकाः ॥ अभवन्रामभक्ताश्च रामाज्ञां पालयन्ति च ॥ ५० ॥ आज्ञामत्याऽऽदरेणेह हनूमन्तश्च वीर्यवान् ॥ पालयेत्सोऽपि चेदानीं संप्राप्ते वै कलौ युगे ॥ ५१ ॥ अदृष्टरूपी हनुमांस्तत्र भ्रमति नित्यशः ॥ त्रैविद्या वाडवा यत्र चातुर्विद्यास्तथैव च ॥ ५२ ॥ सभायामुपविष्टा येऽन्यायात्पापं प्रकुर्वते ॥ जयो हि न्यायकर्तॄणामजयोऽन्याय

व धर्मारण्य महातीर्थ में वे सब ब्राह्मणों के सेवक हुए और रामजी के भक्त वे श्रीरामजी की आज्ञा को पालन करते हैं ॥ ५० ॥ और पराक्रमी हनुमान्जी बड़े आदर से आज्ञा को पालन करते हैं इस समय कलियुग प्राप्त होनेपर वे ॥ ५१ ॥ हनुमान्जी अदृष्टरूप होकर वहां नित्य घूमते हैं और जिस कलियुग में त्रैविद्य व चातुर्विद्य ब्राह्मण ॥ ५२ ॥ जो सभा में बैठे हैं वे अन्याय से पापको करते हैं न्याय करनेवालों की जय होती है व अन्याय करनेवालों की पराजय

होती है ॥ ५३ ॥ और अपराध समेत पुत्र, पिता व भाई में जो पक्षपात करता है उसके ऊपर हनुमान्जी क्रोधित होते हैं ॥ ५४ ॥ और ये क्रोधित हनुमान्जी धन का नाश करते हैं व पुत्रनाश करते हैं और घर को नाश करतेहैं ॥ ५५ ॥ और सेवाके लिये बनाया हुआ जो शूद्र ब्राह्मणों की सेवा नहीं करता है व जो जीविकाको नहीं देता है उसके ऊपर हनुमान्जी क्रोधित होते हैं ॥ ५६ ॥ व श्रीरामजी का वचन स्मरण करते हुए हनुमान्जी धननाश, पुत्रनाश व स्थाननाश करते हैं ॥ ५७ ॥ व हे नृपोत्तम ! श्रीरामजी की प्रसन्नता से जहां कहीं भी स्थित वे ब्राह्मण या शूद्र धनहीन नहीं होते हैं ॥ ५८ ॥ और जो मूर्ख व अधर्मी पाप और पाषण्डमें स्थित होकर अपने

कारिणाम् ॥ ५३ ॥ सापराधे यस्तु पुत्रे ताते भ्रातरि चापि वा ॥ पक्षपातं प्रकुर्वीत तस्य कुप्यति वायुजः ॥ ५४ ॥ कुपितो हनुमानेष धननाशं करोति वै ॥ पुत्रनाशं करोत्येव धामनाशं तथैव च ॥ ५५ ॥ सेवार्थं निर्मितः शूद्रो न विप्रान्परिषेवते ॥ वृत्तिं वा न ददात्येव हनुमांस्तस्य कुप्यति ॥ ५६ ॥ अर्थनाशं पुत्रनाशं स्थाननाशं महाभयम् ॥ कुरुते वायुपुत्रो हि रामवाक्यमनुस्मरन् ॥ ५७ ॥ यत्र कुत्र स्थिता विप्राः शूद्रा वा नृपसत्तम ॥ न निर्द्धना भवेयुस्ते प्रसादाद्राघवस्य च ॥ ५८ ॥ यो मूढश्चाप्यधर्मात्मा पापपाषण्डमाश्रितः ॥ निजान्विप्रान्परित्यज्य परज्ञातींश्च मन्यते ॥ ५९ ॥ तस्य पूर्वकृतं पुण्यं भस्मीभवति नान्यथा ॥ अन्येषां दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥ ६० ॥ वृथा भवति वै पूर्वं ब्रह्मविष्णुशिवैः स्मृतम् ॥ तस्य देवा न गृह्णन्ति हव्यं कव्यं च पूर्वजाः ॥ ६१ ॥ वञ्चयित्वा निजान्विप्रानन्येभ्यः प्रददेत्तु यः ॥ तस्य जन्मार्जितं पुण्यं भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ ६२ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवैश्चैव पूजिता ये

ब्राह्मणों को छोड़कर पराये कुटुम्बों को मानता है ॥ ५९ ॥ उसका पहले किया हुआ पुण्य भस्म होजाता है अन्यथा नहीं होता है और अन्य लोगों को थोड़ा या बहुत जो दान दियाजाता है ॥ ६० ॥ वह वृथा होजाता है ऐसा ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी से कहागया है और पूर्वज पितरलोग उसके हव्य व कव्य को नहीं ग्रहण करते हैं ॥ ६१ ॥ और अपने ब्राह्मणों को छलकर जो अन्यलोगोंके लिये दान देता है उसका जन्म में इकट्ठा कियाहुआ पुण्य उसी क्षण भस्म होजाता है ॥ ६२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु

व शिवजी से जो ब्राह्मण पूजेगये हैं उनसे जो विमुख होते हैं वे रौरव नरक में बसते हैं ॥ ६३ ॥ और जो चंचलता से कुल का आचार व गोत्र का आचार लोप करता है और जो मोहित मनुष्य अपने आचार को नहीं करता है ॥ ६४ ॥ उसका सब नाश होजाता है और उसी क्षण भस्म होजाता है इस लिये सब कुल का आचार व स्थान का आचार ॥ ६५ ॥ और गोत्र का आचार धन के अनुसार पालन करनेयोग्य है हे राजन् ! इसप्रकार तुमसे प्राचीन धर्मारण्य कहागया ॥ ६६ ॥ सतयुग में ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों से धर्मारण्य स्थापित कियागया है और त्रेता में सत्यमन्दिर व द्वापर में, वेदभवन और कलियुग में मोहेरक कहागया है ॥ ६७ ॥ ब्रह्माजी बोले

द्विजोत्तमाः ॥ तेषां ये विमुखाः शूद्रा रौरवे निवसन्ति ते ॥ ६३ ॥ यो लौल्याच्च कुलाचारं गोत्राचारं प्रलोपयेत् ॥ स्वाचारं यो न कुर्वीत कदाचिद्वै विमोहितः ॥ ६४ ॥ सर्वनाशो भवेत्तस्य भस्मीभवति तत्क्षणात् ॥ तस्मात्सर्वः कुलाचारः स्थानाचारस्तथैव च ॥ ६५ ॥ गोत्राचारः पालनीयो यथावित्तानुसारतः ॥ एवं ते कथितं राजन्धर्मारण्यं पुरातनम् ॥ ६६ ॥ स्थापितं देवदेवैश्च ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ॥ धर्मारण्यं कृतयुगे त्रेतायां सत्यमन्दिरम् ॥ द्वापरे वेदभवनं कलौ मोहेरकं स्मृतम् ॥ ६७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ य इदं शृणुयात्पुत्र श्रद्धया परया युतः ॥ धर्मारण्यस्य माहात्म्यं सर्वकिल्बिषनाशनम् ॥ ६८ ॥ मनोवाक्कायजनितं पातकं त्रिविधं च यत् ॥ तत्सर्वं नाशमायाति श्रवणात्कीर्तनात्सकृत् ॥ ६९ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं सुखसंतानदायकम् ॥ माहात्म्यं शृणुयाद्वत्स सर्वसौख्याप्तये नरः ॥ ७० ॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वक्षेत्रेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति धर्मारण्यस्य सेवनात् ॥ ७१ ॥ नारद उवाच ॥ धर्मारण्यस्य

कि हे पुत्र ! बड़ी श्रद्धा से संयुत जो मनुष्य सब पातकों को नाशनेवाले धर्मारण्य के इस माहात्म्य को सुनता है ॥ ६८ ॥ उसका मन, वचन व शरीर से उपजाहुआ जो तीन प्रकार का पाप होता है वह सब एक बार सुनने व कहने से नाश को प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ हे वत्स ! धनदायक व यशदायक तथा सुख व संतान को देनेवाले माहात्म्य को सब सुखों के मिलने के लिये मनुष्य सुनै ॥ ७० ॥ सब तीर्थों में जो पुण्य होता है व सब क्षेत्रों मे जो फल होता है उस फलको मनुष्य धर्मारण्य के सेवन से प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ नारदजी बोले कि धर्मारण्य का जो माहात्म्य है वह तुम्हारे मुख से सुनागया और जहां धर्मबावली में धर्मराज ने कठिन

तप कियाहै ॥ ७२ ॥ उस क्षेत्र की महिमा को मैंने तुमसे सुना तुम्हारा कल्याण होवै मैं धर्मारण्य को देखने की इच्छा से जाऊंगा ॥ ७३ ॥ हे चतुर्मुख ! तुम्हारे वचनरूपी जलके प्रवाह से मैं पवित्र होगया ॥ ७४ ॥ व्यासजी बोले कि हे पाण्डुनन्दन ! यह सब कथानक कहागया जिसको सुनकर मनुष्य गोसहस्र का फल पाता है ॥ ७५ ॥ और पुत्ररहित मनुष्य पुत्रों को पाता है व निर्धनी धनवान् होता है और रोगी रोग से छूटजाता है व बँधुवा मनुष्य बन्धन से छूटजाता है ॥ ७६ ॥ और विद्यार्थी कर्म को साधन करनेवाली उत्तम विद्या को पाता है और उसको तीर्थयात्रा का फल होता है व करोड़ कन्यादान के फल को पाता है ॥ ७७ ॥ व हे नरोत्तम ! जो स्त्री या

माहात्म्यं यच्छ्रुतं त्वन्मुखाम्बुजात् ॥ धर्मवाप्यां यत्र धर्म्मस्तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ ७२ ॥ तस्य क्षेत्रस्य महिमा मया त्वत्तोऽवधारितः ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि धर्मारण्यदिदृक्षया ॥ ७३ ॥ तव वाक्यजलौघेन पावितोऽहं चतुर्मुख ॥ ७४ ॥ व्यास उवाच ॥ इदमाख्यानकं सर्वं कथितं पाण्डुनन्दन ॥ यच्छ्रुत्वा गोसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ७५ ॥ अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्द्धनो धनवान्भवेत् ॥ रोगी रोगात्प्रमुच्येत बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ ७६ ॥ विद्यार्थी लभते विद्यामुत्तमां कर्मसाधनाम् ॥ तीर्थयात्राफलं तस्य कोटिकन्याफलं लभेत् ॥ ७७ ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या नारी वाथ नरोत्तम ॥ निरयं नैव पश्येत्स एकोत्तरशतैः सह ॥ ७८ ॥ शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्रादिभिस्तथा ॥ पुराणपुस्तकं राजन्प्रयतः शिष्टसंमतः ॥ ७९ ॥ अर्चयेच्च यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक्पृथक् ॥ समाप्तौ नृप ग्रन्थस्य वाचकस्यानुपूजनम् ॥ ८० ॥ दानादिभिर्यथान्यायं सम्पूर्णफलहेतवे ॥ मुद्रिकां कुण्डले चैव ब्रह्मसूत्रं हिरण्मयम् ॥ ८१ ॥ वस्त्राणि च विचित्राणि गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥ देववत्पूजनं कृत्वा गां च दद्यात्पय

पुरुष भक्ति से इसको सुनता है वह एक सौ एक पुश्तियों समेत नरक को नहीं देखता है ॥ ७८ ॥ व हे राजन् ! सज्जनों से संमत पवित्र मनुष्य पुराण की पुस्तक को उत्तम स्थान में धरकर रेशमी वस्त्रादिकों से ॥ ७९ ॥ और अलग २ चन्दन व मालाओं से यथायोग्य पूजन करै व हे राजन् ! ग्रंथ की समाप्ति में बांचनेवाले को पूजै ॥ ८० ॥ और संपूर्ण फल के लिये यथायोग्य दानादिकों से पूजै और मुंदरी व कुंडल और सुवर्ण का यज्ञोपवीत देवै ॥ ८१ ॥ और विचित्र वस्त्रों को देवै व चन्दन,

माला और अनुलेपनों से देवता के समान पूजन कर दूधवाली गऊ को देवै ॥ ८२ ॥ इस प्रकार विधि से धर्मारण्य की कथा को सुनकर मनुष्य धर्मारण्य के निवास का फल पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांधर्मारण्यनिवासिव्यवस्थावर्णनपूर्वक धर्मारण्यश्रवणमाहात्म्यवर्णनंनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

स्विनीम् ॥ ८२ ॥ एवं विधानतः श्रुत्वा धर्मारण्यकथानकम् ॥ धर्मारण्यनिवासस्य फलमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे धर्मारण्यमाहात्म्ये धर्मारण्यनिवासिव्यवस्थावर्णनपूर्वकधर्मारण्य श्रवणमाहात्म्यवर्णनंनाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इति धर्मारण्यमाहात्म्यं समाप्तम् ॥

दो० । श्रीगणेश के पदकमल, युग को करिकै ध्यान । धर्मारण्यमहात्मकर, तिलक कियो सुखदान ॥ १ ॥

पढ़ै सुनै प्रत्येक दिन, जो याको चित लाय । ताकोधनअरुधान्यसब, मिलत बहुत सरसाय ॥ २ ॥

प्रथम वार

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव बी. ए., के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेख़ाने में छपा ॥

॥ इति स्कन्दपुराण धर्मारण्यमाहात्म्य ॥

॥ अथ स्कन्दपुराण चातुर्मास्यमाहात्म्य ॥

नीलको जातेहुए देखकर ॥ ७२ ॥ ब्राह्मणों ने कुछ क्रोधसे संयुत उस बैल को चिह्नित किया कि वाम भागोंमें चक्र व दाहिने भाग में त्रिशूल किया ॥ ७३ ॥ तब देवताओं से रक्षित उस बैल को उन्होंने गौवोंके मध्य में छोड़ दिया तदनन्तर सब देवताओं के गण व महर्षियों के गण और ईर्षारहित वे मुनिलोग अपने स्थानों को चलेगये ॥ ७४ ॥ इसप्रकार ऋषियों की स्त्रियों में आसक्त व कामदेव से विकलचित्तवाले शिव भी श्रेष्ठ मुनियों का शाप पाकर भक्तिसे नर्मदाके जलमें शिलामयत्व को प्राप्त हुए ॥७५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां वृषस्तुतिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥ पुनरेव तु सर्पन्तं दृष्ट्वा नीलं महावृषम् ॥ ७२ ॥ स्वल्पक्रोधसमाविष्टं द्विजाश्चक्रुस्तमङ्कितम् ॥ चक्रं च वामभागेषु शूलं पार्श्वे च दक्षिणे ॥ ७३ ॥ उत्ससृजुर्गवां मध्ये तं देवैर्गोपितं तदा ॥ ततो देवगणाः सर्वे महर्षीणां गणाः पुनः ॥ स्वानि स्थानानि ते जग्मुर्मुनयो वीतमत्सराः ॥ ७४ ॥ एवंऋषीणां दयितासु सक्तः कामार्त्तचित्तो मुनिपुङ्गवानाम् ॥ शापं समासाद्य शिवोपि भक्त्या रेवाजलेऽगात्सुशिलामयत्वम् ॥ ७५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये वृषस्तुतिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥

गालव उवाच ॥ इति ते कथितं सर्वं शालग्रामकथानकम् ॥ महेश्वरस्य चोत्पत्तिर्यथालिङ्गत्वमाप सः ॥ १ ॥ तस्माद्धरं लिङ्गरूपं शालग्रामगतं हरिम् ॥ येऽर्चयन्ति नरा भक्त्या न तेषां दुःखयातनाः ॥ २ ॥ चातुर्मास्ये समायाते विशेषात्पूजयेच्च तौ ॥ अर्चितौ यावभेदेन स्वर्गमोक्षप्रदायकौ ॥ ३ ॥ देवौ हरिहरौ भक्त्या विप्रवह्नि

दो॰ । यथा विष्णु शिव पूजिकै मिलत अहै फल जौन ॥ अट्ठाइसवें में सुभग कह्यो चरित सब तौन ॥ गालवजी बोले कि यह सब शालग्राम की कथा तुमसे कहीगई व शिवजीकी उत्पत्ति कहीगई कि जिस प्रकार वे शिवजी लिङ्गत्व को प्राप्त हुए ॥ १ ॥ इसलिये लिङ्गरूपी शिव व शालग्राम शिलामें प्राप्त विष्णुजी को जो मनुष्य भक्तिसे पूजतेहैं उनको दुःख की पीड़ा नहीं होती हैं ॥ २ ॥ और चातुर्मास्य आनेपर विशेषता से उन शिव व विष्णुजी को पूजै अभेद से पूजेहुए जोकि स्वर्ग व मोक्षको देनेवाले हैं ॥ ३ ॥ हे महाशूद्र ! ब्राह्मण, अग्नि व गऊ के मध्य में प्राप्त विष्णु व शिवदेवजीको जो भक्ति से पूजते हैं विष्णुजी उनको

मोक्ष देते हैं ॥ ४ ॥ और वेदों में परायण मनुष्य वेदोक्त पूर्त व इष्ट कर्म को करै और पञ्चायतन पूजन व सत्यवचन तथा अचंचलता ॥ ५ ॥ और विवेकादिक गुणों से संयुत वह शूद्र उत्तम गति को प्राप्त होताहै और द्वादशाक्षर के ध्यान से अन्य ब्रह्मचर्य व तप नहीं है ॥ ६ ॥ और मंत्रों के विना सोलह उपचारों से नरकादिकोंकी नाशनेवाले विष्णुजीका जिस प्रकार पूजन करना चाहिये वैसे ही हे महाशूद्र ! महापातकों को नाशनेवाली शिवजीकी पूजा करना चाहिये ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले कि इस प्रकार कहते हुए उन दोनों की यह रात्रि व्यतीत होगई और वह शूद्र व शिष्यों से घिरेहुए गालवजी स्थित हुए ॥ ८ ॥ और उससे पूजित

गवांगतौ ॥ येऽर्चयन्ति महाशूद्र तेषां मोक्षप्रदो हरिः ॥ ४ ॥ वेदोक्तं कारयेत्कर्म पूर्तेष्टं वेदतत्परः ॥ पञ्चायतनपूजा च सत्यवादोह्यलोलता ॥ ५ ॥ विवेकादिगुणैर्युक्तः स शूद्रो याति सद्गतिम् ॥ ब्रह्मचर्यं तपो नान्यद् द्वादशाक्षर चिन्तनात् ॥ ६ ॥ मन्त्रैर्विना षोडशसोपचारैः कार्या सुपूजानरकादिहन्तुः ॥ यथा तथा वै गिरिजापतेश्च कार्या महाशूद्र महाघहन्त्री ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एवं कथयतोरेषा रजनी क्षयमाययौ ॥ सच्छूद्रो गालवश्चैव शिष्यैश्च परिवारितः ॥ ८ ॥ स तेन पूजितो विप्रो ययौ शीघ्रं निजाश्रमम् ॥ ९ ॥ य इमं शृणुयान्मर्त्यो वाचयेच्छ्रावयेच्च वा ॥ श्लोकं वा सर्वमपि च तस्य पुण्यक्षयो न हि ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्यानो नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ कथं नित्या भगवती हरपत्नी यशस्विनी ॥ योगसिद्धिं सुमहतीं प्राप मासचतुष्टये ॥ १ ॥

वे ब्राह्मण गालवजी शीघ्रही अपने आश्रमको चलेगये ॥ ९ ॥ जो मनुष्य इसको सुनता है या श्लोक व सबको पढ़ता व सुनाता है उसके पुण्य का नाश नहीं होता है ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पैजवनोपाख्यानोनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

दो॰ । कह्यो उमासन शिव यथा द्वादशअक्षर ध्यान । उन्तिसवें अध्यायमें सोई कियो बखान ॥ नारदजी बोले कि शिवजीकी स्त्री यशस्विनी व अविनाशिनी

पार्वती भगवती ने चातुर्मास्य में द्वादशाक्षर से उपजे हुए इस मंत्रराजको जपकर कैसे बड़ी भारी योगसिद्धि को पाया है इसको तुम विस्तार से यथायोग्य कहो ॥ १ । २ ॥ ब्रह्माजी बोले कि चातुर्मास्य में विष्णुजी के सोनेपर दृढ़व्रतोंवाली पार्वतीजी मन, वचन व कर्म से विष्णुजी की भक्तिमें परायण हुईं ॥ ३ ॥ और पिताके मनोहर शिखर पै सदैव टिकीहुई वे तपस्यामें स्थितहुईं और देवता, ब्राह्मण, अग्नि, गऊ, पीपल व अतिथि के पूजन में परायण हुईं ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर चातुर्मास्य प्राप्त होनेपर निर्मल विष्णुवासर में जैसा शिवजी ने कहा था वैसाही उन्होंने जप किया ॥ ५ ॥ और शंखचक्रधारी, किरीटधारी, चतुर्भुज, मेघों

मन्त्रराजमिमं जप्त्वा द्वादशाक्षरसंभवम् ॥ एतन्मे विस्तरेण त्वं कथयस्व यथातथम् ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते पार्वती नियतव्रता ॥ मनसा कर्मणा वाचा हरिभक्तिपरायणा ॥ ३ ॥ चारुशृङ्गे पितुर्नित्यं तिष्ठन्ती तपसि स्थिता ॥ देवद्विजाग्निगोश्वत्थातिथिपूजापरायणा ॥ ४ ॥ चातुर्मास्येथ संप्राप्ते विमले हरिवासरे ॥ जजाप परमं मन्त्रं यथादिष्टं पिनाकिना ॥ ५ ॥ शङ्खचक्रधरो विष्णुश्चतुर्हस्तः किरीटधृक् ॥ मेघश्यामोम्बुजाक्षश्च सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ ६ ॥ गरुडाधिष्ठितो दृष्टो वसन् व्याप्य जगत्रयम् ॥ श्रीवत्सकौस्तुभयुतः पीतकौशेयवस्त्रकः ॥ ७ ॥ सर्वाभरणशोभाभिरभिदीप्तमहावपुः ॥ बभाषे पार्वतीं विष्णुः प्रसन्नवदनः शुभाम् ॥ देवि तुष्टोऽस्मि भद्रन्ते कथयस्व त्वमीप्सितम् ॥ ८ ॥ पार्वत्युवाच ॥ तज्ज्ञानममलं देहि येन नावर्त्तनं भवेत् ॥ इत्युक्तः स महाविष्णुः प्रत्युवाच हरप्रियाम् ॥ ९ ॥ स एव देवदेवेशस्तव वक्ष्यत्यसंशयम् ॥ स एव भगवान्साक्षी देहान्तरबहिः

के समान श्याम, कमललोचन व करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावान् विष्णुजी ॥ ६ ॥ गरुड़ पै स्थित व त्रिलोक में व्याप्त होकर बसते हुए व श्रीवत्स तथा कौस्तुभ से संयुत और पीत रेशमी वस्त्रों को पहने हुए ॥ ७ ॥ व सब आभूषणों की शोभाओंसे प्रकाशित महाशरीरवाले प्रसन्नमुखवाले विष्णुजी ने उत्तम पार्वतीजी से यह कहा कि हे देवि ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हू व तुम्हारा कल्याण होवै तुम मनोरथ को कहो ॥ ८ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि उस निर्मल ज्ञान को दीजिये कि जिससे फिर आगमन न होवै ऐसा कहेहुए उन महाविष्णुजी ने पार्वतीजी से कहा ॥ ९ ॥ कि वेही देवदेवेश विष्णुजी तुमसे निरसन्देह कहैंगे और वेही साक्षी भगवान्

देह के भीतर व बाहर स्थित हैं ॥ १० ॥ और संसारको रचनेवाले व रक्षक और पवित्रों के भी पवित्रकारकहैं और आदि अन्त से रहित व धर्म तथा धर्मादिकों के वे स्वामी हैं ॥ ११ ॥ और जो तीनों अक्षरों से सेवने योग्य हैं वही अखण्ड ब्रह्महै और मूर्ति व अमूर्ति के स्वरूप से जो जो जन्मधारी है वह वही है ॥ १२ ॥ और तुमसे कहनेके लिये मेरा अधिकार नहीं है इसमें सन्देह नहीं है यह कहकर भगवान् विष्णुजी प्रसन्न होगये व चुप होरहे ॥ १३ ॥ इसी अवसरमें सब भूतगणों से संयुत शिवजी सब मनोरथोंवाले विमान के ऊपर चढ़कर पार्वतीजी के आश्रम को गये ॥ १४ ॥ व उन पार्वतीजी ने सखियों के सामने भी परमेश्वर

स्थितः ॥ १० ॥ विश्वस्रष्टा च गोप्ता च पवित्राणां च पावनः ॥ अनादिनिधनो धर्मो धर्मादीनां प्रभुर्हि सः ॥ ११ ॥ अक्षरत्रयसेव्यं यत्सकलं ब्रह्म एव सः ॥ मूर्त्तामूर्त्तस्वरूपेण यो यो जन्मधरो हि सः ॥ १२ ॥ ममाधिकारो नैवास्ति वक्तुं तव न संशयः ॥ इत्युक्त्वा भगवानीशो विरराम प्रहृष्टवान् ॥ १३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्गिरिजाश्रममभ्यगात् ॥ सर्वभूतगणैर्युक्तो विमाने सार्वकामिके ॥ १४ ॥ तया वै भगवान् देवः पूजितः परमेश्वरः ॥ सखीनामपि प्रत्यक्षमाश्चर्यं समजायत ॥ १५ ॥ स्तुत्वाऽथ तं महादेवं विष्णुर्देहे लयं ययौ ॥ अथोवाच महेशानः पार्वतीं परमेश्वरः ॥ १६ ॥ विमानवरमारोह तुष्टोऽहं तव सुव्रते ॥ गत्वैकान्तप्रदेशन्ते कथये परमं महः ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वा भगवतीं करे गृह्य मुदान्वितः ॥ विमानवरमारोप्य लीलया प्रययौ तदा ॥ १८ ॥ नानाधातुमयानद्रीन् नानारत्नविचित्रितान् ॥ नदीनिर्भरकुञ्जांश्च नदान्कोकिलकूजितान् ॥ १९ ॥ अखातान् देवखातांश्च गङ्गाद्याः सरित

विष्णुदेव जी को पूजा व वह आश्चर्य हुआ ॥ १५ ॥ कि उन महादेवजी की स्तुति कर विष्णुजी शरीर में मिलगये इसके उपरान्त शिवजी ने पार्वतीजी से कहा ॥ १६ ॥ कि हे सुव्रते ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं इस उत्तम विमान के ऊपर चढ़ो मैं एकान्तस्थान में जाकर तुमसे उत्तम तेजको कहूंगा ॥ १७ ॥ ऐसा पार्वतीजी से कहकर उस समय हर्षसंयुत शिवजी हाथ में पकड़ कर उत्तम विमान पै चढ़ाकर लीलासे चलेगये ॥ १८ ॥ और अनेक प्रकार के धातुमय तथा अनेक रत्नों से चित्रित पर्वतों को व नदी, झरना और कुञ्जों को व कोकिलों से शब्दित नदोंको दिखाते हुए ॥ १९ ॥ और विन खोदेहुए देवखातों (जलाशयों)

व गंगादिक नदियों तथा हज़ारों पत्तों के पिंजरवाले सुगन्धित कमलों को दिखाते हुए ॥ २० ॥ और बड़े भारी कर्णिकार व कोविदार, ताल, तमाल, हिंताल, प्रियंगु व कटहलों के वृक्षों को दिखाते हुए ॥ २१ ॥ व फूलेहुए बहुत से तिलक व मौलसिरी के वृक्षों को व विष्णुजी के पिंजरमय क्षेत्रों को दिखाते हुए ॥ २२ ॥ शिवजी श्रीगंगाजी के किनारे गये व फूलेहुए काशोंवाले स्वर्णमय तथा शरस्तम्ब के गणों से संयुत बड़े भारी शरवन याने नरकुल के वनको गये ॥ २३ ॥ जो कि सोने की भूमिके विभाग में स्थित तथा अग्नि के समान शोभावाले मृगों व पक्षियों से संयुत था और वहां किनारे पै प्राप्त ऊर्ध्वरेता मुनियों के ॥ २४ ॥

स्तथा ॥ सौगन्धिकांश्च कह्लारान् सहस्रदलपिञ्जरान् ॥ २० ॥ दर्शयन् कर्णिकारांश्च कोविदारान् महाद्रुमान् ॥ तालांस्तमालान् हिन्तालान् प्रियङ्गून् पनसानपि ॥ २१ ॥ तिलकान् बकुलांश्चैव बहूनपि च पुष्पितान् ॥ क्षेत्राणि पद्मनाभस्य पिञ्जराणि विदर्शयन् ॥ २२ ॥ ययौ देवनदीतीरे गतं शरवणं महत् ॥ फुल्लकाशं स्वर्णमयं शरस्तम्बगणान्वितम् ॥ २३ ॥ हेमभूमिविभागस्थं वह्निकान्तिमृगद्विजम् ॥ तत्र तीरगतानां च मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ २४ ॥ आश्रमान् स विमानाग्रे तिष्ठन् पत्न्यै ह्यदर्शयत् ॥ षट्कृत्तिकाश्च ददृशे पार्वत्या वनसन्निधौ ॥ २५ ॥ स्नाताः स्वलंकृताश्चन्द्रपत्न्यस्ता विरजाम्बराः ॥ ऊचुस्ता योजितकराः क त्वं पुत्राय गच्छसि ॥२६॥ तत्कथ्यतां महाभागे स च ते दर्शनं गतः ॥ २७ ॥ पार्वत्युवाच ॥ ममभाग्यवशात्पुत्रः कथमुत्सङ्गमाहरेत् ॥ २७ ॥ नह्यभाग्यवशात्पुंसां क्वापि सौख्यं निरन्तरम् ॥ २८ ॥ सुतनाम्नाप्यहं पृष्टा भवतीनां च दर्शनात् ॥ किमर्थमि

आश्रमों को विमान के अग्रभाग पै बैठेहुए उन शिवजी ने स्त्रीके लिये दिखाया और पार्वतीजी ने वनके समीप छह कृत्तिकाओं को देखा ॥ २५ ॥ और स्नान किये व निर्मल वस्त्रों को पहने उन बहुतही भूषित चन्द्रमा की स्त्रियों ने हाथों को जोड़कर कहा कि पुत्र के लिये तुम कहाँ जाती हो ॥ २६ ॥ हे महाभागे ! उसको कहिये क्योंकि वह पुत्र तुम्हारे दर्शन को प्राप्त हुआ है ॥ २७ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि मेरे भाग्यके वशसे कैसे पुत्र गोदीमें प्राप्त होगा क्योंकि पुरुषों के अभाग्यके वश से कहीं भी सदैव सुख नहीं होता है ॥ २८ ॥ और आप सबों के दर्शन से मैं पुत्र के नाम से पूंछीगई और तुम सब किसलिये यहा प्राप्तहुई हो

इसको शीघ्रही कहिये ॥ २९ ॥ कृत्तिकाएं बोलीं कि हे सुंदरि ! यहां धरेहुए तुम्हारे पुत्रको देनेके लिये व सूर्यनारायण के चातुर्मास्य में प्राप्त होनेपर श्रीगंगाजी में नहाने के लिये हम सब यहाँ आई हैं ॥ ३० ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे सखियो ! हास्य का समय नहीं है सत्यही कहिये क्योंकि एकान्त के समय में परस्पर हास्य होता है ॥ ३१ ॥ कृत्तिकाएं बोलीं कि हे त्रैलोक्यशोभिते, देवि ! हम सब सत्य कहती हैं कि इस स्तंब (गुच्छे) के समूह के मध्य में स्थित बालक को ग्रहण कीजिये ॥ ३२ ॥ कृत्तिकाओं का वचन सुनकर उस समय पार्वतीजी शंकित हुईं व उन्होंने अग्निके समान व प्रकाशित तेजवाले षड़ानन बालकको देखा ॥३३॥

ह संप्राप्ताः कथ्यतामविलम्बितम् ॥ २९ ॥ कृत्तिका ऊचुः ॥ वयं तव सुतं न्यस्तं प्रदातुमिह सुन्दरि ॥ चातुर्मास्ये रवौ स्नातुमागता देवनिम्नगाम् ॥ ३० ॥ पार्वत्युवाच ॥ न हास्यावसरः सख्यः सत्यमेवहि कथ्यताम् ॥ एकान्तावसरे हास्यं जायते चेतरेतरम् ॥ ३१ ॥ कृत्तिका ऊचुः ॥ सत्यं वदामहे देवि तव त्रैलोक्यशोभिते ॥ अस्य स्तम्बसमूहस्य मध्यस्थं बालकं वृणु ॥ ३२ ॥ कृत्तिकानां वचः श्रुत्वा शङ्किता पार्वती तदा ॥ ददर्श बालं दीप्ताभं षण्मुखं दीप्तवर्चसम् ॥ ३३ ॥ तडित्कोटिप्रतीकाशं रूपदिव्यश्रियायुतम् ॥ वह्निपुत्रं च गाङ्गेयं कार्त्तिकेयं महाबलम् ॥ ३४ ॥ सावत्सेति गृहीत्वा तं कुमारं पाणिना मुदा ॥ विमानमध्यमादाय कृत्वोत्सङ्गे ह्युवाच ह ॥३५॥ चिरंजीव चिरं नन्द चिरं नन्दय बान्धवान् ॥ इत्युक्त्वा गाढमालिङ्ग्य मूर्ध्नि चाघ्राय तं सुतम् ॥ ३६ ॥ संहृष्टा परमोदारं मा

व करोड़ बिजलियों के समान व रूपकी उत्तम लक्ष्मी से संयुत अग्निपुत्र व गंगासुत तथा कृत्तिकाओं के बालक महाबलवान् स्वामिकार्त्तिकेयजी को देखा ॥३४॥ व हे वत्स ! ऐसा कहकर उस बालक को हर्ष से लेकर हाथ से पकड़ कर विमान के बीच में लाकर उन पार्वतीजी ने गोद में करके यह कहा ॥ ३५ ॥ कि बहुत दिनतक जियो व बहुत समय तक प्रसन्न रहो और बहुत दिनोंतक बन्धुओं को आनन्द कीजिये यह कहकर दृढ़ता से लिपटा कर व उस पुत्र को मस्तक में सूंघकर ॥ ३६ ॥ प्रसन्नमनवाले व प्रकाशमान तथा बड़े उदार स्वामिकार्त्तिकेयजी को देखकर पार्वतीजी प्रसन्न हुईं और स्वामिकार्त्तिकेयजी बड़े प्रेमसे

शिवजीको प्रणाम कर॥ ३७॥ तदनन्तर हाथोंको जोड़कर प्रसन्न चित्तसे सावधान हुए और वह विमान नदों व समुद्रोंको नॉघकर शीघ्रही चला॥ ३८॥ और लाखं योजन चौडे जम्बूद्वीप व उससे दूने क्षारसमुद्र को नॉघकर गया॥ ३९॥ और उत्तरकुरुवों को नॉघकर सूर्यके समान तेजवाले विमानके द्वारा समुद्र से दूने कुश नाम से कहेहुए द्वीपको नॉघ गये॥ ४०॥ और दिव्यलोकों से घिरे व दिव्यपर्वतों से संयुत इक्षुसमुद्र से दूने द्वीप को व उस द्वीप से फिर दूने॥ ४१॥ उस समुद्र को नॉघकर व उस समुद्र से दूने क्रौंचसंज्ञक द्वीपको नाँघगये और उससे भी दूना मदिरा का समुद्र यक्षों से सेवित है॥ ४२॥ और उससे दूना

स्वरं हृष्टमानसम्॥ कार्त्तिकेयो महाप्रेम्णा प्रणिपत्य महेश्वरम्॥ ३७॥ ततः प्राञ्जलिरव्यग्रः प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥ तद्विमानं ययौ शीघ्रं तीर्त्वा नदनदीपतीन्॥ ३८॥ जम्बूद्वीपमतिक्रम्य लक्षयोजनमायतम्॥ ततः समुद्रं द्विगुणं लवणोदं तथैवच॥३९॥ उत्तरांश्च कुरून्नीत्वा विमानेनार्कतेजसा॥ समुद्राद्द्विगुणं द्वीपं कुशनामेति कीर्तितम्॥४०॥ दिव्यलोकसमाक्रान्तं दिव्यपर्वतसंकुलम्॥ इक्षूदाद्द्विगुणं द्वीपं तद्द्वीपाद् द्विगुणं पुनः॥ ४१॥ तमतिक्रम्य तत्सिन्धोर्द्विगुणं क्रौञ्चसंज्ञितम्॥ ततोऽपि द्विगुणं सिन्धुः सुरोदो यक्षसेवितः॥ ४२॥ ततोऽपि द्विगुणं द्वीपं शाकद्वीपेतिसंज्ञितम्॥ अर्णवद्विगुणं तस्मादाज्यरूपं सुनिर्मितम्॥ ४३॥ परमस्वादुसंपूर्णं यत्र सिद्धाः समन्ततः॥ तस्माच्च द्विगुणं द्वीपं शाल्मलीवृक्षसंज्ञितम्॥ ४४॥ समुद्रो द्विगुणस्तत्र दधिमण्डोदसंभवः॥ साध्या वसन्ति नियतं महत्तपसि संस्थिताः॥ ४५॥ ततोऽपि द्विगुणं द्वीपं प्लक्षनामेति विश्रुतम्॥ क्षीरोदो द्विगुणस्तत्र यत्र सन्ति महर्षयः॥ ४६॥ षडिमानि सुदिव्यानि भौमाः स्वर्गा उदाहृताः॥ तत्र स्वर्णमयी भूमिस्तथा रजतसं

शाकद्वीपसंज्ञक द्वीप है व उससे दूना घृतरूप बनाहुआ समुद्र है॥ ४३॥ जोकि उत्तम स्वादु से पूर्ण है जहा कि सब ओर सिद्ध हैं और उससे दूना शाल्मली (सेमर) वृक्षसज्ञक द्वीप है॥ ४४॥ और वहां दधिमंडोद से उपजा हुआ उससे दूना समुद्र है और वहा बडे तप में स्थित साध्य देवता सदैव बसते हैं॥ ४५॥ व उससे भी दूना प्लक्ष नामक प्रसिद्ध द्वीप है वहां क्षीरोद समुद्र है जहां कि महर्षिलोग बसते हैं॥ ४६॥ और ये छह द्वीप पृथ्वी के स्वर्ग कहे गये

हैं व उनमें चांदी से संयुत व सुनहली पृथ्वी है ॥ ४७ ॥ और शहद के समान स्वादुवाले वृक्षों से सब कामनाओं को देनेवाली है और जहां स्त्री व पुरुषों के घरमें कल्पवृक्ष स्थित हैं ॥ ४८ ॥ वे वस्त्रों और भूषणों के समूहों को बरसाते हैं हे मुनिसत्तम ! इन देखेहुए चिह्नोंवाले द्वीपों को ॥ ४९ ॥ शिवजी आकाशमार्ग से विमान के द्वारा नाँघगये और लक्षद्वीप के अन्त में उससे दुगुना क्षीरसागर है ॥ ५० ॥ और उसके मध्य में श्वेत नामक निश्चय कियाहुआ बड़ा भारी द्वीप है वहां सैकड़ों शिखरों व अनेकों वृक्षोंवाला रम्यकनामक पर्वत है ॥ ५१ ॥ उसके बड़े भारी दिव्य शिखर पै जब विमान स्थापित किया गया तब अमृत

युता ॥ ४७ ॥ वृक्षैर्मधूपमस्वादैः सर्वकामप्रदायिका ॥ यत्र स्त्रीपुरुषाणां च कल्पवृक्षा गृहे स्थिताः ॥ ४८ ॥ वासांसि भूषणानां च समूहान् वर्षयन्ति च ॥ एतानि दृष्टचिह्नानि द्वीपानि मुनिसत्तम ॥ ४९ ॥ महेश्वरो विमानेन न्यत्यक्रामद्विहायसा ॥ प्लक्षद्वीपस्य च प्रान्ते द्विगुणः क्षीरसागरः ॥ ५० ॥ तन्मध्ये सुमहद्द्वीपं श्वेतं नाम सुनिश्चितम् ॥ रम्यकःपर्वतस्तत्र शतशृङ्गोमितद्रुमः ॥ ५१ ॥ तस्य शृङ्गे महद्दिव्ये विमानं स्थापितं यदा ॥ तदामृतफलैर्वृक्षैः सेविते हेमबालुके ॥ ५२ ॥ क्षीरस्कन्देन विहृते शिलातलसुसंवृते ॥ विविक्ते सर्वसुभगे मणिरत्नसमन्विते ॥ ५३ ॥ उमायै कथयामास देवदेवः पिनाकधृक् ॥ कार्त्तिकेयोऽपि शुश्राव गुह्याद्गुह्यतरं महत् ॥ ५४ ॥ ध्यानयोगं मन्त्ररूपं द्वादशाक्षरसंज्ञितम् ॥ प्रणवेन युतं साग्र्यं सरहस्यं श्रुतेः परम् ॥ ५५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अक्षरत्रयसंयुक्तो मन्त्रोयं सकृदक्षरः ॥ माघमासहितश्चायममायो विश्वपावनः ॥ ५६ ॥ विष्णुरूपो विष्णुमध्यो मन्त्रत्रयसमन्वितः ॥

के समान फलोंवाले वृक्षों से सेवित व सुवर्णरूपी बालूवाले ॥ ५२ ॥ तथा दुग्ध के प्रभावसे विहारवाले व शिलातलों से आच्छादित और मणियों व रत्नों से संयुत व सब से सुन्दर एकान्त में ॥ ५३ ॥ पिनाकधारी देवदेव शिवजीने पार्वतीजी से द्वादशाक्षर मन्त्र को कहा और स्वामिकार्त्तिकेयजी ने भी गुप्त से भी बहुत गुप्त उस बड़े भारी ध्यान योग व ॐकारसे संयुत तथा श्रेष्ठता युक्त व रहस्यसमेत और वेद से परे द्वादशाक्षरसंज्ञक मंत्ररूप को सुना ॥ ५४ । ५५ ॥ महादेवजी बोले कि तीन अक्षरों से संयुत यह एकाक्षरमंत्र है और मायारहित व संसार को पवित्र करनेवाला यह माघ महीनेमें हितकारी है ॥ ५६ ॥

और विष्णु मध्यवाला यह विष्णुरूपी मन्त्र तीन मन्त्रों से संयुत है और चौथी कला से समस्त ब्रह्माण्डगणों से सेवित है ॥ ५७ ॥ और अकाममुनियोंसे सेवन करने योग्य तथा महाविद्यादिकों से सेवित है और नाभि (तोंदी) से शिर पर्यन्त व्याप्त है व सबको सुखदायक है ॥ ५८ ॥ और ॐकार ऐसी प्रिय उक्तिवाला मन्त्र तुम्हारे महादुःखोंको नाशनेवाला है पहले ज्ञानरूपी व सुखके आश्रय उस ॐकारको ध्यान कर ॥ ५९ ॥ व सर्वव्यापी ब्रह्मको जानकर शरीर के शोधन में तत्पर व ज्ञाननेत्रोंवाला मनुष्य कमलासनमें परायण होकर भलीभाति पूजकर ॥ ६० ॥ नेत्रोंको मूंदकर व हाथोंको जोड़कर चित्तमें ध्यानरूपसे मंगलरूप शिवजी

तुरीयकलयाशेषब्रह्माण्डगणसेवितः ॥ ५७ ॥ निष्कामैर्मुनिभिः सेव्यो महाविद्यादिसेवितः ॥ नाभितः शिरसि व्याप्त अखण्डसुखदायकः ॥ ५८ ॥ ॐकारेति प्रियोक्तिस्ते महादुःखविनाशनः ॥ तं पूर्वं प्रणवं ध्यात्वा ज्ञानरूपं सुखाश्रयम् ॥ ५९ ॥ ज्ञात्वा सर्वगतं ब्रह्म देहशोधनतत्परः ॥ पद्मासनपरो भूत्वा संपूज्य ज्ञानलोचनः ॥ ६० ॥ नेत्रे मुकुलिते कृत्वा करौ कृत्वा तु संहतौ ॥ चेतसि ध्यानरूपेण चिन्तयेच्छिवमङ्गलम् ॥ ६१ ॥ तडित्कोटिप्रतीकाशं सूर्यकोटिसमच्छविम् ॥ चन्द्रलक्षसमाच्छन्नं पुरुषं द्योतिताखिलम् ॥ ६२ ॥ मूर्त्तामूर्त्तविराजन्तं सदसद्रूपमव्ययम् ॥ चिन्तयित्वा विराड्रूपं न भूयःस्तनपो भवेत् ॥ चातुर्मास्ये सकृदपि ध्यानात्कल्मषसंक्षयः ॥ ६३ ॥ एवं च मद्रूपमिदं मुरारेरमोघवीर्यं गुणतोप्यपारम् ॥ विलोकयेद्योऽघविनाशनाय क्षणं प्रभुर्जन्मशतोद्भवाय ॥ ६४ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्येध्यानयोगोनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ * ॥

को ध्यानकरै ॥ ६१ ॥ और करोड़ों बिजलियोंके समान व करोड़ सूर्योंके समान छविवान् तथा लाखों चन्द्रमाको आच्छादित करनेवाले व सबको प्रकाश करनेवाले पुरुषरूप ॥ ६२ ॥ व मूर्ति तथा अमूर्ति से विराजित व कार्य कारणरूप अव्यय, विराट्रूप परमेश्वर को ध्यान कर फिर स्तन पीनेवाला नहीं होता है और चातुर्मास्य में एक वार भी ध्यान से पातकों का नाश होता है ॥ ६३ ॥ इस प्रकार विष्णुजी के इस सफल प्रभाववाले व गुण से अपार मेरेरूप को जो क्षणभर पातकों के नाश के लिये देखता है वह सैकड़ों जन्मोंकी उत्पत्ति के लिये समर्थ होता है ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेचातुर्मास्यमाहात्म्येएकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

दो०। ध्यान योगको उमासन कह्यो यथा शिवनाथ। सोइ तीस अध्यायमें वर्णित उत्तम गाथ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे देवेश ! मैं ध्यानयोग को पाकर जिस प्रकार ज्ञान योग को पाऊं वैसाही कीजिये कि जिस प्रकार मैं देवी हो जाऊं॥ १॥ शिवजी बोले कि हे सुकुमाराङ्गि! द्वादशाक्षरसंज्ञक जो यह मन्त्रराज कहा गया वेदमें सारांश व सनातन वह जपना चाहिये ॥२॥ और ॐकार सब वेदोंका आदि व सब ब्रह्माण्डों का याजक है तथा सब कार्यों में प्रथम व सब सिद्धियों का दायक है॥ ३॥ और सफ़ेदरंग व मधुच्छंदा ऋषि हैं तथा ब्रह्मादेवता व गायत्री परमात्मा हैं और सब कर्मों में विनियोग है॥ ४॥ यह ब्रह्ममयबीज है व इसमें

पार्वत्युवाच ॥ ध्यानयोगमहं प्राप्य ज्ञानयोगमवाप्नुयाम् ॥ तथा कुरुष्व देवेश यथाहममरीभवे ॥ १ ॥ ईश्वर उवाच॥ प्रत्युक्तोऽयं मन्त्रराजो द्वादशाक्षरसंज्ञितः ॥ जप्तव्यः सुकुमाराङ्गि वेदे सारः सनातनः ॥ २ ॥ प्रणवः सर्ववेदाद्यः सर्वब्रह्माण्डयाजकः ॥ प्रथमः सर्वकार्येषु सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ ३ ॥ सितवर्णो मधुच्छन्दा ऋषिर्ब्रह्मा तु देवता ॥ परमात्मा तु गायत्री नियोगः सर्वकर्मसु ॥ ४॥ एतद्ब्रह्ममयं बीजं विश्वमत्रसमन्वितम् ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वाख्यं सदसद्रूपमव्ययम् ॥ ५ ॥ नकारः पीतवर्णस्तु जलबीजः सनातनः ॥ बीजं पृथ्वी मनश्छन्दो विषहा विनियोगतः ॥ ६ ॥ मोकारः पृथिवीबीजो विश्वामित्रसमन्वितः ॥ रक्तवर्णो महातेजा धनदो विनियोजितः ॥ ७ ॥ भकारः पञ्चवर्णस्तु जलबीजः सनातनः ॥ मरीचिना समायुक्तः पूजितः सर्वभोगदः ॥ ८ ॥ गकारो हेमरक्ताभो भरद्वाजसमन्वितः ॥ वायुबीजो विनियोगं कुर्वतां सर्वभोगदः ॥ ९ ॥ वकारः कुन्दधवलो व्योमबीजो महाबलः ॥

संसार संयुक्त है और वेद, वेदांगतत्त्व नामक व कार्य, कारण रूप तथा अविकारी है ॥ ५ ॥ और नकार पीलेरंग का है व सनातन जलबीज है और पृथ्वी बीज व मन छंद है और विषहा विनियोग है॥ ६॥ और मोकार का पृथ्वीबीज है व विश्वामित्र ऋषि से संयुत हैं और लालरंग व बड़े तेजस्वी कुबेर देवता नियुक्त हैं॥ ७॥ और भकार पांचरंग का है व सनातन जलबीज है और मरीचि ऋषिसे संयुक्त पूजा हुआ वह सब सुखों को देनेवाला है॥ ८॥ और गकार भरद्वाज ऋषि से संयुत सुवर्ण के समान अरुणरंग है व पवन बीज है और विनियोग करनेवालों को सब सुखों का दायक है॥ ९॥ और कुन्द के समान सफेद

बकार बड़ा बलवान् है और उसका आकाश बीज है और अत्रि ऋषि को आगे कर युक्त किया हुआ वह मोक्षदायक है ॥ १० ॥ और तेकार बिजली का विकार है व बड़ा भारी चन्द्रमा बीज कहा गया है व अंगिराजी श्रेष्ठ ऋषि हैं और कामनाओंवाला कर्म वर्जित है ॥ ११ ॥ और वाकार धूम्ररंग है और मनके समान वेगवान् सूर्यबीज है तथा पुलस्ति ऋषि से संयुत नियुक्त किया हुआ वह सब सुखों का देनेवाला है ॥ १२ ॥ और सुकार अक्षर सदैव दुपहरी के फूल के समान प्रकाशवान् है और दुःख से सहने योग्य मनबीज है व पुलह ऋषि से आश्रित वह अर्थ को देनेवाला है ॥ १३ ॥ और देकार अक्षर का रंग हंस रूप के समान

ऋषिमत्त्रिपुरस्कृत्य योजितो मोक्षदायकः ॥ १० ॥ तेकारो विद्युद्विकारः सोमबीजं महत्स्मृतम् ॥ अङ्गिरा मुनिशार्दूलो वर्जितं कर्मकामिकम् ॥ ११ ॥ वाकारो धूम्रवर्णश्च सूर्यबीजं मनोजवम् ॥ पुलस्त्यर्षिसमायुक्तं नियुक्तं सर्वसौख्यदम् ॥ १२ ॥ सुकारश्चाक्षरो नित्यं जपाकुसुमभास्वरः ॥ मनोबीजं दुर्विषह्यं पुलहाश्रितमर्थदम् ॥ १३ ॥ देकाराक्षरकं वर्णं हंसरूपं च कर्बुरम् ॥ सिद्धिबीजं महासत्त्वं क्रतौ कृतनियोजितम् ॥ १४ ॥ वाकारो निर्मलो नित्यं यजमानस्तु बीजभृत् ॥ प्रचेतात्रृषिमाश्रेयं मोक्षे मोक्षप्रदायकम् ॥ १५ ॥ यकारस्य महाबीजं पिङ्गवर्णश्च खेचरी ॥ भूचरी च महासिद्धिः सर्वदा भवचिन्तनम् ॥ १६ ॥ भृगुयन्त्रे समाभ्यर्च्य नियोगे सर्वकर्मकृत् ॥ गायत्रीछन्द एतेषां देहन्यासक्रमो भवेत् ॥ १७ ॥ ॐकारं सर्वदा न्यस्यन्नकारं पादयोर्द्वयोः ॥ मोकारं गुह्यदेशे तु भकारं नाभि

व कबरा है और बड़ा प्रभाववान् सिद्धि बीज है व यज्ञ में नियोग किया गया है ॥ १४ ॥ और वाकार नित्य निर्मल है व बीज को धारनेवाला यजमान है और प्रचेता ऋषि आश्रय करने योग्य हैं तथा मोक्ष में मोक्ष का दायक है ॥ १५ ॥ और यकार का महाबीज है व पिंगल वर्ण है और खेचरी व भूचरी महासिद्धि देवता है तथा सदैव संसार का ध्यान होता है ॥ १६ ॥ और भृगुयन्त्र में पूजकर नियोग में सब कर्मों को करनेवाला है और इन अक्षरों की गायत्री छंद है व शरीर में न्यास का क्रम होता है ॥ १७ ॥ कि सदैव ॐकार को न्यास करता हुआ मनुष्य नकार को दोनों चरणों में न्यास करै और मोकार को गुह्य इन्द्रिय में व भकार

को नाभि के कमल में न्यास करै ॥ १८ ॥ और गकार को हृदय में न्यास कर वकार कण्ठ के मध्य में प्राप्त होवै और तेकार को दाहिने हाथ में न्यास करै और वाकार बाँये हाथ में प्राप्त होता है ॥ १९ ॥ और सुकार को मुख की जिह्वा में न्यास करै व देकार को दोनों कानों में तथा वाकार को दोनों नेत्रों में और यकार को मस्तकमें न्यास करै ॥ २० ॥ और लिङ्गमुद्रा, योनिमुद्रा व धेनुमुद्रा ये सब तीनों अक्षरों के विना मन्त्र के रूप में किये गये हैं ॥२१॥ हे देवि ! प्रतिदिन जो इसको जपता है वह पापों से लिप्त नहीं होता है यह द्वादश लिङ्गरूपी आरोंवाला द्वादशाक्षर मन्त्र कूर्म में स्थित है ॥ २२ ॥ और पूजी हुई बारह ही शाल-

पङ्कजे ॥ १८ ॥ गकारं हृदये न्यस्य वकारः कण्ठमध्यगः ॥ तेकारं दक्षिणे हस्ते वाकारो वामहस्तगः ॥ १९ ॥ सुकारं मुखजिह्वायां देकारः कर्णयोर्द्वयोः ॥ वाकारश्चक्षुषोर्द्वन्द्वे यकारं मस्तकं न्यसेत् ॥ २० ॥ लिङ्गमुद्रा योनिमुद्रा धेनुमुद्रा तथा त्रयम् ॥ सकलं कृतमेताद्धि मन्त्ररूपे विनाक्षरम् ॥ २१ ॥ यो जपेत्प्रत्यहं देवि न स पापैः प्रलिप्यते ॥ एतद्द्वादशलिङ्गारं कर्मस्थं द्वादशाक्षरम् ॥ २२ ॥ शालग्रामशिलाश्चैव द्वादशैव हि पूजिताः ॥ ताभिः सहाक्षरैरेभिः प्रत्यक्षैः सह संपदि ॥ २३ ॥ यथा वर्णमनुध्यानैर्मुनिबीजसमन्वितैः ॥ विनियोगेन सहितैश्छन्दोभिः समलंकृतैः ॥ २४ ॥ ध्यानैर्जपैः पूजितैश्च भक्तानां मुनिसत्तम ॥ मोक्षो भवति बन्धेभ्यः कर्मजेभ्यो न संशयः ॥ २५ ॥ अयं हि ध्यानकर्माख्यो योगो दुष्प्राप्य एव हि ॥ ध्यानयोगं पुनर्वच्मि शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ २६ ॥ ध्यानयोगे न पापानां क्षयो भवति नान्यथा ॥ जपध्यानमयो योगः कर्मयोगो न संशयः ॥ २७ ॥ शब्दब्रह्मसमुद्भूतो वेदेन

ग्राम शिला हैं व उन समेत इन प्रत्यक्ष अक्षरों से संपत्ति में पूजै ॥ २३ ॥ और विनियोग समेत व भूषित छंदों से तथा मुनि व बीज से संयुत अक्षरों के अनुकूल ध्यानों से ॥ २४ ॥ हे मुनिसत्तम ! और जप, पूजन व ध्यानों से भक्तों का कर्म से उपजे हुए बन्धनों से मोक्ष होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ और ध्यानकर्मनामक यह योग दुर्लभ है फिर ध्यानयोग को मैं कहता हूं उसको सावधान मन होकर सुनिये ॥ २६ ॥ कि ध्यानयोग से पापों का नाश होता है अन्यथा नहीं होता है और जप व ध्यानमय योग कर्मयोग है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २७ ॥ और शब्द ब्रह्म से उपजा हुआ द्वादशाक्षर वेद के समान है व

ध्यान से मनुष्य सबको पाताहै और ध्यान से शुद्धताको प्राप्त होताहै ॥ २८ ॥ व ध्यानसे परं ब्रह्म को पाता है और मूर्ति में ध्यानसे उपजा हुआ योग होताहै तथा अवलम्ब समेत ध्यान योग है कि जिससे नारायण का दर्शन होताहै ॥ २६ ॥ और दूसरा समस्त अवलम्बवाला योग ज्ञान योग से कहा गया है जोकि अरूप व अमेय सदैव सब शरीरों वाला तेजहै ॥ ३० ॥ और करोड़ों बिजलियों के समान सदैव उदय व पूर्ण, निष्कल और सकल है जोकि निरंजनमय है ॥ ३१ ॥ और वह स्वरूप सुखरूप तथा तुरीय अवस्था से परे व उपमारहित तथा अमित इन्द्रियों वाला, मूर्तिमान् और मायामें स्थित व सनातन है ॥ ३२ ॥ और दृश्य, अदृश्य,

द्वादशाक्षरः ॥ ध्यानेन सर्वमाप्नोति ध्यानेनाप्नोति शुद्धताम् ॥ २८ ॥ ध्यानेन परमं ब्रह्ममूर्तौ योगस्तु ध्यानजः ॥ सावलम्बो ध्यानयोगो यन्नारायणदर्शनम् ॥ २६ ॥ द्वितीयो निखिलालम्बो ज्ञानयोगेन कीर्त्तितः ॥ अरूपमप्रमेयं यत्सर्वकायं महः सदा ॥ ३० ॥ तडित्कोटिसमप्रख्यं सदोदितमखण्डितम् ॥ निष्कलं सकलं वापि निरञ्जन मयं वियत् ॥ ३१ ॥ तत्स्वरूपं भोगरूपं तुर्यातीतमनूपमम् ॥ विभ्रान्तकरणं मूर्त्तं प्रकृतिस्थं च शाश्वतम् ॥ ३२ ॥ दृश्यादृश्यमजं चैव वैराजं सन्ततोज्ज्वलम् ॥ बहुलं सर्वजं धर्म्यं निर्विकल्पमनीश्वरम् ॥ ३३ ॥ अगोत्रं निर्मलं वापि ब्रह्माण्डशतकारणम् ॥ निरीहं निर्ममं बुद्धिशून्यरूपं च निर्मलम् ॥ ३४ ॥ तदीशरूपं निर्देहं निर्द्वन्द्वं साक्षि मात्रकम् ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं ध्यातृध्येयविवर्जितम् ॥ नोपमेयमगाधं त्वं स्वीकुरुष्व स्वतेजसा ॥ ३५ ॥ पार्वत्यु

अज, विराज व सदैव उज्ज्वल, बहुल व सबों से उत्पन्न तथा धर्मवान् व भेदरहित और असमर्थहै ॥ ३३ ॥ और गोत्ररहित व निर्मल तथा सैकड़ों ब्रह्माण्डोंका कारण है और चेष्टारहित, ममताहीन व बुद्धिसे शून्यरूप और निर्मल है ॥ ३४ ॥ व ईश्वर रूप वह शरीररहित व द्वन्द्वरहित तथा साक्षीमात्र और शुद्ध स्फटिक के समान व ध्याता और ध्यान के योग्य से रहित व अपने तेज से उपमा रहित और अगाध विष्णुजीको तुम स्वीकारकरो ॥ ३५ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे प्रभो! वे ज्ञान योग स्वरूपवाले अमूर्तिमान् नारायणजी किस प्रकार भलीभांति मिलते हैं और उनका कैसे स्थान मिलता है उसको कहिये महादेवजी बोले कि

अंगों में शिर प्रधान है और शिरसे बड़ी भारी वस्तु धारण की जाती है ॥ ३६ । ३७ ॥ और मस्तक से देवता पूजित होता है व सब संसार पूजित होता है और मस्तक से योग धारण कियाजाता है व मस्तक से बल धारण किया जाता है ॥ ३८ ॥ व शिरसे तेज धारण कियाजाता है और जीव शिर में स्थित है और अमूर्त व मूर्तिमान् विष्णुजी का सूर्यनारायण शिर हैं ॥ ३९ ॥ और पृथ्वी लोक हृदय हैं व रसातल चरण हैं और ब्रह्माण्ड के रूपमें मूर्ति व अमूर्ति के स्वरूप से ये ॥ ४० ॥ ब्रह्मरूपी विष्णुही आपही ज्ञानयोग के आश्रय हैं और सब प्राणियों को रचते व सबोंको पालते हैं ॥ ४१ ॥ और सर्वदेवमय ये विष्णुजी सबको नाश

वाच ॥ तत्कथं प्राप्यते सम्यग्ज्ञानयोगस्वरूपकम् ॥३६॥ नारायणममूर्त्तं च स्थानं तस्य वद प्रभो ॥ ईश्वर उवाच ॥ शिरःप्रधानं गात्रेषु शिरसा धार्यते महान् ॥ ३७ ॥ शिरसा पूजितो देवः पूजितं सकलं जगत् ॥ शिरसा धार्यते योगः शिरसा ध्रियते बलम् ॥ ३८ ॥ शिरसा ध्रियते तेजो जीवितं शिरसि स्थितम् ॥ सूर्यः शिरो ह्यमूर्त्तस्य मूर्त्तस्यापि तथैव च ॥ ३९ ॥ उरस्तु पृथिवीलोकः पादश्चैव रसातलम् ॥ अयं ब्रह्माण्डरूपे च मूर्त्तामूर्त्तस्वरूपतः ॥ ४० ॥ विष्णुरेव ब्रह्मरूपो ज्ञानयोगाश्रयः स्वयम् ॥ सृजते सर्वभूतानि पालयत्यपि सर्वशः ॥ ४१ ॥ विनाशयति सर्वं हि सर्वदेवमयो ह्ययम् ॥ सर्वमासेष्वाधिपत्यं येन विष्णोः सनातनम् ॥ ४२ ॥ तस्मात्सर्वेषु मासेषु सर्वेषु दिवसेष्वपि ॥ सर्वेषु यामकालेषु संस्मरन् मुच्यते हरिम् ॥ ४३ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण ध्यानमात्रात्प्रमुच्यते ॥ अमूर्त्तसेवनं गङ्गातीर्थध्यानाद्वरं परम् ॥ ४४ ॥ सर्वदानोत्तरं चैव चातुर्मास्ये न संशयः ॥ सर्वमेव कृतं पापं चातुर्मास्ये शुभा

करते हैं और जिससे सदैव विष्णुजी की सब महीनों में स्वामिता है ॥ ४२ ॥ उस कारण सब महीनों व सब दिनों में भी तथा सब प्रहरों के समयों में विष्णुजी को स्मरण करता हुआ मुक्त होताहै ॥ ४३ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर ध्यान करनेसे मनुष्य मुक्त होजाता है और अमूर्त (विष्णुजी) का सेवन गंगा तीर्थ के ध्यान से उत्तम व श्रेष्ठ है ॥ ४४ ॥ और चातुर्मास्य में वह सब दानोंसे भी श्रेष्ठ है इसमें सन्देह नहीं है और चातुर्मास्य में सब भी कियाहुआ जो शुभाशुभ कर्म

है ॥ ४५ ॥ हे देवि ! वह अक्षय होताहै इसमें विचार न करना चाहिये व उस कारण सब यत्न से ज्ञानयोग बहुत उत्तम है ॥ ४६ ॥ और विष्णुरूप से सेवन किया हुआ वह ब्रह्म व मोक्ष को देनेवाला है हे शुभे ! सावधान होती हुई तुम मूर्तिमान् व अमूर्तिमान् में स्थिति को सुनो ॥ ४७ ॥ और यह कथा जिस किसीसे व अवश पुत्रसे भी न कहना चाहिये और अदान्त, दुष्ट, चलचित्त व पाखण्डी से न कहना चाहिये ॥ ४८ ॥ और अपने वचन से भ्रष्ट तथा निन्दा के योग्य पुरुष से यह योग से उपजी हुई कथा न कहना चाहिये और नित्य भक्त व जितेन्द्रिय तथा शमादिक गुणोंवाले पुरुष से कहना चाहिये ॥ ४९ ॥ और विष्णुजी के भक्त ब्राह्मण

शुभम् ॥ ४५ ॥ अक्षय्यं तद्भवेद्देवि नात्र कार्या विचारणा ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ज्ञानयोगो बहूत्तमः ॥ ४६ ॥ सेवितो विष्णुरूपेण ब्रह्ममोक्षप्रदायकः ॥ शृणुष्वावहिता भूत्वा मूर्त्तामूर्त्ते स्थितिं शुभे ॥ ४७ ॥ न कथेयं यस्य कस्य सुतस्याप्यवशस्य च ॥ अदान्तायाथ दुष्टाय चलचित्ताय दाम्भिके ॥ ४८ ॥ स्ववाक्च्युताय निन्द्याय न वाच्या योगजा कथा ॥ नित्यभक्ताय दान्ताय शमादिगुणिने तथा ॥ ४९ ॥ विष्णुभक्ताय दातव्या शूद्रायापि द्विजन्मने ॥ अभक्तायाप्यशुचये ब्रह्मस्थानं न कथ्यते ॥ ५० ॥ मद्भक्त्या योगसिद्धिं त्वं गृहाणाशु तपोधने ॥ अभूतं ज्ञानगम्यं तं विद्धि नारायणं परम् ॥ ५१ ॥ नादरूपेण शिरसि तिष्ठन्तं सर्वदेहिनाम् ॥ स एव जीव शिरसि वर्त्तते सूर्यबिम्बवत् ॥ ५२ ॥ सदोदितः सूक्ष्मरूपो मूर्त्तो मूर्त्या प्रणीयते ॥ अभ्यासेन सदा देवि प्राप्यते परमात्मकः ॥ ५३ ॥ शरीरे सकला देवा योगिनो निवसन्ति हि ॥ कर्णे तु दक्षिणे नद्यो निवसन्ति तथापराः ॥ ५४ ॥

व शूद्रके लिये भी कहना चाहिये क्योंकि अभक्त व अशुद्ध पुरुष से ब्रह्मस्थान नहीं कहा जाता है ॥ ५० ॥ हे तपोधने ! मेरी भक्ति से तुम योगसिद्धि को शीघ्रही ग्रहण कीजिये व योग से प्राप्त होने योग्य उन अभूत नारायण को श्रेष्ठ जानिये ॥ ५१ ॥ व नादरूप से सब प्राणियों के शिरमें स्थित जानिये और वही प्राणियों के मस्तक में सूर्यनारायण के बिम्ब के समान वर्तमान है ॥ ५२ ॥ व हे देवि ! सदैव वह सूक्ष्मरूप कहागया है और मूर्तिमान् वह मूर्ति से प्राप्त कियाजाता है व सदैव वह परमात्मा अभ्यास से प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ और उनके शरीर में सब देवता व योगी लोग बसते हैं तथा दाहिने कान में अन्य नदियाँ वसती हैं ॥ ५४ ॥

और हृदयमें ईश्वर शिवजी व नाभिमें सनातन ब्रह्माजी हैं और पृथ्वी चरणतलके अग्रभाग में व जल सब कहीं प्राप्त है ॥ ५५ ॥ और अग्नि, पवन व आकाश मस्तकके मध्य में वर्तमान है व दाहिने हाथमें पाच तीर्थ हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५६ ॥ और सूर्य जिनका दाहिना नेत्र है व चन्द्रमा बायाँ नेत्र कहा गया है और मंगल व बुध दोनों नासिका कही गई हैं ॥ ५७ ॥ और बृहस्पति दाहिने कान में व बायें कान में शुक्रजी हैं और मुखमें शनैश्चर व गुदा इन्द्रिय में राहु कहा गया है ॥ ५८ ॥ और केतु इन्द्रियों में प्राप्त कहा गया है व सब ग्रह शरीर में प्राप्त हैं और योगी लोग शरीर को प्राप्त होकर चौदह लोकों

हृदये चेश्वरः शम्भुर्नाभौ ब्रह्मा सनातनः ॥ पृथ्वीपादतलाग्रे तु जलं सर्वगतं तथा ॥ ५५ ॥ तेजो वायुस्तथा काशं विद्यते भालमध्यतः ॥ हस्ते च पञ्च तीर्थानि दक्षिणेनात्र संशयः ॥ ५६ ॥ सूर्यो यद्दक्षिणं नेत्रं चन्द्रो वाममुदाहृतम् ॥ भौमश्चैव बुधश्चैव नासिके द्वे उदाहृते ॥ ५७॥ गुरुश्च दक्षिणे कर्णे वामकर्णे तथा भृगुः ॥ मुखे शनैश्चरः प्रोक्तो गुदे राहुः प्रकीर्तितः ॥ ५८ ॥ केतुरिन्द्रियगः प्रोक्तो ग्रहाः सर्वे शरीरगाः ॥ योगिनो देहमासाद्य भुवनानि चतुर्दश ॥ ५९ ॥ प्रवर्त्तन्ते सदा देवि तस्माद्योगं सदाभ्यसेत् ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण योगी पापं निकृन्तति ॥ ६० ॥ मुहूर्त्तमपि यो योगी मस्तके धारयेन्मनः ॥ कर्णौ पिधाय पापेभ्यो मुच्यतेऽसौ न संशयः ॥ ६१ ॥ अन्तरं नैव पश्यामि विष्णोर्योगपरस्य वा ॥ एकोपि योगी यद्गेहे ग्रासमात्रं भुनक्ति च ॥ ६२ ॥ कुलानि त्रीणि सोऽवश्यं तारयेदात्मना सह ॥ यदि विप्रो भवेद्योगी सोऽवश्यं दर्शनादपि ॥ ६३ ॥ सर्वेषां प्राणिनां देवि पापराशिनिषूदकः ॥ सत्क्रियो

में ॥ ५९ ॥ सदैव वर्तमान होते हैं इस कारण हे देवि ! सदैव योग को अभ्यास करै और चातुर्मास्य में विशेषकर योगी पापको नाश करता है ॥ ६० ॥ व कानों को मूंदकर मुहूर्त भर भी जो योगी मस्तक में मनको धारण करता है यह मुक्त होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६१ ॥ और विष्णु व योग में तत्पर मनुष्य का भेद नहीं देखता हूं और एक भी योगी जिसके घरमें कवल भर खाता है ॥ ६२ ॥ वह अपना समेत तीन पुश्तियों तक अवश्य कर तारता है और यदि ब्राह्मण योगी होता है तो वह दर्शन से भी ॥ ६३ ॥ हे देवि ! सब प्राणियों के पापों की राशि का नाशक है व ब्रह्म में परायण उत्तम कर्मोंवाला उत्तम शूद्र यदि योगका

भागी होवै ॥ ६४ ॥ या जो उत्तम गुरुवों का भक्त होवै वह भी अमूर्त के फल को पाता है और नियत आहारवाला जो योगी परब्रह्म की समाधि को करता है ॥ ६५ ॥ वह चातुर्मास्य में विशेषकर विष्णुजी के लय का भागी होता है जैसे सिद्ध पुरुष के हाथ के स्पर्श से लोह सुवर्ण होजाता है ॥ ६६ ॥ वैसेही विष्णु जी की प्रीति से मनुष्य अमूर्त (परब्रह्म) में लीन होजाता है जैसे गंगाजी से गिराहुआ मार्ग का जल देवताओं से भी ॥ ६७ ॥ सेवित व सब फलोंको देने वाला है वैसेही योगी मुक्ति को देता है जैसे गोमय से सदैव अग्नि जलती है ॥ ६८ ॥ और वह सदैव यज्ञकर्ता मनुष्यों से देवताओं का मुख कहा जाता है

ब्रह्मनिरतः सच्छद्रो योगभाग्यदि ॥ ६४ ॥ भवेत्सद्गुरुभक्तो वा सोप्यमूर्त्तफलं लभेत् ॥ यो योगी नियताहारः परब्रह्मसमाधिमान् ॥ ६५ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण हरौ स लयभाग्भवेत् ॥ यथा सिद्धकरस्पर्शाल्लोहं भवति काञ्चनम् ॥ ६६ ॥ तथा मूर्त्ते हरिप्रीत्या मनुष्यो लयमाव्रजेत् ॥ यथा मार्गजलं गङ्गापतितं त्रिदशैरपि ॥ ६७ ॥ सेवितं सर्वफलदं तथा योगी विमुक्तिदः ॥ यथा गोमयमात्रेण वह्निर्दीप्यति सर्वदा ॥ ६८ ॥ देवतानां मुखं तद्धि कीर्त्यते याज्ञिकैः सदा ॥ एवं योगी सदाभ्यासाज्जायते मोक्षभाजनम् ॥ ६९ ॥ योगोऽयं सेव्यते देवि ज्ञानसिद्धिप्रदः सदा ॥ सनकादिभिराचार्यैर्मुमुक्षुभिरधीश्वरैः ॥ ७० ॥ प्रथमं ज्ञानसम्पत्तिर्जायते योगिनां सदा ॥ तेषां गृहीतमात्रस्तु योगी भवति पार्वति ॥ ७१ ॥ ततस्तु सिद्धयस्तस्य त्वणिमाद्याः पुरोगताः ॥ भवन्ति तत्रापि मनो न दद्याद्योगिनां वरः ॥ ७२ ॥ सर्वदानक्रतुभवं पुण्यं भवति योगतः ॥ योगात्सकलकामाप्तिर्न योगाद्भुवि प्राप्यते ॥ ७३ ॥ यो

ऐसेही योगी सदैव अभ्यास से मोक्ष का पात्र होता है ॥ ६९ ॥ हे देवि ! सदैव ज्ञान की सिद्धि को देनेवाला यह योग मोक्ष की इच्छावाले सनकादिक स्वामी आचार्यों से सेवन किया जाता है ॥ ७० ॥ हे पार्वति ! पहले सदैव योगियों को ज्ञान की संपत्ति होती है और उनसे ग्रहण किया हुआ योगी होता है ॥ ७१ ॥ तदनन्तर अणिमादिक सिद्धियाँ उसके आगे प्राप्त होती हैं और योगियों में श्रेष्ठ पुरुष उनमें भी मनको नहीं देताहै ॥ ७२ ॥ और योग से सब दान व यज्ञों से उपजा हुआ पुण्य होता है और योग से सब कामनाओं की प्राप्ति होती है व योग से पृथ्वी में नहीं प्राप्त होता है ॥ ७३ ॥ और योग से हृदय की ग्रंथि नहीं

होती है व योग से ममतारूप शत्रु नहीं होता है व योग से सिद्ध मनुष्य के मनको कोई भी नहीं हरसक्ता है ॥ ७४ ॥ और वही निर्मल योगी है कि जिसका स्थिर हुई व्यथावाला चित्त सदैव दशम द्वार संपुटवाले शिर में स्थित होता है ॥ ७५ ॥ व कानों को मूंदकर नादरूप को ढूंढ़ते हुए मनुष्य का वही ॐकार का अग्रभाग और वही सनातन ब्रह्म है ॥ ७६ ॥ और वही अनंतरूप नामक है व वही उत्तम अमृत है और नासिका के पवन में यह शब्द होता है व जठराग्नि का यह बड़ा भारी स्थान है ॥ ७७ ॥ और पञ्चभूत निवास जो यह ज्ञानरूप स्थान है उस पदको प्राप्त होकर जन्मरूपी संसार के बन्धन से मुक्ति होती है ॥ ७८ ॥

गान्न हृदयग्रन्थिर्न योगान्ममतारिपुः ॥ न योगसिद्धस्य मनो हर्तुं केनापि शक्यते ॥ ७४ ॥ स एव विमलो योगी य चित्तं शिरसि स्थितम् ॥ स्थिरीभूतव्यथं नित्यं दशमद्वारसंपुटे ॥ ७५ ॥ कर्णौ पिधाय मर्त्यस्य नादरूपं विचिन्वतः ॥ तदेव प्रणवस्याग्रं तदेव ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ७६ ॥ तदेवानन्तरूपाख्यं तदेवामृतमुत्तमम् ॥ घ्राणवायौ प्रघोषोऽयं जठराग्नेर्महत्पदम् ॥ ७७ ॥ पञ्चभूतं निवासं यज्ज्ञानरूपमिदं पदम् ॥ पदं प्राप्य विमुक्तिः स्याज्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ ७८ ॥ पदाप्तिर्दुर्लभा लोके योगसिद्धिप्रदायिका ॥ ७९ ॥ एवं ब्रह्ममयं विभाति सकलं विश्वं चरं स्थावरं विज्ञानाख्यमिदं पदं स भगवान् विष्णुः स्वयं व्यापकः ॥ ज्ञात्वा तं शिरसि स्थितं बहुवरं योगेश्वराणां परं प्राणी मुञ्चति सर्पवज्जगतिजां निर्मोकमायाकृतिम् ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे चातुर्मास्यमाहात्म्ये ज्ञानयोगकथनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

संसारमें योगकी सिद्धिको देनेवाली पद की प्राप्ति दुर्लभ है ॥७९॥ इस प्रकार सब चराचर संसार ब्रह्ममय शोभितहै और विज्ञान नामक यह पद है और वे भगवान् विष्णुजी आपही व्यापक हैं योगीश्वरोंके मध्य में श्रेष्ठ व बहुतही उत्तम उन विष्णुजी को मस्तक में स्थित जानकर प्राणी संसार में उत्पन्न केचुलरूपी माया के आकार को सर्प की नाईं छोड़ देता है ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां ज्ञानयोगकथनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

दो० । कह्यो उमासन शिव यथा ज्ञानयोगको हाल । इकतिसवें अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ महादेवजी बोले कि जब चित्त तामसकर्म को छोड़कर कर्मों में लगता है तब ज्ञानमय योगी जीनेवालों को मोक्षदायक होता है ॥ १ ॥ और जब शरीर में ममता नहीं होती व जब चित्त निर्मल होता है और जब विष्णु में भक्तियोग होता है तब कर्म से बन्धन नहीं होता है ॥ २ ॥ और जब कर्मों को करता हुआ मनुष्यों का मन शान्त होता है तब योगमयी सिद्धि होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥ और बड़ा बुद्धिमान् मनुष्य गुरुत्व स्थान को बार बार भोगकर जीताहुआ विष्णुत्वको प्राप्त होकर कर्म के संगसे छूटजाताहै ॥ ४ ॥

ईश्वर उवाच ॥ यदा चित्तामसं कर्म त्यक्त्वा कर्मसु जायते ॥ तदा ज्ञानमयो योगी जीवतां मोक्षदायकः ॥ १ ॥ यदा निर्ममता देहे यदा चित्तं सुनिर्मलम् ॥ यदा हरौ भक्तियोगस्तदा बन्धो न कर्मणा ॥ २ ॥ कुर्वन्नेवहि कर्माणि मनः शान्तं नृणां यदा ॥ तदा योगमयी सिद्धिर्जायते नात्र संशयः ॥ ३ ॥ गुरुत्वं स्थानमसकृदनुभूय महामतिः ॥ जीवन्विष्णुत्वमासाद्य कर्मसङ्गात्प्रमुच्यते ॥ ४ ॥ कर्माणि नित्यजातानि नित्यनैमित्तिकानि च ॥ इच्छया नैव सेव्यानि दुःखतापविवृद्धये ॥ ५ ॥ कर्मणार्माशितारं च विष्णुं विद्धि महेश्वरि ॥ तस्मिन्संत्यज्य सर्वाणि संसारान्मुच्यतेऽखिलात् ॥ ६ ॥ एतदेव परं ज्ञानमेतदेव परं तपः ॥ एतदेव परं श्रेयो यत्कृष्णे कर्मणोर्पणम् ॥ ७ ॥ अयं हि निर्मलो योगो निर्गुणः स उदाहृतः ॥ तद्विष्णोः कर्मजनितं शुभत्वप्रतिपादनम् ॥ ८ ॥ तावद्भ्रमन्ति संसारे पितरः पिण्डतत्पराः ॥ यावत्कुले भक्तियुतः सुतो नैव प्रजायते ॥ ९ ॥ तावद् द्विजाश्च गर्जन्ति तावद्गर्जति पातकम् ॥

और नित्य उत्पन्न नित्य व नैमित्तिक कर्म दुःख व संतापकी वृद्धिके लिये इच्छासे सेवने योग्य नहीं हैं ॥ ५ ॥ व हे महेश्वरि ! कर्मों के स्वामी विष्णुजी को जानिये और उनमें सब कर्मोंको छोड़कर मनुष्य सब संसार से छूट जाताहै ॥ ६ ॥ यही उत्तम ज्ञान है व यही उत्तम तप है और यही उत्तम कल्याण है जोकि श्रीकृष्णजी में कर्म का अर्पण है ॥ ७ ॥ और यह निर्मल योग वह निर्गुण कहा गया है व कर्म से उपजा हुआ शुभत्व को प्रतिपादन करनेवाला कर्म से उपजा हुआ वह विष्णुजी का चरित्र है ॥ ८ ॥ और पिण्ड में तत्पर पितर लोग तबतक संसार में भ्रमते हैं जबतक कि वंशमें भक्तिसंयुत पुत्र नहीं होता है ॥ ९ ॥ और तबतक

ब्राह्मण गर्जते हैं व तबतक पाप गर्जता है और तबतक अनेक तीर्थ हैं जबतक कि मनुष्य भक्तिको नहीं पाता है ॥ १० ॥ और संसार में वही ज्ञानी है व योगियों के मध्य में वही श्रेष्ठ है और वही महायज्ञों को हरनेवाला है जोकि विष्णुजी की भक्ति से संयुत है ॥ ११ ॥ व पलक को मूंदने व उघारने के जयसे योग होता है और वाणी के जयमें गोमेध कहा गया है ॥ १२ ॥ व मनकी विजय में मनुष्य सदैव अश्वमेध यज्ञके फलको पाता है और संकल्प के विजय से मनुष्य नित्य सौत्रामणि यज्ञके फलको पाता है ॥ १३ ॥ और शरीर के त्याग से नित्य नरयज्ञ कहा गया है व अग्निरहित मस्तकरूपी कुंडमें गुरु के उपदेश की विधि

तावत्तीर्थान्यनेकानि यावद्भक्तिं न विन्दति ॥ १० ॥ स एव ज्ञानवाँल्लोके योगिनां प्रथमो हि सः ॥ महाक्रतूना माहर्त्ता हरिभक्तियुतो हि सः ॥ ११ ॥ निमिषं निर्जयन्मेषं योगः समभिजायते ॥ वाणीजये योगिनस्तु गोमेधश्च प्रकीर्तितः ॥ १२ ॥ मनसो विजये नित्यमश्वमेधफलं लभेत् ॥ कल्पनाविजयान्नित्यं यज्ञं सौत्रामणिं लभेत् ॥ १३ ॥ देहस्योत्सर्जनान्नित्यं नरयज्ञः प्रकीर्तितः ॥ पञ्चेन्द्रियपशून्हत्वानग्नौ शीर्षे च कुण्डके ॥ १४ ॥ गुरूपदेश विधिना ब्रह्मभूतत्वमश्नुते ॥ स योगी नियताहारो दण्डत्रितयधारकः ॥ १५ ॥ त्रिदण्डी स तु विज्ञेयो ज्ञाते देवे निरञ्जने ॥ मनोदण्डः कर्मदण्डो वाग्दण्डो यस्य योगिनः ॥ १६ ॥ स योगी ब्रह्मरूपेण जीवन्नेव समाप्यते ॥ अज्ञानी बध्यते नित्यं कर्मभिर्बन्धनात्मकैः ॥ १७ ॥ कुर्वन्नेव हि कर्माणि ज्ञानी मुक्तिं प्रयाति हि ॥ यदा हि गुरुभिः स्थानं ब्रह्मणः प्रतिपाद्यते ॥ १८ ॥ तदैव मुक्तिमाप्नोति देहस्तिष्ठति केवलम् ॥ यावद्ब्रह्मफलावाप्त्यै प्रयाति

से पांच इन्द्रियरूपी पशुवों को मारकर ब्रह्मभूतत्व को पाता है ॥ १४ ॥ याने ब्रह्म में मिलजाता है और थोड़ा भोजन करनेवाला वह योगी तीन दंडोंको धारनेवाला होता है ॥ १५ ॥ और निरंजन विष्णु देवजी के जानने पर वह त्रिदंडी जानने योग्य है और मनका दंड व कर्म का दंड तथा वचन का दंड जिस योगी को होता है ॥ १६ ॥ जीताहुआ वह योगी ब्रह्मरूप से मिलता है और अज्ञानी सदैव बन्धनरूपी कर्मों से बाँधा जाता है ॥ १७ ॥ और कर्मों को करता हुआ ज्ञानी मुक्ति को पाता है व जब गुरुवों से ब्रह्मका स्थान सिद्ध किया जाता है ॥ १८ ॥ तब वह मुक्तिको पाता है और केवल शरीर स्थित रहता है और जबतक

ब्रह्मरूपी फलकी प्राप्ति के लिये उत्तम पुरुष जाता है ॥ १९ ॥ तबतक कर्ममयी वृत्ति रोंक ब्रह्मरूपी वृक्षके मध्य में होतीहै और सदैव मुनियों को ग्रन्थियों के अन्तर्गत ग्रन्थियां जानने योग्य हैं ॥ २० ॥ व ब्राह्मणों को मोक्षमार्ग श्रुतियों और स्मृतियों के समुच्चयसे होता है और यह मोक्ष चार द्वारों से संयुत नगर के समानहै ॥२१॥ और उसमें शम आदिक चार द्वारपाल सदैव रहते हैं पहले मनुष्यों को मोक्षदायक वेही सेवने के योग्य हैं ॥ २२ ॥ और शान्ति व उत्तम विचार तथा संतोष और साधुवों का समागम ये जिसके हाथ में प्राप्त होते हैं उसको सिद्धि समीपही होती है ॥ २३ ॥ और हे देवि ! मनुष्यों को विष्णुजी की भक्ति से उत्तम धर्म के

पुरुषोत्तमः ॥ १९ ॥ तावत्कर्ममयी वृत्तिर्ब्रह्मवृक्षान्तरा भवेत् ॥ अवान्तराणि पर्वाणि ज्ञेयानि मुनिभिः सदा ॥२०॥ मोक्षमार्गो द्विजानां च श्रुतिस्मृतिसमुच्चयात् ॥ मोक्षोऽयं नगराकारश्चतुर्द्वारसमाकुलः ॥ २१ ॥ द्वारपालास्तत्र नित्यं चत्वारस्तु शमादयः ॥ तएव प्रथमं सेव्या मनुजैर्मोक्षदायकाः ॥ २२ ॥ शमश्च सद्विचारश्च सन्तोषः साधुसंगमः ॥ एते वै हस्तगा यस्य तस्य सिद्धिर्न दूरतः ॥ २३ ॥ योगसिद्धिर्विष्णुभक्त्या सद्धर्माचरणेन च ॥ प्राप्यते मनुजैर्देवि एतज्ज्ञानमलं विदुः ॥ २४ ॥ ज्ञानार्थं च भ्रमन्मर्त्यो विद्यास्थानेषु सर्वशः ॥ सद्यो ज्ञानं सद्गुरुतो दीपार्चिरिव निर्मलम् ॥ २५ ॥ मुहूर्त्तमात्रमपि यो लयं चिन्तयति ध्रुवम् ॥ तस्य पापसहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ २६ ॥ रागद्वेषौ परित्यज्य क्रोधलोभविवर्जितः ॥ सर्वत्र समदर्शी च विष्णुभक्तस्य दर्शनम् ॥ २७ ॥ सर्वेषामपि जीवानां दया यस्य हृदि स्थिरा ॥ शौचाचारसमायुक्तो योगी दुःखं न विन्दति ॥ २८ ॥ मायादिपटलैर्हीनो मिथ्यावस्तुविरागवान् ॥

आचरण से योग की सिद्धि मिलती है यह पूर्ण ज्ञान विद्वानोंने कहा है ॥ २४ ॥ और सब विद्या के स्थानों में ज्ञान के लिये घूमता हुआ मनुष्य उत्तम गुरु से निर्मल दीपक की ज्वाला के समान शीघ्रही ज्ञान को पाता है ॥ २५ ॥ और जो मुहूर्त भर भी लय को चिन्तन करता है उसके निश्चय कर उसीक्षण हज़ारों पाप नाश होजाते हैं ॥ २६ ॥ और राग व द्वेषको छोडकर क्रोध व लोभ से रहित तथा सब कहीं समदर्शी और विष्णुभक्तका दर्शन ॥ २७ ॥ और जिसके हृदय में सब प्राणियोंके ऊपर दया स्थिर होती है शौच य आचार से संयुत वह योगी दुःख को नहीं पाता है ॥ २८ ॥ व मायादिक के पटलों से रहित तथा मिथ्या

वस्तु से विरागी तथा निन्दित संसर्ग से हीन योगसिद्धि का लक्षण है ॥ २९ ॥ और ममताकी अग्नि का संयोग मनुष्यों को सन्तापदायक है और उस योगी का शान्ति करना उत्पन्न कर्मों का नाशक है ॥ ३० ॥ और इन्द्रियों को रोककर मनुष्य मनहीं से निषेध करै जैसे कि लोह से घिसा हुआ लोह बहुत पैन होजाता है ॥ ३१ ॥ और शरीर में पवित्र को देनेवाली दो प्रकार की बुद्धि है एक त्याग करने योग्य व दूसरी ग्रहण करने योग्य है और संसारविषयवाली बुद्धि त्याग करने योग्य है व परब्रह्म में वह उत्तम होती है ॥ ३२ ॥ हे देवि ! जैसे कि अहंकार पाप व पुण्य को देनवाला है वैसेही तत्त्व जानने पर उत्तम फलके लिये होता

कुसंसर्गविहीनश्च योगसिद्धेश्च लक्षणम् ॥ २९ ॥ ममतावह्निसंयोगो नराणां तापदायकः ॥ उत्पन्नं शमनं तस्य योगिनः शान्तिचारणम् ॥ ३० ॥ इन्द्रियाणामथोद्धृत्य मनसैव निषेधयेत् ॥ यथा लोहेन लोहं च घर्षितं तीक्ष्णतां व्रजेत् ॥३१॥ बुद्धिर्हि द्विविधा देहे हेया ग्राह्या विशुद्धिदा ॥ संसारविषया त्याज्या परब्रह्मणि सा शुभा ॥ ३२ ॥ अहंकारो यथा देवि पापपुण्यप्रदायकः॥ ज्ञाते तत्त्वे शुभफलकृते संधाय नान्यथा ॥ ३३ ॥ श्यामलं च उपस्थं च रूपातीतान्नराः शिवम् ॥ हृदिस्थं शिरसिस्थं च द्वयं बद्धविमुक्तये ॥ ३४ ॥ एतदक्षरमव्यक्तममृतं सकलं तव ॥ रूपारूपविष्णुरूपरूपे मूर्त्तं निवेदितम् ॥ ३५ ॥ एवं ज्ञात्वा विमुच्येत योगी संसारबन्धनात् ॥ गुरूपदेशाद्गृहस्थो लभते नान्यथा क्वचित् ॥ ३६ ॥ यदा गुरुः प्रसन्नात्मा तस्य विश्वं प्रसीदति ॥ गुरुश्च तोषितो येन संतुष्टः पितृदेवताः ॥ ३७ ॥ गुरूपदेशः

है और अन्यथा संधान कर नहीं होता है ॥ ३३ ॥ और रूपसे अतिक्रान्त होनेके कारण समीपही प्राप्त श्यामरूप हृदय में स्थित व शरीर में स्थित दोनों रूपवाले शिवजी को बँधेहुएकी मुक्ति के लिये ध्यान करै ॥ ३४ ॥ रूप व अरूप विष्णुरूप के रूपमें यह अक्षर, अव्यक्त, अमृत व अखण्ड यह मूर्त तुमसे कहा गया ॥३५॥ ऐसा जानकर योगी संसार के बन्धन से छूट जाता है और गुरुके उपदेश से गृहस्थ इसको पाता है अन्यथा कहीं नहीं पाता है ॥ ३६ ॥ और जब उसके ऊपर गुरु प्रसन्नचित्त होता है तब संसार भर प्रसन्न होता है और जिसने गुरुको प्रसन्न किया उससे पितर व देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ३७ ॥ और गुरुका उपदेश व प्रतिमा

में उत्तम विचार तथा शान्ति में मन व ज्ञान समेत कर्म यह मोक्ष का सिद्ध लक्षण है ॥ ३८ ॥ और क्रियाओं के स्वामी विष्णुही हैं व आप निष्कर्म हैं और प्राणों के विरूप के लिये वह द्वादशाक्षर बीज है ॥ ३९ ॥ और द्वादशाक्षर चक्र सब पापों का नाशक है व दुष्टों का विनाशक तथा परब्रह्म का दायक है ॥ ४० ॥ हे देवि ! द्वादशाक्षररूपधारी यही निर्मल परब्रह्म मैंने आपही तुमसे प्रकाशित किया ॥ ४१ ॥ भक्ति से ग्रहण करने योग्य व योगियों के ध्यानरूप इसको जो चातुर्मास्य में ध्यान करै तो करोड़ों जन्मों में उपजेहुए पापको जलाकर विष्णुजी मुक्तिदायक होते हैं ॥ ४२ ॥ ब्रह्मा बोले कि उसी अवसर में वहां क्षीरसागर के

प्रतिमा सद्विचारः शमे मनः ॥ क्रिया च ज्ञानसहिता मोक्षसिद्धं हि लक्षणम् ॥ ३८ ॥ क्रियापतिर्विष्णुरेव स्वयमेव हि निष्क्रियः ॥ स च प्राणविरूपाय द्वादशाक्षरबीजकः ॥ ३९ ॥ द्वादशाक्षरकं चक्रं सर्वपापनिबर्हणम् ॥ दुष्टानां दमनं चैव परब्रह्मप्रदायकम् ॥ ४० ॥ एतदेव परं ब्रह्म द्वादशाक्षररूपधृक् ॥ मया प्रकाशितं देवि स्वयं हि विमलं तव ॥ ४१ ॥ एतल्लोके योगिनां ध्यानरूपं भक्तिग्राह्यं श्रद्धया चिन्तयेच्च ॥ चातुर्मास्ये जन्मकोट्यां च जातं पापं दग्ध्वा मुक्तिदः कैटभारिः ॥ ४२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ तस्मिन्नवसरे तत्र क्षीरसागरमध्यतः ॥ निर्गतश्च विमानाग्रे तेजोभाराभिपीडितः ॥ ४३ ॥ उरोबाहुकृतिं कुर्वन् सान्निध्यं समुपागतः ॥ महामत्स्योऽज्ञातपूर्वः सन्निधानेऽनहंकृतिः ॥ ४४ ॥ हुंकारगर्भे मत्स्यं च दृष्ट्वा तं स महेश्वरः ॥ तेजसा स्तम्भयामास वाक्यमेतदुवाचह ॥ ४५ ॥ कस्त्वं मत्स्योदरस्थश्च देवो यक्षोऽथ मानुषः ॥ कथं जीवस्य देहान्तर्गतो मम वद प्रभो ॥ ४६ ॥ मत्स्य उवाच ॥ अहं

मध्य से तेजपुञ्ज से पीड़ित मत्स्य (मछली) विमान के अग्रभाग में निकली ॥ ४३ ॥ और हृदय को बाहुके समान करती हुई वह मछली समीप आई व पहले न जानी हुई अहंकाररहित बडीभारी मछली समीप में प्राप्त हुई ॥ ४४ ॥ और हुंकार के गर्भ में उस मछली को देखकर उन शिवजी ने तेज से स्तम्भित किया व यह वचन कहा ॥ ४५ ॥ कि मछली के पेटमें स्थित तुम देवता या यक्ष या मनुष्य कौन हो व शरीर के मध्य में प्राप्त तुम कैसे जीतेहो हे प्रभो ! इसको कहिये ॥ ४६ ॥

मछली बोली कि क्षीर से उपजे हुए समुद्र में पिता के वचन से माताने वंशनाशके भयसे मुझको मछली के पेट में डालदिया है यह मेरे कुलसे संयुत नहीं है उससे अपने वंश का नाश होगया गण्डान्तयोग में पैदाहुआ बालक घर का कार्य नहीं करता है ॥ ४७ । ४८ ॥ इस कारण सुनिये कि वंशमें पैदाहुआ मैं दुःखित माता से निकाल दियागया और मछली ने मुझको पकड लिया व यहां मुझको बहुतसा समय होगया ॥ ४९ ॥ तुम्हारे इन वचनरूपी अमृतों से बड़ाभारी ज्ञान-योग हुआ उससे मूर्तिमें प्राप्त तथा कलाओं समेत अमूर्त तुमको मैंने जाना ॥५०॥ हे देवेश ! मुझको निकलनेके लिये आज्ञा दीजिये कि जिस प्रकार हे ब्रह्मन्!

मत्स्योदरे क्षिप्तः समुद्रे क्षीरसम्भवे ॥ मात्रा तु पितृवाक्येन नायं मम कुलान्वितः ॥ ४७ ॥ कुलक्षयभयात्तेन जातं स्वकुलनाशनम् ॥ गण्डान्तयोगजनितो बालो न गृहकर्मकृत् ॥ ४८ ॥ इति मात्रा दुःखितया निरस्तः शृणु वंशजः॥ झषेणापि गृहीतोस्मि कालो मेत्र महानभूत् ॥ ४९॥ तव वाक्यामृतैरेभिर्ज्ञानयोगोमहानभूत् ॥ तेन त्वं सकलो ज्ञातो मया मूर्त्तोथ मूर्त्तगः ॥५०॥ अनुज्ञां मम देवेश देहि निष्क्रमणाय च॥ यथाहं पितृपो ब्रह्मन् भवाम्याशु विवृद्धये ॥५१॥ हरउवाच॥ विप्रोसि सुतरूपोसि पूज्योस्यपि स्वभावतः ॥ वहिर्निष्क्रमवेगेन स्तम्भितोसि महाझषः ॥ ५२ ॥ ततोऽसौ शिरसा जातउत्क्लेशान्मत्स्ययोजितः ॥ ततो हि विकृतं वक्त्रं क्षणाद्वहिरुपागतः ॥ ५३ ॥ रूपवान् प्रतिमायुक्तो मत्स्य गन्धेन संयुतः ॥ सोमकान्तिसमस्तत्र अभवद्दिव्यगन्धभाक् ॥ ५४ ॥ उमापि प्रणतं चामुं सुतं स्वोत्सङ्गभाजनम् ॥ च कार तस्य नामापि हरः परमहर्षितः ॥ ५५ ॥ यस्मान्मत्स्योदराज्जातो योगिनां प्रवरोह्ययम् ॥ तस्मात्त्वं मत्स्यना

मैं शीघ्रही वृद्धि के लिये पितरों का स्वामी होऊं ॥ ५१ ॥ शिवजी बोले कि ब्राह्मण हो व पुत्ररूप हो और स्वभावही से पूजने योग्य भी हो बाहर वेग से निकलो और महामीन तुम स्तम्भित कियेगये हो ॥ ५२ ॥ तदनन्तर मत्स्य से योजित यह बड़े क्लेशसे मस्तक से उत्पन्न हुआ उसी कारण मुख विकृत होगया और क्षणभर में बाहर आगया ॥ ५३ ॥ और रूपवान् व प्रतिमा से संयुत तथा मछली की गन्ध से संयुक्त, चन्द्रमा के समान गधवान् वह वहां सुन्दर सुगन्ध का भागी हुआ ॥ ५४ ॥ और पार्वतीजी ने भी इस पुत्रको अपने गोदका भाजन किया और बड़े प्रसन्न शिवजी ने उसका नाम भी किया ॥ ५५ ॥ कि जिसलिये

योगियों के मध्य में श्रेष्ठ यह मछली के पेट से पैदाहुआ उस कारण तुम मत्स्यनाथ ऐसे संसार में प्रसिद्ध होगे ॥ ५६ ॥ और न भेदन करने योग्य मनुष्यशरीर वाले तुम ज्ञानयोग के पारगामी होगे और ईर्पारहित तथा सुख, दुःख हीन व आशारहित और ब्रह्मके सेवक ॥ ५७ ॥ आप चौदहों भुवनों में जीवन्मुक्त होगे ऐसा कहेहुए वे शिवजी को बारबार प्रणाम करतेहुए ॥५८॥ शिवजी समेत मंदराचलको आये ब्रह्माजी बोले कि पार्वती देवीकी प्रदक्षिणा कर और स्वामिकार्त्तिकेय जी को लिपटा कर वह चलागया ॥ ५९ ॥ तदनन्तर वे पार्वतीजी ॐकार के पात्ररूप अति उत्तम ज्ञान को पाकर, प्रसन्न हुईं इस प्रकार लोकों की माता

थेति लोके ख्यातो भविष्यसि ॥ ५६ ॥ अच्छेद्यः स्यान्नरतनुर्ज्ञानयोगस्य पारगः ॥ निर्मत्सरोऽपि निर्द्वन्द्वो निराशो ब्रह्मसेवकः ॥ ५७ ॥ जीवन्मुक्तश्च भविता भुवनानि चतुर्दश ॥ इत्युक्तश्च महेशानं प्रणमंश्च पुनःपुनः ॥ ५८ ॥ महेश्वरेण सहितो मन्दराचलमाययौ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं देवीं स्कन्दमालिङ्ग्य सोगमत् ॥ ५९ ॥ ततः सा पार्वती हृष्टा प्राप्य ज्ञानमनुत्तमम् ॥ एवं सा परमां सिद्धिं प्रणवस्य प्रभाजनम् ॥ ६० ॥ संप्राप्य जगतां माता द्वादशाक्षरजामुमा ॥ इमां मत्स्येन्द्रनाथस्य चोत्पत्तिं यः शृणोति च ॥ ६१ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये मत्स्येन्द्रनाथोत्पत्तिकथनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ कार्त्तिकेयश्च पार्वत्याः प्राणेभ्यश्चातिवल्लभः ॥ संक्रीडति समीपस्थो नानाचेष्टाभिरुच

वे पार्वतीजी द्वादशाक्षर से उपजीहुई उत्तम सिद्धि को पाकर प्रसन्न हुईं मत्स्येन्द्रनाथ की इस उत्पत्ति को जो सुनता है ॥ ६० । ६१ ॥ वह अश्वमेध यज्ञके फल को पाता है और चातुर्मास्य में विशेष कर उस फलको प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां मत्स्येन्द्रनाथोत्पत्तिकथनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । यथा षडानन देवजी मार्यो दैत्यसमूह । सो बत्तिस अध्याय में कह्यो चरित्र सुव्यूह ॥ ब्रह्माजी बोले कि स्वामिकार्त्तिकेयजी पार्वतीजी को प्राणों

से भी अधिक प्यारे थे और समीप में स्थित वे उद्यत स्वामिकार्त्तिकेयजी अनेक प्रकारकी चेष्टाओं से खेलते थे ॥ १ ॥ और अरुण छवि तथा अद्भुत पराक्रमवाले बड़े तेजस्वी षडाननजी कभी बहुत गाते थे और कभी अपनी इच्छा से नाचते थे ॥ २ ॥ और कभी माता व पिता को देखकर नम्रता से नीचे झुक जाते थे व कभी श्रीगंगाजी के किनारे वालू के लेपन की रुचि करते थे ॥ ३ ॥ और कभी गणोंसमेत अनेक प्रकार के वनके वृक्षोंको ढूंढ़ते थे इस प्रकार खेलतेहुए उनको पांच दिन व्यतीत हुए ॥ ४ ॥ तदनन्तर इन्द्रादिक सब देवता तारकासुर के डरसे भगकर तारक के मारने की इच्छा से शिवजी की स्तुति करने लगे ॥ ५ ॥ और

तः॥१॥ रक्तकान्तिर्महातेजाः षण्मुखोद्धतविक्रमः ॥ क्वचिद्गायति चात्यर्थं क्वचिन्नृत्यति स्वेच्छया ॥ २ ॥ मातरं पितरं दृष्ट्वा विनयावनतः क्वचित् ॥ क्वचिच्च गङ्गापुलिने सिक्तालेपनारुचिः ॥ ३ ॥ गणैः सह विचिन्वानो विविधान् वनभूरुहान् ॥ एवं प्रक्रीडतस्तस्य दिवसाः पञ्च वै गताः ॥ ४ ॥ ततो देवा महेन्द्राद्यास्तारकत्रासविद्रुताः ॥ स्तुवन्तः शङ्करं सर्वे तारकस्य जिघांसया ॥ ५ ॥ चक्रुः कुमारं सेनान्यं जाह्नव्याः स्वगणैः सुराः ॥ सस्वनुर्देववाद्यानि पु ष्पवर्षं पपात ह ॥ ६ ॥ वह्निस्तु स्वां ददौ शक्तिं हिमवान् वाहनं ददौ ॥ सर्वदेवसमुद्भूतगणकोटिसमावृतः ॥ ७ ॥ प्रणम्य मुनिसङ्घेभ्यः प्रययौ रिपुपत्तने ॥ ताम्रवत्यां नगर्यां च शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ ८ ॥ ततस्तारक सैन्यस्य दैत्यदानवकोटयः ॥ समाजग्मुस्तस्य पुराच्छङ्खनादभयातुराः ॥ ९ ॥ स्ववाहनसमारूढाः संयता बल

अपने गणों समेत देवताओं ने गंगाजी के कुमार स्वामिकार्त्तिकेयजी को सेनापति किया और देवताओं के बाजन बाजने लगे व पुष्पवृष्टि झरनेलगी ॥ ६ ॥ और अग्नि ने अपनी शक्ति दिया व हिमाचल ने सवारी दिया और सब देवताओं से उपजेहुए करोड़ों गणोंसे घिरेहुए स्वामिकार्त्तिकेयजी ॥ ७ ॥ मुनिगणों के लिये प्रणाम कर शत्रुके नगर में गये और ताम्रवती नगरी में प्रतापी स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शंखको बजाया ॥ ८ ॥ तदनन्तर उस तारकासुर की सेना के करोड़ों दैत्य दानव शंख के शब्द के भय से विकल होकर उसके पुरसे आये ॥ ९ ॥ और अपनी सवारियों पै चढ़ेहुए बलसे गर्वित तथा स्वामिकार्त्तिकेयजी के तेजसे

बढ़ेहुए तैयार होकर वे सब भी देवता युद्ध करने लगे ॥ १० ॥ और तब उन देवताओं ने सब दानवों की सेनाओं को मारा और विष्णुजी के चक्र से कटेहुए वे हज़ारों दैत्य पृथ्वी में गिरपड़े ॥ ११ ॥ तदनन्तर उस समय सैकड़ों दानव भगगये व मारेगये व हे मुने ! रक्त से उपजी हुई अनेक प्रकार की नदियां उत्पन्न हुईं ॥ १२ ॥ और उस दानवों की सेनाको नष्ट देखकर उसने समर में युद्ध किया और देवेश स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शीघ्रही अनेक प्रकार के बाणगणों से मारा ॥१३॥ और श्रीकृष्णजी से प्रेरित गंगाजी के पुत्र स्वामिकार्त्तिकेयजी ने शक्तिसे युद्ध करके फेंकदिया व सारथी समेत उस तारकासुरको क्षणभर में भस्म

दर्पिताः ॥ देवाः सर्वेपि युयुधुः स्कन्दतेजोपबृंहिताः ॥ १० ॥ तदा दानवसैन्यानि निजघान च सर्वशः ॥ विष्णुचक्रेण ते छिन्नाः पेतुरुर्व्यां सहस्रशः ॥ ११ ॥ ततो भग्नाश्च शतशो दानवा निहतास्तदा ॥ नद्यः शोणितसम्भूता जाता बहुविधा मुने ॥ १२ ॥ तद्भग्नं दानवबलं दृष्ट्वा स युयुधे रणे ॥ बभञ्ज सद्यो देवेशो बाणजालैरनेकधा ॥ १३ ॥ शक्तिनायुध्य गाङ्गेयश्चिक्षेप कृष्णप्रेरितः ॥ तारकं च सयन्तारं चक्रे तं भस्मसात्क्षणात् ॥ १४ ॥ शेषाः पातालमगमन् हतं दृष्ट्वाथ तारकम् ॥ ततो देवगणाः सर्वे शशंसुस्तस्य विक्रमम् ॥ १५ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिस्तथाऽभवत् ॥ ते लब्धविजयाः सर्वे महेश्वरपुरोगमाः ॥ १६ ॥ सिषिचुः सर्वदेवानां सेनापत्ये षडाननम् ॥ ततः स्कन्दं समालिङ्गय पार्वती हर्षगद्गदा ॥ १७ ॥ माङ्गल्यानि तदा चक्रे स्वसखीभिः समावृता ॥ एवं च तारकं हत्वा सप्तमेहनि बालकः ॥ १८ ॥ मन्दराचलमासाद्य पितरौ संप्रहर्षयन् ॥ उवाच सकलं स्कन्दः पर

करदिया ॥ १४ ॥ इसके उपरान्त तारकासुरको नष्ट देखकर शेष दैत्यलोग पातालको चलेगये तदनन्तर सब देवताओंके गणों ने उनके पराक्रम की प्रशंसा किया ॥ १५ ॥ और देवताओं के नगाड़ा बजने लगे व फूलोंकी वृष्टि हुई और जीत को पाकर उन सब शिवादिक देवताओं ने ॥ १६ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी को सब देवताओंकी स्वामिता में अभिषेक किया तदनन्तर अपनी सखियों से घिरी हुई हर्ष से गद्गद पार्वतीजी ने उस समय स्वामिकार्त्तिकेयजी को लिपटा कर मंगल कार्यों को किया इस प्रकार सातवें दिन तारकासुर को मारकर बालक ॥ १७ । १८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी ने बड़े आनन्द से पूर्ण होकर मंदराचल को

जाकर माता, पिता को प्रसन्न करते हुए सब वृत्तान्त कहा ॥ १६ ॥ और शिवजी ने समय में उन स्वामिकार्त्तिकेयजी के विवाह का चिन्तन किया और प्रसन्न
चित्त वाले उन शिवजी ने अमित शोभावाले स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहा ॥ २० ॥ कि हे विभो ! तुम्हारा विवाह का समय प्राप्त हुआ है और स्त्रियों को कीजिये
क्योंकि उनको प्राप्त होकर उनके साथ वह संमत धर्म होता है ॥ २१ ॥ और मनोरथों को देनेवाले अनेक प्रकार के सब विमानोंसे क्रीडा कीजिये उस वचन
को सुनकर भगवान् स्वामिकार्त्तिकेयजी ने पिता से यह वचन कहा ॥ २२ ॥ कि सब गणों में मैंही सबकहीं देख पड़ता हूं और दृश्य व अदृश्य पदार्थोंमें मैं क्या

मानन्दनिर्भरः ॥ १६ ॥ काले दारक्रियां तस्य चिन्तयामास शङ्करः ॥ स उवाच प्रसन्नात्मा गाङ्गेयममितद्युति
म् ॥ २० ॥ प्राप्तकालस्तव विभो पाणिग्रहणसम्मतः ॥ कुरु दारान् समासाद्य धर्मस्ताभिस्स सम्मतः ॥ २१ ॥
क्रीडस्व विविधैर्भोगैर्विमानैः सह कामिकैः ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान् स्कन्दः पितरं वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥ अहमे
व हि सर्वत्र दृश्यः सर्वगणेषु च ॥ दृश्यादृश्यपदार्थेषु किं गृह्णामि त्यजामि किम् ॥ २३ ॥ याः स्त्रियः सकला
विश्वे पार्वतया ताः समा हि मे ॥ नराः सर्वेपि देवेश भवद्वृत्तान् विलोकये ॥ २४ ॥ त्वं गुरुर्मां च रक्षस्व पुनर्नरक
मज्जनात् ॥ येन ज्ञातमिदं ज्ञानं त्वत्प्रसादादखण्डितम् ॥ २५ ॥ पुनरेव महाघोरसंसाराब्धौ न मज्जये ॥
दीपहस्तो यथा वस्तु दृष्ट्वा तत्करणं त्यजेत् ॥ २६ ॥ तथाज्ञानमवप्राप्य योगी त्यजति संसृतिम् ॥ ज्ञात्वा सर्वगतं
ब्रह्म सर्वज्ञ परमेश्वर ॥ २७ ॥ निवर्त्तन्ते क्रियाः सर्वा यस्य तं योगिनं विदुः ॥ विषये लुब्धचित्तानां वनेपि जा

ग्रहण करूं और क्या त्याग करूं ॥ २३ ॥ और संसार में जो सब स्त्रियां हैं वे सब मुझको पार्वतीजी के समान हैं व हे देवेश ! जो सब मनुष्य हैं उन सबों
को मैं आपके समान देखता हूं ॥ २४ ॥ और तुम गुरुहो व फिर नरक के मज्जन से मेरी रक्षा कीजिये जिससे मैंने तुम्हारी प्रसन्नता से इस सम्पूर्ण ज्ञानको जाना
है ॥ २५ ॥ उस कारण बडे भयंकर संसाररूपी समुद्र में फिर न पड़ूं जैसे दीपक को हाथ में लिये हुए मनुष्य वस्तु को देखकर उस करण (दीपक) को छोड़
देता है ॥ २६ ॥ वैसेही ज्ञानको पाकर योगी संसार को छोड़देता है हे सर्वज्ञ, परमेश्वर ! सर्वव्यापी ब्रह्मको जानकर ॥ २७ ॥ जिसके सब कर्म निवृत्त होजाते

हैं उसको विद्वान् योगी कहते हैं और विषयमें लोभी चित्तवाले मनुष्यों का वन में भी अनुराग होता है ॥ २८ ॥ और सबकहीं समदृष्टिवाले मनुष्यों की घर में सनातनी मुक्ति होती है हे महेशान ! मनुष्यों को ज्ञानही बहुत दुर्लभ है ॥ २९ ॥ और पायेहुए ज्ञानको परिडत किसी भाति से भी नहीं अलग करता है न मैं हू और न मेरे माताहै न पिताहै न भाई है ॥ ३० ॥ बरन ज्ञान को पाकर मैं लोकों में भिन्नता को प्राप्त हूं और यह ज्ञान दैवसे व तुम्हारे प्रभाव से मिलने योग्य है और तुम मुक्ति की इच्छावाले मुझसे ऐसा वचन निस्सन्देह कहने के योग्य नहीं हो जब हठसे सयुत पार्वती देवी ने बार बार यह कहा ॥ ३१ । ३२ ॥ तब

यते रतिः ॥ २८ ॥ सर्वत्र समदृष्टीनां गेहे मुक्तिर्हि शाश्वती ॥ ज्ञानमेव महेशान मनुष्याणां सुदुर्लभम् ॥ २९ ॥ लब्धं ज्ञानं कथमपि परिडतो नैव पातयेत् ॥ नाहमस्मि न माता मे न पिता न च बान्धवः ॥ ३० ॥ ज्ञानं प्राप्य पृथग्भावमापन्नो भुवनेष्वहम् ॥ प्राप्यं भागमिदं दैवात् प्रभावात्तव नार्हसि ॥ ३१ ॥ वक्तुमेवंविधं वाक्यं मुमुक्षो मे न संशयः ॥ यदाग्रहपरा देवी पुनः पुनरभाषत ॥ ३२ ॥ तदा तौ पितरौ नत्वा गतोसौ क्रौञ्चपर्वतम् ॥ तत्राश्रमे महापुरये चचार परमं तपः ॥ ३३ ॥ जजाप परमं ब्रह्म द्वादशाक्षरबीजकम् ॥ पूर्वं ध्यानेन सर्वाणि वशीकृत्येन्द्रियाणि च ॥ ३४ ॥ मनो मासं प्रयुज्याथ ज्ञानयोगमवाप्तवान् ॥ सिद्धयस्तस्य निर्विघ्ना अणिमाद्या यदागताः ॥ ३५ ॥ तदा तासां गुहः क्रुद्धो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ममापि दुष्टभावेन यदि यूयमुपागताः ॥ ३६ ॥ तदास्मत्समशान्तानां नाभिभूतं करिष्यथ ॥ एवं ज्ञात्वा महेशोपि यतोज्ञानमहोदयम् ॥ ३७ ॥ मत्तोपि ज्ञानयोगेन स्कन्दोप्यधि

उन माता, पिताको प्रणाम कर ये स्वामिकार्त्तिकेयजी क्रौंच पर्वतको चलेगये और उन्होंने उस बड़े पवित्र आश्रम में बड़ा भारी तप किया ॥ ३३ ॥ और द्वादशाक्षर बीजवाला परम ब्रह्म का जप किया पहले ध्यानसे सब इन्द्रियोंको वशकर ॥ ३४ ॥ व महीने भर मनको योग में लगाकर उन्होंने ज्ञानयोग को पाया और जब अणिमादिक विघ्नरहित सिद्धिया उनके सामने आईं ॥ ३५ ॥ तब क्रोधित स्वामिकार्त्तिकेयजी ने उनसे यह वचन कहा कि यदि तुम सब मेरा भी अनादर कर दुष्टता से मेरे समीप आई हो तो हमारे समान शान्त लोगोंका तुम तिरस्कार न करोगी ऐसा जानकर जिनसे ज्ञानका ऐश्वर्य होताहै उन शिवजीने भी ॥ ३६।३७ ॥

विस्मय संयुत चित्त होकर पुत्रशोक में परायण पार्वतीजीको अमृत के समान उत्तम वचनों से समझाया कि स्वामिकार्त्तिकेयजी मुझसे भी ज्ञानयोग करके अधिक भावधारी हैं चातुर्मास्यका माहात्म्य सब पातकोंका नाशकहै ॥ ३८।३९ ॥ ध्यानमय व अद्वितीय शिव व विष्णु भी जिसके हृदय में स्थित होते हैं उस

कभावभृत् ॥ विस्मयाविष्टहृदयः पार्वतीमनुशिष्टवान् ॥ ३८ ॥ पुत्रशोकपरां चोमां शुभैर्वाक्यामृतैर्हरः ॥ चातुर्मासस्य माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ३९ ॥ महेश्वरो वा मधुकैटभारिर्हृद्याश्रितो ध्यानमयोऽद्वितीयः ॥ अभेद बुद्ध्या परमार्त्तिहन्ता रिपुः स एवातिप्रियो भवेत्ततः ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये तारकासुरवधो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ इति चातुर्मास्यमाहात्म्यम् ॥ * ॥ * ॥

कारण बहुत दुःखों का नाशक वह शत्रु भी बिन भेद की दृष्टि से बहुत प्रिय होता है ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां तारकासुरवधो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ इति शुभम् ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

प्रथम बार

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव बी. ए., के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेखाने में छपा

सन् १९१५ ई० ।

॥ इति स्कन्दपुराण चातुर्मास्यमाहात्म्य ॥

॥ अथ स्कन्दपुराण ब्रह्मोत्तरखण्ड ॥

स्कन्दपुराणान्तर्गत ब्रह्मखण्ड का सूचीपत्र।

सेतुमाहात्म्य।

इति धर्मारण्यमाहात्म्य का सूचीपत्र।

चातुर्मास्यमाहात्म्य।

इति चातुर्मास्यमाहात्म्य का सूचीपत्र।

ब्रह्मोत्तरखण्ड।

इति प्रश्नोत्तरखण्ड का सूचीपत्र।

इति।

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ ब्रह्मखण्डान्तर्गतब्रह्मोत्तरखण्डप्रारम्भः ॥

ॐनमः शिवाय ॥ ज्योतिर्मात्रस्वरूपाय निर्मलज्ञानचक्षुषे ॥ नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये ॥ १ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ आख्यातं भवता सूत विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ॥ समस्ताघहरं पुण्यं समासेन श्रुतं च नः ॥ २ ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं त्रिपुरद्विषः ॥ तन्मन्त्राणां च माहात्म्यमशेषाघहरं परम् ॥ ३ ॥ तद्भक्तानां च माहात्म्यं तथैव द्विजसत्तम ॥ तत्कथायाश्च तद्भक्तेः प्रभावमनुवर्णय ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ एतावदेव मर्त्यानां परं श्रेयः सनातनम् ॥ यदीश्वरकथायां वै जाता भक्तिरहैतुकी ॥ ५ ॥ अतस्तद्भक्तिलेशस्य माहात्म्यं वर्ण्यते मया ॥

दो०। गर्ग नाम मुनिसों यथा लियो मंत्र भूपाल । सोइ प्रथम अध्याय में वर्णित चरित रसाल ॥ ज्योतिमात्र स्वरूपवाले तथा निर्मल ज्ञानरूपी नेत्रों वाले शान्त तथा लिङ्गमूर्तिवाले ब्रह्मरूपी शिवजीके लिये प्रणाम है ॥ १ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! आपने समस्त पातकों को हरनेवाले व पवित्र विष्णु जीके उत्तम माहात्म्य को संक्षेपसे कहा और हमलोगोंने सुना ॥ २ ॥ इस समय त्रिपुरविनाशक शिवजी के माहात्म्य को हमलोग सुना चाहते हैं और सब पातकों को नाशनेवाले व उत्तम उनके मंत्रों के माहात्म्य को व उनकी कथा और उनकी भक्ति के प्रभाव को कहिये ॥ ४ ॥ सूतजी बोले कि मनुष्यों को इतनाही उत्तम व सनातन कल्याण है जोकि ईश्वरकी कथा में फलकी इच्छा से रहित भक्ति होवै ॥ ५ ॥ इस कारण मैं उन शिवजीकी भक्तिके लवमात्र का माहात्म्य वर्णन करता हूं क्योंकि विस्तार से कभी कल्पपर्यन्त आयुर्बलवाला मनुष्य नहीं कह

के उत्तम उनके भक्तों का माहात्म्य सुना चाहते हैं ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम ! उन शिवजी के मंत्रों के माहात्म्य को व उनकी कथा और उनकी

सक्ता है ॥ ६ ॥ सब पुण्य व सब कल्याणों के मध्यमें और सबभी यज्ञोंके मध्यमें जपयज्ञ उत्तम कहागयाहै ॥ ७ ॥ उनमें पहले जपयज्ञके वडे भारी कल्याणकारक फलको शिवजीके दिव्य षडक्षर मंत्रको महर्षियोंने कहा है ॥ ८ ॥ जैसे देवताओं के मध्य में शिवजी उत्तम देवताहैं वैसेही मंत्रों के मध्यमें शिवजीका षडक्षर मंत्र उत्तम है ॥ ९ ॥ जपनेवालोंको मोक्ष देनेवाला यह पंचाक्षर मंत्र सिद्धि को चाहनेवाले सब श्रेष्ठ मुनियों से सेवन किया जाताहै ॥ १० ॥ और इसी मन्त्रके अक्षरों के माहात्म्यको ब्रह्माजी नहीं कहसक्ते हैं कि जिसमें अत्यन्त गुप्त श्रुतिया सिद्धान्त को प्राप्त हुई हैं ॥ ११ ॥ और शिवजीके जिस उत्तम पंचाक्षर मंत्रमें सच्चिदानन्द

अपि कल्पायुषा नालं वक्तुं विस्तरतः क्वचित् ॥ ६ ॥ सर्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि ॥ सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः ॥ ७ ॥ तत्रादौ जपयज्ञस्य फलं स्वस्त्ययनं महत् ॥ शैवं षडक्षरं दिव्यं मन्त्रमाहुर्महर्षयः ॥ ८ ॥ देवानां परमो देवो यथा वै त्रिपुरान्तकः ॥ मन्त्राणां परमो मन्त्रस्तथा शैवः षडक्षरः ॥ ९ ॥ एष पञ्चाक्षरो मन्त्रो जप्तॄणां मुक्तिदायकः ॥ संसेव्यते मुनिश्रेष्ठैरशेषैः सिद्धिकाङ्क्षिभिः ॥ १० ॥ अस्यैवाक्षरमाहात्म्यं नालं वक्तुं चतुर्मुखः ॥ श्रुतयो यत्र सिद्धान्तं गताः परमनिर्वृताः ॥ ११ ॥ सर्वज्ञः परिपूर्णश्च सच्चिदानन्दलक्षणः ॥ स शिवो यत्र रमते शैवे पञ्चाक्षरे शुभे ॥ १२ ॥ एतेन मन्त्रराजेन सर्वोपनिषदात्मना ॥ लेभिरे मुनयः सर्वे परंब्रह्म निरामयम् ॥ १३ ॥ नमस्कारेण जीवत्वं शिवेऽत्र परमात्मनि ॥ ऐक्यं गतमतो मन्त्रः परब्रह्ममयो ह्यसौ ॥ १४ ॥ भवपाशनिबद्धानां देहिनां हितकाम्यया ॥ आहोंनमः शिवायेति मन्त्रमाद्यं शिवः स्वयम् ॥ १५ ॥ किं तस्य बहु

लक्षणवाले सर्वज्ञ व अखण्ड शिवजी रमण करते हैं ॥ १२ ॥ समस्त उपनिषदात्मक इस मत्रराज से सब मुनियों ने विकाररहित परब्रह्म को पाया है ॥ १३ ॥ इस परमात्मा शिव में नमस्कार से जीवत्व एकता को प्राप्त हुआ है इस कारण यह मंत्र परब्रह्ममय है ॥ १४ ॥ ससाररूपी फँसरी से बँधेहुए प्राणियों के हितकी कामना से आपही शिवजीने ॐनमः शिवाय ऐसा आदिमंत्र कहा है ॥ १५ ॥ उसको बहुतसे मंत्रों और तीर्थों तथा तपस्या व यज्ञोंसे क्या है कि जिसके हृदय

गोचर ॐनमःशिवाय ऐसा मंत्र है ॥ १६ ॥ दुःख से संयुत व भयानक संसार में तबतक प्राणी घूमते हैं जबतक कि एकबार इस मंत्र को नहीं कहते हैं ॥ १७ ॥ और मंत्राधिराजों का राजा यह मंत्र सब वेदान्तों का मस्तकभूत है और वही यह षडक्षर मंत्र सब ज्ञानोंका निधान है ॥ १८ ॥ और यह मोक्षमार्ग का दीपक है व मायारूपी समुद्र का बड़वानल है और वही यह षडक्षर मंत्र बड़े पातकों के लिये दावानल है ॥ १९ ॥ इस कारण वही यह पंचाक्षर मंत्र सब कुछ देनेवाला है और मुक्ति की इच्छावाले शूद्रों व संकर वर्णों तथा स्त्रियों से धारण किया जाता है ॥ २० ॥ और इस मंत्रकी न दीक्षा है न होम है न सरकार है न तर्पण है

भिर्मन्त्रैः किं तीर्थैः किं तपोऽध्वरैः ॥ यस्योंनमः शिवायेति मन्त्रो हृदयगोचरः ॥ १६ ॥ तावद्भ्रमन्ति संसारे दारुणे दुःखसंकुले ॥ यावन्नोच्चारयन्तीमं मन्त्रं देहभृतः सकृत् ॥ १७ ॥ मन्त्राधिराजराजोऽयं सर्ववेदान्तशेखरः ॥ सर्वज्ञाननिधानं च सोऽयं चैव षडक्षरः ॥ १८ ॥ कैवल्यमार्गदीपोऽयमविद्यासिन्धुवाडवः ॥ महापातकदावाग्निः सोऽयं मन्त्रः षडक्षरः ॥ १९ ॥ तस्मात्सर्वप्रदो मन्त्रःसोऽयं पञ्चाक्षरः स्मृतः ॥ स्त्रीभिः शूद्रैश्च संकीर्णैर्धार्यते मुक्तिकाङ्क्षिभिः ॥ २० ॥ नास्य दीक्षा न होमश्च न संस्कारो न तर्पणम् ॥ न कालो नोपदेशश्च सदा शुचिरयं मनुः ॥ २१ ॥ महापातकविच्छित्त्यै शिव इत्यक्षरद्वयम् ॥ अलं नमस्क्रियायुक्तो मुक्तये परिकल्पते ॥ २२ ॥ उपदिष्टः सद्गुरुणा जप्तः क्षेत्रे च पावने ॥ सद्यो यथेप्सितां सिद्धिं ददातीति किमद्भुतम् ॥ २३ ॥ अतः सद्गुरुमाश्रित्य ग्राह्योऽयं मन्त्रनायकः ॥ पुण्यक्षेत्रेषु जप्तव्यः सद्यः सिद्धिं प्रयच्छति ॥ २४ ॥ गुरवो निर्मलाः शान्ताः साधवो मितभाषिणः ॥ कामक्रोध

और न समय है न उपदेश है बरन यह मंत्र सदैव पवित्र है ॥ २१ ॥ व शिव ऐसे दो अक्षर महापातकों के नाश के लिये समर्थ हैं व नमस्कार से संयुत वह मुक्ति के लिये समर्थ है ॥ २२ ॥ और उत्तम गुरुसे उपदेश दिया व पवित्रकारक क्षेत्रमें जपाहुआ यह मंत्र शीघ्रही चाहीहुई सिद्धि को देता है यह क्या आश्चर्य है ॥ २३ ॥ इस कारण उत्तम गुरुके समीप जाकर यह मंत्रराज ग्रहण करने योग्यहै और पवित्र क्षेत्रोंमें जपने योग्यहै क्योंकि शीघ्रही सिद्धि को देता है ॥ २४ ॥ और जो गुरु

निर्मल, शांत, साधु तथा थोड़ा बोलनेवाले होवैं और काम व क्रोध से रहित तथा उत्तम आचारवाले और जितेन्द्रिय होवैं ॥ २५ ॥ इनसे दयासे दिया हुआ मंत्र शीघ्रही सिद्ध होता है और जपके योग्य क्षेत्रों को मैं संक्षेप से कहता हूं ॥ २६ ॥ कि प्रयाग, पुष्कर व सुन्दर केदार और सेतुबन्ध, गोकर्ण व नैमिषारण्य शीघ्रही मनुष्यों की सिद्धिकारक हैं ॥ २७ ॥ इस विषय में विद्वानोंसे प्राचीन इतिहास वर्णन किया जाता है जोकि बहुत बार या एकबार भी सुनने वालों को मंगलदायक है ॥ २८ ॥ मथुरापुरी में बड़े उत्साहवाला व महाबलवान् तथा बुद्धिमान् दाशार्ह ऐसा प्रसिद्ध यदुवों में श्रेष्ठ राजा हुआ है ॥ २९ ॥

विनिर्मुक्ताः सदाचारा जितेन्द्रियाः ॥ २५ ॥ एतैः कारुण्यतो दत्तो मन्त्रः क्षिप्रं प्रसिध्यति ॥ क्षेत्राणि जपयोग्यानि समासात्कथयाम्यहम् ॥ २६ ॥ प्रयागं पुष्करं रम्यं केदारं सेतुबन्धनम् ॥ गोकर्णं नैमिषारण्यं सद्यः सिद्धिकरं नृणाम् ॥ २७ ॥ अत्रानुवर्ण्यते सद्भिरितिहासः पुरातनः ॥ असकृद्वा सकृद्वापि शृण्वतां मङ्गलप्रदः ॥ २८ ॥ मथुरायां यदुश्रेष्ठो दाशार्ह इति विश्रुतः ॥ बभूव राजा मतिमान्महोत्साहो महाबलः ॥ २९ ॥ शास्त्रज्ञो नयवाक्छूरो धैर्यवानमितद्युतिः ॥ अप्रधृष्यः सुगम्भीरः संग्रामेष्वनिवर्त्तितः ॥ ३० ॥ महारथो महेष्वासो नानाशास्त्रार्थकोविदः ॥ वदान्यो रूपसंपन्नो युवा लक्षणसंयुतः ॥ ३१ ॥ स काशिराजतनयामुपयेमे वराननाम् ॥ कान्तां कलावतीं नाम रूपशीलगुणान्विताम् ॥ ३२ ॥ कृतोद्वाहः स राजेन्द्रः संप्राप्य निजमन्दिरम् ॥ रात्रौ तां शयनारूढां संगमाय समाह्वयत् ॥ ३३ ॥ सा

और वह शास्त्रों को जाननेवाला तथा नीतिमान् व शूर और धैर्यवान् तथा अमित प्रकाशवान् था और दुर्धर्ष व बहुतही गम्भीर तथा युद्धों में नहीं लौटता था ॥ ३० ॥ और वह महारथी व बड़े धनुषवाला तथा अनेक प्रकार के शास्त्रार्थों में चतुर था और सुन्दर वचनवाला तथा रूपसे संयुत व युवा और लक्षणों से सयुत था ॥ ३१ ॥ उसने रूप, शील व गुणों से संयुत व सुन्दरी तथा उत्तम मुखवाली कलावती नामक काशी के राजाकी कन्या का ब्याह किया ॥ ३२ ॥ और विवाह करके उस नृपेन्द्र ने अपने घरमें प्राप्त होकर रात्रि में पलँग पै प्राप्त उस स्त्री को समागम के लिये बुलाया ॥ ३३ ॥ अपने पति से बुलाई व बहुत

प्रार्थना कीहुई उस स्त्रीने मनको उसमें नहीं लगाया और वह उसके समीप नहीं आई ॥ ३४ ॥ जब रतिके लिये बुलाई हुई अपनी स्त्री नहीं आई तब बलसे उस को लानेकी इच्छावाला वह राजा उठपड़ा ॥ ३५ ॥ रानी बोली कि हे महाराज ! व्रत में स्थित व कारण को जाननेवाली मुझको मत छुवो तुम धर्म व अधर्म को जानते हो मुझमें साहस को मत करो ॥ ३६ ॥ क्योंकि कभी प्रियसे जो भोग किया जाता है वह बुद्धिमानोंको रुचताहै और स्त्री पुरुष के प्रेम के सयोगसे समागम प्रीति को बढानेवाला है ॥ ३७ ॥ और जब मेरे प्रीति पैदा होगी तब मुझमें तुम्हारा संग होगा क्योंकि बलसे स्त्रियों को भोगने से पुरुषों को क्या प्रीति

स्वभर्त्रा समाहूता बहुशः प्रार्थिता सती ॥ न बबन्ध मनस्तस्मिन्न चागच्छत्तदन्तिकम् ॥ ३४ ॥ संगमाय यदाहूता नागता निजवल्लभा ॥ बलादाहर्तुकामस्तामुदतिष्ठन्महीपतिः ॥ ३५ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ मा मां स्पृश महाराज कारणज्ञां व्रते स्थिताम् ॥ धर्माधर्मौ विजानासि मा कार्षीः साहसं मयि ॥ ३६ ॥ कचित्प्रियेण भुक्तं यद्रोचते तु मनीषिणाम् ॥ दम्पत्योःप्रीतियोगेन संगमः प्रीतिवर्द्धनः ॥ ३७ ॥ प्रियं यदा मे जायेत तदा सङ्गस्तु ते मयि ॥ का प्रीतिः किं सुखं पुंसां बलाद्भोगेन योषिताम् ॥ ३८ ॥ अप्रीतां रोगिणीं नारीमन्तर्वत्नीं धृतव्रताम् ॥ रजस्वलामकामां च न कामेत बलात्पुमान् ॥ ३९ ॥ प्रीणनं लालनं पोषं रञ्जनं मार्दवं दयाम् ॥ कृत्वा वधूमुपगमेद्युवतीं प्रेमवान्पतिः ॥ युवतौ कुसुमे चैव विधेयं सुखमिच्छता ॥ ४० ॥ इत्युक्तोऽपि तया साध्व्या स राजा स्मरविह्वलः ॥ बलादाकृष्य तां हस्ते परिरेभे रिरंसया ॥ ४१ ॥ तां स्पृष्टमात्रां सहसा तप्तायःपिण्डसन्निभाम् ॥ निर्दहन्तीमिवात्मानं तत्याज भयविह्वलः ॥ ४२ ॥

होती है और कौन सुख होता है ॥ ३८ ॥ और बिन स्नेहवती, रोगिणी तथा व्रत को धारण किये और गर्भिणी व रजस्वला तथा न चाहतीहुई स्त्री को पुरुष बल से इच्छा नहीं करता है ॥ ३९ ॥ और तृप्ति, प्यार, पोषण, स्नेह, कोमलता व दया करके ज्वानी स्त्रीके समीप प्रेमवान् पति जावै और पुष्पसमय में सुखको चाहनेवाले पुरुष को रति करना चाहिये ॥ ४० ॥ उस स्त्री से ऐसा कहेहुए उस कामदेव से विकल राजा ने रति की इच्छा से बलसे हाथ में पकड़ कर लिपटा लिया ॥ ४१ ॥ और तचते हुए लोहे के गोले के समान अपना को जलाती हुई सी यकायक छुई हुई उसको भयसे विकल राजा ने छोडदिया ॥ ४२ ॥

राजा बोले कि हे प्रिये ! यह बड़ाभारी आश्चर्य देखा गया कि कोमल पत्तेके समान तुम्हारा शरीर कैसे अग्निके समान होगया ॥४३॥ इस प्रकार बहुतही विस्मित राजा, डरगया और पवित्र मुसक्यानवाली वह रानी बिहँस कर उस राजा से बोली ॥ ४४ ॥ रानी बोली कि हे राजन् ! पुरातन समय मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाजी ने दया से बाल्यावस्था में शिवजी की पञ्चाक्षरी विद्या को मुझे उपदेश दिया था ॥ ४५ ॥ उसी मंत्र के प्रभाव से पापरहित मेरा अङ्ग दैवसे रहित व पाप समेत मनुष्यों से नहीं छुवा जासक्ता है ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! तुम स्वभावही से मदिरा पीने में परायण कुलटा व वेश्यादिक स्त्रियों को सदैव सेवन करतेहो ॥ ४७॥

राजोवाच॥ अहो सुमहदाश्चर्यमिदं दृष्टं तव प्रिये ॥ कथमग्निसमं जातं वपुः पल्लवकोमलम् ॥ ४३ ॥ इत्थं सुविस्मितो राजा भीतःसा राजवल्लभा ॥ प्रत्युवाच विहस्यैनं विनयेन शुचिस्मिता ॥ ४४ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ राजन्मम पुरा बाल्ये दुर्वासा मुनिपुङ्गवः ॥ शैवीं पञ्चाक्षरीं विद्यां कारुण्येनोपदिष्टवान् ॥ ४५ ॥ तेन मन्त्रानुभावेन ममाङ्गं कलुषोज्झितम् ॥ स्प्रष्टुं न शक्यते पुम्भिः सपापैर्दैववर्जितैः ॥४६ ॥ त्वया राजन्प्रकृतिना कुलटागणिकादयः ॥ मदिरास्वादनिरता निषेव्यन्ते सदा स्त्रियः ॥ ४७ ॥ न स्नानं क्रियते नित्यं न मन्त्रो जप्यते शुचिः ॥ नाराध्यते त्वयेशानः कथं मां स्प्रष्टुमर्हसि ॥ ४८ ॥ राजोवाच ॥ तां समाख्याहि सुश्रोणि शैवीं पञ्चाक्षरीं शुभाम् ॥ विद्याविध्वस्तपापोऽहं त्वयेच्छामि रतिं प्रिये ॥ ४९ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ नाहं तवोपदेशं वै कुर्यां मम गुरुर्भवान् ॥ उपातिष्ठ गुरुं राजन्गर्गं मन्त्रविदांवरम् ॥ ५० ॥ सूत उवाच ॥ इति संभाषमाणौ तौ दम्पती गर्गसन्निधिम् ॥ प्राप्य तच्चरणौ मूर्ध्ना ववन्दाते कृताञ्जली ॥ ५१ ॥ अथ

और तुम नित्य स्नान नहीं करतेहो व पवित्र मंत्र नहीं जपते हो और शिवजी को आराधन नहीं करतेहो तो कैसे मुझको छूनेके योग्य हो ॥ ४८ ॥ राजा बोले कि हे सुश्रोणि ! उस उत्तम शिवजी की पञ्चाक्षरी विद्याको कहिये हे प्रिये ! विद्या से पापरहित मैं तुम्हारे साथ रतिको चाहता हूं ॥ ४९ ॥ रानी बोली कि मैं तुमको उपदेश न करूंगी क्योंकि आप मेरे गुरुहो हे राजन् ! मंत्र जाननेवालों में श्रेष्ठ गर्गाचार्य गुरुके समीप जावो ॥ ५० ॥ सूतजी बोले कि इसप्रकार कहते हुए उन दोनों स्त्री पुरुषों ने गर्गजी के समीप प्राप्त होकर हाथों को जोड़ कर उनके चरणों को मस्तक से प्रणाम किया ॥ ५१ ॥ इसके उपरान्त प्रसन्न

गुरुको बारबार पूजकर नम्रचित्तवाले राजाने एकान्त में अपना मनोरथ कहा ॥ ५२ ॥ राजा बोले कि हे गुरो ! दया से संयुत चित्तवाले तुम प्राप्त हुए मुझको कृतार्थ कीजिये और शिवजीकी पञ्चाक्षरी विद्याको तुम उपदेश करने के योग्य हो ॥ ५३ ॥ हे गुरो ! राजा के कर्मसे जो अज्ञात या ज्ञात पाप किया गयाहो वह पाप जिससे शुद्ध होजावै उस मन्त्रको मुझे दीजिये ॥ ५४ ॥ इसप्रकार राजा से प्रार्थना कियेहुए द्विजोत्तम गर्गाचार्यजी उन दोनों को यमुनाजीके महापवित्र व उत्तम किनारे पै लेगये ॥ ५५ ॥ और वहां पवित्र वृक्ष की जड़में आपही गुरुजी बैठ गये और पवित्र तीर्थ के जलमें नहाये हुए व उपवास किये राजाको ॥ ५६ ॥

राजा गुरुं प्रीतमभिपूज्य पुनःपुनः ॥ समाचष्ट विनीतात्मा रहस्यात्समनोरथम् ॥ ५२ ॥ राजोवाच ॥ कृतार्थं मां कुरु गुरो संप्राप्तं करुणार्द्रधीः ॥ शैवीं पञ्चाक्षरीं विद्यामुपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥ ५३ ॥ अनाज्ञातं यदाज्ञातं यत्कृतं राजकर्मणा ॥ तत्पापं येन शुध्येत तन्मन्त्रं देहि मे गुरो ॥ ५४ ॥ एवमभ्यर्थितो राज्ञा गर्गो ब्राह्मणपुङ्गवः ॥ तौ निनाय महापुण्यं कालिन्द्यास्तटमुत्तमम् ॥ ५५ ॥ तत्र पुण्यतरोर्मूले निषण्णोथ गुरुः स्वयम् ॥ पुण्यतीर्थजले स्नातं राजानं समुपोषितम् ॥ ५६ ॥ प्राङ्मुखं चोपवेश्याथ नत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ तन्मस्तके करं न्यस्य ददौ मन्त्रं शिवात्मकम् ॥ ५७ ॥ तन्मन्त्रधारणादेव तद्गुरोर्हस्तसंगमात् ॥ निर्ययुस्तस्य वपुषो वायसाः शतकोटयः ॥ ५८ ॥ ते दग्धपक्षाः क्रोशन्तो निपतन्तो महीतले ॥ भस्मीभूतास्ततः सर्वे दृश्यन्ते स्म सहस्रशः ॥ ५९ ॥ दृष्ट्वा तद्वायसकुलं दह्यमानं सुविस्मितौ ॥ राजा च राजमहिषी तं गुरुं पर्यपृच्छताम् ॥ ६० ॥ भगवन्निदमाश्चर्यं कथं जातं

पूर्व मुख बिठा कर और शिवजी के चरण कमल को प्रणाम कर व उनके माथे पै हाथ को धरकर शिवजी का मंत्र दिया ॥ ५७ ॥ और उस मंत्रके धारणही से व उस गुरुके हाथ के स्पर्श से उस राजा के शरीर से सैकड़ों करोड़ कौवा निकले ॥ ५८ ॥ और जले हुए पंखोंवाले वे चिल्लाते हुए पृथ्वी में गिरपडे तदनन्तर वे सब हज़ारों कौवा भस्म हुए देख पड़े ॥ ५९ ॥ उस कौवा के समूह को जलता हुआ देखकर बहुतही विस्मित राजा व रानी ने उन गुरुजी से पूछा ॥ ६० ॥ कि हे भगवन् ! शरीर से यह आश्चर्य कैसा है कि शरीर मे उपजा हुआ कौवों का कुल देख पड़ा यह क्या है इसको भली भाति

कहिये ॥ ६१ ॥ श्रीगुरुजी बोले कि हे राजन्! हज़ारों जन्मों में भ्रमते हुए आपसे इकट्ठा किये हुए अशुभ परिणामवाले अनेकों पाप हैं ॥ ६२ ॥ और उन हज़ारों जन्मों में जो तुम्हारे पुण्य हैं उनकी अधिकता से आप कभी पवित्र योनियों में पैदा होते हो ॥ ६३ ॥ वैसेही पाप से कभी बहुत पापवाली योनिको प्राप्त होते हो और पुण्य व पाप की समता में आपने मनुष्ययोनि को पाया है ॥ ६४ ॥ जब शिवजी की पंचाक्षरी विद्या तुम्हारे हृदय में प्राप्त हुई तब तुम्हारे करोड़ों पाप कौवा के रूप से निकले ॥ ६५ ॥ और करोड़ों ब्रह्महत्या व करोड़ों अगम्यागमन व करोड़ों सुवर्ण की चोरी, मदिरापान व बालहत्या

शरीरतः ॥ वायसानां कुलं दृष्टं किमेतत्साधु भण्यताम् ॥ ६१ ॥ श्रीगुरुरुवाच॥राजन्भवसहस्रेषु भवता परिधावता ॥ संचितानि दुरन्तानि सन्ति पापान्यनेकशः ॥ ६२ ॥ तेषु जन्मसहस्रेषु यानि पुण्यानि सन्ति ते ॥ तेषामाधिक्यतः क्वापि जायते पुण्ययोनिषु ॥ ६३ ॥ तथा पापीयसीं योनिं क्वचित्पापेन गच्छति ॥ साम्ये पुण्यान्ययोश्चैव मानुषीं योनिमाप्तवान् ॥ ६४ ॥ शैवी पञ्चाक्षरी विद्या यदा ते हृदयं गता ॥ अघानां कोटयस्त्वत्तः काकरूपेण निर्गताः ॥६५॥ कोटयो ब्रह्महत्यानामगम्यागम्यकोटयः ॥ स्वर्णस्तेयसुरापानभ्रूणहत्यादिकोटयः ॥ भवकोटिसहस्रेषु येऽन्ये पातकराशयः ॥ ६६ ॥ क्षणाद्भस्मीभवन्त्येव शैवे पञ्चाक्षरे धृते ॥ आसंस्तवाद्य राजेन्द्र दग्धाः पातककोटयः ॥ ६७ ॥ अनया सह पूतात्मा विहरस्व यथासुखम् ॥ इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठस्तं मन्त्रमुपदिश्य च ॥ ६८ ॥ ताभ्यां विस्मित चित्ताभ्यां सहितः स्वगृहं ययौ ॥ गुरुवर्यमनुज्ञाप्य मुदितौ तौ च दम्पती ॥ ६९ ॥ ततः स्वभवनं प्राप्य रेजतुः स्म

और करोड़ों हज़ार जन्मों में जो अन्य पापों की राशियां हैं ॥ ६६ ॥ वे शिवजी का पंचाक्षर मंत्र धारण करने पर क्षणभर में भस्म होजाते हैं हे राजेन्द्र ! इस समय तुम्हारे करोड़ों पाप जल गये ॥ ६७ ॥ और इस स्त्री के साथ पवित्र चित्तवाले तुम सुखपूर्वक विहार करो यह कहकर मुनिश्रेष्ठ गर्गजी उस मंत्र को उपदेश कर ॥ ६८ ॥ विस्मितचित्तवाले उन दोनों समेत अपने घरको चले गये और श्रेष्ठ गुरु से आज्ञा को लेकर तदनन्तर प्रसन्न होते हुए वे महा-

प्रकाशमान स्त्री पुरुष अपने घरको प्राप्त होकर शोभित हुए और चन्दन के समान शीतल स्त्री को दृढ़ता से लिपटा कर राजा ने ॥ ६९ । ७० ॥ बड़े हर्ष को पाया जैसे कि निर्धनी धन को पाकर हर्ष को पाता है ॥ ७१ ॥ सम्पूर्ण वेद, उपनिषत्, पुराण व शास्त्रों का शिरोमणि यह पापनाशक पंचाक्षरही मंत्र का बड़ा भारी व श्रेष्ठ प्रभाव मैंने संक्षेप से कहा ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मोत्तरखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चाक्षरमन्त्रमाहात्म्यवर्णनंनामप्रथमोऽध्यायः १ ॥

दो० । यथा मित्रसह भूपको दिय वशिष्ठमुनि शाप । सो दूजे अध्याय में कह्यो चरित आलाप ॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त मैं शिवजीके अन्य भी माहात्म्य

महाद्युती ॥ राजा दृढं समाश्लिष्य पत्नीं चन्दनशीतलाम् ॥७०॥ संतोषं परमं लेभे निःस्वः प्राप्य यथा धनम् ॥७१॥ अशेषवेदोपनिषत्पुराणशास्त्रावतंसोऽयमघान्तकारी ॥ पञ्चाक्षरस्यैव महाप्रभावो मया समासात्कथितो वरिष्ठः ॥७२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे पञ्चाक्षरमन्त्रमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोध्यायः ॥ १ ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ अथान्यदपि वक्ष्यामि माहात्म्यं त्रिपुरद्विषः ॥ श्रुतमात्रेण येनाशुच्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥ १ ॥ अतः परतरं नास्ति किंचित्पापविशोधनम् ॥ सर्वानन्दकरं श्रीमत्सर्वकामार्थसाधकम् ॥ २ ॥ दीर्घायुर्विजयारोग्यभुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ यदनन्येन भावेन महेशाराधनं परम् ॥ ३ ॥ आर्द्राणामपि शुष्काणामल्पानां महतामपि ॥ एतदेव विनिर्दिष्टं प्रायश्चित्तमथोत्तमम् ॥ ४ ॥ सर्वकालेऽप्यभेद्यानामघानां क्षयकारणम् ॥ महामुनिविनिर्दिष्टैः प्रायश्चित्तैरथोत्तमैः ॥ ५ ॥ इदमेव परं श्रेयः सर्वशास्त्रविनिश्चितम् ॥ यद्भक्त्या परमेशस्य पूजनं परमोदयम् ॥६॥ जानताऽजानता

को कहताहूं कि जिसके सुनने से शीघ्रही सब सन्देह कट जाते हैं ॥ १ ॥ इससे अधिक उत्तम कुछ पापशोधक व सबोंको आनन्दकारक तथा श्रीमान् व सब कामनाओं व अर्थों का साधक नहीं है ॥ २ ॥ और यह दीर्घ आयुर्बल, विजय, आरोग्य व भुक्ति मुक्ति के फल का दायक है जो कि अनन्यभाव से शिवजी का उत्तम आराधन है ॥३ ॥ और भीगे व सूखे तथा छोटे व बड़े भी पापों का यही उत्तम प्रायश्चित्त कहा गया है ॥४॥ व महामुनियों से कहे हुए उत्तम प्रायश्चित्तोंसे सब समयमें भी अभेदनीय पापों के क्षय का कारण है ॥५ ॥ सब शास्त्रों में निश्चय किया हुआ यही उत्तम कल्याण है जो कि भक्ति से परमेश्वर का बड़े ऐश्वर्यवाला पूजन है ॥ ६ ॥ जिस

किसी भी कारण से जानते व न जानते हुए भी मनुष्य से जो कुछ देवता के लिये कर्म किया जाता है वह मुक्तिदायक होता है ॥ ७ ॥ और माघ में कृष्णपक्ष की चौदसि में उपास बहुत दुर्लभ है व उसमें भी मनुष्यों को रात्रिमें जागरण दुर्लभ मानताहूं ॥ ८ ॥ और शिवलिंग का दर्शन बहुतही दुर्लभ मानता हूं व परमेश्वर का पूजन बहुतही दुर्लभ मानताहूं ॥ ९ ॥ फिर उसमें भी करोडों सौ जन्मों में उत्पन्न पुण्यसमूहों के फल से शिवजी का विल्वपत्र से पूजन मिलता है ॥ १० ॥ दश हज़ार वर्षतक जिसने गंगाजी के जलमें स्नान किया है उस फलको मनुष्य एक वार विल्वपत्र के पूजन से पाता है ॥ ११ ॥ और जो जो

वापि येन केनापि हेतुना ॥ यत्किंचिदपि देवाय कृतं कर्म विमुक्तिदम् ॥७॥ माघे कृष्णचतुर्दश्यामुपवासोतिदुर्लभः ॥ तत्रापि दुर्लभं मन्ये रात्रौ जागरणं नृणाम् ॥ ८ ॥ अतीव दुर्लभं मन्ये शिवलिङ्गस्य दर्शनम् ॥ सुदुर्लभतरं मन्ये पूजनं परमेशितुः ॥ ९ ॥ भवकोटिशतोत्पन्नपुण्यराशिविपाकतः ॥ लभ्यते वा पुनस्तत्र बिल्वपत्रार्चनं विभोः ॥ १० ॥ वर्षाणामयुतं येन स्नातं गङ्गासरिज्जले ॥ सकृद्बिल्वार्चनेनैव तत्फलं लभते नरः ॥ ११ ॥ यानि यानि तु पुण्यानि लीनानीह युगे युगे ॥ माघेऽसितचतुर्दश्यां तानि तिष्ठन्ति कृत्स्नशः ॥ १२ ॥ एतामेव प्रशंसन्ति लोके ब्रह्मादयः सुराः ॥ मुनयश्च वशिष्ठाद्या माघेऽसितचतुर्दशीम् ॥ १३ ॥ अत्रोपवासः केनापि कृतः क्रतुशताधिकः ॥ रात्रौ जागरणं पुण्यं कल्पकोटितपोऽधिकम् ॥ १४ ॥ एकेन बिल्वपत्रेण शिवलिङ्गार्चनं कृतम् ॥ त्रैलोक्ये तस्य पुण्यस्य को वा सादृश्यमिच्छति ॥ १५ ॥ अत्रानुवर्ण्यते गाथा पुण्या परमशोभना ॥ गोपनीयापि कारुण्याद्गौतमे

पुण्य युग युग में लीन होगये हैं वे सब माघ में कृष्णपक्ष की चौदसि में स्थित होते हैं ॥ १२ ॥ लोक में ब्रह्मादिक देवता व वशिष्ठादिक मुनि माघमें कृष्णपक्ष-वाली इस चौदसि की प्रशंसा करते हैं ॥ १३ ॥ इस चौदसि में किसीसे भी किया हुआ उपवास सौ यज्ञों से अधिक होता है और रात्रि में जागरण पवित्रहै व करोड़ कल्पों के तप से अधिकहै ॥ १४ ॥ जिसने एक बिल्वपत्र से शिवलिंग का पूजन किया है त्रिलोक में उसके पुण्य की समानताको कौन चाहताहै ॥ १५ ॥

कथा वर्णन कीजाती है गुप्त करने योग्य भी वह गौतमजी से प्रकाशित कीगई है ॥ १६ ॥ कि इक्ष्वाकुवंश इस विषय में बहुतही उत्तम व पवित्र कथा वर्णन कीजाती है गुप्त करने योग्य भी वह गौतमजी से प्रकाशित कीगई है ॥ १६ ॥ कि इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न सब धनुर्धारियों में श्रेष्ठ व बड़ा धर्मवान् मित्रसह नामक श्रीमान् राजा हुआ है ॥ १७ ॥ वह राजा सब अस्त्रों को जाननेवाला व शास्त्र का ज्ञाता तथा श्रुतियों का पारगामी व वीर और अत्यन्त बल के उत्साहवाला तथा नित्य उद्योगी व दयानिधान था ॥ १८ ॥ और जिसका शरीर पुण्यों की राशि की नाईं व तेजों के पंजर के समान तथा आश्चर्यों के क्षेत्र की नाईं शोभित था ॥ १९ ॥ और उसका हृदय दया से घिरा था व लक्ष्मी से

न प्रकाशिता ॥ १६ ॥ इक्ष्वाकुवंशजः श्रीमान् राजा परमधार्मिकः ॥ आसीन्मित्रसहोनाम श्रेष्ठः सर्वधनुर्भृताम् ॥ १७ ॥ स राजा सकलास्त्रज्ञः शास्त्रज्ञः श्रुतिपारगः ॥ वीरोऽत्यन्तबलोत्साहो नित्योद्योगी दयानिधिः ॥ १८ ॥ पुण्यानामिव संघातस्तेजसामिव पञ्जरः ॥ आश्चर्याणामिव क्षेत्रं यस्य मूर्तिर्विराजते ॥ १९ ॥ हृदयं दययाक्रान्तं श्रियाक्रान्तं च तद्वपुः ॥ चरणौ यस्य सामन्तचूडामणिमरीचिभिः ॥ २० ॥ एकदा मृगयाकेलिलोलुपः स महीपतिः ॥ विवेश गह्वरं घोरं बलेन महतावृतः ॥ २१ ॥ तत्र विव्याध विशिखैः शार्दूलान्गवयान्मृगान् ॥ रुरून्वराहान्महिषान्मृगेन्द्रानपि भूरिशः ॥ २२ ॥ स रथी मृगयासक्तो गहनं दंशितश्चरन् ॥ कमपि ज्वलनाकारं निजघान निशाचरम् ॥ २३ ॥ तस्यानुजः शुचाविष्टो दृष्ट्वा दूरे तिरोहितः ॥ भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा चिन्तयामास चेतसा ॥ २४ ॥

उसका शरीर आक्रमित था और जिसके चरण छोटे राजाओं की चूडामणियों की किरणों से घिरे थे ॥ २० ॥ एक समय शिकार खेलने का लोभी वह राजा बड़ी सेना से संयुत होकर भयकर वन में पैठ गया ॥ २१ ॥ वहा उसने बहुतसे व्याघ्र, गवय, मृग व रुरुसंज्ञक हिरनों को तथा वनवराहों व जगली भैंसों व सिंहों को भी बाणों से मारा ॥ २२ ॥ और रथ पै चढ़ व कवच को पहने घूमते हुए उस शिकार में लगे हुए राजाने अग्नि के समान किसी निशाचर को मारा ॥ २३ ॥ और शोच से सयुत उसका छोटा भाई देखकर दूर छिप गया और भाई को मारा हुआ देखकर उसने चित्त से विचार किया ॥ २४ ॥

कि देवताओं व राक्षसोंको भी दुर्धर्ष यह मेरा शत्रु राजा छलहीसे जीतने योग्यहै अन्यथा जीतने योग्य नहीं है ॥ २५ ॥ यह विचार कर मनुज के समान आकार वाला वह पापी राक्षस श्रेष्ठ राजा के समीप देहधारी उत्पात के समान प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥ सेवकाई करने के लिये आये हुए उसको नम्र आकारवाला देखकर उस राजाने अज्ञान से रसोईंदार किया ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर उस वन में वह राजा कुछ समय तक विहार करके लौटा और शिकार को छोड़कर फिर अपनी पुरी को आया ॥ २८ ॥ उस राजा की मदयन्ती नामक पतिव्रता प्यारी स्त्री थी जैसे कि नल की स्त्री दमयन्ती थी ॥ २९ ॥ इसी समय में पितरों

नन्वेष राजा दुर्द्धर्षो देवानां रक्षसामपि ॥ छद्मनैव प्रजेतव्यो मम शत्रुर्न चान्यथा ॥ २५ ॥ इति व्यवसितः पापो राक्षसो मनुजाकृतिः ॥ आससाद नृपश्रेष्ठमुत्पात इव मूर्तिमान् ॥ २६ ॥ तं विनम्राकृतिं दृष्ट्वा भृत्यतां कर्तुमागतम् ॥ चक्रे महानसाध्यक्षमज्ञानात्स महीपतिः ॥ २७ ॥ अथ तस्मिन्वने राजा किंचित्कालं विहृत्य सः ॥ निवृत्तो मृगयां हित्वा स्वपुरीं पुनराययौ ॥ २८ ॥ तस्य राजेन्द्रमुख्यस्य मदयन्तीतिनामतः ॥ दमयन्ती नलस्येव विदिता वल्लभा सती ॥ २९ ॥ एतस्मिन्समये राजा निमन्त्र्य मुनिपुङ्गवम् ॥ वशिष्ठं गृहमानिन्ये संप्राप्ते पितृवासरे ॥ ३० ॥ रक्षसा सूदरूपेण संमिश्रितनरामिषम् ॥ शाकामिषं पुरः क्षिप्तं दृष्ट्वा गुरुरथाब्रवीत् ॥ ३१ ॥ धिग्धिङ्नरामिषं राजंस्त्वयै तच्छद्मकारिणा ॥ खलेनोपहृतं मेऽद्य अतो रक्षो भविष्यसि ॥ ३२ ॥ रक्षःकृतमविज्ञाय शप्त्वैवं स गुरुस्ततः ॥ पुन र्विमृश्य तं शापं चकार द्वादशाब्दिकम् ॥ ३३ ॥ राजापि कोपितः प्राह यदिदं मे न चेष्टितम् ॥ न ज्ञातंच वृथा शप्तो

का क्षयाह प्राप्त होने पर राजा मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी को न्योत कर घरको ले आया ॥ ३० ॥ और रसोईंदाररूपी राक्षस से आगे परोसे हुए मनुष्य के मांस से मिश्रित शाकमांस को देखकर गुरु वशिष्ठजी बोले ॥ ३१ ॥ कि हे राजन् ! तुझको धिक्कार है धिक्कार है तुझ छलकारी दुष्टने आज इस मनुष्य के मास को मेरे आगे परोसदिया इस कारण तुम राक्षस होगे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार शाप देकर तदनन्तर राक्षस से किया हुआ कर्म जानकर उस गुरुने विचार कर उस शाप को बारह वर्षवाला किया ॥ ३३ ॥ और क्रोधित होकर राजाने भी कहा कि तुमने जो इस मेरे कर्म को नहीं जाना और मुझको वृथा शाप दिया

इससे मैं गुरुको शाप देता हूं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार अञ्जलि से जलको लेकर राजा गुरुको शाप देने के लिये तैयार हुआ और उनके चरणों में गिरकर मदयन्ती ने मना किया ॥ ३५ ॥ तदनन्तर उसके वचन के गौरव से राजा शाप से निवृत्त हुआ और उसने जल को पैरों के ऊपर छोड़ दिया और चरण कल्मषता (मलिनता) को प्राप्त हुए ॥ ३६ ॥ तब से लगाकर राजा कल्मषाङ्घ्रि ऐसा प्रसिद्ध हुआ और गुरु के शाप से वन में रहनेवाला राक्षस हुआ ॥ ३७ ॥ और काल व यमराज के समान भयंकररूप को धारनेवाले उस वनचारी राक्षस ने मनुष्य आदिक अनेक प्रकार के प्राणियों को खाडाला ॥ ३८ ॥

गुरुं चैव शपाम्यहम् ॥ ३४ ॥ इत्यपोऽञ्जलिनादाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥ पतित्वा पादयोस्तस्य मदयन्ती न्यवारयत् ॥ ३५ ॥ ततो निवृत्तः शापाच्च तस्या वचनगौरवात् ॥ तत्याज पादयोरम्भः पादौ कल्मषतां गतौ ॥ ३६ ॥ कल्मषाङ्घ्रिरिति ख्यातस्ततःप्रभृति पार्थिवः ॥ बभूव गुरुशापेन राक्षसो वनगोचरः ॥ ३७ ॥ स बिभ्रद्राक्षसं रूपं घोरं कालान्तकोपमम् ॥ चखाद विविधाञ्जन्तून्मानुषादीन्वनेचरः ॥ ३८ ॥ स कदाचिद्वने क्वापि रममाणौ किशोरकौ ॥ अपश्यदन्तकाकारो नवोढौ मुनिदम्पती ॥ ३९ ॥ राक्षसो मानुषाहारः किशोरं मुनिनन्दनम् ॥ जग्धुं जग्राह शापार्तो व्याघ्रो मृगशिशुं यथा ॥ ४० ॥ रक्षोगृहीतं भर्त्तारं दृष्ट्वा भीताथ तत्प्रिया ॥ उवाच करुणं बाला क्रन्दन्ती भृशवेपिता ॥ ४१ ॥ भो भो मामा कृथाः पापं सूर्यवंश यशोधर ॥ मदयन्तीपतिस्त्वं हि राजेन्द्रो न तु राक्षसः ॥ ४२ ॥

किसी समय कालके समान उसने रमण करते हुए नवीन व्याहे किशोर अवस्थावाले मुनियों के स्त्री पुरुष को देखा ॥ ३९ ॥ और शाप से विकल मनुष्यभोजनवाले उस राक्षस ने किशोर अवस्थावाले मुनिपुत्र को खाने के लिये पकड़ लिया, जैसे कि व्याघ्र मृग के बच्चे को पकड़ लेवै ॥ ४० ॥ राक्षस से पकडे हुए पतिको देखकर उसकी स्त्री डरगई और बहुत कांपती व चिल्लाती हुई वह स्त्री करुणापूर्वक बोली ॥ ४१ ॥ कि हे सूर्यवंशयशोधर ! पाप को मत कीजिये मत कीजिये क्योंकि मदयन्ती के पति तुम नृपेन्द्र हो राक्षस नहीं हो ॥ ४२ ॥ हे प्रभो ! प्राण से भी अधिक प्यारे मेरे पतिको न खाइये क्योंकि शरण में

आये हुए दुःखी लोगों की तुम्हीं गति हो ॥ ४३ ॥ महात्मा पति के विना बड़े बोझवाले शरीर व पापों के समूह की नाईं दुष्ट व जड प्राणों से मेरा क्या प्रयोजन है याने कुछ नहीं ॥ ४४ ॥ और बहुत ही मलिन व पंचभूतोंवाले तथा पापी शरीर से क्या सुख होगा और यह बालक वेदों को जाननेवाला तथा शान्त व तपस्वी और बहुत शास्त्रों को जाननेवाला है ॥ ४५ ॥ इस कारण इसके प्राणदान से तुमने संसार की रक्षा किया हे महाराज ! बाला व ब्राह्मण की स्त्री के ऊपर दया कीजिये ॥ ४६ ॥ क्योंकि अनाथ, कृपण व दुःखी लोगों के ऊपर साधु लोग दयासमेत होते हैं इस प्रकार प्रार्थना किये हुए भी उस

न खाद मम भर्त्तारं प्राणात्प्रियतमं प्रभो ॥ आर्त्तानां शरणार्त्तानां त्वमेव हि यतो गतिः ॥ ४३ ॥ पापानामिव संघातैः किं मे दुष्टैर्जडासुभिः ॥ देहेन चातिभारेण विना भर्त्रा महात्मना ॥ ४४ ॥ मलीमसेन पापेन पाञ्चभौतेन किं सुखम् ॥ बालोयं वेदविच्छान्तस्तपस्वी बहुशास्त्रवित् ॥ ४५ ॥ अतोऽस्य प्राणदानेन जगद्रक्षा त्वया कृता ॥ कृपां कुरु महाराज बालायां ब्राह्मणस्त्रियाम् ॥ ४६ ॥ अनाथकृपणार्तेषु सघृणाः खलु साधवः ॥ इत्थमभ्यर्थितः सोऽपि पुरुषादः स निर्घृणः ॥ ४७ ॥ चखाद शिर उत्कृत्य विप्रपुत्रं दुराशयः ॥ अथ साध्वी कृशा दीना विलप्य भृशदुःखिता ॥ ४८ ॥ आहृत्य भर्तुरस्थीनि चितां चक्रे तथोल्बणाम् ॥ भर्तारमनुगच्छन्ती संविशन्ती हुताशनम् ॥ ४९ ॥ राजानं राक्षसाकारं शापास्त्रेण जघान तम् ॥ रे रे पार्थिव पापात्मंस्त्वया मे भक्षितः पतिः ॥ ५० ॥ अतः पतिव्रतायास्त्वं शापं भुङ्क्ष्व यथोल्बणम् ॥ अद्यप्रभृति नारीषु यदा त्वमपि संगतः ॥ तदा मृतिस्तवेत्युक्त्वा

दुष्ट आशयवाले निर्दयी राक्षस ने मस्तक को काटकर ब्राह्मण के पुत्र को खा डाला इसके अनन्तर बहुत ही दुःखित उस दीन व दुबली पतिव्रता स्त्री ने विलाप करके ॥ ४७ । ४८ ॥ पति के अस्थियों को इकट्ठा कर उग्र चिता को बनाया व पति के पीछे जाती तथा अग्नि में पैठती हुई उसने ॥ ४९ ॥ राक्षस आकारवाले उस राजाको शाप के अस्त्र से मारा कि हे पापात्मन्, राजन् ! तुमने मेरे पतिको खा लिया ॥ ५० ॥ इस कारण तुम पतिव्रता के उग्र शाप को

भोग करो कि आज से लगाकर जब तुम भी स्त्रियो में समागम करोगे तब तुम्हारी मृत्यु होगी यह कहकर वह पतिव्रता स्त्री अग्नि में पैठ गई ॥ ५१ ॥ और वह राजा भी अवधि किये हुए गुरु के शाप को भोगकर फिर अपने स्वरूप को प्राप्त होकर प्रसन्न होकर घर को चला गया ॥ ५२ ॥ ब्राह्मण की पतिव्रता स्त्री का शाप जानकर उस राजा की स्त्री ने वैधव्यता से बहुत डरकर रति की इच्छावाले पति को मना किया ॥ ५३ ॥ और राज्य के सुखों में विरक्त वह सन्तानरहित राजा सब लक्ष्मी को छोड़कर फिर भी वनको चला गया ॥ ५४ ॥ और मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी ने सूर्यवंश की स्थिति के लिये उस मदयन्ती स्त्री में

विवेश ज्वलनं सती ॥ ५१ ॥ सोऽपि राजा गुरोः शापमुपभुज्य कृतावधिम् ॥ पुनः स्वरूपमादाय स्वगृहं मुदितो ययौ ॥ ५२ ॥ ज्ञात्वा विप्रसतीशापं तत्पत्नी रतिलालसम् ॥ पतिं निवारयामास वैधव्यादतिबिभ्यती ॥ ५३ ॥ अनपत्यः स निर्विण्णो राज्यभोगेषु पार्थिवः ॥ विसृज्य सकलां लक्ष्मां ययौ भूयोऽपि काननम् ॥ ५४ ॥ सूर्यवंशप्रतिष्ठित्यै वशिष्ठो मुनिसत्तमः ॥ तस्यामुत्पादयामास मदयन्त्यां सुतोत्तमम् ॥ ५५ ॥ विसृष्टराज्यो राजापि विचरन्सकलां महीम् ॥ आयान्तीं पृष्ठतोऽपश्यत्पिशाचीं घोररूपिणीम् ॥ ५६ ॥ सा हि मूर्त्तिमती घोरा ब्रह्महत्या दुरत्यया ॥ यदसौ शापविभ्रष्टो मुनिपुत्रमभक्षयत् ॥ ५७ ॥ तेनात्मकर्मणा यान्तीं ब्रह्महत्यां स पृष्ठतः ॥ बुबुधे मुनिवर्याणामुपदेशेन भूपतिः ॥ ५८ ॥ तस्या निर्वेशमन्विच्छन् राजा निर्विण्णमानसः ॥ नानाक्षेत्राणि तीर्थानि चचार बहुवत्सरम् ॥ ५९ ॥ यदा सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वापि च मुहुर्मुहुः ॥ न निवृत्ता ब्रह्महत्या मिथिलामाययौ तदा ॥ बाह्यो

उत्तम पुत्रको पैदा किया ॥ ५५ ॥ और राज्यको छोड़कर सब पृथ्वी में घूमते हुए राजाने भी पीछे से आती हुई भयंकर रूपवाली पिशाची को देखा ॥ ५६ ॥ वह दुःख से उल्लंघन करने योग्य भयकरी मूर्तिमती ब्रह्महत्या थी शाप से भ्रष्ट इसने जिस लिये मुनि के पुत्रको भक्षण किया था ॥ ५७ ॥ उसी अपने कर्म से पीछे आती हुई ब्रह्महत्या को उस राजाने श्रेष्ठ मुनियों के उपदेश से जाना ॥ ५८ ॥ और उसके प्रवेश को न चाहते हुए निर्वेद मन वाले राजाने बहुत वर्षों तक अनेक प्रकार के क्षेत्रों व तीर्थों में भ्रमण किया ॥ ५९ ॥ जब सब तीर्थों में बार बार नहाकर भी ब्रह्महत्या न निवृत्त हुई तब वह राजा जनकपुरी को

आया और बाहरी बगीचे में प्राप्त वह बड़ी चिन्ता से विकल हुआ ॥ ६० ॥ और उसने सब तपस्वी लोगों से सेवित अग्नि की नाईं आते हुए निर्मल आ-शयवाले गौतममुनि को देखा ॥ ६१ ॥ और सूर्य के समान व बहुतही मेघों के दोष से अन्धकार को नाशनेवाले तथा निर्मल गुणों से उदय निःशंक चन्द्रमा के समान ॥ ६२ ॥ और शोभासंयुत चन्द्रमा की कलाओं को धारनेवाले शिवजी के समान शांत तथा शिष्यगणों से संयुत व तपों के एक पात्ररूप गौतमजी के ॥ ६३ ॥ समीप जाकर उस नृपेन्द्र ने वार वार प्रणाम किया और मुनिश्रेष्ठ गौतम भी सूर्यवंश में उत्पन्न राजाको ॥ ६४ ॥ आशीर्वाद देकर मुनि

ध्यानगतस्तस्याश्चिन्तया पर्यार्दितः ॥ ६० ॥ ददर्श मुनिमायान्तं गौतमं विमलाशयम् ॥ हुताशनमिवाशेष तपस्विजनसेवितम् ॥ ६१ ॥ विवस्वन्तमिवात्यन्तं घनदोषतमोनुदम् ॥ शशाङ्कमिव निःशङ्कमवदातगुणोदयम् ॥ ६२ ॥ महेश्वरमिव श्रीमद्द्विजराजकलाधरम् ॥ शान्तं शिष्यगणोपेतं तपसामेकभाजनम् ॥ ६३ ॥ उपसृत्य स राजेन्द्रः प्रणनाम मुहुर्मुहुः ॥ गौतमोऽपि मुनिश्रेष्ठो राजानं रविवंशजम् ॥ ६४ ॥ अभिनन्द्य मुनिः प्रीत्या सस्मितं समभाषत ॥ ६५ ॥ गौतम उवाच ॥ कच्चित्ते कुशलं राजन्कच्चित्ते पदमव्ययम् ॥ ६६ ॥ कुशलिन्यः प्रजाः कच्चिदवरोधजनोपि वा ॥ किमर्थमिह संप्राप्तो विसृज्य सकलां श्रियम् ॥ ६७ ॥ किं च ध्यायसि भो राजन्दीर्घमुष्णं च निःश्वसन् ॥ ६८ ॥ राजोवाच ॥ सर्वे कुशलिनो ब्रह्मन्वयं त्वदनुकम्पया ॥ राज्ञामुत्तमवंश्यानां ब्रह्मायत्ता हि सम्पदः ॥ किं नु मां बाधते त्वेषा पिशाची घोररूपिणी ॥ ६९ ॥ अलक्षिता मदपरैर्भर्त्सयन्ती पदे पदे ॥

ने मुसक्यान पूर्वक प्रीति से कहा ॥ ६५ ॥ गौतमजी बोले कि हे राजन् ! क्या तुम्हारा कुशल है व क्या तुम्हारा स्थान विकाररहित है ॥ ६६ ॥ क्या प्रजा कुशलपूर्वक हैं और क्या स्त्रीजन कुशल से हैं और सब लक्ष्मी को छोड़कर तुम यहां किसलिये प्राप्त हुए हो ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! बहुत लम्बी व गरम श्वास लेतेहुए तुम क्या चिन्तन करते हो ॥ ६८ ॥ राजा बोले कि तुम्हारी दयासे हम सबलोग कुशल समेत हैं और उत्तम वंशवाले राजाओं की सम्पदा ब्राह्मणों के आधीन होती है परन्तु भयंकर रूपवाली यह पिशाची हमको दुःख देती है ॥ ६९ ॥ और पग पग पै घुड़कती हुई वह मुझसे अन्य लोगों को

नहीं देखपडती है शाप से जले हुए मैंने जो बडा कठिन पाप किया है हजारों उपायों से भी उसकी शान्ति नहीं होती है॥ ७० ॥ खजाने के सर्वस दक्षिणावाले यज्ञ कियेगये और पृथ्वी में जो पूजने योग्य हैं वे नदी और तड़ाग नहाये गये व घूमते हुए मैंने सब क्षेत्रों को सेवन किया॥ ७१ ॥ और सब मंत्र जपे गये व सब देवताओं का ध्यान किया गया और पत्र, मूल व फलों को खानेवाले मैंने व्रतों को किया है॥ ७२ ॥ वे सब मुझको किसी प्रकार स्वस्थ नहीं करते हैं परन्तु आज मेरे जन्म की सफलता प्राप्त हुई सी देख पड़ती है॥ ७३ ॥ क्योंकि तुम्हारे दर्शनही से मेरा चित्त आनन्दभागी होता है और चाहता हुआ

यन्मया शापदग्धेन कृतमंहो दुरत्ययम् ॥ न शान्तिर्जायते तस्य प्रायश्चित्तसहस्रकैः ॥ ७० ॥ इष्टाश्च विविधा यज्ञाः कोशसर्वस्वदक्षिणाः ॥ सरित्सरांसि स्नातानि यानि पूज्यानि भूतले ॥ निषेवितानि सर्वाणि क्षेत्राणि भ्रमता मया ॥ ७१ ॥ जप्तान्यखिलमन्त्राणि ध्याताः सकलदेवताः ॥ मया व्रतानि चीर्णानि पर्णमूलफलाशिना ॥ ७२ ॥ तानि सर्वाणि कुर्वन्ति स्वस्थं मां न कदाचन ॥ अद्य मे जन्मसाफल्यं संप्राप्तमिव लक्ष्यते ॥ ७३ ॥ यतस्त्वद्दर्शनादेव ममात्मानन्दभागभूत् ॥ अन्विच्छल्लँभते कापि वर्षपूगैर्मनोरथम् ॥ ७४ ॥ इत्येवं जनवादोऽपि संप्राप्तो मयि सत्यताम् ॥ आजन्मसंचितानां तु पुण्यानामुदयोदये ॥ ७५ ॥ यद्भवान्भवभीतानां त्राता नयनगोचरः ॥ कस्माद्देशादिहायातो भवान्भवभयापहः ॥ ७६ ॥ दूरभ्रमणविश्रान्तं शङ्के त्वामिह चागतम् ॥ दृष्ट्वाश्चर्यमिवात्यर्थं मुदितोसि मुखश्रिया ॥ ७७ ॥ आनन्दयसि मे चेतः प्रेम्णा संभाषणादिव ॥ अद्य मे तव पादाब्जशरणस्य कृतैनसः ॥ शान्ति

मनुष्य कभी वर्षगणों से मनोरथ को प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥ यह मनुष्यों की वार्त्ता मुझ में भी सत्यता को प्राप्त हुई क्योंकि जन्मसे लगाकर इकट्ठा किये हुए पुण्यों के उदय के ऐश्वर्य में ॥ ७५ ॥ जो कि संसार से डरे हुए मनुष्यों के रक्षक आप नेत्रों के सामने प्राप्त हुए हो और संसार के डरको नाशनेवाले आप किस देश से यहां आये हो॥ ७६ ॥ और यहां आये हुए तुमको मैं दूर घूमने से थका हुआ शंका करता हूं और बहुतही आश्चर्य को देखकर तुम मुख की शोभा से प्रसन्न हो ॥ ७७ ॥ और प्रेम समेत संभाषण से तुम मेरे चित्त को आनन्द करते हो हे महाभाग! आज तुम्हारे चरणकमलशरणवाले मुझ पापकारी

की शांति कीजिये कि जिससे मैं सुखको प्राप्त होऊं ॥ ७८ ॥ इस प्रकार उनसे कहे हुए दयानिधान गौतमजी ने भयंकर पापों का प्रायश्चित्त भलीभांति बतलाया ॥ ७९ ॥ गौतमजी बोले कि हे नृपेन्द्र ! तुमको साधुवाद है व तुम धन्य हो और महापापों से भयको छोड दीजिये ॥ ८० ॥ शिवजी के रक्षक होने पर शरण को चाहनेवाले भक्तों को भय कहां से होता है हे महाभाग, राजन् ! अन्य प्रतिष्ठित क्षेत्रको सुनिये ॥ ८१ ॥ कि गोकर्णनामक सुन्दर क्षेत्र महापापों को नाश करनेवाला है जहा कि बड़ेसे भी बड़े पातकों की स्थिति नहीं होती है ॥ ८२ ॥ जहां कि समस्त पातकों को नाशनेवाले शिवजी

कुरु महाभाग येनाहं सुखमाप्नुयाम् ॥ ७८ ॥ इति तेन समादिष्टो गौतमः करुणानिधिः ॥ समादिदेश घोराणामघानां साधु निष्कृतिम् ॥ ७९ ॥ गौतम उवाच ॥ साधु राजेन्द्र धन्योऽसि महाघेभ्यो भयं त्यज ॥ ८० ॥ शिवे त्रातरि भक्तानां क भयं शरणैषिणाम् ॥ शृणु राजन्महाभाग क्षेत्रमन्यत्प्रतिष्ठितम् ॥ ८१ ॥ महापातकसंहारि गोकर्णाख्यं मनोरमम् ॥ यत्र स्थितिर्न पापानां महद्भ्योमहतामपि ॥ ८२ ॥ स्मृतो ह्यशेषपापघ्नो यत्र संनिहितः शिवः ॥ यथा कैलासशिखरे यथा मन्दारमूर्द्धनि ॥ ८३ ॥ निवासो निश्चितः शम्भोस्तथा गोकर्णमण्डले ॥ नाग्निना न शशाङ्केन न ताराग्रहनायकैः ॥ ८४ ॥ तमो निस्तीर्यते सम्यग्यथा सवितृदर्शनात् ॥ तथैव नेतरैस्तीर्थैर्न च क्षेत्रैर्मनोरमैः ॥ ८५ ॥ सद्यः पापविशुद्धिः स्याद्यथा गोकर्णदर्शनात् ॥ अपि पापशतं कृत्वा ब्रह्महत्यादि मानवः ॥ ८६ ॥ सकृत्प्रविश्य गोकर्णं न बिभेति ह्यघात्क्वचित् ॥ तत्र सर्वे महात्मानस्तपसा शान्तिमागताः ॥ ८७ ॥ इन्द्रो

कहे गये हैं जैसे कैलास पर्वत के शिखर पै व जैसे मंदराचल के ऊपर ॥ ८३ ॥ शिवजी का निवास निश्चित है वैसेही गोकर्णक्षेत्र के मण्डल में है न अग्नि से न चन्द्रमा से और न तारा व ग्रहों के स्वामियों से ॥ ८४ ॥ भलीभांति अन्धकार दूर होता है जैसा कि सूर्यके दर्शन से नाश होता है वैसेही न अन्य तीर्थों से और न सुन्दर क्षेत्रों से ॥ ८५ ॥ शीघ्रही पापकी शुद्धि होती है जैसी कि गोकर्ण के दर्शन से होती है और ब्रह्महत्यादिक सैकडों पापों को भी करके ॥ ८६ ॥ एक बार गोकर्णक्षेत्र में प्रवेशकर कहीं पापसे मनुष्य नहीं डरता है और वहा सब महात्मा लोग तपस्या से शान्ति को प्राप्त हुए हैं ॥ ८७ ॥ और

सिद्धिको चाहनेवाले इन्द्र, उपेन्द्र व ब्रह्मादिक देवताओं से वह स्थान सेवन किया जाता है और वहां एक दिन से भी जो उत्तम व्रत किया गया है ॥ ८८ ॥ वह अन्यत्र लाख वर्ष करने पर उसके बराबर होता है और जहां इन्द्र, ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवताओं के हित की इच्छा से ॥ ८९ ॥ महाबलनाम से आपही शिवदेवजी स्थित हैं रावण नामक राक्षस ने भयंकर तप से जिस लिंग को पाया था ॥ ९० ॥ उस लिंगको गणेशजीने गोकर्णक्षेत्र में स्थापित किया है और इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, विश्वेदेवता व मरुद्गण ॥ ९१ ॥ और आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, चन्द्रमा व सूर्य पार्षदों समेत ये विमान गतिवाले

पेन्द्रविरिञ्च्याद्यैः सेव्यते सिद्धिकाङ्क्षिभिः ॥ तत्रैकेन दिनेनापि यत्कृतं व्रतमुत्तमम् ॥ ८८ ॥ तदन्यत्राब्दलक्षे ण कृतं भवति तत्समम् ॥ यत्रेन्द्रब्रह्मविष्ण्वादिदेवानां हितकाम्यया ॥ ८९ ॥ महाबलाभिधानेन देवः संनिहितः स्वय यम् ॥ घोरेण तपसा लब्धं रावणाख्येन रक्षसा ॥ ९० ॥ तल्लिङ्गं स्थापयामास गोकर्णे गणनायकः ॥ इन्द्रो ब्रह्मा मुकुन्दश्च विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥ ९१ ॥ आदित्या वसवो दस्रौ शशाङ्कश्च दिवाकरः ॥ एते विमानगतयो देवास्ते सह पार्षदैः ॥ ९२ ॥ पूर्वद्वारं निषेवन्ते देवदेवस्य शूलिनः ॥ योन्यो मृत्युः स्वयं साक्षाच्चित्रगुप्तश्च पाव कः ॥ ९३ ॥ पितृभिः सह रुद्रैश्च दक्षिणद्वारमाश्रितः ॥ वरुणः सरितां नाथो गङ्गादिसरितां गणैः ॥ ९४ ॥ आ सेवते महादेवं पश्चिमद्वारमाश्रितः ॥ तथा वायुः कुबेरश्च देवेशी भद्रकर्णिका ॥ ९५ ॥ मातृभिश्चण्डिकाद्या भिरुत्तरद्वारमाश्रिता ॥ विश्वावसुश्चित्ररथश्चित्रसेनो महाबलः ॥ ९६ ॥ सह गन्धर्ववर्गैश्च पूजयन्ति महाबलम् ॥

देवता ॥ ९२ ॥ त्रिशूलधारी देवदेव शिवजी के पूर्व द्वारको सेवन करते हैं और जो अन्य आपही काल व साक्षात् चित्रगुप्त और अग्नि ॥ ९३ ॥ पितरों व रुद्रों समेत दक्षिणद्वार पै टिके हुए हैं और गंगादिक नदियोंके गणों समेत नदियों के स्वामी वरुणजी ॥ ९४ ॥ पश्चिम द्वार पै टिककर महादेवजी को सेवते हैं वैसेही पवन, कुबेर व भद्रकर्णिका देवेशी ॥ ९५ ॥ चंडिकादिक मातृकाओं समेत उत्तर के द्वार पै टिकी हैं और विश्वावसु, चित्ररथ, चित्रसेन व महाबल ॥ ९६ ॥

गंधर्ब गणों समेत ये महाबल संज्ञक शिवजी को पूजते हैं और रंभा, घृताची, मेना, पूर्वचित्ति, तिलोत्तमा ॥ ९७ ॥ और उर्वशी आदिक देवांगना शिवजी के आगे नाचती हैं और वशिष्ठ, कश्यप, कण्व व बड़े तपस्वी विश्वामित्रजी ॥ ९८ ॥ व हे राजेन्द्र ! जैमिनि, भरद्वाज, जाबालि, क्रतु व अंगिरा ये और हम सब निर्मल ब्रह्मर्षिलोग ॥ ९९ ॥ महाबलदेवजी की भक्ति से सब ओर से उपासना करतेहैं और मरीचि समेत अत्रिजी व दक्षादिक मुनीश्वर ॥ १०० ॥ और सनकादिक महात्मालोग बैठकर उपासना करते हैं वैसेही मृगचर्मरूपी वसन को धारनेवाले मुनि व साध्यलोग ॥ १ ॥ और व्रतसे मुंडी दंडी लोग

रम्भा घृताची मेना च पूर्वचित्तिस्तिलोत्तमा ॥ ९७ ॥ नृत्यन्ति पुरतः शम्भोरुर्वश्याद्याः सुरस्त्रियः ॥ वशिष्ठः कश्यपः कण्वो विश्वामित्रो महातपाः ॥ ९८ ॥ जैमिनिश्च भरद्वाजो जाबालिः क्रतुरङ्गिराः ॥ एते वयं च राजेन्द्र सर्वे ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ९९ ॥ देवं महाबलं भक्त्या समन्तात्पर्युपास्महे ॥ मरीचिना सहात्रिश्च दक्षाद्याश्च मुनीश्वराः ॥ १०० ॥ सनकाद्या महात्मान उपविष्टा उपासते ॥ तथैव मुनयः साध्या अजिनाम्बरधारिणः ॥ १ ॥ दण्डिनो व्रतमुण्डाश्च स्नातका ब्रह्मचारिणः ॥ त्वगस्थिमात्रावयवास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ २ ॥ सेवन्ते परया भक्त्या देवदेवं पिनाकिनम् ॥ तथा देवाः सगन्धर्वाः पितरः सिद्धचारणाः ॥ ३ ॥ विद्याधराः किंपुरुषाः किन्नरा गुह्यकाः खगाः ॥ नागाः पिशाचा वेताला दैतेयाश्च महाबलाः ॥ ४ ॥ नानाविभवसम्पन्ना नानाभूषणवाहनाः ॥ विमानैः सूर्यसंकाशैरग्निवर्णैः शशिप्रभैः ॥ ५ ॥ विद्युत्पुञ्जनिभैरन्यैः समन्तात्परिवारितम् ॥ प्रस्तुवन्ति प्रगायन्ति

व स्नातक ब्रह्मचारी त्वचा व अस्थिमात्र अंगोंवाले सब तपसे पातकों को जलानेवाले ॥ २ ॥ देवदेव शिवजी को उत्तम भक्ति से सेवते हैं वैसेही गंधर्बों समेत देवता, पितर और सिद्ध व चारण लोग ॥ ३ ॥ और विद्याधर, किंपुरुष, किन्नर, गुह्यक, ग्रह, नाग, पिशाच, वेताल व बड़े बलवान् दैत्य लोग ॥ ४ ॥ अनेकों प्रकार के भूषणों व वाहनों समेत तथा अनेक प्रकार के ऐश्वर्य से संयुत हैं और सूर्यके समान व अग्नि के रंगवाले तथा चन्द्रमा के समान विमानों से ॥ ५ ॥ व बिजली की राशियों के समान अन्य विमानों से वह क्षेत्र सब ओर घिरा है और ये लोग स्तुति करते हैं व गाते हैं और पढ़ते व

प्रणाम करते हैं ॥ ६ ॥ व हे भूपते ! गोकर्णक्षेत्र में नाचते व प्रसन्न होते हैं और चाहे हुए मनोरथों को पाते हैं व सुखपूर्वक रमण करते हैं ॥ ७ ॥ ब्रह्मा-एडगोलक में गोकर्ण के समान क्षेत्र नहीं है और वहा महात्मा अगस्त्यजी ने घोर तप किया है ॥ ८ ॥ व हे राजन् ! सनत्कुमार ने और प्रियव्रत के पुत्रों ने तथा देवताओं में श्रेष्ठ अग्नि ने व कामदेव ने वहा तप किया है ॥ ९ ॥ वैसेही भद्रकाली देवी ने व बुद्धिमान् शिशुमार ने और दुर्मुख व मणिनाग नामक सर्पराज ने तप किया है ॥ १० ॥ और इलावर्तादिक नागों ने व बलवान् गरुड़जी ने और कुंभकर्ण नामक राक्षस व रावण ने ॥ ११ ॥ व पवित्र

पठन्ति प्रणमन्ति च ॥ ६ ॥ प्रनृत्यन्ति प्रहृष्यन्ति गोकर्णे पृथिवीपते ॥ लभन्तेऽभीप्सितान्कामान्रमन्ते च यथासुखम् ॥ ७ ॥ गोकर्णसदृशं क्षेत्रं नास्ति ब्रह्माण्डगोलके ॥ तत्र घोरं तपस्तप्तमगस्त्येन महात्मना ॥ ८ ॥ तथा सनत्कुमारेण प्रियव्रतसुतैरपि ॥ अग्निना देववर्येण कन्दर्पेण च पार्थिव ॥ ९ ॥ तथा देव्या भद्रकाल्या शिशुमारेण धीमता ॥ दुर्मुखेन फणीन्द्रेण मणिनागाह्वयेन च ॥ १० ॥ इलावर्तादिभिर्नागैर्गरुडेन बलीयसा ॥ रक्षसा रावणेनापि कुम्भकर्णाह्वयेन तु ॥ ११ ॥ विभीषणेन पुण्येन तपस्तप्तं महात्मना ॥ एते चान्ये च गीर्वाणाः सिद्धदानवमानवाः ॥ १२ ॥ गोकर्णे देवदेवेशं शिवमाराध्य भक्तितः ॥ स्वनामाङ्कानि लिङ्गानि स्थापयित्वा सहस्रशः ॥ १३ ॥ लेभिरे परमां सिद्धिं तथा तीर्थानि चक्रिरे ॥ अत्र स्थानानि सर्वेषां देवानां सन्ति पार्थिव ॥ १४ ॥ विष्णोश्च देवदेवस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ कार्त्तिकेयस्य वीरस्य गजवक्त्रस्य चानघ ॥ १५ ॥ धर्मस्य क्षेत्रपालस्य दुर्गायाश्च महामते ॥

तथा महात्मा विभीषण ने वहां तप किया है ये और अन्य देवता तथा सिद्ध दानव व मनुष्यों ने ॥ १२ ॥ गोकर्णक्षेत्र में देवदेवेश शिवजी को भक्ति से आराधन कर अपने नाम से चिह्नित हज़ारों लिंगों को थापकर ॥ १३ ॥ उत्तम सिद्धिको पाया व तीर्थों को किया है हे राजन् ! यहां सब देवताओं के स्थान हैं ॥ १४ ॥ व हे अनघ ! देवदेव विष्णुजी का व परमेष्ठी ब्रह्माजी का और कार्त्तिकेय वीर व गणेशजी का स्थान है ॥ १५ ॥ व हे महामते ! धर्मराज, क्षेत्र-

पाल व दुर्गाजी का स्थान है और गोकर्णक्षेत्र में करोड़ों शिवलिङ्ग हैं ॥ १६ ॥ और पग पग पै असंख्य तीर्थ हैं हे पार्थिव ! इस विषय में बहुत कहने से क्या है गोकर्णक्षेत्र में स्थित ॥ १७ ॥ सब पत्थरके लिङ्ग हैं व सब तीर्थ और जल गोकर्ण में स्थित हैं व हे राजन् ! गोकर्ण में बहुतसे शिवलिङ्गों व तीर्थों की महिमा पुराणों में महर्षियों से गान कीजाती है और गोकर्णक्षेत्र में कोटितीर्थ तीर्थों की मुख्यता को प्राप्त है ॥ १८ । १६ ॥ और महाबल शिवजी सब शिवलिङ्गों के चक्रवर्ती राजा हैं सतयुग में महाबल शिवजी श्वेतरंग व त्रेता में बहुतही लालरंग होते हैं ॥ २० ॥ और द्वापर में पीलेरंग के व कलियुग में श्यामवर्ण

गोकर्णे शिवलिङ्गानि विद्यन्ते कोटिकोटिशः ॥ १६ ॥ असंख्यातानि तीर्थानि तिष्ठन्ति च पदे पदे ॥ बहुनात्र किमुक्तेन गोकर्णस्थानि पार्थिव ॥ १७ ॥ सर्वाण्यश्मानि लिङ्गानि तीर्थान्यम्भांसि सर्वशः ॥ गोकर्णे शिवलिङ्गानां तीर्थानामपि भूरिशः ॥ १८ ॥ गीयते महिमा राजन्पुराणेषु महर्षिभिः ॥ गोकर्णे कोटितीर्थं च तीर्थानां मुख्यतां गतम् ॥ १६ ॥ सर्वेषां शिवलिङ्गानां सार्वभौमो महाबलः ॥ कृते महाबलः श्वेतस्त्रेतायामतिलोहितः ॥ २० ॥ द्वापरे पीतवर्णश्च कलौ श्यामो भविष्यति ॥ आक्रान्तं सप्तपातालं कुर्वन्नपि महाबलः ॥ २१ ॥ प्राप्ते कलियुगे घोरे मृदुतामुपयास्यति ॥ पश्चिमाम्बुधितीरस्थं गोकर्णक्षेत्रमुत्तमम् ॥ २२ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि दहतीति किमद्भुतम् ॥ ये चात्र ब्रह्महन्तारो ये च भूतद्रुहः शठाः ॥ २३ ॥ ये सर्वगुणहीनाश्च परदाररताश्च ये ॥ ये दुर्वृत्ता दुराचारा दुःशीलाः कृपणाश्च ये ॥ २४ ॥ लुब्धाः क्रूराः खला मूढाः स्तेनाश्चैवातिकामिनः ॥ ते सर्वे प्राप्य गोकर्णं स्नात्वा

होवैंगे और सातों पातालों को आक्रान्त करते हुए भी महाबल शिवजी ॥ २१ ॥ भयंकर कलियुग प्राप्त होनेपर कोमलता को प्राप्त होवैंगे पश्चिम समुद्र के किनारे पै स्थित उत्तम गोकर्णक्षेत्र ॥२२॥ ब्रह्महत्यादिक पापों को जलाताहै तो क्या आश्चर्य है और यहां जो ब्रह्मघाती व जो प्राणियोंसे वैर करनेवाले और शठ हैं ॥ २३ ॥ और जो सब गुणोंसे हीन व जो पराई स्त्रियों से स्नेह करनेवाले हैं और जो दुश्चरित्र, दुराचारी व जो दुष्ट स्वभाववाले तथा जो कृपण हैं ॥ २४ ॥

और जो लोभी, क्रूर, दुष्ट, मूढ़, चोर व बड़े कामी हैं वे सब गोकर्णक्षेत्र को प्राप्त होकर व तीर्थजलों में नहाकर ॥ २५ ॥ महाबल शिवदेवजी को देखकर शिवजी के स्थान को प्राप्त हुए हैं और उस क्षेत्र में पुण्य तिथियों तथा पुण्य नक्षत्र व पवित्र दिन में ॥ २६ ॥ जो शिवजी को पूजते हैं वे शिव होते हैं इसमें सन्देह नहीं है और जब कभी जो कोई मनुष्य गोकर्णक्षेत्र में ॥ २७ ॥ पैठकर शिवजी को पूजता है वह ब्रह्मा के स्थान को प्राप्त होता है और रविवार, सोमवार व बुध इन दिनों में जब अमावस होगी ॥ २८ ॥ तब समुद्र में स्नान, दान व पितरों को तर्पण, शिवपूजन, जप, होम, व्रत

तीर्थजलेषु च ॥ २५ ॥ देवं महाबलं दृष्ट्वा प्रयाताः शाङ्करं पदम् ॥ तत्र पुण्यासु तिथिषु पुण्यर्क्षे पुण्यवासरे ॥ २६ ॥ येऽर्चयन्ति महेशानं ते रुद्राः स्युर्न संशयः ॥ यदाकदाचिद्गोकर्णे यो वा को वापि मानवः ॥ २७ ॥ प्रविश्य पूजयेदीशं स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥ रवीन्दुसौम्यवारेषु यदादर्शो भविष्यति ॥ २८ ॥ तदा जलनिधौ स्नानं दानं च पितृतर्पणम् ॥ शिवपूजा जपो होमो व्रतचर्या द्विजार्चनम् ॥ २९ ॥ यत्किंचिद्वा कृतं कर्म तदनन्तफलप्रदम् ॥ व्यतीपातादियोगेषु रविसंक्रमणेषु च ॥ ३० ॥ महाप्रदोषवेलासु शिवपूजा विमुक्तिदा ॥ अथैकां ते प्रवक्ष्यामि तिथिं पार्थिव मुक्तिदाम् ॥ ३१ ॥ यस्यां किल महाव्याधो लेभे शम्भोः परं पदम् ॥ माघमासे महापुण्या या सा कृष्ण चतुर्दशी ॥ ३२ ॥ शिवलिङ्गं बिल्वपत्रं दुर्लभं हि चतुष्टयम् ॥ अहो बलवती माया यया शैवी महातिथिः ॥ ३३ ॥

करना और ब्राह्मणों का पूजन ॥ २९ ॥ या जो कुछ कर्म किया जाता है वह अमित फल को देता है और व्यतीपातादिक योगों में व सूर्य की संक्रान्तियों में ॥ ३० ॥ व महाप्रदोष की वेलाओं में शिवजी का पूजन मुक्तिदायक है इसके उपरान्त हे राजन्! मैं तुमसे एक मुक्तिदायिनी तिथि को कहता हूं ॥ ३१ ॥ कि जिसमें महाव्याध (बहेलिया) ने शिवजी के उत्तम स्थानको पाया है माघ महीने में जो महापवित्र कृष्णपक्ष की चौदसि है वह ॥ ३२ ॥ और शिवलिङ्ग व बिल्वपत्र ये चार वस्तुवें दुर्लभ हैं आश्चर्य है कि माया बलवती है जिससे शिवजी की महातिथि को ॥ ३३ ॥ मूढ़ मनुष्य उपवास नहीं करते हैं जैसे

कि गूंगे वेदत्रयी को नहीं पढ़ते हैं और उपवास, जागरण व शिवजी के समीप स्थिति ॥ ३४ ॥ और गोकर्णक्षेत्र मनुष्यों के लिये शिवलोक की सोपानपद्धति (ज़ीना) है हे राजन्! सुनिये कि मैं भी इस समय इस शिवतिथि का उपवास करके व बड़ा भारी उत्साह देखकर गोकर्णक्षेत्र से आया हूं इस शिवजी की तिथि में महोत्सव को देखनेवाले सब ॥ ३५ । ३६ ॥ चारों वर्णवाले महात्मा लोग सब देशों से आये थे और स्त्रिया, बालक व वृद्ध तथा चारों आश्रमों के निवासी लोग ॥ ३७ ॥ आकर देवेश शिवजी को देखकर कृतार्थता को प्राप्त हुए हैं इसके अनन्तर मैं भी और ये शिष्य व अन्य ऋषि

नोपोष्यते जनैर्मूढैर्महामूकैरिव त्रयी ॥ उपवासो जागरणं सन्निधिः परमेशितुः ॥ ३४ ॥ गोकर्णं शिवलोकस्य नृणां सोपानपद्धतिः ॥ शृणु राजन्नहमपि गोकर्णादधुनागतः ॥ ३५ ॥ उपास्यैनां शिवतिथिं विलोक्य च महोत्सवम् ॥ अस्यां शिवतिथौ सर्वे महोत्सवदिदृक्षवः ॥ ३६ ॥ आगताः सर्वदेशेभ्यश्चातुर्वर्ण्या महाजनाः ॥ स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च चतुराश्रमवासिनः ॥ ३७॥ आगत्य दृष्ट्वा देवेशं लेभिरे कृतकृत्यताम् ॥ अथाहमप्यमी शिष्या ऋषयश्च तथाऽपरे ॥ ३८ ॥ राजर्षयश्च राजेन्द्र सनकाद्याः सुरर्षयः ॥ स्नात्वा सर्वेषु तीर्थेषु समुपास्य महाबलम् ॥ ३९ ॥ लब्ध्वा च जन्मसाफल्यं प्रयाताः सर्वतोदिशम् ॥ अधुनाद्य नरेन्द्रेण जनकेन यियक्षुणा ॥ ४० ॥ निमन्त्रितोऽहं संप्राप्तो गोकर्णाच्छिवमन्दिरात् ॥ प्रत्यागमं किमप्यङ्ग दृष्ट्वाश्चर्यमहं पथि ॥ महानन्देन मनसा कृतार्थोऽस्मि महीपते ॥ १४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे गोकर्णमहिमानुवर्णनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २॥

लोग ॥ ३८ ॥ व हे राजेन्द्र ! राजर्षिलोग और सनकादिक देवर्षिलोग सब तीर्थों में नहाकर व महाबलजी की उपासना कर ॥ ३९ ॥ जन्म की सफलता को पाकर सब दिशाओं को चले गये और आज इस यज्ञ करने की इच्छावाले राजा जनक से ॥ ४० ॥ न्योता हुआ मैं गोकर्ण शिवमन्दिर से प्राप्त हुआ हूं व हे राजन्! मैं मार्ग में किसी आश्चर्य को देखकर बड़े आनन्द मन से आया व कृतार्थ होगया हूं ॥ १४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां गोकर्णमहिमानुवर्णननाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि गोकर्ण प्रभाव सन गइ शिवलोकहिं वृद्ध । सो तीजे अध्याय में कह्यो चरित्र समृद्ध ॥ राजा बोले कि हे ब्रह्मन् ! आपने मार्ग में कहां क्या आश्चर्य देखा है उसको मुझसे कहिये कि जिससे मैं कृतार्थता को प्राप्त होऊं ॥ १ ॥ गौतमजी बोले कि हे विशापते ! गोकर्ण से आते हुए मैंने किसी देश में दुपहर का समय होने पर निर्मल तड़ाग को पाया ॥ २ ॥ और उसमें जल को पीकर व मार्ग के परिश्रम को दूर कर मैं सचिक्कण व शीतल छाया वाले बरगद के नीचे बैठ गया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर थोडी दूर पै मैंने सूखते हुए मुखवाली और बहुत रोगों से दुःखित व दुर्बल आकारवाली बुड्ढी व

राजोवाच ॥ किं दृष्टं भवता ब्रह्मन्नाश्चर्यं पथि कुत्र वा ॥ तन्ममाख्याहि येनाहं कृतकृत्यत्वमाप्नुयाम् ॥ १ ॥ गौतम उवाच ॥ गोकर्णादहमागच्छन्कापि देशे विशाम्पते ॥ जाते मध्याह्नसमये लब्धवान्विमलं सरः ॥ २ ॥ तत्रोपस्पृश्य सलिलं विनीय च पथिश्रमम् ॥ सुस्निग्धशीतलच्छायं न्यग्रोधं समुपाश्रयम् ॥ ३ ॥ अथाविदूरे चाण्डालीं वृद्धामन्धां कृशाकृतिम् ॥ शुष्यन्मुखीं निराहारां बहुरोगनिपीडिताम् ॥ ४ ॥ कुष्ठव्रणपरीताङ्गीमुद्यत्कृमिकुलाकुलाम् ॥ पूयशोणितसंसक्तजरत्पटलसत्कटीम् ॥ ५ ॥ महायक्ष्मगलस्थेन कण्ठसंरोधविह्वलाम् ॥ विनष्टदन्तामव्यक्तां विलुठन्तीं मुहुर्मुहुः ॥ ६ ॥ चण्डार्ककिरणस्पृष्टखरोष्णरजसाप्लुताम् ॥ विण्मूत्रपूयदिग्धाङ्गीमस्रगन्धदुरासदाम् ॥ ७ ॥ कफरोगबहुश्वासश्लथन्नाडीबहुव्ययाम् ॥ विध्वस्तकेशावयवामपश्यं मरणोन्मुखीम् ॥ ८ ॥

अन्धी चाण्डाली को देखा ॥ ४ ॥ व कुष्ठ के घावों से घिरे अंगोंवाली व उठते हुए कीटगणों से संयुत तथा पीब व रक्त लगे हुए पुराने वस्त्र को कमर में पहने ॥ ५ ॥ व महायक्ष्मा के गले में स्थित होने से कंठरोध से विकल और नष्ट दातोंवाली व बार बार लोटती हुई ॥ ६ ॥ और प्रचण्ड सूर्यनारायण की किरणों के लगने से तीक्ष्ण व गरम धूलि से लपेटी व विष्ठा, मूत्र तथा पीब लगे हुए देहवाली और रक्त की दुर्गंध से दुर्धर्ष ॥ ७ ॥ और कफरोग से बहुत श्वास व शिथिल नाडी से बहुत व्यथावाली और अंगों में छिटके हुए केशोंवाली मरती हुई सी उस स्त्री को मैंने देखा ॥ ८ ॥ और वैसी पीड़ावाली उसको

देखकर मैं दया से संयुत हुआ और उसका मरण परखता हुआ मैं क्षण भर वहीं स्थित रहा ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त शिवगणों से लाये व किरणों से आकाशमार्ग को सींचते हुए से दिव्य विमान को मैंने देखा ॥ १० ॥ और सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि के तेजों के पींजरे की नाई उस विमान पै सूर्य के समान शिवगणों को मैंने देखा ॥ ११ ॥ और अर्धचन्द्रमा को भूषण किये तथा चन्द्रमा व कुंद के समान बहुत तेजवाले वे शिवगण त्रिशूल, खट्वाङ्ग, टंक, ढाल व तलवार को हाथों में लिये थे ॥ १२ ॥ और किरीट व कुंडल से शोभित तथा महानागों के कंकण से श्वेत व उत्तम लक्षणोंवाले चार शिवदूतों को मैंने

तादृग्व्यथां च तां वीक्ष्य कृपयाहं परिप्लुतः ॥ प्रतीक्षन्मरणं तस्याः क्षणं तत्रैव संस्थितः ॥ ९ ॥ अथान्तरिक्षप दवीं सिञ्चन्तमिव रश्मिभिः ॥ दिव्यं विमानमानीतमद्राक्षं शिवकिङ्करैः ॥ १० ॥ तस्मिन्रवीन्दुवह्नीनां तेजसामिव प ञ्जरे ॥ विमाने सूर्यसंकाशानपश्यं शिवकिङ्करान् ॥ ११ ॥ ते वै त्रिशूलखट्वाङ्गटङ्कचर्मासिपाणयः ॥ चन्द्रार्धभूषणाः सान्द्रचन्द्रकुन्दोरुवर्चसः ॥ १२ ॥ किरीटकुण्डलभ्राजन्महाहिवलयोज्ज्वलाः ॥ शिवानुगा मया दृष्टाश्चत्वारः शुभलक्षणाः ॥ १३ ॥ तानापतत आलोक्य विमानस्थान्सुविस्मितः ॥ उपसृत्यान्तिके वेगादपृच्छं गगने स्थितान् ॥ १४ ॥ नमोनमोवस्त्रिदशोत्तमेभ्यस्त्रिलोचनश्रीचरणानुगेभ्यः ॥ त्रिलोकरक्षाविधिमावहद्भ्यस्त्रिशूलचर्मासिगदाध रेभ्यः ॥ १५ ॥ विदिता हि मया यूयं महेश्वरपदानुगाः ॥ इयं वो लोकरक्षार्था गतिराहो विनोदजा ॥ १६ ॥ उत

देखा ॥ १३ ॥ और विमान पै स्थित उन आते हुए शिवगणों को देखकर मैं विस्मित हुआ व वेग से समीप जाकर मैंने आकाश में स्थित उन शिवगणों से पूछा ॥ १४ ॥ कि देवताओं में उत्तम व त्रिलोचनजी के श्रीचरण युगलों के अनुगामी आप लोगों के लिये नमस्कार है व त्रिलोक की रक्षाविधि को करने वाले और त्रिशूल, ढाल, तलवार व गदा को धारनेवाले तुमलोगों के लिये प्रणाम है ॥ १५ ॥ मैंने शिवजी के चरणानुगामी तुम लोगों को जान लिया क्या यह गति लोकों की रक्षा के लिये है या क्रीड़ा से उपजी हुई गति है ॥ १६ ॥ अथवा सब लोगों के पापसमूह के जीतने के लिये तुमलोगों ने उद्योग किया

है तुमलोग मुझसे दया से कहो कि जिस लिये यहां आये हो ॥ १७ ॥ शिवदूत बोले कि यह आगे मरती हुई सी जो बुड्ढी चाण्डाली देख पडती है स्वामी से आज्ञा पाये हुए हम लोग इसको लेने के लिये आये हैं ॥ १८ ॥ उन शिवदूतों से ऐसा कहने पर हाथों को जोड़ कर स्थित व विस्मय से संयुत चित्तवाले मैंने फिर भी उनसे पूछा ॥ १९ ॥ कि अहो यज्ञमण्डप को कुतिया की नाईं यह पापिनी व भयंकरी चाण्डाली कैसे दिव्य विमान पै चढ़ने के योग्य है ॥ २० ॥ जन्म से लगा कर अशुद्ध व पापों की अनुगामिनी इस दुष्ट आचरणवाली पापिनी को क्यों शिवलोक को लिये जाते हो ॥ २१ ॥ इसके

सर्वजनाघौघविजयाय कृतोद्यमाः ॥ ब्रूत कारुण्यतो मह्यं यस्माद्यूयमिहागताः ॥ १७ ॥ शिवदूता ऊचुः ॥ एषाग्रे दृश्यते वृद्धा चाण्डाली मरणोन्मुखी ॥ एतामानेतुमायाताः संदिष्टाः प्रभुणा वयम् ॥ १८ ॥ इत्युक्ते शिवदूतैस्तैरपृच्छं पुनरप्यहम् ॥ विस्मयाविष्टचित्तस्तान्कृताञ्जलिरवस्थितः ॥ १९ ॥ अहो पापीयसी घोरा चाण्डाली कथमर्हति ॥ दिव्यं विमानमारोढुं शुनीवाध्वरमण्डलम् ॥ २० ॥ आजन्मतोऽशुचिप्रायां पापां पापानुगामिनीम् ॥ कथमेनां दुराचारां शिवलोकं निनीषथ ॥ २१ ॥ अस्या नास्ति शिवज्ञानं नास्ति घोरतरं तपः ॥ सत्यं नास्ति दया नास्ति कथमेनां निनीषथ ॥ २२ ॥ पशुमांसकृताहारां वारुणीपूरितोदराम् ॥ जीवहिंसारतां नित्यं कथमेनां निनीषथ ॥ २३ ॥ न च पञ्चाक्षरी जप्ता न कृतं शिवपूजनम् ॥ न ध्यातो भगवाञ्छम्भुः कथमेनां निनीषथ ॥ २४ ॥ नोपोषिता शिवतिथिर्न कृतं शिवपूजनम् ॥ भूतसौहृदं न जानाति न च बिल्वशिवार्पणम् ॥ नेष्टापूर्तादिकं वापि कथ

शिवजी का ज्ञान नहीं है व बहुत कठिन तप नहीं है और सत्य व दया नहीं है इसको क्यों लिये जाते हो ॥ २२ ॥ और पशुओं का मांस खानेवाली व मदिरा से भरे हुए पेटवाली तथा नित्य-जीवहिंसा में परायण इसको क्यों लिये जाते हो ॥ २३ ॥ इसने शिवजी का पचाक्षर मंत्र नहीं जपा व शिवजी का पूजन नहीं किया और भगवान् शिवजी का ध्यान नहीं किया है इसको क्यों लिये जाते हो ॥ २४ ॥ और इसने शिवजी की तिथि का उपवास नहीं किया व शिवपूजन

नहीं किया और यह प्राणियों की मैत्री को नहीं जानती है व शिवजी के ऊपर बिल्वपत्र को इसने नहीं चढ़ाया है और इष्टापूर्त्तादिक कर्म को नहीं किया है तो क्यों इसको लिये जाते हो ॥ २५ ॥ और तीर्थ नहीं नहाये गये व दान नहीं किये गये व व्रत नहीं किये गये तो इसको क्यों लियेजातेहो ॥ २६ ॥ और संभाषण आदिकों में क्या कहना है दर्शन में भी यह त्याग करने योग्य है तो सत्संग से रहित व चण्डा इस स्त्री को क्यों लिये जाते हो ॥ २७ ॥ या यदि अन्य जन्म में इकट्ठा किया हुआ इसका कुछ पुण्य है तो कैसे कुष्ठरोग से व कीटों से दुःखित होती ॥ २८ ॥ अहो यह ईश्वरका चरित्र प्राणियों से नहीं जाना जासक्ता

मेनां निनीषथ ॥ २५ ॥ न च स्नातानि तीर्थानि न दानानि कृतानि च ॥ न च व्रतानि चीर्णानि कथमेनां निनीषथ ॥ २६ ॥ ईक्षणे परिहर्त्तव्या किमु संभाषणादिषु ॥ सत्सङ्गरहितां चण्डां कथमेनां निनीषथ ॥ २७ ॥ जन्मान्तरार्जितं किंचिदस्याः सुकृतमस्ति वा ॥ तत्कथं कुष्ठरोगेण कृमिभिः परिभूयते ॥ २८ ॥ अहो ईश्वरचर्येयं दुर्विभाव्या शरीरिणाम् ॥ पापात्मानोऽपि नीयन्ते कारुण्यात्परमं पदम् ॥ २९ ॥ इत्युक्तास्ते मया दूता देवदेवस्य शूलिनः ॥ प्रत्यूचुर्मामथ प्रीत्या सर्वसंशयभेदिनः ॥ ३० ॥ शिवदूता ऊचुः ॥ ब्रह्मन्शृणु महदाश्चर्यं शृणु कौतूहलं यदि ॥ इमामुद्दिश्य चाण्डालीं यदुक्तं भवताधुना ॥ ३१ ॥ आसीदियं पूर्वभवे काचिद्ब्राह्मणकन्यका ॥ सुमित्रानामसंपूर्णसोमबिम्बसमानना ॥ ३२ ॥ उत्फुल्लमल्लिकादामसुकुमाराङ्गलक्षणा ॥ कैकेयद्विजमुख्यस्य कस्यचित्तनया सती ॥ ३३ ॥

है कि पापी भी मनुष्य दया से परम पद में प्राप्त किये जाते हैं ॥ २९ ॥ मुझसे ऐसा कहे हुए त्रिशूलधारी देवदेव शिवजी के संशयभेदी दूतोंने मुझसे प्रीति से कहा ॥ ३० ॥ शिवदूत बोले कि हे ब्रह्मन्! इस समय आपने इस चाण्डाली को उद्देश कर जो कहा है और यदि कौतुक है तो बड़े भारी आश्चर्य को सुनिये ॥ ३१ ॥ कि पूर्व जन्म में पूर्ण चन्द्रमा के बिम्ब के समाम मुखवाली यह सुमित्रा नामक कोई ब्राह्मण की कन्या हुई है ॥ ३२ ॥ और फूले हुए चमेली के समान सुकुमार अंग लक्षणोंवाली यह कैकेय नामक किसी मुख्य ब्राह्मण की कन्या हुई है ॥ ३३ ॥ व सब लक्षणों से संयुत दूसरी रति की मूर्ति की नाईं

पिता के घरमें बढ़ती हुई उसको देखकर लोग विस्मित हुए ॥ ३४ ॥ और बन्धुवों से बहुत ही प्यार कीगई व दिन दिन बढ़ती हुई वह धीरे धीरे कामदेव के बड़े भारी धनुष की नाईं युवावस्था को प्राप्त हुई ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर पिता समेत बन्धुगणों ने उसको किसी द्विजपुत्र के लिये विधि से देदिया ॥ ३६ ॥ और नवीन यौवन से शोभित व उत्तम आचरणवाला तथा बन्धुओं से संयुत उसने पति को पाकर कुछ समय तक रमण किया ॥ ३७ ॥ इसके उपरान्त हे मुने ! बड़े कठिन रोग से विकल उसका रूप व यौवन से सुन्दर भी पति काल के वश से मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ व पति के मरने पर दुःख से जले हृदय-

तां सर्वलक्षणोपेतां रतेर्मूर्तिमिवापराम् ॥ वर्द्धमानां पितुर्गेहे वीक्ष्यासन्विस्मिता जनाः ॥ ३४ ॥ दिने दिने वर्धमाना बन्धुभिर्लालिता भृशम् ॥ सा शनैर्यौवनं भेजे स्मरस्येव महाधनुः ॥ ३५ ॥ अथ सा बन्धुवर्गैश्च समेतेन कुमारिका ॥ पित्रा प्रदत्ता कस्मैचिद्विधिना द्विजसूनवे ॥ ३६ ॥ सा भर्त्तारमनुप्राप्य नवयौवनशालिनी ॥ कंचित्कालं शुभाचारा रेमे बन्धुभिरावृता ॥ ३७ ॥ अथ कालवशात्तस्याः पतिस्तीव्ररुजार्दितः ॥ रूपयौवनकान्तोपि पञ्चत्वमगमन्मुने ॥ ३८ ॥ मृते भर्त्तरि दुःखेन विदग्धहृदया सती ॥ उवास कतिचिन्मासान्सुशीला विजितेन्द्रिया ॥ ३९ ॥ अथ यौवनभारेण जृम्भमाणेन नित्यशः ॥ बभूव हृदयं तस्याः कन्दर्पपरिकम्पितम् ॥ ४० ॥ सा गुप्ता बन्धुवर्गेण शासितापि महोत्तमैः ॥ न शशाक मनो रोद्धुं मदनाकृष्टमङ्गना ॥ ४१ ॥ सा तीव्रमन्मथाविष्टा रूपयौवनशालिनी ॥ विधवापि विशेषेण जारमार्गरताभवत् ॥ ४२ ॥ न ज्ञाता केनचिदपि जारिणीति विच

वाली होती हुई इन्द्रियों को जीते वह सुन्दर शीलवती स्त्री कुछ महीनों तक वहां बसती भई ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त नित्य बढ़ते हुए यौवन के भार से उसका हृदय कामदेव से कंपित हुआ ॥ ४० ॥ व बन्धुगण से रक्षित और महासज्जनों से शिक्षित भी वह स्त्री कामदेव से खींचे हुए मन को रोंकने के लिये न समर्थ हुई ॥ ४१ ॥ और तीव्र कामदेव से संयुत वह रूप व यौवन से शोभित विधवा भी स्त्री जारमार्ग में रत हुई याने कुलटा होगई ॥ ४२ ॥ और उस चतुर स्त्री

को कोई यह नहीं जाना कि यह कुलटा है और उस दुष्टा स्त्री ने कुछ समय तक अपने दुष्ट आचरण को छिपाया ॥ ४३ ॥ और मेघों के समान श्याम स्तनों वाली व विटों (कामी जनों) से दूषित उस स्त्री को समय से बन्धुवर्ग ने भी गर्भ के अभिलाषों से घिरी हुई जाना ॥ ४४ ॥ व इस प्रकार महाक्लेश से डरा हुआ बन्धुवर्ग बड़ी कठिन चिन्ता को प्राप्त हुआ कि स्त्रियां काम से नाश होजाती हैं व ब्राह्मण हीन की सेवा से नष्ट होजाते हैं ॥ ४५ ॥ और राजा ब्राह्मण के दण्ड से व संन्यासी भोगों के संग्रह से नाश होजाते हैं वैसेही कुत्ता से खाया हुआ अन्न व मदिरा से मिश्रित दूध नाश होजाता है ॥ ४६ ॥ और कुष्ठरोग से व्याप्त रूप

क्षणा ॥ जुगूहात्मदुराचारं कंचित्कालमसत्तमा ॥ ४३ ॥ तां दोहदसमाक्रान्तां घननीलमुखस्तनीम् ॥ कालेन ब न्धुवर्गोपि बुबोध विटदूषिताम् ॥ ४४ ॥ इति भीतो महाक्लेशाच्चिन्तां लेभे दुरत्ययाम् ॥ स्त्रियः कामेन नश्यन्ति ब्राह्मणा हीनसेवया ॥ ४५ ॥ राजानो ब्रह्मदण्डेन यतयो भोगसंग्रहात् ॥ लीढं शुना तथैवान्नं सुरया वार्पितं पयः ॥ ४६ ॥ रूपं कुष्ठरुजाविष्टं कुलं नश्यति कुस्त्रिया ॥ इति सर्वे समालोच्य समेताः पतिसोदराः ॥ ४७ ॥ तत्यजुर्गो त्रतो दूरं गृहीत्वा सकचग्रहम् ॥ सघटोत्सर्गमुत्सृष्टा सा नारी सर्वबन्धुभिः ॥ ४८ ॥ विचरन्ती च शूद्रेण रममाणा रतिप्रिया ॥ सा ययौ स्त्री बहिर्ग्रामादृष्टा शूद्रेण केनचित् ॥ ४९ ॥ स तां दृष्ट्वा वरारोहां पीनोन्नतपयोधराम् ॥ गृहं नि नाय साम्ना च विधवां शूद्रनायकः ॥ सा नारी तस्य महिषी भूत्वा तेन दिवानिशम् ॥ ५० ॥ रममाणा क्वचिद्देशे

व दुष्टा स्त्री से वंश नाश होजाता है इस प्रकार पति के सगे सब भाइयों ने मिलकर विचार कर ॥ ४७ ॥ बालों को पकड कर वंश से दूर छोड दिया और सब बन्धुवों ने अशुचि घड़े की नाईं उस स्त्री को त्याग दिया ॥ ४८ ॥ और घूमती हुई वह रति के समान प्यारी स्त्री किसी शूद्र से विहार करने लगी और गाँव के बाहर गई व किसी शूद्र ने उसको देखा ॥ ४९ ॥ और मोटे व ऊंचे स्तनोंवाली उस सुन्दर कटिवाली विधवा स्त्री को देखकर वह शूद्रनायक प्रिय वचन से घर को ले आया और वह स्त्री उसकी भार्या होकर उसके साथ दिन रात ॥ ५० ॥ रमण करनेलगी व गृहप्यारी उसने किसी स्थान में निवास किया

और वहा मास को खानेवाली उसने नित्य मदिरा को पिया ॥ ५१ ॥ और शूद्र से रमण करती हुई उस रतिप्रिया ने पुत्र को पाया व किसी समय पति के कहीं चले जाने पर मदिरा को पीकर उस ॥ ५२ ॥ मदिरा के नशेसे विकल स्त्री ने मांसभोजन की इच्छा किया इसके उपरान्त बाहर गोंड़ा मे जहां गौवों समेत भेंड़ा बँधे थे ॥ ५३ ॥ वहां बडे अन्धकार में वह सन्ध्या के समय तलवार को लेकर गई और नशे के प्रवेश से न विचार कर उस मांसप्रिया स्त्री ने भेंडा की बुद्धि से ॥ ५४ ॥ रात में एक चिल्लाते हुए गऊ के बछड़े को मारडाला और उस दुष्टा स्त्रीने मरे हुए गऊ के बछडे को घर लाकर व जान कर ॥ ५५ ॥ डरी

व्यवसद् गृहवल्लभा ॥ तत्र सा पिशिताहारा नित्यमापीतवारुणी ॥ ५१ ॥ लेभे सुतं च शूद्रेण रममाणा रतिप्रिया ॥ कदाचिद्भर्त्तरि क्वापि याते पीतसुरा तु सा ॥ ५२ ॥ इयेष पिशिताहारं मदिरामदविह्वला ॥ अथ मेषेषु बद्धेषु गोभिः सह बहिर्व्रजे ॥ ५३ ॥ ययौ कृपाणमादाय सा तमोन्धे निशामुखे ॥ अविमृश्य मदावेशान्मेषबुद्ध्यामिषप्रिया ॥ ५४ ॥ एकं जघान गोवत्सं क्रोशन्तं निशि दुर्भगा ॥ निहतं गृहमानीय ज्ञात्वा गोवत्समङ्गना ॥ ५५ ॥ भीता शिवशिवेत्याह केनचित्पुण्यकर्मणा ॥ सा मुहूर्त्तमिति ध्यात्वा पिशितासवलालसा ॥ ५६ ॥ छित्त्वा तमेव गोवत्सं चकाराहारमीप्सितम् ॥ गोवत्सार्धशरीरेण कृताहाराथ सा पुनः ॥ ५७ ॥ तदर्धदेहं निक्षिप्य बहिश्चुक्रोश कैतवात् ॥ अहो व्याघ्रेण भग्नोऽयं जग्धो गोवत्सको व्रजे ॥ ५८ ॥ इति तस्याः समाक्रन्द्रः सर्वगेहेषु शुश्रुवे ॥ अथ सर्वे शूद्रजनाः समागम्यान्तिके स्थिताः ॥ ५९ ॥ हतं गोवत्समालोक्य व्याघ्रेणेति शुचं ययुः ॥ गतेषु तेषु सर्वेषु व्युष्टायां

हुई उसने किसी पुण्यकर्म से शिव शिव ऐसा कहा और मास व मदिरा की इच्छावाली उसने कुछ समय तक विचार कर ॥ ५६ ॥ और उसी गऊके बछड़े को काटकर प्रिय भोजन किया इसके उपरान्त गऊके बछड़ेके आधे शरीर से भोजन करके फिर वह ॥ ५७ ॥ उसके आधे शरीर को बाहर फेंक कर छलसे चिल्लानेलगी कि अहो व्याघ्रने इस गऊके बछडे को व्रजमें मारडाला व खालिया ॥ ५८ ॥ इस प्रकार उसका रोनेका शब्द सब घरोंमें सुन पड़ा इसके उपरान्त सब शूद्र लोग आकर समीप स्थित हुए ॥ ५९ ॥ और व्याघ्रसे मारे हुए गऊके बछड़े को देखकर शोच को प्राप्त हुए तदनन्तर रात्रिमें उन सबों के जाने पर व

प्रातःकाल होने पर ॥ ६० ॥ उसके पतिने घर को आकर घरमें वैश्य मनुष्य को देखा इस प्रकार बहुत समय बीतने पर वह शूद्र की स्त्री ॥ ६१ ॥ कालके वश को प्राप्त हुई और यमराजके मन्दिर में गई व यमराजने भी उसके पहले के कर्म को देखकर ॥ ६२ ॥ नरकनिवास से निवृत्त करके चाण्डाल जातिवाली किया और यमपुरसे भ्रष्ट होकर वह भी चाण्डालीके गर्भ में प्राप्त हुई ॥ ६३ ॥ तदनन्तर शान्त अग्नि की नाईं काली व जन्मसे अंधी हुई और उसका पिता भी कोई चाण्डाल किसी देश में स्थित था ॥ ६४ ॥ उसने वैसी भी उस कन्या को दया से कुत्ते से आस्वादित व दुर्गंधयुक्त तथा अभोजनीय निन्दित अन्नसे पोषण

च ततो निशि ॥ ६० ॥ तद्भर्ता गृहमागत्य दृष्टवान्गृहविड्नरम् ॥ एवं बहुतिथे काले गते सा शूद्रवल्लभा ॥ ६१ ॥ कालस्य वशमापन्ना जगाम यममन्दिरम् ॥ यमोपि धर्ममालोक्य तस्याः कर्म च पौर्विकम् ॥ ६२ ॥ निर्वर्त्य निरयावासाच्चक्रे चण्डालजातिकाम् ॥ सापि भ्रष्टा यमपुराच्चाण्डालीगर्भमाश्रिता ॥ ६३ ॥ ततो बभूव जात्यन्धा प्रशान्ताङ्गारमेचका ॥ तत्पिता कोपि चाण्डालो देशे कुत्रचिदास्थितः ॥ ६४ ॥ तां तादृशीमपि सुतां कृपया पर्यपोषयत् ॥ अभोज्येन कदन्नेन शुना लीढेन पूतिना ॥ ६५ ॥ अपेयैश्च रसैर्मात्रा पोषिता सा दिने दिने ॥ जात्यन्धा सापि कालेन बाल्ये कुष्ठरुजार्दिता ॥ ६६ ॥ ऊढा न केनचिद्वापि चाण्डालेनातिदुर्भगा ॥ अतीतबाल्ये सा काले विध्वस्तपितृमातृका ॥ ६७ ॥ दुर्भगेति परित्यक्ता बन्धुभिश्च सहोदरैः ॥ ततः क्षुधार्दिता दीना शोचन्ती विगतेक्षणा ॥ ६८ ॥ गृहीतयष्टिः कृच्छ्रेण संचचाल सलोष्टिका ॥ पत्तनेष्वपि सर्वेषु याचमाना दिने दिने ॥ ६९ ॥ चाण्डालो

किया ॥ ६५ ॥ और न पीने योग्य रसों से प्रतिदिन माता से पोषण कीहुई वह जाति से अन्ध भी समय से बाल्यावस्थामें कुष्ठरोग से विकल हुई ॥ ६६ ॥ और बड़ी दुर्भाग्यवती उसको किसी भी चाण्डाल ने नहीं ब्याहा और बाल्यावस्था बीतने पर समय में जब उसके माता, पिता मरगये ॥ ६७ ॥ तब सगे भाइयों ने उसको इस कारण छोड़ दिया कि यह अभागिनी है तदनन्तर नेत्रों से रहित व क्षुधासे विकल शोचती हुई वह दीन चाण्डाली ॥ ६८ ॥ दण्डे को लेकर दुःख से चली और सब नगरों में प्रतिदिन मागती हुई उस चाण्डाली ने ॥ ६९ ॥ चाण्डालों के जूंठे भोजनसे जठराग्नि को तृप्त किया इस प्रकार बड़े दुःख से

बहुतसा समय व्यतीत कर ॥ ७० ॥ वृद्धता से संयुत सब अंगोंवाली उसने बड़े कठिन दुःख को पाया और किसी समय अन्न, पान व वसन से रहित उसने आने वाली शिवतिथि (शिवरात्रि) में जाते हुए मार्ग में प्राप्त महात्मा लोगों को जाना और उस देवयात्रा में देश देशांतर से जानेवाले ॥ ७१ । ७२ ॥ स्त्रियों समेत व अग्निहोत्रों समेत महात्मा ब्राह्मणों के व हाथी, रथ और घोड़ों समेत तथा रनिवासों समेत और सवारी व छत्रादिकों से शोभित तथा परिवार समेत शब्दवाले राजाओं के और अन्य हज़ारों वैश्य, शूद्र व संकरवर्णवाले ॥ ७३ । ७४ ॥ हँसते, गाते, नाचते व दौड़ते हुए तथा सूंघते, पीते व इच्छा से जाते व

च्छिष्टपिण्डेन जठराग्निमतर्पयत् ॥ एवं कृच्छ्रेण महता नीत्वा सुबहुलं वयः ॥७० ॥ जरया ग्रस्तसर्वाङ्गी दुःखमाप दुरत्ययम् ॥ निरन्नपानवसना सा कदाचिन्महाजनान् ॥ ७१ ॥ आयास्यन्त्यां शिवतिथौ गच्छतो बुबुधेऽध्व गान् ॥ तस्यां तु देवयात्रायां देशदेशान्तयायिनाम् ॥ ७२ ॥ विप्राणां साग्निहोत्राणां सस्त्रीकाणां महात्मनाम् ॥ राज्ञां च सावरोधानां सहस्तिरथवाजिनाम् ॥ ७३ ॥ सपरीवारघोषाणां यानच्छत्रादिशोभिनाम् ॥ तथान्येषां च विट्शूद्र संकीर्णानां सहस्रशः ॥ ७४ ॥ हसतां गायतां कापि नृत्यतामथ धावताम् ॥ जिघ्रतां पिबतां कामाद्गच्छतां प्रतिग र्जताम् ॥ ७५ ॥ संप्रयाणे मनुष्याणां संभ्रमः सुमहानभूत् ॥ इति सर्वेषु गच्छत्सु गोकर्णं शिवमन्दिरम् ॥ ७६ ॥ पश्यन्ति दिविजाः सर्वे विमानस्थाः सकौतुकाः ॥ अथेयमपि चाण्डाली वसनाशनतृष्णया ॥ ७७ ॥ महा जनान्याचयितुं चचाल च शनैःशनैः ॥ करावलम्बेनान्यस्याः प्राग्जन्मार्जितकर्मणा ॥ दिनैः कतिपयैर्यान्ती गोकर्णक्षेत्रमाययौ ॥ ७८ ॥ ततो विदूरे मार्गस्य निषण्णा विवृताञ्जलिः ॥ याचमाना मुहुः पान्थानन्नभाषे

गर्जते हुए ॥ ७५ ॥ मनुष्यों की यात्रामें बड़ा भारी संभ्रम हुआ इस प्रकार गोकर्ण शिवमंदिर को सबों के जाते हुए ॥ ७६ ॥ विमानों पै बैठे हुए कौतुक समेत सब देवता लोग देखते थे और यह चाण्डाली भी वसन, भोजन के लालच से ॥ ७७ ॥ महाजनों से मागने के लिये धीरे धीरे चली और पूर्वजन्म में इकट्ठाकिये हुए कर्म से अन्य स्त्री के हाथ को पकड़कर जाती हुई कुछ दिनों में गोकर्णक्षेत्र को आई ॥ ७८ ॥ तदनन्तर मार्ग के समीपही वह हाथों को फैलाकर बैठगई और

पथिकों से बारबार मांगती हुई वह दीनवचन को कहती थी ॥ ७६ ॥ कि हे लोगो ! पूर्वजन्म में इकट्ठा किये हुए पापसमूहों से पीडित मुझको केवल भोजन के दान से दया कीजिये ॥ ८० ॥ हे लोगो ! बहुत दुःखित जनों के रक्षक व उत्तम आशिषों के देनेवाले तथा बहुत पुण्यों के करनेवाले तुमलोग दया करो ॥ ८१ ॥ हे लोगो ! वसन व भोजन से रहित तथा पृथ्वी में पड़ी और बड़ी धूलि में डूबी हुई मेरे ऊपर दया कीजिये ॥ ८२ ॥ हे लोगो ! बडे भारी जाड व घाम से विकल तथा महारोग से पीड़ित मुझ बुड्ढी अन्धी के ऊपर दया कीजिये ॥ ८३ ॥ हे लोगो ! बहुत दिनों के उपवास से जली हुई और जठराग्नि

कृपणं वचः ॥७६॥प्राग्जन्मार्जितपापौघैः पीडितायाश्चिरंमम॥आहारमात्रदानेन दयां कुरुत भो जनाः॥८०॥त्रातारः परमार्तानां दातारः परमाशिषाम् ॥ कर्त्तारो बहुपुण्यानां दयां कुरुत भो जनाः ॥८१॥ वसनाशनहीनायां स्वपितायां महीतले॥ महापांसुनिमग्नायां दयां कुरुत भो जनाः ॥ ८२ ॥ महाशीतातपार्त्तायां पीडितायां महारुजा ॥ अन्धायां मयि वृद्धायां दयां कुरुत भो जनाः ॥ ८३ ॥ चिरोपवासदीप्तायां जठराग्निविवर्धनैः ॥ सन्दह्यमानसर्वाङ्ग्यां दयां कुरुत भो जनाः ॥ ८४ ॥ अनुपार्जितपुण्यायां जन्मान्तरशतेष्वपि ॥ पापायां मन्दभाग्यायां दयां कुरुत भो जनाः ॥ ८५ ॥ एवमभ्यर्थयन्त्यास्तु चाण्डाल्याः प्रसृतेऽञ्जलौ ॥ एकः पुण्यतमः पान्थः प्राक्षिपद्बिल्वमञ्जरीम् ॥ ८६ ॥ तामञ्जलौ निपतितां सा विमृश्य पुनः पुनः ॥ अभक्ष्येत्येव मत्वाथ दूरे प्राक्षिपदातुरा ॥ ८७ ॥ तस्याः करेण निर्मुक्ता रात्रौ सा बिल्वमञ्जरी ॥ पपात कस्यचिद्दिष्ट्या शिवलिङ्गस्य मस्तके ॥ ८८ ॥ सैवं शिवचतुर्दश्यां

के बढ़ने से जलते हुए सब अंगोंवाली मेरे ऊपर दया कीजिये ॥ ८४ ॥ हे लोगो ! सैकड़ों जन्मों में भी पुण्य न इकट्ठा करनेवाली व मंदभागिनी मुझ पापिनी के ऊपर दया कीजिये ॥ ८५ ॥ इस प्रकार मांगती हुई चाण्डालीकी फैली हुई अंजली में एक अत्यन्त पुण्यकारी पथिक ने बिल्व की मंजरी को फेंकदिया ॥ ८६ ॥ और अंजली में गिरी हुई उस मंजरीको बारबार विचार कर उस दुःखित चाण्डाली ने न खाने योग्य जानकर दूर फेंकदिया ॥ ८७ ॥ और रात्रि में उसके हाथ से छूटी हुई वह बिल्व मंजरी किसी शिवलिंग के मस्तक पै गिरपड़ी ॥ ८८ ॥ और पथिक लोगों से बारबार मांगती हुई भी उसने शिव चतुर्दशी की रात्रि मे दैवयोग

से कुछ नहीं पाया ॥ ८९ ॥ और वहां इसने भद्रकालीजी के पीछे कुछ उत्तर ओर उसके आधे दूर पै समीपही स्थान में उस रात्रि को निवास किया ॥ ९० ॥ तदनन्तर प्रातःकाल में आशारहित व बड़े शोक से सयुत यह उदासीन चाण्डाली अकेली अपने देशके लिये धीरे धीरे लौटी ॥ ९१ ॥ और बहुत दिनों के उपाससे पग पग पै गिरती व थकी हुई यह बहुत ही विकल चाण्डाली बहुत रोगसे विकल होकर चिल्लाती व कांपती थी ॥ ९२ ॥ व सूर्य के ताप से जलती हुई तथा नंगे शरीरवाली यह दण्ड समेत चाण्डाली इतनी भूमि को नांघकर मूर्च्छित होकर गिरपड़ी ॥ ९३ ॥ इसके उपरान्त दयारूपी अमृत के समुद्र जगदीश्वर शिवजी

रात्रौ पान्थजनान्मुहुः ॥ याचमानापि यत्किंचिन्न लेभे दैवयोगतः ॥ ८९ ॥ तत्रोषितानया रात्रिर्भद्रकाल्यास्तु पृष्ठतः ॥ किंचिदुत्तरतः स्थानं तदर्धेनातिदूरतः ॥ ९० ॥ ततःप्रभाते भ्रष्टाशा शोकेन महताप्लुता ॥ शनैर्निववृते दीना स्वदेशायैव केवला ॥ ९१ ॥ श्रान्ता चिरोपवासेन निपतन्ती पदे पदे ॥ क्रन्दन्ती बहुरोगार्ता वेपमाना भृशातुरा ॥ ९२ ॥ दह्यमानार्कतापेन नग्नदेहा सयष्टिका ॥ अतीत्यैतावतीं भूमिं निपपात विचेतना ॥ ९३ ॥ अथ विश्वेश्वरः शम्भुः करुणामृतवारिधिः ॥ एनामानयतेत्यस्मान्युयुजे सविमानकान् ॥ ९४ ॥ एषा प्रवृत्तिश्चाण्डाल्यास्तवेह परिकीर्त्तिता ॥ तथा सन्दर्शिता शम्भोः कृपणेषु कृपालुता ॥ ९५ ॥ कर्मणः परिपाकोत्थां गतिं पश्य महामते ॥ अधमापि परं स्थानमारोहति निरामयम् ॥ ९६ ॥ यदेतया पूर्वभवे नान्नदानादिकं कृतम् ॥ क्षुत्पिपासादिभिः क्लेशैस्तस्मादिह निपीड्यते ॥ ९७ ॥ यदेषा मदवेगान्धा चक्रे पापं महोल्बणम् ॥ कर्मणा तेन जात्यन्धा बभू

ने इसको लाइये इस प्रकार विमान समेत हमलोगों को आज्ञा दिया ॥ ९४ ॥ तुमसे इस विषय में यह चाण्डाली का वृत्तान्त कहा गया और दीनों के ऊपर शिवजी की दयालुता दिखाई गई ॥ ९५ ॥ हे महामते ! कर्म के फल से उपजी हुई गति को देखिये कि नीच चाण्डाली भी व्याधिरहित स्थान पै चढ़ती है ॥ ९६ ॥ और जिस लिये इसने पूर्वजन्म में अन्न दानादिक नहीं किया है उस कारण यह इस जन्ममें क्षुधा व प्यासादिक क्लेशों से पीड़ित होतीहै ॥ ९७ ॥ और जो मद के

वेग से अन्धी इसने बडा उग्र पाप कियाहै उस कर्मसे यह इसी जन्म में अन्धी हुई ॥ ९८ ॥ और गऊ के बछडाको जानकर भी इसने जो पहले खालिया उस कर्म से इस जन्म में यह निन्दित चाण्डाली हुई ॥ ९९ ॥ और जो यह उत्तम मार्ग को छोडकर पहले जारमार्ग में परायण हुई उस किसी पाप से दुराचारिणी व दुर्भाग्यवती हुई ॥ १०० ॥ और पहले विधवा भी मद से संयुत इसने जो जार (परपति) से आलिंगन किया उस बड़े भारी पाप से बहुत कुष्ठ के घावों से सयुत हुई ॥ १ ॥ और जो कामसे विकल इसने अपनी इच्छा से पूर्वजन्म में शूद्रके साथ रमण किया है उस पाप से महारक्त, पीब व कीटों से पीडित होती है ॥ २ ॥

वात्रैव जन्मनि ॥ ९८ ॥ अपि विज्ञाय गोवत्सं यदेषाऽभक्षयत्पुरा ॥ कर्मणा तेन चाण्डाली बभूवेह विगर्हिता ॥ ९९ ॥ यदेषार्यपथं हित्वा जारमार्गरता पुरा ॥ तेन पापेन केनापि दुर्वृत्ता दुर्भगापि वा ॥ १०० ॥ यदाश्लिक्षन् मदाविष्टा जारेण विधवा पुरा ॥ तेन पापेन महता बहुकुष्ठव्रणान्विता ॥ १ ॥ कामार्त्ता यदियं स्वैरं शूद्रेण रमिता पुरा ॥ महासृक्पूयकृमिभिः पीडयते तेन पाप्मना ॥ २ ॥ सुव्रतानि न चीर्णानि नेष्टापूर्तादिकं कृतम् ॥ सर्वभोगविहीनेयं दूयते तेन पाप्मना ॥ ३ ॥ यदेतया पूर्वभवे सुरा पीता विमूढया ॥ महायक्ष्मार्तिहृच्छूलैः पीडयते तेन पाप्मना ॥ ४ ॥ अत्रैव सर्वमर्त्येषु पापचिह्नानि कृत्स्नशः ॥ लक्ष्यन्ते मुनिशार्दूल सविवेकैर्महात्मभिः ॥ ५ ॥ अत्र ये बहुरोगार्त्ता ये पुत्रधनवर्जिताः ॥ ६ ॥ ये च दुर्लक्षणक्लिष्टा याचका विगतह्रियः ॥ वासोन्नपानशयनभूषणाभ्यञ्जनादिभिः ॥ ७ ॥ हीना विरूपा निर्विद्या विकलाङ्गाः कुभोजनाः ॥ ये दुर्भाग्या निन्दिताश्च ये चान्ये परसेव

और उत्तम व्रत नहीं किये, गये व इष्टापूर्तादिक कर्म नहीं किया गयाहै उस पाप से यह सब सुखों से रहित है ॥ ३ ॥ व पूर्वजन्म में इस मूर्खिणी स्त्री ने जो मदिरा पिया है उस पाप से महायक्ष्मा के दुःख से व हृदय के शूलों से पीडित होती है ॥ ४ ॥ हे मुनिशार्दूल ! ज्ञान समेत मुनिलोग यहीं पर सब मनुष्यों में सम्पूर्ण पापों के चिह्नों को देखते हैं ॥ ५ ॥ इस संसार में जो बहुत रोगों से विकल हैं और जो पुत्र व धन से रहित हैं ॥ ६ ॥ और जो दुष्टलक्षणों से क्लेशित तथा याचक व लज्जारहित हैं और जो वसन, अन्न, पान, पलँग, भूषण व उबटन आदिकों से ॥ ७ ॥ रहित हैं और जो कुरूप व विद्यारहित

तथा विकल अंगोंवाले व निन्दित भोजनोंवाले हैं और जो दुर्भाग्यवान्, निन्दित व जो अन्य दूसरों के नौकर है ॥ ८ ॥ ये सब पूर्वजन्म में बडे पापकारी हुए हैं इस प्रकार यत्न से विचारकर व संसार के लोगों की स्थिति को देखकर ॥ ९ ॥ विद्वान् पाप को नहीं करता है और यदि करै तो वह आत्मघाती होता है यह मनुष्य का शरीर बहुतसे कर्मों का एकही पात्र है ॥ १० ॥ इस कारण सदैव मनुष्य उत्तम कर्म को करै व दुष्ट कर्मको सदा त्याग करै व सुख को चाहने वाला मनुष्य पुण्य करै और दुःखकी इच्छा करनेवाला पाप करै ॥ ११ ॥ और दोनों में से एक को ग्रहण करने पर मनुष्य ससार मे प्रवीण होता है इस बहुतही

काः ॥ ८ ॥ एते पूर्वभवे सर्वे सुमहत्पापकारिणः ॥ एवं विमृश्य यत्नेन दृष्ट्वा लोकजनस्थितिम् ॥ ९ ॥ बुधो न कुरुते पापं यदि कुर्यात्स आत्महा ॥ देहोऽयं मानुषो जन्तोर्बहुकर्मैकभाजनम् ॥ १० ॥ सदा सत्कर्म सेवेत दुष्कर्म सततं त्यजेत् ॥ पुण्यं सुखार्थी कुर्वीत दुःखार्थी पापमाचरेत् ॥ ११ ॥ द्वयोरेकतरे लोके गृहीते कुशलो जनः ॥ इमं मानुषमाश्रित्य देहं परमदुर्लभम् ॥ १२ ॥ य आत्महितवान्कश्चिद्देवमेकं समाश्रयेत् ॥ अथ पापानि सर्वाणि कुर्वन्नपि सदा नरः ॥ १३ ॥ शिवमेकमतिर्ध्यायेत्स सन्तरति पातकम् ॥ मृता पूर्वभवे त्वेषा यदा प्राप्ता यमालये ॥ १४ ॥ तदा वितर्कः सुमहानासीद्यमसभासदाम् ॥ यद्यपि ब्राह्मणी त्वेषा सत्कुलाचारदूषिता ॥ १५ ॥ अतोऽस्माभिरिहानीता निरयं यातु वा न वा ॥ अनया साधितो बाल्ये पुण्यलेशोऽस्ति वा न वा ॥ १६ ॥ अथापि सुविमृश्यैवं धार्यो दण्डोऽत्र नान्य

दुर्लभ मनुष्य के शरीर को पाकर ॥ १२ ॥ जो कोई अपना हित करनेवाला मनुष्य एक देवता के आश्रित होवै अथवा सदैव सब पापों को करता हुआ भी मनुष्य ॥ १३ ॥ एकबुद्धि होकर शिवजी को ध्यान करै वह पाप को नाघ जाता है, पूर्वजन्म में मरकर यह जब यमराज के स्थान में प्राप्त हुई ॥ १४ ॥ तब यमराज की सभा में बैठनेवाले लोगों को बडी भारी तर्कणा हुई कि यद्यपि यह ब्राह्मणी उत्तम कुल के आचार से दूषित है ॥ १५ ॥ इस कारण हमलोगों से यहा लाई हुई यह नरक को जावै या न जावै इसने बाल्यावस्था में पुण्य का अंश किया है या नहीं किया है ॥ १६ ॥ और भलीभाति विचार कर इसमें दड

धारण करना चाहिये अन्यथा न चाहिये बहुत हज़ार जन्मों में किये हुए पुण्य के फलसे ॥ १७ ॥ मनुष्यों को ब्राह्मण के वंश में जन्म मिलता है अन्यथा किसी प्रकार नहीं मिलता है इस कारण पहलेवाले जन्मों में इसका किया हुआ पाप नहीं है ॥ १८ ॥ क्योंकि अन्यथा यह उत्तम कुल में कैसे जन्म को प्राप्त होती इसी जन्म में इसने बड़ा कठिन पाप किया है ॥ १९ ॥ तथापि यह नरक में वास के योग्य नहीं है बरन गऊ के बछड़ा को मारकर भयको प्राप्त इसने विचार कर पूर्वजन्म में इकट्ठा किये हुए कर्म से शिव शिव ऐसा कहा है यदि यह पापों के नाश के लिये एक बार भी बहुत मंगलवाले ॥ २० । २१ ॥

था ॥ बहुजन्मसहस्रेषु कृतपुण्यविपाकतः ॥ १७ ॥ नृणां ब्रह्मकुले जन्म लभ्यते हि कथंचन ॥ अतोस्याः पूर्वपूर्वेषु कृताघं नास्ति जन्मसु ॥ १८ ॥ अन्यथा सत्कुले जन्म कथमेषा प्रपद्यते ॥ अत्रैव जन्मन्यनया कृतमंहो दुरत्ययम् ॥ १९ ॥ अथापि नरकावासं प्रायशो नेयमर्हति ॥ किं तु गोवत्सकं हत्वा विमृश्यागतसाध्वसा ॥ २० ॥ एषा शिवशिवेत्याह प्राग्जन्मार्जितकर्मणा ॥ यदेषा पापविच्छित्त्यै सकृदप्युरुमङ्गलम् ॥ २१ ॥ शिवनाम वदेद्भक्त्या तर्हि गच्छेत्परं पदम् ॥ एकजन्मकृतस्यास्य दारुणस्यापि यत्फलम् ॥ २२ ॥ क्रमेणानुभवत्वेषा भूत्वा चाण्डालजातिका ॥ अस्मादन्यतमः को वा नरकोऽस्ति नृणामिह ॥ २३ ॥ अनेकक्लेशसंघातैर्मुहुः परिपीडनम् ॥ दुष्कुले जन्म दारिद्र्यं महाव्याधिर्विमूढता ॥ २४ ॥ एकैक एव नरकः सर्वे वा चाथ किं पुनः ॥ प्राग्जन्मपुण्यभारेण यन्नाम विवशाऽब्रवीत् ॥ २५ ॥ तेनैषान्यभवे भूरि पुण्यमन्ते करिष्यति ॥ तेन पुण्येन महता निस्तीर्याघौघयातना ॥ २६ ॥ नीता

शिवजी के नाम को भक्ति से कहती तो परमपद को प्राप्त होती एक जन्म में किये हुए इस कठिन पाप का भी जो फल है ॥ २२ ॥ उसको यह चाण्डाल जाति होकर क्रमसे भोग करै क्योंकि इससे अन्य कौन यहां मनुष्यों का नरक है ॥ २३ ॥ कि जो अनेक क्लेशराशियों से बारबार पीडित होता है दुष्ट वंश में जन्म, निर्धनता, महारोग व मूर्खता ॥ २४ ॥ एकही एक नरक है फिर सबों को क्या कहना है पूर्व जन्म के पुण्यपुञ्ज से जो इसने विवश होकर शिवजी का नाम कहा है ॥ २५ ॥ उससे अन्य जन्म में यह अन्त में बड़ाभारी पुण्य करैगी और उस बड़े भारी पुण्य से पापराशियों के दुःखों को भोग कर ॥ २६ ॥ उन

यमदूतों से लाई हुई यह अन्त में परमपद को प्राप्त होगी और ऐसे मनुष्यों के हमलोग कभी दण्डदायक नहीं हैं किन्तु जो स्वामी है वह विचार कर जो योग्य होगा उसको आपही करैगा ॥ २७ ॥ इस प्रकार यमराज़के पुर में यमराजपूर्वक सब चित्रगुप्तादिकों ने विचार कर इसको पृथ्वी में छोड़दिया और यह पृथ्वी में गिरपड़ी ॥ २८ ॥ पहले जो इस दुराचारिणी स्त्री ने असावधानता से भी शिवजी का नाम कहा है फिर उस पुण्य मे विल्वपत्र के आराधन का पुण्य पाया है ॥ २९ ॥ और श्रीगोकर्णक्षेत्र में शिवतिथि (शिवरात्रि) में उपास करके रातको जागरण कर शिवजी के मस्तक पै इसने विल्वपत्र को चढ़ाया

तत्पुरुषैरन्ते प्रयास्यति परं पदम् ॥ एतादृशानां मर्त्यानां शास्तारो न वयं क्वचित् ॥ विचार्य स्वयमेवेशो यद्युक्तं तत्करोतु सः ॥ २७ ॥ एवं वैवस्वतपुरे सर्वैर्यमपुरोगमैः ॥ विमृश्य चित्रगुप्ताद्यैरियं मुक्ताऽपतद्भुवि ॥ २८ ॥ आदौ य देषा शिवनाम नारी प्रमादतो वाप्यसती जगाद ॥ तेनेह भूयः सुकृतेन शम्भोर्बिल्वाङ्कुराराधनपुण्यमाप ॥ २९ ॥ श्रीगोकर्णे शिवतिथावुपोष्य शिवमस्तके ॥ कृत्वा जागरणं ह्येपा चक्रे बिल्वार्पणं निशि ॥ ३० ॥ अकामतः कृत स्यास्य पुण्यस्यैव च यत्फलम् ॥ अद्यैव भोक्ष्यते सेयं पश्यतस्तव नो मृषा ॥ ३१ ॥ गौतम उवाच ॥ इत्युक्त्वा शिव दूतास्ते तस्याश्चाण्डालयोनितः ॥ जीवलेशं समाकृष्य युयुजुर्दिव्यतेजसा ॥ ३२ ॥ तां दिव्यदेहसंक्रान्तां तेजोरा शिसमुज्ज्वलाम् ॥ विमाने स्थापयामासुः प्रीतास्ते शिवकिङ्कराः ॥ ३३ ॥ अथ सा परमोदाररूपलावण्यशालि नी ॥ दिव्यभूषणदीप्ताङ्गी दिव्याम्बरविधारिणी ॥ ३४ ॥ देहेन दिव्यगन्धेन दिव्यतेजोविकाशिना ॥ दिव्यमाल्या

है ॥ ३० ॥ अकामना से किये हुए इस पुण्य का जो फलहै उसको आजही तुम्हारे देखते हुए वही यह भोग करैगी इसमे झूठ नहीं है ॥ ३१ ॥ गौतमजी बोले कि यह कहकर उन शिवदूतों ने उसके जीव के अंश को चाण्डाल की योनि से खींचकर दिव्य तेज से युक्त किया ॥ ३२ ॥ और दिव्य देह से आक्रमित व तेज की राशि से उज्ज्वल उस स्त्री को उन प्रसन्न शिवदूतों ने विमान पै स्थापित किया ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त बड़े उदाररूप की सुन्दरता से शोभित व दिव्य भूषणों से प्रकाशित अंगोंवाली वह दिव्य वसनों को धारण करती भई ॥ ३४ ॥ इसके उपरान्त दिव्य तेज को प्रकाश करनेवाले तथा दिव्य सुगंधयुक्त शरीर

से व दिव्य मालाओं के शिरोभूषण से विमान पै प्राप्त वह शोभित हुई ॥ ३५ ॥ और रत्नसंयुत छत्र व पताकादिकों से तथा गाने, बजाने के शब्दों से वह उत्तम मुखवाली स्त्री शिवदूतों के मध्य में प्रसन्न हुई ॥ ३६ ॥ और पिछले उत्पन्न हुए जन्मों को वारवार स्मरण कर डरगई और दृढ़ आश्चर्य को डरी हुई वह स्वप्न के समान देखकर उठ पड़ी ॥ ३७ ॥ कि मैं कौन हू व ये महासिद्ध कौन हैं और यह कौन सुन्दर लोक है व प्रचण्ड चाण्डाल के गोत्र में उपजा हुआ मेरा क्लेशित शरीर कहां गया ॥ ३८ ॥ माया के विलास से उपजा हुआ बड़ा भारी आश्चर्य देखा गया जोकि हज़ारों जन्मों में मैंने वारवार भ्रमण

वतंसेन विरराज विमानगा ॥ ३५ ॥ रत्नच्छत्रपताकाद्यैर्गीतवादित्रनिस्वनैः ॥ मध्ये सा शिवदूतानां मोदमाना वरानना ॥ ३६ ॥ अनुभूतानि जन्मानि स्मृत्वा स्मृत्वा पुनःपुनः ॥ भीता त्रस्ता दृढाश्चर्यं दृष्ट्वा स्वप्नमिवोत्थिता ॥ ३७ ॥ काहं केऽमी महासिद्धाः कोयं लोको मनोरमः ॥ क्व गतं मे वपुः कष्टं चण्डचाण्डालगोत्रजम् ॥ ३८ ॥ अहो सुमहदाश्चर्यं दृष्टं मायाविलासजम् ॥ यन्मे भवसहस्रेषु भ्रान्तं भ्रान्तं पुनःपुनः ॥ ३९ ॥ अहो ईश्वरपूजाया माहात्म्यं विस्मयावहम् ॥ पत्रमात्रेण सन्तुष्टो यो ददाति निजं पदम् ॥ ४० ॥ इति तां जातनिर्वेदां स्मरन्तीं भगवत्पदम् ॥ दिव्यं विमानमारोप्य ते महेश्वरकिङ्कराः ॥ ४१ ॥ आलोकयत्सु सर्वेषु लोकेशेषु सविस्मयम् ॥ आमन्त्र्य तामथानिन्युः परमेश्वरसन्निधिम् ॥ ४२ ॥ राजन्सुमहदाश्चर्यमाख्यातं गिरिजापतेः ॥ माहात्म्यं भक्तिलेशस्य सर्वाघौघविनाशनम् ॥ ४३ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्परमेशस्य कीदृशो लोक उत्तमः ॥ तस्य मे लक्षणं ब्रूहि यद्यस्ति मयि

किया ॥ ३९ ॥ और शिवजी के पूजन का माहात्म्य आश्चर्यदायक है कि केवल पत्र से प्रसन्न होकर जो अपने स्थान को देते हैं ॥ ४० ॥ इस प्रकार शिवजी के चरण को स्मरण करती हुई उस उत्पन्न वैराग्यवाली स्त्री को दिव्य विमान पै चढ़ाकर वे शिवदूत ॥ ४१ ॥ विस्मय समेत सब लोकपालों के देखते हुए उससे पूछकर इसके उपरान्त उसको शिवजी के समीप लेगये ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! उमापति शिवजी के भक्तिलेश का बहुत आश्चर्यसंयुत व सब पापसमूहों का नाशक माहात्म्य कहा गया ॥ ४३ ॥ राजा बोले कि हे भगवन् ! परमेश्वर शिवजी का कैसा उत्तम लोक है यदि मेरे ऊपर दया होवै तो मुझसे उसका लक्षण

कहिये ॥ ४४ ॥ गौतमजी बोले कि लोकों के मध्यमें जो ब्रह्मादिक देवेशोंको बहुत दुर्लभ है और जहा सदैव आनन्द रहताहै वह शिवजी का लोकहै ॥ ४५ ॥ और सबको नाँघकर जहां गमन होता है व जहा प्रकाश स्थित है और कहीं अन्धकार का योग नहीं है वह शिवजी का लोक है ॥ ४६ ॥ और गुणों की वृत्ति को नाँघ कर योगी लोग जहां प्राप्त होते हैं और वे सब जहा से फिर नहीं गिरते हैं वह शिवजीका लोक है ॥ ४७ ॥ और क्रोध, लोभ व मद आदिक जहा निवास नहीं करते हैं और जहा जन्म आदिक अवस्था नहीं होती हैं वह शिवजी का लोक है ॥ ४८ ॥ और सब वेदों का जो मुख्यक्षेत्र कहा जाता है व जिससे अधिक

ते दया ॥ ४४ ॥ गौतम उवाच ॥ ब्रह्मादिसुरनाथानां लोकेष्वपि सुदुर्लभः ॥ य आनन्दः सदा यत्र स लोकः पारमेश्वरः ॥ ४५ ॥ सर्वातिगमनं यत्र ज्योतिर्यत्र प्रतिष्ठितम् ॥ क्वापि नास्ति तमोयोगः स लोकः पारमेश्वरः ॥ ४६ ॥ गुणवृत्तिं विनिस्तीर्य संप्राप्ता यत्र योगिनः ॥ न पतेयुः पुनः सर्वे स लोकः पारमेश्वरः ॥ ४७ ॥ यत्र वासं न कुर्वन्ति क्रोधलोभमदादयः ॥ यत्रावस्था न जन्माद्याः स लोकः पारमेश्वरः ॥ ४८ ॥ सर्वेषां निगमानां च यदेकं क्षेत्रमुच्यते ॥ यस्मान्नास्ति परं वित्तं तत्पदं पारमेश्वरम् ॥ ४९ ॥ प्रत्याहारासनध्यानप्राणसंयमनादिभिः ॥ यत्र योगपथैः प्राप्तुं यतन्ते योगिनः सदा ॥ ५० ॥ यत्र देवः सदानन्दनिर्मलज्ञानरूपया ॥ अस्ति देव्या सह क्रीडन्स लोकः पारमेश्वरः ॥ ५१ ॥ जन्मानेकसहस्रेषु संभूतैः पुण्यराशिभिः ॥ आरूढाः पुरुषा नार्यः क्रीडन्ते यत्र संगताः ॥ ५२ ॥ तेजोराशौ समालीना दुर्विभाव्ये मनोरमे ॥ अहोरात्रादिसंस्थानं न विन्दन्ति कदाचन ॥ ५३ ॥ स

धन नहीं है वह शिवजी का स्थान है ॥ ४९ ॥ और जहा प्राप्त होने के लिये योगी लोग सदैव प्रत्याहार, आसन, ध्यान व प्राणों के संयम आदिक योगमार्गों से यत्न करते हैं ॥ ५० ॥ और जहां सदैव आनन्द व निर्मल ज्ञान रूपिणी पार्वती देवी के साथ क्रीडा करते हुए शिवदेवजी रहते है वह शिवजी का लोक है ॥ ५१ ॥ व अनेक जन्मों में इकट्ठा कीहुई पुण्यराशियों से जहा चढ़े हुए पुरुष व स्त्रिया मिलकर क्रीड़ा करती हैं ॥ ५२ ॥ व प्रकट न करने योग्य तथा सुन्दर तेजराशि में लीन पुरुष जहा दिन व रात्रि की स्थिति को कभी नहीं जानते हैं ॥ ५३ ॥ वह शिवजी का लोक कुयोगी को दुर्लभ है और इन शिवजी की

भक्ति से जो पूर्ण हैं वे उस लोक को प्राप्त होते हैं ॥ ५४ ॥ और जो उन शिवजी की कथा के सुनने व कहने से प्रसन्न होते हैं और जो सब प्राणियों के मित्र हैं तथा केवल शान्ति में स्थित रहते हैं मोहरहित वे संसार के भ्रमण को नाँघकर शिवजी का स्थान पाकर सुखपूर्वक रमण करते हैं ॥ ५५ ॥ वैसेही हे राजेन्द्र ! तुमभी गोकर्णनामक शिवजी के स्थान को जाकर पापगणों से रहित होकर कृतार्थता को प्राप्त होगे ॥ ५६ ॥ और वहा सब समयो मे नहाकर महाबल शिवजी को पूजकर सावधान होते हुए तुम शिवचतुर्दशी में उपास करके ॥ ५७ ॥ और रात्रि में जागरण कर व बिल्वपत्रों से शिवजी को पूजकर सब पापों से छूटे

लोकः परमेशस्य दुर्लभो हि कुयोगिनः ॥ एतद्भक्तिसुपूर्णा ये तैरेव प्रतिपद्यते ॥ ५४ ॥ ये तत्कथाश्रवणकीर्तनजात हर्षा ये सर्वभूतसुहृदः प्रशमैकनिष्ठाः ॥ संसारचक्रमतिवाह्य निरस्तमोहास्ते शाङ्करं पदमवाप्य सुखं रमन्ते ॥ ५५ ॥ तथा त्वमपि राजेन्द्र गोकर्णं गिरिशालयम् ॥ गत्वा प्रशमितावौघः कृतकृत्यत्वमाप्नुहि ॥ ५६ ॥ तत्र सर्वेषु कालेषु स्नात्वाभ्यर्च्य महाबलम् ॥ कृत्वा शिवचतुर्दश्यामुपवासं समाहितः ॥ ५७ ॥ कृत्वा जागरणं रात्रौ बिल्वैरभ्यर्च्य शङ्करम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकमवाप्स्यसि ॥ ५८ ॥ एष ते विमलो राजन्नुपदेशो मया कृतः ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि मिथिलाधिपतेः पुरीम् ॥ ५९ ॥ इत्यामन्त्र्य मुनिः प्रीत्या गौतमो मिथिलां ययौ ॥ सोऽपि हृष्टमना राजा गोकर्णं प्रत्यपद्यत ॥ ६० ॥ तत्र दृष्ट्वा महादेवं स्नात्वाभ्यर्च्य महाबलम् ॥ निर्धूताशेषपापौघो लेभे शम्भोः परं पदम् ॥ ६१ ॥ य इमां शृणुयान्नित्यं कथां शैवीं मनोहराम् ॥ श्रावयेद्वा जनो भक्त्या

हुए तुम शिवलोक को पावोगे ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! मैंने तुमको यह निर्मल उपदेश किया तुम्हारा कल्याण होवै मैं जनकपुरी को जाऊंगा ॥ ५९ ॥ इस प्रकार कहकर गौतम मुनि प्रीतिसे मिथिलापुरी को गये और वह प्रसन्नमन राजा भी गोकर्णक्षेत्र को प्राप्त हुआ ॥ ६० ॥ और वहां महाबल शिवजी को देखकर नहाकर व पूजकर समस्त पातकों से रहित उसने शिवजीके परम पद को पाया ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य इस सुन्दरी शिवजी की कथा को नित्य भक्ति से सुनता या सुनाता

है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ और जो श्रद्धावान् पुरुष एक बार भी इस कथा को सुनता है वह इक्कीस पुश्तियों समेत शिवलोक को प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ कल्याणों का आदिबीज व सैकड़ों जन्मों के पापों का नाशक तथा मोहरूपी अन्धकार का विनाशक शिवजी का यह सब चरित्र कहा गया और देवताओं से गाने योग्य यह चरित्र कल्याणवान् पुरुषों से सेवन करने योग्य है ॥ १६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां शिवचतुर्दशीगोकर्णमाहात्म्यवर्णननाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

स याति परमां गतिम् ॥ ६२ ॥ श्रद्दधानः सकृद्वापि य इमां शृणुयात्कथाम् ॥ त्रिःसप्तकुलजैः सार्धं शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ ६३ ॥ इति कथितमशेषं श्रेयसामादिबीजं भवशतदुरितघ्नं ध्वस्तमोहान्धकारम् ॥ चरितममरगेयं मन्मथारेरुदारं सततमपि निषेव्यं स्वस्तिमद्भिश्च लोकैः ॥ १६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे शिवचतुर्दशीगोकर्णमाहात्म्यवर्णनंनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ भूयोपि शिवमाहात्म्यं वक्ष्यामि परमाद्भुतम् ॥ शृण्वतां सर्वपापघ्नं भवपाशविमोचनम् ॥ १ ॥ दुस्तरे दुरिताम्भोधौ मज्जतां विषयात्मनाम् ॥ शिवपूजां विना कश्चित्प्लवो नास्ति निरूपितः ॥ २ ॥ शिवपूजां सदा कुर्याद्बुद्धिमानिह मानवः ॥ अशक्तश्चेत्कृतां पूजां पश्येद्भक्तिविनम्रधीः ॥ ३ ॥ अश्रद्धयापि यः कुर्याच्छिवपूजां विमुक्तिदाम् ॥ पश्येद्वा सोपि कालेन प्रयाति परमं पदम् ॥ ४ ॥ आसीत्किरातदेशेषु नाम्ना राजा विमर्दनः ॥ शूरः परमदु

दो० । शिवपूजन को देखिकै श्वान भयो नरपाल । सो चौथे अध्याय में बरणत चरित रसाल ॥ सूतजी बोले कि सुननेवालों के सब पापों का नाशक व संसाररूपी फँसरी से छुडानेवाला शिवजी का माहात्म्य फिर भी कहता हूं ॥ १ ॥ दुस्तर पापरूपी समुद्र में डूबते हुए विषयी पुरुषों के लिये शिवपूजन के विना कोई नौका नहीं बनाई गई है ॥ २ ॥ इस संसार में बुद्धिमान् मनुष्य सदैव शिवपूजन करै और यदि असमर्थ होवै तो भक्ति से नम्रबुद्धिवाला वह कीहुई पूजा को देखै ॥ ३ ॥ जो बिन श्रद्धा से भी मुक्तिदायक शिवपूजन को करता है या देखता है वह भी काल से परमपद को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ किरात

देशों में शत्रुओं को जीतनेवाला व बहुतही दुर्धर्ष तथा प्रतापी व शूरविमर्दन नामक राजा हुआ है ॥ ५ ॥ सदैव शिकार में लगा हुआ वह बलवान् राजा कृपण व निर्दयी था और सब मांसों को खानेवाला वह क्रूर व सब जाति की स्त्रियों से घिरा था ॥ ६ ॥ तथापि निरालसी वह नित्य शिवपूजन करता था व शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में चौदसि तिथि में विशेष कर ॥ ७ ॥ महाऐश्वर्य से संयुत पूजन करके वह प्रसन्न होता था और बडे हर्षसे सयुत वह नाचता, स्तुति करता व गाता था ॥ ८ ॥ इस प्रकार वर्तमान उस सर्वभक्षी व दुराचारी राजा की स्त्री उसके कर्म से संतप्त हुई ॥ ९ ॥ व शील और गुणों से सयुत उस

देर्षो जितशत्रुः प्रतापवान् ॥ ५ ॥ सर्वदा मृगयासक्तः कृपणो निर्घृणो बली ॥ सर्वमांसाशनः क्रूरः सर्ववर्णाङ्गनावृतः ॥ ६ ॥ तथापि कुरुते शम्भोः पूजां नित्यमतन्द्रितः ॥ चतुर्दश्यां विशेषेण पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ ७ ॥ महाविभवसंपन्नां पूजां कृत्वा स मोदते ॥ हर्षेण महताविष्टो नृत्यति स्तौति गायति ॥ ८ ॥ तस्यैवं वर्तमानस्य नृपतेः सर्वभक्षिणः ॥ दुराचारस्य महिषी चेष्टितेनान्वतप्यत ॥ ९ ॥ सा वै कुमुद्वतीनाम राज्ञी शीलगुणान्विता ॥ एकदा पतिमासाद्य रहस्येतदपृच्छत ॥ १० ॥ एतत्ते चरितं राजन्महदाश्चर्यकारणम् ॥ क ते महान्दुराचारः क भक्तिः परमेश्वरे ॥ ११ ॥ सर्वदा सर्वभक्षस्त्वं सर्वस्त्रीजनलालसः ॥ सर्वहिंसापरः क्रूरः कथं भक्तिस्तवेश्वरे ॥ १२ ॥ इति पृष्टः स भूपालो विमृश्य सुचिरं ततः ॥ त्रिकालज्ञः प्रहस्यैनां प्रोवाच सुकुतूहलः ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ अहं पूर्वभवे कश्चित्सारमेयो वरानने ॥ पम्पानगरमाश्रित्य पर्यटामि समन्ततः ॥ १४ ॥ एवं कालेषु गच्छत्सु तत्रैव नगरो

कुमुद्वती नामक रानीने एक समय पति को प्राप्त होकर एकान्त में उस वृत्तान्त को पूछा ॥ १० ॥ कि हे राजन् ! तुम्हारा यह चरित्र बडा आश्चर्यकारक है कि कहां तुम्हारा बड़ा भारी दुराचार और कहा परमेश्वर में भक्ति ॥ ११ ॥ सदैव तुम सर्वभक्षी हो व सब स्त्रियों की इच्छा करते हो और सबों की हिंसा में परायण व क्रूर हो तो कैसे तुम्हारी ईश्वर में भक्ति है ॥ १२ ॥ इस प्रकार पूछे हुए उस राजा ने बहुत देर तक विचार कर तदनन्तर त्रिकालज्ञ व कौतुक समेत राजा ने हँसकर इस स्त्री से कहा ॥ १३ ॥ राजा बोले कि हे वरानने ! पूर्वजन्म में मैं कोई कुत्ता हुआ हूं और पपानगर में टिककर सब ओर घूमता था ॥ १४ ॥ इस

प्रकार उसी उत्तम नगर में समय व्यतीत होने पर किसी समय वही मै सुन्दर शिवमन्दिर को गया ॥ १५ ॥ और बाहर द्वारपै बैठे हुए मैंने चतुर्दशी महातिथि में पूजन वर्तमान होने पर दूरसे उत्सव को देखा ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त दंडों को हाथ में लिये हुए बडे क्रोधित मनुष्यों से भगाया हुआ मैं प्राणों की रक्षा में परायण होकर उस स्थान से निकल गया ॥ १७ ॥ तदनन्तर सुन्दर शिवमन्दिर की प्रदक्षिणा कर फिर द्वार देश को प्राप्त होकर मैं फिर मना किया गया ॥ १८ ॥ और फिर उसी शिवमन्दिर की प्रदक्षिणा कर बलि के पिण्डादिकों के लोभ से मैं फिर द्वार को आया ॥ १९ ॥ इस प्रकार बारबार वहां प्रदक्षिणा कर कर द्वार

त्तमे ॥ कदाचिदागतः सोहं मनोज्ञं शिवमन्दिरम् ॥ १५ ॥ पूजायां वर्त्तमानायां चतुर्दश्यां महातिथौ ॥ अपश्यमुत्सवं दूराद्बहिर्द्वारं समाश्रितः ॥ १६ ॥ अथाहं परमक्रुद्धैर्दण्डहस्तैः प्रधावितः ॥ तस्माद्देशादपक्रान्तः प्राणरक्षापरायणः ॥ १७ ॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्य मनोज्ञं शिवमन्दिरम् ॥ द्वारदेशं पुनः प्राप्य पुनश्चैव निवारितः ॥ १८ ॥ पुनः प्रदक्षिणीकृत्य तदेव शिवमन्दिरम् ॥ बलिपिण्डादिलोभेन पुनर्द्वारमुपागतः ॥ १९ ॥ एवं पुनःपुनस्तत्र कृत्वा कृत्वा प्रदक्षिणाम् ॥ द्वारदेशे समासीनं निजघ्नुर्निशितैः शरैः ॥ २० ॥ स विद्धगात्रः सहसा शिवद्वारि गतासुकः ॥ जातोऽस्म्यहं कुले राज्ञां प्रभावाच्छिवसन्निधेः ॥ २१ ॥ दृष्टा चतुर्दशीपूजां दीपमाला विलोकिताः ॥ तेन पुण्येन महता त्रिकालज्ञोऽस्मि भामिनि ॥ २२ ॥ प्राग्जन्मवासनाभिश्च सर्वभक्षोऽस्मि निर्घृणः ॥ विदुषामपि दुर्लङ्घ्या प्रकृतिर्वासनामयी ॥ २३ ॥ अतोऽहमर्चयामीशं चतुर्दश्यां जगद्गुरुम् ॥ त्वमपि श्रद्धया भद्रे भज देवं पिनाकिनम् ॥ २४ ॥

स्थान में बैठे हुए मुझको मनुष्यों ने पैने बाणों से मारा ॥ २० ॥ और कटे हुए अंगोंवाला मैं यकायक शिवजी के द्वारपै मरगया और शिवजी की समीपता के प्रभाव से मैं राजाओं के वश में पैदा हुआ हूं ॥ २१ ॥ हे भामिनि ! चतुर्दशी में पूजन को देखकर मैंने दीपमालाओं को देखा है उस बडे भारी पुण्य से मै तीनों समयों का जाननेदाला हूं ॥ २२ ॥ और पहले जन्म की वासनाओं से मैं सर्वभक्षी व निर्दयी हू क्योंकि वासनावाले स्वभाव को विद्वान् लोग भी नहीं नॉघसक्ते हैं ॥ २३ ॥ इस कारण मैं चौदसि में ससार के गुरु शिवजीको पूजता हूं घ हे भद्रे ! तुम भी श्रद्धा से पिनाकी (शिव) देवजी को भजो ॥ २४ ॥ रानी

बोली कि हे नृपेन्द्र ! शिवजीके प्रसाद से तुम त्रिकालज्ञ हो इस कारण मेरे पहले जन्मके चरित्र को यथार्थ कहने के योग्य हो ॥ २५ ॥ राजा बोले कि पूर्व जन्म में तुम कोई आकाशगामिनी कबूतरी थी और कभी तुमने स्वच्छन्दता से किसी मांसपिंड को पाया ॥ २६ ॥ और तुमसे लिये हुए मांस को देखकर मांस रहित कोई बलवान् व भयंकर गीध वेग से आपही दौड़ा ॥ २७ ॥ तदनन्तर हे वरानने ! उसको देखकर डरी हुई तुम भगी और वह भयंकर गीध मासपिण्ड के लेने की इच्छा से तुम्हारे पीछे दौड़ा ॥ २८ ॥ और श्रीगिरि को प्राप्त होकर थकी हुई तुम शिवालय की प्रदक्षिणा कर ध्वजा के अग्रभाग पै बैठ गई ॥ २९ ॥

राज्ञ्युवाच ॥ त्रिकालज्ञोऽसि राजेन्द्र प्रसादाद्गिरिजापतेः ॥ मत्पूर्वजन्मचरितं वक्तुमर्हसि तत्त्वतः ॥ २५ ॥ राजोवाच ॥ त्वं तु पूर्वभवे काचित्कपोती व्योमचारिणी ॥ कापि लब्धवती किञ्चिन्मांसपिण्डं यदृच्छया ॥ २६ ॥ त्वद्गृहीतमथालोक्य गृध्रः कोप्यामिषं बली ॥ निरामिषः स्वयं वेगादभिदुद्राव भीषणः ॥ २७ ॥ ततस्तं वीक्ष्य वित्रस्ता विद्रुतासि वरानने ॥ तेनानुयाता घोरेण मांसपिण्डजिघृक्षया ॥ २८ ॥ दिष्ट्या श्रीगिरिमासाद्य श्रान्ता तत्र शिवालयम् ॥ प्रदक्षिणं परिक्रम्य ध्वजाग्रे समुपस्थिता ॥ २९ ॥ अथानुसृत्य सहसा तीक्ष्णतुण्डो विहंगमः ॥ त्वां निहत्य निपात्याधो मांसमादाय जग्मिवान् ॥ ३० ॥ प्रदक्षिणप्रक्रमणाद्देवदेवस्य शूलिनः ॥ तस्याग्रे मरणाच्चैव जातासीह नृपाङ्गना ॥ ३१ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ श्रुतं सर्वमशेषेण प्राग्जन्मचरितं मया ॥ जातं च महदाश्चर्यं भक्तिश्च मम चेतसि ॥ ३२ ॥ अथान्यच्छ्रोतुमिच्छामि त्रिकालज्ञ महामते ॥ इदं शरीरमुत्सृज्य चास्याव: कां गतिं

इसके उपरान्त पैनी चोंचवाला गीध यकायक पीछे आकर तुझको मारकर नीचे गिराकर और मांस को लेकर चला गया ॥ ३० ॥ त्रिशूलधारी देवदेव शिवजी की दक्षिण परिक्रमा से व उनके आगे मरने से तुम इस जन्म में राजा की कन्या हुई हो ॥ ३१ ॥ रानी बोली कि मैंने संपूर्णता से पहले के जन्म के चरित्र को सुना और मेरे हृदय में बड़ा आश्चर्य व भक्ति उत्पन्न हुई ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त हे महामते, त्रिकालज्ञ ! अन्य चरित्र को सुना चाहती हूं कि इस

शरीर को छोड़कर हम तुम दोनों फिर किस गति को प्राप्त होवेंगी ॥ ३३ ॥ राजा बोले कि इसके उपरान्त दूसरे जन्ममें मैं सैंधव राजा उत्पन्न हूंगा ॥ ३४ ॥ और सृंजयदेश के राजा की कन्या तुम मुझही को प्राप्त होगी और तीसरे जन्म में मैं सौराष्ट्रदेश में राजा हूंगा ॥ ३५ ॥ और कलिंगदेश के राजा की कन्या तुम मेरी स्त्री होगी और चौथे जन्म में मैं गाधारदेश का राजा हूंगा ॥ ३६ ॥ व उसमें मगधदेश के राजा की कन्या तुम मेरी स्त्री होगी और पांचवें जन्म के मध्य में मैं अवन्तीदेश का राजा हूंगा ॥ ३७ ॥ और दाशार्हदेश के राजा की कन्या तुम्हीं मेरी स्त्री होगी व इससे छठें जन्म में मैं आनर्तदेश में राजा हूंगा ॥ ३८ ॥

पुनः ॥ ३३ ॥ राजोवाच ॥ अतो भवे जनिष्येहं द्वितीये सैन्धवो नृपः ॥ ३४ ॥ सृञ्जयेशसुता त्वं हि मामेव प्रतिपत्स्यसे ॥ तृतीये तु भवे राजा सौराष्ट्रे भविताऽस्म्यहम् ॥ ३५ ॥ कलिङ्गराजतनया त्वं मे पत्नी भविष्यसि ॥ चतुर्थे तु भविष्यामि भवे गान्धारभूमिपः ॥ ३६ ॥ मागधी राजतनया तत्र त्वं मम गेहिनी ॥ पञ्चमेऽवन्तिनाथोऽहं भविष्यामि भवान्तरे ॥ ३७ ॥ दाशार्हराजतनया त्वमेव मम वल्लभा ॥ अस्माज्जन्मनि षष्ठेऽहमानर्ते भविता नृपः ॥ ३८ ॥ ययातिवंशजा कन्या भूत्वा मामेव यास्यसि ॥ पाण्ड्यराजकुमारोऽहं सप्तमे भविता भवे ॥ ३९ ॥ तत्र मत्सदृशो नान्यो रूपौदार्यगुणादिभिः ॥ सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो बलवान्दृढविक्रमः ॥ ४० ॥ सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वलोकमनोरमः ॥ पद्मवर्ण इति ख्यातः पद्ममित्रसमद्युतिः ॥ ४१ ॥ भविता त्वं च वैदर्भी रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ नाम्ना वसुमती ख्याता रूपावयवशोभिनी ॥ ४२ ॥ सर्वराजकुमाराणां मनोनयननन्दिनी ॥ सा त्वं स्वयंवरे सर्वान्विहाय नृप

और ययाति के वंश मे उत्पन्न कन्या होकर तुम मुझही को प्राप्त होगी व सातवें जन्ममें मैं पाण्ड्य देश के राजा का पुत्र हूंगा ॥ ३९ ॥ और उस जन्म में रूप व उदारतादिक गुणों से अन्य मेरे बराबर न होगा और सब शास्त्रार्थों को यथार्थ जाननेवाला तथा बलवान् व दृढ़ पराक्रमी हूंगा ॥ ४० ॥ और सब लक्षणों से संयुत व सब लोकों में सुन्दर पद्मवर्ण ऐसा प्रसिद्ध मैं सूर्य के समान कान्तिमान् हूंगा ॥ ४१ ॥ और पृथ्वी में सब से बढ़कर रूपवती तुम विदर्भदेश की कन्या वसुमती नामक प्रसिद्ध होकर रूपवान् अगों से शोभित होगी ॥ ४२ ॥ और सब राजपुत्रों के मन व नेत्रों को आनन्द बढ़ानेवाली वही तुम स्वयंवर में सब

राजपुत्रों को छोडकर ॥ ४३ ॥ मुझही को वर पावोगी जैसे कि दमयन्ती ने नल को पाया है सो मैं सब राजाओं को जीतकर व उत्तमवर्णवाली तुमको पाकर ॥ ४४ ॥ अपनी राज्य में स्थित मैं बहुत वर्षसमूहों तक समस्त सुखों को भोगूंगा और अश्वमेधादिक अनेक प्रकारके उत्तम यज्ञों से पूजकर ॥ ४५ ॥ और पितरों, देवताओं व ऋषियोंको तर्पण कर तथा दानों से उत्तम ब्राह्मणों को तृप्त कर लोकों का कल्याण करनेवाले देवदेवेश शिवजी को पूजकर ॥ ४६ ॥ पुत्रके ऊपर राज्य का भार धरकर तपस्या के लिये वन को जाऊंगा वहां मुनियों में श्रेष्ठ अगस्त्यजी से ब्रह्मज्ञान को पाकर ॥ ४७ ॥ तुम समेत शिवजी के परमपद को

नन्दनान् ॥ ४३ ॥ वरं प्राप्स्यसि मामेव दमयन्तीव नैषधम् ॥ सोहं जित्वा नृपान्सर्वान्प्राप्य त्वां वरवर्णिनीम् ॥ ४४ ॥ स्वराष्ट्रस्थोऽखिलान्भोगान्भोक्ष्ये वर्षगणान्बहून् ॥ इष्ट्वा च विविधैर्यज्ञैर्वाजिमेधादिभिःशुभैः ॥ ४५ ॥ सन्तर्प्य पितृदेवर्षीन्दानैश्च द्विजसत्तमान् ॥ संपूज्य देवदेवेशं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥ ४६ ॥ पुत्रे राज्यधुरं न्यस्य गन्तास्मि तपसे वनम् ॥ तत्रागस्त्यान्मुनिवराद्ब्रह्मज्ञानमवाप्य च ॥ ४७ ॥ त्वया सह गमिष्यामि शिवस्य परमं पदम् ॥ चतुर्दश्यां चतुर्दश्यामेवं संपूज्य शङ्करम् ॥ ४८ ॥ सप्तजन्मसु राजत्वं भविष्यति वरानने ॥ इत्येतत्सुकृतं लब्धं पूजादर्शनमात्रतः ॥ क सारमेयो दुष्टात्मा केदृशी वत सद्गतिः ॥ ४९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्ता निजनाथेन सा राज्ञी शुभलक्षणा ॥ ५० ॥ परं विस्मयमापन्ना पूजयामास तं मुदा ॥ सोऽपि राजा तया सार्द्धं भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ ५१ ॥ जगाम सप्तजन्मान्ते शम्भोस्तत्परमं पदम् ॥ य एतच्छिवपूजाया माहात्म्यं परमाद्भुतम् ॥ शृणुयात्कीर्तये

प्राप्त हूंगा इस प्रकार चौदसि चौदसि में शंकरजी को पूजकर ॥ ४८ ॥ हे वरानने ! सात जन्मों में नृपता होगी यह पुण्य पूजाके देखनेही से मिला है क्योंकि कहां दुष्टात्मा कुत्ता और कहा ऐसी उत्तम गति ॥ ४९ ॥ सूतजी बोले कि अपने पति से ऐसा कही हुई उस उत्तम लक्षणोंवाली रानी ने ॥ ५० ॥ बडे आश्चर्य को प्राप्त होकर उसका हर्ष से पूजन किया और वह राजा भी उसके साथ इच्छा के अनुसार सुखों को भोग कर ॥ ५१ ॥ सात जन्मों के अन्त में शिवजीके उस

परमपद को प्राप्त हुआ जो मनुष्य इस शिवपूजन के बड़े अद्भुत माहात्म्य को सुनता या कहता है वह परमपद को प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चतुर्दशीमाहात्म्यवर्णननाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥
दो० । चन्द्रसेन अरु गोपसुत पायो शिवपद दोउ । यहि पंचम अध्याय में कहत चरित सब सोउ ॥ सूतजी बोले कि शिव गुरु हैं व शिव देवता हैं और शिवजी प्राणियों के बन्धु हैं व शिव आत्मा हैं तथा शिव जीव हैं और शिवजी से अन्य कुछ नहीं है ॥ १ ॥ द शिवजी को उद्देश कर जो कुछ दान, जप या

द्वापि स गच्छेत्परमं पदम् ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे चतुर्दशीमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ शिवो गुरुः शिवो देवः शिवो बन्धुः शरीरिणाम् ॥ शिव आत्मा शिवो जीवः शिवादन्यन्न किञ्चन ॥ १ ॥ शिवमुद्दिश्य यत्किंचिद्दत्तं जप्तं हुतं कृतम् ॥ तदनन्तफलं प्रोक्तं सर्वागमविनिश्चितम् ॥ २ ॥ भक्त्या निवेदितं शम्भोः पत्रं पुष्पं फलं जलम् ॥ अल्पादल्पतरं वापि तदानन्त्याय कल्पते ॥ ३ ॥ विहाय सकलान्धर्मान्सकलागमनिश्चितान् ॥ शिवमेकं भजेद्यस्तु मुच्यते सर्वबन्धनात् ॥ ४ ॥ या प्रीतिरात्मनः पुत्रे या कलत्रे धनेऽपि सा ॥ कृता चेच्छिवपूजायां त्रायतीति किमद्भुतम् ॥ ५ ॥ तस्मात्केचिन्महात्मानः सकलान्विषयासवान् ॥ त्यजन्ति शिवपूजार्थे स्वदेहमपि दुस्त्यजम् ॥ ६ ॥ सा जिह्वा या शिवं स्तौति तन्मनो ध्यायते शिवम् ॥ तौ कर्णौ तत्कथा

हवन किया जाता है वह अमित फलवाला कहा गया है यह सब शास्त्रों में निश्चित है ॥ २ ॥ भक्ति से शिवजी को दिया हुआ पत्र, पुष्प, फल या जल थोड़ा से भी थोडा वह अमित होने के लिये समर्थ होता है ॥ ३ ॥ और सब शास्त्रों में निश्चय किये हुए समस्त धर्मों को छोडकर जो एक शिवजी को भजता है वह सब बन्धनसे छूट जाता है ॥ ४ ॥ और जो प्रीति अपने पुत्र, स्त्री या धन में कीजाती है वह यदि शिवपूजन में कीजावै तो रक्षा करती है यह क्या आश्चर्य है ॥ ५ ॥ इस कारण शिवपूजा के लिये कोई महात्मा लोग सब विषयरूपी मद्यों को व अपने दुस्त्यज शरीर को भी छोड़ देते हैं ॥ ६ ॥ जो शिवजी

की स्तुति करै वह जिह्वाहै और जो शिवजीको ध्यान करै वह मन है व जो उनकी कथा के लोभी हैं वे कान हैं और जो उन शिवजी की पूजा करते हैं वे हाथ हैं ॥ ७ ॥ और जो शिवजी का पूजन देखते हैं वे नेत्र हैं और जिसने शिवजी को प्रणाम किया वह शिर है व भक्ति से जो सदैव शिवक्षेत्र को जाते हैं वे पाँव हैं ॥ ८ ॥ और जिसकी सब इन्द्रियां शिवजीके कर्मों में वर्तमान होतीहैं वह सुख व मुक्ति को पाता है ॥ ९ ॥ व शिवजी की भक्तिसे संयुत जो चाण्डाल या पुल्कस भी होवै या जो स्त्री, पुरुष और नपुंसक होवै वह उसी क्षण संसार से छूट जाता है ॥ १० ॥ कुल से क्या है व आचारों से क्या है और शील या गुण से भी

लोलौ तौ हस्तौ तस्य पूजकौ ॥ ७ ॥ ते नेत्रे पश्यतः पूजां तच्छिरः प्रणतं शिवे ॥ तौ पादौ यौ शिवक्षेत्रं भक्त्या पर्यटतः सदा ॥ ८ ॥ यस्येन्द्रियाणि सर्वाणि वर्त्तन्ते शिवकर्मसु ॥ स निस्तरति संसारं भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥ ९ ॥ शिवभक्तियुतो मर्त्यश्चाण्डालः पुल्कसोपि च ॥ नारी नरो वा षण्ढो वा सद्यो मुच्येत संसृतेः ॥ १० ॥ किं कुलेन किमाचारैः किं शीलेन गुणेन वा ॥ भक्तिलेशयुतः शम्भोः स वन्द्यः सर्वदेहिनाम् ॥ ११ ॥ उज्जयिन्यामभूद्राजा चन्द्रसेनसमाह्वयः ॥ जातो मानवरूपेण द्वितीय इव वासवः ॥ १२ ॥ तस्मिन्पुरे महाकालं वसन्तं परमेश्वरम् ॥ संपूजयत्यसौ भक्त्या चन्द्रसेनो नृपोत्तमः ॥ १३ ॥ तस्याभवत्सखा राज्ञः शिवपारिषदाग्रणीः ॥ मणिभद्रो जिताभद्रः सर्वलोकनमस्कृतः ॥ १४ ॥ तस्यैकदा महीभर्त्तुः प्रसन्नः शङ्करानुगः ॥ चिन्तामणिं ददौ दिव्यं मणिभद्रो महामतिः ॥ १५ ॥ स मणिः कौस्तुभ इव द्योतमानोर्कसन्निभः ॥ दृष्टः श्रुतो वा ध्यातो वा नृणां यच्छति

क्या है जो शिवजी की भक्ति के कुछ अंश से भी संयुत होता है वह सब प्राणियों के प्रणाम करने योग्य है ॥ ११ ॥ उज्जयिनी पुरी में चन्द्रसेन नामक राजा हुआ है वह दूसरे इन्द्र की नाईं मनुष्यरूप से पैदा हुआ था ॥ १२ ॥ उस नगर में बसते हुए महाकाल नामक शिवजी को यह चन्द्रसेन नामक उत्तम राजा भक्ति से पूजता था ॥ १३ ॥ और अमंगलों को जीतनेवाला तथा सब लोगों से प्रणाम किया हुआ व शिवजी के पार्षदों में श्रेष्ठ मणिभद्र नामक उस राजा का मित्र हुआ है ॥ १४ ॥ उस राजा के ऊपर प्रसन्न होकर महाबुद्धिमान् मणिभद्र नामक शिवजी के पार्षदने एक समय दिव्य चिन्तामणिको दिया ॥ १५ ॥

देखी, सुनी व ध्यान कीहुई वह सूर्य के समान प्रकाशमान मणि कौस्तुभ की नाईं मनुष्यों के मनोरथको देतीहै ॥ १६ ॥ और उसकी कान्ति के लेशमात्र से छुवा हुआ कांस्य, ताम्र, लोह, राँग, पत्थर आदिक या और वस्तु उसी क्षण सुवर्ण होजाती है ॥ १७ ॥ उस चिन्तामणि को गले में पहने हुए राजासनपै बैठा हुआ वह आपही राजा देवताओं के मध्यमें सूर्यनारायण की नाईं शोभित हुआ ॥ १८ ॥ सदैव चिन्तामणिकण्ठवाले उस उत्तम नृपति को सुनकर बढ़ी हुई ईर्षावाले सब राजा लोगों के हृदय क्षोभित हुए ॥ १९ ॥ और भाग्यसे मिली हुई मणि को न जानते हुए कोई ईर्षावान् राजा लोगों ने स्नेह से मांगा व कितेक दुर्मद

चिन्तितम् ॥ १६ ॥ तस्य कान्तिलवस्पृष्टं कांस्यं ताम्रमयस्त्रपु ॥ पाषाणादिकमन्यद्वा सद्यो भवति काञ्चनम् ॥ १७ ॥ स तं चिन्तामणिं कण्ठे बिभ्रद्राजासनं गतः ॥ रराज राजा देवानां मध्ये भानुरिव स्वयम् ॥ १८ ॥ सदा चिन्तामणिग्रीवं तं श्रुत्वा राजसत्तमम् ॥ प्रवृद्धतर्षा राजानः सर्वे क्षुब्धहृदोऽभवन् ॥ १९ ॥ स्नेहात्केचिदयाचन्त धाष्ट्यात्केचन दुर्मदाः ॥ दैवलब्धमजानन्तो मणिं मत्सरिणो नृपाः ॥ २० ॥ सर्वेषां भूभृतां याच्ञा यदा व्यर्थीकृतामुना ॥ राजानः सर्वदेशानां संरम्भं चक्रिरे तदा ॥ २१ ॥ सौराष्ट्राः कैकयाः शाल्वाः कलिङ्गशकमद्रकाः ॥ पाञ्चालावन्तिसौवीरा मागधा मत्स्यसृञ्जयाः ॥ २२ ॥ एते चान्ये च राजानः सहाश्वरथकुञ्जराः ॥ चन्द्रसेनं मृधे जेतुमुद्यमं चक्रुरोजसा ॥ २३ ॥ ते तु सर्वे सुसंरब्धाः कम्पयन्तो वसुन्धराम् ॥ उज्जयिन्याश्चतुर्द्वारं रुरुधुर्बहुसैनिकाः ॥ २४ ॥ संरुध्यमानां स्वपुरीं दृष्ट्वा राजभिरुद्धतैः ॥ चन्द्रसेनो महाकालं तमेव शरणं ययौ ॥ २५ ॥ निर्विकल्पो निराहारः

राजाओं ने ढिठाई से मांगा ॥ २० ॥ जब इस राजा ने सब राजाओं की याचना को व्यर्थ करदिया तब सब देशों के राजाओं ने क्रोध किया ॥ २१ ॥ सौराष्ट्र, केकय, शाल्व, कलिंग, शक, मद्रक, पांचाल, उज्जैन, सौवीर, मागध, मत्स्य व सृंजय देशवाले ॥ २२ ॥ घोड़ा, रथ व हाथियों समेत इन व अन्य राजा लोगों ने पराक्रम से चन्द्रसेन राजा को युद्ध में जीतने के लिये उद्योग किया ॥ २३ ॥ व पृथ्वी को कँपाते हुए बहुत सेनावाले उन सब क्रोधित राजाओं ने उज्जयिनी के चारों द्वारों को घेर लिया ॥ २४ ॥ और गर्वित राजा लोगों से घेरी हुई अपनी पुरी को देखकर चन्द्रसेन राजा उन्हीं महाकालजी की शरण में गया ॥ २५ ॥

भेदरहित व निराहार तथा दृढ़ निश्चयवाले उस अनन्य (एकाग्र) बुद्धि राजा ने दिन रात शिवजी को पूजन किया ॥ २६ ॥ इसी समय में उस नगर में रहनेवाली पतिरहित व एक पुत्रसे संयुत कोई बुड्ढी गोपी वहीं बैठी थी ॥ २७ ॥ और पांच वर्ष के पुत्र को लिये उस विधवा गोपी ने शिवजी की कीहुई पूजा को देखा ॥ २८ ॥ और शिवजी की पूजा के प्रभाव व सब आश्चर्य को देखकर वह गोपी प्रणाम कर फिर अपने स्थान को प्राप्त हुई ॥ २९ ॥ इस सब चरित्र को संपूर्णता से देखकर उस गोपी के पुत्रने कौतुक से वैराग्य को देनेवाली शिवपूजा को किया ॥ ३० ॥ कि शून्य उस उत्तम निवासस्थान में सुन्दर पत्थर को

स राजा दृढनिश्चयः ॥ अर्चयामास गौरीशं दिवा नक्तमनन्यधीः ॥ २६ ॥ एतस्मिन्नन्तरे गोपी काचित्तत्पुरवासिनी ॥ एकपुत्रा भर्तृहीना तत्रैवासीच्चिरंतना ॥ २७ ॥ सा पञ्चहायनं बालं वहन्ती गतभर्तृका ॥ राज्ञा कृतां महापूजां ददर्श गिरिजापतेः ॥ २८ ॥ सा दृष्ट्वा सर्वमाश्चर्यं शिवपूजामहोदयम् ॥ प्रणिपत्य स्वशिबिरं पुनरेवाभ्यपद्यत ॥ २९ ॥ एतत्सर्वमशेषेण स दृष्ट्वा बल्लवीसुतः ॥ कुतूहलेन विदधे शिवपूजां विरक्तिदाम् ॥ ३० ॥ आनीय हृद्यं पाषाणं शून्ये तु शिबिरोत्तमे ॥ नातिदूरे स्वशिबिराच्छिवलिङ्गमकल्पयत् ॥ ३१ ॥ यानि कानि च पुष्पाणि हस्तलभ्यानि चात्मनः ॥ आनीय स्नाप्य तल्लिङ्गं पूजयामास भक्तितः ॥ ३२ ॥ गन्धालंकारवासांसि धूपदीपाक्षतादिकम् ॥ विधाय कृत्रिमैर्दिव्यैर्नैवेद्यं चाप्यकल्पयत् ॥ ३३ ॥ भूयो भूयः समभ्यर्च्य पत्रैः पुष्पैर्मनोरमैः ॥ नृत्यं च विविधं कृत्वा प्रणनाम पुनःपुनः ॥ ३४ ॥ एवं पूजां प्रकुर्वाणं शिवस्यानन्यमानसम् ॥ सा पुत्रं प्रणयाद्गोपी भोजनाय समाह्वय

लेकर अपने टिकाश्रय से थोडी दूर पै शिवजी का लिङ्ग कल्पित किया ॥ ३१ ॥ और जो कोई पुष्प अपने हाथ से मिलने योग्य थे उनको लाकर भक्ति से उस लिङ्ग को नहवाकर पूजन किया ॥ ३२ ॥ और चन्दन, अलंकार, वसन, धूप, दीप व अक्षतादिक चढ़ाकर बनाई हुई दिव्य वस्तुवों से नैवेद्य लगाया ॥ ३३ ॥ और बारबार सुन्दर पत्रों व पुष्पों से पूजकर अनेक भांति का नृत्य कर बारबार प्रणाम किया ॥ ३४ ॥ इस प्रकार शिवजी का पूजन करते हुए उस एकाग्रमन-

वाले पुत्रको गोपी ने भोजन के लिये स्नेह से बुलाया ॥ ३५ ॥ व बहुत बार माता से बुलाये हुए व पूजा में लगे मनवाले उस बालक ने भी भोजन की इच्छा न किया तब माता आपही गई ॥ ३६ ॥ और आँखों को मूंदे शिवजीके आगे बैठे हुए उस पुत्र को देखकर हाथ पकड़कर खींचा व क्रोधसे मारा ॥ ३७ ॥ जब खींचा व मारा हुआ भी वह अपना पुत्र नहीं आया तब उस गोपी ने लिंग को दूर फेंककर उस पूजा को नाश करदिया ॥ ३८ ॥ व हाय हाय ऐसा रोते हुए उस अपने पुत्र को घुड़क कर उस समय क्रोध समेत गोपी फिर अपने घरमें पैठ गई ॥ ३९ ॥ त्रिशूलधारी शिवजी का पूजन माता से नष्ट किया हुआ देख

त् ॥ ३५ ॥ मात्राहूतोपि बहुशः स पूजासक्तमानसः ॥ बालोपि भोजनं नैच्छत्तदा माता स्वयं ययौ ॥ ३६ ॥ तं विलोक्य शिवस्याग्रे निषण्णं मीलितेक्षणम् ॥ चकर्ष पाणिं संगृह्य कोपेन समताडयत् ॥ ३७ ॥ आकृष्टस्ताडितो वापि नागच्छ त्स्वसुतो यदा ॥ तां पूजां नाशयामास क्षिप्त्वा लिङ्गं विदूरतः ॥ ३८ ॥ हाहेति रुदमानं तं निर्भर्त्स्य स्वसुतं तदा ॥ पुनर्विवेश स्वगृहं गोपी रोषसमन्विता ॥ ३९ ॥ मात्रा विनाशितां पूजां दृष्ट्वा देवस्य शूलिनः ॥ देवदेवेति चुक्रो श निपपात स बालकः ॥ ४० ॥ प्रणष्टसंज्ञः सहसा बाष्पपूरपरिप्लुतः ॥ लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन चक्षुषी उदमीलयत् ॥ ४१ ॥ ततो मणिस्तम्भविराजमानं हिरण्मयद्वारकपाटतोरणम् ॥ महार्हनीलामलवज्रवेदिकं तदेव जातं शिबिरं शिवालयम् ॥ ४२ ॥ सन्तप्तहेमकलशैर्बहुभिर्विचित्रैः प्रोद्भासितस्फटिकसौधतलाभिरामम् ॥ रम्यं च तच्छिव पुरं वरपीठम ध्ये लिङ्गं च रत्नसहितं स ददर्श बालः ॥ ४३ ॥ स दृष्ट्वा सहसोत्थाय भीतविस्मितमानसः ॥ निमग्न इव

कर वह बालक हे देव ! हे देव ! ऐसा कह रोनेलगा व गिर पड़ा ॥ ४० ॥ और आँसुवों के प्रवाह से संयुत वह यकायक मूर्च्छित होगया व थोड़ी देरमें चैतन्यता को पाकर उसने नेत्रों को खोला ॥ ४१ ॥ तदनन्तर वही निवासस्थान मणियों के खंभों से शोभित तथा सुवर्णमय द्वार, किवाड़ व बाहरी द्वारवाला और बड़े मोलवाली नील मणि व निर्मल हीरों की वेदीवाला शिवालय होगया ॥ ४२ ॥ और तचे हुए सुवर्ण के बहुत विचित्र घटों से चमकीले स्फटिक राजमन्दिरों की नीचेवाली भूमि से सुन्दर उस शिवनगर को उस बालक ने देखा और उत्तम पीठ के मध्य में रत्नों समेत लिंग को देखा ॥ ४३ ॥ और देखकर वह यकायक

उठकर डर गया व उसका मन आश्चर्य में प्राप्त हुआ और हर्षसे वह बड़े भारी आनन्द के समुद्र में मग्नसा होगया ॥ ४४ ॥ और शिवपूजन का माहात्म्य जानकर उसके प्रभाव से उस बालक ने अपनी माता के पाप की शान्ति के लिये भूमि में प्रणाम किया ॥ ४५ ॥ कि हे उमापते, देव ! मेरी माता के अपराध को क्षमा कीजिये व हे शंकर ! मूर्खिणी और तुमको न जानती हुई उसके ऊपर प्रसन्न हूजिये ॥ ४६ ॥ हे शिवजी ! यदि तुम्हारी भक्ति से उपजा हुआ जो कुछ पुण्य मुझमें होवै उससे भी मेरी माता तुम्हारी दया को प्राप्त होवै ॥ ४७ ॥ इस प्रकार शिवजी को प्रसन्न कराकर व बारबार प्रणाम कर सूर्यनारायण अस्त

सन्तोषात्परमानन्दसागरे ॥ ४४ ॥ विज्ञाय शिवपूजाया माहात्म्यं तत्प्रभावतः ॥ ननाम दण्डवद्भूमौ स्वमातुरघ शान्तये ॥ ४५ ॥ देव क्षमस्व दुरितं मम मातुरुमापते ॥ मूढायास्त्वामजानन्त्याः प्रसन्नो भव शङ्कर ॥ ४६ ॥ यद्य स्ति मयि यत्किंचित्पुण्यं त्वद्भक्तिसंभवम् ॥ तेनापि शिव मे माता तव कारुण्यमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥ इति प्रसाद्य गिरिशं भूयोभूयः प्रणम्य च ॥ सूर्ये चास्तं गते बालो निर्जगाम शिवालयात् ॥ ४८ ॥ अथापश्यत्स्वशिबिरं पुरन्दरपुरोपमम् ॥ सद्यो हिरण्मयीभूतं विचित्रविभवोज्ज्वलम् ॥ ४९ ॥ सोन्तः प्रविश्य भवनं मोदमानो नि शामुखे ॥ महामणिगणाकीर्णं हेमराशिसमुज्ज्वलम् ॥ ५० ॥ तत्रापश्यत्स्वजननीं स्मरन्तीमकुतोभयाम् ॥ महा र्हरत्नपर्यङ्के सितशय्यामधिश्रिताम् ॥ ५१ ॥ रत्नालङ्कारदीप्ताङ्गीं दिव्याम्बरविराजिनीम् ॥ दिव्यलक्षणसम्पन्नां साक्षात्सुरवधूमिव ॥ ५२ ॥ जवेनोत्थापयामास संभ्रमोत्फुल्ललोचनः ॥ अम्ब जागृहि भद्रं ते पश्येदं महदद्भु

होने पर बालक शिवालय से निकला ॥ ४८ ॥ इसके उपरान्त उसने अपने स्थान को उसी क्षण सुवर्णमय हुए व विचित्र ऐश्वर्यों से युक्त इन्द्र के नगर के समान देखा ॥ ४९ ॥ और सन्ध्यासमय में महामणिगणों से व्याप्त तथा सुवर्ण की राशियों से उज्ज्वल मन्दिर के भीतर पैठकर वह प्रसन्न हुआ ॥ ५० ॥ और उस मन्दिर में उसने बड़े मोलवाले रत्नों के पलँग पै श्वेत शय्या पै बैठी सब कहीं से निडर व अपना को याद करती हुई अपनी माताको देखा ॥ ५१ ॥ व रत्नभूषणों से प्रकाशित अंगोंवाली तथा दिव्यवस्त्रों से भूषित और दिव्यलक्षणों से संयुत साक्षात् इन्द्राणी की नाईं उस माता को ॥ ५२ ॥ संभ्रम से प्रफुल्लित

लोचनोंवाले उस बालक ने वेग से उठाया कि हे अम्ब! जागिये तुम्हारा कल्याण होवै इस बड़े आश्चर्य को देखिये ॥ ५३ ॥ अपने महात्मा पुत्र से इस प्रकार समझाई हुई वह मुकुट से उज्ज्वल अपनी माता गोपी विस्मयको प्राप्त हुई ॥ ५४ ॥ व शीघ्रता समेत उठकर उसने उस सबको देखा और अपूर्व की नाईं अपनाको व अपूर्वसा अपने पुत्र को देखा ॥ ५५ ॥ और अपने मन्दिर को पहले के समान न देखकर वह सुखसे विह्वल हुई और पुत्र के मुख से शिवजी की सब प्रसन्नता को सुनकर ॥ ५६ ॥ राजा से कहा जो कि सदैव शिवजी को भजता था समाप्त नियमवाले उस राजाने रातमें यकायक आकर ॥ ५७ ॥ शिवजी की प्रसन्नता से

तम् ॥ ५३ ॥ इति प्रबोधिता गोपी स्वपुत्रेण महात्मना ॥ ततोऽपश्यत्स्वजननी स्मयन्ती मुकुटोज्ज्वला ॥ ५४ ॥ ससंभ्रमं समुत्थाय तत्सर्वं प्रत्यवैक्षत ॥ अपूर्वमिव चात्मानमपूर्वमिव बालकम् ॥ ५५ ॥ अपूर्वं च स्वसदनं दृष्ट्वासीत्सुखविह्वला ॥ श्रुत्वा पुत्रमुखात्सर्वं प्रसादं गिरिजापतेः ॥ ५६ ॥ राज्ञे विज्ञापयामास यो भजत्यनिशं शिवम् ॥ स राजा सहसागत्य समाप्तनियमो निशि ॥ ५७ ॥ ददर्श गोपिकासूनोः प्रभावं शिवतोषजम् ॥ हिरण्मयं शिवस्थानं लिङ्गं मणिमयं तथा ॥ ५८ ॥ गोपवध्वाश्च सदनं माणिक्यवरकोज्ज्वलम् ॥ दृष्ट्वा महीपतिः सर्वं सामात्यः सपुरोहितः ॥ ५९ ॥ मुहूर्तं विस्मितधृतिः परमानन्दनिर्भरः ॥ प्रेम्णा बाष्पजलं मुञ्चन्परिरेभे तमर्भकम् ॥ ६० ॥ एवमत्यद्भुताकाराच्छिवमाहात्म्यकीर्त्तनात् ॥ पौराणां संभ्रमाच्चैव सा रात्रिः क्षणतामगात् ॥ ६१ ॥ अथ प्रभाते युद्धाय

उपजे हुए गोपीपुत्र के प्रभाव को देखा और सुवर्णमय शिवजी का स्थान व मणिमय लिंग देखा ॥ ५८ ॥ व उत्तम माणिक्य से उज्ज्वल गोप की स्त्री के सब मन्दिर को देखकर मंत्रियों समेत व पुरोहित समेत राजा ॥ ५९ ॥ थोड़ी देर तक धैर्यरहित होकर बड़े आनन्द में मग्न होगया व प्रेम से आँसुवों के जल को छोड़ते हुए उस राजा ने उस बालक को लिपटा लिया ॥ ६० ॥ इस प्रकार अद्भुत आकारवाले शिवमाहात्म्य के कीर्तन से व संभ्रम से पुरवासियों को वह रात क्षणभर की सी होगई ॥ ६१ ॥ इसके उपरान्त प्रातःकाल जो राजा लोग पुरको घेरकर टिके थे उन्होंने चारों गुप्तदूतों के मुखों से बहुत आश्चर्यवाले चरित्र को

सुना ॥ ६२ ॥ और सहसा वैर को छोड़कर बहुतही चाकित उन राजा लोग ोंने शस्त्रों को धरकर चन्द्रसेन के अनुसार प्रसन्न होकर नगर में प्रवेश किया ॥ ६३ ॥ उस सुन्दरी पुरी में पैठकर व महाकालजी को प्रणाम कर सब राजा लोग उस गोपी के घर को गये ॥ ६४ ॥ और वहा चन्द्रसेन राजाने आगे आकर उनका पूजन किया व बड़े क़ीमती आसनों पै बैठे हुए वे बहुत विस्मित होकर प्रीति से आनन्दित हुए ॥ ६५ ॥ और गोपपुत्रकी प्रसन्नता के लिये प्रकट हुए शिवालय व बड़े भारी लिंग को देखकर उन्होंने शिवजी में उत्तम बुद्धि किया ॥ ६६ ॥ व प्रसन्न होकर उन सब राजाओं ने उस गोपपुत्रके लिये वसन, सुवर्ण, रत्न, गऊ व भैंसी

पुरं संरुध्य संस्थिताः ॥ राजानश्चारवक्त्रेभ्यः शुश्रुवुः परमाद्भुतम् ॥ ६२ ॥ ते त्यक्तवैराः सहसा राजानश्चकिता भृशम् ॥ न्यस्तशस्त्रा निविविशुश्चन्द्रसेनानुमोदिताः ॥ ६३ ॥ तां प्रविश्य पुरीं रम्यां महाकालं प्रणम्य च ॥ तद्गो पवनितागेहमाजग्मुः सर्वभूभृतः ॥ ६४ ॥ ते तत्र चन्द्रसेनेन प्रत्युद्गम्याभिपूजिताः ॥ महार्हविष्टरगताः प्रीत्यानन्दन्सु विस्मिताः ॥ ६५ ॥ गोपसूनोः प्रसादाय प्रादुर्भूतं शिवालयम् ॥ लिङ्गं च वीक्ष्य सुमहच्छिवे चक्रुः परां मतिम् ॥ ६६ ॥ तस्मै गोपकुमाराय प्रीतास्ते सर्वभूभुजः ॥ वासोहिरण्यरत्नानि गोमहिष्यादिकं धनम् ॥ ६७ ॥ गजानश्वान्रथा न्रौक्माञ्छत्रयानपरिच्छदान् ॥ दासान्दासीरनेकाश्च ददुः शिवकृपार्थिनः ॥ ६८ ॥ ये ये सर्वेषु देशेषु गोपास्ति ष्ठन्ति भूरिशः ॥ तेषां तमेव राजानं चक्रिरे सर्वपार्थिवाः ॥ ६९ ॥ अथास्मिन्नन्तरे सर्वैस्त्रिदशैरभिपूजितः ॥ प्रादुर्बभूव तेजस्वी हनूमान्वानरेश्वरः ॥ ७० ॥ तस्याभिगमनादेव राजानो जातसंभ्रमाः ॥ प्रत्युत्थाय नमश्चक्रुर्भक्तिनम्रा

आदिक धन को दिया ॥ ६७ ॥ व शिवजी की दया को चाहनेवाले उन राजाओं ने हाथी, घोड़ा व सुनहले रथ, छत्र, सवारी और सामान व अनेक दासों तथा दासियों को दिया ॥ ६८ ॥ और सब देशों में जो जो बहुत से गोप स्थित थे सब राजाओं ने उन गोपों का राजा उसी गोपपुत्र को किया ॥ ६९ ॥ इसके उपरान्त इसी अवसर में सब देवताओं से पूजित तेजस्वी हनुमान् कपीश्वरजी प्रकट हुए ॥ ७० ॥ और उनके आनेही से राजाओं के संभ्रम उत्पन्न हुआ व भक्ति से नम्र

देहवाले उन्होंने उठकर प्रणाम किया ॥ ७१ ॥ उनके मध्य में पूजित कपीश्वरजी बैठे व गोप के पुत्र को लिपटाकर और राजा को देखकर यह कहा ॥ ७२ ॥ कि हे राजाओ ! व जो देहधारी हो वे सब सुनिये कि तुमलोगों का कल्याण होवै और शिवपूजन को छोड़कर प्राणियों की अन्य गति नहीं है ॥ ७३ ॥ आनन्द है कि इस गोपबालक ने शनिवार प्रदोष में बिन मंत्रसे भी शिवजी को पूजकर शिवको पायाहै ॥ ७४ ॥ और शनैश्चर के दिन यह प्रदोष सब प्राणियों को दुर्लभ है व उसमें भी कृष्णपक्ष आने पर बहुतही दुर्लभ है ॥ ७५ ॥ संसार में गोपों का यश बढ़ानेवाला यह बहुत पवित्र है और इसके वंश में आठवां नन्दनामक गोप

त्ममूर्त्तयः ॥ ७१ ॥ तेषां मध्ये समासीनः पूजितः प्लवगेश्वरः ॥ गोपात्मजं समाश्लिष्य राज्ञो वीक्ष्येदमब्रवीत् ॥ ७२ ॥ सर्वे शृणुत भद्रं वो राजानो ये च देहिनः ॥ शिवपूजामृते नान्या गतिरस्ति शरीरिणाम् ॥ ७३ ॥ एष गोपसुतो दिष्ट्या प्रदोषे मन्दवासरे ॥ अमन्त्रेणापि संपूज्य शिवं शिवमवाप्तवान् ॥ ७४ ॥ मन्दवारे प्रदोषोऽयं दुर्लभः सर्वदेहिनाम् ॥ तत्रापि दुर्लभतरः कृष्णपक्षे समागते ॥ ७५ ॥ एष पुण्यतमो लोके गोपानां कीर्तिवर्धनः ॥ अस्य वंशेऽष्टमो भावी नन्दोनाम महायशाः ॥ प्राप्स्यते तस्य पुत्रत्वं कृष्णो नारायणः स्वयम् ॥ ७६ ॥ अद्यप्रभृति लोकेस्मिन्नेष गोपालनन्दनः ॥ नाम्ना श्रीकर इत्युच्चैर्लोके ख्यातिं गमिष्यति ॥ ७७ ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वाञ्जनीसूनुस्तस्मै गोपकसूनवे ॥ उपदिश्य शिवाचारं तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७८ ॥ ते च सर्वे महीपालाः संहृष्टाः प्रतिपूजिताः ॥ चन्द्रसेनं समामन्त्र्य प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥ ७९ ॥ श्रीकरोऽपि महातेजा उपदिष्टो हनूमता ॥ ब्राह्मणैः

बडा यशस्वी होगा उसकी पुत्रता को आपही नारायण कृष्णजी प्राप्त होवैंगे ॥ ७६ ॥ व आजसे लगाकर इस संसार में यह गोपबालक श्रीकर ऐसे ऊंचे नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ ७७ ॥ ऐसा कहकर अंजनीसुत हनुमान्जी उस गोपपुत्रके लिये शिवजी का आचार उपदेश कर वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ७८ ॥ और वे सब पूजित राजा लोग प्रसन्न होकर चन्द्रसेन से पूछकर जैसेही आये थे वैसे चले गये ॥ ७९ ॥ और हनुमान्जी से उपदेशित बडे तेजस्वी श्रीकर ने भी धर्म

को जाननेवाले ब्राह्मणोंके साथ शिवजीका पूजन किया ॥ ८० ॥ व काल से वह श्रीकर और चन्द्रसेन राजा भी दोनो शिवजीको भक्ति से आराधन कर परमपदको प्राप्त हुए ॥ ८१ ॥ यह यशकारक व बहुतही पवित्र तथा बहुत लक्ष्मी को बढ़ानेवाला चरित्र कहा गया जो कि पापराशियों का नाशक व शिवजी के चरणकमलों की भक्तिको बढ़ानेवाला है ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां गोपकुमारचरित्रवर्णनंनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

दो० । जिमि प्रदोषमें पूजि शिव मिलत अहैं फल भूरि । सोइ छठें अध्याय में कह्यो चरित सुखभूरि ॥ ऋषि लोग बोले कि हे सूतजी ! आपने जो बडा भारी

सह धर्मज्ञैश्चक्रे शम्भोः समर्हणम् ॥ ८० ॥ कालेन श्रीकरः सोऽपि चन्द्रसेनश्च भूपतिः ॥ समाराध्य शिवं भक्त्या प्रापतुः परमं पदम् ॥ ८१ ॥ इदं रहस्यं परमं पवित्रं यशस्करं पुण्यमहर्द्धिवर्धनम् ॥ आख्यानमाख्यातम घौघनाशनं गौरीशपादाम्बुजभक्तिवर्धनम् ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे गोपकुमारचरितवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषय ऊचुः ॥ यदुक्तं भवता सूत महदाख्यानमद्भुतम् ॥ शम्भोर्माहात्म्यकथनमशेषाघहरं परम् ॥ १ ॥ भूयोपि श्रोतुमिच्छामस्तदेव सुसमाहिताः ॥ प्रदोषे भगवाञ्छम्भुः पूजितस्तु महात्मभिः ॥ २ ॥ संप्रयच्छति कां सिद्धिमेतन्नो ब्रूहि सुव्रत ॥ श्रुतमप्यसकृत्सूत भूयस्तृष्णा प्रवर्धते ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ साधु पृष्टं महाप्राज्ञा भवद्भिर्लोकविश्रुतैः ॥ अतोऽहं संप्रवक्ष्यामि शिवपूजाफलं महत् ॥ ४ ॥ त्रयोदश्यां तिथौ सायं प्रदोषः परिकी

अद्भुत चरित्र था उसको कहा और शिवजी के माहात्म्यका वर्णन समस्त पातकों का नाशक व उत्तमहै ॥ १ ॥ सावधान होकर हमलोग फिर भी उसीको सुना चाहते हैं कि प्रदोष में महात्माओं से-पूजे हुए भगवान् शिवजी ॥ २ ॥ किस सिद्धि को देते हैं हे सुव्रत ! यह हमलोगों से कहिये हे सूतजी ! कईवार सुना भी गया है परन्तु फिर तृष्णा बढ़ती है ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि हे महाप्राज्ञो ! मनुष्यों में प्रसिद्ध आपलोगों ने बहुत अच्छा पूंछा इस कारण मैं शिवपूजन के बड़े भारी फल को कहूंगा ॥ ४ ॥ तेरसि तिथि में सन्ध्या का समय प्रदोष कहा गया है उसमें फल की इच्छावाले मनुष्यो को शिवदेवजी का पूजन करना चाहिये

अन्य देवता को न पूजना चाहिये ॥ ५ ॥ प्रदोष पूजन का माहात्म्य कहने के लिये कौन समर्थ है कि जिसमें सब भी देवता शिवजीके समीप स्थित होते हैं ॥ ६ ॥ व प्रदोष समय में देवताओं से स्तुति किये हुए गुणों के प्रभाववाले शिवदेवजी कैलास पर्वत पै चांदी के स्थान में नृत्य करते हैं ॥ ७ ॥ इस कारण धर्म, अर्थ, काम व मोक्षके फल को चाहनेवाले मनुष्यों को निश्चय कर पूजन, जप, होम व उन शिवजी की कथा और उनके गुणों की स्तुति करना चाहिये ॥ ८ ॥ दरिद्रतारूपी तिमिर से अन्ध व संसार से डरे हुए और भवसागर में मग्न मनुष्यों के लिये यह पार को दिखलानेवाली नौका है ॥ ९ ॥ और दुःख,

र्त्तितः ॥ तत्र पूज्यो महादेवो नान्यो देवः फलार्थिभिः ॥ ५ ॥ प्रदोषपूजामाहात्म्यं को नु वर्णयितुं क्षमः ॥ यत्र सर्वेऽपि विबुधास्तिष्ठन्ति गिरिशान्तिके ॥ ६ ॥ प्रदोषसमये देवः कैलासे रजतालये ॥ करोति नृत्यं विबुधैरभिष्टुतगुणोदयः ॥ ७ ॥ अतः पूजा जपो होमस्तत्कथास्तद्गुणस्तवः ॥ कर्त्तव्यो नियतं मर्त्यैश्चतुर्वर्गफलार्थिभिः ॥ ८ ॥ दारिद्र्यतिमिरान्धानां मर्त्यानां भवभीरुणाम् ॥ भवसागरमग्नानां प्लवोऽयं पारदर्शनः ॥ ९ ॥ दुःखशोकभयार्त्तानां क्लेशनिर्वाणमिच्छताम् ॥ प्रदोषे पार्वतीशस्य पूजनं मङ्गलायनम् ॥ १० ॥ दुर्बुद्धिरपि नीचोऽपि मन्दभाग्यः शठोऽपि वा ॥ प्रदोषे पूज्य देवेशं विपद्भ्यः स प्रमुच्यते ॥ ११ ॥ शत्रुभिर्हन्यमानोऽपि दश्यमानोपि पन्नगैः ॥ शैलैराक्रम्यमाणोऽपि पतितोऽपि महाम्बुधौ ॥ १२ ॥ आविद्धकालदण्डोऽपि नानारोगहतोऽपि वा ॥ न विनश्यति मर्त्योऽसौ प्रदोषे गिरिशार्चनात् ॥ १३ ॥ दारिद्र्यं मरणं दुःखमृणभारं नगोपमम् ॥ सद्यो विधूय सम्पद्भिः

शोक व भयसे विकल तथा क्लेश का अन्त चाहनेवाले लोगों को प्रदोष में शिवजी का पूजन मंगल का स्थान है ॥ १० ॥ जो दुर्बुद्धि, नीच, मन्दभाग्य या शठ भी होता है वह प्रदोष में देवेश शिवजी को पूजकर विपत्तियों से छूट जाता है ॥ ११ ॥ व शत्रुओं से मारा तथा सर्पों से काटा जाता हुआ भी और पर्वतों से दबाया व महासागर में गिरा हुआ भी ॥ १२ ॥ और कालदण्ड से मास व अनेक भांति के रोगों से नाश किया हुआ भी यह मनुष्य प्रदोष में शिवपूजन से नाश नहीं होता है ॥ १३ ॥ और शिवपूजन से मनुष्य दरिद्रता, मृत्यु व पर्वत के समान ऋण के भार को शीघ्रही नाश कर सम्पदाओं से पूजा जाता

है ॥ १४ ॥ इस विषयमें मैं बड़े पवित्र व प्राचीन इतिहासको कहता हूं कि जिसको सुनकर सब मनुष्य कृतार्थता को प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥ विदर्भदेश में सत्यरथ नामक राजा हुआ है जो कि सब धर्मों में परायण, बुद्धिमान्, सुशील व सत्यप्रतिज्ञावान् था ॥ १६ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! धर्म से पृथ्वीको पालते हुए उस महाबुद्धिमान् राजा का बहुतसा समय सुखसे व्यतीत होगया ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त गर्वित सेनावाले दुर्मर्षण आदिक शाल्वदेश के राजा लोग उस राजा के शत्रु हुए ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त किसी समय बहुत सेनावाले लोगों को तैयार कर जीत की इच्छावाले उन शाल्वदेश के राजाओं ने विदर्भनगरी को प्राप्त होकर घेर लिया ॥ १९ ॥

पूज्यते शिवपूजनात् ॥ १४ ॥ अत्र वक्ष्ये महापुण्यमितिहासं पुरातनम् ॥ यं श्रुत्वा मनुजाः सर्वे प्रयान्ति कृतकृत्यताम् ॥ १५ ॥ आसीद्विदर्भविषये नाम्ना सत्यरथो नृपः ॥ सर्वधर्मरतो धीरः सुशीलः सत्यसंगरः ॥ १६ ॥ तस्य पालयतो भूमिं धर्मेण मुनिपुङ्गवाः ॥ व्यतीयाय महान्कालः सुखेनैव महामतेः ॥ १७ ॥ अथ तस्य महीभर्तुर्बभूवुः शाल्वभूभुजः ॥ शत्रवश्चोद्धतबला दुर्मर्षणपुरोगमाः ॥ १८ ॥ कदाचिदथ ते शाल्वाः संनद्धबहुसैनिकाः ॥ विदर्भनगरीं प्राप्य रुरुधुर्विजिगीषवः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा निरुध्यमानां तां विदर्भाधिपतिः पुरीम् ॥ योद्धुमभ्याययौ तूर्णं बलेन महता वृतः ॥ २० ॥ तस्य तैरभवद्युद्धं शाल्वैरपि बलोद्धतैः ॥ पाताले पन्नगेन्द्रस्य गन्धर्वैरिव दुर्मदैः ॥ २१ ॥ विदर्भनृपतिः सोऽथ कृत्वा युद्धं सुदारुणम् ॥ प्रणष्टोरुबलैः शाल्वैर्निहतो रणमूर्धनि ॥ २२ ॥ तस्मिन्महारथे वीरे निहते मन्त्रिभिः सह ॥ दुद्रुवुः समरे भग्ना हतशेषाश्च सैनिकाः ॥ २३ ॥ अथ युद्धेऽभिविरते नदत्सु रिपु

व उस पुरी को घेरी हुई देखकर बड़ी सेना से संयुत वह विदर्भदेश का राजा शीघ्रही युद्ध करने के लिये आया ॥ २० ॥ और बल से उग्र उन शाल्वदेश के राजाओं से उसका युद्ध हुआ जैसे कि पाताल में दुष्टमदवाले गंधर्वों से शेषजीका युद्ध हुआ है ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त वह विदर्भ देश का राजा बडा भयकर युद्ध करके समरमें नष्ट हुई बहुत सेनावाले शाल्वदेश के राजाओंसे मारा गया ॥ २२ ॥ और मंत्रियों समेत उस महारथी वीर के मरने पर समर में मारने से बचे हुए सेनावाले लोग भगगये ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त युद्ध बन्द होजाने पर जब शत्रुवों के मंत्री लोग युद्ध होती हुई नगरी में गर्जने लगे और कोलाहल शब्द

होने लगा ॥ २४ ॥ तब विदर्भदेश के राजा सत्यरथ की एक बड़े शोक से संयुत स्त्री यत्न से कहीं निकल गई ॥ २५ ॥ और रात्रि के समय में शोक से तची हुई वह गर्भिणी राजा की स्त्री यत्न से निकल गई व पश्चिम दिशा को चली गई ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त प्रातःकाल धीरे धीरे मार्ग से जाती हुई उस पतिव्रता स्त्री ने दूर मार्ग को नॉघकर निर्मल तड़ाग को देखा ॥ २७ ॥ वहां आकर बड़े ताप से सतप्त वह स्त्री तडाग के किनारे शोभित वृक्ष के नीचे बैठ गई ॥ २८ ॥ और भाग्य के वश से निर्जन उस वृक्ष की चट्टान में पतिव्रता रानी ने उत्तम गुणों से संयुत मुहूर्त में पुत्र को उत्पन्न किया ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त बहुत प्यास से

मन्त्रिषु ॥ नगर्यां युद्ध्यमानायां जाते कोलाहले रवे ॥ २४ ॥ तस्य सत्यरथस्यैका विदर्भाधिपतेः सती ॥ भूरि शोकसमाविष्टा कचिद्यत्नाद्विनिर्ययौ ॥ २५ ॥ सा निशासमये यत्नादन्तर्वत्नी नृपाङ्गना ॥ निर्गता शोकसन्तप्ता प्रतीचीं प्रययौ दिशम् ॥ २६ ॥ अथ प्रभाते मार्गेण गच्छन्ती शनकैः सती ॥ अतीत्य दूरमध्वानं ददर्श विमलं सरः ॥ २७ ॥ तत्रागत्य वरारोहा तप्ता तापेन भूयसा ॥ विलसन्तं सरस्तीरे छायावृक्षं समाश्रयत् ॥ २८ ॥ तत्र दैव वशाद्राज्ञी विजने तरुकुट्टिमे ॥ असूत तनयं साध्वी मुहूर्ते सद्गुणान्विते ॥ २९ ॥ अथ सा राजमहिषी पिपासाभिह ता भृशम् ॥ सरोऽवतीर्णा चार्वङ्गी ग्रस्ता ग्राहेण भूयसा ॥ ३० ॥ जातमात्रः कुमारोऽपि विनष्टपितृमातृकः ॥ रुरोदो च्चैः सरस्तीरे क्षुत्पिपासार्दितोऽबलः ॥ ३१ ॥ तस्मिन्नेवं क्रन्दमाने जातमात्रे कुमारके ॥ काचिदभ्याययौ शीघ्रं दिष्ट्या विप्रवराङ्गना ॥ ३२ ॥ साप्येकहायनं बालमुद्वहन्ती निजात्मजम् ॥ अधना भर्तृरहिता याचमाना गृहे गृहे ॥ ३३ ॥

विकल वह सुन्दर अंगोंवाली राजा की स्त्री तड़ाग में पैठी और बड़े भारी ग्राह ने उसको पकड लिया ॥ ३० ॥ व उसी क्षण पैदा हुआ वह माता पिता से रहित निर्बल वालक क्षुधा, प्यास से विकल होकर उच्चस्वर से रोने लगा ॥ ३१ ॥ उस पैदा हुए लडके के इस प्रकार रोने पर शीघ्रही कोई उत्तम स्त्री आगई ॥ ३२ ॥ और एक वर्ष के अपने पुत्र को लिये वह भी पतिरहित निर्धनी स्त्री घर घर में मांगती थी ॥ ३३ ॥ व याचना के मार्गवश में प्राप्त एक पुत्रवाली उस बधुरहित

उमा नामक ब्राह्मण की स्त्री ने राजा के पुत्र को देखा ॥ ३४ ॥ और गिरे हुए सूर्यबिम्ब की नाईं इस अनाथ रोते हुए राजकुमार को देखकर बहुत विचार किया ॥ ३५ ॥ कि इस समय मैंने यह बड़ा-आश्चर्य देखा कि बिन कटे नालवाला यह पुत्र है और इसकी माता कहा गई ॥ ३६ ॥ न पिता है न अन्य कोई है न बन्धुजन है और यह अनाथ बिचारा बालक केवल पृथ्वी मे सो रहा है ॥ ३७॥ यह चाण्डाल का पुत्र है अथवा शूद्र से उत्पन्न है या वैश्य से उपजा व ब्राह्मण से उपजा हुआ तथा राजा से उपजा हुआ बालक है यह कैसे जाना जासक्ता है ॥ ३८ ॥ इस पुत्रको उठाकर मैं निश्चय कर सगे पुत्रकी नाईं पालन करूंगी

एकात्मजा बन्धुहीना याच्ञामार्गवशं गता ॥ उमानाम द्विजसती ददर्श नृपनन्दनम् ॥ ३४ ॥ सा दृष्ट्वा राजतनयं सूर्यबिम्बमिव च्युतम् ॥ अनाथमेनं क्रन्दन्तं चिन्तयामास भूरिशः ॥ ३५ ॥ अहो सुमहदाश्चर्यमिदं दृष्टं मयाधुना ॥ अच्छिन्ननाभिसूत्रोऽयं शिशुर्माता क्व वा गता ॥ ३६ ॥ पिता नास्ति न चान्योस्ति नास्ति बन्धुजनोऽपि वा ॥ अनाथः कृपणो बालः शेते केवलभूतले ॥ ३७ ॥ एष चाण्डलजो वापि शूद्रजो वैश्यजोपि वा ॥ विप्रात्मजो वा नृपजो ज्ञायते कथमर्भकः ॥ ३८ ॥ शिशुमेनं समुद्धृत्य पुष्णाम्यौरसवद्ध्रुवम् ॥ किं त्वविज्ञातकुलजं नोत्सहे स्प्रष्टुमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ इति मीमांसमानायां तस्यां विप्रवरस्त्रियाम् ॥ ४० ॥ कश्चित्समाययौ भिक्षुः साक्षाद्देवः शिवः स्वयम् ॥ तामाह भिक्षुवर्योथ विप्रभामिनि मा खिदः ॥ ४१ ॥ रक्षैनं बालकं सुभ्रूर्विसृज्य हृदि संशयम् ॥ अनेन परमं श्रेयः प्राप्स्यसे ह्यचिरादिह ॥ ४२ ॥ एतावदुक्त्वा त्वरितो भिक्षुः कारुणिको ययौ ॥ अथ तस्मिन्

परन्तु न जाने हुए वंश में उत्पन्न इस पुत्र को नहीं छूसक्ती हूं ॥ ३९ ॥ इस प्रकार उस ब्राह्मण की उत्तम स्त्री के विचार करने पर ॥ ४० ॥ कोई भिक्षुक आया जो कि आपही शिवदेवजी थे इसके उपरान्त उस उत्तम भिक्षुक ने उस स्त्री से कहा कि हे द्विजभामिनि ! खेद मत करिये ॥ ४१ ॥ हृदय में सन्देह को छोडकर सुन्दर भौंहोंवाली तुम इस बालक की रक्षा करो इससे शीघ्रही तुम उत्तम कल्याण को पावोगी ॥ ४२ ॥ इतना कहकर शीघ्रता सयुत वह दयावान् भिक्षुक

चला गया इसके उपरान्त उस भिक्षुक के जाने पर ब्राह्मण की स्त्री ने विश्वास किया ॥ ४३ ॥ और वह उस बालक को लेकर अपने घर को चली गई और भिक्षुक के वचन से विश्वास किये उस स्त्री ने राजा के पुत्र को ॥ ४४ ॥ दया से अपने पुत्रके समान पोषण किया और उस स्त्री ने एकचक्र नामक सुन्दर नगर में स्थान किया ॥ ४५ ॥ अपने पुत्र व राजपुत्र को भिक्षान्न से बढ़ाया और ब्राह्मणी का पुत्र तथा वह राजा का पुत्र ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणों से संस्कार किये हुए व पूजित ये दोनों बढ़ते भये व समय में यज्ञोपवीत किये हुए दोनों बालक नियम में स्थित हुए ॥ ४७ ॥ और माता के साथ वहा प्रतिदिन वे भिक्षा के लिये

गते भिक्षौ विश्रब्धा विप्रभामिनी ॥ ४३ ॥ तमर्भकं समादाय निजमेव गृहं ययौ ॥ भिक्षुवाक्येन विश्रब्धा सा राज तनयं सती ॥ ४४ ॥ आत्मपुत्रेण सदृशं कृपया पर्यपोषयत् ॥ एकचक्राह्वये रम्ये ग्रामे कृतनिकेतना ॥ ४५ ॥ स्वपुत्रं राजपुत्रं च भिक्षान्नेन व्यवर्धयत् ॥ ब्राह्मणीतनयश्चैव स राजतनयस्तथा ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणैः कृतसंस्कारौ ववृधाते सुपूजितौ ॥ कृतोपनयनौ काले बालकौ नियमे स्थितौ ॥ ४७ ॥ भिक्षार्थं चेरतुस्तत्र मात्रा सह दिने दिने ॥ ताभ्यां कदाचिद्बालाभ्यां सा विप्रवनिता सह ॥ ४८ ॥ भैक्ष्यं चरन्ती दैवेन प्रविष्टा देवतालयम् ॥ तत्र वृद्धैः समाकीर्णे मुनिभिर्देवतालये ॥ ४९ ॥ तौ दृष्ट्वा बालकौ धीमाञ्छाण्डिल्यो मुनिरब्रवीत् ॥ अहो दैवबलं चित्रमहो कर्म दुरत्ययम् ॥ ५० ॥ एष बालोऽन्यजननीं श्रितो भैक्ष्येण जीवति ॥ इमामेव द्विजवधूं प्राप्य मातरमुत्तमाम् ॥ ५१ ॥ सहैव द्विजपुत्रेण द्विजभावं समाश्रितः ॥ इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं शाण्डिल्यस्य द्विजाङ्गना ॥ ५२ ॥ सा प्रणम्य सभा

जाते थे किसी समय उन बालकों समेत वह ब्राह्मण की स्त्री ॥ ४८ ॥ भिक्षा मांगती हुई दैवयोग से देवालय में पैठगई व वृद्ध मुनियों से परिपूर्ण उस देवालय में ॥ ४९ ॥ उन दोनों बालकों को देखकर बुद्धिमान् शाण्डिल्य मुनिने कहा कि अहो भाग्य का बल विचित्र है व कर्म उल्लंघन नहीं किया जासक्ता है ॥ ५० ॥ क्योंकि अन्य माता के आश्रित यह बालक भिक्षा से जीता है और इसी ब्राह्मण की स्त्री को उत्तम माता पाकर ॥ ५१ ॥ ब्राह्मणपुत्र के साथही ब्राह्मणता को प्राप्त है शाण्डिल्य मुनि के इस वचन को सुनकर विस्मय समेत उस ब्राह्मण की स्त्री ने सभा के मध्य में प्रणाम करके पूंछा कि हे ब्रह्मन् ! मैं भिक्षु के वचन से इस बालक

को घर लाई हूं ॥५२।५३॥ और बिन जाने हुए वंशवाला यह आज भी पुत्र की नाईं पोषण किया जाता है यह किस वंश में उत्पन्न है व इसकी कौन माता और कौन पिता है ॥ ५४ ॥ ज्ञानरूपी नेत्रोंवाले आपसे यह सब मैं जानना चाहती हूं ॥ ५५ ॥ ब्राह्मण की स्त्री से इस प्रकार पूंछे हुए ज्ञानदृष्टिवाले उन मुनि ने उस बालक के पहलेवाला जन्म व कर्म कहा ॥ ५६ ॥ कि यह विदर्भदेश के राजा का पुत्र है और उन मुनिने उसके पिता का समर में मरण व उसकी माता का ग्राह से हरण सम्पूर्णता से बतलाया ॥ ५७ ॥ इसके बाद उस विस्मित स्त्री ने फिर उन मुनिसे पूंछा कि वह राजा सब सुखों को छोड़कर कैसे युद्ध में मरा

मध्ये पर्यपृच्छत्सविस्मया ॥ ब्रह्मन्नेषोऽर्भको नीतो मया भिक्षोगिरा गृहम् ॥ ५३ ॥ अविज्ञातकुलोद्योऽपि सुतवत्परिपोष्य ते ॥ कस्मिन्कुले प्रसूतोऽयं का माता जनकोऽस्य कः ॥ ५४ ॥ सर्वं विज्ञातुमिच्छामि भवतो ज्ञानचक्षुषः ॥ ५५ ॥ इति पृष्टो मुनिः सोथ ज्ञानदृष्टिर्द्विजस्त्रिया ॥ आचख्यौ तस्य बालस्य जन्म कर्म च पौर्विकम् ॥ ५६ ॥ विदर्भराजपुत्रस्तु तत्पितुः समरे मृतिम् ॥ तन्मातुर्नक्रहरणं साकल्येन न्यवेदयत् ॥ ५७ ॥ अथ सा विस्मिता नारी पुनः पप्रच्छ तं मुनिम् ॥ स राजा सकलान्भोगान्हित्वा युद्धे कथं मृतः ॥ ५८ ॥ दारिद्र्यमस्य बालस्य कथं प्राप्तं महामुने ॥ दारिद्र्यं पुनरुद्धूय कथं राज्यमवाप्स्यति ॥ ५९ ॥ अस्यापि मम पुत्रस्य भिक्षान्नेनैव जीवतः ॥ दारिद्र्यशमनोपायमुपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥ ६० ॥ शाण्डिल्य उवाच ॥ अमुष्य बालस्य पिता स विदर्भमहीपतिः ॥ पूर्वजन्मनि पाण्ड्येशो बभूव नृपसत्तमः ॥ ६१ ॥ स राजा सर्वधर्मज्ञः पालयन्सकलां महीम् ॥ प्रदोषसमये शम्भुं कदाचित्प्र

है ॥ ५८ ॥ व हे महामुने ! इस बालक को दरिद्रता कैसे मिली है और फिर दरिद्रता को नाश करके कैसे राज्य को पावैगा ॥ ५९ ॥ और भिक्षामही से जीते हुए इस मेरे पुत्र के भी दरिद्र नाशने के उपाय को तुम कहने के योग्य हो ॥ ६० ॥ शाण्डिल्यजी बोले कि इस बालक का पिता जो विदर्भदेश का राजा था वह पूर्व जन्म में पाण्ड्य देश का स्वामी व उत्तम राजा हुआ है ॥ ६१ ॥ सब पृथ्वी को पालते हुए उस सब धर्मों को जाननेवाले राजा ने किसी समय प्रदोष के समय

में शिवपूजन किया ॥ ६२ ॥ और त्रिभुवनेश्वर शिवदेवजी को भक्ति से उस राजा के पूजते हुए नगरमें सब कहीं बड़ाभारी कोलाहल शब्द हुआ ॥ ६३ ॥ उस उग्र शब्द को सुनकर नगर के क्षोभ की शंका से पूजन छोड़कर वह राजा राजमन्दिर से निकला ॥ ६४ ॥ इसी समय में उसका बड़ा बलवान् मंत्री सामंत (छोटा राजा) शत्रु को पकड़कर राजा के समीप आया ॥ ६५ ॥ और मंत्री से लाये हुए गर्वित शत्रु को देखकर राजा ने क्रोध से मस्तक को काट डाला ॥ ६६ ॥ और वैसेही बिन समाप्त नियमवाले उस राजा ने शिवपूजन को छोड़कर रात में भोजन किया ॥ ६७ ॥ व उसके पुत्रने भी वैसाही किया कि वह मूढ़ात्मा व दुर्मद

त्यपूजयत् ॥ ६२ ॥ तस्य पूजयतो भक्त्या देवं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ आसीत्कलकलारावः सर्वत्र नगरे महान् ॥ ६३ ॥ श्रुत्वा तमुत्कटं शब्दं राजा त्यक्तशिवार्चनः ॥ निर्ययौ राजभवनान्नगरक्षोभशङ्कया ॥ ६४ ॥ एतस्मिन्नेव समये तस्यामात्यो महाबलः ॥ शत्रुं गृहीत्वा सामन्तं राजान्तिकमुपागमत् ॥ ६५ ॥ अमात्येन समानीतं शत्रुं सामन्तमुद्धतम् ॥ दृष्ट्वा क्रोधेन नृपतिः शिरश्छेदमकारयत् ॥ ६६ ॥ स तथैव महीपालो विसृज्य शिवपूजनम् ॥ असमाप्तात्मनियमश्चकार निशि भोजनम् ॥ ६७ ॥ तत्पुत्रोपि तथा चक्रे प्रदोषसमये शिवम् ॥ अनर्चयित्वा मूढात्मा भुक्त्वा सुष्वाप दुर्मदः ॥ ६८ ॥ जन्मान्तरे स नृपतिर्विदर्भक्षितिपोऽभवत् ॥ शिवार्चनान्तरायेण परैर्भोगान्तरे हतः ॥ ६९ ॥ तत्पुत्रो यः पूर्वभवे सोस्मिञ्जन्मनि तत्सुतः ॥ भूत्वा दारिद्र्यमापन्नः शिवपूजाव्यतिक्रमात् ॥ ७० ॥ अस्य माता पूर्वभवे सपत्नीं छद्मनाहनत् ॥ तेन पापेन महता ग्राहेणास्मिन्भवे हता ॥ ७१ ॥ एषा प्रवृत्तिरेतेषां भव

राजपुत्र प्रदोष के समय में शिवजी को न पूजकर भोजन करके सोगया ॥ ६८ ॥ अन्य जन्ममें वह राजा विदर्भदेशका राजा हुआ और शिवपूजनके विघ्नसे शत्रुवों उसको सुख के मध्य में मारडाला ॥ ६९ ॥ व पूर्वजन्म में जो उसका पुत्र था वही इस जन्म में उसका पुत्र हुआ और शिवपूजन के उल्लघन से वह जन्म लेकर ा को प्राप्त हुआ ॥ ७० ॥ व इसकी माता ने पूर्व जन्म में छल से सौति को मारडाला था उस बड़े भारी पाप से इस जन्म में वह ग्राहसे मारी गई ॥ ७१ ॥

इन लोगों की यह प्रवृत्ति (वार्त्ता) आपसे कही गई और शिवजी को न पूजनेवाले लोग दरिद्रता को प्राप्त होते हैं ॥ ७२ ॥ सत्य कहता हूं व परलोक का हित कहता हूं और साराश व उपनिषदों का हृदय कहता हूं कि भयंकर व असार (साराशरहित) संसार को पाकर शिवजी के चरणकमलों की सेवा यही सारांश है ॥ ७३ ॥ प्रदोषसमय में जो शिवजी को नहीं पूजते हैं व पूजे हुए शिवजी को जो अन्य मनुष्य प्रणाम नहीं करते हैं व इन शिवजी की कथा को जो कर्णपुटों से नहीं पीते हैं वे मूढ़ मनुष्य प्रत्येक जन्म में दरिद्री होते हैं ॥ ७४ ॥ और प्रदोषसमय में सावधान मनवाले जो लोग शिवजी के चरणकमलों की पूजा करते हैं

त्यै समुदाहृता ॥ अनर्चितशिवा मर्त्याः प्राप्नुवन्ति दरिद्रताम् ॥ ७२ ॥ सत्यं ब्रवीमि परलोकहितं ब्रवीमि सारं ब्रवीम्युपनिषद्धृदयं ब्रवीमि ॥ संसारमुल्बणमसारमवाप्य जन्तोः सारोयमीश्वरपदाम्बुरुहस्य सेवा ॥ ७३ ॥ ये नार्चयन्ति गिरिशं समये प्रदोषे ये नार्चितं शिवमपि प्रणमन्ति चान्ये ॥ एतत्कथां श्रुतिपुटैर्न पिबन्ति मूढास्ते जन्मजन्मसु भवन्ति नरा दरिद्राः ॥ ७४ ॥ ये वै प्रदोषसमये परमेश्वरस्य कुर्वन्त्यनन्यमनसोऽङ्घ्रिसरोजपूजाम् ॥ नित्यं प्रवृद्धधनधान्यकलत्रपुत्रसौभाग्यसम्पदधिकास्त इहैव लोके ॥ ७५ ॥ कैलासशैलभवने त्रिजगज्जनित्रीं गौरीं निवेश्य कनकाञ्चितरत्नपीठे ॥ नृत्यं विधातुमभिवाञ्छति शूलपाणौ देवाः प्रदोषसमयेऽनुभजन्ति सर्वे ॥ ७६ ॥ वाग्देवी धृतवल्लकी शतमखो वेणुं दधत्पद्मजस्तालोन्निद्रकरो रमा भगवती गेयप्रयोगान्विता ॥ विष्णुः सान्द्रमृदङ्गवादनपटुर्देवाः समन्तात्स्थिताः ॥ सेवन्ते तमनु प्रदोषसमये देवं मृडानीपतिम् ॥ ७७ ॥ गन्धर्वयक्षपतगोरग

वे इसी संसार में नित्य बढ़े हुए धन, धान्य, स्त्री, पुत्र व सौभाग्य की संपत्ति से अधिक होते हैं ॥ ७५ ॥ कैलास पर्वत के मन्दिर में त्रिलोक की माता पार्वतीजी को सुवर्ण से रचित आसन पै बिठाकर जब शिवजी नृत्य करने की इच्छा करते हैं तब सब देवता प्रदोषसमय में शिवजी की सेवा करते हैं ॥ ७६ ॥ सरस्वतीजी वीणा को लेती हैं व इन्द्रजी वेणु को धारण करते हैं और ब्रह्माजी ताल से जगाते हैं तथा भगवती लक्ष्मीजी गान करती हैं और निरन्तर मृदंग के बजाने में प्रवीण विष्णुजी व अन्य देवता उन शिवजी के सब ओर स्थित होकर पार्वती के पति शिवदेवजी को सेवते हैं ॥ ७७ ॥ व गंधर्व, यक्ष, पक्षी, नाग, सिद्ध,

साध्य, विद्याधर व श्रेष्ठ देवता तथा अप्सराओं के गण और त्रिलोक में रहनेवाले जो अन्य प्राणीगण हैं वे साथही प्रदोषसमय प्राप्त होने पर शिवजी के समीप स्थित होते हैं ॥ ७८ ॥ इस कारण प्रदोष में एक शिवही पूजने योग्य हैं अन्य विष्णु व ब्रह्मादिक देवता नहीं हैं क्योंकि विधि से उन शिवजी का पूजन करने पर सब देवेश प्रसन्न होजाते हैं ॥ ७९ ॥ और यह तुम्हारा पुत्र पूर्वजन्म में उत्तम ब्राह्मण था इसने दान लेने से अवस्था को व्यतीत किया यज्ञादिक सुकर्मों से नहीं व्यतीत किया है ॥ ८० ॥ इस कारण हे द्विजभामिनि ! तुम्हारा पुत्र निर्धनता को प्राप्त हुआ है उस दोष के छूटने के लिये यह शिवजी की शरण में

सिद्धसाध्या विद्याधरामरवराप्सरसां गणाश्च ॥ येऽन्ये त्रिलोकनिलयाः सह भूतवर्गाः प्राप्ते प्रदोषसमये हरपार्श्वसंस्थाः ॥ ७८ ॥ अतः प्रदोषे शिव एक एव पूज्योऽथ नान्ये हरिपद्मजाद्याः ॥ तस्मिन्महेशे विधिनेज्यमाने सर्वे प्रसीदन्ति सुराधिनाथाः ॥ ७९ ॥ एष ते तनयः पूर्वजन्मनि ब्राह्मणोत्तमः ॥ प्रतिग्रहैर्वयो निन्ये न यज्ञाद्यैः सुकर्मभिः ॥ ८० ॥ अतो दारिद्र्यमापन्नः पुत्रस्ते द्विजभामिनि ॥ तद्दोषपरिहारार्थं शरणं यातु शङ्करम् ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे प्रदोषमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ इत्युक्ता मुनिना साध्वी सा विप्रवनिता पुनः ॥ तं प्रणम्याथ पप्रच्छ शिवपूजाविधेः क्रमम् ॥ १ ॥ शाण्डिल्य उवाच ॥ पक्षद्वये त्रयोदश्यां निराहारो भवेद्यदा ॥ घटीत्रयादस्तमयात्पूर्वं स्नानं समाचरेत् ॥ २ ॥

जावै ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां प्रदोषमाहात्म्यवर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दो० । जिमि प्रदोष शिवपूज कर महिमा अमित अपार । सो सप्तम अध्याय में कह्यो चरित्र उदार ॥ सूतजी बोले कि मुनि से इस प्रकार कही हुई उस ब्राह्मण की पतिव्रता स्त्री ने उन शाण्डिल्य मुनि को प्रणाम कर फिर शिवपूजन की विधि का क्रम पूंछा ॥ १ ॥ शाण्डिल्यजी बोले कि दोनों पक्षों में तेरसि तिथि में निराहार होवै तब सूर्यास्त होने से तीन घड़ी पहले स्नान करै ॥ २ ॥ और सफ़ेद वसनों को पहनकर मौन होकर नियम से संयुत विद्वान् मनुष्य संध्योपासन

के जप की विधि को करके शिवपूजन को प्रारम्भ करै॥ ३॥ और शिवदेवजी के आगे नवीन जल से भली भांति लीप कर विद्वान् धोती आदिकों से सुन्दर मण्डल को बनाकर ॥ ४ ॥ चँदोवा आदिक व फल, पुष्प तथा नवीन अंकुरों से भूषित कर पांच रंगों से संयुत विचित्र कमलासन को लेकर ॥ ५ ॥ उस अति उत्तम व स्थिर आसन पै बैठकर पवित्र मनुष्य पूजन की सब सामग्री को इकट्ठा करै ॥ ६ ॥ और शास्त्रोक्त मंत्र से बुद्धिमान् मनुष्य आसन को आमंत्रित करै तदनन्तर क्रम से आत्मशुद्धि व बुद्धिशुद्धि आदिक करके ॥ ७ ॥ अनुस्वार समेत बीज के अक्षरों से तीन प्राणायामों को करके विधिपूर्वक मातृकाओं को न्यास

शुक्लाम्बरधरो धीरो वाग्यतो नियमान्वितः ॥ कृतसन्ध्याजपविधिः शिवपूजां समारभेत् ॥ ३ ॥ देवस्य पुरतः सम्यगुपलिप्य नवाम्भसा ॥ विधाय मण्डलं रम्यं धौतवस्त्रादिभिर्बुधः ॥ ४ ॥ वितानाद्यैरलंकृत्य फलपुष्पनवाङ्कुरैः ॥ विचित्रपद्ममुद्धृत्य वर्णपञ्चकसंयुतम् ॥ ५ ॥ तत्रोपविश्य सुशुभे भक्तियुक्तः स्थिरासने ॥ सम्यक्संपादिताशेषपूजोपकरणः शुचिः ॥ ६ ॥ आगमोक्तेन मन्त्रेण पीठमामन्त्रयेत्सुधीः ॥ ततः कृत्वात्मशुद्धिं च भूतशुद्ध्यादिकं क्रमात् ॥ ७ ॥ प्राणायामत्रयं कृत्वा बीजवर्णैः सविन्दुकैः ॥ मातृका न्यस्य विधिवद्ध्यात्वा तां देवतां पराम् ॥ ८ ॥ समाप्य मातृका भूयो ध्यात्वा चैव परं शिवम् ॥ वामभागे गुरुं नत्वा दक्षिणे गणपं नमेत् ॥ ९ ॥ अंसोरुयुग्मे धर्मादीन्न्यस्य नाभौ च पार्श्वयोः ॥ अधर्मादीननन्तादीन्हृदि पीठे मनुं न्यसेत् ॥ १० ॥ आधारशक्तिमारभ्य ज्ञानात्मानमनुक्रमात् ॥ उक्तक्रमेण विन्यस्य हृत्पद्मे साधुभाविते ॥ ११ ॥ नवशक्तिमये रम्ये ध्यायेद्देवमुमापतिम् ॥

कर उस उत्तम देवता को ध्यान कर ॥ ८ ॥ फिर मातृकाओं को समासकर उत्तम शिवजी को ध्यानकर बायें ओर गुरु को प्रणाम कर दाहिने ओर गणेशजी को प्रणाम करै ॥ ९ ॥ और दोनों कन्धों व जंघों में धर्मादिकों को न्यासकर नाभि व इधर उधर बगलों मे अधर्मादिकों को तथा अनन्तादिकों को हृदय में न्यास कर पीठ (आसन) पै मन्त्रको न्यासकरै ॥ १० ॥ व आधार शक्ति से लगाकर ज्ञानात्मक तक क्रमसे कहे हुए क्रम करके भली भांति शुद्ध हृदयकमल मे न्यासकर ॥ ११ ॥

नवशक्तिमय सुन्दर हृदयकमल में शिवदेवजी को ध्यान करै और करोड़ों चन्द्रमा के समान, त्रिलोचन व चन्द्रभाल ॥ १२ ॥ तथा कुछ पीले रंग के जटाजूटवाले व रत्नमौलि से शोभित, नीलकण्ठ, उदार अंगोंवाले व नागों के हार से शोभित ॥ १३ ॥ और वरदायक व अभय हाथोंवाले तथा परश्वध नामक अस्त्र को धारण किये व नागों का कंकण, बजुल्ला और मुंदरी को धारण किये ॥ १४ ॥ और व्याघ्रचर्म को पहने व रत्नों के सिंहासन पै बैठे हुए शिवजी को ध्यानकर उनके बायें ओर पार्वतीजी को ध्यान करै ॥ १५ ॥ चमकीले दुपहरी के फूल के समान प्रभावती व उदय सूर्यनारायण के समान शोभा-

चन्द्रकोटिप्रतीकाशं त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् ॥ १२ ॥ आपिङ्गलजटाजूटं रत्नमौलिविराजितम् ॥ नीलग्रीवमुदाराङ्गं नागहारोपशोभितम् ॥ १३ ॥ वरदाभयहस्तं च धारिणं च परश्वधम् ॥ दधानं नागवलयकेयूराङ्गदमुद्रिकम् ॥ १४ ॥ व्याघ्रचर्मपरीधानं रत्नसिंहासने स्थितम् ॥ ध्यात्वा तद्वामभागे च चिन्तयेद्गिरिकन्यकाम् ॥ १५ ॥ भास्वज्जपाप्रसूनाभामुदयार्कसमप्रभाम् ॥ विद्युत्पुञ्जनिभां तन्वीं मनोनयननन्दिनीम् ॥ १६ ॥ बालेन्दुशेखरां स्निग्धां नीलकुञ्चितकुन्तलाम् ॥ भृङ्गसंघातरुचिरां नीलालकविराजिताम् ॥ १७ ॥ मणिकुण्डलविद्योतन्मुखमण्डलविभ्रमाम् ॥ नवकुङ्कुमपङ्काङ्ककपोलदलदर्पणाम् ॥ १८ ॥ मधुरस्मितविभ्राजदरुणाधरपल्लवाम् ॥ कम्बुकण्ठीं शिवामुद्यत्कुचपङ्कजकुड्मलाम् ॥ १९ ॥ पाशाङ्कुशाभयाभीष्टविलसत्सुचतुर्भुजाम् ॥ अनेकरत्नविलसत्कङ्कणा

वाली तथा बिजली की राशि के समान व सूक्ष्म अंगोंवाली और मन व नेत्रों को आनन्द करनेवाली ॥ १६ ॥ व बाल चन्द्रमा को मस्तक में धारण किये, सचिक्कण व नील तथा घुंघुवारे बालोंवाली व भ्रमरसमूह से सुन्दरी तथा नील केशपाश से शोभित ॥ १७ ॥ व मणिजटित कुंडलों से शोभित मुखमण्डल के विभ्रमवाली और नवीन कुंकुम के पंक से चिह्नित कपोलदलरूपी दर्पणवाली ॥ १८ ॥ और मधुर मुसक्यान से शोभित अरुण ओष्ठ पल्लवोंवाली व शंख के समान ग्रीवा तथा निकलते हुए कुचकमलकलीवाली ॥ १९ ॥ व पाश, अंकुश, अभय व मनोरथ से शोभित चार भुजाओंवाली तथा अनेक रत्नों से

शोभित कंकण व चिह्नित मुद्रिकावाली ॥ २० ॥ व तीन वलियों से शोभित सुवर्ण की क्षुद्रघंटिका (कर्धनी) के गुणोंसे संयुत व लाल माला और चन्दन को धारण किये तथा दिव्य चन्दन से चर्चित ॥ २१ ॥ और दिक्पालों की स्त्रियोंके मस्तकों से प्रणाम किये हुए चरणकमलोंवाली व नागराज से वेष्टित और रत्नजटित सिंहासन पै बैठी हुई पार्वतीजी को ध्यान करै ॥ २२ ॥ इस प्रकार शिवजी व पार्वतीजी को ध्यानकर न्यास के क्रम से शिवदेवजी को क्रम से चन्दन आदिकों से पूजकर ॥ २३ ॥ पांच वेदमंत्रों से कहे हुए स्थानों में व हृदय में करै और शरीर में पृथक् पुष्पाञ्जली को व मूल मंत्र से तीन बार हृदय में पूजन करै ॥ २४ ॥

ङ्कितमुद्रिकाम् ॥ २० ॥ वलित्रयेण विलसद्धेमकाञ्चीगुणान्विताम् ॥ रक्तमाल्याम्बरधरां दिव्यचन्दनचर्चिताम् ॥ २१ ॥ दिक्पालवनितामौलिसन्नताङ्घ्रिसरोरुहाम् ॥ रत्नसिंहासनारूढां सर्पराजपरिच्छदाम् ॥ २२ ॥ एवं ध्यात्वा महादेवं देवीं च गिरिकन्यकाम् ॥ न्यासक्रमेण संपूज्य देवं गन्धादिभिः क्रमात् ॥ २३ ॥ पञ्चभिर्ब्रह्मभिः कुर्यात्प्रोक्तस्थानेषु वा हृदि ॥ पृथक्पुष्पाञ्जलिं देहे मूलेन च हृदि त्रिधा ॥ २४ ॥ पुनः स्वयं शिवो भूत्वा मूलमन्त्रेण साधकः ॥ ततः संपूजयेद्देवं बाह्यपीठे पुनः क्रमात् ॥ २५ ॥ संकल्पं प्रवदेत्तत्र पूजारम्भे समाहितः ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा चिन्तयेद्धृदि शङ्करम् ॥ २६ ॥ ऋणपातकदौर्भाग्यदारिद्र्यविनिवृत्तये ॥ अशेषाघविनाशाय प्रसीद मम शङ्कर ॥ २७ ॥ दुःखशोकाग्निसन्तप्तं संसारभयपीडितम् ॥ बहुरोगाकुलं दीनं त्राहि मां वृषवाहन ॥ २८ ॥ आगच्छ देवदेवेश महादेवाभयङ्कर ॥ गृहाण सह पार्वत्या तव पूजां मया कृताम् ॥ २९ ॥ इति संकल्प्य विधि

फिर मूल मंत्र से साधक आपही शिव होकर तदनन्तर बाहर पीठ में फिर क्रम से शिवदेवजी को पूजन करै ॥ २५ ॥ और सावधान होकर मनुष्य उस पूजन के प्रारंभ में संकल्प कहै व हाथों को जोड़ कर हृदय में शिवजी को ध्यान करै ॥ २६ ॥ हे शंकरजी ! ऋण, पाप, दुर्भाग्य व दरिद्रता के दूर होने के लिये और समस्त पातकों के नाश के लिये मेरे ऊपर प्रसन्न होवो ॥ २७ ॥ हे वृषवाहन ! दुःख व शोक की अग्नि से संतप्त तथा संसार के भय से पीडित व बहुत रोगों से विकल मुझ दीन की रक्षा कीजिये ॥ २८ ॥ हे देवदेवेश, अभयंकर, महादेव ! आइये मुझसे कीहुई तुम्हारी पूजा को पार्वती समेत ग्रहण कीजिये ॥ २९ ॥ इस प्रकार

संकल्प करके विधिपूर्वक बाहर पूजन करै और बायें व दाहिने ओर गुरु व गणेशजी को पूजै ॥ ३० ॥ व ईशानकोण में क्षेत्रेशजी को पूजै और क्रम से बृहस्पति को पूजै तदनन्तर वहां पर सरस्वतीजी को पूजै व कात्यायनीजी को पूजै ॥ ३१ ॥ और नमःअन्तवाले स्वरों से ईशान आदिक कोणों में धर्म, ज्ञान, वैराग्य व ऐश्वर्य को पूजै और क्रम से पीठपादों को पूजै व बिन्दु (अनुस्वार) और विसर्ग समेत अकार से अधर्मादिकों को पूजै ॥ ३२ ॥ व सत्त्वरूपों से चार दिशाओं में पूजै और मध्य में ॐकार समेत अनन्तजी को पूजै और तागरूपी सत्त्वादिक तीन गुणों को पीठों में न्यास करै ॥ ३३ ॥ इसके उपरान्त ऊपर के पत्र में लक्ष्मी

वद्बाह्यपूजां समाचरेत् ॥ गुरुं गणपतिं चैव यजेत्सव्यापसव्ययोः ॥ ३० ॥ क्षेत्रेशमीशकोणे तु यजेद्वास्तोष्पतिं क्रमात् ॥ वाग्देवीं च यजेत्तत्र ततः कात्यायनीं यजेत् ॥ ३१ ॥ धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च नमोऽन्तकैः ॥ स्वरैरीशादिकोणेषु पीठपादाननुक्रमात् ॥ आभ्यां बिन्दुविसर्गाभ्यामधर्मादीन्प्रपूजयेत् ॥ ३२ ॥ सत्त्वरूपैश्चतुर्दिक्षु मध्येऽनन्तं सतारकम् ॥ सत्त्वादींस्त्रिगुणांस्तन्तुरूपान्पीठेषु विन्यसेत् ॥ ३३ ॥ अत ऊर्ध्वच्छदे मायां सह लक्ष्म्या शिवेन च ॥ ३४ ॥ तदन्ते चाम्बुजं भूयः सकलं मण्डलत्रयम् ॥ पत्रकेसरकिञ्जल्कव्याप्तं ताराक्षरैः क्रमात् ॥ ३५ ॥ पद्मत्रयं तथाभ्यर्च्य मध्ये मण्डलमादरात् ॥ वामां ज्येष्ठां च रौद्रीं च भागाद्यैर्दिक्षु पूजयेत् ॥ ३६ ॥ वामाद्या नव शक्तीश्च नवस्वरयुता यजेत् ॥ हृदि बीजत्रयाद्येन पीठमन्त्रेण चार्चयेत् ॥ ३७ ॥ आवृत्तैः प्रथमाङ्गैश्च पञ्चभिर्मूर्त्तिशक्तिभिः ॥ त्रिशक्तिमूर्त्तिभिश्चान्यैर्निधिद्वयसमन्वितैः ॥ ३८ ॥ अनन्ताद्यैः परीताश्च मातृभिश्च वृषादि

व शिव समेत माया को पूजै ॥ ३४ ॥ व उसके अन्तमें कमलको पूजै फिर क्रमसे ॐकार के अक्षरों से पत्र, केसर व धूलि से व्याप्त सब तीनों मण्डलों को पूजै ॥ ३५ ॥ व तीन कमलों को पूजकर बीच में आदर से मण्डल को पूजै और दिशाओं में भागादिकों से वामा, ज्येष्ठा व रौद्री शक्तिको पूजै ॥ ३६ ॥ व नवस्वरों से संयुत वामादिक नव शक्तियों को पूजै और पहले तीन बीजोंवाले पीठमंत्र से हृदय में पूजन करै ॥ ३७ ॥ और प्रथम अंगोंवाले आवृत्तोंसे व पांच मूर्ति शक्तियों से तथा त्रिशक्ति मूर्तियों से और दो निधियोंसे संयुत ॥ ३८ ॥ अनंतादिकों से घिरी व वृषादिक मातृकाओं से युक्त और अणिमादिक सिद्धियों व अस्त्रों समेत इन्द्रादिकों से

संयुत नव शक्तियों को पूजै ॥ ३९ ॥ और वृष, क्षेत्रचण्डेश, दुर्गा व स्वामिकार्त्तिकेय तथा नन्दीजी को पूजै और गणेश व सेनाध्यक्ष ये सब अपने अपने लक्षणों से लक्षित हैं ॥ ४० ॥ और अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, ईशिता, वशिता, प्राप्ति और प्राकाम्य ॥ ४१ ॥ ये आठ ऐश्वर्य केवल तेजरूप कहेगये हैं व क्रम से पहले पांच ब्रह्मों से और हृल्लेखादिक ॥ ४२ ॥ अंगोंसे व उमादिकों से तथा उन इन्द्रादिकों से व मुनियों से पूजन कहा गया है और उत्तर से लगाकर उमा व चण्डेश्वरादिकों को पूजै ॥ ४३ ॥ इस प्रकार आवरणों से संयुत पार्वती समेत तेजोरूप सदाशिवदेवजी को उपचारों से पूजै ॥ ४४ ॥ व सावधान होता हुआ मनुष्य

भिः ॥ सिद्धिभिश्चाणिमाद्याभिरिन्द्राद्यैश्च सहायुधैः ॥ ३९ ॥ वृषभक्षेत्रचण्डेशदुर्गाश्च स्कन्दनन्दिनौ ॥ गणेशः सैन्यपश्चैव स्वस्वलक्षणलक्षिताः ॥ ४० ॥ अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा ॥ ईशित्वं च वशित्वं च प्राप्तिः प्राकाम्यमेव च ॥ ४१ ॥ अष्टैश्वर्याणि चोक्तानि तेजोरूपाणि केवलम् ॥ पञ्चभिर्ब्रह्मभिः पूर्वं हृल्लेखाद्यादिभिः क्रमात् ॥ ४२ ॥ अङ्गैरुमाद्यैरिन्द्राद्यैः पूजोक्ता मुनिभिस्तु तैः ॥ उमाचण्डेश्वरादींश्च पूजयेदुत्तरादितः ॥ ४३ ॥ एवमावरणैर्युक्तं तेजोरूपं सदाशिवम् ॥ उमया सहितं देवमुपचारैः प्रपूजयेत् ॥ ४४ ॥ सुप्रतिष्ठितशङ्खस्य तीर्थैः पञ्चामृतैरपि ॥ अभिषिच्य महादेवं रुद्रसूक्तैः समाहितः ॥ ४५ ॥ कल्पयेद्विविधैर्मन्त्रैरासनाद्युपचारकान् ॥ आसनं कल्पयेद्धैमं दिव्यवस्त्रसमन्वितम् ॥ ४६ ॥ अर्घ्यमष्टगुणोपेतं पाद्यं शुद्धोदकेन च ॥ तेनैवाचमनं दद्यान्मधुपर्कं मधूत्तरम् ॥ ४७ ॥ पुनराचमनं दत्त्वा स्नानं मन्त्रैः प्रकल्पयेत् ॥ उपवीतं तथा वासो भूषणानि निवेदयेत् ॥ गन्ध

रुद्रसूक्तों से प्रतिष्ठित शंख के तीर्थजलों से व पंचामृतों से महादेवजी को नहवाकर ॥ ४५ ॥ अनेक प्रकार के मंत्रों से आसनादिक उपचारों को कल्पित करै और दिव्य वस्त्रों से संयुत सुवर्ण का आसन कल्पित करै ॥ ४६ ॥ व आठ गुणों से संयुत अर्घ्य और शुद्धोदक से पाद्य तथा उसीसे आचमन व मधुपर्क को देवै और मधुपर्क के उपरान्त ॥ ४७ ॥ फिर आचमन देकर मंत्रों से स्नान कल्पित करै और यज्ञोपवीत, वसन व भूषणों को निवेदन करै व आठ अंगों से संयुत

पवित्र चन्दन को चढ़ावै ॥ ४८ ॥ तदनन्तर बिल्व, मदार व लाल कमल, धतूर, कर्णिकार और सन का फूल व चमेली को चढ़ावै ॥ ४९ ॥ और कुश, लटजीरा, तुलसी, जूही व चंपकादिक को चढ़ावै व साधक मनुष्य भटकटैया और कनैर के फूलों को जैसे मिलैं वैसे चढ़ावै ॥ ५० ॥ और अनेक प्रकार के सुगंधित मालाओं को चढ़ावै व कालागरु से उत्पन्न धूप और निर्मल व उत्तम दीप को देवै ॥ ५१ ॥ और पकान्न समेत तथा लड्डू व पुवा से संयुक्त और शक्कर व गुड़ से सयुत तथा घृत समेत खीर की नैवेद्य देवै ॥ ५२ ॥ व दही से संयुत और शहद से मिश्रित व जल पान से सयुत नैवेद्य को देवै और उसी खीर से मंत्रों से शुद्ध अग्नि में

मष्टाङ्गसंयुक्तं सुपूतं विनिवेदयेत् ॥ ४८ ॥ ततश्च बिल्वमन्दारकह्लारसरसीरुहम् ॥ धत्तूरकं कर्णिकारं शणपुष्पं च मल्लिकाम् ॥ ४९ ॥ कुशापामार्गतुलसीमाधवीचम्पकादिकम् ॥ बृहतीकरवीराणि यथालब्धानि साधकः ॥ ५० ॥ निवेदयेत्सुगन्धीनि माल्यानि विविधानि च ॥ धूपं कालागरूत्पन्नं दीपं च विमलं शुभम् ॥ ५१ ॥ विशेषकम् ॥ अथ पायसनैवेद्यं सघृतं सोपदंशकम् ॥ मोदकापूपसंयुक्तं शर्करागुडसंयुतम् ॥ ५२ ॥ मधुनाक्तं दधियुतं जलपानसमन्वितम् ॥ तेनैव हविषा वह्नौ जुहुयान्मन्त्रभाविते ॥५३ ॥ आगमोक्तेन विधिना गुरुवाक्यनियन्त्रितः ॥ नैवेद्यं शम्भवे भूयो दत्त्वा ताम्बूलमुत्तमम् ॥ ५४ ॥ धूपं नीराजनं रम्यं छत्रं दर्पणमुत्तमम् ॥ समर्पयित्वा विधिवन्मन्त्रैर्वैदिकतान्त्रिकैः ॥ ५५ ॥ यद्यशक्तः स्वयं निःस्वो यथाविभवमर्चयेत् ॥ भक्त्या दत्तेन गौरीशः पुष्पमात्रेण तुष्यति ॥ ५६ ॥ अथाङ्गभूतान्सकलान्गणेशादीन्प्रपूजयेत् ॥ स्तवैर्नानाविधैः स्तुत्वा साष्टाङ्गं प्रणमे

शास्त्रोक्त विधि से गुरु के वचन में बँधा हुआ मनुष्य हवन करै और शिवजीके लिये नैवेद्य देकर फिर उत्तम तांबूल को देवै ॥ ५३ । ५४ ॥ और धूप व नीराजन तथा सुन्दर छत्र व उत्तम दर्पण को विधिपूर्वक वैदिक व तांत्रिक मंत्रों से देकर पूजन करै ॥ ५५ ॥ और यदि आप निर्धनी व असमर्थ होवै तो ऐश्वर्य के अनुसार क्योंकि भक्ति से दिये हुए पुष्पही से शिवजी प्रसन्न होजाते हैं ॥ ५६ ॥ और विद्वान् मनुष्य अंगभूत सब गणेशादिक देवताओं को पूजै व अनेक प्रकार के

स्तोत्रों से स्तुति करके साष्टांग प्रणाम करै ॥ ५७ ॥ तदनन्तर वृष व चण्डेश्वरादिकों की प्रदक्षिणा करके और पूजन करके शिवजी की प्रार्थना करै ॥ ५८ ॥ कि हे जगदीश, देव ! तुम्हारी जय हो व हे शाश्वत, शंकर ! तुम्हारी जय हो हे समस्तसुरनायक ! तुम्हारी जय हो व हे सर्वदेवपूजित ! तुम्हारी जय हो ॥ ५९ ॥ हे सर्वगुणातीत ! तुम्हारी जय हो व हे सर्ववरप्रद ! तुम्हारी जय हो हे नित्य, निराधार ! तुम्हारी जय हो व हे विश्वंभर, अव्यय ! तुम्हारी जय हो ॥ ६० ॥ हे संसार के एकही जानने योग्य, ईश ! तुम्हारी जय हो हे शेषभूषण ! तुम्हारी जय हो हे गौरीपते, शंभो ! तुम्हारी जय हो हे चन्द्रार्धशेखर ! तुम्हारी

हुधः ॥ ५७ ॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्य वृषचण्डेश्वरादिकान् ॥ पूजां समर्प्य विधिवत्प्रार्थयेद्गिरिजापतिम् ॥ ५८ ॥ जय देव जगन्नाथ जय शङ्कर शाश्वत ॥ जय सर्वसुराध्यक्ष जय सर्वसुरार्चित ॥ ५९ ॥ जय सर्वगुणातीत जय सर्ववरप्रद ॥ जय नित्य निराधार जय विश्वंभराव्यय ॥ ६० ॥ जय विश्वैकवेद्येश जय नागेन्द्रभूषण ॥ जय गौरीपते शम्भो जय चन्द्रार्धशेखर ॥ ६१ ॥ जय कोट्यर्कसङ्काश जयानन्तगुणाश्रय ॥ ६२ ॥ जय रुद्र विरूपाक्ष जयाचिन्त्य निरञ्जन ॥ जय नाथ कृपासिन्धो जय भक्तार्तिभञ्जन ॥ जय दुस्तरसंसारसागरोत्तारण प्रभो ॥ ६३ ॥ प्रसीद मे महादेव संसारार्त्तस्य खिद्यतः ॥ सर्वपापभयं हृत्वा रक्ष मां परमेश्वर ॥ ६४ ॥ महादारिद्र्यमग्नस्य महापापहतस्य च ॥ महाशोकविनष्टस्य महारोगातुरस्य च ॥ ६५ ॥ ऋणभारपरीतस्य दह्यमानस्य कर्मभिः ॥ ग्रहैः प्रपीड्यमानस्य

जय हो ॥ ६१ ॥ हे कोटिसूर्यसमान ! तुम्हारी जय हो हे अनन्तगुणाश्रय ! तुम्हारी जय हो ॥ ६२ ॥ हे विरूपलोचन, रुद्र ! तुम्हारी जय हो हे अचिन्त्य, निरंजन ! तुम्हारी जय हो हे दयासिन्धो, नाथ ! तुम्हारी जय हो हे भक्तदुःखनाशक ! तुम्हारी जय हो हे दुस्तर संसारसागर से उतारनेवाले, प्रभो ! तुम्हारी जय हो ॥ ६३ ॥ हे महादेवजी ! संसार से दुःखी व खेदित मेरे ऊपर तुम प्रसन्न होवो हे परमेश्वर ! सब पापों के भय को हर कर मेरी रक्षा कीजिये ॥ ६४ ॥ व बड़े दारिद्र्य में मग्न तथा महापापोंसे नष्ट व महाशोकों से नष्ट और बड़े रोगों से आतुर ॥ ६५ ॥ व हे शङ्करजी ! ऋण के भार से घिरे तथा कर्मोंसे

जलते व ग्रहों से पीड़ित मेरे ऊपर प्रसन्न होवो ॥ ६६ ॥ इस प्रकार निर्धन मनुष्य पूजन के अन्त में शिवदेवजी की प्रार्थना करै और धनाढ्य व राजा भी शिवदेवजी की प्रार्थना करै ॥ ६७ ॥ कि हे शंकरजी ! तुम्हारी प्रसन्नता से मेरा दीर्घ आयुर्बल व सदैव नीरोगता तथा ख़ज़ाने की बढ़ती और बलकी अधिकता व नित्य आनन्द होवै ॥ ६८ ॥ और शत्रुलोग नाश को प्राप्त होवैं व ग्रह प्रसन्न होवैं और चोरलोग राज्य में नाश होजावैं तथा मनुष्य विपत्तिरहित होवैं ॥ ६९ ॥ और पृथ्वी में दुर्भिक्ष व महामारी के दुःख शान्त होवैं तथा सब अन्नों की वृद्धि होवै व दिशा सुखमयी होवैं ॥ ७० ॥ इस प्रकार सन्ध्यासमय

प्रसीद मम शङ्कर ॥ ६६ ॥ दरिद्रः प्रार्थयेदेवं पूजान्ते गिरिजापतिम् ॥ अर्थाढ्यो वापि राजा वा प्रार्थयेद्देवमीश्वरम् ॥ ६७ ॥ दीर्घमायुः सदारोग्यं कोशवृद्धिर्बलोन्नतिः ॥ ममास्तु नित्यमानन्दः प्रसादात्तव शङ्कर ॥ ६८ ॥ शत्रवः संक्षयं यान्तु प्रसीदन्तु मम ग्रहाः ॥ नश्यन्तु दस्यवो राष्ट्रे जनाः सन्तु निरापदः ॥ ६९ ॥ दुर्भिक्षमारीसन्तापाः शमं यान्तु महीतले ॥ सर्वसस्यसमृद्धिश्च भूयात्सुखमया दिशः ॥ ७० ॥ एवमाराधयेद्देवं प्रदोषे गिरिजापतिम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्दक्षिणाभिश्च तोषयेत् ॥ ७१ ॥ सर्वपापक्षयकरी सर्वदारिद्र्यनाशिनी ॥ शिवपूजा मया ख्याता सर्वाभीष्टवरप्रदा ॥ ७२ ॥ महापातकसंघातमधिकं चोपपातकम् ॥ शिवद्रव्यापहरणादन्यत्सर्वं निवारयेत् ॥ ७३ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां पुराणेषु स्मृतिष्वपि ॥ प्रायश्चित्तानि दृष्टानि न शिवद्रव्यहारिणाम् ॥ ७४ ॥ बहुनात्र किमुक्तेन

में शिवदेवजी की प्रार्थना करै पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन करावै व दक्षिणाओं से प्रसन्न करावै ॥ ७१ ॥ मैंने सब पापों को नाश करनेवाली व सब दरिद्रों को नाशनेवाली तथा सब प्रिय वरों को देनेवाली शिवजी की पूजा को कहा ॥ ७२ ॥ शिवजी के द्रव्यको हरने से अन्य सब महापापसमूह को व अधिक उपपातक को शिवपूजन नाश करता है ॥ ७३ ॥ पुराणों व स्मृतियों में ब्रह्महत्यादिक पापों के प्रायश्चित्त देखे गये हैं और शिवजी की द्रव्यको हरने वालों के प्रायश्चित्त नहीं देखे गये हैं ॥ ७४ ॥ इस विषय में बहुत कहने से क्या है मैं आधे श्लोक से कहता हूं कि सैकड़ों ब्रह्महत्याओं को शिव-

पूजन नाश करता है ॥ ७५ ॥ मैंने प्रदोषसमय में तुमसे इस शिवपूजन को कहा इसमें सब प्राणियों का रहस्य है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७६ ॥ इस प्रकार इन बालकों से पूजन किया जावै तो इसी वर्षभर से उत्तम सिद्धि को तुम सब पावोगी ॥ ७७ ॥ इस प्रकार शाण्डिल्य का वचन सुनकर उन बालकों समेत ब्राह्मण की स्त्री ने मुनि के चरणों को प्रणाम किया ॥ ७८ ॥ ब्राह्मण की स्त्री बोली कि आज मैं तुम्हारे दर्शनहीं से कृतार्थ होगई हे भगवन् ! ये बालक तुम्हारी ही शरण में प्राप्त हुए हैं ॥ ७९ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह मेरा पुत्र शुचिव्रत ऐसा कहा गया है और यह राजा का पुत्र मुझसे धर्मगुप्त नामक किया गया है ॥ ८० ॥

श्लोकार्धेन ब्रवीम्यहम् ॥ ब्रह्महत्याशतं वापि शिवपूजा विनाशयेत् ॥ ७५ ॥ मया कथितमेतत्ते प्रदोषे शिवपूजनम् ॥ रहस्यं सर्वजन्तूनामत्र नास्त्येव संशयः ॥ ७६ ॥ एताभ्यामपि बालाभ्यामेवं पूजा विधीयताम् ॥ अतः संवत्सरादेव परां सिद्धिमवाप्स्यथ ॥ ७७ ॥ इति शाण्डिल्यवचनमाकर्ण्य द्विजभामिनी ॥ ताभ्यां तु सह बालाभ्यां प्रणनाम मुनेः पदम् ॥ ७८ ॥ विप्रस्त्र्युवाच ॥ अहमद्य कृतार्थास्मि तव दर्शनमात्रतः ॥ एतौ कुमारौ भगवंस्त्वामेव शरणं गतौ ॥ ७९ ॥ एष मे तनयो ब्रह्मञ्छुचिव्रत इतीरितः ॥ एष राजसुतो नाम्ना धर्मगुप्तः कृतो मया ॥ ८० ॥ एतावहं च भगवन्भवच्चरणकिंकराः ॥ समुद्धरास्मिन्पतितान्घोरे दारिद्र्यसागरे ॥ ८१ ॥ इति प्रपन्नां शरणं द्विजाङ्गनामाश्वास्य वाक्यैरमृतोपमानैः ॥ उपादिदेशाथ तयोः कुमारयोर्मुनिः शिवाराधनमन्त्रविद्याम् ॥ ८२ ॥ अथोपदिष्टौ मुनिना कुमारौ ब्राह्मणी च सा ॥ तं प्रणम्य समामन्त्र्य जग्मुस्ते शिवमन्दिरात् ॥ ८३ ॥

हे भगवन् ! ये दोनों व मैं आपके चरण की दासी हूं इस भयंकर दरिद्र के समुद्र में गिरे हुए हमलोगों को ऊपर निकालिये ॥ ८१ ॥ इस प्रकार शरण में प्राप्त ब्राह्मण की स्त्री को अमृत के समान वचनों से समझाकर शाण्डिल्य मुनि ने उन बालकों को शिवाराधन की मंत्रविद्या का उपदेश किया ॥ ८२ ॥ इसके उपरान्त मुनि से उपदेश दिये हुए वे दोनों कुमार और वह ब्राह्मणी उन मुनि को प्रणाम कर व उनसे पूंछकर वे सब शिवमन्दिर से चले गये ॥ ८३ ॥

तब से लगाकर मुनिश्रेष्ठ शाण्डिल्यजी के उपदेश से वे बालक प्रदोषमें शिवजी का पूजन करने लगे ॥ ८४ ॥ इस प्रकार उन ब्राह्मण व राजकुमारको शिवदेवजी का पूजन करते हुए चार महीने सुखही से बीत गये ॥ ८५ ॥ किसी समय राजपुत्र के विना यह ब्राह्मण का पुत्र नहाने के लिये गया और बहुत लीलासे नदी के किनारे घूमने लगा ॥ ८६ ॥ और वहां उसने झरने के गिरने से टूटी हुई परिखाधार की भूमि में चमकते हुए बड़े भारी ख़ज़ाना के घडे को देखा ॥ ८७ ॥ यकायक उसको देखकर व आकर हर्ष के कौतुक से विह्वल वह भाग्य से प्राप्त घटको मानता हुआ शिर के ऊपर धरकर चला गया ॥ ८८ ॥ शीघ्रता

ततः प्रभृति तौ बालौ मुनिवर्योपदेशतः ॥ प्रदोषे पार्वतीशस्य पूजां चक्रतुरञ्जसा ॥ ८४ ॥ एवं पूजयतोर्देवं द्विजराजकुमारयोः ॥ सुखेनैव व्यतीयाय तयोर्मासचतुष्टयम् ॥ ८५ ॥ कदाचिद्राजपुत्रेण विनासौ द्विजनन्दनः ॥ स्नातुं गतो नदीतीरे चचार बहुलीलया ॥ ८६ ॥ तत्र निर्झरनिर्घातनिर्भिन्ने वप्रकुट्टिमे ॥ निधानकलशं स्थूलं प्रस्फुरन्तं ददर्श ह ॥ ८७ ॥ तं दृष्ट्वा सहसागत्य हर्षकौतुकविह्वलः ॥ दैवोपपन्नं मन्वानो गृहीत्वा शिरसा ययौ ॥ ८८ ॥ ससंभ्रमं समानीय निधानकलशं बलात् ॥ निधाय भवनस्यान्ते मातरं समभाषत ॥ ८९ ॥ मातर्मातरिमं पश्य प्रसादं गिरिजापतेः ॥ निधानं कुम्भरूपेण दर्शितं करुणात्मना ॥ ९० ॥ अथ सा विस्मिता साध्वी समाहूय नृपात्मजम् ॥ स्वपुत्रं प्रतिनन्द्याह मानयन्ती शिवार्चनम् ॥ ९१ ॥ शृणुतां मे वचः पुत्रौ निधानकलशीमिमाम् ॥ समं विभज्य गृह्णीतं मम शासनगौरवात् ॥ ९२ ॥ इति मातुर्वचः श्रुत्वा तुतोष द्विजनन्दनः ॥ प्रत्याह राजपुत्रस्तां विस्रब्धः

समेत ख़ज़ाना के घडे को बलसे लाकर व घर के भीतर धरकर उसने माता से कहा ॥ ८९ ॥ कि हे मातः, हे मातः ! इस शिवजी की प्रसन्नता को देखिये कि दयाचित्तवाले शिवजी ने घडे के स्वरूप से ख़ज़ाना दिखला दिया ॥ ९० ॥ इसके उपरान्त शिवपूजन को मानती हुई विस्मय को प्राप्त उस पतिव्रता द्विजपत्नी ने राजा के पुत्रको बुलाकर अपने पुत्रकी प्रशंसा करके कहा ॥ ९१ ॥ कि हे पुत्रो ! मेरा वचन सुनिये कि इस ख़ज़ाना के घडे को मेरी आज्ञा के गौरव से बराबर बाँट कर ग्रहण करो ॥ ९२ ॥ इस प्रकार माता का वचन सुनकर ब्राह्मण का पुत्र प्रसन्न हुआ और शिवजी के पूजन में विश्वास करनेवाले राज-

पुत्रने उससे कहा ॥ ९३ ॥ कि हे मातः ! तुम्हारे पुत्रही के पुण्य से प्राप्त ख़ज़ाने को बाँटकर मैं नहीं लेना चाहता हूं ॥ ९४ ॥ क्योंकि अपने पुण्य से पाये हुए ख़ज़ाने को यह आपही भोग करै और वही भगवान् शिवजी मेरे ऊपर कृपा करैंगे ॥ ९५ ॥ इस प्रकार बड़े हर्ष से फिर शिवजी को पूजते हुए उन दोनों का एक वर्ष उसी घरमें व्यतीत होगया ॥ ९६ ॥ इसके उपरान्त वसन्त समय प्राप्त होने पर एक समय उस ब्राह्मण समेत वह राजपुत्र वनके मध्य में विहार करता था ॥ ९७ ॥ इसके बाद वनमें कहीं दूर गये हुए उन द्विजकुमार व राजकुमार ने खेलती हुई सैकड़ों गन्धर्बकन्याओं को देखा ॥ ९८ ॥

शंकरार्चने ॥ ९३ ॥ मातस्तव सुतस्यैव सुकृतेन समागतम् ॥ नाहं ग्रहीतुमिच्छामि विभक्तं धनसंचयम् ॥ ९४ ॥ आत्मनः सुकृताल्लब्धं स्वयमेव भुनक्त्वसौ ॥ स एव भगवानीशः करिष्यति कृपां मयि ॥ ९५ ॥ एवमर्चयतोः शम्भुं भूयोपि परया मुदा ॥ संवत्सरो व्यतीयाय तस्मिन्नेव गृहे तयोः ॥ ९६ ॥ अथैकदा राजसूनुः सह तेन द्विजन्मना ॥ वसन्तसमये प्राप्ते विजहार वनान्तरे ॥ ९७ ॥ अथ दूरं गतौ क्वापि वने द्विजनृपात्मजौ ॥ गन्धर्वकन्याः क्रीडन्तीः शतशस्तावपश्यताम् ॥ ९८ ॥ ताः सर्वाश्चारुसर्वाङ्ग्यो विहरन्त्यो मनोहरम् ॥ दृष्ट्वा द्विजात्मजो दूरादुवाच नृपनन्दनम् ॥ ९९ ॥ इतः पुरो न गन्तव्यं विहरन्त्यग्रतः स्त्रियः ॥ स्त्रीसन्निधानं विबुधास्त्यजन्ति विमलाशयाः ॥ १०० ॥ एताः कैतवकारिण्यो घनयौवनदुर्मदाः ॥ मोहयन्त्यो जनं दृष्ट्वा वाचानुनयकोविदाः ॥ १ ॥ अतः परित्यजेत्स्त्रीणां सन्निधिं सहभाषणम् ॥ निजधर्मरतो विद्वन्ब्रह्मचारी विशेषतः ॥ २ ॥ अतोऽहं नोत्सहे गन्तुं क्रीडास्थानं मृगीदृशाम् ॥ इत्युक्त्वा

व सुन्दरता से खेलती हुई सब सुन्दर अंगोंवाली उन सब स्त्रियों को दूर से देखकर ब्राह्मण के पुत्रने राजपुत्र से कहा ॥ ९९ ॥ कि इसके आगे जाने योग्य नहीं है क्योंकि आगे स्त्रियां विहार करती हैं और निर्मल आशयवाले विद्वान्लोग स्त्री की समीपता को त्याग करते हैं ॥ १०० ॥ क्योंकि ये स्त्रियां छल करनेवाली तथा मेघ के समान चंचल यौवन से गर्वित होती हैं और वचन से समझाने में चतुर व मनुष्य को देखकर मोहित करती हैं ॥ १ ॥ इस कारण अपने धर्म में तत्पर व विशेष कर ब्रह्मचारी स्त्रियों की समीपता व उनके साथ संभाषण को त्याग करे ॥ २ ॥ इसलिये मैं मृगनयनियों के क्रीड़ास्थान को

जाने के लिये उत्साह नहीं करता हूं यह कहकर ब्राह्मण का पुत्र लौट पड़ा व दूर स्थित हुआ ॥ ३ ॥ इसके उपरान्त कौतुक से संयुत मनवाला यह निर्भय राजपुत्र अकेलाही उन स्त्रियों के विहारस्थान को गया ॥ ४ ॥ वहां गन्धर्वकन्याओं के मध्य में एक स्त्री ने आते हुए राजकुमार को देखकर चित्त से विचार किया ॥ ५ ॥ कि अहो उदार अंग तथा सब सुन्दर अंगोंवाला व मत्त हाथी के समान चालवाला यह सुन्दरतारूपी अमृत का समुद्र कौन ज्वान है ॥ ६ ॥ और लीला से चंचल व विशाल लोचनोंवाला व मधुर मुसक्यान से सुन्दर और कामदेव के समान रूप की लक्ष्मीवाला तथा सुकुमार अंगों के लक्षणवाला यह

द्विजपुत्रस्तु निवृत्तो दूरतः स्थितः ॥ ३ ॥ अथासौ राजपुत्रस्तु कौतुकाविष्टमानसः ॥ तासां विहारपदवीमेक एवाभयो ययौ ॥ ४ ॥ तत्र गन्धर्वकन्यानां मध्ये त्वेका वरानना ॥ दृष्ट्वाऽऽयान्तं राजपुत्रं चिन्तयामास चेतसा ॥ ५ ॥ अहो कोयमुदाराङ्गो युवा सर्वाङ्गसुन्दरः ॥ मत्तमातङ्गगमनो लावण्यामृतवारिधिः ॥ ६ ॥ लीलालोलविशालाक्षो मधुरस्मितपेशलः ॥ मदनोपमरूपश्रीः सुकुमाराङ्गलक्षणः ॥ ७ ॥ इत्याश्चर्ययुता बाला दूराद् दृष्ट्वा नृपात्मजम् ॥ सर्वाः सखीः समालोक्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ८ ॥ इतो विदूरे हे सख्यो वनमस्त्येकमुत्तमम् ॥ विचित्रचम्पकाशोकपुन्नागबकुलैर्युतम् ॥ ९ ॥ तत्र गत्वा वनं सर्वाः संचीय कुसुमोत्करम् ॥ भवत्यः पुनरायान्तु तावत्तिष्ठाम्यहं त्विह ॥ १० ॥ इत्यादिष्टः सखीवर्गो जगाम विपिनान्तरम् ॥ सापि गन्धर्वजा तस्थौ न्यस्तदृष्टिर्नृपात्मजे ॥ ११ ॥ तां समालोक्य तन्वङ्गीं नवयौवनशालिनीम् ॥ बालां स्वरूपसंपत्त्या परिभूततिलोत्तमाम् ॥ १२ ॥ राजपुत्रः समागम्य कौतुकोत्फुल्ललो

कौन है ॥ ७ ॥ इस प्रकार आश्चर्य से संयुत स्त्री ने दूर से राजकुमार को देखकर सब सखियों को देखकर यह वचन कहा ॥ ८ ॥ कि हे सखियो ! यहां से थोड़ी दूर पै विचित्र चंपक, अशोक, पुन्नाग व मौलसिरी के वृक्षों से संयुत एक उत्तम वन है ॥ ९ ॥ वहां वन को जाकर आप सब बहुत पुष्पों को तोडकर फिर आइये तबतक मैं यहां स्थित हूं ॥ १० ॥ इस प्रकार आज्ञा दिया हुआ सखियों का गण वन के मध्य में गया और वह गन्धर्व की कन्या भी राजकुमार में दृष्टि को लगाकर खडी होगई ॥ ११ ॥ अपने रूप की लक्ष्मी से तिलोत्तमा को तिरस्कार करनेवाली व नवीन यौवन से शोभित उस सूक्ष्म अंगोंवाली स्त्री को देखकर ॥ १२ ॥

कौतुक से प्रफुल्लित लोचनोंवाला राजपुत्र आकर दैवयोग से कामदेव के बाण की पीड़ा को प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ और उस गन्धर्व की कन्या ने भी शीघ्रता से उठकर उस प्राप्त राजकुमार के लिये पत्तों का आसन दिया ॥ १४ ॥ व पूजित बैठे हुए उस राजकुमार के समीप प्राप्त होकर उसके रूपके गुणों से ध्वस्त धीरज व विकल इन्द्रियोंवाली उस स्त्री ने पूंछा ॥ १५ ॥ कि हे कमलपत्रलोचन ! तुम कौन हो व किस स्थान से यहां आये हो और किसके पुत्र हो इस प्रकार प्रेम से पूंछे हुए उसने सब वृत्तान्त को कहा ॥ १६ ॥ व नष्ट माता, पिता तथा शत्रुवों से हरे हुए स्थानवाले अपना को पराये राज्य में प्राप्त विदर्भनरेश का पुत्र बत-

चनः ॥ अवाप दैवयोगेन मदनस्य शरव्यथाम् ॥ १३ ॥ गन्धर्वतनया सापि प्राप्ताय नृपसूनवे ॥ उत्थाय तरसा तस्मै प्रददौ पल्लवासनम् ॥ १४ ॥ कृतोपचारमासीनं तमासाद्य सुमध्यमा ॥ पप्रच्छ तद्रूपगुणैर्ध्वस्तधैर्याकुलेन्द्रिया ॥ १५ ॥ कस्त्वं कमलपत्राक्ष कस्माद्देशादिहागतः ॥ कस्य पुत्र इति प्रेम्णा पृष्टः सर्वं न्यवेदयत् ॥ १६ ॥ विदर्भराजतनयं विध्वस्तपितृमातृकम् ॥ शत्रुभिश्च हृतस्थानमात्मानं परराष्ट्रगम् ॥ १७ ॥ सर्वमावेद्य भूयस्तां पप्रच्छ नृपनन्दनः ॥ का त्वं वामोरु किं चात्र कार्यं ते कस्य चात्मजा ॥ १८ ॥ किमवध्यायसि हृदा किं वा वक्तुमिहेच्छसि ॥ इत्युक्ता सा पुनः प्राह शृणु राजेन्द्रसत्तम ॥ १९ ॥ अस्त्येको द्रविको नाम गन्धर्वाणां कुलाग्रणीः ॥ तस्याहमस्मि तनया नाम्ना चांशुमती स्मृता ॥ २० ॥ त्वामायान्तं विलोक्याहं त्वत्संभाषणलालसा ॥ त्यक्त्वा सखीजनं सर्वमेकैवास्मि महामते ॥ २१ ॥ सर्वसंगीतविद्यासु न मत्तोऽन्यास्ति काचन ॥ मम योगेन तुष्यन्ति सर्वा अपि

लाया ॥ १७ ॥ व सब कहकर फिर राजकुमार ने उस स्त्री से पूंछा कि हे वामोरु ! तुम कौन हो और यहां तुम्हारा क्या कार्य है व तुम किसकी कन्या हो ॥ १८ ॥ और हृदय से तुम क्या ध्यान करती हो व यहा तुम क्या कहना चाहती हो ऐसा कही हुई उसने फिर कहा कि हे नृपेन्द्रसत्तम ! सुनिये ॥ १९ ॥ कि गन्धर्वों के वंश में श्रेष्ठ एक द्रविक नामक है मैं उसकी कन्या हूं और अंशुमती मेरा नाम है ॥ २० ॥ हे महामते ! तुमको आते हुए देखकर मैं तुम्हारे संभाषण में बड़ी लालसा किये हूं और सब सखीवर्ग को छोडकर अकेली ही हूं ॥ २१ ॥ और सब संगीतविद्याओं में कोई मुझसे अधिक नहीं है व मेरे योग (मिलने) से

सभी देवताओं की स्त्रियां प्रसन्न होती हैं ॥ २२ ॥ सब कलाओं को जाननेवाली वही मैं सब लोगों के मनोरथों को जानती हूं और मैं तुम्हारा अभिलाष जानती हूं कि तुम्हारा मन मुझमें लगा है ॥ २३ ॥ और वैसेही मेरी भी उत्कण्ठा दैव से सिद्ध कीगई है व इसके उपरान्त हम तुम दोनों का स्नेहभेद कम न होगा ॥ २४ ॥ उस राजकुमार से इस प्रकार प्रेम से संभाषण करके उस गन्धर्व की कन्या ने उसके लिये अपने स्तनों का भूषण मुक्ताहार शीघ्रही देदिया ॥ २५ ॥ उस अद्भुतहार को लेकर उसके प्रेम से विकल राजकुमार ने बड़े हर्ष के प्रवाह से सींची हुई गन्धर्बकन्या से यह कहा ॥ २६ ॥ कि हे भीरु ! तुमने सत्य कहा तथापि मैं एक

सुरस्त्रियः ॥ २२ ॥ साहं सर्वकलाभिज्ञा ज्ञातसर्वजनेङ्गिता ॥ तवाहमीप्सितं वेद्मि मयि ते संगतं मनः ॥ २३ ॥ तथा ममापि चौत्सुक्यं दैवेन प्रतिपादितम् ॥ आवयोः स्नेहभेदोऽत्र नाभिभूयादितः परम् ॥ २४ ॥ इति संभाष्य तेनाशु प्रेम्णा गन्धर्वनन्दिनी ॥ मुक्ताहारं ददौ तस्मै स्वकुचान्तरभूषणम् ॥ २५ ॥ तमादायाद्भुतं हारं स तस्याः प्रणयाकुलः ॥ गाढहर्षभरोत्सिक्तामिदमाह नृपात्मजः ॥ २६ ॥ सत्यमुक्तं त्वया भीरु तथाप्येकं वदाम्यहम् ॥ त्यक्तराज्यस्य निःस्वस्य कथं मे भवसि प्रिया ॥ २७ ॥ सात्वं पितृमती बाला विलङ्घ्य पितृशासनम् ॥ स्वच्छन्दाचरणं कर्तुं मूढेव कथमर्हसि ॥ २८ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा तं प्रत्याह शुचिस्मिता ॥ अस्तु नाम तथैवाहं करिष्ये पश्य कौतुकम् ॥ २९ ॥ गच्छ स्वभवनं कान्त परश्वः प्रातरेव तु ॥ आगच्छ पुनरत्रैव कार्यमस्ति च नो मृषा ॥ ३० ॥ इत्युक्त्वा तं नृपसुतं सा संगतसखीजना ॥ अपाक्रामत चार्वङ्गी सचापि नृपनन्दनः ॥ ३१ ॥ स समभ्येत्य हर्षेण द्विजपुत्रस्य

बात कहता हूं कि राज्यरहित मुझ निर्धनी की तुम कैसे स्त्री होगी ॥ २७ ॥ और जीते हुए पितावाली तुम कन्या पिता की आज्ञा को उल्लंघन कर मूर्खिणी की नाईं कैसे अपनी इच्छा के अनुसार आचरण किया चाहती हो ॥ २८ ॥ उस राजकुमार का यह वचन सुनकर पवित्र हास्यवाली उस स्त्री ने उससे कहा कि पिता जीता है परन्तु मैं वैसाही करूंगी तुम कौतुक देखो ॥ २९ ॥ हे कान्त ! अपने घरको जाइये परसों प्रातःकालही फिर यहीं आइयेगा कुछ कार्य है झूठ नहीं है ॥ ३० ॥ उस राजकुमार से यह कहकर सुन्दर अंगोंवाली वह सखीजनों समेत चली गई और वह राजकुमार भी चला गया ॥ ३१ ॥ और वह हर्ष से द्विज-

पुत्रके समीप आकर व सब वृत्तान्त को कहकर उसीके साथ अपने घर को चला गया ॥ ३२ ॥ फिर उस ब्राह्मण की स्त्री को प्रसन्न कराकर तीसरे दिन उस द्विज-कुमार के साथ वनको गया ॥ ३३ ॥ और उस स्त्री से पहले बतलाये हुए स्थान को प्राप्त होकर उस राजकुमार ने अपनी **कन्या समेत** गन्धर्बराज को देखा ॥ ३४ ॥ और उस गन्धर्बराज ने प्राप्त हुए कुमारों को प्रणाम कर व सुन्दर आसन पै बिठा कर राजपुत्र से कहा ॥ ३५ ॥ गन्धर्व बोला कि हे राजेन्द्रपुत्र ! मैं कल कैलास को गया था वहां मैंने पार्वती समेत महादेव स्वामी को देखा ॥ ३६ ॥ और दयारूपी अमृत के समुद्र उन देवेश सदाशिव भगवान् ने सब देवताओं के समीप

सन्निधिम् ॥ सर्वमाख्याय तेनैव सार्धं स्वभवनं ययौ ॥ ३२ ॥ तां च विप्रसतीं भूयो हर्षयित्वा नृपात्मजः ॥ परश्वो द्विज पुत्रेण सार्धं तेन वनं ययौ ॥ ३३ ॥ स तया पूर्वनिर्दिष्टं स्थानं प्राप्य नृपात्मजः ॥ गन्धर्वराजमद्राक्षीत्स्वदुहित्रा समन्वितम् ॥ ३४ ॥ स गन्धर्वपतिः प्राप्तावभिनन्द्य कुमारकौ ॥ उपवेश्यासने रम्ये राजपुत्रमभाषत ॥ ३५ ॥ गन्धर्व उवाच ॥ राजेन्द्रपुत्र पूर्वेद्युः कैलासं गतवानहम् ॥ तत्रापश्यं महादेवं पार्वत्या सहितं प्रभुम् ॥ ३६ ॥ आहूय मां स देवेशः सर्वेषां त्रिदिवौकसाम् ॥ सन्निधावाह भगवान्करुणामृतवारिधिः ॥ ३७ ॥ धर्मगुप्ताह्वयः कश्चिद्राजपुत्रोऽस्ति भूतले ॥ अकिञ्चनो भ्रष्टराज्यो हृतदेशश्च शत्रुभिः ॥ ३८ ॥ स बालो गुरुवाक्येन मदर्चायां रतः सदा ॥ अद्य तत्पितरः सर्वे मां प्राप्तास्तत्प्रभावतः ॥ ३९ ॥ तस्य त्वमपि साहाय्यं कुरु गन्धर्वसत्तम ॥ अथासौ निजराज्यस्थो हतशत्रुर्भविष्यति ॥ ४० ॥ इत्याज्ञप्तो महेशेन संप्राप्तो निजमन्दिरम् ॥ अनया मद्दुहित्रा च बहुशोऽभ्यर्थितस्तथा ॥ ४१ ॥ ज्ञात्वेमं सकलं

मुझको बुलाकर कहा ॥ ३७ ॥ कि पृथ्वी में धर्म गुप्तनामक कोई राजपुत्र है जो कि अकिंचन (धनरहित) व राज्यविहीन है और शत्रुवों ने उसका देश हर लिया है ॥ ३८ ॥ और वह बालक गुरुके वचन से सदैव मेरे पूजन में परायण है उसके प्रभाव से आज सब उसके पितरलोग मुझको प्राप्त हुए हैं ॥ ३९ ॥ हे गन्धर्वसत्तम ! तुमभी उसकी सहायता करो तो इसके उपरान्त शत्रुवों से रहित यह अपनी राज्य पै स्थित होगा ॥ ४० ॥ शिवजी से इस प्रकार आज्ञा को पाकर मैं अपने घर में प्राप्त हुआ और इस मेरी कन्या ने भी मुझसे वैसीही बहुत प्रार्थना की ॥ ४१ ॥ दयावान् शिवजी की इस सब आज्ञा को जानकर मैं इस कन्या को

लेकर इस वनके बीच में प्राप्त हुआ हू ॥ ४२ ॥ इस कारण मैं इस अंशुमती कन्या को तुमको देता हूं और शत्रुवों को मारकर मैं तुमको शिवजी की आज्ञा से अपने राज्य पै स्थापित करूंगा ॥ ४३ ॥ व उस नगर में तुम इसके साथ इच्छाके अनुकूल सुखों को भोग कर दश हज़ार वर्षके बाद शिवजीके स्थान को जावोगे ॥ ४४ ॥ वहा भी मेरी यह कन्या इसी दिव्य देहसे शिवजी के समीप तुम्हीं को प्राप्त होगी ॥ ४५ ॥ इस प्रकार गन्धर्वराजने उस राजपुत्र से कह कर उस वन में अपनी कन्याका ब्याह कराया ॥ ४६ ॥ व उसके लिये बड़े उज्ज्वल रत्नभारों को दहेज़ दिया और चन्द्रमा के समान चूडामणि व चमकीले मुक्ताहारोंको दिया ॥ ४७ ॥

आदायेमां दुहितरं प्राप्तोऽस्मीदं वनान्तरम् ॥ ४२ ॥ अत एनां प्रयच्छामि कन्यामंशुमतीं तव ॥ हत्वा शत्रून्स्वराष्ट्रे त्वां स्थापयामि शिवाज्ञया ॥ ४३ ॥ तस्मिन्पुरे त्वमनया भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ दशवर्षसहस्रान्ते गन्तासि गिरिशालयम् ॥ ४४ ॥ तत्रापि मम कन्येयं त्वामेव प्रतिपत्स्यते ॥ अनेनैव स्वदेहेन दिव्येन शिवसन्निधौ ॥ ४५ ॥ इति गन्धर्वराजस्तमाभाष्य नृपनन्दनम् ॥ तस्मिन्वने स्वदुहितुः पाणिग्रहमकारयत् ॥ ४६ ॥ पारिबर्हमदात्तस्मै रत्नभारान्महोज्ज्वलान् ॥ चूडामणिं चन्द्रनिभं मुक्ताहारांश्च भासुरान् ॥ ४७ ॥ दिव्यालङ्कारवासांसि कार्त्तस्वरपरिच्छदान् ॥ गजानामयुतं भूयो नियुतं नीलवाजिनाम् ॥ ४८ ॥ स्यन्दनानां सहस्राणि सौवर्णानि महन्ति च ॥ पुनरेकं रथं दिव्यं धनुश्चेन्द्रायुधोपमम् ॥ ४९ ॥ अस्त्राणां च सहस्राणि तूणीं चाक्षय्यसायकौ ॥ अभेद्यं वर्म सौवर्णं शक्तिं च रिपुमर्दिनीम् ॥ ५० ॥ दुहितुः परिचर्यार्थं दासीपञ्चसहस्रकम् ॥ ददौ प्रीत

व दिव्य भूषण, वसन तथा सोने की सामग्री को दिया. फिर दश हज़ार हाथी व एक लाख नील घोड़ों को दिया ॥ ४८ ॥ और बड़े भारी सोने के हज़ारों रथों को दिया फिर एक दिव्य रथ व इन्द्र के वज्र के समान एक धनुष को दिया ॥ ४९ ॥ व हज़ारों अस्त्र और बाण न नाश होनेवाले दो तरकसों को दिया व न कटने योग्य सोने की कवच और शत्रुवों को संहार करनेवाली शक्ति को दिया ॥ ५० ॥ व कन्या की सेवा के लिये पाच हज़ार दासियों को दिया और उस प्रसन्न

धनी को दिया ॥ ५१ ॥ फिर उस गंधर्बराज ने उसकी सहाय के लिये बड़ी उग्र चतुरंगिणी गंधर्बसेना को दिया ॥ ५२ ॥ इस प्रकार उत्तम लक्ष्मी को प्राप्त राजेन्द्र का पुत्र प्यारी स्त्री समेत अपनी संपदा से प्रसन्न हुआ ॥ ५३ ॥ और समय के योग्य अपनी कन्या का विवाह कराकर गंधर्बों का राजा विमान पै चढ़कर स्वर्ग को चला गया ॥ ५४ ॥ और विवाह करके धर्मगुप्त ने गंधर्बों की सेना समेत फिर अपने नगर को प्राप्त होकर शत्रुओं की सेना को मारडाला ॥ ५५ ॥ और युद्ध में शक्ति से दुर्धर्षण शत्रु को मारकर शत्रुसेना से रहित राजपुत्र ने अपने नगर में प्रवेश किया ॥ ५६ ॥

मनास्तस्मै धनानि विविधानि च ॥ ५१ ॥ गन्धर्वसैन्यमत्युग्रं चतुरङ्गसमन्वितम् ॥ पुनश्च तत्सहायार्थे गन्धर्वाधिपतिर्ददौ ॥ ५२ ॥ इत्थं राजेन्द्रतनयः संप्राप्तः श्रियमुत्तमाम् ॥ अभीष्टजायासहितो मुमुदे निजसम्पदा ॥ ५३ ॥ कारयित्वा स्वदुहितुर्विवाहं समयोचितम् ॥ ययौ विमानमारुह्य गन्धर्वाधिपतिर्दिवम् ॥ ५४ ॥ धर्मगुप्तः कृतोद्वाहः सह गन्धर्वसेनया ॥ पुनः स्वनगरं प्राप्य जघान रिपुवाहिनीम् ॥ ५५ ॥ दुर्धर्षणं रणे हत्वा शक्त्या गन्धर्वसेनया ॥ निःशेषितारातिबलः प्रविवेश निजं पुरम् ॥५६॥ ततोभिषिक्तः सचिवैर्ब्राह्मणैश्च महोत्तमैः ॥ रत्नसिंहासनारूढश्चक्रे राज्यमकण्टकम् ॥ ५७॥ या विप्रवनिता पूर्वं तमपुष्णात्स्वपुत्रवत् ॥ सैव माताभवत्तस्य स भ्राता द्विजनन्दनः ॥ ५८ ॥ गन्धर्वतनया जाया विदर्भनगरेश्वरः ॥ आराध्य देवं गिरिशं धर्मगुप्तो नृपोऽभवत् ॥ ५९ ॥ एवमन्ये समाराध्य प्रदोषे गिरिजापतिम् ॥ लभन्तेभीप्सितान्कामान्देहान्ते तु परां गतिम् ॥ ६० ॥ सूत उवाच ॥ एतन्महाव्रतं पुण्यं प्रदोषे

तदनन्तर बड़े उत्तम मंत्रियों व ब्राह्मणों से अभिषेक किये व रत्नसिंहासन पै बैठे हुए राजपुत्र ने निष्कण्टक राज्य किया ॥ ५७ ॥ और जिस विप्रकी स्त्री ने पहले उसको अपने पुत्र की नाईं पालन किया था वही उसकी माता हुई और वह ब्राह्मण का पुत्र भाई हुआ ॥ ५८ ॥ और गंधर्ब की कन्या स्त्री हुई व विदर्भ देश का स्वामी धर्मगुप्त शिवदेवजी को आराधन कर राजा हुआ ॥ ५९ ॥ इस प्रकार अन्य मनुष्य प्रदोष में सदाशिवजी को आराधन कर चाहे हुए मनोरथों को पाते हैं व शरीर के अन्त में उत्तम गति को पाते हैं ॥ ६० ॥ सूतजी बोले कि प्रदोष में शिवजी का पूजन यह पवित्र महाव्रत है जो यह कि धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष

का उत्तम साधन है ॥ ६१ ॥ सावधान होकर जो मनुष्य इस बड़े अद्भुत व पवित्र माहात्म्य को प्रदोष में शिवपूजन के अन्त में सुनता या कहता है ॥ ६२ ॥ सैकड़ों जन्मों में भी उसके दरिद्रता नहीं होती है और ज्ञान के ऐश्वर्य से संयुत वह अन्त में शिवलोक को जाता है ॥ ६३ ॥ जो मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ शरीर को पाकर शिवजी के चरणों का पूजन करते हैं अपने पुण्य से त्रिलोक को जीतनेवाले वे धन्य हैं और उनके चरणकमलों की धूलि संसार को पवित्र करती है ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकाया प्रदोपमहिमावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥

शङ्करार्चनम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां यदेतत्साधनं परम् ॥ ६१ ॥ य एतच्छृणुयात्पुण्यं माहात्म्यं परमाद्भुतम् ॥ प्रदोषे शिवपूजान्ते कथयेद्वा समाहितः ॥ ६२ ॥ भवेन्न तस्य दारिद्र्यं जन्मान्तरशतेष्वपि ॥ ज्ञानैश्वर्यसमायुक्तः सोन्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥ ६३ ॥ ये प्राप्य दुर्लभतरं मनुजाः शरीरं कुर्वन्ति हन्त परमेश्वरपादपूजाम् ॥ धन्यास्त एव निजपुण्यजितत्रिलोकास्तेषां पदाम्बुजरजो भुवनं पुनाति ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे प्रदोषमहिमावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ नित्यानन्दमयं शान्तं निर्विकल्पं निरामयम् ॥ शिवतत्त्वमनाद्यन्तं ये विदुस्ते परं गताः ॥ १ ॥ विरक्ताः कामभोगेभ्यो ये प्रकुर्वन्त्यहैतुकीम् ॥ भक्तिं परां शिवे धीरास्तेषां मुक्तिर्न संसृतिः ॥ २ ॥ विषयानभिसंधाय ये कुर्वन्ति शिवे रतिम् ॥ विषयैर्नाभिभूयन्ते भुञ्जानास्तत्फलान्यपि ॥ ३ ॥ येन केनापि भावेन शिवभक्ति

दो० । पायो जिमि निजमृतपतिहिं सीमतिनि नृप नारि । सो अष्टम अध्याय में कह्यो कथा सुखकारि ॥ सूतजी बोले कि सदैव आनन्दमय व शान्त तथा विकल्परहित व व्याधिहीन और आदि अन्त से रहित शिवतत्त्व को जो जानते हैं वे उत्तम स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ व कामनाओं के सुखों से विरक्त जो विद्वान् मनुष्य शिवजी में फलाभिसन्धानरहित भक्ति करते हैं उनकी मुक्ति होती है जन्म व मरण नहीं होता है ॥ २ ॥ और विषयों (कामनाओं) की इच्छा करके जो मनुष्य शिवजी में स्नेह करते हैं उनके फलों को भोगते हुए मनुष्य विषयों से तिरस्कृत नहीं होते हैं ॥ ३ ॥ जिस किसी भी भाव से शिव-

भक्तिसंयुत मनुष्य काल से नाश नहीं होता है और वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ उत्तम स्थान को प्राप्त होने की इच्छावाला व विषयों में जिसका मन लगा है वह कर्म से शिवजी को पूजै तो सुखों के अन्त में शिवजी को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥ विषयवासना को छोडने के लिये प्रायः कोई भी मनुष्य समर्थ नहीं होता है इस कारण कर्ममयी पूजा मनुष्यों को कामधेनु है ॥ ६ ॥ मायामय संसार में जो मनुष्य बहुत समय तक सुखपूर्वक विहार करके मुक्ति चाहते हैं शरीर के अन्त में उनका यह धर्म कहा गया है ॥ ७ ॥ संसार में शिवजी का पूजन स्वर्ग व मोक्ष का कारण है और प्रदोषादि गुणों से संयुत सोमवार में

युतो नरः ॥ न विनश्यति कालेन स याति परमां गतिम् ॥ ४ ॥ आरुरुक्षुः परं स्थानं विषयासक्तमानसः ॥ पूजये त्कर्मणा शम्भुं भोगान्ते शिवमाप्नुयात् ॥ ५ ॥ अशक्तः कश्चिदुत्स्रष्टुं प्रायो विषयवासनाम् ॥ अतः कर्ममयी पूजा कामधेनुः शरीरिणाम् ॥ ६ ॥ मायामयेपि संसारे ये विहृत्य चिरं सुखम् ॥ मुक्तिमिच्छन्ति देहान्ते तेषां धर्मो यमीरितः ॥ ७ ॥ शिवपूजा सदा लोके हेतुः स्वर्गापवर्गयोः ॥ सोमवारे विशेषेण प्रदोषादिगुणान्विते ॥ ८ ॥ केव लेनापि ये कुर्युः सोमवारे शिवार्चनम् ॥ न तेषां विद्यते किञ्चिदिहामुत्र च दुर्लभम् ॥ ९ ॥ उपोषितः शुचिर्भूत्वा सोमवारे जितेन्द्रियः ॥ वैदिकैर्लौकिकैर्वापि विधिवत्पूजयेच्छिवम् ॥ १० ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थो वा कन्या वापि सभ र्तृका ॥ विभर्तृका वा संपूज्य लभते वरमीप्सितम् ॥ ११ ॥ अत्राहं कथयिष्यामि कथां श्रोतृमनोहराम् ॥ श्रुत्वा मुक्तिं प्रयान्त्येव भक्तिर्भवति शाम्भवी ॥ १२ ॥ आर्यावर्ते नृपः कश्चिदासीद्धर्मभृतां वरः ॥ चित्रवर्मेति विख्यातो

विशेषकर है ॥ ८ ॥ व जो मनुष्य केवल सोमवार में शिवजी का पूजन करते हैं उनको इस लोक व परलोक में कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ ९ ॥ और सोमवार में उपासकर जो जितेन्द्रिय मनुष्य पवित्र होकर विधिपूर्वक वैदिक व लौकिक मंत्रों से शिवजी को पूजता है ॥ १० ॥ और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, कन्या व पति समेत या पतिरहित स्त्री, शिवजी को भली भांति पूजकर चाहे हुए वर को पाती है ॥ ११ ॥ इस विषय में मैं सुननेवालों के मनको हरनेवाली कथा को कहूंगा जिसको सुनकर मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होते हैं और शिवजी की भक्ति होती है ॥ १२ ॥ आर्यावर्त देश में धर्मधारियों में श्रेष्ठ कोई चित्रवर्मा ऐसा प्रसिद्ध राजा हुआ है

जो कि दुष्टों के लिये यमराज था ॥ १३ ॥ और वह धर्मसेतुवों का रक्षक तथा कुपथगामियों को दण्डदायक व यज्ञों को करनेवाला और शरणार्थियों का रक्षक था ॥ १४ ॥ और सब पुण्यों को करनेवाला व सब संपदाओं को देनेवाला तथा शत्रुगणों को जीतनेवाला व शिव और विष्णुजी का भक्त था ॥ १५ ॥ और उस राजा ने अपने अनुसार स्त्रियों में बड़े पराक्रमी पुत्रों को पाकर बहुत दिनों से चाहीहुई एक सुन्दरी कन्या को पाया ॥ १६ ॥ जैसे हिमाचल ने पार्वती को पाया है वैसेही उसने कन्या को पाकर अपना को देवताओं के समान पूर्णमनोरथवान् माना ॥ १७ ॥ एक समय उत्पत्तिवाले के लक्षणों को जाननेवाले

धर्मराजो दुरात्मनाम् ॥ १३ ॥ स गोप्ता धर्मसेतूनां शास्ता दुष्पथगामिनाम् ॥ यष्टा समस्तयज्ञानां त्राता शरणमिच्छताम् ॥ १४ ॥ कर्त्ता सकलपुण्यानां दाता सकलसम्पदाम् ॥ जेता सपत्नवृन्दानां भक्तः शिवमुकुन्दयोः ॥ १५ ॥ सोनुकूलासु पत्नीषु लब्ध्वा पुत्रान्महौजसः ॥ चिरेण प्रार्थितां लेभे कन्यामेकां वराननाम् ॥ १६ ॥ स लब्ध्वा तनयां इष्टया हिमवानिव पार्वतीम् ॥ आत्मानं देवसदृशं मेने पूर्णमनोरथम् ॥ १७ ॥ स एकदा जातकलक्षणज्ञानाहूय साधून्द्विजमुख्यवृन्दान् ॥ कुतूहलेनाभिनिविष्टचेताः पप्रच्छ कन्याजनने फलानि ॥ १८ ॥ अथ तत्राब्रवीदेको बहुज्ञो द्विजसत्तमः ॥ एषा सीमन्तिनी नाम्ना कन्या तव महीपते ॥ १९ ॥ उमेव माङ्गल्यवती दमयन्तीव रूपिणी ॥ भारतीव कलाभिज्ञा लक्ष्मीरिव महागुणा ॥ २० ॥ सुप्रजा देवमातेव जानकीव धृतव्रता ॥ रविप्रभेव सत्कान्तिश्चन्द्रिकेव मनोरमा ॥ २१ ॥ दशवर्षसहस्राणि सह भर्त्रा प्रमोदते ॥ प्रसूय तनयानष्टौ परं सुख

उत्तम मुख्य द्विजगणों को बुलाकर कौतुक आवेश चित्तवाले उस राजा ने कन्या के उत्पन्न होने में फलों को पूंछा ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त वहां बहुत जाननेवाले एक उत्तम ब्राह्मण ने कहा कि हे भूपते ! यह सीमंतिनी नामक तुम्हारी कन्या ॥ १९ ॥ पार्वती की नाईं मांगल्यवती व दमयंती की नाईं रूपवती होगी और सरस्वती की नाईं कलाओं को जाननेवाली व लक्ष्मी की नाईं महागुणवती होगी ॥ २० ॥ और अदिति की नाईं उत्तम सन्तानवाली तथा जानकी की नाईं व्रतको धारनेवाली व सूर्य की प्रभाके समान उत्तम कान्तिमती और चन्द्रमा के प्रकाश की नाईं सुन्दरी होगी ॥ २१ ॥ और दश हज़ार वर्ष तक

पतिके साथ आनन्द करैगी व आठ पुत्रोंको उत्पन्न करके उत्तम सुखको पावैगी ॥ २२ ॥ यह कहनेवाले उस ब्राह्मण को धनों से पूजकर राजाने उसके वचनरूपी अमृतके सेवन से उत्तम प्रीति को पाया ॥ २३ ॥ इसके उपरान्त अमित शोभावाले अन्य भी धैर्यवान् ब्राह्मण ने कहा कि यह चौदहवें वर्ष में वैधव्यता को प्राप्त होगी ॥ २४ ॥ वज्र की चोट के समान कठोर ऐसा उस ब्राह्मण का वचन सुनकर राजा थोड़ी देर तक चिन्ता से विकलमनवाला हुआ ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त सब ब्राह्मणों को बिदा करके वह द्विजप्रिय राजा सब भाग्यकृत जानकर चिन्तारहित हुआ ॥ २६ ॥ और क्रम से व्यतीत अवस्थावाली उस सीमंतिनी कन्या ने

मवाप्स्यति ॥ २२ ॥ इत्युक्तवन्तं नृपतिर्धनैः संपूज्य तं द्विजम् ॥ अवाप परमां प्रीतिं तद्वागमृतसेवया ॥ २३ ॥ अथान्योऽपि द्विजः प्राह धैर्यवानमितद्युतिः ॥ एषा चतुर्दशे वर्षे वैधव्यं प्रतिपत्स्यति ॥ २४ ॥ इत्याकर्ण्य वच स्तस्य वज्रनिर्घातनिष्ठुरम् ॥ मुहूर्तमभवद्राजा चिन्ताव्याकुलमानसः ॥ २५ ॥ अथ सर्वान्समुत्सृज्य ब्राह्मणा न्ब्रह्मवत्सलः ॥ सर्वं दैवकृतं मत्वा निश्चिन्तः पार्थिवोऽभवत् ॥ २६ ॥ सापि सीमन्तिनी बाला क्रमेणगतशैशवा ॥ वैधव्यमात्मनो भावि शुश्रावात्मसखीमुखात् ॥ २७ ॥ परं निर्वेदमापन्ना चिन्तयामास बालिका ॥ याज्ञ वल्क्यमुनेः पत्नीं मैत्रेयीं पर्यपृच्छत ॥ २८ ॥ मातस्त्वच्चरणाम्भोजं प्रपन्नास्मि भयाकुला ॥ सौभाग्यवर्द्धनं कर्म मम शंसितुमर्हसि ॥ २९ ॥ इति प्रपन्नां नृपतेः कन्यां प्राह मुनेः सती ॥ शरणं व्रज तन्वङ्गि पार्वतीं शिवसंयुता म् ॥ ३० ॥ सोमवारे शिवं गौरीं पूजयस्व समाहिता ॥ उपोषिता वा सुस्नाता विरजाम्बरधारिणी ॥ ३१ ॥ यत

अपनी सखी के मुख से अपनी होनेवाली विधवता को सुना ॥ २७ ॥ व बड़े वैराग्य को प्राप्त कन्या ने चिन्तन किया और याज्ञवल्क्यमुनि की मैत्रेयी स्त्री से पूंछा ॥ २८ ॥ कि हे मातः ! भय से विकल मैं तुम्हारे चरणकमल में प्राप्त हूं मुझ से तुम सौभाग्य बढ़ानेवाले कर्मको कहने के योग्य हो ॥ २९ ॥ इस प्रकार शरण में प्राप्त राजा की कन्या से मुनि की स्त्री ने कहा कि हे तन्वंगि ! शिव समेत पार्वतीजी की शरण में जावो ॥ ३० ॥ और उपास करके नहाकर निर्मल वस्त्रों को धारण करके सावधान होती हुई तुम सोमवार में शिव व पार्वतीजी को पूजो ॥ ३१ ॥ और मौन होकर स्वस्थमनवाली तुम यथायोग्य पूजन करके

ब्राह्मणों को भोजन कराकर शिवजी को भलीभांति प्रसन्न करो ॥ ३२ ॥ अभिषेकसे पाप का नाश होताहै व पीठपूजन से चक्रवर्तित्व होता हैं और चन्दन, माला व अक्षतों के चढ़ाने से सौभाग्य व सब सुख मिलता है ॥ ३३ ॥ धूपदान से सुगन्धित और दीपदानसे कान्ति होती है व नैवेद्यों से महासुख और ताम्बूल देने से लक्ष्मी होती है ॥ ३४ ॥ और प्रणाम करने से धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष होता है और आठ ऐश्वर्यादिक सिद्धियों का जप ही कारण है ॥ ३५ ॥ और होम से सब कामनाओं की समृद्धि होती है व ब्राह्मणों के भोजन से सबही देवताओं की प्रसन्नता होती है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार सोमवार में महादेव व पार्वती को भी आरा-

आश्निश्चलमनाः पूजां कृत्वा यथोचिताम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वाथ शिवं सम्यक्प्रसादय ॥ ३२ ॥ पापक्षयोऽभिषेकेण साम्राज्यं पीठपूजनात् ॥ सौभाग्यमखिलं सौख्यं गन्धमाल्याक्षतार्पणात् ॥ ३३ ॥ धूपदानेन सौगन्ध्यं कान्तिर्दीपप्रदानतः ॥ नैवेद्यैश्च महाभोगो लक्ष्मीस्ताम्बूलदानतः ॥ ३४ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाश्च नमस्कारप्रदानतः ॥ अष्टैश्वर्यादिसिद्धीनां जप एव हि कारणम् ॥ ३५ ॥ होमेन सर्वकामानां समृद्धिरुपजायते ॥ सर्वेषामेव देवानां तुष्टिर्ब्राह्मणभोजनात् ॥ ३६ ॥ इत्थमाराधय शिवं सोमवारे शिवामपि ॥ अत्यापदमपि प्राप्ता निस्तीर्णाभिभवा भवेः ॥ ३७ ॥ घोराद्घोरं प्रपन्नापि महाक्लेशं भयानकम् ॥ शिवपूजाप्रभावेण तरिष्यसि महद्भयम् ॥ ३८ ॥ इत्थं सीमन्तिनीं सम्यगनुशास्य पुनः सती ॥ ययौ सापि वरारोहा राजपुत्री तथाऽकरोत् ॥ ३९ ॥ दमयन्त्यां नलस्यासीदिन्द्रसेनाभिधः सुतः ॥ तस्य चन्द्राङ्गदो नाम पुत्रोभूच्चन्द्रसन्निभः ॥ ४० ॥ चित्रवर्मा नृपश्रेष्ठस्तमाहूय नृपा

धन करो तो बड़ी विपत्ति में भी प्राप्त तुम दुःख को उतर जावोगी ॥ ३७ ॥ घोर से भी घोर बडे भारी भयंकर क्लेश को प्राप्त भी तुम शिवपूजन के प्रभाव से बड़े भय को नाँघ जावोगी ॥ ३८ ॥ इस प्रकार सीमंतिनी से भली भाति कहकर वह मुनि की स्त्री चली गई और उस राजा की कन्या ने भी वैसाही किया ॥ ३९ ॥ नल के दमयन्ती स्त्री में इन्द्रसेन नामक पुत्र हुआ है उसके चन्द्राङ्गद नामक पुत्र चन्द्रमा के समान हुआ है ॥ ४० ॥ चित्रवर्मा नामक श्रेष्ठ राजा ने उस राज-

कुमार को बुलाकर गुरु की आज्ञा से उसके लिये सीमंतिनी नामक कन्या को दिया ॥ ४१ ॥ और उसके उस विवाह कर्म में वह बडाभारी उत्सव हुआ जहां कि सब राजाओं का बडा भारी समाज हुआ ॥ ४२ ॥ और समय में उसका व्याह करके प्रवीण चन्द्राङ्गद ने वहीं श्वशुर के घरमें कुछ महीनो तक निवास किया ॥ ४३ ॥ एक समय वह बलवान् राजपुत्र कितेक मित्रों समेत लीला से यमुना को उतरने के लिये नाव पै सवार हुआ ॥ ४४ ॥ जब वह राजपुत्र यमुना को उतरने लगा तब दैव के वश से भँवर से ताडित नाव निषादों समेत डूबगई ॥ ४५ ॥ और उसके दोनों किनारों पै सब सेनालोगों के देखते हुए बड़ाभारी हाहा

त्मजम् ॥ कन्यां सीमन्तिनीं तस्मै प्रायच्छद् गुर्वनुज्ञया ॥ ४१ ॥ सोऽभून्महोत्सवस्तत्र तस्या उद्वाहकर्मणि ॥ यत्र सर्वमहीपानां समवायो महानभूत् ॥ ४२ ॥ तस्याःपाणिग्रहं काले कृत्वा चन्द्राङ्गदः कृती ॥ उवास कतिचि न्मासांस्तत्रैव श्वशुरालये ॥ ४३ ॥ एकदा यमुनां तर्तुं स राजतनयो बली ॥ आरुरोह तरीं कैश्चिद्वयस्यैः सह लील या ॥ ४४ ॥ तस्मिंस्तरति कालिन्दीं राजपुत्रे विधेर्वशात् ॥ ममज्ज सह कैवर्तैरावर्त्ताभिहता तरी ॥ ४५ ॥ हा हेति शब्दः सुमहानासीत्तस्यास्तटद्वये ॥ पश्यतां सर्वसैन्यानां प्रलापो दिवमस्पृशत् ॥ ४६ ॥ मज्जन्तो मम्रिरे केचित्केचिद्ग्राहो दरं गताः ॥ राजपुत्रादयः केचिन्नादृश्यन्त महाजले ॥ ४७ ॥ तदुपश्रुत्य राजापि चित्रवर्मातिविह्वलः ॥ यमुना यास्तटं प्राप्य विचेष्टः समजायत ॥ ४८ ॥ श्रुत्वाथ राजपत्न्यश्च बभूवुर्गतचेतनाः ॥ सा च सीमन्तिनी श्रुत्वा पपात भुवि मूर्च्छिता ॥ ४९ ॥ तथान्ये मन्त्रिमुख्याश्च नायकाः सपुरोहिताः ॥ विह्वलाः शोकसन्तप्ता विलेपुर्मु

कार शब्द हुआ और विलाप के शब्द ने आकाश को स्पर्श किया ॥ ४६ ॥ डूबते हुए कितेक लोग मरगये व कोई ग्राह के पेट में प्राप्त हुए और कोई राजपुत्रादिक महाजल में न देख पड़े ॥ ४७ ॥ उसको सुनकर चित्रवर्मा राजा भी बहुत विह्वल हुआ और यमुनाके किनारे प्राप्त होकर मूर्च्छित होगया ॥ ४८ ॥ इसके उपरान्त राजाकी स्त्रियां सुनकर चैतन्यतारहित होगईं और वह सीमंतिनी सुनकर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पै गिरपड़ी ॥ ४९ ॥ और अन्य मुख्य मंत्री व पुरोहित समेत शोकसे

संनत नायक लोग विह्वल व मुक्तकेश होकर विलाप करने लगे ॥ ५० ॥ और इन्द्रसेन राजा भी पुत्र की वार्त्ता को सुनकर दुःखित हुआ व स्त्रियों समेत मूर्च्छित होकर गिरपड़ा ॥ ५१ ॥ और उसके मंत्री व उनके पुरवासी तथा उस देश के निवासी लोग बालक, वृद्ध व स्त्रियां आदिक सब शोक से विकल होकर रोने लगे ॥ ५२ ॥ शोक से कोई छाती पीटने लगे व कोई शिर पीटने लगे और हा राजपुत्र ! हा तात ! कहां हो कहां हो यह कहकर घूमने लगे ॥ ५३ ॥ इस प्रकार इन्द्रसेन राजा का शोक से विकल व उदासीन नगर यकायक क्षोभित हुआ व चित्रवर्मा राजा का नगर यकायक क्षोभित होगया ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त वृद्धों

क्तमूर्धजाः ॥५०॥ इन्द्रसेनोपि राजेन्द्रः पुत्रवार्त्तां सुदुःखितः ॥ आकर्ण्य सहपत्नीभिर्नष्टसंज्ञः पपात ह ॥५१॥ तन्मन्त्रिणश्च तत्पौरास्तथा तद्देशवासिनः ॥ आबालवृद्धवनिताश्चुक्रुशुः शोकविह्वलाः ॥ ५२ ॥ शोकात्केचिदुरो जघ्नुः शिरो जघ्नुश्च केचन ॥ हा राजपुत्र हा तात कासि कासीति बभ्रमुः ॥५३॥ एवं शोकाकुलं दीनमिन्द्रसेनमहीपतेः ॥ नगरं सहसा क्षुब्धं चित्रवर्मपुरं तथा ॥ ५४॥ अथ वृद्धैः समाश्वस्तश्चित्रवर्मा महीपतिः ॥ शनैर्नगरमागत्य सान्त्वयामास चात्मजाम् ॥ ५५ ॥ स राजाम्भसि मग्नस्य जामातुस्तस्य बान्धवैः ॥ आगतैः कारयामास साकल्यादौर्ध्वदैहिकम् ॥ ५६ ॥ सा च सीमन्तिनी साध्वी भर्तृलोकमतिः सती ॥ पित्रा निषिद्धा स्नेहेन वैधव्यं प्रत्यपद्यत ॥ ५७ ॥ मुनेः पत्न्योपदिष्टं यत्सोमवारव्रतं शुभम् ॥ न तत्याज शुभाचारा वैधव्यं प्राप्तवत्यपि ॥ ५८ ॥ एवं चतुर्दशे वर्षे दुःखं प्राप्य सुदारुणम् ॥ ध्यायन्ती शिवपादाब्जं वत्सरत्रयमत्यगात् ॥ ५९ ॥ पुत्रशोकादिवोन्मत्तमिन्द्रसेनं मही

से समझाये हुए चित्रवर्मा राजाने धीरे धीरे नगर को आकर कन्या को समझाया ॥ ५५ ॥ और उस राजा ने जल में डूबेहुए दामाद का प्रेतकर्म आये हुए उसके भाइयों से संपूर्णता से करवाया ॥ ५६ ॥ और पतिलोक में बुद्धिवाली उस पतिव्रता सीमंतिनी को पिता ने स्नेह से मना किया और वह वैधव्यता को प्राप्त हुई ॥ ५७ ॥ और मुनि की स्त्री ने जो उत्तम सोमवार का व्रत बतलाया था विधवापन को प्राप्त भी उत्तम आचारवाली सीमंतिनी ने उसको नहीं छोड़ा ॥ ५८ ॥ इस प्रकार चौदहवें वर्ष में बड़ा दारुण दुःख पाकर शिवजी के चरणकमलों को ध्यान करती हुई उसने तीन वर्षों को व्यतीत किया ॥ ५९ ॥ और पुत्र के शोक

से उन्मत्त की नाईं इन्द्रसेन राजा को बल से दबाकर उसके भाइयों ने पराक्रम से राज्य को हरलिया ॥ ६० ॥ और वीर भाइयों ने सिंहासन को हरकर उस सन्तानहीन राजा को पकड़कर स्त्री समेत वन्दीगृह में डाल दिया ॥ ६१ ॥ और यमुनाजल में डूबे हुए उसके पुत्र इस चन्द्राङ्गद ने नीचे नीचे डूबते हुए नागनारियों को देखा ॥ ६२ ॥ और जलक्रीडा में लगी हुई वे विस्मित नागस्त्रियां उस राजपुत्र को देखकर पाताल को लेगईं ॥ ६३ ॥ नागिनियों से वेग से लिये जाते हुए उस राजकुमार ने बड़े अद्भुत व सुन्दर नाग के नगर में प्रवेश किया ॥ ६४ ॥ और उस राजपुत्रने महारत्नों की सब ओर चमकती हुई किरणों

पतिम् ॥ प्रसह्य तस्य दायादाः सप्ताङ्गं जह्रुरोजसा ॥ ६० ॥ हृतसिंहासनः शूरैर्दायादैः सोऽप्रजो नृपः ॥ निगृह्य काराभवने सपत्नीको निवेशितः ॥ ६१ ॥ चन्द्राङ्गदोऽपि तत्पुत्रो निमग्नो यमुनाजले ॥ अधोधोमज्जमानोऽसौ ददर्शोरगकामिनीः ॥ ६२ ॥ जलक्रीडासु सक्तास्ता दृष्ट्वा राजकुमारकम् ॥ विस्मितास्तमथो निन्युः पातालं पन्नगालयम् ॥ ६३ ॥ स नीयमानस्तरसा पन्नगीभिर्नृपात्मजः ॥ तक्षकस्य पुरं रम्यं विवेश परमाद्भुतम् ॥ ६४ ॥ सोऽपश्यद्राजतनयो महेन्द्रभवनोपमम् ॥ महारत्नपरिभ्राजन्मयूखपरिदीपितम् ॥ ६५ ॥ वज्रविद्रुमवैडूर्यप्रासादशतसङ्कुलम् ॥ माणिक्यगोपुरद्वारं मुक्तादामभिरुज्ज्वलम् ॥ ६६ ॥ चन्द्रकान्तस्थलं रम्यं हेमद्वारकपाटकम् ॥ अनेकशतसाहस्रमणिदीपविराजितम् ॥ ६७ ॥ तत्रापश्यत्सभामध्ये निषण्णं रत्नविष्टरे ॥ तक्षकं पन्नगाधीशं फणानेकशतोज्ज्वलम् ॥ ६८ ॥ दिव्याम्बरधरं दीप्तं रत्नकुण्डलराजितम् ॥ नानारत्नपरिक्षिप्तमुकुटद्युतिरञ्जितम् ॥ ६९ ॥ फणा

से प्रकाशित व इन्द्रमन्दिर के समान घरको देखा ॥ ६५ ॥ और हीरा, मूंगा व वैदूर्यादिक मणियों से बनेहुए सैकड़ों मन्दिरों से संयुत और मोतियों की झालर से उज्ज्वल नगर के द्वारको देखा ॥ ६६ ॥ और मनोहर चन्द्रकान्तमणि की भूमि व सुवर्ण के द्वार व कपाट को देखा व अनेक लक्ष मणिरूपी दीपों से शोभित स्थान को देखा ॥ ६७ ॥ वहां सभा के मध्य में रत्नों के आसन पै बैठे हुए अनेक सौ फणाओं से उज्ज्वल सर्पराज तक्षक को देखा ॥ ६८ ॥ जोकि दिव्य वसनों को धारण किये व प्रकाशित तथा रत्नों के कुडलों से शोभित और अनेक भांति के रत्नों से जडेहुए मुकुट की छवि से रँगे थे ॥ ६९ ॥ और विचित्र रत्नों से भूषित

तथा फणकी मणियों की किरणोंसे संयुत व हाथों को जोड़ेहुए असंख्य उत्तम सर्प उनकी सेवा करते थे ॥ ७० ॥ और रूप व यौवन की मधुरता तथा विलास की गति से शोभित हजारों नागकन्या सब ओर से घेरे थीं ॥ ७१ ॥ और दिव्य आभूषणों से प्रकाशित अंगोवाले तथा दिव्य चन्दन से पूजित व कालाग्नि के समान दुर्धर्ष व तेजसे सूर्यनारायण के समान तक्षक को ॥ ७२ ॥ बुद्धिमान् राजपुत्र सभा के स्थानमें देखकर प्रणामकर हाथों को जोड़कर उठकर खड़ा हुआ और उस तक्षक के तेजसे राजकुमार के नेत्र चकचौंधे होगये ॥ ७३ ॥ और नागराज ने भी उस सुन्दर राजपुत्र को देखकर नागिनियों से यह पूंछा कि यह कौन है

मणिमयूखाढ्यैरसंख्यैः पन्नगोत्तमैः ॥ उपासितं प्राञ्जलिभिश्चित्ररत्नविभूषितैः ॥ ७० ॥ रूपयौवनमाधुर्यविलासगतिशोभिना ॥ नागकन्यासहस्रेण समन्तात्परिवारितम् ॥ ७१ ॥ दिव्याभरणदीप्ताङ्गं दिव्यचन्दनचर्चितम् ॥ कालाग्निमिव दुर्धर्षं तेजसादित्यसन्निभम् ॥ ७२ ॥ दृष्ट्वा राजसुतो धीरः प्रणिपत्य सभास्थले ॥ उत्थितः प्राञ्जलिस्तस्य तेजसाक्षिप्तलोचनः ॥ ७३ ॥ नागराजोपि तं दृष्ट्वा राजपुत्रं मनोरमम् ॥ कोऽयं कस्मादिहायात इति पप्रच्छ पन्नगीः ॥ ७४ ॥ ता ऊचुर्यमुनातोये दृष्टोऽस्माभिर्यदृच्छया ॥ अज्ञातकुलनामायमानीतस्तव सन्निधिम् ॥ ७५ ॥ अथ पृष्टो राजपुत्रस्तक्षकेण महात्मना ॥ कस्यासि तनयः कस्त्वं को देशः कथमागतः ॥ ७६ ॥ राजपुत्रो वचः श्रुत्वा तक्षकं वाक्यमब्रवीत् ॥ ७७ ॥ राजपुत्र उवाच ॥ अस्ति भूमण्डले कश्चिद्देशो निषधसंज्ञकः ॥ तस्याधिपोऽभवद्राजा नलो नाम महायशाः ॥ स पुण्यकीर्त्तिः क्षितिपो दमयन्तीपतिः शुभः ॥ ७८ ॥ तस्मादपीन्द्रसेनाख्यस्तस्य

और कहांसे यहां आया है ॥ ७४ ॥ उन नागिनियों ने कहा कि कुल व नाम न जाने हुए इस राजकुमार को हम सबोंने यमुनाजी के जलमें देखा था और इसको हम तुम्हारे समीप ले आई हैं ॥ ७५ ॥ इसके उपरान्त महात्मा तक्षक ने राजपुत्र से पूंछा कि तुम किसके पुत्र हो व तुम्हारा कौन देश है और तुम कैसे आये हो ॥ ७६ ॥ राजपुत्रने वचन को सुनकर तक्षक से यह वचन कहा ॥ ७७ ॥ राजपुत्र बोला कि पृथ्वीमण्डल में कोई निषधसंज्ञक देश है उसका स्वामी नलनामक महायशस्वी हुआ है और दमयन्ती का पति वह पवित्र यशवाला राजा उत्तम था ॥ ७८ ॥ व उसके भी इन्द्रसेननामक पुत्र हुआ है उसका पुत्र मैं चन्द्राङ्गद

नामक बड़ा बलवान् हूं व ब्याह करके मैं श्वशुर के घरमें था और यमुनाजल में विहार करताहुआ दैवसे प्रेरित मैं डूबगया ॥ ७९ ॥ और ये नागस्त्रियां मुझको तुम्हारे समीप लेआई हैं अन्य जन्मों में इकट्ठा कियेहुए पुण्योंसे मैं तुम्हारे चरणकमल को देखकर ॥ ८० ॥ आज धन्य हूं धन्य हूं और मेरे पितर कृतार्थ होगये क्योंकि तुमने दयासे मुझको देखा व वार्त्तालाप किया ॥ ८१ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार उदार व अतिसुन्दर तथा सीधे वचन को सुनकर फिर तक्षक ने उत्कण्ठा से राजपुत्र से कहा ॥ ८२ ॥ तक्षक बोला कि हे हे नरेन्द्रपुत्र ! मत डरो धीरज धरो और सब देवताओं में किसको तुम सदैव पूजते हो ॥ ८३ ॥

पुत्रो महाबलः ॥ चन्द्राङ्गदोस्मि नाम्नाहं नवोढः श्वशुरालये ॥ विहरन्यमुनातोये निमग्नो दैवचोदितः ॥ ७९ ॥ एताभिः पन्नगस्त्रीभिरानीतोस्मि तवान्तिकम् ॥ दृष्टाहं तव पादाब्जं पुण्यैर्जन्मान्तरार्जितैः ॥ ८० ॥ अद्य धन्योऽस्मि धन्योऽस्मि कृतार्थौ पितरौ मम ॥ यत्प्रेक्षितोऽहं कारुण्यात्त्वया संभाषितोपि च ॥ ८१ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युदारमसंभ्रान्तं वचः श्रुत्वातिपेशलम् ॥ तक्षकः पुनरौत्सुक्याद्बभाषे राजनन्दनम् ॥ ८२ ॥ तक्षक उवाच ॥ भो भो नरेन्द्रदायाद मा भैर्षीर्धीरतां व्रज ॥ सर्वदेवेषु को देवो युष्माभिः पूज्यते सदा ॥ ८३ ॥ राजपुत्र उवाच ॥ यो देवः सर्वदेवेषु महादेव इति स्मृतः ॥ पूज्यते स हि विश्वात्मा शिवोऽस्माभिरुमापतिः ॥ ८४ ॥ यस्य तेजोंशलेशेन रजसा च प्रजापतिः ॥ कृतरूपोऽसृजद्विश्वं स नः पूज्यो महेश्वरः ॥ ८५ ॥ यस्यांशात्सात्त्विकं दिव्यं बिभ्रद्विष्णुः सनातनः ॥ विश्वं बिभर्ति भूतात्मा शिवोऽस्माभिः स पूज्यते ॥ ८६ ॥ यस्यांशात्तामसाज्जातो रुद्रः कालाग्नि

राजपुत्र बोला कि सब देवताओं के मध्य में जो देवता महादेव ऐसे कहे गये हैं वेही संसारात्मक पार्वती के पति शिवजी हमसे पूजेजाते हैं ॥ ८४ ॥ और जिनके तेज भाग के कुछ अंशवाले रजोगुण से रचित रूपवाले ब्रह्माजी संसार को रचते हैं वे शिवजी हमारे पूजने योग्य हैं ॥ ८५ ॥ व जिनके अंश से दिव्य सात्त्विक तेजको धारते हुए सनातन विष्णुजी संसार को पालते हैं वे भूतात्मक शिवजी हमलोगों से पूजेजाते हैं ॥ ८६ ॥ और जिनके तमोगुणवाले अंश से

कालाग्नि के समान उत्पन्न रुद्रजी प्रलय में इस संसार को संहार करते हैं वे शिवजी हमसे पूजने योग्य हैं ॥ ८७ ॥ जो ब्रह्माके भी रचनेवाले और कारण के भी कारण हैं व तेजों के मध्य में जो उत्तम तेज हैं वे शिवजी हमारी उत्तम गति हैं ॥ ८८ ॥ और समीप स्थित भी जो पाप से नष्टचित्तवाले जनों के दूर स्थित हैं अमित तेजवाले वे शिवजी हमलोगों की उत्तम गति हैं ॥ ८९ ॥ और जो अग्नि में स्थित हैं व जो भूमिमें व पवनमें और जो जलमें स्थित हैं व जो आकाशमें हैं वे विश्वात्मक सदाशिवजी हमलोगों से पूजने योग्य हैं ॥ ९० ॥ और जो सब प्राणियों के साक्षी व शरीर में स्थित जो निरंजन है और ससार जिस

सन्निभः ॥ विश्वमेतद्धरत्यन्ते स पूज्योऽस्माभिरीश्वरः ॥ ८७ ॥ यो विधाता विधातुश्च कारणस्यापि कारणम् ॥ तेजसां परमं तेजः स शिवो नः परा गतिः ॥ ८८ ॥ योन्तिकस्थोऽपि दूरस्थः पापोपहतचेतसाम् ॥ अपरिच्छेद्यधामासौ शिवो नः परमा गतिः ॥ ८९ ॥ योऽग्नौ तिष्ठति यो भूमौ यो वायौ सलिले च यः ॥ य आकाशे च विश्वात्मा स पूज्यो नः सदाशिवः ॥ ९० ॥ यः साक्षी सर्वभूतानां य आत्मस्थो निरञ्जनः ॥ यस्येच्छावशगो लोकः सोऽस्माभिः पूज्यते शिवः ॥ ९१ ॥ यमेकमाद्यं पुरुषं पुराणं वदन्ति भिन्नं गुणवैकृतेन ॥ क्षेत्रज्ञमेकेथ तुरीयमन्ये कूटस्थमन्ये स शिवो गतिर्नः ॥ ९२ ॥ यं नास्पृशंश्चैत्त्यमचिन्त्यतत्त्वं दुरन्तधामानमतस्स्वरूपम् ॥ मनोवचोवृत्तय आत्मभाजां स एष पूज्यः परमः शिवो नः ॥ ९३ ॥ यस्य प्रसादं प्रतिलभ्य सन्तो वाञ्छन्ति नैन्द्रं पदमुज्ज्वलं वा ॥ निस्तीर्णकर्मार्गलकालचक्राश्चरन्त्यभीताः स शिवो गतिर्नः ॥ ९४ ॥ यस्य स्मृतिः सकलपापरुजां विघातं सद्यः

की इच्छा के वशमें प्राप्तहै वे शिवजी हमसे पूजेजाते हैं ॥ ९१ ॥ जिसको विद्वान् लोग एक पुराणपुरुष कहते हैं व गुणों के विकार से जिसको भिन्न कहते हैं और कोई क्षेत्रज्ञ व कोई तुरीय कहते हैं और अन्य लोग कूटस्थ कहते हैं वे शिवजी हमारी गतिहैं ॥ ९२ ॥ और जिन ज्ञानमय व अचिन्तनीय तत्त्व तथा अमित तेजवाले शिवजीको आत्मज्ञानियों के मन, वचन की वृत्तियां स्पर्श नहीं करती हैं वे श्रेष्ठ शिवजी हमारे पूजनीयहैं ॥ ९३ ॥ व जिनकी प्रसन्नताको पाकर विद्वान् लोग इन्द्रपद व निर्मल पद (मोक्ष) को नहीं चाहते हैं और कर्म की ज़ंजीर व कालचक्रको नाँघकर निडर होकर घूमते हैं वे शिवजी हमारी गति है ॥ ९४ ॥ और

जिनका स्मरण चाण्डाल जन्मवाले मनुष्यों के भी सब पापरूपी रोगों को शीघ्रही नाश करता है व जिनका पूर्णस्वरूप श्रुतियों से ढूंढ़ने योग्य है उन शिवजी के लिये हम सदैव पूजन करते हैं ॥ ९५ ॥ व स्वर्ग की नदी गंगाजीने जिनके मस्तक में स्थान पाया है और भगवती जगदम्बिका पार्वतीजी जिनके अङ्गमें प्राप्त हैं व तक्षक, वासुकी दोनों जिनके कुण्डल हैं वे अर्धचन्द्रभालवाले शिवजी हमारी गति हैं ॥ ९६ ॥ और वेदोंकी शिखा के अग्रभाग मे जिनके चरणकमल हैं उनकी जय हो व योगियों के हृदय में जिनकी सदैव मूर्ति रहती है उनकी जय हो और जिनकी मूर्ति सब तत्त्वों को प्रकाश करती है गुणों की

करोत्यपि च पुल्कसजन्मभाजाम् ॥ यस्य स्वरूपमखिलं श्रुतिभिर्विमृग्यं तस्मै शिवाय सततं करवाम पूजाम् ॥ ९५ ॥ यन्मूर्ध्नि लब्धनिलया सुरलोकसिन्धुर्यस्याङ्गगा भगवती जगदम्बिका च ॥ यत्कुण्डले त्विहह तक्षकवासुकी द्वौ सोऽस्माकमेव गतिरर्धशशाङ्कमौलिः ॥ ९६ ॥ जयति निगमचूडाग्रेषु यस्याङ्घ्रिपद्मं जयति च हृदि नित्यं योगिनां यस्य मूर्तिः ॥ जयति सकलतत्त्वोद्भासनं यस्य मूर्तिः स विजितगुणसर्गः पूज्यतेऽस्माभिरीशः ॥ ९७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तक्षकः प्रीतमानसः ॥ जातभक्तिर्महादेवे राजपुत्रमभाषत ॥ ९८ ॥ तक्षक उवाच ॥ परितुष्टोऽस्मि भद्रं स्तात्तव राजेन्द्रनन्दन ॥ बालोपि यत्परं तत्त्वं वेत्सि शैवं परात्परम् ॥ ९९ ॥ एष रत्नमयो लोक एताश्चारुदृशोऽबलाः ॥ एते कल्पद्रुमाः सर्वे वाप्योमृतरसाम्भसः ॥ १०० ॥ नात्र मृत्युभयं घोरं न जरारोगपीडनम् ॥ यथेष्टं विहरात्रैव भुङ्क्ष्व भोगान्यथोचितान् ॥ १ ॥ इत्युक्तो नागराजेन स राजेन्द्रकुमारकः ॥ प्रत्यु

सृष्टिको जीतनेवाले वे शिवजी हमसे पूजेजाते हैं ॥ ९७ ॥ उसका यह वचन सुनकर महादेवजी में उत्पन्न भक्ति व प्रसन्नमनवाले तक्षक ने राजपुत्र से कहा ॥ ९८ ॥ तक्षक बोला कि हे नृपेन्द्रपुत्र ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं व तुम्हारा कल्याण होवै जोकि बालक भी तुम परेसे भी परे श्रेष्ठ शिव तत्त्व को जानते हो ॥ ९९ ॥ और यह लोक रत्नमय है व ये स्त्रिया सुन्दर नेत्रोंवाली हैं और ये सब वृक्ष कल्पवृक्ष हैं व बावलियों में अमृतरूपी जल है ॥ १०० ॥ और यहा भयंकर मृत्यु नहीं होती है व वृद्धता तथा रोग से पीडा नहीं होती है तुम यहीं पर इच्छा के अनुसार विहार करो व यथायोग्य सुखों को भोग करो ॥ १ ॥ नागराज से ऐसा

कहेहुए उदार बुद्धिवाले नृपेन्द्रपुत्रने हाथों को जोड़कर बड़े हर्ष से कहा ॥ २ ॥ कि समयमें मैंने ब्याह किया है और मेरी स्त्री उत्तम व्रतवर्ती है व सदैव शिव-पूजन में परायण है और पिता, माताके मैंही एक पुत्र हूं ॥ ३ ॥ इस समय वे मुझको मरेहुए सुनकर बड़े शोक में संयुत होवैंगे व प्रायः प्राणों से रहित होवेंगे या दैवसे प्राणों को धारण किये होवैं ॥ ४ ॥ इस कारण बहुत दिनोंतक मुझको किसी प्रकार यहां स्थित होना न चाहिये मुझको उसी लोक को तुम दया से पठाने योग्यहो ॥ ५ ॥ यह कहनेवाले उस राजकुमार को कल्पवृक्षों से उपजेहुए दिव्य व उत्तम अन्नों से तृप्त कर तथा उत्तम चन्दन, वसन, माला, रत्न व विचित्र

वाच परं प्रीत्या कृताञ्जलिरुदारधीः ॥ २ ॥ कृतदारोऽस्म्यहं काले सुव्रता गृहिणी मम ॥ शिवपूजापरा नित्यं पितरावेकपुत्रकौ ॥ ३ ॥ ते त्वद्य मां मृतं मत्वा शोकेन महतावृताः ॥ प्रायः प्राणैर्वियुज्यन्ते दैवात्प्राणान्वहन्ति वा ॥ ४ ॥ अतो मया बहुतिथं नात्र स्थेयं कथंचन ॥ तमेव लोकं कृपया मां प्रापयितुमर्हसि ॥ ५ ॥ इत्युक्तवन्तं नरदेवपुत्रं दिव्यैर्वरान्नैः सुरपादपोत्थैः ॥ आप्याययित्वावरगन्धवासः स्रग्रत्नदिव्याभरणैर्विचित्रैः ॥ ६ ॥ सन्तोषयित्वा विविधैश्च भोगैः पुनर्बभाषे भुजगाधिराजः ॥ यदा यदा त्वं स्मरसि त्वदग्रे तदा तदा विष्क्रियते मयेति ॥ ७ ॥ पुनश्च राजपुत्राय तक्षकोऽश्वं च कामगम् ॥ नानाद्वीपसमुद्रेषु लोकेषु च निरर्गलम् ॥ ८ ॥ दत्तवान् रत्नाभरणादिव्याभरणवाससाम् ॥ वाहनाय ददावेकं राक्षसं पन्नगेश्वरः ॥ ९ ॥ तत्सहायार्थमेकं च पन्नगेन्द्रकुमारकम् ॥ नियुज्य तक्षकः प्रीत्या गच्छेति विससर्ज तम् ॥ १० ॥ इति चन्द्राङ्गदः सोऽथ संगृह्य विविधं धनम् ॥ अश्वं कामगमा

दिव्य आभूषणों से ॥ ६ ॥ और अनेक प्रकार के सुखों से प्रसन्न कराकर फिर नागराज ने कहा कि तुम जब जब याद करोगे तब तब मैं तुम्हारे आगे प्रकट हूंगा ॥ ७ ॥ फिर नागराज तक्षकने अनेकप्रकार के द्वीपों, समुद्रों व लोकों में बिन रोंकटोंक व इच्छा के अनुसार चलनेवाला एक घोड़ा सवारीके लिये राजकुमार को दिया व रत्नाभरण तथा दिव्य आभूषणों व वसनों को दिया और एक राक्षस को दिया ॥ ८।९ ॥ और उसकी सहाय के लिये एक नागराजकुमार को नियुक्त कर तक्षक ने प्रीति से जाओ यह कहकर बिदा किया ॥ १० ॥ इस प्रकार वह चन्द्राङ्गद अनेक प्रकार का धन लेकर व इच्छा के अनुसार चलनेवाले घोड़े पै सवार

होकर उन दोनों समेत निकला ॥ ११ ॥ और थोड़ी देर में उस नदी के जलसे उठकर दिव्य घोड़े पै सवार होकर सुन्दर किनारे पै घूमने लगा ॥ १२ ॥ इसी समय
में सखियों से घिरी हुई वह पतिव्रता सीमंतिनी स्त्री वहां नहाने के लिये गई ॥ १३ ॥ और उस स्त्री ने मनुष्यरूपवाले राक्षस व नागपुत्र से संयुत राजकुमार को
नदी के किनारे विहार करते हुए देखा ॥ १४ ॥ व दिव्य रत्नों से संयुत तथा दिव्य माला व शिरभूषणवाले और दिव्य सुगन्धवाले शरीर मे दश योजन
तक मन को खींचते हुए ॥ १५ ॥ व दिव्य घोड़े पै चढ़े हुए उस अपूर्व आकारवाले राजकुमार को देखकर जड़, उन्मत्त व डरी हुई सी वह सीमंतिनी उन्हीं

रुह्य ताभ्यां सह विनिर्ययौ ॥ ११ ॥ स मुहूर्तादिवोन्मज्य तस्मादेव सरिज्जलात् ॥ विजहार तटे रम्ये दिव्यमारुह्य
वाजिनम् ॥ १२ ॥ अथास्मिन्समये तन्वी सा च सीमन्तिनी सती ॥ स्नातुं समाययौ तत्र सखीभिः परिवारि
ता ॥ १३ ॥ सा ददर्श नदीतीरे विहरन्तं नृपात्मजम् ॥ रक्षसा नररूपेण नागपुत्रेण चान्वितम् ॥ १४ ॥ दिव्यरत्न
समाकीर्णं दिव्यमाल्यावतंसकम् ॥ देहेन दिव्यगन्धेन व्याक्षिप्तदशयोजनम् ॥ १५ ॥ तमपूर्वाकृतिं वीक्ष्य दि
व्याश्वमधिसंस्थितम् ॥ जडोन्मत्तेव भीतेव तस्थौ तन्न्यस्तलोचना ॥ १६ ॥ तां च राजेन्द्रपुत्रोऽसौ दृष्टपूर्वामिति
स्मरन् ॥ निर्मुक्तकण्ठाभरणां कण्ठसूत्रविवर्जिताम् ॥ १७ ॥ असंयोजितधम्मिल्लामङ्गरागविवर्जिताम् ॥ त्यक्तनीला
ञ्जनापाङ्गीं कृशाङ्गीं शोकदूषिताम् ॥ १८ ॥ दृष्ट्वाऽवतीर्य तुरगादुपविष्टः सरित्तटे ॥ तामाहूय वरारोहामुपवेश्येदम
ब्रवीत् ॥ १९ ॥ का त्वं कस्य कलत्रं वा कस्यासि तनयासती ॥ किमिदं तेऽङ्गने बाल्ये दुःसहं शोकलक्षणम् ॥ २० ॥

में आँखों को लगाकर खडी होगई ॥ १६ ॥ और यह राजेन्द्रपुत्र उसका यह स्मरण करता हुआ कि पहले देखी हुई है और कंठाभूषण को छोडे तथा
कंठसूत्र से रहित ॥ १७ ॥ तथा बिन गूथी वेणीवाली और अंगराग से रहित व नेत्रों के अन्त भाग में नील अंजन से रहित और दुर्बल अंगोंवाली व
शोक से दूषित उस सीमंतिनी को ॥ १८ ॥ देखकर घोडे से उतरकर राजकुमार नदी के किनारे बैठ गया और उस स्त्री को बुलाकर उसने समीप बिठाकर यह
कहा ॥ १९ ॥ कि तुम कौन हो व किसकी स्त्री हो और किसकी कन्या हो व हे अंगने ! बाल्यावस्था में तुम्हारे यह दुस्सह शोक का लक्षण कैसे हुआ है ॥ २० ॥

इस प्रकार स्नेह से पूंछी हुई वह आँसुवों समेत लोचनोंवाली स्त्री आपही कहने के लिये लज्जित होगई तब उसकी सखी ने सब वृत्तान्त कहा ॥ २१ ॥ कि सीमंतिनीनामक यह निषध देश के राजाकी पतोहू है और चन्द्राङ्गद की स्त्री व चित्रवर्मा की कन्या है ॥ २२ ॥ इसका पति दैवयोग से इस महाजल में डूबगया उसी कारण विधवताको प्राप्त यह दुःख से सूखीहुई है ॥ २३ ॥ इस प्रकार बडे बलवान् शोक से तीनवर्ष बीतगये हैं आज सोमवार में यहा नहाने के लिये आई है ॥ २४ ॥ और इसके श्वशुरका राज्य शत्रुवों ने हरलिया व बल से पकड़ कर बाँधलिया है और स्त्रीसमेत वह उनके वशमें स्थित है ॥ २५ ॥

इति स्नेहेन संपृष्टा सा वधूरश्रुलोचना ॥ लज्जिता स्वयमाख्यातुं तत्सखी सर्वमब्रवीत् ॥ २१ ॥ इयं सीमन्तिनी नाम्ना स्नुषा निषधभूपतेः ॥ चन्द्राङ्गदस्य महिषी तनया चित्रवर्मणः ॥ २२ ॥ अस्याः पतिर्दैवयोगान्निमग्नोऽस्मिन्म हाजले ॥ तेनेयं प्राप्तवैधव्या बाला दुःखेन शोषिता ॥ २३ ॥ एवं वर्षत्रयं नीतं शोकेनातिबलीयसा ॥ अद्येन्दुवारे सं प्राप्ते स्नातुमत्र समागता ॥ २४ ॥ श्वशुरोऽस्याश्च राजेन्द्रो हृतराज्यश्च शत्रुभिः ॥ बलाद्गृहीतो बद्धश्च सभार्यस्तद्वशे स्थितः ॥ २५ ॥ तथाप्येषा शुभाचारा सोमवारे महेश्वरम् ॥ साम्बिकं परया भक्त्या पूजयत्यमलाशया ॥ २६ ॥ सूत उवाच ॥ इत्थं सखीमुखेनैव सर्वमावेद्य सुव्रता ॥ ततः सीमन्तिनी प्राह स्वयमेव नृपात्मजम् ॥ २७ ॥ कस्त्वं कन्दर्पसंकाशः काविमौ तव पार्श्वगौ ॥ देवो नरेन्द्रः सिद्धो वा गन्धर्वो वाथ किन्नरः ॥ २८ ॥ किमर्थं मम वृत्तान्तं स्ने हवानिव पृच्छसि ॥ किं मां वेत्सि महाबाहो दृष्टवान्किमु कुत्रचित् ॥ २९ ॥ दृष्टपूर्व इवाभासि मया च स्वजनो

तिसपर भी यह उत्तम आचरण व निर्मल आशयवाली सीमंतिनी सोमवार में पार्वती समेत सदाशिवजी को बडीभक्ति से पूजती है ॥ २६ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार सखी के मुखसे सब कहकर तदनन्तर उत्तम नियमवाली सीमंतिनी आपही राजकुमार से बोली ॥ २७ ॥ कि कामदेव के समान तुम कौन हो और तुम्हारे समीप प्राप्त ये दोनों कौन हैं देवताहो या राजाहो या सिद्धहो या गन्धर्व हो अथवा किन्नर हो ॥ २८ ॥ और मेरे वृत्तान्त को सनेही की नाईं तुम किसलिये पूंछते हो हे महाबाहो ! तुम क्या मुझको जानतेहो या कहीं तुमने देखा है ॥ २९ ॥ और मुझको स्वजन की नाईं पहले देखेहुए से जान पड़ते हो यह सब

वृत्तान्त यथार्थ कहिये क्योंकि साधुवों में सत्य सारांश होता है ॥ ३० ॥ सूतजी बोले कि इतना कहकर गद्गदकण्ठ होकर राजकुमारी बहुत देरतक रोती रही
और सखियों से घिरीहुई वह मोहित होकर पृथ्वी पै गिरपड़ी और कुछ कहने के लिये समर्थ न हुई ॥ ३१ ॥ सब प्रियाके शोक का कारण सुनकर आप भी शोक से
व्याकुल चन्द्राङ्गद थोड़ी देरतक चुप होगया ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त प्यारी स्त्री को अनेक प्रकार के वचनों की निपुणता से समझाकर उस राजपुत्र ने कहा कि
इच्छा के अनुकूल चलनेवाले हमलोग सिद्धनामक देवता हैं ॥ ३३ ॥ तदनन्तर हाथ पकड़ने से शंकित उसको बलसे खींचकर सब अङ्गोंमें रोमाञ्चवती उस सीमं-

यथा ॥ सर्वं कथय तत्त्वेन सत्यसारा हि साधवः ॥ ३० ॥ सूत उवाच ॥ एतावदुक्त्वा नरदेवपुत्री सबाष्पकण्ठं सुचिरं रुरोद ॥ मुमोह भूमौ पतिता सखीभिर्वृता न किञ्चित्कथितुं शशाक ॥ ३१ ॥ श्रुत्वा चन्द्राङ्गदः सर्वं प्रियायाः शोककारणम् ॥ मुहूर्त्तमभवत्तूष्णीं स्वयं शोकसमाकुलः ॥ ३२ ॥ अथाश्वास्य प्रियां तन्वीं विविधैर्वाक्यनैपुणैः ॥ सिद्धा नाम वयं देवाः कामगा इति सोऽब्रवीत् ॥ ३३ ॥ ततो बलादिवाकृष्य पाणिग्रहणशङ्किताम् ॥ पुलकाञ्चितसर्वाङ्गीं तां कर्णे त्विदमब्रवीत् ॥ ३४ ॥ क्वापि लोके मया दृष्टस्तव भर्त्ता वरानने ॥ त्वद्व्रताचरणात्प्रीतः सद्य एवागमिष्यति ॥ ३५ ॥ अपनेष्यति ते शोकं द्वित्रैरेव दिनैर्ध्रुवम् ॥ एतच्छंसितुमायातस्तव भर्त्तुः सखाऽस्म्यहम् ॥ ३६ ॥ अत्र कार्यो न सन्देहः शपामि शिवपादयोः ॥ तावत्त्वद्धृदये स्थेयं न प्रकाश्यं च कुत्रचित् ॥ ३७ ॥ सा तु तद्वचनं श्रुत्वा सुधाधाराशताधिकम् ॥ संभ्रमोद्भ्रान्तनयना तमेव मुहुरैक्षत ॥ ३८ ॥ प्रेमबन्धानुगुणितं वाक्यं चाह रसायनम् ॥

तिनीके कानमें यह कहा ॥ ३४ ॥ कि हे वरानने ! संसार में मैंने कहींपर तुम्हारे पति को देखा है तुम्हारे व्रत करने से प्रसन्न वह शीघ्रही आवैगा ॥ ३५ ॥ व दो
तीनदिनोंमें निश्चय कर तुम्हारे शोकको दूर करैगा यही कहनेके लिये मैं आया था और तुम्हारे पतिका मैं मित्रहूं ॥ ३६ ॥ इसमें तुम सन्देह न करना मैं शिवजी
के चरणों की सौगन्द करताहूं और तबतक तुम कहीं इस बातको प्रकट न करना वरन अपने हृदय में स्थित रखना ॥ ३७ ॥ अमृत की धारासे सौगुने अधिक
उस वचनको सुनकर संभ्रम से भ्रमित लोचनोंवाली वह सीमंतिनी थोड़ीदेर तक उसीको बार २ देखती रही ॥ ३८ ॥ और प्रेमके बन्धन से गूथेहुए रसायन वचन

को कहा और विभ्रम व उदार समेत तथा मधुरता से कटाक्षदर्शन ॥ ३९ ॥ व अपने हाथ के छूनेसे रोमाञ्चित देह और अङ्गोंमें व स्वरादिकों में पहले देखेहुए लक्षणोंको तथा अवस्था का प्रमाण व रङ्गकी परीक्षा करके इनको निश्चय किया ॥ ४० ॥ कि यही निश्चय कर मेरा पति है अन्य न होगा क्योंकि प्रेमसे अधीर मेरा मन इन्हींमें लगा है ॥ ४१ ॥ और ऐसे स्वरूप को धारनेवाला यह कैसे परलोकसे आया है और मुझ अभागिनी को नष्ट पति का दर्शन कैसे होगा ॥ ४२ ॥ और यह स्वप्न है अथवा स्वप्न नहीं है या भ्रम है अथवा भ्रम नहीं है या यह छली है व कोई यक्ष या गन्धर्व है ॥ ४३ ॥ अथवा मुनिकी स्त्रीने जो मुझ

विभ्रमोदारसहितं मधुरापाङ्गवीक्षणम् ॥ ३९ ॥ स्वपाणिस्पर्शनोद्भिन्नपुलकाञ्चितविग्रहम् ॥ पूर्वदृष्टानि चाङ्गेषु लक्षणानि स्वरादिषु ॥ वयःप्रमाणं वर्णं च परीक्ष्यैनमतर्कयत् ॥ ४० ॥ एव एव पतिर्मे स्याद्ध्रुवं नान्यो भविष्यति ॥ अस्मिन्नेव प्रसक्तं मे हृदयं प्रेमकातरम् ॥ ४१ ॥ परलोकादिहायातः कथमेवं स्वरूपधृक् ॥ दुर्भाग्यायाः कथं मे स्याद्भर्तुर्नष्टस्य दर्शनम् ॥ ४२ ॥ स्वप्नोऽयं किमु न स्वप्नो भ्रमोऽयं किं तु न भ्रमः ॥ एष धूर्तोऽथवा कश्चिद्यक्षो गन्धर्व एव वा ॥ ४३ ॥ मुनिपत्न्या यदुक्तं मे परमापद्गतापि च ॥ व्रतमेतत्कुरुष्वेति तस्यैव फलमेव वा ॥ ४४ ॥ यो वर्षायुतसौभाग्यं ममेत्याह द्विजोत्तमः ॥ नूनं तस्य वचः सत्यं को विद्यादीश्वरं विना ॥ ४५ ॥ निमित्तानि च दृश्यन्ते मङ्गलानि दिने दिने ॥ प्रसन्ने पार्वतीनाथे किमसाध्यं शरीरिणाम् ॥ ४६ ॥ इत्थं विमृश्य बहुधा तां पुनर्मुक्तसंशयाम् ॥ लज्जानम्रमुखीं कर्णे शशंसात्मप्रयोजनम् ॥ ४७ ॥ इमं वृत्तान्तमाख्यातुं तत्पित्रोः शोकत

से यह कहा था कि बड़ी विपत्ति में प्राप्तभी तुम इस व्रत को करना उसीका फल है ॥ ४४ ॥ और जिस द्विजोत्तमने मुझसे यह कहाथा कि दशहजार वर्ष तुम्हारा सौभाग्य है उसका वचन सत्य है यह ईश्वर के बिना कौन जानै ॥ ४५ ॥ और प्रतिदिन मङ्गल के लक्षण देख पडते हैं शिवजी के प्रसन्न होनेपर शरीरधारियों को क्या दुर्लभ है ॥ ४६ ॥ इस प्रकार बहुत भांति से विचार कर फिर मुक्तसन्देह व लजा से नीचे मुखवाली उस सीमंतिनी से कान मे अपना प्रयोजन कहा ॥ ४७ ॥ कि हे भद्रे ! इस वृत्तान्त को शोकसे संतप्त उन माता, पिता से कहने के लिये हम जाते हैं तुम्हारा कल्याण होवै और तुम शीघ्रही पति को

पात्रोगी ॥ ४८ ॥ यह कहकर व घोड़े पै सवार होकर राजपुत्र चलागया और उसी क्षण उनदोनों समेत वह अपने राज्यमें प्राप्त हुआ ॥ ४९ ॥ और उसने नगर के बगीचे के समीप स्थित होकर उस सर्पराज के पुत्रको राजासन पै प्राप्त अपने भाइयों के समीप पठाया ॥ ५० ॥ व उसने जाकर उनसे कहा कि इन्द्रसेन को शीघ्रही छोडदो क्योंकि उसका यह चन्द्राङ्गद पुत्र पातालसे प्राप्त हुआहै ॥ ५१ ॥ आप लोग सिंहासन को छोड़दो विचार न करो नहीं तो चन्द्राङ्गद के बाण तुम लोगों के प्राणों को हर लेवैंगे ॥ ५२ ॥ यमुनाजी के जलमें डूबा हुआ वह तक्षक के मन्दिरको जाकर व उसकी सहायता को पाकर वह फिर उस लोक से यहां आया

प्रयोः ॥ गच्छामः स्वस्ति ते भद्रे सद्यः पतिमवाप्स्यसि ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वाश्वं समारुह्य जगाम नृपनन्दनः ॥ ताभ्यां सह निजं राष्ट्रं प्रत्यपद्यत तत्क्षणात् ॥ ४९ ॥ स पुरोपवनाभ्याशे स्थित्वा तं फणिपुत्रकम् ॥ विससर्जात्मदायादान्नृपासनगतान्प्रति ॥ ५० ॥ स गत्वोवाच ताञ्छीघ्रमिन्द्रसेनो विमुच्यताम् ॥ चन्द्राङ्गदस्तस्य सुतः प्राप्तोऽयं पन्नगालयात् ॥ ५१ ॥ नृपासनं विमुञ्चन्तु भवन्तो न विचार्यताम् ॥ नो चेच्चन्द्राङ्गदस्याशु बाणाः प्राणान्हरन्ति वः ॥ ५२ ॥ स मग्नो यमुनातोये गत्वा तक्षकमन्दिरम् ॥ लब्ध्वा च तस्य साहाय्यं पुनर्लोकादिहागतः ॥ ५३ ॥ इत्याख्यातमशेषेण तद्वृत्तान्तं निशम्य ते ॥ साधुसाध्विति संभ्रान्ताः शशंसुः परिपन्थिनः ॥ ५४ ॥ अथेन्द्रसेनाय निवेद्य सत्वरं नष्टस्य पुत्रस्य पुनः समागमम् ॥ प्रसाद्य तं प्राप्तनरेश्वरासनं दायादमुख्यास्तु भयं प्रपेदिरे ॥ ५५ ॥ अथ पौरजनाः सर्वे पुरोद्याने नृपात्मजम् ॥ दृष्ट्वा राज्ञे द्रुतं प्रोचुर्लेभिरे च महाधनम् ॥ ५६ ॥ आकर्ण्य पुत्रमायान्तं

है ॥ ५३ ॥ संपूर्णता से कहेहुए उस वृत्तान्त को सुनकर संभ्रमसमेत उन शत्रुवों ने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त वे मुख्य बन्धुलोग इन्द्रसेनसे नष्ट पुत्रका फिर आगमन बतलाकर व प्राप्त सिंहासनवाले उस इन्द्रसेन को प्रसन्न कराकर भयको प्राप्तहुए ॥ ५५ ॥ इसके उपरान्त सब पुरवासियों ने नगर के बगीचे में राजकुमार को देखकर शीघ्रही राजा से कहा व बड़ा धन पाया ॥ ५६ ॥ व आयेहुए पुत्रको सुनकर आनन्दके जलमें मग्न राजा

व रानीने बडे हर्षसे इस लोक को नहीं जाना ॥ ५७ ॥ इसके उपरान्त सब नगरनिवासी व वृद्ध मन्त्री और पुरोहित आगे जाकर व उस चन्द्राङ्गद को लिपटा कर राजाके समीप ले आये ॥ ५८ ॥ इसके उपरान्त बड़ेभारी उत्साह से अपने मन्दिर में पैठकर आँसुवों को छोडतेहुए राजकुमार ने अपने माता, पिता को प्रणाम किया ॥ ५९ ॥ चरणमूलमें पडेहुए उस अपने पुत्रको इस राजाने क्षणभर नहीं जाना और मन्त्री लोगों से समझाये हुए उस राजाने किसी प्रकार उठाकर भीगेहुए हृदय से लिपटालिया ॥ ६० ॥ और क्रमसे माताओं को प्रणाम कर स्नेह से विकल उन माताओं से आशीर्वाद को पाकर लिपटायेहुए उस राजपुत्रने

राजानन्दजलाप्लुतः ॥ न व्यजानादिमं लोकं राज्ञी च परया मुदा ॥ ५७ ॥ अथ नागरिकाः सर्वे मन्त्रिवृद्धाः पुरोधसः ॥ प्रत्युद्गम्य परिष्वज्य तमानिन्युर्नृपान्तिकम् ॥ ५८ ॥ अथोत्सवेन महता प्रविश्य निजमन्दिरम् ॥ राजपुत्रः स्वपितरौ ववन्दे बाष्पमुत्सृजन् ॥ ५९ ॥ तं पादमूले पतितं स्वपुत्रं विवेद नासौ पृथिवीपतिः क्षणम् ॥ प्रबोधितोऽमात्यजनैः कथंचिदुत्थाप्य क्लिन्नेन हृदालिलिङ्ग ॥ ६० ॥ क्रमेण मातृरभिवन्द्य ताभिः प्रवर्धिताशीःप्रणयाकुलाभिः ॥ आलिङ्गितः पौरजनानशेषान्सम्भावयामास स राजसूनुः ॥ ६१ ॥ तेषां मध्ये समासीनः स्ववृत्तान्तमशेषतः ॥ पित्रे निवेदयामास तक्षकस्य च मित्रताम् ॥ ६२ ॥ दत्तं भुजङ्गराजेन रत्नादिधनसञ्चयम् ॥ दिव्यं तद्राक्षसानीतं पित्रे सर्वं न्यवेदयत् ॥ ६३ ॥ राजपुत्रस्य चरितं दृष्ट्वा श्रुत्वा च विह्वलः ॥ मेने स्नुषायाः सौभाग्यं महेशाराधनार्जितम् ॥ ६४ ॥ सौमाङ्गल्यमयीं वार्तामिमां निषधभूपतिः ॥ चारैर्निवेदयामास चित्रवर्ममहीपतेः ॥ ६५ ॥ श्रुत्वा

सब नगरनिवासियों को देखा ॥ ६१ ॥ व उनके मध्यमें बैठेहुए राजकुमार ने अपना वृत्तान्त व तक्षक की मित्रता को राजा से कहा ॥ ६२ ॥ व सर्पराज से दिये रत्नादि धन राशि और उस राक्षस से लायेहुए सब दिव्य धनको पितासे कहा ॥ ६३ ॥ और राजपुत्र का चरित्र देखकर व सुनकर विह्वल राजा ने शिवजी के आराधन से इकट्ठा कियेहुए पतोहू के सौभाग्य को जाना ॥ ६४ ॥ व निषधराजने इस सुमङ्गलमयी वार्ता को गुप्त दूतों के द्वारा चित्रवर्म राजा से कहलाया ॥ ६५ ॥

और अमृतमयी वार्ताको सुनकर आनन्द से विह्वल वह चित्रवर्मराजा शीघ्रता से उठकर उनके लिये बहुत सा धन देकर नाचने लगा ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त छूटे हुए वैधव्य लक्षणोंवाली अपनी कन्या को बुलाकर व लिपटाकर आँसुवों से संयुत लोचनोंवाले चित्रवर्मा ने भूषणों से भूषित किया ॥ ६७ ॥ इसके उपरान्त राज्य,ग्राम व नगरादिकों में बडाभारी उत्सव हुआ और सब ओर मनुष्यलोगों ने सीमंतिनी के उत्तम आचार की प्रशंसा किया ॥ ६८ ॥ इसके उपरान्त चित्रवर्मा राजाने इन्द्रसेन के पुत्र को बुलाकर फिर विवाह की विधिसे उसके लिये कन्यादान किया ॥ ६९ ॥ व चित्राङ्गदने भी तक्षक के घरसे लायेहुए

ऽमृतमयीं वार्त्तां स समुत्थाय संभ्रमात् ॥ तेभ्यो दत्त्वा धनं भूरि ननर्तानन्दविह्वलः ॥ ६६ ॥ अथाहूय स्वतनयां परिष्वज्याश्रुलोचनः ॥ भूषणैर्भूषयामास त्यक्तवैधव्यलक्षणाम् ॥ ६७ ॥ अथोत्सवो महानासीद्राष्ट्रग्रामपुरादिषु ॥ सीमन्तिन्याः शुभाचारं शशंसुः सर्वतो जनाः ॥ ६८ ॥ चित्रवर्माथ नृपतिः समाहूयेन्द्रसेनजम् ॥ पुनर्विवाहविधिना सुतां तस्मै न्यवेदयत् ॥ ६९ ॥ चन्द्राङ्गदोऽपि रत्नाद्यैरानीतैस्तक्षकालयात् ॥ स्वां पत्नीं भूषयांचक्रे मर्त्यानामतिदुर्लभैः ॥ ७० ॥ अङ्गरागेण दिव्येन तप्तकाञ्चनशोभिना ॥ शुशुभे सा सुगन्धेन दशयोजनगामिना ॥ ७१ ॥ अम्लानमालया शश्वत्पद्मकिंजल्कवर्णया ॥ कल्पद्रुमोत्थया बाला भूषिता शुशुभे सती ॥ ७२ ॥ एवं चन्द्राङ्गदः पत्नीमवाप्य समये शुभे ॥ ययौ स्वनगरीं भूयः श्वशुरेणानुमोदितः ॥ ७३ ॥ इन्द्रसेनोऽपि राजेन्द्रो राज्ये स्थाप्य निजात्मजम् ॥ तपसा शिवमाराध्य लेभे संयमिनां गतिम् ॥ ७४ ॥ दशवर्षसहस्राणि सीमन्तिन्या स्वभा

मनुष्यों को बहुतही दुर्लभ रत्नादिकों से अपनी स्त्री को भूषित किया ॥ ७० ॥ और तचे हुए सोने के समान शोभावाले व चालीस कोस तक जानेवाले सुगंधित दिव्य अंगराग से वह सीमंतिनी शोभित हुई ॥ ७१ ॥ और कमलकेसर के रंगवाली व सदैव बिन कुम्हलाई हुई कल्पवृक्ष से उत्पन्न माला से भूषित वह उत्तम आचरणवाली सीमंतिनी शोभित हुई ॥ ७२ ॥ इस प्रकार उत्तम समय में स्त्री को पाकर श्वशुर से अनुमोदित चन्द्राङ्गद फिर अपनी नगरी को गया ॥ ७३ ॥ व इन्द्रसेन नृपेन्द्र ने भी राज्य पै अपने पुत्र को बिठाकर व तपस्या से शिवजी को आराधन कर संयमियों की गति को पाया ॥ ७४ ॥

और दश हज़ार वर्ष तक अपनी सीमंतिनी स्त्री समेत चन्द्राङ्गद राजाने बहुत से इन्द्रियसुखों को भोग किया ॥ ७५ ॥ और एक सुन्दरी कन्या व आठ पुत्रों को सीमंतिनी ने पैदा किया व शिवजी को पूजती हुई उसने पति समेत रमण किया और सोमवार से दिन-दिन में सौभाग्य को पाया ॥ ७६ ॥ सूतजी बोले कि मैंने इस विचित्र कथा को वर्णन किया और फिर भी सोमवार व्रत में कहे हुए माहात्म्य को कहता हूं ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां सोमवारव्रतवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

र्यया ॥ सार्धं चन्द्राङ्गदो राजा बुभुजे विषयान्बहून् ॥ ७५ ॥ प्रासूत तनयानष्टौ कन्यामेकां वराननाम् ॥ रेमे सीमन्तिनी भर्त्रा पूजयन्ती महेश्वरम् ॥ दिने दिने च सौभाग्यं प्राप्तं चैवेन्दुवासरात् ॥ ७६ ॥ सूत उवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यानं मया समनुवर्णितम् ॥ भूयोऽपि वक्ष्ये माहात्म्यं सोमवारव्रतोदितम् ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां ब्रह्मोत्तरखण्डे सोमवारव्रतवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥ * ॥

ऋषय ऊचुः ॥ साधु साधु महाभाग त्वया कथितमुत्तमम् ॥ आख्यानं पुनरन्यच्च विचित्रं वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ विदर्भविषये पूर्वमासीदेको द्विजोत्तमः ॥ वेदमित्र इति ख्यातो वेदशास्त्रार्थवित्सुधीः ॥ २ ॥ तस्यासीदपरो विप्रः सखा सारस्वताह्वयः ॥ तावुभौ परमस्निग्धावेकदेशनिवासिनौ ॥ ३ ॥ वेदमित्रस्य पुत्रोऽभूत्सुमेधा नाम सुव्रतः ॥ सारस्वतस्य तनयः सोमवानिति विश्रुतः ॥ ४ ॥ उभौ सवयसौ बालौ समवेषौ समस्थितौ ॥

दो॰ । सीमंतिनी प्रभाव सन द्विज भो नारीरूप । सोइ नवम अध्याय में वर्णित चरित अनूप ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महाभाग ! आपको साधुवाद है तुमने उत्तम चरित्र को कहा और फिर अन्य विचित्र चरित्र को कहने के योग्य हो ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि पहले विदर्भदेशमें शास्त्रार्थ को जाननेवाला एक वेदमित्र ऐसा विद्वान् द्विजोत्तम हुआ है ॥ २ ॥ और सारस्वतनामक अन्य ब्राह्मण उसका मित्र था वे दोनों एकदेश में रहनेवाले व बड़े प्रेमी थे ॥ ३ ॥ वेदमित्र के सुमेधा नामक उत्तम व्रतवाला पुत्र हुआ और सारस्वत के सोमवान् ऐसा प्रसिद्ध पुत्र हुआ ॥ ४ ॥ एकही अवस्थावाले वे दोनों बालक समानवेष व समान स्थितिवाले

हुए और एकही साथ संस्कार व समान विद्यावाले हुए ॥ ५ ॥ और वे दोनों अङ्गों समेत वेदोंको पढ़कर व न्याय, व्याकरण, इतिहास, पुराण और सब धर्मशास्त्रों को पढ़कर ॥ ६ ॥ बाल्यावस्थाही में वे दोनों बुद्धिमान् सब विद्याओं में प्रवीण हुए और उनदोनों ने माता, पिता को सब गुणों से बडा आनन्द दिया ॥ ७ ॥ एक समय उनदोनों द्विजोत्तमोंने सोलह वर्षवाले व उत्तम रूपवान् उन दोनों अपने पुत्रों को बुलाकर प्रीतिसे कहा ॥ ८ ॥ कि हे पुत्रो ! उत्तम तेजवाले तुम दोनोंने बाल्यावस्था में विद्याको पढ़ा है और तुमदोनों का यह विवाहवाला समय वर्तमान है ॥ ९ ॥ इस विदर्भ देशके स्वामी को अपनी विद्यासे प्रसन्न

समं च कृतसंस्कारौ समविद्यौ बभूवतुः ॥ ५ ॥ साङ्गानधीत्य तौ वेदांस्तर्कव्याकरणानि च ॥ इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि कृत्स्नशः ॥ ६ ॥ सर्वविद्याकुशलिनौ बाल्य एव मनीषिणौ ॥ प्रहर्षमतुलं पित्रोर्ददतुः सकलैर्गुणैः ॥ ७ ॥ तावेकदा स्वतनयौ तावुभौ ब्राह्मणोत्तमौ ॥ आहूयावोचतां प्रीत्या षोडशाब्दौ शुभाकृती ॥ ८ ॥ हे पुत्रकौ युवां बाल्ये कृतविद्यौ सुवर्चसौ ॥ वैवाहिकोयं समयो वर्तते युवयोः समम् ॥ ९ ॥ इमं प्रसाद्य राजानं विदर्भेशं स्वविद्यया ॥ ततः प्राप्य धनं भूरि कृतोद्वाहौ भविष्यथः ॥ १० ॥ एवमुक्तौ सुतौ ताभ्यां तावुभौ द्विजनन्दनौ ॥ विदर्भराजमासाद्य समतोषयतां गुणैः ॥ ११ ॥ विद्यया परितुष्टाय तस्मै द्विजकुमारकौ ॥ विवाहार्थं कृतोद्योगौ धनहीनावशंसताम् ॥ १२ ॥ तयोरपि मतं ज्ञात्वा स विदर्भमहीपतिः॥ प्रहस्य किञ्चित्प्रोवाच लोकतत्त्वविवित्सया ॥१३॥ आस्ते निषधराजस्य राज्ञी सीमन्तिनी सती ॥ सोमवारे महादेवं पूजयत्यम्बिकायुतम् ॥ १४ ॥ तस्मिन्दिने सप

कराकर व उससे बहुत सा धन पाकर ब्याह जावोगे ॥ १० ॥ उन दोनों से ऐसा कहेहुए उनदोनों द्विजबालकोंने विदर्भदेशके राजा के समीप प्राप्त होकर गुणोंसे प्रसन्न किया ॥११॥ व विद्यासे प्रसन्न उस विदर्भराज से द्विजपुत्रों ने यह कहा कि विवाह के लिये उद्योग किये हमदोनों धनहीन हैं ॥ १२ ॥ उनदोनों का संमत जानकर उस विदर्भराज ने कुछ हँसकर लोकके तत्त्व की जानने की इच्छा से कहा ॥ १३ ॥ कि निषधदेशके राजाकी सीमंतिनीनामक पतिव्रता स्त्री है वह सोमवार में पार्वतीसंयुत महादेवजी को पूजती है ॥ १४ ॥ और उस दिन वेदविदों में श्रेष्ठ सपत्नीक उत्तम ब्राह्मणों को बड़ीभक्ति से पूजकर बहुत धन

देती है ॥ १५ ॥ इस कारण यहां तुम दोनोंमें से एक स्त्री के विभ्रम व रूपको धारण करै और एक उसका पति होकर ब्राह्मण स्त्री पुरुष होवो ॥ १६ ॥ व तुमदोनों स्त्री पुरुष होकर सीमंतिनी के घरको प्राप्त होकर भोजन करके व धनको पाकर फिर मेरे समीप आइयेगा ॥ १७ ॥ इस प्रकार राजासे कहेहुए डरे द्विजबालकों ने प्रत्युत्तर दिया कि यह कर्म करने के लिये हम दोनों के बड़ा डर होता है ॥ १८ ॥ क्योंकि देवता, गुरु, माता, पिता व राजकुलों में मोहसे कुटिलता करता हुआ मनुष्य शीघ्रही वंशसमेत नाश होजाता है ॥ १६ ॥ और राजाओं के घरके भीतर मनुष्य कैसे छलसे पैठसक्ता है क्योंकि छिपाया हुआ भी छल कभी

त्नीकान्द्विजाग्र्यान्वेदवित्तमान् ॥ संपूज्य परया भक्त्या धनं भूरि ददाति च ॥ १५ ॥ अतोऽत्र युवयोरेको नारी विभ्रमवेषधृक् ॥ एकस्तस्याः पतिर्भूत्वा जायेतां विप्रदम्पती ॥ १६ ॥ युवां वधूवरौ भूत्वा प्राप्य सीमन्तिनीगृहम् ॥ भुक्त्वा भूरि धनं लब्ध्वा पुनर्यातं ममान्तिकम्॥१७॥ इति राज्ञा समादिष्टौ भीतौ द्विजकुमारकौ ॥ प्रत्यूचतुरिदं कर्म कर्तुं नौ जायते भयम् ॥ १८ ॥ देवतासु गुरौ पित्रोस्तथा राजकुलेषु च ॥ कौटिल्यमाचरन्मोहात्सद्यो नश्यति सान्वयः ॥ १६ ॥ कथमन्तर्गृहं राज्ञां छद्मना प्रविशेत्पुमान् ॥ गोप्यमानमपिच्छद्म कदाचित्ख्यातिमेष्यति ॥ २० ॥ ये गुणाः साधिताः पूर्वं शीलाचारश्रुतादिभिः ॥ सद्यस्ते नाशमायान्ति कौटिल्यपथगामिनः ॥ २१ ॥ पापं निन्दा भयं वैरं चत्वार्येतानि देहिनाम् ॥ छद्ममार्गप्रपन्नानां तिष्ठन्त्येव हि सर्वदा ॥ २२ ॥ अत आवां शुभाचारौ जातौ च शुचिनां कुले ॥ वृत्तं धूर्तजनश्लाघ्यं नाश्रयावः कदाचन ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ देवतानां गुरूणां च

प्रसिद्ध होजाता है ॥ २० ॥ और शील, आचार व शास्त्रादिकों से पहले जो गुण सिद्ध कियेजाते हैं कुटिलता के मार्गमें चलनेवाले मनुष्यके वे शीघ्रही नाश होजाते हैं ॥ २१ ॥ और पाप, निन्दा, भय व वैर ये चार वस्तुवें छलके मार्ग में प्राप्त मनुष्यों के सदैव टिकी रहती हैं ॥ २२ ॥ इस कारण पवित्र द्विजोंके वंशमें उत्पन्न व उत्तम आचरणवाले हम दोनों छली लोगों से प्रशंसनीय आचरणका आश्रय न करेंगे ॥ २३ ॥ राजा बोले कि देवता, गुरु, माता, पिता व राजाकी

भी आज्ञा के उल्लंघन न होने योग्य से किसी प्रकार प्रत्युत्तर नहीं होता है ॥ २४ ॥ और इनलोगों से शुभ या अशुभ जो जो आज्ञा दीजावै उसको सावधान व डरेहुए तथा होनेकी इच्छावाले मनुष्यों को निश्चय कर करना चाहिये ॥ २५ ॥ अहो हम राजा हैं व तुमलोग प्रजा मानेगये हो और राजाकी आज्ञा से वर्त्तमान होनेवाले मनुष्यों का कल्याण होता है अन्यथा भय होता है ॥ २६ ॥ इस कारण आप दोनों को शीघ्रही मेरी आज्ञा करना चाहिये राजा से ऐसा कहेहुए उन दोनों द्विजबालकों ने डरसे बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ २७ ॥ व राजा ने सारस्वत के पुत्र सामवान् को वस्त्र, वेष व अंजनादिकों से स्त्रीरूपधारी किया ॥ २८ ॥

पित्रोश्च पृथिवीपतेः ॥ शासनस्याप्यलङ्घ्यत्वात्प्रत्यादेशो न कर्हिचित् ॥ २४ ॥ एतैर्यद्यत्समादिष्टं शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ कर्त्तव्यं नियतं भीतैरप्रमत्तैर्बुभूषुभिः ॥ २५ ॥ अहो वयं हि राजानः प्रजा यूयं हि संमताः ॥ राजाज्ञया प्रवृत्तानां श्रेयः स्यादन्यथा भयम् ॥ २६ ॥ अतो मच्छासनं कार्यं भवद्भ्यामविलम्बितम् ॥ इत्युक्तौ नरदेवेन तौ तथेत्यूचतुर्भयात् ॥ २७ ॥ सारस्वतस्य तनयं सामवन्तं नराधिपः ॥ स्त्रीरूपधारिणं चक्रे वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः ॥ २८ ॥ स कृत्रिमोद्भूतकलत्रभावः प्रयुक्तकर्णाभरणाङ्गरागः ॥ स्निग्धाञ्जनाक्षः स्पृहणीयरूपो बभूव सद्यः प्रमदोत्तमाभः ॥ २९ ॥ तावुभौ दम्पती भूत्वा द्विजपुत्रौ नृपाज्ञया ॥ जग्मतुर्नैषधं देशं यद्वा तद्वा भवत्विति ॥ ३० ॥ उपेत्य राजसदनं सोमवारे द्विजोत्तमैः ॥ सपत्नीकैः कृतातिथ्यौ धौतपादौ बभूवतुः ॥ ३१ ॥ सा राज्ञी ब्राह्मणान्सर्वानुपविष्टान्वरासने ॥ प्रत्येकमर्चयांचक्रे सपत्नीकान्द्विजोत्तमान् ॥ ३२ ॥ तौ च विप्रसुतौ दृष्ट्वा प्राप्तौ कृत

और बनावट से उपजेहुए स्त्रीभाववाला तथा कानों में आभूषण व अङ्गराग लगाये और सचिक्कण अंजनके समान नेत्रोंवाला वह सुन्दर रूपवान् द्विजपुत्र शीघ्रही उत्तम स्त्रीके समान होगया ॥ २९ ॥ और वे दोनों ब्राह्मणों के पुत्र राजाकी आज्ञासे स्त्री पुरुष होकर जो होगा वह होगा यह विचारकर निषधदेशको गये ॥ ३० ॥ और स्त्री समेत स्त्री पुरुषों के साथ राजाके घरको सोमवार के दिन जाकर चरणों को धुलाया व सत्कार को ग्रहण किया ॥ ३१ ॥ और उस रानी ने उत्तम आसन पै बैठेहुए स्त्री समेत सब उत्तम ब्राह्मणों को प्रत्येक का पूजन किया ॥ ३२ ॥ और बनावट के स्त्री पुरुष द्विजपुत्रों को प्राप्त देखकर व जानकर

कुछ हँसकर उसने पार्वती व शिव माना ॥ ३३ ॥ और मुख्य ब्राह्मणों में देवदेव सदाशिवजी को आवाहन करके उस रानी ने स्त्रियों में जगदम्बिका देवी को आवाहन किया ॥ ३४ ॥ और सावधान होकर उस रानीने सुगन्धित चन्दन, माला, धूप व नीराजन से भी पूजकर द्विजोत्तमों को प्रणाम किया ॥ ३५ ॥ और सोने के पात्रों में सुन्दर शाकों से संयुत व शक्कर और सहद समेत घी से युक्त खीर को परोस कर ॥ ३६ ॥ सुगन्धित जड़हन के भातों समेत मनोहर लड्डू व पुवों की राशियों से युक्त पूरी व गुझिया और खिचड़ी व उड़द समेत पकेहुए ॥ ३७ ॥ अन्य भी असंख्य सुन्दर भक्ष्य भोज्यों समेत तथा सुगन्धित व स्वादिष्ठ

कदम्पती ॥ ज्ञात्वा किञ्चिद्विहस्याथ मेने गौरीमहेश्वरौ ॥ ३३ ॥ आवाह्य द्विजमुख्येषु देवदेवं सदाशिवम् ॥ पत्नी ष्वावाहयामास सा देवीं जगदम्बिकाम् ॥ ३४ ॥ गन्धैर्माल्यैः सुरभिभिर्धूपैर्नीराजनैरपि ॥ अर्चयित्वा द्विजश्रेष्ठान्न मश्चक्रे समाहिता ॥ ३५ ॥ हिरण्मयेषु पात्रेषु पायसं घृतसंयुतम् ॥ शर्करामधुसंयुक्तं शाकैर्जुष्टं मनोरमैः ॥ ३६ ॥ गन्धशाल्योदनैर्हृद्यैर्मोदकापूपराशिभिः ॥ शष्कुलीभिश्च संयावैः कृसरैर्माषपक्वकैः ॥ ३७ ॥ तथान्यैरप्यसंख्यातै र्भक्ष्यैर्भोज्यैर्मनोरमैः ॥ सुगन्धैः स्वादुभिः सूपैः पानीयैरपि शीतलैः ॥ ३८ ॥ कृतमन्नं द्विजाग्र्येभ्यः सा भक्त्या पर्यवेषयत् ॥ दध्योदनं निरुपमं निवेद्य समतोषयत् ॥ ३९ ॥ भुक्तवत्सु द्विजाग्र्येषु स्वाचान्तेषु नृपाङ्गना ॥ प्रणम्य दत्त्वा ताम्बूलं दक्षिणां च यथार्हतः ॥ ४० ॥ धेनूर्हिरण्यवासांसि रत्नस्रग्भूषणानि च ॥ दत्त्वा भूयो नमस्कृत्य विस सर्ज द्विजोत्तमान् ॥ ४१ ॥ तयोर्द्वयोर्भूसुरवर्यपुत्रयोरेकस्तया हैमवतीधियार्चितः ॥ एको महादेवधियाभिपूजि

दालि व ठण्ढे जल समेत ॥ ३८ ॥ बनेहुए अन्न को उस रानी ने भक्ति से उत्तम ब्राह्मणोंके लिये परोसा और अनूपम दही भातको निवेदनकर प्रसन्न किया ॥ ३९ ॥ और उत्तम ब्राह्मणों के भोजन व आचमन करने पर राजकुमारी ने प्रणाम कर तांबूल व यथायोग्य दक्षिणा को देकर ॥ ४० ॥ गऊ, सुवर्ण, वस्त्र, रत्न, माला व भूषणों को देकर फिर प्रणाम कर द्विजोत्तमों को बिदा किया ॥ ४१ ॥ और उन दोनों द्विजोत्तमपुत्रों में से एक को उस राजकुमारी ने पार्वती की बुद्धि से पूजा

व एक को शिवजी की बुद्धि से पूजा और प्रणाम किया व उसकी आज्ञा से वे दोनों चले गये ॥ ४२ ॥ और पुरुषत्व को भूल कर उस स्त्री की द्विजोत्तम में इच्छा उत्पन्न हुई और कामदेव के वश में प्राप्त व मद से सींची हुई वह बोली ॥ ४३ ॥ कि हे सब अंगों से सुन्दर, विशाललोचन, नाथ! खड़े हो खडे हो कहां जाते हो मुझ अपनी प्यारी को देखिये ॥ ४४ ॥ आगे यह फूले हुए बडे वृक्षोंवाला सुन्दर वन है इसमें मैं तुम्हारे साथ सुखपूर्वक विहार करना चाहती हूं ॥ ४५ ॥ इस प्रकार उससे कहा हुआ वचन सुनकर ब्राह्मण का पुत्र आगे गया व हँसी का वचन विचार कर पहले की नाईं चला ॥ ४६ ॥ व फिर भी उस स्त्री

तः कृतप्रणामौ ययतुस्तदाज्ञया ॥ ४२ ॥ सा तु विस्मृतपुम्भावा तस्मिन्नेव द्विजोत्तमे ॥ जातस्पृहा मदोत्सिक्ता कन्दर्पविवशाब्रवीत् ॥ ४३ ॥ अयि नाथ विशालाक्ष सर्वावयवसुन्दर ॥ तिष्ठ तिष्ठ क्व वा यासि मां न पश्यसि ते प्रियाम् ॥ ४४ ॥ इदमग्रे वनं रम्यं सुपुष्पितमहाद्रुमम् ॥ अस्मिन्विहर्तुमिच्छामि त्वया सह यथासुखम् ॥ ४५ ॥ इत्थं तयोक्तमाकर्ण्य पुरोऽगच्छद्द्विजात्मजः ॥ विचिन्त्य परिहासोक्तिं गच्छति स्म यथा पुरा ॥ ४६ ॥ पुनरप्याह सा बाला तिष्ठ तिष्ठ क्व यास्यसि ॥ दुरुत्सहस्मरावेशां परिभोक्तुमुपेत्य माम् ॥ ४७ ॥ परिष्वजस्व मां कान्तां पायस्व तवाधरम् ॥ नाहं गन्तुं समर्थास्मि स्मरबाणप्रपीडिता ॥ ४८ ॥ इत्थमश्रुतपूर्वां तां निशम्य परिशङ्कितः ॥ आयान्तीं पृष्ठतो वीक्ष्य सहसा विस्मयं गतः ॥ ४९ ॥ कैषा पद्मपलाशाक्षी पीनोन्नतपयोधरा ॥ कृशोदरी बृहच्छ्रोणी नवपल्लवकोमला ॥ ५० ॥ स एव मे सखा किन्तु जात एव वराङ्गना ॥ पृच्छाम्येनमतः सर्वमिति संचिन्त्य

ने कहा कि खड़े हो खड़े हो दुःख से सहने योग्य कामदेव के प्रवेशवाली मुझको भोगने के लिये प्राप्त होकर तुम कहा जावोगे ॥ ४७ ॥ मुझ सुन्दरी को लिपटाइये व अपना अधर (ओंठ) पिलाइये कामदेव के बाण से पीडित मैं चलने के लिये समर्थ नहीं हूं ॥ ४८ ॥ इस प्रकार पहले न सुनी हुई उस वाणी को सुनकर वह शंकित हुआ और पीछे आती हुई उसको देखकर यकायक विस्मय को प्राप्त हुआ ॥ ४९ ॥ कि कमलपत्रके समान लोचनोंवाली व मोटे तथा ऊंचे कुचोंवाली और पतली कमर व बडे नितम्बवाली यह नवीन पत्तों के समान कोमल कौन है ॥ ५० ॥ क्या वही मेरा मित्र उत्तम स्त्री होगया है इस कारण

इससे पूछूंगा यह सब विचारकर उसने कहा ॥ ५१ ॥ कि हे सखे ! रूप व गुणादिकों से क्यों अपूर्व की नाईं जान पड़ते हो व कामवती स्त्रीकी नाईं क्यों अपूर्व वचन कहतेहो ॥ ५२ ॥ जो तुम वेद, पुराणोंको जाननेवाले, ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय व शान्त सारस्वत के पुत्रथे वही तुम क्यों इस प्रकार कहते हो ॥ ५३ ॥ इस प्रकार कही हुई उस स्त्रीने फिर कहा कि हे प्रभो ! मैं पुरुष नहीं हूं बरन सामवतीनामक मैं रति को देनेवाली तुम्हारी स्त्री हूं ॥ ५४ ॥ हे कान्त ! यदि तुमको सन्देह है तो मेरे अंगों को देखिये मार्ग में ऐसा कहे हुए उसने यकायक एकान्त में इसको देखा ॥ ५५ ॥ और सचमुच गुंथी बेणीवाली व जघन और कुचों से

सोऽब्रवीत् ॥ ५१ ॥ किमपूर्व इवाभासि सखे रूपगुणादिभिः॥अपूर्वं भाषसे वाक्यं कामिनीव समाकुला ॥५२॥ यस्त्वं वेदपुराणज्ञो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥ सारस्वतात्मजः शान्तः कथमेवं प्रभाषसे ॥ ५३ ॥ इत्युक्ता सा पुनः प्राह नाहमस्मि पुमान्प्रभो ॥ नाम्ना सामवती बाला तवास्मि रतिदायिनी ॥ ५४ ॥ यदि ते संशयः कान्त ममाङ्गानि विलोकय ॥ इत्युक्तः सहसा मार्गे रहस्येनां व्यलोकयत् ॥ ५५ ॥ तामकृत्रिमधम्मिल्लां जघनस्तनशोभिनीम् ॥ सुरूपां वीक्ष्य कामेन किंचिद्व्याकुलतामगात् ॥ ५६ ॥ पुनः संस्तभ्य यत्नेन चेतसो विकृतिं बुधः ॥ मुहूर्तं विस्मयाविष्टो न किंचित्प्रत्यभाषत ॥ ५७ ॥ सामवत्युवाच ॥ गतस्ते संशयः कच्चित्तर्ह्यागच्छ भजस्व माम् ॥ पश्येदं विपिनं कान्त परस्त्रीसुरतोचितम् ॥ ५८ ॥ सुमेधा उवाच ॥ मैवं कथय मर्यादां मा हिंसीर्मदमत्तवत् ॥ आवां विज्ञातशास्त्रार्थौ त्वमेवं भाषसे कथम् ॥ ५९ ॥ अधीतस्य च शास्त्रस्य विवेकस्य कुलस्य च ॥ किमेष सदृशो धर्मो जारधर्मनिषेवणम् ॥ ६० ॥

शोभित उस स्वरूपवती स्त्री को देखकर वह कामदेवसे कुछ विकल हो गया ॥ ५६ ॥ फिर यत्नसे चित्त के विकारको रोंककर वह विद्वान् थोडी देर तक विस्मयसे संयुत हुआ व कुछ न बोला ॥ ५७ ॥ सामवती स्त्री बोली कि हे कान्त ! क्या तुम्हारी सन्देह जाती रही तो आइये मुझको भजिये और पराई स्त्री के रतिके योग्य इस वनको देखिये ॥ ५८ ॥ सुमेधा बोला कि ऐसा मत कहिये व मदसे मत्त की नाईं मर्यादा को नाश न कीजिये हम तुम दोनों शास्त्रार्थ के जाननेवाले हैं तुम ऐसा क्यों कहते हो ॥ ५९ ॥ पढ़े हुए शास्त्र व विवेक और कुलके समान क्या यह धर्म है जो कि जारधर्म का सेवन है ॥ ६० ॥ तुम स्त्री नहीं हो बरन

विद्वान् पुरुष हो अपनाको बुद्धि से जानिये यह आपही से कियाहुआ अनर्थ है जोकि हम तुम दोनों से कियागयाहै ॥६१॥ अपने पिताओं को छलकर छली राजा की आज्ञा से अयोग्य कर्म करके उसका यह फल भोग किया जाता है ॥ ६२ ॥ और सब अयोग्य कर्म मनुष्यों के कल्याण का नाशक है जो तुम ब्राह्मण के पुत्र विद्वान् थे वही निन्दित स्त्रीत्व को प्राप्त हुए हो ॥ ६३ ॥ मार्ग को छोडकर वनको जानेवाला मनुष्य कांटों से छिदजाता है और जब छोड़ेहुए का समागम होता है तब हिंसक जीवों से बल से मारा जाता है ॥ ६४ ॥ इस प्रकार आपही विचारको प्राप्त होकर चुपचाप घरको आइये देवता व ब्राह्मणों की प्रसन्नता से तुम्हारा

न त्वं स्त्री पुरुषो विद्वाञ्जानीह्यात्मानमात्मना ॥ अयं स्वयंकृतोऽनर्थ आवाभ्यां यद्विचेष्टितम् ॥ ६१ ॥ वञ्चयित्वात्मपितरौ धूर्त्तराजानुशासनात् ॥ कृत्वा चानुचितं कर्म तस्यैतद्भुज्यते फलम् ॥ ६२ ॥ सर्वं त्वनुचितं कर्म नृणां श्रेयोविनाशनम् ॥ यस्त्वं विप्रात्मजो विद्वान्गतः स्त्रीत्वं विगर्हितम् ॥ ६३ ॥ मार्गं त्यक्त्वा गतोऽरण्यं नरो विध्येत कण्टकैः ॥ बलाद्धिंस्येत वा हिंस्रैर्यदा त्यक्तसमागमः ॥ ६४ ॥ एवं विवेकमाश्रित्य तूष्णीमेहि स्वयं गृहम् ॥ देवद्विजप्रसादेन स्त्रीत्वं तव विलीयते ॥ ६५ ॥ अथवा दैवयोगेन स्त्रीत्वमेव भवेत्तव ॥ पित्रा दत्ता मया सार्कं रंस्यसे वरवर्णिनि ॥ ६६ ॥ अहो चित्रमहो दुःखमहो पापबलं महत् ॥ अहो राज्ञः प्रभावोयं शिवाराधनसंभृतः ॥ ६७ ॥ इत्युक्ताप्यसकृत्तेन सा वधूरतिविह्वला ॥ बलेन तं समालिङ्ग्य चुचुम्बाधरपल्लवम् ॥ ६८ ॥ धर्षितोपि तया धीरः सुमेधा नूतनास्त्रियम् ॥ यत्नादानीय सदनं कृत्स्नं तत्र न्यवेदयत् ॥ ६९ ॥ तदाकर्ण्याथ तौ विप्रौ कुपितौ शोक

स्त्रीपन जाता रहैगा ॥ ६५ ॥ अथवा दैवयोगसे तुम्हारे स्त्रीपन होगा तो हे वरवर्णिनि । पितासे दी हुई तुम मेरे साथ रमण कीजियेगा ॥ ६६ ॥ अहो आश्चर्य है व अहो दुःखहै और पापका बल बडाभारी होता है व शिवजी के आराधन से इकट्ठा कियेहुए इस रानीके प्रभाव को आश्चर्य है ॥ ६७ ॥ उससे बार २ यह कहीहुई वह बड़ी विह्वल स्त्री हठसे उसको लिपटकर कोमल पल्लव (पत्र) के समान ओंठ को चूमती भई ॥ ६८ ॥ उससे धर्षित भी बुद्धिमान् सुमेधाने नवीन स्त्रीको यत्नसे घरको लाकर वहां सब वृत्तान्त बतलाया ॥ ६९ ॥ उस वचन को सुनकर शोकसे विकल व क्रोधित वे दोनों ब्राह्मण उन बालकों समेत विदर्भाधीश के

समीप आये ॥ ७० ॥ तदनन्तर सारस्वत ने छली के कर्मवाले राजासे कहा कि हे राजन्! तुम्हारी आज्ञा से बँधेहुए मेरे पुत्रको देखिये ॥ ७१ ॥ तुम्हारी आज्ञा के वशमें प्राप्त इनदोनों ने निन्दित कर्म किया व मेरा पुत्र निन्दित स्त्रीपन को पाकर उसका फल भोगता है ॥ ७२ ॥ आज मेरी सन्तान नाश होगई व मेरे पितर निराश होगये और लुप्त पिण्डादिक व लुप्त संस्कारवाले पुरुषको उत्तम लोक नहीं होताहै ॥७३॥ शिखा,यज्ञोपवीत,मृगचर्म,मौंजी,दण्ड व कमण्डलु और ब्रह्मचर्य के योग्य चिह्नको छोड़कर यह मेरा पुत्र इस दशाको प्राप्त हुआहै ॥ ७४ ॥ हे राजन्! ब्रह्मसूत्र (जनेऊ), गायत्री, स्नान, सन्ध्या, जप व पूजन को छोड़कर यह

विह्वलौ ॥ ताभ्यां सह कुमाराभ्यां वैदर्भान्तिकमीयतुः ॥ ७० ॥ ततः सारस्वतः प्राह राजानं धूर्तचेष्टितम् ॥ राजन्म
मात्मजं पश्य तव शासनयन्त्रितम् ॥७१॥ एतौ तवाज्ञावशगौ चक्रतुः कर्म गर्हितम् ॥ मत्पुत्रस्तत्फलं भुङ्क्ते स्त्रीत्वं
प्राप्य जुगुप्सितम् ॥ ७२ ॥ अद्य मे सन्ततिर्नष्टा निराशाः पितरो मम ॥ नापुत्रस्य हि लोकोस्ति लुप्तपिण्डादिसंस्कृ
तेः ॥ ७३ ॥ शिखोपवीतमजिनं मौञ्जीं दण्डं कमण्डलुम् ॥ ब्रह्मचर्योचितं चिह्नं विहायेमां दशां गतः ॥ ७४ ॥ ब्रह्म
सूत्रं च सावित्रीं स्नानं सन्ध्यां जपार्चनम् ॥ विसृज्य स्त्रीत्वमाप्तोस्य का गतिर्वद पार्थिव ॥ ७५ ॥ त्वया मे सन्त
तिर्नष्टा नष्टो वेदपथश्च मे ॥ एकात्मजस्य मे राजन् का गतिर्वद शाश्वती ॥ ७६ ॥ इति सारस्वतेनोक्तं वाक्यमा
कर्ण्य भूपतिः ॥ सीमन्तिन्याः प्रभावेण विस्मयं परमं गतः ॥ ७७ ॥ अथ सर्वान्समाहूय महर्षीनमितद्युतीन् ॥
प्रसाद्य प्रार्थयामास तस्य पुंस्त्वं महीपतिः ॥ ७८ ॥ तेऽब्रुवन्नथ पार्वत्याः शिवस्य च समीहितम् ॥ तद्भक्तानां च

स्त्रीत्वको प्राप्त हुआ है तो कहिये कि इसकी क्या गति होगी ॥ ७५ ॥ हे राजन्! तुमने मेरी सन्तान को नाश किया व मेरा वेदमार्ग नाश किया व एकही पुत्रवाले मेरी क्या सनातनी गति होगी इसको कहिये ॥ ७६ ॥ सारस्वत से कहेहुए इस वचन को सुनकर राजा सीमन्तिनी के प्रभावसे आश्चर्य को प्राप्तहुआ ॥ ७७ ॥ इसके उपरान्त अमित छविवाले सब महर्षियों को बुलाकर राजा ने प्रसन्न करा कर उसके पुरुष होने की प्रार्थना किया ॥ ७८ ॥ इसके उपरान्त वे महर्षिलोग

बोले कि पार्वती व शिवजीका कर्तव्य और उनके भक्तों का माहात्म्य अन्यथा करने के लिये कौन समर्थ है ॥ ७९ ॥ इसके उपरान्त भरद्वाज मुनिश्रेष्ठ को लाकर उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों व उनके पुत्रों समेत राजा ने ॥ ८० ॥ भरद्वाज के उपदेश से पार्वती के मन्दिर को प्राप्त होकर महारात्रि में उस देवी की तीव्र नियमोंसे उपासना किया ॥ ८१ ॥ इस प्रकार तीन रात्रितक भोजन को छोड़कर पार्वतीजी के ध्यान में परायण राजाने भलीभाति प्रणामों से व अनेक प्रकार के स्तोत्रों से शरणागत के दुःखको हरनेवाली पार्वतीजी को प्रसन्न किया ॥ ८२ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतीहुई उन देवीजीने भक्त राजा को करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रभावाले

माहात्म्यं कोन्यथा कर्तुमीश्वरः ॥ ७९ ॥ अथ राजा भरद्वाजमादाय मुनिपुङ्गवम् ॥ ताभ्यां सह द्विजाग्र्याभ्यां तत्सुताभ्यां समन्वितः ॥ ८० ॥ अम्बिकाभवनं प्राप्य भरद्वाजोपदेशतः ॥ तां देवीं नियमैस्तीव्रैरुपास्ते स्म महानिशि ॥८१॥ एवं त्रिरात्रं सुविशिष्टभोजनः स पार्वतीध्यानरतो महीपतिः ॥ सम्यक्प्रणामैर्विविधैश्च संस्तवैर्गौरीं प्रपन्नार्तिहरामतोषयत् ॥ ८२ ॥ ततः प्रसन्ना सा देवी भक्तस्य पृथिवीपतेः ॥ स्वरूपं दर्शयामास चन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥ ८३ ॥ अथाह गौरी राजानं किं ते ब्रूहि समीहितम् ॥ सोऽप्याह पुंस्त्वमेतस्य कृपया दीयतामिति ॥ ८४ ॥ भूयोप्याह महादेवी मद्भक्तैः कर्म यत्कृतम् ॥ शक्यते नान्यथा कर्तुं वर्षायुतशतैरपि ॥ ८५ ॥ राजोवाच ॥ एकात्मजो हि विप्रोयं कर्मणा नष्टसन्ततिः ॥ कथं सुखं प्रपद्येत विना पुत्रेण तादृशः ॥ ८६ ॥ देव्युवाच ॥ तस्यान्यो मत्प्रसादेन भविष्यति सुतोत्तमः ॥ विद्याविनयसंपन्नो दीर्घायुरमलाशयः ॥ ८७ ॥ एषा सामवती नाम सुता तस्य

स्वरूप को दिखलाया ॥ ८३ ॥ इसके उपरान्त पार्वतीजी ने राजा से कहा कि तुम्हारा क्या मनोरथ है उसको कहो राजाने भी यह कहा कि दयासे इसको पुरुषत्व दीजिये ॥ ८४ ॥ फिर महादेवी ने कहा कि मेरे भक्तोंसे जो कर्म किया जाता है वह दशलक्ष वर्षों से भी अन्यथा नहीं किया जासक्ता है ॥ ८५ ॥ राजा बोले कि कर्म से नष्ट सन्तानवाला यह ब्राह्मण एक पुत्रवाला है इसलिये पुत्रके विना वैसा यह पुत्र कैसे सुखको प्राप्त होगा ॥ ८६ ॥ देवीजी बोलीं कि मेरी प्रसन्नता से उसके अन्य उत्तम पुत्र होगा जोकि विद्या व विनय से संयुक्त तथा दीर्घायु व निर्मल आशयवाला होगा ॥ ८७ ॥ और यह सामवतीनामक उसकी कन्या

उस सुमेधा ब्राह्मण की स्त्री होकर कामदेव के सुखसे युक्त होवै ॥८८॥ यह कहकर देवी अन्तर्द्धान होगई और वे राजा आदिक सबलोग अपने अपने घरको गये व इन्होंने उन देवीकी आज्ञामें विश्वास किया ॥८९॥ और देवीजी के प्रसाद से उस सारस्वत ब्राह्मणने भी पहले के पुत्रसे उत्तम पुत्रको थोड़ेही समयमें पाया ॥९०॥ और उस सामवती कन्या को उस सुमेधा के लिये दिया व उन दोनों स्त्री पुरुषोंने बहुत समयतक उत्तम सुखको भोग किया ॥ ९१॥ सूतजी बोले कि यह शिवजी की भक्तिनि सीमन्तिनीनामक राजाकी स्त्री का प्रभाव कहा गया व शिवजी का माहात्म्य भी वर्णन किया गया ॥ ९२॥ व फिर भी सुननेवालों के मङ्गलका स्थान

द्विजन्मनः ॥ भूत्वा सुमेधसः पत्नी कामभोगेन युज्यताम् ॥ ८८ ॥ इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी ते च राजपुरोगमाः ॥ गताः स्वं स्वं गृहं सर्वे चक्रुस्तच्छासने स्थितिम् ॥ ८९ ॥ सोपि सारस्वतो विप्रः पुत्रं पूर्वसुतोत्तमम् ॥ लेभे देव्याः प्रसादेन ह्यचिरादेव कालतः ॥ ९० ॥ तां च सामवतीं कन्यां ददौ तस्मै सुमेधसे ॥ तौ दम्पती चिरं कालं बुभुजाते परं सुखम् ॥ ९१ ॥ सूत उवाच ॥ इत्येष शिवभक्तायाः सीमन्तिन्या नृपस्त्रियाः ॥ प्रभावः कथितः शम्भोर्माहात्म्यमपि वर्णितम् ॥ ९२ ॥ भूयोपि शिवभक्तानां प्रभावं विस्मयावहम् ॥ समासाद्वर्णयिष्यामि श्रोतृणां मङ्गलायनम् ॥ ९३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे सीमन्तिन्याः प्रभाववर्णनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

सूत उवाच ॥ विचित्रं शिवनिर्माणं विचित्रं शिवचेष्टितम् ॥ विचित्रं शिवमाहात्म्यं विचित्रं शिवभाषितम् ॥ १ ॥ विचित्रं शिवभक्तानां चरितं पापनाशनम् ॥ स्वर्गापवर्गयोः सत्यं साधनं तद्ब्रवीम्यहम् ॥२॥ अवन्तीविषये कश्चिद्ब्राह्मणो

व आश्चर्यदायक शिवभक्तोंका माहात्म्य संक्षेप से वर्णन करूंगा ॥९३॥ इति श्रीस्कान्देब्रह्मोत्तरखण्डे भाषाटीकायां सीमन्तिन्याःप्रभाववर्णनंनाम नवमोऽध्यायः॥९॥

दो॰। यथा मरे नृप पुत्र को योगी दीन जियाय। सोइ दशम अध्याय में कह्यो चरित सुखदाय ॥ सूतजी बोले कि शिवजी का बनाना विचित्र है व शिवजी का कर्म विचित्र है और शिवजी का माहात्म्य विचित्र है व शिवजी का वचन विचित्र है ॥ १ ॥ और शिवभक्तों का पापनाशक चरित्र विचित्र है व स्वर्ग और मोक्ष का सत्यसाधन है इससे उसको कहता हूं ॥ २ ॥ कि अवन्तीदेश में कोई मंदरनामक ब्राह्मण विषयों का स्थान व स्त्री से जीता हुआ तथा धन को

करनेवाला हुआ है ॥ ३ ॥ और वह सन्ध्या तथा स्नानको छोड़नेवाला था व चन्दन, माला और वसन उसको प्यारे थे व निन्दित स्त्रियों में आसक्त था कुमार्ग में स्थित जैसा कि पहले अजामिल था वैसाही वह था ॥ ४ ॥ व दिन रात पिङ्गलानामक वेश्यामें रमण करता हुआ इन्द्रियों को न जीतनेवाला नित्य उसीके घरमें रहता था ॥ ५ ॥ किसी समय उसके घरमें उस ब्राह्मण के बसने पर ऋषभनामक धर्मात्मा शिवयोगी आया ॥ ६ ॥ व आयेहुए उसको र अपना इकट्ठा कियाहुआ पुण्य मानकर वेश्या व ब्राह्मण उन दोनों ने पूजन किया ॥ ७ ॥ और कम्मल व बसन बिछेहुए महापीठ पै उस ब्राह्मण को

मन्दराह्वयः ॥ बभूव विषयारामः स्त्रीजितो धनसंग्रही ॥ ३ ॥ सन्ध्यास्नानपरित्यक्तो गन्धमाल्याम्बरप्रियः ॥ कुस्त्रीसक्तः कुमार्गस्थो यथा पूर्वमजामिलः ॥ ४ ॥ स वेश्यां पिङ्गलां नाम रममाणो दिवानिशम् ॥ तस्या एव गृहे नित्यमासीदविजितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ कदाचित्सदने तस्यास्तस्मिन्निवसति द्विजे ॥ ऋषभो नाम धर्मात्मा शिवयोगी समाययौ ॥ ६ ॥ तमागतमभिप्रेक्ष्य मत्वा स्वं पुण्यमूर्जितम् ॥ सा वेश्या स च विप्रश्च पर्यपूजयतामुभौ ॥ ७ ॥ तमारोप्य महापीठे कम्बलाम्बरसंभृते ॥ प्रक्षाल्य चरणौ भक्त्या तज्जलं दधतुः शिरः ॥ ८ ॥ स्वागतार्घ्यनमस्कारैर्गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ उपचारैः समभ्यर्च्य भोजयामासतुर्मुदा ॥ ९ ॥ तं भुक्तवन्तमाचान्तं पर्यङ्के सुखसंस्तरे॥ उपवेश्य मुदा युक्तौ ताम्बूलं प्रत्ययच्छताम् ॥ १० ॥ पादसंवाहनं भक्त्या कुर्वन्तौ दैवचोदितौ ॥ कल्पयित्वा तु शुश्रूषां प्रीणयामासतुश्चिरम् ॥ ११ ॥ एवं समर्चितस्ताभ्यां शिवयोगी महाद्युतिः ॥ अतिवाह्य निशामेकां

बिठाकर भक्ति से चरणों को धोकर उस जलको मस्तक पै धारण किया ॥ ८ ॥ और स्वागत, अर्घ्य, नमस्कार, चन्दन, पुष्प व अक्षतादिक उपचारों से पूजकर उसको हर्ष से भोजन कराया ॥ ९ ॥ और भोजन व आचमन कियेहुए उस मुनि को सुखदायक बिछौनेवाले पलँग पै बिठाकर हर्षसे संयुत उन दोनोंने ताबूल दिया ॥ १० ॥ और चरणों को चापते हुए भाग्य से प्रेरित उनदोनों ने सेवा करके बहुत देरतक प्रसन्न किया ॥ ११ ॥ इस प्रकार उनदोनों से पूजित महाछविवान्

शिवयोगी एक रात्रि व्यतीत करके उनसे आदर कियाहुआ वह प्रातःकाल चलागया ॥ १२ ॥ और कुछ समय बीतने पर वह ब्राह्मण मृत्यु को प्राप्त हुआ और वह वेश्या मरकर कर्म से इकट्ठा कीहुई गति को प्राप्त हुई ॥ १३ ॥ व कर्म से प्राप्त कियाहुआ वह ब्राह्मण दशार्ण देश के राजा वज्रबाहु की स्त्री सुमति के गर्भमें प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ व राजा की उस बड़ी स्त्री को गर्भ की संपत्ति में आश्रित देखकर सौतियों ने छलसे उसको विष देदिया ॥ १५ ॥ और भयंकर विषको खाकर वह दैवयोग से न मरी परन्तु मरने से भी बड़े दुस्सह क्लेश को प्राप्त हुई ॥ १६ ॥ इसके उपरान्त समय आनेपर उसने एक पुत्रको पैदाकिया

ययौ प्रातस्तदादृतः ॥ १२ ॥ एवं काले गतप्राये स विप्रो निधनं गतः ॥ सा च वेश्या मृता काले ययौ कर्मार्जितां गतिम् ॥ १३ ॥ स विप्रः कर्मणा नीतो दशार्णधरणीपतेः ॥ वज्रबाहुकुटुम्बिन्याः सुमत्या गर्भमास्थितः ॥ १४ ॥ तां ज्येष्ठपत्नीं नृपतेर्गर्भसंपदमाश्रिताम् ॥ अवेक्ष्य तस्यै गरलं सपत्न्यश्छद्मना ददुः ॥ १५ ॥ सा भुक्त्वा गरलं घोरं न मृता दैवयोगतः ॥ क्लेशमेव परं प्राप मरणादतिदुःसहम् ॥ १६ ॥ अथ काले समायाते पुत्रमेकमजीजनत् ॥ क्लेशेन महता साध्वी पीडिता वरवर्णिनी ॥ १७ ॥ स निर्दशो राजपुत्रः स्पृष्टपूर्वो गरेण यत् ॥ तेनावाप महाक्लेशं क्रन्दमानो दिवानिशम् ॥ १८ ॥ तस्य बालस्य माता च सर्वाङ्गव्रणपीडिता ॥ बभूवतुरतिक्लिष्टौ गरयोगप्रभावतः ॥ १९ ॥ तौ राज्ञा च समानीतौ वैद्यैश्च कृतभेषजौ ॥ न स्वास्थ्यमापतुर्यत्नैरनेकैर्योजितैरपि ॥ २० ॥ न रात्रौ लभते निद्रां सा राज्ञी विपुलव्यथा ॥ स्वपुत्रस्य च दुःखेन दुःखिता नितरां कृशा ॥ २१ ॥ नीत्वैवं कतिचिन्मासान्स राजा मातृ

और बड़े क्लेश से वह पतिव्रता पीड़ित हुई ॥ १७ ॥ जिसलिये पहले विष ने उसको स्पर्श किया था उस कारण दिन रात रोतेहुए उस दशनहीन राजपुत्र ने बड़ा क्लेश पाया ॥ १८ ॥ और उस बालक की माता सब अंगों में व्रणों से पीड़ित हुई व विष के योग के प्रभाव से वे दोनों बड़े क्लेशित हुए ॥ १९ ॥ व राजा से लाये हुए वैद्यों से औषध किये उन दोनों ने युक्त किये हुए भी अनेकों यत्नों से स्वस्थता को नहीं पाया ॥ २० ॥ और बड़ी पीड़ावाली वह रानी रात्रि में निद्रा को नहीं प्राप्त होती थी और अपने पुत्र के दुःख से दुःखित वह बहुत दुबली थी ॥ २१ ॥ इस प्रकार कुछ महीनों को व्यतीत कर

उस राजा ने जीते हुए भी माता व पुत्र को मरे हुए से देखकर मन में विचार किया ॥ २२ ॥ कि मेरी स्त्री व पुत्र ये, दोनों नरक से यहां आये हैं इससे इनका रोग शान्त नहीं होता है व रोते हुए ये निद्रा को भंग करते हैं ॥ २३ ॥ इस विषय में इन पापियों का मैं निश्चय कर यत्न करूंगा क्योंकि पाप को भोगनेवाले ये मरने व जीने के लिये भी योग्य नहीं हैं ॥ २४ ॥ इस प्रकार विचार कर सौतियों व उनके पुत्रों में आसक्त राजा ने सारथी को बुलाकर अपनी स्त्री व पुत्रको रथके द्वारा दूर निकलवा दिया ॥ २५ ॥ कहीं निर्जन वनमें सारथी से त्यागे हुए वे क्षुधा व प्यास से बहुतही विकल दोनों बड़ी

पुत्रकौ॥जीवन्तौ च मृतप्रायौ विलोक्यात्मन्यचिन्तयत्॥२२॥ एतौ मे गृहिणीपुत्रौ निरयादागताविह ॥ अश्रान्तरोगौ क्रन्दन्तौ निद्राभङ्गविधायिनौ ॥ २३ ॥ अत्रोपायं करिष्यामि पापयोर्ध्रुवमेतयोः ॥ मर्तुं वा जीवितुं वापि न क्षमौ पापभोगिनौ ॥ २४ ॥ इत्थं विनिश्चित्य च भूमिपालः सक्तः सपत्नीषु तदात्मजेषु ॥ आहूय सूतं निजदारपुत्रौ निर्वासयामास रथेन दूरम् ॥ २५ ॥ तौ सूतेन परित्यक्तौ कुत्रचिद्विजने वने ॥ अवापतुः परां पीडां क्षुत्तृड्भ्यां भृशविह्वलौ ॥ २६ ॥ सोद्वहन्ती निजं बालं निपतन्ती पदे पदे ॥ निःश्वसन्ती निजं कर्म निन्दन्ती चकिता भृशम् ॥ २७ ॥ क्वचित्कण्टकभिन्नाङ्गी मुक्तकेशी भयातुरा ॥ क्वचिद्व्याघ्रस्वनैर्भीता क्वचिद्व्यालैरनुद्रुता ॥ २८ ॥ भर्त्स्यमाना पिशाचैश्च वेतालैर्ब्रह्मराक्षसैः ॥ महागुल्मेषु धावन्ती भिन्नपादा क्षुराश्मभिः ॥ २९ ॥ सैवं घोरे महारण्ये भ्रमन्ती नृपगेहिनी ॥ दैवात्प्राप्ता वणिङ्मार्गं गोवाजिनरसेवितम् ॥ ३० ॥ गच्छन्ती तेन मार्गेण सुदूरमतियत्नतः ॥ ददर्श वैश्यनगरं बहु

पीड़ा को प्राप्त हुए ॥ २६ ॥ अपने बालक को लिये पग पग पै गिरती व श्वास लेती तथा अपने कर्म की निन्दा करती हुई वह रानी बहुत चकित हुई ॥ २७ ॥ व भय से विकल तथा छुटेबालोंवाली उस रानी के अंग कहीं काँटों से छिदजातेथे और कहीं व्याघ्रके शब्दों से डरती थी व कहीं सर्पोंसे भगाई जाती थी ॥ २८ ॥ व पिशाच वेताल और ब्रह्मराक्षसों से घुड़कीहुई महागुल्मों में दौड़नेवाली उस रानी के पैर छुरे के समान पत्थरों से छिदगये ॥ २९ ॥ भयंकर महावन में इस प्रकार घूमती हुई वह राजाकी स्त्री दैवयोगसे गऊ, घोड़े व मनुष्यों से सेवित बनियों के मार्गमें प्राप्त हुई ॥ ३० ॥ व उस मार्ग से बहुत दूर जातीहुई उसने बड़े

यत्न से बहुत स्त्री व मनुष्यों से सेवित वैश्यों के नगर को देखा ॥ ३१ ॥ व उस नगर का रक्षक पद्माकर नामक महावैश्य महाजन दूसरे राजराज की भाईं था ॥ ३२ ॥ व उस वैश्यराजकी कोई गृहदासी आतीहुई राजाकी स्त्री को दूरसे देखकर उसके समीप आई ॥ ३३ ॥ और आपही वृत्तान्त को जानकर उस दासी ने पुत्रसमेत राजाकी स्त्री को स्वामी को दिखाया ॥ ३४ ॥ और दुःखित पुत्रवाली तथा रोगोंसे विकल उस रानी को देखकर वैश्यों के स्वामी ने एकान्तमें लेजाकर प्रकटता से उसका वृत्तान्त पूंछा ॥ ३५ ॥ और उस स्त्री से सम्पूर्ण वृत्तान्त को जानकर वह वैश्यराज अहो कष्ट है यह जानकर बारबार श्वास लेनेलगा ॥ ३६ ॥

स्त्रीनरसेवितम् ॥ ३१ ॥ तस्य गोप्ता महावैश्यो नगरस्य महाजनः ॥ अस्ति पद्माकरो नाम राजराज इवापरः ॥ ३२ ॥ तस्य वैश्यपतेः काचिद्गृहदासी नृपाङ्गनाम् ॥ आयान्तीं दूरतो दृष्ट्वा तदन्तिकमुपाययौ ॥ ३३ ॥ सा दासी नृपतेः कान्तां सपुत्रां भृशपीडिताम् ॥ स्वयं विदितवृत्तान्ता स्वामिने प्रत्यदर्शयत् ॥ ३४ ॥ स तां दृष्ट्वा विशां नाथो रुजार्त्तां क्लिष्टपुत्रकाम् ॥ नीत्वा रहसि सुव्यक्तं तद्वृत्तान्तमपृच्छत ॥ ३५ ॥ तया निवेदिताशेषवृत्तान्तः स वणिक्पतिः ॥ अहो कष्टमिति ज्ञात्वा निशश्वास मुहुर्मुहुः ॥ ३६ ॥ तामन्तिके स्वगेहस्य संनिवेश्य रहोगृहे ॥ वासोन्नपानशयनैर्मातृसाम्यमपूजयत् ॥ ३७ ॥ तस्मिन्गृहे नृपवधूर्निवसन्ती सुरक्षिता ॥ व्रणयक्ष्मादिरोगाणां न शान्तिं प्रत्यपद्यत ॥ ३८ ॥ ततो दिनैः कतिपयैः स बालो व्रणपीडितः ॥ विलङ्घितभिषक्सत्त्वो ममार च विधेर्वशात् ॥ ३९ ॥ मृते स्वतनये राज्ञी शोकेन महतावृता ॥ मूर्च्छिता चापतद्भूमौ गजभग्नेव वल्लरी ॥ ४० ॥ दैवात्संज्ञामवाप्याथ बाष्पक्लि

और उसको अपने घरके समीप एकान्तगृह में टिकाकर वसन, अन्न, जल व पलँग से माताके समान पूजन किया ॥ ३७ ॥ व उस घरमें बसतीहुई भलीभांति रक्षित राजा की स्त्री घाव व यक्ष्मादिक रोगोंकी शान्ति को न प्राप्त हुई ॥ ३८ ॥ तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद वैद्यों के उद्योग को उल्लंघन करनेवाला वह व्रणों से पीड़ित बालक दैवके वशसे मरगया ॥ ३९ ॥ और अपने पुत्रके मरने पर बड़े शोकसे संयुत स्त्री मूर्च्छित होकर हाथी से तोड़ीहुई लता के समान पृथ्वी पै गिरपड़ी ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त दैवयोग से चैतन्यता को पाकर आँसुओं से भीगेहुए स्तनोंवाली वह बनियों की स्त्रियों से समझाई हुई भी रानी बहुत दुःखित होकर विलाप

करने लगी ॥ ४१ ॥ कि हा तात,तात ! हा पुत्र ! हा मेरे प्राणों के रक्षक ! हा राजवंश में पूर्ण चन्द्रमा ! हा मेरे आनन्द को बढ़ानेवाले ! ॥ ४२ ॥ हा राजकुमार ! छूटे बन्धु व तुम्हीं प्राणवाली इस बिचारी अनाथ अपनी माताको छोड़कर कहां चलेगये ॥ ४३ ॥ इस प्रकार शोक व चिन्ता को बढ़ानेवाले इन कहेहुए वचनों से विलाप करती हुई उस मरे पुत्रवाली रानी को समझाने के लिये कौन समर्थ होवै ॥ ४४ ॥ इसी समय में उसके दुःख व शोक का वैद्य ऋषभ नामक पहले कहा हुआ शिव योगी आया ॥ ४५ ॥ और अर्घ समेत हाथवाले उस वैश्यनाथसे पूजित वह योगी शोचती हुई उस रानीके समीप आया व उसने यह कहा ॥ ४६ ॥

नृपयोधरा ॥ सान्त्विताऽपि वणिक्स्त्रीभिर्विललाप सुदुःखिता ॥ ४१ ॥ हा तात तात हा पुत्र हा मम प्राणरक्षक ॥ हा राजकुलपूर्णेन्दो हा ममानन्दवर्धन ॥ ४२ ॥ इमामनाथां कृपणां त्वत्प्राणां त्यक्तबान्धवाम् ॥ मातरं ते परित्यज्य क्व यातोऽसि नृपात्मज ॥ ४३ ॥ इत्येभिरुदितैर्वाक्यैः शोकचिन्ताविवर्धकैः ॥ विलपन्तीं मृतापत्यां को नु सान्त्वयितुं क्षमः ॥ ४४ ॥ एतस्मिन्समये तस्या दुःखशोकचिकित्सकः ॥ ऋषभः पूर्वमाख्यातः शिवयोगी समाययौ ॥ ४५ ॥ स योगी वैश्यनाथेन सार्घहस्तेन पूजितः ॥ तस्याः सकाशमगमच्छोचन्त्या इदमब्रवीत् ॥ ४६ ॥ ऋषभ उवाच ॥ अकस्मात्किमहो वत्से रोरवीषि विमूढधीः ॥ को जातः कतमो लोके को मृतो वद साम्प्रतम् ॥ ४७ ॥ अमी देहादयो भावास्तोयफेनसधर्मकाः ॥ क्वचिद्भ्रान्तिः क्वचिच्छान्तिःस्थितिर्भवति वा पुनः ॥ ४८ ॥ अतोऽस्मिन्फेनसदृशे देहे पञ्चत्वमागते ॥ शोकस्यानवकाशत्वान्न शोचन्ति विपश्चितः ॥ ४९ ॥ गुणैर्भूतानि सृज्यन्ते भ्राम्यन्ते निजकर्मभिः ॥

ऋषभ बोला कि हे वत्से ! मूढबुद्धिवाली तुम यकायक क्यों बहुत रोती हो संसार में कौन उत्पन्न व कौन मरा है इस समय यह कहिये ॥ ४७ ॥ ये शरीरादिक भाव जलके फेनाके समान धर्मवाले हैं कहीं भ्रान्ति व कहीं शान्ति और कहीं फिर स्थिति होती है ॥ ४८ ॥ इस कारण इस फेनके समान शरीरके मरनेपर शोक का समय न होनेसे विद्वान् नहीं शोचते हैं ॥ ४९ ॥ प्राणीलोग गुणों से रचेजाते हैं और अपने कर्मों से भ्रमायेजाते हैं तथा काल से खींचे जाते हैं व

वासना में सोते हैं ॥ ५० ॥ व सत्त्वादिक तीनों गुण माया से उत्पन्न होते हैं और उन्हीं से शरीर पैदा होते हैं व उसी लक्षण के आश्रयवाले प्राणी उत्पन्न होते हैं ॥ ५१ ॥ और वासना के अनुगत प्राणी सत्त्वगुणसे देवत्व को प्राप्त होताहै व रजोगुण से मनुष्यता को प्राप्त होता है तथा तमोगुण से पशु, पक्षी की योनिको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ व इस वर्तमान संसार में प्राणी कर्म के बन्धन से बारबार दुःख से प्रकट होने योग्य गति को प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ और कल्पपर्यन्त आयुर्बलवाले उन देवताओं का उलट पलट होता है फिर अनेक रोगों से बँधे हुए मनुष्यदेहवालों की क्या कथा है ॥ ५४ ॥ कोई शरीरका कारण कालही को कहते

कालेनाथ विकृष्यन्ते वासनायां च शेरते ॥ ५० ॥ माययोत्पत्तिमायान्ति गुणाः सत्त्वादयस्त्रयः ॥ तैरेव देहा जायन्ते जातास्तल्लक्षणाश्रयाः ॥ ५१ ॥ देवत्वं याति सत्त्वेन रजसा च मनुष्यताम् ॥ तिर्यक्त्वं तमसा जन्तुर्वासनानुगतोव शः ॥ ५२ ॥ संसारे वर्तमानेस्मिञ्जन्तुः कर्मानुबन्धनात् ॥ दुर्विभाव्यां गतिं याति सुखदुःखमयीं मुहुः ॥ ५३ ॥ अपि कल्पायुषां तेषां देवानां तु विपर्ययः ॥ अनेकामयबद्धानां का कथा नरदेहिनाम् ॥ ५४ ॥ केचिद्वदन्ति देहस्य काल मेव हि कारणम् ॥ कर्म केचिद्गुणान्केचिद्देहः साधारणोह्ययम् ॥ ५५ ॥ कालकर्मगुणाधानं पञ्चात्मकमिदं वपुः ॥ जातं दृष्ट्वा न हृष्यन्ति न शोचन्ति मृतं बुधाः ॥ ५६ ॥ अव्यक्ताज्जायते जन्तुरव्यक्ते च प्रलीयते ॥ मध्ये व्यक्त वदाभाति जलबुद्बुदसन्निभः ॥ ५७ ॥ यदा गर्भगतो देही विनाशः कल्पितस्तदा ॥ दैवाज्जीवति वा जातो म्रियते सह सैव वा ॥ ५८ ॥ गर्भस्था एव नश्यन्ति जातमात्रास्तथा परे ॥ केचिद्युवानो नश्यन्ति म्रियन्ते केपि वार्धके ॥ ५९ ॥

हैं और कोई कर्म व कोई गुणों को कहते हैं और यह शरीर साधारण है ॥ ५५ ॥ और काल, कर्म व गुणों के स्थानवाले इस पञ्चभूतमय शरीर को उत्पन्न देखकर विद्वान् प्रसन्न नहीं होते हैं व मरेहुए को शोचते नहीं हैं ॥ ५६ ॥ और पानी के बुल्ले के समान प्राणी अव्यक्त से उत्पन्न होताहै व अव्यक्तमें लीन होजाता है तथा मध्यमें व्यक्तकी नाईं मालूम होता है ॥ ५७ ॥ जब प्राणी गर्भ में प्राप्त होता है तब विनाश कल्पित होता है और उत्पन्न प्राणी दैवसे जीता है व यकायक मरजाता है ॥ ५८ ॥ और कोई गर्भहीमें स्थित प्राणी नाश होजातेहैं व कोई उत्पन्न होकर नाश होजातेहैं तथा कोई ज्वान होकर नष्ट होजातेहैं व कोई वृद्धतामें मरजातेहैं ॥ ५९ ॥

और जैसा पहले का कर्म होता है वैसेही शरीर को प्राणी पाता है और प्राणी उसीके अनुसार सुख व दुःखों को भोगता है ॥ ६० ॥ व माया के प्रभाव से प्रेरित माता, पिता के रतिके संभ्रम से पुरुष, स्त्री व नपुंसक लक्षणोंवाला कोई शरीर उत्पन्न होताहै ॥ ६१ ॥ और विधाता से मस्तक में लिखेहुए आयुर्बल, सुख, दुःख, पुण्य, पाप, शास्त्र व धन को धारण करताहुआ प्राणी उत्पन्न होता है ॥ ६२ ॥ कर्मों के उल्लंघन न करने योग्य होनेसे व कालका भी उल्लघन न होनेसे व उत्पत्तियों के अनित्य होने से तुम शोच करने के योग्य महीं हो ॥ ६३ ॥ और स्वप्न में सदैव स्थिरता कहां होती है व इन्द्रजाल में सत्यता कहा होती है तथा

याद्दशं प्राक्तनं कर्म ताद्दशं विन्दते वपुः ॥ भुङ्क्ते तदनुरूपाणि सुखदुःखानि वै ह्यसौ ॥ ६० ॥ मायानुभावेरितयोः पित्रोः सुरतसंभ्रमात् ॥ देह उत्पद्यते कोपि पुंयोषित्क्लिबलक्षणः ॥ ६१ ॥ आयुः सुखं च दुःखं च पुण्यं पापं श्रुतं धनम् ॥ ललाटे लिखितं धात्रा वहञ्जन्तुः प्रजायते ॥ ६२ ॥ कर्मणामविलङ्घ्यत्वात्कालस्याप्यनतिक्रमात् ॥ अनित्यत्वाच्च भावानां न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ ६३ ॥ क स्वप्ने नियतं स्थैर्यमिन्द्रजाले क सत्यता ॥ क नित्यता शरन्मेघे क शश्वत्त्वं कलेवरे ॥ ६४ ॥ तव जन्मान्यतीतानि शतकोट्ययुतानि च ॥ अजानन्त्याः परं तत्त्वं संप्राप्तोऽयं महाभ्रमः ॥ ६५ ॥ कस्य कस्यासि तनया जननी कस्य कस्य वा ॥ कस्य कस्यासि गृहिणी भवकोटिषु वर्त्तिनी ॥ ६६ ॥ पञ्चभूतात्मको देहस्त्वगसृङ्मांसबन्धनः ॥ मेदोमज्जास्थिनिचितो विण्मूत्रश्लेष्मभाजनम् ॥ ६७ ॥ शरीरान्तर

शरद्काल के मेघ में नित्यता कहां होती है और शरीर में नाश न होना कहां होता है ॥ ६४ ॥ और तुम्हारे सैकडों करोड़ दशहज़ार जन्म व्यतीत हुए हैं व श्रेष्ठ तत्त्व को न जानतीहुई तुम्हारे यह महाभ्रम प्राप्त हुआ है ॥ ६५ ॥ व करोड़ों जन्मों में वर्तमान तुम किस किस की कन्या व किस किस की माता और किस किसकी स्त्री हुई हो ॥ ६६ ॥ और पाच महाभूतों से बनाहुआ शरीर त्वचा, रक्त व मांस के बन्धन में है और मेदा, मज्जा व अस्थियों से संयुत तथा विष्ठा, मूत्र व श्लेष्मा का पात्र है ॥ ६७ ॥ व हे मूढे ! इस अन्य शरीरवाले अपने पुत्रको भी अपने शरीर से उपजाहुआ मल मानकर तुम शोक करने के योग्य

नहीं हो ॥ ६८ ॥ यह प्रसिद्ध है कि यदि कोई मनुष्य यत्नसे मृत्युको उल्लंघन करजावे तो पहलेवाले सब विद्वान् कैसे विपत्तिको प्राप्त होवें ॥ ६९ ॥ और कोई भी पण्डित तपस्या, विद्या, बुद्धि, मन्त्र व औषधि तथा रसायनों से मृत्युको नहीं उल्लंघन करसक्ता है ॥ ७० ॥ हे वरानने ! आज एक प्राणी की मृत्यु हुई व कल अन्य की हुई इस कारण सदैव न रहनेवाले शरीर के विषय में तुम शोचने के योग्य नहीं हो ॥ ७१ ॥ मृत्यु सदैव समीप स्थित रहती है तो कहिये कि प्राणियों को कौन सुख है क्योंकि व्याघ्र के आगे स्थित होने पर क्या पशुवोंको भोजन रुचता है ॥ ७२ ॥ इस कारण हे वरानने ! यदि जन्म व वृद्धता को जीतना

मप्येतन्निजदेहोद्भवं मलम् ॥ मत्वा स्वतनयं मूढे मा शोकं कर्तुमर्हसि ॥ ६८ ॥ यदि नाम जनः कश्चिन्मृत्युं तरति यत्नतः ॥ कथं तर्हि विपद्येरन्सर्वे पूर्वे विपश्चितः ॥ ६९ ॥ तपसा विद्यया बुद्ध्या मन्त्रौषधिरसायनैः ॥ अतियाति परं मृत्युं न कश्चिदपि पण्डितः ॥ ७० ॥ एकस्याद्य मृतिर्जन्तोः श्वश्चान्यस्य वरानने ॥ तस्मादनित्यावयवे नत्वं शोचितुमर्हसि ॥ ७१ ॥ नित्यं सन्निहितो मृत्युः किं सुखं वद देहिनाम् ॥ व्याघ्रे पुरः स्थिते ग्रासः पशूनां किं नु रोचते ॥ ७२ ॥ अतो जन्म जरां जेतुं यदीच्छसि वरानने ॥ शरणं व्रज सर्वेशं मृत्युंजयमुमापतिम् ॥ ७३ ॥ तावन्मृत्युभयं घोरं तावज्जन्मजराभयम् ॥ यावन्नो याति शरणं देही शिवपदाम्बुजम् ॥ ७४ ॥ अनुभूयेह दुःखानि संसारे भृशदारुणे ॥ मनो यदा वियुज्येत तदा ध्येयो महेश्वरः ॥ ७५ ॥ मनसा पिबतः पुंसः शिवध्यानरसामृतम् ॥ भूयस्तृष्णा न जायेत संसारविषयासवे ॥ ७६ ॥ विमुक्तं सर्वसङ्गैश्च मनो वैराग्ययन्त्रितम् ॥ यदा शिवपदे मग्नं तदा

चाहती हो तो सबों के स्वामी मृत्युंजय सदाशिवजीकी शरण में जावो ॥ ७३ ॥ तबतक भयंकर मृत्यु का डर और तबतक जन्म व वृद्धता का भय होता है जब तक कि प्राणी शिवजी के चरणकमलों की शरण में नहीं जाता है ॥ ७४ ॥ इस बड़े कठिन संसार में दुःखों को भोगकर जब मन अलग होवै तब शिवजी को ध्यान करना चाहिये ॥ ७५ ॥ शिवजी के ध्यानरूपी रसामृत को मनसे पीते हुए मनुष्य के फिर संसाररूपी विषय के आसव में तृष्णा नहीं होती है ॥ ७६ ॥

और सबके संगों से छूटाहुआ मन जब वैराग्य से बँध जाता है व शिवजी के चरण में मग्न होता है तब फिर जन्म नहीं होता है ॥ ७७ ॥ उस कारण हे भद्रे ! शिवजीका ध्यानरूप एक साधनवाले इस मनको शोक, मोहसे संयुत मत करो बरन शिवजी को भजो ॥ ७८ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार शिवयोगी से अनुनय समेत समझाई हुई रानीनें उस गुरु के चरणकमलको प्रणामकर प्रत्युत्तर दिया ॥ ७९ ॥ रानी बोली कि हे भगवन् ! प्यारे बन्धुवों से छोडी व महारोगोंसे विकल तथा मरेहुए पुत्रवाली मेरी मरने के सिवा कौन गति है ॥ ८० ॥ इस कारण इस बालक के साथही मैं मरना चाहती हूं और मैं कृतार्थ होगई जोकि मरने

नास्ति पुनर्भवः ॥ ७७ ॥ तस्मादिदं मनो भद्रे शिवध्यानैकसाधनम् ॥ शोकमोहसमाविष्टं मा कुरुष्व शिवं भज ॥ ७८ ॥ सूत उवाच ॥ इत्थं सानुनयं राज्ञी बोधिता शिवयोगिना ॥ प्रत्याचष्ट गुरोस्तस्य प्रणम्य चरणाम्बुजम् ॥ ७९ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ भगवन्मृतपुत्रायास्त्यक्तायाः प्रियबन्धुभिः ॥ महारोगातुराया मे का गतिर्मरणं विना ॥ ८० ॥ अतोऽहं मर्तुमिच्छामि सहैव शिशुनाऽमुना ॥ कृतार्थाहं यदद्य त्वामपश्यं मरणोन्मुखी ॥ ८१ ॥ सूत उवाच ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा शिवयोगी दयानिधिः ॥ पूर्वोपकारं संस्मृत्य मृतस्यान्तिकमाययौ ॥ ८२ ॥ स तदा भस्म संगृह्य शिवमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥ विदीर्णे तन्मुखे क्षिप्त्वा मृतं प्राणैरयोजयत् ॥ ८३ ॥ स बालः संगतः प्राणैः शनैरुन्मील्य लोचने ॥ प्राप्तपूर्वेन्द्रियबलो रुरोद स्तन्यकाङ्क्षया ॥ ८४ ॥ मृतस्य पुनरुत्थानं वीक्ष्य बालस्य विस्मिताः ॥ जना मुमुदिरे सर्वे नगरेषु पुरोगमाः ॥ ८५ ॥ अथानन्दभरा राज्ञी विह्वलोन्मत्तलोचना ॥ जग्राह तनयं शीघ्रं बाष्पव्याकुल

के लिये तैयार मैंने तुमको देखा ॥ ८१ ॥ सूतजी बोले कि उसका यह वचन सुनकर दयानिधान शिवयोगी पहले का उपकार स्मरण करके मरे बालक के समीप आया ॥ ८२ ॥ व उस समय उसने शिवजी के मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म को लेकर उसके फैलेहुए मुखमें डालकर मरेहुए बालकको प्राणों से युक्त किया ॥ ८३ ॥ व प्राणों से संयुत वह बालक धीरे से आंखों को खोलकर पहले की इन्द्रियों के बलको पाकर दूध की इच्छा से रोनेलगा ॥ ८४ ॥ और मरेहुए बालक का फिर उठना देखकर नगरों में सब विस्मय को प्राप्त मनुष्य प्रसन्न हुए ॥ ८५ ॥ इसके उपरान्त आनन्द से पूर्ण व विह्वल तथा उन्मत्त लोचनोंवाली व आंसुवों

से व्याकुल नयनोंवाली उस रानीने बालक को शीघ्रही पकड़ लिया॥ ८६ ॥ तब बड़े आनन्द में मग्न परिश्रम से सोईहुई सी उस रानी ने बालक को लिपटाकर अपना व अन्य को नहीं जाना ॥ ८७ ॥ फिर ऋषभ योगी ने उन माता व पुत्र के विष और व्रणों से संयुत शरीर को भस्महो से स्पर्श किया ॥ ८८ ॥ और उस भस्म से स्पर्श कियेहुए उन प्राप्त दिव्य शरीरवाले दोनोंने देवताओं के समान कान्ति से भूषित रूप को धारण किया ॥ ८९ ॥ स्वर्ग का ऐश्वर्य प्राप्त होनेपर पुण्यकर्मी मनुष्यों को जो सुख होता है उससे सौगुने उत्तम सुख को रानी ने पाया ॥ ९० ॥ व चरणों में पड़ीहुई उस स्त्री को प्रेमसे विह्वल ऋषभ ने उठाकर

लोचना ॥ ८६ ॥ उपगुह्य तदा तन्वी परमानन्दनिर्वृता ॥ न वेदात्मानमन्यं वा सुषुप्तेव परिश्रमात् ॥ ८७ ॥ पुनश्च ऋषभो योगी तयोर्मातृकुमारयोः ॥ विषव्रणयुतं देहं भस्मनैव परामृशत् ॥ ८८ ॥ तौ च तद्भस्मना स्पृष्टौ प्राप्त दिव्यकलेवरौ ॥ देवानां सदृशं रूपं दधतुः कान्तिभूषितम् ॥ ८९ ॥ संप्राप्ते त्रिदिवैश्वर्ये यत्सुखं पुण्यकर्मणाम् ॥ तस्माच्छतगुणं प्राप सा राज्ञी सुखमुत्तमम् ॥ ९० ॥ तां पादयोर्निपतितामृषभः प्रेमविह्वलः ॥ उत्थाप्याश्वासयामास दुःखमुक्तामुवाच ह ॥ ९१ ॥ अयि वत्से महाराज्ञि जीव त्वं शाश्वतीः समाः ॥ यावज्जीवसि लोकेस्मिन्न तावत्प्राप्स्यसे जराम् ॥ ९२ ॥ एष ते तनयः साध्वि भद्रायुरिति नामतः ॥ ख्यातिं यास्यति लोकेषु निजं राज्यमवाप्स्यति ॥ ९३ ॥ अस्य वैश्यस्य सदने तावत्तिष्ठ शुचिस्मिते ॥ यावदेष कुमारस्ते प्राप्तविद्यो भविष्यति ॥ ९४ ॥ सूत उवाच ॥ इति तामृषभो योगी तं च राजकुमारकम् ॥ संजीव्य भस्मवीर्येण ययौ देशान्यथे

समझाया व दुःख से छूटीहुई उस रानी से यह कहा ॥ ९१ ॥ कि हे महाराज्ञि, वत्से ! तुम सैकड़ों बरसतक जियो व जबतक इस लोकमें जियो तबतक वृद्धता को न प्राप्त होवो ॥ ९२ ॥ व हे साध्वि ! तुम्हारा यह पुत्र भद्रायु ऐसे नाम से लोकोंमें प्रसिद्धि को प्राप्त होगा व अपने राज्यको पावैगा ॥ ९३ ॥ हे शुचिस्मिते ! तबतक तुम इस वैश्य के घर में टिको जबतक कि यह तुम्हारा बालक विद्या को प्राप्त होवै ॥ ९४ ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार ऋषभ योगी उस स्त्री व उस

राजकुमार को भस्म के प्रभाव से जिलाकर इच्छा के अनुसार देशोंको चलागया ॥ ९५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां भद्राय्वाख्याने ऋषभयोगिना भद्रायुर्जीवनंनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । भद्रायुहिं उपदेश जिमि दियो ऋषभ मुनिनाथ । सो गेरहें अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ ॥ सूतजी बोले कि मुझ से पिङ्गला नामक वेश्या जो पहले कहीगई है वह शिवभक्तपूजन के पुण्य से पहले के शरीर को छोड़कर ॥ १ ॥ फिर वह चन्द्राङ्गद की स्त्री सीमन्तिनी में पैदाहुई और रूप व उदारता के

प्सितान् ॥ ९५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे भद्राय्वाख्याने ऋषभयोगिना भद्रायुर्जीवनंनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ पिङ्गला नाम या वेश्या मया पूर्वमुदाहृता॥ शिवभक्तार्चनात्पुण्यात्त्यक्त्वा पूर्वकलेवरम् ॥ १ ॥ चन्द्राङ्गदस्य सा भूयः सीमन्तिन्यामजायत ॥ रूपौदार्यगुणोपेता नाम्ना वै कीर्तिमालिनी ॥ २ ॥ भद्रायुरपि तत्रैव राजपुत्रो वणिक्पतेः ॥ ववृधे सदने भानुः शुचाविव महातपाः ॥ ३ ॥ तस्यापि वैश्यनाथस्य कुमारस्त्वेक उत्तमः ॥ स नाम्ना सुनयः प्रोक्तो राजसूनोः सखाऽभवत् ॥ ४ ॥ तावुभौ परमस्निग्धौ राजवैश्यकुमारकौ ॥ चित्रक्रीडावुदाराङ्गौ रत्नाभरणमण्डितौ ॥ ५ ॥ तस्य राजकुमारस्य ब्राह्मणैः स वणिक्पतिः ॥ संस्कारान् कारयामास स्वपुत्रस्यापि विस्तरात् ॥ ६ ॥ काले कृतोपनयनौ गुरुशुश्रूषणे रतौ ॥ चक्रतुः सर्वविद्यानां संग्रहं विनयान्वितौ ॥ ७ ॥

गुणों से संयुत वह कीर्तिमालिनी नामक हुई ॥ २ ॥ और भद्रायु भी राजपुत्र उसी वैश्य पतिके घरमें आषाढ़ में बडे तपवाले सूर्य की नाईं बढ़ता भया ॥ ३ ॥ उस वैश्यनाथ के भी नाम से सुनय ऐसा कहा हुआ एक उत्तम कुमार राजपुत्र का मित्र हुआ ॥ ४ ॥ राजा व वैश्यके पुत्र वे दोनों बड़े स्नेही थे और विचित्र क्रीड़ा व उदार अङ्गोंवाले वे दोनों रत्नों के आभूषणों से भूषित थे ॥ ५ ॥ और उस वैश्यपति ने उस राजकुमार व अपने पुत्रके भी संस्कारों को ब्राह्मणों के द्वारा विस्तार से कराया ॥ ६ ॥ और समय में यज्ञोपवीत कियेहुए उन गुरुकी सेवा में परायण दोनों बालकों ने सब विद्याओं का संग्रह किया ॥ ७ ॥

इसके उपरान्त राजपुत्र का सोलहवां वर्ष प्राप्त होनेपर वही ऋषभ योगी उसके घरमें आया ॥ ८॥ और उस रानी व उस राजकुमार दोनों ने आयेहुए शिवयोगीको बारबार प्रणाम कर हर्ष से पूजन किया ॥ ९ ॥ उन दोनों से पूजित प्रसन्नमन तथा दयासे नम्रबुद्धिवाले योगीश ने उस राजपुत्र को उद्देश कर कहा ॥ १० ॥ शिवयोगी बोला कि हे तात ! क्या तुम्हारा कुशल है व तुम्हारी माता का भी कुशल है और क्या तुमने सब विद्याओं को ग्रहण किया है ॥ ११ ॥ और क्या आप गुरुवों की सेवा में तत्पर हो व हे तात ! क्या तुम्हारे प्राणों को देनेवाले गुप्त गुरु को तुम स्मरण करते हो ॥ १२ ॥ इसप्रकार योगीश के कहनेपर विनय

अथ राजकुमारस्य प्राप्ते षोडशहायने ॥ स एव ऋषभो योगी तस्य वेश्मन्युपाययौ ॥ ८ ॥ सा राज्ञी स कुमारश्च शिवयोगिनमागतम् ॥ मुहुर्मुहुः प्रणम्योभौ पूजयामासतुर्मुदा ॥ ९ ॥ ताभ्यां च पूजितः सोऽथ योगीशो हृष्टमानसः ॥ तं राजपुत्रमुद्दिश्य बभाषे करुणार्द्रधीः ॥ १० ॥ शिवयोग्युवाच ॥ कच्चित्ते कुशलं तात त्वन्मातुश्चाप्यनामयम् ॥ ११ ॥ कच्चित्त्वं सर्वविद्यानामकार्षीश्च प्रतिग्रहम् ॥ कच्चिद्गुरूणां सततं शुश्रूषातत्परो भवान् ॥ कच्चित्स्मरसि मां तात तव प्राणप्रदं गुरुम् ॥ १२ ॥ एवं वदति योगीशे राज्ञी सा विनयान्विता ॥ स्वपुत्रं पादयोस्तस्य निपात्यैनमभाषत ॥ १३ ॥ एष पुत्रस्तव गुरो त्वमस्य प्राणदः पिता ॥ एष शिष्यस्तु संग्राह्यो भवता करुणात्मना ॥ १४ ॥ अतो बन्धुभिरुत्सृष्टमनाथं परिपालय ॥ अस्मै सम्यक्सतां मार्गमुपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥ १५ ॥ इति प्रसादितो राज्ञ्या शिवयोगी महामतिः ॥ तस्मै राजकुमाराय सन्मार्गमुपदिष्टवान् ॥ १६ ॥ ऋषभ उवाच ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणेषु

से संयुत उस रानी ने अपने पुत्रको उस योगी के चरणों में डालकर इससे कहा ॥ १३ ॥ कि हे गुरो ! यह तुम्हारा पुत्र है और तुम इसके प्राणों को देनेवाले पिता हो व दयासंयुत चित्तवाले आपको यह शिष्य ग्रहण करना चाहिये ॥ १४ ॥ इस कारण बन्धुवों से त्यागेहुए इस अनाथ को तुम पालन करो व इसके लिये तुम भलीभांति सत्पुरुषों का उपदेश करने के लिये योग्य हो ॥ १५ ॥ रानी से इस प्रकार प्रसन्न करायेहुए महाबुद्धिमान् शिवयोगीने उस कुमार के लिये उत्तम मार्ग का उपदेश किया ॥ १६ ॥ ऋषभजी बोले कि श्रुति, स्मृति व पुराणों में कहा हुआ सनातन धर्म सदैव वर्णों व आश्रमों के अनुसार लोगों को सेवन करना

चाहिये ॥ १७ ॥ हे वत्स ! सत्पुरुषोंका मार्ग भजो व उत्तमही आचरण करो और देवताओं की आज्ञाको न उल्लङ्घन करिये व देवताओं का निरादर न कीजियेगा ॥ १८ ॥ और गऊ, देवता, गुरु व ब्राह्मणों में सदैव भक्तिमान् होवो व प्राप्तहुए चाण्डाल को भी सदैव अतिथि जानो ॥ १९ ॥ और प्राणों का संकट भी प्राप्त होनेपर सब कहीं सत्य को न छोड़ो और गऊ व ब्राह्मणों की रक्षा के लिये तुम कभी असत्य कहो ॥ २० ॥ व हे महाबाहो ! पराये धन व पराई स्त्रियों तथा देवता व ब्राह्मणों की वस्तुवों में और दुर्लभ भी वस्तुवों में तृष्णा को छोड़ दो ॥ २१ ॥ व हे महामते ! उत्तम कथा, उत्तम आचरण, उत्तम व्रत और उत्तम

प्रोक्तो धर्मः सनातनः ॥ वर्णाश्रमानुरूपेण निषेव्यः सर्वदा [illegible] ॥ १७ ॥ भज वत्स सतां मार्गं सदेव चरितं चर ॥ न देवाज्ञां विलङ्घेथा मा कार्षीर्देवहेलनम् ॥ १८ ॥ गोदेवगुरुविप्रेषु भक्तिमान्भव सर्वदा ॥ चाण्डालमपि संप्राप्तं सदा संभावयातिथिम् ॥ १९ ॥ सत्यं न त्यज सर्वत्र प्राप्तेऽपि प्राणसंकटे ॥ गोब्राह्मणानां रक्षार्थमसत्यं त्वं वद क्वचित् ॥ २० ॥ परस्वेषु परस्त्रीषु देवब्राह्मणवस्तुषु ॥ तृष्णां त्यज महाबाहो दुर्लभेष्वपि वस्तुषु ॥ २१ ॥ सत्कथायां सदाचारे सद्व्रते च सदागमे ॥ धर्मादिसंग्रहे नित्यं तृष्णां कुरु महामते ॥ २२ ॥ स्नाने जपे च होमे च स्वाध्याये पितृतर्पणे ॥ गोदेवातिथिपूजासु निरालस्यो भवानघ ॥ २३ ॥ क्रोधं द्वेषं भयं शाठ्यं पैशुन्यमसदाग्रहम् ॥ कौटिल्यं दम्भमुद्वेगं यत्नेन परिवर्जय ॥ २४ ॥ क्षात्रधर्मरतोऽपि त्वं वृथा हिंसां परित्यज ॥ शुष्कवैरं वृथालापं परनिन्दां च वर्जय ॥ २५ ॥ मृगयाद्यूतपानेषु स्त्रीषु स्त्रीविजितेषु च ॥ अत्याहारमतिक्रोधमतिनिद्रामतिश्रमम् ॥ २६ ॥ अत्यालाप

शास्त्र तथा धर्मादिकों के संग्रहमें सदैव इच्छा करो ॥ २२ ॥ व हे अनघ ! स्नान, जप, होम, वेदपाठ और पितरों के तर्पण व गऊ, देवता और अतिथियों के पूजन में निरालसी होवो ॥ २३ ॥ और क्रोध, वैर, भय, शठता, पिशुनता, असत् ग्रहण करना और कुटिलता, पाखण्ड व उद्वेग को यत्न से वर्जित करो ॥ २४ ॥ और क्षत्रियों के धर्म में परायण भी तुम वृथा हिंसा को छोड़ दो व शुष्कवैर, वृथा बकवाद और पराई निन्दा को छोड़ दो ॥ २५ ॥ और शिकार, जुवा, मद्यपान व स्त्रियों तथा स्त्रियों से जीते हुए लोगों में संग न करो और बहुत भोजन, बहुत क्रोध, बहुत निद्रा तथा बहुत परिश्रम ॥ २६ ॥ और बहुत अनर्थ वचन व बहुत

क्रीडा को सदैव वर्जित करो ॥ २७ ॥ और अतिविद्या, अतिश्रद्धा, अतिपुण्य तथा अतिस्मृति व बहुत उत्साह, बहुत प्रसिद्धि और बहुत धैर्य को साधन करो ॥ २८ ॥ और अपनी स्त्रियों में सकाम तथा अपने शत्रुवों में सकोप व पुण्यके इकट्ठा करने में सलोभ और अधर्मियों में ईर्षा समेत होवो ॥ २९ ॥ और पाखण्ड में वैर समेत, सज्जनों में स्नेह समेत व दुष्टसंमति में दुर्बोध और चुग़ुल के वचनों में बधिर होवो ॥ ३० ॥ और धूर्त, प्रचण्ड, शठ, क्रूर, छली, चंचल, दुष्ट, धर्म से भ्रष्ट, वेदादिनिन्दक व कुटिल को दूरसे छोड़ दो ॥ ३१ ॥ व अपनी प्रशंसा न करना और पराई चेष्टा को जाननेवाले होवो और धन व सब

मतिक्रीडां सर्वदा परिवर्जय ॥ २७ ॥ अतिविद्यामतिश्रद्धामतिपुण्यमतिस्मृतिम् ॥ अत्युत्साहमतिख्याति मतिधैर्यं च साधय ॥ २८ ॥ सकामो निजदारेषु सक्रोधो निजशत्रुषु ॥ सलोभः पुण्यनिचये साभ्यसूयोह्यधर्मिषु ॥ २९ ॥ सद्वेषो भव पाखण्डे सरागः सज्जनेषु च ॥ दुर्बोधो भव दुर्मन्त्रे बधिरः पिशुनोक्तिषु ॥ ३० ॥ धूर्त्तं चण्डं शठं क्रूरं कितवं चपलं खलम् ॥ पतितं नास्तिकं जिह्मं दूरतः परिवर्जय ॥ ३१ ॥ आत्मप्रशंसां मा कार्षीः परिज्ञातेङ्गितो भव ॥ धने सर्वकुटुम्बे च नात्यासक्तः सदा भव ॥ ३२ ॥ पत्न्याः पतिव्रतायाश्च जनन्याः श्वशुरस्य च ॥ सतां गुरोश्च वचने विश्वासं कुरु सर्वदा ॥ ३३ ॥ आत्मरक्षापरो नित्यमप्रमत्तो दृढव्रतः ॥ विश्वासं नैव कुर्वीथाः स्वभृत्येष्वपि कुत्रचित् ॥ ३४ ॥ विश्वस्तं मा वधीः कंचिदपि चोरं महामते ॥ अपापेषु न शङ्केथाः सत्यान्न चलितो भव ॥ ३५ ॥ अनाथं कृपणं वृद्धं स्त्रियं बालं निरागसम् ॥ परिरक्ष धनैः प्राणैर्बुद्ध्या शक्त्या बलेन

कुटुम्ब में सदैव बहुत आसक्त न होवो ॥ ३२ ॥ और स्त्री, पतिव्रता, माता, श्वशुर, सत्पुरुष व गुरुके वचन में सदैव विश्वास करो ॥ ३३ ॥ और सदैव अपनी रक्षा में परायण होवो तथा सदैव अप्रमत्त व दृढ नियमवाले होवो और अपने सेवकोंमें भी कभी विश्वास न करो ॥ ३४ ॥ व हे महामते ! विश्वास कियेहुए किसी चोरको भी मत मारो व पापरहित मनुष्योंमें शङ्का न करो तथा सत्य से न चलो ॥ ३५ ॥ व अनाथ, कृपण, वृद्ध, स्त्री, बालक व बिन अपराधी मनुष्यकी धनसे व प्राणोंसे

और शक्ति तथा बलसे रक्षा करो ॥ ३६॥ व शरणमें आयेहुए मारने योग्य शत्रुको भी मत मारो और अपात्र भी व सुपात्र या नीच अथवा महान् भी मनुष्य ॥३७॥ जो कोई मांगै उसके लिये शिरको भी देदीजिये व सदैव बड़े यत्नसे भी यशही को इकट्ठा करो ॥ ३८ ॥ क्योंकि राजाओं व विद्वानों का भी यशही भूषण है और उत्तम यशसे लक्ष्मी उत्पन्न होती है व उत्तम यशसे पुण्य उत्पन्न होता है ॥ ३९ ॥ और उत्तम यश से संसार शोभित होता है जैसे कि चन्द्रिका (उजियाली) से चन्द्रमा शोभित होता है इस कारण हाथी, घोड़ा व सुवर्ण की राशि तथा पर्वत के समान रत्नों की राशि ॥ ४० ॥ अयश से नष्ट सब वस्तु को शीघ्रही

च ॥ ३६ ॥ अपि शत्रुं वधस्यार्हं मा वधीः शरणागतम् ॥ अप्यपात्रं सुपात्रं वा नीचो वापि महत्तमः ॥ ३७ ॥ यो वा को वापि याचेत तस्मै देहि शिरोपि च ॥ अपि यत्नेन महता कीर्तिमेव सदार्जय ॥ ३८ ॥ राज्ञां च विदुषां चैव कीर्तिरेव हि भूषणम् ॥ सत्कीर्तिप्रभवा लक्ष्मीः पुण्यं सत्कीर्तिसंभवम् ॥ ३९ ॥ सत्कीर्त्या राजते लोकश्चन्द्रश्चन्द्रिकया यथा ॥ गजाश्वहेमनिचयं रत्नराशिं नगोपमम् ॥ ४० ॥ अकीर्त्योपहतं सर्वं तृणवन्मुञ्च सत्वरम् ॥ मातुः कोपं पितुः कोपं गुरोः कोपं धनव्ययम् ॥ ४१ ॥ पुत्राणामपराधं च ब्राह्मणानां क्षमस्व भोः ॥ यथा द्विजप्रसादः स्यात्तथा तेषां हितं चर ॥ ४२ ॥ राजानं संकटे मग्नमुद्धरेयुर्द्विजोत्तमाः ॥ आयुर्यशो बलं सौख्यं धनं पुण्यं प्रजोन्नतिः ॥ ४३ ॥ कर्मणा येन जायेत तत्सेव्यं भवता सदा ॥ देशं कालं च शक्तिं च कार्यं चाकार्यमेव च ॥ ४४ ॥ सम्यग्विचार्य यत्नेन कुरु कार्यं च सर्वदा ॥ न कुर्याः कस्यचिद्बाधां परबाधां निवारय ॥ ४५ ॥ चोरान्दुष्टांश्च

तिनुका की नाईं छोड़ दो और माता का कोप व पिता का कोप तथा गुरु का कोप व धन का ख़र्च ॥ ४१ ॥ और पुत्रों व ब्राह्मणों का अपराध क्षमा करो और जिस प्रकार ब्राह्मणों की प्रसन्नता होवै उसी प्रकार उनका हित करो ॥ ४२ ॥ क्योंकि संकट में पड़ेहुए राजाको द्विजोत्तम लोग निकाल लेतेहैं और आयुर्बल, यश, बल, सुख, धन, पुण्य व प्रजाओंकी उन्नति ॥ ४३ ॥ जिस कर्म से होवै उसको सदैव आपको सेवन करना चाहिये और देश, काल, शक्ति, कार्य व अकार्य को ॥ ४४ ॥ भलीभांति विचारकर सदैव यत्न से करना चाहिये व किसी की बाधा न करो और पराई पीड़ा को मना करो ॥ ४५ ॥ और शक्तिमती उत्तम नीति

से चोरों व दुष्टों को पीड़ित करो और स्नान, जप, होम व देवता तथा पितरों के कर्म में ॥ ४६ ॥ शीघ्रतारहित होवो व भोजन में शीघ्रता समेत होवो व हे महामते ! चतुरतायुक्त व अशठ, सत्य तथा लोगों के मनकी हरनेवाले व थोड़े अक्षर और बहुत अर्थवाले सत्य वचन को कहो और शत्रुवों व विपत्तियों में सब कहीं निडर होवो ॥ ४७ । ४८ ॥ और ब्राह्मणों के वश में भीत होवो व पापी तथा गुरुकी आज्ञा में न डरो और कुटुम्ब के भाइयों में तथा ब्राह्मणों व स्त्रियों और पुत्रों में ॥ ४९ ॥ और भोजनकी पंक्तियों में समता से वर्तमान होवो व सत्पुरुषों के हितोपदेशों में और पुण्य की कथाओं में ॥ ५० ॥ और विद्या की

बाधेथाः सुनीत्या शक्तिमत्तया ॥ स्नाने जपे च होमे च दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ ४६ ॥ अत्वरो भव निद्रायां भोजने भव सत्वरः ॥ दाक्षिण्ययुक्तमशठं सत्यं जनमनोहरम् ॥ ४७ ॥ अल्पाक्षरमनन्तार्थं वाक्यं ब्रूहि महामते ॥ अभीतो भव सर्वत्र विपक्षेषु विपत्सु च ॥ ४८ ॥ भीतो भव ब्रह्मकुले न पापे गुरुशासने ॥ ज्ञातिबन्धुषु विप्रेषु भार्यासु तनयेषु च ॥ ४९ ॥ समभावेन वर्तेथास्तथा भोजनपङ्क्तिषु ॥ सतां हितोपदेशेषु तथा पुण्यकथासु च ॥ ५० ॥ विद्यागोष्ठीषु धर्म्यासु कच्चिन्मा भूः पराङ्मुखः ॥ शुचौ पुण्यजलस्यान्ते प्रख्याते ब्रह्मसंकुले ॥ ५१ ॥ महादेशे शिवमये वस्तव्यं भवता सदा ॥ कुलटा गणिका यत्र यत्र तिष्ठति कामुकः ॥ ५२ ॥ दुर्देशे नीचसंबाधे कदाचिदपि मा वस ॥ एकमेवाश्रितोपि त्वं शिवं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ ५३ ॥ सर्वान्देवानुपासीथास्तद्दिनानि च मानयन् ॥ सदा शुचिः सदा दक्षः सदा शान्तः सदा स्थिरः ॥ ५४ ॥ सदा विजितषड्वर्गः सदैकान्तो भवानघ ॥ विप्रान्वेदविदः शान्तान्य

सभाओं में तथा धर्म की सभाओं में कभी विमुख मत होवो और पवित्र व पवित्र जल के समीप तथा प्रसिद्ध व ब्राह्मणों से संयुत ॥ ५१ ॥ व शिवमय महादेश में आपको सदैव बसना चाहिये और कुलटा व वेश्या जहां स्थित हों व जहा कामी स्थित हों ॥ ५२ ॥ और दुष्टदेश व नीचों से सयुत देश में कभी मत बसो और त्रिलोक के स्वामी एक शिवजी के आश्रित भी तुम ॥ ५३ ॥ उनके दिनोंको मानतेहुए सब देवताओं की उपासना करो और सदैव पवित्र, सदैव प्रवीण, सदैव शान्त व सदैव स्थिर होवो ॥ ५४ ॥ व हे अनघ ! सदैव काम क्रोधादिक छह वर्गों को जीतो और सदैव एकान्त होवो व वेदों को जाननेवाले

ब्राह्मणों और शान्त संन्यासियों व निश्चयकर निर्मल ॥ ५५ ॥ और पवित्र वृक्षों व पवित्र नदियों तथा पवित्र तीर्थ, बडा भारी तड़ाग, गऊ, बैल, रत्न व पतिव्रता स्त्री को ॥ ५६ ॥ और अपने गृहदेवताओं को यकायक प्रणाम करो और ब्राह्मयसमयमें उठकर भलीभांति आचमन करके निर्मल आशयवाले तुम ॥ ५७ ॥ अपने गुरुके लिये प्रणाम कर व सदाशिवजी को ध्यान कर और लक्ष्मीजी के पति नारायण, ब्रह्मा, गणेश ॥ ५८ ॥ स्वामिकार्त्तिकेय, कात्यायनी देवी, महालक्ष्मी, सरस्वती और इन्द्रादिक लोकेशों व पवित्र यशवाले ऋषियों को भी ॥ ५९ ॥ ध्यान कर सदैव उदय होतेहुए सूर्यनारायण को प्रणाम करो और चन्दन,

तींश्च नियतोज्ज्वलान् ॥ ५५ ॥ युग्मम् ॥ पुण्यवृक्षान्पुण्यनदीः पुण्यतीर्थं महत्सरः ॥ धेनुं च वृषभं रत्नं युवतीं च पतिव्रताम् ॥ ५६ ॥ आत्मनो गृहदेवांश्च सहसैव नमस्कुरु ॥ उत्थाय समये ब्राह्मे स्वाचम्य विमलाशयः ॥ ५७ ॥ नमस्कृत्यात्मगुरवे ध्यात्वा देवमुमापतिम् ॥ नारायणं च लक्ष्मीशं ब्रह्माणं च विनायकम् ॥ ५८ ॥ स्कन्दं कात्यायनीं देवीं महालक्ष्मीं सरस्वतीम् ॥ इन्द्रादीनथ लोकेशान्पुण्यश्लोकानृषीनपि ॥ ५९ ॥ चिन्तयित्वाथ मार्त्तण्डमुद्यन्तं प्रणमेस्सदा ॥ गन्धं पुष्पं च ताम्बूलं शाकं पक्कफलादिकम् ॥ ६० ॥ शिवाय दत्त्वोपभुङ्क्ष्व भक्ष्यं भोज्यं प्रियं नवम् ॥ यद्दत्तं यत्कृतं जप्तं यत्स्नातं यद्धुतं स्मृतम् ॥ ६१ ॥ यच्च तप्तं तपः सर्वं तच्छिवाय निवेदय ॥ भुञ्जानश्च पठन्वापि शयानो विहरन्नपि ॥ पश्यञ्छृण्वन्वदन्गृह्णञ्छिवमेवानुचिन्तय ॥ ६२ ॥ रुद्राक्षकङ्कणलसत्करदण्डयुग्मो मालान्तरालधृतभस्मसितत्रिपुण्ड्ः ॥ पञ्चाक्षरं परिपठन्परमन्त्रराजं ध्यायन्सदा पशुपतेश्चरणं रमेथाः ॥ ६३ ॥ इति

पुष्प, ताम्बूल, शाक व पक्व फलादिक को ॥ ६० ॥ और नवीन व प्रिय भक्ष्य, भोज्य को शिवजी के लिये देकर भोजन करो और जो दान व जो किया हुआ कर्म तथा जो जप व जो स्नान और जो हवन कहागया है ॥ ६१ ॥ और जो किया हुआ तप होवै उस सबको शिवजी के लिये निवेदन करो और भोजन, पठन, शयन, विहार, दर्शन, श्रवण, कथन व ग्रहण करतेहुए तुम शिवही को चिन्तन करो ॥ ६२ ॥ रुद्राक्ष के कंकण से शोभित दोनों हाथोंवाले व माला के मध्य में सफ़ेद भस्म के त्रिपुण्ड्र को धारनेवाले तुम पंचाक्षर मन्त्रराज को ध्यान करते हुए सदैव शिवजी के चरणों में रमण करो ॥ ६३ ॥ हे वत्स ! संक्षेप से

ग्रह धर्म का संग्रह कहा गया और अन्य पुराणों में विस्तार से कहा गया है ॥ ६४ ॥ इसके उपरान्त समस्त पापों को हरनेवाली व जयदायिनी तथा सब विपत्तियों को छुडानेवाली व सब पुराणों में गुप्त शिवजीकी कवच को तुम्हारे हित के लिये कहूंगा ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां भद्रायुंप्रति ऋषभोपदेशवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰ । राजपुत्र सों कह्यो जिमि ऋषभयोगि शिववर्म । बारहवें अध्याय में सोई चरित सुपर्म ॥ ऋषभजी बोले कि सर्वव्यापी महादेवजी को प्रणामकर

संक्षेपतो वत्स कथितो धर्मसंग्रहः ॥ अन्येषु च पुराणेषु विस्तरेण प्रकीर्तितः ॥ ६४ ॥ अथापरं सर्वपुराणगुह्यं निःशेषपापौघहरं पवित्रम् ॥ जयप्रदं सर्वविपद्विमोचनं वक्ष्यामि शैवं कवचं हिताय ते ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे भद्रायुं प्रति ऋषभोपदेशवर्णनंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥

ऋषभ उवाच ॥ नमस्कृत्य महादेवं विश्वव्यापिनमीश्वरम् ॥ वक्ष्ये शिवमयं वर्म सर्वरक्षाकरं नृणाम् ॥ १ ॥ शुचौ देशे समासीनो यथावत्कल्पितासनः ॥ जितेन्द्रियो जितप्राणश्चिन्तयेच्छिवमव्ययम् ॥ २ ॥ हृत्पुण्डरीकान्तरसन्निविष्टं स्वतेजसा व्याप्तनभोवकाशम् ॥ अतीन्द्रियं सूक्ष्ममनन्तमाद्यं ध्यायेत्परानन्दमयं महेशम् ॥ ३ ॥ ध्यानावधूताखिलकर्मबन्धश्चिरं चिदानन्दनिमग्नचेताः ॥ षडक्षरन्याससमाहितात्मा शैवेन कुर्यात्कवचेन रक्षाम् ॥ ४ ॥ मां पातु देवोऽखिलदेवतात्मा संसारकूपे पतितं गभीरे ॥ तन्नाम दिव्यं वरमन्त्रमूलं धुनोतु

मनुष्यों की सब रक्षा करनेवाली शिवमय वर्म को कहूंगा ॥ १ ॥ पवित्र देशमें बैठकर यथायोग्य आसन को कल्पित कर जितेन्द्रिय व प्राणों को जीतेहुए मनुष्य विकाररहित शिवजी को ध्यान करै ॥ २ ॥ हृदयकमल के भीतर बैठेहुए व अपने तेजसे व्यापित आकाश स्थानवाले, इन्द्रियों से परे, सूक्ष्म, अनन्त, आद्य व परम आनन्दमय शिवजी को ध्यान करै ॥ ३ ॥ ध्यान से नष्ट समस्तकर्मबन्धन व चिदानन्द में मग्नचित्त तथा षडक्षरके न्यास से सावधानचित्तवाला मनुष्य शिवजी की कवच से रक्षा करै ॥ ४ ॥ कि समस्त देवतात्मक शिवदेवजी गम्भीर संसारकूप में पडेहुए मेरी रक्षा करो और उत्तम मन्त्र का मूल दिव्य उनका

नाम हृदय में स्थित मेरे सब पाप को नाश करें ॥ ५ ॥ विश्वमूर्ति व ज्योतिर्मय आनन्दघन चैतन्यात्मक शिवजी सब कहीं मेरी रक्षा करें और सूक्ष्मसे सूक्ष्म व बड़ी भारी शक्तिवाले वे एक ईश्वर सब भयसे मेरी रक्षा करें ॥ ६ ॥ पृथ्वी के रूपसे जो संसार को धारण करते हैं वे अष्टमूर्ति गिरीशजी पृथ्वी से रक्षा करें और जलके रूपसे जो मनुष्यों का जीवन करते हैं वे जलों से मेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥ बड़ी भारी लीलावाले जो शिवजी कल्प के अन्त में सब लोकोंको जलाकर नाचते हैं वे काल रुद्रजी दवाग्नि से मेरी रक्षा करें व बड़े पवनादि के भयसे व सब संताप से मेरी रक्षा करें ॥ ८ ॥ व चमकती हुई बिजली तथा सोने के समान

मे सर्वमघं हृदिस्थम् ॥ ५ ॥ सर्वत्र मां रक्षतु विश्वमूर्त्तिर्ज्योतिर्मयानन्दघनश्चिदात्मा ॥ अणोरणीयानुरुशक्तिरेकः स ईश्वरः पातु भयादशेषात् ॥ ६ ॥ यो भूस्वरूपेण बिभर्ति विश्वं पायात्स भूमेर्गिरिशोऽष्टमूर्तिः ॥ योऽपां स्वरूपेण नृणां करोति संजीवनं सोऽवतु मां जलेभ्यः ॥ ७ ॥ कल्पावसाने भुवनानि दग्ध्वा सर्वाणि यो नृत्यति भूरिलीलः ॥ स कालरुद्रोऽवतु मां दवाग्नेर्वात्यादिभीतेरखिलाच्च तापात् ॥ ८ ॥ प्रदीप्तविद्युत्कनकावभासो विद्यावराभीतिकुठारपाणिः ॥ चतुर्मुखस्तत्पुरुषस्त्रिनेत्रः प्राच्यां स्थितं रक्षतु मामजस्रम् ॥ ९ ॥ कुठारवेदाङ्कुशपाशशूलकपालढक्काक्षगुणान्दधानः ॥ चतुर्मुखो नीलरुचिस्त्रिनेत्रः पायादघोरो दिशि दक्षिणस्याम् ॥ १० ॥ कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकावभासो वेदाक्षमालावरदाभयाङ्कः ॥ त्र्यक्षश्चतुर्वक्त्र उरुप्रभावः सद्योधिजातोऽवतु मां प्रतीच्याम् ॥ ११ ॥ वराक्षमालाभयटङ्कहस्तः सरोजकिञ्जल्कसमानवर्णः ॥ त्रिलोचनश्चारुचतुर्मुखो मां पायादुदीच्यां दिशि

प्रकाशवाले और विद्या, वर, अभय व कुठार को हाथ में लिये हुए चतुर्मुख, त्रिलोचन तत्पुरुषजी पूर्व में सदैव मेरी रक्षा करें ॥ ९ ॥ और कुठार, वेद, अंकुश, फँसरी, शूल, कपाल व नगाड़ा और, रुद्राक्ष की माला को धारण किये हुए नीलरुचि चतुर्मुख व त्रिनेत्र अघोरजी दक्षिण दिशा में रक्षा करें ॥ १० ॥ और कुन्द, चन्द्रमा, शँख व स्फटिक के समान प्रकाशवाले व वेद रुद्राक्षमाला, वरदान और भयसे चिह्नित बड़े प्रभाव वाम् त्रिलोचन चतुरानन सद्योधिजात पश्चिम दिशा में मेरी रक्षा करें ॥ ११ ॥ और वर, रुद्राक्षमाला, अभय व टाकी को हाथों में लिये और कमलकिञ्जल्क के समान रंगवाले त्रिलोचन, चतुर्मुख

वामदेवजी उत्तर दिशा में मेरी रक्षा करैं ॥ १२ ॥ और वेद, अभय, वर, अंकुश, टांकी, फँसरी; कपाल, डंका, रुद्राक्ष व शूल को हाथ में लिये श्वेत दीप्ति व उत्तम प्रकाशवाले पंचमुख ईशानजी ऊपर रक्षा करैं ॥ १३ ॥ व चन्द्रमौलिजी मेरे शिर की रक्षा करैं और भालनेत्रजी मेरे मस्तक की रक्षा करैं व भगनेत्रहारक मेरे नेत्रों की रक्षा करैं व विश्वनाथजी सदैव नासिका की रक्षा करैं ॥ १४ ॥ और श्रुतियों में गाये हुए यशवाले शिवजी मेरे कानों की रक्षा करैं व कपालीजी सदैव मेरे कपोल की रक्षा करैं तथा पंचमुखजी सदैव मेरे मुख की रक्षा करैं और वेदजिह्वजी सदैव जिह्वा की रक्षा करैं ॥ १५ ॥ और गिरीश नीलकंठजी कंठ की रक्षा करैं व पिनाक को हाथ में लिये हुए शिवजी दोनों हाथों की रक्षा करैं और धर्मबाहुजी मेरे भुजाओं के मूल की रक्षा करैं व दक्षके

वामदेवः ॥ १२ ॥ वेदाभयेष्टाङ्कुशटङ्कपाशकपालढक्काक्षकशूलपाणिः ॥ सितद्युतिः पञ्चमुखोऽवतान्मामीशान ऊर्द्ध्वं परमप्रकाशः ॥ १३ ॥ मूर्धानमव्यान्मम चन्द्रमौलिर्भालं ममाव्यादथ भालनेत्रः ॥ नेत्रे ममाव्याद्भगनेत्रहारी नासां सदा रक्षतु विश्वनाथः ॥ १४ ॥ पायाच्छ्रुती मे श्रुतिगीतकीर्तिःकपोलमव्यात्सततं कपाली ॥ वक्त्रं सदा रक्षतु पञ्चवक्त्रो जिह्वां सदा रक्षतु वेदजिह्वः ॥ १५ ॥ कण्ठं गिरीशोऽवतु नीलकण्ठः पाणिद्वयं पातु पिनाकपाणिः ॥ दोर्मूलमव्यान्मम धर्मबाहुर्वक्षःस्थलं दक्षमखान्तकोऽव्यात् ॥ १६ ॥ ममोदरं पातु गिरीन्द्रधन्वा मध्यं ममाव्यान्मदनान्तकारी ॥ हेरम्बतातो मम पातु नाभिं पायात्कटीं धूर्जटिरीश्वरो मे ॥ १७ ॥ ऊरुद्वयं पातु कुबेरमित्रो जानुद्वयं मे जगदीश्वरोऽव्यात् ॥ जङ्घायुगं पुङ्गवकेतुरव्यात्पादौ ममाव्यात्सुरवन्द्यपादः ॥ १८ ॥ महेश्वरः पातु दिनादियामे

यज्ञको नाश करनेवाले मेरे वक्षःस्थल की रक्षा करैं ॥ १६ ॥ और गिरीन्द्रधनुषवाले शिवजी मेरे पेट की रक्षा करैं व कामदेवनाशकजी मेरे मध्यभाग की रक्षा करैं और गणेशजी के पिता मेरी नाभिकी रक्षा करैं व धूर्जटि शिवजी मेरी कटि की रक्षा करैं ॥ १७ ॥ व कुबेर के मित्र मेरे दोनों जंघों की रक्षा करैं और जगदीश्वरजी मेरी दोनों घुटनुवों की रक्षा करैं और पुङ्गवकेतुजी मेरी दोनों जंघों की रक्षा करैं व देवताओं से प्रणाम करने योग्य चरणोंवाले शिवजी मेरे चरणों की रक्षा करैं ॥ १८ ॥ दिनके पहले पहर में महेश्वरजी मेरी रक्षा करैं व मध्य के पहर में वामदेवजी रक्षा करैं और तिसरे पहर में त्रिलोचनजी रक्षा करैं व दिन के अन्त-

मां मध्ययामेऽवतु वामदेवः ॥ त्रियम्बकः पातु तृतीययामे वृषध्वजः पातु दिनान्त्ययामे ॥ १९ ॥ पायान्निशादौ शशिशेखरो मां गङ्गाधरो रक्षतु मां निशीथे ॥ गौरीपतिः पातु निशावसाने मृत्युञ्जयो रक्षतु सर्वकालम् ॥ २० ॥ अन्तः स्थितं रक्षतु शङ्करो मां स्थाणुः सदा पातु बहिःस्थितं माम् ॥ तदन्तरे पातु पतिः पशूनां सदा शिवो रक्षतु मां समन्तात् ॥ २१ ॥ तिष्ठन्तमव्याद्भुवनैकनाथः पायाद् व्रजन्तं प्रमथाधिनाथः ॥ वेदान्तवेद्योऽवतु मान्निषण्णं मामव्ययः पातु शिवः शयानम् ॥ २२ ॥ मार्गेषु मां रक्षतु नीलकण्ठः शैलादिदुर्गेषु पुरत्रयारिः ॥ अरण्यवासादिमहाप्रवासे पायान्मृगव्याध उदारशक्तिः ॥ २३ ॥ कल्पान्तकाटोपपटुप्रकोपः स्फुटाट्टहासोच्चलिताण्डकोशः ॥ घोरारिसेनार्णवदुर्निवारमहाभयाद्रक्षतु वीरभद्रः ॥ २४ ॥ पत्त्यश्वमातङ्गघटावरूथसहस्रलक्षायुतकोटिभीषणम् ॥ अक्षौहिणीनां शतमाततायिनां छिन्द्यान्मृडो घोरकुठारधारया ॥ २५ ॥ निहन्तु दस्यून्प्रलयानलार्चिर्ज्वल

वाले पहरमें वृषध्वजजी रक्षा करैं ॥ १९ ॥ व रात्रिके पहले पहर में शशिशेखरजी मेरी रक्षा करैं और गंगाधरजी आधीरात्रि में मेरी रक्षा करैं व गौरीपतिजी रात्रि के अन्त में मेरी रक्षा करैं और मृत्युंजयजी सब समय में मेरी रक्षा करैं ॥ २० ॥ व भीतर स्थित मेरी शङ्करजी रक्षा करैं व स्थाणुजी सदैव बाहर स्थित मेरी रक्षा करैं व उसके मध्यमें पशुवों के पति रक्षा करैं और सदाशिवजी सबओर से मेरी रक्षा करैं ॥ २१ ॥ व लोकों के एकही स्वामी शिवजी खड़ेहुए मेरी रक्षा करैं और चलते हुए मेरी प्रमथाधिनाथजी रक्षा करैं और वेदान्त से जानने योग्य शिवजी बैठेहुए मेरी रक्षा करैं तथा अव्यय शिवजी सोतेहुए मेरी रक्षा करैं ॥ २२ ॥ व नीलकण्ठजी मार्गों में रक्षा करैं और शैलादि दुर्गों में त्रिपुरारिजी रक्षा करैं तथा वनवासादिक महाप्रवास में उदारशक्तिवाले मृगव्याधजी मेरी रक्षा करैं ॥ २३ ॥ और कल्पान्तके आटोपमें प्रवीण क्रोधवाले तथा प्रकट अट्टहास से चलित ब्रह्माण्डवाले वीरभद्रजी भयंकर शत्रुसेनारूपी समुद्रके बड़े कठिन भयसे रक्षा करैं ॥ २४ ॥ और हज़ार, लक्ष, दशहज़ार व करोड़ों पैदल, घोड़ा व हाथियों की गर्जन तथा रथों के लोहादि आवरण से भयंकर मारने के लिये तैयार सैकड़ों अक्षौहिणी को मृडजी घोर कुठार की धारसे काटैं ॥ २५ ॥ और प्रलयाग्नि के समान ज्वालावान् जलता हुआ त्रिपुरान्तकजी का त्रिशूल शत्रुवों को मारै व शिवजी का पिनाक

धनुष व्याघ्र, सिंह, ऋक्ष व भेड़िया आदिक हिंसक जीवों को भगावै ॥ २६ ॥ और लोकों के स्वामी शिवजी मेरे दुस्स्वप्न , दुश्शकुन, दुर्गति, दुर्मनस्य, दुर्भिक्ष, दुर्व्यसन और दुस्सह अयश तथा उत्पात, ताप व विषके भयको और दुष्ट ग्रहों के दुःख व रोगोंको नाश करैं ॥ २७ ॥ ऐश्वर्यों से युक्त सदाशिवजी के लिये नमस्कार है व समस्त तत्त्वात्मक व सब तत्त्वों में विहार करनेवाले, सब लोकों के एकही रचनेवाले, सब लोकोंके एकही पालनेवाले तथा सब लोकों के एकही संहार करनेवाले के लिये प्रणाम है व सब लोकोंके एक गुरु, सब लोकोंके एकही साक्षी, सब वेदों में गुप्त तथा सबको वरदायक, सबोंके पाप व दुःखों के नाशक

त्रिशूलं त्रिपुरान्तकस्य ॥ शार्दूलसिंहर्क्षवृकादिहिंस्रान्सन्त्रासयत्वीश धनुःपिनाकः ॥ २६ ॥ दुःस्वप्नदुःशकुनदुर्गतिदौर्मनस्यदुर्भिक्षदुर्व्यसनदुःसहदुर्यशांसि ॥ उत्पाततापविषभीतिमसद्ग्रहार्तिव्याधींश्च नाशयतु मे जगतामधीशः॥२७॥ ॐ नमो भगवते सदाशिवाय सकलतत्त्वात्मकाय सकलतत्त्वविहाराय सकललोकैककर्त्रे सकललोकैकभर्त्रे सकललोकैकहर्त्रे सकललोकैकगुरवे सकललोकैकसाक्षिणे सकलनिगमगुह्याय सकलवरप्रदाय सकलदुरितार्तिभञ्जनाय सकलजगदभयङ्कराय सकललोकैकशङ्कराय शशाङ्कशेखराय शाश्वतनिजाभासाय निर्गुणाय निरुपमाय नीरूपाय निराभासाय निरामयाय निष्प्रपञ्चाय निष्कलङ्काय निर्द्वन्द्वाय निःसङ्गाय निर्मलाय निर्गमाय नित्यरूपविभवाय निरुपमविभवाय निराधाराय नित्यशुद्धबुद्धपरिपूर्णसच्चिदानन्दाद्वयाय परमशान्तप्रकाशतेजोरूपाय जय जय महारुद्र महारौद्र भद्रावतार दुःखदावदारण महाभैरव कालभैरव कल्पान्तभैरव कपालमालाधर खट्वा

और समस्त संसार को अभय करनेवाले व सब लोकों का एकही कल्याण करनेवाले, चन्द्रभाल, सदैव अपनेही प्रकाशवाले, निर्गुण, निरुपम, अरूप, अभास, निर्व्याधि, निष्प्रपञ्च, निष्कलङ्क, निर्द्वंद्व, निस्सङ्ग, निर्मल, निर्गम, नित्यरूपविभव, निरुपमविभव, निराधार व नित्य शुद्ध बुद्ध परिपूर्ण सच्चिदानन्द अद्वय और परम शान्त व प्रकाश तेजोरूपवाले आपके लिये प्रणाम है व हे महारुद्र, महारौद्र, भद्रावतार, दुःखदावदारण, महाभैरव, कालभैरव, कल्पान्तभैरव,

कपालमालाधर ! आपकी जय हो जय हो हे खट्वाङ्ग, तलवार, ढाल, फँसरी, अंकुश, डमरू, शूल, धनुष, बाण, गदा, शक्ति, भिंदिपाल, तोमर, मुसल, मुद्गर, पट्टिश, परशु, परिघ, भुशुण्डी, शतघ्नी व चक्रादिक अस्त्रों से भयंकर हज़ार हाथोंवाले ! हे मुखदंष्ट्राकराल, विकटाट्टहासविस्फारितब्रह्माण्डमण्डल, नागेन्द्र-कुण्डल, नागेन्द्रहार, नागेन्द्रवलय, नागेन्द्रधर्मधर, मृत्युंजय, त्र्यम्बक, त्रिपुरान्तक, विरूपाक्ष, विश्वेश्वर, विश्वरूप, वृषवाहन, विषभूषण, विश्वतोमुख ! सब ओर से मेरी रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ज्वल ज्वल महामृत्युभय को व अपमृत्युभय को नाश कीजिये नाश कीजिये व रोगभयको नाश कीजिये नाश कीजिये और

ङ्गखड्गचर्म्मपाशाङ्कुशडमरुशूलचापबाणगदाशक्तिभिण्डिपालतोमरमुसलमुद्गरपट्टिशपरशुपरिघभुशुण्डीशतघ्नीचक्राद्यायुधभीषणकरसहस्रमुखदंष्ट्राकरालविकटाट्टहासविस्फारितब्रह्माण्डमण्डल नागेन्द्रकुण्डल नागेन्द्रहार नागेन्द्रवलय नागेन्द्रचर्मधर मृत्युञ्जय त्र्यम्बक त्रिपुरान्तक विरूपाक्ष विश्वेश्वर विश्वरूप वृषभवाहन विषभूषण विश्वतोमुख सर्वतो रक्ष रक्ष मां ज्वल ज्वल महामृत्युभयमपमृत्युभयं नाशय नाशय रोगभयमुत्सादयोत्सादय विषसर्पभयं शमय शमय चोरभयं मारय मारय मम शत्रूनुच्चाटयोच्चाटय शूलेन विदारय विदारय कुठारेण भिन्धि भिन्धि खड्गेन छिन्धि छिन्धि खट्वाङ्गेन विपोथय विपोथय मुसलेन निष्पेषय निष्पेषय बाणैः सन्ताडय सन्ताडय रक्षांसि भीषय भीषय भूतानि विद्रावय विद्रावय कूष्माण्डवेतालमारीगणब्रह्मराक्षसान्सन्त्रासय सन्त्रासय ममाभयं कुरु कुरु वित्रस्तं ममाश्वासयाश्वासय नरकभयान्मामुद्धारयोद्धारय संजीवय संजीवय क्षुत्तृड्भ्यां मा

विष व सर्प के भयको शान्त कीजिये शान्त कीजिये चोरभयको मारिये मारिये व मेरे शत्रुओं को उच्चाटन कीजिये उच्चाटन कीजिये शूल से विदारण कीजिये विदारण कीजिये व कुठारसे भेदन कीजिये भेदन कीजिये तलवारसे काटिये काटिये खट्वाङ्गसे नाश कीजिये नाश कीजिये मुसलसे पीसिये पीसिये बाणोंसे मारिये मारिये राक्षसोंको डरवाइये डरवाइये भूतोंको भगाइये भगाइये व कूष्मांड, वेताल, मारीगण और ब्रह्मराक्षसों को डरवाइये डरवाइये मुझको अभय कीजिये अभय कीजिये डरेहुए मुझको समझाइये समझाइये व नरक के भयसे मुझको उधारिये उधारिये जिलाइये जिलाइये और क्षुधा व प्यासके कारण मुझको तृप्त कीजिये

तृप्त कीजिये व दुःख से विकल मुझको आनन्द कीजिये आनन्द कीजिये शिवकवच से मुझको आच्छादन कीजिये आच्छादन कीजिये हे त्र्यम्बक, सदाशिवजी! तुम्हारे लिये प्रणाम है प्रणाम है प्रणाम है ॥ ऋषभजी बोले कि सब प्राणियों की समस्त पीडाओं को नाश करनेवाली इस वरदायक व गुप्त शिवकवच को मैंने कहा ॥ २८ ॥ सदैव जो मनुष्य शिवजी की उत्तम कवच को धारण करता है उसको शिवजी की दया से कहीं भय नहीं होता है ॥ २९ ॥ क्षीण आयुर्बल व मृत्यु को प्राप्त तथा महारोगों से नष्ट भी मनुष्य शीघ्रही सुख को पाता है व दीर्घ आयुर्बल को पाता है ॥ ३० ॥ सब दरिद्रों को नाश करनेवाली व सौमङ्गल्य को बढ़ाने

माप्याययाप्यायय दुःखातुरं मामानन्दयानन्दय शिवकवचेन मामाच्छादयाच्छादय त्र्यम्बक सदाशिव नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ ऋषभ उवाच ॥ इत्येतत्कवचं शैवं वरदं व्याहृतं मया ॥ सर्ववाधाप्रशमनं रहस्यं सर्वदेहिनाम् ॥ २८ ॥ यः सदा धारयेन्मर्त्यः शैवं कवचमुत्तमम् ॥ न तस्य जायते क्वापि भयं शम्भोरनुग्रहात् ॥ २९ ॥ क्षीणायुर्मृत्युमापन्नो महारोगहतोऽपि वा ॥ सद्यः सुखमवाप्नोति दीर्घमायुश्च विन्दति ॥ ३० ॥ सर्वदारिद्र्यशमनं सौमङ्गल्यविवर्धनम् ॥ यो धत्ते कवचं शैवं स देवैरपि पूज्यते ॥ ३१ ॥ महापातकसंघातैर्मुच्यते चोपपातकैः ॥ देहान्ते शिवमाप्नोति शिववर्मानुभावतः ॥ ३२ ॥ त्वमपि श्रद्धया वत्स शैवं कवचमुत्तमम् ॥ धारयस्व मया दत्तं सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा ऋषभो योगी तस्मै पार्थिवसूनवे ॥ ददौ शङ्खं महारावं खड्गं चारिनिषूदनम् ॥ ३४ ॥ पुनश्च भस्म संमन्त्र्य तदङ्गं सर्वतोऽस्पृशत् ॥ गजानां षट्सहस्रस्य द्विगुणं च बलं ददौ ॥ ३५ ॥ भस्म

वाली शिवकवचको जो धारण करता है वह देवताओं से भी पूजा जाता है ॥ ३१ ॥ और महापातकों के समूहों से व उपपातकों से छूट जाताहै और शिवकवच के प्रभावसे वह शरीरके नाशमें शिवजीको प्राप्त होताहै ॥ ३२ ॥ हे वत्स! मुझसे दीहुई उत्तम शिवजी की कवच को तुमभी श्रद्धा से धारण करो तो शीघ्रही कल्याण को पावोगे ॥ ३३ ॥ सूतजी बोले कि यह कहकर ऋषभ योगीने उस राजपुत्र के लिये बडे शब्दवाला शङ्ख व शत्रुनाशक तलवार को दिया ॥ ३४ ॥ फिर भस्मको भली भाँति मन्त्रित कर उस राजपुत्र के अंग में सबकहीं लगाया और छह हज़ार हाथियों के दूने याने बारह हजार हाथियों का पराक्रम दिया ॥ ३५ ॥ व भस्मके

प्रभावसे बल, ऐश्वर्य, धैर्य व स्मरणको पाकर वह राजपुत्र लक्ष्मीसे शरद् ऋतु के सूर्यनारायणकी नाईं शोभित हुआ ॥ ३६ ॥ फिर हाथों को जोड़ेहुए उस राजपुत्र से उस योगी ने कहा कि मैंने तपस्या व मंत्र के प्रभाव से इस तलवार को दिया है ॥ ३७ ॥ पैनी धारवाली इस तलवार को जिसको दिखलाइयेगा वह शत्रु साक्षात् मृत्यु भी आपही शीघ्र मरजावेगा ॥ ३८ ॥ और तुम्हारे जो शत्रु इस शंख का शब्द सुनैंगे चैतन्यतारहित वे मूर्च्छित होकर शस्त्रों को डालकर गिर-पड़ैंगे ॥ ३९ ॥ यह दिव्य तलवार व शंख शत्रु की सेना को नाश करनेवाला है व अपनी सेना और अपने पक्षवाले लोगों की शूरता व तेज को बढ़ानेवाला

प्रभावात्संप्राप्य बलैश्वर्यधृतिस्मृतीः ॥ स राजपुत्रः शुशुभे शरदर्क इव श्रिया ॥ ३६ ॥ तमाह प्राञ्जलिं भूयः स योगी राजनन्दनम् ॥ एष खड्गो मया दत्तस्तपोमन्त्रानुभावतः ॥ ३७ ॥ शितधारमिमं खड्गं यस्मै दर्शयसि स्फुटम् ॥ स सद्यो म्रियते शत्रुः साक्षान्मृत्युरपि स्वयम् ॥ ३८ ॥ अस्य शङ्खस्य निह्रादं ये शृण्वन्ति तवाहिताः ॥ ते मूर्च्छिताः पतिष्यन्ति न्यस्तशस्त्रा विचेतनाः ॥ ३९ ॥ खड्गशङ्खाविमौ दिव्यौ परसैन्यविनाशिनौ ॥ आत्मसैन्यस्वपक्षाणां शौर्यतेजोविवर्धनौ ॥ ४० ॥ एतयोश्च प्रभावेण शैवेन कवचेन च ॥ द्विषट्सहस्रनागानां बलेन महतापि च ॥ ४१ ॥ भस्मधारणसामर्थ्याच्छत्रुसैन्यं विजेष्यसि ॥ प्राप्य सिंहासनं पैत्र्यं गोप्तासि पृथिवीमिमाम् ॥ ४२ ॥ इति भद्रायुषं सम्यगनुशास्य समातृकम् ॥ ताभ्यां संपूजितः सोऽथ योगी स्वैरगतिर्ययौ ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तर खण्डे सीमन्तिनीमाहात्म्ये भद्रायूपाख्याने शिवकवचकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ * ॥

है ॥ ४० ॥ इन दोनों के प्रभावसे व शिवजी की कवच से और बारह हज़ार हाथियों के बड़े भारी बलसे ॥ ४१ ॥ व भस्म धारनेकी सामर्थ्य से तुम शत्रुवों की सेना को जीतोगे और पिता के सिंहासन को पाकर इस पृथ्वी की रक्षा करोगे ॥ ४२ ॥ इस प्रकार माता समेत भद्रायु को भली भाँति सिखलाकर इसके उपरान्त उन दोनों से पूजित वह इच्छा के अनुकूल जानेवाला योगी चला गया ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां सीमन्तिनी माहात्म्येभद्रायूपाख्याने शिवकवचकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । जीत्यो जिमि भद्रायुजी मागधेश नरपाल । तेरहवें अध्याय में सोइ चरित्र रसाल ॥ सूतजी बोले कि तदनन्तर दशार्णदेश के राजा उस बडे पालक वज्रबाहु का बलवान् मगधराज शत्रु हुआ ॥ १ ॥ रणमें उग्र व भुजाओं से शोभित उस हेमरथ नामक बलवान् राजाने बड़ी सेनाको लेकर दशार्णदेशको घेर लिया ॥ २ ॥ और उसके दुर्धर्ष सेनापतियों ने दशार्ण देशको प्राप्त होकर धन व रत्नों को लूटलिया और अन्य सेनाध्यक्षों ने घरों को जलादिया ॥ ३ ॥ और कितेक ने धनोंको लेलिया व कितेक ने बालकों को और अन्य सेनावाले लोगों ने स्त्रियों को लेलिया व अन्य गोधन और कितेक लोगों ने धान्य व सामग्रियों को

सूत उवाच ॥ दशार्णाधिपतेस्तस्य वज्रबाहोर्महाभुजः ॥ बभूव शत्रुर्बलवान् राजा मगधराट् ततः ॥ १ ॥ स वै हेमरथो नाम बाहुशाली रणोत्कटः ॥ बलेन महतावृत्य दशार्णं न्यरुधद्बली ॥ २ ॥ चमूपास्तस्य दुर्धर्षाः प्राप्य देशं दशार्णकम् ॥ व्यलुम्पन्वसुरत्नानि गृहाणि ददहुः परे ॥ ३ ॥ केचिद्धनानि जगृहुः केचिद्बालान्स्त्रियोऽपरे ॥ गोधनान्य परेऽगृह्णन्केचिद्धान्यपरिच्छदान् ॥ केचिदारामसस्यानि गृहोद्यानान्यनाशयन् ॥ ४ ॥ एवं विनाश्य तद्राज्यं स्त्रीगोध नजिघृक्षवः ॥ आवृत्य तस्य नगरीं वज्रबाहोस्तु मागधः ॥ ५ ॥ एवं पर्याकुलं वीक्ष्य राजा नगरमेव च ॥ युद्धाय निर्ज गामाशु वज्रबाहुः ससैनिकः ॥ ६ ॥ वज्रबाहुश्च भूपालस्तथा मन्त्रिपुरःसराः ॥ युयुधुर्मागधैः सार्धं निजघ्नुः शत्रुवा हिनीम् ॥ ७ ॥ वज्रबाहुर्महेष्वासो दंशितो रथमास्थितः ॥ विकिरन्बाणवर्षाणि चकार कदनं महत् ॥ ८ ॥ दशार्णराजं

लेलिया व कितेक लोगोंने बग़ीचों व क्षेत्रान्नों तथा घरके समीप बग़ीचों को नाश करदिया ॥ ४ ॥ इस प्रकार स्त्री व गोधन के लेने की इच्छावाले लोग उस राज्य को नाशकर उस वज्रबाहु की पुरी को घेरकर स्थित हुए और मगधराज भी स्थित हुआ ॥ ५ ॥ नगर को इस प्रकार व्याकुल देखकर राजा वज्रबाहु सेनासमेत युद्ध के लिये शीघ्रही निकला ॥ ६ ॥ और वज्रबाहु राजा व मन्त्री आदिक अन्य लोगों ने मागधों के साथ युद्ध किया व शत्रु सेनाको मारा ॥ ७ ॥ बडे धनुष-वाला वज्रबाहु कवच को पहनकर रथ पै बैठा और बाणों की वर्षा करतेहुए उसने बड़ा युद्ध किया ॥ ८ ॥ युद्ध करते हुए दशार्णराज को युद्धमें अत्यन्त दुस्सह

देखकर सब मागधसेना के मनुष्यों ने वेगसे उसी को घेरलिया ॥ ६ ॥ और दृढ़ पराक्रमी मागधों ने बहुत समय तक युद्ध करके उसकी सेनाको नाश किया व जीतकी लक्ष्मी को पाया ॥ १० ॥ कितेक ने उसके रथको नाश किया व कितेक ने उसके धनुष को काटडाला और एक ने उसके सारथी को मारडाला व अन्य ने तलवार को काटडाला ॥ ११ ॥ व कटीहुई तलवार तथा धनुषवाले व मारेहुए सारथीवाले रथरहित राजाको बलसे पकड़कर पराक्रमी मनुष्योंने बाँध लिया ॥१२॥ और उसके मन्त्रीगण व उसकी सब सेनाको जीतकर जीतकी इच्छावाले मागध लोग उसकी पुरीमें पैठे ॥ १३ ॥ और उन्होंने घोड़े, मनुष्य, हाथी,

युध्यन्तं दृष्ट्वा युद्धे सुदुःसहम् ॥ तमेव तरसा वव्रुः सर्वे मागधसैनिकाः ॥ ९ ॥ कृत्वा तु सुचिरं युद्धं मागधा दृढविक्रमाः ॥ तत्सैन्यं नाशयामासुर्लेभिरे च जयश्रियम् ॥ १० ॥ केचित्तस्य रथं जघ्नुः केचित्तद्धनुराच्छिनन् ॥ सूतं तस्य जघानैकस्त्वपरः खड्गमाच्छिनत् ॥ ११ ॥ संछिन्नखड्गधन्वानं विरथं हतसारथिम् ॥ बलाद्गृहीत्वा बलिनो बबन्धुर्नृपतिं रुषा ॥ १२ ॥ तस्य मन्त्रिगणं सर्वं तत्सैन्यं च विजित्य ते ॥ मागधास्तस्य नगरीं विविशुर्जयकाशिनः ॥ १३ ॥ अश्वान्नरान्गजानुष्ट्रान्पशूंश्चैव धनानि च ॥ जगृहुर्युवतीः सर्वाश्चार्वङ्गीश्चैव कन्यकाः ॥ १४ ॥ राज्ञो बबन्धुर्महिषीर्दासीश्चैव सहस्रशः ॥ कोशं च रत्नसंपूर्णं जहुस्तेऽप्याततायिनः ॥ १५ ॥ एवं विनाश्य नगरीं हृत्वा स्त्रीगोधनादिकम् ॥ वज्रबाहुं बलाद्बद्ध्वा रथे स्थाप्य विनिर्ययुः ॥ १६ ॥ एवं कोलाहले जाते राष्ट्रनाशे च दारुणे ॥ राजपुत्रोऽथ भद्रायुस्तद्वार्तामशृणोद्बली ॥ १७ ॥ पितरं शत्रुनिर्बद्धं पितृपत्नीस्तथा हृताः ॥

ऊंट, पशु, धन व सब स्त्रियों और सुन्दर अङ्गोंवाली कन्याओंको लेलिया ॥ १४ ॥ और मारने के लिये तैयार उन मागधों ने राजाकी स्त्रियों व हजारों दासियों को तथा रत्नोंसे पूर्ण ख़ज़ाने को लेलिया ॥ १५ ॥ इस प्रकार नगरी को नाशकर व स्त्री और गऊ, धनादिक को हरकर व वज्रबाहु को बलसे बाँधकर मागधलोग रथ पै बिठाकर निकल गये ॥ १६ ॥ इस प्रकार राज्य के नाश में भयंकर कोलाहल होनेपर राजाके पुत्र पराक्रमी भद्रायु ने उस बात को सुना ॥ १७ ॥ शत्रुवों

से बँधेहुए पिता व हरीहुई पिताकी स्त्रियों को सुनकर और दशार्णदेशके राज्य को नष्ट सुनकर वह सिंहकी नाईं गर्जनेलगा ॥ १८ ॥ और तलवार व शङ्ख को लेकर वह वैश्यपुत्र सहायकवाला राजपुत्र जीतने की इच्छा से घोडे पै चढ़कर व कवच को पहनकर ॥ १९ ॥ मागधों से पूर्ण उस देश को वेग से आकर जलते व चिल्लाते और हरेहुए स्त्री, पुत्र व गोधन को ॥ २० ॥ व सब राजजन और राज्य को शून्य व भयसे विकल देखकर क्रोधसे धमित मनवाले राजपुत्र ने शीघ्रही शत्रु की सेना में पैठकर व धनुष को कानों तक खींचकर बाणों की वर्षा किया ॥ २१ ॥ राजपुत्रसे बाणों करके मारेजाते हुए उन शत्रुवोंने

नष्टं दशार्णराष्ट्रं च श्रुत्वा चुक्रोश सिंहवत् ॥ १८ ॥ सखड्गशङ्खावादाय वैश्यपुत्रसहायवान् ॥ दंशितो हयमारुह्य कुमारो विजिगीषया ॥ १९ ॥ जवेनागत्य तं देशं मागधैरभिपूरितम् ॥ दह्यमानं क्रन्दमानं हृतस्त्रीसुतगोधनम् ॥ २० ॥ दृष्ट्वा राजजनं सर्वं राज्यं शून्यं भयाकुलम् ॥ क्रोधाध्मातमनास्तूर्णं प्रविश्य रिपुवाहिनीम् ॥ आकर्णाकृष्टकोदण्डो ववर्ष शरसन्ततीः ॥ २१ ॥ ते हन्यमाना रिपवो राजपुत्रेण सायकैः ॥ तमभिद्रुत्य वेगेन शरैर्विव्यधुरुल्बणैः ॥ २२ ॥ हन्यमानोऽस्त्रपूगेन रिपुभिर्युद्धदुर्मदैः ॥ न चचाल रणे धीरः शिववर्माभिरक्षितः ॥ २३ ॥ सोऽस्त्रवर्षं प्रसह्याशु प्रविश्य गजलीलया ॥ जघानाशु रथान्नागान्पदातीनपि भूरिशः ॥ २४ ॥ तत्रैकं रथिनं हत्वा ससूतं नृपनन्दनः ॥ तमेव रथमास्थाय वैश्यनन्दनसारथिः ॥ विचचार रणे धीरः सिंहो मृगकुलं यथा ॥ २५ ॥ अथ सर्वे सुसंरब्धाः शूराः प्रोद्यतकार्मुकाः ॥ अभिसस्रुस्तमेवैकं चमूपा बलशालिनः ॥ २६ ॥ तेषामापततामग्रे खड्गमुद्यम्य दारुणम् ॥

वेगसे उसके सामने आकर उग्र बाणों से बेधन किया ॥ २२ ॥ युद्धमें दुर्मद शत्रुवों से अस्त्रसमूह करके मारा जाताहुआ वह शिवकवच से रक्षित बुद्धिमान् राजपुत्र युद्धमें न हटा ॥ २३ ॥ उसने अस्त्रों की वर्षा को सहकर शीघ्रही हाथियों की लीला से पैठकर बहुतसे रथ, हाथी व पैदलों को शीघ्र मारा ॥ २४ ॥ व उस युद्ध में सारथी समेत एक रथीको मारकर वैश्यपुत्र सारथीवाला बुद्धिमान् राजपुत्र उसी रथ पै बैठकर युद्ध में घूमनेलगा जैसे कि सिंह मृगगण को मारकर घूमै ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त धनुषों को उठाये हुए बलसे शोभित सब बड़े क्रोधित शूर सेनापति उस एक राजपुत्र के सामने चले ॥ २६ ॥ व आतेहुए उनके आगे कराल

तलवार को उठाकर महावीरोंको पराक्रम दिखलाता हुआ राजपुत्र सामने गया ॥ २७ ॥ व भयंकर काल की जिह्वा के समान उसकी बडी उज्ज्वल तलवार को देखही कर उसके प्रभावसे सेनापति यकायक मरगये ॥ २८ ॥ रणके आगन में चमकती हुई उस तलवार को जो जो देखते थे वे सब मृत्यु को प्राप्त होते थे जैसे कि वज्रको पाकर कीट मरजावै ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त पृथ्वी व आकाश को पूर्ण करते हुए इस महाभुज राजकुमार ने सब सेनाओं के नाश के लिये बड़े शब्दवाले शङ्ख को बजाया ॥ ३० ॥ और विष लगेहुए से बड़ेभारी उस शङ्ख शब्द के सुननेही से शत्रुलोग मूर्च्छित होकर पृथ्वी में गिरपड़े ॥ ३१ ॥ जो

अभ्युद्ययौ महावीरान्दर्शयन्निव पौरुषम् ॥ २७ ॥ करालान्तकजिह्वाभं तस्य खड्गं महोज्ज्वलम् ॥ दृष्ट्वैव सहसा मम्रुश्चमूपास्तत्प्रभावतः ॥ २८ ॥ ये ये पश्यन्ति तं खड्गं प्रस्फुरन्तं रणाङ्गणे ॥ ते सर्वे निधनं जग्मुर्वज्रं प्राप्येव कीटकः ॥ २९ ॥ अथासौ सर्वसैन्यानां विनाशाय महाभुजः ॥ शङ्खं दध्मौ महारावं पूरयन्निव रोदसी ॥ ३० ॥ तेन शङ्खनिनादेन विषाक्तेनैव भूयसा ॥ श्रुतमात्रेण रिपवो मूर्च्छिताः पतिता भुवि ॥ ३१ ॥ येऽश्वपृष्ठे रथे ये च ये च दन्तिषु संस्थिताः ॥ ते विसंज्ञाः क्षणात्पेतुः शङ्खनादहतौजसः ॥ ३२ ॥ तान्भूमौ पतितान्सर्वान्नष्टसंज्ञान्निरायुधान् ॥ विगणय्य शवप्रायान्नावधीद्धर्मशास्त्रवित् ॥ ३३ ॥ आत्मनः पितरं बद्धं मोचयित्वा रणाजिरे ॥ तत्पत्नीः शत्रुवशगाः सर्वाः सद्यो व्यमोचयत् ॥ ३४ ॥ पत्नीश्च मन्त्रिमुख्यानां तथान्येषां पुरौकसाम् ॥ स्त्रियो बालांश्च कन्याश्च गोधनादीन्यनेकशः ॥ ३५ ॥ मोचयित्वा रिपुभयात्तमाश्वासयदाकुलम् ॥ अथारिसैन्येषु चरंस्तेषां जग्राह

घोडे की पीठ पै व जो रथ पै और जो हाथियों पै बैठे थे शङ्ख के शब्द से नष्टबलवाले वे मूर्च्छित होकर क्षणभर में गिरपडे ॥ ३२ ॥ पृथ्वी में गिरेहुए उन अस्त्र-रहित व मूर्च्छित सब सैनिक लोगों को मुर्दों के समान जानकर धर्मशास्त्र के जाननेवाले उस राजकुमार ने नहीं मारा ॥ ३३ ॥ व रण के आंगन में बँधेहुए पिताको छुड़ाकर उसने शत्रुके वशमें प्राप्त सब उसकी स्त्रियोंको शीघ्रही छुड़ाया ॥ ३४ ॥ और मुख्य मन्त्रियों की स्त्रियों तथा अन्य पुरवासीलोगों की स्त्रियों व बालकों और कन्याओं को व अनेक गोधनों को ॥ ३५ ॥ छुड़ाकर उस व्याकुल पिताको शत्रुके भयसे समझाया इसके उपरान्त शत्रुसेनाओं में घूमतेहुए उसने

उनकी स्त्रियों को पकडलिया ॥ ३६ ॥ और पवन व मनके समान वेगवाले घोडों और पर्वतों के समान हाथियों को तथा सोने के रथ व सुन्दर मुखवाली दासियों को लेलिया ॥ ३७ ॥ वेगसे सबको हरकर व उसका बहुतसा धन लेकर सुवर्ण के रथवाले हारेहुए मागधेश को बाँधलिया ॥ ३८ ॥ और उसके मन्त्री, राजा व उसमें मुख्य स्वामियों को वेगसे पकड़ कर व बाँधकर शीघ्रही पुरी में प्रवेश कराया ॥ ३९ ॥ पहले युद्धमें जो लोग भगे व सब दिशाओं में चलेगये थे विश्वास को प्राप्त वे मुख्य मन्त्री व नायक लोग आये ॥ ४० ॥ और राजकुमार का पराक्रम देखकर सबके मन विस्मित हुए व सबों ने उसको कारणसे

योषितः ॥ ३६ ॥ मरुन्मनोजवानश्वान्मातङ्गान्गिरिसन्निभान् ॥ स्यन्दनानि च रौक्माणि दासीश्च रुचिराननाः ॥३७॥ युग्मम् ॥ सर्वमाहृत्य वेगेन गृहीत्वा तद्धनं बहु ॥ मागधेशं हेमरथं निर्बबन्ध पराजितम् ॥३८॥ तन्मन्त्रिणश्च भूपांश्च तत्र मुख्यांश्च नायकान् ॥ गृहीत्वा तरसा बद्ध्वा पुरीं प्रावेशयद्द्रुतम् ॥ ३९ ॥ पूर्वं ये समरे भग्ना विद्रुत्ताः सर्वतोदिशम् ॥ ते मन्त्रिमुख्या विश्वस्ता नायकाश्च समाययुः ॥ ४० ॥कुमारविक्रमं दृष्ट्वा सर्वे विस्मितमानसाः ॥ तं मेनिरे सुरश्रेष्ठं कारणादागतं भुवम् ॥ ४१ ॥ अहो नः सुमहाभाग्यमहो नस्तपसः फलम् ॥ केनाप्यनेन वीरेण मृताः संजीविताः खलु ॥ ४२ ॥ एष किं योगसिद्धो वा तपःसिद्धोऽथवाऽमरः ॥ अमानुषमिदं कर्म यदनेन कृतं महत् ॥ ४३ ॥ नूनमस्य भवेन्माता सा गौरीति शिवः पिता ॥ अक्षौहिणीनां नवकं जिगायानन्तशक्तिधृक् ॥ ४४ ॥ इत्याश्चर्ययुतैर्हृष्टैः प्रशंसद्भिः परस्परम् ॥ पृष्टोऽमात्यजनेनासावात्मानं प्राह तत्त्वतः ॥ ४५ ॥ समागतं स्वपितरं विस्म

पृथ्वी में आयेहुए विष्णुजी माना ॥ ४१ ॥ कि अहो हमलोगों का बडा भाग्य है व हमलोगों की बडी तपस्या है क्योंकि मरेहुए हमलोग किसी इस वीरसे जिलाये गये हैं ॥ ४२ ॥ क्या यह योगसिद्ध है या तपस्या से सिद्ध है या देवता है जो कि इसने बड़ाभारी अमानुष कर्म किया है ॥ ४३ ॥ निश्चयकर इसकी माता पार्वती और पिता महादेवजी होंगे क्योंकि अनन्त शक्तिको धारनेवाले इसने नव अक्षौहिणी सेना को जीतलिया ॥ ४४ ॥ इस प्रकार आश्चर्य से संयुत व प्रसन्न तथा परस्पर प्रशंसा करतेहुए लोगोंसे व मन्त्री लोगोंसे पूंछेहुए इसने अपना को यथार्थ कहा ॥ ४५ ॥ और आश्चर्य व आनन्द में मग्न तथा आनन्द के जलको

के योग्य मुहूर्त में भद्रायु को बुलाकर कीर्तिमालिनी को देदिया ॥ ६४ ॥ और विवाह करके वह राजेन्द्र का पुत्र सिंहासन पै बैठकर स्त्री समेत इस प्रकार शोभित हुआ जैसे कि रोहिणी से चन्द्रमा शोभित होता है ॥ ६५ ॥ और उसके पिता वज्रबाहुको बुलाकर मन्त्रियों समेत उस निषधराजने नगरमें प्रवेश कराकर आगे जाकर पूजन किया ॥ ६६ ॥ और वहां विवाह कियेहुए शत्रुनाशक भद्रायु को देखा व चरणों में पडेहुए उसको प्रेम व हर्षसे लिपटा लिया ॥ ६७ ॥ व कहा कि यह शत्रु नाशक वीर मेरे प्राणों का दायक है और अमित पराक्रमवाले इसका मैंने वंश नहीं जाना है ॥ ६८ ॥ हे चन्द्राङ्गद, राजन्! जो यह बड़ा बलवान्

मालिनीम् ॥ ६४ ॥ कृतोद्वाहः स राजेन्द्रतनयः सह भार्यया ॥ हेमासनस्थः शुशुभे रोहिण्येव निशाकरः ॥ ६५ ॥ वज्रबाहुं तत्पितरं समाहूय स नैषधः ॥ पुरं प्रवेश्य सामात्यः प्रत्युद्गम्याभ्यपूजयत् ॥ ६६ ॥ तत्रापश्यत्कृतोद्वाहं भद्रायुषमरिन्दमम् ॥ पादयोः पतितं प्रेम्णा हर्षात्तं परिषस्वजे ॥ ६७ ॥ एष मे प्राणदो वीर एष शत्रुनिषूदनः ॥ अथाप्यज्ञातवंशोऽयं मयानन्तपराक्रमः ॥ ६८ ॥ एष ते नृप जामाता चन्द्राङ्गद महाबलः ॥ अस्य वंशमथोत्पत्तिं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ६९ ॥ इत्थं दशार्णराजेन प्रार्थितो निषधाधिपः ॥ विविक्त उपसंगम्य प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ७० ॥ एष ते तनयो राजञ्छैशवे रोगपीडितः ॥ त्वया वने परित्यक्तः सह मात्रा रुजार्तया ॥ ७१ ॥ परिभ्रमन्ती विपिने सा नारी शिशुनामुना ॥ दैवाद्वैश्यगृहं प्राप्ता तेन वैश्येन रक्षिता ॥ ७२ ॥ अथासौ बहुरोगार्तो मृतस्तव कुमारकः ॥ केनापि योगिराजेन मृतः संजीवितः पुनः ॥ ७३ ॥ ऋषभाख्यस्य तस्यैव प्रभावाच्छिवयोगिनः ॥

तुम्हारा दामाद है इसका वंश व उत्पत्ति मैं यथार्थ सुना चाहता हूं ॥ ६९ ॥ दशार्णदेश के राजा से इस प्रकार पूंछेहुए निषधराजने एकान्त में जाकर हँसतेहुए से यह कहा ॥ ७० ॥ कि हे राजन्! बाल्यावस्थामें तुम्हारा यह पुत्र रोगसे पीड़ितथा और रोग से विकल माता समेत इसको तुमने वनमें छोड़दिया ॥ ७१ ॥ व इस बालक समेत वनमें घूमतीहुई वह स्त्री भाग्य से वैश्य के घरमें प्राप्तहुई और उस वैश्य से रक्षा कीगई ॥ ७२ ॥ इसके उपरान्त बहुत रोग से विकल यह तुम्हारा बालक मरगया और मरेहुए को किसी योगीराज ने फिर जिलाया ॥ ७३ ॥ और ऋषभ नामक उसी शिव योगी के प्रभाव से माता व बालक देवताओं के समान

रूपको प्राप्तहुए ॥ ७४ ॥ और उससे दीहुई शत्रुनाशक तलवार व शङ्ख से शिवकवच से रक्षित इसने युद्ध में शत्रुवों को जीता है ॥ ७५ ॥ और अकेला यह बारह हजार हाथियों के बलको धारनेवाला है व सब विद्याओं में प्रवीण यह मेरी जामातृता को प्राप्त है याने दामाद है ॥ ७६ ॥ इस कारण हे राजन्! उत्तम व्रतोंवाली इसकी माताको व इसको लेकर अपनी पुरी को जावो तो उत्तम कल्याणको पावोगे ॥ ७७ ॥ इस प्रकार चन्द्राङ्गद ने सब वृत्तान्त कहकर घरके भीतर बैठीहुई उसकी भूषित बड़ी रानीको बुलाकर दिखलाया ॥ ७८ ॥ इत्यादिक सब वृत्तान्त को सुनकर व देखकर वह राजा बहुत लज्जित हुआ और मूढ़ता से अपने

रूपं च देवसदृशं प्राप्तौ मातृकुमारकौ ॥ ७४ ॥ तेन दत्तेन खड्गेन शङ्खेन रिपुघातिना ॥ जिगाय समरे शत्रूञ्छिववर्माभिरक्षितः ॥ ७५ ॥ द्विषट्सहस्रनागानां बलमेको बिभर्त्यसौ ॥ सर्वविद्यासु निष्णातो मम जामातृतां गतः ॥ ७६ ॥ अत एनं समादाय मातरं चास्य सुव्रताम् ॥ गच्छस्व नगरीं राजन्प्राप्स्यसि श्रेय उत्तमम् ॥ ७७ ॥ इति चन्द्राङ्गदः सर्वमाख्यायान्तर्गृहे स्थिताम् ॥ तस्याग्रपत्नीमाहूय दर्शयामास भूषिताम् ॥ ७८ ॥ इत्यादि सर्वमाकर्ण्य दृष्ट्वा च स महीपतिः ॥ व्रीडितो नितरां मौढ्यात्स्वकृतं कर्म गर्हयन् ॥ ७९ ॥ प्राप्तश्च परमानन्दं तयोर्दर्शनकौतुकात् ॥ पुलकाङ्कितसर्वाङ्गस्तावुभौ परिषस्वजे ॥ ८० ॥ युग्मम् ॥ एवं निषधराजेन पूजितश्चाभिनन्दितः ॥ स भोजयित्वा तं सम्यक्स्वयं च सह मन्त्रिभिः ॥ ८१ ॥ तामात्मनोग्रमहिषीं पुत्रं तमपि तां स्नुषाम् ॥ आदाय सपरीवारो वज्रबाहुः पुरीं ययौ ॥ ८२ ॥ स संभ्रमेण महता भद्रायुः पितृमन्दिरम् ॥ संप्राप्य परमानन्दं चक्रे सर्वपुरौकसाम् ॥ ८३ ॥ कालेन दिव

कियेहुए कर्म की निन्दा करता हुआ वह ॥ ७९ ॥ उन दोनों के देखने के कौतुक से बड़े आनन्द को प्राप्तहुआ और रोमाञ्चित सर्वांगवाले उसने उन दोनों को लिपटा लिया ॥ ८० ॥ इस प्रकार निषधराज से पूजित व प्रशंसित वह उसको भोजन कराकर व मन्त्रियों समेत आप भी भोजन करके ॥ ८१ ॥ उस अपनी बड़ी रानी व उस पुत्र और उस पतोहू को लेकर परिवार समेत वज्रबाहु पुरी को चलागया ॥ ८२ ॥ और बड़े संभ्रम से पिताके मन्दिर को प्राप्त होकर उसने सब नगरनिवासियों को बड़ा आनन्द किया ॥ ८३ ॥ और जब पिता काल से स्वर्गारूढ़ हुआ तब युवावस्थाको प्राप्त अद्भुत पराक्रमवाले भद्रायु ने सब

पृथ्वी को पालन किया ॥ ८४ ॥ और ब्रह्मर्षियों के समीप बड़ी मित्रता करके हेमरथ मगधराजको बन्धन से छुडाया ॥ ८५ ॥ इस प्रकार त्रिलोक मे पूजित शिवयोगी की पूजा करके प्राचीन जन्ममें भी उस राजपुत्र ने दुस्सह विपत्ति के गणको नॉघकर व राज्य को पाकर चन्द्राङ्गद की कन्या के साथ रमण किया ॥ ८६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकाया भद्रायुविवाहकथनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ⊙ ॥ ⊙ ॥

दो० । जिमि भद्रायुष नृपति को दीन्हो शिव वरदान । चौदहवें अध्याय में सोई कियो वखान ॥ सूतजी बोले कि सिंहासन को प्राप्त उस वीर भद्रायु राजा

मारूढे पितरि प्राप्तयौवनः ॥ भद्रायुः पृथिवीं सर्वां शशासाद्भुतविक्रमः ॥ ८४ ॥ मागधेशं हेमरथं मोचयामास बन्धनात् ॥ संधाय मैत्रीं परमां ब्रह्मर्षीणां च सन्निधौ ॥ ८५ ॥ इत्थं त्रिलोकमहितां शिवयोगिपूजां कृत्वा पुरातनभवेऽपि स राजसूनुः ॥ निस्तीर्य दुःसहविपद्गणमाप्तराज्यश्चन्द्राङ्गदस्य सुतया सह साधु रेमे ॥ ८६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे भद्रायुविवाहकथनंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ प्राप्तसिंहासनो वीरो भद्रायुः स महीपतिः ॥ प्रविवेश वनं रम्यं कदाचिद्भार्यया सह ॥ १ ॥ तस्मिन्विकसिताशोकप्रसूननवपल्लवे ॥ प्रोत्फुल्लमल्लिकाखण्डकूजद्भ्रमरसंकुले ॥ २ ॥ नवकेसरसौरभ्यवद्धरागिजनोत्सवे ॥ सद्यःकोरकिताशोकतमालगहनान्तरे ॥ ३ ॥ प्रसूनप्रकरानम्रमाधवीवनमण्डपे ॥ प्रवालकुसुमोद्द्योतच्चूतशाखिभिरञ्चिते ॥ ४ ॥ पुन्नागवनविभ्रान्तपुंस्कोकिलविराविणि ॥ वसन्तसमये रम्ये विजहार स्त्रिया सह ॥ ५ ॥ अथा

ने किसी समय स्त्री समेत सुन्दर वनमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ और प्रफुल्लित अशोकके पुष्प व नवीन पत्तोंवाले तथा फूली हुई चमेली समूह व कूजते हुए भँवरों से संयुत उस वन में ॥ २ ॥ और नवीन केसर की सुगन्ध में बँधे अनुरागी जनों के आनन्दवाले व शीघ्रही कलियों से संयुत अशोक व तमालवन के मध्य में ॥ ३ ॥ और पुष्पसमूहों से कुछ झुँके हुए जूही के वन के मंडपवाले और पत्तों व पुष्पों से प्रकाशित आम्रवृक्षों से पूजित ॥ ४ ॥ और पुन्नाग के वन में भ्रमित पुरुष कोकिलाओं के शब्दवाले वन में उस राजा ने मनोहर वसन्तसमय में स्त्री समेत विहार किया ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त श्रेष्ठ राजा ने थोड़ी दूर पै

व्याघ्रसे अनुगामी दौडते व चिल्लाते हुए स्त्री पुरुषों को देखा ॥ ६ ॥ वे यह कहते थे कि हे दयानिधे, महाराज, राजन्! रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये यह बडा वेगवान् व्याघ्र हम दोनों को खाने के लिये दौडता है ॥ ७ ॥ हे भूपते! सब प्राणियों को भयंकर यह पर्वत के समान व्याघ्र प्राप्त होकर जब तक न खा जावै तब तक हम दोनों की रक्षा कीजिये ॥ ८ ॥ इस प्रकार चिल्लाने का शब्द सुनकर उस राजा ने धनुष को लिया तब तक व्याघ्रने बीच में आकर उस स्त्री को पकड़ लिया ॥ ९ ॥ हा नाथ, नाथ! हा कान्त! हा जगतःपते, शम्भो! इसप्रकार बहुत रोती हुई उस स्त्री को जब तक भयंकर व्याघ्र ने पकड़ा ॥ १० ॥

विदूरे क्रोशन्तौ धावन्तौ द्विजदम्पती ॥ अन्वीयमानौ व्याघ्रेण ददर्श नृपसत्तमः ॥ ६ ॥ पाहि पाहि महाराज हा राजन् करुणानिधे ॥ एष धावति शार्दूलो जग्धुमावां महारयः ॥ ७ ॥ एष पर्वतसंकाशः सर्वप्राणिभयङ्करः ॥ यावन्न खादति प्राप्य तावन्नौ रक्ष भूपते ॥ ८ ॥ इत्थमाक्रन्दितं श्रुत्वा स राजा धनुराददे ॥ तावदागत्य शार्दूलो मध्ये जग्राह तां वधूम् ॥ ९ ॥ हा नाथ नाथ हा कान्त हा शम्भो जगतःपते ॥ इति रोरूयमाणां तां यावज्जग्राह भीषणः ॥ १० ॥ तावत्स राजा निशितैर्भल्लैर्व्याघ्रमताडयत् ॥ न च तैर्विव्यथे किञ्चिद्गिरीन्द्र इव वृष्टिभिः ॥ ११ ॥ स शार्दूलो महासत्त्वो राज्ञोऽस्त्रैरकृतव्यथः ॥ बलादाकृष्य तां नारीमपाक्रामत सत्वरः ॥ १२ ॥ व्याघ्रेणापहृतां पत्नीं वीक्ष्य विप्रोऽतिदुःखितः ॥ रुरोद हा प्रिये बाले हा कान्ते हा पतिव्रते ॥ १३ ॥ एकं मामिह सन्त्यज्य कथं लोकान्तरं गता ॥ प्राणेभ्योपि प्रियां त्यक्त्वा कथं जीवितुमुत्सहे ॥ १४ ॥ राजन्क ते महास्त्राणि क ते श्लाघ्यं महद्धनुः ॥

तब तक उस राजा ने पैने बाणों से व्याघ्र को मारा और वह उन बाणों से व्यथित न हुआ जैसे कि वृष्टियों से हिमाचल नहीं व्यथित होता है ॥ ११ ॥ और राजा के बाणों से पीड़ित न होकर वह महापराक्रमी व्याघ्र बलसे उस स्त्री को खींचकर शीघ्रता समेत निकल गया ॥ १२ ॥ और व्याघ्र से हरीहुई स्त्रीको देख कर ब्राह्मण बहुत दुःखी हुआ व रोनेलगा कि हा प्रिये, बाले, हा कान्ते, हा पतिव्रते! ॥ १३ ॥ यहा मुझको अकेला छोडकर कैसे परलोक को चलीगई और प्राणों से भी प्यारी मुझको छोड़कर मैं कैसे जीने के लिये उत्साह करूं ॥ १४ ॥ हे राजन्! तुम्हारे बड़े भारी अस्त्र कहा हैं व प्रशंसनीय तुम्हारा बडा भारी धनुष

कहां है और बारह हज़ार हाथियों से अधिक बड़ा भारी बल कहां है ॥ १५ ॥ तुम्हारे शंख तलवार से क्या है और तुम्हारे मंत्रास्त्रों की विद्या से क्या है और उस यत्न व बड़े भारी प्रभाव से क्या है ॥ १६ ॥ और जो अन्य तुममें स्थित है वह सब विफल होगया जो तुम वनवासी जन्तु को मना करने के लिये असमर्थ हो ॥ १७ ॥ और जो दुःख से रक्षा करना है यह क्षत्रिय का परम धर्म है इस कारण वंश के योग्य धर्म के नष्ट होनेपर तुम्हारे जीवन से क्या है ॥ १८ ॥ और धर्मज राजा लोग प्राणों व धनों से भी शरण में आये हुए दुःखी लोगों की रक्षा करते है व उससे हीन मनुष्य मरे के समान हैं ॥ १९ ॥ व दान से हीन धनियों को

क ते द्वादशसाहस्रमहानागातिगं बलम् ॥ १५ ॥ किं ते शंखेन खड्गेन किं ते मन्त्रास्त्रविद्यया ॥ किं च तेन प्रयत्नेन किं प्रभावेण भूयसा ॥ १६ ॥ तत्सर्वं विफलं जातं यच्चान्यत्त्वयि तिष्ठति ॥ यस्त्वं वनौकसं जन्तुं निवारयितुमक्षमः ॥ १७ ॥ क्षात्रस्यायं परो धर्मः क्षताद्यत्परिरक्षणम् ॥ तस्मात्कुलोचिते धर्मे नष्टे त्वज्जीवितेन किम् ॥ १८ ॥ आर्तानां शरणार्तानां त्राणं कुर्वन्ति पार्थिवाः ॥ प्राणैरर्थैश्च धर्मज्ञास्तद्विहीना मृतोपमाः ॥ १९ ॥ धनिनां दानहीनानां गार्हस्थ्याद्भिक्षुता वरा ॥ आर्तत्राणविहीनानां जीवितान्मरणं वरम् ॥ २० ॥ वरं विषादनं राज्ञो वरमग्नौ प्रवेशनम् ॥ अनाथानां प्रपन्नानां कृपणानामरक्षणात् ॥ २१ ॥ इत्थं विलापितं तस्य स्ववीर्यस्य च गर्हणम् ॥ निशम्य नृपतिः शोकादात्मन्येवमचिन्तयत् ॥ २२ ॥ अहो मे पौरुषं नष्टमद्य दैवविपर्ययात् ॥ अद्य कीर्तिश्च मे नष्टा पातकं प्राप्तमुत्कटम् ॥ २३ ॥ धर्मः कालोचितो नष्टो मन्दभाग्यस्य दुर्मतेः ॥ नूनं मे संपदो राज्यमायुष्यं क्षयमेष्यति ॥ २४ ॥

गृहस्थी से भीख मांगना श्रेष्ठ है व दुःखी लोगों की रक्षा से हीन लोगों के जीने से मरना अच्छा है ॥ २० ॥ और शरणमें प्राप्त अनाथ व दीनों की रक्षा न करने से राजा को विष खाना अच्छा है व अग्नि में प्रवेश करना अच्छा है ॥ २१ ॥ इस प्रकार उसका विलाप व अपने पराक्रम की निन्दा को सुनकर राजाने शोक से इस प्रकार मनमें विचार किया ॥ २२ ॥ कि अहो आज दैव के उलटे होने से मेरा पराक्रम नष्ट होगया और आज मेरा यश नाश होगया व उग्र पातक प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ व मुझ मन्दभाग्य राजा का समय के योग्य धर्म नाश होगया और मेरी संपदा, राज्य व आयुर्बल निश्चयकर नाश होजावैगा ॥ २४ ॥

और अपुरुषों की संपदा, सुख, पुत्र, स्त्री व धन क्षणभर में भाग्य से उदय होते हैं और क्षणभर में अस्त होजाते हैं ॥ २५ ॥ इस कारण नष्टस्त्रीवाले व शोक से विकल इस ब्राह्मण को मैं प्यारे प्राणोंको भी देकर शोकरहित करूंगा ॥ २६ ॥ इस प्रकार मन से निश्चय कर इसको समझाते हुए भद्रायुनामक उत्तम राजाने इसके चरणों में गिरकर कहा ॥ २७ ॥ कि हे महाबुद्धे ! नष्टपराक्रमवाले मुझ अधम क्षत्रिय के ऊपर दया कीजिये व शोक को छोड़ दीजिये मैं तुम्हारे मनोरथ को दूंगा ॥ २८ ॥ यह राज्य, यह रानी और मेरा यह शरीर यह सब तुम्हारे अधीनहै कहिये कि तुम्हारा क्या अभिलाष है ॥ २९ ॥ ब्राह्मण बोला कि अन्ध को

अपुंसां सम्पदो भोगाः पुत्रदारधनानि च ॥ दैवेन क्षणमुद्यन्ति क्षणादस्तं व्रजन्ति च ॥ २५ ॥ अत एनं द्विजन्मानं हतदारं शुचार्दितम् ॥ गतशोकं करिष्यामि दत्त्वा प्राणानपि प्रियान् ॥ २६ ॥ इति निश्चित्य मनसा भद्रायुर्नृपसत्तमः ॥ पतित्वा पादयोस्त्वस्य बभाषे परिसान्त्वयन् ॥ २७ ॥ कृपां कुरु मयि ब्रह्मन्क्षत्रबन्धौ हतौजसि ॥ शोकं त्यज महाबुद्धे दास्याम्यर्थं तवेप्सितम् ॥ २८ ॥ इदं राज्यमियं राज्ञी ममेदं च कलेवरम् ॥ त्वदधीनमिदं सर्वं किं तेऽभिलषितं वद ॥ २९ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किमादर्शेन चान्धस्य किं गृहैर्भैक्ष्यजीविनः ॥ किं पुस्तकेन मूर्खस्य ह्यस्त्रीकस्य धनेन किम् ॥ ३० ॥ अतोऽहं गतपत्नीको भुक्तभोगो न कर्हिचित् ॥ इमां तवाग्रमहिषीं कामार्थं दीयतां मम ॥ ३१ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्किमेष धर्मस्ते किमेतद्गुरुशासनम् ॥ अस्वर्ग्यमयशस्यं च परदाराभिमर्शनम् ॥ ३२ ॥ दातारः सन्ति वित्तस्य राज्यस्य गजवाजिनाम् ॥ आत्मदेहस्य वा क्वापि न कलत्रस्य कर्हिचित् ॥ ३३ ॥ परदारोप

दर्पण से क्या है व भिक्षा से जीविका करनेवाले को घरों से क्या है और मूर्ख को पुस्तक से क्या प्रयोजन है व बिन स्त्रीवाले पुरुष को धनसे क्या है ॥ ३० ॥ इस कारण स्त्रीरहित मैं किसी प्रकार सुखोंको न भोगूंगा इसलिये काम के लिये इस अपनी बड़ी रानी को मुझे दीजिये ॥ ३१ ॥ राजा बोले कि हे ब्रह्मन् ! तुम्हारा यह क्या धर्म है और यह क्या गुरु की आज्ञा है क्योंकि पराई स्त्रीकी धर्षणा करना स्वर्गदायक व यशकारक नहीं होता है ॥ ३२ ॥ धन, राज्य व स्त्री और हाथी, घोड़ों के देनेवाले हैं व अपने शरीर को भी देनेवाले हैं परन्तु स्त्रीको देनेवाले कभी नहीं हैं ॥ ३३ ॥ और पराई स्त्रीको भोगनेसे जो पाप इकट्ठा किया

जाता है वह सैकड़ों प्रायश्चित्तों से भी नहीं नाश होसक्ता है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मण बोला कि भयंकर ब्रह्मघात व भयंकर मद्यसेवनको भी मैं तपस्या से नाश करूंगा फिर पराई स्त्रीवाले पापको क्या कहना है इस कारण तुम मुझे इस स्त्री को देवो नहीं तो निश्चय कर ॥ ३५ ॥ भयसे विकल मनुष्यों की रक्षा न करने से अवश्यकर नरक को जावोगे इस प्रकार ब्राह्मण के वचन से डरेहुए राजा ने चिन्तन किया कि रक्षा न करने से बड़ा भारी पाप होगा इससे स्त्री का देना श्रेष्ठ है ॥ ३६ ॥ इस कारण श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिये स्त्री को देकर पातकोंसे रहित मैं शीघ्रही अग्निमें पैठ जाऊंगा और यश भी स्थित होगा ॥ ३७ ॥ इस प्रकार मन

भोगेन यत्पापं समुपार्जितम् ॥ न तत्क्षालयितुं शक्यं प्रायश्चित्तशतैरपि ॥ ३४ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अपि ब्रह्मवधं घोरमपि मद्यनिषेवणम् ॥ तपसा नाशयिष्यामि किं पुनः पारदारिकम् ॥ तस्मात्प्रयच्छ मे भार्यामिमां त्वं ध्रुवमन्यथा ॥ ३५ ॥ अरक्षणाद्भयार्तानां गन्तासि निरयं ध्रुवम् ॥ इति विप्रगिरा भीतश्चिन्तयामास पार्थिवः ॥ अरक्षणान्महत्पापं पत्नीदानं ततो वरम् ॥ ३६ ॥ अतः पत्नीं द्विजाग्र्याय दत्त्वा निर्मुक्तकिल्विषः ॥ सद्यो वह्निं प्रवेक्ष्यामि कीर्तिश्च निहिता भवेत् ॥ ३७ ॥ इति निश्चित्य मनसा समुज्ज्वाल्य हुताशनम् ॥ तं ब्राह्मणं समाहूय ददौ पत्नीं सहोदकाम् ॥ ३८ ॥ स्वयं स्नातः शुचिर्भूत्वा प्रणम्य विबुधेश्वरान् ॥ तमग्निं द्विः परिक्रम्य शिवं दध्यौ समाहितः ॥ ३९ ॥ तमथाग्नौ पतिष्यन्तं स्वपदासक्तचेतसम् ॥ प्रत्यदृश्यत विश्वेशः प्रादुर्भूतो जगत्पतिः ॥ ४० ॥ तमीश्वरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं पिनाकिनं चन्द्रकलावतंसम् ॥ आलम्बितापिङ्गजटाकलापं मध्यंगतं भास्करकोटितेज

से निश्चय कर अग्नि को जलाकर उसने उस ब्राह्मण को बुलाकर जल समेत स्त्रीको देदिया ॥ ३८ ॥ और आपभी नहाकर पवित्र होकर देवेश्वरों को प्रणामकर व उस अग्निकी दो बार परिक्रमा करके सावधान होतेहुए उसने शिवजीको ध्यान किया ॥ ३९ ॥ इसके उपरान्त अपने चरणों में आसक्तचित्तवाले उस राजाको अग्नि में गिरतेहुए देखकर विश्वेश्वर जगदीशजी प्रकट हुए ॥ ४० ॥ उन पञ्चमुख, त्रिलोचन, पिनाकधारी व चन्द्रकला के अवतंसवाले तथा कुछ लटकती हुई

पीली जटाकलापवाले व मध्य में प्राप्त करोड़ सूर्यों के समान तेजवाले शिवजी को उन्होंने देखा ॥ ४१ ॥ और कमल के भँसीड़ के समान गौर व गजचर्म को पहने तथा गंगाजी की लहरियों से सींचेहुए मस्तकवाले व शेषकी हारावलि, कङ्कण, मुंदरी, किरीटकोटि, बजुल्ला व कुंडलों से उज्ज्वल शिवजी को देखा ॥ ४२ ॥ और त्रिशूल, खट्वाङ्ग, कुठार, ढाल, मृग, अभय व इष्ट वस्तु तथा पिनाक धनुष को हाथ में लिये व बैल के ऊपर बैठेहुए नीलकंठ शिवजी को राजा ने आगे प्रकट देखा ॥ ४३ ॥ इसके उपरान्त शीघ्रही आकाश से दिव्य पुष्प वर्षा हुई और देवताओं की तुरुही बाजने लगीं व देवता नाचने गाने लगे ॥ ४४ ॥

समम् ॥ ४१ ॥ मृणालगौरं गजचर्मवाससं गङ्गातरङ्गोक्षितमौलिदेशम् ॥ नागेन्द्रहारावलिकङ्कणोर्मिकाकिरीटकोटयङ्गदकुण्डलोज्ज्वलम् ॥ ४२ ॥ त्रिशूलखट्वाङ्गकुठारचर्ममृगाभयेष्टार्थपिनाकहस्तम् ॥ वृषोपरिस्थं शितिकण्ठमीशं प्रोद्भूतमग्रे नृपतिर्ददर्श ॥ ४३ ॥ अथाम्बराद्द्रुतं पेतुर्दिव्याः कुसुमवृष्टयः ॥ प्रणेदुर्देवतूर्याणि देवाश्च ननृतुर्जगुः ॥ ४४ ॥ तत्राजग्मुर्नारदाद्याः सनकाद्याः सुरर्षयः ॥ इन्द्रादयश्च लोकेशास्तथा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ४५ ॥ तेषां मध्ये समासीनो महादेवः सहोमया ॥ ववर्ष करुणासारं भक्तिनम्रे महीपतौ ॥ ४६ ॥ तद्दर्शनानन्दविजृम्भिताशयः प्रवृद्धबाष्पाम्बुपरिप्लुताङ्गः ॥ प्रहृष्टरोमा गलगद्गदाक्षरं तुष्टाव गीर्भिर्मुकुलीकृताञ्जलिः ॥ ४७ ॥ राजोवाच ॥ नतोस्म्यहं देवमनाथमव्ययं प्रधानमव्यक्तगुणं महान्तम् ॥ अकारणं कारणकारणं परं शिवं चिदानन्दमयं प्रशान्तम् ॥ ४८ ॥ त्वं विश्वसाक्षी जगतोऽस्य कर्त्ता निरूढधामा हृदि सन्निविष्टः ॥ अतो विचिन्वन्ति विधौ विपश्चितो यो

वहां नारदादिक व सनकादिक देवर्षि आये और इन्द्रादिक लोकेश व निर्मल ब्रह्मर्षिलोग आये ॥ ४५ ॥ उनके मध्य में पार्वती समेत बैठेहुए शिवजी ने भक्ति से नम्र राजा के ऊपर करुणा के धाराकी वर्षा किया ॥ ४६ ॥ उन शिवजी के दर्शन के आनन्द से बढ़े आशय व बढ़ेहुए आँसुवों के जल से मग्न अंगवाले, प्रसन्न रोम व हाथों को जोड़ेहुए राजाने गलेमें गद्गद अक्षरोंवाले वचनों से स्तुति किया ॥ ४७ ॥ राजा बोले कि अनाथ, अविकारी, प्रधान व अव्यक्त गुणवाले महान् देवता को मैं प्रणाम करता हूं और अकारण व कारण के कारण तथा चिदानन्दमय उत्तम शान्त शिवजी को मैं प्रणाम करता हू ॥ ४८ ॥ व संसार के

साक्षी तुम इस संसार को रचनेवाले हो व बहुत तेजवाले तुम हृदय में स्थित हो इस कारण चित्तको रोंकनेवाले अनेक योगों से विद्वान् लोग विधि में ढूंढ़ते हैं ॥ ४९ ॥ व एकात्मता भावन करनेवालों के तुम एक हो और अनेक बुद्धिवालों के जो तुम अनेक रूप हो इन्द्रियों से परे व साक्षी के उदय, अस्तवाला तुम्हारा स्थान मनके मार्ग से हरलिया जाता है ॥ ५० ॥ वचन व बुद्धि से दुर्लभ तथा मोहसे रहित परमात्मारूप उन्हीं तुम्हारी स्तुति करने के लिये केवल गुणमें स्थित व प्रकृति में लीन मेरी बुद्धियां कैसे समर्थ हैं ॥ ५१ ॥ तथापि भक्ति की आश्रयता को प्राप्त होती हैं और प्रणत जनों के दुःखनाशक तुम्हारे चरण

गैरनेकैः कृतचित्तरोधैः ॥ ४९ ॥ एकात्मतां भावयतां त्वमेको नानाधियां यस्त्वमनेकरूपः ॥ अतीन्द्रियं साक्ष्युदयास्तविभ्रमं मनःपथात्संह्रियते पदं ते ॥ ५० ॥ तं त्वां दुरापं वचसो धियाश्च व्यपेतमोहं परमात्मरूपम् ॥ गुणैकनिष्ठाः प्रकृतौ विलीनाः कथं वपुः स्तोतुमलं गिरो मे ॥ ५१ ॥ तथापि भक्त्याश्रयतामुपेयुस्तवाङ्घ्रिपद्मं प्रणतार्तिभञ्जनम् ॥ सुघोरसंसारदवाग्निपीडितो भजामि नित्यं भवभीतिशान्तये ॥ ५२ ॥ नमस्ते देवदेवाय महादेवाय शम्भवे ॥ नमस्त्रिमूर्तिरूपाय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥ ५३ ॥ नमो विश्वादिरूपाय विश्वप्रथमसाक्षिणे ॥ नमः सन्मात्रतत्त्वाय बोधानन्दघनाय च ॥ ५४ ॥ सर्वक्षेत्रनिवासाय क्षेत्रभिन्नात्मशक्तये ॥ अशक्ताय नमस्तुभ्यं शक्ताभासाय भूयसे ॥ ५५ ॥ निराभासाय नित्याय सत्यज्ञानान्तरात्मने ॥ विशुद्धाय विदूराय विमुक्ताशेषकर्मणे ॥ ५६ ॥

कमल को भयंकर संसाररूपी दावानल से पीड़ित मैं भवभय की शान्ति के लिये सदैव भजता हूं ॥ ५२ ॥ देवदेव महादेव शम्भुजी के लिये प्रणाम है व सृष्टि, पालन व संहार करनेवाले आप त्रिमूर्ति के लिये प्रणाम है ॥ ५३ ॥ व संसार के आदिरूप तथा संसार के प्रथम साक्षी के लिये प्रणाम है व सन्मात्र तत्त्व तथा ज्ञानानन्दघनके लिये प्रणाम है ॥ ५४ ॥ व सब क्षेत्रों में बसनेवाले तथा क्षेत्रसे भिन्न आत्मशक्तिवाले व अशक्त तथा बहुत शक्तियों के आभासवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ५५ ॥ व निराभास, नित्य तथा सत्य, ज्ञान अन्तरात्माके लिये और विशुद्ध, विदूर व विमुक्त सब कर्मवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ५६ ॥

व वेदान्त से जानने योग्य तथा वेदमूलनिवासी के लिये प्रणाम है और पवित्र चेष्टावाले व निवृत्त गुण वृत्तियोंवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ५७ ॥ व कल्याणवीर्य तथा कल्याणफल को देनेवाले आपके लिये प्रणाम है व अनन्त, महान् तथा शान्त शिवरूपके लिये प्रणाम है ॥ ५८ ॥ व अघोर, सुघोर तथा घोर पापसमूहको नाशनेवाले आपके लिये प्रणाम है और भर्ग व संसार के बीजों के नाशनेवाले गुरु आपके लिये नमस्कार है और मोहरहित व निर्मल आत्मगुणोंवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ५९ ॥ हे लोकोंके स्वामी ! मेरी रक्षा कीजिये व हे शाश्वत, शंकरजी ! रक्षा कीजिये हे विरूपलोचन, रुद्र ! रक्षा कीजिये व

नमो वेदान्तवेद्याय वेदमूलनिवासिने ॥ नमो विविक्तचेष्टाय निवृत्तगुणवृत्तये ॥ ५७ ॥ नमः कल्याणवीर्याय कल्याणफलदायिने ॥ नमोऽनन्ताय महते शान्ताय शिवरूपिणे ॥ ५८ ॥ अघोराय सुघोराय घोराघौघविदारिणे ॥ भर्गाय भवबीजानां भञ्जनाय गरीयसे ॥ नमो विध्वस्तमोहाय विशदात्मगुणाय च ॥ ५९ ॥ पाहि मां जगतां नाथ पाहि शङ्कर शाश्वत ॥ पाहि रुद्र विरूपाक्ष पाहि मृत्युञ्जयाऽव्यय ॥ ६० ॥ शम्भो शशाङ्ककृतशेखर शान्तमूर्त्ते गौरीश गोपतिनिशापहुताशनेत्र ॥ गङ्गाधरान्धकविदारण पुण्यकीर्ते भूतेश भूधरनिवास सदा नमस्ते ॥ ६१ ॥ सूत उवाच ॥ एवं स्तुतः स भगवान्राज्ञा देवो महेश्वरः ॥ प्रसन्नः सह पार्वत्या प्रत्युवाच दयानिधिः ॥ ६२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ राजंस्ते परितुष्टोऽस्मि भक्त्या पुण्यस्तवेन च ॥ अनन्यचेता यो नित्यं सदा मां पर्यपूजयः ॥ ६३ ॥

हे मृत्युंजय, अव्यय ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ ६० ॥ हे शम्भो ! हे शशाङ्ककृतशेखर ! हे शान्तमूर्ते ! हे गौरीश ! हे सूर्य, चन्द्रमा, अग्निनेत्र ! हे गंगाधर ! हे अन्धकविदारण ! हे पुण्यकीर्ते ! हे भूतेश ! हे भूधरनिवास ! तुम्हारे लिये सदैव नमस्कार है ॥ ६१ ॥ सूतजी बोले कि राजा से इस प्रकार स्तुति किये हुए करुणानिधान भगवान् शिवदेवजी ने पार्वती समेत प्रसन्न होकर यह कहा ॥ ६२ ॥ शिवजी बोले कि हे राजन् ! मैं तुम्हारी भक्ति व पवित्र स्तोत्रसे प्रसन्न हूं जो तुमने अन्य में चित्त को न लगाकर सदैव नित्य मुझको पूजा है ॥ ६३ ॥ तुम्हारी भक्ति की परीक्षा के लिये मैं ब्राह्मण होकर आया था और जिसको व्याघ्रने पकड़ा था वही

यह पार्वती देवी है ॥ ६४ ॥ और वह मायाका व्याघ्र था कि जिसका शरीर तुम्हारे बाणों से नहीं कटा था और तुम्हारी बुद्धिमानी को देखनेकी इच्छावाले मैंने स्त्री को मांगा था ॥ ६५ ॥ हे मानद ! इस कीर्तिमालिनी की व तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न मैं वर को देता हूं जो दुर्लभ होवै उस वर को मांगिये ॥ ६६ ॥ राजा बोले कि हे देव ! यही वर है जो कि आप परमेश्वर देवजी संसार की ताप से घिरे हुए मेरी आँखों के सामने प्राप्त हुए ॥ ६७ ॥ हे देव ! वरदायकों में श्रेष्ठ आप से मैं अन्य वर को नहीं मांगता हूं वरन मैं और जो यह मेरी रानी है और मेरी माता व मेरा पिता ॥ ६८ ॥ व पद्माकर नामक बनिया व सुनय नामक उसका पुत्र इन सबोंको

तव भावपरीक्षार्थं द्विजो भूत्वाहमागतः ॥ व्याघ्रेण या परिग्रस्ता सैषा देवी गिरीन्द्रजा ॥ ६४ ॥ व्याघ्रो मायामयो यस्ते शरैरक्षतविग्रहः ॥ धीरतां द्रष्टुकामस्ते पत्नीं याचितवानहम् ॥ ६५ ॥ अस्याश्च कीर्तिमालिन्यास्तव भक्त्या च मानद ॥ तुष्टोऽहं संप्रयच्छामि वरं वरय दुर्लभम् ॥ ६६ ॥ राजोवाच ॥ एष एव वरो देव यद्भवान्परमेश्वरः ॥ भवता पपरीतस्य मम प्रत्यक्षतां गतः ॥ ६७ ॥ नान्यं वरं वृणे देव भवतो वरदर्षभात् ॥ अहं च येयं सा राज्ञी मम माता च मत्पिता ॥ ६८ ॥ वैश्यः पद्माकरो नाम तत्पुत्रः सुनयाभिधः ॥ सर्वानेतान्महादेव सदा त्वत्पार्श्वगान्कुरु ॥ ६९ ॥ सूत उवाच ॥ अथ राज्ञी महाभागा प्रणता कीर्तिमालिनी ॥ भक्त्या प्रसाद्य गिरिशं ययाचे वरमुत्तमम् ॥ ७० ॥ राज्ञ्युवाच ॥ चन्द्राङ्गदो मम पिता माता सीमन्तिनी च मे ॥ तयोर्याचे महादेव त्वत्पार्श्वे सन्निधिं सदा ॥ ७१ ॥ एवमस्त्विति गौरीशः प्रसन्नो भक्तवत्सलः ॥ तयोः कामवरं दत्त्वा क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ॥ ७२ ॥ सोऽपि राजा सुरैः सार्धं

हे महादेवजी ! अपने समीपवर्ती कीजिये ॥६९॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त बड़े ऐश्वर्यवाली कीर्तिमालिनी रानी ने प्रणाम किया व भक्तिसे शिवजी को प्रसन्न कराकर उत्तम वर को मांगा ॥ ७० ॥ रानी बोली कि हे महादेवजी ! मेरा पिता चन्द्राङ्गद व मेरी माता सीमंतिनी उन दोनों की सदैव आपके समीप स्थिति को मांगती हूं ॥ ७१ ॥ ऐसाही होगा यह भक्तवत्सल शिवजी प्रसन्न होकर उन दोनों के लिये इच्छा के अनुकूल वरको देकर क्षणभर में अन्तर्द्धान होगये ॥ ७२ ॥

और उस राजा ने भी देवताओं समेत शिवजी की प्रसन्नता को पाकर कीर्तिमालिनी के साथ प्रिय सुखों को भोग किया ॥ ७३ ॥ और अनष्ट पराक्रमकी उन्नतिवाले उस राजाने भी दश हज़ार वर्षतक राज्य करके व राज्य को पुत्रों में स्थापित कर शिवजी के परम पद को पाया ॥ ७४ ॥ व चन्द्राङ्गद राजा और वह सीमन्तिनी रानी भक्ति से शिवजी को पूजकर दोनों शिवजी के स्थान को चलेगये ॥ ७५ ॥ जो पवित्र मनुष्य इस पापनाशक व पवित्र तथा विचित्र शिवजी के अत्यन्त गुप्त गुणकथन को बुधजनों को सुनाता है या पढ़ता है वह सुखके ऐश्वर्य को प्राकर अन्त में शिवजी को पाता है ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे

प्रसादं प्राप्य शूलिनः ॥ सहितः कीर्तिमालिन्या बुभुजे विषयान्प्रियान् ॥ ७३ ॥ कृत्वा वर्षायुतं राज्यमव्याहतबलोन्नतिः ॥ राज्यं पुत्रेषु विन्यस्य भेजे शम्भोः परं पदम् ॥ ७४ ॥ चन्द्राङ्गदोपि राजेन्द्र राज्ञी सीमन्तिनी च सा ॥ भक्त्या संपूज्य गिरिशं जग्मतुः शाम्भवं पदम् ॥ ७५ ॥ एतत्पवित्रमघनाशकरं विचित्रं शम्भोर्गुणानुकथनं परमं रहस्यम् ॥ यः श्रावयेद्बुधजनान्प्रयतः पठेद्वा संप्राप्य भोगविभवं शिवमेति सोन्ते ॥ ७६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे भद्रायुशिवप्रसादकथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ ऋषभस्यानुभावोयं वर्णितः शिवयोगिनः ॥ अथान्यस्यापि वक्ष्यामि प्रभावं शिवयोगिनः ॥ १ ॥ भस्मनश्चापि माहात्म्यं वर्णयामि समासतः ॥ कृतकृत्या भविष्यन्ति यच्छ्रुत्वा पापिनो जनाः ॥ २ ॥ अस्त्येको वामदेवाख्यः शिवयोगी महातपाः ॥ निर्द्वन्द्वो निर्गुणः शान्तो निःसङ्गः समदर्शनः ॥ ३ ॥ आत्मारामो जितक्रो

ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायां भद्रायुशिवप्रसादकथननाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । भयो ब्रह्मराक्षस यथा भस्म संगसों मुक्त । पन्द्रहवें अध्याय में सोइ कथा है उक्त ॥ सूतजी बोले कि ऋषभ शिवयोगी का यह प्रभाव कहा गया अब अन्य भी शिवयोगी का प्रभाव कहूंगा ॥ १ ॥ व भस्म का भी माहात्म्य संक्षेप से वर्णन करता हूं कि जिसको सुनकर पापी मनुष्य कृतार्थ होवैंगे ॥ २ ॥ बड़ा तपस्वी वामदेव नामक एक शिवयोगी था जोकि दुःख व सुखसे रहित तथा निर्गुण, शान्त, निस्संग व समदर्शी था ॥ ३ ॥ और वह आत्माराम, क्रोध को

जीतनेवाला तथा घर व स्त्री से रहित था व अनिश्चित गतिवाला तथा मौनी व संतुष्ट और कुटुम्बहीन था ॥ ४ ॥ और सब अङ्गों में भस्म को लगाये तथा जटा मण्डल से शोभित और वकला व मृगचर्म को पहने तथा भिक्षाही को ग्रहण करता था ॥ ५ ॥ एक समय सबों के ऊपर दया में परायण वह संसार में घूमता हुआ अपनी इच्छासे बड़े भयंकर क्रौंचवन में पैठगया ॥ ६ ॥ उस मनुष्यरहित वनमें क्षुधा व प्यास से विकल, बहुत भयंकर एक जो कोई ब्रह्मराक्षस टिका था ॥ ७ ॥ क्षुधा से पीड़ित वह ब्रह्मराक्षस उस पैठेहुए शिवात्मक योगीको देखकर खानेके लिये वेगसे दौड़ा ॥ ८ ॥ भयंकर दाढ़ोंवाले तथा बड़े शरीरवाले व मुख

धो गृहदारविवर्जितः ॥ अतर्कितगतिर्मौनी सन्तुष्टो निष्परिग्रहः ॥ ४ ॥ भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो जटामण्डलमण्डितः ॥ वल्कलाजिनसंवीतो भिक्षामात्रपरिग्रहः ॥ ५ ॥ स एकदा चरँल्लोके सर्वानुग्रहतत्परः ॥ क्रौञ्चारण्यं महाघोरं प्रविवेश यदृच्छया ॥ ६ ॥ तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये तिष्ठत्येकोऽतिभीषणः ॥ क्षुत्तृषाकुलितो नित्यं यः कश्चिद्ब्रह्मराक्षसः ॥ ७ ॥ तं प्रविष्टं शिवात्मानं स दृष्ट्वा ब्रह्मराक्षसः ॥ अभिदुद्राव वेगेन जग्धुं क्षुत्परिपीडितः ॥ ८ ॥ व्यात्ताननं महाकायं भीमदंष्ट्रं भयानकम् ॥ तमायान्तमभिप्रेक्ष्य योगीशो न चचाल सः ॥ ९ ॥ अथाभिद्रुत्य तरसा स घोरो वनगोचरः ॥ दोर्भ्यां निष्पीड्य जग्राह निष्कम्पं शिवयोगिनम् ॥ १० ॥ तदङ्गस्पर्शनादेव सद्यो विध्वस्तकिल्बिषः ॥ स ब्रह्मराक्षसो घोरो विषण्णः स्मृतिमाययौ ॥ ११ ॥ यथा चिन्तामणिं स्पृष्ट्वा लोहं काञ्चनतां व्रजेत् ॥ यथा जम्बूनदीं प्राप्य मृत्तिका स्वर्णतां व्रजेत् ॥ १२ ॥ यथा मानसमभ्येत्य वायसा यान्ति हंसताम् ॥ यथामृतं सकृ

को फैलाये उस आतेहुए ब्रह्मराक्षस को देखकर वह योगीश नहीं चला ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त वेगसे दौड़कर उस भयंकर वनचारी ब्रह्मराक्षस ने भुजाओं से दबाकर कम्परहित शिवयोगी को पकड़लिया ॥ १० ॥ और उसका अङ्ग छूनेही से शीघ्रही पापरहित वह भयंकर ब्रह्मराक्षस दुःखित होकर स्मरण को प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ जैसे चिन्तामणि को छूकर लोह सुवर्ण होजाता है और जम्बूनदी को प्राप्त होकर मिट्टी जैसे सुवर्ण होजाती है ॥ १२ ॥ व जैसे मानस

तड़ाग को प्राप्त होकर कौवा हंसताको प्राप्त होते हैं और जैसे अमृतको एक बार पीकर मनुष्य देवत्व को प्राप्त होता है ॥१३॥ वैसेही महात्मा लोग दर्शन व स्पर्शन आदिकों से शीघ्रही पापसंयुत मनुष्यों को पवित्र करते हैं इस कारण सत्सङ्ग दुर्लभ है ॥१४॥ पहले क्षुधा व प्यास से विकल जो भयंकर शरीरवाला वनचारी था वह शीघ्रही तृप्तिको प्राप्त हुआ और पूर्ण आनन्दमय होगया ॥१५॥ और उसके शरीर में लगीहुई सफ़ेद भस्म के कणों से विद्ध तथा उसी क्षण नष्ट पापरूपी तमोगुणी स्वभाव व पूर्वजन्म के स्मरण को प्राप्त तथा उग्र कर्मवाले उस ब्रह्मराक्षस ने उसके दोनों चरणकमलों में प्रणाम करके कहा ॥ १६ ॥ राक्षस बोला

त्पीत्वा नरो देवत्वमाप्नुयात् ॥ १३ ॥ तथैव हि महात्मानो दर्शनस्पर्शनादिभिः ॥ सद्यः पुनन्त्यघोपेतान्सत्सङ्गो दुर्लभो ह्यतः ॥ १४ ॥ यः पूर्वं क्षुत्पिपासार्तो घोरात्मा विपिने चरः ॥ स सद्यस्तृप्तिमायातः पूर्णानन्दो बभूव ह ॥१५॥ तद्गात्रलग्नसितभस्मकणानुविद्धः सद्यो विधूतघनपापतमःस्वभावः ॥ संप्राप्तपूर्वभवसंस्मृतिरुग्रकार्यस्तत्पादपद्मयुगले प्रणतो बभाषे ॥ १६ ॥ राक्षस उवाच ॥ प्रसीद मे महायोगिन्प्रसीद करुणानिधे ॥ प्रसीद भवतप्तानामानन्दामृतवारिधे ॥ १७ ॥ क्वाहं पापमतिर्घोरः सर्वप्राणिभयङ्करः ॥ क्व ते महानुभावस्य दर्शनं करुणात्मनः ॥ १८ ॥ उद्धरोद्धर मां घोरे पतितं दुःखसागरे ॥ तव सन्निधिमात्रेण महानन्दोऽभिवर्धते ॥ १९ ॥ वामदेव उवाच ॥ कस्त्वं वनेचरो घोरो राक्षसोऽत्र किमास्थितः ॥ कथमेतां महाघोरां कष्टां गतिमवाप्तवान् ॥ २० ॥ राक्षस उवाच ॥ राक्ष

कि हे दयानिधे, महायोगिन्! मेरे ऊपर प्रसन्न होवो हे आनन्दरूपी अमृत के समुद्र! संसार से तप्त पुरुषोंके ऊपर प्रसन्न होवो ॥ १७ ॥ सब प्राणियों को भयकारक व पापबुद्धिवाला तथा भयानक कहां मैं और कहां बड़े प्रभाववाले तथा दयात्मक तुम्हारा दर्शन होना ॥ १८ ॥ विकराल दुःख के समुद्र में पड़ेहुए मुझको उधारिये उधारिये तुम्हारी समीपताही से बड़ा आनन्द बढ़ता है ॥ १९ ॥ वामदेवजी बोले कि वनमें रहनेवाले तुम कौन भयंकर राक्षस हो और यहां क्यों टिके हो व कैसे इस महाविकराल तथा क्लेशित दशा को प्राप्त हुए हो ॥ २० ॥ राक्षस बोला कि इससे पचीसवें जन्म में मैं राक्षस था और म्लेच्छों के राज्य का

रक्षक वलवान् मैं दुर्जयनामक था ॥ २१ ॥ दुष्टबुद्धिवाला वही मैं बड़ा पापी तथा इच्छा के अनुकूल घूमनेवाला व मदसे उग्र और दण्डधारी व दुराचारी, प्रचण्ड, निर्दयी और दुष्ट था ॥ २२ ॥ और ज्वान मैं वहुत स्त्रियोंवाला भी निर्जितेन्द्रिय होकर कामासक्त था फिर इस एक बडी पापिनी चेष्टा को मैं प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ कि सदैव प्रतिदिन मैं अन्य नवीन स्त्रीके मैथुनकी इच्छा करनेवाला हुआ और मेरी आज्ञासे सेवकलोग सब देशों से स्त्रियों को लेआते थे ॥ २४ ॥ प्रतिदिन एक एक भोगीहुई स्त्रीको त्यागकर भीतर घरोंमें स्थापित कर फिर अन्य स्त्रियों को धारण करता था ॥ २५ ॥ इस प्रकार प्रतिदिन अपने राज्य से व दूसरे

सोऽहमितः पूर्वं पञ्चविंशतिमे भवे ॥ गोप्ता यवनराष्ट्रस्य दुर्जयो नाम वीर्यवान् ॥ २१ ॥ सोऽहं दुरात्मा पापीया न्स्वैरचारी मदोत्कटः ॥ दण्डधारी दुराचारः प्रचण्डो निर्घृणः खलः ॥ २२ ॥ युवा वहुकलत्रोऽपि कामासक्तो जितेन्द्रियः ॥ इमां पापीयसीं चेष्टां पुनरेकां गतोऽस्म्यहम् ॥ २३ ॥ प्रत्यहं नूतनामन्यां नारीं भोक्तुमनाः सदा ॥ आहृताः सर्वदेशेभ्यो नार्यो भृत्यैर्मदाज्ञया ॥ २४ ॥ भुक्त्वा भुक्त्वा परित्यक्तामेकामेकां दिनेदिने ॥ अन्तर्गृहेषु संस्थाप्य पुनरन्याः स्त्रियो धृताः ॥ २५ ॥ एवं स्वराष्ट्रात्परराष्ट्रतश्च देशाकरग्रामपुरव्रजेभ्यः ॥ आहृत्य नार्यो रमिता दिने दिने भुक्ता पुनः कापि न भुज्यते मया ॥ २६ ॥ अथान्यैश्च न भुज्यन्ते मया भुक्तास्तथा स्त्रियः ॥ अन्त र्गृहेषु निहिताः शोचन्ते च दिवानिशम् ॥ २७ ॥ ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यदा नार्यो मया हृताः ॥ मम राज्ये स्थिता विप्राः सह दारैः प्रदुद्रुवुः ॥ २८ ॥ सभर्तृकाश्च कन्याश्च विधवाश्च रजस्वलाः ॥ आहृत्य नार्यो रमिता मया काम

के राज्य से तथा देश, ग्राम, नगर व व्रजों से लाकर स्त्रियां भोग कीजाती थीं फिर भोगीहुई कोई भी स्त्री मुझसे भोग नहीं कीजाती थी ॥ २६ ॥ और मुझसे भोगी हुई स्त्रियां अन्य लोगों से भी नहीं भोगी जाती थीं और घरों के भीतर स्थापित वे दिन रात शोचती थीं ॥ २७ ॥ जब मैंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्रों की स्त्रियों को हरलिया तब मेरे राज्य में स्थित ब्राह्मण लोग स्त्रियों समेत भागगये ॥ २८ ॥ व कामदेव से नष्टबुद्धिवाले मैंने पतिसमेत स्त्रियोंको व कन्या

और विधवा तथा रजस्वला स्त्रियों को लाकर रमण किया ॥ २९ ॥ तीन सौ ब्राह्मणों की स्त्रियों को और चार सौ राजाओं की स्त्रियों को तथा छहसौ बनियों की स्त्रियों को और एक हजार शूद्रों की स्त्रियों को मैंने भोग किया है ॥ ३० ॥ और सौ चाण्डालोंकी स्त्रियों को तथा हजार पुलिन्दी व पांच सौ शैलूषी और चार सौ धोबिनियों को मैंने भोग किया है ॥ ३१ ॥ व दुष्टबुद्धिवाले मैंने असंख्य वेश्याओं को भोग किया तौभी मुझ में कामदेवकी तृप्ति न हुई ॥ ३२ ॥ इसप्रकार दुष्ट विषयों में आसक्त व मदिरा पीने में परायण तथा मत्त मुझ में युवावस्था में भी यक्ष्मादिक महारोगों ने प्रवेश किया ॥ ३३ ॥ रोगों से विकल व सन्तान-

हतात्मना ॥ २९ ॥ त्रिशतं द्विजनारीणां राजस्त्रीणां चतुःशतम् ॥ षट्शतं वैश्यनारीणां सहस्रं शूद्रयोपिताम् ॥ ३० ॥ शतं चाण्डालनारीणां पुलिन्दीनां सहस्रकम् ॥ शैलूषीणां पञ्चशतं रजकीनां चतुःशतम् ॥ ३१ ॥ असंख्या वार मुख्याश्च मया भुक्ता दुरात्मना ॥ तथापि मयि कामस्य न तृप्तिः समजायत ॥ ३२ ॥ एवं दुर्विपयासक्तं मत्तं पान रतं सदा ॥ यौवनेपि महारोगा विविशुर्यक्ष्मकादयः ॥ ३३ ॥ रोगार्दितोऽनपत्यश्च शत्रुभिश्चापि पीडितः ॥ त्यक्तो मात्यैश्च भृत्यैश्च मृतोऽहं स्वेन कर्मणा ॥ ३४ ॥ आयुर्विनश्यत्ययशो विवर्धते भाग्यं क्षयं यात्यतिदुर्गतिं व्रजेत् ॥ स्वर्गाच्च्यवन्ते पितरः पुरातना धर्मव्यपेतस्य नरस्य निश्चितम् ॥ ३५ ॥ अथाहं किङ्करैर्याम्यैर्नीतो वैवस्वतालयम् ॥ ततोऽहं नरके घोरे तत्कुण्डे विनिपातितः ॥ ३६ ॥ तत्राहं नरके घोरे वर्षाणामयुतत्रयम् ॥ रेतः पिबन्पीड्यमानो न्यवसं यमकिङ्करैः ॥ ३७ ॥ ततः पापावशेषेण पिशाचो निर्जने वने ॥ सहस्राशिश्नःसंजातो नित्यं क्षुत्तृष

हीन तथा शत्रुवों से भी पीड़ित मुझको मन्त्रियों व नौकरों ने छोड़दिया और मैं अपने कर्म से मरगया ॥ ३४ ॥ धर्म से रहित मनुष्य का निश्चयकर आयुर्बल नाश होजाता है व अयश बढ़ता है और भाग्य क्षय होजाती है व बड़ी दुर्दशा को वह प्राप्त होता है और प्राचीन पितर लोग स्वर्ग से भ्रष्ट होजाते हैं ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त यमदूत मुझको यमस्थानको लेगये तदनन्तर भयंकर नरक व उसके कुण्ड में मैं डालदिया गया ॥ ३६ ॥ और उस भयंकर नरक में वीर्यको पीते व यमदूतों से पीड़ित होतेहुए मैंने तीस हज़ार वर्षतक निवास किया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर बचेहुए पाप से निर्जन वनमें नित्य क्षुधा व

प्यास से विकल मैं हज़ार लिङ्गोंवाला पिशाच हुआ ॥ ३८ ॥ व पिशाच की दशा को प्राप्त होकर मैंने देवताओं के सौ वर्ष तक व्यतीत किया और दूसरे जन्म में प्राणियों को भय करनेवाला मैं व्याघ्र हुआ ॥ ३९ ॥ और तीसरे में भयंकर अजगर व चौथे जन्म में मैं भेड़िया हुआ और पांचवें जन्म में ग्राम्यशूकर व छठे जन्म में मैं गिरगिट हुआ ॥ ४० ॥ और सातवें में कुत्ता व आठवें जन्म में मैं सियार हुआ और नवें जन्म में सुरहगाय व दशवें जन्म में मैं मृग हुआ ॥ ४१ ॥ और गेरहवें जन्म में वानर व बारहवें जन्म में मैं गीध हुआ और तेरहवें में नेउला व चौदहवें जन्म में मैं कौवा हुआ ॥ ४२ ॥ और पन्द्रहवें जन्म में रीछ तथा

याकुलः ॥ ३८ ॥ पैशाचीं गतिमाश्रित्य नीतं दिव्यं शरच्छतम् ॥ द्वितीयेहं भवे जातो व्याघ्रः प्राणिभयङ्करः ॥ ३९ ॥ तृतीयेऽजगरो घोरश्चतुर्थेऽहं भवे वृकः ॥ पञ्चमे विड्वराहश्च षष्ठेऽहं कृकलासकः ॥ ४० ॥ सप्तमेऽहं सारमेयः सृगालश्चाष्टमे भवे ॥ नवमे गवयो भीमो मृगोऽहं दशमे भवे ॥ ४१ ॥ एकादशे मर्कटश्च गृध्रोऽहं द्वादशे भवे ॥ त्रयोदशेऽहं नकुलो वायसश्च चतुर्दशे ॥ ४२ ॥ अच्छभल्लः पञ्चदशे षोडशे वनकुक्कुटः ॥ गर्दभोऽहं सप्तदशे मार्जारो ऽष्टादशे भवे ॥ ४३ ॥ एकोनविंशे मण्डूकः कूर्मो विंशतिमे भवे ॥ एकविंशे भवे मत्स्यो द्वाविंशे मूषकोऽभवम् ॥४४॥ उलूकोऽहं त्रयोविंशे चतुर्विंशे वनद्विपः ॥ पञ्चविंशे भवे चास्मिञ्जातोऽहं ब्रह्मराक्षसः ॥ ४५ ॥ क्षुत्परीतो निराहारो वसाम्यत्र महावने ॥ इदानीमागतं दृष्ट्वा भवन्तं जग्धुमुत्सुकः ॥ त्वद्देहस्पर्शमात्रेण जाता पूर्वभवस्मृतिः ॥ ४६ ॥ गत

सोलहवें में वनमुर्ग व सत्रहवें जन्म में गधा और अठारहवें जन्म में मैं बिडाल हुआ ॥ ४३ ॥ और उन्नीसवें में मेंढक व बीसवें जन्म में मैं कच्छप हुआ और इक्कीसवें जन्म में मछली व बाईसवें जन्म में मैं मूसा हुआ ॥ ४४ ॥ और तेईसवें जन्म में उल्लू व चौबीसवें जन्म में वन का हाथी हुआ और इस पच्चीसवें जन्म में मैं ब्रह्मराक्षस हुआ ॥ ४५ ॥ इस महावन में क्षुधा से संयुत व निराहार मैं बसता हूं इस समय आये हुए आपको देखकर खाने के लिये उत्कंठित हुआ व तुम्हारे शरीर के स्पर्शही करने से पहले जन्म का स्मरण होगया ॥ ४६ ॥ इस समय तुम्हारे समीप मैं हज़ारों बीते हुए जन्मों को स्मरण करता हूं और उत्तम

विराग हुआ व मेरा चित्त प्रसन्न होगया ॥ ४७ ॥ हे महामते ! तुमको यह ऐसा प्रभाव कैसे मिला है क्या उग्र तपसे या तीर्थों के सेवन से मिला है ॥४८॥ या योग व देवताओंकी शक्ति से तथा अमितबलवाले मन्त्रोंसे यह प्रभाव मिला है हे भगवन् ! इसको यथार्थ कहिये मैं तुम्हारी शरण में प्राप्त हूं ॥ ४६ ॥ वामदेवजी बोले कि मेरे शरीर में लगीहुई भस्मका यह बडाभारी प्रभाव है कि जिसके लगनेसे तमोगुणी वृत्तिवाले तुम्हारी यह उत्तम बुद्धि हुई ॥ ५० ॥ महादेवजी के सिवा अन्य कौन भस्म की सामर्थ्य को जानता है जैसे शिवजी का माहात्म्य जानने योग्य नहीं है वैसेही भस्म का माहात्म्य है ॥५१॥ पुरातन समय धर्म से वर्जित कोई आप

जन्मसहस्राणि स्मराम्यद्य त्वदन्तिके ॥ निर्वेदश्च परो जातः प्रसन्नं हृदयं च मे ॥ ४७ ॥ ईदृशोऽयं प्रभावस्ते कथं लब्धो महामते ॥ तपसा वापि तीव्रेण किमु तीर्थनिषेवणात् ॥ ४८ ॥ योगेन देवशक्त्या वा मन्त्रैर्वानन्त शक्तिभिः ॥ तत्त्वतो ब्रूहि भगवंस्त्वामहं शरणं गतः ॥ ४६ ॥ वामदेव उवाच ॥ एष मद्गात्रलग्नस्य प्रभावो भस्मनो महान् ॥ यत्संपर्कात्तमोवृत्तेस्तवेयं मतिरुत्तमा ॥ ५० ॥ को वेद भस्मसामर्थ्यं महादेवादृते परः ॥ दुर्विभाव्यं यथा शम्भोर्माहात्म्यं भस्मनस्तथा ॥ ५१ ॥ पुरा भवादृशःकश्चिद्ब्राह्मणो धर्मवर्जितः ॥ द्राविडेषु स्थितो मूढः कर्मणा शूद्रतां गतः ॥ ५२ ॥ चौर्यवृत्तिर्नैष्कृतिको वृषलीरतिलालसः ॥ कदाचिज्जारतां प्राप्तः शूद्रेण निहतो निशि ॥ ५३ ॥ तच्छवस्य बहिर्ग्रामात्क्षिप्तस्य प्रेतकर्मणः ॥ चचार सारमेयोऽङ्गे भस्मपादो यदृच्छया ॥ ५४ ॥ अथ तं नरके घोरे पतितं शिवकिङ्कराः ॥ निन्युर्विमानमारोप्य प्रसह्य यमकिङ्करान् ॥ ५५ ॥ शिवदूतान्समभ्येत्य यमोपि परि

सरीखे ब्राह्मण द्रविड़ देश में स्थित था और वह मूढ़ कर्मसे शूद्रताको प्राप्त हुआ ॥ ५२ ॥ और चोरी की जीविका करनेवाला व शठ वह शूद्राके मैथुन करनेमें बड़ी इच्छा करता था किसी समय पराई स्त्रीके समीप गयेहुए उसको रातमें शूद्रने मारडाला ॥ ५३ ॥ और गावके बाहर फेंकेहुए उस प्रेतकर्मवाले मुर्दे के अङ्ग पै पैरों में भस्मवाला कुत्ता अपनी इच्छा से चलागया ॥ ५४ ॥ इसके उपरान्त भयंकर नरकमें पड़ेहुए उसको शिवदूत यमदूतों से हठ करके विमान पै चढ़ाकर लेगये ॥ ५५ ॥

और शिवदूतों के समीप आकर यमराजने भी पूंछा कि महापापों को करनेवाले इसको क्यों लिये जाते हो ॥ ५६ ॥ इसके उपरान्त उन शिवदूतों ने कहा कि इसके मुर्दे शरीर को देखिये कि वक्षस्थल, मस्तक और भुजाओं के मूल उत्तम भस्म से चिह्नित हैं ॥ ५७ ॥ इस कारण हमलोग शिवजी की आज्ञा से इसको लेने के लिये आये हैं हमलोगों को रोंकने के लिये तुम समर्थ नहीं हो इसमें तुमको सन्देह न होवै ॥ ५८ ॥ यमराज से यह कहकर तदनन्तर शिवजी के दूत सबलोगों के देखतेहुए उस ब्राह्मण को व्याधिरहित लोक को लेगये ॥ ५९ ॥ उस कारण समस्त पापों को शीघ्रही शोधन करनेवाली

पृष्टवान् ॥ महापातककर्त्तारं कथमेनं निनीषथ ॥ ५६ ॥ अथोचुः शिवदूतास्ते पश्यास्य शवविग्रहम् ॥ वक्षोललाट दोर्मूलान्यङ्कितानि सुभस्मना ॥ ५७ ॥ अत एनं समानेतुमागताः शिवशासनात् ॥ नास्मान्निषेद्धुं शक्नोसि मास्त्वत्र तव संशयः ॥५८॥ इत्याभाष्य यमं शम्भोर्दूतास्तं ब्राह्मणं ततः ॥ पश्यतां सर्वलोकानां निन्युर्लोकमनामयम् ॥ ५९ ॥ तस्मादशेषपापानां सद्यः संशोधनं परम् ॥ शम्भोर्विभूषणं भस्म सततं ध्रियते मया ॥ ६० ॥ इत्थं निशम्य माहात्म्यं भस्मनो ब्रह्मराक्षसः ॥ विस्तरेण पुनः श्रोतुमौत्कण्ठ्यादित्यभाषत ॥ ६१ ॥ साधु साधु महायोगिन्धन्योस्मि तव दर्शनात् ॥ मां विमोचय धर्मात्मन्घोरादस्मात्कुजन्मनः ॥ ६२ ॥ किञ्चिदस्तीह मे भाति मया पुण्यं पुरा कृतम् ॥ अतोहं त्वत्प्रसादेन मुक्तोस्म्यद्य द्विजोत्तम ॥ ६३ ॥ एकस्मै शिवभक्ताय तस्मिन्पार्थिवजन्मनि ॥ भूमिर्वृत्तिकरी दत्ता सस्यारामान्विता मया ॥ ६४ ॥ यमेनापि तदैवोक्तं पञ्चविंशतिमे भवे ॥ कस्यचिद्योगिनः सङ्ग

व शिवजी के भूषण भस्म को मैं सदैव धारण करता हूं ॥ ६० ॥ इस प्रकार भस्म का माहात्म्य सुनकर ब्रह्मराक्षस ने फिर विस्तार से सुनने के लिये उत्कण्ठा से यह कहा ॥ ६१ ॥ कि हे महायोगिन् ! तुमको साधुवाद है मैं तुम्हारे दर्शन से धन्य होगया हे धर्मात्मन् ! इस भयंकर कुजन्म से मुझको छुडाइये ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम ! मुझसे पहले कियाहुआ कुछ पुण्य है यह मुझको जानपड़ता है इस कारण इस समय मैं तुम्हारी प्रसन्नता से मुक्त होगया ॥ ६३ ॥ उस राजा के जन्म में मैंने एक शिवभक्त के लिये अन्न व बग़ीचों से संयुत जीविका करनेवाली पृथ्वी को दिया था ॥ ६४ ॥ तभी यमराज ने भी यह कहा था कि

मन्दराचल पैं ॥ २ ॥ किसी समय संसारसे प्रणाम कियेहुए भूतेश भगवान् कालाग्नि रुद्र सदाशिवजी अपनी इच्छा से प्राप्तहुए ॥ ३ ॥ सबओर से सैकड़ों करोड़ रुद्र उपासना करते थे और उनके मध्यमें देवदेव त्रिलोचन सदाशिवजी बैठे थे ॥ ४ ॥ और वहां देवताओं समेत सुरश्रेष्ठ इन्द्रजी आये व अग्नि, वरुण, पवन और सूर्य के पुत्र यमराजजी आये ॥ ५ ॥ और चित्रसेनादिक गन्धर्व व ग्रह, नागादिक तथा विद्याधर, किंपुरुष, सिद्ध, साध्य व गुह्यक लोग आये ॥ ६ ॥ और उर्वशी आदिक अप्सरा व चंडिकादिक मातृका व वसिष्ठादिक ब्रह्मर्षि तथा नारदादिक देवर्षि और पितर महात्मा व दक्षादिक प्रजापति आये ॥ ७ ॥ और

विचित्रिते ॥ नानासत्त्वसमाकीर्णे नानाद्रुमलताकुले ॥ २ ॥ कालाग्निरुद्रो भगवान्कदाचिद्विश्ववन्दितः ॥ समाससाद भूतेशः स्वेच्छया परमेश्वरः ॥ ३ ॥ समन्तात्समुपातिष्ठन्रुद्राणां शतकोटयः ॥ तेषां मध्ये समासीनो देवदेवस्त्रिलोचनः ॥ ४ ॥ तत्रागच्छत्सुरश्रेष्ठो देवैः सह पुरन्दरः ॥ तथाग्निर्वरुणो वायुर्यमो वैवस्वतस्तथा ॥ ५ ॥ गन्धर्वाश्चित्रसेनाद्याः खेचराः पन्नगादयः ॥ विद्याधराः किंपुरुषाः सिद्धाः साध्याश्च गुह्यकाः ॥ ६ ॥ ब्रह्मर्षयो वसिष्ठाद्या नारदाद्याः सुरर्षयः ॥ पितरश्च महात्मानो दक्षाद्याश्च प्रजेश्वराः ॥ ७ ॥ उर्वश्याद्याश्चाप्सरसश्चण्डिकाद्याश्च मातरः ॥ आदित्या वसवो दस्रौ विश्वेदेवा महौजसः ॥ ८ ॥ अथान्ये भूतपतयो लोकसंहरणे क्षमाः ॥ महाकालश्च नन्दी च तथा वै शङ्खपालकौ ॥ ९ ॥ वीरभद्रो महातेजाः शङ्कुकर्णो महाबलः ॥ घण्टाकर्णश्च दुर्धर्षो मणिभद्रो वृकोदरः ॥ १० ॥ कुण्डोदरश्च विकटास्तथा कुम्भोदरो बली ॥ मन्दोदरः कर्णधारः केतुर्भृङ्गी रिटिस्तथा ॥ ११ ॥ भूतनाथा

तथा आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार और बड़े पराक्रमी विश्वेदेवता आये ॥ ८ ॥ और अन्य भूतपति जो लोकों के संहार करनेमें समर्थ थे वे आये और महाकाल, नन्दी, शङ्ख व पालक आये ॥ ९ ॥ व बड़े तेजस्वी वीरभद्र और बड़े बलवान् शंकुकर्ण तथा दुर्धर्ष घण्टाकर्ण व मणिभद्र और वृकोदरजी आये ॥ १० ॥ व कुण्डोदर, विकट तथा बलवान् कुम्भोदर, मन्दोदर, कर्णधार, केतु, भृङ्गी और रिटि आये ॥ ११ ॥ और बड़े पराक्रमी व बड़े शरीरवाले अन्य प्रेतनाथ आये जोकि

कालेरङ्गवाले और गौर व कोई मेंढक के समान थे ॥ १२ ॥ और कोई हरित, धूसर, धूम्र, कर्बुर और पीले व लाल रङ्गवाले तथा कर्बुर रङ्ग और विचित्र अङ्गों वाले व विचित्र लीलावाले तथा गर्व से उग्र थे ॥ १३ ॥ और अनेक प्रकार के अस्त्रों को हाथ में उठाये हुए व अनेक भाति के वाहन व भूषणवाले थे और कितेक व्याघ्र के समान मुखवाले व कितेक सूकर के समान मुखवाले व मृगमुख थे ॥ १४ ॥ व कितेक मगरमुखवाले तथा अन्य कुत्तों के समान मुखवाले तथा अन्य सियार के तुल्य मुखवाले व अन्य ऊंटके समान मुखवाले थे ॥ १५ ॥ और कितेक शरभ, भेरुंड, सिंह, घोड़ा, ऊंट व बगुलेके समान मुखवाले थे व कितेक

स्तथान्ये च महाकाया महौजसः ॥ कृष्णवर्णास्तथा श्वेताः केचिन्मण्डूकसप्रभाः ॥ १२ ॥ हरिता धूसरा धूम्राः कर्बुराः पीतलोहिताः ॥ चित्रवर्णा विचित्राङ्गाश्चित्रलीला मदोत्कटाः ॥ १३ ॥ नानायुधोद्यतकरा नानावाहनभूषणाः ॥ केचिद्व्याघ्रमुखाः केचित्सूकरास्या मृगाननाः ॥ १४ ॥ केचिच्च नक्रवदनाः सारमेयमुखाः परे ॥ सृगालवदनाश्चान्य उष्ट्रभवदनाः परे ॥ १५ ॥ केचिच्छरभभेरुण्डसिंहाश्वोष्ट्रबकाननाः ॥ एकवक्त्रा द्विवक्त्राश्च त्रिमुखाश्चैव निर्मुखाः ॥ १६ ॥ एकहस्तास्त्रिहस्ताश्च पञ्चहस्तास्त्वहस्तकाः ॥ अपादा बहुपादाश्च बहुकर्णैककर्णकाः ॥ १७ ॥ एकनेत्राश्चतुर्नेत्रा दीर्घाः केचन वामनाः ॥ समन्तात्परिवार्येशं भूतनाथमुपासते ॥ १८ ॥ अथागच्छन्महातेजा मुनीनां प्रवरः सुधीः ॥ सनत्कुमारो धर्मात्मा तं द्रष्टुं जगदीश्वरम् ॥ १९ ॥ तं देवदेवं विश्वेशं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ महाप्रलयसंक्षुब्धसप्तार्णवघनस्वनम् ॥ २० ॥ संवर्त्ताग्निसमाटोपं जटामण्डलशोभितम् ॥ अक्षीणभा

एकमुख, दो मुख, तीन मुख और बिन मुखवाले थे ॥ १६ ॥ और कितेक एक हाथ, तीन हाथ, पांच हाथ व बिन हाथवाले थे और कितेक बिन पैर व बहुत पैर तथा बहुत कान व एक कानवाले थे ॥ १७ ॥ और कितेक एक आँख व चार आँखोंवाले थे और कोई लम्बे व कोई छोटे थे ये सब प्रेतनाथ शिवजी को घेरकर उपासना करते थे ॥ १८ ॥ इसके उपरान्त मुनियोंमें श्रेष्ठ व उत्तम बुद्धिवाले बड़ेतेजस्वी तथा धर्मवान् सनत्कुमारजी उन शिवजीको देखने के लिये आये ॥ १९ ॥ और करोड़ों सूर्यों के समान प्रभावान् तथा महाप्रलय में क्षोभित सात समुद्र व मेघों के समान शब्दवाले उन देवदेव जगदीश्वर ॥ २० ॥ प्रलयकी अग्निके

समान आटोप व जटामण्डलसे शोभित तथा अक्षीण मस्तक व नेत्रोंवाले और ज्वालाओं से मलिन मुखकी शोभावाले ॥ २१ ॥ और चकमती हुई चूडामणि से व चन्द्रखण्ड से शोभित और बायें कान से तक्षक व दाहिनेसे वासुकि को ॥ २२ ॥ दोनों कुण्डल धारण किये और नील रत्न के समान बडी दाढ़वाले व नागों के हार से शोभित ॥ २३ ॥ और शेषराज से शोभित कंकण, बजुल्ला व मुंदरीवाले और तक्षकरूपी रस्सी में हज़ारों मणियों से रंगी मेखलावाले ॥ २४ ॥ और व्याघ्रचर्म को पहने व घंटा और दर्पण से भूषित व कर्कोटक, महापद्म, धृतराष्ट्र और धनंजय से ॥ २५ ॥ बाजते हुए नूपुर से शब्दायमान चरणकमल

लनयनं ज्वालाम्लानमुखत्विषम् ॥ २१ ॥ प्रदीप्तचूडामणिना शशिखण्डेन शोभितम् ॥ तक्षकं वामकर्णेन दक्षिणेन च वासुकिम् ॥ २२ ॥ बिभ्राणं कुण्डलयुगं नीलरत्नमहाहनुम् ॥ नीलग्रीवं महाबाहुं नागहारविराजितम् ॥ २३ ॥ फणिराजपरिभ्राजत्कङ्कणाङ्गदमुद्रिकम् ॥ अनन्तगुणसाहस्रमणिरञ्जितमेखलम् ॥ २४ ॥ व्याघ्रचर्मपरीधानं घण्टादर्पणभूषितम् ॥ कर्कोटकमहापद्मधृतराष्ट्रधनंजयैः ॥ २५ ॥ कूजन्नूपुरसंघुष्टपादपद्मविराजितम् ॥ प्रास तोमरखट्वाङ्गशूलटङ्कधनुर्धरम् ॥ २६ ॥ अप्रधृष्यमनिर्देश्यमचिन्त्याकारमीश्वरम् ॥ रत्नसिंहासनारूढं प्रणनाम महामुनिः ॥ २७ ॥ तं भक्तिभारोच्छ्वसितान्तरात्मा संस्तूय वाग्भिः श्रुतिसंमिताभिः ॥ कृताञ्जलिः प्रश्रयनम्रकन्धरः पप्रच्छ धर्मानखिलाञ्छुभप्रदान् ॥ २८ ॥ यान्यानपृच्छत मुनिस्तांस्तान्धर्मानशेषतः ॥ प्रोवाच भगवाञ्छुद्रो भूयो मुनिरपृच्छत ॥ २९ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ श्रुतास्ते भगवन्धर्मास्त्वन्मुखान्मुक्तिहेतवः ॥ यैर्मुक्तपापा मनुजास्तरि

से शोभित और प्रास, तोमर, खट्वांग, शूल, टंक व धनुष को धारण किये ॥ २६ ॥ और अधृष्य, अनिर्देश्य व अचिन्त्य आकारवाले और रत्नों के सिंहासन पै बैठे हुए शिवजी को महामुनि सनत्कुमारजी ने प्रणाम किया ॥ २७ ॥ व भक्ति के भारसे प्रसन्नचित्त तथा विनय से नम्र कन्धेवाले सनत्कुमारजी ने हाथों को जोड़कर श्रुतियों के समान वचनों से उन शिवजी की स्तुति करके कल्याणदायक समस्त धर्मों को पूंछा ॥ २८ ॥ और सनत्कुमार मुनि ने जिन जिन धर्मों को पूंछा उनको भगवान् शिवजी ने सम्पूर्णता से कहा और फिर मुनि ने पूंछा ॥ २९ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे भगवन् ! तुम्हारे मुख से वे मुक्ति के कारण

धर्म सुने गये कि जिनसे पातकों से छूटकर मनुष्य संसाररूपी समुद्र को उतर जावैंगे ॥ ३० ॥ इसके उपरान्त हे विभो ! शीघ्रही मनुष्यों को मुक्तिदायक व थोड़े परिश्रमवाले बड़े फलवान् अन्य धर्म को मुझसे दया से कहिये ॥ ३१ ॥ क्योंकि बहुत अभ्यासवाले हज़ारों धर्म शास्त्रों में देखेगये हैं भलीभांति सेवित वे समय से सिद्धि को देवैं या न देवैं ॥ ३२ ॥ इस कारण हे महेश्वरजी ! तुम्हारी प्रसन्नता से भुक्ति व मुक्ति का साधन तथा लोकों का हितकारक गुप्तधर्म मैं जानना चाहता हूं ॥ ३३ ॥ श्रीशिवजी बोले कि जो त्रिपुण्ड्र का धारण है वह सब भी धर्मों के मध्य में उत्तम है और श्रुतियों से कहा हुआ व सब प्राणियों का

ष्यन्ति भवार्णवम् ॥ ३० ॥ अथापरं विभो धर्ममल्पायासं महाफलम् ॥ ब्रूहि कारुण्यतो मह्यं सद्यो मुक्तिप्रदं नृणाम् ॥ ३१ ॥ अभ्यासबहुला धर्माः शास्त्रदृष्टाः सहस्रशः ॥ सम्यक्संसेविताः कालात्सिद्धिं यच्छन्ति वा न वा ॥ ३२ ॥ अतो लोकहितं गुह्यं भुक्तिमुक्त्योश्च साधनम् ॥ धर्मं विज्ञातुमिच्छामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ३३ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ सर्वेषामपि धर्माणामुत्तमं श्रुतिचोदितम् ॥ रहस्यं सर्वजन्तूनां यत्त्रिपुण्ड्रस्य धारणम् ॥ ३४ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ त्रिपुण्ड्रस्य विधिं ब्रूहि भगवञ्जगतां पते ॥ तत्त्वतो ज्ञातुमिच्छामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥ ३५ ॥ कति स्थानानि किं द्रव्यं का शक्तिः का च देवता ॥ किं प्रमाणं च कः कर्त्ता के मन्त्रास्तस्य किं फलम् ॥ ३६ ॥ एतत्सर्वमशेषेण त्रिपुण्ड्रस्य च लक्षणम् ॥ ब्रूहि मे जगतां नाथ लोकानुग्रहकाम्यया ॥ ३७ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ आग्नेयमुच्यते भस्म दग्धगोमयसंभवम् ॥ तदेव द्रव्यमित्युक्तं त्रिपुण्ड्रस्य महामुने ॥ ३८ ॥ सद्योजातादिभिर्ब्रह्ममयैर्मन्त्रैश्च

रहस्य है ॥ ३४ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे जगदीश, भगवन्, महेश्वरजी ! त्रिपुण्ड्र की विधिको कहिये मैं तुम्हारी प्रसन्नतासे उसको यथार्थ जानना चाहता हूं ॥ ३५ ॥ कि कितने स्थान व कौन वस्तु और कौन शक्ति व कौन देवता है तथा कौन प्रमाण व कौन कर्ता और कौन मन्त्र व उसका कौन फल है ॥ ३६ ॥ हे लोकों के स्वामी ! यह सब व त्रिपुण्ड्र का लक्षण मुझसे लोकों के ऊपर दया की इच्छा से कहिये ॥ ३७ ॥ श्रीशिवजी बोले कि हे महामुने ! जलेहुए गोमय से उत्पन्न आग्नेय भस्म कही जाती है वही त्रिपुण्ड्र की द्रव्य ऐसी कही गई है ॥ ३८ ॥ और सद्योजात आदिक पाच वेदमय मन्त्रों से भस्म को लेकर अग्नि

आदिक मन्त्रों से भस्म को अभिमन्त्रित करै ॥ ३९ ॥ और मानस्तोके इस मन्त्र से भिगोकर त्र्यम्बक मन्त्र से मस्तक में लगावै और त्रियायुष आदिक मन्त्रों से मस्तक व दोनों भुजाओं में व कन्धे पै मन्त्रसे शुद्ध सजल भस्म को लेपन करै ॥ ४० ॥ व हे मुनिपुंगव! इन स्थानों में तीन रेखा होती हैं और भौंहों के मध्य से लगाकर जहांतक भौंहों का अन्त होवै वहांतक ॥ ४१ ॥ मध्यमा व अनामिका अंगुली की मध्य में विलोम यानी दाहिने ओर से अँगूठे से कीहुई त्रिपुण्ड्र की रेखा कही जाती है यानी मस्तक के वाम भाग से लगाकर दक्षिण भागतक मध्यमा व अनामिका अंगुली से दो रेखाओं को बनाकर उनके मध्य में

पञ्चभिः ॥ परिगृह्याग्निरित्यादिमन्त्रैर्भस्माभिमन्त्रयेत् ॥ ३९ ॥ मानस्तोकेति संमृज्य शिरो लिम्पेच्च त्र्यम्बकम् ॥ त्रियायुषादिभिर्मन्त्रैर्ललाटे च भुजद्वये ॥ स्कन्धे च लेपयेद्भस्म सजलं मन्त्रभावितम् ॥ ४० ॥ तिस्रो रेखा भवन्त्येषु स्थानेषु मुनिपुङ्गव ॥ भ्रुवोर्मध्यं समारभ्य यावदन्तो भ्रुवोर्भवेत् ॥ ४१ ॥ मध्यमानामिकाङ्गुल्योर्मध्ये तु प्रतिलोमतः ॥ अङ्गुष्ठेन कृता रेखा त्रिपुण्ड्रस्याभिधीयते ॥ ४२ ॥ तिसृणामपि रेखाणां प्रत्येकं नव देवताः ॥ अकारो गार्हपत्यश्च ऋग्भूर्लोको रजस्तथा ॥ ४३ ॥ आत्मा चैव क्रियाशक्तिः प्रातःसवनमेव च ॥ महादेवस्तु रेखायाः प्रथमायास्तु देवता ॥ ४४ ॥ उकारो दक्षिणाग्निश्च नभः सत्त्वं यजुस्तथा ॥ मध्यंदिनं च सवनमिच्छाशक्त्यन्तरात्मको ॥ ४५ ॥ महेश्वरश्च रेखाया द्वितीयायाश्च देवता ॥ मकाराहवनीयौ च परमात्मा तमो दिवः ॥ ४६ ॥ ज्ञानशक्तिः सामवेदस्तृतीयसवनं तथा ॥ शिवश्चेति तृतीयाया रेखायाश्चाधिदेवता ॥ ४७ ॥ एता नित्यं नमस्कृत्य

दाहिने ओरसे बीचवाली रेखा अँगूठे से करना चाहिये यही त्रिपुण्ड्र है ॥ ४२ ॥ और तीनों रेखाओं के प्रत्येक नव देवता हैं अकार, गार्हपत्य, ऋक्, भूलोक, रज ॥ ४३ ॥ आत्मा, क्रियाशक्ति, प्रातःसवन और महादेवजी पहली रेखाके देवता हैं ॥ ४४ ॥ और उकार, दक्षिणाग्नि, आकाश, सत्त्व व यजुः और दिनके मध्य भाग का सवन, इच्छाशक्ति व अन्तरात्मा ॥ ४५ ॥ और महेश्वरजी दूसरी रेखा के देवता हैं व मकार, आहवनीय अग्नि, परमात्मा, तमोगुण, आकाश ॥ ४६ ॥ ज्ञानशक्ति व सामवेद और तीसरा सवन व शिवजी तीसरी रेखा के अधिदेवता हैं ॥ ४७ ॥ इनको नित्य प्रणामकर विद्वान् त्रिपुण्ड्र को धारण करै यह महेश्वर

व्रत सब वेदों में कहा गया है ॥ ४८ ॥ और मुक्ति की चाहनावाले मनुष्यों से सेवने योग्य है क्योंकि फिर उनका जन्म नहीं होता है और विधिपूर्वक जो भस्म से त्रिपुण्ड्र करता है ॥ ४९ ॥ वह ब्रह्मचारी या गृहस्थ या बनवासी व संन्यासी महापापसमूहों से व उपपातकों से छूटजाता है ॥ ५० ॥ वैसेही अन्य क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री व गोहत्यादिक पातकों से तथा वीरहत्या व अश्वहत्यासे छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५१ ॥ व बड़ी महिमा को न जानकर जो बिना मन्त्र से भी त्रिपुण्ड्र को मस्तक में करता है वह सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ५२ ॥ और पराई द्रव्य का हरना व पराई स्त्रीका अभिमर्शन, पराई निन्दा, पराये क्षेत्र

त्रिपुण्ड्रं धारयेत्सुधीः ॥ महेश्वरव्रतमिदं सर्ववेदेषु कीर्तितम् ॥ ४८ ॥ मुक्तिकामैर्नरैः सेव्यं पुनस्तेषां न संभवः ॥ त्रिपुण्ड्रं कुरुते यस्तु भस्मना विधिपूर्वकम् ॥ ४९ ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वनस्थो यतिरेव वा ॥ महापातकसंघातैर्मुच्यते चोपपातकैः ॥ ५० ॥ तथान्यैः क्षत्रविट्शूद्रस्त्रीगोहत्यादिपातकैः ॥ वीरहत्याश्वहत्याभ्यां मुच्यते नात्र संशयः ॥ ५१ ॥ अमन्त्रेणापि यः कुर्यादज्ञात्वा महिमोन्नतिम् ॥ त्रिपुण्ड्रं भालपटले मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ५२ ॥ परद्रव्यापहरणं परदाराभिमर्शनम् ॥ परनिन्दा परक्षेत्रहरणं परपीडनम् ॥ ५३ ॥ सस्यारामादिहरणं गृहदाहादिकर्म च ॥ असत्यवादं पैशुन्यं पारुष्यं वेदविक्रयः ॥ कूटसाक्ष्यं व्रतत्यागः कैतवं नीचसेवनम् ॥ ५४ ॥ गोभूहिरण्यमाहिषीतिलकम्बलवाससाम् ॥ अन्नधान्यजलादीनां नीचेभ्यश्च परिग्रहः ॥ ५५ ॥ दासी वेश्या भुजङ्गेषु वृषलीषु नटीषु च ॥ रजस्वलासु कन्यासु विधवासु च संगमः ॥ ५६ ॥ मांसचर्मरसादीनां लवणस्य च विक्रयः ॥ एवमादीन्यसंख्या

का हरना व अन्य को पीड़ा देना ॥ ५३ ॥ और अन्न व बगीचा आदि का हरना तथा घरको जलाना इत्यादिक कर्म और झूंठ कहना व चुगली और कठोरता व वेद बेंचना और झूंठी गवाही देना, व्रत का त्याग और छल व नीच की सेवा ॥ ५४ ॥ और गऊ, पृथ्वी, सुवर्ण, भैंसी, तिल, कम्बल, वस्त्र, अन्न, धान्य व जलादिकों का नीचों से लेना ॥ ५५ ॥ और दासी, वेश्या, शूद्रा, नटी व रजस्वला और कन्या तथा विधवाओं में संगम करना ॥ ५६ ॥ और मांस, चर्म तथा रसा-

दिकों का व लोन का बेंचना इत्यादिक अनेक प्रकार के असंख्य पाप ॥ ५७ ॥ त्रिपुण्डू के धारण करने से उसी क्षण नाश होजाते हैं और शिवजी की द्रव्य का लेना व कहीं शिवजी की निन्दा ॥ ५८ ॥ और शिवभक्तों की निन्दा प्रायश्चित्तोंसे शुद्ध नहीं होती है और जिसके अंगमें रुद्राक्ष व मस्तक में त्रिपुण्डू होवै ॥ ५९ ॥ वह चाण्डाल भी पूजने योग्य है और वह सब वर्णों में उत्तम होता है इस संसारमें जो तीर्थ व गंगादिक नदियां हैं ॥ ६० ॥ उन सब में वह नहाया होता है जो कि मस्तक में त्रिपुण्डू को धारण करता है और पंचाक्षर आदिक सात कोटि महामन्त्र ॥ ६१ ॥ और अन्य जो शिवजी के करोड़ों मन्त्र मोक्ष के कारण हैं

नि पापानि विविधानि च ॥ ५७ ॥ सद्य एव विनश्यन्ति त्रिपुण्ड्रस्य च धारणात् ॥ शिवद्रव्यापहरणं शिवनिन्दा च कुत्रचित् ॥ ५८ ॥ निन्दा च शिवभक्तानां प्रायश्चित्तैर्न शुद्धयति ॥ रुद्राक्षा यस्य गात्रेषु ललाटे च त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ५९ ॥ स चाण्डालोऽपि संपूज्यः सर्ववर्णोत्तमो भवेत् ॥ यानि तीर्थानि लोकेऽस्मिन्गङ्गाद्याः सरितश्च याः ॥ ६० ॥ स्नातो भवति सर्वत्र ललाटे यस्त्रिपुण्ड्रधृक् ॥ सप्तकोटिमहामन्त्राः पञ्चाक्षरपुरःसराः ॥ ६१ ॥ तथान्ये कोटिशो मन्त्राः शैवाः कैवल्यहेतवः ॥ ते सर्वे येन जप्ताः स्युर्यो बिभर्ति त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ६२ ॥ सहस्रं पूर्वजातानां सहस्रं च जनिष्यताम् ॥ स्ववंशजानां मर्त्यानामुद्धरेद्यस्त्रिपुण्ड्रधृक् ॥ ६३ ॥ इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्दीर्घायुर्व्याधिवर्जितः ॥ जीवितान्ते च मरणं सुखेनैव प्रपद्यते ॥ ६४ ॥ अष्टैश्वर्यगुणोपेतं प्राप्य दिव्यं वपुः शुभम् ॥ दिव्यं विमानमारुह्य दिव्यस्त्रीशतसेवितः ॥ ६५ ॥ विद्याधराणां सिद्धानां गन्धर्वाणां महौजसाम् ॥ इन्द्रादिलोकपालानां लोकेषु च

वे सब उससे जपे गये जो कि त्रिपुण्डू को धारण करता है ॥ ६२ ॥ और जो त्रिपुण्डू को धारण करता है वह हज़ार पहले पैदा हुए व हज़ार पैदा होनेवाले पुरुषों को उधारता है ॥ ६३ ॥ और इस संसार में समस्त सुखों को भोगकर वह दीर्घ आयुर्बलवाला व रोगरहित होता है और जीने के अन्त में वह सुखही से मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥ और आठ ऐश्वर्यों के गुणसे संयुत उत्तम दिव्य देहको पाकर दिव्य विमान पै चढ़कर सैकड़ों दिव्य स्त्रियों से सेवित होताहै ॥ ६५ ॥

और क्रमपूर्वक बड़े पराक्रमी विद्याधर, सिद्ध, गंधर्व व इन्द्रादिक लोकपालों के लोकों में ॥ ६६ ॥ व प्रजापतियों के लोकों में बहुतसे सुखोंको भोगकर ब्रह्मा के स्थान को प्राप्त होकर वहां सौ कल्प तक रमण करता है ॥ ६७ ॥ और तीन सौ ब्रह्मा तक विष्णुजी के लोक में रमण करता है ॥ ६८ ॥ तदनन्तर शिवलोक को प्राप्त होकर अक्षय समय तक रमण करता है और वह शिवजी की सायुज्य मुक्तिको पाता है व फिर उत्पन्न नहीं होता है ॥ ६९ ॥ और बारबार सब उपनिषदों का साराश देखकर यही निर्णय कियागया कि त्रिपुण्ड्र बहुत कल्याणदायक होता है ॥ ७० ॥ यह त्रिपुण्ड्र का माहात्म्य मुझ से संक्षेप से कहा गया

यथाक्रमम् ॥ ६६ ॥ भुक्त्वा भोगान्सुविपुलान्प्रजेशानां पुरेषु च ॥ ब्रह्मणः पदमासाद्य तत्र कल्पशतं रमेत् ॥ ६७ ॥ विष्णोर्लोके च रमते यावद्ब्रह्मशतत्रयम् ॥ ६८ ॥ शिवलोकं ततः प्राप्य रमते कालमक्षयम् ॥ शिवसायुज्यमाप्नोति न स भूयोऽभिजायते ॥ ६९ ॥ सर्वोपनिषदां सारं समालोच्य मुहुर्मुहुः ॥ इदमेव हि निर्णीतं परं श्रेयस्त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ७० ॥ एतत्त्रिपुण्ड्रमाहात्म्यं समासात्कथितं मया ॥ रहस्यं सर्वभूतानां गोपनीयमिदं त्वया ॥ ७१ ॥ इत्युक्त्वा भगवान्रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ सनत्कुमारोऽपि मुनिर्जगाम ब्रह्मणः पदम् ॥ ७२ ॥ तवापि भस्मसंपर्कात्संजाता विमला मतिः ॥ त्वमपि श्रद्धया पुण्यं धारयस्व त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ७३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा वामदेवस्तु शिवयोगी महातपाः ॥ अभिमन्त्र्य ददौ भस्म घोराय ब्रह्मरक्षसे ॥ ७४ ॥ तेनासौ भालपटले चक्रे तिर्यक्त्रिपुण्ड्रकम् ॥ ब्रह्मराक्षसतां सद्यो जहौ तस्यानुभावतः ॥ ७५ ॥ स बभौ सूर्यसंकाशस्तेजोमण्डलमण्डितः ॥ दिव्यावयवरूपैश्च

जोकि सब प्राणियों का रहस्य है और तुमको यह गुप्त करना चाहिये ॥ ७१ ॥ यह कहकर भगवान् शिवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और सनत्कुमार मुनि भी ब्रह्मा के स्थान को चलेगये ॥ ७२ ॥ भस्म के संसर्ग से तुम्हारी भी उत्तम बुद्धि होगई और तुमभी श्रद्धासे पवित्र त्रिपुण्ड्र को धारण करो ॥ ७३ ॥ सूतजी बोले कि यह कहकर बड़े तपस्वी वामदेव नामक शिवयोगी ने भस्म को अभिमन्त्रित कर भयंकर ब्रह्मराक्षसके लिये देदिया ॥ ७४ ॥ व उससे इसने मस्तक में तिरछा त्रिपुण्ड्र किया और उसके प्रभाव से उसने शीघ्रही ब्रह्मराक्षसत्व को छोड़दिया ॥ ७५ ॥ व तेजके मण्डल से शोभित वह सूर्य के समान शोभित हुआ और दिव्य

अङ्गों से संयुत वह दिव्य मालाओं व वसनों से उज्ज्वल हुआ ॥ ७६ ॥ और भक्ति से वह शिवयोगी गुरुकी प्रदक्षिणा करके वह दिव्य विमान पै चढ़कर पवित्र लोकों को चलागया ॥ ७७ ॥ और वामदेव शिवयोगी उसके लिये उत्तम गतिको देकर संसारमें गुप्त आत्मावाला वह आपही शिवजी की नाईं घूमने लगा ॥ ७८ ॥ जो मनुष्य इस भस्म के माहात्म्य व त्रिपुण्ड्र को सुनता है और जो सुनाता व पढ़ता है वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ ७९ ॥ संसार से छूटने के कारण शिवजी के यश को जो कहता है और जो शिवयोगी से ध्यान करने योग्य शिवजी के चरणकमल को प्रणाम करता है व जो शिवभक्त को प्रकाश करने

दिव्यमाल्याम्बरोज्ज्वलः ॥ ७६ ॥ भक्त्या प्रदक्षिणीकृत्य तं गुरुं शिवयोगिनम् ॥ दिव्यं विमानमारुह्य पुण्यलोकाञ्ज गाम सः ॥ ७७ ॥ वामदेवो महायोगी दत्त्वा तस्मै परां गतिम् ॥ चचार लोके गूढात्मा साक्षादिव शिवः स्वयम् ॥ ७८ ॥ य एतद्भस्ममाहात्म्यं त्रिपुण्ड्रं शृणुयान्नरः ॥ श्रावयेद्वा पठेद्वापि स हि याति परां गतिम् ॥ ७९ ॥ कथयति शिव कीर्तिं संसृतेर्मुक्तिहेतुं प्रणमति शिवयोगिध्येयमीशाङ्घ्रिपद्मम् ॥ रचयति शिवभक्तोद्भासिभाले त्रिपुण्ड्रं न पुन रिह जनन्या गर्भवासं भजेत्सः ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे भस्ममाहात्म्यकथनं नाम षोडशो ऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषय ऊचुः ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञैर्गुरुभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ नृणां कृतोपदेशानां सद्यः सिद्धिर्हि जायते ॥ १ ॥ अथान्य

वाले त्रिपुण्ड्र को मस्तक में लगाता है वह इस संसार में फिर माता के गर्भवास को नहीं प्राप्त होता है ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालु मिश्रविरचितायांभाषाटीकायां भस्ममाहात्म्यकथनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा भस्ममाहात्म्य सों भयो शबर यक मुक्त । सत्रहयें अध्यायमें सोइ चरितहै उक्त ॥ ऋषिलोग बोले कि वेदों व वेदांगोंके तत्त्व को जाननेवाले ब्रह्मवादी गुरुवों से किये हुए उपदेशवाले मनुष्यों की शीघ्रही सिद्धि होती है ॥ १ ॥ और अन्य पुरुषों की नाईं सामान्य व नीति के जाननेवाले गुरुवों से किये हुए

उपदेशवाले मनुष्यों की कैसी सिद्धि होती है॥ २ ॥ सूतजी बोले कि श्रद्धाही सब धर्मों की बहुत हित करनेवाली है और श्रद्धाही से दोनों लोकों में मनुष्यों की सिद्धि होती है ॥ ३ ॥ और श्रद्धा से शिला भी सेवन करते हुए मनुष्य को फल देती है और भक्ति से पूजित गुरु भी सिद्धिदायक होता है ॥ ४ ॥ और श्रद्धा से पढ़ा हुआ बिन बँधा भी मंत्र फलदायक होता है व श्रद्धा से पूजे हुए देवता नीच को भी फलदायक होते हैं ॥ ५ ॥ और बिन श्रद्धा से कोईहुई पूजा दान, यज्ञ, तपस्या व व्रत सब बँझुवे वृक्ष के पुष्प की नाईं निष्फलता को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ और श्रद्धा से हीन अतिचपल पुरुष सब कहीं संशययुक्त होता है और परमार्थ

जनसामान्यैर्गुरुभिर्नीतिकोविदैः ॥ नृणां कृतोपदेशानां सिद्धिर्भवति कीदृशी ॥२॥ सूत उवाच ॥ श्रद्धैव सर्वधर्मस्य चातीव हितकारिणी ॥ श्रद्धयैव नृणां सिद्धिर्जायते लोकयोर्द्वयोः ॥ ३ ॥ श्रद्धया भजतः पुंसः शिलापि फलदायिनी ॥ मूर्खोऽपि पूजितो भक्त्या गुरुर्भवति सिद्धिदः ॥ ४ ॥ श्रद्धया पठितो मन्त्रस्त्वबद्धोपि फलप्रदः ॥ श्रद्धया पूजितो देवो नीचस्यापि फलप्रदः ॥ ५ ॥ अश्रद्धया कृता पूजा दानं यज्ञस्तपो व्रतम् ॥ सर्वं निष्फलतां याति पुष्पं बन्ध्यतरोरिव ॥ ६ ॥ सर्वत्र संशयाविष्टः श्रद्धाहीनोऽतिचञ्चलः ॥ परमार्थात्परिभ्रष्टः संसृतेर्न हि मुच्यते ॥ ७ ॥ मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ॥ यादृशी भावना यत्र सिद्धिर्भवति तादृशी ॥ ८ ॥ अतो भावमयं विश्वं पुण्यं पापं च भावतः ॥ ते उभे भावहीनस्य न भवेतां कदाचन ॥ ९ ॥ अत्रेदं परमाश्चर्यमाख्यानमनुवर्ण्यते ॥ अश्रद्धा सर्वमर्त्यानां येन सद्यो निवर्तते ॥ १० ॥ आसीत्पाञ्चालराजस्य सिंहकेतुरिति श्रुतः ॥ पुत्रः सर्वगुणोपेतः क्षात्रधर्मरतः

से छूटा हुआ वह संसार से मुक्त नहीं होता है ॥ ७ ॥ मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, औषध व गुरु जिसमें जैसी भावना होती है वैसी सिद्धि होती है ॥ ८ ॥ इस कारण संसारमें भावप्रधान है और पाप व पुण्य भाव से होता है और वे दोनों भावहीन पुरुष के कभी नहीं होते हैं ॥ ९ ॥ इस विषय में बड़ा आश्चर्यमय यह आख्यान कहा जाता है कि जिससे शीघ्रही सब मनुष्यों की अश्रद्धा निवृत्त होती है ॥ १० ॥ पांचाल देश के राजाके सब के सब गुणोंसे संयुत व

सदैव क्षत्रियधर्म में परायण सिंहकेतु ऐसा प्रसिद्ध पुत्र हुआ है ॥ ११ ॥ एक समय कितेक नौकरों से संयुत वह बड़ा बलवान् राजा शिकार के लिये बहुत प्राणियों से संयुत वन को गया ॥ १२ ॥ व शिकार के लिये वन में घूमते हुए उसके किसी म्लेच्छजातिवाले नौकर ने पुराने फूटे हुए शिवालय को गिरा देखा ॥ १३ ॥ और उसमें चौतरे पै पड़े हुए टूटे पीठ (आसन) वाले सीधे व सूक्ष्म शिवलिङ्ग को मूर्तिमान् अपने भाग्य की नाईं देखा ॥ १४ ॥ पहले के कर्म से प्रेरणा कियेहुए उसने शीघ्रता से उसको लेकर बुद्धिमान् राजपुत्र के लिये दिखलाया ॥ १५ ॥ कि हे प्रभो ! इस वनमें मुझ से देखेहुए इस सुन्दर लिङ्ग

सदा ॥ ११ ॥ स एकदा कतिपयैर्भृत्यैर्युक्तो महाबलः ॥ जगाम मृगयाहेतोर्बहुसत्त्वान्वितं वनम् ॥ १२ ॥ तद्भृत्यः शबरः कश्चिद्विचरन्मृगयां वने ॥ ददर्श जीर्णं स्फुटितं पतितं देवतालयम् ॥ १३ ॥ तत्रापश्यद्भिन्नपीठं पतितं स्थण्डिलोपरि ॥ शिवलिङ्गमृजुं सूक्ष्मं मूर्तं भाग्यमिवात्मनः ॥ १४ ॥ स समादाय वेगेन पूर्वकर्मप्रचोदितः ॥ तस्मै संदर्शयामास राजपुत्राय धीमते ॥ १५ ॥ पश्येदं रुचिरं लिङ्गं मया दृष्टमिह प्रभो ॥ तदेतत्पूजयिष्यामि यथाविभवमादरात् ॥ १६ ॥ अस्य पूजाविधिं ब्रूहि यथा देवो महेश्वरः ॥ अमन्त्रज्ञैश्च मन्त्रज्ञैः प्रीतो भवति पूजितः ॥ १७ ॥ इति तेन निषादेन पृष्टः पार्थिवनन्दनः ॥ प्रत्युवाच प्रहस्यैनं परिहासविचक्षणः ॥ १८ ॥ संकल्पेन सदा कुर्यादभिषेकं नवाम्भसा ॥ उपवेश्यासने शुद्धे शुभैर्गन्धाक्षतैर्नवैः ॥ वन्यैः पत्रैश्च कुसुमैर्धूपैर्दीपैश्च पूजयेत् ॥ १९ ॥ चिताभस्मो

को देखिये और उसी इस लिङ्गको मैं ऐश्वर्य के अनुसार आदर से पूजूंगा ॥ १६ ॥ और शिवदेव की नाईं तुम इसके पूजन की विधिको कहो कि जिस प्रकार बिन मन्त्र जाननेवाले व मन्त्र के जाननेवाले पुरुषों से भी पूजेहुए शिवजी प्रसन्न होते हैं ॥ १७ ॥ उस निषाद से इस प्रकार पूंछेहुए परिहासमें चतुर उस राजकुमार ने हँसकर इससे कहा ॥ १८ ॥ कि संकल्प से सदैव नवीन जल से स्नान करावै और पवित्र आसन पै बिठाकर उत्तम व नवीन चन्दन तथा अक्षतोंसे और वन के पत्तों व पुष्पों से तथा धूप व दीप से पूजन करै ॥ १६ ॥ और पहले चिता की भस्म का उपहार देवै व विद्वान् अपना से भोजन करने योग्य अन्न से

नैवेद्य लगावै ॥ २० ॥ और फिर धूप, दीपादिक उपचारों को कल्पित करै और यथायोग्य नृत्य, बाजन व गीतादिक करै ॥ २१ ॥ और प्रणाम करके विधि-पूर्वक विद्वान् प्रसाद को धारण करै यह साधारण शिवपूजन की विधि तुम से कहीगई ॥ २२ ॥ चिता के भस्मके उपहारसे शीघ्रही शिवजी प्रसन्न होते हैं ॥ २३ ॥ सूतजी बोले कि इस स्वामी से परिहास के रससे इस प्रकार सिखलाये हुए उस चण्डक नामक शबरने उसका वचन ग्रहण किया ॥ २४ ॥ तदनन्तर चिता-भस्म का उपहार करनेवाले उस शबर ने अपने घरको प्राप्त होकर प्रतिदिन लिङ्ग मूर्तिवाले शिवजी को पूजन किया ॥ २५ ॥ और जो वस्तु अपना को प्रिय थी

पहारं च प्रथमं परिकल्पयेत् ॥ आत्मोपभोग्येनान्नेन नैवेद्यं कल्पयेद्बुधः ॥ २० ॥ पुनश्च धूपदीपादीनुपचारान्प्रकल्प येत्॥ नृत्यवादित्रगीतादीन्यथावत्परिकल्पयेत् ॥२१॥ नमस्कृत्वा तु विधिवत्प्रसादं धारयेद्बुधः॥ एष साधारणः प्रोक्तः शिवपूजाविधिस्तव ॥ २२ ॥ चिताभस्मोपहारेण सद्यस्तुष्यति शङ्करः॥ २३॥ सूत उवाच॥ परिहासरसेनेत्थं शासितः स्वामिनाऽमुना ॥ स चण्डकाख्यः शबरो मूर्ध्ना जग्राह तद्वचः ॥ २४ ॥ ततः स्वभवनं प्राप्य लिङ्गमूर्तिं महेश्व रम् ॥ प्रत्यहं पूजयामास चिताभस्मोपहारकृत् ॥ २५ ॥ यच्चात्मनः प्रियं वस्तु गन्धपुष्पाक्षतादिकम् ॥ निवेद्य शम्भवे नित्यमुपाभुंक्त ततः स्वयम् ॥ २६ ॥ एवं महेश्वरं भक्त्या सह पत्न्याभ्यपूजयत् ॥ शवरः सुखमासाद्य नि नाय कतिचित्समाः ॥ २७ ॥ एकदा शिवपूजार्थं प्रवृत्तः शवरोत्तमः॥ न ददर्श चिताभस्म पात्रे पूरितमण्वपि ॥ २८ ॥ अथासौ त्वरितो दूरमन्विष्यन्परितो भ्रमन् ॥ न लब्धवांश्चिताभस्म श्रान्तो गृहमगात्पुनः ॥ २९ ॥ तत आहूय

उस सब चन्दन, पुष्प व अक्षतादिक को शिवजी के लिये देकर तदनन्तर आप भी भोग करता था ॥ २६ ॥ इस प्रकार स्त्रीसमेत भक्ति से उस शबर ने शिवजीको पूजन किया और सुखको प्राप्त होकर कुछ वर्षों को व्यतीत किया ॥ २७ ॥ एक समय शिवपूजन के लिये प्रवृत्त उत्तम शबर ने पात्रमें पूरित चिताभस्म को थोड़ी भी न देखा ॥ २८ ॥ इसके उपरान्त शीघ्रता समेत सबओर घूमते व दूरतक ढूंढ़तेहुए इसने चिताकी भस्मको न पाया फिर थककर घरको चलागया ॥ २९ ॥ तद-

नन्तर अपनी स्त्री को बुलाकर शबर ने यह वचन कहा कि हे प्रिये ! मुझको चिता की भस्म नहीं मिली मैं क्या करूं ॥ ३० ॥ आज मुझ पापीके शिवपूजन का विघ्न होगया और बिन पूजन के मैं क्षणभर भी नहीं जीसक्ता हूं ॥ ३१ ॥ और पूजन का सामान नष्ट होनेपर मैं इस विषयमें यत्न को नहीं देखता हूं और सब प्रयोजनों को देनेवाली गुरुकी आज्ञा भी नहीं नाश कीजावैगी ॥ ३२ ॥ इस प्रकार पतिको विकल देखकर शबर की स्त्रीने प्रत्युत्तर दिया कि तुम मत डरो मैं तुमसे यत्न को कहती हूं ॥ ३३ ॥ कि बहुत समय से बढ़ेहुए इसी घरको जला कर मैं अग्नि में पैठूंगी तदनन्तर चिता की भस्म होगी ॥ ३४ ॥ शबर बोला कि

पत्नीं स्वां शबरो वाक्यमब्रवीत् ॥ न लब्धं मे चिताभस्म किं करोमि वद प्रिये ॥ ३० ॥ शिवपूजान्तरायो मे जातोद्य बत पाप्मनः ॥ पूजां विना क्षणमपि नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ३१ ॥ उपायं नात्र पश्यामि पूजोपकरणे हते ॥ न गुरोश्च विहन्येत शासनं सकलार्थदम् ॥ ३२ ॥ इति व्याकुलितं दृष्ट्वा भर्त्तारं शबराङ्गना ॥ प्रत्यभाषत मा भैस्त्व मुपायं प्रवदामि ते ॥ ३३ ॥ इदमेव गृहं दग्ध्वा बहुकालोपबृंहितम् ॥ अहमग्निं प्रवेक्ष्यामि चिताभस्म भवेत्ततः ॥ ३४ ॥ शबर उवाच ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां देहः परमसाधनम् ॥ कथं त्यजसि तं देहं सुखार्थं नवयौवनम् ॥ ३५ ॥ अधुना त्वनपत्या त्वमभुक्तविषयासवा ॥ भोगयोग्यमिमं देहं कथं दग्धुमिहेच्छसि ॥ ३६ ॥ शबर्युवाच ॥ एतावदेव साफल्यं जीवितस्य च जन्मनः ॥ परार्थे यस्त्यजेत्प्राणाञ्छिवार्थे किमुत स्वयम् ॥ ३७ ॥ किं नु तप्तं तपो घोरं किं वा दत्तं मया पुरा ॥ किं वार्चनं कृतं शम्भोः पूर्वजन्मशतान्तरे ॥ ३८ ॥ किं वा पुण्यं मम पितुः का वा मातुः कृतार्थता ॥ यच्छि

शरीर धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का उत्तम साधन है उस शरीर को क्यों छोड़ती हो क्योंकि नवीन यौवन सुखके लिये होता है ॥ ३५ ॥ इस समय तुम सन्तान-हीन हो और सुखरूपी मदिराको तुमने नहीं पिया है तो सुखके योग्य इस शरीर को तुम क्यों यहां जलाना चाहती हो ॥ ३६ ॥ शबरी बोली कि जीवन व जन्म की इतनीही सफलता है कि जो दूसरे के लिये प्राणों को छोड़ै फिर साक्षात् शिवजी के लिये क्या कहना है ॥ ३७ ॥ मैंने पहले क्या भयंकर तप किया है व क्या दिया है व पहलेके सौ जन्मों के मध्य में क्या शिवजी का पूजन किया है ॥ ३८ ॥ अथवा क्या मेरे पिताका पुण्य है व क्या माताकी कृतार्थता है जोकि शिवजी

के लिये जलती हुई अग्नि में मैं इस शरीर को छोड़ती हूं ॥ ३९ ॥ इस प्रकार स्थिर बुद्धि व शिवजी में उसकी भक्ति को देखकर बहुत अच्छा ऐसा कहकर दृढ़ सकल्पवाले शबर ने प्रशंसा किया ॥ ४० ॥ और उसने पतिकी आज्ञा लेकर नहाकर पवित्र होकर भूपित होतीहुई उसने घरको जलाकर उस अग्नि की भक्ति से प्रदक्षिणा किया ॥ ४१ ॥ व अपने गुरुके लिये प्रणाम कर तथा हृदय में सदाशिवजी को ध्यानकर अग्नि में पैठने के लिये तैयार होकर हाथों को जोडकर यह कहा ॥ ४२ ॥ शबरी बोली कि हे देव ! मेरी इन्द्रिया तुम्हारे पुष्प होवैं और यह शरीर अगुरु धूप होवै तथा हृदय दीप होवै और प्राण हव्य होवैं व

वार्थे समिद्धेऽग्नौ त्यजाम्येतत्कलेवरम् ॥ ३९ ॥ इत्थं स्थिरां मतिं दृष्ट्वा तस्या भक्तिं च शङ्करे ॥ तथेति दृढसंकल्पः शबरः प्रत्यपूजयत् ॥ ४० ॥ सा भर्त्तारमनुज्ञाप्य स्नात्वा शुचिरलंकृता ॥ गृहमादीप्य तं वह्निं भक्त्या चक्रे प्रदक्षिणम् ॥ ४१ ॥ नमस्कृत्वात्मगुरवे ध्यात्वा हृदि सदाशिवम् ॥ अग्निप्रवेशाभिमुखी कृताञ्जलिरिदं जगौ ॥ ४२ ॥ शबर्युवाच ॥ पुष्पाणि सन्तु तव देव ममेन्द्रियाणि धूपोऽगुरुर्वपुरिदं हृदयं प्रदीपः ॥ प्राणा हवींषि करणानि तवाक्षताश्च पूजाफलं व्रजतु सांप्रतमेष जीवः ॥ ४३ ॥ वाञ्छामि नाहमपि सर्वधनाधिपत्यं न स्वर्गभूमिमचलां न पदं विधातुः ॥ भूयो भवामि यदि जन्मनि जन्मनि स्यां त्वत्पादपङ्कजलसन्मकरन्दभृङ्गी ॥ ४४ ॥ जन्मानि सन्तु मम देव शताधिकानि माया न मे विशतु चित्तमबोधहेतुः ॥ किञ्चित्क्षणार्धमपि ते चरणारविन्दान्नापैतु मे हृदयमीश नमोनमस्ते ॥ ४५ ॥ इति प्रसाद्य देवेशं शबरी दृढनिश्चया ॥ विवेश ज्वलितं वह्निं भस्मसादभवत्क्षणात् ॥ ४६ ॥ शबरोपि च तद्भस्म

इन्द्रिय अक्षत होवैं और इस समय यह जीव पूजन का फल होवै ॥ ४३ ॥ मैं सब धनों की स्वामिता को नहीं चाहती हूं और न स्वर्ग की भूमि न ब्रह्मा के अचल स्थान को चाहती हूं बरन यदि मैं फिर होऊं तो प्रत्येक जन्म में आपके चरणकमलों में शोभित परागकी भ्रमरी होऊं ॥ ४४ ॥ व हे देव ! सौसे अधिक मेरे जन्म होवैं परन्तु अज्ञानकी कारण माया मेरे चित्तमें न पैठै व हे ईश ! आधा क्षण भी मेरा मन तुम्हारे चरणारविन्द से अलग न होवै हे ईश ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै नमस्कार है ॥ ४५ ॥ इस प्रकार देवेश शिवजी को प्रसन्न कराकर दृढ़ निश्चयवाली शबरी जलती हुई अग्निमें पैठगई और क्षणभर में भस्म होगई ॥ ४६ ॥ और

यत्नेन परिगृह्य सः ॥ चक्रे दग्धगृहोपान्ते शिवपूजां समाहितः ॥ ४७ ॥ अथ सस्मार पूजान्ते प्रसादग्रहणोचिताम् ॥ दयितां नित्यमायान्तीं प्राञ्जलिं विनयान्विताम् ॥ ४८ ॥ स्मृतमात्रां तदापश्यदागतां पृष्ठतः स्थिताम् ॥ पूर्वेणावय वेनैव भक्तिनम्रां शुचिस्मिताम् ॥ ४९ ॥ तां वीक्ष्य शबरः पत्नीं पूर्ववत्प्राञ्जलिं स्थिताम् ॥ भस्मावशेषितगृहं यथापू र्वमवस्थितम् ॥ ५० ॥ अग्निर्दहति तेजोभिः सूर्यो दहति रश्मिभिः ॥ राजा दहति दण्डेन ब्राह्मणो मनसा दहेत् ॥५१॥ किमयं स्वप्न आहोस्वित्किं वा माया भ्रमात्मिका ॥ इति विस्मयसंभ्रान्तस्तां भूयः पर्यपृच्छत ॥ ५२ ॥ अपि त्वं च कथं प्राप्ता भस्मभूतासि पावके ॥ दग्धं च भवनं भूयः कथं पूर्ववदास्थितम् ॥ ५३ ॥ शबर्युवाच ॥ यदा गृहं समुद्दीप्य प्रविष्टाहं हुताशने ॥ तदात्मानं न जानामि न पश्यामि हुताशनम् ॥ ५४ ॥ न तापलेशोप्याभीन्मे प्रवि ष्टाया इवोदकम् ॥ सुषुप्तेव क्षणार्धेन प्रबुद्धास्मि पुनः क्षणात् ॥ ५५ ॥ तावद्भवनमद्राक्षमदग्धमिव सुस्थितम् ॥

शबर ने भी यत्न से उस भस्म को लेकर सावधान होतेहुए उसने जलेहुए घरके समीप शिवपूजन किया ॥ ४७ ॥ इसके उपरान्त पूजन के अन्त में प्रसाद लेनेके योग्य नित्य आनेवाली विनय से संयुत हाथ जोडे हुई स्त्रीको स्मरण किया ॥ ४८ ॥ और उस समय स्मरण कीहुई आई व पीछे खडीहुई भक्तिसे नम्र तथा पवित्र हास्यवाली उस स्त्रीको पहलेही के अङ्गसे देखा ॥ ४९ ॥ और पहले की नाईं हाथोंको जोड़े खडीहुई उस स्त्रीको देखकर व जलकर भस्म हुए घरको पहले की नाईं स्थित देखकर शबर ने विचार किया ॥ ५० ॥ कि अग्नि तेजोंसे जलाती है व सूर्य किरणों से जलाते हैं और राजा दण्ड से जलाता है व ब्राह्मण मनसे जलाता है ॥ ५१ ॥ क्या यह स्वप्न है या भ्रमवाली माया है इस प्रकार विस्मय से भ्रमित उसने फिर उससे पूंछा ॥ ५२ ॥ कि तुम कैसे प्राप्त हुई हो क्योंकि अग्नि में भस्म होगई थीं और जलाहुआ घर फिर कैसे पहले की नाईं स्थित हुआ ॥ ५३ ॥ शबरी बोली कि जब घरको जलाकर मैं अग्नि में पैठ गई तब मैंने न अपना को जाना न अग्निको देखा ॥ ५४ ॥ और जलमें पैठीहुई की नाईं मुझ को कुछ भी ताप न हुआ व सोईहुई की नाईं फिर मैं क्षणभर में जगपड़ी ॥ ५५ ॥ तब तक मैंने बिनजले हुए की नाईं भलीभांति स्थित घर को देखा और इस समय देवपूजन के अन्त में प्रसाद लेने के लिये

आई हूं ॥ ५६ ॥ इस प्रकार परस्पर कहतेहुए उन दोनों स्त्री पुरुषों के आगे दिव्य व अद्भुत विमान प्रकट हुआ ॥ ५७ ॥ और सैकड़ों चन्द्रमा के समान प्रकाशमान उस विमान पै आगे चलनेवाले चार शिवदूतों ने हाथ में पकड़ कर शरीर समेत निषाद स्त्री पुरुषों को बिठा लिया ॥ ५८ ॥ और उसी क्षण उन निषाद स्त्री पुरुषों का वह शरीर शिवदूतों के हाथ के स्पर्श से उनकी सरूपता को प्राप्त हुआ ॥ ५९ ॥ इसलिये सब पुण्यकर्मों में श्रद्धाही करने योग्य है क्योंकि श्रद्धा से नीच निषाद ने भी योगियों की गति को पाया ॥ ६० ॥ सब जातिवाले लोगों से उत्तम जन्मसे क्या है व सब शास्त्रों के विचारवाली

अधुना देवपूजान्ते प्रसादं लब्धुमागता ॥ ५६ ॥ एवं परस्परं प्रेम्णा दम्पत्योर्भाषमाणयोः ॥ प्रादुरासीत्तयोरग्रे विमानं दिव्यमद्भुतम् ॥ ५७ ॥ तस्मिन्विमाने शतचन्द्रभास्वरे चत्वार ईशानुचराः पुरःसराः ॥ हस्ते गृहीत्वाथ निषाददम्पती आरोपयामासुरमुक्तविग्रहौ ॥ ५८ ॥ तयोर्निषाददम्पत्योस्तत्क्षणादेव तद्वपुः ॥ शिवदूतकरस्पर्शात्तत्सारूप्यमवाप ह ॥ ५९ ॥ तस्माच्छ्रद्धैव सर्वेषु विधेया पुण्यकर्मसु ॥ नीचोपि शबरः प्राप श्रद्धया योगिनां गतिम् ॥ ६० ॥ किं जन्मना सकलवर्णजनोत्तमेन किं विद्यया सकलशास्त्रविचारवत्या ॥ यस्यास्ति चेतसि सदा परमेशभक्तिः कोऽन्यस्ततस्त्रिभुवने पुरुषोस्ति धन्यः ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे भस्ममाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ अथाहं संप्रवक्ष्यामि सर्वधर्मोत्तमोत्तमम् ॥ उमामहेश्वरं नाम व्रतं सर्वार्थसिद्धिदम् ॥ १ ॥ आनर्त्त

विद्या से क्या है जिसके चित्त में सदैव शिवजी की भक्ति है उससे अधिक त्रिलोक में कौन धन्य है ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां भस्ममाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । उमामहेश्वर-व्रत कह्यो यथा अन्धमुनिनाथ । अठरहवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त मैं सब धर्मों में उत्तम और सब प्रयोजनों की सिद्धि को देनेवाले उमामहेश्वर नामक व्रत को कहता हूं ॥ १ ॥ कि आनर्त देशमें उत्पन्न कोई वेदरथ नामक ब्राह्मण विद्वान् था और स्त्री व पुत्रों

उत्तम शिलाके ऊपर अच्छी वर्षा की नाईं व कुतिया में उत्तम कर्म की नाईं मन्दभाग्यवती स्त्रीमें ब्रह्मज्ञानियोंका भी आशीर्वाद निष्फल होजाता है ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन् ! वही दुष्कर्मफलभागिनी यह विधवा मैं इस तुम्हारे आशीर्वाद के वचन की पात्रताको कैसे प्राप्तहूगी ॥ २२ ॥ मुनि बोले कि इस समय तुमको न देखकर मैं अन्ध ने जो कहा है उस इस वचन को साधन करूंगा हे शुभे ! मेरी आज्ञा कीजिये ॥ २३ ॥ यदि तुम उमामहेश्वर नामक व्रतको करोगी तो उस व्रत के प्रभाव से तुम शीघ्रही कल्याण को भोगोगी ॥ २४ ॥ शारदा बोली कि तुमसे कहेहुए बहुत कठिनभी व्रतको यत्न से करूंगी हे ब्रह्मन् ! उस व्रतको मुझ से कहिये व

शिलाग्र्यामिव सद्वृष्टिः शुनक्यामिव सत्क्रिया ॥ विफला मन्दभाग्यायामाशीर्ब्रह्मविदामपि ॥ २१ ॥ सैषाहं विधवा ब्रह्मन्दुष्कर्मफलभागिनी ॥ त्वदाशीर्वचनस्यास्य कथं यास्यामि पात्रताम् ॥ २२ ॥ मुनिरुवाच ॥ त्वामनालक्ष्य यत्प्रोक्तमन्धेनापि मयाऽधुना ॥ तदेतत्साधयिष्यामि कुरु मच्छासनं शुभे ॥ २३ ॥ उमामहेश्वरं नाम व्रतं यदि चरिष्यसि ॥ तेन व्रतानुभावेन सद्यः श्रेयोऽनुभोक्ष्यसे ॥ २४ ॥ शारदोवाच ॥ त्वयोपदिष्टं यत्नेन चरिष्याम्यपि दुश्चरम् ॥ तद्व्रतं ब्रूहि मे ब्रह्मन्विधानं वद विस्तरात् ॥ २५ ॥ मुनिरुवाच ॥ चैत्रे वा मार्गशीर्षे वा शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥ व्रतारम्भं प्रकुर्वीत यथावद्गुर्वनुज्ञया ॥ २६ ॥ अष्टम्यां च चतुर्दश्यामुभयोरपि पर्वणोः ॥ संकल्पं विधिवत्कृत्वा प्रातः स्नानं समाचरेत् ॥ २७ ॥ सन्तर्प्य पितृदेवादीन्गत्वा स्वभवनं प्रति ॥ मण्डपं रचयेद्दिव्यं वितानाद्यैरलंकृतम् ॥ २८ ॥ फलपल्लवपुष्पाद्यैस्तोरणैश्च समन्वितम् ॥ पञ्चवर्णैश्च तन्मध्ये रजोभिः पद्ममुद्धरेत् ॥ २९ ॥ चतुर्दशदलैर्बाह्ये

विस्तारसे विधि को कहिये ॥ २५ ॥ मुनि बोले कि चैत या अगहनमें शुक्लपक्षमें उत्तम दिनमें गुरुकी आज्ञासे यथायोग्य व्रतको प्रारम्भ करै ॥ २६ ॥ और अष्टमी, चौदसि व दोनों पर्वों में भी विधिपूर्वक संकल्प करके प्रातःकाल स्नान करै ॥ २७ ॥ और पितरों व देवादिकों को तर्पण कर अपने घरको जाकर वितानादिकों से भूषित दिव्यमण्डप को बनावै ॥ २८ ॥ और फल, पत्र, पुष्पादिक व बन्दनवारों से संयुत करै व उसके मध्य में पांचरंगोंकी रजोंसे कमल को बनावै ॥ २९ ॥

बाहर चौदह दलों से व उसके मध्य में बाईस दलों से तथा उसके मध्य में सोलह से और उसके बीचमें आठ दलों से बनावै ॥ ३० ॥ इस प्रकार पाचरंगों से सुन्दर कमल को बनाकर तदनन्तर भीतर उत्तम गोल वृत्त बनावै उसके बाद चौकोन करै ॥ ३१ ॥ और उसके मध्य में कूर्च समेत यव व चावलों की राशि करके कूर्चके ऊपर जलसे पूर्ण कलश को स्थापित कर ॥ ३२ ॥ कलश के ऊपर रगसे संयुत वस्त्रको धरकर उसके ऊपर सुवर्ण की शिवाशिवजी की उत्तम मूर्तियों को धरकर ऐश्वर्य के अनुकूल विस्तारपूर्वक भक्ति से पूजै ॥ ३३ ॥ और पञ्चामृत से व शुद्ध जल से न्हवाकर एकादशरुद्र व एकसौ आठ पञ्चाक्षर

द्वाविंशद्भिस्तदन्तरे ॥ तदन्तरे षोडशभिरष्टभिश्च तदन्तरे ॥ ३० ॥ एवं पद्मं समुद्धृत्य पञ्चवर्णैर्मनोरमम् ॥ चतुरस्रं ततः कुर्यादन्तर्वर्तुलमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ व्रीहितण्डुलराशिं च तन्मध्ये च सकूर्चकम् ॥ कूर्चोपरि सुसंस्थाप्य कलशं वारिपूरितम् ॥ ३२ ॥ कलशोपरि विन्यस्य वस्त्रं वर्णसमन्वितम् ॥ तस्योपरिष्टात्सौवर्ण्यौ प्रतिमे शिवयोः शुभे ॥ निधाय पूजयेद्भक्त्या यथाविभवविस्तरम् ॥ ३३ ॥ पञ्चामृतैस्तु संस्नाप्य तथा शुद्धोदकेन च ॥ रुद्रैकादशकं जप्त्वा पञ्चाक्षरशताष्टकम् ॥ ३४ ॥ अभिमन्त्र्य पुनः स्थाप्य पीठमध्ये तथार्चयेत् ॥ स्वयं शुद्धासनासीनो धौतशुक्लाम्बरः सुधीः ॥ ३५ ॥ पीठमामन्त्र्य मन्त्रेण प्राणायामान्समाचरेत् ॥ संकल्पं प्रवदेत्तत्र शिवाग्रे विहिताञ्जलिः ॥ ३६ ॥ यानि पापानि घोराणि जन्मान्तरशतेषु मे ॥ तेषां सर्वविनाशाय शिवपूजां समारभे ॥ ३७ ॥ सौभाग्यविजयारोग्य धर्मैश्वर्याभिवृद्धये ॥ स्वर्गापवर्गसिद्ध्यर्थं करिष्ये शिवपूजनम् ॥ ३८ ॥ इति संकल्पमुच्चार्य यथावत्सुसमाहितः ॥

मन्त्र को जपकर ॥ ३४ ॥ फिर अभिमान्त्रित कर पीठके बीच में स्थापित करके पूजन करै और धोयेहुए सफ़ेद वस्त्र को पहनकर उत्तम बुद्धिवाला आपही शुद्ध आसन पै बैठे ॥ ३५ ॥ और मन्त्र से पीठको अभिमान्त्रित कर प्राणायामों को करै और वहां शिवजी के आगे हाथों को जोडकर संकल्प कहै ॥ ३६ ॥ कि मेरे सैकड़ों जन्मों के मध्य में जो भयंकर पाप हैं उन सबके नाश होनेके लिये मैं शिवपूजन को प्रारम्भ करता हूं ॥ ३७ ॥ और सौभाग्य, विजय, आरोग्य, धर्म व ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये और स्वर्ग तथा मोक्ष की सिद्धि के लिये मैं शिवपूजन करूंगा ॥ ३८ ॥ इसप्रकार संकल्प को कहकर सावधान होताहुआ मनुष्य

यथायोग्य अङ्गन्यास करके शिव व पार्वतीजी को ध्यान करै ॥ ३९ ॥ कुन्द व चन्द्रमा के समान सफ़ेद आकारवाले व नागों के भूषणों से भूषित और वरदायक व अभय हाथवाले तथा परशु व मृगको धारण किये ॥ ४० ॥ और करोड सूर्यों के समान प्रकाशवान् तथा संसार के आनन्द का कारण और गंगाजल के संसर्ग से दीर्घ व पीली जटा को धारनेवाले ॥ ४१ ॥ व नागेन्द्र की फ़णा से उत्पन्न महामुकुट से शोभित और चन्द्रखण्ड से शोभित मस्तक व बजुल्ला के भूषणवाले ॥ ४२ ॥ व उघरेहुए मस्तकमें नयनोंवाले तथा सूर्य व चन्द्रमानयनोंवाले नीलकण्ठ, चतुर्भुज और गजचर्म व मृगचर्मको पहने ॥ ४३ ॥ और रत्नोंके

अङ्गन्यासं ततः कृत्वा ध्यायेदीशं च पार्वतीम् ॥ ३९ ॥ कुन्देन्दुधवलाकारं नागाभरणभूषितम् ॥ वरदाभयहस्तं च बिभ्राणं परशुं मृगम् ॥ ४० ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशं जगदानन्दकारणम् ॥ जाह्नवीजलसंपर्काद्दीर्घपिङ्गजटाधरम् ॥ ४१ ॥ उरगेन्द्रफणोद्भूतमहामुकुटमण्डितम् ॥ शीतांशुखण्डविलसत्कोटीराङ्गदभूषणम् ॥ ४२ ॥ उन्मीलद्भालनयनं तथा सूर्येन्दुलोचनम् ॥ नीलकण्ठं चतुर्बाहुं गजेन्द्राजिनवाससम् ॥ ४३ ॥ रत्नसिंहासनारूढं नागाभरणभूषितम् ॥ देवीं च दिव्यवसनां बालसूर्यायुतद्युतिम् ॥ ४४ ॥ बालवेषां च तन्वङ्गीं बालशीतांशुशेखराम् ॥ पाशाङ्कुशवराभीतिं बिभ्रतीं च चतुर्भुजाम् ॥ ४५ ॥ प्रसादसुमुखीमम्बां लीलारसविहारिणीम् ॥ लसत्कुरवकाशोकपुन्नागनवचम्पकैः ॥ ४६ ॥ कृतावतंसामुत्फुल्लमल्लिकोत्कलितालकाम् ॥ काञ्चीकलापपर्यस्तजघनाभोगशालिनीम् ॥ ४७ ॥ उदारकिंकिणीश्रेणी

सिंहासन पै बैठेहुए व नागोंके भूषणसे भूषित तथा दिव्य वसन को पहने व दशहज़ार बालसूर्यों के समान छविवाली देवी ॥ ४४ ॥ व बालवेषवाली तथा सूक्ष्मांगी व बालचन्द्रमा को मस्तक में धारण किये और पाश, अंकुश, वर व अभय को धारनेवाली चतुर्भुजी ॥ ४५ ॥ और प्रसन्नता से सुन्दर मुखवाली व लीला के रससे विहार करनेवाली, अम्बा तथा सोहतेहुए कुरवक, अशोक, पुन्नाग व चम्पकों से ॥ ४६ ॥ शिरोभूषण किये और फूलीहुई चमेली से शोभित अलकोंवाली व कांचीभूषण के पहनने से जघनों से शोभित ॥ ४७ ॥ और उत्तम किंकिणी की श्रेणी व नूपुर से संयुक्त दोनों पगोंवाली और कपोलमंडल में

लगे हुए रत्नों के कुंडलों से शोभित ॥ ४८ ॥ और विम्बाफल के समान ओंठों से रँगी हुई किरणों से शोभित दांतों की कलीवाली और बडे मोलवाले रत्नों के कंठभूषण व तार के हार से शोभित ॥ ४९ ॥ व नवीन माणिक्य से सुन्दर कंकण, बजुल्ला व मुंदरीवाली और लाल वस्त्रको पहने और लाल माला व अनुलेपन किये ॥ ५० ॥ तथा उन्नत व स्थूल दोनों स्तनों से निन्दित कमल कलीवाली और लीला से चंचल व श्यामनेत्रान्तभागवाली तथा भक्तों के ऊपर दया देनेवाली पार्वतीजी को ध्यान करै ॥ ५१ ॥ इस प्रकार हृदयकमल में संसार के माता, पिता पार्वती व शिवजी को ध्यानकर व उनका

नूपुराढ्यपदद्वयाम् ॥ गण्डमण्डलसंसक्तरत्नकुण्डलशोभिताम् ॥ ४८ ॥ बिम्बाधरानुरक्तांशुलसद्दशनकुड्मलाम् ॥ महार्हरत्नग्रैवेयतारहारविराजिताम् ॥ ४९ ॥ नवमाणिक्यरुचिरकङ्कणाङ्गदमुद्रिकाम् ॥ रक्तांशुकपरीधानां रक्तमाल्यानुलेपनाम् ॥ ५० ॥ उद्यत्पीनकुचद्वन्द्वनिन्दिताम्भोजकुड्मलाम् ॥ लीलालोलासितापाङ्गीं भक्तानुग्रहदायिनीम् ॥ ५१ ॥ एवं ध्यात्वा तु हृत्पद्मे जगतः पितरौ शिवौ ॥ जप्त्वा तदात्मकं मन्त्रं तदन्ते बहिरर्चयेत् ॥ ५२ ॥ आवाह्य प्रतिमायुग्मे कल्पयेदासनादिकम् ॥ अर्घ्यं च दद्याच्छिवयोर्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥ ५३ ॥ नमस्ते पार्वतीनाथ त्रैलोक्यवरदर्षभ ॥ त्र्यम्बकेश महादेव गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ५४ ॥ नमस्ते देवदेवेशि प्रपन्नभयहारिणि ॥ अम्बिके वरदे देवि गृहाणार्घ्यं शिवप्रिये ॥ ५५ ॥ इति त्रिवारमुच्चार्य दद्यादर्घ्यं समाहितः ॥ गन्धपुष्पाक्षतान्सम्यग्धूपदीपान्प्रकल्पयेत् ॥ ५६ ॥ नैवेद्यं पायसान्नेन घृताक्तं परिकल्पयेत् ॥ जुहुयान्मूलमन्त्रेण हरिरष्टोत्तरं

मंत्र जपकर उसके अन्त में बाहर पूजन करै ॥ ५२ ॥ और दोनों मूर्तियों को आवाहन कर आसनादिक देवै व मंत्रको जाननेवाला इस मंत्र से पार्वती व शिवजी को अर्घ्य देवै ॥ ५३ ॥ कि हे त्रैलोक्यवरदर्षभ, पार्वतीनाथ ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे त्र्यम्बक, ईश, महादेव ! अर्घ्य को ग्रहण कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ५४ ॥ हे देवदेवेशि, प्रपन्नभयहारिणि ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे अम्बिके, वरदे, देवि, शिवप्रिये ! अर्घ्य को ग्रहण कीजिये ॥ ५५ ॥ यह तीनबार कहकर सावधान मनुष्य अर्घ्य को देवै और चन्दन, पुष्प, अक्षत व धूप, दीप को भलीभांति देवै ॥ ५६ ॥ और खीर अन्न समेत घृतसे संयुत नैवेद्य को देवै

और मूलमन्त्र से एकसौ आठ बार हव्य को हवन करै ॥ ५७ ॥ तदनन्तर नैवेद्य को लगाकर व धूप, नीराजनादिक करके ताम्बूल को देकर सावधान होताहुआ मनुष्य नमस्कार करै ॥ ५८ ॥ इसके उपरान्त उपचार से पूजनकर स्त्री पुरुष ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ५९ ॥ इस प्रकार सायंकाल का पूजन करके ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर रात्रि में मौनी होकर दूधमें पकाईहुई हविष्य को भोजन करै ॥ ६० ॥ इस प्रकार विद्वान् दोनों पक्षों में वर्षभर तक व्रत करै तदनन्तर वर्ष पूर्ण होनेपर व्रत का उद्यापन करै ॥ ६१ ॥ और शतरुद्री के जपसे प्रतिमाओं को जलसे नहवावै और शास्त्रोक्त मन्त्र से पार्वती व शिवजी को पूजकर ॥ ६२ ॥ वस्त्र समेत व

शतम् ॥ ५७ ॥ तत उद्वास्य नैवेद्यं धूपनीराजनादिकम् ॥ कृत्वा निवेद्य ताम्बूलं नमस्कुर्यात्समाहितः ॥ ५८ ॥ अथाभ्य र्च्योपचारेण भोजयेद्द्विप्रदम्पती ॥ ५९ ॥ एवं सायन्तनीं पूजां कृत्वा विप्रानुमोदितः ॥ भुञ्जीत वाग्यतो रात्रौ हविष्यं क्षीरभावितम् ॥ ६० ॥ एवं संवत्सरं कुर्याद् व्रतं पक्षद्वये बुधः ॥ ततःसंवत्सरे पूर्णे व्रतोद्यापनमाचरेत् ॥ ६१ ॥ शतरुद्रा भिजप्तेन स्नापयेत्प्रतिमे जलैः ॥ आगमोक्तेन मन्त्रेण संपूज्य गिरिजाशिवौ ॥ ६२ ॥ सवस्त्रं ससुवर्णं च कलशं प्रतिमा न्वितम् ॥ दत्त्वाचार्याय महते सदाचाररताय च ॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या यथाशक्त्याभिपूज्य च ॥ ६३ ॥ दद्याच्च द क्षिणां तेभ्यो गोहिरण्याम्बरादिकम् ॥ भुञ्जीत तदनुज्ञातः सहेष्टजनबन्धुभिः ॥ ६४ ॥ एवं यः कुरुते भक्त्या व्रतं त्रैलो क्यविश्रुतम् ॥ त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ ६५ ॥ इन्द्रादिलोकपालानां स्थानेषु रमते ध्रुवम् ॥ ब्रह्मलोके च रमते विष्णुलोके च शाश्वते ॥ ६६ ॥ शिवलोकमथ प्राप्य तत्र कल्पशतं पुनः ॥ भुक्त्वा भोगान्सुवि

सुवर्णसहित मूर्तिसमेत कलश को उत्तम आचरण में परायण महात्मा आचार्य के लिये देकर भक्ति से यथाशक्ति पूजन करके ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ६३ ॥ और उनके लिये गऊ, सुवर्ण व वस्त्रादिक दक्षिणा देवै व उनसे आज्ञाको लेकर प्रियजन तथा बन्धुवों समेत भोजन करै ॥ ६४ ॥ जो मनुष्य इस प्रकार त्रैलोक्य में प्रसिद्ध व्रतको भक्ति से करता है वह इक्कीस पुश्तियों को उधारकर और चाहे हुए सुखों को भोगकर ॥ ६५ ॥ इन्द्रादिक लोकपालों के स्थानों में निश्चय कर रमण करता है और ब्रह्मलोक में व सनातन विष्णुलोक में रमण करता है ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त शिवलोकको प्राप्त होकर वहां फिर सौ कल्प तक रमण करताहै

और बड़ेभारी सुखों को भोगकर शिवही को प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ इस कहेहुए महाव्रत को तुमभी श्रद्धा से करो तो बहुत दुर्लभ भी मनोरथको पावोगी ॥ ६८ ॥ मुनीन्द्र से इस प्रकार आज्ञा दी हुई वह स्त्री बहुत प्रसन्न हुई और विश्वास को प्राप्त होकर उसके मनोहर वचन को ग्रहण किया ॥ ६९ ॥ इसके उपरान्त उसके पिता, माता व सगे भाई लोग आये व उन्होंने सुखपूर्वक बैठे व भोजन किये हुए उन मुनिको देखा ॥ ७० ॥ और यकायक आकर उन सबों ने महात्मा के लिये प्रणाम किया और हमारे ऊपर प्रसन्न हूजिये प्रसन्न हूजिये ऐसा कहतेहुए उन्होंने पूजन किया ॥ ७१ ॥ और उस उत्तम आचरणवाली शारदा से पूजेहुए श्रेष्ठ

पुलाग्च्छिवमेव प्रपद्यते ॥ ६७ ॥ महाव्रतमिदं प्रोक्तं त्वमपि श्रद्धया चर ॥ अत्यन्तदुर्लभं वापि लप्स्यसे च मनोरथम् ॥ ६८ ॥ इत्यादिष्टा मुनीन्द्रेण सा बाला मुदिता भृशम् ॥ प्रत्यग्रहीत्सुविश्रब्धा तद्वाक्यं सुमनोहरम् ॥ ६९ ॥ अथ तस्याः समायाताः पितृमातृसहोदराः ॥ तं मुनिं सुखमासीनं ददृशुः कृतभोजनम् ॥ ७० ॥ सहसागत्य ते सर्वे नमश्चक्रुर्महात्मने ॥ प्रसीद नः प्रसीदेति गृणन्तः पर्यपूजयन् ॥ ७१ ॥ श्रुत्वा च ते तया साध्व्या पूजितं परमं मुनिम् ॥ अनुग्रहं व्रतं तस्यै श्रुत्वा हर्षं परं ययुः ॥ ७२ ॥ ते कृताञ्जलयः सर्वे तमूचुर्मुनिपुङ्गवम् ॥ ७३ ॥ अद्य धन्या वयं सर्वे तवागमनमात्रतः ॥ पावितं नः कुलं सर्वं गृहं च सफलीकृतम् ॥ ७४ ॥ इयं च शारदा नाम कन्या वैधव्यमागता ॥ केनापि कर्मयोगेन दुर्विलङ्घेन भूयसा ॥ ७५ ॥ सैषाद्य तव पादाब्जं प्रपन्ना शरणं सती ॥ इमां समुद्धरासह्यात्सुघोराद्दुःखसागरात् ॥ ७६ ॥ त्वयापि तावदत्रैव स्थातव्यं नो गृहान्तिके ॥ अस्मद्गृहमठेऽप्यस्मिन्स्नानपूजा

मुनिको सुनकर व उसके लिये दयारूप व्रतको सुनकर बड़े हर्षको प्राप्त हुए ॥ ७२ ॥ और हाथों को जोड़कर उन सबोंने उस मुनिश्रेष्ठ से कहा ॥ ७३ ॥ कि तुम्हारे आनेही से आज हम सब धन्य होगये और सब वंश पवित्र करदिया गया व घर सफल किया गया ॥ ७४ ॥ यह शारदा नामक कन्या न उल्लंघन करने योग्य बड़े भारी किसी कर्मयोग से विधवापन को प्राप्त हुई है ॥ ७५ ॥ वही यह पतिव्रता शारदा आज तुम्हारे चरणकमल की शरण में प्राप्त है इसको बड़े भयंकर व असह्य दुःख के समुद्र से उधारिये ॥ ७६ ॥ तबतक तुम भी हमलोगों के घरके समीप स्नान, पूजन व जपके योग्य इस हमारे घरके मठ में

टिको ॥ ७७ ॥ व हे भगवन्, महामुने ! तुम्हारे चरणोंको पूजन करतीहुई यह कन्या तुम्हारे समीपही व्रतको करैगी ॥ ७८ ॥ हे गुरो ! इसका व्रत जबतक तुम्हारे समीप समाप्तिको प्राप्त होवै तबतक यहीं बसकर हमलोगों को कृतार्थ कीजिये ॥ ७९ ॥ इसप्रकार उसके सब भाई आदिक लोगों से प्रार्थना कियेहुए उस मुनिश्रेष्ठने बहुत अच्छा ऐसा कहकर उस उत्तम मठमें निवास किया ॥ ८० ॥ और उससे बतलाये हुए मार्ग से पार्वती व शिवजी को पूजती हुई उस निर्मल सती ने भली भांति व्रतको किया ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायामुमामहेश्वरव्रताचरणं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥

जपोचिते ॥ ७७ ॥ एषा बालापि भगवन्कुर्वन्ती त्वत्पदार्चनम् ॥ व्रतं त्वत्सन्निधावेव चरिष्यति महामुने ॥ ७८ ॥ यावत्समाप्तिमायाति व्रतमस्यास्त्वदन्तिके ॥ उषित्वा तावदत्रैव कृतार्थान्कुरु नो गुरो ॥ ७९ ॥ एवमभ्यर्थितः सर्वैस्तस्या भ्रातृजनादिभिः ॥ तथेति स मुनिश्रेष्ठस्तत्रोवास मठे शुभे ॥ ८० ॥ सापि तेनोपदिष्टेन मार्गेण गिरिजा शिवौ ॥ अर्चयन्ती व्रतं सम्यक्चचार विमला सती ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे उमामहेश्वरव्रताचरणं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ एवं महाव्रतं तस्याश्चरन्त्या गुरुसन्निधौ ॥ संवत्सरो व्यतीयाय नियमासक्तचेतसः ॥ १ ॥ संवत्सरान्ते सा बाला तत्रैव पितृमन्दिरे ॥ चकारोद्यापनं सम्यग्विप्रभोजनपूर्वकम् ॥ २ ॥ दत्त्वा च दक्षिणां तेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो यथार्हतः ॥ विसृज्य तान्नमस्कृत्य पितृभ्यामभिनन्दिता ॥ ३ ॥ उपोषिता स्वयं तस्मिन्दिने नियममाश्रिता ॥ जजाप

दो० । यथा शारदा स्वप्न में पति सँयोग को पाय । लह्यो पुत्र उन्नीस में सोइ चरित्र सुहाय ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार गुरुके समीप महाव्रत को करती हुई व नियम में लगेहुए चित्तवाली उस शारदा का वर्षभर व्यतीत होगया ॥ १ ॥ व वर्षभर के बाद उस कन्या ने उसी पिता के घरमें भलीभांति ब्राह्मण भोजन पूर्वक उद्यापन किया ॥ २ ॥ व उन ब्राह्मणोंके लिये यथायोग्य दक्षिणा को देकर माता, पिता से प्रशंसित उस शारदा ने उनको बिदा करके प्रणाम कर ॥ ३ ॥

आपभी नियम में आश्रित होकर उस दिन उपास किया व महात्मा से बतलाये हुए उत्तम मन्त्र का जप किया ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त प्रदोषसमय प्राप्तहोनेपर शिवजी को पूजकर उस घरके समीप मठमें उस गुरुके समीप ॥ ५ ॥ जप व पूजन में परायण तथा शिवजी को ध्यान करती हुई वह पतिव्रता शारदा रात्रि में उस जागरण में शिवजी के समीप बैठीरही ॥ ६ ॥ व उस रात में उस शारदा समेत उस मुनिने जप, ध्यान व तपों से जगदम्बिका पार्वतीजी को प्रसन्न किया ॥ ७ ॥ और व्रतसे शुद्ध उस शारदाकी भक्तिसे व मुनिकी तपस्या और योग की समाधि से संसारकी एकही माता पार्वतीजी प्रसन्न हुईं व उत्तम मूर्ति करके प्रकट हुईं ॥ ८ ॥

परमं मन्त्रमुपदिष्टं महात्मना ॥ ४ ॥ अथ प्रदोषसमये प्राप्ते संपूज्य शंकरम् ॥ तस्मिन्गृहान्तिकमठे गुरोस्तस्य च सन्निधौ ॥ ५ ॥ जपार्चनरता माध्वी ध्यायन्ती परमेश्वरम् ॥ तस्मिञ्जागरणे रात्रावुपविष्टा शिवान्तिके ॥ ६ ॥ तस्यां रात्रौ तया सार्धं स मुनिर्जगदम्बिकाम् ॥ जपध्यानतपोभिश्च तोषयामास पार्वतीम् ॥ ७ ॥ तस्याश्च भक्त्या व्रतभावितायाः मुनेस्तपोयोगसमाधिना च ॥ तुष्टा भवानी जगदेकमाता प्रादुर्बभूवाकृतसान्द्रमूर्तिः ॥ ८ ॥ प्रादुर्भूता यदा गौरी तयोरग्रे जगन्मयी ॥ अन्धोऽपि तत्क्षणादेव मुनिःप्राप दृशोर्द्वयम् ॥ ६ ॥ तां वीक्ष्य जगतां धात्रीमाविर्भूतां पुरः स्थिताम् ॥ निपेततुस्तत्पदयोः स मुनिः सा च कन्यका ॥ १० ॥ तौ भक्तिभावोच्छ्वसितामलाशयावानन्दबाष्पोक्षितसर्वगात्रौ ॥ उत्थाप्य देवी कृपया परिप्लुता प्रेम्णा बभाषे मृदुवल्गुभाषिणी ॥ ११ ॥ देव्युवाच ॥ प्रीतास्मि ते मुनिश्रेष्ठ वत्से प्रीतास्मि तेऽनघे ॥ किं वा ददाम्यभिमतं देवानामपि दुर्लभम् ॥ १२ ॥ मुनिरुवाच ॥ एषा तु शारदा

जब उन दोनों के आगे संसारमयी पार्वती जी प्रकट हुईं तब अन्धमुनि ने भी उसीक्षण दोनों नेत्रों को पाया ॥ ६ ॥ व प्रकट हुई तथा आगे स्थित उन लोकों की माता पार्वतीजी को देखकर वे मुनि और वह कन्या उनके चरणों पै गिरपड़ी ॥ १० ॥ व भक्तिभाव से बढ़ेहुए निर्मल आशयवाले तथा आनन्द के आँसुवों से भीगे हुए सब शरीरवाले उन दोनों को उठाकर कोमल व मनोहर बोलनेवाली पार्वती देवी ने प्रेम से कहा ॥ ११ ॥ देवीजी बोलीं कि हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं व हे अनघे, वत्से ! तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं देवताओं को भी दुर्लभ तुमको क्या मनोरथ दूं ॥ १२ ॥ मुनि बोले कि यह

शारदा नामक कन्या पतिरहित है और नेत्ररहित प्रसन्न मैं ने इससे प्रतिज्ञा की है ॥ १३ ॥ कि पति के साथ बहुत समय तक विहार कर उत्तम पुत्र को पावोगी यह मैंने कहा है इसको सत्य कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १४ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि पूर्व जन्म में भामिनी नामक प्रसिद्ध यह द्राविड़ ब्राह्मण की दूसरी स्त्री हुई है ॥ १५ ॥ और रूपकी मधुरता से चतुर व सदैव पति को प्यारी उसने रूपवश्यादिक छलों से पति को वश करलिया ॥ १६ ॥ व इसमें लगे चित्तवाले मोह से बँधे हुए उस ब्राह्मण ने कभी पतिव्रता बड़ी स्त्री के समीप गमन नहीं किया ॥ १७ ॥ और पति के समीप न आने से पुत्र-

नाम कन्या तु गतभर्तृका ॥ मया प्रतिश्रुतं चास्यै तुष्टेन गतचक्षुषा ॥ १३ ॥ सह भर्त्रा चिरं कालं विहृत्य सुतमुत्तमम् ॥ लभस्वेति मया प्रोक्तं सत्यं कुरु नमोऽस्तु ते ॥ १४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ एषा पूर्वभवे बाला द्राविडस्य द्विजन्मनः ॥ आसीद् द्वितीया दयिता भामिनी नाम विश्रुता ॥ १५ ॥ सा भर्तृप्रेयसी नित्यं रूपमाधुर्यपेशला ॥ भर्तारं वशमानिन्ये रूपवश्यादिकैतवैः ॥ १६ ॥ अस्यां चासक्तहृदयः स विप्रो मोहयन्त्रितः ॥ कदाचिदपि नैवागाज्ज्येष्ठपत्नीं पतिव्रताम् ॥ १७ ॥ अनभ्यागमनाद्भर्तुः सा नारी पुत्रवर्जिता ॥ सदा शोकेन संतप्ता कालेन निधनं गता ॥ १८ ॥ अस्या गृहसमीपस्थो यः कश्चिद्ब्राह्मणो युवा ॥ इमां वीक्ष्याथ चार्वङ्गीं कामार्तः करमग्रहीत् ॥ १९ ॥ अनया रोषताम्राक्ष्या स विप्रस्तु निवारितः ॥ इमां स्मरन्दिवानक्तं निधनं प्रत्यपद्यत ॥ २० ॥ एषा संमोह्य भर्तारं ज्येष्ठपत्न्यां पराङ्मुखम् ॥ चकार तेन पापेन भवेऽस्मिन्विधवाऽभवत् ॥ २१ ॥ याः कुर्वन्ति स्त्रियो लोके जायापत्योश्च विप्रियम् ॥ तासां

रहित वह स्त्री सदैव शोक से संतप्त रहती थी और वह काल से मृत्यु को प्राप्त हुई ॥ १८ ॥ और इसके घर के समीप जो कोई युवा ब्राह्मण रहता था कामदेव से विकल उसने इस सुन्दर अंगोंवाली रानी को देखकर हाथ को पकड़ लिया ॥ १९ ॥ और क्रोधसे लाल लोचनोंवाली इस रानी ने उस ब्राह्मण को मना किया व दिन रात इसको स्मरण करता हुआ वह मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ २० ॥ और इसने पति को मोहित कर बड़ी स्त्री में विमुख कर दिया उस पाप से इस जन्म में यह विधवा होगई ॥ २१ ॥ जो स्त्रिया संसार में स्त्री पुरुष का वियोग करती हैं उनका इक्कीस जन्मों में बालविधवापन

होता है ॥ २२ ॥ जिस लिये इसने पूर्वजन्म में मेरी बड़ी भारी पूजा किया है उस पुण्य से वह सब पाप उसी समय नष्ट होगया ॥ २३ ॥ और वियोग से विकल होता हुआ जो ब्राह्मण-कामदेव से मोहित होकर मरगया था वह इसका विवाह करके इस जन्म में मरगया ॥ २४ ॥ और जो इसका पहले जन्म-वाला पति था वह इस समय पाण्ड्यराज्यों में स्त्री समेत व सामग्रीसमेत लक्ष्मीवान् तथा उत्तम ब्राह्मण पैदा हुआ है ॥ २५ ॥ उसी पतिसे प्रत्येक रात्रि में वही यह स्त्री प्रेमसे संयोग को प्राप्त होकर स्वप्न में जागरण से भी श्रेष्ठ रति के सुख को प्राप्त होगी ॥ २६ ॥ इस देशसे तीन सौ साठ योजन दूर पै स्थित वह उत्तम

कौमारवैधव्यमेकविंशतिजन्मसु ॥ २२ ॥ यदेतया पूर्वभवे मत्पूजा महती कृता ॥ तेन पुण्येन तत्पापं नष्टं सर्वं तदैव हि ॥ २३ ॥ यो विप्रो विरहार्तः सन्मृतः कामविमोहितः ॥ सोऽस्याः पाणिग्रहं कृत्वा भवेस्मिन्निधनं गतः ॥ २४ ॥ प्राग्जन्मपतिरेतस्याः पाण्ड्यराष्ट्रेषु सोऽधुना ॥ जातो विप्रवरः श्रीमान्सदारः सपरिच्छदः ॥ २५ ॥ तेन भर्त्रा प्रति निशं सैषा प्रेम्णाभिसंगता ॥ स्वप्ने रतिसुखं यातु श्रेष्ठं जागरणादपि ॥ २६ ॥ षष्ट्युत्तरत्रिशतयोजनदूरसंस्थो देशा दितो द्विजवरः स च कर्मगत्या ॥ एनां वधूं प्रतिनिशं मनसोभिरामां स्वप्नेषु पश्यति चिरं रतिमादधानः ॥ २७ ॥ सैषा वै स्वप्नसंगत्या पत्युः प्रतिनिशं सती ॥ कालेन लप्स्यते पुत्रं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ २८ ॥ एतस्यां तनयं जात मात्मनश्चिरसंगमात् ॥ सोऽपि विप्रोऽनिशं स्वप्ने द्रक्ष्यति प्रेमभावितम् ॥ २९ ॥ अनयाराधिता पूर्वं भवे साहं महा मुने ॥ अस्यैव वरदानाय प्रादुर्भूतास्मि साम्प्रतम् ॥ ३० ॥ सूत उवाच ॥ अथोवाच महादेवी तां बालां प्रति सादरम् ॥

ब्राह्मण कर्म की गति से प्रत्येक रात्रि में मन को सुन्दरी इस स्त्री को स्वप्नों में देखता है व बहुत समय तक रतिको धारण करता है ॥ २७ ॥ और प्रत्येक रात्रि में वही यह स्वप्न में पतिके समागम से कुछ समय में वेदों, वेदांगों के पारगामी पुत्र को पावैगी ॥ २८ ॥ और बहुत समयतक सङ्गम से इसमें अपना से पैदा हुए प्रेम से भावित पुत्रको वह ब्राह्मण सदैव स्वप्न में देखैगा ॥ २९ ॥ व हे महामुने ! पूर्वजन्म में इसने मेरा आराधन किया है और इसीके वरदान के लिये मैं इस समय प्रकट हुई हूं ॥ ३० ॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त महादेवी ने उस कन्या से आदर समेत कहा कि हे महाभागे, वत्से ! मेरा उत्तम वचन

सुनिये ॥ ३१ ॥ कि जब कभी किसी देशमें स्वप्न में देखेहुए पुराने पतिको देखना तब चतुर तुम उसको जानलेना ॥ ३२ ॥ और वह ब्राह्मण भी स्वप्नमें देखीहुई उत्तम नीतिवाली तुमको देखैगा तब तुम दोनोंका आपसमें वार्त्तालाप होगा ॥ ३३ ॥ व हे भद्रे ! तब उसके लिये तुम बहुत शास्त्रवाले अपने पुत्रको दीजियेगा और इस व्रतके उत्तमफलको उसके हाथमें देदीजियेगा ॥३४॥ व तबसे लगाकर हे सुमध्यमे ! उसीके वशमें स्थित होना और स्वप्नमें रतिके सिवा तुम दोनोंका देहवाला सङ्ग न होगा ॥ ३५ ॥ और काल से जब वह द्विजोत्तम मृत्यु को प्राप्त होगा तब अग्नि में पैठकर उसीके साथ मेरे स्थान को प्राप्त होगी ॥ ३६ ॥ व हे सुभ्रु ! तुम्हारे

अयि वत्से महाभागे शृणु मे परमं वचः ॥ ३१ ॥ यदा कदापि भर्त्तारं क्वापि देशे पुरातनम् ॥ द्रक्ष्यसि स्वप्नदृष्टं प्राग्ज्ञास्यसे त्वं विचक्षणा ॥ ३२ ॥ त्वां द्रक्ष्यति स विप्रोपि सुनयां स्वप्नलक्षणाम् ॥ तदा परस्परालापो युवयोः संभविष्यति ॥ ३३ ॥ तदा स्वतनयं भद्रे तस्मै देहि बहुश्रुतम् ॥ फलमस्य व्रतस्याग्र्यं तस्य हस्ते समर्पय ॥ ३४ ॥ ततः प्रभृति तस्यैव वशे तिष्ठ सुमध्यमे ॥ युवयोर्दैहिकः सङ्गो माभूत्स्वप्नरताद्दते ॥ ३५ ॥ कालात्पञ्चत्वमापन्ने तस्मिन्ब्राह्मणसत्तमे ॥ अग्निं प्रविश्य तेनैव सह यास्यसि मत्पदम् ॥ ३६ ॥ पुत्रस्ते भविता सुभ्रु सर्वलोकमनोरमः ॥ संपदश्च भविष्यन्ति प्राप्स्यते परमं पदम् ॥ ३७ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा त्रिजगन्माता दत्त्वा तस्यै मनोरथम् ॥ तयोः संपश्यतोरेव क्षणेनादर्शनं गता ॥ ३८ ॥ सापि बाला वरं लब्ध्वा पार्वत्याः करुणानिधेः ॥ अवाप परमानन्दं पूजयामास तं गुरुम् ॥ ३९ ॥ तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां स मुनिर्लब्धलोचनः ॥ तस्याः पित्रोश्च तत्सर्वं रहस्याचष्ट धर्मवित् ॥ ४० ॥

सब लोकोंमें सुन्दर पुत्र होगा और संपत्तिया होंगी व उत्तम स्थान मिलैगा ॥ ३७ ॥ सूतजी बोले कि यह कहकर त्रिलोककी माता पार्वतीजी उसके लिये मनोरथको देकर उनके देखतेही क्षणभर में अन्तर्धान होगईं ॥ ३८ ॥ और वह कन्या भी दया की निधि पार्वतीजी से वरको पाकर बड़े आनन्द को प्राप्त हुई और उसने उस गुरुको पूजन किया ॥ ३९ ॥ व उस रातके बीतने पर नेत्रों को पाकर उस धर्मज्ञ मुनिने उसके माता, पितासे एकान्त में उस सब वृत्तान्त को कहा ॥ ४० ॥

इसके उपरान्त सबसे व यशस्विनी शारदासे पूंछकर और उनके ऊपर दया करके इच्छा के अनुकूल गतिवाले मुनि चलेगये ॥ ४१ ॥ इस प्रकार दिनों के बीततेहुए उस कन्या ने प्रत्येक क्षणमें सुखके बढ़ानेवाले पतिके समागम को स्वप्न में पाया ॥ ४२ ॥ और पार्वती के वरदान से उत्तम व्रतवाली शारदा ने स्वप्न में भी पति के सङ्ग के प्रभाव से गर्भ को धारण किया ॥ ४३ ॥ और पतिसे रहित उस शारदा सती को गर्भिणी सुनकर सबों ने धिक्कार ऐसा कहा व लोगों ने उसको परपतिगामिनी ऐसा कहा ॥ ४४ ॥ और मरेहुए उसके पतिके जो जाति व कुलके बन्धुलोग थे वे उस दुस्सह वार्त्ता को सुनकर उसके पिता के घरको गये ॥ ४५ ॥ इसके

अथ सर्वानुपामन्त्र्य शारदां च यशस्विनीम् ॥ विधायानुग्रहं तेषां ययौ स्वैरगतिर्मुनिः ॥ ४१ ॥ एवं दिनेषु गच्छत्सु सा बाला च प्रतिक्षणम् ॥ भर्तुः समागमं लेभे स्वप्ने सुखविवर्धनम् ॥ ४२ ॥ गौर्या वरप्रदानेन शारदा विशदव्रता ॥ दधार गर्भं स्वप्नेपि भर्तुः सङ्गानुभावतः ॥ ४३ ॥ तां श्रुत्वा भर्तृरहितां शारदां गर्भिणीं सतीम् ॥ सर्वे धिगिति प्रोचुस्तां जारिणीति जगुर्जनाः ॥ ४४ ॥ संपरेतस्य तद्भर्तुर्ये जातिकुलबान्धवाः ॥ तां वार्त्तां दुःसहां श्रुत्वा ययुस्तत्पितृमन्दिरम् ॥ ४५ ॥ अथ सर्वे समायाता ग्रामवृद्धाश्च पण्डिताः ॥ समाजं चक्रिरे तत्र कुलवृद्धैः समन्वितम् ॥ ४६ ॥ अन्तर्वत्नीं समाहूय शारदां विनताननाम् ॥ अतर्जयन्सुसंक्रुद्धाः केचिदासन्पराङ्मुखाः ॥ ४७ ॥ अयि जारिणि दुर्बुद्धे किमेतत्ते विचेष्टितम् ॥ अस्मत्कुले सुदुष्कीर्त्तिं कृतवत्यसि बालिशे ॥ ४८ ॥ इति संतर्जयन्तस्ते ग्रामवृद्धा मनीषिणः ॥ सर्वे संमन्त्रयामासुः किं कुर्म इति भाषिणः ॥ ४९ ॥ तत्रोचुः के च वृद्धास्तां बालां प्रति विनिर्दयाः ॥ एषा पापम

उपरान्त सब गाँव के वृद्ध व पण्डित लोग आये और उन्होंने कुलवृद्धों समेत समाज किया ॥ ४६ ॥ और गर्भिणी तथा नीचे झुकेहुए मुखवाली शारदा को बुलाकर क्रोधित होतेहुए कुछ लोग डरवानेलगे व कोई विमुख होगये ॥ ४७ ॥ व उन्होंने कहा कि हे दुर्बुद्धे, जारिणि ! तेरा यह क्या कर्म है हे बालिशे ! तूने हमारे वंश में अयश किया ॥ ४८ ॥ इस प्रकार डरवाते हुए वे गाँव के वृद्ध व विद्वान् लोग सब सम्मति करनेलगे और क्या करैं यह कहनेलगे ॥ ४९ ॥ और कितेक

निर्दयी वृद्धों ने वहां उस कन्या के विषय में यह कहा कि यह पापबुद्धिवाली कन्या दोनों वंशों को नाश करनेवाली है ॥ ५० ॥ और इसको मुंडनकर व कानों और नासिकाको काटकर अपने गोत्रसे अलग करके गॉव से बाहर यह निकाल दीजावै ॥ ५१ ॥ इस प्रकार सब विचारकर उसको वैसाही करने के लिये उद्यत हुए इसके उपरान्त आकाश में उपजी हुई अगोचर वाणी सुन पडी ॥ ५२ ॥ कि इसने पाप नहीं किया है और कुल का दूषण नहीं किया है व इसका व्रतभङ्ग नहीं हुआ है व यह स्त्री उत्तम आचरणवाली है ॥ ५३ ॥ और इसके उपरान्त जो मनुष्य यह कहैंगे कि यह स्त्री जारिणी है दोष से मूढ उन लोगों की जिह्वा

तिर्बाला कुलद्वयविनाशिनी ॥ ५० ॥ कृत्वास्याः केशवपनं छित्त्वा कर्णौ च नासिकाम् ॥ निर्वास्यतां बहिर्ग्रामात्परित्यज्य स्वगोत्रतः ॥ ५१ ॥ इति सर्वे समालोच्य तां तथाकर्तुमुद्यताः ॥ अथान्तरिक्षे संभूता शुश्रुवे वागगोचरा ॥ ५२ ॥ अनया न कृतं पापं न चैव कुलदूषणम् ॥ व्रतभङ्गो न चैतस्यास्सुचरित्रेयमङ्गना ॥ ५३ ॥ इतः परमियं नारी जारिणीति वदन्ति ये ॥ तेषां दोषविमूढानां सद्यो जिह्वा विदीर्यते ॥ ५४ ॥ इत्यन्तरिक्षे जनितां वाणीं श्रुत्वाऽशरीरिणीम् ॥ सर्वे प्रजहृषुस्तस्या जननीजनकादयः ॥ ५५ ॥ ततः ससंभ्रमाः सर्वे ग्रामवृद्धाः सभाजनाः ॥ मुहूर्त्तं मौनमालम्ब्य भीतास्तस्थुरधोमुखाः ॥ ५६ ॥ तत्र केचिदविश्वस्ता मिथ्यावाणीत्यवादिषुः ॥ तेषां जिह्वा द्विधा भिन्ना ववमुस्ते कृमीन्क्षणात् ॥ ५७ ॥ ततः संपूजयामासुस्तां बालां ज्ञातिबान्धवाः ॥ बान्धवाश्च स्त्रियो वृद्धाः शशंसुः साधु साध्विति ॥ ५८ ॥ मुमुचुः केचिदानन्दबाष्पबिन्दून्कुलोत्तमाः ॥ कुलस्त्रियः प्रमुदितास्तामुद्दिश्य समाश्व

शीघ्रही फट जावैगी ॥ ५४ ॥ आकाश में उपजी हुई इस वाणी को सुनकर सब उसके माता, पितादिक प्रसन्न हुए ॥ ५५ ॥ तदनन्तर संभ्रम समेत सब गॉव के वृद्ध व सभा के लोग थोड़ी देरतक चुप होकर डरकर नीचे मुख करके खडे होगये ॥ ५६ ॥ और वहां पर कोई विश्वास न करनेवाले लोगों ने यह कहा कि वाणी मिथ्या है उनकी जिह्वा दो खण्ड होगई और वे क्षणभरमें कीटों को उगिलने लगे ॥ ५७ ॥ तदनन्तर कुटुम्ब के बन्धु लोगों ने उस स्त्रीकी पूजा किया और भाई लोगोंने व स्त्री तथा वृद्धोंने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसी प्रशंसा किया ॥ ५८ ॥ और कुलमें उत्तम कितेक लोग आनन्द के आँसुवों को छोड़नेलगे व कुल की

स्त्रियां प्रसन्न हुईं व उसको उद्देश कर समझाने लगीं ॥ ५६ ॥ और वहां अन्य लोगों ने यह कहा कि देवता झूंठ नहीं कहता है क्योंकि इसने कैसे गर्भ को धारण किया है और यह निश्चयकर उत्तम आचरण से चलायमान नहीं हुई है ॥ ६० ॥ इस प्रकार संशय में पैठेहुए चित्तवाले सब सभाजनों को देखकर वहां एक वृद्ध जो सर्वज्ञ व लोक के तत्त्व को जाननेवाला था उसने कहा ॥ ६१ ॥ कि जो देखा व सुनाजाता है यह मायामय ससार है और इस क्षणभर रहनेवाले संसार में क्या होनहार व क्या असंभव है ॥ ६२ ॥ व निरूपण न करने योग्य तथा असंभव अर्थवाला संसार माया से उत्पन्न होता है और माया ईश्वर के वश में है व

सन् ॥ ५६ ॥ अथ तत्रापरे प्रोचुर्देवो वदति नानृतम् ॥ कथमेषा दधौ गर्भं शीलान्न चलिता ध्रुवम् ॥ ६० ॥ इति सर्वान्स भ्यजनान्संशयाविष्टचेतसः ॥ विलोक्य वृद्धस्तत्रैको सर्वज्ञो लोकतत्त्ववित् ॥ ६१ ॥ मायामयमिदं विश्वं दृश्यते श्रूयते च यत् ॥ किं भाव्यं किमभाव्यं वा संसारेऽस्मिन्क्षणात्मके ॥ ६२ ॥ अनिरूप्यमभूतार्थं मायया जायते स्फुटम् ॥ ईश्वर स्य वशे माया तस्य को वेद चेष्टितम् ॥ ६३ ॥ यूपकेतोश्च राजर्षेः शुक्रं निपतितं जले ॥ सशुक्रं तज्जलं पीत्वा वेश्या गर्भं दधौ किल ॥ ६४ ॥ मुनेर्विभाण्डकस्यापि शुक्रं पीत्वा सहाम्भसा ॥ हरिणी गर्भिणी भूत्वा ऋष्यशृङ्गमसूयत ॥ ६५ ॥ सुराष्ट्रस्य तथा राज्ञः करं स्पृष्ट्वा मृगाङ्गना ॥ तत्क्षणाद्गर्भिणी भूत्वा मुनिं प्रासूत तापसम् ॥ ६६ ॥ तथा सत्यवती नारी शफरीगर्भसंभवा ॥ तथैव महिषीगर्भो जातश्च महिषासुरः ॥ ६७ ॥ तथा सन्ति पुरा नार्यः कारुण्याद्गर्भसंभवाः ॥ तथा हि वसुदेवेन रोहिण्यास्तनयोऽभवत् ॥ ६८ ॥ देवतानां महर्षीणां शापेन च वरेण च ॥ अयुक्तमपि यत्कर्म

उस ईश्वर का कर्तव्य कौन जानता है ॥ ६३ ॥ क्योंकि यूपकेतु राजर्षि का वीर्य जलमें गिरपड़ा और वीर्य समेत उस जल को पीकर वेश्या ने गर्भ को धारण किया है ॥ ६४ ॥ और विभांडक मुनि के वीर्य को जल के साथ पीकर हरिणीने गर्भिणी होकर ऋष्यशृंग को पैदा किया है ॥ ६५ ॥ और सुराष्ट्र राजा के हाथ को छूकर मृगीने उसी क्षण गर्भिणी होकर तापस मुनि को पैदा किया है ॥ ६६ ॥ वैसेही सत्यवती स्त्री मछली के पेटसे पैदा हुई है और महिषासुर भैंसी के गर्भ से पैदा हुआ है ॥ ६७ ॥ और पुरातन समय स्त्रियां दयासे गर्भ में उत्पन्न हुई हैं व वसुदेव से रोहिणी के पुत्र हुआ है ॥ ६८ ॥ और देवताओं व महर्षियों के शाप व

वरदान से जो अयोग्य भी कर्म होता है वहभी योग्य होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६६ ॥ मुनि के शाप से साम्ब के पेटसे मुसल पैदा हुआ है और मुनियों के मन्त्र के गौरव से युवनाश्व राजा के गर्भ हुआ है ॥ ७० ॥ और निश्चय करै यह कल्याणी व अनिन्दित शारदा महर्षि के चरणों को सेवनेसे व महाव्रत के प्रभाव से गर्भ को धारण किये है ॥ ७१ ॥ इस विषय में इससे एकान्त में स्त्रियां सत्य पूंछैं तब महाजन लोगों की सन्देह निवृत्त होगी ॥ ७२ ॥ तदनन्तर उसके वचन से स्त्रियों ने परस्पर पूंछा और उसने उन सब स्त्रियों से बड़े अद्भुत अपने वृत्तान्त को कहा ॥ ७३ ॥ तदनन्तर जानते हुए सब लोग उस सतीको मानकर प्रसन्न हुए

युज्यते नात्र संशयः ॥ ६६ ॥ साम्बस्य जठराज्जातं मुसलं मुनिशापतः ॥ युवनाश्वस्य गर्भोऽभून्मुनीनां मन्त्रगौरवात् ॥ ७० ॥ नूनमेषापि कल्याणी महर्षेः पादसेवनात् ॥ महाव्रतानुभावाच्च धत्ते गर्भमनिन्दिता ॥ ७१ ॥ अस्मिन्नर्थे रहस्येनां सत्यं पृच्छन्तु योषितः ॥ ततो निवृत्तसंदेहो भविष्यति महाजनः ॥ ७२ ॥ ततस्तद्वचनादेव तामपृच्छन्स्त्रियो मिथः ॥ ताभ्यः शशंस तत्सर्वं सा स्ववृत्तं महाद्भुतम् ॥ ७३ ॥ विजानन्तस्ततः सर्वे मानयित्वा च तां सतीम् ॥ मोदमानाः प्रशंसन्तः प्रययुः स्वं स्वमालयम् ॥ ७४ ॥ अथ काले शुभे प्राप्ते शारदा विमलाशया ॥ असूत तनयं बाला बालार्कसमतेजसम् ॥ ७५ ॥ स कुमारो महोदारलक्षणः कमलेक्षणः ॥ अवाप्य महतीं विद्यां बाल्य एव महामतिः ॥ ७६ ॥ अथोपनीतो गुरुणा काले लोकमनोरमः ॥ स शारदेय एवेति लोके ख्यातिमवाप ह ॥ ७७ ॥ ऋग्वेदमष्टमे वर्षे नवमे यजुषां गणम् ॥ दशमे सामवेदं च लीलयाध्यगमत्सुधीः ॥ ७८ ॥ अथ त्रिलोकमहिते संप्राप्ते शिवपर्वणि ॥

व प्रशंसा करते हुए सबलोग अपने अपने घरको गये ॥ ७४ ॥ इसके उपरान्त उत्तम समय प्राप्त होनेपर निर्मल आशयवाली शारदा ने बाल सूर्यों के समान तेजवाले पुत्र को पैदा किया ॥ ७५ ॥ और बड़े उदार लक्षणोंवाला वह कमललोचन बालक बड़ी विद्या को पाकर बाल्यावस्थाही में बडा बुद्धिमान् हुआ ॥ ७६ ॥ इसके उपरान्त समय में गुरु से यज्ञोपवीत किया हुआ लोकोंमें सुन्दर वह संसार में शारदेय ही ऐसी प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ ॥ ७७ ॥ और उत्तम बुद्धिवाले उस बालक ने आठवें वर्ष में ऋग्वेद व नवें में यजुर्वेद और दशवें में लीला से सामवेद को पढ़ लिया ॥ ७८ ॥ इसके उपरान्त त्रिलोक से पूजित शिवपर्व के प्राप्त

होनेपर सब कहीं के बसनेवाले सबलोग गोकर्णक्षेत्रको गये ॥ ७६ ॥ और शारदाभी अपने पुत्रके साथ गोकर्णक्षेत्रको चलीगई ॥ ८० ॥ और वहां उसने सदैव स्वप्न में देखेहुए पूर्व जन्ममें पति को द्विजों व बन्धुगणों से घिरे तथा आये हुए देखा ॥ ८१ ॥ व उसको देख कर प्रेमसे पूर्ण तथा रोमांचित शरीरवाली शारदा आँसुवों के प्रवाह को रोंक कर उसी में नेत्रों को लगाकर खड़ी हुई ॥ ८२ ॥ और वह ब्राह्मण भी रूप तथा लक्षणों से लक्षित तथा स्वप्न में सदैव भोगी जाती हुई व अपना को रति देनेवाली उस स्त्री को देखकर ॥ ८३ ॥ व स्वप्न में अपने शरीर से उपजे हुए उस कुमार को भी देखकर विस्मय संयुत हुआ

गोकर्णं प्रययुः सर्वे जनाः सर्वनिवासिनः ॥ ७६ ॥ शारदापि स्वपुत्रेण गोकर्णं प्रययौ सती ॥ ८० ॥ तत्रापश्यत्समायातं सदा स्वप्नेषु लक्षितम् ॥ पूर्वजन्मनि भर्त्तारं द्विजबन्धुजनावृतम् ॥ ८१ ॥ तं दृष्ट्वा प्रेमनिर्विष्टा पुलकाङ्कितविग्रहा ॥ निरुद्धबाष्पप्रसरा तस्थौ तन्न्यस्तलोचना ॥ ८२ ॥ स च विप्रोऽपि तां दृष्ट्वा रूपलक्षणलक्षिताम् ॥ स्वप्ने सदा भुज्यमानामात्मनो रतिदायिनीम् ॥ ८३ ॥ तं कुमारमपि स्वप्ने दृष्ट्वा चात्मशरीरजम् ॥ विलोक्य विस्मयाविष्टस्तदन्तिकमुपाययौ ॥ ८४ ॥ भद्रे त्वां प्रष्टुमिच्छामि यत्किंचिन्मनसि स्थितम् ॥ इति प्रथममाभाष्य रहः स्थानं निनाय ताम् ॥ ८५ ॥ का त्वं कथय वामोरु कस्य भार्यासि सुव्रते ॥ को देशः कस्य वा पुत्री किन्नामेत्यब्रवीच्च ताम् ॥ ८६ ॥ इति तेन समापृष्टा सा नारी बाष्पलोचना ॥ व्याजहारात्मनो वृत्तं बाल्ये वैधव्यकारणम् ॥ ८७ ॥ पुनः पप्रच्छ तां बालां पुत्रः कस्यायमुत्तमः ॥ कथं धृतो वा जठरे बालोऽयं चन्द्रसन्निभः ॥ ८८ ॥ शारदोवाच ॥ एष मे तनयः स्वामिन्सर्व

और उसके समीप आया ॥ ८४ ॥ व उसने कहा कि हे भद्रे ! जो कुछ तुम्हारे मनमें स्थित हो उसको मैं पूछना चाहता हूं यह पहले कहकर उसको एकान्त स्थान में लेगया ॥ ८५ ॥ व उसने कहा कि हे वामोरु ! तुम कौन हो कहिये व किसकी स्त्री हो और कौन देश है व किसकी कन्या हो और क्या नाम है यह उसमे कहा ॥ ८६ ॥ उससे यह पूंछी हुई आँसुवों समेत लोचनोंवाली उस स्त्रीने बाल्यावस्था में विधवा होनेका कारण व अपना वृत्तान्त कहा ॥ ८७ ॥ फिर उस स्त्रीसे कहा कि यह किसका उत्तम पुत्र है और चन्द्रमा के समान यह बालक कैसे पेट में धारण किया गया है ॥ ८८ ॥ शारदा बोली कि हे स्वामिन् ! सब

विद्याओं में प्रवीण यह मेरा पुत्र मेरेही नाम से शारदेय ऐसा कहा गयाहै ॥ ८९ ॥ उसका यह वचन सुनकर द्विजोत्तमने हँसकर कहा कि हे भामिनि ! तुम्हारा चरित्र कष्टसे भी अधिक कष्ट है ॥ ९० ॥ कि ब्याहही करके तुम्हारा पति मरगया तो कैसे यह पुत्र पैदाहुआ उसका कारण कहिये ॥ ९१ ॥ उससे कहीहुई इस वाणी को सुनकर वह बहुत लज्जित हुई और क्षणभर आँसुवों से संयुत मुखवाली होकर धैर्य से इस प्रकार बोली ॥ ९२ ॥ (शारदा बोली) कि हे महामते ! परिहास के कहने से कुछ प्रयोजन नहीं है तुम मुझको जानते हो व मैं भी तुमको जानती हूं इसवस्तु में हमारा व तुम्हारा दोनों का मनही प्रमाण है ॥ ९३ ॥ यह कहकर व

विद्याविशारदः ॥ शारदेय इति प्रोक्तो मम नाम्नैव कल्पितः ॥ ८९ ॥ इति तस्या वचः श्रुत्वा विहस्य ब्राह्मणोत्तमः ॥ प्रोवाच कष्टात्कष्टं हि चरितं तव भामिनि ॥ ९० ॥ पाणिग्रहणमात्रं ते कृत्वा भर्त्ता मृतः किल ॥ कथं चायं सुतो जातस्त स्य कारणमुच्यताम् ॥ ९१ ॥ इति तेनोदितां वाणीमाकर्ण्यातीव लज्जिता ॥ क्षणं चाश्रुमुखी भूत्वा धैर्यादित्थमभा षत ॥ ९२ ॥ शारदोवाच ॥ तदलं परिहासोक्त्या त्वं मां वेत्सि महामते ॥ त्वामहं वेद्मि चार्थेऽस्मिन्प्रमाणं मन आव योः ॥ ९३ ॥ इत्युक्त्वा सर्वमावेद्य देव्या दत्तं वरादिकम् ॥ व्रतस्यार्धं कुमारं तं ददौ तस्मै धृतव्रतम् ॥ ९४ ॥ सोऽपि प्रमुदितो विप्रः कुमारं प्रतिगृह्य तम् ॥ पित्रोरनुमतेनैव तां निनाय निजालयम् ॥ ९५ ॥ सापि स्थित्वा बहून्मासांस्तस्य विप्रस्य मन्दिरे ॥ तस्मिन्कालवशं प्राप्ते प्रविश्याग्निं तमन्वगात् ॥ ९६ ॥ ततस्तौ दम्पती भूत्वा विमानं दिव्यमा स्थितौ ॥ दिव्यभोगसमायुक्तौ जग्मतुः शिवमन्दिरम् ॥ ९७ ॥ इत्येतत्पुण्यमाख्यानं मया समनुवर्णितम् ॥ पठतां

देवीजी से दियेहुए सब वरादिक को बतलाकर व्रत के अर्धभाग को व व्रतको धारनेवाले उस बालक को देदिया ॥ ९४ ॥ और वह ब्राह्मण भी प्रसन्न होकर उस बालक को लेकर माता, पिता के सम्मत से उसको अपने घरको लेगया ॥ ९५ ॥ और वह भी उस ब्राह्मण के मन्दिर में बहुत दिनोंतक टिककर जब वह मृत्यु के वशमें प्राप्त हुआ तब अग्नि में पैठकर उसके पीछे चलीगई ॥ ९६ ॥ तदनन्तर वे दोनों स्त्री पुरुष दिव्य विमान पै चढ़कर दिव्य सुखों से संयुत शिवजी के मन्दिर को चलेगये ॥ ९७ ॥ यह पुण्य कथानक मैंने कहा जो कि पढ़ने व सुननेवाले लोगों को भलीभांति भुक्ति, मुक्ति के

फलका दायक है ॥ ६८ ॥ और आयुर्बल, आरोग्य, सम्पत्ति व धन, धान्य को बढ़ानेवाला है और स्त्रियों के मङ्गल, सौभाग्य, सन्तान व सुख का साधन है ॥ ६६ ॥ पातकसमूहोंके नाशक इस गौरी व महेश्वर व्रतके पुण्यकीर्तनरूप कथानक को जो भक्तिसे एक बार सुनता व कहताहै वह सुखों को भोगकर सनातन स्थान को प्राप्त होता है ॥ १०० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां शारदाख्यानवर्णननामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दो॰। जिमि रुद्राक्ष प्रभाव सों भइ यक वेश्या मुक्त। सोइ बीस अध्याय में चरित अहै अति गुप्त॥ सूतजी बोले कि इसके उपरान्त मैं संक्षेप से रुद्राक्ष का

शृण्वतां सम्यग्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ ९८॥ आयुरारोग्यसम्पत्तिधनधान्यविवर्द्धनम् ॥ स्त्रीणां मङ्गलसौभाग्यसन्तान सुखसाधनम् ॥ ९९ ॥ एतन्महाख्यानमघौघनाशनं गौरीमहेशव्रतपुण्यकीर्तनम् ॥ भक्त्या सकृद्यः शृणुयाच्च कीर्तयेद्भुक्त्वा स भोगान्पदमेति शाश्वतम् ॥ १०० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे शारदाख्यानवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ अथ रुद्राक्षमाहात्म्यं वर्णयामि समासतः ॥ सर्वपापक्षयकरं शृण्वताम्पठतामपि ॥ १ ॥ अभक्तो वापि भक्तो वा नीचो नीचतरोपि वा ॥ रुद्राक्षान्धारयेद्यस्तु मुच्यते सर्वपातकैः ॥ २ ॥ रुद्राक्षधारणं पुण्यं केन वा सदृशं भवेत् ॥ महाव्रतमिदं प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३ ॥ सहस्रं धारयेद्यस्तु रुद्राक्षाणां धृतव्रतः ॥ तं नमन्ति सुरास्सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः ॥ ४ ॥ अभावे तु सहस्रस्य बाह्वोः षोडश षोडश॥ एकं शिखायां करयोर्द्वादश द्वाद

माहात्म्य कहताहूं जोकि सुनने व पढ़नेवालों के भी सब पापों का नाशक है ॥ १ ॥ अभक्त या भक्त व नीच और नीचसे भी अधिक जो रुद्राक्षों को धारण करता है वह सब पापों से छूट जाता है ॥ २ ॥ और रुद्राक्ष धारण का पुण्य किसके समान है व तत्त्वदर्शी मुनियोंने इसको महाव्रत कहा है ॥ ३ ॥ और व्रतों को धारने वाला जो मनुष्य हज़ार रुद्राक्षोंको धारण करताहै उसको सब देवता प्रणाम करते हैं और वह शिवजीके समान होताहै ॥ ४ ॥ व हजारके न होने में दोनों भुजाओं

में सोलह सोलह व एक चोटी में और हाथोंमें बारह बारह धारण करै ॥ ५ ॥ व गले में बत्तीस और मस्तक में चालीस तथा एक एक कान में छः छः और वक्षस्थले में एक सौ आठ रुद्राक्षों को जो धारण करता है वह भी शिवजीकी नाई पूजा जाता है ॥ ६ ॥ और मोती, मूंगा, स्फटिक, चांदी, वैदूर्य व सुवर्ण समेत रुद्राक्षों को जो धारण करता है वह शिव होजाता है ॥ ७ ॥ और जैसे मिलैं वैसे रुद्राक्षों को भी जो केवल धारण करता है उसको पाप नहीं छूते हैं जैसे कि अन्धकार सूर्य को नहीं स्पर्श करते हैं ॥ ८ ॥ व रुद्राक्ष की मालासे जपा हुआ मन्त्र अमित फलको देताहै और बिन रुद्राक्ष से जप पुरुषों को उतनेही फल को देताहै ॥ ९ ॥ और

शैव हि ॥ ५ ॥ द्वात्रिंशत्कण्ठदेशे तु चत्वारिंशत्तु मस्तके ॥ एकैककर्णयोः षट् षड् वक्षस्यष्टोत्तरं शतम् ॥ ६ ॥ यो धारयति रुद्राक्षान्रुद्रवत्सोपि पूज्यते ॥ मुक्ताप्रवालस्फटिकरौप्यवैदूर्यकाञ्चनैः ॥ समेतान्धारयेद्यस्तु रुद्राक्षान्स शिवो भवेत् ॥ ७ ॥ केवलानपि रुद्राक्षान्यथालाभं बिभर्ति यः ॥ तं न स्पृशन्ति पापानि तमांसीव विभावसुम् ॥ ८ ॥ रुद्राक्षमालया जप्तो मन्त्रोऽनन्तफलप्रदः ॥ अरुद्राक्षो जपः पुंसां तावन्मात्रफलप्रदः ॥ ९ ॥ यस्याङ्गे नास्ति रुद्राक्ष एकोपि बहुपुण्यदः ॥ तस्य जन्म निरर्थं स्यात्त्रिपुण्ड्ररहितं यदि ॥ १० ॥ रुद्राक्षं मस्तके बद्ध्वा शिरस्स्नानं करोति यः ॥ गङ्गास्नानफलं तस्य जायते नात्र संशयः ॥ ११ ॥ रुद्राक्षं पूजयेद्यस्तु विना तोयाभिषेचनम् ॥ यत्फलं लिङ्गपूजायास्तदेवाप्नोति निश्चितम् ॥ १२ ॥ एकवक्त्राः पञ्चवक्त्रा एकादशमुखाः परे ॥ चतुर्दशमुखाःकेचिद्रुद्राक्षा लोकपूजिताः ॥ १३ ॥ भक्त्या सम्पूजितो नित्यं रुद्राक्षः शङ्करात्मकः ॥ दरिद्रं वापि कुरुते राजराजश्रियान्वितम् ॥ १४ ॥ अत्रेदं पुण्य

बहुत पुण्य को देनेवाला एक भी रुद्राक्ष जिसके अंगमें नहीं है उसका जन्म निरर्थक है यदि त्रिपुण्ड्र से रहित होवै ॥ १० ॥ और मस्तक में रुद्राक्ष को बाँधकर जो शिर से स्नान करता है उसको गङ्गास्नान का फल होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥ और जो जल के स्नान के विना रुद्राक्ष को पूजता है वह उसी फल को निश्चयकर पाता है जोकि लिङ्ग के पूजन का होता है ॥ १२ ॥ और एकमुख, पांचमुख तथा अन्य गेरह मुखवाले व कोई चौदह मुखवाले रुद्राक्ष संसार में पूजित होते हैं ॥ १३ ॥ नित्य भक्ति से पूजा हुआ शंकरात्मक रुद्राक्ष निर्धनी मनुष्य को भी राजराज की लक्ष्मी से संयुत करता है ॥ १४ ॥ विद्वान्

लोग इस विषय में इस पवित्र चरित्र को वर्णन करते हैं जोकि सुनने व कहने से भी महापातकों का विनाशकारक है॥ १५॥ कास्मीर देश का भद्रसेन ऐसा प्रसिद्ध राजा हुआ है उसके सुधर्मा नामक बलवान् पुत्र हुआ ॥ १६ ॥ और उत्तम गुणवाला कोई तारक नामक उसके मन्त्री का पुत्र राजपुत्र का बडा उत्तम मित्र हुआ है ॥ १७ ॥ वे दोनों रूप से सुन्दर बालक वड़े स्नेही थे और विद्या के अभ्यास में परायण वे दोनों साथही क्रीडा करते थे॥ १८॥ और सदैव सब अंगों में रुद्राक्ष का भूषण किये उदार अंगवाले वे दोनों घूमते थे व सदैव भस्म को धारण किये रहते थे॥ १९ ॥ और सुवर्ण व रत्नमय हार, वजुल्ला,

माख्यानं वर्णयन्ति मनीषिणः ॥ महापापक्षयकरं श्रवणात्कीर्त्तनादपि ॥ १५ ॥ राजा काश्मीरदेशस्य भद्रसेन इति श्रुतः ॥ तस्य पुत्रोऽभवद्धीमान्सुधर्मानाम वीर्यवान् ॥ १६ ॥ तस्यामात्यसुतः कश्चित्तारको नाम सद्गुणः ॥ व भूव राजपुत्रस्य सखा परमशोभनः ॥ १७ ॥ तावुभौ परमस्निग्धौ कुमारौ रूपसुन्दरौ ॥ विद्याभ्यासपरौ बाल्ये सह क्रीडां प्रचक्रतुः ॥ १८ ॥ तौ सदा सर्वगात्रेषु रुद्राक्षकृतभूषणौ ॥ विचेरतुरुदाराङ्गौ सततं भस्मधारिणौ ॥ १९ ॥ हारकेयूरकटककुण्डलादिविभूषणम् ॥ हेमरत्नमयं त्यक्त्वा रुद्राक्षान्दधतुश्च तौ ॥ २० ॥ रुद्राक्षमालिनौ नित्यं रुद्राक्षकरकङ्कणौ ॥ रुद्राक्षकण्ठाभरणौ सदा रुद्राक्षकुण्डलौ ॥ २१ ॥ हेमरत्नाद्यलङ्कारे लोष्टपाषाणदर्शनौ ॥ बोध्यमानावपि जनैर्न रुद्राक्षान्व्यमुञ्चताम् ॥ २२ ॥ तस्य काश्मीरराजस्य गृहं प्राप्तो यदृच्छया ॥ पराशरो मुनिवरः साक्षादिव पितामहः ॥ २३ ॥ तमर्चयित्वा विधिवद्राजा धर्मभृतां वरः ॥ पप्रच्छ सुखमासीनं त्रिकालज्ञं महामुनिम् ॥ २४ ॥ राजोवाच ॥

कङ्कण व कुण्डलादिक भूषण को छोड़कर वे रुद्राक्षों को धारण करते थे ॥ २० ॥ और नित्य रुद्राक्ष की माला पहने व रुद्राक्ष का हाथों में कङ्कण पहने तथा रुद्राक्ष का कण्ठा पहने और सदैव रुद्राक्ष के कुण्डल पहने रहते थे ॥ २१ ॥ और सुवर्ण व रत्नादिकों के भूषण में मिट्टी के ढेला व पत्थर की दृष्टिसे देखते थे और लोगों से समझाये हुए भी उन्होंने रुद्राक्षों को नहीं छोड़ा ॥ २२ ॥ उस काश्मीर देश के राजा के घरमें साक्षात् ब्रह्मा की नाईं पराशरजी यकायक प्राप्त हुए ॥ २३ ॥ और विधिपूर्वक उनको पूजकर धर्मधारियों में श्रेष्ठ राजाने सुखपूर्वक बैठे हुए त्रिकालज्ञ महामुनि से पूंछा ॥ २४ ॥ राजा बोले कि हे भगवन्!

यह मेरा पुत्र और वह मेरे मन्त्री का पुत्र भी नित्य रुद्राक्ष को धारण करते हैं व रत्नों के भूषण में इच्छा नहीं करते हैं ॥ २५ ॥ रत्नों का भूषण पहनने में सदैव सिखलाये हुए भी वे हमारे वचनोंको उल्लङ्घनकर रुद्राक्षही में तत्पर रहते हैं ॥ २६ ॥ और कभी किसीने इन बालकों को सिखलाया नहीं है तो यह स्वाभाविकी वृत्ति कैसे बालकों की हुई ॥२७॥ पराशरजी बोले कि हे राजन् ! सुनिये बुद्धिमान् तुम्हारे पुत्र व तुम्हारे मन्त्री के पुत्र का जैसा आश्चर्यदायक पहले का वृत्तान्तहै वैसा मैं कहूंगा ॥ २८ ॥ कि पुरातन समय नन्दिग्राम में शृंगार से सुन्दर रूपवाली कोई महानन्दा ऐसी प्रसिद्ध वेश्या हुई है ॥ २९ ॥ उसके पूर्ण चन्द्रमा के समान छत्र व

भगवन्नेष पुत्रो मे सोपि मन्त्रिसुतश्च मे ॥ रुद्राक्षधारिणौ नित्यं रत्नाभरणनिःस्पृहौ ॥ २५ ॥ शास्यमानावपि सदा रत्नाकल्पपरिग्रहे ॥ विलङ्घितास्मद्वचनौ रुद्राक्षेष्वेव तत्परौ ॥ २६ ॥ नोपदिष्टाविमौ बालौ कदाचिदपि केनचित् ॥ एषा स्वाभाविकी वृत्तिः कथमासीत्कुमारयोः ॥ २७ ॥ पराशर उवाच ॥ शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तव पुत्रस्य धीमतः ॥ यथा त्वन्मन्त्रिपुत्रस्य प्राग्वृत्तं विस्मयावहम् ॥ २८ ॥ नन्दिग्रामे पुरा काचिन्महानन्देति विश्रुता ॥ बभूव वारवनिता शृङ्गारललिताकृतिः ॥ २९ ॥ छत्रं पूर्णेन्दुसङ्काशं यानं स्वर्णविराजितम् ॥ चामराणि सुदण्डानि पादुके च हिरण्मये ॥ ३० ॥ अम्बराणि विचित्राणि महार्हाणि द्युमन्ति च ॥ चन्द्ररश्मिनिभाः शय्याः पर्यङ्काश्च हिरण्मयाः ॥ ३१ ॥ गावो महिष्यः शतशो दासाश्च शतशस्तथा ॥ ३२ ॥ सर्वाभरणदीप्ताङ्ग्यो दास्यश्च नवयौवनाः ॥ भूषणानि परार्ध्याणि नवरत्नोज्ज्वलानि च ॥ ३३ ॥ गन्धकुङ्कुमकस्तूरीकर्पूरागुरुलेपनम् ॥ चित्रमाल्यावतंसश्च यथेष्टं मृष्ट

सोने से शोभित रथ तथा उत्तम दण्डवाले छत्र और सुवर्णमय खड़ाऊं थीं ॥ ३० ॥ और बडे मोलवाले व सुन्दर विचित्र वस्त्र थे तथा चन्द्रमा की किरणों के समान शय्या व सोने के पलँग थे ॥ ३१॥ और सैकड़ों गाई,भैंसी व सेवक थे ॥ ३२॥ और सब भूषणोंसे चमकते हुए अगोंवाली तथा नवीन यौवनवाली दासियां थीं और नवीन रत्नों से उज्ज्वल बड़े कीमती भूषण थे ॥ ३३ ॥ और चन्दन, कुंकुम, कस्तूरी व कपूर तथा अगुरु का लेपन और विचित्र माला व शिरोभूषण तथा

इच्छा के अनुकूल दिव्य भोजन था ॥ ३४ ॥ और अनेक भांति के विचित्र वितानों से संयुत तथा अनेक प्रकार के धान्यों से संयुत व बहुत हज़ार रत्नों से संयुत घर था और करोड़ संख्या से अधिक धन था ॥ ३५ ॥ इस प्रकार ऐश्वर्य से संयुत इच्छाके अनुकूल विहार करनेवाली वेश्या सत्य के धर्म में परायण सदैव शिवपूजन में लगी थी ॥ ३६ ॥ और सदैव शिवजी की कथा में आसक्त और शिवनाम की कथा में उत्कंठित थी और शिवभक्तों के चरणों को प्रणाम करने वाली व सदैव शिवभक्ति में परायण थी ॥ ३७ ॥ और क्रीड़ा के कारण वह वेश्या नाट्यमण्डप के मध्य में रुद्राक्षों से एक वानर व एक मुर्गे को भूषित करके ॥३८॥

भोजनम् ॥ ३४ ॥ नानाचित्रवितानाढ्यं नानाधान्यमयं गृहम् ॥ बहुरत्नसहस्राढ्यं कोटिसंख्याधिकं धनम् ॥ ३५ ॥ एवं विभवसम्पन्ना वेश्या कामविहारिणी ॥ शिवपूजारता नित्यं सत्यधर्मपरायणा ॥ ३६ ॥ सदाशिवकथासक्ता शिवनामकथोत्सुका ॥ शिवभक्ताङ्घ्रयवनता शिवभक्तिरतानिशम् ॥ ३७ ॥ विनोदहेतोः सा वेश्या नाट्यमण्डप मध्यतः ॥ रुद्राक्षैर्भूषयित्वैकं मर्कटं चैव कुक्कुटम् ॥ ३८ ॥ करतालैश्च गीतैश्च सदा नर्तयति स्वयम् ॥ पुनश्च विहसन्त्युच्चैः सखीभिः परिवारिता ॥ ३९ ॥ रुद्राक्षैः कृतकेयूरकर्णाभरणभूषणः ॥ मर्कटः शिक्षया तस्याः सदा नृत्यति बालवत् ॥ ४० ॥ शिखायां बद्धरुद्राक्षः कुक्कुटः कपिना सह ॥ चिरं नृत्यति नृत्यज्ञः पश्यतां चित्रमावहन् ॥ ४१ ॥ एकदा भवनं तस्याः कश्चिद्वैश्यः शिवव्रती ॥ आजगाम सरुद्राक्षस्त्रिपुण्ड्री निर्ममः कृती ॥ ४२ ॥ स बिभ्रद्वस्म

सदैव करतालों व गीतों से आपही नचाती थी और फिर सखियों से घिरी हुई वह उच्च स्वर से हँसती थी ॥ ३९ ॥ और रुद्राक्षों से किये हुए बजुल्ला व कर्णाभरण भूषणोंवाला वानर उसकी शिक्षा से सदैव वानर की नाईं नाचता था ॥ ४० ॥ और चोटी में बँधे हुए रुद्राक्षवाला मुर्गा जोकि नृत्य को जानता था देखनेवालों को आश्चर्य प्राप्त कराता हुआ वह वानर के साथ बहुत देरतक नाचता था ॥ ४१ ॥ एक समय उसके घरको कोई शैव वैश्य आया जोकि रुद्राक्ष को पहने व ममतारहित तथा पुण्यवान् था ॥ ४२ ॥ और उत्तम पहुँचे में वह बड़े रत्नों से जटित श्रेष्ठ कङ्कण को पहने व भस्म को धारण किये था

दुपहरी के सूर्यनारायण के समान जलते हुए ॥ ४३ ॥ उस आये हुए वैश्य को बडी प्रसन्नता से पूजकर उस आश्चर्य संयुत वेश्या ने पहुंचे में बँधे हुए उस कङ्कण को देखकर कहा ॥ ४४ ॥ कि हे साधो ! महारत्नमय जो यह कंकण तुम्हारे हाथमें स्थित है दिव्य स्त्रियों के भूषण के योग्य वह मेरे मन को हरता है ॥ ४५ ॥ इस प्रकार उत्तम रत्नों से संयुत हाथ के भूषण में चाहवाली उस वेश्या को देखकर उदारबुद्धिवाले उस वैश्य ने मुसक्यान समेत कहा ॥ ४६ ॥ (वैश्य बोला) कि इस दिव्य व श्रेष्ठ रत्नमें यदि तुम्हारा मन अभिलाष करता है तो बहुत प्रसन्न होकर उसीको लीजिये और इसका क्या मूल्य दोगी ॥ ४७ ॥ वेश्या बोली कि हम

तरुणार्कवत् ॥ ४३ ॥ तमागतं सा गणिका सम्पूज्य परया मुदा ॥ तत्प्रकोष्ठगतं वीक्ष्य कङ्कणं प्राह विस्मिता ॥ ४४ ॥ महारत्नमयः सोऽयं कङ्कणस्त्वत्करे स्थितः ॥ मनो हरति मे साधो दिव्यस्त्रीभूषणोचितः ॥ ४५ ॥ इति तां वररत्नाढ्ये सस्पृहां करभूषणे ॥ वीक्ष्योदारमतिर्वैश्यः सस्मितं समभाषत ॥ ४६ ॥ वैश्य उवाच ॥ अस्मिन्रत्नवरे दिव्ये यदि ते सस्पृहं मनः ॥ तमेवादत्स्व सुप्रीता मौल्यमस्य ददासि किम् ॥ ४७ ॥ वेश्योवाच ॥ वयं तु स्वैरचारिण्यो वेश्यास्तु न पतिव्रताः ॥ अस्मत्कुलोचितो धर्मो व्यभिचारो न संशयः ॥ ४८ ॥ यद्येतद्रत्नखचितं ददासि करभूषणम् ॥ दिनत्रयमहोरात्रं तव पत्नी भवाम्यहम् ॥ ४९ ॥ वैश्य उवाच ॥ तथास्तु यदि ते सत्यं वचनं वारवल्लभे ॥ ददामि रत्नवलयं त्रिरात्रं भव मद्वधूः ॥ ५० ॥ एतस्मिन्व्यवहारे तु प्रमाणं शशिभास्करौ ॥ त्रिवारं सत्यमित्युक्त्वा हृदयं मे स्पृश प्रिये ॥ ५१ ॥ वेश्योवाच ॥

विशदे प्रकोष्ठे वरकङ्कणम् ॥ महारत्नपरिस्तीर्णं ज्वलन्तं

तो इच्छा के अनुसार काम करनेवाली वेश्या हैं पतिव्रता नहीं हैं और हमारे कुलके योग्य धर्म व्यभिचार है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ यदि रत्नोंसे जटित इस हाथ के भूषण को तुम दोगे तो मैं तीन दिन अहर्निश तुम्हारी स्त्री हूंगी ॥ ४९ ॥ वैश्य बोला कि हे वारवल्लभे ! वैसाही होगा यदि तुम्हारा वचन सत्य है तो मैं रत्नजटित कङ्कण को देता हू तुम तीन रात तक मेरी स्त्री होवो ॥ ५० ॥ इस व्यवहार में चन्द्रमा व सूर्य साक्षी हैं हे प्रिये ! तीन बार सत्य कहकर मेरा हृदय छुवो ॥ ५१ ॥ वेश्या बोली कि हे प्रभो ! तीन दिन अहर्निश तुम्हारी स्त्री होकर स्त्रीका काम करूंगी यह कहकर उस वेश्याने उसके हृदयको

छूलिया ॥ ५२ ॥ इसके उपरान्त उस वैश्यने उसके लिये रत्नों का कङ्कण दिया व रत्नमय लिङ्गको इसके हाथ में देकर यह कहा ॥ ५३ ॥ कि हे कान्ते ! मेरे प्राणों के समान इस रत्नमय शिवलिङ्गकी तुम रक्षा करना क्योंकि उसकी हानि होना मेरी मृत्यु है ॥ ५४ ॥ ऐसाही होगा यह कहकर वह वेश्या रत्नोंसे उत्पन्न लिङ्गको लेकर नाट्यमण्डप के खम्भ में धरकर घरको चलीगई ॥ ५५ ॥ और परस्त्रीगामी धर्मवाले उस वैश्य के साथ उस वेश्याने कोमल शय्यासे शोभित पलँग पै सुखपूर्वक शयन किया ॥ ५६ ॥ तदनन्तर आधीरात में नाट्यमण्डप के मध्यमें यकायक आग लगगई और उस मण्डप को अचानकही घेर लिया ॥ ५७ ॥ और जब मण्डप

दिनत्रयमहोरात्रं पत्नी भूत्वा तव प्रभो ॥ सहधर्मं चरामीति सा तद्धृदयमस्पृशत् ॥ ५२ ॥ अथ तस्यै स वैश्यस्तु प्रददौ रत्नकङ्कणम् ॥ लिङ्गं रत्नमयं चास्या हस्ते दत्त्वेदमब्रवीत् ॥ ५३ ॥ इदं रत्नमयं शैवं लिङ्गं मत्प्राणसंनिभम् ॥ रक्षणीयं त्वया कान्ते तस्य हानिर्मृतिर्मम ॥ ५४ ॥ एवमस्त्विति सा कान्ता लिङ्गमादाय रत्नजम् ॥ नाट्यमण्डपिकास्तम्भे निधाय प्राविशद् गृहम् ॥ ५५ ॥ सा तेन संगता रात्रौ वैश्येन विटधर्मिणा ॥ सुखं सुष्वाप पर्यङ्के मृदुतल्पोपशोभिते ॥ ५६ ॥ ततो निशीथसमये नाट्यमण्डपिकान्तरे ॥ अकस्मादुत्थितो वह्निस्तमेव सहसावृणोत् ॥ ५७ ॥ मण्डपे दह्यमाने तु सहसोत्थाय संभ्रमात् ॥ सा वेश्या मर्कटं तत्र मोचयामास बन्धनात् ॥ ५८ ॥ स मर्कटो मुक्तबन्धः कुक्कुटेन सहामुना ॥ भीतो दूरं प्रदुद्राव विधूयाग्निकणान्बहून् ॥ ५९ ॥ स्तम्भेन सह निर्दग्धं तल्लिङ्गं शकलीकृतम् ॥ दृष्ट्वा वेश्या च वैश्यश्च दुरन्तं दुःखमापतुः ॥ ६० ॥ दृष्ट्वा प्राणसमं लिङ्गं दग्धं वैश्यपतिस्तथा ॥ स्वयमप्यात्म

जलनेलगा तब यकायक शीघ्रता से उठकर उस वेश्या ने वहां वानर को बन्धन से छुड़ा दिया ॥ ५८ ॥ इस मुर्गा समेत वह वानर बन्धन से छूटकर बहुतसे अग्नि के कणों को झाड़कर डरकर दूर भागगये ॥ ५९ ॥ और स्तम्भ (खम्भ) समेत जले व खण्ड खण्ड कियेहुए उस लिङ्ग को देखकर वेश्या और वैश्य बड़े दुःख को प्राप्त हुए ॥ ६० ॥ और प्राणों के समान लिङ्ग को जलाहुआ देखकर आप भी वैश्य ने वैराग्य को प्राप्त होकर मरने के लिये बुद्धि

किया ॥ ६१ ॥ और निर्वेद के कारण बहुत दुःख से वैश्य ने उस दुःखित वेश्या से कहा कि शिवलिङ्ग के टूट जानेपर मैं जीना नहीं चाहता हूं ॥ ६२ ॥ हे भद्रे ! अपने अधिक बलवान् वैश्यों से मेरी चिताको बनवाइये क्योंकि शिवजी में मनको लगाकर मैं अग्निमें पैठूंगा ॥ ६३ ॥ यदि ब्रह्मा, इन्द्र व विष्णु आदिक देवता मिलकर मुझको मना करैंगे तौभी इसी क्षण अग्निमें पैठकर मैं प्राणों को छोड़दूंगा ॥ ६४ ॥ इस प्रकार पुष्ट हठवाले उस वैश्य को जानकर बहुत दुःखित वेश्याने अपने नगर से बाहर अपने नौकरों से चिता को बनवाया ॥ ६५ ॥ तदनन्तर शिवजी की भक्ति से पवित्र वह बुद्धिमान् वैश्य लोगों के देखतेहुए जलतीहुई अग्नि

निर्वेदो मरणाय मतिं दधौ ॥ ६१ ॥ निर्वेदान्नितरां खेदाद्वैश्यस्तामाह दुःखिताम् ॥ शिवलिङ्गे तु निर्भिन्ने नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ६२ ॥ चितां कारय मे भद्रे तव भृत्यैर्बलाधिकैः॥शिवे मनः समावेश्य प्रविशामि हुताशनम् ॥ ६३ ॥ यदि ब्रह्मेन्द्रविष्ण्वाद्या वारयेयुः समेत्य माम् ॥ तथाप्यस्मिन्क्षणे धीरः प्रविश्याग्निं त्यजाम्यसून् ॥ ६४ ॥ तमेवं दृढबन्धं सा विज्ञाय बहुदुःखिता ॥ स्वभृत्यैः कारयामास चितां स्वनगराद्बहिः ॥ ६५ ॥ ततः स वैश्यः शिवभक्तिपूतः प्रदक्षिणीकृत्य समिद्धमग्निम् ॥ विवेश पश्यत्सु जनेषु धीरः सा चानुतापं युवती प्रपेदे ॥ ६६ ॥ अथ सा दुःखिता नारी स्मृत्वा धर्मं सुनिर्मलम् ॥ सर्वान्बन्धून्समीक्ष्यैवं बभाषे करुणं वचः ॥ ६७ ॥ रत्नकङ्कणमादाय मया सत्यमुदाहृतम् ॥ दिनत्रयमहं पत्नी वैश्यस्यामुष्य संमता ॥ ६८ ॥ कर्मणा मत्कृतेनायं मृतो वैश्यः शिवव्रती ॥ तस्मादहं प्रवेक्ष्यामि सहानेन हुताशनम् ॥ सधर्मचारिणीत्युक्तं सत्यमेतद्धि पश्यथ ॥ ६९ ॥ सत्येन प्रीतिमायान्ति देवास्त्रिभु

की प्रदक्षिणा करके पैठगया और वह वेश्या दुःख को प्राप्त हुई ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त वह दुःखित वेश्या अपने निर्मल धर्मको स्मरण करके सब बन्धुवों को देखकर ऐसा करुणवचन बोली ॥ ६७ ॥ कि रत्नों के कङ्कण को लेकर मैंने सत्य कहा है कि तीन दिनतक इस वैश्य की मैं स्त्री हूंगी ॥ ६८ ॥ व मुझ से कियेहुए कर्म से यह शिवव्रती वैश्य मरगया इस कारण इसके साथ मैं अग्नि में पैठूंगी और सधर्मचारिणी ऐसा कहा गया है इस सत्य को देखिये ॥ ६९ ॥ क्योंकि सत्य

से त्रिलोक के स्वामी प्रीति को प्राप्त होते हैं व सत्य में लगाहुआ उत्तम धर्म है और सत्य में सब स्थित है ॥ ७० ॥ और सत्य से स्वर्ग व मोक्ष होते हैं और असत्य से उत्तम गति नहीं होती है उस कारण सत्य के आश्रित होकर मैं अग्नि में पैठूंगी ॥ ७१ ॥ इस प्रकार दृढ़ हठवाली उस बन्धुवों से मना कीहुई भी वेश्या ने सत्य लोप होने के डरसे प्राणों के छोड़ने का मन किया ॥ ७२ ॥ और शिवभक्तों के लिये सर्बस देकर सदाशिवजी को ध्यान कर उस अग्नि की तीन बार प्रदक्षिणा कर पैठने के लिये खड़ी हुई ॥ ७३ ॥ और अपने चरणों में लगेहुए मनवाली व जलती अग्नि में गिरती हुई उस वेश्या को आपही विश्वात्मा

वनेश्वराः ॥ सत्यासक्तिः परो धर्मः सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥७० ॥ सत्येन स्वर्गमोक्षौ च नासत्येन परा गतिः ॥ तस्मा त्सत्यं समाश्रित्य प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ॥ ७१ ॥ इति सा दृढनिर्बन्धा वार्यमाणापि बन्धुभिः ॥ सत्यलोपभयान्नारी प्राणांस्त्यक्तुं मनो दधे ॥ ७२ ॥ सर्वस्वं शिवभक्तेभ्यो दत्त्वा ध्यात्वा सदाशिवम् ॥ तमग्निः त्रिः परिक्रम्य प्रवे शाभिमुखी स्थिता ॥ ७३ ॥ तां पतन्तीं समिद्धेग्नौ स्वपदार्पितमानसाम् ॥ वारयामास विश्वात्मा प्रादुर्भूतः शिवः स्वयम् ॥ ७४ ॥ सा तं त्रिलोक्याखिलदेवदेवं त्रिलोचनं चन्द्रकलावतंसम् ॥ शशाङ्कसूर्यानलकोटिभासं स्तब्धेव भीतेव तथैव तस्थौ ॥ ७५ ॥ तां विह्वलां परित्रस्तां वेपमानां जडीकृताम् ॥ समाश्वास्य गलद्बाष्पां करे गृह्या ब्रवीद्वचः ॥ ७६ ॥ शिव उवाच ॥ सत्यं धर्मं च ते धैर्यं भक्तिं च मयि निश्चलाम् ॥ निरीक्षितुं त्वत्सकाशं वैश्यो भूत्वाहमागतः ॥ ७७ ॥ माययाग्निं समुत्थाप्य दग्धवान्नाट्यमण्डपम् ॥ दग्धं कृत्वा रत्नलिङ्गं प्रविष्टोस्मि हुताश

शिवजीने प्रकट होकर मना किया ॥ ७४ ॥ चन्द्रकला के शिरोभूषणवाले व करोड़ों चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि के समान प्रकाशवाले उन अखिल देवदेव त्रिलो-चनजीको देखकर डरीहुईसी अचल होकर वैसीही खड़ी होगई ॥ ७५ ॥ और गिरते हुए आँसुवोंवाली उस विह्वल, डरी व काँपती तथा अचल की हुई वेश्या को समझाकर व हाथ में पकड़ कर शिवजी ने यह वचन कहा ॥ ७६ ॥ (शिवजी बोले) कि तुम्हारा सत्य, धर्म, धैर्य व मुझ में निश्चल भक्ति को देखने के लिये मैं वैश्य होकर आया था ॥ ७७ ॥ और मायासे अग्नि को उत्पन्न करके मैंने नाट्यमण्डप को जलादिया और रत्नमय लिङ्ग को जलाकर अग्नि में प्रवेश

किया ॥ ७८ ॥ वेश्या छल करनेवाली व स्वच्छन्दता के अनुसार काम करनेवाली और लोगों को छलनेवाली होती हैं परन्तु वही तुम वेश्या होकर सत्य को स्मरण कर मेरे साथ अग्नि में पैठगई ॥ ७९ ॥ इस कारण मैं तुमको देवताओं को भी दुर्लभ सुखों को दूंगा व हे सुश्रोणि ! दीर्घ आयुर्बल, नीरोगता और सन्तान की उन्नति जो जो तुम चाहती हो उस उसको मैं तुम्हें दूंगा ॥ ८० ॥ सूतजी बोले कि शिवजी के ऐसा कहने पर उस वेश्या ने प्रत्युत्तर दिया ॥ ८१ ॥ (वेश्या बोली) कि पृथ्वी, स्वर्ग व रसातल में भी मेरी सुखों में इच्छा नहीं है और तुम्हारे चरणकमलों के स्पर्श के सिवा मैं अन्य कुछ नहीं मागती हू ॥ ८२ ॥

नम् ॥ ७८ ॥ वेश्याः कैतवकारिण्यः स्वैरिण्यो जनवञ्चकाः ॥ सा त्वं सत्यमनुस्मृत्य प्रविष्टाग्निं मया सह ॥ ७९ ॥ अतस्ते संप्रदास्यामि भोगांस्त्रिदशदुर्लभान् ॥ आयुश्च परमं दीर्घमारोग्यं च प्रजोन्नतिम् ॥ यद्यदिच्छसि सुश्रोणि तत्तदेव ददामि ते ॥ ८० ॥ सूत उवाच ॥ इति ब्रुवति गौरीशे सा वेश्या प्रत्यभाषत ॥ ८१ ॥ वेश्योवाच ॥ न मे वाञ्छास्ति भोगेषु भूमौ स्वर्गे रसातले ॥ तव पादाम्बुजस्पर्शादन्यत्किञ्चिन्न वै वृणे ॥ ८२ ॥ एते भृत्याश्च दास्यश्च ये चान्ये मम बान्धवाः ॥ सर्वे त्वदर्चनपरास्त्वयि संन्यस्तवृत्तयः ॥ ८३ ॥ सर्वानेतान्मया सार्धं नीत्वा तव परं पदम् ॥ पुनर्जन्मभयं घोरं विमोचय नमोस्तु ते ॥ ८४ ॥ तथेति तस्या वचनं प्रतिनन्द्य महेश्वरः ॥ तान्सर्वांश्च तया सार्धं निनाय परमं पदम् ॥ ८५ ॥ पराशर उवाच ॥ नाट्यमण्डपिकादाहे यौ दूरं विद्रुतौ पुरा ॥ तत्रावशिष्टौ तावेव कुक्कुटो मर्कटस्तथा ॥ ८६ ॥ कालेन निधनं यातो यस्तस्या नाट्यमर्कटः ॥ सोभूत्तव कुमारोऽसौ कुक्कुटो

और ये नौकर, दासियां व अन्य जो मेरे बन्धुलोग हैं वे सब तुम्हारा पूजन करते हैं और तुम्हीं में मनकी वृत्ति को लगाये हैं ॥ ८३ ॥ मुझ समेत इन सबों को अपने परमपद में प्राप्त करके फिर भयंकर जन्म के भयको छुड़ा दीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ८४ ॥ बहुत अच्छा ऐसा कहकर उसके वचन की प्रशंसा करके शिवजी उस वेश्या समेत उन सबों को परमपद को लेगये ॥ ८५ ॥ पराशरजी बोले कि नाट्यमण्डप के जलने में जो दूर भागगये थे वे मुर्गा व वानर दोनों वहां बचगये ॥ ८६ ॥ और कालसे मृत्यु को प्राप्तहुए व जो उस वेश्या का नाट्यवाला वानर था वही यह तुम्हारा बालक हुआ व मुर्गा मन्त्री का पुत्र

हुआ ॥ ८७ ॥ और पूर्व जन्ममें इकट्ठा कियेहुए रुद्राक्ष धारण से उत्पन्न पुण्य से बड़े भारी कुलमें पैदाहुए ये बालक वर्तमान हैं ॥ ८८ ॥ और पूर्व जन्म के अभ्यास से शुद्धमनवाले ये दोनों रुद्राक्षों को धारण करते हैं व इस जन्म में उन शिवजी को पूजकर उस लोक को जावेंगे ॥ ८९ ॥ इन बालकों का यह वृत्तान्त कहागया व शिवभक्ता वेश्याकी कथा कहीगई अन्य क्या पूंछना चाहते हो ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरुद्राक्षमहिमवर्णननामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

मन्त्रिणः सुतः ॥ ८७ ॥ रुद्राक्षधारणोद्भूतात्पुण्यात्पूर्वभवार्जितात् ॥ कुले महति संजातौ वर्तेते बालकाविमौ ॥ ८८॥ पूर्वाभ्यासेन रुद्राक्षान्दधाते शुद्धमानसौ ॥ अस्मिञ्जन्मनि तं लोकं शिवं संपूज्य यास्यतः ॥ ८९ ॥ एषा प्रवृत्तिस्त्वनयोर्बालयोःसमुदाहृता ॥ कथा च शिवभक्ताया किमन्यत्प्रष्टुमिच्छसि ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे रुद्राक्षमहिमवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ एवं ब्रह्मर्षिणा प्रोक्तां वाणीं पीयूषसन्निभाम् ॥ आकर्ण्य मुदितो राजा प्राञ्जलिःपुनरब्रवीत् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ अहो सत्संगमः पुंसामशेषाघप्रशोधनः ॥ कामक्रोधनिहन्ता च इष्टदोग्धा जनस्य हि ॥२॥ मम मायातमो नष्टं ज्ञानदृष्टिः प्रकाशिता ॥ तव दर्शनमात्रेण प्रायोहममरोत्तमः ॥३॥ श्रुतं च पूर्वचरितं बालयोः सम्यगेतयोः ॥ भवि

दो० । रुद्राध्याय प्रभावसों भो चिरजीव नृपाल । इकिसवें अध्यायमें सोई चरित रसाल ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार ब्रह्मर्षिसे कहीहुई अमृत के समान वाणी को सुनकर राजा प्रसन्न हुए व हाथों को जोड़कर फिर उस राजा ने कहा ॥ १ ॥ (राजा बोले) कि अहो सज्जनों का समागम मनुष्यों के समस्त पातकों का नाशक है व काम, क्रोध का विनाशक तथा मनुष्यके प्रिय पदार्थ को देनेवाला है ॥ २ ॥ क्योंकि तुम्हारे दर्शनही से मेरा मायारूपी अन्धकार नष्ट होगया और ज्ञान की दृष्टि प्रकाशित हुई व मैं देवताओं में भी उत्तम होगया ॥ ३ ॥ हे मुने ! इन बालकों का पहले का चरित्र भलीभाति सुना गया और होनेवाले भी अपने पुत्र

के आचरण को पूंछता हूं ॥ ४ ॥ कि इसका आयुर्बल कितने वर्ष है व कैसा भाग्य है और विद्या, यश, शक्ति, श्रद्धा व भक्ति कैसी है यह कहिये ॥ ५ ॥ हे मुने ! इस सबको तुम सम्पूर्णता से कहने योग्य हो क्योंकि मैं तुम्हारा शिष्य हूं व सेवक हूं और तुम्हारी शरण में प्राप्त हूं ॥ ६ ॥ पराशरजी बोले कि इनमें जो कुछ नहीं कहने योग्य है उसको मैं कैसे कहसक्ता हूं कि जिसको सुनकर धैर्यवान् भी मनुष्य विषाद को प्राप्त होवैं ॥ ७ ॥ तौभी हे महीपते ! सत्यता से पूंछते हुए तुम्हारे स्नेह से मैं न कहने योग्य भी चरित्र को कहूंगा ॥ ८ ॥ इस तुम्हारे पुत्रके बारह वर्ष व्यतीत हुए हैं और इसके बाद सातवें दिन यह मरजावैगा ॥ ९ ॥

ष्यदपि पृच्छामि मत्पुत्राचरणं मुने ॥ ४॥ अस्यायुः कति वर्षाणि भाग्यं वद च कीदृशम् ॥ विद्या कीर्तिश्च शक्तिश्च श्रद्धा भक्तिश्च कीदृशी ॥ ५ ॥ एतत्सर्वमशेषेण मुने त्वं वक्तुमर्हसि ॥ तव शिष्योस्मि भृत्योस्मि शरणं त्वां गतोस्म्य हम् ॥ ६ ॥ पराशरउवाच ॥ अत्रावाच्यं हि यत्किंचित्कथं शक्तोस्मि शंसितुम् ॥ यच्छ्रुत्वा धृतिमन्तोपि विषादं प्राप्नु युर्जनाः ॥ ७ ॥ तथापि निर्व्यलीकेन भावेन परिपृच्छतः ॥ अवाच्यमपि वक्ष्यामि तव स्नेहान्महीपते ॥ ८ ॥ अमुष्य त्वत्कुमारस्य वर्षाणि द्वादशात्ययुः ॥ इतः परं प्रपद्येत सप्तमे दिवसे मृतिम् ॥ ९ ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा कालकूट मिवोदितम् ॥ मूर्च्छितः सहसा भूमौ पतितो नृपतिः शुचा ॥ १० ॥ तमुत्थाप्य समाश्वास्य स मुनिः करुणार्द्रधीः ॥ उवाच माभैर्नृपते पुनर्वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ११ ॥ सर्गात्पुरा निरालोकं यदेकं निष्कलं परम् ॥ चिदानन्दमयं ज्योतिः स आद्यः केवलः शिवः ॥ १२ ॥ स एवादौ रजोरूपं सृष्ट्वा ब्रह्माणमात्मना ॥ सृष्टिकर्मनियुक्ताय तस्मै वेदांश्च दत्त

विषके समान कहेहुए उसके इस वचन को सुनकर राजा शोक से यकायक मूर्च्छित होकर गिरपड़ा ॥ १० ॥ उसको उठाकर व समझाकर दया से नम्रबुद्धिवाले उस मुनि ने कहा कि हे नृपते ! तुम मत डरो मैं तुम्हारे हितको कहूंगा ॥ ११ ॥ सृष्टि से पहले जो एक निरञ्जन व कलारहित तथा श्रेष्ठ चैतन्यात्मक आनन्दमय ज्योति होती है वे आदिभूत केवल शिवजी हैं ॥ १२ ॥ पहले उन्होंने अपना से रजोरूप ब्रह्मा को रचकर सृष्टि के कर्म में लगेहुए उनके लिये वेदों को

दिया ॥ १३ ॥ फिर शिवजी ने आत्मतत्त्व का एक सग्रह व सब उपनिषदोंका सारांश रुद्राध्याय दिया ॥ १४ ॥ जो एक अव्यय व साक्षात् ब्रह्मज्योति और सनातन ब्रह्म है वह शिवात्मक श्रेष्ठ तत्त्व रुद्राध्याय में स्थित है ॥ १५ ॥ उन विराट् ब्रह्मा ने संसार को रचा व लोकों की मर्याद के लिये चारों मुखोंसे चार वेदों को रचा ॥ १६ ॥ व उनमें से यजुर्वेद के मध्यमें समस्त उपनिषदोंका सार यह रुद्राध्याय ब्रह्मा के दक्षिणवाले मुखसे निकला है ॥ १७ ॥ और उसी इस रुद्राध्यायको देवताओं समेत मरीचि व अत्रि आदिक सब मुनियों ने धारण किया और उन लोगों से उनके शिष्यों ने, उसको ग्रहण किया ॥ १८ ॥ और क्रम से आयेहुए

वान् ॥ १३ ॥ पुनश्च दत्तवानीश आत्मतत्त्वैकसंग्रहम् ॥ सर्वोपनिषदां सारं रुद्राध्यायं च दत्तवान् ॥ १४ ॥ यदेकमव्ययं साक्षाद्ब्रह्मज्योतिः सनातनम् ॥ शिवात्मकं परं तत्त्वं रुद्राध्याये प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥ स आत्मभूः सृजद्विश्वं चतुर्भिर्वदनैर्विराट् ॥ ससर्ज वेदांश्चतुरो लोकानां स्थितिहेतवे ॥ १६ ॥ तत्रायं यजुषां मध्ये ब्रह्मणो दक्षिणान्मुखात् ॥ अशेषोपनिषत्सारो रुद्राध्यायः समुद्धृतः ॥ १७ ॥ स एष मुनिभिः सर्वैर्मरीच्यत्रिपुरोगमैः ॥ सह देवैर्धृतस्तेभ्यस्तच्छिष्या जगृहुश्च तम् ॥ १८ ॥ तच्छिष्यशिष्यैस्तत्पुत्रैस्तत्पुत्रैश्च क्रमागतैः ॥ धृतो रुद्रात्मकः सोऽयं वेदसारः प्रसादितः ॥ १९ ॥ एष एव परो मन्त्र एष एव परं तपः ॥ रुद्राध्यायजपः पुंसां परं कैवल्यसाधनम् ॥ २० ॥ महापातकिनः प्रोक्ता उपपातकिनश्च ये ॥ रुद्राध्यायजपात्सद्यस्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ २१ ॥ भूयोपि ब्रह्मणा सृष्टाः सदसन्मिश्रयोनयः ॥ देवतिर्यङ्मनुष्याद्यास्ततः संपूरितं जगत् ॥ २२ ॥ तेषां कर्माणि सृष्टानि स्वजन्मा

उनके शिष्यों के शिष्यों से तथा उनके पुत्रोंसे व उन मुनियोंके पुत्रों से वही यह प्रसादित रुद्राध्याय धारण किया गया है ॥ १९ ॥ यही रुद्राध्याय का जप उत्तम मन्त्र है व यही उत्तम तप है और पुरुषों के उत्तम मोक्षका यत्न है ॥ २० ॥ जो महापातकी व उपपातकी कहेगये हैं रुद्राध्यायके जप से वेभी शीघ्रही उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥ फिर ब्रह्मा करके उत्तम व नीचसे मिलीहुई जातिवाले देवता, पशु, पक्षी व मनुष्यादिक रचेगये हैं उनसे संसार पूर्ण है ॥ २२ ॥ और अपने

जन्म के अनुसार उन लोगों के कर्म रचेगयेहैं उनमें मनुष्य वर्तमान होते हैं व उसका फल पातेहैं ॥ २३ ॥ और संसारकी सृष्टि के होनेके लिये ब्रह्मा ने आपही पहले अपने वक्षस्थल से धर्म व पीठ से अधर्म को उत्पन्न किया है ॥ २४ ॥ जो धर्मही को करते हैं वे उस पुण्यफलको पाते हैं और जो अधर्म करते हैं वे पाप के फलको भोगते हैं ॥ २५ ॥ पुण्यकर्म का फल स्वर्ग है और पापका फल नरक है उन दोनों के स्वामी इन्द्र व यमराजहैं यानी पुण्य के स्वामी इन्द्र व पाप के स्वामी यमराज हैं ॥ २६ ॥ काम, क्रोध, लोभ व अन्य मद मान आदिक सब अधर्म के पुत्र नरक के स्वामी हुए हैं ॥ २७ ॥ व गुरुकी शय्या पै जाना और मदिरा पीना

नुगुणानि च ॥ लोकास्तेषु प्रवर्तन्ते भुञ्जते चैव तत्फलम् ॥ २३ ॥ लोकसृष्टिप्रवाहार्थं स्वयमेव प्रजापतिः ॥ धर्माधर्मौ ससर्जाग्रे स्ववक्षःपृष्ठभागतः ॥ २४ ॥ धर्ममेवानुतिष्ठन्तः पुण्यं विन्दन्ति तत्फलम् ॥ अधर्ममनुतिष्ठन्तस्ते पापफलभोगिनः ॥ २५ ॥ पुण्यकर्मफलं स्वर्गो नरकस्तद्विपर्ययः ॥ तयोर्द्वावधिपौ धात्रा कृतौ शतमखान्तकौ ॥ २६ ॥ कामः क्रोधश्च लोभश्च मदमानादयः परे ॥ अधर्मस्य सुता आसन्सर्वे नरकनायकाः ॥ २७ ॥ गुरुतल्पः सुरापानं तथान्यः पुल्कसीगमः ॥ कामस्य तनया ह्येते प्रधानाः परिकीर्तिताः ॥ २८ ॥ क्रोधात्पितृवधो जातस्तथा मातृवधः परः ॥ ब्रह्महत्या च कन्यैका क्रोधस्य तनया अमी ॥ २९ ॥ देवस्वहरणश्चैव ब्रह्मस्वहरणस्तथा ॥ स्वर्णस्तेय इति त्वेते लोभस्य तनयाः स्मृताः ॥ ३० ॥ एतानाहूय चाण्डालान्यमः पातकनायकान् ॥ नरकस्य विवृद्ध्यर्थमाधिपत्यं चकार ह ॥ ३१ ॥ ते यमेन समादिष्टा नव पातकनायकाः ॥ ते सर्वे संगता भूयो घोराः पातकना

व चाण्डाली का समागम ये मुख्य काम के पुत्र कहेगये हैं ॥ २८ ॥ और क्रोध से पिता का मारना व माता का मारना तथा ब्रह्महत्या एक कन्या हुई ये क्रोध के पुत्र हैं ॥ २९ ॥ और देवता के धनको हरना व ब्राह्मण के धन का लेना और सुवर्णकी चोरी ये लोभ के पुत्र कहेगये हैं ॥ ३० ॥ यमराज ने पातकों के स्वामी इन चाण्डालों को बुलाकर नरक की वृद्धि के लिये उसकी स्वामिता किया ॥ ३१ ॥ यमराज से आज्ञा दियेहुए वे नव पातकों के स्वामी हुए फिर भयंकर पाप-

यकाः ॥ ३२ ॥ नरकान्पालयामासुः स्वभृत्यैश्चोपपातकैः ॥ रुद्राध्याये भुवि प्राप्ते साक्षात्कैवल्यसाधने ॥ ३३ ॥ भीताः प्रदुद्रुवुः सर्वे तेऽमी पातकनायकाः ॥ यमं विज्ञापयामासुः सहान्यैरुपपातकैः ॥ ३४ ॥ जय देव महाराज वयं हि तव किङ्कराः ॥ नरकस्य विवृद्ध्यर्थं साधिकाराः कृतास्त्वया ॥ ३५ ॥ अधुना वर्तितुं लोके न शक्ताः स्मो वयं प्रभो ॥ रुद्राध्यायानुभावेन निर्दग्धाश्चैव विद्रुताः ॥ ३६ ॥ ग्रामे ग्रामे नदीकूले पुण्येष्वायतनेषु च ॥ रुद्रजाप्ये तु पर्याप्ते कथं लोके चरेमहि ॥ ३७ ॥ प्रायश्चित्तसहस्रं वै गणयामो न किञ्चन ॥ रुद्रजाप्याक्षराण्येव सोढुं बत न शक्नुमः ॥ ३८ ॥ महापातकमुख्यानामस्माकं लोकघातिनाम् ॥ रुद्रजाप्यं भयं घोरं रुद्रजाप्यं महाद्विषम् ॥ ३९ ॥ अतो दुर्विषहं घोरमस्माकं व्यसनं महत् ॥ रुद्रजाप्येन संप्राप्तमपनेतुं त्वमर्हसि ॥ ४० ॥ इति विज्ञापितः साक्षाद्यमः पातकनायकैः ॥ ब्रह्मणोऽन्तिकमासाद्य तस्मै सर्वं न्यवेदयत् ॥ ४१ ॥ देवदेव जगन्नाथ त्वामेव शरणं

नायक उन सबों ने मिलकर ॥ ३२ ॥ अपने उपपातक नौकरों से नरकों को पालन किया और साक्षात् मोक्षके साधनरूप रुद्राध्याय के पृथ्वी में प्राप्त होने पर ॥ ३३ ॥ वेही ये पातकों के स्वामी डरकर भागगये और अन्य उपपातकों समेत यमराज से कहा ॥ ३४ ॥ कि हे देव, महाराज ! तुम्हारी जय हो हमलोग तुम्हारे सेवक हैं और नरकके बढ़ने के लिये तुमसे अधिकारी कियेगये हैं ॥ ३५ ॥ हे प्रभो ! इस समय संसार में रहने के लिये हमलोग समर्थ नहीं हैं और रुद्राध्याय के प्रभाव से जलेहुए हमलोग भाग आये हैं ॥ ३६ ॥ क्योंकि गाँव गाँव में व नदी के किनारे तथा पवित्र स्थानों में रुद्राध्याय के पूर्ण होनेपर हमलोग कैसे संसार में घूमें ॥ ३७ ॥ हज़ारों प्रायश्चित्तों को हमलोग कुछ नहीं गिनते हैं परन्तु रुद्राध्याय के अक्षरों को सहने के लिये समर्थ नहीं हैं ॥ ३८ ॥ लोकों का नाश करनेवाले व महापातकों में मुख्य हमलोगों को रुद्रजप विकराल भय है व रुद्रजप बड़ा भारी विष है ॥ ३९ ॥ इस कारण रुद्रजप से प्राप्त हुए दुःख से सहने योग्य हमलोगों के बड़े भयंकर क्लेश को तुम दूर करने के योग्य हो ॥ ४० ॥ पातकों के स्वामियों से इस प्रकार कहेहुए साक्षात् यमराज ने ब्रह्मा के निकट जाकर उनसे सब वृत्तान्त बतलाया ॥ ४१ ॥ व यह कहा कि हे देवदेव, जगन्नाथ ! मैं तुम्हारीही शरण में प्राप्त हूं और तुमने मुझको पापकारी मनुष्यों को

दण्ड देनेमें लगाया है ॥ ४२ ॥ इस समय पृथ्वी में पापी मनुष्य नहीं हैं क्योंकि रुद्राध्याय से पातकों का बडाभारी वंशनाश होगया ॥ ४३ ॥ और पातकों का वंशनाश होनेपर नरक शून्य होगये व नरकों के शून्य होनेपर मेरा राज्य निष्फल होगया ॥ ४४ ॥ इस कारण हे भगवन् ! आपही यत्न को विचारिये कि जिस प्रकार मेरी मनुष्योंकी स्वामिता नाश न होवै ॥ ४५ ॥ बडे दुःखित यमराज से इस प्रकार कहेहुए ब्रह्मा ने रुद्रजप के विघ्न के लिये यत्न को बनाया ॥ ४६ ॥ और श्रद्धा व बुद्धि को नाश करनेवाली अश्रद्धा व दुर्मेधा अविद्याकी कन्याओं को मनुष्यों में प्रेरणा किया ॥ ४७ ॥ और उनसे मोहित मनुष्य जब रुद्राध्याय से

गतः ॥ त्वया नियुक्तो मर्त्यानां निग्रहे पापकारिणाम् ॥ ४२ ॥ अधुना पापिनो मर्त्या न सन्ति पृथिवीतले ॥ रुद्राध्यायेन निहतं पातकानां महत्कुलम् ॥ ४३ ॥ पातकानां कुले नष्टे नरकाः शून्यतां गताः ॥ नरके शून्यतां याते मम राज्यं हि निष्फलम् ॥ ४४ ॥ तस्मात्त्वयैव भगवन्नुपायः परिचिन्त्यताम् ॥ यथा मे न विहन्येत स्वामित्वं मर्त्यदेहिनाम् ॥ ४५ ॥ इति विज्ञापितो धाता यमेन परिखिद्यता ॥ रुद्रजाप्यविघातार्थमुपायं पर्यकल्पयत् ॥ ४६ ॥ अश्रद्धां चैव दुर्मेधामविद्यायाः सुते उभे ॥ श्रद्धामेधाविघातिन्यौ मर्त्येषु पर्यचोदयत् ॥ ४७ ॥ ताभ्यां विमोहिते लोके रुद्राध्यायपराङ्मुखे ॥ यमः स्वस्थानमासाद्य कृतार्थ इव सोऽभवत् ॥ ४८ ॥ पूर्वजन्मकृतैः पापैर्जायन्तेऽल्पायुषो जनाः ॥ तानि पापानि नश्यन्ति रुद्रं जपवतां नृणाम् ॥ ४९ ॥ क्षीणेषु सर्वपापेषु दीर्घमायुर्बलं धृति ॥ आरोग्यं ज्ञानमैश्वर्यं वर्धते सर्वदेहिनाम् ॥ ५० ॥ रुद्राध्यायेन ये देवं स्नापयन्ति महेश्वरम् ॥ कुर्वन्तस्तज्जलैः स्नानं ते मृत्युं संतरन्ति च ॥ ५१ ॥ रुद्राध्यायाभिजप्तेन स्नानं कुर्वन्ति येऽम्भसा ॥ तेषां मृत्युभयं नास्ति शिवलोके

विमुख होगया तब वे यमराज अपने स्थान को प्राप्त होकर कृतार्थ से होगये ॥ ४८ ॥ पूर्वजन्म में किये हुए पापों से मनुष्य थोडे आयुर्बल के होते हैं और वे पाप रुद्राध्याय जपनेवाले लोगों के नाश होजाते हैं ॥ ४९ ॥ और सब पापों के नाश होने पर सब प्राणियों का दीर्घ आयुर्बल व धैर्य, आरोग्य, ज्ञान तथा ऐश्वर्य बढ़ता है ॥ ५० ॥ और रुद्राध्याय से जो शिवदेवजी को नहवाते हैं व उस जलसे जो स्नान करते हैं वे मृत्यु को उल्लङ्घन कर जाते हैं ॥ ५१ ॥ और रुद्राध्याय से

अभिमंत्रित जल से जो स्नान करते हैं उनको मृत्यु का भय नहीं होता है और वे शिवलोक में पूजे जाते हैं ॥ ५२ ॥ और सौ रुद्राभिषेक से मनुष्य सौ वर्षकी आयुवाला होता है व सब पापों से छूट कर वह शिवजी को प्रिय होता है ॥ ५३ ॥ यह तुम्हारा पुत्र दश हज़ार रुद्राभिषेक करै तो दश हज़ार वर्ष तक पृथ्वी में इन्द्रकी नाईं आनन्द करैगा ॥ ५४ ॥ और दृढ़बल व ऐश्वर्यवाला तथा शत्रुवोंसे रहित व नीरोग यह बालक सब पापोंसे छूटकर अकण्टक राज्य करैगा ॥ ५५ ॥ जो ब्राह्मण वेदोंको जाननेवाले व शान्त तथा पुण्यवान् और तीक्ष्णव्रतोंवाले होवैं और ज्ञान, यज्ञ व तपमें स्थित तथा शिवजीकी भक्तिमें परायण होवैं ॥ ५६ ॥

महीयते ॥ ५२ ॥ शतरुद्राभिषेकेण शतायुर्जायते नरः ॥ अशेषपापनिर्मुक्तः शिवस्य दयितो भवेत् ॥ ५३ ॥ एष रुद्रायुत स्नानं करोतु तव पुत्रकः ॥ दशवर्षसहस्राणि मोदते भुवि शक्रवत् ॥ ५४ ॥ अव्याहतबलैश्वर्यो हतशत्रुर्निरामयः ॥ निर्धूताखिलपापौघः शास्ता राज्यमकण्टकम् ॥५५॥ विप्रा वेदविदः शान्ताः कृतिनः शंसितव्रताः ॥ ज्ञानयज्ञतपोनिष्ठाः शिवभक्तिपरायणाः ॥ ५६ ॥ रुद्राध्यायजपं सम्यक्कुर्वन्तु विमलाशयाः ॥ तेषां जपानुभावेन सद्यः श्रेयो भविष्यति ॥ ५७ ॥ इत्युक्तवन्तं नृपतिर्महामुनिं तमेव वव्रे प्रथमं क्रियागुरुम् ॥ अथापरांस्त्यक्तधनाशयान्मुनीनावाहयामास सहस्रशः क्षणात् ॥ ५८ ॥ ते विप्राः शान्तमनसः सहस्रपरिसंमिताः ॥ कलशानां शतं स्थाप्य पुण्यवृक्षरसैर्युतम् ॥ ५९ ॥ रुद्राध्यायेन संस्नाप्य तमुर्वीपतिपुत्रकम् ॥ विधिवत्स्नापयामासुः संप्राप्ते सप्तमे दिने ॥ ६० ॥ स्नाप्यमानो मुनिजनैः स राजन्यकुमारकः ॥ अकस्मादेव संत्रस्तः क्षणं मूर्च्छामवाप ह ॥ ६१ ॥ सहसैव प्रबु

निर्मल आशयवाले वे भली भाति रुद्राध्याय का जप करैं तो उनके जपके प्रभाव से शीघ्रही कल्याण होगा ॥ ५७ ॥ ऐसा कहनेवाले उसी महामुनि को राजाने पहले कर्मों के आचार्य का वरण किया इसके उपरान्त धनके आशय को छोडे हुए अन्य हजारों मुनियों को क्षणभर में बुलाया ॥ ५८ ॥ और हजार संख्यक उन शान्त मनवाले ब्राह्मणों ने पवित्र वृक्षोंके रसों से संयुत सौ घटोंको स्थापित कर ॥ ५९ ॥ उस राजपुत्रको रुद्राध्याय से नहवाकर सातवा दिन प्राप्त होनेपर विधिपूर्वक स्नान कराया ॥ ६० ॥ और मुनिलोगों से नहवाया जाता हुआ वह राजकुमार यकायक डरगया व क्षणभर मूर्च्छित होगया ॥ ६१ ॥ और मुनि से

रक्षा कियाहुआ यह राजपुत्र अचानकही जगपड़ा व उसने कहा कि मुझको मारने के लिये बुद्धि करके दण्ड को हाथ में लियेहुए कोई विकराल दण्डवाला भयानक पुरुष आया व उसको भी अन्य महावीर पुरुषों ने मारा ॥ ६२ । ६३ ॥ और फँसरी से बाँधकर वे बहुत दूरसे लेगये आप लोगों से रक्षा कियेहुए मैंने इतना देखा ॥ ६४ ॥ ऐसा कहनेवाले राजा के पुत्रको द्विजोत्तमोंने आशिषों से पूजन किया और राजासे भयको कहा ॥ ६५ ॥ इसके उपरान्त नृपोत्तमने सब श्रेष्ठ ऋषियों को दक्षिणाओं से पूजकर व भक्तिसे उत्तम अन्न से भोजन कराकर ॥ ६६ ॥ व भक्ति से उन ब्रह्मवादी मुनियों के आशिषों को ग्रहण कर बन्धुजनों समेत सभा

द्धोऽसौ मुनिभिः कृतरक्षणः ॥ प्रोवाच कश्चित्पुरुषो दण्डहस्तः समागतः ॥ ६२ ॥ मां प्रहर्तुं कृतमतिर्भीमदण्डो भयानकः ॥ सोऽपि चान्यैर्महावीरैः पुरुषैरभिताडितः ॥ ६३ ॥ बद्धा पाशेन महता दूरं नीत इवाभवत् ॥ एतावदहमद्राक्षं भवद्भिः कृतरक्षणः ॥ ६४ ॥ इत्युक्तवन्तं नृपतेस्तनूजं द्विजसत्तमाः ॥ आशीर्भिः पूजयामासुर्भयं राज्ञे न्यवेदयन् ॥ ६५ ॥ अथ सर्वान्नृपोञ्छ्रेष्ठान्दक्षिणाभिर्नृपोत्तमः ॥ पूजयित्वा वरान्नेन भोजयित्वा च भक्तितः ॥ ६६ ॥ प्रतिगृह्याशिषस्तेषां मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् ॥ भक्त्या बन्धुजनैः सार्धं सभायां समुपाविशत ॥ ६७ ॥ तस्मिन्समागते वीरे मुनिभिः सह पार्थिवे ॥ आजगाम महायोगी देवर्षिर्नारदः स्वयम् ॥ ६८ ॥ तमागतं प्रेक्ष्य गुरुं मुनीनां सार्धं सदस्यैरखिलैर्मुनीन्द्रैः ॥ प्रणम्य भक्त्या विनिवेश्य पीठे कृतोपचारं नृपतिर्बभाषे ॥ ६९ ॥ राजोवाच ॥ दृष्टं किमस्ति ते ब्रह्मंस्त्रिलोक्यां किञ्चिदद्भुतम् ॥ तन्नो ब्रूहि वयं सर्वे त्वद्वाक्यामृतलालसाः ॥ ७० ॥ नारद उवाच ॥ अद्य चित्रं

में प्रवेश किया ॥ ६७ ॥ व मुनियों समेत उस वीर राजा के आनेपर महायोगी देवर्षि नारदजी आगये ॥ ६८ ॥ मुनियों के गुरु उन आयेहुए नारदजी को देखकर सभा में बैठेहुए समस्त मुनीन्द्रों समेत भक्तिसे प्रणाम कर व आसन पै बिठाकर पूजन कियेहुए उनसे राजाने कहा ॥ ६९ ॥ (राजा बोले) कि हे ब्रह्मन् ! तुमने त्रिलोक में जो कुछ अद्भुत देखा है उसको हमलोगों से कहिये क्योंकि हमलोग सब तुम्हारे वचनरूपी अमृतकी इच्छा करते हैं ॥ ७० ॥ नारदजी बोले कि

हे महाराज ! आकाश से उतरते हुए मैंने इन मुनियों समेत आज बड़ाभारी अद्भुत वृत्तान्त देखा है उसको सुनिये ॥ ७१ ॥ कि सदैव संसार को पीड़ित करते हुए व दण्ड को हाथ में लिये दुर्धर्ष यमराजजी आज तुम्हारे पुत्रको मारने के लिये आये थे ॥ ७२ ॥ और इस तुम्हारे पुत्रको मारने के लिये आयेहुए यमराज को जानकर शिवजी ने भी पार्षदों समेत किसी वीरभद्र को पठाया ॥ ७३ ॥ और उन वीरभद्रजी ने आकर तुम्हारे पुत्रको मारने के लिये आयेहुए मृत्यु को हठसे पकड़कर व दृढ़ता से बाँधकर क्रोध से दण्ड से मारा ॥ ७४ ॥ और शिवजी के समीप लायेहुए उस मृत्यु को जानकर आपही भगवान् यमराजजी ने हाथों को

महद्दृष्टं व्योम्नोवतरता मया ॥ तच्छृणुष्व महाराज सहैभिर्मुनिपुङ्गवैः ॥ ७१ ॥ अद्य मृत्युरिहायातो निहन्तुं तव पुत्रकम् ॥ दण्डहस्तो दुराधर्षो लोकमुद्बाधयन्सदा ॥ ७२ ॥ ईश्वरोपि विदित्वैनं त्वत्पुत्रं हन्तुमागतम् ॥ सहैव पार्षदैः कंचिद्वीरभद्रमचोदयत ॥ ७३ ॥ स आगत्य हठान्मृत्युं त्वत्पुत्रं हन्तुमागतम् ॥ गृहीत्वा सुदृढं बद्ध्वा दण्डेनाभ्यहनद्रुषा ॥ ७४ ॥ तं नीयमानं जगदीशसन्निधिं शीघ्रं विदित्वा भगवान्यमः स्वयम् ॥ कृताञ्जलिर्देव जयेत्युदीरयन्प्रणम्य मूर्ध्ना निजगाद शूलिनम् ॥ ७५ ॥ यम उवाच ॥ देवदेव महारुद्र वीरभद्र नमोऽस्तु ते ॥ निरागसि कथं मृत्यौ कोपस्तव समुत्थितः ॥ ७६ ॥ निजकर्मानुबन्धेन राजपुत्रं गतायुषम् ॥ प्रहर्तुमुद्यते मृत्यौ कोपराधो वद प्रभो ॥ ७७ ॥ वीरभद्र उवाच ॥ दशवर्षसहस्रायुः स राजतनयः कथम् ॥ विपत्तिमन्तरायाति रुद्रस्नानहताशुभः ॥ ७८ ॥ अस्ति चेत्तव सन्देहो मद्वाक्येऽप्यनिवारिते ॥ चित्रगुप्तं समाहूय प्रष्टव्योऽद्यैव मा चिरम् ॥ ७९ ॥ नारद उवाच ॥ अथाहूत

जोड़कर हे देव ! तुम्हारी जय हो ऐसा कहतेहुए मस्तक से प्रणाम करके शिवजी से कहा ॥ ७५ ॥ (यमराज बोले) कि हे देवदेव, महादेव, वीरभद्र ! तुम्हारे लिये प्रणाम है बिन अपराधी मृत्यु में किस कारण तुम्हारा क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ ७६ ॥ हे प्रभो ! अपने कर्म के अनुबन्ध से आयुर्बलरहित राजपुत्र को मारने के लिये तैयार मृत्यु में क्या अपराध है कहिये ॥ ७७ ॥ वीरभद्रजी बोले कि रुद्रस्नान से नष्टपातकोंवाला वह दश हज़ार वर्षका आयुवाला राजपुत्र कैसे मध्य में मृत्यु को प्राप्त होवै ॥ ७८ ॥ यदि बिन रोंकटोंकवाले मेरे वचन में तुमको सन्देह होवै तो चित्रगुप्त को बुलाकर इसी समय पूंछ लीजिये देर न कीजिये ॥ ७९ ॥

नारदजी बोले कि इसके उपरान्त यमराज से बुलाये हुए चित्रगुप्तजी यकायक आगये व तुम्हारे पुत्रके आयुर्बल का प्रमाण पूंछने पर उन चित्रगुप्तने कहा ॥ ८० ॥
और बारह वर्ष उसका आयुर्बल कहकर व विचार कर उन्होंने फिर लिखे हुए दश हज़ार वर्ष का जीवन कहा ॥ ८१ ॥ इसके उपरान्त डरेहुए यमराजने वीर-
भद्र को प्रणाम कर किसी प्रकार बिन मना करनेवाले बन्धन से मृत्यु को छुडा दिया ॥ ८२ ॥ इसके उपरान्त वीरभद्र से छोडेहुए यमराज अपने मन्दिर को गये
और वीरभद्र कैलास को गये व मैं तुम्हारे समीप प्राप्त हुआ ॥ ८३ ॥ इस कारण तुम्हारा यह पुत्र रुद्रजप के प्रभाव से मृत्यु के भयको नाघकर दश हज़ार वर्षतक

शिचत्रगुप्तो यमेन सहसागतः ॥ आयुःप्रमाणं त्वत्सूनोः परिपृष्टः स चाब्रवीत् ॥ ८० ॥ द्वादशाब्दं च तस्यायुरित्युक्त्वा
थ विमृश्य च ॥ पुनर्लेख्यगतं प्राह स वर्षायुतजीवितम् ॥ ८१ ॥ अथ भीतो यमो राजा वीरभद्रं प्रणम्य च ॥ कथं
चिन्मोचयामास मृत्युं दुर्वारबन्धनात् ॥ ८२ ॥ वीरभद्रेण मुक्तोऽथ यमोऽगान्निजमन्दिरम् ॥ वीरभद्रश्च कैलासमहं
प्राप्तस्तवान्तिकम् ॥ ८३ ॥ अतस्तव कुमारोऽयं रुद्रजाप्यानुभावतः ॥ मृत्योर्भयं समुत्तीर्य सुखी जातोऽयुतं स
माः ॥ ८४ ॥ इत्युक्त्वा नृपमामन्त्र्य नारदे त्रिदिवं गते ॥ विप्राः सर्वे प्रमुदिताः स्वं स्वं जग्मुरथाश्रमम् ॥ ८५ ॥ इत्थं
काश्मीरनृपती रुद्राध्यायप्रभावतः ॥ निस्तीर्याशेषदुःखानि कृतार्थोभूत्सपुत्रकः ॥ ८६ ॥ ये कीर्तयन्ति मनुजाः
परमेश्वरस्य माहात्म्यमेतदथ कर्णपुटैः पिबन्ति ॥ ते जन्मकोटिकृतपापगणैर्विमुक्ताः शान्ताः प्रयान्ति परमं पद
मिन्दुमौलेः ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे रुद्राध्यायमहिमवर्णनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

सुखी हुआ ॥ ८४ ॥ यह कहकर राजा से पूंछकर जब नारदजी स्वर्ग को चलेगये तब प्रसन्न होकर सब ब्राह्मण अपने अपने आश्रम को चलेगये ॥ ८५ ॥ इस
प्रकार काश्मीर देश का राजा रुद्राध्याय के प्रभाव से पुत्र समेत सब दुःखों को नाँघकर कृतार्थ हुआ ॥ ८६ ॥ जो मनुष्य शिवजी के इस माहात्म्य को कहते हैं
व कानों से पीते हैं वे करोडों जन्मों में कियेहुए पापगणोंसे छूटकर शान्त होकर शिवजी के उत्तम स्थान को जाते हैं ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे
देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां रुद्राध्यायमहिमवर्णनंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। यथा कथा सुनि परमपद पायो कुलटा नारि । बाइसवें अध्याय में सोइ चरित सुखकारि ॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार अत्यन्त कल्याणकारक मार्ग शिवही से दिखलाया गया है जोकि संसार से बँधेहुए मनुष्यों का शीघ्रही उत्तम मुक्तिकारक है ॥ १ ॥ और दुर्बुद्धि मनुष्यों व वेदों में बिन अधिकारिणी स्त्रियों तथा अधम ब्राह्मणों व सब प्राणियों का ॥ २ ॥ यह साधारण मार्ग साक्षात् मोक्ष का साधन करनेवाला है और देवताओं से भी पूजित यह महामुनि लोगों से सेवन करने योग्य है ॥ ३ ॥ व जिसलिये शिवजीकी कथा का सुनना ससार के भयका नाशक है व शीघ्रही मुक्तिकारक तथा प्रशंसनीय व सब प्राणियों के लिये

सूत उवाच ॥ एवं शिवतमः पन्थाः शिवेनैव प्रदर्शितः ॥ नृणां संसृतिबद्धानां सद्यो मुक्तिकरः परः ॥ १ ॥ अथ दुर्मेधसां पुंसां वेदेष्वनधिकारिणाम् ॥ स्त्रीणां द्विजातिबन्धूनां सर्वेषां च शरीरिणाम् ॥ २ ॥ एष साधारणः पन्थाः साक्षात्कैवल्यसाधनः ॥ महामुनिजनैः सेव्यो देवैरपि सुपूजितः ॥ ३ ॥ यत्कथाश्रवणं शम्भोः संसारभयनाशनम् ॥ सद्योमुक्तिकरं श्लाघ्यं पवित्रं सर्वदेहिनाम् ॥ ४ ॥ अज्ञानतिमिरान्धानां दीपोऽयं ज्ञानसिद्धिदः ॥ भवरोगनिबद्धानां सुसेव्यं परमौषधम् ॥ ५ ॥ महापातकशैलानां वज्रघातसुदारुणम् ॥ भर्जनं कर्मबीजानां साधनं सर्वसम्पदाम् ॥ ६ ॥ ये शृण्वन्ति सदा शम्भोः कथां भुवनपावनीम् ॥ ते वै मनुष्या लोकेस्मिन्रुद्रा एव न संशयः ॥ ७ ॥ शृण्वतां शूलिनो गाथां तथा कीर्तयतां सताम् ॥ तेषां पादरजांस्येव तीर्थानि मुनयो जगुः ॥ ८ ॥ तस्मान्निःश्रेयसं गन्तुं ये

पवित्र है ॥ ४ ॥ और अज्ञानरूपी तिमिर से अन्ध मनुष्यों के लिये यह ज्ञानकी सिद्धि को देनेवाला दीपक है और संसाररूपी रोगसे बँधेहुए मनुष्यों के लिये बड़ीभारी औषध है ॥ ५ ॥ और महापापरूपी पर्वतों के लिये कठोर वज्रघात और भवबीजों को जलानेवाला तथा सब सम्पत्तियों का साधन करनेवाला है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य लोकों को पवित्र करनेवाली शिवजीकी कथा को सदैव सुनते हैं वे मनुष्य इस संसारमें रुद्रही हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ और शिवजी की कथा को सुननेवाले व कहनेवाले उन मनुष्यों के चरणों की धूलि को मुनिलोगों ने तीर्थ कहा है ॥ ८ ॥ इस कारण जो प्राणी कल्याण को प्राप्त होने

के लिये इच्छा करैं वे भक्ति से सदैव शिवजी की कथा को सुनैं ॥ ६ ॥ यदि सदैव पुराण की कथा को सुनने के लिये मनुष्य असमर्थ होवैं तो नियतचित्त मनुष्य प्रतिदिन मुहूर्तभर (कच्ची दोघड़ी) सुनै ॥ १० ॥ अथवा यदि मुहूर्तभर प्रतिदिन सुनने के लिये असमर्थ होवै तो पवित्र महीनों में व पवित्र दिन में तथा पवित्र तिथियों में ॥ ११ ॥ जो मनुष्य पुराणों से कहीहुई सुन्दरी कथा को सुनता है वह कर्म के महावन को जलाकर संसारको उतर जाता है ॥ १२ ॥ और मुहूर्तभर या आधा मुहूर्त व क्षणभर जो मनुष्य भक्ति से सदैव पवित्रकारिणी कथा को सुनते हैं उनकी दुर्गति नहीं होती है ॥ १३ ॥ और सब यज्ञों में जो फल होताहै व सब

भिवाञ्छन्ति देहिनः ॥ ते शृण्वन्तु सदा भक्त्या शैवीं पौराणिकीं कथाम् ॥ ६ ॥ यद्यशक्तः सदा श्रोतुं कथां पौराणिकीं नरः ॥ मुहूर्तं वापि शृणुयान्नियतात्मा दिने दिने ॥ १० ॥ अथ प्रतिदिनं श्रोतुमशक्तो यदि मानवः ॥ पुण्यमासेषु वा पुण्ये दिने पुण्यतिथिष्वपि ॥ ११ ॥ यः शृणोति कथां रम्यां पुराणैः समुदीरिताम् ॥ स निस्तरति संसारं दग्ध्वा कर्ममहाटवीम् ॥ १२ ॥ मुहूर्त्तं वा तदर्द्धं वा क्षणं वा पावनीं कथाम् ॥ ये शृण्वन्ति सदा भक्त्या न तेषामस्ति दुर्गतिः ॥ १३ ॥ यत्फलं सर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम् ॥ सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फलं विन्दते नरः ॥ १४ ॥ कलौ युगे विशेषेण पुराणश्रवणादृते ॥ नास्ति धर्मः परः पुंसां नास्ति मुक्तिपथः परः ॥ १५ ॥ पुराणश्रवणाच्छम्भोर्नास्ति संकीर्तनं परम् ॥ अत एव मनुष्याणां कल्पद्रुममहाफलम् ॥ १६ ॥ कलौ हीनायुषो मर्त्या दुर्बलाः श्रमपीडिताः ॥ दुर्मेधसो दुःखभाजो धर्माचारविवर्जिताः ॥ १७ ॥ इति सञ्चिन्त्य कृपया भगवान्बादरायणः ॥ हिताय तेषां

दानों में जो फल होता है उस फलको मनुष्य एक बार पुराण के सुनने से पाता है ॥ १४ ॥ और कलियुगमें विशेष कर पुराणके सुनने के सिवा पुरुषों के लिये अन्य धर्म नहीं है और न दूसरा मुक्ति का मार्ग है ॥ १५ ॥ और पुराण सुनने के सिवा अन्य शिवजीका कीर्तन नहीं है इसी कारण मनुष्यों को कल्पवृक्षके समान महाफलवान् है ॥ १६ ॥ कलियुग में मनुष्य कम आयुवाले व दुर्बल तथा श्रम से पीड़ित होते हैं और दुर्बुद्धि व दुःखी तथा धर्म व आचार से रहित होते हैं ॥ १७ ॥

यह विचार कर दयासे भगवान् व्यासजी ने उन मनुष्यों के हित के लिये पुराण नामक अमृत का रस बनाया है ॥ १८ ॥ यबसे इस अमृत को पीता हुआ मनुष्य अजर व अमर होता है और शिवजी की कथा का अमृत वंशको अजर अमर करता है ॥ १९ ॥ पुराण को जाननेवाला बालक, ज्वान, निर्धनी, वृद्ध व दुर्बलभी सदैव पुण्य के चाहनेवाले मनुष्यों से प्रणाम करने व पूजने योग्य है ॥ २० ॥ और कभी पुराण के जाननेवाले में नीच की बुद्धि न करै कि जिसके कमलरूपी मुखसे उपजी हुई वाणी प्राणियों के लिये कामधेनु है ॥ २१ ॥ लोकों में जन्म से व गुणसे बहुत गुरु होते हैं परन्तु उन सबों के

विदधे पुराणाख्यं सुधारसम् ॥ १८ ॥ पिबन्नेवामृतं यत्नादेतत्स्यादजरामरः ॥ शम्भोः कथामृतं कुर्यात्कुलमेवाजराम रम् ॥ १९ ॥ बालो युवा दरिद्रो वा वृद्धो वा दुर्बलोऽपि वा ॥ पुराणज्ञः सदा वन्द्यः पूज्यश्च सुकृतार्थिभिः ॥ २० ॥ नीच बुद्धिं न कुर्वीत पुराणज्ञे कदाचन ॥ यस्य वक्त्राम्बुजाद्वाणी कामधेनुः शरीरिणाम् ॥ २१ ॥ गुरवः सन्ति लोकेषु जन्मतो गुणतस्तथा ॥ तेषामपि च सर्वेषां पुराणज्ञः परो गुरुः ॥ २२ ॥ भवकोटिसहस्रेषु भूत्वा भूत्वावसीदति ॥ यो ददात्यपुनर्वृत्तिं कोऽन्यस्तस्मात्परो गुरुः ॥ २३ ॥ पुराणज्ञः शुचिर्दान्तः शान्तो विजितमत्सरः ॥ साधुः कारुण्यवा न्वाग्मी वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ २४ ॥ व्यासासनं समारूढो यदा पौराणिको द्विजः ॥ असमाप्तप्रसङ्गश्च नम स्कुर्यान्न कस्यचित् ॥ २५ ॥ ये धूर्ता ये च दुर्वृत्ता ये चान्ये विजिगीषवः ॥ तेषां कुटिलवृत्तीनामग्रे नैव वदेत्क

मध्य में पुराण का जाननेवाला श्रेष्ठ गुरु होता है ॥ २२ ॥ करोड़ों हज़ार जन्मों में बारबार उत्पन्न होकर जो दुःखित होता है उसके लिये जो फिर जन्म को नहीं देता है उससे अन्य कौन श्रेष्ठ गुरु है ॥ २३ ॥ और पवित्र, इन्द्रियों को रोंकनेवाला व शान्त तथा ईर्षा को जीतनेवाला व साधु और दयावान् व उत्तम वचन-वाला बुद्धिमान् पुराण को जाननेवाला मनुष्य पवित्र कथा को कहै ॥ २४ ॥ जब पुराण को जाननेवाला ब्राह्मण व्यासासन पै प्राप्त होवै तब बिन प्रसंग समास हुए किसी को प्रणाम न करै ॥ २५ ॥ और जो छली व जो दुष्ट तथा अन्य जो जीतने की इच्छावाले हैं उन कुटिलवृत्तिवाले मनुष्यों के आगे कथाको न

कहै ॥ २६ ॥ और दुर्जनों से पूर्ण तथा शूद्रों व हिंसक जीवों से घिरेहुए देशमें व जुवा खेलने के घरमें उत्तम बुद्धिवाला मनुष्य पवित्र कथा को न कहै ॥ २७ ॥ वरन उत्तम ग्राम में व सुजनों से व्याप्त तथा उत्तम क्षेत्र व देवालय में और पवित्र नद व नदी के किनारे विद्वान् पवित्र कथाको कहै ॥ २८ ॥ और पुण्यभागी श्रोता लोग शिवजी की भक्ति से संयुत होवैं व अन्य कार्यों में उनका चित्त न लगै व मौन तथा पवित्र व सावधान होवैं ॥ २९ ॥ और बिन भक्त जो नीच मनुष्य पवित्र कथा को सुनते हैं उनको पुण्य का फल नहीं होता है व प्रत्येक जन्म में दुःख होता है ॥ ३० ॥ और ताम्बूलादिक उपायनों से पुराण को न पूज

थाम् ॥ २६ ॥ न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृते ॥ देशे न द्यूतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ २७ ॥ सद्ग्रामे सुजनाकीर्णे सुक्षेत्रे देवतालये ॥ पुण्ये नदनदीतीरे वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ २८ ॥ शिवभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः ॥ वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः ॥ २९ ॥ अभक्ता ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः ॥ तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि ॥ ३० ॥ पुराणं ये त्वसंपूज्य ताम्बूलाद्यैरुपायनैः ॥ शृण्वन्ति च कथां भक्त्या दरिद्राः स्युर्न पापिनः ॥ ३१ ॥ कथायां कीर्त्यमानायां ये गच्छन्त्यन्यतो नराः ॥ भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च सम्पदः ॥ ३२ ॥ सोष्णीषमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति पावनीम् ॥ ते बलाकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः ॥ ३३ ॥ ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथां शृण्वन्ति पावनीम् ॥ स्वविष्ठां खादयन्त्येतान्नरके यमकिङ्कराः ॥ ३४ ॥ ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः ॥ अक्षयान्नरकान्भुक्त्वा ते भवन्त्येव

कर जो भक्ति से कथा को सुनते हैं वे निर्धनी होते हैं पापी नहीं होते हैं ॥ ३१ ॥ और कथा कहते समय जो मनुष्य अन्यत्र चले जाते हैं उनकी स्त्रियां व सम्पदा सुखके मध्य में नाश होजाती हैं ॥ ३२ ॥ और पगड़ी को मस्तक में बाँधकर जो मनुष्य पवित्रकारिणी कथा को सुनते हैं वे पापी व नीच मनुष्य बगुला होते हैं ॥ ३३ ॥ और ताम्बूल खातेहुए जो मनुष्य पवित्रकारिणी कथा को सुनते हैं इनको यमदूत नरकमें अपना विष्ठा खिलाते हैं ॥ ३४ ॥ और ऊंचे आसन पै बैठकर

जो पाखण्डी लोग कथा को सुनते हैं वे अक्षय नरकों को भोगकर कौवा होते हैं ॥ ३५ ॥ और जो सिंहासन पै चढ़कर व जो मञ्च पै बैठकर उत्तम कथा को सुनते हैं वे टेढ़े वृक्ष होते हैं ॥ ३६ ॥ और बिन प्रणाम करके कथा को सुननेवाले मनुष्य विष के वृक्ष होते हैं और सोतेहुए जो मनुष्य कथाको सुनते हैं वे अजगर होते हैं ॥ ३७ ॥ और वक्ता के बराबर आसन पै बैठकर जो कथाको सुनता है वह गुरुकी शय्या पै जानेके समान पाप को पाकर नरक को जाता है ॥ ३८ ॥ और जो मनुष्य पुराण के ज्ञाता व पापहारिणी कथा की निन्दा करते हैं वे मनुष्य सौ जन्म तक कुत्ता होते हैं ॥ ३९ ॥ और कथा वर्तमान होनेपर जो नीच मनुष्य

वायसाः ॥ ३५ ॥ ये च वीरासनारूढा ये च मञ्चकसंस्थिताः ॥ शृण्वन्ति सत्कथां ते वै भवन्त्यनृजुपादपाः ॥ ३६ ॥ असं प्रणम्य शृण्वन्तो विषवृक्षा भवन्ति ते ॥ कथां शयानाः शृण्वन्तो भवन्त्यजगरा नराः ॥ ३७ ॥ यः शृणोति कथां वक्तुःसमानासनमाश्रितः ॥ गुरुतल्पसमं पापं संप्राप्य नरकं व्रजेत् ॥ ३८ ॥ ये निन्दन्ति पुराणज्ञं कथां वा पापहारिणीम् ॥ ते वै जन्मशतं मर्त्याः शुनकाः संभवन्ति च ॥ ३९ ॥ कथायां वर्तमानायां ये वदन्ति नराधमाः ॥ ते गर्दभाः प्रजायन्ते कृकलासास्ततः परम् ॥ ४० ॥ कदाचिदपि ये पुण्यां न शृण्वन्ति कथां नराः ॥ ते भुक्त्वा नरकान्घोरान्भवन्ति वनसूकराः ॥ ४१ ॥ ये कथामनुमोदन्ते कीर्त्यमानां नरोत्तमाः ॥ अशृण्वन्तोऽपि ते यान्ति शाश्वतं परमं पदम् ॥ ४२ ॥ कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः ॥ कोट्यब्दान्नरकान्भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः ॥ ४३ ॥ ये श्रावयन्ति मनुजान्पुण्यां पौराणिकीं कथाम् ॥ कल्पकोटिशतं साग्रं तिष्ठन्ति ब्रह्मणः पदम् ॥ ४४ ॥ आसनार्थं

बोलते हैं वे गधा होते हैं तदनन्तर गिरगिट होते हैं ॥ ४० ॥ और जो मनुष्य कभी पवित्र कथाको नहीं सुनते हैं वे भयंकर नरकों को भोगकर वनसूकर होते हैं ॥ ४१ ॥ और जो उत्तम मनुष्य कही जातीहुई कथा का अनुमोदन करते हैं न सुनतेहुए भी वे सनातन परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥ और कथा वर्तमान होनेपर जो शठ मनुष्य विघ्न करते हैं वे करोड़ वर्षतक नरकों को भोगकर ग्रामसूकर होते हैं ॥ ४३ ॥ और जो मनुष्यों को पुराण की उत्तम कथा को सुनाते हैं वे कुछ अधिक करोड़ कल्पों तक ब्रह्मा के स्थान में स्थित होते हैं ॥ ४४ ॥ व जो मनुष्य पुराण के ज्ञाता के बैठने के लिये कम्मर, मृगचर्म व वसनों को देते हैं या

मञ्च व तख़्त को देते हैं ॥ ४५ ॥ वे स्वर्गलोक को जाकर इच्छा के अनुसार सुखोंको भोगकर ब्रह्मादिक के लोकों में स्थित होकर व्याधिरहित स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ ४६ ॥ और पुराण के जाननेवाले मनुष्य को जो नवीन सूत्र के वसन को देते हैं वे प्रत्येक जन्म में सुखी व ज्ञान से युक्त होते हैं ॥ ४७ ॥ और जो बड़े पातकों से संयुत व जो उपपातकी होते हैं पुराण के सुननेही से वे परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इस विषय में मैं सुननेवालों के सब पापोंका नाशक व विचित्र तथा मनोहर महापवित्र इतिहास को कहता हूं ॥ ४९ ॥ कि दक्षिणापथ के मध्य में वाष्कल संज्ञक ग्राम है उसमें सबलोग मूर्ख व कर्म

प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः ॥ कम्बलाजिनवासांसि मञ्चं फलकमेव च ॥ ४५ ॥ स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम् ॥ ४६ ॥ पुराणज्ञस्य यच्छन्ति ये सूत्र वसनं नवम् ॥ भोगिनो ज्ञानसम्पन्नास्ते भवन्ति भवे भवे ॥ ४७ ॥ ये महापातकैर्युक्ता उपपातकिनश्च ये ॥ पुराणश्रवणादेव ते यान्ति परमं पदम् ॥ ४८ ॥ अत्र वक्ष्ये महापुण्यमितिहासं द्विजोत्तमाः ॥ शृण्वतां सर्वपापघ्नं विचित्रं सुमनोहरम् ॥ ४९ ॥ दक्षिणापथमध्ये वै ग्रामो बाष्कलसंज्ञितः ॥ तत्र सन्ति जनाः सर्वे मूढाः कर्मविवर्जिताः ॥ ५० ॥ न तत्र ब्राह्मणाचाराः श्रुतिस्मृतिपराङ्मुखाः ॥ जपस्वाध्यायरहिताः परस्त्रीविषयातुराः ॥ ५१ ॥ कृषीवलाः शस्त्रधरा निर्देवा जिह्मवृत्तयः ॥ न जानन्ति परं धर्मं ज्ञानवैराग्यलक्षणम् ॥ ५२ ॥ स्त्रियश्च पापनिरताः स्वैरिण्यः कामलालसाः ॥ दुर्बुद्धयः कुटिलगाः सद्व्रताचारवर्जिताः ॥ ५३ ॥ तत्रैको विदुरो नाम दुरात्मा ब्राह्मणाधमः ॥ आसीद्वेश्या

से रहित रहते थे ॥ ५० ॥ और उसमें ब्राह्मण के आचारवाले मनुष्य नहीं थे तथा श्रुतियों व स्मृतियों से विमुख थे और जप व वेदपाठ से रहित तथा पराई स्त्रियों के विषय से आतुर थे ॥ ५१ ॥ और खेती के कर्मवाले तथा शस्त्रधारी और देवतारहित व कुटिल कर्मकारी थे और ज्ञान, वैराग्य लक्षणवाले उत्तम धर्म को नहीं जानते थे ॥ ५२ ॥ और स्त्रियां पाप में परायण व स्वैरिणी तथा कामदेव में लालसावाली थीं और दुर्बुद्धि व कुटिलगामिनी तथा उत्तम व्रत व आचार से रहित थीं ॥ ५३ ॥ उस गॉव में एक दुष्टचित्त व ब्राह्मणों में नीच विदुरनामक ब्राह्मण हुआ है जो यह स्त्रीसमेतभी सदैव कुमार्गगामी होकर

वेश्या का पति था ॥ ५४ ॥ और प्रत्येक रात्रि में बन्दुलानामक अपनी स्त्रीको छोड़कर वेश्या के घरको जाकर कामदेव से पीडित वह रमण करता था ॥ ५५ ॥ और नवीन यौवनवाली वह उसकी स्त्री भी रात्रि में पतिसे अलग होकर कामदेवका प्रवेश न सहती हुई परपतिके साथ रमण करती थी ॥ ५६ ॥ किसी समय दुष्ट आचरणवाली उस स्त्रीको परपति के साथ देखकर शीघ्रता समेत वह उसका पति क्रोधसे दौड़ा ॥ ५७ ॥ और परपति के भागजानेपर दुष्ट आशयवाले उस पतिने स्त्रीको पकड़कर बारबार घूंसा से मारा ॥ ५८ ॥ और पति से पीड़ित उस निडर स्त्रीने क्रोधित होकर कहा कि आप प्रत्येक रात्रि में वेश्या से रमण करते

पतिर्योऽसौ सदारोऽपि कुमार्गगः ॥ ५४ ॥ स्वपत्नीं बन्दुलां नाम हित्वा प्रतिनिशं तथा ॥ वेश्याभवनमासाद्य रमते स्मरपीडितः ॥ ५५ ॥ सापि तस्याङ्गना रात्रौ वियुक्ता नवयौवना ॥ असहन्ती स्मरावेशं रेमे जारेण सङ्गता ॥ ५६ ॥ तां कदाचिद्दुराचारां जारेण सह सङ्गताम् ॥ दृष्ट्वा तस्याः पतिः क्रोधादभिदुद्राव सत्वरः ॥ ५७ ॥ जारे पलायिते पत्नीं गृहीत्वा स दुराशयः ॥ सन्ताड्य मुष्टिबन्धेन मुहुर्मुहुरताडयत् ॥ ५८ ॥ सा नारी पीडिता भर्त्रा कुपिता प्राह निर्भया ॥ भवान्प्रतिनिशं वेश्यां रमते का गतिर्मम ॥ ५९ ॥ अहं रूपवती योषा नवयौवनशालिनी ॥ कथं सहिष्ये कामार्ता तव सङ्गतिवर्जिता ॥ ६० ॥ इत्युक्तः स तया तन्व्या प्रोवाच ब्राह्मणाधमः ॥ युक्तमेव त्वयोक्तं हि तस्माद्वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ६१ ॥ जारेभ्यो धनमाकृष्य तेभ्यो देहि परां रतिम् ॥ तद्धनं देहि मे सर्वं पण्यस्त्रीणां ददामि तत् ॥ ६२ ॥ एवं संपूर्यते कामो ममापि च वरानने ॥ तथेति भर्तृवचनं प्रतिजग्राह सा वधूः ॥ ६३ ॥ एवं तयोस्तु

हो तो मेरी कौन गति होवै ॥ ५९ ॥ नवीन यौवन मे शोभित मैं रूपवती स्त्री तुम्हारा समागम न होने के कारण कामदेव से विकल होकर कैसे सहूं ॥ ६० ॥ उस स्त्रीसे ऐसा कहेहुए उस नीच ब्राह्मण ने कहा कि तुमने योग्य कहा है उसी कारण तुम्हारा हित कहता हूं ॥ ६१ ॥ कि जार (अन्य पुरुष) से धनको लेकर उनके लिये उत्तम रति दीजिये और उस सब धन को मुझे दीजिये तो उसको मैं वेश्याओं को देऊं ॥ ६२ ॥ हे वरानने ! इस प्रकार मेरा भी काम पूर्ण होगा बहुत अच्छा ऐसा कहकर उस स्त्रीने पतिका वचन स्वीकार किया ॥ ६३ ॥ इस प्रकार दुष्ट आचार में लगेहुए उन दोनों के मध्य में वह शूद्रा का पति ब्राह्मण

काल से मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ ६४ ॥ और पति के मरने पर कुछ बीते यौवनवाली उस स्त्रीने बहुत समय तक पुत्रों समेत अपने घरमें निवास किया ॥ ६५ ॥ एक समय दैवयोग से पवित्र पर्व के प्राप्त होनेपर बन्धुवों समेत वह स्त्री गोकर्णक्षेत्र को आई ॥ ६६ ॥ वहां तीर्थ के जल में नहाकर उसने किसी देवालय में मुख्य देवताओं की पुराणवाली कथा को सुना ॥ ६७ ॥ कि अन्य पति का सङ्ग करनेवाली स्त्रियों की योनि में यमदूत नरक में तचेहुए लोहके परिघ को डालते हैं ॥ ६८ ॥ पुराणज्ञाता से कही हुई इस धर्मसंहिता को सुनकर इस डरीहुई स्त्रीने एकान्त में उस श्रेष्ठ ब्राह्मण से कहा ॥ ६९ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! पाप को न

दम्पत्योर्दुराचारप्रवृत्तयोः ॥ कालेन निधनं प्राप्तः स विप्रो वृषलीपतिः ॥ ६४ ॥ मृते भर्तरि सा नारी पुत्रैः सह निजालये ॥ उवास सुचिरं कालं किञ्चिदुत्क्रान्तयौवना ॥ ६५ ॥ एकदा दैवयोगेन संप्राप्ते पुण्यपर्वणि ॥ सा नारी बन्धुभिः सार्धं गोकर्णं क्षेत्रमाययौ ॥ ६६ ॥ तत्र तीर्थजले स्नात्वा कस्मिंश्चिद्देवतालये ॥ शुश्राव देवमुख्यानां पुण्यां पौराणिकीं कथाम् ॥ ६७ ॥ योषितां जारसक्तानां नरके यम किङ्कराः ॥ सन्तप्तलोहपरिघं क्षिपन्ति स्मरमन्दिरे ॥ ६८ ॥ इति पौराणिकेनोक्तां सा श्रुत्वा धर्मसंहिताम् ॥ तमुवाच रहस्येषा भीता ब्राह्मणपुङ्गवम् ॥ ६९ ॥ ब्रह्मन्पापमजानन्त्या मयाचरितमुल्बणम् ॥ यौवने कामचारेण कौटिल्येन प्रवर्तितम् ॥ ७० ॥ इदं त्वद्वचनं श्रुत्वा पुराणार्थविजृम्भितम् ॥ भीतिर्मे महती जाता शरीरं वेपते मुहुः ॥ ७१ ॥ धिङ्मां दुरिन्द्रियासक्तां पापां स्मरविमोहिताम् ॥ अल्पस्य यत्सुखस्यार्थे घोरां यास्यामि दुर्गतिम् ॥ ७२ ॥ कथं पश्यामि मरणे यमदूतान्भयङ्करान् ॥ कथं पाशैर्बलात्कण्ठे वध्य

जानती हुई मैंने उग्र पाप को किया है और युवावस्था में इच्छा के अनुसार आचरण से कुटिलता से वर्ताव किया ॥ ७० ॥ और पुराण के अर्थ से कहेहुए इस तुम्हारे वचनको सुनकर मुझको बड़ा डर हुआ और बारबार शरीर कॉपता है ॥ ७१ ॥ दुष्ट इन्द्रियों में आसक्त व कामदेव से मोहित मुझ पापिनी को धिक्कार है जोकि थोड़े सुखके लिये मैं भयंकर दुर्गति को प्राप्त हूंगी ॥ ७२ ॥ मरण में भयंकर यमदूतों को मैं कैसे देखूंगी और गले में फॅसरी से बॉधीहुई मैं

कैसे धैर्य को पाऊंगी ॥ ७३ ॥ और नरक में खण्ड खण्ड देह के कटने को कैसे सहूंगी और फिर संतप्त मैं क्षारकर्दम में कैसे गिरूंगी ॥ ७४ ॥ और दुःख समूह से निरन्तर पीड़ित मैं कैसे कृमि कीट व पक्षी आदिक लाखों योनियों में भ्रमित हूंगी ॥ ७५ ॥ और आज से लगाकर मुझको भोजन कैसे रुचैगा व दुःख से डूबीहुई मैं रात्रि में कैसे निद्रा को सेवन करूंगी ॥ ७६ ॥ हाय हाय मैं मरगई व जलगई और मेरा हृदय फटगया हा विधे! महापाप में बुद्धि को देकर तुमने मुझको पतित किया ॥ ७७ ॥ ऊंचे पर्वत के अग्रभाग से गिरते हुए व शूल से मारे हुए प्राणी को जो भयंकर दुःख होता है मुझको

माना धृतिं लभे ॥७३॥ कथं सहिष्ये नरके खण्डशो देहकृन्तनम्॥ पुनः कथं पतिष्यामि सन्तप्ता क्षारकर्दमे ॥७४॥ कथं च योनिलक्षेषु क्रिमिकीटखगादिषु॥ परिभ्रमामि दुःखौघात्पीड्यमाना निरन्तरम् ॥ ७५ ॥ कथं च रोचते मह्यमद्यप्रभृति भोजनम् ॥ रात्रौ कथं च सेविष्ये निद्रां दुःखपरिप्लुता ॥ ७६ ॥ हा हा हतास्मि दग्धास्मि विदीर्ण हृदयास्मि च ॥ हा विधे मां महापापे दत्त्वा बुद्धिमपातयः ॥ ७७ ॥ पततस्तुङ्गशैलाग्राच्छूलाक्रान्तस्य देहिनः ॥ य दुःखं जायते घोरं तस्मात्कोटिगुणं मम ॥ ७८ ॥ अश्वमेधायुतं कृत्वा गङ्गां स्नात्वा शतं समाः ॥ न शुद्धिर्जाय ते प्रायो मत्पापस्य गरीयसः ॥ ७९ ॥ किं करोमि क्व गच्छामि कं वा शरणमाश्रये ॥ को वा मां त्रायते लोके पतन्तीं नरकार्णवे ॥ ८० ॥ त्वमेव मे गुरुर्ब्रह्मंस्त्वं माता त्वं पितासि च ॥ उद्धरोद्धर मां दीनां त्वामेव शरणं गताम् ॥ ८१ ॥ इति तां जातनिर्वेदां पतितां चरणद्वये ॥ उत्थाप्य कृपया धीमान्बभाषे द्विजपुङ्गवः ॥ ८२ ॥ ब्राह्मण उवाच॥

उससे कोटिगुना है ॥ ७८ ॥ दश हज़ार अश्वमेध यज्ञ करके व सौ वर्ष तक गंगा में नहाकर मेरे बडे भारी पाप की शुद्धि न होगी ॥ ७९ ॥ मैं क्या करूं व कहां जाऊं व किसकी शरण होऊं और नरक के समुद्र में गिरती हुई मेरी संसार में कौन रक्षा करैगा ॥ ८० ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हीं मेरे गुरु हो और तुम्हीं माता, पिता हो तुम्हारी ही शरण में प्राप्त मुझको उधारिये उधारिये ॥ ८१ ॥ इस प्रकार दोनों चरणोंमें पडीहुई उस उत्पन्न निर्वेद (वैराग्य) वाली स्त्री को दया से उठाकर बुद्धिमान् द्विजोत्तम ने कहा ॥ ८२ ॥ (ब्राह्मण बोला) कि आनन्द है जोकि तुम इस बड़ी भारी कथा को सुनकर समय में ज्ञानवती हुई

तुम मत डरो मैं सुख को देनेवाली गतिको तुमसे कहता हूं ॥ ८३ ॥ उत्तम कथा के सुननेही से तुम्हारी ऐसी बुद्धि होगई और इन्द्रियार्थों में वैराग्य हुआ व बड़ा भारी पश्चात्ताप हुआ ॥ ८४ ॥ सब पापों का पश्चात्तापही श्रेष्ठ यत्न है और उसीसे बुद्धिमान् मनुष्य शीघ्रही प्रायश्चित्त करता है ॥ ८५ ॥ और विधिपूर्वक सब प्रायश्चित्तों को करके पश्चात्ताप न करनेवाले मनुष्य उत्तम गति को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ८६ ॥ और उत्तम कथा को सुननेही से मनुष्य उत्तम गति को जाता है व पवित्र क्षेत्र में बसने से चित्त की शुद्धि होती है ॥ ८७ ॥ जिस प्रकार नित्य उत्तम कथा के सुनने से मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त होता है उस प्रकार अन्य

दिष्ट्या काले प्रबुद्धासि श्रुत्वेमां महतीं कथाम् ॥ माभैषीस्तव वक्ष्यामि गतिं चैव सुखावहाम् ॥ ८३ ॥ सत्कथाश्रवणादेव जाता ते गतिरीदृशी ॥ इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं पश्चात्तापो महानभूत् ॥ ८४ ॥ पश्चात्तापो हि सर्वेषामघानां निष्कृतिः परा ॥ तेनैव कुरुते सद्यः प्रायश्चित्तं सुधीर्नरः ॥ ८५ ॥ प्रायश्चित्तानि सर्वाणि कृत्वा च विधिवत्पुनः ॥ अपश्चात्तापिनो मर्त्या न यान्ति गतिमुत्तमाम् ॥ ८६ ॥ सत्कथाश्रवणान्नित्यं संयाति परमां गतिम् ॥ पुण्यक्षेत्रनिवासाच्च चित्तशुद्धिः प्रजायते ॥ ८७ ॥ यथा सत्कथया नित्यं संयाति परमां गतिम् ॥ तथान्यैः सद्व्रतैर्जन्तोर्न भवेन्मतिरुत्तमा ॥ ८८ ॥ यथा मुहुः शोध्यमानो दर्पणो निर्मलो भवेत् ॥ तथा सत्कथया चेतो विशुद्धिं परमां व्रजेत् ॥ ८९ ॥ विशुद्धे चेतसि नृणां ध्यानं सिध्यत्युमापतेः ॥ ध्यानेन सर्वं मलिनं मनोवाक्कायसंभृतम् ॥ ९० ॥ सद्यो विधूय कृतिनो यान्ति शम्भोः परं पदम् ॥ अतः संन्यस्तपुण्यानां सत्कथा साधनं परम् ॥ ९१ ॥ कथया सिध्यति ध्यानं

उत्तम व्रतों से प्राणी की उत्तम बुद्धि नहीं होती है ॥ ८८ ॥ जैसे बारबार शोधाहुआ दर्पण निर्मल होता है वैसेही उत्तम कथा से चित्त उत्तम शुद्धि को प्राप्त होता है ॥ ८९ ॥ और चित्त शुद्ध होनेपर मनुष्यों के शिवजी का ध्यान सिद्ध होता है व ध्यान से मन, वचन तथा शरीर से कियेहुए सब मलिन को ॥ ९० ॥ शीघ्रही नाशकर पुण्यवान् लोग शिवजी के परमपद को प्राप्त होते हैं इस कारण पुण्यवान् लोगों का उत्तम कथा श्रेष्ठ यत्न है ॥ ९१ ॥ और कथा से ध्यान सिद्ध होता

है व ध्यान से उत्तम मोक्ष होता है व उत्तम ध्यान को न सिद्ध करनेवाला जो मनुष्य इस कथा को सुनता है वह दूसरे जन्म में ध्यान को प्राप्त होकर उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ अजामिल पश्चात्ताप से संयुत होकर नाम के कहनेही से मन्त्र को जपकर उत्तम गति को प्राप्त हुआ है ॥ ६३ ॥ मनुष्यों का उत्तम कथा का सुनना सब कल्याणों का बीज है जो उससे हीन है वह पशु बन्धन से कैसे छूटैगा ॥ ६४ ॥ इस कारण तुम भी सब विषयों से बुद्धिको लौटा कर उत्तम भक्ति को धारण कर सदैव उत्तम कथा को सुनो क्योंकि नित्य उत्तम कथा को सुनती हुई तेरा चित्त शुद्धि को प्राप्त होगा ॥ ६५ ॥ और उससे विश्वे-

ध्यानात्कैवल्यमुत्तमम् ॥ असिद्धपरमध्यानः कथामेतां शृणोति यः ॥ सोऽन्यजन्मनि संप्राप्य ध्यानं याति परां गतिम् ॥ ६२ ॥ नामोच्चारणमात्रेण जप्त्वा मन्त्रमजामिलः ॥ पश्चात्तापसमायुक्तस्त्ववाप परमां गतिम् ॥ ६३ ॥ सर्वेषां श्रेयसां बीजं सत्कथाश्रवणं नृणाम् ॥ यस्तद्विहीनः स पशुः कथं मुच्येत बन्धनात् ॥ ६४ ॥ अतस्त्वमपि सर्वेभ्यो विषयेभ्यो निवृत्तधीः ॥ भक्तिं परां समाधाय सत्कथां शृणु सर्वदा ॥ शृण्वन्त्याः सत्कथां नित्यं चेतस्ते शुद्धिमेष्यति ॥ ६५ ॥ तेन ध्यायसि विश्वेशं ततो मुक्तिमवाप्स्यसि ॥ ध्यायतः शिवपादाब्जं मुक्तिरेकेन जन्मना ॥ ६६ ॥ भविष्यति न सन्देहः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ इत्युक्ता तेन विप्रेण सा नारी बाष्पसंकुला ॥ ६७ ॥ पतित्वा पादयोस्तस्य कृतार्थास्मीत्यभाषत ॥ तस्मिन्नेव महाक्षेत्रे तस्मादेव द्विजोत्तमात् ॥ ६८ ॥ शुश्राव सत्कथां साध्वी कैवल्यफलदायिनीम् ॥ स उवाच द्विजस्तस्यै कथां वैराग्यबृंहिताम् ॥ ६९ ॥ यां श्रुत्वा मनुजः सद्यस्त्यजेद्वि

श्वरजी को ध्यावोगी तदनन्तर मुक्तिको पावोगी क्योंकि शिवजी के चरणकमल को ध्यान करनेवाले की एक जन्म से मुक्ति होजावैगी इसमें सन्देह नहीं है मैं सत्य सत्य कहता हूं उस ब्राह्मण से इस प्रकार कहीहुई आँसुवों से सयुत उस स्त्रीने ॥ ६६ । ६७ ॥ उसके चरणों में गिरकर यह कहा कि मैं कृतार्थ होगई और उसी महाक्षेत्र में उसी द्विजोत्तम से ॥ ६८ ॥ मुक्तिफल को देनेवाली उत्तम कथा को सुना और उस ब्राह्मण ने उस स्त्रीसे वैराग्य से बढ़ीहुई कथा को कहा ॥ ६९ ॥

जिसको सुनकर मनुष्य शीघ्रही विषय वासना को छोड़देता है उसका चित्त जिस प्रकार शुद्ध होगया व जिस भांति वैराग्य के रसमें प्राप्त हुआ॥ १००॥ उसी प्रकार ब्राह्मण ने भक्ति से संयुत शिवजी की कथा को कहा और ज्यों ज्यों उस स्त्रीका मन धीरे धीरे प्रसन्नता को प्राप्त होता था त्यों त्यों उस ब्राह्मण ने धीरे धीरे शिवजी के ध्यानयोग को कहा॥ १॥ धीरे धीरे नष्ट रजोगुण व तमोगुणवाले तथा सब इन्द्रियोंके सुख को छोड़नेवाले तथा शुद्धतत्त्ववाले ब्राह्मण की स्त्रीके हृदय में विश्वेश्वर के रूपका ध्यान पैठगया॥ २॥ इस प्रकार उत्तम गुरुको प्राप्त होकर उस स्त्रीने उत्तम बुद्धि को पाकर बारबार शिवजी के चैतन्यात्मक

यवासनाम्॥ तस्याश्चित्तं यथा शुद्धं वैराग्यरसगं यथा॥ १००॥ तथोवाच द्विजः शैवीं कथां भक्तिसमन्विताम्॥ यथा यथा मनस्तस्याः प्रसादमभिगच्छति॥ तथा तथा शनैः शम्भोर्ध्यानयोगमुपादिशत्॥ १॥ शनैः शनैर्ध्वस्तरजस्तमोमलं विमुक्तसर्वेन्द्रियभोगविग्रहम्॥ विशुद्धतत्त्वं हृदयं द्विजस्त्रिया विवेश विश्वेश्वररूपचिन्तनम्॥२॥ इत्थं सद्गुरुमाश्रित्य सा नारी प्राप्तसन्मतिः॥ दध्यौ मुहुर्मुहुः शम्भोश्चिदानन्दमयं वपुः॥ ३॥ नित्यं तीर्थजले स्नात्वा जटावल्कलधारिणी॥ भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गी रुद्राक्षकृतभूषणा॥ ४॥ शिवनामजपासक्ता वाग्यता मितभोजना॥ बद्धपद्मासनाऽव्यग्रा सत्कथाश्रवणोत्सुका॥ ५॥ गुरुशुश्रूषणरता त्यक्तापत्यसुहृज्जना॥ गुरूपदिष्टयोगेन शिवमेवमतोषयत्॥ ६॥ विश्वेश विश्वविलयस्थितिजन्महेतो विश्वैकवन्द्य शिव शाश्वत विश्वरूप॥ विध्वस्त

शरीर को ध्यान किया॥ ३॥ और नित्य तीर्थ के जलमें नहाकर जटा व बकलों को धारनेवाली उस स्त्रीने सब अङ्गों में भस्म को लगाकर रुद्राक्ष का भूषण किया॥ ४॥ और शिवजी के नामोंके जपमें लगीहुई वह मौनी व थोड़ा भोजन करनेवाली सावधान स्त्री पद्मासन को बाँधकर उत्तम कथा के सुनने में उत्कंठित हुई॥ ५॥ और गुरुकी सेवा में परायण तथा सन्तान व मित्रजनों को छोडकर उस स्त्रीने गुरुसे बतलाये हुए मार्ग से शिवही को प्रसन्न किया॥ ६॥ कि हे विश्वेश! हे संसार के नाश! पालन व जन्म के कारण! हे विश्वैकवन्द्य, शिव, शाश्वत, विश्वरूप! हे विध्वस्तकालविपरीतगुणावभास, श्रीमन्महेश! मेरे

ऊपर दयादृष्टिको धारण कीजिये ॥ ७ ॥ हे शम्भो ! हे चन्द्रभाल ! हे शान्तमूर्ते ! हे गंगाधर ! हे अमरवरपूजितचरणकमल ! हे नगेन्द्रनिकेतन, ईश ! हे भक्तदुःख-नाशक ! मेरे ऊपर दयादृष्टिको धारण कीजिये ॥ ८ ॥ हे श्रीविश्वनाथ, दयाकर, शूलपाणे ! हे भूतेश, भर्ग, भुवनत्रयगीतकीर्ते ! हे श्रीनीलकण्ठ, मदनान्तक, विश्वमूर्ते, गौरीपते ! मेरे ऊपर दयादृष्टि को धारण कीजिये ॥ ९ ॥ इस प्रकार प्रतिदिन शिवजी से प्रार्थना करती व उत्तम कथा को भलीभांति सुनतीहुई उस ने कर्मबन्धन को काटडाला ॥ १० ॥ इसके उपरान्त कालसे शरीर को छोड़कर शिवदूतों से लेगईहुई वह स्त्री शिवजी के मन्दिर को प्राप्त हुई ॥ ११ ॥ वहां

कालविपरीतगुणावभास श्रीमन्महेश मयि धेहि कृपाकटाक्षम् ॥ ७ ॥ शम्भो शशाङ्ककृतशेखर शान्तमूर्ते गङ्गाधरा मरवरार्चितपादपद्म ॥ नागेन्द्रभूषण नगेन्द्रनिकेतनेश भक्तार्तिहन्मयि निधेहि कृपाकटाक्षम् ॥ ८ ॥ श्रीविश्वनाथ करुणाकर शूलपाणे भूतेश भर्ग भुवनत्रयगीतकीर्ते ॥ श्रीनीलकण्ठ मदनान्तक विश्वमूर्ते गौरीपते मयि निधेहि कृपाकटाक्षम् ॥ ९ ॥ इत्थं प्रतिदिनं भक्त्या प्रार्थयन्ती महेश्वरम् ॥ शृण्वन्ती सत्कथां सम्यक्कर्मबन्धं समाच्छिनत् ॥ १० ॥ अथ कालेन सा नारी समुत्सृज्य कलेवरम् ॥ महेशानुचरैर्नीता संप्राप्ता शिवमन्दिरम् ॥ ११ ॥ तत्र देवं महादेवं सेव्यमानं सहोमया ॥ गणेशनन्दिभृङ्ग्याद्यैर्वीरभद्रेश्वरादिभिः ॥ १२ ॥ उपास्यमानं गौरीशं कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥ त्रिलोचनं पञ्चमुखं नीलग्रीवं सदाशिवम् ॥ १३ ॥ वामाङ्के बिभ्रतं गौरीं विद्युच्चन्द्रसमप्रभाम् ॥ दृष्ट्वा ससंभ्रमं नारी सा प्रणम्य पुनः पुनः ॥ १४ ॥ आनन्दाश्रुजलोत्सिक्ता रोमहर्षसमाकुला ॥ संमानिता करुणया

गणेश, नन्दी, भृङ्गी आदिक व वीरभद्रेश्वर आदिकों से सेवित पार्वती समेत देवदेव सदाशिवजी को ॥ १२ ॥ और उपासना कियेजाते हुए करोड़ों सूर्यों के समान प्रभावान् गौरीश, त्रिलोचन, पञ्चानन, नीलकण्ठ सदाशिवजी को ॥ १३ ॥ और बिजली व चन्द्रमा के समान प्रभावाली पार्वतीजी को बाईं गोदी में धारण कियेहुए शिवजी को देखकर संभ्रम समेत उस स्त्रीने बारबार प्रणाम कर ॥ १४ ॥ आनन्द के आँसुवों के जल से सींचीहुई व रोमांच से संयुत उस स्त्री का

पार्वतीजी ने व शिवजी ने दया से सम्मान किया ॥ १५ ॥ और उत्तम आनन्दघन से प्रकाशवाले तथा सदैव रहनेवाले उस लोक में अचलनिवास को पाकर बड़ा भारी सुख पाया ॥ १६ ॥ किसी समय उस स्त्रीने पार्वतीजीके समीप जाकर व प्रणाम करके यह पूंछा कि मेरा पति किस गतिको प्राप्त हुआ है ॥ १७ ॥ उस से महादेवी पार्वतीजी ने कहा कि वह दुष्ट तेरा पति नरक के दुःखों को भोगकर विन्ध्याचल में पिशाच हुआ है ॥ १८ ॥ फिर उस स्त्रीने त्रिलोक की स्वामिनी पार्वतीदेवी से पूंछा कि मेरा पति किस उपाय से उत्तम गतिको पावैगा ॥ १९ ॥ देवीजी बोलीं कि वह यदि किसी समय मेरी बड़ी पवित्र कथा को सुनै तो सब

पार्वत्या शङ्करेण च ॥ १५ ॥ तस्मिँल्लोके परानन्दघनज्योतिषि शाश्वते ॥ लब्ध्वा निवासमचलं लेभे सुखमनोहतम् ॥ १६ ॥ सा कदाचिदुमां देवीमुपसृत्य प्रणम्य च ॥ पर्यपृच्छत मे भर्त्ता कां गतिं गतवानिति ॥ १७ ॥ तामुवाच महादेवी स ते भर्त्ता दुराशयः ॥ भुक्त्वा नरकदुःखानि विन्ध्ये जातः पिशाचकः ॥ १८ ॥ पुनः पप्रच्छ सा नारी देवीं त्रिभुवनेश्वरीम् ॥ केनोपायेन मे भर्त्ता सद्गतिं प्राप्नुयादिति ॥ १९ ॥ देव्युवाच ॥ सोऽस्मत्कथां महापुण्यां कदाचिच्छृणुयाद्यदि ॥ निस्तीर्य दुर्गतिं सर्वामिमं लोकं प्रयास्यति ॥ २० ॥ इति गौर्या वचः श्रुत्वा सा नारी विहिताञ्जलिः ॥ प्रार्थयामास तां देवीं भर्तुः पापविशोधने ॥ २१ ॥ तया मुहुः प्रार्थ्यमाना पार्वती करुणायुता ॥ तुम्बुरुं नाम गन्धर्वमाहूयेदमथाब्रवीत् ॥ २२ ॥ तुम्बुरो गच्छ भद्रं ते विन्ध्यशैलं सहानया ॥ आस्ते पिशाचकस्तत्र योऽस्याः पतिरसन्मतिः ॥ २३ ॥ तस्याग्रे परमां पुण्यां कथामस्मद्गुणैर्युताम् ॥ आख्याय दुर्गतेर्मुक्तं तमानय शिवान्ति

दुर्गति को नाँघकर इस लोक को प्राप्त होगा ॥ २० ॥ पार्वतीजी का इस प्रकार वचन सुनकर हाथों को जोड़कर उस स्त्रीने पति का पाप नाश होने के लिये उन पार्वती देवी से प्रार्थना किया ॥ २१ ॥ व उससे बारबार प्रार्थना करने पर दयासंयुत पार्वतीजी ने तुम्बुरु नामक गन्धर्व को बुलाकर यह कहा ॥ २२ ॥ कि हे तुम्बुरो ! तुम्हारा कल्याण होवै इस स्त्रीसमेत तुम विन्ध्याचल को जावो और वहां जो दुष्टबुद्धिवाला इसका पिशाच पति है ॥ २३ ॥ उसके आगे मेरे गुणों से

संयुत बहुत प्यारी कथा को कहकर दुर्गति से छूटेहुए उसको शिवजी के समीप ले आइये ॥ २४ ॥ देवीजी से इस प्रकार आज्ञा को पाकर तुम्बुरु उन पार्वतीजी को प्रणाम कर उसके साथ विमान पै चढ़कर यकायक विन्ध्याचल को चला गया ॥ २५ ॥ वहां उसने अरुणनेत्र व बड़ी दाढ़ीवाले तथा हँसते, रोते व बोलते हुए बड़े शरीरवाले पिशाच को देखा ॥ २६ ॥ और बलसे पकड़कर व उसको पाशों से बाँधकर बिठाकर वीणाको हाथमें लियेहुए तुम्बुरुने शिवजी की कथा को गाया ॥ २७ ॥ और उस पिशाच ने शिवजी की पवित्र कथा को सुनकर सब पापको जलाकर सात दिनमें स्मरण को पाया ॥ २८ ॥ और पिशाच के

कम् ॥ २४ ॥ इति देव्या समादिष्टस्तुम्बुरुस्तां प्रणम्य च ॥ तया सह विमानेन विन्ध्याद्रिं सहसा ययौ ॥ २५ ॥ तत्रा पश्यन्महाकायं रक्तनेत्रं महाहनुम् ॥ प्रहसन्तं रुदन्तं च वल्गन्तं च पिशाचकम् ॥ २६ ॥ बलाद् गृहीत्वा तं पाशैर्ब द्ध्वा वै संनिवेश्य च ॥ तुम्बुरुर्वल्लकीहस्तो जगौ गौरीपतेः कथाम् ॥ २७ ॥ स पिशाचो महापुण्यां कथां श्रुत्वा पुर द्विषः ॥ विधूय कलुषं सर्वं सप्ताहात्प्राप संस्मृतिम् ॥२८॥ स पैशाचं वपुस्त्यक्त्वा स्वरूपं दिव्यमाप्य च ॥ जगौ स्वय मपि श्रीमच्चरितं पार्वतीपतेः ॥ २९ ॥ विमानमारुह्य स दिव्यरूपधृक्सतुम्बुरुः पार्श्वगतः स्वकान्तया ॥ गायन्महे शस्य गुणान्मनोरमाञ्जगाम कैवल्यपदं सनातनम् ॥ ३० ॥ सूत उवाच ॥ इत्येतत्कथितं पुण्यमाख्यानं दुरितापहम् ॥ महेश्वरप्रीतिकरं निर्मलज्ञानसाधनम् ॥ ३१ ॥ य इदं शृणुयान्मर्त्यः कीर्तयेद्वा समाहितः ॥ शम्भोर्गुणानुकथनं विचित्रं पापनाशनम् ॥ ३२ ॥ परमानन्दजनकं भवरोगमहौषधम् ॥ भुक्त्वेह विविधान्भोगान्मुक्तो याति परां

शरीर को छोड़कर वह दिव्य स्वरूप को पाकर आपभी शिवजी के उत्तम चरित्र को गाया ॥ २९ ॥ और दिव्य स्वरूपको धारणकर शिवजी के सुन्दर गुणोंको गाता हुआ वह अपनी स्त्रीसमेत व तुम्बुरुसमेत विमानपै चढ़कर सनातन मुक्तिस्थानको प्राप्त हुआ ॥ ३० ॥ सूतजी बोले कि पापनाशक व शिवजी की प्रीतिकारक तथा निर्मल ज्ञानका साधक यह पवित्र चरित्र कहागया ॥ ३१ ॥ सावधान होकर जो मनुष्य इस पापनाशक व उत्तम आनन्द को पैदा करने वाला तथा संसाररूपी रोग की बड़ीभारी औषधरूप शिवजी के विचित्र गुणों को सुनता व कहता है वह इस संसार में अनेक प्रकार के सुखों को भोगकर

मुक्त होकर उत्तम गतिको प्राप्त होताहै ॥३२।३३॥ सूतजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठो ! तुमलोग बड़े भाग्यवान् व कृतार्थहो जोकि सदैव शिवजी के नवीन कथारूपी अमृत के रसको सेवतेहो ॥ ३४ ॥ संसार में वे मनुष्य जन्मधारी हैं कि जिनका मन शिवजी को ध्यान करता है वह वाणी है जोकि गुणों की स्तुति करती है और वे दोनों कान हैं जोकि कथाको सुनते हैं और वे संसार को उतर जाते हैं ॥ ३५ ॥ सदैव अनेक प्रकार के गुणके भेदों से अप्रकट रूपवाले तथा संसार में व भीतर, बाहर महिमा से समानरूप तथा अपने तेजमें विहार करनेवाले और वचन व मन की वृत्ति से दूर परम शिव और अनन्त आनन्दघन की शरण में मैं प्राप्तहूं ॥ १३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां पुराणश्रवणमहिमवर्णनंनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ● ॥

गतिम् ॥ ३३ ॥ सूत उवाच ॥ यूयं खलु महाभागाः कृतार्था मुनिसत्तमाः ॥ ये सेवन्ते सदा शम्भोः कथामृतरसं नवम् ॥ ३४ ॥ ते जन्मभाजः खलु जीवलोके येषां मनो ध्यायति विश्वनाथम् ॥ वाणी गुणान्स्तौति कथां शृणोति श्रोत्रद्वयं ते भवमुत्तरन्ति ॥ ३५ ॥ विविधगुणविभेदैर्नित्यमस्पृष्टरूपं जगति च बहिरन्तर्वा समानं महिम्ना ॥ स्वमहसि विहरन्तं वाङ्मनोवृत्तिदूरं परमशिवमनन्तानन्दसान्द्रं प्रपद्ये ॥ १३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मोत्तरखण्डे पुराणश्रवणमहिमवर्णनंनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ इति ब्रह्मोत्तरखण्डं समाप्तम् ॥ * ॥ * ॥

इति ब्रह्मोत्तरखण्डं समाप्तम् ॥

प्रथमबार

लखनऊ

बाबू मनोहरलाल भार्गव, बी. ए., सुपरिंटेंडेंट के प्रबन्ध से
मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के यन्त्रालय में छपा—सन् १९१५ ई० ॥

॥ इति स्कन्दपुराण ब्रह्मखण्ड ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ ब्रह्मखण्डान्तर्गतचातुर्मास्यमाहात्म्यम् ॥

दो० । चातुर्मास्य मँझार जिमि व्रत कीन्हे फल होत । सोइ प्रथम अध्याय में बरन्यो चरित उदोत ॥ नारदजी बोले कि हे देवदेव, महाभाग, ब्रह्मन् ! तुम्हारे मुख से बहुत से व्रत सुने गये परन्तु मेरा मन तृप्ति को नहीं प्राप्त होता है ॥ १ ॥ इस समय में उत्तम चातुर्मास्य को सुना चाहता हूं ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे देव, मुने ! तुम मुझसे उत्तम चातुर्मास्य के व्रत को सुनिये जिसको सुनकर भरतखण्ड में मुक्ति दुर्लभ नहीं होती है ॥ ३ ॥ ये मुक्तिदायक भगवान् संसार से पारकरने के लिये

श्रीगणेशाय नमः ॥ नारद उवाच ॥ देवदेव महाभाग व्रतानि सुबहून्यपि ॥ श्रुतानि त्वन्मुखाद्ब्रह्मन्न तृप्तिमधिगच्छति ॥ १ ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि चातुर्मास्यव्रतं शुभम् ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ शृणु देव मुने मत्तश्चातुर्मास्यव्रतं शुभम् ॥ यच्छ्रुत्वा भारते खण्डे नृणां मुक्तिर्न दुर्लभा ॥ ३ ॥ मुक्तिप्रदोऽयं भगवान् संसारोत्तारकारणम् ॥ यस्य स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥ मानुष्यं दुर्लभं लोके तत्राऽपि च कुलीनता ॥ तत्रापि सदयत्वं च तत्र सत्संगमः शुभः ॥ ५ ॥ सत्संगमो न यत्रास्ति विष्णुभक्तिर्व्रतानि च ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण विष्णुव्रतकरः शुभः ॥ ६ ॥ चातुर्मास्येऽव्रती यस्तु तस्य पुण्यं निरर्थकम् ॥ सर्वतीर्थानि दानानि पुण्यान्यायतनानि च ॥ ७ ॥ विष्णुमाश्रित्य

कारण हैं जिनके स्मरण ही से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ ४ ॥ संसार में मनुष्य होना दुर्लभ है और उसमें भी कुलीनता व कुलीनता में भी दयासंयुत होना व उसमें भी सज्जनों का संगम शुभ है ॥ ५ ॥ जहा सत्संगम व विष्णुभक्ति और व्रत नहीं होते हैं वहां विशेष कर चातुर्मास्य में विष्णुजी का व्रत करनेवाला नर उत्तम होता है ॥ ६ ॥ और चातुर्मास्य में जो व्रत करनेवाला नहीं होता है उसका पुण्य निरर्थक होजाता है और सब तीर्थ, दान व पवित्र स्थान ॥ ७ ॥

चातुर्मास्य आने पर विष्णुजी के आश्रित होकर स्थित होते हैं और बहुत पुष्ट भी शरीर से उसका जीवन उत्तम है ॥ ८ ॥ जो विद्वान् चातुर्मास्य आने पर विष्णुजी को प्रणाम करता है और प्रसन्न होते हुए देवता उसके ऊपर जीवन पर्यन्त वरदायक होते हैं ॥ ९ ॥ व मानुषजन्म को पाकर जो चातुर्मास्य से विमुख होता है विद्वान् उसके शरीर में सैकड़ों पापों को स्थित कहते हैं ॥ १० ॥ संसार में मनुष्य होना दुर्लभ है व विष्णुजी की भक्ति दुर्लभ है और चातुर्मास्य में विष्णुदेवजी के सोने पर विशेष कर दुर्लभ है ॥ ११ ॥ जो मनुष्य चातुर्मास्य में प्रातःकाल स्नान करता है वह सब यज्ञों के फल को पाकर

तिष्ठन्ति चातुर्मास्ये समागते ॥ सुपुष्टेनापि देहेन जीवितं तस्य शोभनम् ॥ ८ ॥ चातुर्मास्ये समायाते हरिं यः प्रण मेद्बुधः ॥ कृतार्थास्तस्य विबुधा यावज्जीवं वरप्रदाः ॥ ९ ॥ संप्राप्य मानुषं जन्म चातुर्मास्यपराङ्मुखः ॥ तस्य पाप शतान्याहुर्देहस्थानि न संशयः ॥ १० ॥ मानुष्यं दुर्लभं लोके हरिभक्तिश्च दुर्लभा ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सुप्ते देवे जनार्दने ॥ ११ ॥ चातुर्मास्ये नरः स्नानं प्रातरेव समाचरेत् ॥ सर्वक्रतुफलं प्राप्य देववद्दिवि मोदते ॥ १२ ॥ चातु र्मास्ये नदीस्नानं कुर्यात्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ तथा निर्झरणे स्नाति तडागे कूपिकासु च ॥ १३ ॥ तस्य पापसहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ पुष्करे च प्रयागे वा यत्र कापि महाजले ॥ चातुर्मास्येषु यः स्नाति पुण्यसंख्या न वि द्यते ॥ १४ ॥ रेवायां भास्करक्षेत्रे प्राच्यां सागरसङ्गमे ॥ एकाहमपि यः स्नातश्चातुर्मास्ये न दोषभाक् ॥ १५ ॥ दिनत्रयं च यः स्नाति नर्मदायां समाहितः ॥ सुप्ते देवे जगन्नाथे पापं याति सहस्रधा ॥ १६ ॥ पक्षमेकं तु यः स्नाति

स्वर्ग में देवताओं की नाईं आनन्द करता है ॥ १२ ॥ व चातुर्मास्य में जो मनुष्य नदी में स्नान करता है वह सिद्धि को प्राप्त होता है और जो झरना, तड़ाग व बावली में स्नान करता है ॥ १३ ॥ उसके हज़ारों पाप उसी क्षण नाश होजाते हैं और चातुर्मास्य में जो पुष्कर, प्रयाग व जिस किसी महाजल में स्नान करता है उसके पुण्य की संख्या नहीं है ॥ १४ ॥ और नर्मदा, भास्करक्षेत्र व प्राची सरस्वती तथा सागर के संगम में जो चातुर्मास्य में एक दिन भी स्नान करता है वह दोषभागी नहीं होता है ॥ १५ ॥ व जगदीशजी के सोने पर सावधान होता हुआ जो मनुष्य नर्मदा में स्नान करता है उसका पाप हज़ार खण्ड होजाता है ॥ १६ ॥

और जो एक पक्षभर गोदावरी नदी में सूर्योदय में स्नान करता है वह कर्मजशरीर को छोडकर विष्णुजी की सलोकता को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ और जो मनुष्य तिलोदक व आमलोदक से स्नान करता है और जो बिल्वपत्रोदक से चातुर्मास्य में स्नान करता है वह दोषभागी नहीं होता है ॥ १८ ॥ व जो मनुष्य नित्य कूप के समीप गंगाजी को स्मरण करता है वह गंगाजी का जल होजाता है उससे मनुष्य स्नान करै ॥ १९ ॥ और देवदेव विष्णुजी के चरण के अँगूठे से बहने वाली वे गंगाजी सदैव पापहारिणी कहीगई हैं व चातुर्मास्य में विशेषकर हैं ॥ २० ॥ जिस लिये स्मरण किये हुए विष्णुजी हज़ारों पापों को जलाते हैं उस

गोदावर्यां दिनोदये ॥ स भित्त्वा कर्मजं देहं याति विष्णोः सलोकताम् ॥ १७ ॥ तिलोदकेन यः स्नाति तथा चैवामलोदकैः ॥ बिल्वपत्रोदकैश्चैव चातुर्मास्ये न दोषभाक् ॥ १८ ॥ गङ्गां स्मरति यो नित्यमुदपानसमीपतः ॥ तद्गाङ्गेयं जलं जातं तेन स्नानं समाचरेत् ॥ १९ ॥ गङ्गापि देवदेवस्य चरणाङ्गुष्ठवाहिनी ॥ पापघ्नी सा सदा प्रोक्ता चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ २० ॥ यतः पापसहस्राणि विष्णुर्दहति संस्मृतः ॥ तस्मात्पादोदकं शीर्षे चातुर्मास्ये धृतं शिवम् ॥ २१ ॥ चातुर्मास्ये जलगतो देवो नारायणो भवेत् ॥ सर्वतीर्थाधिकं स्नानं विष्णुतेजोंशसंगतम् ॥ २२ ॥ स्नानं दशविधं कार्यं विष्णुनाममहाफलम् ॥ सुप्ते देवे विशेषेण नरो देवत्वमाप्नुयात् ॥ २३ ॥ विना स्नानं तु यत्कर्म पुण्यकार्यमयं शुभम् ॥ क्रियते निष्फलं ब्रह्मंस्तत्प्रगृह्णन्ति राक्षसाः ॥ २४ ॥ स्नानेन सत्यमाप्नोति स्नानं धर्मः सनातनः ॥ धर्मान्मोक्ष

कारण चातुर्मास्य में मस्तक में धारण किया हुआ चरणोदक कल्याणकारक होता है ॥ २१ ॥ चातुर्मास्य में विष्णुदेव नारायणजी जलगत होते हैं और विष्णुजी के तेज के अंश से प्राप्त स्नान सब तीर्थों से अधिक कहा गयाहै ॥ २२ ॥ और विष्णु नामक महाफलवाला दश प्रकार का स्नान करना चाहिये और विष्णुदेवजी के सोने पर विशेष कर मनुष्य देवत्व को प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ हे ब्रह्मन् ! बिन स्नान के जो उत्तम पुण्य कार्यमय कर्म किया जाता है वह निष्फल होता है व उसको राक्षस ग्रहण करते हैं ॥ २४ ॥ स्नान से मनुष्य सत्य को पाता है व स्नान सनातनधर्म है और धर्म से मोक्ष के फल को पाकर मनुष्य

फिर दुःखी नहीं होता है ॥ २५ ॥ जो अध्यात्म को जाननेवाले हैं व जो पवित्र मनुष्य वेदांगों के पारगामी हैं और जो सब दानों को देनेवाले हैं उनकी स्नान से पवित्रता होती है ॥ २६ ॥ व स्नान किये हुए मनुष्य के शरीर के आश्रित होकर विष्णुजी स्थित होते हैं व सब कर्मसमूहों में व संपूर्ण फल के दायक होते हैं ॥ २७ ॥ और सब पापों के नाश के लिये तथा देवताओं की प्रसन्नता के लिये चातुर्मास्य में जल का स्नान सब पापोंका नाशक है ॥ २८ ॥ और रात्रि में स्नान न करै व ग्रहण के विना संध्या में स्नान न करै व गरम जल से स्नान न करै और रात्रि में शुद्धि नहीं होती है ॥ २९ ॥ क्योंकि सूर्यनारायण के दर्शन से सब

फलं प्राप्य पुनर्नैवावसीदति ॥ २५ ॥ ये चाध्यात्मविदः पुण्या ये च वेदाङ्गपारगाः ॥ सर्वदानप्रदा ये च तेषां स्नानेन शुद्धता ॥ २६ ॥ कृतस्नानस्य च हरिर्देहमाश्रित्य तिष्ठति ॥ सर्वक्रियाकलापेषु संपूर्णफलदो भवेत् ॥ २७ ॥ सर्वपापविनाशाय देवतातोषणाय च ॥ चातुर्मास्ये जलस्नानं सर्वपापक्षयावहम् ॥ २८ ॥ निशायां चैव न स्नायात्संध्यायां ग्रहणं विना ॥ उष्णोदकेन न स्नानं रात्रौ शुद्धिर्न जायते ॥ २९ ॥ भानुसंदर्शनाच्छुद्धिर्विहिता सर्वकर्मसु ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण जलशुद्धिस्तु भाविनी ॥ ३० ॥ अशक्त्या तु शरीरस्य भस्मस्नानेन शुध्यति ॥ मन्त्रस्नानेन विप्रेन्द्र विष्णुपादोदकेन वा ॥ ३१ ॥ नारायणाग्रतः स्नानं क्षेत्रतीर्थनदीषु च ॥ यः करोति विशुद्धात्मा चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्यं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥

कर्मों में शुद्धि कही गई है व चातुर्मास्य में विशेष कर जल की शुद्धि होती है ॥ ३० ॥ और शरीर की अशक्ति से मनुष्य भस्मस्नान से शुद्ध होता है व हे द्विजेन्द्र ! मंत्रस्नान से तथा विष्णु के चरणोदक से शुद्ध होता है ॥ ३१ ॥ और क्षेत्र, तीर्थ व नदियों में जो विष्णुजी के आगे स्नान करता है वह शुद्धचित्त होता है और चातुर्मास्य में विशेष कर शुद्ध होता है ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्यं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अहै दया सब धर्म महँ अति उत्तम जिमि धर्म । सो दूजे अध्याय में कह्यो चरित्र सुपर्म॥ ब्रह्माजी बोले कि विष्णुदेवजी के सोने पर नित्य स्नान के अन्त में श्रद्धायुक्त चित्त से बड़ा फलदायक पितरों का तर्पण करै ॥ १ ॥ और नदियों के संगम में वहा पितरों व देवताओं को तर्पणकर जप होमादिक कर्मों को करके अनन्त फल होता है ॥ २॥ विष्णुजी को स्मरण कर पश्चात् उत्तमकर्मों को करना चाहिये क्योंकि यही पितर, देवता व मनुष्यादिकों में तृप्तिदायक है ॥ ३ ॥ और धर्मयुत नामक श्रद्धा तथा स्मृति से पवित्र सब कर्मों को इस अधिक गुणवाले चातुर्मास्य में करै ॥ ४ ॥ सत्संग, द्विजभक्ति व गुरु, देवता और अग्नि का

ब्रह्मोवाच॥ पितॄणां तर्पणं कुर्याच्छ्रद्धायुक्तेन चेतसा॥स्नानावसाने नित्यं च सुप्ते देवे महाफलम्॥१॥ सङ्गमे सरितान्तत्र पितॄन्संतर्प्य देवताः ॥ जपहोमादिकर्माणि कृत्वा फलमनन्तकम् ॥ २ ॥ गोविन्दस्मरणं कृत्वा पश्चात्कार्याः शुभाः क्रियाः ॥ एष एव पितृदेवमनुष्यादिषु तृप्तिदः ॥ ३ ॥ श्रद्धां धर्मयुतां नाम स्मृतिपूतानि कारयेत् ॥ कर्माणि सकलानीह चातुर्मास्ये गुणोत्तरे ॥ ४ ॥ सत्सङ्गो द्विजभक्तिश्च गुरुदेवाग्नितर्पणम् ॥ गोप्रदानं वेदपाठः सत्क्रिया सत्यभाषणम् ॥ ५ ॥ गोभक्तिर्दानभक्तिश्च सदा धर्मस्य साधनम् ॥ कृष्णे सुप्ते विशेषेण नियमोऽपि महाफलः ॥ ६ ॥ नारद उवाच॥ नियमः कीदृशो ब्रह्मन् फलं च नियमेन किम् ॥ नियमेन हरिस्तुष्टो यथा भवति तद्वद ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नियमश्च क्षुरादीनां क्रियासु विविधासु च ॥ कार्यो विद्यावता पुंसा तत्प्रयोगान्महासुखम् ॥ ८ ॥ एतत्षड्वर्गहरणं रिपुनिग्रहणं परम् ॥ अध्यात्ममूलमेतद्धि परमं सौख्यकारणम् ॥ ९ ॥ तत्र तिष्ठन्ति नियतं क्षमासत्यादयो

तर्पण, गोदान, वेदपाठ, सत्कार व सत्यवचन ॥ ५॥ व गऊ की भक्ति और दानकी भक्ति व सदैव धर्म का साधन व नियम भी विशेषकर श्रीकृष्णजी के सोनेपर बड़ा फलवान् होता है ॥ ६ ॥ नारदजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! नियम कैसा होताहै और नियम से क्या फल होता है व जिसप्रकार नियम से विष्णुजी प्रसन्न होते हैं उसको कहिये ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी बोले कि अनेक प्रकार के कर्मों में विद्यावान् मनुष्य को नेत्रादिकों का नियम करना चाहिये क्योंकि उसके प्रयोग से बड़ा सुख होता है ॥ ८ ॥ और यह षड्वर्ग का हरण व शत्रुवों का उत्तम निग्रहकारक है व यह अध्यात्म का मूल व उत्तम सुख का कारण है ॥ ९ ॥ और विवेकरूपी

क्षमा व सत्यादिक सब गुण उसमें निश्चय कर स्थित होते हैं और वह विष्णुजीका परमपद है ॥ १० ॥ और जिसने इस पदको जाना है उसके पूर्वजों की वह कृतकृत्यता होती है व यज्ञ का कर्मकृत होता है ॥ ११ ॥ और निरंजन के सेवन से उसको मुहूर्त भर ध्यान कर सौ जन्मों में उपजा व किया हुआ पाप सब भस्म होजाता है ॥ १२ ॥ और प्रतिदिन इसकी क्षुधा व प्यासादिक श्रम कम होजाताहै और वह योगी व नित्यनियमी मनुष्य विष्णुजी के सोनेपर विशेषकर होता है ॥ १३ ॥ यदि चातुर्मास्य में मनुष्य भक्तिसे योगाभ्यास में परायण न होवै तो उसके हाथसे अमृत गिरगया इसमें सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥ जिसने सब इच्छाओं में सदैव

गुणाः ॥ विवेकरूपिणः सर्वे तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ १० ॥ कृतं भवति यज्ञीयं कृतकृत्यत्वमत्र तत् ॥ स्यात्तस्य तत्पूर्वजानां येन ज्ञातमिदं पदम् ॥ ११ ॥ तन्मुहूर्त्तमपि ध्यात्वा पापं जन्मशतोद्भवम् ॥ भस्मसाद्याति विहितं निरञ्जननिषेवणात् ॥ १२ ॥ प्रत्यहं संकुचद्यस्य क्षुत्पिपासादिकःश्रमः ॥ स योगी नियमी नित्यं हरौ सुप्ते विशिष्यते ॥ १३ ॥ चातुर्मास्ये नरो भक्त्या योगाभ्यासरतो न चेत् ॥ तस्य हस्तात्परिभ्रष्टममृतं नात्र संशयः ॥ १४ ॥ मनोनियमितं येन सर्वेच्छासु सदागतम् ॥ तस्य ज्ञाने च मोक्षे च कारणं मन एव हि ॥ १५ ॥ मनोनियमने यत्नः कार्यः प्रज्ञावता सदा ॥ मनसा सुगृहीतेन ज्ञानाप्तिरखिला ध्रुवम् ॥ १६ ॥ तन्मनः क्षमया ग्राह्यं यथा वह्निश्च वारिणा ॥ एकया क्षमया सर्वो नियमः कथितो बुधैः ॥ १७ ॥ सत्यमेकं परो धर्मः सत्यमेकं परं तपः ॥ सत्यमेकं परं ज्ञानं सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः ॥ १८ ॥ धर्ममूलमहिंसा च मनसा तां च चिन्तयन् ॥ कर्मणा च तथा वाचा तत एतां समाचरेत् ॥ १९ ॥ परस्व

प्राप्त मनको रोंकलिया उसके ज्ञान व मोक्ष में मन ही कारण है ॥ १५ ॥ सदैव बुद्धिमान् मनुष्य को नियम में यत्न करना चाहिये और मनके रोंकने से निश्चय कर ज्ञान की सब प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥ इस कारण क्षमा से मनको ग्रहण करनाचाहिये जैसे कि जलसे अग्नि शात की जाती है विद्वानो ने एक क्षमा से सब नियम को कहा है ॥ १७ ॥ एक सत्य परमधर्म है और एक सत्यही परमतप है व एक सत्य परमज्ञान है और सत्य में धर्म स्थित है ॥ १८ ॥ अहिंसा धर्म का मूल है इस कारण उस अहिंसा को मन, वचन व कर्म से विचारता हुआ मनुष्य इस अहिंसा को करै ॥ १९ ॥ और सब मनुष्यो को सदैव पराये धनका हरना व चोरी

वर्जित है व चातुर्मास्य में विशेषकर ब्राह्मण व देवता का धन वर्जित करना चाहिये ॥ २० ॥ और विद्वानों को सदैव अकार्य कर्म वर्जित करना चाहिये व हे विप्र ! जो सदैव सब कार्यों में अभिलाषरहित वर्तमान होता है ॥ २१ ॥ वह महाप्राज्ञ योगी प्रज्ञाचक्षु होता है व अहंकारिणी बुद्धि नहीं होती है मनुष्यों के शरीर मे यह अहंकाररूपी विष वर्तमान है ॥ २२ ॥ इस कारण वह सदैव व विष्णुदेवजीके सोने पर विशेषकर त्यागने योग्य है और अनीहासे मनुष्य क्रोध को जीतनेवाला व लोभ को जीतनेवाला होता है ॥ २३ ॥ और उसके शरीर से हज़ारों पाप हज़ार खण्ड होजाते हैं और शान्तिरूपी शत्रुसे मोह व मान को जीतकर ॥ २४ ॥ विचार

हरणं चौर्य सर्वदा सर्वमानुषैः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण ब्रह्मदेवस्ववर्जनम् ॥ २० ॥ अकृत्यकरणं चैव वर्जनीयं सदा बुधैः ॥ अनीहः सर्वकार्येषु यः सदा विप्रवर्तते ॥ २१ ॥ स च योगी महाप्राज्ञः प्रज्ञाचक्षुरहं न धीः ॥ अहंकारो विषमिदं शरीरे वर्तते नृणाम् ॥ २२ ॥ तस्मात्स सर्वदा त्याज्यः सुप्ते देवे विशेषतः ॥ अनीहया जितक्रोधो जितलोभो भवेन्नरः ॥ २३ ॥ तस्य पापसहस्राणि देहाद्यान्ति सहस्रधा ॥ मोहं मानं पराजित्य शमरूपेण शत्रुणा ॥ २४ ॥ विचारेण शमो ग्राह्यः सन्तोषेण तथाहि सः ॥ मात्सर्यमृजुभावेन नियच्छेत्स मुनीश्वरः ॥ २५ ॥ चातुर्मास्ये दयाधर्मो न धर्मो भूतविद्रुहम् ॥ सर्वदा सर्वमासेषु भूतद्रोहं विवर्जयेत् ॥ २६ ॥ एतत्पापसहस्राणां मूलं प्राहुर्मनीषिणः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्या भूतदया नृभिः ॥ २७ ॥ सर्वेषामेव भूतानां हरिर्नित्यं हृदि स्थितः ॥ स एव हि पराभूतो यो भूतद्रोहकारकः ॥ २८ ॥ यस्मिन् धर्मे दया नैव स धर्मो दूषितो मतः ॥ दयां विना न विज्ञानं न धर्मो ज्ञानमेव

से शान्ति को ग्रहण करना चाहिये व संतोष से उसको ग्रहण करना चाहिये और वह मुनीश्वर ऋजुता से मात्सर्य को निग्रह करै ॥ २५ ॥ और चातुर्मास्य में दया धर्म है प्राणियों से वैर करना धर्म नहीं है और सदैव सब मासों में भूतद्रोह को वर्जित करै ॥ २६ ॥ क्योंकि विद्वानों ने इसको हज़ारों पातकों का मूल कहा है इसकारण मनुष्यों को सदैव प्राणियों के ऊपर दया करना चाहिये ॥२७ ॥ और सबही प्राणियों के हृदय में विष्णुजी सदैव स्थित रहते हैं व जो भूतद्रोह करनेवाला होता है वही तिरस्कृत होता है ॥ २८ ॥ और जिस धर्म में दया नहीं है वह धर्म दूषित मानागया है क्योंकि दया के विना न विज्ञान होता है और न धर्म

न ज्ञान होता है ॥ २९ ॥ इस कारण सब प्रकार से दया सनातन धर्म है और चातुर्मास्य में विशेषकर नित्य वह सेवने योग्य है ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्म-नारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्ये नियमविधिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अन्नादिक चौमास में दिये जौन फल होत । सो तिसरे अध्यायमें वर्णित चरित उदोत ॥ ब्रह्माजी बोले कि सदैव सब कार्यों में विद्वान् लोग दान धर्म की प्रशंसा करते हैं और विष्णुजी के सोने पर दान ब्रह्मत्व का कारण है ॥ १ ॥ अन्न ब्रह्म ऐसा कहा गया है व अन्न में प्राण प्रतिष्ठित हैं उस कारण मनुष्य सदैव

च ॥ २९ ॥ तस्मात्सर्वात्मभावेन दयाधर्मः सनातनः ॥ सेव्यः स पुरुषैर्नित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ३० ॥ इति श्री स्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये नियमविधिमाहात्म्यं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥. ❀ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ दानधर्मं प्रशंसन्ति सर्वधर्मेषु सर्वदा ॥ हरौ सुप्ते विशेषेण दानं ब्रह्मत्वकारणम् ॥ १ ॥ अन्नं ब्रह्म इति प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥ तस्मादन्नप्रदो नित्यं वारिदश्च भवेन्नरः ॥ २ ॥ वारिदस्तृप्तिमायाति सुखमक्षय्यमन्नदः ॥ वार्यन्नयोः समं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ ३ ॥ मणिरत्नप्रवालानां रूप्यहाटकवाससाम् ॥ अन्येषामपि दानानामन्नदानं विशिष्यते ॥ ४ ॥ अन्नोदकप्रदानं च गोप्रदानं च नित्यदा ॥ वेदपाठो वह्निहोमश्चातुर्मास्ये महाफलम् ॥ ५ ॥ वैकुण्ठपदवाञ्छा चेद्विष्णुना सह संगमे ॥ सर्वपापक्षयार्थाय चातुर्मास्येऽन्नदो भवेत् ॥ ६ ॥ सत्यं सत्यं हि देवर्षे मयोक्तं तव नारद ॥ जन्मान्तरसहस्रेषु नादत्तमुपतिष्ठते ॥ ७ ॥ तस्मादन्नप्रदानेन सर्वे हृष्यन्ति जन्तवः ॥ देवा वै स्पृहय

अन्नदायक व जलदायक होवै ॥ २ ॥ और जलदायक तृप्तिको प्राप्त होता है व अन्नदायक अक्षय सुख को प्राप्त होताहै और जल व अन्न के समान दान न हुआ है न होवैगा ॥ ३ ॥ मणि, रत्न, मूंगा, चांदी, सुवर्ण व वस्त्र और अन्य भी दानों के मध्य में अन्नदान विशेष है ॥ ४ ॥ सदैव अन्न व जल का दान और गोदान, वेदपाठ व अग्नि में हवन चातुर्मास्य में बड़ा फलदायक है ॥ ५ ॥ यदि विष्णुजी के साथ समागम में वैकुंठ स्थान की इच्छा होवै तो सब पापों के नाश के लिये चातुर्मास्य में अन्नदायक होवै ॥ ६ ॥ हे देवर्षे, नारद ! मैंने तुमसे सत्य सत्य कहा है कि हजार जन्मोंके मध्यमें भी बिन दिया हुआ नहीं प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

इस कारण अन्न के दान से सब प्राणी प्रसन्न होते हैं और देवता भी इस अन्नदायी मनुष्य की इच्छा करते हैं ॥ ८ ॥ और वज्र से मिश्रित घी को श्रद्धा से पात्रों में देना चाहिये और चातुर्मास्य में वज्र दान करनेवाला मनुष्य मनुष्य नहीं है ॥ ९ ॥ और चातुर्मास्य में गुरुवों व ब्राह्मणों का भोजन, घृतदान व सत्कार ये जिस मनुष्यके स्थित होते हैं वह मनुष्य नहीं है ॥ १० ॥ और सद्धर्म, सत्कथा, सत्सेवा व सज्जनोंका दर्शन और विष्णुपूजन व दान में स्नेह चातुर्मास्य में दुर्लभ है ॥ ११ ॥ और जो मनुष्य पितरों को उद्देश कर चातुर्मास्य में अन्नदायक होताहै सब पापों से शुद्ध चित्तवाला वह मनुष्य पितरोंके लोकको प्राप्त होता है ॥१२॥

न्त्येनमन्नदानप्रदायिनम् ॥ ८ ॥ आज्यं देयं च पात्रेषु श्रद्धया वज्रमिश्रितम् ॥ वज्रदानकरो मर्त्यश्चातुर्मास्ये न मानवः ॥ ९ ॥ भोजने गुरुविप्राणां घृतदानं च सत्क्रिया ॥ एतानि यस्य तिष्ठन्ति चातुर्मास्येन मानवः ॥ १० ॥ सद्धर्मः सत्कथा चैव सत्सेवा दर्शनं सताम् ॥ विष्णुपूजारतिर्दाने चातुर्मास्येषु दुर्लभा ॥ ११ ॥ पितॄनुद्दिश्य यो मर्त्यश्चातुर्मास्येऽन्नदो भवेत् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा पितृलोकमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ देवाः सर्वेऽन्नदानेन तृप्ता यच्छन्ति वाञ्छितम् ॥ पिपीलिकाऽपि तद्गेहाद्भक्ष्यमादाय गच्छति ॥ १३ ॥ रात्रौ दिवा निषिद्धान्नो अन्नदानमनुत्तमम् ॥ हरौ सुप्ते हि पापघ्नं न वार्यमपि शत्रुषु ॥ १४ ॥ चातुर्मास्ये दुग्धदानं दधितक्रं महाफलम् ॥ जन्मकाले येन बद्धः पिण्डस्तद्दानमुत्तमम् ॥ १५ ॥ शाकप्रदाता नरकं यमलोकं न पश्यति ॥ वस्त्रदः सोमलोकं च वसेदाभूतसंप्लवम् ॥ १६ ॥ सुप्ते देवे यथाशक्ति ह्यन्यासु प्रतिमासु च ॥ पुष्पवस्त्रप्रदानेन सन्तानं नैव हीयते ॥ १७ ॥ चन्दनागुरु

और अन्नदान से तृप्त सब देवता मनोरथ को देतेहैं और पिपीलिका भी उसके घरसे भोजनको लेकर जातीहै ॥ १३ ॥ और रात्रि व दिनमें अतिउत्तम अन्न दान निषिद्ध नहीं है और विष्णुजीके सोनेपर पापनाशक अन्नदान शत्रुवों में भी मना न करना चाहिये ॥ १४ ॥ और चातुर्मास्य में दुग्धदान, दही, मठा बड़ा फलवान् होता है और जन्म समयमें जिसने पिंड को बाँधाहै वह उत्तम दान होताहै ॥ १५ ॥ और शाक को देनेवाला मनुष्य नरक व यमलोक को नहीं देखताहै व वस्त्रको देनेवाला मनुष्य प्रलय पर्यन्त चन्द्रलोकमें बसताहै ॥ १६ ॥ और विष्णुदेवजीके सोनेपर यथाशक्ति अन्य प्रतिमाओंमें भी पुष्प व वस्त्रके दानसे सन्तानहीन नहीं होताहै ॥ १७ ॥

व चातुर्मास्य में जो मनुष्य चन्दन, अगुरु व धूप को देता है पुत्रों व पौत्रों से संयुत वह मनुष्य विष्णुरूप होता है ॥ १८ ॥ व जगदीश देवजी के सोने पर जो मनुष्य वेदों के जाननेवाले ब्राह्मणके लिये फलदान को देता है वह यमलोकको नहीं देखता है ॥ १९ ॥ व विष्णुजीकी प्रीतिके लिये जो इस संसारमें विद्यादान, गोदान व भूमिदान देता है वह पूर्वज पितरों को तारताहै ॥ २० ॥ और जिस देवता को उद्देश कर गुड़, नमक, तैलादिक, सहद, तिक्तवस्तु व तिल और अन्न को देता है वह उनके लोकों को जाता है ॥ २१ ॥ और चातुर्मास्यमें तिलों को देकर फिर मनुष्य दूधको पीनेवाला नहीं होता है और यवों को देनेवाला मनुष्य इन्द्र

धूपं च चातुर्मास्ये प्रयच्छति ॥ पुत्रपौत्रसमायुक्तो विष्णुरूपो भवेन्नरः ॥ १८ ॥ सुप्ते देवे जगन्नाथे फलदानं प्रयच्छति ॥ विप्राय वेदविदुषे यमलोकं न पश्यति ॥ १९ ॥ विद्यादानं च गोदानं भूमिदानं प्रयच्छति ॥ विष्णुप्रीत्यर्थमेवेह स तारयति पूर्वजान् ॥ २० ॥ गुडसैन्धवतैलादिमधुतिक्ततिलान्नदः ॥ देवतायास्समुद्दिश्य तासां लोकं प्रयाति हि ॥ २१ ॥ चातुर्मास्ये तिलान् दत्त्वा न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ यवप्रदाता वसते वासवं लोकमक्षयम् ॥ २२ ॥ हूयेत हव्यं वह्नौ च दानं दद्याद्द्विजातये ॥ गावः सुपूजिताः कार्याश्चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ २३ ॥ यत्किञ्चित् सुकृतं कर्म जन्मावधि सुसञ्चितम् ॥ चातुर्मास्ये गते पात्रे विषुवे यत्प्रदीयते ॥ २४ ॥ प्रणश्यति क्षणादेव वचनाद्यस्तु प्रच्युतः ॥ दिवसे दिवसे तस्य वर्द्धते च प्रतिश्रुतम् ॥ २५ ॥ तस्मान्नैव प्रतिश्राव्यं स्वल्पमप्याशु दीयते ॥ तावद्विवर्द्धते दानं यावत्तन्न प्रयच्छति ॥ २६ ॥ यो मोहान्मनुजो लोके यावत्कोटिगुणं भवेत् ॥ ततो दशगुणा वृद्धिश्चातुर्मास्ये

के अक्षय लोक में बसता है ॥ २२ ॥ और विशेष कर चातुर्मास्य में मनुष्य हव्य को अग्नि में हवन करै और ब्राह्मण के लिये दान देवै व गौवों को सुपूजित करना चाहिये ॥ २३ ॥ और जो कुछ पुण्य कर्म जन्मसे लगाकर इकट्ठा किया जाताहै वह चातुर्मास्यरूपी पात्र बीतने पर जो विषुव समय में दिया जाताहै ॥ २४ ॥ वह क्षणही भरमें नाश होजाता है और जो वचनसे भ्रष्ट होजाताहै उसका प्रतिश्रुत (दिया हुआ दान) प्रतिदिन बढ़ता है ॥ २५ ॥ इस कारण देने की प्रतिज्ञा न करना चाहिये बरन शीघ्रही थोड़ा दिया जाता है क्योंकि तबतक दान बढ़ता है जब तक कि उसको जो मनुष्य संसार में मोहसे नहीं देता है और जितना कोटिगुना

होता है उससे दशगुनी वृद्धि चातुर्मास्य में देनेवाले पुरुष में होती है ॥ २६ । २७ ॥ और उसका तब तक नरक में पात होता है जब तक कि चौदह इन्द्र रहते हैं इस कारण मनुष्यों को जो प्रतिज्ञा करना चाहिये वह सदैव देना चाहिये ॥ २८ ॥ और अन्य पुरुष के लिये न देना चाहिये व दी हुई वस्तु को न हरै व जो मनुष्य चातुर्मास्य में श्रेष्ठ ब्राह्मण के लिये वेदोक्त विधिसे शय्या को देता है वह यमस्थान को नहीं जाता है और आसन, जलपात्र, भोजन व ताम्रपात्र को ॥ २९।३० ॥ चातुर्मास्य में द्रव्य के अनुसार देना चाहिये और जगद्गुरु विष्णुजी के सोनेपर जो ब्राह्मणों के लिये सब दानों को देता है ॥ ३१ ॥ वह पूर्वजों समेत अपना को

प्रदातरि ॥ २७ ॥ नरके पतनं तस्य यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ अतस्तु सर्वदा देयं नरैर्यत्तु प्रतिश्रुतम् ॥ २८ ॥ अन्यस्मै न प्रदातव्यं प्रदत्तं नैव हारयेत् ॥ चातुर्मास्येषु यः शय्यां द्विजाग्र्याय प्रयच्छति ॥ २९ ॥ वेदोक्तेन विधानेन न स याति यमालयम् ॥ आसनं वारिपात्रं च भोजनं ताम्रभाजनम् ॥ ३० ॥ चातुर्मास्ये प्रयत्नेन देयं वित्तानुसारतः ॥ सर्वदानानि विप्रेभ्यो ददेत्सुप्ते जगद्गुरौ ॥ ३१ ॥ आत्मानं पूर्वजैः सार्द्धं स मोचयति पातकात् ॥ गौर्भूश्च तिलपात्रं च दीपदानमनुत्तमम् ॥ ३२ ॥ ददेद्द्विजातये मुक्तो जायते स ऋणत्रयात् ॥ ३३ ॥ स विश्वकर्ता भुवनेषु गोप्ता स यज्ञभुक् सर्वफलप्रदश्च ॥ दानानि वस्तुष्वधिदैवतं च यस्मिन्समुद्दिश्य ददाति मुक्तः ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये दानमहिमावर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥

पाप से छुड़ाता है और गऊ, पृथ्वी व तिलपात्र और अतिउत्तम दीपदान को ॥ ३२ ॥ जो ब्राह्मण के लिये देता है वह तीनों ऋणों से छूट जाता है ॥ ३३ ॥ और वह संसार को रचनेवाला तथा लोकों में रक्षक और यज्ञ भोक्ता व सब फल को देनेवाला और मुक्त होता है जो कि वस्तुवों में अधिदेवता को उद्देश कर जिसमें दानों को देता है ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां दानमहिमावर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । इष्ट वस्तु के त्याग से मिलत जौन फल भूरि । सो चौथे अध्याय में कह्यो चरित सुखभूरि ॥ ब्रह्माजी बोले कि विष्णुजी प्रिय वस्तु के दायक हैं व मनुष्य सदैव प्रिय वस्तु की इच्छा करता है इस कारण चातुर्मास्य में मनुष्य नारायण की प्रीति के लिये उसको त्याग करै तो वह अक्षयता को प्राप्त होता है और जो श्रद्धावान् मनुष्य जिसको त्यागता है वह अनन्त फल का भागी होता है ॥ १ । २ ॥ कासे के पात्र को छोड़ने से मनुष्य पृथ्वी में राजा होता है और ढाख के पत्ते में भोजन करनेवाला मनुष्य ब्रह्मता को प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ और गृहस्थ मनुष्य तॉबे के पात्र में कभी न भोजन करै व चातुर्मास्य में विशेष कर

ब्रह्मोवाच ॥ इष्टवस्तुप्रदो विष्णुर्लोकश्चेष्टरुचिः सदा ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चातुर्मास्ये त्यजेच्च तत् ॥ १ ॥ नारायणस्य प्रीत्यर्थं तदेवाक्षय्यमाप्यते ॥ मर्त्यस्त्यजति श्रद्धावान् सोऽनन्तफलभाग्भवेत् ॥ २ ॥ कांस्यभोजनसंत्यागाज्जायते भूपतिर्भुवि ॥ पालाशपत्रे भुञ्जानो ब्रह्मभूयस्त्वमश्नुते ॥ ३ ॥ ताम्रपात्रेन भुञ्जीत कदाचिद्वा गृही नरः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण ताम्रपात्रं विवर्जयेत् ॥ ४ ॥ अर्कपत्रेषु भुञ्जानोऽनुपमं लभते फलम् ॥ वटपत्रेषु भोक्तव्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ५ ॥ अश्वत्थपत्रसंभोगः कार्यो बुधजनैः सदा ॥ एकान्नभोजी राजा स्यात्सकले भूमिमण्डले ॥ ६ ॥ तथा च लवणत्यागात्सुभगो जायते नरः ॥ गोधूमान्नपरित्यागाज्जायते जनवल्लभः ॥ ७ ॥ अशाकभोजी दीर्घायुश्चातुर्मास्येऽभिजायते ॥ रसत्यागान्महाप्राणी मधुत्यागात्सुलोचनः ॥ ८ ॥ मुद्गत्यागाद्रिपुभृती राजमाषा-

तॉंबे के पात्र को वर्जित करै ॥ ४ ॥ व मदार के पत्तों में भोजन करनेवाला मनुष्य अनूपम फल को पाता है व चातुर्मास्य में विशेष कर बरगद के पत्तो में भोजन करना चाहिये ॥ ५ ॥ और विद्वान् लोगों को सदैव पीपल के पत्ते में भोजन करना चाहिये और एक अन्न को भोजन करनेवाला मनुष्य सब पृथ्वीमण्डल में राजा होता है ॥ ६ ॥ वैसेही नमक के छोडने से मनुष्य सुन्दर ऐश्वर्यवान् होता है और गोधूमान्न के त्याग से मनुष्यों को प्रिय होता है ॥ ७ ॥ व चातुर्मास्य में शाक को न भोजन करनेवाला मनुष्य दीर्घायु होता है व रसों के त्याग से बड़ा बलवान् और सहद के त्याग से सुलोचन होता है ॥ ८ ॥ और मूग को

त्यागने से शत्रु की मृत्यु व लोबिया को छोड़ने से धनाढ्यता होती है व चातुर्मास्यमें चावल के छोड़ने से घोड़े की प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥ व फलों को छोडने से बहुत पुत्रवान् और तैल को त्यागने से स्वरूपता होती है और जल को छोड़ने से ज्ञानी होता है व सदैव बल, वीर्य होता है ॥ १० ॥ और मृग का मास छोड़ने से मनुष्य नरक को नहीं देखता है व शूकर का मास छोड़ने से ब्रह्मवास मिलता है ॥ ११ ॥ व लवा (बटेर) के छोड़ने से ज्ञान मिलता है और घी के त्यागने से बड़ा सुख होता है व मदिरा को छोड़कर उस मनुष्य को मुक्ति दुर्लभ नहीं होती है ॥ १२ ॥ व सुवर्ण को त्यागने से बलसंयुत और चादी को छोडने

द्धनाढ्यता ॥ अश्वाप्तिस्तण्डुलत्यागाच्चातुर्मास्येऽभिजायते ॥ ६ ॥ फलत्यागाद्बहुसुतस्तैलत्यागात्सुरूपता ॥ ज्ञानी तु वारिसंत्यागाद्बलं वीर्यं सदैव हि ॥ १० ॥ मार्गमांसपरित्यागान्नरकं न च पश्यति ॥ शौकरस्य परित्यागाद्ब्रह्मवासमवाप्यते ॥ ११ ॥ ज्ञानं लावकसंत्यागादाज्यत्यागे महत्सुखम् ॥ आसवं संपरित्यज्य मुक्तिस्तस्य न दुर्लभा ॥ १२ ॥ सबलः कनकत्यागाद्रूप्यत्यागेन मानुषः ॥ दधिदुग्धपरित्यागी गोलोके सुखभाग्भवेत् ॥ १३ ॥ ब्रह्मा पायससंत्यागात्क्षीरत्यागान्महेश्वरः ॥ कन्दर्पोपूपसंत्यागान्मोदकत्याजकः सुखी ॥ १४ ॥ गृहाश्रमपरित्यागी बाह्याश्रमनिषेवकः ॥ चातुर्मास्ये हरिप्रीत्यै न मातुर्जठरे शिशुः ॥ १५ ॥ नृपो मरीचसंत्यागाच्छुण्ठीत्यागेन सत्कविः ॥ शर्करायाः परित्यागाज्जायते राजपूजितः ॥ १६ ॥ गुडत्यागान्महाभूतिस्तथा दाडिमवर्जनात् ॥ रक्तवस्त्रप

से मनुष्य बलवान् होता है व दही, दूध को छोडनेवाला मनुष्य गोलोक में सुखभागी होता है ॥ १३ ॥ और खीर को छोड़ने से ब्रह्मा तथा दूध को त्यागने से शिव होता है और पुवा को छोडने से कामदेव व लड्डुवों को छोड़नेवाला मनुष्य सुखी होता है ॥ १४ ॥ व चातुर्मास्य में विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये गृहाश्रम को छोड़नेवाला तथा बाह्याश्रम को त्यागनेवाला मनुष्य माता के पेट में बालक नहीं होता है ॥ १५ ॥ और मिर्च को छोडने से राजा व सोंठि के त्यागने से उत्तम कवि होता है व शक्कर को छोडने से मनुष्य राजपूजित होता है ॥ १६ ॥ व गुड को त्यागने से और अनार को छोड़ने से बड़ा ऐश्वर्य होता है व लाल

वस्त्र को छोड़ने से मनुष्यों को प्रिय होता है ॥ १७ ॥ और रेशमी वस्त्रों को छोड़ने से अक्षय स्वर्ग मिलता है व उड़द और चना के छोड़ने से फिर जन्म नहीं होता है ॥ १८ ॥ और काला कपड़ा सदैव त्यागने योग्य है व चातुर्मास्य में विशेष कर त्यागने योग्य है और नील वस्त्र को देखने से सूर्यनारायण के दर्शन से शुद्धि होती है ॥ १९ ॥ व चंदन को छोड़ने से मनुष्य गंधर्वों के लोक को भोगता है व कपूर को छोड़ने से मनुष्य जीवनपर्यन्त बड़ा धनी होता है ॥ २० ॥ व कुसुम के छोड़ने से मनुष्य यमराज के स्थान को नहीं देखता है व केसर के छोड़ने से मनुष्य राजप्रिय होता है ॥ २१ ॥ व यक्षकर्दम को छोड़ने से मनुष्य ब्रह्मलोक

रित्यागाज्जायते जनवल्लभः ॥ १७ ॥ पट्टकूलपरित्यागादक्षय्यं स्वर्गमाप्यते ॥ माषान्नचणकान्नस्य त्यागान्नैव पुनर्भवः ॥ १८ ॥ कृष्णवस्त्रं सदा त्याज्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ सूर्यसंदर्शनाच्छुद्धिर्नीलवस्त्रस्य दर्शनात् ॥ १९ ॥ चन्दनस्य परित्यागाद्गान्धर्वं लोकमश्नुते ॥ कर्पूरस्य परित्यागाद्यावज्जीवं महाधनी ॥ २० ॥ कुसुम्भस्य परित्यागान्नैव पश्येद्यमालयम् ॥ केशरस्य परित्यागान्मनुष्यो राजवल्लभः ॥ २१ ॥ यक्षकर्दमसंत्यागाद्ब्रह्मलोके महीयते ॥ ज्ञानी पुष्पपरित्यागाच्छय्यात्यागे महत्सुखम् ॥ २२ ॥ भार्यावियोगं नाप्नोति चातुर्मास्ये न संशयः ॥ अलीकवादसंत्यागान्मोक्षद्वारमपावृतम् ॥ २३ ॥ परमर्मप्रकाशश्च सद्यः पापसमागमः ॥ चातुर्मास्ये हरौ सुप्ते परनिन्दां विवर्जयेत् ॥ २४ ॥ परनिन्दा महापापं परनिन्दा महाभयम् ॥ परनिन्दा महद्दुःखं न तस्याः पातकं परम् ॥ २५ ॥ केवलं निन्दने चैव

में पूजा जाता है व पुष्पों को छोड़ने से ज्ञानी होता है और शय्या को छोडने से बड़ा सुख होता है ॥ २२ ॥ और चातुर्मास्य में शय्या को छोड़ने से मनुष्य स्त्री के वियोग को नहीं प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है और झूंठ वचन को छोड़ने से मोक्षद्वार खुला होता है ॥ २३ ॥ और पराये मर्म का प्रकाश करना शीघ्रही पाप का समागम है इस लिये विष्णुजी के सोने पर चातुर्मास्य में पराई निन्दा वर्जित करै ॥ २४ ॥ क्योंकि पराई निन्दा बड़ा भारी पाप है व पराई निन्दा बड़ा भय है और पराई निन्दा बहुत दुःख है व उससे अधिक पातक नहीं है ॥ २५ ॥ और निन्दा में मनुष्य केवल उस बडे भारी पाप को पाता है व जैसा

है ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामिष्टवस्तुपरित्यागमहिमावर्णनंनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
वर्णोंसे व योगियों से ध्यान करने योग्यहैं क्योंकि विष्णुजी के नामसे मनुष्य घोर बन्धनसे छूट जाताहै और ये विष्णुजी चातुर्मास्यमें विशेष कर स्मरण किये जाते
नख व रोमों को धारनेवाला होताहै ॥ २७ ॥ उसको प्रतिदिन गंगाजीके स्नान का फल होताहै ॥ २८ ॥ सब उपायोंसे विष्णुही प्रसन्न कराने योग्य हैं और श्रेष्ठ सब
सुननेवाला पापी होता है वैसा अन्य नहीं होताहै ॥ २६ ॥ और केशोंका संस्कार छोड़नेसे मनुष्य तीनों तापोंसे रहित होताहै व विशेषकर विष्णुजी के सोनेपर जो

तत्पापं लभते गुरु ॥ यथा शृण्वान एव स्यात्पातकी न ततः परः ॥ २६ ॥ केशसंस्कारसंत्यागात्तापत्रयविवर्जितः ॥
नखरोमधरो यस्तु हरौ सुप्ते विशेषतः ॥ २७ ॥ दिवसे दिवसे तस्य गङ्गास्नानफलं भवेत् ॥ २८ ॥ सर्वोपायैर्विष्णुरेव
प्रसाद्यो योगिध्येयः प्रवरैः सर्ववर्णैः ॥ विष्णोर्नाम्ना मुच्यते घोरबन्धाच्चातुर्मास्ये स्मर्यतेसौ विशेषात् ॥ २६ ॥ इति
श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये इष्टवस्तुपरित्यागमहिमावर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

नारद उवाच ॥ कदा विधिनिषेधौ च कर्त्तव्यौ विष्णुसंनिधौ ॥ युष्मद्वाक्यामृतं पीत्वा तृप्तिर्मम न विद्यते ॥ १ ॥
ब्रह्मोवाच ॥ कर्कसंक्रान्तिदिवसे विष्णुं सम्पूज्य भक्तितः ॥ फलैरर्घः प्रदातव्यः शस्तजम्बूफलैः शुभैः ॥ २ ॥ जम्बूद्वी
पस्य संज्ञेयं फलेन च विजायते ॥ मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्र श्रद्धाधर्मसुसंयुतैः ॥ ३ ॥ षण्मासाभ्यन्तरे मृत्युर्यत्र क्वापि भ
वेन्मम ॥ तन्मया वासुदेवाय स्वयमात्मा निवेदितः ॥ ४ ॥ इति मन्त्रेणार्घ्यम् ॥ ततो विधिनिषेधौ च ग्राह्यौ भक्त्या

दो॰ विधिनिषेध के किये जिमि मिलत अहै फल जौन । यहि पंचम अध्याय में कह्यो चरित सब तौन ॥ नारदजी बोले कि विष्णुजी के समीप कब विधि व
निषेध करना चाहिये तुम्हारे वचनरूपी अमृत को पीकर मुझको तृप्ति नहीं होती है ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले कि कर्क की संक्रान्तिके दिन विष्णुजी को भक्ति से पूजकर
प्रशस्त व उत्तम जम्बूफलों से अर्घ देना चाहिये ॥ २ ॥ हे द्विजेन्द्र ! जम्बूद्वीप की यह संज्ञा फल से होती है इस मंत्र से श्रद्धा व धर्म से संयुत मनुष्यों को अर्घ
देना चाहिये ॥ ३ ॥ कि छः महीने के बीचमें जहा कहीं भी मेरी मृत्यु होवै तो मैंने आपही आत्मा को वासुदेवजी के लिये निवेदन किया ॥ ४ ॥ इस मन्त्र से अर्घ्य को

देवै ॥ तदनन्तर विष्णुजी के आगे भक्ति से विधि व निषेध को ग्रहण करना चाहिये सब लोकों को बड़े सुखवाले चातुर्मास्य के आने पर ॥ ५ ॥ वेदविधि को करना चाहिये और निषेध नियम माना गया है और विधि व निषेध ये दोनों विष्णुही हैं ॥ ६ ॥ इस कारण सब यत्न से जनार्दनजी सेवने योग्यहैं और विष्णुजीकी कथा व विष्णुजी की पूजा व ध्यान और विष्णुजी को प्रणाम करना ॥ ७ ॥ सबही को जो विष्णुजी की प्रीति के लिये करता है वह मुक्तिभागी होताहै और वर्ण व आ-श्रम की मूर्ति सत्यरूपी सनातन विष्णुजी हैं ॥ ८ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर जन्म के कष्टादि को नाशनेवाले हैं व्रत से विष्णुजी ग्रहण करने योग्य हैं व

हरेः पुरः ॥ चातुर्मास्ये समायाते सर्वलोकमहासुखे ॥ ५ ॥ विधिर्वेदविधिः कार्यो निषेधो नियमो मतः ॥ विधिश्चैव निषेधश्च द्वावेतौ विष्णुरेव हि ॥ ६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सेव्य एव जनार्दनः ॥ विष्णोः कथा विष्णुपूजा ध्यानं विष्णोर्नतिस्तथा ॥ ७ ॥ सर्वमेव हरिप्रीत्या यः करोति स मुक्तिभाक् ॥ वर्णाश्रमविधेर्मूर्तिः सत्यो विष्णुः सनातनः ॥ ८ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण जन्मकष्टादिनाशनम् ॥ हरिरेव व्रताद्ग्राह्यो व्रतं देहेन कारयेत् ॥ ९ ॥ देहोऽयं तपसा शोध्यः सुप्ते देवे तपोनिधौ ॥ नारद उवाच ॥ किं व्रतं किं तपः प्रोक्तं ब्रह्मन्ब्रूहि सविस्तरम् ॥ सुप्ते देवे मया कार्यं कृतं यच्च महाफलम् ॥ १० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ व्रतं विष्णुव्रतं विद्धि विष्णुभक्तिसमन्वितम् ॥ तपश्च धर्मवर्त्तित्वं कृच्छ्रादिकमथापि वा ॥ ११ ॥ शृणु व्रतस्य माहात्म्यं वक्ष्यामि प्रथमं तव ॥ ब्रह्मचर्यव्रतं सारं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मचर्यं तपःसारं ब्रह्मचर्यं

व्रत को देह से करै ॥ ९ ॥ और तपोनिधि विष्णुदेवजी के सोने पर यह शरीर तपस्यासे शोधने योग्य है नारदजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! क्या व्रत और क्या तप कहा गया है इसको विस्तारसमेत कहिये क्योंकि विष्णुदेवजी के सोनेपर मैं उसको करूंगा किया हुआ जो कि बडा फलवान् है ॥ १० ॥ ब्रह्माजी बोले कि विष्णुजीकी भक्ति से संयुत व्रत को विष्णुव्रत जानिये और धर्म में वर्तमान होना या कृच्छ्रादिक तप है ॥ ११ ॥ मैं तुम से जो पहले कहता हूं उस व्रत के माहात्म्य को सुनिये कि व्रतों के मध्य में उत्तम व सारांश व्रत ब्रह्मचर्यरूप व्रत है ॥ १२ ॥ और ब्रह्मचर्य तपस्या का सारांश है व ब्रह्मचर्य बड़ा फलवान् है इस लिये सब कर्मों

में ब्रह्मचर्यको बढ़ावै ॥ १३ ॥ क्योंकि ब्रह्मचर्य के प्रभावसे उग्र तप वर्तमान होताहै व ब्रह्मचर्य से अधिक उत्तम धर्म साधन नहींहै ॥ १४ ॥ व हे द्विज ! चातुर्मास्य में विष्णुदेवजी के सोने पर विशेष कर संसार में उसी इस महाव्रत को सदैव अधिक गुणवान् जानिये ॥ १५ ॥ और जो इस विष्णुजी के कर्म को करता है वह कर्मों से लिप्त नहीं होता है वर्ष भर में विद्वान् लोग तीनसौ साठ दिन कहते हैं ॥ १६ ॥ उसमें व्रत करनेवाले मनुष्यों मे विष्णुदेवजी पूजे जाते हैं हे देव ! मैं अमुक उत्तम कर्म को करूंगा यह निश्चय कर ॥ १७ ॥ जो विष्णुदेवजी के सोने पर अधिक गुणवाले कर्म को करता है उसको व्रत कहते हैं

महत्फलम् ॥ क्रियासु सकलास्वेव ब्रह्मचर्यं विवर्द्धयेत् ॥१३॥ ब्रह्मचर्यप्रभावेण तप उग्रं प्रवर्त्तते ॥ ब्रह्मचर्यात्परं नास्ति धर्मसाधनमुत्तमम् ॥ १४ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सुप्ते देवे गुणोत्तरम् ॥ महाव्रतमिदं लोके तन्निबोध सदा द्विज ॥ १५ ॥ नारायणमिदं कर्म यः करोति न लिप्यते ॥ शतत्रयं षष्टियुतं दिनमाहुश्च वत्सरे ॥ १६ ॥ तत्र नारायणो देवः पूज्यते व्रतकारिभिः ॥ सत्क्रियाममुकीं देव कारयिष्यामि निश्चयः ॥ १७ ॥ कुरुते तद्व्रतं प्राहुः सुप्ते देवे गुणोत्तरम् ॥ वह्निहोमो विप्रभक्तिः श्रद्धा धर्मे मतिः शुभा ॥ १८ ॥ सत्सङ्गो विष्णुपूजा च सत्यवादो दया हृदि ॥ आर्जवं मधुरा वाणी सच्चरित्रे सदा रतिः ॥ १६ ॥ वेदपाठस्तथास्तेयमहिंसा ह्रीः क्षमा दमः ॥ निर्लोभताऽक्रोधता च निर्मोहो यमता रतिः ॥ २० ॥ श्रुतिक्रियापरं ज्ञानं कृष्णार्पितमनोगतिः ॥ एतानि यस्य तिष्ठन्ति व्रतानि ब्रह्मवित्तम ॥ २१ ॥ जीवन्मुक्तो नरः प्रोक्तो नैव लिप्यति पातकैः ॥ व्रतं कृतं सकृदपि सदैव हि महाफलम् ॥ २२ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण

अग्नि में हवन व ब्राह्मण की भक्ति तथा धर्म में श्रद्धा व उत्तम बुद्धि ॥ १८ ॥ और सत्संग, विष्णुपूजन, सत्यवचन व हृदय में दया व कोमलता और मधुर वचन तथा उत्तम चरित्र में सदैव स्नेह ॥ १६ ॥ और वेदपाठ, अस्तेय, अहिंसा, लज्जा, क्षमा व दम, निर्लोभता, अक्रोधता, निर्मोह व यम में स्नेह ॥ २० ॥ व हे ब्रह्मवित्तम ! वेदकार्यों में उत्तम ज्ञान तथा श्रीकृष्णजी में मन की गति को लगाना ये नियम जिसके स्थित होते हैं ॥ २१ ॥ वह मनुष्य जीवन्मुक्त कहा गया है और वह पातकों से लिप्त नहीं होता है और एक बार किया हुआ भी व्रत सदैव महाफलवान् होता है ॥ २२ ॥ व चातुर्मास्य में ब्रह्मचर्यादि का सेवन

विशेष कर महाफलवान् है व सदैव जिन मनुष्यों का चातुर्मास्य बिन व्रत से व्यतीत हुआ है ॥ २३ ॥ उनका धर्म तत्त्व को जाननेवाले विद्वानों से वृथा कहागया है और व्रत का करना सबही वर्णों को बड़ा फलवान् है ॥ २४ ॥ व हे वत्स ! चातुर्मास्यमें थोड़ा भी किया हुआ व्रत सुखदायक है और व्रत की सेवामें परायण मनुष्यों को विष्णुजी सर्वत्र देखपड़ते हैं ॥ २५ ॥ चातुर्मास्य आने पर उसको बडे यत्न से पालन करै ॥ २६ ॥ और विष्णु व द्विज और अग्निमय तीर्थ को भजो व वेद-प्रभेदमय मूर्ति और अज व विराट्रूप को भजो कि जिनकी प्रसन्नता से मनुष्य मोक्षरूपी महावृक्ष के नीचे स्थित होता है और वह सूर्यनारायण से उपजे हुये ताप

ब्रह्मचर्यादिसेवनम् ॥ अव्रतेन गतं येषां चातुर्मास्यं सदा नृणाम् ॥ २३ ॥ धर्मस्तेषां वृथा सद्भिस्तत्त्वज्ञैः परिकीर्तितः ॥ सर्वेषामेव वर्णानां व्रतचर्यामहाफलम् ॥ २४ ॥ स्वल्पापि विहिता वत्स चातुर्मास्ये सुखप्रदा ॥ सर्वत्र दृश्यते विष्णुर्व्रतसेवापरैर्नृभिः ॥ २५ ॥ चातुर्मास्ये समायाते पालयेत्तत्प्रयत्नतः ॥ २६ ॥ भजस्व विष्णुं द्विजवह्नितीर्थं वेदप्रभेदमयमूर्तिमजं विराजम् ॥ यत्प्रसादाद्भवति मोक्षमहातरुस्थस्तापं न यास्यति स चार्कसमुद्भवन्तम् ॥ २७ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये व्रतमहिमावर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ तपः शृणुष्व विप्रेन्द्र विस्तरेण महामते ॥ यस्य श्रवणमात्रेण चातुर्मास्येऽघनाशनम् ॥ १ ॥ षोडशेनोपचारेण विष्णोः पूजा सदा तपः ॥ ततः सुप्ते जगन्नाथे महत्तप उदाहृतम् ॥ २ ॥ करणं पञ्चयज्ञानां सततं तप एव हि ॥ तन्निवेद्य हरौ चैव चातुर्मास्ये महत्तपः ॥ ३ ॥ ऋतुयानं गृहस्थस्य तप एव सदैव हि ॥ चातुर्मास्ये हरिप्रीत्यै

को न प्राप्त होगा ॥२७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्ये व्रतमहिमावर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

दो॰ जिमि पराक व्रत आदि तप होत अनेक प्रकार । सोइ छठें अध्याय में कह्यो चरित्र उदार ॥ ब्रह्मा बोले कि हे द्विजेन्द्र, महामते ! विस्तार से तप को सुनिये कि चातुर्मास्य में जिसके सुनने से पाप नाश होता है ॥ १ ॥ सोलह उपचारों से सदैव विष्णुजी का पूजन तप है इस लिये जगदीशजी के सोने पर बड़ा तप कहा गया है ॥ २ ॥ और पंचयज्ञों का सदैव करना ही तप है उसको चातुर्मास्य में विष्णुजी में निवेदन कर बडा भारी तप होता है ॥ ३ ॥ और गृहस्थ

को ऋतु समय याने रजोधर्म से शुद्ध होने पर सोलह रात्रियों तक स्त्री के समीप जाना सदैव तप है चातुर्मास्य में विष्णुजी की प्रीति के लिये वह महातप सेवन करने योग्य है ॥ ४ ॥ और पृथ्वी में सदैव सत्य कहना प्राणियों को दुर्लभ तप है देवपति विष्णुजी के सोने पर उसको करता हुआ मनुष्य अमित फल का भागी होता है ॥ ५ ॥ और सदैव अहिंसादिक गुणों का पालन करना तप है व चातुर्मास्य में वैर को त्याग करना बड़ा तप कहागया है ॥ ६ ॥ और पंचायतन का पूजन बड़ा भारी तप है विष्णुजी की प्रीति के लिये चातुर्मास्य में उसको मनुष्य विशेषकर करै ॥ ७ ॥ नारदजी बोले कि यह पंचायतन संज्ञा किसकी है और

तन्निषेव्यं महत्तपः ॥ ४ ॥ सत्यवादस्तपो नित्यं प्राणिनां भुवि दुर्लभम् ॥ सुप्ते देवपतौ कुर्वन्ननन्तफलभाग्भवेत् ॥ ५ ॥ अहिंसादिगुणानां च पालनं सततं तपः ॥ चातुर्मास्ये त्यक्तवैरं महत्तप उदाहृतम् ॥ ६ ॥ तप एव महन्मर्त्यः पञ्चायतनपूजनम् ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण हरिप्रीत्या समाचरेत् ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ पञ्चायतनसंज्ञेयं कस्योक्ता सा कथं भवेत् ॥ कथं पूजा च कर्त्तव्या विस्तरेणाऽऽशु तद्वद ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रातर्मध्याह्नपूजायां मध्ये पूज्यो रविः सदा ॥ रात्रौ मध्ये भवेच्चन्द्रस्तद्वर्णकुसुमैः शुभैः ॥ ९ ॥ वह्निकोणे तु हेरम्बं सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ रक्तचन्दनपुष्पैश्च चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ १० ॥ नैर्ऋतं दलमास्थाय भगवान् दुष्टदर्पहा ॥ गृहस्थस्य सदा शत्रुविनाशं विदधाति सः ॥ ११ ॥ नैर्ऋत्यकोणगं विष्णुं पूजयेत्सर्वदा बुधः ॥ सुगन्धचन्दनैः पुष्पैर्नैवेद्यैश्चातिशोभनैः ॥ १२ ॥ गोत्रजा वायुकोणे तु पूज

वह कैसे होती है व किस प्रकार पूजन करना चाहिये उसको शीघ्रही विस्तार से कहिये ॥ ८ ॥ ब्रह्मा बोले कि प्रातःकाल व मध्याह्न की पूजा में सदैव सूर्यनारायण जी मध्य में पूजने योग्य हैं और रात्रि में चन्द्रमा मध्य में होताहै उसको उत्तम उसी रंग के पुष्पों से पूजना चाहिये ॥ ९ ॥ और अग्निकोण में सब विघ्नों की शांति के लिये चातुर्मास्य में विशेष कर लालचन्दन व पुष्पोंसे गणेशजी को पूजै ॥ १० ॥ और नैर्ऋत्यकोण को प्राप्त होकर दुष्टों के गर्वको नाशनेवाले वे भगवान् विष्णु जी सदैव गृहस्थ के शत्रुवों का नाश करते हैं ॥ ११ ॥ नैर्ऋत्यकोण में प्राप्त विष्णुजी को विद्वान् सदैव सुगंध चंदन, पुष्प व अतिउत्तम नैवेद्यों से पूजै ॥ १२ ॥

और वायव्यकोण में सदैव पुत्र पौत्रों की वृद्धि के लिये विद्वानों को सुन्दर पुष्पों से पार्वतीजी को पूजना चाहिये ॥ १३ ॥ व ईशानकोण में सफ़ेद पुष्पों से पूजित भगवान् शिवजी सदैव अपमृत्यु के नाश के लिये व सब दोषों के विनाश के लिये होते हैं ॥ १४ ॥ जिन गृहस्थों से यह पंचायतन पूजा जाता है उनकी महिमा जागती है व ब्रह्मादिकों से नहीं लिखी जाती है ॥ १५ ॥ चातुर्मास्य में यह बहुत फलवाला तप सदैव करना चाहिये और सब पर्वकालों में दान देना चाहिये जो कि सदैव तप है और चातुर्मास्य में वह विशेष कर अनन्त होजाता है ॥ १६ ॥ और सदैव बाहर व भीतर दो प्रकार का शौच ग्रहण करना

नीया सदा बुधैः ॥ पुत्रपौत्रप्रवृद्ध्यर्थं सुमनोभिर्मनोहरैः ॥ १३ ॥ ऐशाने भगवान् रुद्रः श्वेतपुष्पैः सदार्चितः ॥ अपमृत्युविनाशाय सर्वदोषापनुत्तये ॥ १४ ॥ जागर्ति महिमा तेषां ब्रह्माद्यैर्नैव लिख्यते ॥ पञ्चायतनमेतद्धि पूज्यते गृहमेधिभिः ॥ १५ ॥ तप एतत्सदा कार्यं चातुर्मास्ये महाफलम् ॥ पर्वकालेषु सर्वेषु दानं देयं तपः सदा ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण तदनन्तं प्रजायते ॥ १६ ॥ शौचं तु द्विविधं ग्राह्यं बाह्यमाभ्यन्तरं सदा ॥ जलशौचं तथा बाह्यं श्रद्धया चान्तरं भवेत् ॥ १७ ॥ इन्द्रियाणां ग्रहः कार्यस्तपसो लक्षणं परम् ॥ निवृत्त्येन्द्रियलौल्यं च चातुर्मास्ये महत्तपः ॥ १८ ॥ इन्द्रियाश्वान् सन्नियम्य सततं सुखमेधते ॥ नरके पात्यते प्राणैस्तैरेवोत्पथगामिभिः ॥ १९ ॥ ममतारूपिणीं ग्राहीं दुष्टां निर्भर्त्स्य निग्रहेत् ॥ तप एव सदा पुंसां चातुर्मास्येधिगौरवम् ॥ २० ॥ काम एष महाशत्रुस्तमेकं निर्जयेद्दृढम् ॥ जितकामा महात्मानस्तैर्जितं निखिलं जगत् ॥ २१ ॥ एतच्च तपसो मूलं तपसो मूलमेव तत् ॥ स

चाहिये बाह्यजल शौच है और भीतर का शौच श्रद्धा से होता है ॥ १७ ॥ व उत्तमतपस्या का लक्षण रूप इन्द्रियों का निग्रह करना चाहिये क्योंकि चातुर्मास्य में इन्द्रियों की चंचलता को निवृत्त कर बड़ा तप होता है ॥ १८ ॥ और इन्द्रियरूपी अश्वों को रोंककर मनुष्य सदैव सुख को पाता है व उन्हीं कुमार्ग में जानेवाली इन्द्रियों से मनुष्य नरक में गिराया जाता है ॥ १९ ॥ और ममतारूपिणी दुष्ट ग्राहीको घुड़क कर निग्रह करै व चातुर्मास्य सदैव पुरुषों का अधिगौरव तपहै ॥२०॥ और यह काम बड़ाभारी शत्रुहै उस एक शत्रुको दृढ़तासे जीतै क्योंकि जिनमहात्माओंने काम को जीत लिया उन्होंने सब संसारको जीत लियाहै ॥२१॥ और यह तपस्या

का मूल है व तपस्या का मूल वह है जो कि सदैव काम का विजय व संकल्प का विजयहै ॥ २२ ॥ जिससे काम जीता जाता है वही परम ज्ञानहै और चातुर्मास्य में उत्तम फलवाले उसीको विद्वान् लोग बड़ा तप कहते हैं ॥ २३ ॥ और लोभ सदैव छोड़ने योग्य है क्योंकि लोभ में पाप स्थित होता है और विशेषकर चातुर्मास्य में उसीके तप व विजय होता है ॥ २४ ॥ और सदैव मोह व अविवेक वर्जित करने योग्य है क्योंकि उस मोहसे त्यागा हुआ मनुष्य ज्ञानी होता है और मोह के आश्रय से ज्ञानी नहीं होता है ॥ २५ ॥ और मनुष्यों के शरीर में स्थित मद बड़ा भारी शत्रु है वह सदैव निग्रह करने योग्य है और विष्णुदेवजी के सोने

वैदा कामविजयः संकल्पविजयस्तथा ॥ २२ ॥ तदेव हि परं ज्ञानं कामो येन विजीयते ॥ महत्तपस्तदेवाहुश्चातुर्मास्ये फलोत्तमम् ॥ २३ ॥ लोभः सदा परित्याज्यः पापं लोभे समास्थितम् ॥ तपस्तस्यैव विजयश्चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ २४ ॥ मोहः सदा विवेकश्च वर्जनीयः प्रयत्नतः ॥ तेन त्यक्तो नरो ज्ञानी न ज्ञानी मोहसंश्रयात् ॥ २५ ॥ मद एव मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः ॥ सदा स एव निग्राह्यः सुप्ते देवे विशेषतः ॥ २६ ॥ मानः सर्वेषु भूतेषु वसत्येव भयावहः ॥ क्षमया तं विनिर्जित्य चातुर्मास्ये गुणाधिकः ॥ २७ ॥ मात्सर्यं निर्जयेत्प्राज्ञो महापातककारणम् ॥ चातुर्मास्ये जितं तेन त्रैलोक्यममरैः सह ॥ २८ ॥ अहंकारसमाक्रान्ता मुनयो विजितेन्द्रियाः ॥ धर्ममार्गं परित्यज्य कुर्वन्त्युन्मार्गजां क्रियाम् ॥ २९ ॥ अहंकारं परित्यज्य सततं सुखमाप्नुयात् ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण तस्य त्यागे महाफलम् ॥ ३० ॥ एतद्धि तपसो मूलं यदेतन्मनसस्त्यजेत् ॥ त्यक्तेष्वेतेषु सर्वेषु परब्रह्ममयी भवेत् ॥ ३१ ॥ प्रथमं काय

पर विशेषकर निग्रह करने योग्यहै ॥ २६ ॥ और सब मनुष्योंमें भयदायक मान बसताहै उसको चातुर्मास्य में क्षमा से जीतकर मनुष्य अधिक गुणवान् होताहै ॥२७॥ व चातुर्मास्य में बड़े पातकों के कारणरूप मात्सर्य को विद्वान् जीतै तो देवताओं समेत त्रिलोक को उसने जीत लिया ॥ २८ ॥ और इन्द्रियों को न जीतनेवाले अहंकार से घिरे हुए मुनिलोग धर्म के मार्ग को छोड़कर कुमार्ग से उत्पन्न कर्म को करते हैं ॥ २९ ॥ और अहंकारको छोड़कर मनुष्य सदैव सुख को पाता है व चातुर्मास्य में विशेषकर उसके त्यागमें बड़ा फल होताहै ॥ ३० ॥ यह तपस्याका मूलहै यदि इसको मनसे छोड़ देवै और इन सबोंके छोड़ने पर परब्रह्ममय होताहै ॥ ३१ ॥

पहले देवदेव विष्णुजी के शयन में पहले शरीर की शुद्धि के लिये विशेष कर प्राजापत्य बड़ा तप करै ॥ ३२ ॥ और विष्णुजी के शयन में सदैव एक दिन अन्तर
कर जो मनुष्य भक्ति से उपास करता है वह यमराज के स्थान को नहीं जाता है ॥ ३३ ॥ और विष्णुजी के शयन में जो मनुष्य सदैव एकभक्त व्रत करता है वह
प्रतिदिन द्वादशाह यज्ञ के फल को पाता है ॥ ३४ ॥ और चातुर्मास्य में यदि जो मनुष्य शाकभोजन में परायण होता है उसको हज़ार यज्ञों का पुण्य होता है
इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ और चातुर्मास्य में जो मनुष्य नित्य मासैकमासि चान्द्रायण व्रतको करता है वह पुण्य कहा नहीं जासक्ता है ॥ ३६ ॥ व

शुद्ध्यर्थं प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ शयने देवदेवस्य विशेषेण महत्तपः ॥ ३२ ॥ हरेस्तु शयने नित्यमेकान्तरमुपो
षणम् ॥ यः करोति नरो भक्त्या न स गच्छेद्यमालयम् ॥ ३३ ॥ हरिस्वापे नरो नित्यमेकभक्तं समाचरेत् ॥ दिवसे
दिवसे तस्य द्वादशाहफलं लभेत् ॥ ३४ ॥ चातुर्मास्ये नरो यस्तु शाकाहारपरो यदि ॥ पुण्यं क्रतुसहस्राणां जायते
नात्र संशयः ॥ ३५ ॥ चातुर्मास्ये नरो नित्यं चान्द्रायणव्रतं चरेत् ॥ मासैकमासि तत्पुण्यं वर्णितुं नैव शक्यते ॥३६॥
सुप्ते देवे च पाराकं यः करोति विशुद्धधीः ॥ नारी वा श्रद्धया युक्ता शतजन्माघनाशनम् ॥ ३७ ॥ कृच्छ्र
सेवी भवेद्यस्तु सुप्ते देवे जनार्दने ॥ पापराशिं विनिर्धूय वैकुण्ठे गणतां व्रजेत् ॥ ३८ ॥ तप्तकृच्छ्रपरो यस्तु सुप्ते देवे
जनार्दने ॥ कीर्तिं संप्राप्य वा पुत्रं विष्णुसायुज्यतां व्रजेत् ॥ ३९ ॥ दुग्धाहारपरो यस्तु चातुर्मास्येऽभिजायते ॥ त
स्य पापसहस्राणि विलयं यान्ति देहिनः ॥ ४० ॥ मितान्नाशनकृद्धीरश्चातुर्मास्ये नरो यदि ॥ निर्धूय सकलं पापं

शुद्धबुद्धिवाला जो मनुष्य विष्णुदेवजी के सोने पर पाराक व्रत को करता है व श्रद्धा से संयुत जो स्त्री करती है उसके सौ जन्मों का पाप नाश होता है ॥ ३७ ॥
व जनार्दन देवजी के सोने पर जो कृच्छ्रसेवी होता है वह पापराशि को नाश कर वैकुंठ में गणता को प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ व विष्णुदेवजी के सोने पर जो
मनुष्य तप्तकृच्छ्र में परायण होता है वह यश व पुत्र को पाकर विष्णुजी की सायुज्यमुक्ति को पाता है ॥ ३९ ॥ और चातुर्मास्य में जो दुग्धभोजन में परायण
होता है उस शरीरधारी के हज़ारों पाप नाश को प्राप्त होते हैं ॥ ४० ॥ व यदि मनुष्य चातुर्मास्य में प्रमाण भर अन्न को भोजन करनेवाला होता है तो समस्त

।ओं से अधिक मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादेचातुर्मास्यमाहात्म्येतपोमहिमावर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥
न सहित विष्णु पूजि फल जौन। मिलत सातवें में सोई कह्यो चरित सब तौन ॥ नारदजी बोले कि कैसे षोडशोपचारसे पूजा की जाती है और वे
हैं जो कि नित्य विष्णुजी के शयनमें होते हैं ॥ १ ॥ हे प्रजापते ! पूंछते हुए मुझ से इसको विस्तार से कहिये क्योंकि तुम्हारी प्रसन्नता को पाकर
के पूजने योग्य हूंगा ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले कि वेदों व शास्त्रों की विधिसे दृढ़ विष्णुभक्ति करना चाहिये और यह सब वेदमूल है व वेद सनातन विष्णुजी

हंतु ॥ नारायणं तं मनसा विचिन्त्य मृतोऽभिगच्छत्यमृतं सुराधिकम् ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये तपोमहिमावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ उपचारैः षोडशभिः पूजनं क्रियते कथम् ॥ ते के षोडशभावाः स्युर्नित्यं ये शयने हरेः ॥ १ ॥ एतद्विस्तरतो ब्रूहि पृच्छतो मे प्रजापते ॥ तव प्रसादमासाद्य जगत्पूज्यो भवाम्यहम् ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विष्णुभक्तिर्दृढा कार्या वेदशास्त्रविधानतः ॥ वेदमूलमिदं सर्वं वेदो विष्णुः सनातनः ॥ ३ ॥ ते वेदा ब्राह्मणाधारा ब्राह्मणाश्चाग्निदैवताः ॥ अग्नौ प्रास्ताहुतिर्विप्रो यज्ञे देवं यजन्त्सदा ॥ ४ ॥ जगत्संधारयेत्सर्वं विष्णुपूजारतः सदा ॥ नारायणः स्मृतो ध्यातः क्लेशदुःखादिनाशनः ॥ ५ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण जलरूपगतो हरिः ॥ जलादन्नानि जायन्ते जगतां तृप्तिहेतवे ॥ ६ ॥ विष्णुदेहांशसम्भूतं तदन्नं ब्रह्म इष्यते ॥ तदन्नं विष्णवे दत्त्वा ह्यावाहनपुरःसरम् ॥ ७ ॥ पुनर्जन्म

हैं ॥ ३ ॥ और वे वेद ब्राह्मणरूपी आधार में स्थित होते हैं और ब्राह्मणों का देवता अग्नि है व सदैव यज्ञ में विष्णुदेवजी को पूजता हुआ अग्नि में आहुति करने
वाला व सदैव विष्णुके पूजन में परायण ब्राह्मण सब ससार को धारण करता है और स्मरण व ध्यान किये हुए विष्णुजी क्लेशों व दुःखादिकों के नाशक हैं॥ ४ । ५ ॥
और चातुर्मास्य में विष्णुजी विशेष कर जलरूप में प्राप्त होते हैं व लोकों की तृप्ति के लिये जल से अन्न पैदा होते हैं ॥ ६ ॥ और विष्णु के शरीर के अंशसे
उत्पन्न वह अन्न ब्रह्म कहा जाता है उस अन्न को आवाहनपूर्वक विष्णुजी के लिये देकर ॥ ७ ॥ फिर जन्म, वृद्धता, क्लेश व संस्कारों से तिरस्कृत नहीं होता है पुरा-

महापाराक कहा जाता है इनमें एकको भी स्त्री या पुरुष ॥ ५१ ॥ जो मनुष्य भक्ति से करता है वह सनातन विष्णु है और सब तपों के मध्य में यह बड़ा भारी तप कहा गया है ॥ ५२ ॥ और चातुर्मास्य में यज्ञ से अधिक यह संसारमें कठिन व दुर्लभ है और प्रतिदिन उसको दश हज़ार यज्ञों का फल कहा गया है ॥ ५३ ॥ जिसने संसार में इस बडे भारी दुर्लभ व्रत को किया है यही बड़ा पवित्र है व यही बड़ा सुख है ॥ ५४ ॥ व यही महापाराक का सेवन बड़ा कल्याण है और उसके शरीर में विष्णुजी बसते हैं व उसको ज्ञान होताहै ॥ ५५ ॥ व बड़े पापों का करनेवाला वह जीवन्मुक्त होता है और तबतक पाप गरजते हैं व तभीतक नरक होते

मेकमपि च नारी वा पुरुषोऽपि वा ॥ ५१ ॥ यः करोति नरो भक्त्या स च विष्णुः सनातनः ॥ इदं च सर्वतपसां महत्तप उदाहृतम् ॥ ५२ ॥ दुष्करं दुर्लभं लोके चातुर्मास्ये मखाधिकम् ॥ दिवसे दिवसे तस्य यज्ञायुतफलं स्मृतम् ॥ ५३ ॥ महत्तप इदं येन कृतं जगति दुर्लभम् ॥ इदमेव महापुण्यमिदमेव महत्सुखम् ॥ ५४ ॥ इदमेव परं श्रेयो महापाराक सेवनम् ॥ नारायणो वसेद्देहे ज्ञानं तस्य प्रजायते ॥ ५५ ॥ जीवन्मुक्तः स भवति महापातककारकः ॥ तावद्गर्जन्ति पापानि नरकास्तावदेव हि ॥ ५६ ॥ तावन्मायासहस्राणि यावन्मासोपवासकः ॥ चातुर्मास्युपवासी यो यस्य प्राङ्गणिको भवेत् ॥ ५७ ॥ सोपि हत्यासहस्राणि त्यक्त्वा निष्कल्मषो भवेत् ॥ य इदं श्रावयेन्मर्त्यो यः पठेत्सततं स्वयम् ॥ ५८ ॥ सोपि वाचस्पतिसमः फलं प्राप्नोत्यसंशयः ॥ ५९ ॥ इदं पुराणं परमं पवित्रं शृण्वन् गृणन् पापविशुद्धि

हैं ॥ ५६ ॥ और तबतक हज़ारों माया होती हैं जबतक कि मासोपवास होता है और चातुर्मास्य में उपास करनेवाला जो जिसके आंगन में प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ वह भी हज़ारों हत्याओं को छोडकर पापरहित होता है और जो मनुष्य इसको सुनाता है व जो सदैव आपही पढ़ता है ॥ ५८ ॥ वह भी बृहस्पति के समान होकर फल को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५९ ॥ व उन विष्णुजी को मनसे ध्यान कर इस परम पवित्र व विशुद्धि के कारणरूप पुराण को. सुनता व पढ़ता

हुआ मनुष्य मर कर देवताओं से अधिक मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादेचातुर्मास्यमाहात्म्येतपोमहिमावर्णनंनाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥

दो० षोडशोपचारन सहित विष्णु पूजि फल जौन। मिलत सातवें में सोई कह्यो चरित सब तौन ॥ नारदजी बोले कि कैसे षोडशोपचारसे पूजा की जाती है और वे कौन सोलहभावहैं जो कि नित्य विष्णुजी के शयनमें होते हैं॥ १ ॥ हे प्रजापते ! पूछते हुए मुझ से इसको विस्तार से कहिये क्योंकि तुम्हारी प्रसन्नता को पाकर मैं संसार के पूजने योग्य हूंगा ॥ २ ॥ ब्रह्माजी बोले कि वेदों व शास्त्रों की विधिसे दृढ़ विष्णुभक्ति करना चाहिये और यह सब वेदमूल है व वेद सनातन विष्णुजी

हेतु ॥ नारायणं तं मनसा विचिन्त्य मृतोऽभिगच्छत्यमृतं सुराधिकम् ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये तपोमहिमावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ उपचारैः षोडशभिः पूजनं क्रियते कथम् ॥ ते के षोडशभावाः स्युर्नित्यं ये शयने हरेः ॥ १ ॥ एतद्विस्तरतो ब्रूहि पृच्छतो मे प्रजापते ॥ तव प्रसादमासाद्य जगत्पूज्यो भवाम्यहम् ॥ २ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विष्णुभक्ति र्दृढा कार्या वेदशास्त्रविधानतः ॥ वेदमूलमिदं सर्वं वेदो विष्णुः सनातनः ॥ ३ ॥ ते वेदा ब्राह्मणाधारा ब्राह्मणाश्चाग्निदैवताः ॥ अग्नौ प्रास्ताहुतिर्विप्रो यज्ञे देवं यजन्सदा ॥ ४ ॥ जगत्संधारयेत्सर्वं विष्णुपूजारतः सदा ॥ नारायणः स्मृतो ध्यातः क्लेशदुःखादिनाशनः ॥ ५ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण जलरूपगतो हरिः ॥ जलादन्नानि जायन्ते जगतां तृप्तिहेतवे ॥ ६ ॥ विष्णुदेहांशसम्भूतं तदन्नं ब्रह्म इष्यते ॥ तदन्नं विष्णवे दत्त्वा ह्यावाहनपुरःसरम् ॥ ७ ॥ पुनर्जन्म

हैं ॥ ३ ॥ और वे वेद ब्राह्मणरूपी आधार में स्थित होते हैं और ब्राह्मणों का देवता अग्नि है व सदैव यज्ञ में विष्णुदेवजी को पूजता हुआ अग्नि में आहुति करने वाला व सदैव विष्णुके पूजन में परायण ब्राह्मण सब ससार को धारण करता है और स्मरण व ध्यान किये हुए विष्णुजी क्लेशों व दुःखादिकों के नाशक हैं॥ ४ । ५॥ और चातुर्मास्य में विष्णुजी विशेष कर जलरूप में प्राप्त होते हैं व लोकों की तृप्ति के लिये जल से अन्न पैदा होते हैं ॥ ६ ॥ और विष्णु के शरीर के अंशसे उत्पन्न वह अन्न ब्रह्म कहा जाता है उस अन्न को आवाहनपूर्वक विष्णुजी के लिये देकर ॥ ७ ॥ फिर जन्म, वृद्धता, क्लेश व संस्कारों से तिरस्कृत नहीं होता है पुरा-

तन समय आकाश से उपजाहुआ एकही वेद हुआ है ॥ ८ ॥ तदनन्तर वेद ऐश्वर्यके लिये यजुः, साम व ऋक् की संज्ञा को प्राप्त हुआ पहले ऋग्वेद कहा गया है और यजुः सहस्रशीर्ष ऐसा ॥ ९ ॥ सोलह ऋचाओंवाला महासूक्त उत्तम नारायणमय है उसके पाठमात्र से ब्रह्महत्या निवृत्त होजाती है ॥ १० ॥ पहले विद्वान् ब्राह्मण स्मृति में कही हुई विधि से अपने शरीर में न्यास करै तदनन्तर प्रतिमा व विशेषकर शालग्रामशिला में न्यास करै ॥ ११ ॥ उसके पश्चात् क्रम से आवाहनादिक करै और वैकुंठस्थान में स्थित कलाओं समेत रूपको आवाहन कर ॥ १२ ॥ कौस्तुभ से शोभित व करोड़ सूर्यों के समान प्रभावान् तथा दण्ड

जराक्लेशसंस्कारैर्नाभिभूयते ॥ आकाशसम्भवो वेद एक एव पुराऽभवत् ॥ ८ ॥ ततो यजुः सामसंज्ञामृग्वेदः प्राप भूयते ॥ ऋग्वेदोभिहितः पूर्वं यजुःसहस्रशीर्षेति च ॥ ९ ॥ षोडशर्चं महासूक्तं नारायणमयं परम् ॥ तस्यापि पाठमात्रेण ब्रह्महत्या निवर्तते ॥ १० ॥ विप्रः पूर्वं न्यसेद्देहे स्मृत्युक्तेन निजे बुधः ॥ ततस्तु प्रतिमायां च शालग्रामे विशेषतः ॥ ११ ॥ क्रमेण च ततः कुर्यात्पश्चादावाहनादिकम् ॥ आवाह्य सकलं रूपं वैकुण्ठस्थानसंस्थितम् ॥ १२ ॥ कौस्तुभेन विराजन्तं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ दण्डहस्तं शिखासूत्रसहितं पीतवाससम् ॥ १३ ॥ महासंन्यासिनं ध्यायेच्चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ एवं रूपमयं विष्णुं सर्वपापौघहारिणम् ॥ १४ ॥ आवाहयेच्च पुरतो ध्यानसंस्थं द्विजोत्तम ॥ ऋचा प्रथमया चास्योंकारादिसमुदीर्णया ॥ १५ ॥ द्वितीयया चासनं च पार्षदैश्च समन्वितम् ॥ सौवर्णान्यासनान्येषां मनसा परिचिन्तयेत् ॥ १६ ॥ चिन्तनैर्भक्तियोगेन परिपूर्णं च तद्भवेत् ॥ पाद्यं तृतीयया कार्यां गङ्गां तत्र स्मरे

को हाथ में लिये व शिखा सूत्र समेत और पीतवसन को पहने ॥ १३ ॥ महासंन्यासी विष्णुजी को विशेष कर चातुर्मास्य में ध्यान करै हे द्विजोत्तम! ऐसे रूप वाले सब पापों को हरनेवाले तथा ध्यान में स्थित विष्णुजी को ध्यान करै और ॐकार आदि से कही हुई पहली ऋचा से व दूसरी ऋचा से इन विष्णुजी के पार्षदों समेत आसन को ध्यान करै और मनसे इनके सुवर्ण के आसनों को चिन्तवन करै ॥ १४ । १५ । १६ ॥ और भक्ति के योग से ध्यानों करके वह परिपूर्ण होता

है और तीसरी ऋचा से पाद्य करना चाहिये व विद्वान् वहां श्रीगंगाजी को स्मरण करै ॥ १७ ॥ तदन्तर नदियों व सात समुद्रों से जगदीश विष्णुजी का अर्घ करना चाहिये फिर अमृत से आचमन करना चाहिये ॥ १८ ॥ और तीन आचमनों से ब्राह्मण की शुद्धि कही जाती है व फेन और बुद्बुद से रहित तथा प्रकृति स्थित याने निर्मल जलों से ॥ १९ ॥ जाति के अनुकूल द्विज याने ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य हृदय, कंठ व तालु में प्राप्त होने से शुद्ध होते हैं और स्त्री व शूद्र एक बार जल का स्पर्श करने से अन्तर से पवित्र होते हैं ॥ २० ॥ और पांचवीं ऋचा से भक्तिसंयुत चित्त करके आचमन करना चाहिये क्योंकि भक्ति से ग्रहण करने

द्बुधः ॥ १७ ॥ अर्घः कार्यस्ततो विष्णोः सरिद्भिः सप्तसागरैः ॥ पुनराचमनं कार्यममृतेन जगत्पतेः ॥ १८ ॥ त्रिभि राचमनैः शुद्धिर्ब्राह्मणस्य निगद्यते ॥ अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिर्हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ॥ १९ ॥ हृत्कण्ठतालुगाभिश्च यथावर्णं द्विजातयः ॥ शुद्धेरन् स्त्री च शूद्रश्च सकृत्स्पृष्टाभिरन्ततः ॥ २० ॥ पञ्चम्यांचमनं कार्यं भक्तियुक्तेन चेत सा ॥ भक्तिग्राह्यो हृषीकेशो भक्त्यात्मानं प्रयच्छति ॥ २१ ॥ ततः सुवासितैस्तोयैः सर्वौषधिसमन्वितैः ॥ शेषोदकैः स्वर्णघटैः स्नानं देवस्य कारयेत् ॥ २२ ॥ तीर्थोदकैः श्रद्धया च मनसा समुपाहृतैः ॥ अश्रद्धया रत्नराशिः प्रदत्तो नि ष्फलो भवेत् ॥ २३ ॥ वार्यपि श्रद्धया दत्तमनंतत्वाय कल्पते ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण श्रद्धया पूयते नरः ॥ २४ ॥ पष्ठ्या स्नानं ततः कार्यं पुनराचमनं भवेत् ॥ दद्याच्च वाससी स्वर्णसहिते भक्तिशक्तितः ॥ २५ ॥ आच्छादितं जगत्सर्वं

योग्य विष्णुजी भक्ति से आत्मा को देते हैं ॥ २१ ॥ तदनन्तर सब औषधियों से संयुत सुवासित जलों से व शेष जलवाले सुवर्ण के घटोंसे विष्णुदेवजीको स्नान करावै ॥ २२ ॥ और मन से लाये हुए तीर्थों के जलों से श्रद्धा से स्नान करावै क्योंकि विना श्रद्धा से दी हुई रत्नों की राशि निष्फल होती है ॥ २३ ॥ और श्रद्धा से दिया हुआ जल भी अनन्तत्व के लिये समर्थ होताहै और चातुर्मास्यमें विशेषकर श्रद्धा से मनुष्य पवित्र होताहै ॥ २४ ॥ तदनन्तर छठीं ऋचा से स्नान कराना चाहिये फिर आचमन होता है और भक्ति व शक्ति से सुवर्ण समेत दो वसनों को देवै ॥ २५ ॥ क्योंकि वस्त्र से सब संसार आच्छादितहै व वस्त्र से विष्णुजी आच्छ-

दित हैं और चातुर्मस्य में विशेषकर वस्त्रदान महाफलवान् है ॥ २६ ॥ फिर विष्णुरूपी यती के लिये आचमन देना चाहिये व हे मुनीश्वर ! सातवीं ऋचा से विष्णु जी को वस्त्रदान करना चाहिये ॥ २७ ॥ और आठवीं ऋचा से यज्ञोपवीत को देवै व उसको अध्यात्मता से सुनिये कि करोड सूर्यों के समान स्पर्शवाला व तेज से प्रकाशवान् ॥ २८ ॥ और ब्राह्मण के क्रोध से तिरस्कृत होने पर करोड़ विजलियों के समान प्रभावान् और सूर्य, चन्द्रमा व अग्नि के संयोग से तीन गुणों से संयुक्त ॥ २९ ॥ व वेदत्रयीमय तथा ब्रह्म, विष्णु व रुद्ररूप तथा स्वर्गमय है व हे द्विजेन्द्र ! जिसके प्रभावसे मनुष्य द्विज कहा जाता है ॥ ३० ॥ और जन्म

वस्त्रेणाच्छादितो हरिः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण वस्त्रदानं महाफलम् ॥ २६ ॥ पुनराचमनं देयं यतये विष्णुरूपिणे ॥ वस्त्रदानं च सप्तम्या कार्यं विष्णोर्मुनीश्वर ॥ २७ ॥ यज्ञोपवीतमष्टम्या तच्चाध्यात्मतया शृणु ॥ सूर्यकोटिसमस्पर्शं तेजसा भास्वरं तथा ॥ २८ ॥ क्रोधाभिभूते विप्रे तु तडित्कोटिसमप्रभम् ॥ सूर्येन्दुवह्निसंयोगाद्गुणत्रयसमन्वित म् ॥ २९ ॥ त्रयीमयं ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपं त्रिविष्टपम् ॥ यस्य प्रभावाद्विप्रेन्द्र मानवो द्विज उच्यते ॥ ३० ॥ जन्मना जा यते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते ॥ शापोनुग्रहसामर्थ्यं तथा क्रोधः प्रसन्नता ॥ ३१ ॥ त्रैलोक्यप्रवरत्वं च ब्राह्मणा देव जायते ॥ न ब्राह्मणसमो बन्धुर्न ब्राह्मणसमा गतिः ॥ ३२ ॥ न ब्राह्मणसमः कश्चित्त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ दत्तोप वीते ब्रह्मण्ये सुप्ते देवे जनार्दने ॥ ३३ ॥ सर्वं जगद्ब्रह्ममयं संजातं नात्र संशयः ॥ नवम्या च सुलेपश्च कर्त्तव्यो यज्ञ मूर्तये ॥ ३४ ॥ सुयक्षकर्दमैर्लिप्तो विष्णुर्येन जगद्गुरुः ॥ तेनाप्यायितमेतद्धि वासितं यशसा जगत् ॥ ३५ ॥ तेजसा

से शूद्र होता है व संस्कार से द्विज कहा जाता है और शापानुग्रह सामर्थ्य, क्रोध व प्रसन्नता ॥ ३१ ॥ और त्रिलोक में श्रेष्ठता ब्राह्मणही से होती है व ब्राह्मण के समान बंधु नहीं है और ब्राह्मण के समान गति नहीं है ॥ ३२ ॥ व चराचर समेत त्रिलोक में कोई ब्राह्मण के समान नहीं है व ब्रह्मण्य विष्णुदेवजी के सोने पर यज्ञोपवीत देने पर ॥ ३३ ॥ सब संसार ब्रह्ममय होता है इसमें सन्देह नहीं है व नवमी ऋचा से यज्ञमूर्ति विष्णुजी के लिये उत्तम लेपन करना चाहिये ॥ ३४ ॥ जिसने उत्तम यक्ष कर्दम से विष्णुजी के लेपन किया है उसने यश से वासित इस संसारको तृप्त किया ॥ ३५ ॥ व चंदन को देनेवाला मनुष्य संसार में तेज से सूर्य

नारायण के समान होकर देवत्व को प्राप्त होकर ब्रह्मलोकादिक लोक में आनन्द करता है ॥ ३६ ॥ व जो मनुष्य चातुर्मास्य में विशेष कर चदन के लेप से सुन्दर विष्णुजी को देखते हैं वे यमपुर को नहीं जाते हैं ॥ ३७ ॥ और दशवीं ऋचा से पुष्पपूजा व भक्तिपूजा करना चाहिये क्योंकि पुष्प में सदैव निरन्तर लक्ष्मी वसती है ॥ ३८ ॥ और सर्वत्रगामिनी लक्ष्मी का दोष नहीं होताहै जैसे कि सर्वमय विष्णुजी दोषों से तिरस्कृत नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥ वैसेही सर्वमयी लक्ष्मी पतिव्रतत्वसे हीन नहीं होती है सब मूर्तियों में व सब प्राणियों में सदैव ॥ ४० ॥ मनुष्य, देवता व पितरों में पुष्पपूजा कीजाती है जिसने लक्ष्मी समेत एक विष्णुजी को

भास्करो लोके देवत्वं प्राप्य मानवः ॥ ब्रह्मलोकादिके लोके मोदते चन्दनप्रदः ॥ ३६ ॥ चन्दनालेपसुभगं विष्णुं पश्यन्ति मानवाः ॥ न ते यमपुरं यान्ति चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ३७ ॥ दशम्या पुष्पपूजा च भक्तिपूजा तथैव च ॥ पुष्पे चैव सदा लक्ष्मीर्वसत्येव निरन्तरम् ॥ ३८ ॥ लक्ष्म्याऽसर्वत्रगामिन्या दोषो नैव प्रजायते ॥ यथा सर्वमयो विष्णुर्न दोषैरनुभूयते ॥ ३९ ॥ तथा सर्वमयी लक्ष्मीः सतीत्वान्नैव हीयते ॥ प्रतिमासु च सर्वासु सर्वभूतेषु नित्यदा ॥ ४० ॥ मनुष्यदेवपितृषु पुष्पपूजा विधीयते ॥ पुष्पैः संपूजितो येन हरिरेकः श्रिया सह ॥ ४१ ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं पूजितं तेन वै जगत् ॥ अतः सुश्वेतकुसुमैर्विष्णुं संपूजयेत्सदा ॥ ४२ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण भक्तियुक्तः सदा शुचिः ॥ भक्त्या सुविहिता ब्रह्मन् पुष्पपूजा नरैर्यदि ॥ ४३ ॥ यं यं काममभिध्यायेत्तस्य सिद्धिर्निरन्तरा ॥ पुष्पैरुपचितं विष्णुं यद्यन्ये प्रणमन्ति च ॥ ४४ ॥ तेषामप्यक्षया लोकाश्चातुर्मास्येऽधिकं फलम् ॥ एकादश्या धूपदानं

पुष्पों से पूजा है ॥४१॥ उसने ब्रह्मसे लगाकर स्तम्बपर्यन्त संसार को पूजन किया इस कारण सदैव सपेद पुष्पोंसे विष्णुजी को पूजै ॥ ४२ ॥ और भक्ति से सयुत व पवित्र मनुष्य चातुर्मास्य में विशेषकर पूजै हे ब्रह्मन्! यदि भक्ति से मनुष्य पुष्पों से पूजन करते हैं ॥ ४३ ॥ तो जो मनुष्य जिस जिस कामना को चिन्तवन करता है उसकी निरन्तर सिद्धि होती है और पुष्पों से पूजित विष्णुजी को यदि अन्य लोग प्रणाम करते हैं ॥ ४४ ॥ तो उनको भी अक्षय लोक होते हैं और चातुर्मास्य

में अधिक फल होता है और गेरहवीं ऋचा से यतीरूप विष्णुजी के लिये धूपदान करना चाहिये ॥ ४५ ॥ गंधवानोंमें श्रेष्ठ व गंध से संयुत, वनस्पति का रस जो कि सर्व देवताओंके सूंघने योग्य है इस दिव्य धूप को ग्रहण कीजिये ॥ ४६ ॥ इस मंत्र को कह कर चातुर्मास्य में नित्य विष्णुजी के लिये अगरु से उपजे हुए बडे फल वाले उत्तम धूप को देवै ॥ ४७ ॥ हे सत्तम ! कपूर व चंदन दलों से संयुत तथा शक्कर व शहद से संयुत व जटामासी से युक्त धूप को विष्णुदेवजी के सोने पर देवै ॥ ४८ ॥ देवता घ्राणसे प्रसन्न होते हैं व धूप उत्तम तथा घ्राणहारक है और बारहवीं ऋचा से मुक्ति को चाहनेवाले पुरुषोंको दीपदान करना चाहिये ॥ ४९ ॥

कर्तव्यं यतये हरौ ॥४५॥ वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्धवत्तमः ॥ आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोयं प्रतिगृह्यताम् ॥४६॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य धूपमागुरुजं शुभम् ॥ दद्याद्भगवते नित्यं चातुर्मास्ये महाफलम् ॥ ४७ ॥ कर्पूरचन्दनदलैः सिता मधुसमन्वितम् ॥ मासीजटाभिः सहितं सुप्ते देवेऽथ सत्तम ॥ ४८ ॥ देवाघ्राणेन तुष्यन्ति धूपं घ्राणहरं शुभम् ॥ द्वादश्या दीपदानं तु कर्तव्यं मुक्तिमिच्छुभिः ॥ ४९ ॥ दीपः सर्वेषु कार्येषु प्रथमस्तेजसां पतिः ॥ दीपस्तमौघनाशाय दीपः कान्तिं प्रयच्छति ॥ ५० ॥ तस्माद्दीपप्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः ॥ अयं पौराणजो मन्त्रो वेदर्चेन समन्वितः ॥ दीपप्रदाने सकलः प्रयुक्तो नाशयेदघम् ॥ ५१ ॥ चातुर्मास्ये दीपदानं कुरुते यो हरेः पुरः ॥ तस्य पापमयो राशिर्निमेषादपि दह्यते ॥ ५२ ॥ तावत्पापानि गर्जन्ति तावद्बिभेति पातकी ॥ यावन्न विहितो भास्वान्दीपो नारायणे गृहे ॥ ५३ ॥ दर्शनादपि दीपस्य सर्वसिद्धिर्नृणां भवेत् ॥ कामनायां समुद्दिश्य दीपं कारयते हरौ ॥ ५४ ॥ सासा

तेजों का स्वामी दीप सब कार्यों में श्रेष्ठ है और दीप अन्धकारसमूह के नाश के लिये है व दीप कान्ति को देता है ॥ ५० ॥ उस कारण दीप को देनेसे विष्णुजी प्रसन्न होवैं वेदकी ऋचा से संयुत यह पुराणसे उपजा हुआ समस्त मंत्र दीपदान में प्रयुक्त होकर पाप को नाशता है ॥ ५१ ॥ व चातुर्मास्य में विष्णुजी के आगे जो दीपदान करता है उसकी पापमयी राशि निमेष भर में जल जाती है ॥५२॥ तबतक पाप गरजते हैं व तबतक पातकी डरताहै जबतक कि विष्णुजीके ग्रहमें प्रकाशवान् दीप नहीं धराजाता है ॥ ५३ ॥ और दीपके दर्शनसे मनुष्यों की सब सिद्धि होती है व जिस कामना को उद्देश कर मनुष्य विष्णुजीके लिये दीप करता है ॥ ५४ ॥

वह वह अनन्त विष्णुजी के सोने पर अधिक गुण से निर्विघ्न सिद्ध होती है और पंचायतन में स्थित पांचों देवताओं के लिये ॥ ५५ ॥ चातुर्मास्य में दीपदान करना बड़ा फलवान् होता है ॥ ५६ ॥ नित्य ध्यान, पूजन व स्तुति किये हुए एक मुक्तिदायक विष्णुजी प्रसन्न होते हैं और जो प्रिय हो व जो घर में उत्तम हो उस उस वस्तु को मुक्ति के लिये श्रेष्ठ मनुष्यों को देना चाहिये ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्ये तपोधिकारषोडशोपचारदीपमहिमावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

सिद्ध्यति निर्विघ्ना सुप्तेनन्ते गुणोत्तरम् ॥ पञ्चायतनसंस्थेषु तथा देवेषु पञ्चसु ॥ ५५ ॥ विहितं दीपदानं च चातुर्मास्ये महाफलम् ॥ ५६ ॥ एको विष्णुस्तुष्यते मुक्तिदाता नित्यं ध्यातः पूजितः संस्तुतश्च ॥ यच्चाभीष्टं यच्च गेहे शुभं वा तत्तद्देयं मुक्तिहेतोर्नृवर्यैः ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये तपोधिकारषोडशोपचारदीपमहिमावर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ हरेर्दीपस्तु मद्दीपादधिकोऽयं प्रवर्तते ॥ वैकुण्ठवास एव स्यान्ममैश्वर्यमवाञ्छितम् ॥ १ ॥ कार्त्तिकेय उवाच ॥ दीपोऽयं विष्णुभवने मन्त्रवद्विहितो नरैः ॥ सदा विशेषफलदश्चातुर्मास्येऽधिकः कथम् ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ विष्णुर्नित्याधिदैवं मे विष्णुः पूज्यः सदा मम ॥ विष्णुमेनं सदाध्याये विष्णुर्मत्तः परो हि सः ॥ ३ ॥ स विष्णु

दो० यथा विष्णुजी के लिये करै दीप का दान । सोइ आठ अध्याय में कह्यो चरित सुख खान ॥ महादेवजी बोले कि यह विष्णु का दीप मेरे दीप से अधिक वर्तमान है और वैकुंठवास होता है व विन चाहा हुआ महाऐश्वर्य होताहै ॥ १ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि विष्णुजीके मंदिर में मंत्रपूर्वक मनुष्योंसे धरा हुआ यह दीप सदैव विशेष फलदायक है तो चातुर्मास्य में कैसे अधिक है ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि विष्णुजी मेरे सदैव अधिदेवता हैं व विष्णुजी सदैव मेरे पूजनीय हैं व इन विष्णुजी को मैं सदैव ध्यान करता हूं और वे विष्णुजी मुझ से परे हैं ॥ ३ ॥ और विष्णुजी को प्रिय वह दीपक सदैव पापहारक है व चातुर्मास्य में वह

विशेष कर कामनाओं को सिद्धिकारक है ॥ ४ ॥ हे पुत्र ! जिस प्रकार दीपक से विष्णुजी प्रसन्न होते हैं उस प्रकार हज़ारों यज्ञों से वर को नहीं देते हैं ॥ ५ ॥ दीप के थोड़े व्यय से मनुष्यों को अमित फल होताहै और अनंतजी के शयन में प्राप्त होने पर पुण्य की संख्या नहीं विद्यमान है ॥ ६ ॥ उस कारण जो मनुष्य श्रद्धा से संयुक्त सब यत्न से विष्णुजी को दीप प्रदान करता है वह पापों से नहीं लिप्त होता है ॥ ७ ॥ व फिर यतीरूपी विष्णुजी के निमित्त सोलह उपचारों से दीप प्रादन करने पर सब संसार प्रकाशित होता है ॥ ८ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! दीप के उपरान्त मोक्षपद में स्थित भक्ति से संयुत मनुष्यों को तेरहवीं ऋचा से

वल्लभो दीपः सर्वदा पापहारकः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण कामना सिद्धिकारकः ॥ ४ ॥ विष्णुर्दीपेन सन्तुष्टो यथा भवति पुत्रक ॥ तथा यज्ञसहस्रैश्च वरं नैव प्रयच्छति ॥ ५ ॥ स्वल्पव्ययेन दीपस्य फलमानन्तकं नृणाम् ॥ अनन्त शयने प्राप्ते पुण्यसंख्या न विद्यते ॥ ६ ॥ तस्मात्सर्वात्मभावेन श्रद्धया संयुतेन च ॥ दीपप्रदानं कुरुते हरेः पापैर्न लिप्यते ॥ ७ ॥ उपचारैः षोडशकैर्यतिरूपे हरौ पुनः ॥ दीपप्रदाने विहिते सर्वमुद्द्योतितं जगत् ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवा‒
दनन्तरं ब्रह्मन्नन्नस्य च निवेदनम् ॥ त्रयोदश्या भक्तियुक्तैः कार्यं मोक्षपदस्थितैः ॥ ९ ॥ अमृतं ‒
अपि ॥ स्पृहयन्ति गृहस्थस्य गृहद्वारगताः सदा ॥ १० ॥ हरौ सुप्ते विशेषेण प्रदेयः ‒
त्कालसमुदाहृतैः ॥ ११ ॥ ताम्बूलवल्लीपत्रैश्च तदा पूगफलैः शुभैः ॥ ‒
बीजपूरफलैश्चैव दद्यादर्घ्यं सुभक्तितः ॥ शङ्खतोयं समादाय ‒

अन्न का निवेदन करना चाहिये ॥ ९ ॥ देवता भी अमृत को छोड़ कर स‒
सोने पर प्रतिदिन मनुष्यों को वह अन्न विशेष कर देना चाहिये ‒
त्तम सुपारी के फलों से तथा मुनक्का, जामुन व आम‒
शख में जल को लेकर उसके ऊपर उत्तम ‒

आचमन देना चाहिये ॥ १४ ॥ तदनन्तर यतिरूपी विष्णुजी के लिये चौदहवीं ऋचा से नमस्कार करै व समस्त पातकों को नाशनेवाली आरती करै ॥ १५ ॥ व पंद्रहवीं ऋचा से ब्राह्मणों समेत सब दिशाओं में भ्रमण करना चाहिये सात समुद्रोंसे उपजे हुए जलों के देनेसे जो फल मिलता है ॥ १६ ॥ वह विष्णुजी को जल-दान से विष्णुप्रिय मनुष्यों को मिलता है और चार बार भ्रमण करने से चराचर समेत सब संसार ॥ १७ ॥ व हे द्विजेन्द्र ! उनके तीर्थ का गमनादिक क्रान्त होता है व योगविदों में उत्तम मनुष्य सोलहवीं ऋचा से विष्णुदेवजी की सायुज्य याने एकीभाव को चिन्तवन करै ॥ १८ ॥ उस समय नित्य अपनी व विष्णुजी की

केशवाय निवेदयेत् ॥ पुनराचमनं देयमन्नदानादनन्तरम् ॥ १४ ॥ आर्त्तिक्यं च ततः कुर्यात्सर्वपापविनाशनम् ॥ चतुर्दश्या नमस्कुर्याद्विष्णवे यतिरूपिणे ॥ १५ ॥ पञ्चदश्या भ्रमः कार्यः सर्वदिक्षु द्विजैः सह ॥ सप्तसागरजैस्तोयैर्दत्तैर्यत्फलमाप्यते ॥ १६ ॥ ततो पदानाच्च हरेः प्राप्यते विष्णुवल्लभैः ॥ चतुर्वारभ्रमीभिश्च जगत्सर्वं चराचरम् ॥ १७ ॥ क्रान्तं भवति विप्राग्र्य तत्तीर्थगमनादिकम् ॥ षोडश्या देवसायुज्यं चिन्तयेद्योगवित्तमः ॥ १८ ॥ आत्मनश्च हरेर्नित्यं न मूर्त्तिं भावयेत्तदा ॥ मूर्त्तामूर्त्तस्वरूपत्वाद्दृश्यो भवति योगवित् ॥ १९ ॥ तस्मिन्दृष्टे निवर्त्तेत सदसद्रूपजा क्रिया ॥ आत्मानं तेजसां मध्ये चिन्तयेत्सूर्यवर्चसम् ॥ २० ॥ अहमेव सदा विष्णुरित्यात्मनि विचारयन् ॥ लभते वैष्णवं देहं जीवन्मुक्तो द्विजो भवेत् ॥ २१ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण योगयुक्तो द्विजो भवेत् ॥ इयं भक्तिः समादिष्टा मोक्षमार्गप्रदे हरौ ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्येऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥

मूर्ति की संभावना न करै और मूर्त व अमूर्तस्वरूप होने के कारण योग को जाननेवाला मनुष्य दृश्य होता है ॥ १९ ॥ व उन के देखने पर सत व असद्रूप से उपजी हुई क्रिया निवृत्त होजाती है व अपना को तेजोंके मध्यमें सूर्य के समान तेजवान् ध्यान करै ॥ २० ॥ व मैंही सदा विष्णु हू ऐसा आत्मा में विचारता हुआ ब्राह्मण जीवन्मुक्त होता है व वैष्णवशरीर को प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ और चातुर्मास्य में विशेष कर ब्राह्मण योग युक्त होवै मोक्षमार्ग को देनेवाले विष्णुजी में यह भक्ति कही गई है ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्ये अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥

दो० स्त्री अरु शूद्रादिक यथा करहिं धर्म आचार। सोइ नवम अध्याय में कह्यो चरित सुखसार ॥ महादेवजी बोले कि यह षोडशोपचार से संयुत विष्णुजी का पूजन तुमसे कहा गया जिसको ब्राह्मण करके परमपद को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ वैसेही क्षत्रिय वैश्यों के करने से उत्तम मुक्ति होती है व शूद्रों और स्त्रियों को किसी प्रकार इसमें अधिकार नहीं है ॥ २ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि शूद्रों व स्त्रियोंके धर्म को विस्तार से कहिये कि श्रीकृष्णजी के आराधन विना उनकी किस प्रकार मुक्ति होती है ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि उत्तम शूद्रों को भी वेदाक्षरों का विचार न करना चाहिये व न सुनना चाहिये और न पढ़ना चाहिये क्योंकि

ईश्वर उवाच ॥ एतत्ते पूजनं विष्णोः षोडशोपायसंभवम् ॥ कथितं यद्द्विजः कृत्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥ १ ॥ तथा च क्षत्रियविशां करणान्मुक्तिरुत्तमा ॥ शूद्राणां चाधिकारोस्मिन् स्त्रीणां नैव कदाचन ॥ २ ॥ कार्त्तिकेय उवाच ॥ शूद्राणां च तथा स्त्रीणां धर्मं विस्तरतो वद ॥ केन मुक्तिर्भवेत्तेषां कृष्णस्याराधनं विना ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ सच्छूद्रैरपि नो कार्या वेदाक्षरविचारणा ॥ न श्रोतव्या न पाठ्या च पठन्नरकभाग्भवेत् ॥ ४ ॥ पुराणानां नैव पाठः श्रवणं कारयेत्सदा ॥ स्मृत्युक्तं सुगुरोर्ग्राह्यं न पाठः श्रवणादिकम् ॥ ५ ॥ स्कन्द उवाच ॥ सच्छूद्राः के समाख्यातास्तांश्च विस्तरतो वद ॥ के सन्तः के च शूद्राश्च सच्छूद्रा नामतश्च के ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ धर्मोढा यस्य पत्नी स्यात्स सच्छूद्र उदाहृतः ॥ समानकुलरूपा च दशदोषविवर्जिता ॥ ७ ॥ उद्वोढा वेदविधिना स सच्छूद्रः प्रकीर्तितः ॥ अक्लीबाऽव्यङ्गिनी शस्ता महारोगाद्यदूषिता ॥ ८ ॥ अनिन्दिता शुभकला चक्षुरोगविवर्जिता ॥ वाधिर्यहीना चपला कन्या

उसको पढ़ता हुआ शूद्र नरकभागी होता है ॥ ४ ॥ और सदैव पुराणों का पाठ व श्रवण न करै और उत्तम गुरु से स्मृति में उक्त पाठ व श्रवणादिक न ग्रहण करना चाहिये ॥ ५ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी बोले कि सच्छूद्र कौन कहेगये हैं उनको विस्तार से कहिये कि कौन संत हैं व कौन शूद्र हैं और नाम से कौन सच्छूद्र हैं ॥ ६ ॥ महादेवजी बोले कि जिसकी स्त्री धर्म से ब्याही गई है वह सच्छूद्र कहा गया है और समान कुलरूपवाली व दश दोषों से रहित स्त्री को ॥ ७ ॥ जिसने वेद की विधि से ब्याहा है वह सच्छूद्र कहा गयाहै याने अक्लीवा, अव्यंगिनी, उत्तम व महारोगादिकोंसे अदूषित ॥ ८ ॥ प्रशंसित व उत्तम गुणोंवाली तथा नेत्ररोगसे

रहित और बधिरता से रहित व चंचल और मधुर बोलनेवाली दश दोषोंसे रहित जो कन्या वेदोक्तविधि से मनुष्यों से ब्याही गई है और वह जिस की सदैव स्त्री होती है ॥९।१०॥ देवादिकों का विभाग करनेवाला वह सच्छूद्र जानने योग्य है और सब पुण्यकार्यों में वह श्रेष्ठ कहीगई है ॥११॥ व उससे भलीभांति किया हुआ धर्म संपूर्ण फल को देनेवाला है और विशेष कर चातुर्मास्य में उसके साथ अधिक गुण होता है ॥ १२ ॥ और स्त्रीमें स्नेह करनेवाला व पवित्र तथा सेवकादिकों के पोषण में तत्पर और नित्य श्राद्धादि करनेवाला इष्टापूर्तकर्म का साधन करनेवाला होता है ॥ १३ ॥ और नमस्कारादि मंत्र से व नामों के कहने से और

मधुरभाषिणी ॥ ९ ॥ दूषणैर्दशभिर्हीना वेदोक्तविधिना नरैः ॥ विवाहिता च सा पत्नी गृहिणी यस्य सर्वदा ॥ १० ॥ सच्छूद्रः स तु विज्ञेयो देवादीनां विभागकृत् ॥ पुण्यकार्येषु सर्वेषु प्रथमा सा प्रकीर्तिता ॥ ११ ॥ तया सुविहितो धर्मः सम्पूर्णफलदायकः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण तया सह गुणाधिकः ॥ १२ ॥ भार्यारतिः शुचिर्भृत्यादीनां पोषणतत्परः ॥ श्राद्धादिकारको नित्यमिष्टापूर्तप्रसाधकः ॥ १३ ॥ नमस्कारादिमन्त्रेण नामसंकीर्तनेन च ॥ देवास्तस्य च तुष्यन्ति पञ्चयज्ञादिकैः शुभैः ॥ १४ ॥ स्नानं च तर्पणं चैव वह्निहोमोप्यमन्त्रकः ॥ ब्रह्मयज्ञोऽतिथेः पूजा पञ्चयज्ञान्न संत्यजेत् ॥ १५ ॥ कार्यं स्त्रीभिश्च शूद्रैश्च ह्यमन्त्रपञ्चयज्ञकम् ॥ पञ्चयज्ञैश्च सन्तुष्टा यथैषाम्पितृदेवताः ॥ १६ ॥ तथा पतिव्रतायाश्च पतिशुश्रूषया सदा ॥ पतिव्रताया देहे तु सर्वे देवाश्च सन्ति हि ॥ १७ ॥ अतस्ताभ्यां समेताभ्यां धर्मादीनां समागमः ॥ यदोभयोर्मते पृष्टे सन्तुष्टाः पितृदेवताः ॥ १८ ॥ कार्यादीनां च सर्वेषां सङ्गमस्तत्र नित्यदा ॥

उत्तम पंचयज्ञादिकों से उसके ऊपर देवता प्रसन्न होते हैं ॥ १४ ॥ और स्नान, तर्पण व विना मंत्र के अग्नि में हवन और ब्रह्मयज्ञ तथा अतिथि का पूजन व पंचयज्ञोंको वह न त्याग करै ॥ १५ ॥ और स्त्रियों व शूद्रों को भी विना मंत्र के पंचयज्ञ करना चाहिये और जिस प्रकार पंचयज्ञों से इनके ऊपर पितर व देवता प्रसन्न होते हैं ॥ १६ ॥ वैसेही पतिव्रता के ऊपर पति की सेवा से सदैव प्रसन्न होते हैं और पतिव्रता के शरीर में सब देवता होते हैं ॥ १७ ॥ इस कारण उन दोनों समेत धर्मादिकों का समागम होता है और जब उन दोनों का मत पूछने पर पितर व देवता प्रसन्न होते हैं ॥ १८ ॥ तब वहां सदैव सब कार्यादिकों का समागम

होता है और चातुर्मास्य आने पर विष्णुजी की भक्ति से उन दोनों का कल्याण होता है ॥ १९ ॥ कि जिस की स्त्री समान कुल में उत्पन्न धारित होती है और पहला पति अर्धभागी होता है दूसरे को किसी प्रकार नहीं होता है ॥ २० ॥ व अर्थ व कार्य का इस स्त्रीको अधिकार होता है उससे वह धर्मार्धधारिणी होती है और उन दोनों का अपना अपना किया हुआ शुभाशुभ कर्म होता है ॥ २१ ॥ व हे द्विज ! जो स्त्री उत्तम तप से मरे हुए पति के पश्चात् गमन करती है वह पति-व्रता जानने योग्य है और उससे वंश उद्धार किया जाता है ॥ २२ ॥ और अन्य जातिवाले मरे हुए पति के पश्चात् जो ब्याही या विना ब्याही स्त्री अग्नि के

चातुर्मास्ये समायाते विष्णुभक्त्या तयोः शिवम् ॥ १९ ॥ समानजातिसंभूता पत्नी यस्य धृता भवेत् ॥ पूर्वो भर्तार्द्ध भागीस्याद्द्वितीयस्य न किञ्चन ॥ २० ॥ अर्थकार्याधिकारोस्यास्तेन धमार्धधारिणी ॥ स्वं स्वं कृतं सदैवस्यात्तयोः कर्म शुभाशुभम् ॥ २१ ॥ यानुगच्छति भर्त्तारं मृतं सु तपसा द्विज ॥ साध्वी सा हि परिज्ञेया तया चोद्ध्रियते कुलम् ॥ २२ ॥ अन्यजातिमृतं चाथ धृतावापि विवाहिता ॥ वैश्वानरस्य मार्गेण सा तमुद्धरते पतिम् ॥ २३ ॥ यथा जलाच्च जम्बालः कृष्यते धार्मिकैर्नृभिः ॥ एवमुद्धरते साध्वी भर्त्तारं यानुगच्छति ॥ २४ ॥ अन्यजातिसमुद्भूता अन्येन विधृता यदि ॥ तावुभौ धर्मकार्येषु सन्त्याज्यौ नित्यदा मतौ ॥ २५ ॥ स्वं स्वं कर्म प्रकुरुतः सत्कर्मजं स्वकं फलम् ॥ तस्माद्वरिष्ठा हीना वा सत्कुल्याशूद्रसंभवैः ॥ २६ ॥ धृता न कार्या सा पत्नी यत्करोति न वर्द्धते ॥ तया सह कृतं

मार्ग से गमन करती है वह उस पति को उधारती है ॥ २३ ॥ जिस प्रकार धर्मवान् मनुष्य जल से कीचड़ को खींच लेते हैं उस प्रकार जो पतिव्रता स्त्री पति के पश्चात् गमन करती है वह पति को उधारती है ॥ २४ ॥ और अन्य जाति से उपजी हुई स्त्री को यदि अन्य पुरुष ने धारण किया है तो वे दोनो सदैव धर्मकार्यों में त्यागने योग्य माने गये हैं ॥ २५ ॥ और वे दोनों अपने अपने कर्म को करते हैं व उत्तम कर्म से उपजे हुए फल को भोगते हैं व उससे श्रेष्ठ या हीन व उत्तम कुलमें उपजी हुई जो स्त्री होवै शूद्र जाति में उपजे हुए मनुष्यों को ॥ २६ ॥ उस स्त्री को धारण न करना चाहिये क्योंकि उसके साथ किया हुआ पुण्य दशगुणा

और बढ़ता है व उनके पुत्रों से भी किया हुआ कर्म अमित तृप्तिदायक नहीं होता है व जो कन्या मोलली जाती है वह दासी कही गई है ॥ २७ । २८ ॥ और बढ़ता है और अन्यथा विवाह की विधि से ब्याही हुई वह पितरों व देवताओं के अर्थ को साधन करनेवाली होती है क्योंकि सुन्दर लक्षणोंवाली व विनीत तथा सच्छूद्र के अधिकार में वह कभी नहीं होती है व जो कन्या आपही पिता से उद्यम कर वर के लिये दीजाती है ॥ २९ ॥ जिस कर्म को मनुष्य करता है वह नहीं बढ़ता है और अन्यथा विवाह की विधि से ब्याही हुई वह पितरों व देवताओं के अर्थ को साधन करनेवाली होती है क्योंकि सुन्दर लक्षणोंवाली व विनीत तथा उत्तम और विवेकादि गुणोंवाली जो उत्तम कन्या होती है ॥ ३० ॥ उत्तम चरित्रोंवाली व पति में परायण वह उनके लिये देने के योग्य है और शुद्ध वंश में उत्पन्न

पुण्यं वर्द्धते दशधोत्तरम् ॥ २७ ॥ अनन्ततृप्तिदं नैव तत्सुतैरपि वा तथा ॥ क्रयक्रीता च या कन्या दासी सा परिकीर्तिता ॥ २८ ॥ सच्छूद्रस्याधिकारे सा कदाचिन्नैव जायते ॥ या कन्या स्वयमुद्यम्य पित्रा दत्ता वराय च ॥ २९ ॥ विवाहविधिनोढा पितृदेवार्थसाधिनी ॥ सुलक्षणा विनीता या विवेकादिगुणा शुभा ॥ ३० ॥ सच्चरित्रा पतिपरा सा तेभ्यो दातुमर्हति ॥ विशुद्धकुलजा कन्या धर्मोढा धर्मचारिणी ॥ ३१ ॥ सा पुनाति कुलं सर्वं मातृतः पितृतस्तथा ॥ एष एव मया प्रोक्तः सच्छूद्राणां परो विधिः ॥ ३२ ॥ अधोजातिसमुद्भूताः सच्छूद्रात्क्रमहीनजाः ॥ विवाहो दशधा तेषां दशधा पुत्रता भवेत् ॥ ३३ ॥ चत्वार उत्तमाः प्रोक्ता विवाहा मुनिसत्तम ॥ शेषाः सर्वप्रकृतिषु कथिताश्च पुराविदैः ॥ ३४ ॥ प्राजापत्यस्तथा ब्राह्मो दैवार्षौ चातिशोभनाः ॥ गान्धर्वश्चासुरश्चैव राक्षसश्च पिशाचकः ॥ ३५ ॥ प्रातिभो घातिनश्चेति विवाहाः कथिता दश ॥ एते हि हीनजातीनां विवाहाः परिकीर्तिताः ॥ ३६ ॥ औरसः क्षेत्रज

व धर्मचारिणी जो कन्या धर्म से ब्याही गई है ॥ ३१ ॥ वह माता व पिता के सब वंश को उधारती है मैंने सच्छूद्रों की इस उत्तम विधि को कहा ॥ ३२ ॥ और नीच जाति में उत्पन्न व सच्छूद्र से क्रम से जो हीन में पैदा हुए हैं उनका दश प्रकार का विवाह होता है और दश प्रकार की पुत्रता होती है ॥ ३३ ॥ हे मुनिसत्तम ! चार विवाह उत्तम कहे गये हैं और शेष विवाह सब प्रजाओं में पुरातन समय के विद्वानों ने कहा है ॥ ३४ ॥ प्राजापत्य, ब्राह्म, दैव, आर्ष व अतिउत्तम गांधर्व, आसुर, राक्षस व पिशाच ॥ ३५ ॥ प्रातिभ व घातिन ये दश विवाह कहे गये हैं ये हीन जातिवालों के विवाह कहे गये हैं ॥ ३६ ॥ और औरस,

क्षेत्रज, दत्त, कृत्रिम, गूढोत्पन्न, अपविद्ध, कानीन व सहोढज॥ ३७ ॥ और क्रीत व पौनर्भव ये दश प्रकार के पुत्र कहे गये हैं व औरस से जो हीन है वे भी उन को शुभदायक हैं ॥ ३८ ॥ व प्रजाओंके मध्य में जिस प्रकार अठारह संख्यक नीच हैं उनको न विधि है न क्रियाहै और न स्मृतिमार्ग है ॥ ३९ ॥ उनको ब्राह्मण की सेवा व विष्णुका ध्यान तथा शिवपूजन व बिन मन्त्र से पुण्य करना और सदैव दान देना चाहिये ॥ ४० ॥ और श्रद्धा से जो दान दिया जाता है उस दान का संसार में नाश नहीं होताहै और बिन श्रद्धा व अपवित्रता से दान वैर का कारण है ॥ ४१ ॥ व उनका अहिंसादिक से कहा हुआ धर्म बडा फलवाला है और चातु-

श्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ॥ गूढोत्पन्नोपविद्धश्च कानीनश्च सहोढजः ॥ ३७ ॥ क्रीतः पौनर्भवश्चापि पुत्रा दशविधाः स्मृताः ॥ औरसादपि हीनाश्च तेपि तेषां शुभावहाः ॥ ३८ ॥ अष्टादशमिता नीचा प्रकृतीनां यथातथा ॥ विधि नैव क्रिया नैव स्मृतिमार्गोऽपि नैव च ॥ ३९ ॥ तासां ब्राह्मणशुश्रूषा विष्णुध्यानं शिवार्चनम् ॥ अमन्त्रात्पुण्यकरण दानं देयं च वै सदा ॥ ४० ॥ न दानस्य क्षयो लोके श्रद्धया यत्प्रदीयते ॥ अश्रद्धया शुचितया दानं वैरस्य कारणम् ॥ ४१ ॥ अहिंसादिसमादिष्टो धर्मस्तासां महाफलः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण त्रिदिवेशादिसेवया ॥ ४२ ॥ सुदर्शनैस्तथा धर्मः सेव्यते ह्यविरोधिभिः ॥ सच्छूद्रैर्दानपुण्यैश्च द्विजशुश्रूषणादिभिः ॥ ४३ ॥ वृत्तिश्च सत्यानृतजा वाणिज्यव्यवहारजा ॥ अशीतिभागमादद्याद्द्विजाद्वार्धुषिकः शते ॥ ४४ ॥ सपादभागवृद्धा तु क्षत्रियादिषु गृह्यते ॥ एवं न बन्धो भवति पातकस्य कदाचन ॥ ४५ ॥ प्रातःकर्म सुरेशानं मध्याह्ने द्विजसेवनम् ॥ अपराह्णेऽथ कार्याणि कुर्वं

र्मास्य में विशेषकर देवादिकों की सेवासे धर्म बडा फलवान् होता है॥ ४२॥ और उत्तमदर्शनवाले अविरोधी सच्छूद्रों से ब्राह्मणों की सेवादिकों से व दान,पुण्यों से धर्म सेवन किया जाता है ॥ ४३ ॥ और वाणिज्य के व्यवहार से उत्पन्न सौदागरी की वृत्ति (जीविका) करना चाहिये और व्याजखोर ब्राह्मण से प्रत्येक सैकड़ा में अस्सीवाँभाग लेवै याने सवा रुपया सैकड़ा माहवारी सूद ब्राह्मण से लेना चाहिये ॥ ४४ ॥ और क्रम से सवाई भाग वृद्धि क्षत्रियादिकों में ग्रहण की जाती है व इसप्रकार कभी पाप का बन्धन नहीं होता है ॥ ४५ ॥ प्रातःकाल सुरेश्वर कर्म व मध्याह्न में ब्राह्मण की सेवा और अपराह्न मे कार्यों को करता हुआ मनुष्य सुखी

होता है ॥ ४६ ॥ और अतिथि व ब्राह्मणों को पूजनेवाले तथा पञ्चयज्ञ में परायण कार्य में तत्पर गृहस्थ मनुष्यों को जीवनपर्यन्त सदैव होना चाहिये ॥ ४७ ॥ और विष्णुजी की भक्ति में तत्पर व वेदमन्त्र पाठ करनेवाले तथा सदैव दानशील व दीनार्तजनप्रिय ॥ ४८ ॥ और क्षमादि गुणों से सयुत व द्वादशाक्षर को पूजनेवाले और षडक्षर मन्त्र के महोद्गार के परम आनन्द से पूरित ॥ ४९ ॥ व उत्तम सन्तान और उत्तम आचारवाले मत्सरतारहित व ताप क्लेश से वर्जित जनों को सदैव सज्जनों की सेवाओं से स्थित होना चाहिये ॥ ५० ॥ इस प्रकार धर्म से डरे हुए विदेशगमन से रहित सच्छूद्रों को द्रव्य के अनुसार सब प्राणियों की

न्मर्त्यः सुखी भवेत् ॥ ४६ ॥ गृहस्थैश्च सदा भाव्यं यावज्जीवं क्रियापरैः ॥ पञ्चयज्ञरतैश्चैवातिथिद्विजसुपूजकैः ॥ ४७ ॥ विष्णुभक्तिरतैश्चैव वेदमन्त्रविपाठकैः ॥ सततं दानशीलैश्च दीनार्तजनवत्सलैः ॥ ४८ ॥ क्षमादिगुणसंयुक्तैर्द्वादशाक्षरपूजकैः ॥ षडक्षरमहोद्गारपरमानन्दपूरितैः ॥ ४९ ॥ सदपत्यैः सदाचारैः सतां शुश्रूषणैरपि ॥ विमत्सरैः सदा स्थेयं तापक्लेशविवर्जितैः ॥ ५० ॥ प्रव्रज्यावर्जनैरेवं सच्छूद्रैर्धर्मतर्जितैः ॥ तोषणं सर्वभूतानां कार्यं वित्तानुसारतः ॥ ५१ ॥ सदा विष्णुशिवादीनां ये भक्तास्ते नराः सदा ॥ देववद्दिवि दीव्यन्ति चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईश्वरसनत्कुमारसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये तपोधिकारे सच्छूद्रकथनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥

नारद उवाच ॥ अष्टादश प्रकृतयः का वदस्व पितामह ॥ वृत्तिस्तासां च को धर्मः सर्वं विस्तरतो मम ॥ १ ॥ ब्रह्मोवा

प्रसन्नता करना चाहिये ॥ ५१ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर जो मनुष्य सदैव विष्णु व शिवादिकों के भक्त हैं वे मनुष्य सदैव देवताओं की नाईं स्वर्ग में क्रीड़ा करते हैं ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेचातुर्मास्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकाया तपोधिकारे सच्छूद्रकथनंनाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥

दो० ॥ यथा अठारह भांति के भये प्रजा उत्पन्न । सोइ दशमअध्यायमें चरित मोदसंपन्न ॥ नारदजी बोले कि हे पितामह ! अठारह प्रकृतियां याने प्रजा लोग कौन हैं और उनकी कौन जीविका व कौन धर्म है इस सबको मुझसे विस्तार से कहिये ॥ १ ॥ ब्रह्माजी बोले कि अपने काल के प्रमाण मे जगे हुए जगदीशविष्णुजी

की नाभि के कमलकोश से मेरा जन्म हुआ ॥ २ ॥ तदनन्तर पुरातन समय बहुत दिनों तक मन में अनेक भाति की राजसी प्रजाओं को रचने की इच्छावाले विष्णु जीने मुझको स्मरण किया ॥ ३ ॥ और वहा मैं चतुर्मुख पुत्र पैदा हुआ इसके अनन्तर नाभि के नालसे पेट में पैठकर मैंने देखा ॥ ४ ॥ फिर सृष्टि के लिये दौड़ते व विस्मयसे चिन्ता करते हुए मुझको वहा करोडों ब्रह्माण्डों का दर्शन हुआ ॥ ५ ॥ फिर कमल के नाल से पैठकर मैं जबतक बाहर आया तबतक वह सब सृष्टि के अर्थ का कारण भूलगया ॥ ६ ॥ तदनन्तर फिर जाकर चार प्रकार के प्रजाओं को रचकर नाभि के नाल से निकलकर विस्मृतचित्त से ॥ ७ ॥ उस समय मैं जडवत्

च ॥ मज्जन्माभूद्भगवतो नाभिपङ्कजकोशतः ॥ स्वकालपरिमाणेन प्रबुद्धस्य जगत्पतेः ॥ २ ॥ ततो बहुतिथे काले केशवेन पुरा स्मृतः ॥ स्रष्टुकामेन विविधाः प्रजा मनसि राजसीः ॥ ३ ॥ अहं कमलजस्तत्र जातः पुत्रश्चतुर्मुखः ॥ उदरं नाभिनालेन प्रविश्याथ व्यलोकयम् ॥ ४ ॥ तत्र ब्रह्माण्डकोटीनां दर्शनं मेऽभवत्पुनः ॥ विस्मयाच्चिन्तयानस्य सृष्ट्यर्थमभिधावतः ॥ ५ ॥ निर्गम्य पुनरेवाहं पद्मनालेन यावता ॥ बहिरागां विस्मृतं तत्सर्वं सृष्ट्यर्थकारणम् ॥ ६ ॥ पुनरेव ततो गत्वा प्रजाः सृष्ट्वा चतुर्विधाः ॥ नाभिनालेन निर्गत्य विस्मृतेनान्तरात्मना ॥ ७ ॥ तदाहं जडवज्जातो वागुवाचाशरीरिणी ॥ तपस्तप महाबुद्धे जडत्वं नोचितं तव ॥ ८ ॥ दशवर्षसहस्राणि ततोऽहं तप आस्थितः ॥ पुनराकाशजा वाणी मामुवाचाविनश्वरा ॥ ९ ॥ वेदरूपाश्रिता पूर्वमाविर्भूता तपोबलात् ॥ ततो भगवतादिष्टः सृज त्वं बहुधाः प्रजाः ॥ १० ॥ राजसं गुणमाश्रित्य भूतसर्गमकल्मषम् ॥ मनसा मानसी सृष्टिः प्रथमं चिन्तिता मया ॥ ११ ॥ ततो

होगया और आकाशवाणी बोली कि हे महाबुद्धे ! तपस्या करो तुमको जडता योग्य नहीं है ॥ ८ ॥ तदनन्तर मैं दशहज़ार वर्षतक तपस्या में स्थित हुआ फिर आकाश में उपजी हुई अविनाशिनी वाणी ने मुझसे कहा ॥ ९ ॥ कि जिस लिये तपोबल से पहले वेदरूपाश्रिता वाणी प्रकट हुई है उसी कारण विष्णुजी से आज्ञा दिये हुए तुम अनेक प्रकार की प्रजाओं को रचो ॥ १० ॥ और राजसी गुण में आश्रित होकर पापरहित भूत सृष्टि को रचो मैंने पहले मन से मानसी सृष्टि को चिन्तन किया ॥ ११ ॥ उससे मरीचि आदिक मुनीश्वर ब्राह्मण लोग उत्पन्न हुए और उनके मध्य में ज्ञान व वेदान्त के पारगामी छोटे तुम उत्पन्न

हुए ॥ १२ ॥ और सदैव कर्म में निष्ठ वे लोग सृष्टि के लिये सदैव उद्यत हुए और व्यापाररहित व विष्णुभक्त तथा एकान्त ब्रह्मके सेवक ॥ १३ ॥ व ममतारहित और अहंकारसे रहित तुम मेरे मानसी पुत्र हो मैंने उनके क्रमसे वेदोंकी रक्षाके लिये ॥ १४ ॥ पहली ब्राह्मणादिक मानसीसृष्टिको रचा तदनन्तर हे नारद ! मैंने वहा आगिकी सृष्टि को रचा ॥ १५ ॥ मेरे मुखसे ब्राह्मण पैदा हुए व भुजाओं से क्षत्रिय उत्पन्न हुए और वैश्य ऊरुसे उत्पन्न हुए व पांवों से शूद्र हुए ॥ १६ ॥ और अनुलोम व विलोम से और क्रमसे व क्रम के योग से शूद्र से नीचे -नीचे सब चरणतलसे पैदा हुए ॥ १७ ॥ व हे नारद ! वे सब प्रजा लोग मेरे देहांश से उत्पन्न हैं तुम

वै ब्राह्मणा जाता मरीच्यादिमुनीश्वराः ॥ तेषां कनीयांस्त्वं जातो ज्ञानवेदान्तपारगः ॥ १२ ॥ कर्मनिष्ठाश्च ते नित्यं सृष्ट्यर्थं सततोद्यताः ॥ निर्व्यापारो विष्णुभक्त एकान्तब्रह्मसेवकः ॥ १३ ॥ निर्ममो निरहंकारो ममत्वं मानसः सुतः ॥ क्रमान्मया तु तेषां वै वेदरक्षार्थमेव च ॥ १४ ॥ प्रथमा मानसी सृष्टिर्द्विजात्यादिविनिर्मिता ॥ ततोहमाङ्गिकीं सृष्टिं सृष्ट वांस्तत्र नारद ॥ १५ ॥ मुखाच्च ब्राह्मणा जाता बाहुभ्यः क्षत्रिया मम ॥ वैश्या ऊरुसमुद्भूताः पद्भ्यां शूद्रा बभूविरे ॥ १६ ॥ अनुलोमविलोमाभ्यां क्रमाच्च क्रमयोगतः ॥ शूद्रादधोधोजाताश्च सर्वे पादतलोद्भवाः ॥ १७ ॥ ताः सर्वास्तु प्रकृतयो मम देहांशसंभवाः ॥ नारद त्वं विजानीहि तासां नामानि वच्मि ते ॥ १८ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रय एव द्विजातयः ॥ वेदास्तपोध्ययनं च यजनं दानमेव च ॥ १९ ॥ वृत्तिरध्यापनाच्चैव तथा स्वल्पप्रतिग्रहात् ॥ विप्रः समर्थस्तपसा यद्यपि स्यात्प्रतिग्रहे ॥ २० ॥ तथापि नैव गृह्णीयात्तपोरक्षायतः सदा ॥ वेदपाठो विष्णुपूजा ब्रह्मध्यानमलोभता ॥ २१ ॥ अक्रो

इसको जानो और उनके नामों को मैं तुमसे कहता हूं ॥ १८ ॥ कि ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य तीनही द्विजाति है और वेद, तपस्या, पठन, यज्ञ करना व दान ॥ १९ ॥ और पढ़ानेसे व थोड़ा दान लेने से ब्राह्मणों की जीविका है यद्यपि ब्राह्मण तपस्या के कारण दान लेने में समर्थ हैं ॥ २० ॥ तथापि उसको ग्रहण न करै क्योंकि सदैव तपस्या की रक्षा होती है और वेदपाठ, विष्णुपूजन, ब्रह्मध्यान व निर्लोभता ॥ २१ ॥ और क्रोध न होना व ममताराहित्य, क्षमासारता और

को सदैव शुरुपूजन कहागया है और ब्राह्मणों को नित्यदानही प्राकृत उत्तम विधि है ॥ ४२ ॥ व हे महामुने ! सब वर्णों व आश्रमों और सब पुरुषोंको सदैव विष्णु-भक्ति उत्तम होती है ॥ ४३ ॥ यह सब तुमसे कहागया कि जिस प्रकार प्रकृतियों की उत्पत्ति हुई और महापवित्र कथाको सुनिये कि जिसप्रकार शूद्र शुद्धि को प्राप्त हुआ है ॥ ४४ ॥ इस पवित्र पुराण को जो पवित्रबुद्धिवाला मनुष्य सुनता या पढ़ता है कार्यों में तत्पर वह पहले के इकट्ठा किये हुए पापों को नाशकर विष्णुजीके मन्दिर को प्राप्त होताहै ॥४५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्ये प्रकृतिकथनंनाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

दिता ॥ विप्राणां प्राकृतो नित्यं दानमेव परो विधिः ॥ ४२ ॥ सर्वेषामेव वर्णानामाश्रमाणां महामुने ॥ सर्वासां प्रकृतीनां च विष्णुभक्तिः सदा शुभा ॥ ४३ ॥ इति ते कथितं सर्वं यथाप्रकृतिसम्भवम् ॥ कथां शृणु महापुण्यां शूद्रः शुद्धिमगाद्यथा ॥ ४४ ॥ इदं पुराणं परमं पवित्रं विशुद्धधीर्यस्तु शृणोति वा पठेत् ॥ विधूय पापानि पुरार्जितानि स याति विष्णोर्भवनं क्रियापरः ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये प्रकृतिकथनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ब्रह्मोवाच ॥ शूद्रः पैजवनो नाम गार्हस्थ्याच्छुद्धिमाप्तवान् ॥ धर्ममार्गाविरोधेन तन्निबोध महामते ॥ १ ॥ आसीत्पैजवनः शूद्रः पुरा त्रेतायुगे किल ॥ स धर्मनिरतः ख्यातो विष्णुब्राह्मणपूजकः ॥ २ ॥ न्यायागतधनो नित्यं शान्तः सर्वजनप्रियः ॥ सत्यवादी विवेकज्ञस्तस्य भार्या च सुन्दरी ॥ ३ ॥ धर्मोढा वेदविधिना समानकुलजा शुभा ॥

दो० ॥ धर्ममार्ग पैजवन सन कह गालव मुनिनाथ । सो गेरहें अध्याय में वर्णित उत्तम गाथ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे महामते ! पैजवननामक शूद्र ने जिस प्रकार धर्ममार्ग के अविरोध से शुद्धि को पाया है उसको सुनिये ॥ १ ॥ कि पुरातन समय त्रेतायुग में पैजवननामक शूद्र हुआ है वह धर्म में तत्पर था और विष्णु व ब्राह्मणों का पूजक प्रसिद्ध था ॥ २ ॥ और वह सदैव न्याय से धन को प्राप्त करता था व शान्त तथा सब जनों को प्यारा था और सत्यवादी व विवेक को जाननेवाला था और उसकी स्त्री सुन्दरी थी ॥ ३ ॥ व समान कुल में उत्पन्न वह धर्म से ब्याही हुई उत्तम व पतिव्रता तथा बडे ऐश्वर्यवाली स्त्री देवताओं

व ब्राह्मणों के हित में परायण थी ॥ ४ ॥ काशी में सम्बन्धवाली वह स्त्री वैजयन्तीपुरी में व्याही गई और धर्म करने में प्रवीण वह वैष्णवव्रत को करती थी ॥ ५ ॥ और पति के साथ उसने भलीभांति क्रीडा किया व उसने भी विनीत की नाईं उसके साथ समय में क्रीडा किया जैसे कि हस्तिनी के साथ महागज क्रीड़ा करता है ॥ ६ ॥ और पहले के पुण्य से उस महात्मा को द्रव्य की प्राप्ति हुई वह नित्य स्वजनों से स्वदेश व विदेशमें उत्पन्न वाणिज्यको ॥ ७ ॥ पराये व अपने धनों से कराता था इसप्रकार उस धर्मदर्शी के बहुत प्रकार का धन हुआ ॥ ८ ॥ और पिता की सेवामें परायण दो पुत्र पैदा हुए और उसके पुत्र पिता के भक्त व द्रव्यादि

प्रतिव्रता महाभागा देवद्विजहिते रता ॥ ४ ॥ काश्यां सम्बन्धिता बाला वैजयन्त्यां विवाहिता ॥ सा धर्माचरणे दक्षा वैष्णवव्रतचारिणी ॥ ५ ॥ भर्त्रा सह तथा सम्यक् चिक्रीडे सुविनीतवत् ॥ सोऽपि रेमे तया काले हस्तिन्येव महागजः ॥ ६ ॥ अर्थाप्तिः पूर्वपुण्येन जाता तस्य महात्मनः ॥ वाणिज्यं स्वजनैर्नित्यं स्वदेशपरदेशजम् ॥ ७ ॥ कारयत्यर्थजातैश्च परकीयस्वकीयजैः ॥ एवमर्थश्च बहुधा संजातो धर्मदर्शिनः ॥ ८ ॥ पुत्रद्वयं च संजातं पितुः शुश्रूषणे रतम् ॥ तस्य पुत्राः पितुर्भक्ता द्रव्यादिमदवर्जिताः ॥ ९ ॥ पितृवाक्यरताः श्रेष्ठाः स्वधर्माचारशोभनाः ॥ पित्रोः शुश्रूषणादन्यन्नाभिनन्दन्ति किंचन ॥ १० ॥ ते सम्बन्धैः सुसम्बद्धाः पित्रा धर्मार्थदर्शिना ॥ तत्पत्न्यो मातृपित्रर्चां कारयन्त्यनिवारितम् ॥ ११ ॥ ऋद्धिमद्भवनं तस्य धनधान्यसमन्वितम् ॥ सोऽपि धर्मरतो नित्यं देवतातिथिपूजकः ॥ १२ ॥ गृहागतो न विमुखो यस्य याति कदाचन ॥ शीतकाले धनं प्रादादुष्णकाले जलान्नदः ॥ १३ ॥ वर्षाकाले वस्त्र

के अहंकार से रहित थे ॥ ९ ॥ और पितरों के वचन में परायण व श्रेष्ठ तथा अपने धर्म के आचार से उत्तम वे माता, पिता की सेवा से अन्य किसी कर्म की प्रशंसा नहीं करते थे ॥ १० ॥ और धर्म व अर्थ को देखनेवाले पिताने सम्बन्धों से उनको भलीभाति बाँधा और उनकी स्त्रिया बिन रोंकटोंक माता, पिता का पूजन करती थीं ॥ ११ ॥ और उसका घर ऋद्धियों से संयुत तथा धन, धान्य से युक्तथा और सदैव धर्म में परायण वह भी देवताओं व अतिथियोंका पूजक था ॥ १२ ॥ और जिसके घर में आया हुआ पुरुष कभी विमुख नहीं जाता था और शीतसमय में वह धन को देता था व गरम समय में जल व अन्नको देताथा ॥ १३ ॥ और

वर्षा समय में वस्त्रदायक व सदैव अन्न का दायक था और बावली, कूप, तड़ागादिक, पौंशाला व देवगृहों को ॥ १४ ॥ उचित समय में शिव व विष्णु के व्रतमें स्थित वह कराता था वर्णों का किया हुआ इष्टधर्म महाफलदायक है ॥ १५ ॥ व उन पूर्व धर्मवाले अन्यजनों का धर्म सदैव पवित्रकारक है व्यसनों से अनाश्रित वह धनाढ्य हुआ ॥ १६ ॥ और वह सदैव विष्णुजी की भक्ति में परायण था व चातुर्मास्य में विशेषकर विष्णुभक्ति में तत्पर था एक समय बहुत शिष्यों से घिरे हुए गालव मुनि ॥ १७ ॥ जोकि ब्रह्मज्ञान में तत्पर तथा शान्त व तपस्या में निष्ठ व बहुत कान्तिमान् थे वे पैजवन शूद्र के घर में आये ॥ १८ ॥

दश्च बभूवान्नप्रदः सदा ॥ वापीकूपतडागादिप्रपादेवगृहाणि च ॥ १४ ॥ कारयत्युचिते काले शिवविष्णुव्रतस्थि तः ॥ इष्टधर्मस्तु वर्णानां समाचीर्णो महाफलः ॥ १५ ॥ अन्येषां पूर्वधर्माणां तेषां पूतकरः सदा ॥ स बभूव धनाढ्यो पि व्यसनैर्न समाश्रितः ॥ १६ ॥ विष्णुभक्तिरतो नित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ एकदा गालवमुनिः शिष्यैर्बहुभिरावृ तः ॥ १७ ॥ ब्रह्मज्ञानरतः शान्तस्तपोनिष्ठो महावशी ॥ अभ्याजगाम शूद्रस्य गेहे पैजवनस्य सः ॥ १८ ॥ सवाग्भि र्मधुभिस्तस्य ह्यभ्युत्थानासनादिभिः ॥ उपचारैः पुनर्युक्तः कृतार्थ इव मानयन् ॥ १९ ॥ अद्य मे सफलं जन्म जातं जीवितमुत्तमम् ॥ अद्य मे सफलो धर्मः सकुलश्चोद्धृतस्त्वया ॥ २० ॥ मम पापसहस्राणि दृष्ट्या दग्धानि ते मु ने ॥ गृहं मम गृहस्थस्य सकलं पावितं त्वया ॥ २१ ॥ तस्य भक्त्या प्रसन्नोभूद्गतमार्गपरिश्रमः ॥ उवाच मुनिशा र्दूलः सच्छूद्रं तं कृताञ्जलिम् ॥ २२ ॥ कच्चित्ते कुशलं सौम्य मनोधर्मे प्रवर्तते ॥ अर्थानुबन्धाः सततं बन्धुदारसुता

और वह शूद्र वचनों से व मधुपर्क तथा उनके अभ्युत्थान व आसनादिकों से और उपचारों से युक्त फिर कृतार्थसा मानता हुआ बोला ॥ १९ ॥ कि आज मेरा जन्म सफल हुआ व जीवन उत्तम हुआ और आज मेरा धर्म सफल हुआ व तुमसे कुलसमेत मैं उधारा गया ॥ २० ॥ हे मुने ! तुम्हारी दृष्टि से मेरे हज़ारों पाप जल गये व मुझ गृहस्थ के समस्त घर को तुमने पवित्र कर दिया ॥ २१ ॥ उस शूद्र की भक्ति से पथिश्रम से रहित मुनिश्रेष्ठ गालवजी प्रसन्न हुए व हाथों को जोडे हुए उस सच्छूद्रसे बोले ॥ २२ ॥ कि हे सौम्य ! क्या तुम्हारे कुशल है और धर्म में मन वर्तमान है और सदैव बन्धु, स्त्री व पुत्रादिक अर्थ के अनुबन्धी

हैं ॥२३॥ और गोविन्दमें व दानमें सदैव भक्ति वर्तमानहै और धर्म,अर्थ,काम व कार्यमें तुम्हारा मन प्रभावसहितहै ॥२४॥ और विष्णुजीका चरणोदक नित्य मस्तक से धारण किया जाता है या नहीं क्योंकि चरणोदक व गंगोदक बारहवर्ष के फलको देनेवाला है ॥ २५ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर वह फल दुगुना होता है और हरिभक्ति, हरिकथा व विष्णुजी का स्तोत्र और विष्णुजी को प्रणाम करना ॥ २६ ॥ और विष्णु का ध्यान व विष्णु का पूजन विष्णुदेवजी के सोनेपर मोक्ष-कारी है ऐसा कहते हुए मुनि से प्रणाम करके उस शूद्र ने फिर कहा ॥ २७ ॥ कि आपकी दृष्टि से यह परिश्रम का फल हुआ इसमें सन्देह नहीं है तथापि तुम्हारी

दयः ॥ २३ ॥ गोविन्दे सततं भक्तिस्तथा दाने प्रवर्तते ॥ धर्मार्थकामकार्येषु सप्रभावं मनस्तव ॥ २४ ॥ विष्णुपादोदकं नित्यं शिरसा धार्यते न वा ॥ पादोद्भवं च गङ्गोदं द्वादशाब्दफलप्रदम् ॥ २५ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण तत्फलं द्विगुणं भवेत् ॥ हरिभक्तिर्हरिकथा हरिस्तोत्रं हरेर्नतिः ॥ २६ ॥ हरिध्यानं हरेः पूजा सुप्ते देवे च मोक्षकृत् ॥ एवं ब्रुवाणं स मुनिं पुनराह नतिं गतः ॥ २७ ॥ भवदृष्ट्याश्रमफलमेतज्जातं न संशयः ॥ तथापि श्रोतुमिच्छामि तव वाणीमनामयीम् ॥ २८ ॥ भवादृशानां गमनं सर्वार्थेषु प्रकल्प्यते ॥ ततस्तौ सुमुदायुक्तौ संजातौ हृष्टचेतसौ ॥ २९ ॥ मुनिः पैजवनो नाम सच्छूद्रः प्राह संमतः ॥ किमागमनकृत्यं ते कथयस्व प्रसादतः ॥ ३० ॥ को वा तीर्थप्रसङ्गश्च चातुर्मास्ये समीपगे ॥ गालवः प्राह सच्छूद्रं धार्मिकं सत्यवादिनम् ॥ ३१ ॥ मम तीर्थावसक्तस्य मासा बहुतरा गताः ॥ इदानीमाश्रमं यास्ये चातुर्मास्ये समागते ॥ ३२ ॥ आषाढशुक्लैकादश्यां करिष्ये नियमं गृहे ॥ नारायणस्य प्रीत्यर्थं श्रे

व्याधिरहित वाणी को मैं निस्सन्देह सुना चाहता हूं ॥ २८ ॥ आप लोगों का गमन सब अर्थों में समर्थ होता है तदनन्तर हर्ष से संयुत वे प्रसन्नचित्त हुए ॥ २९ ॥ और संमत पैजवन नामक सच्छूद्र ने कहा कि तुम्हारे आने का क्या कारणहै इसको प्रसन्नता से कहिये ॥ ३० ॥ और चातुर्मास्य के समीप में प्राप्त होने पर कौन तीर्थ प्रसंग है गालव ने धार्मिक व सत्यवादी सच्छूद्र से कहा ॥३१॥ कि तीर्थों में लगे हुए मुझको बहुत से महीने व्यतीत हुए और इससमय चातुर्मास्य समीप प्राप्त होनेपर मैं आश्रम को जाऊंगा ॥ ३२ ॥ और आषाढ़ के शुक्लपक्ष की एकादशी में मैं विष्णुजी की प्रीति के लिये व अपने कल्याण के लिये घर में नियम

करूंगा ॥ ३३ ॥ गालव मुनिने विनय से झुँके हुए शूद्र से धर्मोंको कहा पैजवन बोला कि हे द्विजोत्तम ! तुम मुझसे दया से उपजी हुई बुद्धि को कहो क्योंकि मुझको वेद में अधिकार नहीं है व वेदसार के जपका अधिकार नहीं है ॥ ३४ ॥ व पुराणों व स्मृतियों के पाठका अधिकार नहीं है उस कारण मुझसे कुछ कहिये और तत्त्वात्म के समान कुछ महाफलवान् रूप जान पड़ता है ॥ ३५ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर मुक्ति साधन करनेवाले यत्न को कहो ॥ ३६ ॥ गालवजी बोले कि जो मनुष्य सदैव शालग्राम में प्राप्त व चक्रांकित पुटवाले विष्णुजी को पूजते हैं उनके समीपही भक्ति होती है ॥ ३७ ॥ और जिसका मन शालग्राममें होता है

योर्थं चात्मनस्तथा ॥ ३३ ॥ प्रत्युवाच मुनिर्धर्मान् विनयानतकन्धरम् ॥ पैजवन उवाच ॥ मामनुग्रहजां बुद्धिं ब्रूहि त्वं द्विजपुङ्गव ॥ वेदेऽधिकारो नैवास्ति वेदसारजपस्य वा ॥ ३४ ॥ पुराणस्मृतिपाठस्य तस्मात्किञ्चिद्वदस्व मे ॥ तत्त्वात्मसदृशं किञ्चिद्भाति रूपं महाफलम् ॥ ३५ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण मुक्तिसंसाधकं वद ॥ ३६ ॥ गालव उवाच ॥ शालग्रामगतं विष्णुञ्चक्राङ्कितपुटं सदा ॥ येऽर्चयन्ति नरा नित्यं तेषां भक्तिस्त्वदूरतः ॥ ३७ ॥ शालग्रामे मनो यस्य यत्किञ्चित्क्रियते शुभम् ॥ अक्षय्यं तद्भवेन्नित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ३८ ॥ शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारावती शिला ॥ उभयोः संगमः प्राप्तो मुक्तिस्तस्य न दुर्लभा ॥ ३९ ॥ शालग्रामशिला यस्यां भूमौ सम्पूज्यते नृभिः ॥ पञ्चक्रोशं पुनात्येषा अपि पापशतान्वितैः ॥ ४० ॥ तैजसं पिण्डमेतद्धि ब्रह्मरूपमिदं शुभम् ॥ यस्याः संदर्शनादेव सद्यः कल्मषनाशनम् ॥ ४१ ॥ सर्वतीर्थानि पुण्यानि देवतायतनानि च ॥ नद्यः सर्वा महाशूद्र तीर्थत्वं प्राप्नुवन्ति हि ॥ ४२ ॥

वह जो कुछ उत्तम कर्म को करता है वह सदैव अक्षय होता है और चातुर्मास्य में विशेषकर अक्षय होता है ॥ ३८ ॥ जहा शालग्राम शिला होती है व जहां द्वारावती शिला होती है और जिसने दोनोंके संगम को पाया है उसको मुक्ति दुर्लभ नहीं है ॥ ३९ ॥ और शालग्राम की शिला को सैकडों पापों से सयुत मनुष्य जिस भूमि में पूजते हैं वहां पांच कोसतक यह शिला पवित्र करती है ॥ ४० ॥ यह उत्तम व ब्रह्मरूप तैजसपिंड है कि जिसके दर्शन से शीघ्रही पातकों का विनाश होता है ॥ ४१ ॥ व हे महाशूद्र ! सब तीर्थ तथा देवमन्दिर पवित्र होते हैं और सब नदियां तीर्थत्व को प्राप्त होती हैं ॥ ४२ ॥ और उसकी समीपता से सब कहीं

कर्म उत्तम होते हैं व चातुर्मास्य में विशेषकर कर्मत्व को प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥ और जिसके घरमें उत्तम शालग्राम की शिला कोमल तुलसीदलों से पूजी जातीहै वहां यमराज विमुख होजाते हैं ॥ ४४ ॥ और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को व सच्छूद्रों को भी शालग्रामशिला का अधिकार है अन्यजनों को किसी प्रकार से नहीं है ॥ ४५ ॥ सच्छूद्र बोला कि हे वेदविदाश्रेष्ठ, सर्वशास्त्रविशारद, ब्रह्मन् ! शालग्राम में यह स्त्री व शूद्रादिकों का निषेध सुनाजाता है ॥ ४६ ॥ और मेरे समान पुरुष कैसे पूजन करै तुम शालग्रामशिला के पूजन की विधिको कहो ॥ ४७ ॥ गालवजी बोले कि हे मानद, दास ! असच्छूद्र में प्राप्त पूजन को निषिद्ध जानिये और पतिव्रता

सन्निधानेन वै तस्याः क्रियाः सर्वत्र शोभनाः ॥ व्रजन्ति हि क्रियात्वं च चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ४३ ॥ पूज्यते भवने यस्य शालग्रामशिला शुभा ॥ कोमलैस्तुलसीपत्रैर्विमुखस्तत्र वै यमः ॥ ४४ ॥ ब्राह्मणक्षत्रियविशां सच्छूद्राणामथापि वा ॥ शालग्रामाधिकारोऽस्ति न चान्येषां कदाचन ॥ ४५ ॥ सच्छूद्र उवाच ॥ ब्रह्मन् वेदविदांश्रेष्ठ सर्वशास्त्रविशारद ॥ स्त्रीशूद्रादिनिषेधोऽयं शालग्रामे हि श्रूयते ॥ ४६ ॥ मादृशस्तु कथं शालग्रामपूजाविधिं वद ॥ ४७ ॥ गालव उवाच ॥ असच्छूद्रगतं दास निषेधं विद्धि मानद ॥ स्त्रीणामपि च साध्वीनां नैवाभावः प्रकीर्तितः ॥ ४८ ॥ मा भूत्संशयस्तेनात्र नाप्नुषे संशयात्फलम् ॥ शालग्रामार्चनपराः शुद्धदेहा विवेकिनः ॥ ४९ ॥ न ते यमपुरं यान्ति चातुर्मास्येव पूजकाः ॥ शालग्रामार्पितं माल्यं शिरसा धारयन्ति ये ॥ ५० ॥ तेषां पापसहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥ शालग्रामशिलाग्रे तु ये प्रयच्छन्ति दीपकम् ॥ ५१ ॥ तेषां सौरपुरे वासः कदाचिन्नैव जायते ॥ शालग्राम

स्त्रियोंको भी अभाव नहीं कहागया है ॥ ४८ ॥ उससे इस विषय में तुमको सन्देह न होवै और सन्देह से तुम फलको नहीं पावोगे क्योंकि शुद्ध शरीर व विवेकी जो लोग शालग्राम के पूजन में परायण होते हैं ॥ ४९ ॥ वे चातुर्मास्यही में पूजनेवाले पुरुष यमपुर को नहीं जाते हैं और शालग्राम के ऊपर चढ़ाई हुई माला को जो मस्तक से धारण करते हैं ॥ ५० ॥ उनके हज़ारों पाप उसी क्षण नाश होजाते हैं और जो मनुष्य शालग्राम शिला के आगे दीपक देते हैं ॥ ५१ ॥ उन

का कभी यमपुर में निवास नहीं होता है व हे महाशूद्र ! विष्णुदेवजी के सोने पर जो मनुष्य शालग्राम में प्राप्त विष्णुजी को सुन्दर पुष्पों से पूजते हैं ॥ ५२ ॥ व जो मनुष्य शालग्राम शिला में सदैव पंचामृत से स्नान कराते हैं वे मनुष्य संसारी नहीं होते हैं ॥ ५३ ॥ मुक्तिके कारणरूप शालग्राम में प्राप्त निर्मल विष्णु जी को हृदय में धरकर सदैव भक्ति से जो ध्यान करता है वह मुक्तिभागी होता है ॥ ५४ ॥ और विशेषकर चातुर्मास्य में जो मनुष्य तुलसीदल से उपजी हुई मालाको शालग्रामशिला के ऊपर धरता है वह सब कामनाओं को पाता है ॥ ५५ ॥ पुष्पों से उपजी हुई माला वैसी विष्णुजी को नहीं प्यारी है और उत्तम

गतं विष्णुं सुमनोभिर्मनोहरैः ॥ येऽर्चयन्ति महाशूद्र सुप्ते देवे हरौ तथा ॥ ५२ ॥ पञ्चामृतेन स्नपनं ये कुर्वन्ति सदा नराः ॥ शालग्रामशिलायां च न ते संसारिणो नराः ॥ ५३ ॥ मुक्तेर्निदानममलं शालग्रामगतं हरिम् ॥ हृदि न्यस्य सदा भक्त्या यो ध्यायति स मुक्तिभाक् ॥ ५४ ॥ तुलसीदलजां मालां शालग्रामोपरि न्यसेत् ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सर्वकामानवाप्नुयात् ॥ ५५ ॥ न तावत्पुष्पजा माला शालग्रामस्य वल्लभा ॥ सर्वदा तुलसी देवी विष्णोर्नित्यं शुभा प्रिया ॥ ५६ ॥ तुलसीवल्लभा नित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः॥ शालग्रामो महाविष्णुस्तुलसी श्रीर्न संशयः ॥ ५७ ॥ अतो वासितपानीयैः स्नाप्य चन्दनचर्चितैः ॥ मञ्जरीभिर्युतं देवं शालग्रामशिलाहरिम् ॥ ५८ ॥ तुलसीसम्भवाभिश्च कृत्वा कामानवाप्नुयात् ॥ पत्रे तु प्रथमे ब्रह्मा द्वितीये भगवाञ्छिवः ॥ ५९ ॥ मञ्जर्यां भगवान्विष्णुस्तदेकत्रस्थया तदा ॥ मञ्जरीदलसंयुक्ता ग्राह्या बुधजनैः सदा ॥ ६० ॥ तां निवेद्य गुरौ भक्त्या जन्मादिक्षयकारणम् ॥ शालग्रामे धूपराशिं

प्यारी तुलसीदेवी सदैव विष्णुजी को प्रिय हैं ॥ ५६ ॥ तुलसीजी सदैव विष्णुजी को प्यारी हैं और चातुर्मास्य में विशेषकर प्यारी हैं शालग्राम महाविष्णु हैं व तुलसी लक्ष्मीजी हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५७ ॥ इस कारण चन्दन से चर्चित व वासित जलों से शालग्राम शिलारूपी विष्णुदेवजी को नहवाकर व तुलसी से उपजी हुई मंजरियों से युक्त करके मनुष्य कामनाओं को पाता है तुलसी के प्रथम पत्र में ब्रह्मा व दूसरे में भगवान् शिवजी हैं ॥ ५८ । ५९ ॥ और मंजरी में भगवान् विष्णुजी हैं उस कारण सदैव विद्वान् लागों को एकही में स्थित तीनों देवताओंवाली दलों से संयुत मंजरी को ग्रहण करना चाहिये ॥ ६० ॥ और

जन्मादि के नाशका कारण उस मंजरी को गुरुमें भक्ति से निवेदन कर विष्णु में तत्पर मनुष्य शालग्राम के लिये धूपकी राशि को समर्पण कर ॥ ६१ ॥ व विशेषकर चातुर्मास्य में निवेदन कर मनुष्य नरकगामी नहीं होता है और उत्तम पुष्पों से पूजित शालग्राम को देखकर मनुष्य ॥ ६२ ॥ सब पापों से शुद्धचित्त होकर विष्णुजी में तन्मयता को प्राप्त होता है और गण्डकी के जल से उत्पन्न व शालग्रामशिला में प्राप्त विष्णुजी की जो मनुष्य श्रुति, स्मृति व पुराणों से स्तुति करता है वह भी विष्णुजी के स्थान को प्राप्त होताहै व हे महामते, महाशूद्र ! शालग्रामशिला के चौबीस संख्यक भेद हैं उनको सुनिये ॥ ६३ । ६४ ॥

निवेद्य हरितत्परः ॥ ६१ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण मनुष्यो नैव नारकी ॥ शालग्रामं नरो दृष्ट्वा पूजितं कुसुमैः शुभैः ॥ ६२ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा याति तन्मयतां हरौ ॥ यः स्तौत्यश्मगतं विष्णुं गण्डकीजलसम्भवम् ॥ ६३ ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणैश्च सोपि विष्णुपदं व्रजेत् ॥ शालग्रामशिलायाश्च चतुर्विंशतिसंख्यकाः ॥ भेदाः सन्ति महा शूद्र ताञ्छृणुष्व महामते ॥ ६४ ॥ इमा द्वादश्यो लोके च चतुर्विंशतिसंख्यकाः ॥ तासां च दैवतं विष्णुं नामानि च वदाम्यहम् ॥ ६५ ॥ स एव मूर्तश्चतुरुत्तराभिर्विंशद्भिरेको भगवान्यथाद्यः ॥ स एव संवत्सरनामसंज्ञः स एव ग्रावागत आदिदेवः ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्यानं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पैजवन उवाच ॥ एतान् भेदान् मम ब्रूहि विस्तरेण तपोधन ॥ त्वद्वाक्यामृतपानेन तृषा नैव प्रशाम्यति ॥१॥ गालव

और संसार में चौबीस संख्यक ये द्वादशी हैं उनके देवता विष्णुको व नामों को मैं कहताहूं ॥ ६५ ॥ व आदि भगवान् वे विष्णुजी जिस प्रकार चौबीस द्वादशियों से मूर्तिमान् हैं और वेही संवत्सरसंज्ञक हैं और वही आदिदेव शालग्राम शिला में प्राप्त हैं ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्यानं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ चौबिस संख्यक कहे जिमि मूर्ति भेदके नाम । बारहवें अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ पैजवन बोले कि हे तपोधन ! इन भेदों को मुझसे

विस्तार से कहिये तुम्हारे वचनरूपी अमृत के पान से मेरी तृषा शान्त नहीं होती है ॥ १ ॥ गालवजी बोले कि विस्तार से भेदोंको सुनिये मैं पुराणोक्त भेदोंको तुमसे कहताहूं कि जिनको सुनकर मनुष्य अवश्य कर सब पापों से छूटजाता है ॥ २ ॥ पहले केशव पूजने योग्य हैं व दूसरे मधुसूदन और तीसरे संकर्षण तदनन्तर दामोदर कहेगये हैं ॥ ३ ॥ और पाचवें वासुदेवनामक व छठें प्रद्युम्नसंज्ञक हैं और सातवें विष्णु कहेगये हैं व आठवें माधवजी हैं ॥ ४ ॥ और नवें अनन्तमूर्ति व दशवें पुरुषोत्तम हैं उसके पश्चात् अधोक्षज व बारहवें जनार्दनजी हैं ॥ ५ ॥ और तेरहवें गोविन्द व चौदहवें त्रिविक्रम, पन्द्रहवें श्री-

उवाच ॥ शृणु विस्तरतो भेदान् पुराणोक्तान् वदामि ते ॥ यान् श्रुत्वा मुच्यतेऽवश्यं मनुजः सर्वकिल्विषात् ॥ २ ॥ पूर्वं तु केशवः पूज्यो द्वितीयो मधुसूदनः ॥ संकर्षणस्तृतीयस्तु ततो दामोदरः स्मृतः ॥ ३ ॥ पञ्चमो वासुदेवाख्यः षष्ठः प्रद्युम्नसंज्ञकः ॥ सप्तमो विष्णुरुक्तश्चाष्टमो माधव एव च ॥ ४ ॥ नवमोऽनन्तमूर्त्तिश्च दशमः पुरुषोत्तमः ॥ अधोक्षजस्ततः पश्चाद्द्वादशस्तु जनार्दनः ॥ ५ ॥ त्रयोदशस्तु गोविन्दश्चतुर्दशस्त्रिविक्रमः ॥ श्रीधरश्च पञ्चदशो हृषीकेशस्तु षोडशः ॥ ६ ॥ नृसिंहस्तु सप्तदशो विश्वयोनिस्ततः परम् ॥ वामनश्च ततः प्रोक्तस्ततो नारायणः स्मृतः ॥ ७ ॥ पुण्डरीकाक्ष उक्तस्तु ह्युपेन्द्रश्च ततः परम् ॥ हरिस्त्रयोविंशतिमः कृष्णश्चान्त्य उदाहृतः ॥ ८ ॥ शालग्रामस्य भेदास्ते मयोक्तास्तव शूद्रज ॥ मूर्तिभेदास्तथा प्रोक्ता एत एव महाधन ॥ ९ ॥ मूर्त्तयस्तिथिनाम्न्यः स्युरेकादश्यः सदैव हि ॥ संवत्सरेण पूज्यन्ते चतुर्विंशतिमूर्तयः ॥ १० ॥ देवाश्च ताराश्च तथा चतुर्विंशतिसंख्यकाः ॥ मासा मार्गशि

धर और सोलहवें हृषीकेश हैं ॥ ६ ॥ और सत्रहवें नृसिंह तदनन्तर विश्वयोनि उसके उपरान्त वामन व तदनन्तर नारायण कहेगये हैं ॥ ७ ॥ उसके उपरान्त पुण्डरीकाक्ष व तदनन्तर उपेन्द्रजी कहेगये हैं और तेईसवें हरि व चौबीसवें कृष्णजी कहेगये हैं ॥ ८ ॥ हे शूद्रज ! मैंने तुमसे उन शालग्राम के भेदोंको कहा व हे महाधन ! येही मूर्ति के भेद कहेगये हैं ॥ ९ ॥ और तिथि नामवाली मूर्तिया होती हैं व सदैव सवत्सर से चौबीस संख्यक एकादशी पूजीजाती हैं ॥ १० ॥

जी शालग्रामत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ४ ॥ व जिस प्रकार शिवजी लिङ्गत्व को प्राप्त हुए हैं हे अनघ ! उसको मैं तुमसे कहताहूं पुरातन समय दक्षप्रजापति ब्रह्मा के अँगूठे से उत्पन्न हुए हैं ॥ ५ ॥ उनके उत्तम लक्षणोंवाली सतीनामक उत्तम आचरणवाली कन्या हुई तदनन्तर विधि को जाननेवाले शिवजीने वेदोक्त विधि से उसको ब्याहा ॥ ६ ॥ और उस मूढ़बुद्धि दक्षने महायज्ञ में शिवजी से वैर किया और उस बड़ेभारी वैरसे सतीजी बहुतही क्रोधित हुईं ॥ ७ ॥ व उस समय यज्ञवेदी में आकर प्राणायाम में परायण होकर उन सतीजी ने अग्निकी धारणा से शरीर को त्याग किया ॥ ८ ॥ और मरीहुई सतीजी अपने भागसे पिताके

णेषु च पठ्यते ॥ यथा स एव भगवान् शालग्रामत्वमागतः ॥ ४ ॥ महेश्वरश्च लिङ्गत्वं कथयेहं तवानघ ॥ पूर्वं प्रजाप तिर्दक्षो ब्रह्मणोऽङ्गुष्ठसंभवः ॥ ५ ॥ तस्यासीद्दुहिता साध्वी सती नाम्नी सुलक्षणा ॥ हरेणोढा विधिज्ञेन वेदोक्तविधिना ततः ॥ ६ ॥ स चकार महायज्ञे हरद्वेषं विमूढधीः ॥ तेन द्वेषेण महता सती प्रकुपिता भृशम् ॥ ७ ॥ यज्ञवेद्यां समागम्य वह्निधारणया तदा ॥ प्राणायामपरा भूत्वा देहोत्सर्गं चकार सा ॥ ८ ॥ पितृभागं परित्यज्य स्वभागेन हता सती ॥ मनसा ध्यानमगमच्छीतलं च हिमालयम् ॥ ९ ॥ यत्र यत्र मनो याति स्वकर्म वशगं मृतौ ॥ अवतारस्तत्र तत्र जा यते नात्र संशयः ॥ १० ॥ दह्यमाना हि सा देवी हिमालयसुताऽभवत् ॥ तत्र सा पार्वती भूत्वा तप उग्रं समाश्रिता ॥ ११ ॥ शिवभक्तिरता नित्यं हरव्रतपरायणा ॥ शृङ्गे हिमवतः पुत्री मनो न्यस्य महेश्वरे ॥ १२ ॥ ततो वर्षसहस्रान्ते भगवान् भूतभावनः ॥ अथाजगाम तं देशं विप्ररूपो महेश्वरः ॥ १३ ॥ तां ज्ञात्वा तपसा शुद्धो कर्मभावैः परी

भागको छोड़कर मनसे शीतल हिमालय के ध्यानको प्राप्त हुई ॥ ९ ॥ मरण समय में अपने कर्म के वशमें प्राप्त मन जहां जहां जाताहै वहा वहां अवतार होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १० ॥ और जलीहुई वे सतीदेवी हिमाचल की कन्या हुई और वहां वे पार्वती होकर उग्रतपस्या में स्थित हुईं ॥ ११ ॥ शिवभक्ति में परायण व सदैव शिवजी के व्रतमें तत्पर हिमाचल की कन्या पार्वतीजी हिमालय के शिखरपै शिवजी में मनको लगाकर तप करनेलगीं ॥ १२ ॥ तदनन्तर हज़ार वर्ष के उपरान्त प्राणियों को उत्पन्न करनेवाले भगवान् शिवजी ब्राह्मण का रूप धरकर उस स्थान को आये ॥ १३ ॥ और परीक्षित कर्म भावों से उन

पार्वतीजी को तपस्या से शुद्ध जानकर तदनन्तर शिवजी ने दिव्य शरीर होकर पार्वतीजी का हाथ पकड़ा ॥ १४ ॥ व कहा कि तुमने तपस्या से मुझको जीत लिया और मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूं तदनन्तर पार्वतीजी ने शिवजी से कहा कि मेरे पिताको प्रमाण करो ॥ १५ ॥ उस प्रकार कहे हुए उन शिवजी ने सप्तर्षियों को पठाया और वे हिमाचल को समय बतलाने के लिये वहां जाकर ॥ १६ ॥ और उन शिवजी से कहकर पठाये हुए मुनिलोग गये तदनन्तर लग्नके दिन इन्द्रादिक देवता ब्रह्मा व विष्णुआदिक देवताओं समेत अग्नि को आगेकर शिवजी के समीप आये व योगसे सिद्धलोग आये और आते हुए वर वेषवाले

क्षितैः ॥ ततो दिव्यवपुर्भूत्वा करे जग्राह पार्वतीम् ॥ १४ ॥ तपसा निर्जितश्चास्मि करवाणि च किं प्रियम् ॥ ततः प्राह महेशानं प्रमाणं मे पिता कुरु ॥ १५ ॥ सप्तर्षीन् स तथोक्तस्तु प्रेषयामास शङ्करः ॥ ते तत्र गत्वा समयं वक्तुं हिमवता सह ॥ १६ ॥ निवेद्य च महेशानं प्रेषिता मुनयो ययुः ॥ ततो लग्नदिने देवा महेन्द्रादय ईश्वरम् ॥ १७ ॥ ब्रह्मविष्णुपुरोगैश्च पुरोधायाग्निमाययुः ॥ योगसिद्धाः समायान्तं वरवेषं वृषध्वजम् ॥ १८ ॥ हिमवान् पूजयामास मधुपर्कादिकैः शुभैः ॥ उपचारैर्मुदायुक्तो मानयन् कृतकृत्यताम् ॥ १९ ॥ वेदोक्तेन विधानेन तां कन्यां समयोजयत् ॥ पाणिग्रहेण विधिना द्विजातिगणसंवृतः ॥ २० ॥ वह्निं प्रदक्षिणीकृत्य गिरीशस्तदनन्तरम् ॥ दानकाले च गोत्रादिष्टष्टो लज्जापरो हरः ॥ २१ ॥ ब्रह्मणो वचनात्तेन विधिशेषोवशेषतः ॥ चरुप्राशनकाले तु पञ्चवक्त्रप्रकाशकृत् ॥ २२ ॥ सहितः सकलैर्देवैः कुतूहलपरायणैः ॥ गिरिजार्थं समायुक्तो वरः सोऽपि महेश्वरः ॥ २३ ॥ नवकोटिमुखा

शिवजी को देखकर ॥ १७ । १८ ॥ कृतकृत्यता को मानते हुए हर्षसंयुत हिमवान् ने मधुपर्कादिक उत्तम उपचारों से पूजन किया ॥ १९ ॥ और द्विजगणों से संयुत हिमाचल ने वेदोक्तविधि से उस कन्याको विवाह की विधि से युक्त किया ॥ २० ॥ तदनन्तर अग्नि की प्रदक्षिणा कर दान के समय में गोत्रादिक पूंछेहुए सदाशिवजी लज्जासंयुत हुए ॥ २१ ॥ व उस कारण ब्रह्मा के वचन से शेषविधि अवशेष कीगई चरुके भोजन समय में जो पांच मुखों को प्रकाश करनेवाले हैं ॥ २२ ॥ कौतुक में परायण सब देवताओं समेत वेही शिवजी पार्वतीजी के लिये वर हुए ॥ २३ ॥ और नव करोड़ मुखों को देखकर मनुष्य हास-

संयुत हुए और वेदकी यह श्रुति कहीगई है कि हे शिवजी ! तुम स्थिरता को प्राप्त होवो ॥ २४ ॥ और लज्जित उन पार्वतीजी ने पांच जन्मों में परित्याग नहीं किया वरन श्याम नेत्रान्त भागवाली पार्वतीजी पति शिवजी के, समीप प्राप्त हुईं ॥ २५ ॥ और देवताओं व पर्वतों का सब कुल प्रसन्न हुआ तदनन्तर विवाह पूर्ण होनेपर शिवजी कौतुक के स्थान को गये ॥ २६ ॥ और गणों के भी समीप उन शिवजी ने अम्बिकाजी को नहीं सहा तदनन्तर दहेज को देकर हिमाचलने उन शिवजी को बिदा किया ॥ २७ ॥ और मानित व सत्कार कियेहुए भी शिवजी मन्दराचल को आये तदनन्तर विश्वकर्माजी ने क्षणभर में उन

न्दृष्ट्वा साट्टहासो जनोऽभवत् ॥ वैदिकी श्रुतिरित्युक्ता शिव त्वं स्थिरतां व्रज ॥ २४ ॥ लज्जिता सा परित्यागं नाकरोत्पञ्चजन्मसु ॥ भर्तारमसितापाङ्गी हरमेवाभ्यगच्छत ॥ २५ ॥ देवानां पर्वतानां च प्रहृष्टं सकलं कुलम् ॥ ततो विवाहे संपूर्णे हरोगात्कौतुकौकसि ॥ २६ ॥ गणानां चापि सान्निध्ये स नामर्षयदम्बिकाम् ॥ पारिबर्हं ततो दत्त्वा शैलेन स विसर्जितः ॥ २७ ॥ मानितः सत्कृतश्चापि मन्दरालयमभ्यगात् ॥ विश्वकर्मा ततस्तस्य क्षणेन मणिमद्गृहम् ॥ २८ ॥ निर्ममे देवदेवस्य स्वेच्छावर्द्धिष्णु मन्दिरम् ॥सर्वर्द्धिमत्प्रशस्ताभं मणिविद्रुमभूषितम् ॥ २९ ॥ स्थूणासहस्रसंयुक्तं मणिवेदि मनोहरम् ॥ गणा नन्दिप्रभृतयो यस्य द्वारि समाश्रिताः ॥ ३० ॥ त्रिनेत्राः शूलहस्ताश्च बभुः शङ्कररूपिणः ॥ वाटिका अस्य परितः पारिजाताः सहस्रशः ॥ ३१ ॥ कामधेनुर्मणिर्दिव्यो यस्य द्वारि समाश्रितौ ॥ तस्मिन्मनोहरतरे कामवृद्धिकरे गृहे ॥ ३२ ॥ वसतःपार्वतीसार्द्धं कामो दृष्टिपथं ययौ ॥ वायुरूपः शिवं दृष्ट्वा

देवदेव शिवजी के मणिमान् व अपनी इच्छा से बढ़नेवाले मन्दिर को बनाया जोकि सब ऋद्धियों से संयुत व प्रशस्त तथा मणियों व विद्रुमों से भूषित था ॥ २८ । २९ ॥ और हज़ारों खंभों से युक्त तथा मणियों की वेदी से सुन्दर था और जिसके द्वारपै नन्दिआदिक गण स्थितथे ॥ ३० ॥ जोकि तीन नेत्रोंवाले व त्रिशूल को हाथ में लिये शंकररूपी शोभित थे और इसके चारोंओर बगीचा व हज़ारों पारिजात के वृक्ष थे ॥ ३१ ॥ और जिसके द्वारपै कामधेनु व दिव्य मणि स्थित थी और कामदेव को वृद्धि करनेवाले उस बहुत सुन्दर मन्दिर में ॥ ३२ ॥ पार्वती समेत बसते हुए शिवजी के दृष्टिमार्ग में कामदेव प्राप्त हुआ और पवनरूपी काम-

देव ने शिवजी को देखकर शकरजी से कहा ॥ ३३ ॥ कि सर्वरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है व हे वृषध्वज ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व गणों के स्वामी तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे नाथ ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३४ ॥ व तुमसे रहित संसार को पृथ्वी मुर्दे की नाईं स्पर्श करती है और चराचर समेत संसार में तुमसे रहित कुछ नहीं देख पड़ता है ॥ ३५ ॥ और तुम रक्षक व तुम विधाता और तुम्हीं लोक को सहार करनेवाले हो हे महादेव ! दया कीजिये व मुझको देह-दान दीजिये ॥ ३६ ॥ शिवजी बोले कि हे अनघ ! मैंने जो तुमको पार्वती के आगे जलाया है इससे उसीके समीप तुम फिर शरीरवान् होवो ॥ ३७ ॥ तदनन्तर

कामः प्रोवाच शङ्करम् ॥ ३३ ॥ नमस्ते सर्वरूपाय नमस्ते वृषभध्वज ॥ नमस्ते गणनाथाय पाहि नाथ नमोस्तु ते ॥ ३४ ॥ त्वया विरहितं लोकं शववत्स्पृशते मही ॥ न त्वया रहितं किंचिद्दृश्यते सचराचरे ॥ ३५ ॥ त्वं गोप्ता त्वं विधाता च लोकसंहारकारकः ॥ कृपां कुरु महादेव देहदानं प्रयच्छ मे ॥ ३६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ यन्मया त्वं पुरा दग्धः पार्वतीपुरतोनघ ॥ तस्या एव समीपे च पुनर्भवस्व देहवान् ॥ ३७ ॥ एवमुक्तस्ततः कामः स्वशरीरमुपागतः ॥ ववन्दे चरणौ शूद्र विनयावनतोऽभवत् ॥ ३८ ॥ ततो ननाम चरणौ पार्वत्याः संप्रहृष्टवान् ॥ लब्धप्रसादस्तु तयोः समीपाद्भुवनत्रये ॥ ३९ ॥ चचार सुमहातेजा महामोहबलान्वितः ॥ पुष्पधन्वा पुष्पबाणस्त्वाकुञ्चितशिरोरुहः ॥ ४० ॥ सदाघूर्णितनेत्रश्च तयोर्देहमुपाविशत ॥ दिव्यासवैर्दिव्यगन्धैर्वस्त्रमाल्यादिभिस्तथा ॥ ४१ ॥ सख्यः संभोगसमये

ऐसा कहा हुआ कामदेव अपने शरीर को प्राप्त हुआ व हे शूद्र ! विनय से झुक गया व उसने चरणों को प्रणाम किया ॥ ३८ ॥ तदनन्तर बहुतही प्रसन्न उसने पार्वतीजीके चरणों को प्रणाम किया और उन दोनोंके समीप से प्रसन्नता को पाकर तीनों लोकों में ॥ ३९ ॥ महामोह व बल से संयुत तथा बड़े तेजस्वी कामदेव ने भ्रमण किया और पुष्पधनुष व पुष्पबाण व घुंघुवारे बालोंवाला ॥ ४० ॥ और सदैव घूर्णित नेत्रवाला कामदेव उन दोनों के शरीर में पैठ गया और दिव्य आसव व दिव्य गन्धों तथा वस्त्रों व मालादिकों से ॥ ४१ ॥ सखियों ने संभोग के समय में सब ओर से सेवा किया इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए उन

शिवजी को कुछ अधिक सौ वर्ष बीत गये ॥ ४२ ॥ और मैथुन में लगे हुए चित्तवाले उन शिवजी को जैसे एक रात होवै वैसेही वे वर्ष हुए इसी अवसर में भय से तारकासुर से भगाये हुए देवता ॥ ४३ ॥ ब्रह्मा की शरण में गये और उनकी स्तुतिकर शरण में प्राप्त हुए देवता बोले कि पुरातन समय इस महारौद्र तारकासुर को तुमने वरदान दिया है ॥ ४४ ॥ और त्रिलोक में पूजित वह पराक्रम से इन्द्र को जीतकर भोग करता है जिसप्रकार उसके मारने का उपाय होवै तुम आपही वैसा करो ॥ ४५ ॥ ब्रह्मा बोले कि मुझसे वर दिया हुआ यह मुझसे न मारा जावैगा क्योंकि आपही कडुवे वृक्ष को बढ़ाकर काटने के लिये कोई भी

परिचक्रुः समन्ततः ॥ एवं प्रक्रीडतस्तस्य वत्सराणां शतं ययौ ॥ ४२ ॥ साग्रमेका निशायद्वन्मैथुने सक्तचेतसः ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवास्तारकप्रद्रुता भयात् ॥ ४३ ॥ ब्रह्माणं शरणं जग्मुः स्तुत्वा तं शरणं गताः ॥ देवा ऊचुः ॥ तारकोसौ महारौद्रस्त्वया दत्तवरः पुरा ॥ ४४ ॥ विजित्य तरसा शक्रं भुङ्क्ते त्रैलोक्यपूजितः ॥ वधोपायो यथा तस्य जायते त्वं कुरु स्वयम् ॥ ४५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मया दत्तवरश्चासौ मयैवोच्छिद्यते न हि ॥ स्वयं संवर्ध्य कटुकं छेत्तुं कोपि न चार्हति ॥ ४६ ॥ तस्मात्तस्य वधोपायं कथयामि महात्मनः ॥ पार्वत्यां यो महेशानात्सूनुरुत्पत्स्यते हि सः ॥ ४७ ॥ दिनसप्तचतुर्भूत्वा तारकं संहनिष्यति ॥ इतिवाक्यं तु ते श्रुत्वा मन्दरं लोकसुन्दरम् ॥ ४८ ॥ ब्रह्मलोकात्समाजग्मुः पीडिता दैत्यदानवैः ॥ ४९ ॥ तत्र नन्दिप्रभृतयो गणाः शूलभृतः पुरः ॥ गृहद्वारे ह्युपावृत्य तस्थुः संयतचेतसः ॥ ५० ॥ देवाश्च दुःखातुरचेतसो भृशं हतप्रभास्त्यक्तगृहाश्रयाखिलाः ॥ संप्राप्य मासाश्चतुरस्तपः

नहीं योग्य है ॥ ४६ ॥ उस कारण में उस महात्मा के मारने का यत्न कहता हूं कि शिवजी से पार्वतीजी में जो पुत्र पैदा होगा वह ॥ ४७ ॥ गेरह दिन का होकर तारकासुर को मारैगा इस वचन को सुनकर दैत्यों व दानवों से पीड़ित वे देवता ब्रह्मलोक से लोकों में सुन्दर मन्दराचल को आये ॥ ४८ । ४९ ॥ वहां चित्तको रोके हुए नन्दि आदिक गण त्रिशूलधारी शिवजी के आगे से गृह द्वार पै लौटकर स्थित थे ॥ ५० ॥ और दुःख से बहुत विकल चित्तवाले व प्रकाश रहित तथा गृहों के समस्त आश्रमों को छोड़े हुए देवता चातुर्मास्य को प्राप्त होकर विष्णुदेवजी के सोने पर महादेवजी के प्रसन्न करनेवाले उत्तम तप करने में

स्थित हुए ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याननंनाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३ ॥
दो० ॥ पारवती देवन यथा दियो सबन कहँ शाप। चौदहवें अध्याय में सोई चरित प्रलाप ॥ गालवजी बोले इन्द्रादिक देवेश दुःख से संतप्तमन हुए व शिवजी के दर्शन न होने से उनके मन व कर्मेन्द्रिय और चित्त भ्रमित होगये ॥१ ॥ और लोकनाथ शिवजी को नहीं पाया व लोहे की प्रतिमा के आकार को बनाकर उन्होंने तपस्या से सब प्राणियों के हृदय में स्थित शिवजी को आराधन किया ॥ २ ॥ व जटाओं को मस्तकमें धारण किये त्रिशूल को हाथमें लिये पिनाकी देव व

स्थिता देवे प्रसुप्ते हरतोषणं परम् ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्यानंनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

गालव उवाच ॥ शक्रादयस्तु देवेशा दुःखसन्तप्तमानसाः ॥ ईश्वरादर्शनभ्रान्तमनःकर्मेन्द्रियात्मकाः ॥ १ ॥ न प्रापुर्लोकनाथं ते कृत्वा यः प्रतिमाकृतिम् ॥ तपसाराधयामासुः सर्वभूतहृदि स्थितम् ॥ २ ॥ कपर्दशिरसं देवं शूलहस्तं पिनाकिनम् ॥ कपालखट्वाङ्गधरं दशहस्तं किरीटिनम् ॥ ३ ॥ उमासहितमीशानं पञ्चवक्रं महाभुजम् ॥ कर्पूरगौरदेहाभं सितभूतिविभूषितम् ॥ ४ ॥ नागयज्ञोपवीतेन गजचर्मसमन्वितम् ॥ कृष्णसारत्वचा चापि कृतप्रावरणं विभुम् ॥ ५ ॥ कृतध्यानाः सुरास्तत्र वृक्षाधारे समाश्रिताः ॥ व्रतचर्यां समाश्रित्य प्रचक्रुस्तप उत्तमम् ॥ ६ ॥ षडक्षरेण मन्त्रेण शैवेन विहितां सुराः ॥ शूद्र उवाच ॥ व्रतचर्या त्वया या सा प्रोक्ता संजायते कथम् ॥ ७ ॥

कपाल तथा खट्वाग को धारे व दश हाथोंवाले किरीटधारी ॥ ३ ॥ व पार्वती समेत पञ्चमुख महाभुज व कर्पूर के समान गौर शरीर की प्रभावाले और श्वेत भस्म से भूषित व नागों के यज्ञोपवीत से व हाथी की खालसे संयुत तथा कृष्ण मृग की खाल से आच्छादन किये व्यापक शिवजी को ॥ ४ । ५ ॥ ध्यान किये हुए देवता वहां वृक्ष के आधार में स्थित हुए व शिवजी के षडक्षरमन्त्र से विहित व्रतचर्या के आश्रित होकर देवताओं ने उत्तम तप किया शूद्र बोला कि तुमने

जिस व्रतचर्या को कहा है वह कैसे होती है ॥ ६ । ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! विस्तार से कहिये मैं तुम्हारे अमृतरूपी वचनों से तृप्त नहीं होता हूं ॥ ८ ॥ गालवजी बोले कि जपता हुआ मनुष्य भस्म व खट्वांग और स्फटिक के कपाल को तथा मुण्डमाला व पञ्चमुख और मस्तक में अर्धचन्द्रमाको धारण किये ॥ ९ ॥ और चीते के चर्म को पहने व कौपीन तथा दोनों कुंडल और दो घंटा व त्रिशूल और सूत्र इन लक्षणों से लक्ष्य इस चर्या के स्वरूप को मैंने तुमसे कहा हे शूद्रज ! इस विधि से अग्नि आदिक सब देवताओं ने ॥ १० । ११ ॥ सब उपायों से वरदायक शिवजी को सबोंने आराधन किया और चातुर्मास्य संपूर्ण होनेपर व निर्मल

ब्रह्मन् विस्तरतो ब्रूहि न तृप्येते वचोऽमृतैः ॥ ८ ॥ गालव उवाच ॥ जपन् भस्म च खट्वाङ्गं कपालं स्फाटिकं तथा ॥ मुण्डमालां पञ्चवक्त्रमर्द्धचन्द्रं च मूर्द्धनि ॥ ९ ॥ चित्रकृत्तिपरीधानं कौपीनकुण्डलद्वयम् ॥ घण्टायुग्मं त्रिशूलं च सूत्रं चर्यास्वरूपकम् ॥ १० ॥ अमीभिर्लक्षणैर्लक्ष्यं मयोक्तं तव शूद्रज ॥ अनेन विधिना सर्वे देवा वह्निपुरोगमाः ॥ ११ ॥ सर्वे आराधयामासुः सर्वोपायैर्वरप्रदम् ॥ चातुर्मास्ये च संपूर्णे संपूर्णे कार्त्तिकेमले ॥ १२ ॥ चीर्णव्रतान् सुरान् दृष्ट्वा विशुद्धांश्च महेश्वरः ॥ मतिं तेषां ददौ तुष्टो जीवात्मा सर्वभूतदृक् ॥ १३ ॥ शतरुद्रीयजाप्येन विधानसहितेन च ॥ ध्यानेन दीपदानेन चातुर्मास्ये तुतोष सः ॥ १४ ॥ पूजनैः षोडशविधैर्यथा विष्णोस्तथा हरेः ॥ कुर्वाणान् भक्तिभावेन ज्ञात्वा देवान् समागतान् ॥ १५ ॥ प्रहृष्टो भगवान् रुद्रो ददौ तेषां शुभां मतिम् ॥ ततः स मन्यते देवा वह्निं स्तुत्वा यथार्थतः ॥ १६ ॥ प्रसन्नवदनं चक्रुः कार्यसाधनतत्परम् ॥ कर्मसाक्षी महातेजाः कृत्वा पारावतं

कार्त्तिक मास पूर्ण होने पर ॥ १२ ॥ व्रत को किये व पवित्र देवताओं को देखकर सब प्राणियों को देखनेवाले जीवात्मा शिवजी ने उनके ऊपर प्रसन्न होकर बुद्धि को दिया ॥ १३ ॥ और विधि समेत शतरुद्री के जप से व ध्यान तथा दीपदान से वे शिवजी प्रसन्न हुए ॥ १४ ॥ व जैसे विष्णु वैसेही हरि के सोलह प्रकार के पूजनों से शिवजी प्रसन्न हुए और भक्तिभाव से पूजन करते व आये हुए देवताओं को जानकर ॥ १५ ॥ प्रसन्न होकर भगवान् शिवजी ने उनको उत्तम बुद्धि दिया तदनन्तर उन देवताओं ने सम्मति कर व यथार्थ अग्नि की स्तुतिकर ॥ १६ ॥ कार्य के साधन में तत्पर अग्नि को प्रसन्नमुख किया व बड़े तेजस्वी

अग्नि ने कपोत (कबूतर) का रूप करके ॥ १७ ॥ तदनन्तर शिवदेवजी को देखने के लिये मध्य में प्रवेश किया और गुंठन व अवगुंठन से गति का विक्षेप किया ॥ १८ ॥ व लुंठन और सर्पण से अग्निजी सुन्दर रूप हुए व अद्भुत गति हुई वहां भगवान् ने उन अग्निजी को देखकर कारण को जाना ॥ १९ ॥ तदनन्तर ऊर्ध्वरेता शिवजी ने पहले जिस वीर्य को छोड़ा था उसको उस अग्नि के मुख में धारण किया और वे अग्निजी घर से बाहर उड़ गये ॥ २० ॥ व उस पक्षी के जाने पर पार्वतीजी विफल श्रमवाली हुईं व क्रोधित होती हुई उन महेश्वरी पार्वतीजी ने सब देवताओं को शाप दिया ॥ २१ ॥ कि जिस लिये

वपुः ॥१७॥ प्रविवेश ततो मध्ये द्रष्टुं देवं महेश्वरम् ॥ चकार गतिविक्षेपं गुण्ठनैरवगुण्ठनैः ॥ १८ ॥ लुण्ठनैः सर्पणैश्चैव चारुरूपोऽद्भुता गतिः ॥ तं दृष्ट्वा भगवांस्तत्र कारणं समबुध्यत ॥ १९ ॥ ऊर्ध्वरेतास्ततस्तस्मिन् ससर्जादौ दधार तत् ॥ वीर्यं वह्निमुखे चैव सोत्पपात गृहाद्बहिः ॥ २० ॥ गते तस्मिन्पतङ्गेऽथ पार्वती विफलश्रमा ॥ संक्रुद्धा सर्वदेवानां सा शशाप महेश्वरी ॥ २१ ॥ यस्मान्ममेच्छा विहता भवद्भिर्दुष्टबुद्धिभिः ॥ तस्मात्पाषाणतामाशु व्रजन्तु त्रिदिवौकसः ॥ २२ ॥ निरपत्या निर्दयाश्च सर्वे देवा भविष्यथ ॥ ततः प्रसादयामासुः प्रणताः शापयन्त्रिताः ॥ २३ ॥ महद्दुःखं संप्रविष्टाः पुनः पुनरथाब्रुवन् ॥ २४ ॥ देवा ऊचुः ॥ त्वं माता सर्वदेवानां सर्वसाक्षी सनातना ॥ उत्पत्तिस्थितिसंहारकारणं जगतां सदा ॥ २५ ॥ भूतप्रकृतिरूपा त्वं महाभूतसमाश्रिता ॥ अपर्णा तपसां धात्री भूतधात्री वसुन्धरा ॥ २६ ॥ मन्त्राराध्या मन्त्रबीजं विश्वबीजलया स्थितिः ॥ यज्ञादिफलदात्री च स्वाहारूपेण स

दुष्ट बुद्धिवाले आप लोगों ने मेरी इच्छा को नाश करदिया उस कारण देवता लोग शीघ्रही पाषाणता को प्राप्त होवैं ॥ २२ ॥ व हे सब देवताओ ! तुम लोग सन्तानहीन व दयारहित होवो तदनन्तर प्रणाम करके शापमें बँधे हुए देवताओंने प्रसन्न कराया ॥ २३ ॥ और बड़े दुःखमें बैठे हुए देवता लोग बार २ बोले ॥ २४ ॥ देवता बोले कि सब देवताओं की तुम माता हो व सर्वसाक्षी तथा सनातनी हो और लोकों की उत्पत्ति, पालन व संहार का सदैव कारण हो ॥ २५ ॥ और महाभूतों से आश्रित तुम भूतप्रकृतिरूपिणी हो और अपर्णा व तपों को धारण करनेवाली तथा भूतधात्री व वसुंधरा हो ॥ २६ ॥ व मन्त्रों से आराधन करने योग्य व मन्त्र

बीज तथा संसार का बीज,नाश व स्थिति हो और सदैव स्वाहारूप से यज्ञादिकों के फल को देनेवाली हो ॥ २७ ॥ और मन्त्र, यंत्र से संयुत तथा ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों में नित्यरूपा, महारूपा, सर्वरूपा व निरंजना हो ॥ २८ ॥ और तीन दोषों से आक्रमित जन्मों से कल्याण को देनेवाली हो और महालक्ष्मी, महाकाली, महादेवी व महेश्वरी हो ॥ २९ ॥ व विश्वेश्वरी, महामाया और मायाबीज को वर देनेवाली तथा वररूपा व वरेण्या हो और तुम्हीं वरदायिनी व उत्तमसुता हो ॥ ३० ॥ व जो मनुष्य तुमको सदैव उत्तम बिल्वपत्रों से पूजते हैं उनको तुम सदैव राज्यदायिनी व कामदायिनी तथा सिद्धिदायिनी हो ॥ ३१ ॥

वेदा ॥ २७ ॥ मन्त्रयन्त्रसमोपेता ब्रह्मविष्णुशिवादिषु ॥ नित्यरूपा महारूपा सर्वरूपा निरञ्जना ॥२८॥ दोषत्रयसमाक्रान्तजननैः श्रेयसप्रदा ॥ महालक्ष्मीर्महाकाली महादेवी महेश्वरी ॥ २९ ॥ विश्वेश्वरी महामाया मायाबीजवरप्रदा ॥ वररूपा वरेण्या त्वं वरदात्री वरासुता ॥ ३० ॥ बिल्वपत्रैः शुभैर्ये त्वां पूजयन्ति नराः सदा ॥ तेषां राज्यप्रदात्री च कामदा सिद्धिदा सदा ॥ ३१ ॥ चातुर्मास्येर्चिता यैस्त्वं बिल्वपत्रैर्विशेषतः ॥ तेषां वाञ्छितसिद्ध्यर्थं जाता कामदुघा स्वयम् ॥ ३२ ॥ येऽर्चयन्ति सदा लोके महेश्वरसमन्विताम् ॥ बिल्वपत्रैर्महाभक्त्या न तेषां दुःखदुष्कृती ॥ ३३ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण तव पूजा महाफला ॥ अद्यप्रभृति यैर्लोकैर्बिल्वपत्रैस्तु पूजिता ॥ ३४ ॥ विधास्यसि महेशानि तेषां ज्ञानमनुत्तमम् ॥ चातुर्मास्येऽधिकफलं बिल्वपत्रं वरानने ॥ ३५ ॥ उमामहेश्वरप्रीत्यै दत्तं

व विशेषकर चातुर्मास्य में जिन्होंने तुमको बिल्वपत्रों से पूजा है उनकी चाही हुई सिद्धि के लिये तुम आपही कामदुघा पैदा हुई हो ॥ ३२ ॥ व संसार में शिवजी से संयुत तुमको जो सदैव बिल्वपत्रों से पूजते हैं उनको दुःख व दुष्कृति नहीं होती है ॥ ३३ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर तुम्हारी पूजा महाफल को देती है और आजसे लगाकर जो मनुष्य तुमको बिल्वपत्रों से पूजेंगे ॥ ३४ ॥ हे महेशानि ! उनको तुम अति उत्तम ज्ञान को दोगी क्योंकि हे वरानने ! चातुर्मास्य में बिल्वपत्र अधिक फलवान् होता है ॥ ३५ ॥ और पार्वती व शिवजी की प्रीति के लिये विधिपूर्वक दिया हुआ बिल्वपत्र अक्षय होताहै जिसप्रकार तुलसी के

वृक्ष में लक्ष्मी हैं वैसेही बिल्वमें पार्वतीजी हैं ॥ ३६ ॥ व सब मनोरथों को देनेवाली तुम मूर्ति से संसार देख पड़तीहो और चातुर्मास्य में विशेषकर सेवित दोनों महाफलवान् होते हैं ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने इन्द्रादीनां शापप्रदानंनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० ॥ जिमि पीपल द्रुम की अहै महिमा अमित अपार । पन्द्रहवें अध्याय में सोइ चरित विस्तार ॥ पैजवन बोला कि लक्ष्मीजी कैसे तुलसीरूपिणी

त्वं मूर्त्या दृश्यसे विश्वं सकलाभीष्टदायिनी ॥ विधिवदक्षयम् ॥ यथा श्रीस्तुलसीवृक्षे तथा बिल्वे च पार्वती ॥ ३६ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सेवितौ द्वौ महाफलौ ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने इन्द्रादीनां शापप्रदानंनाम चतुर्दशोध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥

पैजवन उवाच ॥ श्रीः कथं तुलसीरूपा बिल्ववृक्षे च पार्वती ॥ एतच्च विस्तरेण त्वं मुने तत्त्वं वद प्रभो ॥ १ ॥ गालव उवाच ॥ पुरा देवासुरे युद्धे दानवा बलदर्पिताः ॥ देवान् निजघ्नुः संग्रामे घोररूपाः सुदारुणाः ॥ २ ॥ देवाश्च भयसंविग्ना ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ ते स्तुत्वा पितरं नत्वा बृहस्पतिपुरःसराः ॥ ३ ॥ तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे वह्नीन्द्रवसुभिर्युतैः ॥ तानुवाच पितामहः ॥ किमर्थं देवनिकरा मत्सकाशमुपागताः ॥ ४ ॥ कारणं कथ्यतामाशु ब्राह्म देवा ऊचुः ॥ दैत्यैः पराजितास्तात संगरेऽद्भुतकारिभिः ॥ ५ ॥ वयं सर्वे पराक्रान्ता अतस्त्वां शरणंगताः ॥

हैं व बिल्ववृक्ष में पार्वतीजी कैसे हैं हे प्रभो, मुने ! तुम इस तत्त्व को विस्तार से कहो ॥ १ ॥ गालवजी बोले कि पुरातन समय बलसे गर्वित व भयंकररूपी दारुण दानवों ने देवासुरसग्राम में देवताओं को मारा ॥ २ ॥ भयसे ऊवेहुए देवता ब्रह्माकी शरण में गये और बृहस्पति आदिक वे देवता पिताकी स्तुतिकर व प्रणामकर ॥ ३ ॥ सब हाथों को जोडकर स्थित हुए व पितामहजी उनसे बोले कि हे देवगणो ! तुमलोग मेरे समीप क्यों आये हो ॥ ४ ॥ अग्नि, इन्द्र व वसुवों से संयुत देवताओं से यह कारण शीघ्रही कहा जावै देवता बोले कि हे तात ! अद्भुत करनेवाले दैत्यों ने समर में हमलोगों को जीतलिया ॥ ५ ॥

इस कारण आक्रमण किये हुए हमसब तुम्हारी शरण में आये हैं हे देवदेवेश ! शरण में आयेहुए हमलोगों की रक्षा कीजिये ॥ ६ ॥ उस वचनको सुनकर लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्माने कहा कि मुझसे किसी मनुष्यका पक्ष नहीं किया जा सक्ता है ॥ ७ ॥ और उत्तम धर्म के आश्रित आपलोगों के आगे मैं यत्नको कहता हूं एक समय विष्णुजी के भक्तों के साथ परस्पर जीतने की इच्छासे शिवभक्तों का बड़ा भारी विवाद हुआ तदनन्तर विष्णुगणों समेत अपने भक्तों के देखते हुए भगवान् शिवजी ने बड़ा अद्भुतरूप धारण किया तब आधे देहों से उन्होंने हरिहराख्य रूप किया ॥ ८ । १० ॥ कि आधे शरीर से शिव व आधे से विष्णुजी

स्मान्देवदेवेश शरणं समुपागतान् ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्प्राह ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ मया न शक्यते कर्त्तुं पक्षः कस्य जनस्य च ॥ ७ ॥ वक्ष्याम्युपायं सद्धर्माश्रितानां भवतां पुरः ॥ एकदा शिवभक्तानां विवादः सुमहानभूत् ॥ ८ ॥ समं केशवभक्तैश्च परस्परजिगीषया ॥ ततस्तु भगवान्रुद्रः स्वभक्तानां च पश्यताम् ॥ ९ ॥ एकं विष्णुगणैः कुर्वन् दध्रे रूपं महाद्भुतम् ॥ तदा हरिहराख्यं च देहार्द्धाभ्यां दधार सः ॥ १० ॥ हरश्चैवार्द्धदेहेन विष्णुरर्द्धेन चाभवत् ॥ एकतो विष्णुचिह्नानि हरचिह्नानि चैकतः ॥ ११ ॥ एकतो वैनतेयश्च वृषभश्चान्यतोऽभवत् ॥ वामतो मेघवर्णाभो देहोश्मनिचयोपमः ॥ १२ ॥ कर्पूरगौरः सव्ये तु समजायत वै तदा ॥ द्वयोरैक्यसमं विश्वं विश्वमैक्यमवर्त्तत ॥ १३ ॥ विभेदमतयो नष्टाः श्रुतिस्मृत्यर्थबाधकाः ॥ पाखण्डिनो हैतुकाश्च सर्वे विस्मयमागमन् ॥ १४ ॥ स्वं स्वं मार्गं परित्यज्य ययुर्निर्वाणपद्धतिम् ॥ मन्दरे पर्वतश्रेष्ठे सा मूर्तिर्नित्यसंस्तुता ॥ १५ ॥ प्रमथाद्यैर्गणैश्चैव वर्ततेऽद्यापि नि

हुए और एक ओर विष्णु के चिह्न होगये व एक ओर शिवजी के चिह्न हुए ॥ ११ ॥ व एक ओर गरुड व एक ओर बैल हुआ व वाम ओर पत्थरसमूहों के समान तथा मेघों के रंग के समान शरीर हो गया ॥ १२ ॥ व उस समय दाहिने ओर कर्पूर के समान गौर हो गया व दोनों में एकता समान संसार और ऐक्य के समान संसार होगया ॥ १३ ॥ व श्रुतियों तथा स्मृतियों के बाधक भेद बुद्धिवाले नष्ट मनुष्य और पाखण्डी व हैतुक सब लोग विस्मयको प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ व अपने अपने मार्ग को छोड़कर सब मोक्ष की पदवी को प्राप्त हुए और पर्वतों में श्रेष्ठ मन्दराचल पर्वत पै प्रमथादिक गण उस मूर्ति की नित्य स्तुति करते हैं

और वह आज भी अचल वर्तमान है व सृष्टि, पालन व संहार करनेवाली वह मूर्ति विश्वबीज है व अनन्त है ॥ १५ । १६ ॥ शिव व विष्णुजी समेत स्मरण की हुई वह पापनाशिनी है जो कि योगियों से ध्यान करने योग्य व सत्य समेत तथा सत्त्व के आधार के गुणों को उल्लंघन करनेवाली है ॥ १७ ॥ मुक्ति को चाहनेवाले भी उसको ध्यानकर परम पद को प्राप्त होते हैं व चातुर्मास्य में विशेषकर ध्यान कर मनुष्य फिर मनुष्य नहीं होताहै ॥ १८ ॥ और वहां जो जाते हैं उनका वह देवता कल्याण करैगा उनसे यह कहकर भगवान् ब्रह्माजी वहीं अन्तर्द्धान हो गये ॥ १९ ॥ और वे भी अग्नि आदिक देवता मंदराचल पर्वत

श्चला ॥ सृष्टिस्थित्यन्तकर्त्री सा विश्वबीजमनन्तका ॥ १६ ॥ महेशविष्णुसंयुक्ता सा स्मृता पापनाशिनी ॥ योगिध्येयाससत्या च सत्त्वाधारगुणातिगा ॥ १७ ॥ मुमुक्षवोऽपि तां ध्यात्वा प्रयान्ति परमं पदम् ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण ध्यात्वा मर्त्यो ह्यमानुषः ॥ १८ ॥ तत्र गच्छन्ति ये तेषां स देवः शं विधास्यति ॥ इत्युक्त्वा भगवांस्तेषां तत्रैवान्तरधीयत ॥ १९ ॥ तेपि वह्निमुखा देवाः प्रजग्मुर्मन्दराचलम् ॥ बभ्रमुस्तत्र तत्रैव विचिन्वाना महेश्वरम् ॥ २० ॥ पार्वतीं बिल्ववृक्षस्थां लक्ष्मीं च तुलसीगताम् ॥ आदौ सर्वं वृक्षमयं पूर्वं विश्वमजायत ॥ २१ ॥ एते वृक्षा महाश्रेष्ठाः सर्वे देवांशसंभवाः ॥ एतेषां स्पर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण महापापौघहारिणः ॥ यदा ते नैव ददृशुर्देवास्त्रिभुवनेश्वरम् ॥ २३ ॥ तदाकाशभवा वाणी प्राह देवान् यथार्थतः ॥ ईश्वरः सर्वभूतानां कृपया वृक्षमाश्रितः ॥ २४ ॥ चातुर्मास्येऽथ संप्राप्ते सर्वभूतदयाकरः ॥ अश्वत्थोतः सदा सेव्यो मन्दवारे विशे

को गये और शिवजी को ढूंढ़ते हुए वे जहां तहां घूमने लगे ॥ २० ॥ व बिल्व वृक्ष में स्थित पार्वती तथा तुलसी में प्राप्त लक्ष्मीजी को ढूंढ़ने लगे पहले सब संसार वृक्षमय हुआ है ॥ २१ ॥ और ये बड़े श्रेष्ठ सब वृक्ष देवांश से उत्पन्न हैं व इनके स्पर्श ही से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ २२ ॥ व चातुर्मास्य में विशेषकर ये महापापसमूहों को हरनेवाले हैं और जब उन देवताओं ने त्रिलोकेश शिवजी को नहीं देखा ॥ २३ ॥ तब आकाश से उपजी हुई वाणीने देवताओं से यथार्थ कहा कि ईश्वर सब प्राणियों के ऊपर दया से वृक्ष में आश्रित है ॥ २४ ॥ इस कारण चातुर्मास्य प्राप्त होने पर सब प्राणियों के ऊपर

दया करनेवाला पीपल सदैव सेवने योग्य है व शनैश्चर के दिन विशेषकर सेवने योग्य है ॥ २५ ॥ नित्य पीपल के स्पर्श से पाप हज़ार खण्ड हो जाता है और जो भक्ति से तिलमिश्रित दुग्ध से तर्पण करते हैं ॥ २६ ॥ व जो सेचन करते हैं उनके पूर्वज पितरों में तृप्ति होती है और वृक्ष के दर्शन ही से पाप नाश हो जाता है ॥ २७ ॥ और विशेषकर चातुर्मास्य में पूजन, ध्यान, दर्शन व सेवन किया हुआ पीपल पाप रोग के नाश के लिये होता है और सब प्राणियों को सुख देनेवाले पूजित तथा सिक्त (सींचे हुए) पीपल को ॥ २८ ॥ व सब रोगों को नाशनेवाले तथा सब पापसमूहों को हरनेवाले पीपल वृक्ष

षतः ॥ २५ ॥ नित्यमश्वत्थसंस्पर्शात्पापं याति सहस्रधा ॥ दुग्धेन तर्पणं ये वै तिलमिश्रेण भक्तितः ॥ २६ ॥ सेचनं वा करिष्यन्ति तृप्तिस्तत्पूर्वजेषु च ॥ दर्शनादेव वृक्षस्य पातकं तु विनश्यति ॥ २७ ॥ पिप्पलः पूजितो ध्यातो दृष्टः सेवित एव वा ॥ पापरोगविनाशाय चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ अश्वत्थं पूजितं सिक्तं सर्वभूतसुखावहम् ॥ २८ ॥ सर्वामयहरं चैव सर्वपापौघहारिणम् ॥ ये नराः कीर्तयिष्यन्ति नामाप्यश्वत्थवृक्षजम् ॥ २९ ॥ न तेषां यमलोकस्य भयं मार्गे प्रजायते ॥ कुंकुमैश्चन्दनैश्चैव सुलिप्तं यश्च कारयेत् ॥ ३० ॥ तस्य तापत्रयाभावो वैकुण्ठे गणना भवेत् ॥ दुःस्वप्नं दुष्टचिन्ता च दुष्टज्वरपराभवाः ॥ ३१ ॥ विलयं नय पापानि पिप्पल त्वं हरिप्रिय ॥ मन्त्रेणानेन ये देवाः पूजयिष्यन्ति पिप्पलम् ॥ ३२ ॥ ततस्तेषां धर्मराजो जायते वाक्यकारकः ॥ अश्वत्थो वचनेनापि प्रोक्तो ज्ञानप्रदो नृणाम् ॥ ३३ ॥ श्रुतो हरति पापं च जन्मादिमरणावधि ॥ अश्वत्थसेवनं पुण्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ ३४ ॥ सुप्ते देवे वृक्षमध्यमास्थाय

से उत्पन्न नाम को भी कीर्तन करेंगे ॥ २९ ॥ उनको यमलोक के मार्ग में भय नहीं होता है और जो मनुष्य कुंकुम व चन्दनों से सुलिप्त करता है ॥ ३० ॥ उसके तीनों तापों का अभाव होता है और वैकुण्ठ में गणना होती है और दुःस्वप्न, दुष्टचिन्ता व दुष्ट ज्वरों से पराभवको ॥ ३१ ॥ हे हरिप्रिय, पिप्पल ! तुम नाश को प्राप्त करो इस मन्त्रसे जो देवता पिप्पल को पूजेंगे ॥ ३२ ॥ उससे यमराज उनके वचनकारक होते हैं और वचन से भी कहा हुआ पिप्पल मनुष्यों को ज्ञानदायक होता है ॥ ३३ ॥ व जन्म से लगाकर मरण तक के पाप को सुना हुआ पीपल नाश करता है और चातुर्मास्य में विशेषकर पीपल

भगवान्प्रभुः ॥ जलं पृथ्वीगतं सर्वं प्रपिबन्निव सेवते ॥ ३५ ॥ जलं विष्णुर्जलत्वेन विष्णुरेव रसो महान्॥ तस्माद्वृक्ष
गतो विष्णुश्चातुर्मास्येऽघनाशनः ॥ ३६ ॥ सर्वभूतगतो विष्णुराप्याययति वै जगत् ॥ तथाश्वत्थगतं विष्णुं यो न
मस्येन्न नारकी ॥ ३७ ॥ अश्वत्थं रोपयेद्यस्तु पृथिव्यां प्रयतो नरः ॥ तस्य पापसहस्राणि विलयं यान्ति तत्क्षणात् ॥
३८ ॥ अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां पवित्रो मङ्गलान्वितः ॥ मुक्तिदोपि ततो ध्यातश्चातुर्मास्येऽघनाशनः ॥ ३९ ॥ अश्व
त्थे चरणं दत्त्वा ब्रह्महत्या प्रजायते ॥ निष्कारणं संकुथित्वा नरके पच्यते ध्रुवम् ॥ ४० ॥ मूले विष्णुः स्थितो नि
त्यं स्कन्धे केशव एव च ॥ नारायणस्तु शाखासु पत्रेषु भगवान् हरिः ॥ ४१ ॥ फलेच्युतो न सन्देहः सर्वदेवसमन्वि
तः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण द्रुमः पूज्यः स मुक्तिभाक् ॥ ४२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सदैवाश्वत्थसेवनम् ॥ यः करो
ति नरो भक्त्या पापं याति दिनोद्भवम् ॥ ४३ ॥ स एव विष्णुर्द्रुम एव मूर्तो महात्मभिः सेवितपुण्यमूलः ॥ यस्याश्र

का सेवन पुण्यवान् होता है ॥ ३४ ॥ व विष्णुदेवजी के सोने पर वृक्ष के मध्य में स्थित होकर पृथ्वी में प्राप्त सब जल को पीते हुए से सेवते हैं ॥ ३५ ॥ और जल विष्णु है व जलत्व से विष्णु ही बड़े रसमय हैं इसलिये चातुर्मास्य में जल में प्राप्त विष्णुजी पापनाशक होते हैं ॥ ३६ ॥ व सब प्राणियों में प्राप्त विष्णुजी संसार को तृप्त करते हैं वैसे ही पीपल में प्राप्त विष्णुजीको जो प्रणाम करता है वह नरकगामी नहीं होता है ॥ ३७ ॥ व जो पवित्र मनुष्य पृथ्वी में पीपल को आरोपण करता है उसके हज़ारों पाप उसी क्षण नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ३८ ॥ व सब वृक्षों के मध्यमें पीपल पवित्र व मंगल से संयुत है उसकारण चातुर्मास्य में ध्यान किया हुआ पापनाशक पीपल मुक्तिदायक है ॥ ३९ ॥ व पीपल में चरण को देकर ब्रह्महत्या होतीहै व बिन कारण काटकर मनुष्य निश्चय कर नरक में पचताहै ॥ ४० ॥ उसके मूल में विष्णुजी नित्य स्थित हैं व स्कन्ध में विष्णुजी स्थित हैं और भगवान् नारायण विष्णुजी शाखाओं व पत्रों में स्थित हैं ॥ ४१ ॥ और सब देवताओं से संयुत अच्युतजी निस्सन्देह फल में स्थित हैं और चातुर्मास्य में विशेषकर वह मुक्तिभागी वृक्ष पूजने योग्य है ॥ ४२ ॥ उस कारण जो मनुष्य भक्ति से सदैव पीपल को सेवन करता है उसका दिन में उपजा हुआ पाप नाश होजाता है ॥ ४३ ॥ व महात्माओं से सेवित पवित्र मूलवाला वह

वृक्ष ही विष्णुरूपी है जिसका गुणाढ्य आश्रय मनुष्यों के हजारों पापों का नाशक है व कामनाओं को देनेवाला है ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारद-संवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्येऽश्वत्थमहिमावर्णनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । अहै पलाशहुँ वृक्ष की महिमा यथा अपार । सोलहवें अध्याय में सोई चरित सुखार ॥ वाणी बोली कि पुरातन समय के जाननेवाले जनों से पलाश विष्णुरूप से सेवन किया जाताहै और बहुत उपचारोंसे ब्रह्मवृक्ष का सेवन ॥ १ ॥ सब कामनाओं का दायक व महापातकों का नाशक कहा गयाहै और पलाश में

यः पापसहस्रहन्ता भवेन्नृणां कामदुघो गुणाढ्यः ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने अश्वत्थमहिमावर्णनंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥

वाण्युवाच ॥ पलाशो हरिरूपेण सेव्यते हि पुराविदैः ॥ बहुभिर्ह्युपचारैस्तु ब्रह्मवृक्षस्य सेवनम् ॥ १ ॥ सर्वकामप्रदं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ॥ त्रीणि पत्राणि पालाशे मध्यमं विष्णुशापितम् ॥ २ ॥ वामे ब्रह्मा दक्षिणे च हर एकः प्रकीर्तितः ॥ पालाशपत्रे यो भुङ्क्ते नित्यमेव नरोत्तमः ॥ ३ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण भोक्तुर्मोक्षप्रदं भवेत् ॥ ४ ॥ पयसा वाथ दुग्धेन रविवारेऽनिशं यदि ॥ चातुर्मास्येऽर्चितो यैस्तु ते यान्ति परमं पदम् ॥ ५ ॥ दृश्यते यदि पालाशः प्रातरुत्थाय मानवैः ॥ नरकानाशु निर्धूय गम्यते परमं पदम् ॥ ६ ॥ पाला

तीन पत्ते होते हैं उनमें से मध्य का पत्र विष्णुजी से शापितहै ॥ २ ॥ और वाम ओर ब्रह्मा व दक्षिण ओर एक शिवजी कहे गयेहैं और जो उत्तम मनुष्य नित्य पलाश के पत्ते में भोजन करता है ॥ ३ ॥ वह निस्सन्देह हज़ार अश्वमेधयज्ञोंके फल को पाता है व चातुर्मास्य में विशेषकर भोजन करनेवाले को पत्र मोक्षदायक होता है ॥ ४ ॥ और यदि चातुर्मास्य में रविवार को जिन मनुष्यों ने सदैव जल व दूधसे पूजन किया है वे परम पदको प्राप्त होतेहैं ॥ ५ ॥ और यदि प्रातःकाल उठकर मनुष्य पलाश को देखताहै तो शीघ्रही नरकों को नाशकर परम पदको जाताहै ॥ ६ ॥ और पलाश सब देवताओं का आधार व धर्मसाधन है इससे जहां उस धर्म

का लोभ होवै वहां वह महावृक्ष पूजने योग्यहै ॥ ७ ॥ जैसे सब जातियों में ब्राह्मण अधिक मुख्य होता है वैसेही सब वृक्षों के मध्य में ब्रह्मवृक्ष वहुत उत्तम है ॥ ८ ॥ जिसके मूल में सदैव शिव व स्कन्ध में आपही त्रिशूलधारी हैं और शाखाओं में भगवान् शिव व पुष्पों में त्रिपुरान्तकहैं ॥ ९ ॥ व पत्तोंमें शिव और फल में गणेशजी बसते हैं व त्वचा में गणपति तथा मज्जा में भगवान् भवजी हैं ॥ १० ॥ व ईश्वर प्रशाखाओं में हैं और यह सब वृक्ष शिवजी को प्रिय हैं जैसे सदैव शिवजी यथावत् कर्पूर के समान श्वेत वर्णन किये गये हैं ॥ ११ ॥ वैसेही यह ब्रह्मरूप वृक्ष श्वेत रंग व महाऐश्वर्यवान् है और ध्यान किया हुआ वह शत्रुओं

शः सर्वदेवानामाधारो धर्मसाधनम् ॥ यत्र लोभस्तु तस्य स्यात्तत्र पूज्यो महातरुः ॥ ७ ॥ यथा सर्वेषु वर्णेषु विप्रो मुख्यतमो भवेत् ॥ मध्ये सर्वतरूणां च ब्रह्मवृक्षो महोत्तमः ॥ ८ ॥ यस्य मूले हरो नित्यं स्कन्धे शूलधरः स्वयम् ॥ शाखासु भगवान् रुद्रः पुष्पेषु त्रिपुरान्तकः ॥ ९ ॥ शिवः पत्रेषु वसति फले गणपतिस्तथा ॥ गङ्गापतिस्त्वचायां तु मज्जायां भगवान् भवः ॥ १० ॥ ईश्वरस्तु प्रशाखासु सर्वोऽयं हरवल्लभः ॥ हरः कर्पूरधवलो यथावद्वर्णितः सदा ॥ ११ ॥ तथा ह्ययं ब्रह्मरूपः सितवर्णो महाभगः ॥ चिन्तितो रिपुनाशाय पापसंशोषणाय च ॥ १२ ॥ मनोरथप्रदानाय जायते नात्र संशयः ॥ गुरुवारे समायाते चातुर्मास्ये तथैव च ॥ १३ ॥ पूजितस्तु ततो ध्यातः सर्वदुःखविनाशकः ॥ १४ ॥ देवस्तुत्यो देवबीजं परं यन्मूर्तब्रह्मब्रह्मवृक्षत्वमाप्तम् ॥ नित्यं सेव्यः श्रद्धया स्थाणुरूपश्चातुर्मास्ये सेवितः पापहा स्यात् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कान्दे पैजवनोपाख्याने पालाशमहिमावर्णनन्नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥

के नाश व पातकों के शोषण के लिये होता है ॥ १२ ॥ व मनोरथों के देने के लिये होता है इसमें सन्देह नहीं है और बृहस्पति दिन आने पर विशेषकर चातुर्मास्य में ॥ १३ ॥ पूजित व तदनन्तर ध्यान किया हुआ वह सब दुःखों का विनाशक होता है ॥ १४ ॥ और जो देव बीज व मूर्त्तिमय परंब्रह्म ब्रह्मवृक्षत्व को प्राप्त हुआ है वह स्थाणुरूप व देवताओं से स्तुति करने योग्य वृक्ष श्रद्धा से सदैव सेवन करने योग्य है और चातुर्मास्य में सेवा किया हुआ वह पापविनाशक होता है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्येपालाशमहिमावर्णनन्नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दो॰। आश्रित हैं लक्ष्मी यथा तुलसी वृक्ष मँझार। सत्रहवें अध्याय में सोइ चरित सुखसार॥ वाणी बोली कि जिस गृहस्थ ने बड़े फलवाली तुलसी को आरोपण किया है उसके घर में दरिद्रता नहीं होती है इसमें सन्देह नहीं है॥ १ ॥ और तुलसी के दर्शनही से पापों की राशि निवृत्त होजाती है और अमृत के कणों से उत्पन्न हरिप्रिया तुलसी लक्ष्मी के लिये होती हैं॥ २॥ और रुचिर पान को पीती हुई तुलसी प्राणियों के पापों को हरनेवाली हैं और जिसके रूपमें लक्ष्मी व स्कन्ध में समुद्रजा बसती हैं॥ ३॥ व पत्तों में सदैव लक्ष्मी तथा शाखाओं में आपही कमलाजी स्थित हैं और इंदिरा सदैव पुष्पों में प्राप्त हैं व फल में क्षीर-

वाण्युवाच॥ तुलसी रोपिता येन गृहस्थेन महाफला॥ गृहे तस्य न दारिद्र्यं जायते नात्र संशयः॥ १॥ तुलस्या दर्शनादेव पापराशिर्निवर्तते॥ श्रिये मृतकणोत्पन्ना तुलसी हरिवल्लभा॥ २॥ पिबन्ती रुचिरं पानं प्राणिनां पापहारिणी॥ यस्या रूपे वसेल्लक्ष्मीः स्कन्धे सागरसंभवा॥३॥पत्रेषु सततं श्रीश्च शाखासु कमला स्वयम्॥ इन्दिरापुष्पगा नित्यं फले क्षीराब्धिसंभवा॥ ४॥ तुलसी शुष्ककाष्ठेषु या रूपा विश्वव्यापिनी॥ मज्जायां पद्मवासा च त्वचासु च हरिप्रिया॥ ५॥ सर्वरूपा च सर्वेशा परमानन्ददायिनी॥ तुलसीप्राशको मर्त्यो यमलोकं न गच्छति॥ ६॥ शिरस्था तुलसी यस्य न याम्यैः परिभूयते॥ मुखस्था तुलसी यस्य निर्वाणपददायिनी॥ ७॥ हस्तस्था तुलसी यस्य स तापत्रयवर्जितः॥ तुलसी हृदयस्था च प्राणिनां सर्वकामदा॥ ८॥ स्कन्धस्था तुलसी यस्य स पापैर्न च लिप्यते॥

सागर से उपजी हुई बसती हैं॥ ४॥ व तुलसी के सूखे काष्ठों में जो विश्वव्यापिनी व अरूपा बसती हैं और मज्जा में पद्मवासा तथा त्वचाओं में हरिप्रिया हैं॥ ५॥ और सर्वरूपा व सर्वेशा तथा परमानन्ददायिनी हैं व तुलसी को खानेवाला मनुष्य यमलोक को नहीं जाता है॥ ६॥ व तुलसीजी जिसके मस्तक में स्थित होती हैं वह यमदूतों से परिभूत नहीं होता है और तुलसी जिसके मुखमें स्थित होती हैं उसको मोक्ष पदवी को देती हैं॥ ७॥ व तुलसी जिसके हाथ में स्थित होती हैं वह तीनों तापों से रहित होता है व प्राणियों के हृदय में स्थित तुलसी सब कामनाओं को देती हैं॥ ८॥ व तुलसी जिसके स्कध में स्थित

होती है वह पापों से लिप्त नहीं होता है और तुलसी जिसके कण्ठ में स्थित होती है वह सदैव जीवन्मुक्त होता है व ॥ ९ ॥ तुलसी से उपजे हुए पत्रको जो सदैव धारण करता है वह मन से चिन्तित सिद्धि को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १० ॥ व सब कार्यार्थों को साधन करनेवाली तथा दुष्टों को मना करनेवाली तुलसी को जो मनुष्य प्रतिदिन सींचता है वह यमराज के स्थान को नहीं जाता है ॥ ११ ॥ व चातुर्मास्य में विशेषकर प्रणाम की हुई भी वह मुक्ति को देती है नारायण को जलगत व वृक्ष में प्राप्त जानकर ॥१२॥ प्राणियों के ऊपर दया से लक्ष्मीजी तुलसी के वृक्ष में आश्रित हुई चातुर्मास्य आने पर

कण्ठगा तुलसी यस्य जीवन्मुक्तः सदा हि सः ॥ ९ ॥ तुलसीसंभवं पत्रं सदा वहति यो नरः ॥ मनसा चिन्तितां सिद्धिं संप्राप्नोति न संशयः ॥ १० ॥ तुलसी सर्वकार्यार्थसाधिनीं दुष्टवारिणीम् ॥ यो नरः प्रत्यहं सिञ्चेन्न स याति यमालयम् ॥ ११ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण वन्दितापि विमुक्तिदा ॥ नारायणं जलगतं ज्ञात्वा वृक्षगतं तथा ॥ १२ ॥ प्राणिनां कृपया लक्ष्मीस्तुलसीवृक्षमाश्रिता ॥ चातुर्मास्ये समायाते तुलसी सेविता यदि ॥ १३ ॥ तेषां पापसहस्राणि याति नित्यं सहस्रधा ॥ गोविन्दस्मरणं नित्यं तुलसीवनसेवनम् ॥ १४ ॥ तुलसीसेचनं दुग्धैश्चातुर्मास्येऽतिदुर्लभम् ॥ तुलसीं वर्द्धयेद्यस्तु मानवो यदि श्रद्धया ॥ १५ ॥ आलवालाम्बुदानैश्च पावितं सकलं कुलम् ॥ यथा श्रीस्तुलसीसंस्था नित्यमेव हि वर्द्धते ॥ १६ ॥ तथा तथा गृहस्थस्य कामवृद्धिः प्रजायते ॥ ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ १७ ॥ तथा प्रकृतयः सर्वास्तुलसीसेवने रताः ॥ श्रद्धया यदि जायन्ते न तासां दुःखदो हरिः ॥१८॥

यदि जो मनुष्य तुलसी को सेवते हैं ॥ १३ ॥ उनके हज़ारों पाप नित्य हज़ार खण्ड होजाते हैं नित्य गोविन्दजी का स्मरण व तुलसीवनका सेवन ॥ १४ ॥ और चातुर्मास्य में दुग्ध से तुलसी को सींचना बहुत दुर्लभ है और यदि श्रद्धा से मनुष्य तुलसी को थाल्हा व जलदान से बढ़ाता है तो सब वंश पवित्र हो जाता है और तुलसी में टिकी हुई लक्ष्मी जैसे नित्यही बढ़ती है॥ १५। १६ ॥ त्यों त्यों गृहस्थ के कामनाओं की वृद्धि होती है ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यासी ॥ १७ ॥ और सब प्रजा लोग यदि तुलसी के सेवन में परायण होते हैं तो विष्णुजी उनको दुःखदायक नहीं होते हैं ॥ १८ ॥ और अनेकरस से

कल्पित मूर्तिवाले एक विष्णुजी सब वृक्षों में प्राप्त प्रकाशित होते हैं और सदैव स्मरण की हुई लक्ष्मी देवी वृक्षादिकों के निवास को प्राप्त हुई है ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां तुलसीमाहात्म्यवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥

दो० । बिल्ववृक्षमें स्थित भई यथा उमा महरानि । सोइबीस अध्यायमें कह्यो चरित सुखदानि ॥ वाणी बोली कि हे महेन्द्र ! बिल्वपत्र का माहात्म्य नहीं कहा जा सक्ताहै मैं तुम्हारे उद्देशसे कहताहूं उसको यथार्थ सुनिये ॥ १ ॥ कि हिमाचलकी उत्तम कन्या पार्वतीदेवी विहाराश्रम में प्राप्त हुई और उनके मस्तक में पसीना

एको हरिः सकलवृक्षगतो विभाति नानारसेन परिभावितमूर्त्तिरेव ॥ वृक्षादिवासमगमत्कमला च देवी दुःखादि नाशनकरी सततं स्मृतापि ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने तुलसीमाहात्म्यवर्णनंनाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥

वाण्युवाच ॥ बिल्वपत्रस्य माहात्म्यं कथितुं नैव शक्यते ॥ तवोद्देशेन वक्ष्यामि महेन्द्र शृणु तत्त्वतः ॥ १ ॥ विहाराश्रममापन्ना देवी गिरिसुता शुभा ॥ ललाटफलके तस्याः स्वेदबिन्दुरजायत ॥ २ ॥ स भवान्या विनिक्षिप्तो भूतले निपपात च ॥ महातरुरयं जातो मन्दरे पर्वतोत्तमे ॥३॥ ततः शैलसुता तत्र रममाणा ययौ पुनः ॥ दृष्ट्वा वनग तं वृक्षं विस्मयोत्फुल्ललोचना ॥ ४ ॥ जयां च विजयां चैव पप्रच्छ च सखीद्वयम् ॥ कोऽयं महातरुर्दिव्यो विभाति व नमध्यगः ॥ ५ ॥ दृश्यते रुचिराकारो महाहर्षकरो ह्ययम् ॥ जयोवाच ॥ देवि त्वद्देहसंभूतो वृक्षोऽयं स्वेदबिन्दु

का बिन्दु हुआ ॥ २ ॥ व पार्वती ने उसको पृथ्वी में फेंकदिया और यह मन्दरनामक उत्तम पर्वतपै बडा वृक्ष होगया ॥ ३ ॥ तदनन्तर रमण करतीहुई पार्वतीजी फिर वहां चली गईं और वन में प्राप्त वृक्षको देखकर विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाली पार्वती ने ॥ ४ ॥ जया व विजया दोनों सखियों से पूछा कि वनके बीच में प्राप्त यह कौन महादिव्य वृक्ष शोभित है ॥ ५ ॥ और सुन्दर आकार व बडाहर्ष करनेवाला यह वृक्ष देख पड़ता है जया बोली कि हे देवि ! तुम्हारे शरीर से उपजा

हुआ यह पसीने के बिन्दुसे पैदा हुआ है ॥ ६ ॥ तुम शीघ्रही इसका नाम करो और पूजित यह पापका विनाशक होगा पार्वतीजी बोलीं कि जिसलिये पृथ्वीतल को फोडकर यह उत्तम महावृक्ष ॥ ७ ॥ मेरे समीप उत्पन्न हुआ है इस कारण यह बिल्व होवै इस वृक्षको प्राप्त होकर जो पत्रसचयको ॥ ८ ॥ लावैगा वह पृथ्वी में राजा होगा व श्रद्धासंयुत जो मनुष्य बिल्वपत्रोंसे मेरा पूजन करैगा ॥ ९ ॥ वह जिस जिस कामना को चिन्तन करैगा उसकी सिद्धि होगी और जो बिल्वपत्रों को देखकर पूजनार्थ विधि के लिये श्रद्धाको भी करैगा उसको मैं निस्सन्देह धन दूंगी और यदि जो मनुष्य पत्राग्र के भोजन में मन करैगा उसके हज़ारों पाप

जः ॥ ६ ॥ नामाऽस्य कुरु वै क्षिप्रं पूजितः पापनाशनः ॥ पार्वत्युवाच ॥ यस्मात्क्षोणितलं भित्त्वा विशिष्टोऽयं महा तरुः ॥ ७ ॥ उदतिष्ठत्समीपे मे तस्माद्बिल्वो भवत्वयम् ॥ इमं वृक्षं समासाद्य भक्तितः पत्रसंचयम् ॥ ८ ॥ आहरि ष्यत्यसौ राजा भविष्यत्येव भूतले ॥ यः करिष्यति मे पूजां पत्रैः श्रद्धासमन्वितः ॥ ९ ॥ यं यं काममभिध्या येत्तस्य सिद्धिः प्रजायते ॥ यो दृष्ट्वा बिल्वपत्राणि श्रद्धामपि करिष्यति ॥ १० ॥ पूजनार्थाय विधये धनदाऽहं न सं शयः ॥ पत्राग्रप्राशने यस्तु करिष्यति मनो यदि ॥ तस्य पापसहस्राणि यास्यन्ति विलयं स्वयम् ॥ ११ ॥ शिरः प त्राग्रसंयुक्तं करोति यदि मानवः ॥ न याम्या यातना ह्यस्य दुःखदात्री भविष्यति ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वा पार्वती हृष्टा ज गाम भवनं स्वकम् ॥ सखीभिः सहिता देवी गणैरपि समन्विता ॥ १३ ॥ वाण्युवाच ॥ अयं बिल्वतरुः श्रेष्ठः पवित्रः पापनाशनः ॥ तस्य मूले स्थिता देवी गिरिजा नात्र संशयः ॥ १४ ॥ स्कन्धे दाक्षायणी देवी शाखासु च महेश्व

आपही नाश होवैंगे ॥ १० । ११ ॥ और यदि मनुष्य शिरको पत्राग्रसे संयुत करैगा इसको यमराज की पीड़ा दुःखदायिनी न होगी ॥१२॥ यह कहकर प्रसन्न होती हुई सखियोंसमेत व गणों सहित भी पार्वती देवी अपने मन्दिरको चलीगई ॥ १३ ॥ वाणी बोली कि यह श्रेष्ठ बिल्ववृक्ष पवित्र व पापनाशक है उसके मूल में आपही गिरिजा देवी स्थित हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥ स्कन्धमें दाक्षायणी देवी व शाखाओंमें महेश्वरी और पत्रों में पार्वतीदेवी तथा फल में कात्यायनीजी

कहीगई हैं ॥ १५ ॥ और त्वचामें गौरीजी कहीगई हैं व अपर्णा मध्य वल्कल में हैं तथा पुष्पमें दुर्गा और शाखाके अंगों में उमाजी हैं ॥ १६ ॥ और प्राणियों की रक्षाके लिये पार्वतीजी की आज्ञा से सब कंटकों में नौ करोड़ शक्तियां स्थित हैं ॥ १७ ॥ उन सनातनी पार्वतीजी को उत्तम पत्रों से जो पूजते व भजते हैं वे जिस जिस कामना की इच्छा करते हैं उसकी निश्चयकर सिद्धि होती है ॥ १८ ॥ मनुष्योंको मोक्ष देनेवाली उन शुद्धरूपिणी महेश्वरी गिरिजा ने शिवजी को पलाश में स्थित देखकर अपनी लीला से बिल्वका शरीर धारण किया ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने देवीदयालु-

री ॥ पत्रेषु पार्वती देवी फले कात्यायनी स्मृता ॥ १५ ॥ त्वचि गौरी समाख्याता अपर्णा मध्यवल्कले ॥ पुष्पे दुर्गा समाख्याता उमा शाखाङ्कंकेषु च ॥ १६ ॥ कण्टकेषु च सर्वेषु कोटयो नवसंख्यया ॥ शक्तयः प्राणिरक्षार्थं संस्थिता गिरिजाज्ञया ॥ १७ ॥ तां भजन्ति सुपत्रैश्च पूजयन्ति सनातनीम् ॥ यं यं कामं कामयन्ते तस्य सिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ १८ ॥ महेश्वरी सा गिरिजा महेश्वरी विशुद्धरूपा जनमोक्षदात्री ॥ हरं च दृष्ट्वाथ पलाशमाश्रितं स्वलीलया बिल्ववपुश्चकार सा ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने बिल्वोत्पत्तिवर्णनंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

गालव उवाच ॥ इत्युक्त्वाकाशजा वाणी विरराम शुभप्रदा ॥ तेऽपि देवास्तदाश्चर्यं महद्दृष्ट्वा महाव्रताः ॥ १ ॥ चतुष्टयं च वृक्षाणां चातुर्मास्ये समागते ॥ अपूजयंश्च विधिवदैक्यभावेन शूद्रज ॥ २ ॥ चातुर्मास्येऽथ संपूर्णे दे

मिश्रविरचितायां भाषाटीकायां बिल्वोत्पत्तिवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । पारवती देवादिकन दियो यथा विधि शाप । उन्निसवें अध्याय में सोइ चरित आलाप ॥ गालवजी बोले कि यह कहकर आकाश से उपजी हुई शुभदायिनी वाणी चुप होगई और महाव्रतवाले उन देवताओं ने उस बड़ेभारी आश्चर्य को देखकर ॥ १ ॥ हे शूद्रज ! चातुर्मास्य आनेपर एकता से विधिपूर्वक चार वृक्षों को पूजा ॥ २ ॥ इसके अनन्तर चातुर्मास्य पूर्ण होनेपर प्रत्यक्ष रूपधारी हरिहरात्मक देवजी भक्ति से उनके ऊपर प्रसन्न होकर

बोले ॥ ३ ॥ कि हे महाव्रतवाले,देवेशो ! तुमलोग जावो और अपने अधिकारोंको भोगकरो मैंने उन दानवोंको मारडाला ॥ ४ ॥ यह कहकर जब देवदेवेश ऐक्य रूपधारी हुए तब गणों व देवताओं की बुद्धिनिर्भेदताको ॥ ५ ॥ प्राप्त करते हुए वे शत्रुनाशक दोनों स्वामी हुए और अभेद से प्रसन्नचित्त व पीड़ारहित वे देवता भी ॥ ६ ॥ करोड़ों विमान गणों के द्वारा अपने अधिकारों को प्राप्त हुए गालवजी बोले कि वहां भी उन पार्वतीजी के शाप से मोहित वे देवता ॥ ७ ॥ उन पार्वतीजी की स्तुतिकर व बिल्वपत्रों से महेश्वरीजी को पूजकर प्रसन्न मुखवाली उन देवी की स्तुतिकर बार २ प्रणाम करते भये ॥ ८ ॥ तदनन्तर स्तुति की

वो हरिहरात्मकः ॥ प्रसन्नस्तानुवाचाथ भक्त्या प्रत्यक्षरूपधृक् ॥ ३ ॥ ॥ यूयं गच्छत देवेशा महाव्रतपरायणाः ॥ भुंक्षध्वं स्वांश्चाधिकारान् मया ते दानवा हताः ॥ ४ ॥ इत्युक्त्वा देवदेवांशावैक्यरूपधरौ यदा ॥ गणानां देवतानां च बुद्धिं निर्भेदता तदा ॥५॥ नयन्तौ तौ तदा ईशौ बभूवतुररिन्दमौ ॥ तेपि देवा निराबाधा हृष्टचित्ता अभेदतः ॥ ६ ॥ प्रययुः स्वांश्चाधिकारान् विमानगणकोटिभिः ॥ गालव उवाच ॥ तया तत्रापि ते देवाः पार्वत्या शापमोहिताः ॥ ७ ॥ स्तुत्वा तां बिल्वपत्रैश्च पूजयित्वा महेश्वरीम् ॥ प्रसन्नवदनां स्तुत्वा प्रणेमुश्च पुनः पुनः ॥ ८ ॥ सा प्रोवाच ततो देवान् विश्वमाता तु संस्तुता ॥ मम शापो वृथा नैव भविष्यति सुरोत्तमाः ॥ ९ ॥ तथापि कृतपापानां करवाणि कृपां च वः ॥ स्वर्गे दृषन्मया नैव भविष्यथ सुरोत्तमाः ॥ १० ॥ मर्त्यलोकं च संप्राप्य प्रतिमासु च सर्वशः ॥ सर्वे देवाश्च वरदा लोकानां प्रभविष्यथ ॥ ११ ॥ पाणिग्रहेण विहिता ये कुमाराः कुमारिकाः ॥ तेषां तासां प्रजाश्चैव भविष्यन्ति न संशयः ॥ १२ ॥ देवास्तस्या भयान्नष्टा मर्त्येषु प्रतिमांगताः ॥ भक्तानां मानसं भावं पूरयन्तः

हुई विश्वमाताजी देवताओं से बोलीं कि हे सुरोत्तमो ! मेरा शाप वृथा न होगा ॥ ९ ॥ तथापि पापको किये हुए तुम लोगों के ऊपर मैं दया करतीहूं कि हे सुरोत्तमो ! तुम लोग स्वर्ग में पत्थरमय न होगे ॥ १० ॥ और मृत्युलोक को प्राप्त होकर सब प्रतिमाओं में तुम सब देवतालोगों को वरदायक होगे ॥ ११ ॥ और विवाहसे जो पुत्र व कन्या विहित हैं उन पुत्रों व उन कन्याओं के सन्तान होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ देवता लोग उसके भय से नष्ट होकर मृत्युलोक में

प्रतिमा को प्राप्त हुए और भक्तोंके मानसी भावको पूर्ण करते हुए स्थित हुए ॥ १३ ॥ यह कहकर देवताओं को वर देनेवाली उन भगवती पार्वतीजी ने बहुत क्रोधित होकर विष्णु व शिवजी से कहा ॥ १४ ॥ कि हे विष्णो ! जिस लिये तुमने भी शिवजी को मना नहीं किया उस कारण तुम भी पत्थर होगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ और ब्राह्मणों के शाप से शिवजी भी लोकों में निन्दित पत्थरमय लिंगाकार रूपको प्राप्त होकर बड़े दुःखको पावेंगे ॥ १६ ॥ उस वचन को सुनकर पार्वती को अनुकूल करते हुए भगवान् विष्णुजी ने प्रणाम कर शिवजी की स्त्री पार्वतीजी से कहा ॥ १७ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि हे महाव्रते, महादेवि ! तुम

सुसंस्थिताः ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वा सा भगवती देवतानां वरप्रदा ॥ विष्णुं महेश्वरं चैव प्रोवाच कुपिता भृशम् ॥ १४ ॥ यस्माद्विष्णो महेशानस्त्वयापि न निषेधितः ॥ तस्मात्त्वमपि पाषाणो भविष्यसि न संशयः ॥ १५ ॥ हरोप्यश्ममयं रूपं प्राप्य लोकविगर्हितम् ॥ लिङ्गाकारं विप्रशापान्महद्दुःखमवाप्स्यति ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुः पार्वतीमनुकूलयन् ॥ उवाच प्रणतो भूत्वा हरभार्यां महेश्वरीम् ॥ १७ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ महाव्रते महादेवि महादेवप्रिये सदा ॥ त्वं हि सत्त्वरजःस्था च तामसी शक्तिरुत्तमा ॥ १८ ॥ मात्रात्रयसमोपेता गुणत्रयविभाविनी ॥ मायादीनां जनित्री त्वं विश्वव्यापकरूपिणी ॥ १९ ॥ वेदत्रयस्तुता त्वं च साध्यारूपेण रागिणी ॥ अरूपा सर्वरूपा त्वं जनसन्तानदायिनी ॥ २० ॥ फलवेला महाकाली महालक्ष्मीः सरस्वती ॥ ॐकारश्च वषट्कारस्त्वमेव हि सुरेश्वरी ॥ २१ ॥ भूतधात्रि नमस्तेस्तु शिवायै च नमोस्तु ते ॥ रागिण्यै च विरागिण्यै विकराले नमः शुभे ॥ २२ ॥

सदैव महादेवजी को प्यारी हो और तुम सत्त्व व रजोगुण में स्थित हो व उत्तम तामसी शक्ति हो ॥ १८ ॥ और तुम तीन मात्राओंसे संयुत व तीन गुणोंको प्रकट करनेवाली तथा मायादिकों को पैदा करनेवाली व संसार की व्यापकरूपिणी हो ॥ १९ ॥ और तुम तीनों वेदों से स्तुति की जाती हो व साध्यारूप से तथा रागिणी हो और अरूपा व सर्वरूपा तुम मनुष्यों को सन्तान देनेवाली हो ॥ २० ॥ और तुम फलवेला व महाकाली, महालक्ष्मी व सरस्वती हो और तुम्हीं ॐकार व वषट्कार और सुरेश्वरी हो ॥ २१ ॥ हे भूतधात्रि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व शिवारूपिणी आपके लिये प्रणाम है व हे शुभे, विकराले ! रागिणी

व विरागिणी के लिये नमस्कार है ॥ २२ ॥ इस प्रकार स्तुति की हुई प्रसन्नाक्षी पार्वती देवीजी ने प्रसन्नचित्त से बड़े उदार विष्णुजी से वृथा रोष सयुत वचन को कहा ॥ २३ ॥ कि हे जनार्दनजी ! तुमको भी यह मेरा शाप अन्यथा न होगा और उसमें भी स्थित तुम योगीश्वरों को मुक्तिदायक होगे ॥ २४ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर कामदायक होगे और गंडकी नामक जो नदी ब्रह्माकी प्यारी कन्या है ॥ २५ ॥ वह पाषाणसारसंभूत तथा पुण्यदायिनी व महाजलवाली है उसके निर्मल जल में तुम्हारा निवास होगा ॥ २६ ॥ और चौबीस भेद से पुराणों के जाननेवाले जनों से देखे जावोगे और मुख में

एवंस्तुता प्रसन्नाक्षी प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ उवाच परमोदारं मिथ्यारोषयुतं वचः ॥ २३ ॥ मच्छापो नान्यथा भावी जनार्दन तवाप्ययम् ॥ तत्रापि संस्थितस्त्वं हि योगीश्वरविमुक्तिदः ॥ २४ ॥ कामप्रदश्च भक्तानां चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ निम्नगा गण्डकीनाम ब्रह्मणो दयिता सुता ॥२५॥ पाषाणसारसंभूता पुण्यदात्री महाजला ॥ तस्याः सुविमले नीरे तव वासो भविष्यति ॥ २६ ॥ चतुर्विंशतिभेदेन पुराणज्ञैर्निरीक्षितः ॥ मुखे जाम्बूनदं चैव शालग्रामः प्रकीर्तितः ॥ २७ ॥ वर्त्तुलस्तेजसः पिण्डः श्रिया युक्तो भविष्यति ॥ सर्वसामर्थ्यसंयुक्तो योगिनामपि मोक्षदः ॥२८॥ ये त्वां शिलागतं विष्णुं पूजयिष्यन्ति मानवाः ॥ तेषां सुचिन्तितां सिद्धिं भक्तानां संप्रयच्छसि ॥ २९ ॥ शिलागतं च देवेशं तुलस्या भक्तितत्पराः ॥ पूजयिष्यन्ति मनुजास्तेषां मुक्तिर्न दूरतः ॥ ३० ॥ शिलास्थितं च यः पश्येत्त्वां विष्णुं प्रतिमागतम् ॥ सुचक्राङ्कितसर्वाङ्गं न स गच्छेद्यमालयम् ॥ ३१ ॥ गालव उवाच ॥ इति ते कथितं सर्वं शा

जांबूनद शालग्राम कहागया है ॥ २७ ॥ व तेज का गोलपिण्ड लक्ष्मी से संयुत होगा और सब सामर्थ्य से संयुत योगियों को मोक्षदायक होगे ॥ २८ ॥ और शिला में प्राप्त तुम विष्णुजी को जो मनुष्य पूजैंगे उन भक्तों को चिन्तित सिद्धि को तुम दोगे ॥ २९ ॥ व भक्ति में तत्पर जो मनुष्य तुलसी से शिला में प्राप्त देवेश विष्णुजी को पूजैंगे उनको मुक्ति दूर नहीं होती है ॥ ३० ॥ और प्रतिमा में प्राप्त व शिला में स्थित तथा उत्तम चक्रसे चिह्नित सर्वांगवाले तुम विष्णुजी को जो देखैगा वह यमराज के स्थान को न जावैगा ॥ ३१ ॥ गालवजी बोले कि तुमसे यह सब शालग्राम का कारण कहा गया जिस प्रकार

कि वे भगवान् विष्णुजी पाषाणत्व को प्राप्त हुए ॥ ३२ ॥ और गोविन्दजी भी बड़े शापको पाकर अपने मन्दिर को चले गये और क्रोधित पार्वतीजी शिवजी को प्रणाम कर स्थित हुईं ॥ ३३ ॥ इस प्रकार संसार के भूत, भविष्य प्राणियों के करनेवाले तथा सबके पालन व नाशन से चिह्नित वे भगवान् विष्णुजी लक्ष्मी समेत और पार्वतीजी समेत शिव भी चारों वृक्षों में भी निवास को प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने विष्णुशापोनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

त्वग्रामस्य कारणम् ॥ यथा स भगवान्विष्णुः पाषाणत्वमुपागतः ॥ ३२ ॥ गोविन्दोऽपि महाशापं लब्ध्वा स्वभवनं गतः ॥ पार्वती च महेशानं कुपिता प्रणमय्य च ॥ ३३ ॥ एवं स एव भगवान् भवभूतभव्यभूतादिकृत्सकलसंस्थितिनाशनांकः ॥ सोपि श्रिया सह भवोपि गिरीशपुत्र्या सार्द्धं चतुर्षु च द्रुमेषु निवासमाप ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पैजवनोपाख्याने विष्णुशापोनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ * ॥

शूद्र उवाच ॥ महदाश्चर्यमेतद्धि यत्सुरा वृक्षरूपिणः ॥ चातुर्मास्ये समायाते सर्ववृक्षनिवासिनः ॥ १ ॥ भगवन्के सुरास्ते तु केषु केषु निवासिनः ॥ एतद्विस्तरतो ब्रूहि ममानुग्रहकाम्यया ॥ २ ॥ गालव उवाच ॥ अमृतं जलमित्याहुश्चातुर्मास्ये तदिच्छया ॥ लीलया विधृतं देवैः पिबन्ति द्रुमदेवताः ॥३॥ तस्य पानान्महातृप्तिर्जायते नात्र संशयः ॥

दो० । जौन देवता टिकत हैं जेहिं तरु चातुर्मास । सोइ बीस अध्याय में कह्यो चरित सुखरास ॥ शूद्र बोला कि यह बड़ा आश्चर्य है जो कि देवता वृक्षरूपी हुए और चातुर्मास्य आने पर सब वृक्षों के निवासी हुए ॥ १ ॥ हे भगवन्! वे कौन देवता हैं और किन २ वृक्षों में बसते हैं मेरे ऊपर दया की इच्छा से इसको विस्तार से कहिये ॥ २ ॥ गालवजी बोले कि विद्वान् जल को अमृत ऐसा कहते हैं और चातुर्मास्य में उसकी इच्छा से देवताओं से लीला से धारण किये हुए जल को वृक्षरूपी देवता पीते हैं ॥ ३ ॥ और उसके पीने से बड़ी तृप्ति होती है इसमें सन्देह नहीं है और बल, तेज व कान्ति, सौष्ठव

और बहुतही शीघ्र पराक्रम ॥ ४ ॥ ये गुण श्रीकृष्णजी के अंश से उत्पन्न अमृत के पीने से होते हैं और नित्य अमृत के पीने से थोडा बल होता है ॥ ५ ॥ इस कारण नित्य इस भोजन की प्रशंसा करते हैं व उसी कारण चारों मासों में वृक्षों में स्थित पितर व देवता प्राणियों के हित की कामना से जल को पीते हैं और सदैव सब महीनों में वृक्षों का सेवन श्रेष्ठ है ॥ ६ । ७ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर सेवन किये हुए वृक्ष सुखकारक हैं और तिलोदक से वृक्षों का सेचन सब कामनाओं को देनेवाला है ॥ ८ ॥ और दूधवाले वृक्ष दूध से संयुत जलों से सींचे हुए कल्याण को देते हैं और मैंने पहले जिन चार वृक्षों को कहा है ॥ ९ ॥

बलं तेजश्च कान्तिश्च सौष्ठवं लघुविक्रमः ॥ ४ ॥ गुणा एते प्रजायन्ते पानात् कृष्णांशसंभवात् ॥ नित्यामृतस्य पानेन बलं स्वल्पं प्रजायते ॥ ५ ॥ भोजनं तत्प्रशंसन्ति नित्यमेतन्न संशयः ॥ तस्माच्चतुर्षु मासेषु पिबन्ति जलमेव हि ॥ ६ ॥ वृक्षस्थाः पितरो देवाः प्राणिनां हितकाम्यया ॥ वृक्षाणां सेवनं श्रेष्ठं सर्वमासेषु सर्वदा ॥ ७ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सेविताः सौख्यकारकाः ॥ तिलोदकेन वृक्षाणां सेचनं सर्वकामदम् ॥ ८ ॥ क्षीरवृक्षाः क्षीरयुक्तैस्तोयैः सिक्ताः शुभप्रदाः ॥ चतुष्टयं च वृक्षाणां यच्चोक्तं पूर्वतो मया ॥ ९ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सर्वकामफलप्रदम् ॥ ब्रह्मा तु वटमाश्रित्य प्राणिनां स वरप्रदः ॥ १० ॥ सावित्री तिलमास्थाय पवित्रं श्वेतभूषणम् ॥ सुप्ते देवे विशेषेण तिलसेवा महाफला ॥ ११ ॥ तिलाः पवित्रमतुलं तिला धर्मार्थसाधकाः ॥ तिला मोक्षप्रदाश्चैव तिलाः पापापहारिणः ॥ १२ ॥ तिला विशेषफलदास्तिलाः शत्रुविनाशनाः ॥ तिलाः सर्वेषु पुण्येषु प्रथमं समुदाहृताः ॥ १३ ॥ न तिला धान्यमित्याहु

वे विशेषकर चातुर्मास्य में सब कामनाओं के फल को देनेवाले हैं और बरगद के आश्रित होकर वे ब्रह्मा वरदायक हैं ॥ १० ॥ और सफ़ेद भूषणवाले पवित्र तिल में स्थित होकर सावित्रीजी वर को देती हैं व विष्णुदेवजी के सोने पर विशेषकर तिलकी सेवा बहुत फल को देती है ॥ ११ ॥ तिल बड़े पवित्र हैं व तिल धर्म, अर्थ के साधक हैं व तिल मोक्षदायक हैं व तिल पापों को हरनेवाले हैं ॥ १२ ॥ व तिल विशेष फलदायक हैं व तिल शत्रुविनाशक हैं और सब कार्यों में तिल श्रेष्ठ कहे गये हैं ॥ १३ ॥ और विद्वान् लोग तिल को धान्य नहीं कहते हैं बरन देवधान्य ऐसा कहा गया है उस कारण सब दानों में तिलदान

बड़ा उत्तम होता है ॥ १४ ॥ हे शूद्रज ! जिसने सुवर्ण से संयुत तिलों को दिया है उसने ब्रह्महत्यादिक पापों का विनाश किया ॥ १५ ॥ और सावित्री व तिल सब कार्यार्थों के साधक हैं व विशेषकर चातुर्मास्य में मनुष्य तिलों से तर्पण करै ॥ १६ ॥ और तिलों का दर्शन, स्पर्शन व सेवन पवित्र है और तिलों का हवन, भक्षण व शरीर का उबटन पवित्र है ॥ १७ ॥ और सब भांति से यह तिल का वृक्ष दर्शनही से पापनाशक है और चातुर्मास्य में विशेषकर सेवा किया हुआ तिल वृक्ष सब सुखों को देनेवाला है ॥ १८ ॥ और प्राणियों के हित में परायण इन्द्रजी यव में प्राप्त होकर स्थित हैं और यवका सेवन, दर्शन

देवधान्यमिति स्मृतम् ॥ तस्मात्सर्वेषु दानेषु तिलदानं महोत्तमम् ॥ १४ ॥ कनकेन युता येन तिला दत्तास्तु शूद्रज ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां विनाशस्तेन वै कृतः ॥ १५ ॥ सावित्री च तिलाः प्रोक्ताः सर्वकार्यार्थसाधकाः ॥ तिलैस्तु तर्पणं कुर्याच्चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ १६ ॥ तिलानां दर्शनं पुण्यं स्पर्शनं सेवनं तथा ॥ हवनं भक्षणं चैव शरीरोद्वर्त्तनं तथा ॥ १७ ॥ सर्वथा तिलवृक्षोयं दर्शनादेव पापहा ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सेवितः सर्वसौख्यदः ॥ १८ ॥ महेन्द्रो यवमास्थाय स्थितो भूतहिते रतः ॥ यवस्य सेवनं पुण्यं दर्शनं स्पर्शनं तथा ॥ १९ ॥ यवैस्तु तर्पणं कुर्याद्देवानां दत्तमक्षयम् ॥ प्रजानां पतयः सर्वे चूतवृक्षमुपाश्रिताः ॥ २० ॥ गन्धर्वा मलयं वृक्षमगुरुं गणनायकः ॥ समुद्रा वेतसं वृक्षं यक्षाः पुन्नागमेव च ॥ २१ ॥ नागवृक्षं तथा नागाः सिद्धाः कंकोलकं द्रुमम् ॥ गुह्यकाः पनसं चैव किन्नरा मरिचं श्रिताः ॥ २२ ॥ यष्टीमधुं समाश्रित्य कन्दर्पोभूद्व्यवस्थितः ॥ रक्ताञ्जनं महावृक्षं वह्निराश्रित्य तिष्ठति ॥ २३ ॥ यमो

व स्पर्शन पवित्र है ॥ १९ ॥ और यवों से तर्पण करै तो देवताओं को दिया हुआ अक्षय होता है व सब प्रजापति लोग आम वृक्ष के आश्रित होते हैं ॥ २० ॥ और गन्धर्व मलय वृक्ष के व गणेशजी अगुरु वृक्ष के आश्रित होते हैं और समुद्र वेतस वृक्ष के व यक्ष पुन्नाग वृक्ष के आश्रित होते हैं ॥ २१ ॥ व नाग नागवृक्ष के तथा सिद्ध कंकोल वृक्ष के आश्रित होते हैं और गुह्यक कटहल वृक्षके व किन्नर मिर्च वृक्ष के आश्रित होते हैं ॥ २२ ॥ और जेठी मधुके आश्रित होकर कामदेव स्थित हुआ है व अग्निजी रक्ताञ्जन महावृक्षके आश्रित होकर स्थित हैं ॥ २३ ॥ व यमराज बहेर वृक्षके आश्रित हैं और निर्ऋति देवता मौलसिरी के

आश्रित है और वरुण खजूर वृक्षके व पवन सुपारी वृक्षके आश्रित हैं ॥ २४ ॥ और कुबेर अखरोट वृक्षके व रुद्र बेरके वृक्षके आश्रित हैं और सप्तर्षियों के महाताल हैं व इलायची वृक्ष अन्य देवताओं से घिरा है ॥ २५ ॥ और पातकोंका विनाशक कृष्ण वर्ण जामुन वृक्ष मेघों से घिरा है व श्रीकृष्णजी के समान रंग है उससे जामुन वृक्षों में उत्तम है ॥ २६ ॥ और उसके फलों के दान से वासुदेव श्रीकृष्णजी प्रसन्न होते हैं व जंवू वृक्षके आश्रित होकर जो द्विज भोजन करते हैं ॥ २७ ॥ उनके ऊपर प्रसन्न होते हुए विष्णुजी चार पुरुषार्थों को देते हैं और चातुर्मास्य आनेपर विष्णुदेवजी के सोनेपर ॥ २८ ॥ जो पवित्र स्थित

विभीतकं चैव बकुलं नैर्ऋताधिपः ॥ वरुणः खर्जुरीवृक्षं पूगवृक्षं च मारुतः ॥ २४ ॥ धनदोऽक्षोटकं वृक्षं रुद्राश्च वदरी द्रुमम् ॥ सप्तर्षीणां महाताला बहुलश्चामरैर्वृतः ॥ २५ ॥ जम्बूमेघैः परिवृतः कृष्णवर्णोघनाशनः ॥ कृष्णस्य सदृशो वर्णस्तेन जम्बूनगोत्तमः ॥ २६ ॥ तत्फलैर्वासुदेवस्तु प्रीतो भवति दानतः ॥ जम्बूवृक्षं समाश्रित्य कुर्वन्ति द्विजभोजनम् ॥ २७ ॥ तेषां प्रीतो हरिर्दद्यात्पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ चातुर्मास्ये समायाते सुप्ते देवे जनार्दने ॥ २८ ॥ ब्राह्मणान् भोजयेद्यस्तु सपत्नीकान् शुचिः स्थितः ॥ तेन नारायणस्तुष्टो भवेल्लक्ष्मीसहायवान् ॥ २९ ॥ लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै वस्त्रालङ्करणैः शुभैः ॥ परिधाय सपत्नीकान् कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ ३० ॥ यद्रात्रित्रितयेनैव वटाशोकभवेन च ॥ यत्फलं जायते तच्च जम्बुना द्विजभोजनात् ॥ ३१ ॥ तस्मिन् दिने एकभक्तं कारयेद्व्रतकृत्तदा ॥ बहुना च किमुक्तेन जम्बूवृक्षप्रपूजनात् ॥ ३२ ॥ पुत्रपौत्रधनैर्युक्तो जायते नात्र संशयः ॥ जम्बूमेघैः परिवृता विद्युताशोक एव च ॥ ३३ ॥

मनुष्य स्त्री समेत ब्राह्मणों को भोजन कराता है उससे लक्ष्मीसहायवाले विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ २९ ॥ व लक्ष्मीनारायणजी की प्रीति के लिये उत्तम वस्त्रों व गहनों से स्त्रीसमेत ब्राह्मणों को पहनाकर मनुष्य कृतार्थ होता है ॥ ३० ॥ और बरगद व अशोक से उपजे हुए रात्रित्रयसे जो फल होता है वह फल जामुन के सकाश से द्विजभोजन से होता है ॥ ३१ ॥ व उस दिन यदि एकभक्त व्रत करै तो व्रतकारी होता है और बहुत कहने से क्या है जवू वृक्षके पूजन से ॥ ३२ ॥ मनुष्य पुत्र, पौत्र व धनों से संयुत होता है इसमें सन्देह नहीं है जामुन वृक्ष मेघों से घिरा है व अशोक वृक्ष बिजली से घिरा है ॥ ३३ ॥ व सदैव प्रियाल (चिरौंजी)

महावृक्ष वसुवों से स्वीकार किया गया है व आदित्यों से जपा (दुपहरी) का वृक्ष और अश्विनीकुमारों से मैनफल घिरा है ॥ ३४ ॥ और विश्वेदेवता महुवा वृक्षके आश्रित हैं व राक्षस गुग्गुलु वृक्षके आश्रित हैं और पवित्र सूर्यनारायण मदार वृक्षके आश्रित हैं व चन्द्रमा पलाश वृक्षके आश्रितहैं ॥ ३५ ॥ और मगल खैर वृक्ष के व बुध लटजीरा वृक्षके आश्रित हैं और बृहस्पति पीपल वृक्षके तथा शुक्र गूलर वृक्षके आश्रित हैं ॥ ३६ ॥ और शूद्रजातिवाले शनैश्चर ने शमी वृक्ष को स्वीकार किया है और पितरों के तर्पण के योग्य दूर्वा को राहुने स्वीकार किया है ॥ ३७ ॥ और दूर्वा विष्णु को सदैव प्यारी है व चातुर्मास्य में

वसुभिः स्वीकृतो नित्यं प्रियालश्च महानगः ॥ आदित्यैस्तु जपावृक्षो ह्यश्विभ्यां मदनस्तथा ॥ ३४ ॥ विश्वेभिश्च मधूकश्च गुग्गुलुः पिशिताशनैः ॥ सूर्येणार्कः पवित्रेण सोमेनाथ त्रिपत्रकः ॥३५॥ खदिरो भूमिपुत्रेण अपामार्गो बुधेन च ॥ अश्वत्थो गुरुणा चैव शुक्रेणोदुम्बरस्तथा ॥ ३६ ॥ शमी शनैश्चरेणाथ स्वीकृता शूद्रजातिना ॥ राहुणा स्वीकृता दूर्वा पितॄणां तर्पणोचिता ॥ ३७ ॥ विष्णोश्च दयिता नित्यं चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ केतुना स्वीकृता दर्भा याज्ञिकेया महाफलाः ॥ ३८ ॥ विना येन शुभं कर्म संपूर्णं नैव जायते ॥ पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥ ३९ ॥ मुमूर्षूणां मोक्षरूपो धरासंस्थो महाद्रुमः ॥ अस्मिन्वसन्ति सततं ब्रह्मविष्णुशिवाः सदा ॥ ४० ॥ मूले मध्ये तथाग्रे च यस्य नामापि तृप्तिदम् ॥ अन्येपि देवा वृक्षांस्तानधिश्रित्य महाद्रुमान् ॥ ४१ ॥ प्रवर्तन्ते हि मासेषु चतुर्षु च न संशयः ॥ चातुर्मास्ये देवपत्न्यः सर्वावल्लीसमाश्रिताः ॥ ४२ ॥ प्रयच्छन्ति नृणां कामान् वाञ्छि

विशेषकर प्यारी है और बड़े फलवाले यज्ञ के वृक्षों को केतुने स्वीकार किया है ॥ ३८ ॥ जिसके विना शुभ कर्म संपूर्ण नहीं होताहै और पवित्रों के मध्यमें जो पवित्र है व मंगलों के मध्य में जो मंगल है ॥ ३९ ॥ व जो पृथ्वी में स्थित बड़ा भारी वृक्ष मनुष्योंके लिये मोक्षरूप है इस वृक्षमें सदैव ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी बसते हैं ॥ ४० ॥ और जिसके मूल, मध्य व अग्र भाग में नाम भी तृप्तिदायक है और अन्य भी देवता उन महावृक्षों के आश्रित होकर ॥ ४१ ॥ चारों महीनों में वर्तमान होते हैं इसमें सन्देह नहीं है व चातुर्मास्य में देवताओं की स्त्रियां सब लताओं में स्थित होती हैं ॥ ४२ ॥ और सेवन कियेहुए भी वृक्ष मनुष्यों

को चाहे हुए मनोरथोंको देते हैं इस कारण जिसने सब भांति से पिप्पल को सेवन किया है ॥ ४३ ॥ और विशेषकर चातुर्मास्यमें जिसने सब वृक्षोंको सेवन किया व जिसने तुलसी को सेवन किया तथा जिसने सब लताओं को सेवन किया है ॥ ४४ ॥ उसने ब्रह्म से लगाकर स्तंब पर्यन्त सब संसार को तृप्त करदिया और चातुर्मास्य में गृहस्थ था फिर वानप्रस्थ ॥ ४५ ॥ व ब्रह्मचारी और संन्यासी से सेवन की हुई तुलसी मोक्षदायिनी है व इन सब वृक्षोंका छेदन न करै ॥ ४६ ॥ व विशेषकर चातुर्मास्य में यज्ञादि कारण के विना वृक्षच्छेदन न करै तुमने जो मुझसे पूंछा यह सब कहा गया ॥ ४७ ॥ जिसप्रकार हे शूद्रज ! सब

तान्सेविता अपि ॥ तस्मात्सर्वात्मभावेन पिप्पलो येन सेवितः ॥ ४३ ॥ सेविताः सकला वृक्षाश्चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ तुलसी सेविता येन सर्वबल्ल्यश्च सेविताः ॥ ४४ ॥ आप्यायितं जगत्सर्वमाब्रह्मस्तम्बसेवितम् ॥ चातुर्मास्ये गृहस्थेन वानप्रस्थेन वा पुनः ॥ ४५ ॥ ब्रह्मचारियतिभ्यां च सेविता मोक्षदायिनी ॥ एतेषां सर्ववृक्षाणां छेदनं नैव कारयेत् ॥ ४६ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण विना यज्ञादिकारणम् ॥ एतदुक्तमशेषेण यत्पृष्टोहमिह त्वया ॥ ४७ ॥ यथा वृक्षत्वमापन्ना देवाः सर्वेऽपि शूद्रज ॥ ४८ ॥ अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दशतिन्तिडीश्च ॥ कपित्थबिल्वामलकीत्रयं च एतांश्च दृष्ट्वा नरकं न पश्येत् ॥ ४९ ॥ सर्वे देवा विश्ववृक्षेशयाश्च कृष्णाधारा कृष्णमध्याग्रकाश्च ॥ यस्मिन्देवे सेविते विश्वपूज्ये सर्वं तृप्तं जायते विश्वमेतत् ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये वृक्षमाहात्म्यकथनंनाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥

भी देवता वृक्षत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ ४८ ॥ एक पीपल व एक नीम और एक बरगद तथा दश इमली और कैथा, बेल व आंवला के तीन वृक्ष इनको देखकर मनुष्य नरक को नहीं देखता है ॥ ४९ ॥ सब देवता सब वृक्षों में शयन करते हैं और कृष्ण आधार व कृष्ण मध्य तथा कृष्णाग्रभागी होते हैं कि संसार के पूजने योग्य जिन श्रीकृष्णजी के सेवित होनेपर यह सब ससार तृप्त होता है ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां वृक्षमाहात्म्यकथनंनाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । जिमि क्रोधित पार्वती कहँ समझायो शिवनाथ । इक्किसवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ शूद्र बोला कि क्रोधित पार्वती देवीजी को किस प्रकार त्रिशूलधारी शिवजी ने प्रसन्न किया है और वे शाप देकर गई हैं कि जिनके क्रोध से संसार क्षोभित होता है ॥ १ ॥ और किस प्रकार वे भगवान् रुद्रजी स्त्री के शाप को प्राप्त हुए हैं व किस भांति विकृत रूपको प्राप्त होकर फिर दिव्य शरीर को प्राप्त हुए हैं ॥ २ ॥ गालवजी बोले कि देवता लोग देवीजी के महाभय से अदृश्य रूपों को करके सब मनुष्यलोक में प्रतिमाओं में स्थित हुए ॥ ३ ॥ और विष्णुजी से स्तुति की हुई महाऐश्वर्यवती व पापनाशिनी उन जगदम्बिकाजी ने

शूद्र उवाच ॥ पार्वती कुपिता देवी कथं देवेन शूलिना ॥ प्रसादिता गता शप्त्वा यत्कोपात्क्षुभ्यते जगत् ॥ १ ॥ कथं स भगवान् रुद्रो भार्याशापमवाप ह ॥ वैकृतं रूपमासाद्य पुनर्दिव्यं वपुःश्रितः ॥ २ ॥ गालव उवाच ॥ देवा रूपाण्यदृश्यानि कृत्वा देव्या महाभयात् ॥ मनुष्यलोके सकले प्रतिमासु च संस्थिताः ॥ ३ ॥ तेषामपि प्रसन्ना सानुग्रहं समुपाकरोत् ॥ विष्णुस्तुता महाभागा विश्वमाताघनाशिनी ॥ ४ ॥ तेषां बलाच्च पार्वत्याः शापभारेण यन्त्रितः ॥ तां नित्यमेवानुनयन्नूचे सोवाच शङ्करम् ॥ ५ ॥ एते देवा विश्वपूज्या विश्वस्य च वरप्रदाः ॥ मत्प्रसादाद्भविष्यन्ति भक्तितस्तोषिता नरैः ॥ ६ ॥ त्वामृते मम कर्मेदं कृतं साधु विनिन्दितम् ॥ वेद्यां विवाहकाले च प्रत्यक्षं सर्वसाक्षिकम् ॥ ७ ॥ यत्सप्तमण्डलानां च गमनं च करार्पणम् ॥ वह्निश्च वरुणः कृष्णो देवताश्च सवासनाः ॥ ८ ॥ चतुर्दि

उन देवताओं के ऊपर भी प्रसन्न होकर अनुग्रह किया ॥ ४ ॥ और उनके बलसे व पार्वतीजीके शापके भारसे बँधेहुए शिवजीने उन पार्वतीजीको नित्य समझाते हुए कहा और उन्होंने शिवजी से कहा ॥ ५ ॥ कि भक्ति से मनुष्यों करके प्रसन्न करायेहुए ये देवता तुमको छोडकर मेरी प्रसन्नतासे संसारके पूजने योग्य व संसार को वरदायक होवैंगे ॥ ६ ॥ और साधुवों से निन्दित मेरा यह कर्म कियागया क्योंकि विवाह के समय में वेदी के समीप सबों के सामने ॥ ७ ॥ जो सात मण्डलों का गमन है व हाथ का अर्पण करना है और अग्नि, वरुण व कृष्ण और इन्द्रसमेत देवता ॥ ८ ॥ चारों दिशाओं के अंग संयुत व देवताओं तथा ब्राह्मणों समेत जो

महर्षि हैं इनके आगे मनुष्यों की सभा में शपथ करके सत्त्व में प्राप्त तुमने प्रमाद से कैसे व्यभिचार किया और सामान्य मनुजगणों की नाईं गुरुजन भी उत्तम मार्ग में नहीं वर्तमान होते हैं ॥ ९ । १० ॥ और जब सब मनुष्यों के मध्य में निग्रह करने योग्य होता है तब प्रबुद्ध सुना जाता है पुत्रसे भी पिता व शिष्य से भी आपही गुरु शासन करने योग्य है ॥ ११ ॥ और क्षत्रियों से ब्राह्मण व स्त्रीसे पति शिक्षा करने योग्य है व वेदान्तों के पारगामी श्रेष्ठ भी कुपथगामी मनुष्य को ॥ १२ ॥ नीच भी शिक्षा करते हैं ऐसा सनातनी श्रुतिने कहा है व सब कहीं उत्तममार्ग ही पूजा जाता है कुमार्ग कहीं नहीं पूजा जाता है ॥ १३ ॥ जिसने

क्ष्वङ्गसंयुक्ता देवब्राह्मणसंयुताः ॥ एतेषामग्रतो दिव्यं कृत्वा त्वं जनसंसदि ॥ ९ ॥ प्रमादात्सत्त्वमापन्नो व्यभिचारं कथं कृथाः ॥ गुरवोपि न सन्मार्गे प्रवर्त्तन्ते जनौघवत् ॥ १० ॥ निग्राह्यः सर्वलोकेषु प्रबुद्धः श्रूयते तदा ॥ पुत्रेणापि पिता शास्यः शिष्येणापि गुरुः स्वयम् ॥ ११ ॥ क्षत्रियैर्ब्राह्मणः शास्यो भार्यया च पतिस्तथा ॥ उन्मार्गगामिनं श्रेष्ठमपि वेदान्तपारगम् ॥ १२ ॥ प्रशासत्यधमाश्चापि श्रुतिराह सनातनी ॥ सन्मार्ग एव सर्वत्र पूज्यते नापथः क्वचित् ॥ १३ ॥ येन स्वकुलजो धर्मस्त्यक्तः स पतितो भवेत् ॥ मृतश्च नरकं प्राप्य दुःखभारेण युज्यते ॥ १४ ॥ धर्मं त्यजति नास्तिक्याज्ज्ञातिभेदमुपागतः ॥ स निग्राह्यः सर्वलोकैर्मनुधर्मपरायणैः ॥ १५ ॥ कुलधर्मान् ज्ञातिधर्मान् देशधर्मान् महेश्वर ॥ ये त्यजन्ति जना अवश्यं कुलाच्च पतिता हि ते ॥१६॥ अग्नित्यागो व्रतत्यागो वचनत्याग एव च ॥ धर्मत्यागो नैव कार्यः कुर्वन् पतित एव हि ॥ १७ ॥ न पिता न च ते माता न भ्राता स्वजनोऽपि

अपने वंश में उपजेहुए धर्मको छोड़ दिया वह पतित होता है और मराहुआ वह नरक को प्राप्त होकर दुःख के भारसे युक्त होता है ॥ १४ ॥ जाति के भेद को प्राप्त जो नास्तिकता से धर्म को छोड़ताहै वह मनुधर्म में परायण सब मनुष्यों से निग्रह करने योग्य है ॥ १५ ॥ हे महेश्वरजी ! जो मनुष्य कुलधर्म, ज्ञातिधर्म व देशधर्मोंको छोड़ते हैं वे अवश्यकर कुलसे पतित होते हैं ॥ १६ ॥ अग्नित्याग, व्रतत्याग व वचनत्याग और धर्म का त्याग न करना चाहिये व इनको त्याग करता हुआ मनुष्य पतित होता है ॥ १७ ॥ और न तुम्हारे पिताहै न तुम्हारे माता है और न भाई है व स्वजन भी तुम्हारी वार्ताको नहीं देखता है और विप

को खातेहुए तुम छूने के योग्य नहीं हो ॥ १८ ॥ व अस्थियों की माला और चिता भस्म व जटा को धारनेवाले, कुवसन, चपल व मर्याद को छोड़ेहुए तुम मेरे आगे स्थित होने योग्य नहीं हो ॥ १६ ॥ अब्रह्मण्य, व्रती, भिक्षु, दुष्टात्मा व सदैव कपटी ईश्वर तुम मेरे आगे संभाषण करने के योग्य नहीं हो ॥ २० ॥ इस प्रकार आंसुवों से विकल लोचनोंवाली वे रोती हुई पार्वती देवी देवेश शिवजी के समझाने पर महादुःख से संयुत हुईं ॥ २१ ॥ व फिर भी क्रोधित पार्वतीदेवी जीने शिवजीसे कहा कि तुम्हारे हृदयमें कोमलता नहींहै बरन सदैव कठिनता जानती हूं ॥ २२ ॥ और आसुर ब्राह्मणोंने जो कहाहै वह मुझको झूंठ जान पड़ता

च ॥ पश्यते तव वार्त्तां च अस्पृश्यस्त्वमदन्विषम् ॥ १८ ॥ अस्थिमाला चिताभस्मजटाधारी कुचैलवान् ॥ चपलो मुक्तमर्यादस्तस्थुं नार्हसि मेऽग्रतः ॥ १६ ॥ अब्रह्मण्यो व्रती भिक्षुर्दुष्टात्मा कपटी सदा ॥ नार्हसि त्वं मम पुरः संभाषयितुमीश्वरः ॥ २० ॥ एवं सा रुदती देवी बाष्पव्याकुललोचना ॥ महादुःखयुतैवासीद्देवेशेनुनयत्यपि ॥ २१ ॥ पुनरेव प्रकुपिता हरं प्रोवाच भामिनी ॥ तवार्जवं न हृदये काठिन्यं वेद्मि नित्यदा ॥ २२ ॥ ब्राह्मणैस्त्वासुरैरुक्तं तन्मृषा प्रतिभाति मे ॥ यस्मान्मयि महादुष्टभाव एव कृतस्त्वया ॥ २३ ॥ ब्राह्मणा वञ्चिता यस्माद्ब्राह्मणैस्त्वं हनिष्यसे ॥ एवमुक्त्वा भगवती पुनराह न किंचन ॥ २४ ॥ ईशः प्रसन्नवदनामुपचारैरथाकरोत् ॥ शनैर्नीतिमयैर्वाक्यैर्हेतुमद्भिर्महेश्वरः ॥ २५ ॥ प्रसन्नलोचनां ज्ञात्वा किंचित्प्राह हरस्ततः ॥ कोपेन कलुषं वक्त्रं पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ॥ २६ ॥ कस्मात्त्वं कुरुषे भद्रे युक्तमेव वचो न ते ॥ सर्वभूतदया कार्या प्राणिनां हि हितेच्छया ॥ २७ ॥ यद्यपीष्टो हि य

है हे महादुष्ट ! जिस लिये तुमने मुझमें बड़ा दुष्ट भाव किया ॥ २३ ॥ व जिस लिये ब्राह्मण वञ्चित हुए हैं उस कारण तुम ब्राह्मणों से मारे जावोगे ऐसा कह कर फिर भगवती ने कुछ नहीं कहा ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर महेश्वर शिवजी ने उपचारोंसे व धीरे २ हेतुमान् नीतिमय वचनों से प्रसन्नमुखी किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर कुछ प्रसन्ननयना जानकर शिवजी ने कहा कि हे भद्रे ! तुम किस कारण पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रभावान् मुखको क्रोधसे मलीन करती हो और तुम्हारा वचन योग्य नहीं है व प्राणियों के ऊपर हित की इच्छा से सब प्राणियों के ऊपर दया करना चाहिये ॥ २६ । २७ ॥ यद्यपि जिसको अर्थ प्रिय होता है

उसको पराई पीडा न करना चाहिये हे वरवर्णिनि ! सब संसार तुम्हारे पुत्र के समान है ॥ २८ ॥ हे अनघे ! सर्वरूपधारिणी तुम्हीं एक संसार के पूजने योग्य हो मैंने यदि निन्दित कर्म किया है तौ भी देवताओं के हित के लिये तुम्हारे पुत्र होगा इसमें सन्देह नहीं है अथवा मुझको तुम सब प्राणों से भी अधिक प्यारी हो ॥ २९ । ३० ॥ हे वरानने ! जो चाहती हो वैसेही तुम्हारे मनोरथों को मैं करूं उसको तुम प्रसन्नमुखी होकर कहो ॥ ३१ ॥ ऐसा कही हुई उन भगवती ने फिर शिवजी से कहा कि चातुर्मास्य प्राप्त होनेपर यदि महाव्रतधारी होकर ॥ ३२ ॥ देवताओं के सामने ताण्डवनृत्य करो व हे महेश्वर ! भलीभांति

स्यार्थो न कार्यं परपीडनम् ॥ जगत्सर्वं सुतप्रायं तवास्ति वरवर्णिनि ॥ २८ ॥ जगत्पूज्या त्वमेवैका सर्वरूपधरानघे ॥ मया यदि कृतं कर्मावद्यं देवहिताय वै ॥ २९ ॥ तथाप्येवं तव सुतो भविष्यति न संशयः ॥ अथवा मम सर्वेभ्यः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ ३० ॥ यदिच्छसि तथा कुर्यां तथा तव मनोरथान् ॥ प्रसन्नवदना भूत्वा कथयस्व वरानने ॥ ३१ ॥ इत्युक्ता सा भगवती पुनराह महेश्वरम् ॥ चातुर्मास्ये च संप्राप्ते महाव्रतधरो यदि ॥ ३२ ॥ देवतानां च प्रत्यक्षं ताण्डवं नर्तसे यदि ॥ पारयित्वा व्रतं सम्यग्ब्रह्मचर्यं महेश्वर ॥ ३३ ॥ मत्प्रीत्यै यदि देहार्द्धं वैष्णवं च प्रयच्छसि ॥ शापस्यानुग्रहं कुर्यां प्रसन्नवदना सती ॥ ३४ ॥ नान्यथा मम चित्तं त्वं विश्वासमनुगच्छति ॥ तच्छ्रुत्वा भगवांस्तुष्टस्तथेति प्रत्युवाच ताम् ॥ ३५ ॥ सापि हृष्टा भगवती शापस्यानुग्रहे वृता ॥ ३६ ॥ इदं पुराणं मनुजः शृणोति श्रद्धायुक्तो भेदबुद्ध्या दृढत्वम् ॥ तस्यावश्यं जीवितं सर्वसिद्धं मर्त्याः सत्याः तच्छ्रेयत्वं प्रयान्ति ॥ ३७ ॥ इत्येकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

ब्रह्मचर्यव्रत को पूर्ण कर ॥ ३३ ॥ यदि मेरी प्रीति के लिये विष्णुजी के आधे शरीर को देवो तो प्रसन्नमुखी होतीहुई मैं शाप का अनुग्रह करूंगी ॥ ३४ ॥ अन्यथा मेरा चित्त तुम्हारे ऊपर विश्वास को नहीं प्राप्त होता है उस वचन को सुनकर प्रसन्न होतेहुए भगवान् शिवजी ने उन पार्वतीजी से बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ ३५ ॥ और प्रसन्न होती हुई वे भगवती पार्वती भी शाप के अनुग्रह में संयुक्त हुई ॥ ३६ ॥ श्रद्धायुक्त जो मनुष्य अभेद बुद्धिसे इस पुराण को सुनता है उसका जीवित अवश्यकर दृढ़त्व व सब सिद्ध को प्राप्त होता है व मनुष्य लोग सत्य से उसकी आश्रयता को प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥ इत्येकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दो० । मंदर पर्वत पर यथा शिवजी ताण्डव कीन । बाइसवें अध्याय में सोई चरित नवीन ॥ शूद्र बोला कि हे सुव्रत ! यह तुम्हारा वचन मुझको आश्चर्य रूप जान पड़ता है और यद्यपि कहते हुए तुमको बड़ा क्लेश होता है ॥ १ ॥ तथापि मेरे भाग्य से व मेरे पुण्यों से तुम मेरे घरको प्राप्त हुए हो फिर विशेष गुणों से पूरित गौरीजी के कथानकरूप तुम्हारे मुख से निकले हुए वचनरूपी अमृत को पीताहुआ मैं तृप्त नहीं होता हूं कि देवताओं से घिरे हुए शिवजी ने कैसे नृत्य कियाहै ॥ २ । ३ ॥ व चातुर्मास्य में वह कैसे हुआ और कौन ग्राह्यव्रत कहा जाताहै व उन पार्वतीजीने कैसे अनुग्रह किया व कौन अनुग्रहहै ॥ ४ ॥ हे

शूद्र उवाच ॥ इदमाश्चर्यरूपं मे प्रतिभाति वचस्तव ॥ यद्यपि स्यान्महाक्लेशो वदतस्तव सुव्रत ॥ १ ॥ तथापि मम भाग्येन मत्पुण्यैर्मद्गृहं गतः ॥ न तृप्ये त्वन्मुखाम्भोजाच्च्युतवाक्यामृतं पुनः ॥ २ ॥ पिबन् गौरीकथाख्यानं विशेषगुणपूरितम् ॥ कथं महेश्वरो नृत्यं चकार सुरसंवृतः ॥ ३ ॥ चातुर्मास्ये कथं जातं किं ग्राह्यं व्रतमुच्यते ॥ अनुग्रहं कृतवती सा कथं को ह्यनुग्रहः ॥ ४ ॥ एतद्विस्तरतो ब्रूहि पृच्छतो मे द्विजोत्तम ॥ भगवान् पूज्यते लोके ममानुग्रहकारकः ॥ ५ ॥ प्रसन्नवदनो भूत्वा स्वस्थः कथय सुव्रत ॥ गालवश्चापि तच्छ्रुत्वा पुनराह प्रहृष्टवान् ॥ ६ ॥ गालव उवाच ॥ इतिहासमिमं पुण्यं कथयामि तवानघ ॥ शृणुष्वावहितो भूत्वा यज्ञायुतफलप्रदम् ॥ ७ ॥ चातुर्मास्येऽथ संप्राप्ते हरो भक्तिसमन्वितः ॥ ब्रह्मचर्यव्रतपरः प्रहृष्टवदनोभवत् ॥ ८ ॥ देवतानामथाह्वानं महर्षीणां चकार ह ॥ समागत्य ततो देवा मन्दराचलमास्थिताः ॥ ९ ॥ प्रणम्य ते महेशानं तस्थुः प्राञ्जलयोग्रतः ॥

द्विजोत्तम ! पूंछते हुए मुझसे इसको विस्तार से कहिये क्योंकि मेरे ऊपर दया करनेवाले शिवजी संसार में पूजेजाते हैं ॥ ५ ॥ हे सुव्रत ! स्वस्थ होतेहुए तुम प्रसन्न-मुख होकर कहो गालवजी ने भी उसको सुनकर प्रसन्न होकर फिर कहा ॥ ६ ॥ गालवजी बोले कि हे अनघ ! इस पवित्र इतिहास को मैं तुमसे कहताहूं सावधान होकर तुम दश हज़ार यज्ञों के फल को देनेवाले इस चरित्रको सुनो ॥ ७ ॥ कि चातुर्मास्य प्राप्त होनेपर ब्रह्मचर्यव्रत में परायण व भक्ति से संयुत शिवजी प्रसन्नमुख हुए ॥ ८ ॥ और उन्होंने देवताओं व महर्षियों को बुलाया तदनन्तर देवता मंदराचल पै आकर स्थित हुए ॥ ९ ॥ और वे शिवजी को प्रणामकर

हाथों को जोडकर आगे स्थित हुए और शिवजी ने उन सब आयेहुए देवताओं को देखकर कहा ॥ १० ॥ व किसी कार्य के मध्य में पार्वतीजी से कहेहुए वचन को कहा कि मुझसे नियुक्त भी इस अभिनय (नृत्य के विषय) में इन्द्रआदिक देवता चातुर्मास्य प्राप्त होनेपर सहायकारी होवैं उन प्रसन्न इन्द्रादिक देवताओं ने त्रिशूलधारी शिवजी को प्रणाम कर बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ ११ । १२ ॥ और सूर्य के समान विमानों के द्वारा वे देवता अपने अपने मन्दिर को चलेगये और आषाढ़ में शुक्ल पक्षमें चतुर्दशी तिथि में शिवजी ने ॥ १३ ॥ पार्वतीजी की प्रसन्नता के लिये पर्वतों में श्रेष्ठ मंदराचल पै नृत्य करने का प्रारम्भ किया और

तानुवाच सुरान् सर्वान् हरो दृष्ट्वा समागतान् ॥ १० ॥ पार्वत्याभिहितं प्राह कस्मिन् कार्यान्तरे सति ॥ मया नियुक्तेऽभिनयेप्यत्र साहाय्यकारिणः ॥ ११ ॥ भवन्त्विन्द्रपुरोगाश्च चातुर्मास्ये समागते ॥ ते तथोचुश्च संहृष्टा नमस्कृत्य च शूलिनम् ॥ १२ ॥ स्वं स्वं भवनमाजग्मुर्विमानैः सूर्यसन्निभैः ॥ तथाषाढे शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां महेश्वरः ॥ १३ ॥ प्रनर्तयितुमारेभे भवानीतोषणाय च ॥ मन्दरे पर्वतश्रेष्ठे तत्र जग्मुर्महर्षयः ॥ १४ ॥ नारदो देवलो व्यासः शुकद्वैपायनादयः ॥ अङ्गिराश्च मरीचिश्च कर्दमश्च प्रजापतिः ॥ १५ ॥ कश्यपो गौतमश्चात्रिर्वसिष्ठो भृगुरेव च ॥ जमदग्निस्तथोत्तङ्को रामो भार्गव एव च ॥ १६ ॥ अगस्त्यश्च पुलोमा च पुलस्त्यः पुलहस्तथा ॥ प्रचेताश्च क्रतुश्चैव तथैवान्ये महर्षयः ॥ १७ ॥ सिद्धा यक्षाः पिशाचाश्च चारणाश्चारणैः सह ॥ आदित्या गुह्यकाश्चैव साध्याश्च वसवोऽश्विनौ ॥ १८ ॥ एते सर्वे तथेन्द्राद्या ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ समाजग्मुर्महेशस्य नृत्यदर्शनलालसाः ॥ १९ ॥

वहां महर्षिलोग आये ॥ १४ ॥ नारद, देवल, व्यास, शुक, द्वैपायनादिक, अङ्गिरा, मरीचि व कर्दम प्रजापति ॥ १५ ॥ कश्यप, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ, भृगु, जमदग्नि, उत्तङ्क व भार्गव परशुरामजी ॥ १६ ॥ व अगस्त्य, पुलोमा, पुलस्त्य, पुलह, प्रचेता, क्रतु व अन्य महर्षि लोग ॥ १७ ॥ और सिद्ध, यक्ष, पिशाच, चारण और चारणों समेत आदित्य, गुह्यक, साध्य, वसु व अश्विनीकुमार ॥ १८ ॥ ये सब और ब्रह्मा, विष्णु अग्रगामी वाले इन्द्रादिक देवता शिवजी के

नृत्यदर्शन की लालसा करके आये ॥ १९ ॥ तदनन्तर नन्दि आदिक गणों ने मुनि आदिकों के लिये क्रमपूर्वक रत्नों को दिया और भूषणों व वस्त्रों को दिया ॥ २० ॥ तदनन्तर सब ओर हज़ारों बाजों के बाजने पर सबसे जय ऐसा कहे हुए भगवान् शिवजी व्रत में प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ और प्रसन्न मनवाली पार्वतीजी ने महादेवजी को देखा और जया, विजया, जयन्ती व मंगलारुणा ॥ २२ ॥ इन चार सखियों के मध्यमें उत्तममुखी पार्वतीजी शोभित हुई और उनकी समीपता के योग से संसार अधिक गुणवाला शोभित होता है ॥ २३ ॥ व जिसके शरीर से उपजी हुई शोभा नहीं कही जासक्ती है और अनेक भाति के मुखोंवाले

ततो गणा नन्दिमुखा रत्नानि प्रददुस्तथा ॥ भूषणानि च वासांसि मुन्यादिभ्यो यथाक्रमम् ॥ २० ॥ ततो वाद्य सहस्रेषु वादितेषु समन्ततः ॥ सर्वैर्जयेति चैवोक्तो भगवान् व्रतमाविशत् ॥ २१ ॥ भवानी हृष्टहृदया महादेवं व्यलोकयत् ॥ जया च विजया चैव जयन्ती मङ्गलारुणा ॥ २२ ॥ चतुष्टयसखीमध्ये विरराज शुभानना ॥ तस्याः सान्निध्ययोगेन जगद्भाति गुणोत्तरम् ॥ २३ ॥ यस्याः शरीरजा शोभा वर्णितुं नैव शक्यते ॥ ईशोऽपि गणकोटीभिर्नानावक्त्राभिरीक्षितः ॥ २४ ॥ पिशाचभूतसंघैश्च वृतः परमशोभनः ॥ स्वर्णवेत्रधरो नन्दी बभौ कपिमुखोऽग्रतः ॥२५॥ विद्याधराश्च गन्धर्वाश्चित्रसेनादयस्तथा ॥ चित्रन्यस्ता इव बभुस्तत्र नागा मुनीश्वराः ॥ २६ ॥ श्रीरागप्रमुखा रागास्तस्य पुत्रा महौजसः ॥ अमूर्त्ताश्चैव ते पुत्रा हरदेहसमुद्भवाः ॥ २७ ॥ एकैकस्य च षट् भार्याः सर्वासां च पितामहः ॥ ताभिः सहैव ते रागा लीलावपुर्धरास्तथा ॥ २८ ॥ प्रादुर्बभूवुः सहसा चिन्तितास्तेन शम्भुना ॥

करोड़ों गणों ने शिवजी को देखा ॥ २४ ॥ और अनेक भूतगणों से घिरे व सोने के बेत को धारणकिये बहुतही शोभन वानरमुखवाले नन्दी आगे शोभित हुए ॥ २५ ॥ और विद्याधर व सुचित्रसेनादिक गन्धर्व और नाग व मुनीश्वर वहां चित्रन्यस्त याने तसवीर में खींचेहुएकी नाईं शोभित हुए ॥ २६ ॥ और श्री राग इत्यादिक राग व उसके बड़े पराक्रमी पुत्र और वे बिन शरीरवाले पुत्र जो शिवजी के शरीर से उत्पन्न हुए हैं ॥ २७ ॥ व एक एक की छा स्त्रिया और सबोंके पितामह व उन समेत वे लीला से शरीर धारनेवाले राग ॥ २८ ॥ यकायक उन शिवजी से ध्यान किये हुए प्रकट हुए हे महाधन ! उनके नामों

को मैं तुमसे कहताहूं सुनिये ॥ २६ ॥ कि शिवजीका जो पहला श्रीरागविमोहन पुत्र था परब्रह्मको देनेवाले उसने भौंहों के बीच में स्थित किया ॥ ३० ॥ व महेशजी से उनके मध्य का उत्तम गण उत्पन्न हुआ इसके अनन्तर कटि के स्थान से बड़ा यशस्वी वसंत हुआ ॥ ३१ ॥ और प्राणियों के विशुद्ध चक्र से महदंक हुआ व संसार का भूषणरूप तीसरा पञ्चम नामक पुत्र हुआ ॥ ३२ ॥ व शिवजी के हृदय से अनाहतचक्र हुआ और नासिका के स्थान से आपही भयंकर भैरव पुत्र पैदाहुआ ॥ ३३ ॥ व मणिपूरक नामक जो यह चक्रहै वह मुक्तिको देनेवाला है और शिवजी से पचास वर्ण अंक नामक हुए ॥ ३४ ॥ और

तेषां नामानि ते वच्मि शृणुष्व त्वं महाधन ॥ २९ ॥ श्रीरागः प्रथमः पुत्र ईश्वरस्य विमोहनः ॥ आसां चक्रे भ्रुवोर्मध्ये परब्रह्मप्रदायकः ॥ ३० ॥ तन्मध्यश्चैव माहेशात्समुद्भूतो गणोत्तमः ॥ द्वितीयोथ वसन्तोभूत्कटिदेशान्महायशाः ॥ ३१ ॥ महदङ्कश्च भूतानां चक्राच्चैव विशुद्धतः ॥ पञ्चमस्तु तृतीयोभूत्सुतो विश्वविभूषणः ॥ ३२ ॥ महेश्वरहृदो जातं चक्रं चैवमनाहतम् ॥ नासादेशात्समुद्भूतो भैरवो भैरवः स्वयम् ॥ ३३ ॥ मणिपूरकनामेदं चक्रं तद्धि विमुक्तिदम् ॥ पञ्चाशच्च तथा वर्णा अङ्का नाम महेश्वरात् ॥ ३४ ॥ राशयो द्वादश तथा नक्षत्राणि तथैव च ॥ स्वाधिष्ठानसमुद्भूता जगद्बीजसमन्विताः ॥ ३५ ॥ क्षणेन वृद्धिमायान्ति ततो रेतः प्रवर्तते ॥ रेतसस्तु जगत्सृष्टं नन्दीशजननेन्द्रियम् ॥ ३६ ॥ आधाराच्च महान्षष्ठो नटो नारायणोभवत् ॥ महेशवल्लभः पुत्रो नीलो विष्णुपराक्रमः ॥ ३७ ॥ एते मूर्तिधरा रागा जाता भार्यासहायिनः ॥ भार्यास्तेषां समुद्भूताः शिरोभागात्पिनाकिनः ॥ ३८ ॥ षट्त्रिं

बारह राशियां व नक्षत्र हुए और अपने अधिष्ठान से उत्पन्न तथा संसार के बीज से संयुत वे ॥ ३५ ॥ क्षण भरमें वृद्धिको प्राप्तहोते हैं तदनन्तर वीर्य प्रवृत्त होता है और वीर्य से नन्दीशजनन व इन्द्रियात्मक संसार रचागया ॥ ३६ ॥ व आधार से छठा बड़ा भारी नारायण नट हुआ और विष्णु के समान बलवाला नील पुत्र शिवजी को प्रिय हुआ ॥ ३७ ॥ स्त्रीसहायवाले ये राग मूर्तिधारी उत्पन्न हुए और उनकी स्त्रियां शिवजी के मस्तक के भाग से उत्पन्न हुईं ॥ ३८ ॥

जोकि छत्तीस संख्यक हैं इस कारण तुम उनको सुनो कि गौरी, कोलाहली, धीरा, द्राविड़ा व मालकौशिकी ॥ ३९ ॥ और छठीं देवगान्धारी है ये श्रीरागकी स्त्रियां हैं और आन्दोला, कौशिकी व चरममंजरी ॥ ४० ॥ और गंडागिरी, देवशाखा व रागगिरि ये स्त्रियां वसन्त राग को प्राप्त हुईं और त्रिगुणा, स्तंभतीर्था, अहिरी व कुंकुमा ॥ ४१ ॥ और वैराटी, सामवेरी ये छा स्त्रियां पञ्चम रागमें मानी गई हैं और भैरवी, गुर्जरी, भाषा व वेलागुली ॥ ४२ ॥ और कर्णाटकी व रक्त-हंसा ये छा स्त्रियां भैरवकी अनुगामिनी हुईं और बंगाली, मधुरा, कामोदा व अक्षिनारिका ॥ ४३ ॥ व देवगिरी और देवाली ये मेघराग की अनुगामिनी हुईं

शतपरिमाणेन ततस्तास्त्वं निशामय ॥ गौरी कोलाहली धीरा द्राविडी मालकौशिकी ॥ ३९ ॥ षष्ठी स्याद्देवगान्धारी श्रीरागस्य प्रिया इमाः ॥ आन्दोला कौशिकी चैव तथा चरममञ्जरी ॥ ४० ॥ गण्डगिरीदेवशाखारामगिरीवसन्तगाः ॥ त्रिगुणा स्तम्भतीर्था च अहिरी कुङ्कुमा तथा ॥ ४१ ॥ वैराटी सामवेरी च षड्भार्याः पञ्चमे मताः ॥ भैरवी गुर्जरी चैव भाषा वेलागुली तथा ॥ ४२ ॥ कर्णाटकी रक्तहंसा षड्भार्या भैरवानुगाः ॥ बंगाली मधुरा चैव कामोदा चाक्षिनारिका ॥ ४३ ॥ देवगिरी च देवाली मेघरागानुगा इमाः ॥ त्रोटकी मोडकी चैव नरा दुम्बी तथैव च ॥ ४४ ॥ मल्हारी सिन्धुमल्हारी नटनारायणानुगाः ॥ एता हि गिरिशं नत्वा महेशं च महेश्वरीम् ॥ ४५ ॥ स्वमूर्त्तिवाहनोपेताः स्वभर्तृसहिताः स्थिताः ॥ ब्रह्मा मृदङ्गवाद्येन तोषयामास शङ्करम् ॥ ४६ ॥ चतुरक्षरवाद्येन सुवाद्यं चाकरोत्पुनः ॥ तालक्रियां महेशाय दर्शयामास केशवः ॥ ४७ ॥ वायवस्तत्र वाद्यं च चक्रुः सुस्वरमोजसा ॥ महेन्द्रो वंशवाद्यं च

और त्रोटकी, मोडकी, नरा, दुंबी ॥ ४४ ॥ और मल्हारी व सिन्धुमल्हारी ये नट नारायणकी अनुगामिनी स्त्रियां हुईं ये शिवजी को व पार्वतीजी को प्रणाम कर ॥ ४५ ॥ अपनी मूर्त्ति व सवारी से संयुत और अपने पतियों समेत स्थित हुईं और ब्रह्माजी ने मृदंग के वाद्य से शिवजी को प्रसन्न किया ॥ ४६ ॥ फिर चार अक्षरों के बजाने से सुवाद्य किया और विष्णुजी ने शिवजी के लिये ताल की क्रिया को दिखाया ॥ ४७ ॥ और वहां पवनोंने पराक्रम से वाद्य को सुस्वर किया

और महेन्द्र ने बांसुरी के बाजा को बहुत उत्तम स्वरवान् किया ॥ ४८ ॥ और अग्निने सूप का शब्द किया व अश्विनीकुमार देवताओं ने पणववादन किया और चन्द्रमा व सूर्य ने सब ओर से उपाग वादन किया ॥ ४९ ॥ और सैकडों व हज़ारों गणों ने घंटाओं को बजाया और मुनीश्वर लोग व पार्वती समेत देवियां ॥ ५० ॥ और ये देवता सिंहासनों के ऊपर बैठकर देखने लगे और महानागों समेत वसुवों ने शृंगों को वजाया ॥ ५१ ॥ और साध्य देवताओं ने भेरी ध्वनि किया व अन्य देवताओं ने वाजनों को बजाया व साध्य देवताओं ने महोत्सव में झर्झरी व गोमुखादिक बाजनों को बजाया ॥ ५२ ॥ व मीठे स्वरवाले गधर्व

सुगिरं सुस्वरं बहु ॥ ४८ ॥ वह्निः शूर्परवं चक्रे पणवं च तथाश्विनौ ॥ उपाङ्गवादनं चक्रे सोमः सूर्यः समन्ततः ॥ ४९ ॥ घण्टानां वादनं चक्रुर्गणाः शतसहस्रशः ॥ मुनीश्वरास्तथा देव्यः पार्वतीसहितास्तथा ॥ ५० ॥ स्वर्णभद्रासनेष्वेते ह्युपविष्टा व्यलोकयन् ॥ शृङ्गाणां वादनं चक्रुर्वसवः समहोरगाः ॥ ५१ ॥ भेरीध्वनिं तथासाध्या वाद्यान्यन्ये सुरोत्तमाः ॥ झर्झरीगोमुखादीनि साध्याश्चक्रुर्महोत्सवे ॥ ५२ ॥ तन्त्रीलयसमायुक्ता गन्धर्वा मधुरस्वराः ॥ सुवर्णशृङ्गनादं च चक्रुः सिद्धाः समन्ततः ॥ ५३ ॥ ततस्तु भगवानासीन्महानटवपुर्धरः ॥ मुकुटाः पञ्चशीर्षे तु पन्नगैरुपशोभिताः ॥ ५४ ॥ जटा विमुच्य सकला भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥ बाहुभिर्दशभिर्युक्तो हारकेयूरसंयुतः ॥ ५५ ॥ त्रैलोक्यव्यापकं रूपं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ कृत्वा ननर्त भगवान् भासुरं स महानगे ॥ ५६ ॥ ततं वीणादिकं वाद्यं कांस्यतालादिकं घनम् ॥ वंशादिकं तु वादित्रं तोमरादि च नामकम् ॥ ५७ ॥ चतुर्विधं ततो वाद्यं तुमुलं समजायत ॥

लोग तंत्री के लयसे संयुत हुए व सिद्धों ने सब ओर सुवर्णशृंग का नाद किया ॥ ५३ ॥ तदनन्तर भगवान् शिवजी महानट के शरीरधारी हुए और पाच सरतकों में नागों से मुकुट शोभित हुए ॥ ५४ ॥ और सब जटाओंको छोड़कर हार व बजुल्ला से संयुत तथा दश भुजाओं से युक्त व भस्मको शरीर में लगाये हुए ॥ ५५ ॥ उन भगवान् शिवजी ने करोड सूर्योंके समान प्रभावान् व त्रिलोक में व्यापक प्रकाशमान रूपको करके महापर्वत पै नृत्य किया ॥ ५६ ॥ वीणादिक बाद्य तत है व कांस्य तालादिक घन है और वशादिक वादित्र है व तोमरादिक नामक है ॥ ५७ ॥ तदनन्तर चार प्रकार बड़ा भारी बाद्य हुआ और पटहादिक तालों का व

तालानां पटहादीनां हस्तकानां तथैव च ॥ ५८ ॥ मानानां चैव तानानां प्रत्यक्षं रूपमावभौ ॥ सुकण्ठं सुस्वरं मुक्तं सु गम्भीरं महास्वनम् ॥ ५९ ॥ विश्वावसुर्नारदश्च तुम्बुरुश्चैव गायकाः ॥ जगुर्गन्धर्वपतयोऽप्सरसो मधुरस्वराः ॥ ६० ॥ ग्रामत्रयसमोपेतं स्वरसप्तकसंयुतम् ॥ दिव्यं शुद्धं च सांकल्यं तत्र गेयमवर्तत ॥ ६१ ॥ पर्वतोऽपि महानादं हरपादतलाहतः ॥ भ्रमीभिर्भ्रमयंस्तत्र महीं सपुरकाननाम् ॥ ६२ ॥ हस्तकांश्चतुराशीतिं स ससर्ज सदाशिवः ॥ ललाटफलकस्वेदात्सूतमागधवन्दिनः ॥ ६३ ॥ महेशहृदयाज्जाता गन्धर्वा विश्वगायकाः ॥ ते मूर्त्ता देवदेवस्य सुरङ्गा लयसंयुताः ॥ ६४ ॥ प्रेक्षकाणामृषीणां च चक्रुराश्चर्यमोजसा ॥ किन्नराः पुष्पवर्षाणि ससृजुः स्वैर्गुणैरिह ॥ ६५ ॥ एवं चतुर्षु मासेषु यदा नृत्यमजायत ॥ अतिक्रान्ता शरज्जाता निर्मलाकाशशोभिता ॥ ६६ ॥ पद्मखण्डसमाच्छन्नसरोवरमुखाम्बुजा ॥ फलवृक्षौषधीभिश्च किंचित्पाण्डुमुखच्छविः ॥ ६७ ॥ ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां प्रसन्ना

हस्तकादिकों का ॥ ५८ ॥ व मानों और तानों का प्रत्यक्ष रूप शोभित हुआ और बड़ा गंभीर व महाशब्द तथा सुकण्ठ और सुस्वर प्रत्यक्षरूप हुआ ॥ ५९ ॥ और विश्वावसु, नारद, तुंबुरु व मीठे स्वरवाले गन्धर्वपति गायक और अप्सरा गानेलगीं ॥ ६० ॥ और वहां तीन ग्रामों से संयुत तथा सात स्वरों से युक्त और दिव्य व शुद्ध और सांकल्य गान वर्तमान हुआ ॥ ६१ ॥ और वहां शिवजी के चरणतल से ताड़ित पर्वत ने भी पुरों व वनों समेत पृथ्वी को भ्रमियों (चक्करों) से घुमाते हुए, बड़ा शब्द किया ॥ ६२ ॥ और उन सदाशिवजी ने चौरासी हाथों को रचा व मस्तक के पसीने से सूत, मागध व वंदी उत्पन्न हुए ॥ ६३ ॥ और शिवजी के हृदय से संसार के गानेवाले गन्धर्व उत्पन्न हुए और मूर्तिधारी वे सुरंग व लय से संयुत होकर ॥ ६४ ॥ पराक्रम से देखनेवालों व ऋषियों को आश्चर्य किया और किन्नरों ने अपने गुणों से यहां पुष्पवर्षों को रचा ॥ ६५ ॥ इस प्रकार जब चार महीनों में नृत्य हुआ तब वर्षा बीतगई व निर्मल आकाश से शोभित शरद् ऋतु प्राप्त हुई ॥ ६६ ॥ जो कि कमलसमूह से आच्छादित तड़ागरूपी मुखकमलवाली व फल, वृक्ष और औषधियों से पाण्डु मुखकी छविवाली थी ॥ ६७ ॥ तब

कातिक महीने के शुक्ल पक्षकी चौदसि में पार्वतीजी प्रसन्न हुईं और उस समय समाप्त व्रतचर्यावाले शिवजी भी शोभित हुए ॥ ६८ ॥ तब प्रफुल्लित स्वर व लोचनोंवाली पार्वतीजी ने शिवजी से कहा कि जब ब्राह्मणों के शाप से लिङ्ग पातित होगा ॥ ६९ ॥ तब नर्मदा के जल से उत्पन्न वह संसार से पूजने योग्य होगा ऐसा कहकर तदनन्तर प्रसन्न होतीहुई पार्वती ने शिवजी की स्तुति किया ॥ ७० ॥ कि देवदेव आप मौली महादेवजी के लिये प्रणाम है और संसार के धारनेवाले, सविता, शंकर व शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ ७१ ॥ और कपर्दी, अजपाद व ब्रह्मगर्भ तुम्हारे लिये प्रणाम है और आप हिरण्यरेता व नील-

गिरिजातदा ॥ समाप्तव्रतचर्यः स ईश्वरोपि तदा बभौ ॥ ६८ ॥ सा चोवाच तदा शम्भुं विकचस्वरलोचना ॥ विप्र शापपातितं च यदा लिङ्गं भविष्यति ॥ ६९ ॥ नर्मदाजलसंभूतं विश्वपूज्यं भविष्यति ॥ एवमुक्त्वा ततस्तुष्टा हर स्तोत्रं चकार ह ॥ ७० ॥ नमस्ते देवदेवाय महादेवाय मौलिने ॥ जगद्धात्रे सवित्रे च शङ्कराय शिवाय च ॥ ७१ ॥ कपर्दिनेऽजपादाय ब्रह्मगर्भाय ते नमः ॥ हिरण्यरेतसे तुभ्यं नीलग्रीवाय ते नमः ॥ ७२ ॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय सित भूतिधराय च ॥ पञ्चवक्त्राय रूपाय निरूपाय नमोनमः ॥ ७३ ॥ सहस्राक्षाय शुभ्राय नमस्ते कृत्तिवाससे ॥ अन्ध कासुरमोक्षाय पशूनां पतये नमः ॥ ७४ ॥ विप्रवह्निमुखाग्राय हराय च भवाय च ॥ शङ्कराय महेशाय ईश्वराय नमोनमः ॥ ७५ ॥ अमूर्त्तब्रह्मरूपाय मूर्त्तानां भावनाय च ॥ नमः शिवाय चोग्राय हराय च भवाय च ॥ ७६ ॥

ग्रीव आपके लिये प्रणाम है ॥ ७२ ॥ और ब्रह्मण्य देव व श्वेत भूतिधारी आपके लिये प्रणाम है और पञ्चमुखरूप व निरूप के लिये प्रणाम है ॥ ७३ ॥ व शुभ्र सहस्राक्ष तथा कृत्तिवासजी के लिये नमस्कार है और अन्धकासुर को छुड़ानेवाले तथा पशुवों के पति के लिये प्रणाम है ॥ ७४ ॥ और ब्राह्मण व अग्नि के मुखाग्र भाग के लिये व हर और भवजी के लिये नमस्कार है व शंकर, महेश और ईश्वरजी के लिये बार २ प्रणाम है ॥ ७५ ॥ और अमूर्त ब्रह्मरूप के लिये व मूर्तों के उत्पन्न करनेवाले के लिये प्रणाम है और शिव, उग्र, हर व भवजी के लिये प्रणाम है ॥ ७६ ॥ और कृष्ण, शर्व व त्रिपुरान्तकहारी के

लिये प्रणाम है व आप अघोर के लिये प्रणाम है व आप पुरुष के लिये प्रणाम है ॥ ७७ ॥ व सद्योजात आपके लिये तथा वामदेव आपके लिये प्रणाम है और ईशान आपके लिये व पञ्चास्य तथा कपाली आपके लिये प्रणाम है ॥ ७८ ॥ व विरूपाक्ष, भाव तथा भग नेत्रनिपाती के लिये प्रणाम है और पूषा के दन्त तोड़ने वाले के लिये व महायज्ञनिपाती के लिये प्रणाम है ॥ ७९ ॥ व मृगव्याध, धर्म, कालचक्र व चक्री के लिये प्रणाम है व महापुरुषों से पूजने योग्य तथा गणों के स्वामी के लिये प्रणाम है ॥ ८० ॥ और आप गंगाधरजी के लिये व भवानी का प्रिय करनेवाले के लिये नमस्कार है व ससार को आनन्द देनेवाले आप ब्रह्मरूपी

नमः कृष्णाय शर्वाय त्रिपुरान्तकहारिणे ॥ अघोराय नमस्तेस्तु नमस्ते पुरुषाय ते ॥ ७७ ॥ सद्योजाताय तुभ्यं भो वामदेवाय ते नमः ॥ ईशानाय नमस्तुभ्यं पञ्चास्याय कपालिने ॥ ७८ ॥ विरूपाक्षाय भावाय भगनेत्रनिपातिने ॥ पूषदन्तनिपाताय महायज्ञनिपातिने ॥ ७९ ॥ मृगव्याधाय धर्माय कालचक्राय चक्रिणे ॥ महापुरुषपूज्याय गणानां पतये नमः ॥ ८० ॥ गङ्गाधराय भवते भवानीप्रियकारिणे ॥ जगदानन्ददात्रे च ब्रह्मरूपाय ते नमः ॥ ८१ ॥ गुणातीताय गुणिने सूक्ष्माय गुरवेपि च ॥ नमो महास्वरूपाय भस्मनो जन्मकारिणे ॥ ८२ ॥ वैराग्यरूपिणे नित्यं योगाचार्याय वै नमः ॥ मयोक्तमप्रियं देव स्मरसंहारकारक ॥ ८३ ॥ क्षन्तुमर्हसि विश्वेश शिरसा त्वां प्रसादये ॥ शापानुग्रह एवैष कृतस्ते वै न संशयः ॥ ८४ ॥ ममापराधजो मन्युर्न कार्यो भवताऽनघ ॥ एवं प्रसादितः शम्भुर्हृष्टात्मा त्रिदशैः सह ॥ ८५ ॥ तीर्णव्रतपरानन्दनिर्भरः प्राह तामुमाम् ॥ य इमां मत्स्तुतिं भक्त्या पठिष्यति

के लिये प्रणाम है ॥ ८१ ॥ और गुणों से परे, गुणी, सूक्ष्म व गुरुके लिये भी प्रणाम है व महास्वरूप के लिये तथा भस्म के जन्मकारी के लिये प्रणाम है ॥ ८२ ॥ व नित्य वैराग्यरूपी और योगाचार्य के लिये नमस्कार है हे कामदेवसंहारकारक, विश्वेश, देव ! मुझसे कहेहुए अप्रिय को तुम क्षमा करने के योग्य हो मैं तुमको मस्तक से प्रणाम करती हूं और यह तुम्हारा शापानुग्रह कियागया इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८३ । ८४ ॥ व हे अनघ ! मेरे अपराध से उपजा हुआ क्रोध तुमको न करना चाहिये इस प्रकार प्रसन्न कराये हुए शिवजी देवताओं समेत प्रसन्नचित्त हुए ॥ ८५ ॥ और व्रतको समाप्त कियेहुए बड़े आनन्द से पूर्ण

चा
अ

उन शिवजीने उन पार्वतीजी से कहा कि तुमसे कही हुई इस मेरी स्तुतिको जो भक्ति से पढ़ैगा हे पार्वति ! उसके प्रिय का वियोग न होगा ॥ ८६ ॥ और तीन जन्मों तक धनों से संयुत व सब रोगोंसे रहित होकर इस लोक में अनेक प्रकार के सुखोंको भोगकर अन्त में मेरे पुरको जावैगा ॥ ८७ ॥ उन पार्वतीजी से ऐसा कहकर तदनन्तर शिवजीने भी अपने अंगको दिया और उन पार्वतीजीने विष्णुजीवाले वाम भागको ग्रहण किया ॥ ८८ ॥ और आधा शिवजीका रूप कपाल-हस्त व आधी ग्रीवा विष से संयुत हुई व मुण्डमाला और आधे में हार व सब ओर सित तथा गौर था ॥ ८९ ॥ और करोड़ ब्रह्माण्डों को उत्पन्न करनेवाला तथा

तवोद्गताम् ॥ तस्य चेष्टवियोगश्च न भविष्यति पार्वति ॥ ८६ ॥ जन्मत्रयं धनैर्युक्तः सर्वव्याधिविवर्जितः ॥ भुक्त्वेह विविधान् भोगानन्ते यास्यति मत्पुरम् ॥ ८७ ॥ इत्युक्त्वा तां महेशोपि स्वमङ्गं प्रददौ ततः ॥ वैष्णवं वाम भागं सा प्रतिजग्राह पार्वती ॥ ८८ ॥ शर्वं कपालहस्तं च ग्रीवार्द्धं गरलान्वितम् ॥ मुण्डमालार्द्धहारं च सितगौरं सम न्ततः ॥ ८९ ॥ ब्रह्माण्डकोटिजनकं जटाभिर्भूषितं शिरः ॥ सितद्युतिकलाखण्डरत्नभासावभासितम् ॥ ९० ॥ स्वर्णा भरणसंयुक्तमेकतो भुजगाङ्गदम् ॥ एकतः कृत्तिवसनमन्यतः पट्टकूलवत् ॥ ९१ ॥ मत्स्यवाहनसंयुक्तमन्यतो वृष भाङ्कितम् ॥ एकतः पार्षदैः सेव्यमन्यतः सखिसेवितम् ॥ ९२ ॥ रूपमेवंविधं दृष्ट्वा ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥ तुष्टुवुः परया भक्त्या तेजोभूषितलोचनम् ॥ ९३ ॥ त्वमेको भगवान्सर्वव्यापकः सर्वदेहिनाम् ॥ पितृवद्रक्षकोसि त्वं माता त्वं जीव

जटाओं से शिर भूषित था और श्वेत प्रकाशवाली कलासमूहों से रत्नकी शोभा के समान प्रकाशित था ॥ ९० ॥ और एक ओर सोने के आभूषणों से युक्त व एक ओर सर्पोंका बजुल्ला तथा एक ओर मृगचर्म वसन व अन्य ओर रेशमी वस्त्र था ॥ ९१ ॥ और एक ओर मछली के वाहन से युक्त व दूसरी ओर वृषभ से युक्त था व एक ओर पार्षदों से सेवित और दूसरी ओर सखियों से सेवित था ॥ ९२ ॥ ऐसे रूप को देखकर ब्रह्मादिक देवगणों ने तेज से भूषित लोचनोंवाले शिवजी की बड़ी भक्ति से स्तुति किया ॥ ९३ ॥ कि तुम एकही भगवान् सब देहियों के सर्वव्यापक हो और तुम पिताकी नाईं रक्षक हो व तुम माता हो और जीवसञ्ज्ञक

हो ॥ ९४ ॥ व तुम विश्वके साक्षी और बीज हो व ब्रह्माण्डको वश करनेवाले हो और तुममें करोड़ों ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं व लीन होजाते हैं ॥ ९५ ॥ जैसे कि सागर में सदैव लहरी होती हैं और जलमें जैसे बुद्बुद होते हैं व लीन होते हैं किसी समय मैं तुम्हारे नेत्रसे व किसी समय तुम्हारे मस्तक से ॥ ९६ ॥ व हे महादेव ! कभी तुम्हारे संग में प्रकट होकर मैं संसार को रचता हूं और हम सब ब्रह्मादिक देवता तुम्हारी आज्ञा करनेवाले हैं ॥ ९७ ॥ अनन्त ऐश्वर्यवाले तुम अनन्त व अनन्त तेज हो और अन्त रहित अनन्त तुम सबके नाशके लिये अद्भुतरूप करते हो ॥ ९८ ॥ व हे भवानि ! तुम सदा अशिवजनों को पवित्र करनेवाली

संज्ञकः ॥ ९४ ॥ साक्षी विश्वस्य बीजं त्वं ब्रह्माण्डवशकारकः ॥ उत्पद्यन्ते विलीयन्ते त्वयि ब्रह्माण्डकोटयः ॥ ९५ ॥ ऊर्मयः सागरे नित्यं सलिले बुद्बुदा यथा ॥ अहं कदाचित्ते नेत्रात्कदाचित्तव भालतः ॥ ९६ ॥ क्वचित् संगे महादेव प्रादुर्भूत्वा सृजे जगत् ॥ तवाज्ञाकारिणः सर्वे वयं ब्रह्मादयः सुराः ॥ ९७ ॥ अनन्तवैभवोऽनन्तोऽनन्तधामास्यनन्तकः ॥ अनन्तः सर्वभङ्गाय कुरुषे रूपमद्भुतम् ॥ ९८ ॥ भवानि त्वं भयं नित्यमशिवानां पवित्रकृत् ॥ शिवानामपि दात्री त्वं तपसामपि त्वं फलम् ॥ ९९ ॥ यः शिवः स स्वयं विष्णुर्यो विष्णुः स सदाशिवः ॥ इत्यभेदमतिर्जाता स्वल्पा न त्वत्प्रसादतः ॥ १०० ॥ यत्किञ्चिच्च जगत्यस्मिन् दृश्यते श्रूयतेऽपि वा ॥ मध्ये बहिश्च तत्सर्वं त्रयं व्याप्य स्थिता सदा ॥ १ ॥ जगत्पूज्य सुरेशान जगद्वन्द्ये तथाम्बिके ॥ प्रसादं कुरु देवेशि देवेश प्रणता वयम् ॥ २ ॥ इत्युक्त्वा त्रिदशाः सर्वे हृष्टा जग्मुर्यथागतम् ॥ ३ ॥ गालव उवाच ॥ ते दिव्यमेतदखिलं भुवि ये मनुष्याः संसारसागर

भय हो व मंगलों को भी तुम देनेवाली हो और तपों का भी तुम फल हो ॥ ९९ ॥ और जो शिव हैं वे आपही विष्णु हैं व जो विष्णुहैं वे आपही सदाशिव हैं तुम्हारी प्रसन्नता से यह बड़ी भारी बुद्धि उत्पन्न हुई है ॥ १०० ॥ इस संसार में जो कुछ देखा व सुना जाता है और जो कुछ मध्य में व बाहर है वह सब तीनों लोकों में व्याप्त होकर तुम सदैव स्थित हो ॥ १ ॥ हे जगत्पूज्य, सुरेशान ! हे जगद्वन्द्ये, अम्बिके, देवेशि ! प्रसन्नता कीजिये हे देवेश ! हमलोग प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥ यह कहकर प्रसन्न होतेहुए सब देवता जैसे आये थे वैसेही चलेगये ॥ ३ ॥ गालवजी बोले कि जो मनुष्य संसाररूपी समुद्र से उतरने के लिये एक

केवटरूप इस समस्तरूपको मनसे ध्यान करते हैं वे पापरहित होते हैं और संग से छूटकर वे ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होते हैं ॥ १०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्म-नारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये हरताण्डवनर्तनंनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । उमा शापलहि विष्णु भे मूरति शालग्राम । तेइसवें अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ गालवजी बोले कि इस प्रकार शापको पायेहुए वे पार्वती जीके शाप से पीड़ित देवता सन्तानहीन हुए और प्रतिमा को प्राप्त हुए ॥ १ ॥ गंडकी में शालग्राम व नर्मदा में स्वयंभू शिवजी उत्पन्न होते हैं और वे ये दोनों

समुत्तरणैकपोतम् ॥ संचिन्तयन्ति मनसा हतकिल्बिषास्ते ब्रह्मस्वरूपमनुयान्ति विमुक्तसंगाः ॥ १०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये हरताण्डवनर्तनंनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥

गालव उवाच ॥ एवं ते लब्धशापाश्च पार्वतीशापपीडिताः ॥ अनपत्या बभूवुश्च तथा च प्रतिमां गताः ॥ १ ॥ शालग्रामस्तु गण्डक्यां नर्मदायां महेश्वरः ॥ उत्पद्यते स्वयंभूश्च तावेतौ नैव कृत्रिमौ ॥ २ ॥ चतुर्विंशतिभेदेन शालग्रामगतो हरिः ॥ परीक्ष्य पुरुषो नित्यमेकरूपः सदाशिवः ॥ ३ ॥ शालग्रामशिला यत्र गण्डकीविमले जले ॥ तत्र स्नात्वा च पीत्वा च ब्रह्मणः पदमाप्नुयात् ॥ ४ ॥ तां पूजयित्वा विधिवद्गण्डकीसंभवां शिलाम् ॥ योगीश्वरो विशुद्धात्मा जायते नात्र संशयः ॥ ५ ॥ एतत्ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोहमिह त्वया ॥ यथा हरो विप्रशापं प्राप्तवांस्तन्निशामय ॥ ६ ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या वाच्यमानामिमां कथाम् ॥ गिरीशनृत्यसम्बन्धामुमादेहा

कृत्रिम नहीं होते हैं ॥ २ ॥ और चौबीस भेद से विष्णुजी शालग्राम में प्राप्त हैं उनको सदैव देखकर पुरुष एकरूप सदाशिव होता है ॥ ३ ॥ व जहां शालग्राम शिला होती है उस गडकी के निर्मल जल में नहाकर व जलको पीकर मनुष्य ब्रह्मके पदको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ और विधिपूर्वक गंडकी में उपजी हुई उस शिलाको पूजकर योगीश्वर पवित्रचित्त होताहै, इसमें सन्देह नहींहै ॥ ५ ॥ तुमने जो मुझसे पूंछा यह सब वृत्तान्त तुमसे कहा गया व जिस प्रकार शिवजीने विप्र-शाप को पाया है उसको सुनिये ॥ ६ ॥ और जो मनुष्य भक्ति से शिवजीके नित्य संबंधवाली व पार्वतीरूपी शरीरार्द्ध से वर्णित तथा ब्रह्मा की स्तुति से युक्त इस

पढ़ी जाती हुई कथा को सुनता है वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है और आधा श्लोक या चौथाई श्लोक व समस्त श्लोक को ॥ ७।८ ॥ माया व मानसे वर्जित जो पुरुष अविरोध से पढ़ता है वह उत्तम स्थान को प्राप्त होता है जहां जाकर मनुष्य शोचता नहीं है ॥ ९ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर पढ़ता व सुनता हुआ मनुष्य धन व पुत्रादिकोंसे संयुत होकर चाहीहुई सिद्धि को पाता है ॥ १० ॥ जैसे कि उन ब्रह्मादिक देवताओंने दुर्गा व शिवजीके समीप गीत और वाद्य के योगसे उत्तम सिद्धिको पाया है ॥ ११ ॥ और वर्षाकाल प्राप्त होनेपर जनार्दन, शिव व दुर्गाजीमें भक्तिका योग होनेपर फिर स्तन को पीनेवाला नहीं होताहै ॥ १२ ॥ और

र्धवर्णिताम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मणः स्तुतिसंयुक्तां स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा समस्तं श्लोकमेव वा ॥ ८ ॥ यः पठेदविरोधेन मायामानविवर्जितः ॥ स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥ ९ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण पठन् शृण्वन्नरोत्तमः ॥ लभते चिन्तितां सिद्धिं धनपुत्रादिसंवृतः ॥ १० ॥ यथा ब्रह्मादयो देवा गीतवाद्याभियोगतः ॥ परां सिद्धिमवापुस्ते दुर्गाशिवसमीपतः ॥ ११ ॥ वर्षाकाले च संप्राप्ते भक्तियोगे जनार्दने ॥ महेश्वरेऽथ दुर्गायां न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ १२ ॥ गणेशस्य सदा कुर्याच्चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ पूजां मनुष्यो लाभार्थं यत्नो लाभप्रदो हि सः ॥ १३ ॥ सूर्यो निरोगतां दद्याद्भक्त्या यैः पूज्यते हि सः ॥ चातुर्मास्ये समायाते विशेषफलदो नृणाम् ॥ १४ ॥ इदं हि पञ्चायतनं सेव्यते गृहमेधिभिः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण सेवितं चिन्तितं प्रदम् ॥ १५ ॥ शालग्रामगतं विष्णुं यः पूजयति नित्यदा ॥ द्वारावती चक्रशिलासहितं मोक्षदायकम् ॥ १६ ॥ चातुर्मा

लाभके लिये मनुष्य सदैव गणेश का पूजन करै व चातुर्मास्य में विशेषकर करै क्योंकि वह यत्न लाभदायक है ॥ १३ ॥ और जो मनुष्य भक्तिसे पूजते है उनको वे सूर्यनारायण निरोगता को देते हैं व चातुर्मास्य आने पर मनुष्यों को विशेष फलदायक होते हैं ॥ १४ ॥ और यह पञ्चायतन गृहस्थों से सेवन किया जाता है व चातुर्मास्य में विशेषकर सेवित पञ्चायतन चिन्तित वस्तु को देते हैं ॥ १५ ॥ और शालग्राम में प्राप्त विष्णुजीको जो सदैव पूजता है उसको द्वारावती व चक्रशिला समेत वह मोक्षदायक होता है ॥ १६ ॥ और चातुर्मास्य में विशेषकर वह दर्शन से भी मुक्तिदायक होताहै और जिसकी स्तुति करनेपर सब स्तुति किया व

जिसके पूजित होनेपर सब संसार पूजित होता है ॥ १७ ॥ और पूजन, पठन, ध्यान व स्मरण कियेहुए विष्णुजी पापविनाशक होते हैं फिर शालग्राम में क्या कहना है क्योंकि विष्णुजी शालग्राम में प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ फिर विशेषकर चातुर्मास्य में शालग्राम में प्राप्त विष्णुजी की नैवेद्य, फल व धारण किया हुआ जल उत्तम होता है ॥ १९ ॥ व हे शूद्रज ! चातुर्मास्यमें विशेषकर भक्तिसे संयुत सब मनुष्यको शालग्राम के तिल पवित्र करते हैं ॥ २० ॥ और वह मनुष्य सदैव लक्ष्मी समेत व धन, धान्य से संयुत होता है व महाभाग्यवानों के घरमें पैदा होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ और वह मनुष्य लक्ष्मीसमेत विष्णु जानने

स्ये विशेषेण दर्शनादपि मुक्तिदम् ॥ यस्मिन् स्तुते स्तुतं सर्वं पूजिते पूजितं जगत् ॥ १७ ॥ पूजितः पठितो ध्यातः स्मृतो वै कलुषापहः ॥ शालग्रामे किं पुनर्यच्छालग्रामगतो हरिः ॥ १८ ॥ पुनर्हि हरिनैवेद्यं फलं चापिधृतं जलम् ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण शालग्रामगतं शुभम् ॥ १९ ॥ तिलाः पुनन्ति सकलं शालग्रामस्य शूद्रज ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण नरं भक्त्या समन्वितम् ॥ २० ॥ स लक्ष्मीसहितो नित्यं धनधान्यसमन्वितः ॥ महाभाग्यवतां गेहे जायते नात्र संशयः ॥ २१ ॥ स लक्ष्मीसहितो विष्णुर्विज्ञेयो नात्र संशयः ॥ तं पूजयेन्महाभक्त्या स्थिरा लक्ष्मीर्गृहे भवेत् ॥ २२ ॥ तावद्दरिद्रता लोके तावद्गर्जति पातकम् ॥ तावत्क्लेशाः शरीरेऽस्मिन् न यावद्ध्रियते हरिः ॥ २३ ॥ स एव पूज्यते यत्र पञ्चक्रोशं पवित्रकम् ॥ करोति सकलं क्षेत्रं न तत्राशुभसम्भवः ॥ २४ ॥ एतदेव महाभाग्यमेतदेव महातपः ॥ एष एव परो मोक्षो यत्र लक्ष्मीशपूजनम् ॥ २५ ॥ शङ्खश्च दक्षिणावर्त्तो लक्ष्मीनारायणात्मकः ॥ तुलसीकृष्णसारोऽत्र

योग्य है इसमें सन्देह नहीं है और उसको बड़ी भक्ति से पूजै तो घरमें स्थिर लक्ष्मी होती है ॥ २२ ॥ और संसारमें तबतक दरिद्रता होती है व तबतक पातक गरजता है और तबतक इस शरीर में दुःख होते हैं जब तक कि विष्णुजी नहीं धारण किये जाते हैं ॥ २३ ॥ और जहां वेही विष्णुजी पूजेजाते हैं और जहां वह पांचकोस सब क्षेत्रको पवित्र करना है वहां पापकी उत्पत्ति नहीं होती है ॥ २४ ॥ और यही महाभाग्य है व यही महातप है और यही उत्तम मोक्ष है जहां कि लक्ष्मीशजी का पूजन होता है ॥ २५ ॥ और दक्षिणावर्त शंख लक्ष्मीनारायणात्मक होता है और यहा तुलसी व कृष्णसार मृग होता है जहां कि द्वारवती

शिला होती है ॥ २६ ॥ और वहां लक्ष्मी, विजय, विष्णु व मुक्ति इस प्रकार चारों वस्तुवें होती हैं और लक्ष्मीनारायण में पूजन करनेवाले मनुष्य को ॥ २७ ॥ विष्णुजी अतुल पुण्य को देते हैं और उसी क्षण वह मुक्त होजाता है और चातुर्मास्य में विशेषकर लक्ष्मी से संयुत विष्णुजी पूजने योग्य हैं ॥ २८ ॥ और उन विष्णुदेव का ध्यान करते हुए मनुष्य का पाप नाश होता है व तुलसी की मंजरियों से पूजेहुए विष्णुजी जन्म के नाशक होते हैं ॥ २९ ॥ और चातुर्मास्य में बिल्वपत्र से पूजेहुए विष्णुजी बहुत पापके नाशक होते हैं ॥ ३० ॥ और सब यत्न से वेही विष्णुजी सेवने योग्य हैं जोकि संसार में व्याप्त होकर लोकों के

यत्र द्वारवती शिला ॥ २६ ॥ तत्र श्रीर्विजयो विष्णुर्मुक्तिरेवं चतुष्टयम् ॥ लक्ष्मीनारायणे पूजां विधातुर्मनुजस्य तु ॥ २७ ॥ ददाति पुण्यमतुलं मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण पूज्यो लक्ष्मीयुतो हरिः ॥ २८ ॥ कुर्वतस्तस्य देवस्य ध्यानं कल्मषनाशनम् ॥ तुलसीमञ्जरीभिश्च पूजितो जन्मनाशनः ॥ २९ ॥ पूजितो बिल्वपत्रेण चातुर्मास्येऽघहृत्तमः ॥ ३० ॥ सर्वप्रयत्नेन स एव सेव्यो यो व्याप्य विश्वं जगतामधीशः ॥ काले सृजत्यत्ति च हेलया वा तं प्राप्य भक्तो न हि सीदतीति ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये लक्ष्मीनारायणमहिमावर्णनंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

गालव उवाच ॥ एकदा भगवान् रुद्रः कैलासशिखरे स्थितः ॥ दधार परमां लक्ष्मीमुमया सहितः किल ॥ १ ॥ गणानां कोटयस्तिस्रस्तं यदा पर्यवारयन् ॥ वीरबाहुर्वीरभद्रो वीरसेनश्च भृङ्गिराट् ॥ २ ॥ रुचिस्तुटिस्तथा

स्वामी हैं व जो समय में हेला से संसार को रचता है व संहार करता है उसको प्राप्त होकर भक्त मनुष्य क्लेशित नहीं होता है ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां लक्ष्मीनारायणमहिमावर्णनन्नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । द्वादशाक्षरहु मन्त्र की महिमा अहै अपार । चौबिसवें अध्याय में सोई चरित सुखार ॥ गालवजी बोले कि एकसमय भगवान् शिवजी कैलास पर्वत के शिखर पै स्थित थे व उमासमेत उन्होंने उत्तम शोभा को धारण किया ॥ १ ॥ जब तीन करोड़ गणोंने उनको घेरलिया याने वीरबाहु, वीरभद्र, वीरसेन व भृङ्गि-

राद् ॥ २ ॥ और रुचि, तुटि, नन्दी, पुष्पदन्त, उत्कट, विकट, कण्टक, हर, केश व विघण्टक ॥ ३ ॥ व मालाधर, पाशधर, भृंगी व नरन, पुण्योत्कट, शालिभद्र, महाभद्र व विभद्रक ॥ ४ ॥ कणप, कालप, काल, धनप व रक्तलोचन, विकटास्य, भद्रक, दीर्घजिह्व व विरोचन ॥ ५ ॥ और पारद, धनद, ध्वांक्षी, हंसक व नरक, पञ्चशीर्ष, त्रिशीर्ष, क्रोडदंष्ट्र व महाद्भुत ॥ ६ ॥ सिंहवक्त्र, वृषहनु, प्रचण्ड, तुण्डि ये और अन्य बहुत से गण उस समय शिवजी के समीप प्राप्त हुए ॥ ७ ॥ हे महादेव ! जय हो ऐसा उच्चस्वर से कहकर भद्रकाली से संयुत जिनके प्यारे भूत, प्रेत व पिशाचों के गणों ने ॥ ८ ॥ वसन्त प्राप्त होनेपर समीप स्थित होकर

नन्दी पुष्पदन्तस्तथोत्कटः ॥ विकटः कण्टकश्चैव हरः केशो विघण्टकः ॥ ३ ॥ मालाधरः पाशधरः भृङ्गी च नरनस्तथा ॥ पुण्योत्कटः शालिभद्रो महाभद्रो विभद्रकः ॥ ४ ॥ कणपः कालपः कालो धनपो रक्तलोचनः ॥ विकटास्यो भद्रकश्च दीर्घजिह्वो विरोचनः ॥ ५ ॥ पारदो धनदो ध्वांक्षी हंसको नरकस्तथा ॥ पञ्चशीर्षस्त्रिशीर्षश्च क्रोडदंष्ट्रो महाद्भुतः ॥ ६ ॥ सिंहवक्त्रो वृषहनुः प्रचण्डस्तुण्डिरेव च ॥ एते चान्ये च बहवस्तदा भवसमीपगाः ॥ ७ ॥ महादेव जयेत्युच्चैर्भद्रकालीसमन्विताः ॥ भूतप्रेतपिशाचानां समूहा यस्य वल्लभाः ॥ ८ ॥ अस्तुवंस्तं समीपस्था व सन्ते समुपागते ॥ वनराजिर्विभाति स्म नवकोरकशोभिता ॥ ९ ॥ दक्षिणानिलसंस्पर्शः कवीनां सुखकृद्बभौ ॥ वियोगिहृदयाकर्षी किंशुकः पुष्पशोभितः ॥ १० ॥ द्वन्द्वादिविक्रियाभावं चिक्रीडुश्च समन्ततः ॥ तस्मिन्विगाढे समये मनस्युन्मादके तथा ॥ ११ ॥ नन्दी दण्डधरः संज्ञां दृष्ट्वा चक्रे हरोपरः ॥ अलं चापलदोषेण तपः कुर्वन्तु भो

उन शिवजी की स्तुति किया और नवीन कलियों से शोभित वन की पांति शोभित हुई ॥ ९ ॥ और कवियों को सुख करनेवाला दक्षिण पवनका स्पर्श शोभित हुआ और वियोगीजनों के हृदय को खींचनेवाला पलाश पुष्पोंसे शोभित हुआ ॥ १० ॥ और उन गणों ने सब ओर से द्वन्द्वादि विकारके भाव से क्रीड़ा किया और उस कठिन समय में मनके उन्मादक होनेपर ॥ ११ ॥ अन्य शिवदण्डधारक नन्दी ने देखकर संज्ञा किया कि हे गणो ! चपलता के दोष से कुछ न

होगा तुमलोग तप करो ॥ १२ ॥ तब सब गण फिर पृथ्वीखण्डसे उत्पन्न वनको गये और उन गणों ने वसन्त से उपजी हुई शोभा को देखकर तप किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर उन जगदम्बिका पार्वतीजी ने शिवजी से कहा कि हे महेश्वरजी ! यह रुद्राक्ष की माला सदैव तुम्हारे हाथ में प्राप्त रहती है ॥ १४ ॥ हे देव ! तुम क्या जपते हो मेरा मन सन्देह को प्राप्त होता है और सब प्राणियों के जन्म करनेवाले तुम एकही हो व सबोंके स्वामी हो ॥ १५ ॥ और तुम्हारे न माता है न कोई पिता है न बन्धु है न जाति है और मैं तुमसे अधिक कुछ नहीं जानती हूं और कुछ नहीं है ॥ १६ ॥ और तुम श्रमसे संयुत हो व श्वास के उच्छ्वास में परायण हो

गणाः ॥ १२ ॥ तदा सर्वे वनमपि भूकाण्डजमगुः पुनः ॥ गणास्ते तप आतस्थुर्दृष्ट्वा कान्तिं वसन्तजाम् ॥ १३ ॥ ततः सा विश्वजननी पार्वती प्राह शङ्करम् ॥ इयं ते करगा नित्यमक्षमाला महेश्वर ॥ १४ ॥ त्वया किं जप्यते देव सन्देहयति मे मनः ॥ त्वमेकः सर्वभूतानामादिकृत्सकलेश्वरः ॥ १५ ॥ न माता न पिता बन्धुस्तव जातिर्न कश्चन ॥ अहं तव परं किञ्चिद्वेद्मि नास्तीति किञ्चन ॥ १६ ॥ श्रमेण त्वं समायुक्तो श्वासोच्छ्वासपरायणः ॥ जपन्नपि महाभक्त्या दृश्यसे त्वं मया सदा ॥ १७ ॥ त्वत्तः परतरं किञ्चिद्यत्त्वं ध्यायसि चेतसा ॥ तन्मे कथय देवेश यद्यहं दयिता तव ॥ १८ ॥ इति पृष्टस्तदा शम्भुरुवाच हरिसेवकः ॥ हरेर्नामसहस्राणां सारं ध्यायामि नित्यशः ॥ १९ ॥ जपामि रामनामाङ्कमवतारं तु सत्तमम् ॥ चतुर्विंशतिसंख्याकान् प्रादुर्भावान् हरेर्गुणान् ॥ २० ॥ एतेषामपि यत्सारं प्रणवाख्यं महत्फलम् ॥ द्वादशाक्षरसंयुक्तं ब्रह्मरूपं सनातनम् ॥ २१ ॥ अक्षरत्रयसंबद्धं ग्रामत्रयसमन्वित

और मैं सदैव बड़ी भक्ति से जपते हुए तुमको देखती हूं ॥ १७ ॥ हे देवेश ! तुमसे अधिक श्रेष्ठ क्या है जिसको चित्त से ध्यान करते हो यदि मैं तुमको प्यारी हूं तो उसको मुझसे कहिये ॥ १८ ॥ उस समय इस प्रकार पूंछे हुए विष्णुजी के सेवक शिवजी बोले कि नित्य मैं विष्णुजी के हज़ार नामों के साराश को ध्यान करताहूं ॥ १९ ॥ और बहुतही श्रेष्ठ व रामनाम से चिह्नित अवतारको मैं जपता हूं और चौबीससंख्यक प्रकट हुए विष्णुजीके गुणों को जपता हूं ॥ २० ॥ और इनके मध्य में भी जो बड़ा फलवाला प्रणव नामक सारांश है द्वादशाक्षर से युक्त व सनातन ब्रह्मरूप ॥ २१ ॥ तीन अक्षरों से बँधेहुए व तीन ग्रामों से

संयुत बिन्दु समेत ॐकार को मैं सदैव जप माला से जपता हूं ॥ २२ ॥ यह वेदसार व नित्य, अक्षर तथा सदैव उद्यत, निर्मल, अमृत, शान्त, सद्रूप व अमृत के समान ॥ २३ ॥ और कलाओं से परे व तिर्वश में प्राप्त तथा व्यापाररहित व बहुतही श्रेष्ठ और जगदाधार, संसार का मध्य व करोड़ों ब्रह्माण्डों का बीज ॥२४॥ और जो जड़, शुद्धक्रियात्मक, निरञ्जन व नियामक है व जिसको जानकर मनुष्य शीघ्रही भयंकर संसार के बन्धन से छूटजाता है ॥ २५ ॥ और द्वादशाक्षर का बीज जो ॐकार समेत है वह संसार के करोड़ों पातकों के जलाने के लिये दावाग्नि होजाता है ॥ २६ ॥ और यही उत्तम गुप्त है व यही उत्तम तेज है और

म् ॥ सबिन्दुं प्रणवं शश्वज्जपामि जपमालया ॥ २२ ॥ वेदसारमिदं नित्यं ह्यक्षरं सततोद्यतम् ॥ निर्मलं ह्यमृतं शान्तं सद्रूपममृतोपमम् ॥ २३ ॥ कलातीतं निर्वशगं निर्व्यापारं महत्परम् ॥ विश्वाधारं जगन्मध्यं कोटिब्रह्माण्ड बीजकम् ॥ २४ ॥ जडं शुद्धक्रियं वापि निरञ्जनं नियामकम् ॥ यज्ज्ञात्वा मुच्यते क्षिप्रं घोरसंसारबन्धनात् ॥ २५ ॥ ॐकारसहितं यच्च द्वादशाक्षरबीजकम् ॥ जपतः पापकोटीनां दावाग्नित्वं प्रजायते ॥२६॥ एतदेव परं गुह्यमेतदेव परं महः ॥ एतद्धि दुर्लभं लोके लोकत्रयविभूषणम् ॥ २७ ॥ प्राप्यते जन्मकोटीभिः शुभाशुभविनाशकम् ॥ एतदेव परं ज्ञानं द्वादशाक्षरचिन्तनम् ॥ २८ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण ब्रह्मदं चिन्तितप्रदम् ॥ एतदक्षरजं स्तोत्रं यः समाश्रयते सदा ॥ २९ ॥ मनसा कर्मणा वाचा तस्य नास्ति पुनर्भवः ॥ द्वादशाक्षरसंयुक्तं चक्रद्वादशभूषितम् ॥ ३० ॥ मासद्वादशनामानि विष्णोर्यो भक्तितत्परः ॥ शालग्रामेषु तान्युक्त्वा न्यसेदघहराणि च ॥ ३१ ॥ दिवसे दिवसे तस्य

तीनों लोकों का भूषणरूप यह संसार में दुर्लभ है ॥ २७ ॥ और पुण्य व पाप को नाशनेवाला यही द्वादशाक्षर का ध्यानरूप उत्तम ज्ञान करोड़ों जन्मों में मिलता है ॥ २८ ॥ और चातुर्मास्यमें विशेषकर ब्रह्मदायक व चिन्तितदायक है और इस अक्षर से उपजे हुए स्तोत्र के जो सदैव मन, कर्म व वचन से आश्रित होता है उसका फिर जन्म नहीं होता है और बारह चक्रों से भूषित जो द्वादशाक्षर से संयुत है ॥ २९ । ३० ॥ व विष्णु के उन बारह महीनों के पापनाशक नामों को कहकर भक्तिमें तत्पर जो मनुष्य शालग्रामों में न्यास करता है ॥ ३१ ॥ उसको प्रतिदिन द्वादशाह यज्ञ का फल होता है और द्वादशाक्षर का माहात्म्य हजारों जिह्वाओं

से भी नहीं कहा जासक्ता है और ब्रह्मासे भी नहीं कहाजासक्ता है और संसार में जप, ध्यान व स्तुति किया हुआ यह महामन्त्र ॥ ३२ । ३३ ॥ सब मासोंमें पापनाशक है व चातुर्मास्य में विशेषकर पापनाशक है और वेदों व अनेक पुराणों का यह रहस्य है ॥ ३४ ॥ व सब स्मृतियों का यह द्वादशाक्षर चिन्तनरहस्य है क्योंकि चिन्तनहीसे मनुष्यों की चाहीहुई सिद्धि होती है ॥ ३५ ॥ और पुण्य दान से व जप से सनातनी मुक्ति होती है और वर्णों व आश्रमों को ॐकार संयुत जप करना चाहिये ॥ ३६ ॥ और शमपरायण जपों व ध्यानों से मनुष्य निश्चयकर मोक्ष को प्राप्त होता है और शूद्रों व स्त्रियों को ॐकार से रहित द्वादशाक्षर मन्त्र

द्वादशाहफलं भवेत् ॥ द्वादशाक्षरमाहात्म्यं वर्णितुं नैव शक्यते ॥ ३२॥ जिह्वासहस्रैरपि च ब्रह्मणापि न वर्ण्यते ॥ महामन्त्रो ह्ययं लोके जप्तो ध्यातः स्तुतस्तथा ॥ ३३ ॥ पापहा सर्वमासेषु चातुर्मास्ये विशेषतः ॥ इदं रहस्यं वेदानां पुराणानामनेकशः ॥ ३४॥ स्मृतीनामपि सर्वासां द्वादशाक्षरचिन्तनम् ॥ चिन्तनादेव मर्त्यानां सिद्धिर्भवति हीप्सिता ॥ ३५ ॥ पुण्यदानेन जाप्येन मुक्तिर्भवति शाश्वती ॥ वर्णैस्तथाश्रमैरेव प्रणवेन समन्वितैः ॥ ३६ ॥ जपैर्ध्यानैः शमपरैर्मोक्षं यास्यति निश्चितम् ॥ शूद्राणां चापि नारीणां प्रणवेन विवर्जितः ॥ ३७॥ प्रकृतीनां च सर्वासां न मन्त्रो द्वादशाक्षरः ॥ न जपो न तपः कार्यं कायक्लेशाद्विशुद्धिता ॥ ३८ ॥ विप्रभक्त्या च दानेन विष्णुध्यानेन सिध्यति ॥ तासां मन्त्रो रामनाम ध्येयः कोट्यधिको भवेत् ॥ ३९ ॥ रामेति द्व्यक्षरजपः सर्वपापापनोदकः ॥ गच्छंस्तिष्ठञ्छयानो वा मनुजो रामकीर्तनात् ॥ ४० ॥ इह निर्वृतिमायाति प्रान्ते हरिगणो भवेत् ॥ रामेति द्व्यक्ष

न जपना चाहिये व सब प्रजाओं को ॐकार रहित द्वादशाक्षर न जपना चाहिये और जप व तप न करना चाहिये क्योंकि शरीर के क्लेश से शुद्धता नहीं होती है ॥ ३७ । ३८ ॥ वरन ब्राह्मणों की भक्ति व दान और विष्णुजी के ध्यान से सिद्ध होता है और उनके मध्य में ध्यान किया हुआ रामनाम मन्त्र करोड़गुना अधिक होता है ॥ ३९ ॥ व राम ऐसे दो अक्षरोंका जप सब पापोंको दूर करनेवाला है व चलता हुआ तथा स्थित होता व सोताहुआ भी मनुष्य श्रीरामजीके कीर्तन

से ॥ ४० ॥ इस संसार में सुखको प्राप्त होता है व अन्त में विष्णु का गण होता है और राम ऐसा दो अक्षरका मन्त्र करोडों सौ मन्त्रों से अधिक है ॥ ४१ ॥ और सब प्रकृतियों का पापनाशक कहा गया है और चातुर्मास्य प्राप्त होनेपर वह भी अमित फल को देताहै ॥ ४२ ॥ और महापवित्र चातुर्मास्य में जो भक्तिसे संयुत मनुष्य उसको जपते हैं उनको देवताओं की नाईं यमलोक का सेवन निष्फल होता है ॥ ४३ ॥ पृथ्वीतल में राम से अधिक कुछ पठन नहीं है और जो राम नाम के आश्रय होते हैं उनको यमराज की पीड़ा नहीं होती है ॥ ४४ ॥ और जो विघ्नकारक दोष हैं व जो मृतक और विग्रह हैं वे रामनामही से नाश को प्राप्त

रो मन्त्रो मन्त्रकोटिशताधिकः ॥४१॥ सर्वासां प्रकृतीनां च कथितः पापनाशकः ॥ चातुर्मास्येऽथ संप्राप्ते सोप्यनन्त फलप्रदः ॥ ४२ ॥ चातुर्मास्ये महापुण्ये जप्यते भक्तितत्परैः ॥ देववन्निष्फलं तेषां यमलोकस्य सेवनम् ॥ ४३ ॥ न रामादधिकं किञ्चित्पठनं जगतीतले ॥ रामनामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना ॥ ४४ ॥ ये च दोषा विघ्नकरा मृतका विग्रहाश्च ये ॥ रामनाम्नैव विलयं यान्ति नात्र विचारणा ॥ ४५ ॥ रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ॥ अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ॥ ४६ ॥ रामेति मन्त्रराजोऽयं भयव्याधिनिषूदकः ॥ रणे विजयदश्चापि सर्वकार्यार्थसाधकः ॥ ४७ ॥ सर्वतीर्थफलप्रोक्तो विप्राणामपि कामदः ॥ रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः ॥ ४८ ॥ द्व्यक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्यकरो भुवि ॥ देवा अपि प्रगायन्ति रामनामगुणाकरम् ॥४९॥ तस्मात्त्वमपि देवेशि रामनाम सदा वद ॥ रामनाम जपेद्यो वै मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ५० ॥ सहस्रनामजं पुण्यं रामनाम्नैव जायते ॥

होते हैं इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ४५ ॥ और स्थावरों व चरों में जो अन्तरात्मकरूप से रमता है वह राम ऐसा कहा जाता है ॥ ४६ ॥ और राम ऐसा यह मन्त्रराज भय व रोगों का नाशक है व समर में विजयदायक है तथा सब कार्यार्थों का साधक है ॥ ४७ ॥ व सब तीर्थ का फल कहा गया है और ब्राह्मणों को भी मनोरथदायक है और रामचन्द्र व राम ऐसा कहा हुआ ॥ ४८ ॥ दो अक्षर का यह मन्त्रराज पृथ्वी में सब कार्य को करता है व रामनाम के गुणगण को देवता भी गाते हैं ॥ ४९ ॥ इस कारण हे देवेशि ! तुम भी सदैव रामनाम को कहो और जो रामनाम को जपता है वह सब पापों से छूटजाता है ॥ ५० ॥ और

राम नामही से सहस्रनाम से उपजा हुआ पुण्य मिलता है और चातुर्मास्य में विशेषकर वह दशगुना पुण्य होता है ॥ ५१ ॥ व हीनजाति में उत्पन्न हुए लोगों का बडा भारी पाप जलजाता है ॥ ५२ ॥ और ये रामजी इस समस्त संसार को अपने तेज से व्याप्त कर मनुष्यों के अन्तरात्मा से अन्य जन्मों के स्थूल व सूक्ष्म पातकों को क्षणभर में जलाकर पवित्र करते हैं ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकाया चातुर्मास्यमाहात्म्ये द्वादशाक्षरमहिमावर्णनंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

चातुर्मास्ये विशेषेण तत्पुण्यं दशधोत्तरम् ॥५१॥ हीनजातिप्रजातानां महद्दह्यति पातकम् ॥५२॥ रामो ह्ययं विश्व मिदं समग्रं स्वतेजसा व्याप्य जनान्तरात्मना ॥ पुनाति जन्मान्तरपातकानि स्थूलानि सूक्ष्माणि क्षणाच्च दग्ध्वा॥५३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये द्वादशाक्षरमहिमावर्णनंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पार्वत्युवाच ॥ द्वादशाक्षरमाहात्म्यं मम विस्तरतो वद ॥ यथावर्णं यत्फलं च यथा च क्रियते मया ॥ १ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ द्विजातीनां सहोंकारः सहितो द्वादशाक्षरः ॥ स्त्रीशूद्राणां नमस्कारपूर्वकः समुदाहृतः ॥ २ ॥ प्रकृतीनां रामनामसंमतो वा षडक्षरः ॥ सोपि प्रणवहीनः स्यात्पुराणस्मृतिनिर्णयः ॥ ३ ॥ क्रमोऽयं सर्ववर्णानां प्रकृतीनां सदैव हि ॥ क्रमेण रहितो यस्तु करोति मनुजो जपम् ॥ ४ ॥ तस्य प्रकुप्यति विभुर्नरकादीनां प्रदायकः ॥

दो॰। चातुर्मास्य मँझार जिमि पारवती तप कीन। पचिसवें अध्याय में सोइ चरित्र नवीन ॥ पार्वतीजी बोलीं कि मुझसे द्वादशाक्षर का माहात्म्य कहिये और वर्णों के अनुकूल जो फल होवै व जिस प्रकार मुझसे किया जावै उसको कहो ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्यों को ॐकार समेत द्वादशाक्षर जपना चाहिये व स्त्री और शूद्रों को नमस्कारपूर्वक कहा गया है ॥ २ ॥ और प्रकृतियों को रामनाम व षडक्षर संमत है व ॐकार रहित वह भी पुराणों व स्मृतियों में निश्चय किया गया है ॥ ३ ॥ यह क्रम सब वर्णों व प्रकृतियों का क्रम है और क्रम से रहित जो मनुष्य जप करता है ॥ ४ ॥ उसके ऊपर

स्वामी विष्णुजी क्रोधित होते हैं व नरकादिकों को देते हैं पार्वतीजी बोलीं कि हे स्वामिन् ! तीन मात्रा से मैं जगदीश्वरजी को सेवती हूं ॥ ५ ॥ व वचनों के भी अगोचर इनके रूपको मैं कैसे जानूं शिवजी बोले कि हे वरवर्णिनि ! तुमको ॐकार का अधिकार नहीं है और नमो भगवते वासुदेवाय ऐसा सदैव जप करना चाहिये ॥ ६ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे धूर्जटे ! यदि ॐकारसमेत द्वादशाक्षर का चिन्तवन देवै तो प्रणव (ॐकार) से कैसे मेरा अधिकार होवै ॥ ७ ॥ शिवजी बोले कि यह प्रणव सब देवताओं का आदि कहा गया है और स्त्री से संयुत ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी उसमें बसते हैं ॥ ८ ॥ और उसमें सब प्राणी व

पार्वत्युवाच ॥ मया त्रिमात्रया स्वामिन् सेव्यते जगदीश्वरः ॥ ५ ॥ रूपमस्य कथं जाने वचसामप्यगोचरम् ॥ ईश्वर उवाच ॥ प्रणवस्याधिकारो न तवास्ति वरवर्णिनि ॥ नमो भगवते वासुदेवायेति जपः सदा ॥ ६ ॥ पार्वत्युवाच ॥ यदि सप्रणवं दद्याद्द्वादशाक्षरचिन्तनम् ॥ प्रणवेनाधिकारो मे कथं भवति धूर्जटे ॥ ७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ प्रणवः सर्वदेवानामादिरेष प्रकीर्तितः ॥ ब्रह्मा विष्णुः शिवश्चैव वसन्ति दयितायुताः ॥ ८ ॥ तत्र सर्वाणि भूतानि सर्वतीर्थानि भागशः ॥ तिष्ठन्ति सर्वतीर्थानि कैवल्यं ब्रह्म एव यः ॥ ९ ॥ तस्य योग्या तदा देवि भविष्यसि यदा तपः ॥ चातुर्मास्ये हरिप्रीत्यै करिष्यसि शुभानने ॥ १० ॥ तपसा प्राप्यते कामस्तपसा च महत्फलम् ॥ तपसा जायते सर्वं तत्तपः सुलभं नरैः ॥ ११ ॥ यशः सौभाग्यमतुलं क्षमासत्यादयो गुणाः ॥ सुलभं तपसा नित्यं तपश्चर्तुं न शक्यते ॥ १२ ॥ यदाहि तपसो वृद्धिस्तदा भक्तिर्हरौ भवेत् ॥ तदाहि तपसो हानिर्यदा भक्तिं विना कृतम् ॥ १३ ॥

सब तीर्थ विभागसे स्थित हैं और जो प्रणव समस्त तीर्थमय है व जो कैवल्य ब्रह्म है ॥ ९ ॥ हे शुभानने, देवि ! जब चातुर्मास्य में विष्णुजी की प्रीतिके लिये तप करोगी तब उसके योग्य होगी ॥ १० ॥ और तपस्यासे मनोरथ मिलता है व तप से बड़ा भारी फल होता है व तपस्या से सब होता है उस कारण तपस्या से सब सुलभ होता है ॥ ११ ॥ और यश व अतुल सौभाग्य तथा क्षमा व सत्यादि गुण होते हैं व तपस्या से सब सुलभ होता है और तप नहीं किया जासक्ता है ॥ १२॥ और जब तपस्या की वृद्धि होती है तब विष्णुजी में भक्ति होती है व तब तपस्या की हानि होती है जब कि विना भक्तिके कुछ किया जाता है ॥ १३ ॥

और तबतक सदैव मनुष्यों के इस शरीर में तप गरजते हैं जबतक कि विष्णुजी को नित्य स्मरण करता है और जिह्वा का अग्रभाग पवित्र होता है ॥ १४ ॥ जैसे दीपक जलने पर बड़ाभारी अन्धकार नाश होजाता है वैसेही विष्णुजीकी कथा में पाप अनेक खण्ड होजाता है ॥ १५ ॥ उसलिये हे पार्वति ! चातुर्मास्य प्राप्त होनेपर विष्णुजी के सोनेपर ॐकार से संयुत तप करो ॥ १६ ॥ व पवित्र हृदय होकर द्वादशाक्षर से संयुत इस मंत्रराजको जपो तो प्रसन्न होकर वेही भगवान् विष्णुजी ॥ १७ ॥ ब्रह्मरूप अखंडित उत्तम ज्ञानको देवैंगे तुम करोड़ों ब्रह्मकल्पान्तों तक द्वादशाक्षरको जपो ॥ १८ ॥ ॐकार समेत मंत्रराजको जो ध्यान करता

तावत्तपांसि गर्जन्ति देहेस्मिन् सततं नृणाम् ॥ यदा विष्णुं स्मरेन्नित्यं जिह्वाग्रं पावनं भवेत् ॥ १४ ॥ यथा प्रदीपे ज्वलिते प्रणश्यति महत्तमः ॥ तथा हरेः कथायां च याति पापमनेकधा ॥ १५ ॥ तस्मात्पार्वति यत्नेन हरौ सुप्ते तपः कुरु ॥ चातुर्मास्येऽथ संप्राप्ते प्रणवेन समन्वितम् ॥ १६ ॥ विशुद्धहृदया भूत्वा मन्त्रराजमिमं जप ॥ स एव भगवांस्तुष्टो द्वादशाक्षरसंयुतम् ॥ १७ ॥ प्रदास्यति परं ज्ञानं ब्रह्मरूपमखण्डितम् ॥ ब्रह्मकल्पान्तकोटीषु जप त्वं द्वादशाक्षरम् ॥ १८ ॥ मन्त्रराजं सप्रणवं ध्यायेत्सोपि न नश्यति ॥ इत्युक्ता सा तपोनिष्ठा तपश्चरितुमागता ॥ १९ ॥ हिमाचलस्य शिखरे चातुर्मास्ये समागते ॥ ब्रह्मचर्यव्रतपरा वसनत्रयसंयुता ॥ २० ॥ प्रातर्मध्ये पराह्णे च ध्यायन्ती हरिशङ्करम् ॥ वपुर्यथा पुराकृष्टं पूजने शङ्करस्य च ॥ २१ ॥ सखीजनसमायुक्ता पितुः शृङ्गे मनोहरे ॥ अतपत्सा विशालाक्षी क्षमादिगुणसंयुता ॥ २२ ॥ गालव उवाच ॥ याहि योगेश्वराध्येया या वन्द्या विश्व

है वह नाश नहीं होता है ऐसा कही हुई वे तपस्या में निष्ठ पार्वतीजी तप करने के लिये चातुर्मास्य प्राप्त होनेपर हिमाचल के शिखर पै आईं व ब्रह्मचर्य में परायण होकर तीन वसनोंसे संयुत वे पार्वतीजी ॥ १९ । २० ॥ प्रातःकाल, मध्याह्न व पराह्न में विष्णु व शिवजी को ध्यान करने लगीं और पहले शिवजी के पूजन में जैसा शरीर दुर्बल हुआ था वैसाही होगया ॥ २१ ॥ क्षमादि गुणों से संयुत तथा सखीजनों से युक्त उन विशाललोचनोंवाली पार्वतीजी ने सुन्दर हिमाचल के शिखर पै तप किया ॥ २२ ॥ गालवजी बोले कि जो योगीश्वरों से ध्यान करने योग्य हैं और जो प्रणाम करने योग्य तथा संसार से वन्दित हैं और जो ससारकी

माता हैं वे भी कामनासे तपमें प्राप्त हुईं ॥ २३ ॥ और जो प्रकृति सद्रूपिणी हैं व करोड़ों विजलियोंके समान जो प्रभावती हैं और जो विरजा व आपही प्रणाम करने योग्य हैं गुणोंसे परे उन पार्वतीजीने तप किया ॥ २४ ॥ और विद्वान्लोग पृथ्वी, जल, तेज, वायु व आकाश यन्मय कहते हैं और जो मूलप्रकृतिरूपिणी हैं उसने उत्तम तप किया है ॥ २५ ॥ जो स्थावर व जंगम तथा संसार को शीघ्रही व्याप्त कर प्रकृति के पहले भी स्थित थी व स्पृहादि रूप से जो तृप्ति को देनेवाली हैं उसने विष्णुदेवजी के सोनेपर शुद्धि को पाया ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां चातुर्मास्य

वन्दिता ॥ जननी या च विश्वस्य सापि कामात्तपोगताः ॥ २३ ॥ याहि प्रकृतिसद्रूपा तडित्कोटिसमप्रभा ॥ विरजा या स्वयं वन्द्या गुणातीताचरत्तपः ॥ २४ ॥ पृथ्व्यम्बुतेजोवायुश्च गगनं यन्मयं विदुः ॥ मूलप्रकृतिरूपा या सा चकारोत्तमं तपः ॥ २५ ॥ या स्थावरं जङ्गममाशु विश्वं व्याप्य स्थिता या प्रकृतेः पुरापि ॥ स्पृहादिरूपेण च तृप्तिदात्री देवे प्रसुप्ते तपसाप शुद्धिम् ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये पार्वतीतपोवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

गालव उवाच ॥ प्रवृत्तायां शैलपुत्र्यां महत्तपसि दारुणे ॥ कन्दर्पेण पराभूतो विचचार महीं हरः ॥ १ ॥ वृक्षच्छायासु तीर्थेषु नदीषु च नदेषु च ॥ जलेन सिञ्चन्स्ववपुः सर्वत्रापि महेश्वरः ॥ २ ॥ तथापि कामाकुलितो न लेभे

माहात्म्ये पार्वतीतपोवर्णन नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । नग्न देखि शिवको यथा दियो ब्राह्मणन शाप । छब्बिसवें अध्याय में सोई चरित अलाप ॥ गालवजी बोले कि पार्वतीजी जब बडे दारुण तपमें प्रवृत्त हुईं तब कामदेव से तिरस्कृत शिवजी घूमने लगे ॥ १ ॥ और वृक्षों की छाया व उत्तम तीर्थों और नदियों व नदों में जलसे अपने शरीर को सींचते हुए शिवजी सब कहीं भी घूमते रहे ॥ २ ॥ तथापि कामदेव से विकल चित्तवाले शिवजी ने किसी समय कल्याण को न पाया एक समय जलकी बडी लहरियों से मालावाली

यमुनाजी को देखकर॥ ३ ॥ तपके दुःखको नाश करतेहुए से उन्होंने स्नान करने का मन किया और शिवजीके शरीरकी अग्निसे वह जल काला होगया॥ ४॥ उस समय स्नान से जला हुआ जल शीघ्रही काला होगया और पहले दिव्य देहवाली वे पार्वतीजी जिसलिये शिवजी से श्याम होगईं ॥ ५ ॥ उस कारण फिर भी उन पार्वतीजी ने स्तुति व प्रणाम करके शिवजी से कहा कि हे देवेश ! प्रसन्नता कीजिये मैं तुम्हारे सदैव वश में प्राप्त हूं ॥ ६ ॥ शिवजी बोले कि पृथ्वी में इस पवित्र व श्रेष्ठ तीर्थ में जो नहावैगा उसके हज़ारों पाप निश्चय कर नाश होजावैंगे ॥ ७ ॥ और यह पवित्र तीर्थ संसार में हरतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध होगा यह

शर्म कर्हिचित् ॥ एकदा यमुनां दृष्ट्वा जलकल्लोलमालिनीम् ॥ ३ ॥ विगाहितुं मनश्चक्रे तापार्त्तिं शमयन्निव ॥ कृष्णं बभूव तन्नीरं हरकामाग्निवह्निना ॥ ४ ॥ दग्धं विगाहनेनाशु मषीप्रायं तदा बभौ ॥ सापि दिव्यवपुः पूर्वं श्यामा भूता हराद्यतः ॥ ५ ॥ स्तुत्वा नत्वा महेशानमुवाच पुनरेव सा ॥ प्रसादं कुरु देवेश वशगास्मि सदा तव ॥६॥ ईश्वर उवाच ॥ अस्मिंस्तीर्थवरे पुण्ये यःस्नास्यति नरो भुवि ॥ तस्य पापसहस्राणि यास्यन्ति विलयं ध्रुवम् ॥ ७ ॥ हरतीर्थमिति ख्यातं पुण्यं लोके भविष्यति ॥ इत्युक्त्वा तां प्रणम्याथ तत्रैवान्तरधीयत ॥ ८ ॥ तस्यास्तीरे महेशोऽपि कृत्वा रूपं मनोहरम् ॥ कामालयं वाद्यहस्तं कृतपुण्ड्रं जटाधरम् ॥ ९ ॥ स्वेच्छया मुनिगेहेषु दर्शयत्यङ्गचापलम् ॥ कचिद्गायति गीतानि क्वचिन्नृत्यति छन्दतः ॥ १० ॥ सच क्रुद्ध्यति हसति स्त्रीणां मध्यगतः क्वचित् ॥ एवं विचरतस्तस्य ऋषिपत्न्यः समन्ततः ॥ ११ ॥ पत्युः शुश्रूषणं गेहे कार्याण्यपि च तत्क्षणात् ॥ तमेव मनसा

कहकर उन पार्वतीजी को प्रणाम कर शिवजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ८ ॥ और उसके किनारे व वाद्यको हाथ में लिये तथा त्रिपुंड्रको धारण किये व जटाधारी तथा कामदेव के स्थानरूप सुन्दर स्वरूप को धारण कर ॥ ९ ॥ अपनी इच्छा से मुनियों के गृहों में अंगों की चपलता को दिखाने लगे कहीं गीतों को गाने लगे और कहीं अपनी इच्छा से नाचने लगे ॥ १० ॥ और स्त्रियों के मध्य में प्राप्त कहीं क्रोधित हुए व कहीं हँसने लगे इस प्रकार सब ओर उनके घूमते हुए ऋषियों की स्त्रियों ने ॥ ११ ॥ उन शिवजी के रूपसे मोहित होकर घरमें पतिकी सेवा व कार्यों को छोडकर उस समय उन शिवजी की मनसे इच्छा

किया ॥१२॥ और घूमती हुई उन स्त्रियों ने हास्य किया तदनन्तर मुनिलोगों ने उन स्त्रियोंकी दुःशीलता को देखकर ॥ १३ ॥ उन शिवजी के सुन्दररूप पै क्रोध किया व कहा कि इसको पकड़िये व मारिये यह कौन दुष्ट आया है ॥ १४ ॥ इस प्रकार वे काष्ठों को लेकर जब समीप गये तब उन महात्माओंके भयसे वे शिवजी बहुत भांति से भगे ॥ १५ ॥ जीवके अंश से जो संसार में प्राणियोंके मध्य में व्याप्त होकर स्थित हैं और जो न जाने जाते हैं, न ग्रहण किये जाते हैं व न भेदन के योग्य हैं ॥ १६ ॥ उन शिवजी को पकड़ने के लिये जब वे मुनि समर्थ न हुए तब क्रोधित होतेहुए ब्राह्मणों ने शिवजी को इस प्रकार शाप दिया ॥ १७ ॥ कि

चक्रुस्तस्य रूपेण मोहिताः ॥ १२ ॥ भ्रमत्यश्चैव हास्यानि चक्रुस्ता अपि योषितः ॥ ततस्तु मुनयो दृष्ट्वा तासां दुःशीलभावनाम् ॥ १३ ॥ चक्रुधुर्मुनयः सर्वे रूपं तस्य मनोहरम् ॥ गृह्यतां हन्यतामेष कोऽयं दुष्ट उपागतः ॥ १४ ॥ इति ते गृह्य काष्ठानि यदोपस्थे ययुस्तदा ॥ पलायितः स बहुधा भयात्तेषां महात्मनाम् ॥ १५ ॥ यो जीवकलया विश्वं व्याप्य तिष्ठति देहिनाम् ॥ न ज्ञायते न च ग्राह्यो न भेद्यश्चापि जायते ॥ १६ ॥ न शेकुस्ते यदा सर्वे गृहीतुं तं महेश्वरम् ॥ तदा शिवं प्रकुपिताः शेपुरित्थं द्विजातयः ॥ १७ ॥ यस्माल्लिङ्गार्थमागत्य ह्याश्रमाश्चोरवत्कृतम् ॥ परदारापहरणं तल्लिङ्गं पततां भुवि ॥ १० ॥ सद्य एव हि शापं त्वं दुष्टं प्राप्नुहि तापस ॥ एवमुक्ते स शापाग्निर्वज्ररूपधरो महान् ॥१९॥ तल्लिङ्गं धूर्जटेश्छित्त्वा पातयामास भूतले ॥ रुधिरौघपरिव्याप्तो मुमोह भगवान् विभुः ॥ २० ॥ वेदनार्त्तो ज्वलद्वपुर्महाशापाभिभूतधीः ॥ तं तथा पतितं दृष्ट्वा त आजग्मुर्महर्षयः ॥ २१ ॥ आकाशे

जिस कारण लिङ्ग के लिये आश्रमों को आकर चोर की नाईं पराई स्त्रियों का हरण कियागया उस कारण लिङ्ग पृथ्वी में गिरपड़ै ॥ १८ ॥ व हे तापस ! तुम शीघ्रही दुष्ट शाप को प्राप्त होवो ऐसा कहने पर वज्ररूपधारी उस बड़ी भारी शापाग्नि ने ॥ १९ ॥ शिवजी के उस लिङ्गको काटकर पृथ्वी में गिरादिया और रक्तके प्रवाह से व्याप्त व्यापक भगवान् शिवजी मोहित हुए ॥ २० ॥ और बड़े शाप से तिरस्कृत बुद्धिवाले व जलतेहुए शरीरवाले शिवजी पीडासे विकल हुए और उनको उस प्रकार गिरेहुए देखकर वे महर्षिलोग आगये ॥ २१ ॥ और आकाश में सब प्राणी डरगये व संसार कॉप उठा और बडे भयको प्राप्त देवता

विकल हुए ॥ २२ ॥ व शिवजी को जानकर ब्राह्मणलोग हृदय में पीड़ित हुए और दैवको बहुत बलवान् जानकर बहुत दुःख से विकल ब्राह्मणों ने शोच किया ॥ २३ ॥ कि यह क्या कियागया क्योंकि ये भगवान् शिवजी देवताओंसे भी सेवन किये जाते हैं और सब संसार के साक्षी हैं उनको हमने नहीं देखा ॥ २४ ॥ हमलोग मूढ़बुद्धि व पापी और बहुतही अज्ञान से दुर्बल हैं क्योंकि हमने जिनकी आत्मा को न सुना है न कहा है ॥ २५ ॥ और मैंने ऐसे शरीर को गृहस्थ के लिये निवेदन नहीं किया और विकाररहित व विषयों से रहित तथा चेष्टारहित व उपद्रवरहित ॥ २६ ॥ और जो ममतारहित व अहंकाररहित हैं उन शिवजी

सर्वभूतानि त्रेसुर्विश्वं चचाल ह ॥ देवाश्च व्याकुला जाता महाभयमुपागताः ॥ २२ ॥ ज्ञात्वा विप्रा महेशानं पीडिता हृदयेऽभवन् ॥ शुशुचुर्भृशदुःखार्त्ता दैवं हि बलवत्तरम् ॥ २३ ॥ किं कृतं भगवानेष देवैरपि स सेव्यते ॥ साक्षी सर्वस्य जगतोऽस्माभिर्नैवोपलक्षितः ॥ २४ ॥ वयं मूढधियः पापाः परमज्ञानदुर्बलाः ॥ कथमस्माभिर्यस्यात्मा श्रुतश्च न निवेदितः ॥ २५ ॥ मयेदृशो गृहस्थाय आत्मा यं च निवेदितः ॥ निर्विकारो निर्विषयो निरीहो निरुपद्रवः ॥ २६ ॥ निर्ममो निरहंकारो यः शम्भुर्नोपलक्षितः ॥ यस्य लोका इमे सर्वे देहे तिष्ठन्ति मध्यगाः ॥ २७ ॥ स एष जगतां स्वामी हरोऽस्माभिर्न वीक्षितः ॥ इत्युक्त्वा ते ह्युपविष्टा यावत्तत्र समागताः ॥ २८ ॥ तान्दृष्ट्वा सहसा त्रस्तः पुनरेव महेश्वरः ॥ विप्रशापभयान्नष्टस्त्रिपुरारिर्दिवं ययौ ॥ २९ ॥ सुरभिं गां च गोलोके तां तुष्टाव सुसंयतः ॥ सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्त्र्यै मात्रे नमोनमः ॥ ३० ॥ या त्वं रसमयैर्भावैराप्यायसि भूतलम् ॥ देवानां च तथा सं

को नहीं देखा और जिनके शरीर के मध्य में प्राप्त ये सब लोक स्थित हैं लोकों के स्वामी उन्हीं इन शिवजी को हमलोगों ने नहीं देखा यह कहकर जबतक वहां आये हुए वे बैठे ॥ २७ । २८ ॥ तबतक उनको यकायक देखकर शिवजी फिर भी डरगये और ब्राह्मणों के शापके भयसे भगकर शिवजी स्वर्गको चलेगये ॥२९॥ और संयम में प्राप्त शिवजी ने गोलोक में सुरभी गऊ की स्तुति किया कि सृष्टि, पालन व संहार को करनेवाली माता के लिये प्रणाम है ॥ ३० ॥ जो तुम

रसमयी भावों से संसार को तृप्त करती हो और देवताओं के गणों को व पितरों के गणोंको भी जो तुम तृप्त करती हो ॥ ३१ ॥ हे मधुरास्वाददायिनि ! सब विद्वान् लोग तुम्हारे स्वाद को जानते हैं और यह सब संसार तुमसे बल व स्नेह से संयुत है ॥ ३२ ॥ और सब रुद्रों की तुम माता हो व वसुवों की कन्या हो और सूर्यों की बहन हो व स्तुति कीहुई तुम चाही हुई सिद्धियों को देती हो ॥ ३३ ॥ और तुम धृति हो व तुम पुष्टि हो और तुम्हीं स्वाहा हो व स्वधा हो और तुम्हीं ऋद्धि, सिद्धि, लक्ष्मी, धृति व कीर्ति और मति हो ॥ ३४ ॥ और तुम्हीं कांति, लज्जा, महामाया व सब प्रयोजनोंको साधन करनेवाली श्रद्धा हो

घान् पितृणामपि वै गणान् ॥ ३१ ॥ सर्वैर्ज्ञाता रसाभिज्ञैर्मधुरास्वाददायिनि ॥ त्वया विश्वमिदं सर्वं बलस्नेहसमन्वितम् ॥ ३२ ॥ त्वं माता सर्वरुद्राणां वसूनां दुहिता तथा ॥ आदित्यानां स्वसा चैव तुष्टा वाञ्छितसिद्धिदा ॥ ३३ ॥ त्वं धृतिस्त्वं तथा पुष्टिस्त्वं स्वाहा त्वं स्वधा तथा ॥ ऋद्धिः सिद्धिस्तथा लक्ष्मीर्धृतिः कीर्तिस्तथा मतिः ॥ ३४ ॥ कान्तिर्लज्जा महामाया श्रद्धा सर्वार्थसाधिनी ॥ त्वया विरहितं किञ्चिन्नास्ति त्रिभुवनेष्वपि ॥ ३५ ॥ वह्नेस्तृप्तिप्रदात्री च देवादीनां च तृप्तिदा ॥ त्वया सर्वमिदं व्याप्तं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ३६ ॥ पादास्ते वेदाश्चत्वारः समुद्राः स्तनतां ययुः ॥ चन्द्रार्कौ लोचने यस्या रोमाग्रेषु च देवताः ॥ ३७ ॥ शृङ्गयोः पर्वताः सर्वे कर्णयोर्वायवस्तथा ॥ नाभौ चैवामृतं देवि पातालानि खुरास्तथा ॥ ३८ ॥ स्कन्धे च भगवान् ब्रह्मा मस्तकस्थः सदाशिवः ॥ हृद्देशे च स्थितो विष्णुः पुच्छाग्रे पन्नगास्तथा ॥ ३९ ॥ शकृत्स्था वसवः सर्वे साध्या मूत्रस्थितास्तव ॥ सर्वे यज्ञा ह्य

और तीनों लोकों में भी तुमसे रहित कुछ नहीं है ॥ ३५ ॥ और तुम अग्निको तृप्ति देनेवाली व देवादिकों को तृप्ति देनेवाली हो और यह चराचर सब संसार तुम से व्याप्त है ॥ ३६ ॥ और चारों वेद तुम्हारे चरण हैं व समुद्र स्तन हैं और चन्द्रमा व सूर्य जिसके नेत्र हैं व रोम के अग्रभागों में देवता हैं ॥ ३७ ॥ और शृंगों में सब पर्वत हैं व कानों में पवन हैं व हे देवि ! नाभि में अमृत है और पाताल खुर हैं ॥ ३८ ॥ और जिसके कन्धे पै भगवान् ब्रह्मा व सदाशिवजी जिसके मस्तक में स्थित हैं और हृदय के देश में विष्णुजी स्थित हैं और पुच्छ के अग्रभाग में सर्प हैं ॥ ३९ ॥ और तुम्हारे गोमय में सब वसु स्थित हैं व साध्यदेवता

मूत्रमें स्थित हैं और सब यज्ञ अस्थि में हैं व किन्नर गुह्य इन्द्रिय में स्थित हैं ॥ ४० ॥ और सब पितरों के गण सदैव तुम्हारे आगे स्थित शोभित हैं व सब यक्ष मस्तक के स्थान में हैं और किन्नर कपोलों में हैं ॥ ४१ ॥ और तुम सर्वदेवमयी हो व सब प्राणियों को वृद्धि देनेवाली हो सदैव सब लोकों का हित करनेवाली तुम मेरे शरीरकी हितकारिणी होवो ॥ ४२ ॥ हे देवेशि ! मैं तुमको प्रणाम करता हूं व हे अनघे ! मैं तुमको सदैव पूजता हूं और संसार के दुःख को हरने वाली तुम्हारी मैं स्तुति करता हूं व तुम प्रसन्न और वरदायिनी होवो ॥ ४३ ॥ हे शोभने ! मेरा शरीर ब्राह्मणोंकी शापाग्नि से जलगया है हे अमृतसंभवे !

स्थिदेशे किन्नरा गुह्यसंस्थिताः ॥ ४० ॥ पितॄणां च गणाः सर्वे पुरःस्था भान्ति सर्वदा ॥ सर्वे यक्षा भालदेशे किन्नराश्च कपोलयोः ॥ ४१ ॥ सर्वदेवमयी त्वं हि सर्वभूतविवृद्धिदा ॥ सर्वलोकहिता नित्यं मम देहहिता भव ॥ ४२ ॥ प्रणतस्तव देवेशि पूजये त्वां सदानघे ॥ स्तौमि विश्वार्तिहन्त्रीं त्वां प्रसन्ना वरदा भव ॥ ४३ ॥ विप्रशापाग्निना दग्धं शरीरं मम शोभने ॥ स्वतेजसा पुनः कर्त्तुमर्हस्यमृतसंभवे ॥ ४४ ॥ इत्युक्त्वा तां परिक्रम्य तस्या देहे लयं गतः ॥ सापि गर्भे दधाराथ सुरभिस्तदनन्तरम् ॥ ४५ ॥ कालातिक्रमयोगेन सर्वो व्याकुलतां ययौ ॥ तस्मिन्प्रणष्टे देवेशे विप्रशापभयावृते ॥ ४६ ॥ देवा महार्तिं प्रययुश्चचाल पृथिवी तथा ॥ चन्द्रार्कौ निष्प्रभौ चैव वायुरुच्चण्ड एव च ॥ ४७ ॥ समुद्राः क्षोभमगमंस्तस्मिन्काले द्विजोत्तम ॥ ४८ ॥ यस्मिञ्जगत्स्थावरजङ्गमादिकं काले लयं

उसको तुम फिर अपने तेजसे करने के योग्य हो ॥ ४४ ॥ यह कहकर उस सुरभी की परिक्रमा करके शिवजी उसके शरीर में लीन होगये तदनन्तर सुरभी ने भी गर्भ में उनको धारण किया ॥ ४५ ॥ और समयके नाँघने के योग से सब संसार विकलता को प्राप्त हुआ और ब्राह्मणों के शाप के भय से घिरेहुए उन शिवजीके अदृश्य होजाने पर ॥ ४६ ॥ देवता लोग बड़े दुःख को प्राप्त हुए व पृथ्वी काँपने लगी और चन्द्रमा व सूर्य प्रकाशहीन हुए व पवन प्रचंड चलने लगा ॥ ४७ ॥ व हे द्विजोत्तम ! उस समय समुद्र क्षोभको प्राप्त हुए ॥ ४८ ॥ चराचरादिक संसार कालमें जिन शिवजीमें लयको प्राप्त होकर फिर उत्पन्न होता है ब्राह्मणों के शाप

से पीडित उन शिवजी के अदृश्य होजाने पर संसार क्षणभर में नष्ट सा होगया ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां हरशापो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पाय द्विजन कर शाप शिव भये यथा वृषरूप । सत्ताइसवें में सोई बरण्यो चरित अनूप ॥ गालवजी बोले कि योजन भर लम्बे चौड़े उस लिङ्गके गिरनेपर दुःखसे विकल हज़ारों ऋषियोंके गण वहां गये ॥ १ ॥ और वहां शिवजी को देखने के लिये वे सब कहीं देखने लगे और भय से विकल ये शिवजी उन

प्राप्य पुनः प्ररोहति ॥ तस्मिन्प्रणष्टे द्विजशापपीडिते जगद्धतप्रायमवर्तत क्षणात् ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ब्रह्मनारदसंवादे चातुर्मास्यमाहात्म्ये हरशापोनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ * ॥ * ॥

गालव उवाच ॥ तस्मिंस्तु पतिते लिङ्गे योजनायामविस्तृते ॥ विषादार्त्ता ऋषिगणास्तत्र जग्मुः सहस्रशः ॥१॥ व्यलोकयन्त सर्वत्र द्रष्टुं तत्र महेश्वरम् ॥ नासौ दृष्टिपथे तेषां बभूव भयविह्वलः ॥ २ ॥ वीर्यं वर्षसहस्राणि बहून्यपि सुसंचितम् ॥ पृथिवीं सकलां व्याप्य स्थितं ददृशिरे द्विजाः ॥ ३ ॥ तद्दृष्ट्वा सुमहल्लिङ्गं रुधिराक्तं जलैः प्लुतम् ॥ ब्राह्मणाः संशयगता दह्यमाना वसुन्धरा ॥ ४ ॥ तल्लिङ्गं तत्र संस्थाप्य चक्रुस्तां नर्मदां नदीम् ॥ तज्जलं नर्मदारूपं तल्लिङ्गममरकण्टकम् ॥ ५ ॥ नरकं वारयत्येतत्सेवितं नरकापहम् ॥ भूतग्रहाश्च सर्वेऽपि यास्यन्ति विलयं ध्रुवम् ॥ ६ ॥ तत्र स्नात्वा जलं पीत्वा सन्तर्प्य च पितॄंस्तथा ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति मनुष्यो भुवि दुर्ल

के नेत्रपथ में नहीं प्राप्त हुए ॥ २ ॥ और बहुत हज़ार वर्षों से इकट्ठा हुए वीर्य को ब्राह्मणों ने सब पृथ्वी को व्याप्त होकर स्थित देखा ॥ ३ ॥ और जलसे डूबे व रक्त से संयुत उस बड़े भारी लिङ्ग को देखकर ब्राह्मण लोग सन्देह को प्राप्त हुए व पृथ्वी जलने लगी ॥ ४ ॥ और उस लिङ्गको वहां थापकर ब्राह्मणों ने उस नर्मदा नदी को किया और वह जल नर्मदारूप होगया तथा वह लिङ्ग अमरकण्टक हुआ ॥ ५ ॥ नरक को नाशनेवाला यह सेवित लिङ्ग नरकको मना करताहै और सब भूत ग्रह निश्चयकर नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ और उसमें नहाकर व जल को पीकर तथा पितरों को तर्पण कर मनुष्य पृथ्वी में सब दुर्लभ कामनाओं

को पाता है ॥ ७ ॥ और नर्मदा के लिङ्गोंको जो मनुष्य पूजैंगे उनका शरीर शिवमय होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ और चातुर्मास्य में विशेष कर लिङ्ग की पूजा बडे भारी फलको देती है व चातुर्मास्य में रुद्रजप, शिवपूजन व शिवजी में अनुराग ॥ ९ ॥ और जो पञ्चामृत से स्नान कराते हैं उनको गर्भ का दुःख नहीं होता है और जो मनुष्य लिङ्गके मस्तक पै शहदसे सेचन करेंगे याने स्नान करावैंगे ॥ १० ॥ उनके हज़ारों दुःख निश्चय कर नाश होजावैंगे और जिसने चातुर्मास्य में शिवजी के आगे दीपदान किया है ॥ ११ ॥ वह करोड़ों पुरितयों को उधारकर अपनी इच्छा से शिवलोक का भागी होता है और चंदन,

भान् ॥ ७ ॥ लिङ्गानि नार्मदेयानि पूजयिष्यन्ति ये नराः ॥ तेषां रुद्रमयो देहो भविष्यति न संशयः ॥ ८ ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण लिङ्गपूजा महाफला ॥ चातुर्मास्ये रुद्रजपं हरपूजा शिवे रतिः ॥ ९ ॥ पञ्चामृतेन स्नपनं न तेषां गर्भ वेदना ॥ ये करिष्यन्ति मधुना सेचनं लिङ्गमस्तके ॥ १० ॥ तेषां दुःखसहस्राणि यास्यन्ति विलयं ध्रुवम् ॥ दीपदानं कृतं येन चातुर्मास्ये शिवाग्रतः ॥ ११ ॥ कुलकोटिं समुद्धृत्य स्वेच्छया शिवलोकभाक् ॥ चन्दनागुरुधूपैश्च सु श्वेतकुसुमैरपि ॥ १२ ॥ नर्मदाजललिङ्गं ये ह्यर्चयिष्यन्ति ते शिवाः ॥ शिलाहरत्वमापन्नाः प्राणिनामपि का कथा ॥ १३ ॥ तत्संभूतं महालिङ्गं जलधारणसंयुतम् ॥ पूजयित्वा विधानेन चातुर्मास्ये शिवो भवेत् ॥ १४ ॥ चातुर्मास्ये ये मनुजा नर्मदामरकण्टके ॥ तीर्थे स्नास्यन्ति नियतास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे ॥ १५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ इत्युक्त्वा ते द्विजास्तत्र स्थाप्य लिङ्गं यथाविधि ॥ अमरकण्टकतीर्थे च नर्मदां च महानदीम् ॥ १६ ॥ पुनश्चिन्तापरा जाता विश्व

अगुरु, धूप व सफ़ेद पुष्पों से भी ॥ १२ ॥ जो मनुष्य नर्मदाजल के लिङ्ग को पूजैंगे वे शिव होवैंगे और पत्थर भी शिवत्व को प्राप्त होते हैं तो प्राणियों की कौन कथा है ॥ १३ ॥ और चातुर्मास्य में जलधारण से संयुत उससे उपजे हुए महालिङ्ग को विधि से पूजकर मनुष्य शिव होजाता है ॥ १४ ॥ और नियम संयुत जो मनुष्य चातुर्मास्य में नर्मदामरकण्टक तीर्थ में नहावैंगे उनका स्वर्ग में निवास होगा ॥ १५ ॥ ब्रह्माजी बोले कि यह कहकर वे ब्राह्मण वहां नर्मदा महानदी पै अमरकण्टक तीर्थ में विधिपूर्वक लिङ्ग को थापकर ॥ १६ ॥ फिर संसार के क्षोभकारण में चिन्ता में परायण हुए और कमलासनमें प्राप्त होकर प्राणायाम

करने लगे ॥ १७ ॥ और सावधानता से हृदय में स्थित शिवजी को ध्यान करने लगे तदनन्तर इन्द्रादिक देवता अमरकण्टक तीर्थको प्राप्त होकर ॥ १८ ॥ विनय से भुकेहुए कन्धेवाले उन्होंने ब्राह्मणों की स्तुति किया कि हे महेश्वरो ! ब्रह्म को जाननेवाले आप लोगों के लिये प्रणाम है ॥ १९ ॥ व बंधन से छूटेहुए तथा पृथ्वी के देवता तुमलोगों गुरुओं के लिये प्रणाम है तुमलोग तीनों गुणोंसे परे व गुणरूप और गुणों की खानि हो ॥ २० ॥ और तीनों गुणों के भावों से सदैव प्राणरूपी बुद्बुदोंवाले पापी जिनके वचनरूपी जलसे शुद्धता को ॥ २१ ॥ प्राप्त होते हैं और पापियों के पापपुंज भस्म होजाते हैं और जिनका वचनही

स्य क्षोभकारणे ॥ पद्मासनगता भूत्वा प्राणायामपरायणाः ॥ १७ ॥ चिन्तयामासुरव्यग्रं हृदयस्थं महेश्वरम् ॥ ततो देवा महेन्द्राद्याः संप्राप्यामरकण्टकम् ॥ १८ ॥ ब्राह्मणानां स्तुतिं चक्रुर्विनयानतकन्धराः ॥ नमोस्तु वो द्विजातिभ्यो ब्रह्मविद्भ्यो महेश्वराः ॥ १९ ॥ भूसुरेभ्यो गुरुभ्यश्च विमुक्तेभ्यश्च बन्धनात् ॥ यूयं गुणत्रयातीता गुणरूपा गुणाकराः ॥ २० ॥ गुणत्रयमयैर्भावैः सततं प्राणबुद्बुदाः ॥ येषां वाक्यजलेनैव पापिष्ठा अपि शुद्धताम् ॥ २१ ॥ प्रयान्ति पापपुञ्जाश्च भस्मसाद्यान्ति पापिनाम् ॥ शस्त्रं लोहमयं येषां वागेव तत्समन्विताः ॥ २२ ॥ पापैः पराभिभूतानां तेषां लोकोत्तरं बलम् ॥ क्षमया पृथिवीतुल्याः कोपे वैश्वानरप्रभाः ॥ २३ ॥ पातनेऽनेकशक्तीनां समर्था यूयमेव हि ॥ स्वर्गादीनां तथा याने भवन्तो गतयो ध्रुवम् ॥ २४ ॥ सत्कर्मकारकाश्चैव सत्कर्मनिरताः सदा ॥ सत्कर्मफलदातारः सत्कर्मभ्यो मुमुक्षवः ॥ २५ ॥ सावित्रीमन्त्रनिरता ये भवन्तोघनाशनाः ॥ आत्मानं यजमानं

लोहमय शस्त्र है उससे जो संयुत हैं ॥ २२ ॥ पापोंसे तिरस्कृत उनका बल लोकोंसे अधिक होता है और क्षमा में पृथ्वी के समान व क्रोध में अग्निके समान ॥ २३ ॥ और अनेक शक्तियों के नाशने में तुम्हीं लोग समर्थ हो और स्वर्गादिकों को जाने के लिये आपही लोग निश्चय कर गति हो ॥ २४ ॥ और आप लोग उत्तम कर्मों को करनेवाले व सदैव उत्तम कर्मों में परायण और उत्तम कर्मों को देनेवाले व उत्तम कर्मों से मुक्ति की इच्छा करनेवाले हो ॥ २५ ॥ और जो आप

लोग गायत्रीमंत्र में परायण व पापनाशक हैं वे अपना व यजमान को निस्सन्देह तारते हैं ॥ २६ ॥ और तृप्त कियेहुए ब्राह्मण व अग्नि कार्य के साधक होते हैं और चातुर्मास्य में विशेषकर उनका पूजन बहुत फलवान् होता है ॥ २७ ॥ और क्रोध कराये हुए वे सब शरीर के नाश के लिये होते हैं तबतक इन्द्र का वज्र व शिवजी का त्रिशूल नहीं नाश करता है ॥ २८ ॥ और तबतक यमराज का दंड नहीं नाश करता है जबतक कि ब्राह्मणों से उपजा हुआ शाप नहीं होता है और अग्नि प्रत्यक्ष वस्तुको जलाती है व शाप बिन देखीहुई भी वस्तुओं को जलाती है ॥ २९ ॥ और पैदाहुए व बिन पैदाहुए भी लोगोंको नाश करती है उस कारण

च तारयन्ति न संशयः ॥ २६ ॥ वह्नयश्च तथा विप्रास्तर्पिताः कार्यसाधकाः ॥ चातुर्मास्ये विशेषेण तेषां पूजा महाफला ॥ २७ ॥ कोपिताः सर्वदेहस्य नाशनाय भवन्ति हि ॥ तावन्न वज्रमिन्द्रस्य शूलं नैव पिनाकिनः ॥ २८ ॥ दण्डो यमस्य तावन्नो यावच्छापो द्विजोद्भवः ॥ अग्निना ज्वाल्यते दृश्यं शापोदृष्टानपि स्वयम् ॥ २९ ॥ हन्ति जातानजातांश्च तस्माद्विप्रं न कोपयेत् ॥ विप्रकोपाग्निना दग्धो नरकान्नैव मुच्यते ॥ ३० ॥ शस्त्रक्षतोऽपि नरकान्मुच्यते नात्र संशयः ॥ देवानामपि सर्वेषां सामर्थ्यं भेदने न हि ॥ ३१ ॥ वाङ्मात्रेण हि विप्रस्य भिद्यते सकलं जगत् ॥ ते यूयं गुरवोऽस्माकं विश्वकारणकारकाः ॥ ३२ ॥ प्रसादपरमा नित्यं भवन्तु भुवनेश्वराः ॥ ईश्वरेण विना सर्वे वयं लोकाश्च दुःखिताः ॥ ३३ ॥ तत्कथ्यतां स भगवान् कुत्रास्ते परमेश्वरः ॥ गालव उवाच ॥ ज्ञात्वा मुनिभय

ब्राह्मण को क्रोधित न करावै और ब्राह्मण की क्रोधाग्नि से जला हुआ मनुष्य नरक से नहीं छूटता है ॥ ३० ॥ व शस्त्र से कटाहुआ भी नरक से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है और भेदन करने में सब देवताओं की भी सामर्थ्य नहीं होती है ॥ ३१ ॥ और ब्राह्मण के वचनही से सब संसार नाश होजाता है वे आप लोग हम लोगों के गुरु हो व संसार के कारण व कर्ताहो ॥ ३२ ॥ और लोकोंके स्वामी आप लोग सदैव प्रसन्नता से श्रेष्ठ होवो हमलोग और सब लोक शिवजी के विना दुःखित हैं ॥ ३३ ॥ इससे कहिये कि वे परमेश्वर भगवान् शिवजी कहां हैं गालवजी बोले कि त्रिशूलधारी शिवजी को मुनियों के भयसे

डरे हुए जानकर ॥ ३४ ॥ महर्षियों ने सुरभी के गर्भ में उत्पन्न शिवजी को देवताओं से कहा व यह कहा कि देवदेव आपलोगोंके लिये स्वागत है वे शिवजी जानेगये ॥ ३५ ॥ हे देवेशो ! वहां चलिये जहां कि सनातन शिवदेवजी हैं यह कहकर वे महात्मा देवताओं समेत उस समय देवताओं के मार्ग से गोलोक को गये जहां कि खीर का कीचड़ व घी की नदियां हैं व जहां शहद के कुंड व नदियों के गण हैं ॥ ३६ । ३७ ॥ और पूर्वज पितरों के सब गण दही व अमृत को हाथ में लिये थे और मरीचिप, सोमप व अन्य सिद्धों के गण थे ॥ ३८ ॥ और वहां घृतप व साध्य देवता थे जहां कि सनातन शिवदेवजी थे उन मुनिलोगोंने

त्रस्तं देवेशं शूलपाणिनम् ॥३४॥ सुरभीगर्भसंभूतं देवानूचुर्महर्षयः ॥ स्वागतं देवदेवेभ्यो ज्ञातो वै स महेश्वरः ॥३५॥ तत्र गच्छन्तु देवेशा यत्र देवः सनातनः ॥ इत्युक्त्वा ते महात्मानः सह देवैर्ययुस्तदा ॥ ३६ ॥ गोलोकं देवमार्गेण यत्र पायसकर्दमः ॥ घृतनद्यो मधुह्रदा नदीनां यत्र संघशः ॥ ३७ ॥ पूर्वजानां गणाः सर्वे दधिपीयूषपाणयः ॥ मरीचिपाः सोमपाश्च सिद्धसंघास्तथापरे ॥ ३८ ॥ घृतपाश्चैव साध्याश्च यत्र देवाः सनातनाः ॥ ते तत्र गत्वा मुनयो ददृशुः सुरभीसुतम् ॥ ३९ ॥ तेजसा भास्करं चैव नीलनामेति विश्रुतम् ॥ इतस्ततोभिधावन्तं गवां संघातमध्यगम् ॥ ४० ॥ नन्दा सुमनसा चैव सुरूपा च सुशीलका ॥ कामिनी नन्दिनी चैव मेध्या चैव हिरण्यदा ॥ ४१ ॥ धनदा धर्मदा चैव नर्मदा सकलप्रिया ॥ वामना लम्बिका कृष्णा दीर्घशृङ्गा सुपिच्छिका ॥ ४२ ॥ तारा तरेयिका शान्ता दुर्विषह्या मनोरमा ॥ सुनासा दीर्घनासा च गौरा गौरमुखी हया ॥ ४३ ॥ हरिद्रवर्णा नीला च शङ्खिनी

वहां जाकर तेज से सूर्य के समान नील नाम ऐसे प्रसिद्ध सुरभीपुत्रको गौवों के समूह के मध्य में प्राप्त व इधर उधर दौडता हुआ देखा ॥ ३९ । ४० ॥ और नंदा, सुमनसा, सुरूपा, सुशीला, कामिनी, नंदिनी, मेध्या व हिरण्यदा ॥ ४१ ॥ और धनदा, धर्मदा, नर्मदा, सकलप्रिया, वामना, लंबिका, कृष्णा, दीर्घशृंगा व सुपिच्छिका ॥ ४२ ॥ और तारा तरेयिका, शान्ता, दुर्विषह्या, मनोरमा, सुनासा, दीर्घनासा, गौरा, गौरमुखी व हया ॥ ४३ ॥ और हरिद्रवर्णा, नीला, शंखिनी

व पञ्चवर्णा, विनता, अभिनता, भिन्नवर्णा व सुपत्रिका ॥ ४४ ॥ और जया, अरुणा, कुंडोध्नी, सुदती व चारुचंपका इनके मध्य में प्राप्त नील को देखकर
वे मुनि व देवता ॥ ४५ ॥ घूमने लगे और उस सुरूप के ऊपर सब विस्मित हुए और दया से संयुत मुनीश्वर व इन्द्रादिक देवता प्रसन्नमन हुए ॥ ४६ ॥
और उनके तेजसे प्रसन्न होते हुए उन्हों ने स्तुति करने का प्रारंभ किया शूद्र बोला कि अद्भुत आकारवाला यह नील नामक कैसे हुआ ॥ ४७ ॥ और संसार
के कारणरूप उन शिवजी की प्रसन्न ब्राह्मणों ने क्यों स्तुति किया गालवजी बोले कि जो रंग से लाल हो व मुख और पूंछ में जो श्वेतरंग होवे ॥ ४८ ॥

पञ्चवर्णका ॥ विनताभिनता चैव भिन्नवर्णा सुपत्रिका ॥ ४४ ॥ जयाऽरुणा च कुण्डोध्नी सुदती चारुचम्पका ॥ एतासां मध्यगं नीलं दृष्ट्वा ता मुनिदेवताः ॥ ४५ ॥ विचरन्ति सुरूपं तं संजातं विस्मयोन्मुखाः ॥ मुनीश्वराः कृपाविष्टा इन्द्राद्या हृष्टमानसाः ॥ ४६ ॥ स्तुतिमारेभिरे कर्त्तुं तेजसा तस्य तोषिताः ॥ शूद्र उवाच ॥ कथं नीलेति नामासौ जातोयमद्भुताकृतिः ॥ ४७ ॥ किमस्तुवन् प्रसन्नास्ते ब्राह्मणा विश्वकारणम् ॥ गालव उवाच ॥ लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः ॥ ४८ ॥ श्वेतः खुरविषाणेषु स नीलो वृषभः स्मृतः ॥ चतुष्पादो धर्मरूपो नीललोहितचिह्नकः ॥ ४९ ॥ कपिलः खुरचिह्नेषु स नीलो वृषभः स्मृतः ॥ योऽसौ महेश्वरो देवो वृषश्चापि स एव हि ॥ ५० ॥ चतुष्पादो धर्मरूपो नीलः पञ्चमुखो हरः ॥ यस्य संदर्शनादेव वाजपेयफलं लभेत् ॥ ५१ ॥ नीले च पूजिते यस्मिन् पूजितं सकलं जगत् ॥ स्निग्धग्रासप्रदानेन जगदाप्यायितं भवेत् ॥ ५२ ॥ यस्य देहे सदा

और खुरों व सींगों में जो सफ़ेद होवै वह नीलवृष कहा गया है और नील व लाल चिह्नवाला तथा चार चरणोंवाला धर्मरूपी होता है ॥ ४९ ॥ और जो
खुरों के चिह्नोंमें कपिल रंग होता है वह नीलबैल कहा गया है और जो ये शिवदेवजी हैं वही वृष भी हैं ॥ ५० ॥ और चार चरणोंवाला धर्मरूपी नीलबैल पांच
मुखोंवाले शिवजी हैं कि जिनके दर्शनही से मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फल को पाता है ॥ ५१ ॥ व जिस नील के पूजने पर सब संसार पूजित होताहै व सचि-
क्कण कवल के देने से संसार तृप्त किया होता है ॥ ५२ ॥ और जिनके शरीर में संसार व्यापक श्रीमान् विष्णुजी सदैव रहते हैं और जो ये सनातन वेदमंत्रों से

श्रीमान् विश्वव्यापी जनार्दनः ॥ नित्यमभ्यर्च्यते योऽसौ वेदमन्त्रैः सनातनैः ॥ ५३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वं देवः सर्व गोप्तृणां विश्वगोप्ता सनातनः ॥ विघ्नहर्ता ज्ञानदश्च धर्मरूपश्च मोक्षदः ॥ ५४ ॥ त्वमेव धनदः श्रीदः सर्वव्याधिनिषूदनः ॥ जगतां शर्मकरणे प्रवृत्तः कनकप्रदः ॥ ५५ ॥ तेजसां धाम सर्वेषां सौरभेय महाबल ॥ शृङ्गे धृतश्च कैलासः पार्वतीसहितस्त्वया ॥ ५६ ॥ वेदस्तुत्यो वेदमयो वेदात्मा वेदवित्तमः ॥ वेदवेद्यो वेदयानो वेदरूपो गुणाकरः ॥ ५७ ॥ गुणत्रयेभ्योऽपि परो याथात्म्यं वेदकस्तव ॥ वृषस्त्वं भगवन् देवं यस्तुभ्यं कुरुते त्वघम् ॥ ५८ ॥ वृषलः स तु विज्ञेयो रौरवादिषु पच्यते ॥ पदा स्पृष्ट्वा स तु नरो नरकादिषु यातनाः ॥ ५९ ॥ सेव्यते पापनिचयैर्निगाढप्रायबन्धनैः ॥ क्षुत्क्षामं च तृषाक्रान्तं महाभारसमन्वितम् ॥ ६० ॥ निर्दया ये प्रशोष्यन्ति मतिस्तेषां न शाश्वती ॥ चतुर्भिः सहितं मर्त्या विवाहविधिना तु ये ॥ ६१ ॥ विवाहं नीलरूपस्य ये करिष्यन्ति मानवाः ॥ पितॄनुद्दिश्य तेषां वै कुले

नित्य पूजेजाते हैं ॥ ५३ ॥ ऋषिलोग बोले कि संसार के रक्षक व सनातन तुम सब रक्षकों के रक्षा करनेवाले देवता हो और विघ्नहर्ता व ज्ञानदायक तथा धर्मरूप व मोक्षदायक हो ॥ ५४ ॥ और तुम्हीं धनदायक, लक्ष्मीदायक व सब रोगों के नाशनेवाले हो व लोकों के कल्याण करने में लगेहुए व सुवर्ण के दायक हो ॥ ५५ ॥ हे महाबल, सौरभेय, सबों के तेजों के स्थान ! तुमने पार्वती समेत कैलासको सींग पै धारण किया है ॥ ५६ ॥ और आप वेदों से स्तुति करने योग्य तथा वेदमय व वेदात्मक और वेदविदों में श्रेष्ठ हो व वेदों से जानने योग्य तथा वेदयान और वेदरूप व गुणों की खानि हो ॥ ५७ ॥ और तीनों गुणों से भी परे ही तुम्हारी यथार्थता को कौन जानता है हे भगवन्, देव ! तुम धर्म हो और जो तुम्हारे लिये पाप करता है ॥ ५८ ॥ वह शूद्र जानने योग्य है और रौरवादिक नरकों में वह पचता है और पैर से तुमको छूकर वह मनुष्य नरकादिकों में पीड़ा को पाता है ॥ ५९ ॥ और पापसमूहों के कारण बड़े कठिन बन्धनों से वह सेवन किया जाता है और क्षुधा से दुर्बल व प्यास से संयुत तथा बड़े बोझ से संयुत ॥ ६० ॥ व चार बैलों समेत तुमको जो निर्दयी लोग सुखाते हैं उन की सनातनी बुद्धि नहीं होती है और विवाह की विधि से ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य पितरों को उद्देशकर नीलरूपी तुम्हारा विवाह करेंगे उनके वंश में नरकगामी

मनुष्य न होवैगा ॥ ६२ ॥ और सब लोकों की तुम गति हो व तुम पिता हो व परमेश्वर हो और तुम्हारे विना सब संसार उसी क्षण नाश होजाता है ॥ ६३ ॥
और परा, पश्यन्ती, मध्यमा व वैखरी इन चारों प्रकार के वचनों के ईश्वर तुमको विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ६४ ॥ और चार सींग व चार पैर तथा दो
मस्तक व सात हाथोंवाले और तीन भांति से बँधेहुए तुमको विद्वान् वृष कहते हैं ॥ ६५ ॥ और सब प्राणियों को तृप्ति देनेवाले व पराक्रम से संसार के व्यापक
तथा ब्रह्म धर्ममय व नित्य आत्मा तुम्हीं को लोग कहते हैं ॥ ६६ ॥ और तुम अच्छेद्य व अभेद्य तथा अमित व बड़े यशस्वी हो और तुम अशोष्य व अदाह्य

नैवास्ति नारकी ॥ ६२ ॥ त्वं गतिः सर्वलोकानां त्वं पिता परमेश्वरः ॥ त्वया विना जगत्सर्वं तत्क्षणादेव नश्य
ति ॥ ६३ ॥ परा चैव तु पश्यन्ती मध्यमा वैखरी तथा ॥ चतुर्विधानां वचसामीश्वरं त्वां विदुर्बुधाः ॥ ६४ ॥ चतुः
शृङ्गं चतुष्पादं द्विशीर्षं सप्तहस्तकम् ॥ त्रिधा बद्धं धर्ममयं त्वामेव वृषभं विदुः ॥ ६५ ॥ तृप्तिदं सर्वभूतानां विश्व
व्यापकमोजसा ॥ ब्रह्मधर्ममयं नित्यं त्वामात्मानं विदुर्जनाः ॥ ६६ ॥ अच्छेद्यस्त्वमभेद्यस्त्वमप्रमेयो महाय
शाः ॥ अशोष्यस्त्वमदाह्योसि विदुः पौराणिका जनाः ॥ ६७ ॥ त्वदाधारमिदं सर्वं त्वदाधारमिदं जगत् ॥ त्वदा
धाराश्च देवाश्च त्वदाधारं तथामृतम् ॥ ६८ ॥ जीवरूपेण लोकांस्त्रीन् व्याप्य तिष्ठसि नित्यदा ॥ एवं स संस्तुतो
नीलो विप्रैस्तैः सोमपायिभिः ॥ ६९ ॥ प्रसन्नवदनोभूत्वा विप्रान्प्रणतितत्परः ॥ पुनरेव वचः प्रोचुर्विप्राः कृताशिवाग
सः ॥७०॥ वरं ददुर्महेशस्य नीलरूपस्य धर्मतः ॥ एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः ॥७१॥ प्रेतत्वं सुस्थिरं

हो ऐसा पौराणिक लोग कहते हैं ॥ ६७ ॥ यह सब तुम्हारे आधार है और यह संसार तुम्हारे आधार है व देवता तुम्हारे आधार हैं और अमृत तुम्हारे आधार
है ॥ ६८ ॥ और सदैव जीवरूप से तीनों लोकों को व्याप्त कर तुम स्थित होते हो इस प्रकार उन सोमप ब्राह्मणों से स्तुति किया हुआ वह नीलवृष ॥ ६९ ॥
प्रसन्नमुख होकर ब्राह्मणों को प्रणाम करता भया और शिवजी का अपराध करने वाले ब्राह्मणों ने फिर यह वचन कहा ॥ ७० ॥ और धर्म से नीलरूप
शिवजी को वर दिया कि जिस प्रेतके एकादशाह में बैल नहीं छोड़ा जाता है ॥ ७१ ॥ सैकड़ों श्राद्धों के भी देनेसे उसकी प्रेतता स्थिर होती है फिर महावृष